दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

प्रधान संपादक

डॉ. अश्विनी महाजन

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संपादक

डॉ. प्रसून दत्त सिंह

महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी

डॉ. फूल चन्द

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

दृष्टिकोण प्रकाशन

वर्ष : 12 **अंक** : 5 ❑ सितम्बर–अक्टूबर, 2020

दृष्टिकोण

संपादक मंडल

डॉ. अरुण अग्रवाल
ट्रेन्ट विश्वविद्यालय, पीटरबरो, ओंटारियो
डॉ. दया शंकर तिवारी
दिल्ली विश्वविद्यालय
डॉ. आनंद प्रकाश तिवारी
काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ. प्रकाश सिन्हा
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
डॉ. दीपक त्यागी
दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर
डॉ. अरुण कुमार
रांची विश्वविद्यालय, रांची
डॉ. महेश कुमार सिंह
सिद्धू कान्हू विश्वविद्यालय, दुमका
डॉ. हरिश्चन्द्र अग्रहरि
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा
डॉ. पूनम सिंह
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
डॉ. एस. के. सिंह
पटना विश्वविद्यालय, पटना
डॉ. अनिल कुमार सिंह
जे.पी. विश्वविद्यालय, छपरा
डॉ. मिथिलेश्वर
वीर कुंअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा
डॉ. अमर कान्त सिंह
तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर
डॉ. ऋतेश भारद्वाज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ. स्वदेश सिंह
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ. विजय प्रताप सिंह
छत्रपति साहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

संपादकीय सम्पर्क:
448, पॉकेट-5, मयूर विहार, फेज-I, दिल्ली-110091

©Editorial India
Editorial India is a content development unit of Permanence Education Services (P) Ltd.

ISSN 0975-119X

नोट: पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संपादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

सम्पादकीय

लघु-मध्यम उद्यमों की परिभाषा की कवायद

एक लंबे समय से लघु उद्योगों की परिभाषा का विषय विवाद का कारण बना हुआ है। 1998 में जब अटल बिहारी वाजपेयी ने सत्ता का सूत्र संभाला था, उससे ठीक पहले तत्कालीन कांग्रेस सरकार ने लघु उद्योगों की परिभाषा में आमूलचूल परिवर्तन किया था। उससे पूर्व वे उद्योग जिनमें प्लांट और मशीनरी की लागत 60 लाख रूपए या उससे कम थी, लघु उद्योग कहलाते थे। लेकिन तत्कालीन सरकार ने इस सीमा को 60 लाख से बढ़ाकर अचानक 3 करोड़ (5 गुणा) कर दिया था। चुनाव से पूर्व वाजपेयी ने उसे अनुचित बताया था और उनकी सरकार आने पर उसे बदलकर 1 करोड़ करने का वादा किया था। इस वादे को निभाते हुए वाजपेयी सरकार ने लघु उद्योगों की परिभाषा को पुनः बदलते हुए, उसमें प्लांट और मशीनरी की लागत की सीमा को घटाकर 1 करोड़ कर दिया। लंबे समय तक यह विवाद थमा रहा। इस बीच वर्ष 2006 में एमएसएमई अधिनियम लागू किया गया, जिसके अनुसार एस.एस.आई (लघु पैमाने के उद्योगों) के स्थान पर एक नई परिभाषा एमएसएमई (माइक्रो, स्माल, मीडियम एंटरप्राइज) लागू हो गई। इसमें दो प्रमुख बदलाव आए।

एक, उद्योग के स्थान पर उद्यम शब्द का उपयोग प्रारंभ किया गया और दूसरा लघु के साथ-साथ मध्यम श्रेणी के उद्यम नाम का एक और वर्ग इसमें शामिल किया गया। तर्क यह था कि लघु उद्यमों को मिलने वाले लाभ जैसे सरकारी खरीद में प्राथमिकता, वित्त में रियायत आदि का लाभ छिन जाने के भय से लघु उद्यमों को विस्तार करने में झिझक होती थी। मध्यम श्रेणी के उद्यमों को भी परिभाषा में शामिल करने पर यह झिझक समाप्त हो जाएगी। नई परिभाषा के अनुसार सूक्ष्म (माइक्रो) उद्यम में प्लांट एवं मशीनरी में निवेश की सीमा 25 लाख, लघु उद्यम में यह सीमा 5 करोड़ और मध्यम श्रेणी के उद्यम में प्लांट एवं मशीनरी में निवेश की सीमा 10 करोड़ रखी गई।

यह परिभाषा अभी तक लागू रही है। लेकिन केन्द्र में नरेन्द्र मोदी सरकार के कार्यभार ग्रहण करने के बाद इस परिभाषा में बदलाव की कवायद चल रही थी। इस बीच एक नए एमएसएमई एक्ट हेतु तैयारी शुरू हुई। इस हेतु विधेयक अभी संसद में प्रस्तावित है। सरकार ने एमएसएमई की परिभाषा को बदलकर, सीमा को प्लांट एवं मशीनरी से बदल कर 'टर्न ओवर' के आधार पर करने का प्रस्ताव काफी दिनों से आधिकारिक हलकों से चल रहा था। लेकिन इसके विरोध के चलते, सरकार ने परिभाषा प्लांट एवं मशीनरी में निवेश और 'टर्न-ओवर' दोनों के आधार पर करना तय किया और इस हेतु 1 जून 2020 को एक अध्यादेश जारी कर सूक्ष्म, लघु और माध्यम उद्यमों के लिए निम्न परिभाषा निश्चित की है।

1. सूक्ष्म उद्यम वह है जिसमें संयंत्र और मशीनरी अथवा उपस्कर में एक करोड़ रूपए से अधिक का निवेश नहीं होता है, तथा उसका करोबार पांच करोड़ से अधिक नहीं होता है।
2. लघु उद्यम वह है जिसमें संयंत्र और मशीनरी अथवा उपस्कर में पांच करोड़ रूपए से अधिक का निवेश नहीं होता है, तथा उसका करोबार 50 करोड़ से अधिक नहीं होता है।

मध्यम उद्यम वह है जिसमें संयंत्र और मशीनरी अथवा उपस्कर में 50 करोड़ रूपए से अधिक का निवेश नहीं होता है, तथा उसका करोबार 250 करोड़ से अधिक नहीं होता है।

इस अधिसूचना को 1 जुलाई 2020 से लागू कर दिया गया है।

चूंकि कई उद्यम ऐसे रहते हैं, जहां संयंत्र, मशीनरी एवं उपस्कर तो कम होते हैं, लेकिन उनकी टर्नओवर काफी ज्यादा होती है। ऐसे में इस प्रकार के भारी कारोबार करने वाले उद्यम भी एमएसएमई की श्रेणी में आ जाते थे। इसलिए 'निवेश' और 'कारोबार' दोनों के समिश्रण से उस समस्या का समाधान तो हो गया है। लेकिन वर्तमान अध्यादेश के अन्य प्रावधानों के चलते यह विवादों के घेरे में है। लघु उद्योगों के कई संगठन इस अध्यादेश का पुरजोर विरोध भी कर रहे हैं।

इन संगठनों की पहली आपत्ति इस बात को लेकर है कि एमएसएमई की इस परिभाषा में विदेशी पूंजी प्राप्त उद्योगों को अलग नहीं किया गया है। देशीय लघु उद्यमों का मानना है कि ऐसे में बड़े विदेशी निवेशक लघु उद्यमों का स्थान हस्तगत कर लेंगे। उदाहरण के लिए यदि कोई विदेशी उद्यमी 50 करोड़ रुपए तक के निवेश और 250 करोड़ तक कारोबार के साथ मध्यम श्रेणी के उद्यम के लाभ हस्तगत कर सकेंगे और भारतीय उद्यमों को नुकसान होगा। उनका यह भी कहना है कि पूर्व की परिभाषा के अनुसार मात्र 0.007 प्रतिशत उद्यम ही मध्यम श्रेणी में थे। नई परिभाषा में तो लघु उद्यम कहलाएंगे क्योंकि 10 करोड़ से कम निवेश है। अब जो भी मध्यम लगेंगे वह सब नये लगेंगे। इसलिए वर्तमान के मध्यम दर्जे के उद्यमों को तो कोई लाभ नहीं मिलेगा, लेकिन बड़ी पूंजी के साथ नए उद्यमों को ही नई परिभाषा का लाभ होगा।

नए अध्यादेश पर दूसरी आपत्ति यह है कि इस अध्यादेश में पूर्व के एमएसएमई अधिनियम (2006) के अनुरूप मैन्युफैक्चरिंग और सेवा उद्यमों में भेद नहीं किया गया है। गौरतलब है कि एमएसएमई अधिनियम, 2006 के अनुसार सूक्ष्म उद्यमों में सेवा क्षेत्र में संलग्न उद्यमों की निवेश की सीमा मात्र 10 लाख रूपए थी, जबकि मैन्युफैक्चरिंग में यह 25 लाख रूपए थी। लघु सेवा उद्यमों में निवेश की सीमा 2 करोड़ रूपए, मध्यम सेवा उद्यमों में यह 5 करोड़ रूपए ही थी। समझना होगा कि लघु मैन्युफैक्चरिंग उद्यम उनमें रोजगार सृजन के अवसरों के नाते जाने जाते हैं। समझना होगा कि सेवा क्षेत्र में रोजगार सृजन की

संभावनाएं मैन्युफैक्चरिंग से बहुत कम होती है। इसलिए जब विषय रोजगार के लिए मैन्युफैक्चरिंग को बढ़ावा देने का हो तो सेवा क्षेत्र के उद्यमों को मैन्युफैक्चरिंग के समकक्ष रखना सही नहीं होगा। इसलिए ट्रेडिंग और असेम्बलिंग आदि सेवाओं को मैन्युफैक्चरिंग से भिन्न माना जाना ही सही होगा, अन्यथा मैन्युफैक्चरिंग के लिए प्रोत्साहन घटेगा।

नए अध्यादेश के संदर्भ में तीसरी अपत्ति यह है सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योगों की परिभाषा को बदलने के संदर्भ में जहां लघु उद्यमों में निवेश (संयंत्र और मशीनरी अथवा उपस्कर में निवेश) की सीमा को 5 करोड़ से दुगना कर 10 करोड़ रूपए की गई है, लेकिन मध्यम श्रेणी के उद्यमों के लिए यह 10 करोड़ से बढ़ाकर 50 करोड़ (5 गुणा अधिक) कर दी गई है। यानि ऐसा प्रतीत होता है कि बड़े उद्यमों को भी एमएसएमई की श्रेणी में लाने का यह प्रयास है। इससे अभी तक के एमएसएमई का लाभ अब अपेक्षाकृत बहुत बड़े उद्यमों को भी मिलने वाला है। यह कुछ अटपटा और अजीब तो लगता ही है, वास्तवकि रूप से बड़ों को लाभ देने वाला है, क्योंकि वित्त, सरकारी खरीद आदि में अब बड़े उद्यमों की हिस्सेदारी बढ़ जाएगी, हालांकि कुछ मध्यम श्रेणी के उद्यमों की संख्या कुल उद्यमों का मात्र 0.007 प्रतिशत ही है।

इस अध्यादेश का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू जो ध्यान में आ रहा है कि एमएसएमई में विदेशी निवेश प्राप्त उद्यमों को भी शामिल रखा गया है। लघु उद्यम संगठनों का मानना है कि 50 करोड़ रूपए के बड़े निवेश वाले तथाकथित मध्यम श्रेणी के उद्यम, एमएसएमई के समस्त लाभों को हस्तगत कर लेंगे। इसलिए इन संगठनों की मांग है कि विदेशी निवेश प्राप्त उद्यमों को एमएसएमई परिभाषा शामिल नहीं किया जाना चाहिए।

एक अन्य आपत्ति यह है कि जब 'टर्न ओवर' यानि कारोबार का प्रश्न आता है तो उसमें से निर्यात के कारोबार को हटाकर देखा जाएगा। इस बात का कोई औचित्य नहीं है। क्योंकि यदि कोई बड़ा उद्यमी (या निर्यातक) जिसका संयंत्र और मशीनरी अथवा उपस्कर में तो निवेश कम है, लेकिन बड़ी मात्रा में निर्यात करता है तो वह देश के एमएसएमई के समकक्ष आ सकता है। उदाहरण के लिए यदि कोई फर्म 1000 करोड़ रूपए का निर्यात करती है और 250 करोड़ रूपए का कारोबार देश में करती है, लेकिन संयंत्र और मशीनरी में निवेश 50 करोड़ रूपए या कम है तो भी वह एमएसएमई की परिभाषा में आ जाएगी। यह अत्यंत अटपटा है।

हमें देखना होगा कि फर्मों को उसके आकार और कुल कारोबार के अनुसार ही वर्गीकृत किया जाना चाहिए। किसी भी हालत में निर्यात अथवा किसी और बहाने से बड़ी फर्मों को एमएसएमई की श्रेणी में लाया जाना, लघु उद्यमों को प्रश्रय देने के औचित्य को ही समाप्त कर देगा।

यानि कहा जा सकता है कि सरकार को वर्तमान नोटिफिकेशन पर नए सिरे से विचार कर सूक्ष्म, लघु और मध्यम दर्जे के उद्यमों को सही प्रकार से परिभाषित करना चाहिए, ताकि लघु उद्यमों को बढ़ावा देकर देश में रोजगार, वितरण में समानता, विकेन्द्रीकरण आदि के लक्ष्यों को भली भांति प्राप्त किया जा सके।

संपादक

इस अंक में

नवीन लोक प्रशासन : एक सामान्य अध्ययन–डॉ० अशोक कुमार 1

भारत में जनजातियों का वर्गीकरण विशेषत: झाखण्ड राज्य के पश्चिमी सिंहभूम जिला के सन्दर्भ में–डॉ० राघवेन्द्र प्रसाद सिन्हा 5

भारत में भूमि सुधार : एक सामान्य अवलोकन–डॉ० धर्मेन्द्र धारी सिंह 9

स्वतन्त्रता आन्दोलन में बिहार की कुछ राष्ट्रवादी महिलाओं की जीवन उपलब्धि : एक ऐतिहासिक अवलोकन–अनीता कुमारी 13

भारत में महिला सशक्तिकरण और कल्याणकारी कार्यक्रमों का विश्लेषणात्मक अध्ययन–दीपक कुमार दास 19

राष्ट्र भर में वयस्क शिक्षा का महत्व–डॉ० मीता कुमारी 23

भारत में कृषि का विकास : पंचवर्षीय योजनाओं के परिप्रेक्ष्य में–डॉ० सुनील चन्द्र झा 30

मुक्त समाज व्यवस्था और सामाजिक न्याय: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० अभय कुमार 34

भारत और ब्रिक्स: आतंकवाद पर साझा दृष्टिकोण–डॉ० प्रमोद कुमार 39

लोकसभा चुनाव 2014 में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी–डॉ० विजया सिंह 43

भारत में मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों का समीक्षात्मक अध्ययन–डॉ० निवेदिता 47

नेपाल में माओवादी आन्दोलन की भूमिका: एक समीक्षात्मक अध्ययन–सुनीता प्रसाद 51

बैंकिंग क्षेत्र में उभरते रुझान तथा आधुनिक बैंकिंग–डॉ० कुंदन कुमार सिंह 55

लालदास कृत रमेश्वरचरित मिथिला रामायणमे मिथिलाक वर्णन–कुमकुम कुमारी 59

भूमिका-अनुसन्धान-आलोचनाक प्रणेता: प्रो० रमानाथ झा–डॉ० गोपाल कुमार 62

आधुनिक मैथिली साहित्य: धूमकेतु–साधना कुमारी 65

भारत में राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीति: एक अवलोकन–राजीव रंजन कुमार 67

माधवी में स्त्री अस्मिता का स्वरुप–सोनम सिंह 72

बुद्धिधर्मी का दायित्व और प्रेमचंद–शीतांशु 75

परमाराध्य : भगवान श्रीनाथजी का प्राकट्य वर्णन–डॉ० कांतिलाल यादव; शालिनी भट्ट 79

स्वामी विवेकानंद: सामाजिक विचारक के रूप में–डॉ० प्रतिमा गोंड 82

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की बाल कहानियाँ–डॉ० मिथिलेश कुमारी 87

भारतीय दर्शन में मानवतावादी दृष्टिकोण एवं इसकी प्रासंगिकता–प्रवीण कुमार यादव 90

दलित मानवतावादी: डॉ. अम्बेडकर–डॉ० शैलेन्द्र कुमार 93

साहित्य और पत्रकारिता के परिवर्तित मूल्य–डॉ० नलिनी सिंह 95

महिलाओं में स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरूकता उत्पन्न करने में संचार माध्यमों की प्रभावशीलता का अध्ययन–डॉ० रीना चौरसिया 97

छत्तीसगढ़ सहकारी बैंक द्वारा संचालित केसीसी योजना की प्रगति तथा शून्य ब्याज दर की ऋण वितरण राशि में प्रभावशीलता का अध्ययन–डॉ० बुद्धेश्वर प्रसाद सिंघरौल; चुलेश्वर 101

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के निर्धारण में तिथि निर्धारण की समस्या–डॉ० सुम्बुला फिरदौस 106

स्नातक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के संदर्भ में शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन–नरेन्द्र कुमार; डॉ० अंजना 109

कौशल विकास मिशन: बेरोजगारी उन्मूलन का अस्त्र–डॉ० पंकज मिश्र 115

दिनकर की कविताओं में स्वाधीनता संघर्ष–प्रियंका शर्मा 118

डॉ० सिग्मंड फ्रायड के मूल प्रवृत्ति सिद्धांत का भारतीय परिप्रेक्ष्य में आलोचनात्मक अध्ययन–डॉ० सरिता शर्मा; रवीश कुमार 122

पूर्वांञ्चल क्षेत्र के बाल श्रमिकों की शिक्षा : समस्या एवं समाधान के संदर्भ में एक अध्ययन–आलोक कुमार श्रीवास्तव; डॉ० सुधांशु सिन्हा 127

तख्त श्री केसगढ़ साहिब: ऐतिहासिक प्रसंग–नवजोत सिंह 131

प्राथमिक शिक्षकों के दायित्वबोध का अध्ययन–डॉ० समर बहादुर सिंह 135

आदिवासी क्षेत्र में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को प्राप्त शासकीय सुविधाओं के प्रति जागरूकता का अध्ययन
–डॉ० रिया तिवारी; दीपक कुमार धनगर 138
वैश्वीकरण और हिंदी का स्वरूप–डॉ० मौहम्मद अबीरउददीन 142
कबीर की सामाजिक चेतना में मानवाधिकार–डॉ० रविश कुमार सिंह 146
दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की अवधारणा
–डॉ० राकेश कुमार डेविड; डॉ० संजीत कुमार साहू; डॉ० शोभना झा 149
पूर्वोत्तर भारत में हिन्दी के विकास की संभावित दिशाएँ–डॉ० रीतामणि वैश्य 156
बच्चों के साथ घर और नौकरी संभालती महिलाएं और उनकी परेशानियाँ–डॉ० कुमारी पूजा 158
भारतीय संस्कृति एवं स्त्री विमर्श–सरिता शर्मा; संदीप कुमार 160
महिला सशक्तिकरण: सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर होने वाले भेदभाव के कुपरिणाम–सुकन्या; डॉ० अंजु सिंह 166
विवाह संस्था और स्त्री प्रश्न (विशेष संदर्भ समकालीन हिन्दी उपन्यास)–रेणु चौधरी 169
साहित्य इतिहास-लेखन में भक्त स्त्रियाँ–डॉ० कविता राजन 172
नारी-संवेदना (झांसी की रानी के आधार पर)–डॉ० विजय शंकर मिश्र 175
स्वातंत्रोत्तर हिंदी नाटक : बदलते नैतिक मूल्य–ज्ञानेश पाण्डेय 178
रमेशचन्द्र शाह के ललित निबंधों का आलोचनात्मक चिंतन–कृपा शंकर 182
'गुरू ग्रंथ साहिब' में कुदरत की अवधारणा–जसप्रीत कौर; डॉ० अजयपाल सिंह 185
आदिवासियों में अंधविश्वास की समस्या और उसका औपन्यासिक प्रतिफलन–डॉ० उमेश कुमार पाण्डेय 190
बाँसवाड़ा जिले की साक्षरता : एक तुलनात्मक विश्लेषण (जनगणना 2001 व 2011 पर आधारित)–मनोज कुमार यादव 193
रसनिष्पत्ति प्रक्रिया की वैज्ञानिकता–डॉ० राजेश कुमार सिंह 198
असहयोग आन्दोलन में पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका: बिहार के विशेष संदर्भ में–डॉ० मुकुल कुमार शर्मा 203
भारत में ऊर्जा सुरक्षा : एक आलोचनात्मक अध्ययन–श्रुति जायसवाल 206
नूर मोहम्मद के काव्य दर्शन का विश्लेषण–डॉ० प्रदीप कुमार सिंह 209
समकालीन हिंदी ग़ज़ल–रेशमा मोहन काम्बले 216
कोरोना और भारत का सहकारी संघवाद–प्रो० रेखा सक्सेना 221
गोरखा शासन काल में न्याय एवं दण्ड व्यवस्था का ऐतिहासिक अध्ययन (1804-1815 ई०) : गढ़वाल के विशेष सन्दर्भ में
–सत्येन्द्र धर्म्वाण; देवेश सिंह गर्ब्याल 225
ईस्ट इंडियन रेलवे कंपनी और बिहार में रेलवे का आगमन (1845-1871)–नवीन कुमार 229
गुरू नानक एवं मनमोहन सहगल की दार्शनिक चेतना में समानता–ब्रह्मलता 233
ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की सृजनशीलता का उनकी वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर पड़ने वाले
प्रभाव का अध्ययन–योगेश कुमार पाल 236
विज्ञान समूह के बी.एड. प्रशिक्षु शिक्षक की शिक्षण क्षमता पर इंटर्नशिप कार्यक्रम के प्रभाव का अध्ययन
–डॉ० योगिता जिवाने, डॉ० रिया तिवारी 239
मृदुला सिन्हा के निबंध साहित्य में सामाजिक व पारिवारिक संबंध–अंजुलता सारस्वत 242
रीवा संभाग के भूमि उपयोग प्रतिरूप पर जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव: एक भौगोलिक अध्ययन
–सितेश भारती; प्रो० शिव कुमार दुबे 245
बिहार में मानवीय विकास की संभावनाएँ एवं चुनौतियाँ : एक दार्शनिक अवलोकन–डॉ० पुनम कुमारी 253
दक्षिण भारत में देवदासी व्यवस्था: ऐतिहासिक एवं विश्लषणात्मक अध्ययन–डॉ० ऋतेष भारद्वाज 256
देह के दलदल से मन की मरुभूमि तक : एक हिजड़ा जीवन-कथा–पल्लवी प्रियदर्शिनी 261
मधु काँकरिया के साहित्य में नक्सलवादी समस्या–मीनाक्षी सिंह 269
भारतीय संस्कृति की अवधारणा महत्व घटक–कांता पारिक 273
पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक भारतीय जीवन शैली का प्रभाव–कुमार गौरव 276
'आग-पानी-आकाश' उपन्यास में 'दलित विमर्श'–लक्ष्मी देवी 281

जनसंख्या घनत्व: चतरा जिला (झारखण्ड) के संदर्भ में एक प्रतीक अध्ययन–डॉ० मनीष कुमार 285
पर्यावरणीय मुद्दे एवं आपदा प्रबंधन–मीना शर्मा 289
विद्यालयी शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति के समावेश के क्षेत्र–श्रीमती मीनाक्षी मोदी 292
माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत उच्च, मध्यम व निम्न बौद्धिक स्तर के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि पर सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रभाव का अध्ययन–नरेन्द्र कुमार; डॉ० मंजू गुप्ता 295
गीतांजलि श्री कृत 'तिरोहित' उपन्यास में स्त्री-विमर्श–नीलम कुमारी 301
स्त्री सुन्नत की भयावहता और उसके प्रति विद्रोह : दर्दजा–निशा देवी 304
वैश्विक जल प्रदूषण समस्या समाधानार्थ भारतीय जल संस्कृति–राजपाल सिंह यादव 307
विद्यार्थियों में पर्यावरणीय चेतना के लिए शिक्षा का महत्त्व–डॉ० गिरीश कुमार द्विवेदी 310
बनहरा ग्राम (बलिया जनपद) की जनसंख्या के आयु वर्ग संरचना का भौगोलिक विश्लेषण–रिम्पी राय 313
जिद्दू कृष्णमूर्ति के दर्शन में तत्व मीमांसा–डॉ० सत्य प्रकाश तिवारी 318
महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका–सुनिता सारस्वत 323
"विद्यालयी शिक्षा में भारतीय संस्कृति का समावेशन"–डॉ० कंचन शर्मा 326
भरतपुर का भौगोलिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन–डॉ० कुलराज व्यास 329
भारत छोड़ो आन्दोलन में बिहार के व्यापक स्वरूप का वर्णन–लव कुमार 334
भारत में राज्यपाल का पद : वर्तमान परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में–डॉ० अल्पना व्यास 337
भारतीय उच्च शिक्षा पर ई-गवर्नेंस का प्रभाव–चन्दना शर्मा 340
कल्याणकारी राज्य और सामाजिक सुरक्षा–प्रतिभा सिंह 343
स्वछंदतावादी नाट्य-प्रवृत्तियाँ–डॉ० रेणु कुमारी 346
सुमित्रानंदन पंत की रचना 'गुंजन' का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन–उदिप्त तालुकदार 349
निराला के काव्य में अंग्रेजी राज का चरित्र–बबीता कुमारी 353
लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में आर्थिक जीवन की अभिव्यक्ति–डॉ० उमेश कुमार शर्मा 357
स्मृति ग्रंथों में पराशर स्मृति का स्थान एवं महत्व–तरूण कुमार सिंह 361
मीटूइनइंडिया: एक आलोचनात्मक पड़ताल–अपर्णा दीक्षित 363
भक्तिकालीन कविता में लोकधर्म–डॉ० अजय कुमार यादव 366
मलेरिया रोग में आहार एवं पोषण का चिकित्सा भौगोलिक अध्ययन–देवेन्द्र कुमार शर्मा; डॉ० विजय कुमार वर्मा 369
वर्त्तमान समय में गाँधियन अर्थशास्त्र की प्रासंगिकता–डॉ० शम्मी कुमारी 378
पार-सांस्कृतिक विवाहों में महिलाओं की बदलती हुई सांस्कृतिक पहचान: धौलपुर जिले के विशेष संदर्भ में –प्रो० मंजू सिंह; डॉ० पारो मिश्रा; सुश्री सोनिका 381
सोशल मीडिया और समाज : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० युवराज कुमार 389
असम के आदिवासी लोकगीत : एक परिचयात्मक अध्ययन–मिजानुर हुसैन मण्डल 393
परम्परागत वैवाहिक जीवन की त्रासदी और प्रेम का द्वन्द्व (सुभद्राकुमारी चौहान की कहानियों के विशेष सन्दर्भ में)–आरती यादव 397
बिहार में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग और इसकी चुनौतियां–रंजीत कुमार 404
भारत की विदेश नीति पर सार्क के प्रभाव का विश्लेषण–डॉ० ऋचा सिंह 408
भारत में कृषि श्रमिकों की प्रास्थिति–दिपेन्द्र सिंह 414
राजगढ़ तहसील में कृषि उत्पादन को प्रभावित करने वाले कारक–हरीश मीना; डॉ० जगफूल मीना 418
संगीत-व्यापार एवं रोजगार के साधन–डॉ० चन्देश्वर प्रसाद कुशवाहा 423
ध्रुवपद गायन शैली में बिहार का स्थान–डॉ० सुरेन्द्र कुमार राम 425
डेविड ह्यूम के ज्ञानमीमांसा का समीक्षात्मक अध्ययन–सुरबाला वर्मा 427
अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भारतीय वस्त्रों का आर्थिक महत्त्व–प्रोफेसर (डॉ०) संजय कुमार झा 431
ई-गवर्नेन्स और डिजिटल इंडिया: भारतीय नागरिकों को सशक्त बनाना–डॉ० संतोष कुमार यादव 435
भारत में क्षेत्रीयतावाद की समस्या : पृथक मिथिला राज्य के संदर्भ में–डॉ० गुंजन कुमार 438

रोजगार में सेवा क्षेत्र की भागीदारी–डॉ० अंगूर कुमारी 442
स्वामी विवेकानंद तथा भारतीय युवा वर्ग: एक दृष्टि–डॉ० प्रियतोष शर्मा 447
अटल बिहारी वाजपेयी की कविता : विविध परिवेश–डॉ० भारत भूषण 450
भारतीय दर्शन में धर्म विचार–डॉ० नागेन्द्र तिवारी 454
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (1885)–सुनील कुमार पासवान 457
श्रीराधाचरित महाकाव्य के कथानक का पौराणिक आधार–डॉ० दिनेश कुमार 462
सामाजिक परिवर्तन में दर्शन की भूमिका–डॉ० अमृता कुमारी 469
बालक के विकास में वातावरण का प्रभाव–डॉ० शोभा कुमारी 473
केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में प्रकृति चित्रण–डॉ० हरिश्चन्द्र अग्रहरि 475
कोविड लॉकडाउन, टेलीविजन कार्टून और बच्चे–राखी गौरवम एवं अनिंद्य देब 479
दलित महिलाओं की परिस्थिति पर मनरेगा का प्रभाव: मध्य प्रदेश के गांवों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण–डॉ० पवन कुमार मिश्र 482
विनायक दामोदर सावरकर और 1857 : एक पुनरावलोकन–डॉ० अमृता कुमारी 489
कोरोना संक्रमण काल में फेक न्यूज़ रोकने में पीआईबी की भूमिका–डॉ० शैलेश शुक्ला 492
गुप्तकाल: आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था–डॉ० रिंकु कुमारी 496
बाल मनोविज्ञान के द्वारा बालकों के स्वभाव एवं विकास–डॉ० श्याम सुन्दर शर्मा 504
भारत पर तुर्क आक्रमण एवं गुलाम वंश–डॉ० संजय कुमार 508
विदेशी व्यापार एवं अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों का अध्ययन–डॉ० पवन कुमार वर्मा 516
बिहार में 20-सूत्री कार्यक्रम क्रियान्वयन का विश्लेषणात्मक अध्ययन–मो० नौशाद 523
प्राचीन काल में स्त्रियों के कानूनी अधिकार–डॉ० नूतन कुमारी 528
महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं डॉ. बी.आर. अम्बेडकर की दृष्टि में सामाजिक सामञ्जस्य का आधार–डॉ० संदीप कुमार 534
भारत के दलितों में शिक्षा ग्रहण करने की स्थिति: एक विश्लेशणात्मक अध्ययन–डॉ० सीमा कुमारी 538
वैदिक युग में सामाजिक स्थिति–डॉ० कामेश्वर कुमार 541
हिंदी उपन्यास का उद्‌भव–जगदीश सिंह 545
भीष्म साहनी के साहित्य में नारी-चेतना : राजनीतिक पक्ष–मनकी रानी; डॉ० निरुपमा हर्षवर्धन 548
जन्म एवं परिचय–माधुरी राजनाथ सिंह 552
टेलीविजन का विकासक्रम–सिंह मीरा विश्वनाथ 556
राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 : एक मूल्यांकन–नागेश्वर कुमार 559
भारतीय महिला आन्दोलन–डॉ० पिंकी पुनिया 564
21वीं सदी के हिंदी उपन्यास में मुस्लिम समाज : 'अपवित्र आख्यान' के विशेष संदर्भ में–अनिल कुमार; डॉ० रीता सिंह 577
ऋग्वेद में अश्विनीकुमार–डॉ० नीलम सिंह 580
कोशी अंचल के लोकगीतों में दाम्पत्य भावना–विनय कुमार चौधरी 583
हिंदी पत्रकारिता में नैतिक मूल्य : वर्तमान परिप्रेक्ष्य–डॉ० साताप्पा लहू चव्हाण 587
कोविड-19 महामारी और भारत में प्रवासी संकट: एक विश्लेषण–वीना कुकरेजा 590
वैश्वीकरण में शैक्षिक प्रबन्धन और कम्प्यूटर का अनुप्रयोग–डॉ० सन्तोष कुमार सिंह 596
बाल गंगाधर तिलक व एनी बेसेंट के होम रूल लीग आंदोलन का मूल्यांकन (1916-1918)–मोहन लाल 599
निजी और सार्वजनिक क्षेत्र में अन्तर्विरोध का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन–डॉ० जयराम बैरवा 602
माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के व्यक्तित्व एवं संवेगात्मक बुद्धि के तुलनात्मक अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष–रत्नाकर सिंह 608
हिन्दी नारी कविता और अनामिका–डॉ० सुरेन्द्र सिंह; डॉ० यदुवीर सिंह खिरवार 611
शोषण का दस्तावेज-'जूठन'–डॉ० सुमित्रा महरौल 615
गाँधीवादी आर्थिक दर्शन के परिदृश्य में अम्बेडकर का आर्थिक चिंतन–डॉ० अनिल कुमार 618
जयशंकर प्रसाद की नारी दृष्टि–डॉ० अनिल कुमार 621
श्रीमद्‌भागवत के अनुसार भारत का भौगोलिक अध्ययन–सीमा चिनप्पा; डॉ० वेदप्रकाश मिश्र 624

प्रमुख हिन्दी उपन्यासों में दलित विमर्श–डॉ० तारु एस० पवार 628

योग दर्शन में ध्यान के सूक्ष्म आयाम: समापत्ति एक अध्ययन–सचिन भारद्वाज; प्रो० गणेश शंकर गिरी 632

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में आकलन–डॉ० दीपाली द्विवेदी 636

वर्तमान समय के राजनीति परिप्रेक्ष्य में मन्नू भंडारी का उपन्यास 'महाभोज'–सरिता कुमारी 639

हिन्द महासागर में शांति एवं भारत की सामरिक रणनीति का भौगोलिक अध्ययन–डॉ० साधना रानी; उमा प्रसाद 643

अनामिका की कविताओं में प्रतिरोध के स्वर–प्रवीण कुमार यादव; डॉ० वंदना कुमार 646

महात्मा गांधी एवम् भारत छोड़ो आन्दोलन–गुरलाल 651

पुष्टिमार्ग तृतीय पीठ कांकरोली स्थित नटवर सदन के चित्रों का संक्षिप्त परिचय–डॉ० हितेश पालीवाल 655

प्रो० अभय मोर्य कृत 'त्रासदी' उपन्यास में चित्रित समाज–रीतू; डॉ० सुमन राठी 662

प्रागैतिहासिक गुफाओं में ज्यामितीय प्रतीक चित्रों के स्त्रोत–डॉ० कुसम गोयत 665

भारतीय समाज में दलित महिलाओं की स्थिति–मनोज कुमार गौतम 668

विनय मिश्र की गजलों में सामाजिक चेतना का स्वरूप–अशोक कुमार यादव; डॉ० बुद्धमति यादव 671

साम्प्रतिक संस्कृत रचनाधर्मिता: एक विवेचना–डॉ० अर्चना सिन्हा 676

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के आत्म-विश्वास का अध्ययन–कमलाधर मिश्र 680

महिला मानवाधिकारों के विकास में संयुक्त राष्ट्र संघ: प्रावधान एवं प्रयास–अनीता मीणा 684

मुक्तिबोध के काव्य में जीवन का एक्स-रे–डॉ० राम किशोर यादव 690

समकालीन हिन्दी नवगीत: स्त्री पीड़ाओं की प्रतिध्वनि–मदनलाल 694

भारतीय राजव्यवस्था के आधार–सूर्य भान सिंह 698

छत्तीसगढ़ के कलचुरी राजवंश कालीन अभिलेखों में शैवधर्म–सुश्री शुभ्रा रजक 703

माध्यमिक स्तर पर पुरुष तथा महिला शिक्षकों के शिक्षण दक्षता का तुलनात्मक अध्ययन–सन्तोष कुमार गुप्ता; डॉ० अनुभा शुक्ला 705

ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में महिलाओं एवं पुरूषों की सामुदायिक कार्य और सामाजिक जिम्मेदारी- एक संक्षिप्त अध्ययन–श्री सच्चिदानन्द पाठक 710

संवेदना के शिल्प को गढ़ता गीतकार विरेन्द्र मिश्र का व्यक्तित्व–मोहन बैरागी; डॉ० अवनिश अस्थाना 713

अष्ट चामुण्डा - अग्निपुराण के विशेष सन्दर्भ में–प्रो० प्रभात कुमार–कल्पना देवी 722

पूर्व मध्य काल में मुद्रा विनिमय–राकेश कुमार यादव 727

उच्च शिक्षा में संस्कृत की भूमिका–डॉ० उषा नागर 730

लोकायुक्त की भ्रष्टाचार निवारण में सार्थकता : राजस्थान के सन्दर्भ में–तुलसी राम 733

नयी स्त्री का जन्म: मित्रो मरजानी–डॉ० प्रभात रंजन; नम्रता 737

उच्च शिक्षारत ग्रामीण एवं शहरी छात्राओं की मनोवैज्ञानिक, सामाजिक समस्याओं का अध्ययन–संतोष कुमार सिंह; डॉ० गायत्री प्रसाद सिंह 740

सुलतानपुर जनपद के महाविद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की अष्टांग योग के प्रति जागरूकता का अध्ययन
–शिल्पी सिंह; डॉ० गायत्री प्रसाद सिंह 744

साहित्यिक पत्रकारिता के विकास में 'संचेतना' की भूमिका–आनन्द प्रकाश सिंह 748

भारतीय संस्कृति और हिन्दी साहित्य का निर्गुण काव्य–हेमंत कुमार 751

ज्योतिषीय गणना में माधावाचार्य का योगदान–डॉ० आभा द्विवेदी 754

स्वतंत्रता आंदोलन में उत्तराखण्ड क्षेत्र की महिलाओं की भूमिका-एक अवलोकन–डॉ० अर्चना डिमरी 757

गणतंत्रकालीन मिथिला का ग्रामीण आर्थिक विकास–राम कुमार भारती 762

हिंदी पत्रकारिता और राष्ट्रधर्म: एक विमर्श–सूर्य प्रकाश मिश्र 765

चिकित्सा विज्ञान और बौद्ध धर्म: एक विवेचना–रेनू शुक्ला 767
ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत भारत में पाश्चात्य शिक्षा का विकास–डॉ० संजय कुमार मिश्र 772
आधुनिक काव्य में सर्प-बिम्ब: दिनकर–डॉ० वर्षा अग्रवाल 775
कोविड काल में भारतीय अर्थव्यवस्था का परिदृश्य–अशोक कुमार वर्मा 782
महिला कैदियों की समस्याएं एवं पुनर्वास के प्रावधान–पूनम गौतम 784
गांधी की लोकतंत्र में भूमिका : मतदान व्यवहार के विशेष संदर्भ में–देवेन्द्र कुमार 792
विचार धारा से जुड़ा था मुक्तिबोध का संघर्ष–डॉ० प्रतिमा सिंह 795
बाल जीवन में मनोवैज्ञानिक समस्याएँ–अफसाना ओली मोहम्मद खान 801
राही मासूम रजा के कथा साहित्य में भारतीयता–डॉ० संजीव कुमार 802
आचार्य उमास्वामी और उनका तत्वार्थसूत्र–विकास जैन 806
हिन्दी कविता का गन्धर्व लोक–अरविन्द कुमार अवस्थी 811
बाल साहित्यकार दीनदयाल शर्मा जी के बाल काव्य मे प्रेरणा के स्तर–खरात विलास पांडुरंग; डॉ० जाधव सुभाष दलसिंह 813
आजमगढ़ मण्डल में पंजीकृत कारखाने, लघु औद्योगिक इकाइयाँ, उनमें कार्यरत व्यक्ति तथा औद्योगिक पिछड़ेपन के कारण एवं उनका प्रबंधन–अक्षय वर्मा; डॉ० जैशराज शुक्ल 818
बौद्ध काल में वर्ण एवं जाति व्यवस्था–डॉ० रजनीकान्त राय 822
मानवाधिकार और सामाजिक न्याय–डॉ० गिर्राज प्रसाद बैरवा 826
विवाहिता व अविवाहिता छात्राध्यापकों के संवेगात्मक बुद्धि का अध्ययन–सुनील कुमार; डॉ० नरेन्द्र कुमार सिंह 830
सन्त साहित्य की परम्परा और परिप्रेक्ष्य–सुमन शुक्ला 835
एकात्म मानववाद और मार्क्सवाद–अनिल कुमार 838
योगाभ्यास से सम्पूर्ण स्वस्थता के लिए यौगिक आहार का महत्व–राजेश रंजन 842
प्रारंभ काल की कहानी साहित्य मे महिला लेखिकाओं का योगदान–डॉ० प्रेमचंद चव्हाण 845
छिन्नमस्ता : परंपरा और आधुनिकता के मध्य नारी के स्वत्व का संघर्ष–डॉ० रमेश बाबु. दर्शि 848
छत्तीसगढ़ राज्य ग्रामीण बैंक में गैर निष्पादित परिसंपति के कारण और प्रभाव का अध्ययन–नेहा कौशिक; डॉ० बायजू जॉन 851
मनरेगा पर कोरोना वायरस महामारी का प्रभाव–शिव कुमार शर्मा; डॉ० नीलम सारस्वत 856
वैश्विक संदर्भों में समाचारों का बदलता स्वरूप–डॉ० रेणु गुप्ता 859
छत्तीसगढ़ राज्य की महिलाओं को सशक्त बनाने में स्व-सहायता समूह की भूमिका - एक अध्ययन (बिलासपुर संभाग के सन्दर्भ में) –पूजा यादव; डॉ० प्रभाकर पाण्डेय 861
प्राचीन भारतीय आभूषणों का वैज्ञानिक महत्व–प्रो० प्रभात कुमार; सीमा देवी 864
हिंदी शोध-प्रबंधों की अभिव्यक्ति संबंधी चुनौतियाँ–डॉ० अनिल कुमार सिंह 867
सरिस्का बाघ पुनर्वास कार्यक्रम एवं चुनौतियां- एक शोधपरक अध्ययन–मनोज कुमार शर्मा; डॉ० खेमचंद शर्मा 870
अलवर शहर का ठोस अपशिष्ट प्रबंधन और उसके मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव–हिमांशी शर्मा; डॉ० नरेन्द्र सिंह यादव 874
रामधारी सिंह दिनकर के साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन–डॉ० संचिता मिश्रा 879
राजस्थान में पर्यटन की नयी संभावनाएं और उनके भावी प्रभाव–डॉ० अंजू बाला; सुशील कुमार मीणा 882
शिक्षा में स्वतंत्रता तथा अनुशासन का महत्त्व–अविनाश कुमार; डॉ० प्रतिभा रानी सिंह 886
महाभारत मे पर्यावरण चेतना–डॉ० हिमांशु पण्डित 890
महात्मा गाँधी की शिक्षा की अवधारणा: एक मूल्याकंन–डॉ० अवधेश कुमार 893

उत्तराखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में हो रहे पयालन से महिलाओं के समाजिक एंव राजनीतिक जीवन पर प्रभाव का एक अध्ययन –डॉ० राकेश सिंह नेगी 896
साहित्य समाज एवं होली का त्यौहार–डॉ० संजय कुमार सिंह 904
साहित्य एवं मीडिया: वर्तमान समाज निर्माण के महत्वपूर्ण स्तम्भ- संस्कृत साहित्य के आलोक में–डॉ० तेज प्रकाश 907
महिला अधिकार : नीतियां एवं वास्तविकता–रजनी 911
भारतीय अर्थव्यवस्था में शेयर बाजार का योगदान–फरखुंदा शरूर 914
रामदरश मिश्र के कथा-साहित्य में आर्थिक चेतना–डॉ० विनोद शर्मा 917
महात्मा गाँधी के राष्ट्रवाद का केंद्रीय तत्व–स्वराज–डॉ० निधि रायज़ादा; रंजय प्रसाद 921
मध्यकालीन बोध का अर्थ–डॉ० कृष्ण प्रताप सिंह 924
कृष्णा सोबती के उपन्यास 'चन्ना' में चन्ना के जीवन संघर्ष की मार्मिक अभिव्यंजना–डॉ० गौकरण प्रसाद जायसवाल; रणजीत सिंह 927
साहित्य एंव पत्रकारिता का अंतरसंबंध–अशोक मुरलीधर घोरपडे 931
अध्यापक एवं सूचना संचार एवं सूचना संचार प्रौद्योगिकी: बिलासपुर जिले के छात्राध्यापकों के संदर्भ में एक अध्ययन –विद्याभूषण शर्मा; डॉ० संजीत कुमार साहू 934
जिला बिलासपुर के माध्यमिक विद्यालयों के सामान्य एवं अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की आकांक्षा स्तर का अध्ययन–डॉ० विभा मिश्रा 938
अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद (प्रतीकांतरण) : विश्लेष्णात्मक अध्ययन–डॉ० हरप्रीत कौर 942
चीनी यात्रियों के विवरण में भारत की कृषि व्यवस्था–डॉ० अजय कुमार सिंह 947
हरियाणा संस्कृति में कलात्मक हवेलियाँ तथा बैठकें–डॉ० कविता 950
साल्हावास हरियाणा के धार्मिक पौराणिक भित्ति चित्र–प्रो० मीनाक्षी हुड्डा; मीनाक्षी 955
छाड़न में स्त्री विषयक चिंतन का रुप–शशि सुधा कुमारी 959
प्रेमचंद की कहानियों के आलोक में मानवाधिकार–डॉ० सिन्धु सुमन 961
सांख्यशास्त्र शिक्षा और विश्व की रचना–डॉ० दिनेश कुमार 965
बिहार में क्रांतिकारी किसान संघर्ष–डॉ० सीमा पटेल; मनोज कुमार यादव 969
सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 का प्रभाव एवं चुनौतियां–डॉ० विक्रम सिंह 972
भारतीय मजदूर वर्ग का उद्‌भव एवं विकास : एक अध्ययन–राहुल पाण्डेय; डॉ० सीमा पटेल 976
परास्नातक स्तर के नगरीय एंव ग्रामीण विद्यार्थियों के सामाजिक परिपक्वता का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति पर प्रभाव का अध्ययन –डॉ० प्रेमचन्द्र यादव; शिवाश्रेय यादव 979
अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की बालिकाओं की शैक्षिक समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन–शक्ति सिंह 983
महर्षि पतंजली के योगसूत्र में वर्णित योग का स्वरूप एवं अवधारणा–डॉ० रेशमा सुलताना 986
ग्रामीण दलित महिलाओं के सशक्तिकरण में कल्याणकारी योजनाओं का योगदान–रबिन्द्र कुमार 990
माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य विद्यार्थियों के मानसिक योग्यता का तुलनात्मक अध्ययन–राकेश कुमार 993
भारतीय संस्कृति एवं संस्कार के मनोवैज्ञानिक पक्ष–मनीष कांत; डॉ० कुमारी ज्योति 997
बिलासपुर के झुग्गी बाहुल्य क्षेत्र में रहने वाले परिवारों के आर्थिक स्थिति का अध्ययन–कु० आरती तिर्की; डॉ० ऋचा यादव 1002
अध्यापक की जिजीविषा एवं अस्मिता की नीलामी का साक्ष्य: दीक्षान्त–डॉ० पूजा शर्मा 1005
भारत में पंचायती राज व 'ग्राम सभा' की भूमिका–बृजेन्द्र कुमार मिश्र 1008
यौन स्वास्थ्य शिक्षा की आवश्यकता–डॉ० बृजेश कुमार पाण्डेय 1011
आधुनिक विचारकों के नारीवादी विचारों का एक अध्ययन–डॉ० वाय० एम० साळुंके 1014

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में नि:शस्त्रीकरण एवं अहिंसा की उपादेयता–लक्ष्मी राठौड़ 1017
माध्यमिक विद्यालयों में शैक्षिक गुणवत्ता एवं संसाधनों की उपलब्धता में शाला प्रबंधन एवं विकास समिति (एसएमडीसी) की भागीदारी –डॉ० संजीत कुमार साहू; कृष्ण कुमार चन्द्रा 1020
पलायन करने वाले श्रमिक परिवारों के बच्चों की प्राथमिक शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन (बलौदाबाजार जिले के विशेष संदर्भ में)–डॉ० संजीत कुमार साहू; ईश्वर प्रसाद यदु 1027
साठोत्तरी हिन्दी कहानियों में चित्रित सामाजिक समस्याएँ–कंचन लता गंगवार; डॉ० रानी अग्रवाल 1031
भारत का राजनीतिक आधुनिकीकरण और बाधाएँ–डॉ० राजेश कुमार 1034
शिवतत्त्व की अवधारणा और कामायनी–गायत्री कुमारी 1037
राजसमन्द जिले के आर्थिक विकास में धार्मिक पर्यटन की भूमिका–अजय सिंह मानावत; प्रो० आई०एम० कायमखानी 1040
छत्तीसगढ़ के शासकीय व अशासकीय डी.एल.एड. प्रशिक्षण संस्थाओं का 'सम्पूर्ण गुणवत्ता मूल्यांकन': इन्टर्नशीप के क्रियान्वयन और उसमें अनुभूत समस्याओ के विशेष संदर्भ में–सत्यप्रकाश यादव; डॉ० प्रकृति जेम्स 1044
किसान आन्दोलन में राहुल सांकृत्यायन की सक्रिय भूमिका–संजय कुमार सिंह 1047
चक्षु बाधित विद्यार्थियों की अपेक्षाएं: समावेशी शिक्षा के संदर्भ में–डॉ० यतीन कुमार चौबीसा 1051
वर्तमान शिक्षा में ई-संसाधनों की उपयोगिता एवं आवश्यकता–श्रद्धा श्रीवास 1055
वैदिक साहित्य में प्रकृति का स्वरूप–कविता रानी 1059
संसदीय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी: एक समीक्षात्मक अध्ययन–मीनू कुमारी 1062
आधुनिकता की दौर में बिहार विभाजन के पश्चात् महिला शिक्षा का विकास: एक ऐतिहासिक अध्ययन–शोभा कुमारी 1066
किसान आन्दोलन में कार्यरत संगठन : बिहार के संदर्भ में–रितेश कुमार 1069
भारत में महिलाओं की स्थिति: एक बदलता स्वरूप–डॉ० पूर्णिमा कुमारी 1072
माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण की आवश्यकता, वर्तमान स्थिति एवं समस्याएँ–डॉ० डी०पी० मिश्रा 1075
गोरखपंथ की राजनीतिक विचारधारा–प्रमोद; डॉ० रीतेश साह 1078
कृष्णभक्ति में युगलोपासना और रामभक्ति में रसिकोपासना: संक्षिप्त तुलनात्मक विवेचना–डॉ० मनोज कुमार पाण्डेय 1082
भारत में प्राथमिक शिक्षा की चुनैतियाँ–डॉ० लाजो पाण्डेय 1087
12वीं कक्षा के कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के मध्य पर्यावरणीय नैतिकता स्तर का तुलनात्मक अध्ययन–डॉ० संजय कुमार 1090
भारत के किसान आन्दोलन की समीक्षा–डॉ० नलिनी लता सचान 1096
भारतीय राजनीति में जाति की प्रासंगिकता–डॉ० पुष्कर पाण्डेय 1100
माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के आत्मप्रत्यय एवं शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन–शेर सिंह 1103
प्राचीन भारत ऐतिहासिक स्त्रोत के रूप में सिक्कों का महत्व–पिंकी कुमारी 1109
प्राचीन भारत में मौर्य साम्राज्य का महत्व - एक अध्ययन–मोहित कुमार दुबे 1112
'देशांतर' काव्य संग्रह में निहित कविताओं के विविध रूप–श्रुति सुधा आर्या 1115
गोदान और मैला आँचल का तुलनात्मक अध्ययन–डॉ० प्रीति राय 1119
हिंदी कथा साहित्य में आदिवासी अस्मिता विशेषकर डॉ० रमणिका गुप्ता का कथा–समीर कुमार 1121
हिन्दी साहित्य के संदर्भ में शोध और शिक्षण–विरेन्द्र साहु; डॉ० सविता वर्मा 1123
महिला मुद्दे और नागरिक समाज–डॉ० उमा कान्त यादव 1127
कुशीनगर बौद्ध स्थल का सांस्कृतिक अध्ययन–मनीष कुमार 1130
गुप्तकालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति का समालोचनात्मक अध्ययन–प्रभात कुमार यादव 1135

भारतीय समाज में जातिगत संघर्ष–प्रियंका दीक्षित 1140
साहित्य का समकालीन विमर्श और किन्नर समाज–प्रो० माला मिश्र 1143
विकलांग कल्याण एवं समाजिक हस्तक्षेप–डॉ० विद्यापति गौतम 1146
डीडी न्यूज पर प्राइम टाइम में संसदीय कार्यवाही के प्रसारण से जुडी खबरों की वरीयता का अध्ययन–ओम प्रकाश यादव 1150
बौद्ध वांग्मय में पर्यावरण चिंतन: थेरगाथा के विशेष संदर्भ में–डॉ० उमेश सिंह 1155
वशिष्ठ अनूप की गजलों में स्त्री विमर्श–आरती देवी 1158
उत्तर प्रदेश में नगरीकरण: प्रवृत्ति, प्रतिरूप एवं नीतिगत मुद्दे–अभिषेक यादव 1162
प्राचीन भारतीय मोहरों में देवी लक्ष्मी का स्वरूप–डॉ० पवन कुमार सिंह 1166
मृदुला सिन्हा के साहित्य में स्त्री-विमर्श–निर्मल सैनी; डॉ० शकीला बेगम मुस्तफा 1169
राष्ट्रीय चेतना के उन्नायक कवि: मैथिलीशरण गुप्त–डॉ० सुषमा गौडियाल 1174
भारत में पंचायती राज का इतिहास (स्वतंत्रता से 73वें संविधान संशोधन तक)–डॉ० नरेन्द्र प्रताप गुप्ता 1176
झारा जनजाति के व्यवसायिक रूचि पर उनके सामाजिक-आर्थिक एवं शैक्षिक स्थिति के प्रभाव का अध्ययन
–तेजराम नायक; डॉ० राकेश कुमार डेविड 1180
प्रभासक कथामे चित्रित समाज–पुष्पम ज्योति 1184
भारतीय अर्थव्यवस्था और मौद्रिक नीति–डॉ० अनिल कुमार मंडल 1186
उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र के धार्मिक स्थलों का ऐतिहासिक अध्ययन: रामनगर के विशेष सन्दर्भ में–कु० सीमा; डॉ० नीरज रुवाली 1189
अनुसूचित जातियों में सामाजिक समावेशन की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन–राजेश कुमार 1192
सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता की समस्या: एक समाजशास्त्रीय विवेचना–आलोक कुमार श्रीवास्तव 1201
औपनिवेशिक काल में कम्पनी द्वारा किए गये भू-राजस्व सम्बन्धित कार्यो का मूल्यांकन–शरद यादव 1204
हिन्दी की समकालीन लम्बी कहानियां और उनका अर्थ सम्प्रेषण–रोली यादव; प्रो० देवेन्द्र नाथ सिंह 1208
न्यायिक दृष्टिकोण का मानव-केन्द्रिकतावाद से पारिस्थितिकी-केन्द्रिकतावाद की ओर संचलन:
एक विश्लेषण–शिव सरन 1211
एम०एड० व एम०ए० शिक्षाशास्त्र के नेट/जे०आर०एफ० विद्यार्थियों की शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन
–रवितोश कुमार सिंह; डॉ० (श्रीमती) रेखा शुक्ला 1215
विद्यार्थियों के सांवेगिक परिपक्वता तथा राजनैतिक दक्षता में सम्बन्ध का अध्ययन–अतुल कुमार सिंह; डॉ० आसिफ कमाल 1219
भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में समाज, साहित्य और संस्कृति–डॉ० अनिल कुमार सिंह 1223
कामकाजी एवं घरेलू महिलाओं का समय प्रबंधन के महत्व का अध्ययन–डॉ० प्रतिभा पाल 1226
भारत में लघु एवम सूक्ष्म वित्तीय सेवाओं का विकास–नंदिता राय 1229
आत्मनिर्भर भारत और गांधी (कोविड-19 के विशेष सन्दर्भ में)–डॉ० हिमांशु यादव 1233
नवभारत: गांधी दर्शन एवं स्वदेशी–डॉ० रूपम मिश्रा 1238
गाँधी की स्वच्छता और स्वच्छ भारत अभियान–शैलजा आनंद श्रीवास्तव 1242
भारतीय अभिलेखों में जैन सम्प्रदाय–डॉ० अजीत कुमार राव 1246
स्वतंत्रता-पूर्व तथा स्वतंत्रोत्तर भारत में कृषक आन्दोलन–मन मोहन सिंह; डॉ० रीतेश शाह 1249
महिला लेखन एवं दलित लेखन का औचित्य–डॉ० कंचन यादव 1252
हिन्दी समाचारपत्रों की भाषा : समकालीन विश्लेषण–राकेश कुमार दुबे 1256
अब्दुल कलाम का भारत विकास दर्शन : एक विश्लेषण–कुमारी प्रिती भारती 1259

बिहार के किसान आंदोलन में राष्ट्रीय कांग्रेस का योगदान–डॉ॰ सतेन्द्र प्रसाद यादव 1262
प्रेमचन्द्र का हंस पत्रिका में अवदान एवं उपादेयता–मुन्ना लाल पाल 1265
निराला का छायावादोत्तर काव्य–डॉ॰ अरूण कुमार यादव 1268
भारतीय ग्रामीण समाज में सशक्त होती महिलाएं: एक दृष्टि–सुहासिनी सिंह 1274
वर्तमान समय में अनुवाद की उपादेयता–डॉ॰ मुदस्सिर अहमद भट्ट 1277
स्वर्ग-विराग में चित्रित राजनीतिक भ्रष्टाचार–सब्जार अहमद बट्टू 1279
अमृतलाल नागर के उपन्यासों में आर्थिक विपन्नता के विभिन्न पक्ष–डॉ॰ अमृता सिंह 1282
पंचास्तिकाय समयसार : एक दार्शनिक अध्ययन–डॉ॰ पूजा राठी 1285
हिन्दी सूफी काव्य में प्रतीक विधान–डॉ॰ रंजय कुमार सिंह 1289
बाल श्रमिकों के कार्य की परिस्थितियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन (मुरादाबाद व जे॰ पी॰ नगर के विशेष संदर्भ में)–डॉ॰ वीरेन्द्र सिंह 1292
बिहार राज्य के ग्रामीण, सामाजिक एवं आर्थिक विकास में सूचना तकनीकी की भूमिका–डॉ॰ रूबी सिन्हा 1298
राष्ट्रवाद के संदर्भ में अरविन्दो घोष के विचार–डॉ॰ निधि सिद्धार्थ 1301
'हंस' के सम्पादकीय लेखों में 'स्त्री मुक्ति' का प्रश्न–ममता यादव; डॉ॰ यशवन्त वीरोदय 1304
इस्लाम एवं कुमाऊँनी संस्कृति के मध्य समन्वय एवं इनके प्रभाव–मो॰ नाजिम; डॉ॰ सेराज मोहम्मद 1308
भारत अफगानिस्तान संबंधों में पाकिस्तान की भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ॰ राहुल कुमार 1311
ऑनलाइन विद्यालयी शिक्षा में समावेशी और गुणवतापूर्ण शिक्षा का मुद्दा–रोहताश कुमार 1314
स्वधर्म और स्वदेशी: गाँधीवादी विमर्श–डॉ॰ ज्ञानप्रकाश उपाध्याय 1319
अज्ञेय की सामाजिक चेतना–डॉ॰ सुमन देवी 1322
आधुनिकता और मुक्तिबोध का काव्य–डॉ॰ कामना पण्ड्या 1324
आर्य समाज की प्रासंगिकता (उत्तराखण्ड के विशेष सन्दर्भ में)–मुकेश चन्द्र 1328
रांची जिलें के उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों का स्थगन व्यवहार, मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि पर शोध–डेजी लकड़ा; डॉ॰ रेखा नरेंद्र जिभकाटे 1331
योग की अवधारणा–डॉ॰ प्रियंका शुक्ला 1336
कथासरित्सागर: समग्र विवेचन–डॉ॰ मधु बाला सिन्हा 1338
श्रमिक वर्ग के मसीहा डॉ॰ अम्बेडकर–प्रा॰ डॉ॰ माधव केरबा वाघमारे 1342
महासमुन्द जिले में कक्षा ग्यारहवीं के छात्राओं में अध्ययन आदतों एवं उनके व्यक्तित्व प्रकार के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन –हेमन्त कुमार खटकर; डॉ॰ रेखा नरेंद्र जिभकाटे (नवखरे) 1345
महान् संत संगीतज्ञ पं॰ रामाश्रय झा 'रामरंग' जी की कृतियों का सांगीतिक योगदान–प्रीति सिंह; डॉ॰ ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय 1351
निम्बार्क सम्प्रदाय की भक्ति में संगीत–प्रमोद कुमार; डॉ॰ ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय 1353
निम्बार्क सम्प्रदाय की सांगीतिक विधायें–डॉ॰ ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय 1356
कनपटा गोरख सम्प्रदाय–डॉ॰ प्रियंका सिंह; स्त्री की यात्रा; डॉ॰ वन्दना शर्मा 1360
भारतीय तर्कशास्त्र में अनुमान विचार–डॉ॰ श्रीप्रकाश तिवारी 1362
रामचरितमानस में तुलसीदास के आदर्श स्त्री-पात्र–शाज़िया बशीर 1365
अष्टछापीय कवि नन्ददास के काव्य में बिम्ब विधान–डॉ॰ सुषमा पाल 1367
महात्मा गांधी और धर्म की अवधारणा–डॉ॰ रीतू तिवारी 1372

कामकाजी महिलाओं और गैर कामकाजी महिलाओं में प्रोसेस्ड फूड के प्रति झुकाव: एक अध्ययन (पटना शहर के संदर्भ में)
–कुमारी सुषमा श्रीवास्तव; प्रो० (डॉ०) अंजु श्रीवास्तव 1375
उपन्यास 'एक कोई था, कहीं नहीं-सा' में बाल-विवाह की समस्या–सलमा असलम 1378
शिक्षा प्रणाली पर कोविड-19 का प्रभाव (ऑनलाइन शिक्षा के विषेष संदर्भ में)–डॉ० अलका सक्सेना 1381
भारत में संविधान के नीति-निदेशक तत्व एवं सम्पोषणीय विकास–डॉ० अशोक कुमार; डॉ० राजीव सागर 1385
जैन दर्शन में प्रतिपादित लोक व्यवस्था–श्रीमति अलका डागा 1392
धर्म और साम्प्रदायिकता–बृजेश कुमार 1399
'महिलाओं के सामाजिक विकास में प्रमुख अवरोधक: रूद्रप्रयाग जनपद में न्यायपंचायतवार एक भौगोलिक अध्ययन
–बबीता कोहली; डॉ० इन्द्र सिंह कोहली; गणेश सिंह 1401
मूल्यों के संरक्षण में भगवद्गीता की भूमिका–डॉ० श्रीमती गीता शुक्ला 1406
पुराणों का स्वरूप एवं सांस्कृतिक महत्व–डॉ० सुम्बुला फिरदौस 1411
चौतन्य केन्द्रों पर मंत्र साधना का प्रभाव–सायर बोथरा 1414
वर्षा ऋतु कालीन लोक उत्सव–खुशबू कुमारी; डॉ० ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय 1419
जागर लोक परम्परा में न्यायकारी गोलू देवता: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन–कु० बबीता आर्या; प्रो० ज्योति जोशी 1424
महाभारत में अवतारवाद की अवधारणा (एक विश्लेषणात्मक अध्ययन)–अरविन्द कुमार 1427
कोशल: विविध धर्मों का पालना: एक ऐतिहासिक अध्ययन–कुलभूषण श्रीवास्तव 1431
मृदुला गर्ग की कहानियों में विविध स्त्री पात्र एवं स्त्री विमर्श–राजेश कुमार श्रीवास्तव 1434
मध्यकालीन की आर्थिक नीति एवं व्यापार–प्रो० अजय विजय कौर; डॉ० संजीव कुमार; अमरीश कुमार 1438
माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण एवं कल्याण: एक सामाजिक-विधिक विश्लेषण–डॉ० विश्व नाथ शर्मा 1441
चम्बा क्षेत्र के विवाह सम्बन्धी अनिबद्ध लोकगीतों की परम्परा–आचार्य जीत राम शर्मा; सोनू देवी 1445
विभिन्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के किशोरावस्था के बालक-बालिकाओं के व्यक्तित्व का अध्ययन
–अमरजीत सिंह; डॉ० डी० एस० सिंह बघेल 1450
भारत में न्यायिक आदेश (Writs) - उत्पत्ति एवं विकास–जितेन्द्र भारती 1455
वन गूजर पशुचारकों का मौसमी प्रवास व वर्तमान चुनौतियां–गौरव कुमार 1460
गौरा पन्त शिवानी की कहानियों में स्त्री की पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति–प्रियम्वदा मिश्रा; डॉ० सुधा सिंह 1463
महिला सशक्तिकरण-समस्या एवं निराकरण–डॉ० डी०एन० सूर्यवंशी; संजय कुमार ध्रुव 1467
भारत में माइक्रो-फाइनेंस माध्यमों की स्थिति : स्वयं-सहायता-समूह, बैंक-लिंकेज-कार्यक्रम और माइक्रो-फाइनेंस संस्थानों का विश्लेषण
–आशुतोष कुमार झा; पवन कुमार भूरा (जैन) 1471
विवेकी राय जी के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, एवं धार्मिक
समस्याओं का अध्ययन–दक्षा मिस्त्री; विरेन्द्र कुमार सिंह 1477
माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण एवं कल्याण: एक सामाजिक-विधिक विश्लेषण–डॉ० विश्व नाथ शर्मा 1483
बूढ़ा (बूढ़ियाच) नृत्य परम्परा का अवलोकन–सुनील कुमार 1487
सिरमौर जनपद की पारंपरिक लोक गायन शैलियों पर महाभारतकालीन प्रभाव–विनोद कुमार 1491
टेलीविजन धारावाहिकों में लोक तत्व–डॉ० मीनाक्षी कुमार 1495
शंकराचार्य के दार्शनिक चिंतन के आधारभूत तत्व–डॉक्टर अमित कुमार शुक्ल 1500
अर्थशास्त्र की विषय सामग्री एवं क्षेत्र की विवेचना–डॉ० संजीव कुमार सिंह 1502

सांवेगिक परिपक्वता तथा राजनैतिक दक्षता में सम्बन्ध का अध्ययन–प्रज्ञा सिंह 1506
कमलेश्वर के उपन्यासों में नारी मनोविज्ञान–शिक्षा रानी; डॉ० राजेश कुमार 1510
समकालीन पाश्चात्य दर्शन जगत में गहन पारिस्थितिकी नैतिक दर्शन: एक अनुशीलन–डॉ० मनोज कुमार यादव 1514
समकालीन भारत में दलित समुदाय के सम्मुख उपस्थित वैश्वीकरण की चुनौतियाँ–डॉ० शैलेश कुमार राम 1517
20वीं शताब्दी में भारतीय इतिहास-लेखन की दशा एवं दिशा: एक अवलोकन–डॉ० माया नन्द 1521
भारत में विधि के शासन का सिद्धांत - एक विश्लेषण–त्रिकालज्ञ तिवारी 1525
संत कबीर जैसा अक्खड़-फक्कड़-बेबाक कोई और नहीं–डॉ० गिरीश चंद्र जोशी 1528
नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल का नाट्य-कर्म–डॉ० राजेश कुमार; डॉ० गिरीश चन्द्र जोशी 1532
अमृता शेरगिल: परिचय एवं कला परिचय–ममता सोनी; प्रो० डॉ० बीना दीक्षित 1535
मार्कण्डेय के कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन पर राजनीति पक्ष का प्रभाव–आशुतोष कुमार सिंह 1539
जातक कथाओं की ऐतिहासिकता–डॉ० पार्थ सारथी 1545
गजलकार जहीर कुरेशी: व्यक्तित्व एवं कृतित्व–प्रा० डॉ० संगिता उप्पे 1549
चंद्रकांता के उपन्यासों में आतंकवाद से उपजी समस्याएं–पूजा सिंह 1556
'वैयक्तिक अनन्यता' की समस्या का तार्किक विवेचन–अर्चना भट्ट 1559
धर्मनिरपेक्षता के भारतीय पहलू और भारतीय संविधान–नर्गिस खान–डॉ० नागेन्द्र सिंह भाटी 1562
पटना में सामुदायिक रेडियो की स्थिति का आकलन–प्रगति पल्लवी 1565
कुरूभूमि से संबंद्ध रचनाकारों का साहित्य लेखन में योगदान–डॉ० रीना देवी गोरा 1571
दैनिक जागरण समाचार पत्र के 'साहित्यिक पुनर्नवा' की काव्य रचनाओं में भारतीय काव्यशास्त्र–सुमन देवी; डॉ० दया दीक्षित 1576
मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास और वैश्विक बाजारवाद की मनोवृत्ति–डॉ० अखिलेश कुमार वर्मा 1580
भारत में बेराजगारी की समस्या एवं समाधान–डॉ० रवि प्रकाश यादव; निशित रंजन 1583
कृषि श्रमिकों के पलायन का उनके आर्थिक जीवन पर प्रभाव: बिहार राज्य के विशेष सन्दर्भ में–रिंकू कुमारी 1590
भिवाड़ी क्षेत्र में बढ़ते औद्योगीकरण के कारण उत्पन्न समस्याएं और उनके प्रभाव–कल्पना यादव; डॉ० गायत्री यादव 1593
ग्रामीण भारत में आवास समस्या (राजस्थान की इंदिरा आवास योजना के विशेष सन्दर्भ में)–नवीन कुमार पहाड़िया 1598
मुस्लिम महिलाओं में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता: नालंदा जिले के सन्दर्भ में–रफत परवीन 1602
राष्ट्रीय शिक्षा नीतियाँ एवं समाजशास्त्रीय मूल्यांकन–डॉ० दिलीप कुमार सोनी 1605
उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का समायोजन के शैक्षिक आयाम पर प्रभाव का अध्ययन –डॉ० पार्वती यादव; सीमा कुमारी 1609
उत्तर प्रदेश के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के बी.एड. स्तर के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा, स्मृति एवं व्यक्तिगत मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन–किरन सिंह 1612
भारत में महिला उद्यमिता की समस्याएं एवं संभावनाएं–दीपक कुमार दास; ज्योत्सना कुमारी 1616
भारतीय साइबर संस्कृति का व्योम : उपयोगिता दृष्टियों की प्रवृत्ति एवं व्यवहार–संदीप कुमार वर्मा 1621
भारत में नागरिकता एवं अद्यतन संशोधन–डॉ० त्रिविक्रम तिवारी 1624
माध्यमिक स्तर के अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों के कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन–सन्तोष कुमार 1629
भारत में संस्थागत कृषि साख: फार्म आकार के विशेष संदर्भ में–सुरेन्द्र कुमार शर्मा 1633
दर्शन के परिप्रेक्ष्य में पतंजलि योग के समग्र स्वास्थ्य के आयाम-एक दार्शनिक अनुशीलन–डॉ० शिव शंकर प्रसाद 1639
जनपद अमरोहा के ग्रामीण खेतीहर श्रमिकों का एक आर्थिक एवं सामाजिक विश्लेषण–मुकेश कुमार; डॉ० मनन कौशल 1642
मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों मेंविवाहित स्त्रियों की आर्थिक पराधीनता–प्रोफेसर लता सुमन्त; प्रमोद कुमार सिंह 1649
भगवान महावीर के प्रेरणाश्रोत प्रभु पार्श्वनाथ: एक अनुचिंतन–कुमारी उदिता 1654
प्राचीन भारत में गुप्तयुगीन सिंचाई व्यवस्था–डॉ० दीपा गुप्ता 1656

पौराणिक पर्यावरणीय सन्दर्भ: गहनता और अनुकार्यता–डॉ० विष्णु कान्त त्रिपाठी 1660
भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और गाँधी दर्शन–डॉ० संजीत कुमार सिंह 1666
धर्मवीर भारती के कथा साहित्य में 'परिवार एवं समाज में नारी की स्थिति'–आराधना वर्मा 1669
धर्म एवं धर्म-पुरुषार्थ–विवेक कुमार दुबे 1672
कोरोना जागरूकता में कुमाऊँवाणी सामुदायिक रेडियो की भूमिका–हर्षवर्धन पाण्डे 1674
प्राचीन भारतीय समाज मे स्त्रियों की भूमिका एवं स्थिति का पुनर्विलोकन–डॉ० नसरीन बेगम 1679
वैदिक-साहित्ये विज्ञानस्य विवेचनम्–डॉ० मो० मेराज अहमद 1686
औपनिषदिक चिन्तन में परमतत्व की संकल्पना–डॉ० रश्मि यादव 1692
पुरुषार्थ का अर्थ वैचारिकत एवं समसामयिक प्रासंगिकता–डॉ० पवन पाठक 1696
बाजारवाद, हिंदी सिनेमा और स्त्री–डॉ० हनुमत लाल मीना 1700
डॉ० भीमराव अम्बेडकर की सामाजिक क्रान्ति–राजीव त्रिपाठी 1703
सर छोटूराम का कृषि संबंधी योगदान–सरला; डॉ० अजमेर सिंह पुनिया 1705
भारतीय राजनीति में गठबंधन एवं महागठबंधन–डॉ० विनय कुमार पिंजानी 1710
विविध राजभाषा की गतिविधियाँ–डॉ० मुक्कप्प राठोड 1713
नक्सल माओवादी विद्रोह छत्तीसगढ़ के विशेष संदर्भ में–डॉ० मनीष कुमार साव 1715
भारतीय अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का विस्मृत इतिहास–डॉ० देवेन्द्र कुमार साहू 1719
रोजगार सृजन में मनरेगा की भूमिका का अध्ययन: मिर्जापुर जनपद (उ. प्र.) के ग्रामीण क्षेत्रों क्रे विशेष संदर्भ में
–संदीप सरोज; डॉ० मनोज कुमार सिंह 1721
चेरो शासक मेदिनी राय (1658-1674 ई.)–मो० परवेज अहमद; डॉ० रंजन सिन्हा
पंडिता रमाबाई–डॉ० विशाखा सिंह 1733
मानस में ममतामयी माँ कैकेयी–डॉ० सुषमा चौबे 1739
महाभारत में प्रतिपादित मोक्ष का स्वरूप–विश्वजीत भारद्वाज 1743
मृदुला सिन्हा के कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श–डॉ० सुनील दत्त 1746
भारत में नक्सल-आन्दोलन के विभिन्न रूप–प्रो० (डॉ०) रण विजय कुमार; रवि शंकर कुमार 1750
पंजाब के पटियाला जिले में फूलों की खेती में विपणन की समस्याएं–जसप्रीत कौर 1753
कवि 'वीर' कृत जंबूसामिचरिउ का आलोचनात्मक अध्ययन–राजीव कुमार 1756
जी एम फसलों का भारत के अर्थव्यवस्था पर प्रभाव–डॉ० जीतू सिंह राना 1758
पंचायती राज में महिलाओं की भूमिका एवं चुनौतियाँ: बिहार के कोशी प्रमंडल के सन्दर्भ में–अखिल सिंह परमार 1762
चित्रकूट के विभिन्न तीर्थ स्थल–सीलू सिंह 1766
कट्टरता और आतंकवाद का मनोवैज्ञानिक अध्ययन–डॉ० अनामिका 1770
भारतीय परिप्रेक्ष्य में समावेशी शिक्षा: चुनौतियाँ, सुझाव एवं शिक्षक की भूमिका–पवन कुमार राय; डॉ० सुरेन्द्र राम 1774
भारत में पारिवारिक प्रताड़ना की शिकार महिलाएं: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन–डॉ० अलका सक्सेना 1778
उपन्यास के तत्व एवं भेद–गोविंदराज के० 1783
ढडीकर-हाजीपुर पाषाणकालीन शैलचित्रों का विश्लेषण–डॉ० फूलसिंह सहारिया; संदीप कुमार 1786
भोजपुरी लोककथाओं में नीति–डॉ० आकाश वर्मा 1792
विनोबा भावे के भूदान आन्दोलन की विवेचना–कुमार राजीव रंजन 1797
महिला संरक्षण से संबंधित भारतीय दंड संहिता की धारा 354 एवं इसका दुरूपयोग–रीना रानी जाट 1802

वृत्ति चयन में महिलाओं की भूमिका एवं उसके प्रभाव–डॉ० अर्चना सिंह; शैलजा वर्मा 1806
ग्रामीण क्षेत्र की महिला की सामाजिक, आर्थिक स्थिति (समाज शास्त्रीय अध्ययन) "जनपद कानपुर देहात के विशेष सन्दर्भ में" –दीपक कुमार गौतम; डॉ० महा लक्ष्मी जोहरी 1810
छत्तीसगढ़ के जशपुर जिले एवं बिलासपुर जिले के प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों एवं अभिभावकों में बाल अधिकारों के बारे में जागरूकता का अध्ययन–विजय कुमार साहू; डॉ० संजीत कुमार साहू 1815
पी. बी. शेली के काव्य में प्रेम और सौंदर्य–प्रणीता किरण 1820
पटना जिला का भूमि उपयोग: एक भौगोलिक विश्लेषण–बबलू कुमार रविदास 1822
काश्मीर शैवदर्शन में सृष्टिप्रक्रिया : तत्त्वमीमांसीय दृष्टिकोण–डॉ० प्रदीप 1825
भारतीय संस्कृति का सिंगापुर में प्रादुर्भाव–आशा कुमारी सिन्हा 1829
बदलते बिहार में दलित महिलाओं के उत्थान के लिए गैर सरकारी संगठनों (एन.जी.ओ.) के कार्य–श्वेता कुमारी 1832
औपनिवेशिक बिहार के जनजातियों का सांस्कृतिक जीवन अध्ययन–मोनी कुमारी 1836
बिहार की ग्रामीण आबादी के जीवन में माइक्रोफाइनेंस का महत्व–नीरज कुमार; डॉ० अमरकान्त चौधरी 1841
मातृ शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रमों के उपयोग को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन–अर्पणा सिन्हा; डॉ० रूपम कुमारी 1845
समकालीन हिन्दी कविता का राग विराग–डॉ० आर०पी० वर्मा 1849
शिक्षा प्रणाली में आधुनिक तकनीक के प्रभाव का एक अध्ययन–डॉ० कालिंदी लालचंदानी 1854
हिन्दी साहित्य में विकलांग विमर्श की समस्याएँ एवं समाधान–ईरणण-जे 1858
स्त्री अधिकार और 'महासमर' : एक संक्षिप्त अध्ययन–पंकज सिंह 1861
सुमन राजे के काव्य में संस्कृति एवं लोकतत्व का विवेचनात्मक अध्ययन–बिन्दू वर्मा 1866
प्रभा खेतान के उपन्यासों में नारी की समस्याएँ–धर्मशीला कुमारी 1868
अठ्ठारवीं सदी का कृषक–डॉ० आशारानी 1871
नारी की मुक्ति यात्रा की कथा: शेषयात्रा के संदर्भ में–डॉ० रश्मि कुमारी 1873
शैक्षिक प्रबन्धन एवं प्रशासन में प्राचार्यों की भूमिका–रत्नेश कुमार जैन 1875
मौर्य सम्राट् अशोक के अभिलेखों में वर्णित जनकल्याणकारी नीति: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–कोमल तूनवाल 1882
आर्थिक सुधार और क्षेत्रीय असमानता–नरेन्द्र कुमार जारवाल; डॉ० मंजू यादव 1885
भारत में प्रवासी मजदूर का जीवन–डॉ० पुष्पराज गौतम 1891
संस्कृत साहित्य में सांस्कृतिक सद्भाव: एक अध्ययन–डॉ० ज्योति वर्मा 1895
भारतीय संस्कृति का आधुनिक स्वरूप (नियतत्व) एवं पर्यावरणीय परिवर्तन: एक अन्त:क्रियात्मक विवेचन–रेखा रानी; डॉ0 सुनीता चौहान 1898
वेद एवं वैदिक परम्परा–सुनील कुमार 1901
मैत्रेयी पुष्पा की 'ताला खुला है पापा' कहानी की समीक्षा–डॉ० जयश्री भण्डारी; कु० मीना 1907
बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 के संदर्भ में प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के कर्तव्यों एवं उनके समक्ष आने वाली समस्याओं का अध्ययन–प्रभात कुमार–डॉ0 प्रतिभा राय 1909
श्रीलाल शुक्ल द्वारा रचित, दरबारी उपन्यास में राजनीतिक चित्रण–इन्दु 1914
'गिलिगडु' उपन्यास में चित्रित वृद्धजनों की समस्याएँ–मनीषा 1918
मलारी गाँव के श्रीचन्द्र एवं गोपी चन्द्र थोकदारी मालगुजारी एवं जागीरदारी का इतिहास–रणजीत सिंह 1922
विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 और सारण जिला लोक अदालत–मंकेश पाण्डेय 1925
भारत में अनुसूचित जाति की स्त्रियां एवं मनरेगा–डॉ० दिनेश कुमार यादव; दयानंद 1928

उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता का उनके पारिवारिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में अध्ययन–बबीता खाती 1932
कविता की वापसी–डॉ० विश्वनाथ द्विवेदी 1936
विष्णु पुराण में जाति-व्यवस्था–डॉ० श्रीमती अर्चना 1939
भारतीय राजनीति में जातिवाद–डॉ० शकुन्तला 1943
भारतीय दर्शन, शिक्षा एवं संस्कृति के प्रकाश स्तम्भ : डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन–डॉ० नम्रता जैन 1946
भारत में पर्यावरणीय मुद्दे: एक भौगोलिक अध्ययन–डॉ० अरविंद कुमार सिंह 1950
आतंकवाद प्रतिशमन व सार्क के प्रयास–अभिषेक वर्मा 1954
अभिनेयता की कसौटी पर लहरों के राजहंस–डॉ० सुनीता 1959
व्यंग्य यात्रा' पत्रिका में आधुनिक व्यंग्यकारों की व्यंग्य दृष्टि–नेहा जोशी 1962
आसपुर देवसरा ब्लाक के सरकारी व गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के नामांकन, उपस्थिति एवं ड्रापआउट का तुलनात्मक अध्ययन–बृजेन्द्र कुमार यादव; डॉ० नरेन्द्र कुमार सिंह 1964
तेजेन्द्र शर्मा की कहानियाँ और मानवता–विकास कुमार 1969
भारत विभाजन और शरणार्थियों की समस्या–प्रीति देवी मौर्या; डॉ० अचला पाण्डेय 1972
बुलंदशहर के विशेष संदर्भ में कृषि में महिलाओं की भागीदारी पर अध्ययन–पवन कुमार; डॉ० करन सिंह चौहान 1974
चाणक्य का जल प्रबंधन–महेश कुमार सहगल 1980
इण्टरनेट का समस्यात्मक उपयोग: मानसिक विकारों को आमंत्रण–आनन्द कुमार त्रिपाठी 1985
ऋतुकालीन रागों में मल्हार के प्रचलित प्रकारों का विशेष महत्त्व–चाँदनी; डॉ० लोकेश शर्मा 1989
प्रयाग में कुम्भ का महात्मय–डॉ० प्रत्यंचा पाण्डेय 1995
अलवर के संत दुर्बलनाथ और समाज उत्थान–श्रीमती अंगूरी सैनी 1998
चंद्रकांता के उपन्यास 'ऐलान गली जिन्दा है' में यथार्थ बोध–पिंकी देवी 2002
रतलाम जिले में रेशम तथा गेहूँ उत्पादन के लागत - लाभ का तुलनात्मक विश्लेषण–दीपिका शर्मा; डॉ० लक्ष्मण परवाल 2005
पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता - एक विश्लेषण–मोना वर्मा; डॉ० सत्यभामा सौरज 2010
प्रसाद काव्य में बिम्ब और अर्थ–डॉ० मीरा कश्यप 2012
तुलनात्मक साहित्य : आधार एवं दिशाएं–श्रीमति मंगला जटगोंडा; प्रो. नामदेव एम. गौड़ा 2015
अमरकांत का रजुआ वर्तमान परिप्रेक्ष्य में–डॉ० ज्योति श्रीवास्तव 2019
राजस्थानी साहित्य एवं संस्कृति में पर्यावरण चेतना–महेन्द्र सिंह 2021
विजयसिंह पथिक की भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन में भूमिका–डॉ० किशोर कुमार; भूपेन्द्र सिंह 2023
व्यापार की सामाजिक जिम्मेदारी–डॉ० रोमी अरोड़ा 2028
स्वतंत्रता आन्दोलन में हिंदी कविता का योगदान–डॉ० कल्पना सिंह 2030
ग्रामीण बेरोजगारी दूर करने में मनरेगा की भूमिका: बिहार के संदर्भ में एक अध्ययन–डॉ० विजया कुमारी 2033
आवाज के लगाव में भिन्नता : आगरा घराना और किराना घराना–पारुल शर्मा 2040
भारतीय संस्कृति के पोषक स्वामी दयानन्द सरस्वती–डॉ० बृजेश कुमार पाण्डेय 2042
मुगलकालीन ग्रामीण प्रशासन में जमींदार वर्ग की भूमिका–शीतल देवी 2045
राष्ट्र और समाज के प्रकाश-स्तंभ थे स्वामी दयानन्द–गुरजीत सिंह 2048
भारतीय इतिहास लेखन प्राचीन से मध्यकाल के संदर्भ में–राहुल कुमार झा 2050

बुद्धकालीन राजगृह का अवलोकन–किशोर कुमार 2053
चम्पारण दुर्दशा गांधीजी के सहयोगी गणेश शंकर विद्यार्थी के ऐतिहासिक योगदान का पुनर्मूल्यांकन–धीरज कुमार 2058
तन्त्री वाद्यों की आकृति एवं रूप–सुरेन्द्र कुमार; प्रो० (डॉ०) आरती श्योकन्द 2062
बी. एड. प्रशिक्षार्थियों का प्रशिक्षण के प्रति शैक्षिक अभिवृत्ति का अध्ययन–वैशाली प्रकाश ग्वारले 2067
माध्यमिक स्तर पर दिव्यांग बालकों की सृजनात्मकता एवं समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन–प्रीति उपाध्याय 2071
शेखर जोशी की कहानियों में पहाड़ी परिवेश और जीवन–डॉ० राम पाण्डेय 2075
महाकवि सूरदास का वात्सल्य-वर्णन–डॉ० अजायब सिंह 2077
शिक्षा और समाज का संबंध–अमित कौर 2082
मुक्तिबोध के रचनात्मक साहित्य पर उनके समीक्षा सिद्धान्तों का प्रभाव–डॉ० ऋतम्भरा 2084
"सामाजिक न्याय व्यवस्था में नारी के अधिकार"- संस्कृत महाकाव्यों के परिप्रेक्ष्य में–डॉ० पूजा श्रीवास्तव 2090
पतंजलि योग सूत्र में पर्यावरणीय चिन्तन–जितेन्द्र चौधरी 2096
माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि और मानसिक स्वास्थ्य में संबंध का अध्ययन–डॉ० रूचि दूबे 2098
जनचेतना और उद्या देवी: 1857 के विद्रोह के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण–बबली कुमारी 2102
पुष्प विलापम खंड काव्य में स्त्री विमर्श–डॉ० एम्० यसोदा देवी 2105
परिवर्तन के समय में रूसी राजनीति–शैलेन्द्र कुमार 2107
पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा में चित्रित किन्नर समस्याएँ–पूजा 2112
समावेशी विकास में डिजिटल प्रौद्योगिकी का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० बृजेन्द्र सिंह बौद्ध 2114
अनुसूचित जाति की महिलाऐं एवं उनका सशक्तिकरण (बिलासपुर जिलें पर आधारित एक समाजकार्य अध्ययन)–नीमा पाठक 2118
महिलाओं के सहदायिकी संपत्ति में अधिकार: एक विधिक अवलोकन–मरयम इशरत बेग 2123
'मैत्रेयी पुष्पा' के कथा-साहित्य में वर्णित स्त्रियों की विविध समस्यायें–डॉ० माधुरी यादव 2126
खुली श्रेणी की महिलाओं की शिक्षा में भागीदारी का विश्लेषण- धुले (महाराष्ट्र) जनपद एक भौगोलिक अध्ययन–संजय बी० घोडसे 2128
पुराने गया जिले के जहानाबाद एवं अरवल क्षेत्र में नक्सलवादी गतिविधि और हिंसा: एक संक्षिप्त अवलोकन–सचिन कुमार 2132
मूल्य निर्धारण में गणित शिक्षण की प्रासंगिकता–डॉ० डोरी लाल 2136
भारतीय जीवन बीमा निगम - एक अध्ययन–डॉ० विजय ग्रेवाल; दीपिका यादव 2140
छायावाद युगीन प्रमुख जीवनी 'सुमित्रानन्दन पन्त जीवन और साहित्य' का समीक्षात्मक अध्ययन–रीनू यादव 2144
प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा का स्वरूप और दावेदारी–डॉ० मनस्विनी श्रीवास्तव 2149
लोकगीतों और लोकसंगीत का भारतीय संगीत में महत्व–विष्णु कुमार 2152
बाल साहित्य की जादुई दुनिया–डॉ० दीपा रस्तोगी 2155
हिंदी उपन्यासों में दलित चेतना का यथार्थ चित्रण–राजेश कुमार गुप्ता 2158
संस्कृतसाहित्ये उपलभ्यमानमल्लयुद्धस्य विज्ञानम्–मनु आर्या 2161
आधुनिक साहित्य में पारिवारिक रिश्ते–डॉ० श्रीधर हेगडे; श्रीमति भैरवी पण्ड्या 2165
महिलाओं में शैक्षणिक सशक्तिकरण: एक दार्शनिक अध्ययन–प्रिया कुमारी तिवारी 2168
राजस्थान सेवा संघ एवं विजय सिंह पथिक–डॉ० संजय कुमार सिंह; अमित कुमार 2171
बाड़मेर जिले में बदलते भू-उपयोग प्रतिरूप का कृषि पारिस्थितिकी पर प्रभाव–डॉ० चन्दन मल शर्मा; डॉ० गौरव कुमार जैन 2173
भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में श्रम संघ की भूमिका–डॉ० सीमा पटेल; नीतू कुमारी 2178
महाकवि कल्हण कृत राजतरगिणी में वीभत्स एवं अद्भुत रस का चिन्तन–डॉ० शालिनी अग्रवाल 2182
समाज के सर्वांगीण विकास में संगीत का योगदान–डॉ० संगीता गोरंग 2187

वैश्विक आतंकवाद: उदभव एवं विकास–स्नेहलता यादव 2189

भारतीय लोकतंत्र में राजनीतिक दलों की भूमिका के बदलते आयाम: एक अध्ययन–डॉ० यतेन्द्र सिंह 2192

भारत मे महिलाओं की बदलती स्थिती और भारतीय समाज–प्रा. डॉ० एल. जी. पाटील 2196

पितृसत्तात्मक व्यवस्था की संरचनात्मक पड़ताल–रश्मि 2200

आधुनिक विश्व में हानिकारक अपशिष्टों का व्यापार–डॉ० शीशराम यादव; डॉ० ललिता यादव 2203

भारत में बढ़ती घरेलू हिंसा: कारण, प्रभाव एवं समाधान–नितिन कुमार; डॉ० संध्या तिवारी 2207

सिनेमा जगत और मनोरंजन के क्षेत्र में भाषा का योगदान–डॉ० स्वाति शर्मा 2210

रेडियो नाटक का शिल्प विधान–डॉ० ओमवती देवी 2212

वर्तमान भारतीय विधि में शिक्षा के अधिकार का नया आयाम: ऑनलाइन शिक्षा–अरविन्द कुमार गुप्ता 2217

भारतीय संविधान निर्माण के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि: एक अध्ययन–राकेश कुमार; प्रो० (डॉ०) रण विजय कुमार 2221

रेणु के उपन्यासों में आंचलिकता और लोक संस्कृति–डॉ० संजू कुमारी 2225

कमलेश्वर के उपन्यास कितने पाकिस्तान में यथार्थबोध–डॉ० शिखा श्रीधर 2227

जयनंदन की कहानियों में नारी-शोषण–डॉ० मधुलता बारा; बरातू राम ध्रुव 2230

माध्यमिक दर्शन में सर्वज्ञ का स्वरूप–नरेन्द्र कुमार 2233

वैश्वीकरण के परिदृश्य में गांधी जी के आर्थिक विचारों की प्रासंगिकता–डॉ० पूनम 2236

मनीषा कुलश्रेष्ठ के 'शिगाफ' उपन्यास में नारी–कुमारी पूनम चौहान 2238

महाराजा सूरजमल: एक विराट व्यक्तित्व–डॉ० उर्मिला शर्मा; कविता नाहरवाल 2241

भारत में राज्यों के पुनर्गठन का औचित्य - भाषायी राज्यों के विशेष संदर्भ में–डॉ० हरबीर सिंह डागुर 2243

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन की उत्पत्ति, उद्देश्य एवं सिद्धांत–मनीषा 2248

भारत की प्रमुख प्राकृतिक आपदाएं एवं प्रबंधन–संदीप सेन 2251

व्याकरण शास्त्र की विकास परम्परा एवं धातुपाठ–डॉ० योगेन्द्र कुमार धामा 2255

ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन–प्रोफेसर रमाकांत साहू 2260

शिकागो सम्मेलन में स्वामी विवेकानन्द का भाषण: संचारीय परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन–डॉ० जुगल किशोर दाधीच; रविन्द्र सिंह 2263

भर्तृहरि के नीतिशतकम् की शिक्षाएँ और वर्तमान समाज को सन्देश–डॉ० बृजेन्द्र सिंह गुर्जर 2267

श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य साहित्य में शिक्षा-व्यवस्था पर व्यंग्य–डॉ० भरतभाई ऐ पटेल; कमलेश बी० पटेल 2271

'डार से बिछड़ी' उपन्यास में पाशो की मन: स्थिति–दक्षा बहन पी० सोलंकी 2273

कबीर कालीन हिन्दु और मुस्लिम समाज–अरुण एन० पटेल 2275

पंचायती राज एवं नगरीय संस्थाओं में महिला आरक्षण तथा महिला सशक्तिकरण–सुनील कुमार रावत 2279

दिनकर कृत उर्वशी का अनुभूति पक्ष–प्रो० प्रदीप श्रीधर 2284

वैदिक कालीन ग्रन्थों में कन्या की अवस्थिति एक अध्ययन–दीपक कुमार शर्मा; डॉ० निधि तिवारी 2286

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल–निरंजन सहाय 2288

अशोक का गिरनार अभिलेख–जानी मेहुल कुमार नवीनचंद्र 2293

दक्षिण गुजरात के प्राकृतिक पर्यटन स्थल–पटेल प्रितीबेन शंकरलाल 2296

भारत के संसदीय लोकतंत्र में चुनावी राजनीति एवं मतदान व्यवहार: एक अध्ययन–मेहर सिंह; डॉ० मंजीत 2298

बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक अध्ययन–रविन्द्र प्रताप सिंह; डॉ० श्रीमती आरती पाण्डेय 2301

मौर्यकाल में पुरातत्त्व: पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सन्दर्भ में–पल्लवी सक्सेना; डॉ० श्रीमती आरती पाण्डेय 2304

समसामयिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में दलित महिलाओं की भागीदारी की समस्याएँ–लाल चन्द पाल 2307

जागेश्वर मन्दिर का ऐतिहासिक अध्ययन–रेखा बृजवासी 2311

महाकवि हर्ष की संस्कृत नाटिकाओं में प्रकृति चित्रण–डॉ० आशा सिंह रावत 2314
मुरारि कृत अनर्घराघवम् नाटक का समीक्षात्मक अध्ययन–डॉ० बाबूलाल मीना 2317
''हरियाणा विधानसभा चुनाव 2014 व 2019 के जनादेश का तुलनात्मक अध्ययन''–राजीव वर्मा; डॉ० तिलक राज आहुजा 2321
किन्नर और उनका संघर्ष–शाहिद हुसैन 2325
फारसी विद्वान: वंचित वर्गो के उत्थान में सहायक एवं मानव अधिकारों के संरक्षक–डॉ० तसनीम कौसर चिश्ती 2328
राही मासूम रजा के उपन्यासों में साम्प्रदायिकता और अलगाववादी दृष्टि–जयसिंह यादव 2333
भारतीय अर्थव्यवस्था पर कोरोना वायरस के कारण लॉकडाऊन का प्रभाव–डॉ० मनमोहन लाल विश्वकर्मा; डॉ० कमलेश चौरसिया 2336
योग: कोरोना काल के तनाव को दूर करने का चिकित्सकीय वरदान–सीमा चौहान 2339
संघर्ष उपरांत नेपाल में महिलाएं (पूर्व माओवादी महिलाओं के सन्दर्भ में)–हरीश कुमार यादव 2344
हिंदी का भविष्य और भविष्य में हिंदी–डॉ० ऐश्वर्या झा 2347
अस्पृश्य जातियों के सामाजिक उत्थान में महात्मा गांधी का योगदान–मनीष कुमार मिश्र 2349
हिन्दी चित्रपट संगीत से लुप्त होती भजन गायन शैली एवं उसकी वर्तमान स्थिति–डॉ० भावना 2353
हिन्द महासागर में महाशक्तियों की बढ़ती भूमिका और उसका भारतीय सुरक्षा पर प्रभाव–राजीव कुमार सिंह; प्रो० ब्रजेश कुमार त्रिपाठी 2356
सामाजिक क्रांति और नारी जागरण श्री राम शर्मा के संदर्भ में–पुष्पा शर्मा; डॉ० अलका तिवारी 2359
स्वामी विवेकानंद : जीवन वृत्त एवं दर्शन–आशीष राठौर; डॉ० ज्योति राजपूत 2361
आत्मनिर्भरता के क्षेत्र में कृषि उद्योग का योगदान–रहमत उल्लाह अंसारी; डॉ० ज्योति राजपूत 2364
सामाजिक और आर्थिक परिवेश में प्रेमचंद–रीना राठौर; डॉ० अलका तिवारी 2366
प्राथमिक विद्यालय के अनुभव और बाल-विकास का व्यक्तित्व प्रभाव–किरण कुमारी; डॉ० लाल बाबू सिंह 2370
सामाजिक न्याय की पाश्चात्य एवं भारतीय अवधारणा: एक विश्लेषण–डॉ० कमेलश कुमार 2372
चन्द्रमनोरमीयम् में प्रकृति-वर्णन–डॉ० अरुणा शर्मा; ज्योति 2375
अष्टछाप संगीत में प्रयुक्त रागों का स्वरूप–अंकिता मिश्रा 2378
पंडित दीनदयाल उपाध्याय के पत्रकारिता में राष्ट्रबोध–डॉ० भारती तिवारी 2385
प्राचीन भारतीय संस्कृति की विविधिता–राजन कुमार 2387
उपन्यास साहित्य में स्त्री-विमर्श की परम्परा–डॉ० कविता वर्मा 2389
विज्ञान, धर्म एवं अध्यात्म परस्पर पूरक हैं, विरोधी नहीं: एक आलोचनात्मक अध्ययन–डॉ० शीलक राम 2392
विदेश नीति के निर्धारक तत्व: एक दृष्टि–डॉ० अजित 2400
वैश्वीकरण के युग में भारतीय संघवाद की चुनौतियाँ: एक अध्ययन–रीना कुमारी; डॉ० सोनिका 2404
भारतीय सांस्कृतिक विविधता और पूर्वोत्तर की संस्कृति–कामना सिंह 2408
वैशेषिकदर्शनानुसारं शरीरस्य विभिन्नायामानां विवेचनम्–विजय कुमार 2413
वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गर्भावस्था में मधुमेह का अध्ययन आहार एवं पोषण विज्ञान के सन्दर्भ में–वन्दना सिंह यादव; डॉ० अनीता वर्मा 2416
शिक्षा का अर्थ एवं प्राथमिक शिक्षा में नए प्रयोग–डॉ0 अजीत यादव 2420
ग्रामीण गरीबी निवारण एवं विकास हेतु कृषि एवं रोजगार–गंगाराम 2423
शिक्षा के उद्देश्य एवं भारतीय शिक्षा की समस्याएँ–डॉ0 जितेन्द्र सिंह 2426
रघुवीर सहाय के काव्य में ''लोकतंत्र'' की अवधारणा–पंकज सिंह 2429
'सुबर्थ निर्णय में कर्मकारक'–डॉ० शैलेन्द्र सिंह 2432
भारतीय राष्ट्रवाद के प्रेरक: स्वामी दयानन्द सरस्वती–डॉ० ललित कुमार गौड; निशा 2436
गणराज्यों की अवधारणा एवं पतन के कारण–बृजकेश यादव 2438
भारत-म्यांमार बांग्लादेश संबंधों में चीन की भूमिका–परमजीत राम 2441

स्त्री विमर्श: वैचारिक विश्लेषण–पूनम तिवारी 2444
ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य समस्याएँ एवं कारण–सरिता कुशवाहा 2446
सन् 1947 के भारत-विभाजन के पश्चात् जम्मू कश्मीर–त्रिलोकी सोनी 2448
कारगिल संघर्ष का स्वरूप–विनोद यादव 2451
हिन्दी कथा साहित्य में बाल शोषण का स्वरूप–तनुजा गोस्वामी 2454
हिन्दी साहित्यिक कृतियों पर केंद्रित फिल्मों में स्त्री-चेतना–कु० सरिता यादव 2458
संजीव बख्शी के रचना संसार में आंचलिकता–प्रो० (डॉ०) अनुसुइया अग्रवाल; कु० कुसुम 2461
प्राथमिक स्तर के अध्यापकों के नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति पर उनकी लैंगिक एवं आवासीय स्थिति के प्रभाव का अध्ययन –अनिल कुमार यादव 2464
भारत में महिला आरक्षण नीति–डॉ० प्रवीन कंवर भाटी 2467
आमेर के लक्ष्मीनारायण एवं जगतशिरोमणि मंदिर का कलात्मक विश्लेषण (स्थापत्य कला के विशेष सन्दर्भ में) –तोसिफ अली; डॉ० शिवकुमार मिश्रा 2472
शिक्षा में सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का योगदान एवं चुनौतियाँ–डॉ० विधु शेखर पाण्डेय; डॉ० रुचि दूबे 2476
भारतीय अर्थव्यवस्था पर जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव–नुतन जे० पटेल 2480
कच्छ के रबारी समाज में पशुओं के शुंगार का योगदान–परेशभाई बाबुभाई देसाइ 2483
आलोक शर्मा के बाल एवं लघु उपन्यास–अनिल कुमार इराज; सी०एम० अड़की 2486
वृद्धजनों की सामाजिक प्रस्थिति–डॉ० कुमार राजीव रंजन 2490
बाल्मीकि रामायण में वर्णित कर्त्तव्य की प्लेटो के न्याय की अवधारणा से तुलना–डॉ० नन्दिनी दुबे 2492
सामाजिक न्याय, मानवाधिकार और पुलिस–प्रो० डॉ० उमेश कुमार; धर्मराज मिश्रा 2495
प्राचीन भारत में शिक्षा–डॉ० अवधनारायण 2499
प्रेमचन्द: नारी अस्मिता एक युगीन परिप्रेक्ष्य–सलमा खातुन 2502
वैश्वीकरण एवं महात्मा गांधी का विचार दर्शन–डॉ० भरत लाल मीणा 2504
स्वामी विवेकानन्द एवं गुरूदेव रविन्द्र नाथ के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन–डॉ० रमाकान्त यादव 2508
वर्तमान युग में मूल्यों का हास–डॉ० अजय कुमार यादव 2511
सूचना संचार (इंटरनेट) का विकास एवं समाज में इसका प्रभाव: एक अध्ययन–डॉ० कुसुम यादव 2513
वैश्विक फलक पर हिन्दी का बदलता स्वरूप–डॉ० अरविन्द कुमार 2516
माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की गणितीय अभिवृत्ति का अध्ययन–डॉ० फतेह बहादुर सिंह यादव 2518
दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के संवेगात्मक समायोजनका तुलनात्मक–डॉ० नीति 2522
प्रगतिशील समाज में समावेशी शिक्षा की भूमिका–डॉ० सरोज यादव 2528
शिवप्रसाद सिंह के कथा साहित्य में स्त्री चेतना–दीप्ति; प्रो० डॉ० गीता कपिल 2532
हरनोट के कथा साहित्य में ग्रामांचल का बदलता परिवेश–संजीव कुमार मौर्य 2535
वृद्ध विमर्श की परंपरा और संघर्ष–डॉ० सुनीता चौधरी 2539
शिल्प विधान की कसौटी पर भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य–डॉ० अशोक कुमार 2542
बिहार की तत्कालीन राजनीति में दलितों की स्थिति–डॉ० मो० मरगूब रजा 2547
समकालीन भारत में नव मध्य वर्ग के निर्धारक, तत्व और विशेषताएँ–मो० शर्फुद्दीन 2550
भू धारकों के अधिकार: भू अर्जन एवं प्रतिकर निर्धारण की चुनौतियाँ–विजय यादव; डॉ० जैनेन्द्र कुमारपटेल 2553
भारतीय सामाजिक मुद्दे एवं समस्याएं: एक अनुशीलन–डॉ० अमृता श्रीवास्तव 2559
शीत युद्ध समाप्ति के बाद भारत-अमेरिकी संबंध में पारस्परिक सहयोग के बिंदु–प्रहलाद कुमार मीना 2565

देवपाल के मान्धाता ताम्रपत्र लेख में प्रतिबिम्बित सामाजिक एवं आर्थिक जीवन-एक अध्ययन–सूर्यकान्त मणि 2569
विकास प्रशासन कीअवधारणा एवं चुनौतियाँ–डॉ० शिव कुमार राम 2574
भारत में समाजवादी आंदोलन और राजनीतिक दल: एक विश्लेषण–डॉ० हरिश्चन्द्र प्रसाद यादव 2577
शकुन एवं अपशुकन का भ्रम जाल–डॉ० सरोज मीना 2581
शिक्षा के अधिकार अधिनियम की उपलब्धियाँ और चुनौतियाँ–डॉ० अनीता सती 2586
हिमाचली लोक साहित्य में लोकगाथाएं (लाहौल व कुल्लू के संदर्भ में)–डॉ० उरसेम लता 2592
अहीरवाल के लोकगीतों में राग तत्व व ताल तत्व का समावेश–डॉ० रविन्द्र कुमार 2595
मिथिला में लोक नृत्य: एक ऐतिहासिक विष्लेषण–आलोक कुमार मिश्र 2600
नई शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में पर्यावरण शिक्षा–विभा कुमारी 2605
भारतीय संगीत में प्रयुक्त वाद्य यंत्रों में पशुधन की भूमिका: एक विश्लेष्णात्मक अध्ययन–डॉ० मुकेश 2609
भारत में आर्थिक विकास, योजना और सामाजिक परिवर्तन–डॉ० अनिल विठ्ठल बाविस्कर 2612
विवेकी राय जी के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन की सामाजिक, आर्थिक, एवं धार्मिक समस्याओं का अध्ययन–डॉ० बबीता देवी 2614
"काव्य में अभिव्यंजना और कला" प्राकृत काव्य के संदर्भ में–डॉ० दुधनाथ चौधरी 2618
संस्कृत की चुनौतियाँ एवं समाधान–डॉ० सन्तोष देवी 2623
पंचायती राज संस्थान और भारत में ग्रामीण विकास - संरचनात्मक और कार्यात्मक आयाम–शीला मिश्रा 2625
सामाजीकरण के संदर्भ में बाल विकास: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन–सुलेखा झा 2631
आतंकवाद: भारतीय अर्थव्यवस्था और लोकतंत्र पर इसका प्रभाव–डॉ० वैशाली देवपुरा 2635
गोविन्द मिश्र जी के कथा साहित्य में नारी के विभिन्न स्वरूपों का संक्षिप्त विश्लेषण–पंकज मिश्र; डॉ० रानी बाला गौड़ 2640
मध्यवर्ग का परिचय तथा मंजुल भगत की कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन का संक्षिप्त विश्लेषण–डॉ० मधु शर्मा; संगीता यादव 2644
बथुआ (चेनोपोडियम एल्बम) के पोषण और औषधीय महत्व और लोगों के बीच खाने की प्रथाओं के बारे में जागरूकता:
एक जानकारीपूर्ण अध्ययन–दीपशिखा नागवंशी 2648
हिन्दी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श और सामाजिक सरोकार–डॉ० गेलजी भाटिया 2655
माता-पिता एवं बालक संबंध तथा पारिवारिक समायोजन का बालक के विकास पर प्रभाव का अध्ययन–संजीव कुमार 2659
धर्म और रिलिजन का विमर्श और डॉ0 भीमराव रामजी आम्बेडकर–किस्मत कुमार 2662
भारत में वृद्धों की समस्याओं को दूर करने हेतु सरकारी प्रयास–प्रो० डॉ० मो० शाहिद हसन; कंचन कुमारी 2666
कृष्णा सोबती के उपन्यास 'समय-सरगम' में मानवीय-सम्बंध–मंजु बाला 2670
शिक्षक शिक्षण और आईसीटी की भूमिका–अमित कुमार पाण्डेय; डॉ० सुनीता श्रीवास्तव; डॉ० शैलेन्द्र सिंह 2673
साहित्य समाज और संस्कृति में पर्यावरणीय संवेदना–डॉ० मा० इरशादुल हक 2678
भारतीय अर्थव्यवस्था में एमएसएमई की भूमिका–डॉ० शकुन्तला मीना 2680
हिन्द महासागर: संक्षिप्त अवलोकन–प्रो० भारती दास; रामस्वरूप 2682
वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक लब्धि का तुलनात्मक अध्ययन
–शैलेश कुमार यादव; प्रो० (डॉ०) जयप्रकाश सिंह 2686
आदिवासी समाज का बदलता स्वरूप और स्त्री–शैलेश यादव 2691
स्वतंत्रता आन्दोलन में हिन्दी साहित्य और काव्य की भूमिका–श्रीमती अलका यतीन्द्र यादव 2694
अमृता प्रीतम का वैचारिक और साहित्यिक दृष्टिकोण–ज्योति सक्सेना 2697
प्राचीन भारत में दुर्गो का महत्त्व–संदीप कुमार 2700
एटा जनपद में भूमि उपयोग का परिपवर्तनशील अध्ययन, 1995-1996 एवं 2015-16–डॉ० नवनीत शर्मा; डॉ० रामदास सिंह 2704
युवाओं में पनप रहा है इंटरनेट डिप्रेशन–डॉ० संगीता सिन्हा 2711

समकालीन परिदृश्य में भारत में समान नागरिक संहिता की आवश्यकता व चुनौतियाँ–रेखा यादव 2713
क्षेत्र के आधार पर स्नातक स्तर के दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन–संजीव कुमार त्रिपाठी 2716
माध्यमिक स्तर पर सरकारी विद्यालयों के संगठनात्मक वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव के अध्ययन –विजय बहादुर यादव 2723
वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में डॉ. राधाकृष्णन के शैक्षिक दर्शन की प्रासंगिकता: एक अध्ययन–शुभम कुमार 2729
लोकतत्वानामौचित्यम्–डॉ० मीनेश जैन; विद्याकान्त तिवारी 2734
प्राचीन एवं आधुनिक शिक्षा प्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन–डॉ० श्रद्धा मिश्रा 2736
"आचार्य जे. कृष्णमूर्ति के शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता"–रजनी यादव 2743
संगीत एवं काव्य की समन्वयता–प्रो० के० शशि कुमार; आवेश कुमार 2747
पुष्टिमार्गीय मंदिरों की का सेवा स्वरुप–डॉ० पंकज शर्मा 2750
हिन्दी काव्य में राष्ट्रीयता–विनिता कुमारी वी वैष्णव 2757
भारतीय संस्कृति में यज्ञ–डॉ० हेम चन्द्र द्विवेदी 2759
नागार्जुन की कविताओं में जनक्रांति–डॉ० कानजीभाई रवजीभाई पाया 2762
राजस्थान के कृषि विश्वविद्यालयों और संस्थानों मे उपयोगकर्ताओं द्वारा पुस्तकालयों में इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों के उपयोग की आवृत्ति, अवधि और प्रशिक्षण के स्वरुप का अध्ययन–डॉ० कन्हैया लाल शर्मा 2767
पंचायती राज संस्थानों में सत्ता का विश्लेषण–डॉ० ईश्वर स्वरूप सहाय; प्रीति कुमारी 2774
माध्यमिक शिक्षा को बेहतर बनाने में राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान की भूमिका–रानी रजक 2778
चित्रा मुद्गल कृत उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' में किन्नर विमर्श के विविध आयाम–कंचन 2782
मार्गी व देशी संगीत (एक विश्लेषणात्मक) अध्ययन–काजल किरण 2784
बरेली जनपद में समग्र शिक्षा अभियान के क्रियान्वयन के अन्तर्गत भौतिक संसाधनों की उपलब्धता का विश्लेषणात्मक अध्ययन –डॉ० क्षमा पाण्डेय; हेमपुष्पा गंगवार 2786
प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के लाभ एवं गरीबी निवारण के रूझान की समीक्षा–मुन्नी राम; डॉ० (श्रीमती) मंजु मगन 2790
गणित में हिन्दी माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम विद्यार्थियों पर उपचारात्मक शिक्षण विधि का परम्परागत शिक्षण विधि से तुलनात्मक अध्ययन –विभय कुमार सोनी; डॉ० अंजनी कुमार मिश्र 2794
इक्कीसवीं सदी में स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता–माया सोनकर 2799
मैं और मैं उपन्यास में नारी संघर्ष–मयुरकुमार नारायणभाई पटेल 2802
अनुगांधीयुग के कवि जयन्त पाठक की सॉनेट रचनाओं का आस्वाद–श्रीमाली मायाबेन अमृतलाल 2805
प्रोबीर गुहा का रंगमंच–डॉ० पुष्पा बरनवाल 2808
वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गीता ज्ञान की सार्थकता–डॉ० ऋचा 2810
भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका का अध्ययन–डॉ० ललित मोहन शर्मा; श्रीमती लक्ष्मी सक्सेना 2813
टोंक जिले में फसल उत्पादन में वृद्धि–परवीन महलावत; प्रो० गजेन्द्र सिंह 2818
हिन्दी दलित कविता: भाषा और शिल्प–अमित कुमार चौधरी 2821
जी० आर० संतोष की कला का कलात्मक एवं तकनीकी अध्ययन–नीतू नरवाल 2826
राम मनोहर लोहिया: समाजवाद के मूलाधार–नीरू यादव 2829
भारतीय उपमहाद्वीप में संजातीय राष्ट्रवाद–डॉ० कमला; सुनिल कुमार 2833
राजनीतिक मूल्यों के विकास में शिक्षा का महत्व–डॉ० दयाशंकर तिवारी 2836
भारतीय परम्पराएं और सामाजिक आर्थिक परिवेश–डॉ० ललिता शर्मा 2838
सामाजिक संबंधों पर सोशल मीडिया का प्रभाव–डॉ० अलका 2841
महाराजगंज जनपद के सामाजिक-आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका–सूरज प्रकाश मिश्रा 2844
जीवनी परक उपन्यास का उद्भव–मधु गुप्ता 2847
हिन्दी और भारतीय भाषाओं का विकास–शैलजा 2849

कबीर की प्रामाणिकता: मिथक, किंवदंती और प्रक्षेप–सिद्धार्थ कुमार 2851
प्राचीन भारतीय इतिहास में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन–मधु; डॉ० अर्चना सिंह 2854
अभिमन्यु अनत की कहानियों में युगीन चेतना–डॉ० राकेश कुमार सिंह 2858
अशोक का धम्म: एक अध्ययन–डॉ० नीरजा शर्मा 2861
चयनित योगाभ्यासों का छात्रों के समायोजन स्तर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन–सत्यम तिवारी; डॉ० राधिका चंद्राकर 2864
भारत में स्वास्थ्य और पर्यावरण स्वच्छता–सुरेन्द्र कुमार पंडित; डॉ० मंजू झा 2869
भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में ब्रह्म समाज का योगदान–यशवीर सिंह 2873
जाम्भाणी दर्शन के प्रसार में संचार साधनों की भूमिका: एक अध्ययन–डॉ० मनबीर 2877
विभिन्न युगों में महिलाओं की स्थिति–विमल भारती; प्रो० माधव चौधरी 2881
माध्यमिक स्तर के स्व: अध्ययन करने वाले एवं ट्यूशन पढ़ने वाले छात्रों के अभिप्रेरणा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन (मुजफ्फरपुर जिला के संदर्भ में)–रेखा सिन्हा; डॉ० शगुप्ताह जबीं 2885
पाञ्चरात्र संप्रदाय की प्राचीनता–नवीन 2888
वैदिक भारत में नारी चेतना: एक अध्ययन–अशोक कुमार 2890
उपेन्द्र दोषीक मनोज दासक कथा ओ कहिनीक विश्लेषण–भोगेन्द्र प्रसाद सिंह 2893
दलित आत्मकथा और ओमप्रकाश वाल्मीकि–डॉ० रामाशंकर कुशवाहा 2896
कैशिकी वृत्ति: सिद्धांत एवं व्यवहार–डॉ० लता शर्मा 2899
दुनिया की सबसे प्रेरणादायक महिला जिसने आपने तीन कुल को उउजागर कर विश्वको मार्गदर्शन दिया- मैडम क्यूरी–डॉ० ट्विंकल तिवारी 2903
'जोधपुर में विदेशी नागरिकों के साथ भारत में अपराध भय पर एक अध्ययन'–शुभम गौड़; डॉ० स्विकार लामा; जयेश कुमार 2906
21वीं सदी में राज्य और राज्य की प्रासंगिकता पर महात्मा गांधी के विचार–सुभाष चन्द उपाध्याय 2913
समुद्रगुप्त की भारत विजय और राष्ट्र विस्तार: एक अध्ययन–वीरेन्द्र कुमार कुशवाहा 2917
समावेशी शिक्षा पर एनईपी का प्रभाव: विविध शिक्षार्थियों के लिए पहुँच और अवसरों पर एक अध्ययन–डॉ० बृजेन्द्र पाण्डेय 2920
हजारीप्रसाद द्विवेदी का संस्कृति-चिंतन–सतेन्द्र कुमार 2924
केदारनाथ सिंह के काव्य में बिंब-विधान–डॉ० प्रमोद कुमार द्विवेदी 2926
हिंदी उपन्यासों में चित्रित कश्मीर और कश्मीरी समाज–कृष्णा अनुराग; प्रो० राजेंद्र साह 2930
मिथिलेश्वर का उपन्यास यह अंत नहीं और जाति-व्यवस्था का यथार्थ–डॉ० मनीष कुमार चौधरी 2933
साहित्य और सिनेमा का अर्न्तसंबंध–डॉ० नंदिनी तिवारी; डॉ० संजय कुमार तिवारी 2936
भारत में सुशासन एवं पारदर्शिता एक चुनौती–डॉ० माया यादव 2938
किशोरावस्था के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर तनाव का प्रभाव–बबली कुमारी; डॉ० कनक लता सिंह 2940
उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत किशोर विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता एवं उनके सामाजिक सामायोजन का तुलनात्मक अध्ययन –रबिन्द्र पासवान; प्रो० नवीन रंजन रवि 2942
उच्च विद्यालयों के छात्रों के आत्मसम्मान का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव–फराह नाज; डॉ० मो0 अरशद हुसैन 2945
मधुलिमये का जीवन दर्शन और मजदूर: एक पुनरावलोकन–डॉ० अजीत प्रताप सिंह; डॉ० पूनम 2948
ब्रिटिश काल में शिक्षा का महत्व एक आलोचनात्मक अध्ययन–प्रीति सुमन 2952
भाषिक अभिव्यक्ति के रूप वैविध्य–डॉ० स्वाति पाण्डेय 2954
श्रीगीतगोविन्द की विषय-प्रवेष एवं टीकायें–डॉ० रामप्रवेश कुमार; श्वेता कुमारी 2957
समाज और कविता दोनों जेंडर न्यूट्रल हों–कविता भाटिया मेहता 2961
पर्यावरणीय नैतिकता की समकालीन उपादेयता–मनीषा मिश्रा 2964
व्यक्तित्व और ईश्वर की समस्या–विपिन कुमार गुप्ता 2968
नक्सलवाद तथा मानवाधिकार: एक समीक्षा–रेणु बाला गुप्ता 2971

अथर्ववेद में वर्णित दैवी चिकित्सा–डॉ० उपेन्द्र पंडित 2975
पॉपुलर कल्चर का बढ़ता दायरा: भारतीय समाज में मीडिया और सोशलमीडिया से सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों में आ रहे परिवर्तन का अध्ययन –डॉ० बिभा कुमारी 2977
दुनिया की आर्थिक समस्याएं: चिंता एवं चिंतन–डॉ० नवल किशोर बैठा 2983
अमरकांत के उपन्यासों में अभिव्यक्त मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ–डॉ० कुमारी अंतिमा; डॉ० मीनू गेरा 2985
ग्रामीण विकास की अवधारणा, बाधाएँ एवं शिक्षा की भूमिका–डॉ० हुस्न आरा; निराला कुमारी 2988
भारतीय दर्शन का इतिहास: एक विवेचन–प्रो० (डॉ०) मीरा कुमारी 2991
यौन हिंसा पर सामाजिक एवं न्याय प्रतिक्रिया, नीति सुधार के उपाय–कमल किशोर 2996
समान नागरिक संहिता–आदित्य चतुर्वेदी 2999
महादेवी वर्मा के साहित्य में सांस्कृतिक मूल्य–प्रा० सुनीलकुमार मावस्कर 3002
स्त्री-मुक्ति और जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास–धर्मा रावत 3004
वैश्विक परिदृश्य में पर्यावरण पर गांधीजी के विचारो की प्रासांगिकता–राखी भारती; रामकुमारी 3006
पुस्तकालय में स्वचालन की भूमिका एवं महत्व–अशोक कुमार 3009
कुमाऊं की महिलाओं की संस्कृति और कला–शहनुमा पाशा; डॉ० विकास रंजन कुमार 3012
वर्तमान भारतीय समाज में लोकतंत्र का महत्व: एक दार्शनिक विवेचन–डॉ० प्रेम कुमार 3014
सांख्य दर्शन के कार्यकारण सिद्धान्त: एक दार्शनिक विवेचन–डॉ० नीरा वर्मा 3017
कवर्धा राज का ऐतिहासिक अध्ययन (सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में)–डॉ० चौलेश्वर चन्द्राकर 3020
भारतीय संस्कृति के उन्नयन में रामायण का योगदान–प्रो० मनोज कुमार 3025
महाविद्यालयीन ग्रंथालयों में डिजिटल संग्रह नीति: एक अध्ययन–ओमप्रकाश राठौर; डॉ० आर० जी० यादव 3027
अथर्ववेद और अग्निपुराण में गौसंरक्षण एवं गौचिकित्साविज्ञान–डॉ० श्याम बाबू शर्मा 3032
महिला सशक्तिकरण एवं सामाजिक परिवर्तन पर डॉ. अंबेडकर के विचार–डॉ० गुरदीप कौर; सुरेंद्र सिंह 3036
महादेवी की कविताओं विरह वेदना अभिव्यक्ति: एक अध्ययन–डॉ० देवेंद्र शुक्ल 3039
भारत में दलित मानवाधिकार: एक आलोचनात्मक विमर्श–ईश्वरी बृजवासी सूर्यवंशी 3044
जयशंकर प्रसाद के नाटक चन्द्रगुप्त में स्वातन्त्र्य-चेतना–डॉ० नीलम कुमारी 3048
सोनभद्र की सांस्कृतिक एवं जैव तार्किक विविधता–डॉ० सर्वजीत सिंह 3052
आदिवासी कविता: चिंतन के आयाम–डॉ० शिवानी जॉर्ज 3054
डॉ० भीमराव अंबेडकर का महिलाओं के उत्थान में योगदान: एक अध्ययन–अलोक तिर्की 3060
छात्रों का मानसिक स्वास्थ्य, रचनात्मकता और शैक्षणिक उपलब्धि के बीच सम्बन्ध–डॉ० ममता शर्मा; रवि आनन्द 3063
झारखण्ड राज्य में तीव्र औद्योकीकरण की संभावनाएं और विकास–तबस्सुम आरा 3067
1857 के स्वतंत्रता संग्राम में रानी लक्ष्मीबाई का योगदान: एक विश्लेषण–अर्चना यादव 3070
आदी जनजाति में जन्म संस्कार (आदी लोकगाथाओं के परिप्रेक्ष्य में)–प्रो० श्याम शंकर सिंह; अकिन बोको 3073
हरकिशन सिंह और 1857 का विद्रोह–प्रो० (डॉ०) अरविन्द कुमार सिंह 3076
बौद्धकालीन शिक्षण पद्धति का स्वरूप तथा वर्तमान समय में उसकी प्रासंगिकता: एक अवलोकन–कल्पना कुमारी 3080
आर्थिक विकास में मानव संसाधन प्रबंध की भूमिका–डॉ० गिरजा शंकर गुप्ता 3083
प्रवासी महिला मजदूरों की कार्यस्थल पर स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन (जांजगीर-चांपा जिले के नवागढ़ विकासखण्ड के विशेष संदर्भ में) –डॉ० चेतानंद जांगडे; डॉ० एल.एस. गजपाल 3086
कथेतर गद्य साहित्य में नारी आत्मकथाओं का अवदान–मधुबाला; प्रो. विजय कुमार 3094
हिन्दी शिक्षण का वैश्विक परिदृश्य–अजय कुमार 3097
मौर्य साम्राज्य में कला का विकास: प्राचीन भारत की सांस्कृतिक यात्रा–डॉ० कामाख्या नारायण तिवारी 3100
नागार्जुन प्रतिपादित शून्यवाद: एक अवलोकन–डॉ० मोहन मिश्र 3104

राजस्थान के हाड़ौती क्षेत्र में बौद्ध धर्म के पुरास्थलों का अध्ययन–डॉ० ईश्वर दान 3107
हरिराम मीणा की कविताओं का संबोध्य–डॉ० प्रणव कुमार ठाकुर 3111
ग्रामीण समाज के विपणन प्रतिमान: एक समाजशास्त्रिय मूल्यांकन–डॉ० संगीता कुमारी 3114
भारतीय न्यायपालिका में अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता: एक विश्लेषण–डॉ० सरोज वर्मा 3119
महिला सशक्तिकरण की अवधारणा और भारत–श्रीमती कविता 3125
पूर्विकता का सिद्धांत एवं इसकी उपयोगिता–श्री सुधांशु शेखर 3128
हिन्दी कथा साहित्य और किन्नर विमर्श–डॉ० निधि श्रीवास्तव 3131
वैश्वीकरण परिपेक्ष्य में नयी शिक्षा नीति 2020–विभा कुमारी 3133
सूर काव्य और रामचरितमानस में अभिव्यक्त जीवन मूल्य–डॉ० अमित कुमार 3137
शैव, शाक्त, वैष्णव और बौद्ध परंपराओं में ईश्वरवाद और अनीश्वरवाद का तुलनात्मक विश्लेषण–डॉ० दीपक कुमार गुप्ता 3144
प्रेमचंदजी की कहानियों में ग्रामीण परिवेश: मुख्य रूप से किसान जीवन व उनकी समस्याएं–अजय कुमार शर्मा 3148
बिहार में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव: एक विश्लेषण–डॉ० ब्रजनंदन प्रसाद 3151
मेहरुन्निसा परवेज के उपन्यास 'समरांगण' में चित्रित विश्वासघात एवं उसके दुष्परिणाम–अपराजिता राय 3154
हिंदी सिनेमा में दलित चित्रण का वर्तमान और भविष्य–मनोज प्रसाद रजक 3157
नयी कविता और जड़ीभूत-सौन्दर्याभिरुचि–डॉ० अरुण प्रसाद रजक 3160
भारतीय संस्कृति ज्ञान परंपरा और साहित्य–डॉ० भवानी प्रधान 3165
जीएसटी तथा आईटीसी का विलोकन: भारत में विदेशी व्यापार के परिप्रेक्ष्य में–डॉ० शिवेन्द्र सिंह 3168
भारत में महिला सशक्तिकरण के विभिन्न आयाम–डॉ० पंकज कुमार सिंह 3173
अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में धर्मशास्त्रीय तत्त्वों की विवेचना–डॉ० भैरवी 3176
संस्कृतसाहित्य में समुपलब्ध प्रकृति-तत्त्वों का विवरण: एक समीक्षा–निधि कुमारी 3179
पराशर स्मृति के सन्दर्भ में कृषि, पशुपालन, वाणिज्य और कर संबंधी नियमों की समीक्षा–अनुज कुमार 3182
कृषि विज्ञान का स्वरूप विमर्श: संस्कृत-ग्रन्थों के संदर्भ में–रोहित 3186
भारवि की सूक्तियों में नीति लालित्य–ताराकान्त मित्र 3190
संस्कृतवाङ्मय में समुपलब्ध राजनैतिक तथा ऐतिहासिक नाटकों का वैशिष्ट प्रतिपादन–पुरूषोत्तम पाण्डेय 3193
स्त्री विषयक प्रवासी साहित्य का स्वरूप: एक विमर्शात्मक अध्ययन–नीलिमा पाण्डेय 3196
वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में कामायनी की प्रासंगिकता–डॉ० यशवन्त यादव 3200
'भू-मण्डलीकरण का जनजातीय समाज पर सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव' मनेन्द्रगढ़ चिरमिरी भरतपुर जिला कोरिया के विशेष संदर्भ में –डॉ० नीरज कुमार खरे 3202
कुटीर एवं लघु उद्योग में महिलाओं की भूमिका–श्रीमती मेघा डडसेना 3204
विद्यापति की भक्ति-भावना–अखिलेश कुमार 3207
छत्तीसगढ़ के कांकेर जिले में तेंदू पत्तों का विपणन–शीतल शर्मा; डॉ० संजू सिंह 3209
'मानस-महाकाव्यम्' में काव्य-सौन्दर्य–किरण चौधरी 3213
ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण में साक्षर भारत मिशन की भूमिका कांकेर जिले के विशेष संदर्भ में–डॉ० प्रीति वैष्णव 3216
भारतीय अर्थव्यवस्था का बदलता स्वरूप और विभिन्न समुदायों की सहभागिता–डॉ० वसीमुद्दीन 3218
भारत में राजनीतिक विज्ञापनों का मतदाता व्यवहार पर प्रभाव–डॉ० प्रतिभा कुमारी 3221
विवाह का आदि स्वरूप–डॉ० ईरा कुमारी 3225
उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986: एक अध्ययन–डॉ० दिव्या शुक्ला 3228
21वीं सदी के प्रथम दशक के नाटक और हमारा समाज–शौर्य भारद्वाज; प्रो. राजेंद्र साह 3231
पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के राजनीति चिंतन का समीक्षात्मक विश्लेषण–डॉ० प्रेम सिंह 3234
वायुमण्डल की संरचना एवं विश्व जलवायु का वर्गीकरण–धर्मेन्द्र कुमार शर्मा 3240
वाल्मीकि रामायण में तांत्रिक चिकित्सा–डॉ० प्रेरणा माथुर 3244
क्विक कॉमर्स का उद्भव: एक अध्ययन–हिना कुमारी 3247
कामकाजी महिलाओं और तनाव प्रबंधन: एक नया दृष्टिकोण–डॉ० दीपक कुमार भगत 3253
बहरिया विकासखंड, जनपद प्रयागराज की जनांकिकी का भौगोलिक विश्लेषण–धर्मेन्द्र कुमार यादव; डॉ० मनोज कुमार शुक्ला 3256
"कर्मभूमि" उपन्यास में अभिव्यक्त प्रेमचंद की राजनीतिक चेतना–डॉ० अनीता मिंज 3263

हिन्दी दलित कहानियाँ : भोगा हुआ यथार्थ–डॉ. पूनम चालिया 3266
आचार्यमिथिलाप्रसादत्रिपाठीमहोदयानां महाकाव्ये सामाजिकं समरसता–सुनीलदीप 3270
संस्कृत वाङ्मय में नारी : एक अनुचिंतन–डॉ० सोनिया चौहान 3273
गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस पर संस्कृत नाटकों का प्रभाव–डॉ० शशिकांत राय 3277
छोटे भूमि धारकों के लिए किसान उत्पादक संगठन (FPO): आर्थिक सशक्तिकरण और कृषि स्थिरता की दिशा में एक पहल–अर्चना; मोहित रांगी 3282
धबके धरानां उर: करुणामूर्ति नायक डॉक्टर ओम–हरचंदभाई एस. चौहाण 3286
संस्कृत साहित्य में पर्यावरण निरूपण–संजीत मार्डी 3290
भारतीय समाज की जनसांख्यकीय संरचना: समस्या एवं समाधान–डॉ० श्वेता 3294
मौर्यकालीन कला–पूनम देवी 3299
मुगल साम्राज्य का पतन: कारण एवं प्रभाव (1707 - 1857)–रघु यादव 3302
परकथा में प्रतिरोध (1920-50 की जीवनियों मे उपनिवेश विरोधी चेतना)–महेंद्र सिंह 3306
गुप्त प्रशासन की एक महत्वपूर्ण समीक्षा और एकीकृत साम्राज्य को बनाए रखने में इसकी प्रमुख भूमिका–कुमारी सुप्रिया 3309
शासनिक नीतियाँ और सामाजिक जिम्मेदारी: महिला सुरक्षा का समन्वित दृष्टिकोण–डॉ० मोहम्मद अली 3313
अज्ञेय की रचनाओं में प्रकृति चित्र–डॉ० शुभा तिवारी 3317
कृष्णा सोबती के उपन्यासों में नारी समस्या–ठाकोर मुकेशकुमार विहाजी 3322
द्वैतवाद की मान्यताएँ और उनकी प्रासंड्गिकता–कंचन कुमारी 3324
उरुभंग के माध्यम से भास की नाट्य चेतना–मिथिलेश कुमार पाण्डेय 3327
"उमाशंकर जोशी की कविताओं में प्रकृति निरूपण"–चेतनभाई गेलाभाई रबारी 3329
''वैदेहीचरितम्" (महाकाव्य) के मार्मिक अंश–भरत सिंह भारती 3333
''सूरदास के काव्य में राधा का स्वरूप''–डॉ० सुनीता यादव 3337
सामाजिक विज्ञान अनुसंधान में ज्ञानमीमांसासंबंधी बहस: मात्रात्मक और गुणात्मक विश्लेषण–अपराजिता द्विवेदी 3341
लोक जीवन में नृत्य की भूमिका: अरुणाचल प्रदेश की आदी जनजाति के विशेष संदर्भ में–डॉ० बनश्री पर्तिन 3344
दूरस्थ-पर्यटन और हिमाचली उच्चभूमि: आभासी वास्तविकता तथा मग्नकारी अंकीय अनुभवों के माध्यम से नए बाजार-खण्डों को खोलना –ईरा भारद्वाज 3346
उत्तर प्रदेश की राजनीति पर मण्डलवाद का प्रभाव–डॉ० अभिषेक कुमार; दीपिका मिश्रा 3351
"संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता के लिए भारत की महत्वाकांक्षा: सम्भावनाएं तथा बाधाएं"–प्रो० (डॉ०) कमल कुमार; जोया 3357
वैश्वीकरण की ओर: बिहार में जनजातीय परिवर्तन और सशक्तिकरण का विश्लेषण–डॉ० ममता कुमारी 3364
हरियाणवीं लोक संगीत के अनमोल रत्न पं० सुल्तान रोहदिया: व्यक्तित्व एवं कृतित्व–डॉ० दिनकर शर्मा 3368
भारत के ग्रामीण जीवन के संदर्भ में पंचायती राज संस्थाओं का विकास–शिव प्रकाश यादव 3370
संस्कृत साहित्य में प्रकृति चित्रण–रेखा मीना 3374
संगीत की सृजनात्मक गाथा: नादयोग–डॉ० कुमारी मेनिका 3377
शिक्षा में बाल मनोविज्ञान और चित्रकला का समन्वय–डॉ० रश्मि शर्मा 3380
औरैया जनपद (उत्तर प्रदेश) में सिंचाई की सुविधा एंव कृषि विकास का भौगोलिक अध्ययन–रमाकान्त 3384
राम काव्य की आधुनिक युग में प्रांसगिकता (गोस्वामी तुलसी दास के विशेष संदर्भ में)–डॉ० शशि प्रभा 3387
धार्मिक पितृसत्ता बनाम नारीवादी चेतना: एक तुलनात्मक विश्लेषण–डॉ० राजीव कुमार 3391
सुधार से अधिकार तक: डॉ० मनमोहन सिंह की विकास दृष्टि का नैतिक मूल्यांकन–गोपाल कुमार 3396
महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक सशक्तिकरण में ग्रामीण विकास योजनाओं की भूमिका: एक अध्ययन–डॉ० बिपुल विकास 3404
વર્તમાન શિક્ષણમાં સ્વામી વિવેકાનંદ અને મહાત્મા ગાંધી–પટેલ શશીકાંત.આર ૩૪૦૭
बाल अपराध: उद्भव और विकास–डॉ० राजेश्वर प्रसाद 3409

दृष्टिकोण

धर्मवीर भारती कृत 'अंधा युग' नाटक की तात्विक समीक्षा–मीना कुमारी 3412
गांधीवादी दृष्टिकोण में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: नई तालीम के संदर्भ में (एक शोधपरक अध्ययन)–गुलशन कुमार 3419
राष्ट्रीय शिक्षा नीति और गृह विज्ञान: अवसर एवं चुनौतियाँ–डॉ० नीलम कुमारी 3423
સરપંચના અભરખા–શ્રીમાળી ચંદ્રકાન્તભાઈ ભરતભાઈ ૩૪૨૬
'हाय! हैंडसम': हाशिएकृत वृद्धों की समस्याओं का खुलासा–डॉ० ज्योतीश्री बालकृष्णन 3429
1857 का स्वतंत्रता संग्राम हरियाणा के विशेष संदर्भ में–सुमित हुड्डा 3432
नारी सशक्तिकरण में शिक्षा का प्रभाव: एक विश्लेषण–प्रिया यादव 3438
आरक्षण और राजनीति: जाति व वर्ग का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–मनराज गुर्जर; डॉ० विनीता भट्ट 3444
छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए उच्च शिक्षा का विकास- एक अध्ययन–डॉ० श्याम लाल निराला 3448
तुलसीदास की समन्वय चेतना–लवलेश कुमार 3454
"वित्तीय साक्षरता और वित्तीय समावेशन को बढ़ाने में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की भूमिका: भारत का एक अनुभवजन्य अध्ययन" –उपेन्द्र कुमार; आलोक कुमार; प्रो० राजेश 3458
रामायण और महाभारत काल में स्त्रियों की स्थिति–मयूरी झा 3463
भारतीय ज्ञान परम्परा में निहित मोक्ष की अवधारणा (उपनिषदों के विशेष सन्दर्भ में)–डॉ० गौरव वत्स 3466
उच्च शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में शिक्षण संस्थानों की भूमिका: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन–सोनी कुमारी; डॉ० राफिया काजीम 3470
महर्षि अरविंद और पूर्ण योग: जीवन, दर्शन एवं साधना पद्धति–कल्पना वर्मा 3473
भारतीय दर्शन में महर्षि गौतम का अवदान–डॉ० रत्नेश अमन 3476
गाँधी के सर्वोदय के परिप्रेक्ष्य में नये भारत की संकल्पना–डॉ० शम्भू नाथ दुबे 3479
प्राचीन भारत में राजनीति: एक ऐतिहासिक अध्ययन–दिलीप कुमार 3485
बौद्ध धर्म के प्रति मिथिला का दृष्टिकोण: एक वैचारिक संघर्ष–डॉ० सोनी शर्मा 3488
"ग्रामीण उत्तराखंड में स्वयं सहायता समूहों (SHGs) की भूमिका: महिला सशक्तिकरण का एक अध्ययन"–अर्जुन कुमार 3493
बिहार में इन्द्रधनुषी क्रांति (2012-2017): कृषि विविधीकरण, संरचनात्मक परिवर्तन एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक अनुभवजन्य विश्लेषण–श्री ज्योति 3498
महिला सशक्तिकरण की वर्तमान स्थिति: राजनैतिक सशक्तिकरण के परिपेक्ष्य में–डॉ० लाल बाबू चौधरी 3501
भारतीय समाज में समानता लाने में डॉ. आंबेडकर का योगदान: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–सुरेंद्र कुमार 3504
आजादी के पश्चात भारतीय अर्थव्यवस्था–डॉ० आशुतोष कुमार उपाध्याय 3508
"भारत के स्वतंत्रता आंदोलन तथा गांधी के नेतृत्व और प्रभाव का समालोचनात्मक अध्ययन"–कुणाल कुमार 3511

नवीन लोक प्रशासन : एक सामान्य अध्ययन

डॉ० अशोक कुमार

एम.ए., पीएच.डी., (राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन), पटना विश्वविद्यालय, पटना

शोध आलेख का सार

लोक प्रशासन एक सामाजिक, नवीन, पर्यावरणीय, गतिशील, विकासोन्मुख अनुशासन है। राजनीति विज्ञान से पृथक होकर वर्ष 1887 में अमरीका में लोक प्रशासन एक अनुशासन के रूप में स्थापित हुआ। इस विषय की स्थापना में वुडरो विल्सन का योगदान केन्द्रीय रहा है। 1887 ई. के बाद भी इसकी प्रकृति एवं क्षेत्र में लगातार परिवर्तन हुआ तथा यह कई रूपों में दृष्टिगोचर भी हुआ। लोक प्रशासन अपने विकास के उतार-चढ़ाव के दौर में चौथा विकासात्मक चरण (वर्ष 1948-1970) में अनेकानेक समस्याओं से घिर गया। इसी समय कई प्रयास हुए ताकि लोक प्रशासन को प्रासंगिकता की ओर मोड़ा जाये। वर्ष 1971 में लोक प्रशासन अपनी पूर्व की प्रवृत्तियों को छोड़कर नवीन प्रवृत्तियों के साथ पुनर्स्थापित हुआ तो उसे नवीन लोक प्रशासन की की संज्ञा दी जाती है। नवीन लोक प्रशासन नाम से ही नहीं, मूल विशेषताओं, लक्ष्यों, मान्यताओं तथा प्रवृत्तियों में भी नवीन है। इसे उत्तर व्यवहारवाद तथा तुलनात्मक लोक प्रशासन का सहभागी अवधारणा कहा जा सकता है।

मूल शब्दः व्यवहारवाद, मिन्नोब्रुक सम्मेलन, सामाजिक न्याय, सामाजिक परिवर्तन, निजीकरण, उदारीकरण, विकास प्रशासन, अन्तर्विषयक अवधारणा।

प्रस्तावना

लोक प्रशासन के क्षेत्र में 1968 ई. के बाद नवीन विचारों का सूत्रपात हुआ, जिसे नवीन लोक प्रशासन की संज्ञा दी जाती है। 1971 ई. में फ्रेंक मेरिनी द्वारा सम्पादित पुस्तक 'Toward a New Public Administration : Minnowbrook Perspective' के प्रकाशन के साथ ही नवीन लोक प्रशासन को 1971 ई. में मान्यता मिली है, परन्तु उसके विकास की पृष्ठभूमि पहले से तैयार हो रही थी। इसके विकास में हनी प्रतिवेदन, 1967 ई.; फिलाडेल्फिया सम्मेलन, 1967 ई. तथा मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 1968 ई. मील का पत्थर साबित हुआ। नवीन लोक प्रशासन के विकास में द्वितीय मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 1988 ई. की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। यह उल्लेखनीय है कि 'उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण' के सन्दर्भ में द्वितीय मिन्नोब्रुक सम्मेलन आयोजित किया गया था तथा उसी सन्दर्भ में तृतीय मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 2008 ई. का भी आयोजन हुआ।[1] नवीन लोक प्रशासन के विकास के उत्तरदायी कारणों को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता हैं :

अमरीकी लोक प्रशासन का अध्ययन पहले भी किया जा रहा था, लेकिन वह व्यापक एवं व्यावहारिक प्रमाणित नहीं हो रहा था। अमरीकी लोक प्रशासन प्रशासनिक समस्याओं के निराकरण सही रूप में सम्पन्न नहीं कर रहा था, इसलिए उसका नवीन रूप में अध्ययन आवश्यक हुआ। यह कारक नवीन लोक प्रशासन के विकास में सहायक बना।

वर्ष 1966 ई. में प्रो. हनी के नेतृत्व में अमरीका में लोक प्रशासन के समक्ष उपस्थित समस्याओं के अध्ययन तथा उनके निदान हेतु एक समिति को गठित किया गया, जिसने अध्ययन के बाद अपने प्रतिवेदन को 1967 ई. प्रस्तुत किया।[2] हनी समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन को ही 'हनी प्रतिवेदन' कहा जाता है। वस्तुतः हनी प्रतिवेदन सार्वजनिक सेवाओं से सम्बन्धित उच्च शिक्षा पर केन्द्रित था। हनी प्रतिवेदन में लोक प्रशासन के क्षेत्र को व्यापक बनाने पर बल दिया गया तथा कई सुझाव प्रस्तुत किये गये[3] : (i) हनी प्रतिवेदन में लोक सेवा शिक्षा सम्बन्धी राष्ट्रीय आयोग की स्थापना पर बल दिया गया, जिसका दायित्व शासन के लिए शिक्षित मानवीय संसाधन को उपलब्ध कराना था। (ii) प्रतिवेदन में वैसे छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान करने का सुझाव दिया गया, जो लोक प्रशासन में स्नातकोत्तर उत्तीर्ण हों। (iii) संघीय, राज्य एवं स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षण सम्बन्धी कार्यक्रमों को आयोजित किया जाए, जिनमें लोक सेवा के प्रत्याशी को शामिल किया जा सके। (iv) लोक प्रशासन के क्षेत्र में काम करने वाले शिक्षकों के लिए भी विशेष छात्रवृत्ति योजना को प्रारम्भ किया जाए। (v) शिक्षकों को प्रशासनिक व्यवस्था का व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाय ताकि वे अपने अनुभव को लोक प्रशासन के छात्रों को बीच बांट सकें। (vi) सार्वजनिक मामलों सम्बन्धी शिक्षण एवं शोध पाठ्यक्रम तथा कार्यक्रम के लिए विश्वविद्यालयों द्वारा अनुदान दिया जाना चाहिए। (vii) शासकीय एवं सार्वजनिक मामलों सम्बन्धी शोध कार्य में लगे हुए व्यक्तियों को आर्थिक एवं अन्य प्रकार की सहायता दी जानी चाहिए। (viii) संघीय, राज्य स्तरीय एवं स्थानीय शासनों तथा वैयक्तिक संस्थाओं द्वारा लोक प्रशासन एवं सार्वजनिक मामलों के विद्यालय को उदारतापूर्वक सहायता दी जानी चाहिए। (ix) नवीन लोक प्रशासन कार्यक्रम के लिए नवीन परामर्शदात्री सेवा शुरू करनी चाहिए। (x) लोक सेवा सम्बन्धी प्रशिक्षण एवं शिक्षा की दृष्टि से विश्वविद्यालयों की समीक्षा होनी चाहिए, जिससे उनके कार्यों और कमियों के बारे में जानकारी मिल सके। 1967 ई. में जब हनी प्रतिवेदन प्रस्तुत हुआ तो उस पर व्यापक रूप में मिश्रित प्रतिक्रिया हुई। एक तरफ कुछ लोगों ने हनी प्रतिवेदन को लोक प्रशासन के क्षेत्र में अनावश्यक सुझाव माना, तो दूसरी तरफ इसके सम्बन्ध में कहा गया कि इससे लोक प्रशासन का विकास होगा, जो भी हो इतना तो स्पष्ट है कि नवीन लोक प्रशासन की स्थापना में हनी प्रतिवेदन के महत्त्व तथा भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता है।

नवीन लोक प्रशासन के विकास में फिलाडेल्फिया सम्मेलन, जो लोक प्रशासन के सिद्धान्त और व्यवहार पर आयोजित सम्मेलन था, को महत्वपूर्ण माना जाता है। 1967 ई. में आयोजित इस सम्मेलन के अन्तर्गत लोक प्रशासन के विकास की आवश्यकता पर बहुत अधिक बल दिया गया तथा इस सम्मेलन का विषय भी था- "लोक प्रशासन का सिद्धान्त एवं व्यवहार : उसका क्षेत्र, उद्देश्य एवं अध्ययन पद्धति।" इस सम्मेलन की **अध्यक्षता जेम्स सी. चार्ल्सवर्थ**[4] नाम के विद्वान ने किया तथा अपने अध्यक्षीय भाषण में इस सम्मेलन के मूल बातों को समाहित करते हुए कहा कि "इस सभा में भाग लेने वालों द्वारा इस भावना की अभिव्यक्ति हुई है कि लोक प्रशासन के सम्बन्ध में संक्षिप्त उपागम को अपनाना चाहिए तथा लोक प्रशासन के महत्त्व पर बल देना चाहिए।" इस सम्मेलन में इस बात पर बल दिया गया कि नीति-निर्माण एवं लोक प्रशासन का विभाजन नहीं करना चाहिए तथा एक विषय के रूप में अमरीकी लोक प्रशासन का सम्बन्ध केवल अमरीकी लोक नीति से होना चाहिए। इसी सम्मेलन में पदसोपान के सिद्धान्तों को कम महत्वपूर्ण माना गया तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण पर बल दिया गया। प्रशिक्षण के सम्बन्ध में यह भी कहा गया कि लोक प्रशासन और व्यावसायिक प्रशिक्षण का स्वरूप बिल्कुल एक ऐसा नहीं हो सकता। लोक प्रशासन को प्रभावी बनाने के लिए इसे राजनीति विज्ञान से सम्बद्ध करने पर बल दिया गया तथा नौकरशाही के 'संरचनात्मक-कार्यात्मक अध्ययन' को महत्वपूर्ण माना गया। इस सम्मेलन में इस बात को स्वीकार किया गया कि अब तक लोक प्रशासन समाज में उत्पन्न आपात समस्याओं का संतोषजनक उत्तर नहीं दे सका, इसलिए ऐसी व्यवस्था की जाय कि भविष्य में लोक प्रशासन इस सम्बन्ध में संतोष जनक उत्तर दे सके।

वर्ष 1967 ई. में लोक प्रशासन के सिद्धान्त और व्यवहार पर फिलाडेल्फिया सम्मेलन आयोजित हुआ, जिसके प्रभाव में 1968 ई. में मिन्नोब्रुक सम्मेलन को आयोजित किया गया। ड्वाइट वाल्डो के द्वारा सम्पादित पुस्तक Public Administration in a Time of Turbulence, 1971 ई. में इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण बातों को प्रस्तुत किया गया तथा महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहण किया गया। वस्तुतः मिन्नोब्रुक सम्मेलन ने ही नवीन लोक प्रशासन को जन्म दिया, क्योंकि उसी सम्मेलन में लोक प्रशासन के संकटपूर्ण स्थिति पर प्रकाश डाला गया तथा उसे सामाजिक मूल्यों के प्रति सम्बद्ध बनाने की बात कही गयी। मिन्नोब्रुक सम्मेलन में नवीन लोक प्रशासन के प्रमुख तत्त्वों के अन्तर्गत प्रासंगिकता, नैतिकता, नीति-शास्त्र, मौलिकता, सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक न्याय, ग्राहक केन्द्रित आदि को शामिल किया गया। मिन्नोब्रुक सम्मेलन में भाग लेने वाले युवा राजनीतिक वैज्ञानिक थे, जिसका परिणाम यह हुआ कि इस सम्मेलन में क्रांतिकारी परिवर्तन की बात कही गयी। इस सम्मेलन में व्यवहारवादी उपागम के समर्थक विद्वानों के प्रवेश को निषेध किया गया था। इसी का परिणाम यह हुआ कि इस सम्मेलन में मूल्य-सापेक्षता पर बल दिया गया। मिन्नोब्रुक सम्मेलन को भले ही फिलाडेल्फिया सम्मेलन के प्रभाव में आयोजित सम्मेलन कहा जाता है, परन्तु यह नवीन लोक प्रशासन के विकास के लिए मील का पत्थर साबित हुआ।

प्रथम मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 1968 ई. में आयोजित हुआ था,[5] उसके 20 वर्ष बाद द्वितीय मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 1988 ई. में आयोजित हुआ। इस सम्मेलन में कानूनी और संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में नेतृत्व, प्रौधोगिकी, नीति तथा आर्थिक परिवेश पर बल दिया गया। नवीन लोक प्रशासन को सामाजिक और व्यावहारिक बनाने के लिए इस सम्मेलन में अन्तर्विषयक उपागम के व्यापक प्रयोग पर बल दिया गया। अन्तर्विषयक उपागम के प्रभाव में लोक प्रशासन का अध्ययन आवश्यकता के सन्दर्भ में अन्य विषयों के साथ जोड़कर किया जाता है। द्वितीय मिन्नोब्रुक सम्मेलन में सामाजिक तथा व्यावहारिक विज्ञानों के योगदान को प्रोत्साहित करने पर बल दिया गया। यह उल्लेखनीय है कि विषय-वस्तु, सहभागिता के स्वरूप तथा चिन्तन के पक्ष के सन्दर्भ में प्रथम और द्वितीय मिन्नोब्रुक सम्मेलन में अन्तर किया जा सकता है। इस सम्मेलन में भी पूर्व के सम्मेलनों की भाँति सामाजिक परिवर्तन एवं समानता, मानवीय व्यवहार एवं सम्बन्ध, लोकतांत्रिक व्यवस्था एवं मूल्य तथा प्रशासनिक नेतृत्व जैसे विषय परिचर्चा में महत्वपूर्ण एवं केन्द्रीय रहे हैं। द्वितीय मिन्नोब्रुक सम्मेलन का आयोजन ऐसे समय में हो रहा था, जब वैश्विक आर्थिक व्यवस्था काफी परिवर्तित हो रही थी, तो दूसरी ओर 'लोक कल्याणकारी राज्य' ने अपने कार्य को समेटना शुरू कर दिया था।[6] इस सम्मेलन में इस बात पर बल दिया गया कि आखिर इस परिवर्तित परिस्थिति में लोक प्रशासन के औचित्य को किस रूप में प्रमाणित किया जाय?

21वीं शताब्दी में लोक प्रशासन की सार्थकता को स्थापित करने के लिए 2 से 5 सितम्बर, 2008 ई. को तृतीय मिन्नोब्रुक सम्मेलन को आयोजित किया गया। उक्त सम्मेलन में लोक प्रशासन को अधिक-से-अधिक कार्यकुशल बनाने पर बल दिया गया तथा निजी प्रशासन सदृश वैज्ञानिक कार्य-प्रणाली तथा लोक हित की मूल मान्यताओं के साथ चलने की वकालत की गई।[7] इन्हीं मान्यताओं के कारण 'नव कौशल परिप्रेक्ष्य' की अवधारणा प्रतिपादित हुई है।

अमरीकी राजनीतिज्ञ, अन्तर्राष्ट्रीयवादी एवं प्रसिद्ध लेखक वुडरो विल्सन के प्रयास से लोक प्रशासन वर्ष 1887 ई. में एक अनुशासन यानी स्वतंत्र विषय के रूप में स्थापित हुआ। स्वतंत्र विषय के रूप में स्थापित होने से पूर्व भी लोक प्रशासन का अध्ययन राजनीति विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता था। 1887 ई. के बाद लोक प्रशासन अपनी मूल्य सम्बद्धता, नवीनता, पर्यावरण सम्बद्धता, सामाजिक तथा विकासोन्मुख प्रकृति एवं विशेषताओं के कारण परिवर्तनशील रहा है। चूँकि लोक प्रशासन एक सामाजिक और परिवर्तनशील विषय है, इसलिए समय व परिस्थिति के अनुसार इसकी प्रकृति व क्षेत्र में परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ है। वर्ष 1970 के दशक में लोक प्रशासन की प्रकृति और क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन आया है, जो वर्ष 1970 के पूर्व की लोक प्रशासन के प्रकृति और क्षेत्र से विपरीत मालूम पड़ता है। वर्ष 1970 के बाद प्रकृति और क्षेत्र के सन्दर्भ में व्यापक रूप में परिवर्तित लोक प्रशासन को ही नवीन लोक प्रशासन कहा जाता है। स्पष्टतः नवीन लोक प्रशासन को लोक प्रशासन का ही अंग माना जा सकता है, जो वर्ष 1970 के दशक में परिवर्तित रूप में सामने आया है तथा स्पष्ट रूप में वर्ष 1971 में इसे मान्यता भी प्राप्त हुई है।[8] अन्त में, यहाँ उल्लेख कर देना आवश्यक है कि नवीन लोक प्रशासन के वास्तविक जनक ड्वाइट वाल्डो हैं।

नवीन लोक प्रशासन की विशेषताओं, तत्त्वों अथवा मान्यताओं को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता हैं :

नवीन लोक प्रशासन, राजनीति तथा प्रशासन के बीच विभाजक रेखा नहीं खींचना चाहता है। यह तो राजनीति और प्रशासन के बीच समन्वय करता है, ताकि लोक प्रशासन को व्यावहारिक तथा उपयोगी बनाया जा सके। वुडरो विल्सन, एफ. जे. गुंडनाव तथा प्रो. एल. डी. व्हाइट जैसे- विद्वानों ने राजनीति और

प्रशासन को विभाजित कर द्विविभाजन के सिद्धान्त का समर्थन किया, उस मान्यता को फ्रैंक मेरिनी, वाल्डो तथा मोशेर जैसे नवीन लोक प्रशासन के समर्थक विद्वान स्वीकार नहीं करते हैं। स्पष्टत: नवीन लोक प्रशासन की यह मान्यता एवं विशेषता है कि उसे राजनीति तथा प्रशासन विभाजन अर्थात् द्विविभाजन के सिद्धान्त में विश्वास नहीं है।

नवीन लोक प्रशासन का मानना है कि लोक प्रशासन का विकास तभी हो सकता है, जब मूल्यों एवं तथ्यों के बीच में समन्वय हो। दूसरे शब्दों में, लोक प्रशासन को उपयोगी एवं प्रासंगिक बनाने के लिए मूल्यों एवं तथ्यों के बीच का समन्वय अनिवार्य है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि वर्ष 1970 के पूर्व लोक प्रशासन के क्षेत्र में मूल्यों एवं तथ्यों के बीच समन्वय पर बल नहीं दिया गया था। व्यवहारवादी उपागम के प्रभाव में तो लोक प्रशासन के अन्तर्गत मूल्य-निरपेक्षता की अवधारणा पर बल दिया गया।[9] हर्बर्ट. ए. साइमन ने तो व्यापक रूप में लोक प्रशासन के अन्तर्गत मूल्य-निरपेक्षता का समर्थन किया है। नवीन लोक प्रशासन के समर्थक इस व्यवहारवादी मान्यता को स्वीकार नहीं करते हैं, बल्कि मूल्यों एवं तथ्यों के बीच समन्वय सम्बन्धी मान्यता को स्वीकार करते हैं।

नवीन लोक प्रशासन के द्वारा सामाजिक परिवर्तन पर बल दिया जाता है। वर्ष 1970 के पूर्व का लोक प्रशासन जिसे परम्परागत लोक प्रशासन कहा जा सकता है, के द्वारा नियमों के कठोर अनुपालन पर जोर दिया जाता था, जबकि नवीन लोक प्रशासन नियमों के कठोर अनुपालन पर जोर नहीं देता है, क्योंकि इसका लक्ष्य सामाजिक परिवर्तन को प्राप्त करना है।[10]

नवीन लोक प्रशासन का लक्ष्य सामाजिक न्याय की अवधारणा को प्राप्त करना है। नवीन लोक प्रशासन सामाजिक न्याय के आधार पर ही सामाजिक परिवर्तन को कायम करना चाहता है तथा इसी के लिए कानून के प्रयोग में शिथिलता और लचीलापन का समर्थक है।[11]

नवीन लोक प्रशासन की प्रकृति ग्राहक केन्द्रित है, जो परम्परागत लोक प्रशासन की अवधारणा से भिन्न है।[12] नवीन लोक प्रशासन के द्वारा जिन नियमों को निर्धारित एवं क्रियान्वित किया जाता है, उनके केन्द्र में जन हित होता है। इस प्रकार के प्रशासन द्वारा इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि प्रशासन के कार्यों से जनता यानी ग्राहक में क्या प्रतिक्रिया है। यदि जनता प्रशासन के कार्यों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को कायम रखती है तो प्रशासन अपनी कार्यों में सक्रियता दिखाता है, ठीक इसके विपरीत यदि जनता की रूख नकारात्मक है तो प्रशासन अपने कार्यों में संशोधन एवं सुधार करती है। स्पष्टत: नवीन लोक प्रशासन की प्रकृति व विशेषता इसका ग्राहकोन्मुख होना है।

नवीन लोक प्रशासन की प्रकृति बाजार-उन्मुख है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि नवीन लोक प्रशासन, निजी प्रशासन के सन्दर्भ में लोक प्रशासन के सिद्धान्तों को निर्धारित व क्रियान्वित करना चाहता है। दूसरे शब्दों में, नवीन लोक प्रशासन बाजार के सन्दर्भ में जन हित से सम्बन्धित नीतियों को निर्धारित एवं क्रियान्वित करता है। इसलिए इसे बाजार-उन्मुख कहा जाता है।[13]

नवीन लोक प्रशासन को मानवीय मूल्यों से व्यापक रूप में प्रभावित कहा जा सकता है, अर्थात् नवीन लोक प्रशासन का दृष्टिकोण मानवीय है।[14] यह वैज्ञानिक प्रबन्ध के इस मान्यता को स्वीकार नहीं करता है कि मानव केवल आर्थिक मानव होता है, बल्कि यह मानव सम्बन्धवादी विचारकों के इस मान्यता को स्वीकार करता है कि प्रबन्ध अथवा प्रशासन में मानवीय तत्त्वों की प्रधानता होनी चाहिए। स्पष्टत: नवीन लोक प्रशासन मनुष्य को समाज का अंग मानता है, न कि उत्पादन का यंत्र।

नवीन लोक प्रशासन विन्सेन्ट ऑस्ट्रोम द्वारा प्रतिपादित लोक चयन उपागम की मान्यताओं को स्वीकार करता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि नवीन लोक प्रशासन इस बात से सहमत है कि प्रशासन राज्य से अलग होकर भी अर्थात् गैर-सरकारी माध्यमों से भी लोक हित को पूरा कर सकता है। नवीन लोक प्रशासन, लोक चयन उपागम के समान गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका को स्वीकार करता है।

परम्परागत लोक प्रशासन के द्वारा मितव्ययता पर अत्यधिक जोर दिया जाता था, जबकि नवीन लोक प्रशासन जन हित के कार्यों को व्यापक रूप में पूरा करने के लिए तथा जनता में अधिक-से-अधिक अपने प्रभाव को कायम करने के लिए मितव्ययता से आगे बढ़कर 'घाटे की बजट' की अवधारणा को स्वीकार करता है। स्पष्टत: नवीन लोक प्रशासन प्रभाव-उत्पादकता के लिए अधिक-से-अधिक खर्च करने का हिमायती है।

नवीन लोक प्रशासन को एक प्रगतिशील विज्ञान की संज्ञा दी जा सकती है।[15] इसे प्रगतिशील कहने का कारण यह है कि यह परम्परागत लोक प्रशासन से अलग हट कर प्रगतिशील मान्यताओं को स्वीकार करता है; यह मूल्यों और तथ्यों के बीच समन्वय करता है; यह राजनीति तथा प्रशासन के बीच परिस्थिति के अनुरूप समन्वय का समर्थक है; यह सामाजिक न्याय और सामाजिक परिवर्तन जैसे प्रगतिशील मूल्यों का समर्थन करता है। नवीन लोक प्रशासन को प्रगतिशील कहने का कारण यह भी है कि इसके द्वारा ग्राहक-केन्द्रित, बाजार-उन्मुख, प्रभाव-उन्मुख तथा प्रासंगिक प्रशासन पर बल दिया जाता है।

परिकल्पना

नवीन लोक प्रशासन की अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में निम्नलिखित परिकल्पनाएँ अपेक्षित है:

1. लोक प्रशासन की गतिशीलता 21वीं शताब्दी में निजीकरण, उदारीकरण व वैश्वीकरण से अधिक सम्बद्ध करने वाली है।
2. नवीन लोक प्रशासन की मान्यताओं को प्रतिस्थापित करने में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय मिन्नोब्रुक सम्मेलन का योगदान रहा है। यदि वर्ष 2028 में चतुर्थ मिन्नोब्रुक सम्मेलन का आयोजन होता है जो नव कौशल परिप्रेक्ष्य अत्यधिक नवीनता की ओर अग्रसर होंगी।
3. नवीन लोक प्रशासन उत्तर व्यवहारवाद का परिणाम भी रहा है तथा यह विभिन्न अध्ययन पद्धतियों से प्रभावित भी होगा।

शोध आलेख का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य नवीन लोक प्रशासन की उत्पत्ति व विकास को स्पष्ट करते हुए इसकी मूल तत्त्वों, मान्यताओं, लक्षणों एवं विशेषताओं को भी स्पष्ट करना है।

साहित्य सर्वेक्षण

नवीन लोक प्रशासन के विशद् अध्ययन में कई महत्वपूर्ण साहित्य सर्वेक्षण किया गया है:

1. डॉ. एम. पी. शर्मा, लोक प्रशासन- सिद्धान्त एवं व्यवहार, किताब महल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. डॉ. रूमकी बसु, लोक प्रशासन- नवीन अवधारणाएँ।
3. डॉ. होशियार सिंह, लोक प्रशासन के सिद्धान्त, किताब महल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. जे. एस. फिफनर एण्ड प्रेस्थस, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, द रोनाल्ड प्रेस कम्पनी।

शोध आलेख की पद्धति

प्रस्तुत शोध अध्ययन में ऐतिहासिक, सैद्धन्तिक विश्लेषणत्मक, तुलनात्मक एवं नवीन पद्धतियों को अपनाते हुए शोध लेख को मौलिकता प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इस शोध कार्य में द्वितीयक श्रोतों का सहारा लिया गया है, जिसमें महत्वपूर्ण प्रशासनिक चिन्तको की पुस्तकें, राष्ट्रीय एवं राज्यस्तरीय पुस्तकालयों, इन्टरनेट एवं शोध संस्थानों आदि में उपलब्ध प्रासंगिक सामग्रियों से प्राप्त किया गया है।

निष्कर्ष

विवेचनोपरान्त स्पष्ट है कि नवीन लोक प्रशासन की उत्पत्ति एवं विकास में कई कारकों के अतिरिक्त अन्य परिस्थितिजन्य कारक भी उत्तरदायी रहे हैं। हनी प्रतिवेदन, 1967 ई.; फिलाडेल्फिया सम्मेलन, 1967 ई. तथा प्रथम मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 1968 ई. को नवीन लोक प्रशासन के उत्पत्ति एवं विकास में 'मील का पत्थर' माना जाता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि द्वितीय मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 1988 ई. के परिप्रेक्ष्य में नवीन लोक प्रशासन प्रबन्ध की ओर अधिक उन्मुख हुआ है तथा तृतीय मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 2008 से नव कौशल परिप्रेक्ष्य का विकास हो रहा है। नवीन लोक प्रशासन एक प्रगतिशील विज्ञान है; यह परम्परागत लोक प्रशासन से अलग है; यह लोक प्रशासन को व्यावहारिक एवं प्रासंगिक बनाना चाहता है; यह वर्ष 1970 के दशक में अस्तित्व व प्रभाव में आया है तथा निजी प्रशासन की चुनौतियों का सामना करते हुए प्रशासन के प्रभावपूर्ण औचित्य को प्रमाणित करना चाहता है; इसकी प्रकृति उपयोगिता के सन्दर्भ में लचीली है तथा यह बाजार-सह-जनोन्मुख भी है।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. अशोक कुमार, लोक प्रशासन, प्रतियोगिता सन्दर्भ प्रकाशन, नई दिल्ली तथा पटना, पृष्ठ-28
2. डॉ. सुरेन्द्र कटारिया, लोक प्रशासन-सिद्धान्त एवं व्यवहार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ-45
3. तथैव
4. तथैव, पृष्ठ-46
5. तथैव, पृष्ठ-47
6. डॉ. अशोक कुमार, तथैव, पृष्ठ-31
7. तथैव
8. तथैव, पृष्ठ-31
9. आर. के. अरोड़ा, एडमिनिस्ट्रेटीव थियरी, IIPA, नई दिल्ली, 1948, पृष्ठ-XII
10. डॉ. अशोक कुमार, तथैव, पृष्ठ-33
11. तथैव
12. तथैव
13. तथैव, पृष्ठ-34
14. आर. के. अरोड़ा, तथैव, पृष्ठ-XII
15. रॉबर्ट गोलमब्यूस्की, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन- ऐज ए डेवलपिंग डिसपलिन, पृष्ठ-123

भारत में जनजातियों का वर्गीकरण विशेषतः झारखण्ड राज्य के पश्चिमी सिंहभूम जिला के सन्दर्भ में

डॉ० राघवेन्द्र प्रसाद सिन्हा

एम०ए०, पी-एच०डी० (भूगोल), मगध विश्वविद्यालय, बोध गया, बिहार

शोध आलेख का सार तत्व

भारतीय समाज की विविधता है कि यहाँ लोगों की भाषा, धर्म और संस्कृति अलग-अलग प्रकार की है। यदि राज्यों की बात करें तो उनकी अपनी भौगोलिक, सामाजिक एवं भारत में विशिष्ट पहचान की याद बात की जाती है तो जनजातीय समाज का नाम सबसे पहले आ जाता है। झारखण्ड में कई जनजातियों का निवास है तथा पश्चिमी सिंहभूम जिला में भी जनजातीय बहुलता दृष्टिगोचर होती है। खनिज किसी क्षेत्र में पायी जाने वाली चट्टानों से निध र्रित होते हैं। दोनों में गहरा सम्बन्ध होता है। कहा भी गया है: चट्टान खनिजों के समुच्चय होते हैं। झारखण्ड में मुख्य रूप से पठारी भूमि में प्राचीन रवेदार आग्नेय चट्टान ग्रेनाइट एवं नीस की प्रधानता हैं जो इस भूमि की आधारशिला है। परन्तु इन्हीं चट्टानों के भीतर एवं ऊपर खनिज धारक चट्टानों का भी विकास हुआ है। आर्केइयन एवं धारवाड़ की प्राचीन चट्टानें धात्विक खनिजों- लोहा, तांबा, सोना आदि के भण्डार हैं। वहीं पश्चिमोत्तर स्थित विन्ध्यन की चट्टानें चूना-पत्थर एवं दामोदर घाटी गोंडवाना चट्टाने कोयला परत के लिए विश्व प्रसिद्ध है। दूसरी तरफ झारखण्ड के उत्तरी छोर पर ज्वालामुखी अन्तर्वेध न से पेग्माटाइट ने अभ्रक खनिजों की प्रधानता दी है। सिंहभूम क्षेत्र में भौगार्भिक उथल-पुथल के चलते वहाँ की प्रधानता दी है।

मूल शब्दः भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विविधता, जनजाति, भूमि उर्वरता, आदिवासी, प्रतवादी, विलीन मानवता।

प्रस्तावना

भारत में जनजातियों का वर्गीकरण अध्ययन का महत्वपूर्ण विषय है तथा झारखण्ड में कई जनजातियों का वर्गीकरण अग्रलिखित आधार पर किया जाता है: 1. निवास क्षेत्र के आधार पर, 2. भाषा के आधार पर, 3. संस्कृति के आधार पर तथा 4. अर्थव्यवस्था के आधार पर।

1. निवास क्षेत्र के आधार पर : डॉ० बी० एस० गुहा[1] ने भारत की सम्पूर्ण जनजातियों को भौगोलिक निवास के आधार पर अग्रलिखित तीन भागों में विभक्त किया है: **(i) उत्तरी तथा उत्तरी-पूर्वी मेखला :** इस क्षेत्र का विस्तार कश्मीर, पूर्वी पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उतरांचल और असम के पहाड़ी भाग तक है। लेह, शिमला और लुशाई पर्वत का क्षेत्र भी इसके अन्तर्गत आते हैं। यह सम्पूर्ण क्षेत्र सीमावर्ती होने के कारण राजनीतिक दृष्टि से अतिमहत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र की प्रमुख जनजातियों में **ओटिया, थारू, लेपचा, नागा, नारी, खासी, डफला, कूकी, अबोर, मिकिर, लुशाई, गुज्जर, चकमा, गुरूंग** आदि है। **(ii) मध्यवर्ती क्षेत्र :** इस क्षेत्र का विस्तार उत्तर में गंगा के मैदार से लेकर दक्षिण में कृष्णा नदी तक है। इसमें विन्ध्याचल एवं सतपुड़ा के पर्वतों की पट्टी भी सम्मिलित है। इसमें बंगाल, बिहार, दक्षिणी उत्तर प्रदेश, दक्षिणी राजस्थान, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और महाराष्ट्र के उत्तरी भाग में निवास करने वाली जनजातियाँ आती है। इस क्षेत्र की प्रमुख जनजातियाँ **संथाल, मुंडा, उराँव, खरिया, बिरहोर, गोंड, बैगा, भील, कोली, मीणा** आदि हैं। यह क्षेत्र जनसंख्या एवं क्षेत्रफल की दृष्टि से अन्य क्षेत्रों से बड़ा है। संथाल, भाली और गोंड इस क्षेत्र की महत्वपूर्ण जनजातियों में से हैं। इस क्षेत्र की जनजातियों पर औद्योगीकरण एवं नगरीकरण का प्रभाव पड़ा है और वे नवीन शहरी संस्कृति के सम्पर्क में आ रही है। यहाँ की अधिकांश जनजातियाँ कृषि कार्य में संलग्न है। बिहार, झारखण्ड एवं उड़ीसा की अनेक जनजातियाँ उद्योगों, खानों एवं कारखानों में काम करती है। **(iii) दक्षिणी मेखला :** यह क्षेत्र कृष्णा नदी के दक्षिण में स्थित है। इसमें मैसूर, ट्रावनकोर, केरल, हैदराबाद, आन्ध्र और तमिलनाडु आदि क्षेत्र आते हैं। इस क्षेत्र की जनजातियों में नीलगिरि के **टोडा, कोया, पनियान, कड़ार;** हैदराबाद के **चेंचू, कुरुम्बा, उराली** आदि प्रमुख है। इस क्षेत्र में अण्डमान और नीकोबार द्वीप समूहों की जनजातियों जैसे **जारवा, निकोबारी, सैण्टीली, ओंग, शोपन** आदि को भी सम्मिलित किया गया है।

2. भाषा के आधार पर वर्गीकरण : भाषायी आधार पर भारत की जनजातियों का विभाजन प्रमुखतः अग्रलिखित भागों में किया जा सकता है: **(a) द्राविड़ भाषा परिवार :** यह भाषा दक्षिण की जनजातियों द्वारा बोली जाती है। द्रविड़ भाषा परिवार में **तेलुगू, कन्नड़, तमिल** और **मलयालम** भाषाएँ आती है। मध्य भारत की गोंड जनजाति भी द्राविड़ भाषा का प्रयोग करती है। उड़ीसा के **कुन्थ**, बिहार एवं उड़ीसा के **कुई** तथा **उराँव** और राजमहल की पहाड़ियों में रहने वाले जनजातीय लोग **माल्टो** बोलियाँ बोलते हैं जो इसी परिवार का अंग है। द्राविड़ भाषा बोलने वाली प्रमुख जनजातियों में **टोडा, मलेर, पोलिया, सवर, कोया, पनियान, चेंचू, इरूला, कड़ार** आदि है। **(b) ऑस्ट्रिक भाषा परिवार :** इसमें **कोल, मुण्डा** भाषाएँ जो कि मध्य-पूर्वी भारत की जनजातियों द्वारा बोली जाती हैं तथा जिसमें असम की खासी एवं निकोबार द्वीप की निकोबारी बोलियाँ भी सम्मिलित है। ऑस्ट्रिक भाषा में **संथाली, मुण्डारी, खरिया, भूमिज, गारो,** आदि भाषाएँ है जो बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल और असम में बोली जाती है। मध्य क्षेत्र एवं छतीसगढ़ की **कोरकू साथरा** एवं

गड़बा भाषाएँ इसी के अन्तर्गत आती है। मध्य क्षेत्र की जनजातियों द्वारा ऑस्ट्रिक भाषा परिवार की बोलियाँ ही बोली जाती है, किन्तु यहाँ रहने वाली **उराँव, कोलाम, गोंड** आदि जनजातियाँ द्राविड़ परिवार की भाषाएँ बोलती है। **(c) चीनी-तिब्बती भाषा परिवार :** इस परिवार की भाषाएँ, दार्जिलिंग, त्रिपुरा, मणिपुर, पूर्वी कश्मीर, पूर्वी पंजाब, हिमाचल प्रदेश, भूटान, उत्तर-पूर्वी असम तथा सिक्किम आदि क्षेत्रों में बोली जाती है। उत्तर-पूर्वी असम तथा सिक्किम आदि क्षेत्रों में बोली जाती हैं। उत्तर-पूरब के कुछ क्षेत्रों में **मोनखामेर** भाषा बोली जाती है जो ऑस्ट्रिक भाषा परिवार की है। असम के नागाओं में लगभग 16 भाषाओं का प्रयोग किया जाता है। भाषा के माध्यम से संस्कृति का प्रसार एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में होता है। यदि दो क्षेत्रों में समान भाषा तथा समान भाषा सम्बन्ध ी प्रतीत एवं मूल्य प्रचलित है तो इसका अर्थ है कि इस सांस्कृतिक प्रसार में भाषा ने महत्वपूर्ण योग दिया है। उदाहरणार्थ, दक्षिणी राजस्थान के भील बागड़ी भाषा का प्रयोग करते हैं जिनमें गुजराती शब्द भी अधिक है। यह इस बात का संकेत है कि राजस्थान के भीलों में भी गुजरात की संस्कृति के तत्व है किन्तु कई बार दो जनजातियाँ निकट रहते हुए भी भिन्न-भिन्न भाषाओं का प्रयोग करती है। इसका अर्थ है कि भाषा के फैलाव में किसी जनजाति की सामाजिक व आर्थिक स्थिति का भी प्रभाव होता है। यही कारण है कि मुण्डा और उराँव जनजातियों के साथ-साथ रहने पर भी एक के द्वारा ऑस्ट्रिक भाषा तो दूसरी के द्वारा द्राविड़ भाषा बोली जाती है।

3. संस्कृति के आधार पर वर्गीकरण : डॉ0 वैरियर एलबिन ने 1943 में भारत की जनजातियों का सांस्कृतिक वर्गीकरण किया और इस आधार पर उन्होंने जनजातियों को चार प्रमुख भागों में विभक्त किया था।[2] **(i) प्रथम श्रेणी** में वे आदिवासी लोग सम्मिलित है जो अत्यधिक आदिम है, संयुक्त सामाजिक जीवन व्यतीत करते हैं तथा दुर्गम एवं घने जंगलों में निवास करते हैं। ये लोग **'झूम'** कृषि करते हैं। इनको सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन बहुत सरल है। कई बार तो सभ्य समाजों के लोगों को देखकर डरकर भाग जाते हैं अथवा पेड़ पर चढ़ जाते हैं। इनमें मध्य भारत के बस्तर क्षेत्र की पहाड़ी मीटिया, उड़ीसा के **जुआंग, गडबा और बोदों** आदि जनजातियाँ प्रमुख हैं। **(ii) दूसरी श्रेणी** में वे जनजातियाँ आती है, जो प्रथम क्षेत्रों की भाँति ही एकाकी एवं परम्परावादी है, किन्तु इनके जीवन में कुछ परिवर्तन आ रहे हैं। ये लोग अपने सामूहिक जीवन को त्यागकर व्यक्तिवादी हो रहे हैं और इनमें गरीब एवं अमीर में भेद पाया जाता है। ये खेती के लिए कुल्हाड़ी का प्रयोग कम करते हैं। अब ये 'झूम' खेती त्याग रहे हैं और सभ्य लोगों को देखकर डरते नहीं है। **(iii) तीसरी श्रेणी** में वे जनजातियाँ आती है। जो आधुनिक हैं, सभ्यता एवं बाह्य सस्कृति के अत्यधिक सम्पर्क में आने के कारण अपनी मूल संस्कृति खो चुकी है या मिटने की ओर है। इनका आदिवासी धर्म, परम्परा, प्रथा, कला, विश्वास, सामाजिक संगठन आदि नष्ट हो गये हैं। अत: ये कष्ट में है और सांस्कृतिक सम्पर्क की अनेक समस्याओं से ग्रसित है। **(iv) चौथी श्रेणी में** वे जनजातियाँ आती हैं जो प्राचीन कुलीन वर्ग की है। इनमें भील, नागा, गोंड लोग हैं। इन लोगों ने बाहरी संस्कृतियों के प्रभाव के उपरान्त भी अपनी मौलिकता को बनाए रखा है। ये अपना सम्बन्ध ऊँची जनजातियों से जोड़ते हैं।

डॉ० मजूमदार ने सांस्कृति आधार पर जनजातियों को तीन भागों में बाँटा है[3] :

(i) वे जनजातियाँ जिन्होंने हिन्दू समुदाय के रीति-रिवाजों और व्यवहार को अपना लिया है लेकिन जिन्हें अभी तक हिन्दू समाज ने अपने समूह में सम्मिलित नहीं किया गया है वरन् ये अभी तक बाह्य जातियों के रूप में मान्य है।

(ii) वे जनजातियाँ जो पूरी तरह हिन्दु समुदाय में मिल गयी है किन्तु अभी भी संस्कृति उनकी वैसी ही है।

4. अर्थव्यवस्था के आधार पर वर्गीकरण : आर्थिक आधार पर भारतीय जनजातियों का वर्गीकरण प्रमुख रूप से अग्रलिखित चार भागों में किया गया है: **(i) शिकार करने एवं संकलनशील अर्थव्यवस्था वाली जनजातियाँ :** भारत की अधिकांश जनजनातियाँ वनों में निवास करती हैं और ये अपना जीवनयापन शिकार करके अथवा कन्दमूल-फल एकत्रित करके करती है। कोच्चि के कड़ार, ट्रावनकोर के मालापात्रम्, कुर्ग के पनियान, वायनाड के पनियान आदि लोग जंगलों से फल-फूल एवं शहर एकत्रित करके जीवनयापन करते हैं। ये लोग कृषि नहीं करते या बहुत ही कम कृषि कार्य करते हैं और वह भी स्थानान्तरिक प्रकार की। सरकार की वन-नीति ने इनके जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया है। **(ii) पशुपालक जनजातियाँ :** अनेक जनजातियाँ पशुपालन करके अपना जीवन-यापन करती है। इनमें हिमाचल के गुज्जर तथा नीलगिरि के टोडा प्रमुख है। टोडा जनजाति भैंस-पालन करती है और इनकी संस्कृति को 'भैंस-संस्कृति' के नाम से जाना जाता है। पशुपालक जनजातियों का आर्थिक जीवन दूध से बनी वस्तुओं पर निर्भर है। **(iii) कृषि करने वाली जनजातियाँ :** अनेक जनजातियों के आर्थिक जीवन का आधार कृषि की भी अनेक विधियाँ प्रचलित हैं। कुछ जनजातियाँ कुल्हाड़ी की सहायता से कृषि करती है तो कुछ स्थानान्तरित प्रकार से जबकि कई जनजातियाँ आधुनिक कृषि यन्त्रों का भी प्रयोग कर रही है। इस प्रकार की जनजातियाँ उत्तरी-पूर्वी भारत एवं मध्य भारत में अधिक है। **(iv) उद्योगों में लगी हुई जनजातियाँ :** भारत में औद्योगिक विकास के कारण यह चौथा वर्ग पनपा है। भारत के कुछ भागों में जनजातियाँ विभिन्न प्रकार के उद्योगों में लगी हुई है। बंगाल, बिहार, झारखंड एवं असम की जनजातियाँ चाय-बगानों, खानों एवं कारखानों में काम करती है। उद्योगों में श्रम की माँग के कारण तथा कृषि में उपज की कमी के कारण जनजातियाँ जनवीन उद्योगों में कार्य करती हैं।

जनजातियों की जनसंख्या में कुछ ह्रासोन्मुखी प्रवृत्ति पायी जाती रही है। इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि यद्यपि आदिवासी जनजातियों की जनसंख्या सामान्य तौर पर अधिक बढ़ने वाली है फिर भी अधिकांशत: वे ऐसे क्षेत्रों में रहती है जहाँ मलेरिया का गहरा प्रकोप पाया जाता है।

दूसरे, असम में मैदानी क्षेत्रों में और उत्तरी कछार पहाड़ियों में जनजातियाँ सचमुच हिन्दू धर्म में घुल-मिल गयी है। **तीसरे,** लुसाई, खासी और जयन्तिया के पहाड़ी क्षेत्रों, छतीसगढ़ और केरल में ईसाई धर्म के प्रचार ने भी इनकी जनसंख्या घटाने में पर्याप्त योग दिया है। **चौथे,** दूसरे लोगों के सम्पर्क में आने से और उनके रहन-सहन के ढंग अपनाने से अनेक जनजातियाँ बहुत बदल गयी है। जब कोई जनजाति सभ्यता के निकट सम्पर्क में आती है, तब वह अपने पड़ोसियों की कुछ विशेषताएँ ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार उसकी स्वयं की कुछ मौलिक विशेषताएँ लुप्त हो जाती हैं। और जनजातीय भाषा का स्थान अन्य भाषाएँ ले लेती हैं। मैदारी क्षेत्रों से प्रत्यक्ष सम्पर्क के कारण जनजातियों के अन्धविश्वास मिटते जा रहे हैं।

जिन कारणों से जनजातियों का अपने पड़ोसियों से सम्पर्क स्थापित कर लेना आसान हो गया है, वे अग्रलिखित है : (1) बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल के विभिन्न भागों में स्थित जनजातीय क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के खनिज मिलने तथा असम और पश्चिम बंगाल से बागानों और खेतों में काम करने

और बिहार, उड़ीसा के कारखानों में काम करने के लिए अपना निवास स्थान छोड़कर जाते हैं और वहाँ बस गये हैं। इससे उनका सम्बन्ध अपनी भूमि से टूट जाता है। (2) यातायात और संचार सांधनों के प्रसार के कारण जनजातीय क्षेत्रों से सम्पर्क स्थापित होना भी एक मुख्य कारण है। रेलों और सड़क यातायात ने जनजातीय लोगों की लज्जा को बड़ी तेजी से कम कर दिया है और बहुत से भूमिहीन परिवार सड़कों के अगल-बगल बस गये हैं। अन्य लोग बाहर आकर बीच में बस गये लोगों की सेवा-टहल करते हैं। इस तरह उनका सम्पर्क बढ़ रहा है। औद्योगिक और नगरीय संस्कृति के सम्कर्प में आने से ये लोग नवीन वातावरण से पूरी तरह सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाये। इनकी अशिक्षा और अज्ञान का लाभ ईसाई मिशनरियों ने उठाया जिससे इन्हें पाश्चात्य संस्कृति को अपनाकर ऐसे दोष अपना लिये जैसे मादक वस्तुओं का सेवन, अंग्रेजी वेशभूषा आदि जो इसके अनुरूप नहीं है। (3) सुदूर स्थित स्थानों और उन क्षेत्रों में जहाँ पहुँचना कठिन है, ईसाई मिशनरियाँ स्थापित की गयी है। इससे सांस्कृतिक सम्पर्क काफी बढ़ा है। इन मिशनरियों ने जनजातीय लोगों के दु:ख और बीमरी में तथा जमींदारों और बनियों से लड़ाई होने पर उनकी हर प्रकार से सहायता की। तभी से अनेक लोगों ने ईसाई धर्म स्वीकार किया। (4) प्रशासन के अधि कारियों, सार्वजनिक चिकित्सा सेवा के कर्मचारियों, वन विभाग के अधिकारियों और उनके गुर्गों, ठेकेदारों, व्यापारियों, बनियों, मुकदमेबाजों, वकीलों, पटवारियों, माल महकमे के गुर्गों तथा दूसरे लोगों के सम्पर्क में आने से भी जनजातियों की पुरानी मौलिक विशेषताएँ समाप्त हुई हैं और उनके निजी संस्कार परिष्कृत हुए हैं।

किसी क्षेत्र विशेष में रहने वाले आदिम मानव समूह को जिसके सदस्य एक सामान्य भाषा बोलते हैं और एक समान संस्कृति की असुरण करते हैं। जनजाति कहे जाते हैं। आदिवासी भी इन्हें कहा जाता है, क्योंकि किसी क्षेत्र विशेष में इनका वास पहले से रहता है। वे दुर्गम इलाके में रहते हैं। ये सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध हो पर शैक्षिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े रहते हैं। परन्तु अब इनमें भी विकास होने लगा है।

झारखण्ड प्रदेश की पहचान एवं संस्कृति जनजातीय जीवन से घनिष्ठ रूप से जुड़ा है। 2011 जनगणना के अनुसार झारखण्ड में इनकी संख्या 86,45,042 थी जो कुल जनसंख्या का 26.2 प्रतिशत है। इनमें 76,68,150 जनजातीय जनसंख्या गाँवों में रहती है तथा 7,76,892 शहरी क्षेत्रों में रहती है। यानि ग्रामीण जनसंख्या में इनका योगदान 31.4 प्रतिशत है, जबकि शहरी आबादी में में 9.8 प्रतिशत बैठता है। गौरतलब है कि 2001 की जनगणना में कुल जनजातीय भागीदारी 26.3 प्रतिशत जबकि 2011 में 0.1 प्रतिशत घटकर 26.2 प्रतिशत हो गई है। भारत में जनजातीय जनसंख्या का सकेन्द्रण दुर्गम इलाके पहाड़ी, पठारी, रेगिस्तानी एवं जंगली क्षेत्रों में मिलता है। विद्वानों का मानना है कि इनका प्रजातिगत लक्षण प्रोटो ऑस्ट्रेलॉयड है और ये भारत के मैदानी इलाकों में सभ्यता का विकास किये। परन्तु आर्यों के आगमन के साथ इनसे युद्ध हुआ जिसके बाद ये दक्षिण में दुर्गम पठारी भाग, पर्वतीय हिमालय पश्चिमी रेगिस्तानी एवं पूर्वांचल भाग में केन्द्रित है। भारत लगभग 450 जनजातियाँ निवास करती है। झारखण्ड में इनकी संख्या 32 है। संथाल, मुण्डा तथा उराँव यहाद्द मुख्य जनजातियाँ है। हो, लोहरा, खरवार, खरिया, भूमिज, महली, माल पहाड़िया, बेदिया, गोंड, कोरवा, विनिजिया, असुर, गोडैत, बिरहोर, बिरिजिया, बैंगा, सवार, बथुड़ी, खोंड एवं बंजारा आदि है।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य अधिवास के स्वरूप का महत्वपूर्ण होने के कारण समझना आवश्यक है। पश्चिमी सिंहभूम का अधिवास प्रतिमान नगरीय और औद्योगिक है। इसलिए इस आलेख में ग्रामीण अधिवास की सामान्य जानकारी के बाद नगरीय अधिवास के प्रतिमान को विस्तृत रूप में स्पष्ट किया गया है। इस आलेख में नगरीय अधिवास के साथ-साथ झारखंड राज्य के पश्चिमी सिंहभूम जिला में अधिवास के स्वरूप को भी स्पष्ट किया गया है।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक "भारत में जनजातियों का वर्गीकरण विशेषत: झाखण्ड राज्य के पश्चिमी सिंहभूम जिला के सन्दर्भ में" है। शीर्षक के अनुरूप शोध आलेख में परिकल्पना को निर्धारित किया जा सकता है। भौतिक आवश्यकताओं तथा शैक्षणिक आवश्यकताओं को लेकर नगरीकरण को बढ़ावा मिल रहा है। वर्तमान समय में विज्ञान एवं तकनीक का अत्यधिक विकास हुआ है, इसलिए राज्यों में सांस्कृतिक विविधता में उत्तरोतर रूप में कमी आ रही है। झारखंड राज्य के पश्चिमी सिंहभूम जिला एक जनजाति, जनसंख्या बहुल जिला है, जिसमें विशेष सांस्कृतिक पहचान दिखती है। इसके बाद भी भविष्य में जनजातीय संस्कृति का उत्तरोतर रूप में क्षय हो रहा है तथा इस प्रकार की आशा की जा सकती है कि झारखंड के इस जिले की नगरीय तथा ग्रामीण अधिवास की मौलिक अन्तर समाप्त होंगी। चाइबासा की संस्कृति, ग्रामीण संस्कृति तथा जनजातीय संस्कृति से प्रभावित है, परन्तु भविष्य में इस पर वैश्वीकरण, उदारीकरण, उत्तर आधुनिकतावाद, सदृश्य अवधारणाओं का प्रभाव दृष्टिगोचर होगा।

साहित्य सर्वेक्षण

प्रस्तुत आलेख की तैयारी में कई महत्वपूर्ण ग्रंथों का अवलोकन व सर्वेक्षण किया गया है। यहाँ साहित्य सर्वेक्षण में निम्नलिखित ग्रंथ का नाम दिया जा सकता है:

1. डब्ल्यू.ई. हंटर : ए स्टैटिकल एकाउन्ट ऑफ बंगाल, वॉल्यूम-ब्ट, नम्बर एंड कम्पनी, लंदन, 1877
2. ए.जे.एम. हूसन : द डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ पोपुलेशन एज द एसेन्सियल ज्योग्रफीकल एक्सप्रेशन, कानाडियन ज्योग्रफर-17, वर्ष 1960
3. जे.बी. गार्नियर : ज्योग्रफी ऑफ पोपुलेशन, लौंगमैन, लन्दन, 45(2), वर्ष 1978
4. डॉ. चतुर्भुज मामोरिया एण्ड एच.एस. गर्ग, भूगोल, राजीव बंशल, साहित्य भवन, पी. एण्ड डी., आगरा।
5. जी.एस. गोल : इन्टरनल माइग्रेशन इन इंडिया- एक रीजनल एनालिसीस, इण्डियन ज्योग्रफीकल जर्नल, 36, वर्ष 1961

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख के लेखन में ऐतिहासिक, वस्तु-विश्लेषणात्मक तथा भौगोलिक विश्लेषण की पद्धति को अपनाया गया है। शोध प्रविधि के रूप में तुलनात्मक पद्धति की भी चर्चा आंशिक रूप में की गई है।

निष्कर्ष

अबतक के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि अधिवास मानव के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है, जो सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं भौगोलिक कारकों से निर्धारित होता है। अधिवास के पीछे ऐतिहासिक कारक भी कम महत्वपूर्ण नहीं है, विशेषकर भारत के राज्यों में। भारत के राज्यों में झारखंड, छतीसगढ़ तथा उड़ीसा जैसे राज्य जनजाति समाज की जनसंख्या और उनकी संस्कृति के लिए महत्वपूर्ण है। झारखंड राज्य का पश्चिमी सिंहभूम जिला एक जनजाति बहुल जिला है, जहाँ नगरीय अधिवास तथा ग्रामीण अधिवास के बीच समन्वय दिखता है। सिंहभूम जिला का नगरीय अधिवास खनन उद्योग नगर तथा औद्योगिक नगर के रूप में महत्वपूर्ण है, जिससे व्यापारिक नगर भी कहा जा सकता है। स्पष्टत: पश्चिमी सिंहभूम का नगरीय अधिवास कार्य पर आधारित है तथा इसे व्यापारिक और परिवहन नगर के रूप में भी स्वीकार किया जाता है। सीमेन्ट उद्योग को लेकर यह जिला विशेष महत्व रखता है, हालांकि ग्रामीण अधिवास के पीछे कृषि और पशुपालन जैसे कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। इस जिला में नगरीय अधिवास तथा ग्रामीण अधिवास के बीच का अन्तर उत्तरोतर रूप में कम हो रहा है तथा सांस्कृतिक परिवर्तन का दौड़ भी चल रहा है। विज्ञान एवं तकनीक के प्रभाव में इस सांस्कृतिक तथा औद्योगिक जिला का स्वरूप व्यापक रूप में परिवर्तित कर दिया है।

सन्दर्भ सूची

1. बी०एस० गुहा, दि आदिवासी, 1960, पृष्ठ-28-35
2. वेरियर एल्विन : दि एबोरिजीनल्स, 1943, पृष्ठ 7-11
3. पश्चिमी सिंहभूम जिला के आधिकारिक बेवसाइट।
4. डॉ० मदोदर : मानव भूगोल, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-41
5. तथैव, पृष्ठ-46
6. डॉ० एस०डी० कौशिक : मानव भूगोल, पृष्ठ-162
7. बी०एम० स्वैनसन : रूरल सेटेलमेन्ट इन एन०डब्ल्यू०, डेरोन इन इकोनॉकिम ज्योग्रफी, वोल्यूम-II, नम्बर-1st 1935, पृष्ठ-77
8. ब्लाश : हूमैन सेटेलमेन्ट, पृष्ठ-21
9. डॉ० चतुर्भज मामोरिया एवं एच०एस० गर्ग, भूगोल, एस.बी.पी.डी पब्लिकेशन, आगरा, पृष्ठ-163
10. तथैव, पृष्ठ-163-165
11. तथैव, पृष्ठ-166
12. तथैव, पृष्ठ-167
13. तथैव।
14. तथैव।
15. पश्चिमी सिंहभूम से संबद्ध विकासपीडिया।

भारत में भूमि सुधार : एक सामान्य अवलोकन

डॉ० धर्मेन्द्र धारी सिंह

एम०ए०, पी-एच०डी० (इतिहास), मगध विश्वविद्यालय, बोध गया, बिहार

शोध आलेख का सार तत्व

भारत में भूमि सुधार हमेशा से ही आवश्यक, परन्तु विवाद का विषय रहा है। इतिहास के लगभग हर कालखण्ड में इस दिशा में कार्य-प्रयास किये जाते रहे हैं। आधुनिक भारत के इतिहास में कार्लवालिस की भूमि सुधार की योजना तो काफी चर्चा में रही है। स्वतंत्र भारत में भूमि सुधार की माँग की जाती रही है, परन्तु इस दिशा में अभी भी सार्थक निर्णयन नहीं हो पाया है। भारत के बिहार और झारखण्ड राज्य में भूमि विवाद के कारण प्रशासन के सामने कानून-व्यवस्था की समस्या खड़ी होती रही है। बिहार सरकार के द्वारा भी कानून-व्यवस्था के मार्ग में सबसे बड़ी समस्या भूमि विवाद को माना जाता रहा है। आये दिन समाज में भूमि विभाजन को लेकर दो घनिष्ठ परिवारों के बीच मारपीट होती रहती है तथा प्रशासन उसी में उलझा रहता है। इसलिए राज्य और सम्पूर्ण देश के विकास के लिए आवश्यक है कि सरकार के द्वारा भूमि सुधार की दिशा में ईमानदार प्रयास किया जाये। इसके लिए दृढ़ राजनीतिक-प्रशासनिक इच्छा शक्ति की आवश्यकता है, जिसकी कमी देखी जा रही है। दूसरी बात यह है कि कृषि को लाभकारी स्थिति में लाने के लिए चकबन्दी जैसे कई पद्धतियों को लागू करना होगा। कृषि पर लोगों की निर्भरता अधिक है, लेकिन बिहार में वैज्ञानिक एवं आधुनिक रूप में खेती नहीं हो रही है। इसलिए कृषि आध ारित उद्योग-धन्धे भी पिछड़ रहे हैं। इसके लिए भी भूमि सुधार की आवश्यकता है। इतना ही नहीं, सम्पूर्ण राष्ट्र को आत्म-निर्भर बनाने तथा नये रूप में हरित क्रांति लाने के लिए भी भूमि सुधार की अनिवार्यता सर्वविदित है।

मूल शब्दः भूमि सुधार, कृषि क्रांति, हरित क्रांति, जमींदारी, माओवाद, समग्र विकास, बेरोजगारी, गरीबी, आर्थिक नियोजन, सामाजिक सशक्तिकरण।

प्रस्तावना

भूमि सुधार का प्रमख उद्देश्य उत्पादन के सामाजिक संबंधों को ऐसा स्वरूप देना है, जिसके फलस्वरूप कृषि उत्पादकता अधिकतम हो सके। कृषि संरचना में परिवर्तन दो तरीकों से हो सकते हैं- सामाजिक-आर्थिक प्रक्रियाओं के चलन से स्वतः समय के साथ और कृषि संरचना में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप के द्वारा। कृषि संरचना में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप से होने वाले परिवर्तन को भूमि सुधार कहा जाता है। भारत में भूमि सुधारों के माध्यम से प्रत्यक्ष हस्तक्षेप की आवश्यकता इसलिए हुई, क्योंकि स्वतंत्रता से पहले देश में पायी जाने वाली भूधारणा प्रजातियाँ शोषण करने वाली थी। भारतीय कृषि से संबंधित संस्थागत परिवर्तन जमींदारी उन्मूलन, कृषकों को भू-स्वामी अधिकार देना, भूमि लगान का सही निर्धारण करना और भूमि का समानतापूर्वक वितरण सरकारी नीति के मूलभूत उपादान थे। संस्थागत परिवर्तन के इन सभी उपादानों को भूमि सुधार के नाम से जाना जाता है।

योजना आयोग के अनुसार भूमि सुधार के तीन मुख्य उद्देश्य है। पहला उद्देश्य यह है कि ब्रिटिश काल से जो कृषि संगठन विरासत में मिला है, उसके फलस्वरूप कृषि उत्पादकता की वृद्धि से संबंधित बाधाओं को दूर किया जाए। इसके कारण कुशलता तथा उत्पादकता ऊँचे स्तर वाली कृषि व्यवस्थ का तेजी से जन्म होगा। दूसरा उद्देश्य यह है कि कृषि संगठन में सभी प्रकार के शोषण को समाप्त करना और सामाजिक न्याय प्रदान करना जिसके फलस्वरूप काश्तकारी स्थिति में समानता प्रदान की जाए और ग्रामीण जनता के सभी वर्गों को समान अवसर प्रदान किए जाए। तीसरा उद्देश्य यह है कि कृषि से संस्थागत परिवर्तन होने के फलस्वरूप कृषि के समृद्ध होने से देश की आर्थिक विकास की प्रक्रिया को तीव्र करना।[1]

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भूमि सुधार की आवश्यकता अग्रलिखित कारणों से हुईः **सर्वप्रथम,** स्वतंत्रता से पूर्व ब्रिटिशकालीन भारत में राज्य और वास्तव में खेती करने वाले किसान के बीच बड़ी संस्था में मध्यस्थों की उपस्थिति कृषि की एक विशेषता थी। ये मध्यस्थ जिन्हें जमीदार कहा जाता था, ब्रिटिश सरकार द्वारा कृषकों से राजस्व प्राप्त करने का काम करते थे। मध्यस्थों को एक निश्चित राशि भू-राजस्व के रूप में सरकार को प्रतिवर्ष देनी पड़ती थी, जिसके बदले में सरकार ने इन्हें छूट दे रखी है लेकिन राजस्व एकत्र करने वाले इन मध्यस्थों को धीरे-धीरे भूमि का मालिक स्वीकार किया जाने लगा और इसी के साथ अनुपस्थित भू-स्वामी की प्रथा शुरू हो गई। **द्वितीय,** राजस्व वसूल करने वाले मध्यस्थों का स्वामित्व अधिकार समय के साथ-साथ इतना व्यापक हो गया कि वास्तव में जो भूमि का मालिक था तथा खुद खेती करता था, वह भूमिहीन श्रमिकों ने बदला गया। इसके साथ ही ये मध्यस्थ अनुपस्थित भू-स्वामी बन गए और इनका उद्देश्य काश्तकारों का शोषण करके उनसे अधिक लगान वसूल करना था। इसके फलस्वरूप इनके द्वारा कृषि का पोषण होने के बादले उनका शोषण होने लगा। भू-स्वामी खुद खेती न करे उसके काश्तकारों से खेती करवाता और अधिक से अधिक लगान वसूल करता। **तृतीय,** लगान में वृद्धि करने के लिए काश्तकारों को प्रायः भूमि से बेदखल कर दिया जाता था। अत्यधिक शोषण के कारण छोड़ देते हैं, जिसके फलस्वरूप भूमि का एक बड़ा हिस्सा बिना खेती किए बेकार रह जाता था। **अन्त में,** काश्तकारों की बेदखली के कारण जोतों का उपविभाजन और विखंडन व्यापक पैमाने पर होने लगा, जिसके फलस्वरूप जोतों का आकार इतना छोटा हो गया कि कृषि कार्य के लिए यह उपयुक्त नहीं रहा। विखंडन के कारण भूमि बेकार को गई तथा

फसल के प्रबंध भी लागत बढ़ने लगी। चूँकि जमींदारी व्यवस्था शोषण पर आधारित व्यवस्था थी। इस व्यवस्था ने एक परजीवी वर्ग उत्पन्न कर दिया जो दूसरों की मेहनत पर पलता था। साथ ही अपने आर्थिक तथा सामाजिक प्रभुत्व के कारण यह परजीवी वर्ग वास्तविक काश्तकारों से उत्पाद का एक बड़ा हिस्सा हड़प लेता था। रैयतवाड़ी और महालवाड़ी व्यवस्था में भी इसी प्रकार के अवगुण उत्पन्न हो गए थे। इन तीनों प्रणालियों में खेती काश्तकारों द्वारा भी जाती थी, जिनका अनेक प्रकार से शोषण होता था। ऐच्छिक काश्तकारों तथा उपकाश्तकारों की स्थिति विशेष रूप से काफी दयनीय थी।

स्वतंत्रता के बाद सरकार द्वारा शुरू किए गए भूमि सुधारों का मुख्य उद्देश्य वास्तविक काश्तकारों के शोषण को रोकना उन्हें भूमि पर मालिकाना हक दिलाना था। भारत सरकार ने भूमि सुधार हेत निम्नलिखित उद्देश्य निश्चय किए :

(i) पुराने भूमि संबंधों को समाप्त करना जिनके कारण कृषि उत्पादन को बढ़ाने में बाधाएँ उत्पन्न हो रही है और एक ऐसी नई व्यवस्था स्थापित करना जिसमें भूमि पर खती करने वाले ही उनके वास्तविक मालिक हो, और

(ii) भूमि व्यवस्था के अंतर्गत होने वाले सभी प्रकार के शोषण तथा सामाजिक अन्याय को समाप्त करना, काश्तकारों की स्थिति मजबूत बनाना और ग्रामीण जनसंख्या के सभी वर्गों को समान अधिकार तथा समान अवसर प्रदान करना। भारत सरकार ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भूमि सुधार के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण उपाय किए हैं।

स्वतंत्रता के समय देश का 57% क्षेत्र जमींदारी व्यवस्था के अंतर्गत था। जमींदारी प्रथा में पाये जाने वाले दोषों के कारण जनता का विरोध उनके प्रति बहुत पहले से पनप रहा था। 1928 ई० में ही झाँसी काँग्रेस अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू ने जमींदारी प्रथा के समापन का प्रस्ताव किया।[3] 1935 में पुनः माँग की गई लेकिन अँग्रेजों ने इस व्यवस्था को बनाए रखा। स्वतंत्रता के बाद 1948 में कृषि सुधार समिति ने यह सिफारिश की कि भूमि पर स्वामित्व किसान का होना चाहिए तथा जिन व्यक्तियों ने 6 वर्ष तक किसी भूखंड पर खेती की है उन्हें उस भूमि का मालिक मान लिया जाना चाहिए। इस प्रकार राज्यों में जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के लिए कानून 1951 से पूर्व ही बना लिए गए, लेकिन उन पर पालन तथा उनसे संबंधित कार्य प्रथम पंचवर्षीय योजना में ही किया गया। इस संबंध में पहला कानून बिहार राज्य के पास किया फिर एक-एक करके दूसरे राज्यों ने भी ऐसे कानून पास किए।[4] जमींदारों को उनके स्वामित्व अधिकारों से वंचित कर दिया गया और उन्हें बदले में मुआवजा दिया गया। जमींदार जिस भूमि पर स्वयं खेती करते थे, वह उनके पास ही छोड़ दी गई। मुआवजा चुकाने के बाद खेती योग्य और खेती अयोग्य बेकार भूमि सरकार के हाथ में आ गई जिसे सीमांत कृषक और भूमिहीन कृषि श्रमिकों में बाँट दिया गया। इस प्रकार मध्यस्थों के उन्मूलन के फलस्वरूप लगभग दो करोड़ किसानों का सरकार से सीधा संपर्क स्थापित हो गया। इन किसानों को निर्धारित दरों तथा भुगतान की शर्तों के अनुसार भू-राजस्व का भुगतान सीधे सरकार को करना होता था। एक अनुमान के अनुसार मध्यस्थों से 17.30 करोड़ एकड़ भूमि ली गई, जिसके बदले लगभग 670 करोड़ रु० मुआवजा देना निश्चित हुआ। जमींदारी प्रथा के उन्मूलन से संबंधित अधिनियमों को बनाने में बहुत अधिक समय लगा और जब उन्हें लागू करने का समय आया तब जमींदारों ने तरह-तरह की अड़चने उत्पन्न की। उन्होंने न्यायालय का सहारा लिया। हालाँकि अंततः वे हार गए और कानून बने भी हैं, उनमें बहुत खामियाँ है। सर्वप्रमुख खामियाँ खुद-काश्त की परिभाषा थी। खुद काश्त की परिभाषा में जमींदारों द्वारा और उनके परिवार के सदस्यों द्वारा व्यक्तिगत पर्यवेक्षण को भी शामिल कर लिया गया अर्थात् अगर जमींदारी या उसके परिवार का कोई सदस्य सिर्फ देख-रेख करता है तब इसे भी खुद काश्त मान लिया गया। हालाँकि कानूनी रूप से जमींदारी का पूर्णतया उन्मूलन किया जा चुका है, लेकिन सच्चाई ऐसी नहीं है, क्योंकि अब भी वे बड़े किसान है तथा वे शक्तिशाली और प्रभुत्वशाली ग्रामीण पूँजीपति है। फिर भी इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि स्वतंत्रता के बाद का कायस्थ एवं भूमि पर खेती करने वाले वास्तविक लोगों का शोषण कम हुआ है तथा सामंत कृषि संरचना चरमरा कर टूट गया है।[5]

काश्तकारी व्यवस्था से तात्पर्य कृषि संबंधों की उस प्रणाली से होता है, जिसमें भूमि का मालिक स्वयं खेती नहीं करता तथा जमीन को काश्तकारों को पट्टे पर दता है। भारत में जमींदारी और तथा रैयतबाड़ी क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर पट्टेदारी व्यवस्था थी। देश में भूमि सुधार कार्यक्रम लागू करने से पूर्व मुख्य रूप से तीन प्रकार की काश्तकारी होती थी- (i) दखलकारी काश्तकारी, (ii) ऐच्छिक काश्तकारी, (iii) उपकाश्तकारी। इन तीनों में दखलकारी काश्ताकारों की स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी थी, क्योंकि उन्हें अपनी जोत पर स्थायी अधिकार प्राप्त थे। इसलिए जमींदार उन्हें कानूनी रूप से बेदखल कर सकते थे। इसलिए इन लोगों के संरक्षण हेतु विशिष्ट कानूनों को बनाना तथा उन्हें लागू करना आवश्यक हो गया। नेशनल सेंपल सर्वे (आठवाँ दौरे) के 1953-54 में ऐच्छिक तथा उपकाश्तकारी संबंधी अनुमान प्रस्तुत किए जिनके अनुसार हरित क्रांति से पूर्व भारत में भूमि का लगभग 50% भाग किसी न किसी रूप में काश्तकारी के अंतर्गत था।[6]

ब्रिटिश शासनकाल में काश्तकारों पर लगान का भारत अत्यधिक था। हर्षदेव मालवीय के अनुसार लगान की दर कुल उत्पादन की 34 से 75% तक थी। ब्रिज नारायण के अनुसार बंबई प्रांत में लगान की दर शुद्ध उत्पादन की 40 से 60% तथा पंजाब में 80% तक होती थी। इस अधिक लगान ने काश्तकारों के जीवन में परेशानी उत्पन्न कर दिया। इसीलिए लगान को नियमित करने और काश्तकारों पर उनका भार कम करने के लिए उपाय सुझाए गए। प्रथम पंचवर्षीय योजना में सिफारिश की गई कि अधिकतम लगान उत्पादन को 1/5 या 1/4 होना चाहिए। पंजाब, हरियाना, जम्मू-कश्मीर, तमिलनाडु और आंध्रप्रदेश के कुछ क्षेत्रों में छोड़कर सभी राज्यों में इस सिफारिश को स्वीकार कर लिया गया है। लेकिन लगान नियमन संबंधी कानूनों को कठोरता से लागू नहीं किया गया, क्योंकि भू-स्वामियों का ग्रामीण व्यवस्था पर पूर्ण नियंत्रण है तथा वे अपनी मजबूत आर्थिक व सामाजिक स्थिति की बदौलत काश्तकारों से अधिक लगान वसूल कर सकने की स्थिति में है। जैसे-बिहार में अधिकतम लगान की सीमा 25% निर्धारित की गई है, लेकिन वास्तव में लगान 50% तक है। काश्तकारों की स्थिति बदतर होने का एक कारण यह भी है कि अधिकांश काश्तकारी मौखिक है। इसकी पंचवर्षीय योजना के एक अनुमान के अनुसार बिहार में 34% भूमि मौखिक है। दसवीं पंचवर्षीय योजना के एक अनुमान के अनुसार बिहार में 34% भूमि मौखिक काश्तकारी के अंतर्गत थी।[7]

काश्तकारों की भूमि से बेदखली रोकने के लिए अधिकांश राज्यों में कानून बनाए गए हैं। इन कानूनों के तीन प्रमुख उद्देश्य है- (a) बेदखली न हो और अगर हो तब सिर्फ कानून की धाराओं के अंततर्गत हो। (b) अगर भू-स्वामी को भूमि लौटाई जाती है तब सिर्फ खुद काश्त के लिए ही लौटाई जाए और (c) भूमि स्वामी को लौटाने की स्थिति में भी काश्तकार के पास कुछ भूमि छोड़ दी जाए।

भारत के सभी काश्त संबंधी कानूनों में उन लोगों को काश्तकार माना गया है जो लगान के बदले किसी दूसरे व्यक्ति की भूमि पर खेती करते हैं, लेकिन कुछ राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश व पश्चिम बंगाल में बँटाईदारों को काश्तकार नहीं माना गया है। सभी राज्यों में (उत्तर प्रदेश व पश्चिम बंगाल को छोड़कर) भू-स्वामियों को खुद काश्त के लिए भूमि कुछ सीमा तक खाली कराने के अधिकार दिए गए हैं। कुछ राज्यों में भू-स्वामियों को यह अधिकार दिया गया है कि वे ठीक उच्चतम सीमा तक भूमि खुद काश्त के लिए वापस ले सकते है। भू-स्वामियों को खुद काश्त के लिए भूमि वापस लेने का अधिकार देने से और खुदकाश्त की दोषपूर्ण परिभाषा अपनाने से काश्तकारों की स्थिति बहुत खराब हो गयी है। इसके अतिरिक्त एक समस्या स्वैच्छिक समर्पण की है। कानूनों से बचने के लिए कई भू-स्वामियों ने काश्तकारों पर अपनी इच्छा से भूमि त्यागने का दबाव दिया। इससे स्पष्ट है कि अगर कोई काश्तकार अपनी इच्छा से भूमि त्यागता है तब कानून उसकी कोई सहायता नहीं कर सकता। इस समस्या के समाधान हेतु 1988-89 में भूमि रिकॉर्ड के कम्प्यूटर विवरण बनाने की योजना शुरू की गई। देश के 582 जिलों में इस योजना के अंतर्गत काम चल रहा है। बिहार, असम, कर्नाटक, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों में भूमि रिकार्ड के वार्षिक संशोधन की व्यवस्था नहीं है, जबकि कुछ राज्यों में यह व्यवस्था है।

काश्तकारों को मालिकाना हक दिलाने पर बल दिया गया है। इसके लिए कुछ राज्यों में संबंधित कानून बनाए गए है, जबकि कुछ राज्यों ने इस दिशा में कोई काम नहीं किया है, जबकि कुछ राज्यों में बनाए गए कानून पर्याप्त नहीं है। दूसरे राज्यों की तुलना में पश्चिम बंगाल, कर्नाटक तथा केरल को अधिक सफलता मिली है, लेकिन कुल मिलाकर प्रगति असंतोषजनक है। एक अनुमान के अनुसार काश्तकारों को भू-स्वामित्व अधिकार देने से विभिन्न राज्यों में 124.20 लाख काश्तकारों को लगभग 63.20 लाख हेक्टेयर भूमि मिली है।[8]

कृषि के पुनर्गठन के में अग्रलिखित उपाय शामिल होते हैं: (i) बारहवीं पंचवर्षीय योजना के अनुसार अब तक सिर्फ 30 लाख हेक्टेयर भूमि को अतिरिक्त घोषित किया गया है जो भारत के शुद्ध बोए गए क्षेत्र का सिर्फ 2% है। इस भूमि का भी लगभग 30% वितरित नहीं किया गया है, क्योंकि यह कानूनी विवादों में फँसा हुआ है। योजना में यह भी स्वीकार किया गया है कि ग्रामीण भारत में भूमिहीन एवं गरीब लोगों के खिलाफ शक्तियों का पलड़ा इतना भारी है कि सीमाबंदी कानूनों को लागू करना मुश्किल है। इस मुश्किल को प्रशासन भी मजबूत इच्छा शक्ति से ठीक किया जा सकता है।[9] (ii) चकबंदी द्वारा भूमि के अपखंडन की समस्या का निदान किया जा सकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसानों के गाँव के विभिन्न भागों में बिखरे हुए खेतों के बराबर भूमि उन्हें एक ही जगह पर दी जाती है। भारत में में सर्वप्रथम 1920 में बड़ौदा में चकबंदी अधिनियम पास किया गया था। देश में चकबंदी के क्षेत्र में प्रगति काफी असंतोषजनक है। इसे लागू करने में कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ है तथा इसका लाभ बड़े किसानों को ही मिल पाता है, जबकि छोटे किसानों को काफी अधिक परेशानी होती है।[10] (iii) विनोवा भावे ने इस आंदोलन को 1951 में शुरू करते हुए प्रत्येक भू-स्वामी से स्वच्छा द्वारा 1/6 भूमि दान में माँगी थी। इसके अंतर्गत संपूर्ण देश में लगभग 5 करोड़ है। एकड़ भूमि एकत्रित करने का लक्ष्य रखा गया, लेकिन सिर्फ 54.7 लाख एकड़ भूमि प्राप्त हुई, जिसमें सिर्फ 37.54 लाख एकड़ भूमि भूमिहीनों में बाँटी गई। (iv) भूमि के उपविभाजन से उत्पन्न समस्याओं का निदान सिर्फ सहकारी खेती द्वारा ही किया जा सकता है। इसके अंतर्गत वे छोटे तथा सीमांत किसान जिनके पास बहुत छोटी कृषि जोते हैं। अपनी भूमि मिलाकर उस पर एक साथ खेती करते हैं। भारत में 85% जोतों का आकार 2 हेक्टेयर से कम है तथा उनके पास परिचालन क्षेत्र का सिर्फ 44.6% है। (भारत सरकार के कृषि मंत्रालय के 2014 के अनुमान के अनुसार 2010-11 में)। इन छोटे-छोटे खेतों पर खेती करना लाभदायक नहीं हो सकता।[11] वास्तविकता यह है कि भारत में सहकारिता का प्रयोग असफल रहा, क्योंकि सहाकरी समितियाँ सही दिशा में कार्य न कर सका। हालाँकि सरकार ऐच्छिक आधार पर सहकारी खेती की देख-रेख के लिए पर्याप्त वित्तीय सहायता दी तथा लगान व आयकर इत्यादि में भी रियायतें दी है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में सहकारी खेती पर विशेष बल दिया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य भारत में भूमि सुधार की आवश्यकता, महत्व एवं इस दिशा में किये गये महत्वपूर्ण प्रयासों का विवेचन करना है। इस आलेख में कृषि एवं चकबन्दी जैसी व्यवस्था के सम्बन्ध में भी आंशिक जानकारी प्रदान करने की योजना अपेक्षित है।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध आलेख में निम्नलिखित परिकल्पनाएँ अभिनिर्धारित की जा सकती है:

1. भूमि सुधार से कानून-व्यवस्था की स्थिति अच्छी होंगी।
2. भूमि सुधार कृषि के विकास तथा बेरोजगारी की समस्या के समाधान में भी सहायक बन सकती है।
3. भूमि सुधार सामाजिक सौहार्द के सन्दर्भ में भी सार्थक प्रतीत होता है।
4. भूमि सुधार से राजनीतिक-प्रशासनिक इच्छा शक्ति को बल मिलेगा तथा राजनीतिक आधुनिकीकरण के सन्दर्भ में भी इसे अच्छा बताया जा सकता है।

अध्ययन पद्धति

प्रस्तुत शोध आलेख की पद्धति ऐतिहासिक, तुलनात्मक तथा वस्तु-विश्लेषणात्मक है।

साहित्य समीक्षा

प्रस्तुत शोध आलेख के अवलोकन के परिप्रेक्ष्य में कई साहित्य सर्वेक्षण किया गया है, जिनमें कुछ का नाम लिया जा सकता है:

1. डक्यूमेन्ट्स एवं रिपोर्ट, भारत सरकार।
2. जवाहरलाल नेहरू : फोर्टनाइटली लेटर्स टू द चीफ मिनिस्टर्स, 1946-63
3. ए०एन० अग्रवाल : इंडियन इकॉनोमी, नई दिल्ली, विकास प्रकाशन, 1982
4. अशोक कुमार सिंह : बिहार : लैनलॉड लॉ एण्ड ऑडर
5. डॉ० सी० मामोरिया, भारत का आर्थिक विकास एवं नियोजन साहित्य भवन पी० एण्ड डी० (राजीव), आगरा

निष्कर्ष

भारत में अबतक जो भूमि सुधार लागू किए गए हैं वे सही दिशा में उचित कदम है, किन्तु इस दिशा में अधिक प्रगति नहीं हो सकी है। भूमि सुधारों की धीमी प्रगति के लिए अग्रलिखित तत्वों को जिम्मेदार ठहराया जा सता है: (i) भूमि सुधार संबंधी कानूनों में निम्नलिखित कमियाँ देखी जा सकती है: विभिन्न राज्यों के कानूनों में खुद-काश्त की परिभाषा दोषपूर्ण रही है। अधिकांश राज्यों मे खुद देख-रेख को खुद काश्त का हिस्सा माना गया तथा इसमें भू-स्वामी द्वारा स्वयं देखरेख करने का प्रावधान नहीं थ। इसमें भू-स्वामी के परिवार के किसी भी सदस्य द्वारा देख-रेख को खुद काश्त की परिभाषा में शामिल कर लिया गया। कानून में खुद काश्त के लिए मध्यस्थों को बहुत बड़ी जमीन अने पास रखने की अनुमति दी गई, जो सही नहीं है। जातों की सीमाबंदी के कानूनों से बचने के लिए जमींदारों ने बहुत बड़ी भूमि अपने परिवार के सदस्यों के नाम पर हस्तांतरित कर दिया जो सही नहीं माना जा सकता है। विभिन्न राज्यों और एक ही राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में भूमि भी उच्चतम सीमा में बहुत अंतर रहे हैं। उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल जैसे कुछ राज्यों में बँटाई के आधार पर खेती करने वालों को काश्तकार का दर्जा नहीं दिया गया, जबकि ये बड़ी भूमि पर खेती करते थे। किसी भी कानून की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि सरकार में उसे लागू करने की राजनैतिक इच्छा शक्ति हो। भारत में भूमि सुधारों के क्षेत्र में स्पष्ट रूप से देखा जाता है कि राज्य सरकारें भूमि सुधार कानूनों को लागू करने में बहुत उत्सुक नहीं थी। उसका उद्देश्य सिर्फ राजनीतिक लाभ प्राप्त करना था। वास्तविकता यह है कि सरकार बड़े किसानों व भू-स्वामियों के दबाव एवं नियंत्रण में काम करती रही। गरीबों के साथ सहानुभूति तथा बड़े किसानों से साठ-गाँठ करके राजनैतिक लाभ प्रापत करना ही सरकार की भूमि सुधार नीति का प्रमुख उद्देश्य रहा। प्रशासनिक तंत्र के उदासीन रवैया के कारण ही कहा जा सकता है कि उचित भूमि रिकार्ड का अभाव है।

सन्दर्भ सूची

1. भारत सरकार, योजना आयोग, तृतीय पंचवर्षीय योजना, पृष्ठ-220
2. बी०के० पुरी एवं एस०के० मिश्र, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाऊस, मुम्बई, पृष्ठ-235
3. तथैव
4. तथैव, पृष्ठ-236
5. तथैव
6. तथैव
7. तथैव
8. दसवीं पंचवर्षीय योजना के विश्लेषण के आधार पर प्रस्तत
9. भारत सरकार, योजना आयोग, 12वीं पंचवर्षीय योजना, 2012 से 2017, टवसण्प, पृष्ठ-191
10. तथैव, पृष्ठ-192
11. बी०के० पुरी एवं एस०के० मिश्र, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाऊस, मुम्बई, पृष्ठ-239

स्वतन्त्रता आन्दोलन में बिहार की कुछ राष्ट्रवादी महिलाओं की जीवन उपलब्धि : एक ऐतिहासिक अवलोकन

अनीता कुमारी

शोध प्रज्ञा, इतिहास विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

शोध आलेख का सार तत्व

आधुनिक भारत के इतिहास में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना वर्ष 1885 में हुई, जो स्वयं में इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना के बाद भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन ने वैधानिक एवं औपचारिक रूप धारण किया। वर्ष 1885 से लेकर 15 अगस्त, 1947 तक के काल को स्वतन्त्रता आन्दोलन का काल कहा जाता है, जिसे अग्रलिखित तीन चरणों में विभक्त करके अध्ययन किया जाता है- (क) भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का उदारवादी चरण (वर्ष 1985 से 1905 ई० तक), (ख) भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का उग्रवादी चरण (वर्ष 1906 से 1918 तक तथा (ग) भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का गाँधीवादी चरण (वर्ष 1919 से 1947 तक अर्थात् स्वतंत्रता प्राप्ति तक)। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का तीनों चरण महत्वपूर्ण है, परन्तु गाँधीवादी चरण महत्वपूर्ण है, परन्तु गाँधीवादी सन्दर्भों में महत्वपूर्ण हैं। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का गाँधीवादी चरण न केवल निर्णायक होने के कारण महत्वपूर्ण है, बल्कि राजनीतिक- सामाजिक आन्दोलन को समन्वित रूप में सम्पन्न करने को लेकर भी महत्वपूर्ण है। इतना ही नहीं, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का तृतीय एवं अंतिम चरण 'गाँधीवादी चरण' सामाजिक सरोकार के साथ-साथ महिला सुरक्षा, कल्याण एवं सशक्तिकरण को लेकर भी महत्वपूर्ण माना जाता है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में यदि महिलाओं की भागीदारी की बात की जाये तो बिहार की कुछ राष्ट्रवादी महिलाओं का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। बिहार की राष्ट्रवादी महिलाओं ने महिलाओं के हित की केवल बात नहीं किया, बल्कि सर्वप्रथम 'राष्ट्र' की बात किया तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। बिहार की राष्ट्रवादी महिलाओं की जीवन-उपलब्धि की चर्चा महिला सशक्तिकरण, सामाजिक सशक्तिकरण, राजनीतिक आधुनिकीकरण तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के बिहारी परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। यहाँ बिहार की कुछ राष्ट्रवादी महिलाओं की जीवन उपलब्धि में भगवती देवी, राजवंशी देवी, लीला सिंह, चन्द्रावती देवी तथा रामदुलारी सिन्हा की चर्चा अपेक्षित है।

मूल शब्दः सामाजिक सशक्तिकरण, लोकतंत्र, न्याय, महिला सशक्तिकरण, आधुनिकीकरण, पश्चात्य शिक्षा, पुनर्जागरण, सामाजिक सुधार, राजनीतिक आधुनिकीकरण, नारीवाद, राजनीतिक सहभागिता तथा राजनीतिक संस्कृति।

प्रस्तावना

स्वतन्त्रता आन्दोलन में बिहार की कुछ राष्ट्रवादी महिलाओं की जीवन उपलब्धि के ऐतिहासिक विवेचन में सर्वप्रथम **श्रीमती भगवती देवी** की जीवन उपलब्धि की चर्चा अपेक्षित है। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की बड़ी बहन का नाम भगवती देवी था। इनका जन्म 1869 ई० में हुआ था। ये राजेन्द्र प्रसाद से पन्द्रह वर्ष बड़ी थी। लोग इन्हें प्यार से "फूआ जी" कहते थे। इनका ब्याह राजेन्द्र प्रसाद के जन्म से पहले ही एक बड़े कायस्थ परिवार में बाबू गुलजार सहाय से हुआ था। शादी के कुछ ही दिनों बाद 'जीरादेई' गाँव में ही बाबू गुलजार सहाय का आकस्मिक निधन हो गया। अब भगवती देवी का बाल विधवा होने से सारा परिवार शोक सन्तप्त हो उठा, तभी से ये मायके में ही रहने लगी।

अब भगवती देवी का जीवन का लक्ष्य सिर्फ पूजा-पाठ, व्रतोपवास तथा तीर्थाटन करना ही रह गया। ईश्वर भक्ति और सार्वजनिक सेवा में ही इनका सारा समय लगने लगा। लोक-सेवा में तत्पर रहते हुए भी ये पूजा पाठ और व्रत-पालन में सदा नियमित रूप से दृढ़ रही। गृह परिवार और गृहस्थी के कामों में भी उनका सहज अनुराग बना रहा। अपने परिवार और कुटुम्बियों में ये 'प्रधान' और 'सरदार' मानी जाती थी। प्रायः समाज में विधवाएँ सर्वत्र शुभ कर्म से अलग रखी जाती है, पर इनके सम्मान में कभी किसी प्रकार की कमी नहीं हुई। घर के सभी कल्याणकारी अनुष्ठानों में इनका सहयोग बड़े आद के साथ लिया जाता था। फूआ जी ने भारत के लगभग सभी तीर्थ स्थलों की यात्रा की। वे जहाँ कहीं भी गयी, बिहार की छाप छोड़ आयी। बिहार की प्रमुख बोली भोजपुरी से तीर्थवासियों को परिचित कराने में इनका विशेष हाथ रहा। जहाँ दूसरों के पूजा-पाठ और रीति-रिवाज का अंश लेती थी, वहाँ अपनी ओर से भी बाँट देती थी।[1]

राजेन्द्र बाबू का परिवार रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिस्म, विचार और परिपाटी में शुद्ध सनातनी रही है तथा घर की स्त्रियों में पर्दा प्रथा की प्रबलता रही है। अपने धर्मनिष्ठ परिवार की पौराणिक विशेषताओं को सुरक्षित रखने में फूआ जी का मन निरन्तर सावधान रहता था। किन्तु महात्मा गाँधी ने जब बिहार

में राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का श्रीगणेश किया तब इन्होंने पर्दा-प्रथा को तोड़कर बिहारी महिलाओं के नेतृत्व का झण्डा उठाया। इस तरह राजनीतिक क्षेत्र में उतरकर इन्होंने सबसे आगे बढ़ पर्दा-प्रथा को करारी चुनौती दी। प्रथा के खिलाफ ठोस कदम उठाकर इन्होंने बिहारी महिलाओं को प्रोत्साहन देते हुए बतला दिया कि वे किस प्रकार सिर पर आंचल रखकर भी गाँधीजी के आन्दोलन में जुट सकती है। वे घर-घर घूमकर नर-नारियों से शुद्ध खादी पहनने का अनुरोध करने लगी।

श्रीमती भगवती देवी विधानसभा की सदस्यता भी रह चुकी थी। उससे जो पैसे मिले, उसे जमा रखकर अपने गाँव जीरादेई में श्रीलक्षीनारायणजी का एक सुन्दर मन्दिर बनवा दिया।[2] उनका जीवन सादगी से भरा था। जीवन भर कभी भी मांस-मछली और प्याज लहसुन नहीं खायी। किसी मादक वस्तु का कभी स्पर्ष तक नहीं किया। बिना स्नान-ध्यान और पूजा-पाठ किये कभी अन्न जल ग्रहण नहीं किया।[3] असहयोग आन्दोलन के समय-समय जो खद्दर धारण करने का व्रत लिया, उसे अन्त तक बड़ी निष्ठा से निभाया। हर काम में स्वच्छता एवं पवित्रता पर उनका विशेष ध्यान रहता था। महात्मा गाँधी के सम्पर्क में जाने के बाद अस्पृश्यता के भाव को पाप तो मानने लगी, पर सब तरह की सफाई पर उनका आग्रह बराबर बना रहा। गाँधीजी समझते थे कि इनका सबसे बड़ा त्योग है अपने भाई को देश सेवा के लिए खुशी-खुशी भेंट कर देना और उनकी लोक सेवा में स्वयं भी यथाशक्ति सहायता करते रहना जिसकी आखिरी सांस तक ये करती रही।

इन्होंने बिहार के नारी समाज में राष्ट्रीय चेतना जगाने के साथ-साथ राजेन्द्र बाबू के जीवन और शरीर की रक्षा में भी निरन्तर तत्पर रही। हरदम वे उनकी तन्दुरूस्तरी की निगरानी करती रहती थी और उनके स्वास्थ्य और जीवन को ये राष्ट्र की पूँजी मानती रही। राजेन्द्र बाबू ने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश पाने के साथ ही अपने पर्दापंथी परिवार को देश सेवा के उन्मुक्त क्षेत्र में सबसे आगे ला खड़ा किया और अपनी बहन, पत्नी, पुत्रबधु आदि को गाँधीजी के साबरमती आश्रम में भेज दिया। फूआजी का अन्तिम समय दिल्ली के राष्ट्रपति भवन में गुजरा। ये 26 जनवरी, 1950 ई० की दुपहरी में दिल्ली के राष्ट्रपति भवन में आयी थी और ठीक दस वर्ष बाद उसी तारीख की दुपहरी के बाद वहाँ से उनका मृत शरीर बाहर निकला। इनके पुण्य-प्रताप से इनकी मृत्यु बड़े शानदार ढंग से हुई।

श्रीमती राजवंशी देवी का जन्म 1883 ई० में दलन-छपरा (बलिया जिला, उत्तर प्रदेश) में हुआ था। इनके पिता का नाम हरिनन्दन सहाय था। उनकी शादी जीरादेई (सारण, बिहार) के डॉ० राजेन्द्र प्रसाद से हुई थी। ये संपूर्ण रूपेण भारतीय आदर्श और संस्कृति की उपासिका थी।[4]

महात्मा गाँधी से सम्पर्क होने पर राजेन्द्र प्रसाद जब से चरखा आन्दोलन में जुड़े तब से ही श्रीमती राजवंशी देवी अपने पति की लीक पर चलने लगीं और कटाई-बुनाई को अपने जीवन का एक अंग ही बना लिया।[5] 1926 ई० में राजवंशी देवी अपने परिवार के सदस्यों के साथ गाँधी के सावरमती आश्रम पहुँची जहाँ 1928-29 तक गाँधी के साथ रचनात्मक कार्य में जुटी रही।

8 जुलाई, 1928 को पटना के राधिका सिन्हा इन्स्टीच्यूट में महिलाओं की एक पर्दा विरोधी सभा का आयोजन हुआ था।[6] जिसमें कमिटी के सदस्यों में अन्य महिलाओं के अतिरिक्त श्रीमती राजवंशी देवी भी थी।[7]

1930 ई० के नवम्बर महीने में सेठ जमनालाल बजाज की पत्नी जानकी देवी तथा उनकी दो पुत्रियाँ बिहार के दौरे पर आयीं। वे जहाँ-जहाँ गयी, उनके साथ राजवंशी देवी भी गयीं।[8] इन्होंने नमक सत्याग्रह आन्दोलन तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन में खुलकर भाग लिया था।

जनवरी, 1933 में स्वतंत्रता दिवस मनाने के अपराध में पटने में कुल 14 लोगों को गिरफ्तार किया गया जिनमें श्रीमती राजवंशी देवी भी एक थी। ये महिलायें शिक्षा को बढ़ावा देने तथा हरिजनों को ऊँचा उठाने में हमेशा प्रयत्नशील रहती थीं।[9]

श्रीमती राजवंशी देवी ने अपने तपोमय जीवन से भारतीय महिलाओं के समक्ष जो उज्जवल आदर्श उपस्थित किया वह पवित्र और महान है। एक भारतीय महिला की जो कुछ चाहत होती है और जो कुछ चाहत होती है और जो कुछ चाह सकती है वे सब पूर्ण रूपेण इन्होंने प्राप्त किया। ऐसी महान तपस्विनी का देहान्त 9 सितम्बर, 1962 को हो गया। पटना के गंगा घाट पर इनका दाह संस्कार किया गया। इनके जैसे सदा-सुहागिन महिला का दिव्य जीवन सदियों तक नारी समाज को पुण्याचरण का प्रकाश देता रहेगा।[10]

श्रीमती लीला सिंह का जन्म 1879 ई० में लन्दन में हुआ था। लीला जी जानेमाने वकील तथा मानवतावादी तारक नाथ पालित की पुत्री थी जिन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के निर्माण के लिए 30 लाख रुपये दान दिये थे। ये अपने पति महान स्वतंत्रता सेनानी दीपनारायण सिंह के राजनीतिक आदर्शों तथा प्रेरणाओं के अनुकूल उनके संग कदम में कदम मिलाकर कार्य करती थी। ये बहुत ही तेजस्वी महिला थी। अंग्रेजी के साथ-साथ इन्हें फ्रेंच भाषा तथा फ्रेंच पाकशास्त्र का भी अद्भूत ज्ञान था। जिन दिनों दीप नारायण सिंह हजारीबाग जेल में चार महीने की सजा काट रहे थे वे हजारीबाग में जेल के बगल में ही रहकर अपने पति का ख्याल रखती थी।[11]

27-28 दिसम्बर, 1921 को अहमदाबाद में काँग्रेस अधिवेशन में बिहार से गयी लगभग 558 प्रतिनिधियों में लीला सिंह भी थी जिन्हें निर्वाचन समिति की सदस्या बनाया गया था।[12] 15 जनवरी, 1922 को मुजफ्फरपुर से सफी मंजिल में नारी जागरण हेतु आयोजित महिलाओं की सभा की अध्यक्षता श्रीमती लीला सिंह ने स्वयं ही की थी।[13] अपने अध्यक्षीय पद से बोलते हुए इन्होंने परदा प्रथा उन्मूलन तथा महिलाओं को आगे आकर स्वयंसेविकाओं के रूप में कार्य करने का आह्वान किया। इसके साथ-साथ खद्दर तथा चरखा को भी अपनाने की अपील की थी।[14]

1930 में लीला सिंह के नेतृत्व में भागलपुर में एक नई जागृति आयी थी। भारतीय राष्ट्रीय कार्यक्रम में सम्मिलित होने के लिए भागलपुर की भी अनेक महिलाओं ने घर से बाहर कदम रखना आरम्भ कर दिया था।[15] श्रीमती लीला सिंह तथा उनके परिवार के अन्य महिलाओं ने उस जत्था को तिलक लगाकर विदा किया था।[16] 1946 में इन्होंने दीपनारायण स्मारक भवन के निर्माण में अहम भूमिका निभाई। उस समिति के अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद थे।[17] ऐसी महान समाज सेविका एवं स्वतंत्रता सेनानी का निधन स्वतंत्रता प्राप्ति के साल 1947 ई. में ही हो गया।[18]

चन्द्रावती देवी का जन्म 25 मार्च, 1908 को चम्पारण जिले में हुआ था। इनके पितााी का नाम स्व० शीतल प्रसाद सिन्हा तथा पति का नाम श्री जगदीश नारायण था। श्रीमती चन्द्रावती देवी बिहार के उन इनी-गिनी महिला सेनानियों में एक हैं, जिन्होंने भारत माता की गुलामी की बेड़ियाँ तोड़ने में अपने प्राणों की बाजी लगा दी।[19] इनका विवाह बिना तिलक दहेज के हुआ था। इनके पति श्री जगदीश नारायण भी आजादी के पक्के सेनानी थे। श्री नारायण ने चन्द्रावती को आजादी की लड़ाई में सहभागी होने के लिए पत्नी बनाया था।

चन्द्रावती देवी में राष्ट्रीय चेतना का जागरण 1928 ई० में हुआ। उस समय वे कन्या महाविद्यालय, जालंधर की छात्रा थी। गाँधीजी ने जब गरीब किसान मजदूरों के लिए गोरे निलहे से अहिंसक लड़ाई चम्पारण आकर शुरू की तब चन्द्रावती भी उनके साथ चम्पारण गयी। तब से चन्द्रावती बिहार आकर शुरू की तब चन्द्रावती भी उनके साथ चम्पारण गयी। तब से चन्द्रावती आकर शुरू की तब चन्द्रावती भी उनके साथ चम्पारण गयी। तब से चन्द्रावती बिहार आकर ही स्वतंत्रता संग्राम में रस-बस गयी।

श्रीमती चन्द्रावती देवी बेतिया आकर जानकी कुँवर कन्या विद्यलय में अस्थायी पद पर शिक्षिका का काम करने लगी। उस समय गाँधीजी का काँग्रेस संगठन को मजबूत बनाने का कार्यक्रम चल रहा था। इसमें ये भी सम्मिलित हो गयी। स्थानीय मजबूत बनाने का कार्यक्रम चल रहा था। इसमें ये भी सम्मिलित हो गयी। स्थानीय काँग्रेस कमिटी का चुनाव होने पर वे उपसभापति चुनी गयी।[20]

उन्हीं दिनों बिहार में पर्दा-प्रथा के विरुद्ध एक जबर्दस्त आन्दोलन शुरू हुआ तो इसी क्रम में दरभंगा के मझौलिया गाँव में 'मगन आश्रम' की स्थापना की गई। चन्द्रावती ने इस आश्रम में रहकर अकेली कुलीन उच्च घरानों से 19 महिलाओं को पर्दा प्रथा से उबार लायी, उन महिलाओं में सीता देवी भी एक थी।[21] इन्होंने पर्दा विरोधी प्रान्तीय कमिटी की प्रमुख सदस्या के रूप में अहम भूमिका निभाई।[22]

1930 ई० में नमक सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। गाँधीजी ने घोषणा की कि नमक कानून को तोड़ो और नमक खुद बनाओ। समुंद्री नमक बनाकर अपने घर ले जाओ। बिगुल बजते ही लोग हर जगह नमक बनाने लगे। इस क्रम में नमक की पुड़िया चन्द्रावती ने बनाई और पहली बार उन्होंने पटना सिटी के निवासी स्व० डोमा सरदार के हाथ डेढ़ रूपये में उसे बेचा। इस प्रकार काफी रुपये एकत्रित कर उसे संगठन के कार्य में लगाया।[23] इसी क्रम में इन्हें पूर्णियाँ जिले का भार सौंपा गया, जिसे ये बखूबी से निभाई।

1931 ई० के अक्टूबर महीने में गाँधी सप्ताह के अवसर पर इन्होंने राजेन्द्र प्रसाद के साथ कई सभाओं को सम्बोधित किया।[24] चन्द्रावती देवी की पहली जेल यात्रा 9 जनवरी, 1932 ई० को हुई। जेल जीवन के छः महीने बाँकीपुर तथा हजारीबाग जेलों में ही कटी। फिर जनवरी, 1933 ई० को स्वतंत्रता दिवस मनाने के अपराध में 15 महीने की सजा हुई।[25] 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के क्रम में भी कई बार जेल की सजा भुगती। श्रीमती चन्द्रावती देवी 1934 में बिहार प्रदेश काँग्रेस कमिटी की सदस्या बनी।[26] इसी वर्ष बिहार में विनाशकारी भूकम्प हुआ। इस भूकम्प के कारण बहुत से कैदियों को छोड़ दिया गया था, जिसमें चन्द्रावती देवी भी थी। उसी समय गाँधीजी बिहार आये थे और चन्द्रावती देवी गाँधीजी के जत्थे के साथ मुजफ्फरपुर में बाढ़ पीड़ितों की सेवा के लिए चली गई।[27]

रामदुलारी सिन्हा का जन्म बिहार प्रान्त के गोपालगंज जिला के मणिकपुर गाँव में 8 दिसम्बर, 1922 ई० को हुआ था। इनके पिता का नाम महेन्द्र सिंह था और माता रामझड़ी देवी। पिता महान गाँधीवादी थे। 1920 ई० में असहयोग में उन्होंने शिक्षक के पद को त्याग दिया ओर आन्दोलन में कूद पड़े। लोगों को विशेषकर दलितों को साफ-सूथरा एवं शिक्षित बनने पर जोर देने लगे।[28]

रामदुलारी ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता के सान्निध्य में प्राप्त की। जिस समय वह सात-आठ वर्ष की थी, उन्हीं दिनों मजहरूल हक माणिकपुर आये। रामदुलारी सिन्हा अपने पिता द्वारा स्थापित विद्यालय में पढ़ती थी और खेलते-कूदते मजहरूलहक के सामने आ गई। रामदुलारी ने 1वीं कक्षा में पढ़ाई जाने वाली किताब को बोलकर सुना दिया। मजहरूल हक ने इन्हें 1 रुपया ईनाम में दिया।[29]

रामदुलारी जी का जन्म तथा पालन-पोषण स्वतंत्रता आन्दोलन के वातावरण में हुआ था। इनका सम्पूर्ण परिवार देश भक्ति से ओत प्रोत रहा है। माता-पिता आजादी के अग्रदूत थे, भाई बहन भी आजादी के दीवाने थे, भला ऐसा माहौल में रामदुलारी जी में देशभक्ति की भावना कैसे नहीं पनपती। बिहार में शायद ही कोई ऐसा परिवार था जिसकी तीन-तीन पीढ़ियाँ एक साथ जेल में हो।[30]

रामदुलारी सिन्हा का विवाह डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की शुभ प्रेरणा से सीतामढ़ी जिलान्तर्गत मेजरगंज थाना के डुमरीखुर्द गाँव के स्वतंत्रता आन्दोलन के वीर सेनानी ठाकुर युग किशोर सिंह के साथ हुआ।[31] किशोर सिंह ने यह शादी तिलक दहेज के बिना की थी। रामदुलारी जी के लिए यह एक संयोग ही था कि इनकी बचपन में आजादी की लड़ाई का जो प्रकाश अपने मायके में मिला था, वह ससुराल में उत्तरोतर प्रकाशित होता गया।[32]

श्रीमती रामदुलारी सिन्हा पति-पत्नी दोनों पर्दा प्रथा के खिलाफ थे। जब ये विवाहोपरान्त अपने ससुराल गयी तो बिना घूँघट के ही।[33] इनका सम्पूर्ण परिवार विदेशी सत्ता मिटाने, पर्दा प्रथा को तोड़ने, स्त्री शिक्षा के प्रसार, जमीन्दारी उन्मूलन, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, हरिजनों एवं पिछड़ों के प्रति सहानुभूति ही नहीं बल्कि उनकी सच्ची सेवा, उनकी शिक्षा और सफाई के कार्यक्रमों में संलग्न रहा।[34] ये अपने पति के साथ किसान आन्दोलन में भी जुटी रहीं। 1935 ई० में जमीन्दारी उन्मूलन के लिए सीतामढ़ी जिले में स्वामी सहजानंद को भरपूर सहयोग दिया तथा हाजीपुर में आयोजन किसान सम्मेलन में अपना भाषण दिया था।[35]

पटना में 2 सितम्बर, 1944 को अनुग्रह बाबू की अध्यक्षता में छात्रों एवं शिक्षकों की एक विशाल सभा हुई थी, जिसमें प्रो० गोरखनाथ सिंह, प्रिंसिपल मोइनुलहक, प्रो० श्यामनंदन मिश्र आदि विद्वानों ने भाग लिया था। इसमें रामदुलारी जी ने कड़े शब्दों में बन्दी छात्रों तथा डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की रिहाई की माँग की थी।[36] दिसम्बर, 1944 में ही छात्राओं की एक रैली हुई थी, जिसमें पूर्णिमा बनर्जी ने महिलाओं से नेताओं को पूर्ण समर्थन देते रहने की अपील

की थी। उक्त सभा में रामदुलारी जी ने अपने जोरदार भाषण में श्रीमती अरूणा आसफ अली की रिहाई की माँग की थी।[37] सन् 1944-45 ई० में बिहार कस्तूरबा छात्र समिति की उपाध्यक्षता रहकर इन्होंने कार्य किये थे।[38] कई वर्षों तक रामदुलारी देवी ने गाँधी राष्ट्रीय स्मारक निधि, बिहार शाखा की मंत्री रहीं।[39]

1945 ई० में रीगा (सीतामढ़ी) में एक जिला स्तरीय किसान सम्मेलन का आयोजन किया गया था, जिसका उद्घाटन बिहार-केसरी डॉ० श्री कृष्ण सिंह ने किया था। इस सम्मेलन में रामदुलारी जी अत्यधिक सक्रिय रहीं।[40] उक्त किसान सम्मेलन में यह महसूस किया गया कि बहुत से समर्पित काँग्रेसी विश्व की राजनीति से अनभिज्ञ हैं। अत: ठाकुर युगल किशोर सिंह के अथक प्रयास से दो महीने का राजनीतिक शिविर लगाया गया, जिसके संचालन में रामदुलारी जी दिन और रात का अन्तर भूल गई थी। उक्त शिविर में काकोरी शड्यंत्र केस के अभियुक्त श्री मन्मथनाथ गुप्त, श्रीमती माया गुप्त, आजाद हिन्द फौज की कैप्टन लक्ष्मी बाई, जेनरल शाहनबाज, नेताजी के भतीजे श्री अरविन्द बोस आदि प्रमुख नेताओं का शुभागमन हुआ था।[41] 1946 में जब काँग्रेस के डेलिगेट का चुनाव हुआ, इसमें पति-पत्नी दोनों विजयी हुए। रामदुलारी जी अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की सदस्या भी बनीं।[42] इनके भाषण से प्रभावित होकर गाँधीजी ने कहा था, "क्या ऐसी क्रांतिकारी विचारधारा की लड़की बिहार में भी है।[43] अंग्रेजों के खिलाफ रामदुलारी के भाषण से प्रभावित होकर हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड (कलकत्ता) ने लिखा था "काँग्रेस के आकाश में एक नई तारिका का उदय हुआ है, जो धारा प्रवार बोली जिसमें काफी समझ की बातें थी, ये काफी आगे बढ़ेंगी।[44] 1946 से 1947 तक ये बिहार महिला संगठन की सचिव रहीं। 1946 के बाद कई वर्षों तक ये अखिल भारतीय काँग्रेस कमिटी की सदस्या रहीं।[45] 1947-48 में बिहार युवक काँग्रेस की जेनरल सेक्रेटरी के रूप में इन्होंने कई जिलों का दौरा किया।[46] 1947 में अखिल भारतीय काँग्रेस कमिटी की मीटिंग हुई थी, जिसमें श्रीमती सिन्हा ने जोरदार शब्दों में कहा था "पाकिस्तान के बँटवारा के सवाल पर पूर्ण संगठन की राय ली जानी चाहिए। पकिस्तान का बँटवारा एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है।[47] देश के स्वाधीन होने पर श्रीमती रामदुलारी सिन्हा कई बार लोकसभा की सदस्या चुनी गई। वे केन्द्र सरकार तथा बिहार सरकार के विभिन्न विभागों में मंत्री रहीं तथा अन्त में केरल के राज्यपाल भी रहीं।[48]

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य बिहार की राष्ट्रीय महिला के रूप में ऐसे राष्ट्रवादी की जीवन उपलब्धियों को विवेचित करना है। प्रभावती देवी ने गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर तुरन्त परित्याग कर दिया तथा गाँधीजी की सेवा तथा राष्ट्र की सेवा में अपने आपको समर्पित कर दिया।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध आलेख की परिकल्पना के संबंध में निम्नलिखित बातें सामने आती है:

1. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान सामाजिक, वैधानिक आन्दोलन भी किया जाता रहा है। स्पष्टत: भविष्य में हमारी राजनीतिक व्यवस्था के संचालन में सामाजिक-वैधानिक आन्दोलन को बल मिलेगा।
2. राष्ट्रवादी महिला सशक्तिकरण एक व्यापक परिप्रेक्ष्य है तथा भारत में प्राचीन समय से ही इस दिशा में कार्य व प्रयास होते रहे हैं। भविष्य में भी महिला सशक्तिकरण राजनीति और समाज का महत्वपूर्ण विषय बना रहेगा।
3. महिला सशक्तिकरण हेतु न केवल सामाजिक सुधार एवं आन्दोलन की आवश्यकता है, बल्कि सामाजिक-वैधानिक आन्दोलन की भी आवश्यकता है। इस बात की सहज परिकल्पना की जा सकती है।

अध्ययन पद्धति

प्रस्तुत शोध आलेख की पद्धति ऐतिहासिक, तुलनात्मक तथा वस्तु-विश्लेषणात्मक है।

साहित्य समीक्षा

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक "स्वतन्त्रता आन्दोलन में बिहार की कुछ राष्ट्रवादी महिलाओं की जीवन उपलब्धि : एक ऐतिहासिक अवलोकन है। आधुनिक विचारधारा एवं दृष्टिकोण से 19वीं सदी के समाज सुधारकों को प्रगतिशील सामाजिक तत्त्वों के प्रचार-प्रसार एवं विकास के लिए पूरा सहयोग प्राप्त हुआ, समाज सुधार के क्रम में सुधारकों का ध्यान तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न पक्षों 0की ओर गया। इसी क्रम में महिलाओं की दशा में सुध ार कैसे करना है? यह यक्ष प्रश्न चुनौती के रूप में सामने आया है। प्रस्तुत आलेख के सन्दर्भ में निम्नलिखित साहित्य सर्वेक्षण किया गया है:

1. वीरेन्द्र वर्मा, भारतीय संस्कृति के विविध आयाम, उपकार प्रकाशन, आगरा, 1985
2. नीरा देसाई, वीमेन इन मॉर्डन इंडिया, भाषा विभाग
3. राजकुमार और विजयेन्द्र कुमार, महात्मा गाँधी लॉ इण्ड थॉट्र्स, प्रकाशन ग्रन्थ, दिल्ली, 1985
4. नीरा देसाई, पूर्वोद्धृत
5. कुमारी शीला सिंह, गाँधीजी के रचनात्मक कार्यों में बिहारी महिलाओं का योगदान, जानकी प्रकाशन, पटना, 1990

निष्कर्ष

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में बिहार की महिलाओं ने अपनी अप्रत्याशित मेधा, सूझबूझ, सामाजिक, संस्कृति, शैक्षणिक कार्यों से एक मिशाल कायम की। इन राष्ट्रवादी महिलाओं का सम्पूर्ण परिवार देश भक्ति से ओत प्रोत रहा है। माता-पिता आजादी के अग्रदूत थे, भाई बहन भी आजादी के दीवाने थे, भला

ऐसा माहौल में देशभक्ति की भावना कैसे नहीं पनपती। बिहार में शायद ही कोई ऐसा परिवार था, जिसकी तीन-तीन पीढ़ियाँ एक साथ जेल में न हो। इन महिलाओं के लिए यह एक संयोग ही था कि इनकी बचपन में आजादी की लड़ाई का जो प्रकाश अपने मायके में मिला था, वह ससुराल में उत्तरोतर प्रकाशित होता गया। इनमें श्रीमती रामदुलारी सिन्हा पति-पत्नी दोनों पर्दा प्रथा के खिलाफ थे। जब ये विवाहोपरान्त अपने ससुराल गयी तो बिना घूँघट के ही। इनका सम्पूर्ण परिवार विदेशी सत्ता मिटाने, पर्दा प्रथा को तोड़ने, स्त्री शिक्षा के प्रसार, जमीन्दारी उन्मूलन, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, हरिजनों एवं पिछड़ों के प्रति सहानुभूति ही नहीं बल्कि उनकी सच्ची सेवा, उनकी शिक्षा और सफाई के कार्यक्रमों में संलग्न रहा। ये अपने पति के साथ किसान आन्दोलन में भी जुटी रहीं। स्पष्टत: बिहार की मिट्टी से भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में राष्ट्रवादी महिलाओं का धरोहर भी कहा जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. भारत सरकार, योजना आयोग, तृतीय पंचवर्षीय योजना, पृष्ठ-220
2. वी.के. पुरी एवं एस. के. मिश्र, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई, पृष्ठ-235
3. तथैव।
4. तथैव।
5. तथैव।
6. तथैव।
7. तथैव।
8. दसवीं पंचवर्षीय योजना के विश्लेषण के आधार पर प्रस्तुत
9. भारत सरकार, योजना आयोग, 12वीं पंचवर्षीय योजना 2012 से 2017 Vol.-I] पृष्ठ-191
10. तथैव, पृष्ठ-192
11. वी.के. पुरी एवं एस. के. मिश्र, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई, पृष्ठ-239
12. अनुराधा जैसवाल, महात्मा गाँधी समकालीन बिहार के स्वतंत्रता सेनानी, जानकी प्रकाशन, पटना 2003, पृष्ठ-132
13. तथैव
14. कुमारी शीला सिंह, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ-208
15. कुमारी नागेन्द्र, इंडियन नेशनल मूवमेंट, भाषा विभाग, पंजाब, 1991, पृष्ठ-160
16. प्रभास्मृति, पृष्ठ-239
17. महिला चर्खा समिति पत्रिका, रजत ज्यंती अंक, 1965, पृष्ठ-13
18. सर्चलाइट, 22 जनवरी, 1922, पृष्ठ-05
19. तथैव, 23 जनवरी, 1922, पृष्ठ-03
20. कुमारी शीला सिंह, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ-177
21. तथैव, पृष्ठ-213
22. तथैव, पृष्ठ-213
23. सर्चलाइट, 22 जनवरी, 1922, पृष्ठ-05
24. तथैव, 25 जनवरी, 1922
25. कुमारी शीला सिंह, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ-214
26. तथैव, पृष्ठ-177
27. सर्चलाइट, 2 अप्रैल, 1930, पृष्ठ-02
28. के० के० दत्ता, पूर्वोद्धृत, खण्ड-2, पृष्ठ-502
29. शिवपूजन सहाय, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ-108
30. तथैव, पृष्ठ-343
31. तथैव, पृष्ठ-344
32. तथैव,
33. के० के० दत्ता, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ-130
34. कुमारी शीला सिंह, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ-238
35. कुमार अमरेन्द्र, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ-116
36. डॉ० राजेन्द्र प्रसाद आत्मकथा, 1947, पृष्ठ-333
37. द सर्चलाइट, 18 नवम्बर, 1931, पृष्ठ-05

38. शिवपूजन सहाय, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ-346
39. महिला चरखा समिति पत्रिका बा-बापू स्मृति अंक, पृष्ठ-36
40. तथैव, रजत ज्यंती अंक, पृष्ठ-14
41. कुमारी शीला सिंह, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ-235
42. महिला चरखा समिति पत्रिका बा-बापू स्मृति अंक, पृष्ठ-36
43. कुमारी शीला सिंह, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ-236
44. कुमार अमरेन्द्र, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ-103
45. तथैव, पृष्ठ-242
46. द सर्चलाइट, 23 मार्च, 1930, पृष्ठ-06
47. तथैव, 8 जुलाई, 1934, पृष्ठ-7
48. तथैव, 12 सितम्बर, 1934, पृष्ठ-05

भारत में महिला सशक्तिकरण और कल्याणकारी कार्यक्रमों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

दीपक कुमार दास

शोध प्रज्ञ, एम.ए. (राजनीति विज्ञान), यू.जी.सी. नेट (राजनीति विज्ञान), सि.का. मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका, झारखण्ड

महिला कल्याणकारी योजनाओं का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से महिला सशक्तिकरण से जुड़ा है। महिला कल्याण योजनाओं की अवधारणा व्यापक है और उसे एक विस्तृत परिप्रेक्ष्य में देखने की जरूरत है जिसमें हम महिला के जन्म से लेकर उसके भोजन, शिक्षा, स्वास्थ्य, विवाह और आवास सम्बन्धी विभिन्न सुविधाओं और गतिविधियों को शामिल करते हुए देख सकते हैं। साथ ही यहाँ पर हम महिलाओं के समक्ष मौजूदा चुनौतियों और उनके समाधान की दिशा में उठाए गए कदमों का भी उल्लेख कर सकते हैं। यहाँ इस बात पर भी गंभीरता से गौर करना होगा कि आज देश की आधी से ज्यादा महिलाएँ "बालिका वधू" हैं। ताजा आंकड़े बताते हैं कि हमारे देश 64.7 प्रतिशत लड़कियों को 18 साल से पहले दुल्हन बनना पड़ता है। दूसरे शब्दों में, 100 में से करीब 65 लड़कियों का 18 वर्ष की आयु से पहले विवाह कर दिया जाता है। यही नहीं, 100 में से 9.1 प्रतिशत लड़कियों की शादी 12 वर्ष की उम्र तक कर दी जाती है। नेशनल फेमिली हेल्थ सर्वेक्षण 2007-08 के अनुसार भारत बालिका वधुओं के साथ बालिका माताओं का भी देश है। बालिग होने से पहले 100 में से 40 प्रतिशत लड़कियों माँ बन जाती हैं। 0.6 लड़कियाँ तो 13 साल से पहले ही बच्चे जनना प्रारंभ कर देती हैं। नि:संदेह यह स्थिति गंभीर है।[1]

भारत में महिलाओं की दुर्बल परिस्थिति को सबल परिस्थिति में परिवर्तन करने हेतु व्यापक कल्याणकारी कार्यक्रमों को निर्धारित एवं संचालित करने की आवश्यकता है, इस दिशा में अब तक अनेक प्रयास किये गये है। भारत में महिलाओं के कल्याण में अब तक अनेक कल्याणकारी कार्यक्रमों को निर्धारित एवं क्रियान्वित किया गया है, हालाँकि सफलता का प्रतिशत सभी कल्याणकारी योजनाओं का एक समान नहीं है। चूँकि भारत एक लोक कल्याणकारी राज्य है, इसलिए इसका परम दायित्व जनता का कल्याण करना है। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की महिलाओं की कुल संख्या 49,65,14,346 है, जो कि सम्पूर्ण जनसंख्या, का करीब 49 प्रतिशत हैं।[2] स्पष्टत: महिला देश की लगभग आधी आबादी है, जिसके विकास को अनदेखा करके भारत का विकास नहीं हो सकता है। लोक कल्याणकारी राज्य के रूप में भारत सरकार महिलाओं के विकास के मार्ग को प्रशस्त करने के दिशा में प्रयासरत हैं। भारत में महिला एवं बाल विकास विभाग, कल्याण विभाग, केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, श्रम मंत्रालय और ग्रामीण विकास मंत्रालय आदि महिलाओं के लिए समय-समय पर अनेक कार्यक्रम एवं योजनाएँ संचालित करते हैं। इसी तारतम्य में शासन ने महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं राजनीतिक स्थिति में सुधार लाने के लिए और भारतीय महिलाओं को राष्ट्र विकास की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए अनेक कल्याणकारी योजनाओं एवं विकासात्मक कार्यक्रमों का निर्माण किया है।

महिलाओं के उत्थान एवं विकास से सम्बन्धित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सरकारी स्तर पर जिन नीतियों एवं नियमों का निर्माण किया गया है उन्हें निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है :

1. केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड : 1953 में स्थापित यह बोर्ड देश में सामाजिक विकास के माहौल के सृजन हेतु सरकारी तथा स्वैच्छिक क्षेत्र के मध्य पारस्परिक सम्पर्क को बढ़ावा देता है। पिछले वर्षों में बोर्ड ने विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं तथा बच्चों के कल्याण तथा विकास हेतु विभिन्न कार्यक्रम प्रारंभ किए हैं। इनमें महिला तथा बालिकाओं हेतु सघन पाठ्यक्रम जागरूकता सृजन कार्यक्रम, व्यावसायिक प्रशिक्षण, परिवार परामर्शदात्री सेवा केन्द्र, महिला मंडल तथा अल्प आवास गृहों की स्थापना करना शामिल है। इन योजनाओं को राज्य समाज कल्याण परामर्शदात्री बोर्ड के सहयोग से स्वैच्छिक संगठनों द्वारा कार्यान्वित किया जा रहा है।[3]

2. महिला खेल प्रोत्साहन योजना : महिलाओं के लिए राष्ट्रीय खेल महोत्सव 1975 में शुरू किये गये थे जोकि अब तक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय खेल गतिविधि बन गए हैं। राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिता से पहले राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों, जिला और ब्लाक स्तरों पर प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं। राज्यों को एक हजार रूपये प्रति विकास खंड, 3000 रुपये प्रति जिला और 10,000 रुपये प्रति राज्यस्तरीय प्रतियोगिता के लिए वित्तीय सहायता दी जाती है। राज्यस्तरीय खेलों के लिए कुछ राज्यों को 10,000 रुपये तथा केंद्रशासित प्रदेशों सहित अन्य राज्यों को 5,000 रुपये की सहायता दी जाती है।[4]

3. 'नोराड' कार्यक्रम : वर्ष 1982-83 में गरीब महिलाओं को लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से 'नोराड' कार्यक्रम आरंभ किया गया। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य समाज के कमजोर वर्गों की महिलाओं को प्रशिक्षण देना तथा स्थायी आधार पर उन्हें रोजगार प्रदान करना है। इस कार्यक्रम के आरंभ से अब तक 699 परियोजनाओं में 64200 महिलाओं को लाभ पहुँचाया गया है। वर्ष 1996-97 में 'नोराड' कार्यक्रम में 31 दिसंबर 1996 तक 335.91 लाख रुपये के व्यय द्वारा 6065 महिलाओं को विभिन्न 88 परियोजनाओं में लाभ पहुँचाया गया।[5]

4. ट्रायसेम योजना 1975 : 18-35 आयु वर्ग की गरीब महिलाओं हेतु 40 प्रतिशत स्थान सुरक्षित, निजी काम धंधों हेतू प्रशिक्षण की व्यवस्था।

5. डूवाकरा योजना 1982 : ग्रामीण महिलाओं को स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के साथ ही उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, पोषाहार, स्वच्छता और शिशुओं की देखभाल करने जैसी मूलभूत सेवाएँ प्रदान करना। वर्ष 1999-2000 से इसे स्वर्ण-जयंती स्वरोजगार योजना में मिला दिया गया।

6. न्यू मॉडल चर्खा योजना 1987 : ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के लिए आर्थिक सहायता, प्रशिक्षण तथा अनुदान प्रदान कर उन्हें स्वावलम्बी बनाना।

7. नॉवाड प्रशिक्षण योजना 1989 : महिलाओं के विभिन्न व्यवसायों जैसे– चिकन वर्क, दरी, खिलौना, ब्लाक प्रिटिंग आदि से सम्बन्धित प्रशिक्षण सत्रों का आयोजन कर उन्हें आर्थिक गतिविधियों में संलग्न करना।

8. महिला समाख्या योजना 1989 : ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं को समानता और जागरूकता के लिए शिक्षा देना।

9. मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रम : माताओं और शिशुओं को पोषाहार उपलब्ध करवा कर सुरक्षित मातृत्व और टीकाकरण आदि के द्वारा शिशु तथा मातृ मृत्युदर न्यूनतम करना।

10. किशोर बालिका योजना 1992 : किशोरियों की देखभाल, संतुलित आहार, स्वास्थ्य एवं आर्थिक गतिविधियों के प्रशिक्षणों के लिए आंगनबाड़ी केन्द्र पर प्रति माह चौथे मंगलवार को किशोरी बालिका दिवस मनाया जाता है। सभी किशोरियों को इसका लाभ दिया जाता है।

प्राथमिक पाठशाला में अध्ययनरत अनुसूचित जाति की बालिकाओं को गणवेश– अनुसूचित जाति की बालिकाएँ, जो कि कक्षा एक से पाँच रही हैं, उन्हें नि:शुल्क गणवेश प्रदान किए जाते हैं।

11. पंचधारा, 1991:

(i) **वात्सल्य योजना :** प्रसव के समय महिलाओं को अनिवार्य स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराना।

(ii) **आयुष्मति योजना :** गरीब महिला की बीमारी पर इलाज व पौष्टिक आहार उपलब्ध करवाना।

(iii) **निराश्रित विधवाओं की पेंशन योजना :** निराश्रित विधवाओं को सामाजिक सुरक्षा देने के उद्देश्य से पेंशन देना।

(iv) **ग्राम्या योजना :** ग्रामीण महिलाओं को लघु व्यवसाय प्रारम्भ करने हेतु पूंजी देना।

(v) कल्पवृक्ष योजना : अनुसूचित जनजाति की महिलाओं को सीधे रोजगार उपलब्ध करवाना।[6]

12. महिला समृद्धि योजना 1993 : 2 अक्टुबर, 1993 को भारत सरकार के द्वारा महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा तैयार इस योजना को लागू की गयी, जिसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक सुरक्षा करने तथा उनमें बचत की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने हेतु स्थानीय डाकघरों में उन्हें बचत खाता खोलने के लिए प्रोत्साहित करना है तथा उन्हें विभिन्न स्त्रोंतों से खाता खोलने की सुविधा प्रदान करना है।[7]

13. सहारा : वृद्ध एवं विधवा महिलाओं के लिए भी इस योजना के तहत सामूहिक लघु-उद्योग तथा पशुपालन के लिए मदद की जाती है।

14. समेकित बाल विकास योजना : गरीबी की रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाली महिलाओं तथा बच्चों के स्वास्थ्य हेतु विकास।

15. शहरी पोषण कार्यक्रम योजना : बच्चों एवं गर्भवती महिलाओं के पोषण आहार के लिए कार्यक्रम।

16. दत्तक पुत्री शिक्षा योजना : गरीब बालिकाओं को शिक्षा के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करना।

17. पोषण शिक्षा योजना : भारत सरकार ने महिला तथा बाल विकास मंत्रालय के तत्वावधान में 1993 में एक राष्ट्रीय पोषण नीति को अपनाया था और इसे पोषण नोडल मंत्रालय माना गया है।

खाद्य तथा पोषण बोर्ड मूलत: पोषण शिक्षा और प्रतिरक्षण गतिविधियों को करता है।

केंद्र सरकार के अलावा, राज्यों की तरफ से भी महिलाओं के कल्याण से सम्बन्धित विभिन्न योजनाएँ चलाई जाती रही हैं जिनमें पंचधारा (मध्यप्रदेश), लाडली (दिल्ली) और वात्सल्य, आयुष्मति जैसी कई योजनाएँ है।

18. राष्ट्रीय महिला कोष : 31 करोड़ रुपये की मूल राशि से 1993 में स्थापित यह कोष एक राष्ट्रीय स्तर का सूक्ष्म ऋण संस्थान है जो देश की गरीब महिलाओं को अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार हेतु आय सृजन गतिविधियों को बढ़ावा देता है और गैर-सरकारी संगठनों तथा अन्य एजेसिंयों के मार्फत अर्द्ध-औपचारिक तरीके से गैर- सब्सिडीयुक्त ऋण सुविधाएँ प्रदान करता है। वर्तमान में इसकी मूलराशि को बढ़ाकर 100 करोड़ रुपये कर दिया गया है।[8]

19. दाई डिलेवरी किट योजना : प्रसव कराने दाई को कीटाणुरहित वस्तुओं की किट देना।

20. वेश्या पुत्री योजना : वेश्याओं की पुत्री हेतु नि:शुल्क भरण-पोषण व शिक्षा व्यवस्था करना।

21. प्रतिष्ठा कार्यक्रम : मैला सफाई कामगारों को सम्मानजनक जीवन कायम करने में मदद देना।

22. मनीषा कार्यक्रम : ग्रामीण लड़कियों हेतु शिक्षा की व्यवस्था करना।

23. राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना, 1994 **:** गरीबी की रेखा से नीचे के परिवारों की महिलाओं को प्रसूति हेतु आर्थिक सहायता प्रदान करना।

24. महाजन मनी ऋण योजना, 1995 **:** महिलाओं को स्व-रोजगार शुरू करने हेतु बैकों से ऋण तथा महाजन मनी उपलब्ध करवा कर उन्हें आर्थिक विकास का अवसर प्रदान करना।

25. इंदिरा महिला योजना, 1995 **:** 20 अगस्त 1995 को प्रारंभ इस योजना का मुख्य उद्देश्य महिलाओं में जागरूकता उत्पन्न करना तथा उन्हें आय के साधन उपलब्ध कराना है। प्रथम चरण में इसे देश के 200 विकास खंडों में आरंभ की गयी। इस योजना के अंतर्गत बाड़ी स्तर पर स्थापित इन्दिरा केन्द्र

के सहयोग से कार्य करेंगे। इस योजना में सड़क निर्माण, ग्रामीण विद्युतीकरण, गैर-परम्परागत ऊर्जा स्त्रोत विस्तार, सामाजिक वानिकीकरण तथा शिक्षा एवं स्वास्थ्य कार्यक्रमों को भी सम्मिलित किया गया है। योजना के आरंभ से अबतक 200 विकास खण्डों में 114 से अधिक इन्दिरा महिला ब्लाक समिति पंजीकृत की जा चुकी है और इन्दिरा महिला केंद्रों में 7000 से अधिक महिला समूह बनाए जा चुके हैं।[9]

26. ग्रामीण महिला विकास योजना, 1996 **:** ग्रामीण महिलाओं का भागीदारी में वृद्धि करना, उन्हें जागरूक बनाना तथा भेदभाव को समाप्त करना।

27. राज राजेश्वरी बीमा योजना, 1997 : गरीब बालिकाओं और महिलाओं को बिना किसी प्रीमियम के भुगतान पर विकलांगता की स्थिति में आत्मसम्मान के साथ जीवन निर्वाह करने हेतु एक मुश्त आर्थिक सहायता राशि प्रदान करना।

28. बालिका समृद्धि योजना, 1997 : गरीबी की रेखा के नीचे के परिवारों में जन्म लेने वाली बालिका की माता को पौष्टिक आहार, बालिका की कक्षा 10वीं तक पढ़ाई के लिए नगद शैक्षिक अनुदान देकर सहायता प्रदान करना।

29. स्वास्थ्य सखी योजना, 1997 : अनुसूचित जाति तथा जनजाति की महिलाओं के प्रजनन एवं स्वास्थ्य के विषय में आवश्यक प्रशिक्षण देकर उन्हें आर्थिक लाभ प्रदान करना।

30. ड्बाकुआ योजना, 1997 : शहरी क्षेत्रों में गरीब महिलाओं को आर्थिक एवं सामाजिक विकास का अवसर प्रदान करना।

31. महिला स्वशक्ति योजना, 1998 : स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं को आर्थिक एवं सामाजिक रूप से सशक्त बनाने का प्रयास।

32. स्त्री शक्ति पुरस्कार योजना, 2000 : महिलाओं के अधिकारों हेतु संघर्ष करने वाली महिलाओं को राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित कर उन्हें प्रोत्साहित करना।

33. किशोरी शक्ति योजना, 2000 : किशोर बालिकाओं के स्वास्थ्य एवं पोषण की समुचित व्यवस्था कर उन्हें विकास के पर्याप्त अवसर प्रदान करना।

34. स्वास्थ्य घर योजना : वर्ष 2002 से प्रारंभ इस योजना के तहत शहरी मलिन बस्तियों में प्रत्येक एक हजार आबादी पर एक स्वास्थ्य घर खोलना प्रस्तावित है जिसमें स्थानीय निवासियों को बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाएँ प्रतिष्ठित और जिम्मेदार स्वैच्छिक संगठनों द्वारा उपलब्ध कराए जाने की व्यवस्था है।

35. राष्ट्रीय पोषण मिशन : देश में व्यापक कुपोषण की समस्या से निजात पाने हेतु वर्ष 2003 में प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में इस मिशन का गठन किया गया था। एक अनुमान के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष 1 लाख महिलाएँ प्रसव दौरान मृत्यु का शिकार होती हैं। इनमें अधिकांश वे महिलाएँ शामिल हैं जिनका 18 वर्ष की आयु पूर्ण होने से पहले ही विवाह कर दिया जाता है।

36. जननी सुरक्षा योजना, 2003-2004 : अस्पताल में सुरक्षित प्रसव को बढ़ावा देने के लिये यह योजना चलाई जा रही है। गरीबी रेखा के नीचे के परिवार की गर्भवती महिला यदि अस्पताल में प्रसव कराती है तो ग्रामीण क्षेत्र में 700 रुपये एवं शहरी क्षेत्र में 600 रुपये नगद दिये जाते हैं। गर्भवती को अस्पताल लाने वाले प्रेरक को ग्रामीण क्षेत्र में 600 रुपये और शहरी क्षेत्र में 200 रुपये दिये जाते हैं।

37. आशा योजना, 2004-2005 : सभी गाँवों में एक्रिडेटिड सोशल हैल्थ वर्कर (आशा) की तैनाती के माध्यम से घर-घर जाकर महिलाओं और बच्चों को स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी सेवाएँ उपलब्ध कराना।

38. आंगनवाड़ी विशेष बीमा योजना, 2004-2005 : देश के सभी ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को सरकारी सहायता के माध्यम से बीमा कवच उपलब्ध कराना।

39. विशेष आवासीय विद्यालय योजना, 2005-2006 : दलित व पिछड़े वर्गों की बालिकाओं को नि:शुल्क व उच्च कोटि की शिक्षा उपलब्ध कराना।

40. बालिका शिक्षा प्रोत्साहन योजना, 2005-2006 : 8वीं कक्षा उत्तीर्ण करने वाली चयनित बालिकाओं को नौवीं कक्षा में प्रवेश पर एक मुश्त 3000 रू. की राशि बालिका के नाम बैंक में जमा कर उन्हें शिक्षा हेतु प्रोत्साहित करना।

41. इकलौती कन्या छात्रवृत्ति योजना, 2006-2007 : 10वीं पास करने वाली परिवार की इकलौती कन्या को अग्रिम शिक्षा प्राप्त करने हेतु 500. .....।

इन सभी सरकारी योजनाओं के माध्यम से महिलाओं को सशक्त करने का भरसक प्रयास किया गया हैं और वर्तमान में भी भारत सरकार ने महिलाओं के कल्याण हेतु कई नए कार्यक्रमों को लाया है, जिनसे उम्मीद की जा सकती है कि भविष्य में महिलाएँ इससे और लाभान्वित होंगी।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु प्रस्तुत परिकल्पना निम्नलिखित है:-

1. महिलाओं के लिए चलाए जा रहे विभिन्न सरकारी योजनाओं से महिलाएँ लाभान्वित हुई है और भविष्य में इन्हें और लाभ प्राप्त होने की संभावना दृष्टिगोचर हो रही है।
2. महिलाएँ के लिए चलाये जा रहे योजनाओं से उनका सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक विकास होगा जिससे उसे प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने का अवसर प्राप्त होगा।

शोध आलेख का उद्देश्य

1. इस शोध का उद्देश्य महिलाओं के कल्याण हेतु संचालित विभिन्न योजनाओं का अध्ययन कर यह पता लगाना कि इससे महिलाएँ कितनी लाभान्वित हुई है।

2. प्रस्तुत शोध का उद्देश्य महिला के उत्थान हेतु संचालित योजनाओं के मार्ग में आने वाले बाधाओं को स्पष्ट करना और इसे दूर करने वाले उपायों को रेखांकित करना।

शोध आलेख की पद्धति

प्रस्तुत शोध की अध्ययन पद्धति में ऐतिहासिक, सैद्धान्तिक विश्लेषणत्मक, तुलनात्मक एवं नवीन पद्धतियों को अपनाते हुए शोध लेख को मौलिकता प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इस शोध कार्य में उपयोगी सामग्री भारत सरकार के विभिन्न विभागों महिला विकास एवं अधिकारिता मंत्रालय, महिला विकास निगमों के अभिलेखों, राष्ट्रीय एवं राज्यस्तरीय पुस्तकालयों, इन्टरनेट एवं शोध संस्थानों आदि में उपलब्ध, सामाचार पत्र-पत्रिकाएं अन्य प्रासंगिक सामग्रियों से प्राप्त किया गया है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि महिलाओं के लिए शासन द्वारा तमाम कल्याणकारी नीतियाँ बनायी गयी हैं। इसके बाद भी महिलाओं की परिस्थिति में आशानुकूल बदलाव नहीं आया है, क्योंकि सामाजिक सोच एवं धारणाओं में बदलाव नहीं आया हैं। 21वीं शताब्दी की चुनौतियों का सामना करने के लिए तथा विश्व के समक्ष अपना सिर गौरव से ऊँचा कर जीने के लिए सामाजिक विचारधारा एवं परम्पराओं में सकारात्मक परिवर्त्तन करना ही होगा। महिलाओं के विकास हेतु संचालित किये जा रहे सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं राजनीतिक कार्यक्रमों के प्रति प्रतिबद्धता एवं सजगता बरतना ही होगा तभी भारत भविष्य में विकसित राष्ट्र बनने के लक्ष्य प्राप्ति में सफल हो सकता है।

सन्दर्भ

1. भारतीय अर्थव्यवस्था, अतिरिक्तांक, सीरीज-1, प्रतियोगिता दर्पण, उपकार प्रकाशन, पृष्ठ-70।
2. कुरूक्षेत्र, मार्च 2005, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ-8।
3. इम्पैक्ट ऑफ थर्ड वर्ल्ड, जनरल, प्रकाशन-2009।
4. भारत 2009, प्रकाशन विभाग, पृष्ठ-1063।
5. जोशी, डॉ. गोपा, भारत में स्त्री असमानता, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृष्ठ-131।
6. अवस्थी और अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ-49।
7. चन्द्र, बिपिन, आजादी के बाद का भारत (1947-2000), हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृष्ठ-652।
8. शर्मा, झा एवं विनायक, महिला सशक्तिकरण एवं समग्र विकास, भारत बुक सेन्टर लखनऊ, पृष्ठ-312-313।
9. डॉ. गोपा जोशी, भारत में स्त्री असमानता, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, पृष्ठ-128-129।

राष्ट्र भर में वयस्क शिक्षा का महत्व

डॉ० मीता कुमारी

गृह विज्ञान विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

प्रौढ़ शिक्षा एक व्यायाम है जिसमें वयस्क पद्धतिबद्ध और तैयार खेलों में भाग लेते हैं, जिसके माध्यम से वे अपनी जानकारी और सीखने की सुविधा प्रदान कर सकते हैं। लोगों के जीवन के दौरान, उन्हें अपने ज्ञान, कौशल और योग्यता में सुधार करने की आवश्यकता होती है। इसलिए, बड़ी संख्या में शिक्षा का एक लक्ष्य यह सुनिश्चित करना है कि लोग कई अवधारणाओं के वाक्यांशों में अपनी जानकारी बढ़ाने में सक्षम हैं। वयस्क सीखने में प्रेरणा और शौक बढ़ाते हैं, इसके बाद वे अपनी इच्छाओं को पूरा करना चाहते हैं या पसंदीदा लक्ष्यों को प्राप्त करते हैं। इस पत्र का प्राथमिक लक्ष्य विकसित शिक्षा के साधनों और महत्व का परिचय देना है। जिन प्राथमिक घटकों पर ध्यान दिया गया है, वे हैं, भारत में विकसित शिक्षा के रिकॉर्ड, ब्रिटिश काल के कुछ बिंदु पर विकसित शिक्षा, स्वतंत्रता के बाद बढ़ी हुई शिक्षा, शिक्षा के प्रकार, जिसका अर्थ है और बड़े पैमाने पर शिक्षा का उद्देश्य, विकसित शिक्षा के लक्ष्य, भारत में विकसित शिक्षा, विकसित शिक्षा के मूल विचार, विकसित शिक्षा के लक्षण और विकसित शिक्षा नीति।

मूल शब्दः वयस्क शिक्षा, जागरूकता, शैणिक्षक कार्यक्रम, व्यक्ति, सामाजिक परिवर्तन

प्रस्तावना

शिक्षा एक आजीवन प्रक्रिया है। यह प्रचलित और भविष्य के लिए विशिष्ट निधि है। इससे लोगों के जीवन में पूर्णता और समृद्धि का संचार होता है। यह एक मुख्य उपकरण है जिसके परिणामस्वरूप देश की सामाजिक-मौद्रिक वृद्धि होती है। यह सामाजिक परिवर्तन के लिए एक प्रभावी उपकरण है। यह पता है कि कैसे और क्षमताओं को प्राप्त करने के लिए एक ऑटोमोबाइल है। यह सही और गलत के निर्णय की क्षमता रखता है और लोगों को सशक्त बनाता है। शिक्षा की खरीद के माध्यम से, लोग गरीबी, अज्ञानता, दुख, असमानता, शोषण, ह्रास, बेरोजगारी और विभिन्न सामाजिक परेशानियों के निवारण के लिए क्षमताओं और प्रवृत्तियों का विस्तार करते हैं। लोगों को अपने जीवन के दौरान शिक्षा का विश्लेषण और संचय करने का अधिकार है। शिक्षा प्राप्त करने की कोई विशिष्ट आयु नहीं है। प्रौढ़ शिक्षा का विचार समायोजन से होकर गुजरा है। वयस्क शिक्षा को उस क्षेत्र के रूप में समझा गया है जो वयस्कों को निर्देशात्मक केंद्रों का प्रावधान करता है, जो अपने कॉलेज के वर्षों के दौरान औपचारिक शिक्षा के सामान्य मार्ग से नहीं गुजर सकते थे। प्रौढ़ शिक्षा में अनुदेशात्मक प्रक्रियाओं का पूरा ढांचा होता है। सामग्री, तकनीक या रेंज या वे शिक्षुता के अलावा, स्कूलों, स्कूलों या विश्वविद्यालयों में प्रारंभिक शिक्षा को लंबा या अद्यतन करते हैं या नहीं। 18 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद लोग वयस्क के रूप में दिखाई देते हैं। वे प्रतिभा का विस्तार करते हैं और अपनी जानकारी में सुधार करते हैं, तकनीकी और विशेषज्ञ योग्यता को बढ़ाते हैं या एक नए पाठयक्रम में खुद को प्रवाहित करते हैं और परिणामस्वरूप अपने दृष्टिकोण और व्यवहार के समायोजन में गैर-सार्वजनिक सुधार और संतुलित और निष्पक्ष सामाजिक, मौद्रिक और सांस्कृतिक सुधार में भागीदारी होती है। वयस्क शिक्षा में उन सभी खेलों का समावेश होता है, जिन्हें असेंबली अकादमिक सपनों और उद्देश्यों के उद्देश्य से संचालित किया जाता है। विकसित शिक्षा के माध्यम से, धोखेबाज अपने अध्ययन को बढ़ाने और क्षमताओं और क्षमताओं का विस्तार करने में सक्षम हैं। लोगों को पता है कि क्षमताओं और क्षमताओं में सुधार के अलावा, अपने अधिकारों और कर्तव्यों में वाक्यांशों में मान्यता उत्पन्न करने में सक्षम हैं, जो देश के सफल निवासियों को दिखाने के लिए आवश्यक हो सकता है।

ब्रिटिश काल में प्रौढ़ शिक्षा

1836-37, भारत में साक्षरता शुल्क लगभग छह प्रतिशत हो गया। वयस्कों पर प्रशिक्षण का प्रावधान बनाने के वाक्यांशों में ब्रिटिश शासकों की स्थिति बहुत कम थी। इंग्लैंड में रात के समय के संकायों के उदय ने व्यापारिक क्रांति के मद्देनजर भारत में प्रभाव डाला। प्रत्येक ब्रिटिश भारतीय प्रांत में, कुछ मौद्रिक प्रावधान रात के समय के संकायों को प्रस्तुत करने के लिए किए गए थे। भारतीय शिक्षा आयोग (1882-1883) ने निदान किया कि वयस्क अपने या अपने मौद्रिक सुधार के लिए प्रशिक्षण चाहते थे। इसके अलावा, सभी प्रांतों में इस आवेदन के विस्तार की जोरदार वकालत की गई है, जैसे कि, संकायों को सफलता प्राप्त करने की संभावनाएँ थी। 1918-1936 की सहकारिता गति, जो बढ़ती ताकत में बदल गई, ने बड़े पैमाने पर साक्षरता कक्षाएँ शुरू करने के लिए एक उपयोगी आधार प्रदान किया। प्रथम विश्व युद्ध से वापस आए लोगों की व्यापक विविधता ने आत्मज्ञान और चेतना को जोड़ा। इन तत्वों ने उत्प्रेरक एजेंटों के रूप में काम किया, जो जनता के बीच चेतना पैदा करते हैं। नतीजतन, वहाँ बड़े पैमाने पर प्रशिक्षण के खेल के साथ विकास हुआ है। वयस्क प्रशिक्षण खेलों के आगमन के साथ, लोगों को विभिन्न अवसरों में भाग लेने और नेटवर्क और राष्ट्र के कल्याण को बेचने के लिए एक स्थिति है। केंद्रीय शिक्षा बोर्ड (CABE) ने दिसंबर 1938 में अपनी चौथी विधानसभा में बिहार के शिक्षा मंत्री डॉ० सैयद महमूद की अध्यक्षता में एक वयस्क शिक्षा समिति की नियुक्ति

की। समिति ने बड़े पैमाने पर साक्षरता के महत्व पर जोर दिया, साक्षरता शिक्षकों की शिक्षा, वयस्कों की प्रेरणा, कोचिंग में ऑडियो-दृश्य मीडिया का उपयोग और साक्षरता के प्रतिधारण के प्रयासों और प्रशिक्षण के साथ दृढ़ रहने के लिए जोर दिया। अशिक्षा दिखाई देती है, क्योंकि लोगों, नेटवर्क और पूर्ण राष्ट्र के विकास के मार्ग में आवश्यक बाधा। इसलिए आप शक्तिशाली उछाल और लोगों, नेटवर्क और राष्ट्र के सुधार का कारण बन सकते हैं, यह प्रशिक्षण के गैजेट को बढ़ाने के लिए मील की दूरी पर है। इसके अलावा, सभी वर्गों और पृष्ठभूमि से संबंधित लोगों को प्रशिक्षण के महत्व को समझना चाहिए। सकारात्मक आवेदन में, मोहनदास करमचंद गाँधी के उपयोग की सहायता से शुरू किया गया है, प्रशिक्षण के प्रकार, मौलिक प्रशिक्षण और बड़े पैमाने पर प्रशिक्षण शुरू किया गया है। बुनियादी प्रशिक्षण वह प्रशिक्षण है जो प्रत्येक फ्रेम और दिमाग को विकसित करता है। मौलिक प्रशिक्षण के माध्यम से, लोग उन तरीकों के वाक्यांशों में चेतना उत्पन्न करने में सक्षम हैं जो विविध जिम्मेदारियों और खेलों में उन्नयन करने में उनकी सहायता कर सकते हैं। भारत में वयस्क प्रशिक्षण का उपसंस्कृति भी उतना ही पुराना है, जितना कि सभ्यता। कथकारों, रामलीलाओं, भगत तुंगियों, कीर्तन, थिएटरों, गांवों के बाजारों और इसी तरह के सामाजिक और आध्यात्मिक प्रतिष्ठानों के माध्यम से। राष्ट्र में विकसित प्रशिक्षण के ऐतिहासिक अतीत ने अपने पारंपरिक मूल्यों और ज्ञान को बनाए रखा है। उन प्रतिष्ठानों के हेरफेर और अधिकार अब राष्ट्र संरक्षण के नीचे मौजूद नहीं थे। यह ब्रिटिश काल के कुछ बिंदुओं में बदल गया है कि बड़े पैमाने पर प्रशिक्षण राष्ट्र नीति बन गया है। भारतीय जीवन शैली में वयस्क प्रशिक्षण मुख्य रूप से राष्ट्र जीवन शैली के मौखिक प्रसारण पर आधारित है। 1860 तक राष्ट्र में विकसित जनसंख्या ने विभिन्न प्रकार के मुद्दों का सामना करने और विभिन्न जिम्मेदारियों के कार्यान्वयन के साथ स्थितियों की माँग करने के लिए मनाया। आवश्यक मकसद अशिक्षा में बदल गया। भारतीय शिक्षा आयोग ने सुझाव दिया कि मुंबई में 3 8 1 8 की सहायता के साथ 134 रात के समय के संकाय हैं। राष्ट्रपति पद के दक्षिणी विभाग में, 223 रात के समय के संकाय रहे हैं, जिसमें 4,962 लोगों का उपयोग करने में सहायता मिली। बंगाल में एक हजार रात के समय के संकाय और मद्रास में 291 अतिरिक्त रहे हैं। आयोग ने सभी प्रांतों में इस आवेदन के विस्तार की पुरजोर वकालत की। रात के समय के संकायों के पैकेजों में कई तरह की बाधाएँ थी और यह योजना अब एक समान नहीं रह गई है (ऐतिहासिक विकास संबंधी ऐतिहासिक विकास)।

स्वतंत्रता के बाद वयस्क शिक्षा

स्वतंत्रता के बाद कई पैकेजों और खेलों के उद्भव के लिए वयस्क शिक्षा ने रूप लिया। 1947 में संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपनी स्वतंत्रता के बाद, ऐसी योजनाओं की व्यवस्था की है जिनका उद्देश्य शिक्षा के महत्व को कुछ लोगों के सामने प्रकट करना है। देशव्यापी सरकार ने वयस्कों को पढ़ाने के लिए पता लगाया। शिक्षा आपको उनके अधिकारों और जिम्मेदारियों को स्वीकार करने की अनुमति दे सकती है, आपके लिए नेटवर्क और राष्ट्र के सुधार में एक महान योगदान प्रदान करना है। शिक्षा में किए गए धन को टन महत्व दिया जाता है। प्राथमिक पंचवर्षीय योजना के कुछ बिंदु पर शिक्षा के लिए मूल्य सीमा आवंटन रु० 153 करोड़ है। यह लगातार बढ़कर कई गुना हो गया। 19600 आठवीं पंचवर्षीय योजनाओं के साथ। शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ती हुई धनराशि ने संयुक्त राज्य अमरिका के साथ साक्षरता के अनुपात में एक अति सुंदर बहिष्कार को जोड़ा। साक्षरता की कीमत 1951 में सबसे कम 16. सिक्सटी पांच प्रतिशत हो जाती है। 2001 में यह साठ 65.36 प्रतिशत हो गई। महिलाओं की साक्षरता 1951 में 8 प्रतिशत हो गई और 2001 में यह पचपन प्रतिशत हो गई। इसलिए, यह कहा जा सकता है। उपायों और पैकेजों की उस प्रणाली के कारण लोगों में साक्षरता मूल्य में वृद्धि हुई। जब साक्षरता मूल्य के विकास के लिए प्रयास किए गए थे, तो व्यक्ति शिक्षा पर अद्वितीय जोर दिया गया। भारत सरकार के पास यह दृष्टिकोण था कि अब निरक्षरता के झंझट को दूर करना संभव नहीं है, औपचारिक शिक्षा को स्वयं के उपयोग की सहायता से पूरा करें। भारत में, विशाल आबादी समाज के वंचित, हाशिए और सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों से संबंधित थी। ये लोग गैर-औपचारिक व्यक्ति शिक्षा के माध्यम से शिक्षा इकट्ठा करने में सक्षम हो सकते हैं। भारत सरकार ने यूएसए के साथ व्यक्ति शिक्षा के लिए मूल्य सीमा आवंटित की। शिक्षा में समग्र वित्त पोषण के लिए व्यक्ति शिक्षा के लिए मूल्य सीमा आवंटन का प्रतिशत कई गुना बढ़ गया है, हालांकि योजना की अवधि के साथ संस्करण भी थे। 8वीं योजना अवधि के दौरान, व्यक्ति शिक्षा के लिए आवंटन शिक्षा के लिए आवंटन का 10 प्रतिशत गोल हो जाता है।

शिक्षा के प्रकार

शिक्षा की तकनीक को 3 महत्वपूर्ण वर्गों में लेबल किया गया है। ये औपचारिक, आकस्मिक और गैर-औपचारिक शिक्षा हैं।

औपचारिक शिक्षा

औपचारिक शिक्षा सचेत रूप से और जानबूझकर देखने के अनूठे परिणाम के साथ व्यवहार के परिवर्तन के माध्यम से होती है। यह बेहतर शिक्षण संस्थानों के अलावा कॉलेजों में शुरू किया गया है। शिक्षकों को औपचारिक शिक्षा प्रदान करने में तकनीकों और शैक्षणिक तकनीकों के उपयुक्त कोचिंग-ज्ञान प्राप्त करने के लिए आवश्यक हैं। शिक्षा के इस गैजेट की अनिवार्य सीमाएँ हैं, यह अद्वितीय समय सीमा के दौरान कहीं अधिक वैध है, पाठ्यक्रम पारंपरिक, अवैज्ञानिक, सैद्धांतिक, अनुदेशात्मक और अब वस्तुनिष्ठ-मुख्यतः पूरी तरह से आधारित, नैतिक और धार्मिक मूल्यों को कुछ हद तक माना जाता है। यह बहुत पतला है और एक तरफा है, यह महत्व तकनीकी और व्यावसायिक विषयों को दिया जाता है जो लोगों की इच्छाओं और शौक के अनुसार नहीं है, तनाव को विभिन्न प्रकार के घटकों में दर्शाया गया है, जैसे, प्रवेश की उम्र, पाठयक्रम, पाठयक्रम, पाठय-पुस्तकें, समय-सारणी, कोचिंग तकनीक, शिक्षकों की अनुदेशात्मक योग्यता, परीक्षा, प्रमाण-पत्र और इसके बाद, यह बहुत दूर तक आधारित और कालानुक्रमिक रूप से संगठित और संस्थागत है। पाउलो फ्रेरे औपचारिक शिक्षा का संबंध है, क्योंकि बैंकिंग गैजेट, जिसमें प्रशिक्षक जमाकर्ता है और कॉलेज के छात्र डिपॉजिटरी हैं।

अनौपचारिक शिक्षा

अनौपचारिक शिक्षा एक घटना है, जो आकस्मिक या अनियंत्रित अनुदेशात्मक प्रभावों के मिश्रण के लिए खड़ी है, जो लोगों की विशेषज्ञता और दृष्टिकोण को जानबूझकर या अनजाने में प्रभावित करते हैं। प्रत्येक आनंद और घटना से लोग अनुसंधान करते हैं। जब लोग शौक और जिज्ञासा के मालिक होते हैं, तो वे तेज तरीके से विशेषज्ञता इकट्ठा कर सकते हैं। समायोजन लोगों के व्यवहार और दृष्टिकोण के साथ लगभग सामान्य रूप से वितरित किए जाते हैं। लोगों की ओर से आकस्मिक शिक्षा का अधिग्रहण पालने से कब्र तक रहता है। अलग-अलग शब्दों में, यह लोगों के जीवन के माध्यम से सभी को रखता है। महत्वपूर्ण घटक जो लोगों को आकस्मिक शिक्षा का प्रावधान करने में एक बड़ा योगदान प्रदान करते हैं, उनमें शामिल हैं, रिश्तेदारों, दोस्तों, नेटवर्क व्यक्तियों, कार्यस्थल, बाजार, सार्वजनिक स्थानों, युग और मीडिया के अपने सर्कल।

गैर-औपचारिक शिक्षा संभावनाओं का ज्ञान प्राप्त करने का तैयार प्रावधान है, जो औपचारिक कॉलेज गैजेट आउटडोर है जो लोगों के जीवन को कवर करता है। यह शिक्षा आम तौर पर एक विशिष्ट आवश्यकता को पूरा करने के लिए केंद्रित होती है। यह लचीला, समस्या-उन्मुख, पर्यावरण-केंद्रित, जीवन-प्रध ान रूप से पूरी तरह से और शिक्षाप्रद-उन्मुख है। यह सामग्री और तकनीकों में विभिन्न है और गैर-सत्तावादी है। गैर-औपचारिक शिक्षा नेटवर्क की परेशानियों के जवाब देने पर केंद्रित है। यह नेटवर्क व्यक्तियों की भलाई को बेचने की महत्वाकांक्षा रखता है। यह विभिन्न वर्गों और पृष्ठभूमि से संबंधित लोगों के लिए संभावनाओं का ज्ञान प्राप्त करने में सुधार पर जोर देता है। इसमें व्यावसायिक, पारिवारिक कौशल, सौंदर्य की प्रशंसा में सुधार, सोच का विश्लेषणात्मक कोड, और मूल्यों, मानदंडों, सिद्धांतों, मानकों, नैतिकता और ज्ञान की खरीद शामिल हैं। यह घर के अंदर रिश्तेदारों व्यक्तियों के अपने सर्कल के बीच क्षेत्र, मित्रों या नेटवर्क के व्यक्तियों के बीच संवाद, बाजार, गैर-धर्मनिरपेक्ष स्थान और इसके बाद के क्षेत्र में ले जा सकता है। वयस्क शिक्षा, शिक्षा के साथ दृढ़ता और अतिरिक्त भित्ति चित्रों को विभिन्न प्रकार की गैर-औपचारिक शिक्षा के रूप में माना जाता है।

वयस्क शिक्षा का अर्थ और उद्देश्य

प्रौढ़ शिक्षा एक प्रक्रिया है, जिसमें वयस्क अब कॉलेज में नहीं हैं, या अब साधारण या पूर्णकालिक आधार पर कॉलेज में भाग नहीं लेते हैं, या कॉलेज ड्रॉप-आउट अनुक्रमिक और तैयार शैक्षणिक गतिविधियों को अपनाते हैं। विकसित शिक्षा में जिन कई विषयों को शामिल किया जा सकता है, उनमें स्वास्थ्य, बच्चा सुधार, खाद्य आहार और पोषण, पर्यावरण का रख-रखाव, रिश्तेदार कल्याण, कृषि, पशुपालन और इसके बाद का अपना वृत्त शामिल हैं। इसका अर्थ किसी व्यक्ति की समस्याओं के उत्तर देने के लिए सूचना, दृष्टिकोण, कौशल और दक्षताओं के साथ लगभग संशोधन लाने के लिए है। जब लोग विशिष्ट क्षेत्रों के वाक्यांशों में अपनी विशेषज्ञता को बढ़ाने की इच्छा रखते हैं या एक बार उन्हें लगता है कि वे बेहतर बेचने के लिए सुनिश्चित क्षेत्रों के वाक्यांशों में संज्ञान उत्पन्न करना चाहते हैं, तो वे इन क्षेत्रों के वाक्यांशों में जानकारी जमा करते हैं। प्रौढ़ शिक्षा में लोगों और महिलाओं के माध्यम से काम की जाने वाली शिक्षाप्रद रिपोर्टों की सभी शैलियाँ होती हैं, जो उनके विभिन्न शौक और आवश्यकताओं के अनुसार उनके विभिन्न चरणों और समझ और भूमिकाओं और दायित्वों को एक के जीवन के दौरान परिवर्तित करने में होती हैं। प्रौढ़ शिक्षा राष्ट्र के वित्तीय सुधार के अलावा अकादमिक में एक महत्वपूर्ण कार्य करती है। शिक्षा और अभाव साक्षरता के अभाव के परिणामस्वरूप शिक्षा के गैजेट के संवर्धन और सामाजिक-वित्तीय उछाल और राष्ट्र के सुधार के मार्ग में सीमाएँ हो सकती हैं। लोग अलग-अलग दृष्टिकोण, व्यवहार, व्यवहार लक्षण, व्यक्तित्व, व्यवसाय, सामाजिक-वित्तीय पृष्ठभूमि और उसके बाद से हर व्यक्ति से विशिष्ट हैं। इसलिए, वे अपने शौक और दक्षताओं के आधार पर शिक्षा को संचित करते हैं। विकसित शिक्षा में, लोग उन क्षेत्रों का चुनाव करते हैं जो मुख्य सीमा तक उनके लिए लाभकारी होते हैं। गैर-नवागंतुकों की गैर-विद्यालय कक्ष शिक्षा का अत्यधिक महत्व है। यह विशेष रूप से बढ़ते समाज, साक्षरता और कॉफी सुधार के निम्न चरणों वाले समाज के मामले में है। ऐसे समाजों में, जबकि वयस्क अनजान हैं और गरीबी और पिछड़ेपन की स्थितियों के साथ रह रहे हैं, गैर-विद्यालय के कमरे की तैयारी शिक्षा को सुविधाजनक बनाने और उनमें से ज्ञान प्राप्त करने में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती है।

प्रौढ़ शिक्षा के उद्देश्य

विविध प्रकारों की साक्षरता साक्षरता: व्यक्ति शिक्षा का मूल सपना लोगों के सर्वोत्तम जीवन को अपग्रेड करने के परिणामस्वरूप है और उन्हें आत्म-प्राप्ति के लिए अपनी क्षमता को पहचानने की अनुमति देना, परिवारों, समुदायों, समाजों और राष्ट्र के साथ निवास के एक ही पुराने में सुधार करना, बहु-सांस्कृतिक अंतर्राष्ट्रीय गाँव को शांति और सांप्रदायिक संगोष्ठी बेचते हैं और इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति के अंतर्राष्ट्रीय स्थानों और दुनिया भर में नेटवर्क के सुधार और कल्याण के गति को बढ़ाने में मदद मिलती है। उन सपनों को पूरा करने के लिए, यह व्यक्ति के लिए पढ़ने, लिखने और अंकगणित की मौलिक साक्षरता क्षमताओं के मालिक होने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। 3 रुपये की मौलिक साक्षरता दक्षताओं के अलावा, वे कई क्षेत्रों के वाक्यांशों में समझ एकत्र करते हैं। ये मौलिक साक्षरता, नैदानिक साक्षरता, वित्तीय साक्षरता, तकनीकी साक्षरत्ता, पीसी साक्षरता और इसके आगे। सही मायनों में एक की निवास स्थितियों को संरक्षित करने और एक की आजीविका के अवसरों को बढ़ाने के लिए, लोगों के लिए कई प्रकार की साक्षरता इकट्ठा करना बहुत महत्वपूर्ण है। महत्वपूर्ण घटकों में से एक है, जबकि एक साक्षरता इकट्ठा करता है, यह उनके लिए इसका शक्तिशाली उपयोग करने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

विभिन्न विषयों पर जागरूकता उत्पन्न करना: एक व्यक्ति के कर्त्तव्यों और गतिविधियों को पूरा करने के अलावा, यह लोगों के लिए विभिन्न पहलुओं के वाक्यांशों में संज्ञान उत्पन्न करने के लिए महत्वपूर्ण है। इनमें स्व, परिवार, नेटवर्क और राष्ट्र शामिल हैं। लोग सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक और विभिन्न कारकों के वाक्यांशों में अपनी विशेषज्ञता और विशेषज्ञता को सुदृढ़ करना चाहते हैं। जब लोग उन कारकों के वाक्यांशों में स्वयं

संज्ञान लेते हैं, तो वे असफलताओं और विसंगतियों को उठा सकते हैं और परिणाम में सुधार कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, उपहार के अस्तित्व को रोकना, यह लोगों के लिए महत्वपूर्ण है, विभिन्न वर्गों से संबंधित है और प्राथमिक पीसी साक्षरता दक्षताओं और तकनीकी दक्षताओं की पृष्ठभूमि है। तकनीकी दक्षता लोगों को विविध कर्त्तव्यों और गतिविधियों को करने की अनुमति दे सकती है, जिससे विविध कर्त्तव्यों और गतिविधियों के कार्यान्वयन में आसानी हो सकती है। इसके अलावा, लोग तकनीकों के वाक्यांशों में संज्ञान उत्पन्न करना चाहते हैं जो पर्यावरण की सुरक्षा, सच्ची फिटनेस के रख-रखाव और भलाई और इसके आगे के लिए चाहते हैं।

कार्यशीलता को बढ़ावा देना: कार्यक्षमता को बढ़ावा देने में, जिन प्राथमिक तत्वों को शामिल किया जा सकता है, लोग उन क्षेत्रों के वाक्यांशों में ठीक विशेषज्ञता और तथ्यों का मालिकाना चाहते हैं जिनमें वे लगे हुए हैं। अलग-अलग शब्दों में, यह लोगों के लिए कौशल और उनके संबंधित क्षेत्रों के ज्ञान को जमा करने के लिए आवश्यक है। एक व्यक्ति के गतिविधि दायित्वों के समग्र प्रदर्शन के मार्ग के भीतर और एक के बाद एक विभिन्न दायित्वों और खेलों में लगे हुए हैं, लोग मुसीबतों और चुनौतियों पर ठोकर खाते हैं। लेकिन यह लोगों के लिए रणनीति और तकनीकों के वाक्यांशों में चेतना उत्पन्न करने के लिए मील की दूरी पर है जो मुसीबतों और चुनौतियों का जवाब देने के लिए हैं। इसलिए, नेटवर्क की मुसीबतों को ठीक करने के लिए, विविध खेलों में सार्वजनिक भागीदारी को बेचने के लिए और सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक भागीदारी को पूरा करने के लिए, लोगों, समूहों और पूरे राज्य के लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए, यह कार्यक्षमता को बेचने के लिए मील की दूरी पर है।

भारत में प्रौढ़ शिक्षा की आवश्यकता: वयस्क शिक्षा आम जनता के लिए एक नई इच्छा लाती है, जिन्हें अब संकाय वर्षों के किसी बिंदु पर अपनी निर्देशात्मक प्रतिभाओं को संवारने की संभावनाएँ नहीं मिली हैं। अलग-अलग शब्दों में, व्यक्ति शिक्षा के माध्यम से, लोग अपनी अनुदेशनात्मक प्रतिभा के उन्नयन में परिणाम के लिए सक्षम होते हैं, एक बार वे अब उच्च विद्यालय से पहले या एक बार समय से पहले संकाय से बाहर हो गए हैं। व्यक्ति शिक्षा के सुव्यवस्थित अनुशासन के माध्यम से, अनपढ़ वयस्क विभिन्न दायित्वों और गतिविधियों में भाग लेना चाहते हैं। राष्ट्रीय वयस्क शिक्षा कार्यक्रम 2 अक्टूबर, 1978 को जारी राष्ट्रीय वयस्क शिक्षा कार्यक्रम के माध्यम से निरक्षरता के उन्मूलन का प्राथमिक राष्ट्रीय प्रयास है। यह एक बड़े सॉफ्टवेयर में परिवर्तित हो गया, जिसने शिक्षा को एक सौ मिलियन गैर-साक्षर वयस्कों के लिए पेश किया। 5 वर्ष के समय-निकाय के अंदर 15 से 35 वर्ष की आयु संगठन।

राष्ट्र के साथ-साथ व्यक्ति शिक्षा के प्रमुख पक्ष को सोचा गया है क्योंकि यह साक्षरता प्रतिभाओं को लोगों के सामने प्रस्तुत करने में एक अनिवार्य योगदान देता है। यह इस बात का समर्थन करता है कि देश का प्रत्येक व्यक्ति पढ़ने, लिखने और अंकगणित की मौलिक साक्षरता प्रतिभा को विकसित करने में सक्षम है। जब तक लोग परिवार की जिम्मेदारियों के कार्यान्वयन की चुनौती का प्रदर्शन करते हैं, और तब उनके लिए मौलिक साक्षरता प्रतिभाओं का मालिक होना बहुत महत्वपूर्ण होता है। इसके अलावा, वयस्कों को सुखद और संतुष्ट अनुभव करने के लिए वयस्कों को अनुमति देने के लिए व्यक्ति शिक्षा की आवश्यकता की पहचान की जाती है, वयस्क मनोरंजन और अवकाश गतिविधियों में संलग्न हो सकते हैं, वयस्क उन बाधाओं पर विजय प्राप्त करने की स्थिति का सामना कर रहे हैं जो उच्च के निर्वाह के मार्ग के साथ उठ सकती हैं। आजीविका की संभावनाएँ और वयस्क, विशेष रूप से समाज के वंचित, हाशिए पर और सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों से संबंधित हैं, यह पहचानने में सक्षम हैं कि शिक्षा अब संकाय या कॉलेज के शानदार गौरव को नहीं छोड़ती है, हालांकि यह एक आजीवन प्रक्रिया है। एक चरित्र अपने जीवन के माध्यम से सभी की जाँच करता है।

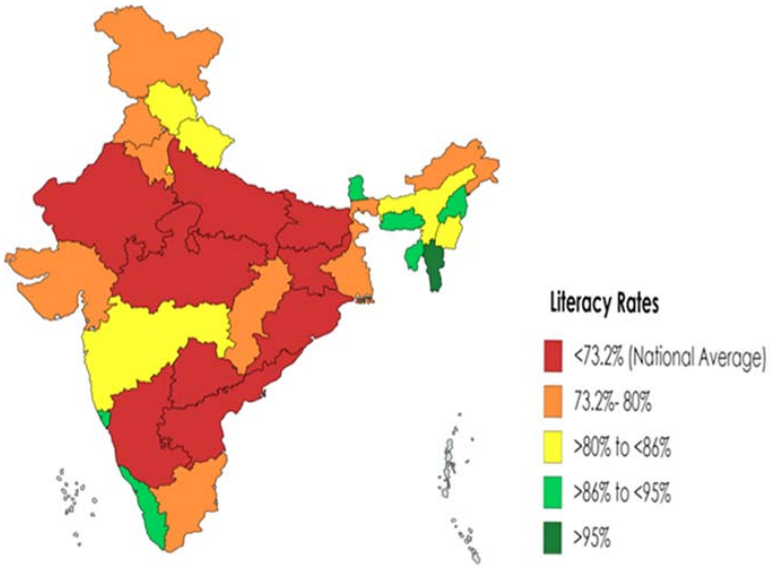

चित्र 1 : भारत में राज्य-वार वयस्क साक्षरता प्रदर्शन :

स्रोत : आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण (2017.18), एनएसएसओ/ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन के इंडिया डेटा लैब्स

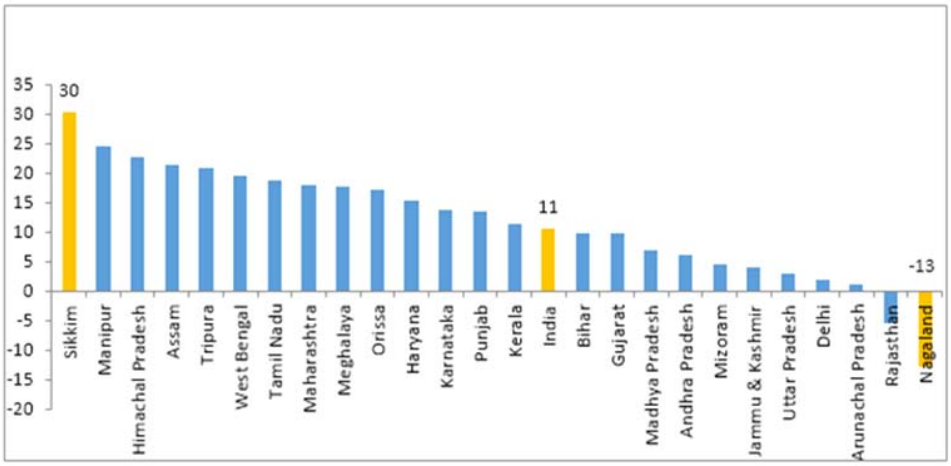

चित्र 2: आयु समूह 25.64 वर्ष (1987.88 से 2017.18) में 30 वर्षों में साक्षरता लिंग में कमी

स्त्रोत : नेशनल सैंपल सर्वे/ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन के इंडिया डेटा लैब्स

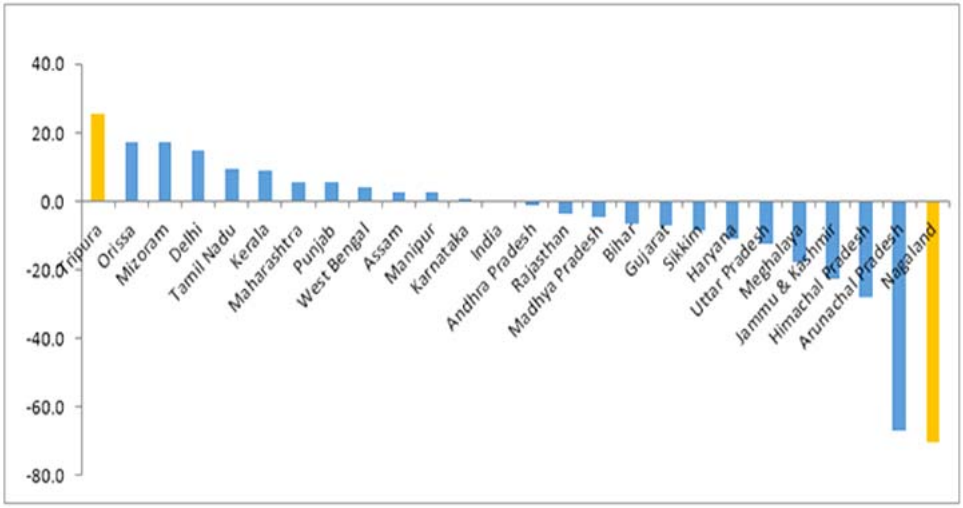

चित्र 3: आयु समूह 65 वर्ष (1987.88 से 2017.18) में साक्षरता लिंग अंतराल में 30 वर्ष से अधिक की कमी

स्त्रोत : नेशनल सैंपल सर्वे/ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन के इंडिया डेटा लैब्स

प्रौढ़ शिक्षा के मूल सिद्धांत

व्यक्ति प्रशिक्षण कवरेज और दृष्टिकोण और मौके की पहचान और सपने और दायित्वों की पहचान मुख्य रूप से इस विचार पर आधारित है कि व्यक्ति प्रशिक्षण आजीवन महारत की अभिव्यक्ति है और पूरे प्रशिक्षण प्रणाली का एक हिस्सा शामिल है; यह मौद्रिक सुधार, उत्पादकता और मौद्रिक प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने और रोजगार की संभावनाओं और रोजगार में वृद्धि का एक महत्वपूर्ण पहलू है; साधारण प्रशिक्षण प्रणाली में सुधार, समझ और दक्षताओं को बेहतर बनाने में संभावनाओं का प्रावधान करता है; एक क्रांतिकारी प्रशिक्षण और माहिर तंत्र, आर्थिक प्रणाली और श्रम बाजार की इच्छाओं और आवश्यकताओं की प्रतिक्रिया के साथ स्थान, तकनीकी नवाचार, नवीनतम प्रोफाइल, कार्यक्रमों, दक्षताओं और दक्षताओं के आगमन और आगमन की कोशिश करना, जो ब्रांड के नए प्रकारों के लिए द्विधा और खुले हैं। पेंटिंग और मास्टरिंग की और अंत में, महत्वपूर्ण दृष्टिकोण जिन्हें आत्म-सुधार को बेचने के लिए माना जा सकता है, रोजगार की संभावनाओं को इकट्ठा करने, उच्च आय प्राप्त करने, स्वतंत्रता एकत्र करने, जीवंत और उचित स्वास्थ्य जारी रखने के लिए, रिश्तेदारों के स्वयं के चक्र को बढ़ावा देने के लिए और रिश्तेदारों के सदस्यों (देशपोटोविक, और पजाटोविक, 2005) के अपने सर्कल के बीच स्वतंत्रता को प्रेरित करते हैं।

वयस्क प्रशिक्षण आजीवन माहिर के लिए एक सैद्धांतिक ढांचा प्रदान कर रहा है। मास्टरिंग के पारंपरिक सिद्धांत, प्रत्येक व्यवहारवादी और संज्ञानात्मक, आजीवन मास्टरिंग की कोचिंग और सुविधा के वाक्यांशों में स्पष्टीकरण प्रदान करते हैं। आजीवन प्रशिक्षण एक नए सिद्धांत के लिए कहता है जो लोगों के जीवन के कुछ बिंदु पर शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, आध्यात्मिक, सामाजिक और व्यावसायिक सुधार को ध्यान में रखता है। वयस्क संकेत के वाक्यांशों में संज्ञान उत्पन्न करने में सक्षम हैं जो नई भूमिकाओं की अपेक्षा करने के लिए आवश्यक हो सकते हैं। वयस्कों, जो उपयोगी संसाधन व्यक्ति, सुविधा या डेटा प्रबंधक हैं, को वयस्कों के बीच समझ और डेटा प्रदान करना आवश्यक है। शिक्षण और कोचिंग उनका नंबर एक कार्य है।।दकतंहवहपबंस सिद्धांत के

केंद्र सिद्धांत हैं कि वयस्कों को मानसिक रूप से आत्म-निर्देशन करना है। महारत हासिल करने का नंबर एक मुद्दा उनकी बहुत ही रहस्योद्घाटन में मूल्यांकन है। वे लोग जो अध्ययन करना चाहते हैं, को समाप्त कर देते हैं क्योंकि वे समकालीन-दिन और क्रांतिकारी तरीकों के वाक्यांशों में डेटा एकत्र करना सीखना चाहते हैं। अधिकांश वयस्क अंशकालिक शिक्षार्थी हैं। सीखने की संभावनाएं उन्हें उदाहरणों और स्थानों पर होनी चाहिए जो उनके लिए उपयोगी हो सकती हैं। (नोल्स, 1975)। वयस्कों को दायित्वों और खेल प्रबंधनों के कार्यान्वयन की समझ है। इसके अलावा, जब वे महारत हासिल कर रहे होते हैं, तो उन्हें सकारात्मक दृष्टिकोण और अर्थ को आकार देना पड़ता है कि महारत हासिल करना और प्रशिक्षण उनके लिए उपयोगी साबित होता है।

प्रौढ़ शिक्षा के लक्षण

जब संशोधन उन परिस्थितियों में आसपास के क्षेत्र में ले जाते हैं, जिनमें वयस्कों के जीवन पर एक शक्ति होती है, तो व्यक्ति शिक्षा अतिरिक्त रूप से संशोधनों से गुजरती है। वयस्क शिक्षा प्रकृति का उपयोग करने की सहायता से गतिशील है। व्यक्ति शिक्षा के लक्षणों को निम्नानुसार कहा गया है:

1. वयस्क शिक्षा नेटवर्क-मुख्य रूप से पूरी तरह से आधारित है और इसे विशेष रूप से व्यापक रूपरेखाओं के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। वे चाहते हैं कि अब तुलनीय चौखटे में अलग-अलग समूहों में एक समान आधार पर लागू न हों।
2. व्यक्ति शिक्षा की प्रकृति, इच्छाओं और लक्ष्यों में लोगों और समूहों की संस्कृतियों, मानदंडों, विचारों और आवश्यकताओं के अनुसार उतार-चढ़ाव होता है।
3. व्यक्ति शिक्षा में सबसे महत्वपूर्ण इच्छाओं और मुद्दों को ध्यान में रखा जाता है। इसके अलावा, शक्तिशाली जवाब तैयार किए जाते हैं जिन्हें मुद्दों और कठिनाइयों को दूर करना पड़ता है।
4. उन लोगों को सभी खेलों में भाग लेने की वकालत की जाती है, जिन्हें अपना सर्वश्रेष्ठ जीवन बढ़ाना होता है।
5. सभी क्षेत्रें में लोगों, समूहों और राज्य के लगभग सुधार लाने पर वयस्क शिक्षा के लक्ष्य। इनमें सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, मौद्रिक और राजनीतिक शामिल हैं।
6. लोग तर्कसंगत और तार्किक विकल्प बेचने में सक्षम हैं जिन्हें लोगों, नेटवर्क और राज्य की भलाई और सद्भावना को बेचना है।
7. प्रौढ़ शिक्षा एक व्यवस्थित रूप से आयोजित प्रक्रिया है, जिसमें सीखने-सिखाने वाले निर्देशात्मक खेलों को बढ़ावा देने के लिए व्यवहार्यता के एक अंतर्निहित पहलू के साथ कोचिंग की विभिन्न रणनीतियों और अध्ययनों का उपयोग किया जाता है।
8. वयस्क अपने वार्तालाप कौशल को बढ़ाने में सक्षम हैं। वे एकांत को दूर करते हैं और मुख्यधारा के समाज के साथ गठबंधन करने में सक्षम हैं।
9. वयस्क शिक्षा वयस्कों को परिश्रम, संसाधनशीलता और कर्तव्यनिष्ठता के रुझानों को बढ़ाने की अनुमति देती है, जिन्हें एक सहायक जीवन रहना है।
10. वयस्क शिक्षा एक ऑपरेटिव डिवाइस के रूप में दिखाई देती है जो वयस्कों के सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है।

प्रौढ़ शिक्षा नीति

बड़े पैमाने पर शिक्षा कवरेज का महत्वपूर्ण उद्देश्य वयस्कों के लिए शिक्षा और शिक्षा संरचनाओं के गठन के लिए उपयुक्त परिस्थितियों का सुधार है। जिन प्राथमिक पहलुओं पर विचार करना आवश्यक है, वे हैं, सहायता, सुधार प्रतिष्ठान और तंत्र। बड़े पैमाने पर शिक्षा कवरेज के प्राथमिक लक्षण हैं, प्रासंगिकता, लचीलापन, प्रदर्शन और प्रभावशीलता, पहुंच और स्थिरता। ये निम्नानुसार कहा गया था (डेस्पोटोविक, और पेजाटोविक, 2005)।

प्रासंगिकता: विकसित शिक्षा उपकरण प्रासंगिक है, यदि यह सीखने वालों, श्रम बाजारों या समुदाय की इच्छाओं और आवश्यकताओं के अनुसार विशेषज्ञता और दक्षताओं का प्रावधान करता है। प्रासंगिकता शिक्षा उपकरण के साथ लोगों की भागीदारी के साथ उछाल के माध्यम से सुरक्षित है। लोगों की भागीदारी को मुख्य रूप से नीतियों, पैकेजों, वित्त, सत्यापन और इसके बाद में दर्शाया गया है। श्रम बाजार की इच्छाओं की ट्रैकिंग और पहचान और उन जरूरतों और आवश्यकताओं की संस्थागत अभिव्यक्ति के परिणामस्वरूप प्रासंगिकता का विस्तार होता है।

लचीलापन : लचीलेपन को कैपेसिटिव और उत्तरकुशलता की जरूरतों के जवाब में संतोषजनक रूप से जवाब देने की क्षमता का हवाला दिया जाता है। यह मॉडर्नाइजेशन और पैकेजों के माध्यम से सुरक्षित किया जाता है, जो मुख्य रूप से श्रम बाजारों, प्रक्रियाओं की आवश्यकताओं और उद्यमों, विशेष व्यवसायों और लोगों के अतीत की इच्छाओं पर आधारित हो सकता है। संशोधन और मॉडयूल श्रम और सामाजिक परिवेश के क्षेत्र के आधुनिकीकरण और वित्तीय प्रणाली और नागरिक क्षेत्र की इच्छाओं के साथ शिक्षा के समन्वय की आवश्यकता के लिए अधिकतम उपयुक्त प्रतिक्रियाएँ हैं।

प्रभावशीलता : दक्षता और प्रभावशीलता मुख्य रूप से बड़े पैमाने पर शिक्षा क्षमताओं के उपयोग के साथ जुड़े हुए हैं। लोग असाधारण कक्षाओं के माध्यम से बड़े पैमाने पर शिक्षा के साधन और नियंत्रण के उपयोग के वाक्यांशों पर ध्यान केंद्रित करना चाहते हैं। ये समुदाय के कल्याण को बेचने के लिए ट्यूटोरियल प्रतिष्ठानों और बड़े हो रहे शिक्षा केंद्रों के उपयोग पर जोर देते हैं। लोगों और समुदायों के कल्याण को बेचने के लिए, लोग सही तरीके से उपायों और आवश्यकताओं को तैयार करना चाहते हैं।

अभिगम्यता : मुख्यत: पूरी तरह से इच्छाओं और जरूरतों पर आधारित एक उपकरण को स्थापित करने की प्रवृत्ति कई वर्गों और पृष्ठभूमि से संबंधित लोगों की होती है। लोग, जो गरीबी से त्रस्त हैं, शरणार्थी, अनोखी इच्छाओं वाले लोग, एक विकृत समय के लिए बेरोजगार लोग, अनुदेशात्मक योग्यता के बिना किशोर, महिलाएँ, वृद्ध लोग, जो अपनी नौकरी छोड़ने की चिंता के माध्यम से पीटे जाते हैं, मुख्य रूप से उनके प्राचीन के कारण उम्र, अल्पसंख्यक व्यवसाय, अच्छी तरह से जानकार लोग, जो नौकरी छोड़ रहे हैं, जैसे कि सैन्यकर्मी और उसके बाद। इसलिए, कई वर्गों और पृष्ठभूमि से संबंधित लोगों के लिए, विकसित शिक्षा उपयुक्त है।

स्थिरता : प्रासंगिकता, लचीलेपन, प्रदर्शन और प्रभावशीलता और पहुंच के ऊपर के तत्व उक्त शिक्षा उपकरण की स्थिरता की दिशा में मार्ग हैं। बड़े पैमाने पर शिक्षा उपकरण की स्थिरता मुख्य रूप से पारंपरिक वित्त पर आधारित है जो शिक्षा और शिक्षा प्रतिष्ठानों के वित्तपोषण को उन्मुख करता है, हालांकि देशव्यापी और पड़ोस के स्तर पर मौद्रिक नियंत्रण के सटीक संस्करण के सुधार पर। उपचारात्मक शिक्षा प्रतिष्ठानों को निर्देशात्मक बाजार के अनुसार कार्य करने का अवसर मिलता है। इसके अलावा, उन्हें उद्यमों, सार्वजनिक सेवाओं, विशेषज्ञता और दक्षताओं की जरूरतों के अनुसार उत्तर देना चाहिए और निर्देशकीय पैकेजों, जैसे ऑफर और आगे के लिए मौद्रिक सहायता की नई किस्मों को बढ़ाना चाहिए।

निष्कर्ष

प्रौढ़ शिक्षा का क्षेत्र प्राचीन काल से राष्ट्र राज्य के भीतर प्रमुख रहा है। इससे पहले कि देश अपनी आजादी हासिल करे और देश अपनी आजादी हासिल करने के बाद, ऐसे कार्यक्रमों का निर्माण करे, जिनका प्रौढ़ शिक्षा को बढ़ाने का प्रमुख उद्देश्य है। सरल शब्दों में वयस्क शिक्षा को वयस्कों को शिक्षा प्रदान करने के लिए संदर्भित किया जाता है। यह एक बहुआयामी जटिल समस्या है जिसमें कई विषय और रुचि क्षेत्र शामिल हैं। वयस्क एक या एक से अधिक क्षेत्रों का चयन करते हैं, जो उनके लिए रुचि रखते हैं और जो उन्हें काफी हद तक लाभान्वित करते हैं। वयस्क, जिन्हें पहले स्कूल में दाखिला नहीं मिला है या जो समय से पहले बाहर हो गए हैं, वे हैं, जिनके लिए वयस्क शिक्षा लाभप्रद साबित हुई है। व्यक्तिगत और व्यावसायिक विकास के लिए निरंतर शिक्षा के प्रयास किए जाते हैं और वयस्क, जो अच्छी तरह से शिक्षित होते हैं, उनके लिए अवसर, उनके कौशल और क्षमताओं का चित्रण करने के लिए उपलब्ध होते हैं।

शिक्षा की तीन श्रेणियाँ हैं: औपचारिक, अनौपचारिक और गैर-औपचारिक। वयस्क शिक्षा के उद्देश्य विविध प्रकार की साक्षरता प्रदान करना, विभिन्न विषयों पर जागरूकता पैदा करना और कार्यक्षमता को बढ़ावा देना हैं। प्रौढ़ शिक्षा नीति की मूल विशिष्टता महत्व, शालीनता, कार्यकुशलता और प्रभावशीलता, दृष्टिकोण और स्थिरता है। भारत में, वयस्क शिक्षा की धारणा ने महत्वपूर्ण पदार्थ प्राप्त कर लिया है, क्योंकि यह वयस्कों के बीच जानकारी पैदा करने में एक महत्वपूर्ण योगदान देता है, विशेष रूप से समाज के वंचित, हाशिए और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों से संबंधित है। वयस्क शिक्षा के माध्यम से, व्यक्ति अवधारणाओं की एक कुशल समझ हासिल करने और प्रभावी तरीके से अपना जीवन जीने में सक्षम हैं। जब प्रशिक्षक वयस्कों को ज्ञान और जानकारी प्रदान कर रहे हैं, तो वे आधुनिक और नवीन शिक्षण-शिक्षण विधियों और अनुदेशात्मक रणनीतियों का उपयोग करते हैं। साक्षरता की कमी व्यक्तियों को समस्याओं और चुनौतियों की संख्या का अनुभव करने में सक्षम बनाती है। लेकिन वयस्क शिक्षा के माध्यम से, व्यक्ति जागरूकता उत्पन्न करते हैं और ऐसी जानकारी प्राप्त करते हैं जो समस्याओं और चुनौतियों को दूर करने के लिए आवश्यक है।

सन्दर्भ सूची

1. भारत में वयस्क और सतत शिक्षा : एक अवलाकन, 26 अगस्त, 2019 को http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/108536/9/09_chapter 201.pdf से प्राप्त।
2. डेस्पोटोविक, एम० और पेजाटोविक, ए (2005)। सर्बिया गणराज्य में वयस्क शिक्षा विकास की नीति और रणनीति। 27 अगस्त, 2019 से पुनः प्राप्त। http://http: //www.vetserbia.edu.rs/Zbirka:20doc/Finaldoc/Adult-20Policy.pdf
3. प्रौढ़ शिक्षा का ऐतिहासिक विकास। 26 अगस्त, 2019 को http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/57682/9/09_chapter-203.pdf से प्राप्त
4. नोल्स, एम०एम० (1975) : वयस्क शिक्षा नई आयाम, 27 अगस्त, 2019 को http://www.ascd.org/ASCD/pdf/journals/ed_lead/el_197511_knowles.pdf से लिया गया है।
5. मॉड्यूल-1 सत्र। मैं वयस्क शिक्षा : एक परिचय। Http://content.inflibnet. ac.in/dataserver/eacharyadocuments/53e0c6cbe413016f23443703_INFIEP_32/ 1/1/ET/V1-S1__module_sessioni.pdf से पुनर्प्राप्त 26 अगस्त, 2019 तक।

भारत में कृषि का विकास : पंचवर्षीय योजनाओं के परिप्रेक्ष्य में

डॉ० सुनील चन्द्र झा

एम०ए०, पी-एच०डी० (अर्थशास्त्र), बी०बी०ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

शोध आलेख का सार तत्व

स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले भारतीय कृषि काफी निराशा जनक स्थिति में थी। कृषकों पर साहूकारों के ऋणों का बहुत अधिक बोझ था। उनके पास छोटी तथा बिखरी जोते थी। कृषि में उन्नत उपकरणों, उन्नत बीजों तथा उर्वरकों का प्रयोग करने के लिए न तो पर्याप्त साधन थे और न ही कोई ज्ञान था। सिंचाई के लिए कृषि पूर्णरूप से मानसून पर आश्रित थी। भूमि तथा श्रम की उत्पादकता कम होती जा रही थी। जनसंख्या की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूति हेतु देश खाद्यान्नों के भारी आयात पर निर्भर या जबकि देश की 70% जनसंख्या कृषि कार्य में लगी थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की ओर अधिक क्षति उठानी पड़ी। भारत को जहाँ विभाजन के परिणामस्वरूप 82% जनसंख्या प्राप्त हुई वहीं चावल उगाने वाला मात्र 69% क्षेत्र तथा गेहूँ उगाने वाला सिर्फ 65% क्षेत्र ही मिला। विभाजन के बाद भारत में सिंचित क्षेत्र का अनुपात 24% से कम होकर 19% रह गया था। अतएव देश में खाद्यान्नों का उत्पादन बहुत कम होता था तथा भारतीय किसानों की आय भी काफी कम थी।

मूल शब्द : साहूकार, वार्षिक योजना, पंचवर्षीय योजना, खाद्यान्न, सिंचाई, अर्थव्यवस्था, कृषि ऋण, खाद्यान्न

प्रस्तावना

01 अप्रैल, 1951 को जन भारत में प्रथम पंचवर्षीय योजना शरू करने के साथ आर्थिक नियोजन का कार्यक्रम शुरू किया गया तब उस कृषि विकास के विषय में कोई विशेष रणनीति नहीं अपनाई गई थी। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अंत तक अर्थव्यवस्था की तात्कालिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए परम्परागत तकनीक के उपयोग पर जोर दिया गया था। कृषि विकास की उत्पादक क्षमता में वृद्धि करने के लिए सिंचाई के विस्तार, कृषि प्रसार की उत्पादक क्षमता में वृद्धि करन के लिए सिंचाई के विस्तार, कृषि प्रसार तथा सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को लागू किया गया था किन्तु ये उपाय कृषि उत्पादन को बढ़ाने में असफल रहे।

पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि का विकास

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) : इस योजना में वास्तविक व्यय 1960 करोड़ रुपये हुआ, जबकि कृषि सामुदायिक विकास, सिंचाई तथा बाढ़ नियंत्रण पर कुल व्यय 600 करोड़ रु० हुआ, जो कुल वास्तविक व्यय का 21% था। अतएव प्रथम योजना में कुल व्यय का लगभग एक तिहाई हिस्सा कृषि पर व्यय किया गया। इस योजना के दौरान कृषि उत्पादन में 18% की वृद्धि हुई। खाद्यान्नों का उत्पादन 52 मिलियन टन से बढ़कर 64 मिलियन टन हो गया। व्यावसायिक फसलों में तलिहन का उत्पादन 52 लाख टन था जो इस योजना के अंत में बढ़कर 56 लाख टन हो गया। इसी प्रकार गन्ने का उत्पादन 57 लाख टन से बढ़कर 600 लाख टन हो गया। कपास की 40 लाख गाठें तथा जूट भी 42 लाख गाँठों का उत्पादन हुआ। इस योजना के दौरान रासायनिक उर्वरक की खपत में भी वृद्धि हुई। 1950-51 में अमोनियम सल्फेट की खपत 2.75 लाख टन और फास्फेटिक उर्वरक की खपत 43 हजार टन थी जो योजना के अंत में बटकर क्रमश: 6 लाख टन तथा 78 हजार टन हो गई।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61) : इस योजना में कुल व्यय 4672 करोड़ रु० हुआ जबकि कुल कृषि व्यय 9.50 करोड़ रु० हुआ जो कुल योजना व्यय का 20% हुई यानी देश में कृषि उत्पादन 4.4% की दर से प्रतिवर्ष बढ़ा। प्रथम योजना में उत्पादन वृद्धि की वार्षिक दर 6.2% थी इस प्रकार दूसरी योजना में वार्षिक वृद्धि दर 18% कम रही। गन्ने को छोड़कर शेष वस्तुओं में लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं हो सकती। खाद्यान्न उत्पादन निर्धारित लक्ष्य 810 लाख टन के विपरीत 800 लाख टन हुआ। तिलहन का उत्पादन भी निर्धारित लक्ष्य 76 लाख टन के बजाय 65 लाख टन रहा। कपास तथा जूट का उत्पादन क्रमश: 54 और 40 लाख गाठों का हुआ जो कि निर्धारित लक्ष्य से 17 लाख 15 लाख गाँठे कम था। इस प्रकार खाद्यान्नों के उत्पादन में इस योजना में 18.8% कपास के उत्पादन में 32.5% तथा तिलहन के उत्पादन में 20% की वृद्धि हुई। सिंचाई के क्षेत्र में 8.8% की बढ़ोत्तरी हुई। अतएव द्वितीय योजना में कृषि क्षेत्र में संतोषजनक प्रगति नहीं हो सकी, क्योंकि उत्पादन लक्ष्य से कम रहा। फलत: खाद्यान्नों का आयात करना पड़ा।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (1951-66) : इस याजना मं कुल व्यय 85.80 करोड़ रू० किया गया, जबकि कुल कृषि व्यय का प्रावधान 2110 करोड़ रु० रखा गया था लेकिन वास्तविक व्यय 1754 करोड़ रु० हुआ जो कुल व्यय का 21% थी। लघु सिंचाई तथा बड़े सिंचाई योजनाओं और सामुदायिक विकास

कार्यक्रमों पर 1098 करोड़ रु० खर्च किए गए। इस योजना में भूमि के क्षेत्र में तथा सिंचाई के साधनों में वृद्धि हुई। रासायनिक उर्वरक के प्रयोग इत्यादि पर विशेष ध्यान दिया गया। साथ ही वैज्ञानिक तरीके से खेती पर भी विशेष ध्यान दिया गया। इस योजना में खाद्यान्न का लक्ष्य 10 करोड़ टन किया गया। लेकिन 1965-66 में खाद्यान्नों का उत्पादन 7.2 करोड़ टन हुआ। तृतीय योजना का अंतिम वर्ष 1965-66 असामान्य वर्ष था। लगभग समस्त उत्तरी भारत विशेष रूप से बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल सूखा से पीड़ित था। अतएव, 1965-77 में कृषि उत्पादन काफी कम हुआ।

तीन वार्षिक योजनाओं में कृषि विकास : वार्षिक योजनाओं में कृषि के विकास को प्राथमिकता दी गई। इन वार्षिक योजनाओं में कुल व्यय 6625 करोड़ रु० किए गए जिनमें कृषि कार्यक्रम पर 1578 करोड़ रु० व्यय किए गए जो कुल योजना व्यय का 23.8% रहा। कृषि और सामुदायिक विकास पर 1107 करोड़ रु० एवं सिंचाई पर 471 करोड़ रु० खर्च किए गए। इन वार्षिक योजनाओं में लघु सिंचाई को सर्वाधिक प्राथमिकता दी गई। रासायनिक उर्वरक और उन्नत बीजों का प्रयोग भी सबसे अधिक किया गया। मानसून बेहतर रहने एवं उत्पादन में नई तकनीक शुरू होने के फलस्वरूप 1968-69 में खाद्यान्नों का उत्पादन 9.4 करोड़ टन हो गया।

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74) : इस योजना में कुल व्यय 1550 करोड़ रु० किया गया जिसमें से कृषि तथा संबंधित क्षेत्रों में विकास पर 367 करोड़ रुपये व्यय किया गया जो कुल योजना व्यय का 24% था। इस योजना में कृषि विकास को तीसरा स्थान दिया गया। इस योजना में कृषि लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सघन कृषि कार्यक्रम पर जोर दिया गया, कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों तथा बहुफसली कार्यक्रम को अपनाया गया। व्यावसायिक फसलों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए एक मुश्त का क्रय तय किए गए। इसके अलावा कई कृषि कार्यक्रम शुरू किए फिर भी चौथी योजना में कृषि के लक्ष्य पूरा नहीं किया जा सका। इस योजना में खाद्यान्न का उत्पादन लक्ष्य 1290 लाख टन रखा गया, लेकिन वास्तविक उत्पादन 1040 लाख टन ही रहा।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-79) : पाँचवीं योजना में कुल वास्तविक व्यय 39430 करोड़ रु० हुआ जिसमें कृषि कार्यक्रम पर 8740 करोड़ रुपये व्यय हुआ जो कुल योजना व्यय का 22% था। चौथी योजना की असफलताओं को देखते हुए पाँचवीं योजना में कृषि को प्राथमिकता दी गई। चौथी योजना के लक्ष्यों को पाँचवीं योजना में प्राप्त कर खाद्यान्नों के क्षेत्र में देश को पूर्ण रूप से आत्म-निर्भर बनाने पर बल दिया गया। योजना में कृषि क्षेत्र के दीर्घकालीन नियोजन हेतु अपनाई गई व्यूह रचना में निम्नलिखित बातों पर जोर दिया गया : (i) कृषि प्रसार तथा प्रशासन को सुदृढ़ बनाना, (ii) समस्या उन्मुख अनुसंधान का गहन करना, (iii) रासायनिक उर्वरकों के उपयोग में वृद्धि एवं उर्वरक उपयोग की दक्षता में सुधार करना, (iv) कृषि मूल्य नीति का प्रभावपूर्ण संचालन करना, (v) भूमि सुधार उपाायों का क्रियान्वयन, (vi) प्रमाणीकरण बीजों की मात्रा में वृद्धि तथा वितरण, (vii) जल प्रबंधान तथा संस्थागत साख का विस्तार और, (viii) फसलों के विपणन में सहकारिता के कार्यभाग का विस्तार करना। 1974-75, 1975-76 तथा 1976-77 में कृषि व संबद्ध कार्यक्रम पर क्रमशः 1024 करोड़, 1160 करोड़ तथा 1583 करोड़ रुपये खर्च किए गए। योजना के अंतिम वर्ष 1977-78 में कृषि तथा सहायक सेवाओं, बड़ी, मध्यम तथा लघु सिंचाई योजनाओं तथा ग्रामीण विद्युतीकरण के लिए कुल 3024 करोड़ रुपये का व्यय का प्रावधान किया गया, जो केन्द्र, राज्य तथा संघ शासित प्रदेशों की योजनाओं के सम्पूर्ण व्यय का 30.4% था। इस योजना काल में खाद्यान्नों का उत्पादन 1973-74 में 1047 लाख टन से बढ़कर 1977-78 में 1256 लाख टन हो गया। इस दौरान गन्ने का उत्पादन 1650 लाख टन (लक्ष्य के ठीक बराबर) तथा कपास का उत्पादन 80 लाख गाँठ से घटकर 71 लाख गाँठ हो गया, जबकि जूट का उत्पादन 77 लाख गाँठ से घटकर 71.2 लाख गाँठ हो गया तथा तिलहनों का उत्पादन 120 लाख टन से घटकर 89.3 लाख टन हो गया।

1950-51 से लेकर 1978-79 तक की अवधि में कृषि क्षेत्र का औसतम वार्षिक वृद्धि दर 2.7% रहा जबकि पाँचवीं योजना में कृषि की कुल वृद्धि दर 4.3% रही। 1979-80 देख में सूखा का वर्ष रहा जिससे कृषि उत्पादन में कमी आठ तथा कीमतों में तेजी से वृद्धि हुई।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) : इस योजना में कुल वास्तविक व्यय 109300 करोड़ रुपये हुआ जिससे कृषि पर कुल व्यय 26100 करोड़ रु० किया गया जो कुल योजना व्यय का 23.7% था। इस योजना का मुख्य उद्देश्य देश में उपलब्ध कृषि साधनों का उपयोग करना, भूमि सुधार कार्यक्रम लागू करना, लघु किसानों की स्थिति में सुधार करना और कृषि क्षेत्र का योगदान देश की अर्थव्यवस्था में काफी बेहतर रहा। कुछ फसलों की स्थिति में उत्पादन निर्धारित लक्ष्य से अधिक हुआ। ऐसा प्रथम योजना के बाद पहली बार हुआ। इस योजना में खाद्यान्न उत्पादन 1460 लाख टन हुआ। योजना के अंतिम वर्ष 1984-85 में 560 लाख हेक्टेयर हो गया। इस योजना में कृषि क्षेत्र की संवृद्धि दर 23.7% रही। इस योजना में सिंचाई क्षमता में 110 लाख हेक्टेयर की वृद्धि की गई।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) : इस योजना में कुल वास्तविक व्यय 218730 करोड़ रुपये हुआ जिसमें कृषि पर कुल व्यय 47100 करोड़ रुपये हुआ जो कुल योजना व्यय का 22% रहा। इस योजना में खाद्यान्नों का उत्पादन लक्ष्य 1800 लाख टन था जबकि वास्तविक उत्पादन 1710 लाख टन हुआ। योजना के प्रथम चार वर्षों में 86.3 लाख हेक्टेयर की अतिरिक्त सिंचाई क्षमता निर्मित की गई, जबकि लक्ष्य 1097 लाख हेक्टेयर था। 1985-86 से 1988-89 तक बड़ी ए वं मध्यम सिंचाई योजनाओं के अंतर्गत 23.4 लाख हेक्टेयर अतिरिक्त सिंचाई क्षमता स्थापित की गई जबकि लक्ष्य 299 लाख हेक्टेयर था। छोटी सिंचाई योजनाओं के अंतर्गत 649 लाख हेक्टेयर की अतिरिक्त सिंचाई क्षमता स्थापित की गई जबकि लक्ष्य 79.8 लाख हेक्टेयर था। तिलहन-180 लाख टन (लक्ष्य 170 लाख टन); गन्ना- 2100 लाख टन (लक्ष्य 2170 लाख टन); कपास- 95 लाख गाँठ के विपरीत 105 लाख गाँठ वास्तविक उत्पादन हुआ जबकि पटसन-79 लाख गाँठ (लक्ष्य 95 लाख गाँठ)।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) : इस योजना में कुल वास्तविक व्यय 475480 करोड़ रु० था, जिसमें कृषि पर कुल व्यय 101599 करोड़ रुपये व्यय हुआ जो कुल योजना व्यय का 20.9% था। इस योजना काल में कृषि उत्पादन में 3.5% औसत वार्षिक वृद्धि हुई, जो निर्धारित लक्ष्य 4% से कम

है। खाद्यान्न उत्पादन 1994-95 में 1914.95 लाख टन हुआ जो 1995-96 में घटकर 1804.15 लाख टन हो गया, लेकिन 1996-97 में फिर बढ़कर 1990 लाख टन हो गया, जबकि इस योजना में 2100 लाख खाद्यान्न करने का लक्ष्य था। खाद्यान्न उत्पादन में मंद वृद्धि का एक प्रभाव यह हुआ कि इस वसूली कीमतों में 13-14% की वार्षिक वृद्धि हुई। इस वृद्धि का लाभ बड़े किसानों को हुआ तथा छोटे किसानों पर विपरीत प्रभाव पड़ा।

नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) :इस योजना में कुल वास्तविक व्यय 817000 करोड़ रुपये हुआ जिसमें कृषि पर कुल व्यय 61880 करोड़ हुआ जो कुल योजना व्यय का 20% था। इस योजना में कृषि उत्पादों का प्रतिवर्ष वृद्धि का लक्ष्य 4.5% रखा गया, लेकिन योजना के अंत में औसत संवृद्धि दर सिर्फ 2.9% रही। 2002 में खाद्यान्न उत्पादन बढ़कर 2110 लाख टन हो गया, जबकि 1997 में यह 1990 लाख टन था।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-2007) : इस योजना में कुल व्यय 15,25,640 करोड़ रुपये था जिसमें कृषि पर कुल व्यय 305055 करोड़ रूपया हुआ जो कुल योजना व्यय का 20.1% था। इस योजना में कृषि वृद्धि दर का लक्ष्य 4% थ। यद्यपि वास्तव में यह वृद्धि दर 2.5% वार्षिक रही। 2002 में खाद्यान्न उत्पादन 2,110 लाख टन था जो दसवीं योजना के अंत में 2007 में बढ़कर 2160 लाख टन हो गया जबकि दसवीं योजना में खाद्यान्न उत्पादन का लक्ष्य 2,340 लाख टन रखा गया।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-12) : इस योजना में कुल व्यय 36,76,930 करोड़ रुपये हुआ जिसमें कृषि पर कुल व्यय 7,23,465 करोड़ रु० किया गया जो कुल योजना व्यय का 19.7% रहा। इस योजना में कृषि वृद्धि का लक्ष्य 4% रखा गया, जबकि प्राप्ति इससे अधिक 4.1% रही। जबकि योजना में खाद्यान्न उत्पादन 2,574 लाख टन रहा।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख में भारतीय अर्थव्यवस्था के नियोजन की अवधारणा पंचवर्षीय योजना के माधयम से किया गया था, जिसमें कृषि तथा खाद्यान्न एवं लक्ष्य की पूर्ति करना प्रमुख केन्द्र बिन्दु था। भारतीय कृषि का विकास हरित क्रांति से जाना जाता रहा है। यह सुव्यवस्थित एवं दूरदर्शी सोच का प्रतिफल था। विगत वर्षो में वैज्ञानिकों की ओर से किए गए कृषि के क्षेत्र में शोध व हासिल तकनीक ने उस विकास को न सिर्फ निरंतर आगे बढ़ाने का कार्य किया, बल्कि कई मील के पत्थर भी स्थापित किए हैं। शोध एवं तकनीक के बूते हासिल की गई उपलब्धियों के कारण ही किसान साल दर साल पैदावार बढ़ाने में सक्षम हो पा रहे हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद अपने सभी संस्थानों के माध्यम से विभिन्न फसलों के लिए पंचवर्षीय योजना तैयार करता है। यह योजना संबंधित फसल के क्षेत्र में पांच वर्षो की स्थिति के विश्लेषण पर आधारित होती है। इसके आधार पर आगामी पाँच वर्ष के लिए संभावित बातों को ध्यान में रखते हुए योजना तैयार की जाती है। इसके तहत आने वाले वर्षो में किसानों के हित से जुड़े सभी बातों को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिक शोध करने में जुटते हैं। इन बातों के फलस्वरूप ही छह दशकों में भारत ने अनाज के आयातक से निर्यातक देश के बीच के सफर को तय करने में सफलता पाई है। पिछले वर्ष भारत ने 20 लाख टन अनाज का निर्यात किया। आने वाले समय में दलहन व तिलहन के क्षेत्र में देश को आत्मनिर्भर बनाने की योजना तैयार की जा रही है। इस बात के मद्देनजर नए-नए किस्मों के विकास में वैज्ञानिक जुटे हैं। इन किस्मों में समय व सिंचाई दोनों की बचत का ध्यान रखा जा रहा है। प्रयोगशाला और खेत के बीच की दूरी को कम करने या समाप्त करने के उपायों पर भी काम किया जा रहा है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान का कृषि प्रसार संभाग देश के महत्वपूर्ण कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि विज्ञान केंद्रों व अन्य संस्थाओं के साथ मिलकर नई तकनीकों को किसानों के बीच पहुंचाने के कार्य में जुटा है। कई जगह पायलट परियोजनाएँ भी चलाई जा रही हैं। इन सभी बातों का असर भी हो रहा है। किसान अब पहले से अधिक जागरूक हो चुके हैं।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध आलेख में निम्नलिखित परिकल्पनाएँ अभिनिर्धारित की जा सकती है:

1. इस समयावधि को भारत में कृषि के पतन काल के रूप में चिन्हित किया गया। भू-राजस्व प्रणाली के नए तरीकों ने वृहद पैमाने पर कृषि संकट और निर्धनता की समस्याओं को उत्पन्न किया।
2. कृषि सुधार से आर्थिक-व्यवस्था की स्थिति अच्छी होंगी।
3. भूमि सुधार कृषि के विकास तथा बेरोजगारी की समस्या के समाधान में भी सहायक बन सकती है।
4. भूमि सुधार सामाजिक सौहार्द के सन्दर्भ में भी सार्थक प्रतीत होता है।
5. भूमि सुधार से राजनीतिक-प्रशासनिक इच्छा शक्ति को बल मिलेगा तथा राजनीतिक आधुनिकीकरण के सन्दर्भ में भी इसे अच्छा बताया जा सकता है।

अध्ययन पद्धति

प्रस्तुत शोध आलेख की पद्धति ऐतिहासिक, तुलनात्मक तथा वस्तु-विश्लेषणात्मक है।

साहित्य समीक्षा

प्रस्तुत शोध आलेख का विषय "भारत में कृषि का विकास : पंचवर्षीय योजनाओं के परिप्रेक्ष्य में" है। शोध आलेख में स्पष्ट किया गया है कि भारत की जमीन का एक तिहाई हिस्सा, अर्थात 9.7 करोड़ से 10 करोड़ हेक्टेयर के बीच जमीन डिग्रेडेड है। जमीन के डिग्रेड होने से जमीन की जैविक एवं आर्थिक

उत्पादकता कम होने लगती है। दूसरा, पैदावार की लाभप्रदता एवं किसान की आय पर भी असर होता है। तीसरा, छोटे एवं सीमांत किसान जिनके पास बहुत ही कम जमीन है उनकी तो रोजी रोटी पर ही संकट आ जाता है। रोजगार के अवसर कम होते जाते हैं एवं लोग गावों से शहरों की ओर पलायन करने लगते है। पूरी पर्यावरण प्रणाली ही बदलने लगती है। जमीन के डीग्रेड़ेशन की वजह से देश को 4600 करोड़ अमेरिकी डॉलर का नुकसान प्रतिवर्ष हो रहा है। यदि समय रहते इस गम्भीर समस्या के समाधान की ओर नहीं सोचा गया तो वह दिन दूर नहीं जब विश्व में जमीन का एक बढ़ा हिस्सा मरुस्थल में परिवर्तित हो जाएगा।

निष्कर्ष

इस प्रकार 1950-51 से अबतक खाद्यान्न के उत्पादन में 3 गुना वृद्धि हुई, तिलहन के उत्पादन में 8 गुना वृद्धि हुई जबकि गेहूँ के उत्पादन में चमत्कारिक वृद्धि 135 गुना हुई। कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों तथा बहु फसली कार्यक्रम को अपनाया गया। व्यावसायिक फसलों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए एक मुश्त का क्रय तय किए गए। इसके अलावा कई कृषि कार्यक्रम शुरू किए गये हैं। पंचवर्षीय योजना ने भारत में कृषि विकास में वैज्ञानिक तरीके से उत्पादन के लक्ष्य को आसान बनाने में अहम भूमिका निभाया है। स्वतन्त्रता के पश्चात् कृषि को देश की आत्मा के रूप में स्वीकारते हुए एवं खेती को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान करते हुए देश के प्रथम प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरु ने स्पष्ट किया था कि 'सब कुछ इन्तजार कर सकता है मगर खेती नहीं। 'इसी तथ्य का अनुसरण करते हुए भारत सरकार कृषि क्षेत्र को विकसित करने एवं कृषकों की आर्थिक स्थिति में सुधार करने हेतु अनेक कार्यक्रमों, नीतियों व योजनाओं का संचालन कर रही है। सरकार ने वर्ष 1960-61 में भूमि सुधार कार्यक्रम का सूत्रपात किया जिससे किसानों को भूमि का मालिकाना हक प्राप्त हुआ।

सन्दर्भ सूची

1. सांख्यिकी एंव आर्थिक संचालनालय सांख्यिकी पुस्तिका म.प्र. भोपाल
2. आर्थिक, जगत भारत सरकार, नई दिल्ली
3. योजना, योजना भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली
4. म. प्र. संदेश, मध्यप्रदेश शासन, भोपाल
5. बिजनेस स्टैण्डर्ड, नई दिल्ली
6. इकोनॉमिक्स टाइम्स, नई दिल्ली

मुक्त समाज व्यवस्था और सामाजिक न्याय: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० अभय कुमार

(एम.ए., पीएच-डी, यूजीसी-नेट- राजनीति विज्ञान), पटना विश्वविद्यालय, पटना

शोध आलेख का सार

प्रस्तुत शोध 'मुक्त समाज व्यवस्था में सामाजिक न्याय की अवधारणा' का विश्लेषणात्मक अध्ययन से संबंधित है। समसामयिक समाज में सामाजिक न्याय की अवधारणा को मानव जीवन के सभी आयामों में अत्यधिक महत्व प्रदान किया जा रहा है। लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए समानता व स्वतंत्रता के साथ सामाजिक न्याय भी एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। सताजिक न्याय की अवधारणा लोक कल्याणकारी राज्य का समर्थन करता है। दूसरी तरफ मुक्त समाज पूँजीवादी व्यवस्था का सर्मथन करता है, जिसके हिमायती देश ब्रिटेन तथा अमेरिका है। मुक्त बाजार व्यवस्था नवउदारवादी नीति का देन है। जहाँ तक मुक्त बाजार व्यवस्था का व्यावहारिक धरातल पर उदय एवं विकास का प्रश्न है तो मुख्य तौर पर फ्रेडरिक वॉन हॉयेक, रार्बट नोजिक और मिल्टन फ्रीडमैन के नवउदारवादी विचारों से प्रभावित होकर ब्रिटिश प्रधानमंत्री मार्ग्रेट थैचर एवं अमेरिकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन द्वारा क्रमश: ब्रिटेन एवं अमेरिका में कल्याणकारी नीतियों के विरोध के रूप धरातल पर उतारा गया। मुक्त समाज व्यवस्था ने सामाजिक न्याय की अवधारण को कमजोर किया है।

मूल शब्द: मुक्त समाज, न्याय, लोकतंत्र, गांधीवाद, समाजवाद, मार्क्सवाद, नवउदारवद तथा लोककल्याण।

प्रस्तावना

'सामाजिक न्याय' न्याय व्यवस्था का एक पहलू है। 'न्याय' उस व्यवस्था का नाम है, जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से सम्बद्ध रहता है। इस प्रकार न्याय की अवधारणा यह मत व्यक्त करता है कि एक समाज में सभी व्यक्ति, अध्यापक, विद्यार्थी, श्रमिक, किसान, सामान्य नागरिक आदि अपने अधिकारों का उपभोग करते हुए अपने कर्तव्यों का भी पालन करें तथा समाज के साथ परस्पर सम्बद्ध रहे। सामाजिक व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति का अपना न्यायोचित स्थान है, उस स्थान को प्राप्त करना ही 'न्याय' है। न्याय परिस्थिति, समय, मान्यता तथा विचार से सम्बद्ध व प्रभावित है। प्लेटो और अरस्तू के समय असमानता की अवधारणा में भी न्याय अन्तर्निहित था, तभी तो दास प्रथा को अरस्तू ने न्याय से जोड़ते हुए औचित्यपूर्ण बनाया।[1] वस्तुत: लोकतंत्र के आगमन व विकास तथा मार्क्सवादी प्रभाव में न्याय को समानता से जोड़ा जाने लगा। भारत में प्राकृतिक न्याय से अलग विशिष्ट रूप में जाति विशेष की उन्नति के लिए सामाजिक न्याय की अवधारणा को संवैधानिक, व्यावहारिक व राजनीतिक रूप में महत्व प्रदान किया जा रहा है। स्पष्टत: न्याय की अवधारणा समय व परिस्थिति से प्रभावित है। इसलिए इसे एक गतिशील अवधारणा के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

न्याय के मुख्य रूप से चार पक्ष या आयाम है-कानूनी, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक। न्याय के इन सभी आयामों में परस्पर सम्बन्ध है, इसलिए उन्हें अलग-अलग नहीं किया जा सकता है। न्याय का एक पक्ष सामाजिक है, जिसके आधार पर न्याय को सामाजिक न्याय कहा जाता है। सामाजिक न्याय का अभिप्राय सामान्यत: समतावादी समाज या संस्था की स्थापना करने से है जो समानता, एकता तथा भाईचारा के सिद्धान्तों पर अधारित हो; मानवाधिकारों के मूल्यों को आत्मसात करता हो तथा प्रत्येक मनुष्य की प्रतिष्ठा को पहचानने में सक्षम हो। सामाजिक न्याय व इसकी वर्तमान अवधारणा सर्वप्रथम 1840 में जेसुइट लुइगी टपरेली ने थामस एक्वैनस की शिक्षण विधियों के आधार पर दी थी। पुन: सामाजिक न्याय को 1848 में एन्टोनियो रोसमिनी-सरवाती ने भी इसी रूप में परिभाषित किया। आधुनिक काल में जॉन रॉल्स और अमर्त्य सेन जैसे विचारकों ने 'सामाजिक न्याय' को एक प्रमुख अवधारणा बना दिया है, साथ ही वर्तमान लोक-कल्याणकारी राज्य का मूल लक्ष्य भी 'सामाजिक न्याय' की स्थापना करना ही है। सामाजिक न्याय से आशय एक ऐसे न्यायपूर्ण समाज की स्थापना से है जिसमें सामाजिक-आर्थिक विषमताएँ न्यूनतम हों, समाज 'समावेशी' हो और संसाधनों का वितरण सर्वमान्य स्वीकृति के अधार पर हो।

सामाजिक न्याय की अवधारणा को विभिन्न विचारकों ने अलग-अलग ढंग से स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। साधारणत: सामाजिक न्याय के अर्न्तगत वे सभी चीजें शामिल हैं, जो समाज के सदस्यों के सामान्य कल्याण के विकास में आवश्यक है। लॉस्की ने कहा भी है कि सामाजिक न्याय का अर्थ समान सामाजिक अधिकारों से है।[2] इस प्रकार समाज में किसी वर्ग विशेष को न तो कोई विशेष सुविधाएँ मिलनी चाहिए और न धर्म, जाति, वंश आदि के आध ार पर किसी को इनसे वंचित करना चाहिए। सामाजिक न्याय, कल्याणकारी राज्य का उद्देश्य बन चुका है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में राजनीतिक एवं आर्थिक न्याय के साथ सामाजिक न्याय की स्थापना पर बल दिया गया है।

सामाजिक न्याय का अर्थ है उन सभी व्यक्तियों को न्याय उपलब्ध करवाना, जिन्हें किसी भी प्रकार के वर्चस्व के कारण अन्याय का सामना करना पड़ रहा है। यह अन्याय चाहे वर्ण अथवा नस्ल आधारित हो, पेशा आधारित, लिंग आधारित, धन आधारित, भौगोलिक क्षेत्र पर आधारित, धर्म आधरित, संस्कृति

आधारित, परंपरा आधारित, भाषा आधारित, अथवा शारीरिक संरचना पर ही आधारित क्यों न हो। सामाजिक न्याय अपने मूल रूप में विशेषाधिकार आधारित योग्यतावाद के विरूद्ध एक निरंतर युद्ध है। मानवतावाद और करूणा इस युद्ध के स्थायी भाव हैं तथा जीवन के हर क्षेत्र में सभी को समान अवसर की उपलब्धता के लिए संघर्ष व सामाजिक विविधता का सिद्धांत, इस युद्ध के शस्त्र और अस्त्र है।

सामाजिक न्याय एक ऐसा विषय है जो समाज में सभी को आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक रूप से समान सिद्ध करता है। आज के परिवेश में समाज में व्याप्त अनेकों अनियमितताओं एवं बुराईयों के कारण जहाँ अधिकतर व्यक्ति किसी न किसी प्रकार से सामाजिक न्याय की भावना मात्र से भी परे है वहीं इस विषय का लाभ कुछ विशेष व्यक्तियों तक ही सीमित होकर रह गया है। जनसंख्या की वृद्धि तथा भौतिक सुखों की प्राप्ति की कामना ऐसे तत्व है जो अनायास ही समाज को सामाजिक न्याय से वंचित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहे है। जिसके पास सामर्थ्य है वो सभी क्षेत्रों में आगे है तथा वंचितों का शोषण भी करता है।

भारत में सामाजिक न्याय को पूर्ण स्तर तक प्राप्त करने के लिये सरकार के सम्मुख एक बड़ी चुनौत्ति है। किसी न किसी रूप में भारत के सभी नागरिक सामाजिक न्याय के लाभ विषयों से जुड़े हुये से प्रतीत होते है। यदि हम सामाजिक न्याय के लाभ विषय को स्पष्ट रूप से समझने की कोशिश करें तो आधुनिक भारत में सामाजिक न्याय के कई विषय दिखायी पडते है, जिसकी एक लम्बी सूची है, जैसे-[3] लिंग आधारित भेदभाव, असंगठित श्रमिकों की समस्यायें, शिक्षा का अधिकार, भारत में कुष्ठ रोग समस्या, भारत में औरतों की दुर्दशा, भ्रूण हत्या, शिशु मृत्यु दर, गरीबी एवं भूखमरी, जन स्वास्थ्य तन्त्र, राज्यों में गरीबी का निम्न स्तर, लिंगानुपात, बाल दुर्व्यवहार, काम करने वाली महिलाओं की समस्यायें, महिलाओं हेतु शिक्षा से जुड़ी समस्यायें, वेश्यावृत्ति, मद्यपान, बाल अपराध, अस्पृश्यता, पेयजल समस्या, बाल कुपोषण, वृद्धावस्था की समस्यायें, भारत में क्षयरोग, भारत में पोलियों, भारत में एड्स, भिक्षावृत्ति, बाढ़ नियंन्त्रण, महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराध, ग्रामीण परिवेश में स्वास्थ्य की स्थिति, ग्रामीण सन्दर्भ में स्वच्छता की महत्ता, मातृ-मृत्यु दर एवं स्वास्थ्य स्थिति, महिला - सशक्तिकरण, दहेज व्यवस्था, बाल श्रम, ग्रामीण परिवेश में लड़कियों की शिक्षा स्थिति, बेरोजगारी, मानव-तस्करी, घरेलू दिशा, दलितों की स्थिति तथा प्रवसन इत्यादि। इन विषयों में से अधिकांश बिन्दुओं पर सरकारी एवं गैर-सरकारी स्तर पर कार्य हो रहें हैं, परन्तु अभी भी सरकार इन समस्याओं को मिटाने में सफल नहीं रही है। परन्तु पिछले एक दशक से अगर हम देखें तो केन्द्र सरकार की तमाम योजनाएँ और कार्यक्रम इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर बनाये गये और बनाये जा रहे हैं। पिछले छः साल में जो योजनाएँ बनीं और कार्यान्वित हुई उनका लाभ अब तक नीचे तक पहुँचने लगा है और साफ तौर पर दिखने भी लगा है।

इक्कीसवीं सदी न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के निर्माता की सदी है। इस सदी में सामाजिक न्याय एक लुभावना सम्प्रत्यय बना हुआ है कोई इसे समानता की दृष्टि से देखता है तो कोई स्वतंत्रता को आधार बनाकर सामाजिक न्याय को परिभाषित करता है। कुछ राजनीतिक विद्वान स्वतंत्र व समानता में सामंजस्य स्थापित करते हुए सामाजिक न्याय की व्याख्या करते हैं। एक महत्वपूर्ण सम्प्रत्यय होने के बावजूद भी सामाजिक न्याय की प्रतिस्थापना को लेकर विभिन्न राजनीतिक अवधारणाओं में पर्याप्त मतभेद है।

समाजिक न्याय के सन्दर्भ में वैज्ञानिक समाजवाद का सिद्धान्त कार्ल मार्क्स तथा एंजिल्स द्वारा प्रतिपादित किया गया, किन्तु लेनिन, कॉटस्की, स्टालिन, माओ जैसे साम्यवादियों नें इस विचार को व्यावहारिक रूप प्रदान किया। वैज्ञानिक समाजवाद समतामूलक एवं शोषणविहीन समाज की स्थापना के लक्ष्य से सम्बन्धित विचार है। मार्क्सवादी विचारक आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों में समानता की स्थापना को सामाजिक न्याय के बुनियादी तत्व के रूप में स्वीकार करते हैं।[4] वे कहते है कि सामाजिक न्याय का लक्ष्य पूँजीवाद के उन्मूलन में निहित है। इनके अनुसार एक वर्गहीन व राज्य विहीन समाज में ही शोषण, अत्याचार व दमन को रोका जा सकता है। यह विकसित समाजवाद की अवस्था होगी, जिसमें उत्पादन के सामाजिकरण में अभिवृद्धि होगी जो सामाजिक न्याय की पूर्व शर्त है।

गाँधीवादी दृष्टिकोण से सामाजिक न्याय का आधार 'सर्वोदय सिद्धान्त' है। सर्वोदय का अर्थ सबका उदय। इनके शब्दों में जाति, धर्म, रूप, रंग, लिंग आदि से ऊपर उठकर पूरे मानव समाज का सामूहिक रूप से उत्थान और विकास करना ही सर्वोदय है। गाँधीवादी इसे ही सामाजिक न्याय कहते है।[5] यहाँ गरीब के उत्थान से तात्पर्य है, उनका भौतिक कल्याण जबकि अमीर के उत्थान का तात्पर्य इनके नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान से है। सर्वोदय के इस अर्थ को स्पष्ट करते हुए दादा धर्माधिकारी कहते हैं कि सर्वोदय ऐसे वर्ग विहीन, जाति विहीन, शोषण विहीन समाज का स्थापना करना चाहता है जिसमें प्रत्येक समूह को अपने सर्वांगीण विकास के साधन एवं अवसर उपलब्ध होंगे। सर्वोदय की अवधारणा गुणात्मक, मात्रात्मक एवं भावनात्मक रूप से अन्य समकालीन अवध ारणाओं से श्रेष्ठ है।

सामाजिक न्याय का उदारवादी दृष्टिकोण मनुष्य को विवेकशील प्राणी मानता है और उसकी प्रतिभा एवं सर्जनात्मकता क्षमता में पूर्ण आस्था व्यक्त करता है। उदारवादी मनुष्य की स्वतंत्रता पर बल देता है। उनका दृढ़ विश्वास है कि स्वतंत्र मनुष्य समाज में अपने को समुन्नत बनाने हेतु आवश्यक संसाधन स्वतः जुटा लेते है। इस प्रकार उदारवादी विचारक स्वतंत्र अर्थव्यवस्था, प्रतिस्पर्धा, लाभ एवं विकास पर बल देते है। स्वतंत्र बाजार व्यवस्था के प्रबल समर्थक उदारवादी विचारक एक खुले समाज का निर्माण करना चाहते है जिसमें सभी व्यक्ति कम से कम बंधन महसुस करे। उदारवादियों की मान्यता है कि खुले समाज में ही सभी मनुष्य अपनी तर्क बुद्धि इच्छाओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु अपने अनुरूप विश्व को एकाग्र करेंगे। सामाजिक न्याय की प्रतिस्थापना में स्वतंत्रता पर बल देले वाले विचारकों में एडम स्मिथ, हर्बर्ट स्पेन्सर, फ्रेडरिक वॉन हॉयेक, रार्बट नोजिक एवं मिल्टन फ्रीडमैन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये प्रगतिशील विचारक जाति, धर्म, रंग, लिंग, क्षेत्र, भाषा व संस्कृति के आधार पर व्यक्तियों के बीच किसी भी प्रकार के विभेद के विरूद्ध हैं। ये प्रगतिशील विचारक यह मानकर चलते है कि सबके लिए समान नियम बना देने पर एक ऐसी समाज व्यवस्था का निर्माण होगा जिसमें सामाजिक न्याय की समस्या नहीं होगी। यह एक स्वचालित व्यवस्था होगी, जिसमें सभी मनुष्य अपनी योग्यता, क्षमता व सर्जनात्मकता के आधार पर स्वतः ही आवश्यक संसाध नों को प्राप्त कर लेंगे। विधि के समक्ष समान व इच्छानुरूप कार्य करने को स्वतंत्रत सभी मनुष्य शोषण, दमन व अत्याचार जैसी समस्याओं से स्वतः ही दूर हो जाऐंगे।

अठारहवीं शताब्दी के इंग्लैंड के राजनीतिक अर्थशास्त्रियों में एडम स्मिथ सबसे चर्चित थे जिन्होंने अपनी किताब 'द वेल्थ ऑफ नेशन्स' में बाजार की अर्थव्यवस्था को समझाने का प्रयास किया जो उस वक्त अपने शुरुआती दौर में थी। स्मिथ का तर्क था कि[6] बाजारी अर्थव्यवस्था व्यक्तियों में आदान-प्रदान या सौदों का एक लंबा क्रम है, जो अपनी क्रमबद्धता की वजह से खुद-ब-खुद एक कार्यशील और स्थिर व्यवस्था की स्थापना करती है। यह तब भी होता है जब करोड़ों के लेन-देन में शामिल व्यक्तियों में से कोई भी व्यक्ति इसकी स्थापना का इरादा नहीं रखता। प्रत्येक व्यक्ति अपने लाभ को बढ़ाने की सोचता है और ऐसा करते हुए वो जो भी करता है वो स्वत: ही समाज के या सभी के हित में होता है। इस प्रकार, ऐसा प्रतीत होता है कि कोई एक अदृश्य बल यहाँ काम करता है जो इन व्यक्तियों के लाभ की प्रवृत्ति को समाज के लाभ में बदल देता है। इस बल को स्मिथ ने 'अदृश्य हाथ' का नाम दिया। अत: उन्होंने तर्क दिया कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था, स्वयं लाभ से स्वचालित है और यह तब सबसे अच्छे से कार्य करती है जब हर व्यक्ति खरीददार और विक्रेता तर्कसंगत निर्णय लेते हैं जो उनके हित में होते हैं। स्मिथ ने 'अदृश्य हाथ' के विचार को इस तर्क के रूप में प्रयोग किया कि जब बाजार में व्यक्ति स्वयं लाभ के अनुसार काम करता है तो समाज को हर तरह से फ़ायदा होता है, क्योंकि यह अर्थव्यवस्था को बढ़ाता है और अधिक समृद्धि उत्पन्न करता है। यही कारण है कि स्मिथ ने 'खुले व्यापार' का समर्थन किया, एक ऐसा बाजार जो किसी भी प्रकार की राष्ट्रीय या अन्य रोकथाम से मुक्त हो। इस आर्थिक दार्शनिकता को फ्रांसीसी भाषा में 'लेस-ए-फेयर' भी कहा गया, जिसका अर्थ है, बाजार को 'अकेला छोड़ दिया जाए' या 'हस्तक्षेप न किया जाए'।[7] फ्रेडरिक वॉन हॉयेक ने कहा है कि सरकार को समाज कल्याण को दृष्टिगत कर बाजार अर्थव्यवस्था पर किसी भी प्रकार का अंकुश का विचार त्याग देना चाहिए, तभी उद्यमी मनुष्य अपने कल्याण के संसाधन स्वत: जुटा लेंगे।[8] इसी प्रकार का विचार व्यक्त करते हुए मिल्टन फ्रीडमैन ने कहा है कि सरकार को मात्र ऐसे कार्यों से सरोकार रखना चाहिए जिसे बाजार अर्थव्यवस्था नहीं संभाल पाती।[9] रार्बट नोजिक का तर्क है कि मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था में सफल उद्यमी व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की तुलना में अधिक संसाधन अर्जित कर लेते है, जो उनकी योग्यता, क्षमता व सर्जनात्मकता का प्रतिफल होती है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप एक न्यायपूर्ण विषमता पैदा होती है, जिसमें वितरण के स्तर पर सरकार द्वारा किसी भी प्रकार का परिवर्तन निश्चित रूप से अन्यायपूर्ण होगा, चाहे उसके पीछे समाज कल्याण की भावना का मनतव्य ही क्यो न दिया हो।[10] इस प्रकार हम देखते है कि इन विचारकों की दृष्टि में मुक्त पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सामाजिक न्याय की समस्या नहीं है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य बंधन रहित है। अपने विकास हेतु आवश्यक संसाधनों को एकत्रित करने में उसे अन्य अन्य व्यक्ति की अपेक्षा नहीं होती है। इसलिए इस व्यवस्था में शोषण, अत्याचार व दमन भी नहीं है। अत: सामाजिक न्याय के लक्ष्यों की पूर्ति स्वत: हो जाती है।

किसी राज्य या समाज को मुक्त इसीलिए कहा जाता है क्योंकि वहां हर नागरिक एक आजाद व्यक्ति है। आजाद समाज में लोग आर्थिक क्षेत्र में भी व्यावहारिकता के सिद्धांत के तहत नाकामी की बजाय कामयाबी की राह पर चलते हैं और वहां नाकामी या कामयाबी का फैसला उनके अपने व्यक्तिपरक मापदंडों से किया जाता है। अगर क्रियाशीलता के लिहाज से देखा जाए तो एक मुक्त समाज को एक व्यावहारिक समाज के तौर पर भी परिभाषित किया जा सकता है। क्योंकि इसमें एक व्यक्ति की गतिविधियों का अंतिम उद्देश्य अपनी खपत की जरुरतों को पूरा करना होता है और वह अन्य मामलों की तरह इसमें भी आजाद होता है। एक मुक्त समाज को उपभोक्ता के वर्चस्व वाले समाज के तौर पर भी परिभाषित किया जाता है, जिसके केन्द्र में बाजार तंत्र विद्यमान होता है।

विकासशील देशों में लोगों की धारणा अभी भी यही है कि बाजार धनी लोगों को और अधिक धनी तथा गरीबों को और अधिक गरीब बनाता है; यह भ्रष्टाचार एवं क्रोनी कैपिटलिज्म को बढ़ावा देता है तथा सामाजिक न्याय का विरोधी है। वास्तव में यह एक गलत धारणा है। भारत के सन्दर्भ में देखा जाये तो वास्तविकता यही है कि पिछले दो दशकों में यहाँ व्यापक तौर पर समृद्धि बढ़ी है और तकरीबन 25 करोड़ लोग गरीबी रेखा से बाहर निकले हैं। बावजूद इसके लोग अभी भी बाजार पर अविश्वास करते हैं। आंशिक तौर पर इसके लिए आलृथक सुधारकों को दोष दिया जा सकता है, जो प्रतिस्पर्धी बाजार की विशेषताओं अथवा धारणा को ब्रिटेन की मार्गरेट थैचर की तरह आम लोगों को नहह्ल बता सके।

1955 से 1991 के बीच समाजवादी अर्थव्यवस्था वाले अंधकारपूर्ण वर्षों, जिसे हम लाइसेंस राज के रूप में याद करते हैं, के समय हमारा जीवन नियंत्रित कीमतों द्वारा प्रभावित होता था। राजनीतिक तौर पर निर्धारित की गम्र कीमतें उत्पादकों को उनकी लागत निकालने की अनुमति नहह्ल देती थह्ल, जिससे अभाव की स्थिति बनी रहती थी और कालाबाजारी को बढ़ावा मिलता था। इस राजनीतिक मूल्य व्यवस्था के कारण 1989 में शक्तिशाली सोवियत संघ भी ढह गया।[11] कम्युनिस्ट सरकार का सभी फैक्ट्रियों और उत्पादन के अन्य साधनों पर स्वामित्व था। क्या उत्पादन करना है? कितना उत्पादन होना है? और कीमतें क्या होंगी, यह सभी कुछ सोवियत संघ के नौकरशाह तय करते थे, न कि बाजार। इसने लोगों को बर्बाद करने का काम किया। रूस की दुर्गति को देखते हुए दुनिया ने यही सीखा कि सरकार का काम बिजनेस नहह्ल है और उसे वृहद आलृथक नीतियों के मामले में न्यूनतम हस्तक्षेप करना चाहिए।

सब्सिडी, मूल्य नियंत्रण और सरकारी एकाधिकार से विकृति पैदा हो रही है और इससे जरूरतमंद आम लोगों को नुकसान उठाना पड़ रहा है। बाजार प्रतिस्पर्धा से कीमतें नियंत्रित होंगी, उत्पादों की गुणवत्ता बेहतर होगी और आम आदमी की आजादी बढ़ेगी। दुनिया भर में उपलब्ध साक्ष्य बताते हैं कि बिजनेस करने की स्वतंत्रता का उल्टा संबंध भ्रष्टाचार सूचकांक से है। इसका आशय यही है कि सर्वाधिक भ्रष्ट देश वह हैं जहां सरकारें बिजनेस पर नियंत्रण रखती हैं अथवा बाजार पर उनका बहुत अधिक हस्तक्षेप है। 2011 में दुनिया के 10 में से 7 सबसे कम भ्रष्ट देश बिजनेस फ्रीडम वाले देशों की सूची में शीर्ष 10 में शामिल थे। इनमें न्यूजीलैंड, लसगापुर, डेनमार्क, कनाडा, स्वीडन और फिनलैंड शामिल हैं। 10 सर्वाधिक भ्रष्ट देश इस सूची में सबसे निचले पायदान पर हैं। भारत को इसमें बहुत ही खराब 167वां स्थान मिला और भ्रष्टाचार सूचकांक में भी भारत 95वें स्थान पर है। स्कैंडिनेवियाम्र देशों जहां से भारत ने लोकपाल की धरणा ली है, में सर्वाधिक बिजनेस स्वतंत्रता है और वे सबसे कम भ्रष्ट हैं।[12] बावजूद इसके भारतीय सोचते हैं कि वे अपने गौरवपूर्ण लोकतंत्र के कारण आजाद हैं। बाजार व्यवस्था पूर्ण नहह्ल है, लेकिन किसी भी अन्य विकल्प से बेहतर है।

शोध परिकल्पना

1. प्रस्तावित शोध आलेख इस परिकल्पना से शुरू की गयी है कि नवउदारवादी नीतियों को लागू होने से सामाजिक न्याय के कार्यक्रमों पर क्या प्रभाव पड़ रहा हैं।
2. मुक्त बाजार व्यवस्था ने राज्य के सामाजिक न्याय के लक्ष्य को धूमिल कर दिया है। शासन की प्रतिबद्धता लोक कल्याणकारी कार्यक्रमों और सामाजिक न्याय के प्रति अब पहले जैसी नहीं हैं, जो दरिद्रता, गरीबी, बेरोजगारी, भूखमरी, बीमारी, कुपोषण जैसे समस्याओं से लोगों को बचाने के लिए प्रयासरत् था।
3. उदारीकरण की प्रक्रिया और लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था की जिम्मेदारियों के बीच अन्तर्विरोध की स्थिति उत्पन्न हो गयी है, जिसकी व्यापक पड़ताल समीचीन होगा।
4. उदारीकरण राज्य के अहस्तक्षेप की माँग करता हैं, जबकि सामाजिक न्याय का विचार राज्य की व्यापक और विस्तृत कल्याणकारी भूमिका की अपेक्षा करता हैं। ऐसे में दोनों विपरीत विचारों के तालमेल से शासन के द्वारा सामाजिक न्याय के लक्ष्य को पाना संभव है या नहीं।

शोध आलेख का उद्देश्य

1. प्रस्तावित शोध का उद्देश्य मुक्त बाजार व्यवस्था से सम्बंधित नीतियाँ भारतीय संविधान द्वारा घोषित सामाजवादी गाँधीवादी आर्दशों के अनुरूप सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए शासन द्वारा चलाए जा रहे लोककल्याणकारी कार्यक्रमों एवं बनाए जा रहे नीतियों को किस तरह प्रभावित कर रही हैं।
2. उदारीकरण की नीति और प्रक्रियाओं ने क्या भारत जैसे विकासशील देश जहाँ व्यापक पैमाने पर दरिद्रता, भूखमरी, बेरोजगारी, रोग, आश्रयहीनता जैसी विकराल समस्याएं हैं में सामाजिक न्याय के लक्ष्य और कल्याणकारी योजनाओं के प्रति शासन की प्रतिबद्धता को कम कर दिया है?
3. शोध का एक उद्देश्य यह भी पता लगाना है कि नवउदारवाद की बुनियादी मान्यताएं सामाजिक न्याय की अवधारणा के साथ तालमेल नहीं बैठा पा रही है।
4. सामाजिक न्याय पर आधारित समाज व्यवस्था की स्थापना के मार्ग में मुक्त बाजार व्यवस्था की नीतियाँ कैसे बाधक बन रही हैं? इन्हीं प्रश्नों की पड़ताल करना इस शोध का मुख्य उद्देश्य है।

शोध आलेख की पद्धति

प्रस्तुत शोध का अध्ययन द्वितीयक स्त्रोंतों के माध्यम से किया गया है है। इस अध्ययन में ऐतिहासिक, सैद्धान्तिक विश्लेषणत्मक, तुलनात्मक एवं नवीन पद्धतियों को अपनाते हुए शोध लेख को मौलिकता प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इस शोध कार्य में उपयोगी सामग्री विभिन्न सरकारी विभागों के योजनाओं के अभिलेखों, राष्ट्रीय एवं राज्यस्तरीय पुस्तकालयों, इन्टरनेट एवं शोध संस्थानों आदि में उपलब्ध, सामाचार पत्र-पत्रिकाएँ एवं अन्य प्रासंगिक सामग्रियों से प्राप्त किया गया है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि वर्तमान विश्व व्यवस्था में सामाजिक न्याय व स्वतंत्र बाजार व्यवस्था एक दूसरे का धुर विरोधी तत्व है। जहाँ एक तरफ मार्क्सवादी आर्थिक समानता के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक न्याय की वकालत करता है, वहीं दूसरी तरफ उदारवादी विचारक स्वतंत्र बाजार के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक न्याय व्यवस्था का समर्थन करता है। वैश्वीकरण के दौर में सामाजिक न्याय व स्वतंत्र बाजार व्यवस्था को साथ लेकर चलना विकासशील देशों के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य है। विकासशील देशों के लोगों का जीवन स्तर बहुत ही दयनीय है, इसलिए लोक कल्याण इनका परम दायित्व है। वहीं देश के विकास हेतु विश्व प्रतिस्पर्धा भी सामने खड़ी है जिसे भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है। भारत में तो सामाजिक न्याय का दिनों दिन राजनीतिकरण हो रहा है, जिसे राष्ट्र-निर्माण, समाज-निर्माण एवं सरकार-निर्माण के मार्ग में घातक माना जाएगा। समाजिक न्याय की अवधारणा लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा से जुड़ी हुई है। इसमें विभिन्न उपाश्रित वर्गों के कल्याण का दर्शन निहित है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि सामाजिक न्याय व मुक्त बाजार व्यवस्था एक-दूसरे का धूर विरोधी होते हुए भी विकासशील देशों के लिए दोनों को आत्मसात करना जरूरी है।

सन्दर्भ

1. भगत, आर०एम०, पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन, न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कम्पनी, जालन्धर, पृष्ठ-369।
2. मालवीय, चिन्तामणि, 'सामाजिक न्याय और सामाजिक परिवर्तन डॉ. अम्बेडकर के विशेष सन्दर्भ में', अम्बेडकर विमर्श और परिवर्तन, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, 1998, पृ. स. 92।
3. हार्नर, ओ.पी., 'सोशल जस्टिस', उद्धरत ओ.पी. गाबा पुस्तक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 1983, पृ. 3।
4. सिंह, रामगोपाल, 'सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष', राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2010, पृ. स. 27।
5. जाटव डी.आर., 'सामाजिक न्याय का सिद्धान्त', साहित्य सदन, जयपुर, 1993, पृ. 50।
6. जौहरी, जे. सी., 'समकालीन राजनीतिक सिद्धांत', स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा. लि. नई दिल्ली, 2002 पृ. स. 438।

7. गाबा, ओ.पी., 'डायमेंशन ऑफ सोशल जस्टिस', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1983, पृ. 3।
8. विम किमलिका, मल्टीकल्चरल सिटीजनशिप: ए लिवरल थियरी ऑफ माइनॉरिटी राइट्स, क्लेरैंडन प्रेस, ऑक्सफोड, 1996।
9. जोशी, अनुराग, "सम रिफ्लेक्शन्स ऑन द चेंजिंग कॉम्पलेक्शन ऑफ द स्टेट," 2003, प्रिन्ट्स हॉल ऑफ इंडिया, नई दिल्ली पृ. 47।
10. थॉमस पैंथम और केनेथ एल० डयुश्च (सम्पा.), पॉलिटिकल थॉट इन मॉडर्न इण्डिया, सेज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1986, पृ. स. 78।
11. डीयरलव एंड सांडर्स इन डेविड रिचर्ड्स एंड मारटीन जे० स्मिथ, गवर्नेन्स एंड पब्लिक पॉलिसी इन द यूनाइटेड किंगडम, ओ०यू०पी०, न्यू यॉर्क, 2002।
12. भ्रष्टाचार सूचकांक, इमनेस्टी इन्टरनेशनल रिपोर्ट, 20111।

भारत और ब्रिक्सः आतंकवाद पर साझा दृष्टिकोण

डॉ० प्रमोद कुमार

(सहायक प्राचार्य) राजनीति विज्ञान विभाग, एल.एन.एम.एस. कॉलेज, वीरपुर, बी.एन. मण्डल विश्वविद्यालय, मधेपुरा

शोध आलेख का सार

ब्रिक्स पाँच देशों ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका का एक समूह है। ये पाँचों देश विश्व की उभरती हुई अर्थव्यवस्था हैं। यह उल्लेखनीय है कि ब्रिक्स समूहों के पाँचों देश विश्व के प्रगतिशील देशों के एक अन्य संगठन G-20 समूह के भी सदस्य है। यद्यपि ब्रिक्स देश मूलतः विश्व के अर्थव्यवस्थाओं का आर्थिक सहयोग संगठन है, लेकिन यह राजनीतिक मुद्दों पर भी ठोस पहल करने की क्षमता रखता है। यदि ब्रिक्स देश आतंकवाद जैसे मुद्दें पर अपनी साझेदारी व सहयोग करे तो इसे बहुत हद तक कमजोर किया जा सकता है।

मूल शब्दः आतंकवाद, विदेश नीति, शिखर सम्मेलन, ब्रिक्स, अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, राष्ट्रमंडल आदि।

प्रस्तावना

ब्रिक्स 21 वीं सदी का अनोखा सहयोगी तंत्र है। पिछले दशक में ब्रिक्स ने बहुस्तरीय सहयोगी ढाँचा विकसित किया है। दक्षिण अफ्रीका के वर्ष 2011 में सम्मिलित होने से ब्रिक्स की ताकत बढ़ी है।[1] विभिन्न महाद्वीपों के देशों के सम्मिलित होने से ब्रिक्स के प्रतिनिधित्व और प्रभाव के विस्तार में वृद्धि हुई है। वर्तमान में पाँच ब्रिक्स देशों में विश्व का 30 प्रतिशत भूभाग तथा 43 प्रतिशत आबादी सम्मिलित है। विश्व का 18 प्रतिशत सकल घरेलु उत्पाद और कुल व्यापार का 15 प्रतिशत हिस्सा इन्हीं देशों में होता है। 2001 से 2011 के बीच इन पाँचों देशों के बीच व्यापार 28 प्रतिशत के तीव्र गति से बढ़ा है। इन देशों के बीच अब 230 अरब डॉलर का व्यापार होता है।[2]

ब्रिक्स देश अपनी अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन, स्वस्थ व टिकाऊ संवृद्धि और समावेशी, न्यायसंगत व स्वच्छ विकास के सन्दर्भ में समान चुनौतियों और समस्याओं का सामना कर रहें है। ब्रिक्स ने पाँचों देशों को विकास संबंधी अनुभवों को साझा करने का महत्वपूर्ण मंच प्रदान किया है। ब्रिक्स के पाँचों देशों ने ऐसे कई मुद्दों पर अपने विचारों को संरेखित किया है, जिनका सामना अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा किया जा रहा है। वे व्यापार, जलवायु परिवर्तन, खाद्य, उर्जा सुरक्षा और आतंकवाद जैसे क्षेत्रों में व्यापक सहयोग की तलाश में है।[3]

इस शोध पत्र में आतंकवाद के प्रति भारत और ब्रिक्स के साझे दृष्टिकोण को समझने का प्रयास किया गया है। भारतीय विदेश नीति की प्रमुख विशेषता है कि अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समाप्ति के लिए सभी देशों के साथ अधिक से अधिक सहयोग किया जाए। आतंकवाद के विरूद्ध युद्ध को किसी एक देश के राष्ट्रीय हितों के अनुसार संचालित नहीं किया जाए। सभी प्रकार के आतंकवाद की समाप्ति के लिए प्रयास किया जाए। अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की बुराई के विरूद्ध विश्व समुदाय को एकजुट करना तथा विश्व स्तर पर इस बुराई के विरूद्ध एक आन्दोलन आरंभ किए जाने का प्रयास करना। अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समाप्ति के लिए सभी देशों से सभी स्तरों -द्विपक्षीय, क्षेत्रीय, बहुपक्षीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय रूतर पर सहयोग करना।[4]

महत्वपूर्ण बिन्दुओं की चर्चा को तो 11 सितम्बर 2001 के बाद अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरूद्ध जो दृढ़ विश्व जनमत तथा वातावरण बना उसमें भारत ने दृढ़ तथा सहयोगी भूमिका निभाने का प्रयास किया। फिर 13 दिसम्बर 2001 में भारतीय संसद पर आतंकवादी हमले के बाद भारत ने और भी दृढ़ता तथा तेजी से आतंकवाद के विरूद्ध कार्य करने की नीति अपनाई। विश्व जनमत को अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरूद्ध पूर्णतः एकजुट करने तथा आतंकवाद समर्थक देशों विशेषकर पाकिस्तान के विरूद्ध आर्थिक, सामाजिक तथा सैनिक दबाव बनाकर विश्व से आतंकवाद को समाप्त करना भारतीय विदेश नीति की एक सर्वोच्च प्रथमिकता बनी।[5] भारत ने सभी मंचों - संयुक्त राष्ट्र संघ, राष्ट्रमण्डल, सार्क, ब्रिक्स तथा अन्य सभी संगठनों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरूद्ध आवाज उठाने तथा संगठित हाने की नीति अपनाई। भारत ने यह नीति अपनायी कि-

1. विश्व समुदाय के सभी देशों को अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद का सामना करने के लिए आगे आना चाहिए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरूद्ध सभी लोकतंत्रीय देशों एकजुट होना चाहिए।
3. अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरूद्ध एक अन्तर्राष्ट्रीय कानूनी व्यवस्था की रचना के पक्ष में विश्व जनमत तैयार करना तथा
4. अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवादियों के साथ-साथ इस बुराई की संम्पूर्ण संरचना की समाप्ति के लिए कार्य किया जाना चाहिए।

आतंकवाद के खिलाफ ब्रिक्स ने एक महत्वपूर्ण मंच प्रदान किया है, जिसमें विशेषकर भारत के द्वारा विभिन्न सम्मेलनों में आतंकवाद के सभी प्रकारों की निन्दा की गई है। वर्ष 2009 में येकातेरिनबर्ग (रूस) में आयोजित पहले शिखर सम्मेलन की घोषणा में कहा गया है, "हम सभी रूपों और अभिव्यक्तियों में आतंकवाद की कड़ी निन्दा करते है और दोहराते है कि किसी भी कार्य के लिए या किसी कारण से आतंकवाद का कोई औचित्य नहीं हो सकता है।[6]"

2009 के बाद से हुई सभी घोषणाओं ने अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद का मुकाबला करने के लिए बहुपक्षीय दृष्टिकोण के समन्वय में संयुक्त राष्ट्र और इसके चार्टर की केन्द्रीय भूमिका पर जोर दिया गया है। इसके तहत, उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद पर व्यापक समझौते (सीसीआईटी) के लिए अपना समर्थन बनाए रखा है और अन्य देशों से बार-बार समझौते के निर्णय को अपनाने का आग्रह किया है। समझौते में कहा गया है, "आतंकवाद के कृत्यों को रोकने के लिए प्रभावी उपाय करने और यह सुनिश्चित करने का संकल्प लिया गया कि आतंकवादी कृत्यों के अपराधी अपने प्रत्यर्पन या अभियोजन प्रदान करके अभियोजन और सजा से बच नहीं सकते हैं। समझौते में कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति जो निश्चित कृत्य करता है, उसे आतंकवादी माना जाएगा और राज्यों को उन्हें उचित दण्ड देना होगा। आतंकवाद के सभी प्रकारों की निन्दा करनी चाहिए और आतंकवाद के खिलाफ सभी राष्ट्रों को एकजुट होना चाहिए। ब्रिक्स राष्ट्रों ने 2014 से समझौते के कार्यान्वयन का आह्ववान किया है क्योंकि सदस्य देशों को बार-बार आतंकवादी खतरों का सामना करना पड़ रहा है।[7]

ब्रिक्स देशों ने आतंकवाद के वित्तपोषण की संभावना को रोकने के उपायों को स्थापित करने के लिए अपना समर्थन व्यक्त किया है। यह उनके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय से अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के खिलाफ व्यापक समझौते का दृष्टिकोण (सीसीआईटी) को अपनाने का आग्रह करने के सन्दर्भ में हैं। 2012 में ळ.20 की फाइनेंशियल एक्शन टास्क फोर्स ने धन-शोधन और आतंकवादी वित्तपोषण के साथ ही सामूहिक विनाश के हथियारों के प्रसार के वित्तपोषण से निपटने के लिए एक व्यापक ढ़ाँचे के निर्माण के लिए कुछ सिफारिशें की। हथियारों, सेवाओं आदि की खरीद के लिए वित्तपोषण समूहों को समाप्त करने दिशा में काम करने के इस अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास को ध्यान में रखते हुए ब्रिक्स ने 2015 में धन-शोधन का विरोध और आतंकवाद के वित्तपोषण का मुकाबला करने के लिए ब्रिक्स परिषद् स्थापित की।[8]

वर्ष 2012 में सीरियाई संकट में वृद्धि और देश में आईएसआईएस के बढ़ते प्रभाव के साथ, ब्रिक्स देशों ने सभी देशों से हिंसा को समाप्त करने का आह्ववान किया। पाँचवें ब्रिक्स सम्मेलन में थेकविनी घोषणा के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रीय विषयों पर भी विचारों का आदान-प्रदान किया गया जैसे-सीरिया में गंभीर होता मानवीय संकट, मध्यपूर्व में शांति प्रक्रिया, अफगानिस्तान में स्थायित्व व लोकतंत्र तथा अफ्रीकी देश कांगो में राजनीतिक स्थिरता। सदस्य देशों ने सीरिया के मानवीय संकट के समाधान के साथ-साथ वहाँ की समस्या के लिए राजनीतिक समाधान का समर्थन किया। सदस्य देशों ने आतंकवाद से मुक्त एक स्थायी और शांतिप्रिय अफगानिस्तान की मांग को दोहराया तथा ईरान की आणविक समस्या के समाधान के लिए कुटनीतिक प्रयासों का समर्थन किया। ब्रिक्स ने शांतिपूर्ण अफगानिस्तान के निमार्ण के लिए अपना समर्थन दिया है। अफगानिस्तान पांच ब्रिक्स राष्ट्रों में से तीन के सीमा से लगा है और वह इस क्षेत्र के समग्र स्थिरता में योगदान देने वाला एक सुरक्षित राष्ट्र होगा। एक स्थिर अफगानिस्तान के होने से आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई में भी भारत के लिए फायदा है।

सातवां शिखर सम्मेलन वर्ष 2015 में उफा (रूस) में आयोजित की गई। इसमें ब्रिक्स ने आतंकवाद, नशीली दवाओं का व्यापार, संगठित अपराधों, समुद्री डकैती आदि की चुनौतियों पर गंभीर चिंता व्यक्त की।[9] सदस्यों ने समुद्री संचार मार्गों की सुरक्षा के साथ-साथ आतंकवाद के प्रत्येक रूप को समाप्त करने के लिए अपनी वचनवद्धता दुहराई। साथ ही साथ वाह्य अंतरिक्ष के शांतिपूर्ण उपयोग को सुनिश्ति करने का संकल्प लिया गया। सदस्य देशों ने सीरिया के गृह युद्ध तथा वहां इस्लामिक स्टेट की विवेकहीन हिंसा पर निन्दा व्यक्त की। इसी तरह माली, कांगो तथा सोमालिया के घरेलु संकटों पर चिंता व्यक्त की तथा उसके राजनीतिक समाधान की मांग को दोहराया।

आतंकवादी समूह अपने लक्ष्यों की पूर्ति करने के लिए नये सदस्यों की भर्ती के साथ-साथ अपने समर्थकों से संवाद करने के लिए इंटरनेट का उपयोग करते है, इसके लिए ब्रिक्स ने सूचना सुरक्षा पर सहयोग बढ़ाने पर ध्यान देने की कोशिश की है। सरकारी कामकाज को वाधित करने में हैकिंग और मालवेयर के उपयोग का खतरा बना रहता है, जिसके रोक-थाम के लिए साईबर सुरक्षा पर मजबूत सहयोग की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया है। आईएसआईएल जैसे आतंकी समूहों की घटनाओं के बढ़ने के साथ, जो सोशल मीडिया का उपयोग करके युवाओं को समूह में शामिल होने का प्रलोभन देते है, जो लोग अपने बल पर आतंकी हमलों में शामिल होने के साथ-साथ दूसरों को लुभाने के लिए प्रचार सामाग्री वितरित करने में समर्थ है, उनके लिए ब्रिक्स ने आतंकवाद के प्रसार का मुकावला करने के लिए सूचना प्रद्योगिकी का प्रभावी ढ़ंग से उपयोग करने की आवश्यकता को शामिल किया है।

आठवां शिखर सम्मेलन 15-16 अक्टूबर, 2016 को गोवा (भारत) में आयोजित किया गया जिसकी अध्यक्षता भारत ने की थी। भारत ने सितम्बर, 2016 में दिल्ली में ब्रिक्स आतंकवाद विरोधी संयुक्त कार्य समूह की पहली बैठक की मेजवानी भी की। दशकों से आतंकवाद की मार झेल रहे भारत को इस सम्मेलन के दौरान आतंकवाद के मसले पर एक राय बनाने में कामयाबी मिली है। यह सम्मेलन पूरी में हुए आतंकवादी हमले के महिने भर के भीतर हुआ। भारत ने इस हमले के लिए पाकिस्तान स्थित आतंकवादी संगठन 'जैश-ए-मोहम्मद' को जिम्मेदार ठहराया और इसको लेकर पाकिस्तान को कुटनीतिक तौर पर अलग-थलग करने के लिए अभियान चलाया। आतंकवाद को पूरी दुनिया के लिए खतरा बताते हुए इससे कराई से निपटने पर जोर दिया। ब्रिक्स के मंच से पाकिस्तान पर निशाना साधाते हुए उसे आतंकवाद की जन्मभूमि करार दिया। ब्रिक्स घोषणापत्र में आतंकवाद की निन्दा की गई और कहा गया की यह उन देशों की सरकारों की जिम्मेदारी है कि अपनी जमीन से किसी तरह की आतंकवादी गतिविधियों को रोकें।[10] इस सम्मेलन के दौरान भारत ने सार्क के बजाय बिम्सटेक देशों के राष्ट्राध्यक्षों को न्योता देकर एक बार फिर पाकिस्तान को अलग-थलग करने की कोशिश की। भारत ने इस्लामाबाद में हो रहे सार्क सम्मेलन का बहिष्कार किया तो अन्य देशों ने भी इसमें हिस्सा नहीं लिया। पाकिस्तान इससे अलग-थलग नजर आया और फिर ऐसा माना जाने लगा कि भारत बिम्सटेक को ज्यादा बढ़ावा देगा क्योंकि इसमें पाकिस्तान शामिल नहीं है। यह भारत के कुटनीतिक प्रयासों की जीत है।

4 सितम्बर, 2017 को जारी जियामेन घोषणा में भी आतंकवादी हमला चाहे वह ब्रिक्स देशों में हुआ हो या पूरे विश्व में इसकी निन्दा की गई। सदस्य देशों ने संयुक्त राष्ट्र के ढाँचे के अन्तर्गत अन्तराष्ट्रीय कानून के अनुसार आतंकवाद से मुकाबला करने के लिए ठोस प्रयास किये जाने का आग्रह किया है। सभी सदस्यों के द्वारा द्वितीय आतंकवाद विरोधी कार्य समूह के बैठक में आतंकवाद के खिलाफ आपसी सहयोग को और मजबूत बनाने का निर्णय लिया गया।

11 वें ब्रिक्स शिखर सम्मेलन ब्रासीलिया ब्राजील में आयोजित किया गया। संयुक्त घोषणापत्र में आतंकवाद के सभी रूपों व अभिव्यक्तियों की निन्दा की गई और इस बात पर प्रकाश डाला गया कि इसे किसी भी धर्म, राष्ट्रीयता या सभ्यता के साथ नहीं जोरा जाना चाहिए। इसमें आतंकी घटनाओं को उनके प्रेरक कारणों पर ध्यान दिये बिना आपराधिक और अन्यायपूर्ण कृत्य के रूप में चिन्हित किया गया।[11] आतंकवादी गतिविधियों के लिए सूचना एवं संचार प्रौद्यौगिकी (ICT) के दुरूपयोग और आतंकवादी नेटवर्क तथा आतंकी कारवाईयों के अवैध वित्तपोषण से निपटने की आवश्यकता पर बल दिया गया। इसमें आतंकी वित्तपोषण पर नियंत्रण के लिए वित्तीय कारबाई बल के महत्व वित्तपोषण पर भी बल दिया। ब्रिक्स आतंकवाद विरोधी संयुक्त कार्य समूह की चौथी बैठक में सदस्य देशों ने निम्नलिखित पांच विषयों पर उप-कार्य समूहों के गठन का भी निर्णय लिया गया है- आतंकवादी वित्तपोषण, आतंकवादी उद्देश्यों के लिए इंटरनेट का उपयोग, कऋरपंथ के प्रसार का प्रतिकार, विदेशी आतंकवादी लड़ाकों का मुद्दा और क्षमता निर्माण। ब्रासीलिया घोषणापत्र धन-शोधन पर रोक/आतंकी वित्तपोषण से मुकाबले जैसे प्रमुख मुद्दों पर ब्रिक्स देशों को संवाद के लिए प्रोत्साहित करता है और इसने एएमएल/सीएफटी पर ब्रिक्स परिषद् की स्थापना का प्रस्ताव किया है। भारत ने इस तथ्य को को उजागर किया है कि आतंकवाद के कारण विश्व अर्थव्यवस्था को एक ट्रिलीयन डॉलर का आर्थिक नुकसान हुआ है। ब्रिक्स देश इस हानि के सर्वाधिक शिकार हुये हैं क्योंकि इसने विकासशील देशों की आर्थिक वृद्धि को 1.5 प्रतिशत तक धीमा कर दिया है। इस प्रकार आतंकवाद के कारण हो रही आर्थिक छति से निपटने के लिए ब्रसीलिया घोषणापत्र अत्यंत महत्वपूर्ण है।

अध्ययन का उद्देश्य

- प्रस्तावि शोध का उद्देष्य ब्रिक्स के लक्ष्यों को व्यावहारिक धारातल पर उतारना।

ख प्रस्तुत शोध का उद्देष्य लम्बे समय से लंबित भविश्यलक्षित योजनाओं को गति देना।

- ब्रिक्स के मंचों से आतंकवाद जैसे मुद्दें को उठाना।
- संयुक्त कार्य समूह जिसका गठन आतंवाद से लड़ने हेतु किया गया है, के कार्य प्रणाली का मूल्यांकन करना।

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध अध्ययन द्वितीयक स्त्रोंतों के माध्यम से ऐंतिहासिक, सैन्तिक विष्लेशणत्मक, तुलनात्मक एवं नवीन पद्धतियों को अपनाते हुए शोध लेख को मौलिकता प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इस शोध कार्य हेतु आवष्यक सामग्री विदेष मंत्रालय, भारत सरकार, (दिल्ली) के अभिलेखों, राष्ट्रीय एवं राज्यस्तरीय पुस्तकालयों, इन्टरनेट एवं शोध संस्थानों आदि में उपलब्ध, सामाचार पत्र-पत्रिकाएँ एवं अन्य प्रासंगिक सामग्रियों का अध्ययन किया गया है ताकि शोध के निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके।

परिकल्पना

शोध कार्य को सही दिषा देने तथा उचित निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए परिकल्पना का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इस शोध कार्य में निम्नलिखित परिकल्पना प्रस्तावित है:-

- ब्रिक्स राजनीतिक एवं आर्थिक रूप से मजबूत देषों का संगठन है, जो आतंकवाद जैसे अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के हल हेतु सषक्त हथियार बन सकता है।
- ब्रिक्स देषों में भारत-चीन के बिगड़ते संबंधों से आतंकवाद के पोषक देशों को सह मिल रहा है जो इस संगठन की सफलता को भविष्य में बाधि त करेगा।
- संयुक्त कार्य समूह जिसका गठन आतंवाद से लड़ने हेतु किया गया है, के कार्य प्रणाली का मूल्यांकन करना जिससे आतंकवाद हतोत्साहित होगा।

निष्कर्ष

ब्रिक्स राष्ट्रों में आतंकवाद की समस्या से सबसे अधिक भारत जूझ रहा है। 14 फरवरी, 2019 को पूलवामा में हुआ आत्मघाती हमला इसका ज्वलंत उदाहरण है, जिसकी जिम्मेदारी पाकिस्तान स्थित इस्लामिक आतंकवादी समूह जैश-ए-मोहम्मद ने ली। भारतीय वायुसेना के द्वारा इसके जवाब में बालाकोट में जैश-ए-मोहम्मद संचालित आतंकवादी शिविर पर हमला किया गया तथा आतंकवादी समूहों को कड़ा संदेश दिया कि भारत हर प्रकार की आतंकवादी गतिविधियों की निन्दा करता है, साथ ही साथ उससे मुकाबला करने के लिए भी तैयार ब्रिक्स देशों को आतंकी वित्तपोषण नेटवर्क पर अंकुश लगाने और कऋरपंथ के प्रसार के लिए आईसीटी के उपयोग पर नियंत्रण हेतु एक साझा कार्य योजना का निर्माण करना चाहिए। ब्रिक्स देशों को समानांतर वित्तीय अवसंरचना के निर्माण पर भी ध्यान केन्द्रित करना चाहिए जिसमें अवैध वित्तपोषण पर रोक के लिए आतंक विरोधी अधिदेश शामिल हो। ब्रिक्स आतंकवाद के खतरें के विरूद्ध समाज के अत्यंत वृहत खण्ड को संवेदनशील बनाने के लिए एक मंच प्रदान करता है। यह एक मजबूत संगठन के रूप में कार्य कर रहा है जो पांच देशों को अपने संबंधों को मजबूत करने और वैश्विक प्रभाव बनाने में मदद करता है। ब्रिक्स देशों को आतंकवाद और कऋरपंथी विचारध ारा का मुकाबला करने के लिए उठाए गये कदमों के रेखांकित करने जरूरत है।

सन्दर्भ

1. विल्सन, डोमिनिम एण्ड पुरूशोतमन, रूपा : ड्रिमिंग विद ब्रिक्स: द पैथ टू 2050, गोल्डमैन सैच।
2. सिंह, रहिस, वैश्विक संबंध, पियर्सन, पृष्ठ-323।
3. मलिक, अषोक : ब्रिक्स अलायन्स लुकिंग फॉर सिमेन्ट।
4. घई, यू.आर., भारतीय विदेश नीति, पृष्ठ-61।
5. वहीं, पृष्ठ-62।
6. फस्ट सम्मिट फोर इमर्जिंग जेन्ट्स, बी.बी.सी. न्यूज, 16 जून, 2009।
7. प्रोग्राम: VI ब्रिक्स सम्मिट, ब्राजीलियन मिनिस्टरी ऑफ इक्सटर्नल रिलेशन्स, 2014।
8. उफा घोषणापत्र, 2015।
9. वहीं, 2015।
10. स्टेटमेंट ऑन टेरर इन ब्रिक्स डिक्लिरेशन, 17 अक्टूबर, 2016।
11. ब्राजीलिया घोषणापत्र, 2019।

लोकसभा चुनाव 2014 में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी

डॉ० विजया सिंह

(एम.ए., पीएच-डी- राजनीति विज्ञान), पटना विश्वविद्यालय, पटना

शोध आलेख का सार

चुनाव की प्रक्रिया ऐतिहासिक रूप से लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था का सर्वाधिक सरल एवं महत्वपूर्ण सूचक है। यह राजनीतिक समाजीकरण एवं राजनीतिक सहभागिता को सुनिश्चित करने वाला जटिल घटनाक्रम है जो न सिर्फ सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्थाओं को प्रभावित करता है, बल्कि उससे स्वयं भी प्रभावित होता है। लोकसभा का चुनाव भारतीय लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था का आधार स्तम्भ है। इस चुनाव के माध्यम से ही देश के सर्वोच्च पद पर आसिन प्रधानमंत्री का चुनाव होता है। इसलिए देश में इस चुनाव का महत्व सबसे ज्यादा है। देश में सम्पन्न 14वीं लोकसभा चुनाव कई मायने में अलग है। इस चुनाव में महिलाओं की राजनीतिक प्रतिनिधित्व में वृद्धि हुई है। साथ ही महिलाओं ने इस चुनाव में बढ़-चढ़कर अपनी भागीदारी सुनिश्चित की है। समकालीन राजनीतिक व्यवस्थाओं की संरचना, संचालन प्रक्रिया एवं विस्थापन को समझने हेतु चुनाव का व्यवस्थित अध्ययन उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

मूल शब्दः चुनाव, संसदीय व्यवस्था, संघीय व्यवस्था, लोकसभा, राजनीतिक भागीदारी, महिला सशक्तिकरण, लोकतंत्र।

प्रस्तावना

भारत संसदीय एवं संघीय व्यवस्था पर आधारित एक संवैधानिक लोकतंत्रात्मक गणराज्य है, जिस के हृदय में नियमित, स्वतंत्र एवं न्यासंगत चुनाव के प्रति गहरी निष्ठा है। भारतीय जनता ने राष्ट्रीय स्तर पर 16 एवं राज्य स्तर पर करीब अढ़ाई सौ से भी अधिक चुनावों के सफल संपादन के द्वारा लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में अपने दृढ़ विश्वास का प्रमाण दिया है। भारतीय संविधान के भाग-15 में उल्लेखित अनुच्छेद 324-329 तक में चुनाव की प्रक्रिया से सम्बन्धित संवैधानिक प्रावधान किये गये हैं।[1] चुनाव की प्रक्रिया को व्यवहारिक रूप देने वाले घटकों में निर्वाचन आयोग, राजनीतिक दलों एवं मतदाताओं की अहम् भूमिका होती है।

भारत में अबतक 17 लोकसभा चुनाव सम्पन्न हो चुके है। 16वीं लोकसभा के लिए आम चुनाव 7 अप्रैल से 12 मई 2014 तक कुल 9 चरणों में संपन्न हुए तथा मतगणना 16 मई को हुई।[2] इस के लिए भारत के स भी (543) संसदीय क्षेत्रों में वोट डाले गए। ऐसा चुनाव अब तक के इतिहास में सबसे लंबा कार्यक्रम वाला चुनाव था। यह पहली बार हुआ जब देश में 9 चरणों में लोकसभा चुनाव सम्पन्न हुए। 5 मार्च, 2014 को मुख्य निर्वाचन आयुक्त वी0ए स0 संपथ ने चुनाव कार्यक्रमों की तारीकों और तैयारियों का ऐलान किया। 7 अप्रैल को पहले, 9 अप्रैल को दूसरे, 10 अप्रैल को तीसरे, 12 अप्रैल को चौथे, 17 अप्रैल को पाँचवें, 24 अप्रैल को छठे, 30 अप्रैल को सातवें, 7 मई को आठवें तथा 12 मई को नवें चरण का मतदान संपन्न हुआ। वर्ष 2019 में 17वीं लोकसभा चुनाव सम्पन्न हुआ है।

पहले चरण के मतदान में असम और त्रिपुरा की एक-एक सीट पर मतदान हुए इसमें क्रमशः मतदान का प्रतिशत 72.5 और 84 फीसदी रहा। द्वितीय चरण में नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय तथा मणिपुर राज्यों में 72% लोगों ने अपने मताधिकार का प्रयोग किया। छात्र संगठनों के बंद के कारण मिजोरम में चुनाव 11 अप्रैल को संपन्न हुआ। यहां पर 60% लोगों ने अप ने मताधिकार का प्रयोग किया। तीसरे चरण का मतदान 10 अप्रैल को 91 सीटों पर हुआ। इस चरण में केरल, दिल्ली, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, झारखण्ड, तथा जम्मू में 65% मतदान हुआ। चौथे चरण में गोवा, असम, त्रिपुरा तथा सिक्किम में 77% मतदान हुआ। पाँचवे चरण में कुल 121 सीटों पर मतदान हुआ। इस चरण में उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, जम्मू और कश्मीर, मध्य प्रदेश तथा झारखण्ड राज्यों में 66% मतदान हुआ, छठे चरण में 12 राज्यों के कुल 117 सीटों पर मतदान हुआ, जिनमें राजस्थान, तमिलनाडु, बिहार तथा मध्य प्रदेश में 62.23% मतदान हुआ। सातवें चरण में कुल 89 सीटों पर मतदान हुआ। चुनाव आयोग के अनुसार इस चरण में गुजरात की सभी 26 सीट पर 62% मतदान हुए। नवगठित राज्य तेलंगाना के कुल 17 सीटों पर 70% वोट पड़े तथा पंजाब की कुल 13 सीटों के लिए कुल 73% मतदान हुए। आठवें चरण में कुल 64 सीटों पर मतदान हुआ। चुनाव आयोग के अनुसार इस चरण में कुल सात राज्यों में चुनाव हुए। आठवें चरण के साथ ही 16वीं लोकसभा की 543 में से 502 सीटों के लिए यानी 92 प्रतिशत मतदान सम्पन्न हो गया। नवमें एवं अंतिम चरण में कुल 41 सीटों पर मतदान हुआ। इस बार चुनाव के सभी नौ चरणों में कुल मिलाकर 66.38% मतदान हुआ, जो लोकसभा चुनाव में अबतक का सर्वाधिक मतदान है।[3]

भारत के चुनाव आयोग के मुताबिक 16वीं लोकसभा चुनाव में 81.45 करोड़ लोग मतदान के पात्र थे। इस चुनाव में कुल 66.38% मतदाताओं ने अपने मत का प्रयोग किया, जिसमें 67.17% पुरूष मतदाता और 65.71% महिला मतदाता थी। कुल मिलाकर 93 लाख मतदान केन्द्रों में 1.4 मिलियन आई.वी.एम.

थीं। वोटर वेरीफाएबल पेपर ऑडिट ट्रेल (वीवीपैट) प्रणाली जो ईवीएम स्लिप के निर्माण से प्रत्येक वोट डालने के लिए सक्षम बनाता है, को लखनऊ, गांधीनगर, बंगलोर दक्षिण, चेन्नई सेंट्रल, जादवपुर, रायपुर, पटना साहिब और मिजोरम के आठ निर्वाचन क्षेत्रों में पेश किया गया था। इस के अलावे, मतदान केन्दों पर नेत्रहिनों के लिए ब्रेल मतपत्र की व्यवस्था की गई थी। इस चुनाव में 11 लाख सिविल सेवकों और 5.5 मिलियन नागरिक कर्मचारियों को चुनाव कार्य में लगाया गया था। यह पहला चुनाव था जिसमें "ऊपर से कोई भी विकल्प" नहीं था और अनिवासी भारतीयों को वोट देने की अनुमति थी; हालाँकि केवल भारत में ही था।[4]

चुनाव के परिणामस्वरुप 16 मई 2014 को हुई मतगणना में भाजपा को कुल 282 सीटें प्राप्त हुई। यह संख्या 545 सदस्यी लोकसभा में आधी संख्या यानि 272 से अधिक थी। लोकसभा के 543 सदस्यों का निर्वाचन होता है, जबकि दो सदस्य राष्ट्रपति द्वारा आँग्ल भारतीय समुदाय से नामित होते है। भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में राजग 336 सीटों पर जीत हासिल की। भाजपा ने पिछले 30 वर्षों के दौरान लोकसभा चुनाव में अपने दम पर बहुमत हासिल करने वाली पहली पार्टी बनकर उभरी। इससे पूर्व 1984 के चुनाव में इंदिरा गांधी के हत्या के बाद राजीव गांधी के नेतृत्व में काँग्रेस ने 417 सीटें जीती थी।[5] परंतु 16वीं लोकसभा चुनाव में काँग्रेस को मात्र 44 सीटें प्राप्त हुई और यूपीए को मात्र 60 सीटें। इस चुनाव में पश्चिम बंगाल से सबसे ज्यादा 13 महिला सांसद जीतकर सदन पहुँची, जबकि उत्तर प्रदेश जैसे बड़े राज्य से मात्र 11 महिला सांसद जीत दर्ज की। इस बार यानी 16वीं लोकसभा चुनाव में 1300 से अधिक महिला उम्मीदवार मैदान में थीं, लेकिन 61 चुनाव जीत पाई। पीआरएस लेजिसलेटिव रिसर्च के अनुसार 61 महिलाएं इस बार चुनाव में जीत दर्ज करने में सफल रहीं।

2014 के लोकसभा चुनाव में जीत दर्ज करने वाली प्रमुख महिला उम्मीदवारों में सोनिया गांधी, सुषमा स्वराज, उमा भारती, सुमित्रा महाजन, मीनाक्षी लेखी, हेमा मालिनी, रंजीता रंजन, डिम्पल यादव, पुनम महाजन, वीणा देवी, रमा देवी, अनुप्रिया पटेल, हरसिमरत कौर बादल, सुप्रिया सुले शामिल है। 2009 के चुनाव में काँग्रेस से 26 महिलाएं चुनकर लोकसभा पहुंची थी, जबकि इस बार इस दल से केवल चार महिलाएं सांसद निचले सदन में पहुंची हैं। पिछले चुनाव में भाजपा से 13 महिला सांसद थी, जबकि इस बार इनकी संख्या बढ़कर 25 हो गई है। काँग्रेस ने इस बार 60 महिलाओं को चुनावी मैदान में उतारा था, जबकि भाजपा ने 38 महिला प्रत्याशियों को ही पार्टी का टिकट दिया था। आम आदमी पार्टी भी इस मामले में ज्यादा अलग नजर नहीं आई और देशभर में खड़े उस के करीब 426 उम्मीदवारों में 38 ही महिलाएं थीं।[6]

भारत के बीते 63 वर्षों के संसदीय इतिहास में हमारी संसद में महिला सांसदों की संख्या 1952 के प्रथम लोकसभा चुनाव में 22 के मुकाबले 39 बढ़कर 2014 के लोकसभा चुनाव में 61 हो गई है। दूसरे लोकसभा चुनाव में खड़ी होनेवाली महिला उम्मीदवारों में 48.89% ने जीत दर्ज की थी। इस चुनाव में 45 उम्मीदवारों में से 22 चुनाव जीतने में सफल रही। तीसरे लोकसभा चुनाव में 46.97%, चौथे चुनाव में 43.28% और पाँचवें चुनाव में 24.49% महिलाओं ने चुनाव में जीत दर्ज की थी। छठे चुनाव में 27.14% महिला उम्मीदवारों ने जीत दर्ज की थी। सातवें चुनाव में 19.58%, आठवें चुनाव में 25.15%, नौवें चुनाव में 14.64%, दसवें चुनाव में 11.51%, 11वें चुनाव में 6.68%, 12वें चुनाव में 15.69%, 13वें चुनाव में 17.25%, 14वें चुनाव में 12.68% और 15वें लोकसभा चुनाव में खड़े होने वाली महिला प्रत्याशियों में 10.61% ने जीत दर्ज की। वर्ष 2009 के चुनाव में 556 महिला चुनावी समर में उतरी थी और इनमें से 59 जीत दर्ज करने में सफल रही। यदि वृद्धि की रफ्तार यही रही तो 179 के आंकड़े को छूने में करीब ढाई सौ साल लग जाएंगे और तब तक हम इन मामलों में अन्य देशों से बहुत पीछे खिसक जाएंगे।[7]

2014 के लोकसभा चुनाव में आधी आबादी यानि महिला मतदाताओं को लुभाने में कोई भी पार्टी पीछे नहीं रहीं। कई राजनीतिक दलों ने महिला सशक्तिकरण, लैंगिक समानता कायम करने, बेहतर सुरक्षा और रोजगार मुहैया करने जैसे वादे जरूर किये लेकिन महिलाओं की सुरक्षा का मुद्दा चुनाव प्रचार के दौरान उतना महत्वपूर्ण नहीं रहा। हालांकि भाजपा के प्रधानमंत्री उम्मीदवार नरेन्द्र मोदी और काँग्रेस का नेतृत्व कर रहे राहुल गांधी ने अपने भाषण में महिला की सुरक्षा और सशक्तिकरण की बातें की लेकिन इस के लिए कोई ठोस योजना नहीं दी। चुनावों में महिलाओं को उम्मीदवार बनाने में सब कंजूसी कर गये। पिछले चुनावों की तरह इस चुनाव में भी महिला उम्मीदवारों की संख्या काफी कम रही। भाजपा और काँग्रेस जैसे प्रमुख दलों ने भी उम्मीदवारी में महिलाओं को 10% से अधिक प्रतिनिधित्व नहीं दिया। उनमें भी जिन महिलाओं को टिकट दिए गए थे, उनमें या तो वह है जो सालों सांसद रही है और लंबे समय से राजनीति में सक्रिय है या किसी नेता की पत्नी, बेटी या रिश्तेदार है, जिनका राजनीतिक परिवारों से किसी किस्म का ताल्लुक है या फिर वे मशहूर फिल्मी हस्ती है।

16वीं लोकसभा चुनाव में महिला उम्मीदवारों की इतनी निराशाजनक तस्वीर और संसद में मात्र सांकेतिक उपस्थिति के पीछे सबसे पहले तो सामाजिक व्यवस्था जिम्मेदार है, जहां महिलाओं को दूसरे दर्जे का समझा जाता है और उन्हें घर के कामकाज तथा बच्चे के पालन पोषण तक ही सीमित रखा जाता है। दूसरी ओर यह धारणा जिम्मेदार है कि राजनीति सिर्फ पुरुषों का क्षेत्र है। आमतौर पर यह तर्क दिया जाता है कि महिलाएं राजनीति नहीं समझती है, वे मतदाता को प्रभावित नहीं कर सकती, चुनाव अभियान के लिए धन या अन्य संसाधन नहीं जुटा सकती और चुनाव नहीं जीत सकतीं। इतना ही नहीं मतदाता भी कई पूर्वाग्रह के शिकार हो जाते हैं। बहुतों को यह लगता है कि राजनीति में महिलाएं बड़े फैसले लेने में या नीतियाँ बनाने में सक्षम नहीं होंगी। विडंबना यह है कि ये बाते पुरुष उम्मीदवार को चुनने वक्त नहीं देखी जाती।

महिलाओं के प्रति इस मानसिकता को बदलने के लिए शिक्षा व राजनीतिक जागरूकता तो जरूरी है ही, लेकिन सबसे अहम महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ाना जरूरी है। जिस तरह का रवैया पिछले वर्षों में केन्द्र व राज्यों में सक्रिय पार्टियों ने दिखाया है, उसमें यह संसद और विधानसभाओं में महिलाओं के लिए सीटों का आरक्षण करके ही संभव हो पाएगा।

ग्रामीण क्षेत्र में इस का एक सफल उदाहरण दिखता है। संविधान के 73वें और 74वें संशोधन के अंतर्गत पंचायती और शहरी निकायों में सभी स्तरों पर एक तिहाई पद महिलाओं के लिए आरक्षित किया गया। कई राज्यों में तो गांवों की पंचायतों में महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों की संख्या बढ़ाकर 50% कर दी गई है। यह कदम काफी असरदार साबित हुआ है। इस के चलते महिलाओं का स्थानीय स्वशासन और पंचायतों के कामकाज में योगदान काफी बढ़ा है।

काँग्रेस, भाजपा और वामपंथी पार्टियों ने संसद और विधानसभा में महिलाओं के लिए 33 आरक्षण की हिमायत की है। अपने घोषणापत्र में भी उन्होंने इस मुद्दें को प्रमुखता दी है। लेकिन फिलहाल ऐसा नहीं लगता कि ये पार्टियां वाकई महिलाओं की राजनीति में भागीदारी बढ़ाने के लिए संजीदा है अगर देश की बड़ी पार्टियां इस मुद्दें को गंभीरता से लेती तो इस चुनाव में किसी कानूनी बाध्यता का इंतजार किए बिना ज्यादा महिलाओं को टिकट दे सकती थीं और मिशाल कायम कर सकती थीं।

सत्ता और विपक्ष में बैठे राजनीतिक दल महिलाओं को बराबरी का दर्जा देने और लोकसभा व विधानसभा में 33% आरक्षण की चाहे जितनी वकालत करें, उनकी कथनी और करनी में बहुत फर्क नजर आता है। महिलाओं के सशक्तिकरण तथा बराबरी की बात करने वाले दलों की असलियत टिकट वितरण के समय सामने आ जाती है। यह भी देखने को मिलता है की प्रमुख महिला प्रत्याशी के खिलाफ अक्सर महिला को ही मैदान में उतारते हैं। ऐसे में दोनों उम्मीदवारों में से एक ही महिला उम्मीदवार चुनाव जीत पाती है। इस तरह बहुत सी प्रतिभावान महिला उम्मीदवार संसद या विधानसभा पहुंचने से वंचित रह जाती है। इन सबके बीच अति पिछड़े देशों की संसदों में भी महिलाओं की हिस्सेदारी भारत से ज्यादा है। विश्व भर की संसदों में महिलाओं की संख्या के आधार पर हुए सर्वे में भारत 103 वे स्थान पर है जबकि चीन 53वें, पाकिस्तान 64वें, इंग्लैंड 56 वें, नेपाल 35वें अफगानिस्तान 39 वें तथा अमेरिका 72वें स्थान पर है। बांग्लादेश में हर 5 में से एक सांसद महिला है। यहां तक कि सीरिया, रवांडा, नाइजीरिया और सोमालिया आदि देशों की संसदों में भी महिलाओं की हिस्सेदारी भारत से ज्यादा है। फिलहाल भारतीय संसद के दोनों सदनों में 12% महिलाएं (96) हैं। नेपाल की संसद में कुल 176 सीट हैं और वहां हर तीसरी सीट पर महिला सांसद विराजमान है। अफगानिस्तान के दोनों सदनों में कुल 28% महिला (97) सांसद हैं जबकि चीन के निचले सदन में कुल 699 सांसदों में 24% महिलाएं हैं। पाकिस्तान में 84 महिलाएं सांसद है। इनमें से 21% निचले और 17% उच्च सदन में है। इंग्लैंड के हाउस और कॉमंस और हाउस ऑफ लॉर्ड्स में क्रमशः 23 और 24 प्रतिशत है। अमेरिका के निचले सदन में 20%, जबकि उच्च सदन में केवल 20 सांसद हैं। सबसे खराब स्थिति वनुआतू की जहां संसद में एक भी महिला नहीं है।[8]

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु प्रस्तुत परिकल्पना निम्नलिखित है:-

1. महिलाओं की राजनीतिक प्रतिनिधित्व में पूर्व के लोकसभा चुनावों के तुलना में 14वीं लोकसभा चुनाव में वृद्धि हुई है।
2. 14वीं लोकसभा चुनाव में महिलाओं की राजनीतिक चेतना में वृद्धि हुई है।

शोध आलेख का उद्देश्य

1. इस शोध का उद्देश्य महिलाओं में राजनीति के प्रति बढ़ती रूची का अध्ययन करना।
2. प्रस्तुत शोध का उद्देश्य लंबित महिला आरक्षण विधेयक के मार्ग में आने वाले बाधाओं को स्पष्ट करना।
3. महिलाओं को संसद एवं विधानमंडलों में अधिक से अधिक प्रतिनिधित्व दिलाने वाले कारणों का पता लगाना।
4. महिलाओं के राजनीतिक उत्थान के साथ-साथ उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर के लिए मार्ग बनाना।

शोध आलेख की पद्धति

प्रस्तुत शोध का अध्ययन द्वितीयक स्त्रोंतों के माध्यम से किया गया है है। इस अध्ययन में ऐतिहासिक, सैद्धान्तिक विश्लेषणत्मक, तुलनात्मक एवं नवीन पद्धतियों को अपनाते हुए शोध लेख को मौलिकता प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इस शोध कार्य में उपयोगी सामग्री केन्द्रीय निर्वाचन आयोग (दिल्ली) के अभिलेखों, राष्ट्रीय एवं राज्यस्तरीय पुस्तकालयों, इन्टरनेट एवं शोध संस्थानों आदि में उपलब्ध, सामाचार पत्र-पत्रिकाएँ, राजनीतिक दलों के घोषणा पत्रों एवं अन्य प्रासंगिक सामग्रियों से प्राप्त किया गया है।

निष्कर्ष

आज के बदलते राजनीतिक परिवेश में महिलाओं की सामाजिक-राजनीतिक स्थिति विरोधाभासों से भरी हुई होने के बावजूद स्वतंत्र भारत में महिला सशक्तिकरण को राजनीतिक पोषण सुलभ हुआ है, जिसके फलस्वरूप राजनीतिक क्षितिज पर महिलाओं की भूमिका में सकारात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। राष्ट्रीय स्तर पर महिला मतदाता पहले से अधिक सक्रिय हुई हैं, यह विभिन्न चुनाव एजेन्सियों के सर्वेक्षण रिर्पोटों से जाहिर होता है। महिला पूर्व की अपेक्षा अधिक राजनीतिक समझ का परिचय विभिन्न चुनावों के दौरान प्रस्तुत की हैं। 16वीं लोकस भा चुनाव में महिलाओं का मतदान प्रतिशत एवं लोकसभा में प्रतिनिधित्व इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। राजनीतिक व्यवस्था में आया यह परिवर्तन महज पुरूष मतदाताओं के बल पर सम्भव नहीं था। 'आधी आबादी' के योगदान के बिना इतना बड़ा परिवर्तन कदापि सम्भव नहीं था और यह महिलाओं की बदलती मतदान प्रवृति एवं राजनीतिक सहभागिता का परिचायक है।

सन्दर्भ

1. ब्रज किशोर शर्मा, भारत का संविधान, एक परिचय, पीएचआई, 2010, पृष्ठ-348-351।
2. नवभारत टाइम्स, 17 मई, 2014।
3. द पत्रिका, 13 मई, 2014।
4. जागरण पोस्ट, 14 मई, 2014।
5. रूपा मंगलानी, भारतीय शासन एवं राजनीति, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2016, पृष्ठ-258-259।
6. राजेश्वरी देशपाण्डेय, वोमेन्स वोट इन 2014, द हिन्दु, 26 जून 2014।
7. डॉ. शशि शर्मा, राजनीतिक समाजशास्त्र की रूपरेखा, पी.एच.आई., 2010, 521-527।
8. साधना, आर्य, एवं निवेदिता, मेनन, लोकनीता जिनी, नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दे, दिल्ली विश्वविद्यालय पब्लिकेशन: दिल्ली, 2017, पृष्ठ 207-219।

भारत में मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों का समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० निवेदिता

(एम.ए., राजनीति विज्ञान, पीएच-डी), पटना विश्वविद्यालय, पटना

शोध-आलेख का सार

लोकतंत्र में चुनाव का महत्वपूर्ण स्थान है। चुनाव में मतदाता मतदान के द्वारा अपनी पसंद के उम्मीदवार को चुनते हैं। यह चुने हुए प्रतिनिधि ही देश की शासन व्यवस्था को संचालित करते हैं। स्वतंत्रता के पूर्व मतदान का दायरा बहुत ही सीमित था। बाद में 1988 में 61वें संविधान संशोधन के द्वारा 21 वर्ष से उम्र घटाकर 18 वर्ष कर दी गई। अब भारत में प्रत्येक वयस्क नागरिकों को मताधिकार प्राप्त हो गया है। अब प्रश्न उठता है कि आखिर मतदाता किन-किन कारकों से प्रभावित होकर अपने इस अधिकार का प्रयोग करते हैं। इस शोध के माध्यम से उन कारकों का विश्लेषण कर अंतिम निष्कर्ष पर पहुँचा जायेगा।

मूल-शब्द : निर्वाचन, मतदान व्यवहार, संघीय शासन-प्रणाली, एकात्मक व्यवस्था, भारतीय संविधान।

प्रस्तावना

सामान्य अर्थ में मतदान व्यवहार का आशय चुनाव में मतदाताओं के द्वारा वोट डालने से लगाया जाता है। मतदान व्यवहार एक व्यापक प्रक्रिया है, इसमें चुनाव के समय मतदाता चुनाव प्रक्रिया के प्रति, चुनावी मुद्दों के प्रति व उम्मीदवारों के प्रति जो अपना रूख, रूझान व पसंद व्यक्त करते हैं, उसे राजनीति विज्ञान में मतदान व्यवहार की संज्ञा दी गयी है। भारत में अब तक जितनें भी चुनाव हुये हैं उसके अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मतदान व्यवहार को प्रभावित करने के पीछे कोई एक नहीं, बल्कि अनेक कारक मौजूद है।

भारत में अब तक जितने भी चुनाव हुए हैं, उनमें मतदाताओं का मतदान व्यवहार एकसमान नहीं रहा, विशेषरूप से आजादी के पूर्व के वर्षो में, जब देश मे सामाजिक-आर्थिक पिछड़ापन था, आर्थिक विषमताएँ व्याप्त थी, लोगों में शिक्षा की कमी व महिलाओं को समाज में उचित दर्जा प्राप्त नहीं था। इन सभी के चलते अनेक मतदाता मत का प्रयोग करने से वंचित रह जाते थे, परिवार के सदस्य परिवार के मुखिया के प्रभाव में अपने मत का प्रयोग करते थे और मजबूर व छोटे किसान जमींदारों के प्रभाव में मतदान करते थे। मतदान व्यवहार को निर्धारित करने वाले प्रमुख तत्त्वों- पिछले 30-35 वर्षो में भारत में चुनाव-प्रक्रिया व लोकतंत्र के स्वरूप निर्धारित किया है। शिक्षा व प्रेस के विस्तार से मतदाताओं को तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक विषयों की पर्याप्त जानकारी मिलती रहती है और यह जानकारी उनके मतदान व्यवहार को प्रभावित करती रही है। वर्तमान समय में भारतीय मतदाताओं के व्यवहार को मुख्य रूप से निम्नलिखित तत्त्व प्रभावित करते हैं-

जाति भारतीय समाज की एक ऐसी सच्चाई है, जिससे व्यक्ति सबसे अधिक प्रभावित होता है। शिक्षा के प्रसार के बाद भी व्यक्तियों को अपनी जाति के प्रति लगाव कम नहीं हुआ है। यह भी देखने में आया है कि ज्यादा पढा-लिखा व्यक्ति भी जातिवाद से प्रभावित होता है। राजनीतिक स्तर पर जाति का प्रभाव पहले से अधिक बढ़ा है। राजनीति शास्त्र के प्रमुख विद्वान प्रो. रजनी कोठारी ने अपनी पुस्तक 'कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स' में यह बताया है[1] कि भारत में जाति का सामाजिक स्तर पर प्रभाव घटा है, जबकि राजनीतिक स्तर पर जाति का प्रभाव बढा है। जिस प्रकार से राजनीतिक दलों व दबाव समूहों के निर्माण में और आरक्षण को निश्चित करने में जाति प्रमुख भूमिका निभाती है, उसी प्रकार से मतदान व्यवहार को भी प्रभावित करने में भी जाति की निर्णायक भूमिका है। जब मतदाता अपने मत का प्रयोग करता है, तो वह अपनी जाति से प्रभावित होकर अपनी जाति के उम्मीदवार के पक्ष में मत डालते हैं। जाति आज भी मतदान व्यवहार का प्रमुख तत्त्व है।

विचारधारा भी मतदान व्यवहार का एक प्रमुख निर्धारक तत्त्व है। भारत में कुछ ऐसे राजनीतिक दल भी हैं, जिनकी कोई न कोई विचारधारा है। ये खुलकर इसका प्रचार व प्रसार करते हैं, जिससे मतदाता अवश्य ही प्रभावित होते हैं। समाजवाद, साम्यवाद, उदारवाद, गाँधीवाद, लोहियावाद, हिन्दुवाद अनेक ऐसी विचारधाराएं प्रचलित हैं, जिनके अधार पर राजनीतिक दल बने हैं। इन्होंने आगे चलकर चुनावी राजनीति को प्रभावित किया और ये मतदान-निर्धारण का प्रमुख कारक बनीं। पष्चिम बंगाल में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव है, जिसके आधार पर वहां मार्क्सवादी दलों को अधिकांश लोगों के मत मिलते हैं।[2] 1950 के बाद भारत में समाजवादी विचारधारा ने नागरिकों के मतदान व्यवहार को अधिक प्रभावित किया। यहां तक कि काँग्रेस में भी समाजवादी विचारधारा के अनेक समर्थक हैं। वहीं भाजपा हिन्दूवादी राजनीति का समर्थक है।

वर्तमान भौतिकवादी युग में धन की अहम् भूमिका है। आज राजनीति का व्यवसायीकरण हो गया है। चुनावों में धन के द्वारा मतदाताओं को प्रभावित किया व लुभाया जाता है। गरीब व बेरोजगार व्यक्ति प्रायः धन के लालच में आकर अपना मत दे देते हैं। इस प्रकार धन, मतदान व्यवहार का एक निर्धारक तत्त्व बन जाता है। केवल गरीब व बेरोजगार व्यक्ति ही नहीं, बल्कि यहां विधायक व सांसद भी मताधिकार के लिए बिकते देखे गए हैं। यहां एक पार्टी से दूसरी पार्टी में जाने, पार्टी तोड़ने व जोड़ने में धन की अहम् भूमिका रहती है। राज्य व स्थानीय स्तर की राजनीति में यह प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। निःसंदेह धन मतदान व्यवहार को प्रभावित करने में अहम भूमिका निभा रहा है। 1996, 1998 व 1999 के लोकसभा चुनावों के अवसर पर जनता महंगाई से त्रस्त थी, इसलिए चुनाव परिणाम काँग्रेस पार्टी के विरोध में गया[3] और दूसरे राजनीतिक दलों को इसका लाभ मिला।

व्यक्ति पूजा भारतीय राजनीति की विशेषता रही है। यहां प्रत्येक राजनीतिक दल किसी ऐसे विशिष्ट व्यक्ति या परिवार के चारों ओर घूमता है, जिसका अपना एक प्रभाव होता है। ऐसा नेता मतदाता के व्यवहार को प्रभवित करता है। प्रथम तीन आम चुनावों में काँग्रेस पार्टी की विजय का कारण पण्डित नेहरू का चमत्कारी नेतृत्व था।[4] 1971 के चुनावों में काँग्रेस की भारी हार का कारण इन्दिरा गांधी की नेतृत्व क्षमता थी। 1996 व 2014 के लोकसभा चुनावों में काँग्रेस की हार का एक कारण कुशल नेतृत्व का अभाव था। 16वीं एवं 17वीं लोकसभा के चुनावों में भारतीय जनता पार्टी की सफलता का एक प्रमुख कारण नरेन्द्र मोदी का कुशल नेतृत्व रहा है।[5]

जाति की तरह धर्म भी भारतीय मतदाताओं के व्यवहार को प्रभावित करने वाला प्रमुख तत्त्व है। भारत में मुस्लिम लीग, हिन्दु महासभा, षिवसेना व अकाली दल जैसे राजनीतिक दलों का गठन धर्म के आधार पर किया गया है। ये राजनीतिक दल धर्म के अधार पर वोट मांगते हैं। अयोध्या में राम मन्दिर के निर्माण के मुद्दे ने हिन्दु मतदाताओं को प्रभावित करने और भारतीय जनता पार्टी के पक्ष में मतदान करने में प्रमुख भूमिका निभाई है।[6] वी. पी. सिंह की सरकार भी राम जन्म भूमि से जुड़े मसले पर गिर गयी थी। भारतीय राजनीति में धर्म की भूमिका विगत दो लोकसभा चुनावों में प्रभावकारी रूप में देखने को मिली है।

मतदाताओं के मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले तत्त्वों में एक तत्त्व आयु वर्ग भी है। 18 से 30 वर्श की आयु के मतदाताओं का राजनीतिक व्यवहार 50 या उससे ऊपर के मतदाताओं के राजनीतिक व्यवहार में समानता नहीं होती है। किसी भावनात्मक मुद्दे से कम उम्र के मतदाता जल्दी प्रभावित होते हैं। अधिक उम्र के मतदाताओं की राजनीतिक भागीदारी इतनी अधिक नहीं होती, जितनी की नवयुवकों की। प्रायः नौजवान उम्मीदवारों के प्रति मतदाताओं का रूझान अधिक होता है। लोकसभा चुनावों के विषय में डॉ. वेद प्रकाश 'वैदिक' लिखते हैं कि 40 वर्षीय राजीव गांधी उन मतदाताओं की स्वाभाविक पसंद बने, जिनकी आयु 21 से 35 वर्ष के बीच थी।[7]

समकालीन मुद्दे- अन्य तत्वों के अलावा, चुनावों के समय चर्चित विषयों का मतदाताओं के व्यवहार पर सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ता है। 1977 के चुनावों में देश में इमरजेन्सी का मुद्दा मतदाताओं पर अधिक प्रभाव डाला। 1985 के चुनावों में इंदिरा गांधी की हत्या से उत्पन्न सहानुभूति ने मतदाताओं को बहुत प्रभावित किया। 1989 के चुनावों में भ्रष्टाचार का मुद्दा मुख्य चुनावी मुद्दा रहा। इसी प्रकार महंगाई, बेरोजगारी, आतंकवाद और युद्ध ऐसे विषय हैं, जिन्होने भारतीय मतदाताओं को बहुत प्रभावित किया है। 2019 के लोकसभा चुनाव में पुलवामा में भारतीय सैनिकों पर आतंकी हमला और भारतीय वायु सेना द्वारा पाकिस्तान के बालाकोट में 'एयर स्ट्राईक' का मुद्दा हावी रहा।[8]

दबाव समूह राजनीतिक दलों व प्रषासकों को प्रभावित करते हैं, वहीं ये अपनी पसंद के उम्मीदवारों को सफल बनाने के लिए विभिन्न तरीकों से मतदाताओं को प्रभावित करने का काम भी करते हैं। भारतीय किसान यूनियन एवं जातिगत दबाव समूहों की मतदाताओं के व्यवहार को प्रभावित करने में उल्लेखनीय भूमिका रही है।

मतदान व्यवहार को निर्धारित करने में उम्मीदवार का अपना व्यक्तित्व भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक प्रभावशाली व्यक्तित्व वाला उम्मीदवार मतदाताओं को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल रहता है, विषेश रूप से तब, जब उसके प्रतिद्वन्द्वियों का व्यक्तित्व प्रभावषाली न हो। उदाहरण के लिए, स्व. इन्द्रजीत गुप्त मिदनापुर (पष्चिम बंगाल) से लगातार 10 बार लोकसभा के लिए निर्वाचित हुए।[9] सोमनाथ चटर्जी, साम विलास पासवान, पी. एम. सईद लगातार 9 बार लोकसभा चुनाव के लिए निर्वाचित हुए। ऐसा इनके धनी व्यक्तित्व के कारण ही हुआ।

व्यक्तिगत सम्पर्क- कोई प्रत्याषी मतदाताओं से कितना निकट से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करता है अथवा मतदाताओं को अपने प्रत्याषी के संबंध में कितनी जानकारी है, यह तथ्य भी मतदाताओं के निर्णय को प्रभावित करता है। अधिकांष मतदाता ऐसे होते हैं, जो व्यक्तिगत सम्पर्क के कारण किसी उम्मीदवार के पक्ष में मत डालते हैं। ऐसे मतदाता, जो किसी अन्य तत्त्व से प्रभावित नहीं होते, ऐसा करते हैं। दिसम्बर, 2018 के दिल्ली विधान सभा चुनावों में व्यक्तिगत सम्पर्क ने आम आदमी पार्टी को 68 सीटें दिलाने में उल्लेखनीय भूमिका रही।

आधुनिक युग प्रचार का युग है। चुनाव-प्रचार से मतदाता बहुत अधिक प्रभावित होते हैं। प्रचार के कारण तो गलत बात भी ठीक लगने लगती है। कोई राजनीतिक दल अपने प्रत्याषियों के लिए कितना चुनाव-प्रचार करता है और चुनाव-प्रचार के लिए कौन-से साधन अपनाता है, इसका मतदाताओं पर गहड़ा प्रभाव पड़ता है। जितना अधिक प्रचार किया जाता है, उतनी ही अधिक सफलता की सम्भावना रहती है। इसी कारण सभी राजनीतिक दल चुनावों में प्रचार के विभिन्न साधानों का उपयोग करते हैं। ऐसा समझा जाता है कि 16वीं लोकसभा चुनावों में भारतीय जनता पार्टी की सफलता का एक प्रमुख कारण चुनाव प्रचार पर पाँच हजार करोड़ रूपये खर्च करना भी रहा है।

भारत के अधिकांष मतदाताओं की एक अजीब प्रवृत्ति दल अथवा प्रत्याषी की जीत की सम्भावना को ध्यान में रख कर ही मतदान करते हैं। अनेक मतदाता यह निर्णय नहीं कर पाते कि वे किसके पक्ष में मत डालें। यदि उन्हे किसी तरह यह विष्वास हो जाए कि अमुक दल अथवा प्रत्याषी के जीतने की सम्भावना है, तो वे उसी दल अथवा प्रत्याषी के पक्ष में मतदान करते हैं। भारत के चुनावों में 'चुनावी लहर' की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

भारत में मतदान व्यवहार इस बात पर भी निर्भर करता हे कि कौन-सा राजनीतिक दल एक स्थायी एवं सुदृढ सरकार प्रदान कर सकता है। भारतीय मतदाता आम तौर पर केंद्र में एक स्थायी तथा सुदृढ सकार चाहते हैं। उन्होने मार्च, 1977 में जनता पार्टी को इसी अषा से सत्ता सौंपी थी, किन्तु जब यह दल ऐसा करने में सफल नहीं हुआ, तो 1980 में लोकसभा चुनाव में उन्ही मतदाताओं ने जनता पार्टी के स्थान पर काँग्रेस को सत्ता सौंप दी। इसी आधार पर 1984 के चुनावों में काँग्रेस को सबसे अधिक जन-समर्थन प्राप्त हुआ था। 2019 में नरेन्द्र मोदी को इसी आधार पर जनता ने पुनः सत्ता सौपी है।

स्वतंत्रता के पष्चात् भारत में सामंतषाही को समाप्त करके लोकतंत्र की स्थापना की गई और आगे चलकर राजाओं के प्रिवी-पर्स व अन्य सुविधाएँ समाप्त कर दी गई। भारत में सैद्धान्तिक रूप से राजतंत्र की कोई व्यवस्था नहीं है, लेकिन भारतीय जन-मानस पर आज भी सामन्तवादी व्यवस्था का प्रभाव बना हुआ है। आज भी आम भारतीय के मन में सामन्तों के प्रति विषेश सम्मान है। यद्यपि समय के साथ-साथ सामन्तषाही का प्रभाव कम होता जा रहा है, फिर भी बहुत से राजघराने आज भी राजनीति पर अपना आधिपत्य स्थापित किए हुए हैं। सिंधिया घराना मध्य प्रदेष के मतदाताओं को प्रभावित करता रहा है, जो जयपुर घराना राजस्थान के मतदाताओं को।

भारत एक बहु-भाषाई राज्य है। यहां धर्म तथा जाति के पष्चात राजनीति में यदि किसी तत्व का प्रभाव है, तो वह भाषा ही है। भारत में भाषा के नाम पर चुनाव लड़े तथा जीते जाते हैं। यहां अनेक राज्यों में चुनावों का आधार भाषा होती है। दक्षिण में- विशेषकर तमिलनाडु- जो राजनीतिक दल हिन्दी का अधिक विरोध करता है, उतनी ही अधिक उसके जीतने की संभावना अधिक होती है।[10]

भारत में मतदाताओं के व्यवहार को नियन्त्रित तथा प्रभावित करने में क्षेत्रवाद की भी भूमिका होती है। आज भारत में छः राष्ट्रीय दल हैं, किन्तु भारतीय जनता पार्टी को छोड़कर कोई भी राष्ट्रीय दल इतना प्रभावषाली नहीं है कि वह क्षेत्रीय दलों के सहयोग के बिना सरकार का निर्माण कर सके। इसके कारण, भारत की राजनीति में एक और महत्वपूर्ण प्रवृत्ति स्थापित हो गई है और वह प्रवृत्ति है- गठबंधन की सरकार। अब एक-दो दलों के गठबंधन वाली सरकारें स्थापित होने लगी हैं। 2005 में पंजाब विधानसभा का चुनाव अकाली दल (बादल) तथा भारतीय जनता पार्टी ने मिलकर लड़ा और इनमें सफलता प्राप्त करने पर गठबंधान सरकार का निर्माण किया। उत्तर प्रदेश के समाजवादी पार्टी का 2012 में विधानसभा के चुनावों में विजयी रहना क्षेत्रवाद का नवीन उदाहरण है।

भारतीय मतदाता समय-समय पर राजनीतिक दलों द्वारा उछाले गए लुभावने नारों से प्रभावित होते रहे हैं। 1971 के चुनावों इंदिरा गांधी का नारा था 'गरीबी हटाओ'।[11] 'काँग्रेस का हाथ-गरीबी के साथ', 'काँग्रेस बार-बार भारतीय जनता पार्टी एक बार', 'अब की बार मोदी सरकार' ऐसे ही नारे हैं। 2004 के चुनावों में काँग्रेस ने प्रत्येक परिवार के एक सदस्य को 100 दिन का काम देने का वादा किया था। ऐसे लुभावने नारे, जो हवा में उछाले जाते हैं, जनता के मन को छू जाते हैं। जनता नारों से प्रभावित होकर किसी दल के पक्ष में मतदान कर देती है अथवा मषीन का बटन दबा देती है और वह दल बहुसंख्या में स्थान प्राप्त करके, सरकार का गठन करने में सफल हो जाता है। 2019 के लोकसभा चूनाव में भी इसी प्रकार की प्रवृतित्तयाँ दृष्टिगोचर हो रही है।

परिकल्पना

इस शोध कार्य में मैंने निम्नलिखित परिकल्पनाओं को आधार बनाया है:

1. मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों में जाति की भूमिका सबसे अहम है तथा भविष्य में इसकी अहम संभावना है।
2. मतदान व्यवहार समय, परस्थिति व स्थान से भी प्रभावित होती है।

शोध आलेख का उद्देश्य

- इस शोध का उद्देश्य मतदान को स्वच्छ एवं पारदर्शी बनाने वाले कारको को उजागर करना।
- प्रस्तुत शोध का उद्देश्य लोकतंत्र को मजबूत बनाने विषयों को मतदाता के सम्मुख लाना।
- देश के ग्रामीण, अशिक्षित एवं वेरोजगार युवाओं को मतदान के प्रति जागरूक करने वाले कारणों को रेखांकित करना।

शोध-पद्धति

इस शोध-पत्र के लिए शोध सामग्री अधिकांश रूप में द्वितीयक स्रोतों से ग्रहण की गई हैं। इसमें ऐतिहासिक विश्लेषण व वर्णनात्मक दृष्टिकोण के साथ-साथ शोधकर्त्ता ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों को भी स्थान दिया है। शोध सामग्री प्रसिद्ध पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं व समाचार पत्रों से प्राप्त की गई हैं।

निष्कर्ष

भारत में मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले उपर्युक्त कारकों के विवेचन एवं विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि ये कारक किसी विशेष क्षेत्र, वर्ग अथवा समुदाय को प्रभावित नहीं करते, वरन् सभी मतदाताओं को प्रभावित करते हैं। इस विषय में मतदाताओं की प्रवृत्ति कम अथवा अधिक समान है। भाषा, धर्म, समुदाय, क्षेत्रीयवाद व लुभावने नारे सभी को प्रभावित करते हैं। यहां मतदाता अक्सर धर्म, जाति, भाषा, सम्प्रदाय के नाम पर मतदान करते हैं। राष्ट्रीय एकता तथा अखण्डता के लिए यह आवश्यक है कि मतदाता इन संकुचित भावनाओं से ऊपर उठकर मतदान करें। लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा हेतु एक व्यापक राजनीतिक दृष्टिकोण का अपनाया जाना अनिवार्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रसाद, मणिशंकार, राजनीतिक समाजशास्त्र, मोतीलाल बनारसी दास, 2010, पृष्ठ-132।
2. कुमार, संजय, एवं राय परवीन, मिजरिंग वोटिंग विहैवियर इन इंडिया, सेज पब्लिशिंग, 2013 पृष्ठ-87।
3. अहमद, इम्तियाज, क्वॉटेडफ्रॉम गोविन्दराम वर्मा, "भारतीय राज नीति और शासन" नई दिल्ली : 1978 : पृष्ठ-487।
4. डा. धर्मवीर, "भारत में राजनीतिक प्रक्रिया" राजनीतिक समाजशास्त्र, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2016, पृष्ठ-39-245।
5. मिलब्राथ, एल., "प्रीडिस्पोजीशन टुवाईज पॉलिटिकल कन्टेशन" इन वेस्टर्न पॉलिटिकल क्वार्टरली, 1960, 13, पृष्ठ 5-18।
6. डेविथ, किंग्सले, ह्यूमन सोसायटी, मैकमिलन, 1949, पृष्ठ 127-138।
7. मेहरा, अजय कुमार, पॉलिटिकल पार्टिज एण्ड पार्टी सिस्टम, नई दिल्ली, सेन पब्लिकेशन 2002, पृष्ठ 162-180।
8. वीनर, एम. "विपेज एण्ड पार्टी फ्रैक्शनलिज्म इन आन्ध्रः पानूर कांसट्यूएंसी" इन वीनर एण्ड कोठारी, पृष्ठ 177।
9. माइरन वीनर, "पॉलिटिकल पार्टिसिपेशनः क्राइसिस ऑफ द पॉलिटिकल प्रोसेज प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1971।
10. सिंह, एम.पी., "इलेक्टोरल रिफॉर्म्स इन इंडिया'', बिहार जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस, 2012 पृष्ठ 12-17।
11. बघेल, डी. एस ., सिंह कर्चुली, टी.पी., राजनैतिक समाज शास्त्र, पृष्ठ 267।

नेपाल में माओवादी आन्दोलन की भूमिका: एक समीक्षात्मक अध्ययन

सुनीता प्रसाद

(एम.ए., पीएच-डी-राजनीति विज्ञान)

शोध आलेख का सार

चीनी क्रांतिकारी, राजनैतिक विचारक और साम्यवादी (कम्युनिष्ट) दल के सबसे बड़े नेता माओत्से तुंग, जिनके नेतृत्व में चीन की सफल क्रांति हुई को माओवाद का जनक माना जाता है। वे जनवादी गणतन्त्र चीन की स्थापना (सन् 1949) से लेकर मृत्यु पर्यन्त (सन् 1973) तक चीन का नेतृत्व किया। मार्क्सवादी लेनिनवादी विचारधारा को सैनिक रणनीति में जोड़कर उन्होंने जिस सिद्धांत को जन्म दिया उसे 'माओवाद' नाम दिया जाता है। चीनियों के अनुसार माओ ने अपनी नीति और कार्यक्रमों के माध्यम से आर्थिक, तकनीकी एवं सांस्कृतिक विकास के साथ देश को विश्व में प्रमुख शक्ति के रूप में ला खड़ा करने में मुख्य भूमिका निभाई। माओ के ग्रेट लीप फॉरवर्ड और 'सांस्कृतक क्रांति' नामक सामाजिक तथा राजनीतिक कार्यक्रमों के कारण देश में गंभीर आकाल पैदा हुए थे। उनके कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के दौरान करोड़ों चीनी लोगों की मौत भी हुई। इसलिए कहा जाता है कि उनके विचारों ने चीनी समाज, अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति को बहुत ठेस पहुँचाई। लेकिन इन सारी खूबियों और खामियों के बावजूद माओ संसार के सबसे प्रभावशाली व्यक्तियों में गिने जाते हैं।

मूल शब्दः माओवाद, सांस्कृतिक क्रांति, आतंकवाद, सर्वहारा, श्रमिक संगठन, चरमपंथी, बुद्धिजीवी, राजनीतिक सत्ता आदि।

प्रस्तावना

माओवाद, चरमपंथी या अतिवादी माने जाने वाले तथा कथित बुद्धिजीवी वर्ग का एक ऐसा उत्तेजित जन समूह है, जोकि जंगलों से लेकर विश्वविद्यालय, फिल्म और मीडिया तक में सक्रिय है। माओवादी राजनैतिक रूप से सचेत, सक्रिय और योजनाबद्ध तरीकों से दल के रूप में काम करते है। उनका तथा मुख्य धारा के राजनीतिक दलों में प्रमुख भेद यह है कि जहाँ मुख्यधारा के दल वर्तमान व्यवस्था के भीतर ही काम करना चाहते हैं वहीं माओवादी समूचे तंत्र को हिंसक तरीकों से उखाड़कर अपनी विचारधारा के अनुरूप नई व्यवस्था को स्थापित करना चाहते हैं। वे माओ के प्रसिद्ध दो वाक्यों पर काम करना चाहते है। माओ का कहना था कि - 1. राजनीतिक सत्ता बन्दूक की गोली से निकलती है। 2. राजनीति रक्तपात रहित युद्ध और युद्ध रक्तपात युक्त राजनीति। यही माओवाद आज नेपाल में सक्रिय है।[1]

नेपाल में माओवाद की शुरुआत 1990 के बाद प्रजातंत्र की वापसी के समय से ही प्रारम्भ होने लगी थी, लेकिन सन 1994 के बाद माओवादी हिंसा इतनी तीव्र हो गयी कि कोई भी प्रजातान्त्रिक सरकार उसका मुकाबला नहीं कर सकी। पिछले बारह वर्षों में जारी माओवादी हिंसा में हजारों लोगों की जान जा चुकी है। सन 1995 से लेकर कई वर्षों तक वहाँ की राजनीतिक स्थिति अस्थिर बनी हुई है। कोई भी सरकार अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर पा रही है। अनेक प्रधानमंत्री को माओवादी कारनामों के कारण असफल होना पड़ा।

काठमांडू से प्रकाशित काठमांडू पोस्ट के अंक में प्रत्युष ऑटो का एक विश्लेषण प्रकाशित हुआ है उसमें उन्होंने ने कहा कि "यह सच है कि साठ के दशक में नेपाल में कम्युनिस्ट पार्टी में पहले विघटन के बाद दो दल बने - एक सोवियत रूस समर्थक और दूसरा चीन समर्थक। रूस समर्थक गुट ने राजा महेंद्र से समझौता कर लिया और उन्हें पार्टी विहीन पंचायती व्यवस्था में शामिल कर लिया गया। बाद में चीन समर्थक गुट और अधिक विभाजित होते गये। चूँकि वर्त्तमान माओवादियों की उत्पति चीन समर्थक वामपंथी दल से हुई है, अतः कुछ राजनैतिक विश्लेषक उन्हें चीन समर्थक मानते है।[2]" वर्ष 1991 के संविधान के आने के बाद नेपाल कम्युनिस्ट पार्टी (मशाल), नेपाल कम्युनिस्ट पार्टी चौथा महाधिवेशन (निर्मल लामा), सर्वहारा श्रमिक संगठन (रूप लाल) का विलय होकर नेपाल कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई। किन्तु संयुक्त मोर्चा नामक संस्था का गठन करके उन्होंने चुनाव में भाग लिया और कम्युनिस्ट पार्टी एकता केंद्र के टिकट पर वर्ष 1990 में माओवादी डॉ. बाबूराम भट्टाचार्य सहित नौ व्यक्तियों ने जीत हासिल की जो संसद में तीसरे नंबर की बड़ी पार्टी थी। 1991 में ही आयोजित संयुक्त महाधिवेशन में माओवादी नेता प्रचंड द्वारा प्रस्तुत "जनयुद्ध" का प्रस्ताव मंजूर कर लिया। वर्ष 1992 में एकता केंद्र की स्थानीय चुनावों में करारी हार हुई। 1990 से 2000 के बीच 10 सरकारें नेपाल में बनी। इन वर्षों के दौरान सरकार में शामिल होने के लिए नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी ने नेपाली काँग्रेस तथा राष्ट्रीय प्रजातंत्र पार्टी से समझौता किया। राष्ट्रीय प्रजातंत्र पार्टी को राजशाही का समर्थक माना जाता है। वास्तव में उनकी सत्ता के लालच में लगातार सरकार में शामिल होने से उनके प्रति जनता का मोह भंग हुआ और माओवाद को फलने - फूलने के लिए मौका मिला और पृष्ठभूमि तैयार हुई।

नेपाल में राजशाही समाप्त करने के उद्देश्य से हथियारबंद माओवादियों ने अपना आंदोलन फरवरी 1996 में शुरू किया था और सिर्फ छह वर्ष में वे देश के आधे से भी अधिक हिस्से में सक्रिय हैं। इस बीच कई सरकारें आई और गईं लेकिन वे इस विद्रोह को कुचलने में नाकाम रहीं। इन सरकारों ने माओवादियों के इलाके में विकास पर भी ध्यान दिया और ताकत का इस्तेमाल भी किया। लेकिन यह आंदोलन निरंतर जारी है। इन माओवादियों में हजारों प्रशिक्षित लड़ाके शामिल हैं और इन्होंने अपने संगठन का खाका पेरू के सेंडेरो लुमिनोसो संगठन के आधार पर बनाया है।[3] पश्चिमी नेपाल के कुछ इलाकों में माओवादी समानांतर सरकार चलाते हैं। वे माओ के लेखन से प्रभावित हैं और उसी के आधार अपनी रणनीति पर बनाते हैं। ये रणनीति बड़ी साफ है। खेतों में काम करने वाले किसानों और कामगारों को इकट्ठा कर शहरी इलाके के लोगों को धमकाना। साथ ही हिंसा का सहारा लेकर अपनी बात मनवाना। जन युद्ध नेपाल की माओवादी कम्युनिस्ट पार्टी कभी देश की संसदीय प्रणाली का हिस्सा हुआ करती थी। माओवादियों ने 1990 में देशकी मुख्य धारा की राजनीतिक पार्टियों और कम्युनिस्टों के साथ लोकतंत्र की स्थापना के लिए संघर्ष किया था। 1991 में देश में बहुदलीय चुनावों में उन्होंने संसद में कुछ सीटें भी जीती थीं। वर्ष 1994 के मध्यावधि चुनाव का माओवादियों ने बहिष्कार किया। लेकिन 1996 के चुनावों में उनका मोहभंग हो गया और तभी से उन्होंने कथित 'जन युद्ध' की शुरुआत कर दी। तब से अब तक हिंसा में 2400 से अधिक लोग मारे जा चुके हैं।[4] माओवादी आमतौर पर पुलिस को निशाना बनाते हैं। सेना के कम वेतन पाने वाले सैनिकों को हतोत्साहित करने की कोशिश करते हैं। आंदोलन के शुरुआती दिनों में माओवादियों ने चालीस माँगें सामने रखी थीं। इनमें व्यापक रूप से भूमि सुधार, भारत के साथ करीबी रिश्ते खत्म करना, विदेशी मदद रोकना और शाही परिवार को सत्ता से बेदखल करना प्रमुख थीं। बाद में ऐसे संकेत मिले थे कि इनमें से कुछ माँगों पर वे अपना रवैया बदलने के लिए तैयार थे। अक्टूबर 2000 में सरकार के साथ शांति बातचीत शुरू करने की कोशिशें सफल नहीं हो सकीं क्योंकि जेल में बंद दो माओवादी नेताओं को लेकर भ्रम था। इसके अतिरिक्त माओवादियों की मांग यह भी है कि नेपाल में जन गणतंत्र की स्थापना के लिए नयी संविधान सभा गठित की जाये। राज्य तथा राज्य परिवार के सदस्यों के विशेष अधिकार समाप्त किये जाये। नेपाल के लगभग सभी राजनीतिक दल और बुद्धिजीवी संविधान सभा के गठन और राजतन्त्र की समाप्ति की मांग को छोड़ कर माओवादियों के अन्य सभी मांगों का समर्थन करते है। नेपाल में माओवाद की शुरुआत 1990 के बाद प्रजातंत्र की वापसी के समय से ही प्रारम्भ होने लगी थी। लेकिन सन 1994 के बाद माओवादी हिंसा इतनी तीव्र हो गयी कि कोई भी प्रजातान्त्रिक सरकार उसका मुकाबला नहीं कर सकी। पिछले सात वर्षों में जारी माओवादी हिंसा में हजारों लोगों की जान जा चुकी है। सन 1995 से लेकर अनेक वर्षों तक वहाँ की राजनीतिक स्थिति अस्थिर बनी हुई है। कोई भी सरकार अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर पा रही है। अनेक प्रधानमंत्री को माओवादी कारनामों के कारण असफल होना पड़ा।

फरवरी 1996 को माओवादियों ने दीर्घकालीन जनयुद्ध की घोषणा कर दी। तब से आज तक समय - समय पर माओवादियों एवं सरकार में अपनी मांगों को मनवाने के लिए निरंतर क्रिया-प्रतिक्रिया होती रही है। इसी के चलते माओवादियों का हिंसक संघर्ष प्रारम्भ हुआ। माओवाद एक राजनीति आस्था न हो कर असामाजिक तत्वों का वह गिरोह है। जिसे विदेशी हथियार के रूप में इस्तेमाल कर रहे है। नेपाली माओवादी अपने खिलाफ करवाई में राजा तथा राजनीतिक नेतृत्व के बीच आपसी अविश्वास का पूरा फायदा उठा रहे थे। माओवाद का जन्म वामपंथी मुहिम से हुआ, जो आज भारत व नेपाल के संबंधों पर गहराता काला बादल है और दोनों देशों के अस्तित्व के लिए खतरा बन गया है। शुरू में माओवादी नेपाल की राजशाही के विरुद्ध थे लेकिन धीरे - ध ीरे वे भारत विरोधी हो गये। नब्बे की दशक में वामपंथ माओवादियों के रूप में उभरा है तथा आंध्रप्रदेश से लेकर छत्तीसगढ़, झाखण्ड के वन मार्ग के माध्यम से नेपाल तक जुड़ा हुआ है। माओवादियों का आंदोलन सिर्फ राजनैतिक आंदोलन नहीं है। भारत और नेपाल की सीमा पर नाजायज कारोबार करने वाले इसके बीच सेतु का काम कर रहे है। यह सेतु इतना स्पष्ट है कि भारत- नेपाल सीमा पर निरंतर आबादी के संतुलन में बदलाव के रूप में इसे देखा जा सकता है। चाहे जम्मू - कश्मीर हो, पंजाब, पूर्वोत्तर के राज्य या वन श्रृंखला से जुड़े क्षेत्र हो, हिंसा से बदलाव की पीठ पर हमेशा विदेशी हाथ ही रहा है। भारत एवं नेपाल द्वारा संयुक्त रूप से अभियान चला कर ही इस माओवादी अभियान को खत्म किया जा सकता है। माओवादी संघर्ष का सीधा असर भारत-नेपाल संबंधों पर पड़ रहा है, जिससे दोनों देशों की विकास में बाधा पड़ रही है।[5]

नेपाल के माओवादी आंदोलन के कीचड़ में न चाहते हुए भी भारत को अपना एक पैर रखना पड़ा। नेपाल में माओवादी आंदोलन के तार जहाँ भी जुड़े हो परन्तु भारत के लिए चिंता का विषय है। माओवादी हिंसा से निर्दोष नेपालियों का ही खून वह रहा, जिससे घाटी के लोग भयभीत है। भारत-नेपाल के सम्बन्ध 1950 की संधि के आधार पर विकसित होते रहे हैं। लेकिन नेपाल में जनता द्वारा पंचायत व्यवस्था के खात्में और लोकतंत्र की स्थापना का समर्थन किया। राजनीतिक पार्टियां तथा जनता के उग्र प्रदर्शन और आंदोलन के बाद 19 अप्रैल, 1990 को नेपाल में लोकतंत्र की स्थापना हुई। सन 1991 में नेपाल में आम चुनाव हुए और गिरिजा प्रसाद कोइराला नेपाल के प्रधानमंत्री बने। लेकिन मार्च 1994 में नेपाल में राजनीतिक संकट प्रारम्भ हो गया। राजनीतिक पार्टियां कोइराला सरकार के कार्य एवं व्यवहार से खुश नहीं थी। 30 नवंबर 1994 को मनमोहन अधिकारी के नेतृत्व में पहली बार अल्पमत कम्युनिस्ट सरकार पदारूढ़ हुई। लेकिन अधिकारी भी कोई ठोस कार्य नहीं कर पाये और 13 जून 1995 को नेपाल के महाराज वीरेंद्र ने संसद भंग कर दी और 16 जून को अधिकारी को सरकार के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव पारित हो गया। उसके उपरांत शेर बहादुर देउआ नेपाल के प्रधानमंत्री बने लेकिन देउआ सरकार के पतन के बाद में पुनः गिरिजा प्रसाद कोइराला की सरकार बनी। कोइराला सरकार बनते ही नेपाल में माओवादियों के संगठन बने जो राजशाही की खात्मे की बात और अपने वर्चस्व को स्थापित करने के लिए उन्होंने नेपाल में आतंकवादी गतिविधियां फैलाना शुरू कर दी। लेकिन कोइराला सरकार माओवादियों पर नियंत्रण नहीं रख सकी। तब से लेकर आजतक माओवादी नेपाल में उथल - पुथल मचा रहे है।

काठमांडू से प्रकाशित कुछ लोगों का विचार है कि नेपाल के माओवादी 'रिम' अर्थात रेवोल्यूशनरी इंटरनेशनल मूवमेंट के निदेशन और मार्गदर्शन में काम करती है। काठमांडू से प्रकाशित नेपाली टाइम्स के दिनांक 30 नवंबर 2001 के अंक में माओवादियों के बारे में बहुत सारी सूचनाएं दी गयी है, जैसे- माओवादियों ने जुलाई 2001 के 'कन्फेडरेशन ऑफ कम्युनिस्ट एंड माओइस्ट पार्टीज ऑफ साउथ अफ्रीका' नामक क्षेत्रीय संगठन की घोषणा की है। 21 नवंबर 2001 में डॉ. बाबूराम भट्टाचार्य की अध्यक्षता में सैंतीस सदस्यीय संयुक्त क्रान्तिकारी जन परिषद् का गठन किया। पत्र में यह भी कहा गया है कि 1

जून 2001 को नेपाल नरेश वीरेंद्र की हत्या के बाद माओवादी नेता भट्टाचार्य ने कहा कि नेपाल नरेश की हत्या के बाद नेपाल में रिपब्लिकन का जन्म हो गया है। उन्होंने यह भी कहा कि स्वर्गीय नरेश वीरेंद्र के साथ उनकी समझदारी विकसित हो गयी थी जिसे वे 'वर्किंग अंडरस्टैंडिंग' कहते है।[6] इस कथन का लोगों ने यह मतलब लगाया कि माओवादियों को दरबार का समर्थन प्राप्त था। परन्तु सिर्फ अखबार के आधार पर इस बात को सही नहीं माना जा सकता है। नेपाल के माओवादियों को काठमांडू लिबरेशन आर्गनाइजेशन (ज्ञस्व) उल्फा, एम० सी० सी० तथा पी० डब्ल्यू० जी० जैसे भारत के उग्रवादी संगठनों से मदद मिल रही है।[7]

2006 में सार्वजनिक होने के बाद और जेल में कैद 'हार्डलाइनर्स' के बाहर आने के बाद नेपाल की माओवादी पार्टी में दो लाईन का तीव्र संघर्ष शुरू हो गया। विगत की कमजोरियों को ठीक कर आंदोलन को पटरी में लाने के इरादे से पार्टी के एक बड़े हिस्से ने अंतरसंघर्ष शुरू किया। इस संघर्ष का नतीजा यह निकला कि माओवादी पार्टी के विसर्जनवादी नेतृत्व ने 'वाम' एकता के छद्म नारे में पार्टी के अंदर उन तमाम लोगों को भरना आरंभ कर दिया जो जनयुद्ध और माओवादी राजनीति के घोर विरोधी रहे थे। अंततः पार्टी के अंदर जनयुद्ध विरोधियों का बहुमत हो गया। 2012 तक आते आते माओवादी पार्टी के अंदर दो लाईन के साथ साथ चलने का दौर पूरा हो गया। पार्टी टूट गई। नव संशोधनवादियों के खिलाफ पार्टी के मूल नेतृत्व ने, प्रचण्ड और बाबुराम को छोड़, नई पार्टी का निर्माण किया नेपाल कम्युनिष्ट पार्टी- माओवादी। इस पार्टी ने आरंभ से ही बिखरे माओवादियों को एकताबद्ध करने और नव संशोधनवादियों के खिलाफ संघर्ष चलाने का प्रयास किया।

तेज आर्थिक विकास के सुपरसोनिक दौर में नेपाल में संसदीय ढ़ाँचा को माओवादी क्रांति जल्द पूरा कर लेना चाहते हैं औ इसके लिए कुछ मामूली 'समझौते' करने पर भी तैयार है- जैसे, सर्वहारा की तानाशाही जैसे 'बदनाम' नारे को छोड़ना चाहते है। ऐसे ही और तर्को के साथ नेपाल का माओवादी आंदोलन खुद को 'नई' ब्बिव मान्यता के अनुरूप ढालने, 'ब्बिव जनमत' का भरोसा जीतने और 'नई' तरह की क्रांति करने के काम में व्यस्त है। कुल मिला कर वह मार्क्सवादी या नेपाल के संदर्भ में माओवादी क्रांति को पूरा करने के लिए मार्क्सवाद और माओवाद से समझौता करने, यहां तक कि उससे पीछा छुड़ाने को तैयार है।

परिकल्पना

शोध कार्य को सही दिशा देने तथा उचित निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए परिकल्पना का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इस शोध कार्य में निम्नलिखित परिकल्पना प्रस्तावित है:-

1. नेपाल में सक्रिय माओवादी भारतीय राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था एवं वैदेशिक नीति को प्रभावित किया है।
2. नेपाल में सक्रिय माओवाद नेपाल ओर भारत दोनों देशों में कई अप्रिय घटनाओं को अंजाम दिया है, जिससे भविष्य में भारत को सचेत रहने की आवश्कता है।
3. नेपाली माओवादी नेपाल के राजनीतिक अस्थिरता के लिए भी उत्तरदायी है।

शोध आलेख का उद्देश्य

- प्रस्तावि शोध का उद्देश्य नेपाल में सक्रिय माओवादी गतिविधियों का विवेचन करना।
- प्रस्तुत शोध का उद्देश्य माओवादी गतिरोध के परिप्रेक्ष्य में भारत-नेपाल संबंधों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
- नेपाल में माओवादी आन्दोलन को समाप्त करने और उन्हें समाज के मुख्य धारा में लाने हेतु उत्तरदायी कारणों का पता लगाना।

अध्ययन विधि

प्रस्तुत शोध के अध्ययन के लिए ऐतिहासिक एवं समीक्षात्मक विवरणात्मक पद्धति के अतिरिक्त अन्य पद्धतियों का सहारा लिया है। वस्तुतः प्रस्तुत शोध की अध्ययन पद्धति, ऐतिहासिक एवं समीक्षात्मक विवरणात्मक है। इस के अतिरिक्त शोध कार्य की आवश्यकतानुरूप तुलनात्मक पद्धति का भी सहारा लिया जा सकता है। प्रस्तुत शोध की अध्ययन पद्धति में विश्लेषण हेतु इतिहास से आधारभूत सामग्री प्राप्त किया जा रहा है तथा इस की वैज्ञानिक योजना स्वीकार्य है। इस शोध कार्य हेतु आवश्यक सामग्री विदेश मंत्रालय (दिल्ली) के अभिलेखों, राष्ट्रीय एवं राज्यस्तरीय पुस्तकालयों, इन्टरनेट एवं शोध संस्थानों आदि में उपलब्ध, सामाचार पत्र-पत्रिकाएँ एवं अन्य प्रासंगिक सामग्रियों का अध्ययन किया गया है।

निष्कर्ष

नेपाल में लोकतंत्र के लिए बहुत दुखद स्थिति है। नेपाल में माओवादी विद्रोह को सिर्फ सेना और पुलिस की ताकत से नहीं दबाया जा सकता है। इसके लिए माओवादी विचारधारा का प्रभावपूर्ण जवाब लोगों के सामने जाना चाहिए। माओवादी विद्रोह को दबाने के लिए यह आवश्यक है कि नेपाल में वास्तविक लोकतंत्र की बहाली हो। नेपाल की समस्या पर भारतीय नीति पूर्णतया आंकलन करने में असफल रही है। माओवादी इतने शक्तिशाली हो गये कि वे नेपाल के शासन तंत्र बदलने की स्थिति में आ गये। आज वे सरकार में भी शामिल हैं तथा उनका विचार भारत से मोल-भाव करने का है तथा 1950 में हुई भारत - नेपाल संधि आदि को पुनः परिभाषित करने पर वह जोर दे रहा है, जबकि यह संधि नेपाल के हित में है। भारत और उसके उत्तरी पड़ोसी हिमालयी देश नेपाल के सम्बन्धों में इतनी अधिक पुरातनता तथा सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक स्तरों पर इतनी अधिक समानताएं है कि सामान्यतया दोनों देशों के सम्बन्ध हमेशा सौहाद्रपूर्ण बने रहने की आशा की जाती है।

सन्दर्भ

1. डॉ. दीपेंद्र सिंह तोपवाल एवं डॉ. दीघवाल सिंह भंडारी, नेपाल की राजनितिक स्थिति एवं भारतीय भूमिका प्रतियोगिता दर्पण, पेज- 2195 - 2198।
2. राम सागर शुक्ल, अनजान पड़ोसी, भारत नेपाल, सनातन प्रकाशन, लखनऊ, 2004, पृष्ठ-63।
3. रमाकांत बी० सी०, इंडिया नेपाल रिलेशन, द चैलेंजिंग अहेड, साऊथ एशियन पब्लिशर्स प्रा० लि० दिल्ली।
4. भटशचार्य, जी.पी., इंडियन एण्ड पॉलिटिकल आफॅ मॉडर्न नेपाल, पृष्ठ-3 ।
5. मनीष दमादे एवं हर्ष वी पन्त, कॉपिंग विद् चैलेन्ज टू सोवर एट्टी : सीनो इण्डियन राइवरली एण्ड नेपाल्स् फॉरेन पॉलिसी, कन्टेम्पटरी साउथ एशिया 13 (2) जून, 2004
6. शुक्ल, राम सागर, अंजान पड़ोसी भारत-नेपाल, सनातन प्रकाशन, लखनऊ, 2004, पृष्ठ 47-52।
7. एम0 डी0 धर्मदसानी, इण्डिया एण्ड डेमोक्रेसी प्रोसेस ऑफ नेपाल, इण्डियन जनरल ऑफ नेपालीज, वॉल्यूम 5-6, वर्ष 95-96 पृष्ठ-27 ।
8. रोज, एल. ई., नेपाल एण्ड भूटान इन 1998 : टू हिमालयन किंगडमस (जनवरी-फरवरी, 1999) : 155-162 ।

बैंकिंग क्षेत्र में उभरते रुझान तथा आधुनिक बैंकिंग

डॉ० कुंदन कुमार सिंह

शोधकर्ता, वाणिज्य विभाग बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर, बिहार

बैंक वित्तीय संस्थान हैं जो मौद्रिक लेनदेन में सौदा करते हैं। बैंक किसी भी समाज का अभिन्न अंग हैं। बैंक एक ऐसा संस्थान है जो जनता से धन जमा करता है और व्यक्तियों के साथ-साथ फर्मों को भी धन उपलब्ध कराता है। ये एक बैंक के प्राथमिक कार्य हैं लेकिन एकमात्र नहीं हैं। वे अपने ग्राहकों को कई अन्य सेवाएं भी प्रदान करते हैं जैसे कि लॉकर सुविधा, धन का हस्तांतरण, ड्राफ्ट और पोर्टफोलियो प्रबंधन जारी करना आदि। हमारे देश के विभिन्न हिस्सों में कई बैंक स्थित हैं। हालांकि पहले भारत में बड़े शहरों और कस्बों में कुछ शाखाओं के साथ सीमित संख्या में बैंक थे पर पिछले कुछ दशकों में कई नए बैंकों ने देश के हर जगह और कोने-कोने में शाखाएं खोल दी हैं।

बैंकिंग का आधुनिकरण

भारत में बैंकों का राष्ट्रीयकरण एक बड़ा बदलाव था और इंदिरा गाँधी के काल का यह समय बेशक क्रांतिकारी माना जा सकता है। इससे पहले आम जनमानस सीधे तौर पर बैंकों से नहीं जुड़ा था और उन पर साहूकारी का मायाजाल चढ़ा हुआ था। इसके बाद क्रमवार ढंग से लोगों के जीवन में बदलाव आता गया, जो अब पूरी तरह टेक्नोलॉजी के हवाले हो चुका है। आज बैंकिंग का मतलब पूरी तरह बदल गया है और अधिकांश लोगों के लिए यह सिर्फ पैसे जमा करने, निकालने भर की एक संस्था नहीं रह गयी है।

2015 में मोदी सरकार द्वारा जनधन योजना लाई गयी, जिसमें तकरीबन 25 करोड़ नए खाते खुले। तमाम किन्तु-परन्तु के बावजूद यह एक बड़ी क्रांति सरीखा था, क्योंकि इससे बहुत से वैसे लोग भी जुड़े जो अब बैंकिंग से दूर थे। अब बैंकिंग के बदलावों और और प्रभावों पर एक नजर डालना सामयिक रहेगा।

भारत की सवा सौ करोड़ आबादी को लाइनों में खड़ा करने वाले इस फैसले की कई तरह से व्याख्या की जा सकती है। कोई इसे विनाशकारी बता सकता है तो कोई काले धन पर लगाम लगाने वाला। कोई इसे नौकरियाँ कम करने वाला बता रहा है तो कोई आर्थिक वृद्धि की रफ्तार पर ब्रेक लगाने वाला। वैसे, नौकरियां घटने और आर्थिक वृद्धि की रफ्तार कम होने सम्बन्धी बातों में एक हद तक सच्चाई भी है। हालाँकि, इस बात से शायद ही कोई इंकार करे कि नोटबंदी के बाद बैंकिंग-क्षेत्र में आमूल चूल बदलाव देखने को मिले हैं। टेक्नोलॉजी ने जबरदस्त ढंग से दस्तक दी है तो और भी कई नियम बदले हैं।

भीम ऐप

इसका एंड्राइड वर्जन 10 मिलियन से अधिक बार डाउनलोड किया जा चुका है, जो निश्चित रूप से एक नए ऐप के लिए एक बड़ी संख्या है। 3 एमबी से भी कम इस ऐप को हिंदी, अंग्रेजी के अतिरिक्त भारत सरकार इसे तकरीबन 11 भारतीय भाषाओं में उपलब्ध करा चुकी है, जिससे इसकी पहुँच बेहद व्यापक होने वाली है। लगभग सभी बड़े बैंक इससे जुड़े हुए हैं और सुरक्षित यूपीआई यानी यूनिफाइड पेमेंट इंटरफेस से ट्रांजैक्शन की सुविधा उपलब्ध कराते हैं। इसमें मोबाइल नंबर के सहारे आसानी से पैसा भेजा जा सकता है। इतना ही नहीं, अगर आप भीम के जरिए पैसे मंगवाना चाहते हैं तो इसका तरीका भी बेहद आसान है। जिस व्यक्ति से आप पैसे मंगवाना चाहते हैं उसे आप रिक्वेस्ट भेजेंगे और अगर वह अपना पासवर्ड डालकर उसे ओके कर देगा तो आपके अकाउंट में तुरंत पैसे आ जाएंगे। सरकार इसे प्रमोट कर रही है और आने वाले दिनों में बैंकिंग में यह ऐप बड़ा बदलाव ला सकता है।

मोबाइल वॉलेट्स

कहना गलत न होगा कि नोटबंदी के दौरान इन वालेट्स ने जबरदस्त ढंग से लोगों को सहूलियत दी, अन्यथा हालात नियंत्रण से बाहर हो सकते थे। पेटीएम, एसबीआई बडी, मोबिक्विक, पेटीएम, ऑक्सीजन, एमरुपी, साइट्रस और फ्रीचार्ज जैसी तमाम कंपनियां और वालेट्स ने कैश पर निर्भरता को कम किया और इनके इस्तेमाल में आया उछाल भी असाधारण था। बाद में रिजर्व बैंक से पेटीएम और एयरटेल ने बाकायदा लायसेंस लेकर बैंकिंग क्षेत्र में एंट्री ले ली है। जाहिर है, अब आपकी बैंकिंग का एक्सपीरियंस और भी बेहतर हो सकता है।

पेटीएम का पेमेंट्स बैंक

डिजिटल पेमेंट्स कंपनी पेटीएम अपना पेमेंट्स बैंक लॉन्च कर चुकी है। कस्टमर्स को डिपॉजिट पर 4 फीसदी ब्याज के साथ कैशबैक और ऐसी ही तमाम सहूलियतों के साथ यह व्यवस्था पारम्परिक बैंकिंग को निश्चित ही चुनौती दे सकती है। इसका टारगेट भी कम महत्वाकांक्षी नहीं है, बल्कि 2020 तक 50

करोड़ यूजर्स तक पहुँचने का दम भर रही है यह कंपनी। हाल फिलहाल इसके पास 20 करोड़ से अधिक रजिस्टर्ड यूजर हैं। आप नोटबंदी के दौर को याद करें। साथ ही पेटीएम की उस आक्रामक रणनीति को भी याद करें, जब उसने तमाम अखबारों के फ्रंट पेज पर प्रधानमंत्री की फोटो लगाकर आक्रामक विज्ञापन किया और करोड़ों यूजर्स तक पहुंची भी। हालाँकि, बाद में उसके यूजर और ट्रांजैक्शन कम जरूर हुए, किन्तु इसे हल्के में नहीं लिया जा सकता। वैसे भी चीन का बड़ा अलीबाबा ग्रुप और जापानी सॉफ्टबैंक इसके इन्वेस्टर्स में से हैं।

इसी से मिलता जुलता एयरटेल पेमेंट बैंक भी है तो दूसरी कई कंपनियां शुरुआत करने की प्रक्रिया में हैं।

इनटच बैंकिंग

अब बैंकों का सारा काम ऑटोमेटेड हो सकता है और ऐसा होगा तकनीक से जुड़ी उन मशीनो की सहायता से, जिसे भारतीय स्टेट बैंक ने 'इन टच बैंकिंग' (In Touch Banking) नाम दिया है। गौर करने वाली बात यह भी है कि भारतीय स्टेट बैंक की मानव रहित बैंक की 70 शाखाएं बखूबी काम भी कर रही हैं। निश्चित रूप से इससे बैंक में लगने वाली भीड़ कम हो सकती है। बताया जा रहा है कि यह मशीन खाता खोलने, पासबुक अपडेट, पैसा निकालने या जमा करने, एटीएम कार्ड मुहैया करने से लेकर लोन के लिए आवेदन करने तक के सभी काम चुटकियों में पूरा कर देगी। दिलचस्प बात यह भी है कि ऐसे में बैंक रविवार सहित अन्य छुट्टियों को भी खुले रहेंगे। हालाँकि, तकनीक का सही इम्प्लीमेंटेशन और उसकी अपडेशन भी उतना ही आवश्यक है, अन्यथा इंटरनेट के युग में हैकर्स के लिए कुछ भी मुश्किल नहीं है।

बैंक अकाउंट पोर्टेबिलिटी

अब ग्राहकों को बिना अपना अकाउंट नंबर बदले एक बैंक से दूसरे बैंक में खाता ट्रांसफर करने की सुविधा मिल सकती है। ठीक मोबाइल नम्बर पोर्टेबिलिटी की तरह। वैसे बैंक अकाउंट पोर्टेबिलिटी की काफी समय से बात चल रही है और अगर ऐसा होता है तो ग्राहकों को कई बैंक अकाउंट खोलने से निजात मिल सकती है। हालाँकि, यह प्रक्रिया अभी शुरूआती चरण में है। अब जबकि तमाम प्राइवेट बैंक मार्किट में आ रहे हैं तो यह सुविधा महत्वपूर्ण हो सकती है, इस बात में दो राय नहीं।

कैश लेन देन पर लगाम

सरकार इस बात के प्रति सजग दिख रही है और इसका प्रमाण यही है कि इनकम टैक्स डिपार्टमेंट लोगों को दो लाख रुपये से अधिक का नकद लेनदेन करने के प्रति आगाह कर रहा है। इसके लिए विभाग की ओर से बाकायदा blackmoneyinfo@incometañ-gov- पद नामक ईमेल जारी हुआ है, जिस पर कोई भी व्यक्ति अधिक नकदी लेन देन की सूचना दे सकता है। सरकार ने वित्त अधिनियम 2017 के तहत एक अप्रैल 2017 से दो लाख रुपये से अधिक के नकद लेनदेन पर रोक लगा दी है। बताया जा रहा है कि धारा 269 एसटी का उल्लंघन करने पर नकद राशि प्राप्त करने वाले पर इतनी ही राशि के बराबर जुर्माना लगेगा। मतलब कैश कारोबार करने वालों के लिए सब इतना आसान नहीं रहने वाला है। हालाँकि, भारतीय अर्थव्यवस्था को साफ सुथरी बनाने की कोशिश अच्छी है, किन्तु अब तक दूसरे ढंग से चलने वाला समाज कितनी जल्दी बदलता है, यह अवश्य देखने वाली बात होगी।

बैंकिंग के सन्दर्भ में कुछ और बातें हैं विचारणीय

इस बात पर वृहद चर्चा हो सकती है कि आजादी के 70 सालों बाद भी देश का आम आदमी बैंकिंग प्रक्रियाओं से उस ढंग से नहीं जुड़ पाया है, जैसे उसे जुड़ा होना चाहिए। अभी करोड़ों लोग ऐसे हैं जो बैंकिंग का मतलब सिर्फ पैसे भेजना और पाना ही समझते हैं। हालाँकि, बैंकिंग की मूल अवधारणा साहूकारी से मुक्ति है। आज भी तमाम लोगों को शिक्षा, शादी, व्यवसाय या किसी अन्य कठिनाई के समय बैंक की बजाय साहूकार ही नजर आते हैं। गाँव तो गाँव, शहरों में भी एक पर्सेंट, दो पर्सेंट या तीन पर्सेंट पर 'आधुनिक साहूकारी' का धंधा खूब फल फूल रहा है तो इसे बैंकिंग सिस्टम की सफलता कैसे माना जाए?

आसान लोन सिस्टम

पिछले दिनों तत्कालीन रिजर्व बैंक गवर्नर रघुराम राजन ने भारतीय बैंकों के सन्दर्भ में कड़ी टिप्पणी करते हुए कहा था कि, "जब बैंको को ब्याज दर बढ़ाना होता है तो वो पॉलिसी रेट की बात करते हैं। लेकिन जब रिजर्व बैंक अपना रेट कम करता है तो वो इसे कम क्यों नहीं करते।" ऐसे में तमाम अर्थशास्त्री सीधा मानते हैं कि बैंक अपनी ब्याज दरों में जितनी जल्दी कटौती करेंगे, अर्थव्यवस्था के बेहतर होने की सम्भावना भी उतनी ही बढ़ जाती है। लेकिन भारतीय परिदृश्य बैंको द्वारा ऊँची ब्याज दर रखी जा रही है और इससे अर्थव्यवस्था की बेहतरी की संभावनाएं कुछ हद तक ही सही क्षीण होती हैं। एक और बात ध्यान देने योग्य है कि आम आदमी बैंकों से कर्ज लेने से डरता है, क्योंकि इसमें काफी उलझाव हैं। जाहिर तौर पर इसे सरल किये जाने की आवश्यकता है। इसके उलट कॉर्पोरेट्स के लिए तमाम बैंक ढील देते हैं और कई बार तो नियमों को ताक पर रखने की हद तक। बाद में यही मामला एनपीए तक पहुँचता है और बैंकों को बड़ी चपत लगती है। हाल ही में विजय माल्या का सन्दर्भ इस बाबत बेहतर ढंग से दिया जा सकता है।

बैंकिंग क्षेत्र में उभरती प्रवृत्तियाँ निम्नांकित हैं:

1. विलय और अधिग्रहण (Mergers and Acquisitions): वैश्वीकरण के वर्तमान युग में भारतीय बैंकिंग परिवेश में नयी चुनौतियाँ उभर रही है। इसी पृष्ठभूमि में परसिंहम कमेटी द्वारा अपनी दूसरी रिपोर्ट में बैंकों के विलय और अधिग्रहण की वकालत की है। आज भारतीय बैंकों के समक्ष विदेशी और निजी क्षेत्र के बैंक एक बढी चुनौती पेश कर रहे हैं। फलत: सार्वजनिक क्षेत्रों के बैंकों के मुनाफे में अपेक्षित वृद्धि नहीं हो पा रही है दूसरी, विदेशी-निजी

क्षेत्र के बैंक अपने साथ उन्नत तकनीक भी ला रहे है जिससे कम लागत पर उत्तर सेवा देने में सक्षम हैं सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक अपेक्षित कम उत्पादकता, पूँजी गाव और बढ़ती गैर-निष्पादित आस्तियों के दबाव से जूझ रहे है। बैंकों के सामने यह भी एक चुनौती है कि वह कैसे अपना अस्तित्व बनाये रखे विशेषकर छोटे और मझोले बैंकों के संदर्भ में यह अहम प्रश्न है।

वर्ष 1999-2000 के केन्द्रीय बजट द्वारा ऐसी सम्भावनाओं को तलाशने की पहल की है। वैसे तो वर्तमान भारतीय परिवेश में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के बलात अधिग्रहण में ऐसी संभावनाएँ नगण्य है फिर भी निजी क्षेत्र के बैंकों के लिए खतरा बना रहता है क्योंकि वहाँ कम पूँजी निवेश है, उत्पादकता अधिक और परिणाम (मुनाफा) ललचाने वाला है।

विदेशों में विलय और अधिग्रहण जब भी हुए है वह सम्बन्धित बैंकों/कम्पनियों द्वारा अपनी पहुँच बढाने, परिचालनों में विविधता और बलात अधिग्रहण से बचने के लिए किए गए है। उदाहरणार्थ बैंकर्स ट्रस्ट और बाल्टी मोर इन्वैस्टमैण्ट हाउस का विलय और हाल स्ट्रीट, न्यूयार्क की फर्म डिलन रीड को एलेक्सा ब्राउन और स्विस बैंकिंग कॉर्पोरेशन के खरीदने के संयुक्त प्रयास।

जापान में भी एक योजनाबद्ध तरीके से बैंकों को मजबूती प्रदान करने के उद्देश्य से ऐसे प्रयास अनवरत किए जा रहे है। भारत में अब तक जो भी विलय हुए है वह कमजोर बैंकों के सशक्त बैंकों के साथ बिना किसी खास प्रयोजन के, केवल कर्मचारियों की नौकरियाँ बरकरार रखने के लिए किए गए हैं, जैसे- पंजाब नेशनल बैंक में न बैंक ऑफ इण्डिया लि., सेठ काशीनाथ बैंक लि. का भारतीय स्टेट बैंक के साथ ऐसे अनुभव यह बताते हैं कि बेमेल विलय बडे बैंकों पर बोझ बने है और उनके कर्मचारी की सघनता अधिक है, परन्तु व्यापार कम है तो ऐसी शाखाओं के विलय से अथवा बन्द करके नये गैर बैंकिंग क्षेत्रों में पैठ बनायी जा सकती है। ऐसे प्रयासों से लागत में कमी आयेगी, लाभ में वृद्धि होगी और दूसरे बैंकों को कडी प्रतिस्पर्धा दे सकेंगे।

2. उपभोक्ता साख ब्यूरो (Consumer Credit Bureau): भारत बैंकिंग परिदृश्य में आज बैंकों में कडी प्रतिस्पर्द्धा के चलते ऋणी के सही चयन और पुनर्भुगतान की बडी विकट समस्या है। गैर निष्पादित आस्तियों (NPAs) के फैलाव में ऋणी का सही चयन न हो पाना एक बडा कारक (Factor) है।

इस समस्या को कुछ हद तक कम करने के और अन्य सम्बन्धित सूचना के संकलन आकलन के उद्देश्य से करते के गठन का प्रस्ताव उपस्थिति वाले ब्रिटिश कम्पनी 'एक्सपेरियन' और अमेरिकी कम्पनी 'इक्वीफैक्स' द्वारा लाया गया है जो कि उपभोक्ता की व्यक्तिगत वित्तीय स्थिति आधार और साख की विस्तृत रिपोर्ट तैयार करेगी और बैंकों को नियत शुल्क पर उपलब्ध कराएगी। इस आशय का प्रस्ताव भारतीय रिजर्व बैंक की स्वीकृति के लिए प्रेषित किया जा चुका है।

3. यूनीवर्सल बैंकिंग (Universal Banking): ऐसी परिस्थितियों जब बैंक और अन्य वित्तीय संस्थाएँ विकास बैंक उन्मुक्त तौर से अपना कार्य कर सकेंगे। वर्तमान में बैंकिंग संस्थाओं की एक सीमा से ऊपर दीर्घकालीन ऋण देने पर रोक है वहीं वित्तीय संस्थाएँ कार्यशील पूँजी वित्त प्रदान नहीं करते है। विकास वित्त संस्थाएँ (DFI) अपनी आवश्यकताओं हेतु भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा 'दीर्घावधि परिचालन निधि खाता' (Long Term Operation Fund) से प्राप्त कर रहे हैं।

यह फण्ड दीर्घावधि की प्रकृति के होने के कारण दीर्घावधि परिपक्वता वाली परिसम्पत्तियों (Assets) के निर्माण में सहायक रही है। जब यह स्रोत सुख गया है। बैंकों की जमा राशियाँ अपेक्षित कम लागत पर बचत खातों चालू खातों से मिल जाती हैं जबकि वित्तीय संस्थाओं को यह सुविधा नहीं है और उन्हें जमा राशियों के लिए बॉण्डों को जारी करना होता है जो कि उन्हें अपेक्षित अधिक ब्याज दरों पर प्राप्त हो।

फलत: वित्तीय संस्थाएँ कम ब्याज दरों पर ऋण नहीं दे पाती हैं। वर्तमान में जबकि बैंक कम लागत पर ऋण देने की स्थिति में ह। तीसरे, बैंकों को अपनी जमाओं पर सावधिक तरल अनुपात (SLR) और नकद आरक्षित अनुपात (CRR) के अनुपालन की आध्यता है तो वित्तीय संस्थाओं को इन अनुपातों से मुक्त रखा गया है।

प्रतियोगिता के युग में बैंक, और वित्तीय संस्थाओं को यदि समान अवसर (Level Playing Fild) और नियमों में रखे जाने की आवश्यकता है जिससे ब्याज दरों में कमी आयेगी, प्रतिस्पर्द्धा बढेगी, उत्पादों के लागत मूल्यों में कमी आने से बैंकिंग उत्पाद प्रतियोगी बनेंगे। भारतीय रिवर्ज बैंक द्वारा 'यूनीवर्सल बैकिंग' के समस्त पहलुओं के अध्ययन हेतु भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI) के अध्यक्ष श्री खान की अध्यक्षता में एक समिति गठित की थी जिसने अपनी रिपीर्ट दे दी है।

4. वंश बैंकिंग (Generation Banking): इस दशक में नये विदेशी बैंक और निजी क्षेत्र में बैंकों के आने से आज प्रतिस्पर्द्धा कुछ ज्यादा ही हो चली है। बैंक यह प्रयास करते है कि उनके ग्राहक बन रहे है और, उनके माध्यम से उनके परिवार/कुटुम्ब के सदस्य भी उसी बैंक से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करें। दूसरे शब्दों में, पर परिस्थितियाँ जब दादा पिता पुत्र सभी अपना खाता एक बैंक में रखे तो आप उनके विभिन्न पीढ़ियों की सेवा करते हैं। यही वश बैंकिंग (Generation Banking) है।

सजगता

दिनों दिन टेक्नोलॉजी का प्रसार बढ़ता जा रहा है और बैंकिंग जैसे क्षेत्र तो इसके ऊपर पूरी तरह डिपेंड से हो गए हैं। ऐसे में आवश्यकता सावधानी की भी है, क्योंकि जिस तेजी से टेक्नोलॉजी बढ़ रही है, उसी तेजी से बढ़ रहे हैं अपराध भी। तो आइये देखते हैं, इस मानक पर हमें किन महत्वपूर्ण बातों का हमेशा ध्यान रखना चाहिए:

- मोबाइल बैंकिंग में ऑफिशियल एप्स ही इस्तेमाल करें, तो बैंकिंग के लिए पब्लिक वाई-फाई का इस्तेमाल कतई न करें। बैंकिंग से जुड़ी इंफोर्मेशन जैसे यूजरनेम, पासवर्ड, ट्रांजैक्शन पासवर्ड इत्यादि मोबाइल में कदापि सेव न करें। फोन को पासवर्ड और बेहतरीन मोबाइल सिक्युरिटी एप्स से जोड़ें रखें।

- फिशिंग अटैक्स, आइडेंटिटी थेफ्ट, की-लॉगर्स इत्यादि आपराधिक गतिविधियों के प्रति सजग रहें। बैंकिंग के लिए कभी भी लॉगिन-लिंक्स पर क्लिक करके न जाएं, बल्कि यूआरएल, यूजरनेम, पासवर्ड इत्यादि टाइप करें।
- अपने बैंक अकाउंट में अंतिम लॉगिन डिटेल चेक करते रहें। अपने अकाउंट के बैलेंस पर आप बारीक नजर रखें, मतलब पासबुक अपडेट रहे, ताकि किसी संदिग्ध गतिविधि को आप तुरंत पकड़ सकें।
- वैसे तो पब्लिक कंप्यूटर पर बैंकिंग करनी ही नहीं चाहिए, किन्तु बेहद जरूरी होने प्राइवेट ब्राउजिंग / इन्कॉग्नीटो विंडो में लॉगिन करें।
- ऑनलाइन शॉपिंग में क्रेडिट-कार्ड का इस्तेमाल ठीक रहता है क्योंकि फ्रॉड होने पर आप बैंक को सीधा रिपोर्ट कर सकते हैं, जबकि डेबिट-कार्ड में रियल-मनी तुरंत कट जाती है।
- इसके अतिरिक्त विभिन्न एंटीवायरस सेफ बैंकिंग के लिए आपको वर्चुअल विंडो प्रोवाइड करते हैं।
- यदि आपके पास कई बैंकों के ऑनलाइन पासवर्ड्स हैं तो उन सभी के पासवर्ड अलग रखने की कोशिश करें।

संदर्भ

1. Times Of India Editorial.
2. The Hindu Editorial.
3. Bankers Adda.
4. Banking Briefs SBI

लालदास कृत रमेश्वरचरित मिथिला रामायणमे मिथिलाक वर्णन

कुमकुम कुमारी

शोध-गवेषिका, (यूजीसी-नेट), विश्वविद्यालय मैथिली विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

रामकाव्य परम्परामे कविवर लालदास कृत रमेश्वर चरित मिथिला रामायण अमूल्य निधि थिक। जँ साहित्यिक एवं धार्मिक दूनु दृष्टिसँ महत्त्वपूर्ण स्थान रखैत अछि। महाकवि लालदासक जन्म 17 फरवरी 1856 ई0मे मधुबनी जिलाक खड़ौआ नामक गाममे एक प्रतिष्ठित कायस्थ परिवारमे भेलनि। हिनक पिताक नाम बचकन दास छलनि।

रामायण सहित हिनक सत्रह गोट मैथिलीक कृति अछि, यथा– साँग सप्तशती दुर्गाटीका, चण्डीचरित्र अथार्त् सप्तशती दुर्गा, स्त्रीधर्म-शिक्षा, श्री सत्यनारायण व्रत कथा टीका, गणेश खण्ड, महेश्वर विनोद अथवा गौरी शम्भु विनोद, हरितालिका व्रत कथा, सोमवारी व्रत कथा, विरूदावली, गंगा माहात्मय, जानकी रामायण, श्रीमद्भगवत गीता, ब्रह्मोतर खण्ड, लक्ष्मीकाण्ड, राधेकाण्ड, सावित्री-सत्यवान नाटक प्रभुति।

रमेश्वर चरित्र मिथिला रामायण महाकवि लालदासक विशिष्ट कृति थिक, जाहिमे प्रबन्धकाव्यक प्रत्येक लक्षण परिलक्षित होइत अछि। ओना मिथिलामे रामायणक प्रथम रचयिता कवीश्वर चन्दा झा छलाह आ दोसर लालदास। मैथिली साहित्यक रामकाव्य प्रणेताक रूपमे लालदास दोसर स्थान पर छथि, मुदा मौलिकता, विषय-वस्तु, भाव एवं उपस्थान शैलिक दृष्टिसँ प्रथम एवं अद्वितीय छथि। लालदासक सबसँ पैघ विशेषता ई छनि जे अपन रामायण बोधगम्य भाषामे लिखने अछि। रामायणमे 'पुष्कर काण्ड'क चर्च सेहो भेल छैक। मुदा चन्दा झाक रामायणमे ई गप नहि छैक। लाल– दासक रामायण ततेक सहज, सरल, स्वच्छ आ स्पष्ट भाषामे छैक, जे मुर्खो कँ पढ़वा आ बुझवामे कठिनता नहि होइछ। जे निम्न पांतीमे देखल जा सकैछ–

''सीता रामाक चरिता ई जे पढ़वाह सूनताह। लाल सकल सुखभोगी पुन, ब्रह्मक पद पौताह।''[1]

कविवर एहि रामायणक रचना अपन आश्रयदाता रमेश्वर सिंहकँ तुष्ट करबाक हेतु लिखलनि, जकर उद्देश्य व्यापक छल। हिनक राम मात्र दशरथक पुत्र नहि, मानव मात्र नहि अपितु ओ राम अर्थात् लक्ष्मी ईश्वर विष्णु थिकाह। एहि रामायणमे रामक अलौकिक प्रसंग, लक्ष्मी अर्थात् सीताक उत्कर्ष, सीताकँ जननीक रूपमे देखब। कारण अछि, जे हिनक रामायणमे रामसँ बेसी सीताकँ महत्व देल गेल अछि। आ मातृभाषा मैथिलीकँ साक्षात् लक्ष्मीक रूपमे कविक व्यापक दृष्टिक परिचायक थिक।

कविवर लालदास बाल्मीकिसँ विशेष प्रभावित छलाह। तँ हिनक रामायणक मुख्य आधार बाल्मीकि रामायण थिक। ई अपन रामायणमे राम आ सीताक स्थान पर विष्णु आ लक्ष्मीक परिक्लपना कएने छथि। ई कृति पुराण ओ तन्त्रसँ सेहो विशेष प्रभावित अछि जाहि मादे कवि स्वयं लिखने छथि –

''आदि कविक आशय कतोक,
आशय विविध पुराण।
कतहु तन्त्र मन्त्रसँ करत,
लान रास-गुन-गान।।''[2]

हिनक रामायण आठ काण्डमे विभक्त अछि। यथा– बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड, उत्तराकाण्ड एवं पुष्कर कांड।

एहि रामायणमे सुगम दोहा आ चौपाई आदिसँ अन्त धरि भेटैत छैक। तत्सम शब्दक संग ठेठ शब्दावलीक प्रयोग रचनामे चमत्कार आनि देने अछि। संगहि विविध छन्दक प्रयोग जेना– चौपाई, सौरठा, दोहा, रूपमाला, शट्पद, हरिपद, कुण्डलिया आदिक सेहो एहि रचनामे भेल छैक।

''हमहुँ जायब अहि संग सुत,
करब नित वनवास।
धेनु, जेहि विधि वत्स-संगहि,
रहय मन उल्लास।।''[3]

एहि रूपमाला छन्दमे रामक प्रति कौशल्या वात्सल्य प्रदर्शित भेल अछि। उत्प्रेक्षा अलंकार चमत्कारपूर्ण सरस वर्णन हमरा तखन भेटैछ जखन लंका यात्रक अवसरपर हनुमानक अतुल पराक्रमक विवरण अछि –

''कयल गिरि जनु कविक पूजन,
पुष्पमय तन भेल।
बूझि पड़ जनि "फूलक बानर",
पवन सुत बनि गेल।।''[4]

एहि रामायणमे प्रत्येक छन्दक माधुर्य एवं प्रसादगुणक विशिष्टता दर्शनीय छैक।

ई मूलस्पसँ बाल्मीकि रामायणक आधारपर लिखल गेल छैक। किछु विषय पुराण ओ तंत्र सँ सेहो लेल गेल छैक। एहि रामायणक सभसँ पैघ विशेषमा थिक जे सीताक चरित्रकँ प्रधानता देल गेल छैक। जेना-उर्मिलाक चरित्रकँ दृष्टिमे राखि 'साकेत'क रचना भेल ताहिना सीताक दृष्टिमे राखि लालदास रमेश्वर चरित्र मिथिला रामायणक रचना कएलनि। एहि रामायणक प्रारम्भ सीताक महिमा वर्णनसँ होइत अछि। यथा –

''मूल प्रकृति लक्ष्मी जनिक,
सीता रूप प्रधान।
तनिक नाम जपि पाब नर,
दुहु लोकक कत्याण।।''[5]

एहि अदभूत कृतिक माध्यमसँ कविवर मिथिलाक प्रति प्रेम, समर्पण एवं भक्तिक धाराकेँ प्रवाहित करौलनि। पुष्करकांडमे मिथिलाक प्रति जगत् जननी सीताक भावना एहि रूपेँ अभिव्यक्त भेल अछि :

''नैहर हमर मिथिला देश।
अति प्रियकर की कहब विशेष।।''[6]

एहि कृतिक माध्यमसँ कविवर लालदासक व्यक्तित्वक निखार सेहो होइत अछि। ओ पाण्डित्यक संग मिथिलाक प्रति श्रद्धाकेँ काव्य कुशलताक संग अभिव्यक्ति देलनि। (राम देल तँ मिथिला सती साध्वी सीता, जकर आदर्श पर चलब एखनो प्रत्येक भारतीय नारी अपन गौरव बुझैत छथि। एहि सीताक व्यक्तित्वकेँ जाहि रूपेँ लालदास'जी प्रस्तुत कएने छथि से अतुलनीय अछि एवं एहि द्वारा मिथिलाक गौरव पुनः साहित्यमे स्थापित भेल अछि।)

कवि एहि प्रबन्ध काव्यमे मिथिलाक अद्भूत वर्णन कएने छथि। आर एहिसँ स्पष्ट अछि, जे कविवर अपन मातृभूमि मिथिलाक प्रति सेहो अत्यधिक मोह देखौलनि अछि। मिथिलाक भूमिक विशिष्टता, ओकर महनीयता, पवित्रता आदिक मनोहारी चित्रण प्रस्तुत'क' कविवर मातृभूमिक प्रति प्रगाढ़ स्नेह देलनि अछि –

''जन्मभूमि नैहर सीताक।
जतय स्वयं शिवरूप पिनाक।।
शक्ति पीठ उत्तम स्थान।
उग्र भूमि सभ भाँति महान।।''[7]

एतवे नहि –

''कंचनमय प्राकार ललाम।
शरदमेघ सन सौंध सुधाम।।''[8]

लालदासक सीता उपेक्षित नहि छथि। राम कथाक संग सीताक उपस्थिति अनिवार्य अछि। आओर सीताक मर्यादित रूप प्रतिष्ठापित भेल अछि। मर्यादा स्रोत होइछ शक्ति आओर शक्तिक पुंज थिकीह सीता। यदि अयोध्या मर्यादा पुरुषोतम। कविवर लालदास मिथिलाक परम्परागत शाक्त भावनाकेँ रामकाव्यमे उद्भाषित कएलनि अछि। पुष्करकांडमे सीताक उत्कर्ष वर्णन अछि। एहिमे सीताक महत्वकेँ विशिष्ट रूपेँ चित्रित कएल गेल अछि। सीताक विशिष्ट चरित्र रामसँ बेसी शक्तिशाली प्रदर्शित भेल अछि।

कवि मिथिलाक सभ्यता एवं संस्कृतिक चित्रण विशद रूपेँ कएलनि अछि। मिथिलाक परम्पराक अनुकूल विविध विषयक वर्णन एहि महाकाव्यमे भेल अछि। यथा –

गिरिजा अर्चना, सरिता अर्चना (कोशी कमलाक पूजा), परदा प्रथा, विवाहोत्सव, अतिथि-सत्कार, उचिती, विधकारी, डहकन, महुअक, समदाउन, द्विरागमन, भारदोर, दान-दहेजक संगहि विविध उत्सवक अन्तर्गत जन्मोत्सव, धनुषभंग, अभिषेक, भविष्यवाणी, वस्त्रभूषण,श्रृंगार प्रसाधन, भोजन-विन्यास प्रभुतिक सांगोपांग वर्णन भेल अछि।

हिनक रामायणमे नव-नव प्रसंगक स्थान महत्वपूर्ण अछि। एहि प्रबन्धकाव्यमे नारीक मातृत्व रूपक प्रधानता देखाओल गेल अछि। चरित्र-चित्रण, सामाजिक नियम, आचार-विचार, सभ्यता-सुस्कृति सभक दृष्टिएँ ई अनमोल निधि मानल जाएत।

मिथिला नगरक शोभा सुन्दरताक दिसि जखन कविक दृष्टि जाइत छनि, तँ ओकर वर्णन प्रस्तुत करबामे मंत्रमुगध भ' जाइत छथि आ लिखैतकाल अघाइत नहि छनि। मिथिला राज्यक शोभा-सुन्दरता, मिथिलाक उद्यान, नदी,पोखरि, खेत-पथार, मिथिलावासीक सदाचारिता, तपस्या, धर्मप्रियता प्रभृतिक वर्णन अनेक दृष्टिसँ कएल गेल अछि।

स्वर्गहुँसँ उच्च प्रदर्शन करैत मिथिलाकेँ शक्तिक विशिष्ठ सिद्धिपीठ प्रमाणित करबाक प्रयास महाकवि कएने छथि। कवि आत्मामे, प्राणमे, आँखिमे सर्वतोभावेन महाशक्ति अमर ज्योतिक किरण अनुपम आलोकसँ जगमगा रहल छनि। ई मृत्यलोकमे मिथिलाक तुलना सुरलोकक विष्णुधामसँ कएने छथि। मिथिलाक नारी-गुणक, आचार-विचार, सौन्दर्य-सतीत्व, कला प्रभृतिक चित्रण बेजोड़ अछि। मिथिलाकेँ स्वर्गक संज्ञा देल गेल अछि, जे निम्न पाँतिमे द्रष्टव्य अछि –

''भासमान मिथिलापुरी,
रवि सन तेज प्रचण्ड।
बुझि पड़ अनुपम देश जनि
महिगत स्वर्गक खण्ड।।''[9]

भाव पक्षक दृष्टिएँ एहि रामायणक ई विशेषता अछि जे एहिमे व्यक्ति ओ समाजक प्रतिनिधित्व भेटैत अछि। एकर कथानक सार्वभैम, सार्वकालिक एवं सार्वजनिक अछि आ ई समाज ओ काव्य दुनूकेँ गति प्रदान कएलक अछि। चरित्र-चित्रण, अभिव्यक्ति-कौशल एवं घटना संगठन एकर विलक्षण अछि। एहिमे सभ प्रकारक सामग्री भेट जाइत अछि।

कविवर लालदास पात्रसँ जाहि प्रकारक आत्मीयक भाव स्थापित कएलनि अछि। ओ चरित्र विकासक योजनामे एकटा अभिनव प्रयोग मानल जाइत अछि। कविवर अपन विलक्षण काव्य-प्रतिभाक कारणेँ विषय-वस्तुक उपस्थापन एहि रूपेँ कएलनि अछि जे विषय-वस्तु प्राचीन रहितहुँ नवीन बुझि पड़ैत अछि।

प्रकृति वर्णनक सांगोपांग चित्रण सेहो एहि प्रबन्ध काव्यक एकटा प्रमुख लक्षण मानल जाइत अछि। जीवनक सम-विषम, अनुकूल-प्रतिकूल एवं शान्त-अशान्त परिस्थितिक स्वाभाविक वर्णन एहि काव्यमे भेल अछि, जे निम्न पाँतीमे द्रष्टव्य अछि –

''दयाहीन अति दीन जन सुख सम्पति विहिन।
पाव अनादर शोक नित शरद् मेघ सन क्षीण।।''[10]

कलापक्षक दृष्टिसँ सेहो ई रामायण अद्वितीय अछि। प्रकृति एवं लोक-जीवनसँ जुड़ल उपमानक प्रयोग भेल अछि। कवि अभिव्यंजनाक माध्यमसँ सौन्दर्यक एहन प्रदर्शन कएलनि अछि जे निःसन्देह रामायण कला-पक्षकेँ आकर्षक रूपेँ प्रदर्शित करैत अछि। कवि एहि रामायणक रचना जनभाषामे कएलनि अछि। शिष्ट जनक भाषा एहिमे प्रयोग कएल गेल, अशिष्ट जनक भाषा नहि।

जगतजननी सीताक अवतरण होइतहि मिथिला स्वर्ग सदृश भ' गेल आर महाकवि स्वर्ग लोककेँ मृत्यलोकपर उतरबाक सफल चित्रण कएलनि अछि। वैकुण्ठक सम्पूर्ण वैभव-विलास, कमला प्रभृतिक जतेक धार अछि सभ सीताक सखीरूप भ' मिथिलाक पदार्पण कएलनि। अणिमादिक ;द्धि-सिद्धि सीताक संगनी भ' अएलीह। एतवे नहि,

विरजा, यमुनी, दुग्धवती, गंगा, यमुना, सरस्वती, एवं आनो-आन नदी सभ जे स्वर्ग लोकमे प्रवाहित भ' देव लोकक गौरव बढ़बैत छलीह, सेहो सभ नदी मिथिलामे अतरि अइली। पृथ्वीपर जतेक तीर्थधाम छल सब मिथिलामे आबि एकाकार भ' गेल। महादेव आदि एकादश, रूद्र, दिक्पाल, अलकाधीश, कुबेर एवं सातो समुद्र प्रभृति समस्त देवता लोकनि मिथिलाहिमे पदार्पण कएल।

रामरूपमे स्वयं विष्णु आबि अपार धन सम्पत्तिक भण्डार मिथिलामे भरि देलनि। एहि मिथिला तपोभूमिमे ;षि, महर्षि, देवर्षि एवं ब्रह्मर्षि लोकनि तपस्यार्थ अबैत गेलाह। होम-यज्ञक व्यापकतासँ मिथिला पुष्पवती भ' उठलि। सर्वत्र सभ कालमे धर्मो चरणेक प्रमुखतासँ मिथिला धन्य-धन्य भ' गेल। रामायणमे एहि प्रकारक बहुतो प्रसंग थिक, जे द्रष्टव्य थिक :

''के कहि सक मिथिलाक प्रशंस।
वैकुण्ठक ई पूरण अंश।।''[1]

एतवे नहि -

"काशी, पुष्कर, विन्ध्य प्रयाग।
वयस वर्ष दिन जे सद्भाव।।
ततवा पृण्य समान स्वभाव।
एकहि दिन मिथिला वसि पाव।।
सप्तपुरी जे मोक्ष-स्थान।
से सामान्य मोक्ष नहि जान।।
जे जन मिथिलामे तन-त्याग।
जानब जनक तनिक बड़ भाग।।''[2]

कविवर लालदासक रामायणमे भक्तिभावना प्रधानता रहितहुँ सभ रसक धारा प्रवाहित भेल अछि। जेना-श्रृंगी ;षिक संग अयोध्याक ललना नोकनि रंग-रभसँ, सीताक वयः सन्धिक वर्णन, अहिल्या-चरित्र, रावणक विलासिता, सीता-रामक परस्पर अवलोकनि प्रकृति। तँ एहि रामकाव्यक वैशिष्ट्यकेँ देखि प्रख्यात मैथिली साहित्यक विद्वान प्रो0 (डा0) शैलेन्द्र मोहन झा लिखने छथि -

''प्रस्तुत रामायण जहिना भक्ति-भावसँ ओत-प्रोत अछि, तहिना श्रृंगार प्रधान काव्यक चमत्कारिता सँ सेहो परिपूरित अछि।''[3]

सीताक जन्मक उपरान्त मिथिला देशक जे मनोहारी वर्णन कवि प्रस्तुत कएलनि अछि, ताहिमे अत्यन्त स्वाभाविकता अछि एवं आन रामायणसँ भिन्न अछि। रामक अपेक्षा सीताक व्यापक महिमा ओ गरिमा केँ देखेबाक उद्देश्य कविकेँ छलिन। सीताक जन्मक बाद जे मिथिलाक विभव-विलास एहि काव्यमे प्रस्तुत भेल। ओ मिथिला वासीक हेतु प्रेरणादायक बनल। यथा -

''लक्ष्मी जतय कयल आवास।
तहँक कहय के विभव-विलास।।
अनुखन सुखी जीव समुदाय।
मिथिला विभव कहल नहि जाय।।''[4]

रामायणक बालकाण्ड अपन प्रासंगिक कथा सभक विस्तार लेल प्राचीनकाल सँ प्रसिद्ध रहल अछि। प्रचलित बाल्मीकि रामायणमे दससँ बेसी एहन कथा सम्पूर्ण व्याख्याक संग उद्धृत भेल अछि। मुदा लालदास अपन रामायणमे मुख्यतः पाँच गोट कथा-प्रसंगकेँ उद्धृत कएलनि अछि।

निष्कर्षत

लालदास कृत रामायणमे वर्णित मिथिला महिमाक कथा प्रसंग सभक चित्रण बड़ सुन्दर भेल अछि। कोन प्रसंगक चर्चा कएल जाए, कोन छोड़ल जाए। पुष्पोद्यानमे सीता-रामक झाँकी तेहन आकर्षक, धनुर्भंगक अवसरपर जनकक मुख सँ 'वीर विहीनता'क कटूक्ति सुनि शेषावतार लक्ष्मणक भड़कल क्रोधाग्निक चित्रण बेजोड़ छनि। तेजास्वितापूर्ण रामक सौन्दर्य देखि मिथिलाक महिलागण विलक्षण मनोरथ कलापूर्ण चित्रण अपूर्व अछि। जनकपुरमे राक कौतुक गृहक हास्य-विलास तेहने रसमय अछि।

सन्दर्भ

1. रमेश्वरचरित मिथिला रामायण– ले. लालदास, पृ. सं. 7 प्रकाशक– साहित्य आकेदमी, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष-1993 ई.
2. लालदास (विनिबन्ध)– प्रो. देवेन्द्र झा, पृ. सं. 21 प्रकाशक-साहित्य आकेदमी, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष-1993 ई.
3. लालदास (विनिबन्ध)– डॉ. राधेकृष्ण चौधरी, पृ. सं. 41ए प्रकाशक-मैथिली आकेदमी, पटना, प्रकाशन वर्ष-1981 ई.
4. ओएह– पृ. सं. 42
5. लालदास (विनिबन्ध)– प्रो. देवेन्द्र झा, पृ. सं. 25
6. रमेश्वरचरित मिथिला रामायण-ले. लालदास, पृ. सं. 175 प्रकाशक– साहित्य आकदेमी, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष-1999 ई.
7. लालदास (विनिबन्ध)– डॉ. राधेकृष्ण चौधरी, पृ. सं. 39
8. ओएह ओएह
9. ओएह– पृ. सं. 40
10. ओएह– पृ. सं. 32
11. ओएह– पृ. सं. 41
12. ओएह– ओएह
13. ओएह– पृ. सं. 38
14. रमेश्वरचरित मिथिला रामायण– ले. लालदास, पृ. सं. 25 प्रकाशक– साहित्य आकेदमी, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष-1993 ई.

भूमिका-अनुसन्धान-आलोचनाक प्रणेता: प्रो. रमानाथ झा

डॉ० गोपाल कुमार

अतिथि शिक्षक, मैथिली विभाग, आर.के. कॉलेज, मधुबनी, (बिहार)- 847211

मैथिली आलोचना साहित्यक विकासमे भूमिका-अनुसन्धान-आलोचना लेखनक योगदान उल्लेखनीय अछि। भूमिका द्वारा पाठक कोनो कृतिकारक कृत्तित्व ओ व्यक्तित्वक ज्ञान प्राप्त करैत अछि। स्वतन्त्रता प्राप्तिक बाद पोथीक प्रकाशनमे गति आएल आ विभिन्न विद्वान द्वारा ताहि पोथीक भूमिका लिखल गेल। एहि प्रकारक भूमिका लेखक लोकनिमे विशेष रूपसँ उल्लेखनीय छथि म.म.डॉ. उमेश मिश्र, आचार्य रमानाथ झा, प्रो. सुरेन्द्र झा 'सुमन', प्रो. आनन्द मिश्र, प्रो. मुनीश्वर झा, प्रो. भीमनाथ झा आदि। प्रो. रमानाथ झा भूमिका-अनुसन्धान-आलोचनाक रूपमे प्रमुख अछि।

वास्तवमे प्रो. झा मैथिली साहित्यमे हंसवृत्ति समीक्षकक रूपमे विख्यात छथि। आलोचनाकेँ वैज्ञानिक रूपमे लेनिहार प्रथम व्यक्ति रमानाथ बाबू भेलाह। आलोचनाक शास्त्रीय पक्षपर हिनक 'समीक्षावृत्ति ओ आलोचना-साहित्य' शीर्षक रचनामे देखल जा सकैत अछि। मैथिलीक मान्य समालोचक प्रो. अमरेश पाठक लिखित 'रमानाथ झा' विनिबन्धमे प्रो. झाक समीक्षा विषयक अवधारणा द्रष्टव्य अछि -

"जँ कुशल परीक्षक नहि भेल तँ कतोक वास्तविक सुन्दर वस्तु वा सुन्दर रचना अनादृत भए जाएत, उपेक्षित रहि जाएत। बहुतो निरर्थक रचना भ्रम वा पक्षपातसँ सुन्दर एवं ग्राहय बुझल जाए लागत। एहिसँ अयोग्यकेँ प्रोत्साहन भेटत तथा मूल्यांकनक एहन भ्रामक कसौटिक कारणेँ अनुचितकेँ उचित, अभव्यकेँ भव्य एवं त्याज्यकेँ ग्राहय बुझल जाए लागत। तेँ समाजक रूचिकेँ परिष्कृत, व्यवस्थित, सन्तुलित बनबएबाक हेतु, बनओने रहबाक हेतु कोनो रचनाक ठीक-ठीक परीक्षण ओ मूल्यांकन कएनिहार कुशल समीक्षक मानव समाजक सत्यवृतिक सुरक्षाक हेतु आवश्यकेँ नहि अनिवार्य। जाधरि ठीक समीक्षक नहि रहत ताधरि कोनो कलाकृतिक सौन्दर्यक कोन कथा जे लोक ओहि कलाकृतिकेँ चीन्हि पर्यन्त नहि सकत।"[1]

आचार्यक उपर्युक्त कथनक सत्यताक जाँच हुनक कोनो भूमिकाक आधारपर कएल जा सकैत अछि। मैथिली साहित्यमे हमरा जनैत हुनकासँ अधिक केओ भूमिका लेखनक काज नहि कएने छथि। कोनो पोथीक भूमिकामे सर्वप्रथम ओहि विधाक ऐतिहासिक क्रम ओ ओकर तत्त्वक विस्तृत विश्लेषण कएलाक बादे ओकर गुण-दोषक उल्लेख करैत छथि। एक निश्चित मापदण्डक आधारपर ओ कोनो कृतिक मूल्यांकन करैत छथि। भूमिका लिखबाकाल हुनका समक्ष मात्र पोथी रहैत छनि, लेखक नही। उषाहरण नाटक, श्रृंगार-भजन, कृष्णजन्म, विडम्बना,मृच्छकटिक नाटक, पृथ्वीपुत्र, पवित्रा, ललका पाग, बौद्धगानमे तान्त्रिक सिद्धान्त, श्रीशजीक इतिहास आदि पोथीक हुनक भूमिका उल्लेखनीय अछि। ओ सम्पादन कलाक सिद्ध-हस्त आचार्य छलाह। एतेक पोथीक एखन धरि मैथिली साहित्यमे केओ व्यक्ति सम्पादन नहि कएने छथि। अपन प्रत्येक सम्पादित पोथीमे ओहि विधाक विस्तृत ऐतिहासिक क्रमक जिक्र करैत, संकलित रचनाक ओ शास्त्रीय समीक्षा कएने छथि। हुनक सम्पादित पोथीमे प्रमुख अछि विद्यापतिक पुरूष-परीक्षा, कविता-कुसुम, मैथिली गद्य-संग्रह, मैथिली पद्य-संग्रह, प्राचीन गीत, कथा-काव्य, नवीन गीत आदि पोथी एहि विवशतासँ सर्वथा मुक्त अछि से कहब कठिन होयत, तथापि एहिमे सन्देह नहि जे ई सभ मात्र पाठयक्रमक पोथी नहि अछि। रमानाथ झा एहि सभक पोथीक आधारपर सम्पादन-कार्यक मानक प्रस्तुत कएलनि अछि। सम्पादन कला थिक। सम्पादन दृष्टि थिक। छात्रक लेल सम्पादित पोथीक उपयोगिताकेँ ध्यानमे रखैत ओकर साहित्यिक मर्यादा प्रदान करब रमानाथ झाक सम्पादन-कला आ हुनक स्फीत दृष्टिक प्रमाण अछि। एहि प्रसंग मोन रखबाक बात ई अछि जे सम्पादन अथवा कोनो प्रकारक लेखन व्यक्ति-सापेक्ष होइत अछि। अपन अध्ययन आ विचार, इच्छा आ रूचिकेँ ताकपर राखि कऽ सम्पादन नहि भऽ सकैत अछि तेँ रमानाथ झा अपन सम्पादित पोथीमे हिनका लेलिन-हुनका नहि, अथवा किनका सम्बन्धमे की कहलनि तकरा निरपेक्ष-उक्तिक रूपमे देखब बहुत उपयुक्त नहि अछि। देखबाक मूल बात ई अछि जे मैथिली साहित्य ओ साहित्यकारकेँ देखबाक जे बाट ओ देखोलनि अछि, जे निकष ओ स्थापित कएलनि अछि- से कतेक उपयोगी अछि।

हमरा जनैत सम्पादन काजक जे प्रारूप ओ अपन एहि प्रकारक पोथीमे देलनि अछि से आइए नहि, आगुओ लेल सार्थक अछि। एकर अतिरिक्त गुणवत्ताक दृष्टिकोणसँ सेहो एहि पोथी सभक उपादेयता निर्विवाद अछि। उदाहरण रूपमे 'कविता-कुसुम' आ 'प्राचीन-गीत'मे विद्यापति आ हुनक गीतसँ सम्बन्ध लेखनकेँ लेल जा सकैत अछि।

प्रो. रमानाथ झाक सम्पादन-दृष्टिक उल्लेखनीय विशेषता अछि रचनाक पाठ आधारित विश्लेषण। संस्कृतक भाष्यकार एवं व्याख्याकारक शैलीमे ओ रचनाक बखलौइया छोड़ौलनि अछि। ओकर हीरकेँ तकबाक प्रयास कएलनि अछि। आजुक समयमे एकर प्रासंगिकता बेसी अछि।

रामानाथ झा मैथिली साहित्य आ साहित्यकारक खोज-खबरि कात-करौटसँ नहि लेलनि। हुनक उद्देश्य छलनि साहित्यमे निहित विशेषताकेँ रेखाकिंत एवं विकसित करब। एहि लेल मैथिली परम्परा, मैथिल संस्कृति तथा मिथिलाक इतिहासक उपयोग कएलनि। उपयोग करबासँ पूर्व ओहि सभ आधर-सामग्रीक रूपरेखा स्थिर कएलनि आ तखन समीक्षा-कर्ममे प्रवृत भेलाह। एहि प्रक्रियामे हुनका लेल गम्भीर आ व्यापक अध्ययनक आवश्यकता छलनि। संयोगवश दरभंगा-राजक अनुकूलता हुनका उपलब्ध रहनि। राज-पुस्तकालयक प्रकाशित-अप्रकाशित लिखित संसाधन तँ हुनका प्राप्त रहबे करनि, देश-विदेशमे राखल

पांडूलिपि पुस्तक सेहो सुविधासँ भेटि जाइन। तँ हुनक अध्ययनक क्षेत्र आ ज्ञानक गाम्भीर्य क्रमशः बढ़ैत गेलनि। किन्तु, ताहि अनुपातमे ओ लिखि नहि सकलाह। लेखनक अनेक कार्यक्रम बनले रहि गेल, क्रियान्वित नहि भ' सकल। मुदा एकर ई अर्थ नहि जे हुनक लेखन आकारमे झुझुआन अछि। ओ जतेक लिखि सकैत छलाह ततेक नहि लिखलनि जे सभ लिखबाक योजना छलनि सेहो नहि लिखा सकलनि-ई सभ भिन्न बात लेल, मुदा ओ जतेक लिखि गेल छथि से एखनो मैथिली साहित्यकारक लेल प्रतिमान अछि। रमानाथ झा कथा-कविता-उपन्याससँ भिन्न प्रकारक वस्तु बेसी लिखलनि आ ओकर लेखनमे जाहि अनुशासनक पालन करब अपेक्षित छैक से ओ कएलनि। उदयन कथा आ वररूचि कथा हुनक प्रारम्भिक लेखन-कालक रचना अछि। रमानाथ झा जानल जाइत छथि समीक्षक आ सम्पादक रूपमे, निबन्धकार आ अनुवादक भूमिकामे।

प्रो. झाक लेखनक बीज मन्त्र अछि मिथिला। मिथिलाक उत्थान। हुनक लेखकीय जीवनक प्रारम्भ भेल अछि 'मिथिलाक विकास कामना' शीर्षक लिखित निबन्धसँ। संयुक्त लेखनकेँ छोड़ि देल जाय तँ हुनक पहिल प्रकाशित निबन्ध अछि- 'मिथिला ओ मैथिली'। मिथिलाक उत्कर्ष रमानाथ झाक लेखनक प्रथम प्रथम प्राथमिकता छल।

प्रो. झा मिथिलाक विकास चाहैत छलाह, मुदा हुनका लेल विकासक अर्थ ओ नहि छल जे आइ साधारणतः बूझल जाइत अछि। आर्थिक वा भौतिक उन्नति हुनक विकासक परिधिमे नहि छल। हुनक दृष्टिमे मिथिला अपन ज्ञान-लोकसँ, विद्या-वैभवसँ, आचार-चारूतासँ एवं विचारक वैशद्यसँ महत्वपूर्ण रहल अछि। आगुओ इएह सभ एकर उत्कर्षक आधार होयत। मोटामोटी कहि सकैत छी जे रमानाथ झाकेँ सभ्यता आ संस्कृतिपरक विकास कायम छलनि। इएह कारण अछि जे ओ मिथिलाक उत्थानक लेल दू टा विषयकेँ चुनलनि आ ओहि प्रसंगपर गहनतासँ विचार कएलनि। ओ दुनू विषय अछि- मैथिली भाषा ओ साहित्य। आब देखबाक ई अछि जे मैथिली भाषा एवं साहित्यक प्रसंग रमानाथ झाक धारणा-अवधारणा की छल आ ओहि माध्यमसँ ओ मिथिलाक सांस्कृतिक मूल्य-बोधकेँ कतेक बलगर बना सकलाह अछि।

मैथिली भाषाक उत्पति ओ विकासक सम्बन्धमे रमानाथ झाक सुविचारित दृष्टिकोण अछि। संस्कृतक प्रसंग हुनक कथन छनि जे- "ओ वर्ग-विशेषक भाषा छल, शिष्टक भाषा, द्विजातिक भाषा छल, पण्डितक भाषा।"[2] एकर विपरीत प्राकृत भाषा जनसामान्यक भाषा दैनिक व्यवहारक भाषा छल। ज्योतिरीश्वर वर्णरत्नाकरमे जाहि तरहक भाषाक नाम लेलनि अछि ताहिमे अवहट्ठ सेहो अछि। अवहट्ठ अपभ्रंश भाषा थिक। एहि मान्यताक आधारपर लोचन सत्रहम् शताब्दीक उत्तरार्द्धमे मिथिला भाषाकेँ 'मिथिलापभ्रंश' भाषा कहलनि। चन्दा झा 'अपभ्रंश' शब्दकेँ हटा देलनि आ सोझे 'मिथिलाभाषा' कहब उचित बुझलनि। हुनके समयमे ग्रियर्सन एहि ठामक भाषा लेल 'मैथिली' शब्दक प्रयोग करय लगलाह जे आब सर्वमान्य प्रचलित नाम अछि।

भाषाक अर्थमे मैथिली शब्दक उपयोग उक्त पृष्ठभूमि महत्वपूर्ण अछि। एकर महत्ता आओर बढ़ि जाइत अछि जखन रमानाथ झा लिखैत छथि-

"जनपदीय भाषा जनपद सबहुँक भाषा छल, मुदा संस्कृतक जे केओ विद्वान होथि तनिक मात्र, विशेषतः ब्राह्मणक भाषा भए गेल एवं क्रमेँ संस्कृत जनजीवनसँ दूरि हटि एकवर्गीय भए गेल, ओ केवल एक वर्गमे, पण्डितवर्ग मात्रमे सीमित भए रहल, परन्तु से भए गेल ओ भारतवर्षक समस्तक, ओकर कोनहुँ एक भू-भागक नहि। भू-भाग भेदेँ भिन्न-भिन्न भए गेल जनपदीय भाषा जकरा ओहि भू-भागक समस्त जनता, ब्राह्मणसँ चण्डाल धरि पुरूष ओ स्त्री आबला वृद्ध जानए।"[3]

मैथिली आ ओकर साहित्य-भाषा बनबाक प्रक्रियाक ई ऐतिहासिक विवेचन रमानाथ झाक कीर्तिकर कार्य थिक। मैथिलीकेँ संस्कृत सन्तान नहि, मिथिलाक माटि-पनिक उपजा मानब, मैथिली साहित्यक आदि रचनाकार रूपमे ब्रह्मणेतर समुदायक योगदानक ऐतिहासिक तथ्यकेँ निरूपित करब निश्चित रूपसँ प्रशंसनीय कार्य अछि। एहि कार्यक महत्व आजुक जातिवादी वातावरणमे आओर बढ़ि गेल अछि। ई बात रमानाथ झाकेँ ध्यानमे छलनि।

प्रो. झा मैथिली भाषाक स्थिति आ समस्यापर, ओकर भविष्य आ समाधानपर अपन अनेक निबन्धमे विचार कएलनि अछि। मुदा, मैथिलीक प्रसंग हुनक एक टा चर्चित कार्य अछि मैथिलीक मानकीकरणक प्रयास। हुनक एहि कार्यकेँ अनेक नामसँ अभिहित कएल गेल अछि भाषाक एकरूपता, लेखन-शैलीक एकरूपता, भाषाक मानकीकरण आदि। रमानाथ झा चिन्तक रचनाकार छलाह। ओ जे किछु लिखलनि से सोचि-विचार कए, गम्भीरतापूर्वक। जकरा बामा हाथक लेखन कहल जाइत अछि से ओ कहियो नहि कएलनि। सभ-सम्मेलनक लेल भाषणक आलेख हो वा आकाशवाणीसँ प्रसारित होमयवला कोनो लेख-हड़बड़ीमे किछु लिखि लेलहुँ, ई हुनक प्रवृति नहि छलनि। तँ हुनक सभ रचना सुचिन्तित आ सुगठित अछि। माने ई जे लेखनकेँ ओ दायित्व-पूर्ण कार्य बुझैत छलाह। ई हुनक पैघ विशेषता थिक। सोनामे सुगन्ध तखन भेटैत अछि जखन सोचि-सोचि कए, तौलि-तौलिकए लिखयवला रमानाथ झाक विशालकाय लेखनकेँ देखैत छी। बेसी लिखलासँ स्तरीयता प्रभावित भेल हो तकर बोध कोनो पढ़लासँ नहि होइत अछि। एकर विपरित पुरूष परीक्षाक अनुवाद हो अथवा 'गुरू गोविन्द सिंहक मैथिली नाटकक ऐतिहासिक प्रसंग हो वा मैथिली लिपिक, मिथिलामे फगुआपर लिखबाक हो कि म.म.पं.बालकृष्ण मिश्र आ वाचस्पतिपर सर्वत्र अध्यननक गहनता आ प्रस्तुतिक निजता देखबामे अबैत अछि।

प्रो. रमानाथ झा सर्वाधिक महत्वपूर्ण छथि समालोचक-रूपमे। एहि रूपमे हुनक पहिल महत्वपूर्ण कार्य अछि मैथिली साहित्यमे समीक्षाक महत्व स्थापित करब। ई कार्य ओ दू तरहेँ कएने छथि-व्यवहारिक समीक्षा द्वारा तथा समीक्षाक सैद्धान्तिक विवेचनक माध्यमसँ। व्यावहारिक आलोचना तीन प्रकारक अछि-निबन्ध रूपमे, पुस्तक रूपमे आ भूमिका रूपमे। निबन्धमे सभा-सम्मेलनमे देल गेल लिखित भाषण, आकाशवाणीमे पठित आलेख तथा स्वतन्त्र रूपसँ लिखित निबन्ध अछि। विषय अथवा रचनाकार केन्द्रित पुस्तक एकेटा अछि-साहित्य अकादेमीसँ प्रकाशित 'विद्यापति'। भूमिका रमानाथ झा बहुत पोथीकेँ लिखने छथि। अपन आ अनकर दुनू कोटिक पोथीक। एहि भूमिका सभमे सम्बन्ध कृतिक गुण-दोषक विश्लेषणक संगहि विषय-वस्तुक सैद्धान्तिक पक्षपर सेहो ध्यान राखल गेल अछि। प्रसिद्ध कथाकार ओ उपन्यासकार ललितक उपन्यास 'पृथ्वीपुत्र'क भूमिकाक किछु पाँती देखल जाए-

"पृथ्वीपुत्रमे हमरा हेतु आकर्षणक दोसर विषय थिक औचित्यक रक्षा। अवैद्य प्रेमक प्रसंगमे कनेको संयम शिथिल भेलासँ कथानक अमर्यादित भए जाइत, परन्तु श्री ललित अवैध प्रेमक प्रसंगकेँ वैधहु प्रेमसँ भव्यतर चित्रित कए मानव स्वभावक सहज शालीनताकेँ स्फुट कए देल अछि।"[4]

संगहि तत्वक आधारपर ओकर दोषक उल्लेख करैत कहैत छथि –

"परन्तु पृथ्वीपुत्रमे त्रुटि नहि छैक से नहि। सबसँ विशेषतँ ई उपन्यास हमरा अत्यन्त छुछुन लगैत अछि। उपन्यासमे जे व्यापकता चाही से एहिमे नहि भेटैत अछि। उपन्यासमे मुख्य कथानक संग-संग एको गोट गौण होएब आवश्यक से एहिमे नहि अछि..... सबसँ बेसी खटकैत अछि एहिमे विशुद्ध हास्य'रसक क्षीणता। ग्रामीण जीवनमे हास्य रसक बड़ विशेष स्थान छैक ओ तकर समावेश नहि भए सकल अछि जे नीक नहि लगैत अछि।"[5]

वास्तवमे आचार्यक उद्देश्य रहैत छलनि रचनाकार लेखकीय प्रतिभाकेँ विकसित करब। मैथिलीमे स्तरीय रचना हो, ताहि दिशामे ओ साकांक्ष रहैत छलाह आ जे लेखक हुनक परामर्श ओ मार्गदर्शनमे काज कएलनि सें आगू जाकए मैथिली साहित्यमे प्रसिद्ध भेलाह उदाहरण रूपमे प्रो. तन्त्रनाथ झा, पं. उपेन्द्रनाथ झा 'व्यास', ललित, प्रो. अमरेश पाठक, प्रो. जयधारी सिंह 'प्रभाकर', डॉ. दुर्गानाथ झा 'श्रीश', डॉ. बाल गोविन्द झा 'व्यथित' आदि। ओ स्वयं सश्रम काज करैत छलाह आ अन्यसँ सेहो ओहने अपेक्षा रखैत छलाह। राम-द्वेषसँ मुक्त भए निर्भिकतापूर्वक कोनो कृतिक समीक्षा करैत छलाह। हुनका आगू रचना रहैत छल, रचनाकार नहि। हुनका लेल भाषा-साहित्यक हित सर्वोपरि छल।

प्रो. रमानाथ झा मैथिली आलोचनाकेँ दिशा आ दृष्टि देलनि अछि। चन्दा झासँ प्रेरित भए ओ अनुसन्धानकेँ आलोचनासँ मिला देलनि। अनुसन्धान ओ दू स्तरपर कएलनि-तथ्यक अनुसन्धान आ अर्थक अनुसन्धान। तथ्यक अनुसन्धान सेहो दू प्रकारक अछि-रचनाक खोज आ रचनाकार परिचय-पातक खोज। हम सभ जनैत छी जे प्रो. झा विद्यापतिकेँ सैंतीस गीतक उत्खनन कएलनि जे हुनका द्वारा सम्पादित 'भाषागीत-संग्रह'मे संकलित अछि। एहिसँ मैथिली साहित्यक भण्डार भरल अछि। ओकर गरिमा बढ़ल अछि।

रचनाकारक परिचय तकबाक क्रममे रमानाथ झा पंजी-व्यवस्थाक उपयोग कएलनि अछि। पंजी-व्यवस्थाक उपयोग करयवला पहिल साहित्यकार चन्दा झा छथि। प्रो. झा हुनक अनुसरण करैत एहि व्यवस्थाक साहित्यिक उपयोग साधन रूपमे कएलनि अछि। प्रो. झाक समालोचनाक अधिकांश केन्द्रित पद्य-रचनापर अछि। मैथिली गद्य-कृतिपर ओ अपेक्षाकृत कम लिखने छथि। हिनकामे अध्ययन जनित आत्मविश्वास तथा विचारपरक दृढ़ता छलनि। समालोचक लेल ई आवश्यक अछि। किन्तु कखनो काल एहिमे व्यवधान सेहो होइत छैक। हम सभ जनैत छी जे लेख-शैलीक एकरूपताक प्रति ओ कतेक आग्रही छलाह। मुदा हुनक सम्पादनमे प्रकाशित 'मैथिली गद्य-संगह'मे लेख शृलिक एकरूपता नहि, बहुरूपता अछि। एकर कारण अछि सम्पादन ओ समीक्षा-धर्मक प्रति निष्ठा। समीक्षाक लेल जरूरी छैक जे रचनाकेँ मूल रूपमे पढ़ल जाय। तेँ ओकर यथावत् प्रस्तुति ओ अनिवार्य छैक। प्रो. झा एहू बिन्दुपर एकटा मानक देलनि अछि।

वस्तुतः मैथिलीक आजुक समीक्षा प्रो. रमानाथ झाक ऋणी अछि। समालोचनाक लेल अध्ययनशीलता, चिन्तनपरकता, वैचारिकता, अवधारणाक स्पष्टता तथा सम्प्रेषणीयताक जाहि मूलाधारकेँ ओ रेखांकित कए गेल छथि से अजुके नहि, काल्हुको समालोचक लेल मार्गदर्शक अछि। हुनक कृतित्व समीक्षकक हेतु जाहि तीन टा गुण तर्जनी निर्देश करैत अछि ओ थिक-शोध-प्रवृति, मौलिकताक आग्रह आ समाज-सापेक्षता। ई तीनू गुण आओर प्रभावशाली भऽ जाइत अछि। आजुक समयमे भूमिका-अनुसन्धान-आलोचकनाक प्रति अभिरूचि बढ़ल अछि। रचनाकारसँ पाठक धरि समालोचनाक इच्छा नहि, प्रतीक्षा करैत देखल जाइत छथि। ई आकर्षण समीक्षा-कर्मक महत्ताक द्योतक अछि। एहिसँ प्रमाणित होइत अछि जे आजुक समीक्षा साहित्य आ समाजक मध्य सेतुक काज सफलतापूर्वक कऽ रहल अछि। विकासशीलता समाज आ साहित्यक स्वभाव अछि। समालोचना सेहो एहि प्रक्रियाक अंग अछि। रमानाथ झा मैथिली समालोचनाकेँ स्थापित आ मर्यादित कएलनि। आवश्यकता अछि जे प्रो. रमानाथ झा कालीन समालोचनाक गुण-तत्वकेँ ग्रहण करैत आगाँ बढ़ल जाय। मुदा, ई तथ्य मोन रखबाक थिक जे ओ मैथिलीक प्रथम समालोचक छथि, अन्तिम नहि।

निष्कर्षतः आई-काल्हि कथा, कविता, निबन्ध, नाटक आदि पोथी सभ लिखल जा रहल अछि। वास्तवमे लेखक वा कवि धन्यवादक पात्र छथि जे अपन प्रतिभासँ मैथिलीक भण्डारकेँ भव्य बनबैत छथि। परन्तु भूमिका-समालोचकक प्रशंसाक प्रसादात् कतेको पोथी विभिन्न पुरस्कार लेल नामित भऽ जाइत अछि। एखन तँ कोनो नवोदित साहित्कारो अपन प्रथमे रचनाकेँ साहित्य अकादेमी पुरस्कारसँ कम नहि मानैत छथि। एहिसँ साहित्यक अहित होइत अछि। राता-राति पोथी लिखि कोनो महत्वपूर्ण साहित्यकारसँ भूमिका लिखा ओकरा पुरस्कारक रेसमे लगा देल जाइत अछि। एहेन साहित्यकार ओ विद्वान लोकनिक आँखि खोलिकेँ भूमिका लिखथि आ रमानाथ बाबूसँ प्रेरणा लेथि।

सन्दर्भ

1. रमानाथ झा (विनिबन्ध)- डा. अमरेश पाठक, पृष्ठ सं.-45,प्रकाशक-साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष-1995 ई.
2. प्रबन्ध-संग्रह - श्री रमानाथ झा, पृष्ठ सं.-10,प्रकाशक-शेखर प्रकाशन, पटना प्रकाशन वर्ष-द्वितीय संस्करण 2019 ई.
3. विद्यापति (विनिबन्ध) - श्री रमानाथ झा, पृष्ठ सं.-19,प्रकाशक-साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली प्रकाशन वर्ष-1987 ई.
4. रमानाथ झा (विनिबन्ध) -डा. अमरेश पाठक, पृष्ठ सं.- 50-51, प्रकाशक-साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष-1995 ई.
5. पृथ्वीपुत्रक भूमिकासँ - ललित, प्रकाशक - मैथिली अकादमी, पटना, प्रकाशन वर्ष - चतुर्थ संस्करण - 2012 ई.

आधुनिक मैथिली साहित्यः धूमकेतु

साधना कुमारी

अतिथि शिक्षिका, मैथिली विभाग, बी.एन. एम.भी. कॉलेज साहुगढ़, मधेपुरा (बिहार)

आधुनिक मैथिली साहित्यक विकासमे धूमकेतुक योगदान स्वर्णअक्षरमे अंकित कएल जा सकैत अछि। ओ मैथिलीक एकांत साधक रहथि। बहुमुखी प्रतिभाक धनी धूमकेतु मूल नाम भोलानाथ झा रहन्हि। हिनक पिताक नाम रहन्हि रमानाथ झा। हिनक घर मधुबनी जिलाक कोइलख पछवारी टोलमे छलन्हि। हिनक जन्म 25 जनवरी 1932 के भेल रहन्हि आ हिनक निधन 6 अगस्त 2000 के भेलन्हि। धूमकेतु अर्थशास्त्रमे एम. ए.क डिग्री प्राप्त कएने रहथि। अनेक वर्ष धरि ओ आर. आर. कैम्पस जनकपुर नेपालमे ख्याति लब्ध प्रतिष्ठित प्रध्यापक रहलाह। धूमकेतु प्रधानाचार्यक रूपमे कार्यक सम्पादन कएल। परन्तु मोनमे विप्लव रहन्हि हृदयमे रहन्हि साहित्यकार लहरि, आ प्राण चेतनामे रहनि कविताक राग, ताल आ लय। ते नौकरी बन्धन बूझि पड़लन्हि। लोक हिनक प्रतिभासँ मुग्ध रहैत छल। मुदा मोन चंचल रहन्हि एहने परिस्थितिमे ओ मैथिलीमे कालजयी साहित्यक रचना आ सृजन करैत रहलाह।

धूमकेतु कथा लेखन 1964 सँ आरम्भ कएल। धूमकेतु मैथिली साहित्यक अनेक विधामे रचना कयलनि अछि, जे आधुनिक मैथिली साहित्यक विकासमे महत्वपूर्ण योगदान देलक अछि। कथा हो, कविता हो, उपन्यास हो, किंवा एकांकी आ निबंध, आलोचना सभ विधामे धूमकेतु रचना उपलब्ध अछि। परिभाषा मे कम रहितो गुणववता ततेक स्तरीय अछि जे मैथिली साहित्यके समृद्ध केलक अछि। विशेषरूप सँ कथा विधामे धूमकेतुकेँ सिद्धहस्तता प्राप्त छलनि। धूमकेतु एहि सदीक श्रेष्ठतम कथाकारमे परिगणित छथि। हिनक पहिल कथा संग्रह अगुरवान आ अन्य कथा अछि।

धूमकेतु कथा लेखनमे एतेक पारंगत छलाह जे ओ किछु लिखलनि अपने-अपने एकटा शैली मानल गेल। गंगेश गुंजन कहैत छथि- "बतौर लेखक धूमकेतु आधुनिक मैथिलीक दशावतार कथाकार छथि। मात्रामे कम लिखियोक गुणवत्तामे श्रेष्ठताक कारणे ओ अपन समकालीन कविक ईर्ष्येय आ परवत्ते लेल सादर अनुकरणीय छथि।"[1]

मैथिलीक प्रख्यात तारानन्द वियोगी स्पष्ट कएने छथि, जे 1964 मे हुनक चारि गोट कथा छपल कायामाया, मैल अंचर उज्जर दाग, विरड़ो आ वैदेहीक सितम्बर 1964 अंकमे कथाकार ललितक एक पत्र प्रकाशित भेल। ओ एहि पत्रमे धूमकेतुक प्रतिभाक सारगर्भित व्याख्या कएने छथि। धूमकेतु प्रतिभा बहुत तीव्र कतहु-कतहु अपन तीव्रताक कारण-कारण कटु। धूमकेतु कथाके मनुक्खक भीतरक 'इर्द आ इगो'क दन्द्व देखैत छलाह आ स्वभोगित खिस्सा के सभएँ प्रामाणिक मानैत छलाह। भीमनाथ झाक कथन छनि-धूमकेतु कहलाएँ जे तेज ओज, विराट चमक चकचौन्ही, जड़ता पर प्रहार, अंधकारके चिरैत चलबाक बोध होयत अछि।

1980 मे धूमकेतु पहिल कथा संग्रह अगुरवान आ अन्य कथा नवारम्भ प्रकाशनसँ प्रकाशित भेल रहन्हि। हिनक देहान्तक बाद हिनक एक उपन्यास मोड़ पर 2000 ईमे तथा हिनक उपलब्ध समस्त (34) कथाक संग्रह उदयास्त 2003 में प्रकाशित भेल। एम्हर हिनक कविताक एक संग्रह एक बेर फेर राजधानीमे प्रकाशनक पथ पर छन्हि। हिनक अनेक कथा टिप्पणी कविता ओ निबंध आदि अप्रकाशित छन्हि। अतः एहन कालजयथी कथाकार, उपन्यासकार,काव्याकार मैथिली साहित्यमे दुलर्भ अछि।

एहन अताइ नहि देखल अछि आ से चुपचाप पुलिसक समक्ष आत्म समर्पण क दलकैक। काल्हि फैसला होयतैक छौड़तै तँ नहीये। अपने स्पष्ट कसूर कबूल कयलकैए। मुदा भगवान करथि जान धरि बकसि दै। जन्मद्यैते देते तैयो कहियो ने कहियो तीवैत तँ धूमि औते। पण्डिक वंश बाँचि जेतै। अगुरवान कथा लड़क जखन धूमकेतु मैथिली साहित्यमे प्रवेश कएलनि तखनो हुनक रचनाक के चमोत्कर्ष पर पहुँचा देलक। एहि कथामे धूमकेतु एकटा अभावग्रस्त पण्डिक परिवार वर्णन कएने छथि जे कोनो अपन जीवन काटबाक लेल वेवश परिवार अपन इज्जतिके दाँव पर लगा दैत अछि। नः माट्सैब आइ दोखरी देलियै।

बोली आधारक स्वर पसिझैक। आँखिए नोर टघरलैक वाजल गरीबक इज्जतिक कोनो मोल नइ छै माट्सैब। ओकरा इज्जत होइत ने छै। ई सभ ओकरा मानबाक चाही जत पेटक समस्या एहि तरहे धूमकेतु जी अपन प्रसिद्ध कथा अगरवान मे व्याख्या कएने छथि।

धूमकेतु दोसर अति प्रतिद्ध कथा 'छठि परमेसरी' के मानल जाइत अछि। ई कथा मौलिक एकमात्र एहेन कथा थिक। एहिपर कोनो एक पत्रिकामे कतेको अंकमे लगातार विमर्श चलल हो। धूमकेतु धर्मक प्रचलित रूपके प्रति आलोचक दृष्टि रखैत छथि।

धर्म विमर्श अथवा धार्मिक आडंबरसँ मुठभेड़ करैत हुनक कथा सभमे नमाजे शुकराना, निहुँछ, छठि परमेसरी, विघटन एहि नातक प्रमाण प्रस्तुत करैत अछि। सामाजक विभिन्न वर्ग। पर धर्मक विदास्पद प्रभाव देखाआने छथि। अन्ततः ई कहल जा सकैछ जे हुनक कथामे ओ सकरात्मक अंतपर पहुँचीक विराम लेबाक प्रयास करैत छथि।

धूमकेतुक कथा नवीन भावबोधक सृष्टि करैछ, कथातत्व उच्च मूल्यक प्रतिष्ठापन करैछ, अभिव्यक्तिक मनोरम् घटाक दर्शन करबैछ। हिनक कथा विशिष्ट बनि जाइछ तँ एकर कारण अछि कथ्यक टटका संस्पर्श आ शिल्पक अनुपम सौन्दर्य। हिनक कथा-मानव तिरस्कृत रहितो दया नहि उपजबैछ, जधन्य काज करितो घृणाक पात्र नहि बनैछ। अपन चरित्रकेँ प्राण फूकि देबामे जेहन ई माहिर छथि, तेहने दक्ष छथि ओकरासँ जीवनक तह-पर-तह खोलबा देबामे सेहो। संसारक कंटकाकीर्ण बाटपर कौशलपूर्वक बढ़ैत हिनक चरित्र हृदय कोमलतम तन्तुकेँ छूबि कऽ गुदगुदाइयो दैत अछि तँ अत्याचारक विरूद्ध तनिकऽ ठाढ़ो होइत अछि। परम्पराक भजनो करैत अछि तँ अजुको विसंगतिक आँखिमे आँखि भोकि दैत अछि। से कुटकुटा कऽ लगैत छैक जरूर, मुदा ओकरापर क्रोध सेहो उपजैत छैक। सामान्य धरातलपर जूझैत धूमकेतु कथाकेँ इएह विशिष्टता प्रदान करैत अछि तथा कथाकार धूमकेतुकेँ महान बनबैत अछि।

भाषापर हिनक अदभूत अधिकार अछि। पात्रानुरूप भाषाक प्रयोग, ठेठ मैथिलीक सुच्चा रूप अभिव्यक्तिक वातावरणक प्रभावकारी निर्माण। जेहन हिनक कथामे भेटैत अछि, से आन ठाम विरल अछि। हिनक कथा व्यक्ति ग्रन्थिकेँ सोझकराकऽ अन्तर्मक सत्यकेँ उद्घाटित करैत अछि।

धूमकेतुक एकमात्र प्रकाशित उपन्यास 'मोड़पर' अछि जे 1945-1970 क कालखण्डपर आधारित अछि। 1942 क भारत छोड़ो आन्दोलनक चित्र सभ सेहो उपन्यासमे आएल अछि।

मोड़परमे किछु स्त्री चरित्र बेस प्रभावकारी रूपमे उपस्थिति भेल अछि। मुदा स्त्री पात्र विद्रोहक मुद्रामे नहि अवैत अछि।

एहि उपन्यासक लेखक एकटा एहन घटनाक्रम चक्रके दरसाओने छथि। जाहिमे एकटा सम्पन्न परिवारक ढहैत सामंती अवस्थाके देखाओने छथि।

एहि उपन्यासक नायकक नाम सदाशिव अछि, जे अपनी जीवन जेलमे व्यतित कएने छथि। ताही अवस्थाके विभिन्न घटनाक्रम के दरसाओने छथि। मोड़ उपन्यासक नायिका गूना छथि दुनूके संबंध भाई बहिनक अछि। वाल्यावस्था सँ लड़ उपन्यास अंत धरि दुनूक मनोव्यथा के स्वाभाविक चित्रण कएने छथि उपन्यासकार धूमकेतु।

एहि उपन्यासक प्रकाशन वेली रोड पटनासँ प्रकाशित भऽ नवम्बर 2000मे आयल अछि। जे 262 पृष्ठक उपन्यास थिक। प्रेम आ घृणाक अन्तद्वन्दक जाहि ढ़ंग सँ उठाओल गेल अछि जे मानवीय मूल्यधर्ममे फलित भऽ जाइत अछि, से अदभूत कथाक सृष्टि करबैत अछि। तँ अरिमता आ अस्तित्वबोधक खास पहचान बनबैत जँ कोनो पात्र-पात्रीक चरित्र-सृष्टि होअय तँ संधिबोधक स्वरमे करत।

इएह संघर्षक स्वर उभरवे करत। यैह संघर्षबोधक स्वर धूमकेतु रचनाक वैशिष्ट्य थिक। उपन्यासकार निर्लज्ज भाव पात्र-पात्रीक मानसिक परिवेश आ ओकर भीतरक मनोवैज्ञानिक सत्यकेँ उभारिकऽ यथार्थक धरातल जे अलननि अछि, ऐ विशेष अहलादकारी थिक। मोड़पर उपन्यासक उपोहघातमे उपन्यासकार धूमकेतु स्वयं स्पष्ट कयने छथि। मोड़पर समाजक कील पुरने बनल रहल। उपरका पट्टा जतेक घूमल हो, निचला ठोकले रहि गेल। व्यवस्था तुर्क अफगान सल्तनक हो, मुगलक हो, अंगरेजक एहि सभ मोड़पर धूरी यथावत् रहल। वस्तुतः धूमकेतु मोड़पर उपन्यास मनुक्खक संघर्ष, पीड़ा, मुक्तिक छटपटाहटि जिजीविषा दृढ़ता आ संकलप जीवन तँ सहजहि दुःख दर्दसँ भरल-पुरल रहिते अछि। से नायक सदाशिव'क माय होउक, पीसी सत्यभामा दाइ वा पिसियौत बहिन गूना सभक प्रायः कमो बेस एके गत। की एहने स्त्री जे सदिक पतिक घूर धूआँ करैत सभ किछु सहैत रहौक तैयो सदाशिवक माय मारल जाउक। सदाशिवक पिता यशोधर झाके अपन तँ जाति-पांति नै रहिन, मुदा वंशक लोभ तँ रहथि। तँ पत्नीके छोटका घरक लोक कहथिन।

कथा आरम्भमे सारगर्मित विषय-वस्तुक उठाकर सदाशिवक बाल मनोविज्ञानक जतेक ऊँचा लड़ जेबाक प्रयास एहि उपन्यासमे भेल अछि, से अविस्मरणीय बनि जाइत अछि। एहिमे सदाशिवक चरित्र अप्रितम उदाहरण थिक।

हिनक कविताक प्रसंग प्रो. रमानाथ झाक मन्तव्य छनि हिनक कविताक पूर्ण मौलिक भाव-चित्रण प्रस्तुत करैत अछि। विषयकेँ प्रभावपर्ण रीतिसँ प्रस्तुत करबहिनक कविताक प्रमुख विशेषता थिक जकर केन्द्रमे निहित रहैत अछि। युग चेतना ई विशेषता हिनक प्रकृति विषयक रचनाहुँ मध्य स्पष्ट रहैत अछि।"[2]

धूमकेतु नवीन भावबोधक समन्वित मुक्त छन्दमे काव्य सेहो लिखने छथि। जे पारम्परिक विषयक रचनहुँ मध्य स्पष्ट रहैत अछि। कोनो कवि एकठाम कहने छथि-मिथिला तरूआरिक बलँ कथमपि नहि जीबि सकता अर्थात मिथिलाक इतिहास एहिठाम शौर्यक हेतु प्रसिद्ध नहि अछि। किन्तु धूमकेतु एकरा नहि मानैत छथि। हुनक मान्यता छनि जे मिथिलाकेँ जीबाक छै तँ तरूआरि पकड़हि पड़तैक अपन अधिकारकेँ टोबहि पड़तैक।

मिथिला तरूआरिक बिना न कथमपि जीबि सकत
ई कालकूट पायी चरणोदक पीबि सकत?
मिथिला तरूआरिक नोकेँ सँ कविता लिखलक
आ मैथिलीक फाटल अँचर नहि सीबि सकत?
हिलकोर लेतै कन्दर्पी घाटहुमे यौवन युगनायक बिझलगुए तरूआरि उठाबथु तँ!

× × × × × × × × ×

अधिकार अपन देवहुसँ लड़ि लेबे करबनि
जन-गण मनमे विश्वास अदम्य जगाबथु तँ!'[3]

हिनक कविता वैचारिक अधिक होइत अछि, भावात्मक कम। किन्तु जे विचार कवि अपन कविताक माध्यमे प्रकट करऽ चाहैत अछि से ओकर मानसिक उर्वरताक परिचायक अछि। संगहि वर्तमानकेँ गम्भीरतासँ देखबाक ओकर सूक्ष्म दृष्टिक सूचक सेहो देखल जाइत अछि। मुदा कविता लजाइतो-लजाइतो कवि चिन्ताकेँ, वेदनाकेँ आक्रोशकेँ बड़ तीव्रतासँ उजागर करैत अछि तथा अन्तमे पाठकक मस्तिष्ककेँ झकझोरि दैत अछि। संगहि कविता प्रतीकात्मक होइतो, कवि विचारकेँ हृदयगंम करबा हेतु पाठककेँ थोड़ेक मानसिक व्यायामक रए पड़ैत अछि। आ से हृदयगंम भऽ गेलापर अतीव सन्तोष प्रदान दैत अछि।

निष्कर्षत

आधुनिक मैथिली साहित्य जगतमे धूमकेतु एक सुपरिचित स्थान रखैत छथि। ई अपन विविध रचनासँ नव चुनौतिक आशाक अनुरूप कथा, उपन्यास, कविता आदि साहित्य जगतमे यथेष्ठ योगदान अनुभव करौने अछि।

सन्दर्भ

1. धूमकेतु- ले. तारानन्द वियोगी, पृष्ठ सं.-77, प्रकाशक- साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली प्रकाशन वर्ष-2000 ई
2. **परिचायिका- डा. भीमनाथ झा, पृष्ठ सं.-171, प्रकाशक-भवानी प्रकाशन, पटना,** प्रकाशन वर्ष-1985 ई.
3. ओएह

भारत में राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीतिः एक अवलोकन

राजीव रंजन कुमार

शोध प्रज्ञ, एम०ए०, राजनीति विज्ञान, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)

शोध आलेख का सार

राष्ट्र की सुरक्षा यानी राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति पूर्णतः विश्वास होने के बाद ही विकास के लक्ष्य को कोई राष्ट्र प्राप्त कर सकता है। वस्तुतः प्रादेशिक अखण्डता, प्रभुसत्ता, स्वतंत्रता व राष्ट्र के आन्तरिक मूल्यों की रक्षा तथा बाह्य आक्रमणों का प्रतिकार करना प्रत्येक राष्ट्र का प्रथम उत्तरदायित्व है। समग्र युद्ध के इस काल में शिथिल रक्षा-तंत्र न तो राष्ट्रीय एकता को सुरक्षित रख सकता है और न ही राष्ट्रीय विकास हेतु अनुकूल परिस्थितियों का सृजन ही कर सकता है। इन महत्वपूर्ण उत्तरदायित्वों के निर्वहन हेतु जहाँ एक ओर रक्षा सेनाओं की क्षमता को पर्याप्त एवं दृढ़ बनाना आवश्यक है, वहीं राष्ट्रीय शक्ति का विकास व उनका संरक्षण भी अपरिहार्य है। यही कारण है कि आज विश्व के सभी छोटे व विशाल राष्ट्र राष्ट्रीय सुरक्षा के समक्ष उत्पन्न हो रही विभिन्न चुनौतियों को ध्यान में रख कर अपनी रक्षा तैयारियों के समानान्तर अपने आंतरिक-सुरक्षा आयामों के प्रति सचेष्ट व सतर्क होते जा रहे हैं। भारत अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीति के प्रति हमेशा ही तत्पर रहा है।

मूल शब्द

समग्र युद्ध, राष्ट्रीय अखंडता, सामरिक रणनीति, प्राकृतिक वातावरण, सामूहिक सुरक्षा, आतंकवाद, वैदेशिक नीति, अंतर्राष्ट्रीय संगठन, क्षेत्रीय संगठन, कूटनीति, पड़ोसी नीति।

प्रस्तावना

वस्तुतः राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रश्न इतना व्यापक है कि इसके अन्तर्गत सामरिक क्षमता के अतिरिक्त आर्थिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक, औद्योगिक व भौगोलिक तथ्य भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। वर्तमान में सैद्धान्तिक रूप में साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद की संभावना समाप्त प्रतीत हो रही है, परन्तु शस्त्रीकरण विशेषतः आण्विक शस्त्रीकरण के कारण राष्ट्रीय सुरक्षा तथा सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा व्यापक और गंभीर हो गया है।

राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीति में भू-राजनीति, अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, गुटनिरपेक्षता एवं भू-युद्ध कौशल जैसे विषयों का विशद् विवेचन ही भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा की रणनीति को स्पष्ट कर सकता है। राष्ट्रीय सुरक्षा के निर्धारण व क्रियान्वयन में भौगोलिक, आर्थिक, मानवीय, सामाजिक एवं राजनैतिक कारक उत्तरदायी रहे हैं। राष्ट्रीय सुरक्षा की सुदृढ़ता एवं संतुलित सुरक्षा नीति निर्धारण में भौगोलिक कारकों की निर्णायक भूमिका होती है। विभिन्न भौगोलिक कारक ही राष्ट्रीय सुरक्षा हेतु अपेक्षित आर्थिक, सामाजिक, औद्योगिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक व सैनिक आधार उपलब्ध कराते हैं और राष्ट्र के आंतरिक व बाह्य मूल्यों की सुरक्षा हेतु स्वस्थ वातावरण उपलब्ध कराने के साथ-साथ प्रतिरोधक क्षमता का सृजन भी करते हैं। किसी राष्ट्र की रणनीतिक अवस्थिति, क्षेत्रीय विस्तार, धरातलीय संरचना, सीमायें व सीमान्त, जलवायु व प्राकृतिक वनस्पतियाँ आदि। ऐसे प्रमुख भौगोलिक कारक हैं, जिनकी राष्ट्र की सुरक्षा नीति के निर्धारण में एवं राष्ट्रीय विकास तथा समृद्धि में निर्णायक भूमिका होती है। अतः राष्ट्रीय युद्ध नीति, सैन्य संगठन, रणनीति सामरिकी, सैन्य प्रशिक्षण एवं सैन्य संचालन में इन तत्वों की महता को नकारा नहीं जा सकता है।

राष्ट्र की सुरक्षा में आर्थिक कारक वर्तमान परिवेश में प्राथमिक हो गये है तथा पूर्व में भी महत्वपूर्ण रहे हैं। वास्तव में, पर्याप्त धन के अभाव में न तो कोई सैन्य कार्यवाही, अनुसंधान और न ही राष्ट्रीय विकास सम्भव है। आज के समग्र युद्ध में जब शत्रु अपने प्रतिद्वन्द्वी के विरुद्ध सैनिक व असैनिक मोर्चे पर युद्ध छेड़ता है तब ऐसी परिस्थिति में राष्ट्रीय उत्पादन, समृद्धि व सुरक्षा हेतु आर्थिक आधार का सुदृढ़ होना नितान्त आवश्यक हो जाता है। वर्तमान युग में तो आर्थिक साधनों को राष्ट्रीय हितों की अभिवृद्धि के प्रमुख साधन के रूप में प्रयुक्त किया जा रहा है। देश में रहने वाले नागरिकों के जीवन स्तर को ऊँचा करने, निर्यात में वृद्धि करने, नया बाजार प्राप्त करने, देश के अंदर आर्थिक स्त्रोतों व साधनों को सुरक्षित रखने, कच्चा माल प्राप्त करने, रोजगार के अवसरों में अपेक्षित वृद्धि एवं सुदृढ़ रक्षा तैयारियाँ आदि पर्याप्त धन के अभाव में कदापि संभव नहीं हैं। बरनॉन वॉन डाइक ने व्याख्या करते हुए कहा कि "आर्थिक साधन न केवल एक प्रभावशाली अपितु एक साधक की भूमिका का निर्वाह करते हैं। ये विदेश नीति के निर्धारक ही नहीं हैं, अपितु विदेश नीति के साधक भी हैं। एक राज्य आर्थिक कारणों से किन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रयत्न कर सकता है अथवा ऐसी आर्थिक विधियों को स्वीकार कर सकता है जो किन्हीं भी कारकों पर आधारित उद्देश्यों की प्राप्ति कर सके"।[1]

अब यह निर्विवाद है कि आर्थिक साधन शक्ति प्रयोग के साधन एवं विदेश नीति के साधक तो हैं ही, साथ ही राष्ट्रीय सुरक्षा हेतु अपेक्षित विभिन्न साधनों के निर्माणक भी हैं। 20वीं शताब्दी में राष्ट्रों के मध्य बढ़ रही पारस्परिक निर्भरता के परिणामस्वरूप आर्थिक साधनों का महत्व पूर्व की तुलना में अधिक बढ़ गया है। आर्थिक संसाधनों के माध्यम से शक्तिशाली राष्ट्र आर्थिक साधनों को अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रमुख साधन के रूप में प्रयुक्त कर शक्ति-संतुलन

को प्रभावित कर सकते हैं। वर्तमान एक ध्रुवीय विश्व, जिसमें रूस की शक्ति क्षीण होने के पश्चात् अमरीका की सर्वोच्चता प्रमाणित होती जा रही है, में गुटनिरपेक्ष आंदोलन ने भी परस्पर आर्थिक सहयोग व विकास को प्राथमिकता देकर आर्थिक संसाधनों में अभिवृद्धि को ही अपना लक्ष्य माना है। वास्तव में, आज अंतर्राष्ट्रीय तनाव मूलत: आर्थिक विसंगतियों का ही परिणाम है। यही कारण है कि विभिन्न क्षेत्रीय व अंतर्राष्ट्रीय संगठनों (सार्क, ग्रुप-77, ग्रुप-15, विम्सटेक, ब्रिक्स,ैब्ब आदि) के द्वारा सभी देश अपनी आर्थिक सुरक्षा एवं लाभ के लिए प्रयासरत रहते हैं। इतना ही नहीं, अब तो सैनिक संगठनों के आर्थिक कार्य भी महत्वपूर्ण हो गये हैं। प्रत्येक देश राष्ट्रीय सुरक्षा हेतु आर्थिक संरचना एवं प्रबन्धन को सशक्त कर रहा है। भारत के द्वारा तमाम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों एवं क्षेत्रीय सम्मेलनों में अपने आर्थिक हित को अन्य देशों के समान प्राथमिकता प्रदान की जा रही है।

राष्ट्रीय सुरक्षा के निर्धारण में आर्थिक कारक के साथ-साथ मानव शक्ति भी महत्वपूर्ण है। मानव शक्ति के सन्दर्भ में यह यथार्थवादी मत महत्वपूर्ण है कि जब हम भौतिक तथा समन्वित, भौतिक तथा मानवीय तत्वों से हटकर केवल उन विशुद्ध मानवीय तत्वों पर विचार करते हैं, जिनके द्वारा किसी राष्ट्र की शक्ति व सुरक्षा निर्धारित होती है तो हमें उनके गुणात्मक तथा मात्रात्मक अंगों में भेद समझ लेना चाहिए। गुणात्मक तत्व राष्ट्रीय चरित्र, राष्ट्रीय साहस, नेतृत्व, कूटनीति की गुणावस्था तथा सरकार के साधारण गुणों से सम्बन्धित है। मात्रा की दृष्टि से हमें इस तत्व को आबादी के मापदंड से परखना चाहिए।[2]

राष्ट्रों की वैज्ञानिक प्रगति, तकनीकी विकास, औद्योगिक स्तर एवं अन्य तत्वों की समानता की स्थिति में विशाल जनशक्ति राष्ट्रीय सुरक्षा की सुदृढ़ता में अत्यधिक सहायक होती है। राष्ट्रीय सेनाओं हेतु स्वस्थ व योग्य सैनिकों के चुनाव एवं आर्थिक उत्पादन हेतु श्रेष्ठ व कर्मठ श्रमिकों की उपलब्धता विशाल आबादी वाले राष्ट्रों में सम्भव है। उक्त के सम्बन्ध में मार्गेन्थो का मत सराहनीय है कि "घनी आबादी के बिना यह असंभव है कि आधुनिक युद्धों की सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए आवश्यक औद्योगिक कारखाने निर्मित व संचालित किये जा सकें; और न ही यह संभव है कि बड़ी संख्या में लड़ने वाले सैनिकों की टुकड़ियाँ जल, थल व नभ में लड़ने के लिए प्रयुक्त की जा सकें; और न ही सेना के अन्य कर्मचारी प्राप्त किये जा सकते हैं जिनकी संख्या लड़ाकू सैनिकों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है- जो सेनाओं को भोजन, यातायात के साधन, अस्त्र-शस्त्र व गोला-बारूद आदि की सप्लाई करते हैं।"[3] वस्तुत: विशाल जनसंख्या राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय मनोबल एवं आक्रमण के विरुद्ध सफल प्रतिरक्षा में महत्वपूर्ण कारक हैं तथापित राष्ट्र की वास्तविक शक्ति व सुरक्षा जनसंख्या की प्रकृति, चरित्र व गुणों पर ही निर्भर करती है। प्रो0 मार्गेन्थो के शब्दों में, "यह कहना तो सही नहीं होगा कि जितनी अधिक किसी देश की आबादी होती है वह देश उतना ही शक्तिशाली होता है, क्योंकि यदि आबादी के आंकड़ों तथा राष्ट्रीय सुरक्षा में ऐसा सम्बन्ध होता तो चीन विश्व का शक्तिशाली देश होता और भारत दूसरे स्थान पर होता तथा सोवियत रूस व अमरीका क्रमश: तीसरे व चौथे नम्बर पर होते, किन्तु यह सोचना बिल्कुल सही नहीं होगा कि यदि एक देश की आबादी अन्य तमाम देशों की तुलना में अधिक है तो वह देश आवश्यकतावश उनकी तुलना में शक्तिशाली होगा ही। इसके साथ ही, यह भी सत्य है कि कोई भी ऐसा देश न तो प्रथम श्रेणी का शक्तिशाली देश बन सकता है और न बनने पर स्थिर रह ही सकता है जो संसार के घनी आबादी वाले देशों में से एक न हो।"[4]

राष्ट्रीय सुरक्षा का सम्बन्ध सामाजिक एवं राजनीतिक वातावरण से भी है। वस्तुत: सामाजिक एवं राजनीतिक पर्यावरण से राष्ट्र के सुरक्षा, एकता, अखण्डता आदि प्रभावित होते हैं। भारत के साथ-साथ दुनिया के अन्य देशों की राष्ट्रीय सुरक्षा के सन्दर्भ में भी यह बात पूर्णत: सही है। राष्ट्रीय चरित्र, राष्ट्रीय मनोबल, विचारधारा व राष्ट्रीय एकता आदि ऐसे सामाजिक व राजनैतिक कारक हैं, जो राष्ट्रीय सुरक्षा, प्रतिरक्षा एवं राष्ट्रीय अखंडता के निर्धारण व इसको बनाये रखने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते हैं। वास्तव में, सशस्त्र सेनाओं, जो सक्रिय प्रतिरक्षा का प्रमुख अंग होती है, को सामाजिक परिवेश तथा सामाजिक व राजनैतिक उथल-पुथल के प्रभाव से पूर्णत: मुक्त रखना अत्यधिक दुष्कर है, क्योंकि राष्ट्रीय सामाजिक व राजनैतिक जीवन के सभी पहलू सशस्त्र सेनाओं में निश्चित रूप से प्रतिबिम्बित होते हैं। यही कारण है कि वर्तमान में राष्ट्रीय सुरक्षा की पहलुओं को स्वस्थ व सुदश्ढ़ बनाये रखना एक राष्ट्रीय आवश्यकता हो गयी है।

राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीति के अन्तर्गत भू-राजनीति का व्यापक महत्व है। वस्तुत: भू-राजनीति राष्ट्रीय सुरक्षा के रणनीति के निर्धारण में भौगोलिक कारणों को आधार बनाता है। भू-राजनीति के सभी अर्थ राष्ट्रीय सरकारों की सेवा में भौगोलिक उपयोग से सम्बन्धित है। इस निश्चित सीमा के अन्तर्गत इस शब्द का प्रयोग कई प्रकार से किया गया है। इस विषय के कुछ विशेष विद्वानों, किंचित प्रसिद्ध लेखकारों तथा सम्पादकीय लेखकों के अनुसार इस शब्द के सम्बन्ध, राष्ट्रों की शक्ति स्थिति जो प्रकृति द्वारा प्रभावित होती है, से है। कुछ विद्वान लेखकों ने इस शब्द को एप्लाइड राजनीतिक भूगोल का पर्यायवाची माना है और राजनीतिक भूगोल के इतिहास, सिद्धान्तों एवं उत्पत्ति से भिन्न रखा है। इस प्रकार के प्रयोग में यह दूसरी एप्लाइड विषयों से सम्बन्धित है जिनमें यह सम्पूर्ण रूप से प्रक्रियात्मक स्थितियों विशेषत: सरकारों के प्राकृतिक वातावरण का अध्ययन करता है तथा लक्षित एवं उचित अध्ययन के द्वारा अपने ध्येय की प्राप्ति करता है। अत: "भू-राजनीति देशों व राष्ट्रों के प्राकृतिक वातावरण का अध्ययन है।"[5] इसी प्रकार का परिभाषा और निष्कर्ष कुछ अन्य विद्वानों ने भी दिया है। भू-राजनीति को राज्य की भौगोलिक आत्मा बताया गया है।[6] भू-राजनीति राज्य की क्षेत्रीय आवश्यकता से सम्बन्धित रही है, जबकि राजनीतिक भूगोल में राज्य की क्षेत्रीय दशाओं का परीक्षण किया जाता है।[7] भू-राजनीति एक एकीकृत वैश्विक परिदृश्य में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को समझने की एक नवीन पद्धति है।[8] भू-राजनीति राज्यों की वैसी गतिविधियाँ है, जिसमें प्रतियोगिता के माध्यम से क्षेत्रों पर नियन्त्रण स्थापित करते हैं, जो कि युद्ध, साम्राज्य तथा कूटनीति को माध्यम बनाते हैं।[9] भू-राजनीति, राजनीतिक विकास हेतु भूगोल आधारित सम्बन्धों का विश्लेषण तथा विज्ञान है।[10] भू-राजनीतिक विश्लेषण का मूल तत्व अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक शक्ति का भौगोलिक व्यवस्था से सम्बन्ध स्थापित करता है। भू-राजनीति का दृष्टिकोण बदलते भौगोलिक व्यवस्था तथा उस बदलते प्रकृति की मानव द्वारा व्याख्या पर आधारित है।[11] स्पष्टत: भू-राजनीति-राज्य के व्यवहार को प्रभावित करने वाले भौगोलिक कारकों के अध्ययन को कहते हैं, जिसमें इन मुद्दों पर बल दिया जाता है कि कैसे स्थान, जलवायु, प्राकृतिक संसाधन, जनसंख्या तथा भौतिक भूमि प्रदेश इत्यादि राज्यों के विदेश नीति निर्धारण तथा पदसोपानीय श्रृंखला में राज्यों की स्थिति क्या है, का पता लगाते हैं। राज्य भूगोल तथा भौगोलिक प्रदेशों का उपयोग करके अपने सैन्य शक्ति को भी बढ़ाते हैं।

विश्व के देशों में भूगोल को आधार बनाकर राष्ट्रीय सुरक्षा के सम्बन्ध में निर्णय लिया जाता है। भारत में भू-राजनीति और भू-युद्ध कौशल के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण से पूर्व समकालीन वैश्वीक भू-राजनीतिक परिवेश का अवलोकन अपेक्षित है।

समकालीन विश्व में प्राकृतिक संसाधनों की उपस्थिति तथा उनके दोहन से राष्ट्रीय सुरक्षा की रणनीति प्रभावित होती है, ऐसे विज्ञान और तकनीक के विकास तथा सूचना क्रांति के प्रभाव में भी राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीति परिवर्तित एवं प्रभावित हो रही है। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में, नई तकनीकों के विकास ने नियंत्रण के विस्तार की सीमा को धरातल की अन्त: तथा बाह्य एवं बाह्य अन्तरिक्ष तक बढ़ा दिया है। इसने प्रबुद्ध वर्ग तथा नीति निर्माताओं का ध्यान भू-राजनीतिक संबंधों की ओर आकृष्ट किया है। सूचना राजमार्ग के इस युग में ग्रहण करने की क्षमता, परिवहन, अत्यंत विस्तृत आँकड़ों का प्रसंस्करण तथा प्रभावी सूचना प्राप्त करने की दौर ने शक्ति संरचना को बदल दिया है।[12]

वर्तमान समय में वह देश विश्व का नेता है जो संपूर्ण विश्व को नवीन प्रवर्तन की दिशा, भू-राजनीति व्यवस्था तथा सुरक्षा प्रदान करने में सक्षम है। मोडेल्सकी ने प्रमुख समकालीन वैश्विक भू-राजनीतिक मुद्दों को परिभाषित करते हुए कहा है कि संयुक्त राज्य अमरीका अभी भी अपनी पुरानी शक्ति एवं प्रतिष्ठा को कायम रखने की पुरजोर कोशिश कर रहा है, जबकि वर्तमान विश्व अनेक प्रकारों से इसके नेतृत्व को चुनौती दे रहा है। वैश्विक युद्ध की परिस्थितियों में कोई भी एक देश वैश्विक भू-राजनीतिक व्यवस्था बनाये रखने में सक्षम नहीं है। यद्यपि वैश्विक नेतृत्व कहीं-न-कहीं शक्ति संबंधों में अपेक्षाकृत लाभप्रद स्थिति में होता है, लेकिन उसके विरुद्ध भी सैन्य विद्रोहों को नकारा नहीं जा सकता है।[13] स्पष्टत: सामरिक नीति तथा राष्ट्रीय सुरक्षा विषयक रणनीति के निर्धारण एवं क्रियान्वयन में भू-राजनीति की महत्वपूर्ण भूमिका अथवा प्रभाव है।

राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीति में भू-राजनीति तथा भू-युद्ध कौशल स्थिति का महत्वपूर्ण प्रयास है। वस्तुत: युद्ध कला इन्हीं परिस्थितियों से प्रभावित, निर्धारित एवं क्रियान्वित होती है। भारत में भी इन्हीं कारकों का व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। भारत की विश्व में अन्य देशों के अपेक्षा भू-राजनीतिक स्थिति अलग तथा महत्वपूर्ण है। भारत की आकृति पूर्णत: त्रिभुजाकार न होकर चतुष्कोणीय है, जो दक्षिणी भागों को छोड़कर शेष प्रकृति प्रदत्त व्यवस्थाओं द्वारा बहुत बड़ी सीमा तक सुरक्षित है। वस्तुत: भारत विषुवत रेखा से उत्तर में 84^0 से 37^0 उत्तरी आक्षांश और 68^07 से 97^025 पूर्वी देशान्तर के मध्य फैला हुआ है। यह पूरब से पश्चिम तक 2,933 किमी. है और उत्तर से दक्षिण तक 3214 किमी. तथा स्थलीय व सामुद्रिक सीमाएँ क्रमश: 15200 व 6083 किमी. है। इसका क्षेत्रफल 32,80,483 वर्ग किमी. है। क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत विश्व का सातवाँ बड़ा देश है। यह (भारत) पूर्वी गोलार्द्ध के मध्य हिन्द महासागर के उत्तरी सिरे पर इस प्रकार स्थित है कि यूरोप और अमरीका के पश्चिमी भागों से भारत लगभग समान दूरी पर स्थित है। पश्चिम से पूर्व को जाने वाले प्रमुख सामुद्रिक मार्ग भारत से होकर गुजरती हैं। स्वेज नहर के निर्माण से भारत का व्यापारिक महत्व और भी बढ़ गया है। वायु यातायात के दृष्टिकोण से भी भारत की स्थिति महत्वपूर्ण है, क्योंकि पश्चिमी देशों से सुदूरपूर्व को जाने वाले वायुयान यहीं से गुजरते हैं। यह अलग बात है कि सामरिक क्षेत्र में विकास ने अब भारत की स्थिति को परिवर्तित कर दिया है। दूसरी ओर, यह बात भारत के लिए ही नहीं, विश्व के अन्य देशों के लिए भी महत्वपूर्ण हो गई है।

भारत सभी ओर से ऐसे देशों से घिरा हुआ है जो आज राजनीतिक अस्थिरता व सैनिक दृष्टिकोण से आकर्षण के केन्द्र बने हुए हैं। उत्तर में हिमालय भारत को सीक्यांग व तिब्बत से पृथक् करता है, उत्तरी पूर्वी क्षेत्र के प्राकृतिक अवरोध भारत को चीन व वर्मा से अलग करते हैं। पूर्व में बांगला देश, पश्चिम में पाकिस्तान तथा दक्षिण में श्रीलंका जैसे राष्ट्र स्थित हैं, जो वर्तमान समय में दक्षिण एशिया की इकाई में महाशक्तियों (विशेषकर अमरीका) के रुचिस्थल हैं। यूरोप व एशिया के भू-युद्धनीतिक व भू-राजनीतिक परिवेश में भारत की केन्द्रीय स्थिति भविष्य में निर्णायक भूमिका अदा कर सकती है। संभवत: इसका कारण मैकाइण्डर के हृदय क्षेत्र का सिद्धान्त हो सकता है, जिसे उन्होंने पृथ्वी के दुर्ग की संज्ञा दी है।[14]

भारत अपने भूगोल के सहयोग से प्रभावशाली नीति व प्रतिरक्षा सम्बन्धी दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण स्थिति में है। भारत को महाद्वीप कहलाने का उतना ही अधिकार है जितना कि यूरोप को है, क्योंकि क्षेत्रफल, जनसंख्या, प्राकृतिक संसाधन व प्राकृतिक सीमाओं की दृष्टि से भारत सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थिति में है। अपनी भौगोलिक विशिष्टताओं के कारण भारत सुरक्षा एवं आक्रमण दोनों ही दृष्टियों से अनुकूल स्थिति में है। उत्तर की ओर ऊँचे- ऊँचे बर्फीले पहाड़ों के कारण जहाँ उत्तरी क्षेत्रों से शत्रु की घुसपैठ के विरुद्ध सुरक्षा दुर्ग उपलब्ध हैं, वहीं दक्षिण में हिन्द महासागर व पूर्व तथा पश्चिम में क्रमश: सामुद्रिक व खुली राजनैतिक सीमाएँ हैं जो शत्रु के घुसपैठ को आसान बना देती हैं। पूर्व की ओर बर्मा के घने जंगल और असम की पर्वत श्रृंखलाएँ एक ओर आक्रमण से सुरक्षा का आवरण प्रदान करती हैं, वहीं यह क्षेत्र गुरिल्ला कार्यवाहियों हेतु उनका (शत्रु) आधार बन सकता है तथा ब्रह्मपुत्र की घाटियों से शत्रु का प्रवेश भी संभव है। भारत में कोई क्षेत्र मैदानी हैं, तो कहीं वर्षों बर्फ जमी रहती है। कहीं वर्षा का आधिक्य है तो कहीं पर्याप्त न्यूनता है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत विविधताओं का देश है। प्राकृतिक संसाधनों की इतनी विपुलता है, जो देश को समृद्ध बनाने में सक्षम है, भले ही हम भारी जनशक्ति होते हुए भी इनका सदुपयोग न कर पा रहे हों।[15] संभवत: डॉ० वीरा एन्सेट ने सत्य ही कहा है कि "भारत निर्धन लोगों से बसा एक धनी देश है।"[16]

हिमालय व हिन्द महासागर हमें सुरक्षा प्रदान करते हैं (यद्यपि अब स्थिति बदल रही है) तथा यहाँ की जलवायु, धरातल व सीमाओं की प्रकृति इस तरह की है कि स्थल, नभ व नौ तीनों प्रकार की सेनाओं का संगठन, प्रशिक्षण व कार्य सम्बन्धी सुविधाएँ उपलब्ध हैं। गुटनिरपेक्षता, विदेश नीति का प्रमुख आधार होने से भारत साम्यवादी व साम्राज्यवादी गुटों के मध्य संतुलन स्थापित किये हुए है, लेकिन भारत के पड़ोसी इसके शत्रु है। भारत की पश्चिमी सीमा पर स्थित देश पाकिस्तान से तीन बार सशस्त्र संघर्ष हो चुका है तथा आज भी वह भारत के विरुद्ध शत्रुवत व्यवहार कर रहा है। उत्तर में चीन अपनी विस्तारवादी नीति के फलस्वरूप अक्टूबर, 1962 में भारत पर आक्रमण कर चुका है तथा आज भी डोकलाम, वी०आर०बी०ओ० जैसी सीमा समस्याओं में दोनों राष्ट्र उलझे रहे हैं। बंगलादेश, नेपाल व श्रीलंका से भारत के द्विपक्षीय सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण नहीं है। दूसरी ओर सोवियत रिक्तता का लाभ उठाकर चीन व जापान की हिन्द महासागर में बढ़ नही सैनिक अभिरुचि से भारतीय सुरक्षा परिदृश्य में नये तत्वों का समावेश हो रहा है। श्रीलंका का हम्बनटोटा प्रकरण भी समस्या है।

भारत की पर्वतीय सीमा मुख्य रूप से उत्तर व उत्तर-पूर्व में है तथा यह गिल्गिट से अराकानयोमा तक विस्तृत है। यहाँ स्थिति हिमालय की पर्वत हिमालय, जो पामीर गाँठ का भाग है, चार अग्रलिखित श्रेणियों से मिलकर बना है: (क) आन्तरिम हिमालय या महान श्रेणी सबसे उत्तर में फैली हुई है तथा इसकी औसत ऊँचाई 6000 मीटर है। बर्फीले हिमालय नाम से विख्यात इस श्रेणी में माउण्ट एवरेस्ट (8848 मीटर), नन्दा देवी (7818 मीटर), नंगा पर्वत (8126 मीटर), कंचनजंघा (8598 मीटर), अन्नपूर्णा (8078 मीटर) और धौलागिरि 8127 मीटर) जैसी चोटियाँ स्थित हैं, जो प्राय: वर्ष भर बर्फ से आच्छादित रहती हैं। इस पर्वतीय भागों में सिन्धु, सतलज, कोसी और दिहांग नदियों की घाटियाँ काफी संकरी हैं तथा इसी श्रेणी के मध्य भाग से गंगा, यमुना तथा उसकी

सहायक नदियाँ प्रवाहित होती है। (ख) लघु हिमालय महान हिमालय के दक्षिण में समानान्तर अवस्थित है, जो 80 से 100 किलोमीटर चौड़ी तथा अधिकतम ऊँचाई 4500 मीटर की है। इसी का भाग शिमला, मंसूरी, नैनीताल व दार्जिलिंग आदि हैं। (ग) उप-हिमालय अथवा शिवालिक श्रेणी महान और लघु हिमालय की दक्षिण में है। उत्तर-पश्चिम से पूर्व में यह 2000 किलोमीटर लम्बाई तथा 40 से 50 किलोमीटर चौड़ाई में विस्तृत है। इसे बाह्य हिमालय कहा जाता है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीति की तथ्यगत जानकारी प्राप्त करना तथा नि:शस्त्रीकरण पर भारतीय दृष्टिकोण को स्पष्ट करना है।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक "भारत में राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीति: एक अवलोकन" है। इसमें विश्व के सभी देश अपनी सीमाओं की सुरक्षा और आंतरिक शांति बनाए रखने के लिए निरन्तर संकल्पित रहता है। राष्ट्रीय अखण्डता एवं सार्वभौमिकता बनाए रखने के लिए किसी भी देश की राष्ट्रीय सुरक्षा का आन्तरिक व बाह्य दृष्टि से अध्ययन व मूल्यांकन करना सैन्य अध्ययन का एक महत्वपूर्ण अंग है, क्योंकि पर्याप्त सुरक्षा के अभाव में कोई भी राष्ट्र अपनी अखण्डता बनाये रखने तथा शान्तिपूर्ण ढंग से चतुर्मुखी विकास की कार्यवाही कदापि नहीं कर सकता। पर्याप्त सुरक्षा हेतु जहाँ एक ओर राष्ट्रीय एकीकरण की आवश्यकता होती है, वहीं दूसरी ओर अपनी सामरिक क्षमता को इतना सुदृढ़ बनाना होता है कि उत्पन्न सम्भावित खतरों का समुचित जबाव देने के साथ-साथ उन्हें निष्क्रिय भी बनाया जा सके। जब किसी भी राष्ट्र की सुरक्षा की बात की जाती है तब इसके अन्तर्गत उसकी सेनाओं की सामरिक क्षमता, प्राकृतिक संसाधनों की बहुलता, जनसंख्या, सुदृढ़ अर्थतन्त्र एवं मजबूत राजनैतिक मंच का भी विवरण दिया जाता है। भारत भविष्य में भी अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति सचेत रहेगा।

साहित्य सर्वेक्षण

इस विषय पर सम्पन्न अबतक के महत्वपूर्ण अध्ययन में कुछ साहित्य का सामान्य अवलोकन अनिवार्य प्रतीत होता है। ऐसा करना शोध आलेख लेखन कार्य को सार्थकता प्रदान करता है। वस्तुत: शोध आलेख को प्रभावी बनाने के लिए साहित्य सर्वेक्षण को अनिवार्य माना जाता है। इसी अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध आलेख की तैयारी में निम्नलिखित प्रमुख साहित्य का सर्वेक्षण किया है:

1. डॉ० एस०पी० सिंहल, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2019
2. डॉ० हरिश्चन्द्र वर्मा एवं शशी के० जैन, राजनय के सिद्धान्त, कॉलेज बुक्र डिपो, जयपुर, 2006
3. वी०एन० खन्ना, लिपाक्षी अरोड़ा, भारत की विदेश नीति, तृतीय संशोधित संस्करण, निकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा० लि०, नई दिल्ली, 2004
4. लियो ई० रोज, नेपाल स्ट्रैटजी फॉर सरवाइवल, आक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई, 1991
5. प्रो० बी०एम० जैन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2003
6. भोला चटर्जी, ए स्टडी ऑफ रिसेन्ट नेपालीज पॉलिटिक्स, द वर्ल्ड प्रेस, कलकत्ता, 1967

शोध आलेख की पद्धति

प्रस्तुत शोध-आलेख के लेखन में ऐतिहासिक पद्धति तथा वस्तु-विश्लेषणात्मक पद्धति का प्राथमिक रूप में प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष

भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा में हिमालय एक अभेद्य दुर्ग की भाँति कार्य करता है तथा आज भी यह भारत का एक सुरक्षा प्रहरी है। इसकी कई चोटियाँ वर्ष भर बर्फ से ढकी रहती है तथा कहीं-कहीं इस पर घने जंगली क्षेत्र भी हैं, जिन्हें पार करना कठिन है। यहाँ जोजिला, काराकोरम, शिपकी, जेलेप्ला व नाथूला आदि दर्रों को पार कर विदेशी भारत में प्रवेश कर सकते हैं। प्राचील काल में आक्रमणकारियों ने गोमल, मराकान, टोची व बोलन आदि दर्रों से होकर ही भारत पर आक्रमण किया था। इस क्षेत्र की सुरक्षा को वास्तविक खतरा चीन-पाक धुरीकरण से है। तिब्बत, रूपी 'बफर स्टेट' की समाप्ति तथा काराकोरम राज्य मार्ग द्वारा चीन और पाकिस्तान के मध्य स्थापित सड़क सम्पर्क से इस क्षेत्र की सुरक्षा समस्या पूर्व की तुलना में जटिल बन गई है। (घ) भारत का स्थलीय सीमान्त मुख्यत: उत्तरी-पश्चिमी, उत्तरी, उत्तरी-पूर्वी तथा पूर्वी सीमान्त क्षेत्रों में विभक्त है।

सन्दर्भ-सूची

1. बरनॉन वॉन डाइक, इन्टरनेशनल पोलटिक्स, पृष्ठ 91
2. एच०जे० मारगेन्थाऊ, पॉलिटिक्स एमोग नेशन्स, पृष्ठ 191
3. तथैव, पृष्ठ 122
4. तथैव, पृष्ठ 91
5. डॉ० डी० आर० सेठ, मिलेट्री डाइजेस्ट, जनवरी 1951, पृष्ठ 58
6. विगर्त एवं अन्य, प्रिंसिपल्स ऑफ पॉलिटिकल ज्योग्राफी, 1957, पृष्ठ-6
7. ओ० माडल: दास वेजेन्डर जियोपोलिटिक 1936, पृष्ठ-31

8. गियार्ड ओ तुआथैल, द जियो पालिटिक्स टीडर, पृष्ठ 16
9. कोलिन फ्लिंट, इन्ट्रोडक्शन टू जियोपालिटिक्स, 2006, पृष्ठ 13
10. आ०डी० दीक्षित, राजनीतिक भूगोल : विषय-वस्तु एवं इसके आयाम 1994, पृष्ठ 131
11. कोहेन एस०बी०, ज्योग्राफी एण्ड पॉलिटिक्स इन ए वर्ल्ड डिवाइडेड, 1973, पृष्ठ 291
12. जेम्स० इ० डाउर्टी एण्ड रॉबर्ट, एल० पाल्जग्राफ- कन्टेन्डिंग थ्योरीज ऑफ इन्टरनेशनल रिलेशंस, लाँगमैन न्युयार्क, 1996, पृष्ठ संख्या-151
13. कॉलिन फ्लिण्ट - इन्ट्रोडेक्शन टू जियो- पॉलिटिक्स, रूटलेंज, लंदन एंड न्युयार्क, 2006, पृष्ठ संख्या-42
14. मेजर आ०सी० कुलश्रेष्ठ, युद्ध के साधन और साध्य, पृष्ठ-53
15. जी०बी० क्रेसी, एशिया कैण्ड और पीपुल्स, पृष्ठ 411
16. वी० एनेस्टी, इकोनॉमिक डेवलपमेन्ट इन इंडिया, ई-1957

माधवी में स्त्री अस्मिता का स्वरुप

सोनम सिंह

शोधार्थी (हिंदी), विद्यासागर विश्वविद्यालय, मिदनापुर (पश्चिम बंगाल)

'माधवी' पौराणिक कथा पर आधारित भीष्म साहनी का तीसरा नाटक है। इस नाटक में कल्पना का आधार लेकर पौराणिक कथा की नयी व्याख्या प्रस्तुत की गई है। माधवी की कथा महाभारत के उद्योगपर्व से लिया गया है। माधवी नहुष कुल में उत्पन्नत चंद्रवंश के पाँचवें राजा ययाति की पुत्री थी। गालव, आचार्य विश्वामित्र का शिष्य है, शिक्षा समाप्ता होने के बाद गुरु दक्षिणा देने का हठ करता है, जिससे विश्वामित्र क्रोधित होकर उसके अहंकार को चोट करने के लिए दक्षिणा स्वरूप आठ सौ अश्वरमेधी घोड़े माँग लेते हैं। गालव गुरुदक्षिणा को पूरा करने की हर संभव कोशिश करते हुए इधर-उधर भटकता रहता है। अंत: असफल एवं निराश होकर आत्म हत्या करने पहुँचता है तो भगवान विष्णु उसे बचाने के लिए गरुड़ को ब्राह्मण बनाकर भेजते हैं। गरुड़ गालव को समझाते हुए राजा ययाति के पास जाने की सलाह देता है। राज-पाट से निवृत्तं राजा ययाति गालव की प्रतिज्ञा के संबंध में सुनकर असमंजस में पड़ जाते हैं और अंत में अपनी एकमात्र पुत्री माधवी को दान में देते हैं क्योंकि माधवी को यह वरदान प्राप्त है कि उसकी कोख से जन्म लेने वाला पुत्र चक्रवर्ती होगा और माधवी फिर से अनुष्ठान करके कुमारी हो सकती है।

बीज शब्द: स्त्री चेतना, अस्मिता, विद्रोह, पुरुष सत्तातत्मकता का दोहरा चेहरा

भूमिका

सीमोन-द-बोउवार का सुपरिचित कथन है कि "स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है।"[1] यह कथन इस नाटक के केंद्रीय चरित्र माधवी के जीवन पर सटीक रूप से लागू होता है। शक्ति और सत्ता द्वारा किए जाने वाले अन्याय, अत्याचार और शोषण को खत्म या कम करने की प्रक्रिया में हमने बेहतर प्रयास तो किया ही है लेकिन गहराई से विचार करें तो हम पाएंगे कि तमाम नये सिद्धांतों-विचारों के बावजूद इस पुरूष प्रधान समाज में स्त्री की स्थिति और नियति को लेकर कोई बुनियादी अंतर नहीं आया है। हाँ, समय के साथ-साथ शोषण के स्वरूप अवश्य बदल रहे हैं, कभी वह देवी के रूप में प्रतिष्ठित हो जाती है तो कभी बिल्कुल बाजारू बना दिया जाता है, इन सब की आड़ में सिर्फ स्वार्थ ही छिपा रहता है। हमारे धर्मग्रंथों में स्त्री की तुलना धरती से की गई है, जिस प्रकार धरती समस्त संसार का निस्वार्थ बोझ वहन करती है वैसे ही स्त्री भी समस्त दायित्व का भार वहन करती है।

स्त्री को त्याग की प्रतिमूर्ति कहा जाता है, लेकिन त्याग और सेवा का फल खुद स्त्री को मिले, यह कतई जरूरी नहीं। महाभारतकालीन पौराणिक परिवेश में अलौकिक गुणों से युक्त, अनिंद्य सुंदर राजकन्या माधवी को अगर उसके त्याग, सेवा का फल मिलता तो पिता दानवीर कैसे कहलाता, और प्रेमी गुरु-दक्षिणा कैसे चुकाता, विश्वामित्र संसार भर में अपने कठिन गुरु दक्षिणा को लेकर कैसे प्रसिद्ध होते।

विषय प्रतिपादन

'माधवी' नाटक में तीन अंक हैं जो क्रमश: तीन, चार और तीन दृश्यों में विभाजित किए गए हैं। हर अंक में माधवी के जीवन की दयनीय स्थितियों का स्तर बढ़ता ही जाता है। सूत्रधार की तरह कथावाचक का प्रयोग इसकी विशेषता है। नेमिचंद्र जैन के शब्दों में समग्रत: हम कह सकते है– "कथानक में नाटकीय स्थितियों और उससे पैदा होने वाली विडंबनाओं के लिए बहुत गुंजाइश है। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि भीष्म साहनी ने इन स्थितियों की नाटकीयता को पकड़ने की कोशिश की है। ...मगर नाटक में विवरण या सूचना अधिक है, स्थितियों का सीधा नाटकीय कार्य व्यापार कम। नाटक का अंत भी माधवी की त्रासद असहायता को किसी ऐसे विस्फोटक स्तर तक नहीं ले जा पाता कि पाठक या दर्शक पूरी तरह स्तब्ध हो जाए। फिर भी कुल मिलाकर आलेख में मानवीय संबंधों की विषमताओं और करुणा का ऐसा स्पर्श है जो आकर्षित करता है।"[2]

त्रिलोचन शास्त्री से 'माधवी' की कथा सुनते ही भीष्मजी उसे नाट्य रूप देने के लिए व्यग्र हो उठे। यह नाटक स्त्री देह और पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री के शोषण की अकथ्य कथा बयां करता है। लेखक अपने 'आज के अतीत' में लिखते हैं–"मैंने कथानक के नाते तो महाभारत में वर्णित कथा के ही प्रसंग रखें परंतु नाटक के केंद्र में माधवी आ गई। यह उसी की कहानी है, पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री की अवहेलना और शोषण की कहानी।"[3] लिखने की प्रक्रिया में ही भीष्म साहनी को एहसास हुआ कि नाटक की मुख्य पात्र माधवी है और उसीके पक्ष में कथा कही जानी जरूरी है। 80 के दशक तक स्त्री विमर्श और शोषण के अंतिम उपनिवेश के रूप में स्त्री देह को पहचान लिए जाने से लेखक कितना परिचित था यह कहना मुश्किल है लेकिन इतना तय है कि माधवी की कथा कहते हुए भीष्म साहनी ने हिंदी साहित्य में स्त्री वादी देह विमर्श में एक महत्वपूर्ण शुरुआत की।

स्त्री समाज इतना भोला, सीधा होता है कि जरा में अपने आपको भूलकर अपना सर्वस्व निछावर करने को तैयार हो जाता है। स्त्री–जाति ही एक ऐसी जाति है जो सारे अत्याचार को सहते हुए भी सरलमना बनी रहती है। वह हमेशा पराश्रित ही रहती है, कभी पिता के अधीन तो की पति के, और कभी पुत्र के अधीन। उस पर सबका हक होता है पर उसका हक किसी पर नहीं होता है। पुरुष सत्तात्मक समाज ने स्त्री को वस्तु मात्र ही समझ रखा है। पुरुष के

मन में स्त्री को अपने नियंत्रण में रखने की प्रवृत्ति सदा ही मौजूद रही है। गालव मुनिकुमार के कर्त्तव्य परायणता और दृढ़निष्ठा को देखकर उसकी गुरु दक्षिणा के लिए ययाति अपनी पुत्री माधवी को दान स्वरूप दे देता है। यहाँ सब मानवता की तिलांजलि देते हुए कर्त्तव्य पालन पर लगे हुए हैं। ययाति कहते हैं– "माधवी मेरी पुत्री है। पिता के प्रति अपना कर्त्तव्य निभाएगी। मैंने अपना कर्त्तव्य–निभाया है, वह भी अपना कर्त्तव्य निभाएगी।"[4]

धर्मग्रंथों में मनुष्य के बहुत से गुण गिनाये गए हैं कहा जाता है कि इनमें सबसे बड़ा गुण कर्तव्य पालन है और स्पष्टत: नाटक के मुख्य पात्र अपने इसी कर्त्तव्य बोध से परिचालित हैं, इसके लिए उन्हें कितना ही बड़ा व्यक्तिगत बलिदान ही क्यों न देना पड़े। अपने कर्त्तव्य्यों की मर्यादा से बँधे बड़ी विडंबना भी साहस तथा धैर्य के साथ झेलते हैं पर टूटते नहीं, यही नाट्यानुभूति माधवी के त्याग और बलिदान को उजागर करते हुए एक स्त्री के रूप में उसके सामाजिक–वैयक्तिक शोषण का तिरस्कार करती है। आदिकाल से ही नारियों की पूजा होती रही है और उन्हें आदर तथा सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। पुराणकाल में तो जीवन और जगत में उनकी समान भूमिका रही है। पर वहीं से नारियो के शोषण की कथा भी आरंभ हुई है। माधवी के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि नारियों का व्याक्तिगत जीवन कभी–कभी सामाजिक एवं पारिवारिक मान–मर्यादाओं तथा कर्त्तव्य बोध की बलि चढ़ जाता है।

पिता द्वारा दान में दिए जाने पर माधवी आश्चार्यचकित हो उठती है। उस समय उसे अपनी माँ की याद आती है। प्रत्यक्ष रूप से न सही लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से वह अपने पिता से तर्क करती है। वह सोचती है कि आज माँ होती तो क्या वह भी उसे दान में देती, वह अपने अधिकारों के प्रति सजग रहते हुए अपने अस्तित्वों का नवोन्मेष महसूस करती है।

प्रेम और कर्त्तेव्य के सूत्र में बंधी माधवी गालव की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए निकल पड़ती है। माधवी गालव से प्रेम करती है लेकिन गालव के लिए माधवी प्रतिज्ञा पूरी करने की साधन मात्र है। एक ओर वह माधवी के झूठी प्रेम प्रदर्शित करते हुए कहता है– "यदि मेरा बस चले तो मैं बड़े–से–बड़े राजा के लिए भी तुम्हें अपने से अलग न होने दूँ।"[5] वही दूसरी ओर उसे प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए दो–दो सौ अश्वमेधी घोड़ों के बदले अयोध्या, काशी, भोजनगर के राजाओं के पास भेज देता है। यहाँ व्याापारिक वस्तुओ में तब्दिल हो जाती है। उसके खरीददार राजा हर्यश्च के राजा– ज्योतिष, छू–छूकर उसके अंग–प्रत्यंगों की जाँच करते हैं। माधवी की त्रासदी यहीं खत्म नहीं होती है। वह राजा दिवोदास के पास पहुँचती है तो राजा देवोदास उसके रूप–सौंदर्य को देखकर उस पर मुग्ध हो जाते हैं और दो सौ अश्व मेधी घोड़े के बदले उसे अपनी रनिवास में रखते हुए कहते हैं– "यदि पुत्र न हुआ और अठारहवीं बेटी हुई तो हम, तुम दोनों को काल कोठरी में बंद कर देंगे।"[6] यहाँ भी हम देख सकते हैं कि बेटी कितनी अभिशापित है। बेटी पैदा करने के जुर्म में सत्रह रानियों को काल कोठरी की सजा दी गई। शेष घोड़े के लिए माधवी स्वयं विश्वामित्र के पास पहुँच जाती है और यहाँ माधवी को अपनी गुणवत्ता की परीक्षा देनी पड़ती है। यहाँ उसका सौदा बड़ी आसानी से हो जाता है। इसकी एक प्रमुख वजह यह थी कि अब वस्तु की गुणवत्ता बिना विज्ञापन के बाजार में पूरी तरह प्रमाणित हो चुकी है। विश्वावमित्र भी दो सौ अश्वामेधी घोड़े के बदले माधवी से पुत्र प्राप्त करते हैं। इससे गुरु के मन, मर्यादा, कर्त्तव्य पर कोई आँच नहीं आती है। यहाँ भी हमें गुरु का अद्‌भुत स्वरूप देखने को मिलता है, वर्तमान संदर्भ में भी धर्मगुरुओं के नारी शोषण संबंधी अघृणित कार्यों का पर्दाफाश हो रहा है।

यदि गालव, ययाति और विश्वामित्र तीनों ही कर्त्तव्य परायणता की प्रतिमूर्ति हैं तो निश्चित ही कर्त्तव्य परायणता का अर्थ होता होगा स्त्री शोषण। सभी अपने स्वार्थपूर्ति के लिए स्त्री का शोषण करते हैं। प्रेम और कर्त्तव्य रूपी हथियार इसमें अहम भूमिका निभाते हैं। यह पुरुषों द्वारा एक स्त्री की अस्मिता के साथ खेला गया षडयंत्र है, सब उसकी संवेदनाओं की बलि चढ़ा कर महान बनते हैं। ये कैसी महानता है जो एक स्त्री की आशा, आकांक्षाओं को मार कर उसे व्यापारिक वस्तु बनाकर समाज में प्रतिष्ठा हासिल करते हैं। भीष्म साहनी ने सामंती व्यवस्था की हृदयहीन क्रूरता को रेखांकित किया है। प्रस्तुत नाट्यकृति की विषय वस्तु के संदर्भ में डॉ. सत्यवती त्रिपाठी का मत है– "वस्तुगत स्तर पर इस नाटक के प्रयोगों की विशेषता स्त्री के प्रति पुरुष के व्यवहार को लेकर शोषण और दमन की परंपरा और सामंतवादी मनोवृत्ति के यथार्थवादी शैली के उद्‌घाटन में है।"[7]

गालव को ऋषि बनने के लिए माधवी अपने आत्मसम्मान के त्याग के साथ–साथ अपनी मातृत्व की भी बलि चढ़ाती गई। बच्चों को जन्म देना और जन्मते उससे अलग हो जाना, एक माँ के लिए कितना मानसिक एवं शारीरिक कष्ट है, जिसका अंदाजा लगाना गालव जैसे दानव के बस की बात नहीं। माधवी को जब अपने बच्चे का रोना सुनाई देता है तब गालव कहता है यह वहम है माधवी। माधवी उत्तर देती है– "नहीं गालव, मैं अपने आने वाले बच्चे का रोना सुन रही हूँ।"[8] यहाँ माधवी का मातृत्व प्रेम उभर आता है।

प्रतिज्ञा पूरी होती है और ययाति के आश्रम में स्वयंवर और दीक्षांत समारोह का आयोजन होता है। स्वयंवर में अनेक राजाओं के साथ गालव का भी आगमन होता है। माधवी के जर्जर शरीर और ढलते यौवन को देखकर गालव ठिठक जाता है। उससे अनुष्ठान करने का आग्रह करता है लेकिन माधवी अनुष्ठान करने से मना कर देती है। देर से ही सही लेकिन माधवी अब कर्त्तव्यपरायणता का प्रपंच समझ चुकी है, जिस गालव के लिए वह अपने पूरी अस्तित्व को दाव पर लगा देती है, आज वही गालव उसके ढ़लते देह को देखकर उसे अपनाने से इंकार कर देता है। वह माधवी से नहीं उसके शरीर से प्रेम करता है, वहीं दूसरी ओर कर्त्तव्यवपराणता का नया प्रपंच खड़ा करते हुए कहता है– "जो स्त्री मेरे गुरु के आश्रम में रह चुकी हो, उसे मैं अपनी पत्नी कैसे मान सकता हूँ।"[9] यही है आदर्श शिष्य एवं कर्त्तव्यपरायणता की प्रतिमूर्ति गालव का असली चेहरा, जो अपने लक्ष्य को पाने के लिए माधवी को एक–एक कर तीन कसाई के हाथों बेच आता है, और अंत में गुरु की दुहाई देकर मार्ग में पड़े काँटे के समान उठाकर बाहर फेंक कर स्वतंत्र हो जाता है। वर्तमान परिदृश्य में भी कुछ ज्यादा बदलाव नहीं आया है। आधुनिक समाज ने उसे उस सामंतवादी समाज के अंधेरे से तो आजादी दी है, किंतु अब भी वह रमणीय वस्तु ही है, जिसकी रमणीयता का उपयोग ब्लेड से लेकर कार तक बेचने के लिए किया जा रहा है।

माधवी के समक्ष पितृसत्ता के दानवों का गिलाफ गिर चुका है, वह सबकी असलियत से रू–ब–रू हो चुकी हैं। वह अपने को उस मायावी तथाकथित प्रेम प्रपंच से निकाल लेती है। वह पूछती है गालव से– "तुम किस माधवी के लिए छटपटाते रहते थे? मैं तुम्हारे लिए केवल निमित्त मात्र थी। जब तुम मेरे समाने अनुनय–विनय कर रहे थे तब भी तुम झूठ बोल रहे थे। तुमने केवल एक ही व्याक्ति से प्रेम किया है और वह अपने आप से। पर मैं तुम्हें। पहचानते हुए भी नही पहचान पाई। मैं सारा वक्त यही समझती रही कि गालव सच्ची साधना और निष्ठावाला व्याक्ति है।"[10]

गालव छल स्वरूप माधवी के यौवन की आहुति देकर गुरुदक्षिणा जुटाता तो है लेकिन उसने माधवी के पवित्र भावना का भी शोषण किया है, इस क्रूर और अमानवीय प्रक्रिया में वह पूरी तरह क्षत-विक्षत हो जाती है। यह आत्मनिर्वासन उसे अकेलापन देता है। वह अब इन सब से बहुत दूर चली जाना चाहती है। वह कहती है– "संसार बड़ा विशाल है। उसमें निश्चय ही मेरे लिए कोई स्थान होगा।"[11]

निष्कर्ष: भीष्म साहनी की नाट्यकला की अद्‌भुत विशेषता है कि वह अतीत के आलोक में वर्तमान और भविष्य को प्रकाशित करते हैं। माधवी भी ऐसी ही एक रचना है जो सिर्फ अतीत के आख्यानों तक सीमित न रहकर वर्तमान और भविष्य से जुड़ी हुई है। माधवी के समय का समाज और आज के समय के समाज में तब्दिलयाँ तो आई हैं, लेकिन माधवी की स्थितियों में बुनियादी परिवर्तन नहीं आता है। वर्तमान में भी माधवी हमारे आस-पास दिख ही जाती है। स्त्रियाँ माधवी तब तक बनी रहेगी जब तक उसको संचालित करने वाली शक्तियाँ पुरुष सत्तात्मक समाज के हाथों होगी। नाटक की मूल नाट्यानुभूति माधवी के त्याग, बलिदान और समर्पित प्रेम को उजागर करती है और एक स्त्री के रूप में उसके वैयक्तिक और सामाजिक शोषण का तिरस्कार करने से भी नहीं चूकती है।

पौराणिक कथानक होने के कारण नाटक में संस्कृति शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। कथानक की कसावट, रोचकता, स्वाभाविक भाषा के कारण नाटक में कौतूहलपन आ जाता है। शिल्प एवं कथानक की दृष्टि से 'माधवी' एक सशक्त नाटक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बोउवार द सीमोन, 'द सेकेंड सेक्स', (अनुवादक– प्रभा खेतान), पृष्ठ आवरण पृष्ठ
2. तनेजा डॉ. जयदेव, 'हिंदी नाटक आजकल', तक्षशिला प्रकाशन, पृष्ठ संख्या– 61
3. साहनी भीष्म, 'आज के अतीत', राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या– 239
4. साहनी भीष्म, 'माधवी', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 2 – 22
5. वही, पृष्ठ संख्या – 28
6. वही, पृष्ठ संख्या – 78
7. त्रिपाठी डॉ. सत्यवती, 'आधुनिक हिंदी नाटक में प्रयोगधर्मिता', पृष्ठ संख्या-85
8. साहनी भीष्म, 'माधवी', राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-67
9. साहनी भीष्म, 'माधवी', राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-115
10. साहनी भीष्म, 'माधवी', राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-117
11. साहनी भीष्म, 'माधवी', राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-119

बुद्धिधर्मी का दायित्व और प्रेमचंद

शीतांशु

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, असम विश्वविद्यालय, दीफू परिसर, दीफू, असम

पूँजीवादी होड़ के दौर में बाजार ने फेसबुक, ट्विटर, यूट्यूब और सोशल मीडिया के अन्य माध्यमों के द्वारा लेखकों को खुद को स्थापित होते देखने का भ्रामक मौका दिया है। इसने तुरंत सब कुछ हासिल कर लेने की आकांक्षा पैदा की है जो अब एक किस्म की प्रतियोगिता में बदल चुका है। इस स्थिति ने सही लीक पर चल रहे कई लेखकों में भी एक उत्तेजना और हड़बड़ी पैदा कर दी है जिससे उनकी चेतना अपने अपेक्षित स्थान से विस्थापित हुई है। साहित्य के साध्य और साधन को लेकर चली आ रही मान्यताओं में विचलन आया है। इसका एक दुष्परिणाम यह हुआ है कि अपनी विरासत के सार्थक तत्वों के प्रति भी पूँजीवादी-बाजारवादी-उपभोक्तावादी मानसिकता के साथ देखा जाने लगा है और उसे आधुनिक और तर्कपूर्ण प्रक्रिया कहकर 'मूर्तियों को ध्वस्त' करने का कुतर्क दिया जा रहा है। जबकि वास्तविकता यह है कि अपने श्रेष्ठ लेखकों की श्रमसाध्यता, समय से उनके संवाद, प्रगतिशीलता और कुल मिलाकर उनकी देश-कालगत परिस्थितियों के बारे में भी इस उत्तेजना और हड़बड़ी ने इन लेखकों की दृष्टि को सीमित किया है। इन बाजारग्रस्त लेखकों में ऐतिहासिक चेतना सिकुड़ी है और प्रगतिशील मूल्यों की धार कमजोर पड़ी है। वैश्वीकरण ने जिस तरह अमानवीय मूल्यों को स्वीकार्य बनाया है उसी की छाया साहित्य जगत पर भी पड़ी है और कुछ लेखक भी 'सब चलता है' की शैली में आ गए हैं। उत्तरआधुनिकता के तर्क से कहें तो 'कुछ भी अब अप्रस्तुतियोग्य नहीं रहा'; हर बात कही, बोली, लिखी और दिखाई जा सकती है। स्पष्ट कर दूँ कि यह सबके साथ नहीं है, संवेदनशील लेखकों की एक बड़ी संख्या है, जो इन्हीं मंचों का बहुत ही सार्थक उपयोग कर रहे हैं, संयत ढंग से चिन्तन-मनन की प्रक्रिया को और विस्तार दे रहे हैं। किन्तु माध्यमों का अपना समाजशास्त्र होता है और पूँजीवादी-साम्राज्यवादी आक्रामकता के दौर में माध्यमों पर नियंत्रण माध्यमों के व्यवहार और प्रकारांतर से उसे प्रयोग में लाने वालों के मानस को काफी हद तक संचालित करता है।

कभी अज्ञेय ने कहा था कि 'सुनो कवि, भावनाएँ नहीं हैं सोता/ भावनाएँ खाद हैं केवल/ जरा उनको दबा रखो- जरा सा और पकने दो/ ताने और तपने दो/ अँधेरी तहों के पुट में पिघलने और पचने दो।' लेकिन सोशल मीडिया के वर्तमान माध्यमों के स्वरूप और व्यवहार ने, भावनाओं के कच्चेपन को और अपचन को तीव्र किया है, या फिर इसी तरह की भावनाओं का पाठकों तक पहुँचना आसान कर दिया है। सामान्य पाठक के पास कविता या आलोचना की शक्ल में इतनी चीजें पहुँचने लगी हैं कि सचेत और सार्थक कविता या आलोचना से उसकी दूरी बढ़ गई है, फर्क करना उसके लिए कठिन हो गया है।

प्रेमचंद पर हमेशा ही कुछ न कुछ सकारात्मक/नकारात्मक टिप्पणियाँ होती चली आई हैं। माध्यमों के विस्तार के साथ इन टिप्पणियों की संख्या बढ़ गई है। जो पिछले दो दशकों की टिप्पणियाँ हैं उन पर विचार करते वक्त उक्त स्थितियों का ध्यान रखा जाना चाहिए। इधर फेसबुक पर एक उपन्यासकार महोदय आत्मप्रचार करते हुए भी अपने उपन्यास के सार्थक पहलुओं पर नहीं बल्कि प्रेमचंद के गोदान की कमियों को बताने में लगे हुए थे। उन्होंने बस इस पर विचार नहीं किया कि आखिर गोदान में ऐसा क्या है कि इस बीच हजारों उपन्यासों के प्रकाशित हो जाने के बावजूद उन्हें अपने उपन्यास की तुलना गोदान से करनी पड़ रही है। इसी तरह कुछ समय पहले सोशल मीडिया पर दिल्ली के एक लेखक प्रेमचंद को एक 'ओवररेटेड' रचनाकार बता रहे थे। अस्मिता की अतिवादिता से ग्रस्त कुछ लेखक कुछ वर्ष पहले रंगभूमि की प्रतियाँ जला रहे थे। प्रेमचंद को सामंत का मुंशी तक बताया गया। हंस के ही संपादक महोदय इधर उनकी लिखी अधिकांश कहानियों को कूड़ा बता रहे थे। एक सिलसिला ही चल पड़ा है जैसे कुछ भी बोलने का।

रामविलासजी ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद और उनका युग' में उनके समय में प्रेमचंद के बारे में हो रही ऐसी ही टिप्पणियों का जिक्र किया है। और भूमिका में उन्होंने यहाँ से शुरू किया है कि हंस के प्रेमचंद स्मृति अंक में चन्द्रहासन जी ने लिखा है कि 'प्रेमचंद का स्वर्गवास उत्तर के हिन्दी भाषियों को उतना नहीं खटका होगा जितना कि दक्षिण के हिन्दी प्रेमियों को'। यह टिप्पणी सिर्फ स्वाधीनता आन्दोलन के दौर में प्रेमचंद के महत्व पर नहीं है बल्कि अपने समाज की दरिद्रता पर भी है जो जातिवाद-सांप्रदायिकता-रूढ़िवाद और पूँजीवाद में इतना फँसा है कि अपनी विरासत ही नहीं पहचान पा रहा और उन्हें ओवररेटेड कह रहा है। आगे भूमिका में ही रामविलासजी ने नकारात्मक टिप्पणियों का जिक्र किया है। किसी ने उनके शिल्प को थर्ड रेट कह दिया, किसी ने प्रेमचंद से पाँच सौ कदम आगे के और रचनाकारों की सूची जारी की, किसी ने बताया कि उनमें भावों की गहराई नहीं है, किसी ने बताया कि मनोविज्ञान छिछला है प्रेमचंद का।

कहना न होगा कि इन टिप्पणियों का इतिहास रहा है और इस इतिहास के बीच प्रेमचंद का राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय महत्व बढ़ता ही रहा क्योंकि उनके साहित्य में जीवन की मर्मस्पर्शी छवियाँ है, उसकी आलोचना है। जब तक मनुष्यता उन कठिनाइयों का सामना करती रहेगी जिसकी ओर प्रेमचंद का साहित्य ध्यान ले जाता है तब तक प्रेमचंद हमारे समय के रचनाकार रहेंगे, तब तक लोगों को लगता रहेगा कि प्रेमचंद समकालीन हैं। रामविलासजी उक्त टिप्पणियों का जवाब देने के बाद लिखते हैं कि 'टिटिहरी समुद्र की गहराई को नहीं नाप सकती। उसके लिए समुद्र क्या है? नीला-नीला पानी जिसमें कहीं कहीं लहरें उठती हैं वरन समतल।' उसमें कितनी गहराई है, उसके भीतर कितना जीवन छिपा है, उसकी परिधि कितनी विशाल है इसे समझने के लिए टिटिहरी-अवलोकन की प्रवृत्ति का परित्याग करना होगा।

प्रेमचंद ने कुछ ऐसे ऐतिहासिक कार्य किए हैं कि उन्हें नकारने की तमाम कोशिशों के बावजूद आगे अनेक वर्षों तक वे हमारे साथ चलते रहेंगे, जैसे कबीर चलते रहे हैं। बुद्धिजीवियों को इन कार्यों और प्रवृत्तियों की पहचान करते रहना होगा ताकि आजकल की उत्तेजनापरक और हड़बड़ी की संस्कृति में हम अपनी परंपरा से प्राप्त श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों की रक्षा कर सकें। प्रेमचंद को ओवररेटेड या सामंतवादी कहे जाने की जिस सेंसेशनवादी प्रवृत्ति का विकास हुआ है उसका प्रतिकार इन श्रेष्ठ तत्वों की पुनरावृत्ति से ही संभव है, तथ्यों को दिग्भ्रम से बचा कर ही संभव है।

तो इस तरह की टिप्पणियाँ उछालने वालों को प्रेमचंद की ऐतिहासिक भूमिका के कुछ पहलुओं की थोड़ी याद दिलाते हैं। सबसे पहली बात यह कि उपन्यास विधा जिस दिशा में चलती आई थी, हिन्दुस्तान में जिन कुछ लेखकों ने उसकी दिशा बदल दी, उसका चरित्र बदल दिया, हमारे साहित्य का स्वरूप परिवर्तित किया, उनमें प्रेमचंद अग्रणी थे। निश्चित रूप से इसका श्रेय सिर्फ उन्हें नहीं जाता बल्कि उन भौतिक परिस्थितियों को भी जाता है जिसमें कि यह संभव हुआ। आधुनिक काल से पहले एक पूरा युग था रीतिकाल, जिसमें हमारे देश के बहुलांश यानी किसानों और सामान्य जनों का स्वर गायब था। स्त्री सौन्दर्य, श्रृंगार, अलंकार और आचार्यत्व की महिमा थी। उर्दू की कविता समृद्ध थी लेकिन वहाँ भी उन्नीसवीं सदी में हुस्न और इश्क हावी था। मेहनतकश समाज वहाँ भी सीमित रूप में दिखाई देता है और जिनमें दिखाई देता है उन्हें पहली पंक्ति का कवि नहीं माना जाता। भारतेन्दु युग ने महान परिवर्तन किए लेकिन राजभक्ति की चेतना खत्म नहीं हुई थी और कविता में खड़ी बोली में कविता करने वाले पिछली पीढ़ी के क्रोध का सामना कर रहे थे। यह वह पृष्ठभूमि थी जिसमें प्रेमचंद ने कथा साहित्य की बागडोर थामी, फिर उसे जिस दिशा में ले गए वह करने का सामर्थ्य विरले लोगों में होता है।

उपन्यास विधा पश्चिम से आई और मध्यवर्ग की विधा के रूप में आई। हिन्दुस्तान में आने के बाद वह भारतीय परिस्थितियों के हिसाब से विकसित हुई। नवजागरण के दौर में सुधारवादी उपन्यास लिखे गए और उसके कुछ ही समय के भीतर तिलिस्मी-ऐय्यारी-जासूसी उपन्यासों का दबदबा हो गया। प्रेमचंद ने इन उपन्यासों की सीमाओं को रेखांकित करते हुए लिखा कि "हमने जिस युग को अभी पार किया है उसे जीवन से कोई मतलब न था। हमारे साहित्यकार कल्पना की एक सृष्टि खड़ी कर उसमें मनमाने तिलिस्म बाँधा करते थे। ...इन आख्यानों का उद्देश्य केवल मनोरंजन था और हमारे अद्भुत रस प्रेम की तृप्ति। साहित्य का जीवन से भी कोई लगाव है यह कल्पनातीत था। कहानी कहानी है जीवन जीवन। दोनो परस्पर विरोधी वस्तुएँ समझी जाती थीं।... प्रेम का आदर्श वासनाओं को तृप्त करना था और सौन्दर्य का आँखों को।" यह वह चेतना थी जिसके साथ प्रेमचंद उपन्यास लेखन की दिशा में आए। प्रेमचंद मानते थे कि इन उपन्यासों में भी सार्थक तत्व संभव हैं अगर वे व्यापक मानवीय मूल्यों से संचालित हों। प्रेमचंद ने अपनी इसी सामाजिक चेतना के साथ उपन्यास की धारा को बदल दिया बल्कि पाठकों की रुचियों को भी काफी हद तक परिवर्तित किया। मनोरंजन के नाम पर मूल्यों से कोई समझौता किए बगैर। बाजार के नाम पर मजबूरी के पर्दे के पीछे छिपे बगैर। प्रेमचंद फिल्मी दुनिया की ओर भी गए लेकिन बाजार के हिसाब से फिल्में नहीं बनाई। जब बाजार ने उनकी फिल्म को स्वीकार नहीं किया, तमाम तरीके से उस पर प्रतिबंध लगाए गए, तो वे अपने शर्तों पर काम करने अपनी साहित्यिक दुनिया में वापस चले आए।

वस्तुतः हिन्दुस्तान में प्रेमचंद ने एक सशक्त विधा के वर्गीच चरित्र को बदलने का काम किया। हमारे नायक बदल गए, विषयों के चुनाव बदल गए, चरित्रों का व्यवहार बदल गया, कथा का विकास और अंत बदल गया, भाषा बदल गई, शिल्प बदल गया। हर जगह वास्तविक जीवन के दृश्य दिखाई देने लगे। किसान और मजदूर दिखाई देने लगे। मध्य वर्ग भी अलग ढंग का दिखाई देने लगा। समय के साथ उनकी अपनी रचनाओं का मध्यवर्ग और भी बदल गया। हाशिए के समाजों के चरित्र दिखाई देने लगे। दलितों और अल्पसंख्यकों के जीवन के संघर्ष दिखाई देने लगे। उनकी समस्याएँ दिखाई देने लगीं। यह कोई मामूली स्थिति नहीं है बल्कि इतिहास का एक महत्वपूर्ण पड़ाव है। तो, प्रेमचंद पर टिप्पणी करने से पहले उन ऐतिहासिक स्थितियों का अध्ययन जरूरी है जिसमें वे सक्रिय थे। इतिहास में उन्हें अवस्थित करके जब वर्तमान के 'टिप्पणीकर्ता' उन्हें देखेंगे तो स्पष्टतः उन्हें उनकी वास्तविक और अपनी भ्रामक अवस्थिति का भान हो पाएगा। आज जब अपनी वर्गीय और अस्मिताई सीमाओं को रेखांकित करना इतना दुष्कर दिखाई दे रहा है, ध्यान रखना चाहिए कि प्रेमचंद अपने समय में पूरे युग का भार उठाए चल रहे थे।

प्रेमचंद जिस दौर में लेखन कर रहे थे वह औपनिवेशिक आक्रामकता और स्वाधीनता आन्दोलन का दौर था। इसी स्वाधीनता आन्दोलन से उनकी चेतना निर्मित हो रही थी। इस स्वाधीनता आन्दोलन और अपने समय से प्रेमचंद का रिश्ता कैसा था, उसके बारे में नामवरजी का यह बयान देखिए- "1905-06 के बंग-भंग से लेकर 1936 तक, जब प्रेमचंद की मृत्यु हुई, इन तीस वर्षों के भारतीय जीवन की धड़कन, उसका संघर्ष, उसकी पराजय, उसका दुख, उसका दर्द, अपनी समस्त गहराई के साथ और अपनी समस्त व्यापकता के साथ अगर किसी एक भारतीय लेखक में आप ढूँढना चाहें तो रवीन्द्रनाथ ठाकुर के रहते हुए, शरतचंद्र के रहते हुए, सुब्रहमण्यम भारती के रहते हुए, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के रहते हुए, डॉ. मुहम्मद इकबाल के रहते हुए भी मैं प्रेमचंद का नाम लेना चाहूँगा, क्योंकि वही एकमात्र साहित्यकार हैं, जिनके साहित्य में स्वाधीनता संग्राम की अमर गाथा अपने पूरे ब्यौरे के साथ कही गई है।" यह हुई एक श्रेष्ठ आलोचक की राय। अब हिन्दी के एक श्रेष्ठ साहित्येतिहासकार और उपन्यासकार हजारीप्रसाद द्विवेदी की राय देख लीजिए- "अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाषा-भाव, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, दुख-सुख और सूझ-बूझ को जानना चाहते हैं तो प्रेमचंद से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता। झोपड़ियों से लेकर महलों तक, खोमचे वालों से लेकर बैंकों तक, गाँव से लेकर विधानसभाओं तक, आपको इतने कौशलपूर्वक और प्रामाणिक भाव से कोई नहीं ले जा सकता। आप बेखटके प्रेमचंद का हाथ पकड़कर मेड़ों पर गाते हुए किसान को, अंतःपुर में मान किए प्रियतमा को, कोठे पर बैठी वारवनिता को, रोटियों के लिए ललकते हुए भिखमंगों को, कूट परामर्श में लीन गोचन्दों को, ईर्ष्या-पारायण प्रोफेसरों को, दुर्बल हृदय बैंकरों को, सासह पारायण चमारिन को, ढोंगी पंडितों को, फरेबी पटवारी को, नीचाशय अमीर को देख सकते हैं और निश्चिन्त होकर विश्वास कर सकते हैं कि जो कुछ आपने देखा है वह गलत नहीं है। उससे अधिक सच्चाई से दिखा सकने वाले परिदर्शक को अभी हिन्दी-उर्दू की दुनिया नहीं जानती।"

जब प्रेमचंद कर्मभूमि लिखते हैं तब तक भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का परिदृश्य काफी स्पष्ट हो चुका था। कर्मभूमि नाम से ही स्पष्ट है कि उसका अभिप्राय क्या है। कर्मभूमि न सिर्फ विभिन्न वर्गों को बल्कि विभिन्न अस्मिताओं से बँधे जनसमूह को स्वाधीनता आन्दोलन के समर्थन में और सामाजिक कुरूपताओं के खिलाफ एकजुट होने की प्रेरणा देता है। क्या शहरी उच्च वर्ग और क्या गाँव का किसान, स्त्री हो या पुरुष, दलित हो या सवर्ण, मजदूर हो या पूँजीपति, सभी को इस कर्मभूमि का हिस्सा बनना होगा। समरकान्त, अमरकान्त, सुखदा, सकीना, सलीम, मुन्नी, सलोनी आदि सभी उपन्यास के

विकास-क्रम में एक मंच पर खड़े दिखाई देते हैं। वे मूलत: विभिन्न वर्गों और अस्मिताओं के प्रतिनिधि बनकर ही आते हैं। इसी गहन राजनीतिक-सामाजिक चेतना को ध्यान में रखकर रामविलास शर्मा ने कर्मभूमि को स्वाधीनता आन्दोलन की गहराई और प्रसार का उपन्यास कहा है। आज जब वैश्वीकृत पूँजीवाद के दौर में बुद्धिजीवियों के कलम और विचारों को सत्ताधारी अपनी मशीनरी के माध्यम से नियंत्रित कर रहे हैं, हमें यह सीखना होगा प्रेमचंद से कि किस तरह औपनिवेशिक आक्रामकता के दौर में भी उनकी कलम समय से इतना सार्थक संवाद करती है। इतना सार्थक कि वह आज भी प्रेरणास्रोत है।

स्वराज्य लाभ और उसका व्यवस्थित विकास प्रेमचंद का लक्ष्य है। कर्मभूमि में गजनवी कहता है- "स्वराज्य हम चाहते हैं मगर इन्कलाब की सूरत में नहीं। हालांकि कभी-कभी मुझे भी ऐसा मालूम होता है कि इन्कलाब के सिवा हमारे लिए दूसरा रास्ता नहीं है। इतनी फौज रखने की क्या जरूरत है, जो सरकार की आमदनी को आधा हजम कर जाए। फौज का खर्च आधा कर दिया जाए तो किसानों का लगान बड़ी आसानी से आधा हो सकता है।... आखिर एक दो सदी बाद दुनिया में एक सल्तनत हो जाएगी। सबका एक कानून, एक निजाम होगा, कौम के खादिम कौम पर हुकूमत करेंगे, मजहब शख्सी चीज होगी। न कोई राजा होगा न परजा।" गजनवी का यह वाक्य प्रेमचंद की चेतना की गहराई को दिखाता है। स्वराज का मतलब केवल अंग्रेजों से आजादी नहीं है, बल्कि देश में आजादी से है, पूरी दुनिया में आजादी से है। और प्रेमचंद को बराबर यह डर था कि अगर स्वराज की जो लड़ाई है उसकी चिन्ताओं को हम सही दिशाओं में नहीं ले जाएंगे तो यह हासिल होने से रहा। प्रेमचंद एक ऐसा समाज चाह रहे थे जो गैरबराबरी का समाज हो, जिसमें सेनाओं की जरूरत न हो, जिसमें धार्मिक, सांप्रदायिक संकीर्णताएँ न हों, सबके साथ न्याय हो, शासक और जनता के बीच, गाँव और शहर के बीच का फर्क मिट जाए।

लेकिन प्रेमचंद यह भी जानते थे कि यथार्थ में इसे संभव करना कितना कठिन है। इसलिए स्वराज की उनकी चेतना, उनकी रचनाओं में आप जितना आगे बढ़ते जाएंगे, नारेबाजी की तरह नहीं उभरती बल्कि उन वर्गों, अस्मिताओं, समस्याओं की ओर इंगित करती है, जो उन्हें डर है कि इस नारेबाजी के बीच दब जाएंगी और बाद में स्थितियाँ बद से बदतर होंगी। कर्मभूमि से गोदान की ओर के सफर को ऐसे समझना होगा। कर्मभूमि पहले लिखी गई, गोदान और कफन बाद में। गोदान और कफन में अगर प्रत्यक्ष राजनीतिक बहसें नहीं दिखाई देतीं तो क्या यह निष्कर्ष निकाल लें कि प्रेमचंद में राजनीतिक चेतना नहीं थी, या कम हो गई थी! वास्तविकता यह है कि इन दोनो उपन्यासों में इन बहसों का न होना उनकी और भी गहरी राजनीतिक चेतना का प्रमाण है। उनको पता था कि सिर्फ नारेबाजी से कुछ नहीं होगा, उनकी राजनीति यह होनी चाहिए कि हमारे समाज के सबसे दबे-कुचले वर्ग की जीवन स्थितियों से राष्ट्र की बागडोर जिनके हाथ में है, आजादी के बाद जिनके हाथ में जाएगी, उन्हें पूरी तरह से परिचित कराएँ। यह थी औपनिवेशिक दौर में प्रेमचंद की राजनीतिक चेतना। इतनी गहन, इतनी गूढ़, इतनी सूक्ष्म। इतनी दूरदर्शी। उनका डर कितना सच साबित हुआ यह कहने की जरूरत नहीं।

कुछ साहित्य सर्जकों और प्रेमियों को प्रेमचंद के शिल्प से दिक्कत है। जब विषय-वस्तु के रास्ते से उन्हें पीछे नहीं खींचा जा सकता तो अक्सर इस चोर दरवाजे का इस्तेमाल किया जाता है। इसका भी इतिहास बहुत पुराना है। आधुनिकतावादी और उत्तर आधुनिकतावादी प्रवृत्तियों के विकास के साथ ऐसे टिप्पणीकर्ताओं की संख्या बढ़ी ही है। यहाँ भी नामवरजी को उद्धृत करना जरूरी है। नामवरजी ने प्रेमचंद के 'सादगी के सौन्दर्यशास्त्र' की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इसी शीर्षक से अपने एक लेख में उन्होंने कई कहानियों के माध्यम से इस सादगी के विभिन्न आयमों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है लेकिन जो निष्कर्ष उन्होंने दिया वह देखने लायक है। उनका कहना है कि 'प्रेमचंद की इन कहानियों के माध्यम से मैंने सिर्फ बताना चाहा है कि ये सरल-सुस्पष्ट और पारदर्शी कहानियाँ हैं, जिनकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है, बल्कि जहाँ अर्थ-गर्भ प्रसंग हैं, उनको केवल रेखांकित कर देने की जरूरत है, वे अपनी व्याख्या करने में स्वयं समर्थ हैं। यही प्रेमचंद की ताकत है।' यह है हिन्दी के ख्यातिलब्ध चर्चित समर्थवान आलोचक का निष्कर्ष। यह है निष्कर्ष कि उनके लेखन को समझाने के लिए टूल्स की जरूरत ही नहीं है। सिर्फ कुछ रेखांकित किया जा सकता है। आजकल कुछ लेखक बात-बात पर आलोचकों को तमाम बातें सुना रहे हैं, उन्हें इस टिप्पणी को पढ़ना चाहिए। जब साहित्यकार कालजयी होता है तो उसे आलोचनाओं की जरूरत नहीं होती। कबीर लोगों की जबान पर हैं, रवीन्द्र संगीत लोगों के दिल में है और प्रेमचंद लोगों के जीवन में सहज व्याप्त हैं।

मैं तो यहाँ तक कहने की हिम्मत कर रहा हूँ कि साहित्यिक समुदाय में सौन्दर्य शब्द का जो अर्थ था उस अर्थ-छवि को विस्थापित करने में प्रेमचंद की भूमिका महत्वपूर्ण रही होगी। सौन्दर्य शब्द को सुनते ही जो कुछ मस्तिष्क में आता रहा होगा, प्रेमचंद और उनके जैसे अन्य साहित्यकारों के लेखन के बाद उससे अलग बातें हिन्दी साहित्य प्रेमियों के जेहन में आने लगी होंगी। उनके यहाँ सौन्दर्य वहाँ है जहाँ 'मन का संस्कार' हो। उनकी पंक्ति है, 'साहित्य कलाकार के आध्यात्मिक सामंजस्य का व्यक्त रूप है और सामंजस्य सौन्दर्य की सृष्टि करता है, नाश नहीं। वह हममें वफादारी, सच्चाई, सहानुभूति, न्यायप्रियता और ममता के भावों की पुष्टि करता है।' यह है प्रेमचंद का सौन्दर्य। इन मूल्यों का विकास। पारंपरिक काव्यशास्त्र और रीतिकालीन दृष्टि से इस सौन्दर्य की व्याख्या हो सकती है क्या? साथ ही यह सौन्दर्य क्या शिल्प मात्र की ऊंचाई से हासिल हो सकता है? यह सौन्दर्य जीवन में डूबकर निकाले गए अंतर्वस्तु के बगैर नहीं संभव है। इसीलिए प्रेमचंद के समय तक ढेर सारे लोग वहाँ सौन्दर्य ढूँढने में अक्षम थे जहाँ-जहाँ प्रेमचंद ने ढूंढा। उन्होंने उस कसौटी को ही बदल देने की माँग उठाई जिससे सौन्दर्य को देखा जा रहा था। उन्होंने लिखा है, 'हमें सुन्दरता की कसौटी बदलनी होगी। अभी तक यह कसौटी अमीरी और विलासिता के ढंग की थी। हमारा कलाकार अमीरों का पल्ला पकड़े रहना चाहता था, उन्हीं की कद्रदानी पर उसका अस्तित्व अवलंबित था और उन्हीं के सुख दुख, आशा-निराशा, प्रतियोगिता और प्रतिद्वंद्विता की व्याख्या कला का उद्देश्य था। उसकी निगाह अंत:पुर और बंगलों की ओर उठती थी। झोपड़े और खंडहर उसके ध्यान के अधिकारी न थे।' इस दृष्टि के साथ आगे बढ़े प्रेमचंद। इसलिए वहाँ वहाँ सौन्दर्य ढूंढा जो उनके पूर्ववर्ती साहित्य में सीमित था।

प्रेमचंद ने गोदान में जीवन संग्राम में सौन्दर्य ढूंढा। उनके साहित्य की यह विशेषता है कि जो भी जीवन संग्राम में उतरता है सुन्दर दिखाई देने लगता है। स्त्री रूप से सुन्दर हो तब भी प्रेमचंद के यहाँ वह कुरूप लग सकती है अगर वह जीवन संग्राम में नहीं उतरती, अगर वह मूल्यों का विकास नहीं करती। मालती जब तक अपनी अदाओं का उपयोग करती रहती है वह गोदान में कुरूप लगती है और जैसे ही वह दायित्वों का वहन करने के लिए तैयार हो जाती है, सुन्दर लगने लगती है। यह है प्रेमचंद का सामर्थ्य। मातादीन जब तक अपने जातिवादी संस्कारों से जड़ित होकर मानवीय मूल्यों का ह्रास करता है वह कुरूप लगता है लेकिन जैसे ही वह सिलिया का हाथ थामने का प्रण लेता है सुन्दर दिखाई देने लगता है। शिकार पर निकले मेहता को जो आदिवासी कन्या मिलती है वह सहज सुन्दर लगती है और मालती समझ भी नहीं पाती कि मेहता को यहाँ क्या दिख रहा है!

तो प्रेमचंद ने सौंदर्य के भी वर्गीय चरित्र को समझा था। यह समझा था कि इन उच्च वर्गीय संस्कारों से पाठकों की चेतना को समाजविमुख करने वाले सौन्दर्य बोध से अलग एक नया सौन्दर्य बोध रचने की जरूरत है। बहुत हुआ पशुओं के सौन्दर्य के आधार पर स्त्रियों की देह के सौन्दर्य का चित्रण- स्त्रियों के सौन्दर्य के लिए खंजन नयन और गजगामिनी जैसा चित्रण। प्रेमचंद ने एक किसान की साध गाय के सौन्दर्य का चित्रण एक रानी के सौन्दर्य के आधार पर कर दिया। उलट दिया चीजों को। अब आप कहिए कि कहाँ है शिल्प! तो यही है उनके शिल्प की खासियत कि उन्होंने इतना बड़ा काम भी इस सादगी से किया कि आलोचकों को उपकरण तलाशने पड़ते हैं। प्रेमचंद ने अपने पूर्ववर्ती साहित्य के बारे में लिखा था कि 'उसकी दृष्टि अभी इतनी व्यापक नहीं कि जीवन संग्राम में सौन्दर्य का परमोत्कर्ष देखें। उपवास और नग्नता में भी सौन्दर्य का अस्तित्व संभव है इसे वह कदाचित स्वीकार नहीं करता। उसेक लिए सौन्दर्य सुन्दर स्त्री में है, उस बच्चोंवाली गरीब रूप रहित स्त्री में नहीं, जो बच्चे को खेत के मेड़ पर सुलाए पसीना बहा रही है।' प्रेमचंद ने इसी सीमित दृष्टिकोण को बदल कर सौन्दर्य शब्द को ही विस्तृत करने का उद्योग किया। गोबर पाथती नारी पर कविता लिखने की बात की। गोदान में आरंभ में ही होरी की दोनो बेटियाँ झगड़ा करती हैं कि गोबर मैं पाथूंगी और वह झगड़ा उनके सौन्दर्य को कई गुना बढ़ा देता है।

फैज ने प्रेमचंद के अंतर्वस्तु और शिल्प की इसी गहराई को ध्यान में रखकर लिखा था कि उन्हीं की उंगली पकड़कर हिन्दी उर्दू कथा साहित्य सही मायनों में डीक्लास हो पाया। अपने समय के लेखकों को सचेत करते हुए फैज लिखते हैं कि 'अपनी कला की वास्तविक समस्याओं के बदले शैली-शिल्प की पहेलियों में मुब्तिला बहुतेरी युवा प्रतिभाएँ हैं- ऐसी सामाजिक साहित्यिक दुनिया में प्रेमचंद का कृतित्व संस्कृति, कला और यथार्थ के सच्चे परिप्रेक्ष्य की ओर ले जानेवाला एक अत्यंत प्रासंगिक आमंत्रण है।' फैज की यह उक्ति आज के साहित्य और साहित्यकारों के लिए भी बराबर लागू होती है। आज के बुद्धिजीवियों के लिए मौजू ढेर सारी बातें हैं प्रेमचंद के पास। उनसे सीखने के लिए अभी भी काफी कुछ है। हम परंपरा को कैसे देखें, इतिहास को कैसे समझें, कला का उद्देश्य क्या है, भाषा की क्या भूमिका है, भारतीयता क्या है, स्वराज का मतलब क्या है, पूँजीवाद और सामन्तवाद का प्रतिरोध कैसे करना है, जातिवाद कितना घातक है, सांप्रदायिकता से कैसे लड़ें, सादगी का क्या महत्व है, और इनके अलावा भी बहुत सी ऐसी बातें हैं जिनकी समझदारी तैयार करने के लिए हमें बार-बार प्रेमचंद तक जाना होगा। अन्त में बुद्धिधर्मी के दायित्व के संदर्भ में प्रेमचंद की एक उक्ति- 'हमारी कसौटी पर वही साहित्यकार खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो- जो हममें गति, संघर्ष और बेचौनी पैदा करे, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और सोना मृत्यु का लक्षण है।'

संदर्भ

- रामविलास शर्मा, प्रेमचंद और उनका युग, मेहरचन्द मुंशीराम, दिल्ली, 1952, भूमिका में पृष्ठ 5
- रामविलास शर्मा, वही, भूमिका में पृष्ठ 5
- प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, भारतीय ग्रंथ निकेतन, नई दिल्ली, 1992, पृष्ठ 8
- नामवर सिंह, प्रेमचन्द और भारतीय समाज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 113
- नामवर सिंह, वही, पृष्ठ 22
- वही, पृष्ठ 101
- प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, वही, पृष्ठ 14
- वही, पृष्ठ 18
- मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, रेखा अवस्थी (संपादक), प्रेमचंद: विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता, लेख- फैज अहमद फैज- राष्ट्रीय संस्कृति की रक्षा का संदर्भ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 40
- प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, वही, पृष्ठ 24

परमाराध्य : भगवान श्रीनाथजी का प्राकट्य वर्णन

डॉ० कांतिलाल यादव

असिस्टेंट प्रोफसर, हिन्दी विभाग, माधव विश्वविद्याल, सिरोही-30702, पिण्डवाड़ा, राजस्थान

शालिनी भट्ट

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, माधव विश्वविद्यालय, पिण्डवाड़ा, राजस्थान

युग-युग से उपेक्षित चली आती धर्म-भावना एवं सांस्कृतिक धारा को अपने स्वस्थतम रूप में उदय होने का अवसर मिला। भारतीय जनता को आज अपने धर्म और संस्कृति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम प्रकट करने के लिये पूरा-पूरा अवसर है। साथ ही विश्व के सभी धर्मों के प्रति समान आदरभाव है। इस देश में भारतीय जनमानस की आस्था अथवा भक्ति-भावना के अनेक केन्द्र हैं ये केन्द्र ही 'धाम' पुकारे गये हैं। इन धामों की महिमा, इनके प्रामाणिक सांस्कृतिक इतिहासों की महती आवश्यकता का सदैव अनुभव किया गया है। भारतीय सीमा के छोर पर स्थित चार धाम, सप्तपुरियाँ, सौरों, शैवों शाक्तों, वैश्णवों एवं गाणपत्यों के उपास्य तथा उपासना स्थल, भक्ताचार्यों, दार्शनिकों के कर्मक्षेत्र भक्तों के धर्म क्षेत्र अवतारों की लीला स्थलियाँ, भगवद्-विग्रहों की दर्शनीय पुण्य पुरियाँ ही तीर्थस्थल मानी गई हैं। इन सबका अपना-अपना महत्व एवं माहात्म्य है। सभी का धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और भौगोलिक इतिहास है।

भगवान विष्णु हिन्दू त्रिदेवों (तीन महा देवताओं) में से एक हैं। निर्माण की योजना के अनुसार, वे ब्रह्माण्ड के निर्माण के बाद, उसके विघटन तक उसका संरक्षण करते हैं। भगवान विष्णु के दस अवतारों को संयुक्त रूप से 'दशावतार' कहा जाता है। जब मानव अन्याय और अधर्म के दलदल में खो जाता है, तब भगवान विष्णु उसे सही रास्ता दिखाने हेतु अवतारग्रहण करते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीख्ष्ण के द्वारा कहा गया है :

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युथानम् अधर्मस्य तदात्मानं सष्जाम्यहम्सम
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्ख्रताम।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगेम

अर्थात् जब-जब धर्म की हानि और अधर्म का उत्थान हो जाता है, तब-तब सज्जनों के परित्राण और दुष्टों के विनाश के लिए मैं विभिन्न युगों में (माया का आश्रय लेकर) उत्पन्न होता हूँ।

कृष्ण की प्रतिमा में क्षेत्रीय विविधताएँ उनके विभिन्न रूपों में देखी जाती हैं, जैसे ओडिशा में जगन्नाथ, महाराष्ट्र में विठोब, राजस्थान में श्रीनाथ जी, गुजरात में द्वारकाधीश और केरल में गुरुवायरुप्पन। अन्य चित्रणों में उन्हें राधे के साथ दिखाया जाता है जो राधे और कृष्ण के दिव्य प्रेम का प्रतीक माना जाता है। उन्हें कुरुक्षेत्र युद्ध में विश्वरूप में भी दिखाया जाता है। अपने मित्र सुदामा के साथ भी उनको दिखाया जाता है जो मित्रता का प्रतीक है। वास्तुकला में कृष्ण चिह्नों एवं मूर्तियों के लिए दिशानिर्देशों का वर्णन मध्यकालीन युग में हिन्दू मंदिर कलाओं जैसे वैखानस अगम, विष्णु धर्मोत्तरा, बृहत संहिता और अग्नि पुराण में वर्णित है, इसी तरह, मध्यकालीन युग के शुरुआती तमिल ग्रंथों में ख्ष्ण और रुक्मिणी की मूर्तियाँ भी सम्मिलित हैं। इन दिशानिर्देशों के अनुसार बनाई गई कई मूर्तियाँ सरकारी संग्रहालय, चेन्नई के संग्रह में हैं।

भारत के तीर्थ हमारी संस्कृति के रंगमंच हैं। अत: भारतीय जन-जीवन में प्राचीन काल से तीर्थ सेवन की परम्परा रही है। तीर्थ-सेवन का धार्मिक महत्व तो है ही मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया जाये तो तीर्थों का वातावरण-निराशों, निराश्रितों, मन: पीड़ितों को स्वस्थ, आशान्वित अन्तर्बल प्रदान करने वाला होता है। अभ्यास और वैराग्य से भी काबू में न आने वाले मन के निरोध के लिए एक कदम आगे बढ़कर महाप्रभु श्री बल्लाभाचार्य ने भारत के चार स्थानों में से किसी एक स्थान पर चिर निवास करने की सलाह दी है।

जगन्नाथ विट्ठले व श्रीरंगे वेकंटे तथा।
यत्र पूजा प्रवाहस्यातत्र तिष्ठेत् तत्पर:।।

अर्थात् यदि साधक अथवा भक्त का मन उद्विग्न चंचल बना रहे तो जगन्नाथ (पुरी) विट्ठल (पंढरपुर) श्रीरंगम् एवं श्रीवेंकटेष्वर (तिरुपति) आदि किसी एक स्थान पर चला जाये और यहाँ भगवान् के पूजा प्रवाह में तत्पर (एकनिष्ठ) हो जाये। भारत के ये चार स्थान पूजा-प्रवाह वाले कहे जाते हैं। किन्तु श्रीनाथद्वारा इन सबसे निराला है। यहाँ पूजा-प्रवाह नहीं, भाव-प्रवाह है। इस दृष्टि से नाथद्वारा नितान्त अनोखा और अनुपम ठहरता है। पूजा-प्रवाह में स्वस्थ तन मन धन के अतिरिक्त पूजोपकरण, पूजा कौशल की आवश्यकता रहती है।

श्रीनाथजी श्रीकृष्ण भगवान के 7 वर्ष की अवस्था के रूप हैं। इनका स्वरूप राजस्थान में उदयपुर के निकट राजसमन्द जिले के नाथद्वारा के श्रीनाथजी मन्दिर में विराजमान है। श्रीनाथद्वारा राजस्थान के राजसमन्द जिले में स्थित है। श्रीनाथद्वारा पुष्टिमार्गीय वैष्णव सम्प्रदाय की प्रधान (प्रमुख) पीठ है। यहाँ नंदनंदन आनन्दकंद श्रीनाथजी का भव्य मंदिर है जो करोडों वैष्णवों की आस्था का प्रमुख स्थल है, प्रतिवर्ष यहाँ देश-विदेश से लाखों वैष्णव श्रृद्धालु आते हैं जो यहाँ के प्रमुख उत्सवों का आनन्द उठा भावविभोर हो जाते हैं।

श्रीनाथजी का तकरीबन 337 वर्ष पुराना मंदिर राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित रोडवेज बस स्टेण्ड से मात्र 1 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। नाथद्वारा नगर भारत के प्रमुख वैष्णव केन्द्रों में से एक है, इसमें प्रमुख मन्दिर भगवान श्रीकृष्ण का है जो श्रीनाथ जी के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ पर वर्ष भर देश व विदेशों से श्रद्धालु दर्शन के लिए आते हैं। भारतवर्ष में मेवाड़, तीर्थ स्थलों के साथ ऐतिहासिक शौर्य की गाथाओं से भरा पड़ा है। अरावली की सुरम्य घाटियों की परिधि से लगी राजस्थान की धमार्वली राणा प्रताप की रण स्थली हल्दी घाटी नाथद्वारा से 16 किमी. दूर है।

उर्ध्वभुजा का प्राकट्य

उस समय भूमण्डल पर बडा मंगल हुआ। सर्वप्रथम श्रावण शुक्ल पंचमी (नागपंचमी) सं. 1466 के दिन जब एक ब्रजवासी अपनी खोई हुई गाय को खोजने गोवर्धन पर्वत पर गया तब उसे श्री गोवर्द्धनाथजी की ऊपर उठी हुई वाम भुजा के दर्शन हुए उसने अन्य ब्रजवासियों को बुलाकर ऊर्ध्व वाम भुजा के दर्शन करवाये। तब एक वृद्ध ब्रजवासी ने कहा कि भगवान् श्रीकृष्ण ने गिरिराज गोवर्धन को बायें हाथ की अंगुली पर उठाकर इन्द्र के कोप से ब्रजवासियों, ब्रज की गौऐं और ब्रज की रक्षा की थी। तब ब्रजवासियों ने उनकी वाम भुजा का पूजन किया था। यह भगवान् श्रीकृष्ण की वही वाम भुजा है। वे प्रभु कंदरा में खड़ें है और अभी केवल वाम भुजा के दर्शन करवा रहे है। किसी को भी पर्वत खोदकर भगवान् के स्वरूप को निकालने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। जब उनकी इच्छा होगी तभी उनके स्वरूप के दर्शन होंगे। इसके बाद लगभग 69 वर्षो तक ब्रजवासी इस ऊर्ध्व भुजा को दूध से स्नान करवाते, पूजा करते, भोग धरते और मानता करते थे। प्रतिवर्ष नागपंचमी के दिन यहाँ मेला लगने लगा था।

श्रीमुखारविन्द प्राकट्य

विक्रम संवत् 1535 वैशाख वदि 11 गुरूवार के दिन, शतभिशा नक्षत्र, मध्याह्न काल, अभिजित् समय में गोवर्द्धननाथजी के मुखारविन्द का प्राकट्य हुआ। उसी दिन श्रीमदाचार्यजी का प्राकट्य अग्निकुण्ड से हुआ।[1] श्रीकृष्णावतार के ब्रजवासी भी सब ब्रजमण्डल में जहाँ-तहाँ मनुष्यकुल में उत्पन्न हो गये, क्योंकि श्रीगोवर्द्धननाथजी उनसे क्रीडा करेंगे।

वि.स. 1535 में वैशाख ख्रष्ण एकादशी को मध्यान्ह एक अलौकिक घटना घटी। गोवर्धन पर्वत के पास आन्योर गाँव के सद्दू पाण्डे की हजारों गायों में से एक गाय नंदरायजी के गौवंश की थी, जिसे धूमर कहा जाता था। वह नित्य तीसरे प्रहर उस स्थान पर पहुँच जाती थी, जहाँ श्री गोवर्धननाथजी की वाम भुजा का प्रकट्य हुआ था। वहाँ एक छेद था। उसमें वह अपने थनों से दूध की धार झराकर लौट आती थी। सदू पाण्डे को संदेह हुआ कि ग्वाला अपरान्ह में धूमर गाय का दूध दुह लेता है इसलिए यह गाय संध्या समय दूध नहीं देती है। एक दिन उसने गाय के पीछे जाकर स्थिति जाननी चाही, उसने देखा कि गाय गोवर्धन पर्वत पर एक स्थान पर जाकर खडी हो गयी और उसके थनों से दूध झरने लगा। सद्दू पाण्डे को आश्चर्य हुआ। उसके निकट जाकर देखा तो उसे श्री गोवर्धननाथजी के मुखारविन्द के दर्शन हुए इसी दिन वैशाख ख्रष्ण 11 को संवत् 1535 छत्तीसगढ़ के चम्पारण्य में श्री वल्लाभाचार्य का प्राकट्य हुआ। श्री गोवर्धननाथजी ने स्वयं सद्दू पाण्डे से कहा कि - 'मेरा नाम देवदमन है तथा मेरे अन्य नाम इन्द्रदमन और नागदमन भी है। उस दिन से ब्रजवासी श्री गोवर्धननाथजी को देवदमन के नाम से जानने लगे। सदू पाण्डे की पत्नी भवानी व पुत्री नरों देवदमन को नित्य धूमर गाय का दूध आरोगाने के लिए जाती थी।

वि.स. 154ष्ट (ई.स. 1593) फाल्गुन शुक्ल एकादशी गुरूवार के दिन श्री गोवर्धननाथजी ने महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी को झारखण्ड में आज्ञा दी - हमारा प्राकट्य गोवर्धन की कन्दरा में हुआ है।[2] पहले वामभुजा का प्राकट्य हुआ था और फिर मुखारविन्द का। अब हमारी इच्छा पूर्ण स्वरूप का प्राकट्य करने की है। आप शीघ्र ब्रज आवें और हमारी सेवा का प्रकार प्रकट करे। यह आज्ञा सुनकर महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य अपनी यात्रा की दिशा बदलकर ब्रज में गोवर्धन के पास आन्योर ग्राम पधारे वहाँ आप श्री सद्दू पाण्डे के घर के आगे चबूतरे पर विराजे। श्री आचार्यजी महाप्रभु के अलौकिक तेज से प्रभावित होकर सद्दू पाण्डे सपरिवार आपश्री के सेवक बने। सद्दू पाण्डे ने आपश्री को श्रीनाथजी के प्राकट्य की सारी कथा सुनाई। श्री महाप्रभुजी ने प्रातः काल श्रीनाथजी के दर्शनार्थ गोवर्धन पर पधारने का निश्चय व्यक्त किया। दूसरे दिन प्रातः काल श्री महाप्रभुजी अपने सेवकों और ब्रजवासियों के साथ श्री गिरिराजजी पर श्रीनाथजी के दर्शनों के लिए चले। सर्वप्रथम आपने हरिदासवर्य गिरिराजजी को प्रभु का स्वरूप मानकर दण्डवत प्रणाम किया और उनसे आज्ञा लेकर गिरिराजजी पर धीरे-धीरे चढ़ना आरम्भ किया। जब दूर से ही सद्दू पाण्डे ने श्रीनाथजी के प्राकट्य का स्थल बतलाया तब महाप्रभुजी के नेत्रों से हर्ष के अश्रुओं की धारा बह चली। उन्हें ऐसा लग रहा था कि वर्षो से प्रभु के विरह का जो ताप था, वह अब दूर हो रहा है। उनकी पर्वत पर चढने की गति बढ गई। तभी वे देखते है कि सामने से मोर मुकुट पीताम्बरधारी प्रभु श्रीनाथजी आगे बढे आ रहे है। तब तो श्रीमद् वल्लभाचार्य प्रभु के निकट दौडते हुए से पहुँच गये। आज श्री वल्लभाचार्य को भू-मंडल पर अपने सर्वस्व मिल गये थे। श्री ठाकुरजी और श्री आचार्यजी दोनो ही परस्पर अलिंगन में बंध गये। इस अलौकिक झाँकी का दर्शन कर ब्रजवासी भी धन्य हो गये। आचार्य श्री महाप्रभु श्रीनाथजी के दर्शन और आलिंगन पाकर हर्ष-विभोर थे। तभी श्रीनाथजी ने आज्ञा दी -"श्री वल्लभ यहाँ हमारा मन्दिर सिद्ध करके उसमें हमें पधराओं और हमारी सेवा का प्रकार आरम्भ करवाओं"। श्री महाप्रभु जी ने हाथ जोड़कर विनती की "प्रभु! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है"।

श्री महाप्रभु ने अविलम्ब एक छोटा-सा घास-फूस का मन्दिर सिद्ध करवाकर ठाकुरजी श्री गोवर्धननाथजी को उसमें पधराया तथा श्री ठाकुरजी को मोरचन्द्रिका युक्त मुकुट एवं गुंजामला का श्रृंगार किया। आप श्री ने रामदास चौहान को श्रीनाथजी की सेवा करने की आज्ञा दी। उसे आश्वासन दिया कि

चिन्ता मत कर स्वयं श्रीनाथजी तुम्हें सेवा प्रकार बता देंगे। बाद में श्री महाप्रभुजी की अनुमति से पूर्णमल्ल खत्री ने श्रीनाथजी का विशाल मन्दिर सिद्ध किया। तब सन् 1519 विक्रम संवत् 1576 में वैशाख शुक्ल तीज अक्षय तृतीया को श्रीनाथजी नये मन्दिर पधारे तथा पाटोत्सव हुआ।[3] तब मधवेन्द्र पुरी तथा कुछ बंगाली ब्राह्मणों को श्रीनाथजी की सेवा का दायित्व सौपा गया।

कुभंनदास संगीत सेवा करने लगे तथा ख्रष्णदास को अधिकारी बनाया गया। बाद में श्री गुसाँईजी ने बंगाली ब्राह्मणों को सेवा से हटाकर नई व्यवस्था की जो आज तक चल रही है। जब श्रीनाथजी ब्रज से श्रीनाथद्वारा में पधारे तब वि.स. 1728 फाल्गुन ख्रष्ण सप्तमी 2. फरवरी सन् 1672 ई. शनिवार को श्रीनाथजी वर्तमान निज मन्दिर में पधारे।[4] धूमधाम से पाटोत्सव हुआ तब सिहाड ग्राम का नाम "श्रीनाथद्वारा" प्रसिद्ध हुआ।

अन्य नामों से संबोधित

महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने आप श्री का प्रथम श्रृंगार करके जिस दिन सेवा प्रणाली व्यवस्थित की उस दिन आपका एक अन्य नाम 'गोपालजी' रखा। इसी कारण गोवर्धन की तलहटी में स्थित वर्तमान जतीपुरा ग्राम को गोपालपुर कहा जाने लगा था। प्रभुचरण श्रीविठ्ठलनाथजी ने जब बंगाली पुजारियों को हटाकर नई व्यवस्था की तब आपश्री ने प्रभु को श्री 'गोवर्द्धननाथजी' नाम दिया। माला-तिलक रक्षक श्री गोकुलनाथजी के समय भावुक भक्त आपश्री को 'श्रीनाथजी' के संक्षिप्त किन्तु भाव भरे नाम से पुकारने लगे।[55] यह नाम श्री कोई नया नहीं था। गर्ग संहिता के गिरिराज खण्ड में श्री गोवर्धननाथ के देवदमन और श्रीनाथजी दोनो ही के नामों का उल्लेख है - "श्रीनाथं देवदमनं वदिष्यन्ति सज्जना:" इस प्रकार 'श्रीनाथजी' यह अभिधान भी बहुत प्राचीन है। 'श्री' शब्द लक्ष्मीवाचक और राधेपरक है। राधेजी भगवान् की आह्लादिनी आनंददायिनी शक्ति है और 'नाथ' शब्द तो स्वामिवाचक है ही। भावुक भक्त बडे ही लाड़ से श्रीनाथजी को 'श्रीजी' या 'श्रीजी बाबा' भी कहते है।

सारांष

भारतीय संस्कृति धर्म साधना एवं भक्ति भावना की एक दीर्घकालीन परम्परा रही है। संस्कृति एवं धर्म-भावना पर जब भी विपत्ति आई है अथवा कुठाराघात हुआ है, अनेक बलिदान देकर उसकी सुरक्षा की गयी है। ऐसे वंदनीय बलिदानों की अमर गाथाओं से हमारा इतिहास भरा पड़ा है। विगत 700-800 वर्शो की सांस्कृतिक परतन्त्रता के उपरान्त स्वतन्त्र भारतीय गणराज्य की स्थापना के पुण्य प्रभात में हमारे राष्ट्रीय संविधान ने पहली बार धर्म निरपेक्षता का उद्घोश किया। जिसका अर्थ धर्म विहीनता नहीं, अपितु धार्मिक परम्पराओं के अनुपालन में व्यक्ति और समाज की स्वतन्त्रता है जिसका पहली बार उद्घोश किया गया है। यही कारण था कि चीनी आक्रमण के अवसर पर दलाई लामा को हमने शरण दी। ईसाई धर्म प्रचारकों को लक्ष्य से कभी रोका नहीं। मुस्लिम, जैन, बौद्ध, पारसी सभी को अपनी-अपनी धर्म-परम्पराओं के पालन की भारत में पूरी स्वतंत्रता है। तात्पर्य यह है कि भारत एक भक्ति-निष्ठा प्रधान देश रहा है। यहाँ का साधारण से साधारण व्यक्ति किसी महान् अव्यक्त सत्ता के प्रति गहन आस्था रखता है जो उसकी जीवन यात्रा का सम्बल होती है। उसी आस्था के बल पर वह अपने जीवन चक्र की धुरी को सोत्साह घुमाता रहता है।

श्री नाथद्वारा श्री भारतीय भगवद्धामों में से एक सुप्रसिद्ध भगवद्धाम है। नाथद्वारा स्थित परमाराध्य श्रीनाथजी के यहाँ आप खाली हाथ, अस्वस्थ तन किन्तु भाव भरे मन से जाइए और प्रपति भाव से सकृदेव "तवास्मि" बोलिए, आप कृतार्थ हो जायेंगे। उनके चरणों में कुछ दिन रहिए, आप अनायास निरोध स्थिति पा जायेंगे। ऐसे दिव्य-स्थान की महिमा पर लेखनी उठाना निष्चय ही महती लोक मंगल साधना कही जायेगी।

,सच्चिदानन्दघन श्रीनाथजी सदियों से इस भारत भू पर अनन्त सख की वर्शा कर रहे हैं। अनेक भक्त इनके अनुपम सौन्दर्य तथा माधुर्यादि से प्रभावित हो चुके हैं। सम्राट् अकबर ने भी इन्हीं प्रभु से प्रभावित होकर अपने महल में श्रीकृष्णजन्माष्टमी का विशाल आयोजन प्रारंभ किया था। उसके दरबार में राजस्थान के उद्भट कवि "वेलिकृष्ण रुक्मिनी" के रचयिता श्रीपृथ्वीराज राठौड़ जैसे श्रीनाथ भक्त मौजूद थे। श्रीकृष्णचरणानुरागी कविवर रहीम स्वयं श्रीनाथजी का गुणानुवाद गाते थे। यही नहीं रामचरितमानस के रचयिता सुप्रसिद्ध रामभक्त गोस्वामी तुलसीदास जी भी श्रीनाथजी के दर्शन कर गद्गद् हो गये थे और इन प्रभु के दर्शनान्तर ही उन्होंने "श्रीकृष्ण-गीतावली" की रचना की।

श्रीजी के ध्यान से जग जंजाल दूर होकर प्रत्येक प्राणी परम शांति का अनुभव करता है एवं प्रेमानुराग में मस्त हो जाता है।

(Endnotes)

1. वर्मा (डॉ.) राजलक्ष्मी, आचार्य वल्लभ और उनका दर्शन पृष्ठ सं. 288
2. श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्ता, श्रीहरिराय कृत, प्रकाशक विधा विभाग मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा, पृष्ठ सं. 6
3. श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्ता, श्रीहरिराय कृत, प्रकाशक विधा विभाग मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा, पृष्ठ सं. 13
4. वैरागी प्रभुदास श्रीनाथजी का सांस्कृतिक इतिहास पृष्ठ सं. 75
5. डॉ. आशुतोश गुर्जर, श्रीनाथद्वारा जागीर का इतिहास, पृष्ठ सं. 20

स्वामी विवेकानंद: सामाजिक विचारक के रूप में

डॉ० प्रतिमा गोंड

असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रस्तावना

19वीं शताब्दी संपूर्ण विश्व में एक ऐसी शताब्दी के रूप में जानी जाती हैं जिसमें अनेक महान विचारकों ने अपने चिंतन के द्वारा एक नए समाज की रचना में महान योगदान किया है। इनमें से अनेक विचारकों ने मानवता के कल्याण तथा सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए जो प्रयत्न किए हैं उन्हीं के प्रभाव से संसार के अनेक समाज आज नया रूप ग्रहण कर रहे हैं। 12 जनवरी सन 1863 में जन्में स्वामी विवेकानंद जी भी उन्हीं महान विचारकों में से एक हैं जिनका प्रभाव भारतीय समाज पर चिरकाल तक बना रहेगा। उन्होंने भारत के प्राचीन सामाजिक-धार्मिक मान्यताओं को ना केवल एक नया अर्थ दिया बल्कि भारतीय संस्ख्रति की गिरती हुई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने अपने सामाजिक चिंतन से संपूर्ण विश्व में भारत की प्रतिष्ठा बढ़ाई तथा 39 वर्ष के अपने छोटे से जीवनकाल में सब कुछ कर दिखाया जिससे शताब्दियों से सोया हुआ भारतीय समाज पुनर्जागरण की दिशा में आगे बढ़ने लगा। विवेकानंद जी की बहुमुखी प्रतिभा उनके व्याख्यानों, लेखों और शास्त्रलापों से होती थे। उपनिशदों और गीता पर उनका असाधारण अधिकार था। पातंजल,व्याकरण महाभाष्य को भी उन्होंने विद्यार्थी की तरह पढ़ा था। हिंदी में भी लोहौर में उन्होंने कई व्याख्यान दिए थे। बंगला में भी उनका कुछ साहित्य है। विज्ञान और इतिहास में भी उनकी रुचि थी। इनकी सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों का स्रोत वेदांती धारणा थी कि अंतरात्मा सर्वशक्तिमान तथा सर्वोच्च है, इसलिए उन्होंने पीड़ित जनता को अभयम, एकता तथा शक्ति का क्रांतिकारी संदेश दिया। वे उन वर्गगत तथा जातिगत श्रेष्ठता के विचारों का उन्मूलन करना चाहते थे जिन्होंने हिंदू समाज को शिथिल, स्तरबद्ध तथा विघटित कर दिया।उन्होंने अस्पृश्यता की बुराइयों की कटु भर्त्सना की और पाठशाला तथा पाकभाण्डों पर आधारित धर्म-कर्म की निंदा की। वे समाज का सांगोपांग कायाकल्प करना चाहते थे किंतु उनका आग्रह था कि यह सब कुछ आध्यात्मिक आधार पर किया जाए। उन्हें केशव चंद्र सेन तथा महादेव गोविंद रानाडे सख्रश उन समाज सुधारकों की कार्यशैली से सहानुभूति नहीं थी जो समाज का यूरोपीयकरण करना चाहते थे। वे कुछ सीमा तक समाज सुधारक थे किंतु यह निश्चय है कि वे अतीत से पूर्ण रूप से संबंध विच्छेद करने के पक्ष में नहीं थे।

स्वामी विवेकानंद जी का सामाजिक चिंतन

विवेकानंद जी समाजिक यथार्थवादी थे। उनके व्यक्तित्व का प्रमुख पक्ष यह था कि उन्हें अपनी शक्ति, ज्ञान, चिंतन और आध्यात्मिक अनुभूति परिपक्व दार्शनिक अन्वेशण में लगा दी। वे निश्चय ही यह चाहते थे कि भौतिकवादी परिचय योग तथा वेदांत की आध्यात्मिक शिक्षाओं का समागम करें। उनकी यह भी कामना थी कि पश्चिम के लोग अंतरदेसी तथा आत्मगत मनोविज्ञान का अभ्यास करें किंतु अपने देशवासियों को उन्होंने यथार्थवाद और व्यवहारवाद का संदेश दिया। उन्होंने भारत तथा पश्चिम के पर्यटन के दौरान अनुभव किया कि जो देश 1000 वर्ष से भी अधिक समय से पराजय, विपन्नता,अपरिमेयचिंता, दुख, निराशा और राजनीतिक विपदाओं का शिकार रहा है, उसे अपनी कमर सीधी करने के लिए शक्ति और निर्भीकता की आवश्यकता है। वे भारत के करोड़ों लोगों के दुखों के संबंध में अत्यधिक जागरूक थे।एक सन्यासी मुख से निकला यह शब्द सचमुच क्रांतिकारी है, "भूखमरी से पीड़ित मनुष्य को धर्म का उपदेश देना कोरा उपहास है।"[1] विवेकानंद जी का गंभीर सामाजिक यथार्थवाद उनके इस कथन से भी प्रकट होता है कि भारत की हजारों वर्ष पुरानी दासता की जड़ जनता का दमन है। सामाजिक चिंतक के रूप में भारतीय समाज के विभिन्न व्यवस्थाओं पर इनके विचार निम्नवत हैं–

रूढिवादित का विरोध

स्वामी विवेकानंद ने संपूर्ण भारत में जिस वेदान्त धर्म को स्वीकार करने की प्रेरणा दी, उसमें रूढ़िवादिता का कोई स्थान नहीं है। उन्होंने बतलाया कि हमारे समाज में रूढ़िवाद व्यवहार उन कर्मकांडों की उपज है जो हिंदू धर्म का अंग बन गए हैं। वह पुरोहितों के कर्मकांडीय धर्म के विरोधी थे तथा उन्होंने स्पष्ट किया है कि पुरोहित वर्ग ने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए कर्मकांडों को बढ़ावा दिया है। इस संबंध में स्वामी विवेकानंद ने अपने से पहले के उन समाजसुधारकों की भी आलोचना की जो पश्चिम की नकल करके भारत में सामाजिक सुधार का प्रयत्न करते हैं। उन्होंने कबीर, चौतन्य, दादू, रामानुज और नानक द्वारा दिए गए आदेशों को महान बतालाया। भक्ति सम्प्रदाय के यह सभी सुधारक वे थे जिन्होंने मानव की समानता पर बल देते हुए विभिन्न प्रकार के भेदभाव को दूर करने का प्रयत्न किया। वास्तव में, यह वह मार्ग है जिसके द्वारा सामाजिक रूढ़ियों को समाप्त करके समताकारी समाज की स्थापना की जा सकती है।

सांप्रदायिकता का विरोध

अपनी पुस्तक 'धर्म रहस्य' तथा अनेक भाषणों के द्वारा विवेकानंद जी ने न केवल सांप्रदायिकता के कारणों का विश्लेशण किया बल्कि सांप्रदायिक सदभाव की आवश्यकता पर भी बल दिया। उन्होंने बतलाया कि जब किसी धार्मिक समूह में अपना धर्म दर्शन को समझने की शक्ति कमजोर पड़ जाती है तथा व्यक्ति कर्मकांड को भी धर्म समझने लगता है। तब इससे एक ऐसी धार्मिक कट्टरता उत्पन्न होती है जो सांप्रदायिकता का कारण बन जाती हैं। धार्मिक कट्टरता स्वयं ख्रष्ट बुद्धि और क्रोध उत्पन्न करती हैं। उन्होंने लिखा है कि हम सभी लोग सर्वजन भ्रातृत्व की बात तो करते हैं इसके पीछे प्राय: हमारी स्वार्थपरता छिपी रहती है। हम चाहते हैं कि इस तरह की बातें बनाना कम करके यथार्थ में कुछ अधिक काम किया जाए। जो लोग वास्तव में अपने हृदय में परस्पर प्रेम का अनुभव करते हैं उनके क्रियाकलापों और संपूर्ण जीवन पर ध्यान देने से स्पष्ट रूप से समझ में आता है कि उनके हृदय में मानव प्रेम से कितना परिपूर्ण है। स्वामी विवेकानंद के अनुसार किसी सार्वभौमिक धर्म को स्थापित करने के लिए संगठनों के निर्माण करना आवश्यक नहीं है। यदि हम औपचारिक संगठन के बिना सभी धर्मों से प्रेम करना सीखे तो इसे सार्वभौमिक धर्म को बल मिलता है। इस प्रकार स्वामी विवेकानंद ने सांप्रदायिकता का विरोध करके धर्म को विकसित करने पर बल दिया जो सभी लोगों को बंधुत्व और मानव सेवा के रास्ते पर आगे बढ़ा सके यानी स्वामी विवेकानंद मानवतावादी धर्म को ज्यादा महत्व देते थे।

स्वामी विवेकानंद भी अन्य विद्वानों की भाँति संप्रदायिकता को समाज विरोधी मानते हैं जबकि अनेक संप्रदायों का समाज में होना स्वभाविक मानते हैं। उनका मत है कि भारत में अनेक संप्रदाय है और भविष्य में भी उपस्थित रहेंगे। इसका मुख्य कारण भारत का धर्म इतना उदार और विशाल है कि उसमें अनेक सम्प्रदायों के उत्पन्न होने की संभावनाएं सदैव रहती है। इसलिए यहाँ एक ही संप्रदाय की शाखा-प्रशाखाये आदि देखने को मिलती हैं। किन्तु इन संप्रदायों से किसी भी प्रकार की सांप्रदायिकता समाज में विकसित नहीं होनी चाहिए। अस्तु संप्रदाय तो रहे किंतु संप्रदायिकता का अंत होना चाहिए।[2]

धर्म का मानवीय रूप

विवेकानंद अपनी प्रतिभा और गंभीर अध्ययन के द्वारा धर्म को एक वैज्ञानिक ख्रष्टिकोण देने में सफल हुए। धर्म को इस प्रकार होना चाहिए कि वह निर्धन और दरिद्र व्यक्तियों की सहायता कर सकें

वे धर्म को व्यवहारिक बनाना चाहते थे। ऐसा धर्म जो मानव कल्याण के लिए उपयोगी हो सके, केवल सिद्धांतों में ही ना घिरा रहे। वे ऐसे धर्म के पक्ष में थे जो सर्वव्यापी एवं सर्वग्रहता हो। उनमें न ब्राह्मणवाद हो न ईसाईवाद और ना कोई अन्य वाद वरन उसमे मानवतावाद हो। इस प्रकार के धर्म में किसी प्रकार का अत्याचार न होगा और न धर्म के नाम पर दंड देने की आवश्यकता होगी। विवेकानंद के धर्म में मानवधर्म के तत्व निहित है। उसमें सहिष्णुता का प्रभाव है। वे किसी भी धर्म के विरुद्ध नहीं है। सभी धर्मो का उद्देश्य है मानव की सेवा करना। उन्होंने यह भी कहा कि प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह पहले अपने धर्म को समझे-बुझे और उसका अध्ययन करें। जब वह अपने धर्म की वास्तविकता को परख और समझ लेगा तब वह दूसरे धर्मों को जान सकेगा। वे वैदिक धर्म के लिए कहते हैं कि अगर कोई धर्म विश्वव्यापी हो सकता है तो केवल वेदांत धर्म। संसार के अन्य धर्म किसी न किसी व्यक्ति पर आधारित है जबकि वेदांत धर्म सिद्धांतों पर आधारित है। उन्होंने सैद्धांतिक वेदांत की शिक्षा पश्चिम को दी और व्यवहारिकता की भारत मे,जिससे जनकल्याण हो सके।

स्वामी जी ने धर्म की व्याख्या प्राचीन रूढ़िवादी विचारधारा की लीक से हटकर की, "धर्म मनुष्य के भीतर निहित देवत्व का विकास है।" धर्म न तो पुस्तकों में है, ना धार्मिक सिद्धांतों में, केवल अनुभूति में निवास करता है धर्म अंधविश्वास नहीं है, धर्म अलौकिकता में नहीं है, वह जीवन का अत्यंत स्वाभाविक तत्व है।" विवेकानंद एक ईश्वर में विश्वास रखते हैं। प्रत्येक धर्म ईश्वर की प्राप्ति की शिक्षा भले ही देता हो पर उसके मार्ग भिन्न-भिन्न है। सभी धर्म ईश्वर के बनाए हुए हैं मानव भी उसी की देन है। उनके अंदर रहने वाली आत्मा उसका ही अंश है। फिर समस्त मानव भी उसी का अंश है। इस लिए प्रत्तेक धर्म सभी प्राणियों का है और समस्त धर्म एक है धर्म का समन्वयात्मक विचार उनकी विद्वता एव उनके विदेश भ्रमण का परिणाम है उन्होने संसार के अनेक धर्मो का अध्ययन किया और फिर तुलनात्मक रूप में इसी निष्कर्ष पर पहुंचे कि सभी धर्म ईश्वरकृत है। सभी मान्य है। वे देवी-देवता मूर्तियों का पूजा पाठ तथा अन्य धार्मिक अनुष्ठानों का ईश्वर की अनुभूति के अनेक माध्यम बतलाते थे जिसके द्वारा एक सत्य 'ईश्वर' की प्राप्ति कर सके वह इस अनुष्ठानों को परिवर्तित करने के पक्ष में नहीं थे।[3]

जातिगत भेदभाव का विरोध

स्वामी विवेकानंद ने भारत के वर्ण व्यवस्था को कार्यकुशलता और श्रम विभाजन के दृष्टिकोण से अवश्य उपयोगी माना लेकिन उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि एक दीर्घ समय से कोई परिवर्तन होने के कारण यह व्यवस्था विकृत हो गई हैं। इसी के फलस्वरुप ऊंच-नीच की भावनाओं पर आधारित जाति व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ। अपने समाज में जाति प्रथा के व्यापक प्रभाव को देखते हुए स्वामी विवेकानंद ने यह यथार्थवादी चिंतन प्रस्तुत किया की वर्तमान दशाओं में जाति प्रथा को समूल नष्ट नहीं किया जा सकता। इस दशा में निम्न जातियों की स्थिति में सुधार लाकर ही जाति व्यवस्था के दुष्प्रभाव को दूर किया जा सकता है। यह सच है कि रामानुज, चौतन्य, कबीर, नानक ने इस दिशा में काफी प्रयास किया लेकिन भक्ति काल के सुधार वादियों ने निम्न जातियों में उच्च जातियों की सांस्कृतिक विशेषताओं का प्रसार करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। वास्तविकता यह है कि यदि निम्न जातियां उन्हीं सांस्कृतिक व्यवहारों को ग्रहण कर लें जो उच्च जाति में पाए जाते हैं। तब ही सामाजिक समानता और सामाजिक विकास की प्रक्रिया स्वयं ही प्रभावी बन जाएगी। जाति प्रथा की आलोचना करते हुए उन्होंने कहा है कि आध्यात्मिक जीवन में किसी तरह का भेदभाव नहीं होता। एक सन्यासी की कोई जाति नहीं होती। समाज में कोई ऐसा कर्म नहीं है जिससे दूसरे से अधिक उच्च और निम्न में कहा जा सके। वे कहा करते थे कि सड़क पर काम करने वाला एक भंगी भी उतना ही ऊंचा व श्रेष्ठ है जितना कि सिंहासन पर आ:ढ़ एक राजा। थोड़ी देर के लिए राजा को गद्दी से उतार दो तो उसे सड़क की सफाई का काम दे दो तो

फिर देखो कैसे काम करता है। इस कथन से स्पष्ट होता है कि स्वामी विवेकानंद राजा और सफाई करने वालों के काम को समान रूप से महत्वपूर्ण मानते थे। उन्होंने सभी जाति के लोगों को समान अधिकार देने के बाद करते हुए कहा कि समाज में ब्राह्मणों का एकाधिकार समाप्त होना चाहिए। आध्यात्मिक जगत में सभी मनुष्यों का अधिकार समान है। मनुष्य में कृत्रिम भेदभाव पैदा नहीं किया जाना चाहिए। स्पष्ट है कि विवेकानंद जी एक समतावादी व्यवस्था के पक्षधर रहे हैं।[4]

दलितों का उत्थान

स्वामी विवेकानंद का सामाजिक चिंतन अस्पृश्यता का विरोधी है। उन्होंने बतलाया कि कोई भी धर्म जन्म के आधार पर मानव और मानव के अंतर को स्वीकार नहीं करता। उन्होंने लिखा है कि तुम्हारे और मेरे अंदर जो ईश्वर वि।मान है, वही ईश्वर सभी के अंदर वि।मान है फिर यह भेदभाव क्यों है? यदि उच्च जाति का कोई व्यक्ति निम्न जाति के व्यक्ति का शोषण करता है तो यह अधार्मिक है। हमारे समाज में काम के बंटवारे को लेकर वर्ण व्यवस्था अवश्य बने लेकिन इसके द्वारा छुआछूत को कभी मान्यता नहीं दी गई। हम जब तक छुआछूत को समाप्त करके मानव मात्र की समानता को स्वीकार नहीं करते तब तक हमें अपने आप को एक आध्यात्मिक समाज का व्यक्ति मानने का कोई अधिकार नहीं है।[5]

वर्ण व्यवस्था के पक्षधर

एक सिद्धांतकार के नाते उन्होंने वर्ण विभाजन को बुद्धि संगत सिद्ध करने का प्रयत्न किया। जिस प्रकार हर व्यक्ति में सत्व, रजस और तमस में से कोई ना कोई गुण न्यूनाधिक मात्रा में वि।मान रहता है, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति में उन गुणों में से कोई न कोई न्यूनाधिक मात्रा में पाया जाता है जिनसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वेश्य अथवा शूद्र बनते हैं। किंतु कभी-कभी उसमें इनमें से किसी एक गुण का विभिन्न अंशों में प्राधान्य रहता है और तदनुसार उसकी अभिव्यक्ति होती है किसी मनुष्य के उसके विभिन्न कार्यों की ख्रष्टि से देखिए। उदाहरण के लिए जब वेतन के लिए कोई किसी व्यक्ति की सेवा करता तो शुद्र हैं, जब वह स्वयं लाभ के लिए कोई व्यवसाय करता है तो उस समय उसमें वह वैश्य है। जब वह अन्याय का अंत करके न्याय की स्थापना करने के लिए संघर्ष करता है तो उसे स्थिति में उसमें क्षत्रिय के गुणों की अभिव्यक्ति होती हैं और जब वह ईश्वर का ध्यान करता है अथवा ईश्वर विषयक वार्तालाप में संलग्न होता है तो उस समय वह ब्राह्मण बन जाता है। अत: व्यक्ति के लिए एक जाति से दूसरी जाति में परिवर्तित होना संभव है अन्यथा विश्वामित्र ब्राह्मण और परशुराम क्षत्रिय कैसे बन जाते। इनके अनुसार जाति का उन्मूलन करना आवश्यक नहीं है बल्कि उसे परिस्थितियों के अनुकूल बना देना चाहिए।[6] पुरानी व्यवस्था में इतना जीवन है कि उसमें 200 नवीन व्यवस्थाओं का सृजन किया जा सकता है। जाति व्यवस्था के उन्मूलन के कामना करना मात्र कोरी बकवास है।मनुष्यों के लिए जाति अच्छी चीज है। जीवन की समस्याओं को हल करने का वही एकमात्र साधन है। मनुष्यों के लिए समूह बनना स्वभाविक है, तुम उससे बचने सकते। तुम कहीं भी जाओगे वहाँ तुम्हें जाति देखने को मिलेगी।[7] विवेकानंद के अनुसार समाज का चार वर्णों में विभाजन आदर्श समाज व्यवस्था का द्योतक है।

स्वामी विवेकानंद के नारी विषयक विचार- भारतीय नारी का आदर्श बताते हुए भी लिखते हैं–

"भारत! तुम मत भूलना कि तुम्हारी नरियों का आदर्श सीता, सावित्री, दयंवती है। मत भूलना कि तुम्हारे उपास्य से सर्वत्यागी आप शंकर हैं। मत भूलना कि तुम्हारा विवाह, तुम्हारा धन और तुम्हारा जीवन इंद्रिय सुख के लिए या अपने व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं है। मत भूलना कि तुम जन्म से ही 'माता' के लिए बलि स्वरूप रखे गए हो। मत भूलना कि तुम्हारा समाज उस विराट महामाया की छाया मात्र है। स्वामी विवेकानंद ने भारतीय नारियों को सीता और सावित्री के जीवन से प्रेरणा लेने की बात कही है। उनकी जीवन घटनाओं से भारतीय नारियों को साहस, धैर्य तथा विपत्तियों से जिस प्रकार संघर्ष किया जाए, उसकी शिक्षा ग्रहण करना चाहिए।

नारी उत्थान के पक्षधर: स्त्री-पुरुषों की समानता स्वामी विवेकानंद के सामाजिक चिंतन का एक प्रमुख अंग है। उन्होंने यह विचार व्यक्त किया कि जो समाज स्त्रियों को समुचित सम्मान नहीं दे सकता वह ना तो आध्यात्मिक है और ना ही अपना विकास कर सकता है। भारत का वैदिककालीन समाज इसलिए गौरवपूर्ण था क्योंकि उसमें स्त्रियों के सभी अधिकार पुरुषों के समान थे। कालांतर में जैसे-जैसे स्त्रियों की निंदा करके उन्हें विभिन्न प्रकार के अधिकारों से वंचित किया जाता रहा, हमारा समाज पतन की ओर जाने लगा। इसलिए आवश्यक है कि स्त्रियों को चारित्रक तथा धार्मिक शिक्षा देकर उनका विकास किया जाए। इसी से उसमें साहस और आत्मबल उत्पन्न हो सकता है। जीवन के हर क्षेत्र में स्त्रियों का दूसरों पर निर्भर रहना समाज के लिए घातक है। विवेकानंद जी से पहले ब्रह्म समाज ने भी स्त्रियों की स्थिति में सुधार लाने का व्यापक प्रयत्न किया था लेकिन स्वामी जी ने वेदांत धर्म के आधार पर यह प्रमाणित किया कि स्त्रियों के समानता के अधिकार का विरोध करना धर्मविरोधी कार्य हैं।

नारी शिक्षा के पक्षधर: स्वामी जी इस सत्य से परिचित हैं कि स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार प्रसार होना चाहिए, क्योंकि यदि स्त्रियों में शिक्षा का अभाव रहता है तो देश उन्नति नहीं कर सकता। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे कुछ ब्रह्मचारिणीयां बनाने की इच्छा प्रकट करते हैं। ब्रह्मचारिणीयां सन्यास धारण कर देश और गांव-गांव जाएंगे तथा सर्वसाधारण में शिक्षा प्रसार का प्रबंध करेंगे। इस प्रकार ब्रह्मचारिणीया, स्त्रियों में इस शिक्षा का प्रसार करेंगे शिक्षा का भारतीय ढंग का है। शिक्षित और सतचरित्र ब्रह्मचारिणीयां केंद्र में कुमारियों को शिक्षा देंगी। इस शिक्षा ख्रकार्य मे पुराण, इतिहास, गृहकार्य, तथा गृहस्थी के एवं समस्त नियमादी की शिक्षा विज्ञान की सहायता से देनी होगी तथा आदर्श चरित्र गठन करने के लिए उपयुक्त तथ्यों की भी शिक्षा देनी होगी।

स्वामी विवेकानंद हार्दिक इच्छा थी कि भारत के पुरुष और नारी दोनों ही शिक्षित हो जिससे कि वह संसार की गतिविधियों का अध्ययन कर सकें कि उन्हें किस दिशा में कार्य करना चाहिए। वह पुरुष को डाटते हुए कहते हैं कि तुमने उसे पतित भी बनाया और गुलाम बनाकर घर के बच्चों के पालन पोषण के लिए रखा है, इसलिए तुम्हारा पुनीत कर्तव्य है कि सर्वप्रथम नारी जाति को सुशिक्षित बनाओ फिर वह कहेंगे कि उन्हें किन सुधारों की आवश्यकता है तुम्हें उनके प्रत्तेक कार्य में हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार है? अंत में नारी शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं-

"हम चाहते हैं कि भारत की नारियों को ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे वे निर्भय होकर भारत के प्रति अपने कर्तव्य को भलीभांति निभा सकें और संघमित्रा, लीला, अहिल्याबाई और मीराबाई आज भारत की महान देवियों द्वारा चलाई गई परंपरा को आगे बढ़ा सकें एवं वीर प्रसू बन सकें।[8]

विवाह संबंधी विचार: स्वामी विवेकानंद को हिंदू विवाह की अनेक बातों से शिकायत थी, जैसे बंगाल में कन्या का बहुत कम आयु में विवाह कर दिया जाता था। इसके लिए वे समाज और पोंगा पंडितों को दोषी ठहराते हैं। वे कहते हैं कि जहां लड़की 10-11 साल की हुई कि आस-पास के लोग उसके माता-पिता को विवाह करने के लिए विवश करने लगते हैं। बेचारे मां-बाप भी क्या करते? और जब सरकार ने कानून द्वारा किसी पुरुष के लिए 12 वर्ष की छोटी कन्या सहवास करना दंडनीय ठहराया तब उन पोंगापंडितों ने बड़ा कोलाहल मचाया कि धर्म भ्रष्ट हो गया, कलयुग आ गया आदि आदि। किसी बालिका पर 12 या 13 वर्ष की आयु में मातृत्व का भार डालना ही मानव धर्म है? स्वामी जी यह इच्छा थी की नारियों को इतना शिक्षा दी जाए कि वह अपने जीवन का निर्माण कर सकें। शिक्षा ही उनमें आत्म-रक्षा और आत्म-बल को उत्पन्न कर सकती है।

बाल विवाह और विधवा विवाह: स्वामी जी कहते हैं कि अगर बाल विवाह समाप्त हो जाए अथवा कन्या का विवाह कुछ अधिक आयु में हो तो इससे ना केवल उनका हीस्वस्थ्य अच्छा रहेगा बल्कि यदि बाल विवाह की संख्या घट जाएगी तो विधवाओं की संख्या स्वत: ही घट जाएगी।

विवाह के संबंध में विवेकानंद जी शिक्षा देते हुए कहते हैं-

"पवित्रता और सतीत्व तो भारतीय नारी की वह बहुमूल्य निधि है जो वह उसे अतीत काल से प्राप्त हुई है। इसलिए स्वभावत: वह उसे समझती है। सर्व प्रथम हमेंउनमे इस आदर्श के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न करनी चाहिए। यदि वे इस आदर्श पर ख़ढ़ हो जा हो गई, तो उसके फलस्वरूप उनका चरित्र इतना बलवान और ख़ढ़ होगा कि वे अपने प्राणों की आहुति देकर भी अपनी पवित्रता और सतीत्व की रक्षा करना अपना धर्म समझेंगीं चाहे वे विवाहित हो अथवा अविवाहित रहने का ख़ढ़ संकल्प धारण किए हो।[9]

भारतीय नारी की वर्तमान स्थिति और उसका भविष्य

स्वामी विवेकानंद ने स्पष्ट कहा है कि जब तक स्त्रियाँ पराधीन रहती हैं तब तक देश प्रगतिशील नहीं बन सकता। उन्हें मानवीय अधिकारों से वंचित रखना न तो मानव समाज के लिए उचित है ना देश के लिए ही नारी प्रगति का अर्थ है देश की प्रगति। वे द्रविड़ जो भारत दक्षिण भारत में बस गए, अत्यंत सभ्य और सुसंस्ख्रति थे। स्त्रियों का स्थान पुरुषों से ऊंचा था। भारतीय स्त्रियों की स्थिति मे सुधार लाने के लिए आवश्यक है की हम उन्हें शिक्षित करें। शिक्षित होने से ही वे अपने समस्याओं का समाधान स्वयं ढूंढ लेंगीं। स्वामी जी का यह मत है कि बौद्ध धर्म के प्रचार से ही भारतीय स्त्रियों में हीनता की भावना उत्पन्न हुई। स्वामी जी का ख़ढ़ विश्वास है कि स्त्रियों को धार्मिक शिक्षा देने से उनकी स्थिति में परिवर्तन आएगा। वह अपनी धार्मिक शिक्षा की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए कहते हैं- मेरा ख़ढ़विश्वास है कि धर्म ही शिक्षा का सार है हां यह ध्यान रखना आवश्यक है कि धर्म मेरा अभिप्राय किसी विशिष्ट धर्म से नहीं है। मैं समझता हूं कि अन्य विषयों के समान अध्यापक को इस संबंध में भी छात्रों का आरंभिक मार्गदर्शन करना चाहिए और उन्हें इस योग्य बनाना चाहिए कि वे अपना विरोध करने वाले मार्ग पर कम से कम आगे बढ़ सकें।

इस तरह हम कह सकते हैं कि स्वामी जी भारतीय स्त्रियों की सामाजिक व आर्थिक स्थिति से दु:खी और चिंतित थे। वे चाहते थे कि भारतीय स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार-प्रसार अधिक से अधिक किया जाए जिससे वे स्वावलंबी बन सके तथा अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं कर सकें।

समाज सुधारक के रूप में स्वामी विवेकानंद

स्वामी विवेकानंद अन्य समाज-सुधारकों की भांति विशुद्ध सुधारक नहीं थे। उनका चिंतन-मनन, धर्म की एक नवीन पद्धति की खोज में लगा था। वह धर्म के क्षेत्र में भी कायाकल्प नहीं करना चाहते थे वरन संपूर्ण संसार को मानव धर्म की शिक्षा देना चाहते थे जिसमें मानव की सर्वश्रेष्ठ है। मानव की दरिद्रता एवं निर्धनता को नष्ट करना ही मानवधर्म है। वे सभी धर्म एक के लिए है, एक धर्म सभी के लिए है-उनकी ऐसी धारणा थी। इसके बावजूद वे भारतीयों से कहते थे कि उनका धर्म सर्वश्रेष्ठ है वेदांत में विश्वास करने से ही देश का कल्याण हो सकता है। देश का पतन इसलिए हो रहा है कि उन्होंने वेदान्त में विश्वास करना छोड़ दिया है। वह भी समकालीन कुप्रथाओं एवं अंधविश्वासों के विरुद्ध थे, जैसे ब्रह्मसमाज थे। किंतु उनके विचार ब्रह्मसमाज के इतने निकट नहीं थे जितने स्वामी दयानंद सरस्वती के। लेकिन वे दयानंद की भांति विशुद्ध भारतीय विचारधारा के समर्थक नहीं थे। वह पश्चिम के अनुकरण में नहीं वरन विनिमय के पक्ष में थे जिससे समान स्तर पर संबंध स्थापित हों। जहां तक समकालीन समस्याओं का प्रश्न है जैसे जाति-पाति, छुआछूत, अंतर-जाति विवाह, नारी शिक्षा आदि। इनके संबंध में उनके वैसे ही विचार थे जैसे अन्य समाज-सुधारकों के।

स्वामी विवेकानंद पाश्चात्य शिक्षा पद्धति के पूर्णतया विरुद्ध तो नहीं थे, किंतु उसको आंख मूंदकर ग्रहण कर लेना, इसके पक्ष में भी नहीं थे। उनकी शिक्षा पद्धति में हल्की, ओछी भावना नहीं थी बल्कि गंभीर चिंतन और दर्शन मनन की गहनता जैसा प्रतीत होती है। बाह्य विकास की अपेक्षा वह अंत: विकास पर अधिक बल देते हैं। अंत: विकास होने से व्यक्ति के अंदर मानव धर्म एवं सर्व कल्याण की भावना का उदय होता है। देश के व्यक्तियों की आत्मिक शक्ति जब तक शक्तिशाली नहीं होती तब तक देश का आर्थिक एवं राजनीतिक पुनर्निर्माण नहीं हो सकता।[10] वे चाहते थे कि हिंदुस्तान के नवयुवक इस्पात की तरह शक्तिशाली बने और अपने देश के लक्ष्य की प्राप्ति अपनी आत्मशक्ति और बाहुबल द्वारा करें।

विवेकानंद देश के पुनर्निर्माण का कार्य आत्मिक शक्ति और बाहुबल के द्वारा लाना चाहते थे। यह संदेश उन्होंने देश के कोने-कोने में पहुंचाया एक तरह से उनकी राष्ट्रीय भावना को दर्शाता है और दूसरी तरफ देश प्रेम को समकालीन परिस्थिति की मांग भी यह थी कि देश के व्यक्तियों में नई चेतना प्रेरणा और धर्म की भावना को उत्पन्न किया जाए।

सामाजिक परिवर्तन के पक्षधर

स्वामी विवेकानंद जी का सामाजिक चिंतन यथास्थिति का समर्थक नहीं है। उन्होंने एक ऐसे सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता पर बल दिया जो क्रमिक हो। सामाजिक नियमों व प्रथाओं के बारे में अपने विचार स्पष्ट करते हुए उन्होंने बतलाया कि समाज में प्रत्येक प्रथा के अपने कुछ न कुछ कार्य होते हैं तथा इन प्रथाओं को एकदम समाप्त कर देने से समाज में अव्यवस्था फैल सकती हैं। इसके बाद भी उन दोषपूर्ण प्रथाओं व कुरीतियों में सुधार करना आवश्यक है जो समाज को विघटित करते हैं। यह सुधार हिंसक क्रांति के द्वारा संभव नहीं है बल्कि संगठित प्रयत्नों से इनमें धीरे-धीरे सुधार लाया जा सकता है। इसके लिए हमें अपने मन को बदलना होगा। जब हम एक मानव के रूप में अपने कर्तव्य को समझने लगेंगे तब निहित स्वार्थों से उत्पन्न होने वाली कुप्रथा के हम स्वयं विरोधी बन जाएंगे। यदि कोई परिवर्तन कटरता और हिंसा के द्वारा लाया जाता है तो ऐसा परिवर्तन स्थाई नहीं होता क्योंकि ऐसा परिवर्तन किसी व्यवस्था के मूल दोषों को समाप्त नहीं कर सकता।

सारांश

स्वामी विवेकानंद के सामाजिक चिंतन की उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि एक लंबे समय तक विशेष विदेशी शासन के प्रभाव से हिंदू संस्ख्रति तथा धर्म का गौरव जब लुप्त होता जा रहा था, तब उन्होंने भारतीयों में एक नई शक्ति व स्वाभिमान का संचार किया।अपने सामाजिक व धार्मिक चिंतन के द्वारा उन्होंने संपूर्ण विश्व में जहां हिंदू समाज की प्रतिष्ठा में वृद्धि की वहीं सामाजिक चिंतन के द्वारा एक समताकारी समाज की स्थापना में भी महान योगदान दिया। अंधविश्वास और कुरीतियों से जकड़े भारतीय समाज को अपने धर्म की मूल मान्यताओं से परिचित कराने तथा धर्म के मानवतावादी पक्ष को उजागर करने के क्षेत्र में स्वामी जी का चिंतन सदैव याद किया जाता रहेगा।

स्वामी विवेकानंद के सामाजिक चिंतन में वह वेदांत के शिक्षाओं के आधार पर भारतीय समाज का पुनर्निर्माण करना आवश्यक समझते थे। उन्होंने इस तथ्य को स्पष्ट किया है कि सभी सामाजिक समस्याओं का मूल कारण द्वैत बुद्धि पर आधारित व्यक्ति की अज्ञानता है।जब कोई व्यक्ति यह समझने लगता है कि यह भी उचित है और वह भी उचित है अर्थात द्वंद की स्थिति में वह सत्य को समझने में असमर्थ हो जाता है। इस अज्ञानता को समाप्त करके यदि हम ब्रह्म के वास्तविक रूप को समझने की शक्ति प्राप्त कर लें तो सभी मानव के प्रति हमारी बुद्धि समता की बन जाएगी। सच तो यह है कि विवेकानंद ने अपने समाजिक चिन्तन में अस्पृश्यता, स्त्रियों की प्रस्थिति तथा सामाजिक परिवर्तन के बारे में जो विचार प्रस्तुत किए उसे महात्मा गांधी ने एक बड़ी सीमा तक न केवल उन्हें ग्रहण किया बल्कि उन्हीं के आधार पर अछूतोद्धार के कार्य को भी आगे बढ़ाया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वर्मा, डॉ. वी पी : आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, छठा संस्करण, 2005 - 20 06, पृष्ठ संख्या : 202
2. सिंह, डॉ. वी एन एवं सिंह, जन्मेजय : भारतीय सामाजिक चिंतन, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, पंद्रहवाँ संस्करण, सन 2011, पृष्ठ संख्या -174
3. वही, पृष्ठ संख्या- 176
4. अग्रवाल डॉ. गोपाल कृष्ण एवं शर्मा श्रीनाथ : प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक, एस बी पी डी पब्लिशिंग हाउस, आगरा चतुर्थ संस्करण, 2006, पृष्ठ संख्या - 390
5. वही, पृष्ठ संख्या -391
6. विवेकानंद, कम्प्लीट वर्क, जिल्द 5, पृष्ठ संख्या 129
7. स्वामी विवेकानंद, ऑन इण्डिया एंड हर प्रॉब्लमस, अद्वैत आश्रम, अल्मोड़ा,चतुर्थ संस्करण, 1946, पृष्ठ संख्या 77-78, 80
8. सिंह, डॉ. वी एन एवं सिंह,जन्मेजय : भारतीय सामाजिक चिंतन,विवेक प्रकाशन, दिल्ली, पंद्रहवाँ संस्करण, सन 2011, पृष्ठ संख्या -180
9. वही, पृष्ठ संख्या -181
10. विवेकानंद, मॉडर्न इंडिया, कंपलीट वर्क, जिल्द-4, पृष्ठ संख्या 394-95

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की बाल कहानियाँ

डॉ० मिथिलेश कुमारी

एम. फिल. पीएचडी. जे.एन.यू.

बचपन जीवन का प्रारंभिक काल है। इस समय बच्चा मिट्टी के लोंदे के समान होता है। उसे किसी भी आकार में ढाला जा सकता है। बच्चे अनुकरण द्वारा ज्यादा सीखते हैं। वे अपने परिवार और वातावरण से ही सबसे पहले सीखते हैं। बच्चे अलग-अलग आयु, वर्ग, धर्म और समुदाय के होने के कारण भिन्न सहूलियतें और सुविधएँ प्राप्त करते हैं। पहली बात तो भारत में शिक्षा से ही अध्किांश बच्चे कोसों दूर हैं। राजनीतिक दिशाहीनता का खामियाजा बच्चों को भी भुगतना पड़ता है। भारत में शिक्षा व्यवस्था का स्तर बहुत अच्छा नहीं है। बच्चों के लिए पुस्तकालयों का अभाव है। स्कूली पाठ्यक्रम की पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों तक जिन बच्चों की पहुँच है, उनका प्रतिशत बहुत कम है।

बचपन, किशोरावस्था और वयस्क, हर आयु की अलग रूचि और जरुरत होती है। बच्चों के लिए लिखने में अलग कौशल और भाषा की जरुरत होती है। कथानक की रोचकता और भाषा की सरलता बाल साहित्य के लिए जरुरी है। चित्रा एक अनिवार्य तत्व है जो बच्चों को किताबों की ओर आकर्षित करता है। शुरुआत में जब उन्हें शब्द-ज्ञान नहीं होता तो वे चित्रा द्वारा ही चीजों को समझने की कोशिश करते हैं। कहानियों का आकार बहुत ज्यादा बड़ा नहीं होना चाहिए। साहित्य में काल्पनिकता का समावेश होता है पर बच्चों के साहित्य में पशु, पक्षी पर मनुष्य अपनी जाति के गुणों को आरोपित करते हैं। कई बार ये कहानियाँ बाल मन को कल्पना की तरफ तो मोड़ देती हैं, परन्तु वास्तविक जीव जंतुओं के यथार्थ से दूर कर देती हैं। बच्चों के लिए लिखने में यह एक चुनौती है। बच्चे बेहद कल्पनाशील होते हैं और साहित्य उनकी कल्पनाशक्ति को विस्तार प्रदान कर सकता है। कल्पना और यथार्थ के बीच एक सामंजस्य बनाकर रखना लेखक का कर्त्तव्य है।

बाल साहित्य की भाषा सरल होनी चाहिए। ऐसे प्रसंगों, घटनाओं का कहानियों में समावेश होना चाहिए जो उन्हें आश्चर्यचकित करे, कौतुहल और हास्य पैदा करे। गालियों का प्रयोग वर्जित है। बाल साहित्य का मुख्य उद्देश्य बच्चों में जागरूकता पैदा करना होता है। नैतिक शिक्षा, अच्छी आदतों का विकास और अपने आस पास के वातावरण के बारे में जानकारी प्रदान करना, ताकि वे एक अच्छे इन्सान बन सकें, साथ ही उनकी तार्किक क्षमता एवं कल्पनाशक्ति का विस्तार हो सके। बाल साहित्य में शिल्प का उतना ही महत्व है, जितना विषय का। एक ही विषय पर भिन्न-भिन्न बुनावट की कहानियाँ देखी जा सकती हैं। विष्णु प्रभाकर द्वारा सम्पादित 'सुनो कहानी' की लगभग सारी कहानियाँ मूर्खता पर हैं, परन्तु उनके कथानक अलग अलग हैं। ये कहानियाँ बुद्धिमत्ता पर बल देती हैं और बच्चों को ये सिखाती हैं कि उन्हें अपने विवेक और समझदारी का प्रयोग करना चाहिए।

हिंदी में प्रेमचंद, हरिकृष्ण देवसरे, दिविक रमेश, निराला, सोहन लाल द्विवेदी, सुध भार्गव, मैथिलीशरण गुप्त, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि ने लिखा है। 21वीं सदी में शादाब आलम, जाकिर अली रजनीश, डॉ. राजेंद्र पंजियार, पूनम श्रीवास्तव आदि लिख रहे हैं। प्रेमचंद ने रामायण की कथा से लेकर ऐतिहासिक पात्रों तक को आधार बनाकर बच्चों पर लिखा है। पशु पक्षी से सम्बन्धित कहानियाँ भी लिखी हैं जैसे– 'शेर और लड़का', 'गुब्बारे पर चीता', 'मिट्ठू', 'पालतू भालू' आदि। 'ईदगाह' उनकी प्रसिद्द कहानी है। निराला ने 'भेड़िया भेड़िया', 'कंजूस और सोना', 'गधा और मेढक', 'दो घड़े', 'शिकार को निकला शेर' जैसी रोचक कहानियाँ लिखी हैं। हरिकृष्ण देवसरे, दिविक रमेश, सोहन लाल द्विवेदी ने बच्चों पर काफी कुछ लिखा है। मोहन राकेश का 'गिरगिट का सपना' कहानी महत्वपूर्ण है।

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा 20वीं शताब्दी की महत्त्वपूर्ण लेखिका हैं। उन्होंने लखनऊ आकाशवाणी में महिला एवं बाल-विभाग में बतौर पटकथा लेखिका 25 वर्षों तक काम किया। वहाँ, उन्होंने बहुत ज्यादा बच्चों के लिए लिखा। 'पशु पक्षी सम्मलेन' 'भोंदू और भोलू', 'दमयंती' और 'जग्गो ताई' बाल कहानी संकलन अब तक प्रकाशित पुस्तकें हैं। आकाशवाणी में उन्होंने जो भी लेखन किया, वह संरक्षित नहीं है।

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की पुस्तक 'पशु पक्षी सम्मलेन' संग्रह में 5 कहानियाँ हैं। इस संग्रह में लेखिका ने पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों, बादल, नदी आदि को पात्रों के रूप में लिया है। वास्तविक दुनिया में शेर को न किसी जंगल का राजा सर्वसम्मति से माना जाता है, न ही ऐसी कोई प्रथा है। बच्चों के साहित्य में कल्पना की उडाघ्न भरपूर होती है। अप्रत्याशित, हास्य पैदा करने वाली घटनाएँ और चरित्रा होते हैं। चन्द्रकिरण ने इस संग्रह की सारी रचनाओं के कथानक को बाल-मन के अनुकूल विकसित किया है।

'करनी का फल' कहानी में यह बताया गया है कि झूठ की उम्र ज्यादा नहीं होती। सत्य एक दिन उजागर हो जाता है। दूसरों की नकल तो की जा सकती है, परन्तु दूसरों के जैसा बना नहीं जा सकता। गीदड़ शेर की खाल ओढ़कर भी अपनी स्वभावगत विशेषताओं से मुक्त नहीं हो पाता और अंत में उसका भेद खुल जाता है। पंचतंत्रा में इसी से मिलती जुलती एक कहानी है, 'शेर की खाल में गधा' लेकिन वह इतनी छोटी है कि बस एक छोटी घटना का जिक्र है कि दूसरी गधी की आवाज सुनकर शेर की खाल ओढ़ा हुआ गधा भी वैसी ही आवाज निकालने लगता है और सबको पता चल जाता है।

'चतुर पंडित' कहानी में भूरे पंडित बहुत बुद्दिमत्ता से गोरेमल को चोर साबित कर देते हैं। गोरेमल कल्लूमल की गाय का बच्चा चुराकर अपनी बकरी का बच्चा बना देता है। तब पंडित भी अजीब बातें करके उसके झूठ का पर्दाफाश करते हैं। उनका एक संवाद देखिए- "कल्लूमल ने आश्चर्य से कहा -

"नदी में आग!" पंडित बोले- "हाँ भाई, नदी में आग लगी थी और नदी की मछलियाँ पेड़ो पर चढ़कर घास खा रही थीं और पेड़ो पर उगी हुई बालू से नदी की आग भी बुझ रही थी"। गोरेमल ने कहा-"क्यों भई गाँव वालों क्या आपने कभी ऐसी अनहोनी बात देखी है?" भूरे पंडित ने भी गाँव वालों की और मुड़कर कहा- "क्यों भई गाँव वालों क्या तुमने कभी गाय के बकरी का बच्चा और बकरी के बछड़ा होते सुना है?" यदि नदी में आग नहीं लग सकती तो बकरी भी बछड़ा नहीं दे सकती।"

'टिड्डे का काम चोरी' कहानी समय की कीमत का एहसास कराती है और सही समय पर काम करने की नसीहत देती है, जो टिड्डे, मधुमक्खियों और चींटियों को आधार बनाकर लिखी गयी है। टिड्डा गर्मी के मौसम में खेल में मस्त होता है और अपने भोजन का संग्रह नहीं करता, वहीं मधुमक्खियाँ और चींटियाँ आने वाले दिनों के लिए भोजन जुटाने में लगी होती हैं; टिड्डा जब उनसे खेलने के लिए कहता है, तो वह दोनों मना कर देती हैं। मधुमक्खी बोली-"न भैया, यह समय काम करने का है इस समय गीत गायेंगे तो बरसात और जाड़ों में भूखों मरना पड़ेगा।" चींटियाँ बोली- "न भैया काम के समय काम और खेल के समय खेल।" लेकिन टिड्डे ने पूरी गर्मी खेलने में गुजार दी। अत: उसे बरसात और जाड़ों में भूखे रहना पड़ा। चन्द्रकिरण गीतों का प्रयोग भी अपनी बाल रचनाओं को सुरुचिपूर्ण बनाने के लिए करती हैं।

"गर्मी की ऋतु आई
धुप सलोनी संग में लाई
टिड्डे के मन भाई...
भाई गर्मी की ऋतु आई।"

अनुशासन की आदत डालने के उद्देश्य से 'मेघ परी' भी एक अच्छी कहानी है। बचपन में बच्चे नासमझ होते हैं और बहुत बार मनमानी करते हैं। वह काम भी करने की जिद करते हैं जो उनके लिए बुरा होता है, परन्तु कहानियों को पढ़कर वह स्वयं सीखते हैं। मेघ परी बादल के एक टुकड़े को कहा गया है लेकिन प्राकृतिक उपादानों का प्रयोग करके लेखिका बादलों के गुण भी बताती हैं और उनका मानवीकरण भी करती हैं। मेघ परी को नीलगिरी की पहाड़ियों पर बरसने के लिए कहा गया- "भारत के दक्षिण में नीलगिरी की पहाड़ियों पर, जहाँ चाय, कोको उगता है, तुम्हें अपना जल ढाल देना है।"

परन्तु गंगा-जमुना को देखकर वह उसमें बरसने की जिद करने लगी- "श्यामवर्ण भैया मैं तो गंगा जमुना में बरसूंगी। यह क्या कि नीलगिरी की पहाड़ी पर बरसकर रह जाओ या खेतों में बरसकर मिट्टी में घुल जाओ।" श्यामवर्ण बादल ने उसे समझाया- "न न बहना, हमें जहाँ बरसने का आदेश मिला है, हम वही बरसेंगे। खेतों में बरसने से हम किसानों को लाभ पहुँचायेंगे, धरती हमारे जल से अन्नमयी बनेगी।" अपनी मनमर्जी के कारण मेघ परी अन्य बादलों से दूर चली जाती है, रास्ता भटक जाती है और बहुत कष्ट उठाती है। बाद में उसे पछतावा भी होता है और सजा भी मिलती है।

'खुटखुट और गुटर गू' (अप्रकाशित) कहानी में दिखाया गया है कि आपसी लड़ाई का फायदा दूसरे लोग उठा लेते हैं। अत: अपनी समस्या को समय रहते आपस में ही सुलझा लेना उचित है। यह दो मित्रों एक बढ़ई और कबूतर की मित्राता की कहानी है। 'सोने की नदी' कहानी चमत्कार और कल्पना का सम्मिश्रण है। किसान का छोटा बेटा शील मेहनती और दूसरों की मदद करने वाला है जबकि उसके दोनों बड़े भाई झगड़ालू और आलसी होते हैं। अपने अच्छे व्यवहार के कारण वह सोने की नदी को अपने खेतों तक लाने में सक्षम होता है। दूसरों की मदद करके ही आगे बढ़ा जा सकता है। शील बौने को भोजन देता है तो वह नदी तक पहुँचने का रास्ता बताता है।

'दमयंती' कहानी भी प्राचीन काल की है। इस कहानी में लेखिका ने दमयंती के धैर्य, पति प्रेम, दायित्व का उल्लेख किया है। मुसीबत आने पर धैर्य से काम लेना बुद्धिमानी है। दु:ख एक राजा के जीवन में भी आता है परन्तु परिस्थितियों का सामना करके अपने गौरव को पुन: प्राप्त करने की कोशिश बहुत कम लोग करते हैं। ये कहानी दु:ख मुसीबत का सामना करना सिखाती है। दमयंती राजकुमारी होकर भी दु:ख में अपने पति के साथ जंगल में भटकती हैं, अपने पिता के पास नहीं जातीं। मेहनत करके अपनी जीविका अर्जित करती हैं। अपने से बिछुड़ गए पति की खोज करती हैं और राज्य हासिल हो जाने के पश्चात अपने देवर पुष्कर को राज्य से बाहर नहीं निकालती जबकि उसी ने नल दमयंती को राज्य से बाहर कर दिया था। वह पुष्कर को राज्य का एक भाग देने की सलाह अपने पति को देती हैं। दमयंती की अपने चरित्रा पर अडिगता और अपने साथ बुराई करने वालों के साथ भी इतनी दयालुता ही उनके चरित्रा को मजबूत बनाती है।

'जग्गो ताई' कहानी देश प्रेम के विषय को लेकर लिखी गयी है। लखनऊ के साहिबगंज की जग्गो को अपनी हवेली बहुत प्रिय होती है। वह उस हवेली को किराये पर भी नहीं उठाती। उनका एक भतीजा है, जो सेना में है। वह अपने भतीजे के लिए ही इस हवेली को संभालकर रखे हुए हैं। वह अपने भतीजे के पास भी रहने नहीं जाती, परन्तु भारत-चीन युद्ध के समय वह अपनी हवेली बेच देती है। "हवेली बेचोगी? लाला को मानो बिजली छू गई। हाँ देवर- और अपने गहने मैं सुरक्षा कोष में दे दूंगी। हवेली में रहने वाला न रहेगा तो हवेली का क्या होगा? मैं यह सब रकम भी हथियार खरीदने को दे दूंगी।"

"अरे ऐसा गजब न करना। बुढ़ापे में क्या खाओगी?" लेकिन ताई तो अडिग थी- "लाला आज भी तो भतीजे की कमाई खाती हूँ। मैं उसकी बहु के पास चली जाऊँगी। पुरखो की निशानी ये हवेली देश की आजादी में लग जाय इससे बड़ा पुण्य क्या होगा?"

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की ही एक कहानी 'गरीब का दिल', जो वयस्कों के लिए लिखी गयी है उसमें भी एक वृद्ध महिला के देश प्रेम का वर्णन है, परन्तु दोनों के कथानक में बहुत अंतर है। जग्गो ताई की संरचना में हास्य है, वाक्य सरल हैं, वहीं गरीब का दिल कहानी की संरचना गंभीर है, करुणा का भाव प्रबल है, भाषा वयस्कों की है, जिसमें गाली का प्रयोग भी हुआ है।

'भोंदू और भोलू' कहानी में भोंदू का मन पढ़ने में बिलकुल नहीं लगता। वह पढ़ाई करने से बचता है। भोंदू का नाम भूपेंद्र है, परन्तु पढ़ने में कमजोर होने के कारण सारे बच्चे उसे भोंदू कहते हैं। अपनी उम्र के बच्चों से वह कक्षा में पीछे है। वह अभी दूसरी कक्षा में है जबकि उसके हम उम्र के बच्चे चौथी कक्षा में पढ़ते हैं। उसका मन पढ़ने के अलावा खेलने, घूमने-फिरने सब काम में लगता है। भोलू उसका कुत्ता है जिसे वह खूब प्यार करता है और

उसके कारण वह जल्दी उठने लगता है लेकिन जब भोंदू को एक ठग अपने साथ झांसा देकर उठा ले जाता है। उस समय वह अपने घर से बहुत दूर दूसरे शहर में होता है। उसे भीख मांगकर लाने को कहा जाता है, तब उसे अपने घर की बहुत याद आती है। ठग उसे खाना भी ठीक से नहीं देता। उसे लिखना नहीं आता। उस स्थिति में उसने अपने बस्ते से किताबें निकालकर उन्हें मिला मिलाकर पढ़ना शुरू किया और बड़ी मुश्किल से दो शब्द लिख पाया। एक पडोघ्सी की मदद से वह घर पहुँच जाता है, तब उसे एहसास होता है कि पढ़ना-लिखना कितना जरुरी है। "माँ बड़ी भूख लगी है", भोंदू ने माँ से कहा। "यह बाबा मुझे रात को खाना भी नहीं देता था। दिन में भी सूखी रोटी देता था। मुझसे भीख मंगवाता था। अगर मुझे ठीक-ठीक लिखना आता तो मैं तुम्हें पत्रा लिखकर बता देता तब मुझे इतने दिन कष्ट न उठाना पड़ता।"

"देखा बेटा न पढ़ने का नतीजा! लेकिन अगर सुबह का भूला शाम को घर आ जाये तो वह भूला नहीं कहलाता। अब जुट जाओ पढाई में। बाबूजी ने कहा।"

इस प्रकार छोटी-छोटी आदतें विकसित करने के उद्देश्य से ये कहानियाँ लिखी गई हैं। जग्गो ताई और दमयंती कहानी बड़े बच्चों के लिए है। इन दोनों के अतिरिक्त अन्य कहानियाँ छोटे बच्चों के लिए हैं। कुछ लेखक जैसे निराला की कहानियों में अंत में उपदेशपरक वाक्य होता है, परन्तु चन्द्रकिरण अलग से उपदेशपरक वाक्य या कहानी का सार नहीं लिखतीं। चन्द्रकिरण ने जग्गो ताई, भोंदू और भोलू लम्बी कहानी लिखी। इसके अतिरिक्त अन्य कहानियाँ भी बहुत छोटी नहीं हैं। एक पृष्ठ की कोई कहानी नहीं है परन्तु कथानक और शिल्प बेजोड़ है। भाषा पात्रानुकूल है और ये कहानियाँ बच्चों के लिए अत्यंत प्रेरणाप्रद हैं।

संदर्भ

- चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, पशु पक्षी सम्मेलन, अंतरा प्रकाशन, 2008 पृष्ठ 16-17
- वही, पृष्ठ 19
- वही, पृष्ठ 20
- वही, पृष्ठ संख्या 24
- वही, पृष्ठ 25-26
- चन्द्रकिरण सौनरेक्सा,जग्गोताई, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2004, पृष्ठ 11
- चन्द्रकिरण सौनरेक्सा,भोंदू और भोलू, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2007, पृष्ठ 27-28

भारतीय दर्शन में मानवतावादी दृष्टिकोण एवं इसकी प्रासंगिकता

प्रवीण कुमार यादव

शोध छात्र, दर्शन एवं धर्म विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

मानवतावाद, दर्शन की एक ऐसी विचारधारा है जिसके अन्तर्गत मानव तथा उसकी समस्याओं के विवेचन को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है। इस विचारधारा के केन्द्रबिन्दु ईश्वर या अन्य कोई, काल्पनिक शक्ति न होकर स्वयं मनुष्य है जिससे सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण पक्षों का इसके अन्तर्गत सम्यक् विवेचन किया जाता है। इस प्रकार मानवतावाद का अभिप्राय मनुष्य केन्द्रित दर्शन है।[1]

भारत में मानव की सर्वोच्च महत्ता की अनदेखी कभी नहीं की गई। 'मानववाद' शब्द प्रारम्भ से ही विभिन्न लोगों के लिए अलग-अलग अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। प्रो0 एडवर्डचेने के अनुसार 16वीं सदी के बाद से मानववाद से अभिप्राय उस दर्शन का रहा है, जिसमें केन्द्र व प्रमाण दोनों मनुष्य ही है।[2] मानवाद वह पद्धति है जो मनुष्य के सम्मान व प्रतिष्ठा पर आधारित है।

प्राय: ऐसा देखा गया है कि मानववाद और मानवतावाद शब्दों को समानार्थी रूप में प्रयुक्त किया गया है जबकि इन दोनों के बीच पर्याप्त अन्तर है। इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रेलीजन एण्ड एथिक्स में मानववाद को निम्न प्रकार से परिभाशित किया गया है-

मानववाद तथ्यात्मक है और मूलरूप से वह एक सिद्धांत है, दर्शनशास्त्र की पद्धति मात्र नहीं है बल्कि यह अमानवीयतर्क का विरोध करता है। मानववाद दर्शन न होकर दार्शनिक दृष्टिकोण है।

मानववाद की भाँति मानवतावाद भी मनुष्य की सद्प्रवृत्तियों की सत्ता को ही विशिष्टता प्रदान करता है लेकिन मानववाद में जहाँ शुद्ध रूप से तर्क और बुद्धि का हामी है, वहाँ मानवतावाद व्यक्ति की संवेदनशील प्रवृत्ति को ही व्यक्ति वैशिष्ट्य की प्रेरणा के रूप में मानता है। मानववाद का क्षेत्र केवल मनुष्य समाज तक सीमित है इसकी तुलना में मानवतावाद का भाव क्षेत्र व्यापक है और उसकी करूणा के विस्तृत आयाम में मानव समाज के साथ-साथ वस्तु जगत के समस्त जीवों के प्रति उदारता, संवेदना एवं सहानुभूति के भाव आवृत्त हैं।

भारतीय दार्शनिक चिंतन में मानवतावादी दृष्टिकोण अत्यंत प्राचीन काल से ही देखा जा सकता है। प्राचीन काल में भारतीय विद्वानों एवं प्रबुद्ध आचार्यों ने इस उदात्त चेतना की अभिव्यक्ति में व्यक्ति में सात्विक गुणों के विकास और उसे आध्यात्मिक जीवन की दिशा में प्रेरित करने के लिए की थी। वैदिक काल में व्यक्ति के आध्यात्मिक एवं लौकिक दोनों स्वरूपों को प्रतिष्ठित एवं विकसित करने का प्रयास हुआ। भारतीय चिन्तन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों ही क्षेत्रों में मानवीय तत्त्वों को लेकर प्रतिष्ठित हुआ है। न तो पूर्णरूप से पश्चिमी विचारकों की भाँति धर्म निरपेक्ष रहा और न ही पूर्णतया धर्मसापेक्ष ही।

भारतीय दर्शन सारत: आध्यात्मवाद पर आधारित है परन्तु हमारे इतिहास के भिन्न-भिन्न युगों में भारतीय विचारधारा पर शक्तिशाली प्रभाव डाला है। भौतिकवाद के प्रतिपादक चार्वाक दार्शनिकों ने मनुष्य को ही समस्त क्रियाओं का केन्द्र माना है। भारत ही नहीं बल्कि विश्व के सभी श्रेष्ठ चिंतकों, दार्शनिकों एवं समाज सुधारकों ने भी मानवतावाद की स्थापना के लिए ज्ञान के साथ-साथ आचार को भी महत्व देते हुए मानवतावादी भावना से अभिप्रेरित दिखाई देते हैं। इस रूप में संसार के सभी प्राचीन धर्म मानवतावाद की भूमिका पर प्रतिष्ठित हैं। मानवतावादी दृष्टिकोण के अन्तर्गत मानव के साथ-साथ प्रत्येक प्राणी शांति, सौहार्द एवं सद्भावना के साथ जीवन निर्वाह कर सके इस प्रकार का विवेचन देखा जा सकता है।

भारतीय दार्शनिक चिंतन के अन्तर्गत संक्षिप्त रूप से कुछ महत्वपूर्ण मानवतावादी दृष्टिकोण निम्नलिखित है-

जैन दर्शन श्रमण परम्परा का प्रतिनिधि दर्शन है यह धर्म सुधार के आन्दोलन के रूप में विकसित होने के कारण नैतिकता पर विशेष बल देता है। जैन दर्शन की शाब्दिक उत्पत्ति 'जिन' से है जिसका अर्थ विजेता होता है, जिनकी उपासना करने वाले जैन कहलाते हैं। दर्शन की दृष्टि से जैन दर्शन का प्रारम्भ ई0पू0 छठी शताब्दी में वैदिक धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में बौद्ध दर्शन के साथ-साथ हुआ।[3] इसके नेतृत्वकर्त्ता के रूप में महावीर स्वामी को जाना जाता है।

मानवतावादी दृष्टिकोण मानव को केन्द्रीय बिन्दु मानकर अपने मतों एवं सिद्धांतों को प्रस्तुत करता है जिसके अन्तर्गत मानव कल्याण एवं सौहार्दपूर्णता का भी जिक्र मिलता है इसी प्रकार जैन दर्शन में अहिंसा को बहुत ही स्पष्टता के साथ परिभाशित किया गया है जो जीव मात्र के कल्याण की ही बात करता है। भारतीय दर्शन के विकास में अहिंसा की स्थापना में जैन दर्शन की मुख्य भूमिका है। जैन दर्शन ने 'अहिंसा परमोधर्म:' का उद्घोश किया जिसे परवर्ती सभी दर्शनों ने स्वीकार किया। जैन दर्शन में मुख्य दृष्टिकोणों के अन्तर्गत एकमत स्वावलम्बन से भी सम्बंधित है जिसके अनुसार प्रत्येक आत्मा अपने पुरुषार्थ के बल पर परमात्मा बन सकती है। इसके लिए मात्र इतनी आवश्यकता है कि आत्मशक्तियों को पहचाना जाए और बाधक तत्त्वों पर विजय प्राप्त करके

आत्मशक्ति का पूर्ण विकास किया जाय। जैन दर्शन का मानना है कि प्रत्येक जीव असीमित शक्तियों का स्वामी है यह शक्ति ज्ञान, पुरुषार्थ एवं संकल्प शक्ति है जो जीवका अभिन्न स्वरूप है।[4] जैन दर्शन आत्मोन्नति का समान अवसर प्रदान करता है सभी प्राणियों के लिए, इस दर्शन का यह दृष्टिकोण अत्यंत व्यवहारिक है। जैन की आचारमीमांसा भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। मात्र ज्ञानात्मक उपक्रम के द्वारा व्यक्ति सांसारिक बाधाओं को नहीं जीत सकता अपितु इसके लिए ज्ञान के साथ-साथ आचरण करना भी आवश्यक है। जैन दर्शन में जीवका स्वरूप, मानवीय गरिमा के प्रति पूर्णनिष्ठा, अहिंसावादी दृष्टिकोण, सर्वकल्याण की बातें, मानव व जगत का सम्बंध इत्यादि कई ऐसे विचार मिलते हैं जो मानवीय उत्कृष्टता को बढ़ावा देने एवं उनके कल्याण की बात करता है।

बौद्ध धर्म में मनुष्य के जीवन और संघर्ष पर अत्यंत गम्भीर चिंतन किया गया है। यह दर्शन कल्याणकारी मानवता की स्थापना पर विशेष बल देता है। जिसे मानवतावादी दर्शन की विशेषता के रूप में समझ सकते हैं। इसमें मानव जीवन को अत्यंत महत्वपूर्ण मानते हुए तप, योग एवं सदाचरण द्वारा दु:ख निजात की बात की गई है। बुद्ध ने स्वयं तत्त्वमीमांसीय प्रश्नों के समाधान की अपेक्षा साधारण बुद्धि की मान्यताओं के समाधान का मार्ग सुझाया है।[5] बुद्ध स्वयं इस बात के समर्थक थे कि आध्यात्मिक ज्ञान वाद-विवाद से नहीं वरन् आचार-विचार से प्राप्त होता है।[6] भारत में प्राचीन बौद्ध दर्शन में आधुनिक मानवतावादी दर्शन की सारी विशेषताएँ विद्यमान हैं। जिस आधुनिक मानवतावाद की आवश्यकता आज विश्व महसूस कर रहा है महात्मा बुद्ध ने उसे छठी शताब्दी ई0पू0 ही भारत की तपोभूमि पर प्रस्तुत किया था। सर्वप्रथम प्रत्यक्षवाद की धारणा बुद्ध ने प्रस्तुत की उनके अनुसार जगत की सम्पूर्ण व्यवस्था प्रत्यक्ष घटनाओं पर आधारित हैं। बुद्ध के प्रत्यक्षवादी दर्शन के मूल में प्रतीत्मसमुत्पाद का सिद्धांत हैं जिसे बुद्ध ने दूसरा आर्यसत्य कहा। यह सिद्धांत भगवान बुद्ध के उपदेशों का आधारभूत सिद्धांत है जो दु:ख को जीवन व्यापी एवं अनिवार्य मानकर उससे बचने के लिए नवीन मार्गों का अनुसंधान करता है।[7] प्रतीव्यसमुत्पाद का प्रयोग कारण कार्य सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया गया है, जिसके अनुसार कारण होने पर कार्य की उत्पत्ति होती है। यह सिद्धांत अच्छे कर्म का शुभ परिणाम एवं बुरे कर्म का अशुभ परिणाम जैसी अनिवार्यता को सिद्ध करता है। इस प्रकार से बौद्ध दर्शन का मानवतावादी दृष्टिकोण उसके भवचक्र, नैरात्मवाद, अनीश्वरवाद, अष्टांगिक मार्ग इत्यादि सभी मतों में परिलक्षित होता है जिसके अन्तर्गत मनुष्य के कल्याण एवं महत्ता को विशेष स्थान प्राप्त है।

मानवतावाद मानव अस्तित्व के लिए एक अनिवार्य विचारधारा है। इसके अन्तर्गत भारतीय दर्शन में विभिन्न विचारकों का मत है। प्राचीन मत के साथ-साथ कुछ समकालीन एवं आधुनिक विचारकों का मत भी है, जिसमें स्वामीविवेकानन्द, श्री अरविन्द, प्रो0 एन0 के0 देवराज, मानवेन्द्रनाथ राय के विचार महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

विवेकानन्द एक महान मानवतावादी एवं आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के प्रवर्तक थे। उन्होंने अपने चिंतन में स्वतंत्रता को बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया था। उनका कथन है कि "जीवन सुख और समृद्धि की एकमात्र शर्त चिन्तन और कार्य में स्वतन्त्रता है।" शारीरिक, मानसिक तथा दूसरों को उसकी ओर अग्रसर होने में सहायता देना मनुष्य का सबसे बड़ा पुरस्कार है, जो सामाजिक नियम इस स्वतंत्रता के विकास में बाधा डालते हैं वे हानिकारक हैं और उन्हें शीघ्र नष्ट करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। उन संस्थाओं को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए जिनके द्वारा मनुष्य स्वतन्त्रता के मार्ग पर आगे बढ़ता है। उनका दृढ़ विचार था कि समाज के प्रत्येक सदस्यों को स्वतन्त्रता का समान अवसर मिलना चाहिए। समाज के सभी सदस्यों को धन, शिक्षा तथा ज्ञान प्राप्त करने का समान अधिकार होना चाहिए। विवेकानन्द मानव व्यक्तित्व की गरिमा पर बल देते थे और कहते थे कि आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति को अपने अहं का देश और राष्ट्र के साथ तादात्म रखना चाहिए।

वे अन्तर्राष्ट्रीयतावाद और विश्व बन्धुत्व के प्रबलसमर्थक थे। विवेकानन्द के अनुसार वह व्यक्ति जिसमें आत्मसम्मान, आत्मविश्वास का बोध नहीं है जो अपने अन्तर्निहित अनन्त शक्ति को नहीं जानता व पहचानता है, वह सच्चा एवं कर्मठ व्यक्ति नहीं बन सकता। इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द के विचार मानव कल्याण एवं मनुष्यकेन्द्रित हैं जिसमें सर्वकल्याण की बात विदित होती हैं।

श्री अरविन्द भी स्वामी विवेकानन्द की भाँति आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के समर्थक थे। वे अन्तराष्ट्रीयता के धरातल पर राष्ट्रवाद को स्थापित करना चाहते थे। वे विश्वराज्य की स्थापना करना चाहते थे। उस विश्व राज्य का सर्वोत्तम रूप स्वतंत्र राष्ट्रों का ऐसा संघ होगा जिसके अन्तर्गत हर प्रकार की पराधीनता, असमानता एवं दासता का विलोप हो जायेगा। श्री अरविन्द का मानना है कि हममें अभी मानव के वास्तविक स्वरूप को, वास्तविक परिप्रेक्ष्य को समझने की क्षमता उत्पन्न नहीं हुई है। हममें विभिन्न शक्तियाँ हैं, इन सभी शक्तियों का हमारी चेतना को सर्जित करने में योगदान है।[9] श्री अरविन्द का दृढ़ विश्वास था कि यदि मानव का चरम विकास करना हो तो राज्य के विचार का अतिक्रमण करके यह स्वीकार करना होगा कि सम्पूर्ण मानवजाति एक इकाई है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि श्री अरविन्द ने भी हमारे समक्ष मानव एकता का एक महान आदर्श प्रस्तुत किया और समग्रता की बात की जो कि वर्तमान मानव समाज के लिए अपरिहार्य है।

प्रो0 देवराज एक सृजनात्मक मानवतावादी चिंतक हैं, इनका मानना है कि मानव, मूलत: एक सृजनोन्मुख विशेषता से युक्त होता है। इसी आधार पर देवराज ने सृजनात्मक मानवतावाद सिद्धांत का प्रतिपादन किया। मनुष्य के अन्दर भाषा की जानकारी एवं उसके प्रयोग की क्षमता[10] ये दो विशेषताएँ हैं। मानव मूल की यह दो विशेषताएँ देवराज के सृजनात्मक मानवतावाद की धूरी है। यद्यपि यह सृजनात्मकता प्रत्येक प्राणी जगत में मिलती है किन्तु मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणियों की सृजनात्मकता, मात्र उनके इन्द्रिय बोध तक सीमित रह जाती है।[11] देवराज ने सृजनात्मकता को दर्शन की पूर्व मान्यता के रूप में स्वीकार कर साक्षात् अनुभव का विषय कहा है। सृजनात्मकता का लक्ष्य एक प्रकार का मूल्य उत्पादन है। अत: सृजनात्मक मानवतावाद को गुणात्मक मानवतावाद के रूप में देखा जा सकता है। मानव का सम्बंध भौतिक उत्पादन एवं व्यवहारिक चरित्र दोनों से होने के कारण उसका गुणात्मक विकास होता है। मनुष्य की सृजनात्मकता निरूद्देश्य न होकर नयी कल्पित स्थिति को यथार्थ के रूप में उतारने की प्रेरणा है। जिसे मानव प्रगति का भौतिक नियम भी कहा जा सकता है।[12] देवराज के मानवतावादी चिंतन का केन्द्र भी मनुष्य है, किन्तु इन्होंने अपने सृजनात्मक मानवतावाद में आध्यात्मिक अनुभूतियों को भी स्थान देकर मानवतावादी विचारधारा को और अधिक जीवनोपयोगी बना दिया।

भारतीय मानवतावादी चिंतकों में एम0 एन0 राय को नवमानवतावादी और उग्रमानवतावादी की संज्ञा दी जाती है। नवमानवतावाद दर्शन का सर्वांगीण विकास ही इनके दर्शन का मुख्य लक्ष्य है। यदि मानव को ईश्वर के हाथ का खिलौना मान लिया जाए तो हमारी योजनाएँ निरर्थक होंगी। राय केअनुसार सार्वजनिक

जीवन में मानव की स्थिति अत्यंत दयनीय है। जिस मानव ने अपनी हितपूर्ति के लिए समय-समय पर समाज, ईश्वर, राज्य, राष्ट्र, विज्ञान का अविष्कार किया आज वह स्वयं अपने अविष्कारों के कारण खो गया है।[13] डॉ0 देवराज ने जहाँ सृजनात्मक मानवतावाद में आध्यात्मिकता को स्वानुभूति का प्रत्यक्ष विषय मानकर मानवता का एक पक्ष स्वीकार किया है वहीं राय ने मानव की विवेकशीलता को भौतिक विकास का परिणाम माना है। राय के अनुसार दर्शन में मानव व्यक्तित्व अत्यंत महत्वपूर्ण है। मानव भौतिक विकास से निर्मित प्राणी है, चेतना आदि सभी बातें मनुष्य को भौतिक द्रव्य के क्रमिक विकास से प्राप्त हुई हैं। अतः राय मनुष्य को पृथ्वी पुत्र की संज्ञा देते हैं। राय के अनुसार मानव में कुछ मात्रा में भौतिक तत्त्व, कुछ मात्रा में वनस्पति, कुछ जीव एवं कुछ मानसिक तत्त्व पाये जाते हैं। ये सभी तत्त्व जबतक संतुलित रहते हैं तब तक जीवितावस्था में रहते हैं। मनुष्य में सृजनात्मकता होती है वह विकास प्रक्रिया का अंग है। मानवतावादी चिंतन में राय का मानवतावादी दृष्टिकोण सबसे वैज्ञानिक एवं अत्याधुनिक है। मानव उसकी बुद्धि एवं उसकी क्रियाशीलता के अतिरिक्त संसार में कुछ भी नहीं, यह राय के दर्शन का सारांश है और आज के चिंतन में प्रासंगिक भी प्रतीत होता है।

मानवतावाद वह सैद्धांतिक दृष्टिकोण है जो मनुष्य के सम्मान और प्रतिष्ठा के विचार पर आधारित है। साथ ही लोक कल्याण और बहुमुखी विकास तथा सामाजिक जीवन की दशा के निर्माण पर अवलम्बित है। भारतीय चिंतन में मानवतावाद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वहआध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों ही क्षेत्रों में मानवीय तत्त्वों को लेकर प्रतिष्ठित हुआ है। न पूर्णतया धर्मनिरपेक्ष रहा है न ही पूर्णतया धर्मसापेक्ष। मानवतावादी दृष्टिकोण मानवकल्याण के साथ-साथ अन्य जीवों के प्रति नैतिकता को बढ़ावा देता है जिसकी आरम्भिक काल से लेकर भावी काल तक आवश्यकता रहेगी। ऐसा भी हुआ है कि कभी-कभी मानव कल्याण मात्र के लिए अन्य सभी जीवों के साथ हिंसात्मक एवं अन्यायपूर्ण रवैया अपना लिया जाता है जो निन्दनीय रहा है। मानववादी दृष्टिकोण अगर एक सामंजस्य बनाकर चले तो हम इसे वैश्विक पटल पर सर्वात्मवादी दृष्टिकोण के तौर पर देख सकते हैं।

मानवतावादी दृष्टिकोण यदि पूरे विश्व की मानवता को एक मानकर चले तो इससे हम वसुधैव कुटुम्बकम् की तरफ कदम आगे बढ़ा सकते हैं। एक प्रकार से अगर मानवतावादी दृष्टिकोण अद्धैतवादी (किसी प्रकार का द्वैतन हो) दृष्टिकोण पर अवलम्बित हो जाये तो यह केवल उदारता की ही बात नहीं, बल्कि वर्तमान समस्याओं का हल भी है कि राष्ट्र, धर्म, जाति, रंग आदि के भेदभावों से हम उपर उठ सकते हैं और विश्व बन्धुत्व को और मजबूत कड़ी प्रदान कर सकते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि मानवतावादी दृष्टिकोण मानव संबंधी एक दार्शनिक अध्ययन है जिसकी प्रासंगिकता मानवता के लिए हमेशा रहेगी, समय-समय पर दृष्टिकोण बदल सकते हैं क्योंकि केवल आध्यात्मिक या केवल भौतिक वादी होकर सामंजस्य नहीं बना सकते वैश्विक पटल पर।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. डॉ0 देवराज, दर्शन, धर्म, अध्यात्म व संस्कृति, पृष्ठ 134
2. प्रो0 एडवर्ड चेने, इनसाइक्लोपिडिया ऑफ शोसल साइन्सेज, पृष्ठ 541
3. वाचस्पति गैरोला, भारतीय दर्शन, पृष्ठ 95
4. उत्तराध्ययन 28/11
5. एम0 हिरियन्ना, भारतीय दर्शन
6. राहुल सांस्कृत्यायन, मज्झिमनिकाय
7. जी0 सी0 पाण्डेय, बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ 76
8. चन्द्रकीर्तिवृत्ति, हेतुप्रत्ययापेक्षो भावनामुत्पादः प्रतीत्यसमुत्पादार्थः।
9. वी0 के0 लाल, समकाली भारतीय दर्शन, पृष्ठ 224
10. नन्दकिशोर देवराज, दर्शन, स्वरूप, समस्याएँ और जीवन दृष्टि, पृष्ठ 65
11. वही, पृष्ठ 34-35
12. वही, पृष्ठ 136-137
13. डी0 डी0 बंदिष्टे, नवमानवतावाद

दलित मानवतावादी: डॉ. अम्बेडकर

डॉ० शैलेन्द्र कुमार

(गोल्ड मेडलिस्ट)

UGC-NET, (Philosophy) जमुई बिहार

आधुनिक काल में भारतीय दर्शनशास्त्र के साथ सभी प्रकार के शास्त्रों ने भी समाज में व्याप्त कुरीतियों यथा-जाति आधारित भेदभाव, वर्ण आधारित भेदभाव स्त्री-पुरुष में भेदभाव आदि के विरूद्ध काफी मुखर आंदोलन के लिए तत्परता दिखाई लेकिन इन सभी से अलग डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने दलितोद्धार को ही अपने जीवन का चरम लक्ष्य बनाया। डॉ0 अम्बेडकर ने जातिगत पृथकतावादी पूर्वाग्रहों को तोड़ने का अथक प्रयास किया। डॉ0 अम्बेडकर सम्पूर्ण भारतवर्ष को जातिगत, उपजातिगत, वर्णगत जर्जर पूर्वाग्रहों से मुक्त कराकर लोकतांत्रिक, सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने के पक्षधर थे। हिन्दु समाज में पले-बढ़े बाबा साहब इसमें व्याप्त कुरीतियों एवं विसंगतियों को भली-भाँति जानते थे। इसलिए इन्होनें न केवल हिन्दू संस्कार विधि का अध्ययन किया बल्कि इसे आश्रम व्यवस्था के साथ जोड़कर मूल्यांकित करने का भी प्रयास किया। इनका मानना था कि जनहित में जो भी संस्कार अथवा सामाजिक रीति-रिवाज है, उन्हें सर्वसामान्य के लिए सुलभ बनाया जाय ताकि सामान्य मानव की स्वतन्त्रता, समता, गरिमा और प्रतिष्ठा की रक्षा हो सके।

आज जब हम इक्कीसवीं सदी में जी रहे हैं तो ऐसे में यह अत्यावश्यक हो जाता है कि मानव-मानव में सामाजिक स्तर पर कोई विभेद नहीं हो। वस्तुत: डॉ0 अम्बेडकर एक ऐसे मानवतावादी समाज की रचना करना चाहते थे जो शोशणमुक्त और सामाजिक न्याय का प्रतीक हो। अर्थात् परम्परागत वर्ण-व्यवस्था एवं जाति व्यवस्था के प्रबलतम विरोध एवं समरस, नैतिक एवं उदात्त समाज की स्थापना। उनका दलित प्रेम (तथाकथित सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक स्तर पर पिछड़ा समुदाय या जनसमूह जिसे समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता है।) समान अधिकार की प्राप्ति के लिए तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरूद्ध शंखनाद है[1]। उनका स्पष्ट मानना है कि बिना सामाजिक न्याय, समानता, बंधुत्व एवं स्वतंत्रता के आदर्श, समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। आदर्श के बिना हम सभी अपने सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सकते।

डॉ0 अम्बेडकर के विचारों को संकलित एवं एकीकृत कर उसे दार्शनिक दृष्टि से देखा जाय तो उन्हें मानवतावादी कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। हम उनके विचारों को दलित मानवतावादी की श्रेणी में रख सकते है। उनका क्रांतिकारी दलित मानवतावाद एक प्रकार से प्राचीन बौद्ध मानवतावाद और आधुनिक साम्यवाद के सन्निकट प्रतीत होता है। इन सबका मूल उद्देश्य मनुष्य को परिवर्तित करके वर्त्तमान समाज के शोशणवादी तथा अन्यायपूर्ण संरचना में व्याप्त क्लिष्टता का समूल नाश करना है। दलित मानवतावाद का उद्देश्य मानवीय मूल्यों की गरिमा को नष्ट करने वाली सभी बुराईयों का अन्त करना है। डॉ0 अम्बेडकर का स्पष्ट मानना था कि "वैसा दर्शन जो समाज को अलग-अलग बाँटता हो, जो रूचि को काम से पृथक करता हो और जो संकट काल में समाज को सामान्य क्रिया की दिशा में संसाधनों की गतिशीलता को रोकता हो, किस प्रकार सामाजिक उपयोगिता की परीक्षा की संतृष्टि करने के लिए योग्य माना जा सकता है? इनका मानना था कि "दलितो के उत्थान के बिना न तो समाज का पूर्ण विकास हो सकता है और न ही एक स्वच्छ राष्ट्र का निर्माण हो सकता है[2]। इसलिए सभी विचारकों एवं चिंतको को अपना पुरुषार्थ दलितोत्थान हेतु ही लगाना चाहिए।

डॉ. अम्बेडकर दलितोद्धार में सबसे बड़ा बाधा हिन्दू धर्म के जाति-व्यवस्था एवं वर्ण-व्यवस्था को मानते हैं। उनका मानना था कि जाति-व्यवस्था में ऐसी बंदिशे थी कि न केबल जाति के भीतर जाने पर प्रतिबन्ध थी, बल्कि जाति के बाहर जाने पर भी रोक थी। एक बार जिन्हें जाति से बाहर निकाल दिया जाता था उसके लिए अपनी अलग जाति बनाने के अलावा कोई चारा नहीं रहता था। जाति का तर्कशास्त्र इतना कठोर था कि बहिश्कृत होने पर नये-नये समूह लगातार बनते चले गए। इन क्रूर नियमों ने सामाजिक समूहों को अनेक जातियों में बदल दिया। हिन्दु समाज में अनेक ऐसी जातियाँ है जो आपस में खान-पान तो करती है लेकिन उनके अंदर का जातिवाद नहीं समाप्त हुआ। अम्बेडकर का मानना था कि जातिवादी ओछेपन के कारण हिन्दू समाज में वह एकता नहीं आ सकती जिसकी हमें आवश्यकता है। रक्त सम्बन्धों (अन्तर्जातीय विवाह) से ही पृथकता, ऊँच-नीच, घृणा-द्वेश आदि निकृष्ट भावनाओं का अन्त हो सकता है[3]। सभी बुद्धिजीवियों, विचारकों, चिंतको, दार्शनिकों से आग्रह है कि वे अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता देकर हिन्दु-धर्म में व्याप्त कुरीतियों एवं रूढ़िवादी मान्यताओं का समूल नाश करें। एक मनोवैज्ञानिक क्रांति ही ऐसी निर्मूल व्यवस्था का पूर्णत: अन्त कर सकती है।

भारतीय समाज में अस्पृषयता मानवीय गरिमा पर एक ऐसा कलंक है जिससे छुटकारा पाए बिना सभ्य समाज एवं पूर्ण विकसित मानव की कल्पना करना दिवास्वप्न के समान है। अम्बेडकर का मानना है कि सांवैधनिक रूप से भले ही छुआछूत को मिटा दिया गया किन्तु व्यवहार में सर्वत्र पाया जाता है। अस्पृषयता वस्तुत: एक मानसिक धारणा है जो स्मृतिकाल से अधिक प्रचलित हो गई। देखा जाय तो इसको भिन्न-भिन्न चिंतको ने अपने-अपने व्यापार (ज्ञान) के आधार पर अनेक तरह से परिभाशित किया है। किन्तु हिन्दू धर्म में अत्यन्त निकृष्ट कार्य करने वाले को ही अस्पृषय माना गया। डॉ0 अम्बेडकर के अनुसार "अस्पृषय" वह अभिशप्त प्राणी है जिसको छूना, देखना तो दूर साया पड़ जाने पर भी सवर्ण हिन्दू अपने आपको अपवित्र मानने लगे थे। इसलिए इस बुराई को जड़ से समाप्त करने के लिए सुनियोजित तरीके से संस्थागत आधार पर अभूतपूर्व आन्दोलन की आवश्यकता है[4]। प्रारम्भ से ही यह धारणा बनी हुई है कि जो कुछ भी किया जाना है या बदलना है वह अस्पृषयों के प्रति किया जाना या बदलना है। सवर्णो के बारे में कुछ भी नहीं किया जाना है। सामाजिक मिथक ऐसा

बन गया था कि सवर्णो के लिए कुछ करना शेश नहीं अर्थात् वे पूर्ण है। भले ही यह धारणा उचित हो या अनुचित लेकिन हिन्दू इसमें कोई परिवर्तन नहीं चाहते। हिन्दू इस बात से पूर्ण आश्वस्त हैं कि वे अस्पृषयों (दलितों) की समस्या के लिए कहीं से भी उत्तरदायी नहीं है। डॉ0 अम्बेडकर के अनुसार अस्पृषयता तभी दूर हो सकती है जब सम्पूर्ण हिन्दू सामाजिक व्यवस्था विशेष रूप से जाति प्रथा समाप्त हो जाय[5]।

वर्ण-व्यवस्था के इतिहास में पाया जाता है कि प्रत्येक वर्ण के संस्कार अलग-अलग थे। हिन्दू समाज में शूद्र अछूतों की उन्नति एवं अवनति को उनके लिए कुछ संस्कारों के निशेध के साथ जोड़ा जाता था। शूद्र अछूतों दलितों के लिए उपनयन संस्कार का विशेष निशेध था। उपनयन संस्कार सामाजिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग था। जिससे दलितों को पूर्ण रूप से वंचित कर दिया गया था। उपनयन संस्कार के द्वारा ही व्यक्तियों की प्रतिष्ठा एवं अधिकार स्थापित होते थे साथ ही साथ इस संस्कार के द्वारा ही बच्चों को पुरोहितों द्वारा यज्ञोपवीत (जनेउ) धारण करवाया जाता था। यज्ञोपवीत-धारी बच्चे ही वेदाध्ययन (शिक्षा) कर सकते थे। अर्थात् उपनयन संस्कार विहीन बच्चों को पूर्णत: शिक्षा ग्रहण करने पर रोक लगा था। इस अर्थ में दलितों अर्थात् शूद्रों के बच्चों का जीवन पूर्णत: अंधकार युक्त था। साजिश के तहत समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को इस संस्कार से पूर्णत: अलग रखा गया था। यही कारण है दलित स्त्री-पुरुष निरंतर कमजोर, निरक्षर, नीच, अधम एवं पिछड़ते चले गए। मानव जीवन के नींव को जो चीजें (उपनयन संस्कार) संबल प्रदान करती है उनसे इनलोगों को वंचित कर दिया गया। दलितों को सिर्फ सोलह संस्कारों में से केवल एक विवाह संस्कार की ही छूट थी। फलत: उनके संतानों की वृद्धि तो हुई किन्तु अन्धकारयुक्त तथा अज्ञान की अवस्था में रहने को विवश कर दिया गया। जिसका दुश्परिणाम हमें भारतीय समाज में सर्वत्र दिखाई देता है।

डॉ0 अम्बेडकर का स्पष्ट मानना है कि हिन्दू धर्म पर जितना अधिकार सवर्णो का है उतना ही अधिकार अस्पृषयों का भी है। हिन्दू धर्म में व्याप्त विसंगति पर कटाक्ष करते हुए उन्होनें कहा कि मैं पैदा तो हिन्दू में हुआ हूँ जो मेरे वश में नहीं था, लेकिन मैं हिन्दू होकर नहीं मरूंगा, जो मेरे वश में है। दूरद्रष्टा, दार्शनिक, सामाजिक परिवर्तन के प्रणेता डॉ0 अम्बेडकर समस्त विचारकों एवं चिंतको से आग्रह करते हुए कहते है कि हम सभी को दिशाहीनता एवं विचार शून्यता की स्थिति से बाहर आना चाहिए[6]।

डॉ0 अम्बेडकर के ठोस व्यावहारिक तर्को को देखते हुए अंग्रेजी सरकार ने भी छुआछूत के विरूद्ध सख्त एवं कठोर कानून बनाई। स्वतंत्र भारत में अस्पृषयता के लिए कठोर कानून बने। लेकिन इन सबसे अलग और भिन्न जो सबसे महत्वपूर्ण है वह वैचारिक, मानसिक एवं नैतिक रूप से दलितों को उसके अधिकार वापस दिलाना। डॉ0 अम्बेडकर के प्रयास का परिणाम था कि 29 अप्रैल 1947 ई0 में संविधान सभा ने भी छुआछूत को संज्ञेय अपराध घोशित कर दिया[7]। देश में संवैधानिक सुधारों और स्वराज प्राप्ति के कठिन दौर में डॉ0 अम्बेडकर का अछूतों के सामाजिक न्याय तथा आजादी के बाद संविधान रचना में सक्रिय भूमिका ने उन्हें दलितों का मसीहा बना दिया।

इस अर्थ में कहा जा सकता है कि डॉ0 अम्बेडकर सच्चे अर्थ में दलित मानवतावादी थे। स्पष्टत: उनका निहितार्थ यही रहा होगा कि यदि सर्वहारा वर्ग का जाति, वर्ण एवं धर्म के प्रति यही दृष्टिकोण रहा तो समाज में वह एकता नहीं आ सकती जो किसी भी राष्ट्र की सम्प्रभुता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए आवश्यक है[8]। यहाँ यह लिखना आवश्यक प्रतीत होता है कि पारम्परिक सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति की श्रेष्ठता का आधार उसकी जाति, वर्ण और कुल आदि होता था जबकि डॉ0 अम्बेडकर के आदर्श सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति की श्रेष्ठता का आधार उसकी प्रतिभा और गुण है। धर्म को परिभाशित करते हुए इन्होनें कहा कि धर्म वह साधन है जिससे मनुष्य मात्र की बुद्धि निर्मल और व्यवहार परिमार्जित होता है। धर्म लोकहित का साधन है जिसमें पाखण्ड के लिए कोई स्थान नहीं है[9]। इस भौतिकवादी युग में धर्म की अनिवार्यता को स्थापित करते हुए इसे समाज के लिए आवश्यक मानते है। लेकिन इन सबके बावजूद आज हिन्दू धर्मशास्त्रों का पुर्नमुल्याकंन एवं विश्लेशण वर्त्तमान संदर्भ में आवश्यक है[10]। धर्म को सर्वकल्याणकारी, न्यायसंगत, समानता, एकता एवं बंधुत्व का पोशक होना चाहिए। इसलिए मनुस्मृति आधारित वर्णाश्रम व्यवस्था की अवधारणा आदर्श सामाजिक संगठन का निर्माण नहीं कर सकती। कोई भी धर्म नियतिवाद का पोशक नहीं हो सकता क्योंकि नियतिवाद से व्यक्ति में कुण्ठा का आविर्भाव होता है[11]। उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते है कि डॉ0 अम्बेडकर धर्म विरोधी नहीं अपितु धर्म के अन्दर निहित विकृतियों से दुखी: थे और इसलिए वे परिमार्जन की बात करते थे जो समीचीन प्रतीत होता है।

संदर्भ

1. डॉ. बी.आर. अम्बेडकर : व्हाट काँग्रेस एण्ड गाँधी हैभ डन टु द अनटचेबल्स 1945 पृष्ठ-345।
2. डॉ. बी.आर. अम्बेडकर : एनिहिलेशन ऑफ कास्ट 1936 पृष्ठ-79।
3. डॉ. बी.आर. अम्बेडकर : राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज खण्ड-2 पेज-58, बसंत मून-1982।
4. डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के द्वारा येवला सम्मेलन 1935 में दिए गए भाषण के एक अंश से उद्दृत।
5. डॉ. बी.आर. अम्बेडकर : सम्पूर्ण वाडन्मय खण्ड-09 पृष्ठ-160 भारत सरकार प्रकाशन नई दिल्ली।
6. डॉ. बी.आर. अम्बेडकर : भारतीय समाज एवं विचारधाराएँ समता साहित्य सदन, जयपुर पृष्ठ-93।
7. मधु लिमय–डॉ. अम्बेडकर–एक चिंतक पृष्ठ-107 मस्तराम कपूर द्वारा अनुदित, मुम्बई।
8. डॉ. आर.सी. सिंह–डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक विचार पृष्ठ-80।
9. डॉ. बी.आर. अम्बेडकर : राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज खण्ड-1 पृष्ठ-63 गवर्नमेंट ऑफ महाराष्ट्र प्रकाशन बाम्बे।
10. डॉ. रामगोपाल सिंह– डॉ. भीम राव अम्बेडकर: समाज वैज्ञानिक पृष्ठ-23 मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ टकादमी भोपाल 1992।
11. केवल भारती–मंदिर में क्या रखा है? पृष्ठ-72।

साहित्य और पत्रकारिता के परिवर्तित मूल्य

डॉ० नलिनी सिंह

असि0प्रो0-हिन्दी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चुनार, मीरजापुर, उ0प्र0

सारांश

पत्रकारिता एवं साहित्य का स्वरुप आरंभ से अब तक की स्थिति में बदली हुयी है। पत्रकारिता और साहित्य का विशिष्ट सम्बन्ध है अपने आरंम्भिक स्थिति में दोनों ही मूल्यपरक, आदर्शपरक और उद्देश्य परक थीं। मूल्य से तात्पर्य सिद्धान्त और व्यवहार से है। साहित्य का मूल उद्देश्य प्रमुखत: मनोरंजन करना था जो प्रगतिशील साहित्य सम्मेलन 1936 में प्रेमचन्द के अध्यक्षीय उद्‌बोधन तथा आग्रह से परिवर्तित हुआ, काल्पनिकता ने यथार्थ का रुप लिया, आदर्श, मूल्य, नैतिकता का आग्रह पीछे छूटता चला, गया, साहित्य में कटु सत्य, विशमता, कुरीति, को स्थान दिया गया। पत्रकारिता के क्षेत्र में देखें तो यह एक मिशन के रुप में जानी जाती रही है। स्वाधीनता से पूर्व पत्रकारों ने अपने मिशन के लिये अभूतपूर्व योगदान दिया। त्याग और बलिदान के अनेक मिशाले प्रस्तुत कीं। वे अपने लक्ष्य के प्रति अटल थे। अपने मिशन के लिये, उन्हों ने प्रतिबद्धता, कर्मठता, दृढ़निश्चय, आत्माभिमान, राष्ट्रीयता, एकता और देश के एक सच्चे नागरिक के कर्तव्यों का निर्वहन किया। स्वाधीनता के बाद यह स्थिति बदली है। शोध आलेख में इन्हीं स्थितियों व कारकों को केन्द्र में रखा गया है।

बीज शब्द: साहित्य, उद्देश्य, वैश्वीकरण बाजारीकरण, मूल्य, दायित्व, हस्तक्षेप कृत्रिम भाषा।

प्रस्तावना

किसी भी विधा और किसी भी क्षेत्र में कार्य की प्रतिबद्धता दृढ़ता, कर्म के प्रति सजगता तथा सतत् परिश्रम सदैव आदर्श, मूल्य, संस्कार, नैतिकता, और बचनबद्धता की श्रेष्ठता को प्रतिष्ठापित करती रही हैं। वैचारिक ज्ञान सम्पदा की श्रीवृद्धि, विशिष्ट अप्रतिम संस्कृति की रक्षा, उन्नत राष्ट्रीयता की द्योतक रही है। राष्ट्र वसुधैवकुटुम्बकम, की भावना को प्रमुखता देता रहा है। जिस तरह पूर्व स्वाधीन भारत में सामाजिक राजनीतिक, धर्मिक, सांस्कृतिक संकट के बावजूद मूल्यों को, आदर्शों के कर्णधार अपने त्याग और बलिदान से भारत भूमि को समृद्ध करते रहे हैं, वह स्थिति स्वाधीन भारत में दृष्टिगत नहीं होती। वैश्वीकरण, औद्योगीकरण, पाश्चात्य विचारों का प्रभाव, उपयोगितावादी दृष्टिकोण, स्वार्थपरता ने मूल्यों, आदर्शों और सिद्धान्तों के मायने ही बदल दिये। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है "प्रत्येक देश का साहित्य वहॉ के जनता की चित्तवृति का प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृति के परिवर्तन के साथ साहित्य में भी परिवर्तन होता चला जाता है।"[1] निश्चित रुप से यह अवश्यंभावी और अक्षरश: सत्य है। वे आगे कहते हैं- "जनता की चित्तवृति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है।"[2] बदली हुयी स्थिति साहित्य जगत और पत्रकारिता जगत में भी देखी जा सकती है। साहित्य में ब्रज, अवधी मुख्य रुप से प्रयुक्त हो रही थी। आधुनिक युग में खड़ी बोली को महावीर प्रसाद द्विवेदी के योगदान से महत्व मिला। कथ्य और शिल्प में परिवर्तन आया। भाषा के स्तर पर कई बदलाव दृष्टिगत हुये, भाषा में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भी होने लगा। आधुनिक प्रतीकों का प्रयोग जिसका सबसे बड़ा उदाहरण है। उदाहरण के लिये 'कैक्टस', 'क्रुसेड', 'क्यूब' प्रतीकात्मक प्रयोग देखे गये। नवीन शब्दों के निर्माण से उनके मूल स्वरुप ही विलुप्त हो गये। कविताओं में गद्यात्मकता बढ़ी। विषयगत वैविध्य के साथ आधुनिकीकरण, पाश्चात्यसभ्यता और संस्कृति का प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ। अंतरंगता का अतिरेक भी सामान्य बात हो गयी है आज। वैश्विक परिदृष्य में पत्रकारिता के क्षेत्र में भी बहुत परिवर्तन हुये। सत्य क्या है? इस पर बल देने की बजाय, 'क्या होना चाहिये' पर बल दिया जाने लगा। क्या है अभी, क्या हो जायेगा कुछ कहा नही जा सकता।

हिन्दी पत्रकारिता स्वाधीन भारत के समय में अपने दृढ़ता, आदर्श और मूल मानदण्डों के निर्वहन के लिये जानी जाती थी। उस समय के पत्र-पत्रिकाओं पर स्वामित्व का वर्चस्व अथवा प्रभाव नहीं था। न ही किसी बड़े औद्योगिक घरानों व पूंजीपतियों से था। जो साहित्यकार थे वे पत्रकारिता भी कर रहे थे, उनके ऊपर दोहरी जिम्मेदारी थी, स्वन्त्रता संग्राम में भी उनकी भूमिका महत्वपूर्ण थी, उन्हें जेल भी जाना, पड़ा पत्थर भी खाने पड़े। लेखनी और स्याही के अभाव में भी 'सत्य' जनता तक पहुँचता रहा फिर भी उन्हें पारम्परिक मूल्य, आदर्श और पत्रकारिता के सिद्धान्तों के साथ कभी समझौता नहीं किया। अपनी गम्भीर और चुनौतीपूर्ण दायित्व का निर्वहन ईमानदारी से किया लेकिन वैश्वीकरण के दौर में बाजारीकरण हर क्षेत्र में अपना प्रभाव जमा चुका है।

मीडिया वर्चस्वशाली के अधीन हो चुका है या सस्ती लोकप्रियता हेतु ऐसा क्रियान्वयन किया जा रहा है। प्रश्न यह है कि क्या मीडिया अपनी नैतिकता, अपने मूल्य, विस्मृत कर चुका है? क्या उनका उत्तरदायित्व, जागरुकता, शिक्षा आदि से हट गया है? जो मूल सिद्धान्त हैं उनके या जिस भाव से कार्य होना चाहिए उसका निर्वहन कर रहे हैं। मूलमानदण्डों, आदर्शो और दायित्वों का निर्वहन हो रहा है यदि हम इस पर विचार करते हैं कि मीडिया अपने उत्तरदायित्वों से हट रहा है। पत्रकारिता मिशन से व्यापार की ओर अग्रसर है। विवेक के स्थान पर समाचारों में सनसनी खेज खबरो को स्थान दिया जा रहा है। आज की पत्रकारिता में गंभीरता का अभाव है। रामशरण जोशी कहते हैं-"मिशन और व्यावसायिकता में बुनियादी अन्तर है, मैं मिशनवादी सम्पादकों की श्रेणी में लोकमान्य तिलक, मोहनदास करमचन्द गांधी, जवाहर लाल नेहरु, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, गणेश शंकर विद्यार्थी, बाबू विष्णुराव पराड़कर, माधवराव सप्रे, माखन लाल चतुर्वेदी जैसे विभूतियों को रखना पसंद करुंगा।"[3] वे आगे कहते हैं, मिशन का दूसरा नाम है उत्सर्ग या होम करना लेकिन व्यावसायिकता में आसक्ति,

उपलब्धि, प्रतिफल उनकी साहित्य की भीत्ति 'अवैध सम्बन्धों', चारित्रिक दोशों के निरुपण से आगे नहीं बढ़ती। सत्यता के नाम पर नग्न यथार्थ को प्रस्तुत करके सफलता के परचम लहराते आगे बढ़ने में जनता के दु:ख-दर्द की सिसकियॉ कानों को बहरा कर देती है। साहित्य का एक उद्देश्य परहित की भावना भी है, वह कहीं खोज व अनुसंधान का विषय बन गया है।

पत्रकारिता के सिद्धान्त और व्यवहार के बारे में अवलोकन करने पर बहुत सारी बातें ऐसी सामने आती हैं जिससे पत्रकारिता के मानको का उल्लंघन हो रहा है जबकि पत्रकारिता और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। परिवर्तित समय में उनकी कार्य प्रणाली, दृष्टिकोण, अर्जित सुविधा और प्रबंधन में बदलाव देखा जा सकता है। स्वतंत्रता से पूर्व पत्रकारिता के क्षेत्र, पत्रिकारिता के मूल्यों और आदर्शों के प्रति समर्पित रहना अभीष्ट था, अब मूल्यों के कोई मायने नहीं है। दैनिक भास्कर के सम्पादक डॉ0 प्रदीप भटनागर कहते हैं- "लेखन, अध्यापन के क्षेत्र में सक्रिय सम्पादक का दायित्व चुनौतीपूर्ण है पेड न्यूज का मुद्दा बहुत तेजी से बढ़ रहा है।"[4] साहित्य का जो एक महान उद्देश्य होता है उस उद्देश्य को साहित्य में पूर्ण होना चाहिये।

आज के समय में मौलिक सृजन एक प्रश्न है जिस को लेकर यह कहा जा सकता है कि आज के विषय वस्तु में पहले जैसी गुणवत्ता, सत्यता नहीं है जैसे कि पहले हुआ करती थी। यह सत्य है परिवेशगत रचनाकार की वास्तविक जमीन होती है, वहीं से उसकी विचारधारा सम्बद्ध होती है। परिवेशगत सत्यता सहित्य को प्रभावित करते हैं और परिवेशगत यथार्थ को केन्द्र में रखकर साहित्य सृजन रचनाकर से अपेक्षित ही नही अनिवार्य है। साहित्य सृजित कर लेने से ही वह अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकते उन्हें निराशा में आशा का संचार, विपथगामी को सन्मार्ग पर लाने का कार्य तथा वर्तमान समस्या के अवलोकन, विश्लेशण तथा भविष्य के लिये सही दिशा निर्देश देने का कार्य करना चाहिये। वर्तमान समय में साहित्य के उद्देश्य का लोप होता जा रहा है फिर भी कहीं न कहीं साहित्य ने अपने मूल्यों का दामन थामे हुये है, या यों कहें कि वैश्विक परिदृष्य में भी भारतीयता की सुगन्ध नयी छौंक के साथ दिखायी देती है तथा कथित साहित्य सृजन जो सस्ती लोकप्रियता और प्रसिद्धि के प्रयोजन के चलते जन मानस के दु:ख दर्दों की अवहेलना करते हुये नजर अंदाज करते है उनपर लगाम कसना आवश्यक है जैसे भाव निहित हैं। पूंजी, श्रम और बुद्धि के नियोजन पर व्यावसायिकता टिकी रहती है। व्यावसायिकता में कबीराई के लिये कोई स्थान नहीं है।"[5]

वर्तमान समय में हिन्दी अखबारों पर दबाव है, भ्रमित, विकृत और भटके हुये पत्रकारों के लिये कदम उठाने की जरुरत है। मीडिया का मुख्य कार्य है कि वह अपने मूल्यों, आदर्शों को न छोड़ें, मूल मानदण्डो के अनुसार कार्य करें। वस्तुनिष्ठ, सकारात्मक व नकारात्मक पक्ष को सामने रखें। वर्तमान समय में जो अन्तर्विरोध है उस पर अंकुश लगाएं। उचित दिशा में कार्य करने के लिये मीडिया को आगे आना होगा। जनता की जागरुक करना, सरकारी नीतियों को जनता तक पहुँचाना, मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। फेक न्यूज, पेड न्यूज, टूटी फूटी, खबरों, सनसनी खवरों से दूर रहना होगा। संस्कृति, सभ्यता, का अध्ययन, अध्यापन आवश्यक है। पुस्तकें और पत्रिकाएं ज्ञान का माध्यम है, इनका सतत् सर्जन साहित्य के उद्देश्य को ध्यान में रखकर होना चाहिए। अध्यापकों का भी कर्तव्य है कि वे सामाजिक विसंगति की दिशा में साहित्य सृजन करें। समसामयिक मुद्दों पर लिख कर समाज में चेतना जागरुकता लाना चाहिए तभी परम्परित मूल्यों आदर्शो को संरक्षित रखा जा सकता है।

"मीडिया और साहित्य दोनों ही के लिये यह एक चुनौती है कि वह अपनी विश्वसनीयता बनाये रखें।" यह एक गंभीर प्रश्न है कि वह अपनी प्रासंगिकता और विश्वसनीयता दोनों कैसे बरकरार रख सकती है"[6] क्योंकि यह वह दौर है जब पूंजीवादी संस्कृति के कारण पत्र तथा पत्रकार उथल-पुथल तथा संक्रमण की स्थिति से गुजर रहे हैं।"[7]

सन्दर्भ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुल्क
2. मीडिया मिशन से बाजारी करण तक-रामशरण जोशी
3. आधुनिक पत्रकारिता-डॉ0 अर्जुन तिवारी
4. डॉ0 प्रदीप भटनागर का कथन-मीडिया स्टडीज पुनश्चर्या कार्यक्रम में बोले गये वक्तव्य का अंश दिनांक 27.03.2019
5. तद्भव-विशेष अंक-पत्रकारिता: यथार्थ आभास और दु:स्वप्न
6. तद्भव-विशेष अंक-पत्रकारिता: यथार्थ आभास और दु:स्वप्न पृष्ठ 52
7. आधुनिक पत्रकारिता-डॉ0 अर्जुन तिवारी पृष्ठ 312

महिलाओं में स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरूकता उत्पन्न करने में संचार माध्यमों की प्रभावशीलता का अध्ययन

डॉ० रीना चौरसिया

Ph.D (Ext. Edu.), NET(JRF), Assistant Professor, Deptt. of Home Science, Mahila PG College Ayodhya

सारांश

महिलायें भारत की आधी आबादी है और देश का महत्वपूर्ण मानवीय संसाधन भी। अतः महिलाओं का स्वस्थ होना अत्यन्त आवश्यक है। महिलाओं के उपर पूरे परिवार का उत्तरदायित्व होता है। अतः जब वे स्वयं स्वस्थ होगीं तभी एक स्वस्थ परिवार, समाज एवं देश स्वस्थ हो सकता है। प्रस्तुत अध्ययन में महिलाओं में स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरूकता उत्पन्न करने में संचार माध्यमों की प्रभावशीलता का अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन गोरखपुर के खोराबार विकासखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों की 110 महिलाओं पर किया गया। उत्तरदाताओं का चयन यादृच्छिक प्रतिचयन द्वारा किया गया। अध्ययन में पाया गया कि परम्परागत संचार माध्यम के अन्तर्गत अन्तरवैयक्तिक संचार माध्यमों जैसे-पारिवारिक सदस्यों, पड़ोस/रिस्तेदार/मित्र, आशा/आंगनवाड़ी/चिकित्सक आदि की प्रभावशीलता अधिक है। जनसंचार माध्यमों के अन्तर्गत इलेक्ट्रॉनिक माध्यम में टेलीविजन एवं मोबाइल अधिक प्रभावी माध्यम पाये गये। लोक संचार माध्यम, अन्तरसमूह संचार माध्यम एवं छपित संचार माध्यमों की प्रभावशीलता कम पाया गया।

मुख्य शब्दः स्वास्थ्य, संचार माध्यम, प्रभावशीलता।

प्रस्तावना

वर्तमान युग सूचना एवं संचार क्रान्ति का युग है। ग्लोबल विलेज की संकल्पना इन्हीं सूचना क्रान्ति का परिणाम है। स्वास्थ्य के लिए जन शिक्षा और जन जागरूकता के व्यापक प्रचार प्रसार के लिए सूचना एवं संचार माध्यमों का उपयोग किया जा रहा है। स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरूकता उत्पन्न करने में परम्परागत और आधुनिक संचार माध्यमों का समान रूप से महत्व है। स्वास्थ्य की दिशा में आशातीत सफलता प्राप्त करने के लिए जहां एक ओर सूचना संचार माध्यमों की व्यापक पहुंच, बोधगम्यता एवं प्रभावशीलता को बढ़ाना होगा, वहीं दूसरी ओर आम नागरिकों, विशेषरूप से ग्रामीण महिलाओं में इन माध्यमों की उपलब्धता, सहज पहुंच और निरन्तर उपयोगिता को भी बढ़ाना होगा। वस्तुतः ग्रामीण महिलायें अनेक कारणों से सूचना, शिक्षा एवं संचार माध्यमों का निरन्तर उपयोग नहीं कर पाती हैं। परिणामतः वे अपने स्वास्थ्य के प्रति समयानुसार अवगत और जागरूक नहीं हो पाती हैं। जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव महिलाओं के स्वयं के स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी योजनाओं और सेवाओं से उनकी सहभागिता पर पड़ता है और वे उन योजनाओं या सेवाओं का समुचित लाभ भी नहीं उठा पाती हैं। इससे स्वास्थ्य योजनाओं की सफलता के साथ-साथ महिलाओं के स्वास्थ्य पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अतः ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं में स्वास्थ्य सम्बन्धी शिक्षा, समझ और जागरूकता को उत्पन्न करने में विभिन्न संचार माध्यमों की पहुंच और प्रभावशीलता की पड़ताल करना अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। जिससे कि ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं को अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जागरूक बनाने के लिए विभिन्न संचार माध्यमों को अधिक सुलभ, प्रासंगिक, बोधगम्य और प्रभावी बनाया जा सके। सम्भवतः इससे जहां एक ओर स्वास्थ्य योजनाओं और सेवाओं को कारगर और लक्ष्यपरक बनाकर महिलाओं के स्वास्थ्य और पोशण को उन्नत बनाने के क्षेत्र में सफलता प्राप्त की जा सकेगी, वहीं शक्तिशाली राष्ट्र के लिए स्वस्थ और सक्षम मानवीय संसाधन का निर्माण भी किया जा सकता है।

संचार की क्षमता का पूरा अनुभव तभी किया जा सकता है, जब यह प्रभावी रूप में जनसामान्य तक पहुंचे और सक्षम, योग्य एवं संवेदनशील कार्मिक तैयार करें तथा जागरूक नागरिक भी तैयार करें, जो स्वयं कार्य करने हेतु सक्षम हो। ग्रामीण महिलाओं तक स्वास्थ्य के सन्दर्भ में विभिन्न संचार माध्यमों की पहुंच एवं प्रभावशीलता बढ़ाने की चुनौती अभी भी हमारे सामने है।

जागरूकता का संचार माध्यमों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जागरूकता के अभाव में व्यक्ति से किसी प्रकार की सक्रियता की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। किसी भी क्रिया-कलाप में भाग लेने हेतु उसके विभिन्न उपक्रमों व महत्व का समुचित ज्ञान व उसके प्रति रूचि का होना अति आवश्यक है। ग्रामीण जनता में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने के विभिन्न उपाय सरकारी एवं गैरसरकारी संस्थाओं द्वारा किये जा रहे हैं। उन्हें संचार के विभिन्न माध्यमों जैसे- रेडियो, टेलीविजन, फिल्म, समाचार पत्र, पत्रिकाओं, बैनर, होर्डिंग, चार्ट, पोस्टर, भित्ति चित्र, कठपुतली, ड्रामा, मेले एवं प्रदर्शनी इत्यादि के माध्यम से उपयोगी एवं आवश्यक जानकारी दी जा रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरूकता बढ़ाने में विभिन्न संचार माध्यमों की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

विभिन्न अध्ययनों के द्वारा भी संचार माध्यमों की प्रभावशीलता का पता चलता है। **मोनिका प्रियदर्शनी** ने मुस्लिम समाज पर संचार माध्यमों के प्रभाव सम्बन्धी अपने अध्ययन में पाया कि आधुनिक संचार साधनों का मुस्लिम समाज के रहन-सहन पर प्रभाव पड़ा हैं। **शिखा कपूर** (2012) ने भी अपने अध्ययन में पाया कि दूरदर्शन द्वारा प्रसारित स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण सम्बन्धी टेलीस्पॉट्स का अधिकांश उत्तरदाताओं के ज्ञान, जागरूकता एवं अभिवृत्ति पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। **प्रेमलता राजन** (2014) के "द इम्पैक्ट ऑफ मास कम्यूनिकेशन ऑन न्यूट्रीशन नोलेज, एटीट्यूड एण्ड प्रैक्टीस ऑफ स्लम एण्ड नान-स्लम वोमेन ड्वेर्लस ऑफ कानपुर सिटी" विषयक अध्ययन में पाया कि मलीन बस्ती (स्लम) एवं गैर मलीन बस्ती (नान स्लम) की महिलाओं पर जनसंचार माध्यमों का पोशण के ज्ञान के विकास में गहरा प्रभाव पड़ा। इसी परिपेक्ष्य में प्रस्तुत शोध पत्र में ग्रामीण महिलाओं में स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रभावी सूचना, जानकारी प्रदान करने व जागरूकता उत्पन्न करने में विभिन्न संचार माध्यमों की प्रभावशीलता का अध्ययन किया गया है।

उद्देश्य

1. ग्रामीण माहिलाओं में स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरूकता उत्पन्न करने में विभिन्न संचार माध्यमों की प्रभावशीलता का अध्ययन।

शोध विधि

प्रस्तुत अध्ययन के लिए यादृच्छिक प्रतिचयन विधि का प्रयोग किया गया। अध्ययन के लिए उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपद के खोराबार विकासखण्ड से 05 गांवों का चयन किया गया। प्रत्येक गांव से 22 परिवारों अर्थात 05 गाँवों से 18-45 आयुवर्ग के कुल 110 ग्रामीण महिलाओं को अध्ययन में सम्मिलित किया गया।

शोध उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में आंकड़ों के संग्रह के लिए शोधार्थिनी द्वारा स्वनिर्मित साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग किया गया।

तथ्यों का विश्लेष्ण

अध्ययन हेतु संकलित ऑकड़ों को श्रेणीबद्ध एवं व्यवस्थित करके सारणीयन के पष्चात् उनका विष्लेशण किया गया। जिसमें प्रतिशत एवं औसत के आधार पर निष्कर्ष निकाले गये। प्रस्तुत अध्ययन हेतु संकलित ऑकड़ों का विष्लेशण इस प्रकार है-

सारणी-1: महिलाओं में स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरूकता उत्पन्न करने में संचार माध्यमों की प्रभावशीलता

क्र0 सं0	संचार माध्यम	प्रभावशीलता		
		प्रभावी संख्या (%)	कम प्रभावी संख्या (%)	अनिश्चित संख्या (%)
1	*परम्परागत संचार माध्यम*			
	अन्तरवैयक्तिक संचार माध्यम	**71 (64.85)**	36 (32.42)	3 (2.73)
	पारिवारिक सदस्य	78 (70.91)	32 (29.09)	0 (0)
	मित्र/रिस्तेदार/पड़ोसी/अन्य	67 (60.91)	43 (39.09)	0 (0)
	क्षेत्रीय स्वास्थ्य कार्यकर्ता/आशा/ आंगनवाड़ी/चिकित्सक	69 (62.73)	32 (29.09)	9 (8.18)
	लोक संचार माध्यम (नुक्कड़ नाटक, सांस्कृतिक लोकदल)	1 (0.91)	1 (0.91)	108 (98.18)
	अन्तर समूह संचार माध्यम (चर्चा मण्डल, गोष्ठी, बैठक)	3 (2.73)	2 (1.82)	105 (95.45)
2	*जनसंचार माध्यम*			
	छपित माध्यम	19 (17.27)	4 (3.64)	87 (79.09)
	समाचार पत्र/पत्रिकायें/पुस्तकें"	34 (30.91)	3 (2.73)	73 (66.36)
	लैशकार्ड/ब्राश्चर/पम्पलेट	12 (10.91)	7 (6.36)	91 (82.73)
	चार्ट/पोस्टर/बैनर/होर्डिग्स	10 (9.09)	3 (2.73)	97 (88.18)
	इलेक्ट्रॉनिक माध्यम	35 (31.82)	15 (15.45)	60 (52.73)
	रेडियो	15 (13.64)	1 (0.91)	94 (85.45)
	टेलीविजन	66 (60)	17 (15.45)	27 (24.55)
	कम्प्यूटर इन्टरनेट सहित	2 (1.82)	0 (0)	108 (98.18)
	टेलीफोन/मोबाइल	56 (50.91)	44 (40.0)	10 (9.09)

सारणी-1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरूकता उत्पन्न करने में परम्परागत संचार माध्यमों के प्रथम श्रेणी अन्तरवैयक्तिक संचार माध्यमों के प्रथम घटक, पारिवारिक सदस्यों को अधिकांश 70.91% महिलायें स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरूकता बढ़ाने हेतु प्रभावी साधन माना है, जबकि 29.09% महिलाओं ने कम प्रभावी माना तथा उक्त माध्यमों की प्रभावशीलता के प्रति अनिश्चित महिलाओं की संख्या शून्य थी। द्वितीय घटक मित्र, पडोस, रिस्तेदार को 60.91% महिलाओं ने प्रभावी, 39.09% महिलाओं ने कम प्रभावी माना तथा ऐसी महिलायें नगण्य (शून्य) थी जो उक्त माध्यमों के प्रभावशीलता के प्रति अनिश्चित थीं। इसी प्रकार अन्य घटकों क्षेत्रीय स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं, आशा, आंगनवाड़ी व चिकित्सक को 62.73% महिलाओं ने प्रभावी, 29.09% महिलाओं ने कम प्रभावी माना तथा 8.18% महिलायें उक्त माध्यमों के प्रभावशीलता के प्रति अनिश्चित थीं।

विभिन्न घटकों के औसत के आधार पर स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरूकता उत्पन्न करने में अन्तरवैयक्तिक संचार माध्यमों को अधिकांश 64.85% महिलाओं ने प्रभावी, 32.42% महिलाओं ने कम प्रभावी माना तथा 2.73% महिलायें उक्त माध्यमों की प्रभावशीलता के प्रति अनिश्चित थीं।

परम्परागत संचार माध्यमों के द्वितीय श्रेणी, लोक संचार माध्यम को 0.91% महिलाओं ने प्रभावी, 0.91% महिलाओं ने कम प्रभावी माना जबकि अधिकांशत: 98.18% महिलायें उक्त माध्यमों के प्रभावशीलता के प्रति अनिश्चित थीं। इसी प्रकार परम्परागत संचार माध्यमों के तृतीय श्रेणी, अन्तर समूह संचार माध्यम को 2.73% महिलाओं ने प्रभावी, 1.82% महिलाओं ने कम प्रभावी माना तथा अधिकांश 95.45% महिलायें उक्त माध्यमों की प्रभावशीलता के प्रति अनिश्चित थीं।

जनसंचार माध्यम के प्रथम श्रेणी, छपित संचार माध्यम के प्रथम घटक समाचार पत्र, पत्रिकाओं को 30.91% महिलाओं ने प्रभावी व 2.73% महिलाओं ने कम प्रभावी माना तथा 66.36% महिलायें उक्त माध्यमों की प्रभावशीलता के प्रति अनिश्चित थीं। छपित संचार माध्यम के द्वितीय घटक "लैशकार्ड, ब्राश्चर, पम्फ्लेट को मात्र 10.91% महिलाओं ने प्रभावी व 6.36% महिलाओं ने कम प्रभावी माना तथा अधिकांश 82.73% महिलायें उक्त माध्यमों की प्रभावशीलता के प्रति अनिश्चित थीं। छपित संचार माध्यम के तृतीय घटक चार्ट, पोस्टर, बैनर, होर्डिंग्स को मात्र 9.09% महिलाओं ने प्रभावी व 2.73% महिलाओं ने कम प्रभावी माना तथा अधिकांश 88.18% महिलायें उक्त माध्यमों की प्रभावशीलता के प्रति अनिश्चित थीं।

जनसंचार माध्यम के प्रथम श्रेणी, छपित माध्यमों के विभिन्न घटकों के औसत के आधार पर महिलाओं में स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरूकता उत्पन्न करने में छपित माध्यमों को मात्र 17.27% महिलाओं ने प्रभावी, 3.64% महिलाओं ने कम प्रभावी माना जबकि अधिकांश 79.09% महिलायें उक्त माध्यमों की प्रभावशीलता के प्रति अनिश्चित थीं।

इसी प्रकार महिलाओं में स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरूकता उत्पन्न करने में जनसंचार माध्यम के इलेक्ट्रानिक माध्यम के प्रथम घटक रेडियो को 13.64% महिलाओं ने प्रभावी व 0.91% महिलाओं ने कम प्रभावी माना जबकि अधिकांश 85.45% महिलायें उक्त माध्यम की प्रभावशीलता के प्रति अनिश्चित थीं। इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के द्वितीय घटक टेलीविजन को 60% महिलाओं ने प्रभावी व 15.45% महिलाओं ने कम प्रभावी माना तथा 24.55% महिलायें उक्त माध्यम की प्रभावशीलता के प्रति अनिश्चित थीं।

इलेक्ट्रानिक माध्यम के तृतीय घटक कम्प्यूटर व इन्टरनेट को 1.82% महिलाओं ने प्रभावी व 0% महिलाओं ने कम प्रभावी माना जबकि अधिकांश 98.4% मातायें उक्त माध्यमों के प्रभावशीलता के प्रति अनिश्चित थी। इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के चतुर्थ घटक टेलीफोन/मोबाइल को 50.91% महिलाओ ने प्रभावी व 40% महिलाओं ने कम प्रभावी माना तथा मात्र 9.09% महिलायें उक्त माध्यमों की प्रभावशीलता के प्रति अनिश्चित थीं।

जनसंचार माध्यम के द्वितीय श्रेणी इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के विभिन्न घटकों के औसत के आधार पर इलेक्ट्रानिक माध्यम को 31.82% महिलाओं ने प्रभावी, 15.45% महिलाओं ने कम प्रभावी माना जबकि 52.73% महिलायें उक्त माध्यमों के प्रभावशीलता के प्रति अनिश्चित थीं।

निष्कर्ष

इस प्रकार उपरोक्त सारणी में प्रस्तुत तथ्यों से भी स्पष्ट होता है कि परम्परागत संचार माध्यमों में अन्तरवैयक्तिक संचार माध्यमों की प्रभावशीलता सबसे अधिक है। सम्भवत: इसका मुख्य कारण यह है कि यह माध्यम सर्वाधिक महिलाओं तक आसानी से उपलब्ध होता है जिसके कारण वे अन्य माध्यमों की अपेक्षा अन्तरवैयक्तिक के अधिक सम्पर्क में रहती हैं और चूंकि यह संवाद प्रत्यक्ष होता है, के कारण अधिक प्रभावी होते हैं। जनसंचार माध्यमों की अपेक्षा परम्परागत संचार माध्यम तुलनात्मक रूप से अधिक प्रभावशाली पाया गया है। परन्तु परम्परागत संचार माध्यम के अन्तर्गत ही लोक संचार माध्यम एवं अन्तर समूह संचार माध्यम की प्रभावशीलता नगण्य है। जिसका मुख्य कारण है ग्रामीण क्षेत्रों में उनकी उपलब्धता व पहुंच का न होना जिसके कारण महिलाओं को इन माध्यमों से सूचना व जानकारी नहीं मिल पाती है।

इसी प्रकार जनसंचार माध्यम के इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के अन्तर्गत टेलीविजन व मोबाइल फोन की उपलब्धता व पहुंच अधिक होने के कारण उनकी प्रभावशीलता भी अधिक देखी गई है। जबकि छपित माध्यमों जैसे- चार्ट, पोस्टर, पम्पलेट, समाचार पत्र आदि तथा इलेक्ट्रॉनिक माध्यम में रेडियो, कम्प्यूटर इन्टरनेट आदि की प्रभावशीलता कम है। समाचार पत्र-पत्रिका कोटि के संचार माध्यमों का ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरूकता बढ़ाने में समाचार पत्र, पत्रिकाओं का प्रभाव व योगदान और अधिक बढ़ सकता है, बशर्ते गांवों से निरक्षरता को पूरी तरह समाप्त कर दिया जाये। आधुनिक उन्नत तकनीकों (जैसे- कम्प्यूटर व इन्टरनेट) के उपयोग में भी अज्ञानता, अशिक्षा एवं अल्पशिक्षा एक मुख्य बाधा हैं। हालांकि वर्तमान में आधुनिक जनसंचार माध्यमों की प्रसार व उपयोग बढ़ा है। परन्तु पिछड़े ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी इसकी पहुंच बढ़ाने की आवश्यकता है।

वस्तुत: गांवों में समुचित संचार व्यवस्था एवं सूचना का अभाव है। क्योंकि आधुनिक जनसंचार माध्यम और तकनीक अभी भी ग्रामीण लोगों तक नहीं पहुंच पाये हैं और परम्परागत संचार माध्यमों को लेकर विकास कार्यों में संलग्न एजेंसिया उतनी सक्रिय, प्रशिक्षित और समर्पित नहीं है जितनी वर्तमान में उभरते ज्ञानवान समाज की मांग है। अत: परम्परागत एवं जनसंचार दोनों ही माध्यमों को समुचित समिश्रण के उपयोग से वर्तमान ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं में स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरूकता लायी जा सकती है।

संदर्भ ग्रन्थ

- भारत 2014, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय (भारत सरकार)
- प्रियदर्शनी, मोनिका (2006). मुस्लिम समाज पर संचार माध्यमों का प्रभाव–लखनऊ महानगर के मुस्लिम समुदाय के संदर्भ में एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (पी. एच.डी. थेसिस). समाजशास्त्र विभाग, हे0न0ब0ग0वि0 विद्यालय श्रीनगर (गढ़वाल).
- कपूर, शिखा (2012). ए स्टडी ऑफ हेल्थ एण्ड फैमिली वेलफेयर टेली स्पॉट्स (एबस्ट्रेक्ट ऑफ द पीएच.डी. थेसिस). प्रौढ़ सतत् शिक्षा एवं प्रसार विभाग, जामिया मिलिया इस्लामियां, नई दिल्ली.
- कुरूक्षेत्र, अक्टूबर 2011, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय (भारत सरकार)
- राजन, प्रेमलता (2014). द इम्पैक्ट ऑफ मास कम्यूनिकेशन ऑन न्यूट्रीशन नोलेज, एटीट्यूड एण्ड प्रैक्टीस ऑफ स्लम एण्ड नान-स्लम वूमेन डवेलेर्स ऑफ कानपुर सिटी (पी.एच.डी. थेसिस). फैकल्टी ऑफ होम सांइस, बुन्देलखण्ड यूनिवर्यसिटी, झांसी.
- सरदाना, चंद्रकान्त व मेहता, कृ0शि0 (2004). जनसंचार, कल, आज और कल (प्रथम संस्करण). ज्ञान गंगा प्रकाशन, दिल्ली.
- शा, गीता पुष्प (2011). प्रसार शिक्षा. विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा.

छत्तीसगढ़ सहकारी बैंक द्वारा संचालित केसीसी योजना की प्रगति तथा शून्य ब्याज दर की ऋण वितरण राशि में प्रभावशीलता का अध्ययन

डॉ० बुद्धेश्वर प्रसाद सिंघरौल

सहायक प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग, गुरूघासीदास विश्वविद्यालय

चुलेश्वर

शोधार्थी, वाणिज्य विभाग, गुरुघासीदास विश्वविद्यालय

अमूर्त

प्रस्तुत अध्ययन छत्तीसगढ़ सहकारी बैंक के किसान क्रेडिट कार्ड योजना के प्रगति तथा शून्य ब्याज दर पर ऋण वितरण की प्रभावशीलता का अध्ययन करता है। अध्ययन के लिए वर्ष 2001-02 से 2018-19 के द्वितियक समंक का प्रयोग किया गया है। जिसमें सहकारी बैंक द्वारा किसान अल्पावधि ऋण वितरण राशि, ऋण वितरण लक्ष्य राशि का प्रयोग किया गया है। द्वितियक समंक का संकलन छत्तीसगढ़ आर्थिक सर्वेक्षण, छत्तीसगढ़ अपेक्स बैंक वेबसाइट के माध्यम से किया गया है। समंक विश्लेशण के लिए प्रतिशत, संयुक्त वार्षिक वृद्धि दर, टी-परीक्षण व ग्राफ का प्रयोग किया गया है। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि सहकारी बैंक के ऋण वितरण लक्ष्य प्राप्ति राशि में वर्षवार अन्तर विद्यमान हैं। ऋण वितरण राशि का अध्ययन अवधि में संयुक्त वृद्धि दर 18.57 प्रतिशत रहा है तथा औसत लक्ष्य प्राप्ति 88.04 प्रतिशत है। सहकारी बैंक द्वारा शून्य ब्याज दर पर ऋण उपलब्धता एक प्रभावशाली निर्णय है जिससे ऋण वितरण राशि में सार्थक अन्तर प्राप्त हुआ है।

परिचय

छत्तीसगढ़ राज्य की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या का जीवनयापन कृषि पर निर्भर है। प्रदेश के 37.76 लाख कृषक परिवारों में से 76 प्रतिशत लघु एवं सीमांत श्रेणी में आते है।[1] प्रदेश की जनता की एंव किसानों के जीवन स्तर में निरन्तर वृद्धि के उद्देश्य से उन्हें आवश्यकतानुसार साख सुविधा उपलब्ध करना जिससे वे अपनी आय व कृषि उत्पादकता बढ़ा सके। जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक एंव प्राथमिक कृषि सहकारी साख समितियों को आर्थिक एवं लोकतांत्रिक रूप से मजबूत बनाना जिससे वे सशक्त ग्रामीण भारत के लिए कृषक समुदाय को उच्च स्तरीय व्यवसायिक सेवाएं उपलब्ध करा सके।[2] सर्वप्रथम 1889 मे बड़ौदा में साख समिति की स्थापना कि गई जो कि पहले सहकारी समिति अधिनियम के पारित होने से 15 साल पहले थी। प्रथम सहकारी समिति अधिनियम 1904 मे पारित किया गया था। भारतीय वित्तीय प्रणाली में सहकारी संगठन एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सहकारी संगठनों को प्रारंभ में औपचारिक रूप में भारत के ग्रामीण आबादी को ऋण प्रदान करने वाली सस्था के रूप में विकसित किया गया था। इस प्रकार सहकारिता संगठनों को वित्तीय समावेशन के प्रमुख साधन के रूप में माना जाता है जिसकी पहुँच सुदूर ग्रामीण क्षेत्रो तक है। हालांकि ये संगठन इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। वित्तीय समावेशन की प्रक्रिया उनकी वित्तीय व्यवहार्यता और सुदृढ़ता बनी रहे चिता के प्रमुख क्षेत्र है। यदि उनके वित्तीय स्वास्थ में सुधार हुआ तो वित्तीय समावेशन की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान कर सकते है। (के.एस. निकाम 2014) ग्रामीण सहकारी संरचना अल्पकालिक और दीर्धकालिक संरचना में विभाजित है। अल्पकालिक सहकारी सरंचना एक तीन स्तरीय संरचना है जिसमें शीर्श स्तर पर राज्य सहकारी बैंक शामिल है। जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक मध्यवर्ती जिला स्तर और प्राथमिक कृषि साख समितियां ग्रामीण स्तर पर है।अल्पावधि ऋण सहकारी समितियां इस संरचना को संघीय सरंचना के रूप में जाना जाता है। (के.एस. निकाम 2014) भारत में सहकारी आंदोलन मुख्य रूप से ग्रामीण ऋण की समस्या के समाधान के लिए शुरू किया गया था। भारतीय सहकारी बैकिंग का इतिहास 1904 मे सहकारी समितियों अधिनियम के पारित होने से शुरू हुआ। इस अधिनियम का उद्देश्य सहकारी ऋण समितियों की स्थापना करना किसानों कारीगरों और सीमित साधनों के व्यक्तियों के बीच मितव्यता, स्वंय सहायता और सहयोग को प्रोत्साहित करना था। इस अधिनियम के तहत कई सहकारी ऋण समितियों

की स्थापना की गई थी। सहकारी समितियां अधिनियम 1912 ने सहकारी ऋण की देखरेख लेखा परीक्षा और आपूर्ति के लिए नए संगठनों की स्थापना की आवश्यकता को मान्यता दी।[3] प्रदेश में 1333 प्राथमिक कृषि साख सहकारी समिति संचालित है इन समितियों में 20.98 लाख कृषक सदस्य है। कृषकों का अल्पकालिक कृषि प्रयोजन हेतु दिये जाने वाले ऋण शून्य प्रतिशत ब्याज दर होता है। ऋण की अधिकतम सीमा रू 5 लाख तथा फसल ऋण में नगद एंव वस्तु का अनुपात 60:40 है। प्राथमिक कृषि साख सहकारी समितियों के माध्यम से वर्ष 2014 से ब्याज मुक्त अल्पाकालिन कृषि ऋण उपलब्ध कराया जा रहा है। कृषि ऋण सुलभता से उपलब्ध कराने हेतु सहकारी समितियों द्वारा कृषकों को सितम्बर 2019 की स्थिति में 10.80 लाख रूपे केसीसी कार्ड प्रदान किये गए है।[4]

अध्ययन का उद्देश्य

1. छत्तीसगढ़ सहकारी बैंक द्वारा संचालित केसीसी योजना की वर्षवार ऋण वितरण राशि तथा लक्ष्य प्राप्ति के आधार पर प्रगति का अध्ययन करना।
2. छत्तीसगढ़ सहकारी बैंक द्वारा शून्य ब्याज दर का ऋण वितरण राशि पर प्रभावशीलता का अध्ययन करना।

परिकल्पना

शून्य परिकल्पना - छत्तीसगढ़ सहकारी बैंक के ऋण वितरण पर शून्य ब्याज दर से सार्थक अन्तर नही है।

वैकल्पिक परिकल्पना - छत्तीसगढ़ सहकारी बैंक के ऋण वितरण पर शून्य ब्याज दर से सार्थक अन्तर है।।

शोध प्रविधि

समंक संकलन - अध्ययन द्वितियक समंक वर्ष 2001-02 से 2018-19 पर आधारित है। द्वितियक समंक का सकंलन छत्तीसगढ़ आर्थिक सर्वेक्षण तथा सहकारी बैंक के वेबसाइट के माध्यम से किया गया है।

आंकड़ो का विश्लेशण - समंक विश्लेशण के लिएटी-टेस्ट परीक्षण, प्रतिशत, संयुक्त वृद्धि दर, रेखाचित्र तथा तालिका का प्रयोग किया गया है।

$$\text{संयुक्त वृद्धि दर का सूत्र} = \left[\frac{\text{समंक का संभावित मूल्य}}{\text{समंक का वर्तमान मूल्य}}\right]^{1/n}$$

साहित्य पुनरावलोकन

1. अभय सिंह एवं अन्य 2014 "हरियाणा क्षेत्र के ग्रामीण और सहकारी बैकों में किसान क्रेडिट कार्ड योजना का निष्पादन" विषय पर अध्ययन किया। अध्ययन का उद्देश्य क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक तथा सहकारी बैंक द्वारा निर्गमित कार्ड, स्वीकृत राशि व वितरित राशि के आधार पर निष्पादन का विश्लेशण करना था। अध्ययन चर के रूप में केसीसी कार्ड निर्गमित संख्या स्वीकृत तथा वितरित राशि लिया गया। अध्ययन में द्वितीयक समंक का प्रयोग किया गया है। समंक सकंलन वर्ष 1999 से 2013-14 तक के राज्य स्तर बैकिंक समिति की कार्यसूची तथा सूक्ष्म का प्रयोग किया गया। विश्लेशण के लिए प्रतिशत तथा सयुक्त वृद्धि दर सांख्यिकीय उपकरण का प्रयोग किया गया। ज्ञात हुआ कि क्षेत्रीय बैंक ने केसीसी निर्गमन, राशि स्वीकृति तथा वितरण में सयुक्त दर 11.59, 22. 33 तथा 21.79 के साथ क्रमशः निष्पादन कर रहा है। आरआरबी के द्वारा केसीसी निर्गमन का प्रतिशत वर्ष 2003-04 मे सर्वाधिक रहा तथा राशि वितरण अधिकत वर्ष 2003-04 में मध्यम रहा और 2000-01 में 130.10 प्रतिशत का परिवर्तन पाया गया। अध्ययन वर्ष में लगभग सभी वर्शो में वितरित राशि में धनात्मक परिवर्तन देखा गया। सहकारी बैकों का केसीसी निर्गमन, राशि स्वीकृति व वितरण में संयुक्त वृद्धि दर क्रमशः -15.4,-11.6 तथा 34.4 प्रतिशत घटती दर पर रहा। केसीसी निर्गमन, स्वीकृति तथा वितरण में सर्वाधिक परिवर्तन प्रतिशत वर्ष 2000-01 में पाया गया। आरआरबी केसीसी निर्गमन, स्वीकृति तथा राशि वितरण में सन्तुष्टपूर्ण कार्य कर रही जबकि सहकारी बैंक राशि वितरण में अच्छा कार्य कर रही है। केसीसी निष्पादन के लिए बैकों द्वारा किसान जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किया जाए जिससे अधिक से अधिक किसानों को केसीसी के प्रति आकर्शित किया जा सके। फसल ऋण सीमा में वृद्धि करना चाहिए। बैक द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक से अधिक अपनी शाखा का विस्तार करना चाहिए। बैकों के समूह को मजबूत करने की आवश्यकता है ताकी कार्य निष्पादन में वृद्धि हो। सरकार द्वारा केसीसी के सुधार के लिए उचित कदम उठाने की आवश्यकता है।

2. हरदर्शन कौर एवं अन्य 2019 "पंजाब में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक का केसीसी निष्पादन का अध्ययन" किया गया।अध्ययन चर के रूप में कार्ड संख्या स्वीकृत राशि, वितरित राशि तथा वर्ष के अन्त में प्रति कार्ड अदत्त राशि को शामिल किया गया। समंक सकंलन वर्ष 2003-04 से 2014-15 के पंजाब के राज्य स्तर बैकिंक समिति के सूक्ष्म से किया गया। विश्लेशण के लिए माध्य, सहसम्बन्ध, विचरण गुणांक, संयुक्त दर, प्रतिशत सांख्यिकीय उपकरण का प्रयोग किया गया। सतलुज ग्रामीण बैंक का वार्षिक विकास दर 309.13 के साथ वर्ष 2010-11 में सर्वाधिक था। मालवा ग्रामीण बैंक का वार्षिक विकास दर 2010-11 में 603.86 के साथ सर्वोच्च स्थान पर था। पंजाब ग्रामीण बैंक का कार्ड निर्गमन वार्षिक दर 61.15 प्रतिशत के साथ वर्ष 2004-05 में सर्वोच्च था। पंजाब ग्रामीण बैंक, मालवा ग्रामीण बैक तथा सतलुज बैंक का राशि स्वीकृति औसत क्रमशः 38200.75 लाख, 9317.42 लाख, 3604.92 लाख। वर्ष 2010-11 में सतलुज ग्रामीण बैंक का स्वीकृत राशि वार्षिक वृद्धि दर 355.58 सर्वाधिक रही। कार्ड वितरण तथा राशि स्वीकृति में सतलुज बैंक अध्ययन

वर्ष मे 100 प्रतिशत रहा है। कार्ड वितरण, राशि स्वीकति तथा वितरण मे अध्ययन वर्ष में महत्वपूर्ण सहसम्बन्ध पाया गया। अध्ययन वर्ष के दौरान केसीसी कार्ड वितरण राशि स्वीकृति तथा वितरण में उतार-चड़ाव पाया गया। पंजाब ग्रामीण बैंक का औसत कार्ड अदत्त राशि 11713.42 के साथ सर्वाधिक पाया गया। केसीसी के निष्पादन में सुधार के लिए बैकों द्वारा अदत्त ऋण राशि पर प्रभावी नियन्त्रण करना चाहिए। बैकों के द्वारा केसीसी धारकों की संख्या में वृद्धि के लिए केसीसी वितरण संख्या में वृद्धि करने की आवश्यकता है।

शोध परिणाम

तालिका 1 केसीसी से वर्षवार ऋण वितरण लक्ष्य राशि एवं लक्ष्य प्राप्ति प्रतिशत राशि (लाख रूप में)

वर्ष	अल्पावधि ऋण वितरण लक्ष्य	अल्पावधि कृषिक ऋण वितरण	कृषकों पर प्रभारित ब्याज दर प्रतिशत	लक्ष्य प्राप्ति का प्रतिशत
2001-02	21930	15242.12	14.16	69.50
2002-03	23000	26022.7	14.16	113.14
2003-04	30030	24304.86	14.16	80.94
2004-05	31100	35283.83	9	107.54
2005-06	37880	33446.4	9	93.15
2006-07	40800	45697.77	7	112.00
2007-08	65000	58819.63	6	90.49
2008-09	110500	78687.51	3	71.12
2009-10	130000	94646.02	3	72.80
2010-11	150000	111674.3	3	74.45
2011-12	180000	148126.1	3	82.29
2012-13	210000	203350.4	1	96.83
2013-14	300000	253524.7	1	84.51
2014-15	310000	249892.00	0	80.00
2015-16	330000	288410.97	0	87.40
2016-17	340000	331280.20	0	97.44
2017-18	380000	354660.97	0	93.33
2018-19	420000	327226.98	0	77.91
संयुक्त वार्षिक वृद्धि दर	**18.57%**			औसत प्रतिशत **88.04%**

(स्त्रोत–छ.ग. आर्थिक सर्वेक्षण 2018-19 पृष्ठ संख्या 74)

तालिका क्रमांक 1 में छत्तीसगढ़ सहकारी बैंक द्वारा किसान क्रेडिट कार्ड योजना के द्वारा ऋण वितरण लक्ष्य राशि तथा वास्तविक वितरित राशि को प्रदर्शित किया गया है। सारणी अवलोकन से ज्ञात होता है कि वर्ष 2002-03 (113.14), 2004-05 (107.54) तथा 2006-07 (112) में बैंक ने 100 प्रतिशत से अधिक ऋण वितरण का लक्ष्य प्राप्त किया है। बैंक ने वर्ष क्रमशः 2005-06 (93.15), 2007-08 (90.49), 2012-13 (96.83), 2016-17 (97.44), 2017-18 (93.33) में 90 प्रतिशत से अधिक ऋण वितरण लक्ष्य प्राप्त किया है। वर्ष क्रमशः 2003-04 (80.94), 2011-12 (82.29), 2013-14 (84.51), 2014-15 (80.00), 2015-16 (87.40) में 80 प्रतिशत से अधिक ऋण वितरण का लक्ष्य प्राप्त किया है। वर्ष क्रमशः 2008-09 (71.12), 2009-10 (72.80), 2010-11 (74.45), 2018-19 (77.91) में 70 प्रतिशत से अधिक ऋण वितरण का लक्ष्य प्राप्त किया है। बैंक ने वर्ष 2001-02 में सबसे न्यूनतम 69.50 प्रतिशत ऋण वितरण का लक्ष्य प्राप्त किया है। जबकि वर्ष 2002-03 में सर्वाधिक 113.14 प्रतिशत ऋण वितरण का लक्ष्य प्राप्त किया है। सहकारी बैंक ने अध्ययन अवधि में औसत रूप से 88.04 प्रतिशत ऋण वितरण का लक्ष्य प्राप्त किया है। सहकारी बैक ने वर्ष 2001-02 से

2018-19 में ऋण वितरण राशि का संयुक्त वार्षिक वृद्धि दर 18.57 प्रतिशत रहा है। छत्तीसगढ़ सहकारी बैंक का वर्षवार अल्पावधि ऋण वितरण लक्ष्य राशि तथा ऋण वितरण राशि की प्रवृत्ति को रेखाचित्र के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। रेखाचित्र से स्पष्ट होता है कि वर्ष 2001-02 से 2007-08 तक ऋण वितरण राशि लक्ष्य राशि के लगभग बराबर चल रही हैं। जबकि वर्ष 2008-09 से 2011-12 तक ऋण वितरण लक्ष्य तथा वितरण राशि में अन्तर विद्यमान है। पुन: वर्ष 2012-13 में ऋण वितरण ऋण वितरण लक्ष्य राशि को प्राप्त कर रही है। वर्ष 2013-14 से 2018-19 तक ऋण वितरण राशि ऋण वितरण लक्ष्य राशि से कम रही है। वर्ष 2017-18 व 2018-19 में ऋण वितरण राशि ऋण लक्ष्य राशि में अधिक अन्तर विद्यमान है।

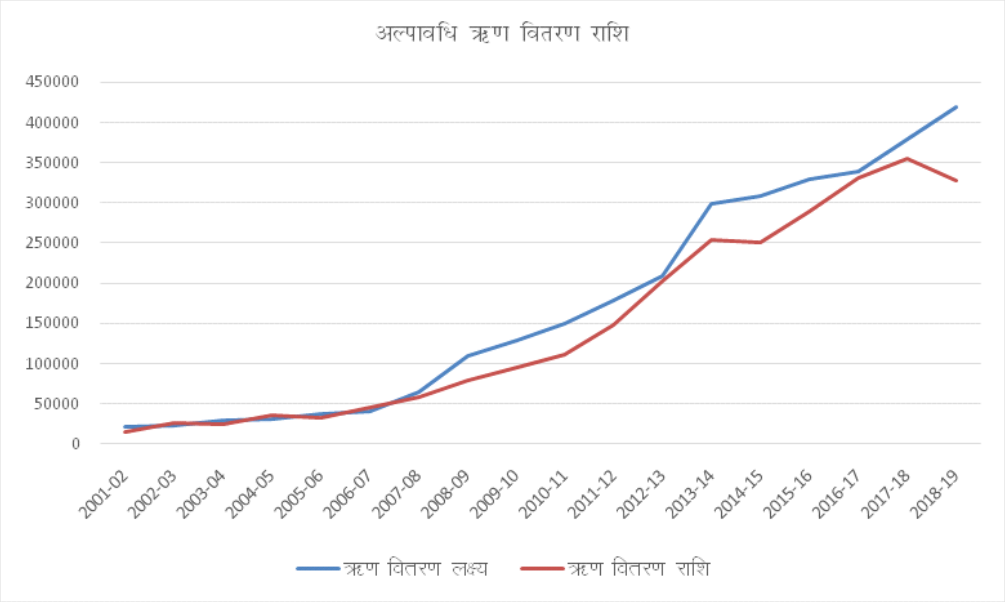

तालिका क्रमांक 2 अल्पावधि ऋण वितरण राशि (लाख रू में)

शून्य ब्याज दर के पूर्व		*शून्य ब्याज दर के पश्चात्*	
वर्ष	**ऋण राशि**	**वर्ष**	**ऋण राशि**
2009-10	94646.02	2014-15	249892.00
2010-11	111674.3	2015-16	288410.97
2011-12	148126.1	2016-17	331280.20
2012-13	203350.4	2017-18	354660.97
2013-14	253524.7	2018-19	327226.98

(स्त्रोत-छ.ग. आर्थिक सर्वेक्षण 2018-19 पृष्ठ संख्या 74)

तालिका 3 टी-परीक्षण तालिका

Paired T-test	**Variable 1**	**Variable 2**
Mean माध्य	162264.304	310294.2
Varianc मविचरण	4336999203	1.71E+09
Observations अवलोकन	5	5
Pearson Correlation कॉर्ल पियर्सन सहसबंध गुणाक	0.759487209	
Hypothesized Mean Difference परिकल्पना माध्य अन्तर	0	
Df सार्थकता सीमा	4	
t S जंजगणना मूल्य	7.571284611	
P(T<=t) one-tail	0.000815739	
t Critical one-tail	2.131846786	
P(T<=t) two-tail	0.001631478	

t Critical two-tail तालिका मूल्य	2.776445105

तालिका क्रमाक 3 में टी-परिकल्पना परीक्षण मूल्य को प्रदर्शित किया गया हैं। तालिका अवलोकन से ज्ञात होता है कि 95 प्रतिशत सार्थकता पर टी-परीक्षण का गणना मूल्य 7.5948 है जो टी-परीक्षण के तालिका मूल्य 2.7764 से अधिक है। अर्थात टी-परीक्षण शून्य परीकल्पना को अस्वीकार तथा वैकल्पिक परीकल्पना को स्वीकार करता है। टी-परीक्षण के ज्ञात होता है शून्य ब्याज दर से ऋण वितरण राशि में सार्थक अन्तर पाया गया हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सहकारी बैक द्वारा शून्य ब्याज दर से ऋण वितरण प्रभावशाली रहा है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

छत्तीसगढ़ के कुल 37.76 लाख कृषक परिवार में से 20.98 लाख किसान सहकारी साख समिति के सदस्य हैं। जिसमें से 10.80 लाख किसानों को 2019 तक किसान क्रेडिट कार्ड प्रदान किया गया है। अर्थात् वर्तमान में सहकारी साख समिति के लगभग 50 प्रतिशत किसानों को किसान क्रेडिट कार्ड जारी किया गया हैं। जबकि राज्यभर में 37.76 लाख किसान परिवार में से लगभग 28 प्रतिशत किसानों के वर्तमान में किसान क्रेडिट कार्ड धारक है। सहकारी बैंक द्वारा 2014 से शून्य ब्याज दर पर अल्पावधि ऋण उपलब्ध कराना प्रभावशाली निर्णय है। जिसके कारण छत्तीसगढ़ के किसानों को ऋण मुक्त ब्याज की सुविधा मिल रही हैं। अल्पावधि संयुक्त ऋण वितरण दर 18.57 प्रतिशत संतोशपूर्ण माना जा सकता है। सहकारी बैंक के द्वारा योजना से संबधित जागरूकता कार्यक्रम संचालित करने की आवश्यकता हैं। जिससे अधिक से अधिक किसानों को योजना के बारे में जागरूक बनाया जा सके। जागरूकता कार्यक्रम के माध्यम से सहकारी बैंक द्वारा किसान क्रेडिट कार्ड योजना के लाभार्थी किसानों की संख्या में वृद्धि किया जा सकता है। साथ ही प्रति वर्ष ऋण वितरण लक्ष्य प्राप्ति प्रतिशत में वृद्धि किया जा सकता है।

सन्दर्भ

1. छत्तीसगढ़ आर्थिक सर्वेक्षण 2016-17
2. छत्तीसगढ आर्थिक सर्वेक्षण 2018-19
3. छत्तीसगढ़ आर्थिक सर्वेक्षण 2019-20
4. www.cgapexbank.com
5. www.economicsdiscussion.net
6. Godara, A. S., Sihag, S., & Dhanju, K. (2014). Performance of Kisan credit card scheme in Haryana through regional rural and cooperative banks. *Abhinav International Monthly Refereed Journal of Research in Management & Technology*, *3*(9), 47-54.
7. Padma, S. Performance of kisan credit card scheme in Assam a case study of Kamrup district.
8. Bista, D. R., Kumar, P., & Mathur, V. C. (2012). Progress and performance of kisan credit card scheme with a case study of bihar. *Agricultural economics research review*, *25*(347-2016-16912), 125-135.
9. Gupta, P. D., & Dey, N. B. Performance of Institutional Agricultural Credit in Hailakandi District of Assam with Special Reference to Kisan Credit Card Scheme.
10. KUMARI SIRISHA, K. J. V. *PERFORMANCE EVALUATION OF KISAN CREDIT CARD SCHEME IN GUNTUR DISTRICT OF ANDHRA PRADESH* (Doctoral dissertation, ACHARYA NG RANGA AGRICULTURAL UNIVERSITY).
11. Kishor.S.Nikam(2014) " A comparative study of selected financial aspect of ahmednagar district central cooperative bank & Nashik District central cooperative bank" Ph.D Thesis of Brihan Maharashrta College of Commerce Pune.
12. Seethalekshmy N. (2008) "An Evaluation of the Performance of Uraban Co-perative Banks in Navimubai." Ph.D. Thesis of SNDT Women's University New Marine Lines, Mumbai.
13. Bansal G.(2012) "Performance Appraisal of Cooperative banks in Punjab" Ph.D. Thesis of Punjabi University, Patiala.

(Footnotes)

1. छत्तीसगढ़ आर्थिक सर्वेक्षण 2018-19
2. www.cgapexbank.com
3. www.economicsdiscussion.net
4. छत्तीसगढ आर्थिक सर्वेक्षण 2019-20

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के निर्धारण में तिथि निर्धारण की समस्या

डॉ० सुम्बुला फिरदौस

बी-28, अशोक नगर, पत्रकार कालोनी, इलाहाबाद-211001

सारांश

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में तिथि निर्धारण में इतिहासकारों में विरोधाभास है। आरम्भिक इतिहास में स्रोतो की कमी है एवं घटनाओं का क्रम उनके पूर्व एवं पश्चात् के स्वरूप के आधार पर निश्चित किया जाता था। बौद्ध कालीन भारत, महाकाव्य युग और संगम युग को चुनौती देना शुरू किया गया क्योंकि न ही बौद्ध युग न ही रामायण महाभारत किसी एक काल की घटनाएं है। एक अन्य मतभेद था कि भारतीय उपमहाद्वीप में मुस्लिम राजवंशों का आगमन अलग-अलग समय पर हुआ। भारत में तिथि निर्धारण का प्रारूप कुछ राज्यों जैसे मणिपुर, नागालैण्ड, मिजौरम जैसे राज्यों में निर्धारित करना कठिन है। इतिहास लेखन के प्रत्येक पक्ष में सावधान रहने की आवश्यकता है। यह अनिवार्य है कि किसी घटना का अंकन उसे देशकाल में स्थित करके किया जाए तभी उसका ऐतिहासिक निर्णय होगा। प्राचीन इतिहास लेखन के विकास पीछे अतीत के लोगों के समक्ष जो आवश्यकताऐं रही होगीं उनके विषय में हम केवल अनुमान ही लगा सकते हैं। लेखन कला विकास नगरों और राज्यों के उद्भव और विकास से जुड़ा मालुम पड़ता है। लिखित इतिहास मानव इतिहास के एक अल्प अवधि का ही इतिहास प्रस्तुत करता है।

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में तिथि निर्धारण की समस्या

भारतीय संस्कृति में चार युगो का वर्णन है- सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग एवं कलयुग। इनमे सतयुग सबसे बड़ा था। इसके वर्शो के आधी संख्या वाले वर्शो का त्रेता हुआ। त्रेता के आने पर द्वापर एवं उसके पश्चात् कलियुग आ गया। विष्णु पुराण में वशांवलियों में विभिन्न क्षेणियों के आधार पर तीन कालों का विभाजन किया गया इनमें पहला सुदूरकाल जो कि मनु एवं उनसे जुड़े हुए चक्रो से सम्बंधित है। दुसरी क्षेणी में पीढ़ियों से सम्बंधित काल पर आधारित है और अन्त में महाभारत युद्ध के बाद राजवंशों पर आधारित काल राज्य की आरम्भ होता है।[1] रोमिला थापर के अनुसार काल निर्धारण यज्ञ आदि कर्मकाण्डो के प्रभावोत्पादकता से जुड़ा हुआ था। काल सम्बंधी गणना के लिये पंचागों का प्रयोग किया गया। भारतीय विद्धानों ने मनु के धर्मशास्त्र को काल की भारतीय आवधारणाओं को समझने के लिए अन्वेशणात्मक टेक्सट के तौर पर किया। धीरे-धीरे इस सूची में अन्य ग्रन्थ जुड़ गए।

भारत में कई नामचीन इतिहासकार विद्वान और ज्ञाता हुए है जिन्होंने अपने विचार ऐतिहासिक कालानुक्रमानुसार प्रस्तुत किये है। जो कि उनके नीति विचार और भावनाओं से ओत प्रोत भा गया है। विदेशी इतिहास विदो ने भी अवलोकनार्थ अध्ययन करके विविध तथ्यों को उजागर किया है। जिसमें वैचारिक एकरूपता नहीं आ पाई है। इस प्रकार की परिस्थितियों में कालक्रम तिथियों सम्बंधी विवादों में एक औसत सर्वमान्य मत मानकर तथ्य प्रस्तुत किये जाते हैं।

विशुद्धानन्द पाठक के अनुसार तिथियों का प्रयोग सर्वप्रथम विक्रम संवत् के प्रारंभ के साथ 57 ई0 पूर्व में शुरू हुआ एक दुसरा संवत् था शक संवत् जिसे 78 ई0 में शककुशाण शासक कनिश्क प्रथम ने प्रारम्भ किया किन्तु इन दोनो से पहले प्रारम्भ होने वाले संवत् का नाम था कलिसवत् जिसकी गणना महाभारत युद्ध के बाद परीक्षित के (अर्जुन के पौत्र) के राज्याभिशेक वर्ष से आरम्भ हुई। यदि अभिलेखिक दृष्टि से देखा जाए तो अशोक प्रथम शासक था जिसने अपने अभिलेखों में विभिन्न कार्यो की गणना अपने राज्याभिशेक वर्ष की संख्याओं के आधार पर प्रस्तुत किया। उड़ीसा के हाथी गुम्फा अभिलेख में और सौराष्ट्र स्थित जूनागढ़ क्षेत्र के गिरनार से प्राप्त अभिलेख इस गणना को आरम्भ किये जाने के उत्तर भारतीय उदाहरण है। सातवी शताब्दी के बाद से ऐतिहासिक काव्य लिखे जाने लगे। उनके लेखन का उद्देश्य ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करना था। घटनाओं का क्रम उनके पूर्व एवं पश्चात् के स्वरूपों के आधार पर निश्चित किया जाता था। इस अवधारणा के फलस्वरूप तिथियों वर्शो के क्रम का महत्व नही रह जाता था।[3]

विष्णु पुराण में पीढ़ियों की सूची मनुष्य के वंशजों से शुरू होती है जिन्हें आरम्भिक क्षत्रियों का वंशज बताया गया है। वंशावलियों के रूप में वृत्तातों का निर्माण पुराणों से जाकर होता है। धर्म शास्त्रों, पुराणों एवं महाभारत आदि में वर्णित कालसम्बंधी आदिकालीन भारतीय अवधारणाओं ने आरंभ से ही विद्धानों को मसलन प्रसिद्ध विद्धान अलबरूनी को अपनी ओर आकृषित किया। अलबरूनी ने लोक प्रचलित दृष्टिकोण और खगोलविदों और गणितज्ञों के दृष्टिकोण में अंतर किया।[4]

अठरहवीं शताब्दी के अन्त में रॉयल एशियाटिक सोसायटी के स्थापित किये जाने और भारत की अन्य क्लासिकी परम्परा पर किये गये काम को व्यवस्थिति परम्परा पर किये गए काम को व्यवस्थित तरीके से लिखित रूप में दिये जाने के साथ इन अध्ययन कार्यो में तेजी आ गई। आधुनिक काल में भारतीय इतिहास

का विभाजन जनरल विसेलियस ने किया। भारतीय ऐतिहासिक चिन्तन को प्रभावित करने की दृष्टि से उपयोगिता वादियों में सबसे विशिष्ट नाम जेम्स मिल का है। वह पहला इतिहासकार था जिसने भारतीय इतिहास को तीन कालों में विभाजित किया। इन तीनों कालों को उसने नाम दिया- हिंदू सभ्यता, मुस्लिम सभ्यता और ब्रिटिश सभ्यता।[5]

स्वतंत्रता मिलने के बाद भारतीय अतीत के प्रति हिन्दू भक्तिवादी दृष्टिकोण कायम रही लेकिन काल विभाजन पर बहस शुरू हो गई। यह इसलिये सम्भव हुआ कि सामाजिक आर्थिक प्रक्रियाओं की ओर ध्यान दिया गया। उदाहरण के लिये इन विद्धानों ने बौद्ध कालीन भारत, महाकाव्य युग और संगम काल जैसे प्रवर्गो के प्रयोग की प्रवति को चुनौती देना शुरू किया। इसका कारण यह था कि ना तो बौद्ध ग्रन्थ और ना ही रामायण और ना महाभारत किसी एक काल की घटनाएं है।[6] मिल के द्वारा भारतीय इतिहास के नामकरण में अतिव्याप्ति और व्याप्ति दोनो प्रकार का दोश माना जाता है। प्रथम राजवंशीय इतिहास के आधार पर प्राचीन काल को हिन्दू काल कहना उचित नही है कारण यह है कि कितने बड़े राजवंश युनानी, शक, कुशाण ये जिन्हें इस परिस्थिति में नहीं बैठाया जा सकता है। इन राजवंशों में राजा बौद्ध थे पहले अरबों ने और बाद में औरो ने हिन्दू देश में रहने वाले लोगों के लिये इसका प्रयोग किया। इस काल के विभाजन को स्वीकार करने में बुनियादी सवाल यह उठता0 है कि भारतीय उपमहाद्वीप के अलग-अलग प्रदेशों में मुस्लिम राजवंशों का आगमन अलग-अलग समय पर हुआ। मिल का कालविभाजन राजवंशों पर आधारित है, जो उचित नही है।[7] मिल के कालविभाजन से सम्बन्धित आधारभूत मान्यता खण्डित हो गई इसके साथ यह मान्यता आई कि इस्लाम के आगमन के साथ एवं गुप्तकाल के पतन के बाद माध्यकाल का उद्भव हुआ। मध्यकाल की पृथक विशेषताएं थी जो प्रकार की राजनैतिक क्षेत्र में सामतवाद, आर्थिक क्षेत्र में व्यापार वाणिज्य का पतन, मुद्रा अर्थव्यवस्था का पतन और स्वालम्बी ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास, सामाजिक क्षेत्र में उपजातियों का विकास, ब्राह्मणवादी वर्चस्व में वृद्धि, वैश्यों की स्थिति में गिरावट धर्म के क्षेत्र में तन्त्रवाद और भक्ति का उद्भव।

रामधारी सिंह दिनकर ने मत दिया कि भारतीय इतिहास का विभाजन अनेक विकासक्रम में किया जा सकता है। कुशाण राज्य या सल्तनत राज्य या मुगल शासन का इतिहास बिना मध्य एशिया का अध्ययन किये नही जाना जा सकता है इसी प्रकार दक्षिण भारतीय इतिहास के ज्ञान के लिये दक्षिण पूर्वी एशिया के इतिहास को जानना जरूरी है।[8]

जनजीवन में जो भी परिवर्तन हुए वे प्राचीन भारतीय इतिहास के काल विभाजन के आधार पर काम कर सकते हैं। कौशाम्बी मानते है कि सामाजिक आर्थिक और संस्कृति का इतिहास काल विभाजन का तर्कसंगत आधार प्रस्तुत करता है। कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं का प्रारम्भ छठीं सदी में गुप्त शासन के अन्त के साथ हुआ। गुप्तोत्तर काल में अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ। इस तरह कृषि दासता एवं सामती कृषि व्यवस्था के उदय के साथ पृष्ठभूमि तैयार हुई। छठी सदी के अन्त में और सातवीं शताब्दी के आरम्भ को एक दुसरे से अलग करने वाला दौर माना जाता है।

;ग्वेद के काल निर्णय का प्रश्न विलक्षण है कि कोई इसे पन्चानवे हजार वर्ष पुराना मानता है तो कोई इसे दो हजार वर्ष पहले का मानता है। लोकमान्य तिलक ने ब्राह्मण ग्रन्थों का रचनाकाल चौसठ हजार वर्ष पूर्व माना था। उनके मत से सारे मन्त्र एक साथ नहीं बने। ऋशियों और वंशधरों ने समय समय पर हजारों वर्शो में मन्त्र बनाए। इस सम्बन्ध में सबसे उत्साहपूर्ण दृष्टिकोण डा0 अविनाश चन्द्रदत्त का है जो ऋग्वेद को पचास से पचहत्तर हजार वर्ष पुराना मानते हैं। जयचन्द विद्यालंकार मानते हैं कि भारत में लेखन का प्रचार ई0पू0 तीन हजार वर्ष में भी था। भारतीय परम्परा के अनुसार कलियुग का आगमन राजा परीक्षित को काल में हुआ। परीक्षित के पिता अभिमन्यु महाभारत युद्ध में मारे गए। इससे चार सौ साल पहले संहिताएं लिखी गई।

रोमिला थापर ने क्षेत्रीय समूहों का विभाजन एक क्रम के क्षेत्रों के आधार पर किया है। केन्द्रीय क्षेत्र जैसे गंगा, रायचूर सौराष्ट्र, असम का सामाजिक राजनैतिक सांस्कृतिक दशा के आधार पर विभाजन किया गया है।[10]

इतिहास के स्रोतो की कमी या साहित्यिक स्रोतो पर अधिकार पर निर्भरता की सीमा है तो आधुनिक भारत के इतिहास में स्रोतो की प्रचुरता है। यह अनिवार्य है कि किसी समस्या या घटना का अंकन उसे देशकाल में स्थित करके किया जाए तभी उसका ऐतिहासिक निर्णय होगा।[11]

यह बात होनी चाहिए कि इतिहास मानव समाज का भी हो सकता है। प्राचीन मध्यकालीन तथा अर्वाचीन इतिहास के निर्धारण का आधार क्या है। कुछ मूल संस्थाएं या उपकरण या कोई ऐसा निर्धारक क्या है जो सभी स्थितियों में लागू हो सके। युरोप का माडल भारत पर लागू नही होता है क्योंकि भारत में प्राचीन काल पाँचवी शताब्दी में और मध्यकाल पन्द्रहवीं शताब्दी में समाप्त नही होता है। भारत का मॉडल कुछ राज्यों जैसे मणिपुर पर लागू नही होता है क्योंकि वहाँ प्राचीन काल सोलहवीं शताब्दी तक चलता दिखाई देता है। नागालैण्ड तथा मिजोरम जैसे राज्यों में यह निर्धारण और कठिन होगा। विभिन्न कालों में अध्ययन की अपनी पूर्ण शर्ते हैं। विशेषताएं है जिनके प्रति सचेत हुए बिना न्याय नही हो सकता है।[12] विश्वविद्यालय के विद्यार्थी लड़ाईयों की तिथि और राजाओं की संख्या और उनकी मृत्यु की तिथि बता सकते हैं। अतीत की घटना और उनकी मृत्यु की तिथि बता सकता है। अतीत की घटना एवं तिथियों की जानकारी से इतिहास और उसका सम्बंध स्थापित हो जाता है।[13]

भारतीय इतिहास लेखन के बदलते हुए दृष्टिकोण की ओर संकेत करने का उद्देश्य प्राचीन इतिहास के लिये किये गए काय्रे का मूल्यहीन कहकर अपेक्षित करना वा उनकी विद्वता के महत्व को घटाना नही है। इनके व्याख्या की कमियां इनके युग की कमियाँ थी। इतिहासकार अपने युग का इतना अधिक प्रतिनिधित्व करता है कि यह बात उसकी सोच के बाहर होती है। अपनी कमियों के बावजूद इस अध्ययनों ने भारतीय इतिहास की नींव रखी और उसे एक कालक्रम का ढाँचा प्रदान किया जिसको आधार बनाकर नई व्याख्या प्रस्तुत की गई।[14]

इतिहास में विभिन्न अवधारणाएं है जिनको इतिहासकारों ने अपने अपने ढंग से प्रस्तुत किया, चूंकि हर व्यक्ति हर स्थल पर अपनी सोच एक भावना के दायरे में व्यक्त करता है, इसलिये उनकी अभिव्यक्ति भिन्न है।

भारत के सन्दर्भ में पूर्व इतिहास और इतिहास के बीच सीमा रेखा खींचना कठिन है। हरवंश मुखिया के अनुसार इन तीनों कालों के विभाजन में यह धारणा है कि इतिहास एक अवस्था तक पहुँचता है फिर दुसरी अवस्था में आता है। हम विकास की ओर बढ़ रहे हैं। प्राचीन काल और मध्यकाल की पृथक विशेषताएं है और आधुनिक काल की अलग विशेषताएं है। हर काल की एक अवस्था होती है जो उसे विभाजित करती है। ऐतिहासिक विश्लेशण एक निरंतर प्रक्रिया है इसलिये उन पुराने सिद्धांतो का जारी रहना जिनका महत्व अतीत के प्रमाणों के अभाव के कारण सीमित रहता है मिथक निर्माण का रूप बन जाता है जिसमें ऐतिहासिक व्यवस्था की जगह कोई और उद्देश्य पूरा होता है। कई लोग संदिग्ध प्रमाण का सहरा लेते हैं यहां तक कि मनगढ़ंत प्रमाणों का भी। इस प्रकार के लेखन का उद्देश्य ऐतिहासिक प्रमाणों को इस सीमा तक विकृत कर देता है। अत: ऐतिहासिक सामग्री का उपयोग सावधानी से किया जाय जो एक पूरे समाज को तबाह कर इन परिस्थितियों में ऐतिहासिक के प्रत्येक पक्ष के वर्णन में इतिहासकार को सावधान रहना होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

01. शेमिला थापर प्र0 41, इतिहास काल और आदिकालीन भारत-ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस-2018
02. वही....
03. विशुद्धानन्द पाठकप्राचीन भारतीय इतिहासलेखन, लखनऊ 2007, पृष्ठ 3, 5
04. रोमिला थापर इतिहास काल और आदिकालीन भारत-आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ 3, 37
05. रोमिला थापर इतिहास का पुर्नव्याख्यानई दिल्ली-2016, पृष्ठ 8, 9
06. द्विजेन्द्रनाथ झा प्राचीन भारतनई दिल्ली 1981, पृष्ठ 22
07. विष्णु प्रसाद भारतीय इतिहास में कालक्रम की समस्या
08. रामधारी सिंह दिनकर संस्कृति के चार अध्यायनई दिल्ली- 1956, पृष्ठ 25
09. रोमिला थापर प्राचीन भारतनई दिल्ली-1981, पृष्ठ 24
10. वही ....
11. लाल बहादुर वर्मा इतिहास क्यों क्या कैसेदिल्ली विश्वविद्यालय-1991, पृ 5
12. वही ....
13. लाल बहादुर वर्मा इतिहास क्यों, क्या कैसेदिल्ली विश्वविद्यालय-1991, पृष्ठ 17
14. रोमिला थापर प्राचीन भारतरोमिला थापर, नई दिल्ली-1981, पृष्ठ 17
15. रोमिला थापर इतिहास की पुर्नव्यवस्था राजकमल प्रकाशन-1991, पृष्ठ 11, 12, 13

स्नातक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के संदर्भ में शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन

नरेन्द्र कुमार

(शोधार्थी), शिक्षा संकाय, धर्म समाज कॉलेज, अलीगढ़ (उ0प्र0)

डॉ० अंजना

(एसोसिएट प्रोफेसर), शिक्षा संकाय, धर्म समाज कॉलेज, अलीगढ़

सारांश

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा स्नातक स्तर पर विद्यार्थियों की नोमोफोबिक प्रवृत्ति के संदर्भ में शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन किया गया। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का अनुसरण किया गया एवं शोधार्थी द्वारा शून्य परिकल्पनाओं 'स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्र व छात्राओं के मध्य नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के संदर्भ में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है' एवं 'स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्र व छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति (उच्च, मध्यम एवं निम्न) के संदर्भ में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है' का निर्माण किया गया। प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा डॉ0 भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध वित्तपोषित महाविद्यालयों से स्नातक की द्वितीय वर्ष (विज्ञान वर्ग) के कुल 100 विद्यार्थियों (50 छात्र व 50 छात्रायें) का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्श विधि की सहायता से किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी द्वारा आँकड़ों को एकत्रित करने के लिए स्वनिर्मित नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति मापनी व विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के मापन के लिए गत वर्ष (स्नातक की प्रथम वर्ष) के वार्षिक परिणामों को स्वीकार किया गया है। सांख्यिकीय प्रविधि के अन्तर्गत शोधार्थी द्वारा मध्यमान, मानक विचलन, प्रतिशतांक व टी-परीक्षण का अनुसरण किया गया है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में निष्कर्ष के रूप में यह पाया गया कि लिंगभेद के संदर्भ में छात्राओं के मध्य नोमोफोबिक प्रवृत्ति, छात्रों की तुलना में कम पायी गयी एवं जिन विद्यार्थियों के मध्य नोबोफोबिक प्रवृत्ति उच्च स्तरीय पायी गयी। उनकी शैक्षिक उपलब्धि निम्न पायी गयी। जबकि निम्न नोबोफोबिक प्रवृत्ति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि उच्च पायी गयी। जिससे यह कहा जा सकता है कि नोबोफोबिया का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

मुख्य शब्द (key words) : नोबोफोबिया, शैक्षिक उपलब्धि एवं लिंगभेद

1.1.0 प्रस्तावना

नोमोफोबिया (Nomophobiaaa) का अर्थ है नो मोबाइल फोबिया (No Mobile Phobia) अर्थात् मोबाइल नहीं होने का डर। यह एक तरह का फोबिया (Phobiaa) है जिसमें व्यक्ति को फोन पास न होने का डर लगता है। उसे हमेशा इस बात का डर लगा रहता है कि कहीं उसका फोन (Phone) उससे दूर न हो जाए। फोन पास न होने पर वह बैचेन हो उठता है और उसे घबराहट होने लगती है। नोमोफोबिया से ग्रसित व्यक्ति को नोमोफोब (Nomophob) कहा जाता है।दुनिया भर में हुए एक सर्वे में 84 फीसदी स्मार्टफोन उपभोक्ताओं ने स्वीकार किया कि वे एक दिन भी अपने फोन के बिना नहीं रह सकते हैं। स्मार्टफोन की इस लत यानि 'नोमोफोबिया' हमारे शरीर के साथ-साथ हमारे दिमागी सेहत को भी प्रभावित करता है।

सामान्य तौर पर देखा जा सकता है कि स्मार्टफोन इस्तेमाल करने वाले अगर
फोन घर पर भूल जाएं तो उन्हें लगता है कि इसके बगैर वो बाहर क्या होगा।

अपनी उपयोगिताओं के अलावा अनजाने में ही लोग मोबाइल फोन की अनुपस्थिति में असहज होने लगते हैं। दुनिया भर में हुए कई शोध से पता चलता है कि यदि कोई लगातार स्मार्टफोन का इस्तेमाल करता है, वह 'नोमोफोबिया' (Nomophobia) बीमारी से पीड़ित हो सकते हैं। इस बीमारी के पीड़ितों की संख्या बढ़ती जा रही है।

आजकल स्मार्टफोन हमारे जीवन का एक अहम् हिस्सा बन गया है और देखा जाए तो यह जरूरी भी है। क्योंकि रोजमर्रा के कामों में स्मार्टफोन हमारी काफी मदद करता है। मनोरंजन से लेकर सूचनाओं का आदान-प्रदान करने और इंटरनेट सह्नफग से लेकर इंटरनेट बैलकग तक हर काम में स्मार्टफोन हमारी मदद करता है। इसलिए यह हमारी जरूरत बन गया है और हम चाहकर भी इसका इस्तेमाल किए बिना नहीं रह सकते।

नोमोफोबिया (Nomophobia) के लक्षण

नोमोफोबिया (Nomophobia) के लक्षणों के संदर्भ में सभी मनोवैज्ञानिक एकमत नहीं हैं। कई मनोवैज्ञानिक इसे नशे की लत से भी ज्यादा खतरनाक मानते हैं वहीं कुछ मनोवैज्ञानिक इसे एक भय और मनोविकार का नाम देते हैं। लेकिन फिर भी कुछ सामान्य लक्षण हैं जिनकी मदद से आप 'नोमोफोबिया' से ग्रसित व्यक्ति की पहचान कर सकते हैं। पूर्व में हुए शोध अध्ययनों के निष्कर्षों के आधार पर नोमोफोबिया के अन्तर्गत विभिन्न लक्षण को पहचाना गया। जैसे-

1. लगातार 5 मिनट भी फोन चेक बिना न रह पाना, 2. फोन की बैटरी खत्म होने पर घबराहट महसूस करना, 3. फोन के बगैर रहने पर बैचेन हो उठना, 4. लरगटोन बजते ही नोटिफिकेशन चेक करने के लिए अधीर हा उठना, 5. इंटरनेट/नेटवर्क कवरेज न होने पर बैचेन हो उठना, 6. फोन के खोने अथवा घर पर छूट जाने का डर एवं 7. लचता, थकान और स्वभाव में चिड़चिड़ापन। अत: प्रस्तुत शोध की इस आधुनिक एवं तकनीकी के युग में वर्तमान शोध अध्ययन की प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी द्वारा 'स्नातक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की नोमोफोबिक प्रवृत्ति के संदर्भ में शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन' को शोध शीर्षक के रूप में चयनित किया गया है।

1.2.0 अध्ययन के उद्देश्य

1. स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्र व छात्राओं के मध्य नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति का प्रतिशत विश्लेषण करना।
2. स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्रों की नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के संदर्भ में उनकी शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करना।
3. स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्राओं की नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के संदर्भ में उनकी शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करना।

1.3.0 अध्ययन की परिकल्पना

1. स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति (उच्च, मध्यम एवं निम्न) के संदर्भ में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
2. स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति (उच्च, मध्यम एवं निम्न) के संदर्भ में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

1.4.0 न्यादर्श प्रारूप

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा डॉ0 भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध वित्तपोषित महाविद्यालयों से स्नातक की द्वितीय वर्ष (विज्ञान वर्ग) के कुल 100 विद्यार्थियों

द्ध50 छात्र व 50 छात्रायें) का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्श विधि की सहायता से किया गया है।

1.5.0 अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी द्वारा आँकड़ों को एकत्रित करने के लिए स्वनिर्मित नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति मापनी व विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के मापन के लिए गत वर्ष (स्नातक की प्रथम वर्ष) के वार्षिक परिणामों को स्वीकार किया गया है।

1.6.0 सांख्यिकीय प्रविधियाँ

सांख्यिकीय प्रविधि के अन्तर्गत शोधार्थी द्वारा मध्यमान, मानक विचलन, प्रतिशतांक व टी-परीक्षण का अनुसरण किया गया है।

1.7.0 अध्ययन की उपलब्धियाँ

1.7.1 स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्र व छात्राओं के मध्य नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति का प्रतिशत विश्लेषण करना।

शोधार्थी द्वारा स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्र व छात्राओं के मध्य नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति का अध्ययन करने के लिए नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति से सम्बन्धित आँकड़ों को प्रतिशतांक के माध्यम से तीन स्तरों (उच्च, मध्यम एवं निम्न स्तर) में विभक्त किया गया है। अत: नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के विभिन्न स्तरों (उच्च, मध्यम एवं निम्न स्तर) के अन्तर्गत छात्र व छात्राओं की संख्या एवं उनके प्रतिशत को निम्नांकित तालिका 01 में दर्शाया गया है।

तालिका 01 स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्र व छात्राओं के मध्य नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के विभिन्न स्तरों (उच्च, मध्यम एवं निम्न स्तर) के अन्तर्गत छात्र व छात्राओं की संख्या एवं उनके प्रतिशत

प्रतिशतांक	नोमोफोबिक (Nomophobic)	छात्रों का समूह		छात्राओं का समूह		कुल	
	प्रवृत्ति के स्तर	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
P_{75} से ऊपर	उच्च वर्गीय	15	30:	12	24:	27	27:
P_{25}&P_{75}	मध्यम वर्गीय	23	46:	25	50:	48	48:
P_{25} से नीचे	निम्न वर्गीय	12	24:	13	26:	25	25:

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि 30 प्रतिशत छात्रों द्वारा उच्च स्तरीय नोमोफोबिक प्रवृत्ति को व्यक्त किया गया अर्थात् लगभग एक तिहाई छात्र स्मार्ट फोन की लत से ग्रसित पाये गये। जबकि 46 प्रतिशत स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्रों द्वारा मध्यम स्तरीय नोमोफोबिक प्रवृत्ति को व्यक्त किया गया। इसी प्रकार 24 प्रतिशत छात्रों का समूह ऐसा पाया गया जो नोमोफोबिया से ग्रसित नहीं पाये गये अथवा निम्न स्तरीय नोमोफोबिक प्रवृत्ति पायी गयी।

पुन: तालिका 01 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि 24 प्रतिशत छात्राओं के मध्य उच्च स्तरीय नोमोफोबिक प्रवृत्ति पायी गयी। जबकि 50 प्रतिशत छात्राओं में मध्यम व 26 प्रतिशत छात्राओं में निम्न स्तरीय नोमोफोबिक प्रवृत्ति पायी गयी। पुन: तालिका के अवलोकन से यह कह सकते है कि संयुक्त रूप से 27 प्रतिशत स्नातक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों द्वारा उच्च नोमोफोबिक प्रवृत्ति व्यक्त की गयी। जबकि 48 प्रतिशत विद्यार्थियों द्वारा मध्यम एवं 25 प्रतिशत विद्यार्थियों द्वारा निम्न स्तरीय नोमोफोबिक प्रवृत्ति प्रदर्शित की गयी। छात्राओं की तुलना में, छात्रों के मध्य नोबोफोबिक प्रवृत्ति उच्च पायी गयी। तालिका 01 में प्रदर्शित प्रतिशत के मानों को निम्न दण्डारेख के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है।

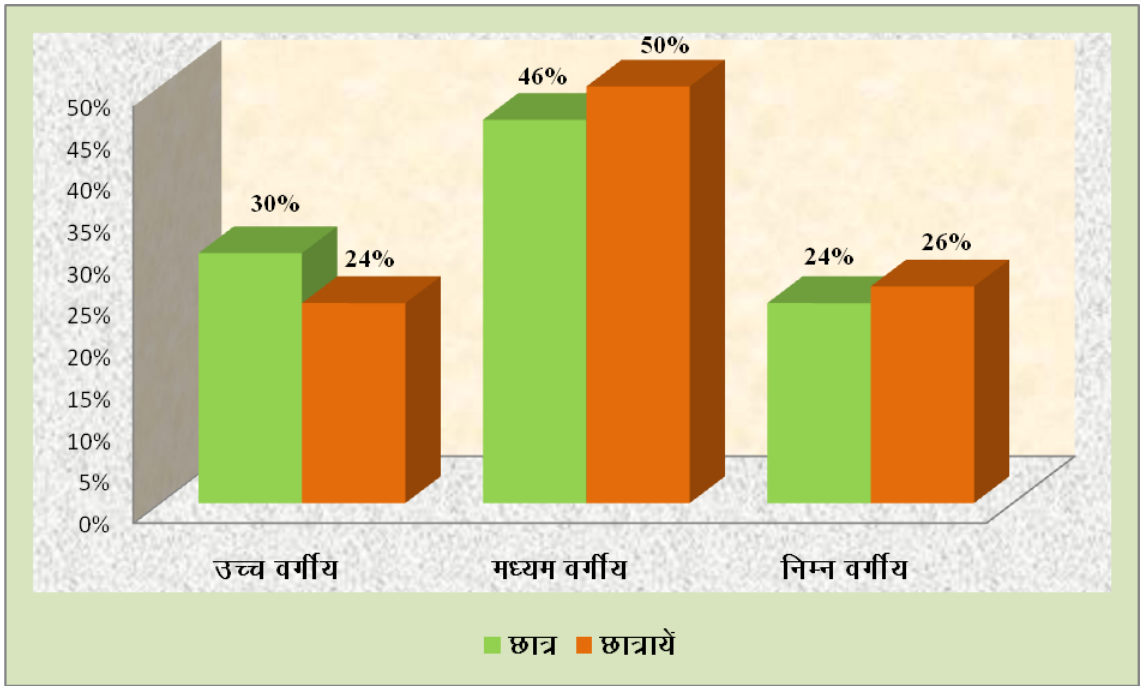

आरेख 01 स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्र व छात्राओं के मध्य नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के विभिन्न स्तरों (उच्च, मध्यम एवं निम्न स्तर) के अन्तर्गत छात्र व छात्राओं की संख्या एवं उनके प्रतिशत

1.7.2 स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्रों की नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के संदर्भ में उनकी शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करना।

स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्रों की नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के संदर्भ में उनकी शैक्षिक उपलब्धि करने के लिए शोधार्थी द्वारा नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के विभिन्न स्तरों के संदर्भ में छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक अन्तर हेतु टी-परीक्षण के मान की गणना की गयी एवं प्राप्त सांख्यिकीय मानों को तालिका सं. 02 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 02 : नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के विभिन्न स्तरों के संदर्भ में छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक अन्तर की गणना हेतु प्राप्त मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-परीक्षण का मान

नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति	संख्या	शैक्षिक उपलब्धि के विश्लेषण हेतु सांख्यिकीय मान		टी'-परीक्षण का मान	सार्थक स्तर
		मध्यमान	मानक विचलन		
उच्च	15	57.11	2.56	**2.64**	0.01 पर सार्थक
मध्यम	23	59.67	3.13		
उच्च	15	57.11	2.56	**2.86**	0.01 पर सार्थक
निम्न	12	60.14	2.95		
मध्यम	23	59.67	3.13	**0.43**	0.05 पर असार्थक
निम्न	12	60.14	2.95		

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के विभिन्न स्तरों (उच्च, मध्यम एवं निम्न) के संदर्भ में स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान क्रमशः 57.11, 59.67 एवं 60.14 पाया गया व उपरोक्त के लिए मानक विचलन का मान क्रमशः 2.56, 3.13 एवं 2.95 पाया गया। तालिका 02 में प्रदर्शित मध्यमानों से स्पष्ट होता है कि उच्च नोमोफोबिक प्रवृत्ति के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान, मध्यम एवं निम्न नोमोफोबिक प्रवृत्ति के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमान से कम पाया गया है।

नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के विभिन्न स्तरों (उच्च, मध्यम एवं निम्न) के संदर्भ में छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक अन्तर की गणना हेतु टी-परीक्षण के मान की गणना की गयी एवं उच्च व मध्यम नोबोफोबिक प्रवृत्ति के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक अन्तर हेतु टी-परीक्षण का मान 2.64 पाया गया। जोकि 0.01 विश्वसनीय स्तर पर सार्थक है। इसी प्रकार उच्च व निम्न नोबोफोबिक प्रवृत्ति के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य टी-परीक्षण का मान 2.86 पाया गया। जोकि 0.01 विश्वसनीय स्तर पर सार्थक है। पुनः मध्यम एवं निम्न नोबोफोबिक प्रवृत्ति के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक अन्तर हेतु टी-परीक्षण का मान 0.43 पाया गया जोकि 0.05 विश्वसनीय स्तर पर असार्थक है।

अतः उपरोक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि उच्च नोमोफोबिक प्रवृत्ति के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि निम्न पायी गयी। जबकि निम्न नोमोफोबिक प्रवृत्ति के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि उच्च पायी गयी। तालिका 02 में अंकित मध्यमानों को निम्नांकित आरेख द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

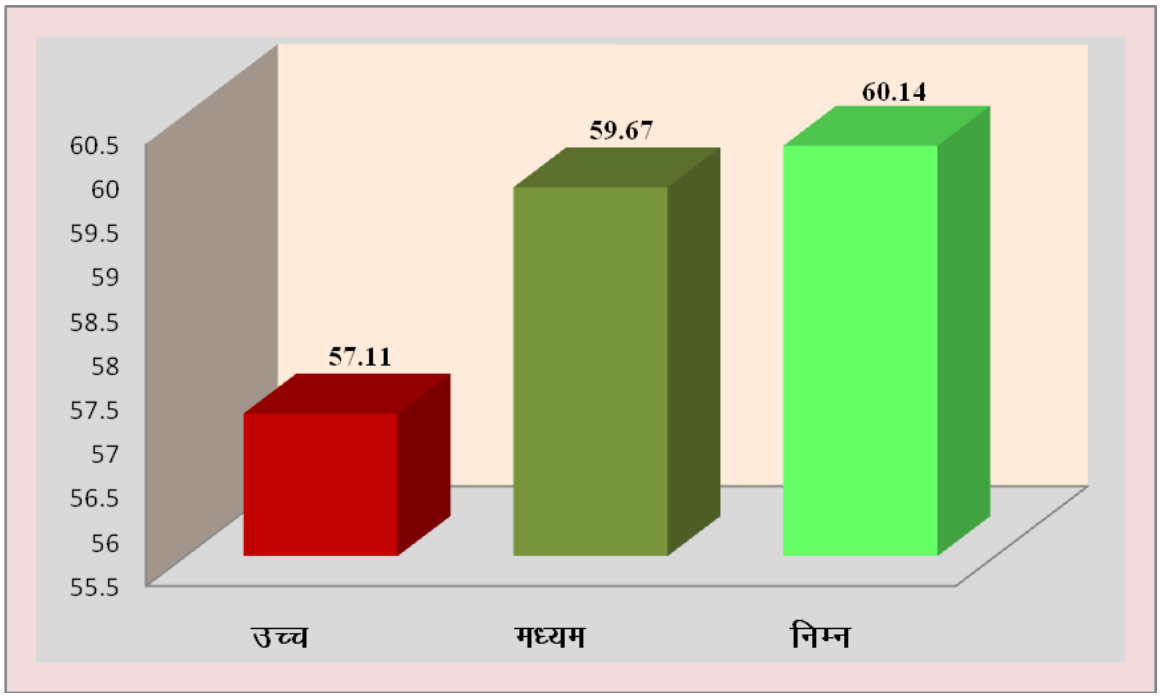

आरेख 02 नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के विभिन्न स्तरों (उच्च, मध्यम एवं निम्न) के संदर्भ में स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान

1.7.3 स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्राओं की नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के संदर्भ में उनकी शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करना।

स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्रों की नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के संदर्भ में उनकी शैक्षिक उपलब्धि करने के लिए शोधार्थी द्वारा नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के विभिन्न स्तरों के संदर्भ में छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक अन्तर हेतु टी-परीक्षण के मान की गणना की गयी एवं प्राप्त सांख्यिकीय मानों को तालिका सं. 02 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 03 : नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के विभिन्न स्तरों के संदर्भ में छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक अन्तर की गणना हेतु प्राप्त मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-परीक्षण का मान

नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति	संख्या	शैक्षिक उपलब्धि के विश्लेषण हेतु सांख्यिकीय मान		टी'-परीक्षण का मान	सार्थक स्तर
		मध्यमान	मानक विचलन		
उच्च	12	56.03	3.17	**1.01**	0.05 पर असार्थक
मध्यम	25	57.23	3.49		
उच्च	12	56.03	3.17	**2.76**	0.01 पर सार्थक
निम्न	13	59.41	2.96		
मध्यम	25	57.23	3.49	**1.91**	0.05 पर असार्थक
निम्न	13	59.41	2.96		

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के विभिन्न स्तरों (उच्च, मध्यम एवं निम्न) के संदर्भ में स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान क्रमशः 56.03, 57.23 एवं 59.41 पाया गया व उपरोक्त के लिए मानक विचलन का मान क्रमशः 3.17, 3.49 एवं 2.96 पाया गया। तालिका 03 में प्रदर्शित मध्यमानों से स्पष्ट होता है कि उच्च नोमोफोबिक प्रवृत्ति की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान, मध्यम एवं निम्न नोमोफोबिक प्रवृत्ति की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमान से कम पाया गया है।

नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के विभिन्न स्तरों (उच्च, मध्यम एवं निम्न) के संदर्भ में छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक अन्तर की गणना हेतु टी-परीक्षण के मान की गणना की गयी एवं उच्च व मध्यम नोबोफोबिक प्रवृत्ति की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक अन्तर हेतु टी-परीक्षण का मान 1.01 पाया गया। जोकि 0.05 विश्वसनीय स्तर पर असार्थक है। इसी प्रकार उच्च व निम्न नोबोफोबिक प्रवृत्ति की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य टी-परीक्षण का मान 2.76 पाया गया। जोकि 0.01 विश्वसनीय स्तर पर सार्थक है। पुनः मध्यम एवं निम्न नोबोफोबिक प्रवृत्ति की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक अन्तर हेतु टी-परीक्षण का मान 1.91 पाया गया जोकि 0.05 विश्वसनीय स्तर पर सार्थक है।

अतः उपरोक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि उच्च नोमोफोबिक प्रवृत्ति की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि निम्न पायी गयी। जबकि निम्न नोमोफोबिक प्रवृत्ति की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि उच्च पायी गयी। तालिका 03 में अंकित मध्यमानों को निम्नांकित आरेख द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

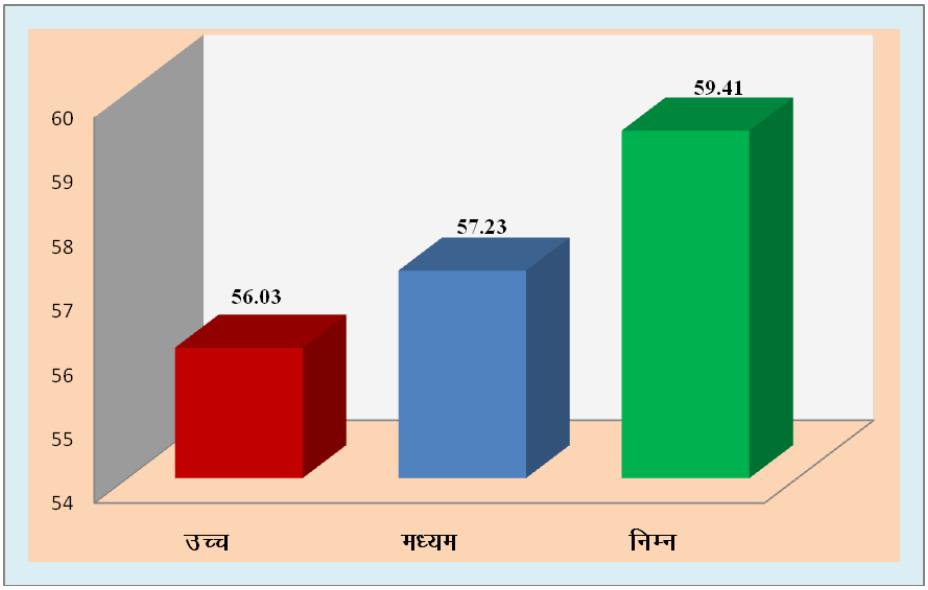

आरेख 02 नोमोफोबिक (Nomophobic) प्रवृत्ति के विभिन्न स्तरों (उच्च, मध्यम एवं निम्न) के संदर्भ में स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन में निष्कर्ष के रूप में यह पाया गया कि छात्राओं में नोमोफोबिक प्रवृत्ति, छात्रों की तुलना में निम्न पायी गयी है। अर्थात् मोबाइल फोन की लत छात्रों के मध्य प्रबल पायी गयी है। कुल न्यादर्श का लगभग एक तिहाई भाग उच्च नोमोफोबिया से ग्रसित पाया गया। जो यह दर्शाता है कि आधुनिक एवं तकनीकी के बढ़ते हुए युग में विद्यार्थियों के मध्य स्मार्ट फोन की लत (नोमोफोबिया) जैसी मनोविकारता तीव्र गति से बढ़ रही है एवं नोमोफोबिया का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में यह पाया गया है कि जिन विद्यार्थियों में नोमोफोबिक प्रवृत्ति उच्च स्तरीय पायी गयी है उन विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अपेक्षाकृत कम पायी गयी है। जिससे यह विदित होता है कि शैक्षिक उपलब्धि के लिए नोमोफोबिया एक नकारात्मक कारक के रूप में भूमिका अदा करता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- Bragazzi NL, Del Puente G. A proposal for including nomophobia in the new DSM- V. Psychol Res Behav Manag. 2014;7:155-60.
- https://www.amarujala.com/technology/nomophobia-kya-hai-mobile-phone-harmful-effects-mobile-phone-addiction-scale
- https://www.medlife.com/blog/nomophobia-mobile-addiction-dangers/
- https://whatis.techtarget.com/definition/nomophobia
- Nomophobia. In: Wikipedia [Internet]. 2019 [cited 2019 Jan 25] Available from: https://en.wikipedia.org/w/index.php?title=Nomophobia and oldid=879839860 .
- Nomophobia | Revolvy [Internet] [cited 2019 Jan 25]. Available from: https://www.revolvy.com/page/Nomophobia .

कौशल विकास मिशनः बेरोजगारी उन्मूलन का अस्त्र

डॉ० पंकज मिश्र

(विभागाध्यक्ष वाणिज्य संकाय), संत तुलसीदास पी0जी0 कालेज, कादीपुर-सुलतानपुर, उ0प्र0

भारतवर्ष विश्व में अपनी विभिन्न प्रकार की शक्तियों के द्वारा पहचाना जाता है यह एक विकासषील देश है किन्तु अल्पविकसित देशों की श्रेणी में आता है जिसके कारण इसके बेरोजगारी का स्वरूप भी विभिन्न देशो की तुलना में भिन्न है। लार्डकीन्स के विष्लेशण से पता चलता है कि विकसित देशों में बेरोजगारी का मुख्य कारण समर्थ मांग का पूरा ना होना है।

भारत 130 करोड़ की आबादी वाला देश है पर यह विभिन्न प्राकृतिक सम्पदाओं से सम्पन्न है परन्तु देश में रोजगार की दशाएँ बहुत ही मन्द गति की है।

देश की आर्थिक वृद्धि ही समृद्धता की सफल निषानी होती है। आर्थिकता का रोजगार से सीधा सम्बन्ध होता है। देश के नागरिक रोजगार पूर्ण होते है तो देश की आर्थिक उन्नति का द्योतक माना जाता है। वर्ष 1930 की तीसा के महान् मन्दीकाल के बाद बेरोजगारी ने देश की कमर तोड़ दी। मगर सन् 1950 के पष्चात् शुरू की गयी, सुव्यवस्थीकरण की प्रक्रिया ने धीरे-धीरे बेरोजगारी पर प्रहार करना शुरू किया परन्तु भारत में जनसंख्या विस्फोट के कारण रोजगार के सारे प्रयास विफल होते चले जा रहे है। और बेरोजगारी एक विकट समस्या देश के सामने बनी हुई है।

बेरोजगारी का स्वरूप

भारत के रोजगार सम्बन्धी विषय पर मानवीय विकास रिपोर्ट वर्ष 1996 द्वारा दी गयी सलाह पर ध्यान दिया गया जिसमें स्पष्ट किया गया है, कि पूर्ण रोजगार के लिए स्पष्ट रूप से राजनैतिक प्रतिबद्धता होनी चाहिए जिसके माध्यम से स्पष्ट किया गया कि जहां पर रोजगार की दशाएं सफल हुई वहां पर एक संकल्पित राजनीतिक रणनीति का कुशलतम उपयोग एवं दृढनिश्चितता रही है तथा आर्थिक प्रबन्ध के सर्वोच्च नीति के लिए देश में रोजगार को उचित स्थान पर रखना सरकार का प्रथम दायित्व होना चाहिए।

भारत में समन्वित विकास एवं रोजगार की विशिष्ट सुधार प्रक्रिया वर्ष 1921 के मध्य में शुरू की गयी वर्ष 1991-92 आर्थिक रूप से मन्द था तो रोजगार की दशाओं का उन्नतकाल तो हो ही नहीं सकता है इस समस्या को दूर करने के लिए अथवा बेरोजगारी की दशाओं को समाप्त करने की विभिन्न कसौटियां फेल होती गयी।

रोजगार वृद्धि का सारा गणित विभिन्न क्षेत्रों के उत्पादन में वृद्धि के साथ जुड़ा हुआ है, विशेषकर ऐसे क्षेत्र में उत्पादन वृद्धि के साथ जिनमें अधिक रोजगार क्षमता विद्यमान है।

भारत में बेरोजगारी की एक झलक निम्न सारणी से स्पष्ट किया जा सकता है जिसमें ग्रामीण शहरी और आखिल भारतीय स्तर पर इसका मापन किया गया है।

तालिका नं0-1: बेरोजगारी दर

(श्रमशक्ति के प्रतिशत के रूप में)

दशाए	सामान्य मुख्य स्थिति	चालू सप्ताहिक स्थिति	चालू दैनिक स्थिति
		ग्रामीण	
1987-88	3.26	3.74	7.70
1993-94	1.91	3.88	7.94
1997-98	3.07	4.19	5.25
2003-04	1.80	3.00	5.63
2009-10	1.96	3.91	7.21
2015-16	2.17	4.02	6.97

		शहरी	
1987-88	8.77	7.86	10.34
1993-94	6.04	6.81	9.52
1997-98	6.56	7.12	9.36
2003-04	5.21	5.83	7.43
2009-10	5.23	5.89	7.65
2015-16	6.12	5.98	8.17
		अखिल भारतीय	
1987-88	4.23	4.48	8.18
1993-94	2.77	4.51	8.28
1997-98	3.77	4.80	6.09
2003-04	2.56	3.63	6.03
2009-10	2.81	4.41	7.32
2015-16	2.94	4.78	7.96

स्रोत - Planning commission Report 2017.

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से पता चलता है कि बेरोजगारी की दशाए किस तरह से अपनी जड़ो को गहराई तक समाहित की हुई है।

भारत की बढ़ती जनसंख्या और उनके रोजगार में समन्वय स्थापित करने हेतु भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र दामोदरदास मोदी ने रोजगार के प्रति अपनी राजनैतिक प्रतिबद्धता जाहिर करते हुए 15 जुलाई 2015 को प्रधानमंत्री कौशल विकास मिशन की स्थापना की। इस योजना का लक्ष्य वर्ष 2022 तक 40-करोड़ युवाओं को प्रशिक्षित कर रोजगार के योग्य बनाना है।

कौशल विकास मिशन बेरोजगारी को दूर करने में तीन घटको का क्रमशः सहारा लेता है।

1. अल्प अवधि प्रशिक्षण कार्यक्रमः यह योजना ऐसे भारतीयों के लिए है जिन्होंने अपनी स्कूलिंग की शिक्षा को पूर्णरूप से प्राप्त नहीं किया है और बेरोजगारी का दंश झेल रहे है उन्हें **राष्ट्रीय कौशल आर्हता मानदण्ड फ्रेमवर्क** के अनुसार प्रशिक्षण प्रदान करने अथवा प्रशिक्षण केन्द्रो द्वारा छोट-मोटे कौशल उद्यमिता, वित्तीय और डिजिटल साक्षरता में भी प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। सफलतापूर्वक प्रशिक्षण प्रदान करने के पश्चात् मूल्यांकन करके प्रशिक्षण प्रदाता के द्वारा प्रशिक्षार्थी को रोजगार (प्लेसमेन्ट) प्रदान करने में सहायता की जाती है।

2. पूर्वानुमान कार्यक्रमः इस कार्यक्रम में ऐसे व्यक्तियों का मूल्यांकन किया जाता है जिन्होंने स्वंय कार्य करते हुए कौशल प्राप्त किया है। इसमे सेक्टर कौशल परिशद अथवा एम0एस0डी0ई0/एन0एस0डी0सी0 के द्वारा नामित किसी अन्य संस्था द्वारा ज्ञान को प्रमाणित करके आर0पी0एल0 शिविर नियोक्ता परिसर का आयोजन करके रोजगार दिलाना होता है।

3. विशेष परियोजनाएँः यह प्रधानमंत्री कौशल विकास का एक प्रमुख घटक है जिसके तहत एन0एस0क्यू0सी0 द्वारा मंजूर विषयों के उम्मीदवारो को रोजगार के लिए नये सिरे से कुशल बनाना/प्रशिक्षित करना होता है। परियोजना आधारित एवं अधिक लचीला होने के कारण यह प्रोग्राम अपने को थोड़ा अलग रखता है। इसमें चार बातों पर ध्यान दिया जाता है।

1. विशिष्ट आबादी जैसे हाशिए पर जीवन यापन करने वाली आबादी या कमजोर आबादी को लक्षित करता है।
2. कारपोरेटो द्वारा 80% कैप्टिव प्लेसमेन्ट या 90% सवैतनिक रोजगार प्रदान करना।
3. जॉब रोल यानी पी0एम0के0वी0वाई0 सूची के बाहर के कार्य विषय।
4. संस्थागत सेटिंग्स जैसे जेल परिसर, सरकारी संस्थानों के परिसर जैसे राज्यपाल निवास, राष्ट्रपति की रियासत आदि।

कौशल विकास मिशन का योगदान

देश में कार्यबल की कमी और बड़ी संख्या में अल्पकौशल प्राप्त तथा कौशल रहित युवाओं की रोजगार की दोहरी चुनौती का सामना करती है इसी कमी को पूरा करने के लिए पी0एम0के0वी0वाई0 यह सुनिश्चित करने पर अत्याधिक जोर देता है कि उद्योग और विनियोक्ताओ के सहयोग से प्रशिक्षित अभ्यर्थियों को रोजगार मिल सके।

रोजगार में पी0एम0के0वी0वाई का योगदानः इस योजना के तहत 2,52,223 उम्मीदवारों के प्लेसमेन्ट की रिपोर्ट दी गयी थी। यह योजना के अल्पकालिक (एसटीटी) घटक के तहत 7,74,843 उम्मीदवारों की प्लेसमेन्ट (31 जुलाई 2018 तक) के साथ पी0एम0के0वी0वाई0 2016-2020 के तहत

की जाने वाली प्लेसमेन्ट की संख्या में काफी बढ़ोत्तरी देखने को मिल रही है। जिन लोगों को रोजगार प्राप्त हो गया है, उनमें से 93 प्रतिशत उम्मीदवार 18 से 35 वर्ष आयु वर्ग वाले युवा है।

पी0एम0केवी0वाई0 का क्षेत्रवार रोजगार - इस योजना के द्वारा जो कुछ क्षेत्रो में रोजगार प्रदान किया है उसके दस प्रमुख क्षेत्रों का वर्णन यहाँ पर तालिका नं0-2 के द्वारा दर्शाया जा रहा है जिसके माध्यम से से यह अधिक स्पष्टता से समझा जा सकता है कि कौशल विकास मिशन के द्वारा रोजगार प्रदान करने की जो चेष्ठा की गई है भारत सरकार के द्वारा वह किन क्षेत्रों में कितना प्रतिशत रोजगार प्रदान करके बेरोजगारी का उन्मूलन कर चुकी है और आगे की प्रगति की दशा क्या हो सकती है।

तालिका सारणी-2:

क्र0सं0	क्षेत्रक	प्रतिशत
1.	परिधान	20%
2.	इलेक्ट्रानिक एवं हार्डवेयर	19%
3.	खुदरा (रिटेल)	11%
4.	ब्यूटी एवं बेलनेस	9%
5.	दूरसंचार	7%
6.	लॉजिस्टिक्स	7%
7.	कृषि	4%
8.	आई-टी-आई0टी0ई0एस0	3%
9.	निर्माण	3%
10.	अन्य	17%
	योग	**100 %**

स्रोतः Poverty Commision Report 2018.

निष्कर्ष

भारत एक बहुत विशाल देश है खासकर जनसंख्या के मामले में भारत वर्ष में रोजगार एक व्यापक समस्या का विषय शुरू से ही रहा है। वर्तमान आर्थिक जगत में विभिन्न प्रकार के उपाय अपनाएं जाते रहे है। परन्तु 15 जुलाई 2015 को भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र दामोदरदास मोदी ने बेरोजगारी के दुश्चक्र को तोड़ने के लिए प्रधानमंत्री कौशल विकास मिशन की शुरूआत करके बेरोजगारी पर कुठाराघात किया है। आज विभिन्न प्रकार का कौशल सम्बन्धित अभ्यर्थियों को प्रदान किया जा रहा है और रोजगार के नये-नये साधन प्रशस्त्र हो रहे है। प्रधानमंत्री की यह योजना विशिष्ट रूप से कार्य करते हुए सम्पूर्णता को प्राप्त कर रही है। इस पर निरन्तर प्रयास होता रहा तो यह अपने लक्ष्य को 2022 तक आसानी से प्राप्त कर सकेगी। इसके रास्ते में समयानुसार कुछ न कुछ कठिनाईयो भी आती रही है जिन पर सुधारात्मक कदम उठा कर व्यवस्थित ध्यान देकर इसके लक्ष्य को प्राप्त करना सम्भव होगा।

संदर्भ

1. भारती अर्थव्यवस्था। (रूद्र एवं दत्त के0पी0 सुन्दरम)
2. Poverty Commission Report.
3. Poverty Eradication in India (Kumari Lilita)
4. Employment Generation.
5. wwwpmkvy.in.
6. http.org.in.
7. Notional sampil survey organistion.

दिनकर की कविताओं में स्वाधीनता संघर्ष

प्रियंका शर्मा

शोधार्थी, हिंदी-विभाग, विनोबा भावे, विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखंड

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर का रचना - काल और भारतीय स्वाधीनता संग्राम का उत्कर्श काल दोनों ही सहयोग से भारतीय इतिहास के एक ही काल खंड में है। इसे मणिकांचन सहयोग भी कहा जा सकता है।स्वाधीनता- संग्राम के उच्चावच्य सम-विशम परिस्थितियों ने एक और जहां रामधारी सिंह दिनकर की रचना धर्मिता को उपजीव्य एवं प्रेरणा सौंपी तो दूसरी और दिनकर की उर्जस्वलावाणी में प्रस्फुटित ओजस्वनि रचनाओं ने स्वाधीनता- संग्राम को पैनिधार और अदम्य स्फूर्तिमयी प्रेरणा समर्पित की। दोनों उपक्रम समानांतर चलते रहे। राष्ट्रीय परिस्थितियां जिस उद्दाम वेग से दिनकर के मानस को झकझोरता है उससे प्रबल त्वस-त्वरा के साथ दिनकर उसे कविताबध्द कर डालते और भारतीय जन -चेतना को झकझोर डालते है। आमतौर पर कविता रामणीयार्थ प्रतिपादक' और रसात्मक वाक्य' होती है, लेकिन देश-काल और वातावरण परिस्थितिवश उसे वज्रतुल्य कर्कश और कठोर भी बना देती है।दिनकर की रागात्मिका-वृत्ति के साथ भी ऐसा ही हुआ। जिस गर्जन -तर्जन से दिनकर बचना चाहते थे, उसी गर्जन-तर्जन से उनकी कविता का श्रीगणेश हुआ। इसलिए दिनकर की कविता-दृष्टि को समझने के लिए दिनकर- कालीन परिस्थितियों को समझना अपेक्षित होगा। डॉ. सामदेव सिंह ने एकदम सही लिखा है- "साहित्य अपनी समसामयिक परिस्थितियों से अछूता नहीं रहता। बल्कि कहना चाहिए कि समसामयिक परिस्थितियाँ ही साहित्य-सृजन की प्रेरणा देती है, उचित पृष्ठभूमि तैयार करती है।"[1] दिनकर का रचनाकाल राजनीतिक दृष्टि से गांधी युग में है, किंतु इनकी कविता की अन्तर्दृष्टि गांधीवादी न होकर गरामदलीय चिन्तन से अनुप्राणित है। दिनकर का गाँधी से प्रकटता कोई विरोध तो परिलक्षित नहीं होता, लेकिन कवि की विचारधारा गरमदल वालों से ज्यादा अनुकूल है।डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना लिखते हैं -"उग्र और सौम्य दल दोनों दलों में से कविवर दिनकर पर पहले उग्र दल का ही प्रभाव पड़ा थायजबकि कवि पीछे गांधी जी की सौम्य नीति का भी प्रशंसक हो गया था।"[2] यह तब का प्रसंग है,जब रामधारी सिंह दिनकर दस-बारह साल के थे, अपनी वयरूसंधि में प्रविष्ट भी नहीं हुए थे। अत्यल्प साधन जीवी थे, संभवतरू इसलिए वह जन्ममना कुशाग्र बुद्धि के थे। दुख सबको मांजता है के अनुरूप विलक्षण प्रतिभा मिल ही गई थी। देश भर में राष्ट्रीय चेतना सर्वव्यापी थी। उन्हें राष्ट्रीय विद्यालय में दाखिला भी मिल गया था। पाठडक्रम में राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित विषय-वस्तु उपलब्ध थी साहित्य- सृजन की उर्वरा शक्ति संबंलित कुछ शिक्षकों की प्रेरणा और वरद-हस्त सुलभ हुआ। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में वंदे-मातरम श्रृंखला के तहत राष्ट्रीयतामूलक कविताएँ प्रचुरता से छपती थी। दिनकर को इन कविताओं की चसक लगी वे इसे कंठाग्र कर अक्सर सुनाया करते थे। इस प्रकार राष्ट्रीय चेतना के बीज उनके अंतर्मन में संचितऔर पूंजीभूत होते जा रहे थे। यह सब चल ही रहा था कि सन 1920 में राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के सर्वमान्य, लोकप्रिय नेता महात्मा गांधी का पदार्पण बिहार के चंपारण जैसे पिछड़े ख्रषि प्रधान इलाके में हुआ तो गांधी जी के दुर्लभ दर्शन का सौभाग्य दिनकर जी को मिला। वस्तुत: दिनकर ने राष्ट्रपिता बापू का मेरे कवि जीवन पर प्रभाव' शीर्षक लेख सन 1969 में लिखा था और इसी से विचार व्यक्त किए थे।उस निबंध में उन्होंने प्रारंभिक दौर की एक-दो कविताओं की चर्चा की है,जिसकी पंक्तियाँ कवि के द्वारा ही उद्धृत हैं-

"यह विसम्य बड़ा प्रबल है,
बल को बलहीन रिझाते,
मरने वाले हँसते हैं,
आंसू है बधिक बहाते।"

कवि के अनुसार तीन-चार महीनों तक मैंने सन 1930 के नमक सत्याग्रह में काम किया था और उस आंदोलन पर एक कविता भी लिखी थी,जिसका पद मुझे अब भी याद है।सन 1932- 1933 ईस्वी में जब गांधी जी ने मैकडोनाल्ड-अवार्ड' के खिलाफ अपनी जान की बाजी लगा दी और आमरण अनशन आरंभ कर दिया,तब एक बार फिर मैंने गांधी जी पर एक कविता लिखी जो विशाल-भारत' में छपी थी। लेकिन इसके पूर्व ही रामधारी सिंह दिनकर ने सरदार वल्लभभाई पटेल द्वारा बारदोली सत्याग्रह तथा उसकी पूर्ण सफलता पर भावातिरेक में बारदोली-विजय' नाम से बहुत दिनों तक चर्चित रही दस कविताओं का संग्रह तैयार कर दिया था, जिसे अब निर्विवाद रूप से विजय-संदेश' के रूप में स्वीख्रति मिल चुकी है। इस संदर्भ में कुमार विमल का अभिमत द्रष्टव्य है- "युग चेतना ने दिनकर को बहुत अधिक संवेदनशील बना दिया था। कहना तो यह उचित होगा कि युग-चेतना-जन्य संवेदनशीलता उनमें किशोर-काल से ही थी। कहाँ बारदोली और कहाँ दिनकर का गांव सिमरिया घाट।इन दोनों स्थानों के बीच बहुत लंबी दूरी है। इन दिनों तो संचार-माध्यमों और कनेक्टिविटी का विकास भी आज की तरह नहीं हुआ था। किंतु जब सरदार पटेल ने बारदोली सत्याग्रह में विजय प्राप्त की,तब उसके स्पंदनों को सिमरिया गांव के देहाती परिवेश से जुड़े हुए युवा कवि दिनकर ने सुना और उसकी संवर्द्धना में विजय-संदेश' जैसी ओजस्वी ख्रति की रचना कर दी।कवि ने इस काव्य पुस्तक का पद्यबद्ध समर्पण सिमरिया में रक्षाबंधन के दिन लिखा था, जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"जिन सिंहों ने हुंकारों से
जगा दिया निज प्यारा देश।
पहुँचे उन वीरों के कानों तक
मेरा यह पावन संदेश।"[3]

इसी प्रसंग में डॉ. कुमार विमल ने लिखा- "इस पुस्तक में दिनकर की कई प्रारंभिक कविताएँ संकलित है-विजय-संदेश, मातृवंदना, बारदोली वंदना, विजय-गायन, जनसत्ता, बारदोली में अचरज, विजयी पटेल, ललकार, मनमोहन गांधी और अंतिम संदेश।"[4] भारतीय स्वाधीनता-संग्राम की हर छोटी-बड़ी घटनाओं ने हमारे राष्ट्रकवि के बाल मन को आंदोलित किया था, इसका बड़ा ही सिलसिलेवार तथा सूक्ष्मता से अनुशीलन किया है डॉ. कुमार विमल ने। दिनकर की कुछ रचनाएं अमिताभ के नाम से भी छपा करती थी। सन् 1929-32 के बीच कुछ कविताएं युवक नामक पत्रिका में अमिताभ के छद्म नाम से प्रकाशित हुई थी। असल में उन दिनों अनेक भारतीय साहित्यकार ब्रिटिश सरकार के दमन चक्र से बचने के लिए कई छद्मनामों से लिखते थे। दिनकर को भी यही उक्ति अपनानी पड़ी।उस समय हिंदी साहित्यकार, खासकर राष्ट्रीय भावधारा के कवि दो भिन्न मार्गों का आलम्बन कर साहित्य-सृष्टि कर रहे थे।एक ओर जहाँ कुछ कवि स्वाधीनता-संग्राम में भाग लेते आए थे,अंग्रेजी हुकूमत का हर हाल में विरोध करते थे और दंड स्वरूप मिली जेल-यंत्रणाएँ झेलते, लाठियां खाते, अन्य प्रकार के सरकारी घात-प्रतिघात के शिकार होते,लेकिन रुकने का नाम नहीं लेते। तो दूसरी ओर रामधारी सिंह दिनकर ब्रिटिश सरकार की नौकरी करते हुए भी सरकार विरोधी भावनाओं को अपनी रचनाओं से उभारने का काम कर रहे थे।राष्ट्रवादी कविताएँ लिखने के कारण रामधारी सिंह दिनकर को अनेक बार अंग्रेज अफसरों की फटकार मिली। अनेक बार उन्होंने ऐसे मामले की लीपा-पोती भी की लेकिन यह दिनकर का ही जीवट था कि आग उगलना नहीं छोड़ा। चार वर्षों में बाईस बार उनका तबादला अंग्रेजी सरकार के द्वारा किया गया।भले दिनकर ने स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय योगदान नहीं किया हो लेकिन उस आंदोलन को वाणी देने के कारण कम यंत्रणा नहीं झेली। बिहार प्रांतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन सन 1933 ईस्वी में भागलपुर में हुआ था, जिसमें दिनकर अपनी सर्वाधिक लोकप्रिय कविता हिमालय पहली बार पढ़ी थी। इसका प्रभाव ऐसा पड़ा कि वाहवाही और तालियाँ रुकने का नाम ही नहीं ले रही थी। पददलित इसे करना पीछे, पहले ले मेरा सिर उतार' पढ़ते ही जनता उन्मुक्त हो उठी। दिनकर ने जब तू मौन त्यागकर सिंहनाथ' पढ़ा तो डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल ने उठकर दिनकर को गले लगा लिया और इस पूरी कविता को दिनकर से तीन-चार बार पढ़वाया।यह प्रसंग इसलिए उद्धृत करना पड़ा ताकि बताया जा सके कि दिनकर की यह वागस्मिता स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय उपस्थिति से कम है क्या? सन् 1935 ईस्वी में उनकी रेणुका' का प्रकाशन हुआ, इसके प्रकाशन से दिनकर का साहित्यिक व्यक्तित्व स्थिर हो गया। उसे अपार लोकप्रियता मिली लेकिन अंग्रेजों के कान खड़े हो गए। तत्कालीन जिला मजिस्ट्रेट मिस्टर बोस्टेड ने दिनकर को बुलाकर पूछा- रेणुका के लेखक आप है? आपने सरकार विरोधी कविताएँ क्यों लिखी? अनुमति क्यों नहीं ली? दिनकर का तर्क था कि रेणुका की कविताएँ सरकार विरोधी नहीं है। वे देशभक्ति पूर्ण है और देशभक्ति अपराध नहीं है। फिर भी इन्हें चेतावनी देकर छोड़ा गया। हुँकार (1939) के प्रकाशन पर फिर जवाब-तलब हुआ और फिर चेतावनी मिली। सन 1940 में ओ द्विधाग्रस्त शार्दुल बोल' कविता अमिताभ के छद्मनाम से लिखी और लिफाफे पर लिखा -

यह तो दिनकर का सत्य नहीं,
अमिताभ देव का दुष्ट कर्म।'
लेकिन अंततः बात पकड़ में आ गयी।

वारदोली-विजय' तो सीधे तौर से भारतीय-स्वतंत्रता संग्राम के अंग-विशेष से प्रेरित और उद्भूत कविता है। लेकिन दिनकर एवं अन्य समकालीन कवियों की धारणा थी कि व्यक्ति को अस्मिता एवं राष्ट्र की अस्मिता को उद्भूत करके भी राष्ट्र-सेवा की जा सकती है। सच तो यह है कि राष्ट्रीयता केवल स्वाधीनता से जुड़ी भावना नहीं होती। स्वतंत्र राष्ट्र की भी राष्ट्रीयता हुई करती है। इसीलिए दिनकर ने राष्ट्रीयता से जुड़े बुनियादी मुद्दे उठाएं और उनका सजीव चित्रण किया है।जब भारतीय मनीषा प्राणपण से स्वाधीनता के अभियान में निरत थी, तो दिनकर की आँखें अपने इर्द-गिर्द की समस्याओं को देख रही थीं। ख्रषि प्रधान देश भूखमरी के कगार पर था,यत्किंचित आर्थिक संसाधन अंग्रेजों की साम्यवादी वाणिज्य-नीति की भेंट चढ़ रहे थे इसीलिए दिनकर ने किसानों के पक्ष में तथा रोटी, कपड़ा,मकान, दूध,रोशनी और रोजमर्रे की जरूरतों की पूर्ति के लिए आवाज उठाई। दिनकर की कविताओं से उभरे जनाक्रोश ने स्वाधीनता संग्राम को अतुलित पोषण प्रदान किया। दिनकर की कविताओं ने साबित कर दिया कि साहित्य जब चाहे, तख्तापलट कर सकता है। जनशक्ति को उद्भुत कर, जाग्रत कर दिनकर ने अपनी प्रखर राष्ट्रीय चेतना का प्रमाण दिया और इसके लिए उन्होंने राष्ट्र के घटक-जन, भूमि और संस्कृति के बखान को माध्यम बनाया तो बुरा क्या किया? जनार्दन प्रसाद झा द्विज' ने अपनी पुस्तक चरित-रेखा' में लिखा-

"ऐसे बहुत से पाठक है जो दिनकर की कविताएँ पढ़कर और कुछ कहने की जरूरत नहीं समझते। हिमालय,नयी-दिल्ली,तांडव,दिग्म्बरी,हाहाकार,

विपथगा और अनिल-किरीट ये अपने समय के जनता को अंदर से झकझोरती थी। यही नहीं बल्कि उन्हें सुनकर बड़े-बड़े राष्ट्र नेता सभाओं में फूट-फूटकर रोने लगते थे और बूढ़े भी सभाओं में खड़े हो जाते थे।"[5]

प्रोफेसर कामेश्वर रामेश्वर शर्मा ने अधिक स्पष्टता के साथ उजागर करते हुए लिखा है- "दिनकर की अद्वितीय विशेषता इतिहास को वणी देने में है।यों तो भारतेंदु और गुप्त जी ने भी अपनी राष्ट्रीयता के लिए इतिहास का सहारा लिया है, पर वहाँ इतिहास को आकार मिला है, दिनकर ने उसे जीह्वा प्रदान की है। दिनकर से इतिहास अपनी संपूर्ण वेदनाओं को लेकर बोलता है।"[6]

दिनकर ने दिल्ली शीर्षक से चार कविताएँ लिखी हैं। इसमें अतीत के स्वर्णिम क्षणों की गरिमा का चित्रण और वर्तमान की गर्हित स्थिति और मानसिकता का प्राणवंत आकलन है।

"हमने देखा यही पांडु वीरों का कित्ती-प्रसार
वैभव का सुख-स्वप्न, कला का महा-स्वप्न अभिसार।
यहाँ कभी अपनी रानी थी, तू ऐसे मत भूल।
अकबर-शाहजहां ने जिसका किया स्वयं श्रृंगार।।"

लेकिन दिल्ली का दिल बदल गया है, हालात बदल गए हैं। इसलिए कवि उपालंभ देता है-

"तूँ वैभव मद में इठलाती, परकिया-सी सैन चलाती। री ब्रिटेन की दासी किसको इन आंखों पर ललचाती।"

प्रसंगवश कवि ने स्वाधीनता-सेनानियों के अभियान का सद्योख्रष्ट-जैसा चित्रांकन कर दिया है-

"अपनी गर्दन रेत-रेत असि की तीखी धारों पर
राजहंस बलिदान चढ़ाते माँ के हुँकारो पर।
पगली!देख जरा कैसी मर मिटने की तैयारी?
जादू चलेगा न धुन के पक्के इन बंजारों पर।।"

राष्ट्रकवि दिनकर ने स्वाधीनता-आंदोलन के अनुषांगिक कार्यक्रमों को भी अपनी वाणी दी है। स्वदेशी-आंदोलन जिसमें चरखा-तकली और खादी पर जोर था, भी भारतीय स्वाधीनता-संग्राम का अभिन्न अंग था, दिनकर की लेखनी उस पर भी चली। जब गांधी जी का ध्यान राजनीतिक गतिविधियों से हटकर सामाजिक क्रिया-कलापों में बंट जाता है तो दिनकर जी को बड़ा आघात पहुँचता है। डॉ. विजेंद्र नारायण सिंह ने लिखा है- "युवावस्था में राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए अधीर कवि को लगता है कि गांधीवाद के युधिष्ठिरपन से देश को स्वाधीनता नहीं मिलेगी, वरन स्वाधीनता का मार्ग सशस्त्र संघर्ष का ही मार्ग है, इस कारण हिमालय कविता में उन्होंने कहा है-

" रे रोक युधिष्ठिर को ना यहां
जाने दे उनको स्वर्ग धीर,
पर, फिरा हमें गांडीव-गदा
लौटा दे अर्जुन-भीम वीर।"

यह वह समय था जब जवाहरलाल, नरेंद्र देव, जय प्रकाश आदि युवा भारत में और नेताजी सुभाष चंद्र बोस विदेश से हुंकार भर रहे थे तथा साम्यवादी युवा वर्ग भी क्रोधाविष्ट था।भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़ा कोई अंग, कोई भी पक्ष शांत नहीं था। भारतवर्ष एक विप्लवकारी अभियान के लिए सन्नद्ध था। करो या मरो'की भावना सर्वत्र व्याप्त रही थी।तभी दिनकर ने भी ललकार-

"गरजते शेर आये, सामने फिर भेड़िये आये।
नखों को तेज,दाँतो को बहुत तीखा किये आये।
मगर पवाह क्या? खड़ा हो जा तू उसको तानकर
छिपी हड्डियों में आग-सी तलवार है साथी।"

जैसे-जैसे दिनकर को आभास होता है कि स्वतंत्रता के क्षण सन्निकट है, वे उत्साह से भरते जाते हैं और स्वतंत्रता सेनानियों की हौसला-अफजाई में प्राण-पण से जुट जाते हैं।उनकी उत्कृष्ट आशा को दर्शाती है, ये पंक्तियाँ-

"वह प्रकाश जो दिख रहा है झील मील दूर नहीं है।
थककर बैठ गये क्या भाई, मंजिल दूर नहीं है।

दिशा दीप्त हो उठी प्राप्तकर पुण्य प्रकाश तुम्हारा लिखा जा चुका अनल-अक्षरों में इतिहास तुम्हारा

जिस मिट्टी ने लहू पिया, वह फूल खिलाएगी ही
अंबर पर घन बन छायेगा ही उच्छ्वास तुम्हारा
और अधिक ले जांच, देवता इतना क्रूर नहीं है।

थक कर बैठ गए क्या साथी मंजिल दूर नहीं है। 'अपने अपरिमित उत्साह के अतिरेक में दिनकर जी ने जयप्रकाश' शीर्षक वाली एक ऐसी कविता लिख डाली जो तत्काल तो लोकप्रिय हुई, लेकिन दिनकर के भविष्य के लिए कालांतर में भारी पड़ गई सन 1942 का आंदोलन कुचल दिया गया था सारे नेताओं को जेल में ठूंस दिया गया था।

डॉ. कुमार विमल का कहना है कि- विभाजन के पूर्व इस देश में जिन कवियों ने अपनी उग्र और उदग्र वणी में देश की पराधीनता के विरुद्ध क्रांति का आह्वान किया था, उनमें दिनकर के साथ नजरूल के अलावा जोश मलीहाबादी का उलेख किया जाता रहा है।जोश ने खुद एक बार अपने और दिनकर के बारे में कहा था-

"हिन्द में लाजवाब है दोनों, शायरे-इन्कलाब है दोंनों,
देखने में अगरचे जर्रे है, वाकई आफताब है दोनों।'[8]

दिनकर के सहपाठी रह चुके कवि कलक्टर सिंह केसरी' ने अपने संस्मरण में लिखा है-

"दिनकर के शब्द उड़ते हैं मंडलाते हैं। अर्वाचीन हिंदी कवियों में निराला को छोड़कर ऐसी पद-पंखिलता अन्यत्र कहाँ मिलेगी, वह मुझे नहीं मालूम।"[9]

इस प्रकार दिनकर ने अपनी रचनाओं को वाणी दी। ये कविताएँ अत्यंत आक्रामकता, तीव्र आक्रोश और उत्तेजन से परिपूर्ण होने के कारण स्वतंत्रता सेनानियों का मनोबल बढ़ाने वाली साबित हुई।

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

1. सौहार्द, राष्ट्रीय संगोष्ठी, पृष्ठ 13
2. सक्सेना, डॉ. द्वारिका प्रसाद, दिनकर का काव्य, पृष्ठ 10
3. विमल कुमार, अर्धनारीश्वर दिनकर, पृष्ठ 11
4. वही पृष्ठ-12
5. गुप्त, मन्मथनाथ,लोकप्रिय कवि दिनकर, पृष्ठ 11
6. शर्मा, प्रोफेसर कामेश्वर, दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि, पृष्ठ 21
7. सिंह, डॉ. विजेंद्र नारायण, रामधारी सिंह दिनकर, पृष्ठ 62
8. विमल कुमार, अर्धनारीश्वर दिनकर, पृष्ठ 32
9. केसरी, कलक्टर सिंह, मेरा सहपाठी राष्ट्रकवि पृष्ठ 83

डॉ० सिग्मंड फ्रायड के मूल प्रवृत्ति सिद्धांत का भारतीय परिप्रेक्ष्य में आलोचनात्मक अध्ययन

डॉ० सरिता शर्मा

Reader in CTE, Ex-Head, Department of Education, Ex-Dean Edu. IASE Deemed to be University, Gandhi Vidhya Mandir, Sardarshahar, Churu (Raj.)

रवीश कुमार

Research Scholar (Ph.D. Education), IASE Deemed to be University, Gandhi Vidhya Mandir, Sardarshahar, Churu (Raj.)

शोध सारांश

फ्रायड ने मनुष्य के सभी व्यवहारों के पीछे कारण मूल प्रवृत्ति को ही बताया है। फ्रायड के अनुसार मूल प्रवृत्तियाँ जैविक क्रियाओं की मानसिक रूप हैं तथा उनका स्थान मानसिक और भौतिक तथ्यों के बीच का है। "प्रवृत्तियाँ शारीरिक उत्तेजनाओं से उत्पन्न होती हैं।" जैसे - भूख, प्यास, आकर्षण, अनुराग, काम प्रवृत्ति इत्यादि। "काम प्रवृत्ति को फ्रायड ने मुख्य प्रवृत्ति माना है तथा उसे "लिबिडो" का नाम दिया है। फ्रायड का मानना था कि काम प्रवृत्ति से संबंधित बहुत सी स्वतंत्र वृत्तियाँ हैं जिनमें कुछ मानसिक तथा कुछ शारीरिक है जो समयानुसार दब जाती हैं और कुछ ऐसी हैं जो उभर आती हैं। फ्रायड का विचार था कि काम प्रवृत्ति में निहित उद्देश्य स्व-रक्षण (Self&Preservation) भी होता है। जब यह माना जायेगा कि कामुकता ही मनुष्य की प्रकृति की प्रेरणा और उत्साह उभारने के लिए आवश्यक है और यही मूल प्रवृत्ति है तो फिर उसकी पूर्ति के लिए मनुष्य जहाँ-तहाँ भटकने और झंझट बढ़ाने की क्यों सोचेगा परिवार में जो स्त्रियां रहती हैं जिन पर खरचा किया जाता है उन्हीं से इसकी तृप्ति का काम क्यों न चला लिया जाय? लेकिन ऐसा किसी भी सभ्य समाज में सम्भव नहीं दीखता। जिससे यह ज्ञात होता है कि मर्यादा, करुणा, दया, प्रेम, स्नेह, दायित्व जैसी भी प्रवृत्तियाँ मनुष्य के मूल में स्थित हैं जो उसे पशुओं से भिन्न बनाती हैं। डॉ. सिग्मंड फ्रायड का यह सिद्धांत उथला और उनकी तात्कालिक परिस्थितियों या अनुभवों की अभिव्यक्ति से अधिक कुछ नहीं है। भारतीय ऋषि-मनीषी मानवी मूल प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में गहन और व्यावहारिक विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं जो मानव और मनोविज्ञान के लिए व्यावहारिक और सुलभ मार्ग प्रदत्त करते हैं। फ्रायड का मनोविज्ञान केवल दृश्य जगत के पहलुओं को छू कर लौट आया है उसने जैसे मनुष्य उस समय विचरण करते देखे उनका विश्लेषण करके अपने तथ्य सबके समक्ष प्रतिपादित कर दिए जिसपर चलकर एक शताब्दी का मनुष्य अधोपतन के मार्ग पर अग्रसर हुआ क्योंकि उसे अपनी असीम संभावनाओं के स्थान पर इन काम लिप्साओं और कुछ अधकचरी आदतों को उसकी मूल प्रवृत्तियाँ मानने को बाधित किया गया।

की वर्ड्स : मनोविज्ञान, मूल प्रवृत्ति, भारतीय संस्कृति, व्यक्तित्व, डॉ. सिग्मंड फ्रायड।

शोध पत्र

विश्व आज जिस दोराहे पर खड़ा है वहाँ से उसकी दो ही गति हैं। एक ओर तो यह संभावना दिखती है कि जिस प्रकार आज विश्व में एक देश दूसरे देश पर, एक समाज दूसरे समाज पर तथा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर आधिपत्य जमाकर अपने स्वार्थो को विस्तार देना चाहता है उससे कहीं विश्व का जनमानस पुनः तीसरे विश्व युद्ध की विभीषिका को साकार होता न देखे। दूसरी संभावना यह है कि विश्व के सभी देश, समाज और व्यक्ति अपनी निजी स्वार्थगत आकांक्षाओं को पीछे करने का साहस दिखाते हुए सर्वहित और जनकल्याण के सिद्धांतों को अपनाकर इस विश्व को स्वर्गीय वातावरण से ओत प्रोत करने में अपना योगदान देने लग जाएं। दोनों ही परिस्थितियों के पीछे जो तत्व मुख्य भूमिका में हैं वह है व्यक्ति और उनके समूह से मिलकर बना समाज। जिस मनोभूमि के व्यक्तियों की संख्या अधिक होगी वैसा ही वातावरण निर्मित होगा। प्राचीन काल में इसके असंख्य उदाहरण देखने को मिल जाते हैं। एक महत्वपूर्ण घटना द्वितीय विश्वयुद्ध की की भी है, जिसमें देखते-देखते विश्व की जानी-मानी महाशक्तियों ने नवोदित शक्ति जर्मनी-सत्ता के समक्ष घुटने टेक दिए। विश्वयुद्ध पोलेंड में भेजे गए जर्मन सैनिकों द्वारा छल से प्रारंभ किये गए एक छोटे से छापामार आक्रमण से शुरू हुआ। लेकिन सारे विश्व ने कुछ ही दिनों में सुना कि 'ग्रेट ब्रिटेन' के बाद विश्व की सबसे बड़ी शक्ति माने जाना वाला राष्ट्र फ्रांस बिना किसी प्रतिरोध के आत्मसमर्पण कर रहा है। यूनाइटेड किंगडम के बाद फ्रांस ही था जिसके उपनिवेश सुदूर पूर्व में दक्षिण एशिया से उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका तक फैले हुए थे। नेपोलियन जिस देश में पैदा

हुआ - जहाँ की राज्य क्राँति ने विश्व की राजनीति को एक नया मोड़ दे दिया था, उनका ऐसा बुरा हाल देखकर आश्चर्य होना स्वाभाविक ही था।

विद्वानों ने इसका निष्कर्ष निकाला तो पाया कि असंयम ने तो देश की जनशक्ति को खोखला बनाया और भोग प्रधान उच्श्रृंखल जीवनक्रम ने राष्ट्र को छुंछ बनाकर रख दिया। शराब की कोई कमी नहीं थी, जो राष्ट्र सारे विश्व की तीन चौथाई महंगी शराब की पूर्ति करता हो, वह स्वयं कैसे उससे बचा रहता। नैतिक मर्यादाएँ भंग हो जाने से जर्मनी को फ्रांस को पराजित करने में कोई संघर्ष नहीं करना पड़ा। असल में भोग-विलास में डूबे फ्रांस को शत्रु ने पराजित नहीं किया बल्कि स्वयं उसने अपने को निर्बल बनाकर आक्रांताओं को निमंत्रण दे दिया। भारतीय संस्कृति का युगों-युगों से यह शिक्षण रहा है कि मनुष्य यदि अदूरदर्शी क्षरण को रोक सके तो उस बचत से इतना भंडार जमा हो सकता है जिसके बलबूते पर मनुष्य विपुल विभूतियों का अधिपति बन सकता है। कहा भी गया है "वीर भोग्या वसुंधराष। मर्यादाओं का व्यतिरेक और उपयोग का असंयम ही समर्थों की समर्थता को दुर्गतिग्रस्त बना देता है। पिछली शताब्दी के अनेक मनोवैज्ञानिकों के दिये हुए प्रत्यय इन उच्च श्रृंखलाओं को बल देने में मुख्य रूप से कारगर हुए हैं। उन्होंने मनुष्य के पतन के लिए जिम्मेदार इन वृत्तियों को मनुष्य की मूल प्रवृत्तियाँ बतलाकर प्रदर्शित किया जिससे मनुष्य के पास इनसे तालमेल बिठाने के सिवा कोई चारा ही नहीं रहा। मनोविश्लेषणवाद के प्रवर्तक डॉ. सिग्मंड फ्रायड ने भी ऐसी ही मूल प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त किया है।

डॉ. सिग्मंड फ्रायड का मूल प्रवृत्ति सिद्धांत

फ्रायड ने सभी व्यवहारों के पीछे कारण मूल प्रवृत्ति को ही बताया है। फ्रायड के अनुसार मूल प्रवृत्तियाँ जैविक क्रियाओं की मानसिक रूप हैं तथा उनका स्थान मानसिक और भौतिक तथ्यों के बीच का है। "प्रवृत्तियाँ शारीरिक उत्तेजनाओं से उत्पन्न होती हैं।" जैसे - भूख, प्यास, आकर्षण, अनुराग, काम प्रवृत्ति इत्यादि। "काम प्रवृत्ति को फ्रायड ने मुख्य प्रवृत्ति माना है तथा उसे "लिबिडो" का नाम दिया है। फ्रायड का मानना था कि काम प्रवृत्ति से संबंधित बहुत सी स्वतंत्र वृत्तियाँ हैं जिनमें कुछ मानसिक तथा कुछ शारीरिक है जो समयानुसार दब जाती हैं और कुछ ऐसी हैं जो उभर आती हैं। फ्रायड का विचार था कि काम प्रवृत्ति में निहित उद्देश्य स्व-रक्षण (Self&Preservation) भी होता है। फ्रायड ने सभी प्रकार की प्रवृत्ति को दो भागों में बाँटा है जिसमें काम प्रवृत्ति को जीवन प्रवृत्ति (Eros) तथा दूसरी घृणा प्रवृत्ति को मरण प्रवृत्ति (Thanatos) कहा है। फ्रायड के अनुसार इन दोनों मूल प्रवृत्तियों का वास इड में होता है। इन्हीं प्रवृत्तियों के आधार पर फ्रायड ने मानव जीवन के विकास में निम्न मनोविज्ञानिक अवस्थाओं की व्याख्या की है।

डॉ. सिग्मंड फ्रायड ने जीवन का आधार मूल प्रवृत्तियों को बताते हुए कहा है कि काम प्रवृत्ति शिशु में जन्मजात विद्यमान होती है और उसका मुख्य उद्देश्य आनंद की प्राप्ति होता है। जन्म लेते ही शिशु माँ के स्तनों की खोज करता है इससे उसे आहार प्राप्त होता है और आनंद की भी प्राप्ति होती है। यह अवस्था उसने जन्म से लगभग 1 साल तक की आयु तक रहती है ऐसा बताया है। जबकि भारतीय ऋषियों ने इसके पीछे दूसरा कारण बताया है शिशु माँ से नाभि से जुड़ा रहता है और नाभि कमल से ही उसकी उत्पति आरम्भ होती है। जब शिशु का जन्म होता है तब नाभि से उसे काट कर अलग कर दिया जाता है जिससे शिशु का माँ से जो जुड़ाव था वो अचानक टूटता है जिस कारण शिशु उसी जुड़ाव को स्तन से जुड़कर पुनः प्राप्त करता है। इसके पीछे कोई वासना नहीं बल्कि भावनात्मक जुड़ाव कारण होता है। जैसे केवल मनुष्य ही नहीं बंदरिया, गाय और अन्य जानवर के बच्चे भी भागकर माँ से लिपटते देखे जा सकते हैं। फ्रायड ने व्यक्तित्व के विकास को "मनोलैंगिक विकास" की संज्ञा दी है तथा इसकी अवस्थाओं को पाँच चरणों में विभाजित किया है जो निम्न प्रकार से हैं -

मुखावस्था Oral Stage : मनोलैंगिक विकास की यह पहली अवस्था है। यह व्यक्ति के जन्म से लेकर लगभग 1 साल की आयु तक रहती है। फ्रायड के अनुसार इस चरण में बालक का व्यामुकता क्षेत्र मुख होता है अर्थात- मुँह के माध्यम से वह कामुक क्रियायें करता है। जैसे - चूसना, निगलना, जबड़े या दाँत निकल आने पर दबाना, काटना इत्यादि।

गुदावस्था Anal Stage : व्यक्तित्व विकास की यह दूसरी अवस्था 2 से 3 वर्ष की आयु के बीच होती है। इस अवस्था में व्यक्ति का कामुकता क्षेत्र गुदा होता है। इस उम्र में बच्चे को मल-मूत्र त्यागने में उसकी आंतें कामुक क्रियाओं का आनंद प्रदान करती है।

लिंग प्रधानावस्था Phallic Stage : यह व्यक्तित्व विकास की तीसरी अवस्था है, 4 से 5 साल की उम्र के बीच की अवस्था है। इसमें कामुकता का मुख्य स्थान जननेन्द्रिय होते हैं।

अव्यवक्तावस्था Latency Stage : यह अवस्था 6 से 7 साल की उम्र से आरंभ होकर 12 वर्ष की आयु तक बनी रहती है। यह अवस्था ऐसी है जिसमें कोई नया कामुकता क्षेत्र पैदा नहीं होता है बल्कि लैंगिक इच्छाएं सुप्त होकर अपनी अभिव्यक्ति बहुत सी अलैंगिक क्रियाओं के माध्यम से करती हैं। जैसे अभिनय करना, चित्र बनाना, डांस करना, खेलना आदि।

जननेन्द्रियावस्था Genital Stage : मनोलैंगिक विकास के इस चरण में किशोरावस्था एवं प्रौढ़ावस्था या वयस्यावास्था दोनों को ही शामिल किया गया है। यह 13 वर्ष की उम्र से प्रारंभ होती है और निरन्तर चलती ही रहती है। फ्रायड के अनुसार इस अवस्था में व्यक्ति के शरीर में अनेक प्रकार के परिवर्तन होते हैं। इनमें हार्मोन्स में परिवर्तन होना और इसके अनुसार शरीर में किशोरावस्था के बहुत से लक्षण दिखाई देने लग जाते हैं।

फ्रायड के अनुसार इस अवस्था के प्रारंभिक वर्षों में अर्थात् किशोरावस्था में व्यक्ति में अपने ही लिंग के व्यक्तियों के साथ सम्पर्क बनाये रखने की प्रवृत्ति अधिक होती है। जैसे लड़कियों में लड़कियों के साथ रहने की तथा लड़कों में लड़कों के साथ रहने की प्रवृत्ति अधिक रहती है। किन्तु जब व्यक्ति किशोरावस्था से वयस्कावस्था में प्रवेश करता है तो उसमें ऐसी प्रवृत्ति विकसित होने लगती है जिसमें वह विपरीत लिंग के व्यक्तियों के साथ उठ-बैठने लगता है, बातचीत करने लगता है तथा समय गुजारने लगता है, इस अवस्था को विषमलिंगी कामुकता की प्रवृत्ति कहा जाता है। यह वो अवस्था है जिसमें व्यक्ति

का व्यक्तित्व हर दृष्टि से परिपक्व होता है। परन्तु उपरोक्त विवेचन के आधार पर काम वासना को ही मनुष्य के जीवन के आरम्भिक काल का आधार डॉ. सिग्मंड फ्रायड ने माना जोकि उनके उथले अनुसन्धान से अधिक कुछ नहीं है इसके पीछे ऐसा हो सकता है की फ्रायड के निजी जीवन के अनुभव कुछ उपरोक्त से मिलते जुलते रहे हो। फ्रायड का मनोविज्ञान केवल दृश्य जगत के पहलुओं को छू कर लौट आया है उसने जैसे मनुष्य उस समय विचरण करते देखे उनका विश्लेषण करके अपने तथ्य सबके समक्ष प्रतिपादित कर दिए जिसपर चलकर एक शताब्दी का मनुष्य अधोपतन के मार्ग पर अग्रसर हुआ क्योंकि उसे अपनी असीम संभावनाओं के स्थान पर इन काम लिप्साओं और कुछ अधकचरी आदतों को उसकी मूल प्रवृत्तियाँ मानने को बाधित किया गया।

श्रीराम शर्मा आचार्य अपनी पुस्तक चेतन, अचेतन, सुपर चेतन मन में लिखते हैं कि "इस ब्रह्माण्ड में अविज्ञात शक्तियों की कितनी ही धाराएँ प्रकृति के गर्भ में अभी भी विधमान हैं। आज मनुष्य के हाथ जो सामर्थ्य के महत्वपूर्ण स्त्रोत्र हाथ लगे हैं, वे पिछले समय में काल्पनिक तथा असंभव ही प्रतीत होते थे। बिजली, भाप, चुम्बक, परमाणु ऊर्जा जैसी शक्तियां भी होंगी, ऐसी कल्पना प्रारम्भ में थोड़े से व्यक्तियों को रही होगी जो आज सर्वविदित है। ऐसे ही प्रकृति के जैसे मानवी काया भी अत्यंत रहस्यमय है। शारीरिक जानकारियों का एक बड़ा हिस्सा चिकित्सा जगत की पकड़ में आज आ पाया है, पर वह भी पूर्ण नहीं कहा जा सकता। नित नए प्रयोग और शोध पुरानी सोच को पलट देते हैं। मन तो और भी ज्यादा विलक्षण है। उस क्रियाकलाप, इच्छा-आकांशा एवं व्यक्तियों की विचारणा के रूप में जाप कुछ डीउखी पड़ता है वह गतिविधियों का कारण बनता है। आधुनिक मनोविज्ञान की जानकारी, अध्ययन, विश्लेषण यहीं तक सीमित है। चेतन, अचेतन मन की रचना तथा प्रकृति को समझने तक ही अभी मनोविज्ञान सीमित है छुपा हुआ चमत्कारी सुपर चेतन भी विद्यमान है, जो कि शक्ति और प्रेरणा का केंद्र बिंदु है। यह रहस्य मनोविज्ञान के क्षेत्र में अभी उजागर होना बाकि है। आधुनिक मनोविज्ञान की मानवी सत्ता को भली-भांति समझने, सन्निहित सामर्थ्यों को करतलगत करने एवं प्रयोग में लाने के लिए एक छलाँग लगानी होगी। मन के अध्ययन के विश्लेषण के सीमित दायरे से निकलकर विस्तृत आत्मा क्षेत्र में प्रविष्ट करना होगा। अन्यथा प्रचलित फ्रायडवादी मनोविज्ञान मनुष्य को मूल प्रवृत्तियों का गुलाम ठहराता रहेगा और उसके आत्म-विकास की संभावनाओं को अवरुद्ध रखेगा।"

भारतीय परिपेक्ष्य में डॉ. सिग्मंड फ्रायड का मूल प्रवृत्ति सिद्धांत एक उथला अन्वेषण

मनुष्य के जीवन में दूसरे प्राणियों की तरह कुछ जन्मजात प्रवृत्तियां पाई जाती हैं। वे उसके पूर्व के अनुभवों का एवं अभ्यासों का परिणाम है। विकास का क्रम लम्बा होता है और उसे पूर्ण करते-करते बहुत कुछ भूलना और सीखना मनुष्य को पड़ा है। इसी सीखने और भूलने के मंथन से जो कुछ मनुष्य के हाथ आता है उसे ही संचित प्रवृत्तियां कह सकते है। पिछली कुछ शताब्दियों के मनोवैज्ञानिकों ने इन प्रवृत्तियों को असाधारण महत्व दिया और लगभग पत्थरपर खींची अमिट लकीर जैसी मान बैठने की भूल की है। व्यक्ति प्रेरणाओं से प्रेरित होकर रूचि लेते है और कर्म करते हैं, उनके कर्म उनके व्यवहार से और उनके व्यवहार उनके कर्म तथा रुचियों से परिचालित होते हैं। अब हुआ यह कि पिछली कुछ शताब्दियों के डॉ. सिग्मंड फ्रायड और अन्य कुछ मनोवैज्ञानिकों को व्यक्तियों के प्रयवेक्षण से जिन अंत:प्रेरणाओं का पता चला, उन्होंने उन्हें मौलिक प्रवृत्तियां मान लिया और साथ में यह भी कहना और प्रचारित करना आरम्भ कर दिया कि वे अकाट्य हैं। इन्ही के समन्वय से मानवी व्यक्तित्व बना है। इसलिए इन्हे हटाने की अपेक्षा तुष्ट करना चाहिए। इनके इस प्रतिपादन का दुष्परिणाम यह हुआ है कि मनुष्य की स्थिति कठपुतली जैसी मानी गयी और सोचा गया कि जड़ पदार्थों की तरह मनुष्य की प्रकृति को भी बदलना असम्भव है। डॉ. सिग्मंड फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मूल प्रवृत्तियां भी इसी और इशारा करती हैं कि प्राणियों में अपनी इन उत्तेजनाओं से विभिन्न प्रकार की आकांक्षाएँ पैदा होती हैं और उन आकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिए तरह-तरह के उपाय सोचने और प्रयत्न करने पड़ते हैं। आज की तुलना में कल अच्छी स्थिति प्राप्त करने में अपनी ऊर्जा लगानी और साधन बढ़ाने पड़ते हैं और दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा में उतरना पड़ता है। यह भी कहा जाता है कि यदि इन प्रवृत्तियों के रास्ते में अवरोध खड़े किये जायेंगे तो मानसिक कुंठाएं बढ़ेंगी और उनका शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ेगा और उन्नति क्रम में अवरोध होगा। यह प्रतिपादन अगर सही माना गया तो 'सर्वाइवल ऑफ फिटेस्ट' के सिद्धांत को भी सही मानना पड़ेगा जिसमें जंगल के कानून का समर्थन किया गया है। जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली प्रवृत्ति मनुष्य और मनुष्यता के लिए कितनी घातक सिद्ध होगी। मध्यकाल के अन्धकारयुग में जिस प्रकार सारे निति-नियम उठाकर ताक पर रख दिए गए थे वह सर्वविदित है। खुली लूट, कत्लेआम, युवा-युवतियों का दास-दासियों के रूप में अपहरण अनेक राज्यों का नियम बना दिया था। उस समय के वृत्तचित्र जब आज सिनेमा के माध्यम से हम देखते हैं तो आज भी दहल जाते हैं। अगर कामुकता प्रकृति की मूल प्रेरणा है तो नैतिकता उस पर समाज में हावी होती क्यों दिखाई पड़ती है। जिस बहिन-बेटी को वर्षों घर में महंगा खर्च करके पालते हैं तो उसके विवाह के लिए जहाँ-तहाँ भटकने, झंझट बढ़ाने की क्या आवश्यकता है? बहिन बेटी का अन्यंत्र विवाह करने की क्या आवश्यकता? लेकिन फिर भी मनुष्य मर्यादा का ही वरण करता है, नीति को ही महत्व देता दिखाई देता है। कितना भी बुरा मनुष्य हो तब भी वह अपनी बहिन-बेटी और माँ के प्रति मर्यादाओं से आबद्ध रहता जो अन्यंत्र उसमें नहीं दिखती हैं। मूल प्रवृत्तियाँ यदि वही हैं जिन्हे फ्रायड प्रतिपादित करते हैं तो उनके साथ भारतीय संस्कृति द्वारा प्रतिपादित यह तथ्य भी हमें समझना चाहिए कि वह प्रगति-क्रम में मिली आ रही कुछ पुरानी आदतों से ज्यादा कुछ नहीं। आदतों की जड़ें यों तो होती तो गहरी है पर समयानुरूप वे बदलती भी रहती हैं। बचपन से लेकर यौवन काल तक पहुंचने में अनेकों आदतों में परिवर्तन हो जाता है। बच्चा एक ऊर्जा से ओतप्रोत है वह ऊर्जा उसे पड़े रहने की तुलना में खड़े होने या घूमने की इच्छा से माता-पिता की गोदी में चढ़ने का संकेत करने को प्रेरित करती है। दो-तीन वर्ष का होते ही उसकी आदत बदल जाती है तथा वह अपने पैरों पर चलने लगता है। इसी प्रकार असमर्थ रहने तक दूसरों का सहयोग पाकर काम चलने की प्रवृत्ति भी हट जाती है। बड़े होने पर बच्चा समय और स्थान की अनुकूलता होने पर ही मल मूत्र त्याग करता है। मूल प्रवृत्तियाँ भले ही कितनी गहरी हों तथा मनुष्य के अंत:करण में प्रेरणा उत्पन्न करने में उनकी मुख्य भूमिका भी हो तब ऐसा नहीं है कि उन्हें अपरिवर्तनीय कहा जाय।

भारतीय नैतिक सिद्धांत कहते हैं कि मूल प्रेरणा में सुविधा-संवर्धन, गौरव-संपादन, कामोपभोग जैसे तथ्य जुड़े हो सकते हैं पर वे इतने प्रबल नहीं कि नैतिक कर्तव्यों के साथ विग्रह खड़े करें या अनुशासन की सर्वथा उपेक्षा करने लगें। गत शताब्दियों में फ्रायड जैसे मनोवैज्ञानिकों ने लगता है ऊपरी अन्वेषणों में संतोष कर लिया या लगता है ओछे स्तर के, नैतिक दृष्टि से पिछड़े हुए लोगों को अपने अन्वेषण का निमित्त कारण चुना हो। यह भी हो सकता है कि शोधकाल की वर्तमान स्थिति को ही सब कुछ मान बैठने का भ्रम रहा हो। यदि ऐसा न होता तो उन्हें मूल प्रवृत्तियों में कुछ और ऐसी बातें भी मिल सकती थीं जो आदर्शवादी आदतों की पुष्टि करती और बताती कि वे भी अवसर पाते ही प्रकट और प्रखर हो सकती हैं। माँ का संतान के प्रति और संतान का माँ के प्रति जो भाव भरा अनुदान उभर के आता है उसे कहीं सीखने और सीखाने की आवश्यकता नहीं पड़ती और न ही उसके लिए कोई दबाब डालना पड़ता है। वह सबकुछ भीतर से ही उभरकर आता है। पीड़ितों के प्रति करुणा का, देश के प्रति प्राणों के बलिदान का, ईश्वर के प्रति वैराग्य की जो उमंगें अंतराल में उठती हैं उन्हें भी किसी मूल प्रवृति का कारण होना चाहिए। प्रवृत्तियों के विश्लेषण में जो निष्कर्ष निकले हैं, वे एकतरफा और एक ही परिस्थिति वालों को सामने रखकर तैयार किये गए प्रतीत होते हैं। अन्यथा आदर्शवादी जीवनयापन करने वालों की उच्चस्तरीय आदतों को भी शोध-क्षेत्र में डॉ. सिग्मंड फ्रायड ने शामिल किया होता और देखा गया होता कि जिन्हे आधारभूत प्रेरणा माना जा है, वे शाश्वत नहीं बल्कि परिस्थितिजन्य हैं। जब प्राणी के सामने कोई मृत्युतुल्य संकट सामने आता है तो वह भाग खड़ा होता है तब सैनिक क्यों निरंतर मौत से खिलवाड़ करने में रास लेता है और शत्रु के समक्ष डटा रहता है। वर्तमान में भी कोरोना जैसी मृत्युतुल्य बीमारी के सामने अनेक चिकित्सक भाग खड़े होने के स्थान पर हंस कर मृत्यु से खेल रहे हैं। नीति-निष्ठां थोपी हुई कोई वस्तु नहीं है बल्कि वह मानवी अंतराल में छुपी एक मूल प्रवृत्ति है। काम प्रवृत्ति यदि जन्मजात है और माता का स्तनपान करने में भी उसी कारण आनंद मिलता है तो समर्थ होने पर संतान अपनी माता के साथ रमण करने में उत्सुकता क्यों प्रकट नहीं करती? ऐसे कुछ प्रश्न फ्रायड की सूझ बुझ से शायद बाहर ही बने रहे होंगे। डॉ. कैनन अपनी पुस्तक 'इन विसिबिल इन्फ्लुएंसेस' में लिखते हैं कि "भारत हमको मनोविज्ञान एवं मन की क्रियाओं के सम्बन्ध में फ्रायड, एडलर तथा पश्चिमी विचारकों से कहीं अधिक ज्ञान दे सकता है। इसका कारण बताते हुए वे कहते हैं कि शाश्वत ज्ञान अनुभूतियों पर अवलम्बित होता है। भारतीय मनीषियों ने शरीर ही नहीं मन एवं बुद्धि से परे जाकर आत्मा के क्षेत्र में गहन मंथन किया। ध्यान की गहन अनुभूतियों में अनुभव किया कि शरीर एवं मन से भी समर्थ सत्ता आत्मा के रूप में मनुष्य के भीतर ही विद्यमान है, जिसके पतन अथवा विकास पर प्रगति अवलम्बित है। "समय आ गया है मनोविज्ञान के क्षेत्र में डॉ. सिग्मंड फ्रॉयड की अधूरी और अप्रासंगिक खोजों से आगे बढ़कर अनुसन्धान किये जाए जिससे भारतीय संस्कृति के ऋषियों द्वारा प्रतिपादित मनोविज्ञान जो कि आत्मा का विज्ञान होने के साथ मानव व्यक्तित्व के प्रत्येक पहलू और प्रवृत्ति से भिज्ञ है जनमानस के समक्ष प्रमाण के साथ प्रस्तुत किया जाय जिससे लाभ उठाकर संसार को एक सुन्दर उपवन में बदला जा सके जहाँ सभी प्राणी मिलजुलकर प्रेम से जीवनयापन कर सकें।

भारतीय संस्कृति के अनुसार प्रवृत्तियों का शोधन-परिशोधन असम्भव नहीं

भारतीय ऋषितंत्र आरम्भ से ही मनोविज्ञान को 'आत्मा का विज्ञान' कहता आया और उसी को दृष्टिगत रखते हुए ऐसे शाश्वत सूत्र विकसित किये जो मानव जीवन को उसके उच्चतम स्तर को पाने में सहायता कर सकें। जहाँ तक मानवी मूल प्रवृत्तियों या वृत्तियों का सम्बन्ध है भारतीय मनीषा ने योग और वेदांत के बल पर इनके सकारात्मक पक्षों को जाग्रत करने तथा पतन के कारणों को नष्ट करने के लिए अनेक विधाएँ प्रस्तुत की जो केवल पुस्तकीय नहीं वरन सफलतापूर्वक जाँची और परखी हुई थीं। महर्षि पतंजलि ने चित्त की वृत्तियों के लिए सूत्र दिया 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' अर्थात पतंजलि ने योग को 'चित्त वृत्ति निरोध' कहा है। इसका मतलब है कि अगर आप योग द्वारा मन की चंचलता या गतिविधियों को स्थिर कर सकते हैं, तो आप आंनद शांति को प्राप्त कर सकते हैं। चित्त 'अचेतन मन' को ही कहते हैं शरीर की स्वसंचालित क्रियाएँ भी अचेतन मन (चित्त) के आधार पर चलती है क्योंकि सामान्य चेतन तो विचार करने में ही लगा रहता है। मनुष्य का स्वभाव और व्यक्तित्व मध्यवर्ती अचेतन के अनुरूप ही ढलता है। मनोवैज्ञानिक परिभाषों के आधार पर हम पाते हैं कि चेतन (कल्पना और बुद्धि), अचेतन (आदतों और शरीर की स्वसंचालित क्रियाओं का तारतम्य), सुपर चेतन (भावनाओं और सूझ-बूझ का केंद्र) अपने-अपने काम करते रहते हैं और इन तीनों की सामर्थ्य से मनुष्य की गतिविधियों का सूत्र सञ्चालन होता है। ऋषियों ने इसी आधार पर सूत्र दिए हैं जिससे इन पाशविक वृत्तियों से छुटकारा पाया जा सकता है और ये स्थाई नहीं हैं जिससे अनिवार्य रूप से मनुष्य को तालमेल बिठाना पड़े जैसा फ्रायड अपने सिद्धांत में कहते हैं। चित्तवृत्ति को दो रूपों में समझा या देखा जा सकता है - एक तो अस्थिर चंचलता, दूसरे पाशविक कुसंस्कारों की ओर रुझान। इन दोनों ही अवांछनीयताओं पर काबू करने के लिए चित्त वृत्ति निरोध की योग साधना ऋषियों ने आवश्यक बताई है। फ्रायड से हजारों वर्षो पूर्व ही मनुष्य की वृत्तियों को समझकर उसका स्वरूप तथा समाधान भारतीय ऋषि संसार के समक्ष रख चुके थे लेकिन अपने को श्रेष्ठ तथा उपनिवेशवाद, पूंजीवाद जैसे अहंकारों के कारण सत्य को अपनाने की कला संसार से विलुप्त होती गई तथा अपना है तो सच्चा है का प्रचलन चल पड़ा जिससे अंतःकरण के रहस्य जो वर्षो पहले भारतीय मनीषा ने सुलझा दिए थे उन्हें फिर से पाश्चात्य कथित विद्वानों ने उलझा दिया और इसका ही परिणाम है कि आज भी संसार अशांति से ग्रसित है क्यूंकि संसार की प्रथम कड़ी मनुष्य का अंतःकरण अनसुलझा है। आज ये पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक मानने लगे हैं कि जो यह जान पा रहे हैं वह वही है जो भारतीय ऋषि हजारों वर्षों पहले जान गए थे।

पॉल ब्रंटन ने अपनी पुस्तक विजडम ऑफ दी ओवरसेल्फ में लिखा है कि "भारत के पास उसके आध्यात्मिक ज्ञान की प्राचीन बातें हैं जिसकी गहराई और विस्तार की तुलना किसी से नहीं की जा सकती। वैज्ञानिक क्षेत्रों में अब जो नई खोजें होती जा रही हैं, वे प्राचीन भारतीय खोजों का ही समर्थन करती देखी जाती हैं। भारतीय ऋषियों-मनीषियों ने जो कुछ भी लिखा अथवा उद्घोष किया वह सब मनःशास्त्र को भी दिशा देने में समर्थ है। "अगणित सामर्थ्यों का स्त्रोत्र मनुष्य की सत्ता में मौजूद है उन्हें जानने-समझने के लिए प्रचलित मनोविज्ञान से आगे बढ़कर योग मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करना होगा। जो

न केवल मनुष्य की मूल सत्ता की सर्वांग जानकारी देगा वरन उसके सर्वांगीण विकास का मार्ग भी प्रशस्त करेगा। मन की अल्प जानकारियों तक सीमित रहने वाले, आधुनिक मनोविज्ञान को जीवन की अनेकानेक समस्याओं का सही समाधान प्रस्तुत करने वाले और व्यक्तित्व परिष्कार का व्यावहारिक मार्गदर्शन करने वाले भारतीय आध्यात्मिक मनोविज्ञान का पक्षधर बनने की अत्यंत आवश्यकता है।

सन्दर्भ सूची

1. शर्मा, पण्डित श्रीराम (1995) साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान, जनजागरण प्रेस, मथुरा।
2. शर्मा, पण्डित श्रीराम (1995) चेतन अचेतन एवं सुपर चेतन मन, जनजागरण प्रेस, मथुरा।
3. Brunton, Paul (1952) The Wisdom of The OverSelf, Rider and Company, Hutchinson House, London.
4. पाण्डेय, देवी सहाय (2013) पतञ्जलयोगदर्शनम, चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस, 4697/2, गली नं. 21। दरियागंज, नई दिल्ली - 110002।
5. फ्रायड, सिग्मंड (2015) मनोविश्लेषण, राजपाल एंड संस, 1590 मदरसा रोड कश्मीरी गेट, दिल्ली - 110006।
6. Cannon, Alexander (1933) The Invisible Influence, Borderland Sciences Research Foundation P.O.Box 6250, Eureka, CA, USA 95502.
7. Dalal, A.S. (2004) The Yoga of Sleep and Sadhana, Sri Aurobindo Ashram Publication Pondicherry 605002.
8. शर्मा, पण्डित श्रीराम (2016) बुद्धि बढ़ाने की वैज्ञानिक विधि, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा।
9. https://www.simplypsychology.org/Sigmund-Freud.html
10. www.awgp.org

पूर्वाञ्चल क्षेत्र के बाल श्रमिकों की शिक्षा : समस्या एवं समाधान के संदर्भ में एक अध्ययन

आलोक कुमार श्रीवास्तव

शोध अध्येता (शिक्षाशास्त्र) वीर बहादुर सिंह पूर्वाञ्चल विश्वविद्यालय, जौनपुर (उत्तर प्रदेश)

डॉ० सुधांशु सिन्हा

एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षक शिक्षा विभागतिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर (उत्तर प्रदेश)

बाल श्रम की निरंतरता गरीबी घटाने की मंद गति से पूरी तरह संबंधित है। अत्यधिक गरीबी ही बच्चों को श्रम करने को विवश करती है। यह दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जा सकता है कि आज भी हमारे देश में बाल श्रमिक एक बड़ी विकट समस्या के रूप में खड़ी है। ताजे आँकड़े दर्शाते हैं कि भारत के उत्तर-प्रदेश में एक बड़ी तादाद में बाल श्रमिक हैं। पूरे देश का लगभग 20 प्रतिशत से उपर बाल श्रमिक उत्तर प्रदेश में हैं और लगभग दो तिहाई से अधिक बाल श्रमिक उत्तर प्रदेश के पूर्वाञ्चल क्षेत्र से आते हैं। पूर्वाञ्चल क्षेत्र में बाल श्रमिक ग्रामीण क्षेत्र से अधिक हैं और संगठित क्षेत्र के वनिस्पत असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं। 90 प्रतिशत से भी अधिक बच्चे ग्रामों में कृषि तथा इससे जुड़े कार्यों में लगे हैं। हालाकि ये बच्चे विद्यालय में भी नामांकित हैं और केवल कृषि कार्य के समय ही विद्यालय से अनुपस्थित हो जाते हैं। फिर भी इनके श्रम को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

बच्चे किसी भी राष्ट्र की परिसंपत्ति होती है, क्योंकि वे ही भावी नागरिक होते हैं। किसी भी देश की प्रगति इस बात पर निर्भर करती है कि उस देश के बच्चों का पालन-पोशण, शिक्षा तथा उनकी देख-भाल कितनी अच्छी तरह हो रही है। यद्यपि हमारे संविधान में बच्चों के हितों की रक्षा हेतु सुनिश्चित प्रावधान हैं कि उन्हें शिक्षा मिले और उन्हें जीवन-यापन के लिए कार्य करने के लिए मजबूर नहीं किया जाये। किन्तु वंचित क्षेत्रों/समुदायों को अनदेखा करना, संसाधनों की कमी और यह भ्रामक धारणा कि बाल श्रमिक परिवार की आय को बढ़ाते हैं आदि कुछ ऐसे तथ्य हैं जो बाल श्रम करने और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम की असफलता के कारण हैं। भारत के संविधान में 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा की संकल्पना है लेकिन विडम्बना यह है कि वास्तव में बड़ी संख्या में बच्चे इस मूल अधिकार से वंचित हैं और दयनीय हालत में कमरतोड़ मजदूरी करने पर विवश हैं। इसका नतीजा यह होता है कि निरक्षरता बढ़ती है जो बाल मजदूरी का अविभाज्य अंग है। बाल श्रम को दूर करने के लिए हमें बुनियादी स्कूली शिक्षा को व्यापक स्तर पर लाना होगा।

बाल श्रम उन्मूलन कोई असंभव कार्य नहीं है। आवश्यकता केवल सही दिशा में उपयुक्त कार्य करने की है। वर्शों से यह दायित्व धीरे-धीरे गैर-सरकारी संगठनों तथा निजी सामाजिक संगठनों पर आ गया है। कोई भी गैर-सरकारी संगठन व्यापक रूप में फैली इस सामाजिक-आर्थिक समस्या से निपटने के लिए पर्याप्त रूप से साधन सम्पन्न नहीं हैं, किन्तु यदि प्रतिष्ठित गैर-सरकारी संगठनों को सभी सरकारी विभाग समर्थन दें तो इसमें काफी हद तक सफलता पाई जा सकती हैं। इसके लिए शिक्षा, केन्द्र और राज्य सरकार की संयुक्त जिम्मेवारी बनती है। पूर्वाञ्चल क्षेत्र में भी कई ऐसे गैर-सरकारी संगठन हैं जो बाल श्रमिकों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। बाल मजदूरी की समस्या को दूर करना गैर-सरकारी संगठनों के लिए असम्भव कार्य नहीं है। यदि सरकारी स्तर पर इनका औचक निरीक्षण, बुनियादी सुविधाएँ तथा सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध करायी जाय तो यह काफी हद तक संभव हो सकता है कि हम बाल श्रमिक उन्मूलन के दिशा में सफलता प्राप्त कर लें। गैर-सरकारी संगठनों के कार्यों को देखते हुए डॉ. लक्ष्मीधर मिश्रा ने कहा कि "यह स्पष्ट है कि समाज के एजेन्ट के रूप में राज्य सरकार लाखों की संख्या में असुरक्षित बच्चों को कोई भी सुरक्षा देने में असफल हुई है जो कि उनके विकास की महत्वपूर्ण अवधि होती है। लेकिन कुछ मुट्ठी भर एनजीओ ने देश के कुछ हिस्सों में अत्यधिक नवप्रवर्तित, लागत प्रभावी और परिणामोन्मुखी कार्यक्रमों की शुरूआत की और जिसके आश्चर्यजनक परिणाम भी निकले, लेकिन क्षेत्र विस्तार (कवरेज) और इसके फैलाव के सम्बन्ध में यह तथ्य शून्य के बराबर है।"

बाल श्रम का मूल कारण है समाज में बाल श्रम के प्रति व्याप्त उपेक्षा। घर-घर छोटे-छोटे बच्चों का काम करना इसका सबूत है। आज समाज का प्राय: हर तबका वयस्कों के समान व किन्हीं परिस्थितियों में उनसे भी ज्यादा काम इन बच्चों से लेना चाहता है। बच्चों से कम वेतन पर अधिक काम लेना, उनसे

गुलामों की भांति व्यवहार करना, मामूली त्रुटियों पर मानसिक व शारीरिक उत्पीड़न आम बात है। अध्ययन से पता चलता है कि चयनित बच्चों को गैर-सरकारी संगठन से पंजीकृत होने के पूर्व कोई संतोशजनक स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध नहीं है। बस घरेलू बाल श्रमिकों पर उनके मालिक कुछ ध्यान देते हैं। इनकी शिक्षा-दीक्षा में किसी भी बाल श्रमिक के मालिकों की कोई रूचि नहीं है। अध्ययन से कुछ तथ्य सामने आये हैं, जो कई बातों की ओर ध्यान आकृष्ट कराते हैं :

- अध्ययन क्षेत्र से चयनित किये गये बाल श्रमिकों के बहुसंख्यक परिवार अनुसूचित जाति, अत्यंत पिछड़ी जाति और मुस्लिम समुदाय के निम्न आय वर्ग वाले हैं जो यह दर्शाता है कि बच्चों द्वारा श्रम करने के पीछे परिवार की दयनीय स्थिति ही जिम्मेवार है।
- इन बच्चों के परिवारों में औसत परिवार के सदस्यों की संख्या अधिक है। मुस्लिम परिवारों का आकार सबसे बड़ा है किन्तु अनुसूचित जाति और अत्यंत पिछड़ी जाति के बच्चों में भी परिवार की सदस्य संख्या औसतन 7-8 के बराबर है।
- अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि मुक्त कराये गये बाल श्रमिकों में अधिकांश प्रवासी हैं और प्रवास का मुख्य कारण गरीबी और बेरोजगारी है।
- इन बच्चों के परिवारों की जीवन दशा अत्यंत खराब है जिसमें किसी के पास शायद ही कोई बुनियादी सुविधा हो। हालाकि कुछ बच्चों के परिवार वालों ने बताया कि उनके स्वंय के मकान हैं किन्तु अधिकांश के मकान टूटे-फुटे ढ़ाँचों पर आधारित है।
- इन परिवारों के कमाई का एक अच्छा भाग भोजन, ईधन और ऋण पर खर्च होता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, कपड़ा तथा मनोरंजन आदि को कम प्राथमिकता दी जाती है।
- अध्ययन क्षेत्र अर्थात् उत्तर प्रदेश के पूर्वाञ्चल क्षेत्र का साक्षरता दर भी बहुत कम है और महिलाओं की साक्षरता दर पुरुषों से और कम है। जिसके कारण इनमें जागरूकता का अभाव एवं अज्ञानता है।
- अधिकांश बच्चों ने शिक्षा बीच में छोड़ दी तथा पढ़ाई छोड़ने का दर लड़कियों की अपेक्षा लड़कों में अधिक है। बच्चे वित्तीय समस्याओं और लगातार वर्ग में अनुपस्थित रहने के कारण शिक्षा में अरूचि के कारण पढ़ाई छोड़ देते हैं। हालाकि लड़कियों का विद्यालय में नामांकन अवश्य कराया जाता है किन्तु वे लम्बी अवधि तक अनुपस्थित रहती हैं। कुछ बच्चों ने पलायन, पारिवारिक आय में मदद तथा भाई बहनों की मदद आदि जैसे कारणों को महत्वपूर्ण बताया।
- राष्ट्रीय बाल श्रमिक परियोजना (एन.सी.एल.पी.) के तहत चलाये जाने वाले गैर-सरकारी संगठनों द्वारा विशेष विद्यालयों की संख्या काफी कम है। एक जिला में जितने अधिक विशेष स्कूल होंगे बाल श्रमिकों की संख्या में कमी आयेगी। दूसरी बात इन विद्यालयों में बाल श्रमिकों के लिए सीमित सीटें हैं और बाल श्रमिकों की संख्या इन सीटों के वनस्पित बहुत ही अधिक है।
- एक महत्वपूर्ण बात यह स्पष्ट होती है कि साथी बाल श्रमिक को कार्य करते देख दुसरे बाल श्रमिक इन विद्यालयों में पंजीकृत होने के बावजूद वहाँ से भागने का प्रयास करते हैं।
- एन.सी.एल.पी. द्वारा संचालित गैर-सरकारी संगठनों द्वारा विशेष विद्यालयों में संसाधनों का अभाव है। साथ ही अच्छे प्रशिक्षकों की कमी है और बाल श्रमिकों के प्रति इनका व्यवहार सामान्य है जिस कारण बच्चे शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण की मुख्य धारा से नहीं जुड़ पाते हैं।
- एक महत्वपूर्ण बात यह है कि इन विद्यालयों से निकलने वाले अधिकांश बच्चे पुनः बाल श्रमिक का कार्य करने लगते हैं व अन्य श्रम कार्य में लग जाते हैं शिक्षा से उनका कोई विशेष लगाव नहीं रह जाता है। इसके पीछे सबसे पहला कारण परिवार की दयनीय आर्थिक स्थिति और दूसरा कारण है स्वरोजगार अगर ये करना चाहते हैं तो न इनके पास कोई पूँजी है और न ही मार्केटिंग की व्यवस्था है। सरकार एवं गैर-सरकारी संगठन भी इस दिशा में उदासीन है इसलिए पुनर्वासन सही से नहीं हो पा रहा है। इनकी बात कोई सुनने वाला भी नहीं है।
- इन विशेष विद्यालयों में पंजीकृत बच्चों का कहना है कि जितनी व्यावसायिक प्रशिक्षण योजनाएँ व शैक्षिक गतिविधियाँ हैं, यदि उनका सही से परिचालन हो तो लाभ मिल सकता है। साथ ही कोई वरीय अधिकारी को निरन्तर इन केन्द्रों का दौरा करना पड़ेगा। हालाकि इस दिशा में भी उदासीनता है। साथ ही और अधिक परियोजना केन्द्र बढ़ाने की आवश्यकता है।

अध्ययन के दौरान हमारे कई जनप्रतिनिधि/प्रशासनिक अधिकारी तथा समाज के विभिन्न वर्गों के साथ वार्तालाप से पता चलता है कि बाल श्रम किसी के लिए भी आवश्यकता नहीं है यह निर्धन परिवारों के लिए एक मजबूरी है। ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं है जिसमें बाल श्रम एक अनिवार्य आवश्यकता हो। कुछ राष्ट्रीय स्तर के गैर-सरकारी संगठन हैं जो बाल श्रमिकों के पुनर्वासन हेतु केवल संगोष्ठी व प्रचार-प्रसार करते हैं। इन गैर-सरकारी संगठनों द्वारा बाल-श्रम की असल सच्चाईयों को नजरअंदाज कर विभिन्न संगोष्ठियों-सम्मेलनों द्वारा बाल-श्रम पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाने पर जोर दिया जाता रहा है।

अतः स्पष्ट है कि जो भी गैर-सरकारी संगठन बाल श्रमिकों के लिए कार्य कर उन्हें बाल श्रमिकों के साथ कुशल व्यवहार अपनाना होगा और जो बाल श्रमिक व्यावसायिक प्रशिक्षण ले रहे हैं उनके पुनर्वासन हेतु कम-से-कम एक वर्ष तक गैर-सरकारी संगठन को उनके द्वारा किये जाने वाले स्वरोजगार की निगरानी व देख-रेख करना होगा। अर्थात् उन्हें बैंक से ऋण दिलाना, उचित मार्केट की व्यवस्था करनी होगी तभी इसका प्रभाव अन्य बाल श्रमिकों पर भी पड़ेगा। हालाकि अध्ययन क्षेत्र में बाल श्रमिकों का पुनर्वासन हुआ है किन्तु पुनर्वासन दर बहुत ही कम है। साथ ही आवश्यकता है कि सरकारी स्तर पर खानापूर्ति न की जाय बल्कि इसके प्रति थोड़ी तत्परता और निरन्तरता दोनों ही दिखाने की आवश्यकता है। प्रशासनिक अधिकारियों को विशेष विद्यालयों में

पंजीकृत बच्चों से कम-से-कम महीने में दो बार मिलने की आवश्यकता है और इनकी समस्याओं को सुनने की भी आवश्यकता है। साथ ही इन विशेष विद्यालयों में कार्यरत प्रशिक्षकों की गुणवत्ता की भी जाँच समय-समय पर की जानी चाहिए क्योंकि धन बचाने के लिए ये कम पैसे में ही कर्मचारियों को रख लेते हैं तथा एक ही कर्मचारी कई तरह के कार्यों को करते हैं जिसकी निरन्तर जाँच होनी चाहिए। बाल श्रमिकों के शिक्षा एवं पुनर्वासन के लिए कार्यरत गैर-सरकारी संगठन की योजनाएँ बहुत ही लाभकारी है। इनका क्रियान्वयन सही से होगा तभी बाल श्रम से मुक्ति मिल सकती है और सभी बच्चों का शिक्षा के क्षेत्र में भागीदारी होगा। अन्यथा एक तरफ पुनर्वास कार्यक्रम चलता रहेगा और दूसरी तरफ बाल श्रम पैदा होते रहेंगे।

भारत ही नहीं, दुनिया के उन तमाम देशों में जहाँ दरिद्रता, अशिक्षा और बेरोजगारी का साम्राज्य है, बच्चों को श्रम से वंचित करना उनकी जिन्दगी को दुश्वार बनाने तथा उन्हें अपराधें की ओर प्रवृत करने जैसा कृत्य के बराबर है। बाल श्रम समस्या की जड़ वस्तुत: गरीबी, अशिक्षा और बेरोजगारी है। यदि इन तीनों पर नियंत्रण पा लिया गया तो समस्या का हल स्वत: निकल जायेगा। इसका ज्वलन्त उदाहरण यह है कि आजकल रिक्शा चलाने वाले व रोड किनारे चप्पल/जुता मरम्मत का कार्य करने वाले भी अपने बच्चों को सरकारी के बजाय निजी स्कूल में भेजना पसंद करते हैं यदि वे उनके विद्यालय के फीस की राशि अपनी जरूरत की सारी खर्चों को पूरा करने के बाद बचा लेते हैं। अर्थात् जब तक गरीबी नहीं मिटेगी, सभी वयस्कों को रोजगार उपलब्ध नहीं होगा तथा शिक्षा के प्रति रूझान नहीं बढ़ेगा और शिक्षा के लिए जागरूकता नहीं फैलाया जाएगा तब तक बाल श्रम उन्मूलन की बात करना व्यर्थ होगा।

बाल श्रम को प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक अपराध के रूप में स्वीकार करना चाहिए लेकिन बाल श्रम उन्मूलन के उन तरीकों का विरोध करना चाहिए जिसमें बाल श्रम रूपी वृक्ष की जड़ काटने के बजाय उसकी पत्तियाँ एवं डालें तोड़ने के प्रयास किये जा रहे हैं। इसके लिए गरीबी हटाने का सफल प्रयास करना होगा, पूर्ण साक्षरता प्राप्त करनी होगी, बूढ़े/अपंग/बीमार व लाचार अभिभावकों को जीवन-यापन की सहायता देनी होगी, जनसंख्या का अनुपात संतुलित करना होगा, शिक्षा की उचित व्यवस्था करके इस सामाजिक अपराध प्रति जागृति फैलानी होगी, रोजगारपरक नि:शुल्क शिक्ष की व्यवस्था करनी होगी, इसके लिए सभी संभव उपाय सरकारी स्तर पर करने होंगे तथा समाज का एक-एक व्यक्ति का दायित्व होगा कि बाल श्रम न करायेंगे न कराने देंगे तभी हम इस कुप्रथा को रोक सकते हैं।

सुझाव

बच्चों द्वारा किया जाने वाला कोई भी कार्य उनकी कठिन परिस्थितियों में जीवन निर्वाह करने की प्रवृति को दर्शाता है। हालाकि अधिकांश बच्चे श्रम करना नहीं चाहते हैं, शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं किन्तु परिस्थितिवश उन्हें कार्य करना पड़ता है। अधिकतर बच्चे निम्न जाति/समुदाय के गरीब परिवारों के हैं जहाँ उनके माता-पाता निरक्षर और दयनीय आर्थिक स्थिति में जीवन यापन करते हैं। इस कारण बच्चे स्कूल में दाखिला तो लेते हैं किन्तु अधिक समय तक अनुपस्थित रहते हैं और अंतत: शिक्षा छोड़ देते हैं। परिवार द्वारा बच्चों की शिक्षा को कम प्राथमिकता दी जाती है फलस्वरूप उनकी अज्ञानता और निरक्षरता का लाभ उठाकर कई लोग उनके बच्चों से श्रम करवाने लगते हैं। अध्ययन के आधार पर बाल श्रमिकों की समस्याओं को दूर करने के लिए कुछ सुझाव दिये जा रहे हैं, जो इस प्रकार हैं :

- बच्चों के अधिकारों के बारे में आम जनता को जागरूकता किया जाना है। बच्चों के अधिकारों यथा शिक्षा आदि पर क्रियान्वयन किया जाना चाहए।
- उन परिवारों जिनके बच्चे बाल श्रम का कार्य करते हैं, की आर्थिक स्थिति में सुधार लाना अधिक महत्वपूर्ण है। विभिन्न विकास और गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के तहत आय सृजित करने वाली परिसंपत्तियों के रूप में सहायता देने के प्रावधानों का लाभ इन परिवारों को दिए जाने की आवश्यकता है।
- नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा के साथ व्यावसायिक प्रशिक्षण से इन बच्चों को बड़े होने पर लाभ हो, इस प्रकार के शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।
- बच्चों से संबंधित मुद्दों खासकर बाल श्रम के क्षेत्र में कार्य करने वाले गैर-सरकारी संगठनों को यह जबावदेही दी जाए उनके क्षेत्र में कोई भी कामगार चाहे वह संगठित क्षेत्र हों या असंगठित क्षेत्र या घरेलू कार्य कराने वाले ही क्यों न हों उन्हें चिन्हित कर स्थानीय प्रशासन से सम्पर्क स्थापित करते हुए बाल श्रमिकों को मुक्त कराकर उन्हें दण्डित कराने में सहयोग करें।
- गैर-सरकारी संगठन द्वारा संचालित सरकार द्वारा प्रायोजित राष्ट्रीय बाल श्रमिक परियोजना के तहत चलने वाले विशेष विद्यालयों के प्रति सकारात्मक रवैये प्रशासन के द्वारा अपनायी जाय तथा उन संस्थानों को विशेष सुविधाओं से लैस किया जाए तभी जाकर बाल श्रमिक वहीं रह पायेंगे और शिक्षा की मुख्य धारा से जुड़ सकेंगे।

यदि हम उपरोक्त सभी सुझावों को अमल करें तो हमें लगता है कि बच्चों के साथ ये बाल श्रम सा दुर्व्यवहार और उनका उत्पीड़न तत्काल समाप्त किया जा सकता है और बच्चों के अधिकार युद्धस्तर पर सुनिश्चित किया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. छिल्लर, सुशील कुमार एवं मंजूलता; भारत में बाल श्रम, राहुल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 2013.
2. दशोरा, मनोज कुमार; बाल श्रमिक : समस्या एवं समाधान, हिमांशु पब्लिकेशन, उदयपुर, 2006.

3. देवी, एल.; चाइल्ड लेबर : इन्साइक्लोपीडिया ऑफ चाइल्ड एण्ड फैमिली वेलफेयर सीरीज, इंस्टीच्यूट ऑफ सस्टेनेवल डेवलपमेन्ट, अनमोल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1988.
4. भार्गव, प्रमिला एच.; द एलिमिनेशन ऑफ चाइल्ड लेबर : हूज रिस्पांसिबिलिटी, ए प्रैक्टिल वर्क बुक, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2003.
5. वर्मा, अंजना एवं सोमवंशी, रश्मि; भारत में बालश्रम : एक अभिशाप, साहित्य चन्द्रिका प्रकाशन, जयपुर, 2018.
6. शर्मा, सुभाष; भारत में बाल मजदूर, प्रकाशन संस्थान, दरियागंज, नई दिल्ली, 2010.
7.
8. मिश्रा, लक्ष्मीधर; भारत में बाल श्रमिक, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2000, पृष्ठ 321.
9. बाल श्रम उन्मूलन तथा किशोर श्रम निशेध एवं विनियमन हेतु राज्य कार्य योजना, श्रम संसाधन विभाग, उत्तर प्रदेश

तख्त श्री केसगढ़ साहिबः ऐतिहासिक प्रसंग

नवजोत सिंह

(खोजार्थी), गुरु नानक अध्ययन विभाग, गुरु नानक देव युनिवर्सिटी, अमृतसर (पंजाब)

सिक्ख धर्म मध्यकाल के दौरान पंजाब में पैदा हुआ एक ऐसा क्रान्तिकारी और इंकलाबी धर्म था जिसने सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक गुलामी की जंजीरों में जकड़े समाज को स्वतन्त्र, निडर तथा भाईचारिक एकता रखने वाली विचारधारा दी। संगत, लंगर, धर्मशाला, मंजी, मसन्द आदि सिक्ख धर्म के पहले दौर की प्रमुख संस्थाऐं थी जिन्होंने सामाजिक भाईचारे की नींव को मजबूत किया। इन संस्थाओं को कार्य जहां धार्मिक था वहीं राजनीतिक भी था। संगत के पिछोकड़ में राजनीतिक विचारधारा क्रियाशील थी जिसका मकसद बिखरी हुई लोक शक्ति को एक आदर्श बनाकर एक जगह एकत्रित करना था। गुरु अर्जुन देव जी की शहादत के पश्चात् गुरु हरगोबिन्द साहिब द्वारा पहले गुरु साहिबान की और से स्थापित राजनीतिक सिद्धांतों को सही रुप में साकार करते हुए श्री अकाल तख्त की स्थापना की। जिसका उद्देश्य दबे-कुचले जा रहे लोगों के सम्मान व हितों की आवाज को बुलंद करना था। अकाल तख्त साहिब सिक्ख धर्म और राजनीतिक हितों के लिए मार्ग से भटक चुके राज प्रबन्ध के विरुद्ध सैनिक संघर्ष का प्रतीक था। इस केन्द्रीय स्थान के अलावा चार और क्षेत्रीय तख्त साहिब स्थापित किए। तख्त श्री हरिमन्दिर साहिब (पटना साहिब) पूर्व की संगत, तख्त श्री केसगढ़ साहिब (आनंदपुर साहिब) पंजाब के पहाड़ी और निचले पहाड़ियों की संगत, तख्त श्री दमदमा साहिब (तलवंडी साबो) दक्षिणी पंजाब और राजपूत इलाके की संगत तथा तख्त श्री हजूर साहिब (नंदेड़) दक्षिण भारत में निवास कर रहे सिक्ख भाईचारे का केन्द्रीय स्थान है। खालसा पंथ के पांच तख्तों की स्थापना अलग-अलग समय पर हुई है, परन्तु पांचों तख्तों के निर्माण का उद्देश्य एक ही था सिक्खों को आत्मिक और राजनीतिक तौर पर मजबूत करना। इस प्रकार चारों तख्त साहिबान खालसा संगठन प्रणाली के क्षेत्रीय और श्री अकाल तख्त साहिब सिक्ख पंथ के केन्द्रीय स्थान है। इस खोज-पत्र में खालसा पंथ के तीसरे तख्त "तख्त श्री केसगढ़ साहिब" के इतिहासिक प्रसंग के विषय में चर्चा की जायेगी।

तख्त श्री केसगढ़ साहिब

तख्त श्री केसगढ़ साहिब खालसा पंथ का बहुत महत्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक स्थान है, जिसे पंथ का एक तख्त होने का बहुमूल्य स्थान प्रदान किया गया है। यह तख्त श्री आनंदपुर साहिब में स्थित है। आनंदपुर साहिब सतलुज नदी के किनारे तथा हिमालय पर्वत की छोटी-छोटी पहाड़ियों से घिरा खालसा पंथ का धार्मिक, ऐतिहासिक एवं राजनीतिक नगर है। गुरु गोबिन्द सिंह ने इस पवित्र धरती पर खालसा पंथ की नींव रखकर अन्याये और जबर जुलम के खिलाफ डटकर पहरा देने की शिक्षा प्रदान की। खालसाई रीति-रिवाज के अनुसार समूह खालसा पंथ आनंदपुर साहिब का निवासी है क्योंकि यह नगर खालसे की जन्म भूमि है।

गुरु तेग बहादुर जी गुरुगद्दी पर विराजमान होने के पश्चात् बाबा बकाले से विभिन्न स्थानों पर सिक्खी का प्रचार प्रसार करते हुए 1665 ई. में कीरतपुर पहुंचे थे। यह नगर छेवें से आठवें गुरु साहिबानों के समय सिक्ख गतिविधियों का केन्द्रीय स्थान था। यह नगर कहिलूल राज्य की सीमां पर स्थित था। गुरु जी का कुछ समय ही अभी निवास करते हुए यहां व्यतीत हुआ ही था कि बिलासपुर की रानी चंपा देवी ने राजा दलीप चंद की अन्तिम रस्मों में शामिल होने के लिए उन्हें निमंत्रण भेजा। गुरु साहिब परिवार सहित बिलासपुर गए और कुछ दिन वहीं पर ठहरे। रानी चंपा देवी को जब पता चला कि गुरु साहिब कीरतपुर को छोड़कर कहीं ओर जाना चाहते हैं तो रानी चंपा ने माता नानकी से कहा कि वह कीरतपुर छोड़कर न जाएं बल्कि उनकी रियासत में जहां चाहें जमीन लेकर नयां नगर स्थापित कर लें। 'गुरु कीयां साखियां' अनुसार रानी ने सरोद माखोवाल नगर की जमीन गुरु साहिब को नगर बसाने के लिए भेंट की। गुरु साहिब ने 21 हाड संवत 1722 को नए नगर की स्थापना की नींव रखी।[1] जिसको बाद में आनंदपुर साहिब का नाम दिया गया।

नगर की स्थापना करने के पश्चात् गुरु साहिब ने भिन्न-भिन्न क्षेत्र के कारीगरों को यहां पर लाकर बसाया। संगत के ठहरने के लिये सुन्दर धर्मशाला तथा कई घरों का नव-निर्माण करवाया गया।[2] गुरु साहिब के हुक्मों का पालन करते हुए इस नगर में अति शीघ्र ही चहल-पहल हो गई तथा यह नगर सिक्खों के एक केन्द्रीय स्थान के तौर पर प्रचलित होने लगा। गुरु साहिब ने कुछ समय यहां ठहरने के पश्चात् सिक्खी के प्रचार-प्रसार के लिए अलग-अलग स्थानों की यात्रा करने का विचार बनाईया। उन्होंने बिहार, आसाम, बंगलादेश आदि स्थानों पर सिक्खी का प्रचार करते हुए वापसी के बाद पक्के तौर पर आनंदपुर साहिब में निवास किया।[3] इस स्थान पर आने के पश्चात् गुरु जी ने अपना परिवार पटना साहिब से बुला लिया। बालक गोबिन्द जी को शैक्षणिक तथा हथियारों की शिक्षा यहीं पर ही उच्च कोटि के विद्वानों द्वारा यहीं पर ही दिलवाई गई।

दिल्ली के तख्त पर उस समय बादशाह औरंगजेब का शासन था जो एक सुन्नी मुस्लमान था। वह भारत की धरती को पूर्ण तौर पर इस्लामिक रंग में रंगना चाहता था। अपने मंसूबों की पूर्ती के लिये वह दूसरे धर्मों के लोगों को जबदस्ती इस्लाम धर्म कबूल करवा रहा था तथा जो इस्लाम धर्म कबूल नहीं करता उसका कत्ल कर दिया जाता था। हिन्दू धर्म के प्रचारकों पर बहुत अत्याचार हो रहे थे। कश्मीर से पंडितों का एक समूह पंडित कृपा दास की अगवाई

में गुरु तेग बहादुर जी के पास फरियाद लेकर आनंदपुर साहिब पहुँचा।[4] सिक्ख परम्परा के अनुसार उस समय दरबार लगा हुआ था। गुरु साहिब कश्मीरी समूह के साथ विचार विमर्श कर ही रहे थे कि बालक गोबिन्द जी भी आ गए तथा दरबार में पसरी खामोशी के माहौल का कारण पूछते हैं तब गुरु साहिब बताते हैं कि बादशाह औरंगजेब के जुल्मों पर नकेल कसने के लिये किसी एक महान पुरुष के बलिदान की आवश्यकता है। बालक अपने स्वभाव के अनुकूल कहते हैं कि इस समय दुनियां में आपसे बड़ा कौन महापुरुष हो सकता है। तत्पश्चात गुरु साहिब ने हिन्दू धर्म की रक्षा तथा मुगल हकूमत के जुल्मों के खिलाफ दिल्ली के चांदनी चौक में शहीदी दे दी।

गुरु तेग बहादुर जी की शहीदी के पश्चात् गुरु गोबिन्द सिंह ने धार्मिक गतिविधियों को आगे बढ़ाया। गुरु साहिब ने सिक्खों को धार्मिक कार्यों के साथ-साथ मानसिक तौर पर भी आने वाले भयानक समय के लिए तैयार करना शुरु कर दिया था। सिक्खों को घुड़ स्वारी, तीरंदाजी, तलवार आदि चलाने की शिक्षा दी जाने लगी। प्रतिदिन प्रातः और सांय को रणजीत नगारा बजाया जाने लगा।[5] आनंदपुर साहिब में गुरु साहिब जी द्वारा की जा रही गतिविधियों के कारण कहलूल के राजा भीम चंद के साथ संबंध बिगड़ने लगे।[6] गुरु साहिब किसी से संबंध बिगाड़ना नहीं चाहते थे जिस कारण वह नाहन के राजा मेदनी के आमंत्रण पर पंऊंटा साहिब चले गए।[7] पंऊंटा साहिब भी गुरु जी के लिये उचित न रहा। सिक्खों की बढ़ रही शक्ति पहाड़ी साम्राज्यों के लिये बर्दाशत करना मुश्किल हो रहा था। जिसके कारण 1688 ई. में भंगानी के स्थान पर सिक्ख तथा पहाड़ी राजाओं के बीच युद्ध हुआ तथा खालसा फौज को जीत प्राप्त हुई। युद्ध के पश्चात् गुरु साहिब सिक्ख फौज सहित वापिस आनंदपुर साहिब आ गए।[8]

आनंदपुर साहिब वापिस आने पर गुरु साहिब ने नगर को पुनः नए ढंग से स्थापित करना शुरु कर दिया। गुरु जी ने कारीगर बुलाकर शस्त्रों का कारखाना खोल दिया। जिसमें बंदूके, जंबूर, अनेक प्रकार के तीर-कमान बनाए जाने लगे, संजोअ, फौलादी तलवारें, कटारें आदि बनवाई जाने लगी, कई तोपे भी बनवाई गई।[9]

गुरु साहिब ने बाहरी हमलों से बचाव के लिए आनंदगढ़ साहिब किले का निर्माण करवाया तथा किले के साथ नहर बनाई जिसके पानी का उपयोग लंगर आदि तैयार करवाने के लिये किया जाता था। इस किले के निर्माण के पश्चात् आनंदपुर साहिब में और किलों का निर्माण करवाया, जिसमें किला लोहगढ़, किला फतहगढ़ साहिब, किला होलगढ़ साहिब, किला तारागढ़ साहिब, किला केसगढ़ साहिब हैं।[10]

गुरु साहिब की भंगाणी की जीत के बाद आनंदपुर साहिब में जंगी हथियारों और किलों के नव-निर्माण के कारण पहाड़ी राजाओं की मानसिकता पर गहरा प्रभाव पड़ा। जिसके कारण उन्होंने गुरु साहिब की मदद से अपने साम्राज्यों को मुगल हकूमत से आजाद करवाने का विचार बनाकर, मुगल हकूमत को दिया जा रहा वार्षिक शुल्क बंद कर दिया। जिसके कारण औरंगजेब ने अलफ खां की अगुवाई में फौज भेजकर पहाड़ी राज्यों के राजाओं से शुल्क लेने के लिए भेजा। 1690 ई. में नादौण के स्थान पर सिक्ख और पहाड़ी राजाओं की सांझी फौज ने अलफ खां के विरुद्ध जंग का मैदान फतेह किया। युद्ध में जीत के उपरान्त पहाड़ी राजे मुगल हकूमत के डर से मुक्त न हो सके। वह अलफ खां के साथ समझौता करके शुल्क देने को तैयार हो गए।[11]

गुरु साहिब जंग के बाद वापस आनंदपुर साहिब आ गए। उन्होंने किला केसगढ़ साहिब से सिक्ख पंथ के प्रचार-प्रसार की गतिविधियों को जारी रखा। किला केसगढ़ साहिब को बाद में खालसा पंथ की ओर से तख्त का दर्जा दिया गया। खालसा फौज की जंग में जीत होने पर सिक्ख फौज का मनोबल बढ़ गया। गुरु साहिब ने आनंदपुर में महला निकालने की परम्परा की शुरुआत की। जिसमें खालसा फौज को दो टुकड़ियों में बांट कर नकली युद्ध अभ्यास करवाया जाता था। इसमें जीत प्राप्त करने वाली फौज को विशेष ईनाम दिए जाते थे। सिक्ख इन गतिविधियों में बड़े उत्साह और हौंसले से भाग लेते थे। गुरु साहिब की इन गतिविधियों के द्वारा सिक्ख धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में सक्रिय हुए।

गुरु साहिब ने 1699 ई. की वैसाखी में तख्त श्री केसगढ़ साहिब में खालसा की सृजना की। यहां पर संगतों का एक विशाल समूह एकत्रित किया गया। नित-नेम की बाणी और अरदास के उपरान्त गुरु साहिब ने म्यान में से तलवार निकालकर विशाल समूह से एक शीश की मांग की, जिससे संगत में डर का माहौल पैदा हो गया परन्तु लाहौर का एक सिक्ख दयाराम उठ खड़ा हुआ। इस प्रकार गुरु जी ने पांच शीशों की मांग की। संगत की भीड़ में से दिल्ली से धर्म चंद, जगननाथपुरी से हिम्मत चंद, द्वारिका से मोहकम चंद, बिदर से साहिब चंद ने अपने-अपने शीश गुरु साहिब को भेंट किए। गुरु जी ने विशेष विधि के तहत अमृत तैयार करके पांच प्यारों को अमृत पिलाया और फिर स्वंय उनसे अमृत पीकर 'गुरु चेला चेला गुरु' के शब्दों को अमली रुप से साकार किया। इसके पश्चात् हजारों की संख्या में एकत्रित सिक्ख संगत ने तख्त साहिब के स्थान पर अमृत ग्रहण किया। सिक्ख नामों के पीछे सिंह और कौर का रुतबा गुरु साहिब ने इसी स्थान से दिया। एक ही बर्तन में प्रत्येक प्राणी को अमृतपान करवाया जाता था। जिसके फलस्वरुप ऊँच-नीच, जात-पात का भेदभाव जड़ से ही खत्म होने लगा।

तख्त साहिब से खालसे की सृजना ने जहां सदियों से लताड़ी जा रही जनता के मनोबल को ऊँचा करके, उनके हृदय में आजादी की ज्वाला को तेज कर दिया वहीं पहाड़ी राजाओं और मुगल हकूमत में डर की भावना पैदा हो गई क्योंकि हाकम से दुखी जनता अधिक गिणती में अमृतपान कर सिक्ख बनने लगी थी। पहाड़ी राजा खालसा के सिद्धांतों को अपने धर्म के विरुद्ध समझते थे क्योंकि वह सभी मूर्ती पूजक तथा जात-पात, ऊँच-नीच की भावना में उलझे हुए थे।[12]

गुरु जी की बढ़ती जा रही शक्ति के कारण पहाड़ी राजाओं ने अपने दूतों के माध्यम से गुरु जी को आनंदपुर का ईलाका छोड़ने या नजराना देने का संदेश भेजा।[13] परन्तु गुरु जी ने उनकी बात मानने से इन्कार कर दिया। गुरुजी एक दिन शिकार खेल रहे थे तो पहाड़ी राजा बली चंद और आलम चंद ने उन पर हमला कर दिया। सिक्ख फौज ने जवाबी कार्यवाही में बली चंद को मार गिराया तथा आलम चंद जख्मी होकर भाग गया।[14] इस हमले के बाद पहाड़ी राजाओं ने विचार-विमर्श किया कि गुरुजी की बढ़ रही शक्ति हमारे साम्राज्यों के लिए नुकसानदेह हो सकती है।[15] 1701 ई. से 1703 ई. तक गुरुजी और पहाड़ी राजाओं के बीच आपसी संबंध तनावपूर्वक ही रहे। खालसे की बढ़ती शक्ति राजाओं के गुस्से का कारण बनी रही। उन्होंने 1704 ई. में औरंगजेब के पास

मदद की गुहार लगाई जो उस समय दक्षिण की यात्रा पर गया हुआ था। उसने सरहिंद और लाहोर के सूबेदारों को पहाड़ी राजाओं का साथ देने का हुक्म दिया। पहाड़ी राजाओं और मुगल फौज की बड़ी गिणती ने आनंदपुर साहिब को घेर लिया तथा आने-जाने के रास्ते बंद कर दिए। राशन, पानी की सप्लाई बंद कर दी गई। राशन की कमी के कारण भी सिक्ख फौज आठ महीने तक दुशमन फौज के विरुद्ध मैदान पर डटी रही। कुछ सिक्खों ने गुरुजी से किला छोड़ने का निवेदन किया परन्तु गुरुजी नहीं माने। सिक्ख फौज के भूख और प्यास से बेहाल होने और हाकम पक्ष की ओर से झूठी कस्में खाने के कारण गुरुजी ने किला छोड़ने का मन बनाकर 21 दिसम्बर 1704 ई. को सिक्खों और अपने परिवार सहित आनंदपुर साहिब का किला छोड़ दिया।[16]

आनंदपुर साहिब छोड़ने के पश्चात् मुगल और पहाड़ी राजाओं की सांझी फौज ने कस्मों को भुला कर गुरु साहिब पर हमला कर दिया। परन्तु गुरुजी और सिक्ख फौज बहादुरी से मुकाबला करते हुए सिरसा नदी पार कर गई। सिक्खों का बहुत जानी-माली नुकसान हुआ। गुरुजी का परिवार बिछड़ गया। छोटे साहिबजादे और माता गुजरी को सरहिंद में शहीद कर दिया गया तथा बड़े साहिबजादे चमकौर साहिब के युद्ध में शहीदी का जाम पी गए। गुरुजी सिक्खों के निवेदन पर माछीवाड़े के जंगलों से होते हुए तलवंडी साबो पहुंच गए।[17]

पहाड़ी राजाओं और मुगल फौज ने गुरु साहिब का पीछा करना छोड़ दिया और वापिस आनंदपुर में आकर बहुत तबाही मचाई। सभी किले, गुरुजी का स्थान, मकान गिरा दिए अर्थात् गुरु साहिब से संबंधित सभी निशानियों को खण्डहरों में तबदील कर दिया। इस समय नगर का बहुत जानी-माली नुकसान हकूमती फौज के द्वारा किया गया।[18] रतन सिंह भंगू ने तबाही के माहौल के बाद आनंदपुर के हालातों का ब्यान करते हुए 'प्राचीन ग्रंथ प्रकाश' में बताया है कि उस समय सिर्फ संत गुरुबख्श एक उदासी था जो गुरु तेग बहादुर जी के अस्थान की सेवा संभाल किया करता था। कुछ समय पश्चात् हालात कुछ ठीक हुए तो सोढ़ी गुलाब राए और श्याम सिंह, कहिलूल के राजा की सहमति से कुछ जमीन मूल्य खरीदकर आनंदपुर में रहने लगे। जिस जगह गुरु साहिब दरबार (तख्त साहिब) लगाया करते थे, उस जगह पर आसन लगाकर सोढ़ी गुलाब राए जो मन में आता करने लगा। उसकी हरकातों के कारण खालसा पंथ दुखी होता था। संत गुरुबख्श और कुछ सिक्खों ने उसे समझाने की कोशिश की परन्तु वह आगे से बोलता था कि मैंने यह जमीन मूल्य देकर खरीदी है। संत गुरुबख्श और गुलाब राए के पुत्रों में झगड़ा भी हुआ। जिसके फलस्वरुप संत गुरुबख्श ने श्राप दिया कि उनके पिता की औलाद नहीं रहेगी।[19] कुछ समय के पश्चात् गुलाब राए और श्याम सिंह की मृत्यु हो गई। गुलाब राए की विधवा पत्नी चढ़ावा एकत्रित करती रही। उसने अपनी मृत्यु से पहले श्याम सिंह के सुपुत्र सुरजन सिंह को यहां का मुख्य पुजारी नियुक्त कर दिया था।[20]

डॉ. सुखदयाल सिंह अनुसार अठारहवीं सदी के संघर्ष के दौरान सरबत खालसा ने 'होला मोहल्ला' के समय इस स्थान पर अनेक समागम करके गुरुमते पास किए थे।[21] सिक्ख मिस्ल के दौरान स. बघेल सिंह ने अमृतपान के उपरान्त गांव बढ्ढो का आधा मुआमला (1150 रु.) तख्त श्री केसगढ़ के नाम लगवाया था। स. मित सिंह ने जालंधर के गांव गंगन के मुआमले में से 400 रुपये सालाना, स. चड़त सिंह डल्लेवालीए ने थाना आनंदपुर के गांव मोठेवाल के मुआमले में से 1100 रुपये और गांव महेण के मुआमले में से 75 रुपये सालाना, रियासत पटियाला की ओर से 375 रुपये, रियासत नाभा की ओर से 169 रुपये आठ आने, राजा कलसियां की ओर से 371 रुपये सालाना जागीर लगाई थी। तख्त साहिब वाली जगह 33 घुमां जमीन के रकवे में बनी थी। इस प्रकार लगभग 3000 रुपये की सालाना जागीर तख्त साहिब के नाम पर थी। खालसा पंथ इस स्थान से भावनात्मक तौर पर बड़ी प्रतिष्ठा से जुड़ा हुआ है, क्योंकि यह खालसा पंथ की जन्म भूमि थी।[22]

सिक्ख राज्य की सांझ ढलने के उपरान्त और गुरुधामों की तरह यह तख्त साहिब भी हकूमत का पक्ष लेने वाले सोढ़ी पुजारियों के अधीन हो गया। जो इस स्थान की पंथक मर्यादा को भूलकर मन मर्जी के कार्य करने लगे। गुरुद्वारा ऐक्ट बनने के उपरान्त यह ऐतिहासिक स्थान भी शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के अधीन आ गया। पंथक प्रबंध में आने के बाद तख्त साहिब की मर्यादा को दोबारा से बहाल किया गया और तख्त साहिब की ईमारत का नव-निर्माण और मुरम्मत करवाई गई। शिरोमणी कमेटी की ओर से तख्त साहिब के जत्थेदार की नियुक्ति की जाने लगी।

तख्त श्री केसगढ़ साहिब में गुरु गोबिन्द सिंह से संबंधित शस्त्र और अन्य निशानियाँ आज भी सुशोभित हैं जिनके दर्शन हर रोज संगतों को करवाये जाते हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण शस्त्र निम्नानुसार हैं :

- **नागनी बर्छा:** यह नागनी गुरुजी का निजी बर्छा था। जिसका अगला हिस्सा सांप की तरह बल खाता बना होने के कारण इसे नागनी बर्छा कहा जाता था।
- **खंडा:** वह खंडा जिसके द्वारा 1699 ई. की वैसाखी के समय गुरु साहिब ने खालसा की सृजना के समय 'खंडे सी पाहुल' तैयार की थी।
- **कटार:** यह गुरु साहिब के कमर कसे का शस्त्र था।
- **सैफ:** यह शस्त्र मुगल बादशाह बहादुर शाह ने गुरु साहिब को भेंट किया था।
- **बन्दूक:** यह बन्दूक लाहौर के एक सिक्ख ने गुरु गोबिन्द सिंह जी को भेंट की थी। यह लाहौर के शस्त्रखाने की बनी हुई है, जिस पर उर्दू भाषा में लिखा हुआ है।
- **करपा बर्छा:** यह करपा बर्छा गुरु गोबिन्द सिंह का है। लाहौर में पानी की कमी को दूर करने के लिए यही बर्छा जमीन में मारकर गुरु जी ने पानी का झरना बहा दिया था। भाई उदय सिंह ने केसरी चंद का सिर काटकर इसी बर्छे के ऊपर टांगकर गुरु चरणों में भेंट किया था।

इन शस्त्रों के अलावा गुरु साहिब जी से संबंधित कुछ शस्त्र इंगलैण्ड से वापिस लाए गए जो लार्ड डलहोजी सिक्ख राज्य को बर्तानीया शासन में मिलाने के पश्चात् अपने साथ ले गया था। इन शस्त्रों में बड़ा बर्छा, शमशीर-ए-तेग, दाहे-आहनी, सुनहरी चक्र, डाला आदि थे। इन शस्त्रों के आलावा गुरु साहिब से संबंधित कुछ निशानियां जैसे चोला (गुरु गोबिन्द साहिब जी का), दस्तार, कंघा, श्री साहिब आदि निशानियां तख्त साहिब की शोभा बढ़ा रही हैं।[23]

इस प्रकार सिक्ख धर्म के पांचों तख्तों में श्री केसगढ़ साहिब पंथ का धार्मिक और राजनीतिक स्थान है। गुरु गोबिन्द सिंह जी ने इस स्थान पर खालसा पंथ की सृजना करके मानव के लिए भाईचारक एकजुटता का नया अध्याय लिखा। मुगल हकूमत के जुल्मों से भयभीत हुए भारतीय लोगों को निडरता, स्वाभिमान और गैरतमंद जीवन व्यतीत करने की जांच सिखाई। खालसा पंथ की जन्म भूमि होने के कारण समूह पंथ इस स्थान से भावनात्मक तौर पर बड़ी निष्ठा के साथ जुड़ा हुआ है।

सन्दर्भ सूचि

1. कवि सरुप सिंह कोशिश, **गुरु कीयां साखीयां,** (सं.) प्यारा सिंह पदम, कलम मंदिर, पटियाला, 1986, पृष्ठ 66
2. भाई संतोख सिंह, **श्री गुरु प्रताप सूरज ग्रंथ,** (सं.) भाई वीर सिंह, भाषा विभाग, पटियाला, 2011, पृष्ठ 4081
3. इन्दु भूषण बैसन बैनर्जी, **खालसे दी उत्पत्ति,** जिल्द दूसरी, पंजाबी युनिवर्सिटी, पटियाला, 1979, पृष्ठ 171
4. कवि सेवा सिंह, **शहीद बिलास भाई मनी सिंह,** (सं.) गरजा सिंह, पंजाबी साहित्य अकादमी, लुधियाना, 1961, पृष्ठ 59
5. कवि सरुप सिंह कोशिश, **वही,** पृष्ठ 83
6. A.C. Banerjee, *Guru Nanak to Guru Gobind Singh,* Rajesh Publication, New Delhi, 1978, P. 199.
7. कवि सरुप सिंह कोशिश, **वही,** पृष्ठ 83
8. कवि सैनापति, **श्री गुरु शोभा,** (सं.) शमशेर सिंह अशोक, शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर, 2016, पृष्ठ 73
9. ज्ञानी ज्ञान सिंह, **त्वारीख गुरु खालसा,** भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला, 1970, पृष्ठ 841
10. भाई काहन सिंह नाभा, **गुरशब्द रत्नाकार महान कोष,** भाषा विभाग पंजाब, पटियाला, 2019, पृष्ठ 100-101
11. **शब्दार्थ दशम ग्रंथ साहिब,** पौथी-पहली (सं.) डॉ. तारण सिंह, पृष्ठ 80-81
12. जगजीत सिंह, **सिक्ख इनकलाब,** बाहरी पब्लीकेशनज प्रा. लि., नई दिल्ली, पृष्ठ 58
13. Teja Singh, Ganda Singh,A *short history of The Sikhs***,** Orient Longmans, Bombay, 1950, P- 72.
14. प्रो. साहिब सिंह, **जीवन वृतांत गुरु गोबिन्द सिंह,** सिंह ब्रदर्ज, अमृतसर, 2012, पृष्ठ 143
15. वही, पृष्ठ 145
16. Teja Singh, Ganda Singh, *Op.cit*, P- 72.
17. Ibid, P- 75.
18. M.A. Macauliffe, *The Sikhs Religion : Its Gurus, Sacred Writings andA uthors***,** S.Chand & Co. Ltd. Vol-5, New Delhi, 1978, P- 252.
19. भाई रतन सिंह भंगू, **श्री गुरु पंथ प्रकाश,** (सं.) जीत सिंह शीतल, शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर, 2000, पृष्ठ 240-41
20. M.A. Macauliffe, *Op.cit,* P. 257
21. डॉ. सुखदयाल सिंह, **खालसा पंथ दे पंज तख्त,** पंजाबी युनीवर्सिटी, पटियाला, 2002, पृष्ठ 142.
22. वही
23. स. दिलजीत सिंह बेदी, श्री आनंदपुर साहिब से संबंधित ऐतिहासिक स्थान तथा शस्त्र, **श्री आनंदपुर साहिब बहुपक्खी दर्शन,** शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर, 2015, पृष्ठ 177-179

जिद्दू कृष्णमूर्ति - एक महान शैक्षिक विचारक

डॉ० राघवेन्द्र कुमार हुरमाडे

सहायक प्राध्यापक, शिक्षा अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (मध्य प्रदेश)

सुशील कुमार

शोध छात्र, (पी. एच. डी. शिक्षाशास्त्र), शिक्षा अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (मध्य प्रदेश)

शोध सारांश

अपना सम्पूर्ण जीवन आत्म बोध के लिए, मानव कल्याण के लिए समर्पित करने वाले जिद्दू कृष्णमूर्ति आलौकिक प्रतिभासम्पन्न महामानव थे। उनका सम्पूर्ण शैक्षिक दर्शन समस्त मानव जगत के लिए उपयोगी एवं प्रासंगिक था। जे. कृष्णमूर्ति जी कहते थे कि पुस्तकों को कंठस्थ करना ही शिक्षा नहीं है अपितु जीवन को समझ लेना ही शिक्षा है। जे. कृष्णमूर्ति की विभिन्न पुस्तकों एवं उनके अन्य साहित्य से उनके शैक्षिक विचारों का पता चलता है, जो उन्हें महान बनाते हैं। जे. कृष्णमूर्ति मानव के समग्र जीवन और समग्र शिक्षा के लिए जीवन भर समर्पित रहे हैं इसीलिए जे. कृष्णमूर्ति को विश्व शिक्षक का सम्मान दिया गया है। कृष्णमूर्ति जी मानव को महत्वकांक्षी बनाने वाली शिक्षा, बुराइयों को जन्म देने वाली शिक्षा का विरोध करते थे। भयभीत व्यक्ति में प्रज्ञा का अभाव होता है अत: वे भय पर आधारित वर्तमान शिक्षा का विरोध करते थे। जे. कृष्णमूर्ति के अनुयायियों ने उनके विचारों को मूर्त रूप देने के लिए भारत, इंग्लैण्ड, कैलिफोर्निया में अनेक विद्यालयों की स्थापना की। जे. कृष्णमूर्ति अपनी शिक्षाओं के माध्यम से विशिष्ट संस्कृति की सीमाओं को तोड़ते हुए पूर्णतया उस नवीन मूल्य को स्थापित करते हैं जो एक नवीन सभ्यता एवं नवीन समाज का निर्माण कर सके। वास्तव में जिद्दू कृष्णमूर्ति के शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए है।

की वर्ड्स: शिक्षा, दर्शन, सृजनशीलता, मुक्ति, आत्म बोध।

शोध पत्र

जिद्दू कृष्णमूर्ति अलौकिक प्रतिभा संपन्न महामानव थे। उनका संपूर्ण जीवन आत्मबोध के लिए, मानव कल्याण एवं सर्जन के लिए समर्पित था। उनका संपूर्ण शैक्षिक दर्शन समस्त मानव जगत के लिए उपयोगी एवं प्रासंगिक था। आधुनिक विश्व के मानव जीवन की समस्याओं पर सम्यक विचार करने वाले जिद्दू कृष्णमूर्ति का शिक्षा दर्शन न केवल व्यवहारिक अपितु प्रासंगिक भी है। जिद्दू कृष्णमूर्ति की जीवनी लेखक पुपुल जयकर ने कहा है- "वर्ष 1980 में जिद्दू कृष्णमूर्ति ने मुझसे कहा था कि जब वे बोलना बंद कर देंगे तब उनकी देह भी समाप्त हो जाएगी। देह के अस्तित्व का एक ही प्रयोजन है, शिक्षा की अभिव्यक्ति करना।" नवीन मानव, सभ्यता, संस्कृति और समाज का निर्माण करने वाले जिद्दू कृष्णमूर्ति का शैक्षिक दर्शन मौलिक, समसामयिक और आडंबर विहीन है। जिद्दू कृष्णमूर्ति कहते हैं- "मेरी चिंता सिर्फ मनुष्य को परम रूप से बिना किसी प्रतिबन्ध के मुक्त करने की है।" विश्व शिक्षक के रूप में प्रतिष्ठित जिद्दू कृष्णमूर्ति की गणना विश्व के विचारक और विरल दार्शनिक के रूप में की जाती है। जिद्दू कृष्णमूर्ति के शिक्षा दर्शन की उपयोगिता भारत ही नहीं अपितु समस्त आधुनिक विश्व के लिए है। जिद्दू कृष्णमूर्ति ने न तो स्वयं किसी दार्शनिक प्रणाली की स्थापना की और ना ही किसी भारतीय या पाश्चात्य दर्शन में आस्था प्रकट की। जिद्दू कृष्णमूर्ति समस्या का सामना करने में सक्षम धार्मिक और दार्शनिक सिद्धांतों से मुक्त प्रज्ञा और आत्मबोध से सत्य का अन्वेषण करते थे। जिद्दू कृष्णमूर्ति का कथन है- "आशा मनुष्यों में है, समाज में अथवा विचार प्रणालियों में अथवा संगठित धार्मिक प्रणालीयों में नहीं, आशा केवल आप में और मुझ में है।" जिद्दू कृष्णमूर्ति को विश्व शिक्षक का सम्मान दिया गया है। मानव के समग्र प्रस्फुटन एवं समग्र शिक्षा के लिए जिद्दू कृष्णमूर्ति आजीवन समर्पित रहे हैं। जिद्दू कृष्णमूर्ति जीवन की मौलिक समस्याओं का समाधान करने वाली एक युवा पीढ़ी विकसित करना चाहते थे। जिद्दू कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं में समस्त मानव जाति के पुनरुत्थान के बीज प्रच्छन्न हैं। कृष्णमूर्ति के शैक्षिक विचार उनके दार्शनिक विचारों की उपज हैं। अपने स्वयं के अनुभवों के आधार पर ही उन्होंने अपने दार्शनिक विचारों का प्रतिपादन किया था। उनके दार्शनिक विचारों की निष्पत्ति हैं उनके शैक्षिक विचार। उनका विश्वास था कि यदि इन विचारों के अनुरूप शिक्षा दी जाए तो वास्तविक रूप में एक नवीन संस्कृतियुक्त विश्व का निर्माण हो सकता है।

जे कृष्णमूर्ति का मानना है कि विश्व की समस्त समस्याओं - आतंकवाद, जनसंख्या पर्यावरण, भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता का मूल वर्तमान दोषपूर्ण शिक्षा व्यवस्था है। मानव को उसकी प्रकृति के अनुरूप विकसित करने में सहायक उत्तम शिक्षा ही समस्त समस्याओं का समाधान कर सकती है। शिक्षा के विषय में जिद्दू कृष्णमूर्ति कहते थे- "शिक्षा का उद्देश्य है सही रिश्तों की स्थापना केवल व्यक्तियों के मध्य ही नहीं अपितु व्यक्ति एवं समाज के मध्य भी। अत: यह आवश्यक है कि शिक्षा सबसे पहले अपनी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को समझने में व्यक्ति की सहायता करें।" जे कृष्णमूर्ति के शैक्षिक विचार किसी एक

देश की सीमा में नहीं बांधें हैं, अपितु वे सार्वभौमिक हैं। उनकी शिक्षा का लक्ष्य संपूर्ण मानव जाति के लिए है। कृष्णमूर्ति के शब्दों में- "मेरे जीवन का एकमात्र उद्देश्य है लोगों को उस मुक्ति और आनंद को प्राप्त करने में सहायता करना, जिन्हें मैं स्वयं प्राप्त कर चुका हूं और जो संपूर्ण मानवता के लिए अंतिम लक्ष्य हैं।" जे कृष्णमूर्ति के शैक्षिक विचार सिद्धांतों की नीरस व्याख्या और कल्पना से परे जाकर एक नूतन संस्कृतियुक्त समाज का निर्माण करता है। इस संबंध में जे. कृष्णमूर्ति का कथन है- "मेरी शिक्षाएं न रहस्यपूर्ण हैं न गुहा हैं क्योंकि मेरी समझ में रहस्यवाद एवं गुहा विधा दोनों ही मनुष्य द्वारा सत्य पर सीमाओं के आरोपण हैं। धार्मिक मत विश्वासों से जीवन कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। आप जीवन को विश्वास, परंपरा एवं प्रमाण्य से मुक्त कर दें। परंतु जो लोग इन चीजों से बंधे हैं उन्हें सत्य को समझने में कठिनाई होगी।" जे कृष्णमूर्ति जी कहते थे कि पुस्तकों से कंठस्थ करना ही शिक्षा नहीं है अपितु जीवन को समग्र रूप में समझ लेना ही शिक्षा है। कृष्णमूर्ति जी कहते हैं- "जीवन को समझने का अर्थ अपने को समझना है और यही शिक्षा का आरंभ और अंत है।" जिद्दू कृष्णमूर्ति की विभिन्न पुस्तकों एवं उनके अन्य साहित्य से उनके शैक्षिक विचारों का पता चलता है, जो उन्हें महान बनाते हैं। सन 1969 में प्रकाशित 'फ्रीडम फ्रॉम द नोन' जीवन की अनंत समस्याओं और मानवीय त्रासदीयों पर जे कृष्णमूर्ति की शिक्षा को समझने में एक महत्वपूर्ण पुस्तक समझी जाती है, जो मैरी लट्यंस द्वारा रचित है। सन 1973 में प्रकाशित 'बियोंड वॉयलंस' में कृष्णमूर्ति कहते हैं- "जब तक किसी रूप में 'मैं' का अस्तित्व है- स्थूल रूप में या अत्यंत सूक्ष्म रूप में- तब तक हिंसा विद्यमान रहेगी।" इस पुस्तक में भय, अस्तित्व, हिंसा, ध्यान, आंतरिक क्रांति, मुक्ति, जैसे बुनियादी विषयों को समाहित किया गया है। सन 1971 में प्रकाशित 'द फ्लाइट ऑफ द ईगल' में जे कृष्णमूर्ति कहते हैं- "गरुड़ अपनी उड़ान में कोई भी चिह्न नहीं छोड़ता है। स्वतंत्रता के प्रश्न को गहराई से समझने के लिए दोनों जरूरी हैं- एक वैज्ञानिक परीक्षण और दूसरी ओर गरुड़ की उड़ान। एक ऐसी उड़ान जो अपने पीछे कोई चिह्न ना छोड़े।" कृष्णमूर्ति की सर्वाधिक प्रसिद्ध पुस्तक 'द फर्स्ट एंड लास्ट फ्रीडम' जो 1954 में प्रकाशित हुई थी, में विख्यात दार्शनिक आल्डस हक्सले ने लिखा था- "इस पुस्तक में पाठकों को मूलभूत मानवीय समस्याओं से सम्बंधित एक स्पष्ट एवं अद्यतन दृष्टिकोण मिलेगा और साथ ही इसका समाधान जिस मात्र एक तरीके से हो सकता है, अर्थात स्वयं के लिए और स्वयं के द्वारा उसका एक निमंत्रण मिलेगा।" 'अर्जेंसी ऑफ चेंज" नामक पुस्तक में कृष्णमूर्ति ने ईश्वर, जगत, सम्बन्ध, आत्महत्या, काम और प्रेम जैसे गम्भीर विषयों पर गहन चिन्तन किया है। 'शिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य' नामक पुस्तक में जे. कृष्णमूर्ति लिखते हैं- "हम शिक्षक ही यदि स्वयं को गहराई से नहीं समझते तथा बच्चे के साथ अपने रिश्ते को ही मौलिक रूप से नहीं समझते और उसे केवल जानकारियों से भरने एवं परीक्षा पास करवाने में लगे रहते हैं तो हम कैसे नए ढंग की शिक्षा ला सकते है? यदि मार्गदर्शक स्वयं ही भ्रांत हो, संकीर्ण हो, राष्ट्रवादी तथा मतान्ध हो तो स्वाभाविक है कि उसका शिष्य भी वैसा ही होगा। सबसे पहले स्वयं को नए तरीके से शिक्षित करने की चिंता करना बच्चे के भविष्य के कल्याण और उसकी सुरक्षा की चिंता से कहीं अधिक है।" कृष्णमूर्ति जी के अनुसार शिक्षा और विकास में अधिगम प्रक्रिया बहुत महत्व रखती है। वो सीखने को एक कला मानते थे। कृष्णमूर्ति जी युवा वर्ग की शिक्षा एवं जीवन के विषय में एक गहन एवं क्रमबद्ध दृष्टि रखते थे। आपको अपने जीवन के विषय में क्या करना है? इस विषय पर श्री कृष्णमूर्ति जी कहते हैं- "जब आप असाधारण रूप से सुंदर कुछ ऐसा देखें जो जीवन और सौंदर्य से परिपूर्ण हो तब आप विचार को कभी न आने दें, क्योंकि ज्यों ही विचार उसे स्पर्श करेगा त्यों ही पुरातन होने के कारण वह उसे मनोसुख में बदल देगा और तब इस सुख की मांग उठने लगेगी- अधिक और अधिक मात्रा में। और जब वह प्राप्त नहीं हो सकेगा तब द्वंद कूद पड़ेगा पड़ेगा, भय आ डटेगा।" कृष्णमूर्ति के क्रांतिकारी शैक्षिक विचारों के कारण एनी बेसेंट और सी. डब्ल्यू लेडबीटर ने कृष्णमूर्ति जी को आधुनिक विश्व का मसीहा घोषित किया। जिद्दू कृष्णमूर्ति के शैक्षिक विचारों को सार रूप में निम्न प्रकार समझा जा सकता है-

1. पाठ्यपुस्तक बाल मनोविज्ञान के अनुसार बच्चों की शिक्षा स्वाभाविक रुचियों पर आधारित होनी चाहिए। जीविकोपार्जन हेतु व्यवसायिक शिक्षा का प्रावधान हो। सृजनशीलता के विकास हेतु पाठ्यपुस्तक में कला, कविता एवं संगीत का स्थान होना चाहिए। शिक्षा में बच्चों को स्व अधिगम गतिविधि आधारित अधिगम हेतु प्रेरित करना चाहिए।
2. शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आत्मबोध एवं आत्म विश्लेषण के माध्यम से आध्यात्मिकता का विकास होना चाहिए।
3. तकनीकी शिक्षा का प्रयोग मानव कल्याण के लिए होना चाहिए।
4. शिक्षा जगत में स्वतंत्र एवं भयमुक्त वातावरण का निर्माण कर बच्चों को सृजनशीलता के अवसर प्रदान करने चाहिए।
5. शिक्षा का उद्देश्य मानवीय मूल्यों का विकास होना चाहिए। "विविधता की भावना शक्ति के रूप में है, कमजोरी के रूप में नहीं है" की अवधारणा को बच्चों के मस्तिष्क में विकसित करने की आवश्यकता है।
6. शिक्षक का स्थान एक मित्र, दार्शनिक, पथ प्रदर्शक की भांति होना चाहिए। उसे संपूर्ण मानव होना चाहिए।
7. शिक्षार्थी में आत्मानुशासन, दया, प्रेम, सेवा, स्वाध्याय, एकाग्रता जैसे मानवीय गुण होने चाहिए।

जिद्दू कृष्णमूर्ति अद्वित्य प्रतिभा संपन्न महामानव थे, उनका संपूर्ण जीवन कल्याण हेतु, मुक्ति हेतु, मानव सर्जन हेतु, आत्मबोध हेतु, था। जिद्दू कृष्णमूर्ति का संपूर्ण शैक्षिक दर्शन संपूर्ण विश्व के लिए प्रासंगिक, प्रायोगिक, महत्वपूर्ण एवं सार्थकता था। जिद्दू कृष्णमूर्ति का शैक्षिक दर्शन मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से व्यावहारिक है। जिद्दू कृष्णमूर्ति ने आधुनिक विश्व के मानवीय जीवन की अनेक समस्याओं पर गहन अन्वेषण किया है। उनका शिक्षा दर्शन वह अंतर्दृष्टि जागृत करता है जो जीवन की प्रत्येक समस्या का सामना कर सकें। जिद्दू कृष्णमूर्ति का शिक्षा दर्शन सतत सीखने को, स्वयं को जानने को, सत्य खोजने को एवं विमुक्त समग्र मानव के विकास पर बल देते हैं। नवीन मानव, सभ्यता, संस्कृति और समाज का निर्माण करने वाला जे कृष्णमूर्ति का शिक्षा दर्शन आडम्बर विहीन, मौलिक और समसामयिक है। जिद्दू कृष्णमूर्ति का यह विश्वास था कि मानव अपने प्रति सर्जनशील अवबोध के द्वारा शांतिपूर्ण विश्व का निर्माण कर सकता है। विश्व शिक्षक सम्मान से सम्मानित जिद्दू कृष्णमूर्ति मानव के समग्र प्रस्फुटन और समग्र शिक्षा के लिए सदैव समर्पित रहे।

जे कृष्णमूर्ति ने भारत सहित विश्व के अनेक देशों में स्वतंत्र शिक्षण संस्थाएं स्थापित की। जिद्दू कृष्णमूर्ति जीवन के मौलिक प्रश्नों को उठाने, समझने और समाधान करने की क्षमता रखने वाले युवकों की पीढ़ी विकसित करना चाहते थे। जे कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं में समस्त मानव जाति और समाज के पुनरुत्थान के बीज प्रच्छन्न हैं। 'इंग्लैंड के ब्रॉकवुड पार्क' को जे कृष्णमूर्ति ने एक ऐसे परिवेश के लिए स्थापित किया था जहां जीवन के मौलिक प्रश्नों की छानबीन हो सके एवं मानव आंतरिक रूप से प्रस्फुटित हो सके।

जिद्दू कृष्णमूर्ति की शैक्षिक विचारधारा सामान्य शैक्षिक दर्शन से बहुत भिन्न है। कृष्णमूर्ति जी कि शैक्षिक विचारधारा उनकी उन दार्शनिक विचारधाराओं के उत्पाद हैं जिनको उन्होंने स्वयं जिया है। उन्होंने अपने स्वयं के अनुभव के आधार पर ही अपने दर्शन का प्रतिपादन किया है। उनके दर्शन की निष्पत्ति उनकी शिक्षा के रूप में है। जे कृष्णमूर्ति का शिक्षा दर्शन जीवंत है। जे कृष्णमूर्ति का मानना है कि विचारों के अनुरूप बच्चों को शिक्षित किया जाए तो निश्चित रूप से एक नूतन संस्कृति एवं नूतन विश्व का निर्माण संभव है। कृष्णमूर्ति जी की शिक्षाओं के आधार पर शिक्षित किए गए नूतन समाज में बाह्य एवं आभ्यंतर की समस्त मानवीय समस्याओं का सहजता से निदान किया जा सकता है।

सन्दर्भ

- जयकर, पुपुल (1988) जे. कृष्णमूर्ति की जीवनी, पेंग्विन पब्लिशर, हार्पर एंड रो।
- कृष्णमूर्ति, जे. (1996) सत्य एक पथहीन भूमि, कृष्णमूर्ति परिषद, वाराणसी।
- कृष्णमूर्ति, जे. (1998) शिक्षा संवाद, कृष्णमूर्ति फाऊंडेशन इंडिया, राजघाट कोर्ट, वाराणसी।
- टिकेकर, इन्दु (2001) जे. कृष्णमूर्ति जीवन और दर्शन, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी।
- कृष्णमूर्ति, जे. (2004) ज्ञात से मुक्ति, कृष्णमूर्ति फाऊंडेशन, वाराणसी, इंडिया।
- कृष्णमूर्ति, जे. (2005) शिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य, कृष्णमूर्ति फाऊंडेशन इंडिया, राजघाट कोर्ट, वाराणसी।
- अग्रवाल, सरस्वती (2008) जिद्दू कृष्णमूर्ति का शिक्षा दर्शन, परिपेक्ष्य वर्ष 15, अंक-2.
- कृष्णमूर्ति, जे. (2014) शिक्षा क्या है? राजपाल एंड संस, दिल्ली।

आदिवासी क्षेत्र में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को प्राप्त शासकीय सुविधाओं के प्रति जागरूकता का अध्ययन

डॉ० रिया तिवारी

सहायक प्राध्यापिका, प. रविशंकर वि.वि., रायपुर

दीपक कुमार धनगर

पीएचडी स्कॉलर, हेमचंद विश्वविद्यालय, दुर्ग

प्रस्तावना

शिक्षा एवं जागरूकता की प्रक्रिया का मानव जीवन के विकास में सर्वाधिक महत्व है। वस्तुतः सभ्य व सुसंस्कृत विश्व का जो भी स्वरूप हमारे समझ उपस्थित करने में जागरूकता का विशेष योगदान है। व्यक्ति के जीवन में जब-जब किसी भी प्रकार की समस्या उत्पन्न होती है, उसे जागरूकता की आवश्यकता की अनुभूति हुई है जागस्कता के माध्यम से व्यक्ति की समस्याओ के समाधान हेतु सहायता प्राप्त हो जाने का ही यह परिणाम है कि व्यक्ति एवं समाज का निरतंर विकास होता रहता है। इस दृष्टि से यदि देखा जाए तो कह सकते है कि जागरूकता का उद्गम तभी से माना जा सकता है, जब से मानव सभ्यता का उदय हुआ है भारत के प्राचीन इतिहास का अध्ययन करने से यह विदित होता है कि हमारे देश में अति प्राचीन काल से ही जागरूकता प्रदान करने का उत्तरदायित्व का निर्वाह किया जाता था।

समस्या

"आवश्यकता की संतुष्टि के साधन या मार्ग में बाधा ही समस्या है।"

जिस प्रकार समस्या समाधान के साधन खोज लिए जाते है। आवश्यकता की संतुष्टि हो जाता है तथा समस्या का अंत हो जाता है, उसी प्रकार समस्या की गंभीरता आवश्यकता की गहनता और साधनों की उपलब्धि पर निर्भर होती है।

उद्देश्य

1. आदिवासी क्षेत्र में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की प्राप्त शिक्षा संबंधित शासकीय सुविधाओं का अध्ययन करना।
2. आदिवासी क्षेत्र मे अध्ययनरत् विद्यार्थियों को प्राप्त व्यवसाय संबंधित शासकीय सुविधाओं का अध्ययन करना।
3. आदिवासी क्षेत्र मे अध्ययनरत् विद्यार्थियों को प्राप्त आर्थिक सहायता संबंधित शासकीय सुविधाओं का अध्ययन करना।
4. आदिवासी क्षेत्र मे अध्ययनरत् विद्यार्थियों को प्राप्त स्वास्थ्य संबंधित शासकीय सुविधाओं का अध्ययन करना।

अध्ययन के शोध प्रश्न

1. क्या आदिवासी क्षेत्र मे अध्ययनरत् विद्यार्थियों को प्राप्त शिक्षा संबंधे शासकीय सुविधाओं की जानकारी है?
2. क्या आदिवासी क्षेत्र में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को व्यवसाय संबंधी शासकीय सुविधाओं की जानकारी है?
3. क्या आदिवासी क्षेत्र में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता संबंधी शासकीय सुविधाओं की जानकारी है?
4. क्या आदिवासी क्षेत्र में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को स्वास्थ्य संबंधी शासकीय सुविधाओं की जानकारी है?

विधि

प्रस्तुत शोध के लिए आंकड़ों को एकत्र करने के लिए सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है तथा प्रश्नावली उपकरण का प्रयोग किया गया है।

प्रस्तुत लघु शोध "आदिवासी क्षेत्र में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को प्राप्त शासकीय सुविधाओं के प्रति जागरूकता का अध्ययन "में शोधकर्ता द्वारा प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है जिसमें 28 प्रश्नों का समावेश किया गया है जिसे शिक्षा, व्यवसाय, आर्थिक सहायता एवं स्वास्थ्य संबंधी चार भागों में

विभाजित किया गया है जिसमें उत्तरदाताओं को प्रश्नों के उत्तर हॉ या नही में देना है। प्रत्येक सही उत्तर पर 1 अंक तथा गलत उत्तर पर 0 अंक प्रदान किये गये।

निष्कर्ष: विद्यार्थियों के लिए

1. शोध प्रश्न: आदिवासी क्षेत्र में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को प्राप्त शिक्षा संबंधी शासकीय सुविधाओं के प्रति जागरूकता का अध्ययन।

विश्लेशण

सारणी क्रमांक 4.1: शिक्षा संबंधी शासकीय सुविधाओं की जानकारी

विषय	हाँ	नही
शिक्षा संबंधी शासकीय सुविधाओं की जानकारीका प्रतिशत	37.5%	62.5%

निष्कर्ष: आदिवासी क्षेत्र में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को प्राप्त शिक्षा संबंधी शासकीय सुविधाओं की 37.5 प्रतिशत में जागरूकता की जानकारी है।

व्याख्या: उपरोक्त सारणी द्वारा शिक्षा संबंधी शासकीय सुविधाओं की जागरूकता

इस कथन हेतु 100 प्रतिशत अत्तर दाताओं 37.5 प्रतिशत में अपना मत हाँ मे दिया और 62.5 प्रतिशत उत्तर दाताओं ने अपना मत नहीं में दिया हैं चुकि वे उत्तर दताओं द्वारा नहीं कहने का कारण यह है कि वे शिक्षा संबंधी शासकिय सुविधाओं में जानकारी से अतिरिखत है और जागरूकता के लिए प्रोत्तसाहन की कमी है।

रेखाचित्र क्रमांक-1

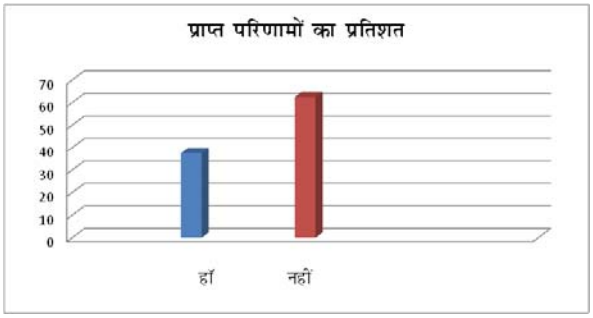

2. शोध प्रश्न: आदिवासी क्षेत्र में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को प्राप्त व्यवसाय संबंधी शासकीय सुविधाओं के प्रति जागरूकता का अध्ययन।

विश्लेशण:

सारणी क्रमांक 4.2: व्यवसाय संबंधी शासकीय सुविधाओं की जानकारी

विषय	हाँ	नही
व्यवसाय संबंधी शासकीय सुविधाओं की जानकारी का प्रतिशत	40.35%	59.45%

निष्कर्ष: आदिवासी क्षेत्र में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को प्रप्त व्यवसाय संबंधी शासकीय सुविधाओं की 40.55 प्रतिशत में जरगरूकता की जानकारी है।

व्याख्या: अपरोक्त सारणी द्वारा स्पष्ट है कि व्यवसाय संबंधी शासकी सुविधाओं की जागरूकता के जानकारी अस कथन हेतु 100 प्रतिशत उत्तर दातओं 40.55 प्रतिशत में अपना मत हाँ में दिया और 59.45 प्रतिशत उत्तर दाताओं ने अपना मत नहीं में दिया है चूकि ये उत्तर दाताओं द्वारा नही कहने का कारण यह है कि वे व्यवसाय संबंधि शासकिय सुविधाओ की जानकारी से अपरिचित है और पूर्ण रूप से जागरूकता की आवश्यकता है।

रेखाचित्र क्रमांक-2

3. शोध प्रश्न: आदिवासी क्षेत्र में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को प्राप्त आर्थिक सहायता संबंधी शासकिय सुविधाओं के प्रति जागरूकता का अध्ययन।

विश्लेशण:

सारणी क्रमांक 4.3: आर्थिक सहायता संबंधी शासकिय सुविधाओं की जानकारी

विषय	हाँ	नही
आर्थिक सहायता संबंधी शासकिय सुविधाओं की जानकारीका प्रतिशत	60.79%	39.29%

निष्कर्ष: आदिवासी क्षेत्र में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को प्राप्तप्राप्त आर्थिक सहायता संबंधी शासकिय सुविधाओं 60.79 प्रतिशत में जागरूकता की जानकारी है।

व्याख्या: अपरोक्त सारणी द्वारा स्पष्ट है कि आर्थिक सहायता संबंधी शासकिय सुविधाओं की जागरूकता जानकारी इस कथन हेतु 100 प्रतिशत उत्तर दाताओं 60.79 प्रतिशत में उपना मत हाँ में दिया है और 39.29 प्रतिशत उत्तर दाताओं ने अपना मत नहीं में दिया हैं चूकि ये उत्तर दाताओं द्वारा हाँ कहने को कारण यह है कि वे आर्थिक सहायता संबंधी शासकिय सुविधाओं की जानकारी समान्य रूप से परिचित है।

रेखाचित्र क्रमांक-3

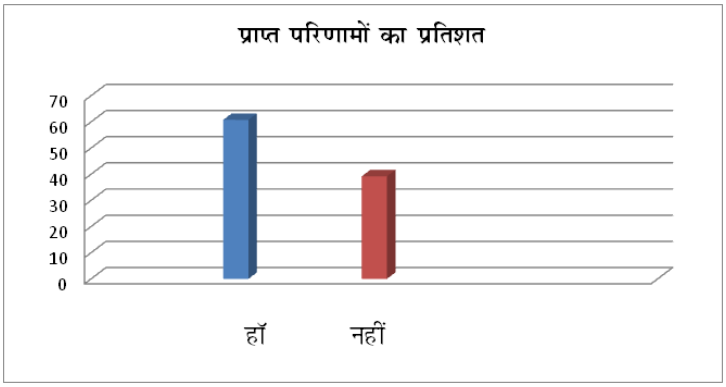

4. शोध प्रश्न: आदिवासी क्षेत्र में अध्ययनरत विद्यार्थियों को स्वास्थ्य संबंधी शासकीय सुविधाओं के प्रति जागरूकता का अध्ययन।

विश्लेशण:

सारणी क्रमांक 4.4: स्वास्थ्य संबंधी शासकीय सुविधाओं की जानकारी

विषय	हाँ	नही
स्वास्थ्य संबंधी शासकीय सुविधाओं की जानकारी का प्रतिशत	76.75%	23.25%

निष्कर्ष: आदिवासी क्षेत्र में अध्ययनरत् विद्यार्थियो को प्राप्त स्वास्थ्य संबंधी शासकीय सुविधाओं की 76.75 प्रतिशत जागरूकता की जानकारी है।

व्याख्या: उपरोक्त सारणी द्वारा, स्पष्ट है कि स्वस्थ्य संबंधी शासकी सुविधाओं जानकारी इस कथन हेतु 100 प्रतिशत उत्तर दाताओं 76.75 प्रतिशत में अपना मत हाँ में दिया है और 23.25 प्रतिशत उत्तर दाताओं ने अपना मत नहीं मं दिया है चूकि ये उत्तर दाताओं द्वारा हाँ कहने का कारण यह है कि वे स्वस्थ्य संबंधी शासकिय सुविधाओं की जानकारी से परिचित है।

रेखाचित्र क्रमांक-4

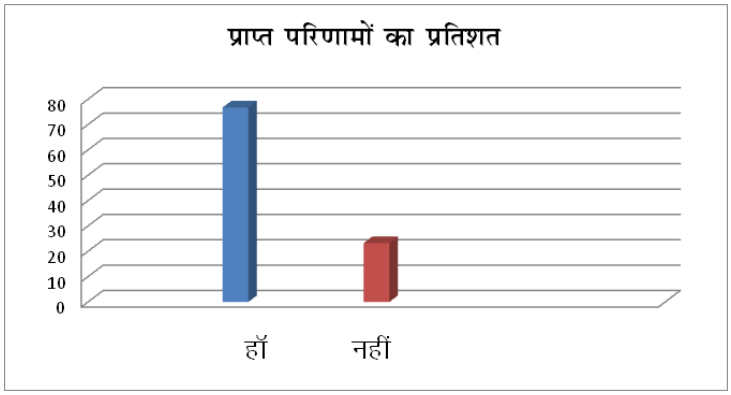

सुझाव

आदिवासी क्षेत्र मे अध्ययनरत् विद्यार्थियों व अन्य विद्यार्थियों तथा उनके पालकों के सर्वांगीण विकास के लिए जागरूकता की अति आवश्यक है, अत: विद्यालय को समय-समय पर आवश्यकतानुसार जागरूकता प्रदान करते रहना चाहिए।

इन विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए निम्न सुझाव प्रस्तुत है-

1. अधिकांश आदिवासी क्षेत्र में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को शिक्षा संबंधी शासकीय सुविधाओं के प्रति सही जागरूकता न मिल पाने के कारण सही दिशा में अध्ययन नही कर पाते है और रास्ते से वह रास्ते से भटक जाते है, अत: इन विद्यार्थियों को शासकीय सुविधाओं संबंधी उपयोगी एवं उचित जागरूकता प्रदान कर इनकी सहायता की जानी चाहिए।
2. आज हमारे भारत देश में विद्यलयों की संख्या कम है जिसके कारण सभी बालक शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते हैं और शिक्षा से वंचित हो जाते है साथ साथ ही अधिकांश विद्यालयों में व्यावससायिक जागरूकता भी प्रदान नही किया जाता है
3. आज के आधुनिक युग में परिवारों में कलह, द्वेश, जलन, आपसी मतभेद की भावना बढ़ती जा रही है, अत: आज के छात्रों को आर्थिक सहायता संबंधी उचित एवं आवश्यक जागरूकता समय-समय पर प्रदान करना चाहिए
4. वर्तमान समय में सभी छात्रों को अपने पूरे जीवन काल में विभिन्न प्रकार के स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिससे छात्र की अधिकांश सम्स्याएं स्वयं अपने आप से या व्यक्तिगत समस्याएं होती है जिससे असके शैक्षिक जीवन मं बुरा प्रभाव पड़ता है।
5. आदिवासी क्षेत्र में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को प्रापत शासकीय सुविधाओं के प्रति पालको को जागरूकता की जानकारी नही होती है इस कारण वे शासकीय सुविधाओं को प्राप्त करने से वंचित हो जाते है और अपने जीवन में अचित सफलता प्राप्त नही कर पाते है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वत्ज़लागक्क, मधु सिंह- फनवजय आधिकारिक प्रवचन, पेडोगोगिक प्रैक्टिस और आदिवासी समुदाय: ए विरोधाभास में केस स्टडी।-फनवजय शिक्षा के समाजशास्त्र के ब्रिटिश जर्नल 5, नहीं। 3 (1 9 84): 227-45 Http:èèwww.jstor.orgèstableèè1392687
2. मॉजे, एलिजाबेथ बिर, कैथरीन मैकिंटोश सिओनोवॉस्की, कैथरीन क्रेमर, लिंडसे एलिस, रोजरियोकैरिलो, और तेहानी कोलाजो -फनवजय कंटेंट एरिया साक्षरता में तीसरे स्थान पर कार्य करना' एक परीक्षाज्ञान और व्याख्यान के हर दिन के निधियों का (त्राबजांडा हॉसा एलियार एस्पैसियो एनअल्फाबाटिजियाटोन एन लास अर्स उे कंटेनोडो: संयुक्त राष्ट्र एस्टोनियो डी लॉसोनको वाई अल एला) हिन्विरकेनज्रम ड्रिटन राम इम्फेछेजबिएट्जेजेनन लेसन एंड श्रेबिन: एइन अनटेर्शनुग उबेर विसेंसाउफ्नहे एंड डिस्कर्स इट अल्र्अगस्लेबेब एंड इम क्लासेन्रकमट्रॉसीएमेम आयाम कमेटी डे लिटरेट्रेट: एन एपॅशन डेस कॉनैसूस ऐट ड्यू डिस्कोर्स क्वाटिडियन) (डेविसेन क्ली मेटिव एंड इजेयर अम्बायली ऑफ द रिटेल ग्रोथ: इसास्डियन -फनवजयपढ़ना अनुसंधान तिमाही 39, नहीं 1 (2004): 38-70 Http:èèwww.jstor.orgèstableèè4151759
3. अम्बुगुडिया, जगाानथ जातीय अधिकार, विसंगति और उडीसा में राज्य। आर्थिक औरारजनीतिक साप्ताहिक, वॉल्यूम 45, नहीं 33, 2010 पीपी 60767 www.jstor.orgèstableèè25741972
4. पांडा, बी (2011) जनजातीय समूहों में लडकियां की शिक्षा भारतीयमानवविश्रानी, 41 (2), 15-32 Http:èèwww.jstor.orgèstableèè41921988 से पुनर्प्रापत
5. स्ट्रामर, जी &Amp ओसबोर्न, एस (2014)। इतिहास, स्थिति, और त्रिशूल स्यं का भविष्य-भारतीय स्वयं-निदान और शिक्षा सहायता के तहत सरकार अधिनियम अमेंरिकी भाीतीय कानून की समीक्षा, 39 (1), 1-75
   Http:èèwww.jstor.orgèstableèè24367638ls iquizkZir
6. अमागुउडिया, जे (2006) बढत पर राक: प्रतिनिधित्व और चुनाव के लिए आरक्षणउडौसा में अनुसूचित जनजाति द इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस, 67 (2), 285-294। से लिया गया गया
7. घोश ए (2007)। अनुसूचित जनजातियों के बीच साक्षरता और शिक्षा में लिंग अंतरझारखंड और पश्चिम बंगाल सामजिक बुलेटिन, 56 (1), 109-125 से लिया गया Http:èèwww.jstor.orgèstableèè23620707
8. सरीन एवं सरीन (2012)- शैक्षिक अनुसंधान की विधियॉ अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा
9. कपीलख एच. के. (2012)- अनुसंधान विधियॉ, एच.पी. भार्गव बुक हाऊस आगरा

वैश्वीकरण और हिंदी का स्वरूप

डॉ० मौहम्मद अबीरउददीन

पी०जी०टी० (हिंदी), ए०एम०यू०, अलीगढ़

साहित्य बहता नीर है। अर्थात् देंशकाल और वातावरण के अनुसार साहित्य की प्रवृत्तियों में परिवर्तन आते हैं। इसीलिए रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि "साहित्य जनता के चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब है।" इसी प्रकार बालकृष्ण भट्ट ने भी साहित्य के सम्बन्ध में कहा है कि "साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है।" अर्थात साहित्य जनता के चित्तवृत्ति के अनुसार परिवर्तित होता रहा है।

आज का युग संचार व प्रौद्यौगिकी का युग है। जहाँ पर एल.पी.जी. (उदारीकरण, निजीकरण, ग्लोबलाइजेशन) की हवा बह रही है। एल.पी.जी. की इसी हवा में ग्लोबलाइजेशन अपनी पूरी सक्रियता के साथ पूरे विश्व में विस्तारित होता जा रहा है और इसी ग्लोबलाइजेशन के कारण आज पूरा विश्व एक छोटी सी दुनिया में सिमट गया है। ग्लोबलाइजेशन के कारण हम एक दूसरे के नजदीक आ गये हैं और राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, व्यापारिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में हम एक दूसरे से परिचित हुए हैं। इसी परिचय की वजह से आर्थिक क्रियाओं में परस्पर निर्भरता बढ़ी है तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन मिला है।

वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं का समन्वय किया जाता है, जिससे वस्तुओं और सेवाओं, प्रौद्योगिकी, पूँजी तथा श्रम का इनके मध्य प्रवाह हो सके। अर्थात् राष्ट्रीय घरेलू अर्थव्यवस्थाओं का विश्व अर्थव्यवस्था के साथ जुड़ना।

भूमण्डलीकरण के तीन चरणों की चर्चा की जाती है। भूमण्डलीकरण की पहली अवस्था 1870, आरम्भ होती है। इस दौर में महाजनी, पूँजीवाद विकसित होता है। भूमण्डलीकरण की दूसरी अवस्था का आरम्भ बीसवीं सदी के सत्तर के दशक के आरम्भ से हुआ। आज हम जिस भूमण्डलीकरण की बात करते हैं, वह भूमण्डलीकरण का तीसरा दौर है। यह नया भूमण्डलीकरण है। यह भूमण्डलीकरण बहुराष्ट्रीय कम्पनियों (निगमों) की देन है। भूमण्डलीकरण पूँजी विज्ञान और तकनीक के मेल और सहयोग से शक्ति-संपन्न बना है।

क्षेत्र प्रदेश एवं राष्ट्र की सीमाओं को पार करते हुए, विश्व समुदाय के साथ आर्थिक, बौद्धिक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में सहभागिता एवं आदान-प्रदान करना ही वैश्वीकरण (ग्लोबलाइजेशन) है। इसमें राष्ट्रवाद की संकुचित विचारधारा से ऊपर उठकर अपनी पहचान बनाए रखते हुए, विश्व बिरादरी में सम्मिलित होने और एक दूसरे को सहयोग करने की भावना सन्निहित है। इसका मुख्य उद्देश्य विकसित एवं विकासशील देशों का आर्थिक, बौद्धिक एवं वैज्ञानिक विकास करना है। इसी की कड़ी के रूप में विश्वबाजार अर्थव्यवस्था का विचार सामने आया, जिसमें पूरा विश्व एक बाजार के रूप में परिणत हो गया। इसी के परिणामस्वरूप भारत में भी आर्थिक सुधारों के लिए आर्थिक उदारीकरण की नीति को अपनाया गया, जिसके कारण पब्लिक सेक्टर के क्षेत्र में निजीकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ और औद्योगिक क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए दरवाजे खोल दिए गए।

आर्थिक उदारीकरण के पीछे मुख्य उद्देश्य यह था कि जहाँ एक ओर सब्सिडी एवं घाटे में चल रही पब्लिक सेक्टर की कंपनियों एवं कलकारखानों से सरकार को निजात मिलेगी, वहीं दूसरी ओर विदेशी पूँजी निवेश भी बढ़ेगा, जिसकी समय-समय पर कमी महसूस की जा रही थी। विदेशी पूँजी निवेश का भंडार समृद्ध करने का मुख्य कारण यह था कि एक ओर पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस के आयात में बड़ी मात्रा में विदेशी पूँजी यानी कि 'डालर' की आवश्यकता थी तो दूसरी ओर रक्षा जरूरतों को पूरा करने, वैज्ञानिक, औद्योगिक एवं तकनीकि क्षेत्र में मशीनों तथा उपकरणों के आयात में भी विदेशी पूँजी की आवश्यकता थी। एक उद्देश्य यह भी था कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आने से औद्योगिक क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी तथा चीजों की गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी होगी और दाम सस्ते होंगे, जिसका लाभ जनता को मिलेगा जो भी हो, आर्थिक उदारीकरण के इस दौर में भारत आज भी विश्व बिरादरी का अभिन्न अंग बन चुका है।

वैश्वीकरण अथवा भूमंडलीकरण के संबंध में सबसे बड़ी चिंता यह व्यक्त की जा रही है कि जब पूरा विश्व ही 'एक बाजार' बन गया है, और जहाँ प्रत्येक वस्तु एक 'कमोडिटी' यानी की उपभोग की वस्तु बन गई है तो ऐसे में हर देश की अपनी सांस्कृतिक पहचान एवं अस्मिता ही खतरे में पड़ जाएगी तथा भाषा, साहित्य एवं संस्कृति का संकट खड़ा हो जाएगा। विशेषकर 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' के पक्षधर एवं आर्थिक उदारीकरण का विरोध करने वाले लोग इसे सांस्कृतिक हमला भी मान रहे हैं। इस संदर्भ में गिरीश मिश्र का कथन द्रष्टव्य है-"यह भूमंडलीकरण का जमाना है। दावा किया जा रहा है कि उसके बढ़ते कदम राष्ट्रीय सीमाओं को मिटा देंगे दुनिया को एकीकृत बाजार में बदलकर क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय संस्कृतियों, परम्पराओं, रीति-रिवाजों और मिथकों को निष्प्राण कर देंगे। फिर किसी भी देश या क्षेत्र की अपनी कोई अलग पहचान नहीं की जाएगी। इतना ही नहीं, उसका साहित्य, उसकी विभिन्न विधाएँ और शैलियाँ गंभीर रूप से प्रभावित होंगी।"[1]

यह सच है कि युगीन परिस्थितियों का प्रभाव उस देश के समाज, साहित्य एवं संस्कृति पर पड़ता है, परंतु इतिहास गवाह है कि जिस देश की सांस्कृतिक जड़ें गहरी होती हैं, उसे कोई विदेशी आर्थिक-सांस्कृतिक झंझावत अपनी जड़ों से पृथक नहीं कर सकता। भारत इस बात का प्रमाण है। सैकड़ों वर्शों तक विदेशियों का गुलाम रहने पर भी उसने अपनी सांस्कृतिक पहचान को मिटने नहीं दिया, वरन और भी सशक्त होकर एकीकृत रूप में उभरकर सामने आया।

उत्तर आधुनिकता के इस युग में भी जब समाज का बौद्धिक एवं उच्च वर्ग बंद समाज की बेड़ियों को तोड़कर अत्याधुनिक परिधान, जीवनशैली एवं सुखोपभोग के उन्मुक्त गगन में मुक्त विहार कर रहा है, उनके सांस्कृतिक सरोकारों एवं धार्मिक मान्यताओं में कोई मूलभूत अंतर नहीं आया है। देश का लगभग तीस फीसदी मध्यवर्ग भी नई बोतल में पुरानी शराब की तरह अपने अतीत का रूपान्तरण नहीं कर पाया है। बाहर से भारतीय समाज बदला-बदला सा लग रहा है, परंतु भीतर से और अधिक परम्परावादी, रूढ़िवादी एवं धर्मभीरू होता जा रहा है। जिस अनुपात में बाह्य रूपांतरण हो रहा है, उस अनुपात में आभ्यंतर अर्थात् वैचारिक भावनात्मक रूपान्तरण नहीं हो रहा है। यही कारण है कि धार्मिक स्थलों की संख्या में न केवल अभूतपूर्व वृद्धि हो रही है, वरन् शिक्षित, नौकरीपेशा, साधन सम्पन्न, पूँजीपति एवं तथाकथित बौद्धिक श्रद्धालुओं की भीड़ में भी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। सांस्कृतिक चूलें हिलने के बजाय और अधिक मजबूत हो रही हैं। आजादी के तेहत्तर साल बीत जाने के बाद आर्थिक उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के इस युग में 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' के पक्षधर दक्षिण पंथियों का केन्द्र में पहली बार सत्तासीन होना भी इस बात का प्रमाण है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया से जिन खतरों की आशंका व्यक्त की जा रही है अथवा सांस्कृतिक पहचान के लुप्त ही जाने का दावा किया जा रहा है, वह मात्र काल्पनिक भय है। आज भी समाज के छोटे-बड़े घरों में होने वाले शादी-ब्याह के निमंत्रण-कार्ड में, कार्य के निर्विघ्न रूप में सम्पन्न होने के लिए गणेश-वंदना का "लोक लिखा मिलेगा अथवा उसका आरम्भ धार्मिक आस्था के साथ हुआ होगा।

यद्यपि वैश्वीकरण अर्थात् 'ग्लोबलाइजेशन' या भूमंडलीकरण शब्द आधुनिक औद्योगिक युग के व्यापार जगत की देन है, परन्तु वैश्वीकरण की प्रक्रिया अति प्राचीन है। विश्व के तमाम देशों में समय-समय पर, अलग-अलग क्षेत्रो में वैश्वीकरण की प्रक्रिया एक सीमा तक आगे बढ़ी है, हालाँकि मीडिया या दूरसंचार क्रांति के फलस्वरूप आधुनिक युग में वैश्वीकरण का हल्ला बोल कार्यक्रम कुछ अधिक जोर-शोर से सुनाई दे रहा है, परंतु अपने सीमित रूप में अतीत में भी वैश्वीकरण की प्रक्रिया चलती रही है। इस संदर्भ में अशोक केलकर का कथन प्रासंगिक है, वे लिखते हैं-"मनुष्य के अंदर बहुत आरसे से जो वैश्वीकरण की आस है, उसे व्यापार उद्यम के कारण बल मिला है। मनुष्य के इतिहास में जिस जगह जब-जब उद्यम, व्यापार, राजकरण, समाज-व्यवहार और सभ्यता एक प्रगाढ़ और परिपक्व स्थिति तक पहुँची, उन सभी जगहों पर तब-तब मनुष्य की दृष्टि सिर्फ स्वजन, स्वदेश, स्वविद्या, स्वधर्म, स्वभाषा इनमें सीमित नहीं ठहरी। वह परकीय, परदेस, परविद्या, परधर्म, परभाषा इन तक जा पहुँची। विशाल बनी और तुलना करने लगी, आदान-प्रदान की सोच करने लगी।"[2] अर्थात् अतीत में राज्य व्यवस्था, धर्म, साहित्य, भाषा, आंदोलन, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, मुद्रण, संचार माध्यमों एवं कला आदि का वैश्वीकरण होता रहा है।

भारत के लिए वैश्वीकरण की अवधारणा कोई नई बात नहीं है। भारतीय धर्म-दर्शन की 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना में यह अवधारणा पहले से ही निहित है। संस्कृत भाषा-साहित्य तथा बौद्ध धर्म स्वदेश तक ही सीमित नहीं रहा, वरन् परदेश में भी जा पहुँचा। जर्मनी में संस्कृत के तथा भारत में अंग्रेजी के कई प्रकाण्ड विद्वान हुए हैं। जहाँ वर्तमान में भारतवर्ष में बौद्धधर्म अपनी अंतिम साँसे गिन रहा है, वहीं चीन, जापान, तिब्बत, श्रीलंका, म्यांमार, थाईलैण्ड आदि अनेक दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में फल-फूल रहा है। भारत ने भी धार्मिक उदारता का परिचय दिया है और यहाँ इस्लाम तथा इसाई धर्म सदियों से फल-फूल रहा है। यहाँ का समाज एक दूसरे के धर्मो का हमेशा से सम्मान करता रहा है। यही कारण है कि भारत एक बहुधर्मी, बहुभाषी एवं इंद्रधनुशी संस्कृति का देश है। अध्यात्म के क्षेत्र में भारत विश्व गुरू माना जाता है, जबकि विज्ञान के क्षेत्र में पश्चिमी देश अग्रणी रहे हैं। हमने आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्यौगिकी आदि को उदारता से ग्रहण किया है। कहने का आशय यह है कि ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में विश्व के देशो में अतीत से लेकर वर्तमान तक आदान-प्रदान चलता रहा है, बिना इसके दुनिया आगे नहीं बढ़ सकती।

जब-जब भारत में शुद्धता के नाम पर स्वयं को बंद समाज के रूप में स्थापित करने की कोशिश की अथवा बाहरी दुनिया से परहेज किया, तब-तब विदेशी सभ्यता, संस्कृति एवं भाषा, एक तूफान की तरह हमारे खिड़की-दरवाजे को तोड़ती हुई, हमारे घर के अंदर तक आ पहुँची। तुर्को, मुगलों एवं अंग्रजों वगैरह के आक्रमण एवं उनका यहाँ स्थायी साम्राज्य स्थापित करना, इसका प्रमाण है। हमें विदेशी धर्म, विद्या, सभ्यता, संस्कृति एवं भाषा को स्वीकार करना पड़ा। अतः स्वेच्छा से, सीमित क्षेत्र या विस्तृत क्षेत्र में, वैश्वीकरण की प्रक्रिया चलती रही है।

वर्तमान में वैश्वीकरण की प्रक्रिया औद्योगिक एवं व्यापार जगत से होते हुए जीवन के अन्य क्षेत्रो में भी अपना जाल फैला रही है। वैश्वीकरण के फलस्वरूप विश्व की बिरादरी में जब परस्पर संपर्क की बात आती है तो उसे संपर्क या पारस्परिक आदान-प्रदान के लिए एक भाषा की जरूरत होती है। वर्तमान संदर्भो में अंग्रेजी ही विश्व की प्रमुख संपर्क भाषा होने से वैश्विक भाषाओं में पहले स्थान पर है अशोक केलकर के अनुसार- "सिनेमा, बैंक, रेल, फुटबाल, रेनेसांस, ग्लास्नोस्त, सत्याग्रह ये शब्द जितने वैश्विक बन गए है, उतने ही नौकरशाही, विभाग की धुलाई, आविष्कार, स्वातंत्रय, वैश्वीकरण-इन शब्दों का उद्गम वैश्विक है। जिस तरह शब्द वैश्विक बनते हैं, वैसे ही भाषाएँ भी वैश्विक बन सकती हैं। फ्रेंच, अंग्रेजी, स्पैनिश ये पहली वैश्विक भाषाएँ थीं। संयुक्त राष्ट्र संगठन ने इस तालिका में चीनी और रशियन को भी समाविष्ट किया। यथावकाश अरबी, हिंदी, शायद जापानी भी उनमें बैठेगी।"[3]

अंग्रेजी भाषा के वैश्वीकरण का एक प्रमुख कारण अतीत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विस्तार रहा है, जिसके कारण विश्व के अधिकांश ब्रिटिश औपनिवेशिक देशों में अंग्रेजी भाषा का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। दूसरा कारण, वर्तमान में विश्व व्यापार संगठन का आर्थिक उदारीकरण रहा है, जिसमें विश्व के विकसित देश संपूर्ण विश्व में अपना व्यापार फैलाने के लिए अंग्रेजी को संपर्क भाषा के रूप में अपनाना सर्वाधिक सुविधाजनक मानते हैं।

वैश्वीकरण के संदर्भ में भारत की स्थिति पर विचार करें तो आज सरकार बड़े पैमाने पर आर्थिक सुधारों के नाम पर सरकारी मिलों, कंपनियों, कल-कारखानों एवं उद्योग-धंधों का भी सस्ते दामों में बेचकर निजीकरण किया जा रहा है, जिसके फलस्वरूप अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत में पूँजी निवेश कर रही हैं। मुक्त व्यापार प्रणाली के कारण विश्व के अनेक देशों के लिए भारत एक लाभदायी बाजार के रूप में विकसित हो रहा है। इसे कुछ भारतीय आर्थिक चिंतक आर्थिक गुलामी की दृष्टि से भी देख रहे हैं। जिस तरह से ईस्ट इंडिया कम्पनी ने प्रारंभ में थोड़े से भाग में अपना व्यापार प्रारंभ किया तथा धीरे-धीरे पूरे देश में अपनी जड़ें इस तरह से जमा लीं कि भारत की राजनीतिक सत्ता भी हथिया ली। कमोवेश ऐसी ही स्थिति भविष्य में भी आ सकती है क्योंकि आर्थिक गुलामी अंततः राजनीतिक गुलामी का भी मार्ग प्रशस्त करती है और इतिहास इस बात का साक्षी है।

गुलाम भारत में अंग्रेजी का जितना बोलबाला नहीं था, आज उससेकहीं अधिक उसका प्रचार-प्रसार हो रहा है। पूरे देश में जिस तरह अंग्रेजी माध्यम के पब्लिक स्कूलों की बाढ़ सी आ गई है और प्रत्येक साधन-सम्पन्न माँ-बाप अपने बच्चों को इन स्कूलों में पढ़ाना चाहते हैं, वह निश्चित रूप से न केवल हिंदी के लिए, वरन, अन्य भारतीय भाषाओं के लिए भी चिंता का विषय हो सकता है, परंतु यदि हम समस्या के दूसरे पहलू को देखें और भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में गहराई से विचार करें तो चिंता की विशेष बात नजर नहीं आती।

संस्कृत भाषा अपने सर्वोच्च साहित्यिक अवदान के बावजूद, ऐतिहासिक विकासक्रम में, प्राकृत एवं अपभ्रंश के रूप में विभिन्न जनपदीय बोलियों के रूप में बिखर गई। कभी राष्ट्रभाषा, जनभाषा एवं साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित संस्कृत भाषा का यह हश्र क्यों हुआ? एक वैज्ञानिक व्याकरण के साँचे में ढली, देवनागरी जैसी वैज्ञानिक लिपि में निबद्ध यह भाषा कैसे जनसामान्य से कटकर अपने अवसान को पहुँच गई, यह विचारणीय बिंदु है। क्या इसी तरह वर्तमान खड़ीबोली हिंदी भी अपने विकास के चरमोत्कर्श पर पहुँचकर अवसान को प्राप्त हो जाएगी? समृद्ध साहित्य से भरपूर अंग्रेजी के साथ ऐसा क्यों नहीं हुआ? हर दृष्टि से समृद्ध संस्कृत के पतन और अंग्रेजी के उत्थान के कारणों की पड़ताल करें तो शुद्धता के अतिवादी आग्रह ने जहाँ संस्कृत को आम आदमी की पहुँच से दूर कर दिया, वहीं अंग्रेजों की विस्तारवादी नीति ने उसे पूरे विश्व में विस्तारित कर दिया। कोई भी भाषा जनसामान्य के प्रयोग पर ही जिन्दा रह सकती है। प्रयोग में न आने से भाषा प्रचलन से बाहर हो जाती है और वही उसके अवसान का कारण बनता है। संस्कृत के साथ भी यही हुआ।

जिस समय संस्कृत अपने अवशेश रूप अपभ्रंश के रूप में जनमानस के बीच प्रचलित हो रही थी तथा काव्यभाषा के रूप में राजदरबारों में प्रतिष्ठा प्राप्त कर रही थी, ठीक उसी समय भारत में विदेशी आक्रमणों का सिलसिला शुरू हुआ। उल्लेखनीय है कि विदेशी शासनकाल की दीर्घावधि में जनपदीय बोलियों (राजस्थानी, मैथिली, ब्रज, अवधी आदि) के रूप में हिंदी भाषा-साहित्य की जितनी श्रीवृद्धि हुई, उतनी इससे पूर्व कभी नहीं हुई। इसीलिए मध्यकाल को हिंदी साहित्य का 'स्वर्णयुग' कहा गया। परंतु स्वतंत्रता आंदोलन की पृष्ठभूमि में जिस तरह से एकाएक खड़ीबोली हिंदी पूरे देश की सम्पर्क भाषा के रूप में उभरकर सामने आयी, उससे अशोक केलकर के उस कथन की पुष्टि होती है कि, "वैश्वीकरण केवल वैश्विक भाषाओं का ही नहीं, कम या ज्यादा मात्रा में सभी सम्पर्क भाषाओं का भी होता रहता है।"[4]

वैश्वीकरण के संदर्भ में जहाँ तक हिंदी भाषा का संबंध है, हिंदी न केवल भारत की राजभाषा एवं सम्पर्क भाषा है, वरन् विश्व में बोली जाने वाली दूसरी सबसे बड़ी भाषा है, जिसका प्रयोग लगभग 22 देशों में 80 करोड़ से भी अधिक लोगों द्वारा किया जाता है, "विश्व स्तर पर हिंदी के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से 5 जून से 9 जून 2003 तक सूरीनाम के पारामारिबो शहर में सातवाँ 'विश्व हिंदी सम्मेलन' आयोजित हुआ, जिसमें हिंदी की वैश्विक स्थिति पर विचार किया गया तथा कैसे हिंदी को विश्व स्तर पर और आगे बढ़ाया जाये और उसे संयुक्त राष्ट्र संघ में मान्यता दिलायी जाये इस संबंध में कई प्रस्ताव पारित किए गये।"[5] इस तरह हिंदी बड़ी तेजी से वैश्विक भाषा के रूप में उभरी है, जिसमें उसे विश्वस्तर पर प्रचारित-प्रसारित करने में हिंदी फिल्मों का बहुत बड़ा योगदान रहा है, हालांकि हिंदी फिल्मों के अभिनेता-अभिनेत्री फिल्मों के अलावा अन्यत्र अंग्रेजी में ही वार्तालाप करते हैं। अतः कहा जा सकता है कि हिंदी वैश्विक भाषा है। आर्थिक उदारीकरण तथा मुक्त विश्व व्यापार प्रणाली के कारण उसका वैश्वीकरण हो रहा है। वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया में उसमें वैश्विक भाषाओं के शब्दों का मिश्रण होना स्वाभाविक है। हिंदी इस मामले में काफी उदार है। उसने पहले से ही कई विदेशी भाषाओं-अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि के हजारों शब्दों को अपनाया हुआ है और अपनी जरूरतों के अनुरूप यह प्रक्रिया निरंतर जारी है। अतः परकीय साहित्य, परभाषा या परविद्या आदि से परहेज न रखने के कारण हिंदी निरंतर विकास की ओर अग्रसर है।

भारत एक विकासशील देश है। विकसित देशों के लिए वह एक बहुत बड़ा बाजार है। हमारे देश में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का जाल बिछ रहा है। विश्व बैंक द्वारा जो करोड़ो रूपया हमारे राष्ट्रीय राजमार्गों तथा ग्रामीण सड़क योजना के लिए दिया जा रहा है, उसका मुख्य उद्देश्य यही है कि भारत का प्रत्येक गाँव शहरों में जुड़ जाये, ताकि विकसित देशों का उत्पाद शहरों तक ही सीमित न रहकर, गाँव-गाँव तक पहुँच जाये और गाँवों की जरूरतों को ध्यान में रखकर ही माल तैयार किया जाये। इस तरह वैश्वीकरण की प्रक्रिया शहरों तक ही सीमित न रखकर, भारत के गाँव-गाँव तक पहुँचाने की प्रक्रिया चल रही है। इसमें सड़कें, परिवहन, दूरसंचार के विविध माध्यम, प्रिंट मीडिया एवं इलैक्ट्रॉनिक मीडिया आदि अपनी अहम भूमिका निभा रहे हैं। उद्यम, व्यापार, सांस्कृतिक आदान-प्रदान तथा तमाम क्षेत्रों में वैश्वीकरण के फलस्वरूप हिंदी का विस्तार होगा, क्योंकि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के कर्मचारियों को यहाँ अपना व्यापार बढ़ाने के लिए संपर्क भाषा के रूप में हिंदी को अपनाया होगा, साथ ही इन कम्पनियों में कार्यरत हिंदी भाषी भारतियों को विदेशो में जाने का अवसर मिलेगा और वे भी अपने साथ वहाँ हिंदी भाषा ले जाएँगे। इस तरह हिंदी-अंग्रेजी दोनों भाषाओं का परस्पर आदान-प्रदान चलता रहेगा। भारतीय उपमहाद्वीप के लगभग पचास करोड़ हिंदी मातृभाषी लोंगों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए विश्व के विकसित देशों को हिंदी का सहारा लेना ही पड़ेगा।

आज हिंदी में, साहित्य की लगभग सभी विधाओं में साहित्य सृजन हो रहा है। न केवल हिन्दीतर भारतीय भाषाओं में, वरन् विश्व की अनेक भाषाओं में हिंदी की श्रेष्ठ रचनाओं का अनुवाद हो रहा है। साथ ही विश्व की अन्य भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्य का अनुवाद भी हिंदी में हो रहा है। इस तरह सृजनात्मक साहित्यके आदान-प्रदान के माध्यम के रूप में भी हिंदी का वैश्वीकरण हो रहा है।

हाल के वर्शों में परम्परागत लोक ज्ञान-विज्ञान की ओर विकसित देशों का रूझान तेजी से बढ़ा है, जिसमें लोकवार्ता साहित्य, लोकनृत्य, लोकसंगीत, लोक विज्ञान वगैरह सभी कुछ सम्मिलित हैं। विदेशी अध्येता गाँव-गाँव जाकर न केवल इस दिशा में अध्ययन कर रहे हैं, वरन् तत्सम्बन्धी सामग्री का संग्रह भी कर रहे हैं। इस कार्य के लिए वे कहीं-कहीं स्थानीय बोलियों को न केवल हिंदी के माध्यम से सीख रहे हैं, वरन् उनमें अपने धर्मग्रंथ बाइबिल वगैरह का अनुवाद भी करवा रहे हैं। इस तरह हिंदी भाषा विश्व स्तर पर विस्तार पा रहे हैं।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया जिस दिशा में आगे बढ़ रही है। उसे अब रोका नहीं जा सकता। हमें अपनी पहचान बनाए रखते हुए, उसमें सहभागिता करनी पड़ेगी क्योंकि हम विश्व समुदाय से कटकर अलग-थलग नहीं रह सकते। यह आदान-प्रदान एवं परस्पर सहअस्तित्व बनाए रखने का युग है। इसमें विश्व बिरादरी से हम कुछ लेते भी हैं और बदले में कुछ देते भी हैं। इसी कारण विभिन्न क्षेत्रो में विकास को गति मिलती है। इस लेनदेन की प्रक्रिया में कई तरह के समझौते भी करने पड़ते हैं। कभी-कभी कुछ पाने के लिए कुछ खोना भी पड़ता है। दिक्कत तब आती है जब हम दूसरों से केवल ग्रहण करते रहें और

बदले में कुछ देने की स्थिति में न हों। ऐसे में अपनी अस्मिता एवं पहचान बनाए रखना कठिन होता है और हम परजीवी होकर रह जाते हैं। इस तरह वैश्वीकरण के कुछ फायदे हैं तो कुछ नुकसान भी। वैश्वीकरण की प्रक्रिया एक संयुक्त परिवार की तरह है, जिसमें परिवार के प्रत्येक सदस्य को घुल-मिलकर रहना पड़ता है। वैश्वीकरण के कारण आज 'विश्व' ग्राम में तब्दील हो गया है। ऐसे में भाषा को भी परकीय प्रभावों से नहीं बचाया जा सकता। भाषा के मूलरूप की शुद्धता की बात करना बेईमानी एवं आत्मघाती है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि दूसरी भाषाओं से आगत शब्द अपनी भाषा के व्याकरण में इस तरह से रच-बस जाऐं कि वे अपने भाषा परिवार के ही सदस्य लगें।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया उद्योग एवं व्यापार क्षेत्र से ज्यों-ज्यों जीवन के सामाजिक एंव सांस्कृतिक क्षेत्रों में विस्तार पाएगी, त्यों-त्यों भाषा का स्वरूप भी बदलता जायेगा। यही कारण है कि जन संचार माध्यमों की हिंदी, आजकल 'हिंगलिश' (हिंदी+इंग्लिश) का रूप ले रही है। वर्तमान में विभिन्न क्षेत्रो में हिंदी जिन रूपों में उभरकर सामने आ रही है, उनमें प्रमुख है-1, साहित्यिक (सृजनात्मक) हिंदी, 2. राजकाज संबंधी कार्यालयी हिंदी, 3. संपर्क भाषा के रूप में बोलचाल की हिंदी, 4. वैज्ञानिक लेखन की हिंदी, 5. पत्रकारिता एवं संचार माध्यमों (प्रिंट मीडिया एवं इलैक्ट्रॉनिक मीडिया) की हिंदी, 6. वैश्वीकरण (उद्योग-व्यापार) की हिंदी। इस तरह हिंदी भाषा का बहुआयामी विकास हो रहा है, परन्तु उसका व्याकरण एक है। व्याकरण ही वह केन्द्रीय धुरी है जो भाषा को एक सूत्र में बाँधे रखती है और उसे बिखरने नहीं देती।

निष्कर्षत

हम कह सकते हैं कि हिंदी भारतीय संस्कृति की संवाहक है। विश्व के देशों ने जब सांस्कृतिक आदान-प्रदान की नीति को स्वीकार कर लिया है तो भाषा भी उसी का एक अंग है। हिंदी के माध्यम से विश्व बिरादरी को भारतीय संस्कृति से परिचित होने का अवसर मिल रहा है। सत्य, अहिंसा, प्रेम तथा बसुधैव कुटुम्बकम् भारतीय संस्कृति के मूलाधार हैं। भारत जियो और जीने दो की भाषा पर विश्वास करता है। भारतीय संस्कृति के इन मूलभूत संदेशों का हिंदी के माध्यम से जिस दिन वैश्वीकरण हो जाएगा,उस दिन विश्व का नक्शा ही बदल जाएगा और वैश्वीकरण की दिशा में विश्व को भारत का वह सबसे बड़ा योगदान होगा।

संदर्भ

1. आलोचना (त्रैमासिक), प्रधान सम्पादक : नामवर सिंह, अप्रैल-जून 2002, पृष्ठ-82 (भूमंडलीकरण के युग में जादूई यथार्थवाद)।
2. वही, पृष्ठ 90 (भाषा का वैश्विकीकरण और वैश्विकीकरण की भाषा, अनुवादः सुप्रिया सहस्रबु (s)।
3. वही, पृष्ठ 87
4. वही, पृष्ठ 88
5. साहित्य अमृत (मासिक), संपादक' विद्यानिवास मिश्र, जून 2003, पृष्ठ-23-31

कबीर की सामाजिक चेतना में मानवाधिकार

डॉ० रविश कुमार सिंह

चौहानडीह, जमुई (बिहार)

परिचय

समाज व्यापक मानव-समूह का नाम है जहाँ लगातार विभिन्न प्रकार की परम्पराएँ और विचारधाराएँ जन्म लेती हैं, विकसित होती हैं और अन्ततः समाप्त हो जाती हैं। इनमें किसी तरह का बदलाव लाना काफी मुश्किल है। इसका मतलब यह नहीं है कि समाज जड़ सत्ता का प्रतीक है। समय की यात्रा में समाज जब अपने ही साधनों के बीच उलझकर बिखरने लगता है तो उस संक्रमणकाल में कोई प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति लोगों में नयी चेतना का संचार करता है। यद्यपि उसे गहरे विरोधों के बीच संघर्ष करना पड़ता है। किन्तु कुछ समय बाद एक बड़ा समुदाय उसका अनुयायी बन जाता है और अनेक लोग उसके साथ खड़े हो कर सामाजिक उत्थान के कार्य में गति और उर्जा का संचार करते हैं। मध्यकालीन भारतीय समाज में कबीर का प्रादुर्भाव इसी रूप में हुआ।

कबीर के जन्म के समय समाज अनेक बुराइयों से ग्रस्त था। समाज में चारों ओर छुआछूत, ऊँच-नीच, रूढ़िवादिता, मिथ्याचार और पाखण्ड का बोलबाला व्याप्त था। हिन्दू-मुसलमान आपस में झगड़ते रहते थे। धर्म के ठेकेदार अपने स्वार्थ की रोटियाँ धार्मिक कट्टरता एवं उन्माद के चूल्हे पर सेंक रहे थे। कबीर ने इनका दृढ़ता से विरोध किया। उन्होंने सभी सामाजिक बुराइयों को निर्भीकता से दूर करने का प्रयास किया और इसमें काफी हद तक सफल भी रहे हैं।

कबीर को भरोषा था कि हिन्दू और मुसलमान में एकता और भाईचारा आये बिना किसी तरह का सामाजिक सुधार संभव नहीं हो पायेगा। ये दोनों धर्मानुयायी भयंकर दकियानूस थे। तमाम विरोधों और अवरोधों के बावजूद कबीर ने दोनों की कड़ी आलोचना की। सामाजिक चेतना के जागरण हेतु कबीर ने निरक्षर रहते हुए भी अपने शब्दों में जो क्रांति की ज्वाला जलाई थी, वह आज भी प्रेरणादायक है।

"हिन्दू अपने करै बड़ाई, गागर छुवन न देई।
वैष्या के पावन त सोवे, यह देखो हिन्दुआई।।
मुसलमान के पीर-औलिया मुर्गी-मुर्गी खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहै घरहि में करे सगाई"।।

कबीर ने सामाजिक-जीवन की विसंगतियों और कुरीतियों पर तीखे व्यंग्य छोड़े हैं, जिनका परिणाम केवल तिलमिलाहट में व्यक्त होता है। वर्तमान समय में भी यह स्थिति है। समाज में ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो अच्छाई का मुखौटा ओढ़कर अत्याचार और अनाचार करते हैं। "कबीर का सारा साहित्य समाज सुधार का ही सशक्त प्रयास है"।

कबीर ने अपने समय में चल रही मूर्तिपूजा की आलोचना की थी। वे लोगों को समझाते थे कि मूर्ति की प्रतीकात्मकता को भूलाकर उसे ही सही ईश्वर समझ लेना पाखंड है। मूर्ति या तस्वीर एक साधन मात्र है। कबीर ने इस प्रकार की मूर्ति पूजा का खंडन करके उसके व्यापक रूप को अनुभव करने का सन्देश दिया है।

कबीर ने इसी प्रकार अन्य सामाजिक कुरीतियों और दुर्गणों का खण्डन किया है। हिन्दी साहित्य में कबीर जैसा दूसरा क्रान्तिकारी व्यक्तित्व दिखाई नहीं पड़ता।

आज के समाज की अनेक समस्याओं में से सबसे बड़ी और प्रमुख समस्या है धार्मिक कट्टरपन। इसी धार्मिक कट्टरता या साम्प्रदायिकता के कारण एक आदमी दूसरे आदमी के खून का प्यासा बन जाता है जिससे व्यक्तियों का सहअस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है जो सामाजिक संगठन की मूलभूत आवश्यकता है।

जहाँ तक कबीर के समाज सुधारक होने का प्रश्न है, यह निर्विवाद सत्य है कि वे बुद्ध, गाँधी, अम्बेडकर इत्यादि क्रांतिकारी समाज सुधारकों की परम्परा में शामिल होते हैं। एक महान समाज सुधारक की मूल पहचान यह है कि वह अपने युग की विसंगतियों को पहचाने, एक समयानुकूल मौलिक जीवनदृष्टि निर्मित करें, और इस जीवन दृष्टि को स्थापित करने के लिए हर प्रकार के भय और लालच से मुक्त होकर दृढ़तापूर्वक संघर्ष करें। कबीर के व्यक्तित्व का विश्लेषण कर हम समझ सकते हैं कि वे जिस सामंतवादी युग में थे, वह सामाजिक पतन का काल था। विलासिता जैसे मूल्य समाज में फैले हुए थे। नारी को भोग की वस्तु माना जाता था। वर्णव्यवस्था और साम्प्रदायिकता ने मानव समाज को विखंडित कर दिया था। धर्म का आडम्बरकारी रूप वास्तविक धार्मिकता को निगल चुका था और भाषा से लेकर जीवनशैली तक आभिजात्य उच्च वर्गों की गुलाम हो चुकी थी। ऐसे समय में कबीर ने मानवमात्र की एकता का सवाल उठाया और स्पष्ट घोषणा की कि "साई के सब जीव हैं, कीरी-कुंजर दोय।" वे समाज के प्रति अति संवेदनशीलता से भरे रहे, क्योंकि 'सुखिया' संसार खाता और सोता रहा जबकि संसार की वास्तविकता समझकर 'दुखिया' कबीर जागते और रोते रहे। यह निम्नलिखित पंक्ति से स्पष्ट हो जाता है-

"सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।"

यह संवेदनशीलता निष्क्रिय नहीं थी, बल्कि इतनी ज्यादा दृढ़ता और आत्मविश्वास से भरी थी कि बेहतर समाज के निर्माण के लिए कबीर अपना घर फूँकने को पूरी तरह तैयार थे-

"हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा हाथ।
अब घर जारौं तासु का, जो चलै हमारे साथ।।"

वर्णव्यवस्था, साम्प्रदायिकता, भाषाई आभिजात्य और धार्मिक आडम्बरों के कठोर खंडन में कबीर का समाज के प्रति यही दृष्टिकोण साफ दिखाई पड़ता है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था को धार्मिक व्यवस्था से बहुत अलग करके नहीं देखा जा सकता है। इसमें जाति-भेद, वर्ण-भेद धार्मिक व्यवस्था का ही परिणाम है, पति-पत्नी का सम्बन्ध आध्यात्मिक बन्धन है। अतः जहाँ व्यक्ति, परिवार और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों का मूलाधार धर्म है, वहाँ सामाजिकता धार्मिकता से अलग नहीं हो सकती है।

कबीर के राम

कबीर के राम निर्गुण-सगुण के भेद से परे हैं। वास्तव में उन्होंने अपने राम को शास्त्र-प्रतिपादित अवतारी, सगुण, वर्चस्वशील वर्णाश्रम व्यवस्था के संरक्षक राम से अलग करने के लिए ही 'निर्गुण राम' शब्द का प्रयोग किया– 'निर्गुण राम जपहु रे भाई।' इस 'निर्गुण' शब्द को लेकर भ्रम में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। कबीर का आशय इस शब्द से सिर्फ इतना है कि ईश्वर को किसी नाम, रूप, गुण, काल आदि की सीमाओं में बांधा नहीं जा सकता। जो सारी सीमाओं से परे हैं और फिर भी सर्वत्र हैं, वही कबीर के निर्गुण राम हैं। इसे उन्होंने 'रमता राम' नाम दिया है।

कबीर राम की किसी खास रूपाकृति की कल्पना नहीं करते, क्योंकि रूपाकृति की कल्पना करते ही राम किसी खास ढांचे (फ्रेम) में बंध जाते, जो कबीर को किसी भी हालत में मंजूर नहीं।

कबीर नाम में विश्वास रखते हैं, रूप में नहीं। हालांकि भक्ति-संवेदना के सिद्धांतों में यह बात सामान्य रूप से प्रतिष्ठित है कि 'नाम रूप से बढ़कर है', लेकिन कबीर ने इस सामान्य सिद्धांत का क्रांतिधर्मी उपयोग किया। कबीर ने राम-नाम के साथ लोकमानस में शताब्दियों से रचे-बसे संकीर्ण भावों को उदात्त एवं व्यापक स्वरूप देकर उसे पुराण-प्रतिपादित ब्राह्मणवादी विचारधारा के खांचे में बांधे जाने से रोकने का प्रयास किया।

सामाजिक और धार्मिक जागरण

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे- 'मसि कागद छूवो नहीं, कलम गही नहिं हाथ'। उन्होंने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे, उनके मुंह से निकले शब्दों को उनके शिष्यों ने लिख लिया था।

साधु संतों का तो उनके घर में जमावड़ा बना ही रहता था। वे एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाण्ड के घोर विरोधी थे। "अवतार, मूर्त्तिपूजा, रोजा, ईद, मस्जिद, मंदिर आदि को वे नहीं मानते थे।

वो हिंदू और इस्लाम दोनों के आलोचक थे। उन्होंने यज्ञोपवीत और खघ्तना को बेमतलब करार दिया। उनकी बातों से उस समय हिंदू और मुसलमानों में काफी नाराजगी भी फैली. उन्हें कई बार धमकियां मिलीं।

कबीर की दृढ़ मान्यता थी कि कर्मों के अनुसार ही गति मिलती है स्थान विशेष के कारण नहीं। अपनी मान्यता को सिद्ध करने के लिए अंत समय में वह मगहर चले गए, क्योंकि लोगों में मान्यता थी कि काशी में मरने पर स्वर्ग और मगहर में मरने पर नरक मिलता है। मगहर में उन्होंने अंतिम साँस ली। आज भी वहां उनकी मजार और समाधि है।

कबीर पंथ

उस समय जनता पर धार्मिक भेदभाव और गुटबाजी का आतंक छाया हुआ था। कबीर जी निर्गुट विचारधारा को मानते थे. उनकी रचनाओं का सामान्य जनता पर काफी असर पड़ा। कबीर के शिष्यों ने फिर उनकी विचारधारा पर एक पंथ की शुरुआत की, जिसे कबीर पंथ कहा जाता है।

कबीर ने अपने पंथ को इस ढंग से सुनियोजित किया, जिससे धार्मिक कट्टरता और जातिगत भेदभाव से त्रस्त जनता सहज ही इनकी अनुयायी हो गयी। उन्होंने अपनी भाषा सरल और सुबोध रखी ताकि वह आम आदमी तक पहुंच सके। इससे सभी सम्प्रदायों और जातियों के परस्पर मिलन में सुविधा हुई। कबीर को शांतिमय जीवन प्रिय था और वे अहिंसा, सत्य, सदाचार आदि गुणों के प्रशंसक थे।

माना जाता है कि देशभर में करीब एक करोड़ लोग इस पंथ से जुड़े हुए हैं। हालांकि ये पंथ भी अब कई धाराओं में बंट चुका है।

इनमें मुसलमान कम और हिन्दू बड़ी संख्या में हैं। साथ ही बौद्ध और जैन समेत कई अन्य धर्मों के लोग भी कबीर पंथ से जुड़े हैं। कबीरपंथी कण्ठी पहनते हैं, बीजक, रमैनी आदि ग्रन्थों के प्रति पूज्य भाव रखते हैं। गुरु को सबसे ऊपर मानते हैं। शुरू में दार्शनिक और नैतिक शिक्षा पर आधारित यह पंथ बाद में जाकर धार्मिक संप्रदाय में बदल गया।

कबीर पंथ की शाखाएं

कबीरपंथ दो प्रमुख शाखाएं बताई गई हैं। पहली शाखा का केंद्र 'कबीरचौरा' (काशी) है। जिसकी एक उपशाखा मगहर में है। दूसरा बड़ा केंद्र छत्तीसगढ़ के तहत आता है, जिसकी स्थापना धर्मदास ने की थी। हालांकि इनकी भी कई शाखाएं और उपशाखाएं बताई गई हैं। बाद में छत्तीसगढ़ी शाखा भी कई शाखाओं में बंट गई। जिसमें कबीरचौरा जगदीशपुरी, हरकेसर मठ, कबीर-निर्णय-मंदिर (बुरहानपुर) और लक्ष्मीपुर मठ शामिल है।

भाषा और लेखनी

कबीर की भाषा सधुक्कड़ी एवं पंचमेल खिचड़ी हैं। इनकी भाषा में हिंदी भाषा की सभी बोलियों के शब्द सम्मिलित हैं। राजस्थानी, हरयाणवी, पंजाबी, खड़ी बोली, अवधी, ब्रजभाषा के शब्दों की बहुलता है।

कृतियां

धर्मदास ने उनकी वाणियों का संग्रह "बीजक" नाम के ग्रंथ मे किया जिसके तीन मुख्य भाग हैं : साखी, सबद (पद), रमैनी

- साखी: संस्कृत 'साक्षी, शब्द का विकृत रूप है और धर्मोपदेश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अधिकांश साखियां दोहों में लिखी गयी हैं पर उसमें सोरठे का भी प्रयोग मिलता है। कबीर की शिक्षाओं और सिद्धांतों का निरूपण अधिकतर साखी में हुआ है।
- सबद गेय पद है जिसमें पूरी तरह संगीतात्मकता विद्यमान है। इनमें उपदेशात्मकता के स्थान पर भावावेश की प्रधानता है; क्योंकि इनमें कबीर के प्रेम और अंतरंग साधना की अभिव्यक्ति हुई है।
- रमैनी चौपाई छंद में लिखी गयी है इनमें कबीर के रहस्यवादी और दार्शनिक विचारों को प्रकट किया गया है।

निष्कर्ष

कबीर या संत कबीर 15वीं सदी के भारतीय रहस्यवादी कवि संत और समाज सुधारक थे। वे हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन युग में ज्ञानाश्रयी-निर्गुण शाखा की काव्यधारा के प्रवर्तक थे। इनकी रचनाओं ने हिन्दी प्रदेश के भक्ति आंदोलन को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। उनका लेखन सिखों के आदि ग्रंथ में भी देखने को मिलता है।

कबीर युग में सर्वाधिक हाहाकार सामाजिक क्षेत्र में मचा था। समाज अनेक सम्प्रदायों, जाति-उपजाति समूह एवं वर्गों में बटा हुआ था। पण्डित पुरोहितों, मुल्ला मौलवियों के धार्मिक बाह्याडम्बर, पाखण्ड चरम अवस्था पर थे। हिन्दू और मुसलमानों में आपसी वैमनस्य अन्दर ही अन्दर उग्र रूप ले रहा था। सामाजिक जीवन में द्वेष, ईर्ष्या, अविश्वास, हिंसा-प्रतिहिंसा की भावना का प्रसार हो रहा था। जात-पात, ऊँच-नीच की भावना समाज में चहुँ ओर विद्यमान थी। मध्यकालीन भारतीय समाज में व्याप्त विषमताओं का प्रभाव सामान्यजन पर ज्यादा था।

कबीर भक्त और कवि बाद में थे, वे सही अर्थों में समाज-सुधारक पहले थे। उनकी कविता का उद्देश्य जनता को सही रास्ता दिखाना है। अनुभूति की सच्चाई और अभिव्यक्ति की ईमानदारी कबीर की सबसे बड़ी विषेषता है।

वे हिन्दू धर्म व इस्लाम को न मानते हुए धर्म निरपेक्ष थे। उन्होंने सामाज में फैली कुरीतियों, कर्मकांड, अंधविश्वास की निंदा की और सामाजिक बुराइयों की कड़ी आलोचना की थी।

कबीर ने समाज में व्याप्त जाति-प्रथा, छुआछूत एवं ऊँच-नीच की भावना पर कड़ा प्रहार किया। ज्ञानी कबीर की धारणा है कि संसार में जन्म लेने वाला प्रत्येक मानव समान हैं ऊँच-नीच की भावना रखना व्यर्थ है। उनके जीवनकाल के दौरान हिन्दू और मुसलमान दोनों ने उन्हें अपने विचार के लिए धमकी दी थी।

कबीर पंथ नामक धार्मिक सम्प्रदाय इनकी शिक्षाओं के अनुयायी हैं। अपनी सरलता, साधु स्वभाव तथा संत प्रवृत्ति के कारण आज विदेशों में भी उनका समादर हो रहा है।

सन्दर्भ

- कबीर और कबीर पंथ, डॉ. केदार नाथ द्विवेदी, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण, १९६५, पृष्ठ-१६२
- "भारत में कबीर पंथ की प्रमुख शाखाएँ", मूल से 15 अगस्त 2013 को पुरालेखित, अभिगमन तिथि 27 अप्रैल 2013.
- एल.बी. राय, अनन्त, कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ 66
- डॉ. भगीरथ मिश्र, कबीर वानी, खण्ड-2, पृष्ठ 14
- वही, खण्ड-2, पृष्ठ 20
- विचार दास, कबीर साहित्य की प्रासंगिकता, पृष्ठ 166
- कबीर के दोहे– भारतकोष, ज्ञान का हिन्दी महासागर
- किरणनन्दा, संतकाल में विद्रोह का स्वर, पृष्ठ 7
- डॉ. युगेश्वर, कबीर समग्र द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 1279
- आचार्य गंगाशरण शास्त्री, बीजक टीका मनोरमा, पृष्ठ 778
- डॉ. युगेश्वर, कबीर समग्र द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 1273
- सं. श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ 45
- डा. रघुवन्श, कबीर एक नई दृष्टि, पृष्ठ 110

दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की अवधारणा

डॉ० राकेश कुमार डेविड

एसोसिऐट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग,

डॉ० संजीत कुमार साहू

एसोसिऐट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग,

डॉ० शोभना झा

डीन, कला संकाय, श्री रावतपुरा सरकार विश्वविद्यालय, रायपुर, छ.ग.

सारांश

विज्ञान और तकनीकी के अंतर्गत सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी, एक ऐसी अवधरणा है, जिसमें तकनीकी आधरित संचार से संबंधित प्रणाली, प्रक्रियाएँ तथा व्यक्ति शामिल हैं। यह तकनीकी उपकरणों एवं सूचना संसाधनों का एक विस्तृत समूह है, जिसके द्वारा सूचना का संचयन, प्रसार, प्रबंधन तथा पुनर्प्राप्ति की क्रिया संपादित की जाती है। शिक्षण एक द्विमुखी प्रक्रिया होने के नाते यह अपेक्षा करता है कि उसमें शिक्षण स्रोत तथा विद्यार्थी के बीच आवश्यक संप्रेषण प्रवाह सुचारू रूप से बना रहे। दूरस्थ शिक्षा में तो यह और भी जरूरी हो जाता है कि एक दूसरे से अलग स्थानों और समय पर शिक्षण और अध्ययन में रत शिक्षण स्त्रोत तथा विद्यार्थियों के बीच संपर्क सूत्र भलीभाँति कायम रहे। यह कार्य संप्रेषण माध्यमों तथा तकनीकियों के उचित चयन तथा उनके प्रभावी उपयोग के द्वारा ही संभव हो सकता है। वर्तमान परिस्थितियों में सूचना तथा संप्रेषण तकनीकियों में आश्चर्यजनक प्रगति के साथ ही हमारे पास आज संप्रेषण तकनीकियों के रूप में काफी कुछ विविधता उपलब्ध है। एक दूरस्थ शिक्षा संस्थान द्वारा इस कार्य हेतु मुद्रित सामग्री, रेडियो, टेलीविजन व्यक्तिगत संपर्क कार्यक्रम द्वारा प्रत्यक्ष अंत:क्रिया मोबाईल, टेलीफोन, टेलबेस, फैक्स, ई-मेल, इंटरनेट, ऑडियो एवं वीडियो कांफ्रेंसिंग, वेब कांफ्रेंसिंग, चैटिंग इत्यादि विभिन्न संप्रेषण माध्यमों का परिस्थिति अनुसार उपयोग किया जा सकता है। प्रस्तुत लेख में दूरस्थ शिक्षा की विभिन्न उपप्रणालियों में आईसीटी के अनुप्रयोगों के बारे में चर्चा की गयी है।

संचार/संप्रेषण एक द्विपक्षीय प्रक्रिया है, जिसकी सहायता से हम अपने विचारों, भावनाओं तथा ज्ञान को दूसरों के साथ बाँटते हैं। सूचना स्रोत तथा सूचना ग्रहण करने वालों के बीच इस पारस्परिक आदान-प्रदान से सूचना उपलब्धि तथा उसके उपयोग संबधी कार्य व्यापार में काफी सहायता मिलती रहती है, जिसके परिणामस्वरूप ज्ञान भंडार में वृधि होती है। इस प्रकार से सूचना और संप्रेषण दोनों का ही ज्ञान को ग्रहण करने तथा ज्ञान प्राप्ति के ढंग को जानने तथा समझने हेतु हमें जरूरत रहती है। इस प्रकार से सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी से अभिप्राय एक ऐसी तकनीकी से है "जो सूचना के संग्रहण, भंडारण, पुन: प्रस्तुतीकरण, उपयोग, स्थानांतरण, संश्लेषण एवं विश्लेषण, आत्मसतीकरण आदि के विश्वसनीय एवं यथार्थ संपादन में सहायक सिद्ध होती है।" परंपरागत सूचना एवं संप्रेषण तकनीकियों में निम्न प्रकार के साधन, उपकरण तथा सामग्री आदि का उपयोग होता हुआ देखा जा सकता है। मुद्रित साधन जैसे पाठ्यपुस्तक, संदर्भ ग्रंथ, अन्य साहित्य एवं पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ आदि विद्यालय और अन्य सार्वजनिक पुस्तकालयों से उपलब्ध पठन सामग्री, मौखिक सूचनाएँ एवं ज्ञान जिसे अध्यापकों, सहपाठियों, बड़ी कक्षाओं में पढ़ने वाले अन्य विद्यार्थियों, मित्रों, माता-पिता तथा परिजनों एवं समाज के अन्य सदस्यों से औपचारिक तथा अनौपचारिक रूप में प्राप्त किया जा सकता है। चित्रात्मक सहायक साधन जैसे चित्र, चार्ट, मानचित्र, आरेख पोस्टर तथा कार्टून आदि। त्रिआयामी सहायक साधन, जैसे नमूने, मॉडल, कठपुतलियाँ, मेकअप आदि। दृश्य, श्रव्य हार्डवेयर उपकरण जैसे रेडियो, टेलीविजन, स्लाइड प्रोजेक्टर, ओवरहैड प्रोजेक्टर, चलचित्र या सिनेमा, टेप रिकार्डर ऑडियो-वीडियो रिकॉडिग उपकरण तथा शिक्षण मशीन आदि।

आधुनिक सूचना एवं संप्रेषण तकनीकियाँ परंपरागत तकनीकियों की तरह एकांगी नहीं हैं। ये अपने आप में विभिन्न हार्डवेयर तथा सॉफ्टवेयर, मीडिया तथा संप्रेषण प्रणालियों का सम्मिश्रण हैं। इनमें से प्रमुख का निम्न प्रकार उल्लेख किया जा सकता है।मोबाइल, डिजीटल वीडियो केमरा, मल्टीमीडिया पर्सनल

कंम्प्यूटर लैपटॉप तथा नोटबुक, ई-मेल, इंटरनेट तथा वर्ल्ड वाइड वेब, हाइपरमीडिया तथा हाइपरटैक्स्ट रिसोर्सेज, कंम्प्यूटर मीडिएटेड कोंफ्रेसिंग-वीडियो तथा ऑडियो कोंफ्रेंसिंग, वीडियो टेक्स्ट, टेलीटेक्स्ट, इंटरएक्टिव ऑडियो टेक्स्ट, इंटरएक्टिव वीडियो टेक्स्ट तथा इंटरएक्टिव रिमोट इंस्ट्रक्शन वर्चुअल क्लासरूम, ई-लर्निंग, एम-लर्निंग तथा वर्चुअल रियलिटी।

दूरस्थ शिक्षा एक शैक्षिक क्रिया है। अत: कक्षागत परिस्थितियों में मुख्य शिक्षण कार्य, जैसे पाठ्य सामग्री का प्रस्तुतीकरण, मूल्यांकन तथा अंत:क्रिया दूरस्थ शिक्षा में भी होने चाहिए। आई.सी.टी. का प्रयोग करके दूरस्थ शिक्षा में समय और स्थान की दूरी को खत्म किया जा सकता है परंतु यह निर्भर करता है कि दूरस्थ शिक्षा संस्थाएं किस ढंग से शिक्षण क्रिया स्वतंत्र अध्ययन तथा रिमोट कक्षा मॉडल आयोजित करती हैं तथा किस ढंग से तुल्यकालिक तथा अतुल्यकालिक रूप में शिक्षण क्रिया को सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी की सहायता से संपादित करती हैं। दूरस्थ शिक्षण तथा औपचारिक शिक्षण की तुलना करते समय सबसे महत्वपूर्ण अंतर यह है कि दूरस्थ शिक्षा में आमतौर पर प्रत्येक शिक्षणकार्य के लिए तकनीकी के किसी न किसी रूप का उपयोग करते हैं, जैसे प्रिंट तकनीकी या कुछ अन्य उन्नत तकनीकी। इसके अलावा दूरस्थ शिक्षा में विशेष रूप से शिक्षण कार्य का महत्वपूर्ण पक्ष 'छात्र सहायता' है। इसके अलावा दूरस्थ शिक्षा तथा औपचारिक शिक्षा में अंतर यह है कि दूरस्थ शिक्षा में संपूर्ण शिक्षण क्रिया की तैयारी विद्यार्थी के नामांकित होने के पूर्व करनी पड़ती है जबकि औपचारिक शिक्षा में शिक्षक व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक पाठ की योजना पूर्व पाठ पृष्ठपोषण को समाहित करते हुए सत्र के दौरान बनाता है। इसके अतिरिक्त औपचारिक शिक्षा की तुलना में दूरस्थ शिक्षा में अधिक विषम समूह के लिए पाठ सामग्री तैयार करनी पड़ती है, जिसके लिए विशिष्ट डिजाइन तकनीकी तथा कौशल की आवश्यकता होती है।

दूरस्थ शिक्षा के मॉडल–स्वतंत्र अध्ययन और दूरस्थ कक्षा मॉडल

दूरस्थ शिक्षा के शुरूआत से ही दो मुख्य मॉडल हैं -

1. स्वतंत्र अध्ययन : स्वतंत्र अध्ययन पत्राचार अध्ययन के तरीकों पर आधारित था, जिसमें विद्यार्थी स्वतंत्र ढंग से तथा अपनी गति से मुद्रित अधिगम सामग्री द्वारा अध्ययन करते हैं। मूल्यांकन विद्यार्थी द्वारा डाक से भेजे गये अधिन्यास कार्य द्वारा होता है। अधिन्यास कार्य पर ग्रेडिंग करके विस्तृत टिप्पणी के साथ उनके काउंसलर/शिक्षक द्वारा विद्यार्थियों को लौटा दिया जाता है। यह प्रणाली अतुल्यकालिक डिलीवरी प्रणाली का उदाहरण है, जिसमें अधिगम विभिन्न स्थानों पर तथा विभिन्न समय पर घटित होता है। भारत में दूरस्थ शिक्षा का यह मॉडल मुख्य रूप से पाया जाता है।

2. दूरस्थ कक्षा मॉडल : इसे वितरित कक्षा मॉडल भी कहते हैं। इसमें पाठ्य सामग्री या व्याख्यान औपचारिक कक्षा व्याख्यान को टेलीविजन प्रसारण या वीडियो कांफ्रेंसिंग द्वारा दूरस्थ कक्षा तक पहुँचाया जाता है। इसे तुल्यकालिक डिलीवरी प्रणाली कहते हैं, जिसमें अधिगम विभिन्न स्थानों पर परंतु शिक्षण के साथ ही साथ घटित होती है। यह मॉडल विकसित देशों तक ही सीमित हैं।

दूरस्थ शिक्षा प्रणाली तथा सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी

सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी एक विस्तृत अवधारणा है, जिसमें तकनीकी आधारित संचार से संबंधित प्रणाली, प्रक्रियाएँ तथा व्यक्ति सम्मिलित है। यह तकनीकी उपकरणों एवं सूचना संसाधनों का एक विस्तृत समूह है, जिसके द्वारा सूचना का संचयन, प्रसार, प्रबंधन तथा पुनर्प्राप्ति की क्रिया संपादित किये जाते हैं।

इस नयी डिजिटल प्रौद्योगिकी की निम्न विशेषताएँ है जो दूरस्थ शिक्षा के लिए उपयोगी साबित हो सकती हैं–

1. किसी विशेष अनुप्रयोग के लिए विभिन्न मीडिया का एकीकरण कर प्रस्तुतीकरण की क्षमता का होना, जैसे किसी वेब पृष्ठ द्वारा आवाज, वीडियो तथा टेक्स्ट का एक साथ प्रस्तुतीकरण।
2. 'इंटेलीजेंट संचार' की सुविधा से युक्त होना अर्थात् उपयोगकर्ता तथा अन्य इनपटु के आधार संचार के क्रम को नियंत्रित एवं व्यवस्थित करना तथा इसे अंत:क्रियात्मक स्वरूप प्रदान करना।
3. अधिक विस्तृत प्लेटफॉर्म प्रदान करता है क्योंकि डिजिटल कार्यक्रम एक से अधिक हार्डवेयर प्लेटफॉर्म पर प्रसारित किया जा सकता है जैसे डिजिटल ऑडियो क्लिप को कम्प्यूटर तथा इंटरनेट के द्वारा भी सुना जा सकता है, साथ ही रेडियो पर भी प्रसारित किया जा सकता है।

आईसीटी में उपरोक्त निहित अभिक्षमताएँ दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में गुणात्मक सुधार हेतु एक अवसर प्रदान करते हैं। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली निम्नलिखित घटकों या उपप्रणालियों से निर्मित है-

1. अधिगम वातावरण; अर्थात् गृह, कार्यस्थल, पारंपरिक कक्षा तथा क्षेत्रीय दूरस्थ शिक्षा अध्ययन केंद्र।
2. अंत:क्रिया उपप्रणाली अर्थात् विद्यार्थी, अनुदेशक, काउंसलर, दूरस्थ शिक्षा स्टाफ तथा अन्य विद्यार्थियों के बीच अंतर्क्रिया।
3. वितरण उपप्रणाली अर्थात् प्रिंट या ऑडियो-वीडियो सामग्री वितरित करने हेतु रेडियो-टीवी प्रसारण प्रणाली, ऑडियो कांफ्रेंसिंग, वीडियो कांफ्रेंसिंग, कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर तथा कम्प्यूटर नेटर्वक।
4. अनुदेशनात्मक प्रारूप उपप्रणाली अर्थात् अनुदेशन का निर्माण, मीडिया, छात्र सहायता तथा मूल्यांकन हेतु प्रणाली।

5. प्रबंधन /नेतृत्व उपप्रणाली। दूरस्थ शिक्षा के उपरोक्त घटकों या उपप्रणाली तथा आईसीटी के बीच निकट संबंध है क्योंकि सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी आईसीटी दूरस्थ शिक्षा के प्रत्येक उपप्रणाली के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सक्षम है। परिणामस्वरूप दूरस्थ शिक्षा के बारे में विचार करते समय आईसीटी पर भी विचार करना आवश्यक हो जाता है तथा दूरस्थ शिक्षा की प्रत्येक उपप्रणाली से इसे सहसंबंधित करना आवश्यक हो जाता है।

दूरस्थ शिक्षा प्रणाली–तुल्यकालिक या अतुल्यकालिक

हाल ही तक दूरस्थ शिक्षा प्रणाली सिर्फ तुल्यकालिक या सिर्फ अतुल्यकालिक प्रणाली थी। परंतु आईसीटी के विकास के कारण दोनों उपागमों का मिश्रण करना संभव हो गया है। जब हम इंटरनेट की क्षमताओं तथा अभियोग्यताओं के बारे में सोचते हैं तो दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का विभाजन करना कठिन हो जाता है क्योंकि इसे प्रदान करने के बहुत सारे विकल्प सामने आते हैं। वर्ल्ड वाइड वेब या इंटरनेट तुल्यकालिक के साथ ही साथ अतुल्यकालिक संचार तकनीकी भी है। तुल्यकालिक प्रणाली का उदाहरण पीसी द्वारा ऑनलाइन वीडियो कांफ्रेंसिंग, इंटरनेट, टेलीफोन मोबईल,इंटरवाइज–जिसमें एक साथ बहुत सारे विद्यार्थी व्याख्यान को मल्टीमीडिया युक्त पीसी द्वारा सुनते हैं। वेबकास्ट, सीसी टीवी, रेडियो/टीवी प्रसारण इत्यादि हैं। वहीं दूसरी तरफ अतुल्यकालिक प्रणाली का उदाहरण डिसक्शन फोरम, टेक्स्ट, ऑडियो या वीडियो सामग्री ई–मेल द्वारा प्रेरित, नेटवर्क से डाउनलोडेड टेक्स्ट, ऑडियो या वीडियो पाठ्य सामग्री जिसे विद्यार्थी कहीं भी और कभी भी अपनी सुविधानुसार अध्ययन हेतु उपयोग करते हैं, इत्यादि हैं। अब आगे हम दूरस्थ शिक्षा की विभिन्न उपप्रणालियों में आईसीटी के अनुप्रयोगों की चर्चा करेंगे।

दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में शिक्षण प्रारूप : शिक्षण प्रारूप की सामान्य प्रक्रिया को आमतौर पर निम्न उपचरणों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है– (i) स्थिति विश्लेषण, जिसमें पाठ्यक्रम के लिए अधिगमणकर्त्ता की विशेषताओं का विस्तृत विश्लेषण, उपलब्ध संचार तकनीकियों तथा माध्यमों का विश्लेषण, तथा अधिगम हेतु विषय विशेष की माँग शामिल हैं। (ii) उद्देश्यों का निर्धारण, जिसमें पाठ्यक्रम हेतु विशिष्ट उद्देश्यों का निर्धारण सम्मिलित है। (iii) संरचना एवं प्रक्रम का निर्धारण, जिसमें पाठ्यवस्तु को विशिष्ट उद्देश्यों के अनुसार व्यवस्थित एवं क्रम प्रदान करना ताकि उसकी समझ विद्यार्थियों में अधिकतम हो सकें। (iv) पाठ्यसामग्री विकास, जिसमें पाठ्यवस्तु/ स्वअध्ययन सामग्री के मुद्रित एवं अमुद्रित रूप का विकास उचित तकनीकी एवं मीडिया का प्रयोग करके सम्मिलित होता है, साथ ही ऊपर के चरणों में विकसित प्रारूप के अनुसार छात्रा क्रियाएँ तथा मूल्यांकन प्रणाली का निर्धारण शामिल है। मूल्यांकन उपचरण/उप–प्रणाली, जिसमें विकसित पाठ्यसामग्री की प्रभावशीलता का मूल्यांकन किया जाता है। यह फार्मेटिव तथा समेटिव मूल्यांकन के रूप में होता है। अर्थात् पाठ्यसामग्री विकास के विभिन्न चरणों में मूल्यांकन फार्मेटिव मूल्यांकन के साथ ही साथ उत्पाद मूल्यांकन या विद्यार्थी का मूल्यांकन समेटिव मूल्यांकन जिसने पाठ्यक्रम को पूर्ण किया है। शिक्षण प्रारूप के उपरोक्त चरण दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के साथ ही औपचारिक शिक्षा प्रणाली में भी पाये जाते हैं, परंतु दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में इसकी नितांत आवश्यकता है। क्योंकि दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में संपूर्ण पाठ्यक्रम तथा इसमें विभिन्न तकनीकियों का एकीकरण दूरस्थ विद्यार्थी के रजिस्ट्रेशन के पूर्व विकसित करना होता है तथा इसके लिए विशिष्ट कौशल युक्त विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है, जो कि औपचारिक शिक्षा प्रणाली में नहीं पाया जाता है।

दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में शिक्षण कार्य एवं आईसीटी : पाठ्यवस्तु का प्रस्तुतीकरण करना शिक्षण का मुख्य कार्य है। इसके अलावा शिक्षण विद्यार्थियों में उपयुक्त कौशलों तथा क्षमताओं का विकास करना भी हैं। इसके लिए दूरस्थ शिक्षा संस्थाएँ अतुल्यकालिक तकनीकी जैसे मुद्रित अध्ययन सामग्री/गाइड्सया इलेक्ट्रानिक अधिगम सामग्री जिसे इंटरनेट द्वारा प्रदान किया जाये, का प्रयोग कर सकती हैं। साथ ही तुल्यकालिक तकनीकी जैसे व्याख्यान का ऑडियो/ वीडियो प्रसारण, वेबकास्ट, टेली कांफ्रेंसिंग इत्यादि का भी प्रयोग शिक्षण कार्य हेतु उपयुक्त होगा। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में अंत:क्रिया एक आवश्यक घटक है, जिसके द्वारा अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी सूचना को व्यक्तिगत ज्ञान में करते हैं। इस कार्य हेतु भी तुल्यकालिक एवं अतुल्यकालिक तकनीकी प्रयोग कर सकते हैं। तुल्यकालिक तकनीकी, जैसे टेलीफोन, मोबईल द्वारा बातचीत, ऑडियो एवं वीडियो कांफ्रेंसिंग/वेब कांफ्रेंसिंग का प्रयोग कर सकते हैं। साथ ही शिक्षक एवं विद्यार्थियों के बीच कभी–कभी वास्तविक अंत:क्रिया का अवसर भी प्रदान किया जाना चाहिए। अतुल्यकालिक तकनीकी, जैसे विद्यार्थी के अधिन्यास पर लिखित टिप्पणी एवं पृष्ठपोषण ई–मेल द्वारा प्रदान करना, टिप्पणी एवं पृष्ठपोषण को उनके वेब पेज पर पोस्ट करना, पाठ्यसामग्री में संवाद शैली का प्रयोग करके प्रस्तुतीकरण जिसके द्वारा विद्यार्थियों को अनुरूपण अंत:क्रिया का अवसर प्रदान करना इत्यादि का प्रयोग किया जा सकता हैं।

दूरस्थ शिक्षण में अंत:क्रिया भी तीन प्रकार की होती है–

1. अधिगमकर्ता–पाठ्यसामग्री अंत:क्रिया– इसमें विद्यार्थी पाठ्यसामग्री जिस रूप में उसके संमुख प्रस्तुत की जाती है, उसके साथ अंत:क्रिया करता है।
2. अधिगमकर्ता–अनुदेशक अंत:क्रिया– इसमें विद्यार्थी अनुदेशक/काउंसलर के साथ विभिन्न प्रकार से संवाद स्थापित करते हैं।
3. अधिगमकर्ता–अधिगमकर्ता अंत:क्रिया– इसमें विद्यार्थी अन्य विद्यार्थियों के साथ व्यक्तिगत या समूह में अंत:क्रिया करते हैं।

दूरस्थ शिक्षण प्रणाली में उपरोक्त तीनों प्रकार की अंत:क्रिया को आईसीटी के द्वारा प्रभावी ढंग से संपादित किया जा सकता है। दूरस्थ शिक्षण प्रणाली का एक प्रमुख पक्ष विद्यार्थी के प्रगति का मूल्यांकन एवं मॉनीटरिंग भी है, जो फार्मेटिव और समेटिव उद्देश्यों के लिए हो सकता है। अतुल्यकालिक मूल्यांकन जैसे लिखित अधिन्यास जिसे डाक या ई–मेल द्वारा विद्यार्थी द्वारा प्रेषित किया जाये, का प्रयोग फार्मेटिव और समेटिव मूल्यांकन के लिए प्रयोग किया जा सकता है। तुल्यकालिक मूल्यांकन हेतु ऑनलाइन परीक्षा, ऑडियो/वीडियो कांफ्रेंसिंग मौखिक परीक्षा के लिए का प्रयोग किया जा सकता है।

दूरस्थ शिक्षण प्रणाली का एक और प्रमुख पक्ष विद्यार्थी सहायता है, जिसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार की सेवायें आती हैं, जिनका उद्देश्य विद्यार्थी को प्रेषित अधिगम सामग्री की व्यक्तिगत या समूह में आत्मसात करने के लिए अनुकुल वातावरण बनाना है तथा अधिगम उद्देश्य की अधिकतम सुनिश्चित करना है। इस कार्य हेतु तुल्यकालिक एवं अतुल्यकालिक तकनीकियों का प्रयोग बखूबी किया जा सकता है।

तकनीकी उद्देश्यों, विशिष्ट तकनीकी तथा मीडिया के बीच विभेद

सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी- एक विस्तृत संप्रत्यय है जिसमें न सिर्फ हार्डवेयर एवं सॉफटवेयर तकनीकियाँ शामिल हैं, बल्कि इसमें व्यक्ति, प्रक्रियाएँ एवं संगठन भी शामिल हैं, जो विभिन्न तकनीकी आधारित संचार में किसी न किसी रूप में संबंधित रहते हैं। दूरस्थ शिक्षा तथा आईसीटी पर विचार करते समय दो विभेदों पर विचार करना आवश्यक हैं-पहला तकनीकी विभेद' जिसमें दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में "हार्डवेयर" तकनीकी आईसीटी का एक उपघटक है, के तीन मुख्य उद्देश्यों के बीच विभेद करना है। दूसरा शैक्षणिक/प्रायोगिक विभेद जिसके अंतर्गत तकनीकी तथा मीडिया के बीच विभेद शामिल हैं।

1. तकनीकी विभेद : तकनीकी विभेद 'हार्डवेयर' तकनीकी के तीन विभिन्न उद्देश्यों के बीच विभेद करना है।

I. **संचय तकनीकियाँ :** इसके अंतर्गत दूरस्थ अधिगमकर्ताओं को अधिगम सामग्री वितरित करने के पूर्व उनका संचय भंडारण करना हैं जैसे-

- पूर्व मुद्रित सामग्री के लिए वेयर हाउस की व्यवस्था।
- एक केंद्रित या विकेंद्रित डिजिटल डाटाबेस, जिसमें डिजिटल अधिगम संसाधनों/सामग्री का संचय हो तथा जिसे दूरस्थ स्थानों से विद्यार्थी उस अधिगम सामग्री को घर बैठे प्राप्त कर सके।
- पोर्टेबल एनालॉग संचय माध्यम जैसे ऑडियो कैसेट्स या वीडियो कैसेट्स, मोबईल अथवा
- पोर्टेबल डिजिटल संचय/भंडारण माध्यम, जैसे सीडी-रोम, डीवीडी, पेनड्राइव, हार्डडिस्क इत्यादि।

II. **वाहक तकनीकियाँ :** इसके अंतर्गत वे तकनीकियाँ शामिल हैं, जिनके द्वारा अधिगम सामग्री या संचार एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया जाता है जैसे-

- पोस्टल सेवायें-जिसके द्वारा मुद्रित अध्ययन सामग्री या सीडी-रोम/डीवीडी, मोबईल, में डिजिटल अध्ययन सामग्री को दूरस्थ विद्यार्थियों को वितरित किया जाता है।
- कॉपर तार-जिनका प्रयोग पारंपरिक टेलीफोन लाइनों में होता है।
- ऑप्टिकल फाइबर-जिनका प्रयोग ब्रॉडबैण्ड कनेक्टिविटी तथा डिजिटल डाटा के संचार हेतु होता है।
- रेडियो वेबस्-जिनके द्वारा टीवी/रेडियो, मोबईल, प्रसारण या डिजिटल डेटा का संचार होता है।
- डिजिटल सैटेलाइट संचार प्रणाली-जिसके द्वारा डिजिटल डेटा का प्रसारण होता है तथा इसका उपयोग मोबाइल, फोन, टीवी तथा इंटरनेट एक्सेस हेतु किया जाता है।

III. **डिलीवरी तकनीकियाँ** -डिलीवरी तकनीकियाँ जिसमें प्रस्तुतीकरण तथा अंत:क्रिया तकनीकियाँ दोनों शामिल हैं का अर्थ उन युक्तियों से है जिसके द्वारा पाठ्यसामग्री दूरस्थ विद्यार्थी प्राप्त करते हैं। उनके सामने पाठ्य सामग्री प्रदर्शित होती है तथा दूरस्थ विद्यार्थी विभिन्न दूरस्थ स्थानों पर स्थित अन्य विद्यार्थियों/ अध्यापकों/विशेषज्ञों से अंत:क्रिया करने में सक्षम होते हैं, जैसे-

- एक मुद्रित पाठ्य सामग्री।
- एनालॉग या डिजिटल टेलीफोन, एनालॉग टेलीफोन के द्वारा एसएमएस न तो भेजा जा सकता है और न ही प्राप्त किया जा सकता है।
- प्रसारित अधिगम सामग्री को प्राप्त करने के लिए टीवी या रेडियो।
- रिकॉर्डेड पाठ्य सामग्री के लिए प्लेबैक प्रणाली, जैसे ऑडियो प्लेयर, वीडियो प्लेयर, डीवीडी/सीडीरोम प्लेयर।
- डिलीवरी तकनीकियाँ जो अंत: क्रियात्मक हैं, जैसे मल्टीमीडिया कम्प्यूटर (ई-मेल, डेस्कटॉप वीडियो कांफ्रेंसिंग, लिस्टसर्व, चैट रूम तथा अतुल्यकालिक डिस्कशन फोरम, ऑडियो कांफ्रेंसिंग प्रणाली, युक्तियाँ, ऑडियो-ग्राफिक प्रणाली, स्टैंडएलोन वीडियो कांफ्रेंसिंग प्रणाली, पारंपरिक डाक प्रणाली तथा अन्य पत्राचार के माध्यम। उपरोक्त विवरण विस्तृत न होकर सिर्फ एक संक्षिप्त सूची है, जिसका उद्देश्य यह बतलाना है कि कैसे विभिन्न संचार प्रौद्योगिकी का दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के विभिन्न पक्षों के कुशल, श्रेष्ठ एवं प्रभावी संपादन हेतु किया जा सकता है।

2. शैक्षणिक विभेद : सामान्यतया डिलीवरी तकनीकियाँ मेडियेटेड मैसेज अथवा संकेत प्रणाली को प्रदान करती हैं, जिसे हम सामान्यतया मीडिया कहते हैं, संकेत प्रणाली का अर्थ विभिन्न प्रकार के संचय/ भंडारण, वाहक तथा डिलीवरी तकनीकियों द्वारा संदेश/पाठ्यसामग्री को प्रदर्शित करना या दूरस्थ विद्यार्थियों तक पहुँचाना, जैसे-किताब/मुद्रित सामग्री में टेक्स्ट तथा ग्राफिक्स, ऑडियो टेप मे आवाज, वीडियो टेप में आवाज तथा चित्र,टीवी प्रसारण में भी या टेली कांफ्रेंसिंग अथवा वीडियो कांफ्रेंसिंग में प्रयुक्त आवाज तथा ग्राफिक्स। उदाहरण के लिए, इंटरनेट, जिसमें विभिन्न प्रकार के संचय, वाहक तथा डिलीवरी तकनीकियाँ शामिल हैं, का प्रयोग मैसेज/पाठ्यसामग्री प्रदान करने के लिए किया जाता है, जिसमें टेक्स्ट, आवाज, चित्र आदि का समावेश होता है। इसी प्रकार, ई-मेल तकनीकी का प्रयोग विभिन्न प्रकार के मीडिया टेक्स्ट, चित्र, आवाज, चलचित्र, ग्राफिक्स आदि का वितरण दूरस्थ विद्यार्थियों को किया जा सकता है। विभिन्न तकनीकियों की विशिष्टताएँ तथा क्षमताएँ समय-समय पर बदलती रहती हैं परंतु इन तकनीकियों के मूलभूत उद्देश्य, तथा तकनीकी व मीडिया के बीच अंतर बना रहता है। अत: दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में आईसीटी के प्रयोग पर विचार करते समय सर्वप्रथम उस विशिष्ट तकनीकी के उद्देश्यों पर विचार किया जाना आवश्यक है, परंतु साथ ही वह तकनीकी किस विशिष्ट मीडिया के लिए अनुकूल है, इसका निर्धरण करना आवश्यक है क्योंकि यह अधिगम

के लिए शिक्षण विधियों का निर्धारण करेगी। जैसे- टेक्स्ट मीडिया के लिए स्व-अध्ययन विधि की आवश्यकता है। ऑडियो तथा वीडियो मीडिया के लिए देखने तथा श्रवण विधि की आवश्यकता है। इसी प्रकार अंत:क्रियात्मक माध्यम के लिए संवाद विधि की आवश्यकता है।

दूरस्थ शिक्षा में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के उपयोग

1. पहुँच : हर व्यक्ति में अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचने की इच्छा सदैव विद्यमान रहती है। प्राचीन समय में लिपियों, पेंटिंग, शिलालेखों इत्यादि के द्वारा व्यक्ति अपने विचारों मनोभावों सुख-दुख, दूरदृष्टि आदि को अन्य व्यक्तियों तक पहुँचाता था, परंतु आज संचार प्रौद्योगिकी के द्वारा हम लोग एक ही समय पर लाखों, करोड़ों व्यक्तियों तक अपने विचारों, मनोभावों आदि को पहुँचा सकने में सक्षम हो गये हैं। आज प्रौद्योगिकी के इस युग में पूरा विश्व एक वैश्विक गाँव में बदल गया है, जहाँ पर समय व स्थान की सीमाएँ लगभग समाप्त सी हो गयी हैं। मोबईल, कम्प्यूटर तथा इंटरनेट की मदद से आज दूरस्थ स्थित व्यक्तियों, संस्थानों, समुदायों तक पहुँच काफी तीव्र व आसान हो गयी है। ई-मेल, ऑडियो कांफ्रेंसिंग,वीडियो कांफ्रेंसिंग, वेब कांफ्रेंसिंग इत्यादि सेवायें सस्ती, सर्वसुलभ एवं लोकप्रिय हो गयी हैं, तथा आम जनमानस तथा दूरस्थ विद्यार्थी आज दूरसंचार प्रौद्योगिकियों का बखूबी इस्तेमाल कर रहे हैं।

2. शिक्षण : हाल के समय तक शिक्षण केवल कक्षा परिस्थितियों में घटित होने वाली एक प्रक्रिया माना जाता था। दूरस्थ शिक्षा के द्वारा अधिगम कहीं भी और कभी भी संभव हो सकता है, तथा इस कार्य में संचार प्रौद्योगिकी के प्रयोग से समय व स्थान की बाधाएँ समाप्त-सी हो गयी हैं। दूरस्थ विद्यार्थी कभी भी तथा कहीं भी अपने दूरस्थ अध्यापक/संस्थान से संप्रेषण तथा अंत:क्रिया कर अधिगम कार्य को संपादित कर सकते हैं। संचार प्रौद्यागिकी ने शिक्षक तथा पाठ्यसामग्री दोनों के भार को कम करते हुए शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को सरल, रोचक एवं प्रभावपूर्ण बना दिया है। विभिन्न संचार प्रौद्योगिकी, जैसे वीडियोटेक्स्ट, टेलीटेक्स्ट, वीडियो डिस्क, कम्प्यूटर तथा इंटरनेट आदि का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में विकसित देश बखूबी कर रहे हैं। इन तकनीकियों के महँगी एवं जटिल होने के कारण विकासशील देश अभी अल्प मात्रा में ही शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग कर पा रहे हैं। परंतु लागत में कमी के कारण धीरे-धीरे भारत में शिक्षा के क्षेत्र में संचार तकनीकियों का प्रयोग बढ़ रहा है। विकासशील देशों, विशेषकर भारत में प्रसारण तकनीकी का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में बखूबी हो रहा है, जिसके परिणामस्वरूप रेडियो तथा टेलीविजन का प्रयोग देशव्यापी कक्षा के रूप में हो रहा है। इससे निरक्षरता उन्मूलन, गरीबी उन्मूलन तथा जीवन की गुणवत्ता सुधारने में मदद मिल रही है।

3. विशिष्ट उपयोग : शिक्षा के क्षेत्र में संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को छात्रा-केंद्रित बनाने में मदद करता है। आज विद्यार्थी संचार के विभिन्नसाधनों का प्रयोग करके अपनी जिज्ञासाओं तथा प्रश्नों का समाधान स्वयं कर सकते हैं। आज छात्रा रेडियो, टीवी, मोबईल, कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि के द्वारा नया ज्ञान प्राप्त कर सकता है, तथा सूचनाओं एवं ज्ञान का भंडारण एवं उनकी तीव्र पुनर्प्राप्ति कर सकता है।

(i) पाठ्यक्रम योजना–आज कम्प्यूटर पाठ्यक्रम निर्माण करने में बहुत ही सहायक है। कम्प्यूटर के द्वारा भावी छात्रों के बारे में सूचना सुलभ हो सकती है, जिसको ध्यान में रखकर शिक्षक पाठ्य सामग्री का चयन आसानी से कर सकता है।

(ii) पाठ्यक्रम प्रबंध–पाठ्यक्रम प्रबंध एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है और यह पाठ्यक्रम योजना के साथ ही शुरू होकर परीक्षा परिणाम घोषित होने तक जारी रहता है। इस कार्य में भी कम्प्यूटर की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कम्प्यूटर में पाठ्यक्रम के योजना एवं क्रियान्वयन से संबंधित समस्त आँकड़ों को संग्रहित किया जाता है। छात्रों तथा काउंसलर से मोबईल, टेलीफोन, फैक्स, ई-मेल आदिके पृष्ठपोषण प्राप्त कर कम्प्यूटर में संग्रहित किया जा सकता है। तत्पश्चात् पाठ्यक्रम सामग्री की गुणवत्ता का उपरोक्त के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करते हुए पाठ्यसामग्री में आवश्यक सुधार कर इसकी प्रभावशीलता को बढ़ाया जा सकता है।

(iii) छात्र सहायता सेवायें–सन् 1980 में दूरस्थ शिक्षा ने संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग करके बड़ी छलांग लगाई थी। क्योंकि सन् 1980 तक दूरस्थ शिक्षा मुद्रित अधिगम सामग्री पर निर्भर थी। शिक्षक तथा छात्रों के बीच कभी-कभी अंत:क्रिया संभव हो पाती थी, परंतु संचार प्रौद्योगिकी के प्रयोग के द्वारा छात्रा सहायता सेवायें प्रभावी एवं सुलभ हो गयी हैं। आज संचार प्रौद्योगिकी के प्रयोग के द्वारा छात्रा सहायता सेवाओं में सुधार लाया जा सकता है। इग्नू इस तकनीकी का प्रयोग काफी लंबे समय से कर रहा है तथा अपने दूरस्थ विद्यार्थियों को प्रभावी एवं गुणवत्तापूर्ण छात्रा सहायता सेवायें प्रदान करता है।

(iv) मुद्रित सामग्री–सभी दूरस्थ शिक्षा संस्थानों में मुद्रित अधिगम सामग्री एक प्राथमिक शिक्षण इनपुट है। आज लेषर प्रिंटिंग तथा डेस्कटाप पब्लिशिंग के द्वारा मुद्रण क्षेत्र में क्रांति आ गयी है। आज कम्प्यूटर की सहायता से मुद्रित अधिगम सामग्री का निर्माण तथा इंटरनेट की सहायता से दूरस्थ छात्रों तक डिलीवरी बहुत ही आसान हो गयी है।

(v) रेडियो प्रसारण–शिक्षा तथा मानव विकास के उद्देश्यों के लिए रेडियो का प्रयोग आज बहुतायत से किया जाता है। रेडियो प्रसारण के द्वारा दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारियाँ एवं सूचनाएँ विद्यार्थियों तक आसानी से पहुँचायी जा सकती हैं। इसके द्वारा समय के अंतर को कम करके तीव्र गति से संचार सुनिश्चित किया जा सकता है।

(vi) टेलीविजन प्रसारण–टेलीविजन, रेडियो की तुलना में संचार का अधिक प्रभावी साधन है, क्योंकि इसमें ऑडियो के साथ ही साथ वीडियो घटक भी उपलब्ध रहता है। ऑडियो-विजुअल होने के कारण छात्र इसके द्वारा अधिक आसानी से एवं जल्दी पाठ्य सामग्री को सीख जाते हैं। दूरस्थ शिक्षा माध्यम से विज्ञान विषयों के शिक्षण के लिए टेलीविजन अधिक प्रभावी साधन है। रेडियो तथा टेलीविजन प्रसारण के द्वारा ग्रामीण तथा शहरी विभेद को खत्म करते हुए विषय विशेषज्ञों के गुणवत्तापूर्ण व्याख्यानों को दूरस्थ छात्रों तक पहुँचाया जा सकता है।

(vii) ऑडियो तथा वीडियो कैसेट्स–दूरस्थ विद्यार्थी विभिन्न व्याख्याना ंके रिकार्डेड ऑडियो एवं वीडियो कैसेट्स अपने अध्ययन केंद्रों से प्राप्त कर सकते हैं। यदि किसी कारण वश विद्यार्थी मोबईल, रेडियो/टेलीविजन प्रसारण समय उपलब्ध न हो तो इन ऑडियो/वीडियो केसेट्स के द्वारा अपने

ज्ञान अंतर को दूर कर सकते हैं। एक ही पाठ्य सामग्री को बार-बार सुन, देख व समझ सकते हैं, जब तक उस पाठ्यसामग्री में विद्यार्थी द्वारा दक्षता प्राप्त न कर ली गई हो।

(viii) मोबईल/ टेलीफोन–आज के युग में मोबईल, टेलीफोन एक सर्वसुलभ एवं सस्ता संचार का साधन है। मोबईल, टेलीफोन का प्रयोग अंतर्वैयक्तिक संप्रेषण के लिए आज भी बहुतायत से प्रयोग किया जाता है। दूरस्थ विद्यार्थी मोबईल, टेलीफोन द्वारा अपने अध्यापक/काउंसलर/संस्थान से अपने जिज्ञासाओं तथा प्रश्नों का समाधान कर सकते हैं। मोबईल, टेलीफोन लाइन का प्रयोग विभिन्न संचार युक्तियों,जैसे फैक्स, ऑडियो कांफ्रेंसिंग,वीडियो कांफ्रेंसिंग, ई-मेल, कम्प्यूटर आदि के लिए किया जाता है।

(पग) कम्प्यूटर–आज कम्प्यूटर-अनुदेशन दूरस्थ शिक्षा में अधिक प्रभावी ढंग से प्रयोग किया जा रहा है। आज अधिगम सामग्री ई नोट,ई बुक, सीडी/डीवीडी के रूप में उत्पादित की जा रही है, जिसे कम्प्यूटर की सहायता से प्ले करके दूरस्थ विद्यार्थी आसानी तथा रोचक तरीके से सीख सकते हैं। आज इंटरनेट के सर्वसुलभ होने के कारण पाठ्य सामग्री डिजीटल फार्मेट में नेटवर्क पर उपलब्ध है, जिसे दूरस्थ विद्यार्थी कहीं भी तथा कभी भी इंटरनेट की सहायता से डाउनलोड करके पढ़ एवं सीख सकते हैं। कम्प्यूटर, मल्टीमीडिया तथा इंटरनेट शिक्षा एवं प्रशिक्षण का शक्तिशाली, सफल, सरल, रोचक एवं प्रभावपूर्ण साधन बना हुआ है तथा दूरस्थ शिक्षा के लिए वरदान साबित हो रहा है।

(x) वीडियो टेक्स्ट तथा टेलीटेक्स्ट–ये संचार प्रौद्योगिकी के उन्नत रूप हैं। इस तकनीकी के द्वारा घर के टीवी या कम्प्यूटर को मास्टर कम्प्यूटर से जोड़ा जा सकता है और वांछित सूचना एवं ज्ञान मास्टर कम्प्यूटर से लिया जा सकता है। वीडियो टेक्स्ट तथा टेलीटेक्स्ट दोनों के लिए मास्टर कम्प्यूटर अनिवार्य है।

दूरस्थ शिक्षा के संदर्भ में उपयुक्त प्रौद्योगिकी का चयन

विशिष्ट दूरस्थ शिक्षा के संदर्भ में उपयुक्त सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी के चयन के बारे में निर्णय लेना एक आसान कार्य नहीं है। इसके लिए

विभिन्न निर्णयन मॉडल दिये गये हैं परंतु प्रत्येक निर्णयन मॉडल के अपने गुण तथा दोष हैं। शिक्षक में वह कला होनी चाहिए, जिसके द्वारा वह दूरस्थ शिक्षा परिस्थिति के अनुसार उपयुक्त निर्णयन मॉडल का चुनाव कर सके। यहाँ सभी निर्णयन मॉडलों का वर्णन करना संभव नहीं है। बेट्स ने संचार तकनीकी के चयन हेतु सात कसौटियों का वर्णन किया है। ये कसौटियाँ घटते महत्त्व के पदानुक्रम में व्यवस्थित की गयी हैं, जिनका विवरण नीचे दिया गया है-

(i) पहुँच–यह सबसे महत्वपूर्ण कसौटी किसी विशेष तकनीकी के निर्णयन हेतु है। यदि दूरस्थ विद्यार्थियों की पहुँच उस विशेष तकनीकी तक नहीं है, तो फिर उसका दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में अनुप्रयोग सफल नहीं हो सकता है। इसका मतलब यह नहीं है कि उस तकनीकी का प्रयोग दूरस्थ शिक्षा में नहीं करना चाहिए। यदि वह तकनीकी का दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में अपरिहार्य है तो उसकी पहुँच समस्या से संबंधित संभाव्य एवं स्थायी समाधान खोजा जाना चाहिए। संभाव्य एवं स्थायी समाधान के आभाव में ही फिर उस तकनीकी का विकल्प खोजा जाना चाहिए।

(ii) लागत–दूरस्थ विद्यार्थियों तथा डिलीवरी संस्थानों के लिए विभिन्न तकनीकियों से संबंधित लागत भी महत्वपूर्ण है। किसी भी शिक्षा संस्थान के लिए तकनीकी क्रियान्वयन के लिए लागत एक मुख्य मुद्दा होता है, फिर भी दूरस्थ शिक्षा संस्थानों को तकनीकी क्रियान्वयन हेतु विभिन्न स्रोतों से आर्थिक संसाधनों की व्यवस्था करनी चाहिए तथा लागत प्रभावी तकनीकी का चयन करना चाहिए।

(iii) शिक्षण तथा अधिगम–इसके अंतर्गत यह निर्धारित किया जाता है कि उस विशेष तकनीकी के द्वारा किस सीमा तक शिक्षण अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति हो रही है। सृजनात्मक पाठ्यक्रम प्रारूप द्वारा विद्यार्थी किसी विशिष्ट अधिगम उद्देश्य को विभिन्न तकनीकियों का प्रयोग करके प्राप्त कर सकते हैं। इस दृष्टिकोण से शिक्षण अधिगम कसौटी की तुलना में पहुँच तथा लागत कसौटी का अधिक महत्त्व है।

(iv) अंत:क्रियात्मकता तथा उपयोगकर्ता मित्रता–इस कसौटी के अंतर्गत किसी विशेष तकनीकी द्वारा अंत:क्रिया में वृद्धि से है। अंत:क्रिया की मात्रा पाठ्यक्रम प्रारूप पर निर्भर करती है, न कि किसी विशेष तकनीकी पर। अत: पुरानी तकनीकियों वेफ द्वारा भी अंत:क्रियात्मक पाठ्यक्रम प्रारूप का प्रयोग करके अंत:क्रिया की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है। फिर भी नयी डिजिटल तकनीकियाँ भी अंत:क्रिया को बढ़ावा देती हैं, यदि उनका प्रयोग कर एकीकृत पाठ्यक्रम प्रारूप का निर्माण किया गया हो।

(v) संगठनात्मक मुद्दे–यह कसौटी किसी भी शैक्षिक संगठन की योग्यता एवं सक्षमता से संबंधित है, जिसके द्वारा संगठन प्रभावी रूप से किसी विशेष तकनीकी का प्रयोग अपनी शिक्षण प्रणाली/डिलीवरी प्रणाली में करता है। यह उतनी महत्वपूर्ण कसौटी नहीं है, क्योंकि किसी भी शैक्षिक संस्था द्वारा किसी तकनीक को अस्वीकार करने से शायद अच्छा अपने कोर्स डिलीवरी प्रणाली में परिवर्तन करना उचित निर्णय होगा।

(vi) नव्यता–यह किसी भी तकनीकी के चयन हेतु एक महत्वपूर्ण कसौटी है, जो उस तकनीकी के लिए आर्थिक संसाधनों की व्यवस्था करने को मजबूर करती है। परंतु दूरस्थ शिक्षा संस्थाओं को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उस तकनीकी के लिए जुटाये गये कोष वेफ खत्म हो जाने के बाद भी उसका क्रियान्वयन संभव हो सके तथा वह तकनीकी सफेद हाथी न साबित हो।

(vii) गति–इसके अंतर्गत दूरस्थ शिक्षा संस्थाओं द्वारा कुछ खतरा लेना शामिल है। यदि दूरस्थ शिक्षा संस्थाएँ किसी विशेष पूर्ण तकनीकी समाधान का इंतजार करेंगी, तो कभी भी तकनीकी समर्थित दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के लिए अपने अंदर उपयुक्त कौशलों एवं सक्षमताओं का विकास नहीं कर पायेंगी। इसके लिए दूरस्थ शिक्षा संस्थानों को करके सीखना उपागम अपनाना होगा, बशर्ते कि उपरोक्त अन्य कसौटियों की अनदेखी न हो। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति या संस्था अपनी गलतियों से सीखता है तथा उन गलतियों को सुधार कर निरंतर आगे की ओर बढ़ता है। यही उपागम/दृष्टिकोण दूरस्थ शिक्षा संस्थानों को किसी भी विशेष तकनीकी के क्रियान्वयन में अपनाने चाहिए।

उपसंहार

दूरस्थ शिक्षा संस्थायें, शैक्षिक अनुदेशन के लिए अधिकतर मुद्रित सामग्री पर ही निर्भर रहती है। परंतु आजकल अमुद्रित सामग्री का भी प्रचलन हो गया है। प्रभावशाली संप्रेषण के लिए दूरस्थ शिक्षा संस्थायें अपने प्रत्येक कोर्स के लिए औपचारिक संस्थाओं की पाठ्यपुस्तकों से कुछ अलग पैटर्न मुद्रित सामग्री तैयार कर उसका उपयोग करती हैं। यह मुद्रित सामग्री कोर्स के छात्रों के आयु, वर्ग की विशेषताओं एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर विशेषज्ञों से तैयार कराई जाती हैं। दूरस्थ शिक्षा में शिक्षक एवं छात्रों का प्रत्यक्ष संपर्क संभव नहीं होता है। अत: यह सामग्री इस प्रकार से तैयार की जाती है कि विद्यार्थी इसे पढ़ कर स्वयं अध्ययन कर सीख सकें और सफलता प्राप्त कर सकें। भारतवर्ष में जनसंख्या में लागातार वृद्धि हो रही है। जनसंख्या वृद्धि के कारण शिक्षा के क्षेत्र में समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। "सबके लिए शिक्षा" की माँग आज परंपरागत शिक्षा प्रणाली पूरा करने में असमर्थ सिद्ध हो रही है। फलस्वरूप मुक्त विश्वविद्यालयों का जन्म हुआ जो पत्राचार तथा दूरस्थ शिक्षा माध्यम से सबके लिए शिक्षा की बात कर रहे हैं। इनके माध्यम से आज शिक्षा दूरदराज के लोगों तक पहुँच रही है। ये मुक्त विश्वविद्यालय मुद्रित माध्यम के साथ-साथ अमुद्रित माध्यमों का प्रयोग प्रभावशाली ढंग से करने में लगे हुए हैं। अमुद्रित माध्यम से हमारा अभिप्राय उन इलैक्ट्रानिक साधनों से है जो शिक्षण अधिगम क्रियाओं की प्रभावशीलता में वृद्धि करते हैं। ये विश्वविद्यालय छात्रों के ज्ञान, कौशल अभिवृत्ति तथा अभिरुचियों में परिवर्तन लाने के लिए बहुमाध्यम उपागम का प्रयोग भी खुलकर कर रहे हैं। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि जो अध्यापक संप्रेषण कला में कुशल होते हैं, उन्हीं की पहचान प्रभावशाली अध्यापकों के रूप में होती है। परंतु उनकी इस सफलता के पीछे उन विद्यार्थियों का भी हाथ होता है, जो संप्रेषण प्राप्तकर्ता के रूप में उनकी संप्रेषण क्षमता से पूरा-पूरा लाभ उठाने की योग्यता और इच्छा रखते हैं। अध्यापक तथा विद्यार्थी दोनों की इस सफलता के पीछे एक बात और है, जो अधिक आवश्यक हैं, वह है संप्रेषण माध्यम की उपयुक्तता। उपयुक्त संप्रेषण माध्यम के जरिए ही सफल संप्रेषण का अस्तित्व निर्भर करता है। जितनी उपयुक्तता तथा सशक्तता संप्रेषण माध्यम में होगी, संप्रेषण की प्रक्रिया तथा परिणाम उसी मात्रा में अच्छे होंगे। सूचना एवं संप्रेषण तकनीकियाँ सूचना एवं संप्रेषण कार्य को वैसा ही आसान तथा प्रभावशाली बनाने में अपनी भूमिका निभा सकती हैं जैसा कि अन्य तकनीकियों द्वारा हमारे जीवन के अन्य कार्यकलापों के संपादन में निभाई जाती हैं। देखा जाए तो सूचना एवं संप्रेषण तकनीकियों ने हमारे जीवन के विविध क्षेत्रों, जैसे उद्योग, व्यापार, बैंकिंग, कृषि, मैडीसिन, ट्रांसपोर्ट, पोस्टल एवं टेलीकम्यूनिकेशन, सेवा प्रतिष्ठान तथा हमारे दिन-प्रतिदिन की जिंदगी को प्रभावित करने वाली बहुत-सी बातों में एक क्रांति ला दी है। हमारे सोचने-विचारने, बातचीत करने, एक दूसरे के साथ संपर्क और संप्रेषण करने सभी बातों में एकदम बदलाव ला दिया है। हमारे जीवन का कोई क्षेत्र या गतिविधि ऐसी नहीं है, जो इन तकनीकियों के प्रभाव से अछूती हो। शिक्षा का क्षेत्र कोई अपवाद नहीं है। अत: यहाँ भी सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित किया जाना चाहिए, जिससे कि गुणवत्तापूर्ण दूरस्थ शिक्षा प्रदान की जा सवेफ।

संदर्भ

- ईवांस, टी. एंड नेशन, डी. 2000. चेजिंग यूनिवर्सिटी टीचिंग रिफ्लेक्शन ऑन क्रिएटिंग ऐजुकेशनल टैक्नोलॉजी कोगन पेज पब्लिकेशन, लंदन,
- डी. 1996. फाउंडेशन ऑफ डिस्टेंस एजुकेशन . रोलेज पब्लिकेशन, लंदन.
- टैट, ए. 2000. "प्लानिंग, स्टूडेंट सपोर्ट इन ओपन एंड डिस्टेंस लर्निंग." ओपन लर्निंग, 15 पृष्ठ 287-299.
- डैनियल, जे. एस. 1996. मेगा-यूनीवर्सिटीष एंड नालेज मीडिया. कोगन पेज पब्लिकेशन, लंदन.1997. "क्यों विश्वविद्यालयों को प्रौद्योगिकी रणनीति की आवश्यकता है?." चेंज, 29 पृष्ठ 11-17.
- बेट्स, टोनी. 1995. प्रौद्योगिकी, मुक्त शिक्षा और दूरस्थ शिक्षा. रोलेष पब्लिकेशन, लंदन.
- 2000. "टीचिंग, लर्निंग एंड द इम्पैक्ट ऑफ मल्टीमीडिया टैक्नोलॉजी" ऐजुकॉज रिव्यू. वॉल्यूम35, नं: 5, सितंबर-अक्तूबर
- एम. एफ. 1990. "द इंस्ट्रक्टर चेजिंग रोल इन डिस्टेंस ऐजुकेशन." द अमेरिकन जर्नल ऑफ डिस्टेंस एजुकेशन, 4 पृष्ठ 21-29.
- मैसन, आर. 1998. ग्लोबलाइजिंग एजुकेशन, ट्रेंड्स एंड एपलिकेशन. रोलेज पब्लिकेशन, लंदन मोर्गन,
- सी. और रेली, एम. 1999. एसेसिंग ओपन एंड डिस्टेंस लर्नर्स. कोगन पेज पब्लिकेशन, लंदन,
- मोरे, एम. जी. 2002. इंफॉर्मेशन एंड कम्युनिकेशन टैक्नोलॉजी इन डिस्टेंस एजुकेशन. यूनेस्को इंस्टीट्यूट ऑफ इंफॉर्मेशन टैक्नोलॉजी इन एजुकेशन
- मोरे, एम. जी. और किरसले, जी. 1996. डिस्टेंस एजुकेशन ए सिस्टम व्यू, वाड्सवर्थ पब्लिशिंग कंपनी, बोस्टन
- वर्ल्ड बैंक. 2000. हायर एं इन डेवलपिंग कट्रीज: पेरिल एंड प्रामीस. डी. सी., द वर्ल्ड बैंक. वाशिंगटन
- विल्स, बी. 1993. डिस्टेंस एजुकेशन ए प्रेक्टिकल गाइड. ईगलवुड क्लिफ्स, एजुकेशन टैक्नोलॉजी पब्लिकेशन, न्यू जर्सीवोन
- यूलर, एम. और बर्ग, डी. 1998. द यूष ऑप़फ इलेक्ट्रानिक मीडिया इन ओपन एंड डिस्टेंस एजुकेशन. यूनेस्को, पेरिस.
- स्टीवार्ट, डी. 1993. "स्टूडेंट सपोर्ट सिस्टम इन डिस्टेंस एजुकेशन," ओपन लर्निंग, 8 पृष्ठ 3-12.
- हरासिम, एल. 1995. लर्निंग नेटवर्क्स ए फील्ड गाइड टू टीचिंग एंड लर्निंग ऑनलाइन. एम. ए.एमआईटी
- प्रेस, कैंब्रिज
- हैरी, के. 1999. हायर ऐजुकेशन थ्रू ओपन एंड डिस्टेंस लर्निंग. रोलेज पब्लिकेशन, लंदन.

पूर्वोत्तर भारत में हिन्दी के विकास की संभावित दिशाएँ

डॉ० रीतामणि वैश्य

सहयोगी अध्यापक एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय

हमारे देश के उत्तर पूर्व के आठ राज्यों से बना है पूर्वोत्तर भारत। पूर्वोत्तर में असम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मणिपुर, नागालैंड, मिजोराम और त्रिपुरा– ये सात राज्य आते हैं। इन सात राज्यों को एकसाथ सात बहनें कहा जाता है। अब पूर्वोत्तर में सिक्किम की भी गिनती होने लगी है। यह अहिंदी भाषी क्षेत्र है और यहाँ सैकड़ों जाति-जनजातियाँ निवास करती हैं। इन जातियों और जनजातियों की सैकड़ों भाषाएँ और बोलियाँ हैं,जिनमें से बहुसंख्यकों की लिपि नहीं है। भारतवर्ष के उत्तर-पूर्व का क्षेत्र अपनी विविधता के कारण जाना जाता है। भाषाई विविधता भारतवर्ष की एकप्रमुख विशेषता है और पूर्वोत्तर में यह विविधता कुछ अधिक देखी जाती है। "पूर्वोत्तर क्षेत्र के 8 राज्यों में 150 विभिन्न भाषाएँ एवं बोलियाँ प्रचलित हैं। खासी, असमीया, बांग्ला भाषाओं को छोड़कर अधिकांश भाषाएँ तिब्बती-बर्मी परिवार की भाषाएँ हैं (देवी 2011:128-129)। देउरी, ककबरक, तिवा, दिमाछा कछारी, बरो, मेच, गारो, आतंग, रुगा, कोच, राभा, टांगचा, नक्टे, वाञ्चु, कन्याक, फोम,छांग, खियाम्ङान, चक, काडु, आन्द्रो, चेंगमाइ, जिंगपउ, चिंगफो, याछाम-टेंगचा, आओ-छुंगलि, आओ-मंगचेन, चांगटाम, यिमछुंगरु, लोथा, रेंगमा(उ), पछुरि, रेंगमा, चिमि, आंगामि, छोकरि, खेजा, माओ, न्रुवांगमेइ, पुइरन, खइराओ, जेमे, म्जिमे, लियांगमाइ, माराम, तांगखुल, मरिंग, कार्बी, मेइथेइ, मिजो, कुकि, छिन आदि उत्तर पूर्वी भारत की तिव्वत-बर्मी भाषाएँ हैं (हाकाचाम 2011:23-24)। असम की प्रमुख भाषा असमीया है। इसके साथ यहाँ बांग्ला, बड़ो और हिन्दी भाषा का व्यापक प्रयोग होता है। मेघालय की प्रमुख भाषा खासी, गारो और अंग्रेजी हैं। अरुणाचल में निशि, आदि, मोनपा, वाञ्चु, बांग्ला, नेपाली, हिन्दी, असमीया आदि भाषाएँ चलती हैं। मणिपुरी मणिपुर की प्रमुख भाषा है। साथ ही हिन्दी, असमीया, बांग्ला और अंग्रेजी भी यहाँ चलती हैं। नागालैंड में अंग्रेजी और नागामिस भाषाओं का प्रचलन है। मिजोरम की प्रधान भाषाएँ मिजो और अंग्रेजी हैं। बांग्ला त्रिपुरा की प्रधान भाषा है।साथ ही मणिपुरी और ककबरक भाषा का भी प्रचलन वहाँ होता है। सिक्किम की प्रधान भाषाएँ हैं-नेपाली, लेप्चा और भूटिया।

कहने का तात्पर्य यह है कि पूर्वोत्तर भारत अहिंदी प्रांत हैं और पूर्वोत्तर का परिवेश भाषिक एवं भौगोलिक-दोनों दृष्टियों से हिन्दी के लिए प्रतिकूल है। पूर्वोत्तर का क्षेत्र दुर्गम इलाकों से भरा हुआ है। पहाड़ों, पर्वतों, नदियों, झरनों, समभूमियों, मालभूमियों की विविधता से सम्पन्न है यह क्षेत्र। विविध जनजातियों के समाहार से विशिष्ट पूर्वोत्तर भारत के लोगों की जीवन शैली भी बहुरंगी है। पहाड़ों के टीलों में जनजातियाँ बसती हैं। इन इलाकों में आपदाएँ आती रहती हैं। भू-स्खलन और अन्य आपदाओं के साथ बाढ़ आदि के दौरान खासतौर पर मानसून में काफी दिक्कतें आती हैं। इस जटिल भौगोलिक स्थिति के कारण इस क्षेत्र के लोगों के साथ इनकी भाषा, संकृति सभी एक ही जगह स्थिर से रहने को विवश होती हैं। उनके लिए दूर दराज का रास्ता तय कर पाना चुनौती से भरा होता है। इसीलिए यहाँ मानो कोस-कोस पर अलग-अलग भाषाओं का विकास हुआ है।

पूर्वोत्तर के सरकारी कार्यालयों में हिन्दी उपेक्षित है। यहाँ जितने भी सरकारी कार्यालय हैं, वहाँ कार्यालयी कामकाज प्रायः अंग्रेजी में ही होते हैं। बैंक, रेल्वे, हवाई अड्डा, इंसोरेंस आदि कार्यालयों में नियमित रूप से अंग्रेजी में काम होते हैं। हिन्दी दिवस के समय कर्मचारी दो-चार दिनों के लिए हिन्दी के प्रति समर्पित-से दिखाई पड़ते हैं। इन कार्यालयों में हिन्दी दिवस, हिन्दी सप्ताह या हिन्दी पखवाड़े में दो-एक प्रतियोगिता या भाषण से हिन्दी के प्रति कर्तव्य सम्पन्न किया जाता है।।

इतनी चुनौतियों के होते हुए भी पूर्वोत्तर भारत में हिन्दी के विकास की संभावना है। भारतवर्ष की तरह ही पूर्वोत्तर भी सैकड़ों जाति-उपजातियों एवं संप्रदायों के समन्वय की भूमि है। इस अनेकता को एकता के सूत्र में बांधने के लिए यहाँ एक संपर्क भाषा की जरूरत है। साथ ही मातृभाषा के साथ-साथ सामाजिक स्तर पर पूरक के रूप में प्रयुक्त होनेवाली एक भाषा की भी यहाँ जरूरत है। पूर्वोत्तर भारत में संपर्क एवं परिपूरक भाषा की जिम्मेवारी हिन्दी बखूबी उठा रही है और आगे भी यह काम हिन्दी ही कर सकती है।

उत्तर-पूर्व की भाषाओं और बोलियों में अपनी लिपि का अभाव है। असमीया, टाइ, तानी, मैतै या मैतै मायेक आदि दो-एक भाषाओं को छोड़कर बाकी भाषाओं एवं बोलियों की अपनी लिपि नहीं है। कुछेक भाषाओं को छोड़कर बाकी भाषाओं का औपचारिक रूप से अध्ययन करने की सुविधा नहीं है। लिपिहीन भाषाओं और बोलियों के साहित्य, संस्कृति, समाज को पूर्वोत्तर की सीमा से निकालकर वैश्विक स्तर पर ले जाने की जिम्मेवारी देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषा ही कर सकती है।

पूर्वोत्तर भारत में कई संस्थाएँ हिन्दी का प्रचार और प्रसार करती आयी हैं। उनमें असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी; राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा की जोरहाट जोरहाट; केन्द्रीय हिन्दी संस्थान की गुवाहाटी,शिलांग आदि क्षेत्रीय शाखाएँ, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की क्षेत्रीय शाखाओं का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

पूर्वोत्तर भारत के शिक्षानुष्ठानों में प्राथमिक स्तर से लेकर उच्चतम स्तर तक हिन्दी का पठन-पाठन होता है। विद्यालयों में हिंदी पाठ्यक्रम आधुनिक भारतीय भाषा और वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ायी जाती है। अब महाविद्यालयों,विश्वविद्यालयों में भी हिन्दी का नियमित रूप से पठन-पाठन होता है।

पूर्वोत्तर में कुछ दूसरे माध्यम ऐसे भी हैं, जिनसे हिन्दी की सेवा होती रही है। इनमें से समाचार पत्र एवं पत्र-पत्रिकाएँ अन्यतम हैं। असम में चार हिन्दी समाचार पत्र उपलब्ध हैं– दैनिक पूर्वोदय, पूर्वांचल प्रहरी, प्रातःकाल और सेंटीनेल। इन चार समाचार पत्रों के माध्यम से हिंदी का व्यापक प्रसार हो रहा है। इनके साथ-साथ अनेक पत्रिकाओं से हिन्दी का विकास हो रहा है।

भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र के राज्यों को प्रकृति का प्रचुर वरदान प्राप्त है। यहाँ में दार्जिलिंग, शिलांग, मौसिनराम, चेरापुंजी, कामाख्या, माजुली, उमानंद जैसे विश्वविख्यात पर्यटन स्थल और काजीरंगा तथा मानस जैसे राष्ट्रीय अभयारण्य भी हैं। गुवाहाटी, जोरहाट, शिवसागर, बोमडिला, गंगटोक, हाफलंग, औरंग, जातिंगा, तवांग तथा चेरापूंजी जैसे इलाके पर्यटकों की खास पसन्द हैं।वन्य जन्तु तथा समृद्ध हस्तशिल्प भी यहाँ देश-दुनिया को अपनी ओर खींचती है। विश्व भर के इन पर्यटकों की जरूरतें हिन्दी के जरिये पूरी की जाती हैं।

उत्तरपूर्वीय क्षेत्र की अवस्थिति कई अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं के बीच में है। नेपाल, चीन, भूटान, म्यांमार, बांग्लादेश की सीमाएं पूर्वोत्तर भारत के राज्यों से लगती हैं। अतः इन इलाकों का सामरिक महत्व भी है। इस भूखंड में एक ऐसी भाषा की आवश्यकता है,जो यहाँ के लोगों को शीघ्रता से संदेश वहन करने में क्षमता रखती हो। सैकड़ों भाषाओं के लाखों लोगों को जोड़ने का यहा काम सिर्फ हिन्दी ही कर सकती है।

पूर्वोत्तर भारत की जनजातियाँ अपने उत्तरण में लग गए हैं। वर्तमान का समय जनजातियों के विमर्श का समय है, जनजातियों के उत्थान का समय है। अतः उनमें जातीय चेतना का उदय हुआ है। विविध साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक संस्थाओं की स्थापना से वे अपनी जाति को आगे बढ़ाने में सतत प्रयत्नशील हैं। इसी चेतना के चलते वे अपनी भाषा,साहित्य लोगों को देश की मूल धारा से जोड़ने के लिए तत्पर हैं। उनकी भावनाओं को देश के कोने-कोने तक ले जाने के लिए एक सर्वमान्य भाषा की जरूरत है। उनका यह अभाव पूरा करने का काम हिन्दी ने शुरू कर दिया है।

भारतीय साहित्य, संस्कृति एवं समाज के साथ हिन्दी भाषा का अनोन्याश्रित संबंध है। अतीत से लेकर वर्तमान तक हमारे देश की प्रगति में हिन्दी ने विविध रूपों में महती भूमिका अदा की है। हमारे मनोगत भावों एवं विचारों को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अभिव्यक्ति की सुविधा प्रदान कर हमें एक मर्यादित जीवनशैली का उपहार दिया है। हिन्दी को विश्व की प्रमुख आंतर्राष्ट्रीय भाषा का गौरव प्राप्त है। पूर्वोत्तर भारत में में यह धीरे ही सही, पर दृढ़ता से निरंतर प्रगति के पाठ पर अग्रसर है। यहाँ के विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में हिन्दी के पठन-पाठन की व्यवस्था है,विविध संस्थाएँ यहाँ हिन्दी की सेवा कर रही हैं। अहिंदी भाषी क्षेत्र होने के कारण यहाँ के लोगों के लिए हिन्दी को हिन्दी भाषी प्रान्तों के लोगों की तरह ग्रहण करना कठिन हो जाता है। इस समस्या का सामना करने के लिए कोई उपाय ग्रहण किए जा सकते हैं। विद्यालयों एवं महाविद्यालयों के पाठ्यक्रम में हिन्दी के बोलने का अभ्यास होना आवश्यक है। इस क्षेत्र की प्रमुख भाषाओं में हिन्दी व्याकरण की पुस्तकें उपलब्ध कराना भी इस समस्या का एक उपाय हो सकता है। विश्वविद्यालयों में हिन्दी की प्रयोगशाला की व्यवस्था हो। इस क्षेत्र के सरकारी,अर्द्ध-सरकारी एवं व्यक्तिगत कार्यालयों में कार्यरत कर्मचारियों के लिए कार्यालय में हिन्दी शिक्षण की व्यवस्था हो और निश्चित समय में उनकी परीक्षा ली जाय। जो कर्मचारी परीक्षा में सफल होते हैं,उनके वेतन वृद्धि की व्यवस्था हो। सरकारी, अर्द्ध-सरकारी कार्यालयों में हिन्दी सेल हो। विश्वविद्यालयों में एक हिन्दी अधिकारी हो। इसतरह से कई उपायों के सहारे पूर्वोत्तर में हिन्दी का विकास किया जा सकता है।

ग्रंथ-सूची

अंग्रेजी ग्रंथः

Boro Anil Kumar-A History of Bodo Literature-First-Delhi%Sahitya Academy] 2010

असमीया ग्रंथः

हाकासाम उपेन राभा, असमीया आरु असमर तिब्बत-बर्मीय भाषा, चौथा, गुवाहाटीः भवानी प्रिंट एंड पब्लिकेशन्स, असम, 2011

हाकासाम उपेन राभा, एहोरा जनजातीय सुटि गल्प, प्रथम, गुवाहाटीः असम प्रकाशन परिषद, असम, 2012

पत्रिकाः

हिन्दीः

देवी एल. डिम्पल. "पूर्वोत्तर भारत में हिन्दी", समन्वय पूर्वोत्तर (अंक 13, वर्ष 2011)

शोध-पत्र

अंग्रेजीः (पी.एच.डी)

फुकन निभा रानी, Rabha Literateurs And Their Literary Contribution% A Critical Study, असमीया विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय, 2008

असमीयाः (लघु शोध परियोजना)

हाजरिका ज्योतिरेखा, असमर कार्बी, तिवा आरु देउरी जनगोष्ठीर लिखित साहित्यः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, 2016

बच्चों के साथ घर और नौकरी संभालती महिलाएं और उनकी परेशानियाँ

डॉ० कुमारी पूजा

शिक्षिका, +2 उच्च विद्यालय, खैरा जमुई (बिहार)

परिचय

शिक्षा और रोजगार सहित हर क्षेत्र में महिलाएं पुरुषों का एकाधिकार को तोड़ रही हैं; विशेषरूप से व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त महिलाओं के काम का दायरा बहुत बढ़ा है। लेकिन इस सफलता के बाद भी जो सहयोग उन्हें घर-परिवार से मिलना चाहिए, वह नहीं मिल रहा।

आज महिलाएं शिक्षा, पत्रकारिता, कानून, चिकित्सा, इंजीनियरिंग आदि सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। पुलिस और सेना में भी वे बड़ी जिम्मेदारी निभा रही रही हैं। लेकिन अधिकतर महिलाओं को पेशेवर जिम्मेदारियों के साथ ही घर की भी दोहरी जिघ्म्मेदारी उठानी पड़ती है, जिसका उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

दो नावों पर सवारी

बदलते वक्त ने महिलाओं को आर्थिक, शैक्षिक और सामाजिक रूप से सशक्त किया है, जिससे उनकी हैसियत एवं सम्मान में वृद्धि हुई है। इसके बावजूद अगर कुछ नहीं बदला तो वह है महिलाओं की घरेलू जिघ्म्मेदारी। खाना बनाना और बच्चों की देखभाल अभी भी महिलाओं का ही काम माना जाता है। घरेलू महिलाओं की तुलना में कामकाजी महिलाओं पर काम का बोझ ज्यादा है। इन महिलाओं को अपने कार्यक्षेत्र और घर, दोनों को संभालने के लिए ज्यादा मेहनत करनी पड़ रही है। घर और ऑफिस के बीच सामंजस्य बिठाने में हुई दिक्कत के बाद नौकरी छोड़ने वाली महिलाएं कहती हैं, "8 घंटे ऑफिस में, 3 घंटे ट्रेन-ऑटो में और इसके बाद घर के कामकाज के बीच तालमेल बिठाना मुश्किल होता है"।

बच्चों को संभालने का मामला महिलाओं के लिए ज्यादा संवेदनशील होता है। अगर उन्हें दफ्तर में बच्चों की चिंता सताती है तो बच्चे भी उनकी दूरी को तीव्रता से महसूस करते हैं। बदलते समय तथा माहौल को देखते हुए अब बच्चे भी पहले से ज्यादा और जल्दी समझदार होने लगे हैं, तथा परिस्थितियों से सामंजस्य भी बैठाने लगे हैं।

गृहस्थी की गाड़ी सुचारु रूप से चल सके, बच्चे आर्थिक अभाव महसूस किए बिना ऊँची शिक्षा प्राप्त कर अपना भविष्य उज्ज्वल बना सकें, इस कारण से भी महिलाएँ घर से बाहर कदम रखती हैं।

लेकिन इसके साथ ही एक अपराध-बोध भी उन्हें कचोटता रहता है कि, कहीं वे अपने बच्चों को सारा दिन घर पर अकेला छोड़कर उनके साथ अन्याय तो नहीं कर रही हैं? उनके भविष्य को सँवारने के सपने देखते-देखते कहीं उनसे दूर तो नहीं होती जा रही हैं।

कामकाजी माताओं के मन में इन सब सवालों का उठना स्वाभाविक भी है, क्योंकि बच्चे जितने माँ से जुड़े होते हैं उतने पिता से नहीं। अक्सर बच्चे पिता का ऑफिस जाना तो पसंद करते हैं पर माँ का नहीं।

कारोबारी संगठन एसोचौम द्वारा किए गए एक सर्वे से पता चलता है कि मां बनने के बाद कई महिलाएं नौकरी छोड़ देती हैं। सर्वे के मुताबिक 40 प्रतिशत महिलाएं अपने बच्चों को पालने के लिए यह फैसला लेती हैं। कामकाजी महिलाओं की स्थिति 'दो नावों में सवार' व्यक्ति के समान होती है, क्योंकि एक ओर उसे 'ऑक्यूपेशनल स्ट्रेस' या कामकाज का तनाव झेलना पड़ता है तो दूसरी ओर उसे घरेलू मोर्चे पर भी परिवार को खुश रखने की जिम्मेदारी निभानी पड़ती है।

सेहत पर असर

स्वास्थ विशेषज्ञ कहते हैं कि, 'ऑफिस और घर संभालने की दोहरी जिम्मेदारी के कारण तनाव बढ़ता है और बीमारियां पैदा होती हैं'। अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने के चक्कर में महिलाएं अक्सर अपनी सेहत की अनदेखी करती हैं। एसोचौम के सर्वे के अनुसार 78 फीसदी कामकाजी महिलाओं को कोई ना कोई लाइफस्टाइल से सम्बंधित रोग है। 42 फीसदी को पीठदर्द, मोटापा, अवसाद, मधुमेह, उच्च रक्तचाप आदि की शिकायत है।

इसी सर्वे के अनुसार कामकाजी महिलाओं में दिल की बीमारी का जोखिम भी तेजी से बढ़ रहा है। 60 प्रतिशत महिलाओं को 35 साल की उम्र तक दिल की बीमारी होने का खतरा है। 32 से 58 वर्ष उम्र की महिलाओं के बीच हुए इस सर्वे के अनुसार 83 प्रतिशत महिलाएं किसी तरह का व्यायाम नहीं करती और 57 फीसदी महिलाएं खाने में फल-सब्जी का कम उपयोग करती हैं।

पुरुषवादी पूर्वाग्रह

'मातृ-शक्ति' के बारे में क्या कहा जाए. इन दो शब्दों के भार से दबकर, महिलाओं का जीवन तबाह हो गया है। कुछ साल पहले एक मशहूर सामाजिक संगठन के दिल्ली स्थित समर कैंप में 50 लड़कियों को सिखाया गया कि उन्हें कैसे बर्ताव करना चाहिए। उन्हें बताया गया कि उनकी आदर्श शिवाजी का

मां जीजा बाई होनी चाहिए, जिसने शिवाजी जैसा बेटा पैदा किया। शिवाजी, यानी देश के सच्चे सपूत। जाहिर सी बात है, माता का दायित्व अपने बच्चों को देश का बेहतर नागरिक बनाना है। उनसे कहा गया कि औरतों को अपने-अपने घर में लघु भारत (मिनी इंडिया) बनाने की कोशिश करनी चाहिए। यही उनकी समाज सेवा है। देश के विकास में उनकी भागीदारी का सर्वोत्तम उदाहरण- 'मातृ-शक्ति' देश का रूप बदल सकती है।

घर-परिवार और नौकरी के बीच संतुलन की मुसीबत

एसोचौम का 2015 का एक सर्वे दिखता है कि पढ़ी-लिखी शहरी औरतें, ज्यादा से ज्यादा संख्या में फुलटाइम माता बनने के लिए अपनी प्रोफेशन लाइफ छोड़ रही हैं। बच्चों को पालने के साथ करियर संभालना मुश्किल काम होता है। तभी 2013 में विश्व बैंक की एक स्टडी में कहा गया था कि, 'भारत में 15 साल से ऊपर की सिर्फ 27% औरतें काम करती हैं'। यह ब्रिक्स देशों में सबसे कम दर है। यह भी कम दिलचस्प नहीं है कि 2017 में मिस वर्ल्ड बनी मानुषी छिल्लर ने सार्वजानिक मंच पर कहा था, 'मातृत्व (Motherhood) ऐसा प्रोफेशन है जिसमें सबसे ज्यादा सैलरी मिलनी चाहिए'। मतलब हम बलिदान को मातृत्व (Motherhood) से जोड़कर एक गलत परिभाषा गढ़ते हैं। करियर और अपने चुनाव को छोड़ने वाली मां को अधिक सम्मान देकर हम यह भी बताना चाहते हैं कि, जो स्त्री ऐसे बलिदान नहीं करती वह अच्छी मां नहीं हो सकती।

अच्छी मां वही है जो सब कुछ संभाल सके। कभी संतुलन बनाए- कभी संतुलन को छोड़कर एक किनारा धर ले। माँ बनना हमारे यहां विकल्प नहीं, अनिवार्यता है। जन्म के बाद बच्चे की देखभाल पूरी तरह से मां की जिम्मेदारी मानी जाती है। मेटरनिटी बेनेफिट कानून 2017, कामकाजी माताओं के लिए तो छुट्टी का समय 26 हफ्ते करता है, लेकिन पिता की छुट्टी की कोई बात नहीं करता। तो बच्चे पालते-संभालते औरत का करियर का कब बर्बाद हो जाता है, यह कोई सेरेना विलियम्स जैसी मशहूर टेनिस स्टार के केस से समझ सकता है। बच्ची पैदा करने से पहले उनकी वर्ल्ड रैंकिंग 1 थी जो मेटरनिटी लीव से लौटकर आने के बाद 491 पर आ गिरी। यहाँ ये ध्यान देना जरुरी है कि, आठ हफ्ते की प्रेग्नेंसी के साथ सेरेना ऑस्ट्रेलियन ओपन जीत चुकी थीं। तब कोई जानता भी नहीं था कि वह गर्भवती हैं।

विकल्प

'मातृशक्ति' का उदाहरण देने की बजाय कुछ दूसरे विकल्प सोचे जाने चाहिए। यूपी पुलिस ने एक पहल के तहत सभी पुलिस स्टेशनों में क्रेच की सुविधा देने करने की घोषणा की है। महिला एवं बाल विकास मंत्री मेनका गांधी ने नेशनल क्रेच स्कीम में इस संबंध में दिशानिर्देश जारी करने की बात कही है। जैसा कि मेटरनिटी बेनेफिट कानून कहता है, मेनका ने 50 या 50 से अधिक कर्मचारियों वाले औद्योगिक समूह/कंपनी में क्रेच शुरू करने की बात भी दोहराई है। वैसे राजीव गांधी राष्ट्रीय क्रेच योजना जैसे कुछ कार्यक्रम कुछ जिलों में चलाए गए हैं, लेकिन इस सिलसिले में अलग से कोई कानून नहीं है। 2006 में इस पर एक ड्राफ्ट बिल का प्रस्ताव रखा गया था लेकिन इस पर कोई काम नहीं किया गया। मेटरनिटी बेनेफिट कानून 2017 में क्रेच वाला प्रावधान इसलिए बहुत प्रभावी नहीं है, क्योंकि मेटरनिटी की छुट्टी का पैसा देने में कतराने वाली प्राइवेट कंपनियां क्रेच का खर्चा उठाने को तैयार नहीं हैं। इस कानून का सबसे बड़ा पेंच भी यही है कि छुट्टी और बाकी सुविधाओं का खर्च कौन उठाएगा। ऑस्ट्रेलिया, ब्राजील, सिंगापुर जैसे कई देशों में इसकी फंडिंग का बड़ा स्रोत सरकारी होता है। इसके अलावा सरकार को ऐसी व्यवस्था भी करना चाहिए कि, काम करने की जगहों या सार्वजानिक स्थानों में औरतों की ब्रेस्टफीडिंग के लिए सही तरह का इंफ्रास्ट्रक्चर मौजूद हो।

एक विकल्प यह भी है कि, घर की आर्थिक जिम्मेदारी संभालने वाली औरत के बच्चे को पूरा परिवार (पति, ससुराली, मायके वाले) संभाले। इंटरनेशनल लेबर ऑर्गेनाइजेशन की 2018 की स्टडी कहती है, 'केयर वर्क और केयर जॉब्स औरतों को रोजगार बाजार से बाहर करते हैं'। यह स्टडी बताती है कि पांच साल से कम उम्र के बच्चों की माताओं की रोजगार की दर 47.6% है, जबकि इस उम्र के बच्चों के पिताओं की 87.9%। यह वैश्विक तथ्य है, क्योंकि संगठन ने ये निष्कर्ष 90 देशों में की गयी स्टडी से प्राप्त किया है। तो पिता और बाकी परिवारीक सदस्यों को भी बेहतर संतुलन बनाने पर विचार करना चाहिए। अगर 'मातृशक्ति' की पूजा करने की सामाजिक और संस्कृति अनिवार्यता है, तो इसका सुख पूरा परिवार भी उठाएं और प्रशासन भी।

निष्कर्ष

शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र में कामयाबी के बावजूद कामकाजी महिलाओं को परिवार से जो सहयोग उन्हें मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पा रहा है।

कामकाजी पुरुषों और कामकाजी महिलाओं को देखने के सामाजिक नजरिये में बहुत पूर्वाग्रह और असमानता है। पुरुषों ने हमेशा सार्वजनिक क्षेत्र में काम किया है। उनके परिवार के प्रति जिम्मेदारी की भावना भोजन और सुख सुविधायें जुटाने वाले की भूमिका तक सीमित है, जबकि महिलायें घर और बच्चों को संभालने वाली समझी जाती हैं। इस कारण एक बार जब औरतें पेशेवर दुनिया में कदम रखती हैं, तो परिवारों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता की भावना पर अक्सर सवाल उठाए जाते हैं।

कामकाजी महिलाओं के सामने एक और चुनौती, सुपर-वुमन बन कर घर-बाहर की जिम्मेदारी उठाने की भी होती है। परिवार और समाज उनसे अपेक्षा रखता है की, वे कार्यालय के साथ घर परिवार की भी जिम्मेदारी उठाये और दोनों जगहों में संतुलन बनाये।

सन्दर्भ

- Kinnear, Karen L. (2011). Women in Developing Countries: a Reference Handbook. ABC-Clio. p. 184. ISBN 9781598844252.
- "Women in informal employment as share of female employment". Our World in Data. Retrieved 5 March 2020.
- Women in Business and Commerce in Asia, Asian Development Bank
- *Altonji, Joseph G.; Blank, Rebecca (1999). "Chapter 48: Race and gender in the labor market". Handbook of Labor Economics.* ***3*** *(C): 3143–3259. doi:10.1016/S1573-4463(99)30039-0. ISSN 1573-4463.*
- *Brown, Anna; Patten, Eileen (3 April 2017). "The Narrowing, But Persistent, Gender Gap in Pay". Washington, D.C.: Pew Research Center.*

भारतीय संस्कृति एवं स्त्री विमर्श

सरिता शर्मा

Reader in CTE, Ex-Head, Department of Education, Ex-Dean Edu. IASE Deemed to be University, Gandhi VidhyaMandir, Sardarshahar, Churu (Rajasthan)

संदीप कुमार

Research Scholar, (Ph.D. Education), IASE Deemed to be University, Gandhi VidhyaMandir, Sardarshahar, Churu (Rajasthan)

शोध सारांश

स्त्रियां किसी भी समाज का आधा अंग होती हैं। वे माता, पत्नी, बहन और बेटी की भूमिका में रहकर सामाजिक व्यवस्थाओं को गति प्रदान करती हैं। स्त्रियों की अनुपस्थिति में किसी भी समाज के कुशल संचालन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। स्त्रियों के इसी महत्व को समझते हुए भारतीय संस्कृति में प्राचीनकाल से ही ऋषियों-मुनियों ने स्त्री को पूजनीय बताया है। हालांकि भारत सहित संपूर्ण विश्व में पुरुष प्रधान समाज की विचारधारा कार्य कर रही है। लेकिन फिर भी भारतीय संस्कृति स्त्री को पुरुष की अपेक्षा श्रेष्ठ मानती है। भारत में पारिवारिक व्यवस्था का चलन है जिसमें स्त्रियां कई प्रकार के रिश्तो का निर्वाह करती हैं। जबकि विश्व की दूसरी संस्कृतियों में पारिवारिक व्यवस्था कम ही देखने को मिलती है। यही कारण है कि भारत में पारिवार, समाज एवं समुदाय सभी अपेक्षाकृत अधिक संगठित पाए जाते हैं। भारतीय संस्कृति में स्त्रियों के प्रति अपराध, शोषण या किसी प्रकार की हीनता का कोई स्थान नहीं है। हम सनातन संस्कृति में पूजनीय देवताओं और महापुरुषों की बात करें तो पता चलता है कि यहां पर देवीयां देवताओं से अधिक सम्मानित हैं। शास्त्रों और धर्म ग्रंथों की बात करें तो वहां भी बिना स्त्री के पुरुष का कोई कार्य सिद्ध होता हुआ नहीं दिखाई देता तथा स्त्रियों का समाज पर बराबर का अधिकार दिखाई देता है। शास्त्रों से लेकर वैदिक कालीन घटनाओं तक, आधुनिक इतिहास से लेकर वर्तमान समय तक सदैव ही महिलाओं ने अपनी योग्यताओं और क्षमताओं से न केवल भारतीयों को बल्कि संपूर्ण विश्व को भी आश्चर्यचकित किया है। विदेशी आक्रमणों और सैकड़ों वर्षो की गुलामी के कारण महिलाओं की दशा अत्यंत सोचनीय हो गई थी। परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय संस्कृति को पुनः संरक्षण और संवर्धन प्राप्त हुआ और महिला सशक्तिकरण का दौर प्रारंभ हुआ। आज स्थिति यह है कि भारतीय महिलाएं न केवल भारत का अपितु विश्व के कई बड़े देशों का राजनीतिक नेतृत्व कर रही हैं। आज ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जहां भारतीय महिलाओं ने अपने कदमों की छाप नहीं छोड़ी हो। यही वह भारतीय संस्कृति है जिसने विश्व गुरु बन कर दुनिया को जीने की राह दिखाई, शिक्षा का महत्व समझाया एवं विश्व को नारी समानता का मूल-मंत्र दिया।

की वर्ड्स : भारतीय संस्कृति, स्त्री विमर्श, महिला सशक्तिकरण, वैदिक कालीन शिक्षा,स्त्री समानता, आधुनिक भारतीय नारी।

शोध-पत्र

'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता'

यह उक्ति भारतीय संस्कृति में स्त्रियों की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है। भारतीय संस्कृति ने सदैव ही स्त्रियों को पूजनीय माना है। उन्हें देवी का स्वरूप कहा है और ऐसी मान्यता विकसित की है कि जहां स्त्रियों को पूजनीय माना जाता है वहां देवता निवास करते हैं। यह केवल भारतीय शास्त्रों में लिखा हुआ कोई तथ्य मात्र नहीं है अपितु यह विचार भारतीय परंपराओं का भी अभिन्न अंग है। वर्तमान में भारतवर्ष में ऐसे कई व्रत एवं त्यौहार मनाए जाते हैं जिनमें देवी की उपासना की जाती है। लोग श्रद्धापूर्वक देवी का व्रत रखते हैं और छोटी-छोटी बच्चियों को देवी का स्वरूप मानकर उनकी पूजा करते हैं। देश के प्रत्येक प्रांत और प्रत्येक समाज में नारी को सदैव ही सम्मान प्राप्त हुआ है। हालांकि कुछ विदेशी संस्कृतियों के अतिक्रमण के कारण भारतीय संस्कृति की मूल विशेषताओं पर प्रतिकूल प्रभाव तो पड़ा है है जिससे स्त्रियों की दशा और दिशा में भी नकारात्मक परिवर्तन देखने को मिले हैं। लेकिन यदि भारतीय संस्कृति की आत्मा की बात करें तो प्राचीन धर्म ग्रंथों में हमें ऐसे अनेक साक्ष्य मिलेंगे जिनसे आदिकाल से ही स्त्रियों की गरिमामयी स्थिति का स्पष्ट आकलन किया जा सकता है।

यदि सबसे पहले 'स्त्री' शब्द की बात करें और शास्त्रों में इसकी व्याख्या खोजें तो पता चलेगा कि स्त्री अर्थ का बोधक 'ग्ना' शब्द ऋग्वेद में आया है, जो देव पत्नियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। महर्षि पतंजलि ने लिखा है कि "स्त्यास्यति अस्यां गर्भ इति स्त्री" अर्थात उसके भीतर गर्भ की स्थिति होने के

कारण उसे स्त्री कहा गया है।

महिला शब्द की बात करें तो मह+इलच+आ = महिला। मह का अर्थ श्रेष्ठ या पूजा है। अर्थात जो श्रेष्ठ या पूजनीय है वही महिला है।

लौकिक संस्कृति में आदर देने के लिए स्त्रियों के लिए मान्या शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह वस्तुतः वैदिक संस्कृत के 'मेना' शब्द से बना है। ऋग्वेद में 'मेना' शब्द नारी अर्थ का वाचक है।

जहां तक नारी शब्द का प्रश्न है वह नर की ही तरह 'नृ' शब्द से बना है और इसका सामान्य अर्थ है क्रियाशील रहने वाला। अर्थात जो गति करे, हलचल करे वह नर एवं नारी है। किंतु ऋग्वेद में 'नृ' का प्रयोग नेतृत्व करने, दान देने और वीरता के अर्थ में किया गया है। उस दृष्टि से नर और नारी में यही तीनों विशेषताएं होनी चाहिए।

'सुन्दरी' शब्द ऋग्वेद में 'सुनरी' का विकसित रूप है। सूनरी ऊषा को कहा गया है अर्थात् शोभावाली।

'ललना' और 'मानिनी' शब्द तो स्पष्ट ही हैं। जिसकी इच्छाशक्ति प्रबल हो वह ललना और जिसमें स्वाभिमान हो, वह मानिनी।

ये तो हुए शब्द। अब यदि प्राचीन ग्रन्थों में नारी के प्रति व्यक्त उद्‌गार देखें, तो स्पष्ट हो जाता है कि नारी के व्यक्तित्व के प्रति सम्मान का भाव उनमें है और उसे सदैव एक स्वतन्त्र चेतन सत्ता के रूप में ही स्मरण किया गया है। जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। ऐसा कहने वाली मनुस्मृति में यह भी कहा गया है कि-स्त्री की प्रसन्नता से ही घर-भर में उल्लास मुखरित होता है, यदि वह विषण्ण, उदास रही तो चतुर्दिक अवसाद घिर आता है। पद्मपुराण में कहा गया है।

नास्ति भार्या समो तीर्थं, नास्ति भार्या समं सुखम्। नास्ति भार्या समो पुण्य, तारणाय, हिताय च अर्थात्-पत्नी के समान हितकारी और दुःखों से उबारने वाला न तो कोई पुण्य है, न तीर्थ है और न ही सुख।

शतपथ ब्राह्मण में कहा है- 'गहाः वै पल्ये प्रतिष्ठाः' अर्थात पत्नी से ही घर की प्रतिष्ठा है।

वृहत्संहिता में कहा गया है- 'पुरुषाणां सहस्त्रं च सती स्त्री समुद्धरेत्' अर्थात् सती स्त्री अपने पति का ही नहीं, अपने उत्कृष्ट आचरण की प्रत्यक्ष प्रेरणा से सहस्रों पुरुषों का उद्धार यानी श्रेष्ठता की दिशा का मार्ग-दर्शन करती है।

वृहदारण्यक उपनिषद् में उपाख्यान है कि– 'स इममेवात्मानं द्वेधा पातयत्तत:। पतिश्च पत्नी चाभवताम्'।। अर्थात जब परम सत्ता को अकेले अच्छा नहीं लगा तो उसने अपने को दो भागों में विभक्त किया। यही दो भाग पति-पत्नी बने।

व्यास संहिता में कहा है कि- 'यावन्न विदन्ते जायां, तावदर्धो भवेत् पुमात्' अर्थात पत्नी के प्राप्त होने के पूर्व तक पुरुष अधूरा है।

तन्त्रशास्त्र में अर्द्धनारीश्वर का ध्यान-विधान है।

मनुस्मृति में कहा गया है कि- 'स्त्रियः श्रियश्र गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्रन (कश्चन) अर्थात स्त्री और श्री में कोई भेद नहीं है। मनुस्मृति मे उल्लिखित ऐसे ही कुछ सूत्र इस प्रकार हैं -

पितृभिर्भ्रातृभिश्चौताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणं ईप्सुभिः।।

बहुत कल्याण के इच्छुक पिता, भाई, पति और देवर भूषण (गहने) और वस्त्रों से स्त्री की पूजा करें अर्थात् स्त्री को प्रसन्न रखें। - अध्याय 3 श्लोक 55

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा।।

अर्थात जिस कुल में स्त्रियों को कष्ट होता है वह कुल शीघ्र ही नाश हो जाता है। और जहाँ नारियों को कोई कष्ट नहीं है वह कुल सदैव फलता फूलता है। - अध्याय 3 श्लोक 57

स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वं एव न रोचते।।

अर्थात स्त्री की प्रसन्नता में सब कुल प्रसन्न होता है उसकी अप्रसन्नता में सब अप्रसन्न अर्थात् दुःखदायक हो जाता है। - अध्याय 3 श्लोक 62

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः संतानार्थं च मानवः।
तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः।।

अर्थात जनने के लिये स्त्रियाँ बनाई गई, और सन्तान के लिये पुरुष। इसलिये वेद में स्त्री पुरुष दोनों का समान धर्म कहा। अर्थात् स्त्री और पुरुष का पद बराबर है। - अध्याय 9 श्लोक 96

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।
तस्यां आत्मनि तिष्ठन्त्यां कथं अन्यो धनं हरेत्।।

जैसी अपनी आत्मा है वैसा ही पुत्र होता है, और पुत्र जैसी ही पुत्री होती है। उस आत्मारूप पुत्री के रहते हुये कोई दूसरा धन को कैसे ले सकता है? अर्थात् पुत्र के अभाव में पुत्री ही धन की अधिकारिणी होती है। - अध्याय 9 श्लोक 130

जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहोदराः।

भजेरन्मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभयः।।

माता के मर जाने पर सब सगे भाई और सब सगी बहनें माता के धन को बराबर-बराबर बांट लें। - अध्याय 9 श्लोक 192

मातापितृभ्यां जामीभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया।

दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत्।।

गृहस्थ को चाहिए कि वह ऋत्विक, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, आश्रित, बालक, बृद्ध, रोगी, वैद्य, स्वगोत्र (पितृपक्ष) वा स्ववर्णस्थ, श्वसुर आदि सम्बन्धी, मित्र तथा मातृपक्ष, माता, पिता, बहिन, भाई, पुत्र, भार्या, पुत्री और सेवकवर्ग से कभी विवाद न करे। - अध्याय 4 श्लोक 180

कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन्पतिः।

मृते भर्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षिता।।

विवाह की अवस्था में कन्या को न देने वाला अर्थात् विवाह न करने वाला पिता निन्दनीय होता है और विवाह-पश्चात् संगम न करने वाला पति निन्दनीय होता है। पति की मृत्यु होने के बाद माता की रक्षा न करने वाला पुत्र निन्दनीय होता है। - अध्याय 9 श्लोक 04

पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नेच्छेद्विरहं आत्मनः।

एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्ये कुर्यादुभे कुले।।

कन्या या स्त्री को चाहिए कि वह पिता, पति व पुत्रों से पृथक् रहने की इच्छा न करे। क्योंकि इनसे पृथक् रहने से स्त्री पितृकुल व पतिकुल, दोनों कुलों को कलङ्कित कर सकती है। - अध्याय 5 श्लोक 149

सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः।

द्वयोर्हि कुलयोः शोकं आवहेयुररक्षिताः।।

सूक्ष्म कुसंगों से भी स्त्रियों की विशेष रक्षा करनी चाहिये। यदि उनकी रक्षा न की जायेगी तो वे दोनों कुलों के शोक का कारण हो जायेंगी। - अध्याय 9 श्लोक 05

इमं हि सर्ववर्णानां पश्यन्तो धर्मं उत्तमम्।

यतन्ते रक्षितुं भार्यां भर्तारो दुर्बला अपि।।

सब वर्णों के इस श्रेष्ठ धर्म को देखते हुए दुर्बल पति भी अपनी स्त्री की रक्षा करने के लिए यत्न करते हैं। - अध्याय 9 श्लोक 06

यजुर्वेद में लिखा है कि

मंहीमू षु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम।

तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूची सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।।

हे नारी! तू महाशक्तिमती है। तू सुव्रती पुत्रों की माता है। तू सत्यशील पति की पत्नी है। तू भरपूर क्षात्रबल से युक्त है। तू मुसीबतों के आक्रमण से जीर्ण न होनेवाली अतिशय कर्मशील है। तू शुभ कल्याण करनेवाली है। तू शुभ-प्रकृष्ट नीति का अनुसरण करनेवाली है। -यजु० 21/5

श्रीमद्भागवत के अनुसार वैवस्वत मनु की धर्मपत्नी ने पुत्रेष्टि यज्ञ के समय कन्या उत्पन्न होने की याचना की और इसी यज्ञ से इला की उत्पत्ति हुई। 'तत्र श्रद्धा मनोः पत्नीहोतारं समयाचत। दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्य पयोव्रता'।।-श्रीमद्भागवत 9/1/14

इस प्रकार स्पष्ट है कि नारी के प्रति अपने प्राचीन पूर्वजों के मन में सम्मान और समता की भावना थी। उसके प्रति हीन-भाव रखने का कोई उदाहरण मात्र भी दिखायी नहीं देता।

प्राचीन भारत की प्रगति एवं स्त्री की भूमिका

एक पाश्चात्य इतिहासकार ने भारतीय संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान औरविद्याओं का वर्णन करते हुये लिखा है कि- 'आज के उन्नत और विकसित सभ्य कहे जाने वाले देशों के लोग जिस समय नदियों और तालाबों, झरनों से घुटने के बल झुककर जानवरों की तरह पानी पीते थे तब भारतवासियों ने भूगोल, खगोल विज्ञान, चिकित्सा, यंत्र-विद्या के साथ गुप्त विद्याओं का भी असाधारण विकास कर लिया था। आज का मानव चन्द्रमा पर पहुँचने में विज्ञान के बल पर अब समर्थ हुआ है, लेकिन भारत के प्राचीन महर्षि अपने योगबल में लोक-लोकान्तरों का भ्रमण कर आते थे।' प्रश्न उठता है इतिहास में तो इसका विवरण मिलता नहीं। इसका उत्तर उक्त इतिहासकार ने इस प्रकार दिया-भारतीय महर्षियों ने इतिहास लेखन को कभी महत्व नहीं दिया, क्योंकि उनकी दृष्टि में भौतिक घटनाओं से भी अधिक मूल्यवान दूसरी उपलब्धियाँ थीं और उन उपलब्धियों के बल पर ही हजारों वर्ष पूर्व भारत ने ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में असाधारण प्रगति कर दिखाई। क्या यह प्रगति अकेले पुरुष ने की? नारी ने इसमें कोई योगदान नहीं दिया? यदि ऐसा होता तो फिर प्रगति की चाल कछुए के समान रही होती और

आज हम सब कदम से कदम मिलाकर चलने में असमर्थ होते। प्राचीनकाल में नारियों ने पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर सहयोग किया और ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में विकास के साथ-साथ समाज, राजनीति, धर्म, कानून, संगठन आदि सर्वांगीण उन्नति में पुरुष की सच्ची सहचरी बनकर रही। उसे प्रेरणा देती रही, बल प्रदान करती रही, क्यों? इसलिए कि उसकी प्रतिभा, क्षमता और योग्यता पुरुष की प्रतिभा, क्षमता तथा योग्यता से मिल कर अनन्त गुना प्रभावशाली हो जाती है। वेदानुशासन में जब चला जाता था, तब महिलाओं ने ऐसे-ऐसे महान् कार्य करके दिखाये भी हैं कि उनकी भूमिका को हटा दें, तो इतिहास का स्वरूप ही बदल जाता है और 'छूंछ मात्र' रह जाता है। रामायण में से सीता के चरित्र को निकाल दिया जाय तो रामायण में बाकी कुछ नहीं रहता। द्रौपदी, कुन्ती, गान्धारी आदि का चरित्र निकाल देने पर महाभारत की महत्ता ही क्या रह जाएगी। पाण्डवों का सारा जीवनसंग्राम ही अधूरा रह जाएगा। इसी प्रकार भागवत में से देवकी, यशोदा और गोपियों का चरित्र हटा दिया जाय तो कृष्ण एक साधारण पुरुष बनकर रह जाएंगे। शिवजी के साथ पार्वती, राम के साथ सीता, विष्णु के साथ लक्ष्मी का नाम हटा दिया जाय तो इनके चरित्र आधे अधूरे रह जाएंगे। आसुरी उत्पातों के कारण देवतागण जब घबड़ा उठे तो असुरों का संहार करने में मातृ-शक्ति दुर्गा ही समर्थ हुई थी। यह तो हुई शक्ति-संगठन सम्बन्धी बात, पर समाज के अन्य क्षेत्रों में भी नारी ने महत्त्वपूर्ण भूमिकाएं निबाही हैं। जब पृथ्वी पर भागवत शक्ति के अवतरण की आवश्यकता हुई तो मनु तप करने लगे। उनका अकेले का तप सफल नहीं हुआ तो मनु-पत्नी शतरूपा भी तपश्चर्या में लगी। फलतः तप सफल हुआ और शतरूपा ने कौशल्या के रूप में राम को अपनी गोदी में खिलाया।

इसी प्रकार से भगवान के अवतरण हेतु द्वापर में पुनः आवश्यकता अनुभव हुई। प्राचीन उदाहरणों से सीख ग्रहण कर महर्षि कश्यप ने अपनी धर्मपत्नी अदिति के साथ तप किया। अदिति यशोदा बनीं और उन्हें पूर्ण कला के अवतार कृष्ण को जन्म देने का श्रेय मिला। राम और कृष्ण भगवान हैं लेकिन अवतार सिद्धान्त के विरोधी भी उन्हें महापरुष मानते हैं। पर जिनकी कोख से उन्होंने जन्म लिया और जिनकी गोदी में पैर पसारे, जिनका दूध पिया और जिनका संरक्षण व दुलार पाया, उन माताओं का गौरव राम और कृष्ण से बढ़कर ही है, कम नहीं।

अगर साक्ष्यों की बात करें तो सनातन संस्कृति में सभी देवताओं के नाम उनकी पत्नियों के साथ लिए जाते हैं। जैसे शिव के साथ पार्वती, विष्णु के साथ लक्ष्मी, ब्रह्मा के साथ सरस्वती। इतना ही नहीं कुछ देवताओं और पुरुषों के नाम से पहले उनकी पत्नी का नाम लिया जाता है, जैसे - सीता-राम, राधे-कृष्ण आदि। भारतीय संस्कृति बिना स्त्री के पुरुष के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करती इसलिए अर्धनारीश्वर का विचार भी भारतीय संस्कृति की ही देन है। अर्थात स्त्री पुरुष का आधा अंग है। बिना स्त्री पुरुष कभी पूर्ण नहीं हो सकता। उपरोक्त तथ्यों से यह प्रमाणित होता है कि भारतीय संस्कृति में स्त्रियों का स्थान आदि काल से ही शीर्ष पर रहा है। लेकिन कुछ लोग देवी-देवताओं को काल्पनिक मानते हैं इसलिए आगे हम वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति पर बात करेंगे।

वैदिक काल और महिला सम्मान

हिंदू शास्त्रों में ऐसे अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं जिनसे महिलाओं के सामाजिक सम्मान, प्रतिष्ठा और लौकिक कार्यों में उनकी सक्रिय भूमिका का प्रमाण प्राप्त होता है। ऐसा ही एक उदाहरण ऋग्वेद में हमें प्राप्त होता है जिसमें लोपमुद्रा नाम की महिला का वर्णन किया गया है। वह एक राजकुमारी थी, जो कि शिक्षित, ज्ञानी एवं उच्च कोटि की विद्वान महिला थी। उन्हें शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान था एवं वह शास्त्रार्थ में निपुण थी। उन्होंने ऋषि अगस्त के साथ प्रेम-विवाह किया था। उनके पिता ने न तो उन्हें शिक्षा ग्रहण करने से रोका और न ही प्रेम-विवाह से। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल में महिलाओं पर किसी प्रकार का बंधन या दबाव नहीं था। वे स्वेच्छा से अपने जीवन से संबंधित निर्णय ले सकती थी। ऋग्वेद में ही एक और उदाहरण मैत्रेयी का आता है जिन्होंने शास्त्रों का अध्ययन किया तथा विदुषी महिला कहलायीं। बाद में उन्होंने याज्ञवल्क्य ऋषि से विवाह कर लिया। एक बार जब ऋषि याज्ञवल्क्य अपनी सारी संपत्ति त्याग कर वानप्रस्थ को वानप्रस्थ को जाने लगे तब मैत्रेयी ने अपने पति से कहा कि जरूर वन की तपस्या में कुछ ऐसा है जो इस सब संपत्ति से अधिक मूल्यवान है, अतः मुझे यह सब संपत्ति नहीं चाहिए बल्कि वही मूल्यवान वस्तु चाहिए जो आप तपस्या के द्वारा प्राप्त करने जा रहे हो। इस पर ऋषि याज्ञवल्क्य बहुत खुश हुए और फिर दोनों ने एक साथ वन में तपस्या की। वैदिक काल में महिलाओं के पठन-पाठन, भ्रमण और स्वैच्छिक विवाह का इससे अच्छा उदाहरण कोई दूसरा नहीं मिलेगा। इसी तरह वेदों में गार्गी, घोष आदि महिलाओं का वर्णन देखने को मिलता है। जिससे ज्ञात होता है कि भारतीय संस्कृति ने सदैव ही स्त्रियों को बराबरी का दर्जा दिया है, तथा उन्हें पढ़ने, लिखने, बाहर जाने एवं विवाह करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की।

रामायण जैसे ग्रंथ को पढ़ने पर पता चलता है कि सीता ने स्वयंवर के द्वारा अपना वर स्वयं चुना था। राजा दशरथ की पत्नी कैकयी राजा दशरथ के साथ मिलकर राक्षसों से लड़ी थी। महाभारत पढ़ने पर पता चलता है कि द्रोपदी के अपमान का बदला लेने के लिए कौरवों का नाश कर दिया गया था। गांधारी पूरी समाना से अपने पति के साथ सिंहासन पर बैठती थी। भगवान कृष्ण की बहन सुभद्रा ने अर्जुन के साथ प्रेम-विवाह किया था। वहीं रुकमणी ने भी भगवान श्री कृष्ण के साथ प्रेम-विवाह किया था। इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में भी महिलाओं को वे सभी अधिकार प्राप्त थे जो पुरुषों को प्राप्त थे। स्त्री के प्रति किसी तरह की कोई संकीर्णता अथवा कुप्रथा समाज में व्याप्त नहीं थी।

ऐतिहासिक तथ्य एवं महिलाओं की स्थिति

इतिहास की बात करें तो रानी लक्ष्मीबाई किसी परिचय की मोहताज नहीं है। वह झांसी की रानी होने के साथ-साथ एक वीरांगना भी थी। साथ ही उन्होंने एक कुशल शासक के रूप में अपने समाज का नेतृत्व किया। शिवाजी को एक महान राजा बनाने में उनकी माता जीजाबाई का सबसे बड़ा हाथ था। जीजाबाई की महानता शिवाजी महाराज से कहीं अधिक है। भारतीय संस्कृति का इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारतीय महिलाएं अपने पति को उसकी अकाल मृत्यु से भी वापस लाने में सक्षम रही हैं। सावित्री और सत्यवान की कहानी तो हम सब ने सुनी ही है जिसमें सावित्री अपने पति सत्यवान को पुनर्जीवित

करने के लिए यमराज को विवश कर देती है और यमराज भी सावित्री को दिए गए आशीर्वाद को पूरा करते हैं। यहां पर इस घटना का वर्णन इसलिए किया गया है क्योंकि सावित्री को सती के नाम से जाना जाता है। सती का अर्थ होता है सत्य का आचरण करने वाली। अब यहां पर यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि विदेशी लुटेरों ने और मुगल शासकों ने जब भारतीय रियासतों और सम्राटों पर आक्रमण किए तो उनकी महिलाएं अपने सम्मान की रक्षा के लिए या तो सामूहिक चिता में जलकर जौहर कर लेती थीं या फिर अपने पति के शव के साथ ही चिता में जल जाती थीं। यही सत्य का आचरण था जिसे मुगलों ने सती प्रथा और जौहर प्रथा कहकर हिंदू धर्म की कुरीति बताना शुरू कर दिया। यदि उस समय महिलाएं ऐसा नहीं करती तो विदेशी आक्रांता और मुगल उनकी दशा मृत्यु से भी बदतर कर देते थे और उनके सम्मान को भी नष्ट कर दिया जाता था। अत: बाहरी संस्कृतियों ने भारतीय संस्कृति के मूल स्वरूप को बिगाड़ने का कार्य किया है। कालांतर में प्रचलित सती प्रथा, जौहर प्रथा और बाल विवाह जैसी प्रथाएं भारतीय संस्कृति की मूल परंपराएं नहीं थी अपितु यह विदेशी लुटेरों और मुगलों के आतंक से अपनी स्त्रियों की रक्षा एवं उनके सम्मान की सुरक्षा का एक उपाय थी जिसे हम तत्कालीन समाज की विवशता भी कह सकते हैं। ऐसी घटनाओं को भारतीय समाज की कुप्रथायें बताकर प्रचारित करने में अंग्रेजों ने भी कोई कमी नहीं छोड़ी। इस सबके बावजूद भी महिलाओं ने स्वतन्त्रता आंदोलन मे अपनी सक्रिय भूमिका निभायी। जहाँ कस्तूरबा गांधी ने महात्मा गांधी का उनके सभी आंदोलनों मे पूरा साथ दिया वहीं कल्पना दत्ता और राजकुमारी अमृत कौर जैसी कुशल राजनीतिज्ञ और क्रांतिकारी महिलाओं ने सड़क से लेकर सदन तक प्रत्येक मोर्चे पर अंग्रेजों के दांत खट्टे किए थे। इनके अतिरिक्त अनुसूइया बाई काले, सरोजिनी नायडू, सुचेता कृपलानी, ऊषा मेहता, कमला देवी जैसी अनेकों महिलाओं ने आजादी की लड़ाई मे अंग्रेजों का डट कर सामना किया।

जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि प्राचीन काल एवं वैदिक काल से ही भारतीय संस्कृति में महिलाओं का बराबरी का एवं सम्मानजनक स्थान रहा है, इसीलिए पिता की संपत्ति पर पुत्र एवं पुत्री दोनों का बराबरी का अधिकार होता था। पिता अपनी संपत्ति से बराबर का हिस्सा अपनी पुत्री को उसके विवाह के समय दे दिया करता था जिसे स्त्रीधन कहा जाता था। लेकिन अंग्रेजों ने भारतीय समाज को लूट-लूट कर इतना कंगाल बना दिया कि लोग स्वार्थी एवं लालची होने लगे और विवाह के समय वर पक्ष के लोग कन्या पक्ष से अनुचित धन मांगने लगे, जिसे अंग्रेजों ने दहेज प्रथा कहकर प्रचारित करना प्रारंभ कर दिया। परन्तु इसका मूल स्वरूप अलग था, जिसमें पुत्री को बराबर का अधिकार प्रदान किया जाता था। आज भी भारत के कई दूरदराज के क्षेत्रों में ऐसी परंपराएं हैं जिनमें विवाह के समय वर-पक्ष वधु-पक्ष को बहुत सी भेंट देता है तथा वधु के सम्मान में उसे श्रद्धानुसार धन भी दिया जाता है। कुछ क्षेत्रों में तो कन्यायें बारात लेकर जाती हैं और वर विदा होकर वधु के घर जाता है। उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि उक्त कोई भी कुप्रथा न तो भारतीय संस्कृति का हिस्सा रही है और न ही स्त्रियों के दमन का साधन रही हैं, उन्हें तो विदेशी आक्रांताओं ने, मुगलों ने और अंग्रेजों ने भारतीय संस्कृति को नीचा दिखाने के लिए आरोपित किया है।

स्वतंत्र भारत में नारी दशा

मध्यकालीन मुस्लिम शासन और अंग्रेजी शासन काल के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति के हजारों वर्ष के उन्नत एवं समृद्ध काल में कहीं भी स्त्री को न तो शोषित किया गया न ही उसके अधिकारों का हनन किया गया। उसे सदैव ही बराबरी का दर्जा प्राप्त हुआ और समाज के आर्थिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक एवं राजनीतिक उत्थान में स्त्री की सक्रिय भागीदारी रही। केवल मध्यकालीन मुस्लिम शासन काल में और ब्रिटिश शासन काल में विदेशी संस्कृतियों का अतिक्रमण होने के कारण भारतीय संस्कृति की मूल भावना को ठेस पहुंची लेकिन लगभग 1000 वर्ष के इस संक्रमण काल से आजादी प्राप्त करने के उपरांत भारतीय संस्कृति अपने मूल गुणों को पुन: धारण करने लगी और स्वतंत्रता के बाद हमने देखा कि महिला सशक्तिकरण को समाज का पूरा सहयोग मिला। महिलाएं प्रधानमंत्री एवं राष्ट्रपति के पदों से लेकर गृहमंत्री, रक्षामंत्री और विदेश मंत्री के पदों पर आसीन हो चुकी हैं। आजादी के पश्चात प्राय: देश के सभी सर्वोच्च पदों पर पहुंचकर महिलाओं ने देश का कुशल नेतृत्व किया है। आज जमीन से लेकर अंतरिक्ष तक भारतीय नारी अपना परचम लहरा चुकी है। सुनीता विलियम और कल्पना चावला इस बात का साक्ष्य हैं कि भारतीय संस्कृति ने अपनी बेटियों को सदैव आगे बढ़ने और अपनी कल्पनाओं को साकार करने के अवसर प्रदान किए हैं। आज भारतीय महिलाएं ओलंपिक जैसे अंतर्राष्ट्रीय खेलों में संपूर्ण विश्व को टक्कर दे रही हैं। साक्षी मलिक, साइना नेहवाल, कर्णम मल्लेश्वरी, मैरी कॉम, पीवी सिंधु, सानिया मिर्जा, हिमा दास और पीटी ऊषा आदि महिला खिलाड़ियों ने स्वयं को पूरे देश के लिए एक प्रेरणा के रूप में स्थापित किया है। इसके अतिरिक्त अंतरराष्ट्रीय सौंदर्य प्रतियोगिताएं हों या लड़ाकू विमान उड़ाना हो, कंप्यूटर इंजीनियर बनना हो या सीमा पर दुश्मन का सामना करना हो, आज भारतीय महिलाएं प्रत्येक क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभा रही हैं। महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए सरकारी स्तर पर भी बड़े अभियान चलाये जा रहे हैं। आज सरकार ने बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ, सुकन्या समृद्धि योजना, लाड़ली लक्ष्मी योजना, बालिका समृद्धि योजना, नन्दा देवी कन्या योजना, मुख्यमंत्री कन्या सुरक्षा योजना जैसी अनेक योजनाएँ चलाकर देश की बेटियों को सुरक्षा एवं सम्मान दिया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि देश के जिन राज्यों मे पिछले कई दशकों से महिलाओं के लिंगानुपात मे कमी आ रही थी, उनमे महिलाओं कि संख्या आज पुरुषों के बराबर आ गयी है।

जहां भारतीय संस्कृति महिलाओं के लिए अपार संभावनाओं के द्वार खोले खड़ी है। वहीं अगर इस्लामिक सभ्यता की बात करें तो वहां महिलाएं आज भी पर्दे में रहने को विवश हैं। उनका मस्जिदों में जाना आज भी मना है। जहां प्राचीन काल में स्त्रियों को शिक्षा ग्रहण करने का पूर्ण अधिकार था, वहीं स्वतन्त्रता के बाद महिला साक्षरता में फिर से तेजी से वृद्धि हुई। लेकिन विश्व की कई संस्कृतियों में महिला शिक्षा की स्थिति आज भी बुरे हालात में है। पाश्चात्य संस्कृति की बात करें तो वहाँचर्च में पुरुष पादरी एवं पॉप तो होते हैं लेकिन महिलाओं को पादरी एवं पॉप नहीं बनाया जाता।विच-हंटिंग के नाम पर अनेक महिलाओं की जान ली जा चुकी है। अमेरिका सहित यूरोप के कई देशों में बलात्कार की घटनाएं लगातार बढ़ रही हैं। आज भारत के भी कुछ युवा इसी पाश्चात्य संस्कृति कि ओर आकर्षित हो रहे हैं और अपनी जीवन शैली को भी उसी के अनुसार ढाल रहे है। इसी का परिणाम है कि आज हमारे

देश मे भी महिलाओं के प्रति अपराध की घटनाएँ सामने आती रहती हैं। अगर पाश्चात्य संस्कृति के इस अतिक्रमण को रोक दिया जाये तो भारतीय संस्कृति मे इस प्रकार के अपराधें के लिए कोई स्थान नहीं है। भारतीय संस्कृति में स्त्रियों की दशा और दिशा विश्व की अन्य संस्कृतियों की तुलना में कहीं अधिक श्रेष्ठ है। सनातन संस्कृति द्वारा दिए गए संस्कार एवं जीवन-मूल्य आज भी लोगों में जीवित हैं। वेदों, पुराणों, शास्त्रों एवं धर्म-ग्रंथों से प्राप्त शिक्षा आज भी भारतीय समाज का मार्ग प्रशस्त करती है। भारतीय संस्कृति की यही वह विशेषता है जिसके कारण स्त्रियों को सदैव ही सम्मान प्राप्त हुआ है, आज भी हो रहा है और अनंत काल तक होता रहेगा।

सन्दर्भ सूची

1. शर्मा, पण्डित श्रीराम (2011) भारतीय संस्कृति एक जीवन दर्शन, युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा।
2. श्रीमदभगवदगीता– गीताप्रेस, गोरखपुर।
3. शर्मा, पण्डित श्रीराम (1998) इक्कीसवीं सदी : नारी सदी, वांगमय संख्या-62, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा।
4. शर्मा, पण्डित श्रीराम (1998) यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता, वांगमय संख्या-47, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा।
5. शर्मा, पण्डित श्रीराम (1998) भारतीय संस्कृति के आधार भूततत्व, वांग्मय संख्या-34, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा।
6. विवेकानंद, स्वामी (2005) जाति, संस्कृति और समाजवाद, रामकृष्ण प्रकाशन विभाग, धंतोली, नागपुर - 440012
7. आचार्य, श्रीराम शर्मा (1997) वेदों का दिव्य संदेश, युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा।
8. ऋग्वेद
9. यजुर्वेद
10. मनुस्मृति
11. श्रीमदभगवदगीता– गीताप्रेस, गोरखपुर।
12. https://www.awgp.org

महिला सशक्तिकरण: सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर होने वाले भेदभाव के कुपरिणाम

सुकन्या

शोधार्थी, गृह विज्ञान विभाग (फूड एंड न्यूट्रीशन), टी.एम.बी.यू., भागलपुर

डॉ० अंजु सिंह

एच.ओ.डी., गृह विज्ञान विभाग (फूड एंड न्यूट्रीशन), टी.एम.बी.यू., भागलपुर

परिचय

महिलाओं की जिंदगी में बहुत उलझनें हैं। रोजमर्रा की भाग-दौड़ भरी जिंदगी में जब औरत सिर्फ गृहिणी न होकर अपने साथ और कई जिम्मेदारियाँ ढोए तथा रोज आने वाली हर छोटी-बड़ी समस्याओं को बिना निपटाएँ आगे न बढ़ सके; ऐसे समय उसकी सबसे कठिन परीक्षा होती है।

पहले घर, फिर ऑफिस, बाजार और फिर सामाजिक; इन सब जिम्मेदारियों को निभाते-निभाते वह थक भी जाती है। हर कामकाजी स्त्री करीब-करीब इसी तरह की समस्याओं में घिरी होती है। फिर भी उसके मन में कुछ करने की लगन, और हमेश कुछ नया-नया करने की चाह बनी रहती है। और होना भी यही चाहिए। क्योंकि हमें अपने आपको ऊर्जावान बनाए रखने के लिए यह सब बहुत जरूरी है।

लेकिन इतना सब करने के बाद भी परिवार और समाज नारी का महत्व नहीं समझ पाए हैं। भले ही हम साल के किसी एक दिन को अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में घोषित कर दें, नारी जाति कितने ही मैडल कमा लें, समाज और परिवार में आज भी नारी के खिलाफ होने वाले भेदभाव, अत्याचार, साजिश लगातार जारी हैं।

आज भी महिलायें पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक वर्जनाओं की बेडियो में जकड़ी हुई हैं। नारी भले कितनी ही पढ़-लिख जाए, थोड़े समय के लिए समाज का नजरिया उसके प्रति बदल भी जाएँ, तब भी वह अत्याचारों के कैदखाने में बंद है। ऐसे कई उदाहरण रोजाना हमारी आँखों के सामने से गुजरते दिखते हैं, फिर भी हम कुछ नहीं कर पातें।

भारत की कामकाजी महिलाएं

ग्रामीण इलाकों में संयुक्त परिवारों की कामकाजी महिला अपने बच्चों की जिम्मेदारी घर की दूसरी महिलाओं को सौंप कर काम पर निकल सकती है; लेकिन शहर में रहने वाली महिलाओं के पास यह अवसर नहीं होता।

कई महिलाओं ने अपनी मां/सास के आदर, प्रेम और परिवार की जिम्मेदारियों की वजह से कैरियर त्यागकर घर-गृहस्थी को अपनाया होगा। ऐसी कई माताओं से जब आप बात करेंगे तो उनका यह भी कहना होगा कि उन्हें अवसर खोने का कोई खेद या दुख नहीं है, तथा नौकरी छोड़ घर पर रहने का फैसला उनका अपना है। लेकिन हमें नहीं भूलना चाहिए कि महिलाओं के इस चुनाव के पीछे भी हमारे समाज की अर्थव्यवस्था और कई सच्चाइयां छुपी हैं।

जैसे औरतों के लिए उपयुक्त रोजगार का अभाव, मातृत्व लाभ की कमी, प्राइवेट डे-केयर सेवाओं पर अविश्वास, शिशु-पालन में घर से सहयोग न मिलना, या कार्यस्थल पर असुरक्षित महसूस करना। यह भी संभव है कि काम करने की इच्छुक बहुत सी महिलाओं को घर-ससुराल से काम करने की इजाजत नही मिलती।

नौकरियों में महिलाओं की लगातार घटती भागीदारी

यद्यपि विगत कुछ वर्षों में औरतों ने उच्च शिक्षा प्राप्त कर महिला वर्ग से संबंधित रूढ़िवादी मान्यताओं को चुनौती दी है, फिर भी महिलाओं की श्रम बल में भागीदारी 1994 से लगातार घटी है। औरतों की सामान्य गतिविधियों की स्थिति के आंकड़े जोड़कर राष्ट्रीय सांख्यिकीय कार्यालय ने श्रम बल में महिला भागीदारी के अनुमान जारी किये हैं (आकृति-1), जिस में उन महिलाओं को शामिल किया गया है जो या तो कार्यरत थीं या जो (काम और पारिश्रमिक की मौजूदा स्थितियों में) सक्रिय रूप से काम तलाश रही थीं।

कामकाजी महिलाएं समाजशास्त्रियों के लिए बनीं पहेली

समाज का अध्ययन करने वालों की यह सोच थी कि जैसे औरतें शिक्षा हासिल करेंगी, वैसे ही वे स्वतंत्र निर्णय लेते हुए घर से बाहर निकलेंगी। साथ ही फैक्टरीयों का वातावरण औरतों को काम पे देखने के लिए परिपक्व होगा। परन्तु भारत के आंकड़ें एक पहेली बन समाजशास्त्रियों को सता रहे हैं. यहां महिलाओं की भागीदारी का ट्रेंड इस धारणा के विपरीत घटा है.

पड़ोसी देशों में भी भारत का अनुभव अलग रहा है। जनसांख्यकीय और स्वास्थ्य सर्वेक्षण (डी. एच. एस.) से ये मालूम पड़ता है कि 2014 में जहां बांग्लादेश में 25-39 उम्र की लगभग 40% औरतें कार्यरत थीं, वहीं पश्चिम बंगाल में इस आयु वर्ग की 28.6% महिलाएं 2015 में कार्यरत थीं। देश की आधी आबादी में से अधिकतर औरतों को मनचाहा काम न मिलना, समाज में लिंग आधारित असमानता का प्रमाण है. ऐसी परिस्थिति में 'सबका विकास' होना असंभव है।

दूसरे डेटा स्रोत से यह सत्यापित किया जा सकता है कि शिक्षा की निचली सीढ़ी पर खड़ी महिलाएं घरेलू आय की पूर्ति हेतु काम तलाशतीं हैं। सारिणी-1 में प्रस्तुत 2011-12 के भारत मानव विकास सर्वेक्षण (आई. एच. डी. एस.- II) में शिक्षा प्राप्ति अनुसार 25-39 आयु वर्ग की महिलाओं की कार्य बल में भागीदारी भी यही कहानी बतलाते हैं, निरक्षर औरतें ही सब से अधिक कार्यरत नजर आती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में मनरेगा ने भी औरतों को कार्य बल में लाने की भूमिका निभाई है क्योंकि 2015-16 महिलाओं की मनरेगा में भागीदारी 55% रही।

जबकि कॉलेज स्नातक होने पर ही औरतों को नौकरी के आकर्षक अवसर मिल पाते हैं। और 10-11 वर्ष (माध्यमिक शिक्षा) पढ़ाई पूरी करने वाली महिलाओं की कार्यबल में भागीदारी अन्य शिक्षा-समूहों के मुकाबले सब से कम नजर आती है।

सवाल ये उठता है कि, माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने पर औरतों को उपयुक्त रोजगार क्यों नहीं मिल रहा है? फ्लेचर, पांडे और मूर (2017) राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (एन. एस. एस.) 68वां दौर, 2011-12 का प्रयोग कर यह दावा करते हैं कि, कई महिलाओं को उपलब्ध काम की शर्तें मंजूर नहीं हैं। 73% सर्वेक्षण में शामिल होने वाली, 15-70 आयु की महिलाओं (जो स्कूल में नामांकित नहीं थी) का कहना था कि वे अंशकालिक काम करना पसंद करती, लेकिन केवल 17% महिलाएं ही इस तरह का काम करती पाई गईं। क्लासेन और पिएटर्स (2015) अपने शोध में इस बात पर जोर देते हैं कि शहरी महिलाओं का इच्छानुसार नौकरी मिलना कठिन हो गया है।

महिलाओं के लिए सीमित क्षेत्र

श्रम बाजार में मांग और आपूर्ति के असंतुलन का एक कारण यह भी हो सकता है कि औरतें अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रों में रहना पसंद करती हैं, जैसे- शिक्षा, वस्त्र उद्योग, मनरेगा और घरेलू सेवाएं। यहां के नियोजन के निबंधन को परिवारजन महिलाओं के अनुकूल समझते हैं, और अन्य महिलाओं की मौजूदगी में माहौल भी सुरक्षित जान पड़ सकता है। सरकार को इन क्षेत्रों में रोजगार तो उपलब्ध करना ही होगा, साथ ही यह विचार भी करना होगा कि अन्य क्षेत्रों को महिलाओं के अनुकूल कैसे बनाया जा सकता है।

अफरीदी, डिंकलमन और महाजन (2016) के शोध में ये पाया गया कि 1987-2009 के बीच जब ग्रामीण औरतों की श्रम बल में भागीदारी घटी, तब घरेलू काम को प्राथमिक गतिविधि बताने वाली विवाहित महिलाओं की दर भी बढ़ी। इस समय स्कूल दाखिलों में महिलाओं की संख्या काफी बढ़ी। ऐसा संभवत: 'विवाह के बाजार' में पढ़ी-लिखी दुल्हन की मांग बढ़ने की सामाजिक सोच बनने से हुआ। निश्चित रूप से एक शिक्षित मां अपने बच्चों की प्रगति पर बेहतर निगरानी रख सकती है, और यही बच्चे पढ़ कर, विकासशील अर्थव्यवस्था का लाभ उठाते हुए परिवार का सहारा बनेंगे। किन्तु इन आंकड़ों से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि औरतें स्वयं घरेलू काम का चयन कर रही हैं। घर-परिवार और समाज का दबाव औरतों के निर्णयों को प्रभावित करता है।

परिवार की प्रतिष्ठा का बोझ महिलाओं पर

भारतीय समाज में परिवार की प्रतिष्ठा का बोझ घर में बच्चियों और औरतों पर है।

उन्हें यह बचपन से ही बताया जाता है कि अच्छे घर की लड़कियां घर की मान-मर्यादाओं का पालन करती हैं।

हम सारिणी-1 में माध्यमिक स्तर तक पढ़ी महिलाओं का पुन: विश्लेषण करते हैं, जिनके परिवार की आर्थिक स्थिति निरक्षर और पांचवीं कक्षा तक पढ़ीं औरतों के परिवार से बेहतर है।

यह एक कारण हो सकता है कि जब पति की आय घर चलाने के लिए पर्याप्त होती है, ये औरतें लक्ष्मण रेखा नहीं लांघती हैं।

यह प्रमेय आज भी प्रासंगिक हो तो सकता है लेकिन इस तर्क से गुत्थी पूरी तरह से नहीं सुलझती।

यह स्पष्ट नहीं है कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाली, उच्च आय वर्ग और उच्च जाति की महिलाएं अपने घरों की प्रतिष्ठा को चोट पहुंचाते हुए रसोई से कैसे निकल रही हैं, जब माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने वाली गृहणियां परिवार की प्रतिष्ठा के लिए सबकुछ कुर्बान कर रही हैं।

विवाहित स्त्री से पति, सास, ससुर और समाज द्वारा सर्वाधिक पूछा जाने वाला सवाल है: 'तुम काम करने निकलोगी, तो घर और बच्चे कौन संभालेगा'? स्नातक महिलाओं के पास शायद इस सवाल का जवाब है, 'वे इतना कमाने योग्य हो सकती हैं कि किसी अन्य महिला को घरेलू सहायिका के रूप में नियुक्त करें'। लेकिन यदि मैट्रिक पास कर किसी महिला की अनुमानित आय घरेलू सहायिका के वेतन के लिए पर्याप्त न हो, तो वह न चाहते हुए भी घर और रसोई संभालेगी।

निष्कर्ष

ये ध्यान देनेवाली बात है कि प्रत्येक शिक्षा वर्ग की ग्रामीण महिलाओं की कार्य बल में भागीदारी शहरी महिलाओं के अनुपात में ज्यादा है। यह कहना ठीक होगा कि गांव में संयुक्त परिवारों की कामकाजी महिलायें अपने बच्चों की जिम्मेदारी घर की अन्य महिलाओं को सौंप सकती है। यह विकल्प एकल परिवारों की शहरी महिलाओं के पास अक्सर नहीं होता, और यदि उनकी क्वालिफिकेशन पर लाभप्रद रोजगार दुर्लभ हो, या कार्य-स्थल पर डे-केयर जैसी सुविधाएं उपलब्ध न हो, तो वे घर के काम को ही उचित विकल्प समझती हैं।

हालांकि मातृत्व लाभ (संशोधन) अधिनयम ने 50 से अधिक कर्मचारी रखने वाले संस्थानों के लिए क्रेश सुविधा अनिवार्य की है, इस अधिनियम के दायरे में केवल औपचारिक क्षेत्र में काम करने वाली महिलाएं आती हैं, जो महिला कार्य बल में 5.9% की हिस्सेदारी रखती हैं (आई.एल.ओ., 2018)। जिन महिलाओं के लिए रोजगार की संभावनाएं अनौपचारिक क्षेत्र में ही मिल सकती हैं, उनके लिए सरकारी मातृत्व सेवाएं और घर के सदस्यों का सहयोग, वह कड़ी बन सकती जो रसोई और फैक्ट्री के बीच एक मजबूत पुल बांध दे। वैशिकरण के दौर में, विभिन्न क्षेत्रों में लिंग पर आधारित आरक्षण से औरतें अर्थव्यवस्था के 'मर्दाना कक्ष' में भी प्रवेश कर सकती हैं. इससे औरतों को रोजगार के अवसर तो मिलेंगे ही, अपरंपरागत कार्य स्थलों पर जब औरतें पाई जाएंगी तो 'महिला रोजगार' की परिभाषा भी धीरे-धीरे बदलेगी.

संदर्भ

- *Basu, Aparna (1991), "Women's History in India: An Historiographical Survey", in Offen, Karen; Pierson, Ruth Roach; Rendall, Jane (eds.), Writing Women's History: International Perspectives, Indiana University Press, p. 181, doi:10.1007/978-1-349-21512-6_10, hdl:2027/heb.03316.0001.001.*
- *Forbes, Geraldine Hancock (Spring 2003). "Reflections on South Asian Women's/Gender History: Past and Future". Journal of Colonialism and Colonial History. **4** (1). doi:10.1353/cch.2003.0012. S2CID 144912833.*
- *Pande, Rekha (1999), "Women's History: India", in Boyd, Kelly (ed.), Encyclopedia of Historians and Historical Writing vol 2, Taylor & Francis, pp. 1318–1321, ISBN 9781884964336.*
- *Ramusack, Barbara N. (1999), "Women in South Asia", in Ramusack, Barbara N.; Sievers, Sharon L. (eds.), Women in Asia: restoring women to history, Bloomington, Indiana: Indiana University Press, ISBN 9780253212672.*
- Choudhary, Renu (June 2013). "Women in Indian society: a historical perspective". Madhya Pradesh Journal of Social Sciences. **18** (1): 41–53.
- Majumdar, R. C. (2014). Great women of India. Kolkata : 2014. Editors : Swami Madhavananda, Ramesh Chandra Majumdar
- डॉ. जे. पी. सिंह, (1 April 2016)- आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन PHI Learning Pvt- Ltd- आई.घ्स.बी.घ्न. 978-81-203-5232-2.

विवाह संस्था और स्त्री प्रश्न (विशेष संदर्भ समकालीन हिन्दी उपन्यास)

रेणु चौधरी

स्त्री-पुरुष के आपसी संबंधों की शुरूआत मानव जीवन के शुरुआत के साथ ही हुआ। प्राचीन युग में स्त्री-पुरुष बिना किसी बंधन के साथ रहते थे। समय के साथ इन संबंधों का स्वरूप बदला। जब समाज और परिवार की परिकल्पना अस्तित्व में आई तो स्त्री-पुरुष संबंधों को एक बंधन का रूप देने के लिए विवाह संस्था को मान्यता दी गई। हजारों वर्षों के बाद आज भी विवाह का स्वरूप अलग-अलग जातियों, देश से लेकर विदेशों में भिन्न-भिन्न हैं। भारत जैसे विशाल देश में यह भिन्नता और अधिक दिखाई देती है। दरअसल भारतीय परिप्रेक्ष्य में तो आज भी स्त्री-पुरुष संबंधों को सामाजिक मान्यता तभी दी जाती है जब विवाह संस्था द्वारा स्त्री-पुरुष संबंध को मंजूरी मिली हो। यह रूढ़िवादी परंपरा आज भी समाज में अपनी जड़ें जमाए बैठा है। वस्तुतः भारतीय समाज में विवाह एक ऐसी संस्था है जहाँ स्त्री की स्थिति और अधिक दयनीय है। स्त्री परिवार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के बावजूद वह सुखमय जीवन नहीं जीती है और ना ही उसे निर्णय लेने का अधिकार होताहै। वह कई बंधनों से जकड़ी हुइ है। प्रागैतिहासिक काल में मातृसत्तात्मक समाज होने के कारण स्त्री स्वतंत्र थी, स्वावलंबी थी और उसे निर्णय लेने का अधिकार भी था क्योंकि उस समय वर्चस्ववादी संस्कृति स्त्रियों के ऊपर हावी नहीं थी इसलिए स्त्रियाँ पूर्ण रूप से स्वतंत्र थीं। लेकिन पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री पुरुष की सम्पत्ति बन गई। उसका रूप सहचरी, सहभागिनी के बदले पुरुष की अनुचरी और अबला जैसी हो गयी। वह पुरुष द्वारा खरीद-फरोख्त की जाने लगी और विवाह संस्था ने इसे और ज्यादा मजबूत किया। रमणिका गुप्ता का कथन है "विवाह की प्रथा भी सभ्यता और संस्कृति के विकास के इतिहास में औरत को संपत्ति बनाने की तरफ और उस पर अंकुश लगाने के लिए बढ़ाया गया एक नियमित, योजनाबद्ध कदम था। विवाह औरत की गुलामी का प्रथम दस्तावेज था।" रमणिका गुप्ता का कहना विचारणीय है क्योंकि यह सच है कि पितृसत्तात्मक समाज में विवाह संस्था स्त्री को गुलाम बनाती है। इस संस्था में वह स्वतंत्र नहीं होती है ज्यादातर स्त्रियां घरेलू हिंसा का शिकार होती हैं तथा उसे पुरुषों के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है।

विवाह एक ऐसी संस्था है जो वैधानिक अधिकार प्राप्त कर, स्त्री का हर तरह से शोषण करता है। इस संबंध में स्त्री को सिर्फ संबंधों का बोझ ही ढोना पड़ता है जिसे पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री के त्याग और बलिदान का नाम दिया गया है। विवाह एक ऐसा संस्कार है जिससे बंधने के बाद स्त्री को अपनी जड़ों (घर) को छोड़ कर पति के घर जाना पड़ता है और वहां उसके नाम का दूसरा नामकरण होता है। बहुत बार विवाह के बाद स्त्री को उसके गाँव के नाम के साथ पुकारा जाता है जैसे माधोपुरवाली, मोड़वाली आदि। यानी इस संस्था में स्त्री का अपना कोई अस्तित्व ही नहीं होता। दरअसल इस संस्था में स्त्री को संरक्षण तो मिलता है लेकिन रोटी, कपड़ा और मकान के एवज में स्त्री जीवन भर के लिए पुरुष (पति) की बंधुआ मजदूर बन जाती है। भारतीय समाज में यह जगजाहिर है कि विवाह के बाद कितने प्रतिशत स्त्रियां सुखमय जीवन जीती हैं। आकड़े उठाकर अवलोकन करें तो बहुत कम संख्या खुश रहने वाली स्त्रियों की मिलेंगी।

यह अलग बात है कि समय के साथ चीजें बदल रही हैं। बदलाव मानव जीवन के लिए जरूरी भी है। इसी बदलाव का परिणाम समाज में दिख रहा है कि आज इस गुलामी के मकड़जाल को तोड़ने की बात की जा रही है। रमणिका गुप्ता का इस संदर्भ में कहना हैं "विवाह नाम की संस्था को टूटना चाहिए। मैं परिवार और विवाह को स्त्री के लिए पिंजरा मानती हूं। वह स्त्री को पिंजरा में कैद करता है।" इसके अतिरिक्त मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं "मेरी तीव्र इच्छा है, हजारों साल से चला आ रहा सिलसिला टूटना चाहिए। अपने हक के लिए लड़ना चाहिए। संरक्षण और सुरक्षा स्त्री के लिए खतरनाक और बर्बर शब्द है, भरोसा देकर उसे नष्ट करते हैं। बात वही है कि जो अपने प्रति न्याय की बात नहीं सोचता, उसे न्याय देने की मूर्खता कौन करेगा?" अतः स्त्रीवादी चिंतक स्त्री को अपने भले के बारे में सोचने को प्रेरित करती हैं। वर्तमान समय में स्त्रियां चेतनाशीलहो रही हैं, वह पुरुषवादी व्यवस्था के साजिश को समझने लगी है। आजविवाह का स्वरूप बदलता हुआ दिख रहा है। आज लिव-इन-रिलेशनसिप का कंसेप्ट आ गया है। महानगरों में ज्यादातर युवा वर्ग शादी से पहले साथ में रहते हैं। एक दूसरे के सुख-दुःख के भागेदारी होते हैं। यह अलग बात है कि हर विचार का अपना सकरात्मक और नकरात्मक प्रभाव होता है। उसी तरह लिव-इन-रिलेशनसिप का भी है। विवाह संस्था में बदलाव काएक बड़ा कारण आर्थिक आधार भी है। वर्तमान समय में स्त्रियां शिक्षित होकर आर्थिक रूप से मजबूत हो रही हैं। वह पुरुषों के साथ कंधे से कधा मिलाकर काम कर रही है। स्त्रियों को घर के बाहर पुरुषओं के साथ काम करना कहीं न कहीं विवाह संस्था से जुड़ी परंपरागत व्यवस्था के विरुद्ध खड़ा होना है जो कि वर्तमान समय में दिख रहा है। यह मानसिकता बनी हुई थी कि स्त्री है तो घर का काम करेगी, पुरुष बाहर का। यही से स्त्री की गुलामी शुरू हुई थी। अब इस मानसिकता में बदलाव आ रहा है लेकिन अभी भी भारतीय समाज में ज्यादार लोगों की मानसिकता स्त्री को गुलाम बनाकर रखने की है। सिमोन का कहना है "आर्थिक विकास के कारण औरत की समकालीन स्थिति में आए भारी परिवर्तनों ने विवाह संस्था को भी हिला दिया है। विवाह अब दो स्वत्रंत व्यक्तियों के बीच एक पारस्परिक समझौता से उत्पन्न बंधन है, जो व्यक्तिगत और पारस्परिक होता है।"

आज स्त्री प्रश्न कर रही है? वह सवाल उठा रही है, क्या है यह विवाह संस्था? क्यों एक स्त्री के अस्तित्व की पहचान उसके पति से संबंधित है? स्त्री-पुरुष के संबंध को क्यों विवाह संस्था द्वारा ही मान्य माना जाता है? क्या यही है स्त्री की नियति? न जाने कितनी स्त्रियाँ वैवाहिक संबंधों में यौन शोषण का शिकार होती हैं। पुरुष को विवाह के नाम पर सामाजिक अधिकार मिल जाता है। प्रभा खेतान भी विवाह को स्त्री के लिए अनिवार्य नहीं मानती हैं उनका कहना है "विवाह एवं पति बच्चे ही सब कुछ नहीं हैं। अगर पुरुष स्त्री का शोषण करें तो पत्नी को इसका प्रतिकार करना सीखना चाहिए। विवाह, पति, बच्चों से अलग हटकर भी स्त्री का अपना सा अस्तित्व होता है। जिसके आधार पर वह अपनी अलग स्वतंत्र पहचान बना सकती है।" विवाह संस्था में स्त्री की जो स्थिति होती है उसके लिए सिमोन का यह कथन विचारणीय है। फलत: अब स्त्री भी अपने अधिकारों को समझ रही है, इसकी झलक समाज में दिखने लगा है और साहित्य में भी, क्योंकि साहित्य और समाज का गहरा संबध होता है। तभी तो कृष्णा सोबती मित्रो जैसी स्त्री चरित्र को गढ़ी। इस उपन्यास में मित्रो का चित्रण परंपरागत स्त्री की छवि से हटकर है। मित्रो के व्यक्तित्व में एक नैसर्गिक खुलापन दिखाई देता है। वह अपनी हर भावनाओं को बेबाक तरीके से अभिव्यक्त करती है। मित्रो मां नहीं बन पाती है तो अपनी सास को करारा जबाव देते हुए कहती है "मेरा बस चले तो सौ-सौ कौरव जन के रख दूँ। पर अम्मा अपने लाडले बेट का...। निगोड़े उस पत्थर की बुत में भी कोई हरकत तो हो।" इस तरह की बात परंपरा से जकड़ी हुई स्त्री नहीं कर सकती थीं बल्कि मित्रो जैसी बोल्ड स्त्री ही कर सकती हैं। स्त्री बिना विवाह के मां बनने की जहमत उठाती है तो उसे कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। प्रभा खेतान का मानना है "व्यापक परिप्रेक्ष्य में विवाह व्यवस्था इसलिए दमनकारी है क्योंकि यह पितृसत्तात्मक समाज की अभिव्यक्ति है। परिणामस्वरूप समाज स्त्री की देह पर नियंत्रण चाहता है, जबकि आज वह अपनी देह पर अपना नियंत्रण चाहती है। भूमण्डलीकृत समाज में स्त्री अपनी देह की मालकिन स्वयं होती जा रही है।" गौरतलब है कि चित्रा मुद्गल का 'आवां', मृदुला गर्ग का 'कठगुलाब', प्रभा खेतान का 'छिन्नमस्ता' मैत्रेयी पुष्पा का 'चाक' आदि इन प्रमुख उपन्यासों में विवाह संस्था के सवाल को उठाया गया है। 'चाक' उपन्यास में विधवा रेशम का अवैध गर्व धारण करना कहीं न कहीं विवाह जैसी संस्था को चुनौती देना है।

सदियों से सामाजिक धारणा बनी हुई है कि विवाह एक ऐसा बंधन हैजहाँ स्त्री और पुरुष दोनों इस संबंध को निभाने की कसमें खाते हैं। विवाह के बाद स्त्री पर पूरा अधिकार पुरुष का होता है। वह जैसे चाहे, जब चाहे स्त्री का उपभोग कर सकता है। प्रभा खेतान कृत उपन्यास 'छिन्नमस्ता' में प्रिया की मां कस्तूरी राधे से कहती हैं "हमलोगों का भी कोई जिंदगी है? जब से शादी हुआ, हर दसवें महीने बच्चा पर बच्चा। एक लड़का तो मरा हुआ पैदा हुआ। पहली लड़की आठ बरस की उम्र में मर गई। चार बार तो गर्भपात हो गया। शरीर में कोई दम रहता है क्या? और सुमित्राबाई को देखों, चौदह साल में शादी किया, पंद्रह बरस में तो बुल्ली हो गया।" प्रिया की मां भारतीय समाज के यथार्थ को बयां कर रही हैं। इस संदर्भ मेंसिमोन दा बोउवार काकहना है कि "पुरुष के जीवन में विवाह का अर्थ सिर्फ वही नहीं होता जो औरत के लिए। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के लिए अनिवार्य होते हुए भी समानता के स्तर पर पारस्परिक नहीं होते क्योंकि औरत जाति ने कभी समानता के स्तर पर पुरुष जाति से कोई अनुबंध विनिमय किया ही नहीं।" ज्यादातर पुरुष अपनी इच्छा के अनुसार जब चाहे अपनी पत्नी के शरीर पर अपना अधिकार जताता आया है। इसमें पत्नी की हां या ना की कोई गुंजाइश नहीं होती यानी बहुत बार पुरुष स्त्री के मन के खिलाफ उसके साथ जबरदस्ती संबंध बनाता है और तर्क यह देता है कि यह तो पति का अधिकार है। विवाहको भारतीय समाज में पवित्र बंधन माना जाता है लेकिन इस बंधन में सबसे ज्यादा स्त्रियाँ शोषित होती हैं। प्रभा खेतान के उपन्यास 'छिन्नमस्ता' में फिलिप अपने जीवन की कहानी प्रिया को बताता है और प्रिया से कहता है "नरेन्द्र तुम्हारे प्रति मालिकाना भाव रखता था। वास्तव में विवाह की सारी व्यवस्था ही इस भाव पर आधारित है और जहाँ स्त्री की चेतना विकसित होने लगती है, वहीं यह व्यवस्था चरमराने लगती है।" फिलिप का यह वक्तव्य महत्त्वपूर्ण है कि विवाह व्यवस्था में पुरुष का अपने स्त्री पर मालिकाना भाव रहता है। वह मालिक की तरह अपने पत्नी के साथ पेश आता है। विवाह का अर्थ ही स्त्री पर पुरुष काएकाअधिकार का है। यही स्त्री की नियति बन कर रह गई है। पुरुष दिन हो या रात नहीं देखता और न स्त्री की पीड़ा को समझता है। वह बस अपनी तृप्ति की पूर्ती करता है। इस तरह के दृश्य को 'छिन्नमस्ता' उपन्यास में नरेन्द्र के हवाले से देख सकते हैं। नरेन्द्र जिस तरह से अपनी पत्नी प्रिया के साथ जानवर की तरह पेश आता है। भारतीय समाज में इसी तरह के पुरुषों की तदाद हैं।

समाजशास्त्री शब्दावली मेंलड़की की शादी के बाद पति का घर ही उसका अपना घर होता है। 'छिन्नमस्ता' उपन्यास में हुकूमत तो नरेन्द्र की चलती है प्रिया का नहीं। आखिर घर तो दोनों का है और घर में रहने का अधिकार दोनों के पास होना चाहिए चूंकि समाज में पुरुषों की सत्ता है इसलिए नरेन्द्र का पलड़ा भारी है और वह प्रिया को धमकी देता है। धमकी से प्रिया रूकती नहीं बल्कि नरेन्द्र की धमकी की अवहेलना कर लंदन चली जाती है। प्रभा खेतान प्रिया के हवाले से समाज का यथार्थपूर्ण चित्रण की है। प्रिया जब अपने मन का काम करने लगती है तो उसकी इच्छाओं को अस्वीकार किया जाता है। अगर कोई स्त्री अपने व्यवसाय में व्यस्त हो और अपने घर-परिवार को समय नहीं देती है।साथ ही पति के इच्छा को पूरा नहीं करती है। ऐसे में स्त्री के व्यवसाय करने का कोई महत्व नहीं होता है क्योंकि समाज का एक ढांचा बना हुआ है कि स्त्री है तो पहले अपने पति को देखेंगी, पति की इच्छा को पूरा करेंगी। चाहे पत्नी की इच्छा हो या न हो। ऐसी स्त्री भारतीय सामाजिक ढ़ांचे में फिट नहीं होती जो न करती हो। परंपरा से विद्रोह करती हुई स्त्री को न घर-परिवार स्वीकार करता है और न ही समाज। भारतीय समाज में स्त्री का पालन-पोषण विवाह के लिए ही किया जाता है। जैसे ही लड़की बड़ी होती है मां-बाप उसकी शादी के लिए चिंतित होने लगते हैं। प्रिया का कैरियर बनाने की किसी को चिंता नहीं है। प्रिया का काला रंग मां के लिए चिंता का विषय है। कैसे होगी प्रिया की शादी? कौन करेगा इससे विवाह? सरोज के लिए कोई दिक्कत नहीं होगी, क्योंकि सरोज का रंग गोरा है। भारतीय समाज में विवाह के लिए गोरी चमड़ी महत्व रखती है। प्रिया अपने घर के लिए एक अनचाही बेटी है। वह बचपन से अपने घर में ही उपेक्षित जीवन जीती है। उसका पालन पोषण उसकी मां नहीं करती है बल्कि उसकी दाई मां करती है। वह अपने दाई मां की बेटी कहलाती है। वह अपने ही घर में अपने बड़े भाई के द्वारा यौन शोषण का शिकार भी होती है जिसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर पड़ता है।

अनामिका द्वारा रचित उपन्यास 'तिनका तिनके पास' में अनामिका विवाह संस्था पर करारा चोट करती हैं। अनामिका लिखती हैं "कॉल गर्ल हर औरत होती है ब्याहता गृहस्थिन भी। कॉल गर्ल को तो यह छूट भी होती होगी कि हर कॉल पर वह प्रस्तुत न हो, पर गृहस्थिन की क्या मजाल।" विवाहित स्त्रियों के पास न कहने का अधिकार ही नहीं होता, क्योंकि सामाजिक रूप से उस स्त्री पर उसके पति का हक होता है। कई ऐसी स्त्रियाँ है जो अपने पति के मार के डर से चुप रहती हैं और वह पति के सामने बिना इच्छा के प्रस्तुत होती रहती हैं।समाज में यह विसंगतियां सदियों से बनी हुई है और आज भी है। यह तब तक बनी रहेगी जब तक स्त्रियां अपने अधिकारों के प्रति चेतनशील नहीं होगी। अत: विवाह संस्था जिस तरह से स्त्री को सुरक्षा देता है उसी तरह उसका दमन भी करता है।बेहतर समाज की निर्मिति तभी होगी जब स्त्री-पुरुष का संबंध बराबरी का होगा तथा पुरुष अपनी जीवनसंगिनी को साथी का दर्जा देना शुरु करेंगा।

संदर्भ

1. रमणिका गुप्ता, स्त्री विमर्श कलम और कुदाल के बहाने, पृष्ठ संख्या-21
2. अनिता भारती, स्त्रीकाल, अंक: दलित स्त्रीवाद, (सं)- पृष्ठ संख्या-66
3. मैत्रेयी पुष्पा, सुनो मालिक सुनो, पृष्ठ संख्या-23
4. सिमोन द बोउवार, स्त्री उपेक्षिता, पृष्ठ संख्या-144
5. प्रभा खेतान, अपने-अपने चेहरे, पृष्ठ संख्या -94
6. कृष्णा सोबती, मित्रो मरजानी, पृष्ठ संख्या -84
7. कथादेश, जुलाई 2003, पृष्ठ संख्या - 65
8. प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता, पृष्ठ संख्या-102
9. सिमोन द बोउवार, स्त्री उपेक्षिता, पृष्ठ संख्या -178
10. प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता, पृष्ठ संख्या - 174
11. अनामिका, तिनका तिनके पास, पृष्ठ संख्या-64

साहित्य इतिहास-लेखन में भक्त स्त्रियाँ

डॉ० कविता राजन

एसोसिएट प्रोफेसर, सत्यवती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

हिन्दी साहित्येतिहास परम्परा के आरम्भिक दौर से ही छिटपुट परिवर्तनों के साथ केवल मीराबाई के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को ही चित्रित किया गया है। सुमन राजे अपने 'हिंदी साहित्य का आधा इतिहास' में लिखती हैं कि "*इतिहास लेखन अपने प्रकृति में सामंती होता है।*"[1] हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में स्त्री-लेखन को जगह न मिलने का एक कारण वे यह बताती हैं कि चूँकि स्त्रियों का साहित्य वाचिक परंपरा का होता है इसलिए वह इतिहास में अपनी जगह नहीं बना पाता है। सावित्री सिन्हा ने लिखा है कि "*अधिकांश निर्गुण पंथों में प्रचलित नारी के प्रति घृणा, भर्त्सना व उपेक्षा भाव के बरक्स इन निर्गुण उपासिकाओं की स्थिति अपने आप में महत्त्वपूर्ण एवं सुंदर है। निर्गुण मत में दीक्षित नारियों की वाणी हमें मुस्कुराने का अवसर देती है। उन संतों के लिए इन स्त्रियों की उपस्थिति ही उनकी भर्त्सना को चुनौती देती है। काव्य की इस धारा में स्त्रियों की वाणी तथा ज्ञानात्मक विवेचनाएँ मानों अपने गुरुओं का ध्यान इस ओर आकर्षित करती प्रतीत होती है कि नारी में केवल आकर्षण ही नहीं है।*"[2] इन साधिकाओं में सहजों बाई, फूली बाई, राना बाई, गवरी बाई, आंमा बाई, सुखी देवी, स्वरूपाबाई, बावरी साहिबा आदि प्रमुख है।

'भक्तमाल' में उल्लेखित स्त्री भक्तों की सूची दी गयी है। लेकिन इनमें से बहुत से स्त्री रचनाकार की रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं इसलिए इस बारे में अनुमान लगाना भी कठिन है कि कौन सी रचनाकार सगुण हैं और कौन सी निर्गुण। इनमें से बहुत से स्त्री भक्तों के जीवन आदि के विषय में भी स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती है।

संत परंपरा में बावरी साहिबा का नाम प्रमुख है इन्होंने बावरी संप्रदाय का प्रवर्तन किया है। परशुराम चतुर्वेदी इनका समय 1599 ई. से 1662 ई. के आस-पास मानते हैं। ये अकबर, संत दादूदयाल और हरिदास निरंजनी के समकालीन है। इनकी साधना पद्धति तथा व्यक्तिगत जीवन के बारे में कोई खास जानकारी नहीं प्राप्त थी। आचार्य द्विवेदी का मत है कि भगवत प्रेम में मस्त रहने के कारण इनका नाम बावरी पड़ा होगा। बावरी साहिबा निर्गुण ब्रह्म की उपासिका थीं। उनकी साधना उच्चकोटि की थी, इसलिए उन्हें 'साहिबा' कहकर आदर से संबोधित किया जाता था। जो साधना-पद्धति उन्होंने चलाई, उसे बीरू साहब, यारी साहब, बुल्ला साहब, गुलाल साहब, जगजीवन साब, भीखा साहब, पल्टू साहब जैसे संतों ने आगे बढ़ाया।

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में स्त्री भक्तों की एक लम्बी कतार है- तुलसी, पारवती, रातो क्षत्राणी, रुकमीणी, अम्मा क्षत्राणी, वीर बाई, भवानी, बिरसो, कृष्णदासी, कला मिश्र आदि की वार्ताएँ संकलित है।

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में स्त्री भक्तों की सुदीर्घ परंपरा दृष्टिगोचर होती है। इसके प्रथम खंड में उल्लेखित भक्त स्त्रियों के नाम हैं- एक सेठ की बेटी लाहौर की, पीरजादी (अलीखान पठान की बेटी), एक ब्राह्मणी उज्जैन की, एक साहुकार की बेटा की बहु (गुजरात की), एक क्षत्रणी गुजरात की, पाथो गुजरी, गंगाबाई, क्षत्रणी माहवन की, एक कुंजरी, एक वेश्या की छोरी, बीरबल की बेटी व एक स्त्री (क्षत्रणी)।

द्वितीय खंड में एक गुर्जर के बेटे की बहु, अजब कुँवरि बाई, एक वैष्णव बनिया की बेटी, एक ब्राह्मणी उपरावादी, एक क्षत्राणी आगरे की, एक डोकरी, सीताबाई और अचलाबाई की वार्ताएँ हैं। तृतीय खंड में कान्ह बाई, किशोरी बाई, एक क्षत्राणी की बेटी, लाडबाई, धराबाई व रूपमंजरी के चरित्र वर्णित है। इन वार्ताओं में स्त्री भक्तों के द्वारा वर्ण, वर्ग, जाति एवं धर्म के बंदिशों से परे भक्ति का विस्तृत विवेचन किया गया है साथ ही स्त्रियों के उपासना के निजी व्यक्तित्व का प्रकाशन किया गया है।

कहना न होगा की यह स्त्री भक्त भक्ति की अवधारणा के एक विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण आयाम प्रस्तुत करती हैं। स्त्री भक्तों के साहित्य के व्यापक मूल्यांकन का आधार प्रदान करती है। भक्ति आंदोलन में स्त्रियों ने अपनी रचनाधर्मिता से उस सांस्कृतिक परंपरा को मूल्यांकित करने का प्रयास किया तथा अपनी सृजनात्मक वृत्ति से अस्तित्व एवं अस्मिता की बात भी की है। उनकी कविताओं में जहाँ एक तरफ पूरी स्पष्टता से जीजिविशा परिलक्षित होती है वहीं मध्यकालीन प्रभुता के विरुद्ध आवाश भी है। उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर यह तो कहा ही जा सकता है कि उनकी कविताओं में पितृसत्ता से विरोध है साथ ही उस शास्त्र रचित सांस्कृतिक परंपराओं से भी।

उमा और पार्वती को भक्ति की कवित्रियों में शामिल करते हुए सावित्री सिन्हा उनके बारे में लिखती हैं कि "*ये निर्गुण काव्य की लेखिका थी इनकी कविता में पुरुष कवियों से भिन्न (सईयाँ) और सद्गुरु के स्वरूप का वर्णन है इनकी अपरिपक्व काव्य भाषा में ग्राम्य शब्दों की बहुलता है। विलक्षण बात यह है कि इनकी कविता में राम की धारणा सगुण रूप में न होकर निर्गुण ब्रह्म के रूप में व्यक्त हुई है।*"[3] जहाँ तक भाषा में अपरिपक्वता का सवाल है कि इस सन्दर्भ में मैनेजर पाण्डेय का मानना है कि "*हमारे देश में लोक-भाषाओं को बनाने, उसे विकसित करने में योगदान स्त्रियों ने ही दिया है यदि हमें ब्रज, अवधी आदि लोक-भाषा और संस्कृति पर बात करनी है तो इस दिशा में ग्रामीण स्त्रियाँ ही मददगार होंगी। साथ ही मातृभाषा में कविता की शुरुआत*

होने के कारण जितनी स्त्रियाँ भक्ति आंदोलन के दैरान कविता क्षेत्र में आई वैसी न उसके पहले आई न उसके बाद। कइओं से तो वह भाषा ही उत्पन्न हुई है इसी कारण स्त्रियों ने इतने बड़े व क्रांतिकारी स्तर पर काव्य रचा।"[4] पुरुष प्रभुता की सामाजिक संरचना से जिरह करने के लिए ही इन्होंने अपनी भाषा विकसित की।

सहजो बाई और दया बाई दोनों ही निर्गुण रचनाकार हैं। सहजो बाई ने स्त्री की अभिलाषाओं को कविता का विषय बनाया है। भक्त कवियों की तरह गुरु महिमा और गुरु को ज्ञान और बुद्धि के निर्माता के रूप में स्वीकार किया है। कर्म फल के सिद्धांत के विरुद्ध लिखने वाली सहजो बाई प्रथम कवियत्री हैं। वह पुनर्जन्म की धारणा का तिरस्कार भी करती हैं सहजो बाई की तरह दया बाई भी गुरु की महत्ता को स्वीकार करती हैं। उन्होंने सहज अनुभव के बजाय सुमिरन की भावना को अधिक महत्त्व दिया। दया बाई के यहाँ निर्गुण परंपरा का भाव परिलक्षित होता है। निर्गुण परंपरा के अरूप को ज्ञान एवं ध्यान के द्वारा प्राप्त करना उनका लक्ष्य था, जबकि सहजो बाई भी परंब्रह्म के अवतारी एवं निर्गुण रूप के मध्य समरसता बैठाने की कोशिश करती है। दोनों की कविताओं में भावनाओं एवं अनुभूतियों के अतिरिक्त दार्शनिक विषयों के विवेचन यौगिक एवं ज्ञान संबंधी गुणत्तम विषयों को भी प्रतिपादित किया गया है।

स्त्री भक्तों के साहित्य के व्यापक मूल्याँकन एवं विवेचन की दिशा में हिंदी साहित्येतिहास ग्रंथ प्राय: उदासीन ही हैं। शायद, साहित्येतिहासलेखन तथा प्रतिमान स्थापन क्रम में उनकी उपस्थिति ही महत्त्वपूर्ण न जान पड़ी। इस संदर्भ में 'हिंदी-नवरत्न' की भूमिका का यह कथन उल्लेखनीय है कि, *"बहुत दिनों से हमारा यह विचार था कि हिंदी-साहित्य का एक अच्छा इतिहास लिखा जाए, और उसमें प्रसिद्ध तथा अच्छे कवियों की रचनाओं पर कुछ विस्तार के साथ समालोचना लिखी जाए।"*[5] इस प्रकार यहाँ 'प्रसिद्ध' और 'अच्छे कवियों' के इस निर्धारित प्रतिमान में कोई भी भक्त-कवयित्री अथवा उनका रचना-संसार वर्णन के उपयुक्त ही नहीं जान पड़े।

'मिश्र बंधु विनोद' में प्रताप कुँवरीबाई की संक्षिप्त चर्चा मिलती है। यहाँ उनके काव्य को *'भक्तिपूर्ण'* और *'मनोहर'*[6] बताते हुए, उनके कृतित्व पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। बात संत काव्यधारा की हो, तो इनमें 'बावरी साहिबा' का संक्षिप्त परिचयात्मक वर्णन 'हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास' भाग-4 (परशुराम चतुर्वेदी) तथा 'हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास' (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी) ने किया है। बाकी साहित्येतिहासों में भक्ति साहित्य के वर्णन के दरम्यान आम ढर्रे में मीरा के अलावा कोई अन्य स्त्री भक्त को समाहित नहीं किया गया है।

इस प्रकार भक्त-कवयित्रियों कीश्रृंखला में एकमात्र कवयित्री-मीरा को साहित्येतिहास में शामिल करने का जो सिलसिला चला, वह परवर्ती साहित्येतिहासों- 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल), 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (संपा. - नगेन्द्र), 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' (बच्चन सिंह), 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' (रामस्वरूप चतुर्वेदी), 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (विजयेन्द्र स्नातक), 'हिंदी साहित्य का सरल इतिहास' (विश्वनाथ त्रिपाठी) आदि तक आते-आते भी वैसा ही बरकरार रहा।

स्त्री साहित्य से संबद्ध शोध एवं अध्ययन के नए मुकाम तय करने की दिशा में सुमन राजे कृत 'हिंदी साहित्य का आधा इतिहास' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अत: स्त्री भक्तों की परंपरा को भी इसमें विस्तारपूर्वक उल्लिखित किया गया है। लेखिका ने बड़ी बेबाकी से यह स्पष्ट किया है कि हिंदी साहित्येतिहास की पीठिका युगविभाजन, नामकरण, एवं पूर्वापरसम्बन्ध-निर्धारण पर आधारित है। परंतु, इस अनन्तनाम-रूपा तक साहित्येतिहास परम्परा में केवल महिला लेखन को ही अध्ययन की स्वतंत्र इकाई नहीं स्वीकारा गया।[7] उल्लेखनीय है कि सुमन राजे ने भक्ति आंदोलन के देशव्यापी प्रसार में बिखरे महिला लेखन के सूत्र भी खोज निकाले हैं। आपने भक्ति की पूर्व-पीठिका स्वरूप, वेदों, उपनिषदों, बौद्ध थेरीगाथाओं, जैनों से होते हुए संपूर्ण देश की स्त्री-भक्तों का विस्तृत उल्लेख किया है। इस ग्रंथ में कई तथ्यात्मक त्रुटियाँ भी हैं, परंतु पुरुषों के बरक्स भक्ति-साहित्य में 'स्त्री-पक्ष' के रेखांकन की दिशा में यह ग्रंथ बेहद उपयोगी है। अत: यह स्पष्ट है कि उद्‌देश्य महज 'आधाार इतिहास' प्रस्तुत करना भर नहीं है परंतु उस उपेक्षित आधे भाग के द्वारा साहित्येतिहास के स्वरूप को संपूर्णता प्रदान करना है।

अस्मिताओं की अभिव्यक्ति की दावेदारी वर्तमान समय का नियामक परिदृष्य गढ़ रही है। ये साहित्य इतिहास में पहली बार अपने भागीदारी का प्रश्न उठा रहे हैं। यहाँ 'अनुभूति की ईमानदारी' या 'अनुभूति की प्रामाणिकता' का प्रश्न केन्द्र में है। भक्ति काल में कबीर, रैदास जैसे कवि अपनी 'अनुभूति की दावेदारी' का प्रश्न उठा रहे थे। इस दावेदारी में उनका अनुभव सच ही 'अनभै साँचा' हो गया। भयरहित सहज अनुभूतियाँ इतिहास में अपनी जगह बनाने में नाकाम रही, नाकाम रही या नाकाम कर दिया गया। ये समकालीन इतिहास का एक बड़ा सवाल है। इन्होंने खुद एक ज्ञानमीमांसा विकसित की है, जिसे नामवर सिंह अनुभव सम्मत विवेकवाद कहते हैं। यह अनभै साँचा इतिहास में अपनी परंपरा को तलाश रहा है। भक्ति काव्य के सन्दर्भ में यह और जरूरी इसलिए भी हो जाता है क्योंकि साहित्येतिहास और आलोचना में जिस भक्ति काव्य का इतना अदम्य आकर्षण है वैसे में इस बात की पड़ताल होनी चाहिए कि उस साहित्य इतिहास में स्त्री की जगह कहाँ और कितनी है? *सामूहिक रूप से एक जबदी हुई* स्तब्धा मनोवृत्ति के शिकार सामाजिक संरचना में स्त्री के लिए जगह थी या नहीं थी यह शोध का विषय हो सकता है लेकिन हिन्दी साहित्य इतिहास लेखन में स्त्री के लिए बहुत कम जगह है यह साहित्येतिहासों को पढ़ने से स्पष्ट है।

'स्त्री विमर्श' स्त्री की अस्मिता को रसोई और संतति के गणित से परे स्थापित करने का एक आन्दोलन है। स्त्री अस्मिता आन्दोलन में देह की उपस्थिति एक महत्त्वपूर्ण प्रत्यय की तरह है। देह और देह से जुड़ी पीड़ाओं को अभिव्यक्त करना एक बड़ी जरूरत थी जो साहित्य में पहले कभी इतना प्रासंगिक बन कर सामने नहीं आया। आजकल देह से मुक्ति की बात करते ही लोग स्त्रियों को चरित्र प्रमाण-पत्र निर्गत करने लगते हैं।

स्त्री-शोषण की शुरूआत उसके देह से उत्पन्न होती है। इस देह की पीड़ा पितृसत्ता जनित है इसलिए पितृसत्ता से मुक्ति का पहला चरण इस उपनिवेशित स्त्री-देह से मुक्ति ही है। देह पितृसत्ता के लिए शक्ति की जोर आजमाइश का प्राथमिक आधार है। भक्ति काव्य में मीरा के सन्दर्भ में भी यह बात विख्यात है कि किस तरह से उन्हें प्रताड़ित किया गया। इसलिए रचना में देह की उपस्थिति मुक्ति का आख्यान है और इतिहास लेखन में स्त्रियों की उपस्थिति उस

पूरे शोषण से मुक्ति की दावेदारी के बतौर है। रचना में मुक्ति के सवाल से इतिहास लेखन एवं साहित्य-इतिहास लेखन में मुक्ति के सवाल तक की यात्र में अभिव्यक्ति के तरीके में कुछ कठिनाइयाँ हों सकती है लेकिन इतिहास का एक नया पाठ अब निहायत ही जरूरी हो गया है। साहित्य इतिहास लेखन में उनकी जगह तलाशना परंपरा निर्माण में सहयोगी प्रयास होगा? साथ ही भक्ति साहित्य भी अपना पूर्ण एवं मुकम्मल आकार तभी ग्रहण कर पाएगा। यह साहित्य इतिहास को एक बेहतर दिशा दे सकता है।

संदर्भ

1. सुमन राजे - हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, पृष्ठ 55
2. सावित्री सिन्हा - मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, पृष्ठ 46
3. वही, पृष्ठ 46
4. भक्तिकाल पर संगोष्ठी 2012, जे.एन.यू., नई दिल्ली में. मैनेजर पाण्डेय द्वारा दिए गए व्याख्यान से साभार।
5. मिश्र बन्धु (गणेश बिहारी, श्याम बिहारी व शुकदेव बिहारी मिश्र) - हिन्दी नवरत्न, पृष्ठ 11
6. मिश्र बन्धु (गणेश बिहारी, श्याम बिहारी व शुकदेव बिहारी मिश्र) - मिश्रबन्धु विनोद, पृष्ठ 57
7. सुमन राजे - हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, पृष्ठ 18

नारी-संवेदना (झांसी की रानी के आधार पर)

डॉ० विजय शंकर मिश्र

हिन्दी विभाग, सत्यवती कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शोधसार

हिन्दी की ऐतिहासिक उपन्यास-परम्परा के महानतम् हस्ताक्षर स्वर्गीय वृन्दावनलाल वर्मा के तीन सर्वश्रेष्ठ उपन्यास झांसी की रानी, मृगनयनी और बिराटा की पद्मिनी अपने शीर्षक से लेकर विषय तक नारी-प्रधान है। नारियाँ इनके केन्द्रीय चरित्र हैं। वर्मा जी के प्राय: समस्त उपन्यासों में स्त्रियों के मूल्यांकन का आधार उनके विचार, कर्म, चारित्रिक प्रवृत्तियाँ एवं स्वभावगत् विशेषताएँ हैं। प्रस्तुत लेख में उनके इसी मूल्यांकन का अनुसंधान करने का विनम्र प्रयत्न किया गया है।

Keyword: वृन्दावनलाल वर्मा, ऐतिहासिक उपन्यास, नारी, प्रथम स्वतंत्रता संग्राम

स्वर्गीय वृन्दावनलाल वर्मा के तीनों सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'झांसी की रानी' (लक्ष्मीबाई और उनकी सहेलियाँ) 'मृगनयनी' (मृगनयनी तथा लाखी) तथा 'बिराटा की पद्मिनी (कुमुद और भिन्न रूपों में छोटी रानी और गोमती) शीर्षक, कथा, चरित्र इत्यादि प्रत्येक दृष्टि से नारी-प्रधान है। उनका नारी-संवेदन इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाता है। 'गढ़ कुंडार' में यद्यपि नारियों की कोई विशेष भूमिका नहीं है क्योंकि कर्म और निर्णय के अधिकारी वहाँ अंतत: पुरुष ही हैं तथापि नारी को आधुनिक दृष्टि अथवा सर्वथा नूतन रूप में देखने का जो प्रयास उपर्युक्त तीन उपन्यासों में दिखलाई देता है उसकी झलक तारा और हेमवती पर भी पड़ी है। यह आधुनिक दृष्टिकोण या नूतनता नारी के "सबल सौन्दर्य' और "भीमकर्मा" रूपों में दिखलाई देता है। जहाँ सौन्दर्य कोमल है, वहाँ भी चारित्रिक, वैचारिक, आत्मिक एवं कर्म-आधारित वज्रदृढ़ता विद्यमान है। प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम की अजर-अमर नायिका रानी लक्ष्मीबाई, इस संग्राम में अपने प्राणों की आहुति देने वाली सुंदर, मुंदर, काशीबाई, मोतीबाई, जूही, बख्शिन जैसी चिरस्मरणीय विभूतियाँ, बल और रूप की महान् समन्वय एवं अद्वितीय कला विशारद प्रतिभा मृगनयनी, राई की गढ़ी को अपने महान् रणकौशल एवं वीरता से बचा कर वीरगति प्राप्त करती लाखी, बुन्देलखण्डी अस्मिता की खोज करती हेमवती, अपूर्व बौद्धिक, चारित्रिक एवं बलाधारित कौशल से विपरीत स्थितियों पर विजय प्राप्त करके अपने आराध्य प्रेमी दिवाकर को मुक्त कराती निष्कलुष तारा, दिव्य सौन्दर्य की आध्यात्मिक अनुभूति प्रदान करने वाली कुमुद आदि वे नारी चरित्र हैं, जो समग्र हिन्दी-उपन्यास-परम्परा में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

वर्मा जी ने नारी के मूल्यांकन का आधार शारीरिक सौन्दर्य के स्थान पर उसका कर्म और विचार बनाया हैं। यहीं नारी 'वस्तु' होने की त्रासक स्थिति से उबर कर सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक स्तरों पर जीवंत इकाई बनती है।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की चिर जीवंत नायिका 'झांसी की रानी' लक्ष्मीबाई के जीवन के अनेक अविस्मरणीय चित्र भारतीय इतिहास की आत्मा में अंकित है। स्वर्गीय वृन्दावनलाल वर्मा ने पूरी संवेदना के साथ इन चित्रों को अपने पाठकों के समक्ष रखा है। एक चित्र उस सद्य: किशोरी मनु का है जो घुड़सवारी की कला में निष्णात् होने की सूचना दे रही है, जो शस्त्र-विद्या, मलखंभ तथा कुश्ती में रुचि रखती है, जो (नाना साहब की) चोट देख कर घबराती नहीं है, जो सीता, ताराबाई, जीजाबाई तथा अर्जुन, भीम, शिवाजी, ताना जी आदि पौराणिक-ऐतिहासिक चरित्रों से प्रेरणा ग्रहण करती है, जो अंग्रेजों के शासन को उनके किसी विलक्षण कौशल अथवा भारतीयों के दुर्भाग्य का परिणाम न मान कर इस देश की अकर्मण्यता एवं राष्ट्रवाद शून्य मानसिकता का प्रतिफलन मानती है, जो चोट से घबराए नाना साहब को चिढ़ाती है, जो आकर्षक सौन्दर्य के कारण मिले नाम 'छबीली' को तनिक भी पसंद नहीं करती, जो हाथी पर सवारी करने के लिए रूठती-मचलती और क्षुब्ध होती है, जो तात्या टोपे से अपने भावी पति के राज्य झांसी के बारे में बड़े सहज ढंग से प्रश्न करती है। एक अन्य चित्र रानी बनने वाली उस मनु का है जो दासियों को सहेली के रूप में स्वीकार करके उन्हें मिट्टी से सम्बन्ध तोड़े बिना फूलों से नाता बनाए रखने का परामर्श देती है, जो भाँवर पड़ते समय पुरोहित के कम्पित हाथों की शिथिलता को लक्ष्य करके स्वयं गांठ बांधने की इच्छा रखती है और फिर इस इच्छा को नियन्त्रित करके कभी न छूटने वाली गांठ बाँधने का आग्रह करती है। एक अन्य चित्र वह है जिसमें मनु रानी लक्ष्मीबाई हो कर अपने पति राजा गंगाधर राव के पराधीनता के वातावरण में "अतिरिक्त कला-प्रेम एवं श्रृंगारिक-काव्य-मोह पर कटाक्ष तथा व्यंग्य करती है।" अब इन चित्रों का लोमहर्षक विस्तार करने वाले उन कुछ अविस्मरणीय चित्रों को देखने का अवसर है जिन्हें भारतीय जनमानस कभी भुला नहीं सकता-प्रथम चित्र में झांसी के किले वाले महल के दीवाने खास में पर्दे के पीछे आसीन रानी ने राज्य को हस्तगत करने की अंग्रेज-घोषणा को ऊँचे किन्तु मधुर शब्दों में अस्वीकृत करते हुए सिंहनाद किया, "मैं अपनी झांसी नहीं दूँगी।" "इन शब्दों से दीवानेखास गूंज गया। वायुमण्डल ने उनको अपने भीतर निहित कर लिया। भारत के इतिहास में वे शब्द दिए गए। झांसी की कलगी में वे शब्द मणि मुक्ता बन कर चिपक गए।" दूसरे चित्र में सैन्य-सामग्री जुटाने के लिए समय प्राप्त करने और उचित अवसर की खोज में राजनीति के तहत लक्ष्मीबाई अपने दत्तक पुत्र दामोदरराव से अर्जियाँ भिजवा रही है। तीसरे चित्र में अंग्रेजी सेना से लोहा लेती रानी प्रधान सेनापति के रूप में दिखलाई देती है। चतुर्थ चित्र में अद्वितीय वीरांगना अपने दत्तक शिशु को पीठ पर बांधे तलवार चलाती हुई अंग्रेज नायक लेफ्टीडेन्ट बोकर को

विलक्षण चतुरता के साथ वार करके घायल कर रही है। पंचम चित्र को बहुत सहज कर रखने की आवश्यकता है-पीठ पर शिशु बँधा है, हाथ खटाखट तलवार चला रहा है। अगला चित्र उदास करता है, जिसमें राव साहब और उनके सलाहकार रानी की सलाह को अनसुनी कर रहे हैं। इसके बाद के चित्र जातीय-राष्ट्रीय गौरव की भावना को चरमोत्कर्ष तक पहुँचा कर स्तब्धता की अवस्था तक ले आते हैं-रानी लक्ष्मीबाई "अंग्रेजों की ओर तलवार की नोंक" से संकेत करके प्रचण्ड संहार करने का आह्वान करती है। अब उस अंतिम चित्र की बारी है-रानी ने दांतों में लगाम थामी हुई है, दोनों हाथ तलवार चला रहे हैं, सामने सोनरेखा नाला है, सीने के नीचे प्रथम घातक वार हुआ है, आक्रमणकारी को घायल वीरांगना की तलवार ने समाप्त किया, "स्वराज्य की नींव" बनने के क्षण का साक्षात्कार हुआ, घोड़ा अड़ गया, आक्रमणकारी की गोली "बाई जंघा" को बेध गई, उसको परलोक पहुँचाया, "खून के फव्वारे पेट और जांघ के घाव से छूट रहे थे", फिर तलवार का अंतिम घातक वार हुआ और 'सिर' के "दाई ओर" का "हिस्सा कट गया ओर दाई आँख बाहर निकल पड़ी" लेकिन इस पर भी उन्होंने अपने घातक पर तलवार चलाई और उसका कंधा काट दिया, इसके पश्चात् "हर हर महादेव", ओउम् वासुदेवाय नमः और "द...ह...ति...नै. ..नं.....पावकः", प्रदीप्त मुखमण्डल। निश्चित तौर पर साक्षात् दुर्गावतार लक्ष्मीबाई समाप्त नहीं हुई-बिलखते हुए रामचन्द्र देशमुख के वक्तव्य "झांसी का सूर्य अस्त है। वह कण-कण को प्रदीप्त कर रहा है। फिर उदय होगा, फिर प्रत्येक कण मुखरित होगा।" क्या कोई भारतवासी अथवा स्वतंत्रता एवं समता के प्रति पक्षधर मनुष्य रानी को दी गई इस श्रद्धांजलि से इंकार कर सकता है? उत्तर केवल और केवल 'नहीं' है। वीरों का वसंत यही है।

ये सनातन रूप से जीवित चित्र रानी लक्ष्मीबाई को परंपराओं और इतिहास में एक सर्वथा नूतन एवं सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करते हैं। पराधीनता के काल में 'स्वराज्य' की कामना से चालित हो कर कैसा नागरिक बनना चाहिए- "झांसी की रानी" लक्ष्मीबाई इसका प्रतीक है।

उपन्यास में रानी के चरित्र के अनेकानेक पहलुओं को उभारा गया है, जिससे वर्मा जी के इतिहासज्ञ और साहित्यमर्मज्ञ दोनों रूपों का परिचय मिलता है:

(क) 'स्वराज्य' की दुर्दमनीय कामना करने वाला महासेनानी रूप, जिसमें वे स्वतंत्रता के लिए होने वाले संघर्षों को एक दीर्घ प्रक्रिय मानती है।

(ख) शक्ति का अवतार-रूपा वह रूप, जो नारी की परम्परागत् गृहस्थिन और एकांतत: कोमल-कमनीय छवि का खण्डन करता है। इस रूप में रानी का साहस, वीरता, धैर्य, निर्भीकता, मुखरता देखते ही बनती है।

(ग) सामाजिक नेता का रूप, जिसमें लक्ष्मीबाई के नेतृत्व में झांसी का समाज जाति, धर्म, संप्रदाय एवं लिंग इत्यादि पृथकतावादी क्षुद्र भावनाओं से ऊपर उठ कर विदेशी सत्ता का दुर्दान्त विरोध करता है। व्यक्ति और समाज की यही पहचान सागरसिंह जैसे डाकू को स्वतंत्रता-समर का योद्धा और शहीद होने का गौरव प्रदान करती है।

(घ) बौद्धिक कौशल, जिसके द्वारा यह "आधुनिक दुर्गा" युद्ध की रणनीति बनाती है। यहाँ वे रणनीतिज्ञ के रूप में दृष्टिगोचर होती है।

(ड़.) भावुक-संवेदनशील रूप जो पुत्र-अवसान, पति की मृत्यु, वसंत में गौर-पूजन, अंग्रेजों के झांसी-विध्वंस, दत्तक पुत्र दामोदरराव की सुरक्षा-कामना आदि अवसरों पर दिखलाई देता है।

यद्यपि डॉ. ताराचंद श्री रमेशचन्द्र मजुमदार जैसे इतिहासकारों ने 1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम को एक "सैनिक-विद्रोह" अथवा निजी स्वार्थों से प्रेरित नाराजगी भरा संघर्ष सिद्ध करने का प्रयास किया है, तथापि भारतीय जनता, उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा ('झांसी की रानी' के परिचय में) तथा सावरकर, एस.बी. चौधरी जैसे इतिहासकारों तथा विद्वानों ने इसे स्वराज्य प्राप्ति के लिए होने वाला रण यज्ञ सिद्ध किया और माना है। 'झांसी की रानी' में लक्ष्मीबाई बालपने से ही (जब वे 'मनु' थी) स्वराज्य का स्वप्न देखती है और उसे चरितार्थ करने की प्रचण्ड इच्छा रखती है। शिवाजी जैसे संघर्षशील इतिहास-पुरुषों की प्रेरणापूर्ण स्मृति करती है। यही प्रवृत्ति उचित अवसर पर उन्हें विकट संघर्ष के लिए प्रेरित करती है। यद्यपि एक अवसर पर वे आत्मघात की बात करती है, तथापि यह भावना क्षणिक है और वृद्ध भोपटकर के आह्वान पर तुरंत समाप्त हो जाती है।

रानी लक्ष्मीबाई की स्त्री-सेना भारतीय इतिहास की अभूतपूर्व घटना है। क्या आश्चर्य कि मनु 'छबीली' जैसे रूप व्यंजक शब्द से 'घृणा करती थी। घुड़सवारी, शस्त्र-प्रयोग, मलखंभ, कुश्ती जैसी स्त्रियों के लिए प्रायः निषिद्ध विद्याओं के प्रति उनका आकर्षण शतशः उपयुक्त था क्योंकि गुलामी के समय हर नागरिक को योद्धा बनना चाहिए।

लक्ष्मीबाई एक महान् सामाजिक नेता एवं कुशल प्रशासिका थी। उनके नेतृत्व में सभी धर्मों, वर्णों, वर्गों ने संघर्ष किया। सुंदर, मुंदर और काशीबाई जैसी साधारण सेविकाओं, मोतीबाई और जूही जैसी नर्त्तकियों (शायद वेश्याओं), सागर सिंह जैसे डाकू इस पारस; लक्ष्मीबाई) का स्पर्श पा कर महान् एवं अमर हो गए। गुलाम गौस खाँ और बहारामुद्दीन उनकी प्रेरणा से स्वतंत्रता की बलिवेदी पर चढ़कर हमेशा के लिए 'जीवित' हो उठे। निम्न वर्ण की झलकारी विकट निर्भयता की सीमा छूने लगी। आनन्दमय जैसे छोटे जागीरदारों ने अपना जीवन एवं सर्वस्व होम कर दिया। सचमुच वे 'पीर' थी, "बौत बड़ा वली" थी।

पति गंगाधर की मृत्यु के उपरांत उन्होंने झांसी का प्रशासन अद्‌भुत कौशल से चलाया।

यद्यपि रानी बहरामुद्दीन की सूचना के बावजूद भी पीर अली की देशद्रोहिता पर विश्वास न कर सकी तथापि उनका रणकौशल विस्मयाभिभूत करता है। अंग्रेज-सेनापति तक उनकी चतुरता और कार्यकुशलता के प्रशंसक थे।

सैन्य-संग्रह के लिए समय एवं उचित अवसर आने तक वे अंग्रेजों को भुलावे में रखने के लिए दामोदरराव की तरफ से कंपनी और विक्टोरिया तक को अर्जियाँ लिखवाती रहीं।

ग्वालियर की पराजय का कारण राव साहब आदि का विलासादि में लिप्त हो जाना और रानी की सलाह पर ध्यान न देना था।

ऐसा नहीं है कि लक्ष्मीबाई का भावुक-मानुषी रूप दब गया था। उचित अवसर पर वह प्रकट होता था। वे ग्राम एवं नगर की सामान्य स्त्रियों से हास-विनोद करती थी, उनसे आत्मीयता रखती थी। गौर-पूजन के अवसर पर युक्तिपूर्वक पति का नाम पूछने आदि के वर्णनों से यह स्पष्ट हो जाता है। पति की मृत्यु

पर उनका चीत्कार हृदयविदारक है। दत्तक पुत्र दामोदरराव की कुशलता के लिए वे निरन्तर प्रयत्नशील रही लेकिन उनकी चिन्ता, प्रयत्न, हास-विनोद, रुदन-विलाप स्वराज्य-कामना को व्यवहृत करने के प्रयत्न के क्षणों में विलुप्त हो जाते थे।

निस्सन्देह वर्मा जी ने अपने पाठकों के समक्ष भारत की जोन ऑफ आर्क के चरित्र को पूरी संवेदनशीलता एवं इतिहास-सम्मत रूप में प्रकट करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। 1857 ई. की क्रान्ति की इस "सर्वाधिक वीर एवं चतुर सेनानी" (स्वयं अंग्रेज जनरल रोज़ ने कहा था) का जीवन युगों-युगों तक भारतवासियों के लिए प्रेरणा का स्रोत रहेगा और इसके लिए साहित्य के विद्यार्थी वृन्दावनलाल वर्मा के ऋणी रहेंगे।

संदर्भ

1. झांसी की रानी, वृंदावनलाल वर्मा।
2. मृगनयनी, वृंदावनलाल वर्मा।
3. बिराटा की पद्मिनी, वृंदावनलाल वर्मा।
4. गढ़ कुण्डार, वृंदावनलाल वर्मा।
5. डॉ. ताराचंद के 1857 ई. की क्रान्ति से संबंधित मान्यता।
6. डॉ. रमेश चन्द्र मजुमदार की 1857 ई. की क्रान्ति से संबंधित मान्यता।
7. अमर स्वतंत्रता सेनानी सावरकर की 1857 ई. की क्रान्ति से संबंधित मान्यता।
8. डॉ. एस.बी. चौधरी की 1857 ई. की क्रान्ति से संबंधित मान्यता।
9. जनरल रोज़ की रानी लक्ष्मीबाई के व्यक्तित्व से संबंधित कथन।
10. अमर शहीर गणेश शंकर विद्यार्थी का स्वर्गीय वृंदावनलाल वर्मा से संबंधित कथन।
11. सुभद्राकुमारी चौहान की "वीरों का कैसा हो वसंत" शीर्षक कविता।

स्वातंत्रोत्तर हिंदी नाटक : बदलते नैतिक मूल्य

ज्ञानेश पाण्डेय

शोधार्थी, हिंदी एवं भाषा विज्ञान विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

शोधसार

समाज को प्रगति सुरक्षा और शान्ति की ओर अग्रसर करने वाले मूल सिद्धांत है 'नैतिक मूल्य'। किसी भी समाज की सुरक्षा एवं प्रगति श्रेष्ठ मानवमूल्य पर आश्रित होती है। मानव समाज में नैतिक मूल्य परस्पर व्यवहार के मापक स्वीकार्य किए गये है जो हमारे जीवन उन्नयन के प्रधान कारक होते है। हमारे नैतिक मूल्य शास्वत है जिनके अस्तित्व की अनिवार्यता निरंतर बनी रहेगी क्योंकि व्यावहारिक जीवन में परिभाषाएँ बदलती है परन्तु मूल्य शास्वत बने रहते है। हमारे साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से हमारे नैतिक मूल्य जो जिस काल में, जिस रूप में समाज में विद्यमान रहे है उन पर यथार्थपरक दृष्टि डालते हुए आदर्श नैतिक मूल्यों के उत्तरोत्तर उन्नयन का प्रयास करते रहे है।

की वर्डस: स्नातंत्रोत्तर हिंदी नाटक, नैतिक मूल्य, यथार्थ विवेचन।

उपलब्ध सामग्री: हिंदी के प्राथमिक के नाटक, स्वातंत्रोत्तर के कुछ विशिष्ट नाटक, विभिन्न शोध प्रबन्ध, हिंदी गद्य साहित्य का इतिहास, एवं विभिन्न आलोचनात्मक पुस्तकें (नाटक भाग) इंटरनेट से प्राप्त द्वितीयक एवं तृतीयक स्रोत।

शोध पद्धति: शोध पत्र लेखन में विश्लेषणात्मक और विवेचनात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है।

विमर्श

नाटक एक ऐसा माध्यम है जिसके माध्यम से हम अपने समाज के सभी वर्ग में जो भाव सम्प्रेषित करना चाहते है, जिस भाव में करना चाहते है। वह बहुत ही सहजता के साथ कर सकते है और शायद यही कुछ कारण रहे होंगे जो हिंदी साहित्य में गद्य का प्रादुर्भाव नाटक के माध्यम से हुआ है। आलोचक शिरोमणि आचार्य श्री रामचन्द्र शुक्ल जी का कथन है "विलक्षण बात यह है कि आधुनिक गद्य साहित्य की परम्परा का प्रवर्तन नाटकों से हुआ।"[1]

तब यहाँ पर उपरोक्त कथन नाटक के महत्व को और भी सारगर्भित कर देता है। अगर हम नाटक परंपरा की बात करें तो स्वतंत्रता संग्राम या स्वातंत्रोत्तर का जो समय था वह तो बहुत आगे का समय है हिंदी साहित्य में तो बहुत ही उत्तम कोटि के नाटक प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857 ई. के कुछ वर्ष पश्चात् ही लिखे जाने लगे थे जिनके प्रस्तोता बने लब्धप्रतिष्ठ नाटककार भारतेन्दु हरिशचन्द्र जी। भारतेन्दु जी का प्रथम नाटक जो कि बांग्ला नाटक का अनुवाद था 'विद्यासुन्दर' 1868 ई.[2] में आ गया और मौलिक रूप से प्रथम नाटक 'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति' 1873[3] में आया। तत्पष्चात् तो जैसे नाटकों की धूम ही निकल पड़ी जिसमें भारतेन्दु जी, प्रतापनारायण मिश्र जी, लाला श्री निवासदास जी, राधेचरण गोस्वामीजी, प्रसाद जी, लक्ष्मीनारायण मिश्र जी आदि अनेक साहित्यकारों ने बहुत ही उत्तम कोटि के नाटकों का लेखन कार्य किया। इसमें कहना न होगा कि इस सभी नाटककारों का मुख्य उद्देश्य मानव एवं समाज को जागृत करते हुए नैतिक मूल्यों की स्थापना करने के साथ ही वर्तमान समय में बदलते नैतिक मूल्यों का यथार्थ चित्रण था। जिससे वर्तमान समाज और आने वाली भावी पीढ़ियाँ अपने नैतिक मूल्यों पर चलते हुए उच्च आदर्ष को प्राप्त कर सके।

कुछ एक उदाहरण द्रष्ट्रव्य है-

1. भारतेन्दु ने अपने नाटक 'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति' में सामाजिक पाखण्डों पर तीव्र प्रहार करते हुए एक मर्यादित नैतिक मूल्य स्थापित किया है।[4]
2. प्रसाद जी ने अपने सज्जन नाटक में युधिष्टिर के माध्यम से नैतिक मूल्य स्थापित किए है। साथ ही अनैतिकता पर नैतिकता की विजय दिखायी है।[5]

इस प्रकार से हम देखते है कि एक ऐसी परम्परा नाटककारों की चल पड़ी जो समाज सुधारोन्मुखी होने के साथ-साथ एक आदर्ष नैतिक मूल्य के उदाहरण प्रस्तुत कर रही थी। यह तो हुई नाटक के प्रारंभ से ही चलने वाली परम्परा के नाटकों एवं नाटककारों की परन्तु जब हमारा देश 1947 में स्वतंत्र हुआ तो वह समय हमारे देश का पुनर्जन्म कहा जा सकता है। हमारा देश तमाम विसंगतियों के बावजूद एक नये कलेवर में हमारे सामने प्रस्तुत हुआ बहुत सारे सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक परिवर्तन स्वतंत्रता के उपरान्त हमारे सामने दृष्टिगोचर हुए।

"जबकि साहित्य हमारे चितवृत्त का संचित प्रतिबिम्ब होता है और जैसे-जैसे मनुष्य की चितवृत्तियों में परिवर्तन होता है साहित्य में भी परिवर्तन होता चला जाता है"[6] तो इस परम्परा में हमारे नाटककार कहाँ पीछे रहते।

यह विदित सत्य है कि राष्ट्र का चिंतन जब-जब परिवर्तित हुआ है, राष्ट्र का वैचारिक आधार जब-जब खण्डित हुआ है, अथवा जब की हमारे जीवन मूल्यों का हास हुआ, उसमें परिवर्तन हुआ है तब साहित्यकार ने अपने साहित्य सृजन, में सकारात्मक परिवर्तन लाते हुए जीवन मूल्यों को संरक्षित किया है। और समाज को उसकी मूल्य प्रकृति से जोड़ने का कार्य किया है।

1947 में हम स्वतंत्र तो हो गये पर अंग्रेज जातें-जातें हमारे समाज में ढेर सारी अराजकता का बीज बोते हुए गये। जिससे हमारे समाज का नैतिक मूल्य खतरे में पड़ने लगा। पारिवारिक संबंध बदलने लगे, आर्थिक रूप से लोग एक दूसरे से वैमनश्य रखने लगे और राजनीति का स्तर भी अपना नैतिक मूल्य खोने लगा था ऐसी परिस्थिति में हमारे स्वातंत्रोत्तर युग के नाटककारों ने अपने नाटक के माध्यम उस क्षींण होती नैतिक मूल्य की स्थिति को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करते हुए, उनमें व्याप्त बुराइयों को उजागर किया साथ ही समाज का आदर्शोन्मुखी विकास करते रहें हैं।

बदलते पारिवारिक संबंध

समाज के सदस्यों के आपसी संबंध के अनुसार ही हम उनके जीवन की अस्थिरता या सुस्थिरता के बारे में समझ सकते है। परिवार समाज की लघु इकाई है जहाँ समान संस्कृति रखने वाले माँ, पिता, पुत्र, पुत्री एक साथ रहते है परिवार के सदस्यों का आपसी मेल एकता एवं सुखी जीवन के लिए आवष्यक होता है।

चूंकि परिवार का प्रारंभ विवाह से ही माना जाता है तो इस संदर्भ में लक्ष्मीनारायण लाल जी ने अपने नाटक 'रात-रानी' के माध्यम से विवाह में दहेज प्रथा किस प्रकार से हमारे समाज के नैतिक मूल्य का ह्रास कर रही है दिखाते है नाटक के नायक कुन्तल और निरंजन की शादी रूपये के अभाव में नहीं होती तो कुन्तल कहती है "पति के घर वालों ने आठ हजार पूछे, पिता पांच हजार से ज्यादा न देने वाले थे, इसी कारण शादी का स्वप्न टूट गया।"[7]

उपरोक्त कथन में किस तरह का विषाद भरा है। कैसे एक अनैतिक मूल्य के अनुसरण में किसी की भावनाएँ खण्डित हो रही है। ऐसी ही तमाम विसंगतियाँ उस समय के नाटककारों द्वारा नाटकों में उजागर की जाती रही हैं।

नारी शोशण

नारी शोशण भी हमारे समाज का एक अनैतिक मूल्य ही रहा है जिसके आधार बनाकर हमारे नाटककारों ने इस समस्या को समाज के सामने रखा है। फिर चाहे वह लक्ष्मीनारायण लाल जी हो, उपेन्द्रनाथ अष्क जी हो या फिर मोहनराकेश जी। मोहनराकेश जी अपने नाटक 'आधे अधूरे' में सावित्री के जीवन का सजीव चित्रण किया है। सावित्री घर का सारा काम भी करती है और आफिस भी जाती है वह खिन्न रहती है वह कहती है "यहाँ पर सब लोग समझते क्या है मुझे? एक मशीन, जो सब के लिए आटा पीसकर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है और किसी के मन में जरा भी ख्याल नहीं है इस चीज के लिए कि कैसे मैं....."[8]

प्राप्त के प्रति ऊब और अप्राप्त के प्रति आकर्शण

आज का मानव वर्तमान में जीवन जीने के बजाय भविष्योन्मुखी बना रहता है जो यथार्थ है उसको ना मानते हुए आने वाले की प्रतीक्षा में सागर तट पर बैठा रहता हैं। और हम यह कह सकते है कि इसी चाह ने भारतवर्ष को गुलाम बनाया।

'वामाचार' नाटक का पुरुश पात्र पॉजिटिव विकृत आदत से ग्रस्त है। समाज की सभी मान्यताओं के विरुद्ध आचरण करने के लिए शायद उसकी सृष्टि हुई होगी वह विवाहित है परन्तु पत्नी के अतिरिक्त भी अनेक लड़कियों से यौन सम्पर्क रखता है। पॉजिटिव की पत्नी आकर पति से कहती है "तुम्हे एक औरत में एक ही परमानन्द मिलता है दूसरे परमानन्द के लिए किसी दूसरे के पास जाना पड़ता है।"[9]

महानगरीय परिवेश : मानवीय रिश्तों का ह्रास

स्वतंत्र भारत में उच्च शिक्षा प्राप्त युवक युवतियाँ नौकरी की तलाश में शहरों में बसने लगे तो नई समस्याएँ उत्पन्न होने लगी बेकारी से उत्पन्न समस्या युवक एवं युवतियों के गलत मार्ग पर ले जाने लगे चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने अपने नाटक 'न्याय की रात' में नायिका कमला के अनुभव को स्पष्ट किया है कि नौकरी प्राप्त करने के लिए कमला को हेमन्त नामक दुष्ट व्यक्ति के जाल में फंसना पड़ा।

आर्थिक धरातल पर मूल्य का विघटन

"रूपये का लोभ सब प्रकार की बुराईयों की जड़ है"[10]

स्वतंत्र भारत में आर्थिक असमानता व्याप्त थी मुट्ठी भर धनवान के पास में भारत की अधिकांशत: सम्पत्ति रहती थी करोड़ों लोग भूखे प्यासे मर रहे है यही आर्थिक असमानता हमारे नैतिक मूल्यों का भी हास करती है। देश की गरीबी और अभावग्रस्तता से उत्पन्न विसंगतियों पर लक्ष्मीकान्त वर्मा जी ने तीखा व्यंग्य किया है आप ने अपने नाटक 'रोशनी एक नदी' में नायिका 'कुंकुम' जो कि गरीबी और अभावग्रस्त जीवन व्यतीत कर रही है। वह अपनी विवशता निम्न शब्दों में व्यक्त करती है "मैं आज घर में बच्चों को भूखा सुला देती हूँ, उन्हें समझा देती हूँ कि तेरा बाप इंकलाब करने गया है लेकिन जब तुम रात को लौटते थे तो तुम्हारे हाथ में इंकलाब नहीं एक टूटा हुआ काला डिब्बा होता है।"[11]

राजनैतिक मूल्यों का विघटन

भारत के संविधान में प्रत्येक नागरिक कर्त्तव्यों में बताया गया है वह भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे परंतु स्वातंत्रोत्तर कालीन राजनैतिक परिवेश एकदम विशाक्त हो गया था और कहीं न कहीं समूचे राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता पर प्रश्न चिन्ह बन रहा था उसका प्रमुख कारण था वर्तमान के राजनीतिज्ञों का सत्ता लोलुप होना वह बस सत्ता के भूखे थे परन्तु उनसे कार्य कुछ भी नहीं होता था इस सब उपरोक्त बातों पर टिप्पणी करते हुए महीपसिंह जी ने कहा "हमने देखा कि कल तक त्याग और बलिदान की दुहाई देने वाले और देशभक्ति के तराने गाने वाले नेतागण सत्ता मिलते ही भूखे भेड़िये की तरह धन और यश कमाने पर टूट पड़ा है चारो तरफ एक अजीब सी अफरा तफरी है। कोई भी मौका चूकना नहीं चाहता समय रहते इतना एकत्र कर लेना चाहते है कि गद्दी न रहने पर भी किसी प्रकार की चिंता न रहे।"[12] ऐसे ही विषय को लेकर के श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जी ने 'बकरी' नाटक की रचना की। गांव के तीन डाकू कर्मवीर, सत्यवीर, एवं दुर्जनसिंह को नेता बनते हुए दिखाकर उस समय के राजनीति का मुखौटा उतार कर रख दिया सक्सेना जी ने लिखा है कि "बकरी हमारी स्वाधीनता की तलहट का चित्रण है वह तिलछट जो समय बीतने के साथ-साथ गहरी होती चली गई है।[13]

ऐसे ही स्वार्थी नेताओं का चित्रण लक्ष्मीनारायण लाल जी ने अपने नाटक अब्दुल्ला दीवाना में किया है। अब्दुल्ला दीवाना का चपरासी कहता है "जी हाँ पहले वह तिरंगे कपड़े पहनता था फिर लाल, सफेद, काला फिर लाल, फिर पीला, फिर गेरुआ फिर आए राम, गये राम। कहने लगा। एक ही रंग के कपड़े में 'रोज नहीं पहनूँगा, फिर वह हर रोज रंग बदलने लगा जी हाँ' रोज।।[14]

इस प्रकार हम देखते है कि स्वतंत्रोत्तर कालीन नाटककारों ने अपने नाटक के माध्यम से समाज के नैतिक मूल्यों में जो परिवर्तन आ रहा था। जो ह्रास हो रहा था उन तमाम पहलुओं को उस समय के नाटककारों ने अपने नाटकों के माध्यम से समाज के समक्ष यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। उस तमाम मूल्यों को दिखाया है। उससे उपजने वाले विशाद को दिखाया है, साथ ही हम किस तरह से अपने नैतिक मूल्योां का संवर्धन कर सकें उनको भी समझाने का प्रयास किया है। यह प्रयास कालगति के साथ-साथ साहित्य में भी निरंतर चलता रहा है। साहित्य निश्चित रूप से हमारे समाज को एक दर्पण दिखाने जैसा रहा है।

उपसंहार

व्यक्ति एवं समाज को प्रगति पथ पर सुरक्षा एवं शान्ति की ओर अग्रसर करने वाले नैतिक मूल्यों की महती आवश्यकता है। नैतिक मूल्यों की रिक्तता किसी भी समाज को खोखला कर देती है। क्योंकि नैतिक मूल्यों के अभाव में समाज अमानवीय रास्तों पर भटकता है इस प्रयास में डॉ. कैलाश वाजपेयी जी का विचार बहुत ही समीचीन ही प्रतीत होता है आप कहते है "एक बार जब मूल्यों में विघटन प्रारंभ हो जाता है तो उनका प्रभाव जीवन के हर क्षेत्र में पड़ने लगता है। यह प्रभाव कुछ इतना सर्वांगीण होता है कि आने वाली पीढ़ी इन्हें संस्कार के रूप में स्वत: ही ग्रहण करती चली जाती है।[15]

सच तो यह है कि मूल्यों, मान्यताओं, आदर्शों और चारित्रिक गुणों को न तो खरीदा जा सकता है न ही उधार लिया जा सकता है राष्ट्र के चरित्र का निर्माण बिना साधना तपस्या और सांस्कृतिक परिष्कार के संभव नहीं है। नाटककारों ने तत्कालीन समय में समाज में व्याप्त हर दृष्टिकोण का बहुत ही बारीकी से अध्ययन किया और अपने नाटक के माध्यम से उन समस्त विसंगतियों को उजागर किया जो हमारे समाज के नैतिक मूल्य का अनवरत उत्तरोत्तर ह्रास करती चल रही थी।

स्वातंत्रोत्तर युग के हिंदी नाटककारों ने मूल्यों के प्रति इस उदासीनता को, सामाजिक संबंधों की विछिन्नता को और व्यक्ति के मन की अकुलाहट को भली-भांति महसूस किया है और उसे अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की। लेखक की विशिष्टता समाज के अंदर पाए जाने वाले अंतर्विरोध को पहचानने में और उनके कारण मानव जीवन में होने वाली कठिनाईयों को महसूस करने में है।

स्वतंत्रोत्तर हिंदी नाटककारों ने वर्तमान समाज की सारी विषयताओं, विद्रपताओं की पहचान करने की भरसक कोशिश भी है इस कोशिश में वह बहुत हद तक सफल भी रहे है आप साहित्यकारों ने प्रत्यक्ष रूप में हर एक क्षेत्र में पनपने वाले मुख्य विघटन का चित्रण करते हुए उससे आने वाली विपत्तियों से अवगत कराया और मूल्यों` प्रति अपने श्रद्धा भाव को भी व्यक्त किया है। आप साहित्यकारों का यह प्रयास निश्चित रूप से सराहनीय है क्योंकि लेखक का बड़ा दायित्व यह है कि मनुष्य को उसकी मनुष्यता वापस कराये मनुष्य की जो मनुष्यता, जो नैतिक मूल्य लुप्त हो रहे है वह वापस आ जाए और मनुष्य अपने का आधुनिक करते हुए भी अपने नैतिक मूल्य का ह्रास न होने दें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिंदी साहित्य इतिहास लोक भारती प्रकाशन दसवां संस्करण 2014
2. हिंदी गद्य साहित्य, डॉ. रामचन्द्र त्रिपाठी, नवम् संस्करण-2014, विश्वविद्यालय प्रकाशन
3. रात-रानी, लक्ष्मीनारायण
4. आधे अधूरे, मोक्षराकेश
5. वामाचार, रमेश बख्शी, 1977
6. The Bible, I Jimothy 6:10, Revised Studied Versun 1952

7. रोशनी एक नदी, लक्ष्मीकान्त वर्मा, 1974
8. विद्रोह और साहित्य, सम्पादक नरेन्द्र मोहन, 1974
9. बकरी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना भूमिका
10. अब्दुल्ला दीवाना, लक्ष्मीनारायण लाल, 1973
11. आज का मनुष्य और यांत्रिक सभ्यता, डॉ. कैलाश वाजपेयी, ज्ञानोदय, 1963-64

(Footnotes)

1. हिंदी साहित्य इतिहास लोक भारती प्रकाशन दसवां संस्करण 2014
2. संस्कृत कृषि चौर के विद्यासुन्दर का हिंदी अनुवाद, हिंदी गद्य साहित्य, डॉ. रामचन्द्र त्रिपाठी, नवम् संस्करण-2014, विश्वविद्यालय प्रकाशन, पृष्ठ 350

4,5. हिंदी गद्य साहित्य, डॉ. रामचन्द्र त्रिपाठी, नवम् संस्करण-2014, विश्वविद्यालय प्रकाशन, पृष्ठ 469

5. रामचन्द्र हिन्दी-570
6. हिंदी साहित्य इतिहास लोक भारती प्रकाशन दसवां संस्करण 2014
7. रात-रानी लक्ष्मीनारायण, पृष्ठ 40
8. आधे अधूरे मोक्षराकेश, पृष्ठ 49
9. वामाचार, रमेश बख्शी, 1977 पृष्ठ 42
10. The Bible, I Jimothy 6:10, Revised Studied Versun 1952, pp 197
11. रोशनी एक नदी लक्ष्मीकान्त वर्मा, 1974, पृष्ठ 59
12. विद्रोह और साहित्य सम्पादक नरेन्द्र मोहन, 1974, पृष्ठ 35
13. बकरी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना भूमिका, 1974, पृष्ठ 14
14. अब्दुल्ला दीवाना, लक्ष्मीनारायण लाल, 1973, पृष्ठ 86
15. आज का मनुष्य और यांत्रिक सभ्यता, डॉ. कैलाश वाजपेयी, ज्ञानोदय, 1963-64, पृष्ठ 19

रमेशचन्द्र शाह के ललित निबंधों का आलोचनात्मक चिंतन

कृपा शंकर

शोध छात्र- हिन्दी, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)

शोध-सार

रमेश जी समय के प्रवाह के साथ है पर प्रवाह में बहने वाले नहीं है। प्रवाह को अपनी तरफ कुछ मोड़ने वाले हैं। उसे कुछ ऐसे किनारों की ओर ले जाने वाले हैं जिससे टकराने पर प्रवाह कुछ तीव्रतर हो सकें। विषयों की दृष्टि से निबन्धों में बड़ा वैविध्य है पर इन सबमें एक समान भाव-भूमि है। यह भावभूमि विचारों से कतराती नहीं। विचारों को आलोड़न करती है और हिन्दी के मन से अर्थात् एक व्यापक देश, काल चिन्तन के मन से इन्हें क्या रंगत मिल सकती है, वह रंगत देने की कोशिश करती है। मैं विश्वास पूर्वक कह सकता हूँ कि श्री रमेश चन्द्र जी ने हिन्दी के स्वभाव को अच्छी तरह समझा है और उस समझ के आलोक में भारत के राजनीतिक, आर्थिक और सॉस्कृतिक पूरे परिदृश्य को जांचा है। एक औपनिवेशिक मनोभाव के अजगर के मुँह से जीवित और साबुत निकलने पर भी कुछ त्रास घेरे रहते हैं। उस त्रास से घेरे में काटने में समय लगेगा। रमेश जी ने उसकी अच्छी शुरूआत की है। इसी दृष्टि से इस श्रृंखला की सबसे बड़ी प्रासंगिकता है।

शोध-प्रपत्र

हिन्दी के आधुनिक परिदृश्य से ऐसे निबन्ध लगभग विलुप्त हुए जा रहे हैं, जो अनुभव की गहराई को टटोलने के उपरान्त रचे गये हों, जिनमें विचारों की पर्याप्त ऊर्जा हो और जिनमें निबन्धकार की रचना दृष्टि की गहनता भी हो। संभव है यह बात बहुतों को अत्युकितपूर्ण या चौंकाने वाली लगे, लेकिन यह वास्तविकता एक दिन सभी के सामने खुलेगी ही। खोजने पर हिन्दी में अच्छी कविताएँ, अच्छी कहानियॉ, अच्छे उपन्यास मिल जायेंगे, लेकिन अनुभव की गहराई से उपजे कलापूर्ण निबन्ध कहॉ हैं, एक समय हमारे साहित्य में प्रमुखता से प्रतिष्ठित रही साहित्य की यह प्राणवान् विधा अब सारहीन होती प्रतीत हो रही है।

ऐसी स्थिति में भी कुछेक लेखक हैं, जो अपनी गहन साधना अनुभव व लगन से इस विधा को लुप्त होने से बचाने में जुटे हुए हैं। हिन्दी के कुछ गिने-चुने निबन्धकारों की रचनाओं में आज भी विचारों के नव-नवोन्मेशशाली प्रवाह के साथ अनुभूति का आस्वाद मिलता है। ऐसे लेखकों में रमेश चन्द्र शाह ने निश्चित अपना स्थान बनाया है, जिन्होंने इस विधा के माध्यम से पाठकों को निबन्धकार की सही रचना दृष्टि का आभास कराया है। वह दृष्टि, जो निबन्ध की विधा से ही प्रगट हो सकती है, कथा या विशुद्ध दार्शनिक चिन्तन के जरिए नहीं। अन्य विधाओं की ही भॉति इस विधा में भी इस लेखक ने विपुल सर्जन क्षमता प्रदर्शित की है।

निबन्धकार के रूप में शाह की रचना-दृष्टि पर स्व. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने उनके पहले ही संग्रह की समीक्षा करते हुए 1970 में 'दिनमान' के माध्यम से अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा था- "एक विषय के चारों ओर अनेक स्तरों पर मन:स्थितियों की अनेक करवटों के साथ, अनुभव और अध्ययन, भाव व विचार का गुम्फन आसान काम नहीं। सफल निबन्ध आपके अनुभव जगत् को तो उद्वेलित करते ही हैं, आपके ज्ञान-क्षेत्र का भी विकास करते हैं। कुट्टिचातन् (यज्ञेय) और विद्या निवास मिश्र के बाद रमेश चन्द्र शाह को इस शैली में सफलता मिली है।

रमेश चन्द्र शाह के निबन्धों के बारे में प्रसिद्ध समाजवादी विचारक एवं पत्रकार श्री रामेश्वर मिश्र 'पंकज' 'इतवारी पत्रिका' में कहते हैं- शाह के निबन्ध पढ़ते हुए हम एक ऐसे सृजनशील, अति संवेदनशील और पर्याप्त संयमी लेखक के व्यक्तिगत-रूपों के सामने होते हैं जो समकालीन विश्व कस सजग भारतीय सहभागी है: स्वधर्म की खोज कर रहा और स्वधर्म में प्रवृत्त भारतीय। जिसके अनुभूति रूप एक साथ सुपरिचित से भी गलते हैं और अनूठे-अद्वितीय भी, और जो निश्चय ही पाठक की संवेदना के श्रेयस्कर तत्वों को प्रतिसंवेदित करते हैं।

शाह के निबन्धों में विषय वस्तु का फलक काफी विस्तृत और गुंफन शक्ति बड़ी सहज है, जिससे इन निबन्धों की शैली प्रवाहमय बन गई है, लेकिन कुछ निबन्धों की भाषा में तत्सम शब्दों के आधिक्य के कारण पंडिताऊपन व बोझिलता बढ़ गई है। प्राय: कहा जाता है कि बोलचाल में प्रयुक्त होने वाली भाषा ही ललित निबन्ध की भाषा-प्रवाह को सजीव और स्वाभाविक बनाती है। इस दृष्टि से व्यंग्य लेखकों के निबन्ध अधिक सफल माने जाते हैं। शाह भी व्यंजनापूर्ण भाषा-सामर्थ्य के कारण सार्थक और प्रभावशाली निबन्ध लेखन में सफल हो सके हैं।

पहला ही निबन्ध-संग्रह होने के कारण अभी भाषा में वह परिपक्वता नहीं आ सकी है जो बाद के इनके नैबन्धिक विकास-क्रम में दृष्टिगोचर हुई। किन्तु सभी गुण बीज रूप में यहाँ विद्यमान अवश्य हैं। ताजगी और निर्मल स्फूर्ति और उत्साह इनमें पहाड़ी झरनों जैसा है जिन्हें आगे चलकर नदी के रूप में थिराना है धीरे-धीरे।

लेखक अपने इस साहित्यिक निबंध में पाठन की महत्ता बताते हैं किताबो की दनिया और सहज जीवन के मध्य भेद या विभिन्नता को बताते हैं। किताबों की दुनिया जो ऊँचे विचारों और कल्पनाओं की मोहक दुनिया है उससे कठोर गलाजत भरी यथार्थ दुनिया से कैसे साम्य बिठायें। पाठन की महत्ता बताते हुए लेखक कहते हैं "किताबों के साथ आदमी के रिश्ते का जिसमें किताबें जहाँ एक ओर संस्कारी जीवन के सौन्दर्य के प्रति आकर्षित करती है अपनी जहालत से खुद उबरने और अपने जैसे दूसरों को भी उबारने की प्रेरणा देती है वही वे बिच्छू की तरह डंग भी मारती हैं महत्त्वाकांक्षा जगा कर अपने परिवेश से काट भी देती हैं।"[1] यह भी मुमकिन है कि वे इस तरह का नशा जगा दे वास्तविक जीवन का सामना करने के लिए हमें अयोग्य बना दे। परन्तु फिर भी हम यह तो कह ही सकते हैं "न सही मरणोपरान्त जीवन काल मेंही साक्षात् जीवन के स्वर्ग अज़ैर नरक दोनों का अनुभव करने और रचने की प्रेरणा तो पुस्तकों से मिल ही जाती है।"[2] हमारी सभ्यता की कई सारी बुराइयों इस लिखा पढ़ी की क्षमता उजागर होने के बाद ही पनपी होंगी निरक्षरों के भोलेपन का नाजायज फायदा उइाना पढ़े लिखों के लिए आसान होता है। साथ ही यदि "पुस्तकें न होती तो केवल मानव संस्कृति और सभ्यता का विकास कुंठित हो जाता बल्कि पृथ्वी तल पर इधर उधर बिखरे हुए मानव समुदाय भी कभी एक दूसरे के निकट न आ पाते"[3] जिस विश्व संस्कृति का स्वप्न हम देखते हैं, उसकी कभ्ज़ी नौबत ही नहीं आती। पुस्तकें जीवन से निकलती हैं और वे ही हमें जीवन से दूर भी ले जा सकती हैं और ले भी जाती हैं जीवन को समझाने और स्वायत्त करने के लिए हमें पुस्तकों की मदद लेनी पड़ती है। "मानवीय बुद्धि ने पोथियाँ रच रच कर अपने सृष्टि ज्ञान और आत्मज्ञान का विस्तार किया है वही उसने जीवन को त्रस्त करने वाली समस्याएँ और उलझनें भी अंधाधुंध खड़ी कर दी हैं पर इन समस्याओं, उलझनों का क्या कोई निर्बुद्धि समाधान संभव है।"[4] बुद्धि ही बुद्धि की सीमाओं को भी उजागर कर देती है वह भी बुद्धि ही है जो मनुष्य को स्वयं बुद्ध की दासता से मुक्त करती हुई भक्तिमार्गी या ज्ञानमार्गी बनाती है और मोक्ष के चरम पुरूषार्थ की ओर धकेलती है "पुस्तकें मनुष्य की इसी चतुर्मुखी सांस्कृतिक मनीषा की उपज है।"[5] सचमुच पढ़ाके दिमाग एक रणक्षेत्र की तरह होता है जहाँ अनेक महारथी प्रतिभाएँ आ आकर टकराती रहती हैं ऐसा दिमाग इतना पुखता और गहरा हो जाता है कि आसानी से किसी की धौंस में नहीं आता। वह विचारों की दुनिया में हर विचार को उसकी सही जगह में और उसके उचित स्थान पर पहचान और रख सकता है। पुस्तक पन्थियों की बात ही निराली है वे न पोथी के पुजारी होते हैं, न अहम्मन्य सर्वेसर्वा। यह आनंद, यह ज्ञान औश्र यह जादू क्या किसी दूसरे माध्यम से संभव हो सकता है। कदापि नहीं पाठन विधा का अपना अलग ही महत्त्व है यह किसी भी युग में देश में कम नहीं हो सकता पाठन विधा से ही हम किसी भी देश की सभ्यता, संस्कृति और इतिहास की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं शब्द भाषा और लिखित सामग्री का लाभ हम केवल पढ़ने की आदत से ही उठा सकते हैं।

शैतान के बहाने निबन्ध संग्रह के बारे में स्वयं शाह कहते हैं कि ये निबन्ध शुद्ध व्यक्तित्व-रस वाले निबन्ध हैं, साथ ही 'आत्म निबन्ध भी। इन्हें 'अस्मिता-व्यंजक निबन्ध कहना भी शायद अधिक उपयुक्त लगे। ऐसा इसलिए, कि दृष्ठा और दृश्य के सम्बन्ध भाव को अस्मिता कहा जाता है। ये निबन्ध उस चित्तभूमि की अभिव्यक्ति है, जो दृष्टा और दृश्य दोनों के प्रति जाग्रत और जिज्ञासु हैं।

"शैतान के बहाने' संग्रह का अन्तिम और सबसे लम्बा निबन्ध है। निबन्ध की प्रकृति मूलत: बौद्धिक है और इस भारी विचारात्मक बोझ को वहन करने की असमर्थता में निबन्धकार की निजी शैली के नाजुक गुण प्रखर तार्किकता के लिए एरीना छोड़कर दीवार से लगे दर्शक की हैसियत में खड़े रहे गये हैं। निबन्ध में भारतीय और पश्चिमी मनीषा के द्वन्द्व और उनके पारस्परिक प्रभावों का अच्छा विश्लेषण है। समन्वयवादी प्रकृति के लिए प्रसिद्ध हिन्दू संस्कृति ने ईसाई संस्कृति के अनुकूल तत्वों को फिर अपने ढंग से अपने भीतर समाहित किया है। राममोहन राय, रामकृष्ण विवेकानन्द, गाँधी और अरविन्द जो भारतीय चिन्तन के प्रतिनिधि ऋषि हैं, 'जातीय अस्मिता की दिशा...आत्म-विस्तार की, प्रकृति नियन्त्रण की, जिजीविषा और महत्वाकांक्षा की है", "पश्चिमी सभ्यता, संस्कृति बुद्धिसम्मत और बुद्धिप्रेरित है जिसकी परिणति 'निहिलिज्म' में होना स्वाभाविक है।"[6]

'शैतान के बहाने' निबन्ध-संग्रह के कई निबन्ध समसामयिक विचार प्रवाहों, घटनाओं या उनकी व्याख्याओं से सँजोकर रचे गए हैं। इन निबन्धों की अर्थवत्ता केवल विचार सूत्रों को फैलाने या सुलझाने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सूत्रों की आधुनिक संवेदना के अनुकूल कुशल संयोजन इनमें अधिक महत्वपूर्ण है। शाह इनके माध्यम से सम्पूर्ण भारतीय चिन्तन को निरन्तर वाणी देते हैं। उन्हें भीतर तक इस बात का अहसास है कि गद्य को कवियों का निकष कहा गया है। आज भी निबन्ध गद्य की कसौटी है। 'गद्य कवीनाम् निकर्ष वदन्ति' कहा गया है, तो गद्य की विविध विधाओं में भी निबन्ध लेखन में सफला सबसे बड़ी कसौटी है।

जहाँ एक ओर कवि अपनी संवेदना सघनता को लय में ढाल कर निढाल हो जाता है, वहीं दूसरी ओर निबन्धकार विचारों की सघनता को व्यक्तित्व की स्वतंत्रता से मुक्त कर देता है। पिछले वर्षों में यह कार्य रामचन्द्रशुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों ने बखूबी निभाया है। विचारों की संवेद-सघनता में बँधना, फिर बीच-बीच में उनसे अपने को अलग करना, नियंत्रण में रहना-यह चुनौतीपूर्ण अपेक्षा निबन्धकार से की जाती है। इसी कारण अच्छे निबन्ध बहुत कम लिखे जाते हैं। जो निबन्ध यह चुनौती स्वीकार कर लिखे जा सके हैं, उनका अपना अलग ही इतिहास रहा है। शाह इसी निबन्ध-परम्परा को दृढ़ता के साथ आगे बढ़ाते प्रतीत होते हैं। उनके इस संकल्प की प्रतीति उनके इन निबन्धों के भीतर से गुजरने पर बार-बार होती है।

शाह के निबन्धों में अपनी मौलिक प्रवृत्तियाँ हैं जो भारतीय निबन्ध की प्रकृति के स्वतंत्र विकास की दिशा सूचित करती हैं। भारतीय तथा विदेशों की विभिन्न भाषाओं के पठन-अध्ययन की प्रवृत्ति के कारण इस निबन्धकार की शैली में नवीनता आयी है। 'शैतान के बहाने' निबन्ध में वे देश-विदेश के आर पार जाते हैं- 'यह एकिलीज की एड़ी थी जो गाँधी की आँखों के आगे नंगी हो गयी थी। दुखती रग तो वह यूरोप की तब बनी जब गाँधी की उस भर्त्सना के दस-बारह साल बाद उस शाप सरीखों स्वभावोबित को चरितार्थ करने को ही मानो यूरोप के हृदय में हिटलर का उदय हुआ।

व्यक्ति के अंतरंगता स्थापित कराने के साथ अन्दर के आमदी से मिला देना ही इन निबन्धों की शक्ति है। इनका लक्ष्य लालित्य नहीं, चिन्तन का गहरे स्तर पर संस्कार है। इन व्यक्ति-व्यंजक निबन्धों में व्यक्ति सतह पर मौजूद नहीं रहता, सतह के नीचे रहता है। ये वे अनुभव हैं जो व्यक्तिबद्धता के घेरे को तोड़कर पाठक से आत्मीय संवाद करते हैं। यह दुर्निवार्य साझेदारी ही इनकी विस्तृत होती सामूहिकता है। निबन्धकार का 'मैं' अनुभवी कथाकार और कथानक दोनों बनकर आता है। यह 'मैं' कभी भी 'हम' का विरोधी नहीं है और यही पश्चिम के व्यक्तिव्यंजक निबन्धों से इन ललित निबन्धों का मूल भेद है।

हिन्दी में विजय देव नारायण साही, रघुवंश और निर्मल वर्मा के कुछ निबन्धों में शुद्ध वैज्ञानिक विश्लेषण और मुक्त चिंतन की प्रखर तेजस्विता की पहल दिखी है। यदि यह आत्ममन्थन सच्चा और ईमानदार है तो हमें भीतर से बदलेगा भी। एक दायित्वबोध भी देगा। श्री शाह लिखते हैं-

"अपने समूचे व्यक्तित्व की एकाग्र प्रतिश्रुति के बिना जो
कुछ सोचा, कहा, जिया, महसूसा जाता है, वह सब झूठा और
जूठा है और इस विराट झूठ के अनन्त छन्द में लिपटे ही चुकते
जाने की विवशता को ढोते हुए भी उसे तद्रूप जानना, उसमें गर्क
हो जाने की अश्लीलता से इन्कार करना ही बोध है, जो चाहे
भले ही निरन्तर और निश्चयात्मक न हो, विरल और क्षणिक
हो तो भी हर प्रकार से वरेण्य है।"

सही मायने में शाह का 'मैं' समस्त जातीय चेतना का वाहक, बल्कि नायक है। इन निबन्धों की बात चाहे सामान्य अनुभव की हो, साहित्य की हो, तत्व-चिन्तन की हो, कला मिथक की हो, दर्शन के लीलाभाव की हो, लोकवार्ता की हो-वे इन सभी को पाठक की जातीय-स्मृति में अंकित करना चाहते हैं। इसलिए निबन्धकार का परिवेश, जानी-पहचानी कहानियाँ सभी को एक सूत्र में पिरो देता है और पूरा निबन्ध एक तराशी हुई सौन्दर्य संवेदना का सृजन कम बन जाता है।

संदर्भ सूची

1. शाह रमेशचन्द्र, पढ़ते-पढ़ते, पृष्ठ 10
2. शाह रमेशचन्द्र, पढ़ते-पढ़ते, पृष्ठ 11
3. शाह रमेशचन्द्र, पढ़ते-पढ़ते, पृष्ठ 11
4. शाह रमेशचन्द्र, पढ़ते-पढ़ते, पृष्ठ 12
5. शाह रमेशचन्द्र, पढ़ते-पढ़ते, पृष्ठ 12
6. शाह रमेशचन्द्र, शैतान के बहाने, पृष्ठ 102
7. शाह रमेशचन्द्र, शैतान के बहाने, पृष्ठ 109

'गुरू ग्रंथ साहिब' में कुदरत की अवधारणा

जसप्रीत कौर

शोधार्थी (पीएच.डी) , हिन्दी विभाग, देश भगत विश्वविद्यालय,
मंडी गोबिंदगढ़, पंजाब

डॉ० अजयपाल सिंह

(शोध-निर्देशक) हिन्दी अध्यक्ष, देश भगत विश्वविद्यालय, मंडी गोबिंदगढ़, पंजाब

कुदरत का अर्थ

'कुदरत' अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है- शक्ति, समर्था, ताकत। ईश्वरीय शक्ति, प्रकृति, रचना, महिमा माया।[1] तुर्की (तुरकश) भाषा में इसको अकालपुरख की शक्ति अथवा सृष्टि के लिए भी प्रयोग किया गया है। 'कुदरत' को 'प्रख्रति' भी कहा गया है। 'प्रख्रति शब्द लैटिन भाषा के शब्द 'नटुरा' या 'छनजनतं' से बना है अर्थात् आवश्यक गुणों, जन्मजात स्वभाव। प्राचीन काल में इसका अर्थ है- जन्म। प्रख्रति को भिन्न-भिन्न नामों से भी पुकारा जाता है- कुदरत, निर्सग और वेदान्त में इसको महामाया कहा गया है।

कादिर का अर्थ

'गुरू ग्रंथ साहिब' के अनुसार, 'कादिर' शब्द अरबी भाषा से लिया गया है जिसका अर्थ है- कुदरत वाला, शक्तिवर, समर्थवान।[2] इसलिए इसे गुरबाणी में करतार, परमात्मा के लिए प्रयोग किया गया है।

कुदरत की अवधारणा

'गुरू ग्रंथ साहिब' में कुदरत की अवधारणा पहले से ही मौजूद है। गुरमति के अनुसार कुदरत 'अकालपुरख' की सृजना है और वह स्वयं निवास कर रहा है। कुदरत या प्रख्रति अत्यंत व्यापक है। इसके कलावे में कादिर को छोड़ और सब कुछ इसमें समा जाता है। जो मनुष्य अपने आस पास देखता है, सुनता है, सब कादिर की कुदरत है। प्रथम पातशाह श्री गुरू नानक देव जी ने 'आसा दी वार' में लिखा है, "सो करता कादर करीमु दे जीआ रिजकु संबाहि।" अर्थात् वह स्वयं ही सृजनहार है, स्वयं ही कुदरत का मालिक है, वह स्वयं ही बख़्शिश करने वाला है और स्वयं ही जीवों को रिज़क देने वाला है। यह भऊ सुखों का मूल है, यह भी उसकी ही कुदरत है। यह सारा आकार अर्थात् यह सारा जगत् जो दिख रहा है, सब कुदरत का खेल है। वेद, पुराण तथा और सभी धार्मिक पुस्तकें और इनमें अंकित सभी विचार कुदरत है। मनुष्य के खान-पान, पहनावा और जगत् में सारा प्यारा सब कुदरत की देन है। 'आसा दी वार' में प्रथम पातशाह गुरू नानक देव जी फरमाते हैं:

कुदरति दिसै कुदरति सुणीयै कुदरति भऊ सुख सारु।।
कुदरति पाताली आकासी कुदरति सरब आकारु।।
कुदरति खाना पीणा पैनण् कुदरत सरब पिआरु।।[3]

(वार आसा महला 1, अंग 464)

जाति, वस्तुएँ, रंगों में, सृष्टि के जीव सभी कुदरत का फल है। जगत् में कहीं भलाई के काम हो रहे हैं, कहीं विकार है, तो कहीं किसी का आदर हो रहा है, कहीं अहंकार प्रधान है। यह सब कुदरत का खेल है। पवन, पानी, अग्नि, धरती आदि तत्व यह सब कुदरत की देन है अर्थात् सब उसका ही खेल है। सब उसकी ही कला है। वह इस खेल का रचयिता है। उसकी बडियाई सच्ची और सुची है, वह स्वयं पवित्र है।

कुदरति जाती जिनसी रंगी कुदरति जीअ जहान।।
कुदरति नेकीआ कुदरति बदीआ कुदरति मानु अभिमानु।।
कुदरति पऊणु पानी बैसंतरु कुदरति धरती खाकु।।
सब कुदरति तुं कादिरु करता पाकी नाई पाकु।।[4]

(वार आसा, महला 1, अंग 464)

अर्थात् यह सारी कुदरत को वह अकालपुरख अपने हुक्म में रखकर सभी की देखभाल कर रहा है। अकालपुरख ही सृष्टि का कर्ता व जगत् का निर्माता है। दूसरे पातशाह गुरू अंगद देव जी का फरमान है:

इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु।।
इकन्ा हुकमि समाइ लये इकन्ा हुकमे करे विणासु।।
इकन्ा भाणै कढ़ि लये इकन्ा माइआ विचि निवासु।।[5]

(वार आसा महला 2, अंग 463)

अर्थात् यह जगत् ईश्वर के रहने की जगह है और ईश्वर ही इसमें निवास कर रहा है। वह कई जीवों को अपने हुक्म अनुसार अर्थात् इस संसार से बचाकर अपने चरणों में जोड़ लेता है और जब वह चाहे कई जीवों को अपने हुकम अनुसार ही इसमें डुबो देता है। कई जीवों को अपनी रज़ा अनुसार माया के मोह से निकाल लेता है और बहुतों को माया के मोह में फँसाई रखता है। उस अकालपुरख की कुदरत ब्यान नहीं की जा सकती।

सृष्टि सत्य, मिथ्या नहीं

गुरबाणी के अनुसार यह सृष्टि सत्य है, कुछ भी मिथ्या नहीं है। उस अकालपुरख के पैदा किये हुए यह खण्ड और ब्रह्माण्ड भी सच्चे हैं, वह जगत् का पालनहार और सारी सृष्टि का कर्ता धरता है। 'आसा दी वार' में पहले पातशाह गुरू नानक देव जी का फरमान है:

सचे तेरे खण्ड सचे ब्रह्मंड।।
सचे तेरे लोअ सचे आकार।।[6]

(वार आसा महला 1, अंग 463)

अर्थात् गुरू नानक देव जी कहते हैं कि परमात्मा के बनाए हुए खण्ड, ब्रह्माण्ड, लोक, आकार, जीव-जंतु का क्रम भ्रम रूप नहीं है, बल्कि यह सत्य परमात्मा की सत्य रचना है। मोटे रूप से सृष्टि का यह क्रम अनादि और शाश्वत नियम है।

प्रकृति भी सत्य है

गुरबाणी में यह बात स्पष्ट रूप से कही गई है कि प्रख्रति में निवास करने वाले अकालपुरख की कुदरत भी सच्ची है और यह कभी समाप्त न होने वाली क्रिया है। जो जीव उस सच्चे और अविनासी ईश्वर का स्मरण करते हैं वे भी सत्य हैं। प्रथम पातशाह गुरू नानक देव जी कहते हैं:

सची तेरी कुदरति सचे पातिसाह।।[7]

(वार आसा महला 1, अंग 463)

प्रकृति का विधान अटल है। मनुष्य को प्रकृति बहुत कुछ देती है पर जब वह प्रकृति के साथ छेड़-छाड़ करता है तो वह विनाश का रूप धारण कर लेती है।

सृष्टि का निर्माण

सृष्टि का निर्माण अकालपुरख के द्वारा हुआ है वह स्वयं कुदरत में निवास करता है। अकालपुरख ने पेड़-पौधों, फूलों में रंग भरे और प्रख्रति को सुंदर बनाया है। हवा भी उसके हुक्म में चलती है जो मनुष्य को प्राण वायु देती है। उसने अपने जगत् महल में चांद और सूरज दो दीये रखे हैं। चंद्रमा के घर में सूरज समाया हुआ है जिसकी किरणें चंद्रमा पर पड़कर पूरे जगत् को रोशनी देती है। प्रथम पातशाह गुरू नानक देव जी का कथन है:

भार अठारह मालणि तेरी।।
चउरु ढुलै पवणै लै फेरी।।
चंदु सूरजु दुइ दीपक राखे
ससि घरि सूरु समाइदा।।[8]

(मारू महला 1, अंग 1033-34)

अर्थात् वह ईश्वर जगत् का पालनहार है। सृष्टि का निर्माता है जो भी काम हो रहा है वह उसके हुक्म में रहकर हो रहा है।

प्रकृतिः अनश्वर एवं नाश रहित

जहां तक ईश्वर की अनश्वरता और प्रकृति की नश्वरता का सवाल है, इसके बारे में यही कहा जा सकता है। प्रख्रति का रूप भले ही परिवर्तित होता रहता है लेकिन

प्रकृति के पाँचों तत्व अर्थात् पृथ्वी, वायु, अग्नि, जल और आकाश भी अनश्वर अर्थात् नाश रहित है। पाँचवें पातशाह गुरू अरजन देव जी ने कहा है:

धरती आकासु पातालु है चंदु सूरु बिनासी।।[9]

(मारू महला 5, अंग 1100)

उपर्युक्त सलोक में पाँचवें पातशाह ने यह बात स्पष्ट रूप से कही है कि धरती, आकाश पाताल चांद और सूरज-यह भी नाश रहित है। जब अधिकांश मनुष्य सृष्टि और जीव सृष्टि नष्ट हो जाती है, तब भी पृथ्वी रहती है वायु तो रहती ही है और आकाश भी नाश नहीं होता।

कुदरतः अकालपुरख की सृजना

गुरबाणी के अनुसार कुदरत का सृजनहार स्वयं अकालपुरख है। प्रख्रति ने मनुष्य को इतना कुछ दिया है कि वह सोच भी नहीं सकता। धरती पर जीवन भी

प्रकृति के कारण ही संभव है। ब्रह्माण्ड में और भी ऐसे कई ग्रह हैं, प्रख्रति के बिना जीवन संभव नहीं है। स्थान के अनुसार कुदरत अपना रंग रूप बदलती रहती है। प्रथम पातशाह गुरू नानक देव जी अकालपुरख की कुदरत को देखकर स्वयं विस्मय-विमुग्ध हैं:

पुरखां बिरखां तीरथां वटां मेघां खेतांह।।
दीपां लोआं मडलां खंडा वरभंडांह।।
अंडज जेरज ऊतभुजां खाणी सेतजांह।।
सो मिति जाणै नानका सरां मेरां जंताह।।
नानक जंत ऊपाइ कै संभाले सभनाह।।
जिनि करतै करणा कीआ चिंता भि करणी ताह।।
सो करता चिंता करे जिनि ऊपाइआ जगु।।
तिसु जोहारी सुअसति तिसु तिसु दीबाणु अभगु।।[10]

(सलोक महला 1, अंग 467)

गुरबाणी कहती है कि उस अकालपुरख के ही यह सारे जीव-जंतु पैदा किये हुए हैं। वही जगत् का निर्माता है, वही दिन रात उसकी देखभाल कर रहा है वृक्ष, तीर्थ, तट, बादल, खेत, दीप, लोक, मंडल, खंड, ब्रह्माण्ड आदि कोई भी उसकी शक्ति का अंदाजा नहीं लगा सकता है।

सृष्टि का सृजनहार

अकालपुरख अपनी रची सष्टि में पूर्ण तौर पर व्यापक है। पूरी सृष्टि पर वह अपना ही हुक्म चला रहा है। कोई भी जीव उस अकालपुरख की ताकत का अंदाजा नहीं लगा सकता। वह अपने पैदा किये हुए जीवों पर अपना ही हुक्म चला रहा है और उनको सहारा देता है। प्रथम पातशाह गुरू नानक देव जी का फरमान है:

कुदरति करनैहार अपारा।।
कीते का नाही किहु चारा।।
जीअ ऊपाइ रिजकु दे आपे
सिरि सिरि हुकमु चलाइआ।।[11]

(मारू महला 1, अंग 1042-43)

अर्थात् उस अकालपुरख की ताकतों का कोई भी प्राणी अंदाजा नहीं लगा सकता। कोई जीव उसकी ताकत के आगे टिक नहीं सकता। उसके पैदा किये हुए जीव की पेश नहीं जा सकती।

कुदरत में कादिर

कादिर स्वयं कुदरत में बसा हुआ है। वह अकालपुरख हर जगह व्यापक है। वह इतना बड़ा है कि उसका अंत नहीं पाया जा सकता। प्रथम पातशाह श्री गुरू नानक देव जी अकालपुरख द्वारा सिरजी गई कुदरत को देखकर स्वयं हैरान है।

प्रकृति के महत्त्वपूर्ण तत्वों का निर्माण- पवन, पानी, अग्नि, धरती

प्रकृति के महत्त्वपूर्ण तत्वों- धरती, पवन, पानी, अग्नि का निर्माण अकालपुरख ने स्वयं किया है। मनुष्य शरीर का निर्माण भी इन्हीं पाँच तत्वों से मिलकर हुआ है। प्रथम पातशाह गुरू नानक देव जी कहते हैं:

पवणै पाणी जाणै जाति।।
काइआं अगिन कारे निभरांति।।
जंमहि जीअ जाणै जे थाऊ।।
सुरता पंडितु ता का नाऊ।।[12]

(मलार महला 1, घरु 2, अंग 1256)

उपर्युक्त श्लोक में गुरू साहिब कहते हैं कि यदि मनुष्य हवा, पानी इत्यादि तत्वों के मूल अकालपुरख को जान ले अर्थात् जिसने इसका निर्माण किया है, वह उसके साथ गहरी सांझ पा सकता है। अपने शरीर की तृष्णा-आग को शांत कर ले, उसके साथ जान पहचान कर ले जिससे यह सारे जीव पैदा हुए हैं, उस मनुष्य का नाम सियाना पंडित रखा जा सकता है।

संसार उद्यान के समान

गुरबाणी में कहा गया है कि यह संसार एक बगीचा है जिसमें सृजनहार ने अनेक प्रकार के पौधे लगाये हुए हैं। भिन्न-भिन्न रंगों के जीव पैदा किये हुए हैं और इनके अंदर से आत्मिक जीवन देने वाला नाम जल सिंचा जा रहा है। वह अकालपुरख सिरजनहार हर एक पौधे के पत्ते-पत्ते और डाली-डाली की देखभाल करता है। पाँचवें पातशाह श्री गुरू अरजन देव जी फरमाते हैं:

ऐकु बगीचा पेड घन करिया।।
अँमृत नामु तहा महि फलिया।।[13]

(आसा महला 5, अंग 385)

पाँचवें पातशाह गुरू अरजन देव जी आगे फरमाते हैं:

सिंचनहारे ऐकौ माली।।
खबरि करतु है पात पात डाली।।
सगल बनस्पति आणि जडाई।।
सगली फूली निफल न काई।।[14]

(आसा महला 5, अंग 385)

अर्थात् उस सृजनहार माली ने इस जगत् रूपी बगीचे में सारी वनस्पति लाकर सजा दी है। रंग-बिरंगे जीव पैदा कर इस संसार रूपी बगीचे को सुंदर और मनमोहक बना दिया है।

कुदरतः अकालपुरख का नियंत्रण

ऋषि-मुनियों का सदियों से ही प्रख्रति के साथ गहरा लगाव रहा है। वह अपना ज्यादा से ज्यादा समय प्रख्रति के साथ बिताते थे। क्योंकि वह जानते थे कि प्रख्रति ईश्वर की देन है।

अकालपुरख के नियंत्रण में है प्रकृति

'अकालपुरख' प्रकृति अथवा कुदरत का सिरजक ही नहीं है बल्कि इसके समस्त क्रियाकलाप पर नियंत्रण भी 'अकालपुरख' (अकालपुरख का अर्थ है- गुरमति में परमात्मा को 'अकालमूरति' और 'करता-पुरख' माना गया है) का ही है अर्थात् गुरबाणी में अकालपुरख को निर्मल कहा गया है। 'आसा दी वार' में प्रथम पातशाह फरमाते हैं कि वायु 'अकालपुरख' के भय (नियंत्रण) में बहती है। लाखों दरिया उसके भय में बहते हैं। अग्नि, धरती, सूरज, चंद्रमा आदि सब उसके नियंत्रण में काम कर रहे हैं:

भै विचि पवणु वहै सदवाऊ।।
भै विचि चलहि लख दरिआऊ।।
भै विचि अगनि कदै वैगारि।।
भै विचि धरती दबी भारि।।
भै विचि इंदु फिरै सिर भारि।।
मैं विचि राजा धरम दुआरु।।
भै विचि सूरजु भै विचि चंदु।।
कोह करोड़ी चलत न अंतु।।
भै विचि सिध बुध सुर नाथ।।
भै विचि आडाणे आकास।।[15]

(वार आसा महला 1, अंग 464)

परमात्मा के भय में ही आग बेगार कर रही है। सिध, बुद्ध, नाथ, देवते सारे अकालपुरख के भय में हैं। समस्त पृथ्वी परमात्मा के भय के भार के कारण दबी है अर्थात् अपनी मर्यादा में स्थित है।

गुरबाणी में प्रकृति का महत्त्व

गुरबाणी का स्पष्ट आशय है कि धरती 'अकालपुरख' के नियंत्रण में काम कर रही है। आकाश भी उसके नियंत्रण में है। चांद और सूरज उस गुणों के खजाने 'अकालपुरख' के नियंत्रण में कार्य कर रहे हैं। वायु, पानी, आग आदि तत्व भी 'अकालपुरख' के नियंत्रण में काम कर रहे हैं। सारी सृष्टि ही

'अकालपुरख' की 'रज़ा' में चल रही है। 'रज़ा' अर्थात् 'रज़ा' अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है- परमात्मा की प्रसन्नता, खुशबूदी, भाणा या इच्छा।[16] 'गुरू ग्रंथ साहिब' में इसका प्रयोग ईश्वरीय इच्छा या भाणे के लिए हुआ है- "रब्ब की रजाइ मंने सिर ऊपरि करता मंने आप गवावै।।" (ग.ग्र.सा. अंग 141)। सारे खण्ड, दीप मंडल, पाताल सारे उसके नियंत्रण में रहकर काम कर रहे हैं। सारे पशु, पक्षी आदि जीव, जंगल और अडोल टिके हुए पहाड़, बेलें, वृक्ष की शाखाएँ सभी अकालपुरख के 'हुक्म' में काम कर रहे हैं। 'हुक्म' अर्थात् गुरबाणी में हर जगह पर 'हुक्म' को मानने की बात की गई है। 'हुक्म' अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है- आज्ञा, फरमान, आदेश।[17] गुरमति में 'हुक्म' से सारी सृष्टि की उत्पत्ति मानी गई है, "हुकमी होवनि आकार हुकम न कहिआ जाई।।" पाँचवें पातशाह श्री गुरू अरजन देव जी का कथन है:

सिमरै धरती अरु आकासा।।
सिमरहि चंद सूरज गुणतासा।।
पऊण पाणी बैसंतर सिमरहि सिमरै सगल ऊपारजना।।
सिमरहि खंड दीप सभि लोआ।।
सिमरहि पाताल पुरीआ सचु सोआ।।
सिमरहि खाणी सिमरहि बाणी सिमरहि सगले हरि जना।।[18]

(मारू सोलहे महला 5, अंग 1078-79)

इसलिए बड़ी साफ सी बात है कि प्रख्रति या कुदरत की रक्षा करना, उसका संरक्षण करना दरअसल 'अकालपुरख' की 'रज़ा' और 'हुक्म' का सम्मान करना है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि 'गुरू ग्रंथ साहिब' में कुदरत की अवधारणा बहुत पहले से ही मौजूद रही है। जिस पर्यावरण चेतना की बात आज विकसित देश कर रहे हैं वह वैदिक काल से ही भारतीय मनीषा का मूल आधर रही है। यहां तक कि कुरान, भगवद्गीता में भी प्रख्रति अर्थात् कुदरत की ईश्वर के रूप में मान्यता दी गई है। 'गुरू ग्रंथ साहिब' में 'कुदरत' को 'अकालपुरख' की सृजना माना गया है। गुरमति के अनुसार, 'अकालपुरख ने स्वयं सारी सृष्टि की रचना की है और वह स्वयं उसमें निवास कर रहा है और सब जीवों की सम्भाल करता है। उस अकालपुरख की कुदरत अनंत है जिसका कोई भी प्राणी उसकी ताकत का अंदाजा नहीं लगा सकता। कुदरत के सबसे महत्त्वपूर्ण तत्वों- वायु, पानी, आग, धरती, पाताल, आकाश आदि की रचना अकालपुरख ने की है। वायु अकालपुरख के भय में बहती है, लाखों दरिया उसके भय में बहते हैं। अग्नि, धरती, सूरज, चंद्रमा सब उसके नियंत्रण में हैं। अकालपुरख ने भिन्न-भिन्न रंगों और नस्लों के जीव-जंतु पैदा कर उस कुदरत को सुंदर बनाया है और उसकी सम्भाल भी वह स्वयं करता है और सारे जीव उसके हुक्म में काम कर रहे हैं। वही उनको रिज़क देने वाला है। उसकी कुदरत सच्ची है, वह अकालपुरख स्वयं सच्चा है जिसका अंत नहीं पाया जा सकता। इस प्रकार 'गुरू ग्रंथ साहिब' मनुष्य को सम्पूर्ण दृष्टि प्रदान करने वाला एक महान् पवित्र ग्रंथ है। हमारे जीवन का कोई पक्ष, कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जिससे संबंधित दिशा निर्देश और मार्गदर्शन हमें 'गुरू ग्रंथ साहिब' में न मिलता हो। इस प्रकार 'कुदरत' से संबंधित स्पष्ट धारणाएँ 'गुरू ग्रंथ साहिब' में पहले से ही मौजूद हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. रतन सिंह जग्गी, 'गुरू ग्रंथ साहिब विश्वकोश' भाग-1, (पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी युनिवर्सिटी, पटियाला, 2002), पृष्ठ 344
2. वही, पृष्ठ 324
3. गुरू नानक देव, 'वार आसा महला 1, गुरू ग्रंथ साहिब', अंग 464
4. वही, अंग 464
5. गुरू अंगद देव, 'वार आसा महला 2, गुरू ग्रंथ साहिब', अंग 463
6. वही, अंग 463
7. वही, अंग 463
8. गुरू नानक देव, 'मारू महला 1, गुरू ग्रंथ साहिब', अंग 1033-34
9. गुरू अरजन देव, 'मारू महला 5, गुरू ग्रंथ साहिब', अंग 1100
10. गुरू नानक देव, 'सलोक महला 1, गुरू ग्रंथ साहिब', अंग 467
11. गुरू नानक देव, 'मारू महला 1, गुरू ग्रंथ साहिब', अंग 1042-43
12. गुरू नानक देव, 'मलार महला 1, घरु 2, गुरू ग्रंथ साहिब', अंग 1256
13. गुरू अरजन देव, 'आसा महला 5, गुरू ग्रंथ साहिब', अंग 385
14. वही, अंग 385
15. गुरू नानक देव, 'वार आसा महला 1, गुरू ग्रंथ साहिब', अंग 464
16. डॉ. रतन सिंह जग्गी, 'गुरू ग्रंथ साहिब विश्वकोश' भाग-1, (पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी युनिवर्सिटी, पटियाला, 2002), पृष्ठ 412
17. वही, पृष्ठ 287
18. गुरू अरजन देव, 'मारू सोलहे महला 5, गुरू ग्रंथ साहिब', अंग 1078-79

आदिवासियों में अंधविश्वास की समस्या और उसका औपन्यासिक प्रतिफलन

डॉ० उमेश कुमार पाण्डेय

सहायक प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय महाविद्यालय बलरामपुर, जिला-बलरामपुर-रामानुजगंज (छ0ग0)

शोध-सारांश

भारत की प्राय: सभी जनजातियों में अंधविश्वास की समस्या पायी जाती है। उनके दैनिक जीवन के बहुत से क्रियाकलाप अंधविश्वासों से संचालित होते हैं। आदिवासियों का विश्वास है कि उनकी छोटी-छोटी गलतियों से देवता नाराज होते हैं और प्राकृतिक प्रकोप तथा महामारियाँ आती हैं। इन्हीं के निराकरण के लिए वे तमाम धार्मिक कर्मकाण्डों का सहारा लेते हैं। जन्म, विवाह, मृत्यु, भवन निर्माण आदि अनेक अवसरों पर पूजा-पाठ संपन्न किये जाते हैं। आदिवासी भूत-प्रेत और झाड़-फूँक पर भी अत्यधिक विश्वास करते हैं। यहां तक की बहुत सी बीमारियों का इलाज भी अंधविश्वास के चलते झाड़-फूँक से करते हैं। इसका दुश्परिणाम यह होता है कि उचित इलाज के अभाव में रोगी की स्थिति दिनों-दिन गंभीर होती जाती है। उत्तरी छत्तीसगढ़ में पीलिया का इलाज झाड़-फूँक से करने की प्रथा देखी जाती है। कई बार इसके कारण रोगी की मृत्यु भी हो जाती है। देश के अन्य भागों में भी झाड़-फूँक से बीमारियों का ईलाज किया जाता है। गोंड जनजाति में यह समस्या काफी अधिक है। गोंडों में गाँव का 'सिरहा' अनिष्टों के निवारण के लिए तरह-तरह के अनुष्ठान करता है। राजस्थान की करनट जनजाति भी भूत-प्रेतों के निवारण के लिए तरह-तरह के उपाय करती है। इसके लिए वे मंत्रों को सिद्ध करते हैं और अपने देवताओं को जगाते हैं। इस तरह अशिक्षा और जागरूकता के अभाव में अधिकतर जनजातियाँ गहरे अंधविश्वास की शिकार हैं। टोना-टोटका के शक में टोनही की हत्या की खबरें आये दिन अखबारों में छपती रहती हैं। इसके कारण प्राय: आदिवासी और शेष समाज के बीच विवाद की स्थिति भी बनती है।

Keywords : ओझा, झाड़-फूँक, जादू-टोना, भूत-प्रेत, अशिक्षा, जागरूकता, बीमारी, बैगा, बलि, बुरी नजर, प्रेतात्मा।

भारतीय समाज में आदिवासी ऐसा वर्ग है जहां पर अंधविश्वास की समस्या आज भी गंभीर है। इन अंधविश्वासों का विस्तार उनके जीवन के लगभग हर क्षेत्र तक है। प्रकृति पर अत्यधिक निर्भरता और अशिक्षा तथा जागरूकता के अभाव में कई बार यह अंधविश्वास जानलेवा साबित होता है। आये दिन समाचार पत्रों में अंधविश्वास जनित दुर्घटनाओं की खबरें प्रकाशित होती रहती हैं। भारत की प्राय: सभी जनजातियों में अंधविश्वास की समस्या पायी जाती है। उनके दैनिक जीवन के बहुत से क्रियाकलाप अंधविश्वासों से संचालित होते हैं। आदिवासियों का विश्वास है कि उनकी छोटी-छोटी गलतियों से देवता नाराज होते हैं और प्राकृतिक प्रकोप तथा महामारियाँ आती हैं। इन्हीं के निराकरण के लिए वे तमाम धार्मिक कर्मकाण्डों का सहारा लेते हैं। जन्म, विवाह, मृत्यु, भवन निर्माण आदि अनेक अवसरों पर पूजा-पाठ संपन्न किये जाते हैं। आदिवासी भूत-प्रेत और झाड़-फूँक पर भी अत्यधिक विश्वास करते हैं। यहां तक की बहुत सी बीमारियों का इलाज भी अंधविश्वास के चलते झाड़-फूँक से करते हैं। इसका दुश्परिणाम यह होता है कि उचित इलाज के अभाव में रोगी की स्थिति दिनों-दिन गंभीर होती जाती है। उत्तरी छत्तीसगढ़ में पीलिया का इलाज झाड़-फूँक से करने की प्रथा देखी जाती है। कई बार इसके कारण रोगी की मृत्यु भी हो जाती है। देश के अन्य भागों में भी झाड़-फूँक से बीमारियों का ईलाज किया जाता है।

नागा और हो जनजाति के लोग शकुन विचारने पर विश्वास करते हैं। हो जनजाति के लोग शकुन-अपशकुन को विचारने के बाद ही विवाह करते हैं। विवाह के लिए जाते समय कुत्ते द्वारा जमीन खरोंचने तथा शिशु जन्म को ये लोग अपशकुन मानते हैं। इसी तरह नागा जनजाति के लोग बीमारियों के समय सुअर तथा मुर्गे की बलि देकर देवता को प्रसन्न करते हैं। शत्रु पक्ष को पराजित करने के लिए बिल्ली की बलि दी जाती है। जबकि सामान्यत: बिल्ली मारना निषिद्ध माना गया है। इसी तरह भारत की लगभग हर जनजाति भूत-प्रेत, जादू-टोने आदि में विश्वास करती है। गोंड जनजाति में यह समस्या काफी अधिक है। गोंडों में गाँव का 'सिरहा' अनिष्टों के निवारण के लिए तरह-तरह के अनुष्ठान करता है। राजस्थान की करनट जनजाति भी भूत-प्रेतों के निवारण के लिए तरह-तरह के उपाय करती है। इसके लिए वे मंत्रों को सिद्ध करते हैं और अपने देवताओं को जगाते हैं। अनेक जनजातियों में कष्टों के निवारण के लिए ताबीजों का सहारा लिया जाता है। इस तरह अशिक्षा और जागरूकता के अभाव में अधिकतर जनजातियाँ गहरे अंधविश्वास की शिकार हैं। टोना-टोटका के शक में टोनही की हत्या की खबरें आये दिन अखबारों में छपती रहती हैं। इसके कारण प्राय: आदिवासी और शेष समाज के बीच विवाद की स्थिति भी बनती है। मध्य भारत की कई जनजातियों में यह कुप्रथा पाई जाती है।

आदिवासी भूत-प्रेतों पर अत्यधिक विश्वास करते हैं और उनके दुश्प्रभावों के निराकरण के लिए तरह-तरह के उपाय करते हैं। वे झाड़-फूँक में भी विश्वास करते हैं और प्राय: उनके यहाँ यह कार्य ओझा के माध्यम से संपन्न होता है। आदिवासियों में अंधविश्वास की यह प्रथा प्राचीन काल से विद्यमान रही है। बाहरी समाज से कटे होने के कारण विकास का लाभ आदिवासियों तक नही पहुंच पाया, जिसके कारण उनकी सामाजिक गतिविधियां परंपरागत ढंग से चलती रहीं। शगुन-अपशगुन का विचार और अनेक अवसरों पर बलि देने की परंपरायें आदिवासी जीवन संस्कृति का हिस्सा रही हैं। बाद में चलकर इन परंपराओं

ने बुराई का रूप धारण कर लिया और आदिवासियों का रोजमर्रा का जीवन प्रभावित होने लगा। इससे विभिन्न प्रकार की विसंगतियां पैदा हुई। अंधविश्वास के कारण कई आदिवासी समुदाय अपने बच्चों को शिक्षित करने में भी रूचि नही दिखाते।

आदिवासी समाज में व्याप्त अंधविश्वास के प्रसंग प्राय: सभी जनजाति केन्द्रित उपन्यासों में आये हैं, क्योंकि ये चीजें अतार्किक होने के बावजूद परंपरागत रूप से आदिवासियों की संस्कृति का हिस्सा रही हैं। बस्तर के जनजातीय जीवन पर केन्द्रित उपन्यास 'सूरज किरन की छांव' में वहां के जनजातियों में व्याप्त अंधविश्वासों की चर्चा की गयी है। उपन्यास में एक ओझा अंग्रेज अफसर से एक घटना का वर्णन करते हुए कहता है-''हां, हुजूर। जब पटेल के घर लड़का हुआ, तो उसकी छाती पर एक उल्लू बैठा था। पटेल की बड़ी लड़की साल्हो ने उसे ढेला मारा तो वह ढेला उठाकर ले भागा। उसी के बाद लड़का दिन-दिन घुलने लगा।''[1]

आदिवासी ज्यादातर बीमारियों को भूत-प्रेतों का प्रभाव मानते हैं। उनको लगता है कि भूत-प्रेत शरीर के अंदर प्रवेश कर बीमारी पैदा करते हैं और धीरे-धीरे कर आदमी को मारते हैं। 'शैलूष' उपन्यास का गोवर्धन नट अपने बेटे सुरजीत के बीमार होने पर कहता है-''सुरजितवा जबसे बीमार है तब से जाने कितने ओझा-ओझहत चिल्लाकर कह चुके हैं कि यह मरी (चमाइन की प्रेतात्मा) है। मैंने कहा कि भाभी, कमालपुर के डॉक्टर-वैद से कुछ न होगा। हम जानते हैं कि पिछले बीस साल से जब जिरिया चमाइन को चोरी के जुलुम में हमारे बाप ने मार डाला, तभी से यह रोग हमारे घर आया। मेरे बाप को ऐसा ही सरेशाम हुआ, और वह दो महीने बुखार से तड़प-तड़पकर मरा। वैसा ही सरेशाम सुरजीत का भी हो गया है।''[2] आदिवासी समाज में प्रेतात्मा से बीमारियों को जोड़कर देखने का दुश्प्रभाव यह होता है कि वे बीमारियों का इलाज ओझा आदि से कराने के चक्कर में पड़े रहते हैं और डाक्टर के पास नहीं जाते, फलत: उनकी बीमारी धीरे-धीरे बढ़ती जाती है और कई बार मृत्यु हो जाती है। यह भी देखने में आता है कि वे डॉक्टर की बजाय ओझा की बातों में अधिक विश्वास करते हैं। जिसके कारण मरीज का सही ईलाज नही हो पाता। कई बार ओझा भी अपना हित साधने के लिए आदिवासियों की अज्ञानता का लाभ उठाते हैं। भूत-प्रेत उतारने के नाम पर वे आदिवासियों से धन ऐठते हैं। कई आदिवासी तो कर्ज लेकर भी इस धन की व्यवस्था करते हैं। इससे वे ऋणी भी बन जाते हैं जो कि नए तरह की समस्या को जन्म देता है।

'जंगल के फूल' उपन्यास में गोंड जनजाति के जीवन में व्याप्त अंधविश्वास की चर्चा की गयी है। दुर्गम इलाकों में निवास करने और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से दूर रहने के कारण गोंडों के जीवन में अभी भी परंपरागत मान्यतायें हावी हैं। उपन्यास में अंग्रेज अफसर और गांव के गायता के बीच संवाद से इस जाति में व्याप्त अंधविश्वास का पता चलता है-

गोरे ने पूछा - 'ये नारानडेव कौन डेव?'

गायता को जैसे अब गोरे की बात समझ में आ गयी थी। बोला-''सिरकार, यह बीमारियों का राजा है। सारी बीमारियां इसी के कहने पर चलती हैं। सारे भूत-प्रेतों का यह मालिक है। चुड़ैल इसके इशारे पर नाचती है।''[3] बहुत सारी विचित्र किस्म की मान्यताएँ इनके समाज में पायी जाती हैं जैसे, इन लोगों का विश्वास है कि झाड़-फूँक करने-कराने से संतान प्राप्ति हो सकती है। इसी प्रकार शेर की आँख में जादू होना, शरीर पर गुदना गुदवाने से मरने के बाद नरक की यंत्रणा से मुक्ति मिलना और 'कोरी देवी' को सिर झुकाकर गाँव में प्रवेश करना भी इनके सहज विश्वास हैं। पराये गांव की मोटियारी का अपने गांव लौटते समय पलट कर देखना, नृत्य के समय किसी चेलिक के सिर में बंधे मोर पंख का गिर जाना और विशेष अवसर पर शिकार पर गये हुए चेलिकों का खाली हाथ लौट आना इनके यहां अशुभ संकेत माना जाता है। गोंड जीवन में व्याप्त इन अंधविश्वासों पर डॉ. बंसीधर लिखते हैं-''साधारणतया यह जाति अज्ञान और अंधविश्वासों से भरा-पूरा जीवन जीने की आदी है। प्रकृति के तत्वों से भय खाने वाली है। अनेक तरह के देवी-देवताओं की पूजा और बलि से प्रसन्न रखने में ही यह अपनी सुरक्षा समझती है। झाड़-फूँक और टोने-टोटके में इसका सहज विश्वास है।''[4] छत्तीसगढ़ के बस्तर अंचल में आज भी विकास की पहुंच धीमी है। शिक्षा और जागरूकता के अभाव में वहां की जनजातियां गहरे अंधविश्वास की शिकार हैं। गोंड़ जनजाति के विभिन्न वर्गों में यह समस्या अधिक देखने को मिलती है। कई बार इस अंधविश्वास के कारण लोगों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ता है।

'काला पादरी' उपन्यास में तेजिन्दर छत्तीसगढ़ के सरगुजा जिले की उरांव जनजाति में व्याप्त अंधविश्वास की चर्चा करते हैं। उरांवों में पारंपरिक ओझा के रूप में मान्यता प्राप्त बैगा के झाड़-फूँक का रोचक वर्णन करते हुए तेजिन्दर लिखते हैं-''बैगा के हाथ में झाड़ू है। उसने लाल रंग की लुंगी पहन रखी है। वह नंगे पांव है। उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई है। उसने अपने माथे पर राख मल रखी है। उसके कंधों पर मोर पंख लटक रहे हैं। वह चीख रहा है। उसकी चीख की भाषा समझ से बाहर है। वह बार-बार नीचे लिटाये गये आदमी के इर्द-गिर्द चक्कर काटता है और चीखता है। शायद वह यह कहना चाह रहा है कि इस आदमी के शरीर में कोई प्रेतात्मा है, जिसे वह अपने मंत्रों के प्रभाव से बाहर निकाल देगा और यह व्यक्ति उसके प्रभाव से पूरी तरह मुक्त हो जाएगा।''[5] इस अंचल में टोना-टोटका का चलन अधिक दिखता है। कई बार टोना सामाजिक विवाद का कारण बनता है। बदले की भावना से प्रेरित लोग टोनही के शक में आदिवासी स्त्रियों की हत्या तक कर देते हैं। इस आशय की खबरें अक्सर स्थानीय अखबारों में छपती रहती हैं। अंधविश्वास के कारण निर्दोष आदिवासियों को अपनी जान गंवानी पड़ती है। यहां यह उल्लेखनीय है कि शेष समाज के लोग भी कई बार उसी अंधविश्वास के शिकार होते हैं जिसके शिकार आदिवासी हैं।

'पठार पर कोहरा' उपन्यास में मुंडा जनजाति में व्याप्त अंधविश्वासों की चर्चा की गयी है। गजलीठोरी गाँव के लोग रंगेनी से इसलिए डरते हैं क्योंकि वह झाड़-फूँक और जादू-टोने में पारंगत है- ''लोग जानते हैं कि रंगेनी के घर के आसपास नासान बोंगाओं की दुष्ट आत्माएं बसेंड़ लिए बैठी हैं। आँधी, बाढ़, अकाल, जंगल की आग या मवेशियों के रोग सब नासान बोंगाओं की बुरी नजर से होती हैं। सारे नासान बोंगा रंगेनी के इष्ट हैं। कहीं भगतिनियाँ खिसिया गयी तो काली बिल्ली बनकर बैरी के घर में पेस (प्रविष्ट) जाती है। सोये आदमी का अंगूठा चाटकर उसकी उमर चुरा लेती है -- फिर तो मरना तय है।''[6] स्पष्ट है कि अंधविश्वास के शिकार लोग केवल बीमारियों को ही अनिष्ट का परिणाम नही मानते बल्कि प्राकृतिक प्रकोप का कारण भी वे बुरी आत्माओं के असर को मानते हैं। इससे बचने के लिए आदिवासी तरह-तरह के आडंबर और अनुष्ठान का सहारा लेते हैं। अक्सर उनके लिए ये मानसिक त्रासदी का कारण बनता है।

बुंदेलखंड की कबूतरा जनजाति में भी अंधविश्वासों की झलक दिखाई पड़ती है। कबूतरा समाज देश के अत्यंत पिछड़े समाजों में से एक है और आज भी उनके समूचे परिवेश में परंपरागत मान्यताएं हावी हैं। 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में लेखिका कहीं-कहीं पर अंधविश्वासों की चर्चा करती हैं। राणा का भूत उतारने आये गुनिया के क्रियाकलाप का वर्णन करते हुए लेखिका लिखती हैं -

''गुनियाँ!

गुनिया जानता है वीर देवता उनका देव है। वीर देव की स्थापना की। लिपी हुई चबूतरी पर बेर के पत्ते, पान का पत्ता, गुड़ और बकरी का खून चढ़ाया। रोटी का चूरमा और लाल कपड़ा। मद और तेल पास में रखा। गुनियाँ आग लहकाता जाता, खून के छींटे देता जाता। कागजी आदमी, डेढ़ पसली की गुनियाँ। देवता आ गया उसके ऊपर। बलवान पहलवान की तरह पुख्तापन से तन गया।''[7] झाड़-फूँक करने वाले भूत-प्रेत उतारने के चक्कर में अजीबो-गरीब हरकते करते हैं। इससे रोगी ठीक तो नही ही होता, आस-पास के वातावरण में भी डर पैदा हो जाता है।

इस तरह हम देखते हैं कि वर्तमान समय में भी जागरूकता और शिक्षा के अभाव के कारण बहुत से अंधविश्वास आदिवासी समाज में प्रचलित हैं। आदिवासी संस्कृति का हिस्सा होते हुए भी कई बार ये अंधविश्वास उनके लिए आत्मघाती सिद्ध होते हैं। इन अंधविश्वासों के कारण आदिवासियों का स्वाभाविक विकास बाधित होता है। आज इस बुराई से मुक्ति के लिए शिक्षा का अधिकतम प्रसार, जन-जागरूकता में वृद्धि और आदिवासियों के मध्य वैज्ञानिक चेतना के प्रचार-प्रसार की नितांत आवश्यकता है। तभी इस बुराई से सही मायने में मुक्ति संभव है।

संदर्भ

1. अवस्थी, राजेन्द्र, सूरज किरन की छांव, पृष्ठ 92, संस्करण 1979
2. सिंह, शिवप्रसाद, शैलूष, पृष्ठ 86, प्रथम संस्करण 1989
3. अवस्थी, राजेन्द्र, जंगल के फूल, पृष्ठ 18, संस्करण 1976
4. डॉ. बंशीधर, हिन्दी के आंचलिक उपन्यास : सिद्धांत और समीक्षा, पृष्ठ 159, प्रथम संस्करण 1983
5. तेजिन्दर, काला पादरी, पृष्ठ 71, प्रथम संस्करण 2005
6. सिंह, राकेश कुमार, पठार पर कोहरा, पृष्ठ 75, द्वितीय संस्करण 2005
7. पुश्पा, मैत्रेयी, अल्मा कबूतरी, पृष्ठ 51, प्रथम पेपरबैक संस्करण 2004

बाँसवाड़ा जिले की साक्षरता : एक तुलनात्मक विश्लेषण (जनगणना 2001 व 2011 पर आधारित)

मनोज कुमार यादव

शोधार्थी (भूगोल), महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय,
अजमेर (राजस्थान)

सारांश

शिक्षा जैसी अमूल्य धरोहर का मानव जीवन के सर्वांगीण विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान है। शिक्षा से सतत् पर्यावरण विकास और समावेशी विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। 21वीं सदी के इस प्रथम दशक में अध्ययन क्षेत्र में साक्षरता का तुलनात्मक रूप से कम विस्तार हुआ है। बाँसवाड़ा जिले की साक्षरता राष्ट्रीय तथा राज्य के साक्षरता स्तर से निम्न है जिसका मुख्य कारण आदिवासी संस्कृति, गरीबी, स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या, जागरूकता की कमी तथा शैक्षिक आधारभूत संरचना का अभाव आदि हैं। वही तुलनात्मक रूप से साक्षरता वृद्धि दर की गति उच्च है जिससे यह आशा है कि यह जिला भी राष्ट्रीय व राज्य साक्षरता स्तर के समकक्ष आ जाऐगा।

प्रस्तावना

शिक्षा में ज्ञान, उचित आचरण, तकनीकी दक्षता, विवेक, तर्कशक्ति और शिक्षण समाविष्ट हैं। शिक्षा, समाज में सदैव चलने वाली सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है। मानव जीवन रूपी ढाँचा ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना है। मानवीय जीवन के दो प्रमुख पहलू हैं। प्रथम पहलू जिसमें जैविक व जीवों से निमित्त (इसमें मानव की जैविक जरूरत व क्रियाऐं शामिल की जाती हैं।) तथा दूसरा जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक पक्ष सम्मिलित हैं। जहाँ जीवन के विकास एवं संवर्द्धन के लिए भोजन एवं प्रजनन जैविक जीवन को बनाऐं रखने के लिए आवश्यक हैं, वही मानव जीवन में शिक्षा सामाजिक, सांस्ख्रतिक एवं आर्थिक विकास व सरंचना के लिए आवश्यक है। वर्तमान परिदृश्य में शिक्षा भी रोटी, कपड़ा और मकान आदि की तरह मूलभूत आवश्यकता बनती जा रही है। निरक्षरता या अशिक्षा मानव को अज्ञानी, विवेकहीन, रुढ़िवादी व धर्म भीरू बनाती है, साथ ही अशिक्षा उसके स्वाभिमान पर भी कुठाराघात करती है। निरक्षरता से समाज आधुनिक युग में विकास की गति में पिछड़ जाता है तथा इसका प्रभाव विशेषकर ग्रामीण अंचल तथा महिलाओं पर पड़ता है जो कि राष्ट्र के समावेशी विकास एवं अर्थव्यवस्था के लिए अशुभ संकेत होता है। निरक्षरता व अज्ञानता के कारण गरीबी एवं मानसिक एकाकीपन आता है। जिससे शान्तिपूर्ण एवं मैत्रीपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों, आर्थिक विकास एवं राजनैतिक प्रौढ़ता में अवरोध आता है।

शिक्षा व्यक्ति के उन गुणों का विकास करती है जिससे वह अपनी समस्याओं का समाधान कर सके एवं अपने पर्यावरण से सामंजस्य स्थापित कर सके। इसी महत्ता के कारण भारत में 86वें संविधान संशोधन द्वारा 6-14 आयु वर्ग के प्रत्येक बच्चे को मुक्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार दिया गया है तथा नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 01 अप्रैल, 2010 से सम्पूर्ण भारत में लागू किया गया। शिक्षा का तात्पर्य मनुष्य की चेतना शक्ति व विवेक हेतु आत्मविश्वास या आत्मबोध से है जबकि साक्षरता अकादमिक शिक्षा है जो हमें सूचना और ज्ञान प्रदान करती है। साक्षरता का तात्पर्य है पढ़ने व लिखने की क्षमता से युक्त होना है अर्थात् वह व्यक्ति जिसकी आयु 7 साल या इससे अधिक हो और वह किसी भाषा को समझकर पढ़-लिख सके साक्षर कहलाता है। साक्षरता का अन्य जनांकिकीय लक्षणों जैसे- उत्पादकता, मर्त्यता, लिंगानुपात, व्यवसाय आदि पर भी प्रभाव पड़ता है इसलिए साक्षरता प्रतिरूप, समाज के सामाजिक व आर्थिक विकास की गति का सूचक है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन क्षेत्र बाँसवाड़ा की स्थिति साक्षरता में दयनीय है। यहाँ का साक्षरता स्तर विशेषकर महिलाओं का राष्ट्र व राज्य से बहुत पिछड़ा हुआ है। इस पिछड़ेपन का मुख्य कारण गरीबी, बीमारी, अज्ञानता तथा आर्थिक विकास का न होना है। वर्तमान में स्थानीय प्रशासन व सरकार इस क्षेत्र में विकास के लिए निरन्तर प्रयासरत है तथा साक्षरता वृद्धि दर भी तुलनात्मक रूप से अधिक है जिससे यह प्रदेश भी अपने पिछड़ेपन के अतीत से बाहर निकल आयेगा। इसमें गोविन्द गुरु जनजाति विश्वविद्यालय बाँसवाड़ा की भी अहम भूमिका रहेगी।

अध्ययन क्षेत्र

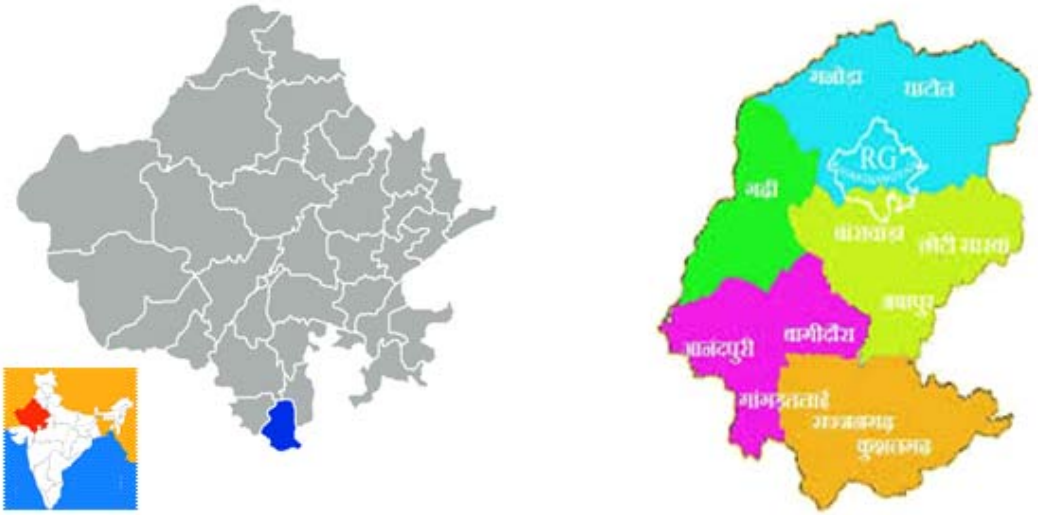

प्रस्तुत शोध अध्ययन राजस्थान के बाँसवाड़ा जिले की साक्षरता का तुलनात्मक विश्लेषण (जनगणना 2001 व 2011 पर आधारित) तक सीमित है। राजस्थान के सुदूर दक्षिणी भाग में स्थित बाँसवाड़ा जिला प्रदेश का सीमान्त जिला है। इस जिले की आख्रति चतुष्कोणीय है। इसके दक्षिण पूर्वी भाग में मध्यप्रदेश राज्य के रतलाम व झाबुआ जिलों की सीमाऐं, दक्षिण में गुजरात राज्य के दाहोद जिले की सीमा, पश्चिम में डूँगरपुर जिले की तथा उत्तर में प्रतापगढ़ जिले की सीमा है। बाँसवाड़ा जिला 23°11' उत्तरी अक्षांश से 23°56' उत्तरी अक्षांश तथा 73°58' पूर्वी देशान्तर से 74°47' पूर्वी देशान्तरों के मध्य स्थित है। इस जिले का क्षेत्रफल 5037 वर्ग किलोमीटर है। जिल में वर्तमान में 11 तहसील, 11 विकास ब्लॉक, 346 ग्राम पंचायते और 1532 गाँव हैं। "सौ द्वीपों के शहर" के नाम से प्रसिद्ध इस जिले की मुख्य नदी माही तथा जलवायु आर्द्र है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. राजस्थान के बाँसवाड़ा जिले में पिछले एक दशक में साक्षरता दर में हुए तुलनात्मक परिवर्तन का अध्ययन करना।
2. बाँसवाड़ा जिले में साक्षरता की यथास्थिति का ब्लॉकवार विश्लेषण करना।

साक्षरता में बाँसवाड़ा जिले की राष्ट्र व राज्य के संदर्भ में स्थिति

बाँसवाड़ा जिले की कुल साक्षरता दर का तुलनात्मक अध्ययन

क्षेत्र	कुल साक्षरता व वृद्धि दर प्रतिशत में		
	2001 में	2011 में	वृद्धि दर
भारत	64.84	74.04	9.20
राजस्थान	60.41	66.11	5.70
बाँसवाड़ा	45.54	56.33	10.79

(स्त्रोत: भारतीय जनगणना प्रतिवेदन 2001 व 2011)

जनगणना 2001 के अनुसार भारत की साक्षरता दर 64.84 प्रतिशत थी, जो 2011 में बढ़कर 74.04 प्रतिशत हो गई। इस एक दशक में वृद्धि दर 9.20 प्रतिशत रही। राजस्थान की साक्षरता दर 2001 में 60.41 प्रतिशत थी जो 2011 में 5.7 प्रतिशत की दर से बढ़कर 66.11 प्रतिशत हो गई। वही जिले की साक्षरता दर 45.54 प्रतिशत से बढ़कर 56.33 प्रतिशत हो गई तथा 10.79 प्रतिशत की वृद्धि दर रही।

बाँसवाड़ा जिले की पुरुष साक्षरता दर का तुलनात्मक अध्ययन

क्षेत्र	पुरुष साक्षरता व वृद्धि दर प्रतिशत में		
	2001 में	2011 में	वृद्धि दर
भारत	75.26	82.14	6.88
राजस्थान	75.70	79.19	3.49
बाँसवाड़ा	61.50	69.48	7.98

(स्त्रोत : भारतीय जनगणना प्रतिवेदन 2001 व 2011)

वर्ष 2001 में भारत की पुरुष साक्षरता दर 75.76 प्रतिशत थी जो 6.88 प्रतिशत की दर से बढ़कर 82.14 प्रतिशत हो गई। इसी प्रकार राजस्थान की पुरुष साक्षरता दर 2001 में 75.70 प्रतिशत थी, जो 3.49 प्रतिशत की वृद्धि दर से 2011 में 79.19 प्रतिशत हो गई। वही अध्ययन क्षेत्र बाँसवाड़ा जिले की पुरुष साक्षरता 61.50 प्रतिशत से बढ़कर 69.48 प्रतिशत हो गई तथा वृद्धि दर 7.98 प्रतिशत रही।

बाँसवाड़ा जिले की महिला साक्षरता दर का तुलनात्मक अध्ययन

क्षेत्र	महिला साक्षरता व वृद्धि दर प्रतिशत में		
	2001 में	2011 में	वृद्धि दर
भारत	53.67	65.46	11.76
राजस्थान	43.85	52.12	8.27
बाँसवाड़ा	29.22	43.06	13.84

(स्त्रोत : भारतीय जनगणना प्रतिवेदन 2001 व 2011)

कुल साक्षरता व पुरुष साक्षरता के साथ ही जिले की महिला साक्षरता दर में भी वृद्धि राष्ट्र व राज्य की तुलना में बेहत्तर रही। 2001 में राष्ट्रीय महिला साक्षरता दर 53.67 प्रतिशत थी, जो 11.76 प्रतिशत की दर से बढ़कर 65.46 प्रतिशत हो गई। इसी प्रकार राजस्थान की महिला साक्षरता दर 2001 में 43. 85 प्रतिशत थी जो 8.27 प्रतिशत की दर से बढ़कर 52.12 प्रतिशत हो गई। वही बाँसवाड़ा जिले की महिला साक्षरता 2001 में मात्र 29.22 प्रतिशत थी जो 2011 में बढ़कर 43.06 प्रतिशत हो गई। महिला साक्षरता की दशकीय वृद्धि दर 13.84 प्रतिशत रही।

जिले की दशकीय साक्षरता वृद्धि दर का विश्लेषण

कुल साक्षरता, पुरुष साक्षरता तथा महिला साक्षरता की वृद्धि में राष्ट्र, राजस्थान तथा शोध क्षेत्र बाँसवाड़ा जिले का प्रदर्शन भिन्न-भिन्न रहा है। सिर्फ वृद्धि दर की बात की जाऐ तो बाँसवाड़ा जिले की वृद्धि दर बेहत्तर रही जिससे भविष्य में यह आदिवासी जिला भी राष्ट्र व राज्य के साक्षरता स्तर तक जल्द ही पहुँच जाऐगा।

साक्षरता वृद्धि दर का तुलनात्मक आरेख (वृद्धि दर प्रतिशत में)

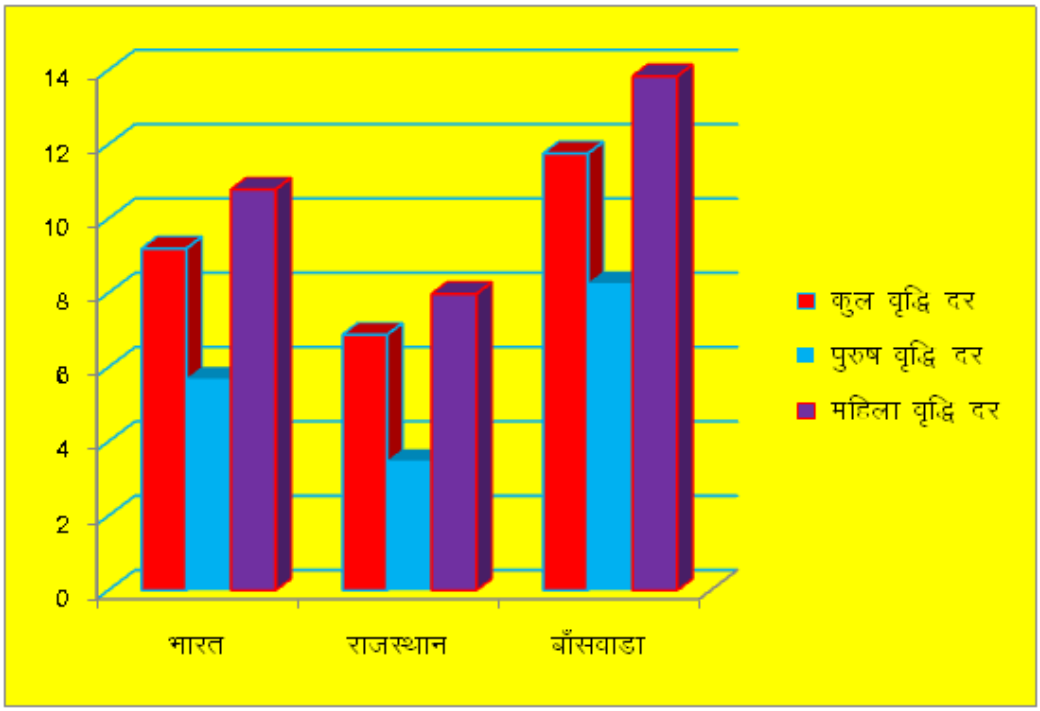

भारतीय जनगणना 2001 व 2011 में भारत की कुल दशकीय साक्षरता वृद्धि दर 9.20 प्रतिशत, पुरुष साक्षरता वृद्धि दर 6.88 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता वृद्धि दर 11.76 प्रतिशत रही। राजस्थान की कुल साक्षरता वृदि दर 5.7 प्रतिशत, पुरुष साक्षरता वृद्धि दर 3.49 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता वृद्धि दर 8.27 प्रतिशत रही। इसी प्रकार बाँसवाड़ा जिले की कुल साक्षरता वृद्धि दर 10.79 प्रतिशत, पुरुष साक्षरता वृद्धि दर 7.98 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता वृद्धि दर 13.84 प्रतिशत रही। इस प्रकार हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि बाँसवाड़ा जिले का साक्षरता स्तर तुलनात्मक रूप से कम है लेकिन वृद्धि दर अपेक्षाकृत अधिक है।

बाँसवाड़ा जिले में ब्लॉक स्तर पर साक्षरता की स्थिति

जनगणना 2011 के अनुसार जिले में साक्षरता का स्तर ब्लॉकवार भी विषमता लिए हुए है। 2011 की जनगणनानुसार बाँसवाड़ा जिले में कुल आठ ब्लॉक (जिले में वर्तमान में 11 ब्लॉक हैं।) हैं। जिनमें से गढी, बाँसवाड़ा तथा बागीदौरा ब्लॉक का साक्षरता स्तर अन्य ब्लॉको की तुलना में उच्च है। वही कुशलगढ़, छोटी सरवन तथा सज्जनगढ़ ब्लॉक का साक्षरता स्तर जिले के औसत से काफी कम है जो चिन्ता का विषय है।

ब्लॉक स्तर पर साक्षरता की स्थिति (2011 की जनगणनानुसार)

ब्लॉक	कुल साक्षरता	पुरुष	महिला
घाटोल	53.65	68.79	38.62
गढ़ी	62.79	76.38	49.09
बाँसवाड़ा	56.99	72.68	41.16
छोटी सरवन	46.16	59.03	32.85
आनन्दपुरी	54.15	66.83	41.25
बागीदौरा	54.55	67.62	41.30
कुशलगढ़	42.23	54.14	30.34
सज्जनगढ़	49.99	62.82	36.97

(स्त्रोत : आर्थिक एवं सांख्यिकीय विभाग, बाँसवाड़ा)

तालिका अवलोकन से पता चलता है कि गढ़ी ब्लॉक की साक्षरता की स्थिति सबसे बेहत्तर है। यहाँ कुल साक्षरता दर 62.79 प्रतिशत, पुरुष साक्षरता दर 76.38 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता दर 49.09 प्रतिशत है। जिसका मूल कारण यहाँ की सामाजिक व आर्थिक स्थिति ठीक होना है। वहीं सबसे कम साक्षरता कुशलगढ़ ब्लॉक की है। यहाँ पर कुल साक्षरता दर 42.23 प्रतिशत, पुरुष साक्षरता दर 54.14 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता दर सिर्फ 30.34 प्रतिशत है। इसका कारण यहाँ अनुसूचित जनजाति का अधिक होना है जो अभी तक समाज की मुख्यधारा में नहीं लोट सके हैं।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन क्षेत्र बाँसवाड़ा की साक्षरता दर में पिछले एक दशक से लगातार वृद्धि हुई है। स्त्री साक्षरता तुलनात्मक रूप से पुरुषो से बहुत ही कम है। जिसका मुख्य कारण स्त्रियों का कार्यक्षेत्र घर की चारदीवारी में सीमित होना, महिलाओं के आवागमन में कमी, शिक्षा और रोजगार का प्रभाव स्त्री अनुकूल कम होना, शिक्षा की सीमित उपलब्धि तथा गरीबी आदि हैं। सामान्य साक्षरता दर बढ़ने के साथ ही महिलाओं का साक्षर होना, सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से आसान हो गया है। सर्व शिक्षा अभियान के प्रचार-प्रसार, विद्यालयों की निकटतम स्थिति, आर्थिक कार्यो में स्त्रियों की सहभागिता बढ़ने की वजह

से स्त्री साक्षरता दर में वृद्धि हुई है। फिर भी स्त्री साक्षरता दर में वृद्धि के लिए अभी भी प्रयासरत रहने की बहुत आवश्यकता है। शिक्षा का वर्तमान सामाजिक व आर्थिक जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। पिछले दो दशकों में स्त्री पुरुष की साक्षरता दर में वृद्धि हुई है। जिसका मुख्य कारण ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती सामाजिक, आर्थिक चेतना है। जिसकी वजह से लोगों के मन में शिक्षा प्राप्ति की भावना बलवती हो रही है।

सुझाव

बाँसवाडा जिले की साक्षरता देश व प्रदेश के साक्षरता स्तर से बहुत पीछे है। महिलाओं का साक्षरता स्तर तो ओर भी पिछड़ा हुआ है। अतः जिले की साक्षरता दर को बढ़ाने तथा अच्छी वृद्धि दर के लिए निम्नलिखित सुझाव मुख्य हैं :

- सामाजिक चेतना व जागरूकता बढ़ाने हेतु सभी सरकारी योजनाओं व कार्यक्रमों का पर्याप्त प्रचार-प्रसार होना चाहिए।
- शैक्षिक संस्थाओं, कल्याणकारी योजनाओं तथ शत-प्रतिशत नामांकन जैसे कार्यक्रमों के साथ-साथ अनुदानित और पोषण कार्यक्रमों को बढ़ावा देना चाहिए।
- बालिका शिक्षा, प्रौढ़ साक्षरता और गैर संस्थागत शैक्षिक कार्यक्रमों को प्रभावी रूप से क्रियान्वित करना चाहिए।
- शिक्षा से सम्बन्धित आधारभूत संरचना को बढ़ावा तथा गुणवत्ता में सुधार के साथ-साथ पर्याप्त शिक्षकों की नियुक्ति होनी चाहिए।
- गरीबी, स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं और सामाजिक-आर्थिक विकास को विशेष प्राथमिकता देनी चाहिए ताकि लोग शिक्षा जैसी अमूल्य धरोहर की उपयोगिता समझ सके।
- आदिवासी संस्ख्रति अनुकूल बालिका शिक्षा, छात्राओं हेतु आदर्श बालिका छात्रावास, छात्रवृति और उनके स्वास्थ्य व पोषण हेतु सुविधाओं में बढ़ोतरी करनी चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Banergee, N. (1977) The pattern of sex ratio in Sanghbkurn District, Geographical Review of India Vol. 39, Pp, 30-37.
- Census info India 2001 and 2011
- Primary census abstract (2011) Registrar General of India, New Delhi.
- Bhende, A.A. (2014) Principles of Population studies, Hamalaya Publishing House, Mumbai.
- District census Handbook, Regional census office Rajasthan.

Website

- www.banswara.nic.in
- www.rajasthan.gov.in
- www.google.com
- www.ministryofcensus.gov.in
- www.plan.rajasthan.gov.in

रसनिष्पत्ति प्रक्रिया की वैज्ञानिकता

डॉ० राजेश कुमार सिंह

एम.ए., पी-एच. डी., विश्वभारती, शान्तिनिकेतन (प.बं.)

रस निष्पत्ति की प्रक्रिया भरत कालीन समय की शास्त्रीय मांग थी। विष्मय होता है कि ऐसी कौन सी बात थी जिसके कारण आचार्य भरत ने इस निष्पत्ति की प्रक्रिया को जन्म और जीवन प्रदान किया। जबकि भरत के पहले प्रपितामह ब्रह्म की भांति रस के अनेक पितामहों ने रस की सृजन परम्परा में योगदान दिया था। भरत के द्वारा प्रस्तुत प्रमाण में यह बात प्रमाणित है कि उनके पूर्व वासूकि, सदाशिव, अगस्त्य, व्यास, नन्दिकेश्वर, वृद्धभरत, ओ्जनेय आदि प्रमुख है। जिसमें नन्दिकेश्वर ने ब्रह्म की भांति रस का सृजन किया था परन्तु उस सृजन में कहीं भी रसनिष्पत्ति प्रक्रिया का न तो कोई संकेत था और न सूत्र। ऐसी परिस्थिति में यह बात निश्चित रूप से मंथन करने का विषय है कि आखिर आचार्य भरतमुनि ने ही इस निस्पत्ति की प्रक्रिया का जन्म क्यों दी।

विभिन्न आचार्य के सिद्धातों उनकी मान्यताओं एवं रस संबंधि विविध अवधारणाओं का अध्ययनोपरान्त जो बात निकल कर आती है वह यह है कि भरत के समक्ष रस की विवेचना करने के समय समस्त तत्कालिन जनमानस की रूचियाँ और इच्छाएँ उपस्थित थी, जैसा की आचार्य भरत द्वारा दिये गये संकेत से ही स्पष्ट होता है कि लोक मांग को देखते हुए स्वयं ब्रह्मा ने भरत नाट्यशास्त्र लिखने की सलाह देते हुए कहा थाकि लोकरूचिका पालन करने हेतू नाट्यशास्त्र का प्रणयन करते हुए उसमें इसका उपस्थापना करो, क्योंकि यह नाट्य सभी प्रकार के रसों, भावों और धर्मों के अभिनय द्वारा लोक में यह सबको उपदेश देने वाला होगा –

एतद् रसेषु भावेषु सर्वकर्म क्रियास्वथ।
सर्वोपदेशजननं नाट्यं लोकेभविष्यति।।[1]

इस तरह बड़ी सरलता से यह बात स्पष्ट होती है कि ब्रह्मा ने लोक रूचि में अभिनय कला के प्रति सद्भाव को देखते हुए उसे आबद्ध करने हेतू आचार्य भरत को प्रतिस्थापित किया था। तदन्तर आचार्य भरत ने लोकरूचि का ही समादर करते हुए नाट्यशास्त्र की प्रथमत: रचना की और अभिनय अभिनेयता, प्रेक्षण एवं सम्प्रेषणादि का विधान करते हुए शास्त्रीय परम्परा के रूप में सर्वप्रथम रस निष्पत्ति" की प्रक्रिया का सृजन किया जिसकी विवेचना समालोचना करते हुए उनके पश्चात्वर्ती समस्त आचार्यों ने इस परम्परा को आगे बढ़ाने का मार्ग प्रशस्त किया।

आचार्य भरतमुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र के छठ्ठे अध्याय में नाटक में रस निष्पत्ति का वर्णन करते हुए आचार्य भरतमुनि ने कहा है कि– "विभानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति:"[2] अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारि (भावों) के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

प्रस्तुत सूत्र में "संयोग"तथा "निष्पत्ति"का अर्थ आचार्य ने अलग-अलग तरीके से किया है, जिनमें "निष्पत्ति की व्याख्या करते हुए भरतमुनि ने स्वयं कहा है कि – यथा हि नानाव्यंजनौषधिद्रव्यसंयोगाद्रसनिष्पत्तिर्भवति ..... अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवनतीति।[3]

अर्थात् जैसे नाना व्यंजन, औषधि और द्रव्य के संयोग से (रसना में) रसनिष्पत्ति होती है, वैसे ही नाना भावों के उपगम से नाट्य या कला में रसनिष्पत्ति होती है। जेसे गुड़ादि द्रव्यों व्यंजनों ओर औषधियों से पाड्वादि (कटु, अम्ल, तिक्त, कषाय, क्षार, मधुर) रस निष्पन्न होते है, वैसे ही नानाभावोपगत से संयुक्त होकर स्थायी भाव रसत्व को प्राप्त होते हैं।

"संयोग" शब्द का अर्थ और भी शब्द स्पष्ट करते हुए भरतमुनि ने लिखा है कि– "यथा हि नानाव्यंजनसंस्कृतमन्नं भुजना ..... स्थायिभावानास्वादयन्ति सुमनस: प्रेक्षका: हर्षादीश्चाधिगच्छन्ति।"[4]

अर्थात जिस प्रकार नानाविध व्यंजनों से संस्कृत अन्न का उपभोग करते हुए प्रसन्नचि पुरूष रसों का आस्वादन करते हैं और हर्षादि का अनुभव करते हैं, इसी प्रकार प्रसन्न प्रेक्षक विविधभावों एवं अभिनयों द्वारा व्यंजित, वाचिक, आंगिक तथा सात्विक (मानसिक) अभिनयों से संयुक्त स्थायी भावों का आस्वादन करते हैं और हर्षादि को प्राप्त होते हैं।

आचार्य भरतमुनि ने अपने प्रसिद्ध सूत्र में विभिन्न भावों के संयोग से रसनिष्पत्ति की बात तो कही है लेकिन होती किस प्रकासर है; इसकी उत्पत्ति "प्रेक्षकों" में होती है या "अभिनेता" में होती है या "पात्रों" में होती है इसका कहीं उल्लेख नहीं किया है। इसके अतिरिक्त भरत रस का आधार "स्थायी भाव" को मानते हैं लेकिन रस सूत्र में इसका कहीं उल्लेख नहीं किया हैं। इसी अस्पष्टता के कारण भरत के परवर्ती विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने तर्कों से ओर दर्शन का सहारा लेकर इस सूत्र की व्याख्या करते हुए इसे वैज्ञानिकता की कसौटी पर खड़ा करने का प्रयास किया है। रस निष्पत्ति की व्याख्या करने में चार विद्वानों का मत उल्लेखनीय माना जाता है – (भट्टलोल्लट, आचार्यशंकुक, आचार्यभट्टनायक एवं आचार्य अभिनवगुप्त) इनमें प्रथम व्याख्याकार भट्टलोल्लट थे

जिनका मत उत्पत्तिवाद या आरोपवाद के नाम से जाना जाता है। इस निष्पत्ति की प्रक्रिया में भट्टलोल्लट का मत उत्पत्तिवाद-

भट्टलोल्लट ने अपने द्वारा प्रस्तुत सिद्धांत उत्पत्तिवाद के अन्तर्गत आचार्य भरतमुनि के रस निष्पत्ति विषयक सूत्र की विवेचना करते हुए कहाहै कि –

"विभावादिभिः संयोगोऽर्थात्स्थायिनस्ततो इसनिस्वति।.....स चोभयोरपि मुख्ययावृत्या रामादावनुकार्ये, अनुकर्तरि च नटे रामादिरूपतानुसंधान बलात् इति।।[5]

गोविन्द ठक्कुर ने लोल्लट मत की व्याख्याप्रस्तुत करते हुए कहा है कि – "नटे तु तुल्यरूपतानुसंधानवशादारोत्यमाणः समाजिकनां चमत्कार हेतुः।।"[6]

काव्यप्रकाश के टीकाकार झलकीकरकृत आरोप की व्याख्या –

"तदुपतानुसंधानात् रामस्येव वेषविशेषवाग्विधायिनी नर्तके तत्कालं.....रामत्वारोपादिति सारबोधिनीकारो द्योतकारादयः।"

यथ असत्यपि सर्वे सर्पतयावलोकितात्.....चमत्कारपर्यन्त्येवरसपदवीमधिरोहतीति।।– 8

अर्थात् उपर्युक्त मतों के आधार पर उत्पत्तिवाद के आचार्य भट्टलोल्लट का मानना है कि विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारिभाव के सम्बन्ध से रस की उत्पत्ति होती है। इसकी स्थिति अनुकार्य (मूलपात्र) में होती है। अनुकार्य वह होता है, अभिनेता जिसका अभिनय करता है। अभिनेता अपने अभिनय कौशल से प्रेक्षकों (दर्शकों) को मूलपात्र होने का विश्वास दिलाते हैं। तत्पश्चात् प्रेक्षप अभिनेता के अभिनय कौशल से चमत्कृत होकर उसे मूलपात्र (अनुकार्य) समझ बैठते हैं और आनन्दित होते हैं।

इस सिद्धांत में "निष्पत्ति" का अर्थ "उत्पत्ति" से लिया गया है इसलिए इसे उत्पत्तिवाद कहा जाता है। भट्टलोल्लट ने वेदान्त दर्शन से प्रभावित होकर ऐसी व्याख्या की है जिसमें संसार को मिथ्या माना गया है। अध्यासिक ज्ञान इसका आधार है। यह ज्ञान उसे कहते हैं, जिसमें वस्तु के नही होने पर भी उसका ज्ञान होता है। जैसे रस्सी को देखकर सांप का ज्ञान होना या फिर सीप के टुकड़े से चांदी का ज्ञान होना आदि इसका कारण है। किसी गुण के समानता के कारण हम एक वस्तु का आरोप दूसरे पर कर देते हैं। भट्टलोल्लट के अनुसार अभिनय के कारण हम मूल पात्र का आरोप अभिनेता पर कर देते हैं और आनन्दित होते हैं, इस आरोप की बात करने के चलते ही इस सिद्धांत को आरोवाद भी कहा जाता है।

इस सिद्धांत से कई प्रश्न उठे लेकिन मुख्य प्रश्न यह था कि भावों का अनुभव किले बिना ही सिर्फ चमत्कार के कारण प्रेक्षक आनन्दित कैसे हो सकता है यह असंभव स्थिति है। उत्पत्तिवाद में प्रेक्षकों को भावों से अलग मानकर उपेक्षित रखा गया जबकि वास्तव में रस का असली भोक्ता प्रेक्षक (दर्शक) ही होता है, इसलिए इस सिद्धांत को वैज्ञानिकता की कसौटी पर सफलता नहीं मिली।

रसनिष्पत्ति की प्रक्रिया में आचार्य शंकुक का मत (अनुमीतिवाद)

आचार्य भट्टलोल्लट के उत्पत्तिवाद के विरोध में आचार्य शंकुक ने अनुमितिवाद दिया। इन्होंने अनुमितिवाद के आधार पर भरतमुनि के प्राद्धि सूत्र "रस निष्पत्ति" की व्याख्या करते हुये कहा है कि – "तस्मात् हेतुभिर्विभावारवैः.....कृत्रिमैरपि तथनभिमन्यमानैरनुकर्तृ स्थत्वेन..... किन्तु सम्र्मिथ्यासंशयसादृश्यप्रतीतिभ्यो विक्षण चित्रतुरगादिन्यायेन, यः सुखी रामः असावयमिति प्रतीतिरतीति"।

अर्थात् शंकुक के अनुसार सामाजिक (दर्शक) जब रंगमंच पर किसी कुशल अभिनेता को अभिनय करते देखता है तब उसको वह "राम" ही समझलेता है। नट में राम की यह प्रतीति सम्यक मिथ्या, संशय एवं सादृश्य ज्ञान से भिन्न एवं विलक्षण है। वस्तुतः यह प्रतीति चित्र तुरंग-न्याय से होती है। जिस प्रकार घोड़े की चित्र को देखकर उसमें घोड़े की तत्काल विलक्षण प्रतीति होती है उसी प्रकार राम के उपस्थित ना होने पर भी राम का अभिनय करने वाले अभिनेता में सामाजिक (दर्शक) को राम की प्रतीति हो जाती है। इस प्रकार नटगत् उन कृत्रिम विभावादि को सामाजिक कृत्रिम नहीं समझता एवं उस नट में उक्त विभावादि के द्वारा रति आदि स्थायी भावों का अनुमान कर लेता है एवं अपनी वासना से वशीभूत होकर उस अनुमीयमान इत्यादि का श्रृंगारदि रस के रूप में आस्वादन करता है।

शंकुक की व्याख्या अनुमीति प्रधान न्याय सिद्धांत से प्रभावित है। धुम से अग्नि का ज्ञान तो सही है कितु धुम सदृश धुलया कुहासे से अग्नि का अनुमान किया जाना स्वीकार नही किया जा सकता है। साधन सही रहने पर ही साध्य का अनुमान होता है किन्तु विभावादि साधन को कृत्रिम मानते हैं फिर साध्य रस का अनुमान कैसे हो सकता है। अतः आलोचकों ने शंकुक के विचारों को महत्व नहीं दिया है। प्रभाकर भट्ट द्वारा शंकुक के मत का खण्डन से यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा है। इन्होंने कहा है कि – "नन्वेवं कृत्रिमाणां तेषां.....धूमत्वेन ज्ञाताद् धूलीपटलाक्षन्यनुमानवत्"।[10]

शंकुक की व्याख्या की विशेषता यह है कि इसमें सामाजिक के रसास्वादन का विवेचन किया है; इसमें न्यूवता यह है कि सामाजिक से रस साक्षात्कार के विषय में यह स्पष्ट नहीं है, क्योंकि अनुमान से होने वाला ज्ञान 'परोक्ष' होता है "साक्षात्कार" नही। अतः शंकुक के सिद्धांत को भी वैज्ञानिक की कसौटी पर सफलता नहीं मिली क्योंकि इनके मत की वास्तविक त्रुटि कृत्रिम विभावादि के द्वारा रस का अनुमान स्वीकार करने के कारण उपस्थित हुई।

रस निष्पत्ति की प्रक्रिया में आचार्य भट्नायक का मत (भुक्तिवाद) – दर्शन और मनोवैज्ञानिक को संयुक्त करके काव्य और नाटक में सम्बन्ध स्थापित करने वाले सूक्ष्म मनौवैज्ञानिकता और मौलिकता के परिचायक भट्टनायक, सहृदय रसानुभूति कैसे करता है? इस जटिल प्रश्न को अपने पूर्ववर्तियों के उत्पत्ति, प्रतीति, अनुमिति एवं अभिव्यक्तिवाद का पर्चालोचन करते हुए स्पष्ट उद्घोषणा करते हैं।

आचार्य अभिनवगुप्त ने भट्टनायक के मत को उल्लिखित करते हुए कहा है कि –

"भट्नायकस्त्वाह रसो न प्रतीयते नोत्पद्यते नाभिव्यज्यते। ..... त्समात्, काव्ये.....निबिडनिजमोहसंकटता निवारण कारिणा विभावादि साधारणीकरणात्मनाभिधातो, द्वितीयेनांशेन भावकत्वव्यापारेण भावव्यमानो..... सत्त्वोद्रेकप्रकाशानन्दमयनिजसंविद्वश्रान्तिलक्षणेन परब्रह्मस्वादसविधेन भोगेन परं भुज्यतइति।। [11]

अर्थात् भट्टनायक के अनसुर रस न तो प्रतीत होता है, न उत्पन्न होता है और न ही अभिव्यक्त होता है बल्कि दर्शक रस का उपभोग करता है यानि की भूक्ति होती है। इसके लिए उन्होंने तीन शक्तियों की बात की है - अभिधा, भावकत्व और भोजकत्व।

अभिधा शब्द शक्ति है, इसके माध्यम से दर्शक शब्दों संवादों का अर्थ ग्रहण करता है। भावकत्व में दर्शकों का अहमलुप्त हो जाता है फिर मंच पर के विशिष्ट पात्र उसे उसी रूप में सामान्य लगने लगते हैं। ऐसा विभावों के साधारणीकरण के चलते होता है। भोजकत्व में अहम् के लुप्त होने से दर्शकों के रजोगुण और तमोगुण का नाश हो जाता है, चित्तवृत्तियां शान्त हो जाती है और वह युद्ध सतोगुण के प्रभाव में आकर रस का उपभोग करता है।

इस तरह भट्टनायक का तात्पर्य है कि रस अगर कार्य है तो विभाव कारणा रस अगर लक्ष्य है तो विभाव उसका साधन, रस अगर भोज्य है तो विभाव भोजक।

अब यहीं एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि क्या रस एक भौतिक पदार्थ है जो उसका उपभोग किया जाता है? भट्टनायक ने रसकी स्थिति प्रेक्षकों में माना है लेकिन निष्पत्ति का अर्थ भुक्ति देते हुए रस को भौतिक पदार्थ बना दिया जबकि रस भौतिक पदार्थ है ही नहीं। अत: यह सिद्धांत भी वैज्ञानिकता के बहुत नजदीक जाकर भी वैज्ञानिक साबित नहीं हो सका।

आचार्य मम्मट द्वारा प्रतिपादित अभिनवगुप्त का रस विषयक निष्पत्ति मत

"लोक प्रमदादिभि: स्थाय्यनुमानेऽभ्यासपाटववतां काव्ये नाट्ये च तैरेव कारणत्वादिपरिहारेण..... शत्रोरेवैते, न ममैवेते न शत्रोरेवैते न तटस्थचस्यैवेते. ..... पानक रस न्यायेन चर्व्यमाण: पूर ईव परिस्फुरन् हृदयमिव प्रविशन्..... अलौलिक चम्त्कारकारी श्रृंगारादिको रस:। [12]

अर्थात आचार्य अभिनवगुप्त ने रस निष्पत्ति की व्याख्या बहुत ही सुन्दर ढंग से की है, जिसे अभिव्यक्तिवाद के नाम से अभिहित करते हैं। इनके अनुसार– लोक में रति आदि स्थायी भावों के कारण, कार्य एवं सहकारी ही काव्य में क्रमश: अलौकिक विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। नट के द्वारा अभिनित रामादि के चरित्रों में सहृदय को इस प्रकार तारात्म्य सम्बन्ध स्थापित हो जाता है ि कवे विभावादि शत्रु के मेरे अथवा तटस्थ्य रूप या शत्रु के नही; मेरे नहीं या तटस्थ्य रू‍प से नहीं इत्यादि अवस्थाओं को ध्वस्थ कर देता है, यही साधारणीकरण है। यह उस प्रकार की अवस्था है कि अनुकार्य रामादि, अनुकर्त्ता नटादि और दर्शक सहृदय इन सबों को अपने से भिन्न नहीं मानते। इसका अनुभव पानक रस न्याय से इस प्रकार होता है कि अन्य सारी वस्तुएँ नष्ट हो जाती है और "ब्रहमास्वाद" का आस्वादन होने लगता है। अत: यही रत्यादि जो समाज के हृदय में वासनात्मक रूप से अवस्थित है, श्रृंगारादि रस के नाम से जाना जाता है।

आचार्य भरत सूत्र के अर्थ को अभिनवगुपत ने आत्मसात करते हुए कहा है कि– "तत्र लोक व्यवहारे कार्यकारणसहचारात्मकल्दिर्शने स्थाय्यात्म-परिचितवृत्त्यनुमानाभ्यासं.....अतएवलौकिक विभावादिव्यदेशभाग्मि:.....चर्वणातिरिक्तकालावलम्बि स्थायि.....स्थायिविलक्षण एव रस:।"[13]

अर्थात् लोक में जो भावादि के कारण कार्य सहकारी कारण कहलाते है; वे ही काव्य के अन्तर्गत विभावादि व्यापारों के कारण अलौकिकत्व को प्राप्त होते हैं और विभावादि के नाम से अभिहित किये जाते है।

आचार्य अभिनवगुपत विभाव का कार्य विभावना अनुभाव का अनुभावना तथा संचारीभावों "समुपरंजन" मानते हैं। विभावना के द्वारा बीज भाव अंकुरित होता है। अनुभावना उसी भाव को अनुभव योग्य बना देते है और समुपरंजन के द्वारा वे पूर्णतया प्रकट कर दिये जाते हैं। प्रेक्षक की मानसिक स्थिति इन तीनों से प्रभावित होती रहती है। इसके फलस्परूप ही वासना रूप से स्थित प्रेक्षक के स्थायी भाव रसरूप में प्रकट अथवा व्यक्त हो जाते हैं। रस अभिव्यक्त होता है। निष्पत्ति का अर्थअभिव्यक्ति ही है।

अभिनवगुप्त ने अलंकारकों द्वारा स्वीकृत व्यंजना-व्यापार से ही रत्यादि की अभिव्यक्ति बतायी है। अत: यह मत सभी प्राचीन मतों से बढ़कर प्रमाणिक सिद्ध हुआ है एवं वैज्ञानिकता की कसौटी पर खड़ा उत्तर पाया है। इन्होंने निष्पत्ति का अर्थ अभिव्यक्ति और "संयोगाद्" का अर्थ व्यंग्य-व्यंजक भाव के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

अभिनवगुप्त के रस निष्पत्ति सिद्धांत को पं. राज जगन्नाथ ने "उपनिषद" का उदाहरण देते हुये लिखा है " रसौवेस:" अर्थात् रस आनन्द रूप है। जिस प्रकार ढक्कन से ढ़का दीपक अभिव्यक्त नहीं हो पाता उसी प्रकार सहृदय के हृदय में विद्यमान रस अज्ञान के आवरण के कारण प्रकाशित नहीं हो पाता है, किन्तु जब यही आवरण नटादि के विभावादियों के द्वारा अनावृत हो जाता है तो रस स्वयं प्रकाशित हो जाता है यही अभिव्यक्तिवाद है।

आचार्यरामचन्द्र शुक्ल - आधुनिक हिन्दी रसवादी आचार्य रामचन्द्रशुक्ल से पूर्व के सभी आचार्यों ने विभावादि के संयोग को रस निष्पत्ति के लिए आवश्यक ही नही अनिवार्य ठहराया है, लेकिन शुक्ल इस बात से पूर्णत: सहमत नहीं हैं। वे यह स्वीकारते हैं कि केवल विभाव या केवल अनुभाव के वर्णन द्वारा भी रसोत्पत्ति हो जाती है। कभी-कभी अलाम्बन रूप में वर्णित प्रकृति वर्णन मात्र से रस निष्पत्ति हो जाती है। उन्होंने अपने रस मिमांसा में प्रकृति दृश्यों या वर्णन से प्राप्त लोगों के हर्ष का सुन्दर वर्णन करते हुए कहा है कि - प्राकृतिक वर्णन केवल अंगरूप से ही हमारे भावों के आलम्बन नहीं है; स्वतंत्र रूप में भी हैं। जिन प्राकृतिक दृश्यों के बीच हमारे आदिमपूर्वज रहे और अब भी मुनष्यजाति का अधिकांश (जो नगरों में नहीं आ गया है) अपनी आयु व्यतीत करता है, उनके प्रति प्रेमभाव पूर्व साहचर्य के प्रभाव से संस्कार या वासना के रू‍प में हमारे अन्त:करण में निहित है। उनके दर्शन या काव्य आदि में प्रदर्शन से हमारी

भीतरी प्रकृति का जो अनुरंजन होता है। वह अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। इस अनुरंजन को केवल किसी दूसरे भाव का अश्रित या उत्तेजक कहना अपनी जड़ता या ढिंढोरा पिटना है; जो प्राकृतिक दृश्यों को केवलकामोद्दीपन की सामग्री समझते है उनकी रूचि भ्रष्ट हो गयी है और संस्कार सापेक्ष है। मैंने पहाड़ों पर या जंगलों घूमते समय बहुत से ऐसे साधु देखे हैं जो लहराते हुए हरे भरे जंगलों, स्वच्छ शिलाओं पर चांदी से ढलते हुए झरणों, चौकड़ी भरते हुए हिरणों और जल को झुककर चूमती हुई डालियों पर कलरव कर रहे विहंगों को देख मुग्ध हो गये है। काले मेघ जब अपनी छाया डालकर चित्रकुट के पर्वतों को नीलवर्ण कर देते हैं, तब नाचते हुए नीलकंठों को देखकर सभ्यताभिमान के कारण शरीर चाहे न नाचे पर मन अवश्य नाचने लगता है। इसमें कोई संदेह नहीं की ऐसे दृश्यों को देखकर हर्ष होता है।" हर्ष एक संचारी भाव है। इसलिए यह मानना पड़ेगा की उसके मूल में रतिभाव वर्तमान है और वह रतिभाव उन दृश्यों के प्रति है। [14]

रसनिष्पत्ति की प्रक्रिया में एक नई दिशा प्रदान करते हुए रामचन्द्र शुक्ल स्पष्ट उद्घोषण की है कि– विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भाव की गिनती गिनाकर किसी प्रकार 'रस' की शर्त्त पूरी करना ही जब से कविजन अपना परम पुरूषार्थ मानने लगे तब से यह बात कुछ भूल सी चली की कवियों का मुख्य कार्य ऐसे विषय को सामने रखना है जो श्रोता के विभिन्न भावों के आलम्बन हो सके। सच पूछिये तो काव्य में अंकित सारे दृश्य श्रोता के भिन्न-भिन्न भावों के आलम्बन स्वरूप होते है। किसी पात्र को इतिहास, शोक, क्रोध आदि प्रकट करता हुआ दिखाने में ही रसपिरपाक मानना और यह समझना की श्रोता को पूरी रसानुभूति होगई, बुरा हुआ। श्रोता या पाठक को भी हृदय होता है। वह जो किसी काव्य को पढ़ता है या सुनता है सो केवल दूसरों का हंसना, रोना, क्रोध करना आदि देखने के लिए ही नही, बल्किऐसे विषयों को सामने पाने के लिए जो स्वयं उसे हसाने, रूलाने, कुछ करने, आकृष्ट करने, लीन करने का गुण रखते हो। राजा हरीशचन्द्र को श्मशान में रानी शैव्या से कफन मांगते हुए, रामजानकी को वनगमन के लिए निकलते हुए पढ़कर ही क्या लोग करूणार्द्र नहींहो जाते? उनकी करूणा क्या इस बात की अपेक्षा करती है कि कोई पात्र उन पृथ्यों पर शोक या दु:ख शब्दों और चेष्टा द्वारा प्रकट करे।

इस प्रकार कवि द्वारा अंकित सम्पूर्ण दृश्य को श्रोता के भावों का आलम्बन मान लेने पर पूर्ण रस वहीं मानना पड़ेगा जहाँ आश्रय श्रोता के रति भाव का आलम्बन होगा और आलम्बन श्रोता के भी उन्ही भावों का आलम्बन होगा आश्रय के जिन भावों का है।[15]

रस निष्पत्ति पर विचार करते हुए डॉ. नगेन्द्र ने कहा है कि सम्पूर्ण भाव सम्पदा रस-परिधि में ही आ जाती है। इस सन्दर्भ में अपना विचार अभिव्यक्त करते हुए कहा है कि शास्त्र में रस की रस की परिधि के अन्तर्गत रस रसाभास, भाव, भावाभास, भावोदय, भाव-संधि, भाव-शबलता और भाव-शान्ति का निर्भ्रान्त रूप से समावेश किया गया है। यहां रस से अभिप्राय है विभाव, अनुभाव एवं अभिचारी द्वारा परिपुष्ट स्थायी की निर्विघ्न प्रतीति अर्थात "रस" शब्द परिपाक की अवस्था का वाचक है। कहीं-कहीं रस के किसी एक या एकाधिक अवयव का स्पष्ट उल्लेख नहीं करता-परन्तु यहां उसका अध्याहार कर लिया जाता है और सहृदय की कल्पना स्वयं ही उसका आक्षेप कर लेती है।[16]

इस प्रक्रिया के सन्दर्भ में अपना मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करते करते हुए कहा है कि-रस में सहृदय का मन अनेक अवस्थाओं से होकर गुजरता है। स्थायी भाव के स्वरूप के अनुसार वह सुख या दु:ख का अनुभव करते है, कल्पना के जागृत होने से उसमें एक प्रकार की स्वच्छन्दता की भावना का उदय होता है, उधर कला-तत्वों की अनुभूति सामंजस्य, आहलाद विस्मय आदि को जन्म देती है और अन्त में इन सबकी परिणति एक विशेष प्रकार की मनोदशा में होती है। जो निश्चय परितोष कारी होती है। कलात्मक सर्जना की प्रक्रिया समंजन की प्रक्रिया है। करूण प्रसंगों के आस्वादन में सहृदय की चित्तवृत्ति शोक त्रास आदि के अनुभव से कुछ क्षणों के लिए विक्षुब्ध होकर भी अंतत: समंजित हो जाती है और चितवृति का समंजन निश्चय ही एक सुखद स्थिति है। इस प्रकार करूण रस का आस्वाद शोक, त्रास, आदि का आस्वाद न होकर उनकी कलात्मक परिणति का आस्वाद है - आस्वाद की इस प्रक्रिया में सहृदय को थोड़ा बहुत कटु अनुभव भी होता है, परन्तु परिणति आत्म-परितोष या सुख में ही होती है।[17]

इस प्रकार रस निष्पत्ति के सन्दर्भ मं प्रमुख संस्कृत एवं आधुनिक हिन्दी रसवादी आचार्यों के द्वारा रस प्रक्रिया सम्बन्धी प्रस्तुतीकरण के उपरान्त यह स्पष्ट लक्षित हो रहा है कि भारत ने रस की निष्पत्ति विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों के द्वारा व्यक्त स्थायी भाव से होती है, के रूपमें की थी। इन विभाव, अनुभाव, संचारी की प्रतीति कार्य कारणों एवं सहकारी के रूप में की जाती है अर्थात रस के आनन्दानुभाव के समय ये तीनों अपनी पृथकता को छोड़कर सामुहिक रूप से संयोग पाकर स्थायी भाव को परमानक रसकी तरह रस रूप में परिणत कर देते हैं।

यह विवेचना निश्चित रूप से भरत द्वारा प्रस्तुत रस निष्पत्ति विषयक सूत्र के प्रभाव एवं विकास को अभिव्यंजित करता है। वस्तुत: भरत के रस निष्पति विषय धारणा का सही विकास उनके परवर्ती आचार्यों के विवेचनाओं में ही सिद्ध हो सका है, जिसमें हिन्दी रसवादी आचार्य रामचन्द्रशुक्ल एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर्त्ता डॉ. नगेन्द्र का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है जिसने भरत के दृष्टिाकोण का यथा अवसर यथेष्ट विकास किया है।

सन्दर्भ सूची

1. नाट्यशास्त्र - आ. भरतमुनि, चो. सु.ग्र.-32, पृष्ठ संख्या 56
2. नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, व्याख्याकार अभिनवगुप्त, अध्याय-6, पृष्ठसं 274
3. नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, व्याख्याकार अभिनवगुप्त, अध्याय-6, पृष्ठसं 288-90
4. नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, व्याख्याकार अभिनवगुप्त, अध्याय-6, पृष्ठसं 274
5. नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, व्याख्याकार अभिनवगुप्त, अध्याय-6, पृष्ठसं 274
6. काव्य प्रदीप - गोविन्द ठक्कुर, आन्दाश्रम, संस्कृत ग्रन्थालय, पृष्ठ संख्या 88
7. काव्य प्रकाश - आचार्य मम्मट, पृष्ठ सं. 67-68

8. काव्य प्रकाश - आचार्य मम्मट, पृष्ठ सं. 67-68
9. नाट्यशास्त्र - व्याखकार अभिनवगुप्त, अध्याय-6, पृष्ठ 274
10. रस प्रदीप - प्रभाकर भट्ट - पृष्ठ-23
11. नाट्यशास्त्रम -व्या. अभिनवगुप्त, अ-6, पृष्ठ 278-79
12. काव्यप्रकाश - आ. मम्मट-चतुर्थ उयोत, पृष्ठ 256
13. नाट्यशास्त्र- व्या. अभिनवगुप्त, अ.-6, पृष्ठ-281-82
14. रसमीमांसा- आ. रामचन्द्र शुक्ल, सं.-विश्वनाथ प्र.मिश्र, ना. प्र.सभा, काशी संख्या 6, पृष्ठ संख्या 78
15. रसमीमांसा- आ. रामचन्द्र शुक्ल, सं.-विश्वनाथ प्र.मिश्र, ना. प्र.सभा, काशी संख्या 6, पृष्ठ संख्या 110-11
16,17 -रस सिद्धांत - डॉ. नगेन्द्र ने. प. हा. सं. 1995, पृष्ठ 317-18, पृष्ठ 110-111

असहयोग आन्दोलन में पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका: बिहार के विशेष संदर्भ में

डॉ० मुकुल कुमार शर्मा

पीएच. डी. (इतिहास), जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

असहयोग आन्दोलन के समय सक्रिय हुई देशव्यापी गतिविधियों के प्रति जनमत का निर्धारण और निर्माण का कार्य वस्तुत: भारतीय पत्र-पत्रिकाओं ने ही किया। यहाँ बिहार के साथ-साथ अन्य प्रदेशों में प्रेस की स्थिति पर नजर डालना उपयुक्त होगा। यहाँ आन्दोलन के प्रति जनचेतना के विकास की पृष्ठभूमि के साथ-साथ उन परिस्थितियों जिनमें किसी प्रान्त में कम या अधिक दमनात्मक उपाय लागू किये गये और देश भर में समाचार पत्रों और सम्पादकों पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में गाँधीजी के असाधारण प्रभाव का अध्ययन आवश्यक प्रतीत होता है। 1912 ई. में बिहार एक अलग प्रांत बन गया। उस समय साप्ताहिक बिहारी पत्रिका एक दैनिक अखबार के रूप में प्रकाशित होने लगी। सच्चिदानंद सिन्हा के समझाने-बुझाने पर महेश्वर प्रसाद सिन्हा ने प्राध्यापकीय पेशा त्यागकर अखबार के संपादक बन गए। दैनिक बिहारी का पहला संस्करण 13 अप्रैल, 1912 ई. को प्रकाशित हुआ। महेश्वर प्रसाद को नए प्रांत के नए अखबार का पहला संपादक बनने का गौरव प्राप्त हुआ।[1] उन्होंने अपने अखबार द्वारा पटना में एक उच्च न्यायालय और एक विश्वविद्यालय खोलने की आवाज उठाई।

शीघ्र ही महेश्वर प्रसाद बिहार के उप-गर्वनर के कोपभाजन बन गए, क्योंकि उन्होंने चंपारण के किसानों का नीलहे बागवानों के अत्याचार के विरूद्ध पक्ष लिया था। 'बागवान मालिक और रैयत' नामक शीर्षक से उनके नौ आलेख अखबार में प्रकाशित हुए थे। उप-गर्वनर ने बनौली राज के प्रबंधक तथा बिहार और उड़ीसा समाचार पत्र लिमिटेड के मालिक को बुलाया और महेश्वर प्रसाद को संपादक पद से हटाने का आदेश दिया। महेश्वर प्रसाद ने पद छोड़ दिया और उनकी जगह उप-गर्वनर द्वारा मनोनीत अल्फ्रेड कनिंधम को संपादक नियुक्त किया गया, जो 1916 ई. तक अपने पद पर बने रहे। कनिंधम के बाद गोकुलानंद प्रसाद वर्मा संपादक बने, लेकिन सितम्बर, 1917 ई. से अखबारों का प्रकाशन बंद हो गया।

'दि बिहारी' अखबार के बंद होने पर प्रदेश का सार्वजनिक जीवन बीरान पड़ गया। बिहार के प्रबुद्ध लोगों ने एक स्वतंत्र राष्ट्रीय प्रेस की आवश्यकता महसूस की। सच्चिदानंद सिन्हा और पी. आर. दास ने इसकी पहल की। फलत: पटना के प्रबुद्ध जनों का हसन इमाम के आवास पर एक बैठक हुई जहाँ 'सर्चलाइट' नामक पत्र का प्रकाशन का निर्णय लिया गया। इसके प्रथम निदेशक मंडल में हसन इमाम (अध्यक्ष), मजहरूल हक, राय बहादुर, पूर्णेन्दु नारायण सिन्हा, खान बहादुर सरफराज हुसैन खां, पी. के. सेन, ब्रजकिशोर प्रसाद, परमेश्वर लाल, विश्णु प्रसाद, कुलवंत सहाय, गणेश सिंह, भुवनेश्वर मिश्र, नीरसु नारायण सिन्हा, राजेन्द्र प्रसाद और सच्चिदानंद सिन्हा थे। 15 जुलाई 1918 ई. से बिहार टाइम्स (1903 ई.) और बिहार (1906 ई.) को एक में मिलाकर सर्चलाइट का सप्ताह में दो बार प्रकाशन शुरू हुआ।[2] 15 जुलाई 1920 ई. से यह सप्ताह में तीन बार प्रकाशित होने लगा।

सन् 1918 में सच्चिदानन्द सिन्हा द्वारा स्थापित 'सर्चलाईट' के प्रकाशन के साथ बिहार में साम्प्रदायिक पत्रकारिता के स्थान पर राष्ट्रवादी पत्रकारिता का प्रारम्भ हुआ। सच्चिदानन्द सिन्हा, जो आधुनिक बिहार के जनक के रूप में प्रसिद्ध हैं, उत्तर-प्रदेश में भी पत्रकारिता के आरंभ से जुड़े हुए थे। 'सर्चलाईट' भविश्य की ओर अग्रसर राष्ट्रीय नीतियों का समर्थक था। इसके थोड़े आत्मसंयम के साथ अपने प्रतिष्ठित संस्थापक की आलोचना के फलस्वरूप 1930 में दरभंगा के महाराजाधिराज ने 'इंडियन नेशन' का प्रारंभ किया। इस साहसिक कार्य को डॉ. सिन्हा और बिहार के दुसरे लोगों का समर्थन प्राप्त था। दोनो का एक साथ प्रकाशन जारी रहा, हालाकि आजादी प्राप्त होने तक दोनो की भूमिका (सरकारी और विपक्ष के रूप में) में बदलाव होता रहा। 'सर्चलाईट' ने अपने हिन्दी प्रतिरूप 'प्रदीप' का प्रकाशन शुरू किया जबकि 'इण्डियन नेशन' ने 'आर्यावर्त' शुरू किया।

गाँधीजी के द्वारा चलाये गये आन्दोलनों की विशिष्टता तथा उनकी महत्ता को स्पष्ट करने के लिए साप्ताहिक 'मतवाला' की सम्पादकीय टिप्पणीयाँ दृष्टव्य है– ..... यदि आप स्वतंत्रता के अभिलाशी हैं, अपने देश में स्वराज्य की प्रतिष्ठा चाहते हैं तो तन-मन-धन से अपने नेता महात्मा गाँधी के आदेशों का पालन करना आरम्भ कीजिए।[3] इसमें आगे टिप्पणी करते हुए मतवाला ने कहा कि - "हमें बिना विलम्ब सत्याग्रह की शरण लेकर लीडरों को अपना पिछलग्गू बनने के लिए बाध्य करना चाहिए, क्योंकि गाँधीविहीन स्वराज्य यदि स्वर्ग से भी सुंदर हो तो वह नरक के समान त्याज्य है। उस एक महात्मा पर ही सत-सत स्वराज्य न्योछावर कर देने योग्य है। उसके बिना स्वराज्य का स्वप्न भी कैसा? वही हमारा प्रत्यक्ष स्वराज्य है। यदि वह हमारी आँखों के सामने बना रहे तो स्वराज्य चरणों पर लोटता रहेगा। जिस एक के बिना हमारा सबकुछ लवण-हीन व्यंजन हो रहा है उसी एक को पाकर हम अनेक एक हो सकते हैं।"[4] इस सम्पादकीय टिप्पणी से सुस्पष्ट है कि महात्मा गाँधी भारतीय जनमानस पर किस प्रकार छाए हुए थे।

सत्य और न्याय के सिद्धान्तों पर अडिग रहते हुए स्वाधीनता संग्राम में लगे रहने की प्रेरणा देती हुई 'वलिवेदी की ओर से' शीर्षक प्रताप के अभिलेख का कुछ अंश द्रष्टव्य है - हमारे सिरों पर प्रहार होते हों तो हों। बिजुलिया गिरती हों तो गिरे परन्तु हमारे व्यवहार में न गरमी आए और न शिथिलता ही।

हम डटे रहे वहीं पर जहाँ पर हम डटे हुए हैं। हमारी दृष्टि रहे उसी लक्ष्य पर जिस पर वह लगी हुई है। प्रहारों की मार से इनमें कोई अन्तर न पड़े और अन्त में, प्रहारों के करने वाले हाथ में शिथिलता आयेगी और उसके साथ ही निश्चय रूप से आएगी हमारे अन्तिम विजय की सूचना।[5]

'अमन या दमन' शीर्षक अभिलेख में स्वदेश की पंतिया नौकरशाही अत्याचारों पर तीखा प्रहार करती हैं, "हम जानते हैं कि इनके जहुर का मकसद क्या है? अगर इनका मकसद देश में अमन करना है तो क्या हम यह मान लें कि भारत की नौकरशाही की बुद्धि का खात्मा, इसके हरवे और हथियारों का दिवाला निकल गया।"[6] राष्ट्रीय संघर्ष के काल में राष्ट्र का उद्‌बोधन करते हुए 22 दिसम्बर 1921 के 'आज' के 'राजनीतिक स्थिति' शीर्षक अभिलेख में लिखा गया, "..... इस समय देश की राजनीतिक स्थिति जैसी भयवाह है वैसे ही आशाप्रद भी है। हम अपने विचित्र युद्ध के अंतिम मोर्चे पर पहुँच गये हैं। सरकार को यह मालूम हो गया है कि देश सर्वथा दृढ़ है। उसके साहस की कोई सीमा नहीं है। स्वराज्य युद्ध के महायज्ञ में वह अपने उत्तमोत्तम पुत्र-रत्न की आहुति देने के लिए तैयार है।

असहयोग आन्दोलन के इस दौर में आन्दोलन के प्रति ब्रिटिश सरकार के दमनात्मक नीति का स्पष्ट परिचय 17 नवम्बर 1921 को मिला जिस दिन युवराज प्रिंस ऑफ वेल्थ का भारत आगमन हुआ। उस दिन के उत्सवों के प्रभावपूर्ण वहिश्कार एवं देशव्यापी हड़ताल हेतु काँग्रेस द्वारा पारित प्रस्ताव का पत्र-पत्रिकाओं ने समर्थन करते हुए युवराज के स्वागत के वहिश्कार करने की आवश्यकता पर बल दिया। पत्रिका 'प्रभा' ने इस अवसर पर लिखा कि "वर्तमान परिस्थितियों में भारतीयों के लिए उनका स्वागत करना अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारने से कम नहीं है।" प्रमुख समाचार पत्र हिन्दी दैनिक 'आज' ने तो युवराज के आगमन के दिन के अपने अंक में 'आज की हड़ताल' शीर्षक से काँग्रेस की सूचना प्रकाशित की थी जिसमें देशवासियों से उस दिन हड़ताल करने एवं युवराज के स्वागत का वहिश्कार करने की देशवासियों से अपील की गई थी। पत्र-पत्रिकाओं द्वारा वहिश्कार हेतु जनमत निर्माण का वातावरण पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। 17 नवम्बर को देशव्यापी हड़ताल एवं वहिश्कार के साथ ही विभिन्न स्थानों पर विदेशी वस्तुओं की होली जलाई गयी। बम्बई में युवराज के पर्दापण के दिन अर्थात् 17 नवम्बर से 21 नवम्बर तक भीशण दंगे हुये जिसमें अनेक लोगों की मृत्यु हुई और अनेक लोग घायल हुए। सरकारी अत्याचार का बम्बई में पाँच दिनों तक तांडव नृत्य होता रहा। 'आज' सहित सभी राष्ट्रवादी पत्रों ने सरकारी दमन की तीव्र शब्दों में निंदा की और सम्बद्ध समाचारों को आकर्शक शीर्षकों के साथ प्रकाशित किया। उधर पंजाब में भी पत्र-पत्रिकाओं ने राष्ट्रीय चेतना के विकास के लिए अग्रसर थी। सन् 1920 में लाला लाजपत राय पंजाब के भयानक हत्याकाण्ड से क्षुब्ध हुए, राष्ट्रीय सप्ताह में उन्होंने लाहौर से उर्दू का दैनिक 'वन्दे मातरम्' निकाला।

माखनलाल चतुर्वेदी का 'कर्मवीर' (1920) तो निकला ही गौरांगशाही के विरोध में था। जब वे घोशण पत्र दाखिल करने के लिए जिला दण्डाधिकारी मिथाइस के पास गए तब मिथाइस ने सवाल किया कि एक अंग्रेजी वीकली के होते हुए आप हिन्दी साप्ताहिक क्यों निकालना चाहते हैं? माखनलाल जी का जवाब था - "आपका अंग्रेजी पत्र तो दब्बू है, मैं वैसा पत्र नहीं निकालना चाहता हूँ। मैं ऐसा पत्र निकालना चाहूँगा कि ब्रिटिश शासन चलते-चलते रूक जाए।" सागर के पास रतौना में जब कसाईखाना खोलने का लायसेंस सरकार ने दे दिया, तब 'कर्मवीर' के प्रबल विराध के कारण हुकूमत को अपना कदम वापस लेना पड़ा था। प्रेस एक्ट के विरूद्ध 'कर्मवीर' ने 13 मार्च 1920 को अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा - "जब से प्रेस एक्ट पास हुआ है तब से प्रायः 350 छापेखानों और 300 समाचार पत्रों से छह लाख की जमानतें मांगी गई हैं। 500 से अधिक पुस्तकें जब्त की गई हैं और प्रायः 200 छापेखाने और 130 समाचार पत्र जमानत मांगी जाने के कारण प्रारम्भ नहीं हो पाए। .....सच्चा सुधार तभी हो सकता है जबकि भारतवासियों के नागरिक अधिकारों की पूर्ण रक्षा की घोशणा की जावें जिसमें वह वचन भी रहे कि छापेखाने स्वाधीन रहेंगे और छापेखानों या समाचार पत्रों की रजिस्ट्री के समय "कोई लाइसेंस या जमानत नहीं मांगी जाएगी।" 'कर्मवीर' पर राजद्रोह का आरोप लगाया गया और उससे जमानत भी मांगी गई जिसके कारण दो बार उसका प्रकाशन स्थगित करना पड़ा। जमानत राशि जमा करने के वह खिलाफ था। इन्दौर राज्य में 'कर्मवीर' पर प्रतिबंध लगाया गया था।[7]

असहयोग आन्दोलन के प्रभाव से दक्षिण के प्रान्त भी अछुते नहीं थे। सन् 1920 में जब गांधीजी ने अपना प्रथम असहयोग आंदोलन छेड़ा था तो मद्रास प्रेसिडेंसी में काँग्रेस को अपने लिए एक पत्र की आवश्यकता महसूस हुई। सामूहिक सहमति तथा अपने रूझानों के साथ हिंदू को काँग्रेस पार्टी के प्रत्यक्ष प्रभाव में आए बिना एक प्रगतिशील राष्ट्रवादी समाचार पत्र के रूप में कार्य करने की अनुमति दी गई। यह पहल टी-प्रकाशम (जो बाद में आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री बने) ने की थी जिन्होंने 1922 में स्वराज्य को प्रारंभ किया, जिसमें जी. वी. करूणानिधि, खास सुब्बा राव, के. रामा कोटिश्वरा राव, के. श्रीनिवासन तथा एन. एम. वरदाचारी उनके उत्साही सहयोगी थे। कुछ ही हफ्ते में इस पत्र की लोकप्रियता बढ़ गई। खास सुब्बा राव ने साउथ इंडिया जर्नलिस्ट में प्रकाशित अपने एक लेख में स्वराज्य त्वरित विकास तथा उसके बाद उसके पतन का वर्णन किया है।

भारतीय प्रेस जहाँ राष्ट्रीय चेतना के जागरण के माध्यम से लोगों को असहयोग आन्दोलन से जोड़ रही थी। वहीं भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की गतिविधियाँ महात्मा गाँधी के नेतृत्व में इस आन्दोलन को सफल बनाने में अग्रसर थी। गुजरात प्रान्तीय सम्मेलन काँग्रेस के विशेष अधिवेशन के लगभग एक महीना पूर्व ही बुलाया गया था, जिसमें अब्बास तैयबजी की अध्यक्षता में गाँधी जी ने असहयोग का प्रस्ताव प्रस्तुत किया और भारी बहुमत से वह स्वीकृत हुआ। बिहार में प्रान्तीय काँग्रेस समिति की एक बैठक 31 जुलाई को 'सर्चलाइट' कार्यालय में हुई। हाई कोर्ट के एक वकील श्री एस. सी. मित्र की अध्यक्षता में कई प्रस्तावों के साथ यह भी स्वीकृत हुआ : (1) यह समिति राष्ट्रीय शिकायतों को दूर करने तथा खिलाफत समस्या के समाधान के हेतु देश की वर्तमान स्थिति में असहयोग के सिद्धान्त को एकमात्र प्रभावी साधन के रूप में स्वीकार करती है। 2. एक समिति की नियुक्ति की जाए, जो श्री गाँधी द्वारा बताये गए असहयोग कार्यक्रम पर इस प्रान्त की स्थिति के विशेष संदर्भ में रिर्पोट दे। इस समिति में निम्नलिखित व्यक्ति रहें : सर्वश्री मजहरूल हक, हसन इमाम, गणेशदत्त सिंह, राजेन्द्र प्रसाद और अयोध्या प्रसाद। समिति 8 अगस्त तक अपनी रिर्पोट समर्पित कर दे एवं इस समिति की बैठक उस पर विचार करने के लिए 10 तारीख को होगी।" इस सभा में श्री हक, हसन इमाम और राजेन्द्र प्रसाद उपस्थित नहीं थे।

संदर्भ सूची

1. भारतीय पत्रकारिता का इतिहास – जे. नटराजन, प्रकाश विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2006
2. अर्द्धसरकारी पत्र संख्या 11, 28 जनवरी 1922 तिरहुत के आयुक्त को जिला मजिस्ट्रेट से,
3. वही 3. मुजफ्फरपुर के मजिस्ट्रेट, टी. ब्रिज का तिरहुत के आयुक्त को 30 मार्च 1922 का पत्र
4. दत्त के. के. – फ्रीडम मूवमेंट इन बिहार, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी खण्ड – 1, पृष्ठ सं. – 150–151
5. नारायण, महेश तथा सिन्हा सच्चिदानन्द – पार्टिशन ऑफ बंगाल और सेपरेशन ऑफ बिहार, बाँकीपुर 1906 पृष्ठ सं. –2
6. गुरूमुख निहाल सिंह, लैंडमार्क, इन इंडियन कन्स्टिच्यूशनल ऐंड नेशनल डेबलपमेंट, खंड–1, पृष्ठ 256 में उद्धृत, और भी ध्यातव्य घोश, द प्रेस एण्ड प्रेस लॉज इन इंडिया, पृष्ठ 39–40.
7. बिहार में पत्रकारिता का विकास, शिवेन्द्र नारायण, काँग्रेस अभिज्ञान ग्रन्थ, 1962 पृष्ठ–176

भारत में ऊर्जा सुरक्षा : एक आलोचनात्मक अध्ययन

श्रुति जायसवाल

शोध छात्रा (भूगोल), बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

ऊर्जा की महती भूमिका सतत् विकास और बढ़ती आबादी की गुणवत्ता युक्त जीवन सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है। आर्थिक आधारभूत ढ़ाँचे का महत्वपूर्ण अंग है। कृषि, उद्योग, वाणिज्य, परिवहन आदि ऊर्जा पर ही निर्भर है। आधुनिक अर्थव्यवस्था की समूची इमारत ऊर्जा के बृहद उत्पादन और उपभोग पर टिकी हुई है। भारत जैसे देश कोयला, गैस, पेट्रोलियम जैसे जीवाश्म ईंधन पर अत्यधिक निर्भर करते हैं। अपनी आवश्यकता को स्वदेशी उत्पादन से पूरा करने में असमर्थता के कारण आयात पर निर्भरता अपरिहार्य हो गई है। ऊर्जा के विदेशी सौदों पर निर्भरता का सामरिक दृष्टि से देश के लिए महत्वपूर्ण निहितार्थ है। इस प्रकार आर्थिक ऊर्जा का पर्यावरण प्रभाव भी भारत सहित अनेक देशों में निर्भर विषय बनता जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 2012 को सभी के लिए सतत् ऊर्जा वर्ष मनाने की घोषणा किया था।

ऊर्जा सुरक्षा के विषय पर नीति-निर्माताओं, उद्योगपतियों, बुद्धिजीवियों, विशेषज्ञों और आम आदमी सभी को ध्यान देने की आवश्यकता है। भारत जैसे देश को अपनी ऊर्जा नीति को आर्थिक अनिवार्यताओं, पर्यावरणीय सरोकारों और रणनीतिक हितों के साथ जोड़ना होगा तभी हम अपने राष्ट्रीय उद्देश्यों को प्राप्त कर सकेंगे। भारत सरकार ने जिस ऊर्जा सुरक्षा की परिभाषा को अपनाया है, वह है हम तब ऊर्जा सुरक्षित महसूस करते हैं जब हम पाते हैं कि हमारे सभी नागरिकों के लिए ऊर्जा उनकी जीवन रेखा और उनकी सभी मांग पूरी करने में सक्षम है और सुगमता से प्रतियोगी मूल्य पर इसकी आपूर्ति हर समय पूरे विश्वास के साथ बाधाओं की परवाह किए बिना की जा सकती है। संतोषजनक रूप में ऊर्जा इस्तेमाल पर मूल रूप से दो शर्तें लागू होती है। पहले सभी के लिए उचित मात्रा में हर तरह की सही उर्जा जरूरत के वक्त उपलब्ध कराएँ और दूसरा इसको अर्थव्यवस्था की भावी जरूरतों के अनुसार लगातार उनके पूर्ति करने में सक्षम हो।

भारतीय ऊर्जा नीति के विशेषज्ञों ने एकत्रित ऊर्जा नीति को अपनाया है जिसमें कहा गया है कि 'भारतीय नीति का उद्देश्य अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों को ऊर्जा सेवाओं की मांग पूरी करना और देश के सभी भागों में स्वच्छ और सुगम आपूर्ति वाजिब दामों पर सुनिश्चित कराना। यह काम इस तरह से किया जाना चाहिए कि आपूर्ति कुशल, आर्थिक रूप से व्यवहार्य और पर्यावरण की दृष्टि से निरंतर चलने वाली हो ताकि ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों का इस्तेमाल भी पूरे भरोसे के साथ किया जाना है और बिजली की व्यवस्था में कोई बाधा नहीं आना चाहिए। इस प्रकार यह दृष्टिकोण सुनिश्चित करना है कि ऊर्जा नीति की रूपरेखा का ऐसा माहौल बनाया जाय जिससे निर्णय करने वाले उपभोक्ताओं, निजी कंपनियों, स्वायत्तशासी निगमों और सरकारी विभागों को प्रोत्साहन मिले और वे इस तरह को व्यवहार करें जो समाज और अर्थव्यवस्था को वांछित परिणाम दे सकें।

ऊर्जा आर्थिक विकास के साथ-साथ मानव विकास के लिए भी महत्वपूर्ण है। प्राथमिक ऊर्जा के अनेक स्रोत कायेला, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस जैसे जीवाश्म ईंधनों के अतिरिक्त जल विद्युत, परमाणु, सौर और अक्षय ऊर्जा संसाधनों के साथ ही गैर पारम्परिक ऊर्जा के स्रोत उपलब्ध है। ऊर्जा नीति में भी विविध लक्ष्य है, आर्थिक दक्षता, सभी को किफायती मूल्य पर स्वच्छ ऊर्जा सुलभ कराना, पर्यावरणीय और ऊर्जा सुरक्षा।

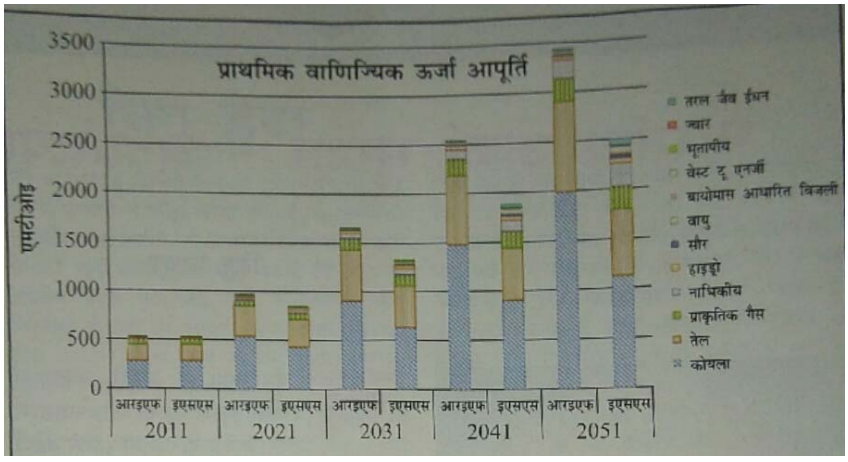

संदर्भ : ऊर्जा परिदृश्य बनाम ऊर्जा सुरक्षा परिदृश्य

ऊर्जा सुरक्षा के लिए स्वतंत्रता होनी चाहिए जिसने परनिर्भरता को समाप्त करके आत्मनिर्भरता की प्राप्ति होने चाहिए। कोई भी राष्ट्र पूर्ण रूप से ऊर्जा स्वतंत्र नहीं हो सकता है परन्तु आंशिक रूप से आत्मनिर्भर तक पहुँचने के तरीके अपना सकता है जैसे ऊर्जा कुशलता में सुधार अर्थात् ऊर्जा का कुशलतम् उपयोग और बर्बादी रोकना, ऊर्जा संरक्षण करना, विद्युत सुधार अर्थात् विद्युत क्षेत्र में निजी निवेश को बढ़ावा, राज्य बिजली बोर्डों का पुनर्गठन बिजली परिषण एवं वितरण में सुधार, बिजली चोरी को रोकना, कृषि तथा घरेलू बिजली पर रियायतों को तर्कसंगत बनाना, कम बिलिंग और पैसा आने की क्षमता में सुधार, घरेलू संसाधनों का विकास एवं नवीन अन्वेषण पर अत्यधिक बल, वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों का तीव्र विकास, परमाणु ऊर्जा उत्पादन में वृद्धि, तकनीकी के विकास तथा उसका अधिकाधिक प्रोत्साहन आदि।

जीवाश्म ईंधन के अत्यधिक इस्तेमाल होने वाले प्रदूषण तथा पर्यावरण संकट ने वैज्ञानिकों को ऊर्जा के नए स्रोत विकसित करने एवं अनजान स्रोत ढूढ़ने के लिए बाध्य किया है। पिछले कुछ दशकों में ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत जरूर विकसित हुआ है लेकिन इसकी अपनी सीमा और वडंबना है। यह बात भी अब साबित हो चुकी है कि सौर और पवन ऊर्जा आदि हमारे ऊर्जा की जरूरतों को आंशिक तौर पर ही पूरा कर सकते हैं। यह वाणिज्यिक रूप से फायदेमंद भी नहीं है। परमाणु और जल विद्युत ऊर्जा में संभावना तो बहुत है लेकिन इसके खतरे कम नहीं है। यही कारण है कि वैज्ञानिक लगातार ऐसी ऊर्जा के स्रोत खोजने में लगे हुए हैं जो 'कॉस्ट इफेक्टिव' होने के साथ पर्यावरण के अनुकूल भी हो।

जीवाश्म ईंधन में कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस ऐसा ही ईंधन है जो प्रकृति में बहुतायत पाया जाता है। इन ईंधनों के जलने से ऑक्सीजन की खपत होती है परिणामस्वरूप कार्बन-डाइ-ऑक्साइड और कार्बन-मोनो-ऑक्साइड गैस उत्पन्न होता है तथा पृथ्वी पर ऑक्सीजन की कमी हो जाती है। इस प्रकार ऑक्सीजन और कार्बन-डाई-ऑक्साइड का संतुलन बिगड़ जाता है। वाहनों, उद्योगों से निकलने वाली विषैले गैसों के द्वारा बड़ी पर्यावरण समस्या उत्पन्न होती है। जल विद्युत के द्वारा ऊर्जा उत्पन्न करने से जल में घुलनशील ऑक्सीजन की कमी हो जाती है जो जल चरों के भौतिक गतिविधियों को प्रभावित करता है। यदि मानव को अपना भविश्य सुरक्षित रखना है तो खनिज और ऊर्जा संसाधनों के दोहन को शनैः शनैः समाप्त करना होगा। उसके स्थान पर ऊर्जा के अखंड अक्षय स्रोतों का प्रयोग करना होगा क्योंकि वह व्यय होने के पश्चात् भी स्वंय को पुनरोपादित कर लेते हैं।

भारत में निश्चित रूप से अक्षय ऊर्जा के विकास के लिए महत्व कांची लक्ष्य निर्धारित किया है। इसमें अंतर्निहित लक्ष्य घरेलू ऊर्जा सुरक्षा हासिल करने का है जबकि क्षेत्रीय विकास, रोजगार का अवसर पैदा करने, घरेलू उद्योगों को वैश्विक दृष्टि से प्रतिस्पर्धात्मक बनाने और शाखा परिश्कृत पहुँच कायम करने और पर्यावरण एवं जलवायु के स्वच्छ बनाने जैसे पार्श्ववर्ती लाभ भी हासिल होंगे। भारत ने 1981 में अतिरिक्त ऊर्जा स्रोत आयोग का स्थापना के साथ अपना अक्षय ऊर्जा कार्यक्रम प्रारंभ किया था। आयोग को नये और अक्षय ऊर्जा स्रोतों से संबंधित सभी मामलों में नीतियाँ और कार्यक्रम तैयार करने, अनुसंधान एवं विकास में समन्वय करने और तेजी लाने तथा सरकारी नीतियों कार्यान्वयन सुनिश्चित करने जैसे दायित्व सौंपे गए थे। आयोग की परिणति 1982 में स्वतंत्र गैर पारंपरिक ऊर्जा स्रोत विभाग के रूप में हुई जिसे 1992 में गैर पारंपरिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय में परिवर्तित किया गया। 2006 में मंत्रालय का नया नामकरण एवं अक्षय ऊर्जा स्रोत मंत्रालय के रूप में किया गया। इसके साथ ही नवीकरण ऊर्जा परियोजना के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने के वास्ते 1987 में भारतीय नवीकरण ऊर्जा विभाग एजेंसी की स्थापना की गई। इसके बाद राज्य स्तर पर परियोजनाओं के कार्यान्वयन के लिए राज्य नवीकरण ऊर्जा विकास एजेंसियों की स्थापना की गई। ऊर्जा संरक्षण अधिनियम 2001 का उद्देश्य ऊर्जा की किफायती उपयोग वे उसके उपयोग में बदलाव लाना है। इसके फलस्वरूप ऊर्जा दक्षता ब्यूरो की स्थापना हुई। भारत के आठ राष्ट्रीय मिशनों में दो राष्ट्रीय सौर ऊर्जा को स्थान दिया गया है।

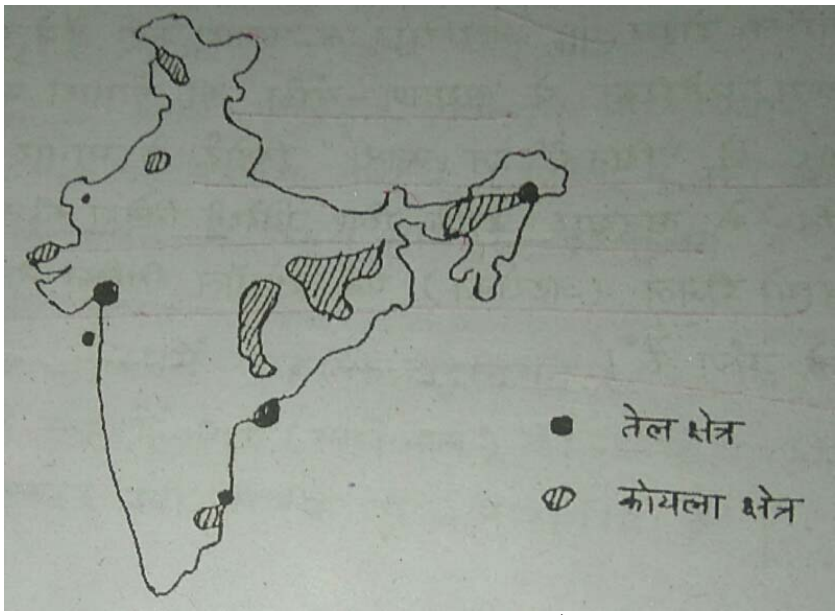

पूरे विश्व में अगर ऊर्जा की उपलब्धता के मद्देनजर भारत की स्थिति काफी चिंताजनक है। बढ़ती जनसंख्या, अपर्याप्त ऊर्जा आपूर्ति, सीमित संसाधन, पर्यावरण हितैषी ऊर्जा आदि प्रमुख चुनौतियाँ है। ऊर्जा क्षेत्र का जो सबसे बड़ा संकट है। वह यह है कि ऊर्जा के पारंपरिक स्रोत सीमित हैं। अनवरत दोहन

से उनका एक ना एक दिन खत्म होना तय है। ऐसे मैं ऊर्जा का सृजन गैर-पारंपरिक स्रोतों अक्षय ऊर्जा के स्रोत होना अभीष्ट है। इसके लिए उन असीमित स्रोत पर ऊर्जा उत्पादन केन्द्रित करना होगा जो कभी न खत्म होने वाले जैसे सूर्य का प्रकाश, पवन ऊर्जा, सौर फोटोवोल्टिक ऊर्जा, लघु पनबिजली, बायोमास से बिजली उत्पादन, बायोगैस संयंत्र, ज्वारीय ऊर्जा, बायो ईधन, ज्वालामुखी से उर्जा, समुद्री तरंग से बिजली, भूगर्भीय ताप से बिजली, हाइड्रोजन से ऊर्जा तथा अन्य संभावित स्रोत के तहत पॉकेट पार्टिकल एक्सलेटर, कृत्रिम प्रकाश संश्लेषण, हाइड्रोजन यूल सेल, एंटी मैटर, न्यूक्लियर यूजर, अवशिष्ट उत्पाद और एसे अन्य स्रोत है जो कभी खत्म ना होंगे फिर उनका नवीकरण किया जा सकेगा। सौभाग्य से भारत इन सभी स्रोतों की अधिकता है।

अत: भारत ने निश्चित रूप से ऊर्जा के विकास के लिए महत्वाकांक्षी लक्ष्य निर्धारित किया है। इसमें अंतनिर्हित लक्ष्य घरेलू ऊर्जा सुरक्षा हासिल करने का है जबकि क्षेत्रीय विकास, रोजगार के अवसर पैदा करने, घरेलू उद्योगों को वैश्विक दृष्टि से प्रतिस्पर्धात्मक बनाने, ऊर्जा तक परिश्कृत पहुँच कायम करने तथा पर्यावरण और जलवायु को स्वच्छ बनाने जैसे लक्ष्य भी हासिल करने होंगे। आर्थिक विकास और औद्योगिकीकरण के होड़ के बीच पूरे विश्व के साथ भारत के लिए भी आवश्यक है कि ऊर्जा के पर्यावरण हितैषी स्रोतों की वरीयता के आधार पर बढ़ावा दिया जाए। यद्यपि अभी जीवाश्म ईधन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है परन्तु भविश्य में इसको नवीकरण स्रोतों के द्वारा चरणबद्ध ढ़ंग से कम करना होगा। अन्यथा विकास का पहिया प्रदूषण के गढ़े में फंस जायेगा और भावी भविश्य अंधकारमय हो जायगा। ऊर्जा क्षमता जो भौतिक आर्थिक विकास को सुनिश्चित करती है वह किसी भी देश के विकास रूपी गाड़ी का इंजन होती है जिसके सहारे विकास प्रक्रिया आगे बढ़ती है। समाज के हर क्षेत्र उद्योग, व्यापार, कृषि, परिवहन, आवास आदि सबके लिए ऊर्जा नितांत आवश्यक है। मौजूदा व्यापारिक और औद्योगिक व्यवस्था का मूलाधार ही उड़ जाए। आर्थिक विकास के बुनियादी जरूरतों के साथ विकसित होते औद्योगिक समाज का ढ़ांचा ही ऊर्जा उपलब्धता पर टिका है। किसी देश के प्रति व्यक्ति ऊर्जा की खपत वहाँ के जीवन स्तर का सूचक होता है। अक्षय ऊर्जा स्रोत को मुख्य साधन के तौर पर उपयोग के लिए नीतिगत समायोजन, बाजार को अपनी परिस्थितियों के अनुकूल बनाने और प्रौद्योगिकी के उपयोग से है। इसी के साथ समाज को ऊर्जा की अपनी खपत पर पुनर्विचार और नई दिशा देने की आवश्यकता है। ऊर्जा के उन प्रचुर प्राकृतिक साधनों का अधिक उपयोग करना होगा जो किफायती है, संपोषणीय और जो हमारी जेब पर बोझ ही नहीं बनते हैं।

सन्दर्भ सूची

- भारतीय अर्थव्यवस्था, रूद्र दत्त और के. पी. एम. सुंदरम, एस. चन्द्र एण्ड कंपनी लिमिटेड, रामनगर, दिल्ली
- आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, जगदीश सिंह और काशीनाथ सिंह, ज्ञानोदय प्रकाशन
- प्रादेशिक भूगोल, प्रो. एस. एम. जैन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
- योजना (मासिक पत्रिका)
- भूगोल और आप, मासिक पत्रिका
- वर्ड फोकस विशेषांक (मासिक पत्रिका)
- इग्नू बुकलेट अध्ययन सामग्री
- बिहार स्टेट बुक, कक्षा - 10
- एनसीईआरटी पाठ्यक्रम सामग्री

नूर मोहम्मद के काव्य दर्शन का विश्लेषण

डॉ० प्रदीप कुमार सिंह

अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, साठये महाविद्यालय (मुंबई विद्यापीठ), मुंबई-महाराष्ट्र

ईश्वरानुभूति को सामूहिक स्तर पर नहीं समझा जा सकता। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के ज्ञान की पृथक-पृथक अपनी सीमाएं होती हैं जो उसे ईश्वरानुभूति को समझने की शक्ति देती है। अगम्य, अगोचर, ब्रह्म (ईश्वर) का ज्ञान, गुरुकृपा एवं व्यक्तिगत अनुभूतियों के तहत ही पाया जा सकता है। जिस मनुष्य को सही दिशा निर्दिष्ट नहीं होती, तब तक वह भवसागर में भटकता रहता है। इस दशा में वह अल्पज्ञानी असत्य को सत्य मान लेता है। सूफी साधक अपनी बहुमुखी चेतना को अंतर्मुखी बनाकर मारफत के विशेष लक्ष्य की ओर केंद्रित कर देने को ही जीवन का चरम लक्ष्य मानते हैं। अत: यहां हम, सूफी कवि नूर मोहम्मद के इसी चरम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उनकी दार्शनिक भावभूमि को समझने का प्रयास करेंगे। नूर मोहम्मद की दार्शनिक भावभूमि को समझने के लिए निम्न बिंदुओं पर विचार करेंगे :

जगत

नूर मोहम्मद की ख़ृष्टि में परमात्मा सकल सृष्टि (जगत) का एकमात्र निर्माता है। सूरज, चाँद, सितारे, आसमान, जमीन सभी उसी के बनाए हुए हैं। वह दोनों लोकों का स्वामी एवं शासक है। उसने मानव को नेत्र दिए, जिससे वह सद्पथ को पहचान ले। जिह्वा दी, जिससे वह उसका गुणगान कर सके। दो कान दिए, जिससे भली प्रकार सुन सके। बुद्धि और ज्ञान दिया, जिससे परमेश्वर को पहचान सके। गगन की सुंदरता के लिए जहाँ उसने नक्षत्र बनाए वहीं उसने पृथ्वी की सुंदरता के लिए मनुष्य को सजाया संवारा और उसे सुंदर सांचे में ढाला जो अन्य सृष्टियों में सर्वोत्तम है। ईश्वर का स्वरूप गुप्त भी है प्रकट भी है। वह आदि और अंत दोनों है। वह स्वयं देखता और सुनता है। उसके जैसा कोई और नहीं। जमीन आसमान के मध्य जो कुछ है सब उसी की उपासना में विलीन है। मनुष्य का प्रत्येक अंग और कण- कण यदि रसना (जीभ) बन जाए फिर भी उसका गुणगान नहीं कर सकते चूँकि वह है ही इतना सर्वगुण संपन्न एवं सर्वशक्तिमान। वह इतना सौंदर्यशील है कि उसके रूप के प्रकाश से संपूर्ण जगत आलोकिक होता है। इस प्रकार कवि नूर मोहम्मद की ख़ृष्टि में सृष्टि या जगत अगम एवं अगोचर है।

परमसत्ता का पूर्ण स्वातंत्रय

कवि नूर मोहम्मद का भी अन्य सूफी साधकों की भांति विचार था कि परमात्मा प्रत्येक ख़ृष्टि से पूर्णत: स्वतंत्र है। उसने जब इस सृष्टि की रचना करनी चाही तो कुन अर्थात हो जाके दो अक्षरों काफ और नून के उच्चारण मात्र से संपूर्ण जगत को रच डाला।

वचन एक करतार निसारा।
भा ते हि वचन हुते संसारा।[1]
है जेहि नाद जगत यह फेरो।
मम सरोत वह नादन परो।।[2]

उसने (ईश्वर) जो कुछ भी लिख दिया वही घटित हो गया-

जो किछ अलख लिखा, सोइ होत।।[3]

सारा जगत उसी की इच्छा का परिणाम है। प्रसिद्ध है एक बार दाउद पैगंबर ने ईश प्रार्थना करते हुए एक प्रश्न किया -

हे ईश्वर तूने सृष्टि क्यों पैदा की?

निस्पृह ईश्वर का आदेश हुआ-मैं एक छिपी हुई निधि था और मेरी इच्छा हुई कि मैं पहचाना जाऊँ। अत: मैंने सृष्टि की रचना की जिससे मैं पहचाना जा सकूँ। इस बात को सभी भारतीय-अभारतीय सूफी अपने चिंतन का मूलाधार मानते हैं। नूर मोहम्मद ने इसी तथ्य को इन शब्दों में व्यक्त किया है।

सिरजनहार छिपा न रहा,
आपुहिं फेर चिन्हावै चाहा।
तब यह जग करतार संवारा,
चीन्ह पड़ा वह सिरजनहारा।।[4]

एक अन्य स्थान पर नूर मोहम्मद लिखते हैं-

सिरजनहार एक है, काहू जना न सोई।
आपन काहूं सोजना, वह समान नहिं कोई।[5]

प्रेम और वियोग

ईश्वर के दो गुण जमाल (सौंदर्य) और जलाल (प्रताप) स्वीकार किए गए हैं। सौंदर्य ईश्वर की दया एवं करूणा को प्रदर्शित करता है, यही सदाचार एवं धर्मपरायणता का स्रोत है। जलाल उसकी शक्ति एवं प्रताप को प्रतीकायित करता है। उसका सौंदर्य वं प्रताप संसार की समस्त वस्तुओं में आभासित होता है। नूर मोहम्मद का विश्वास है कि यह प्रेम उसी के मन में जागता है जो अत्यधिक भाग्यशाली है-

बड़ी नीयति सो उपजत, हिरदएं दोह।[6]

यह प्रेम जब तक व्याप्त नहीं होता जब तक मनुष्य निंद्रावस्था में पड़ा रहता है एवं जब इसका प्रवेश होता है तो निंद्रा समाप्त होकर मनुष्य ईश्वर के प्रेम में पणकर उसी के जाप, स्मरण में तल्लीन हो जाता है-

जब लगि प्रेम न व्यापै, तब लगि स्वाप।
स्वाप जात जब आबत, पाढल आप।।[7]

यह प्रेम ईश्वर की दया से ही संपन्न होता है। जब किसी गुरु के माध्यम से परम सत्ता के सौंदर्य का बखान सुनने का मनुष्य को अवसर प्राप्त होता है-

कहा प्रेम है जाकर नाउं।
सुनि बखान उपनत मन ठाउं।।[8]

और यह प्रेम ऐसा है कि मनुष्य का आपा समाप्त करा देता है-

गड् अब हाथ सों आपा मोरी।
प्रेम करई दुति लीन्हेउ छोरी।।[9]

जब मनुष्य का आपा समाप्त हो जाता है तभी उसे सच्चे प्रेम की अनुभूति होती है-

जब मैं आपन नाम भुलावउं।
तब वह नाम जपत रस पावउं।।[10]

वह ईश्वर जो स्वयं स्वरूपानंद एवं प्रेममय है वह जब तक जीवात्मा अर्थात साधक को प्रेम का प्याला जो मदिरा स्वरूप है उसे न पिला दे तब तक प्रेम स्वरूपानंद पुज ब्रह्म को नहीं पहचान सकता-

प्रेम प्रेम मद प्याला दीन्हा।
तब जिउ सुखदाता कह चीन्ह।।[11]

प्रेम का यह बीज भी अनोखा है जो मनुष्य के अंत:करण रूपी भू पटल पर पड़ते ही योग रूपी वृक्ष को जन्म देता है और जो इसका स्वाद चख लेता है वह वियोग में पूरी तरह से घिर जाता है। वह तन रूपी पिंजड़े में मन रूपी पक्षी की तरह फड़फड़ाता रहता है और उसकी इच्छा होती है कि वह उसे पिंजड़े को तोड़कर अपने गन्तव्य तक पहुँच जाए -

वो ही बीज मन धरती परा,
जोग बिछ तासों अवतरा।
रहा न वापस जो निर्खाबा,
आपुटहि प्रेम दून होड़ आवा।
की वह बीज रहा मति केरा,
जेहि खाए बिछुतन दु:ख घेरा।
यह सरीर पिंजर मों,
रहत दुखारी प्रान।
चाहत उडै तौरि कै,
जाइ पहिल अस्थान।।[12]

स्पष्ट है कि वियोग का प्रेम के साथ एक घनिष्ठ संबंध है। जहाँ सौंदर्य है वहाँ प्रेम होता है और जहाँ प्रेम होता है वहाँ वियोग का अनुभव होना स्वाभाविक है। प्रेमाभिलाषी अपने प्रेमी के दर्शन के लिए दिन रात बेचौन रहता है और उसकी दिन की शांति एवं रात की नींद उड़ जाती है उस समय चिंतारूपी घी जीवात्मा रूपी दूध के भीतर से प्रकट होता है तब वह साधक (प्रेमीभक्त) को रात दिन के आंसू रूलाने के लिए बेचौन बना देती है-

चौन कहां चिंता जेहि जीउ,
जीउ दुग्ध मां चिंता घीउ।
जब चिंता तब नींद न आवै,
आये तब जब चिंता जावै।
प्रेमी पर चिंता कहं मारै,
मारै मन चाहुत जिय वारे।
हेरे प्रीतम मुख नहिं फेरै,
कौरे मित्र मित कह हेरै।
रोवे रकत आंसू नहिं सोवै,
दरसन लाग रात दिन रोवै।।[13]

प्रेम के वियोग की दशा केवल पुरुष को ही होती है ऐसा नहीं, प्रत्युत स्त्री को भी इसकी अनुभूति होती है। वह भी पुरुष की तरह अपने प्रेमी के स्मरण में रात दिन विरह के थपेड़े खाती रहती है।

वस्तुतः सूफियों की वियोग कल्पना इस ओर संकेत करती है कि प्रेम वियोगी के हृदय को अस्तित्व विहीनता की दशा में ला देता है जहाँ आकर वह लोकिकता से ऊपर उठकर अपने अलौकिक प्रेमी के स्मरण में एक नवीन जीवन का आनंद अनुभव करने लगता है।उपर से देखने पर विरह की यह दशा स्थूल लग सकती है परंतु सच तो यह है कि इस स्थिति में प्रेमी और प्रेमपात्र के बीच की दूरी में रिक्तता की गुंजाइश नहीं रहती। दूसरे शब्दों में कहे तो कह सकते हैं कि यह स्थिति जीवन की स्थूलता को सूक्ष्मता की ओर ले जानेवाली होती है और जब ऐसा होता है तो एक मंजिल पर पहुँचकर प्रेमी प्रेम और प्रेमपात्र के मध्य का अंतर समाप्त हो जाता है। इसी स्थिति से नारी को भी अपने प्रेम पात्र के प्रेम में वियोग से गुजरना पढ़ता है।

नूर मोहम्मद की इंद्रावती प्रेम समुद्र के बीच से गुजरती है तो वियोग की स्थिति उसे इतना झकझोर देती है कि वह प्रेमपात्र को पाने के लिए ऐसी व्यग्र, बेचौन एवं आकुल हो उठती है कि उसे तुरंत मिलन की तीव्रानुभूति होने लगती है। वह उस समय समस्त सांसारिक व्यस्तताओं, चिंताओं को विस्मृत कर देती है। उसका समस्त तन पीत (पीला) वर्ण में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार हर क्षण उसे अपने प्रेमी के नाम का जाप स्मरण करते रहना सूक्ष्म संयोग का संकेत करता है जो एकत्व की मंजिल तक पहुँचने के लिए दैवीय व्यग्रता को उद्भासित करता है-

प्रेम समुद्र बीच घन परी,
लहरें खाय घरी ओ घरी।
हिरदे भीतर करह पुकारा,
कहां हमारो खेवन हारा।
दिन व्याकुल निस नींद न सोवै,
व्याकुल होड़ होड़ मन रोवे।
काम के बान को बेझा भई,
बैराताइ भई तरूनई।
रहलि एक तो अलप अहारी,
औरौ तजा अहार पियारी।
छुट गएउ प्यारी सों,
सुख सोड़ब और खाब।
चित्त झकोरा सों पियर,
भएउ सो ललनि गुलाब।।[14]

प्रेम मार्ग की बाधक स्थितियाँ एवं आनंदानुभूति

हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रारंभ से लेकर अंत तक जितने भी कवि या कववयित्री हैं यदि उनके काव्य में प्रेम का स्फुरण हुआ है तो प्रेम मार्ग में आनेवाली कठिनाइयों का विवेचन भी मिलता है। कबीर से लेकर कुतुबन, मंझन, जायसी, मीरा, बोधा, घनानंद, आलम, ठाकुर इत्यादि का काव्य इस दृष्टि से पूर्णतः आप्लावित है। नूर मोहम्मद ने भी उन्हीं मान्यताओं एवं परंपराओं के अनुरूप प्रेम मार्ग को तलवार की तेज धार की तरह बताया है-

प्रेम पंथ है कठिन पियारी,
चोखी खरग चाह अधिकारी।[15]

इस राह पर चलने के लिए प्रेम पिपासी सूली पर चढ़ने में भी आनंद की परमानुभूति करता है। वास्तव में यह प्रेम की पीड़ा होती ही कुछ इस प्रकार की कि प्रेम का मतवाला वह प्याला हंसते-हंसते पी जाता है। जिस प्रकार मधुमक्खी के डंक का दु:ख शहद मिल जाने के सुख के जैसा नहीं होता उसी प्रकार प्रेम की पीड़ा में भी प्रेमी को मिलनावस्था की तीव्र रसानुभूति होती है-

जाको प्रीत मित्र की पूरी,
भा मनसूर चढ़ा वह सूरी।
प्रीतम जाको चीरा ही या,
दीन्हा जो छिपा भा दिया।
बिन दु:ख सहे मिलत सुख नाही,
मधु सुख अहै डंक दु:ख माही।[16]

भक्त के हृदय पर एक बार प्रेम रूपी शर लग जाता है और भक्त को दु:ख के स्थान पर परमानंद की अनुभूति होती है उस समय उसका संपूर्ण दु:ख विषाद समाप्त हो जाता है-

जब सो मोहि संसारा मझारा,
मनस लागा बान तुम्हारा
डपजो हिपें सहस आनंदू,
गयेउ जगत को सब सुख दुंख़
है हिय प्रेम बानकर घाउ,
किछ नीहि औशए पर चाउं।।[17]

नूर मोहम्मद की ख़ष्टि से प्रेमी वही है जो प्रेम पात्र के प्रेम में पणकर अपने प्राणों की बलि दे दे और एक प्रकार का अमरत्व प्राप्त कर ले-

प्रेमी ताको जानिये,
देड़ मित्र पर जान।
मित्र पंथ पर जिउ दिहें,
जुग-जुग जिये निदान।।[18]

जीव विचार

सूफियों के विचारानुसार जीव या मानव जीव परमेश्वर की सर्वोत्ख़ष्ठ, सुंदर सजीव रचना है। ईएवर ने सर्वप्रथम सर्वश्रेष्ठ जीवात्मा के रूप में हजरत मुहम्मद को रचा। वस्तुत: सूफी विचारक एवं दार्शनिक हकीकते मुहम्मदिया अर्थात मुहम्मद का वास्तविक रूप और नूरे मुहम्मदिया अर्थात मुहम्मद को ज्योतिर्मय रूप दोनों को एक ही मानते हैं। उनका अटल विश्वास है कि परमेश्वर ने मुहम्मद को प्रकाशपुंज (नूर) के रूप में बनाया था और उस नूर पर परमेश्वर स्वयं मोहित हो बैठा। फलस्वरूप मुहम्मद के लिए ही उसने समस्त भूतल और समग्र सृष्टि को रचा, इस बात का पता हमें हजरत मुहम्मद के प्रवचन से पता चलता है। जैसा कि-

लौलाकलमां खलकतुल अखलाक-अर्थात यदि मैं तुम्हें पैदा न करता तो सृष्टि की रचना न करता।।19

इस प्रकार मुहम्मद की रचना परमेश्वर की जात के अंदर से हुई है और उसने अपनी सत्ता के पूर्ण प्रकाश को सृष्टि तक पहुँचाना चाहा इसलिए हकीकते मुहम्मदिया के रूप में संसार में मुहम्मद रूपी पूर्ण मानव ने जन्म लिया। यही पूर्ण मानव जीवात्मा है जो परमेश्वर या परमात्मा के साथ एकत्व की पूर्ण अनुभूति प्राप्त करता है। इन विचारों को सभी हिंदी सूफियों ने ख़ढ़ आस्था के साथ प्रकट किया है। नूर मोहम्मद ने हजरत मुहम्मद की वंदना में उसी विचार को अभिव्यक्त किया है-

सुमिरो चेत धरे मन ठाउं,
अरबी नबी मुहम्मद नाउं।
जा कहं करता दरस देखाएउ,
कै किरपा सब भेद बताएउ।
जैहिक बखान अहै बो लाकां,
ताहि बखानत दोउ जग थाका।

अहद हुतें अहमद भएउ,
एक जोत दुउ नाउं।
भएउ जगत के कारने,
परेउ मोहम्मद नाउं।[20]

उपर्युक्त पंक्तियों में पैगंबर हजरत मुहम्मद की अनेक हदीसें प्रतीत होती हैं। दरस दिखाएउ के द्वारा मैराज के मौके पर परमेश्वर के दिव्य दर्शन करने का आभास कराता है और हजरत मुहम्मद साहब की इस हदीस को व्याख्यायित किया गया है कि मैंने मैराज की रात्रि में रब को एक परम सोंदर्य के रूप में देखा।[21] अहै-लोलाका के माध्यम से ऊपर उद्धृत दूसरी हदीस की ओर संकेत है-भेद बताएठउ कहकर अहद और अहमद के अभेदत्व को प्रकट किया गया है और अंत में इसी अभेदत्व को एक प्रकाश (नूक) के दो नामों के रूप में स्वीख्रत किया गया है और हजरत मुहम्मद साहब के कारण ही जगत की सृष्टि को उत्पन्न माना गया है। इस संदर्भ में सूफियों के बीच हजरत मुहम्मद साहब की यह हदीस अत्यंत लोकप्रिय है-मैं अहमद हूं बिना मीम का [22] प्रसिद्ध सूफी दार्शनिक महमूद शाबिस्तरी (मृत्यु 132..) ने इस विचार को इन शब्दों में प्रकट किया है-

ज अहमद ता अहद यक मीम फर्क अस्त।
जहां ने अंदर आं यक मीम गर्क अस्त।म।[23]

अर्थात अहमद और अहद के बीच केवल एक मीम का अंतर है और उसी मीम में संसार डूबा हुआ है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर सूफियों (नूर मोहम्मद) ने इस मीम अर्थात संसार को साधना के द्वारा हृदय से निकाल देने पर विशेष जोर दिया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नूर मोहम्मद पूर्ण मानव के रूप में हजरत मुहम्मद साहब को मानते हैं। उन्हें सृष्टि के व्यक्त रूपों में सर्वोत्तम मानते हैं, ईश्वरी गुणों का द्योतक मानते हैं और मानव रूप में ईश्वर से अलग नहीं मानते। इस संदर्भ में पं. रामपूजन तिवारी की टिप्पणी अत्यंत विचारणीय जान पड़ती है। वे लिखते हैं-उनकी सृष्टि में परमात्मा ने सर्वप्रथम आदि ज्योति (मुहम्मद) की रचना की और उस ज्योति को देखते ही परमात्मा को पसीना आ गया। उसी पसीने के सूक्ष्म तत्त्व से प्रथम आत्मा आदम का निर्माण हुआ और बाद में अन्य निम्न स्तर के जीवों की रचना हुई। 24 सूफियों ने इसी आधार पर जीवात्मा को परमात्मा का प्रतिबिंब माना है।

नूर मोहम्मद ने मनुष्य को ईएवर की सर्वश्रेष्ठ रचना मानते हुए बताया है कि मनुष्य की श्रेष्ठता ईश्वरीय प्रेम के कारण ही है अन्यथा यह मनुष्य एक मुठी धूल के अलावा कुछ और नहीं है-

रहेउ आप माही एक मुंठी
मेंएउ प्रेम बल सौ बैकुंठी।
करता हित माटी संग हेरा,
नासा गरब पाव किय केरा।
मांटी भीतर रतन छिपावा,
या नित आदर तेहिक बढ़ावा।
रब उपर उत्तम जनम,
अलख मानव हि दीन्ह।
आपन थाती ताहि है,
थाती हारा कीन्ह।[25]
या
आदि मनुष माटी सों साजा,
बहुर बुंद सोकुल उपराजा।
चालीस बालक ताकह दीन्हा,
सकल सृष्टि पर उत्तम कीन्हा।[26]

जीवन मुक्ति दर्शन

हजरत मुहम्मद साहब का कथन है कि अल्लाह के दोस्त कदापि मरते नहीं है। अपितु एक स्थान से दूसरे स्थान अर्थात एक घर से दूसरे घर को स्थानांतरिति होते हैं।[27]

सूफी साधकों ने ईश्वरीय मार्ग में मौत को फना और बका के दर्शन के माध्यम से अमरत्व की कुंजी के रूप में स्वीकार किया है। कुरआन की एक आयत के अनुसार लायक तलू फीसबी लिललाही अमवातन वल अहिया उन अर्थात जो लोग अल्लाह के रास्ते में मर मिटे, उन्हें मरा हुआ मत कहो अपितु वे जीवित हैं के माध्यम से जीवन मुक्ति या मरजीया के दर्शन को प्रस्तुत किया गया है। हजरत मुहम्मद साहब ने भी इसी के प्रकाश में एक अन्य हदीस में कहा है-मर जाओ इससे पहले कि तुम्हें मौत आये।[28]

भारतीय सूफियों को चिंतन की यह परंपरा कुरआन, हदीस और पूर्ववर्ती फारसी सूफी कवियों से मिली थी। बाबा बख्तियार काकी इस दर्शन में इतना यकीन रखते थे कि कव्वाल के द्वारा समा की एक महफिल में एक शेर सुनकर वह मूर्छित हो गए और चार दिन तक यही दशा रही। तदुपरांत उन्होंने अपने प्राण त्याग दिए। वह शेर इस तरह था-

कुश्तगाने खंजरे तस्लीम रा,
हर जमां अज जाने दीगर अस्त।

अर्थात आत्मार्पण की छुरी के नीचे जो लोग मौत पा लेते हैं उन्हें प्रतिपल अलौकिक नव्य जीवन मिलता है। कबीर ने इसी विचार को इस तरह व्यक्त किया है-

जीवन ते मरवो भलो,
जो मर जाने कोई।
मरने पहले जे मरे तो,
कल यज आवर होई।।[29]

मलिक मुहम्मद जायसी ने जीवित रहते हुए मृत्यु की अवस्था को प्राप्त कर लेनेवालों को श्रेयस्कर मानते हुए साधु पुरुष के रूप में मान्यता दी है-

मुहम्मद जिय तई जिय,
मुए तिन पुरखन ते साधु।।[30]

नूर मुहम्मद ने उपर्युक्त सभी विचारों को इंद्रावती में अनेक स्थानों पर व्यक्त किया है-

मुवा न कहो जियत है सोई,
अलख पंथ जो जुझा होई।
मित्र जो है करतार के,
मरत नहीं है सोई।
एक मंदिर तजि दूसरे,
गवनत है वे लोई।।[31]
जो मर जिया सोभा मर जीया।
राखई मार बरख सैताई,
आपहि फेरि जियावै राखे,
जो मरि जिओ सो दोउ चोखे।[32]
जो करतार पथ पर जूझा,
ताकह चिर जीत हम बूझा।।[33]
डूबै प्रेम सिंधु जो कोई,
मिर्तु समुद्र न बूढ़े सोई।[34]

संदर्भ

- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, स्तुति खण्ड, पृष्ठ 5
- नूर मोहम्मद : अनुराग बाँसुरी, सं. रामचंद्र शुक्ल तथा चंद्रबली पाण्डेय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं. 2007 वि. मनभावनी खण्ड, पृष्ठ 134
- नूर मोहम्मद : अनुराग बाँसुरी, सं. रामचंद्र शुक्ल तथा चंद्रबली पाण्डेय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं. 2007 वि., बैरागी खण्ड, पृष्ठ 198, छंद 4
- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, स्तुति खण्ड, पृष्ठ 6, छंद 18
- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, फुलवारी खण्ड, पृष्ठ 56, छंद 16
- नूर मोहम्मद : अनुराग बाँसुरी, सं. रामचंद्र शुक्ल तथा चंद्रबली पाण्डेय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं. 2007 वि., बैरागी खण्ड, पृष्ठ 106, छंद 36
- वही, पृष्ठ 107, छंद 38

- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, स्वप्न खण्ड, पृष्ठ 19, छंद 4-5
- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, जोगी खण्ड, पृष्ठ 23, छंद 1-4
- वही, पृष्ठ 25, छंद 5-10
- वही, पृष्ठ 26, छंद 3-11
- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, पाती खण्ड, पृष्ठ 73, छंद 14
- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, दर्शन खण्ड, पृष्ठ 79, छंद 4-2
- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, मोती खण्ड, पृष्ठ 161, छंद 12
- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, फाग खण्ड, पृष्ठ 37, छंद 12
- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, सुवा खण्ड, पृष्ठ 87, छंद 16
- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, मोती खण्ड, पृष्ठ 158, छंद 3
- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, पाती खण्ड, पृष्ठ 72, छंद 13
- इबके माजा इकामा, पृष्ठ 203
- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, स्तुति खण्ड, पृष्ठ 2, छंद 4
- इबके माजा इकामा, पृष्ठ 203
- अलखबानी : सै"यद अतहर अब्बास रिजवी एवं शैलेश जैदी, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, 1971, पृष्ठ 75
- वही, पृष्ठ 75
- वही, पृष्ठ 72-73
- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, जोगा खण्ड, पृष्ठ 32, छंद 34
- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, मोती खण्ड, पृष्ठ 161, छंद 12
- क़ुरआन : सूर 11, आयत-53
- इबके माजा इकामा, पृष्ठ 205
- कबीर ग्रंथावली : सं. श्याम सुंदर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 17वां संस्करण, साखी 38ध्8
- जायसी ग्रंथावली (पद्मावत) : सं. रामचंद्र शुक्ल ना. प्र. सभा, काशी सं. 2017 वि., फुलवारी खण्ड, पृष्ठ 54, छंद 8
- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, मालिन खण्ड, पृष्ठ 4, छंद 18
- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, फाग खण्ड, पृष्ठ 41, छंद 25
- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, युद्ध खण्ड, पृष्ठ 97, छंद 4
- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, मोती खण्ड, पृष्ठ 163, छंद 18 वि., फुलवारी खण्ड, पृष्ठ 54, छंद 8

समकालीन हिंदी ग़ज़ल

रेशमा मोहन काम्बले

Research Scholar, Dept. Of Hindi, Sathaye college, Mumbai University

स्वातंत्रोत्तर परिवेश में साहित्य में साठोत्तरी कविता, समकालीन कविता, आधुनिक कविता यह प्रवाह किसी आंदोलन के बिना आम आदमी की पीड़ा, व्यवस्था विरोध और मोहभंग को लेकर चलें है। हिंदी गजल में दुष्यंतकुमार का आगमन एक नई दिशा और प्रवाह लेकर हुआ। हिंदी गजल ने उनके पश्चात अधिक मात्रा में लेखन किया।

समकालीनता और हिंदी गजल

समकालीन शब्द को पर्यायी शब्द के रूप में समसामायिकता, तत्कालीनता और समप्रवृत्ति यह शब्द प्रयोग किए जाते है। मानक हिंदी शब्दकोश के अनुसार समकालीन के दो अर्थ बताएं गए है। 1. जो उसी काल में जीवित या वर्तमान रहा है, जिसमें कुछ और विशिष्ट लोग भी रहे है।जो उत्पत्ति, स्थिति के विचार से एक ही समय में हुए हो।[1]

रविंद्र भ्रमरजी ने समकालीन हिंदी कविता इस ग्रंथ में समकालीन को व्याख्यायित करते हुए लिखा है कि हिंदी में समकालीन अंग्रेजी के काण्टेपोरेटी शब्द का प्रयोग के रूप में प्रचलित है। काण्टेपोरेटी का अभिप्राय तीन अर्थों में समाहित है। 1. काल विशेष के संबंध में, 2. व्यक्ति विशेष के कालमापन के संबंध में, 3. साहित्य, समाज एवं प्रवृत्ति विशेष से संश्लिष्ट कालखंड।[2] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि एक विशेषकाल में विशिष्ट साहित्य एवं साहित्य प्रवृत्ति के चलनेवाले प्रवाह को समकालीन साहित्य कहा जा सकता है।

डॉ. कल्याणचंद्र ने समकालीन कविता और काव्य ग्रंथ में समकालीनता को व्याख्यायित किया है। उनके अनुसार वास्तव में समकालीनता का सीधा आशय है अपने समय के प्रति ईमानदार होना है जब वह संकटों की परवाह किए बिना समय के क्रूर यथार्थ से अभेद संबंध स्थापित कर लेता है और उसे निर्मम यथार्थ की ज्वाला में जलता हुआ अद्‌भूत साहस के साथ समय को चुनौती भी देता है।[3]

डॉ. नरेंद्र मोहन कविता की वैचारिक भूमिका इस ग्रंथ में समकालीनता का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहते है कि समकालीन कविता का अर्थ किसी कालखण्ड या दौर में व्याप्त स्थितियों और समस्याओं को चित्रण, निरूपण या बयां भर नहीं है। बल्कि उनको ऐतिहासिक अर्थ में समझना उनके मूलस्त्रोत तक पहुंचना और निर्णय ले सकने का विवेक अर्जित करना हैं।[4] आम आदमी का दु:ख, दर्द, समस्या, विद्रोह, व्यवस्था विरोध, शोषण विरोध, संघर्ष करने की तीव्रता, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में स्वयं की जांच पड़ताल आदि प्रवृत्तियों से युक्त साहित्य समकालीनता के दायरे में आता है और हिंदी गजल में यह सब प्रवृत्तियां दुष्यंतकुमार से लेकर आज तक विद्यमान है। इसलिए दुष्यंतकुमार के साये में धूप गजलसंग्रह से हम समकालीन हिंदी गजल की काल गणना करेंगे। इसी समय में अन्य कुछ गजलकारों ने इसी के समान गजलें कही है परंतु जो बात दुष्यंतकुमार के गजलों में है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसलिए समकालीन हिंदी गजल की शुरुआत हम यही से मानकर चलेंगे।

स्वातंत्रोत्तत्तर समय के बाद कविताओं को विभिन्न नाम दिए गए हैं। उसमें अकविता, नई कविता, बीट कविता, साठोत्तरी कविता, समकालीन कविता एवं आज की कविता आदि नाम दिखाई देते हैं। सन साठ के बाद की कविता को कई नाम दिए गए है, लेकिन इनमें से साठोत्तरी हिंदी कविता, समकालीन कविता और आज की कविता ये तीन नाम अधिक सार्थक व विचारणीय है। इन तीनों नामों में एक पहलु अधिक विचार करने योग्य है कि ये नाम किसी भी आंदोलन अथवा नारे से संबंधित नहीं हैं। बल्कि अन्य सभी नामकरण किसी न किसी आंदोलन अथवा नारे से संबंधित है।[5] सत्यतरू आम आदमी की तकलीफ, पीड़ा, विवशता, अबोधता, सहिश्णुता व उसके कटु अनुभवों की समग्रता में सृजनात्मक संस्पर्श देने में समकालीन कविता का काव्यमर्म निहित है।[6]

उपर्युक्त सभी तत्वों एवं विचारों के साथ गजल दुष्यंतकुमार से निकलकर आज तक समान रूप से न रूकते, न थकते बल्कि अधिक ऊपर उठने की कोशिश में प्रयासरत है। यहां से समकालीन हिंदी गजल कहकर हम अध्ड्रन करेंगे। शमशेर बहादूर सिंह महत्वपूर्ण गजलकार हैं। उनका संक्षेप में परिचय देखना मुझे आवश्यक लगता है।

शमशेर बहादूर सिंह

शमशेर बहादूर सिंह शम्स हिंदी के पहले गजलकार है जिन्होंने हिंदी पाठकों को गजल से परिचित कराया है। गजल को हिंदी भाषा में लाने का श्रेय शमशेर को ही जाता है। क्योंकि दुष्यंतकुमार ने गजल लेखन की प्रेरणा शमशेर से ही ली है। शमशेर जी के घर में और शिक्षा भी उर्दू भाषा के माध्यम से हुई है। इस कारण उर्दू गजलकारों का प्रभाव उन पर अधिक दिखाई देता है।

शमशेरजी के गजलों में सामाजिक परिस्थितियों का यथार्थबोध, प्रेम, सौंदर्य, पीड़ा और गरीबी इस प्रकार व्यक्त हुई है कि वह पाठकों को स्वयं के दु:ख की अभिव्यक्ति प्रतित होती है। शमशेर की शायरी, तलाश की शायरी है। जीवन में, स्वप में, मित्रों में, प्रेम में एक तलाश एक तजस्सुम महसूस होती है।9 शमशेर की गजलों में जो विशिष्ट तत्व है वह है विनम्रता का भाव। उपमा, रूपक, प्रतीक उनकी गजलों में बहुत कम है। लेकिन भाषाई

लोच, नाद और कथ्यगत गहराई गजलों में उस्तादाना ढंग से शामिल की गई है।8 इस तरह शमशेर सिंह गजल के विकासपुरुष के रूप में हिंदी गजल में अवतरित हुए। उन्होंने गजल की जगह कविता को मुख्य विधा के रूप में स्वीकार है। जिसके कारण गजल अधिक लिखने में वे कामयाब नहीं हुए। अगर हिंदी कवियों में निगला, शमशेर और त्रिलोचनजी गजल को अपनी मुख्य विधा मानकर लिखते तो आज हिंदी गजल का भविष्य कुछ और होता। परंतु इनके योगदान से हिंदी गजल जरूर आगे बढ़ी है। शमशेरजी के कारण ही हमें दुष्यंतकुमार जैसे गजलकार मिले और हिंदी गजल समृद्ध हुई। यह उनका सबसे बड़ा योगदान है।

वही उम्र का एक पल कोई लाए
तड़पती हुई सी गजल कोई लाए।
हकीकत को लाए तखैयुल से बाहर
मेरी मुश्किलों का जो हल कोई लाए।[9]

हिंदी गजल का आधुनिक युग शुरू होता है, हिंदी गजल के विकास पुरुष दुष्यंतकुमार के साये में धूप से जिसका प्रकाशन 1975 में हुआ था। दुष्यंतकुमार हिंदी गजल के युग पुरुष है। इसमें कोई संदेह नहीं है।

दुष्यंतकुमार

दुष्यंतकुमार का जन्म 1 दिसंबर, 1933 को बिजनौर जिले के राजपूर नवादा गांव में हुआ था। हिंदी गजल के युगपुरुष एवं हस्ताक्षर दुष्यंतकुमार ने गजल लेखन की प्रेरणा शमशेर बहादूर सिंह से ली थी। दुष्यंत की गजलों में निस्संदेह उस आम आदमी की संघर्षगाथा, सपनों का टूटना-जूड़ना, उम्मीदे, निराशा, संशय, दुख की छायाएं, अपने समय से टकराने की जुस्तजू और फिर किसी नए सपने के बनने-टूटने की अनुगूंज शामिल है। कुल मिलाकर देखे तो एक हिंदुस्तान है अपनी पूरी कायनात के साथ, रागात्मकता के साथ, जीवन राग गाता हिंदुस्तान।[10] उस पर उनका एक शेर द्रष्टव्य है-

कल नुमाइश में मिला था वो चीथड़े पहने हुए
मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिंदुस्तान है।[11]

दुष्यंतकुमार की गजलें मन में एक द्वंद्र पैदा करती है। उन्होंने आम आदमी की चेतना जागृत की है। वे भाषा, मुहावरा, मिजाज के अतिरिक्त इस बात को भी सांकेतिक रूप में व्यक्त करते हैं कि गजल कहने के लिए शिद्दत की तड़प, बेचौनी और बेकली जरूरी है।[12] दुष्यंतकुमार की गजलें संवाद करते हुए प्रेरणा एवं संबोधन करती है। उसमें आम आदमी की पीड़ा को व्यवस्था के खिलाफ लड़कर व्यवस्था से प्रश्न करती है। दुष्यंतकुमार की गजलें आम आदमी का आवाज बनती है। दुष्यंत एक मानवतावादी कवि है। उन्होंने समाज के दु:ख को अपने मन में भरा था और उसे व्यक्त करने के लिए गजल का सार्थक उपयोग किया-वे कहते भी गै कि-

मुझमें रहते है करोड़ों लोग चुप कैसे रहूं
हर गजल अब सल्तनत के नाम एक बया है।[13]

इस प्रकार दुष्यंतकुमार ने गजल को नयी दिशा दी है। उनकी गजलें आज भी अपनी प्रभावात्मकता बनाएं हुई है। आज पुरी हिंदी गजल दुष्यंतकुमार से प्रभावित और अनुग्रहित है। दुष्यंतकुमार की गजलें मुहावरों में परिवर्तित हुई है। उनकी भाषा हिंदी और उर्दू का मिला-जुला रूप है। उसमें उन्होंने बोलचाल की हिंदी और उर्दू भाषा को अपनाया है। जिसके कारण उनकी गजलें सौंदर्य प्राप्तकर सकी। अपने गजलों की भाषा के बारे में वे स्वयं कहते है, मैं उर्दू नहीं जानता, लेकिन इन शब्दों का प्रयोग यहां अज्ञानतावश नहीं, जानबुझकर किया गया है। यह कोई मुश्किल नहीं था कि शहर की जगह नगर लिखकर इस दोष से मुक्ति पा लूं, किंतु मैंने उर्दू शब्दों को उस रूप में इस्तेमाल किया है, जिस रूप में वे हिंदी में घुल-मिल गए हैं।[14] इस प्रकार आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हुए दुष्यंतकुमार हिंदी गजल के सिंहासन पर विराजमान हैं।

दुष्यंतकुमार की गजलें मनौवैज्ञानिक ख्रष्टिकोन से भी सफल है। आधुनिक युग की भय, क्रोध, घुटन, संत्रास और इच्छाओं की अभिव्यक्ति भी उनके गजलों में मौजूद है। राजनीतिक समस्याओं एवं विसंगतियों को व्यक्त करने के लिए वे सिद्धहस्त थे। यह बात सर्वविदित है।

इस तरह दुष्यंतकुमार हिंदुस्तानी भाषा के प्रयोग से हिंदी-उर्दू भाषा की दूरी मिटाते है। और आनेवाले पीढ़ी के लिए प्रेरणा प्रदान करते है। आज हिंदू में गजल जिवीत है तो दुष्यंतकुमार के कारण क्योंकि वह फक्कड़पन और सीधी बात कहने का ढंग हिंदी को मिला है, जो विसगतियों पर प्रहार करने की तकनीक हिंदी को दी गई है। उसे कभी भूलाया नहीं जा सकता।

आज हिंदी में हजारों गजलकार गजलें लिख रहे है। उसमें से कुछ गजलकारों का संक्षिप्त परिचय हम करेंगे-जिन गजलकारों को समकालीन गजलकारों के रूप में हम अध्ययन करनेवाले है उन्हीं गजलकारों का परिचय यहां देना उपयुक्त लगता है। सभी गजलकारों का परिचय देना अशक्य प्रायरू है। इसलिए अनुसंधान के लिए नियुक्त गजलकारों का परिचय देखेंगे।

दुष्यंतकुमार के बाद हिंदी में ग़ज़ल लिखनेवाले अनेक ग़जलकार सामने आये है। उनमें कुछ स्तरीय ग़ज़लें कहनेवाले और कुछ महत्वपूर्ण ग़ज़लकार है। लेकिन कुछ ग़ज़लकार ऐसे भी है जिन्होंने कहने भर को ग़ज़लें कहीं है। उसमें नकली-सी अधिक मिलती है। और साथ ही कथ्य की ख़ष्टि से भी स्तरहीन ग़ज़लें दिखाई देती है। अनुसंधान कार्य के लिए नियुक्त ग़ज़लकारों का संक्षेप में परिचय इस प्रकार है।

ग़ज़लकार चंद्रसेन विराट के अब तक ग्यारह ग़ज़लसंग्रह प्रकाशित हुए है। वे प्रथम गीतकार थे परंतु बाद में ग़ज़ल की ओर आकर्षित हुए। उनके ग़ज़लें हिंदी ग़ज़ल में महत्वपूर्ण योगदान देती है। डॉ. कुंअर बेचौन ने भी अब तक तेरह ग़ज़लसंग्रह लिखे है। उनकी ग़ज़लों में आम आदमी का दुख एवं पीड़ा को वाणी मिली है और साथ ही शोषण का विरोध करने का प्रयास भी उन्होंने किया है।

ग़ज़लकार जहीर कुरैशी भी प्रमुख ग़ज़लकारों में माने जाते है। उनके अब तक छह ग़ज़लसंग्रह प्रकाशित हुए है। जहीर की ग़ज़लों में सामाजिक विसंगतियों, विद्रुपताएं, आम आदमी की जिंदगी आदि का चित्रण दिखाई देता है। नए प्रतीकों एवं बिम्बों के माध्यम से उन्होंने आम आदमी की जिंदगी को व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। उनकी भाषा सहज किंतु तिखापन लिए है। शिल्प का निर्वाह भी उन्होंने प्रामाणिकता के साथ किया है।15

ग़ज़लकार राजेश रेड्डी हिंदी के प्रतिनिधि एवं प्रसिद्ध ग़ज़लकार है। उन्होंने ग़ज़ल के शिल्प को पूरी चुस्ती के साथ प्रस्तुत कर अध्यात्मिक ग़ज़लें कहकर, मनोवैज्ञानिकता का आधार ग़ज़लों को दिया है। साथ ही उन्होंने समाज की स्थितियों का यथार्थ चित्रण किया है।

गिरिराजशरण अग्रवाल हिंदी के प्रसिद्ध ग़ज़लकार है। उन्होंने सादगी भरी ग़ज़लें कहते हुए ग़ज़ल को मिजाज एवं तगज्जूल के साथ प्रस्तुत किया है। उनके अब तक सात ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित है और वे अभी भी ग़ज़ल लेखन कर रहे हैं। ग़ज़लकार माधव कौशिक के अब तक दस ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित है। वे ग़ज़ल को अपनी प्रमुख विधा मानते है। परंतु उन्होंने अन्य विधाओं में भी लेखन किया है। माधव कौशिक की ग़ज़लों में कही आक्रमकता तो कही फक्कड़पन है। कहीं-कहीं सादगी भरी ग़ज़लें भी कहीं है। माधव कौशिक की ग़ज़लों में नाद है और भावनाओं का आवेग। इसलिए ये ग़ज़ले बेचेन करती है। अपनी मौलिक अभिव्यक्ति की ख़ष्टि से माधव की ग़ज़लें, अपने समय के अंतर्विरोधों, बिड़म्बनाओं और मामूली आदमी के दुख का जरूरी हस्तक्षेप प्रतित होती है।[16]

अशोक अंजुम हिंदी के प्रसिद्ध ग़ज़लकार है। उनके अब तक पांच ग़ज़ल संग्रह प्रकाशितहुए है। और उन्होंने विभिन्न ग़ज़लसंग्रहों का संपादन भी किया है। उन्होंने वर्तमान युग में आधुनिकता, होड़ और पूंजीवादी प्रतिस्पर्धा के कारण होनेवाले परिवर्तनों, उपभोक्तावाद, अलगाव, अकेलापन, असत्य, छल फरेब, अएलीलता, हिंसा, स्वार्थ आदि को अपनी ग़ज़लों में चिंद्रित किया है।[17]

डॉ. उर्मिलेश हिंदी के प्रमुख ग़ज़लकारों में से एक है। उनके चार ग़ज़लसंग्रह प्रकाशित है और नित्यानंद तुषार जी ने डॉ. उर्मिलेश की चुनिंदा ग़ज़लें के रूप में एक प्रतिनिधि ग़ज़लों का ग़ज़लसंग्रह संपादित किया है।

ज्ञानप्रकाश विवेक जी हिंदी के प्रमुख ग़ज़लकार एवं ग़ज़ल समीक्षक के रूप में जाने का जाते है। उनके अब तक चार ग़ज़लसंग्रह और दो समीक्षात्मक ग्रंथ प्रकाशित है। वे विभिन्न ग़ज़ल विशेषांकों संपादन कर चुके है। उनकी ग़ज़लें शिल्प की ख़ष्टि से परिपूर्ण है। सुल्तान अहमद भी ग़ज़ल के शिल्प के प्रति सजग एवं परिपूर्ण ग़ज़लकार है। उनके तीन ग़ज़लसंग्रह और दो ग़ज़ल पर समीक्षा ग्रंथ प्रकाशित है जो हिंदी ग़ज़लकारों को नई दिशा देने में समर्थ है। ग़ज़लकार अदम गोंडवी के केवल दो ही ग़ज़लसंग्रह प्रकाशित है परंतु दुष्यंतकुमार के बाद के हिंदी में सबसे महत्वपूर्ण ग़ज़लकार के रूप में जाने जाते है। उनकी ग़ज़लों में शिल्प की त्रुटियां अनेक विद्वानों ने निकाली है परंतु कथ्य के सशक्त रूप में उनकी ख्याति हिंदी ग़ज़लकारों में दुष्यंतकुमार के बाद ही दिखाई देती है। अदम की ग़ज़लें सर्वहारा वर्ग की लड़ाई खुद लड़ती है, कभी विधायक निवास में, कभी ग्रामप्रधान के घर, कभी वंचितों, पीडितों की गली में, कभी खेतों के बीच पगडण्डी पर अन्याय के विरुद्ध।[16] शलभ श्रीराम सिंह, नित्यानंद तुषार, मनोज सोनकर आदि ग़ज़लकारों को भी महत्वपूर्ण ग़ज़लकारों के रूप में जाना जाता है।

उपर्युक्त के ग़ज़लकारों के अतिरिक्त कुछ महत्वपूर्ण ग़ज़लकारों ने हिंदी ग़ज़ल के विकास में योगदान दिया है। वैसे आज हजारों ग़ज़लकार हिंदी ग़ज़लें लिख रहे है परंतु सबका उल्लेख यहां नहीं कर सकेंगे। इसलिए कुछ ग़ज़लकारों के योगदान का और ग़ज़ल विकास का हम अध्ययन करेंगे।

गोपालदास सक्सेना नीरज ने ग़ज़ल को गितिका नाम दिया है। नीरज की गीतिकाएं, नीरज की पाती और कारवां गुजर गया इन तीन संग्रहों में उनकी ग़ज़लें प्रकाशित है। उनकी ग़ज़लों में राजनीतिक विसंगतियां, आतंकवाद, अलगाववाद, सांप्रदायिक विसंगति और सामाजिक स्थितियों का चित्रण हुआ है। सूर्यभानू गुप्त ने लोकप्रिय ग़ज़लें नामक स्तंभ चलाकर ग़ज़ल को लोकप्रिय बनाया। उनकी ग़ज़लों में हिंदी का मिला जुला रूप एवं अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। रामावतार त्यागी का लहु के चंद कतरे भी महत्वपूर्ण ग़ज़लसंग्रह है। कथ्य एवं शिल्प का सुंदर समन्वय उनकी ग़ज़लों में है। रामकुमार कृषक की नीम की पत्तियां 1984 में प्रकाशित हुआ। राजनीति पर व्यंग्य उनका मुख्य विषय है। साथ ही समाज का यथार्थ चित्रण भी हुआ है। नाचिकेता, बल्लिसिंह चीमा, रामनारायण स्वामी आदि की ग़ज़लें भी महत्वपूर्ण मानी जाती है।

बेकल उत्साही ने हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं में ग़ज़लें स्त्री है। उन्हें उर्दू में अधिक लोकप्रियता मिली है। शेरगंज गर्ग ने ग़ज़लें लिखते समय समाज एवं मनुष्य का संवाद स्थापित किया है। रामदरश मिश्र ने साहित्य की बहुत सारी विधाओं के साथ-साथ ग़ज़लें लिखी है। उनके ग़ज़लों में आम आदमी की पीड़ा सादगी से अभिव्यक्त होती है। हनुमंत नायडू और भवानीशंकर भी ग़ज़ल के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर है। उनके अलावा आर. पी. शर्मा, निश्तर खानकाही, मोहन सिंह ठाकुर, नरेश, नीर शबनम, वेदप्रकाश अमिताभ, अखिलेश अंजुम, अदम गौडवी, रमेश रंजक, राजकुमारी रश्मि, विनिता गुप्ता, मधुर नज्मी, हिंगोरानी, मधुरिमा सिंह, किती काले आदि महत्वपूर्ण ग़ज़लकारों ने ग़ज़ल का विकास किया और कर रहे हैं। यह परंपरा आगे बढ़ती रहे इसी विश्वास के साथ हम यहां रूकते है। ग़ज़ल पर चर्चा हो और अपनी कमजोरियों को दूर करते हुए हिंदी ग़ज़ल ऊंचे शिखर पर पहुंचे। यही कामना एवं सदिच्छा है। सभी महत्वपूर्ण ग़ज़लकारों का नामोल्लेख यहां करना संभव नहीं है। उनके प्रति साभार मुआफी मांगता हूं।

निष्कर्ष

ग़ज़ल उर्दू से हिंदी में आया एक लोकप्रिय विधा है। ग़ज़ल मूलत: अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है प्रेमिका से वार्तालाप या औरत से बातचीत। ग़ज़ल मूलत: अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है प्रेमिका से वार्तालाप या औरत से बातचीत। ग़ज़ल के व्युत्पत्ति विषयक अनेक विद्वानों का अलग-अलग मत है परंतु अरबी में लिखे कसीदे से संबंधित तश्बीब के टुकड़े से ग़ज़ल निर्माण हुई है। इसी बात से अधिक विद्वान सहमत है। उसके शब्दगत अर्थ आज अपना अर्थ बदलकर उसने विस्तृत रूप प्राप्त किया है।

ग़ज़ल को विभिन्न ग़ज़लकारों ने परिभाषित करने का प्रयास किया है। उर्दू ग़ज़लकार एवं हिंदी ग़ज़लकारों ने भी उसे अलग-अलग ढंग से परिभाषित किया है। ग़ज़ल में दर्दभरी वेदना, प्रेम, मिलन, विरह, चाहत, कामना, दार्शनिकता, प्रिय की प्रशंसा, समाज की विभिन्न स्थितियां, हृदय की अनुभूति, जीवन की अनुभूति, जिंदगी से रूबरी होनेवाली और अंधकार में टहलती हुई चिंगारी होती है। ग़ज़ल अपनी भाषा, भाव, उपमाएं, प्रतीक, बिम्ब के साथ ही रदीफ, काफिया, छंद, मतला, मकता को लिए हुए एक लयात्मक एवं गेयात्मक, मुक्तक काव्य की एक विधा है। उसका अपना एक अलग शिल्प विधान है। विषय एवं संरचना दोनों को समान महत्व देनेवाली सरस एवं प्रभावशाली काव्य विधा है। जिसमें छद की अनिवार्यता भी है। ग़ज़ल की सर्वमान्य व्याख्या इस तरह कह सकते है।

ग़ज़ल के छंद को समझने के लिए रूक्न, अर्कान, वज्न, तक्तीअ, सबब, बतद, फासला, अज्जा-ए-रूक्कन को समझना आवश्यक है।

ग़ज़ल के विभिन्न गुण होते है, जिनके कारण वह आज तक लोकप्रियता के शिखर पर विराजमान है। उसमें कल्पना, तीव्र भावप्रवणता, गहरा अनुभव, प्रेमाभिव्यक्ति, चित्रात्मकता, लोच, विषय विस्तार, सौंदर्यवर्णन, प्रेरणा, अध्यात्म एवं पाखंड का विरोध, स्वाभिमान, पुरुषार्थ, समाज दुख के साथ प्रिय का दु:ख, संक्षिप्तता, सांकेतिकता एवं अर्थ की विभिन्नता आदि गुणों की आवश्यकता होती है। तभी कहीं जाकर ग़ज़ल अपना प्रभाव निर्माण करती है। साथ ही कुछ दोष ग़ज़ल में अक्सर आ जाते हैं। उनसे बचकर ही ग़ज़ल का लेखन होना आवश्यक है। रदीफ, काफिया और मतले के साथ-साथ, शुतुरगुरबा, लिंग, वचन, न्युनपदत्व, कर्ता, कर्म, क्रियापद का गलत प्रयोग, क्लिष्टत्व, अर्थहीनता आदि प्रकार के दोषों से ग़ज़लकारों को संभलकर रहना चाहिए। ग़ज़ल के मुकम्मिल ग़ज़ल, मुसलसल ग़ज़ल, कत्आबंद, बेमतला ग़ज़ल, बेमक्ता ग़ज़ल आदि प्रमुख प्रकार है। अक्सर मुकम्मिल ग़ज़ल लेखन अश्विक मात्रा में हुआ है। वहीं लोकप्रिय हुआ है।

ग़ज़ल का विकास मुख्यत: अरब में शुरू होते हुए ईरान में फारसी भाषा में हुआ है। फारसी ग़ज़ल ने अरबी ग़ज़ल से अधिक विकास किया है। जहां से वह उर्दू भाषा में कहीं जाने लगी। अमीर खुसरों को प्रथम ग़ज़लकार माना जाता है। जिन्होंने कुछ ग़ज़लें कही है। जिसमें फारसी, फारसी और हिंदी भाषा के मिले जुले रूप में कहीं है। कुली मोहम्मद कुतुबशाह का दीवान सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ इसीलिए उन्हें प्रथम दौर के प्रथम ग़ज़लकार माना जाता है। जिनका समय (1518-1611) का है। इनके समय में वजही, नुसरती, वली, सिराज आदि प्रमुख ग़ज़लकारों ने ग़ज़लें कही है। यह धारा विकसित होते हुए बहती रही उसमें तकी मीर और गालिब ने चार चांद लगा दिए। बाद में आधुनिक काल में इकबाल, फिराख गोरखपुरी, अहमद फैज ने ग़ज़ल को आम आदमी के साथ जोड़कर उसके विकास में योगदान दिया। आज भी उर्दू में ग़ज़ल कहनेवाले अनेक ग़ज़लकार है। जो ग़ज़ल की लोकप्रियता बढ़ाने में एवं विकास में योगदान दे रहे हैं। हिंदी ग़ज़ल के विकास में अमीर खुसरों के पश्चात कबीर की ग़ज़लों का उल्लेख किया जाता है। भक्तिकाल में कुछ संत कवियों ने इस शिल्प में रचनाएं लिखी है। भारतेंदु के पूर्व कुछ ग़ज़लें जरूर कही है परंतु वह बहुत ही कम मात्रा में मिलती है। भारतेंदु ने स्वयं रसा उपनाम से ग़ज़लें कही है। उनके समकालीन कवियों ने ग़ज़ल में जरूर हाथ मारा है। साथ ही छायावादी कवियों ने भी ग़ज़लें कहीं है परंतु निराला के बेला संग्रह की ग़ज़लों में जो कथ्य एवं विषय वैविध्य है उसने ग़ज़लियत एवं मिजाज का ध्यान रखा है। उनके पश्चात अन्य कवियों ने भी ग़ज़लें कहने का प्रयास किया है। परंतु त्रिलोचन, शमशेर बहादूर सिंह और बलवीर सिंह रंग इनकी ग़ज़लों ने हिंदी ग़ज़ल के लिए जो जमीन तैयार की है। उसी के बलबूते पर दुष्यंतकुमार जैसे

ग़ज़लकार निर्माण हुए है। वे शमशेर जी से ही प्रेरणा लेकर हिंदी में आये थे। वहीं से समकालीन हिंदी ग़ज़ल शुरू होती है। और यह हिंदी ग़ज़ल की परंपरा आज बहुत ऊंचा स्थान प्राप्त कर रही है। ग़ज़ल उसमें जरूर सफल हो जाएगी ऐसा मुझे विश्वास है।

संदर्भ सूची

- मानक हिंदी कोश, रामचंद्र वर्मा, पृष्ठ क्र. 278
- समकालीन हिंदी कविता, रविद्र भ्रमर, पृष्ठ क्र. 19
- समकालीन कविता और काव्य, कल्याणचंद्र, पृष्ठ क्र. 12
- कविता की वैचारिक भूमिका, नरेंद्र मोहन, पृष्ठ क्र. 23
- समकालीन कविता में ग्रामीण बोध, डॉ. शर्मा, पृ. क्र. 15
- वही, पृष्ठ क्र. 19
- हिंदी गजल की विकास यात्रा, ज्ञानप्रकाश विवेक, पृष्ठ क्र. 65
- वही, पृष्ठ क्र. 66
- वही, पृष्ठ क्र. 64

- वही, पृष्ठ क्र. 74
- साये में धूप, दुष्यंतकुमार, पृष्ठ क्र. 57
- हिंदी गजल की विकास यात्रा, ज्ञानप्रकाश विवेक, पृष्ठ क्र. 74
- साये में धूप, दुष्यंतकुमार, पृष्ठ क्र. 37
- साये में धूप, दुष्यंतकुमार, भूमिका से उद्धृत
- साठोत्तरी हिंदी गजल, मधु खराटे, पृष्ठ क्र. 63
- हिंदी गजल की विकास यात्रा, ज्ञानप्रकाश विवेक, पृष्ठ क्र. 170
- रोशनी का घट, जितेंद्र जौहर, पृष्ठ क्र. 77

कोरोना और भारत का सहकारी संघवाद

प्रो० रेखा सक्सेना

प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

कोरोना के सबसे अधिक मामले जिन देशों में आया है वहाँ की राज्य व्यवस्था संघीय है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के आंकड़ों के अनुसार 9 जनवरी 2021 तक अमेरिका 2.11 करोड़, भारत 1.04 करोड़, ब्राजील 78 लाख और रूस 33 लाख के साथ दुनिया के सबसे अधिक प्रभावित देश हैं। और ये चारों देश संघीय व्यवस्था के अंतर्गत आता है। अधिकतर संघीय शासन वाले देशों में स्वास्थ्य, राज्य (प्रोविन्स) का विषय और कार्य क्षेत्र रहता है। लेकिन कोरोना महामारी का प्रभाव सभी देशों के सभी राज्यों में एक साथ पड़ा है, ऐसे में इस समस्या का समाधान भी संघीय स्तर पर होना अनिवार्य है। यही कारण है कि कोरोना ने संघीय व्यवस्था के लिए चुनौती बन कर सामने आया है। विश्व के सभी संघीय देश इस महामारी से निपटने के लिए संवैधानिक नियमों के अनुसार कार्य कर रहा है। भारत भी इसका उदाहरण है। भारत एक संघीय प्रणाली वाला देश है। संविधान के 7 वीं अनुसूची के 6 बिन्दु में स्वास्थ्य को राज्य सूची में रखा गया है।

भारत कोरोना मरीजों के संख्या के अनुसार दूसरे स्थान पर है। किन्तु भारतीय संघीय व्यवस्था के अंतर्गत केंद्र एवं राज्य के व्यापक सहयोग के कारण हीं आज बेहतर स्थिति में भी है। महामारी से ठीक पहले कई राज्य सीएए को लेकर जहां केंद्र के खिलाफ मोर्चा खोले हुए थे, वहीं महामारी के दौरान सहयोग करते हुए दिखाए दिए। ये बात स्पष्ट है की इस महामारी से निपटने के लिए कोई भी एक पक्ष पूर्ण रूप से सक्षम नही है, ऐसे में सहकारी संघवाद (केंद्र-राज्य सहयोग) को और मजबूत करके हीं इस समस्या से निपटा जा सकता है।

महामारी कानून और इसका अनुपालन

भारतीय संविधान ने कोरोना जैसे महामारी से निपटने के लिए केंद्र और राज्यों को आपसी सहायता और समन्वय से नियम और कानून बनाने का अधि कार प्रदान किया है। एपीडेमिक डिजीज एक्ट 1897 और डिजास्टर मैनेजमेंट एक्ट 2005 ऐसे हीं दो कानून है।

संवैधानिक रूप से एपीडेमिक डिजीज एक्ट 18970 केंद्र और राज्य दोनों को अपने अपने अनुसार महामारी को नियंत्रित करने की छुट देती है। इस कानून के तहत राज्य अपने सीमा के सभी प्रवेश और निकास द्वार को नियंत्रण में लेकर निगरानी या उचित समझने पर बंद भी कर सकता है, एवं अपने क्षेत्राधि कार में स्थिति को नियंत्रण करने के लिए सभी प्रकार के कदम उठा सकती है। राज्य सरकार इस नियम के आधार पर स्कूल, कॉलेज, सामाजिक-धार्मिक कार्यक्रम, फैक्टरी आदि को बंद करवा सकती है। वहीं केंद्र को इस कानून के अंतर्गत देश के हवाई पत्तन और जल मार्ग को निगरानी या बंद करने का अधिकार है साथ हीं इस अधिनियम के नियम की अवज्ञा करने पर व्यक्ति को भारतीय दंड संहिता (1860) की धार 188 के तहत दंडनीय अपराध माना गया है।

कोरोना महामारी के बाद भारत में इस कानून का प्रयोग करने वाला कर्नाटक पहला राज्य बना, जिसने 11 मार्च 2020 को राज्य में कई गतिविधियों पर पाबंदी की घोषणा की। इसके बाद हरियाणा, महाराष्ट्र और दिल्ली सहित अन्य राज्यों ने भी इसी प्रकार की घोषणा की।

केंद्र सरकार ने 11 मार्च को देश के सभी राज्यों को एपीडेमिक डिजीज एक्ट के सेक्शन 2 को लागू करने का निर्देश जारी कर दिया। जिसके अंतर्गत राज्य में बाहर से आने वाले सभी व्यक्ति की जांच सुनिश्चित करने की बात कही गई। हालांकि स्वास्थ्य राज्य का विषय है लेकिन इस कानून के अंतर्गत केंद्र और राज्य के बीच इस एक्ट को लागू करवाने में किसी भी प्रकार के टकराव की संभावना नहीं है। वहीं डिजास्टर मैनेजमेंट एक्ट 2005 का प्रयोग भी इस महामारी के दौरान किया गया। 21 मार्च 2020 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने इसी कानून का प्रयोग करते हुए 21 दिन का देशव्यापी लॉक डाउन लगाया था। हालांकि इस कानून को संवैधानिक मान्यता तो प्राप्त नहीं है लेकिन महामारी आने के स्थिति में यह केंद्र को इसके रोकथाम के लिए व्यापक अधिकार प्रदान करता है। इस कानून को दूसरा संवैधानिक सहयोग संविधान के समवर्ती सूची से मिलता है। जहां 'सामाजिक सुरक्षा व सामाजिक बीमा' और 'रोजगार एवं बेरोजगारी' विषय पर केंद्र एवं राज्य दोनों नियम बना सकते हैं ऐसे में इसी अधिकार का प्रयोग कर केंद्र सरकार ने पूर्ण लॉकडाउन की घोषणा की और जनता के आवाजही को नियंत्रित कर सकती है। लॉकडाउन लगाने के समय पर राजनीतिक विरोध तो देखने को मिला किन्तु किसी भी राज्य सरकार ने इसका विरोध नहीं किया। अर्थात इस महामारी से लड़ने के पहले कदम से केंद्र और राज्य आपसी सहयोग का परिचय देते या रहे हैं। और इसका उदाहरण वैक्सीन वितरण में भी देखने को मिलेगा, ऐसी संभावना स्पष्ट दिखाई दे रही है।

महामारी नियंत्रण : राज्यों की भूमिका

देश में इस महामारी से लड़ने के लीए केंद्र सरकार ने धीर-धीरे टेस्ट करने की संख्या और इसे जांच करने वाले लैब की संख्या में व्यापक वृद्धि की। जहां शुरुआत में लैब के संख्या बहुत काम थी वो अब बढ़कर 1201 हो गई है। साथ हीं जांच की क्षमता 1 लाख प्रतिदिन से अधिक हो चुका है। इसके लिए सरकार ने 107 प्राइवेट लैब को भी इस कड़ी में जोड़ा। केंद्र के आलवे कई राज्यों ने भी इस महामारी को रोकने के लिए कई अनोखे कदम उठाए, जिससे कई राज्य 'शोध का केंद्र' भी बनकर उभरे।

ओड़ीशा सरकार ने कोरोना के खतरे को सबसे पहले समझते हुए राज्य के उन 84 हजार नागरिकों को जो कोरोना प्रभावित जगहों से आए हैं, उन्हें होम क्वारनटाइन रहने का आदेश जारी किया। इसके साथ ही ओड़ीशा ने एक ऑनलाइन पोर्टल बनाया, जिसमें बाहर से आने वाले सभी लोगों को पंजीकृत करना अनिवार्य किया गया साथ ही सभी का मेडिकल जांच भी सुनिश्चित किया गया।

इस महामारी को नियंत्रण करने के लिए जिला स्तर पर भी नए मॉडल देखने को मिला। राजस्थान का 'भीलवाड़ा' और उत्तर प्रदेश का 'आगरा' कोविड नियंत्रण का एक बेहतरीन मॉडल बन कर उभरा। भीलवाड़ा, जो शुरुआत में सबसे अधिक प्रभावित जिला बन गया था, लेकिन सटीक उपायों के कारण 30 मार्च के बाद से भीलवाडा में कोरोना केस पर व्यापक स्तर पर नियंत्रण देखने को मिला। जिला प्रशासन ने युद्ध स्तर पर 22 लाख लोगों की जांच की और पूर्ण लॉकडाउन का सख्ती से पालन करवा कर जिले की स्थिति को सुधार लिया। इसके बाद पूरे देश में 'भीलवाड़ा मॉडल' को लागू कर इस महामारी की नियंत्रण की व्यापक चर्चा रही।

भारत में जहां केंद्र और राज्य कई विषयों पर आमने सामने दिखाए देते हैं, वहीं महामारी ने भारत में केंद्र और राज्य में सहयोग का सुदृढ़ रूप देखने को मिला। देश में महामारी के घोषणा होने के बाद से अब तक कई बार प्रधानमंत्री और राज्यों के मुख्यमंत्रियों के बीच विडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से बैठक हो चुकी है। इन सभी बैठकों में एकतरफ राज्यों ने केंद्र के लॉकडाउन के निर्णय का समर्थन तो किया ही साथ ही राज्यों ने केंद्र से आर्थिक सहायता की भी बात उठाई। प्रधानमंत्री ने भी राज्यों की कोशिशों की सराहना की और सभी प्रकार के सहायता के लिए भी भरोसा दिलाया। देश के नाम अपने सम्बोध न में भी प्रधानमंत्री ने समूहिक निर्णय से ही इस महामारी को नियंत्रित करने की बात कही। 11 जनवरी 2021 को होने वाले बैठक में प्रधानमंत्री वैक्सीन की चर्चा मुख्यमंत्रियों के साथ करेंगे। इस बैठक में देशव्यापी वैक्सीन वितरण और इसके उचित प्रबंधन पर व्यापक चर्चा हुई। साथ हीं वैक्सीन के खर्च वहन पर भी केंद्र राज्य की स्थिति तय होगी।

असहमति के बिन्दु

हालांकि केंद्र राज्य संबंध में सहमति के साथ कई असहमति के भी तथ्य भी सामने आया। दूसरे लॉकडाउन को बढ़ाने को लेकर ही कई राज्यों ने आपत्ति भी जताई। केरल सरकार ने एक्सपर्ट पैनल के रिपोर्ट के सिफारिश पर 20 अप्रैल से पहले ही कई गतिविधियों को खोलने शुरू कर दिया, जिसको लेकर गृह मंत्रालय ने अपनी आपत्ति 19 अप्रैल को दर्ज कराई और इसे लॉकडाउन के नियम का उलंघन माना। केंद्र और राज्य के विवाद की दूसरी बात तब सामने आई जब कोरोना एक्सपर्ट की केंद्रीय टीम को पश्चिम बंगाल सरकार ने सहायता करने से मना कर दिया। भारत सरकार ने देश के सबसे अधिक कोरोना प्रभावित जिलों की स्थिति की समीक्षा के लिए इस टीम को भेजा था। पश्चिम बंगाल ने केंद्र सरकार पर डिजास्टर मैनेजमेंट एक्ट का दुरुपयोग करने और संघवाद विरोधी होने का आरोप भी लगाया।हालांकि इस विवाद का निपटारा भी 22 अप्रैल 2020 को हो गया जब पश्चिम बंगाल सरकार ने गृह मंत्रालय को पत्र लिख कर केन्द्रीय टीम को सहयोग करने का लिखित आश्वासन दिया।

पश्चिम बंगाल और केंद्र के बीच टकराव का अगला पड़ाव राज्यपाल के टीवी चौनलों पर साक्षात्कार के बाद शुरू हुआ, जिसमें राज्यपाल ने पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री ममता बनर्जी पर कोरोना संक्रामण पर झूठे आंकड़े और मरीजों की संख्या छुपाने का आरोप लगाया। साथ ही राज्यपाल ने केंद्रीय राहत पैकेज से राज्य के किसानों, मजदूरों और महिलाओं को वंचित रखने का आ इसके आलवे राज्यों द्वारा केंद्र से अपनी अर्थव्यवस्था को बचाने के राहत पैकेज पर भी विवाद की स्थिति दिख रही है। साथ ही राज्यों ने मुख्यमंत्री राहत कोष को कॉर्पोरेट सोश्ल रेस्पॉन्सिबिलिटी के तहत छुट देने की बात कही, जिस प्रकार पीएम केयर फंड को मिला हुआ है। साथ हीं राज्यों ने जीएसटी में भी छुट देने, छोटे और मध्यम उद्योगों के लिए आर्थिक पैकेज सहित स्वास्थ्य व्यवस्था को और मजबूत करने के लिए अतिरिक्त फंड देने की भी केंद्र से अपील की। इस विवाद के दौरान ममता बनर्जी ने राज्यपाल को पर "संवैधानिक धर्म" न पालन करने आरोप भी लगाया। किन्तु केंद्र और राज्य के बीच इस प्रकार के बहुत हीं कम विवाद के बिन्दु दिखाए दिए। अर्थात सहयोग और समन्वय के बिन्दु लगभग सभी राज्यों में स्पष्ट थे।

कोरोना एवं फिस्कल फेडरलिज्म

जैसा की ऊपर वर्णन है, कि कई राज्यों ने केंद्र से पहले महामारी नियंत्रण के लिए प्रयास शुरू कर दिया, इसी का एक उदाहरण केरल भी है। जिसने राज्य के अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखते हुए 19 मार्च को 20 हजार करोड़ के राहत पैकेज की घोषणा की, जिसमें से 500 करोड़ रुपये स्वास्थ्य व्यवस्था के लिए था। वहीं 21 मार्च को उत्तर प्रदेश सरकार ने 1 हजार करोड़ गरीबों को ट्रान्सफर करने की घोषणा की, जिसका नाम कोरोना केयर फंड रखा गया। इसके बाद कई राज्यों ने इस महामारी से निपटने के लिए अपने नागरिकों के लिए राहत पैकेज की घोषणा की।

महामारी की विभीषिता को देखते हुए केंद्र सरकार ने पहला राहत पैकेज 26 मार्च को पीएम गरीब कल्याण योजना नाम से किया, इस के तहत 1.7 लाख करोड़ के राहत पैकेज की घोषणा की गई। केंद्र के इस राहत पैकेज में मुफ्त राशन, तीन महीने तक मुफ्त गैस और नकद राशि की मदद महिलाओं और वृद्ध जनों तक देने की घोषणा की।इस योजना तहत 6 मई तक 39 करोड़ गरीबों तक 34,800 करोड़ रुपये की वित्तीय सहायता पहुंचाई गयी।

केंद्र सरकार ने 15वें वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार केंद्रीय करों और शुल्कों में राज्यों के हिस्से के तौर पर 46,038 करोड़ 20 अप्रैल को भेज दिया। इससे पूर्व केंद्र सरकार द्वारा 3 अप्रैल को राज्य सरकारों को 17,827 करोड़ भेजा गया जिससे की कोविड से लड़ने के लिए अपनी स्थिति को ठीक कर सके। इस राशि में वर्ष 2020-21 के लिए राज्य आपदा प्रबंधन कोष (SDRMF) की पहली किस्त 11,092 करोड़ रुपए और 15वें वित्त आयोग द्वारा 'रेवेन्यू डेफिसिएट ग्रांट' के 6,195 करोड़ शामिल था। केंद्र ने 14 मार्च को ही राज्यों को राज्य आपदा प्रबंधन कोष की राशि कोविड मद में खर्च करने की छुट दे दी थी।

केंद्र के और से इसके बाद सबसे बड़ा कदम 12 मई 2020 को सामने आया। इस दिन राष्ट्र के नाम अपने संबोधन में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 20 लाख करोड़ के आर्थिक पैकेज की घोषणा की। इस पैकेज का नाम श्आत्मनिर्भर भारत अभियान' दिया गया। यह पैकेज भारत की जीडीपी का लगभग 10 प्रतिशत था। इस पैकेज पर कई राज्यों ने प्रश्न भी उठाए। हालांकि केंद्र के इस पैकेज से उेउम एवं अन्य सेक्टर को राहत मिली।

केंद्र राज्य का विवाद कोरोना काल में अगस्त महीने में सामने आया, जब चालू वित्त वर्ष में जीएसटी क्षतिपूर्ति राजस्व में 2.35 लाख करोड़ रुपये की कमी रहने का अनुमान लगाया गया था, और केंद्र ने जीएसटी क्षतिपूर्ति को लेकर राज्यों को दो विकल्प दिये थे. पहला जीएसटी क्रियान्वयन के कारण राजस्व संग्रह में कमी को पूरा करने के लिये 97 हजार करोड़ रुपये रिजर्व बैंक की स्पेशल विंडो से ले या फिर कुल 2.35 लाख करोड़ रुपये। किन्तु इस बात पर राज्यों की आपत्ति होने के बाद केंद्र ने स्वयं कर्ज लेकर राज्यों की जीएसटी की क्षतिपूर्ति की घोषणा की।

भारत में फिस्कल फेडरलिज्म का आधार हर पाँच वर्ष पर गठित वित्त आयोग करती है। इसके आधार पर हीं राज्यों को केंद्र द्वारा धन दिए जाते हैं। 14 वें वित्त आयोग ने राज्यों की हिस्सेदारी 32 प्रतिशत से बढ़ाकर 42 प्रतिशत करने की घोषणा तो कर दी लेकिन आकंडों में यह संभव नहीं हो पाया। वर्ष 2014-15 में जहां केन्द्रीय टैक्स से राज्यों को 27.1 प्रतिशत हिस्सा मिला वहीं 2018-19 में बढ़कर यह 36.6 प्रतिशत के उच्चतम स्तर पर पहुंचा, किन्तु इसके बाद 2019-20 में 30.3 प्रतिशत और 2020-21 में 32.4 रहने का अनुमान है। हालांकि 15 वें वित्त आयोग ने राज्यों के हिस्सेदारी को 41 प्रतिशत रखने की सिफारिश की है, एक प्रतिशत की कमी का कारण जम्मू कश्मीर का राज्यों के सूची से बाहर होना है।

इस दौरान आरबीआई की एक रिपोर्ट भी आई जिसके अनुसार कोरोना के कारण राज्यों की आर्थिक स्थिति और भी खराब होने का अनुमान है। इस रिपोर्ट के अनुसार कोरोना फिस्कल फेडरलिज्म के लिए सबसे बड़ी चुनौती बन कर आया है। राज्यों की आर्थिक स्थिति पहले हीं खराब थी कोरोना ने इसे और खराब कर दिया है। राज्यों की स्थिति पर प्रभाव का सबसे बड़ा कारण है बजट में फिस्कल डेफिसिट का बढ़ना और केन्द्रीय टैक्स पर बढ़ती निर्भरता। इस तथ्य का उदाहरण कई राज्यों के बजट में भी दिखा। कोरोना से पहले बजट पेश करने वाले राज्यों का औसत फिस्कल डेफिसिट 2.4 प्रतिशत था राज्य जीडीपी का वहीं कोरोना के दौरान पेश किए गए राज्यों के बजट का औसत फिस्कल डेफिसिट 4.6 प्रतिशत अनुमानित किया गया। हालांकि नवंबर 2020 के जीएसटी कलेक्शन 1.15 लाख करोड़ पहुंचना एक शुभ संकेत माना जा रहा है, लेकिन केंद्र के लिए राज्यों की वित्तीय स्थिति पर नजर रखना आवयशक है।

चुनौती शेष

केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा कोरोना नियंत्रण के प्रयास को मई महीने में व्यापक झटका लगा है। जहां भारत में 30 जनवरी को भारत में पहला केस आया वही 8 मई तक यह बढ़कर 56 हजार और 9 जनवरी 2021 तक बढ़कर 1.04 करोड़ हो गया। शुरुआत में आ रहे आंकड़े डराने वाले लग रहे थे, किन्तु भारत में 90 प्रतिशत से अधिक रिकवरी रेट ने इसकी भयावहता को व्यापक स्तर पर कम किया। आज अमेरिका के बाद सबसे अधिक केस भारत में है। प्रति दिन लगभग 20,000 केस अभी भी आ रहे हैं। साथ हीं ब्रिटेन से नया स्ट्रैन भी भारत आ गया है, जो काफी खतरनाक माना जा रहा है। इस पर शोध चल रहा है।

देश में सभी राज्यों की स्थिति लगभग एक जैसी नहीं है। कोविड केसों का 75 प्रतिशत मामला महाराष्ट्र,गुजरात,मध्य प्रदेश,पश्चिम बंगाल एवं राजस्थान में है। ऐसे में कम प्रभावित राज्यों ने लॉकडाउन के दूसरे फेज की समाप्ती के समय से हीं केंद्र पर लॉकडाउन में छुट देने का दवाब डालना शुरू कर दिया था। तीसरे लॉकडाउन की घोषणा करते हुए गृह मंत्रालय ने कई गतिविधियों को छुट भी दिया और अभी तक छुट की सीमा में कई गतिविधियों को लाया। किन्तु केंद्र राज्य में परेशानी का दौर तब भी आया जब विभिन्न राज्यों द्वारा अपने लोगों को वापिस बुलाना, फैक्ट्री सहित कई गतिविधियों को चालू करना। किन्तु अन-लॉकडाउन का फेज शुरू होने के बाद केंद्र एवं राज्य संबंध लगभग सामान्य स्थिति पर दिखाई पड़ रही है।

कोरोना की केंद्र और राज्य संबंध की अंतिम परीक्षा अभी शेष है। कोविड वैक्सीन देने की शुरुआत 16 जनवरी 2021 से देशव्यापी स्तर पर हो रहा है। सही और उचित तरीके से यह टीकाकरण तभी संभव हो पाएगा जब केंद्र और राज्य आपसी समन्वय से काम करेंगे। इस विषय में एक विवाद का बिन्दु इसके खर्च को लेकर आने की संभावना है, हालांकि पीएम केयर फंड और केंद्र सरकार द्वारा मुफ्त टीकाकरण (सभी को निश्चित नहीं है) की घोषणा इसका समाधान दिखता है। वहीं पोलियो के टीकाकरण का अनुभव भारतीय संघीय व्यवस्था के सहकारी स्वरूप का जीवंत उदाहरण है। ऐसे में भारत की संघीय व्यवस्था व्यापक मतभेदों के बाद भी कोरोना काल में सफल और प्रभावी सिद्ध होता हुआ दिखाई दे रहा है।

देश में सहकारी संघवाद का असल परीक्षण करोना के बाद देखने को मिलेगा। जब केंद्र और राज्य अपनी अर्थव्यवस्था को दुरुस्त करना शुरू करेगा। जहां राज्य को अपनी अर्थव्यवस्था को दिशा देने के लिए केंद्र से बड़े राहत पकेज की उम्मीद रहेगा वहीं केंद्र को अर्थव्यवस्था के लिए नए निवेश और नए नियमों को लागू करने की जरूरत पड़ेगी। ऐसे में जीएसटी समेत अन्य करों में बढ़ती वसूली केंद्र की चिंता को कम तो कर सकती है लेकिन निश्चिंत

नहींद्य। अर्थात भारत का कोरोना के खिलाफ लड़ाई में सहकारी संघवाद सबसे प्रभावी रूप से दुनिया के सामने आया है। यही कारण है कि भारत विपरीत परिस्थितियों में भी संवैधानिक तरीके से समाधान निकालते हुए नए नीतिगत उदाहरण दुनिया के सामने पेश करते आया है।

संदर्भ

1. https://covid19.who.int/ (WHO Coronavirus Disease (COVID-19) Dashboard, Data updatedon 8th January 2021) accessed on 9th January 9, 2021.
2. http://legislative.gov.in/sites/default/files/H189703.pdf (Data accessed on 10th January 10, 2021)
3. I.bid.p.2.
4. https://www.deccanherald.com/state/top-karnataka-stories/coronavirus-karnataka-becomes-first-state-to-invoke-provisions-of-epidemic-diseases-act-1897-amid-covid-19-fear-812850.html (Data accessed on 10th July 2020)
5. https://www.hindustantimes.com/india-news/india-under-covid-19-lockdown-all-about-the-disaster-management-law/story-i7cjfZrUZcbOxamlEOAoPO.html (Data accessed on5th January 2021)
6. https://covidindia.org/testing/ (Data accessed on 31st December 2020)
7. https://www.thehindubusinessline.com/news/national/kerala-panel-for-gradual-lifting-of-lockdown-beginning-april-15/article31282321.ece(Data accessed on 31st December 2020)
8. https://www.tribuneindia.com/news/nation/coronavirus-pandemic-west-bengal-writes-to-mha-assures-cooperation-to-central-teams-74584 (Data accessed on 10th November 2020)
9. https://www.hindustantimes.com/india-news/in-bengal-covid-19-crisis-guv-dhankhar-and-cm-mamata-caught-in-letter-wars/story-YFtZzM0VMt2brSif5FpYkK.html(Data accessed on 31st December 2020)
10. https://www.indiatoday.in/india/story/kerala-announces-rs-20-000-crore-revival-package-to-tide-over-covid-19-fallout-1657684-2020-03-20(Data accessed on 31st December 2020)
11. https://www.deccanherald.com/national/north-and-central/up-govt-to-set-up-rs-1000-crore-corona-care-fund-821036.html(Data accessed on 31st December 2020)
12. https://www.thehindu.com/business/Economy/17-lakh-cr-package-with-doubled-food-rations-cash-transfers-for-poor/article31172100.ece(Data accessed on 31st December 2020)
13. https://www.hindustantimes.com/india-news/india-s-fiscal-federalism-crisis-is-not-the-pandemic-s-creation/story-xGx0OgajpML1r80O4kvKdK.html(Data accessed on 31st December 2020)
14. https://indianexpress.com/article/explained/explained-how-covid-19-has-affected-finances-of-state-governments-6906683/(Data accessed on 31st December 2020)

गोरखा शासन काल में न्याय एवं दण्ड व्यवस्था का ऐतिहासिक अध्ययन (1804-1815 ई०) : गढ़वाल के विशेष सन्दर्भ में

सत्येन्द्र धर्म्वाण

शोध छात्र, इतिहास विभाग, हे0न0ब0 गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढवाल। सत्येन्द्र धर्म्वाण ब॰व भुवनेष्वर प्रसाद पुरी, निकट श्री गुरूरामराय पब्लिक स्कूल कमलेश्वर, श्रीनगर गढ़वाल, जिला पौड़ी गढ़वाल, पिन-246174, उत्तराखण्ड

देवेश सिंह गर्ब्याल

देवेश सिंह गर्ब्याल, असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, सन्त नारायण स्वामी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय नारायणनगर, जिला पिथौरागढ़, पिन-242550, उत्तराखण्ड

सारांश

किसी भी राज्य की स्थापना का मूल उद्देश्य राज्य में न्याय एवं शान्ति व्यवस्था स्थापित करना होता है। इसके निमित्त शासक वर्ग राज्य में दण्ड का विधान करता है। गढ़वाल में 19वीं सदी के आरम्भिक दशक में गोरखा शासकों का शासन रहा। गोरखा शासकों ने न्याय को राज्य की आय के साधन रूप में प्रयोग किया तथा न्याय के नाम पर दोनों पक्षों (वादी तथा प्रतिवादी) से धन वसूलने का कार्य किया। ऐसी स्थिति में उचित न्याय की सम्भावना करना बेईमानी थी। गोरखा शासन आतंक का रूप था अधिकांश जनता इससे त्रस्त होकर गांव छोड़कर जंगलों में पलायन कर जाती थी। गोरखाओं की दण्ड व्यवस्था बहुत क्रूर और अमानवीय थी। दण्ड की सजा कठोर होने के कारण लोग न्यायलय कूच करने से डरते थे। दण्ड का तरीका अवैज्ञानिक था। सजाए बहुत कष्टप्रद होती थी साथ में जुर्माने की राशि भी चुकानी होती थी। जुर्माने की राशि चुकाने में असमर्थ होने पर उक्त व्यक्ति की निजी एवं पैतृक सम्पति के साथ-साथ अभियुक्त के बच्चों तथा महिलाओं को भी नीलाम कर जुर्माने की राशि प्राप्त की जाती थी।

इसी प्ररिपेक्ष्य में प्रस्तुत शोध-पत्र में गढ़वाल में गोरखा शासन के अर्न्तगत न्याय एवं दण्ड व्यवस्था का विशिष्ट अध्ययन करने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया जाएगा।

मुख्य शब्द : गोरखा शासन, न्याय, दण्ड, अराजकता, गोरख्याणी, विचारी, दीप, भारादारों।

राज्य वह संगठित इकाई होती है जो किसी शासन के अधीन होकर मानव को समृद्धशाली बनाती है। भारतीय दर्शनान्तर्गत मनुस्मृति[1], महाभारत[2] व अग्निपुराण[3] में राज्य के सात अनिवार्य अंग बताए गए हैं। कौटिल्य ने भी अपने ग्रंथ अर्थशास्त्र[4] में सप्तांग अर्थात् सात अनिवार्य अवयवों (तत्वों) स्वामी, आमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड तथा मित्र का उल्लेख किया है। राज्य की उत्पति के सिद्धान्त से स्पष्ट होता है कि न्याय की स्थापना के उद्देश्य से ही राज्य की उत्पति हुई है। इस अनुबंध सिद्धान्त का प्रथम स्पष्ट और विस्तृत प्रतिपादन बौद्ध ग्रंथ दीर्घनिकाय से प्राप्त होता है।[5] ऐसा ही विवरण कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी मिलता है, जिसमें कहा गया है कि अराजक परिस्थितियों में लोगों ने अपना राजा चुना है और वचन दिया है कि वे अपने सोने के अंश में से कुछ अंश देने के अतिरिक्त अनाज का छठवां भाग और विक्रय वस्तुओं का दसवां भाग कर के रूप में चुकाएंगे। अर्थशास्त्र में राजा को छूट दी गई है कि वह कानून बना सकता है साथ ही यह बात कही गयी है कि राजा ऐसा कानून नहीं बना सकता जो धर्म के विरूद्ध हो और राजा को स्वेच्छाचारी बनाये। पुत्र तथा शत्रु को उनके अपराध के अनुसार राजा द्वारा समान रूप से दण्ड देने की बात कही गयी है।[6] मनु ने न्याय व्यवस्था की शरण में जाने या मुकदमों के 18 कारण बताये हैं[7] यथा: ऋण एवं धरोहर का भुगतान न करना, बिना स्वामित्व के विक्रय करना, साझीदारों के सम्बन्ध में गड़बड़ी हो जाना, दान दी गई वस्तु को पुन: वापिस लेना, पारिश्रमिक का भुगतान न करना, समझौतों को भंग करना, क्रय-विक्रय की व्यवस्था का उल्लंघन करना, स्वामी तथा भृत्य के बीच विवाद पैदा होना, सीमा सम्बन्धी अड़चन, किसी को मारना, किसी का अपमान करना, चोरी करना, हिंसा तथा व्यभिचार करना, वैयक्तिक कर्त्तव्यों को न निभाना, पैतृक सम्पति सम्बन्धी विवाद, जुआ तथा पासा खेलना।

अत: स्पष्ट है कि उचित न्याय व्यवस्था बनाए रखने के लिए ही राज्य और राजपद स्थापित हुए। प्राचीन काल से ही शासक तथा न्याय एक दूसरे के अभिन्न अंग तथा पूरक रहे हैं; बिना उचित न्याय के अराजकता दूर नहीं हो सकती थी। गढ़वाल में गोरखा शासकों के हाथों 14 मई 1804 ई0 को प्रद्युम्नशाह के पराजय के उपरांत गढ़नरेश अपना राज्य खो बैठे और गढ़वाल में गोरखा शासन स्थापित हुआ। इस क्रूर शासन को गढ़वाल में स्थानीय भाषा में 'गोरख्याणी'

कहा जाता है। 1815 ई0 में सिंगोली की संधि के उपरांत गोरखा शासन का अंत हुआ। इस अल्पकालीन शासन काल में गोरखा शासकों ने जो न्याय एवं दण्ड प्रक्रिया लागू की वह बहुत कठोर और धनलोलुपता पर आधारित थी। अतः प्रस्तुत शोध पत्र में गोरखा शासन काल के दौरान न्याय तथा दण्ड प्रणाली का विस्तृत वर्णन किया जा रहा है।

गोरखा शासन काल में न्याय एवं दण्ड व्यवस्था : मध्य हिमालय में स्थित गढ़वाल पर गोरखा शासन काल में न्याय की आड़ में प्रजा का आर्थिक शोशण किया गया तथा उनका न्याय, न्याय न होकर मात्र धन प्राप्ति का एक साधन बन गया। गोरखाओं के अत्याचारी शासन के कारण लोग गांवों से पलायन करके जंगलों अथवा अन्य स्थानों पर शरण लेते थे, जिसका राज्य की कृशि व्यवस्था पर भी विपरीत प्रभाव पड़ा। प्राचीन काल से ही न्याय व्यवस्था के अंतर्गत प्रत्यक्ष रूप से कुछ न कुछ आय राज्य को प्राप्त होती थी, चाहे वह दण्ड स्वरूप हो या भेंट। इस काल में न्याय व्यवस्था का दुरूपयोग हुआ। गोरखा शासकों ने गढ़वाल को तीन तहसीलों श्रीनगर, लंगूरगढ़ तथा चांदपुर में न्याय व्यवस्था हेतु तीन न्यायालयों की स्थापना की गई थी, जो कि 'विचारी अदालथ' (अदालत) कहलाती थी।[8] हौजसन के अनुसार अदालत में एक विचारी (न्यायधीश) रहता था, जिसकी सहायता के लिए निम्न सैन्याधिकारी और सैनिक हुआ करते थे[9]-

कारदार - 1 मेहजर - 1

जमादार - 1 हवालदार - 2

अमलदार - 2 सिपाही - 40

चितरंजक नेपाली के अनुसार कचहरी कार्य करने वाले 7 व्यक्ति थे जिन्हे निम्न राशियां वेतन के रूप में दी जाती थी।[10]

क्र0सं0	कर्मचारी	संख्या	वार्षिक व्यय (रूपये में)
1	विचारी	2	700/-
2	बहीदार (लेखक)	2	288/-
3	तहवीलदार	2	300/-
4	टहलुवा (चपरासी)	1	36/-

विचारी (न्यायधीश) : विचारी या न्यायधीश से निश्पक्ष न्याय 'जस्तों को तस्तो' (जैसा को तैसा), बिना लोभ-मोह के, मोलाहिजा (बिना किसी प्रभाव के) काम करने की अपेक्षा की जाती थी। मुख्य तीन अदालतों के अतिरिक्त फौजदार अपनी फौजदारी के प्रदेश में दीवानी तथा फौजदारी के विवादों का निर्णय स्वयं करता था।[11] विभिन्न फौजदार अपनी अनुपस्थिति में अपने सहायकों को न्याय करने का दायित्व सौंप देते थे, जो कि विचारी कहलाते थे।

अपराधें की जांच : वादी को अदालत में किसी प्रकार से लिखित आवेदन-पत्र देने की आवश्यकता नहीं थी। फौजदार या विचारी के पास मौखिक निवेदन के आधार पर ही जांच कार्य आरम्भ हो जाता था। वादी व प्रतिवादी दोनों को अदालत में उपस्थित होना पड़ता था। किसी भी पक्ष की ओर से वकील या मुख्तार को उपस्थित होने तथा बहस करने की अनुमति नही थी।[12] वादी, प्रतिवादी तथा साक्षियों से मौखिक पूछताछ की जाती थी। इतने से ही विवाद के तथ्यों का पता लग जाता था। यदि किसी तथ्य के सम्बन्ध में शंका उत्पन्न होती थी तो वादी, प्रतिवादी और साक्षियों के सिर पर 'हरिवंश' की पोथी रखकर सच्ची बात कहने का आदेश दिया जाता था। यदि अपराधी अपना अपराध स्वीकार नहीं करता तो उसे कोढ़े लगाकर या अन्य प्रकार की यातनाएं देकर तथ्यों को प्रकट करने हेतु बाध्य किया जाता था।[13]

समझौता : प्रायः विचारी, वादी और प्रतिवादी में समझौता कराने का प्रयास करती थी; कई जटिल विवादों के निर्णय ग्राम पंचायतों की सहायता से हल करवाए जाते थे। उदाहरण के लिए पारिवारिक सम्पति के बंटवारे में पंचायत निर्णय करती थी। पंचायत कभी-कभी पर्चियों के माध्यम से भी भाग्य का निर्णय करती थी।[14]

न्याय का तरीका : न्याय की विधियां सरल थी। प्रत्येक दिन विवादों को सुना जाता था। एक विवाद के निर्णय के बाद ही दूसरा सुना जाता था। साधारण विवादों को लिखने की आवश्यकता नहीं थी। केवल महत्वपूर्ण दीवानी विवादों में निर्णय को कागज पर लिखकर दिया जाता था, जिस पर विचारी की मुहर लगी होती थी। हारे हुए व्यक्ति से दण्ड की राशि वसूली जाती थी।[15]

दिप (दीप) : ऐसे विवाद जो अधिक जटिल होते थे, जिनमें मौखिक साक्ष्यों द्वारा वादी के सत्व की पुष्टि और प्रतिवादी के सत्व का हनन मान्य नहीं ठहराया जा सकता था। विभिन्न प्रकार के दीप की सहायता से निर्णय किया जाता था। उनमें वादी या प्रतिवादी जिसे हानि पहुंचती थी उसी को अपराधी मानकार दण्ड दिया जाता था। फौजदार, विचारियों और जनसाधारण का विश्वास था कि विभिन्न द्वीपों के द्वारा होने वाला निर्णय ईश्वर की प्रेरणा से होता है इसलिए उसे ही सही मानना चाहिए। गोरखा शासन से पूर्व भी सच्चाई जानने हेतु अनेक दीपों का प्रयोग किया जाता था। गोरखा काल में भी इन दीपों का प्रयोग किया गया जिनमें से कुछ निम्नवत् है[16]-

1. गोला दिप (गोला दीप) : इसमें गर्म लोहे की छड़ को वादी और प्रतिवादी को दिया जाता था। कुछ दूर तक छड़ को पकड़कर ले जाने में जिस व्यक्ति के हाथ जल जाते थे उसे अपराधी माना जाता था।

2. तराजू दिप (तराजू दीप) : जिस व्यक्ति की सत्य परीक्षा ली जानी होती थी उसे एक दिन पूर्व पत्थरों से तोला जाता था तथा उन पत्थरों को सुरक्षित रखा जाता था और दूसरे दिन पुनः उन्ही पत्थरों से व्यक्ति को तोला जाता था। अधिक वजन वाले को सच्चा तथा कम वजन वाले को झूठा कहा जाता था।

3. कढ़ाई दिप (कढ़ाई दीप) : कढ़ाई में उबलते हुऐ तेल में अपराधी का हाथ डालने पर यदि वह जलता नहीं था तो उसे निर्दोष घोषित किया जाता था तथा जलने पर उसे अपराधी माना जाता था। देहरादून के महंत गुरू के सेवक राम को भी इस दीप से गुजरना पड़ता था।[17]

4. तीर दीप : इसमें अभियुक्त को पानी के तालाब में तब तक सिर डुबाए रखना पड़ता था जब तक कि दूसरा व्यक्ति तीर तक पहुंचकर वापस न लौट आए। अपराधी को तब तक निर्दोष माना जाता था जब तक वह दूसरे व्यक्ति के लौटने तक जल में नहीं डूब जाता था।

5. जल दीप : इसमें वादी और प्रतिवादी के छोटे लड़को को तालाब में डाला जाता था। जिसका लड़का देर तक नहीं डूबता था उसे विजयी माना जाता था।

6. जहर दीप : वादी व प्रतिवादी को विषैली जड़ी खाने को दी जाती थी, जो मर गया वह तर गया और जो बच गया वह जीता माना जाता था।

7. मन्दिर दीप : धन और भूमि विवादों में किसी मन्दिर में वादी और प्रतिवादी देव-प्रतिमा के समक्ष धनराशि को या उस भूमि के मिऋी के एक ढेले को रख देते थे। जिस व्यक्ति के परिवार में 6 मास के अन्दर किसी सदस्य की मृत्यु हो जाती थी या दैवीय प्रकोप होता था तो उसे दोशी माना जाता था।[18] विवादों में प्राय: वादी-प्रतिवादी के नाम छोटे-छोटे कागज के टुकड़ों पर लिखकर मन्दिर में देव-प्रतिमा के सम्मुख रखे जाते थे। पुजारी जिस व्यक्ति के नाम वाले कागज को पहले उठाता था उसे सफल या सच्चा और दूसरे व्यक्ति को असफल या झूठा माना जाता था। कई विवादों में वादी को देव-प्रतिमा को साक्षी मानकर सौगन्ध लेनी पड़ती थी कि उसका आरोप सच्चा है।[19]

दण्ड : अपराधियों को उनके अपराध के अनुसार शारीरिक एवं आर्थिक दण्ड दिए जाते थे। गम्भीर या बहुमूल्य वस्तुओं की चोरी करने वाले व्यक्तियों के अंग-भंग किए जाते थे, जिसमें हाथ और नाक काट दिए जाते थे। कभी अपराधी को निर्दयता से पीटा जाता था तथा घावों पर नमक-मिर्च लगाया जाता था।[20]

मृत्यु दण्ड : गोरखा शासन काल में फांसी या मृत्युदण्ड बहुत कम दिया जाता था। हत्या आरोपी व्यक्ति प्राय: भारी आर्थिक क्षतिपूर्ति देकर मृत्युदण्ड से बच सकता था जो गोरखा काल में न्याय के स्थान पर धन कमाने को रेखांकित करता है; फिर भी कुछ विशेष अपराधें के लिए प्राणदण्ड देने की प्रथा थी। प्राणदण्ड में प्राय: पेड़ से लटाकाकर फांसी दी जाती थी। राजद्रोह या विश्वास घात करने पर अथवा जानबूझकर गाय की हत्या करने पर प्राण दण्ड दिया जाता था। इसी प्रकार यदि हरिजन, ब्राह्मण और राजपूत को जाति भ्रष्ट करने का प्रयत्न करता तो उसे मृत्युदण्ड दिया जाता था। अपने से उच्च जाति की नारी से व्यभिचार करने वाले पुरूष को भी मृत्युदण्ड दिया जाता था और नारी की नाक काट दी जाती थी। जिस व्यक्ति की पत्नी से व्यभिचार किया जाता था वह अपनी पत्नी के 'जार' को तथा पत्नी को स्वयं ऐसा दण्ड दे सकता था। न्यायालय की दृष्टि से उसका यह कार्य सर्वथा वैद्य था।[21]

आर्थिक दण्ड : सामान्य अपराधें के लिए केवल आर्थिक दण्ड लिया जाता था। दण्ड की राशि के नकद भुगतान न करने की स्थिति में अपराधी की चल-अचल सम्पति को छीन लिया जाता था। साधारण चोरी पर भी आर्थिक दण्ड आरोपित किया जाता था। यदि किसी राजपूत व्यक्ति द्वारा किसी की हत्या कर दी जाती तो उससे दण्ड स्वरूप भारी राशि वसूली जाती थी, परन्तु उसे राज्य से निर्वासित नहीं किया जाता था। लेकिन यदि अपराधी ब्राह्मण हो तो उसे राज्य से निर्वासित कर दिया जाता था। इसके अतिरिक्त यदि कोई व्यक्ति आत्महत्या कर लेता था तो उसके सगे-सम्बन्धियों से दण्ड स्वरूप भारी राशि वसूली जाती थी।[22] आर्थिक दण्ड लेना गोरखा राज्य में फौजदार, विचारी एवं राज्य तीनों के लिए लाभदायक था। दण्ड की राशि अपराधी की आर्थिक स्थिति के अनुरूप निर्धारित की जाती थी। गोरखा शासक ऐसे अध्यादेश निकालते थे जो अव्यहारिक होने के साथ उनका पालन करना भी असम्भव था। उदाहरण के लिए गढ़वाल में एक ऐसा अध्यादेश निकाला गया था कि, 'कोई महिला मकान की छत पर ना चढ़े।' [23] जबकि पहाड़ के गांवो में महिलाओं के अधिकांश कार्य यथा: घास, लकड़ी, मंडुवा आदि गीले व धुले वस्त्रों को सुखाने हेतु छत पर जाना एक सामान्य बात थी। ऐसे कार्य प्राय: नारियों द्वारा ही सम्पादित किए जाते थे। ऐसे अध्यादेशों का एकमात्र उद्देश्य उनके उल्लंघन की आड़ में गरीब जनता से धन निचोड़ना था।[24] इसके अलावा झूठे आरोपों के द्वारा भी धन ऐंठा जाता था।

दण्ड की राशि आय के साधन रूप में : गोरखा शासकों ने न्याय प्रणाली को आय के साधन रूप में प्रयोग किया। अकेले गंगावार से 'असमानी-फरमानी' के नाम पर प्रतिवर्ष दो हजार रूपये प्रतिवर्ष राजकोष मे जमा होते थे। इसके अतिरिक्त इसमें कई गुना राशि भारादारों (राजस्व अधिकारी) के जेब में जाती थी। गोरखा न्याय प्रणाली अत्यंत चतुरतापूर्ण ढ़ंग से वादी और प्रतिवादी दोनों को लूट लेती थी।[25]

जिस न्याय व्यवस्था को स्थापित करने के उद्देश्य से राज्य तथा राजपद स्थापित हुए राजा को प्रजा से कर लेने का अधिकार प्राप्त हुआ उसी न्याय व्यवस्था का गोरखा शासन काल में धन के लिए दुरूपयोग किया गया। गोरखा शासन काल में न्याय का अर्थ धन संचय करना था। उन्होंने न्याय को धन कमाने का माध्यम बनाया। इसलिए गोरखा शासनकाल को 'गोरख्याणी' कहा जाता है। जनता इनके अत्याचारी शासन से तंग आकर जंगलो अथवा अन्य क्षेत्रों की ओर पलायन कर जाते थे।[26] क्योंकि गोरखा शासकों की दण्ड प्रणाली बहुत कठोर व अमानुशिक थी, जिसको आधुनिक समाज में उचित नहीं ठहराया जा सकता है। किसी भी शासनकाल में राज्य की न्याय एवं दण्ड प्रणाली उस शासन काल के अंतर्गत राज्य के सामाजिक पृष्ठभूमि को दर्शाता है कि उक्त शासन काल में प्रजा के प्रति शासकों का व्यवहार किस प्रकार था। गढ़वाल में गोरखाकालीन शासन में न्याय एवं दण्ड व्यवस्था का अध्ययन कर इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि गोरखा शासन प्रजा हितैशी नहीं था।

सन्दर्भ

1. मनुस्मृति-9/293, स्वाम्त्यतात्यौ पुरे राष्ट्र कोशदण्डौ सुवत्तथा। सप्तप्रकृतयो वोता: सप्ताब राज्यमुच्यते।।
2. महाभारत-शान्तिपर्व-64/65/69, राज्ञा सप्तैव रक्ष्याणि तानि चैव निबोध मे। आत्मामात्म्या कोशाश्र दण्डो मित्राणि चैव कि।। तथा जनपद्यैव पुरं च कुरूनन्दन। एतत् सप्तात्मकं राज्यं परिपाल्यं प्रयत्नत:।।

3. अग्निपुराण-233/12, स्वाम्यमात्य्र तथा दुर्ग कोशो दण्डस्तथैव च। मित्रजनपद्रैव राज्यं सप्तामुच्यते।।
4. कौटिल्य, अर्थशास्त्र-6/96/1, स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः।
5. शर्मा, रामशरण, 1995, प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं, नई दिल्ली, पृष्ठ 79।
6. कौटिल्य, अर्थशास्त्र-2/56-57/1/5, दण्डो हि केवलो लोकं परं चेमं च रक्षति। राजा पुत्रे च शत्रौ च यथादोशं समं धृत।।
7. मनुस्मृति-8/4-5-6-7, टीकाकार, शास्त्री, रामचन्द्र वर्मा, 2020, प्रभात पेपरबैक, नई दिल्ली।
8. डबराल, शिव प्रसाद, 1999, गोरख्याणी-1 पर्वतीय राज्यों का विध्वंस, वीरगाथा प्रकाशन, दुगड्डा गढवाल, पृष्ठ 209।
9. डबराल, शिव प्रसाद, 1999, गोरख्याणी-1, पूर्वोक्त, पृष्ठ 209।
10. रावत, शिवचंद सिंह, 2011, गढ़वाल की अर्थव्यवस्था एवं आर्थिक संस्थाओं के विकास का इतिहास, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 48।
11. एटकिंसन, ई0टी0, 1973, हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि0 3 पृष्ठ 170।
12. डबराल, शिव प्रसाद, 1999, गोरख्याणी-1 पृष्ठ 211।
13. रावत, शिवचंद सिंह, पूर्वोक्त, पृष्ठ 48-49।
14. वही, पृष्ठ 49।
15. डबराल, शिव प्रसाद, 1999, गोरख्याणी-1, पूर्वोक्त, पृष्ठ 211।
16. वही, पृष्ठ 211।
17. पंकज, प्रियदर्शी, 2013, गोरखों की कर, न्याय एवं दंड व्यवस्था (1790-1815ई0) (कुमाऊँ और गढ़वाल के संदर्भ में), हिमालयी इतिहास के विविध आयाम (संपादक गिरिजा पाण्डे, हीरा सिंह भाकुनी), पृष्ठ 171।
18. रावत, शिवचंद सिंह, पूर्वोक्त, पृष्ठ 49।
19. डबराल, शिव प्रसाद, 1999, गोरख्याणी-1, पूर्वोक्त, पृष्ठ 211-12।
20. पांडे, बद्रीदत्त, 1997, कुमाऊँ का इतिहास, अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा, पृष्ठ 404।
21. ट्रेल, जी0डब्ल्यू0, 1828, स्केच ऑफ कुमाऊँ, एशियाटिक रिर्सच जर्नल, कलकत्ता, जि0 16, पृष्ठ 102।
22. उपरोक्त, पृष्ठ 171।
23. एटकिंसन, ई0टी0, 1973, पूर्वोक्त, पृष्ठ 171।
24. वही, पृष्ठ 172।
25. डबराल, शिव प्रसाद, 1999, गोरख्याणी-1, पूर्वोक्त, पृष्ठ 213।
26. वही, पृष्ठ 40।

ईस्ट इंडियन रेलवे कंपनी और बिहार में रेलवे का आगमन (1845-1871)

नवीन कुमार

शोध छात्र, इतिहास विभाग, बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

बिहार में रेल लाने का श्रेय ईस्ट इंडियन रेलवे कंपनी को है. रॉलन्ड मैकडोनाल्ड स्टीफेन्सन इस कंपनी के जनक थे। रॉलेन्ड मैकडोनाल्ड स्टीफेन्सन का जन्म 1808 में इंग्लैण्ड में हुआ था, उन्होंने वहां रेलवे युग की शुरुआत तथा 1840 के दशक में रेलवे का प्रसार होते देखा था, इससे प्रभावित होकर स्टीफेन्सन रेलवे के प्रर्वतक बन गए। उन्होंने अपने रेलवे प्रोजेक्ट के लिए जिस देश को चुना वह भारत था, इसका कारण था कि उनका परिवार काफी पहले से भारत से जुड़ा था। स्टीफेन्सन के पूर्वज एडवर्ड स्टीफेन्सन 18वीं सदी में मुगल दरबार में ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापार के लिए कुछ व्यापारिक सुविधाएँ लेने गए थे। उनके दो सगे भाई ईस्ट इंडिया कंपनी की सेवा में थे।

भारत में रेल लाइन बिछाने का विचार स्टीफेन्सन के दिमाग में 1841 में ही आया था। वह शुरु में कलकत्ता से वर्द्धमान तक रेल लाइन बिछाना चाहते थे, अत: वे भारत आकर यहां की परिस्थितियों का अवलोकन किये। भूमि, लकड़ी और पड़ोसी क्षेत्रों में कुशल मजदूरों की उपलब्धता का पता लगाया। इस क्षेत्र में यात्रियों और समानों के आवागमन की जानकारी ली। उसने इस क्षेत्र के कोयला खान के मालिक जे0 ए0 रस्किन से भी यहां की स्थिति का जायजा लिया और इंग्लैण्ड के उस समय के गणमान्य इंजीनियर जोसेफ लाकसे भी विचार-विमर्श किया। औपचारिक रूप से स्टीफेन्सन ने अपने प्रस्ताव को कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स के पास भेजा, जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया।[2]

1844 में स्टीफेन्सन पुन: अपने रेलवे प्रोजेक्ट के संबंध में भारत आया, इस बार वह बंगाल सरकार से मिला, बंगाल की सरकार अपने बढ़ते हुए प्रशासनिक और सैनिक कार्यों के लिए आवागमन के साधनों की कमी के कारण काफी परेशानी झेल रही थी, अत. सरकार ने स्टीफेन्सन के रेलवे प्रोजेक्ट के प्रति रुचि दिखाई और इस संबंध में स्टीफेन्सन को सकारात्मक जबाब दिया।

भारत में उत्साहवर्द्धक सहमति के आधार पर स्टीफेन्सन 1844 के अंत में इग्लैण्ड लौटा और पुन कलकत्ता से बर्द्धमान के कोयला क्षेत्र में रेल लाइन बिछाने का प्रस्ताव कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स को दिया।[3] कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने इंजीनियरिंग और व्यावसायिक दृष्टि से इस प्रोजेक्ट पर काफी विचार-विमर्श किया इंजीनियरों की टीम को भारत में स्थितियों का निरीक्षण करने के लिए भेजा और भारत सरकार की सहमति से इसे स्वीकार कर लिया।

1 जून 1845 को ईस्ट इंडियन रेलवे कंपनी की स्थापना हुई। पहला बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स का गठन हुआ, जिसमें 13 सदस्य थे। स्टीफेन्सन को इस कंपनी का मैनेजिंग डायरेक्टर चुना गया, सितम्बर 1845 में स्टीफेन्सन भारत पहुंचे। वह अपने साथ इंजीनियरों और सर्वेयरों को भारत लेते आए थे, इन लोगों ने कलकत्ता और दिल्ली के बीच की भौतिक स्थिति तथा व्यापार एवं वाणिज्य की संभावनाओं का व्यापक सर्वे किया।[4] इन लोगों ने अनुमान लगाया कि दोहरा लाइन बनाने में लगभग प्रति मील 15000 पौंड खर्च आएगा, अगर उन्हें भूमि नि:शुल्क मिल जाती है। गारंटी के प्रश्न को लेकर काम में देरी हुई। 17 अगस्त 1849 में पहला कांट्रेक्ट ईस्ट इंडिया कंपनी और ईस्ट इंडिया रेलवे के बीच हस्ताक्षर हुआ। जो एक प्रयोगात्मक लाइन हाबड़ा से बर्द्धमान होते हुए रानीगज तक बनाई जाए जो 121 मील की दूरी तय करेगी।[5]

7 मई 1850 को स्टीफेन्सन ईस्ट इंडियन रेलवे के मैनेजिंग डायरेक्टर, जार्ज टर्नबॉल कपनी के चीफ इंजीनियर और स्टेकटर इंजीनियर ने हावड़ा से वर्द्धमान तक रानीगंज के कोयला क्षेत्र के रुट का सर्वे किया। 24 जनवरी 1851 को ईस्ट इंडियन रेलवे को पहला भूमि का स्वामित्व मिला और रेल निर्माण कार्य शुरु हुआ। एक्सपेरीमेंटल लाइन 1851 में शुरु हुआ और फरवरी 1855 में यह पूरा होकर यात्रियों तथा जनता के लिए खोला गया।[6] योजना हावड़ा भाया राजमहल और इलाहाबाद से दिल्ली तक रेल लाइन बनाने की थी, साथ ही एक ब्रांच लाइन मिर्जापुर से ग्रेट इंडिया पेनिनसुला लाइन में जबलपुर तक थी। रेल लाइन बनाने का काम धीमा था, जिसके कई कारण थे। अधिकांश रेल निर्माण की सामग्रिया इंग्लैण्ड से आती थी, जिसका भाडा 1854 में पांच पौंड प्रत्येक टन का था। जब भाडा और बढ़ गया तो भारत में समान आने में और भी विलम्ब होता था।

इंग्लैण्ड से जो समान कलकत्ता आता था, उसे नावों के द्वारा गंतव्य स्थान पर भेजा जाता था। यह काम प्राय: यूरोपियन ठेकेदारों के द्वारा होता था। शुरु में पर्याप्त मजदूर मिलने में दिक्कत होती थी और कुछ ठीकेदार समय पर काम पूरा नहीं कर पाते थे। बंगाल, बिहार में रेलवे का निर्माण बहुत खर्चीला था। बहुत सी नदियों पर पुल बनाना पड़ता था। वैसी जगहें जहां प्रत्येक वर्ष बाढ आती थी, सडके ऊँची थी, वहां पानी निकलने के लिए नाले की जरूरत थी। पुल जैसे सोन नदी पर बनाया जाना था, वह बहुत महंगा था।[7]

उसी समय 1856 में अधिकांश भाग पर काम शुरू हो गया था। इस प्रांत में रेलवे का सेक्शन इस प्रकार था।

1. राजमहल के नजदीक कहलगांव से भागलपुर और मुंगेर से पीरपैती - 80 मील
2. पीरपैंती से कियूल, हरोहर और पुनपुन नदियों को पार करते हुए पटना सिटी होते हुए फुलवारी - 85 मील
3. फुलवारी से पश्चिम भाग कर्मनाशा नदी तक[8]

राजमहल रेल सेक्शन की तरह ही इस सेक्शन में भी सामग्रियों की समस्या थी। इस लाइन में सबसे बड़ी समस्या नदियों की थी, उनमें मुख्य सोन और दिल्ली में यमुना नदी की थी। अन्य दूसरी नदिया अदजई. मूर, क्यूल. हरोहर और टोम्से थी।[9] इन नदियों पर पुल बनाने के लिए आयरन गर्डर इंग्लैण्ड से आती थी, इसके अतिरिक्त ईट का भी काम होता था। सोन नदी पर पुल बनाने के लिए 18, 46, 324 क्यूबिक फीट ईट कार्य की जरूरत थी। दूसरा ईट का काम कर्मनाशा नदियों पर पुल बनाने के लिए था।[10]

इन सभी कार्यों के लिए ईटो की जरूरत थी लेकिन ईट बनाने वाले का नितांत अभाव था। रेलवे में ईटों की बढ़ती मांग के कारण इस पेशे में लगे लोगों का अभाव हो गया।[11] इसके अतिरिक्त कही ईट पकाने के लिए ईधन का अभाव तो कहीं ईट बनाने के लिए मिट्टी की अनुपलब्धता थी। उदाहरण के लिए सोन जिला में बर्न एण्ड कंपनी (ठनतद दंक ब्वण्द्ध के ठीकेदारों ने तुरंत ही बड़े पैमाने पर ईट बनाने का काम शुरू किया, लेकिन उनके अत्यधिक प्रयास के बावजूद भी कर्मनाशा तथा अन्य जगहों में ईट बनाने की बहुत बड़ी असफलता हाथ लगी क्योंकि वहां की मिट्टी इसके लिए उपयुक्त नहीं थी। ईटों की प्रचुर मात्रा 1856 के वर्षा के मौसम शुरू होने के पहले नहीं थी, जिससे रेल निर्माण कार्य शुरू हो सके। कर्मनाशा नदी के पास मिट्टी तथा ईट बनाने की मशीन मंगवाया गया, इससे 1856-57 के सर्दी के मौसम तक कुछ सफलता हासिल हुई।[12] सोन के बाद पटना जिले में हलोहर, क्यूल और पुनपुन नदियों पर पुल था तथा इसके अतिरिक्त बाढ़ नियंत्रित करने के लिए पुल थे। हरोहर नदी पर अनेक पुल बनने थे जिसके लिए ईटों की जरूरत थी। 1858 के अंत से ईट पकाने के लिए इस क्षेत्र में ईधन की बहुत कमी हो गई। जलाने वाली लकड़ियां कम थी और कोयला क्षेत्र 50 मील दूर था। जहां कोयले की खुदाई भी सीमित मात्रा में होती थी, अत वहां से मदद की कोई उम्मीद नहीं थी। बिहार के दूसरे जिलों पीरपैंती, कहलगांव, मुंगेर में सुरंग बनाने के लिए भी ईट की बहुत जरूरत थी। इस लाइन के ठेकेदार मेसर्स मेकिनतोश एण्ड कंपनी रेलवे कार्यों में नया था, और जो ईटे उनके देख-रेख में बना था।[13] वह निम्न किस्म का था, उन सब को लौटा दिया गया। इस समस्या का हल वर्द्धवान और राजमहल के तरह निकाला गया। 1858 में टर्नबॉल के सलाह पर इंग्लैण्ड से आयरन गर्डर का आयात किया गया, यहां तक की छोटे पुलों में भी उसे ही लगाना था।[14] राजमहल सेक्शन में भी इसी तरह का निर्णय लिया गया था। इसके लिए अतिरिक्त पूँजी इस विचार से स्वीकृत किया गया कि इससे रेल निर्माण कार्य जल्द होगा। 1863 में यह लाइन हावड़ा से बनारस तक खोला गया।[15]

15 अगस्त 1854 को ईस्ट इडियन रेलवे की पहली रेल 24 मील की दूरी तय कर हावडा से हुगली तक चली। यहाँ नियमित सेवाएं शुरू की गई, जिसके लिए बैली, सेरामपुर और चंदरनगर में उसका स्टॉप बनाया गया। यह रेल लाइन पद्रह दिन बाद पंडुआ तक बन गई। पहले 16 सप्ताह में कम से कम 109,634 पैसेंजर इस रेलगाड़ी से ढोया गया और इससे कुल आमदनी + 6792155.9 का हुआ था औसतन प्रति सप्ताह आमदनी। 124 105. 11 13616 की हुई इस छोटे से रेल लाइन के भाग को खुलने पर बोर्ड ने रिपोर्ट किया कि रेलगाडी से यात्रा करने वाले ट्रैफिक आशा से अधिक है, जबकि एक सामान्य धारणा थी कि भारतीय रेलगाड़ी में सफर नही करेंगे, अधिकांश यात्री तृतीय श्रेणी में यात्रा करते थे।

ट्रैफिक का विश्लेषण नीचे है-

प्रथम श्रेणी -5,511

द्वितीय श्रेणी - 21,005

तृतीय श्रेणी - 83,118

यह निश्चित रूप से असाधरण कार्य साबित हुआ, सबसे गरीब भारतीय भी रेलगाड़ी में सफर करने लगे। तृतीय श्रेणी में एक मील का 3/8 क किराया लगता था और केवल रेल में तीन श्रेणियों थी, वास्तविकता तो यह थी कि न तो जाति का पूर्वाग्रह और न ही कोई अन्य भावना देशी लोगों का आवागमन के नए साधान को प्रयोग करने से रोक सकी।[17] 3 फरवरी 1855 को रेलगाड़ी रानीगंज से चली। इस लाइन के खुलने के पंद्रह सप्ताह के दौरान 179,404 यात्री इससे सफर किए जो 12,000 प्रति सप्ताह के लगभग था और आमदनी 900 पौंड प्रति सप्ताह था।[16]

1857 के भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के कारण बगाल और बिहार में रेल लाइन बिछाने का कार्य बाधित हुआ। विद्रोहियों ने रेलवे को अपने आक्रमण का निशाना बनाया गया यद्यपि बिहार में इस समय रेलगाड़ी की शुरूआत तो नहीं हुई थी लेकिन रेल लाइन बिछाने का कार्य चल रहा था। बिहार में जो भाग विद्रोह के कारण सबसे अधिक प्रभावित हुआ वह सोन जिला था। रेल निर्माण का सभी प्राथमिक कार्य पुरा हो चूका था, सोन पुल बनाने के लिए जो सामग्रियां रखी हुई थी, उसे दानापुर के विद्रोहियों ने नष्ट कर डाला।[19] इस क्षति ने बिहार में रेल निर्माण कार्य को एक साल पीछे धकेल दिया। दानापुर के ही विद्रोहियों ने आरा जिला में भी जो सोन नदी के पश्चिम में था, वहां कीमती रेलवे सपत्ति को क्षति पहुंचाया। इस कारण अस्थायी रूप से राजमहल से सोन नदी तक कार्य रूक गया।[20] बहुत सी नावे जो गंगा नदी में रेलवे का समान ले जा रही थी, उसे डूबा दिया गया, बहुत सी सामग्रियों को विद्रोहियों के द्वारा जला डाला गया। इस तरह विद्रोह ने रेलवे निर्माण कार्य को एक तरह से रोक दिया, फिर भी ईस्ट इडियन रेलवे का जो भाग ट्रैफिक के लिए खुल चुका था, वहां दिन प्रति दिन यात्रियों की संख्या और आमदनी बढ़ती गई।

4 जुलाई 1860 को कलकत्ता से राजमहल पहली रेल चली और बिहार का प्रवेश रेलवे युग में हुआ। 15 अक्टूबर 1860 को यह जनता के लिए खुला। बाद में यह लाइन साहेबगंज लूप कहलाया। वर्षा के कारण रेल लाइन को व्यवस्थित होने में थोडा वक्त लगा।[21] लाड केनिग तत्कालीन वायसराय ने औपचारिक रूप से 15 अक्तटूबर 1860 को इस लाइन को खोला। राजमहल के इस लाइन के उद्घाटन के अवसर पर स्पेशल मेडल्स बनवाए गए। सर आर0 एम0 स्टीफेन्सन, कर्नल बेकर, कन्सल्टिंग इंजीनियर और मिस्टर टर्नबॉल सी0 ई0 को गोल्ड मेडल दिया गया तथा अन्य दूसरे अफसरों को चांदी और कांस्य के मेडल दिए गए।[22] यह उस पत्र की कॉपी है, जो इस कार्य में लगे हुए डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर्स को भेजा गया था –

THE SECRETARY TO GOVT. OF INDIA

Public Works Department
TO,
GRAHAM PEDDIE, ESQ,
DISTRICT ENGINEER
East Indian Railway
Sir,

I am commanded by His Excellency the Vicceroy and Governor - General of India to transmit, for your aceeptance, the medal struck by order of Government on the occasion of opening the East Indian Railway to the Ganges at Rajmahal, as being a memorable point attained in the construction of that great work, on which you have been employeda

I have the honour to be
SIR,
Your most obedient servent
H, YULE, LIEUT. —COL—,
Secretary of the Govt. of India[23]

राजमहल से ईस्ट इंडियन रेलवे पश्चिम की ओर गंगा नदी के साथ 1861 में भागलपुर, 1862 में मुंगेर और सितम्बर 1862 में वाराणसी के सामने तक पहुंच गई। इसी के साथ जमालपुर में पहला सुरंग और आरा के नजदीक सोन नदी पर पहला बड़ा पुल बनाया गया। बिहार में इस प्रकार रेलवे की शुरूआत हुई वाराणसी से मिरजापुर को 1 जनवरी 1864 को रेल लाइन से जोडा गया।[24] इन्ही दिनों कॉर्ड लाइन तथा अनेक वैकल्पिक रेल मार्ग बनाने का सर्वेक्षण किया गया। बंगाल सरकार कार्ड लाइन के प्रस्ताव को मानने पर दबाब डाल रही थी। यातायात के दूसरे साधनों को बढ़ाने के लिए दूसरी योजनाओं पर भी विचार-विमर्श चल रहा था। रानीगंज से लखीसराय तक गंगा नदी पर कोई लाइन बनाने पर विचार चल रहा था।

इस योजना पर मिस्टर रेनडल के द्वारा दृढ़ समर्थन मिला। इस कारण से कि इससे खाना और लखीसराय के बीच डबल लूप लाइन का निर्माण नहीं करना पड़ेगा जिसकी दूरी 252 मील थी साथ ही इससे कोयला क्षेत्र कंपनी के केन्द्र से 200 मील नजदीक हो जाएगा। जिससे न सिर्फ कंपनी को फायदा होगा, वरन् पैसेंजर को भी होगा। इससे कलकत्ता और उत्तर पश्चिम प्रांत की दूरी बहुत कम हो जाएगी।[25]

1 जनवरी, 1871 को कॉर्ड लाइन को लोगों के आवागमन के लिए खोला गया। इस लाइन के खुलने से रेलवे 1280 मील तक विस्तृत हो गई, जिसमें 400 मील डबल था और 880 मील सिगल। लेकिन शीध्र ही इस लाइन पर ट्रैफिक बहुत कम हो गया। 1871 के पूर्वाई में समान और खनिजोकी दुलाई 680, 378 टन हुई, जबकि 1870 के पूर्वाद्ध में 700,804 रन हुई। थी। ट्रैफिक में इस कमी कि जांच के लिए भारत सरकार ने कमिटी बनाई। कपनी का माल भंडारण क्षेत्र खाली पड़ा था, रेल के कई इंजन और वै एगन ऐसे ही सुस्त पड़े थे। भारत सरकार ने ट्रैफिक में इस कमी भी जोंच-पड़ताल के लिए एक कमिटी बनाई, इस कमिटी का एक कारण 1870 में उत्तर-पश्चिम प्रात में अकाल के कारण माल की दुलाई 1871 की तुलना में अधिक हुई थी। 1871 में कलकत्ता के बाजार में मंदी थी, ऐसी परिस्थिति में सौदागरों ने अपेक्षाकृत सस्ता परिवहन विकल्प चुना जो नदी मार्ग द्वारा था। इस वर्ष भारी वर्षा के कारण सालों भर नदियों में नाव चलते रहे। इस तरह कमिटी सरकार के समक्ष यातायात में कमी पर बहुत प्रकाश नहीं डाल पाई, लेकिन इतना जरुर पता लग गया कि नदी मार्ग इस समय रेल मार्ग से सस्ता था।

संदर्भ सूची

1. हिना मुखर्जी : द *अली हिस्ट्री ऑफ ईस्ट इंडियन रेलवे (1845-1879)* फर्मा के0 एल0 एम0 प्राइवेट लिमिटेड कलकत्ता, 1944, पृष्ठ- 1.
2. मिनट्स ऑफ एवीडेंस टेकेन बीफोर सेलेक्ट कमिटी ऑन ईस्ट इंडिया (रेलवेज) 141 आमामेंटरी पेपर्स, हाउस ऑफ कॉमन्स 1857-1858 ग्प (416), पृष्ठ 51, प्रश्न 3829 और दिना मुखर्जी 'पूर्वोद्दत में उद्दत पृष्ठ-2
3. स्टीफेन्सन टू जे0 सी0 मेल विल सेक्रेटरी, कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स, 13 दिसम्बर 1844, *रेलवे होम कोरेसपोन्डेन्स* 'ए' भाग-1, हिना मुखर्जी पूर्वोद्धृत, पृष्ठ-3.
4. वही पृष्ठ-6 - 7.
5. वही पृष्ठ-13.
6. के0 ई0 वरगीज - द *डेवलपमेंट एण्ड सिग्नीफिकेन्स ऑफ ट्रांसपोर्ट इन इंडिया*, एन0 वी0 पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृष्ठ-198.
7. वही, पृष्ठ 199
8. टर्नबॉल रिपोर्ट, 6 मार्च 1856, पैरा - 29, 14 और 2 रेलवे लेटर्स, टव्स्प्ट, हिना मुखर्जी, पूर्वोद्धृत पृष्ठ-133.

9. वही, पृष्ठ 134.
10. टर्नबॉल रिपोर्ट, 6 मार्च 1856, पैरा - 2, रेलवे टव्स. ग्प्ट हिना मुखर्जी,पूर्वोद्धृत, पृष्ठ-134.
11. वही, पृष्ठ 135.
12. वही, पृष्ठ 135.
13. वही, पृष्ठ 136.
14. *रिपोर्ट टू द सेकेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया इन काउन्सिल ऑन रेलवेज इन इंडिया*, 1862-63, ग्स्प्प्ए पृष्ठ-11, हिना मुखर्जी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ-134.
15. वही
16. जी0 हेडलेस्टन, सी0 आई0 ई0, हिस्ट्री ऑफ ईस्ट इंडियन रेलवे, थेकर,रचाइन एण्ड कंपनी कलकत्ता, 1906 पृष्ठ-15.
17. वही.
18. वही.
19. एस पावर, इंजीनियर, ईस्ट इंडियन रेलवे टर्नबुल को लिखे पत्र में, 7 अगस्त, 1857, रेलवे लेटर्स, भाग ग्टप्प् हिना मुखर्जी - द *अर्ली हिस्ट्रीऑफ* द *ईस्ट इंडियन रेलवे (1845-1879)* में उद्धृत, पृष्ठ-139.
20. हिना मुखर्जी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ-139.
21. जी0 हेडेलसन - पूर्वोद्धृत, पृष्ठ-28.
22. आर0 आर0 भंडारी : *इंडियन रेलवेज, ग्लोरियस 150 वर्ष* पब्लिकेशन डिविजन, भारत सरकार, 2005, पृष्ठ 13.
23. जी0 हेडेलेस्ठन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ-29.
24. आर0 आर0 भंडारी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ-13.
25. जी0 हडलेस्टन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ-40.
26. वही, पृष्ठ 64.

गुरू नानक एवं मनमोहन सहगल की दार्शनिक चेतना में समानता

ब्रह्मलता

शोधार्थी, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

गुरूनानक देव एवं मनमोहन सहगल के कार्यकाल में लगभग 500 वर्षो का अन्तर होने के पश्चात् भी उनके विचारों में अनेक समानताएं पाई जाती हैं। नानक उच्च कोटि के संत थे। उन्होंने समकालीन सामाजिक व्यवस्थाओं, कुरीतियां, कुप्रथाओं एवं सामाजिक तंत्र पर अपनी सरल वाणी द्वारा कुठारघात किया। यह बड़ा साहसिक एवं बौद्धिक कार्य था, क्योंकि राजनैतिक परिस्थितियों की उस काल में विपरीत थी। मनमोहन सहगल स्वतंत्र वातावरण में उत्पन्न, पले-बढ़े व्यक्ति हैं, इससे ऐसा लगता है कि उनके विचारों पर गुरूनानक का अत्यधिक प्रभाव है। इस शोध पत्र का उद्देश्य दोनों की दार्शनिक चेतना में समानताएं लक्षित करना है।

गुरूनानक का व्यक्तित्व

गुरूनानक का व्यक्तित्व असाधारण था। उनमें पैगम्बर, गृहस्थ, त्यागी, धर्म-सुधारक, समाज-सुधारक, कवि, संगीतज्ञ, देश भक्त, विश्व बंधु सभी गुण इनमें विद्यमान थे। उनमें विचारशक्ति तथा क्रिया शक्ति का सामंजस्य था। उन्होंने अपने जीवन काल में पूरे देश का भ्रमण किया। लोगों पर उनके विचारों का बहुत प्रभाव पड़ा। इनमें एक धर्म-सुधारक और समाज सुधारक के सभी गुण विद्यमान थे। उनकी रचना, जपुजी का सिक्खों के लिए वही महत्त्व है जो हिन्दुओं के लिए गीता का है।

रचनाएँ

श्री गुरू ग्रन्थ साहब में उनकी रचनाएं 'महला' के नाम से संकलित है। गुरू नानक की शिक्षा का मूल निष्कर्ष यह है कि परमात्मा एक अनन्त, सर्वशक्तिमान, सत्यकर्त्ता, निर्भय, अयोनि, स्वयं भू है। वह सर्वत्र व्याप्त है। मूर्ति-पूजा निरर्थक है। बाह्य साधनों से भगवान की प्राप्ति असम्भव है।

गुरूनानक की दार्शनिक चेतना

दर्शनः किसी विशेष अध्ययन को परिभाशा की सीमा में बांधना प्रायः असम्भव-सा होता है, न जाने उसका संश्लेषण या विश्लेषण करते समय उक्त परिभाशा की सीमा-रेखाओं का उल्लंघन कहाँ-कहाँ और कितनी बार करना पड़े। इसके पश्चात् मानव की अनन्त एवं सतत् विचार शक्ति के सामने विश्व की चमत्कारपूर्ण दैनिक नवलता किस रूप में मुखरित हो, यह भी कल्पनानीत बात है। दर्शन सरीखे गम्भीर विषय का स्वरूप ज्ञान कुछ ऐसी ही समस्याओं का अखाड़ा है। सम्पूर्ण मानवता अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण तथा विचारधारा के आश्रय उत्थान-पतन की झीनी झिल्लियों में लिपटी जीवन की वास्तविकता खोज रही है। सबके प्रयत्न भिन्न-भिन्न हैं, शक्तियां जुदा हैं और वातावरण प्रादेशिक है।

ऐसे में 'अंधे और हाथी' की कहावत चरितार्थ हो रही हैं। जो अंग जिसके हाथ लगा, वही उसकी यथार्थता बन गया। समन्वय से कोसों दूर ये आंशिक जीवन की वास्तविकताएँ दर्शन को परिभाशा में बांधने के स्वप्न लेती रही, लेकिन पूर्ण व अपूर्ण की परिधि में बांधना दुष्कर ही नहीं असम्भव व प्रमाणित हुआ। अन्ततः मानव-मस्तिष्क निजी असमर्थता को छिपा के संवरण न कर सका। परिभाषा ऐसी बनी जिसमें जीवन और लोक की सम्पूर्णता को स्थान था तथा प्रत्येक एकांगी प्रयत्न उसमें हीन कहीं अवस्थित किया जा सकता था। दर्शन को सम्पूर्ण जीवन तथा विश्व-प्रकृति की व्याख्या और मूल्यांकन का सदप्रयास कहा जाने लगा।

दार्शनिक-तत्व अभिप्राय

मनुष्य में केवल दो ही मुख्य भाव रहते हैं - स्वत्व और परत्व। इन्हीं से प्रेरित होकर उसको सम्मुख आज तक दो दार्शनिक समस्याएँ विश्व का आधार-तत्व क्या है? आदि जानना चाहता है। उसकी सत्यता की पराभौतिक व्याख्या करना चाहता है और अपनी सम्पूर्ण शक्तियाँ वहीं केन्द्रित कर आयु भर किसी रहस्यात्मक सत्य की खोज करता रह जाता है। दूसरी और स्वतंत्रता का सहारा ले वह अपने लिए भी उलझा रहता है। वह स्वयं क्या है? उसके अन्तर में मन क्यों हैं? मन और शरीर का आपस में क्या सम्बन्ध हैं। आत्मा कौन है? उसका स्वरूप क्या है? आदि प्रश्न दूसरी समस्या की जटिलताएँ हैं। श्री रॉस

ने इन्हें मानव स्वरूप सम्बन्धी मानवीय समस्याएँ कहा है। ये सभी समस्याएँ किसी विशिष्ट विचारधारा की आधार बनती हैं इन्हीं से प्रेरित होकर पश्चिम में आज तक पदार्थ और ईश्वर के अस्तितत्व-अनस्तित्व का संघर्श चलता रहा है और पूर्व में जीव, ब्रह्म और सृष्टि पर मिलने वाली धारणाओं का प्रसव स्थान भी यही स्वत्व और परत्व की टकराहट है।

मध्ययुग में मुसलमानों द्वारा निजी शक्ति के विनाश से अपने को बौना न देखने के अभिलाशी हिन्दुओं ने 'अंह' को उच्चतम शक्ति ब्रह्म को सुकिरण प्रदीप्त करने वाले इन सिद्धान्तों पर धीरे-धीरे आध्यात्मिकता का रंग चढ़ता गया और परवर्ती विचारकों ने इनमें रहस्य का पुट लेकर नित्य नवीन व्याख्याएँ प्रस्तुत की 'ये ही व्याख्याएँ भारतीय दर्शन कहलाती हैं। मध्ययुग की परिस्थितियों में एक निरालापन था। उस समय का आन्तरिक समाज मुख्यत: दो भागों में बँटा हुआ था - उच्च जातियां और निम्न जातियां। ये मुसलमानों से पराजित हुई और हतोत्साहित-सी जीवन संघर्श करने लगी। निम्न जातियां अपेक्षित समझी जाती थी, अपने सम्मुख एक सुव्यवस्थित समाज (मुस्लिम समाज) को अपना हार्दिक स्वागत करता देख रही थी। आकर्शण सम्भावित था। ऐसे समय में जरूरत थी किसी शक्तिशाली लोकनायक की जो हिन्दू-मुसलमानों के संघर्श का कठोरतापूर्वक सामना करता हुआ, दोनों के नियम-सिद्धान्तों में समन्वय प्रस्तुत कर, उनका एक छात्र नेतृत्व कर सके।

उत्तर प्रदेश में कबीर रूप में ऐसी शक्ति का उदय हुआ। पंजाब की जनता की दशा और भी शोचनीय थी। पंजाब सीमान्त प्रान्त होने के कारण सब प्रकार से उसका पतन हो रहा था। वहाँ भी कबीर जैसे लौह-पुरुष की अपेक्षा थी, गुरू नानक के अवतरित होने से वह पूरी होगी। परिस्थिति नर्म देखकर जन-धैर्य का आह्वान नानक के भक्ति आवरण में अद्वैत स्थापना के माध्यम से किया। जनता की विवशता को, किसी रहस्यमयी संकेतों में, धीरज बांधने के लिए ही सम्भवत: नानक के 'हुकुम' के दर्शन को जन्म दिया।"[1] ओं सतिनाम करता, पुरख निरभउ, निरभउ, निखैर, अकाल मूरति, अजूनि सैभ, गुरू प्रसाद के महामंत्र में जनता की श्रद्धा प्राप्त कर उसे व्यवस्थित मानसिक शांति का वरदान दिया।

गुरू नानक का दार्शनिक लक्ष्य और उसकी सिद्धि

सिद्धि हेतु गुरूनानक कर्म, ज्ञान साधना आदि किसी एक साधन को मन्त्रवत् अपनाने के समर्थक नहीं थे। उनके मतानुसार मनुष्य के अन्तर से जब तक अहं का भाव नष्ट नहीं हो जाता तब तक उसे किसी साधन को अपनाने सफलता नहीं मिल सकती। इसलिए गुरू नानक पथ पर अग्रसर होने के लिए जीव को सबसे पहले मन को मारना या अहं का नाश करना होगा। वास्तव में अहं माया के प्रभाव दूसरा नाम है और निश्चय ही मनुष्य को अपने को पहचानने से पूर्व हमें जो भी पहचाना है वही उसका प्रकाशित रूप है। वही हमारे अन्दर हैं परन्तु अहं ने इस पर पर्दा डाल रखा है।[2] इसी संदर्भ में जोध सिंह लिखते हैं कि अहं के नाश के लिए गुरू के हुक्म में चलना और निरंकार के गुण-गाना ही मुख्य साधन है। अन्तर के प्रकाश के पश्चात् जीवन को ज्ञान हो जाता है कि वह क्या है? अहं के त्याग के पश्चात् ही साधना संवत हुए मन को 'नाम' की प्रेरित करती है।[3] गुरू के शब्दों को सुनकर जीव का मन शाँत हो जाता है और वह अवगुणों से हट जाता है। जीव में ब्रह्म व्याप्त है जो दोनों में अभेद प्रस्तुत करता है। नानक के दृष्टिकोण में जीव और ब्रह्म के सम्बन्धों में भेद और अभेद दोनों का आधार प्रकट होता है जिसमें अभेद मुख्य है। व्याप्ति इतनी पूर्ण हो जाती है कि व्यापक व्याप्य से समरूप हो जाता है।[4]

नानक के अनुसार पढ़ लिखकर, वेद - वेदांगों के शास्त्रीय ज्ञान को भी अपेक्षा नहीं यहाँ तो 'हरि को भजे जो हरि का होय।' परिवार में रहते दुनियादारों के कर्म - कर्ताओं को पूरा करते हुए जो जीव अपने सत्कर्मों की वृद्धि और दुरवृतियों के त्याग द्वारा आत्मा को शुद्ध करता है, जो भौतिक जगत के स्थायीत्व का भ्रम तथा मन के अह के भीतर से दूर कर देता हैं। जो गुरू की अज्ञानुसार जपता है वह प्रभु कृपा का अधिकारी होता है। ऐसा जीव ही परम पुरुष स्थापित करता है और पहले जीवन-मुक्ति तद्पश्चात् ब्रह्म में चिर विलीनता का भागी होता है।"[5]

मनमोहन सहगल की दार्शनिक चेतना

गुरू नानक देव की तरह सहगल जी भी पंजाब में ही पैदा हुए हैं। इनकी दार्शनिक चेतना तथा गुरू नानक की दार्शनिक चेतना में काफी समानता है। यों कहा जाए कि सहगल जी ने गुरू नानक के दार्शनिक विचारों का ही अनुसरण किया तो इसमें कोई विसंगति न होगी। गुरू नानक व सहगल दोनों ही पंजाब की संस्कृति, राजनीति, धार्मिक परिस्थितियों से प्रभावित थे। मनमोहन सहगल कहते हैं कि 'सोना कोइ न लगे, लोहा धुन न खाएं। भला-बुरा गुरू-भक्त कबहू नरक न जाएं।[6] जिसके गुरू द्वारा बताए गए नाम-रहस्य हो हृद्य में बिठा लिया, उसका अहित तो कभी हो ही नहीं सकता। गुरू नानक की तरह सहगल भी प्रभु प्राप्ति के लिए नाम-स्मरण को सबसे आवश्यक मानते हैं। इनका कहना है कि 'शब्द' ही 'ब्रह्म' है और उसकी एक-एक तहके खुलने से सृष्टि आकार लेती है। यदि जीवात्म का शब्द-ध्वनि को पकड़ कर अपनी आध्यात्मिक यात्रा को आरम्भ करे तो निश्चय ही एक दिन वह ध्वनि के मूल उत्स तक पहुँचने में सफल रहेगी। अभिप्राय है कि जीवात्म का परब्रह्म (शब्द) के साथ ऐक्य प्राप्त कर लेगा और ध्वनि-पथ की उसकी यात्रा का अभेद अन्त होगा।

इन दोनों विचारकों का विचार है कि साधारण जीव सम्भवत: इस मार्ग पर मंजिल की खोज न भी कर पाए। दया का महावरदान यहाँ उसका सहायक होता है और जीव ब्रह्म में लीन होने में समर्थ होता है। दोनों ने मुक्ति के लिए गुरू के महत्त्व को स्वीकार किया है।

निष्कर्ष

अन्त में कहा जा सकता है कि गुरू नानक व सहगल के दार्शनिक विचारों में पर्याप्त साम्य है। सहगल गुरूनानक की परम्परा को ही आगे बढ़ाते दिखाई दे रहे हैं। अन्तर बस इतना है कि गुरू नानक भूतकाल में जनसाधारण का मार्गदर्शन कर रहे थे और मनमोहन सहगल वर्तमान युग में अपनी साहित्य रचना द्वारा मानव का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं।

सन्दर्भ

1. किव सचिआरा होरएं किव कूड़े तुटै पालि।
   हुकुम रजाई चलना नानक लिखिआं नालि। – जपुजी
2. सुनु सखि जिउ महि जिउ बसै, जिउ महि बसै कि पिव
3. मित का चित्रु अनूप मरम न जातीए। ग्राहक गुनी अपार सुततु पछानीह
   चितहिं चितु समाइ त हौवे रंगुधना। हरिहां चंचल चोराहि तथा वहि सचु धना।
   12, फुनहे म0 5 पृ0 136
4. डॉ0 उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन, पृ0 375
5. इहु जनमु तुमारे लेखे (औपन्यासिक आत्मकथा, मनमोहन सहगल), पृ0 7

ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की सृजनशीलता का उनकी वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

योगेश कुमार पाल

शोधार्थी-शिक्षाशास्त्र, डी.वी.कॉलेज उरई, जालौन, उ.प्र., बुंदेलखण्ड विश्वविद्याल झाँसी उ. प्र

सारांश

प्रस्तुत शोध अध्ययन का उद्देश्य बुंदेलखंड क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले झांसी, जालौन एवं ललितपुर जनपद के ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयो में कार्यरत शिक्षकों की सृजनशीलता का उनकी वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर प्रभाव का अध्ययन करना था। शोधार्थी ने प्रतिदर्श के रूप में 200 शिक्षकों का चयन किया है। शिक्षकों का चयन स्तरीख्रत याख्रच्छिक प्रतिचयन विधि से किया गया है। शोधार्थी द्वारा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। डॉ. रोमा पाल द्वारा निर्मित ए न्यू टेस्ट आफ क्रिएटिविटी शाब्दिक परीक्षण एवं डॉ. एन. एन. श्रीवास्तव द्वारा निर्मित वैज्ञानिक अभिवृत्ति मापनी का प्रयोग किया गया है। आंकड़ों के विश्लेशण के लिए काई वर्ग सांख्यिकी का प्रयोग किया गया है। विश्लेशण में यह पाया गया कि ग्रामीण प्राथमिक शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की सृजनशीलता का वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

शब्द कुंजी: सृजनशीलता, वैज्ञानिक अभिवृत्ति, ग्रामीण शिक्षक-शिक्षिका।

प्रस्तावना

शिक्षा के माध्यम से ही विद्यालय और समाज में सृजनशील कार्यों को प्रोत्साहित किया जा सकता है। एक अच्छे सामाजिक परिवेश के लिए योग्य एवं सृजनशील शिक्षकों का होना अति आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है। यदि शिक्षकों में नई सोच और नई खोज एवं कार्य करने की क्षमता हो तो वह छात्रों में नवीन सृजनशील गुणों का विकास कर सकते हैं और वैज्ञानिक अभिवृति के गुणों को प्रोत्साहित कर सकते हैं। विज्ञान शिक्षण का सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य छात्रों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति उत्पन्न करना है जिसके परिणाम स्वरूप उसका जीवन के प्रति ख्रष्टिकोण व्यवहारिक एवं आलोचनात्मक बन सके। इस प्रकार वैज्ञानिक अभिवृत्ति रखने वाला शिक्षक संपूर्ण ज्ञान की इच्छा रखता है और वह प्रत्येक स्थिति का अवलोकन करता है। अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न मनोवैज्ञानिक चरों पर शोध कार्य हुए हैं, जो शिक्षण अधिगम की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। जैसे- सृजनशीलता पर **नंदकिशोर (2011), कविता (2012),** वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर **सुभाष, सिंह (2013), आर्य भारती (2014), रश्मि (2016) सुभाष सिंह (2013)** आदि द्वारा शोध अध्ययन किए गए हैं। इन शोधों ने शोधार्थी को इस दिशा में शोध की प्रेरणा दी। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी ने ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की सृजनशीलता का उनकी वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है, से संबंधित विषय को शोध के लिए चुना।

समस्या कथन

ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की सृजनशीलता का उनकी वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

प्राथमिक विद्यालय: बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित ऐसे सरकारी स्कूल जिनमें कक्षा 1 से 8 तक की शिक्षा की व्यवस्था की जाती है।

शिक्षक: शिक्षक से आशय बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित सरकारी स्कूलों में अध्यापन कार्य करने वाले शिक्षक शिक्षिकाओं से है।

सृजनशीलता: सृजनशीलता से तात्पर्य मनुष्य के उस गुण, योग्यता या शक्ति से होता है जिसके द्वारा वह कुछ नया सृजन करता है

वैज्ञानिक अभिवृत्ति: वैज्ञानिक अभिवृत्ति को ज्ञान प्राप्त करने के लिए अभिव्यक्ति, सही ज्ञान के लिए इच्छा,विश्वास की प्रक्रियाओं के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। वैज्ञानिक अभिवृत्ति बिना किसी पक्षपात के विभिन्न निष्पक्ष समस्याओं तक पहुंचने में सहायक है और उचित निर्णय लेने के लिए मदद करती है।

सत्य संतोष: अपने कार्य या पेशे से प्राप्त होने वाले आनंद या संतोष को सत्य संतोष कहते हैं।

शोध अध्ययन के उद्देश्य

ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की सृजनशीलता का वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाएँ

ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की सृजनशीलता का वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

शोध अध्ययन की परिसीमाएं–

- प्रस्तुत शोध में कक्षा 1 से 8 तक की कक्षाओं में शिक्षण कार्य करने वाले सरकारी शिक्षकों को लिया गया है।
- प्रस्तुत शोध में उत्तर प्रदेश के झांसी,जालौन, ललितपुर जिलों में से 250 शिक्षकों को प्रतिदर्श के रूप में लिया गया है।
- प्रस्तुत शोध में बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित कक्षा 1 से 8 तक के सरकारी विद्यालयों को लिया गया है।
- प्रस्तुत शोध झाँसी, जालौन एवं ललितपुर जिले तक ही सीमित है।

संबंधित साहित्य का अध्ययन

मिश्रा, शैलजा एवं माधुरी सिंह (2014) ने परिशदीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की सृजनात्मक शिक्षण के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन किया और निष्कर्ष में पाया कि शिक्षक व शिक्षिकाओं की सृजनात्मक शिक्षण के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सिंह, भीमशंकर (2016) ने महाविद्यालयों में शिक्षक प्रशिक्षण विभाग के शिक्षक एवं अन्य विभाग के शिक्षकों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन किया और पाया कि शिक्षक एवं अन्य विभाग के शिक्षकों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

बावल, जगदीश (2017) ने सरकारी एवं निजी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं कम्प्यूटर अभिवृत्ति का अध्ययन किया और पाया कि सरकारी एवं निजी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर है।

शोध विधिः शोधार्थी द्वारा अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए **सर्वेक्षण विधि** का प्रयोग किया गया है

प्रतिदर्शः प्रतिदर्श चयन हेतु शोधार्थी द्वारा स्तरीख्रत याख्रच्छिक प्रतिचयन विधि का प्रयोग कर 250 शिक्षकों को प्रतिदर्श के रूप में चुना गया है।

उपकरणः डॉ. रोमा पाल द्वारा निर्मित न्यू टेस्ट ऑफ क्रिएटिविटी शाब्दिक परीक्षण, एवं डॉ. एन. एन. श्रीवास्तव द्वारा निर्मित वैज्ञानिक अभिवृत्ति मापनी का प्रयोग किया गया है।

सांख्यिकी विधिः प्रस्तुत शोध कार्य में शोधार्थी ने प्रतिदर्श के माध्यम से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेशण काई वर्ग सांख्यिकी का प्रयोग करते हुए परिकल्पना की जाँच की है।

आंकड़ों का विश्लेशण

परिकल्पना 1– ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की सृजनशीलता का वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

सारणी–1

सृजनशीलता वैज्ञानिक अभिवृत्ति	काई वर्ग	स्वतंत्रता के अंश	सार्थकता स्तर
प्रवाहता	1.475	4	.05 स्तर पर असार्थक
लचीलापन	4.675	4	–
मौलिकता	0.903	4	–
सृजनशीलता	0.916	4	–

सारणी 1 से स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्र के प्राथमिक शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की प्रवाहता विमा एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति के लिए गणितीय काई वर्ग का मान 1.475 है, जो कि कर्=4 पर सार्थकता के लिए आवश्यक काई वर्ग के मान (.05–9.488) से कम है। अतः .05 स्तर पर ग्रामीण क्षेत्र के प्राथमिक शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की प्रवाहता विमा का वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

सारणी 1 से स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्र के प्राथमिक शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की लचीलापन विमा एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति के लिए गणितीय काई वर्ग का मान 4.675 है, जो कि कर्=4 पर सार्थकता के लिए आवश्यक काई वर्ग के मान (.05– 9.488) से कम है। अतः .05 स्तर पर ग्रामीण क्षेत्र के प्राथमिक शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की लचीलापन विमा का वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

सारणी 1 से स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्र के प्राथमिक शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की मौलिकता विमा एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति के लिए गणितीय काई वर्ग का मान 0.903 है, जो कि कर्=4 पर सार्थकता के लिए आवश्यक काई वर्ग के मान (.05– 9.488) से कम है। .05 स्तर पर ग्रामीण क्षेत्र के प्राथमिक शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की मौलिकता विमा का वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

सारणी 1 से स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्र के प्राथमिक शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की सृजनशीलता एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति के लिए गणितीय काई वर्ग का मान 0.916 है जो की कर्=4 सार्थकता के लिए आवश्यक काई वर्ग के मान (.05–9.488) से कम है। अतः .05 स्तर पर ग्रामीण क्षेत्र के प्राथमिक शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की सृजनशीलता का वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।अतःशून्य परिकल्पना ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की सृजनशीलता का वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है, स्वीख्रत की जाती है

सुझाव

सृजनशीलता को विकसित करने में शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विद्यालयों में अच्छा परिवेश, नवाचार के साधन के साथ-साथ प्रशिक्षण की अच्छी सुविधाएं उपलब्ध कराकर सृजनशीलता एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति को प्रोत्साहित किया जा सकता है शिक्षण में ब्रेनस्टॉर्मिंग, समस्या समाधान विधि, भूमिका अभिनय, आख्रति विश्लेशण, खेल एवं क्रियाकलाप विधि, अपसारी चिंतन,आदि तकनीकी का प्रयोग करना चाहिए। समाज को शिक्षकों के प्रति सम्मान, प्रोत्साहन एवं उनके कार्यों की प्रशंसा की जानी चाहिए। जिससे शिक्षक स्वतंत्र होकर शिक्षण कार्य कर सकें और अपने पुनर्बलित व्यवहार के माध्यम से विद्यार्थियों में सृजनशीलता एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति को विकसित कर सकें। जिसका लाभ समाज, विद्यालय एवं सरकार उठा सकती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- **अरूणा, जी0एल0 (2001) य** *वाचन की शिक्षा एवं सृजनात्मकता, प्राइमरी शिक्षक (सृजनात्मक सम्पोशण विशेषांक),* नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग एन0सी0ई0आर0टी0, अक्टूबर 2001, अंक 4.
- **कपिल, एच0के0 (2012) य** *सांख्यिकी के मूल तत्व (सामाजिक विज्ञानों में),* आगरा : श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, पेज नं0 480.
- **गुप्ता, एम0पी0 (2007) य** *धार्मिक अभिवृत्ति, वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं शैक्षिक उपलब्धि के संदर्भ में किशोरों की पर्यावरणीय जागरूकता का अध्ययन, पी-एच0डी0, शिक्षाशास्त्र, वर्धमान महावीर मुक्त विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान), पेज नं0 265-295*
- **गैरेट ई हेनरी एवं आर0एस0 वुडवर्थ (2011) य** *शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकी के प्रयोग,* नई दिल्ली : कल्याणी पब्लिशर्स, पेज नं0 61
- **गुप्ता, राजकुमार (2001) य** *प्राइमरी शिक्षक (सृजनात्मक सम्पोशण विशेषांक),* नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग एन0सी0ई0आर0टी0,अक्टूबर 2001,अंक 4.
- **गुलाटी, सुशमा (2009) य** *सृजनात्मकता के लिए शिक्षा,* नई दिल्ली : प्रकाशन विभाग एन0सी0ई0आर0टी0,पेज नं0 156-157.
- **गुप्ता, एस0पी0 एवं अलका गुप्ता (2009) य** *आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन,* इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन, पेज नं0 533
- **गुप्ता, एस0पी0 एवं अलका गुप्ता (2010) य** *व्यवहारपरक विज्ञानों में सांख्यिकी विधियां,* इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन, पेज नं0 72.
- **जैन, लाल बनवारी एवं देवेन्द्र कुमार अग्रवाल (2016) य** राजकीय एवं गैर राजकीय विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों की सृजनशीलता एवं शैक्षिक निश्पत्ति का तुलनात्मक अध्ययन, *शब्द ब्रह्मा भारतीय भाषाओं की अन्तर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका,* टवसण 4 (5द्धए मार्च 2016, पेज नं0 4-5
- **बावल, जगदीश एवं सरिता मेनारिया (2017) य** सरकारी एवं निजी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं कम्प्यूटर अभिवृत्ति का एक अध्ययन, *श्रंखला एक शोध परख वैचारिक पत्रिका,* टवसण्4ण्ए प्ेनमे 4ण्ए थ्मइण् 2017ए च्च 60.61
- **मिश्रा, शैलजा एवं माधुरी सिंह (2014) य** परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की सृजनात्मक शिक्षण के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन, *प्रौढ़ शिक्षा,* अंक 4, अक्टू0 दिस0 2014, पेज नं0 5-9.
- **यदुलाल कुसुम (2001) य** *सृजनात्मकता: व्यक्तित्व विकास एवं संवर्द्धन, प्राइमरी शिक्षक (सृजनात्मक सम्पोषण विशेषांक),* नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग एन0सी0ई0आर0टी0,अक्टूबर 2001, अंक 4.
- **शर्मा, संतोष एवं भारती कौशिक (2014) य** *शिक्षण और अधिगम की सृजनात्मक पद्धतियां,* नई दिल्ली : प्रकाशन विभाग एन0सी0ई0आर0टी0, पेज नं0 7-8.
- **सिंह, अरूण कुमार (2008) य** *मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियां,* पटना : भारती भवन पब्लिकेशन पेज नं0 525
- **सिंह, भीमशंकर एवं रश्मी शर्मा (2016) य** *महाविद्यालय में शिक्षक प्रशिक्षण विभाग के शिक्षक एवं अन्य विभाग के शिक्षकों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन,* पी-एच0डी0 शोध प्रबन्ध पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर, **पेज नं0** 221-229
- **सुलेमान, मुहम्मद (2006) य** *मनोविज्ञान समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियां,* पटना : जनरल बुक एजेन्सी पेज नं0 119
- **सिंह, इन्दु एवं अजय सक्सेना (2017) य** शिक्षक प्रशिक्षण की सृजनात्मकता, दुश्चिन्ता, अभिवृत्ति का व्यक्तित्व पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन, *International Journal of Education and Science Research Review,* Vol. 2, Issue 1, Pp. 77-84

विज्ञान समूह के बी.एड. प्रशिक्षु शिक्षक की शिक्षण क्षमता पर इंटर्नशिप कार्यक्रम के प्रभाव का अध्ययन

डॉ० योगिता जिवाने, डॉ० रिया तिवारी

सहायक प्राध्यापक दिशा कॉलेज रायपुर पी.डी.एफ., रविशंकर शुक्ल विवि रायपुर

प्रस्तावना

शिक्षक भावी जीवन के निर्माता माने जाते हैं शिक्षक की शिक्षण कुशलता विद्यार्थी के जीवन में ज्ञान का सागर भर सकती है। यही महत्ववपूर्ण कारण है कि शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण कार्य आयोजित किये जाते हैं जिससे वे शिक्षण की बारीकियों को समझ सकें तथा शिक्षक सक्षमता को बढ़ा सकें शिक्षक सक्षमता क्या हैं? वे कौशल और ज्ञान, जो एक शिक्षक को सफल होने में सक्षम बनाते हैं। छात्र को अधिक से अधिक सिखाने के लिए शिक्षकों को विशेष रूप से जटिल वातावरण में दक्षताओं की एक विस्तृत श्रृंखला में विशेषज्ञता होनी चाहिए जैक्सन, 1990 में बताया कि शिक्षक को जहां प्रत्येक दिन सैकड़ों महत्वपूर्ण निर्णय लेने होते हैं ऐसे में उनकी कार्यकुशलता और शिक्षण की क्षमता अधिक होनी आवश्यक है। कुछ नौकरियां, व्यावसायिक निर्णय की दक्षता और संसाधनों के कुशल उपयोग की मांग करती हैं जैसा कि शिक्षण व्यवसाय भी करता है। शिक्षण सक्षमता महत्वपूर्ण क्यों है? क्योंकि एक प्रभावी शिक्षक की परिवर्तनकारी शक्ति हममें से कई लोगों ने अनुभव की है। सहज रूप से, शिक्षण और छात्र शैक्षणिक उपलब्धि के बीच की कड़ी को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है, इस क्षेत्र में हुए कई अनुसंधान इस आम धारणा की पुष्टि करता है और एक स्कूल के नियंत्रण में सभी कारकों का खुलासा करता है, शिक्षक की शिक्षण क्षमता का छात्र की सफलता (बाबू एंड मेंड्रो, 2003य सैंडर्स एंड रिवर्स, 1996) पर स्पष्ट प्रभाव देखा गया है।

शिक्षा पद्धतियों पर किए गए शोध की एक समीक्षा से पता चलता है कि चार वर्गों में दक्षताओं में सबसे बड़ा परिणाम होता है।

इसके अलावा, अनुसंधान यह भी इंगित करता है कि इन दक्षताओं का उपयोग प्रभावी शिक्षक विकास के निर्माण के लिए उपलब्ध कई विशिष्ट कौशल और ज्ञान को व्यवस्थित करने के लिए किया जा सकता है। अनुसंधान हमें बताता है कि बेहतर शिक्षण एक गतिशील सेटिंग में होता है जिसमें शिक्षक उन स्थितियों की तुलना में स्पष्ट सक्रिय निर्देश प्रदान करते हैं जिनमें शिक्षक सक्रिय रूप से निर्देश नहीं देते हैं और इसके बजाय छात्रों पर सामग्री की गति और शिक्षा की गति को नियंत्रित करते हैं (हैटी, 2009)।

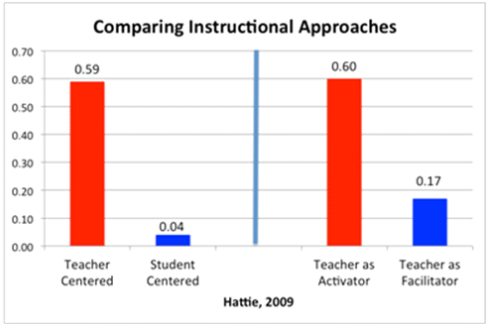

जैसा कि L. Duoblien (2009) द्वारा देखा गया है, नई परिस्थितियों में शैक्षिक प्रक्रिया को बदलने के बारे में चर्चा करने वाले शैक्षिक सिद्धांतकारों ने छात्रों के मीडिया साक्षरता को मजबूत करने के लिए सबसे पहले प्रस्ताव दिया और साथ ही साथ इंटरकल्चरल एजुकेशन जो युवा पीढ़ी को विचारधाराओं और अचेतन के प्रभाव का विरोध करना सिखाती है। गलत बयानी, युवा प्रावधानों को बदलना। इस प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। बी.एड. के पाठडक्रम में इंटर्नशिप को जोड़ा जाना इस दिशा में एक सार्थक पहल है द्य प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता ने विज्ञानं विषय के विद्यार्थियों में इंटर्नशिप के प्रभाव का उनकी शिक्षण सक्षमता पर अध्ययन किया है।

उद्देश्य: प्रस्तुत शोधकार्य में एक प्रमुख उद्देश्य बनाया गया जो कि निम्नलिखित है।

1. विज्ञान समूह के बी.एड. प्रशिक्षु शिक्षक की शिक्षण क्षमता पर इंटर्नशिप कार्यक्रम का प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पना–प्रस्तुत शोध में उदेश्य की पूर्ति हेतु परिकल्पना का निर्माण किया गया।

विज्ञान समूह के बी.एड.प्रशिक्षु शिक्षक की शिक्षण क्षमता के पूर्व एवं पश्च परीक्षण के अंको में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

शोध विधि – प्रस्तुत शोध में प्रायोगिक शोध विधि का प्रयोग किया गया द्य जब विद्यार्थी इंटर्नशिप कार्यक्रम शुरु करने वाले थे तब उनसे शिक्षण सक्षमता का परीक्षण भरवाया गया तथा इंटर्नशिप कार्यक्रम पूर्ण होने के पश्चात् पुन: वही परीक्षण भरवाया गया तथा पूर्व एवं पश्च परीक्षण के अंको के मध्य अंतर की गणना ट टेस्ट द्वारा की गई।

सांख्यिकी तकनीक –प्रस्तुत शोध अध्यनन में सांख्यिकी तकनीक का उपयोग विश्लेषण और व्याख्या के आधार पर किया गया द्य जिसमे माध्य की गणना के लिए लघु विधि का पालन किया गया साथ ही मानक विचलन और टी परीक्षण निकाला गया।

सांख्यिकी तकनीक एवं विश्लेषण–प्रस्तुत शोध अध्ययन में पूर्व व पश्च परीक्षण के आधार पर शिक्षण क्षमता के आंकड़ों को प्रस्तुत किया जिसमे इंटर्नशिप से पूर्व परीक्षण और पश्च परीक्षण में बी.एड प्रशिक्षु शिक्षक के सभी एकत्रित आंकड़ों का उचित उपयोग करके विश्लेषण किया गया।

टेबल 1: विज्ञान समूह के बी.एड.प्रशिक्षु शिक्षक पूर्व व पश्च परीक्षण के शिक्षण योग्यता में इंटर्नशिप कार्यक्रम का विश्लेषण

समूह	पूर्व/पश्च	N	M	SD	t	D.F	SI	HT
प्रशिक्षु शिक्षक	पूर्व परीक्षण	100	20.12	6.10	4.61	198	.01	R
	पश्च परीक्षण	100	24.32	6.79				

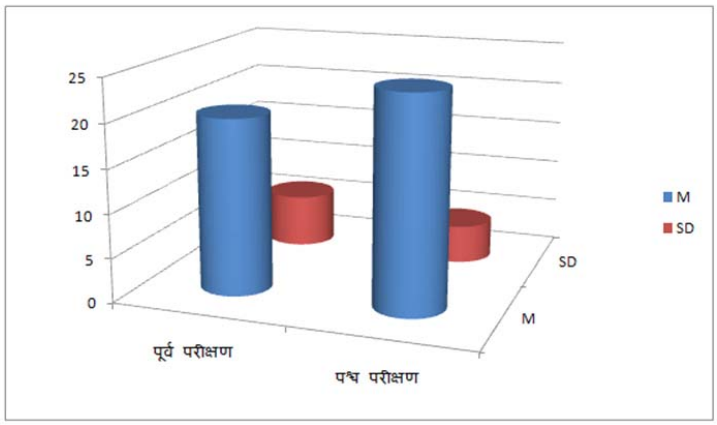

टेबल 1 के आधार पर

पूर्व परीक्षण में प्रशिक्षु शिक्षक एन =100 एवं औसत 20.12 तथा मानक विचलन 6.10 पाया गया द्य वाही पश्च परीक्षण में प्रशिक्षु शिक्षा एन = 100 एवं औसत 24.32 तथा मानक विचलन 6.79 पाया गया द्य

अत: पश्च परीक्षण के प्रशिक्षु शिक्षक का औसत 24.32 पूर्व परीक्षण के प्रशिक्षु शिक्षक से अधिक पाया गया द्य अर्थात प्राप्त टी =4.61 व डफ = 198 है जिसमे टी का मान 2.59 पर .01 स्तर पर सार्थक पाया गया अर्थात पूर्व व पश्च परीक्षण के बीच औसत का अंतर 4.20 पश्च परीक्षण के पक्ष में पाया गया।

इस प्रकार शून्य परिकल्पना निरस्त हुई।

व्याख्या – पूर्व परीक्षण व पश्च परीक्षण के औसत में काफी अंतर के आधार पर बी.एड. इंटर्नशिप के पश्चात् प्रशिक्षु शिक्षक की शिक्षण योग्यता में काफी सुधार पाया गया तथा पूर्व से उनकी शिक्षण क्षमता में विकास संभव हो सका।

निष्कर्ष : विज्ञान समूह के बी.एड प्रशिक्षु शिक्षक के पूर्व परीक्षण व पश्च परीक्षण में सार्थक अंतर पाया गया द्य इस आधार पर प्रस्तुत शून्य परिकल्पना निरस्त हुई। अर्थात पश्च परीक्षण के प्रशिक्षु के शिक्षक में इंटर्नशिप के पश्चात् इस समूह में काफी सुधार दिखाई दिया। जो एक बी.एड ट्रेनिंग कोर्से के बाद दिखाई देता है। इस प्रकार का रवैया अच्छा और सुनिश्चित करने के लिए यह बहुत उपयोगी, शिक्षा के स्तर में सुधर के लिए पाठङक्रम सुनिश्चित किया जाये।

विचार विमर्श– बी. एड. पाठङक्रम में लागु किया गया इंटर्नशिप कार्यक्रम अत्यंत ही प्रभावी है, विद्यार्थी जब चार माह की इंटर्नशिप कर लेते हैं तो उनके व्यक्तित्व पर स्पष्ट प्रभाव देखा गया जो उनके भावी शिक्षकीय जीवन के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगा

Reference

Akbar, R.A. (2002). *A study of Practice Teaching of Prospective Secondary School Teachers and Development of Practice Teaching Model, Arid Agricultural University Rawalpindi.* (Doctorial Dissertation, 2002).

Azeem, M. (2011). Problems of Prospective Teachers during Teaching Practice. *Academic Research International*, Volume 1(2).

Bukaliya, R. (2012). The Potential Benefits and Challenges of Internship Programmes in ODL Institutions: A Case for the Zimbabwe Open University. *International Journal on New Trends in Education and their Implication, Volume 3(1).*

Dana, L. (1998). Teachers Intern's Changing Perceptions during Internship. *The Mid-South Educational Research Association*, Orleans, LA.

Good, C. V and Scates. (1941). *Methodology of educational research*. New York: Appleton century crofts.

Gunarathne et al. (2010). Problems of Internship: Opinions of the Management Undergraduates of the University of Sri Jayewardenepura. Human Resources Management Journal, Volume 1(1).

मृदुला सिन्हा के निबंध साहित्य में सामाजिक व पारिवारिक संबंध

अंजुलता सारस्वत

शोधार्थी, कला कन्या महाविद्यालय, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

समाज की स्थिति परिवर्तनशील होती है। यहां रोज नए परिवर्तन देखे जा सकते है। इन परिवर्तनों में से पारिवारिक संबंधों से आया बदलाव भी है। बदलते दौर में कई चीजें, बातें, आदतें व जीवनशैली बनती है और घटती भी हैं। साथ ही इन संबंधों में छीजन यानी अपनेपन में घटाव भी आ जाता है। इन हालातों में सहज ही मन में यह सवाल उठता है कि यह परिवर्तन आने वाली पीढी के लिए लाभदायक सिद्ध होगा? निश्चित तौर पर ऐसा तो नही हो सकता है। इसे ठीक करने की जिम्मेदारी आज हमारे ऊपर है ताकि भविष्य में भारतीय संस्कृति की मशाल देश-दुनिया में उजाला करती रहे। मृदुला सिन्हा ऐसी ही रचनाकार है जिनके निबंधों में भारतीय संस्कृति को बरकरार रखते हुए कुछ बदलाव जो कि स्वस्थ हो, वे सामने प्रस्तुत करती है।

बिटिया है विशेष, यायावरी आंखों से, उस आकाश का आँगन, कखग इत्यादि कई निबंधों में संबंधों की चर्चा की है। इस स्वस्थ चर्चा में बदलाव को स्वीकारते हुए पुरातन चोले को उतार कर लडका-लडकी में भेद, स्त्री की भूमिका, दादा-दादी की महत्ता, पुत्री का पिता के प्रति प्रेम व दायित्व, ससुराल में बहू की भूमिका के विषय में लिखती है। आँगन की महत्ता, रीतिरिवाजों पर काफी स्वस्थ चर्चा हुई है।

हिन्दी साहित्य में कई निबंधकार है जिन्होंने इन संबंधों की गहराई से जाँच पड़ताल की है पर कुछ रचना सिर्फ टकराव, चुभन की लपटो में भस्म हो जाती है और कुछ रचनाएं आत्मविश्वास,सहयोग की भावना, संस्कृति पर बल, रिश्ते में मजबूती बढ़ाता है। यही गूंज मृदुला सिन्हा के लेखन में मिलता है।

पारिवारिक व सामाजिक संबंध

मृदुला सिन्हा संयुक्त परिवार को सर्वोच्च स्थान पर रखती है। इनके जितने भी निबंध है उनमें अगर कुछ कॉमन चीज है तो वो परिवार का संयुक्त होना, घर में दादी-नानी का होना। वह पारिवारिक संबंधों को मजबूत रखने में नर व नारी के बीच स्वस्थ सोच को बढ़ाने में विश्वास रखती है। वे राजनीतिक पद पर सुशोभित होकर कई नये नवाचार लाऐ है। उन्होंने वृद्धाश्रम के साथ-साथ पालनाघर बनाने की मुहिम चलाई।

'बिटिया है विशेष' पुस्तक में 'पिता की संबल है पुत्री' में लेखिका की बेटी मिली की उपलब्धि पर गर्वाते हुए उनके पिता हर्षोल्लास से भर उठते है। वे सभी लोगों को बार-बार मिली की उपलब्धि का बखान करते अघाते नहीं है। ''पहले सारी अपेक्षाएं बेटों से होती थी। बेटे ही बुढ़ापे की लाठी समझे जाते थे। सहायक भी और रक्षक भी। बेटियाँ तो पराए घर जाने वाली होती थी। उनका लालन पालन भी ऐसा होता था। साथ ही उनसे बदले में कुछ पाने की माता-पिता की अपेक्षा नहीं रहती थी। अब स्थितियां बदली है। बेटियाँ भी माँ-बाप का ख्याल रखती है और माँ-बाप बेटियों को भी अपने बुढ़ापे की लाठी मानने को तैयार हो रहे है। समाज में इतने से बदलाव से बहुत कुछ बदल जाएगा।"[1]

'संयुक्त परिवार का सुख' निबंध में लेखिका दो लड़कियों का जिक्र करती है शिवानी और शालिनी का। शिवानी भरे पूरे परिवार से थी। उसका विवाह भी भरे-पूरे परिवार में हुआ था। उसने वहां जाकर अपनापन व समरसता से सबको अपना बनाकर सुख से रहती थी। वहीं शालिनी एकल परिवार में गई। वहां वह सुखी थी पर अपना सुख किसे प्रदर्शित करें। भिन्न परिवेश में शिवानी और शालिनी की अपनी-अपनी सुविधाएं व समस्याएँ है। "संग-साथ रहने का अपना सुख तो है ही। बिन पढ़े बिन शोध किए पारिवारिक सामाजिक जीवन की जानकारियाँ मिल जाती है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी में जीवनानुभव सहजगति से हस्तांतरित होते रहे है। पर बदले हुए परिवेश में एकल परिवार व्यवस्था ही विस्तार ले रही है। संयुक्त परिवार व्यवस्था में आसानी से लौटा नहीं जा सकता पर जितना संभव हो निभाना चाहिए। लड़कियों में यह खूबी है कि सब स्थितियों को संभाल लेती है।"[2]

'संवेदना : हृदय का भूषण' पत्र में लेखिका अपनी बेटी को पत्र लिखती है। उसमें मिली के व्यवहार का वर्णन है। मिली मिलनसार, संवेदनशील लड़की थी। उनके घर में कार्य करने वाली रेखा को जब टीबी हो गई थी और लेखिका उसे बहाल करने से घबरा रही थी तब मिली कहती है। मुझे भी टीबी होती तो आप मुझे हॉस्पीटल से घर नहीं लाती। यह बात सुनकर अगले ही दिन काम करने वाली (रेखा) को घर ले आ गई। मनुष्य इन्हीं छोटी-छोटी बातों से एक दूसरे से जुड़ता चला जाता है। ये व्यवहार स्वयं का जीवन भी आनंदित व सुखमय बना देते है।

"यायावरी आंखों से' निबंध संग्रह में 'ऋण कृत्वा घृत पीवेत' निबंध में इसी सूक्ति पर लिखा 'वही घी, यही भात', में पहले व अब के जीवनशैली में आए परिवर्तन को बताया है। एक व्यक्ति थे रामभरोसे जी उन्होंने जीते जी कभी कुछ खर्च नहीं किया और न ही उधार लिया। पर बाद की पीढ़ी ने सब उधार लेकर अपनी जीवनशैली को पाश्चात्य रंग में रंग दिया। ढेर सारे क्रेडिट कार्ड है उनसे चीज़े खरीदी जाती है जिनका कोई खास कार्य नहीं है पर फिर भी खरीदा जा रहा है।

'वृद्धों का स्थान घर में ही' नामक निबंध में वृद्धाश्रमों की आवश्यकता या जीवन मूल्यों को भूलकर बड़ो की सेवा न करना इसका प्रतिपादन किया है। दरअसल वृद्धाश्रम, पालनाघर बना तो दिए है पर ये मनुष्य की प्राकृतिक प्रवृति से मेल नहीं खाते है इसलिए अब समय आ गया है कि हम घर से बाहर वृद्धाश्रम के औचित्य पर विचार विमर्श अवश्य करें। सरकार और समाज की ओर से अयोध्या, हरिद्धार, बनारस, नासिक जैसे स्थानों पर अच्छी धर्मशालाऐं बनाये ताकि उनके मन में आत्मउन्नति के भाव रहेंगे और वे बच्चों द्वारा उपेक्षित होने के हीनभाव से त्रस्त नहीं रहेंगें। वृद्धाश्रम या पालनाघर इसलिए बनते है क्योंकि समय व स्थान की कमी से एकल परिवार बनते जा रहे। शहरों में दो कमरों के ही मकान है तो माता-पिता कहाँ रहे। इनके कई हल हो सकते है जैसे बच्चों को वैज्ञानिक बनाते हुए बच्चों को मनुष्य बनाने की भी शिक्षा दी जाए। वे अपने माता-पिता की जिम्मेदारी कैसे उठाएँ? उनके अंदर भाव भरने की आवश्यकता है। तमाम औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा, पाठयक्रम में बुजुर्गो की सेवा-शुश्रुषा का पाठ आवश्यक है।

'उस आँगन का आकाश' निबंध संग्रह में बहरूपिया है आँगन का आनन, गांव की बेटी, बुआ-भतीजी एक वंश, रिश्तों के रंग रस्मों के संग, बंधन जो चुभता नहीं इत्यादि कई निबंध है जो पारिवारिक व सामाजिक संबंध दर्शाता है। 'बहरूपिया है आँगन का आनन' में आँगन की विशेषता बताई है। गाँवों में आज भी नए-पुराने घर में आँगन बना रहता है परंतु शहरों में समाप्त से हो रहे है। बिहार में एक गाली है 'तुम्हारा आँगन लिपा रहे' इसका अभिप्राय बच्चे न होना से है। सच बात है कि पारिवारिक सुख में आँगन, आँगन में बिछाने वाल चटाई, उस चटाई पर कई लोग और धमाचौकड़ी मचाता मुन्ना/ मुन्नी चाहिए ही। यह परिवार की प्रथम चाहत मानी जाती है।

पारिवारिक, सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन को अक्षुण्ण रखने वाला आंगन का ही अस्तित्व खोता जा रहा है। तभी तो घर-परिवार और समाज अब बदलने लग गया है। नाते-रिश्ते और संबंधों की तासीर बदलती जा रही है। बड़े-बड़े शहरों में स्थान की कमी से अपने लिए बने कमरों में दादा-दादी के लिए कमरे बनते ही नहीं है। जब कमरे नहीं तो आंगन भी नदारद फिर इनकी खाट कहाँ डाली जाए। खाट नहीं डले तो संस्कार भी कैसे आए। 'दादा-दादी' निबंध में इनकी बहुत ही आवश्यकता बताई है। जिन घरों में ये लोग रहते है वहाँ के बच्चे अधिक व्यवहारिक और परिपक्व होते है ं जिनके घर में दादा-दादी नहीं रहते वहाँ के बच्चों की स्थिति भिन्न होती है। वर्तमान में बहुत सारी पारिवारिक समस्याओं का कारण घरों में दादा-दादी का न होना है। बच्चों की जरूरत दादा-दादी होते है। इनकी संगति से बच्चे सुखी व संस्कारी बनते है। समाज में वृद्धाश्रम की आवश्यकता नहीं पड़ेगी और बच्चों के लिए पालनाघरों की। दादा-दादी के पास रहने से बच्चों में दया, प्रेम, स्नेह, सहनशीलता का बीजारोपण होता है। दादा-दादी के पास बच्चों को धैर्य और प्यार से समझाने का समय होता है इसलिए दोनों का साथ होना दोनों के लिए आवश्यक हो जाता है।

"संग चलें जब तीन पीढ़ियाँ, चढ़े विकास की सभी सीढ़ियाँ।"[3]

'पैकेट में कहां मिले झुग्गा' निबंध में लेखिका ने एक वाक्या या सूत्र बताया है जो ग्राहक व दुकानदार के बीच के व्यवहार को दर्शाता है। 'लबा दुआ' इस व्यवहार से ग्राहक और दुकानदार का चरित्र समझ में आता था। समाज में इन छोटे-छोटे व्यापार-व्यवहार भी रिश्ते-नातों की तरह ही प्रचलित है। इसके ताने-बाने से समाज एक माला में गुंथित है। इसके बिखरने या लुप्त होने से रिश्तों में छेद हो जाते है। पर इतने भी छेद न हो कि कपड़ा रूपी समाज ही समाप्त हो जाए। हम समाज में रहकर भी आनंद नहीं ले पाये तो इन रिश्ते नातों रूपी व्यापार व्यवहार का क्या फायदा। आनंद देने वाली में छोटी बाते आज वर्तमान में नहीं दिखाई देती। ग्राहक व व्यापारी का रिश्ता बस आर्थिक व्यवस्था तक ही सीमित रह गया है।

'पगड़ी की लाज' निबंध में एक लोकोक्ति का वर्णन है। 'राग, रसोई, पगड़ी कभी-कभी बन जाए अर्थात राग-रागिनी, भोजन पकाना और पगड़ी बांधना सभी के बूते की बात नहीं है। और यह भी सत्य है कि इन तीनों कार्यो में सिद्धहस्त व्यक्ति के हाथों में भी ये तीनों काम कभी-कभी ही सफल होते है।"[4] पगड़ी प्रतीकात्मक है। वह सिर पर दिखे या नहीं पर हर पुरूष के सिर पर अदृश्य होती जा रही है। समाप्त प्राय: हो गई है। परिवार-खानदान गांव से लेकर राष्ट्र की पगड़ी की चिंता भी समाप्त हो रही है।

कहावत है माँ-बेटी दो वंश, बुआ-भतीजी एक वंश।"[5] 'बुआ-भतीजी एक वंश' निबंध में इसको चरितार्थ किया है। वर्तमान में सभी रिश्तों के लिए आंटी शब्द प्रचलित हो गया है। जबकि हमारे भारतीय संस्कृति में सभी रिश्तों के नाम है, पाश्चात्य संस्कृति में नहीं। पाश्चात्य संस्कृति के पारिवारिक व सामाजिक संबंधों की अलग ही रूपरेखा है। समाज में रिश्ते बनाते समय आज महिलाओं के वस्तुओं की तरह ऑल-इन-वन एक रिश्ता आंटी के रूप में निकाला है। बुआ, मौसी, चाची यहाँ तक कि नानी की उम्र की महिलाओं को भी आंटी कहकर ही पुकारा जाता है। आज हमारे शहरी जीवन की आपाधापी और भीड़ के अकेलेपन में बुआ भी खोती जा रही है। जिन घरों में एक ही बच्चा है, बुआ और चाचा कहाँ मिलेंगे? जीवन की खुशहाली लाने के लिए सुख-दुख: और कठिनाईयों का बहुत सामना करना पड़ता है पर परिवार में सब मिलकर बाँट लेते है और सह लेते है।

'धोबिनिया चिड़िया की सास' निबंध में हमारे सामाजिक जीवन में पशु-पक्षी प्रेम का बहुत ही सुंदर नजारा देखने को मिलता है। कई कहावते, मुहावरे, लोकगीत व लोककथाओं का आधार पशु पक्षी होते है। बच्चे बचपन से ही इन पक्षी व पशु जैसे कौआ, खरगोश, कुत्ता, बिल्ली, गाय भैंस के साथ रहते थे। आज शहरीकरण ने सब बदल कर रख दिया है जिससे इनसे संबंधित लोकगीतों से वे बच्चे लोरियों से वंचित हो गए। दादा-दादी, नाना-नानी भी साथ नहीं रहते जिसकी वजह से प्रकृति के इन अदभूत पात्रों से हमारा जीवन कटता जा रहा है। तभी सारी सुख सुविधाओं के होने के बावजूद जीवन नीरस होता जा रहा है। बच्चों के लिए नर्सरी राइम्स लिखी जा रही है जो कि जीवन से जुड़ी हुई नहीं है। बच्चे रट तो लेते है पर उनसे जीवन जीना नहीं सीखते।

'अल्पायु मेला की स्मृति दीर्घायु होती है' निबंध में मेले का वर्णन करती लेखिका कई प्रसंगों का वर्णन करती है। वहाँ की मस्ती से सराबोर होकर मदमस्त वर्णन करती है पर वर्तमान में मेले मॉल में तब्दील हो गए है। नए जमाने के शहरी मेले अर्थात् मॉल में उपभोक्ता सामग्री, ठंडी हवा, भोजन सब मिलता है पर मेले की स्वच्छंदता, स्वतंत्रता, मेल-मिलाप, आकर्षण नहीं मिलता। मेले से मॉल, गांव से शहर तेजी से पलायन हो रहा है। शहर में सब मिल जाता है

अब तो ऑनलाइन ही मिल जाता है बाहर जाना ही नहीं पड़ता जिससे मिट्टी की सोंधी खुशबू नहीं मिल पाती। समाज से पर्यावरण से कट जाते है। लेखिका का सुझाव है कि मेला तो मेला है। जिस रूप में बचा हो घूमना सुखकर ही लगता है। बड़ा महाकुंभ हो या गंगा के तट पर कार्तिक पूर्णिमा पर लगे मेले शहरी उबाऊ जीवन को जी रहे हम सबको इन मेलों में जाना चाहिए। स्वाद तो बदलेगा ही शहर और देहात जीवन का फासला भी घटेगा।

राष्ट्र प्रेम तभी संभव है जब यह परिवार में भी हो। आपस में प्रेम-भाईचारे से रहना समरसता की पहली सीढ़ी है। 'हमारे बुजुर्ग' निबंध में परिवार का संस्कार और व्यवस्था डंडे के जोर पर नहीं चलता। बदली हुई पारिवारिक और सामाजिक परिस्थिति में भी पारिवारिक जीवनमूल्यों की सीख सिखानी ही है जिसे उन्होंने स्वयं बनाया। उन्हें उखाड़कर दूसरे घर रूपी वृद्धाश्रम में रोपा नहीं जा सकता।

'नारी न कठपुतली न उड़नपरी' पुस्तक में 'दांपत्य की दरारों में फंसते बच्चे' में लेखिका ने दांपत्य जीवन में आई दरारों से उनके बच्चे समस्याग्रस्त बन जाते है जिससे सभी प्रभावित होते है। लेखिका का सुझाव है – "प्रेम में पगे दांपत्य और विवादों से घिरे दांपत्य के बच्चे के व्यक्तित्व विकास का तुलनात्मक अध्ययन कर उनके सामने वस्तुस्थिति प्रस्तुत करना परिवार, पाठशाला महाविद्यालयों से लेकर परिवार परामर्श केन्द्रों पर इस महत्वपूर्ण विषय पर ध्यान दिलाना आवश्यक है। वरना दांपत्य के बिखरने से अनेक समस्याऐं खड़ी होती ही है। बच्चे तो समस्याग्रस्त बच्चे बन ही जाते है।"[6]

'क्यों पीटता है पति-पत्नी को' निबंध में पति-पत्नी के बीच अंहभाव की वजह से पुरूषसतात्मक वृत्ति के कारण पुरूषों का हाथ उठ जाता है। लेखिका का मानना है कि "हार स्वीकारना पुरूष की प्रकृति में नहीं है वह भी पत्नी से हारना। वह अपनी हार मानने की जगह हाथ उठा लेता है। यह उसकी कमजोरी है। दरअसल जिस व्यक्ति में अधिक आत्मिक शक्ति होती है वह अपने क्रोध पर विजय प्राप्त करता है। शक्तिहीन व्यक्ति ही हाथ उठाता है। इसलिए आवश्यकता संस्कार की है। प्रशिक्षण की। सबसे बड़ी आवश्कता है व्यक्ति द्वारा अपनी भूल का अहसास करना।"[7]

'यह कैसा सहजीवन है' निबंध में स्त्री विमर्श पर चर्चा हुई है। लेखिका का पिछले दिनांक एक गोष्ठी में जाना हुआ। वहां स्त्री विमर्श पर विचार विमर्श हो रहा था। कुछ समय बाद लेखिका के घर के सामने वाले पार्क में एक विवाह कार्यक्रम के आयोजन में जाना था। बहू ने बताया कि ये दोनों कई वर्षो से साथ रहते थे। विवाह नहीं किया था। विदेश जाने की वजह से कानूनी विवाह करना पड़ा। दरअसल स्त्री पुरूष का साथ रहना एक प्राकृतिक आवश्यकता होती है। समाज में अपनी सुविधा के अनुसार विवाह संस्कार की व्यवस्था है। समय-समय पर इसके स्वरूप में संशोधन होता रहा है।

संदर्भ सूची

1. मृदुला सिन्हा, बिटिया है विशेष पेज 87
2. वही, पेज 44
3. मृदुला सिन्हा, उस आकाश का आँगन पेज 17
4. वही पेज 34
5. वही पेज 61
6. मृदुला सिन्हा नारी न कठपुतली न उडनपरी पेज 67
7. वही पेज 80

रीवा संभाग के भूमि उपयोग प्रतिरूप पर जनसंख्या वृद्धि का प्रभावः एक भौगोलिक अध्ययन

सितेश भारती

भूगोल विभाग, अवधेश प्रताप सिंह, विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र.)

प्रो० शिव कुमार दुबे

भूगोल विभाग, पं. शम्भूनाथ शुक्ल, विश्वविद्यालय, शहडोल (म.प्र.)

सारांश

भारत एक विकासशील देश है जो अपने क्षेत्र के विकास के लिए सतत अग्रसर है। जिसके लिए संसाधनों का विकास बड़ी तेजी से हो रहा है। भूमि, जल, मृदा एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन होता जा रहा है। आजादी के बाद से तीव्र जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप संसाधनों पर दवाब बढ़ता जा रहा है। अध्ययन क्षेत्र रीवा संभाग एक कृषि प्रधान क्षेत्र है, जो भारत में म0प्र0 राज्य के पूर्व में स्थित है। जो क्रमशः चार जिलों सतना, रीवा, सीधी, सिंगरौली में बॅटा है। रीवा संभाग का कुल क्षेत्रफल 24103.5 वर्ग किमी. है। जिसमें 6899347 जनसंख्या निवासरत् रीवा संभाग में तीव्र जनसंख्या वृद्धि से भूमि उपयोग एवं पर्यावरणीय संसाधनों पर प्रभाव दिखाई दे रहा है। पहले यहां कि अधिकांश भूमि वन, पड़ती एवं चारागाह के रूप में भी थी, लेकिन तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण भूमि का उपयोग, सड़को, रेलमार्ग, उद्योग एवं अधिवासों का निर्माण होने से वन भूमि एवं कृषि भूमि का विनाश कर दिया गया। जनसंख्या वृद्धि विकासशील देशो की एक गंभीर समस्या है जिसको रोका नही जा सकता है लेकिन जनसंख्या वृद्धि एवं भूमि उपयोग का उचित ठंग से नियोजन करके बढ़ती हुई जनसंख्या एवं पर्यावरणीय समस्याएँ- खाद्य संकट, पर्यावरण असन्तुलन, घटता जीवनस्तर, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, ग्लोवल वार्मिंग को कम किया जा सकता है जिससे आर्थिक विकास को समुचित दिशा प्रदान की जा सके।

मूल शब्दः जनसंख्या वृद्वि, जनसंख्या घनत्व, कृषि भूमि उपयोग, पर्यावरण।

भूमिका

किसी भी देश की उत्पत्ति के संसाधनो में जनसंख्या का महत्व अधिक होता है। प्राकतिक संसाधनो, भूमि उपयोग, औद्योगिक एवं व्यापारिक उन्नति वहां पाई जाने जनसंख्या की कार्यक्षमता पर निर्भर करती है। शरत एक विकासशील देश है जो अपने क्षेत्र के विकास हेतु सतत् अग्रसर है, जिसके फलस्वरूप संसाधनो का विकास बडी तेजी से हो रहा है। आजादी के बाद से तीव्र जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप संसाधनों पर दवाब बढ़ता जा रहा है। भूमि, जल, मृदा, खनिज एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनो का विदोहन होता जा रहा है, जिसका मुख्य कारण तीव्र जनसंख्या वृद्वि है। जनसंख्या वृद्वि किसी क्षेत्र की समस्या नही है अपितु पूरे विश्व की समस्या है। लेकिन जनसंख्या का होना भी आवश्यक है, अन्यथा देश का समुचित विकास नही हो पायेगा। किसी भी राष्ट्र का विकास उस देश की जनसंख्या पर निर्भर करता है। यदि जनसंख्या उस देश के प्राकृतिक संसाधनो के अनुकूल है तो उस देश में आर्थिक विकास होता है, यदि जनसंख्या वहां के प्राकृतिक संसाधनो की तुलना में अधिक है, तो उस क्षेत्र का विकास धीमा होता है। जनाधिक्य उस देश के प्राकृतिक संसाधनो पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। जनसंख्या वृद्वि अधिक होने से नगरीकरण, औद्योगीकरण एव भूमि उपयोग में परिवर्तन की गति भी तीव्र होती है जिससे उस क्षेत्र के संसाधनो वन, खनिज, मृदा का अविवेकपूर्ण विदोहन किया जाता है। इस कारण प्रदूषण पर्यावरण एवं पर्यावरण असंतुलन होता है। किसी भी राष्ट्र के विकास में भूमि एवं जनसंख्या का महत्वपूर्ण स्थान है, इनके अभाव में राष्ट्र का विकास नही हो सकता है। भारत जैसे विकासशील देशो में जहां जनसंख्या का प्रतिशत भूमि के क्षेत्रफल से ज्यादा है, वहां अनेक समस्याएं विद्यमान है। भारत का क्षेत्रफल विश्व का 20.42% है जिसमें विश्व की 17.4% जनसंख्या निवास करती है। शरत की कुल जनसंख्या लगभग 121.08 करोड है, जो विश्व में द्वितीय स्थान रखती है। अध्ययन क्षेत्र रीवा संभाग में मध्यप्रदेश की कुल भूमि का 7. 82% तथा शरत की कुल भूमि का 0.73% क्षेत्रफल है। जिसमे मध्यप्रदेश की कुल जनसंख्या का 9.50% तथा देश की 0.57% जनसंख्या निवासरत् है। रीवा संभाग क्षेत्रफल में सातवां तथा जनसंख्या में छटवां स्थान है। इस प्रकार यहां भी जनसंख्या एवं घनत्व में वृद्वि तीव्र होती जा रही है। विचारको का मानना है कि जनसंख्या भूमि के आधार पर अनुकूलतम् होना आवश्यक है, अन्यथा देश को अनेक समस्याओ जैसे खाद्य संकट, गरीबी, पर्यावरण प्रदूषण, वनो का विनाश, खनिजो का विदोहन, भूमि उपयोग में परिवर्तन पर्यावरणीय अवनयन, ग्लोवल वार्मिंग जैसी समस्याएं उत्पन्न होगी जो देश के विकास में बाधक सिद्ध होगें।

अध्ययन क्षेत्र

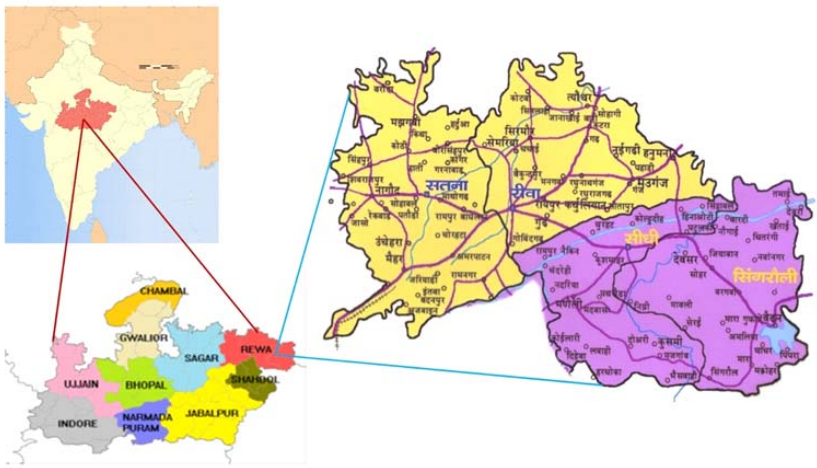

चित्र : 1.1 अध्ययन क्षेत्र की मानचित्र में स्थिति

विन्ध्यांचल की मेकल पर्वत श्रृंखला की गोद में बसा रीवा संभाग म0प्र0 के उत्तर पूर्वी सीमा का प्रवेश द्वार माना जाता है। रीवा संभाग के उत्तर में उत्तर प्रदेश, दक्षिण में जबलपुर का कटनी जिला एवं शहडोल संभाग का शहडोल एवं उमरिया जिला, पश्चिम में सागर संभाग, पूर्व में छ0ग0 की सीमाओ से घिरा है। रीवा संभाग का अक्षांशीय विस्तार 23°47' उत्तरी अक्षांश से 25°12' उत्तरी अक्षांश तक तथा देशान्तरीय विस्तार 80°20' पूर्वी देशान्तर से 82°48' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है चित्र 1.1 के अनुसार। रीवा संभाग का कुल क्षेत्र 2361892 वर्ग किमी0 है रीवा संभाग चार जिलो सतना, सीधी, सिंगरौली, रीवा, में विभक्त है, जिसमें 33 तहसीले एवं 25 विकासखण्ड है।

अध्ययन का उद्देश्य

- रीवा संभाग के कृषि क्षेत्र पर जनसंख्या दबाव का अध्ययन करना प्रमुख उद्देश्य है।
- रीवा संभाग के भूमि उपयोग को किस प्रकार नियोजित किया जाय जिससे बढती जनसंख्या समायोजित हो सके।
- अध्ययन क्षेत्र रीवा संभाग की जनसंख्या वृद्वि से उत्पन्न समस्याओ का समाधान कर भूमि एवं पर्यावरण पर पडने वाले प्रभाव को कम करना।
- बढती जनसंख्या से उत्पन्न समस्याएं खाद्य संकट, वन विनाश, प्राकृतिक संसाधनो का विदोहन आदि को हल करने का प्रयास करना।
- उन कारको का पता लगाना जो जनसंख्या वितरण की असमानता के लिए उत्तरदायी है। तथा जनसंख्या वृद्वि से पडने वाले आर्थिक सामाजिक, पारिस्थितिकीय विकास के प्रभाव का मूल्यांकन करना।

ऑकड़ो का स्त्रोत

इस शोध पत्र **"रीवा संभाग के भूमि उपयोग प्रतिरूप पर जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव एक भौगोलिक अध्ययन"** में प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोत सामाग्री के आधार पर अध्ययन किया गया है। प्राथमिक सामाग्री के रूप में साक्षात्कार और विद्वानों का मार्गदर्शन लिया गया है। द्वितीयक स्रोत सामाग्री के रूप में जिला सांख्यिकी पुस्तिका, कार्यालय वन विभाग सतना, पत्र-पत्रिकाओ, समाचार पत्रो, शोध पत्रो, प्रकाशित एवं अप्रकाशित शोध प्रबंधों का अध्ययन किया गया है।

जनसंख्या वितरण एवं 2001.2011 की दशताब्दी में जनसंख्या वृद्वि की प्रवृत्तियां

रीवा संभाग में शरत एवं मध्यप्रदेश की शंति जनसंख्या का वितरण असमान है। रीवा संभाग में 2001 में कुल जनसंख्या 5674562 थी जो 2011 में बढकर 6899077 हो गई। रीवा संभाग में जनसंख्या वृद्वि दर मध्यप्रदेश एवं राष्ट्रीय औसत से अधिक है जो 21.58 है। जनसंख्या घनत्व 2001 में 235 था जो बढकर 2011 में 286 हो गया। जो मध्यप्रदेश के जन घनत्व से अधिक तथा राष्ट्रीय जन घनत्व से कम है। रीवा संभाग के विकासखण्डो में जनसंख्या एव घनत्व का वितरण का वितरण असमान है।

जनसंख्या वृद्वि

जनसंख्या वृद्धि किसी क्षेत्र की जनसांख्यिकीय गतिशीलता का केन्द्र है। जनसंख्या वृद्धि किसी स्थान विशेष में एक निश्चित अवधि में निवास करने वाले लोगों की संख्या में परिवर्तन को कहते हैं चाहे वह परिवर्तन धनात्मक हो या ऋणात्मक।

तालिका क्र 1.1 रीवा संभाग में विकासखण्ड वार जनसंख्या का वितरण सन् (2001.2011)

क्रं.सं.	विकासखण्ड	कुलजनसंख्या 2001	कुलजनसंख्या 2011	जनसंख्या वृद्वि दर 2001.2011	जनसंख्या घनत्व 2001	जनसंख्या घनत्व 2011	जनसंख्या घनत्व में अंतर
1	मझगवां	195841	282822	44.41	123	178	55
2	.सोहावल	464824	504183	08.47	603	654	51
3	रामपुर बाघेलान	233232	275677	18.20	267	316	49
4	नागौद	200254	232391	16.05	218	253	35
5	उंचेहरा	160016	190961	19.17	178	213	35
6	अमरपाटन	188005	224762	19.55	288	345	57
7	रामनगर	133393	159414	19.51	222	265	43
8	मैहर	294539	358725	21.79	261	318	57
9	सीधी	334118	367366	09.95	289	318	29
10	रामपुर नैकिन	166478	245597	47.53	258	380	122
11	मझौली	128893	164316	27.48	178	227	49
12	कुसमी	65108	80820	24.13	45	56	11
13	सिंहावल्	216386	268934	24.28	290	361	71
14	देवसर	243959	324363	32.96	132	176	44
15	चितरंगी	258489	336713	30.26	134	175	41
16	बैढन	417721	517191	23.81	219	271	52
17	रीवा	396128	479663	21.09	668	809	141
18	रायपुर कर्चुलियान	206301	230669	11.81	279	312	33
19	सिरमौर	346635	353290	06.73	379	387	8
20	त्योंथर	185841	251853	35.52	233	316	83
21	जवा्	180514	215071	19.14	229	273	44
22	मउगंज	136484	189711	39.00	259	360	101
23	नईगढी	130147	173041	32.96	345	459	114
24	हनुमना	206392	254882	23.49	215	265	50
25	गंगेव	184864	216926	17.34	313	367	54
	रीवा संभाग	**5674562**	**6899077**	**21.58**	**235**	**286**	**51**

स्रोतः जिला सांख्यिकी पुस्तिका रीवा,सतना, सीधी, सिंगरौली 2.

उपर्युक्त सारणी के आधार पर जनसंख्या वृद्धि को पांच शगो में विभाजित किया जा सकता है यहां पर हम चित्र 1.2 में रीवा संभाग की जनसंख्या वृद्वि का प्रदर्शन कर रहे है।

1. अति उच्च जनसंख्या वृद्वि वाले क्षेत्रः रीवा संभाग के रामपुर नैकिन 47.53 प्रतिशत, एवं मझगवां में 44.41 प्रतिशत जनसंख्या वृद्वि दर अंकित की गई जो सभी विकासखण्डो में अति उच्च थी। यहां जनसंख्या वृद्वि का प्रतिशत राज्यीय एवं राष्ट्रीय औसत से भी अधिक रहा।

2. उच्च जनसंख्या वृद्वि वाले क्षेत्रः रीवा संभाग के चितरंगी 30.26 प्रतिशत, देवसर 32.96 प्रतिशत, नईगढी में 32.96, त्योंथर 35.52 प्रतिशत मऊगंज 39.00 प्रतिशत, जनसंख्या वृद्वि दर रही। इन सभी विकासखण्डो में जनसंख्या वृद्वि दर मध्यप्रदेश एवं राष्ट्रीय औसत से अधिक है।

3. मध्यम जनसंख्या वृद्धि वाले क्षेत्र: अध्ययन क्षेत्र के मैहर विकासखण्ड में 21.79 प्रतिशत, मझौली 27.48 प्रतिशत, कुसमी 24.13 प्रतिशत, सिंहावल 24.28 प्रतिशत, बैढन 23.81 प्रतिशत, रीवा 21.09 प्रतिशत, एवं हनुमना विकासखण्ड में 23.49 प्रतिशत, रही इन सभी विकासखण्डो में जनसंख्या वृद्धि दर का प्रतिशत 20 से 30 के मध्य रहा।

4. निम्न जनसंख्या वृद्धि वाले क्षेत्र: संभाग के रामपुर बाघेलान 18.20 प्रतिशत, नागौद 16.05 प्रतिशत, उचेहरा 19.17 प्रतिशत, अमरपाटन 19.55 प्रतिशत, रामनगर 19.51 प्रतिशत, रायपुर कर्चुलियान 17.81 प्रतिशत, जवॉ 19.14 प्रतिशत, एवं गंगेव 17.34 प्रतिशत, रही। यहां सभी विकासखण्डो में जनसंख्या वृद्धि दर का प्रतिशत 10 से 20 के मध्य रहा।

5. निम्नतम् जनसंख्या वृद्धि वाले क्षेत्र: संभाग के सिरमौर विकासखण्ड में जनसंख्या वृद्धि दर का प्रतिशत अति न्यून 6.73 प्रतिशत रहा। तत्पश्चात् सोहावल 8.47 प्रतिशत तथा सीधी 9.45 प्रतिशत रहा। यहां जनसंख्या वृद्धि दर का प्रतिशत 10 प्रतिशत से भी कम रहा।

अत: स्पष्ट है कि रीवा संभाग के 14 विकासखण्डो में जनसंख्या वृद्धि दर का प्रतिशत मध्यप्रदेश के 20.30 प्रतिशत एवं राष्ट्रीय 17.64 प्रतिशत से अधिक रहा।

जन घनत्व

प्रति वर्ग किमी. में निवास करने वाली जनसंख्या को जनघनत्व कहते है। किसी क्षेत्र के वातावरण पर उस क्षेत्र की जनसंख्या घनत्व का प्रभाव तो अवश्य ही पडता है क्षेत्र की जीवन गुणवत्ता को भी वहां का जनसंख्या घनत्व प्रभावित करता है। रीवा संभाग का जनघनत्व सन् 2001 में 235 था जो बढकर सन् 2011 में 286 हो गया, इस तरह रीवा संभाग के जनघनत्व में 51 व्यक्ति की वृद्वि दर्ज की गयी। रीवा संभाग का जनघनत्व मध्यप्रदेश के जनघनत्व से अधिक किन्तु राष्ट्रीय जनघनत्व से कम रहा। रीवा संभाग के रीवा विकासखण्ड में जनघनत्व 809 सर्वाधिक दर्ज है। यहां पर सन् 2001 में जनघनत्व 668 था जो 2011 में बढकर 809 हो गया। रीवा संभाग में सर्वाधिक वृद्वि 141 व्यक्ति यही रही। जबकि कुसमी विकासखण्ड न्यूनतम जनघनत्व 56 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी. दर्ज है जो सन् 2001 में 45 था, यहां 11 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी. की वृद्वि रही। अकेले रीवा संभाग का जनसंख्या घनत्व शरत के 13 राज्यो के जन घनत्व से अधिक है।

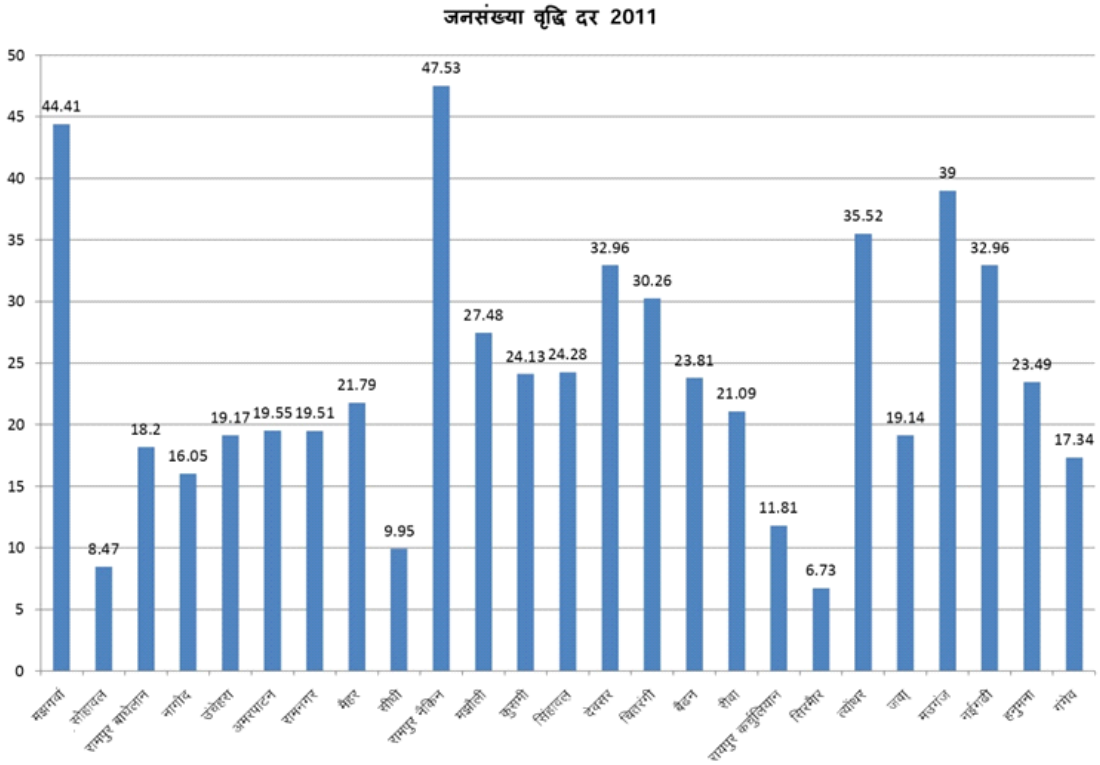

चित्र : 1.2 रीवा संभाग में जनसंख्या वृद्वि का वितरण

इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र को विकासखण्डवार जनसंख्या घनत्व के अन्तर्गत आकिंक जनसंख्या घनत्व को तीन श्रोणीयों में विभाजित करके अध्ययन किया गया है जो निम्नवत् है-

1. उच्च जनघनत्व वाले विकासखण्ड (600 से 900 व्यक्ति/कि0मी0^2 के मध्य) : इसके अन्तर्गत 600 से 900 प्रतिवर्ग किमी. जनघनत्व वाले विकासखण्ड सम्मिलित है। रीवा 809, सोहावल 654, विकासखण्ड है। यह विकासखण्ड नगरीय है तथा उद्योग धन्धो के कारण घनत्व सर्वाधिक है।

2. मध्यम जनघनत्व वाले विकासखण्ड (300 से 600 व्यक्ति/कि0मी0² के मध्य) : इसके अन्तर्गत 300 से 600 प्रतिवर्ग किमी. जनघनत्व वाले विकासखण्ड सम्मिलित है। संभाग के 12 विकासखण्ड मध्यम श्रेणी के अन्तर्गत आते है। रामपुर बाघेलान 316, अमरपाटन 345, मैहर 318, सीधी 318, रामपुर नैकिन 380, सिंहावल 361, रायपुर कर्चुलियान 312, सिरमौर 387, त्योंथर 316, मऊगंज 360, नईगढी 459, गंगेव 367, विकासखण्डो में जन घनत्व अंकित है। यहा पर नगरीय सुविधायें कम जिससे जन घनत्व मध्यम है।

3. निम्न जनघनत्व वाले विकासखण्ड (300 व्यक्ति/कि0मी0² से कम) : संभाग के 11 विकासखण्डो में निम्न जन घनत्व पाया जाता है। यहां पर कुसमी 56, चितरंगी 175, देवसर 178, अमरपाटन 213, नागौद 253, रामनगर 265, मझौली 227, बैढन 271, जवॉ 273, एवं हनुमना 265, जन घनत्व दर्ज है। यहा की अधिकांश भूमि ऊबड खाबड, पहाडी तथा जंगलो से घिरा है, जिससे यहां जनसंख्या घनत्व अत्यन्त कम पाया जाता है

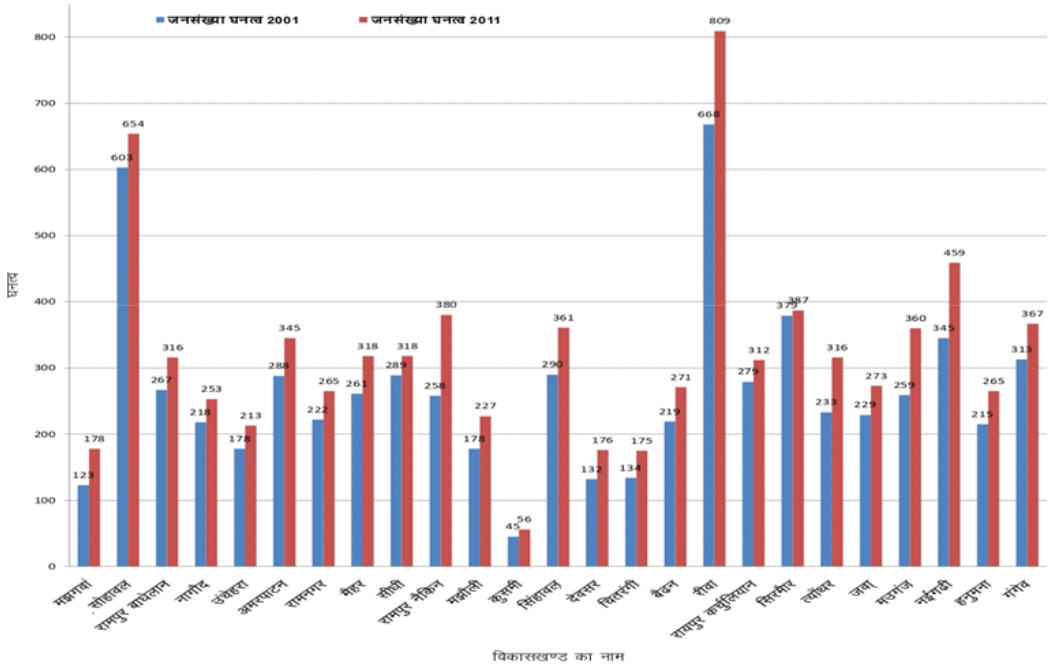

चित्र : 1.3 रीवा संभाग में जनसंख्या घनत्व का वितरण

अत: स्पष्ट है कि रीवा संभाग के 4 विकासखण्डो में जनसंख्या घनत्व राष्ट्रीय 384 से अधिक जबकि 19 विकासखण्डो में घनत्व मध्यप्रदेश (236) राज्य के जन घनत्व से अधिक है तथा 14 विकासखण्डो में जनसंख्या घनत्व रीवा संभाग (235) के जन घनत्व से अधिक है।

तलिका क्र 1.3: रीवा संभाग में विकासखण्ड वार भूमि एवं जनसंख्या का अन्तर्सम्बन्ध सन् (2011)

क्रं.सं.	विकासखण्ड	क्षेत्रफलहेक्टेयर में	(प्रतिशत)	कुलजनसंख्या 2011	(प्रतिशत)
1	मझगवां	158409	6.57	282822	4.10
2	.सोहावल	77192	3.20	504183	7.31
3	रामपुर बाघेलान	87394	3.63	275677	4.00
4	नागौद	91889	3.81	232391	3.37
5	उंचेहरा	89691	3.72	190961	2.77
6	अमरपाटन	65231	2.71	224762	3.26
7	रामनगर	60054	2.49	159414	2.31
8	मैहर	112572	4.67	358725	5.20
9	सीधी	115384	4.79	367366	5.32
10	रामपुर नैकिन	64574	2.68	245597	3.56
11	मझौली	72474	3.01	164316	2.38

12	कुसमी	145009	6.02	80820	1.17
13	सिंहावल्	74480	3.09	268934	3.90
14	देवसर	184559	7.66	324363	4.70
15	चितरंगी	192290	7.98	336713	4.88
16	बैढन	190424	7.90	517191	7.50
17	रीवा	59349	2.46	479663	6.95
18	रायपुर कर्चुलियान	73884	3.06	230669	3.34
19	सिरमौर	91316	3.79	353290	5.12
20	त्योंथर	79774	3.31	251853	3.65
21	जवा्	78702	3.26	215071	3.12
22	मउगंज	52726	2.19	189711	2.75
23	नईगढी	37787	1.57	173041	2.51
24	हनुमना	96075	3.98	254882	3.69
25	गगेंव	59132	2.45	216926	3.14
	रीवा संभाग	**2410371**	**100**	**6899077**	**100**

स्रोतः जिला सांख्यिकी पुस्तिका रीवा,सतना, सीधी, सिंगरौली 20

भूमि एवं जनसंख्या का अन्तर्सम्बन्ध

भूमि और जनसंख्या के सही सम्बन्धों को जानने के लिए क्षेत्रफल और जनसंख्या के अनुपात का ज्ञान आवश्यक होता है। इस प्रकार जनसंख्या का घनत्व भूमि पर जनसंख्या के दबाव को प्रदर्शित करता है। रीवा संभाग में भूमि एवं जनसंख्या के प्रतिशत में बडी असमानता है। यहां के अधिकांश विकासखण्डो में कुल भूमि के प्रतिशत से जनसंख्या का प्रतिशत ज्यादा है। संभाग के विकासखण्डो में भूमि का प्रतिशत सोहावल में 3.20 प्रतिशत, रामपुर बाघेलान 3.62 प्रतिशत, अमरपाटन 2.70 प्रतिशत, मैहर 4.67 प्रतिशत, सीधी 4.78 प्रतिशत, रामपुर नैकिन 2.67 प्रतिशत, सिंहावल 3.08 प्रतिशत, रीवा 2.46 प्रतिशत, रायपुर कर्चुलियान 3.06 प्रतिशत, सिरमौर 3.78 प्रतिशत, त्योंथर 3.30 प्रतिशत, मउगंज 2.18 प्रतिशत, नईगढी 1.56 प्रतिशत, तथा गंगेव में 2.45 प्रतिशत भूमि संभाग की कुल भूमि का रखते है। किन्तु इन सभी विकासखण्डो में जनसंख्या का प्रतिशत कुल भूमि के प्रतिशत से अधिक है। यहां पर तीव्र जनसंख्या वृद्वि होने के परिणामतः खाद्य उत्पादन में प्रतिस्पर्धा होने से यहां की भूमि में व्यापक फेरबदल हुआ है। यहां की वन भूमि, परती एवं चारागाह भूमि का उपयोग कृषि एवं अकृष्य भूमि अर्थात् सडको, रेलमार्गो, बाग बगीचो तथा उद्योगो के निर्माण में हुआ जिससे रीवा संभाग के भूमि उपयोग में व्यापक परिवर्तन हुआ है। इन विकासखण्डो में तीव्र नगरीकरण एवं औद्योगीकरण के कारण पर्यावरण प्रदूषण बढ रहा है।

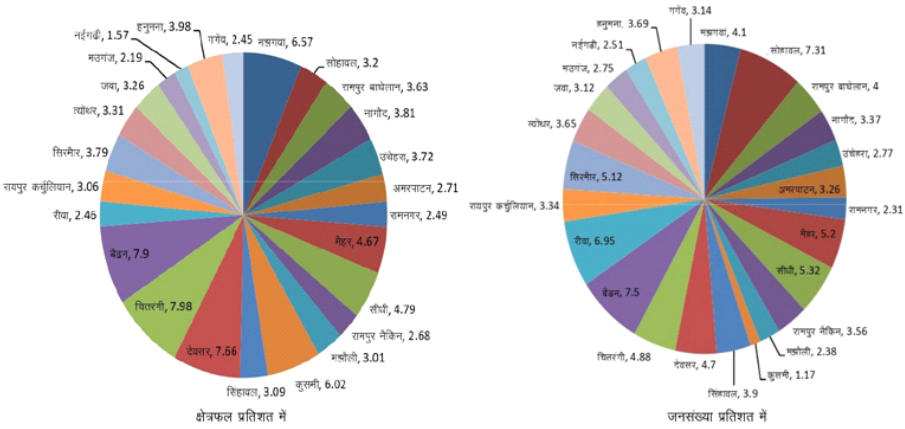

चित्र 1.4: रीवा संभाग में भूमि एवं जनसंख्या का अन्तर्सम्बन्ध

रीवा संभाग के मझगवां 6.57 प्रतिशत, नागौद 3.81 प्रतिशत, उचेहरा 3.72 प्रतिशत, रामनगर 2.49 प्रतिशत, मझौली 3.00 प्रतिशत, कुसमी 6.01 प्रतिशत, देवसर 7.65 प्रतिशत, चितरंगी 7.97 प्रतिशत, बैढन 7.90 प्रतिशत, त्योंथर 3.30 प्रतिशत, जवॉ 3.26 प्रतिशत, हनुमना 3.98 प्रतिशत भूमि, संभाग की कुल भूमि का उपलब्ध है। यहां पर जनसंख्या का प्रतिशत भूमि के प्रतिशत से कम है जिससे यहां पर वनो, चारागाहो एवं कृषित भूमि का विस्तार अधिक है।

इन विकासखण्डो में जनसंख्या दबाव कम होने से वन एवं कृषि भूमि का विनाश कम हुआ है जिससे पर्यावरण को कम नुकसान हुआ

जनसंख्या वृद्वि के कारण

- शरत की शॅति ही रीवा संभाग की जलवायु उष्ण है जो शीघ्र ही संतानोत्पत्ति हेतु परिपक्व कर देती है जिससे जनसंख्या बढ रही है।
- रीवा संभाग में अधिकांश विकासखण्ड पिछडे एवं आदिवासी क्षेत्र है जहां साक्षरता का प्रतिशत कम होना भी जनसंख्या वृद्वि का प्रमुख कारण है।
- रीवा संभाग के अधिकांश शगो मे स्वास्थ्य सुविधाओ एवं परिवार नियोजन कार्यक्रमो का अभाव है जिससे जनसंख्या मे वृद्वि हो रही है।
- रीवा संभाग में अविवेकपूर्ण मातृत्व एवं जन्मदर उच्च होना तथा चिकित्सा सुविधाओ में वृद्वि होने से मृत्युदर घटना जनसंख्या वृद्वि का प्रमुख कारण है।
- कम उम्र मे विवाह होना तथा अंधविश्वास की शवना के कारण जनसंख्या मे वृद्वि हो रही है।
- मातृ शिशु कल्याण कार्यक्रम को प्राथमिकता देना चाहिए तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र उपकेन्द्र को मजबूत एवं प्रभावशाली बनाया जाना चाहिए। क्षेत्रीय भाषा में रेडियों एवं दूरदर्शन से परिवार नियोजन कार्यक्रम प्रसारित किये जाने चाहिए।

समस्याएं

- रीवा संभाग में जनसंख्या वृद्वि होने से भूमि उपयोग एवं पर्यावरण में व्यापक फेरबदल दृष्टिगत हो रहा है।
- अध्ययन क्षेत्र में सिंचाई साधनो की कमी एवं किसानो में शिक्षा की कमी होने से भूमि का सही उपयोग नही हो पा रहा है।
- तीव्र जनसंख्या वृद्वि होने से कृषि में उत्पादन बढाने हेतु दबाव बढ रहा है जिससे भूमि में बडी मात्रा मे रासायनिक खाद, बीजो, एवं कीटनाशको का प्रयोग किया जा रहा है जिस कारण मृदा एवं जल प्रदूशण की समस्या बढ रही है।
- रीवा संभाग में जनसंख्या वृद्वि के कारण चारागाह, कृषि भूमि एव वन भूमि का विनाश कर उसका उपयोग अधिवासो, मकानो, उद्योगो, सडको, नहरो तथा अन्य कार्यो में किया जा रहा है। जिससे मानव और प्रकृति के मध्य सामंजस्य घटता जा रहा है।
- रीवा संभाग में जनसंख्या वृद्वि के कारण वन, खनिज, मृदा, एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनो का तीव्र एवं अविवेकपूर्ण विदोहन होने से पर्यावरण अवनयन की समस्या जन्म ले रही है।
- जनसंख्या वृद्वि ने पर्यावरण को इतना अधिक परिवर्तित कर दिया है कि इससे मानव तथा अन्य जीवो के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो गया जिससे हमारी भूल की कीमत आने वाली पीढिया चुकाती है

सुझाव

- देश एवं अध्ययन क्षेत्र में बढ़ती जनसंख्या से अनेक भागो में वन चारागाह एवं कृषि भूमि का विनाश हो रहा है। यदि इनका उचित ठंग से उपयोग किया जाए तो कृषि भूमि का विनाश कम होगा।
- जनसंख्या के दबाव को कम करने के लिए मत्स्य पालन, मुर्गीपालन, सुअर पालन एवं दुग्ध उद्योग को विकसित करना अति आवश्यक है। इससे एक ओर जहाँ बेरोजगारी दूर होगी वहीं दूसरी ओर लोगों का आर्थिक स्तर भी ऊपर उठेगा।
- बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए जैविक कृषि एवं वैज्ञानिक पद्वति से कृषि की जाए।
- परिवार नियोजन कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता बढ़ाकर जनसंख्या वृद्धि की दर एवं परिवार विखण्डन को कम किया जाए। जिससे भूमि के बटवारे तथा निरन्तर छोटे होते खेतों के आकारों की रोकथाम में सहायता मिलेगी।
- भूमि सुधार के लिए वैज्ञानिक तकनीकी का प्रयोग, सिंचाई की समुचित व्यवस्था तथा परती, अन्य परती व ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाकर कृषि क्षेत्र का विस्तार किया जाए तथा पौध रोपड़ कार्यक्रम को प्रोत्साहन देकर वन क्षेत्रों का विस्तार किया जाए।
- रीवा संभाग में कृषि भूमि में जैविक खाद का प्रयोग, वाणिज्यिक फसलो का उत्पादन किया जाय जिससे उत्पादन मे वृद्वि होगी तथा वनो की कटाई पर रोक लगाकर लोगो में पर्यावरण की सुरक्षा हेतु जागरूकता लाई जाय।
- जनसंख्या वृद्वि नियंत्रण हेतु साक्षरता मे वृद्वि करना अत्यन्त आवश्यक है, जिससे ज्यादा से ज्यादा लोग शिक्षित हो और परिवार नियोजन के कार्यक्रमो का प्रचार किया जाय ताकि जनसेख्या वृद्वि नियंत्रित की जा सके।

निष्कर्ष

आज सभी क्षेत्रो की प्रमुख समस्या जनसंख्या का बढना है। बढती जनसंख्या यहां की भी चिंता का विषय है, जिसका दबाव कृषि भूमि पर पडता है। जनसंख्या वृद्वि के इस अधिक दबाव के कारण विकास की उपलब्धियाँ निष्प्रभावी हो जाती हैं। यहां तीव्र जनसंख्या वृद्धिदर के कारण तेजी से नगरो का विकास, वन भूमि का विनाश, सडको, रेलमार्गो एवं उद्योगो का विकास होने से रीवा संभाग के कृषि भूमि उपयोग में व्यापक परिवर्तन दृष्टिगत हो रहा है। नगरीकरण, औद्योगीकरण एवं वन के लगातार विनाश होने से पर्यावरणीय समस्याये एवं प्रदूषण बढता जा रहा है। अत: सभी समस्याओ से यदि मुक्ति चाहिए तो साक्षरता एवं परिवार नियोजन कार्यक्रम का प्रसार किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। जिससे जनसंख्या वृद्वि नियंत्रित कर क्षेत्रीय विकास को आगे बढाया जा सके तथा भूमि में जनसंख्या के बढते दबाव को कम करके पर्यावरणीय समस्याओ से राहत पा सके।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ0 चाँदना, आर0 सी0. : जनसंख्या भूगोल, कल्याणी पब्लिकेसन, नई दिल्ली (2014), पृष्ठ क्र. 89, 579-581
2. डॉ0 बंसल, सुरेश चन्द्र. : भारत का वृहत भूगोल, मीनाक्षी प्रकाशन, (2015), पृष्ठ क्रं. 572-580
3. डॉ0 गौतम, अलका. : कृषि भूगोल शारदा पुस्तक भवन (2015), पृष्ठ क0 153,154
4. डॉ0 नेगी पी0 एस0, पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण भूगोल, रस्तोगी प्रकाशन मेरठ, पृष्ठ क्रं. 316,317
   पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी, दृष्टि प्रकाशन (2020), पृष्ठ क्रं. 40,296
5. डॉ0 श्रीवास्तव, लोकेश. : म0प्र0 का भूगोल, शारदा प्रकाशन, (2010), पृष्ठ क0 158,159
6. डॉ0 खुल्लर, डी आर. संपूर्ण भूगोल टाटा मैग्राहिल, (2009) : नई दिल्ली, पृष्ठ क0 64010.
7. भारती, सितेश. : रीवा संभाग के भूमि उपयोग एवं फसल उत्पादकता पर सिंचाई का प्रभाव : एक भौगोलिक विश्लेषण, शोध पत्र, (शोध ऋतु, जुलाई -2020) पृष्ठ क्रं. 7374
8. डॉ0 दुबे, शिव कुमार. एवं भारती, सितेश. : रीवा संभाग मे कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप का भौगोलिक विश्लेषण, शोध पत्र, (शोध सरिता 2020) पृष्ठ क्रं. 95
9. डॉ0 सिंह, नेत्रपाल. एवं कुमार, संजीव. जनपद फिरोजाबाद जनसंख्या घनत्व का भौगोलिक विश्लेषण, शोध पत्र, (राधे कमल मुखर्जी चितन परम्परा, जुलाई-दिसम्बर 2017) पृष्ठ क्रं. 76,77
10. डॉ0 दुबे, शिव कुमार. (1997), म0प्र0 के सुहागपुर बेसिन में खाद्य फसल उत्पादकता का भौगोलिक विश्लेषण : अप्रकाशित शोध प्रबंध अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा पृष्ठ क्रं. 84,85
11. डॉ0 शंकर, रमा. : भूमि उपयोग एवं जनसंख्या अन्तर्सम्बन्ध : जनपद इलाहाबाद (उ0प्र0) का एक भौगोलिक अध्ययन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, पृष्ठ क्रं. 60,61,95,96
12. डॉ0 स्नेहलता. विकासखण्ड परदहा जनपद मउ (उ0प्र0) जनसंख्या वृद्वि एवं विकास का पर्यावरण संतुलन पर प्रभाव : अप्रकाशित शोध प्रबंध पूर्वांचल विश्वविद्यालय, पृष्ठ क्रं. 54,55,103,104
13. डॉ0 जगदेव. (2011), : कृषि भूमि उपयोग और फसल उत्पादकता पर सिंचाई पर प्रभाव, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद, अप्रकाशित शोध प्रबंध, पृष्ठ क्रं. 75,76
14. डॉ0 अहिरवार, दीप चन्द. : सागर उच्च भूमि क्षेत्र में कृषि पोषण एवं स्वास्थ्य स्तर का भौगोलिक विश्लेषण, पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, पृष्ठ क्रं. 28,29,30

    जिला जनगणना पुस्तिका सतना, सीधी, रीवा, सिंगरौली 2011

    जनगणना पुस्तिका मध्यप्रदेश 2011

    जिला सांख्यिकी पुस्तिका 2011

    गजेटियर, रीवा संभाग

बिहार में मानवीय विकास की संभावनाएँ एवं चुनौतियाँ : एक दार्शनिक अवलोकन

डॉ० पुनम कुमारी

छात्रा, दर्शनशास्त्र विभाग, मगध विश्व विद्यालय, बोध गया

सारांश

प्रस्तावित अध्ययन बिहार में मानवीय विकास की संभावनाएँ एवं चुनौतियों का दार्शनिक अवलोकन पर लक्षित है। यद्यपि कि बिहार में मानवीय विकास की संभावनाएँ एवं चुनौतियाँ जटिल रूप में विद्यमान है, इनको प्रभावित करने वाले कारकों में, ऐतिहासिक परिवेश में क्रान्ति, विद्रोह, धर्म एवं ज्ञान, विकास एवं विषमताएँ, जाति संरचना एवं आर्थिक पिछड़ेपन द्रष्टव्य है। अर्थात् बिहार को विरोधाभासों का प्रदेश कहते है, तथापि यहाँ कि 42 प्रतिशत आबादी ऐसी है जिसे यह भी मालूम नहीं कि अगली सुबह उन्हें भोजन मिलेगा भी या नहीं? फिर भी यहाँ के लाग दृढ़ संकल्प के साथ जीते है। बिहार से आत्म हत्या की खबरें न के बराबर है। वे अभाव में भी जीना जानते हैं इस प्रदेश में जीते जी मरने वालें भी मौत के सामने आत्मसमर्पण नहीं करते। यह कहना अनुचित न होगा कि बिहार के विकास व चुनौतियों के दर्शन को समझना उनके बूते की बात नहीं, जिन्होंने बिहार को देखा ही नहीं हैं।

संकेत शब्दः मानवीय विकास विषमताएँ चुनौतियाँ, जातिय संरचना।

भूमिका

बिहार भारत की एक भू-आवेशित (Land-Locked) प्रान्त है, जिसके उत्तर में नेपाल, दक्षिण में झारखण्ड, पूर्व में पश्चिम बंगाल और पश्चिम में उत्तर प्रदेश स्थित है। यह प्रान्त गंगा के मध्यवर्ती मैदान में स्थित लगभग आयतकार है। यह क्षेत्रफल में भारत का 12 वाँ बड़ा राज्य है किन्तु जनसंख्या के दृष्टि से उत्तर प्रदेश एवं महाराष्ट्र के बाद तीसरा स्थान है, जनसंख्या घनत्व की दृष्टि से भारत में प्रथम स्थान है।

दृष्टिव्य है कि बिहार प्रदेश के विश्लेषण की प्रक्रिया में इसकी विरासत को समझना भी आवश्यक है। बिहार लम्बे समय तक भारतीय राष्ट्र के ऐतिहासिक अभ्युदय के केन्द्र में रहा है। अनेक क्रान्तियों और विद्रोहों का उद्‌गम यहाँ से हुआ। ये क्रान्ति और विद्रोह कल्यणकारी एवं मानवीय समाज की स्थापना के लिए हुए। यह गौतम बुद्ध और तीर्थकर महावीर का क्षेत्र रहा है।चक्रवर्ती राजाओं का भी क्षेत्र रहा हैं। चक्रवर्ती सम्राटों में चन्द्रगुप्त मौर्य (शुद्र) के दरबार में चाणक्य जैसे विद्वान हुआ करते थे। चन्द्रगुप्त के पौत्र सम्राट अशोक की कीर्तिगाथा भी कम नहीं है। राजसी जीवन के चरम पर पहूँच कर अशोक ने बौद्ध होकर 'धम्म' के प्रचार के लिए स्वयं को समर्पित कर दिया। इसी प्रदेश में कौटिल्य नाम के महान अर्थषास्त्री भी हुए ये ब्राहाण थे। चन्द्रगुप्त ने कौटिल्य के साथ मिलकर न केवल बिहार के विकास का निर्माण किया, बल्कि दुनिया के लिए मिशाल बने।

ध्यातव्य है कि अंग्रेजो से भारत की स्वंतंत्रता के दौर में महात्मा गाँधी ने बिहार को सत्याग्रह का प्रथम प्रयोग क्षेत्र बनाया था। सत्याग्रह एक आदर्श है, कर्मयोग का एक व्यावहारिक दर्शन है। उल्लेखनीय है कि स्वतंत्रता आंदोलन के नेतृत्व और भागीदारी में बिहार का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ब्रिटिष हुकुमत के खिलाफ बिहारियों का चम्पारण सत्याग्रह इतिहास का अहम् दस्तावेज है। जयप्रकाष नारायण का सम्पूर्ण क्रान्ति भी बिहार की अव्वल भागीदारी से अविस्मरणीय बन गया है। ध्यातव्य है कि यहाँ समाजवादी नेता डॉ0 राममनोहर लोहिया के राजनीति का भी प्रयोग क्षेत्र रहा है। बिहार की प्रतिभा महज निर्माण में ही प्रकट नहीं होती। बिहार की खासियत है कि यह सार्थक विद्रोह को विस्तार देता है। महात्मा गाँधी हो या महात्मा बुद्व बिहार ने उनके विद्रोह का जितना सार्थक बनाया उतना और किसी प्रदेश ने नहीं। ज्ञातव्य है कि बिहार विद्राह के प्रति संवेदनशील है। बिहारी का एक गुण और है कि यह गैर-बिहारियों की बड़ी कद्र करता है। बिहार की संगीत, कला, ज्ञान, विज्ञान, आयुर्वेद (स्वास्थ्य), अर्थ, राजनीति, पत्रकारिता आदि द्वारा अनेक गैर बिहारी विद्वान प्रतिष्ठित हुए इन विद्वानों में कई तो बिहार में ही बस गए और बिहारी बन गए।

अतएव बिहार का यह विद्रोही और सहयोगी गुण अब कुशल नेतृत्व और उचित मार्ग - दर्शन के अभाव में दिग्भ्रमित है। यह विद्रोही पहलू अब बिहार विकास की संभावनाएँ के बजाय समस्यात्मक कार्य के प्रिति लूट-हिंसा और अपराध की ओर प्रवृत्त हो रहे है। इसे विकाश की संभावनाओं की तरफ संभालने की चुनौतियाँ वर्तमान परिवेश में विधमान है।

शोध प्रपत्र की समीक्षा

बिहार में उन्नति और विकाश के सही रास्ते क्या है, यह समीक्षा करना जरूरी है। विकास के अबतक के मॉडल यही दर्शाता है कि तकनीकी एवं आर्थिक विकास से विशमता बढ़ रही है, पर्यावरण नष्ट हो रहा है और मानवीय एवं समाज तथा राष्ट्र के अन्तर्संबंध छिन्न भिन्न हो रहे है। यह सच है कि बिहार समस्याओं से ज्यादा संभवनाओं एवं चुनौतियों का प्रदेश रहा है। ऐतिहासिक काल से लेकर आज तक बिहार की संभावनाओं पर किसी भी आलोचक एवं

चिंतक ने संदेह नहीं किया। इन दिनों हम जिस दौर से गुजर रहें है उसमें, वैश्वीकरण, निजीकरण तथा उदारीकरण का प्रभाव ज्यादा है। विकास के नाम पर तेजी से अमानवीय प्रभाव है। विकास के नाम पर तेजी से अमानवीय अप्राकृतिक जीवन शैली एवं तकनीकी का प्रचार प्रसार आज के अनिवार्य तत्व हो गए है। इसलिए टिकाऊ विकास की बात करना तो असान है किन्तुचुनौतिपूर्ण है।

अतएव सौ वर्ष पहले महात्मा गाँधी ने आधुनिक सभ्यता को 'शैतानी' सभ्यता कहकर यह बताने की कोशिश की थी कि भारत के सम्यक विकास के लिए पारंपरिक रास्ता ही ठीक है। मेरा मानना है कि बिहार यदि गाँव आधारित वैकल्पिक विकास की पद्धति को स्वीकार करता है तथा प्राकृतिक आधारित विकास की रूप रेखा बनाता है तो ज्यादा बिहार में विकास की संभावनाएँ होगी तथा चुनौतियों का भी साकारात्मक फलाफल प्रस्फूटित होगा।

शोध पत्र का विवरण

प्रस्तुत शोध प्रपत्र का प्रमुख विवरण निम्नलिखित है -

1. बिहार में विकास एवं विशमता का विवरण।
2. बिहार में जातीय व्यवस्था का विवरण।
3. बिहार की आर्थिक पिछड़ेपन का विवरण।

1. विकास एवं विशमता: बिहार में विकास एवं विशमता दोनों विमर्श के मुख्य मुद्दे रहे है। देश आजादी की लड़ाई के दौरान और बाद में भी नेतृत्व के बीच विचारधारा का मतभेद रहा है। इसी का नतीजा था प्रथम पंचवर्शीय योजना का लचर वैचारिक आधार। यह विडम्बना ही है कि जब देश में आर्थिक विकास की योजनाओं को अमलीजामा पहनाया जाने लगा तो गाँधी नहीं रहे और योजनाओं को लेकर हम चका चौंध में फंस गए। राजनितिक विकल्प कमजोर था और कोई दूसरा सैद्धान्तिक समूह भी इतना सक्रिय नहीं था किवह भविश्य की योजनाओं को नये सिरे से देखे और उसके ठोस स्वरूप को राष्ट्र के समग्र विकास के लिए प्रस्तुत करें। देश में विकास के लिए अपनाई गई नीतियों में विशमताएँ बढ़ती चली गई। विकास की दोशपूर्ण नीतियों ने विशमता इतनी बढ़ा दी कि बाद में गरीबी हटाओं, समाजिक न्याय आदि नारे जोर जाने लगे।

यद्यपि विकास की अवधारण पिछड़ेपन की अवधारण से जुड़ी है। यदि विकास की चर्चा करे तो आपको पिछड़ेपन की चर्चा स्वत: करनी होगी।पिछड़ापन एक ऐसा अवधारणा है जिसके संकल्पनात्मक एवं व्यावहारिक दोनों पक्ष महत्वपूर्ण है। यदि हम पिछड़ेपन के वैचारिक नीतिगत अवधारणा से परिचित हो जाते है तब इसके उन्मूलन का उपाय भी आसानी से ढूँढ सकते है। बिहार में पिछड़ेपन का सवाल आम लोगों की आर्थिक और समाजिक स्थिति से जुड़ा है। आर्थिक विपन्नता और सामाजिक गैर-बराबरी का यह कारण है कि बिहार में सामाजिक उत्पीड़न गरीबी उन्मूलन के सवाल से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है, अत: पिछड़ेपन का अवलोकन और उसे दूर करने का प्रयास के लिए यह आवश्यक है कि हम इन दोनों कारकों का विशेष ध्यान रखें।

द्रष्टव्य है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश में विकास की प्रक्रिया की प्रभाव विभिन्न क्षेत्रों पर समान रूप से नहीं पड़ा। बिहार राज्य की बात करें तो यह प्रदेश सामंती समाज रचना का एक स्पष्ट उदाहरण है। इसका मूल आधार जाति एवं खेतिहर समाजिक व्यवस्था है। अत: बिहार के विकास की संभावनाओं को समझने के लिए यह जरूरी है कि समाज में व्याप्त जातिय विशमता का अध्ययन करना महत्वपूर्ण होगा।

2. जातीय व्यवस्था: यद्यपि कि बिहार की जातीय संरचना का स्वरूप भारतीय परम्परा से हटकर विकसित नहीं हुआ है। यहाँ की परिस्थिति जन्य संरचना व्यावसायिक संरचना, भाषायी - विभिन्नता तथा ऐतहासिक अनुभवों ने इसे स्थानीय एवं क्षेत्रीय रूप प्रदान किया है। समाजिक पद स्थिति एवं आर्थिक विशमता बिहार में जाति व्यवस्था को और उन्नत करती है। यहाँ जब सामाजिक सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विकास का विश्लेशण करें तो जाति की सीमा को लांघनी होगी। बिहार में जाति असमानता, दमन, शोशण तथा उत्पीड़न का हथियार बना हुआ है। बिहार में जातियों के बीच की समाजिक दूरी को बिहारी समाज में आज भी देखा जा सकता है।

ज्ञातव्य है कि बिहार में जातियों को चार श्रेणी में बांटा जा सकता है- (i) जातियों का यह क्रम विभाजन मात्र संरचनात्मक स्वरूप को समझने के लिए है। यहाँ जातियों की स्थिति मुख्यत: कृषि की अवस्था तथा ऐतिहासिक परिवर्तनों में निहित रही है।

ध्यातव्य है कि भू स्वामित्व के संदर्भ में भी बिहार के लोगों को चार समूहों में बांटा जा सकता है- (i) किसान (भू-स्वामी), जमींदार (ii) मध्य किसान, (iii) गरीब किसान (बटाईदार, खेतिहर मजूदर) तथा (iV) बटाईदार एवं भूमिहीन खेतिहर मजदूर। इन्हें बंधुआ मजूदर भी कह सकते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उच्च जाति एव बड़े किसान तथा मध्य जाति एवं मध्य किसानें की आर्थिक स्थिति तो निश्चित ही बेहतर हुई है किन्तु निम्न एवं दलित जाति तथा भूमिहीन खेतिहर मजूदर की सामाजिक आर्थिक अवस्था में कोई बदलाव नहीं आया। अत: बिहार के विकास की संभावनाओं एवं चुनौतियाँ के तौर पर जातीय व्यवस्था का भी अहम् भूमिका विद्यमान है।

3. आर्थिक पिछड़ेपन: बिहार के आर्थिक पिछड़ेपन का अंदाजा यहाँ के नागरिकों के जीवन स्तर से लगाया जा सकता है। अर्थशास्त्र की भाषा में जीवन की गुणवत्ता के लिए प्रति व्यक्ति आय को महत्वपूर्ण माना जाता है। सन् 2007-2008 के आँकड़े बताते है कि प्रति व्यक्ति आय 12,648 रूपये थी। जबकि इसी वर्ष देश की औसत आय 50,558 रूपये थी। इसप्रकार बिहार के आर्थिक स्थिति का आकलन यहाँ के लोगों की गरीबी के स्तर से भी लग सकता है।[7] यहाँ गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोागें का अनुपात 55% है, 5 जबकि देश का अनुपात 36 प्रतिशत है।

यद्यपि बिहार की गरीबी मूलत: देहाती है। जहाँ तक शहरी गरीबी की बात है तो यह देहाती गरीबी का ही विस्तृत रूप है। बिहार के गाँवों में 60% लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन बसर करते है। वर्गीय नजरिये से देखें तो यहाँ भूमिहीनों की 50% तथा महागरीबों की 80% आबादी गाँव में रहती है। ये सारे आकड़ें राष्ट्रीय औसत से ज्यादा है।

यह प्रदेश आर्थिक गरीबी के साथ-साथ भीशण हिंसा की भी चपेट में है। नक्सली हिंसा, लूट-मार, अपहरण बिहार का पर्याय एवं कलंक बन गए है। कानून वयवस्था की स्थिति चौपट है। यहाँ राजनीति भी अधिकांश माफियाओं के कब्जे में है।

अंतत: बिहार के लिए एक नए एवं टिकाऊ विकास मॉडल की जरूरत है। यह भी सत्य है कि बिहार केवल औद्योगिक कारखानों के बल पर तरक्की नहीं कर सकता। बिहार में खेत और पानी से जुड़े उद्यमों के विकास के लिए कभी ठीक से सोचा भी नहीं गया है। सरकारी आँकड़ा देखें तो बिहार का गैर-विकास मद में खर्चे दूसरे राज्यों की तुलना में ज्यादा है। भ्रष्टाचार भी बिहार के विकास में एक बड़ी बाधा है। पढाई, परीक्षा, नौकरी, व्यवसाय, शादी-ब्याह लगभग जीवन के सभी क्षेत्रों में जोर-जबरदस्ती की घटना को सामान्य रूप से देखा जा सकता है।

शोध पत्र का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य निम्नांकित हैं-

1. बिहार में मानवीय समाज की स्थापना के ऐतिहासिक परिवेश में क्रान्ति, विद्रोह, धर्म, राजनीति, संस्कृति एवं विज्ञान का अध्ययन।
2. स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु, सत्याग्रह आंदोलन का बिहार में प्रयोगकेन्द्र व समाजवादी नेता लोहिया, जयप्रकाश नारायण आदि राजनीतिज्ञों का बिहार निमार्ण में योगदान।
3. बिहार में विकास एवं विषमता के परिप्रेक्ष्य में व्याप्त समस्याओं का विश्लेशण करना।
4. बिहार में जाति-व्यवस्था का वर्तमान परिवेश में व्याप्त समस्याओं का विश्लेशण करना।
5. बिहार में आर्थिक पिछड़ेपन से मानवीय मूल्य में ह्रास का आकलन कर वर्णन करना।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि बिहार गाँवों का प्रदेश है। खेती इसका प्रमुख आधार है। पानी की बिहार में कोई कमी नहीं, बल्कि पानी यहाँ जरूरत से ज्यादा है। कृषि आधारित विकास की अनेक संभावनाएँ बिहार में है, यहाँ की प्रतिभाओं, राजनितिक व सांस्कृतिक चेतनाओं को कमत्तर नहीं आँका जा सकता है, इसलिए जरूरी है कि बिहार पुनर्निमाण पर बहस चलें। चिंतन प्रक्रिया से कई और पहलू सामने आएगें और हमे विश्वास है कि सामूहिक सोच-विचार बिहार के नवनिर्माण के साथ-साथ राष्ट्रनिर्माण हेतु कारगार प्रयास साबित होगा।

संदर्भ सूची

1. अताउल्लाह, मो0, 2020 : बिहार का आधुनिक भूगोल, ब्रिलिएन्ट प्रकाशन पटना, प्र0 - 1-9
2. प्रताप सिंह, 2010 : गाँधीजी का दर्शन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, प्र0-79
3. प्रसाद, राजेन्द्र, 1968 :सत्याग्रह इन चम्पारण, प्र0- 18-19
4. योजना, 2010, मानव संसाधन विकास शीर्षक, जून प्र0-5-51
5. प्रताप सिंह, 2010 : गाँधीजी का दर्शन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, प्र0-230
6. योजना, 2010, मानव संसाधन विकास शीर्षक, जून प्र0-5-51
7. शर्मा, गणेश कु0 2017:घाघरा-गंडक दोआब में अनुसूचित जातियों का मानव संसाधन विकास, अ0 प0 पी0 एच0 डी0, थेसिस, जे0 पी0 यू0 प्र0 - 1-20
8. आर्थिक, सर्वेक्षण बिहार 2009-2010

दक्षिण भारत में देवदासी व्यवस्था: ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन

Devdassi System in South India: Historical and Analytical Study

डॉ० ऋतेष भारद्वाज

सहायक अध्यापक, राजनीतिक विज्ञान विभाग, श्याम लाल कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश

प्रस्तुत लेख में दक्षिण भारत में देवदासी व्यवस्था का ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। देवदासी प्रथा को विशेष रूप से धार्मिक वेश्यावृत्ति कहा जा सकता है। इस प्रथा में सबसे दुखद यह था कि इसे धार्मिक स्थलों के संरक्षण में संचालित किया गया। विश्व के दूसरे भाग को इसकी जानकारी तो बहुत दूर की बात है, हमारे देश के ही अधिकतर नागरिकों एवं धर्मावलंबियों को इसकी जानकारी तक नहीं है। पुरुषों की औरतों के साथ इस प्रकार की कामुक संलग्नता, जो भारतवर्ष के बहुत से मंदिरों के पत्थरों पर चिन्हित है पुरुषों की अनैतिकता एवं महिलाओं के प्रति उनके व्यवहार और कामवासना की प्रवृत्ति को ही दर्शाता है। आज देवदासी संस्था के माध्यम से वर्तमान में औरतों के शोषण ने जातीय चरित्र अख्तियार कर लिया है और देवदासी की संतान को ही "हरिजन" कहा जाता था। देवदासी प्रथा आजकल विशेष रूप से आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और उड़ीसा में देखने को मिलती है। प्रस्तुत लेख में भारत में देवदासी प्रथा को दक्षिण भारत के संदर्भ में एक ऐतिहासिक–विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। दक्षिण भारत में मौजूद विभिन्न परंपराओं, उत्तर और दक्षिण भारत के बीच देवदासी प्रथा के मध्य अंतर, और अलग-अलग जगहों पर इस देवदासी प्रथा के अन्य रूपों में प्रचलन का विश्लेषण शोध लेख में किया गया है।

यंग इंडिया (6 अक्टूबर, 1927) में महात्मा गांधी ने लिखा था कि "हमें खेद है कि हमारे बीच देश में अनेक ऐसे मंदिर हैं जिनकी स्थिति वेश्यालयों से बेहतर नहीं है।"[1] महात्मा गांधी जब देश में व्याप्त इस बुराई के विरुद्ध लोगों को जागृत कर रहे थे तब मद्रास राज्य के सीमाक्षेत्र में देवदासियों की संख्या लगभग दो लाख थी।[2] इस महान राष्ट्र के मंदिरों में दो लाख अभिशप्त औरतों की कल्पना करना अपने आप में भयावह है। लेकिन आश्चर्य यह है कि आज भी कुछ लोग देवदासी प्रथा को 'गौरवशाली परम्परा' के रूप में मानते हैं। मंदिरों के अधीन यह परम्परा शायद इसी कारण से पुष्पित एवं पल्लवित हुई क्योंकि यह धनाढ्य सामन्तों एवं महाजनों की इच्छा के अनुकूल थी तथा जिसे पुजारियों का आशीर्वाद एवं सक्रिय सहयोग प्राप्त रहा है। यह मानवता के इतिहास की संभवत: सर्वाधिक पुरानी शारीरिक शोषण की प्रथा रही है। इस प्रथा की शिकार असहाय औरतें रही हैं और इनकी जुबान बन्द कर दी जाती है। इस कुप्रथा को स्वैच्छिक अथवा गौरवशाली कहना, वास्तव में घृणित एवं साजिश भरा है।

देवदासी-प्रथा को विशुद्ध रूप से धार्मिक वेश्यावृत्ति कहा जा सकता है। इसमें दु:खद यह रहा कि इसे मंदिर के पुजारियों का सहयोग एवं संरक्षण प्राप्त रहा है तथा इसे देवी-देवताओं के नाम पर किया जाता रहा है। शायद विश्व के दूसरे भूभाग को इसकी जानकारी तो दूर की बात है हमारे देश के अधि कतर निवासियों एवं धर्मावलंबियों को इसकी जानकारी तक नहीं है। पुरुषों की औरतों के साथ इस प्रकार की कामुक संलग्नता, जो वर्षों से पत्थरों पर चिह्नित है–पुरुषों की अनैतिकता एवं औरतों के प्रति उनके व्यवहार एवं कामवासना की प्रवृत्ति को ही दर्शाता है। बिहार के वैशाली जिलान्तर्गत हाजीपुर में बूढ़ी गंडक के कोन्हारा घाट पर एक मंदिर स्थित है, जिसे लोग 'नेपाली मन्दिर' के नाम से जानते हैं। वहाँ काठ की एक पटरी पर रति-क्रिया की विभिन्न आकृतियाँ खोदी गई हैं। वहाँ के पुजारी गर्व के साथ बताते हैं कि "प्राचीन भारत के कोकशास्त्र में वर्णित सभी रति-क्रियाएँ इस काठ की पटरी पर अंकित हैं।"[3] भुवनेश्वर के लिंगराज मंदिर एवं राजा-रानी मंदिर में भी पुरुष एवं नारी की रति-क्रिया में लिप्त मूर्तियाँ दीवारों पर तराशी गई हैं। पूजा के इस पवित्र स्थल के किसी भी कोने को वेश्यालय की तस्वीरों से, जिसमें नारी का शोषण एवं उसकी दासता दिखाई गई है, वंचित रखने की आवश्यकता महसूस नहीं की गई। इसका मुख्य कारण यही है कि मंदिर के पुजारी एवं उसके आसपास के धनी लोगों के समूह ने मंदिर की सेवा के नाम पर इन असहाय औरतों का सुनियोजित शोषण किया है एवं इस कुप्रथा को आज भी गुप्त रूप से जारी रखा है।

जे. ए. डुबॉय ने जिन्होंने 1792 से 1823 के बीच करीब तीस वर्षों तक भारत-भ्रमण किया था देवदासी प्रथा का बड़ा ही सटीक वर्णन किया है। अपने संस्मरण[4] में उन्होंने लिखा है कि वास्तव में मंदिरों में संलग्न नृत्यांगनाएँ मुख्य रूप से ब्राह्मण पुजारियों के उपभोग की वस्तुएँ थीं जो 'वेश्यादर्शनम् पुण्यं पाप नाशनम्' जैसे निकृष्ट श्लोकों का पाठ करते थे, जिसका अर्थ होता है 'वेश्या के साथ समागम पुण्य कर्म है, जो पाप का नाश करता है।'[5] स्पष्टरूपेण उनकी निगाह में वेश्या एवं अन्य औरतों में कोई अन्तर नहीं है। मात्र नारी होना ही उनके लालच का शिकार होने के लिए यथेष्ट था और इसके लिए मंदिर उनके आर्थिक लाभ के साथ-साथ झूठी तार्किकता हेतु सर्वाधिक संरक्षित एवं सुरक्षित स्थल थे।

आज लोगों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि मंदिरों के अन्दर समागम के कई लाभ थे। सर्वप्रथम यह कि उन्हें धार्मिक अनुष्ठान के लौह-कवच की सुरक्षा प्रदान करता था। दूसरे, पुजारियों के विरुद्ध लम्पटता एवं भ्रष्ट आचरण का आरोप भी सरलता से नहीं लग सकता था। जो औरतें इन गिद्धों की शिकार होती थीं, उनकी शुबान यह कहकर बन्द कर दी जाती थीं कि ये सारे कर्म (शुभ) भगवान की कृपा से भगवान को प्रसन्न करने के लिए किए जा रहे हैं। यह इस स्थिति को स्पष्ट करता है कि हिन्दू समाज में मंदिर ही इस निकृष्ट कुकर्म (आर्थिक तथा नैतिक) के केन्द्र क्यों थे?

पुराने अभिलेखों से इस सत्य की सम्पुष्टि होती है कि भगवान जगन्नाथ के नाम पर पुरी मंदिर के पुजारी मंदिर के अन्दर इन औरतों का यौन-शोषण करते थे। सत्रहवीं शताब्दी में फ्रांस के पर्यटक बर्नियर ने इस तथ्य का उल्लेख किया है 'ब्राह्मणों ने घोर अंधविश्वास को उत्प्रेरित कर धनार्जन किया।' मंदिर-प्रबन्धन में इन औरतों का स्थान बहुत नीचा नहीं था। प्रतिष्ठा सीढ़ी में इनका दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान रहता था। नृत्यांगनाओं का मंदिर में दूसरा स्थान रहता था। देवदासी-प्रथा की शुरुआत पर प्रकाश डालते हुए जे. ए. डुबॉय का मत है "वास्तव में अपनी जीविका के लिए उन्हें अपने को प्रत्येक वैसे व्यक्ति को समर्पित करना पड़ता था जो कीमत चुकाने को तैयार था। प्रत्येक मंदिर की सेवा में आठ, दस, बारह या इससे भी अधिक संख्या में देवदासियाँ रहती थीं। उनका प्राधिकृत कर्तव्य हर रोज दिन में दो बार प्रातः एवं संध्या बेला में एवं कभी-कभार आम उत्सव में नाच-गाना करना होता था, पर उनका गाना सदैव निकृष्ट कोटि का रहता था, जिसमें उनके भगवान के अनैतिक कार्यों का ही वर्णन रहता था। उनका यह निर्धारित कर्तव्य धार्मिक उत्सवों तक ही सीमित नहीं था। सामान्य नम्रता (और यह हिन्दू नैतिकता की खूबी है) के अनुरूप जब कोई विशिष्ट व्यक्ति एक-दूसरे से मिलते थे तो उनके साथ इन वेश्याओं का एक जत्था रहता था। उनमें से कुछ को अपने अतिथि के हवाले करना सौजन्यता समझी जाती थी।"[6]

मंदरों की सेवा में हिन्दुओं की विभिन्न श्रेणी की औरतें होती थीं। इनमें से कुछ कुलीन एवं प्रतिष्ठित घराने से आती थीं। सुरक्षित प्रजनन के लिए पति की सहमति से यह मनौती मान लेना कि गर्भ का शिशु जन्म के बाद, यदि बच्ची हुई तो मंदिर के सुपुर्द कर दिया जाएगा, कोई असामान्य बात नहीं थी। यह बात उनकी सोच से परे थी कि उनका यह कृत्य मान्यताओं के विपरीत ही नहीं था, वरन् मातृत्व के विपरीत भी था। मगर वास्तविकता यही थी कि किसी भी माता-पिता को पुत्री द्वारा इस कर्म के अख्तियार करने से कोई ग्लानि नहीं होती थी।' आचार्य चतुरसेन ने अपने ऐतिहासिक उपन्यास सोमनाथ में इस तथ्य का उद्घाटन किया है कि 'चालुक्य राजा ने अपनी पुत्री को विख्यात सोमनाथ के मंदिर में देवदासी के रूप में समर्पित किया था।'[7]

बचपन में ही लड़कियों को इस रोजगार को स्वीकार करने की सीख दी जाती थी। उनकी बुद्धि में इस तथ्य को घुसाया जाता था कि यह अपने आप में एक सत्कर्म है। अबोध बालिकाओं को इस प्रकार की शिक्षा देने में नैतिकता के बिन्दु पर किसी प्रकार का संदेह अथवा संकोच नहीं होता था। लड़कियाँ इसे दुष्कर्म नहीं मानती थीं। बम्बई सोशल सर्विस लीग के प्रवक्ता पी.जी. नाइक के अनुसार–"बचपन में ही लड़की को वेश्यावृत्ति अपनाने की शिक्षा दी जाती है। इतनी ही बात नहीं है कि उसे बार-बार सिखाया जाता है कि यह कुकर्म धार्मिक कृत्य है, अतः शादी मत करना–वरन् उसके आसपास ऐसा वातावरण भी तैयार किया जाता था कि वह विवाह एवं वैवाहिक जीवन से घृणा करने लगती थीं।"[8]

यहाँ एक गंभीर बहस का मुद्दा बनता है कि कितने हिन्दू धार्मिक इच्छा से इन मंदिरों में जाते थे और कितने अपनी कामवासना की तृप्ति हेतु इन पवित्र बाजारों में जाते थे। सन् 1871 में बालासोर (उड़ीसा, जो उस समय बंगाल का ही हिस्सा था) के समाहर्त्ता जॉन बीम्स ने उड़ीसा के आयुक्त श्री रेवेनशा को अपने जिले में प्रचलित अवैधानिक कर के बारे में एक रिपोर्ट[9] दी थी, जिसके अनुसार-

- जाजपुर में स्नान पर्व के अवसर पर जमींदार 'वारुणी स्नान' नामक टैक्स वसूलते थे।
- पुरी तीर्थाटन पर जाने के लिए जमींदार 'पुरुषोत्तम खर्च' के नाम पर कर वसूलते थे।
- जमींदार जब पुरी से लौटते थे तो अपने साथ लाए हुए महाप्रसाद को रैयतों के बीच बाँटते थे। प्रसाद-प्राप्ति की एवज में रैयतों को कर चुकाना पड़ता था। इसे 'हाथ भरा महाप्रसाद' कहा जाता था।

जमींदारों के द्वारा मंदिरों में कामवासना की तृप्ति पर किए गए खर्च का वहन निरीह रैयतों को करना पड़ता था और इसे 'धार्मिक कर' कहा जाता था। आततायी जमींदारों की जमात इन्हें वसूलने के लिए भयंकर यातनाएँ भी देती थी। इस प्रथा का वर्णन इतिहास के पन्नों में भी अंकित है। रामकृष्ण मिशन के लोकप्रिय प्रकाशन 'द कल्चरल हेरिटेज ऑफ इंडिया' में इस तथ्य का उल्लेख किया गया है कि चोल राजा राजराज के शासनकाल में तंजौर के विख्यात मन्दिर में 400 देवदासियाँ थीं। पूर्वी बंगाल के राजा हरिवर्तमन के मंत्री भट्ट भवदेव ने अनन्त वासुदेव के मन्दिर में सेवा के लिए 100 नृत्यांगनाओं को प्रदान किया था। विजयसेन के शासनकाल में राजशाही जिले के देवपाड़ा के शिव मंदिर में भी करीब इतनी ही संख्या में नृत्यांगनाएँ थीं। कालिंजर के नीलकंठेश्वर के मंदिर में, मदन वर्मा के शासनकाल में पद्मावती नाम की नृत्यांगना मंदिर की प्रमुख देवीदासी थी।[10]

इटालियन पर्यटक मार्कोपोलो ने भी इस सत्य का उल्लेख किया है कि माता-पिता कभी-कभी अपनी अविवाहिता पुत्रियों को उन देवताओं के मंदिरों में, जिनमें उनकी अपार श्रद्धा-भक्ति रहती थी, पर्व एवं समारोहों में नाचने-गाने एवं सेवा करने के लिए भेजते थे। जब तक उनकी शादी नहीं हो जाती थी, वे उन्हीं मंदिरों में रहती थीं।[11] पवित्र मंदरों के अभिभावकों के द्वारा देव सेवा के नाम पर अपनाए गए हथकंडों एवं तरीकों का बड़ा ही सटीक वर्णन प्रो. गिलबर्ट स्लेटर ने किया है। वे उस समय मद्रास विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग के व्याख्याता थे और उन्हें मद्रास में निम्न कुल में निम्न जन्मदर के कारणों का पता लगाने का भार सौंपा गया था। उनके अनुसार –

"अपने स्वभावानुसार वे कुँआरी कन्याओं की ही माँग करते थे। देवदासी की हैसियत से भगवान की सेवा करने के लिए इन कम उम्र की कन्याओं को अजीब तरीकों से शिक्षित किया जाता था। दक्षिण भारत में उन शहरों को ही अधिक पवित्र माना जाता था, जहाँ पर गुप्त रोगों से पीड़ित रोगियों की संख्या अधिक रहती थी। सन् 1917 में मुझे मद्रास की सराकर के द्वारा कुम्भकोनम शहर के आँकड़ों की जानकारी देने का निर्देश दिया गया। मैंने पाया कि गत् कई वर्षों से जन्मदर प्रति हषार तीस के आस-पास ही रही है और सचिवालय को विश्वास था कि जन्म का निबंधन नहीं करना ही न्यून जन्मदर के लिए

जवाबदेह कारण है। नगरपालिका ने इसे अस्वीकार किया और समाहर्त्ता ने यथोचित जाँचोपरान्त इसे सही पाया। नगरपालिका कार्यालय में जाकर जब वहाँ के कर्मचारियों से इसका कारण पूछा तो उन्होंने तुरन्त कहा–'यहाँ पर बारह बड़े-बड़े मंदिर हैं और प्रत्येक में देवदासियाँ हैं। अस्पतालों में मैंने पाया कि भर्ती मरीजों में आधी संख्या में सिफलिस एवं गनोरिया के गम्भीर मरीज हैं जबकि सामान्य मरीजों का इलाज आयुर्वेद के चिकित्सक करते हैं। एक युवा ब्राह्मण ने कहा कि पाँच में चार ब्राह्मण महिलाएँ इस रोग से ग्रसित हैं।'[12]

बंगाल इस मंदिर-दुर्गुण से मुक्त था। सोचने की बात है, क्यों और कैसे? यह जानकारी रुचिकर होगी कि जिन प्रान्तों में देवदासी-प्रथा प्रचलित थी, वहाँ बहुविवाह की परिपाटी नहीं थी। बंगाल देवदासी-प्रथा से तो मुक्त था, पर वहाँ बहुविवाह की प्रथा गंभीर रूप से विद्यमान थी। इस सत्य की अभिव्यक्ति में कोई संकोच नहीं को सका है कि अन्य राज्यों में जो अनिष्ट देवदासी-प्रथा ने किया, वही अनिष्ट बहुविवाह प्रथा ने बंगाल में किया। वास्तविकता तो यही है कि अन्य प्रान्तों के लोगों ने मंदिरों को वेश्यालय के रूप में परिणत किया और घर को प्रदूषण मुक्त रखा, वहीं पर बंगाल में कुलीन लोगों ने बहुविवाह के माध्यम से घर को वेश्यालय में परिवर्तित कर दिया और मंदिरों को इससे मुक्त रखा। देवदासी एवं कुलीनवाद एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अपने गौरवशाली दिनों में कुलीनवाद असंख्य विवाह करने का लाइसेंस प्रदान करता था। हिन्दुओं में बहुविवाह की प्रथा पर प्रतिबंध लगाने के उद्देश्य से बंगाल की सरकार ने सन् 1867 में एक कमेटी का गठन किया था, जिसके अनुसार[13] –

- 'भग-कुलीनों के लिए बहुविवाद जीवनयापन का एकमात्र साधन था।'
- 'श्यादातर विवाह बुढ़ापे में होते थे और पति अपनी पत्नी को कभी नहीं देख पाता था या देखता भी था तो तीन-चार वर्षों या उससे अधिक की अवधि के अंतराल पर एक बार।'
- '3 से 4 और कभी-कभी एक दिन में 23 विवाह भी होते थे।'
- 'कभी-कभी किसी व्यक्ति की सभी पुत्रियों तथा अविवाहित बहनों की शादी भी एक ही व्यक्ति से कर दी जाती थी।'

इस कमेटी में बंगाली एवं अंग्रेज दोनों समूह के लोग सदस्य थे। अपने समय के प्रसिद्ध बंगाली ईश्वरचन्द्र शर्मा (जो ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के नाम से विख्यात हैं) सुत्तशरा घोषाल, रामनाथ टैगोर, जयकिशन मुखर्जी एवं दिगम्बर मित्तल उस समिति के सदस्य थे।[14] तिरुपति का मंदिर इस कदाचार का अकल्पनीय स्थल था। बहुत चालाकी से इसे धर्म की चादर से ढँका गया था। विवाहिता औरतें, जिन्हें बच्चा होने में विलम्ब होता था, वे मंदिर के लोभी पुरोहितों की शिकार आसानी से हो जाया करती थीं। इन नवयुवतियों की भगवान वेंकटेश्वर में अटूट श्रद्धा का नाजायज शारीरिक फायदा मंदिर के पुजारी उठाते थे। इस सम्बन्ध में डुबॉय के अनुभव पर ध्यान देना समीचीन होगा।[15] भारत में कई मंदिरों में पत्थर की दीवारों पर नर एवं नारी की रति-क्रिया दर्शाया जाना आश्चर्य की बात नहीं है, वरन् यह हिन्दुओं की उसी संस्कृति का एक हिस्सा है जिस पर वे गर्व करते हैं। समाज के ऊपर से धर्म के लौह आवरण को यदि नहीं हटाया गया तो यह आने वाले वर्षों में भी भारत की प्रगति को हजारों वर्ष पीढे ढकेलता रहेगा।

डुबॉय ने भी दक्षिण भारत के नामधार ब्राह्मणों द्वारा प्रचलित धार्मिक कुकृत्यों का वर्णन किया है। इन धार्मिक कुकृत्यों में धार्मिक अनुष्ठान के नाम पर वर्जनामुक्त यौनाचार प्रचलित था, जिसमें ब्राह्मण से लेकर अतिशूद्र श्रेणी की औरतें भी भाग लेती थीं। इस प्रकार के धार्मिक उत्सवों द्वारा जिस गन्दगी को फैलाया जा रहा था, उसका वर्णन करना भी शब्दों से बाहर है। संभवत: यह इस स्थिति को स्पष्ट करता है कि क्यों राजे-रजवाड़े दैविक कृत्यों के नाम पर इस प्रकार के घृणित उत्सव आयोजित करते थे। देवदासी संस्था के माध्यम से वर्तमान में औरतों के शोषण ने जातीय चरित्र अख्तियार कर लिया है। रूसी विद्वान ई.एस. यूरलोवा के अनुसार, "देवदासियाँ, जो नृत्यांगना के परिष्कृत नाम से जानी जाती हैं, कतिपय अछूत जाति के लोगों के द्वारा मंदिर में लाई जाती थीं और वे मंदिर के पुजारी की सम्पत्ति मानी जाती थीं। देवदासी की संतान को भगवान की संतान के नाम से पुकारा जाता था।"[16] इन्हीं औरतों की संतान को 'हरिजन' कहा जाता था, क्योंकि उनकी शादी मंदिर के देवता से हुई रहती थी।

"भारत में नारी की स्थिति के सम्बन्ध में अपना मंतव्य देते हुए यूरलोवा ने लिखा है कि मंदिर में वेश्यावृत्ति आज भी आंध्र प्रदेश, उड़ीसा एवं तमिलनाडु में विद्यमान है। उत्तरप्रदेश में भी जहाँ देवदासी की संस्था नहीं थी, बज्जी जाति की औरतें, जिनकी संख्या 1000 से अधिक थी, मंदिरों में वेश्यावृत्ति के द्वारा अपना पालन-पोषण करती थीं। मंदिर की दासियों का परिवार भूमिहीन होता था। इनमें से 75 प्रतिशत सूदखोरों की बंधुआ मजदूर हुआ करती थीं एवं बेची जाती थीं।"[17]

ऐसी स्थिति में क्या किसी व्यक्ति को उस प्रथा पर गर्व होना चाहिए, जो कुछेक लोगों की दूसरे लोगों के शोषण पर ही स्थापित होती है एवं पनपती है? उदाहरणस्वरूप हम उस रखैल प्रथा का जिक्र कर सकते हैं जो उड़ीसा में इस शताब्दी के प्रारंभिक दिनों तक राजघरानों तथा जमींदारियों में प्रचलित थी। अविवाहित लड़कियाँ दूल्हे को बतौर दहेज में दी जाती थीं। इनकी संख्या की सीमा निर्धारित नहीं थी। जितनी अधिक संख्या में ये अविवाहित लड़कियाँ दहेज में दी जाती थीं, उतना ही सामाजिक स्थान दूल्हे का ऊँचा माना जाता था। जॉन बीम्स, आई.सी.एस. अपने 'बंगाल सिविलियन के संस्मरण' के लिए विख्यात हैं। उन्होंने पुरी की तीर्थयात्रा के अन्धकारमय पहलुओं का सटीक वर्णन किया है। बीम्स ने, जो बालासोर, कटक, पूर्णिया, चम्पारण एवं चटगाँव के कलक्टर रह चुके थे, लिखा है कि –

"ब्राह्मणों का एक वर्ग जगन्नाथपुरी के मंदिर से संलग्न है। इन्हें पंडा कहा जाता है। ये पूरे भारत का भ्रमण करते हैं और जगन्नाथपुरी के तीर्थाटन की महिमा बखान कर लोगों को पुरी भ्रमण के लिए उत्प्रेरित करते हैं। वर्तमान तीर्थाटन की रुचि में ह्रास को देखते हुए इस कार्य को इन पंडों के द्वारा किया जाता है जो औरतों को लाने में काफी सफल होते हैं। यह एक सामान्य परिदृष्य रहता था कि एक शक्तिशाली पंडा सड़क से जा रहा है और उसके पीछे-पीछे गरीब बंगाली औरतें जा रही हैं। औरतों के वस्त्रादि एक काठ के बक्से में माथे पर है जबकि सामान्य पंडे का राजसी वस्त्र उसके कन्धे पर। रात वे किसी

चट्टी अथवा लॉज में व्यतीत करते थे, जो सड़क के किनारे उपलब्ध रहता था। यहाँ पर पंडा का राजसी ठाठ रहता था जहाँ बंगाली औरतें उसका खाना पकाती थीं, उसे खिलाती थीं और कभी-कभार उसकी शारीरिक इच्छा की पूर्ति भी करती थीं।"

जोगिन प्रथा का, जो आज भी दक्षिणी राज्यों में विद्यमान है, का वर्णन इस प्रसंग में आवश्यक है। आंध्र प्रदेश के निजामाबाद जिले में अनुसूचित जाति की जोगिनों की संख्या 10,000 थी। इन अभागी लड़कियों की शादी ग्रामदेवता के साथ सुखाड़ एवं महामारी जैसी विपदाओं से बचने के उद्देश्य से इनके माता-पिता कर देते हैं। गाँव की उच्च जाति के जमीन्दारों एवं धनी लोगों के द्वारा, जिन्होंने अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु इस दैविक शादी की प्रथा को आरम्भ किया था, इन औरतों का शारीरिक शोषण किया जाता है। सबसे पहले वे इन लड़कियों में नशे की आदतें डालते हैं और बाद में उनका यौन-शोषण करते हैं।[18] देवदासी की प्रथा आजकल विशेष रूप से आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और उड़ीसा में देखने को मिलती है। बासवी, मथम्मा, थायम्मा, पार्वती, जोगिन एवं इसी तरह के अन्य नामों से जानी जाने वाली इन औरतों की स्थिति देवदासियों से भी बदतर है, क्योंकि देवदासियाँ मन्दिर में रहती हैं जबकि जोगिनें झुग्गी-झोपड़ी में रहती हैं और जमींदार उनका उपभोग करने वहीं जाते हैं। इससे उत्पन्न संतान की जवाबदेही जमींदार नहीं लेते हैं। यदि लड़की हुई तो उसके समक्ष जोगिन बनने के अलावा कोई विकल्प नहीं रहता है, जिनकी स्थिति बंधुआ मजदूर से बेहतर नहीं होती है। यह 'स्वीकृत वेश्यावृत्ति' माला एवं माडिंग जाति (अनुसूचित जाति) के बीच लम्बे अरसे से विद्यमान है। दक्षिण भारत में मरयम्मा, हुलिंगम्मा, पोलेरम्मा, मैसम्मा और येल्लमा लोकप्रिय देवियों के नाम हैं।

व्यभिचारी स्त्री से निबटने के लिये मराठों में प्रचलित रीति के बारे में एन्थोवन[19] ने लिखा है–

"कोंकण क्षेत्र में भाविन नाम की स्त्रियों का एक वर्ग है जिन्हें देवता के कटार से ब्याहा जाता है। उन्हें देवयोशिता भी कहा जाता है जिसका अर्थ होता है–देवता को अर्पित वेश्याएँ। वे जिस जाति की होती हैं उस जाति का नाम भाविन के साथ बरकरार रखती हैं मसलन, मराठी भाविन, भंडारी भाविन इत्यादि। स्त्री यदि विवाहिता होती है तो अर्पण के बाद उसका अपने पति से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। वह आजाद हो जाती है। विवाह के बन्धन में बँधने की इच्छा नहीं रखने वाली इनकी बेटियाँ माँ के पेशे को ही अपनाती हैं... वैसे तो ये मन्दिर में सेविका का काम करती हैं लेकिन इनका वास्तविक पेशा लोगों का मनोरंजन (वेश्यावृत्ति) ही है। इसके लिये इन्हें लोग घृणा या नीच निगाहों ने नहीं देखते।"

यदि उत्तर और दक्षिण भारत के बीच देवदासी-प्रथा के संदर्भ में मुख्य अंतर पर गौर किया जाए तो कुछ स्पष्ट अंतर दिखाई देते हैं। दक्षिण भारत में बेटी को परिवार की समृद्धि का स्रोत माना जाता है, जबकि उत्तर भारत में स्थिति इसके विपरीत है। लड़की वय:सन्धि की अवस्था में पहुँचने पर दक्षिण में खुशियाँ मनाई जाती है, जबकि उत्तर में ऐसा नहीं है। वास्तव में उत्तर और दक्षिण के बीच इस फर्क का कारण दक्षिण के मातृवंशीय व्यवस्था है, जहाँ लड़कियाँ नजदीकी या परिचित परिवारों में ब्याही जाती हैं। बल्कि, अमूमन क्रॉस-कजिन शादियाँ ही होती हैं। जबकि उत्तर में लड़कियाँ दूर के अजनबी परिवारों में ब्याही जाती हैं।[20] इसके साथ ही, उत्तर के बरक्स दक्षिण में बेटियों के जन्म का स्वागत होता है। दक्षिण में स्त्रियाँ कुँवारी और दुल्हन दोनों ही रूपों में प्रजनन की क्षमता धारण की हुई मानी जाती है।

यद्यपि कर्नाटक की सरकार ने देवदासी प्रथा को 1982 में ही प्रतिबंधित कर दिया है, फिर भी यह कुप्रथा, आज भी उत्तरी कर्नाटक में बेलगाँव जिले के सौदत्ती (जो धारवाड़ के करीब है) एवं शिमोगा जिला के चन्द्र गुट्टी में खुल्लमखुल्ला विद्यमान है। प्रतिवर्ष प्रथम पूर्णिमा की रात में अनेक अबोध लड़कियाँ देवदासी-प्रथा में फँसाई जाती हैं। जब से प्रतिबंध लगा है, धर्म के स्वघोषित रखवाले प्रत्येक माह में पूर्णिमा की रात में एक या अधिक लड़की को इसा संस्कार में दीक्षित कराते हैं और देवदासी बनाते हैं। सौदत्ती में बसन्त की प्रथम पूर्णिमा के दिन मुख्य त्योहार मनाया जाता है। चन्द्रगुट्टी में इसी समय निर्वस्त्र होकर पूजा कराने की रस्म पूरी होती है जिससे कि जो जवान हो चुकी हैं, उन्हें बेचा जा सके। यह गतिविधि सप्ताह के अन्त में चन्द्रगुट्टी के यलम्मा मंदिर में किया जाता है।

भारतीय इतिहास-लेखन में अछूतों के प्रति उदासीनता का आलम रहा है।[21] खासकर, अछूत स्त्रियों की अदृष्यता इसकी संकीर्णता को जाहिर करता है। जाति के आधार पर विभाजित समाज में इतिहास के विश्लेषणात्मक और सैद्धान्तिक दृष्टिकोण की अनेक चुनौतियाँ हैं। अछूत, वेश्याएँ और आदिवासी इतिहास के आभिजात्य दायरे से बाहर धकेल दिये गये हैं। यदि उन्हें कहीं जगह दी भी गयी तो संदिग्ध एवं तुच्छ के रूप में ही। राष्ट्रवादी और नव-मार्क्सवादी इतिहासकारों ने उनकी गतिविधियों या हलचलों को 'विभाजनकारी' व 'संकीर्ण' मानते हुए वहीं छिट-पुट उल्लेख किया है, जहाँ 'राष्ट्रीय' आन्दोलन में वे सामान्य जन का हिस्सा-से लगते हों।[22] भारतीय औपनिवेशिक अवधि के बौद्धक और सांस्कृतिक इतिहास के लिए स्त्री-मुक्ति या सुधार का मसला प्राथमिकता पर रहा और जो ऐतिहासिक दृष्टिकोण विकसित हुआ वह ऊँची जाति की स्त्री पर केन्द्रित रहा। यहाँ मेरा मकसद दृढ़ पितृसत्तात्मक व्यवस्था की शिकार स्त्री पर विचार-विमर्श किए जाने को कम करके आँकना नहीं है। यहाँ मेरा अभिप्राय यह कहने का है कि इतिहास लेखन में यौनता को महज अभिजात्य दायरे में सीमित कर दिया गया। पितृसत्ता का कोई एक रूप नहीं है बल्कि यह भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में भिन्न-भिन्न रूपों में संस्थानिकृत (Institutionalized) है। इस बात को ध्यान में रखते हुए अध्ययन करने में हमें उन सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रियाओं की समझ हो पाएगी जो पितृसत्ता को विशेष रूप देती है। इस संदर्भ में ऊँची जातियों और अछूतों इन दोनों की भिन्न सामाजिक संरचना का ख्याल रखते हुए इसमें स्त्री की स्थिति का अध्ययन किया जा सकता है। इससे भारतीय स्त्री को लेकर गढ़ा गया मिथक टूटेगा जिसके तहत यह माना जाता है कि जाति, धर्म, संस्कृति आदि जैसी विभाजक रेखाओं से बँटी स्त्रियाँ पितृसत्तात्मक वर्चस्व के समक्ष साझे हितों से जुड़े होने के कारण एक ही कोटि के तहत रखी जा सकती हैं। यहाँ इस बात का उद्घाटन होना जरूरी है कि भारतीय समाज-व्यवस्था की कार्यप्रणाली का तर्क न केवल स्त्री-पुरुष के बीच विभाजन पैदा करता है बल्कि एक समूह की स्त्री के ऊपर दूसरे समूह की स्त्री के आधिपत्य के लिए अनुकूल स्थिति भी उत्पन्न करता है।

1980 तक आते-आते मार्क्सवादी नारिवादियों को यह समझ में आने लगा कि कि पितृसत्ता पूँजीवाद से अभिन्न तौर पर जुड़े होने के बावजूद इससे पहले से ही विद्यमान रही है। ऐसे में, स्त्री-पराधीनता की सही समझ विकसित करने के लिये इसे पूँजीवाद से अलग करके इसके "विशिष्ट ऐतिहासिक चरणों" के रेखांकन की जरूरत महसूस की जाने लगी। वहीं, रैडिकल और मुख्यधारा की नारीवादी मान्यताओं और विचार-श्रेणियों पर अश्वेत नारीवादियों द्वारा सवाल उठाये जाने से भी विश्लेषण के नजरिए का दायरा विस्तृत हुआ। उन्होंने 'वर्ग, जेंडर और नस्ल के बीच के अन्त:र्सम्बन्धों' को समझने की जरूरत पर ध्यान केन्द्रित किया।

पितृसत्ता, विजय और वर्चस्व के मिजाजोनुकूल ठहरती है। वर्चस्व चाहे जाति आधारित हो, उपनिवेशवाद के रूप में हो या पूँजीवाद के रूप में–वर्चस्व प्राप्त तबका न केवल स्त्री-यौनता पर दृढ़ नियन्त्रण रखता है बल्कि इस क्रम में पराजितों या पराधीनों की यौनता के कायदों का निर्धारण भी करता है। देश-भर में कहीं भी सामुदायिक या साम्प्रदायिक हिंसा में कमजोर पक्ष की स्त्रियों का यौन-हिंसा का शिकार होना अथवा भूमिपतियों या जमींदारों का भूमिहीन श्रमिकों की स्त्रियों के साथ यौन-हिंसा की बढ़ती घटनाएँ इसका स्पष्ट मिसाल हैं।

वर्ष 1982 में कर्नाटक सरकार द्वारा देवदासी प्रथा को गैर कानूनी घोषित किया गया है और आंध्रप्रदेश में 1988 में देवदासी अधिनियम के तहत इस प्रथा पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। इसके बावजूद यह प्रथा कई वर्षों से विशेषकर कर्नाटक, महाराष्ट्र और आंध्रप्रदेश में आज भी व्याप्त है। अभी हाल ही में 13 फरवरी, 2014 को केरल में देवदासी के समर्पण की गतिविधियाँ हुई, जिसके उपरान्त केरल आधारित गैर-सरकारी संगठन एस.एल. फाउण्डेशन ने वर्ष 2014 में सर्वोच्च न्यायालय में जनहित याचिका दायर की, जिसका संज्ञान लेते हुए 12 फरवरी, 2016 को सर्वोच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों ने कलिफुल्ला और बॉब्दे की अदालत ने देवदासी-प्रथा का खंडन करते हुए इसे अमानवीय करार दिया है और धार्मिक आस्था की आड़ में हो रहे इस अनैतिक कार्य को बन्द किए जाने का निर्देश केन्द्र सरकार को जारी किया है। यहाँ पर यह प्रश्न बड़ा स्वाभाविक है कि–धार्मिक कर्मकाण्ड की आड़ में स्त्री-अस्मिता और गरिमा को आज भी खण्डित किया जा रहा है। यहाँ पर यह भी देखना जरूरी होगा कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश के पश्चात् राज्य सरकारें और केन्द्र सरकार धर्म के नाम पर हो रही इस कुप्रथा को कब तक पूर्ण रूप से समाप्त कर पाते हैं?

संदर्भ

1. कैथरिन व जोनाथन कैप, इन स्लेव्स ऑफ द गौड्स, थर्टी बैडफोर्ड स्क्वेयर, लन्दन, पुन: प्रकाशन मई 1929, पृष्ठ 124-125.
2. मनीपद्मा जेना, द लास्ट ऑफ देवदासीज, इन द टेलीग्राफ, कलकत्ता, जुलाई 31, 1993, पृष्ठ 5, 10, 11.
3. अब्बे जे. ए. डुबॉय, हिन्दू मैनर्स कस्टम्स एण्ड सेरेमनिज, रूप एण्ड क., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993, पृष्ठ 9.
4. तथैव, पृष्ठ 350-351.
5. फ्रांसिस बर्नियर, ट्रेवल्स इन मुगल इम्पायर, एस. चांद एण्ड कं., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1891.
6. अब्बे जे. ए. डुबॉय, हिन्दू मैनर्स: कस्टम्स एण्ड सेरेमनिज, रूप एण्ड क., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993, पृष्ठ 662.
7. रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर, कलकत्ता: द कल्चर एण्ड हेरिटेज ऑफ इण्डिया, अंक-2, प्रथम संस्करण 1937, पृष्ठ 600.
8. *तथैव,* पृष्ठ 600.
9. प्रो. गिलबर्ट स्लैटर, द ड्रैविडियन एलिमेन्ट इन इण्डियन कल्चर, एस.एस. पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, प्रथम संस्करण 1924, प्रथम भारतीय प्रकाशन 1976, पृष्ठ 100.
10. सेन्सस ऑफ इंडिया 1921, अंक-1, इंडिया पार्ट-2, टेबल्स, पृष्ठ 40-41.
11. तथैव, पृष्ठ 42-43.
12. डब्ल्यू.जे. विल्किन्सॉ, मॉडर्न हिन्दूष, कलकत्ता, 1887, पृष्ठ 189.
13. प्रो. गिलबर्ट स्लैटर, द ड्रैविडियन एलिमेन्ट इन इण्डियन कल्चर, एस.एस. पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, प्रथम संस्करण 1924, प्रथम भारतीय प्रकाशन 1976, पृष्ठ 100.
14. अब्बे जे.ए. डुबॉय, हिन्दू मैनर्स, कस्टम्स एण्ड सेरेमनिज, रूप एण्ड क., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993, पृष्ठ 671-72.
15. *तथैव,* पृष्ठ 661.
16. अनुसूचित जाति आयुक्त का 28वाँ प्रतिवेदन, भारत सरकार, 1986-87.
17. पॉलो फ्रायरे, पेडागॉगी ऑफ द ऑप्रेस्ट, पेन्गुइन बुक्स, 1990, पृष्ठ 21.
18. अनुसूचित जाति एवं जनजाति के आयुक्त का अट्ठाइसवाँ प्रतिवेदन, 1986, 87, पृष्ठ 235
19. एम. शामाराव, मराठा संस्कृति, 1936, पृष्ठ 70-71.
20. अब्बे जे. ए. डुबॉय, हिन्दू मैनर्स, कस्टम्स एण्ड सेरेमनिज, रूप एण्ड क., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993, पृष्ठ 10.

Footnote

1. जिनका इतिहास नहीं लिखा जाता वे राजनीतिक और सामाजिक स्तर पर हाशिये पर होते हैं। अछूत ऐसे ही वंचितों में से एक हैं।
2. बिपिन चन्द्रा, 1984 और 1989.

देह के दलदल से मन की मरुभूमि तक : एक हिजड़ा जीवन-कथा

पल्लवी प्रियदर्शिनी

शोधछात्रा, प्रौढ़ शिक्षा विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (मध्य प्रदेश)

*2*यह आलेख तमिल **ट्रांसवूमन** (पुरुष के रूप में जन्म, पर स्त्री की तरह अनुभूति वाला/वाली) **ए. रेवती** की आत्मकथा **'द ट्रूथ एबाउट मी : ए हिजरा लाइफ स्टोरी'** के विशेष संदर्भ में लिखा गया है, जो न केवल जैविक और सांस्त्रतिक तौर पर **ट्रांसजेंडरों** (जिन्हें आमतौर पर 'हिजड़ा' शब्द की परिधि में समेटा जाता है अथवा 'हिजड़ा' के नाम से जाना जाता है) के बनने की दास्ताँ बयाँ करती है, बल्कि उसका गहरा समाजशास्त्रीय विश्लेषण भी उपलब्ध कराती है। एक ट्रांसजेण्डर के अनुभव के रास्ते यह ट्रांसजेण्डर-समुदाय, बल्कि यों कहें कि लैंगिक विस्त्रतियों के शिकार समस्त जनों (अर्थात् **थर्ड ज़ेण्डर** या **तीसरे लिंग**) की ही कथा कहने लगती है। यह पुस्तक 'पेंगुइन बुक्स लिमिटेड' के द्वारा 2010 ई. में अंग्रेज़ी में प्रकाशित हुई थी, जिसके किंडिल संस्करण को प्रस्तुत अध्येत्री ने अपने आलेख के लिए प्रयुक्त किया है। सन्दर्भ के लिए पुस्तक के उद्धरणों के हिन्दी-रूपान्तर (जो अध्येत्री द्वारा स्वयं किये गये हैं) ही इस आलेख में शामिल किये गये है। इसे रेवती ने मूलत: तमिल में लिखा था, जिस का अंग्रेज़ी अनुवाद **वी. गीता** ने किया था और अनूदित रूप में ही वह सब से पहले छपी थी। बाद में, रेवती ने इसे मूल तमिल में भी प्रकाशित कराया, 'वेल्लाई मोझी' के नाम से।

तमिलनाडु के नमक्कल ज़िले में जनमी रेवती जब पांचवी कक्षा में थीं, तब उन्हें खुद में कुछ लैंगिक बदलाव महसूस हुए, जिससे वे असहज हो जाती थीं और उनके भीतर उससे जुड़ी प्रतिक्रियाएँ उठने लगती थी। उस पर उन्हें लोगों के ताने सुनने पड़ते थे। उसे लेकर क्या पाठशाला, क्या पास-पड़ोस ... . हर जगह उन्हें अपमान झेलना पड़ता था। यही नहीं, माता-पिता और भाई की ओर से भी उन्हें काफी परेशानियां उठानी पड़ीं। उस पर, एक समय के बाद उन्होंने घर-परिवार छोड़ दिया और कभी दिल्ली तो कभी मुंबई में रहीं। इसके बाद, 1999 ई. में वे बेंगलुरु में 'संगम ऑर्गेनाइज़ेशन' से जुड़ गयीं। वहाँ के पुस्तकालय में उन्होंने बहुत सारी किताबें पढ़ीं, जिनमें ट्रांसजेंडर लोगों की वेदना का सजीव चित्रण था, पर वे प्राय: अंग्रेज़ी में थीं और वहां उन्हें ऐसी कोई किताब नहीं मिली, जो उस दर्द को भारतीय परिख्रश्य में विस्तार देती हो। उसी अनुभव ने रेवती को इस विषय में लेखन की ओर प्रेरित किया। रेवती ने अपनी पहली किताब 'उनरवम उरुवमम' (2004 ई.) लिखी थी, जो किसी ट्रांसवूमन पर किसी ट्रांसवूमन द्वारा लिखी गई पहली किताब है। उस किताब से ट्रांसवूमन की ज़िंदगी को लेकर एक चर्चा और विचार-विमर्श का सिलसिला चल पड़ा। उसका 'पेंगुइन' से अंग्रेज़ी अनुवाद प्रकाशित हुआ और उसके बाद वहीं से आयी उनकी उक्त बहुचर्चित आत्मकथा।

प्रस्तुत आलेख एक **ट्रांसजेंडर** या **हिजड़ा** या **तीसरे लिंग** के जीवन और उसकी मनोव्यथाओं पर केन्द्रित है, जो समय-समय पर उसकी शारीरिक संरचना से भी प्रभावित होती रहती हैं। यह ट्रांसजेंडरों की सामाजिक चिंताओं की बात कहता है और उनके आत्माभिमान की भी, विशेषकर उनके प्रति परिवार व समाज के ख़ष्टिकोण के संदर्भ में। किसी जैविक घटनाक्रम के चलते, भ्रूण में लैंगिक विस्त्रति आने से किसी शिशु का ट्रांसजेंडर या हिजड़ा के रूप में जन्म होता है, यह जीवविज्ञान की एक सच्चाई है। पर, किसी ट्रांसजेण्डर का जीवन इस जीववैज्ञानिक सच्चाई से उतना निर्धारित नहीं होता, जितना सामाजिक कारणों से। किसी परिवार में जनमे शिशु को समाज एक विशिष्ट लैंगिक पहचान देता है और उसी पहचान से उसके भविष्य और व्यक्तित्व का निर्धारण होता है। वस्तुत: सामाजिक वंचनाओं से ही, इस तरह के शिशु का व्यक्तित्व असामान्य बन जाता है और पहचान के संकट से जूझता उसका जीवन, एक त्रासद कथा। समाज के हाशिये पर पड़े वर्गों पर आधुनिक बुद्धि के बढ़ते फोकस के साथ, ट्रांसजेंडर धीरे-धीरे सामाजिक मुख्यधारा में आ तो रहे हैं, परंतु आज भी उनकी जीवन-यात्रा वेदना और संघर्ष के अन्तहीन सिलसिले के रूप में ही दिखाई देती है। कुल मिलाकर, यह आलेख एक भ्रूण के ट्रांसजेंडर के रूप में जनमने और सामाजिक-सांस्त्रतिक धरातल पर उसके ट्रांसजेण्डर या हिजड़ा के रूप में ढलने की यातनामय यात्रा का विश्लेषण करता है, जिसका अर्थ है पहचान के संकट से पहचान की तलाश की ओर यात्रा।

जैसा कि **सेम्युअल पी. हंटिंगटन** ने प्रतिपादित किया है, द्विविभाजन (Bifurcation) सभ्यता का अलिखित नियम है। यह देखा गया कि कोई समाज जितना अधिक सभ्य होता है, वह उतना ही अधिक विभाजित होता है।[1] आमतौर पर कोई समाज दो दो भागों में बांट दिया जाता है - मुख्य धारा के लोग और हाशिये के लोग। हाशिये पर पड़े लोग अपने बहुत सारे सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और कानूनी अधिकारों से वंचित रहते हैं। समाज में मनुष्यों की देह, बुद्धि और आत्मा को बंदी बनाने के लिए, लैंगिक विभाजन के उपकरणों का उपयोग हिंसा का सहारा लेते हुए बड़ी धूर्तता के साथ किया जाता रहा

है। समकालीन साहित्य-लेखन में हाशियाकरण की संकल्पना नई है। यह साहित्य के अध्ययन में समाज के हाशिये पर पड़े वर्गों की आवाजें सुनने पर जोर देती है।

अनंतकाल से समाज को व्यक्तियों के जननांगों के आकार और लैंगिक व्यवहार के आधार पर दो भागों में विभाजित किया जाता रहा है - पुरुष और स्त्री। समाज यह मानता है कि पुरुष, प्रधान लिंग है और स्त्रियां, कमजोर और उन पर निर्भर हैं। वैदिक साहित्य और तमाम स्कूली पाठ्यचर्या भी लैंगिक विभाजन की इसी संकल्पना पर आधारित हैं। लोगों पर अपना वर्चस्व बनाए रखने की इच्छा से प्रेरित और संचालित होकर समाज के कुछ लोग या समूह-विशेष लिंगों के बीच के जीववैज्ञानिक अंतरों की भी पूरी तरह उपेक्षा करता है।[2] इसके कारण स्त्रियां हाशिये पर पड़ा वर्ग बन जाती हैं और उन्हें कमजोर (अबला) कहा और समझा जाता है। समाज की यात्रा यहीं तक नहीं रुकती। वर्चस्ववादी प्रवृत्ति के मोह में वह एक लिंग या इतर-लिंग को तो पूरी तरह भुला ही देता है, जो लैंगिक विख्रति का परिणाम होता है। ऐसे लोगों को ही आमतौर पर 'हिजड़ा' का नाम दिया गया है। [3]

जिस दिन से कोई बच्चा मनुष्यों को पहचानना सीखता है, उसी दिन से समाज उसे यह सिखाना प्रारंभ कर देता है कि दुनिया में दो लिंग होते हैं - पुरुष और स्त्री। साहित्य इन दोनों लिंगों के व्यक्तियों की सुंदरता के वर्णनों से भरा पड़ा है और उस लिंग को, जो अपनी पहचान की तलाश में इन दोनों के बीच झूलता रहता है, भुला दिया जाता है।

किसी भाषा में इस लिंग के व्यक्तियों के लिए सर्वनाम नहीं है। अंग्रेजी में अजीवित पदार्थों और जानवरों के लिए 'इट' सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है, परंतु इस लिंग के व्यक्तियों के लिए कोई विशिष्ट सर्वनाम नहीं है। भारतीय समाज में स्त्रियों को सामूहिक रूप से 'आधी आबादी' कहा जाता है। आधी आबादी.....शब्द अपने-आप में बहुत घातक है, क्योंकि प्रकारांतर से यह परिभाषित कर देता है कि पुरुष और स्त्री मिल कर पूरी आबादी हैं। इस अवधारणा में तीसरे लिंग की जगह कहाँ है? स्त्री तो कम से कम हाशिये पर भी है, भले वंचित-पीड़ित है, पर उसका अस्तित्व तो स्वीख्रत है। लेकिन, उक्त तीसरे लिंग को तो पूरी तरह अख्रश्य बना कर रख दिया गया है। वह तो हाशिये पर भी नहीं हैं। समस्त जेंडर-विमर्श दो लिंगों में ही विन्यस्त है। स्त्री को तो भाषा, संस्ख्रति, समाज या हर तरह के विमर्श में थोड़ी बहुत जगह दी भी जाती रही है। लेकिन, जिसके जन्म पर स्वयं चिकित्सक या उसकी माता भी कोई नाम नहीं दे पाती, उसकी जगह कहाँ है? बच्चे के जन्म के तुरंत बाद सभी पूछते हैं कि 'लड़का हुआ या लड़की?' इसके अलावा, भी किसी का जन्म हो सकता है, इसकी परिकल्पना भी नहीं होती। आत्मकथाकार ए.रेवती को हम लेखक कहें या लेखिका? उनके लिए 'करता है' लिखें या 'करती है'? - यह दुविधा इस आलेख में भी बराबर मौजूद है।

वह यात्रा, जो पहचान के संकट से शुरू होती है और पहचान की तलाश की ओर बढ़ती है, उसका अत्यंत सुंदर वर्णन ए. रेवती, जो स्वयं एक ट्रांसजेंडर हैं, ने अपनी आत्मकथा **'द ट्रूथ एबाउट मी : ए हिजड़ा लाइफ स्टोरी'** में किया है।

मैं एक ऐसी व्यक्ति हूं जिसे हाशिये पर इसलिए धकेल दिया गया, क्योंकि मैं पुरुष के रूप में जनमा/मी था/थी और स्त्री का जीवन जीना चाहता/ती था/थी। [4]

किसी परिवार (जो कि समाज का लघु रूप होता है) में जन्म लेने वाला ऐसा बच्चा **जेंडर डिस्फोरिया**[5] का शिकार बन जाता है। पुरुष और महिला पहचानों के बीच झूलता हुआ वह सामाजिक ख्रष्टि से वंचित और अकेलेपन से पीड़ित हो जाता है। वह भावनात्मक रूप से रूग्ण हो जाता है और उसे यह समझ नहीं आता कि इसमें उसकी क्या गलती है। ऐसे बच्चे का एकमात्र अपराध यह होता है कि वह एक ऐसे समाज में लैंगिक विख्रति का शिकार होता है, जो उसे समझता ही नहीं। इसे ए. रेवती की ज़ुबानी सुनें–

जैसे ही मैं स्कूल से घर आता/ती, मैं अपनी बहन की लंबी स्कर्ट और ब्लाउज पहन लेता/ती और अपने सिर पर एक तौलिया बांधकर उसका सिरा पीठ पर चोटी की तरह लटका लेता/ती था/थी। उसके बाद मैं एक शमह्मली दुल्हन की तरह नीचे देखते हुए धीरे-धीरे चलता/ती था/थी और सब लोग खूब हंसते थे। किसी ने उस समय इस चीज को गंभीरता से नहीं लिया क्योंकि तब मैं बहुत छोटा था/थी। उन्होंने सोचा कि उम्र बढ़ने के साथ मैं इससे उबर जाऊंगा/गी। उन्होंने मुझे रोका नहीं। परंतु स्कूल में अन्य लड़के और स्कूल के बाहर महिलाएं और पुरुष मुझे 'ए, नंबर 9', 'लड़की जैसा लड़का' और 'लड़की' कहकर पुकारते थे। कुछ लोग मुझे चिढ़ाते थे और कहते थे कि 'क्या तुम लड़के नहीं हो? तुम लड़कियों जैसे क्यों चलते हो? तुम लड़कियों के कपड़े क्यों पहनते हो?' मैं समझ चुका/की था/थी कि मैं वैसा ही था/थी और मै वैसा ही बनना चाहता/ती था/थी। [6]

पौराणिक बिवासों के अनुसार, ऐसे बच्चे या तो परिवार के लिए अभिशाप माने जाते हैं या ईश्वर के प्रतिनिधि माने जाते हैं, जिसे कुछ विशेष शक्तियां प्राप्त होती हैं। उसे **'हिजड़ा'** कहा जाता है। सारी वैज्ञानिक प्रगति और लोकतांत्रिक समानता के शोर के बावजूद, समाज की मानसिकता में कोई परिवर्तन नहीं आया है और लैंगिक विख्रति के शिकार सभी व्यक्तियों को एक ही श्रेणी में रखा जाता है- **'हिजड़ा'।** यह लैंगिक विख्रति कई कारणों से होती है और इसके कई स्वरूप होते हैं। इनमें क्रोमोजोम की असामान्यता से लेकर हार्मोनों के असंतुलन तक कई तत्त्व शामिल रहते हैं।

सेरीना नन्दा ने अपनी विख्यात पुस्तक **'नाइदर मेन नॉर वूमेन : द हिजराज़ ऑफ इण्डिया'** में भारतीय समाज में हिजड़ों के साथ आये दिन किये जा रहे दुर्व्यवहारों का चित्रण इन शब्दों में किया है लिखा है–

भारतीय पौराणिकी में लैंगिक ख्रष्टि से उभयभावी व्यक्तियों अर्थात हिजड़ों का एक ओर मजाक बनाया जाता है तो दूसरी ओर लोग उनसे भयभीत भी रहते हैं। सार्वजनिक स्थलों पर उनके साथ छेड़छाड़ बहुत आम है। जब कभी उन्हें 'कोरिका' भी कहा जाता है। (कोरिका एक पुराना सिक्का था, जिसके बीच में एक छेद हुआ करता था और जो अब प्रचलन में नहीं है। अब इस शब्द का अर्थ है एक खोखला ढांचा अर्थात कोई ऐसी चीज जो किसी काम की नहीं है।) हिजड़ों को चिढ़ाने वाले अक्सर छोटे लड़के या किशोर वय के बालक होते हैं। कुछ हिजड़े इस तरह की छेड़छाड़ और टिप्पणियों को नजरअंदाज

करते हैं तो कुछ गुस्से में आकर गालियों की बौछार शुरू कर देते हैं। वे गालियां देने के लिए कुख्यात हैं। मधु नामक एक हिजड़ा, जो दिखने में अत्यंत मैला-कुचैला और अशोभनीय है, अपमानजनक टिप्पणियों और उनपर उसकी क्रोधपूर्ण प्रतिक्रिया का उपयोग लोगों को शिक्षित करने के लिए करता है। [7]

प्रस्तुत अध्येत्री ट्रांसजेण्डर ए. रेवती की उक्त आत्मकथा के इर्द-गिर्द जब लैंगिक ख्रष्टि से कुछ अलगाव रखने वाले लोगों के समुदाय की पड़ताल करने की ओर उन्मुख हुई, तो उस के मन में कई तरह के प्रश्न उभरे। उसने यह पाया कि साहित्य, फिल्में, कला और मीडिया-सभी में 'पुरुष' और 'महिला' की उन्हीं पुरानी संकल्पनाओं का बोलबाला है, जिस के तहत पूरी दुनिया को इन्हीं दो हिस्सों में विभक्त कर के रखा गया है। अगर कभी तीसरे लिंग की बात की भी जाती है, तो उन्हें भी इन दोनों लिंगों में से एक से जोड़ा जाता है।

ए.रेवती ने समाज में हिजड़ों के अवमूल्यन पर लिखा है–

भारतीय समाज में हिजड़ों का सबसे महत्वपूर्ण और जाना-माना पारंपरिक कार्य है उस घर के सामने नाच-गाना करना जहां किसी लड़के ने जन्म लिया हो। [8]

कहावत है कि 'जाके पांव न फटी बिवाई वो क्या जाने पीर पराई।' यानी, किसी दु:ख का वर्णन उस व्यक्ति से बेहतर कोई नहीं कर सकता जो उस दु:ख से गुजरा हो। इसलिए अध्येत्री ने अपने इस आलेख में एक ट्रांसजेंडर के खुद के जीवन के वर्णन को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। ए. रेवती को पुरुष कहा जाता था, जबकि वह अपने मन और आत्मा से महिला थी। वह समाज के उस हाशियाग्रस्त तबके, जिसे तीसरा लिंग कहा जाता है, का प्रतिनिधित्व करती थी। प्रस्तुत अध्येत्री निम्नांकित उद्देश्य लेकर इस अध्ययन में प्रवृत्त हुई–

1. ट्रांसजेंडरों के जन्म लेने के कारणों का पता लगाना। 2. पितृसत्तात्मकता के उस छिपे हुए चेहरे का पर्दाफाश करना जो किसी बच्चे को हिजड़ा बनने पर मजबूर करता है। 3. ट्रांसजेंडरों के व्यक्तित्व का मनोविश्लेषण करना, विशेषकर समाज में उनके अस्तित्व के परिपेक्ष्य में। 4. ए. रेवती की आत्मकथा के वास्तविक सौन्दर्य को यथासम्भव सामने लाना।

यह अध्ययन मूलत: संबंधित साहित्य के अध्ययन और समीक्षा पर आधारित है, विशेषकर एक ट्रांसजेंडर की उक्त आत्मकथा पर। साहित्य की समीक्षा और उसके अन्तर्वस्तु-विश्लेषण के बाद, ट्रांसजेंडरों के लिए बनाई गई विभिन्न नीतियों और कानूनों का भी यथासम्भव अध्ययन किया गया और मनोवैज्ञानिक, समाजवैज्ञानिक व शारीरिक सन्दर्भों में उपलब्ध सामग्रियों का विश्लेषण किया गया।

पीड़ित व्यक्ति के अतिरिक्त कोई भी अपनी जीवन यात्रा के सौन्दर्य का निरूपण नहीं कर सकता। यह बात ए. रेवती की आत्मकथा के बारे में भी सही है। उसे उसके माता-पिता ने नाम दिया था - दुराईस्वामी।

मेरे जीवन का सच मेरे रोजाना के अनुभव पर आधारित है जिसमें भेदभाव, उपहास और दर्द शामिल हैं। साथ ही यह मेरी लड़ने की क्षमता और मेरी खशियों के बारे में भी है।[9]

यह आत्मकथा एक सामान्य भारतीय परिवार में पैदा हुए एक बच्चे की कहानी है जिसे सबसे छोटा होने के नाते बहुत लाड़-प्यार से पाला गया। चूंकि उसका जन्म पुरुष जननांगों के साथ हुआ था इसलिए उसे एक मर्दाना नाम 'दुराईस्वामी' दिया गया। इससे यह साबित होता है कि पूरी दुनिया में जब भी कोई बच्चा जन्म लेता है तो वह केवल एक बच्चा होता है, किसी विशिष्ट लिंग का नहीं।

मेरे माता-पिता के पांच बच्चे थे। मेरे तीन भाई और एक बहन थी। मेरे माता-पिता ने मुझे दुराईस्वामी का नाम दिया और चूंकि मैं उनकी सबसे छोटी संतान था/थी, इसलिए मुझे ढेर सारा प्यार मिला। मेरे माता-पिता मेरा बहुत ध्यान रखते थे।[10]

लेखक/लेखिका की जीवन-यात्रा के पहले हिस्से के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि सब कुछ तब तक ठीक-ठाक चलता रहता है जब तक कोई व्यक्ति समाज (परिवार जिसका एक लघु रूप है) के स्थापित मानदंडों और नैतिक सिद्धांतों और विचारों के अनुरूप जीवन जीता रहता है। ज्यों ही कोई व्यक्ति इन सुस्थापित नियमों का उल्लंघन करता है उसके प्रति उसके आसपास के लोगों का व्यवहार बदल जाता है। बच्चों के वास्तविक मनोभावों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता और उन्हें बचपना मानकर नजरअंदाज कर दिया जाता है। बच्चा अपने मन की बात कह नहीं पाता और उसके मन में अनुत्तरित प्रश्नों का ढेर लग जाता है। जब उसे अपने प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं मिलता तो वह व्यथित महसूस करने लगता है। वह अपने प्रश्नों के उत्तर स्वयं खोजने का प्रयास करता है और इस प्रयास में तथ्यों की गलत व्याख्या कर पथभ्रष्ट हो जाता है। हम इसे ए.रेवती की जुबानी सुनते हैं -

क्या तुम लड़के नहीं हो? तुम लड़कियों जैसे क्यों चलते हो? तुम लड़कियों के कपड़े क्यों पहनते हो? - मैं समझ चुका था कि मैं वैसा ही था/थी और मै वैसा ही बनना चाहता/ती था/थी।[11]

वह मेरे गालों में चिकोटी काटता था, मुझे चूमता था और मेरा आलिंगन करता था। जब वह ऐसा करता था तब मुझे बहुत अच्छा लगता था।[12]

मुझे स्कूल में अक्सर लड़कियों की तरह व्यवहार करने और महिलाओं वाले काम करने के कारण चिढाया जाता था। सड़कों पर भी लोग मेरे साथ धौंस-धपट करते थे।[13]

जेंडर डिस्फोरिया की शुरुआत

कश्मकश तब शुरू होती है जब समाज द्वारा किसी व्यक्ति के लिए नियत किए गए लिंग और उसके असली लिंग के बीच संघर्ष होता है। किशोर वय का वह व्यक्ति, अपनी आंतरिक भावनाओं, अपने अंदर आ रहे परिवर्तनों और जो चीजें उसे आकर्षित करती हैं, उनके बारे में अपनी जिज्ञासाओं को शांत करने का प्रयास करता है। परंतु वह जिन लोगों से भी प्रश्न पूछता है, वे उसकी बात नहीं सुनते। वे स्थापित नियमों का उल्लंघन करने वाले उसके विचारों

पर उसे फटकारते हैं और उसे हतोत्साहित करते हैं। समाज केवल ऐसे व्यक्तियों को सामान्य जीवन जीने देता है, जो उनके लिए निर्धारित लिंग के अनुरूप व्यवहार करते हैं। अन्य लोगों को नीची निगाहों से देखा जाता है। दुराईस्वामी के परिवार में भी सभी लोग अपने-अपने काम में व्यस्त रहते थे। किसी के पास उसके प्रश्नों का जवाब देने का समय नहीं था और ना ही एक बड़े होते किशोर की 'फालतू' भावनाओं को समझने का। यद्यपि उसने पुरुष जननांगों के साथ जन्म लिया था तथापि वह खुद को एक महिला की तरह महसूस करता/ती था/ थी। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि वह अपना अधिकांश समय अपनी बहन के साथ बिताता/ती था/थी। अपने मन में अनवरत उभर रहे प्रश्नों का उत्तर न पाने और अपने आंतरिक द्वंद्व के कारण वह जेंडर डिस्फोरिया का शिकार बन गया/यी। जब भी वह महिलाओं जैसे कपड़े पहनता/ती था/थी, उसे भला-बुरा कहा जाता था। इससे उसकी पहचान की समस्या और गहरी हो गई। वह असुरक्षित महसूस करने लगा/गी और पहचान के संकट ने उसे घेर लिया। इसी कारण वह अपनी पहचान की तलाश में निकल पड़ा/ड़ी। ए. रेवती की ज़ुबानी सुनें -

मुझे नहीं पता था कि मैं लड़कियों की तरह व्यवहार करता/ती था/थी। मुझे तो अपना व्यवहार एकदम सामान्य लगता था। मुझे नहीं पता था कि मैं लड़के की तरह कैसे बनूं। यह उसी तरह था जैसे खाना खाना। जिस तरह मैं किसी के कहने पर खाना खाना बंद नहीं कर दूंगा/गी, उसी तरह मैं किसी के कहने पर लड़की होना बंद नहीं कर सकता/ती था/थी।[14]

मैं यह अपेक्षा कैसे कर सकता था कि वे यह समझते कि मैं किस तरह की परेशानियों से गुजर रहा/ही हूं। मैंने अपनी भावनाओं और अपनी कश्मकश को एक पोटली में बांधकर अलग पटक दिया।[15]

मैं उनसे प्यार करता/ती था/थी। यह मुझे बहुत व्याकुल करता था - मैं लड़का था/थी और फिर भी मुझे ऐसा लगता था कि मैं अन्य लड़कों से प्यार कर सकता/ती था/थी। क्या यह सही था यह गलत? मैं अपनी परेशानियों के बारे में किसी से बात नहीं कर सकता/ती था/थी। न मेरे भाइयों से और न मेरे माता-पिता से और ना ही मैं अपने मन को भटकने से रोक सकता/ती था/थी। मैं पगला सा गया/यी था/थी।[16]

मेरे पिता ट्रक से अपनी यात्राओं में व्यस्त रहते थे और उनके पास मेरे लिए समय नहीं था। मेरी मां भी व्यस्त रहती थीं। उन्हें बकरियों और गायों की देखभाल करनी होती थी और खेतों में काम करना होता था। मेरे बारे में सोचने के लिए एक सीमा से ज्यादा किसी के पास वक्त नहीं था। केवल मेरी बहन मेरे साथ समय बिताती थी और हम दोनों अक्सर आपस में लड़ते थे।[17]

दुनिया को ऐसा लगता था कि मैं महिलाओं जैसे कपड़े पहन रहा/ही हूं और उनके जैसा व्यवहार कर रहा/ही हूं। परंतु अंदर से मुझे ऐसा लगता था कि मैं महिला ही हूं। [18]

मैं उनकी तरफ आर्कषण महसूस करता था, परंतु इसके साथ ही मुझे आश्चर्य होता था कि पुरुष होने के कारण क्या मुझे महिलाओं की ओर आकर्षित नहीं होना चाहिए? मैं पुरुषों से प्रेम क्यों करता/ती था/थी? क्या मैं पागल था/थी? क्या मैं दुनिया में एक ही ऐसा व्यक्ति था/थी, जो ऐसा महसूस करता/ती था/थी? या दुनिया में अन्य जगहों पर मेरे जैसे और लोग भी थे। [19]

मैं इन प्रश्नों और संदेहों के साथ जीता/ती रहा/ही। वे मेरे मन की गहराइयों में दबे रहे। दिन बीतते गए और मैं सोचता/ती रहा/ही कि क्या कभी मुझे इन प्रश्नों के उत्तर मिलेंगे और यदि हां, तो कब। क्या कभी मुझे कोई ऐसा व्यक्ति मिलेगा, जो मेरी भावनाओं को समझ सकेगा। [20]

मेरे मन में मेरे महिला होने का भाव दबाते न दबता था और वह मुझे हमेशा परेशान करते रहता था। मुझे ऐसा लगता था कि मैं पुरुष के शरीर में फंसी एक महिला हूं। पर ऐसा कैसे हो सकता था? क्या दुनिया मुझे इस रूप में स्वीकार करेगी। [21]

जब भी मैं पुरुष की तरह व्यवहार करता था तो मुझे ऐसा लगता था कि मैंने अपना भेष बदल लिया है और अपने असली 'स्व' को कहीं पीछे छोड़ दिया है। [22]

पहचान की तलाश का सफ़र

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी हैं और उदासी और अकेलापन उसे नहीं भाता। जेंडर डिस्फोरिक व्यक्तित्व वाला व्यक्ति अपने प्रश्नों के उत्तर स्वयं ढूंढने का प्रयास करता है। वह अपने जैसे लोगों को ढूंढना चाहता है। जब उसे अपने जैसी वेशभूषा, अपने जैसी भावनाओं और अपने जैसी इच्छाओं वाले लोग मिल जाते हैं तो उसे अपने परिवार से बाहर एक नया परिवार मिल जाता है। स्वतंत्रता सभी का जन्मसिद्ध अधिकार है और इसमें तीसरे लिंग के लोग भी शामिल हैं। अपने जैसे लोगों के बीच वह अपनी असली भावनाओं को बिना किसी संकोच या डर के व्यक्त कर सकता है। उसे कोई हतोत्साहित नहीं करता। इसके विपरीत, उसका परिवार और उसका समाज उसकी असली भावनाओं, इच्छाओं और आंकाक्षाओं को खारिज करता है।

असली विडंबना यही है कि माता-पिता भी अपने बच्चे के आंतरिक द्वंद्व से अनजान रहते हैं। वे उस पर वह लादना चाहते हैं जिसे वे सही समझते हैं। लगातार अपमानित किए जाने से तंग आकर तीसरे लिंग के लोग अपने परिवार का बहिकार कर देते हैं और घर से बाहर निकल जाते हैं। कोई जन्म से ट्रांसजेंडर नहीं होता। समाज उसे ऐसा बनाता है। ए. रेवती की ज़ुबानी सुनें -

कुराती की वेशभूषा में मैं अपनी उन सभी स्त्रियोचित भावनाओं को प्रकट कर सकता/ती था/थी, जिन्हें मुझे पहले दबाना होता था। और इसलिए अगले कई दिनों तक मैं बहुत प्रसन्नता का अनुभव करते रहा/ही। [23]

मैं पहाड़ी पर चढ़कर अपने नए मित्रों के साथ समय बिताता/ती था/थी। हम लोग बातें करते थे और नाचते-गाते थे। हम में से सबसे बड़ा-शायद वह तीस साल का होगा - भरतनाटङम जानता था और उसने मुझे थोड़ा-बहुत नृत्य सिखाया। उससे ही मुझे पता चला कि हमारे जैसे और लोग भी हैं जो साड़ियां पहनते हैं और जिन्होंने अपना 'आपरेशन' करवा लिया है। वे इरोड में रहते हैं। [24]

कटु सत्य से मुठभेड़

हम जिस परिवार में जन्म लेते हैं वह अक्सर हमारे द्वारा अपनी भावनाओं को प्रकट करने और अपनी वैयक्तिकता के अनुरूप जीने को तिरस्कार की दृष्टि से देखता है। इसलिए हम अपने परिवार से दूर, खुली हवा में सांस लेना चाहते हैं। हमें अजनबियों से स्नेह मिलता है। इस कड़वे सच से दुराईस्वामी का सामना हुआ कि जो लोग हमारे सबसे नजदीक होते हैं, वे दरअसल हमसे हमारे सबसे दूरदराज के रिश्तेदारों से भी ज्यादा दूर होते हैं। हमें उनसे अपनी असली भावनाएं छुपानी होती हैं। वह अपने गुरु के पास चला/ली गया/यी और वहां उसे प्रेम और स्नेह मिला। गुरु ने दुराईस्वामी को उसकी असली स्त्रियोचित पहचान के अनुरूप नया नाम दिया – **रेवती**।

ए, रेवती की जुबानी सुनें –

बस में इस तरह का व्यवहार क्यों? मेकअप क्यों किया? देखो वे लोग हमारे बारे में बात कर रहे हैं। इसके जवाब में वे कहते थे – 'चुप रहो!' हम घर में तो वैसा कर नहीं पाते जैसा हम करना चाहते हैं। इस बस में कोई भी ऐसा नहीं है जो हमें जानता हो। ऐसी ही जगह पर हम, बिना हमारे घरवालों को कुछ भी पता चले, वह कर सकते हैं जो हम करना चाहते हैं अर्थात् महिला होने की हमारी इच्छा को प्रकट करना। [25]

उस रात मैं अपने गुरु की बगल में सोया/यी। उसके प्रेमपूर्ण आलिंगन से मुझे गहन संतोष का अनुभव हुआ। अपने घर में मैं हाफ पेंट पहनकर सोता/ती था/थी, पर उस रात मैं महिला की तरह सोया/यी। [26]

मुझे अपने गुरु को उसी तरह से संबोधित करना था जिस तरह मैं अपनी मां को संबोधित करता/ती था/थी – मुझे उसे 'अम्मा' कहना था। मेरी गुरु ने यह घोषणा की कि मैं उसकी लड़की हूं और मेरा नाम रेवती है और उसने मुझसे कहा कि मैं सभी बड़ों की पामपादुति करूं। [27]

ऐसे क्षणों में जब कभी मैं बहुत मायूस हो जाता/ती था/थी। मैं अपने से पूछता/ती था/थी कि लोग ऐसा व्यवहार क्यों करते हैं? हम अपनी रोजी-रोटी कमाने की आशा कैसे कर सकते हैं? भगवान ने हमें ऐसा बनाया है, मैं सोचता/ती और ऐसा कोई काम नहीं है जिसे हम अपना कह सकें। हमारे माता-पिता हमें नहीं समझते और दुनिया हमें वितृष्णा की ख़ष्टि से देखती है। [28]

एक बड़े झूठ का पर्दाफाश

तीसरे लिंग के लोग समाज के सबसे वंचित वर्ग हैं और उन्हें हमेशा संदेह की ख़ष्टि से देखा जाता है, उनका उपहास किया जाता है और उन्हें अपमानित करने की हर संभव कोशिश होती है। **आमतौर पर यह माना जाता है कि अगर किसी परिवार में लैंगिक दृष्टि से विकृत बच्चा होता है तो हिजड़ा समुदाय जबरदस्ती उस बच्चे को परिवार से छीनकर अपने समुदाय का सदस्य बना लेता है। यह आत्मकथा इस झूठ का पर्दाफाश करती है और इस तथ्य को रेखांकित करती है कि इस तरह के बच्चे स्वयं अपनी तरह के दूसरे लोगों की तरफ आकर्षित होते हैं क्योंकि समाज उन्हें स्वीकार नहीं करता।** दरअसल, दोषी समाज है ना कि यह हाशियाग्रस्त वर्ग। सच तो यह है कि तीसरे लिंग के लोग तथाकथित सभ्य समाज की तुलना में दूसरों की भावनाएं बेहतर ढंग से समझते हैं। ए. रेवती की जुबानी सुनें –

मेरे गुरु यह नहीं चाहते थे कि लोग यह सोचें कि उन्होंने एक लड़के को जबरदस्ती पकड़कर स्त्री बना दिया। [29]

मुख्यधारा के समाज द्वारा हाशिये पर धकेल दिए जाने और कानूनी ख़ष्टि से उनका अस्तित्व नकारे जाने के कारण उन्हें कोई अधिकार उपलब्ध नहीं होते और मजबूर होकर हिजड़ों को अपने समुदाय और अपनी संस्ख़ति से जुड़ना पड़ता है। हिजड़ा-समाज में ऊँच-नीच नहीं है। उनमें धार्मिक और जातिगत भेदभाव नहीं हैं। हिजड़े धनी और गरीब दोनों प्रकार के घरों से आते हैं। [30]

योग्यतम की उत्तरजीविता

तीसरे लिंग के व्यक्तियों के पास अपना जीवन चलाने के लिए मूलत: तीन ही काम उपलब्ध होते हैं – **भीख मांगना, बधाई देना या सेक्सवर्कर** के रूप में काम करना। सेक्सवर्कर के रूप में कोई व्यक्ति यौन-सुख पाने और पैसा कमाने के लिए काम करता है, परंतु इस काम को करने वाले तीसरे लिंग के लोगों को घोर अपमान और कष्ट से गुजरना होता है। उनकी भावनाओं को चोट पहुंचाई जाती है। समाज के सभ्य नागरिक मजा-मौज करने के लिए उनके पास जाते हैं और उनकी पहचान और व्यक्तित्व का मजाक उड़ाते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि तीसरे लिंग के लोग भी मनुष्य हैं। वे उन्हें वस्तु की तरह देखते हैं। इस चीज को ए. रेवती ने अपनी अत्यंत मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है–

हिन्दी क्षेत्र में हिजड़ों से केवल यही काम करने की उम्मीद की जाती है और कुछ नहीं। हम दुकानों में जा-जाकर पैसे मांगते हैं और बधाई इकठा करते हैं।[31]

हर दिन इस तरह की कई घटनाएं होती थीं और हम हमेशा डरे हुए रहते थे। मैं स्वयं को हमेशा इतना असुरक्षित और कमजोर अनुभव करता/ती था/थी कि सोने के लिए शराब मेरी जरूरत बन गई। [32] *मैं सेक्स वर्कर इसलिए नहीं बना/नी, क्योंकि मैं पैसा कमाना चाहता/ती था/थी, बल्कि इसलिए क्योंकि मैं अपनी यौन-भावनाओं को दबा नहीं पाता/ती था/थी। धीरे-धीरे मुझे यह समझ में आया कि जो राह मैंने चुनी थी, वह कितनी भयावह और हिंसा से भरी थी।*[33]

निर्वामा (नपुंसीकरण) की यातना

अपनी पहचान की तलाश की यात्रा में ट्रांसजेंडर चाहते हैं कि वे ऐसे वस्त्र पहने जो उनके लिए आरामदायक हों और साथ ही समाज द्वारा उन्हें दिए गए लिंग के अनुरूप भी। इसलिए वे निर्वामा अर्थात सर्जरी द्वारा जननांगों को हटाने की प्रक्रिया से गुजरते हैं ताकि वे अपने असली लिंग के अनुरूप महसूस

कर सकें। उनकी आत्मा के अपने असली शरीर में प्रवेश की इस प्रक्रिया की असहनीय वेदना और उसके साथ मिश्रित प्रसन्नता का वर्णन प्रस्तुत आत्मकथा में किया गया है।

मैं वही पहनना चाहता/ती था/थी जो महिलाएं पहनती हैं। परंतु महिलाओं के कपड़े पहनने और उनकी तरह जीवन जीने के बाद भी मुझे हमेशा लगता रहता था कि मैं एक पुरुष हूं। इसलिए जब नानी ने मुझे आपरेशन के लिए भेजा तो मुझे ऐसा लगा कि अब अंततः मेरे अंदर की स्त्री को उसके पुरुष शरीर से मुक्ति मिल जाएगी। मुझे उम्मीद नहीं थी कि यह इतनी जल्दी होगा और इसलिए मैं अत्यंत आनंदित था/थी।[34]

इस तरह के आपरेशनों के लिए यही स्थान था।[35]

वह चिल्लाई, "अम्मा मुझे बहुत जलन हो रही है। मुझे लगता है कि मैं मर जाऊंगी।[36]

इस तरह के ऑपरेशन के बाद सभ्य समाज का हर सदस्य पोटई के प्रति अमानवीय व्यवहार करता है। उन्हें कुछ खुशी तभी हासिल होती है जब वे अपनी तरह के लोगों से मिलते हैं जो उसी दर्द से गुजर चुके होते हैं और उन्हें सांत्वना देते हैं।[37]

तुम्हें पता है तुम्हारा किस तरह का ऑपरेशन हुआ है? मुंह बंद करो और चुपचाप दर्द को सहो। मैंने अपनी आंखें बंद कर लीं और अपने दांत भींच लिये। महिला बनने के लिए मुझे इस दर्द से गुजरना ही था।[38]

यह तो अच्छा हुआ कि हम को ट्रेन से उतरने को नहीं कहा गया। यद्यपि हमें बहुत दर्द हो रहा था तथापि अन्य पोटई के साथ होने से हम उसे सहन कर पा रहे थे। हम पोटई के लिए, चाहे हम कितने ही लोगों को जानते हों और हमारे पास कितनी ही चीजें हों, महत्वपूर्ण यह है कि हम किसी पोटई को जानते हैं या नहीं। एक पोटई ही दूसरे पोटई की भावनाओं, दर्द और वंचनाओं को समझ सकता/ती है।[39]

यह ठीक है कि ट्रांसज़ेण्डर ए. रेवती आज भारत की चर्चित हस्तियों में शुमार हैं और उन्होंने वह प्रतिष्ठा हासिल की है, जो इसके पहले तमिल-साहित्य में किसी ने नहीं प्राप्त की थी। (उल्लेखनीय है कि **'कोलंबिया विश्वविद्यालय'** के पुस्तकालय में उनका नाम माया एंगलो, टोनी मॉरिसन, मारमॉन सिल्को और शांजे जैसे मशहूर लेखकों के नाम के साथ लिखा गया है। इस के साथ, उन्होंने 2008 ई. में बनी तमिल फ़िल्म **'थेनवत्तु'** में एक ट्रांसजेण्डर का अभिनय कर एक अन्य इतिहास भी बनाया है।) पर, इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि ट्रांसज़ेण्डरों या तीसरे लिंग का जीवन उतना ही खुशहाल और रौशन हो गया है। आज भी ऐसे लोग गुमनामी के अंधेरे में ही डूब-उतरा रहे हैं।

यह सचमुच निराशाजनक है कि तीसरे लिंग पर जो कुछ थोड़ा-बहुत लिखा गया है या शोध हुआ है उसे या तो तीसरे लिंग के किसी व्यक्ति ने किया है या किसी समाजवैज्ञानिक शोधकर्ता ने। आम जन उस के प्रति व्यापक रूप से उदासीन रहा है। यथार्थ का यह हिस्सा दुनिया से छुपा हुआ है। पितृसत्तात्मक सोच से प्रभावित लेखकों का सौन्दर्यशास्त्र, दर्शन और तर्कशास्त्र केवल महिलाओं और पुरुषों तक सीमित रहता है। वस्तुतः तीसरे लिंग के व्यक्ति के 'स्व' को समझने के लिए हर सभ्य नागरिक को कम से कम एक दिन ऐसे व्यक्ति के रूप में जीवन जीना चाहिए।

इस आत्मकथा की विवेचना करते हुए प्रस्तुत अध्येत्री को कहीं ऐसा नहीं लगा कि ट्रांसजेंडर किसी भी तरह से असामान्य होते हैं। मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक और भावनात्मक परिप्रेक्ष्यों से ट्रांसजेंडर सामान्य मनुय जैसे ही होते हैं। फिर प्रश्न यह उठता है कि उन्हें हाशिये पर क्यों धकेल दिया गया है? उन्हें मुख्यधारा से बाहर रखने की रणनीति किसने बनाई है? कौन इसके लिए दोषी है? अध्ययन से यह जाहिर होता है कि अज्ञानी और पूर्वाग्रहग्रस्त समाज अपनी झूठी नैतिकता और खोखले विचारों के कारण तीसरे लिंग के व्यक्तियों का दमन करता है। जब भी रेवती ने अपने साथ हो रहे अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने की कोशिश की, उसे अपमानित किया गया और उसके साथ हिंसा की गई। अंततः जब उसके पास कोई रास्ता नहीं बचा तो उन्हें सेक्सवर्कर का काम फिर से शुरू करना पड़ा।

यद्यपि तीसरे लिंग के लिए नियम-कानून बनाए गए हैं परंतु उनमें से केवल मुठी भर को मनुष्य का दर्जा मिल सका है। यह स्पष्ट है कि नियम तो हैं परंतु उन्हें लागू नहीं किया जा रहा है। केवल कुछ एन.जी.आ. उनके लिए काम कर रहे हैं, परंतु वे भी धन की कमी और सहायता के अभाव में दम तोड़ रहे हैं।

अब समय आ गया है कि सभ्य समाज और बुद्धिजीवी अपने लैंगिक पूर्वग्रहों से मुक्त हों और तीसरे लिंग के सर्वथा उपेक्षित समूह का गहन नृजातीय अनुसन्धान (एथ्नोग्राफिक रिसर्च) करें और अपने निष्कर्षों को मुख्य धारा की चर्चा में लाएँ - सरकार और गैर-सरकारी संस्थाएँ मुख्य धारा में उन की प्रतिष्ठा के लिए उपयोगी नीतियाँ और कार्य-योजनाएँ बनाएँ तथा ईमानदारी से उन पर अमल करें। यदि यह समूह आज की महान् वैज्ञानिक प्रगति और लोकतंत्र के दावों के बीच भी हमारी आँखों से ओझल रह कर, इसी तरह वंचित, उत्पीड़ित और नारकीय जीवन जीने को अभिशप्त बना रहता है, तो 'सभ्यता' और 'विकास' के सारे दावे खोखले हैं।

संदर्भ सूची

1. सेम्युअल पी हंटिंगटन., क्लेश ऑफ सिविलाइजेशन्स ऐण्ड द रिमेकिंग ऑफ वर्ल्ड ऑर्डर, 1996, SIMON & SCHUSTER, Rockefeller Center, 1230Avenue of theAmericas, New York, NY 10020
2. **'सेक्स'** जैविक लिंग को कहते हैं और 'ज़ेण्डर' सामाज/संस्कृति द्वारा निर्धारित लिंग को। सेक्स-निर्धारण एक जीववैज्ञानिक प्रक्रिया है। इस पूरी प्रक्रिया में माता, पिता अथवा बच्चे का कोई वश नहीं होता है। स्त्री और पुरुष दोनों के 23-23 गुणसूत्र आपस में मिल कर भ्रूण का निर्माण करते हैं। स्त्री और पुरुष में जो 23 जोड़े गुणसूत्र (क्रोमोजोम) होते हैं, जिनमें से 23 वाँ जोड़ा सेक्स-क्रोमोजोम' कहलाता है। स्त्री में यह XX और पुरुष में ग्ल होता है। मैथुन-प्रक्रिया के चरम पर, पुरुष के शुक्राणु स्त्री के अंडाणु से मिलते हैं, जिससे युग्मनज (जायगोट) बनता है, जिसका विकास भ्रूण में होता है। युग्मनज बनने की क्रिया में जोड़े के गुणसूत्र

अलग होते हैं - स्त्री में X व X तथा पुरुष में X व Y के रूप में। फिर अन्तर्विनिमय द्वारा पुरुष और स्त्री के गुणसूत्र आपस में मिल जाते हैं। इस प्रकार भ्रूण का निर्माण होता है और उसके यौनांग विकसित होते हैं।

3. कभी-कभी उक्त प्रक्रिया में किसी एक का गुणसूत्र अलग नहीं हो पाता यानी जोड़े में ही रह जाता है और युग्मनज बनने के दौरान अपने यौन-साथी के गुणसूत्र से पूरी तरह से जुड़ जाता है अथवा दोनों के गुणसूत्र जोड़े में ही रहते हुए आपस में मिल जाते हैं (XXX; XXY; XXXY आदि रूपों में)। गर्भावस्था के दौरान कभी-कभी आनुवंशिक उत्परिवर्तन के कारण भी भ्रूण में विकृति आ जाती है। इन कारणों से जन्मे शिशु में हार्मोनल असंतुलन अथवा लैंगिक विख्रति आ जाती है। पर, उसमें सिवाय कामांगों (यौनांगों) के शेष सभी अंग सामान्य शिशु कि तरह ही होते हैं। इस जैविक प्रक्रिया के फलस्वरूप जनमे शिशु का सेक्स अलग अलग तरह से निर्मित होता है। जन्म के बाद उस शिशु को यह नहीं पता होता कि उसका सेक्स क्या है? जैसे जिस शिशु में ग्ग गुणसूत्र होते हैं उसके होर्मोन एवं यौनांग अलग होते हैं, उसी प्रकार ग्ल गुणसूत्र वाले बच्चे कि बनावट अलग होती है। इन दोनों कि तरह ही XXX] XXY] XXXY आदि कम या अधिक गुणसूत्र के साथ जनमे बच्चों के भी शारीरिक एवं हार्मोनल बनावट में अंतर होता है। सबसे अहम बात यह है कि इनमें से किसी शिशु को अपने सेक्स का जन्म के वक्त ज्ञान नहीं होता है। सभ्यता इन्हें यह ज्ञात करती है कि इनका लिंग क्या है? जैसे ही बच्चे का जन्म होता है, उसके यौनांग की बनावट देख कर चिकित्सक भी यह निर्धारित कर देते हैं कि लड़का (XY) हुआ है या लड़की (XX)। उसी बीच कहीं इन दोनों से इतर एक शिशु का जन्म होता है, जिसमें 46 से कम अथवा अधिक गुणसूत्र होने के कारण यौनांग अलग प्रकार के होते हैं। अब चिकित्सक को भी नहीं पता होता कि इस बच्चे को किस सामाजिक श्रेणी में रखा जाए। यहाँ से शुरू होती है इस तृतीय लिंग की त्रासद जीवन-यात्रा।

कई हजारों में से कुछ बच्चे एक ही सेक्स-क्रोमोजोम (45 X या 45 YZ) के साथ पैदा होते हैं और कुछ तीन या तीन से अधिक सेक्स क्रोमोजोम (47 XXX, 47 XYY या 47 XXY इत्यादि) के साथ। पहली श्रेणी के व्यक्तियों को 'सेक्स-मोनोसोमी' और दूसरी श्रेणी के व्यक्तियों को 'सेक्स-पोलीसोमी' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त, कुछ पुरुष वाई क्रोमोजोम के लिंग-निर्धारण करने वाले एक हिस्से के परिवर्तित हो जाने के कारण 46 ग्ग के रूप में पैदा होते हैं। इसी तरह कुछ महिलाएं ल क्रोमोजोम के उत्परिवर्तन के कारण 46 ग्ल के रूप में जन्म लेती हैं। स्पष्टत: केवल ग्ग और ग्ल क्रोमोजोम ही नहीं, वरन क्रोमोजोमों के कई संयोजन, हार्मोन-संतुलन और फीनोटिपिक भिन्नताएं भी व्यक्ति के लिंग का निर्धारण करती हैं।

4. ए.रेवती, द टुथ अबाउट मी : ए हिजरा लाइफ स्टोरी, पेंगुइन बुक्स लिमिटेड, किंडिल संस्करण (किंडिल लोकेशन्स, 40-41)
5. जेंडर डिस्फोरिया का अर्थ है - अपने लिंग और/या लैंगिक भूमिका के प्रति अप्रसन्नता का भाव। ट्रांसजेंडर का अर्थ है - किसी व्यक्ति का महिला और पुरुष के अतिरिक्त किसी अन्य लिंग के व्यक्ति के रूप में स्वयं को देखना।
6. ए.रेवती, द टुथ अबाउट मी : ए हिजरा लाइफ स्टोरी, पेंगुइन बुक्स लिमिटेड, किंडिल संस्करण (किंडिल लोकेशन्स, 82-88),
7. सेरीना नंदा, नाइदर मेन नॉर वूमेन : द हिजराज़ ऑफ इण्डिया, 1999, वाड्सवर्थ पब्लिशिंग कम्पनी, कनाडा
8. वही, 9
9. ए.रेवती, द टुथ अबाउट मी : ए हिजरा लाइफ स्टोरी, पेंगुइन बुक्स लिमिटेड, किंडिल संस्करण (किंडिल लोकेशन्स, 41-42)
10. वही (किंडिल लोकेशन्स, 65-66)
11. वही (किंडिल लोकेशन्स, 86-88)
12. वही (किंडिल लोकेशन्स, 89-90)
13. वही (किंडिल लोकेशन्स, 111)
14. वही (किंडिल लोकेशन्स, 123-125)
15. वही (किंडिल लोकेशन्स, 160-161)
16. वही (किंडिल लोकेशन्स, 143-145)
17. वही (किंडिल लोकेशन्स, 153-155)
18. वही (किंडिल लोकेशन्स, 178-179)
19. वही (किंडिल लोकेशन्स, 203-205)
20. वही (किंडिल लोकेशन्स, 205-207)
21. वही (किंडिल लोकेशन्स, 208-209)
22. वही (किंडिल लोकेशन्स, 230)
23. वही (किंडिल लोकेशन्स, 201-202)
24. वही (किंडिल लोकेशन्स, 242-244)
25. वही (किंडिल लोकोन्स, 275-277)
26. वही (किंडिल लोकेशन्स, 315-316)
27. वही (किंडिंल लोकेशन्स, 335-336)
28. वही (किंडिल लोकेशन्स, 385-387)
29. वही (किंडिल लोकेशन्स, 540-541)
30. वही (किंडिंल लोकेशन्स, 764-765)

31. वही (किंडिल लोकेशन्स, 554-555)
32. वही (किंडिल लोकेशन्स, 1289-1290)
33. वही (किंडिल लोकेशन्स, 1318-1320)
34. वही (किंडिल लोकेशन्स, 827-828)
35. वही (किंडिल लोकेशन्स, 836-837)
36. वही (किंडिल लोकेशन्स, 881)
37. वही (किंडिल लोकेशन्स, 920-921)
38. वही (किंडिल लोकेशन्स, 948-949)
39. वही (किंडिल लोकेशन्स, 1007-1009)

मधु काँकरिया के साहित्य में नक्सलवादी समस्या

मीनाक्षी सिंह

शोध छात्रा, कन्या गुरुकुल परिसर, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

शोध सार

वर्तमान महिला लेखन में मधु काँकरिया का नाम किसी परिचय का मोहताज नहीं। उनके जीवन परिचय तथा सृजन क्षेत्र को दृष्टि में रखकर हम कह सकते हैं कि ये सचमुच बहुमुखी प्रतिभा की धनी हैं। लेखिका ने नक्सली आन्दोलन को बहुत करीब से महसूस किया था जिसके कारण नक्सली आन्दोलन की प्रत्येक घटना को लेखिका ने बहुत बारीकी से वर्णित किया है। पढ़ने पर ऐसा प्रतीत होता है मानों सब कुछ हमारे समक्ष ही घटित हो रहा है। यह आन्दोलन सचमुच लेखिका के जीवन का भोगा हुआ यथार्थ हे लेखिका ने इस आन्दोलन का उठना, उसका परवान चढ़ना, ठिठकना और ढहना सभी कुछ देखा था, वे बताती हैं कि 'डाउन विद अमेरिकन इम्पीरियलज्म' जैसे नारों के कारण यह आन्दोलन जन-जन तक नहीं पहुँचा। यह क्रान्ति दर्शन प्रबुद्ध वर्ग या छात्रों तक ही सीमित होकर रह गया। नक्सली आन्दोलन का यही लक्ष्य था कि अपने धर्म, संस्कृति, समाज एवं वर्तमान समस्याओं में बदलाव लाना लेकिन निर्दय होकर तत्कालीन सरकार ने इस आन्दोलन को कुचल डाला।

Keywords: मधु काँकरिया के साहित्य में नक्सलवादी आन्दोलन की विवेचना

समकालीन हिन्दी कथाकारों में विख्यात नाम है 'श्रीमती मधु कौंकरिया। वर्तमान काल में मधु काँकरिया अपने लेखन द्वारा समाज से सम्बन्धित समस्याओं का हल नवीन विचार, नवीन दृष्टि, नवीन कलाभिव्यक्ति और नवीन शिल्प द्वारा कर रही है। इन्होंने स्त्री विमर्श, सामाजिक, आध्यात्मिक एवं राजनीतिक स्थितियों के साथ-साथ समाज की समस्याओं को अपना प्रमुख विषय बनाया। इन्हीं आधुनिक समस्याओं में से एक प्रमुख समस्या जिसकी तरफ अन्य लेखकों का ध्यान ही नहीं गया और वह है 'नक्सलवाद'। नक्सलवाद एक ऐसा संवेदनशील विषय है जिस पर हिन्दी साहित्य में अधिक कुछ लिखा ही नहीं गया है।

मधु जी के साहित्य ने न केवल काल्पनिक आकाश में ही अपने पंख पसारे हैं बल्कि इनका साहित्य निजी अनुभवों की भूमि में फला-पला है। जहाँ आज की सभी लेखिकाएँ नारी-विमर्श के दायरे में रहकर केवल पुरुष की नकारात्मक भूमिका को दिखलाती हैं वहीं लेखिका इन सबसे परे समाज के शोषित वर्ग एवं जनजीवन की प्रमुख समस्याओं पर अपनी चिन्ता व्यक्त करती हैं। उनका कहना है कि **"आम आदमी के जीवन से जुड़कर ही साहित्य समृद्ध हो सकता है।"**[2]

लेखिका ने अभी तक 6 उपन्यास लिखे हैं और हर उपन्यास में समाज की अलग-अलग समस्याओं को आधार बनाया गया है। 'खुले गगन के लाल सितारे' इनका प्रथम उपन्यास 2000 में प्रकाशित हुआ। यह नक्सलवाद जैसे ज्वलन्त विषय पर लिखा गया उपन्यास था। सगे भाई के इस आन्दोलन से जुड़े होने के कारण इन्होंने बड़ी नजदीकी से इसे अनुभव कर सारी घटनाओं का अतिसूक्ष्मता से इस उपन्यास में चित्रण किया है। उस समय की राजनैतिक एवं पारिवारिक स्थितियों के कारण लेखिका ने नक्सलवाद को बहुत करीब से महसूस किया। 'खुले गगन के लाल सितारे' के अलावा लेखिका की 'लेकिन कॉमरेड', 'महाबली का पतन' आदि कहानियों का विषय भी नक्सलवाद ही है।

इनकी इन रचनाओं के द्वारा भारत के स्वतन्त्रता प्राप्ति के 20 वर्ष बीतने के पश्चात् भी आम जनता के जीवन में परिवर्तन न आने से उत्पन्न मोहभंग की समस्या को अनावृत किया है। आजादी पूर्व अंग्रेजी शासक जनता को नोच-नोच कर खा रहे थे और आजादी के बाद यही काम नेता कर रहे थे। आजाद भारत के नेतागण गरीब, लाचार जनता की सहायता न करके अपने खजाने भरने में लगे हुए थे। देश में खुद का रोजगार उत्पन्न न करके बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को आमन्त्रित कर रहे थे जिसके कारण लघु उद्योग व गृह उद्योगों का अन्त होता जा रहा था। भारत के गाँवों में बिजली नहीं पहुँची थी लेकिन कोकाकोला पहुँच चुकी थी। यही थी उस समय की भारतीय अर्थव्यवस्था। **"लोग मर रहे हैं, ऊब रहे हैं, घुट रहे हैं लेकिन विद्रोह नहीं करते, क्योंकि वे जीवन से प्यार नहीं करते ..... वे जीते जाएँगे और गाते जाएँगे..... जो विधि राम से विधि रहिए।"**[3] आखिरकार लोगों का सब्र टूटा तो यह क्रान्ति हुई।

आजादी का मोह भंग होने की स्थिति में पश्चिम बंगाल के जलपाईगुड़ी जिले के नक्सलवादी ग्राम में सन् 1967 में यह आन्दोलन आरम्भ हुआ। जमींदारों द्वारा धोखे से किसानों ने जमीन वापिस लेने के लिए सशस्त्र आन्दोलन छेड़ दिया। इस आन्दोलन का सच्चा ब्यौरा इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। नक्सली नेता गाँव के चौक पर जमींदारों को खड़ा कर गोली मार देते हैं और जंगल में जाकर छिप जाते। पहले तो गाँव वालों ने इनका साथ दिया मगर जब गाँव के लोगों को पुलिस और प्रशासन के अधिकारियों द्वारा पीटा जाता तथा उनकी स्त्रियों का बलात्कार किया जाने लगा तो मजबूरन गाँव वालों को पुलिस का साथ देना पड़ा जिससे इन नेताओं को पकड़कर मार दिया जाता।

धीरे-धीरे ये आग गाँव से शहरों तक पहुँची तो इस आन्दोलन से युवा वर्ग भी जुड़ने लगा। लेखिका कॉलेज छात्रों पर प्रकाश डालती हुई कहती हैं कि **"आज की तरह तब युवा वर्ग सिर्फ टेलर, बार्बर और ब्यूटी पार्लर को प्रोडक्ट नहीं था। छात्र व्यक्तिगत कैरियर के साथ-साथ राष्ट्रीय समस्याओं पर भी बहस, चिन्तन किया करते थे।"**[4] तब उनके उत्पीड़न के विरोध में भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी के कुछ नेता जिनमें प्रमुख थे-चारू मजूमदार, कानू सन्याल और जंगल संन्याल जैसे नेताओं ने भूमिहीन किसानों का नेतृत्व किया और उन्हें उनकी छिनी गई जमीन दिलाने के लिए आन्दोलन आरम्भ कर दिया। डॉ. अशोक कुमार के अनुसार-**"नक्सलवादी वास्तव में ऐसे निराश एवं हताश व्यक्ति हैं जो कि यह मान बैठे हैं कि देश की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का समाधान लोकतान्त्रिक तरीकों से होना संभव नहीं है। उनका यह मानना है कि अन्तिम लक्ष्य बिन्दु तक पहुँचने के लिए जन विद्रोह की आवश्यकता अनिवार्य है।"**[5]

उपन्यास की कथावस्तु में नायिका मणि तीस साल के अपने प्रेमी इन्द्र को खोज रही है इसके लिए वह गोपाल से मिलने आती है। गोपाल दा और उनकी पत्नी दोनों ही कॉमरेड थे और इसी आन्दोलन का हिस्सा थे जिसमें मणि का प्रेमी इन्द्र भी सक्रिय था। इन्द्र कॉलेज का एक मेधावी छात्र होने के साथ-साथ एक नक्सलवादी नेता भी था। जमींदार पिता की सन्तान होने के पश्चात् भी उसने सभी प्रकार की सुख-सुविधाओं का त्याग कर गरीब किसानों को उनका हक दिलाने के लिए अपनी जान तक न्यौछावर कर दी। इस आन्दोलन में इन्द्र जैसे हजारों जॉबाजों ने खुद को मिटा डाला था।

मध्य कलकत्ता के हाथी बगान इलाके को सन् 1970-72 में 'लाल गली' के नाम से जाना जाता था। यइ छोटी सी ऐतिहासिक गली में युवा नक्सली नेता पुलिस से बचकर पनाह लेते थे। माओत्से तुंग तथा लेनिन के विचारों से प्रभावित ये युवा वर्ग क्रान्तिकारी बने। **"नक्सलवादी युवा ध्रुपद मजुमदार ने गुरिल्ला बार का आह्वान किया। ग्राम, शहर, घरों चारों तरफ भुखमरी, गरीबी और बेरोजगारी की बारूद बिछी है। बस लगा दो चिंगारी.. ..... क्रान्ति मशाल धधक उठेगी।"**[6] लेखिका इस आन्दोलन का वर्णन करती हुई आगे कहती हैं कि सत्तर का दशक मुक्ति का दशक था तो सरकार और पुलिस मिलकर इस आन्दोलन को दबाने की हर संभव कोशिश कर रही थी। नक्सलवादियों के साथ पुलिस अत्यन्त बर्बरता के साथ पेश आ रही थी। पुलिस यातनाओं का वर्णन करते हुए उपन्यास में बताया है कि पुलिस नक्सलियों को पकड़कर सीधा थर्ड डिग्री से यातना देनी शुरू करती, लात-घूंसों से होते हुए वे डंडा बेरी, सिकली, चरखी, हैदराबादी गोली, ये सब उन यातनाओं के नाम ये जो पुलिस नक्सलियों को देती थी। हैरानी की बात ये है कि पुलिस और सत्ता जितना आतंक फैलाने की कोशिश करती, क्रान्तिकारी उससे और अधिक हिंसक होते जाते तथा अधिक प्रचंड वेग से इस आन्दोलन से जुड़ते जाते। इसी आन्दोलन के परिणामस्वरूप उत्तर बंगाल के कुछ इलाकों में संभावनाशील नक्सलियों द्वारा गुरिल्ला युद्ध का प्रशिक्षण दिया जा रहा था। गरीबों की मुक्ति के लिए जो नक्सलवादी काम कर रहे थे, वे अधिक अमीर घरों के लाड़ले बेटे थे। कोई मेडिकल कॉलेज का तो कोई इंजीनियरिंग कॉलेज का छात्र था। **"पूरे-पूरे बैच ही नक्सलवादी था। कॉलेज के क्लास रुम खाली पड़े रहते थे।"**[7]

आन्दोलन को दबाने के लिए अनेक प्रबुद्ध लोगों की गिरफ्तारियाँ हो रही थीं जिसके डर से इन्दिरा गांधी जो उस समय प्रधानमन्त्री थीं, ने आपातकाल की घोषणा करवा दी। पूरे देश में इमरजेंसी मीसा कानून लागू कर दिया गया जिससे पुलिस को अनेक अधिकार मिल गये। अब पुलिस हर किसी को शक हो ही सीधा जेल में डाल रही थी। एनकाउन्टर के नाम पर कितने ही नक्सलियों को मार दिया गया। नक्सलवादी गोविन्द दा उपन्यास में मणि को बताते हैं कि **"साला आज तक बलात्कारी, हत्यारों, खूनियों और डकैतों को इस प्रकार पशुओं की तरह लोहे की छड़ों से नुकीले बूटों से रौंद कर नहीं मारा गया, जिस प्रकार आजाद देश में इस पीढ़ी को रौंदा गया था।"**[8] खूंखार आतंकवादियों से निबटने के लिए उतनी सख्ती से कानून का पालन नहीं किया गया था जितना कि नक्सलियों पर किया जा रहा था।

यह क्रान्ति दर्शन प्रबुद्ध वर्ग या छात्रों तक जाकर रूक गई। यहाँ की भूखी, नंगी जनता सिर्फ रोटी और गरीबी की भाषा जानती थी। 'डाउन विद अमेरिकन इम्पीरियलज्म' जैसे नारों के कारण यह आन्दोलन जन-जन तक नहीं पहुँचा। मधु जी ने नक्सलवादी आन्दोलन का उठना, उसका परवान चढ़ना..... ठिठकना और ढहना सभी कुछ देखा था, उनके सगे भाई इस आन्दोलन से जुड़े थे।। यहाँ की रुढ़ियों में जकड़ी धर्मान्ध, भीरू, कूपमंडूप और भूखी जनता की नब्ज प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने पहचानी और उन्होंने नारा दिया, **"गरीबी हटाओ" और इस प्रकार इस आन्दोलन का अन्त कर दिया गया।"**[9] इस उपन्यास के बारे में जयनन्दन का कथन बिल्कुल ठीक है कि **"अपने पहले उपन्यास 'खुले गगन के लाल सितारे' में मधु ने कथा नायक इन्द्र के माध्यम से नक्सलवादी आन्दोलन और उसके दमन के लिए चलाए गए पुलिस यंत्रणा की गहरी शिनाख्त की है।"**[10]

इस उपन्यास के अन्त में लेखिका ने पाठकों को आलोक भगत नामक पात्र से परिचित करवाया है। आलोक भगत आई0आई0टी0 जैसी डिग्री प्राप्त एक शिक्षित उच्च वर्गीय युवा थे जो यहाँ गोबर गैस प्लांट की विराट योजना को लेकर पिछड़े आदिवासी इलाके में आये थे परन्तु यहाँ की भयंकर गरीबी को देखकर इनकी अन्तरात्मा हिल गई और 23 वर्ष की छोटी सी उम्र में ही इन्होंने ये प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक इस आदिवासी समाज के लिए कुछ नहीं कर लूंगा तब तक सिले वस्त्र, चप्पल नहीं पहनूंगा। इनके बीच रहकर इनके जैसा बनकर इनके विकास के लिए ही कार्य करूंगा। इसके लिए इन्होंने 'वन बन्धु निकेतन' नामक संस्था की स्थापना की जो निरन्तर आदिवासी समाज के विकास के लिए कार्यरत है।

यहाँ पर लेखिका अब आलोक भगत व इन्द्र के बीच तुलना करती हुई पाठकों से प्रश्न करती है कि आलोक और इन्द्र का लक्ष्य एक ही था परन्तु कार्यप्रणाली बिल्कुल अलग। एक व्यवस्था में रहकर ही अव्यवस्थित समाज को व्यवस्थित करना चाहता था वहीं दूसरा इस फैली अव्यवस्था का पूर्णत: विरोधी बनकर। लेखिका की चेतना के दो ध्रुवों में से दो युग पुरुष आलोक और इन्द्र। और किसका रास्ता अधिक उचित है? इस विषय पर अपनी चिन्ता व्यक्त करती हुई लेखिका उपन्यास का अन्त कर देती है।

इस उपन्यास के अलावा मधु जी ने कुछ कहानियाँ भी इस विषय पर लिखी हैं। 'लेकिन कामरेड', 'महाबली का पतन' ऐसी ही कहानियाँ हैं, जिनमें नक्सलवाद जैसे ज्वलन्त विषय पर प्रकाश डाला गया है। 'लेकिन कामरेड' कहानी 'खुले गगन के लाल सितारे' के एक छोटे से भाग से लेकर लिखी गई कहानी है। इस कहानी में लेखिका ने क्रान्तिकारी पीड़ा का वर्णन किया है। नक्सलवादियों को जेल में दी जाने वाली यातनाओं का बहुत सटीक रूप से वर्णन किया गया है। अपने हक के लिए संघर्षरत गोपाल दा, सति, मेरी टाइलर के अनुभव हमें चिन्तित कर देते हैं। एक क्रान्तिकारी नक्सली जीवन पर रचित नक्सलियों को देने वाली यातनाएँ भी उनके पदानुसार दी जाती थीं। जो जितना बड़ा नेता होता, उसकी यातनाएँ भी उतनी ही दर्दनाक होतीं। गोपाल दा को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया और जेल के भीतर जेल बनाकर उनको जंजीरों से बांधकर रखा गया जहाँ उनको डंडाबेरी नामक यातना दी गई। चारों तरफ क्रान्ति का दौर था, **"कामरेड माओ से हमें वही ताकत मिलती जो किसी सनातनी को गीता के कृष्ण से।"**[11] इस कहानी में नक्सलवादी यातनाओं का इस प्रकार मार्मिक चित्रण किया गया है कि जो पाठकों की आत्मा को झकझोर दे और ये सोचने को मजबूर कर दे कि क्या अपने अधिकारों के लिए लड़ना इतना गलत है। 'लेकिन कामरेड' एक नक्सलवादी कहानी है जिसमें आत्म सम्मान, आत्म गौरव के लिए लड़ने वाले क्रान्तिकारियों की पीड़ा का वर्णन करने में लेखिका काफी सक्षम रही है।

'महाबली का पतन' कहानी कॉमरेड आशीष चटर्जी के पतन की कहानी है। आशीष दा ने अपना पूरा जीवन नक्सलवादी आन्दोलन को समर्पित कर दिया। वे एक मेधावी छात्र होने के साथ-साथ एक प्रभावशाली नेता भी थे। उनके एक इशारे पर कॉलेज के छात्रों के झुंड के झुंड पीछे चल पड़ते थे। उनके इसी व्यक्तित्व के कारण उनके कॉलेज की छात्रा बैंक गर्वनर की बेटी जया उनसे प्रेम करने लगती है और पिता के लाख मना करने पर भी वह आशीष दा से शादी कर स्वयं भी कॉमरेड बनकर घाटतिला में शेल्टर हाउस चलाने लगती है परन्तु पुलिस की पैनी नजर से दोनों ज्यादा दिन छिप नहीं पाते और दोनों गिरफ्तार हो जाते हैं। जया गर्भवती होती है। **"उसके बाद हथकड़ियाँ ..... थर्ड डिग्री टॉर्चर। इंटरोगेशन, यातनाएँ और यंत्रणाओं का एक सुदीर्घ इतिहास और इसी इतिहास की काली कोठरी में उन्हीं दिनों हुआ जया का पुत्री का जन्म"**[12] परन्तु कुछ समय पश्चात् दोनों अलग-अलग हो गए। जया अपनी पुत्री रचना के साथ अपने पिता के घर रहती थी। परन्तु जया ने दूसरी शादी नहीं की। वहीं आशीष दा ने 52 साल की उम्र में अपनी बेटी की उम्र के बराबर लड़की से विवाह कर लिया। यही कारण था जिससे कि रचना स्वयं को केवल जया की पुत्री मानती थी। परन्तु जया आशीष दा के इस पतन का कारण इस युग के वातावरण को ही मानती थी। इस प्रकार इस कहानी में एक महाबली का पतन प्रस्तुत किया गया है। **"आखिर ऐसा हुआ कैसे? महाबली का पतन? और वह भी तूफानों के गुजर जाने के बाद, उम्र के इस ढलान पर।"**[13] इस प्रकार इस कहानी में लेखिका यह स्पष्ट कर रही है कि किस प्रकार सामाजिक परिवर्तन मनुष्य के केवल विचार ही नहीं, आचार भी बदल डालता है। इसी परिवर्तन के कारण समाज में आदर्श प्रेम की कमी और मानवी अनुभूतियों पर किस प्रकार भूमंडलीकरण हस्तक्षेप कर रहा है। यही इस कहानी का विषय है जिस पर लेखिका ने अपना चिन्तन व्यक्त किया है। इसके साथ-साथ लेखिका ने इस कहानी में नक्सलियों की कार्य योजनाओं को भी प्रस्तुत किया है कि किस प्रकार नक्सली मिलकर बिहार के छोटा नागपुर इलाके में अपनी आगे की योजनाओं का निर्माण करते तथा किस प्रकार महिला नक्सली भी अपना योगदान दे रही थी। इसके लिए महिला नक्सली पुलिस से छुप-छुप कर शेल्टर हाउस चला रही थी, जहाँ पर वे नक्सलियों के रहने-खाने की व्यवस्था पुलिस से छुपकर करती थीं। इस प्रकार नक्सलियों की कार्यप्रणाली का ब्यौरा ही इस कहानी में प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्ष

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि मधु काँकरिया ही वो प्रथम महिला लेखिका हैं जिन्होंने नक्सली आन्दोलन का सम्पूर्ण चित्र जनता के समक्ष प्रस्तुत किया है। इन्होंने अपने साहित्य के द्वारा नक्सली आन्दोलन के उन गूढ़ रहस्यों से भी अवगत किया है जिनको प्रशासन ने कभी जनता के समक्ष उजागर ही नहीं होने दिया। पीढ़ी की पीढ़ी इस आन्दोलन में बर्बाद हो गई परन्तु सामाजिक परिवर्तन में ज्यादा सफलता प्राप्त नहीं हुई। समाज की अन्तिम पंक्ति में खड़े मनुष्य को पहली बार मनुष्य की गरिमा देने के प्रयत्नों का ब्यौरा लेखिका ने अपने साहित्य के माध्यम से किया है। **"मधु का 'खुले गगन के लाल सितारे' उपन्यास जो नक्सलवादी आन्दोलन और क्रान्तिकारियों की दर्दनाक जीवन दास्ता है, समाज का बदलता स्वरूप स्पष्ट करता है।"**[14] निरन्तर पिसता, अपमानित एवं शोषित वर्ग इस आन्दोलन के द्वारा लड़ना चाहता था तथा समाज में पूर्णतः न्याय एवं समानता स्थापित करना चाहता था परन्तु उच्च पदों पर विराजमान शासक3ों ने अपने फायदों के लिए बहुत ही क्रूर होकर इस आन्दोलन को नष्ट कर दिया।

सन्दर्भ सूची

1. शोध छात्रा, कन्या गुरुकुल परिसर, हरिद्वार, उत्तराखण्ड, मो0 - 8860403090, 9212426042, E-mail : meenakshi.gnp@gmail.com
2. मधु काँकरिया का रचना संसार, डॉ. उषा कीर्ति राणावत, पृष्ठ 203
3. 'खुले गगन के लाल सितारे', मधु काँकरिया, पृष्ठ 21
4. मधु काँकरिया का रचना संसार, डॉ. उषा कीर्ति राणावत, पृष्ठ 92
5. मधु काँकरिया के उपन्यासों में भाव-संवेदना और शिल्प स्वरूप, डॉ. शबाना हबीब, पृष्ठ 47
6. 'खुले गगन के लाल सितारे', मधु काँकरिया, पृष्ठ 14
7. मधु काँकरिया का रचना संसार, डॉ. उषा कीर्ति राणावत, पृष्ठ 196

8. 'खुले गगन के लाल सितारे', मधु काँकरिया, पृष्ठ 111
9. मधु काँकरिया का रचना संसार, डॉ0 उषा कीर्ति राणावत, पृष्ठ 42
10. अक्षर पर्व, पत्रिका, पृष्ठ सं0 54, जुलाई 2012
11. 'लेकिन कामरेड बीतते हुए, मधु काँकरिया, पृष्ठ 26
12. 'महाबली का पतन', 'और अन्त में ईशू', मधु काँकरिया, पृष्ठ 56
13. 'महाबली का पतन', 'और अन्त में ईशू', मधु काँकरिया, पृष्ठ 56
14. कथाकार मधु काँकरिया, डॉ0 सुनीता कावले, पृष्ठ 231

भारतीय संस्कृति की अवधारणा महत्व घटक

कांता पारिक

Assistant Pro., BTTC

सारांश

संस्कृति का अर्थ सुन्दर, परिष्कृत, रूचिकर या कल्याणकारी व्यवहार या गुणों से लिया जाता है। संस्कृति में ज्ञान, विश्वास, कलायें, नीती, विधि, रीति-रिवाज और समाज के सदस्य संगठित होकर मानव समूह की विशेषता बन जाता है।

भारतीय संस्कृति एक प्रतीकात्मक निरन्तर, संचयी और प्रतिशील भारतीय संस्कृति, मूल्यों, शैलिया, भावात्मक लगावों तथा बौद्धिक अभियानों का क्षेत्र है।

पीढ़ी दर पीढी मानसिक रूप से संचरित होती रहती है। भारतीय संस्कृति केवल मानव समाज में पाई जाती है।

भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक है।

भारतीय संस्कृति में धार्मि सहिष्णुता है। मंगलवारमक सर्वधर्म प्रार्थना संस्था याचना करना जीवन्त उदाहरण है। सभी धर्मो में जीवों पर दया करना सबको भाई है। चारे के बारे में कहा गया है, सच बोलना, हिंसा न करना, अपना आचार विचार शुद्ध रखना।

.....

भारतीय धार्मिक सहिष्णुता की जड़ मे सभी धर्मो की तात्विक एकता में आस्था पायी है। जिसमें रसखान, रहिम, जायसी आदि के उदाहरण है। जो कि इस बात की पुष्टि करते है। समन्वयशीलता भारतीय संस्कृति समुद्र की तरह है। जिसमें बहुत सी नदीया आ कर समाती गयी है।

धर्म धारथले इति धारण करना आचल जल शीतलता सुख प्रदान करते है शीतकालीन .....।

संस्कृति– साधारण बोलचाल में संस्कृति का अर्थ सुन्दर, परिष्कृत, रूचिकर या कल्याणकारी व्यवहार या गुणों से लिया जाता है।

समाज शास्त्र में संस्कृति की निश्चित परिभाषा इस प्रकार की गयी है।

टायलर– "संस्कृति एक जटिल सम्पूर्ण है। जिसमें ज्ञान विश्वास, कलायें, नीति, विधि, रीति-रिवाज और समाज के सदस्य होकर मनुष्य द्वारा अर्जित अन्य योग्यतायें और आदतें शामिल है।"

रेडफील्ड - "संस्कृति कला और उपकरणों से अभिव्यक्ति परम्परागत ज्ञान का यह संगठित रूप है जो परम्परा के द्वारा संगठित होकर मानव समुह की विशेषता बन जाता है।

जोसेफ पीपर - "संस्कृति प्राणी की सभी, प्राकृतिक वस्तुओं और उन उपहारों तथा गुणों का सार है जो मनुष्य से सम्बन्ध रखते हुए भी उनकी आवश्यकताओं के तात्कालिक क्षेत्र से परे है।

व्हाइट– संस्कृति एक प्रतीकात्मक निरन्तर, संचयी और प्रगतिशील प्रक्रिया है।"

इस प्रकार संस्कृति से वह सब सम्मिलित है जो मानव ने अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के मानसिक और सामाजिक जीवन के मानसिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में आज तक अर्जित किया है।

संस्कृति - "मूल्यों, शैलियों, भावात्मक लगावों तथा बौद्धिक अभियानों का क्षेत्र है। इस तरह संस्कृति सभ्यता का बिल्कुल प्रतिवाद है। वह हमारे रहने सोचने के ढंगों में, दैनिक कार्य कलापों में, कला में साहित्य में, दैनिक कार्य कलापों में कला में साहित्य में, धम्र में, मनोजरंजन और सुखोपयोंग में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।

संस्कृति की आवश्यकता विशेषतायें - मैकाइवर प्रेज–

संस्कृति में मनुष्य निर्मित और वे वस्तुएं सम्मिलित है। जिनके मनुष्य संशोधन कर सकता है।

नये तत्वों के समावेश से संस्कृति की जटिलता और गुण बढ़ते है।

यह पीढ़ी दर पीढ़ी मानसिक रूप से संचारित होती रहती है।

संस्कृति केवल मानव समाज में पाई जाती है।

संस्कृति की प्रकृति–

1. संस्कृति सीखे हुए गुण है–
2. संस्कृति जन्मजात नही है। समाजीकरण के द्वारा सीखे हुए गुण, आदते तथा विचार आदि ही संस्कृति कहलाती है। मनुष्य में प्रतीकात्मक संचार की योग्यता होने के कारण वह सांस्कृतिक व्यवहार को ग्रहण कर लेता है।
3. संस्कृति संचारशील है - संस्कृति का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी से संचार होता है। इससे बाराबर वृद्धि होती रहती है संसार के कारण नई पीढ़ी पिछली पीढ़ी के अनुभवों से लाभ उठाती है इस प्रकार संस्कृति अर्द्धस्थायी हो जाती है और किसी व्यक्ति या समुह के रहने से उस पर कोइ प्रभाव नही पड़ता।
4. संस्कृति वैयक्तिक नई बल्कि सामाजिक है– संस्कृति के सम्वर्द्धन और संचार मे हर एक व्यक्ति कुछ न कुछ भाग लेता है परनतु संस्कृति वैयक्तिक न होकर समाजिक है उसमें समुह के सदस्यों की सामान्य अपेक्षाएं शामिल होती है।
5. संस्कृति आदेशात्मक है– संस्कृति में व्यवहार के व आदर्श नियम शामिल है जिनके अनुसार समाज के सदस्य आचरण करने की चेष्टा करते है इन आदर्श नियमों तथा प्रतिमानों को समाज स्वीकार करता है।
6. संस्कृति कुछ आवश्यकताओं को पुरा करती है संस्कृति मनुष्य की उन नैक्तिव तथा सामाजिक आवश्यकताओं को पुरा करती है जो स्वयं साधय है। संस्कृति में सामुहिक आदतें सम्मलित है। आदते उन्ही कामों की पड़ती है। जिनसे कुछ न कुछ आवश्यकताऐं पुरी होती है।
7. संस्कृति में उपयोजन की योजनाऐं होती है– पर्यावरण के अनुसार संस्कृति में बराबर बदलाव रहता है इस परिवर्तन से बाहरी शक्तियों से उसका उपयोजन होता रहता है ं परन्तु विकसित होने पर प्राकृतिक पर्यावरण का प्रभाव घटता जाता है। इसके अलावा संस्कृति के विभिन्न अंगों का विकास होता रहता है। उनमें आन्तरिक उपयोजन की जरूरत पड़ती है।
8. संस्कृति में एकीभूत होने का गुण– संस्कृति में एक क्रम और एक संघठन होता है। भिन्न भिन्न भाग आपस में एकीभूत रहते है जो नया तत्व आता है वह भी उनमें मिल जाता है जिन संस्कृतियों पर बाहरी प्रभाव अधिक पड़ता है वह अधिक विजातीय होती है परन्तु सभी संस्कृतियों में कुछ न कुछ एकभूतता की प्रभूति अवश्य दिखाई पड़ती है।

भारतीय संस्कृति की अवधारणा का महत्व

प्रस्तावना : साधारण बोलचाल की भाषा में समुह के विश्वासों आदर्शों विचारों व्यवहारों रिति रिवाजों आदि व्यवहार के अनेक उपकरणों तथा साधनों को संस्कृति कहा जाता है। बोगर्डस "संस्कृति एक समुह के समस्त रिति रिवाज परम्पराओं चालु व्यवहार प्रतिमानों से बनती है।

भारतीय संस्कृति के अनुसार धर्म ही एक ऐसा तत्व है जो मनुष्य को पशु से अलग करता है धर्म शब्द को अर्थ है धारण करना। जनता के एक सुत्र में बाधनें के कारण धर्म नाम दिया गया है।

1. "धर्म प्रधान धारणात् धर्म नितयाहु धर्मो धारयति प्रजा"

   भौतिक और आध्यात्मिक दोनो पक्षों का सुन्दर मेल है वैशिषिक दर्शन के रचने वाले महर्ष करणाद लिखते है। त्यतोऽभ्यूदय निश्रेयसिद्धिः स धर्म"
2. आध्यात्मिक - भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र है।

   आत्मान विवजानाति– (आपने आपको जानो)

   भारतीय संस्कृति अन्तरमुखी है।

   श्री अरविन्द को कहना है आध्यात्मिकता भारतीय मस्तिष्क की कूंजी है भारतीय संस्कृति में धर्म और दर्शन को उंचा स्थान दिया गया है। इन दोनो का भारतीय संस्कृति और सभ्यता पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। किसी राष्ट्रीय की संस्कृति के वास्तविक रूप को जानने के लिए उसके महापुरूषों के विषय में जानकारी प्राप्त की जाये। प्राचीन भारतीय संस्कृति के निर्माता ऋषि और मुनि थे। आधुनिक काल में भारत में रामकृष्ण परमहंस विवेकानन्द अरविन्द दयानन्द रवीन्द्र गांधीजी आदि महापुरूषों को जन्म दिया है, स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक है।
3. धार्मिक सहिष्णुता– सभी धर्मो में जीवों पर दया करना सबको भाई भाई समझना सच बोलना हिंसा न करना अपना आचार विचार शुद्ध रखना भारतीय धार्मिक सहिष्णुता की जड़ में सभी धर्मो को तात्विक एकता में आस्थाई पाई है। प्राचीन भारत के कई राजा जो सभी वर्गो में खर्च लेते थे राजाओं में चन्द्र गुप्त मोर्य हर्ष कुमार पाल, चीनी हाजी व्हेनसांग, हर्ष सभी धर्मो में मानने वाले साधुओं फकीरों अपाहीजों को बिना किसी भेद भाव के दान दिया करते थे। धार्मिक सहिष्णुता का आदर्श अशोक में मिलता है। रसखान, रहीम, जायसी, आदि के उदाहरण इस बात की पुष्टि करते है।
4. समन्वयशीलता– भारतीय संस्कृति प्रारम्भ से भी समन्वय कि समर्थक रही है। भारतीय संस्कृति के निर्माता आर्य थे संस्कृति को लचीला रूप दिया। डाडवेल लिखते है भारतीय संस्कृति समुद्र की तरह है जिसमें बहुत सी नदीया आ आ कर समाती गई है। बहुत सी संस्कृतियों और जातियों के भारतीय संस्कृति में मिल जाने से ही सार्वभौमक्ता पैदा हुई है। संस्कृति के चार अध्याय में दिनकर जी लिखते है यह विश्वजनीनता विभिन्न जातियों को एक महाजाति के सांच में डालने का अद्भभुत प्रयास और अनेक वादों विचारों धर्मो के बिच एकता का यह निराला ढंग सभी युगों में भारतीय समाज की विशेषता रही है।
5. अनुकुलन की शक्ति– भारतवर्ष में वैदिक युग से लेकर आज तक बहुत बार सामाजिक उथल पूथल हुई राजनैतिक परिवर्तन हुए परन्तु भारतीय संस्कृति सदैव परिस्थितियों को अनुकुल बनाती रही है।

6. व्यापक दृष्टिकोण– आध्यत्मिक के साथ साथ साहित्य संगीतकला आदि का भी भारतीय संस्कृति में स्वछन्द विकास हुआ है। व्यापक दृष्टिकोण का स्पष्ट प्रमाण पुरूषार्थ चार माने गये है अर्थ काम को भी धर्म और मोक्ष के साथ साथ स्थान दिया गया है। आर्थिक उन्नति के बिना सांस्कृतिक उन्नति अधुरी रहती है। भारतीय संस्कृति का लक्ष्य मनुष्य को सर्वागीण विकास रहा है। धर्म शास्त्र के साथ अर्थशास्त्र कामशास्त्र की भी रचना हुई है। स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति को दृष्टिकोण व्यापक रहा है।
7. चिन्तन की स्वतन्त्रता– भारत में प्रत्येक व्यक्ति को सोचने का अधिकार मिला हुआ था यहा पर बहुत से धर्म दर्शन सम्प्रदाय एक साथ फुले फले है।
8. अनेकता में एकता– दाशर्निक क्षेत्र में अनेकता में एकता की भावना भारत में सब कही झलकती है।

अलैग्जैण्डर गोल्डनवाइजर ने– निम्नलिखित तत्व माने है हमारी प्रवृतियां विश्वास और विचार हमारे निर्णय और मुल्य हमारी संस्थाएं राजनैतिक और कानुनी धार्मिक आर्थिक हमारी नैतिक संहिताऐं और शिष्टचार के नियम हमारी पुस्तकें मशीने हमारे विज्ञान दर्शन दर्शानिक यह सब और दुसरी चीजे तथा प्राणी स्वयं भी अपने विविध सम्बन्धों में भी।

संस्कृति के प्रकार– समाजशास्त्रीयों ने दो प्रकार माने है

1. भौतिक संस्कृति– भौतिक व पार्थिव वस्तुऐं आती है जो कि मनुष्य के व्यवहार में आती है। जैसे रहने के मकान घरों का सामान विविध प्रकार के उपकरण औजार हथियार बर्तन आवागमन के साधन इत्यादि।
2. अभौतिक संस्कृति– इसमें अमूर्त वस्तुएं शामिल होती है जैसे समाज के विभिन्न रिति रिवाज रूढियां विधियां कलाएं ज्ञान धर्म आदि।

संस्कृति के सार्वभौम तत्व– कलार्क विजलर ने मानव जाति के प्रत्येक समुह की संस्कृति में यह सार्वभौम तत्व माने है बोली पार्थिव उपकरण जैसे भोजन मकान आवागमन की साधन वैशभुषा हथियार बर्तन वस्त्र उद्योग और धन्धे कलाएं पौराणिक और वैज्ञानिक ज्ञान धार्मिक रितियां और अन्धविश्वास कुटुम्ब विवाह सामाजिक नियम व खेलकुद जैसी सामाजिक संस्थाएं सम्पति मूल्य विनिमय व्यापार सरकार और विधि युद्ध।

निष्कर्ष

इस प्रकार संस्कृति सामाजिक आदर्शनात्मक और सीखी हुई होती है और मनुष्य बहुत सी आवश्यकताओं को पूर्ण करती है। उसमें संचार आयोजन तथा एकभुतता के गुण होते है वह मनुष्य का विशेषगुण उसकी सामाजिक विरास्त है उसकी श्रेष्टता का सबुत है मानव जाति के प्रत्येक समुह की संस्कृति के सार्वभौम्य तत्व माने गये है बोली पार्थिव उपकरण जैसे भोजन मकान आवागमन के साधन वेशभुषा बर्तन वस्त्र कलाएं पौराणिक और वैज्ञानिक ज्ञान धार्मिक रितियां कुटुम्ब विवाह सामाजिक नियम व खेल कुद सामाजिक संस्थाएं सम्पति मूल्य विनिमय व्यापार सरकार।

सन्दर्भ पुस्तकें

साप्ताहिक प्रार्थना संस्था का आवहनगीत

1. उदीयमान भरतीय समाज में शिक्षक एन.आर. स्वरूप सवसेना शिखा चतुर्वेदी।
2. शैक्षणिक एवं उदीयमान भारतीय समाज डॉ. नरेन्द्रसिंह वैस संजयदता
3. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा अमृतसेन।
4. उभरते हुए भारतीय समाज में शिक्षा डॉ. रामशकल पाण्डे।
5. उदीयमान भारतीय समाज और शिक्षा।

पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक भारतीय जीवन शैली का प्रभाव

कुमार गौरव

(सहायक प्रोफेसर), शिक्षा संकाय, आई.ए.एस.ई., मानित वि.वि सरदारशहर (चुरु)

शोध सारांश

वर्तमान में पर्यावरण जीवन का एक अभिन्न अंग है, जिस तरह मनुष्य को जीने के लिए रोटी, कपड़ा और मकान आवश्यक है, उसी प्रकार पर्यावरण भी इन सबसे ऊपर एवं अतिआवश्यक है। पर्यावरण उन सभी प्राख्रतिक संसाधनों की समग्रता का नाम है, जो धरती माता ने मानव-जाति के लिए वरदान के रूप में दिए हैं। ये संसाधन हैं- भूमि, जल, वायु, वनस्पति, वन और वन्यजीव जो हमें चारों ओर सेघेरे हुए हैं और जो प्रतिदिन हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं। आज हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या प्रदूषण एवं शुद्ध पर्यावरण जो कि पश्चिम की भौतिकवादी सभ्यता के फलस्वरूप है, जिसे अपनाकर भारतीय मूल्य, परंपराओं एवं संस्ख्रति के मूलभूत आयामों पर चोट पहुंचाई जा रही है और विभिन्न प्रकार के प्रदूषण-जल, वायु, भूमि, ध्वनि, आकाश प्रदूषण निरंतर बढ़ रहे है। आज प्रख्रति के साथ विध्वंसात्मक कार्यवाही जो व्यक्तिगत स्वार्थ हेतु हो रही है, जिससे पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। अत: अब वह महत्वपूर्ण क्षण आ गया है जब हम विश्व स्तर पर पर्यावरणीय परिणामों की ख्रष्टि से अपने क्रियाकलापों में विवेकपूर्ण परिवर्तन लाएं। अपनी अज्ञानता और उपेक्षा से हम पृथ्वी के पर्यावरण को जिस पर प्राणी मात्र और उनके हित अवलंबित हैं, बहुत सारी और अपरिवर्तनीय हानि पहुंचा सकते हैं। इसके विपरीत पूरी जानकारी और बुद्धिमता पूर्ण कार्यों से हम अपने तथा अपनी संततियों के लिए मानव आवश्यकता के अनुरूप तथा आशा अनुकूल एक अच्छे जीवन के लिए, एक अच्छा पर्यावरण भी बना सकते हैं। इसके लिए हम में से प्रत्येक को अपनी जीवनशैली में बदलाव लाने की आवश्यकता है। पृथ्वी के पर्यावरण में हो रहे परिवर्तन का सीधा सम्बन्ध "उपभोग" से है. और यह उपभोग हमारी जीवनशैली से सम्बंधित है. हम जो भी वस्तुएं खरीदते हैं, जिस प्रकार के संसाधनों का इस्तेमाल करते हैं, जैसा जीवन जीते हैं, उसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव हमारे पर्यावरण पर पड़ता है. पृथ्वी के वातावरण में या यों कहें की जलवायु में वाकई में परिवर्तन हो रहा है, जिसपर हम सभी को ध्यान देने की जरूरत है. हम इस बदलाव को रोकने के लिए अपनी जीवनशैली में छोटे छोटे परिवर्तनों को ला कर काफी मदद कर सकते हैं।

बीज शब्द: पर्यावरण, प्राख्रतिक व्यवस्था, भारतीय जीवन, प्रदूषण एवं संरक्षण, आधुनिक जीवन शैली।

शोध आलेख

वर्तमान में पर्यावरण जीवन का एक अभिन्न अंग है, जिस तरह मनुष्य को जीने के लिए रोटी, कपड़ा और मकान आवश्यक है, उसी प्रकार पर्यावरण भी इन सबसे ऊपर एवं अतिआवश्यक है। मनुष्य प्रख्रति का पुत्र माना जाता है, प्रख्रति के आंगन में वह बड़ा हुआ है। पर्वत, नदी, तालाब, शस्य श्यामला भूमि और सुवासित वायु हमारे जीवन को स्वच्छ और सुखद बनाती हैं।

वस्तुत: पर्यावरण दो शब्दों- 'परि और आवरण' से मिलकर बना है। जिसका अर्थ है- चारों ओर का घेरा। इस प्रकार हमारे चारों ओर जो भी वस्तुएं, परिस्थितियां विद्यमान हैं, वे मानव-क्रियाकलापों को प्रभावित करती हैं और उसके लिए एक दायरा सुनिश्चित करती हैं। इसी दायरे को हम पर्यावरण कहते हैं। यह दायरा आवास, गांव, मुहल्ला, नगर, प्रदेश, देश, महाद्वीप ग्लोब अथवा संपूर्ण सौर मंडल का हो सकता है। पर्यावरण अनेक छोटे तंत्रों से लेकर अनेक व्यापक तंत्रों का जटिल सम्मिश्रण है,

आज हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या प्रदूषण एवं शुद्ध पर्यावरण जो कि पश्चिम की भौतिकवादी सभ्यता के फलस्वरूप है, जिसे अपनाकर भारतीय मूल्य, परंपराओं एवं संस्ख्रति के मूलभूत आयामों पर चोट पहुंचाई जा रही है, जिसके फलस्वरूप चराहगाह नष्ट हो रहे हैं, पशुपालन उजड़ रहे हैं, जलाऊ लकड़ी का संकट निरंतर बढ़ता जा रहा है, खनिज उत्पाद से फसल और वन चौपट होते जा रहे हैं, झीलें सूख रही हैं, नदी के पानी के प्रदूषण के फलस्वरूप मछुआरों का जीवन अनिश्चित हो रहा है, हरित-क्रांति समाज पर बोझ बन रही है, बांध जिन्हें देश की प्रगति का नया तीर्थ स्थल कहा गया था, उनका कलश फीका पड़ रहा है। बिजलीघरों के झुंड तैयार हो रहे हैं, विकास के नाम पर असाध्य बीमारियां आ रही हैं, रासायनिक कीटनाशकों की कारखानों ने हजारों की जान ले ली है।

फर्टिलाइजर्स फैक्ट्रियां दांतों को विख्रत कर फेफड़ों को कमजोर कर रही हैं, गैस रिसाव से सैकड़ों महिलाओं का गर्भपात हो रहा है। ये सब वैज्ञानिक आविष्कार मानव-जाति के लिए उपादेय सिद्ध न होकर हानिकारक सिद्ध हो रहे हैं। यद्यपिसरकार द्वारा पर्यावरण रक्षा का उत्तरदायित्व वहन करने हेतु कानूनों का निर्माण किया गया है, फिर भी विभिन्न प्रकार के प्रदूषण-जल, वायु, भूमि, ध्वनि, आकाश प्रदूषण निरंतर बढ़ रहा है।

ऊर्जा की अंधाधुंध खपत व वनों की बेशुमार कटाई, अनायास बढ़ती हुई जनसंख्या, तेजी से फैलते हुए प्रदूषण और उसके बीच संसाधनों का निर्मम शोषण आदि द्वारा मनुष्य ने प्रख्रति के वरदान का दुरुपयोग किया है। फसलों की लालच ने पृथ्वी के गर्भ को चीरकर रासायनिक खाद से भरने को मजबूर किया, विलासिता के ख्रष्टिकोण ने मिलों, फैक्ट्रियों, कारखानों और संयंत्रों के माध्यम से चारों ओर प्रदूषण फैलाया। तेज रफ्तार की चाहत ने कारों, ट्रकों और स्कूटरों आदि की ताबड़तोड़ भाग-दौड़ से वातावरण में धुआं-ही-धुआं भर दिया। उपयोग की संस्कृति ने कोयले, पेट्रोलियम एवं अन्य खनिजों को स्वाहा करने के लिए उसे विवश किया तथा खान-पान और सजावट की लिप्सा ने जीव-जंतुओं के व्यापक संहार का रास्ता खोल दिया।

अत:आज पूरा विश्व यदि किसी एक समस्या को लेकर चिंतित है, तो वह पर्यावरण की समस्या ही है। यही कारण है कि आज पर्यावरण राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर सर्वाधिक चर्चित विषय है। बढ़ते हुए पर्यावरण प्रदूषण ने सम्पूर्ण विश्व का ध्यान आकर्षित किया है। वर्ष 1972 में स्टॉकहोम में पर्यावरण पर आयोजित प्रथम अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन में एकमत से पर्यावरण के संरक्षण को मानवता की मूल आवश्यकता स्वीकार किया गया था। ब्राजील में हुए "पृथ्वी शिखर सम्मेलन" में मौसम परिवर्तन, वन-विनाश, टेक्नोलॉजी हस्तांतरण जैसे महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर व्यापक चर्चा हुई। आज जल, थल और वायु की बात तो दूर अंतरिक्ष को भी प्रदूषण मुक्त करने की बातें चल रही हैं। हालाँकि बातें ज्यादा हो रही हैं और काम कम लेकिन फिर भी इन चर्चाओं से आम आदमी में पर्यावरण के प्रति सजगता पैदा हो रही है।

भारतीय जीवन एवं प्राकृतिक व्यवस्था

प्राचीन भारत में मानव का सर्वप्रथम ध्येय प्राख्रतिक व्यवस्था के साथ तारतम्यता बनाए रखना था। मनु धर्मशास्त्रों व उपनिषदों के नियम इस तारतम्यता की इच्छा को प्रदर्शित करते हैं। टैगोर ने लिखा है- वन व प्राख्रतिक वस्तुएं मानव-जीवन को एक निश्चित दिशा देते थे। मानव प्राकृतिक जीवन की वृद्धि के साथ निरंतर संपर्क में था, वह अपनी चेतना का विकास आस-पास की भूमि से करता था। उसने विश्व की आत्मा व मानव की आत्मा के बीच के संबंध को महसूस किया। मानव और प्रख्रति के बीच इस तारतम्यता ने पर्यावरण को आत्मार्पित करने की शांतिपूर्ण व अपेक्षाख्रत अच्छे परिस्थितियों अच्चे तरीकों को जन्म दिया पर्यावरण एक व्यापक शब्द है यह उस संपूर्ण शक्तियों परिस्थितियों एवं वस्तुओं का योग है, जो मानव को परावृत करती हैं तथा उसके क्रियाकलापों को अनुशासित करती हैं। मानव संपूर्ण जीव-जगत का केंद्र-बिंदु है। आनुवांशिकता उसकी अंतर्निहित क्षमताओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानांतरित करतीहै, जबकि पर्यावरण इन क्षमताओं को भू-स्तर पर लाता है। इस प्रकार मानव तथा अन्य जीव पृथ्वी तथा पर्यावरण के अविभाज्य अंग हैं और पृथ्वी को एक अविभाज्य पूर्ण इकाई का स्वरूप प्रदान करते हैं।

इस प्रकार पर्यावरण वह सब कुछ है जो प्राणी को चारों ओर से घेरे हुए है और उसे प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रहा है। पर्यावरण उन समस्त बाहरी दशाओं और प्रभावों का योग है जो प्राणी के जीवन और विकास पर प्रभाव डालते हैं। यदि हम मानव जीवन का ही उदाहरण लें तो हम इसे बहुत सी दशाओं और परिस्थितियों से घिरा हुआ पाते हैं। इनमें कुछ दशाएं प्राख्रतिक हैं जैसे- वायु, जल, तापमान, मौसम, भूमि की बनावट, वन, खनिज पदार्थ आदि। कुछ दशाएं सामाजिक हैं, जैसे- सामाजिक ढाँचा, सामाजिक संस्थाएं, सामाजिक समूह, सामाजिक मान्यताएं आदि। इसके अतिरिक्त अनेक सांस्ख्रतिक प्रतिमान, जैसे- धर्म, नैतिकता, भाषा, आदर्श, प्रथाएं, परम्पराएं, जन रीतियां, लोकाचार, आविष्कार आदि भी हमारे जीवन को पग-पग पर प्रभावित करते रहते हैं। इन सभी प्राख्रतिक, सामाजिक तथा सांस्ख्रतिक दशाओं की सम्पूर्णता ही भारतीय जीवन में 'पर्यावरण' है।

भारतीय जीवन में पर्यावरण का अर्थ वातावरण माना जाता रहा है और आज पर्यावरण का अर्थ इतना व्यापक हो चुका है कि इसमें संपूर्ण पृथ्वी, उसका वातावरण और इस धरती पर विद्यमान हर वस्तु को पर्यावरण का हिस्सा मान लिया गया है। 'पर्यावरण' वह महाविज्ञान है, जिसके अंतर्गत प्राणी-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, स्वास्थ्य-विज्ञान, भौतिक-विज्ञान, रसायन-विज्ञान तथा खगोल विज्ञान जैसे अनेक विज्ञान एक शाखा के रूप में विद्यमान हैं। आज 'पर्यावरण' शब्द आम बोलचाल की भाषा बन गया है। इसे घर-घर में पहचाना जाने लगा है- 'सत्यम, शिवम, सुंदरम' के सत्मार्ग पर चलते हुए 'सर्वे भवंतु सुखिन: सर्वे संतु निरामया' की जीवनचर्या अपनाते हुए संपूर्ण जीवन जीने के बाह्य संसाधनों तथा शारीरिक, मानसिक विकास के आवश्यक अंगों (आंतरिक संसाधनों) का सामंजस्यात्मक आच्छादन ही भारतीय परिदृश्य में पर्यावरण है।

भारतीय मानव जीवन में पर्यावरण के वास्तविक स्वरूप का वर्णन हम इस रूप में कर सकते हैं, 'मानव जीवन को प्राख्रतिक रूप से अपने निश्चित समय चक्र में जीने के लिए उनकी आधारभूत व हानिरहित आंतरिक एवं बाह्य आवश्यकताएं, जो उसके आस-पास-अन्न, भूमि, वायु, जीव तथा संसाधन आदि के रूप में विद्यमान हो, पर्यावरण है।'

अत: भारतीय जीवन में पर्यावरण उन सभी प्राकृतिक संसाधनों की समग्रता का नाम है, जो धरती माता ने मानव-जाति के लिए वरदान के रूप में दिए हैं। ये संसाधन हैं- भूमि, जल, वायु, वनस्पति, वन और वन्यजीव जो हमें चारों ओर सेघेरे हुए हैं और जो प्रतिदिन हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं

आधुनिक जीवन और पर्यावरण

सभी प्रकार के जीव और भौतिक तत्त्व अपनी क्रियाओं से एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। आदि मानव अपने भोजन के लिए शिकार और तन ढँकने के लिए पत्तों का उपयोग करता था। कालांतर में खेती, सहकारी उद्योग-धंधों, कुनबों और समाज के निर्माण से स्पष्ट है कि आदि-काल से ही मानव अंतर-आश्रित जीव रहा है। वर्तमान में विकास और विनाश की धाराएँ एक साथ कभी समानांतर तो कभी एक-दूसरे को काटती हुई चल रही है तो इसे हम बीसवीं शताब्दी का परम सत्य भी कह सकते हैं जो एक ऐसा भयानक सत्य है जो आगे आनेवाली शताब्दियों के सामने दो विराम चिह्न रखता है, एक प्रश्नवाचक और दूसरा पूर्ण विराम। विज्ञान की ताबड़तोड़ भाग-दौड़, मनुष्य का अपरिचित-असंतुष्ट लालच, तेजी से क्षत-विक्षत होनेवाले प्राख्रतिक संसाधन और प्रदूषण से भरा-पूरा संसार उजड़ता हुआ एक भयावह चित्र प्रस्तूत कर रहा हैं। आज हम जितनी तेजी गति से विकास की ओर बढ़ रहे हैं, उतनी ही तेज गति से विनाश भी हमारी ओर बढ़ रहा है।

आज के प्रगतिशील युग में भी मानव पग-पग पर अन्य समुदाय, समाज एवं दूसरे राष्ट्रों पर अंतरनिर्भर है। परंतु प्रख्रति के साथ विध्वंसात्मक कार्यवाही जो व्यक्तिगत स्वार्थ हेतु हो रही है, जिससे पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है-इससे हमारा स्थायी विकास होना तो दूर, हम स्थायी रूप से मानसिक संतुलन खोते जा रहे हैं।

बढ़ती जनसंख्या व औद्योगीकरण के कारण तकनीकी सभ्यता के द्वारा वैभव और ऐश्वर्य प्राप्त अपने में चाहे अस्थायी रूप से हम सफल क्यों न हो जाएँ लेकिन हमारा स्थायी विकास फिर भी संदिग्ध है, क्योंकि पारिस्थितिकी-व्यवस्था में असंतुलन द्रुत गति से हो रहा है। हमारी जल्दबाजी और उतावले ढंग से पर्यावरण पर विजय पाने की लालसा ने प्रख्रति द्वारा निर्मित पारिस्थितिकी-तंत्र पर प्रतिकूल असर डाला है जो किसी समाज या राष्ट्र तक सीमित न रहकर अंतरराष्ट्रीय पर्यावरण संतुलन बिगाड़ रहा है। मानव और प्रख्रति की परस्पर अंतरनिर्भरता एवं सद्भावनाओं को समाप्त करने से हमारा पारिस्थितिकी-तंत्र डगमगा रहा है। कालांतर में भी यदि मानव की यही अभिवृत्ति बनी रही तो प्रख्रति द्वारा करोड़ों वर्षों की यात्रा के उपरांत बना प्राख्रतिक पर्यावरण नष्ट हो जाएगा। मैंन मेड ईको सिस्टम' में मानव अपने अस्तित्व को उस समय खतरे में डाल देगा, जब तीव्र गति से हो रहे जल, नभ, थल, वायु, ध्वनि आदि के प्रदूषण बढ़ते-बढ़ते ऐसी स्थिति पैदा हो जाएगी कि मानव के स्वयं घुटकर मृतप्राय हो जाने की प्रबल संभावनाएँ स्पष्ट नजर आने लगेंगी। अत: समय रहते पारिस्थितिकी-तंत्र मानव समाज, जो एक-दूसरे पर आश्रित रहा है, उसे बनाए रखना होगा और प्रख्रति का अत्यधिक दोहन न करने की चेतना का विकास करने हेतु विश्वव्यापी अभियान छेड़ना होगा, जिससे प्रख्रति एवं जीवधारी अपना कार्य संतुलित ढंग से कर सकें और एक-दूसरे के सहसंबंध निरंतर अग्रसर हो सकें। मानव मात्र को चाहिए कि वे पारिस्थितिकी नियमों का अपने हित में पालन सोच-विचारकर करें। प्रगति के नाम पर प्रख्रति पर नियंत्रण करने की हठधर्मी में ढील देते हुए अपने आपको प्रख्रति का अभिन्न अंग समझने का प्रयास करना होगा, ताकि पारिस्थितिकी-तंत्र एवं समाज के बीच परस्पर संतुलन बना रह सके। क्योंकि कोई भी जीव सर्वथा एकल जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। किसी भी स्थान पर निवास करनेवाले जीव की दूसरे जीव के साथ सहवासिता अनिवार्य होती है, अर्थात् भौतिक एवं जैविक घटकों के मध्य गहरा संबंध है।जो एक आवश्यक सत्य भी है।

प्रदूषण एवं संरक्षण

मनुष्य में कई तत्व माने गए हैं। जैसे- अन्नतत्व, प्राणतत्व, बुद्धितत्व और आत्मतत्व। प्राणतत्व के लिए प्राणवायु की आवश्यकता होती है। मनुष्य ने पशुओं का उपयोग विभिन्न प्रकार से किया है। अत: पर्यावरण का आशय है- पशु-जगत्, वनस्पति-जगत्, जल-जगत् एवं वायु, नदी, पहाड़, खनिज संपदा- जो प्रख्र ति की देन हैं। पर्यावरण उन जैविक तथा अजैविक घटकों का समूह है, जो परस्पर प्रक्रिया द्वारा मानव तथा जीव-जंतुओं के जीवन को प्रभावित करता है। इतना सब होने पर भी विभिन्न प्राख्रतिक घटकों का संतुलन बिगड़ जाने से संपूर्ण पर्यावरण-तंत्र अस्थिर हो जाता है। इस अस्थिरता को पर्यावरण प्रदूषण कहते हैं। इसके विपरीत जब प्रख्रति के सभी घटकों में संतुलन बना रहता है तो उसे पर्यावरण संरक्षण कहते हैं।

प्रख्रति ने सदैव से मानव का साथ दिया है और उसके बोझ को भी वहन किया है। प्रख्रति अपनी ओर से अपने सभी संघटकों का आनुपातिक संतुलन ठीक बनाए रखने का पूरा प्रयास करती है। लेकिन मानव ने प्रख्रति को छोड़कर उसकी मूल संरचना और व्यवस्था में व्यवधान डाल दिया है और परिणामस्वरूप पर्यावरण की बिगड़ती दशा आज सम्पूर्ण विश्व के लिये चिन्ता का विषय बन गई है। मानव की विकासात्मक क्रियाएं प्रदूषण को जन्म दे रही हैं। वायु प्रदूषण, जल तथा स्थल की भौतिक, रासायनिक और जैविक विशेषताओं में अवांछनीय परिवर्तनहो रहा है। प्रदूषण के फलस्वरूप प्रख्रति का संतुलन बिगड़ रहा जो कि मानव जीवन के लिये हानिकारक सिद्ध हो रहा है। किसी भी कार्य की अति बुरी होती है। मानव द्वारा प्रख्रति के सीमित संसाधनों का अतिदोहन इस पृथ्वी व इसके पर्यावरण को कुप्रभावित कर रहा है। यदि स्थिति में अधिक सुधार नहीं हुआ तो आधुनिक सभ्यता के इस अभिशाप अर्थात, प्रदूषण का जहर कब मानव जाति को मौत के मुँह में धकेल दे कुछ कहा नहीं जा सकता।

आज यद्यपि विभिन्न राष्ट्र अपने को अपनी-अपनी भौगोलिक सीमाओं में निहित प्राख्रतिक संसाधनों का मालिक समझते हैं और उनका उपभोग जैसे चाहा वैसे करते रहे हैं। किंतु वे यह समझने में भूल करते रहे हैं कि पर्यावरण के बहुत से आयामों जैसे- वायु, समुद्र, तापक्रम आदि को कोई भी भौगोलिक सीमाओं में नहीं बांध सकता। 1972 के स्टॉकहोम सम्मेलन में विभिन्न देशों से आए प्रतिनिधियों ने एक मत से यह स्वीकार किया था कि इस पृथ्वी के पर्यावरण को राष्ट्रों की भौगोलिक एवं राजनीतिक सीमाओं में बाँधकर नहीं रखा जा सकता और एक देश में होने वाले अच्छे या बुरे क्रिया-कलापों का प्रभाव सारे विश्व पर पड़ता है। इसलिये प्रत्येक राष्ट्र का यह कर्तव्य है कि वह अपने पर्यावरण को स्वच्छ व स्वस्थ रखे। इसके बाद से राष्ट्रों के पर्यावरण के प्रति ख्र ष्टिकोणों में परिवर्तन अवश्य हुआ है किन्तु विकास की इस दौड़ में प्राख्रतिक संसाधनों के दोहन के प्रयासों के सामने पर्यावरण संरक्षण के प्रयास बौने पड़ गए हैं।

आधुनिक जीवन शैली एवं पर्यावरण

जब मनुष्य अस्तित्व में आया, तो एक अज्ञात और अज्ञात पारिस्थितिक संतुलन मौजूद था और हजारों वर्षों तक मानव आबादी और मानव गतिविधियों ने प्राख्रतिक आवास की क्षमताओं के अनुपात में वृद्धि जारी रखी। यह प्रख्रति है जिसने आजीविका और आजीविका के साथ मानव जाति प्रदान की। पिछले 200 वर्षों में, दुनिया अप्रत्याशित रूप से बदलने लगी है, जिसका मुख्य कारण जीवाश्म ईंधन, कोयला, तेल और प्राख्रतिक गैस की खोज है। इन सभी ने मानव जाति को सस्ती और सुविधाजनक ऊर्जा प्रदान की है जिसका उपयोग हम अपने घरों को गर्म और ठंडा रखने के लिए और अपनी कारों, उपकरणों और उद्योगों को चलाने के लिए करते हैं। शुरुआती दौर में, किसी ने नहीं सोचा था कि हमारी जीवन शैली में विकास और सुविधाओं के ये रूप हमारे अस्तित्व को दांव पर लगा देंगे।

आज हम अपने व्यावहारिक अनुभव से जानते हैं कि दुनिया का कोई भी शहर जीवाश्म ईंधन के प्रभाव से सुरक्षित नहीं है। हम यह भी जानते हैं कि वे पर्यावरण में बड़े पैमाने पर ग्रीनहाउस गैसों में कैसे योगदान करते हैं। कई वैज्ञानिकों का मानना है कि ग्लोबल वार्मिंग, तेजी से जलवायु परिवर्तन और जलवायु पैटर्न का विघटन ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन का कारण है। भौतिक कल्याण और आर्थिक विकास के नाम पर, पृथ्वी के वायुमंडल में बड़ी मात्रा में हाइड्रोकार्बन गैसों के उत्सर्जन ने इसकी लागत वसूल की है और इसके खतरनाक परिणामों ने पूरे ग्रह को अपने लपेटे में ले लिया है। इसके बावजूद, नीति निर्माता, सरकारी नेता और सभी प्रकार के विशेषज्ञ इस समस्या के समाधान पर लड़ रहे हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद आई इस समस्या में परमाणु ऊर्जा भी जुड़ गया है। हालांकि पहले लगा कि यह प्रदूषण-मुक्त है, थोड़ा महंगा और समस्या का दीर्घकालिक समाधान है। लेकिन जैसा कि इसके संक्षिप्त इतिहास में देखा गया है, इससे जुड़ी कई भयानक दुर्घटनाएँ हुई हैं जो हानिकारक साबित हुई हैं। दुनिया भर में लगातार प्राख्रतिक आपदाओं ने परमाणु रिएक्टरों में गड़बड़ी या अधिक गर्मी के कारण रिसाव से उत्पन्न खतरों को बार-बार रेखांकित किया है। हर कोई एक बात पर वैज्ञानिकों से सहमत होता दिख रहा है कि प्रतिकूल प्रभाव के बिना ऊर्जा उत्पादन के तरीके तलाशे जाएं। हवा, सौर, बायोमास, गर्म सूखी चटानों, लहरों और हाइड्रोजन को संभावित अक्षय ऊर्जा स्रोतों के रूप में नाम देना उचित होगा। इन ऊर्जा स्रोतों के व्यापक प्रभाव में कुछ साल लग सकते हैं लेकिन वे संकेत देते हैं कि उपलब्ध वैकल्पिक स्रोतों की कोई कमी नहीं है।

जीवन शैली परिवर्तन की प्रासंगिकता एवं निष्कर्ष

अब वह ऐतिहासिक क्षण आ गया है जब हम विश्व स्तर पर पर्यावरणीय परिणामों की ख्रष्टि से अपने क्रियाकलापों में विवेकपूर्ण परिवर्तन लाएं। अपनी अज्ञानता और उपेक्षा से हम पृथ्वी के पर्यावरण को जिस पर प्राणी मात्र और उनके हित अवलंबित हैं, बहुत सारी और अपरिवर्तनीय हानि पहुंचा सकते हैं। इसके विपरीत पूरी जानकारी और बुद्धिमता पूर्ण कार्यों से हम अपने तथा अपनी संततियों के लिए मानव आवश्यकता के अनुरूप तथा आशा अनुकूल एक अच्छे जीवन के लिए, एक अच्छा पर्यावरण भी बना सकते हैं। अब तो शांतिपूर्ण मन से सोचने और गंभीरता पूर्ण तरीके से कार्य करने की प्रख्रति के संसार में स्वतंत्रता पूर्वक रहने के लिए मनुष्य को प्रख्रति के साथ मिलकर एक अच्छा वातावरण बनाने की योग्यता उपयोग में लानी चाहिए। वर्तमान में तथा भावी पीढ़ियों के लिए मानव पर्यावरण की सुरक्षा और सुधार ही मनुष्य मात्र का आवश्यक लक्ष्य होना चाहिए ताकि ऐसा लक्ष्य विश्वव्यापी आर्थिक और सामाजिक विकास तथा मौलिक और स्थिर शांति के लक्ष्य के साथ समन्वय बिठा सके। इन सबके साथ साथ हम को अपने जीवन जीने की शैली में भी कुछ बुनियादी परिवर्तन करने होंगे।

हम में से प्रत्येक को अपनी जीवनशैली में बदलाव लाने की आवश्यकता है। पृथ्वी के पर्यावरण में हो रहे परिवर्तन का सीधा सम्बन्ध "उपभोग" से है. और यह उपभोग हमारी जीवनशैली से सम्बंधित है. हम जो भी वस्तुएं खरीदते हैं, जिस प्रकार के संसाधनों का इस्तेमाल करते हैं, जैसे जीवन जीते हैं, उसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव हमारे पर्यावरण पर पड़ता है. पृथ्वी के वातावरण में या यों कहें की जलवायु में वाकई में परिवर्तन हो रहा है, जिसपर हम सभी को ध्यान देने की जरूरत है. हम इस बदलाव को रोकने के लिए अपनी जीवनशैली में छोटे छोटे परिवर्तनों को ला कर काफी मदद कर सकते हैं। व्यक्तिगत रूप से किये जा सकने वाले कुछ सुझाव निम्न प्रकार से है–

सुझाव

1. बिजली बचाएँ अर्थात आवश्यकता न पड़ने पर वैद्युत उपकरणों को बंद कर दें, उसे स्टैंड बाय मोड पर न रखें।
2. पैदल चलें या सार्वजनिक यातायात साधनों (बस या ऑटो) का प्रयोग करें अर्थात कम दूरी के लिए निजी वाहनों का प्रयोग करने के बजाए पैदल चलें या साइकिल का प्रयोग करे।
3. वाहनों को आराम से या निर्धारित गति सीमा में चलायें।
4. जहाँ तक संभव हो अपने कार्यालय स्थल में या घर पर बिजली की बचत करें।
5. जल संसाधनों का मितव्ययी तरीके से इस्तेमाल करें।
6. कागज बचाएं. जहाँ तक संभव हो कागज के दोनों सतहों का प्रयोग करें, तथा छात्र अपनी पुराणी कापियों में बचे हुए पन्नों से एक अलग रफ कापी तैयार कर सकते हैं, इस प्रकार से हम अप्रत्यक्ष रूप से पेड़ पौधों को काटने से बचाते हैं।
7. कचरे को कभी न जलाएं. कचरे को निर्धारित स्थानों पर ही फेंके।
8. बाजार जाते हुए कपडे के थैले का प्रयोग करें।
9. कूड़े कचरे को पोलीथिन की थैलियों में भर कर न फेंके, इस प्रकार से हम अनायास ही गौ हत्या के पाप से बच सकते हैं।
10. अपने जन्मदिन पर एक पौधा अवश्य लगायें. अपने मित्र के किसी हर्ष उत्सव पर उसे पौधा भी भेंट करें।
11. गर्मियों के समय में अपने छतों पर पानी का बर्तन और दाना की व्यवस्था करें जिससे की पक्षियों की आकस्मिक मृत्यु न हो।

ये उपरोक्त सभी उपाय करने योग्य है जिसमें कोई अतिरिक्त धन का व्यय नही।इस संदर्भ में हम सभी को शीघ्र ही आत्मचिंतन करना चाहिए क्योंकि हमारे पास रहने के लिए सिर्फ एक ही पृथ्वी है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. मेहता, डी.डी., (2001) उभरते भारतीय समाज में शिक्षा, टण्डन पब्लिकेशन, लुधियाना।
2. नन्दरा, इन्द्र देव, (2004) शिक्षा के दार्शनिक, सामाजिक एवं आर्थिक आधार, विश्वजीत पब्लिकेशन, पटियाला।
3. वर्मा, एम.एल., (2006) पादप पारिस्थितिकि तथा पादप भूगोल, अल्का पब्लिकेशन, अजमेर।
4. सिंह, मंजु, (2007) पर्यावरण प्रबन्धन, डिसकवरी पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली।
5. व्यास,हरीशचंद्र. (2004) पर्यावरण संरक्षण के उत्प्रेरक, आशा प्रकाशन गृह, नई दिल्ली।
6. मिश्रा, संध्या., (2015) पर्यावरणीय शिक्षा, आर लाल बुक डिपो, मेरठ।
7. सक्सेना, हरिमोहन. (2002) पर्यावरण एवं प्रदूषण, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
8. कुमार, संजीव, (2008) पारिस्थितिकि एवं पर्यावरण, ल्युसेंट पब्लिकेशन, पटना (बिहार)।
9. शर्मा, दामोदर, (2010) आधुनिक जीवन और पर्यावण, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
10. https://www.bhaskar.com/amp/rajasthan/sirohi/news/rajasthan-news-seminar-held-on-the-role-of-youth-in-environmental-protection-063040-6193445.html
11. https://hindi.indiawaterportal.org/node/47047
12. https://slmaheshwari.wordpress.com/artical
13. https://hindi.speakingtree.in/article/content-246889/m-lite

'आग-पानी-आकाश' उपन्यास में 'दलित विमर्श'

लक्ष्मी देवी

पीएच.डी. शोधार्थी, हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है, जिसमें समाज के प्रत्येक वर्ग को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। साहित्य ही समाज का पथप्रदर्शक होता है। साहित्य के द्वारा ही प्रत्येक देश अथवा राष्ट्र वहाँ के इतिहास, परम्परा, संस्कृति एवं सभ्यता से परिचित होता है। मनुष्य की बुद्धिमता की प्रगति भी साहित्य के माध्यम से होती है। मनुष्य समाज का एक महत्वपूर्ण आधार है। व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक समाज पर ही निर्भर करता है। समाज के अन्तर्गत ही साहित्यकार पैदा होता है। साहित्यकार के आस-पास जो कुछ भी घटता है, वह उसे साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करता है।

वर्तमान समय विमर्शों का समय है। साहित्य के संदर्भ में 'विमर्श' धारणा आधुनिक समय की देन है। विगत दो दशकों में यह संकल्पना साहित्य मीमांसा में प्रयुक्त मिलती है। 'विमर्श' शब्द मूलत: गहन सोच-विचार, विचार-विनिमय तथा चिंतन मनन को प्रकट करता है। अर्थात् 'विमर्श' से सीधा तात्पर्य सोच-विचार, विनिमय तथा विवेचन से है। यह एक ऐसी धारणा है कि जिसके अंतर्गत संसार के किसी भी विषय पर तर्कसंगत सोच-विचार-विनिमय हो सकता है, विवेचन-विश्लेषण किया जा सकता है। विमर्श का स्वरूप बहुत व्यापक है, किंतु इसमें किसी विषय पर बारीकी से सोच-विचार अपेक्षित है। आधुनिक समय में अनेक विमर्शों पर चर्चा हो रही है। समाज के शोषित, उपेक्षित, तिरस्कृत वर्गों पर साहित्य के द्वारा विचार विमर्श हो रहा है। हाशिए के समाज या परित्यक्त किए गए समुदाय को मुख्य धारा से जोड़ने के प्रयास हो रहे हैं। स्त्री, आदिवासी, दलित, वृद्ध, दिव्यांग आदि विषयों पर विमर्श चल रहा है।

वर्तमान समय में साहित्य जगत में स्त्री विमर्श के साथ अगर कोई विमर्श चर्चा का विषय बना हुआ है तो वह दलित विमर्श है। 'दलित-विमर्श' की धारणा आधुनिक समय की उत्पत्ति है। वस्तुत: स्वतंत्रतापूर्वकाल में भी दलितों के जीवन को केंद्र में रखकर लेखनकार्य हुआ है परन्तु स्वातंत्रयोत्तर समय में इस लेखनकार्य में अधिकाधिक प्रगति होती गई। लेकिन 'दलित-विमर्श' संकल्पना बीसवीं सदी के अंतिम दो दशक में अस्तित्व में आई। हिन्दी में 'दलित-विमर्श' संकल्पना को स्थापित करने का श्रेय हंस के संपादक प्रसिद्ध हिन्दी कथाकार राजेन्द्र यादव को देना होगा। उन्होंने 'हंस' के संपादकियों, कहानियों, लेखों तथा समीक्षाओं आदि के जरिए 'दलित-विमर्श को जो स्पेस' देकर उसे बहस का मुख्य हिस्सा बना दिया है। वह निश्चय ही प्रशंसनीय है।

हिन्दी उपन्यास मूलत: आधुनिक काल की उपज है। इसमें दलितों के जीवन को लेकर स्वाधीनता पूर्वकाल में भी लेखन किया हुआ मिलता है। किंतु स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद ही इस लेखन को बल मिला। प्रेमचन्द ने अपने कथा-साहित्य में दलितों के जीवन का चित्रण अद्‌भुत रूप से किया। लेकिन उस काल में प्राय: दलित जीवन चित्रण लेखन का अंग रहा, दलितों का वैचारिक जागरण नहीं। दलितों के विचार-चिंतन एवं वैचारिक जागरण को मूलत: स्वातंत्रयोत्तरकालीन, विशेषत: समकालीन उपन्यासों में अभिव्यक्ति मिली। समकालीन परिवेश के फलस्वरूप जहाँ एक ओर दलितों को आत्मचेतना, आत्माभिमान एवं अस्तित्वबोध की प्रेरणा मिली, वहाँ दूसरी ओर दलितों के परिवर्तित जीवन व्यवहार तथा चेतना को अंकित करने का दायित्व समकालीन साहित्यकारों ने निभाने का प्रशंसनीय प्रयास किया।

वर्तमानकाल के उपन्यासकारों में रामधारी सिंह दिवाकर का नाम उल्लेखनीय है। उनका 'आग-पानी आकाश' एक बहुचर्चित उपन्यास है। जो दलित-विमर्श को नए प्रश्न एवं परिप्रेक्ष्य देता है। प्रस्तुत उपन्यास में दलितों के वैचारिक जागरण का परिचय मिलता है। इनमें आत्मचेतना एवं अस्तित्वबोध के फलस्वरूप दलितों में विकसित होती जा रही विद्रोही चेतना का भी अंकन है। यह उपन्यास सामंती मिजाज के दलित बनाम दबे-कुचले दलित की मर्मभेदी कथा के माध्यम से समकालीन यथार्थ को चित्रित करता है। धोबी वर्ग को विषय बनाकर हिन्दी में लिखा गया संभवत: यह पहला उपन्यास है। इसकी परिधि में अन्य दलित जातियों की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इस उपन्यास को लेकर राजकिशोर जी कहते हैं, "यह उपन्यास दलित समाज, दलित मनोविज्ञान और समाज व्यवस्था के बदलते हुए रूपों को समझने का प्रामाणिक रचनात्मक प्रयास है।"[1] इसी बात को हरजेंद्र चौधरी अलग ढंग से कहते हैं कि, "कथाकार रामधारी सिंह दिवाकर का चौथा उपन्यास 'आग-पानी आकाश' (1999) हमारी सामाजिक व्यवस्था में घटित हो रहे कुछ महत्वपूर्ण बदलावों को रेखांकित करता है। उपन्यासकार ने गरीब दलित लोगों के वर्गातरण के विवादास्पद विषय को काफी संतुलित और लगभग सांगोपांग ढंग से हमारे सामने रखा है।"[2]

प्रस्तुत उपन्यास में बब्बन, युगेश्वर और भागवत के माध्यम से ऐसे पात्रों का चित्रण मिलता है। जो दलित जाति से सम्बन्ध रखते हैं। अपने समय में जाति व्यवस्था के नाम पर उन्हें सवर्णों के द्वारा दी गई कई मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। जीवन में सफलता के स्तर पर पहुँचकर वह अपने वर्ग को भूलते हुए नजर आते हैं। वह अपने वर्ग से ऊपर उठकर जीना चाहते हैं, और वह भी सवर्णों की राह पर चलकर अपने ही वर्ग के दलितों के साथ शोषण करते हुए नज़र आते हैं। बब्बन धोबी स्वयं को अन्य धोबियों से विशिष्ट मानता है, क्योंकि वह आम आदमी के कपड़े नहीं धोता, सिर्फ जमींदार परिवार के कपड़े धोता है। इसीलिए उसने भागवत रजक और युगेश्वर रजक की जगह अपने बेटों के नाम लिखवाए - भागवत प्रसाद वैश्यंत्री और युगेश्वर वैश्यंत्री। यह 'वैश्यंत्री' पदवी दरभंगाराज से जुड़े धोबियों से बब्बन ने सीखी थी। जाति बोधक नई संज्ञा से कस्बे के दूसरे धोबी भी चकरा गए। इसलिए चकरा गहये क्योंकि बब्बन

ने इससे पहले अपने नाम के आगे गाँव के स्कूल में राजधोबी वैश्य लिखवाया और फिर कस्बे में सरकारी स्कूल में वैश्यंत्री। बब्बन स्वयं को अपनी बिरादरी के अन्य लोगों से ऊँचा समझता है। यही कारण है कि राजपुताही के खानगी स्कूल में उसके लड़के भागवत, युगेश्वर कांख में टाट की बोरी दबाये सबसे पहले पढ़ने जाते हैं, जबकि चमार टोली के दो बच्चे और दुसाथ टोली का एक बच्चा दो साल बाद स्कूल जाने लगे।

गाँव के स्कूल में भागवत और युगेश्वर को अनेक कटु अनुभव होते हैं। अध्यापक और बच्चों के लिए वे अछूत है। जिसका चित्रण इन पंक्तियों के माध्यम से स्पष्ट होता है - "जिस पंक्ति में भागवत और युगेश्वर बैठते, उस पंक्ति में कोई बच्चा नहीं बैठता था।"[3] सबसे अलग रहकर ही भागवत और युगेश्वर स्कूल जाते और चुपचाप लौट आते थे। बब्बन धोबी के पास खेती-बाड़ी भी है, जमीदार ने जमीन दी। कस्बे में रहने की व्यवस्था भी हो गई। बच्चों की - पर कमाई तो खेती-बाड़ी से हो रही थी, इसलिए वह गाँव छोड़ नहीं सकता था। प्रस्तुत उपन्यास में यह स्थापित हो जाता है कि आरक्षण की सुविधा वाले वर्ग में भी अधिक विषमता के बीज हैं। क्योंकि "भागवत और युगेश्वर फुलपैंट, कलफदार शर्ट, चमचमाते जूते पहन कर रिक्शे पर स्कूल जाते और दूसरे चमार टोली और दुसाध टोली के चार लड़के पैदल आते-जाते जिसे हीनता की ग्रंथि भागवत और युगेश्वर के प्रति पनपी।"[4]

इस प्रकार बब्बन धोबी के दोनों बेटे अनेक सामाजर्थिक बाधाओं के बावजूद शिक्षित होने में सफल हो जाते हैं। बड़ा बेटा भागवत माँ-बाप की मृत्यु के उपरांत बी.ए. की पढ़ाई बीच में छोड़कर खेती करने लगता है और विधायक मामा की मदद से ठेकेदारी के धंधे में लग जाता है। भागवत ठेकेदारी और भ्रष्टाचार के जरिए समृद्धि हासिल करता है। गाँव और कस्बे के बीच मौसमी नदी पर पुल बनाकर, गाँव में शिव मंदिर बनाकर, कस्बे में धोबिया कॉलेज खोलकर भगवता से भागवत बाबू बनकर नयी व्यवस्था का नया सामंत हो जाता है।

बब्बन परिवार की जमीन बढ़ने लगी। भागवत कॉलेज खोलकर और उसमें नौकरियों के लिए सबसे बयाना राशि ले ली और बिना वेतन नियुक्ति कर दी। अब बड़े आदमी के सारे गुण उसमें आ गए - "झिटकी बभनगामा में बब्बन के बेटे भागवत की तरक्की आश्चर्यजनक थी। राजड्योढ़ी पतन की अन्तहीन कथा बन गई थी। अब वही राजड्योढ़ी थी, अंत प्रत्यंग कटी हुई प्रतिमा की तरह। जो भाई जितना हथिया सका, उसके अधिकार में आ गया।"[5]

विवेच्य उपन्यास में दिवाकर जी ने दलित की नव्य सामंती मनोवृति को बेपर्दा किया है। हर नया वर्ग सामंती जीवन के प्रति आकर्षण रखता है और सामंती जीवन जीना चाहता है। हर सामाजिक क्रांति वासना के इसी सैलाब में बह जाती है। बब्बन का बेटा भागवत ठेकेदारी से बहुत सारा पैसा कमाकर सवर्णों के आचरण सा हो जाता है। ब्राह्मणों, राजपूतों, कायस्थों के प्रति उसके आचरण में विशेष बदलाव दिखते हैं। उनके प्रति भागवत के व्यवहार में रियायत का भाव दिखाई पड़ता है। पर अपने ही वर्ग के लोगों से बुरा बर्ताव करते हुए नज़र आते हैं। जिनका स्पष्ट माध्यम इन पंक्तियों मे मिलता है - "खबास-टोली, दुसाध टोली, चमार टोली आदि के जरूरत मंद लोग भागवत बाबू की बैठक के आगे मुलाकात के उद्देश्य से बैठे रहते। इन लोगों से भागवत सीधे मुँह बात नहीं करते थे। बोली में ऐंठन और गालियाँ आ गयी थीं। ... दस जूते लगेंगे तब मन ढील नहीं होगा।"[6]

अधिकाधिक पैसा कमाने के बाद भागवत वैश्यंत्री बनकर नए सामंत वर्ग का सदस्य बन जाता है। पैसे के ज़ोर से शिक्षा-माफिया बनना, स्वयं को सवर्ण समझते हुए गरीब दलित को कुचलना, अपने चाचा हुम्मन को कॉलेज बनाने का सब्जबाग दिखाकर उनके पास से जमीन हड़प लेना, अपने बच्चों को दिल्ली के ईसाई मिशनरी स्कूल में पढ़ाना। उसमें सभी सामंती शील आ जाते हैं। जिससे दलितों का नेतृत्व करने की अपेक्षा हो जाती थी।

उपन्यास के कथानक का दूसरा भाग युगेश्वर वैश्यंत्री बब्बन के दूसरे बेटे की कहानी है। जो ऊँची शिक्षा प्राप्त करके उच्च पद प्राप्त करता है। शुरू से ही युगेश्वर की इच्छा रहती है कि वह अपनी दलित पृष्ठभूमि से निकलकर मध्य वर्ग की आधुनिकतावादी धारा में प्रवेश करे। अत: वह जैसे-जैसे अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता जाता है, अपने अतीत को भुला देना चाहता है। युगेश्वर छोटी जाति के प्रति अपनी घृणा के चलते एक रिटायर्ड बंगाली प्रोफेसर की पुत्री कामना घोष से विवाह कर लेता है। अपनी स्नेहमयी नि:संतान मामी के समक्ष वह अपना उद्गार इन शब्दों में व्यक्त करता है - "मामी, अब सच्ची बात बताऊँ आपसे। मैं धोबिन से शादी करना चाहता ही नहीं था। ... अफसर की बीबी होने से क्या हो जाएगा? धोबिन कुछ भी हो जाए, धोबिन ही रहेगी।"[7]

यहाँ पर मामी का उत्तर भी ध्यान देने योग्य है। वह कहती है - "तो भांजे क्या आप धोबिन के जाये नहीं है? इतनी जल्दी भूल गए अपने माँ-बाप को? ... यही पढ़ाई-लिखाई है आपकी? अफसरी मिल गई तो क्या जात भी बदल गई आपकी? गिरह बांध लीजिए भांजे, आप कुछ भी हो जाएंगे, लोग आपको धोबी ही कहेंगे।"[8] मामी की प्रतिस्मृति के रूप में उसके बचपन के अनुभव भी उसके मन में फुसफुसाते हैं - "अपनी उस जमीन को नहीं भूलना चाहिए जिस जमीन से ऊपर उठे हैं आप। जो जमीन को भूलता है, अपनी पृष्ठभूमि को भुलाता है, अपने माँ-बाप, भाई-बहन को भूलता है, रिश्तेदारों को भूलता है, वह कृतघ्न है। उसका जीवन कृत्रिम है।"[9]

युगेश्वर आरक्षण के सहारे क्लास वन सर्विस में चुनकर सचिवालय के वित्त विभाग में अण्डर सेक्रेटरी बन गया। युगेश्वर प्रसाद वैश्यंत्री इलीट की तरह रहते हैं। किसी भी सवर्ण की तरह वह भी दलित से नफरत करते हैं। बच्चे की देख-भाल के लिए जब पड़ोसी अफसर की पत्नी मिसेज महरोत्रा ने एक चमाइन आया की सिफारिश की तो वैश्यंत्री साहब ने कहा - "ये हरिजन औरतें बड़ी बेढंगी रहोती हैं। कोई संस्कार होता है इनका? किसी ठीक ठाक जात की खोजो।"[10]

दलित वैश्यंत्री के कंठ से बाहर निकली हुई यह भाषा सवर्ण की सामंती संस्कार से सिंचित की गई है अपने अधीनस्थ कर्मचारी प्रशाखा पदाधिकारी से लेकर चपरासी तक को अपमानित करना वैश्यंत्री साहब का प्रतिदिन का धंधा रहता है। अपनी जात-बिरादरी के प्रति उनकी क्रूरता तो भयावह है। जब एक दिन गाँव में दलितों को बच्चों सहित जला दिया गया, तब भी वैश्यंत्री साहब अपना विवाह-दिवस मनाना नहीं छोड़ते हैं।

जब पासवान जी उनसे इस दुष्काण्ड का जिक्र करते हैं तब उनका यह अमानुषिक तर्क, सिहरन उत्पन्न कर देता है - "देखिए पासवान जी, हरिजनों पर हर युग में अत्याचार होता रहा है। आज भी हो रहा है, इसमें नया कुछ नहीं है और वे हरिजन क्या हम आप हैं? क्यों माथा पच्ची कर रहे हैं बेमतलब?"[11] युगेश्वर के इस कथन से स्पष्ट हो रहा है कि अफसरी अकड़ और अत्यधिक सुविधाओं में गर्क जीवन जीता हुआ वह जमीन से खेल करता ही नहीं है,

बल्कि उस जमीन से नफरत भी करता है। कारण यह नहीं है कि उसकी जमीन घृणित है, कारण यह है कि वह अपने अहं को अपनी जमीन और अपने लोगों से अधिक महत्व देता है।

उपन्यास के इन दो पात्रों भागवत तथा युगेश्वर के समूचे व्यवहार को देखकर प्रश्न यह उठता है कि क्या शिक्षित संपन्न हो जाने वाले अधिकतर व्यक्ति अपने मूल वर्ग के प्रति स्वस्थ, रचनात्मक, विकासात्मक दृष्टिकोण नहीं अपना पाते? क्या उनकी शक्ति संपन्नता उन्हें इस हद तक संवेदन -शून्य और अमानवीय बना देती है कि वे सामान्य मानवीय अनुभूति के अनुभव से ही वंचित हो जाते हैं? उनकी मानसिकता और व्यवहार में क्या अंतर रह जाता है? और 'नव सामंतवादी उभार' पुराने सामंतवाद से किसी मायने में कम खतरनाक और कम क्रूर नहीं है।

कुछ मूलभूत प्रश्नों के उत्तर हमें उपन्यास के एक तीसरे महत्वपूर्ण चरित्र रामसजीवन के व्यवहार से मिलते हैं। जिसे अपने वर्ग के प्रति सहानुभूति है। रामसजीवन झमेली राम चमार का बेटा है, जिसके पास ढाई-तीन एकड़ जमीन ही है। बाप की आमदनी के संसाधनों के अभाव में वह छोटी रानीगंज कस्बे के कॉलेज में पढ़ता है और बब्बन का लड़का युगेश्वर पटना कॉलेज में। यद्यपि बब्बन का दूसरा लड़का भागवत भी वहीं पढ़ता है, किन्तु वह पढ़ने में कमजोर था। "रामसजीवन में युगेश्वर वाली मेघा नहीं थी, लेकिन वह अव्वल दर्जे का मेहनती है।"[12] रामसजीवन भी दलित शिक्षित है, स्कूल में मास्टरी करके और साथ-साथ ट्यूशन करके पटना शहर में जीवन निर्वाह कर रहा है। वह पटने से स्कूल के प्राध्यापक का पद प्राप्त करने के लिए अपने घर लौटता है, तब वह अपने घर में भयंकर गरीबी का रूप देखता है।

प्रस्तुत उपन्यास में कथाकार ने उस विपन्नता का चित्र इन शब्दों में उपस्थित किया है - उसने मां को देखा जो फटे-गंदे कपड़ों में किसी तरह अपने को ढके हुए थी। शाम के धुंधलके में कंकाल-सी दिखाई पड़ती थी मां। ... बेचनी (रामसजीवन की विधवा बहन) के शरीर पर कई पैबंदों वाली वायल की साड़ी थी जो हद से ज्यादा गंदी थी। बालों में तेल शायद महीनों से नहीं पड़ा था। धंसी आंखे और खुरदरे गंदे हाथ उसने तब देखे थे जब बेचनी प्रणाम करने आई थी। ... बच्चे के शरीर पर एक फटी हुई बनियान भर थी जो छाती के पास मैल की तहों से भरी हुई थी। ... बच्चे के सिर पर गेहूं के पुराने भूसे की तरह बाल थे।"[13]

अपने घर परिवार की ऐसी दशा देखकर रामसजीवन भीतर तक आहत हो उठता है। उसे स्वयं पर क्रोध आता है कि अगर उसके पास आज कोई नौकरी होती तो शायद उसके परिवार की ऐसी दयनीय स्थिति न होती। युगेश्वर का सिफारिशी पत्र लेकर वह 'लेक्चरशिप' पाने में सफल हो जाता है। परंतु जब उसे अपने गाँव आने पर अपनी विधवा बहन बेचनी के प्रति भागवत बाबू की लोलुपता भाव की सूचना मिलती है तो वह अपनी महत्वकांक्षा और लेक्चरशिप को ठोकर मार देता है। विधवा बिहन बेचनी और बीमार मां को लेकर वह पटना चला जाता है और यारपुर मोहल्ले के गरीब दलितों में चेतना फैलाने का महत्वपूर्ण और ईमानदार प्रयास करने लगता है। दलितों के मोहल्ले में रहते हुए भी वह सामाजिकता के महत्व को गहराई से महसूस करता है - "कितनी बड़ी चीज होती है यह समूह-भावना। कठिनाइयां तिनकों की तरह मामूली-सी फूंक से उड़ जाती है।"[14]

रामसजीवन हर किसी की सहायता के लिए सदैव तैयार रहता है। युगेश्वर और भागवत की माँ (माँ जैसी चाची) अपने छोटे पोते को लेकर जब युगेश्वर से मिलने एक बार आती है तो युगेश्वर उन्हें बाहर से ही खदेड़ देता है - "बोले कि कवन चाचा-चाची? हमारा केहू नहीं है चाचा-चाची। भगाओ। जाने कहां-कहां से लोग चले आते हैं धर्मशाला समझकर!..."[15]

पहले ड्राइवर केवल सिंह और अगले दिन रामसजीवन दादी-पोते को अपने घर ले जाता है। इस तरह वर्तमान भारतीय समाज में मानवीय संबंधों की बनती बिगड़ती सरंचनाओं के नए स्वरूप से पाठक रू-ब-रू होते हैं। रामसजीवन व्यक्तिगत सुविधाओं और निजी अहं की अपेक्षा सामाजिक दायित्वों और सरोकारों को महत्व देता है। इस कारण उसका जीवन और अधिक सार्थक हो जाता है। वह केवल अपने या अपने परिवारजनों के भविष्य के प्रति ही चिंतित नहीं है, बल्कि दलित मोहल्ले के गरीब बच्चों को मुफ्त पढ़ाकर उनका भविष्य बनाने में भी रुचि लेता है। अपनी सीमाओं में रहते हुए वह जिस स्तर पर और जिस रूप में अन्याय और शोषण का प्रतिरोध कर सकता है, करता है। रामसजीवन क चरित्र से एक आशा की किरण जगती है कि वह अपने समाज के लिए कुछ कर सकता है।

निष्कर्षतः रूप से कह सकते हैं, कि प्रस्तुत उपन्यास में यहां दलित विमर्श का एक ऐसा पक्ष सामने आता है कि जिस भूमि से अपने अभावग्रस्त जीवन से गुजरते हुए दलितों का एक पढ़ा-लिखा तबका ऊपर उठ रहा है। ऊँचे पदों पर पहुँच रहा है। वहाँ पहुँचने के बाद वह अपनी उसी भूमि को भूल रहा है। यहां तक उस भूमि पर वापस लौटने में वह शरम महसूस करने लगता है। युगेश्वर और भागवत भी इसी विषय के प्रमाण है। दलित विमर्श का यह पक्ष न केवल चिंता का विषय है बल्कि चिंता का भी। विवेच्य उपन्यास में दलित विमर्श के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि दलितों में अब स्वाभिमान, आत्मचेतना एवं अस्तित्वबोध उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। इससे सवर्णों में ईर्ष्याभाव भी उत्पन्न हो रहा है। कुछ दलित युवक परिणाम की चिंता किए बिना विद्रोह करने का साहस दिखा रहे हैं। स्थापित व्यवस्था के प्रति उनके मन में अब आक्रोश भी नज़र आता है। अपने अपमान एवं तिरस्कार को समझने की क्षमता दलितों में विकसित हो रही है। संघर्ष के बिना न्याय संभव नहीं है। रामसजीवन इस बात का प्रमाण है, जो न ही सिर्फ दलित जाति से संबंध रखता है। बल्कि अपने अधिकारों के प्रति भी संघर्षरत है। और उसका यह संघर्ष केवल उस तक सीमित न रहकर अन्य दलितों को जागरुक करता हुआ नज़र आता है।

ग्रामीण चेतना के कथाशिल्पी रामधारी सिंह दिवाकर ने विवेच्य उपन्यास में दलितों की अर्न्तकथा को बड़ी बेबाकी से उजागर किया है। जहाँ एक ओर सामंती व्यवस्था टूट रही है, लेकिन दूसरी ओर एक नव सामंती व्यवस्था अपने पंजे फैला रही है। अपने निहित स्वार्थों के लिए नव सामंती व्यवस्था किसी भी सीमा तक जाने में कोई संकोच महसूस नहीं करती है। दलितों के शोषण और दमन का जीवन चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में किया गया है और वह भी दलितों के द्वारा ही, जिसमें गैर दलितों का खुलकर इस्तेमाल किया जा सकता है। आरक्षण की सुविधा भोगते हुए दलितों के बीच का वह शोषित वर्ग है, जो आम

शासन-प्रशासन में सुविधाजनक स्थिति बनाकर प्रतिष्ठित हो चुका है, उसकी सामंतवादी मानसिकता को इस उपन्यास में सफलतापूर्वक चित्रित किया गया है। यह नया वर्ग सवर्ण सुविधाभोगी वर्ग से हीनता की ग्रंथि से ग्रस्त है। निस्सन्देह पुरानी सामंती व्यवस्था जर्जर हो चुकी है, किन्तु नव-सामन्तवादी व्यवस्था आर्थिक विषमताओं के कारण पनप चुकी है। ऐसे अनेक विचारोत्तजेक प्रश्न विवेच्य उपन्यास छोड़ता है।

सन्दर्भ

1. जीतेंद्र वर्मा, ग्रामीण जीवन का समाजशास्त्र, पृष्ठ-157
2. वही, वही, पृष्ठ-167
3. रामधारी सिंह दिवाकर, आग-पानी आकाश, पृष्ठ-07
4. वही, वही, पृष्ठ-23
5. वही, वही, पृष्ठ-38
6. वही, वही, पृष्ठ-45
7. वही, वही, पृष्ठ-50
8. वही, वही, पृष्ठ-50
9. वही, वही, पृष्ठ-52
10. वही, वही, पृष्ठ-89
11. वही, वही, पृष्ठ-118
12. वही, वही, पृष्ठ-31
13. वही, वही, पृष्ठ-75
14. वही, वही, पृष्ठ-106
15. वही, वही, पृष्ठ-124

जनसंख्या घनत्वः चतरा जिला (झारखण्ड) के संदर्भ में एक प्रतीक अध्ययन

डॉ० मनीष कुमार

पी0जी0टी0, रा0कृ0 +2 उच्च विद्यालय, तरहसी, पलामू

शोध सारांश

किसी भी प्रदेश में जनसंख्या को आकर्षित करने वाले दो तत्व हैं - भौगोलिक तत्व एवं सांस्कृतिक तत्व। भौगोलिक तत्वों में स्थिति, जलवायु, जल की उपलब्धता, भूमि की बनावट, उर्वरा शक्ति, खनिज एवं शक्ति के साधनों की प्राप्ति है, जबकि सांस्कृतिक तत्वों मे ऐतिहासिक, धार्मिक और सामाजिक तत्व, राजनीतिक तत्व, परिवहन भागों का विकास, नगरीकरण, विद्युतीकरण मुख्य हैं। जहाँ भी इन तत्वों की उत्तम उपस्थिति होती है वहीं जनसंख्या का जमाव पाया जाता है।

चतरा जिला जनसंख्या घनत्व की दृष्टि से विषमता वाला क्षेत्र है। यहाँ औसत 281 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर घनत्व है। लेकिन यहाँ 105 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से लेकर 467 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर का घनत्व मिलता है। इस जिला मे बेराजगारी, स्वास्थ्य, उग्रवाद जैसी कई समस्याएँ विद्यमान है। जनसंख्या में घनी होने के बावजूद यह जिला आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से पिछड़ा है। इस प्रकार जिला में आकर्षण एवं विकर्षण दोनो कारक मौजूद है।

मुख्य शब्दः जनसंख्या घनत्व, अंकगणितीय घनत्व, जनाकर्षक, आंकिक, जनदबाव

परिचयः

जनसंख्या घनत्व भूमि पर जनसंख्या के दबाव को प्रर्दशित करता है। यह वायुमंडल में वायुदाब की माप करने वाले बैरोमीटर के समान है जो भूमि के प्रति इकाई क्षेत्रफल पर जनदाब को व्यक्त करता है। सामान्यतः किसी प्रदेश के क्षेत्रफल और जनसंख्या के अनुपात को ही जनसंख्या घनत्व कहा जाता है। किसी भी क्षेत्र में जनसंख्या के भरण-पोषण के लिए कुछ आर्थिक साधनों की आवश्यकता होती है जो कृषि, पशुपालन, खनन, उद्योग, व्यापार, सेवाओं आदि व्यवसायों से प्राप्त होतें है। अतः आर्थिक-सामाजिक स्थिति के आकलन के लिए विविध प्रकार के घनत्वों द्वारा संसाधन अनुपात ज्ञात किया जाता है।

अध्ययन क्षेत्र

चतरा जिला झारखण्ड के बाहरी छोटानागपुर पठार का भाग है। यह उत्तरी छोटानागपुर के उत्तरी भाग मे स्थित है। इस जिला को 1991 ई0 में हजारीबाग जिला से अलग किया गया था। इसका अक्षांशीय विस्तार 23^{0}38' 31" उत्तरी अक्षांश से 24^{0}30' उत्तरी अक्षाश तथा 84^{0}29'15" पूर्वी देशान्तर से 85^{0}19'1" पूर्वी देशान्तर के मध्य है। इस जिला का कुल क्षेत्रफल 3718 वर्ग किलोमीटर है। 2011 के जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या 1042886 व्यक्ति है। फलगू,हेरू,मोरहर,बराकर,मोहनी,दामोदर तथा अमानत मुख्य नदियाँ है। शोध क्षेत्र उष्ण कटिबंधीय मानसून क्षेत्र में स्थित हैं। औसत तापमान 22^{0} से0ग्रे0 से 24^{0} से0ग्रे0 तक तथा औसत वर्षा 120 सेमी0 से 140 सेमी0 तक होती है। उत्तरी भागों को छोड़कर समस्त भागों पर लाल मिट्टी की प्रधानता है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य भूमि पर जनसंख्या के दबाव का अध्ययन करना है। अध्ययन क्षेत्र कृषि प्रधान है। किसी भी क्षेत्र में मनुष्य और भूमि दो महत्वपूर्ण तत्व होतें हैं। अतः जनसंख्या विश्लेषण हेतु दोनों तत्वों का अनुपात मालूम करना महत्वपूर्ण है।

विधितंत्र

प्रस्तुत अध्ययन में विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग करते हुए चतरा जिला की 1981 ई0 से 2011 ई0 तक हुई जनगणना के आंकड़ो का प्रयोग किया गया है। 2011 की जनगणना के पूर्व जिला के सीमा मे परिर्वतन किया गया है तथा दो नये प्रखंड कान्हाचऋी एवं मयूरहंड बनाये गए हैं। अतएव 2011 ई0 के जनसंख्या घनत्व की विश्लेषण हेतु आंकिक घनत्व का परिगणन निम्न सूत्र के द्वारा किया गया है।

$$\text{अंकगणितीय घनत्व} = \frac{\text{प्रदेश की कुल जनसंख्या}}{\text{प्रदेश का कुल क्षेत्रफल}}$$

तालिका संख्या -01: चतरा जिला में प्रखंडानुसार जनसंख्या घनत्व (1981-2001)

क्र0सं0	प्रखण्ड का नाम	क्षेत्रफल वर्ग किलोमीटर	घनत्व (प्रतिवर्ग किलोमीटर)		
			1981	1991	2001
1	हंटरगंज	513.30	162	217	279
2	प्रतापपुर	385.84	133	174	230
3	कुन्दा	285.08	48	63	79
4	लावालौंग	393.74	55	73	99
5	चतरा	638.77	147	198	266
6	ईटखोरी	293.95	221	290	359
7	गिद्धौर	174.15	99	134	177
8	पत्थलगडा	133.20	124	154	193
9	सिमरिया	512.46	99	129	167
10	टण्डवा	375.73	131	175	216
जिला	चतरा	3706.22	125	165	214

स्रोत: प्राथमिक जनगणना सार जनगणना कार्य निदेशालय, झारखण्ड 2001 एवं 1991 तथा 1981 के सेन्सस रिपोर्ट के आधार पर शोध छात्र द्वारा गणन

तालिका संख्या-01 एवं 02 के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि शोध क्षेत्र में 1981-1991 ई0 के मध्य 40 अंकों की वृद्धि हुई है, यहाँ उक्त अवधि में जनघनत्व 125 से बढ़कर 165 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो गई है। इसी प्रकार 1991-2001 ई0 के मध्य 165 से 214 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर 2001-2011 ई0 के मध्य 214 से 281 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो गई है। इससे यह पता चलता है कि भूमि पर जनदबाव क्रमशः बढ़ता जा रहा है।

तालिका संख्या-02: चतरा जिला मे प्रखण्डानुसार जनसंख्या घनत्व (2011)

क्र0 स0	प्रखण्ड का नाम	क्षेत्रफल वर्ग किलोमीटर	जनसंख्या	घनत्व (प्रतिवर्ग किलोमीटर)
1	हंटरगंज	513.18	187590	366
2	प्रतापपुर	385.79	120221	312
3	कुंदा	285.08	30018	105
4	लावालौंग	393.86	50553	128
5	चतरा	400.21	101014	252
6	कान्हाचटी	227.49	63012	277
7	ईटखोरी	160.60	74929	467
8	मयूरहंड	133.28	58925	442
9	गिद्धौर	174.19	40919	235
10	पत्थलगड़ा	133.21	31530	237
11	सिमरिया	512.48	107871	210
12	टण्डवा	455.21	126319	277
जिला	चतरा	3718.00	1042886	281

स्रोत: डिस्ट्रिक्ट सेन्सस हैंड बुक, चतरा, सीरिज-21 भाग XII B एवं शोध छात्र द्वारा परिगणन।

अध्ययन क्षेत्र मे जनघनत्व एक समान नही पाया जाता है। कोई प्रखण्ड सघन बसा है तो कोई विरल। चतरा जिला के ईटखोरी प्रखण्ड में सबसे अधिक जनघनत्व 467 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर (2011 ई0) पाया जाता है। यहाँ जनघनत्व में 2001 ई0 के अपेक्षा 2011 ई0 मे 108 अंकों की वृद्धि हुई है। मयूरहंड एक अन्य प्रखण्ड है जिसे ईटखोरी से काटकर बनाया गया है, यहाँ 2011 ई0 में जनघनत्व 442 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। ये दोनो प्रखण्ड आर्थिक,सामाजिक तथा धार्मिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। यहाँ जीवनयापन की उत्तम सुविधायें हैं। इन प्रखण्डों के कुछ हिस्से में खनिज संसाधान की उपलब्धता है। जनघनत्व की दृष्टि से तीसरा महत्वपूर्ण प्रखण्ड हंटरगंज है।

तालिका संख्या 03: चतरा जिला में नगरीय जनसंख्या घनत्व (2011)

क्र0 सं0	नगर का नाम	क्षेत्रफल	जनसंख्या	घनत्व (प्रतिवर्ग किलोमीटर)
1	चतरा (नगर परिषद)	16.50	49985	3124
2	बचरा (सीटी)	16.61	12969	781

स्रोतः डिस्ट्रिक्ट सेन्सस हैंड बुक चतरा, सीरिज-21 भाग XII B एंव शोध छात्र द्वारा गणन

यहाँ 2001 ई0 की तुलना मे 2011 ई0 मे जनघनत्व मे 87 अंको की वृद्धि दर्ज की गई है। 2011 ई0 में यहाँ जनघनत्व 366 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। इस प्रखण्ड का उत्तरी भाग मैदानी क्षेत्र मे पड़ता है जहाँ कृषि की उत्तम सुविधायें उपलब्ध है।

सबसे कम घनत्व वाला प्रखण्ड कुन्दा है जहाँ 2011 ई0 मे जनघनत्व 105 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर पाया जाता है। 2001 ई0 के तुलना में 2011 ई0 मे मात्र 26 अंकों की वृद्धि दर्ज की गई है। यह प्रखण्ड एक अविकसीत प्रखण्ड है जिसको अधिकांश भाग वनों से भरा पड़ा है। यह प्रखण्ड उग्रवादियों एवं असामाजिक तत्वों का गढ़ माना जाता है।

चतरा जिला एक पठारी क्षेत्र है। इस कारण से जनसंख्या का घनत्व सभी क्षेत्रों कें एक समान नही पाया जाता है जनसंख्या अधिकतर वहीं केन्द्रित है जहाँ जीवन-यापन की उत्तम सुविधाएँ हैं। जहाँ कहीं भी मैदानी विशेषता वाले क्षेत्र हैं,वहाँ जनसंख्या का संकेन्द्रण अधिक हैं।

जनसंख्या घनत्व (2011 ई0) के आधार पर चतरा जिला के समस्त प्रखण्डों को निम्न तीन वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है-

1. अत्यधिक सघन जनसंख्या वाले क्षेत्र (300 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से अधिक)
2. मध्यम सघन जनसंख्या वाले क्षेत्र (200-300 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर)
3. अल्प सघन जनसंख्या वाले क्षेत्र (200 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से कम)

अत्यधिक सघन जनसंख्या वाले क्षेत्र– इसके अन्तर्गत वैसे प्रखण्डो को शामिल किया गया है। जहाँ जनघनत्व 300 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से अधिक है। इसमें ईटखोरी (467 व्यक्ति/ कि0मी0²) मयूरहंड (442 व्यक्ति/ कि0मी0²),हंटरगंज (366 व्यक्ति / कि0मी0²) तथा प्रतापपुर (312 व्यक्ति/ कि0मी0²) शामिल है। यहाँ जनघनत्व अधिक होने का मुख्य कारण कृषि एवं सिंचाई की सुविधाओ का होना है। साथ ही ये सभी प्रखण्ड नगरीय विशेषता वाले हैं।

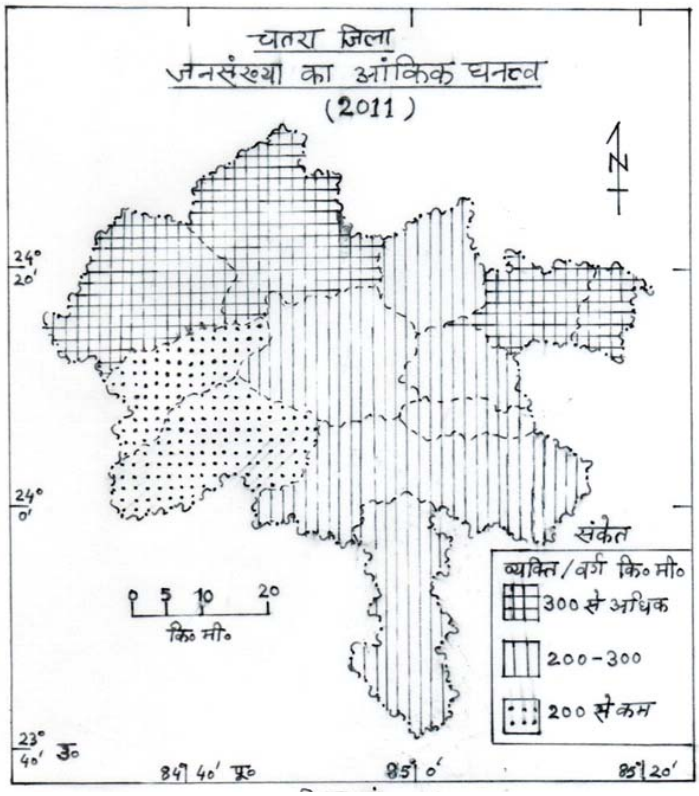

मध्यम सघन जनसंख्या वाले क्षेत्र– इसके अन्तर्गत 200-300 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर वाले प्रखण्डों को शामिल किया गया है। इसके अन्तर्गत टण्डवा (277 व्यक्ति/ कि0मी0²) कान्हाचटी (277 व्यक्ति/ कि0मी0²),चतरा (252 व्यक्ति / कि0मी0²), पत्थलगडा (237 व्यक्ति/कि0मी0²), गिद्धौर (235 व्यक्ति/ कि0मी0²) तथा सिमरिया (210 व्यक्ति/ कि0मी0²) शामिल है।

अल्प सघन जनसंख्या वाले क्षेत्र– इसके अन्तर्गत वैसे प्रखण्ड शामिल किए गए है जहाँ 200 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से कम घनत्व है। इसमे मात्र दो प्रखण्ड कुन्दा (105 व्यक्ति / कि0मी0^2) तथा लावालौंग (128 व्यक्ति/ कि0मी0^2) शामिल है। उक्त दोनों प्रखण्ड अपनी भौतिक स्थिति के कारण जनाकर्षक नही हैं। दोनो जंगल झाड़ वाले प्रखण्ड हैं जहा अल्प जनसंख्या निवास करती है।

नगरीय जनसंख्या घनत्व

चतरा जिला मे 2001 ई0 के जनगणना के समय एकमात्र नगर चतरा प्रखण्ड मुख्यालय था। 2011 ई0 में जनगणना के पूर्व टण्डवा प्रखण्ड के बचरा को नगर का दर्जा प्रदान किया गया है। चतरा नगर परिषद का जनघनत्व 3124 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है जबकि बचरा में जनघनत्व 781 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है।

चतरा नगर परिषद् चतरा जिला का मुख्यालय है यहाँ उत्तम स्वास्थ्य सुविधायें, शिक्षण संस्थान, रहन-सहन की उत्तम सुविधायें विभिन्न प्रकार के कार्यालय,परिवहन,रोजी-रोजगार के अनेक प्रकार की सुविधाओं के होने के कारण यह क्षेत्र जनाकर्षक है। गाँवों के लोग अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाने हेतु चतरा शहर में आकर रहते हैं।

टण्डवा प्रखण्ड में कोयला उत्खनन् होने के कारण आप्रवासियों की संख्या बचरा नगर में अधिक है। धीरे-धीरे यहाँ भी नगरीय सुविधाएँ विकसित हो रही है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि चतरा जिला में जनसंख्या घनत्व एक समान नही है। कहीं जनसंख्या अधिक सघन है तो कहीं अल्प सघन। जनसंख्या का जमाव वहीं देखने को मिलता है जहाँ जीवन यापन की उत्तम सुविधाएँ हैं जबकि जंगल झाड़ अनुर्वर भूमि तथा पठारी भू-भागों पर जनसंख्या का जमाव कम देखने को मिलता है।

संदर्भ सूची

1. तिवारी, रामकुमार : झारखण्ड का भूगोल, राजेश पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2001, पृष्ठ-165
2. चंदना, आर0 सी0 : ए ज्योग्राफी ऑफ पोपुलेशन, कल्याणी पब्लीशर्स, नई दिल्ली, 1986, पृष्ठ-23
3. मौर्य, एस0 डी0 : जनसंख्या भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2005, पृष्ठ-33
4. हीरालाल: जनसंख्या भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 1986, पृष्ठ-33
5. डेमको, जी0जे0 : पोपुलेशन ज्योग्राफी,प्रेगमान प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1972, पृष्ठ-29
6. डेविस, के0 : दॅ पोपुलेशन ऑफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिन्सटन, 1951, पृष्ठ-107
7. सिंह,डी0पी0 : द ज्योग्राफिक स्टडी ऑफ पोपुलेशन ऑफ राँची डिस्ट्रिक्ट, बिहार, अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध, एम0यू0, बोधगया, पृष्ठ-88
8. ओझा, रघुनाथ: जनसंख्या भूगोल, प्रतिभा प्रकाशन, कानपुर, 1984
9. चन्दना, आर0सी0: जनसंख्या भूगोल, कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना, 2002
10. आत्मा,चतरा : बेवसाइट&www.atmachatra.org
11. डिस्ट्रिक्ट सेन्सस हैंड बुक, चतरा, सिरिज-21, भाग XII B, जनगणना कार्य निदेशालय, झारखण्ड, राँची।

पर्यावरणीय मुद्दे एवं आपदा प्रबंधन

मीना शर्मा

सहायक प्रोफेसर, शिक्षा संकाय गा.वि. म., सरदार शहर

सारांश

पर्यावरण का सामान्य अर्थ हमारे भौतिक परिवेश से है। वर्तमान में पर्यावरणीय मुद्दों पर चर्चा की आवश्यकता पुनः अनुभव की जाने लगी है क्योंकि मानवीय स्वार्थों ने पर्यावरण को इतना अधिक दूशित कर दिया है कि इसकी परिसीमा आज हम पूरे संसार में कोरोना जैसी महामारी के प्रकोप के रूप में देख सकते है। वर्तमान मे केवल पर्यावरण के प्रति हमारी सकारात्मक सोच से हम सफलता प्राप्त नही कर सकते अपितु हमें युद्धस्तर पर कार्य करना होगा। अतः निबंध के निषकर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि विकास की दौड़ में, इसकी चकाचौंध में, हम इसके मूल तत्व अर्थात् पर्यावरण की उपेक्षा करने लगे हैं, इसका नियंत्रित शोषण करने लगे है और क्षणिक सुख तथा लालच की पूर्ति हेतु मानव ने स्वयं अपने भविश्य को दीर्घकालीन संकट में डाल दिया है। फलस्वरूप जीवन के मूल स्त्रोत पर्यावरण का निरंतर क्षय अथवा अवकर्षण होता जा रहा है जो कि सम्पूर्ण मानव जाति के भविश्य के लिए संकट उत्पन्न कर रहा है। ऐसी परिस्थितियों में इन पर्यावरणीय मुद्दों के लिए उचित प्रबंधन किया जाना अपेक्षित है।

मुख्य शब्दावली: पर्यावरणीय मुद्दे और आपदा प्रबंधन

प्रस्तावना

पर्यावरण और अर्थव्यवस्था वास्तव में एक ही सिक्के के दो पहलू है। यदि हम पर्यावरण को बनाये नही रख सकते है तो हम अपने आप को भी नही बनाये रख सकते है।

वांगरी मथाई

पर्यावरण का सामान्य अर्थ भौतिक परिवेश है। पर्यावरण दो शब्दों (परि+आवरण) से मिलकर बना है जिसका अर्थ है, 'चारो ओर से घेरने वाली दशाएं'। इसमें मानव, पेड़-पौधों तथा जंतुओं के विकास एवं वृद्धि को प्रभावित करने वाली बाह्य दशाएं सम्मिलित है। मैकाइवर के अनुसार, "पृथ्वी का धरातल और उसकी समस्त प्राकृतिक दशाएं, प्राकृतिक संसाधन (भूमि, जल, पर्वत, मैदान, खनिज पदार्थ, पौधे, पशु) तथा प्राकृतिक शक्तियाँ जो पृथ्वी पर विद्यमान होकर मानव जीवन को प्रभावित करती है, भौगोलिक पर्यावरण के अतंगर्त आती है।

जैव वैज्ञानिक ने भी पर्यावरण को इसी अर्थ में प्रयुक्त किया है। अतः पर्यावरण भौतिक तत्वों, दशाओं व प्रभावों का दृष्य और अदृष्य समुच्चय है जो जीवधारियों को परिवृत कर उनकी अनुक्रियाओं को प्रभावित करता है तथा स्वयं भी उनके प्रभावित होता है। वस्तुतः पर्यावरण एक अविभाज्य समष्टि है जिसकी रचना भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक तत्वों की पारस्परिक क्रिया से हुई है। ये तीनों तंत्र अलग-अलग अथा सामूहिक रूप से परस्पर संबंध होते है। भौतिक तत्व मानव निवास्य क्षेत्र की परिवर्तनशील विशेषताओं, उनके सुअवसरों तथा प्रतिबंधक अवस्थितियों को निश्चित करते है। जैतिक तत्व जीवमंडल की रचना करते है, जबकि सांस्कृतिक तत्व मानव निर्मित होते है तथा सांस्कृतिक पर्यावरण की रचना करते है।

समस्त जीवन अपने पर्यावरण के प्रति संवेदनशली होते है। अपने जीवन चक्र को सतत् बनाये रखने के लिए वे पर्यावरण से समायोजन करते है तथा पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के अनुरूप जीवों की पर्यावरण से समायोजन की क्रियाविधि बदलती रहती है। मानव समाज में अपनी बुद्धि, ज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की सहायता से अपनी आदतों को सर्वथा बदल लिया है। पहले मानव के प्रकृति के साथ संबंध सहज थे किन्तु जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ी, वैसे-वैसे मानव प्रकृति पर आश्रित न रहकर अपनी आवश्यकतानुसार पर्यावरण को परिमार्जित करने लगा। वनीय जीवन त्यागकर उसने कृति तथा पशुपालन को अपनाया। कालान्तर में विज्ञान व तकनीकी के विकास से अधिकाधिक उत्पादन के लिए पर्यावरण के संसाधनों का विस्तृत पैमाने पर दोहन होने लगा। इस क्रिया में मानव प्रकृति के प्रति अनुदार होता गया, परिणामतः प्राकृतिक तत्वों की गुणवता में तेजी से ह्रास होने लगा। इसका दुश्प्रभाव मानव जीवन पर भी पड़ा। पर्यावरण के प्रति लोगों की इस उपेक्षा के कारण अनेक पर्यावरण संबंधी समस्याएं उत्पन्न होने लगी है जिन्हें हम पर्यावरण मुद्दों के रूप में विचारणीय मान सकते है यथा - वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण/भूजल स्तर में गिरावट, मृदा प्रदूषण, ठोस अपशिष्ट प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण, सार्वजनिक स्वास्थ्य, जैव विविधता में कमी, पारिस्थितिकी प्रणालियों में लचीलेपन की कमी, गरीबों के लिए आजीविका सुरक्षा, मानव गतिविधियों में वृद्धि, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, हरितगृह प्रभाव, ग्लोबल वार्मिंग/जलवायु परिवर्तन, मरूस्थलीकरण, ओजोन परत का क्षय, अम्ल वषो, तेल रिसाव, प्लास्टिक के उपयोग में निरंतर वृद्धि, स्पेनिश फ्लू, कोविड-19 जैसी महामारियाँ।

पर्यावरण के प्रमुख मुद्दों का संक्षिप्त विवेचन निम्नवत हैं -

1. प्रदूषण एवं पर्यावरण अवनयन - वाहनों में भारी मात्रा में प्रदूषण होता है। यह एम मानवजनित समस्या है जो विकसित एवं विकासशील दोनों देशों के लिए समान है। प्रदूषण के विविध स्वरूप है, जैसे - जल, मृदा, वायु तथा रेडियोधर्मी प्रदूषण। अनेक विषैली गैसें, धातु, रसायन, प्रकाश रासायनिक पदार्थ, रेडियोधर्मी पदार्थ, शोर-कूड़ा, करकट आदि प्रदूषण के विभिन्न कारक है। ये सभी प्रदूषक मानवता के लिए हानिकारक है, जो पर्यावरण के अवनयन का कारण बन गये है। संधृत विकास के लिए यह आवश्यक है कि प्रदूषण को उसके स्तर पर ही रोका जाए। यही नहीं, प्रदूषण फैलाने वाले लोगों या संस्थाओं को प्रदूषण की जिम्मेदारी भी माननी चाहिए। पर्यावरण मैत्रीपूर्ण उत्पादों का प्रयोग तथा उत्पादन इस दिशा में नई अवधारणा है।
2. अपषिष्ट पदार्थों के निपटारे की समस्या - विकसित देशों में दैनिक जीवन में अनेक प्रकार के पदार्थों का प्रयोग किया जाता है जो कि विभिन्न पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न करते है। वर्तमान समय में इन समस्याओं का सामना विकासशील देश भी कर रहे है। पर्यावरण में अपशिष्ट तथा विषैले पदार्थों की निरन्तर वृद्धि हो रही है। ये अवांछित पदार्थ जैव भू-चक्रों में प्रविष्ट हो जाते है तथा साथ ही मानव निर्मित परितंत्रों में सूक्ष्म जीवों के विकास को बाधित करते है। प्लास्टिक, रबड़, कांच जैसे संश्लेषित पदार्थ जो जैविक रूप से विनष्ट नही होते, पर्यावरण को अत्याधिक क्षति पहुँचाते है। कृषि तथा उद्योगों से निकले अपशिष्ट एवं घरेलू अपषिष्ट भी पर्यावरण को हानि पहुंचाते हैं।

   अनेक अपशिष्ट पदार्थों का उचित उपयोग करके उन्हें उपयोगी बनाया जा सकता है, उदाहरणार्थ - वाहित मल को उपचारित करके खाद तथा ऊर्जा बनाई जाती है। अनेक देशों में गंदे जल का प्रयोग मत्स्यपालन के लिए किया जाता है तथा इनके अन्य प्रयोंगों के शोधकार्य आवश्यक है।
3. ऊर्जा संकट तथा पारितंत्र -पारितंत्र में ऊर्जा की महत्वपूर्ण भूमिका है। सूर्य समस्त ऊर्जाओं का स्त्रोत है। सूर्य से हमें असीम ऊर्जा प्राप्त होती है। परन्तु आधुनिक युग में जीवाश्म ईंधन, जल, विद्युत तथा नाभिकीय ऊर्जा ही प्रधानत: प्रयुक्त होते है। इन संसाधनों के तेजी से होने वाले दोहन के कारण ऊर्जा संकट पैदा हो गया है। जल विद्युत उत्पादन के लिए बड़े बांधों के निर्माण तथा तापीय एवं नाभिकीय ऊर्जा केन्द्र, पर्यावरण के लिए महान संकट बन गये है। संधृत विकास के लिए ऊर्जा के गैर परम्परागत स्त्रोतों को विकसित करने की आवश्यकता है। सौर ऊर्जा की कीमत कम होने के कारण भारत जैसे उश्णकटिबंधीय देशों के लिए यह उत्तम वैकल्पिक ऊर्जा स्त्रोत है, जिसका कोई प्रतिकूल पर्यावरणीय प्रभाव नही होता है। सबसे बड़ी आवश्यकता सौर और अन्य गैर-परम्परागत ऊर्जा के स्त्रोतों के विकास के लिए सस्त प्राविधिकी विकसित करने की है।
4. भोजन उत्पादन- भारत, चीन, इंडोनेशिया, ब्राजील आदि विकासशील देशों में बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए भोजन सामग्री की मांग में भी वृद्धि हुई है। कृषि वैज्ञानिक खाद्य एवं अन्य फसलों की उपज तथा गुणवत्ता बढ़ाने में सफल हुए है। विकासशील देशों में उन्नत बीजों, रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों के प्रयोग, शस्यावर्तन, सिंचाई, मशीनों के उपयोग आदि से 1960 के दशक में हरित क्रांति का उदय हुआ, जिससे खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि के साथ ही हरित क्रांति से अनेक पारिस्थितिकीय समस्याएँ उत्पन्न हो गयी। रासायनिक उर्वरकों के अतिशय प्रयोग मिट्टी की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा तथा जल एवं वायु प्रदूषण भी बढ़ गया। इससे चिंतित होकर संयुक्त राष्ट्र के देशों में किसा ऐसी कृषि पर अधिक बल देने लगे है जिसमें रसायनों का उपयोग नहीं होता है। वे अब हरी खाद का प्रयोग करने लगे है जो प्राचीन भारतीय कृषि में भी प्रचलित थी। हरी खाद पर्यावरण के लिए मित्रवत होती है। इसी प्रकार मत्स्य ग्रहण के स्थान पर मत्स्य पालन अधिक उपयोगी है।
5. लवणता एवं जलासिक्ति की समस्या- विगत छ: दशकों में सिंचाई की सुविधाओं का बहुत विस्तार हुआ है। इससे विश्वभर में कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है, किन्तु जल के प्रबंधन की कमी तथा कृषकों के अशिक्षित होने के कारण व्यापक क्षेत्र लवणता जलसिक्ति की समस्या से ग्रस्त है। इन दोनों कारणों से जीवांश तथा सूक्ष्मजीव, जो वियोजन में सहायक होते है, नष्ट हो जाते है तथा मिटी की उत्पादकता हा ह्रास होता है। वृहत सिंचाई परियोजनाओं से क्षेत्र में अपवाह की कमी तथा जल के कुप्रबंध के कारण ये समस्याएँ उग्र हो जाती है। राजस्थान के गंगानगर तथा बीकानेज जिलों में सर्वाधिक नहरी सिंचाई के दुश्परिणाम इसके प्रत्यक उदाहरण है। पंजाब में जल के रिवास से भूमिगत जलस्तर भी ऊँचा उठ गया है।
6. वन विनाश एवं मरूस्थलीकरण- वनों के अतिदोहन तथा अनेक विकास परियोजनाओं के कारण व्यापक क्षेत्रों में वन विनाश हुआ है। जनसंख्या वृद्धि, नगरीयकरण, कृषि भूमि के विस्तार, खनन, सड़क निर्माण, बांध निर्माण आदि के कारण प्राकृतिक वनस्पति का भारी विनाश हुआ। इसके अलावा व्यापारिक लाभ के लिए भी वनों की अंधाधुंध कटाई जारी है। इससे अनेक पादप स्पीशीज लुप्त हो गयी है विलोपन के कगार पर है। वृक्षारोपण के अभाव में विश्वभर में वनस्पति ही नही, वन्य जीवन का भी ह्रास हो रहा है क्योंकि उनके प्राकृतिक आवास नष्ट होते जा रहे है।
7. स्पेनिश फ्लू एवं कोविड-19 जैसी महामारियाँ- वर्तमान में केवल भारत में ही नहीं संपूर्ण विश्व में कोरोना महामारी से बचाव एक महत्वपूर्ण पर्यावरणीय मुद्दा बना हुआ है। कोरोना वायरस से भारत में अब तक 30994 मौते हो चुकी है। कोरोना वायरस के फैलने का एक मुख्य कारण जंतु मांस का सेवन है। जानवरों द्वारा संक्रमण यह भी दर्शाता है कि वर्तमान समय में मानव जंतुओं के जीवन पर अत्यधिक अतिक्रमण कर रहा है जो कि विनाशकारक सिद्ध हो सकता है।

आपदा प्रबन्धन

विश्व के किसी भी देश में प्राय: बाढ़, भूस्खलन, भूकंप, सूनामी, चक्रवात आदि घटनाएँ घटित होती रहती है, इन घटनाओं से बचाव के उपाय को आपदा प्रबंधन कहते है। प्राकृतिक आपदाओं का मुख्य कारण मनुष्य द्वारा किये गये पर्यावरणीय विरोधी कार्य है जिसमें वनों का काटना, अत्यधिक कीटनाशों का प्रयोग तथा ग्लोबल वार्मिंग मुख्य है, जिसके कारण प्रकृति में निरंतर विषमता देखने को मिल रही है। समय पर बारिश का न होना तथा अन्य ऋतुओं में होने वाले असामान्य परिवर्तन इसके उदाहरण है।

आपदाएं किसी भी देश की उतरोतर प्रगति के लिए बाधक होती है। आपदा किसी भी राष्ट्र को उस स्थान पर लाकर खड़ा कर देती है जहाँ से पुनः विकसित होना उसके लिए बेहद कठिन होता है। वर्तमान में पूरे विश्व की अर्थव्यवस्था को कोरोना जैसी महामारी ने हिला कर रख दिया है।

भारत सरकार द्वारा आपदाओं के प्रबंधन के लिए 23 दिसम्बर 2005 को आपदा प्रबंधन अधिनियम लागू किया गया तथा सरकार ने आपदा क्षेत्र में कार्य करने के लिए नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ डिजास्टर मैनेजमेंट की भी स्थापना की। सरकार ने मौसम की सही जानकारी हेतु दूर संवेदी उपग्रहों को भी विकसित किया है। इन सभी के अतिरिक्त आपदा प्रबंधन के उपायों के लिए लोगों को जागरूक करना, युवा संगठनों जैसे एनसीसी, एनएसएस तथा मीडिया के द्वारा सूचना तथा अलर्ट जारी करना। आपदा प्रबन्धन सहायता कार्यक्रम अन्तरिक्ष आधारित सूचनाओं का उपयोग करते हुए देश में प्राकृतिक आपदाओं के विविध पहलुओं का व्यापक समाधान करता है। इसरो प्रशासकों को प्रभाव की बेहतर समझ एवं बेहतर निर्णय सहायता हेतु भवन, राष्ट्रीय आपातकालीन प्रबन्धन आंकड़ा आधार एवं मौसडेक जैसे विभिन्न भू-पोर्टलों के माध्यम से अन्योन्य क्रियाशील भू-स्थानिक क्षेत्रों में संबंधित सूचना प्रसारित करता है। इसके अतिरिक्त भारतीय संस्कृति के प्राचीन मूल्यों एवं सिद्धान्तों को अपनाकर ही हम आपदाओं से सुरक्षित रह सकते है।

सुझाव

1. अधिकाधिक वृक्षारोपण करने का संकल्प करें, सभी मांगलिक कार्यों पर एक पौधा अवश्य लगाये व उसकी देखभाल का दायित्व स्वीकार करें।
2. पर्यावरण को हानि पहुँचाने वाली वस्तुओं का बहिश्कार करे।
3. पुनः उपयोग में आने वाली वस्तुओं का प्रयोग करें, उन वस्तुओं को प्राथमिकता दे जो दोबारा काम में ली जा सके।
4. बच्चों को पर्यावरण सुरक्षा का समुचित ज्ञान समय-समय पर देते रहे।
5. सरकार द्वारा पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबंधन कार्य हेतु सराहनीय कदम उठाये जा रहे है परन्तु इन कार्यों को केवल सरकारी कार्य न मानते हुए इस दिशा में अपना योगदान भी सुनिश्चित करें।
6. स्वच्छता अति आवश्यक है, केवल स्वच्छता का ध्यान रखकर भी हम कोविड-19 जैसे वैश्विक महामारी से सुरक्षित रह सकते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. गौतम डॉ. अल्का, संसाधन एवं पर्यावरण, प्रकाशक - शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद - 21102, पृष्ठ संख्या - 365
2. महेश रंगराजन, भारत में पर्यावरण के मुद्दे - एक संकलन, अनुवादक रीता श्रीधर।
3. विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में अनुभव राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, अक्टूबर 2001
4. चोंग शिमरे, पर्यावरण शिक्षण : भारत में रूझान एवं प्रयोग, प्रकाशक - सेज पब्लिशिंग इंडिया, दिसम्बर 2017
5. अभय कुमार दुबे, भारत का भूमंडलीकरण, प्रकाशक - वाणी प्रकाशक, 2007
6. दामोदर शर्मा, आधुनिक जीवन और पर्यावरण, प्रकाशक - प्रभात प्रकाशन, 2009
7. Ghatge, A Gupta, D Roy and A Deshpande 1982, The Environment, Gandhi gram Press Madurai.

विद्यालयी शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति के समावेश के क्षेत्र

श्रीमती मीनाक्षी मोदी

सहायक प्रोफेसर, बुनियादी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, गांधी विद्या मंदिर, सरदारशहर, चूरू

सामान्य अर्थ में संस्कृति सीखे हुए व्यवहारों की सम्पूर्णता है। लेकिन संस्कृति की अवधारणा इतनी विस्तृत है कि उसे एक वाक्य में परिभाषित करना सम्भव नहीं है। वास्तव में मानव द्वारा अप्रभावित प्राकृतिक शक्तियों को छोड़कर जितनी भी मानवीय परिस्थितियाँ हैं जो हमें चारों ओर से प्रभावित करती है, उन सभी की सम्पूर्णता को हम संस्कृति कहते हैं और दूसरे शब्दों में संस्कृति के इस घेरे का नाम ही सांस्कृतिक पर्यावरण है।

दूसरे शब्दों में संस्कृति एक व्यवस्था है, जिसमें हम जीवन के प्रतिमानों, व्यवहार के तरीकों, अनेकानेक भौतिक एवं अभौतिक प्रतीकों, परम्पराओं, विचारों, सामाजिक मूल्यों, मानवीय क्रियाओं और अविश्कारों को शामिल करते हैं।

सर्वप्रथम वायु पुराण में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष विषयक मानवीय घटनाओं को संस्कृति के अन्तर्गत समाहित किया गया। इसका तात्पर्य यह हुआ कि मानव जीवन के दिन प्रतिदिन के आचार-विचार, जीवन शैली, तथा कार्य व्यवहार ही संस्कृति कहलाती है।

मानव समाज में धर्मिक, दार्शनिक, कलात्मक, नीतिगत, विषयक कार्यकलापों, परम्पराओं, प्रथाओं, खान-पान, संस्कार इत्यादि के समन्वय को संस्कृति कहा जाता है।

रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार- "संस्कृति मानव जीवन में उसी तरह व्याप्त है, जिस प्रकार फूलों में सुगन्धऔर दूध में मक्खन। इसका निर्माण एक या दो दिन में नहीं होता, युग-युगान्तर में संस्कृति निर्मित होती है।"

पं. जवाहरलाल नेहरू के अनुसार- "संस्कृति का अर्थ मनुष्य का आंतरिक विकास और उसकी नैतिक उन्नति है, पारम्परिक सद्व्यवहार हैऔर एक दूसरे को समझने की शक्ति है।"

इन परिभाषाओं के आधार पर सार रूप में कहा जा सकता है कि संस्कृति के अन्तर्गत हमारे विश्वास, मानक, मूल्य, प्रथाएँ, रीति-रिवाज, तौर-तरीके, संस्कार आदि आते हैं, जिन्हें हम वातावरण में रहते हुए सीखते हैं एवं पूर्वजों से अर्जित कर घर, पाठशाला तथा सामाजिक रहन-सहन द्वारा नई पीढ़ियों को हस्तांतरित करते हैं।

शिक्षा के माध्यम से राष्ट्रीय संस्कृति का पोषण मुख्यत:तीन रूपों में किया जाता है-

1. **अर्जित संस्कृति को बनाये रखना**- शिक्षा द्वारा हमारी संस्कृति की निरंतरता बनाये रखने में सहायता मिलती है। किसी देश, वर्ग-विशेष की पहचान उससे संबंधित संस्कृति से होती है।अत: अपनी पहचान बनाये रखने के लिए संस्कृति का संरक्षण अत्यावश्यक हो जाता है।यह कार्य शिक्षा द्वारा ही सम्भव हो सकता है।निरंतरता बनाये रखने से संस्कृति का विनाश नहीं होता।

2. **अर्जित संस्कृति का हस्तांतरण**- संस्कृति के हस्तांतरण से तात्पर्य पूर्वजों द्वारा अर्जित संस्कृति को नई पीढी तक पहुंचाना है। स्पष्ट है कि हस्तांतरण द्वारा ही किसी संस्कृति की निरंतरता बनी रह सकती है।

3. **अर्जित संस्कृति में निखार लाना तथा विकास करना**- समय के साथ प्रत्येक वस्तु,विश्वास, रीति-रिवाज, पहनावे, खान-पानआदि में परिवर्तन आना स्वाभाविक है।कई बार ऐसा परिवर्तन समाज के मान्य सांस्कृतिक मानदण्डों के विपरीत भी हो जाता है और कई बार वांछनीय परिश्कार की ओर भी अग्रसर होता है। शिक्षा संस्कृति के वांछनीय विकास को प्रोत्साहित करती है। जिससे संस्कृति में उतरोत्तर विकास की प्रक्रिया चलती रहती है और हम समय के साथ-साथ नई परिस्थितियों में समायोजन करते रहते हैंअर्थात-

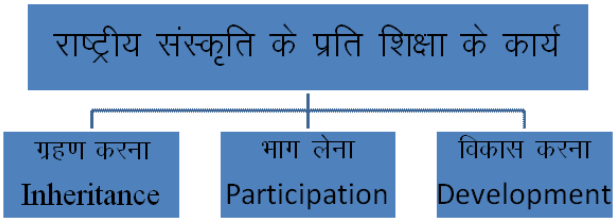

राष्ट्रीय संस्कृति के मूल तत्व

जब तक शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति के गुणात्मक विकास की ओर ध्यान नहीं दिया जाता तब तक हमें शिक्षा से अपेक्षित परिणाम नहीं प्राप्त हो सकते।शिक्षा को भारतीय दर्शन एवं संस्कृति के मूल तत्वों पर आधारित होना चाहिए।भारतीय संस्कृति के कुछ मूल तत्व इस प्रकार हैं-

1. अध्यात्म तथा धार्मिक सहिश्णुता
2. मानव मूल्य
3. नैतिकता और चारित्रिक विकास
4. जीवन कौशल
5. कर्मकी प्रधानता
6. अनेकता में एकता
7. चिंतन, मनन, ध्यान व योग
8. आत्मानुशासन
9. सामाजिक सम्बन्धों की प्रधानता
10. वसुधैव कुटुम्बकम की भावना
11. राष्ट्र प्रेम
12. प्रकृति प्रेम

विद्याालयी शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति के क्षेत्र

1. दैनिक प्रार्थना सभा- दैनिक प्रार्थना सभा में राष्ट्रीय संस्कृति को अभिव्यक्त करनेवाली प्रार्थना, राष्ट्र गीत, राष्ट्र गान, आह्वान गीत, ध्यान, गायत्री मन्त्र, प्रेरक वाक्य, प्रेरक प्रसंग, भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित सामानय ज्ञान के प्रश्न आदि को शामिल करके शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति का समावेश किया जा सकता है।

2. सांस्कृतिक कार्यक्रम- लोक नृत्य, लोक गीत, लोक नाटक, विचित्र वेशभूषा जैसे कार्यक्रमों को राष्ट्रीय संस्कृति के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया जा सकता है।

3. साहित्यिक कार्यक्रम-राष्ट्रीय मुद्दों पर भाषण, वाद-विवाद,प्रश्नोत्तरी, पोस्टर, निबन्ध लेखन आदि का समय-समय पर आयोजन करके बच्चों को राष्ट्रीय संस्कृति से जोड़ा जा सकता है।

4. खेलकूद- राष्ट्रीय खेलों से सम्बन्धित प्रतियोगिताएं, योग आदि करवाना।

5. श्रमदान- बालकों को श्रमदान का महत्त्व समझाने के लिए प्रतिदिन कुछ समय श्रमदान के लिए रखा ताना चाहिए।

6. संस्कृति ज्ञान परीक्षा- भारतीय संस्कृति के ज्ञान से सम्बन्धित कार्यक्रम जैसे- प्रश्न मंच, लिखित परीक्षा का आयोजन कराना एवं छात्रों की इसमें भागीदारी सुनिश्चित करना।

7. राष्ट्रीय पर्वों, राष्ट्रीय उत्सवों, तथा राष्ट्रीय दिवसों को मनाना- विद्यालय को एक सामाजिक इकाई के रूप में स्वीकार करते हुए राष्ट्रीयपर्वों, राष्ट्रीयउत्सवों को हर्षोल्लास के साथ मनाया जाए। तथा राष्ट्रीय दिवसों को इस प्रकार मनाया जाए कि प्रत्येक विद्यार्थी को भारतीय होने पर गर्व हो।

8. महापुरूषों की जयंतियाँ मनाकर- महापुरूष चाहे किसी भी राज्य से सम्बन्धित हों उन्हें भारतीय महापुरूष के रूप में स्वीकार करते हुए उनकी जयंतियाँ मनाई जाए तथा उनके आदर्शों, जीवन मूल्यों से सम्बन्धित जानकारी विस्तृत रूप से छात्रों के समक्ष रखी जाए।

9. स्थानीय लोक संस्कृति के माध्यम से- स्थानीय लोक संस्कृति जैसे लोक गीत, लोक नृत्य, लोक कहावतें, लोक मुहावरे, लोक रीति-रिवाज राष्ट्रीय संस्कृति से ओत-प्रोत हैं।अत: छात्रों को स्थानीय लोक संस्कृति से जोड़ा जाए।

10. अनुसंधान कार्य- माध्यमिक या उच्च माध्यमिक स्तर के छात्रों को अनुसंधान कार्य के रूप में छोटे-छोटे प्रोजेक्ट दिए जाएं जो राष्ट्रीय संस्कृति से सम्बन्धित हों।

11. वृक्षारोपण तथा स्वच्छता अभियान- विद्यालय में समय-समय पर वृक्षारोपण तथा स्वच्छता अभियान जैसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए।

12. सामुदायिक कार्यों से जोड़कर- रक्तदान शिविर, पल्स पोलियो, अभियान, सामाजिक बुराईयों के प्रति जागरूकता कार्यक्रम जैसे- रैली, नुक्कड़ नाटक आदि में छात्रों की सहभागिता सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

13. विशेष वार्ताओं का आयोजन- राष्ट्रीय संस्कृति से सम्बन्धित विशेष वार्ताओं का आयोजन किया जाए। जिसमें वार्ताकार के रूप में किसी समाजसेवी अथवा अच्छे चरित्र वाले व्यक्तियों को ही बुलाया जाए।

14. ऐतिहासिक तथा राष्ट्रीय सांस्कृतिक महत्त्व के क्षेत्रों का भ्रमण- राष्ट्रीय संस्कृति से सम्बन्धित सांस्कृतिक महत्त्व के क्षेत्रों की यात्रा की व्यवस्था की जाए।

15. अपना परिवार- विद्यालय में कार्यरत प्रत्येक अध्यापक के निर्देशन में 10 या 12 छात्रों का समूह रखा जाए।सप्ताह में एक कालांश अपना परिवार का रखना चाहिएजिसमें अध्यापक तथा छात्र एक परिवार के सदस्यों की भांति विचार विमर्श करे ताकि कहीं असंतोष हो वह दूर हो जाए।

16. खुली परिचर्चा- सप्ताह में एक कालांश खुली परिचर्चा का रखा जाए, जिसमें राष्ट्रीय महत्त्व के मुद्दे पर खुली चर्चा की जाए।छात्रों को अपने विचार व्यक्त करने का अवसर दिया जाए।

17. शिक्षक शिक्षार्थी सम्बन्ध- अध्यापक तथा छात्र का सम्बन्ध पिता-पुत्र के समान होता है। अत: अध्यापक के व्यक्तित्व का प्रभाव छात्र जीवन पर पड़ता है। अध्यापक को चरित्रवान, मूल्यों एवं संस्कारों से युक्त होना चाहिए। भारतीय संस्कृति का वाहक होना चाहिए।अध्यापक में ऐसी योग्यता होनी चाहिए किवह प्रत्येक विद्यार्थी को भारतीयता का अहसास करा सके।

18. विद्यालय वातावरण- विद्यालय वातावरण सांस्कृतिक तत्वों से युक्तहोना चाहिए। विद्यालय वातावरण में सम्बन्धों की मधुरता, प्रेम, शांति, भाईचारा, सहयोग,समर्पण, त्याग आदि भावनाएं निहित होनी चाहिए।

19. शिक्षण विधियाँ - कुद विशेष प्रकार की शिक्षणविधियों का उपयोग किया जाए जिनमें छात्रों की पूर्ण भागीदारी हो तथा उनमें आपसी समझ, प्रेम, सहयोग, सामाजिकता, एकता की भावना का विकास हो।

संदर्भ-सूची

1. भाटिया, अर्चना, भारत की राष्ट्रीय संस्कृति, रोहित पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 1-4.
2. सिंह, एम. के., उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, पृ. सं.-96.
3. गुप्त, नत्थूलाल अग्रहरि, मूल्यपरक शिक्षा और समाज, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं.-3.
4. पाण्डेय, रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृष्ठ सं.-368.
5. वसुधैव कुटुम्बकम विकीपीडिया।

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत उच्च, मध्यम व निम्न बौद्धिक स्तर के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि पर सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रभाव का अध्ययन

नरेन्द्र कुमार

(शोधार्थी), शिक्षा संकाय, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ0प्र0)

डॉ० मंजू गुप्ता

(एसो0 प्रोफेसर), शिक्षा संकाय, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ0प्र0)
सम्बद्ध : चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ (उ0प्र0)

सारांश

प्रस्तुत शोध अध्ययन में माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत उच्च, मध्यम व निम्न बौद्धिक स्तर के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि के संदर्भ में प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के विद्यार्थियों के मध्य तुलनात्मक अध्ययन किया गया। प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्रयोगात्मक शोध विधि (पश्च-परीक्षण समतुल्य समूह अभिकल्प) का अनुसरण किया गया है। न्यादर्श के अन्तर्गत यादृच्छिक न्यादर्श प्रविधि की सहायता से सीतापुर जनपद के माध्यमिक विद्यालयों की कक्षा-9 से कुल 120 विद्यार्थियों का चयन किया गया। जिन्हें पुनः यादृच्छिक विधि की सहायता से प्रयोगात्मक समूह (60) एवं नियंत्रित समूह (60) में वर्गीकृत किया गया है। शोधार्थी द्वारा विद्यार्थियों के बौद्धिक स्तर (उच्च, मध्यम एवं निम्न) के मापन हेतु उनकी गत वर्ष (कक्षा-8) में वार्षिक उपलब्धि के प्राप्तांकों को आधार माना गया है जबकि गणित में शैक्षिक उपलब्धि के मापन के लिए शोधार्थी द्वारा स्वनिर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया है। सांख्यिकीय प्रविधि के अन्तर्गत मध्यमान, मानक विचलन, चतुर्थांश विचलन एवं टी-मान की गणना की गयी है। निष्कर्ष रूप में यह दर्शाया गया है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत उच्च, मध्यम व निम्न बौद्धिक स्तर के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि के संदर्भ में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम, परम्परागत शिक्षण अधिगम की तुलना में अधिक सार्थक है।

मुख्य शब्द : बौद्धिक स्तर, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम, परम्परागत शिक्षण अधिगम, गणित उपलब्धि

1.1.0 प्रस्तावना

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी एक व्यापक क्षेत्र है जिसमें सूचना के संचार के लिए हर तरह की प्रौद्योगिकी समाहित है। यह वो प्रौद्योगिकी है जो कि सूचना के संचालन (रचना, भंडारण और उपयोग की योग्यता रखता है तथा संचार के विभिन्न माध्यमों रेडियों, टेलीविजन, सेलफोन, कम्प्यूटर और नेटवर्क, हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर सेटेलाइट सिस्टम, विभिन्न सेवाओं और अनुप्रयोगों) से सूचना के प्रसारण की सुविधा प्रदान करता है। आई0सी0टी0 कई लोगों के जीवन का अविभाज्य तथा स्वीकृत अंग बन गया है।

गत शताब्दी में सूचना और संपर्क के क्षेत्र में अद्‌भुत प्रगति हुई है। इलेक्ट्रानिक माध्यम के फलस्वरूप विश्व का अधिकांश भाग जुड़ गया है। सूचना प्रौद्योगिकी क्रान्ति ने ज्ञान के द्वारा खोल दिये है। बुद्धि एवं भाषा के मिलाप से सूचना प्रौद्योगिकी के सहारे आलथक सम्पन्नता की ओर भारत अग्रसर हो रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी के बहुआयामी उपयोग के कारण विकास के नये द्वार खुल रहे हैं। भारत में सूचना प्रौद्योगिकी का क्षेत्र तेजी से विकसित हो रहा है। शिक्षा में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) के उपयोग से सम्बन्धित कई शोध अध्ययन किए गए तथा अध्ययन से प्राप्त निश्कर्शों की निम्न प्रकार व्याख्या की गई– शिक्षा में शैक्षिक दूरदर्शन से सम्बन्धित अध्ययनों, (सेठ इन्दु 2003, जोशी 2007, आरूलरम 2008, मोहन्ती 2008, कपाड़िया 2002, जायसवाल 2002) से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि अध्यापकों को ई0टी0वी0 कार्यक्रमों के उपयोग के लिए पूर्ण प्रशिक्षित होना चाहिए। अध्यापकों एवं कार्यक्रम निर्माताओं के बीच सामंजस्य होना चाहिए ताकि कार्यक्रम का प्रस्तुतीकरण बोधगम्य हो। शैक्षिक टी0वी0 देखने वाले बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि भी अधिक पायी गई

परन्तु शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रम में कुछ बुनियादी कमियाँ भी पायी गई जैसा कि कार्यक्रम का प्रभाव नगरीय क्षेत्रों में अधिक था तथा कार्यक्रमों में समय के साथ परिवर्तन भी नहीं किया गया तथा

गुणवत्ता भी उच्च स्तर की नहीं पायी गई। शैक्षिक दूरदर्शन के प्रभावी कार्यक्रमों का शिक्षण प्रक्रिया पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव है इन कार्यक्रमों ने शिक्षण अधिगम क्रियाशीलता पर धनात्मक प्रभाव डाला (बेहरा, 2000)। अत: इन अध्ययनों से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि यदि शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रम

गुणवत्तापूर्ण हों व समय-समय पर परिवर्तित किए जाएँ तथा शिक्षको के उचित निर्देशन के साथ प्रदान किए जाएँ तो ये छात्र अधिगम पर व शिक्षण प्रक्रिया पर धनात्मक प्रभाव डालते हैं। रेडियों की पहुँच सीधे कक्षा तक हो सकती है इसके द्वारा अधिगम की गुणवत्ता में वृद्धि की जा सकती है। अत: ग्रामीण क्षेत्रों में रेडियों के उचित उपयोग की आवश्यकता है तथा कार्यक्रम रोचक व बालकेन्द्रित होने चाहिए जिससे कि वे सरलता से बोधगम्य हो सकें। वीडियो कार्यक्रमों से सम्बन्धित हुए शोध अध्ययनों से निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि वीडियो कार्यक्रमों का निर्माण सभी विषयों के लिए होना चाहिए (पिल्ले, 2001)। वीडियो कार्यक्रमों का विद्यार्थी की वैचारिक क्षमता तथा बोधगम्यता पर विशेष प्रभाव पड़ता है (कालीमुथु, 2001)। अत: वीडियो कार्यक्रमों के शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में उचित उपयोग के द्वारा विद्यार्थी की विषय-वस्तु के प्रति समझ व स्मरण शक्ति में वृद्धि की जा सकती है। सीखने वाले की उत्पादन क्षमता बढ़ाई जा सकती है अत: माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत उच्च, मध्यम व निम्न बौद्धिक स्तर के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि पर सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रभाव का अध्ययन एक ज्वलंत विषय है।

1.2.0 अध्ययन के उद्देश्य :

1. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत उच्च बौद्धिक स्तर के प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि के मध्य तुलनात्मक अध्ययन
2. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत मध्यम बौद्धिक स्तर के प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि के मध्य तुलनात्मक अध्ययन
3. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत निम्न बौद्धिक स्तर के प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि के मध्य तुलनात्मक अध्ययन

1.3.0 अध्ययन की परिकल्पना :

1. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत उच्च बौद्धिक स्तर के प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं होता है।
2. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत मध्यम बौद्धिक स्तर के प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं होता है।
3. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत निम्न बौद्धिक स्तर के प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं होता है।

1.4.0 अध्ययन विधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन में माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि पर सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रभाव का अध्ययन किया गया है जिसके अन्तर्गत शोधार्थी द्वारा यादृच्छिक प्रविधि की सहायकता से प्रयोगात्मक एवं नियंत्रित समूह का निर्धारण किया गया जिसमें प्रयोगात्मक समूह में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के विभिन्न माध्यमों से शिक्षण अधिगम कार्य किया गया। जबकि नियंत्रित समूह में शिक्षण अधिगम की परम्परागत विधियों का प्रयोग किया गया। अत: प्रस्तुत शोध अध्ययन की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी द्वारा प्रयोगात्मक शोध विधि अनुसरण किया गया है। जिसके अन्तर्गत केवल पश्च-परीक्षण समतुल्य समूह अभिकल्प (Posttest only Equivalent Group Design) का अनुसरण किया गया है।

1.5.0 न्यादर्श प्रारूप

प्रस्तुत शोध अध्ययन में सीतापुर जनपद के माध्यमिक विद्यालयों से प्रयोगात्मक व नियंत्रित समूहों के अन्तर्गत कक्षा-9 के 60-60 विद्यार्थियों का चयन किया गया। अत: प्रस्तुत शोध अध्ययन में यादृच्छिक न्यादर्श प्रविधि की सहायता से 120 विद्यार्थियों का चयन किया गया।

1.6.0 अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी द्वारा विद्यार्थियों के बौद्धिक स्तर का मापन उनकी गत वर्ष (कक्षा-8) में वार्षिक उपलब्धि में प्राप्त अंकों के आधार पर किया गया एवं वार्षिक उपलब्धि के प्राप्तांकों के आधार पर चतुर्थांश विचलन की सहायता से विद्यार्थियों के बौद्धिक स्तर को तीन भागों- उच्च, मध्यम एवं निम्न में वर्गीकृत किया गया है। गणित में शैक्षिक उपलब्धि के मापन के लिए शोधार्थी द्वारा स्वनिर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया है।

1.7.0 सांख्यिकीय प्रविधियाँ :

सांख्यिकीय प्रविधि के अन्तर्गत शोधार्थी द्वारा मध्यमान, मानक विचलन, चतुर्थांश विचलन व टी-मान का अनुसरण किया गया है।

1.8.0 अध्ययन की उपलब्धियाँ

1. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत उच्च बौद्धिक स्तर के प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि के मध्य तुलनात्मक अध्ययन।

प्रस्तुत उद्देश्य के संदर्भ में शोधार्थी द्वारा सर्वप्रथम विद्यार्थियों को यादृच्छिक प्रविधि के माध्यम से प्रयोगात्मक व नियंत्रित समूह में विभक्त किया गया। तदोपरांत गत वर्ष की वार्षिक उपलब्धि के माध्यम से प्रयोगात्मक व नियंत्रित समूह को बौद्धिक स्तर के तीन वर्गों जैसे- उच्च, मध्यम एवं निम्न में विभक्त किया गया है। अत: शोधार्थी द्वारा सर्वप्रथम उच्च बौद्धिक स्तर के प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि (पश्च-परीक्षण) के मध्य तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए टी-मान की गणना की गई। जिसे निम्नांकित तालिक 01 में प्रदर्शित किया गया।

तालिका 01 : उच्च बौद्धिक स्तर के प्रयोगात्मक समूह एवं नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि (पश्च-परीक्षण) के मध्य टी-मान की गणना

अध्ययन चर	समूह (उच्च बौद्धिक स्तर)	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी-मान	सार्थक स्तर
गणित में शैक्षिक उपलब्धि	प्रयोगात्मक समूह	15	23.58	3.25	5.68	0.01 स्तर
नियंत्रित समूह	15	17.31	2.78			पर सार्थक

उपरोक्त तालिका 01 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि गणित उपलब्धि के संदर्भ में उच्च बौद्धिक स्तर के प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के विद्यार्थियों का मध्यमान क्रमश: 23.58 व 17.31 पाया गया एवं मानक विचलन का मान क्रमश: 3.25 व 2.78 पाया गया। प्राप्त मध्यमानों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि गणित उपलब्धि के संदर्भ में प्रयोगात्मक समूह जिसमें सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम किया गया, नियंत्रित समूह जिसमें परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम किया गया, से उच्च पाया गया है। दोनों समूहों के मध्य सार्थक अन्तर के लिए टी-मान की गणना की गयी है। गणित उपलब्धि के संदर्भ में प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के मध्य टी-मान 5.68 पाया गया। जो कि 0.01 स्तर एवं 28 स्वतंत्रता अंश पर सार्थक मान है। उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि परम्परागत शिक्षण अधिगम तकनीकी की तुलना में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम, उच्च बौद्धिक स्तर के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि के लिए अधिक सार्थक है। अत: शून्य परिकल्पना "माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत उच्च बौद्धिक स्तर के प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं होता है" को निरस्त किया जाता है।

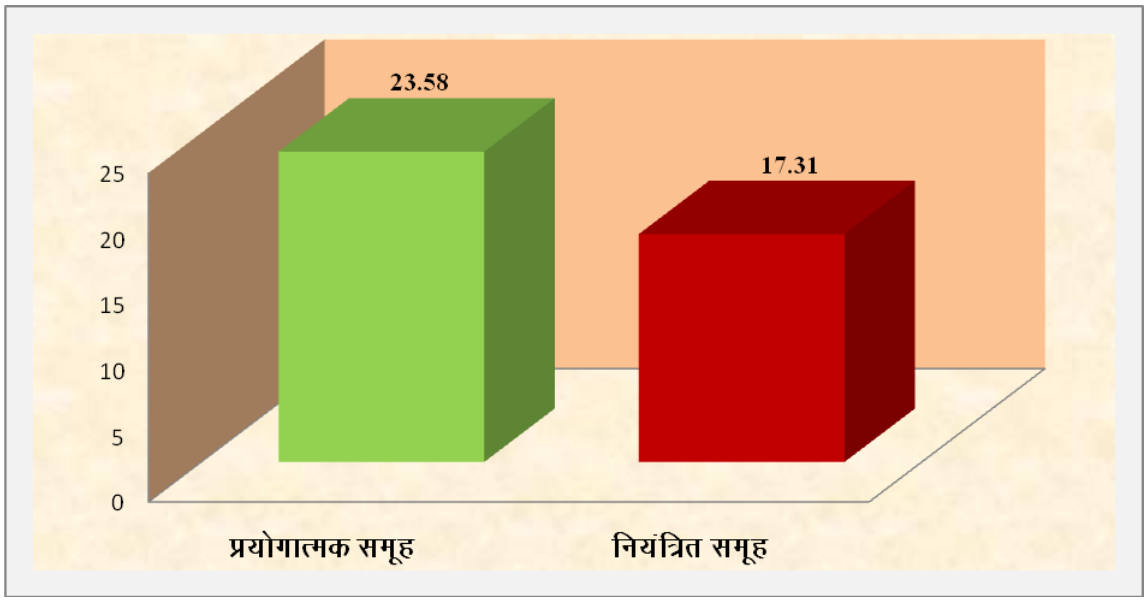

आरेख 01 : उच्च बौद्धिक स्तर के विद्यार्थियों (प्रयोगात्मक एवं नियंत्रित समूह) की गणित उपलब्धि के मध्यमान

2. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत मध्यम बौद्धिक स्तर के प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि के मध्य तुलनात्मक अध्ययन।

शोधार्थी द्वारा सर्वप्रथम मध्यम बौद्धिक स्तर के प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि (पश्च-परीक्षण) के मध्य तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए टी-मान की गणना की गई। जिसे निम्नांकित तालिक 02 में प्रदर्शित किया गया।

तालिका 02 : मध्यम बौद्धिक स्तर के प्रयोगात्मक समूह एवं नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि (पश्च-परीक्षण) के मध्य टी-मान की गणना

अध्ययन चर	समूह (मध्यम बौद्धिक स्तर)	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी-मान	सार्थक स्तर
गणित में शैक्षिक उपलब्धि	प्रयोगात्मक समूह	30	17.23	3.08	4.87	0.01 स्तर पर
नियंत्रित समूह	30	13.41	2.99			सार्थक

उपरोक्त तालिका 02 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि गणित उपलब्धि के संदर्भ में मध्यम बौद्धिक स्तर के प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के विद्यार्थियों का मध्यमान क्रमशः 17.23 व 13.41 पाया गया एवं मानक विचलन का मान क्रमशः 3.08 व 2.99 पाया गया। प्राप्त मध्यमानों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि गणित उपलब्धि के संदर्भ में प्रयोगात्मक समूह जिसमें सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम किया गया, नियंत्रित समूह जिसमें परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम किया गया, से उच्च पाया गया है। दोनों समूहों के मध्य सार्थक अन्तर के लिए टी-मान की गणना की गयी है। गणित उपलब्धि के संदर्भ में प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के मध्य टी-मान 4.87 पाया गया। जो कि 0.01 स्तर एवं 28 स्वतंत्रता अंश पर सार्थक मान है। उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि परम्परागत शिक्षण अधिगम तकनीकी की तुलना में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम, मध्यम बौद्धिक स्तर के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि के लिए अधिक सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना "माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत मध्यम बौद्धिक स्तर के प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं होता है" को निरस्त किया जाता है।

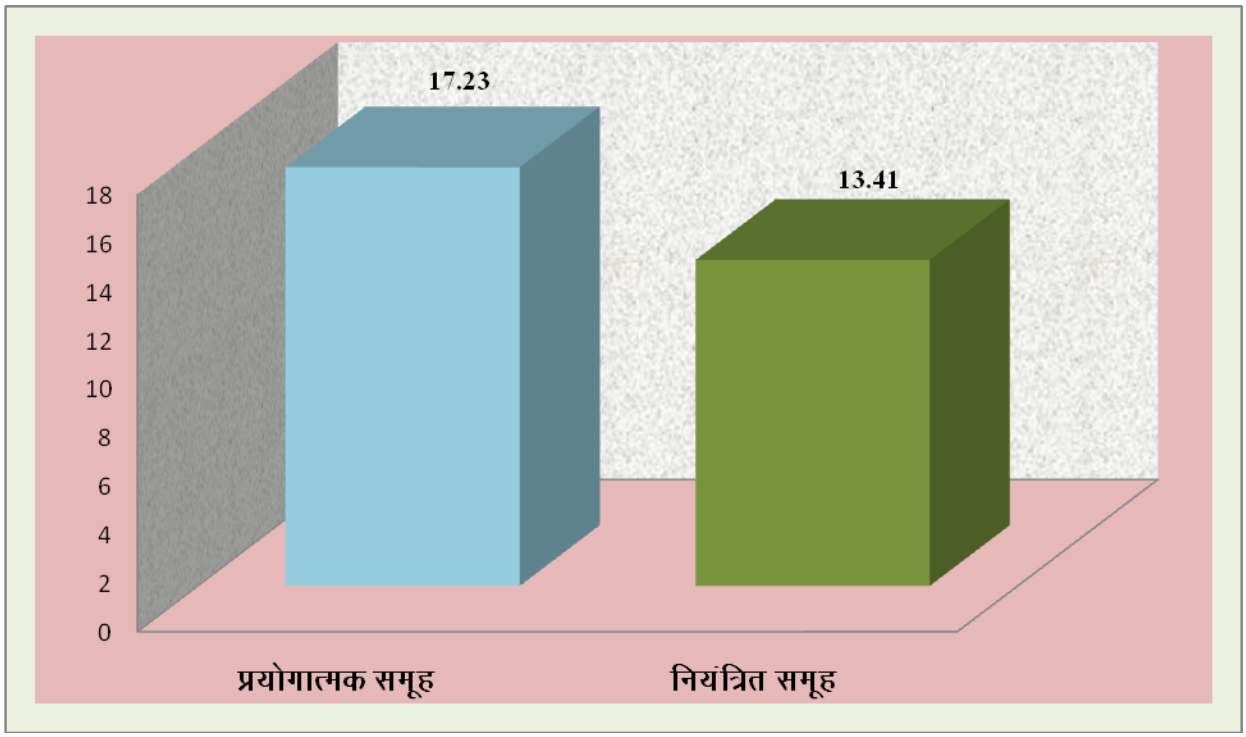

आरेख 02 : मध्यम बौद्धिक स्तर के विद्यार्थियों (प्रयोगात्मक एवं नियंत्रित समूह) की गणित उपलब्धि के मध्यमान

3. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत निम्न बौद्धिक स्तर के प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि के मध्य तुलनात्मक अध्ययन।

शोधार्थी द्वारा सर्वप्रथम निम्न स्तर के प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि (पश्च-परीक्षण) के मध्य तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए टी-मान की गणना की गई। जिसे निम्नांकित तालिक 03 में प्रदर्शित किया गया।

तालिका 03 : निम्न बौद्धिक स्तर के प्रयोगात्मक समूह एवं नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि (पश्च-परीक्षण) के मध्य टी-मान की गणना

अध्ययन चर	समूह (निम्न बौद्धिक स्तर)	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी-मान	सार्थक स्तर
गणित में शैक्षिक उपलब्धि	प्रयोगात्मक समूह	15	12.89	2.81	4.11	0.01 स्तर
नियंत्रित समूह	15	9.19	2.07			पर सार्थक

उपरोक्त तालिका 03 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि गणित उपलब्धि के संदर्भ में निम्न बौद्धिक स्तर के प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के विद्यार्थियों का मध्यमान क्रमशः 12.89 व

9.19 पाया गया एवं मानक विचलन का मान क्रमशः 2.81 व 2.07 पाया गया। प्राप्त मध्यमानों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि गणित उपलब्धि के संदर्भ में प्रयोगात्मक समूह जिसमें सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम किया गया, नियंत्रित समूह जिसमें परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम किया गया, से उच्च पाया गया है। दोनों समूहों के मध्य सार्थक अन्तर के लिए टी-मान की गणना की गयी है। गणित उपलब्धि के संदर्भ में प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के मध्य टी-मान 4.11 पाया गया। जो कि 0.01 स्तर एवं 28 स्वतंत्रता अंश पर सार्थक मान है। उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि परम्परागत शिक्षण अधिगम तकनीकी की तुलना में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम, निम्न बौद्धिक स्तर के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि के लिए अधिक सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना "माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत निम्न बौद्धिक स्तर के प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं होता है" को निरस्त किया जाता है।

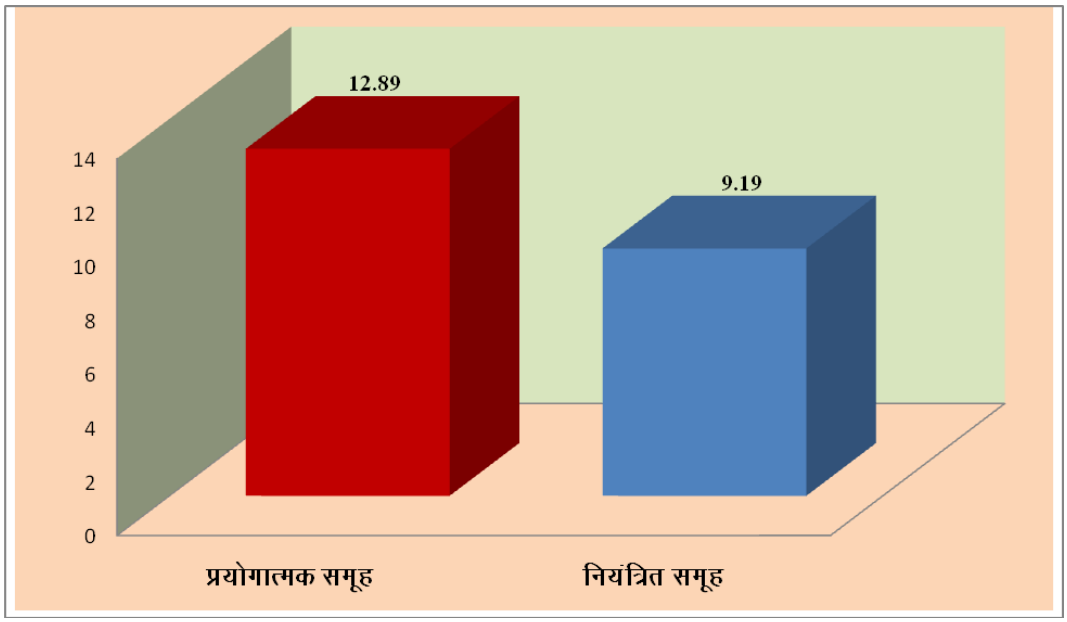

आरेख 03 : निम्न बौद्धिक स्तर के विद्यार्थियों (प्रयोगात्मक एवं नियंत्रित समूह) की गणित उपलब्धि के मध्यमान

1.9.0 निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन में उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उच्च, मध्यम एवं निम्न बौद्धिक स्तर के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि पर सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के शिक्षण अधिगम का सार्थक प्रभाव पड़ता है क्योंकि उपरोक्त विवेचन में यह देखा गया है कि

उच्च, मध्यम एवं निम्न बौद्धिक स्तर के संदर्भ में प्रयोगात्मक समूह (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम) एवं नियंत्रित समूह (परम्परागत विधि से शिक्षण अधिगम) की गणित उपलब्धि में सार्थक अन्तर पाया गया है। अतः तकनीकी के वर्तमान युग में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की प्रांसगिकता को ध्यान में रखते हुए शिक्षकों द्वारा सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के नवाचारों का शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में अनुप्रयोग किया जाना चाहिए जिससे विद्यार्थियों की शैक्षणिक प्रगति पर सकारात्मक परिवर्तन देखा जा सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

कालीमुथु, टी0 (2001) डबलपिंग ं वीडियो प्रोग्राम ऑन इनवायरमेंटल पोलूशन पद बॉयोलॉजी फोर हायर सैकेण्डरी स्टूडेंस, एम0फिल्0 एजु0 मथुरई कमराज यूनिवर्सिटी पिल्ले, सुब्रामोनिया (2001) एन एनालाइसेंस ऑफ एजुकेशनल वीडियो प्रोडेक्सशन, मेड इन इंडिया, पी-एच0डी0 एजु0 मथुरई कमराज यूनिवर्सिटी

बेहरा, एस0सी0 (2002) एन इंवेस्टीगेशन इन टू द इपैक्ट ऑफ एजुकेशनल टेलीविजन प्रोग्राम ऑन द कम्पटेंसी ऑफ टीचर्स ऑफ द एलीमेंटरी स्कूल पी-एच0डी0 एजु0 उत्कल यूनिवर्सिटी

जायसवाल, के0 (2002) ए स्टडी ऑफ हायर एजुकेशन : साइंस एजुकेशन टेलीविजन प्रोग्राम इन फोर्मस ऑफ देयर कन्टेंटस प्रजन्टेंशन, स्टूडेंस रियेक्सन एण्ड इफैक्टीनेस पी-एच0डी0 एजु0, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय

कपाड़िया, ए0एम0 (2002) द इफैक्ट ऑफ टेलीविजन ऑन स्टूडेंस लर्निंग : एन एक्सप्लोरेशन पी-एच0डी0 एजु0 साउथ गुजरात यूनिवर्सिटी

सेठ, इन्दु (2003) ए स्टडी ऑफ द इफैक्ट ऑफ एजुकेशनल टेलीविजन ऑन एजुकेशनल डबलपमेंट ऑफ चिल्ड्रेन ऑफ प्राइमरी स्कूल पी-एच0डी0 एजु0 एम0एस0 यूनिवर्सिटी

अरूलरम, आई0 (2008) एवल्यूलेशन ऑफ यू0जी0सी0 कंट्रीवाइड एजुकेशनल टेलीविजन एम0फिल्0 एजु0 मथुरई कमराज यूनिवर्सिटी

मोहन्ती, एम0के0 (2008) ए क्रिटीकल एपराइसल ऑफ प्राइमरी स्कूल रेडियो प्रोग्राम एण्ड देयर इफैक्टिव फोर पियूपल ग्रोथ, पी-एच0डी0 एजु0 उत्कल यूनिवर्सिटी

SITES:

http://scert.cg.gov.in/pdf/deled-2018-19pdf/ET-2018-19.pdf

https://shodhganga.inflibnet.ac.in/jspui/handle/10603/245282

गीतांजलि श्री कृत 'तिरोहित' उपन्यास में स्त्री-विमर्श

नीलम कुमारी

पीएच.डी. शोधार्थी, हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

भारतीय सभ्यता और संस्कृति में नारी की स्थिति और समस्याओं के संबंध में हमारा दृष्टिकोण असमानता पैदा करता है। कहीं स्त्री को शक्ति स्वरूपा देवी तो कहीं बेचारी कमज़ोर, अबला दासी की संज्ञा दी गई है। स्त्री की वास्तविक स्थिति, उसकी समस्याओं और समाधानों से जुड़े हुए विभिन्न पहलुओं पर लेखन को 'स्त्री-विमर्श' का नाम दिया गया है।

स्त्री विमर्श वास्तविक रूप से स्त्री की अभिव्यक्ति से जुड़ा विमर्श है। जिसमें सदियों से समाज में समानता, स्वतन्त्रता, सामाजिक न्याय तथा अभिव्यक्ति के लिए जबरन चुप करा दी गई स्त्री की अभिव्यक्ति का प्रकट होना ही स्त्री-विमर्श का मुद्दा है। नारीवादी चिंतक सीमोन द बोउवार का मानना है कि - "स्त्री की स्थिति पराधीनता की है। समाज में मादा और नर जन्म लेते हैं। स्त्री जन्म से नहीं होती। अपनी इस पराधीनता की स्थिति के कारण समाज द्वारा बनाए गए मानदंडों के अध्यारोपण से मादा स्त्री बन जाती है। नारी को केन्द्र बिन्दु बनाकर सीमोन स्त्री के पक्ष की बात करती हुई कहती है कि बचपन से लेकर जीवनपर्यन्त पुरुष और उसके समर्पण भाव की प्रशंसा करते रहते हैं। स्वतन्त्रता सबको डराती है। स्त्री भी इसका अपवाद नहीं है और गुलामी की प्रशस्त हो तो क्या कहना? समर्पण के नाम पर मिलने वाली सुविधा का प्रलोभन किसी को भी हो जायेगा।"[1]

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में महिला लेखिकाएँ अपनी एक अलग और नयी पहचान लेकर हिन्दी साहित्य में आई। जिससे हिन्दी साहित्य जगत ने एक बुलंद स्वर से माना है कि हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श संबंधित साहित्य अब पूरी तरह परिवर्तित हो गया है। समय के बदलते रूप और आवश्यकता के कारण साठ के दशक के बाद हिन्दी साहित्य में महिला लेखिकाओं का आगमन बड़ी तेजी से हुआ और सदी के अंत तक आते-आते हिन्दी साहित्य में इनकी संख्या बढ़ने के साथ-साथ वैचारिक परिवर्तन हुए जिसने हिन्दी साहित्य को उच्च शिखर पर पहुँचा दिया।

समकालीन महिला लेखिकाओं में गीतांजलि श्री एक जाना पहचाना नाम है। 'माई' जैसे चर्चित उपन्यास के माध्यम से अपनी पहचान बनाई और हिन्दी साहित्य जगत में अपने नाम को सार्थक किया।

गीतांजलि श्री कृत एक अन्य उपन्यास 'तिरोहित' स्त्री-विमर्श की गाथा है जिसमें ललना और चच्चो ने पितृसत्तात्मक समाज की अवहेलना करते हुए अपने जीवन को अपनी शर्तों पर जिया। पितृसत्तात्मक शक्तियों ने सदा स्त्री को दबाया कुचला लेकिन इन स्त्रियों के विद्रोह और संघर्ष ने इस सत्ता को तोड़कर रख दिया जो यह सोचने लगा कि आखिर इनमें इतनी हिम्मत कहाँ से आई। आज के समय में नारी ने अपने अस्तित्व को पहचान लिया है। अब वह घुट-घुट कर जीने के बजाय खुल रूप से अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा करती है जो नारी चेतना का प्रतीक है।

तिरोहित उपन्यास में चार मुख्य पात्र हैं : बहनजी (चच्चो), ललना, भतीजा, ओम (चाचा)। ललना और बहनजी बहुत अच्छी सहेलियाँ हैं और इन दोनों के बीच की कड़ी है भतीजा। भतीजा ललना का बेटा है। भतीजा इस बात से अनजान है। ललना और बहनजी के घर काम करती है। बहनजी बेऔलाद है। ललना मित्रता की खातिर अपना बेटा बहनजी को दे देती है।

लेबरनम की छत मोहल्ले के लोगों के क्रिया-कलाप का केन्द्र जिस पर घरों के रोशनदानों से झांकते बच्चे बालिग उत्सुक रहते हैं। किशोरावस्था से जुड़ी जिज्ञासाओं का शमन तांक-झांक, दैनिक कार्य सभी यहीं पर होते हैं। यहाँ तक कि घरों में आपसी संबंधों की तांका-झांकी रही है जिसमें कौतुहलता ज्यादा रहती है। ललना और चच्चो के मिलन का स्थान यही है। ललना अपने पति से उपेक्षित बाल-विवाह की शिकार है और चच्चो अपने व्यवसायिक पति की व्यस्तता से ऊब चुकी है। दोनों स्त्रियां अपनी शारीरिक और मानसिक शांति के लिए लेबरनम छत पर मिलती है। यह उपन्यास स्त्री-पुरुष, स्त्री-स्त्री संबंधों की गहन पड़ताल करता है। प्रेम क्या आत्मिक होता है या दैहिक। इन प्रश्नों के उत्तर इस उपन्यास में मिलेंगे।

ललना और चच्चो की अन्तरंग मित्रता से भतीजा दुखी रहता है क्योंकि वह सोचता है कि ललना के आ जाने से चच्चों और भतीजा में दूरियां आ गई हैं। वह नहीं चाहता कि कोई उसके हिस्से की ममता छीने। "और मैं रंजिश से भर उठता हूँ जब हर तरफ चच्चो।"[2]

तिरोहित उपन्यास स्त्री-विमर्श की नई भाषा नया अंदाज लेकर आया है। वह स्त्री मुक्ति के लिए छटपटाहट की कोशिशों को पकड़ता है अस्तित्व के संघर्ष को भी बारीक नज़र से देखता है। समाज के अनेक अंतरों में अलग-अलग स्तर पर तकलीफ झेलती स्त्री को लेखिका ने आत्मीयता के भाव में परखा है। तो उन कारणों को भी खोजा है जिनके चलते स्त्री-विमर्श मात्र विचारों का खेल बनकर रह गया है। पुरुषसत्तात्मक समाज में स्त्री की स्थिति हो या घरेलू हिंसा, यौन-शोषण, देह मुक्ति का प्रश्न हो या प्रौढ़ होती स्त्री की दुख-तकलीफ हो या अहं भाव से पूर्ण पुरुष की मानसिकता, लेखिका ने यह सभी प्रश्न इस उपन्यास उठाए हैं और इन प्रश्नों का उत्तर खोजने की सार्थक कोशिश की है।

ललना और चच्चो अपनी मुक्ति के साथ अर्न्तद्वन्द्वों और संघर्षों का सामना करती हुई समाज के लिए सदा तिरोहित रहती है। अन्दर बाहर की अदला बदली को चरितार्थ करती यहाँ वहाँ तिरती रहती हैं एक रहस्यमय छत। जो सभी घरों को जोड़ती है और चच्चो-ललना के अर्न्तमन को।

स्त्री-पुरुष संबंध आज के समय में संकट के दौर से गुज़र रहे है क्योंकि पहले पुरुषों की बनाई हुई अराजक व्यवस्था को चुनौति देने वाला कोई नहीं था लेकिन वर्तमान समय में स्त्री स्वतन्त्रता पुरुष के अहम् को चोट पहुँचा रहती है। परिणामस्वरूप उनमें सामंजस्य नहं बैठ रहा है। पहले चौखट के बाहर की दनिया में पुरुष का दबदबा/वर्चस्व था और चौखट के भीतर का संसार स्त्री का। लेकिन जब स्त्री में भी चेतना जैसे भावों ने जन्म लिया तब पुरुषों की सत्ता हिल गई।

उपन्यास के सन्दर्भ में ओम अपनी पत्नी को अपने अधीन सजी-सजाई गुड़िया के रूप में देखना चाहता है जो चाबी देने पर हंसे, बोले, चले या खाए लेकिन ललना के आने पर चच्चो को एक सहारा मिल जाता है जिससे वह अपने दिल की हर बात उससे सांझा करती है। पति की पैसा कमाने की धुन और उपेक्षित व्यवहार चच्चो को अकेला कर देता है।अपनी दैहिक इच्छा पूर्ति और मानिसक शांति के लिए वह ललना से छत पर मिलती है। इसलिए सब चच्चो अपने पति को बिना बताए छत पर चली जाती है तब (ओम) पति गुस्सा हो जाते हैं "चाचा जान नहीं पाते कि चुपचाप रहने वाली, उनकी एक करारी नज़र पे सिमट जाने वाली चच्चो क्यों अचानक उठ बैठती है, क्या उसके मन में आता है जो पहले कि वह उसे पकड़ पाए पंख बनकर ऊपर उड़ जाता है।"[3] यहाँ लेखिका ने यह बताने का प्रयास किया है कि आधुनिक युग में इसी का विद्रोह हज़ारों वर्ष की इस दासता को खुली चुनौति है जिसकी यह घोषणा है कि जो बराबर का हक न दे उससे कोई सरोकार नहीं। स्त्री ने कई विद्रोह किए क्योंकि जहाँ अधीनता होगी वहाँ विद्रोह की चिंगारियाँ उठेंगी।

यह स्वभाविक है कि स्त्री के प्रति पुरुष के आकृष्ट होने का प्राकृतिक कारण उसका शरीर है। जिसके कारण पुरुष स्त्री के सौन्दर्य को आँकता है। पुरुष की दृष्टि स्त्री मन के बजाय शारीरिक माँसलता पर केन्द्रित रहती है। जिस स्त्री में इन सब का अभाव है वह मर्दानी समझी जाती है। "औरत को गढ़ा ही ऐसे है जो कि शांत धीर न हो तो खुद पछताए ... औरत कहाँ जो औरत जैसी न हो।"[4]

नारी सौन्दर्य पुरुष के लिए, समाज के लिए स्वयं नारी के लिए वरदान है। अत: पुरुषों को स्त्री मन के साथ-साथ स्त्री सौन्दर्य में सामंजस्य रखने की आवश्यकता है।

एक तरफ मनुस्मृति में नारी के विषय में कहा गया है कि यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता वहीं दूसरी तरफ पुरुषों की विरोधाभास सोच से यह भी उल्लिखित किया गया है कि जिमी स्वतंत्र होहिं बिगरहिं नारी। वैसे स्त्री की दासता या पराधीनता का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है। नारी को अपने वश में रखने के लिए पुरुष समाज ने विभिन्न प्रकार के सूत्र ग्रन्थ और संहिताएं रची हैं। वह स्त्री के ऊपर कई वर्षों से शासन करने में सफल भी रहा चाहे बल द्वारा हो या छल द्वारा।

(ओम)" खिड़की पर तो खड़ी नहीं होती?"

(चच्चो)" नहीं"

"छत पर?"

"नहीं"

"रात उठी थीं?"

"नहीं"

बिस्तर तो खाली था?"[5]

पत्नी कहाँ जाती है। पति को हर बात की जानकारी चाहिए। पति पत्नी को मित्र भाव से नहीं दास भाव से स्वीकारने को तैयार है। पुरुष अपने निजी कोने की अहमियत समझता है मगर स्त्री का भी कोई निजी कोना हो सकता है यह उसे समझना जरूरी है।

जब औरत के किसी दूसरी औरत की देह की तरफ आकर्षित हो जाए तब लोक प्रचलित रिश्तों, मान्यताओं, सिद्धांतों को ताक पर रख देती है। पुरुषों की मानसिकता स्त्रियों के प्रति यही है कि औरत एक पदार्थ है जिसका उपभोग किया जाता है। पुरुष गति है। स्त्री की देह स्त्री भी न छुए इस मानसिकता ने संघर्ष को जन्म दिया।

"उसकी सांसें तप रही हैं वह उन्हें छू रही हैं।"

वह उन्हें इंकार कर रहे हैं।

क्यो?...

...क्योंकि मुझे औरत चाहिए तुम नहीं।"[6]

पुरुषों की आक्रमक यौन मुद्राओं के समक्ष वह खुद को निष्क्रिय पाती है। इसलिए वह सोचती है कि वह एक ऐसा संबंध बनाए जिसमें बराबर की समझदारी हो। पुरुष की प्रवृत्ति स्त्री को भोगने और उस पर काबू करने की होती है। स्त्री की आत्मा को आत्मसात करने की नहीं इन्हीं सब कारणों के चलते स्त्री विरक्त हो जाती है तब उसे अपनी ही देह के प्रति अनुराग हो जाता है। दूसरी स्त्री के रूप में वह अपनी देह को प्यार करने लगती है।

पुरुष ने कभी स्त्री को देह से ज्यादा मान्यता नहीं दी। उसकी नज़र में स्त्री होने की पहली शर्त है उसकी देह। और जब औरत ढलान के करीब होती है तब वह अपनी उपयोगिता अपना महत्व तलाश नहीं कर पाती यह दर्द उसे मानसिक रूप से तोड़ देता है। उपेक्षा का ग्रहण उसके समूचे अस्तित्व को जड़ बना देता है।

"कौन जाने सच ही जो औरत अलग मन जीवन जीने लगती है औरताना अंदाज खो देती है। कोई आकार जो बाहर फट पड़ती है उसे देख कर आदमी की न तो पिपासा जगती है न वासना न मन में वात्सल्य उठता है न तन में मांसल इच्छा।

जो औरत पकड़ में नहीं आती वह औरत नहीं।"

उम्र भर वह घर में खोई रहती है कि उसे पता ही नहीं चलता कि कब उसकी पकड़ से उसका साथी छूट गया है।

तब नारी सामाजिक वर्जनाओं की उपेक्षा करने लगती है। तब वह अपनी देह और अपनी अस्तित्व के लिए साथी ढूँढ़ती लेती है। उपन्यास के सन्दर्भ में ललना और चच्चो अपने दैहिक जरूरतों को पूरा करने के लिए किसी भी बंधन को नहीं मानती और स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी भावनाओं को व्यक्त करती है – "यह उनकी दुनिया है। वे कसके एक-दूसरे को थाम लेती हैं कि कहीं अपने दोनों की बस। इस निर्बन्ध सल्तनत में खुश होके गिर न पड़े।"[8] यहां लेखिका यह कहना चाहती है कि जो संबंध एक पुरुष समाज को स्वीकार्य नहीं स्त्री उसी संबंधों में अपनी खुशी ढूँढती है।

स्त्री-पुरुष संबंधों के बिगड़ने का मूल कारण विचारों के सामंजस्य का निर्वाह भली-भांति नहीं होना है। स्त्री-पुरुष के बीच केवल देह संबंध ही सब कुछ नहीं होता बल्कि अहम व आत्मसम्मान के निर्वाह की समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। उपन्यास के सन्दर्भ में "औरत वही है जो आदमी के मन को समझे, उसे माफ कर दे, उसे भटक कर लौट आने दे।"[9]

तिरोहित उपन्यास में स्त्री-विमर्श के प्रश्नों को लेखिका बहुत सटीक तरह से उठाया है। स्त्री के मूल अधिकार क्या हैं। समाज में उसकी स्थिति का अंकन और स्त्री-स्त्री संबंध, स्त्री-पुरुष संबंधों के साथ स्त्री के अपने देह के प्रति सजगता को लेखिका ने उद्घाटित किया है। यह उपन्यास स्त्री चेतना के नए आयाम को उठाता है। स्त्री में प्रेम की अकुंठित अभिव्यक्ति को उन कुंठित सामाजिकता के दायरों से उठाता है। लेबरनम की छत पर ही वे अपने सुख दुख, आशा-निराशा आदि को भूलकर अपने प्रगाढ़ निजी दायरे में मुक्त हो पाती है। दोनों की नजर में यह छत उनकी अर्थात् उनकी मुक्तकामी चेतना को अभिव्यक्त करने का उचित स्पेस जिस पर वह अपने को स्वच्छंद पाती है।

निष्कर्षत

तिरोहित उपन्यास में लेखिका ने स्त्री विमर्श में निहित सामाजिक मुक्ति के प्रश्न को समकालीन परिवेश और संबंध भावनाओं के दायरे में बहुत ही जीवंत और ज्वलंत रूप में उठाया है।

संदर्भ

1. प्रभा खेतान (अनु), द सैकण्ड सैक्स, सिमोन दा बाउवार, पृष्ठ 47
2. गीतांजलि श्री, तिरोहित (उपन्यास), पृष्ठ 12
3. वही, पृष्ठ 17
4. वही, पृष्ठ 69
5. वही, पृष्ठ 53
6. वही, पृष्ठ 73
7. वही, पृष्ठ 113
8. वही, पृष्ठ 46
9. वही, पृष्ठ 74

स्त्री सुन्नत की भयावहता और उसके प्रति विद्रोह : दर्दजा

निशा देवी

पीएच.डी. शोधार्थी, हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

स्त्री का जीवन संघर्ष का पयार्य है। लड़की के जनम के साथ ही उसके संघर्ष आरम्भ हो जाते हैं। जीवन में बढ़ते पग-पग पर उसे यह सिखाया जाता है कि वह लड़की है, उसे लड़कों से अपनी तुलना नहीं करनी है। वह आत्मनिर्भर होकर भी कहीं अपनी इच्छानुसार नहीं जा सकती, न ही कोई स्वतंत्र निर्णय ले सकती है। आज के समय में नारी भी पुरुष के साथ हर क्षेत्र में खड़ी है किन्तु भीतर देखा जाय तो असमानता की खाई आज भी गहरी है। नारी को पुरुष समाज दोयम दर्जे का नागरिक ही मानता है।

विश्व पटल पर देखा जाये तो कुछ देश ऐसे भी हैं जहाँ स्त्री को अपनी देह की रक्षा के अधिकार भी प्राप्त नही हैं। धर्म के नाम पर उसकी देह के साथ अपने परिवार वालों द्वारा बहशी छेड़छाड़ की जाती है। उसे सम्पूर्ण बनाने की मंशा से आधा अधूरा बनाकर पल-पल मरने के लिए जिंदा छोड़ दिया जाता है। इस कुप्रथा का नाम है 'स्त्री सुन्नत' (एफजीएम) यानि फीमेल जेनिटल म्यूटिलेशन)।

पितृसत्ता की सामंती सोच और धार्मिक रूढ़ियाँ नारी के जीवन को नरक तुल्य बना देती हैं। लेखिका जयश्री रॉय ने स्त्री जीवन की ऐसी ही सच्चाई को 2016 में प्रकाशित 'दर्दजा' उपन्यास में बताया है। इस उपन्यास के केन्द्र में 'स्त्री सुन्नत' कुप्रथा अपनी भयावहता के साथ शब्दबद्ध है। नायिका 'माहरा' का पुरज़ोर विद्रोह भी है। उपन्यास में लेखिका ने एक ऐसे विषय को केन्द्र में लिया है जिस विषय पर खुल कर बात करना कोई नहीं चाहता। लेखिका ने निर्भय होकर इस विषय को चुना और उपन्यास की नायिका माहरा के माध्यम से यह सिद्ध किया है कि इस्लाम की पाक पुस्तकों व ग्रन्थों में कहीं भी इस प्रथा का उल्लेख नहीं है। यह मात्र धर्म के नाम पर स्त्री को डराने और पुरुष द्वारा नारी को अपने नियंत्रण में रखने की अमानवीय साजिश है। स्त्री सुन्नत की प्रक्रिया इतनी भयावह है कि इसे सुनने के लिए कान से अधिक हृदय की आवश्यकता है। लेखिका आरम्भ में ही लिखती है -"अफ्रीका के जंगलों और धूं-धूं करते रेगिस्तानों की इस स्याह-शुष्क दुनिया के चप्पे-चप्पे में माहरा जैसी लाखों बदनसीब औरतों की दर्द भरी कहानी धूल, बवंडर और आंधी के साथ रात-दिन उसाँसें लेती रहती हैं। इन्हें सुनने के लिए कान से अधिक हृदय की जरूरत है।"[1]

'दर्दजा' दर्द की जाइयों की कहानी। इस उपन्यास के लिए लेखिका ने काफी खोज-बीन की है क्योंकि इस कृति के माध्यम से वह किसी एक धर्म विशेष, जाति विशेष, समुदाय विशेष पर प्रश्न नहीं उठाना चाहती थी। उपन्यास में लेखिका ने ईसाई मैम के द्वारा बताया है कि यह कुप्रथा मुस्लिम समुदाय में ही नहीं, कुछ देश के ईसाइयों तथा अन्य जातियों में भी प्रचलित है। उपन्यास की कहानी का केन्द्र बिन्दु अफ्रीका महाद्वीप (जोकि जनसंख्या के आधार पर एशिया महाद्वीप के बाद दूसरे स्थान पर आता है) का एक देश 'सोमालिया' है।

स्त्री सुन्नत का अर्थ है स्त्री के यौनांग के बाहरी हिस्से को काट दिया जाता है ताकि उसकी सम्भोग की स्वाभाविक इच्छा को नियंत्रित करके उसे मात्र बच्चा पैदा करने वाले यंत्र में बदला जा सके। उपन्यास में लेखिका ने नायिका माहरा के दर्द में सुन्नत से अपाहिज हुई अनेकों की पीड़ाओं को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

धर्म और रस्मों रिवाज़ के नाम पर हर वर्ष अनेक लड़कियां इसकी भेंट चढ़ जाती हैं। पश्चिम, पूर्वी, उत्तर पूर्वी अफ्रीका जैसे ईजिप्ट, दजिबौट, सोमाली, सुदान, इरिट्रीआ, इथिओपिआ, माली, कुछ भाग एशिया, खाड़ी के कुछ देशों को मिलाकर 28 देशों में इस प्रथा का चलन है। "विश्व स्वास्थ्य संगठन के हिसाब से 14 करोड़ औरतें जिसमें दस करोड़ दस लाख अफ्रीकन औरते हैं, इस प्रथा का शिकार हुई हैं।"[2]

सुन्नत करने वाली 'गेद्दा' होती है। 'गेद्दा' सम्प्रदाय विशेष की होती है। प्रत्येक औरत सुन्नत नहीं करती। सुन्ना करने के उपकरण ही इतने भयावह हाते हैं। उसके बाद का दृश्य तो नरकीय यंत्रणा से भी अधिक है। "पत्थर के नुकीले टुकड़े भोंथरा चाकू, हैंडल टूटी कैंची, ब्लेड का टुकड़ा ..."[3]

'सुन्नत' एक सामाजिक विसंगति है, किन्तु विश्व के कई हिस्सों में यह परम्परा के रूप में प्रचलित है जिसे आगे चलाना लोग अपना धर्म मानते हैं। इसे लेकर तरह-तरह की तर्कहीन मान्यताएँ प्रचलित हैं। सुन्नत से पहले स्त्री को स्त्री का दर्जा नहीं मिलता। माहरा की माँ भी उसकी सुन्नत के पहले दिन उससे कहती है - "अब तू भी खास बन जायेगी, औरत का दर्जा पायेगी ... औरत का दर्जा। खास हो जायेगी।"[4]

मात्र 13 वर्ष की माहरा की बाल सुलभ बुद्धि में यह समझ नहीं आता कि 'खास होना' क्या होता है। सुन्नत के पश्चात् उसने यही जाना था कि ऊपरवाले का फरमान कहकर उसकी देह के साथ बहशी छेडछाड़ की गई है और उसे आधी अधूरी बना कर पल-पल मरने के लिए जिंदा छोड़ दिया गया है। मां बच्चे को नौ माह तक गर्भ में रखती है, माँ की गोद ही बच्चे के लिए दुनिया की सबसे सुरक्षित जगह है। किन्तु धर्म के नाम पर चली आ रही रूढ़ परम्पराओं

ने उसे इतना निर्मम बना दिया है कि सुन्नत के समय हलक फाड़ कर, दर्द से नीली पड़ी बेटी की पीड़ा नहीं दिखती। उस समय शांत और गर्व अनुभव करती है मानो धार्मिक अनुष्ठान हो रहा हो।

सुन्नत की प्रक्रिया इतनी भयावह होती है कि इसमें कई बच्चियों की जान चली जाती है, कुछ आजीवन लाइलाज बिमारी का शिकार हो जाती हैं। "इसकी वजह से औरतों को दर्द के साथ रक्तस्राव, पेशाब का इन्फेक्शन, ज़ख्म का इन्फेक्शन, खून में ज़हर फैलना, टेटनस, हेपेटाइटिस तथा एच.आई.वी. आदि हो जाता है।"[5] उपन्यास में माहरा की बहन मासा, सबा, साबीला, माहरु इसके उदाहरण हैं।

धर्मभीरू औरतें इस कुप्रथा को आगे बढ़ाना अपना परम धर्म समझती हैं। उनके संस्कार उनकी जड़ों तक पहुँच गये हैं। उन्हें लगता है कि यदि हम इन प्रथाओं का पालन नहीं करेंगे तो हम अपनी संस्कृति धर्म से कट जायेंगे। समाज से उन्हें बहिष्कृत कर दिया जाएगा। धर्म का भय इन अनपढ़ औरतों के अन्दर इस तरह बैठा हुआ है कि ये अपनी देह को पाप का गढ़ मानती हैं। जो औरतें बिना विरोध किए इसे सहर्ष स्वीकार करती हैं वही नेक औरतें मानी जाती हैं। जो खुशी-खुशी दर्द सहे वह उनकी दृष्टि में 'खुदा की बन्दी!' माहरा भी नेक औरत बनना चाहती है किन्तु वह सोचती है कि क्या बिना दु:खी, पीड़ित और बिना रोये हम नेक औरतें नहीं बन सकती? ईश्वर में आस्था माहरा की बचपन से ही है। साथ ही अनैतिकता व अनाचार के प्रति विद्रोह भी। अपना सुन्ना करवाने के समय पहली बार उसने पुरज़ोर विद्रोह किया था किन्तु दूसरी बार हार जाती है। माहरा बचपन से ही सोचती है कि यह प्रथा पितृसत्ता की बर्बरतापूर्ण सोच है। इसे 'धार्मिक ग्रन्थों में लिखी गई कहकर' ये औरतों को अपने अधीन रखना चाहते हैं। माहरा का मन सोचता है कि जिसने ये इतनी बड़ी और सुन्दर दुनिया बनाई है वह औरतों के प्रति इतना निष्ठुर नहीं हो सकता? ईश्वर का नाम लेकर, औरत की देह में विष घोला जाता है उसे अपंग बनाया जाता है। माहरा ईसाई मेम से इस विषय में पूछती है कि क्या यह मज़हबी है? इस पर वे उत्तर देती हैं - "इसमें कुछ भी मज़हबी नहीं है लोग अपनी अज्ञानता में इसे एक धार्मिक रीति मान लेते हैं जबकि इसका धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है।"[6] मेम से संतोषजनक उत्तर पाकर माहरा को खुशी हुई थी कि ईश्वर में उसकी आस्था खण्ड नहीं हुई।

गरीबी व तंग आर्थिक स्थिति के कारण माहरा का विवाह 65 वर्ष के अधेड़ पुरुष ज़हीर के साथ होता है। माहरा जहीर की चौथी पत्नी थी। शादी के बाद माहरा की नारकीय स्थिति पाठक को झकझोर कर रख देती है। सुन्नत के दुष्परिणामस्वरूप माहरा का पहला बच्चा मरा हुआ पैदा होता है। इसी बीच मासा (माहरा की बहन) भी अपनी जीवन लीला समाप्त कर देती है। मासा की मौत का माहरा के मन पर गहरा आघात पहुँचता है। इसी बीच वह एक बेटी को जन्म देती है और मन ही मन प्रण लेती है कि इसे सुन्नत की बलि नहीं चढ़ने दूँगी।

इस उपन्यास में ईसाई दम्पति (हेरी और मेम) की अहम भूमिका रही है। उपन्यास में ये दम्पति 'डेजर्ट ड्रीम' नामक संस्था के माध्यम से एफजीएम (FGM) को जड़ से खत्म कर देने के प्रयास में संलग्न हैं। इसी प्रक्रिया में हेरी की जान चली जाती है परन्तु मेम अपने कदम पीछे नहीं हटाती। माहरा और मासा बचपन में इनके सम्पर्क में आती हैं। माहरा इनसे बहुत कुछ जानना चाहती है विशेष रूप से एफजीएम के विषय में क्योंकि जबसे माहरा सोचने समझने की हुई थी उसने यही सुना था कि औरत है तो दर्द तो सहना ही पड़ेगा। इसके प्रति उत्तर में मेम के शब्द हैं, "जरूरी नहीं कि औरत है तो दर्द सहना ही पड़ेगा। बहुत से दर्द कुदरत ने नहीं। इनसान ने औरत के लिए पैदा किये हैं।"[7]

मेम से ही ज्ञात होता है कि यह प्रथा अलग-अलग जगहों में अलग-अलग नामों से प्रचलित है - ईजिप्ट में ताहारा, सुदान में ताहुर, माली में बोलोकोली, काकिआ में बुनडु। कई जगहों में इसका विरोध भी हो रहा है। मेम की बातें सुनकर माहरा को खुशी होती है कि कहीं न कहीं तो कोशिश हो रही है इस कुप्रथा को रोकने के लिए, क्योंकि यह किसी एक औरत विशेष की पीड़ा नहीं है यह प्रत्येक औरत की पीड़ा है मानसिक और शारीरिक।

माहरा की बेटी मासा (गुलबानो) माहरा का भीतरी प्रारूप है। मासा विद्रोही प्रवृत्ति की है। विद्रोह माहरा के भीतर भी है, समाज की सड़ी-गली मान्यताओं के प्रति लेकिन उसे आरम्भ से सिखाया गया था कि इसके विरुद्ध बोलना 'कुफ्र' है। किन्तु इस विषय में पुख्ता जानकारी हासिल करके वह अपनी बेटी को इसका शिकार नहीं होने देती। मासा अनुचित होता देखकर चुप नहीं रहती। मासा अन्याय को चुपचाप सहन नहीं करती है।

माहरा के जीवन में मासा के आने के बाद एक ही लक्ष्य रहता है कि बेटी को पढ़ाना है सुन्नत की भेंट नहीं चढ़ाना है। शिक्षा पाकर ही उसे उचित अनुचित का ज्ञान होगा। माहरा प्रतिदिन उसके मन में यह बात डालने का प्रयास करती है कि "इल्म ताकत है, इल्म औरत को उसके पंख, उसका आकाश दे सकता है। सदियों के अँधेरे से, जहालत से, गुलामी से आज़ादी हमें हमारा इल्म ही दे सकता है।"[8] ईसाई मैम का सकारात्मक दृष्टिकोण माहरा का प्रतिक्षण मार्गदर्शन करता है।

मासा को लेकर माहरा के भीतर असुरक्षा बोध रहता है। मुख्य रूप से सुन्नत को लेकर। ज़हीर मासा का रिश्ता क"यूम की चौथी बीबी बंजारन के अधेड़ भाई से तय करता है और विवाह से पहले सुन्ना करवाने की हिदायत भी देता है। यह सुनकर माहरा के हाथ-पांव ठण्डे पड़ जाते हैं और अपनी नारकीय यंत्रणा उसके मस्तिष्क में ताज़ा जख्म की तरह जलती है। इसके बाद माहरा सतर्क हो जाती है संघर्ष के लिए। एक दिन माहरा की अनुपस्थिति में बंजारन मासा का सुन्ना करवाने के लिए उसे ज़बरदस्ती ले जाती है लेकिन महारा अपनी बच्ची पर आँच नहीं आने देती और अपनी बेटी और स्वयं सोमालिया से भाग कर मोगादेसु मेम और साहब के पास पहुँच जाती है। वहां पहुँचकर माहरा के ज्ञान में और वृद्धि होती है। एफजीएम के विरुद्ध हो रहे आन्दोलनों का पता चलता है। मेम और साहब 'डेजर्ट ड्रीम' नामक संस्था चला रहे हैं। यह संस्था अनेक शरणार्थियों, पीड़ितों, एफजीएम का शिकार औरतों को शरण दे रही है। ईसाई दम्पति अथक प्रयास कर रहे हैं। माहरा द्वारा आराम करने के लिए कहने पर मेम कहती है - "अभी बहुत काम है माहरा! अभी आराम करने से कैसे चलेगा! हमारी मासा की तरह कितनी मासायें हैं जिन्हें एफजीएम के अभिशाप से मुक्त करना है ..."[9] माहरा को हैरानी होती है कि जिनके साथ खून का सम्बन्ध था वे देह में विष घोलकर पल-पल मारना चाहते थे, पराये हमें हमारे अनंत दुख पीड़ाओं से मुक्ति दिलाने के लिए प्रयासरत हैं। इन संस्थाओं और गैर सरकारी संगठनों के परिणाम सकारात्मक और उत्साहवर्धक आ रहे हैं यह सुनकर माहरा को हैरानी के साथ-साथ खुशी भी होती है। उपन्यास में

लेखिका ने कुछ संस्थाओं का उल्लेख किया है जो एफजीएम के विरुद्ध काम कर रही हैं फ्रू मैनी अफ्रीका, अफ्रीकन ओमेनस ऑर्गनाइजेशन (ऑस्ट्रिया), बैन एफजीएम, कैम्पेन अगैन्स्ट एफजीएम, डॉटर आफ इव यू.के. आदि आदि। इन सभी संस्थाओं का एक ही मकसद है - एफजीएम को पूरी तरह समाप्त करना। इसके लिए शिक्षा के साथ-साथ हर तरह के अन्ध-विश्वास तथा पुरातनपन्थी मानसिकता को खत्म करना भी जरूरी है।"[10]

'ड्रेजर्ट ड्रीम' संस्था में माहरा और मासा निर्भर होकर जीवनयापन करती हैं किन्तु भाग्य में आराम नहीं संघर्ष है। भोली माहरा को खाला की बिमारी के बहाने घर (सोमालिया) बुलाया जाता है। खाला के साथ भावनात्मक जुड़ाव के कारण माहरा दरिन्दों के झांसें में आ जाती है। वहां पहुँच कर माहरा को उनकी शैतानी सोच का आभास होता है। एक बार फिर मासा को सुन्नत के लिए लिया जाता है किन्तु माहरा के मातृत्व में इतनी शक्ति है कि वह अपनी जान की परवाह किये बिना मासा को बचाती है और इस अभिशप्त देश से हमेशा-हमेशा के लिए मुक्त करती है। अपनी बेटी को खुली हवा में सांस लेने के लिए भेजती हुई कहती है - "जा बेटी! इस बदनसीब, अभिशप्त धरती से जा ... उस दुनिया की ओर जहाँ जिन्दगी की धूप है, खुशियों की सूरजमुखी हैं, हवा है, आकाश है ... तू जीना, हँसना, चहचहाना, उड़ना दूर तक! मेम तुझे अपनी छाँव देगी, ज़मीन और तेरे हिस्से का आकाश देंगी ... बेफिक्र हो कर जा, अब मुड़कर मत देखना ... यहाँ मैं खड़ी हूँ तेरे और इस दुनिया के बीच अपनी आखिरी साँस तक।"[11]

यह उपन्यास स्त्री सुन्नत सम्बन्धी भावनाओं को ही नहीं दिखाता बल्कि उसका प्रतिरोध करते हुये उसे कदम-कदम पर चुनौती देता है। यह उपन्यास इस अमानवीय कुरीति के खिलाफ एक सार्थक प्रयास और विद्रोह के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाता है। 'माहरा' जैसी अनेक लड़कियों को इसके खिलाफ अपनी आवाज़ बुलंद करनी होगी। लेखिका के शब्द हैं - "'माहरा' निरन्तर लड़ रही है, मगर अभी उसका संघर्ष खत्म नहीं हुआ है। उसे-उन्हें हमारे साथ की आवश्यकता है।"[12]

उपन्यास का अंत माहरा के संघर्ष के परिणामस्वरूप मासा को नया जीवन देना, नये सिरे से सकारात्मक शुरूआत है। 14 देशों में इस रिवाज़ पर बाकायदा कानूनी तौर पर रोक लगाना यह दर्शाता है कि स्त्री सुन्नत "ऊपरवाले का फरमान' नहीं है। यह नारी को अपने अधीन रखने की पितृसत्ता की शैतानी सोच है। शिक्षा ग्रहण करके, पाक पुस्तकों का अध्ययन करके औरतें इस के प्रति जागरुक हो रही हैं और विश्व के कोने-कोने से इसे खिलाफ विद्रोह हो रहा है। इस दिशा में लेखिका का उपन्यास एक सराहनीय व सफल प्रयास है।

संदर्भ

1. रॉय जयश्री, दर्दजा, पृष्ठ 7-8
2. वही, वही, पृष्ठ 33
3. वही, वही, पृष्ठ 12
4. वही, वही, पृष्ठ 11
5. वही, वही, पृष्ठ 33
6. वही, वही, पृष्ठ 52
7. वही, वही, पृष्ठ 44
8. वही, वही, पृष्ठ 135
9. वही, वही, पृष्ठ 161
10. वही, वही, पृष्ठ 183
11. वही, वही, पृष्ठ 196
12. वही, वही, पृष्ठ 8

वैश्विक जल प्रदूषण समस्या समाधानार्थ भारतीय जल संस्कृति

राजपाल सिंह यादव

(सहायक प्रोफेसर), शिक्षा संकाय, आई.ए.एस.ई., मानित वि.वि. सरदारशहर (चुरु)

सारांश

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय प्रगति ने निश्चित रूप से पिछले दो सौ साल में इन्सान का जीवन बहुत सहज बना दिया है और साथ ही वैज्ञानिक क्रांति ने बड़े पैमाने पर रोजगार भी उत्पन्न किए हैं जिससे लाखों लोगों का जीवन खुशियों से भर गया है। साथ ही व्यापक अनुसंधान और नई दवाओं के खोज एवं निर्माण के कारण लोग अब लंबी उम्र तक जीवन जी रहे हैं और मृत्यु दर का आंकड़ा काफी नीचे चला गया है। इस प्रकार हम पाते हैं कि मशीन युग ने हमें बहुत कुछ दिया है, लेकिन अगर हम अपने आसपास के माहौल पर नजर डालें तो यह भी साफ दिखता है कि इस प्रगति ने हमारे जीवन में प्रदूषण रूपी जहर घोल दिया है। इस जहर का ही रूप जल प्रदूषण है जो आज हमारे चारों तरफ फैला हुआ है। जल प्रदूषण अब आपात स्थिति में पहुंच चुका है और इसलिए हमें तुरंत कुछ बड़े कदम उठाने होंगे। यदि हम चाहते हैं कि हमारे नागरिक सुरक्षित जल का उपयोग करें तो मीठे जल को स्रोतों को लंबी अवधि तक सुरक्षित रखने का उपाय करना होगा और इस कार्य में किसी भी प्रकार की देरी घातक सिद्ध हो सकती है।

बीज शब्द: पर्यावरण, भारतीय जीवन, रासायनिक अपशिष्ट, जल प्रदूषण एवं संरक्षण, जोहड़, कुंड-कुई, खडीन-टाँका, बावड़ी, तालाब-कुएँ।

शोध आलेख

आजकल हमें कई प्रकार के प्रदूषणों जैसे वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण आदि का सामना करना पड़ता है, लेकिन लोगों की सबसे बड़ी संख्या को प्रभावित करने वाला प्रदूषण जल प्रदूषण है। वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय प्रगति ने निश्चित रूप से पिछले दो सौ साल में इन्सान का जीवन बहुत सहज बना दिया है और साथ ही वैज्ञानिक क्रांति ने बड़े पैमाने पर रोजगार भी उत्पन्न किए हैं जिससे लाखों लोगों का जीवन खुशियों से भर गया है। साथ ही व्यापक अनुसंधान और नई दवाओं के खोज एवं निर्माण के कारण लोग अब लंबी उम्र तक जीवन जी रहे हैं और मृत्यु दर का आंकड़ा काफी नीचे चला गया है। इस प्रकार हम पाते हैं कि मशीन युग ने हमें बहुत कुछ दिया है, लेकिन अगर हम अपने आसपास के माहौल पर नजर डालें तो यह भी साफ दिखता है कि इस प्रगति ने हमारे जीवन में प्रदूषण रूपी जहर घोल दिया है। इस जहर का ही रूप जल प्रदूषण है जो आज हमारे चारों तरफ फैला हुआ है।

जल प्रदूषण से तात्पर्य है कि नदियों, झीलों, तालाबों, भूमिगत और समुद्री जलों में ऐसे पदार्थों का मिल जाना जिससे जल मनुष्यों, वनस्पतियों और जीव के उपयोग के लिए बेकार हो जाता है। प्रदूषित जल सभी के जीवन के लिए खतरनाक है। औद्योगिक संस्थानों से निकल रहा रासायनिक अपशिष्ट जल प्रदूषण का मुख्य कारण है। हमारे उद्योगों और कारखानों से रासायनिक अपशिष्ट ज्यादातर सीधे नदियों और तालाबों में बहा दिया जाता है जिससे पानी जहरीला हो जाता है। यह जहरीला पानी जलीय एवं अन्य जीव-जंतुओं के मृत्यु का कारण बनता है। इस पानी को पीने से पशु तो मरते ही हैं और साथ ही इन्सान भी बीमार हो जाते हैं। हमारे शहरों और गांवों से हजारों टन कचरा बहते हुए नदियों में मिल जाता है। रासायनिक उर्वरकों एवं अन्य कई प्रकार की दवाईयों का इस्तेमाल खेती में हो रहा है जो अंततः जल निकायों में मिलकर उन्हें प्रदूषित कर देता है।

जल प्रदूषण के दुष्प्रभाव

जल प्रदूषण सभी जीवों पर पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। प्रदूषित पानी फसलों के लिए भी हानिकारक होता है। यह भूमि की उर्वरता को खत्म कर देता है एवं प्रदूषित पानी के उपयोग द्वारा ली गई फसल भी जानलेवा साबित होता है और ऐसे क्षेत्रों में उत्पन्न हरी सब्जियां एवं अन्य खाद्य पदार्थ इन्सानों में कई बीमारियों का कारण बन जाते हैं। वास्तव में, जल प्रदूषण की वजह से लोगों के स्वास्थ्य में गिरावट दर्ज की गई है और कई खतरनाक रोगों जैसे हैजा, तपेदिक, पीलिया, उल्टी, दस्त के प्रमुख कारणों में प्रदूषित पानी का सेवन भी शामिल है।

जल प्रदूषण की समस्या का समाधान

जल को प्रदूषित होने से बचाना ही जल प्रदूषण का सबसे अच्छा समाधान है और जल प्रदूषण को रोकने के लिए मृदा संरक्षण भी जरूरी है। मिटी के कटाव की वजह से भी जल प्रदूषित होता है और अगर हम मृदा संरक्षण में कामयाब हो जाएं तो कुछ हद तक जल प्रदूषण को रोक सकेंगे। मिटी के कटाव

को रोकने के लिए अधिक से अधिक पेड़-पौधे लगाना या बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण आवश्यक है। हमें ख़ृषि के लिए ऐसे तरीकों का इस्तेमाल करना चाहिए जिससे मिट्टी विषाक्त ना हो। साथ ही हमें विषाक्त अपशिष्टों के उचित निपटान के लिये सही तरीकों को अपनाने की आवश्यकता है। सबसे पहले हमें ऐसे उत्पादों के उपयोग से बचना होगा जिनके निर्माण में हानिकारक कार्बनिक यौगिकों का इस्तेमाल किया जाता है। जहां भी पेंट, सफाई और दाग हटाने के लिए रसायनों का उपयोग किया जाता है अर्थात इन कार्यों के लिए लगाई गई फैक्ट्रियों एवं लघु उद्योगों से उत्पन्न कचरों एवं विषाक्त जल का सुरक्षित निपटान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

पानी न केवल एक बहुमूल्य प्राख़तिक संसाधन है, बल्कि यह जीवन का प्रतीक है। हम मनुष्यों, पशु-पक्षियों और पेड़-पौधों के जीवन का आधार है। धरती पर पहले जीव की उत्पत्ति करोड़ों साल पहले पानी में ही हुई थी। मानव सभ्यता और ख़ृषि का विकास नदियों और जलस्रोतों के पास ही हुआ है। सिंधु घाटी सभ्यता का विकास सिंधु नदी, मिस्र की सभ्यता नील नदी, चीन की सभ्यता येलो और यांगत्जे नदियों के पास हुआ है। सिंधु घाटी सभ्यता के नगरों के उत्खनन से उस जमाने में वाटर हार्वेस्टिंग और ड्रेनेज की उत्ख़ष्ट तकनीक मौजूद होने के प्रमाण मिलते हैं। दो जलधाराओं के मध्य स्थित ढलान पर बसे धौलावीरा की बस्ती जल अभियांत्रिकी का एक नायाब उदाहरण ही तो है। और-तो-और चाणक्य रचित अर्थशास्त्र में वाटर हार्वेस्टिंग तकनीक द्वारा सिंचाई का उल्लेख मिलता है। चोल वंश के राजा करिकला ने सिंचाई के मकसद से एक बाँध बनाकर कावेरी नदी का प्रवाह मोड़ दिया था। यह बाँध आज भी क्रियाशील है। भोपाल के राजा भोज ने देश की सबसे बड़ी कृत्रिम झील भोपाल में बनाई थी जो आज भी शहरवासियों के लिये आकर्षण का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है।

भारतीय सभ्यता और संस्कृति में जल को जीवन से जोड़कर देखा गया है। इसलिये इस प्राकृतिक संसाधन को सम्मान देने की हमारी संस्कृति रही है। रामायण, महाभारत, पुराण, वृहत संहिता जैसे प्राचीन भारतीय साहित्य में जलचक्र की प्रक्रियाओं और परम्परागत जल संचय के तरीकों के बारे में उल्लेख मिलता है। महान कवि रहीम ने 'बिन पानी सब सून' जैसी अनमोल पंक्ति रचकर पूरी दुनिया को पानी की अहमियत का सन्देश दिया है।

वैसे तो हमारी पृथ्वी पर करीब 70 प्रतिशत पानी मौजूद है मगर यह अनोखी बात है कि इतनी बड़ी जल राशि का 1 प्रतिशत से भी कम हिस्सा मानव उपयोग के लिये उपलब्ध होता है। सीधे तौर पर समुद्र के पानी का इस्तेमाल हम पीने के लिये नहीं कर सकते। दरअसल पानी का एक प्राकृतिक चक्र होता है। बारिश का पानी जलाशयों से होता हुआ भूमि के अन्दर पहुँचता है। हम अपने दैनिक जीवन में पानी से जुड़ी जरूरतों को पूरा करने के लिये भूजल पर निर्भर होते हैं।

21वीं सदी में पानी सबसे बड़ा मुद्दा बन चुका है। संयुक्त राष्ट्र संघ, विश्व बैंक और विश्व मुद्रा कोष के अध्ययन बताते हैं कि दुनिया के एक चौथाई से भी अधिक हिस्से में आज पानी नहीं है। तो वहीं दुनिया के करीब 40 देशों में घोर जल संकट है। एक अनुमान के अनुसार पानी की माँग हर 20 साल में दोगुनी हो जाती है और वहीं इसकी उपलब्धता एक चौथाई घट जाती है। पहली अहम बात तो यह है कि हमारी धरती पर पानी बहुत कम बचा है और जो बचा है उसमें गम्भीर प्रदूषण है। दूसरी चुनौती भूजल से जुड़ी हुई है। धरती के नीचे का पानी धीरे-धीरे और नीचे खिसकता जा रहा है।

भारतीय जल संस्कृति की महत्ता

अतीत की बात करें तो प्राचीन भारत में बाढ़ और सूखे की घटनाएँ अक्सर होती थीं। रेगिस्तान में पानी के संरक्षण की परम्परा रही है। चित्तौड़ और रणथम्बोर के किलों के निर्माण में इस बात का ध्यान रखा गया और ऐसी जलागम तकनीक विकसित की गई कि पहाड़ियों पर भी पानी की उपलब्धता बनी रहे।

जोहड़: राजस्थान में ही पानी सहेजने की एक और तकनीक पाई जाती थी जिसका नाम है जोहड़। ये साधारण पत्थर और मिट्टी के अवरोध होते थे। जिनका निर्माण ढलान वाली भूमि पर वर्षाजल को रोकने के उद्देश्य से किया जाता था। जोहड़ के तीन ओर पुश्ते बनाए जाते जबकि चौथा सिरा वर्षाजल के प्रवेश के लिये खुला छोड़ा जाता था। राजस्थान जल संचय की इस पम्परागत तकनीक को वर्तमान में कुछ गैर सरकारी संगठनों ने पुनर्स्थापित किया है और इसकी सहायता से आज राज्य के 700 से अधिक गाँवों की पानी की जरूरत पूरी की जा रही है।

कुंड और कुई: राजस्थान के पश्चिमी शुष्क क्षेत्र में सीमेंट या स्थानीय सामग्रियों से कुंड बनाया जाता है। इन इलाकों में अधिकतर भूजल की उपलब्धता सीमित और पानी क्षारीय होता है। कुंड तश्तरी जैसी रचना होती है जिसके केन्द्र में कुआँ होता है। बाल्टी की मदद से इसमें से पानी बाहर निकालते हैं। कुंड का व्यास और गहराई उसके उपयोग पर निर्भर करती है। ज्यादातर कुंड किसी एक परिवार द्वारा निजी उपयोग के लिये बनाया जाता है। एक अनुमान के अनुसार जिस कुंड का तटबन्ध क्षेत्रफल 100 वर्ग मीटर है और उस इलाके में यदि 100 मिलीमीटर वार्षिक वर्षा होती है तो उस कुंड में 10 हजार लीटर पानी आसानी से इकठा हो जाता है। कुंड के अलावा पश्चिमी राजस्थान में कुई नामक एक परम्परागत पानी संचायक प्रणाली है जो 10 से 12 मीटर गहरा ग्ग्ग होता है। इसका निर्माण किसी टंकी या हौज के समीप उससे रिसने वाले पानी को इकठा करने के लिये किया जाता है। यह राजस्थान की जल परम्परा है कि पानी बहुमूल्य है और इसके एक बूँद को भी बर्बाद नहीं होने देना है। बहुत कम बारिश वाले राजस्थान के क्षेत्रों में वर्षा के पानी को संचय करने के उद्देश्य से भी कुई का निर्माण किया जाता है। कुई का मुँह सामान्यत: बहुत संकरा बनाया जाता है ताकि संचित पानी का वाष्पीकरण कम हो। कुई के भीतरी हिस्से में धीरे-धीरे पानी अवशोषित होकर व्यापक क्षेत्र को नमी प्रदान करता है। कई बार गाँव के लोग कुई के मुँह को लकड़ी से ढँककर रखते हैं और पानी की कमी की दशा में इसमें संचित पानी को अन्तिम विकल्प के तौर पर इस्तेमाल करते हैं।

खडीन और टाँका: राजस्थान के जैसलमेर जिले में खडीन नामक जल संरक्षण प्रणाली को सदियों से अपनाया जा रहा है। इसका आरम्भ पन्द्रवी सदी में जैसलमेर के पालीवाल ब्राह्मण समुदाय ने किया था। स्थानीय राजा ने यहाँ की भूमि पालीवाल समुदाय को देते हुए इसमें खडीन विकसित करने को कहा था। राजस्थान के जोधपुर, बीकानेर और बाड़मेर जिलों में भी खडीन पाये जाते हैं। खडीन जल संरक्षण तकनीक में पथरीले तटबंध से वर्षाजल बहता हुआ

समीपस्थ घाटी में पहुँचता है और वहाँ की भूमि को नमी और मिट्टी को उर्वरता प्रदान करता है। खडीन तकनीक ईसा पूर्व साढ़े चार हजार साल पहले इराक में अपनाई जाने वाली सिंचाई विधि से मेल खाती है। राजस्थान के बीकानेर, पोखरण और जैसलमेर जिलों में घर और आँगन में जल संरक्षण के उद्देश्य से छोटी भूमिगत टंकियों के निर्माण की परम्परा बरसों से पाई जाती है। इस संरचना को 'टाँका' कहते हैं। ये टाँके गोलाकार और चौकोर होते हैं जिनमें वर्षाजल को एकत्र किया जाता है। इस पानी को केवल पीने के काम लाया में जाता है।

बावड़ी: बावड़ी पुराने समय में निर्मित कुएँ या तालाब हैं जिन तक पहुँचने के लिये कई मंजिल सीढ़ियाँ नीचे उतरना होता है। पानी भी इन्हीं सीढ़ियों से होते हुए नीचे स्थित कुएँ या तालाब में इकठा होता है। ये बावड़ी ऊपर से ढँके हुए होते हैं और इन्हें वास्तुकला की ख़ष्टि से बहुत आकर्षक बनाया गया था। पश्चिमी भारत में अधिकतर गुजरात और राजस्थान में इनका निर्माण सूखे के दौरान पानी की आपूर्ति के उद्देश्य से किया गया था। शीतलता के प्रतीक ये बावड़ी प्राचीन काल में सामाजिक और धार्मिक समारोह स्थल भी हुआ करते थे। बावड़ी का एक स्थानीय नाम 'झालरा' भी है। जोधपुर में आठ झालरा हैं जिनमें से सबसे पुराना महामन्दिर झालरा है जिसका निर्माण 1660 में किया गया था।

तालाब और कुएँ: तालाब की एक अहम विशेषता है कि इसका पूरा या कुछ हिस्सा पूरे साल पानी से भरा रहता है। ये बारिश के पानी को सोखने का काम करते हैं और आस-पास की भूमि में पानी की कमी नहीं होने देते। इसकी वजह से उन इलाकों का भूजल स्तर स्थिर बना रहता है। तालाब की एक और विशेषता है कि वे वायुमंडल में मौजूद कार्बन डाइआक्साइड और दूसरी हानिकारक ग्रीन हाउस गैसों को सोख लेते हैं। इस तरह ये वायु प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन में कमी लाकर हमारी सहायता करते हैं। कुआँ भी भारत में जल संरक्षण का एक उत्ख्रष्ट उदाहरण है। आज से लगभग 50 साल पहले यह देश के अधिकांश गाँव में पाया जाता था। आज भी गाहे बगाहे किसी गाँव से गुजरते हुए इन्हें देखा जा सकता है। घरवालों के द्वारा इनकी अच्छी तरह देखभाल की जाती है और इसका पानी पीने के काम में लाया जाता है। ये कुएँ भूजल स्तर को स्थिर रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मगर विगत कुछ दशकों के दौरान बोरवेल तकनीक के व्यापक प्रयोग के चलते इन कुओं का महत्त्व क्षीण हो गया है।

निष्कर्ष

भारत में जल संरक्षण और प्रबन्धन के लिये प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सदियों पुराने परम्परागत ज्ञान पर निर्भर होना पड़ता है। यह ज्ञान हमें पर्यावरण और जीवन के मूल्यों से जोड़ता है। पानी से सम्बद्ध हमारा परम्परागत ज्ञान समाज में सभी के लिये पानी की पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता को सुनिश्चित करता था। पानी के संरक्षण का यह ज्ञान प्राचीन भारतीय समाज के सभी स्तरों पर विकास और समृद्धि का आधार बना। आज पर्यावरण की सुरक्षा के लिये, हमें पानी के संरक्षण से जुड़ी प्राचीन परम्पराओं और तकनीक को आधुनिक समाज में अपनाना होगा, तब जाकर वर्तमान समय की पानी से जुड़ी समस्याओं से छुटकारा पाया जा सकता है। इसकी पहली सीढ़ी है कि हम सब मिलकर समाज सुधार के लिये पानी बचाएँ और उसका आदर करें। बच्चों में भी इस भावना का विकास करें जिससे वे पानी का महत्त्व आत्मसात कर सकें और उनके साथ भविष्य का पर्यावरण सुरक्षित रहे। जल प्रदूषण आज एक भयानक समस्या बन चुका है। नदियों और तालाबों का पानी लोगों के लिए जीवन-दाता माना जाता रहा है लेकिन आज ये उपयोग के लायक नहीं रह गए है। हमारी सरकारों को जल प्रदूषण की समस्या के त्वरित समाधान की दिशा में कदम उठाने की तत्काल आवश्यकता है। सबसे पहले हमें औद्योगिक कचरों को नदियों और तालाबों में बहाए जाने से रोकना होगा। उचित उपचार के बिना घरेलू कचरे को भी जल निकायों में नहीं मिलने देना चाहिए। ख़षि में भी रासायनिक उर्वरकों का उपयोग बंद कर देना चाहिए और जैविक खेती को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. पर्यावरण शिक्षा, डॉ. एस.के. गोयल, पृष्ठ 17, 228, 265
2. स्रोत -World Religions and Environment: Ed. O.P. Dwivedi.
3. पर्यावरण अध्ययन की रूपरेखा, मेधातिथिज जोशी, राकेश पारीक, पृष्ठ 154
4. पर्यावरण और लोकअनुभव, डॉ. हरिमोहन, पृष्ठ 13
5. पर्यावरण प्रबंधन, डॉ. मंजु सिंह, पृष्ठ 147
6. पर्यावरण, प्रदूषण एवं मानव स्वास्थ्य, डॉ. सुरेशचंद्र, पृष्ठ 39
7. https://www.hindikiduniya.com/environmental-issues/water-pollution-hindi/
8. https://hindi.indiawaterportal.org/environment-and-water-in-indian-culture
9. https://hindi.indiawaterportal.org/indian-tradition-and-water-conservation

विद्यार्थियों में पर्यावरणीय चेतना के लिए शिक्षा का महत्त्व

डॉ० गिरीश कुमार द्विवेदी

वरिष्ठ सहायक आचार्य, शिक्षाशास्त्र, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश

आधुनिक जीवन शैली, त्वरित विकास पर संकेन्द्रित हो चुकी है जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरण का विनाश विश्वव्यापी समस्या के रूप में उभर रहा है। पर्यावरण का निरन्तर बढ़ता संकट विश्व में खतरा बनता जा रहा है। अत: विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू0जी0सी0), नई दिल्ली ने स्नातक स्तर पर पर्यावरण की शिक्षा और अनिवार्य विषय के रूप में प्रस्तावित किया है। यह समग्र विकास एवं प्रगति के परिप्रेक्ष्य में एक सराहनीय कदम है। पर्यावरण शिक्षा अधिनियम व शिक्षण के लिये विभिन्न उपागमों का उपयोग कर सैद्धान्तिक व व्यावसायिक ज्ञान प्रदान करती है। पर्यावरण शिक्षा पर्यावरणीय समस्याओं के वास्तविक कारणों की पहचान करने में विद्यार्थियों को सहायता करती है। पर्यावरण शिक्षा विद्यार्थियों को सक्रिय भूमिका निभाने का अवसर प्रदान करती है। सीखने के अनुभव प्रदान कर योजना बनाने, समस्या के निवारण के लिये निर्णय लेने एवं परिणामों को स्वीकार करने के अवसर प्रदान करती है। पर्यावरण शिक्षा प्रत्येक स्तर पर पर्यावरणीय संवदेनाओं को ज्ञान, समस्या, समाधान एवं मूल्यों से जोड़ती तथा पर्यावरण अवबोध व क्रियात्मक क्षमता विकसित करने, वृद्धि को समझने व संरचनात्मक उपागमों को उपयोग में लाने हेतु सामर्थ्य प्रदान करती है।

की-वर्ड-विद्यार्थी, पर्यावरण, चेतना, शिक्षा

प्रस्तावना

वायु, जल, भूमि, वनस्पति, पेड़-पौधे, पशु, मानव सब मिलाकर पर्यावरण बनाते हैं। प्रकृति में इन सबकी कुछ इस प्रकार से व्यवस्था है कि पृथ्वी पर एक सन्तुलन जीवन चलता रहे। विगत करोड़ों वर्षों से जब से पृथ्वी पर मनुष्य, पशु-पक्षी और अबाध गति से चला आ रहा है, जिसको जितनी आवश्यकता है वह उन्हें मिलता है और प्रकृति आगे के लिए अपने में और उत्पन्न करके और संरक्षित कर लेती है। पर्यावरण क्या है ष्पृथ्वी पर की समस्त वस्तुओं को दो भागों में विभाजित किया गया है-1- जैविक और 2- अजैविक। इन सभी वस्तुओं का प्राणी मात्र पर एकजुट प्रभाव ही पर्यावरण कहलाता है। नि:सन्देह इसमें पेड़-पौधे, वनस्पति, भूमि, वायु, जल, प्रकाश, ताप आदि सभी सम्मिलित हैं।

अच्छे पर्यावरण की संकल्पना उन स्थितियों से है जिसमें प्राणधारी को समस्त मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और वह सुखमय जीवन बिता सके। वही विकृत पर्यावरण अनेक समस्याओं से ग्रसित होता है और जीवन को कष्टमय बना देता है।

डॉ० राजेश दुबे ने अपने शब्दों में पर्यावरण को परिभाषित किया है कि किसी जीव या वह सब कुछ जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उसको प्रभावित करता है, 'पर्यावरण' कहलाता है। पर्यावरण शब्द परि + आवरण से मिलकर बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ हमारे चारों ओर के आवरण से है, यानी कि हमारे चारों ओर का वातावरण, जिसमें जीव रहते हैं और यह वातावरण या पर्यावरण-स्थल मण्डल, जलमण्डल तथा वायुमण्डल से मिलकर बना है। पर्यावरण को जीव मण्डल भी कहते हैं। पर्यावरण जीवों को प्रभावित करने वाले सभी भौतिक तथा जैविक कारकों का योग होता है।

''स्वच्छ पर्यावरण पृथ्वी के समस्त जीव-जन्तुओं के जीवन का आधार है। प्राणियों के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए हमें पर्यावरण के संरक्षण का समुचित प्रयास करना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि जनमानस को पर्यावरण के महत्व के बारे में जागरूक बनाया जाये एवं उसके संरक्षण, प्रदूषण का ठोस निवारण एवं अन्य विधायी प्रावधान किये जायें।

आधुनिक जीवन शैली, त्वरित विकास पर संकेन्द्रित हो चुकी है जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरण का विनाश विश्वव्यापी समस्या के रूप में उभर रहा है। पर्यावरण का निरन्तर बढ़ता संकट विश्व में खतरा बनता जा रहा है। अत: विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू0जी0सी0), नई दिल्ली ने स्नातक स्तर पर पर्यावरण की शिक्षा और अनिवार्य विषय के रूप में प्रस्तावित किया है। यह समग्र विकास एवं प्रगति के परिप्रेक्ष्य में एक सराहनीय कदम है।''

यदि हम पर्यावरण के सन्दर्भ में विश्व पटल की पूर्व वर्षों की स्थिति का अवलोकन करें तो कुछ स्थितियाँ हमारे सामने बहुत स्पष्ट नजर आती हैं। पर्यावरण विशेषज्ञ और जनसंख्या के क्षेत्र में विशिष्ट रूप से कार्य करने वाले डेमोग्राफर्स ने लगातार बढ़ती जनसंख्या और औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप नगरीय आबादी में वृद्धि और बढ़ते प्रदूषण से बहुत पहले ही पूरे विश्व में पैदा होने वाली विविध विषमताओं से आगाह कर दिया था और यह चेतावनी भी दी थी भविष्य में प्राणीमात्र के सुखमय और निरापद जीवन के सामने कई विकराल और कठिन समस्याएँ आवश्यक रूप से आने वाली है। समय रहते यदि इन पर ध्यान नहीं दिया तो कुछ भी अनचाहा होना सम्भव है।

उल्लेखनीय है कि सन् 1650 में विश्व की कुल जनसंख्या 54 करोड़ 50 लाख थी जो अब सन् 2019 में 7.54 अरब को अर्थात् पिछले लगभग 365 वर्षों में 12 गुनी से भी अधिक हो गई है। जिन देशों ने इस चेतावनी को समझा और उसके अनुसार अपने देश में कार्य योजना बनाई वे आज भी पर्यावरण के कई संकटों से प्रभावित नहीं है। उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका, रूस, जापान, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, जर्मनी, नार्वे, स्वीडन आदि अनेक देश ऐसे देशों की गिनती में आते हैं जिन्होंने विश्व की जनसंख्या के अनुपात में अपने देश की जनसंख्या के प्रतिशत में वृद्धि नहीं होने दी है। इसके विपरीत अफ्रीका, यूरोप और एशिया के देशों में, जिसमें पाकिस्तान और भारत भी शामिल है, आबादी का प्रतिशत निरन्तर प्रतिवर्ष बढ़ा है जो पर्यावरणीय असन्तुलन और विकृति का मुख्य कारण भी है।

हमारे चारों ओर व्याप्त संसाधन ही जैविक व अजैविक रूप से पर्यावरण की रचना करते हैं। मनुष्य भी पर्यावरण संरचना के जैविक घटक का अभिन्न वह महत्वपूर्ण अंग है। मानव उद्‌भव के समय से ही पर्यावरण इसके जीवन और क्रियाकलापों को प्रभावित करता आया है। बुद्धिमान और विवेकशील प्राणी होने के नाते मनुष्य ने अपने विकास का मार्ग बनाया और इस विकास क्रम में उसने उपभोक्ता बनकर प्रकृति के संसाधनों को उपभोग की वस्तु मानकर, दोहन करना आरम्भ कर दिया। यह क्रम तभी से आरम्भ हो गया था जब से उसने खेती आरम्भ की थी। प्रकृति का अस्तित्व उसकी विविधता से सम्बन्धि त है। खेती के माध्यम से मनुष्य ने प्रकृति की विधिवता में अड़चन डालना आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे वह प्रकृति का सहायक अंग न रहकर उसका प्रतिद्वन्द्वी बन गया। औद्योगिकीकरण और विकास की होड़ से विकसित और विकासशील देशों द्वारा अनावश्यक रूप से प्रकृति का अविवेकपूर्ण दोहन किया गया जिससे पर्यावरण असन्तुलन और प्रदूषण जैसी समस्याओं का प्रादुर्भाव हुआ। बढ़ती हुई उपभोक्ता-संस्कृति और धन-लोलुपता के कारण मनुष्य ने इस पृथ्वी ग्रह को ऐसी भयावह स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया जिस पर ष्जीवन जीने योग्य भी नहीं रहा।

"पिछले कुछ दशकों में जिस तीव्रता से पर्यावरण संकट आया है यह कहना मुश्किल है कि यह मनुष्य के विकास का परिणाम है या उसके द्वारा उत्पन्न प्रदूषण के कारण। औद्योगिकीकरण से एक ओर समृद्धि हुई है तो दूसरी ओर पर्यावरण असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हुई है। वर्तमान में विकसित एवं विकासशील देश किसी न किसी रूप में पर्यावरणीय समस्याओं से जूझ रहे हैं फिर चाहे उसका कारण औद्योगिक विकास हो अशिक्षा हो, जनसंख्या वृद्धि हो अथवा अन्य कोई समस्या।

विश्व में पर्यावरण संकट से उबरने के लिये पर्यावरणीय जागरूकता की आवश्यकता को महसूस किया जा रहा है, जिससे पर्यावरण को सन्तुलित, स्वच्छ व स्वस्थ बनाया जा सके। विकास और पर्यावरण की पारम्परिक निर्भरता को तभी व्यवहार में लाना सम्भव होगा जब तीव्र विकास की आवश्यकता और पर्यावरण-संरक्षण एवं संवर्द्धन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित होगा। जनसाधारण को पर्यावरण शिक्षा के माध्यम से ही जागरूक किया जा सकता है।

पर्यावरणीय शिक्षा व्यक्ति की चेतना जाग्रत करने का सशक्त माध्यम है। मनुष्य की वाह्य परिस्थितिकी च अन्तःकरण दोनों संगठित होकर एक साथ कार्य करें तो पर्यावरण सन्तुलन व संरक्षण को एक सही दिशा मिलेगी। पर्यावरण से सीखना तथा इसके अद्‌भुत परिस्थितकी तंत्र को जानना व इससे सीखकर (पर्यावरणीय शिक्षा) के लिये ज्ञान प्राप्त करना कि कैसे पर्यावरण को सम्वर्द्धित व संरक्षित किया जा सकता है। (अनुपयोग) यही पर्यावरणीय शिक्षा है।

पर्यावरण शिक्षा का महत्व (Importance of Environmental Education)

पर्यावरण शिक्षा की उपयोगिता आज हमारे जीवन में दिनोदिन बढ़ती जा रही है। पर्यावरण शिक्षा हमकों हमारे जीवन के महत्व को निम्नलिखित बिन्दु स्पष्ट करते हैं-

1. पर्यावरण शिक्षा हमकों हमारे जीवन में वनों में महत्व को स्पष्ट करती है। वनों से होने वाले लाभों का ज्ञान व्यक्तियों को वन संरक्षण के लिये उत्प्रेरित करती है।
2. पर्यावरण शिक्षा वनों में खुलेपन में पशुचारण से होने वाली हानियों की और ग्रामीणों का ध्यान आकर्षित करके उनको गांवो में चरागाह विकसित करने की प्रेरणा देती है।
3. पर्यावरण शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों को यह अवरोध कराया जा सकता है कि पर्यावरण को सन्तुलित एवं संरक्षित रखना हमारे कितना महत्वपूर्ण है।
4. पर्यावरण शिक्षा द्वारा बढ़ती हुयी जनसंख्या से होने वाले विविध प्रकार के प्रदूषणो के बारे में ज्ञान मिलता है। जनसंख्या वृद्धि तथा शहरीकरण के कारण उत्पन्न समस्याओं का ज्ञान करवाकर विद्यार्थियों में परिवार नियोजन के प्रति अनुकूल दृष्टिकोण पैदा करने में सहायता मिलती है।
5. पर्यावरण शिक्षा में विषयों को समन्वित करके पढ़ाया जाता है। अतः विद्यार्थियों को यह ज्ञात होता है कि ज्ञान पृथक-पृथक इकाइयों में न होकर अखण्ड रूप में होता है।
6. पर्यावरण शिक्षा विद्यार्थियों के सामाजिक चरित्र के विकास में सहयोग प्रदान करती है। इसके द्वारा पर्यावरण समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करते हैं।
7. पर्यावरण शिक्षा विद्यार्थियों को जनतांत्रिक नागरिक बनाने में सहायता करती है। उसको अपने अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का बोध होता है।
8. आधुनिक उद्योगों से कितनी घातक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, इसका ज्ञान विद्यार्थियों को पर्यावरणीय शिक्षा होता है।
9. पर्यावरण शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों में राष्ट्र प्रेम और अन्तर्राष्ट्रीय भाव पैदा किया जा सकता है।
10. पर्यावरण शिक्षा विद्यार्थियों में प्रदूषण रोकने की चेतना पैदा करती है।

पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकत्ता एवं महत्व पर ध्यान देने का कार्य ज्यादा पुराना नहीं सिर्फ साढ़े तीन दशक (35 वर्ष) की अवधि की कार्य योजना और क्रियान्विति यात्रा है जिस पर पूरा विश्व अवलम्बित है, भविष्य के प्रति आश्वस्त है।

''स्टाकहोम (5 जून से 16 जून, 1972 के मानव पर्यावरण, अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के आधार पर यूनेस्को (UNESCO) ने यूएनईपी (UNEP) के सहयोग से सन् 1975 से एक अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण शिखा कार्यक्रम (International Environment Education Programme % IEEP) प्रारम्भ किया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 13 से 22 अक्टूबर, 1975 में बेलग्रेड (यूगोस्लोविया) में अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय शिक्षा कार्यगोष्ठी (International Workshop Environmental Education) का आयोजन हुआ। इस कार्यगोष्ठी की मुख्य उपलब्धि 'बेलग्रेड घोषणा-पत्र (Belgrade Charter) था जिसमें भारी बहुमत से संभागियों ने पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया और पर्यावरणीय शिक्षा के कार्यक्रम की दिशा और मार्गदर्शन बिन्दुओं को अन्तिम रूप दिया गया। पर्यावरण शिक्षा के इतिहास में यह पहली इस प्रकार की प्रारम्भिक कायगोष्ठी थी। जिसमें विश्व के 60 राष्ट्रो के 96 प्रतिनिधियों ने अपना मत प्रस्तुत किया था। इस कार्यगोष्ठी में पर्यावरण के लिये लक्ष्य (Environmental goals), पर्यावरणीय शिक्षा के लिए लक्ष्य (Environmental Education goals) तथा पर्यावरणीय शिक्षा के उद्देश्य (Environmental Education objectives) के पाँचों क्षेत्र अफ्रीका, राज्य एशिया, यूरोप तथा उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका के प्रतिनिधियों ने सभी स्तर के विद्यार्थी व युवकों के लिए पर्यावरण शिक्षा के कार्यक्रम पर विचार-विमर्श किया।''

''इस प्रकार हमारे देश भारत में विभिन्न स्तरीय कान्फ्रेन्सेज, कार्यगोष्ठियाँ जो पर्यावरण शिक्षा के क्षेत्र में IEEP के सहयोग अथवा उनके सौजन्य से आयोजित हुई जो सन् 1983 में 3 से 16 मार्च को नई दिल्ली में आयोजित की गई।'' आज इस बात की आवश्यकता है कि राज्य सरकारें अपने-अपने स्तर पर बहुत व्यापक योजना तैयार कर उसे लागू करने के लिए सक्षम और कर्तव्यनिष्ठ लोगों की सेवाओं का उपयोग करें। हर स्तर पर जिम्मेदारी निश्चित की जाय और उसका लेखा-जोखा (accountability) हो और साथ ही अपेक्षित उपलब्धि न होने पर दण्डनीय हो। किसी भी प्रकार का हो हर स्तर पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष मूल्यांकन आवश्यक हो।

शिक्षक राष्ट्रीय विकास व सामाजिक चेतना के विकास के लिये दायित्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पर्यावरण शिक्षा भी एक ऐसा क्षेत्र है जिसके लिये शिक्षक को ही पहल करने की आवश्यकता है। स्वस्थ सामाजिक व भौतिक पर्यावरण के लिये प्रत्येक बालक में अपने वातावरण के प्रति जागरूकता एवं बौध का विकास प्रभावी ढंग से एक शिक्षक ही कर सकता है। पर्यावरण शिक्षा समस्या केन्द्रित विषय है। शिक्षक के लिये शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम शिक्षण अधिगम क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण व आवश्यक कदम है। इस कार्यक्रम द्वारा शिक्षक को शिक्षण प्रदान करने के लिए प्रभावी ढंग से प्रशिक्षित किया जाता है जिससे वे शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के सफल प्रयास हेतु सक्षम हो सके।

निष्कर्ष

पर्यावरण शिक्षा अधिनियम व शिक्षण के लिये विभिन्न उपागमों का उपयोग कर सैद्धान्तिक व व्यावसायिक ज्ञान प्रदान करती है। पर्यावरण शिक्षा पर्यावरणीय समस्याओं के वास्तविक कारणों की पहचान करने में विद्यार्थियों को सहायता करती है। पर्यावरण शिक्षा विद्यार्थियों को सक्रिय भूमिका निभाने का अवसर प्रदान करती है। सीखने के अनुभव प्रदान कर योजना बनाने, समस्या के निवारण के लिये निर्णय लेने एवं परिणामों को स्वीकार करने के अवसर प्रदान करती है। पर्यावरण शिक्षा प्रत्येक स्तर पर पर्यावरणीय संवदेनाओं को ज्ञान, समस्या, समाधान एवं मूल्यों से जोड़ती तथा पर्यावरण अवबोध व क्रियात्मक क्षमता विकसित करने, वृद्धि को समझने व संरचनात्मक उपागमों को उपयोग में लाने हेतु सामर्थ्य प्रदान करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- क्लासमियर घटाला तथा फायर (1980), श्पर्यावरण शिक्षाश विश्व ज्ञानकोष, अंक पाँच, पृ0-576
- गिरदत्त अमरनाथ (1991), श्पर्यावरण की पुकारश दैनिक जागरण, साप्ताहिक परिशिष्ट, 15 दिसम्बर 1991
- रघुवंशी, अरूण (1993), श्पर्यावरण तथा प्रदूषणश मध्य प्रदेश, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, पृ0 310-3111
- सिंह, सविन्द्र (1191). मानवख्रपर्यावरण सम्बन्धश पर्यावरण भूगोल, प्रथम संस्करण, पृ0-33 341
- सिंह, सीमा (1988), श्धरती के सुरक्षा कवच पर मंडराता खतराश, क्रानिकल, अंक-8 पृ०-301
- शुक्ला, रविशंकर (2000). हम और हमारा पर्यावरण, प्रथम संस्करण, अनामिका प्रकाशन, बैरहना, इलाहाबाद।
- क्रानिकल पत्रिका (2002). सी. 6/52 एस.डी.ए. नई दिल्ली-110016, अक्टूबर, 2002

बनहरा ग्राम (बलिया जनपद) की जनसंख्या के आयु वर्ग संरचना का भौगोलिक विश्लेषण

रिम्पी राय

शोधा छात्र टी0डी0पी0जी0 कालेज, जौनपुर (उ.प्र.)

शोध सारांश

किसी भी देश या क्षेत्र की अर्थव्यवस्था एवं समाज के विकास की सही दशा व दिशा को निर्धारित करने में जनसंख्या के जैविक संगठन के अध्ययन का महत्वपूर्ण स्थान है। जैविक संगठन के अर्न्तगत जनसंख्याकेआयु संगठन काअध्ययन एक प्रमुख पहलू है। आयु संगठन के अर्न्तगत जनसंख्या का आयु लिंग पिरामिड, आयु वर्ग के अनुसार जनसंख्या वितरण तथा निर्भरतानुपात को समाहित किया जाता है। आयु संगठन द्वारा जहॉ एक ओर क्षेत्र विशेष के जननांकिय इतिहास का पता चलता है वहीं दूसरी ओर क्षेत्र विशेष में निर्भरतानुपात द्वारा क्षेत्र के विकास की दिशा व दशा का सही-सही अनुमान लगाया जा सकता है।

संकेत शब्दः संगठन, जैविक संगठन, जननांकिकी इतिहास, निर्भरतानुपात।

प्रस्तावना

मानव जनसंख्या किसी भी क्षेत्र के विकास की धुरी है। मानव जनसंख्या ही किसी क्षेत्र के संसाधन की प्रणेता, उपयोगकर्ता एवं सांस्कृतिक पर्यावरण की निर्माणकर्ता है। किसी भी क्षेत्र विशेष में पर्याप्त संसाधन उपलब्ध होने के बावजूद भी उपयुक्त/अनुकूल जनसंख्या (संसाधन के सापेक्षमें) के अभाव में क्षेत्र विशेष का संपूर्ण विकास संभव नहीं है। इस प्रकार किसी क्षेत्र के सतत विकास का सही सही अनुमान वहॉ उपस्थित जनसंख्सा के विभिन्न पहलुओं के अध्ययन द्वारा ही लगा सकते हैं। इसी क्रम में जनसंख्या संरचना के विभिन्न विशेषताओं के अर्न्तगत एक महत्वपूर्ण पहलु आयु संरचना/संगठन का अध्ययन भी आता है। आयु संगठन का समान्य अर्थ किसी क्षेत्र विशेष की जनसंख्या के वितरण को आयु वर्गों के अनुसार प्रदर्शित करना। जनसंख्या संगठन के अर्न्तगत आयु वर्ग, आयु लिंग पिरामिड या संरचना एवं आयु सूचकांक आता है। आयु संगठन क्षेत्र विशेष के विकास के वर्तमान स्तर तथा भविश्य में क्षेत्र के विकास की दिशा का अनुमान लगाने में सहायक है। आयु संरचना द्वारा एक ओर क्षेत्र विशेष में उपस्थित जनसंख्या के आयु वर्ग के अनुसार अनुपात का पता चलता है अर्थात् कितने प्रतिशत जनसंख्या बाल्यावस्था (0-14) वर्ष में, कितने प्रतिशत वयस्कावस्था (15-59) वर्ष व कितने प्रतिशत वृद्धावस्था या (60 वर्ष से अधिक) की है,का पता चलता है। वहीं दूसरी ओर आर्थिक दृष्टि से क्रियाशील जनसंख्या को प्रदर्शित कर क्षेत्र विशेष की आर्थिक प्रगति का सहज अनुमान लगा सकते हैं। इतना ही नहीं आयु लिंग पिरामिड के आधार पर ही संतानोत्पादन योग्य आयु समूह की स्त्रियों का ज्ञान होता है जिसके आधार पर भावी जनसंख्या वृद्धि का सहज अनुमान लगा सकते हैं। आयु लिंग पिरामिड की आकृतियॉ बहुत ही विचित्र होती है जिससे क्षेत्र विशेष के जनसांख्यिकीय इतिहास को बहुत ही आसानी से समझा जा सकता है।

अध्ययन क्षेत्र

अध्ययन क्षेत्र बनहरा ग्राम बलिया जनपद के सिकन्दरपुर तहसील के अर्न्तगत आने वाले विकासखण्ड नवानगर का एक ग्राम है। जिसका अक्षांशीय विस्तार $26^0 2'3''$छ से $26^0 2'47''$ छ तथा देशांतरीय विस्तार $84^0 1'13''$ॅ से $84^0 2'13''$ॅ तक है। बनहरा ग्राम नवानगर विकासखण्ड के दक्षिण में स्थित है। बनहरा ग्राम के उत्तर में चॉदपुर ग्राम पूरब व पश्चिम में क्रमशः चक भड़िकरा ग्राम व भॉटी ग्राम स्थित है। इसका कुल क्षेत्रफल 98.2 हेक्टेयर है। इसकी जनसंख्या 2011 के जनगणनानुसार अनुसार 1744 है।

अध्यय केउद्देश्य

1. अध्ययन क्षेत्र की जनसंख्या के आयु पिरामिड का अध्ययन व विश्लेशण करना।
2. आयु पिरामिड के विश्लेशण द्वारा क्षेत्र विशेष की जनसांख्यिकी अवस्थाओं का विश्लेशण व संश्लेशण करना।
3. आयु वर्ग के अनुसार जनसंख्या वितरण का अध्ययन कर विश्लेशण व संश्लेशण करना।
4. निर्भरता अनुपात के अध्ययन द्वारा क्षेत्र विशेष में विकास की संभावनाओं का अनुमान लगाना।

ऑकड़ा संग्रह व अध्ययन विधि

प्रस्तुत शोध पत्र प्राथमिक आकड़े पर आधारित है। शोध पत्र पूरा करने हेतु विभिन्न शोध पत्रिकाओं एवं उल्लेखित पुस्तकों का अध्ययन किया गया है। प्राप्त ऑकड़ों का आवश्यकतानुसार वर्गीकरण, सारणियन एवं आरेखन किया गया है। जिसके लिए डपै.म्ाबमस का उपयोग किया गया है। बनहरा ग्राम के स्थिति एवं विस्तार मानचित्रण हेतु।तबळपै10ण1 साफ्टवेयर का उपयोग किया गया है। ग्राम के निर्भरतानुपात की गणना हेतु निम्न सूत्रों का प्रयोग किया गया है।

$$\text{बाल निर्भतानुपात} = \frac{\text{बाल जनसंख्या} \times 100}{\text{वयस्क जनसंख्या}}$$

$$\text{वृद्ध निर्भरतानुपात} = \frac{\text{वृद्धि जनसंख्या} \times 100}{\text{वयस्क जनसंख्या}}$$

$$\text{कुल निर्भतानुपात} = \frac{\text{बाल + वृद्धि जनसंख्या} \times 100}{\text{वयस्क जनसंख्या}}$$

परिणाम व व्याख्या

आयु लिंग पिरामिडः किसी क्षेत्र की आयु पिरामिड जनसंख्या के आयु वर्ग तथा लिंग के आधार पर बनाया गया आरेख है। आयु पिरामिड की आकृति क्षेत्र विशेष के जननांकिकी अवस्था को प्रदर्शित करता है।

सामान्य अवस्था में आयु पिरामिड का आधार स्तम्भ चौड़ा तथा ऊपर का स्तम्भ क्रमशः छोटा या पतला होता जाता है। परन्तु जन्मदर, मृत्युदर तथा प्रवास आदि कारणो से बाल जनसंख्या, युवा जनसंख्या व वृद्ध जनसंख्या में परिवर्तन के कारण पिरामिड के आकार में भी परिवर्तन आ जाता है।यदि अध्ययन क्षेत्र के आयु पिरामिड का विश्लेशण करते हैं तो तालिका 01 से स्पष्ट होता है कि पिरामिड का आधार ऊपर स्थित आयु स्तम्भ के आधार से छोटा है। यह क्रम 0-4 वर्ष के आयु स्तम्भ से लेकर क्रमशः (15-19) वर्ष आयु वर्ग के आयु स्तम्भ तक देखा जा सकता है। जिसका एक कारण क्षेत्र विशेष में निम्न जन्म दर है। सर्वाधिक विस्तृत आयु स्तम्भ (15-19) वर्ष की है। पुनः हम देखते हैं कि (15-19) वर्ष के आयु स्तम्भ के आगे के आयु स्तम्भ का आकार छोटा होता जाता है। हालाकि बीच-बीच में इस स्थिति में असंबद्धता देखा जाता है। यह असम्बद्धता (30-34) आयु वर्ग में विशेष रूप से दृष्टिगत होता है। (30-34) वर्ष के आयुस्तम्भ का आकार अपने पूर्व स्थित आयु स्तम्भ (25-29) के आयु स्तम्भ से बहुत छोटा हो जाता है। इसके अर्न्तगत (30-34) वर्ष के आयु स्तम्भ के अर्न्तगत कुल जनसंख्या का 7.3 प्रतिशत आता है जबकि इससे पूर्व (25-29) वर्ष के आयु स्तम्भ के अर्न्तगत कुल जनसंख्या का 9. 4 प्रतिशत आता है। वहीं यदि (30-40) वर्ष के आयु स्तम्भ में स्त्री व पुरूषों के आयु स्तम्भों की तुलना करें तो पाते हैं कि स्त्रियों की जनसंख्या का प्रतिशत पुरूषों के जनसंख्या की तुलना में लगभग 1.5 गुणा से भी अधिक है। इसका एक कारण इस आयु वर्ग के पुरूषों का अध्ययन क्षेत्र से रोजगार हेतु प्रवास है। पुनः यह असंबद्धता (35-39) के आयु स्तम्भ में देखा जाता है। (35-39) के आयु स्तम्भ अपने पूर्व स्थित आयु स्तम्भ विस्तृत है। (15-39) वर्ष के आयु स्तम्भ के आगे पिरामिड का स्तम्भ छोटा होता जाता है। पिरामिड में उपर्युक्त असम्बद्धता का मुख्य कारण जन्म दर, मृत्यु दर व संचरण या प्रवास प्रवृति में होने वाला परिवर्तन है। 60 से अधिक आयु वर्ग स्तम्भ में स्त्रियों का प्रतिशत पुरूषों के प्रतिशत से कम है जिससे स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र में स्त्रियों

की जीवन प्रत्याशा पुरूषों से कम है जो कि सामान्य स्थिति के विपरित है।

तालिका 01: आयु वर्ग के अनुसार जनसंख्या

Age Group	Male Population		Female Population	
	Number	Percentage	Number	Percentage
0-4	59	5.65	64	6.70
5-9	80	7.66	83	8.70
10-14	102	9.77	93	9.74
15-19	121	11.59	105	11.00
20-24	115	11.02	86	9.01
25-29	97	9.29	90	9.43
30-34	57	5.46	88	9.22
35-39	86	8.24	65	6.81
40-44	60	5.75	64	6.71
45-49	65	6.11	60	6.30
50-54	44	4.22	33	3.46
55-59	36	3.45	29	3.03
60-64	32	3.07	36	3.77
65-69	28	2.68	33	3.46
70-74	32	3.07	15	1.57
75-80	20	1.92	7	0.33
>80	10	0.96	3	0.31
Total	994		954	

स्रोतः स्वयं द्वारा संकलित

आयु लिंग पिरामिड

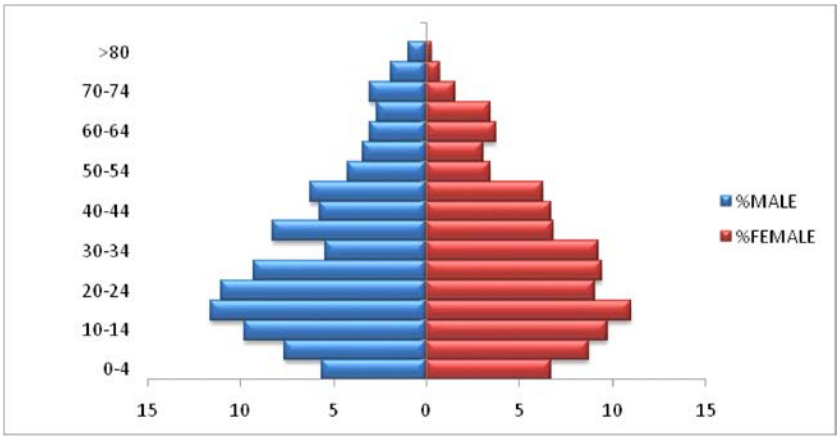

इस प्रकार आयु पिरामिड के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र के आयु पिरामिड का शीर्ष लगभग गोलाकार व आधार की चौड़ाई कम है। इस आकृति से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र में मृत्युदर में पर्याप्त कमी आ गयी है और जन्म दर में भी गिरावट की प्रवृति मौजूद है।

आयु वर्ग

आयु संगठन को स्पष्ट करने की दूसरी प्रमुख विधि आयु वर्ग है जो आयु पिरामिड की कमियों को पूरा करता है। किसी भी देश प्रदेश की आयु संरचना क्षेत्र विशेष के जननांकी की संक्रमण की अवस्थाओं को प्रदर्शित करता है। भारत में आयु वर्ग को मुख्यतः तीन आयु वर्ग (0-14) वर्ष के अर्न्तगत बाल

आयु वर्ग, (15-59) आयु वर्ग को वयस्क आयु वर्ग के अर्न्तगत तथा 60 वर्ष से अधिक आयु वर्ग की जनसंख्या को वृद्ध वर्ग के अर्न्तगत रखते है। जिसे तालिका 02 द्वारा दिखाया गया है।

तालिका 02: आयु वर्ग संरचना

Age Group	Male Population		Female Population	
	Number	Percentage	Number	Percentage
0-14	241	12.0	240	11.9
15-59	681	33.9	620	30.9
>60	122	6.1	104	5.2

स्रोत : स्वयं द्वारा संग्रहित

1. बाल आयु वर्ग: इस आयु वर्ग (0-14) वर्ष की जनसंख्य को सम्मिलित करते हैं। अध्ययन क्षेत्र में बाल आयु वर्ग की कुल जनसंख्या 481 है जो कुल जनसंख्या की 24 प्रतिशत है। इस आयु वर्ग में पुरूषों की संख्या 241 तथा स्त्रियों की संख्या 240 है। अत: पुरूष व स्त्री वर्ग की जनसंख्या अनुपात में पूर्णता संतुलन की स्थिति व्याप्त है। यह वर्ग आर्थिक रूप से अनुत्पादक एवं सर्वाधिक व्ययशाली होती है, क्योंकि इस आयु वर्ग की जनसंख्या अपने शिक्षा, स्वास्थ्य, खान-पान व अन्य आवश्यकताओं के लिए प्रौढ़ आयु वर्ग पर निर्भर रहते हैं। इस प्रकार किसी क्षेत्र विशेष के संसाधन पर जनसंख्या दाब उस देश की जनसंख्या में बाल्य आयु वर्ग के अनुपात के समानुपाती होता है। अध्ययन क्षेत्र में बाल्य आयु वर्ग का निम्न अनुपात जन्मदर पर नियंत्रण की स्थिति व संसाधन पर कम दबाव को प्रदर्शित कर रहा है।

वयस्क आयु वर्ग: ट्रिवाथी (1969) के अनुसार 'वयस्क आयु वर्ग जैविक दृष्टि से सर्वाधिक प्रजननशील, आर्थिक दृष्टि से सर्वाधिक क्रियाशील व उत्पादक तथा जनसांख्यिकी रूप से सर्वाधिक गतिशील होते हैं।' इसके अर्न्तगत 15-59 आयु वर्ग की जनसंख्या को दो आयु वर्ग क्रमश: युवा तथा प्रौढ़ की जनसंख्या के अर्न्तगत रखते हैं। इस आयु वर्ग के अर्न्तगत 1301 लोग आते हैं जो कुल जनसंख्या के 64.8 प्रतिशत है। अध्ययन की स्पष्टता हेतु इस आयु वर्ग को दो उपवर्गों में बॉटा गया है। (15-34) आयु वर्ग तथा (35-59) आयु वर्ग में बॉटा गया है। इस आयु वर्ग की जनसंख्या चूकि सर्वाधिक है। इसका तात्पर्य यह है कि पिछली पीढ़ी का जन्मदर वर्तमान जन्मदर से अधिक था। यह आयु वर्ग निर्भरतानुपात को कम करता है। अत: यह अधिक विकास को बढ़ावा देता है।

युवा आयु वर्ग: इसके अर्न्तगत (15-34) आयु वर्ग की जनसंख्या आती है। अध्ययन क्षेत्र में इस आयु वर्ग की जनसंख्या सार्वाधिक है। अध्ययन क्षेत्र के कुल वयस्क जनसंख्या 1301 में से 759 जनसंख्या युवा वर्ग का है जो कुल वयस्क जनसंख्या का 25.8 प्रतिशत तथा कुल जनसंख्या का 37.8 है। इस वर्ग के अर्न्तत आने वाली जनसंख्या सर्वाधिक क्रियाशील, सशक्त, प्रजननशील एवं उत्पादक होती है। क्षेत्र विशेष में इस वर्ग की जनसंख्या सर्वाधिक है। अत: यदि क्षेत्र की इस जनसंख्या को विकास व रोजगार का उचित अवसर मिले तो अध्ययन क्षेत्र के विकास की गति में सकारात्मक परिवर्तन लाया जा सकता है।

प्रौढ़ आयु वर्ग: इसके अर्न्तगत (15-34) आयु वर्ग की जनसंख्या आती है।इसआयु वर्ग के अर्न्तगत आने वाली जनसंख्या शारीरिक रूप से सबसे शक्तिशाली और आर्थिक रूप से सर्वाधिक योगदान करने वाली होती है। इस वर्ग के अर्न्तगत आने वाली अधिकांश जनसंख्या आर्थिक कार्यों में संलग्न होती है। बाल आयु वर्ग व वृद्ध आयु वर्ग की जनसंख्या के देखभाल करने की जिम्मेदारी लगभग इन्हीं के कन्धों पर होती है। अध्ययन क्षेत्र में इस वर्ग के अर्न्तगत 542 लोग आते हैं जो वयस्क जनसंख्या के 41.7 प्रतिशत के बराबर व कुल जनसंख्या के 27 प्रतिशत के बराबर है। इस वर्ग में पुरूषों की संख्या 291 तथा स्त्रियों की संख्या 251 है। पुरूषों की संख्या में इस कमी का प्रमुख कारण रोजगार हेतु अध्ययन क्षेत्र से प्रवास है।

वृद्ध आयु वर्ग: आयु के आधार परवर्गीकृत जनसंख्या समूहों में अंतिम वर्ग वृद्ध आयु वर्ग का आता है जिसमें 60 वर्ष से अधिक आयु की जनसंख्या सम्मिलित है। इस वर्ग की जनसंख्या सर्वाधिक अनुभाविक होती है। परन्तु अधिक उम्र के कारण शारीरिक असमर्थतता व स्वास्थ्य संबन्धित कारणों से इनकी क्रियाशीलता कम हो जाती है। अध्ययन क्षेत्र में इनकी जनसंख्या 226 है जो कुल जनसंख्या का मात्र 11.25 प्रतिशत है। जो उपर्युक्त तीनोंआयु वर्गों की जनसंख्या में सर्वाधिक कम है। अध्ययन क्षेत्र में वृद्ध आयु वर्ग की स्त्रियों की संख्या 104 व पुरूषों की संख्या 122 है। अत: यहॉ पुरूषों की संख्या महिलाओं की संख्या से अधिक है जिससे स्पष्ट है कि पुरूषों की जीवन प्रत्याशास्त्रियों से अधिक है। जो कि सामान्यत: स्थिति के विपरितहै। सेबर्ड महोदय के अनुसार जब किसी क्षेत्र में वृद्ध आयु वर्ग के अर्न्तगत 8-16 प्रतिशत के बीच जनसंख्या आती है तो वह जनसंख्या प्रगतिशील जनसंख्या कहलाती है। अत: अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या को प्रगतिशील जनसंख्या के अर्न्तगत रखा जा सकता है।

आयु सूचकांक: आयु सूचकांक का सामान्य अर्थ आयु वर्ग के अनुपात से है। इस सूचकांक के द्वारा मानवशक्ति नियोजन, जनसंख्या विश्लेषण व क्षेत्र विशेष के विकास का अनुमान लगा सकते हैं। इसके अर्न्तगत मुख्यत: बाल निर्भरता, वृद्ध निर्भरतानुपात तथा निर्भरतानुपात को सम्मिलित करते हैं।

निर्भरतानुपात: निर्भरता अनुपात का सामान्य अर्थ कार्यशील जनसंख्या पर निर्भर जनसंख्या का अनुपात है। इसे कार्यरत जनसंख्या पर भार स्वरूप आने वाली जनसंख्या की माप के रूप में भी जाना जाता है। इस अनुपात के द्वारा जनसंख्या की कुशलता का ज्ञान होता है। किसी क्षेत्र में निर्भरता अनुपात जितना अधिक होता क्रियाशील जनसंख्या का प्रतिशत उतना ही कम होता है। इस प्रकार इसके द्वारा क्षेत्र विशेष के आर्थिक विकास की गति व संभावनाओं का अनुमान लगाया जा सकता है।

अध्ययन क्षेत्र में बाल निर्भरता अनुपात 37, वृद्ध निर्भरता अनुपात 17.4 तथा कुल निर्भरता अनुपात 54 है। इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र में बाल व वृद्ध जनसंख्या की तुलना में वयस्क जनसंख्या की अधिकता के कारण निर्भरता अनुपात निम्न है। यहॉ उत्पादक जनसंख्या पर उपभोग करने वाली जनसंख्या का अनुपात बहुत कम है। अतः अध्ययन क्षेत्र में विकास की संभावनाएं उन्नत है।

निषकर्ष

किसी भी क्षेत्र की जनसंख्या के आयु संगठन पर ही क्षेत्र विशेष की विकास की दिशा व दशा निर्धारित होती है। यदि किसी क्षेत्र में प्रौढ़ जनसंख्या का अनुपात अधिक है तो इसका सामान्य अर्थ है कि उस क्षेत्र में विकास की सम्भावना अधिक है। यदि अध्ययन क्षेत्र के जनसंख्या का विश्लेषण करें तो दृष्टिगत होता है कि अध्ययन क्षेत्र में बाल जनसंख्या का अनुपात 12 प्रतिशत जबकि प्रौढ़ जनसंख्या का अनुपात 30.9 प्रतिशत है। जिसका सामान्य अर्थ है कि क्षेत्र की वर्तमान जनसंख्या वृद्धिदर में गिरावट आई है, जो एक सकारात्मक परिवर्तन है। वहीं वृद्ध जनसंख्या का अनुपात 5.2 है। अतः अध्ययन क्षेत्र के जनसंख्या को प्रगतिशील जनसंख्या के अर्न्तगत रखा जायेगा। परन्तु यदि आयु लिंग पिरामिड का विश्लेषण करें तो हम देखते हैं कि वृद्ध आयु वर्ग की जनसंख्या में स्त्रियों की संख्या पुरूषों की संख्या से कम है जिसका सामन्य अर्थ स्त्रियों की जीवन प्रत्याशा पुरूषों की जीवन प्रत्याशा से कम होना है एवं स्त्रियों के स्वास्थ्य पर समुचित ध्यान न देना है। अतः अध्ययन क्षेत्र में स्त्रियों की जीवन प्रत्याशा में सुधार हेतु उचित पोषण एवं समुचित स्वास्थ्य सुविधा हेतु जागरूकता की आवश्यकता है। पुनः वयस्क जनसंख्या हेतु क्षेत्र में ही कौशल विकास एवं रोजगार हेतु समुचित अवसर उपलब्ध कराने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ सूची

1. चान्दना, आर0सी0, 2012, जनसंख्या भूगोल, कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 297-314
2. तिवारी आर0सी0 2015, भारत का भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद पृष्ठ 529-531
3. तिवारी रामकुमार, 2017, जनसंख्या भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद पृष्ठ 189-201
4. मौर्य, एस0डी0 2013, जनसंख्या भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद पृष्ठ 195-242
5. Dhakal Basant 2014, An Analytical study onpresent status of Age-Sex structure of Nepal, Asia Pasific Journal of Education Art and science Vol1, No3, pp 20-26.
6. Mukerjee, S.B, 1976, The Age Destribution of Indian Population Territories 1881-1961, Honolulu East west population Institute.
7. Visaria, Lila and Visatia Pravin, 1986, Prepective Changes in the Age and Gender structure of Indian population and their socio-economic Imprication, Vol 35,No2, pp 95-117 sociological Bulletin.

जिद्दू कृष्णमूर्ति के दर्शन में तत्व मीमांसा

डॉ० सत्य प्रकाश तिवारी

(सहायक प्रध्यापक), आई.ए.एस.ई. मानित विश्वविद्यालय, सरदारशहर, चूरू, राजस्थान

जिद्दू कृष्णमूर्ति जी की गणना उन थोड़े से प्रज्ञावान पुरूशों में की जाती हैं, जिन्होंने जीवन को उनकी अनन्त गहराइयों तक समझने तथा लोगों को जागृत करने में अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया है। आपकी दृष्टि परम्पराओं की लीक से हटकर जीवन के वास्तविक तथ्यों को वस्तुपरक एवं प्रत्यक्ष दर्षन कराने में सहायक सिद्ध होती है। वे अपने व्याख्यानों तथा लेखों में परम्परागत रूप से प्रयुक्त होने वाली शब्दावलियों से भी अपने को बचाने का प्रयास करते हैं। यदि वे किसी परम्परागत शब्द का प्रयोग करते भी हैं तो उसे पूरी तरह स्पष्ट करने का प्रयास करते है कि इन शब्दों का किन अर्थों में प्रयोग किया गया है। जब वे ईश्वर, प्रेम, ध्यान तथा धर्म आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं तो इनके प्रयोग में बड़ी सावधानी बरतते है।

सत्य की सत्ता

सत्य का अर्थ सत्ता, अस्तित्व, ब्रह्म, परमात्मा से भी लिया जाता है इससे स्पष्ट है कि सत्य शब्द को व्यापक अर्थ में उपयोग किया जाता है जो सदा विद्यमान है, जिसकी वास्तव में सत्ता है जो अस्तित्व में है, जिसका सम्पूर्ण विस्तार है जो चर, अचर, दृश्य सबमें समान रूप में स्थित है। उनका मानना है कि सत्य तक पहुँचने के लिए न तो कोई राजमार्ग ही है न ही उस राजमार्ग की कोई परम्परा ही होती है। सत्य तो स्वयं के भीतर छिपा है जो सम्बन्धों के दर्पण द्वारा अपने को प्रकट करता है। कृष्णमूर्ति भी सत्य को परिवर्तनषील मानते हैं। इस प्रकार सत्य सदैव प्रत्यक्ष नहीं होता अप्रत्यक्ष सत्य भी होता है। कृष्णमूर्ति इस सम्बन्ध में। कहते हैं, "जिस सत्य का आप आज अनुभव करते हैं वह बुद्ध का अनुभव किया हुआ सत्य नहीं होता। सत्य कभी एक जैसा नहीं होता, उसमें निरन्तरता नहीं होती, वह हर क्षण नया होता है, उसका स्मरण नहीं किया जा सकता।"[1]

सत्य की खोज कैसे

प्रश्न यह है कि जब सत्य या अनन्त, जीवन की खोज का लक्ष्य है तो सत्य का खोजी उस शाश्वत सत्य को जिसमें सम्पूर्ण जीवन समाया हुआ है और सर्वत्र उसी की सत्ता है, उसकी खोज कैसे करें? सत्य की खोज के लिए कौन सा मार्ग अपनाया जाए? किसे अपना मार्गदर्षक बनाया जाए? इन प्रश्नों के सन्दर्भ में जिद्दू कृश्णमूर्ति का कहना है कि सत्य एक पथहीन भूमि है, इस तक पहुँचने के लिए किसी पथ, पुरोहित क्रियाकाण्ड तथा गुरू आदि का अवलम्बन नहीं लिया जा सकता, क्योंकि कोई सहारा भी सत्य की खोज में बाधक होता है। वास्तविकता यह है कि सर्वत्र सत्य की ही सत्ता है, परन्तु हमारा तन खण्डों में बँटा है, अत: हम उस अखण्ड को खण्डों में देखने के अभ्यस्त हो गये है। जिस प्रकार खण्डित दर्पण द्वारा शाश्वत एवं अखण्ड जीवन का अनुभव नहीं हो पाता। वे अपने अनुभवों को प्रकट करते हुए कहते है कि- मैं निश्चय पूर्वक कहता हूँ कि सत्य, ही शाश्वत जीवन है और यह प्रत्येक मनुष्य के भीतर छिपा पड़ा है पर यह अचेतना के द्वारा ढँका हुआ है। सम्पूर्णता में द्वैत भावना नहीं हो सकती, क्योंकि द्वैत भावना सिर्फ अचेतना में ही उत्पन्न होती है। शुद्ध कार्य का स्रोत सम्पूर्णता में रहता है, परन्तु अच्छा और बुरा, द्वैत, अचेतना के भ्रम से उत्पन्न होते है।

सत्य निरन्तर गतिशील एवं परिवर्तन शील है के सम्बन्ध में हेराक्लाइटस का 'क्षणभँगुरवाद' का सिद्धान्त तथा बौद्धों के 'क्षणिकवाद' या 'अनित्यवाद' की भाँति कृश्णमूर्ति जी भी सत्य को निरन्तर गतिशील तथा परिवर्तनशील मानते हैं। उनका कहना है कि सत्य कोई ठोस आदर्ष नहीं है, वह कभी स्थिर नहीं रहता, गतिशीलता उसका गुण है, उसमें क्षण-क्षण परिवर्तन होता रहता है। जिद्दू कृश्णमूर्ति जी पुन: लिखते है कि "जो वास्तव में है, वह निरन्तर गतिशील है, उसमें निरन्तर मौलिक परिवर्तन हो रहा है यदि मन विश्वास द्वारा संचित ज्ञान से जकड़ा रहता है तो वह जो वास्तव में है उसकी तीव्र गति का अनुशीलन करना, उसका अनुमान करना छोड़ देना है।"[2]

सत्य कोई आदर्श नहीं होता है। आदर्श अवास्तविक होता है क्योंकि वह कल्पना ग्रस्त है, लेकिन 'जो है' वह वास्तविक है। इस सम्बन्ध में जिद्दू कृष्णमूर्ति जी का विचार है कि-जैसा वास्तव में है आप वह नहीं है जैसा आप बनना चाहते हैं। वह वास्तविकता कोई आदर्श नहीं, क्योंकि आदर्श अयथार्थ होता है, वास्तविकता वास्तव में वही है जो आप प्रति क्षण कर रहे हैं, सोच रहे हैं और अनुभव कर रहे हैं।

सत्य कोई धारणा नहीं है यदि ऐसा होता तो किसी भी प्रबुद्ध पुरूश के समसामयिक सभी लोग सत्य को उपलब्ध हो गये होते। सत्य कोई विचार की वस्तु नहीं है उसे सिद्धान्तों या दार्शनिक मत-मतान्तरों के सहारे नहीं जाना जा सकता है। उसकी कोई कल्पना भी नहीं की जा सकती है। उसकी अनुभूति तो तभी होती है जबकि हम अपनी समस्त धारणाओं, पूर्वाग्रहों तथा धार्मिक क्रिया-कलापों की भागदौड़ से थककर शान्त हो जाते है। और ऐसी स्थिति में हमारा मन शून्य का चिन्तन करने लगता है अर्थात् हमारा सम्पूर्ण अहंकार विसर्जित हो जाता है। यह एक ऐसी अवस्था है जिसमें समय ठहर जाता है और वह क्षण सम्पूर्णता का क्षण होता है। ऐसे क्षण में दृष्टा एवं दृश्य विचारक एवं विचार में कोई भेद नहीं रह जाता हैं। इसी अनुभूति को सम्पूर्णता की अनुभूति कहते है। इस सम्बन्ध में जिद्दू कृष्णमूर्ति जी कहना है कि - "सम्पूर्णता का अर्थ है एक ऐसे क्षण में जीना जिसके सम्बन्ध में कभी सोचा नहीं गया है

तथा जिसका सातत्य नहीं है। इसीलिए पूर्णता का विचार नहीं किया जा सकता, और इसे स्थायी बनाने का कोई मार्ग भी नहीं है। केवल वही मन जो अत्यधिक शान्त है जो पूर्व धारणाए नहीं बना रहा है जो भाग-दौड़ नहीं कर रहा है, कल्पना नहीं कर रहा है वही पूर्णता के क्षण की अनुभूति कर सकता है ऐसा क्षण अपने आप मे पूर्ण है।"[3]

जिद्दू कृष्णमूर्ति जी मौलिक विचारक है तथापि इसके विरोध का एक उदाहरण हमें बुद्ध के उपदेशों मे मिलता है। बुद्ध ने भी कहा था कि किसी विचार को श्रद्धा के कारण ग्रहण करना उचित नहीं है। व्यक्ति स्वयं अपना प्रकाश है 'अन्तदीपा भिक्खवे विहरथ अत्तसरणाय'। इसी विचार की अभिव्यक्ति बहुत बलपूर्वक जापान के जैन सम्प्रदाय में हुई हैं। बाधा चाहे आन्तरिक हो या वाह्य भ्रम को दूर करना चाहिए। कहने का अभिप्राय यह है कि सत्य के मार्ग पर चलने वाले को किसी भी परम्परा मत सिद्धान्त को श्रद्धा के साथ नहीं स्वीकार करना चाहिए।

जिद्दू कृष्णमूर्ति जी इसी बात को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि सत्य किसी दूसरे के द्वारा तुम्हें नहीं दिया जा सकता। तुम्हे स्वयं उसे खोजना है, और खोजने के लिए मन की कल्पनाओं, धाराणाओं और अनुभवों का संग्रह करना है परन्तु मनुष्य का आन्तरिक स्वरूप क्या है? इस प्रश्न पर बहुत कम विचार किया गया है हमने यह जानने का बहुत कम विचार किया है कि मैं कौन हूँ मेरी सत्ता क्या हैं मेरे स्व का निर्माण कैसे होता है। स्व की सत्ता के सम्बन्ध में जिद्दू कृष्णमूर्ति का कहना है कि "इससे मेरा तात्पर्य एक धारणा, स्मृति, निष्कर्ष, अनुभव कुछ न होने के लिए सचेतन प्रयास, अचेतन में संग्रहीत स्मृति, प्रजाति, समूह, व्यक्ति, वंश और इन सबकी समग्रता के रूप में इस सबके लिए प्रयास ही स्व है।"[4]

अपने मन, अपने नाम, पद, कर्म के अतिरिक्त संस्कारों, विचारों, आदर्शो, परम्पराओं एवं अनुभवों के द्वारा मैं की एक प्रतिमा निर्मित करता है। यह वही प्रतिमा है जिसे हम दृष्टा कहते हैं। स्वयं के साथ-साथ यह मानव मन दूसरों के बारे में भी प्रतिमा निर्मित करता है। मै ज्ञानी हूँ, मै अहिंसक हूँ, मैं करूणावान, दयावान हूँ, मैं आदर्शवादी हूँ ये सब अपने बारे में बनाई गई प्रतिमा की विशेषताएँ है जबकि दूसरे मूढ़ अज्ञानी, निर्दयी एवं अंहकारी है ऐसा समझते है इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपने तथा दूसरों के बारे में प्रतिमाएँ निर्मित करता रहता है। अपने बारे में बनाई गई प्रतिमा का वह 'दृष्टा' है अन्य के बारे में बनाई गयी प्रतिमा का जो दृश्य है सदा मूल्यांकन करता रहता है वह दृष्टा अपने भीतर एक नहीं बल्कि अनेकों प्रतिमाओं को देखता है, जो वस्तु उसी की कृतिया है। यह दृष्टा एक स्थिर या जड़ वस्तु नहीं है बल्कि जो कुछ वह है उसमें सदा कुछ न कुछ जोड़ता और घटाता रहता है। दूसरे के बारे में बनाई गई प्रतिमा का जब दृष्टा मूल्याकंन करता है तो उस मूल्यांकन से स्वयं की प्रतिभा का निर्माण होता है, इस प्रकार दृष्टा एवं दृश्य दोनों एक ही है। जिद्दू कृष्णमूर्ति जी इसके बारे में कहते हैं कि केन्द्रीय प्रतिमा यानि वह दृष्टा ही अनुभवकर्ता, मूल्यांकनकर्ता और निर्माणक है, जो दूसरी सभी प्रतिमाओं पर विजय पाना चाहता है या उन्हें अपने अधीन करना चाहता है या फिर पूरी तरह उसे नष्ट कर देना चाहता है। लेकिन चूँकि दूसरी सभी प्रतिमाए दृष्टा के मतों एवं निर्णयों के पक्ष में है और दृष्टा स्वयं उन सभी प्रतिमाओं का रूप है- इसलिए दृष्टा ही दृश्य है। स्थिति ऐसी हो जाती है जिसमें प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो पाता। जो है उसके प्रति चेतन होने से ही समझ आती, जो है, और जो यथार्थ है, वास्तविक है उसे बिना व्याख्या किये, बिना प्रमाणित किये, ठीक-ठाक जान लेना ही ज्ञान का आरम्भ है। जब हम व्याख्या करने लगते है, अपने अनुकूलन, अपने पूर्वाग्रहों के अनुसार अनूदित करने लगते है तभी सत्य हमारी पकड़ से निकल जाता है।

सत्य के सम्बन्ध में जिद्दू कृष्णमूर्ति के विचार

शब्दकोष के अुनसार सत्य शब्द का अर्थ होता है वर्तमान, विद्यमान, वास्तविक जो वस्तुतः विद्यमान हो सत्य का अर्थ सत्ता, अस्तित्व, ब्रह्म, परमात्मा से भी लिया गया है। स्पष्ट है सत्य शब्द का प्रयोग बड़े व्यापक अर्थो में किया जाता है। जो सदा वर्तमान है, जिसकी वास्तव में सत्ता है, जो अस्तित्वगत है, जिसका यह सम्पूर्ण विस्तार है, जो चर-अचर, दृश्य-अदृश्य सब में समान रूप से व्याप्त है, जो परस्पर विरोधों में भी समाया हुआ है, वही सत्य है।

जीवन को उसकी समग्रता से जीने से ही जीवन के लक्ष्य का अनुभव होता है। जीवन को खण्डों में नहीं बाटाँ जा सकता है। यह एक अखण्ड सत्ता है। परन्तु मानवीय मन जीवन को खण्ड़ों में विभाजित करके देखने का अभ्यस्त हो गया है, जिसके कारण अखण्ड जीवन-ज्योति का हमें दर्शन नहीं हो पाता है। जीवन हमारे तुम्हारे के रूप में खण्ड़ों में विभाजित नहीं है, अपितु यह एक अनन्त प्रवाह है, यही वास्तवकिता है, यही सत्य है और इसी की सत्ता है। जिद्दू कृष्णमूर्ति जी कहते है कि "अज्ञानी वह व्यक्ति नहीं है जो पढ़ना लिखना नहीं जानता वास्तव में अज्ञानी तो वह है जो स्वयं की सत्ता से अपरिचित है, जो स्वयं की सत्ता से अनभिज्ञ है। ऐसे सत्य की खोज करना ही जीवन का लक्ष्य है।"[5]

हमारे जीवन ऊर्जा की सार्थकता इसी में है कि हम उसे अपनी अनन्त शक्ति की खोज में लगायें अन्यथा इस शक्ति द्वारा किया गया प्रत्येक कार्य विनाश एवं पीड़ा का कारण बन कर रह जायेगा।

मानव के अस्तित्व का केवल एक ही उद्देश्य है और वह है सत्य की खोज करना, परमात्मा की खोज करना। निःसन्देह मानवीय मन, जिसमें इतनी आश्चर्यजनक महान् शक्ति है यदि सत्य की, परमात्मा की खोज नहीं करता तो उसकी शक्ति द्वारा किया गया प्रत्येक कार्य विनाश एवं पीड़ा का होगाा।

ईश्वर के सम्बन्ध में जिद्दू कृष्णमूर्ति के विचार

सभी धर्मो एवं दर्शन मे किसी न किसी रूप में ईश्वर की सत्ता स्वीकार की गई है। जिन दर्शनों में ईश्वर का निषेध किया गया है उन दर्शनों में भी किसी न किसी रूप में ईश्वर की सत्ता का अस्तित्व स्वीकार किया गया है। भाग्यवादी दर्शन तो ऐसा मानते है कि ईश्वर की मर्जी के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता। वही सबके सुख-दुख का दाता है, और सबके भाग्य का फैसला वही करता है। वही सबकों उसके कर्मो के अनुसार फल देते हैं। परन्तु सृष्टिवादी दर्शन में ईश्वर को सृष्टि का कारण बताते हुए सर्वशक्तिमान सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है। कृष्णिमूर्ति जी ईश्वर का निषेध तो नहीं करते, परन्तु ऐसा मानते हैं कि उस अनुभूति को विचारों द्वारा सम्प्रेषित नहीं किया जा सकता।

कृष्णमूर्ति जी ईश्वर शब्द पर कोई बल नहीं देते उनका कहना है न तो ईश्वर शब्द ही ईश्वर है न मन्दिरों आदि में रखी ईश्वर की प्रतिमा ही ईश्वर है। हम तरह-तरह के विश्वासों, मतों से ईश्वर को जानतें रहते हैं, हमने मनुष्य को कैथेलिक, हिन्दू, मुस्लिम, पारसी, बौद्ध के रूप में बाँट दिया है, जो सब की सब मनुष्य द्वारा ही अविष्कृत संरचनाएँ है और मनुष्य इनका आविष्कार करके इन्हीं में फँस गया। कृष्णमूर्ति जी का कहना है कि "ईश्वर असीम है, कालातीत है उसे मन्दिरों में नहीं बन्द किया जा सकता है। जो ईश्वर मन्दिर में बन्द है वह तो हमारे मिथ्या विश्वास, रूढ़ियों एवं भय के कारण मन की उपज है, जिसे प्रतिमाओं के रूप में महिमा मण्डित किया जाता है वास्तविक रूप से ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है।"[6]

कृष्णमूर्ति के अनुसार- "सत्य एक पथहीन भूमि है। मनुष्य इस तक किसी संगठन, किसी पन्थ, किसी रूढ़िवादिता, पुरोहित या कर्मकाण्ड के द्वारा वहाँ तक नहीं पहुँचा जा सकता और न ही किसी दार्शनिक ज्ञान या मनोवैज्ञानिक तकनीक से ही। उसे तो सत्य को मन रूपी दर्पण के सम्बन्ध द्वारा ही अपने मानस की विषय-वस्तुओं की समझ द्वारा निरीक्षत किया जाता है।"[7]

कृष्णमूर्ति जी के दर्शन का हृदय-सूत्र यह है कि सत्य के खोजी को आप्त वचनों, गुरुओं तथा परम्परागत विधि-विधानों का परित्याग कर स्वयं ही तथ्यों का वस्तुपरक एवं प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहिए। अतः प्रत्यक्ष दर्शन के लिए मनुष्य को मन, ज्ञान एवं समस्त संस्कारों से मुक्त होना चाहिए।

कृष्णमूर्ति जी का मानना है जिज्ञासु को सदा अपनी परम्पराओं, विश्वासों एवं गुरुओं पर सन्देह करना चाहिए, सन्देह एक महाऔषधि है। सन्देह सत्य के मन्दिर तक पहुँचने के लिए एक अनिवार्य सीढ़ी है। आपका कहना है- "मेरी समझ यह है कि सत्य की खोज और समझ के लिए सन्देह अनिवार्य है। सन्देह को उसकी प्रचण्ड कठोरता और क्रूरता के साथ आने दीजिए और उसे आप स्वयं अपनी छान-बीन करने दीजिए तथा जिस ज्ञान की प्राप्ति आप मानते हैं कि आपको हुई है, उसकी भी जांच-परख कीजिए।"[8]

कृष्णमूर्ति जी का कहना है कि "सत्य की प्राप्ति का एक ही तरीका है और वह यह है कि अर्द्ध सत्य चीजों के जाल में न फँसकर शाश्वत सत्य की उपलब्धता के लिए अपने विश्वासों, हठधर्मों, मताग्रहों तथा कायरता एवं भय से उत्पन्न हुई सत्य की अपनी अधकचरी समझ को एक किनारे रख दें।"[9]

कृष्णमूर्ति जी कहते हैं कि आप देख सकते हैं कि "युगों और सदियों के दौरान किस तरह तथाकथित नियम अनुशासन ने व्यक्ति की स्वयं की पूजा की है इस प्रकार उन्होंने सत्य के साथ विश्वासघात किया है।"[10] कृष्णमूर्ति जी का मानना है कि सन्तोष एक बहुमूल्य चीज अत्यधिक मूल्य का एक रत्न है। लेकिन इससे जो भयभीत है, वह इसका अपव्यय और दुरूपयोग करता है या फलों की प्राप्ति के लिए ही वह इसका उपयोग होंने देता है। मनुष्य इससे डरता है, लेकिन यह एक अमूल्य रत्न है, बिना मूल्य का इसके साथ हस्तक्षेप न करते हुए, इसे दिन-प्रतिदिन ध्यान से देखो। यह उस लौ और लपट की तरह है जो सभी कचरे को राख कर देती है और जो चीज शेष रह जाती है, इसका कोई घर नहीं है जो असीम है और अनन्त है।

स्वयं को समस्त भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक आघात से मुक्त कर लेना कितना महत्वपूर्ण है, इसका अर्थ यह नहीं है कि जीवन के स्पन्दन के विरूद्ध कोई अपने आपको कठोर बना ले। यही वे आघात हैं, जो विभिन्न मनोवैज्ञानिक प्रतिरोधों का धीरे-धीरे निर्माण करते हैं, जो शरीर को भी प्रभावित करते हैं- जीवन वांछित और अवांछित घटनाओं की श्रृँखला है और चुनाव की यह प्रक्रिया मन और हृदय को कठोर बना देती है, यह एक घेरे के अन्दर स्वयं को बन्द कर लेने की प्रक्रिया है और इसलिए वहाँ दुःख भोग है। जीवन की गति के वांछनीय या अवांछनीय गहराई तक पहुँचने के लिए आवश्यक है अतिशय सजगता। यह हर समय सजग होने का प्रयास करने की बात नहीं है, जो कि थकाऊ है बल्कि सजगता के साथ सत्य की आवश्यकता को देखना है।

जीवन के अभिप्राय को उसके तमाम द्वन्दों एवं कष्टों को समझने के लिए हमें संगठित धर्म की सत्ता व सभी प्रकार की सत्ता से मुक्त होकर सोचना होगा। धार्मिक वृत्ति वाले व्यक्ति बच्चों पर उन विश्वासों, आशाओं और आशंकाओं को थोप देते हैं, जिन्हें उन्होंने स्वयं अपने अभिभावकों से पाया है दूसरी ओर वे व्यक्ति जो धर्म-विरोधी हैं वे भी बड़े उत्सुक रहते हैं कि बच्चे उस विशेष विचारधारा को स्वीकार करें, जिसका वे स्वयं पालन करते हैं। हम सभी चाहते हैं कि बच्चे पूजा-उपासना के उसी स्वरूप को स्वीकार करें जिसे हम मानते हैं। हमारी ही विचारधारा को हृदय से स्वीकार कर प्रतिमाओं तथा सूत्रों में कसना बड़ा आसान है, चाहे ये प्रतिमाएँ तथा सूत्र हमारी अपनी ही रचना हों या दूसरों की और इसीलिए इस बारे में सतत् जागरूकता एवं सावधानी जरूरी है।

जिसे हम धर्म कहते हैं, वह केवल संगठित विश्वास और उसकी रूढ़ियों, कर्मकाण्डों, रहस्यों एवं अन्धविश्वासों के अलावा और कुछ नहीं है, प्रत्येक धर्म की अपनी पवित्र पोथी होती है, अपना पैगम्बर होता है, अपने पुरोहित होते हैं तथा लोगों को धमकाने एवं संगठित करने के अपने तरीके होते हैं। हममें से अधिकांश को इसी प्रकार की संस्कारबद्धता, मनुष्य को मनुष्य के खिलाफ खड़ी कर देती है और सभी धर्मों का दावा है कि वे ईश्वर के उपासक हैं और उनका यह उपदेश कि हमें एक-दूसरे से प्रेम करना चाहिए, परन्तु वे अपने दण्ड तथा पुरस्कार के सिद्धान्तों से भय पैदा करते हैं तथा अपने-अपने प्रतिद्वन्द्वी सिद्धान्तों द्वारा सन्देह व द्वेष बनाए रखते हैं। धर्म-सिद्धान्त, रहस्य तथा कर्मकाण्ड, आध्यात्मिक जीवन के लिए अनुकुल नहीं हैं। धार्मिक शिक्षा का सही अर्थ यही है कि व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों, वस्तुओं तथा प्रवृत्ति के साथ अपने सम्बन्ध को समझने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। सम्बन्ध के बिना अस्तित्व नहीं है और आत्मज्ञान के बिना हमारे समस्त सम्बन्ध द्वन्द्व और दुःख की ओर जाते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि किसी व्यक्ति को यह सब पूरी तरह समझा पाना बड़ा मुश्किल है। कृष्णमूर्ति ने श्रद्धा, आस्था, विश्वास, मत, प्रतीक, ग्रन्थ, कर्मकाण्ड इत्यादि को धर्म नहीं माना है। धर्म का अर्थ कृष्णमूर्ति के शब्दों में इस प्रकार है- "धर्म है करूणा की अनुभूति, अच्छाई की अनुभूति, उस प्रेम की अनुभूति जो सरिता सदृश निरन्तर, जीवन्त और गतिमान है। वास्तविक धर्म है परमात्मा की, सत्य की खोज करना, पूर्णतया करूणा की अनुभूति होना।"[11]

धार्मिक विश्वास एवं कर्मकाण्ड के नियम, आशाएँ एवं आशंकाएँ वास्तविक धर्म नहीं होते, ये सब बाधाएँ हैं और यदि हम व्यक्ति का विकास इन बाधक प्रभावों से मुक्त होकर होंने दे, तो सम्भवत: जैसे-जैसे वह परिपक्व होगा, वह यर्थाथ एवं ईश्वर के स्वरूप का अन्वेषण करेगा।

अधिकांश व्यक्ति जो धार्मिक किस्म के हैं, जो ईश्वर व उसके अमरत्व की चर्चा करते हैं, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा अखण्डता में, उनका कोई मूलभूत विश्वास नहीं है, जबकि धर्म का अर्थ सत्य की खोज में, स्वतन्त्रता का पोषण है। स्वतन्त्रता है कि नहीं, इसके साथ ही किसी प्रकार की संस्कारबद्धता भी स्वतन्त्रता नहीं होती, चाहे वह धार्मिक हो या राजनैतिक वह कभी भी शान्ति नहीं ला सकती।

कृष्णमूर्ति जी के अनुसार "धर्म का अर्थ किसी प्रकार की संस्कारबद्धता नहीं है। धर्म परम शान्ति की एक अवस्था है, जहाँ सरलता है, सहजता, मौलिकता है जिसमें सत्यता है, वही ईश्वर है परन्तु वह सृजनशील अवस्था तभी सम्भव होती है, जब आत्मज्ञान तथा स्वतन्त्रता हो। स्वतन्त्रता सद्‌गुण लाती है, और सद्‌गुण के अभाव में परम शान्ति सम्भव नहीं है। निरछल मन संस्कारबद्ध नहीं होता यह अनुशासित भी नहीं होता अथवा प्रशिक्षित करके मन को निश्चल बनाया भी नहीं जा सकता। शान्ति तभी आती है जब मन स्वयं अपनी प्रक्रियाओं को, गहराई से समझ लेता है।"[12]

आपके अनुसार धार्मिक शिक्षा का अर्थ प्रज्ञापूर्वक जागरूक रहने में वास्तविक और क्षणिक के बीच विवेक करने में तथा जीवन के प्रति तटस्थ दृष्टि अपनाने में व्यक्ति की सहायता करना है।

श्री कृष्णमूर्ति के अनुसार "यह संसार एक अच्छी जगह है। लेकिन इससे भागने के लिए हम हर तरह के जतन करते हैं- पूजा, प्रार्थना, प्रेम और त्याग लेकिन हम अपने भीतर गहराई में कभी नहीं गये हैं और 'जो हैं उसकी खोज' कभी नहीं की है।"[13]

श्री कृष्णमूर्ति जी मुक्ति एवं आनन्द को ही जीवन का एकमात्र उद्‌दश्ेय मानते हैं, और उसे ही मानव मात्र का अन्तिम लक्ष्य भी बताते हैं। "मेरे जीवन का एकमात्र उद्‌देश्य है, लोगो की उस मुक्ति और आनन्द को प्राप्त करने में सहायता करना, जिन्हें मैं स्वयं प्राप्त कर चुका हूँ और जो सम्पूर्ण मानवता के लिए कल्याणकारी है और जो मानवता के लिए अन्तिम लक्ष्य है।"[14] अत: कृष्णमूर्ति जी ने सम्पूर्ण मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य मुक्ति और आनन्द की प्राप्ति को ही माना है।

कृष्णमूर्ति जी का कहना है कि मैं न तो किसी धार्मिक मत की शिक्षा दे रहा हूँ, और न ही किसी नये प्रामाण को आरोपित करना चाहता हूँ, मेरा तो एकमात्र उद्‌देश्य है कैसे मानव मुक्त होकर शाश्वत आनन्द में निमग्न हो जाए जिसमे न तो किसी प्रकार का दु:ख हो और न ही चिन्ता की कोई रेखा हो। मैं तो उस जगत को पहुँच चुका हूँ, जहाँ शाश्वत आनन्द है और दूसरे भी उसकी झलक पा सकें। उसी दृष्टि से मैं उनकी सहायता करूँगा।

कृष्णमूर्ति जी का दर्शन सभी प्रकार की मान्यताओं, विश्वासों और तुलनाओं से ऊपर उठकर, वस्तु के वास्तविक स्वरूप को देखने के लिए प्रेरित करता है। उनका मानना है कि मानव-मन स्वयं ही पुस्तकों की पुस्तक है, क्योंकि सभी पुस्तकों की उत्पत्ति का मूल स्रोत मानव-मन ही है। स्वयं के मन की पुस्तक का ज्ञान हो, तो ही आत्मज्ञान का आरम्भ है। आपका कहना है कि- "मैंने न तो उपनिषद पढ़े हैं न भगवद्‌गीता और न मानवशास्त्र के सम्बन्ध में ही कुछ अध्ययन किया है। जब आप आत्मज्ञान की यात्रा पर निकल पड़े है, तब पुस्तकों का महत्व ही नहीं रह जाता। यह एक अद्‌भुत प्रदेश में प्रवेश करने के समान है, जहाँ हम नई वस्तुएँ खोजना आरम्भ करते हैं और आश्चर्यजनक अनुसन्धान करते हैं।"[15]

कृष्णमूर्ति जी का दर्शन आत्मज्ञान में ही सभी समस्याओं का समाधान मानता है। वे आत्मा, परमात्मा, मोक्ष निर्माण तथा स्वर्ग एवं नर्क आदि विषयों को अपने दर्शन का मुख्य विषय न बनाकर मानव मात्र की वास्तविक समस्याओं पर सीधे विचार करने की प्रेरणा देते हैं, उनका मानना है कि आत्मा, परमात्मा तथा मोक्ष आदि सभी समस्या मानव मात्र की वास्तविक समस्या नहीं है। यही कारण है कि कृष्णमूर्ति जी इन समस्याओं को अपने दर्शन का मूल विषय नहीं बनाते। उनका कहना है कि मानवता अज्ञान भूत के कारण नाना प्रकार के दुखों को भोग रही है, अत: हमें मनुष्य की मूलभूत समस्याओं पर गहराई से विचार करना चाहिए तथा समाधान के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

हम सब का सरोकार इस बात से है कि विश्व में क्या हो रहा है तथा उसके प्रति हमारा दायित्व क्या है- सारी दु:खद घटनाएँ, परम दुर्दशा, गरीबी, बिना किसी कारण लोगों को मार डालना, अपहरण एवं हत्या की घटनाएँ- आर्थिक, धार्मिक तथा राजनीतिक विभाजन- यही सब है जो संसार में हो रहा है।

स्पष्ट है कि कृष्णमूर्ति जी का दर्शन मानवीय समस्याओं पर विचार करके उसके निराकरण को प्रस्तुत करने वाला यथार्थवादी दर्शन है, जिसमें मानवीय समस्याओं का निदान आवश्यक है।

आत्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में जिद्‌दू कृष्णमूर्ति के विचार

आत्मा के सम्बन्ध में कृष्णामूर्ति के विचार भारतीय दर्शन में आत्मा के स्वरूप से भिन्न हैं। वे कहते हैं कि सामान्यतया जिसे हम आत्मा कहते हैं वह हमारा अहंकार ही है जो दृष्टा के रूप में होता है। यह आत्मा हमारी सभ्यता, संस्कृति, अपेक्षा और आकांक्षा का ही परिणाम है। आत्मा के सम्बन्ध में हमने ऐसा विचार बना लिया है कि वह भौतिक शरीर जो मरता है, नष्ट होता है- से परे कोई अमृत तत्व है जो अधिक महान है, व्यापक है, अक्षप है, अमर है। कृष्णामूर्ति की दृष्टि में आत्मा शब्द एक प्रकार का विचार है। आत्मा चैतन्य की एक ऐसी अवस्था है जहाँ की दृष्टि में आत्मा शब्द एक प्रकार का विचार है। आत्मा चैतन्य की एक ऐसी अवस्था है जहाँ मृत्यु की कोई झलक नहीं होती और इस अवस्था की खोज कोई विरला ही अपने स्वयं के लिए करता है।

भय के सम्बन्ध में जिद्‌दू कृष्णमूर्ति के विचार

कृष्णामूर्ति भय को मानव मन की एक गम्भीर बीमारी मानते हैं जो मानव जीवन को बड़ी गहराई तक प्रभावित करती है। भय का करण जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली प्रतियोगिताएँ और जीवन में आने वाली अनिश्चितताएँ होती हैं। हमारा जीवन एक बँधी हुई लकीर पर चलता है। जब इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन होता है या परिवर्तन की सम्भावना होती है तो अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और हम भयभीत हो जाते हैं। कृष्णामूर्ति कहते हैं कि आत्म ज्ञान होंने पर ही भय से मुक्ति सम्भव है। आत्मज्ञान प्रज्ञा का आरम्भ है और प्रज्ञा भय का अन्त है।

मृत्यु के सम्बन्ध में जिद्दू कृष्णमूर्ति के विचार

कृष्णामूर्ति कहते है कि हम मृत्यु से इसलिए भयभीत हैं कि हमें यह पता ही नहीं है कि जीने का क्या अर्थ है। चूँकी हम ठीक से जीना नहीं जानते, अतः हम मरना भी नहीं जानते। जब तक हम जीवन से भयभीत रहेंगे। तब तक मृत्यु से भी भयभीत रहेंगे। मृत्यु दो प्रकार की होती, शरीर की मृत्यु और मन की मृत्यु। शारीरिक मृत्यु तो एक अनिवार्य घटना है क्योंकि जीवन की ऊर्जा शरीर में सीमित होती है, किन्हीं कारणों से जब यह ऊर्जा समाप्त हो जाती है तो शरीर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। मन की मृत्यु ही वास्तविक मृत्यु है। जब हम अपने विचारों, अनुभवों, वासनाओं आदि से सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं अर्थात् अपने अहंकारों के प्रति जीते जी मर जाते है तो इस मरण में ही वास्तविक जीवन का आरम्भ होता है।

सन्दर्भ

1. जे.कृष्णमूर्ति, परिसंवाद, जून 2006, वाराणसीः कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इडिया, पृष्ठ संख्या 16।
2. कृष्णमूर्ति, जे. (1954)."प्रथम और अन्तिम मुक्ति", दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, पृष्ठ संख्या 246।
3. कृष्णमूर्ति, जे. (1954). "प्रथम और अन्तिम मुक्ति", दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, पृष्ठ संख्या 202।
4. कृष्णमूर्ति, जे. (2005). "शिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य", राजघाट फॉर्ट वाराणासीः कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इंडिया, पृष्ठ संख्या 246।
5. कृष्णमूर्ति, जे. (2005). "शिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य", राजघाट फॉर्ट वाराणासीः कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इंडिया, पृष्ठ संख्या 24।
6. कृष्णमूर्ति, जे. (2006). "ईश्वर क्या है?", दिल्लीः मोतीलाल बनारसी दास, पृष्ठ संख्या 190।
7. कृष्णमूर्ति, जे. (2005). "शिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य", राजघाट फॉर्ट वाराणासीः कृष्णमूर्ति फाउण्डेषन इंडिया, पृष्ठ संख्या 24।
8. व 9 कृष्णमूर्ति, जे. (1954). "प्रथम और अन्तिम मुक्ति", दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, पृष्ठ संख्या 66, 71।
10. जे. कृष्णमूर्ति, परिसंवाद, जून 2006, वाराणसीः कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इडिया, पृष्ठ संख्या 6।
11. कृष्णमूर्ति, जे. (2001). "संस्कृति का प्रश्न", वाराणसीः कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया, पृष्ठ संख्या 137।
12. कृष्णमूर्ति, जे. (2001). "संस्कृति के प्रश्न", वाराणसीः कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया, पृष्ठ संख्या 113।
13. कृष्णमूर्ति, जे. (2000). "आपको अपने जीवन में करना क्या है?", वाराणसीः कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया, पृष्ठ संख्या 37।
14. व 15 कृष्णमूर्ति, जे. (2000). "आपको अपने जीवन में करना क्या है?", वाराणसीः कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया, पृष्ठ संख्या 45, 37।

महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका

सुनिता सारस्वत

सहायक प्रोफेसर (शिक्षा संकाय), आई. ए. एस. ई मानित विश्वविद्यालय, गाँधी विद्या मन्दिर सरदारशहर (चुरु) राजस्थान।

शोध सारांश

देश की प्रगति में पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं की भागीदारी अत्यावश्यक है। संसार के सृजन एवं संचालन में नारी का स्थान पुरुष से बढ़कर है। पुरुष ने तो मात्रा बीज को संजोकर शिशु को जन्म दिया। उसे पाल-पोस कर समाज की भावी सदस्य बनाया नारी ने। इस सृजन और पालन की प्रक्रिया में नर से नारी का अंशदान कहीं श्रेष्ठ है। समाज में सभी क्षेत्रों में पुरुष और महिला दोनों को लिए बराबरी में लाना होगा। देश, समाज और परिवार के उज्जवल भविष्य के लिए महिला सशक्तिकरण बेहद जरूरी है। महिलाओं को स्वच्छ और उपयुक्त पर्यावरण की जरूरत है जिससे कि वह हर क्षेत्र में अपना खुद का फैसला ले सकें चाहे वो स्वयं, देश, परिवार या समाज किसी के लिए भी हो। देश को पूरी तरह से विकसित बनाने तथा विकास के लक्ष्य को पाने के लिए एक जरूरी हथियार के रूप में है महिला सशक्तिकरण। शिक्षा किसी भी राष्ट्र को उन्नति के पथ पर लाने के साथ मनुष्य जीवन के महत्त्वपूर्ण लक्ष्य को प्राप्त करने में उपयोगी साधन है, जिसकें माध्यम से व्यक्ति की बुद्धि व व्यक्तित्व में निखार आता है। वह अपने व्यक्तित्व में समाहित गुणों के माध्यम से व्यक्ति समाज एवं राष्ट्र को उन्नतिशील बनाता है। साथ ही शिक्षा व्यक्ति का आर्थिक, राजनीतिक व सांस्त्रतिक कार्यों को सम्पन्न करने के योग्य बनाती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जिस शिक्षा को ग्रहण कर मनुष्य राष्ट्र और समाज का उत्थान करे तथा इसके माध्यम से जीविकोपार्जन करे, इसी में शिक्षा की सार्थकता है। महिला सशक्तिकरण के अन्तर्गत महिलाओं से जुड़े सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और कानूनी मुद्दों पर संवेदनशीलता और सरोकार व्यक्त किया जाता है। सशक्तिकरण की प्रक्रिया में समाज को पारम्परिक पितृसत्तात्मक ख्रष्टिकोण के प्रति जागरुक किया जाता है, जिसने महिलाओं की स्थिति को सदैव कमतर माना है महिला सशक्तिकरण, भौतिक या आध्यात्मिक, शारीरिक या मानसिक, सभी स्तर पर महिलाओं में आत्म-विश्वास पैदा कर उन्हें सशक्त बनाने की प्रक्रिया है। अपनी निजी स्वतंत्रता और स्वयं के फैसले लेने के लिए महिलाओं को अधिकार देना ही महिला सशक्तिकरण है। देश, समाज और परिवार के उज्जवल भविष्य के लिए महिला सशक्तिकरण बेहद जरूरी है। महिलाओं को स्वच्छ और उपयुक्त पर्यावरण की जरुरत है जिससे कि वो हर क्षेत्र में अपना खुद का फैसला ले सकें चाहे वो स्वयं, देश, परिवार या समाज किसी के लिए भी हो। देश को पूरी तरह से विकसित बनाने तथा विकास के लक्ष्य को पाने के लिए एक जरुरी हथियार के रूप में है महिला सशक्तिकरण। महिला सशक्तिकरण को बेहद आसान शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है कि महिला सशक्तिकरण वह है जिसमें महिला समाज में उनके वास्तविक अधिकार को प्राप्त करने के लिए सक्षम बनती है। सशक्तिकरण केवल शक्ति का अधिग्रहण नहीं है बल्कि शक्ति का उपयोग करना है। महिलाओं को हाशिये से हटाकर समाज की मुख्य धारा में लाना और निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना ही सशक्तिकरण है।

बीज शब्द- शिक्षा, सशक्तिकरण, निर्णय क्षमता, मातृ भाषा, महिला शिक्षा, बुनियादी शिक्षा, आत्मनिर्भर।

शोध आलेख

देश की प्रगति में पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं की भागीदारी अत्यावश्यक है। संसार के सृजन एवं संचालन में नारी का स्थान पुरुष से बढ़कर है। पुरुष ने तो मात्र बीज को संजोकर शिशु को जन्म दिया। उसे पाल-पोस कर समाज का भावी सदस्य बनाया नारी ने। इस सृजन और पालन की प्रक्रिया में नर से नारी का अंशदान कहीं श्रेष्ठ है। देश, समाज और परिवार के उज्जवल भविष्य के लिए महिला सशक्तिकरण बेहद जरूरी है। महिलाओं को स्वच्छ और उपयुक्त पर्यावरण की जरूरत है जिससे कि वह हर क्षेत्र में अपना खुद का फैसला ले सकें चाहे वो स्वयं, देश, परिवार या समाज किसी के लिए भी हो। देश को पूरी तरह से विकसित बनाने तथा विकास के लक्ष्य को पाने के लिए एक जरूरी हथियार के रूप में है महिला सशक्तिकरण। शिक्षा किसी भी राष्ट्र को उन्नति के पथ पर लाने के साथ मनुष्य जीवन के महत्त्वपूर्ण लक्ष्य को प्राप्त करने में उपयोगी साधन है, जिसकें माध्यम से व्यक्ति की बुद्धि व व्यक्तित्व में निखार आता है। वह अपने व्यक्तित्व में समाहित गुणों के माध्यम से व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र को उन्नतिशील बनाता है। साथ ही शिक्षा व्यक्ति का आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक कार्यों को सम्पन्न करने के योग्य बनाती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जिस शिक्षा को ग्रहण कर मनुष्य राष्ट्र और समाज का उत्थान करे तथा इसके माध्यम से जीविकोपार्जन करे, इसी में शिक्षा की सार्थकता है।

शिक्षा के महत्व को स्वीकारते हुए कहा जाता है कि यदि एक पुरुष को शिक्षित किया जाये तो एक व्यक्ति शिक्षित होता है, लेकिन अगर एक महिला को शिक्षित कर दिया जाये तो पूरा परिवार शिक्षित हो जाता है अर्थात् एक महिला का शिक्षित होना उसके पूरे परिवार की शिक्षा और कल्याण से जुड़ा है। परिवार में महिला शिक्षा से बच्चे विशेष रूप से प्रभावित होते हैं, क्योंकि बच्चे राष्ट्र का भविष्य होते हैं। इसीलिए भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ महिलाओं में व्याप्त अशिक्षा, अधिकारों के प्रति उदासीनता, आर्थिक निर्भरता, पुरुषों का महिलाओं पर प्रभुत्व आदि समस्याओं को दूर करने के लिए शिक्षा का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है।

महिला सशक्तिकरण का अर्थ

महिला सशक्तिकरण के बारे में जानने से पहले हमें ये समझ लेना चाहिए कि हम 'सशक्तिकरण' से क्या समझते है। 'सशक्तिकरण' से तात्पर्य किसी व्यक्ति की उस क्षमता से है जिससे उसमें ये योग्यता आ जाती है जिसमें वो अपने जीवन से जुड़े सभी निर्णय स्वयं ले सके। महिला सशक्तिकरण में भी हम उसी क्षमता की बात कर रहे है जहाँ महिलाएँ परिवार और समाज के सभी बंधनों से मुक्त होकर अपने निर्णयों की निर्माता खुद हो।

महिला सशक्तिकरण के अन्तर्गत महिलाओं से जुड़े सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और कानूनी मुद्दों पर संवेदनशीलता और सरोकार व्यक्त किया जाता है। सशक्तिकरण की प्रक्रिया में समाज को पारम्परिक पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण के प्रति जागरुक किया जाता है, जिसने महिलाओं की स्थिति को सदैव कमतर माना है। महिला सशक्तिकरण, भौतिक या आध्यात्मिक, शारीरिक या मानसिक, सभी स्तर पर महिलाओं में आत्म-विश्वास पैदा कर उन्हें सशक्त बनाने की प्रक्रिया है। अपनी निजी स्वतंत्रता और स्वयं के फैसले लेने के लिए महिलाओं को अधिकार देना ही महिला सशक्तिकरण है। देश, समाज और परिवार के उज्जवल भविष्य के लिए महिला सशक्तिकरण बेहद जरूरी है। महिलाओं को स्वच्छ और उपयुक्त पर्यावरण की जरुरत है जिससे कि वो हर क्षेत्र में अपना खुद का फैसला ले सकें, चाहे वो स्वयं, देश, परिवार या समाज किसी के लिए भी हो। देश को पूरी तरह से विकसित बनाने तथा विकास के लक्ष्य को पाने के लिए एक जरुरी हथियार के रूप में है महिला सशक्तिकरण। महिला सशक्तिकरण को बेहद आसान शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है कि महिला सशक्तिकरण वह है जिसमें महिला समाज में उनके वास्तविक अधिकार को प्राप्त करने के लिए सक्षम बनती है।

महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका

महिला सशक्तिकरण की जब भी बात की जाती है, तब सिर्फ राजनीतिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण पर चर्चा होती है पर सामाजिक सशक्तिकरण की चर्चा नहीं होती। ऐतिहासिक रूप से महिलाओं को दूसरे दर्जे का नागरिक माना जाता रहा है। उन्हें सिर्फ पुरुषों से ही नहीं बल्कि जातीय संरचना में भी सबसे पीछे रखा गया है। इन परिस्थितियों में उन्हें राजनीतिक एवं आर्थिक रूप से सशक्त करने की बात बेमानी लगती है, भले ही उन्हें कई कानूनी अधिकार मिल चुके हैं। महिलाओं का जब तक सामाजिक सशक्तिकरण नहीं होगा, तब तक वह अपने कानूनी अधिकारों का समुचित उपयोग नहीं कर सकेंगी। सामाजिक अधिकार या समानता एक जटिल प्रक्रिया है। कई प्रतिगामी ताकतें सामाजिक यथास्थितिवाद को बढ़ावा देती हैं और कभी-कभी तो वह सामाजिक विकास को पीछे ढकेलती हैं। प्रश्न यह है कि सामाजिक सशक्तिकरण का जरिया क्या हो सकता है? इसका जवाब बहुत ही सरल, पर लक्ष्य कठिन है। शिक्षा एक ऐसा कारगर हथियार है जो सामाजिक विकास की गति को तेज करता है। समानता, स्वतंत्रता के साथ-साथ शिक्षित व्यक्ति अपने कानूनी अधिकारों का बेहतर उपयोग भी करता है और राजनीतिक एवं आर्थिक रूप से सशक्त भी होता है।

शिक्षा सामाजिक सशक्तिकरण का प्रभावशाली माध्यम है। इसलिए माना जाता है कि शिक्षा के द्वारा व्यक्ति में ज्ञान, कौशल, दक्षता एवं क्षमताओं का विकास होता है, जो महिला सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है। इससे महिलाओं के शोषण को रोकने में मदद मिलेगी। स्वनिर्णय लेने की क्षमता, सशक्तिकरण का एक बड़ा मानक है। शिक्षा का निर्णय लेने की क्षमता से धनात्मक एवं सार्थक सम्बन्ध है, क्योंकि शिक्षा के द्वारा अन्य पक्षों जैसे समाज, धर्म, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व स्वास्थ्य के बारे में जानकारियाँ रखना आवश्यक है। इसलिए भारत में महिला शिक्षा एवं सशक्तिकरण की जागरुकता एवं विकास के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। ताकि हमारा आने वाला समय तभी सुहावना होगा, जब महिलाओं को शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य जागरुकता की ख्रष्टि से सशक्त करने की सार्थक पहल होगी और उनको पुरुषों के समान सम्मान प्राप्त होगा तथा वे अपनी शक्तियों का सदुपयोग कर राष्ट्र के विकास में भागीदार बन सकेंगी।

नोबल पुरस्कार प्राप्त प्रो0 अमर्त्य् सेन का कथन है कि यदि सबके लिए बुनियादी शिक्षा अनिवार्य रूप से उपलब्ध हो जाये तो विश्व में निश्चित ही बदलाव लाया जा सकता है। भारत की पूर्व राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवी सिंह पाटील ने कहा "मैं शिक्षा के प्रति पूरी तरह से प्रतिबद्ध हूँ और प्रत्येक शख्स स्त्री-पुरुष, लड़का-लड़की को आधुनिक शिक्षा से लाभान्वित होते देखना चाहती हूँ।"

हमारे संविधान के अनुच्छेद 15 (1), 16 (1) एवं 16 (2) में उल्लेख है कि किसी भी नागरिक से लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जायेगा। संविधान की धारा 15 के अनुसार राज्य किसी नागरिक के प्रति केवल जाति, धर्म, लिंग, जन्म स्थान आदि के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा। दसवीं योजना में लैंगिक भेदभाव को दूर करने की प्रतिबद्धता स्पष्ट रूप से उजागर होती है। योजना के दस्तावेज में उल्लिखित है, "दसवीं योजना के अन्तर्गत महिला घटक योजना एवं जेण्डर बजटिंग की इन प्रभावी संकल्पनाओं को एक साथ जोड़ने के लिए तत्काल कार्यवाही प्रारम्भ की जायेगी, ताकि वे एक-दूसरे के प्रति पूरक भूमिका अदा कर सकें तथा इस प्रकार निवारण एवं कार्योत्तर कार्यवाही को सुनिश्चित किया जा सके और इसके फलस्वरूप महिलाओं को महिला सम्बन्धी सभी सामान्य विकासात्मक क्षेत्रों में अपना उचित हिस्सा प्राप्त हो सके।"

महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य सामाजिक सुविधाओं की उपलब्धता, राजनैतिक और आर्थिक नीति निर्धारण में भगीदारी, समान कार्य के लिए समान वेतन, कानून के तरह सुरक्षा व प्रजनन अधिकारों आदि को सम्मिलित किया जाना है। महिला सशक्तिकरण का अर्थ किसी कार्य को करने या रोकने की क्षमता से है, जिसमें महिलाओं को जागरुक करके उन्हें आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी साधनों को उपलब्ध कराया जाये, ताकि उनके लिए सामाजिक न्याय और महिला-पुरुष समानता का लक्ष्य हासिल हो सके।

महिला सशक्तिकरण का आशय महिला को अपने सम्मान, स्व-अधिकारों एवं योग्यता में संवर्धन की ओर अग्रसर करना है जिससे महिलाओं को घर एवं बाहर दोनों में सुरक्षित करना है। सशक्तिकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है। इसका उद्देश्य है महिलाओं में जागरुकता लाना एवं निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना ताकि वे स्वयं को आत्मनिर्भर समझ सकें। सामाजिक, आर्थिक संसाधनों पर पूरा नियन्त्रण प्राप्त करने की क्षमता को विकसित करना। सशक्तिकरण केवल शक्ति का अधिग्रहण नहीं है बल्कि शक्ति का उपयोग करना है। महिलाओं को हाशिये से हटाकर समाज की मुख्य धारा में लाना और

निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना ही सशक्तिकरण है। समाज में महिला भयमुक्त होकर कहीं भी आ-जा सके, बिना सम्मान खोये अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सके एवं उनकी इच्छा-अनिच्छा की समाज में कदर की जाये, उसे अपना वाजिब हक मिले, देश की प्रगति में इसका पर्याप्त योगदान हो तो हम कह सकते है कि महिला सशक्त हो गयी। जिस समाज व राष्ट्र की महिलाएँ सशक्त हैं, आत्मनिर्भर हैं, वह राष्ट्र अवश्य ही विकास के पथ पर अग्रसर है। महिला सशक्तिकरण की राष्ट्रीय नीति का उद्देश्य महिलाओं की प्रगति, विकास एवं आत्म शक्ति को सुनिश्चित करना है। सशक्तिकरण का प्रमुख आधार शिक्षा है। शिक्षा का अर्थ मात्र साक्षरता न होकर चिन्तन शक्ति एवं व्यक्तित्व का विकास है। शिक्षा जीवन के अनुभवों के सतत् पुनर्निर्माण के माध्यम से जीवन की प्रक्रिया है, यह मनुष्य में उन समस्त क्षमताओं का विकास करती है, जिसके द्वारा वह स्वयं अपने परिवेश को नियंत्रित करता है और अपनी उपलब्धियों की सम्भावनाओ को पूर्ण करता है। शिक्षा के माध्यम से ही महिला सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक क्षेत्रों में न केवल स्वयं को सबल बना सकती है अपितु अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास कर समाज में अपनी स्वतन्त्र पहचान भी बना सकती है। शिक्षा के अभाव में महिला सशक्तिकरण की योजना कल्पनीय ही होगी। नारी सशक्तिकरण का असली अर्थ तब समझ में आयेगा जब भारत में उन्हें अच्छी शिक्षा दी जायेगी और उन्हें इस काबिल बनाया जायेगा कि वो हर क्षेत्र में स्वतंत्र होकर फैसले कर सकें।

निष्कर्ष

महिला सशक्तिकरण द्वारा ही राष्ट्र एवं समाज का विकास उसके इतिहास, मातृ भाषा, शिक्षा, महिला शिक्षा प्रगति एवं समृद्धि के आधार पर परिलक्षित होता है। समाज के विकास में महिलाओं की अहम् भूमिका होती है। इसलिए महिलाओं को समाज की रचनात्मक शक्ति कहा जाता है। ताकि राष्ट्र के विकास के साथ राष्ट्र के कर्णधारों को आदर्श व्यक्तित्व गुणों से पुष्ट करने वाली महिलाओं को समाज में पूर्ण सम्मान प्राप्त हो। साथ ही प्रत्येक स्तर पर गुणात्मकता के साथ परिणामात्मक सहभागिता भी प्राप्त हो। शिक्षा सामाजिक सशक्तिकरण का प्रभावशाली माध्यम है। इसलिए माना जाता है कि शिक्षा के द्वारा व्यक्ति में ज्ञान, कौशल, दक्षता एवं क्षमताओं का विकास होता है, जो महिला सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और शैक्षणिक विकास में तीव गति लाकर महिलाओं में सशक्तिकरण लाया जा सकता है। कानूनी प्रयास भी तभी सफल होंगे, जब समाज से सम्पूर्ण सोच और पूर्वाग्रह की घटनाओं में बदलाव आये। जन-मानस को शिक्षा के माध्यम से जागृत किया जाय। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि शिक्षा के अभाव में महिला सशक्तिकरण की योजना कल्पनीय होगी। अर्थात् महिला सशक्तिकरण को सफल बनाने के लिए शिक्षा की आवश्यकता अहम है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अग्रवाल, जे0सी0,: 2013-2014, "शिक्षा के दार्शनिक, सामाजिक एवं आर्थिक आधार", अग्रवाल पब्लिकेशन, नई दिल्ली.
2. मुछाल, महेश कुमार: वर्ष 17, अंक 3, दिसम्बर 2010 "महिला शिक्षा एवं सशक्तिकरण", परिप्रेक्ष्य राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, नई दिल्ली.
3. पाटले, अमृत: वर्ष 16, अंक 3, दिसम्बर 2009, "महिला सशक्तिकरण में सामाजिक सुरक्षा एवं शिक्षा का प्रभाव", परिप्रेक्ष्य राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
4. सिंह, सविता:, अंक 26, 28 सितम्बर से 4 अक्टूबर, 2002 "गाँधी और महिला सशक्तिकरण", रोजगार समाचार.
5. देवपुरा, प्रतापमल: वर्ष 54, अंक 5, मार्च 2008 "महिला सशक्तिकरण में शिक्षा का महत्त्व", कुरुक्षेत्र ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली.
6. द्विवेदी, पूनम: वर्ष 52, अंक 5, मार्च 2006 "महिला सशक्तिकरण और वर्तमान कानून", कुरुक्षेत्र ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली.
7. गुप्ता, अंजलि: वर्ष 52, अंक 5, मार्च 2006 "महिलाओं की स्थिति पर वैश्वीकरण का प्रभाव", कुरुक्षेत्र ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली.
8. कुमार, दिनेश एवं भूषण, बजरंग: वर्ष 51, अंक 5, मार्च 2006, "महिला सशक्तिकरण", कुरुक्षेत्र ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली.

"विद्यालयी शिक्षा में भारतीय संस्कृति का समावेशन"

डॉ० कंचन शर्मा

बुनियादी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, गांधी विद्या मन्दिर, (सरदारशहर)

संस्कृति शब्द का संबंध संस्कार से है, जिसका अर्थ है, "संशोधन करना, उत्तम बनाना, परिश्कार करना।" संस्कार व्यक्ति के भी होते हैं और जाति के भी। जातीय संस्कारों को ही संस्कृति कहते हैं। संस्कृति देश-विशेष की उपज होती है। उसका संबंध देश के भौतिक वातावरण और उसके पालित-पोशित व परिवर्द्धित विचारों से होता है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार - "राष्ट्र के तीन तत्व हैं - भूमि, जन और संस्कृति। संस्कृति जन के मस्तिश्क के समान है। मनुष्य द्वारा युगों-युगों से संचित की गयी सभ्यता का दूसरा नाम ही संस्कृति है। संस्कृति ही जीवन के विटप का पुश्प है। जिस प्रकार अनेक नदियाँ आकर समुद्र में मिलकर एक रूप हो जाती हैं, उसी प्रकार राष्ट्रीय जीवन की अनेक संस्कृतियाँ मिलकर एक सुखद राष्ट्र का निर्माण करती हैं।

विश्व में वासित प्रत्येक देश का अपना एक मूल स्वभाव होता है। उस मूल स्वभाव के अनुसार ही वह जीवन को देखता है, यही उसका जीवन दर्शन कहलाता है। भारत देश के मनीशियों ने आत्मस्थित होकर जीवन को देखने व समझने का प्रयास किया। तब इन्हें जीवन जिस स्वरूप में दिखाई दिया, वही भारतीय जीवन दर्शन कहलाया। इस जीवन दर्शन के आधार पर व्यक्तिगत, पारिवारिक व सामाजिक व्यवहार की पद्धति का शास्त्र बना, वही भारतीय संस्कृति है। संस्कृति के सदैव दो पक्ष होते हैं - बाह्य पक्ष तथा आंतरिक पक्ष। संस्कृति के बाह्य पक्ष में भाषा, रहन-सहन, खान-पान, वेशभूशा आदि आते हैं, वही आंतरिक पक्ष विचारों से संबंधित होता है। संस्कृति के इस आन्तरिक पक्ष पर भारतीय संस्कृति में विशेष बल दिया गया है। भारतीय जीवन दर्शन व संस्कृति में सदैव से ही आध्यात्मिकता, समन्वय भाव, कार्यों का समरूप विभाजन, अहिंसा, सत्य, करूणा, मैत्री, विनय, वसुधैव कुटुम्बकम का भाव समावेशित रहा है।

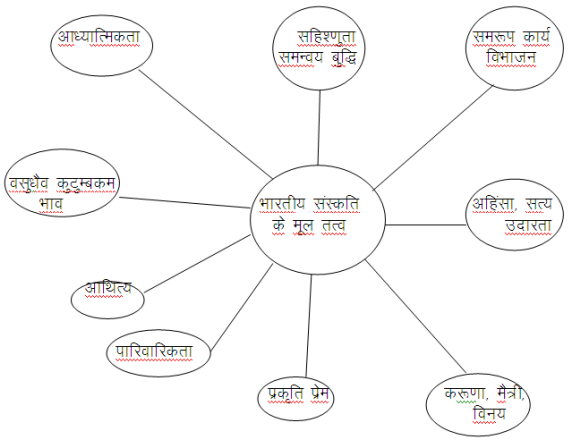

आध्यात्मिकता में सत्य, अहिंसा, समस्त जीवों को अपने समान समझना, आवागमन की मान्यता, नश्वर शरीर का त्याग आदि बातें शामिल हैं। भारतीय दर्शन में आत्मा की एकता का भाव होने से भारत में अनेकता में एक व सहिश्णुता के दर्शन होते हैं। हमारी संस्कृति में कार्यों का समरूप विभाजन करने पर बल दिया गया है तथा सभी को समान समझने का भाव रखा गया है। अहिंसा को भारतीय संस्कृति में विशिष्ट स्थान प्राप्त है। किसी की हत्या ना करना ही हिंसा नहीं है, बल्कि उसका जी दुखाना भी हिंसा माना जाता है। भारत में सत्य बोलने किन्तु प्रिय बोलने की शिक्षा दी जाती हैं - "सत्यं ब्रूयात, प्रियं ब्रूयात।" यहाँ अपने से छोटों के प्रति करूणा, बराबर वालों के प्रति मैत्री तथा अपने से बड़ों के प्रति विनय का भाव तथा सभी के प्रति शिष्टता का व्यवहार धारण करने पर बल दिया गया है। विनय भारतीय संस्कृति की विशिष्टता है। विद्या से भी पूर्व विनय को आवश्यक समझा गया है। भारत सदा ही प्रकृति प्रेमी रहा है। प्रकृति के प्रत्येक उपादान में देवत्व का भाव समझ कर उसके संरक्षण पर बल दिया गया है फिर चाहे वह गाय हो या गंगा। प्रकृति भारतीय जीवन का अंग तथा साथी रही है। भारतीय दर्शन में विश्व को एक परिवार माना गया है और यही परिवार भाव ही हमें विश्व में सभी से उदात्त बना है। यहाँ पारिवारिकता के साथ-साथ सामाजिकता को बढ़ाना उचित समझा जाता है। ये सभी बातें ही भारतीय संस्कृति को वैश्विक संस्कृतियों की सिरमौर बनाती है।

चूंकि संस्कृति की उन्नति ही राष्ट्र की उन्नति का आधार कही जा सकती है। जीवन के किसी भी स्तर पर किसी भी पहलू का विचार करते समय एवं व्यवस्था और मर्यादाएँ तय करते समय राष्ट्रीय संस्कृति का विचार आधार रूप में रखना परमावश्यक होता है। अत: राष्ट्रीय संस्कृति को विद्यालयी शिक्षा से समावेशित करना जरूरी हो जाता है। शिक्षा ही ऐसा माध्यम है जो राष्ट्रीय संस्कृति को संरक्षित करने, संवर्द्धित करने तथा भावी पीढ़ी को हस्तान्तरित करने में सहायक बनती है। शिक्षा एक ऐसी उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है जो बालकों के आत्मज्ञान को विकसित कर उन्हें ज्ञानार्जन व कौशलों का प्रशिक्षण देने के साथ-साथ राष्ट्रीय संस्कृति, जीवन मूल्यों, आदर्शों व मान्यताओं से भी परिचित कराती है। अत: राष्ट्रोत्थान हेतु यह आवश्यक हो जाता है कि बालकों को ऐसी शिक्षा दी जाये जो उन्हें अपने देश की संस्कृति को जानने तथा उसके संरक्षण व संवर्द्धन में योग देने के योग्य बना सके। चूंकि भारतीय संस्कृति ज्ञान की अपेक्षा आचरण और व्यवहार को अधिक महत्त्व देती है अत: शिक्षा भी हमारे आचरण और व्यवहार में उतरनी चाहिए। इसीलिए यह जरूरी है कि शिक्षा में बौद्धिक कार्यों के साथ-साथ व्यावहारिक कार्यों के भी नियमित आयोजन सुलभ किए जाने चाहिए जो बालकों को संस्कृति की जानकारी समृद्ध करने के साथ-साथ उन्हें व्यावहारिक, परिश्रमी व कार्यकुशल बनाते हुए संस्कारित भी करें।

शिक्षा को राष्ट्रीय संस्कृति से समृद्ध करने के महत्ती कार्य में अध्यापकों की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है। अध्यापक केवल अपने अध्यापन द्वारा ही नहीं वरन् अपने व्यक्तित्व और आचरण द्वारा भी विद्यार्थियों को शिक्षित करते हैं। अध्यापकों के व्यक्तित्व, चरित्र और आचरण का विद्यार्थियों पर दीर्घकालिक प्रभाव पड़ता है। अध्यापकों के दिए गए उपदेशों की तुलना में उनके आचरण व व्यवहार का विद्यार्थियों के ह्रदय पर गहरा प्रभाव होता है। अत: हमें विद्यालयी शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति का समावेश करने के साथ-साथ शिक्षकों को राष्ट्रीय संस्कृति का संवाहक बनने हेतु तत्पर करना होगा। अध्यापक सुसंस्कृत, आस्थावान, उत्साही, ऊर्जावान व उदात्त व्यक्तित्व का स्वामी होगा तो उसके विद्यार्थी भी इन गुणों को स्वत: ही ग्रहण करते जाएंगे। इसके साथ ही पाठ्यक्रम में विषयानुसार ऐसे पाठ समावेशित किए जा सकते हैं, जो विद्यार्थियों को अपनी संस्कृति से परिचित करवाएं। विद्यालय में भी विभिन्न गतिविधियों, कार्यक्रमों का आयोजन किया जा सकता है जो विद्यार्थियों को राष्ट्रीय संस्कृति से रूबरू करवाए और उसके प्रति आस्थावान बनाए। विद्यार्थियों के आयु वर्ग तथा शैक्षिक स्तर के अनुसार विद्यालय में राष्ट्रीय संस्कृति से सरोबार कई कार्यक्रमों का नियमित आयोजन करवाया जा सकता है जिनमें से कुछ इस प्रकार है -

1. दैनिक प्रार्थना सभा में भारतीय संस्कृति को अभिव्यक्त करती प्रार्थना, समूहगीत, ध्यान, शांतिपाठ, सर्वधर्म प्रार्थना, योगासन, आदर्श कथन, आदर्श प्रसंग आदि शामिल किए जा सकते हैं।
2. भारतीय महापुरूशों, देशभक्त क्रांतिकारियों की जयंतियों का समारोहपूर्वक आयोजन करवाया जाए, जिसमें बालकों की अधिकाधिक भागीदारी हो।
3. राष्ट्रीय पर्वों तथा विभिन्न उत्सवों को राष्ट्रीय सामाजिक रूप में मनाना सुनिश्चित किया जाए।
4. विभिन्न राष्ट्रीय दिवसों को सामूहिक रूप से मनाया जाए जिसमें विद्यार्थियों को विभिन्न जिम्मेदारियाँ दी जायें।
5. विद्यार्थियों में स्वयंसेवकों व सेवादारों की भांति वृक्षारोपण, वृक्षसंरक्षण, स्वच्छता अभियान, स्वास्थ्य शिविर, साक्षरता शिविर आदि में कार्य करने की स्वस्थ आदतें विकसित की जायें।
6. प्राकृतिक आपदा के समय विद्यार्थियों को समाजसेवा के कार्य में संलग्न करना व जिम्मेदारी का भाव उत्पन्न करना चाहिए।
7. भारतीय खेलकूद से संबंधित प्रतियोगिताएँ, व्यायाम, योगाभ्यास, आसन, ध्यान आदि क्रियाएँ करवाना तथा इनके महत्त्व को स्पष्ट करना चाहिए।
8. भारतीय संस्कृति की अनूठी परम्परा अभिवादन, प्रणाम आदि के प्रति विद्यार्थियों में निष्ठा जगाकर अभिवादन की स्वस्थ आदत विकसित करनी चाहिए।
9. भारतीय लोक संगीत, नृत्य, नाटक, कवि सम्मेलन, लोकगीत व लोक कलाओं का प्रदर्शन व विद्यार्थियों की भागीदारी निश्चित की जाये।
10. भारत के प्रमुख ऐतिहासिक व राष्ट्रीय सांस्कृतिक महत्त्व के स्थानों का भ्रमण करवाना तथा भ्रमण की व्यवस्था ना हो पाने पर मल्टीमीडिया माध्यमों द्वारा भारतीय सांस्कृतिक व ऐतिहासिक विरासत के दिग्दर्शन करवाएं जाएं।
11. सप्ताह या माह में कम से कम एक बार समाज के विद्वजनों, विशिष्ट व्यक्तियों, शिक्षाविदों, समाजसेवियों, संतों आदि के उद्बोधन, व्याख्यानमाला या परिचर्चा का आयोजन करवाया जा सकता है।
12. भारतीय संस्कृति ज्ञान परीक्षा या भारत जानो सामान्य ज्ञान परीक्षा, आदि या इनकी तरह ही भारतीय संस्कृति के जानने की जिज्ञासा उत्पन्न करती प्रतियोगिता परीक्षाओं का विद्यालय स्तर, जिला स्तर, राज्य स्तर या राष्ट्रीय स्तर पर आयोजन करवाया जा सकता।
13. भारतीय संस्कृति पर भाषण, वाद विवाद, प्रश्नोत्तरी, चर्चा, गोष्ठियों आदि का आयोजन करवाया जाए।
14. भारतीय संस्कति से संबंधित विषयों पर निबंध, चित्रकला, पोस्टर, भित्ति पत्रिका, विद्यालय पत्रिका आदि का समयानुसार आयोजन किया जा सकता है जिनसे विद्यार्थी अपनी संस्कृति को जानें व समझें।
15. राजस्थान में जालौर जिले के गोदन क्षेत्र के सरकारी विद्यालय के समान 'भारतदर्शन गलियारे' के निर्माण के समान नवाचारिक पहल भी की जा सकती है जिसके माध्यम से विद्यालय के पिल्लरों को 'ज्ञान स्तम्भ' नाम देकर उन पर भारत के सांस्कृतिक गौरव, ऐतिहासिक घटनाओं, राष्ट्रीय प्रतीकों, महान व्यक्तित्वों आदि का चित्रण कर भारतीय संस्कृति की विशेषताओं से विद्यार्थियों को परिचित करवाया जा सकता है। शिक्षा में सांस्कृतिक तत्वों को शामिल करने का दायित्व शिक्षकों, विद्यालयों, समाज व सरकार सभी को ग्रहण करना होगा। विद्यालयों में वर्ष भर के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों के लिए एक कार्ययोजना व सारिणी बनानी होगी तथा इन कायक्रमों का संचालन मात्र खानापूर्ति के उद्देश्य से न करके पूरी आस्था, उत्साह व राष्ट्र निष्ठा के भाव से करना होगा।

सारांश

संस्कृति शब्द का संबंध संस्कार से है, जिसका अर्थ है, "संशोधन करना, उत्तम बनाना, परिश्कार करना।" संस्कृति के सदैव दो पक्ष होते हैं - बाह्य पक्ष तथा आंतरिक पक्ष। संस्कृति के बाह्य पक्ष में भाषा, रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा आदि आते हैं, वही आंतरिक पक्ष विचारों से संबंधित होता है। है। भारतीय जीवन दर्शन व संस्कृति में सदैव से ही आध्यात्मिकता, समन्वय भाव, कार्यो का समरूप विभाजन, अहिंसा, सत्य, करूणा, मैत्री, विनय, वसुधैव कुटुम्बकम का भाव समावेशित रहा है। चूंकि संस्कृति की उन्नति ही राष्ट्र की उन्नति का आधार कही जा सकती है। अतः राष्ट्रीय संस्कृति को विद्यालयी शिक्षा से समावेशित करना जरूरी हो जाता है। यह जरूरी है कि शिक्षा में बौद्धिक कार्यो के साथ-साथ व्यावहारिक कार्यो के भी नियमित आयोजन सुलभ किए जाने चाहिए जो बालकों को संस्कृति की जानकारी समृद्ध करने के साथ-साथ उन्हें व्यावहारिक, परिश्रमी व कार्यकुशल बनाते हुए संस्कारित भी करें।

शिक्षकों को राष्ट्रीय संस्कृति का संवाहक बनने हेतु तत्पर करना होगा। पाठ्यक्रम में विषयानुसार ऐसे पाठ समावेशित किए जा सकते हैं, जो विद्यार्थियों को अपनी संस्कृति से परिचित करवाएं। विद्यालय में भी विभिन्न गतिविधियों, कार्यक्रमों का आयोजन किया जा सकता है जो विद्यार्थियों को राष्ट्रीय संस्कृति से रूबरू करवाए और उसके प्रति आस्थावान बनाए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कुमार राजीव ''शिक्षा में संस्कारशीलता'' शिविरा पत्रिका जनवरी, 2000, पृष्ठ संख्या 37, माध्यमिक शिक्षा निदेशालय, बीकानेर।
2. शिविरा पत्रिका, सितम्बर 1998, माध्यमिक शिक्षा निदेशालय, बीकानेर।
3. इन्दुमति काटगरे, भारतीय जीवन दर्शन व संस्कृति, अपरा 2018, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान।
4. गुलाबराय बाबू ''भारतीय संस्कृति'', सरयू (2017), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान।
5. अग्रवाल वासुदेव शरण ''राष्ट्र का स्वरूप'' मंदाकिनी (2017), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान।
6. शिविरा पत्रिका ''नवम्बर 2018'' माध्यमिक शिक्षा निदेशालय, बीकानेर।
7. मंथन, भारतीय ज्ञान परम्परा विशेषांक, प्रभात प्रकाशन त्रैमासिक पत्रिका, अक्टूबर से दिसम्बर 2018।

भरतपुर का भौगोलिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ० कुलराज व्यास

सहायक प्रोफेसर, आई.ए.एस.ई.मानित विश्वविद्यालय, सरदारशहर, राजस्थान

भरतपुर का भौगोलिक अध्ययन

राजस्थान का भरतपुर जिला रियासत काल में भरतपुर राज्य की राजधानी रहा। भरतपुर की स्थापना राजा दशरथ के दूसरे पुत्र भरत के नाम पर हुई। भरतपुर के राजा एवं वंशज भरत के छोटे भाई लक्ष्मण की पूजा करते थे तथा उनका नाम मुद्राओं, हथियारों एवं महत्वपूर्ण दस्तावेजों पर अंकित करते थे।

वर्तमान में भरतपुर जिला 27°22 से 27°50 उत्तरी अक्षांश व 77°48 से 78°17 पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है जिले के उत्तर में हरियाणा राज्य के रेवारी, नूंह, फरीदाबाद पूर्व में उत्तरप्रदेश राज्य के मथुरा और आगरा शहर, दक्षिण में धौलपुर जिला एवं मध्यप्रदेश का मुरैना जिला और पश्चिम में करौली जिला, दौसा जिला व अलवर जिला से सीमा लगती है (करौली के हिण्डन से, दौसा के महुआ से एवं अलवर के कठूमर, रामगढ़, किशनगढ़, तिजारा से भरतपुर की सीमा लगती है।)

जिले की आकृति कटी-फटी तथा विषम है जिले का कुल क्षेत्रफल 5066 वर्ग कि.मी. है। भरतपुर जिले की जलवायु शुष्क है ग्रीष्म ऋतु में बहुत गर्मी, शीत ऋतु में बहुत सर्दी और वर्षा ऋतु में मानसून अल्पकालीन होता है। जिले का औसत तापमान 25 डिग्री सेन्टीग्रेड रहता है। तथा वर्षा का वार्षिक औसत 67.15 सेन्टीमीटर है।[1]

भरतपुर जिले की भरतपुर व नदबई तहसील मैदानी व समतल है जबकि बयाना व रूपवास तहसीलों में पहाड़ियाँ है भरतपुर, बयाना व डीग उपखण्डों की भूमि सामान्यतया उपजाऊ और सपाट हैं जिले की मुख्य नदियाँ बाणगंगा, गम्भीरी, काकुंड, पार्वती व रूपारेल है। ये नदियाँ केवल वर्षा ऋतु में जलयुक्त रहती है और वर्षाकाल के पश्चात सूख जाती है। बाणगंगा नदी जयपुर से निकलकर भरतपुर के भुसावर कस्बे के गाँव कमालपुरा के पास प्रवेश कर पूर्व की तरफ बहती हुई भुसावर, बैर, बयाना, उच्चैन व रूपवास फतेहपुर सीकरी आदि क्षेत्रों में बहती हुई उत्तरप्रदेश के खेरागढ में जा निकली है इसके पानी से खेती को बहुत फायदा पहुँचता है। 380 कि.मी. बहती हुई अंत में यह नदी फतेहाबाद (आगरा) के समीप यमुना में मिल जाती है।इस नदी की एक धारा भरतपुर शहर के आस-पास वाले बाँधों और नहर में पहुँचकर वहाँ के वाशिन्दों को मीठा पानी उपलब्ध कराती है क्योंकि वहाँ के कूओं मे अधिकतर खारा पानी हैं। 110 कि.मी. लम्बी गम्भीरी नदी सवाईमाधोपुर से निकलकर भरतपुर जिले के बयाना कस्बे के गाँव करसाडा में प्रवेश करती है, पहले यह नदी पूर्व की ओर बहती है इसके बाद उत्तर में बयाना के पहाड के चारो ओर घूमती हुई कुरका गाँव के पास बाणगंगा में मिल जाती है अंत में आगरा में यमुना में मिल जाती है। काकुंड नदी करौली के पहाडों से निकलकर इस जिले के बयाना कस्बे मे आती है, यहाँ पर ऊँची पहाडी जमीन से गोरधा गाँव के जमीन पर गिरती है, वहाँ हमेशा पानी भरा रहता है लगभग 9 कि.मी. तक यह पहाडों के बीच होकर गुजरती है, जिसका सारा पानी नालों के जरीय इस नदी में आता है इस पहाडी अहाते मे से बारेटा गाँव के पास से निकलने के बाद यह उत्तर की तरफ चलकर शालाबाद के नजदीक गम्भीर नदी में मिल जाती है। रुपारेल नदी अलवर जिले से बहती हुई सीकरी कस्बे के पास भरतपुर जिलें में प्रवेश करती है। इस नदी के जल पर एक समय तक अलवर व भरतपुर की रियासतों में विवाद रहा, जिसको तत्कालीन गर्वनर जनरल के राजपूताना के एजेण्ट हेनरी लॉरेन्स ने विक्रमी संम्वत् 1912 (हिजरी संम्वत् 1271) ई. सन् 1855 में दूर किया। सीकरी के बाँध से यह नदी दो भागों में बंट जाती है, पहला वह जो उत्तर भारत पूर्व में गोपालगढ़ व पहाडी की तरफ और दूसरा दक्षिण पूर्व में डीग़, कुम्हेर व भरतपुर को जाता है। उत्तर में काँमा से बढ़कर पानी को रास्ता न मिलने से, अधिक वर्षा होने पर पहाडी और काँमा बीच लगभग 16. 17 कि.मी. पानी भर जाता है, परन्तु यह झील पूरी भर जाती है, तो ज्यादा पानी मथुरा में जाकर वहाँ की खेती को नुकसान पहुँचाता है। दक्षिणी धारा का पानी मोतीझील में जा गिरता है, और वहाँ से ओरीन नदी में, जो खारी नदी की एक शाखा है, शामिल होकर फतेहपुर सीकरी की तरफ बह जाती है। खारी नदी आगरा में, बाणगंगा में जाकर मिल जाती है।[2] भरतपुर में वर्ष भर बहने वाली कोई नदी नही है, जिसके कारण कृषि को पानी पहुँचाने के लिए नहरें नही हैं, इसलिए वर्षा का पानी बाँधों के माध्यम से रोका जाकर फसल बोने के समय छोड़ा जाता है। जिले के बाँधों में हर साल दूर-दूर तक पानी भर जाता है, और खाली होने पर उनके अन्दर की जमीन पर बहुत उन्नत कृषि होती है। इस कारण से पानी के बड़े-बड़े रास्तों पर बाँध तैयार किये गये हैं, जो गर्मी में सूख जाते है और वर्षा के समय पूरे भर जाते हैं। बाँधों पर पक्की पाल बनी हुई है, और सभी में पक्की मोरियाँ बनी हुई है। जिले में सिंचाई के लिए ये बाँध एक बडा श्रोत भी है। जिले का सबसे बडा बाँध "बंध बरेठा" है जिसकी भराव क्षमता 29 फीट है।[3]

जिले में चार झीलें है - मोती झील, केवलादेव झील, मादल झील तथा झील का बाडा। इन झीलों में अनेक प्रकार की मछलियां पाई जाती है। जिले के दक्षिणी भाग में पहाड बहुत हैं। जिस पहाड पर बयाना का किला बना हुआ है, वह बहुत ऊँचा और चौडा है जो रुपवास तक फैला हुआ है। उत्तरी हिस्से में भी पहाड है, परन्तु सम्पूर्ण जिले में सबसे ऊँचा पहाड़ अलीपुर क्षेत्र में "अखेगढ़" का है जो "काला पहाड़" के नाम से जाना जाता है; इसकी ऊँचाई

समुद्रतल से 1357 फीट है। छपरा पहाडी का पहाड 1222 फीट, दमदमा पहाड बयाना 1222 फीट, नगर का रसिया पहाड़ 1065 फीट, रुपवास का उसीरा पहाड़ 817 फीट, भरतपुर का माढोनी पहाड़ 725 फीट समुद्रतल से ऊँचा है।

भरतपुर के आस पास के क्षेत्रों से मकान की छतें पाटने के लिए पटियाँ निकाली जाती है। वंशी पहाड़पुर, वारेटा से उत्तम किस्म का सफेद व लाल पत्थर निकलता है, जो विश्व प्रसिद्ध है। फतेहपुर सीकरी के मुगलकालीन प्रसिद्ध भवनों व महलों में एवं डीग और वैर के महलों में यहीं का पत्थर लगा हुआ है। लाल व सफेद पत्थर के अलावा खंडा, गिटी, बोल्डर,सेण्ड स्टोन, ईंटें बनाने की उत्तम किस्म की मिटी, बजरी आदि मिलते हैं। जिले में धातु की कोई खान नही है, बहुत समय पहले भुसावर तथा वैर के बीच और बयाना के पहाडों में ताँबे की कुछ खानें शुरु हुई थीं, परन्तु कुछ फायदा न होने से बन्द कर दी गई। [4] जिले में एक बडा जंगल भी है, जिसमें धौंक, खैर, बेर, बबूल, चिरोल, कचनार, करील तथा मिश्रित वृक्ष पाये जाते है, जिले में स्थित जंगलों, झीलो तथा अभ्यारणयों में अनेक प्रकार के जलचर, पक्षी, पशु एवं सरीसृप देखने को मिलतें है। जिला मुख्यालय पर स्थित केवलादेव घना पक्षी विहार को विश्व विरासत की सूची में शामिल किया गया है, जिसमें साइवेरिया से आने वाले सारसों को देखा जा सकता है। केवलादेव घना पक्षी विहार को देशी पर्यटकों के साथ-साथ विदेशी पर्यटक भी काफी संख्या में देखने को आते है।[5]

जिले के आवो-हवा उत्तम है, बारिश अच्छी होती है, मगर भरतपुर जिला मुख्यालय में पीने का पानी बहुत खराब है, कुछ कुओं में, जो तालाब व नहर के किनारे पर हैं, मीठा पानी पाया जाता है। जिले के पानी में "लोराइड की मात्रा भी बहुतायत में पायी जाती है। कृषि की दृष्टि से जिले में मुख्य पैदावार गेहूँ, जौ, चना, गन्ना, बाजरा, मूंग, मौंठ और उडद है। रवी, खरीफ व जायद की फसल की पैदावार की जाती है।[6]

भरतपुर जिला विश्व प्रसिद्ध बृज क्षेत्र का हिस्सा है, जहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी लीलायें की। जिले की भाषा बृज भाषा है साथ ही खडी बोली का मिश्रण भी है। 2011 की जनगणना के अनुसार जिले की कुल जनसंख्या 2548462 है एवं जनसंख्या घनत्व 503 प्रति वर्ग कि.मी. तथा लिंगानुपात 880 है। जिले में एक लोकसभा क्षेत्र है, जो भरतपुर है एवं 6 विधानसभा क्षेत्र हैं, जो - बयाना, भरतपुर, डीग-कुम्हेर, काँमा-नदबई, नगर, तथा मेड़ हैं। सम्पूर्ण जिला 10 तहसील क्षेत्रों में विभाजित है जो- बयाना, भरतपुर, डीग, काँमा, कुम्हेर, नदबई, नगर, पहाडी, रुपवास, तथा मेड़ है।[7]

शिक्षा की दृष्टि से जिले में सन् 2012 में महाराजा सूरजमल बृज विश्वविद्यालय की स्थापना की गई है। इस विश्वविद्यालय के द्वारा भरतपुर और धौलपुर के समस्त विश्वविद्यालयों को सम्बद्धता प्रदान की जाती है। विश्वविद्यालय के अलावा जिले में एम. एस. जे. शासकीय महाविद्यालय, शासकीय कन्या महाविद्यालय, शासकीय कानून महाविद्यालय तथा कई निजी महाविद्यालय स्थित हैं। जिले का कुल साक्षरता प्रतिशत 70.11 है।

जिले में मुख्यतः जाट, गूजर, मुसलमान, मेव, मीणा, ब्राह्मण, कायस्थ, बनिया, अहीर, माली और धाकड़ है और इनके अलावा कई दूसरी जातियाँ भी रहती हैं, मुसलमानों में अधिकांश संख्या मेवों की है।[8]

भरतपुर के प्रसिद्ध स्थान

भरतपुर - मुख्य शहर भरतपुर समतल भूमि पर बसा हुआ है। लड़ाई के दौरान बाहर की झीलों से इतना पानी छोड़ दिया जाता था। दुश्मन की ताकत नही कि शहर में घुस सकें। भरतपुर के किले का पुनः निर्माण करा कर महाराजा सूरजमल ने भरतपुर को अपनी राजधानी बनाया। शहर के अन्दर एक मजबूत और ऊँचा किला है; जिसके चारों ओर बहुत चौडी और गहरी खाई बनी हुई है उसमे हमेशा पानी भरा रहने से शहर वासियों को बहुत-कुछ आराम मिलता है किलें में दो मुख्य द्वार है। और आठ बुर्ज हैं, और तीन महल हैं जिनमें एक मर्दाना महल, दूसरा जनाना कचहरी के रुप में काम में लिया जाता था। महाराज किले में नही रहते थे, उन्होंने शहर से पश्चिम की ओर लगभग 5 कि.मी. दूर सेवर गाँव के पास एक छावनी बसाकर रहना पसंद किया।

बयाना - बयाना भरतपुर जिले का एक कस्बा है, प्रारंभ में बयाना पर चंद्रवंशी राजपूतों का अधिकार रहा। उसके बाद दिल्ली सल्तनत का कब्जा रहा फिर मुगलों की कमजोर स्थिति का लाभ उठाकर बयाना पर भरतपुर वालों ने अधिकार कर लिया।

डीग - डीग भरतपुर में एक प्रसिद्ध स्थान हैं डीग के जलमहल विश्वभर में अपनी अलग पहचान रखते हैं डीग के महलों की मजबूती एवं बनावट, बागों की रौनक एवं फव्वारों की खूबसूरती की तुलना मुंशी ज्वाला सहाय ने आगरा के रौज-ए-मुमताज महल से की है डीग में एक सुदृढ़ किला भी बना हुआ है और उसके आस-पास कुछ झील भी है।

काँमा - यह एक प्राचीन कस्बा है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार इस कस्बा को श्रीकृष्ण भगवान की ननिहाल माना जाता है।

रूपवास - यह एक छोटा सा कस्बा है, इस कस्बे में लाल पत्थर से निर्मित महल और उनके नीचे एक पक्का तालाब है, जो बादशाह अकबर के फतेहपुर सीकरी में रहने के समय तैयार कराये गये। यहाँ महाराजा वलवंत सिंह का बनाया हुआ एक बाग भी है।

पहाड़ी - पहाड़ी में साहिब खाँ खानजादह पीर की दरगाह है।[9]

खानवा - खानवा एक प्राचीन एवं ऐतिहासिक कस्बा है। मुगलवंश के संस्थापक बाबर और मेवाड़ के महाराणा संग्राम सिंह (सांगा) के मध्य 16 मार्च, 1527 ई. में इसी स्थान पर एक निर्णायक युद्ध हुआ जो भारतीय इतिहास में "खानवा का युद्ध"[10] के नाम से जाना जाता है। खानवा गाँव अब भरतपुर जिले की रुपवास तहसील में स्थित है, जो 500 साल पहले इतिहास की किताब से फट गये पन्ने की भाँति आजाद भारत के पटवारियों की गिरदावरी और जमाबंदी में एक साधारण गाँव की भाँति दर्ज है।

भरतपुर का ऐतिहासिक अध्ययन

भरतपुर के नोह नामक स्थान पर खुदाई में ईसा से 1200 वर्ष पूर्व के लौह अवशेष प्राप्त हुए हैं। खुदाई में प्राप्त विशाल चूल्हे, हवनकुण्ड,हस्ती की मोहरें, ईंटें, खिलौने तथा सिक्के बड़ी मात्रा में प्राप्त हुए है। यह सामग्री इस बात को प्रमाणित करती है, कि ईसा से कई शताब्दी पहले इस क्षेत्र में मानव सभ्यता

एवं संस्कृति काफी उन्नत अवस्था में थी। खुदाई में शुंगकालीन एवं कुषाणकालीन अनेक देव प्रतिमाऐं तथा तांत्रिक उपकरण भी प्राप्त हुए हैं। यहाँ से प्राप्त पुरातात्विक सामग्री इस तथ्य के लिए काफी मजबूत आधार प्रदान करती है, कि आर्यो की वैदिक कालीन सभ्यता में यह स्थान प्रमुख केन्द्र था। मौर्यकाल में यह क्षेत्र मौर्य साम्राज्य के अधीन था। बयाना के पास विजयगढ़ से यौधेयों का ईसा के बाद तीसरी शताब्दी का एक लेख प्राप्त हुआ है, जिसके अनुसार कुषाणों की प्रारंभिक सत्ता इस क्षेत्र तक विस्तृत थी। गुप्तकाल में विजयगढ़ तथा बयाना शासन के प्रमुख केन्द्र थे। बयाना से लगभग 11 किमी. दूर नागा लाछेला से फरवरी 1946 ई. में गढा हुआ खजाना मिला था जिसमें गुप्तकालीन 1821 मुद्रायें भी थी। 550 ई. के बाद इस क्षेत्र में गुर्जर शक्तिशाली हो गये और क्षेत्र की सत्ता गुर्जरों के हाथों में आ गई। चीनी यात्री व्हेनसांग ने वर्तमान भरतपुर जिले के क्षेत्र को 'गुर्जरात्रा' राज्य में शामिल किया है एवं पश्चिमी भारत का दूसरा सबसे बडा राज्य बताया है। उस समय क्षेत्र की राजधानी बजाना थी जो बाद में बयाना नाम से प्रसिद्ध हुई। गुर्जरों के बाद प्रतिहारों का उदय हुआ जो गुर्जरात्रा क्षेत्र पर शासन करने के कारण 'गुर्जर प्रतिहार' कहलाये। प्रतिहार वंशीय राजा भोज प्रथम तथा महीपाल द्वितीय ने भी इस क्षेत्र पर अपनी सत्ता स्थापित की। नौ वीं शताब्दी में कन्नौज के शासको के अधीनस्थ के रूप में चौहानों ने भी इस क्षेत्र पर शासन किया, किन्तु सत्ता के वास्तविक स्वामी प्रतिहार ही बने रहे। अजमेर के चौहान शासक अजयराज द्वितीय ने 1110 ई. से 1135 ई. तक इस क्षेत्र में अपनी सत्ता का विस्तार किया और यह क्षेत्र चौहानों के अधीन हो गया। 1018 ई. में जब गजनी के शासक महमूद गजनी ने मध्यभारत पर आक्रमण किया तब मथुरा के निकट महावन में यदुवंशी शासक कुलचंद शासन करता था। महमूद गजनी वरण (बुलंदशहर) से चलकर महावन पहुँचा तो कुलचंद को सूचना मिली कि गजनवी अपनी विशाल सेना लेकर आ रहा है, तो वह घने जगंलों के बीच अपने दुर्ग में चला गया और वहाँ उसने महमूद का सामना किया किन्तु पराजय हाथ लगी। इसी यदुवंश का राजा जयपाल 11वी शदी के पूर्वार्द्ध में यादवों की गद्दी पर बैठा जिसका उत्तराधिकारी विजयपाल हुआ। इसी विजयपाल का उल्लेख बयाना के 1044 ई. शिलालेख में है। विजयपाल का उत्तराधिकारी तहनपाल था जिसने बयाना से लगभग 25 कि.मी. दूर (करौली जिले के मासलपुर के पास) तहनगढ़ दुर्ग का निर्माण करवाया।[11]

1192 ई. में तराइन का द्वितीय युद्ध एक निर्णायक युद्ध रहा।[12] इस युद्ध के परिणामस्वरुप भारतीय सत्ता चौहानों के हाथ से निकलकर तुर्कों के हाथों में आ गई। मुहम्मद गौरी विजित क्षेत्रों की जिम्मेदारी अपने योग्य गुलाम कुतुबुद्दीन ऐवक को सौंपकर गजनी वापिस चला गया और ऐवक भारत का शासक बन गया जिसने भारत में गुलाम वंश की नीम डाली। ऐवक की मृत्यु के बाद बयाना पर से तुर्कों का शासन कमजोर हो गया तथा यादवों ने अपना आधिपत्य स्थापित कर दिया किन्तु शीघ्र ही इल्तुतमिश ने यादवों को परास्त कर दिया तथा बयाना और तहनगढ़ पर अधिकार कर लिया। इल्तुतमिश के उत्तराधिकारी कमजोर साबित हुए जिसका लाभ मेवातियों ने उठाया और वे दिल्ली सल्तनत को खुली चुनौती देने लगे। किन्तु जब दिल्ली सल्तनत पर बलबन सत्तारुढ़ हुआ तो उसने मेवातियों को बुरी तरह से परास्त किया। खिलजीयों के समय में भी यह क्षेत्र दिल्ली सल्तनत के अधीन रहा। अलाउद्दीन खिलजी बयाना के काजी मुगीसुद्दीन से धार्मिक मामलों मे सलाह-मशबरा लिया करता था। तुगलकों के शासनकाल में मेवाती लोग और अधिक बडी समस्या बनकर खडे हो गये। 1421 ई. में दिल्ली के तख्त पर सैयद वंश का मुबारक खां आसीन हुआ उसने शम्सुलमुल्क सिकन्दर तुहफा को बयाना का शासक बनाया। मुबारक खां के पूरे शासन के दौरान मेवाती विद्रोही बने रहे 1451 ई. में दिल्ली पर लोदी वंश की स्थापना हुई, जिसकी स्थापना बहलोल लोदी ने की। लोदी ने अहमद खां जलवानी को बयाना का शासक नियुक्त किया। बहलोल लोदी के बाद सिकंदर लोदी दिल्ली का सुल्तान बना तो उसका झगड़ा बयाना के गर्वनर सुल्तान शर्फ से हो गया (अहमद खां जलवानी का पुत्र) वह अपने पिता की मृत्यु के बाद बयाना का गर्वनर बना था। अहमद खां जलवानी बहलोल लोदी के नाम का खुतवा पढ़ा करता था। किन्तु सुल्तान शर्फ ने सिकंदर लोदी के नाम का खुतवा पढ़ने से मना कर दिया इस कारण सिकंदर लोदी ने 1492 ई. मे बयाना पर आक्रमण कर दिया।[13] 1517 ई. में इब्राहिम लोदी दिल्ली का सुल्तान बना।[14] 1526 ई. मे फरगना (मावरून नहर अथवा ट्रान्स-ऑक्सियाना क्षेत्र का उत्तरी भाग था, जो अब रूस के तुर्की प्रान्त का एक भाग है)[15] के शासक बाबर ने इब्राहिम लोदी पर आक्रमण कर दिया और पानीपत के प्रथम युद्ध में 21 अप्रैल 1526 ई. को इब्राहिम लोदी को पराजित कर दिया।[16] इस युद्ध के परिणामस्वरुप दिल्ली सल्तनत का अध्याय समाप्त हो गया और भारत में एक नई सत्ता का उदय हुआ जो इतिहास में मुगलवंश के नाम से जानी जाती है।

पानीपत की पहली लड़ाई के बाद बाबर दिल्ली और आगरा का स्वामी तो हो गया, किन्तु हिन्दुस्तान का सम्राट बनने के लिए कई विकट विरोधियो और शक्तिशाली शत्रुओं से मोर्चा लेना वाकी था, तब कहीं हिन्दुस्तान का सम्राट होने की बात सोची जा सकती थी।

बाबर को हिन्दुस्तान का सम्राट बनने के लिए मेवाड़ के शासक राणा संग्राम सिंह (साँगा) से युद्ध करना अवश्यमभावी था। इस बीच बाबर ने बयाना पर अधिकार करने के लिए मंहदी ख्वाजा को भेजा और ठीक उसी समय राणा साँगा भी बयाना पहुँचा और उसने बयाना के दुर्ग को घेर लिया। उस समय निजाम खां बयाना का शासक था। साँगा ने निजाम खां से बयाना का किला छीन लिया और बाबर देखता ही रह गया। बाबर समझ गया कि उसे हिन्दुस्तान में रहना है तो साँगा से निपटना होगा। अत: 1527 ई. में खानवा के मैदान में दोनों के मध्य घमासान युद्ध हुआ जिसमें अन्तिम विजय बाबर की हुई। जिस प्रकार पृथ्वीराज चौहान की पराजय के 335 साल बाद तक हिन्दु नरेश पराजय और अधीनता की टीस झेलते रहे, ठीक उसी प्रकार राणा साँगा की पराजय के पूरे 350 साल बाद तक हिन्दुस्तान इस्लाम के अधीन हो गया।[17] इसी क्रम में औरंगजेब की क्रूरता, कठोरता और धर्मान्धता ने इस क्षेत्र के हिन्दुओं को मुगल सत्ता के बिल्कुल खिलाफ कर दिया। 17 वीं शताब्दी आते आते आगरा, मथुरा, कोइल (अलीगढ़) मेवात की पहाढियाँ तथा आमेर राज्य की सीमाओं से लेकर उत्तर में दिल्ली से मेरठ, होड़ल, पलवल तथा फरीदाबाद से लेकर दक्षिण में चम्बल नदी के पार गोहद तक जाट जाति का खूब प्रसार हो गया। इस कारण यह विशाल क्षेत्र 'जटवाडा' के नाम से विख्यात होने लगा। ये जाट मुस्लिम सत्ता के लिए मेवातियों से भी अधिक बड़ा सिरदर्द साबित होने लगे।[18]

मुगल सम्राट औरंगजेब ने अपने जीवन के अन्तिम 25 वर्ष दक्षिण भारत में बिताए थे। जब वह दक्षिण भारत में मराठों के साथ जीवन और मरण के संघर्ष में रत था तब उत्तर भारत पर उसकी पकड़ कमजोर पड़ गई। हिन्दुओं ने स्थान-स्थान पर विद्रोह प्रारंभ कर दिए तथा साम्राज्य की जडें हिला दीं।

भरतपुर का जाट राजवंश सिनसिनीवार कबीले से सम्बन्धित है। इस वंश का संस्थापक मदनपाल था जो कि जादौन राजपूत वंश से सम्बन्धित बताया

जाता है। मदनपाल के पिता का नाम तहनपाल था जो बयाना का शासक था। मदनपाल के वंश में बालचन्द नाम के एक व्यक्ति ने एक जाट स्त्री से विवाह किया जिसके दो पुत्र उत्पन्न हुए इन पुत्रों का नाम क्रमश: सिजय तथा विजय रखा गया। जाट स्त्री से उत्पन्न होने के कारण सिजय और विजय को जादौन राजपूत समुदाय ने अपनी जाति में स्वीकार नही किया। तब इन दोनों ने अपने को अपने पैतृक गाव "सिनसिनी" के नाम पर सिनसिनीवार कहना प्रारंभ कर दिया। इसी वंश में बृज नामक एक जमींदार ने मुगल शासक औरंगजेब के विरुद्ध संघर्ष किया तथा वह मारा भी गया। इसके पश्चात ही जाटों का मुगल साम्राज्य से संघर्ष हुआ। बृज का छठा पुत्र चूडामन जाट हुआ जिसने गोकुला एवं राजाराम के बाद जाटों का नेतृत्व किया।[19]

वदनसिंह को भरतपुर के जाट राज्य का संस्थापक माना जाता है। अपने प्रारंभिक जीवन में वह चूडामन का सहयोगी था तथा मुगल साम्राज्य के विरुद्ध जाटों के विद्रोह में उसका योगदान प्रमुख था। चूडामन के बाद उसका पुत्र मोहकम सिंह उसका उतराधिकारी बना। बदन सिंह की मोहकम सिह से अनवन हो गई अत: वह भागकर आमेर के शासक सवाई जयसिंह से मिल गया।[20] उसकी सहायता से जयसिंह ने थूण पर आक्रमण किया। मोहकम सिंह ने अपनी पराजय निकट देखकर बारूद में आग लगा दी तथा खजाना लेकर रातों रात भाग गया। जयसिंह ने थूण के किले की ईट से ईट बजा दी तथा उस भूमि को गधों से जोतकर हल चलवा दिया। यह घटना सन् 1722 ई. की है। इस सफलता से प्रसन्न होकर जय सिंह ने वदनसिंह को ब्रजराज की पदवी दी तथा उसे जाट क्षेत्र का शासक घोषित कर दिया।[21] बदले में बदन सिंह ने जय सिंह को 83000 रुपये की पेशकश कीं। फिर भी बदन सिंह ने कभी भी अपने को नरेश घोषित नही किया तथा वह अपने को आमेर का सामंत कहा करता था। 1756 ई. में बदन सिंह की मृत्यु हो गई किन्तु मृत्यु से पहले उसने सूरजमल को अपना दत्तक पुत्र घोषित कर दिया सूरजमल के कार्यकाल को दो भागों में बाँटा जा सकता है प्रथम काल लगभग 1752 से 1756 तक "कुवरबहादुर" के रूप में तथा दूसरा 1756 से 1765 तक भरतपुर के स्वतंत्र शासक के रुप में।

सूरजमल ने अनेक युद्धों में भाग लिया तथा कुशल प्रबंधन कर राज्य का संचालन किया दिसम्बर 1763 ई. में सूरजमल ने बिलौचियों के अन्तिमगढ़ फर्रुखनगर जीता तथा तत्पश्चात नजीब पर भी आक्रमण किया। इसी युद्ध में 25 दिसम्बर 1763 ई. को उसे वीरगति प्राप्त हुई।[22] सूरजमल के बाद जवाहर सिंह भरतपुर की गद्दी पर बैठा। 27 अगस्त 1768 ई. को जवाहर सिंह की मृत्यु हो गई फिर उसका छोटा भाई रतन सिंह राजा बना, किन्तु 11 अप्रैल 1769 ई. को रुपानन्द गुंसाई द्वारा रतनसिंह की हत्या कर दी गई। रतन सिंह के बाद जवाहर सिंह के बेटे केसरी सिंह 12 अप्रैल 1769 ई. को भरतपुर की गद्दी पर बैठा। केसरी सिंह की अल्पवयस्कता के कारण रतन सिंह का सौतेला भाई नवल सिंह वास्तविक शासक बन गया। उसी के समय में सौंख की प्रसिद्ध लड़ाई हुई तथा जाट पराजित हुए विजयी मराठों ने भरतपुर को खूब लूटा तथा धनकौर की लड़ाई में मुगलो ने जाटों को बुरी तरह पराजित किया। 1775 ई. में नवल सिंह की मृत्यु हो गई और उसके स्थान पर रणजीत सिंह नाबालिंग राजा केसरी सिंह की तरफ से राज्य का संचालन करने लगा।

रणजीत सिंह के नसीब से कुछ समय बाद ही 7 अप्रैल 1777 ई. को केसरी सिंह की मृत्यु हो गई और 8अप्रैल 1777 ई. को रणजीत सिंह वास्तविक राजा बन गया।[23]

1803 ई. में अंग्रेज अफसर जनरल लेक और रणजीत सिंह के मध्य सन्धि हो गई, लेकिन यह सन्धि अधिक समय तक नही रही। जनवरी 1805 ई. मे जनरल लेक ड़ाउन वैल की सेना ने भरतपुर का दुर्ग घेर लिया, किन्तु अंग्रेज भरतपुर को नही जीत सके।[24] 6 दिसम्बर, 1806 ई. को रणजीत सिंह की मृत्यु हो गई उसके बाद रणजीत सिंह का पुत्र रणधीर सिंह 7 दिसम्बर 1806 ई. को भरतपुर की गद्दी पर बैठा। रणधीर सिंह के समय में अंग्रेजों और जाटों के सम्बन्ध कटु रहे। 7 अक्टुबर 1823 ई. को रणधीर सिंह की मृत्यु हो गई उसके बाद रणधीर सिंह का छोटा भाई बलदेव सिंह 8 अक्टूबर 1823 ई. को गद्दी पर बैठा। किन्तु बलदेव सिंह की मृत्यु डेढ़ वर्ष बाद ही हो गई। उसकी मृत्यु के बाद रणजीत सिंह के सबसे छोटे पुत्र लक्ष्मण सिंह के बेटे दुर्जनशाल ने 13 मार्च 1825 ई. को राजसत्ता पर अधिकार कर लिया। दुर्जनशाल के गद्दी पर बैठते ही अंग्रेज अफसर ऑक्टर लोनी ने (बलदेव सिंह को दिए गये वचन के अनुसार कि बलदेव सिंह की मृत्यु के बाद उसके पुत्र बलवन्त सिंह को राज्य दिला देगा) भरतपुर पर आक्रमण कर दिया।

इस पर दुर्जनशाल ने गवर्नर जनरल एम्हर्स्टन को ऑक्टर लोनी की मिली भगत के बारे में बताया तो गर्वनर जनरल ने ऑक्टर लोनी को आदेश दिया कि भरतपुर पर आक्रमण न करे। इस बात से दुखी होकर लोनी ने पद से इस्तीफा दे दिया और उसके स्थान पर 'मेटकॉफ' को नियुक्त किया गया। मेटकॉफ ने गर्वनर जनरल को समझाया और भरतपुर पर आक्रमण कर दिया और किले पर अधिकार कर लिया। दुर्जनशाल भरतपुर छोड़कर भाग गया। इस प्रकार भरतपुर अंग्रेजो के अधीन हो गया। मेटकॉफ ने बलदेव सिंह के पुत्र बलवंत सिंह को 19 जनवरी 1826 ई. को भरतपुर का राजा बना दिया। 1835 ई. मे बलवंत सिंह को शासन के पूरे अधिकार सौंप दिए। 1853 ई. में बलवंत सिंह की मृत्यु हो गई बलवन्त सिंह की मृत्यु के समय उसका पुत्र जसवंत सिंह छोटा बच्चा ही था। 1855 ई. में राजपूताना का रेजीडेन्ट सर हेनरी लॉरेन्स भरतपुर आया और उसने पोलिटिकल एजेण्ट मेजर मैरीसन को भरतपुर का शासनाधिकार सौंप दिया। 1857 ई. के प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भरतपुर राज्य काफी तनाव में रहा। विद्रोहियों के डर से जुलाई 1857 ई. को मिस्टर कोल्विन भरतपुर छोडकर भाग गया। 1871 ई. में जसवंत सिंह बालिग हो गया और उसे समस्त अधिकार सौंप दिए गये। 1893 ई. में जसवंत सिंह की मृत्यु हो गई तथा उसका पुत्र राम सिंह गद्दी पर बैठा। रामसिह न तो जनता में प्रिय था और न ही अंग्रेज उसे चाहते थे। 1900 ई. में अंग्रेजो ने उसे गद्दी से उतार कर कुछ माह के शिशु सवाई किशन सिंह को गद्दी पर बिठा दिया और शासन प्रबन्ध स्टेट कौंसिल के द्वारा किया जाता रहा। 1914 ई. में प्रथम विश्व युद्ध हुआ तो किशन सिंह ने अंग्रेजो की मदद की किन्तु कुछ समय बाद ही किशन सिंह और अंग्रेजो के सम्बन्ध बिगड गये और 27 मार्च, 1929 ई. को किशन सिंह की मृत्यु हो गई। किशन सिंह के बाद उसके 11 वर्षीय पुत्र बृजेन्द्र सिंह को भरतपुर का राजा बनाया गया और उसे पढ़ने के लिए इग्लैंड भेज दिया गया। भरतपुर की शासन व्यवस्था मैकेंजी के हाथों मे रही। 1938 ई. भरतपुर प्रजामण्डल की स्थापना की गई जिसे शासको द्वारा अवैध घोषित कर दिया। दिसम्बर 1939 ई. में प्रजामण्डल और सरकार के बीच समझौता हो गया जिसके अनुसार प्रजामण्डल का नाम बदलकर "भरतपुर राज्य प्रजा परिषद" कर दिया तथा इसके कार्यो उद्देश्यों व कार्य क्षेत्र में भी परिवर्तन किया गया।[25]

15 अगस्त, 1947 ई. को देश अंग्रेजों की दासता से स्वतंत्र हो गया। देश को जब आजादी मिली उस समय राजा और प्रजा के सम्बन्ध घृणा के उच्चतम स्तर पर थे। देश के प्रथम गृहमंत्री लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल को देश के एकीकरण का श्रेय प्राप्त है। राष्ट्रीय एकीकरण के कार्य में सरदार पटेल की सेवाऐ उन्हें आधुनिक भारत के चाणक्य की श्रेणी में ला खडा करती हैं। सरदार पटेल को उनके योगदान के कारण 'भारत का विस्मार्क' कहा जाता है।

3 अक्टूबर, 1947 ई. भरतपुर के लक्ष्मण मन्दिर पर आयोजित सभा में महाराजा ने लोकप्रिय मंत्रिमण्डल बनाकर उसमें चार मंत्रियों को शामिल करने एवं 11 सदस्यों की संविधान निर्मात्री समिति के गठन की घोषणा की दिसम्बर, 1947 ई. को प्रजा परिषद के आदित्येन्द्र एवं गोपीलाल यादव को, हिन्दू-महासभा के हरिदत्त शर्मा को एवं जमींदार किसान सभा के ठाकुर देशराज को मंत्रिमण्डल में शामिल किया गया। 18 मार्च, 1948 को अलवर, भरतपुर, धौलपुर तथा करौली रियासतों को मिलाकर "मत्स्य संघ" का निर्माण किया गया।[26] अलवर को मत्स्य संघ की राजधानी बनाया गया। महाराजा धौलपुर उदयभानु सिंह को राजप्रमुख तथा महाराजा करौली को उपराज प्रमुख और अलवर प्रजामण्डल के प्रमुख नेता शोभाराम कुमावत को मत्स्य संघ का प्रधानमंत्री बनाया गया। मत्स्य संघ का उद्घाटन केन्द्रीय मंत्री एन. वी. गाडगिल ने किया तथा इसे मत्स्य संघ का नाम श्री के. एम. मुंशी के आग्रह पर दिया गया।[27] भारत सरकार ने शंकरदेव समिति की सिफारिश पर 15 मई, 1949 ई. को मत्स्य संघ का विलय वृहद राजस्थान में कर दिया तब से भरतपुर राजस्थान का जिला बना हुआ है।[28]

संदर्भ

1. जयपुर : जिलेवार एवं सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, भरतपुर जिला, पृष्ठ 184।
2. महाराजा अरिसिंह 3, वीरविनोद, भरतपुर का जुआफियह, पृष्ठ 1637।
3. राजस्थान पत्रिका, भरतपुर विशेष, दि. 24.08.16।
4. महाराणा अरिसिंह 3, वीरविनोद, भरतपुर का जुआफियह, पृष्ठ 1636।
5. जयपुर : जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, भरतपुर जिला, पृष्ठ184।
6. महाराणा अरिसिंह 3, वीर विनोद, भरतपुर का जुआफियह, पृष्ठ 1638।
7. लक्ष्य, रीट लेवल II सामाजिक अध्ययन, पृष्ठ 491-92।
8. महाराणा अरिसिंह 3, वीर विनोद, भरतपुर का जुआफियह, पृष्ठ 1639।
9. वही, पृष्ठ 1640-41।
10. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, (1000-1707) पृष्ठ 305।
11. जयपुर : जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, (भरतपुर जिला) पृष्ठ 185-187।
12. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास (1000-1707) पृष्ठ 32।
13. जयपुर : जिलेवार सांस्कृतिक व ऐतिहासिक अध्ययन (भरतपुर जिला) पृष्ठ 188-189।
14. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, (1000-1707) पृष्ठ 193।
15. वही पृष्ठ 290।
16. वही पृष्ठ 299।
17. जयपुर : जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, (भरतपुर जिला) पृष्ठ 190।
18. वही पृष्ठ 199।
19. डॉ. अजय अग्निहोत्री, जाटों का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ111।
20. सतीश चन्द्र उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास पृष्ठ 149।
21. मनोहर सिंह राणावत, भरतपुर महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृष्ठ 10।
22. डॉ. अजय अग्निहोत्री, जाटों का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ115।
23. महाराजा अरिसिंह 3, वीरविनोद, भरतपुर की तवारीख, पृष्ठ 1643-1645।
24. जयपुर : जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, (भरतपुर जिला) पृष्ठ 199।
25. वही पृष्ठ 201।
26. लक्ष्य, रीट लेवल II, सामाजिक अध्ययन, पृष्ठ 525 (मनु प्रकाशन अजमेर)।
27. वही पृष्ठ 536।
28. वही पृष्ठ 539।

भारत छोड़ो आन्दोलन में बिहार के व्यापक स्वरूप का वर्णन

लव कुमार

शोध छात्र, इतिहास विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

वर्धा में 7-14 जुलाई, 1942 में प्रस्तावित 'भारत छोड़ो आंदोलन' की कांग्रेस की कार्य समिति की बैठक में मौलाना अबुल कालाम आजाद, सरोजनी नायडू, जवाहर लाल नेहरू, वल्लभ भाई पटेल, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, सीतारमैया, गोविंद वल्लभ पंत, फ्रुल्ल चंद घोष, सैयद महमूद, आसफ अली, जे. वी. कृपलानी गाँधी जी इत्यादि ने भाग लिया। 8 अगस्त, 1942 को कांग्रेस की बैठक बंबई में हुई। इसमें कुछ संशोधनों सहित कांग्रेस कार्य समिति का प्रस्ताव पास किया गया। बंबई के इस अधिवेशन में अबुल कालाम आजाद ने कहा था कि अब समय आ गया है जब धमकी अथवा वायदे से काम नहीं चलेगा, हमें तुरंत कोई कदम उठाना चाहिए। कांग्रेस ने तो अंग्रेजी सरकार से कोई वायदा चाहती है और न ही कोई वायदा करना चाहती है। यह उचित समय है कि कांग्रेस कोई कदम उठाए और अंग्रेजी सरकार कोई निर्णय ले।[1]

इस अधिवशन में गाँधी जी ने अपने ऐतिहासिक भाषण के अन्त में कहा कि ''मैं आपको एक मन्त्र देता हूँ- 'करो या मरो' (Do or Die)।'' 8 अगस्त की रात में कांग्रेस की बैठक रात्रि में विलम्ब से समाप्त हुई।[2] 9 अगस्त 1942 को बंबई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक के लिए एकत्र हुए कांग्रेसी नेताओं को सरकार द्वारा गिरफ्तार करने के कुछ ही घंटों बाद भारत छोड़ो आंदोलन भड़क उठा। गाँधीजी को पूना में आगाखाँ महल में तथा अन्य नेताओं को अहमदनगर में नजरबंद रखा गया। इसके विरोध में सम्पूर्ण भारत जाग उठा और अनेक स्थानों पर जुलूस, हड़ताल और सार्वजनिक सभाओं के अतिरिक्त हिंसात्मक कार्रवाइयाँ भी हुई।

अन्य प्रांतों की अपेक्षा भारत छोड़ों आंदोलन में बिहार का योगदान अभूतपूर्ण एवं सर्वोत्तम रहा। बिहार में यह आंदोलन मुख्य रूप से युवा वर्ग तथा छात्रों का आंदोलन था। बिहार कांग्रेसी कार्यकारिणी के सदस्यों को भी गिरफ्तार कर लिया गया। पटना के जिलाधिकारी डब्लू. जी. आर्चर द्वारा डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को गिरफ्तार कर लिया गया और 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' 'गाँधी जी की जय', 'राजेन्द्र बाबू की जय' के बीच बाँकीपुर जेल ले जाया गया। शाम तक फूलन प्रसाद वर्मा भी गिरफ्तार हो गये। 10 अगस्त को श्री कृष्ण सिन्हा तथा 11 अगस्त को अनुग्रह नारायण सिंह को बाँकीपुर जेल भेज दिया गया। अंग्रेजों की इस सरकारी नीति के विरोध में बलदेव सहाय ने महाधिवक्ता के पद से त्यागपत्र दे दिया। सरकार ने सामुहिक जुर्माना अध्यादेश लागू किया। 'भारत रक्षा अधिनियम' लागू करते हुए सरकार ने जिला पदाधिकारियों को यह आदेश दिया कि अग्रणी पंक्ति के सर्वश्री रामचन्द्र शर्मा, अमहरा (पटना), राम विलास सिंह (गया), रामचन्द्र चौधरी (दरभंगा), श्रीमती उषा रानी मुखर्जी (दुमका), देवनाथ सहाय (हजारीबाग), सीताराम ठाकुर (चम्पारण), तथा श्रीमंत बिहारीकार (जमशेदपुर), शिवकुमार सिन्हा (मुजफ्फरपुर), नंद कुमार सिंह (बक्सर), भुवनेश्वर प्रसाद वर्मा (मुंगेर) आदि को बिना सरकार की पूर्व अनुमति के ही गिरफ्तार किया जाए।[3]

बिहार नेशनल कॉलेज, पटना के छात्रावास में राजेन्द्र बाबू की गिरफ्तारी की खबर पहुँचते ही बड़ी संख्या में छात्रों का जत्था सड़क पर उतर आया और रैली की शक्ल में प्रदर्शन करने निकल पड़ा। दोपहर होते ही पटना के लगभग सभी स्कूल और कॉलेज के छात्र इस प्रदर्शन में सम्मिलित हो गये, जिनमें मदरसा शमशुला-उलेमा-नेरूल-हुदा के छात्र भी थे। बन्देमातरम्, हिन्दुस्तान आजाद करो तथा दूकान बंद करो का नारा लगाते हुए प्रदर्शनकारी छात्रों का विशाल समूह बाँकीपुर जेल के सामने तक पहुँचा। प्रदर्शनकारी छात्रों तथा अन्य नागरिकों की एक सभा दोपहर के बाद पटना विश्वविद्यालय पुस्तकालय परिसर में हुई, जिसमें वक्ताओं ने छात्रों को आह्वान किया कि वे पढ़ाई का त्याग कर अपनी पूरी शक्ति आन्दोलन में लगाये। वकिलों से आग्रह किया गया कि अपना प्रैक्टिस को बंद करे। दुकानदारों से 10 अगस्त को अपनी-अपनी दुकान बंद करने का अनुरोध किया गया। छात्रों का एक दल अन्य कार्यकर्त्ता कुछ रेलगाड़ियों पर कब्जा करके ड्राइवरों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने को बाध्य करते एवं ग्रामीण इलाके के लोगों को क्रांति के संदेश और विभिन्न कार्यक्रमों से अवगत कराते। ऐसी गाड़ियों को स्वराजी गाड़ी कहा जाता था। इसका जनता पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता एवं मुफस्सिल में आन्दोलन के प्रसार में गति आती।[4]

इस आंदोलन के दौरान विभिन्न कार्यक्रमों पर बल दिया गया। निर्धारित किया गया कि इस दौरान क्या-क्या करना चाहिए।

1. अध्यापक और छात्र स्कूल-कॉलेज छोड़ दें।
2. वकील और मोख्तार कचहरी जाना छोड़ दें।
3. पुलिस, सैनिक और सरकारी कर्मी अपनी-अपनी नौकरी छोड़ दें।
4. रेलवे या ऐसे संस्थानों में जहाँ सरकार के लिए सामग्री बनाई जाती है वहाँ के मजदूर हड़ताल कर दे और काम करना बंद कर दें। अन्य कारखानों के मजदूर भी काम करना बंद कर दें।
5. रेल की पटरियाँ उखाड़ी जाएँ, बड़े-बड़े पुल तोड़ दिए जाए, तार और सड़के काटी जाए।
6. कचहरी, अदालत, थाना, डाकघर आदि पर कब्जा किया जाए एवं उनपर राष्ट्रीय झण्डा फहरायी जाए।
7. चौकीदारी टैक्स और अन्य टैक्स चुकाना बंद कर दें।
8. पुलिस और सैनिकों के हथीयार छीन लें किन्तु यह काम अहिंसात्मक ढंग से किया जाए।
9. नमक बनाकर नमक कानून का उल्लंघन किया जाए।
10. किसान मालगुजारी देना बंद कर दें किंतु उन जमींदारों को जो हमारे साथ सहयोग करेंगे तथा सरकार का राजस्व देना बंद कर देंगे, उनकी मालगुजारी का कुछ भाग दिया जाए।
11. पुलिस या सैनिक लाठी या गोली नहीं चलावें।
12. मुख्य नारा ये हो- पुलिस हमारा भाई है, सेना हमारा भाई है, हिन्दु-मुस्लिम भाई-भाई, भारत आजाद, अहिंसा हमारा अस्त्र है आदि।

13. हम सभी अहिंसा के मार्ग पर चलते हुए ये सब काम करे जिसमें अंग्रेज सरकार की ताकत घटे और उनके कानूनों की उपेक्षा हो।
14. हमेशा अहिंसक रहें।
15. अधिक से अधिक जनता की सहानुभूति प्राप्त करने की हमेशा कोशिश करें।

इस आंदोलन के दौरान हमें क्या-क्या नहीं करना चाहिए-

1. हमें ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जिससे जनता की सहानुभूति खो दें।
2. बिजली और जलापूर्ति व्यवस्था की तोड़मोड़ नहीं करनी चाहिए।
3. भंगियों को हड़ताल पर जाने को नहीं कहना चाहिए।
4. ऐसा हिंसात्मक कार्य नहीं करना चाहिए जिससे किसी व्यक्ति का अंगभंग हो।

10 अगस्त को पटना मेडिकल कॉलेज के छात्रों ने सफाई कर्मचारियों को हड़ताल पर जाने का अनुरोध किया। साथ ही नर्सों को भी इस हड़ताल में समर्थन के लिए कहा। सूचना पाते ही पटना के आरक्षी अधीक्षक और जिलाधिकारी अस्पताल पहुँचे। पटना मेडिकल कॉलेज के अधीक्षक के राजेन्द्र प्रसाद का पत्र दिखाया जिसमें उन्होंने आंदोलनात्मक कार्यक्रमों में अस्पताल के काम-काज को प्रभावित नहीं करने की अपील की है। छात्रों द्वारा पत्र पर शंका व्यक्त करने के बाद तीन छात्रों के एक प्रतिनिधि मंडल को जेल में राजेन्द्र प्रसाद से मिलाया। मौके का गयदा उठाते हुए स्काई कर्मचारियों ने परिस्थिति का लाभ उठाते हुए जिलाधिकारी एवं आरक्षी अधीक्षक के समक्ष वाजिव पारिश्रमिक तथा अन्य भत्ता के भुगतान में लापरवाही की शिकायत की। इसी दिन 12:30 बजे के आस-पास कुछ आंदोलनकारियों ने नारेबाजी आरंभ कर दी। जिसमें कुछ महिलाऐं भी थी। पुलिस ने प्रदर्शनकारियों के नेताओं को गिरफ्तार कर ले जाने लगी। प्रदर्शनकारी सड़क पर लेट गये। काफी कठिनाई के पश्चात् पुलिस उसे हटाने में सफलता पाई।

10 अगस्त को ही पटना विश्वविद्यालय के पुस्तकालय परिसर में श्रीकृष्ण प्रसाद की अध्यक्षता में एक सभा हुई जिसमें दो हजार से अधिक छात्रों ने भाग लिया। सभा की समाप्ति के बाद छात्रों के विशाल समूह ने बिहार इंजीनियरिंग कॉलेज के मुख्य भवन पर झंडा फहराया। तदुपरांत प्रदर्शनकारी छात्र मुख्य पथ से होते हुए बाँकीपुर लॉन पहुँचे और वहाँ पुन: एक सभा हुई, जिसमें निर्णय लिया गया कि सचिवालय, पुलिस लाइन, न्यायालय तथा अन्य शिक्षण संस्थानों के समक्ष धरना का कार्यक्रम आयोजित किया जाएगा। छात्रों के एक समूह ने सभा स्थल के पास स्थित दो छवि गृह-एलिफिंस्टन तथा रीजेन्ट के सामने धरना देना प्रारंभ कर दिया और बाद में सिनेमा घर के अन्दर घुसकर, गृह के अन्दर घुसकर अव्यवस्था फैला दी। पुलिस ने छविगृह में जाकर छात्रों को बलपूर्वक बाहर निकाला। इस घटना से प्रभावित सिनेमा घर के मालिक ने अन्य शेष सभी शो रद्द कर दिए।

साथ ही सरकारी दमन बड़ी ही कठोरता एवं भीषणता के साथ चलाया जा रहा था। पटना जिला हिन्दू सभा की कार्यकारिणी इस आशय का प्रस्ताव स्वीकृत किया, ''जिला हिन्दू सभा, पटना की कार्यकारिणी की बैठक महात्मा गाँधी और अन्यमहान देशभक्तों को ऐसे समय में जब वे हर संभव सूत्रों से सम्मानजनक शर्त्तों पर समझौता के लिए यत्न कर रहे थे, जेल में डाल देने की सरकार की अविचारित नीति पर खेद प्रकट करती है। सरकार ने जो भीषण दमननीति देश भर में चला रखी है उस पर विशेष करके गोलियाँ चलाने एवं निहत्थे नौजवानों तथा बच्चों की हत्या करने की नीति पर शोक प्रकट करती है। सरकार को इस अविचारित तथा अबुद्धिमतापूर्ण कार्यों पर विरोध करती है एवं अपील करती है कि इसके पहले कि ''बहुत देर हो जाए, अधिक बुद्धिमतापूर्ण कार्य नीति चलाये।''[15]

बिहार के अन्य हिस्सों में भी बगावत की लहर पराकाष्ठा पर थी। 10 अगस्त को भागलपुर को छात्रों ने हड़ताल रखी, जुलूस निकाल कर अदालतों के समक्ष प्रदर्शन किया तथा जिला स्कूल और प्रमंडलीय शिक्षा अधीक्षक के कार्यालयों पर झंडा फहराया। छपरा में छात्रों का एक बड़ा जत्था 11 अगस्त को ब्रिटिश शासन विरोधी नारा लगाते हुए पहले शहर में घुमा और बाद में छपरा कोर्ट स्थित बार कौंसिल लाइब्रेरी पहुँचकर वहां बैठे लोगों से बाहर निकलने की अपील की। कुछ छात्रों ने कोर्ट भवन की खिड़कियों और दरवाजों में लगे काँच तोड़ डाले और बाद में सब-जज के कक्ष में घुसकर वहाँ बहस कर रहे एक वकील को उठाकर बाहर फेंक दिया। जिला न्यायाधीश के कक्ष में प्रवेश करते ही न्यायाधीश काम रोक कर कक्ष से बाहर आ गए। सम्पूर्ण सिविल कोर्ट का काम ठप्प हो गया। प्रदर्शनकारियों ने न्यायालय के मुख्य भवन पर तिरंगा फहराया और घोषणा की कि गिरफ्तार नेताओं की रिहाई होने तक वे स्कूल और कॉलेजों का बहिष्कार करेंगे। सिवान के डी.ए.वी. कॉलेज तथा तीन हाई स्कूलों में भी पूर्ण हड़ताल रही। स्कूल-कॉलेज के छात्रों ने कांग्रेसी नारों के साथ शहर में कवायद की और अंत में एक सभा के रूप में एकत्रित हुए। इस सभा को वासुदेव नारायण सिन्हा ने संबोधित किया।

पटना के छात्रों-युवकों की गतिविधियाँ 11 अगस्त को, सूर्योदय के साथ ही तेज हो गई थी। सुबह 6 बजे पटना मेडिकल कॉलेज के परिसर में राष्ट्रीय झंडा फहराया गया। विगत दो दिनों से शहर में चल रहे प्रदर्शन, सरकारी इमारतों पर तिरंगा झंडा फहराने की घटना तथा नारेबाजी से निबटने के लिए इस दिन पूरा सरकारी तंत्र तैयार बैठा था। प्रात:काल से ही पुलिस के सशस्त्र जवान, मजिस्ट्रेटों के साथ शहर में निरन्तर गश्त लगा रहे थे। जुलूस के निकलने की स्थिति में प्रदर्शनकारियों को रोकने के लिए बाँकीपुर लॉन के उत्तर-पूर्वी कोने पर सशस्त्र गोरखा तथा लाठीधारी पुलिस की विशेष टुकड़ियाँ तैनात की गई थी। दिन के साढ़े बारह बजे इस बिंदु पर इकट्ठी भीड़ को तितर-बितर करने के लिए घुड़सवार पुलिस को लाठी चार्ज करना पड़ा। पटना सिटी के कॉटेज ईन्डस्ट्रीज के सामने गतिरोध उत्पन्न कर रहे बीस छात्रों को पुलिस ने गिरफ्तार किया। एक अन्य घटना में पांच हजार प्रदर्शनकारियों के समूह ने, जिनमें अधिकांश छात्र तथा मालसमाली के मजदूर थे, सिटी कोर्ट में बलपूर्वक प्रवेश कर एस.डी.ओ. कोर्ट के भवन पर झंडा फहरा दिया।

11 अगस्त का दिन बिहार में लड़ी गई आजादी की लड़ाई का अविस्मरणीय दिन था। यदि इस दिवस को ''स्वतंत्रता की वेदी पर कुछ नौजवानों का पराक्रमयुक्त शहादत का दिन'' कहा जाए तो कदाचित गलत न होगा। इस दिन बिहार विधान मंडल के सामने सचिवालय के पूरबी फाटक पर अभूतपूर्व बंदोबस्त था। फाटक के अंदर और बाहर बड़ी संख्या में बंदूकधारी गोरखा जवान कार्रवाई की मुद्रा में तैयार खड़े थे। सचिवालय परिसर के बाहर आदेश की प्रतिक्षा में घुड़सवार पुलिस दस्ते के जवान चहलकदमी कर रहे थे। ताला जड़े बड़े फाटक के अंदर डी.आई.जी. मिस्टर क्रीड, सचिवालय के सार्जेण्ट मेजर मि. स्मिथ, एस.डी.ओ. उतिद नारायण पाण्डेय, डिप्टी कलेक्टर विश्वम्भर चौधरी और डी.एस.पी. अली वशीर खड़े थे।

प्रदर्शनकारियों द्वारा सचिवालय भवन पर झंडा फहराने की संभावना के मद्देनजर सुरक्षा तथा दमन की पूरी तैयारी कर ली गई थी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रतीक चिह्न सचिवालय भवन को छात्रशक्ति की गिर"त अथवा हमले से बचाने के लिए बिहार सरकार किसी भी हद तक जाने को तैयार थी। दोपहर के दो बजे तक आंदोलनकारियों का विशाल समूह सचिवालय के समक्ष इकठा हो चुका था। भीड़ ''अंग्रेजों भारत छोड़ो'' ''झंडा ऊँचा रहे हमारा'' हम सचिवालय पर झंडा फहरायेंगे'' के नारों से वातावरण गूंजायमान था। भीड़ में शामिल युवा छात्रों के उग्र तेवर को देखते हुए पदाधिकारियों के आदेश पर घुड़सवार पुलिस ने प्रदर्शनकारियों को तितर-बितर करना प्रारम्भ किया। इस क्रम में कई प्रदर्शनकारी गीरे और अनगिनत लोगों को रौदा गया। प्रतिक्रियास्वरूप भीड़ ने घुड़सवान पुलिस पर पत्थर फेंकना प्रारंभ किया। क्रोध में बौराई पुलिस लाठी के प्रहार तथा घोड़ों की टापों से प्रदर्शनकारियों को दबाने की चेष्टा कर रही थी और इसी बीच दो बजे के आस-पास पूर्वी फाटक पर एक तिरंगा फहरा दिया गया।

बिहार विधान सभा के उत्तरी खंड, जिसमें आजकल विधान परिषद् और उसका कार्यालय है, में स्थित ब्रिटिश सेना के पूर्वी कामांड मुख्यालय में बैठे सेना के अफसर शीघ्रातीशीघ्र भीड़ पर काबू पाना चाहते थे। इसी बीच भीड़ से करतल ध्वनि का गुब्बार उठा और सबकी निगाहें विधान मंडल भवन के उत्तरी

छोर पर बने कंगुरे पर जा टिकी, जहां एक तिरंगा ऱहरा रहा था। ब्रिटिश सरकार के उच्चस्थ पदाधिकारियों की देख-रेख में की गई सुरक्षा-व्यवस्था के ऊपर यह अप्रत्याशित आघात था, जिससे घटना स्थल पर उपस्थित सभी पदाधिकारी तिलमिला उठे। आक्रोश तथा बचैनी की स्थिति का आभास मि. क्रीड के व्यवहार से होता है जो साइकिल पर सवार होकर तत्क्षण विधान मंडल परिसर के पश्चिमी भाग में पहुँचे और लिखित आदेश की एक पर्ची मि. आर्चर को सौंपी। मि. आर्चर के ''फॉल इन'' के आदेश के साथ गोरखा सिपाहियों ने मुख्य द्वार पर पहुँच कर पोजीशन ले ली।

मि. आर्चर ने भीड़ के सम्मुख जाकर गरजते हुए उपस्थित जनसमूह से पूछा- ''तुम क्या चाहत हो? एक छोटे छात्र में आवेशपूर्ण जबाव दिया ''झंडा फहराना'' आर्चर की झल्लाहट बढ़ गई। उसने पुन: प्रश्न किया ''कौन-कौन झंडा फहराना चाहता है? जरा आगे आ जाए।'' थोड़ी ही देर में भीड़ को चीते हुए ग्यारह छात्र निकल कर कतार में खड़े हो गए। सबका सीना गर्व से आगे निकला हुआ और आँखे क्रोध से लाल थी। आर्चर ने कतार से शामिल छोटे छात्र से कहा ''झंडा ऱहराना चाहता है। झंडा फहराने से पहले अपना सीना खोल ले।'' अभी बात समाप्त भी नहीं हुई थी कि उक्त बालक ने अपना कुरता फाड़कर सीना आगे कर दिया। अहंकार और क्रोध में सुलगते आर्चर का संयम टूट पड़ा और उसके ''गोली चलाओ'' के आदेश के साथ ही वातावरण गोलियों की तड़तड़ाहट से गूँज उठा। अंधाधुंध गोली चलाने के परिणामस्वरूप छ: छात्रों की तत्क्षण मृत्यु हो गई जबकि एक ने अस्पताल पहुँच कर दम तोड़ दिया।

इस घटना के शहीद होने वाले छात्र थे:-

1. उमाकांत प्रसाद सिन्हा, वल्द श्री रामकुमार सिन्हा, ग्राम-नरेन्द्रपुर, पो.-हुसेनगंज, थाना-दरौली, जिला-सारण (राम मोहन राय सेमिनरी, पटना की कक्षा 11 वीं का छात्र)
2. रामानन्द सिंह, वल्द श्री लक्ष्मण सिंह, ग्राम-शहादत नगर, थाना-मसौढ़ी, जिला-पटना (राम मोहन राय सेमिनरी, पटना की कक्षा 11 वीं का छात्र)
3. सतीश कुमार झा, वल्द श्री जगदीश प्रसाद झा, ग्राम-खड़हरा, थाना-बांका, जिला-भागलपुर (पटना कॉलेजिएट स्कूल की कक्षा 11 वीं का छात्र)
4. जगपति कुमार, वल्द श्री सुखराज बहादुर, ग्राम-खराढ़ी, थाना-ओबरा, जिला-गया (बिहार नेशनल कॉलेज के द्वितीय वर्ष का छात्र)
5. देवीपद चौधरी, वल्द श्री देवेन्द्रनाथ चौधरी, ग्राम-जामलपुर, थाना-विश्वनाथ, जिला-सिलहट (मिलर हाई स्कूल के कक्षा 9 का छात्र)
6. राजेन्द्र सिंह, वल्द श्री शिवनारायण सिंह, ग्राम-बनवारी चक, थाना-सोनपुर, जिला-सारण (पटना हाई स्कूल की कक्षा 11 वीं का छात्र)
7. राम गोविन्द सिंह, वल्द श्री देवकी सिंह, ग्राम-दशरथ, थाना-फुलवारी, जिला-पटना (पुनपुन हाई स्कूल की कक्षा 11 वीं का छात्र)[6]

गोलीकांड की खबर के ऱैलते ही पटना की सभी दुकानें स्व:स्फूर्त बंद हो गई। प्रदर्शनकारी छात्रों के ऊपर हुए बर्वर हमले के विरोध में सचिवालय कर्मियों ने गर्दनीबाग से एक जुलूस निकाला, जो सरकार विरोधी नारा लगा रही थी। मेडिकल कॉलेज परिसर में भी एक सभा हुई जहां जनता ने अपने गम-गुस्से का खुलकर इजहार किया और नारे लगाए।

1942 ई. के आंदोलन में बिहार के समाजवादियों ने जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने हजारीबाग जेल से पलायन कर नेपाल के हनुमाननगर में शरण ली। वहाँ उन्होंने युवकों को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ सशक्त संघर्ष करने का प्रशिक्षण दिया। 'आजाद दस्ते' का निर्माण सरकार के विरुद्ध तोड़-ोड़ की कार्रवाई करने के लिए की गई। इस दस्ते के लोग भूमिगत रहकर जगह-जगह तोड़-फोड़ की घटना करते और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के सरदर्द का कारण बने रहे।[7] आजाद दस्ता का हाजीपुर अनुमंडल में दो महत्वपूर्ण कैम्प था, एक मोहनपुर खजबाता में, जो बाबू अक्षयवट राय, स्वामी आत्मानंद जी, ललित सिंह, अमीर सिंह के देख-रेख में था। दूसरा कैम्प वर्तमान राजापाकर प्रखण्ड के बखड़ी बड़ाई के उरखरी में बच्चन शर्मा जी के नेतृत्व में चलता था। नवाव अली बखड़ी बड़ाई के कैम्प में ही ट्रेनिंग लेते थे। अमिर सिंह की गिर"तारी के बाद जिला में र्सि एक ही आजाद दस्ता का कैम्प काम करता था जो बखड़ी बड़ाई का था। नवाब अली हमेशा पुलिस को चकमा देकर बचते रहे उनको अंग्रेजी हुकुमत गिरफ्तार नहीं कर सकी।[8] जयप्रकाश के साथ जिन समाजवादी लोगों ने इस कार्यक्रम में भाग लिया उनमें प्रमुख थे- राम मनोहर लोहिया, अरूणा आसफ अली, अच्युत पटवर्द्धन, शालिग्राम सिंह, सूरजनारायण सिंह, सीताराम सिंह, गुलाबी सोनार, योगेन्द्र शुक्ला, रामनन्दन मिश्र, गंगाशरण सिंह एवं अन्य। इन लोगों ने अपने कार्यक्रमों को जारी रखा। इसके लिए राजनीतिक इकैतियाँ की, बम बनाया और दूसरे देशों से हथीयार खरीदे। 1943 ई. के अन्त तक बिहार में करीब पन्द्रह हजार से ज्यादा लोग गिरफ्तार हो चुके थे।[9]

यदि हम केवल पूर्वी संयुक्त प्रांत और बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में हुए भारत छोड़ो आंदोलन पर नजर डाले तो हमें सहज ही यह मालूम हो जाता है कि इस समस्त क्षेत्र में उपद्रवों का एक सामान्य स्वरूप था। सरकारी कार्यालयों, पुलिस थानों, रेल मार्गो और रेलवे स्टेशनों तथा टेलीफोन और तारसंचार-व्यवस्था पर अर्थात् ब्रिटिश शासन के समस्त दृश्यमान प्रतीकों पर, बड़े पैमाने पर आक्रमण किए गए। इसका विशद विवरण आजमगढ़ के जिला मजिस्ट्रेट आर.एच. निबलेट की डायरी में दिया गया है जिसमें यह भी उल्लेख किया गया है कि लुटने के इरादे से अथवा इसके बिना भी, सरकारी संपत्ति का योजनाबद्ध तरीके के विनाश करने के उद्देश्य से भीड़ कितनी जल्दी हो जाती थी।[10] किसी भी पुलिस वाले या अदालत के चपरासी को गाँवों में जाने की हिम्मत न थी; खतरनाक समाचार लाने वाले पुलिस अधिकारी खादी पोशाक में आते थे और बताते थे कि यदि वे वर्दी पहनकर निकलते तो उनकी वर्दी फाड़ दी जाती, उन्हें मारा-पीटा जाता और उनके पत्र छीन लिए जाते।[11]

प्रांत भर में क्रुद्ध जनता तोड़-फोड़ की कार्रवाइयों में लगी रही। सारण, मुजफ्फरपुर, वैशाली, दरभंगा, मुंगेर, भागलपुर, संथाल-परगना, राँची, मानभूम, हजारीबाग एवं पलामू तक आंदोलन की तीव्रता में कुछ कमी आ गई। सरकार के दृढ़ रवैये एवं सेना के सहयोग ने आंदोलन की नींव हिला दिया। 1943 ई. के अन्त तक बिहार में करीब पंद्रह हजार से ज्यादा लोग गिरफ्तार हो चुके थे। दमन का चक्र चलाकर इस आंदोलन पर नियंत्रण कायम कर लिया गया।

संदर्भ सूची

1. Mathur, Y.B., Quit India Movement (Delhi, Pragati Publication, 1972), P. 26
2. शर्मा, एच.पी., आधुनिक भारत, पृ.-592-593
3. आर्या, जियालाल, स्वाधीनता आंदोलन और बिहार, पृ.-63-64
4. नारायण, प्रो. बलदेव, अगस्त क्रांति, पृ.-42-43
5. द सर्चलाइट, 14 अगस्त, 1942
6. आर्या, जियालाल, स्वाधीनता आंदोलन और बिहार, पृ.-72
7. दास, डॉ. प्रमोदानन्द एवं अमरेन्द्र, डॉ. कुमार, बिहार इतिहास एवं संस्कृति, पृ.-255
8. गुप्त, प्रो. राजेश्वर द्धप्रधान संपादकऋ वैशाली की गौरव-गाथा, अभिधा प्रकाशन, पृ.-302
9. दास, डॉ. प्रमोदानन्द एवं अमरेन्द्र, डॉ. कुमार, बिहार इतिहास एवं सस्कृति, पृ.-255
10. Niblett, R.H., The Congress Rebellion in Azamgadh, August-September 1942, S.A.A. Rizvi (ed.), Allahabad, 1957.
11. Bihar State Archives, Patna, Freedom movement collection, File No. 47, Report of the District Magistrate, Munger to Chief Secretary, Bihar, September, 1942.

भारत में राज्यपाल का पद : वर्तमान परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में

डॉ० अल्पना व्यास

सहायक आचार्य, चौधरी बल्लूराम गोदारा राजकीय कन्या महाविद्यालय, श्रीगंगानगर ह्यराजस्थानऋ

सारांश-भारतीय सविधान में राज्यपाल का एक महत्वपूर्ण स्थान है। राज्य सरकारों की कार्यपालिका में राज्यपाल व मंत्रिपरिषद होती है उससे परिलक्षित होता है कि भारत में राज्यों में भी संसदात्मक व्यवस्था है। राज्यपाल कार्यपालिका का वैधानिक प्रधान है जो की एक प्रतिष्ठितऔर, सर्वोतम सामाजिक संस्था तथा एक कानूनी आवश्यकता बन गया है विभिन्न शक्तियों वाला यह पद अपनी गरिमा लिए हुए है केंद्रीय सरकार का अभिकर्ता और राज्य सरकार का वैधानिक प्रधान यह दोहरी भूमिका में तालमेल बनाये रखता है।

मुख्य शब्द- संविधान, राज्य, राष्ट्रपति, गरिमा, प्रतिनिधि, राज्यपाल, व्यवस्था आदि।

प्रस्तावना-गणतंत्रात्मक राष्ट्र भारत सम्पुर्ण विश्व में अपना विशिष्ठ महत्व रखता है। विश्व के संविधानो की अनूठी विशेषताओं को अपना कर अपनी प्रशासनिक व्यवस्थाओं में प्रमुख स्थान दिया है, उन्ही मे से एक है राज्यपाल का पद। भारतीय सविधान जहाँ समूचे देश के लिए एक राष्ट्रपति अर्थात संवैधानिक प्रधान की व्यवस्था करता है वहीं संविधान का अनुच्छेद 153 राज्यों में राज्यपाल को एक संवैधानिक शासक के रूप में पदासीन करने की व्यवस्थाकी स्वीकृति भी प्रदान करता है। राज्य प्रशासन में सर्वोच्च पद राज्यपाल का होता है और यह पद राष्ट्रपति द्वारा नामित व्यक्ति प्राप्त करता है न कि अमेरिका की तरह जनता द्वारा निर्वाचित व्यक्ति। 1952-1955 तक राज्य के महाराजा को ही प्रमुख बनाया गया था बाद में अर्थात 1 नवम्बर 1956 से सभी राज्यों के गवर्नरों को राज्यपाल कहा जाने लगा दिल्ली, अंडमान निकोबार द्वीप समूह तथा पांडिचेरी में उपराज्यपाल पद है जबकि यही पद लक्षद्वीप चंडीगढ़, दमन व दीव, दादर व नागर हवेली में प्रशासक कहलाता है। राष्ट्रपति राजनाथ कोविंद के शब्दों में - ''राज्यपाल राज्य का सरंक्षक और मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता है और देश के संघात्मक ढांचे में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।'' राज्यों की कार्यपालिका में राज्यपाल और मंत्रिपरिषद होने के कारण ही राज्यों में संसदात्मक व्यवस्था दर्शाती है, राज्यपाल जोकि कार्यपालिका का प्रधान होता है यह पद नेहरु युग से लेकर अब तक काफी उतार चढाव के रहे है, बाद के वर्षो से राज्यपाल का पद गरिमामय, परम श्रेष्ठ, सामाजिक संस्था और एक वैधानिक आवश्यकता बन गयी है।

नियुक्ति:- व्यवहारिक तथ्य राज्यपाल की नियुक्ति के लिए कुछ परम्पराएँ है जैसे-एक राज्य में किसी दूसरे राज्य का व्यक्ति राज्यपाल नियुक्त होगा उसी राज्य का निवासी नहीं ताकि वह उस राज्य की राजनीतिक शक्तियों दलीय विचारधाराओ से स्वतंत्र रहें, निष्पक्षता और पारदर्शिता से निर्णायक भूमिका अदा करे, दसरा प्रान्तीयवाद से उपर रहें और समस्त नागरिकों के हितों के सरंक्षण करें, हालाँकि कुछ उदाहरण अपवाद के है। जैसे-पश्चमी बंगाल में एच.सी. मुखर्जी का राज्यपाल बनना, मैसूर के महाराजा को मैसूर में राज्यपाल नियुक्त करना अत: राज्यपाल का चयन न तो प्रत्यक्ष जनता द्वारा और न ही निर्वाचक मंडल द्वारा बल्कि प्रत्यक्ष रुप से राष्ट्रपति के द्वारा किया जाता है, इसीलिए उसे केंद्र सरकार का अभिकर्ता भी कहा जाता है। राष्ट्रपति द्वारा नियुक्ति का लाभ यह है कि राज्यपाल व मुख्यमंत्री की शक्तियों में अनावश्यक गतिरोध उत्पन्न नहीं होता है।

भूमिका, शक्ति व कार्य-शक्तियों के परिप्रेक्ष्य में राज्यपाल को विभिन्न प्रकार की शक्तियां प्राप्त है जैसे- "संविधान के A-163 के अनुसार किसी भीराज्य के राज्यपाल को स्वविवेकीय शक्तियां प्राप्त है, स्वविवेकी: कार्यों में वह इस बात के लिए बाध्य नहीं है कि वह मन्त्रिपरिषद की सलाह स्वीकारें। स्वविवेकीय शक्ति जैसे-पूर्ण बहुमत के अभाव में मुख्यमंत्री का चयन स्वविवेक से करना -1952 में श्री बलराजगोपालाचारी मद्रास विधान मंडल के सदस्य भी नहीं थे और न ही कांग्रेस दल को बहुमत प्राप्त था, लेकिन फिर तत्कालिक राज्यपाल श्री प्रकाश ने श्री बलराजगोपालाचारी को स्वविवेकीय शक्ति के आधार पर मुख्यमंत्री पद ग्रहण करने हेतु आमंत्रित किया।

बहुमत सिद्ध करने हेतु दल का समय निश्चित करना।

आपातकालका एजेंट और फिर राज्य का वास्तविक शासक बन जाता है।

कार्यकारी शक्तियां

"मुख्यमंत्री की नियुक्ति-राज्य की मंत्रिपरिषद का प्रधान मुख्यमंत्री होता है जिसकी नियुक्ति राज्यपाल करता है और उसी की परामर्श से अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। "उच्चपदाधिकारियों की नियुक्ति, अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीशों, महाधिवक्ता और राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों की नियुक्ति कर सकता है, पदच्युत नहीं। "उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति हेतु राष्ट्रपति को परामर्श देना। "राष्ट्रपति को प्रतिवेदन प्रेषित करना। यदि राज्यों में संवैधानिक संकट उत्पन्न हो।

यदि संवैधानिक शासन असफल हो इसी प्रतिवेदन पर ही । 356 के अंतर्गत राज्य में राष्ट्रपति शासन लागु किया जाता है, लेकिन राज्यपाल की सिफारिश मानने हेतु राष्ट्रपति बाध्य नहीं है इसे में राज्यपाल राज्य का वास्तविक प्रधान बन जाता है।

विधायी शक्तियां- A-164 के अनुसार राज्यपाल विधानमंडल का अंग होता है।

A-174 के अनुसार- राज्य विधान मंडल की बैठक बुलाने, सत्रावसान करने तथा अधिवेशनो को स्थगित, विघटित करने की शक्ति है

'' ।-175 उसे राज्य विधान मंडल के दोनों सदनों की सयुंक्त बैठकों को संबोधन करने का अधिकार है

ये अनुच्छेद राज्यपाल को राज्य की विधायी शक्तिया प्रदान करते हैं करते है राज्य विधानसभा में पारित किये जाने वाले किसी भी विधेयक को रद करने पुनाराब्लोकें हेतु वापस लौटाने तथा उसे राष्ट्रपति के पास प्रस्तावित करने की भी शक्ति प्राप्त है अर्थात राज्य विधानसभा का कोई भी विधेयक हो उस पर राज्यपाल का अनुमोदन आवश्यक है और राज्य में आपातकाल के समय किसी भी प्रकार आध्यादेश जारी कर सकता है।

वितीय शक्तियां-"राज्यपाल की वितीय शक्तियां भी राष्ट्रपति के समान है बिना राज्यपाल की सिफारिश के वित्त विधेयक विधानसभा में प्रस्तावित नही किया जा सकता, न ही वितीय विषयों को प्रभावित करने वाले विधेयकों का संसोधन प्रस्ताव रखा जाता है दुसरे सब्दो में राज्य बजट अर्थात वार्षिक आय - व्यय विवरण पर राज्यपाल की मोहर (अनुमति) के पश्चात् ही या सुनिचित करने पर ही प्रस्तुत किया जाता हैं "राज्य की संचित निधि राज्यपाल की अधिकार में रहती है'' पंचायतो एवम नगरपालिका की वितीय स्थिति का मुल्यांकन करने हेतु राज्य वित्त आयोग का गठन भी राज्यपाल द्वारा किया जाता हैं न्यायिक शक्तियां'' राज्यपाल की न्यायिक शक्तियां राष्ट्रपति के समकक्ष है, वह अपने राज्य की कार्यपालिका क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आने कानूनों के विरुद्ध अपराधियों के दंड में कटौती करने, उन्हें स्थगित करने अथवा क्षमा करने का अधिकार प्राप्त है लेकिन मृत्युदंड को माफ करने की शक्ति राज्यपाल के अधीन नहीं है। "राज्य के उच्च न्यायालय से विचार-विमर्श पश्चात जिला न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदस्थापन व पदोन्नति के मामलों में अपना नीतिगत निर्णय भी लेता है। वर्तमान स्थिति- ये सिद्ध है कि लोकतंत्र को सुचारू रूप से चलने के लिए राज्यपाल की महती भूमिका है आज भारत देश संस्थागत समस्याओ के दायरे में घिरा हुआ हैं अर्थात लोकतांत्रिक समाज नेतृत्त्व और सदाचार के संकटमय परिधि में है, हालाँकि यह पद गरिमामय तो है, क्योकि यह पद राज्यों में राष्ट्रपति के सामान शक्ति लिए हुए है परन्तु पिछले कुछ वर्षों में यह पद राजनीतिक तत्वों के निर्देशन में रहकर कार्य करता है, इसकी नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा होने के कारण इसका झुकाव केंद्र की ओर बहुतायत रहता है और राज्यों में दलीय प्रभुत्व के कारण मंत्रिमंडल प्रभावित रहता है। राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में निहित होने के कारण राज्य की समस्त कार्यवाहियां उसी के नाम से सम्पन्न होती है इस प्रकार वह केंद्र सरकार का पेतिनिधि की भूमिका में होता है, साथ ही अनेक मामलों में वह केंद्र -राज्य को जोड़ने वाली कड़ी भी है। लेकिन समसामयिक सन्दर्भो में देखे तो आज इस पद की गरिमा की अवनति हो रही है ,राजनीतिज्ञों को जब राज्यपाल पद पर आसीन किया जाता है तो वे अपनी दलगत राजनीति से बाहर नहीं निकल पातें और न ही संवैधानिक व्यवस्था या प्रणाली को गंभीरता से लेते है। 1967 से पूर्व व्यवस्था सुचारू थी क्योकि केंद्र व राज्यों में एक ही दल की सरकारें हुआ करती थी बाद में अलग अलग सरकारे बनने लगी और उनमे विवाद होने लगें और उन विवादों में राज्यपाल का पद भी अनछुआ न रह सका।

संविधान निर्माताओं ने केंद्र-राज्यों के मधुर, सहज संबंधों के लिए जिन प्रावधानों को अपनाया या निर्धारित किए, उनसे ही संकट उत्पन्न होने लगे।

कारण-वर्तमान में राज्यपाल का पद एक ऐसा राजनीतिक हथियार बन गया है जिसकी कमान केंद्र सरकार के हाथों में है जिसका प्रयोग अपने विरोधी दलों की राज्य सरकारों के विरुद्ध होती है। आज राज्यपालों की नियुक्ति में राजनीतिक दावपेचों का भाव अधिक मजबूत बना हुआ है न कि संवैधानिक मर्यादा का। "इनकी नियुक्ति का आधार या मंशा विरोधी दल की सरकार को अस्थिरता देना भी होता है ताकि सत्ता संतुलन की समाप्ति हो।'' विपक्ष नेताओ तथा सेवानिवश्त्त अधिकारी भी रूचि लेने लगे है ऐसे व्यक्ति राजभवन को ही स्थानीय राजनीति का अखाडा बना देते है वहीं से अन्य राज्यों की राजनीति में हस्तक्षेप करते है। "ऐसे करते समय राज्यपाल अपनी गरिमा को भूल जाते है इसी कारण राज्यपाल पर यह आरोप लगाया जाता है कि वह केंद्र सरकार की कठपुतली, राज्य सरकार के कामकाज में अनावश्यक हस्तक्षेप करने वाला पद कहा है।'' एक आक्षेप यह भी है कि राज्यपाल निष्पक्षता और दूरदर्शिता के गुणों का प्रभाव उसके कार्यों में दिखाई नहीं देता है, बल्कि उसके कार्यों में केंद्र सरकार की अधीनता का प्रभाव दिखाई देता है। "राज्यों में जो हम गतिरोध की स्थिति देखते है उसका प्रमुख कारण राज्यों में राष्ट्रपति का अनावयश्क हस्तक्षेप राज्यपाल के द्वारा करवाया जाना है, राष्ट्रपति साशन की स्फिारिश करना, राज्य के विधेयकों को राष्ट्रपति के अनुमोदन हेतु आरक्षित रखना है 'मार्च 1969 में राजस्थान के राज्यपाल डॉ. सम्पूर्णानंदने कांग्रेस पार्टी के मोहनलाल सुखाडिया को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया और जब श्री सुखाडिया विधानसभा में बहुमत सिद्ध नहीं कर पाए तो राज्यपाल ने राष्ट्रपति शासन की सिफारिश कर दी, जबकि विपक्ष ने बहुमत सिद्ध करने का विश्वास भी प्रकट किया था।

सुझाव

कुछ महत्वपूर्ण सुझाव जोकि इस दिशा में सार्थक सिद्ध हो सकते है-

"राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त राज्यपाल का पद गरिमामय है लेकिन वर्तमान सन्दर्भ में देखें तो यह पद शक्तिहीन तथा राजनीतिक सत्ता धारकों के हाथों की कठपुतली बन गया है ऐसे में आवश्यकता है इस पद की गरिमा व औचित्य को पुन: स्थापित करने की।'' राज्यपाल का पद भी विकेन्द्रित शासन व्यवस्था में केंद्र के समान ही राष्ट्रपति के समकक्ष हो। "राजनीतिक दल निष्पक्ष हो ताकि समूची राज्य व्यवस्था का सन्चालन नीतिगत हो, पक्षपात रहित हों तथा प्रजातंत्रात्मक मूल्यों पर आधारित हो।'' राज्यपाल पद की गरिमा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए विभिन्न आयोगों का गठन होता रहा है और इन आयोगों ने समय-समय पर सार्थक सुझाव भी दिए है इस दिशा में राजमन्नार समिति ने राज्यपाल की कार्यशैली के बारे में अनेक सुझाव दिए, साथ ही सरकारिया आयोग जोकि केंद्र - राज्य संबंधों पर विचार करने में चर्चित है ,ने राज्यपाल की भूमिका को सार्थक बनाने और विवादों से बचने हेतु उपयोगी व सार्थक सुझाव दिए है "राज्यपाल की नियुक्ति को अंतिम रूप देने से पूर्व केंद्रीय सरकार को सम्बन्धित राज्य के मुख्यमंत्री से परामर्श करने की परम्परा को जारी रखा जाना चाहिए ,इससे राज्यपाल न केवल केंद्रीय सरकार का मनोनीत व्यक्ति वरन सम्बंधित राज्य का भी मानी व्यक्ति होगा।'' संविधान में ऐसी व्यवस्था की जाये कि राष्ट्रपति राज्यपालों की नियुक्ति प्रख्यात न्यायाधीशो, अधिवक्ताओं और प्रशासकों की समिति की सलाह पर करें।

"सक्रिय राजनीतिज्ञों की नियुक्ति पर रोक, इसके स्थान पर नियुक्ति का आधार योग्यता हों।'' सार्वजनिक जीवन में अद्वितीय गुणधारी व्यक्तियों को नियुक्त किया जाए। "स्थानान्तरण पर रोक,-इसके कारण केंद्र सरकार दबाव रखती है और अपने राजनीतिक हितों की पूर्ति का माध्यम बना लेती है इस पर रोक लगाई जाए अर्थात स्थानान्तरण में राज्यपालों की इच्छा को विशेष महत्व दिया जाए। "राज्यपालों में सुरक्षा भाव बनाए रखने हेतु उन्हें हटाए या बर्खास्त करने की अनुश्चित परम्परा को समाप्त किया जाये ताकि अपने कर्तव्य की पालना सुरक्षित भाव से सुनिश्चित कर सकें'' केंद्रीय सरकार द्वारा अपनी स्वार्थ सीधी हेतु राज्यपाल का उपयोग न करने की व्यवस्था हो अथार्थ राज्यपाल को राजनीतिक मामलों से डर रखा जाये "दल बदल या दलीय विद्रोह के कारण यदि कोई मुख्यमंत्री बहुमत सिद्ध न कर सके या अल्पमत में रह जाये तो इसका निर्धारण विधानसभा में हो न की राजभवन में। "विधानसभा में किसी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत न मिलाने की स्थिति में चुनाव पश्चात यदि गठ्बंदन अस्तित्व में आता है तो उसके नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करने के बजाय किसी बड़े दल के नेता को बहुमत सिद्ध करने का आदेश तथा पर्याप्त समय दिया जाए। "राष्ट्रपति शासन का अनुमोधन या सिफारिश तभी किया जाये जब अति भाव हो इसके अलावा वह अपनी स्वविवेक कुशलता, योग्यता, गुणों के अधर पर राज्य स्तर पर ही निस्तारण करे।'' इतनी सामर्थ्य राज्यपाल रखे की अपने राजभवन को सतारूढ़ दल के नेताओं का आश्रस्थल या राजनीति की अखाडा न बनने दे।

शिक्षा-द्वारा आमजन के जीवन स्तर को अन्नत करने में प्रयत्नशील रहकर ही भ्रष्टाचार और लाल फीताशाही को रोकने में सतत प्रयत्नशील "सतारूढ़ दल व विपक्ष के नेताओं के साथ सामंजस्य स्थापित कर अपनी गरिमा पद की साख बनाए रखे" न्यायप्रियता का गुण रखते हुए राज्यपाल को अपना एक सरल आदर्श जनता के समक्ष रखे "राज्यपाल के अपवाद जनक स्थितियो स्वविवेक निर्णयों की न्यायपालिका की न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति के दायरे में रखा जाये।

निष्कर्ष- '1970 में हरगोविन्द पन्त औरे डॉ. रघुकुल तिलक के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा गठित संविधान पीठ ने अपने निर्णय में स्पष्ट किया था की राज्यपाल केंद्र द्वारा नियुक्त अवश्य होता है लेकिन वह केंद्र सरकार का नौकर नही है राष्ट्रपति द्वारा उसकी नियुक्ति एकसंवेधानिक व्यवस्था है अत: यह आवश्यक नही की वह राष्ट्रपति की इच्छा प्रयत्न अपने पद पर आशिन रहे, वह अपने कार्य क्षेत्र में पर्याप्त स्वतन्त्र होता हैं।'' एक साथ अनेक महत्वपूर्ण कार्य राज्यपाल द्वारा सम्पादित किये जाते है केंद्र-राज्य के बीच एक कड़ी का काम करता है और संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में भी महत्वपूर्ण भूमिका है, लेकिन 1-356 के अधीन विशेष परिस्थितियों में जब घोषणा की जाती है तब वह केंद्र सरकार का अभिकर्ता बन जाता है,परामर्शदात्री मंत्रिपरिषद के उपलब्ध नहीं रहने पर भी वह सरकार की निरंतरता को बनाये रखता है यह पद ऐसा है कि इसके बिना राज्य प्रशासन को सुचारू रूप से चलायमान करना काल्पनिक है क्योकि ये एक ऐसा संवैधानिक प्रमुख है जिसका कोई विकल्प नहीं हो सकता। आज के सन्दर्भ में राज्यपाल को लेकर दो विकल्प ही दृष्टीगोचर होते है -इस पद का अंत किया जाए या इसे दलगत राजनीति से दूर रखा जाये, यह इसलिए आवश्यक हो जाता है क्योकि राज्य सरकारें इस पद का दुरूपयोग न कर सकें या राज्यपाल के खिलाफ मोर्चा न बना लें, इसीलिए दोनों में से किसी एक विकल्प को स्वीकार आवश्यक हो जाता है। ये विशेष बात है कि हमारे संविधान में परिसंघीय शासन को सस्थान दिया गया है संघ व उसकी इकाइयों के अतिरिक्त राज्य प्रशासन हेतु अलग व्यवस्था है। संविधान दोनों शासन के लिए अलग अलग उपबंधो की भी व्यवस्था करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. जैन पुखराज-भारतीय शासन व राजनीति-1998 साहित्य भवन, आगरा
2. डॉ. फड़िया-भारतीय शासन व राजनीति- साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
3. RSTV राज्यसभा न्यूज चेनेल कार्यक्रम -राज्यपाल का विवेकाधिकार, 16 मई 2018
4. विकिपीडियाण्बवउ
5. अमरउजाला.com 17 मई 2018
6. पाण्डेय जे .एन.-भारतीय संविधान
7. बसु D.D.-भारत का संविधान- एक परिचय-2015 L.N. BOOKS PUBLICATIONS LMT-INDIA
8. भारतीय सरकार और राजनीति -नीरज पब्लिकेशन 2017

भारतीय उच्च शिक्षा पर ई-गवर्नेंस का प्रभाव

Impact of e-governance on Indian Higher Education

चन्दना शर्मा

शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.)

सारांश

विकास लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये शिक्षा एक बुनियादी कारक है। उच्चि शिक्षा राष्ट्रीय विकास की आवश्यक कुंजी है। बदलते परिपेक्ष्यक में शिक्षा का महत्व् ई-गवर्नेंस तथा ई-एजुकेशन ने ले लिया है जिसके माध्यम से विद्यार्थियों को विभिन्न सुविधायें जैसे – ई-लाइब्रेरी, ई-अनुशासन, ई-बुक. ई-मैंग्जीन. ई-कोर्सेज इत्याइदि प्राप्तई हुई है। ई-गवर्नेंस के आने से धन के साथ-साथ समय की भी बचत हुई है। जिससे शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार आया है। एवं विदयार्थियों को अपना कार्य कराने के लिये ऑफिस के चक्कर लगाने से बचत हुई है। तथा कर्मचारियों द्वारा कुछ हद तक घूस लेने में भी कमी हुई है। जिससे ई-गवर्नेंस में, पारदर्शिता एवं जबावदेहता आयी है। दुर स्थित व्याक्ति इससे लाभान्वित होकर ई-गवर्नेंस से भरपूर लाभ प्राप्त कर रहा है। इस लेख के माध्य्म से उच्चन शिक्षा में ई-शिक्षा के आने से विद्यार्थियों को सुविधायें प्राप्तु हुई है। जो राष्ट्रीय विकास में सहायक सिद्ध हुई है।

की वर्डस : ई-गवर्नेंस, स्टूईडेन्ट डवलपमेंट, ई-शिक्षा, इन्टइरनेट, सुशासन

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत सरकार ने 1970 में इलेक्ट्रॉनिक विभाग की स्थापना की है।[1] तथा 1977 में भारत में ई-गवर्नेंस की दिशा में पहला कदम था। सूचनाओं और संचार पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए यह लाया गया। 1980 के दशक की शुरूआत की बात की जाये तो उस समय कम्यूटर का प्रयोग बहुत कम संगठनों तक ही सीमित था। 1980 के दशक के अन्त में बड़ी संख्या में सरकारी अधिकारियों तक कम्यूमटरों का विस्तार हो चुका था। परंतु कम्यूटर ज्याादातर 'वर्ड प्रोसेसिंग' के लिए ही उपयोगी थे। संचार प्रौदयोगिकी की प्रगति में सुधार स्वरूप कम्यूटरों की बहुमुखी प्रतिभा का विकास हुआ। और साथ ही साथ कई सरकारी विभागों ने कागजों की आबा जाही पर नजर और आई.सी.टी. का उपयोग करना प्रारंभ किया। जिला सूचना प्रणाली के बाद नेशनल सैटेलाइट आध ारित कम्यूनटर नेटवर्क का 1987 में आरंभ हुआ।

प्रस्तावना

"उच्च शिक्षा वह है जो हमें केवल ज्ञान नहीं देती बल्कि हमारे जीवन में अस्तित्व के साथ समरसता लाती है'' – रवीन्द्रनाथ टैगोर ई-गवर्नेंस ऐसा तंत्र है। जिसके द्वारा सरकारी काम में पारदर्शिता बढने के साथ ही साथ सेवायें जनता तक तुरंत पहूँच रही है। बहुत से लोग जो ऑफिसों के चक्ष्कर लगाने से डरते थे अब वे लोग भी इस सेवा का घर बैठे इस सेवा का भरपूर लाभ उठा रहे हैं। ई-गवर्नेंस के आने से दफतरों में कर्मचारियों की समय सीमा निघारित कर दी गई है जिससे सरकारी कार्या में लेटलतीफी और रिश्वतखोरी पर भी लगाम लगी है। अब ऑनलाइन नागरिक सेवा पोर्टल (जैसे–आय–जाति–निवास। आधार कार्ड। राशन कार्ड। पैन कार्ड) आदि ऑनलाइन उपलब्ध हैं।[2] जिसके लिये अब हमें किसी कार्यालय के बाहर जाकर लाइन में नही लगना पड़ता है और घर बैठे ही कितनी भी दूर स्थित इंटरनेट की सहायता से ई-सर्विस का लाभ उठाया जा सकता है।

ई-लाइब्रेरी की अवधारणा

भारत में डिजिटल लाइब्रेरी का प्रारंभ 1990 के दशक के बीच में सूचना प्रौद्योगिकी एवं इंटरनेट के विस्तार के परिणाम स्वरूप केन्द्र सरकार की सहायता के साथ हुआ। डिजिटल लाइब्रेरी में सूचना और ज्ञान की उपयोगिता में वृद्धि की क्षमता है। डिजिटल लाइब्रेरी समय के साथ-साथ जगह की बाधाओं को भी दूर करने में प्रयासरत है।

ई-लाइब्रेरी एक ऐसी लाइब्रेरी है जहाँ पर किताबों के साथ-साथ अन्य पठन सामग्री का डिजिटल रूप रखा जाता है एवं कम्यूटरों के द्वारा इसकी उपलब्धिता मुहैया होती है। डिजिटल माध्यम के द्वारा सामग्री को स्थानीय स्तिर पर रखा जा सकता है या 'दूर' होने पर भी इंटरनेट के माध्यम से यह उपलब्ध हो सकती है।[3]

डिजिटल लाइब्रेरी से लाभ

5.50.623 किताबें डिजिटल लाइब्रेरी में उपलब्ध है।[4] इस लाइब्रेरी के द्वारा इंटरनेट की मदद से कई किताबों को फ्री में पढा जा सकता है। तथा इंटरनेट की मदद से किताबों को डाउनलोड किया जा सकता है। और जब चाहे तब पढ़ा जा सकता है। उच्च शिक्षा में शोध कार्य में भी इससे काफी मदद मिलती है। शोध गंगा तथा शोध गंगोत्राी से इंटरनेट की मदद से शोध से संबंधित साहित्य प्राप्त किया जा सकता है। जिससे शोध कार्य में आसानी होती है और शोध सही दिशा की ओर की ओर अग्रसर होता है।

मोबाइल फोन और इंटरनेट टेक्नोरलॉजी

दूरसंचार प्रणाली को 3 जी अथवा तीसरी पीढ़ी की संचार प्रणाली के रूप में जाना जाता है। इंटरनेट के जरिये ई-गवर्नेंस ने एक नई क्रांति ला दी है। मोबाइल फोन और इंटरनेट टेक्नोलॉजी ने मानव के जीवन में अहम बदलाव किया ह। पहले मानव की मूलभूत आवश्यवकता रोटी, कपड़ा और मकान हुआ करती थी परंतु अब राष्ट्रीय विकास की मुख्य धारा के साथ शिक्षा, स्वाथ्य और रोजगार के साथ मोबाइल और इंटरनेट की आवश्यकता हो रही है। क्योंकि आज का युग कमप्यूटर इंटरनेट पर आधारित टेक्नोलॉजी का युग है।

ई-शिक्षा (e- education)

ई-शिक्षा कमप्यूटर या मोबाइल पर इंटरनेट के माध्यम से ग्रहण की गई शिक्षा है। इसमें पाठय सामग्रियों का वितरण पेन ड्राइव के द्वारा या ऑडियों या वीडियों क्लिपों के माध्याम से इंटरनेट की सहायता से प्रदान किया जाता है। और घर बैठे ही इंटरनेट के जरिये ज्ञान को अर्जित किया जा सकता है। इंटरनेट का यदि ज्ञान है तो इस शिक्षा का लाभ लिया जा सकता है।

ई-शिक्षा से लाभ

यह शिक्षा स्वंय से भी की जा सकती है तथा यह शिक्षा 24 घंटे उपलब्ध है। ई-शिक्षा के लिए विद्यार्थियों को कक्षा में उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं होती है इसके लिये इंटरनेट की उपयोगिता आवश्यक है।[7] जिससे विद्यार्थी घर पर रहकर ही शिक्षा ग्रहण के साथ साथ अन्य कार्य भी कर सकता है।

अमेरिकी शिक्षा विभाग के द्वारा 12 वर्षो के शोघ के परिणामस्वरूप ज्ञात हुआ कि आमतौर पर उच्चतर शिक्षा के लिए प्रत्यक्ष पाठयक्रमो का अनुसरण करने वाले विद्यार्थियों की तुलना में ऑनलाइन अध्ययन करने वाले छात्रों का प्रदर्शन काफी बेहतर रहा था[8]

सूचना तकनीकी और सुशासनः सुशासन के प्रयासों में सूचना तकनीकी ने गति प्रदान की है। आज सूचना तकनीकी के ही कारण शासन की पहुँच उच्च से निम्न तथा निम्नत से उच्च स्तर तक पहुँच बनाने में संभव हुई है। वर्तमान समय में सूचना तकनीकी सुशासन के हाथ में एक हथियार के रूप में है जिसके द्वारा वह कुशासन को दूर करने में प्रयासरत हो रहा है। सूचना के अधिकार के प्रयोग के द्वारा प्रशासन पर निगरानी का भार आया है। एक अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि भारत में सर्वोच्च न्यायालय के मामले ऑनलाइन होने से जो लंबित मामले थे उनमें गिरावट देखी गई है।[9] सुशासन की मांग इसलिये है क्योंकि कुशासन को सभी जगह आसानी से देखा जा सकता है। भ्रष्टाचार, घोटाले तथा सरकारी धन को हड़पने की नीति आये दिन बढ़ रही है। ऐसी प्रव्रत्तियों को रोकने के लिए सुशासन एक आवश्यक कारक सिद्ध हुआ है।[10]

समस्यायें: सूचना तकनीकी विकास आज भी जन – जन तक नहीं पहुंचा है। इसका लाभ अभी देश में व्याप्त सभी वर्गों को प्राप्त नहीं हो रहा है। सूचना तकनीकी अभी भी सूचित अथवा शिक्षित तवकों के लोगों तक पहुँचने में सफल हुई है। निचले स्तर की बात की जायें तो अभी भी उसमें कमियॉ है। सूचना तकनीकी ने पाश्चात्यीकरण एवं अन्य सामाजिक बुराइयों में बढोत्तरी की है। जो सुशासन की स्थाानीय स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव डालते है।[11]

निष्कर्ष एवं सुझावः

ई-गवर्नेंस उच्चत शिक्षा संस्थानों के कुशल प्रशासन के साथ उभरकर सामने आया है। सूचना तकनीकी के साथ ई-गवर्नेंस नए मॉडल के रूप में सामने आया है। जो वर्ग शिक्षा की मुख्य धारा से दूर है। यदि सूचना तकनीकी उन तक नहीं पहुँचते वे वर्ग विकास की मुख्य धारा में पीछे छूट जायेंगें। जिससे उनकी भागीदारी राष्ट्री के विकास में प्रतिकूल प्रभाव डालेगी।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. http: //arc.gov.in/11 threpARC- 11th Report (10/3/2011)
2. ministry of electronics and information technology Government of india Home page- अभिगमन तिथि 4 जनवरी 2018
3. अजीत मंडन। योजना मासिक पत्रिका। दिसम्बपर 2018 पेज नं. – 45-46 आई.एस.एस.एन.-0971-8397
4. अजीत मंडन योजना मासिक पत्रिका दिसम्बर 2018 पेज नं.- 45 आई.एस.एस.एन. 09718397
5. अशोक कुमार. ज्ञान ज्योति ई-जनरल वोल्यूम 1. ईसू 2 (जनवरी – मार्च 2012) आई.एस.एस.एन. 2250-348

6. रंजीता कपूर और निशिता केलकर (नेशनल कौन्फसरेन्शन ऑन न्यू होनजोन्स) इन.आई.टी. – एन.सी.एन.एच. आई.टी. 2013) ई-गवर्नेस : हायर एजूकेशन इन रूलर एरिया
7. केर्कमेन। एल (2004) ऑनलाइन शिक्षा की सुविधा छात्रों को आकर्षित करती है। क्रानिकल ऑफ फिलान्थ्रो पी 16(6) 11-12' ऐन्डर्मिक सर्च प्रोग्राम के डेटाबेस से उद्धत
8. मीन्ह बी : टोयामा बाई: मर्फी आर बकिंग जोन्सट (2009) इवेल्यू शन ऑफ एवीडेन्स बेस्डा प्रैक्टिस इन ऑनलाइन लर्निग: ए मेटा एनालिसिस और रिव्यूफ ऑफ ऑनलाइन लर्निग
9. गुप्ताव सुनील। सिंह कमल कुमार। सुशासन। राष्ट्रीय पुस्तक न्याय भारत। 2016 पेज नं. – 218 आई.एस.बी.एन. 978-81-237-6316-3
10. फडिया। डां. बी.एल. राजनीति विज्ञान। प्रश्न पत्र-2। प्रतियोगिता साहित्य सीरीज। पेज नं. – 4.86 कोड 2005
11. गुप्ता सुनील। सिंह कमल कुमार। सुशासन राष्ट्रीय पुस्तक न्याशस भारत, 2016 पेज नं.- 219-220 आई.एस.बी.एन. 9781-237-6316-3

कल्याणकारी राज्य और सामाजिक सुरक्षा

प्रतिभा सिंह

प्रवक्ता, नागरिक शास्त्र, इंडियन गर्ल्स इंटर कॉलेज, प्रयागराज

सारांश

कल्याणकारी राज्य (welfare state) शासन की वह संकल्पना है, जिसमें राज्य नागरिकों के आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। काल्याणकारी राज्य अवसर की समानता, धन-सम्पत्ति के समान वितरण, तथा जो लोग अच्छे जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं को स्वयं जुटा पाने में असमर्थ है उनकी सहायता करने जैसे सिद्धान्तों पर आधारित है। यह एक सामान्य शब्द है जिसके अन्तर्गत अनेकानेक प्रकार के आर्थिक एवं सामाजिक संगठन आ जाते हैं। कल्याणकारी राज्य सरकार का एक रूप है जिसमें राज्य समान अवसर के सिद्धांतों, धन के समान वितरण और नागरिकों के लिए सार्वजनिक जिम्मेदारी के आधार पर नागरिकों की आर्थिक और सामाजिक भलाई की रक्षा करता है और उन्हें बढ़ावा देता है, जो स्वयं का लाभ उठाने में असमर्थ हैं।

समाजशास्त्री टीएच मार्शल ने आधुनिक कल्याणकारी राज्य को लोकतंत्र , कल्याण और पूंजीवाद के विशिष्ट संयोजन के रूप में वर्णित किया है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था के एक प्रकार के रूप में, कल्याणकारी राज्य, सरकारी संस्थाओं को स्वास्थ्य और शिक्षा के लिए धन देते हैं, साथ ही व्यक्तिगत नागरिकों को प्रत्यक्ष लाभ देते हैं। आधुनिक कल्याणकारी राज्यों में जर्मनी और फ्रांस, बेल्जियम और नीदरलैंड शामिल हैं, साथ ही नॉर्डिक देश, जो नॉर्डिक मॉडल के रूप में जानी जाने वाली प्रणाली को रोजगार देते हैं। कल्याणकारी राज्य के विभिन्न कार्यान्वयन तीन श्रेणियों में आते हैं: (i) सामाजिक लोकतांत्रिक, (ii) उदारवादी, और (iii) रूढ़िवादी।

आधुनिक कल्याणकारी राज्य को दो भागों में बांटा गया है

1) राज्य के आवश्यक एवं अनिवार्य कार्य

2) राज्य के ऐच्छिक कार्य

भारतीय संविधान के भाग 4(ए) में उल्लेखित नीति निर्देशक तत्व

लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा अत्यन्त प्राचीनकाल से ही भारत में रही है। प्राचीन युग में राज्य को नैतिक कल्याण का साधन माना जाता था। रामायण काल में तो रामराज्य की अवधारणा इसी लोककल्याणकारी राज्य के सिद्धान्त पर आधारित थी। हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों में यहां तक लिखा है कि राजा अपनी प्रजा का हित नहीं चाहता और अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता, वह नरक का अधिकारी होता है। चाणक्य हो या फिर अरस्तु या प्लेटो, इन्होंने भी लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को महत्त्व दिया है। लोक कल्याणकारी राज्य से तात्पर्य किसी विशेष वर्ग का कल्याण न होकर सम्पूर्ण जनता का कल्याण होता है। इस तरह सम्पूर्ण जनता को केन्द्र मानकर जो राज्य कार्य करता है, वह लोक कल्याणकारी राज्य है।

लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के सम्बन्ध में इंसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेस के विचार हैं: "लोककल्याणकारी राज्य से तात्पर्य ऐसे राज्य से है, जो अपने सभी नागरिकों को न्यूनतम जीवन स्तर प्रदान करना अपना अनिवार्य उत्तरदायित्व समझता है।" प्रो. एच.जे. लास्की के अनुसार: "लोककल्याणकारी राज्य लोगों का ऐसा संगठन है, जिसमें सबका सामूहिक रूप से अधिकाधिक हित निहित है।"

सामाजिक सुरक्षा

अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार ''वह सुरक्षा जो समाज, उचित संगठनों क माध्यम से अपने सदस्यों के साथ घटित होने वाली कुछ घटनाओं और जोखिमों से बचाव के लिए प्रस्तुत करता है, सामाजिक सुरक्षा (Social security) है। ये जोखिम रोग, मातृत्व, अयोग्यता (disability), वृद्धावस्था तथा मृत्यु हैं। इन संदिग्धताओं की यह विशेषता होती है कि व्यक्ति को अपना तथा अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए नियोक्ताओं द्वारा सुरक्षा प्रदान की जाये।

इस परिभाषा के अनुसार सरकारी नीति में कई सुरक्षात्मक कार्य सम्मिलित होन चाहिए। ऐसी सभी योजनाओं को सामाजिक सुरक्षा में लिया जाना चाहिए जो कर्मचारी को बीमारी के समय आश्वस्त कर सके अथवा जब श्रमिक कमाने योग्य न हो तो उस लाभान्वित कर सकें तथा उसे पुन: कार्य पर लगाने में सहायक हों।

विलियम बैवरिज के अनुसार, ''सामाजिक सुरक्षा योजना एक सामाजिक बीमा योजना है जो व्यक्ति को संकट के समय अथवा उस समय, जब उसकी कमाई कम हो जाय तथा जन्म, मृत्यु या विवाह में होने वाले अतिरिक्त व्यय की पूर्ति के लिए लाभान्वित करती है"।

इस प्रकार सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम से आशय यह है कि उससे व्यक्ति को जीवन में कुछ जोखिमों तथा आकस्मिक घटनाओं के भार से सुरक्षा मिलती है। जो भार वह स्वयं वहन करने में असमर्थ होता है, सामाजिक सुरक्षा योजना के माध्यम से वहन कर सकता है। हानि की मात्रा एक प्रकार से समाज के कई लोगों में बंट जाती है। सामान्य तौर से सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों में निजी स्तर पर किये गये सुरक्षा कार्य सम्मिलित नही किये जाते।

इतिहास

'सामाजिक सुरक्षा' शब्द का उद्‌गम औपचारिक रूप से सन् 1935 से माना जाता है, जबकि प्रथम बार अमरीका में सामाजिक सुरक्षा अधिनियम पारित किया गया। इसी वर्ष बेरोजगारी, बीमारी तथा वृद्धावस्था बीमा की समस्या का समाधान करने के लिए सामाजिक सुरक्षा बोर्ड का गठन किया गया। तीन वर्ष बाद सन् 1938 में 'सामाजिक सुरक्षा' शब्द का प्रयोग न्यूजीलैण्ड में किया गया जब पहली बार बड़े पैमाने पर यह योजना लागू की गयी। सन् 1941 में अटलांण्टिक चार्टर के अन्तर्गत सभी देशों का उद्योग के सभी क्षेत्रों में सामाजिक सुरक्षा को प्रोत्साहित करने को कहा गया; जिससे श्रमिकों के रहन-सहन के स्तर तथा उनकी आर्थिक दशा में सुधार हो सके। सन् 1943 में सर विलियम बैवरिज द्वारा एक नयी योजना बनायी गयी। उन्होन अपनी रिपोर्ट 'सामाजिक बीमा एवं सम्बन्धित सेवाएं' के अन्तर्गत ब्रिटिश जनता को अभाव से मुक्ति दिलाने के लिए सामाजिक सुरक्षा योजनाएं बनाने का सुझाव दिया। इस शब्द का प्रयोग एल.सी. मार्श द्वारा प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट 'कनाडा में सामाजिक सुरक्षा' तथा नेशनल रिसोर्सेज बोर्ड, संयुक्त राज्य अमरीका की रिपोर्ट में भी किया गया, जिसक अन्तर्गत सामाजिक सुरक्षा एवं सामाजिक सहायता का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व केन्द्रीय शासन पर डाला गया।

सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का क्षेत्र

सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के अन्तर्गत अग्रलिखित बातें सम्मिलित की जाती है :

1. अनिवार्य सामाजिक बीमा,
2. ऐच्छिक सामाजिक बीमा के कुछ प्रारूप,
3. सरकारी कर्मचारियों के लिए कुछ विशिष्ट योजनाएं जैसे बोनस, भविष्य निधि (प्रोविडेण्ट फण्ड) का भुगतान,
4. पारिवारिक भत्ता,
5. सामाजिक सहायता,
6. जन-स्वास्थ्य सेवाएं।

आधुनिक सामाजिक सुरक्षा योजना

आधुनिक समय में (1) सामाजिक सहायता, तथा (2) सामाजिक बीमा का मिश्रण जिसमें विभिन्न जोखिमों के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान की जाती है। सर्वव्यापी योजना का होना तथा पर्याप्त सुरक्षा का प्रावधान होना- ये दो बातें इस कार्यक्रम की विशेषता हैं जिससे सामाजिक सुरक्षा योजना के प्रति श्रमिक आत्मीयता अनुभव करे तथा कठिनाई के क्षणों में इस पर आश्रित रह सके।

समाजिक सुरक्षा के आवश्यक तत्व

सामाजिक सुरक्षा योजना के लिए निम्नलिखित तत्व आवश्यक है :

1. योजना का उद्देश्य बीमारी की रोकथाम या इलाज करना होना चाहिए अथवा अनिच्छापूर्वक घटित हानि से सुरक्षा के लिए आय की गारण्टी देना जिससे श्रमिक पर निर्भर व्यक्ति लाभान्वित हो सके।
2. यह प्रणाली एक निश्चित अधिनियम के अन्तर्गत लागू की जानी चाहिए जो व्यक्तिगत अधिकारों तथा उत्तरदायित्व के प्रति सरकार, अर्द्ध-सरकारी संस्थाओं, गैर-सरकारी संस्थाओं को सामाजिक सुरक्षा सुविधाएं प्रदान करने के लिए बाध्य करे।
3. यह प्रणाली सरकारी, अर्द्ध-सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा प्रशासित की जानी चाहिए।
4. सुरक्षा को भली-भांति नियमित करने की दृष्टि से उपलब्ध सुविधाओं के प्रति कर्मचारियों का विश्वास होना आवश्यक है कि आवश्यकतानुसार उन्हें सामाजिक सुरक्षा सेवाओं के अन्तर्गत किये गये प्रावधान उपलब्ध होंगे तथा उनकी किस्म और मात्रा पर्याप्त होगी।

भारत में सामाजिक सुरक्षा

भारत में सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी सुविधाएं देने के लिए ये अधिनियम बनाये गये हैं :

(1) कर्मचारी प्रीविडेण्ट फण्ड अधिनियम, 1952
(2) कोयला खान भविष्य निधि एवं विविध उपबन्ध अधिनियम, 1948
(3) श्रमिक क्षतिपूर्ति संशोधित, 1984
(4) प्रसूति लाभ अधिनियम, 1961
(5) राज्य बीमा संशोधित अधिनियम, 1984
(6) कर्मचारी भविष्य निधि एवं विविध व्यवस्थाएं अधिनियम, 1952

(7) वृद्धावस्था पेन्शन योजना

(8) अनुग्रह भुगतान संशोधित अधिनियम, 1984

(9) सामाजिक सुरक्षा सर्टीफिकेट, 1982

(10) कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 आदि।

निष्कर्ष

लोक-कल्याणकारी राज्य का विचार नया नहीं है। किन्तु वर्तमान समय में जिस अर्थ विशेष में इस अवधारणा का प्रयोग किया जाता है, वह आधुनिक औद्योगीकरण की देन है। लोक-कल्याणकारी राज्य के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्र रूप से सर्वांगीण विकास का अवसर प्रदान किया जाता है।

लोक-कल्याणकारी राज्य का तात्पर्य अपनी सम्पूर्ण जनता का सर्वांगीण विकास करना तथा लोकहित करना है। लोकहित से तात्पर्य राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से व्यक्ति की अवसर की असमानता को दूर कर उसकी साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था करना होता है। इस व्यवस्था का उद्देश्य किसी समुदाय विशेष,वर्ग विशेष अथवा समाज के किसी अंग विशेष का हित साधन मात्र नहीं होता, अपितु सम्पूर्ण समाज का हित साधन करना है।

लोक-कल्याणकारी राज्य के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त नियोजन का सहारा लिया है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में लोक-कल्याण के लिए अनेक योजनाएँ स्वीकार की गई हैं। शिक्षा व स्वास्थ्य के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की सुविधाओं का विस्तार हो रहा है। आर्थिक क्षेत्र में भूमि सुधार, चकबन्दी और रोजगार सम्बन्धी कानून बने हैं। मजदूरों के कल्याण के लिए अनेक कानूनों का निर्माण किया गया है।

यद्यपि वर्तमान समय तक भारत में पूर्ण लोक-कल्याणकारी राज्य की स्थापना सम्भव नहीं हो सकी है और चारों ओर गरीबी, बेकारी व अज्ञानता का साम्राज्य है, लोकन इस लक्ष्य की ओर बढ़ने के निरन्तर प्रयास किए जा रहे हैं और यह आशा की जाती है कि समय की गति के साथ-साथ इस दिशा की ओर बढ़ने के हमारे प्रयासों में तीव्रता और गति आएगी।

सन्दर्भ

- Bartholomew, James (2015). The Welfare of Nations. Biteback. p. 448. ISBN 9781849548304.
- Francis G. Castles; et al. (2010). The Oxford Handbook of the Welfare State. Oxford Handbooks Online. p. 67. ISBN 9780199579396.
- Kenworthy, Lane. Social Democratic America. Oxford University Press (2014). ISBN 0199322511
- Koehler, Gabriele and Deepta Chopra; "Development and Welfare Policy in South Asia"; London: Routledge (2014).
- Blank, R.M (2001), "Welfare Programs, Economics of", International Encyclopedia of the Social & Behavioral Sciences, pp. 16426–16432, ISBN 9780080430768
- Nadasen, Premilla, Jennifer Mittelstadt, and Marisa Chappell, Welfare in the United States: A History with Documents, 1935–1996. (New York: Routledge, 2009). 241 pp. ISBN 978-0-415-98979-4
- Walker, Robert (1 November 2004). Social Security And Welfare: Concepts And Comparisons: Concepts and Comparisons. McGraw-Hill Education (UK). p. 4. ISBN 978-0-335-20934-7.
- "International Labour Standards on Social security". www.ilo.org.
- Frans Pennings (1 January 2006). Between Soft and Hard Law: The Impact of International Social Security Standards on National Social Security Law. Kluwer Law International B.V. pp. 32–41. ISBN 978-90-411-2491-3.

स्वछंदतावादी नाट्य-प्रवृत्तियाँ

डॉ० रेणु कुमारी

वी.के.एस. यूनिवर्सिटी, आरा, भोजपुर, बिहार

स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि स्वछंदता कलाकार शास्त्रीय मान्यताओं से अलग हटकर नाट्य-सृजन करता है। वह आत्मविश्वास के साथ अपनी वस्तु का विस्तार काव्य के के आंतरिक गुणों तथा अपनी वैयक्तिक प्रतिभा द्वारा करता है। शास्त्रीय नाटककारों की वैयक्तिक चेतना तथा प्रतिभा पूर्व निर्धारित सीमाओं तक ही सम्पुटित रह जाती है, उसकी कृतियों में काव्य के बाह्य गुणों का दिग्दर्शन हो पाता है, आंतरिक सौष्ठव पुरानी परम्परा में आवेष्टित हो जाता है।

विषय-चयन में स्वछंदतावादी नाटकों का लेखक पूर्णरूपेण स्वतंत्र है। शास्त्रीय नियम है कि काव्य के लिए गौरवपुर्ण विषय ही उपयुक्त होते हैं, विशेषकर दुखांत नाटक, महाकाव्य, मुक्तक आदि के लिए। स्वछंदतावादी दृष्टिकोण इससे बिल्कुल भिन्न है। विक्टर ह्यूगो का प्रसिद्ध कथन है कि काव्य के लिए न कोई अच्छा विषय है, न बुरा, केवल अच्छे और बुरे कवियों में भेद होना चाहिए। अल्प से अल्प और महान् से महान् विषय पर स्वछंदतावादी नाटक लिखे जा सकते हैं। तब भी कुछ ऐसे विषय हैं जो स्वछंदतावादी अभिव्यक्ति के लिए अधिक समीचीन होते हैं। जैसे सुदूर देश और सुदूर काल से संबंधित विषय अथवा ऐसे विषय जिनमें कल्पना की क्रिया और तीव्र अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की पर्याप्त संभावना हो। ऐसे ही मानव-प्रेम और प्रकृति-प्रेम आदि भी स्वछंदतावादी अभिव्यक्ति के लिए उचित विषय हैं। इसी कारण स्वछंदतावादी नाटककार प्राचीन इतिहास, पुराण, कथाओं आदि से विषय प्राप्त करते हैं। आंग्ल साहित्य के सर्वश्रेष्ठ स्वछंदतावादी नाटककार शेक्सपियर के बहुत से नाटकों की कथावस्तु इतिहास संवलित है। और उनके कतिपय सुखांत नाटकों में मानव-प्रेम की ही प्रधाानता है। इसी प्रकार हिन्दी के प्रतिनिधि स्वछंदतावादी नाटककार श्री जयशंकर प्रसाद ने भी अपने नाटकों के लिए सुदूर काल के इतिहास को ही चुना है। वैसे, हम यह भी कह देना चाहते हैं कि इस विषय में कोई स्वीकृत बंधन नहीं है।

स्वछंदतावादी नाटकों में निरूपण-शैली का बहुत बड़ा महत्व होता है। यह आवश्यक नहीं कि यथार्थ को बिल्कुल छोड़ दिया जाए, ऐसा करने से तो रचनाएँ कृत्रिम और पलायनवादी हो जायेंगी। आवश्यकता इस बात की है कि यथार्थ जीवन का निरीक्षण कल्पना और भावना के प्रकाश में किया जाए और उन्हीं के माधयम से अभिव्यक्ति हो। स्वछंदतावादी काव्यशास्त्र में क्रियात्मक कल्पना का बहुत बड़ा महत्व है, इसी रचनात्मक प्रज्ञा द्वारा अनेकता में एकता का सूत्रपात होता है। कल्पना और भावना के माध्यम से देखने पर जीवन में एक नवीन रंगीनी और आकर्षण दिखाई देता है। ''रोमांटिक साहित्य की वास्तविक उत्स भूमि वह मानसिक गठन है जिसमें कल्पना के अविरल प्रवाह से घन-संश्लिष्ट निविड़ आवेग की ही प्रधानता होती है। इस प्रकार कल्पना का अविरल प्रवाह और निविड़ आवेग-ये दो निरंतर घनीभूत मानसिक प्रवित्तियाँ ही उस व्यक्तित्व प्रधान साहित्य रूप की प्रधन जननी है, परन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि ये दोनों एक-दूसरे से अलग रहकर काम करती हैं। वस्तुतः इनका पृथक्-पृथक् नाम देना और स्वरूप बताना केवल आलोचना की सुविध के लिए परिकल्पित है, काव्य की अभिव्यक्ति में ये दोनों वृत्तियाँ वस्तुतः एक-दूसरे से इस प्रकार गुंथी रहती हैं कि अलग करना कठिन होता है, केवल सहृदय इतना अनुभव कर सकता है कि कहाँ एक की मात्रा अधिक है और दूसरी की कम, कहाँ वे करीब हैं और कहाँ एक ने दूसरी को दबोच लिया है।''

रोमांटिक नाटकों में इसीलिए उल्लास का अंश सदा विद्यमान रहता है। यह उल्लास दुखांत नाटकों में भी मिलता है। स्वछंदतावादी (साहित्य) नाटकों में यौवन के प्रेम, देश-प्रेम, साहस, ृौर्य, आत्म-बलिदान आदि का आदर्शोन्मुख निरूपण होता है। स्वछंदतावादी नाटकों में यथार्थ वस्तु का आदर्शीकरण ऐसे कौशलपूर्ण और चमत्कारपूर्ण ढंग से किया जाता है कि वह नूतन रूप धरण कर लेता है और कवि की कोमल कल्पना के स्पर्श से उसमें भावोन्मेष की अद्‌भुत ृाक्ति आ जाती है। अगर रचनाकार का उद्देश्य इसमें जीवन को प्रतिबिंबित करना है तब तो वस्तु में और भी गहरा ऐन्द्रजालिक प्रभाव आ जाता है, तभी उसकी प्रतिभा तथा सच्ची कल्पना का आदर्श रूप भी स्पष्ट हो पाता है।

स्वछंदतावादी नाटकों में प्रचुर वैविध्य विद्यमान रहता है। ृास्त्रीय नाटकों में कथावस्तु का क्रम अपने सीधे निश्चित मार्ग पर अग्रसर होता है। प्रत्येक अंग का संपूर्ण नाटक में स्थान निश्चित होता है, जो बदल नहीं सकता। वस्तु की सफाई और सादगी को बहुत बड़ा गुण माना जाता है तथा अनावश्यक और गौण महत्व के अंश काटकर निकाल दिए जाते हैं।

स्वछंदतावादी नाटक विविधता से भरे-पूरे रहते हैं। प्रमुख कथा के साथ-साथ अनेक अंतर्कथाएँ मिली रहती हैं, जिनका संबंध कभी प्रत्यक्ष और कभी परोक्ष रूप से दिखाई पड़ता है। फलतः कथावस्तु का विस्तार बढ़ जाता है और अनेक घटनाओं, परिस्थितियों, पात्रों, मनःस्थितियों आदि का समावेश संभव हो जाता है। इस वैविध्य को समाविष्ट करने के लिए क्रियात्मक कल्पना और कलात्मक अभिरूचि का सहारा लिया जाता है, परंपरागत नियमों का नहीं।

ऊपर कहा गया है कि स्वछंदतावादी नाटक परंपरा और प्राचीन नियमों से नितांत मुक्त है। वह शास्त्रीय बंधनों को अस्वीकार करता है। तीनों अन्वितियों की प्रायः अवहेलना की जाती है, जैसा शेक्सपियर अथवा प्रसाद के नाटकों में देखा जा सकता है। परम्परावादह नाटककार अन्वितियों के बंधन से अपने नाटकों को मुक्त नहीं होने देता, फलतः उसके नाटकों में चारित्रिक वैविध्य नहीं आ पाता। उसका नायक एक प्रकार से साँचे में ढलकर निकलता है, वह साँचा शास्त्रीय नमूने का प्रतिनिधित्व करता है। परन्तु स्वछंदतावादी नाटककार के नायक का चरित्र गतिमान होता है, उसके जीवन का उत्थान-पतन की झाँकी स्वाभाविक भूमिका पर प्रस्तुत होती है। स्वछंदतावादी नाटकों की कथा एक ही स्थान पर केन्द्रित न होकर अनेक स्थानों और देशों में विकसित होती है। इसी भांति कथा के लिए देश और काल की कोई सीमा नहीं होती। एक ही नाटक में बीसों वर्ष की घटनाओं का समावेश हो सकता है, प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' को उदाहरण स्वरूप रखा जा सकता है। कार्यान्वित का निर्वाह होता है किन्तु नियमों के आधार पर नहीं वरन् सृजनात्मक कल्पना तथा लेखक की कलात्मक अभिरूचि के आधार पर। इसी भांति शास्त्रीय नाटकों के श्रेणीगत चरित्र, जिनकी सृष्टि 'औचित्व' की दृष्टि से होती है, स्वछंदतावादी नाटककारों के लिए अमान्य है। वे तो वैयक्तिक गुणों से समन्वित जीवंत पात्रों की सृष्टि करने में ही अपनी सफलता मानते हैं। इसलिए जितने प्रभावोत्पादक चरित्र स्वछंदतावादी नाटकों में मिलते हैं उतने शास्त्रीय नाटकों में नहीं। यद्यपि शास्त्रीय नाटकों के पात्रों की भी अपनी विशेषताएँ हैं।

नाटकों में द्वंद, अंतर्द्वंद की आवश्यकता पर सर्वप्रथम जर्मन दार्शनिक हेगेल ने प्रकाश डाला। अपने विचारों को स्पष्ट करने के लिए उसने प्राचीन यूनानी नाटकों का उदाहरण लिया। किन्तु नाट्य-द्वंद के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण स्वछंदतावादी नाटकों में ही मिलते हैं। उदारणार्थ, हम शेक्सपियर के दुखांत नाटकों को ले सकते हैं। पर ज्ञातव्य है कि अंतर्द्वंद केवल मन में शंका उत्पन्न होने अथवा दो विरोधी भावों के साथ-साथ उदय होने से नहीं उत्पन्न हो जाता। अंतर्द्वंद की स्थिति वह है जिसमें दो प्रबल विचारों अथवा भावनाओं के संघर्ष के कारण नायक का सारा अस्तित्व आमूल हिल उठता है। जब तक ऐसी तीव्रता न होगी, हम अंतर्द्वंद नहीं कह सकते।

उद्देश्य की दृष्टि से भी शास्त्रीय और स्वछंदतावादी नाटकों में भेद होता है। प्राचीन पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटकों द्वारा कुरूपता और भावनाओं के अतिरेक का परिमार्जन होता है। और, इस भांति जीवन में शालीनता, सौम्यता और संतुलन उत्पन्न होता है। अरस्तु का विरेचन-सिद्धांत ने केवल दुखांत नाटकों के लिए वरन् किसी अंश में सुखांत नाटकों के लिए भी लागू है। सुखांत नाटकों में हँसी द्वारा जीवन की कुरूपता और असंयम मिटाने का प्रयत्न होता है। इस प्रकार शास्त्रीय नाटक नीतिपरक है, केवल मनोरंजन प्रदान करना उसका उद्देश्य नहीं, यद्यपि प्राचीन प्रेक्षागश्हों में दर्शकगण मनोरंजन के लिए ही जाते थे। स्वछंदतावादी नाटक इस प्रकार का नैतिक उद्देश्य लेकर नहीं चलता। वह जीवन का एक ऐसा आकर्षक चित्र उपस्थित करता है जिससे हमारा मनोरंजन होता है और हमारी जीवन को समझने की क्षमता विकसित होती है। इस प्रकार के नाटकों से हमें अंतर्दृष्टि मिलती है, यद्यपि नाट्य-रचना किसी स्पष्ट नैतिक उद्देश्य से नहीं होती।

स्वछंदतावादी नाटकों में कल्पना, भावना और कवित्व का प्राचुर्य रहता है। जब वे गद्य में लिखे जाते हैं तब भी ये विशिष्ट गुण उनमें विद्यमान रहते हैं और गद्य शैली तदनरूप ढाली जाती है क्योंकि कल्पना और भावना की तीव्रता सामान्य भाषा में सफलतापूर्वक अभिव्यक्त नहीं हो सकती। इसी से हम देखते हैं कि स्पेन, इंगलैण्ड या अन्य किसी देश के स्वछंदतावादी नाटकों की भाषा में प्रगीतात्मक तत्व इतना घुला-मिला हुआ है कि उनके पठन अथवा नाट्यदर्शन से पाठक अथवा दर्शक एक अलौकिक आनंद का अनुभव करते हैं। यह प्रगीतात्मक स्वछंदतावादी नाटकों के ढाँचे का अंग बनकर जीवंत हैं। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि उपर्युक्त विशेषताओं के कारण ही स्वछंदतावादी नाटकों में अद्भुत सौष्ठव आ जाता है।

ऐतिहासिक नाटकों में स्वछंदतावादी तत्वों का समावेश

स्वछंदतावादी नाटकों के संबंध में ऐतिहासिक नाटकों पर विचार करना भी अत्यंत आवश्यक है। प्राचीन यूनानी दुखांत नाटकों में कथानक अधिकांशरूपेण प्रसिद्ध उच्च परिवारों से संबंधित कथाओं से लिया जाता था, किन्तु इस प्रकार प्राप्त सामग्री को शास्त्रीय ढाँचे में ढालकर उसका रूप सँवारा जाता था। मध्यकाल के बाद जब नाट्य रचना आरंभ हुई तब ऐतिहासिक नाटकों का प्रचलन बढ़ा। किन्तु उनके लिखने की पद्धति प्राचीन पद्धति से भिन्न थी। वस्तु-विन्यास में प्राचीन शास्त्रीय व्यवस्था का नितांत अभाव था। अन्य दोनों अन्वितियों का तो कहना ही क्या! कार्यान्विति का निर्वाह भी उस कड़ाई से नहीं होता था जैसा प्राचीन नाटकों में। ऐतिहासिक वृत्तों और वृत्तांतों को बहुत बिना अधिक घटाए-बढ़ाए नाट्य-रूप देने की चेष्टा की गई। इसके अतिरिक्त कुछ प्रसिद्ध ऐतिहासिक पात्रों को रंगमंच पर प्रस्तुत करने का उद्देश्य भी रहता था। फलतः ऐतिहासिक नाटक बनावट में ढीले, अनेक घटनाओं के संकलन मात्र थे। जीवन का विराट

चित्र खींचना ही उनका अभिप्राय था। इन नाटकों में शौर्य, प्रेम, द्वेष, प्रतिस्पर्धा आदि के प्रबल आवेगों का चित्रण हुआ और उनमें देशप्रेम का विशेष स्थान है। प्रबल भावनाओं और अनियंत्रित मानसिक आवेगों की अभिव्यक्ति के कारण स्वछंदतावादी प्रभाव सहज ही उत्पन्न होते हैं। हम कह आए हैं कि शिल्प की दृष्टि से भी ये नाटक स्वछंदतावादी नाटकों के निकट और शास्त्रीय आदर्शों से दुर हैं। अंग्रजी में मार्लो और शेक्सपियर ने अपनी प्रतिभा द्वारा ऐतिहासिक नाटकों में उनकी स्वछंदतावादी कल्पना का प्रतिफलन हुआ है। जनता ने इन नाटकों को अपनाया। 17वीं शताब्दी में जब बेनजॉन्सन ने रोमन इतिहास पर आध ारित दो क्लासिकी दुखांत नाटक लिखे तब उनका अच्छा स्वागत नहीं हुआ। शेक्सपियर का उद्देश्य मानव-जीवन की बहुरूपता को प्रतिबिम्बित करना था। आगे चलकर 19वीं शताब्दी में जर्मनी और फ्रांस में ऐतिहासिक स्वछंदतावादी नाटकों का विकास हुआ और इस संबंध में विक्टर ह्यूगो का नाम उल्लेखनीय है। सामान्यतया हम कह सकते हैं कि अपने विस्तार और वैविध्य के कारण तथा अन्य उपकरणों की दृष्टि से भी ऐतिहासिक नाटक स्वछंदतामूलक अधिक होते हैं और शास्त्रपरक कम।

सुमित्रानंदन पंत की रचना 'गुंजन' का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन

उदिप्त तालुकदार

अंशकालीन सहकारी अध्यापक, हिंदी विभाग, पांडु महाविद्यालय, तथा शोधार्थी, हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय

भूमिका

व्यक्ति विशेष द्वारा अपने अंतर्जगत की अनुभूतियों को भाषा के माध्यम से अभिव्यंजित करनेवाली कला ही साहित्य है। हमारे सामने कला के जितने रूप विद्यमान हैं, उन सभी रूपों में सौंदर्य तत्व निहित है। साहित्य भी इससे भिन्न नहीं है। साहित्य में सौंदर्य तत्व दो स्तरों पर विद्यमान रहता है- एक है वैचारिक सौंदर्य और दूसरा है भाषिक सौंदर्य। इन दोनों प्रकार के सौंदर्य की अभिव्यक्ति कमोबेश जगत में विद्यमान प्रत्येकभाषाके साहित्यकार हर दौर में करता रहता है। हिंदी साहित्य जगत में वैचारिक सौंदर्य को कलात्मक भाषा द्वारा प्रस्फूटित करनेवाले एक सुकुमार व्यक्तित्व हैं सुमित्रानंदन पंत(1900 ई.-1970 ई.)। उनके द्वारा रचित 'ग्रंथि'(1920), 'वीणा'(1927), 'पल्लव'(1928), 'गुंजन'(1932)आदि रचनाएँ साहित्यिक सौंदर्य की आभा बिखेर रही हैं।

'गुंजन' का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन

हिंदी छायावादी कविता के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत ने ऐसी कई रचनाओं की सर्जना की है जो नवीन स्थापनाओं की दृष्टि से प्रतिनिधि स्वरूप हैं। सन् 1918 से 1925 तक की कविताओं का संकलन 'पल्लव'(1928ई.)की भूमिका में पंत ने कविता के लिए नूतन मान्यताओं को स्वीकारा है। अत: 'पल्लव'की भूमिका को आधुनिक कविता का दस्तावेज माना जा सकता है। 'पल्लव'की भूमिका में उन्होंने कई नूतन स्थापनाएँ प्रस्तुत की हैं, जिनमें कविता के लिए चित्रात्मक भाषा को स्वीकारना, भावों के अनुरूप भाषा कोप्रस्तुत करना, मात्रिक छंदों को सर्वोकृष्ट बताना, कविता की रागात्मकता के लिए तुक की आवश्यकता आदि उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार पंत ने नवीन भावों की व्यंजना हेतु नवीन भाषा-शैली के निर्माण की बात कही है।'पल्लव'तथा पल्लवोत्तर छायावादी काव्यसंकलनों की कविताओं में उनकी यह विशेषता प्रस्फुटित हुई है। इसकी स्वीकारोक्ति पंत ने 'गुंजन'के विज्ञापन में भी इस प्रकार की है-

गुंजन पाठकों के सामने है। इसमें सभी तरह की कविताओं का समावेश है; कुछ नवीन प्रयत्न भी। (जोशी, 237)

इस अध्ययन में प्राय: सन् 1926 से 1932 की कविताओं के संकलन 'गुंजन'(1932)में किस प्रकार पंत ने नवीन शैली की संरचना बुनी है उसको शैलीविज्ञान के माध्यम से समझने का प्रयास किया जायेगा। रचनाकार भाषा के ध्वनि, शब्द, रूप, अर्थ आदि स्तरों पर नवीन काव्यिक-शैली का निर्माण करता है, अत: इसके विश्लेषण के लिए चयन, विचलन, समानांतरता और अप्रस्तुतविधान जैसे शैलीवैज्ञानिक तत्व प्रमुख आधार बिंदु बनते हैं। आगे इन तत्वों पर प्रकाश डालते हुए इनके आधार पर 'गुंजन'में संकलित कविताओं का सामान्य विश्लेषण किया जायेगा।

चयन

काव्यशैली के निर्माण में चयन की भूमिका को शैलीविज्ञान सर्वोपरि मानता है। शैलीविज्ञान की दृष्टि से किसी भाषा में उपलब्ध विविध भाषिक इकाइयों में से किसी एक को चुनना चयन कहलाता है। हालांकि चयन ध्वनि, शब्द, अर्थ, वाक्य, रूप आदि कई स्तरों पर होता है परंतु इनमें शब्द चयन की भूमिका सर्वोपरि होती है। शायद इसलिए सैम्युएल टेइलर कॉलरिज ने कविता को परिभाषित करते हुए कहा था-"च्वमजतल पे जीम इमेज वतके पद इमेज वतकमत. " अर्थात् सर्वोत्तम शब्दों का सर्वोत्तम क्रम ही काव्य है। एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि काव्य में लेखक कभी सावधान होकर कलात्मक विवेक से चयन करते हैं तो कभी अभ्यासवश। भोलानाथ तिवारी द्वारा उनके पुस्तक 'शैलीविज्ञान'में शब्द-चयन के जितने कारण बताये गये हैं, उनमें युगीन प्रवृत्ति अभ्यासवश है तो छंद की आवश्यकता, ध्वनिगत प्रभाव, लयात्मकता और शैलीय आवश्यकता आदि कवि द्वारा कलात्मक विवेक के इस्तेमाल से होता है। इस दृष्टि से पंत-कृत 'गुंजन'की कविताओं को देखें तो इन कविताओं में सर्वत्र आनेवाले 'स्वर्ण', 'रजत', 'किसलय', 'पल्लव', 'नव', 'रश्मि', 'उर' शब्द युगीन प्रवृत्ति के फलस्वरूप अभ्यासवश आये हैं।

पंत ने 'पल्लव'में संकलित कविताओं में व्यापक मात्रा में 'सा'का प्रयोग किया था तो 'गुंजन'की कविताओं में 'सा'का विकास होकर 'रे'का प्रयोग किया जाने लगा। 'रे'के प्रयोग की स्वीकारोक्ति 'गुंजन'के विज्ञापन में पंत ने इस प्रकार की है-

'पल्लव'की कविताओं में मुझे 'सा'के बाहुल्य ने लुभाया था। यथा-'अर्थ-निद्रित-सा, विस्मृत-सा,/ न जागृत-सा, न विमूर्छित-सा इत्यादि।' 'गुंजन'में 'रे'की पुनरुक्ति का मोह मैं नहीं छोड़ सका। यथा- 'तप रे मधुर-मधुर मन'- इत्यादि। 'सा'से, जो मेरी वाणी का संवादी स्वर एकदम 'रे'हो गया, यह उन्नति का क्रम संगीत-प्रेमी पाठकों को खटकेगा नहीं, ऐसा मुझे विश्वास है।(जोशी, 238)

'रे'के कुछ प्रयोग इस प्रकार हैं-

आत्मा है सरिता के भी
जिससे सरिता है सरिता;
जल जल है, लहर लहर रे,
गति गति, सृति सृति, चिर भरिता !(जोशी, 241)

पंत ने कुछेक स्थान पर प्रभावाधिक्य को दर्शाने के लिए शब्दों की पुनरावृत्ति भी की है। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है-

शांत सरोवर का उर

किस इच्छा से लहराकर
हो उठा चंचल, चंचल?

सोये वीणा के सुर

क्यों मधुर स्पर्श से मरर्म
बज उठते प्रतिपल, प्रतिपल !(जोशी, 240)

सुमित्रानंदन पंत ने 'गुंजन'की कविताओं में बहुत स्थानों पर पंक्तियों में समानांतरता लाने के लिए शब्द का सप्रयास चयन किया है। इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

यह साँझ-उषा का आँगन,
आलिंगन विरह-मिलन का;
चिर हास-अश्रुमय आनन
रे इस मानव-जीवन का !(जोशी, 241)

उपरोक्त पंक्तियों में 'आँगन' शब्द के साथ समानांतरता लाने के लिए 'आनन' शब्द का प्रयोग किया गया है।

विचलन

प्रत्येक भाषा की अपनी एक निश्चित व्यवस्था अर्थात् व्याकरणिक संरचना होती है। सामान्यत: इस व्यवस्था या संरचना का निर्वाह भाषा-प्रयोग के दौरान होता है। परंतु साहित्यिक विधाओं में, खासकर कविता में रचनाकार खुद को भाषागत व्यवस्था से स्वच्छंद कर भावाभिव्यक्ति करता है। भाषागत सीमाओं से बाहर निकलकर साहित्य में किये गये स्वच्छंद प्रयोग को शैलीवैज्ञानिक दृष्टि से विचलन कहा जाता है। विचलन के लिए भिन्न शास्त्रीय परंपरा में भिन्न नामों का प्रचलन है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में जहाँ इसे 'पोयटिक लाइसेंस' की संज्ञा प्राप्त है, वहीं संस्कृत काव्यशास्त्र में इसे 'निरंकुशा: कवय:' कहा गया है। चयन की तरह विचलन भी ध्वनि, कारक, संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, लिंग, पदक्रम आदि स्तरों पर होता है।

पंत ने कविताओं में ध्वनि-मधुरता प्रस्तुत करने के लिए शब्दों का विचलन सहित प्रयोग किया है। इसका एक उदाहरण है-

प्रिय प्रिय विषाद रे इसका
प्रिय प्रि' आह्लाद रे इसका !(जोशी, 242)

लिंग-विचलन पंत की कविताओं का एक उल्लेखनीय बिंदु है। पंत ने खासकर कविताओं में कोमलता भरने के लिए कुछेक पुंलिंग वाचक शब्दों का स्त्रीलिंग वाचक के रूप में प्रयोग किया है। लिंग-विचलन के संदर्भ में स्वीकारोक्ति देते हुए पंत ने 'पल्लव' की भूमिका में लिखा है-

मुझे अर्थ के अनुसार ही शब्दों को स्त्रीलिंग और पुलिंग मानना अधिक उपयुक्त लगता है। जो शब्द केवल अकारांत इकारांत के अनुसार ही पुलिंग अथवा स्त्रीलिंग हो गये हैं, और जिनमें लिंग का अर्थ से सामंजस्य नहीं मिलता, उन शब्दों का ठीक-ठीक चित्र भी आँखों के सामने नहीं उतरता, और कविता में उनके प्रयोग करते समय कल्पना कुंठित-सी हो जाती है।(जोशी, 146)

अत: भावों को प्रधानता देते हुए पंत ने समय-समय पर व्याकरणिक कोटियों में लिंग के बंधन को तोड़ा है। लिंग-विचलन का उदाहरण निम्नलिखित है-

किस स्वर्ण किरण की करूण कोर
कर गयी इन्हें सुख से विभोर?
किन नव स्वप्नों की सजग भोर?(जोशी, 265)

उपरोक्त अंतिम पंक्ति में प्रयोग होनेवाला शब्द 'भोर' मूलत: पुंलिंगवाचक है। परंतु इन पंक्तियों में भावों में कोमलता प्रस्तुत करने के लिए 'भोर' का स्त्रीलिंगवाचक के रूप में प्रयोग हुआ है।

समानांतरता

जब किसी रचना में समान या विरोधी भाषिक इकाइयों का समानांतर प्रयोग किया जाये तब उसे समानांतरता कहा जाता है। भाषिक इकाइयों के आधार पर समानांतरता के ध्वनि, शब्द, वाक्यांश, अर्थ और प्रोक्ति आदि भेद सामने आते हैं। इन भेदों में से ध्वनीय समानांतरता का प्रयोग पंत की कविताओं में सर्वाधिक है। ध्वनीय समानांतरता के विविध उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

पंक्तियों के अंत में ध्वनिसाम्य-

अब फैला फूलों में विकास,
मुकुलों के उर में मदिर वास,
अस्थिर सौरभ से मलय-श्वास,(जोशी, 239)

पहले पंक्ति के अंतिम और दूसरी पंक्ति के आदि में ध्वनि साम्य-

कुसुमित पुलिनों की क्रीड़ा
ब्रीड़ा से तनिक न लेना?(जोशी, 241)

ध्वनीय समानांतरता के अतिरिक्त 'गुंजन' की कविताओं में शब्दीय समानांतरता भी देखने को मिलती है। अर्थात् पंक्तियों में एक ही शब्द की पुनरावृत्ति होती है। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है-

सुंदर वाणी का विभ्रम,
सुंदर कर्मों का उपक्रम,
चिर सुंदर जन्म-मरण रे
सुंदर-सुंदर जग-जीवन !
सुंदर प्रशस्त दिशि-अंचल,
सुंदर चिर लघु, चिर नव पल,
सुंदर पुराण-नूतन रे
सुंदर-सुंदर जग-जीवन !(जोशी, 246)

पंत की कविताओं में विरोधी समानांतरता के उदाहरण भी दृष्टिगोचर होते हैं। खासकर ये विरोधी समानांतराएँ पदबंध के स्पष्ट पट देखी जा सकती हैं। इसका एक उदाहरण निम्नलिखित है-

जग जीवन में हैं सुख-दुख,
सुख-दुख में है जग जीवन;(जोशी, 242)

अप्रस्तुतविधान

शैली के अध्ययन में अप्रस्तुतविधान एक प्रमुख तत्व है। काव्य में स्थूल और सूक्ष्म भावों को संदर्भानुसार अपनाया जाता है। स्थूल का वर्णन अथवा चित्रण सरल और सुगम होता है, किंतु सूक्ष्म के चित्रण हेतु कल्पना और बौद्धिक व्यायाम के साथ अभ्यास की आवश्यकता होती है। अदृश्य अथवा इंद्रियातीत भावों के चित्रण से साहित्य की गंभीरता स्वत: ही प्रकट होती है। ऐसे चित्रण से काव्य की उत्कृष्टता भी प्रकट होती है। कवि सूक्ष्म अथवा अप्रस्तुत को चित्रित करने के लिए अनेक योजनाओं को अपनाता है। वह यथार्थ के धरातल पर जीता हुआ कल्पनालोक में भी विचरण करता है। वह यदा-कदा इन दोनों धरातलों को एक-दूसरे से जोड़कर अपनी अभिव्यक्ति को अधिक आकर्षक और मनोहारी बनाता है। इसी साहित्यिक योजना में अप्रस्तुत विधान का उद्‌भव हुआ। अप्रस्तुतविधान में रूप, आकार, प्रभाव, क्रिया, धर्म आदि कई दृष्टियों से प्रस्तुत और अप्रस्तुत के बीच साम्य स्थापित होता है। छायावादियों का अप्रस्तुतविधान प्रभाव-साम्य पर ज्यादा ध्यान केंद्रित करता है। यह विशेषता पंत की रचना 'गुंजन' की कविताओं में नजर आती है। पंत की कविता 'नौकाविहार' में मूर्त के लिए मूर्त का प्रयोग प्रभाव साम्य उत्पन्न करने की दृष्टि से उल्लेखनीय है-

मृदु मंद-मंद मंथर-मंथर
लघु तरणि हंसिनी-सी सुंदर
तिर रही खोल पालों के घर।(जोशी, 251)

इसका संबंध कवि के मानसिक झुकाव तथा दृष्टिकोण से है, साथ ही यह शैलीय विशेषता भी है। छायावादी कवियों द्वारा अमूर्त के लिए अमूर्त का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में अपनी कविताओं किया गया है। पंत भी इससे अपवाद नहीं हैं। निम्नोक्त पंक्तियाँ इसका उदाहरण है-

पत्रों के आनत अधरों पर
सो गया निखिल वन का मर्मर
ज्यों वीणा के तारों में स्वर।(जोशी, 263)

पंत अपनी कविताओं में अप्रस्तुत के रूप में प्रकृति को ही प्रधानता देते हैं। उनके प्राकृतिक अप्रस्तुत अधिक जीवंत और बोलते-से हैं। यथा-

कब से विलोकती तुमको
ऊषा आ वातायन से?
संख्या उदास फिर जाती
सुने गृह के आँगन से।(जोशी, 241)

निष्कर्ष

सुमित्रानंदन पंत सौंदर्यवादी कविहैं। उनकी कविताओं में यह सौंदर्यवाद विचार और शैली दोनों स्तरों पर है। 'वीणा' से प्रारंभ होनेवाली पंत की काव्य-यात्रा 'ग्रंथि' और 'पल्लव' से होकर 'गुंजन' तक पहुँचती है। इस यात्रा के दौरान न केवल कविताओं में अभिव्यंजित होनेवाले विचार प्रौढ़ से प्रौढ़तर बनते गये,अपितुउन विचारों को अभिव्यंजित करनेवाली शैली ने भी प्रौढ़ता प्राप्त कर ली। खासकर 'पल्लव' से उन्होंने शैली के स्तर पर जिस स्वच्छंदता को अपनाया, उसने 'गुंजन' की कविताओं को भी मुखरित तथा पाठकों के लिए और आकर्षक बनाया। अत: निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि पंत की काव्य-भाषा को शैलीवैज्ञानिक दृष्टि से जितना अधिक निचोड़ा जायेगा, भावों की दृष्टि से उतना ही अधिक रसास्वादन उनकी कविताओं से हमें प्राप्त होगा।

ग्रंथ सूची

- जोशी, शांति. सुमित्रानंदनपंतग्रंथावली. नयीदिल्ली: राजकमलप्रकाशन, 2004.
- तिवारी, भोलानाथ. शैलीविज्ञान. नयीदिल्ली: किताबघरप्रकाशन, 2015.
- नगेंद्र. शैलीविज्ञान. नयीदिल्ली: नेशनलपब्लिशिंगहाउस, 1976.
- बाफना, प्रेमलता. पंतकाकाव्य. देहरादून: साहित्यसदन, 1969.

निराला के काव्य में अंग्रेजी राज का चरित्र

बबीता कुमारी

शोध-प्रज्ञा, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा (बिहार)

निराला अपने लेखन के शुरुआती दौर से ही साम्राज्यवादियों के चरित्र को पहचानने में निपुण थे। 'मतवाला' साप्ताहिक के **8 दिसम्बर 1923 ई. के अंक में निराला** की 'गये रूप पहचान' शीर्षक कविता छपी थी जिसमें वे कहते हैं-

चूम चरण मत चारों के तू,
गले लिपट मत गोरों के तू,

झटक पटक झंझट को झटपट झोंक भाड़ में मान।
मिटी मोह-माया की निद्रा रूप पहचान।।
आप आप कर सब न अपर को,
बना बाप मत बंचक नर को,
अगर उतरना पार चाहता दिखा शक्ति बलवान।
मिटी मोह-माया की निद्रा गये रूप पहचान।[1]

निराला गोरों को चार एवं वंचक कहकर साम्राज्यवादियों के चरित्र का पूरी तरह खुलासा कर देते हैं। चोर और वंचक वह होता है जो छल से दूसरों का माल हड़पकर अपनी तिजोरी में भर ले। भारतवासियों के हित के नाम पर अंग्रेज भी इसी तरह का काम कर रहे थै। ऐसे चोर एवं वंचक को अपना समझने को भूल से निराला देशवासियों को सावधान करते हुए उनसे सारे मतभेदों एवं मानापमान को भूलकर गोरों से मिलजुलकर लोहा लेने की आवश्यकता पर बले देते हैं। यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है कि निराला को इस चोर एवं वंचक के रूप की पहचान तब से हुई 'सुनी राष्ट्रभाषा की जब से भव्य मनोहर तान'। और, तभी निराला मानो तुलसी के **'अब लौं नसानी अब न नसैहौं स्वर में स्वर मिलाकर कहते हैं कि 'मिटी मोह-माया, की निद्रा गये रूप पहचान।'**

महात्मा गाँधी के सत्याग्रह करने पर निराला ने अक्टूबर 1932 ई. की सुधा में 'साम्राज्यवाद और सत्याग्रह' नाम से एक सम्पादकीय टिप्पणी लिखी थी, जिसमें साम्राज्यवादियों के चरित्र का खुलासा करते हुए उन्होंने लिखा, ''साम्राज्यवाद इंग्लैण्ड की राजनीति का मूल है। पूँजी द्वारा वणिक-शक्ति की वृद्धि के इतिहास के साथ-साथ साम्राज्यवाद का इतिहास इंग्लैण्ड के साथ गुँथा हुआ है। पूँजी की तरह ही यह हृदयहीन है। अंग्रेजों की शक्ति का समस्त संसार पर प्रभाव है। साथ-साथ **अपनी वृत्ति या जातीय साम्राज्यवाद-जीवन के कारण, इंग्लैण्ड संसार-भर में बदनाम** है। इतिहास के जानकार जानते हैं कि इंग्लैण्ड की सरकार पूँजीपतियों की सरकार है, और साम्राज्यवाद उसकी जीवनी-शक्ति, मूल आधार। कूट बुद्धि द्वारा फूट डालकर शासन करना अंग्रेजों की प्रधान शासन-प्रणाली मानी गयी है।[2] निराला के इस कथन से अंग्रेजी राज के साम्राज्यवादी चरित्र का पूरी तरह खुलाा हो जाता है। यहाँ उचित ही निराला ने साम्राज्यवाद को पूँजी की वृद्धि के द्वारा दुनिया भर पर अपना आतंकंकारी प्रभुत्व कायम करने की लालसा का परिणाम बताया है। इसी के लिए उसने 'कूट बुद्धि द्वारा फूट डालकी' शासन करने की अपनी नीति बनाई है। **हृदयहीन साम्राज्यवादी शोषण के अनेकानेक** रूपों के प्रति निराला ने अपना आक्रोश और घृणा व्यक्त की है। अंग्रेजी राज की विजय के कारण को ही मानो रेखांकित करते हुए निराला कहते हैं-

खुला भेद, विजयी कहाये हुए जो
लहू दूसरे का पिये जा रहे हैं।[3]
जनता जातीय वेश की हो: राजनीति

फरवरी, 1930 ई. की 'सुधा' में निराला ने 'इंग्लैण्ड और भारत का सम्बन्ध' शीर्षक से जो सम्पादकीय लिखा था वह निराला के राजनीतिक दृष्टिकोण की परिपक्वता का नमूना है। भारत के भयावह आर्थिक शोषण की अंग्रेजों की नीति, अंग्रेजों के राज में किसानों की दुर्दशा, अंग्रेजों के द्वारा भारतीयों के बारे में प्रकट किये जानेवाले विचार, उनके पिच्छू राजभक्तगणों की स्वार्थपूर्ण चाटुकारिता आदि पर निराला ने अत्यन्त स्पष्ट मन्तव्य दिये हैं। आधुनिक हिन्दी के निर्माण के प्रारम्भिक दौर से ही हमारे साहित्य-महारथियों के सामने यह स्पष्ट हो चुका था कि अंग्रेजी राज में सबसे बड़ी विपत्ति यह है कि देश का सारा धान विदेशों में दौड़ा चला जा रहा है। भारतुन्दु हरिशचन्द्र जैसे हिन्दी के पूज्य नेताओं की राष्ट्रवादी चिन्ता से अपने को जोड़ते हुए निराला कहते हैं, ''इंग्लैण्ड के हाथ भारत एक सोने की चिड़िया फँस गयी है।'' **भारत अंग्रेजी माल खपाने के लिए अंग्रेजों का सबसे बड़ा केन्द्र है। यहाँ से कच्चे** माल की जितनी पैदावार होती है, उसका अधिकांश वही के व्यापारियों के हाथ लगता है, जिसके एक-एक के सैकड़ों वसूल होते हैं।[4] अंग्रेजी राज में किसानों की दुर्दशा का

पार नहीं था। जिन अनेक कारणों से वे इस राज में विपत्ति के चंगुल में फँसे हुए थे उनमें एक तो भारतीय कच्चे माल के प्रति अंग्रेजों का उक्त रवैया ही था। निराला लिखते हैं, ''किसानों की दुर्दशा का अन्त नहीं होता। पाट, सन, रूई, गल्ला आदि जितना कच्चा माल यहाँ पैदा होता है, मुँह-माँगे दामों पर ही दिया जाता है। किसान लोगों में माल रोक रखने की दृढ़ता नहीं और उस दृढ़ता की जड़ भी काट दी गयी है। कारण, लगान उन्हें रुपयों से देना पड़ता है, खेत की पैदावार का तिहाई-चौथाई हिस्सा नहीं''।[5]

किसानों की दुर्दशा का दूसरा प्रमुख कारण था अंग्रेजी राज में भू-सम्बन्ध में जमींदार रूपी नृशंस बिचौलिए के प्रभुत्व को स्थापित किया जाना और किसानों से उनकी अपनी जमीन पर उनका मालिकाना हक छीन लिया जाना। एक नयी बात यह भी शुरू हुई कि किसानों की कमाई में पहले राज्य का हक कम था, जबकि अब वह बहुत बढ़ गया। साथ ही पहले किसान पैदावार का अंशदान फसल के रूप में ही देते थे लेकिन अब, जैसा कि निराला ने रेखांकित किया है, 'लगान उन्हें रुपयों से देना पड़ता है'। किसानों के प्रति जमींदार के अमानवीय अत्याचार की दुखद गाथा से निराला अत्यन्त मर्माहत थे। अकारण नहीं कि उनके साहित्य का बहुत बड़ा अंश किसानों की दुख गाथा से जुड़ा है। वस्तुतः निराला पराधीन भारत का विश्लेषण भी किसानों की दृष्टि से कर रहे थे और स्वाधीन भारत का सपना भी किसानों की दृष्टि से ही देखा करते थे और, यह उचित भी था। भारत जैसे कृषि प्रधान देश की बहुसंख्यक जनता आज भी खेती के काम से जुड़ी है। तब का तो कहना ही क्या? निराला की आँखों से खेतिहर भारत कि छवि कभी भी ओझल नहीं होने पाती। अगस्त-सितम्बर 1924 के 'मतवाला' साप्ताहिक के छह अंकों में निराला ने 'बादल राग' शीर्षक जो कविता लिखी थी उसके अंतिम खंड में निराला बादल को क्रांति-दूत के रूप में उपस्थित करते हुए कहते हैं-

जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर।
चूस लिया है उसका तार
हाड़ मात्र ही है आधार
ऐ जीवन के पारावार।[6]

अंग्रेजी-राज में किसानों के जीवन का सारा रस निचोड़कर उसे अस्थिपंजर मात्र बना दिया गया था। यह है अंग्रेजी-राज का चरित्र।

उक्त सम्पादकीय में ही निराला ने यह भी लिखा है कि अंग्रेजों के चरित्र की एक बुनियादी विशेषता यह थी कि अपने अन्यायपूर्ण राज को जायज ठहराने के लिए वे, भारतीयों के राज-काज के अयोग्य होने का दुष्प्रचार किया करते थे। निराला चुटकी लेते हुए कहते हैं, ''**भरत के नमक से पलकर विलायत लौटनेवाला लार्ड रीडिंग तथा सर नेजीनाल्ड क्रेडक् आदि अनेक महोदय हैं, जिन्होंने इस समय भारत की अयोग्यता का डंका पीटने का बीड़ा उठा लिया है। आप लोग प्रबन्धा लिखते हैं, प्रचार करते हैं**, वक्तष्टताएँ देते हैं, कहते हैं, भारत जैसा अयोग्य तथा अशिक्षित है, उसे अधिक **अधिकार प्रमत्त** कर दे सकता है, उसके हाथों में अधिकारों की अधिकता गयी नहीं कि अनर्थ हुआ। अपने मुँह मिया-मिठू लोग कहते हैं, भारत का उत्तरदायित्व अंग्रेजों ने अपने हाथ में लिया है, उनके लिए यह कदापि उचित नहीं कि वे अपने कर्तव्य का ज्ञान खो दें, अयोग्य को योग्य मान लें, नाबालिग के हाथों में अधिार सौंप दें। **इसी भारतहितैषी दल के साथ मिलें हैं मि. विंस्टन चर्चिल। आप मशहूर साम्राज्यवादी हैं।**[7] निराला ने अंग्रेजों के इस दुष्प्रचार के विरोध में 1930 ई. के ही जुलाई महीने की 'सुधा' की सम्पादकीय टिप्पणी 'राजा और प्रजातन्त्र' में निष्कर्ष स्वरूप यह वाक्य लिखा, ''अस्तु योरप के लोग जो यह कहते हैं कि राष्ट्रीय स्वाधीनता का पूर्वीय लोगों का ज्ञान था ही नहीं, यह माननेवाली बात नहीं, प्रत्युत यह उन्हीं का अज्ञान हैं।[8]

अंग्रेज शिक्षा और विचार स्वातन्त्र्य के प्रति अपने प्रेम का भी ढोल पीटते थे। **निराला ने इसकी पोल खोलते हुए जून, 1930 ई. की 'सुधा' की 'देश की स्थिति और सरकार'** शीर्षक सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा, ''अब के भारत में जैसा सार्वभौमिक दमन हो रहा है, ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। प्रेस-आर्डिनेंस के द्वारा कांग्रेस के समर्थक जनता के जितने भी मूख पत्र थे, सब दबा दिए गये। उनका प्रकाशन विवश होकर गरीब प्रकाशकों ने बन्द कर दिया, जिससे सरकार को दमन करने में और सुविधा हुई, और जनता की हानि। कारण, जो संवाद उस तक पहुँचते थे और जिनकी छानबीन और सत्यता पर उसे विश्वास था, उनका पहँचना बन्द हो गया। तार सरकार के हाथ में है, अतएव खबरें भी सरकार की मर्जी के अनुसार ही आने-जाने लगीं। जनता चाहे उन खबरों पर विश्वास करे, चाहे कपोल-कल्पना करती रहे। किसी सच्ची खबर का तमाम देशों में, समान रूप से, एक ही समय, फैलने का जो सूत्र था-देश के अपने संवाद-पत्र, वह तार कट गया, और इससे विश्रृंखलता पैदा हो गयी। सरकार को विश्रृंखलता से ही शासन की सुविधा हैं। देश का जो सर्वमान्य महापुरुष है, उसके विचार मस्तिष्क के विकार करार दिये गये।[9] तात्पर्य यह कि अंग्रेजों के विचार-स्वातन्त्र्य-प्रेम का यह हाल था कि देश के सर्वमान्य महापुरुष के विचार विकार करार दिये जाते थे।

उनकी न्यायप्रियता का क्या हाल था? ''गोलियों का चलना बन्द नहीं हुआ। नये-नये आर्डिनेंस निकलते जा रहे हैं। 144 की धूम है। जहाँ हत्याकांड होता है, वहाँ जाने से देश के प्रतिनिधि नेता रोक लिये जाते हैं। इच्छानुसार सरकारी जाँच प्रकाशित की जाती है। अखबार सच बात कहते हैं तो उनका गला घोंट दिया जाता है। आँख के सामने जो घटना होती है, वह कही नहीं जा सकती।'' महात्मा जी ने जिन दीन शब्दों में, अपने देश के दुखी भाइयों के लिए, बड़े लाट साहब से, अपने पहले पत्र में प्रार्थना की है, उनका कुछ भी असर लाट साहब पर नहीं पड़ा। उल्टे स्वाती जल के प्यासे चातकों पर इस प्रकार आर्डिनेंस पर आर्डिनेंस जारी करके वज्र प्रहार किया गया।[10] जो सरकार 'हत्याकांड' करती हो, आँख के सामने घटी बातों को कहने से जबरन रोकती हो, प्रेस की स्वतन्त्रय का गला घोंट देती हो, वह भी यदि अपनी राजनीतिक न्यायप्रियता का दावा करती हो तो यह सचमुच उपहास का ही विषय माना जाएगा।

अंग्रेज अपनी सभ्यता के भी बड़े-बड़े दाबे किया करते थे। और, ''आज तक सभ्य संसार में स्त्रियों की जैसी इज्जत की गयी है, शायद अंग्रेज सरकार इसके लिए सबसे बढ़कर अपना दावा पेश करेगी''।[11] निराला उनकी इस तथाकथित सभ्यता का पर्दाफाश करते हुए उक्त सम्पादकीय में यह भी लिखते हैं

कि जब सविनय कानून-भंग का आन्दोलन देश में चल रहा था तो सरकार ने निहत्थे आन्दोलनकारियों पर अमानुषिक अत्याचार किये। निराला उनके इस कुकृत्य को दर्शाते हुए बताते हैं, ''आज दो महीने से कलकत्ता, बम्बई, मदरास, पटना, लखनऊ, पेशावर, शोलापुर, धारसना आदि देश के सैकड़ों स्थानों में पुलिस ने जैसे अमानुषिक अत्याचार निहत्थी जनता पर किये हैं, उससे देशवासियों ने ब्रिटिश जाति की सभ्य शासन-कला अच्छी तरह प्रत्यक्ष कर ली।'' नमूने के तौर पर लखनऊ का उदाहरण देते हुए निराला कहते हैं, ''स्त्रियों और बच्चों के अंगों पर डण्डों की मार कर पावों से बहती हुई रक्तधाराओं को देखकर अपने शासन के सुदर्शन रूप पर इतराने वाली अंग्रेज सरकार के लिए उपयुक्त शब्द हमारे कोश में अभी नहीं, मुमकिन है, पीछे गढ़ लिया जाय।''[12] इतना ही नही सभ्य अंग्रेज सरकार द्वारा ''लखनऊ की सत्याग्रही महिलाओं को शहर से बाहर आलमबाग ले जाकर वहाँ दो घण्टे तक रोक रखने के पश्वात् रात्रि के समय उन्हें भटकते फिरने, हैरान होने और असहाय अवस्था में गुण्डों से अपनी आत्म-रक्षा करने के लिए छोड़ दिया गया।''[13]

अंग्रेजी शासन अपने स्वच्छ प्रशासन के भी दावे किया करती थी। अन्य अनेक स्थलों के अतिरिक्त अंग्रेजी राज में चल रहे भीषण भ्रष्टाचार की कहानी निराला ने 1950 ई. में प्रकाशित अपने उपन्यास 'काले कारनामे' में भी कहा है। किसी भी सरकार की सभ्यता के दावे का पता यदि नारी के प्रति उसके दृष्टिकोण से चलता है तो उसकी स्वच्छता का पता उसके थाने एवं अदालतों की स्वच्छता से चलता है। इस उपन्यास में निराला ने सरकार के इन दो महकमों में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण गाँव की अनपढ़ और सरल जनता के निर्मम रूप से पीसे जाने की कहानी कही है। गाँव में जमींदार के द्वारा लगाये गये झगड़े के बाद, ''माधव मिश्र सतू बाँधो रहनेवाले आदमी रपोट करने चले। आगे-आगे बँधाई लाठी लिये चौकीदार मातादीन मारे खुशी के फूला नहीं समा रहा। जानता है, आजकल में सैकड़ों के वारे-न्यारे होंगे, जमींदार और महाजन भी इस रुपय में शरीक होंगे, कहते हैं रिश्वत का रुपया लाखों और करोड़ों तक पहुँचता है और बड़े-से-बड़ा इसका साझीदार है, इस काम में पुलिस के मददगार जितने आदमी हों, वे सरकार के आदमी कहे जाते हैं, आमदनी का ज़रिया जेल भी है। ''यह सरकार हिन्दुस्तान में इसीलिए है और इसी ढर्रे से चला कर बाघ और बकरी को एक घाट पानी पिलाता है। जमींदार रामराखन ने कहा, देखो मातादीन, रपोट में दो रुपए लगेंगे। यहीं से श्रीगणेश है। मातादीन ने कहा, जैसे गाँव का रहनेवाला शहर का हिसाब नहीं जानता, वैसे ही थाने का हिसाब थाने के ही आदमियों को मालूम है।[14] यह है स्वच्छ प्रशासन का दावा करनेवाली अंग्रेजी सरकार की निराला द्वारा पेश की गयी संक्षिप्त झाँकी। इसी प्रकार निराला ने अपने साहित्य में अन्यत्र भी अंग्रेजों द्वारा अपने और भारत के बारे में फैलाये जा रहे ऐसे ढेर सारे ढोंग भंडाफोड़ किया। निराला का दावा सही था कि वे अंग्रेजों के रूप को पहचान गये थे।

कहना न होगी कि निराला उन कुछ गिने-चुने साहित्य-साधाकों में थे जो अंग्रेजों राज के चरित्र के छद्म को अच्छी तरह समझते-समझाते थे। निराला के ऐसे विचारों की चर्चा के क्रम में डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं कि ''कुछ प्रगतिशील विद्वान भी हैं जो इतिहास को वैज्ञानिक दृष्टि से देखने का दावा करते हैं, मार्क्स की **विचार-पद्धति को न समझकर, कुछ सूत्रें की आवृत्ति के बल पर वे सिद्ध करते हैं कि भारतीय समाज, संस्कृति शताब्दियों से स्थिर और गतिरु) थी, अंग्रेजों के सम्पर्क से पहली बार वह सक्रिय और गतिशील हुई। चेतन ब्रह्म के स्पर्श से मानो जड़ प्रकृति में स्पन्दन हुआ हो। निराला का दृटिकोण सही था, अंग्रेजों की प्रगतिशीलता को सराहनेवाले बुद्धिजीवियों का दुष्टिकोण गलत है।**''[15]

अंग्रेजों के आगमन और उसकी पृष्ठभूमियों के मूल्याकंन के सन्दर्भ में निराला के विचारों से हम अवगत हो चुके हैं। उसमें हम यह भी देख चुके हैं कि न केवल अपने को मार्क्सवादी कहने वाले प्रगतिशील बुद्धिजीवी बल्कि निराला भी इस तरह की बात मानते थे कि 'भारतीय समाज, संस्कृति शताब्दियों से स्थिर और गति-रु) थी, अंग्रेजों के सम्पर्क से पहली बार वह सक्रिय और गतिशील हुई'। इतना ही नही हम यह भी देख चुके हैं कि निराला के व्यक्तित्व और चिन्तन पर अपनी गहरी छाप छोड़नेवाले विवेकानन्द भी ऐसा मानते थे। डॉ. शर्मा ने लगता है, उक्त निष्कर्ष के बलपूर्ण प्रतिपादन के निमित्त ही, जानबूझ कर, निराला-साहित्य के वैसे तथ्यों को छोड़ दिया है। क्या अंग्रेजी-राज के विरोध के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि भारतीय समाज में यात्किंचित् जो उसकी प्रगतिशील भूमिका रही है उसकी आँख मूँदकर उपेक्षा की जाय? यदि 'अंग्रेजों की प्रगतिशीलता को सराहनेवाले बुद्धिजीवियों का दृष्टिकोण गलत है' तो हमें यह नहीं मानना होगा कि 'निराला का दृष्टिकोण सही था।' अंग्रेजों की प्रगतिशील की सराहना करने में पाप के कुछ भागी निराला भी थे। हमें नहीं मालूम कि आजादी के बाद के भारत के किस प्रख्यात मार्क्सवादी या प्रगतिशील विद्वान ने मात्र अंग्रेजों की प्रगतिशीलता की सराहना की है? और, यदि की है तो उनके स्पष्ट नामोल्लेख के साथ उनकी निन्दा की जानी चाहिए। केवल 'कुछ प्रगतिशील विद्वान' कहने से काम कैसे चलेगा? अंग्रेजी राज के अंधा-विरोध को ही साम्राज्यवाद-विरोध का पर्याय मान लेना क्या युक्तिसंगत है?

संक्षेप में

निराला अपने लेखन के शूरुआती दोर से ही साम्राज्यवादियों के चरित्र को पहचान ने में निपुण थे। गोरों को चोर एवं वंचक कहकर साम्राज्यवादियों के चरित्र का पूरी तरह खुलासा कर देते हैं। चोर और वंचक वह होता है जो छल से दूसरों का माल हड़पकर अपनी तिजोरी में भर ले। भारतवासियों के हित के नाम पर अंग्रेज भी इसी तरह का काम कर रहे थे। ऐसे चोर एवं वंचक को अपना समझने की भूल से निराला देशवासियों को सावधान करते हुए उनसे सारे मतभेदों एवं मानापमान को भूलकर गोरों से मिलजुलकर लोहा लेने की आवश्यकता पर बल देते हैं। यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है कि निराला चोर एवं वंचक के रूप की पहचान तब से हुई 'सुनी राष्ट्रभाषा की जब से भव्य मनोहर तान'। और, तभी निराला मानो तुलसी के 'अब लौं नसानी, अब न नसै हौं, स्वर में स्वर मिलाकर कहते हैं कि 'मिटि मोह-माया की निन्द्रा गये रूप पहचान'।

अंग्रेजी राज के साम्राज्यवादी चरित्र का पूरी तरह खलासा हो जाता है। यहाँ उचित ही निराला ने साम्राज्यवाद को पूँजी की वृद्धि के द्वारा दुनिया भर में अपना आतंककारी प्रभुत्व कायम करने की लालसा का परिणाम बताया है। इसी के लिए उसने 'कूट बुद्धि द्वारा फूट डालकर'शासन करने की अपनी नीति बनाई है। हृदयहीन साम्राज्यवादी शोषण के अनेकानेक रूपों के प्रति निराला ने अपना आक्रोश और घष्टणा व्यक्त की हे।

भारत के भयावह आर्थिक शोषण की अंग्रेजों की नीति अंग्रेजों के राज में किसानों की दुर्दशा, अंग्रेजों द्वारा भारतीयों के बारे में प्रकट किये जानेवाले विचार, उनके पिट राजभक्तगणों की स्वार्थपूर्ण चाटुकारिता आदि पर निराला ने अत्यंत स्पष्ट मन्तव्य दिये हैं। आधुनिक हिंदी के निर्माण के प्रारंभिक दौर से ही हमारे

साहित्य-महारथियों के सामने यह स्पष्ट हो चुका था कि अंग्रेजी राज में सबसे बड़ी विपत्ति यह है कि देश का सारा धान विदेशों में दौड़ा चला जा रहा है।

किसानों की दुर्दशा का दूसरा प्रमुख कारण था अंग्रेजी राज में भू-संबंधा में जमींदार रूपी नृशंस बिचौलिए के प्रभुत्व को स्थापित किया जाना ओर किसानों से उनकी तमीन पर उनका मलिकाना हक छीन लिया जाना। एक नई बात यह भी शुरू हुई कि किसानों की कमाई में पहले राज्य का कम था। जबकि अब वह बहुत बढ़ गया। पहले किसान पैदावार का अंशदान फसल के रूप में ही देते थे लेकिन अब, जैसा कि निराला ने रेखांकित किया है, 'लगान उन्हें रुपयों दे देना पड़ता है।' किसानों के प्रति जमींदारों के अमानवीय अत्याचार की दुखदगाथा से निराला अत्यंत मर्माहत थे। अकारण नहीं कि उनके साहित्य का बहुत बड़ा अंश किसानों की दुख गाथा से जुड़ा है।

वस्तुत: निराला पराधीन भारत का विश्लेषण भी किसानों की दृष्टि से कर रहे थे और स्वाधीन भारत का सपना भी किसानों की दृष्टि से ही देखा करते थे और, यह उचित भी था। भारत जैसे कृषि प्रधान देश की बहुसंख्यक जनता आज भी खेती के काम से जुड़ी है। एक बुनियादी विशेषता यह थी कि अपने अन्यायपूर्ण राज की जायज ठहराने के लिए वे भारतीयों के राज-काज के अयोग्य होने का दुष्प्रचार किया करते थे।

जो सरकार 'हत्याकांड' करती हो, आँख के सामने घटी बातों को कहने से जबरन रोकती हो, प्रेस की स्वतंत्रा का गला घोंट देती हो, वह भी यदि अपनी राजनीतिक न्यायप्रियता को दावा करती हो तो यह सचमुच उपहास का ही विषय माना जाएगा। जब सविनय कानून-भंग का आंदोलन देश में चल रहा था तो सरकार ने निहत्थे आंदोलनकारियों पर अमानुषिक अत्याचार किसे।

अंग्रेजी शासन अपने स्वच्छ प्रशासन के भी दावे किया करती थी। अन्य अनेक स्थलों के अतिरिक्त अंग्रेजी राज में चल रहे भीषण भ्रष्टाचार की कहानी निराला ने 1950 ई. में प्रकाशित अपने उपन्यास 'काले कारनामे' में भी कही है। किसी भी सरकार की सभ्यता के दावे का पता यदि नारी के प्रति उसके दृष्टिकोण से चलता है तो उसकी स्वच्छता का पता उसके थाने एवं अदालतों की स्वच्छता से चलता है।

अंग्रेजों के आगमन ओर पृष्ठभूमियों के मूल्याकंन के संदर्भ में निराला के विचारों से हम अवगत हो चुके हैं। उसमें हम यह भी देख चुके हैं कि न केवल अपने को मार्क्सवादी कहने वाले प्रगतिशील बुद्धिजीवी बल्कि निराला भी इस तरह की बात मानते थे कि 'भारतीय समाज संस्कृति शताब्दियों से स्थिर और गति-रु) थी, अंग्रेजों के संपर्क से पहली बार सक्रिय और गतिशील हुई'। इतना ही नहीं हम यह भी देख चुके हैं कि निराला के व्यक्तित्व और चिंतन पर अपनी गहरी छाप छज्ञेड़नेवाले विवेकानंद भी ऐसा मानते थे। डॉ. शर्मा ने, लगता है, उक्त निष्कर्ष के बलपूर्ण प्रतिपादन के निर्मित ही, जानबूझ कर, निराला-साहित्य के वैसे तथ्यों को छोड़ दिया है। क्या अंग्रेजी-राज के विरोध के लिए यह नितांत आवश्यक है कि भारतीय समाज में यत्किंचित् जो उसकी प्रगतिशील भूमिका रही है उसकी आँख मूँदकर उपेक्षा की जाय? यदि 'अंग्रेजों की प्रगतिशीलता को सराहनेवाले बुद्धिजीवियों का दृष्टिकोण गलत है' तो हमें यह नहीं मानना होगा कि 'निराला का दृष्टिकोण यही था।' अंग्रेजों की प्रगतिशीलता की सराहना करने में पाप के कुछ भागी निराला भी थे। हमें नहीं मालूम कि आजादी के बाद के भारत के किस प्रख्यात मार्क्सवादी या प्रगतिशील विद्वान के मात्र अंग्रेजों की प्रगतिशीलता की सराहना की है?

संदर्भ-सूची

1. निराला रचनावाली, सं. नंदकिशोर नवल, भाग-1,पृ.-55-56
2. नि. र., भाग-6, पृ.-365
3. वही, भाग-2, पृ.-134
4. वही, भाग-6, पृ.-268-69
5. वही, पृ.-269
6. वही, भाग-1, पृ.-124
7. वही, भाग-6, पृ.-269-70
8. वही, पृ.-316
9. वही, पृ.-282
10. वही, पृ.-281-82
11. वही, पृ.-289
12. वही, पृ.-281
13. वही
14. वही, भाग-4, पृ.-243
15. निराला की साहित्य-साधाना, रामविलास शर्मा, द्वितीय खंड, पृ.-18-19

लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में आर्थिक जीवन की अभिव्यक्ति

डॉ० उमेश कुमार शर्मा

यद्यपि भारतीय समाज में जीवन के पुरुषार्थों में धर्म और मोक्ष को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है, फिर भी सामाजिक सुव्यवस्था और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये आर्थिक सम्पन्नता भी परम अपेक्षित है। यहाँ तक कि व्यक्ति के नैतिक उन्नयन और धार्मिक द्यवृत्तियों के सम्यक् विकास के लिये भी धान का द्ययोजन पड़ता है। अतएव, किसी भी युग में अर्थ-व्यवस्था की उपेक्षा नहीं की जा सकती। हिन्दी नाटकों में युगीन आर्थिक परिस्थितियों और उनसे उत्पन्न समस्याओं का भी चित्रण किया गया है। हिन्दी नाटकों का आरंभ और विकास ही देश की दयनीय आर्थिक परिस्थितियों के मधय हुआ है। राजाओं, जमींदारों और आंग्ल शासकों के शोषण से उत्पीड़ित जन-जीवन ही नाटककारों के समक्ष सदा उपस्थित रहा है। स्वाधीनता के उपरांत भी राष्ट्र की आर्थिक द्यगति संतोषप्रद नहीं रही है। शोषकों और शोषितों का श्रेणी-भेद आज भी बना हुआ है। परिणामत: हिन्दी-नाटकों में एक ओर भोग-विलास के दृश्य दिखाई पड़ते हैं, तो दूसरी ओर ;णग्रस्तता भुखमरी, भिक्षाटन आदि का अधिकाधिक उल्लेख मिलता है, जिसे मिश्रजी के नाटकों के आधार पर निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है :

(1) आर्थिक स्थितियों की अभिव्यक्ति :

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपने कतिपय नाटकों में तद्युगीन आर्थिक स्थिति को स्पष्ट किया है। आर्थिक दृष्टि से समाज में मुख्यत: दो द्यकार के लोग हैं। एक वर्ग अत्यंत जर्जर, दीन है, भेड़-बकड़े की भाँति समय काट रहा है। इनकी आवश्यक आवश्यकताएँ (रोटी, कपड़ा और आवास) पूरी नहीं हो पाती हैं। दूसरा वर्ग-सुविधाभोगी है, जो वासना-विलास, आडंबर, अदालत आदि में धान का अपव्यय करने वाला है। इस द्यकार समाज का पूर्ण आर्थिक अधा:पतन हो गया है। अंगरेजी सरकार को भारत के बहुमूल्य पदार्थों को विलायत भेजने और वहाँ की सस्ती चीजों को यहाँ लाकर आर्थिक दामों पर बेचने तथा बराबर नये-नये करों को लागू करने से ही मतलब था। यहाँ के लोगों को सुखी देखने की उसकी नीति ही नहीं थी। अस्तु, धीरे-धीरे सम्पूर्ण राष्ट्र खोखला होता गया। **'संन्यासी'** नाटक में दीनानाथ के कथन से एक भारतीय की दृढ़ इच्छा द्यकट हुई है। वह गौरीदत्त से कहता है कि,-***''यह सब कुछ नहीं होगा। आप घबराइए मत। मुल्क का रुपया बाहर नहीं जाएगा। कल-कारखानें खुलेंगे।''***[1] नाटककार ने जनता में आर्थिक द्यगति की भावना उत्पन्न करने की भी चेष्टा की है। इसके लिये स्वदेशी कल-कारखानों एवं लघु उद्योग-धांधों के विकास की ओर देशवासियों का ध्यान आकृष्ट किया गया है। राष्ट्र के आर्थिक उन्नयन के लिये आगे चलकर गांधीजी भी इसी द्यकार के सुझाव द्यस्तुत करते देखे जाते हैं। मिश्रजी आर्थिक विपन्नता को स्वतंत्रता में सबसे बड़ा बाधाक तत्त्व मानते हैं। वास्तव में, देश की स्वाधीनता से यहाँ के गरीबों-मजदूरों-किसानों और दलितों को क्या मिला। वे तब भी गुलाम थे और अब भी गुलाम बने हुए हैं। इसलिए **'मुक्ति का रहस्य'** में गरीबों का पक्ष लेता हुआ उमाशंकर कहता है-***''देखिये इधार स्वतंत्र भारत अभी स्वप्न है। मामूली बात में इतने आगे बढ़ जाना यहाँ अमीरों को निकाल देने का सवाल नहीं गराबों को बसाने का सवाल है।''***[2] देश केवल अमीरों से ही नहीं बसता है। देश के गरीब भी राष्ट्र के अभिन्न अंग हैं। समाज का अकाट्य हिस्सा हैं। इसलिए गरीबों के कल्याण में राष्ट्र-कल्याण का भाव अंतर्निहित होना चाहिए। तभी तो उमाशंकर घोषणा करता है- ***''अमीरों के लिये बहुत हो चुका है अब गरीबों के लिये होना चाहिए। उनकी हालत जब तक सुधारी नहीं जा सकती तब तक देश देश के सर्वस्व वही हैं उन्हीं से देश है।''***[3]

अत: मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखा जाना चाहिए। मनुष्य सब जगह एक ही हैं। दुनिया में सबकी अपनी-अपनी जगह है।[4] यह बात अलग है कि आधुनिकता के दौर में मनुष्य की संवेदनशीलता घट गयी है। उनमें सामाजिकता के भाव का ह्रास हुआ है। मनुष्य अब दूसरे की पीड़ा में आनंद की तलाश करता हे। **'राक्षस का मंदिर'** नाटक में कुछ ऐसे ही द्यसंग आए हैं, जब रघुनाथ की विपन्नता को देखकर मुनीश्वर खिल्ली उड़ाता है। रघुनाथ उनसे कहता है- ***''आप मेरी विपत्ति में रस ले रहे हैं। सहानुभूति और संवेदना के शब्द इतने रूखे नहीं होते, जिनकों वास्तव में दु:ख होता है, वे उपदेश नहीं देते। पिताजी ने अपना सबकुछ आपको दे दिया मुझे भूखों मरते छोड़कर आपको कमसे-कम यह सोचना चाहिए था कि मैं खाऊँगा क्या? आप मेरे रक्त से अपना गुलाब सींच रहे हैं कि एक दिन फूल मिल जाए।''***[5]

'मुक्ति का रहस्य' नामक नाटक में मिश्रजी शोषितों का पक्ष लेते हुए द्यतीत होते हैं। इसमें नायक का स्वर अधिक विद्रोही है। वह पूँजीवाद के अविलंब धवंस के इच्छुक हैं। साम्यवादी विचारों के द्यति विशेष आकर्षण रखते हुए वे लोगों को विश्वास दिलाना चाहते हैं कि धानीकृकृगरीब वाली बात अब जल्द ही मिटने वाली है।[6] वस्तुत: मानवता के विकास के लिए एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था की अनिवार्यता है, जिसमें शोषण के लिए कोई गुंजाइश न रह जाय। **'राजयोग'** नाटक में भी गजराज क द्वारा शत्रुसूदन को अन्नदाता कहने पर वह चिढ़ जाता है और कहता है- ***''कौन किसका अन्नदाता है? संसार स्वार्थ की धुरी पर घूम रहा है। मैं अपना काम स्वयं न करके तुमसे कराता हूँ। तुमसे सेवा लेकर अन्नदाता नहीं कहा जा सकता। वह तो तुम्हारी मिहनत,***

तुम्हारी मजदूरी है और वह कहीं भी पा सकते हो।''[7] मनुष्य का मालिक और कोई नहीं हो सकता। वह तो स्वयं अपना मालिक है।[8] स्पष्टत: मिश्रजी यहाँ साम्यवादी विचारधारा से ओत-द्योत दिखते हैं।

कोई भी व्यक्ति शक्ति या विद्या, के बल से, धान के बल से अपनी पूजा कराने लगे[9] यह उचित नहीं है। गांधी जी ने तो साफ कहा है कि अपनी स्वाभाविक आवश्यकता से अधिक संग्रह चोरी है।[10] कोई भी व्यक्ति जब अपार धान-संचय कर लेता है तो समझना चाहिए कि उसने या तो बेईमानी की है अथवा अत्याचार किया है। डिप्टी कलक्टकर मुरारीलाल अपने वर्षो के अनुभव से यह बात बतलाते हैं। भगवंत सिंह के संबंधा में वे माहिरअली से कहते हैं- *''मैं खूब जानता हूँ भगवंत सिंह बड़ा जालिम है। लाखों रूपये, रैयत को लूटकर, जमा कर लिए हैं।''*[11] यह तो अत्याचार के बल पर ऐश्वर्यशाली बनने का उदाहरण हुआ। डिप्टी कलक्टर मुरारीलाल स्वयं बेईमानी के बलपर धानवान् बन गये हैं। इस बात को उन्हीं की सहायता से पढ़नेवाला मनोजशंकर नाम का छात्र भली द्यकार जानता है। इसलिए अवसर आने पर वह मुरारीलाल से स्पष्टयता कहने में चूकता नहीं कि *''अपना सारा वेतन मुझे देकर आप अनुचित रीति पर अपने लिए रुपये जमा करते हैं।''*[12] इससे पृथक् भारत में आज नब्बे द्यतिशत परिवारों की यह स्थिति है कि वह तड़क-भड़क को ही जीवन का सर्वस्व समझने लगते हैं। आधुनिकाएँ अपने-अपने घरों को सदा अभावग्रस्त बनाए रखने में ही अपनी चरम सफलता मानती हैं, जबकि मनुष्य को अपनी क्षमता के अनुसार ही जीवन-निर्वाह करना चाहिए। दूसरे के दिखावे का नकल करना ठीक नहीं है। तभी तो भगवंत सिंह मनोजशंकर के बारे में कहता है- *''घर में खाने का भी ठिकाना नहीं है और अंगरेजी फिसन बनाकर घूमता है।''*[13] ईमानदारी की कमाई से तो कभी फिजूलखर्ची संभव नहीं, इसलिए अधिकांश लोग विवश होकर बेईमानी के नये-नये मार्गो के अनुसंधान में ही अपनी सारी क्षमताओं का उपयोग करने में लगे हुए हैं और देश ;णग्रस्त होता चला जा रहा है। अत: उचित उपयोग पर जोर दिये जाने की जरूरत है, चूँकि अनुचित रूप से धान द्याप्त करने और आवश्यकता से अधिक धान-संचय करने पर मनुष्य द्याय: पाप-कर्म की ओर द्यवृत हो ही जाता है। इसी संदर्भ गांधी जी कहते हैं- *''जितने में पेट भर जाय, उतना तो सभी देह वालों का स्वत्व, जन्म के साथ मिला अधिकार है, इससे अधिक जो अधिकार मानता है, वह चोर है। उसका दंड होना चाहिए।''*[14]

'अमीरी' और **'गरीबी'** शब्दों का द्योग अत्यंत सामान्य स्तर पर होने लगा है, जो कहीं-कहीं भ्रामक सिद्ध होता है। केवल भौतिक संपदाओं के आध ार पर ही किसी को धानी अथवा निर्धान कह देना बहुत समीचीन नहीं द्यतीत होता है। ऐसा कहने के मूल में जीवन को सिर्फ भोग से संपृक्त कर देखना है। यदि मानव-जीवन साधाना का जीवन है, वासनामात्र का नहीं, तो फिर उक्त दृष्टिकोण में परिवर्तन की अपेक्षा है। इसी से भारतीय समाज में जीवन के शास्वत मूल्य के रूप में भौतिक वैभव को कभी द्यधान स्थान नहीं मिला, उसे सदा गौण ही माना जाता रहा है। **'मुक्ति का रहस्य'** में उमाशंकर कहता है-*''मेरे समाज में तो असली मान मनुष्य का मान करने में है।''*[15] मिश्रजी ने इस नाटक में गरीबो)ार, गरीबों के द्यति संवेदनशीलता के उदाहरण द्यस्तुत किये हैं। बेनीमाधाव जब अपने व्यक्तिगत हित की बात करता है तो उमाशंकर उसका विरोध करता है। वह उनसे साफ कहता है- *''आइए यहाँ खुले आसमान के नीचे और तब देखिये अपनी ओर और उन गँवारों या पशुओं की ओर, जिन्हें आप कहते हैं- वही मनुष्य, वही हृदय, मस्तिष्क, वह जीवन वही अभाव यहाँ आइये बस देखिये दुनियाँ स्वर्ग हो उठती है या नहीं।''*[16]

वर्त्तमान समय में संपत्ति को समाजिक द्यशस्ति या द्यतिष्ठा का आधार भी मान लिया गया है। आधुनिकतावाद ने जातीय सीमा की कठोरता का अतिक्रमण कर दिया है, यह खुशी की बात है, किन्तु पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था ने एक ऊँची दीवार भी खड़ी कर दी है- वह है वर्ग-व्यवस्था, जिसकी बुनियाद अर्थ पर आधारित है। यही कारण है कि एक अमीर सवर्ण एक गरीब या कंगाल सवर्ण को किसी अछूत से कम नहीं समझता है। बेनीमाधाव काशीनाथ से कहता है- *''छुआछूत कोई दोष नहीं, सफाई होनी चाहिए।''*[17] और जो हो, पर पूँजीवाद ने जातीय श्रेष्ठता के दंभ को गौण कर दिया है। अस्तु, समाज में सम्मान पाने का आधार धान है, पैसा है। **'राक्षस का मंदिर'** में दौलतराम रघुनाथ से कहता है- *''बाबू साहब इज्जत रुपयों से होती है। इधार-उधार दौड़ने से, लेक्चर देने और लोगों के मोटर में बैठकर चलने से नहीं।''*[18] इसी द्यकार पैसे से इज्जत को जोड़कर काशीनाथ भी देखता है। वह कहता है कि *''परसाल मैंने मेमसाहब को डाली दी थी बड़े दिन में, एक हजार खर्च हुआ था आठ सौ रुपये की तो अंगूठी थी। रुपया है किसलिए? इज्जत के लिए मैं अपना देह बेच दूँगा।''*[19]

यह तो संसार की सामान्य रीति है कि जब तक जिंदगी है लोग एक-दूसरे को पीछे छोड़ने, नीचे करने की होड़ में लगे रहते हैं। ऐसे में वे अपने जीवन का वास्तविक आनंद नहीं ले पाते हैं, लेकिन कहा गया है न कि कफन में कोई जेब नहीं होता है। द्याणांत होने पर सबकी एक ही गति होती है। गजराज का कथन इसी ओर संकेत करता है। वह शत्रुसूदन से कहता है कि *''जब तक घंट में द्याण है, चाहे कोई रोये या हँसे। उसके बाद तो सरकार सबकी गति एक है। राजा हो या रंक, अमीर हो या गरीब, उस दिन सब बराबर है।''*[20] वैसे भी गरीबों की पीड़ा को सभी नहीं समझ सकते हैं। इसके लिए सहृदय होना अनिवार्य है। चाहे वह समाजसेवी हो या नेता। आज के नेतागण राजनीति में सेवा-भाव से भोर नहीं आते हैं, वरन् उनमें सुखोपभोग की महती आकांक्षा होती है। अब हम आसानी से समझ सकते हैं कि ऐसे नेताओं से समाज का कितना भला होगा। मिश्रजी ने **'मृत्युजंय'** नाटक में गांधीजी को एक सहृदय नेता और जनसेवी के रूप में चित्रि किया है। गांधीजी आम आदमी की पीड़ा से पूर्णत: अवगत थे, तभी तो वे वैसी ही जीवन-शैली का चयन करते हैं, जैसा भारत के आमजन की है। उनके विषय में एक नागरिक दूसरे से कहता है- *''महात्मा तो इस समय भी दोनों हाथ जोड़े हैं उसकी देह पर उतना वस्त्र भी नहीं, जितना हमारी देह पर है। उनकी धोती घुटने तक है, हमारी तो उससे नीचे तक पहुँचती है। उनकी चादर दो हाथ भी चौड़ी नहीं है, हमारा उत्तरीय तीन हाथ से अधिक चौड़ा है।''*[21] इसी संदर्भ में मिश्रजी एक और बात कहते हैं कि किसी व्यक्ति के पहनावे से ही उसके मान-सम्मान को जोड़कर नहीं देखना चाहिए। या किसी के पहनावे से उनकी जाति या वर्ग का भी आकलन नहीं करना चाहिए, जैसाकि **'राक्षस का मंदिर'** नाटक में दासी को उसके कपड़े और शरीर से ही छोटी जाति का और दासी समझ लिया जाता है।[22]

(2) अनुचित अर्थ-व्यवस्था से उत्पन्न समस्याओं का निदर्शन :

आर्थिक विषमता से समाज में अनेक द्यकार की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। उन समस्याओं को बड़ी ही कुशलता से लक्ष्मीनारायण मिश्र ने सामाजिकों के सामने उपस्थित किया है, जिन्हें निम्नलिखित बिन्दुओं में देखा जा सकता है :

(क) दारिद्र्य : दारिद्र्य जीवन की समस्त अभिलाषाओं पर तुषारापात कर व्यक्ति को ठूँठ बना डालता है। विवशता मनुष्य की दीनता की अनुपम देन है। मिश्रजी अपने नाटक **'राक्षस का मंदिर'** में रघुनाथ को एक दरिद्र पात्र के रूप में द्यस्तुत किया है। हालाँकि रघुनाथ जन्मजात दरिद्र नहीं है, बल्कि उनके पिता रामलाल ने उन्हें पैतष्टक संपत्ति से बेदखल कर इस द्यकार के अभिशप्त जीवन जीने के लिए बाधय किया है। रघुनाथ अपनी पीड़ा मुनीश्वर के सामने व्यक्त करता है- ***''वेश्या-सुधार आश्रम के नाम पर मेरे पिता से उनकी सारी संपत्ति ले ली। मुझे घर से आज क्या कहूँ मेरे लिए यह ठीक नहीं कहाँ रात और कहाँ सबेरा? ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ पैर दबाकर खड़ा रह सकूँ।''***[23] अपने दारिद्रय के कारण ही रघुनाथ अपना घर भी नहीं पाता है। ललिता उससे द्येम करती है, लेकिन अर्थ के अभाव में वह अपने को पारिवारिक दायित्व के निर्वाह में असमर्थ अनुभव करता है।[24] इस द्यकार विपन्नता के कारण जीवन की स्वाभाविक गति भी बाधित हो जाती है। **'राजयोग'** की नायिका और ठाकुर बिहारी सिंह की लड़की चंपा नरेन्द्र से द्येम करती थी। दोनों कॉलेज में एक साथ ही पढ़ते थे। द्येम उत्कर्ष पर पहुचाँ और दोनों की शादी हुई, क्योंकि नरेन्द्र उसके समकक्ष नहीं था। वह राजा नहीं था। वह एक सामान्य आदमी था। आखिरकार चंपा की शादी शत्रुसूदन से[25] की गई। और नरेन्द्र ने विक्षिप्त होकर गृह-त्याग कर दिया। उसका पिता रघुवंश शत्रुसूदन से कहता है- ***''तुम राजा थे तुम्हारे हाथ में, तुम्हारी जुवान में ताकत थी तुमने पहली रानी के जीते ही ठाकुर साहब की लड़की (चंपा) से शादी कर ली।''***[26] चरित्र का समाज में नितांत अभाव है जो कह सके कि ***''इस विदिशा का, इस महानगरी में जो सबसे दरिद्र है सबसे निर्बल है, उसके चरण भी मेरे सिर पर हैं।''***[27] **'वितस्ता की लहरें'** नाटक में भी अग्निवर्ण और मातंग नामक दो दरिद्रों का चरित्र सामने आता है जो राज्यकोष से वृत्ति द्याप्त कर तक्षशिला में आयुर्वेद के अधययन के लिए जाते हैं।[28]

हमारे देश में कई ऐसे महापुरुष हुए, जिन्होंने राष्ट्र-हित के लिए समस्त सुखोपभोग के साधानों के बावजूद दारिद्र्य का जीवन जिया है। गांधीजी ऐसे ही महापुरुषों में से एक हैं। वे अपनी पीड़ा आजाद के सामने व्यक्त करते हैं- ***''जिस फल के लिए मैंने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया, भंगी का कार्य अपने हाथ से किया, आश्रम का जीवन दरिद्र से दरिद्र बनकर चलाने का भाव सब तो चला गया इस देश के टुकड़े होने से, मेरी आत्मा आहत हो गयी।''***[29]

(ख) आत्म-सम्मान के संकटों की अभिव्यंजना : आत्मसम्मान का सम्बन्ध मानव की अस्मिता से है, द्यतिष्ठा से है। इसलिए आत्मसम्मान खोकर जीना मृत्यु से भी निकृष्ट माना जाता है। **'राजयोग'** नाटक में बूढ़े हो जाने के बाद जब रघुवंश को दरवारी सेवा से मुक्त कर गुजारा भत्ता देने की बात शत्रुसूदन करता है, तो उसका खून खौल जाता है। चूँकि यहाँ द्यष्ठन रघुवंश के आत्मसम्मान का है। वह शत्रुसूदन से कहता है- ***''सावधान, गुजारे का नाम फिर नहीं। यह यह यह मेरा गुजारा इससे होगा।''***[30] सामान्यतया बुढ़ापे को बोझ समझा जाता है और हमारे समाज के कई वृ) नारी-पुरुष आसरे की तलाश में भटकते रहते हैं। अपमान सहते रहते हैं। ऐसी स्थिति में रघुवंश एक आदर्श है, हमारे समाज के लिए जिन्हें गुजारे के नाम से नफरत है। वह शत्रुसूदन से सफ शब्दों में कहता है- ***''मेरे गुजारे का द्यबंधा हूँ तो मुझे भीख दोगे मेरे बुढ़ापे पर रहम। न हुआ वह जमाना नहीं तो यह पच्चासी वर्ष का बुड्ढ़ा तीन द्यहर के भीतर रतनपुर का राजा होता।''***[31] इस द्यकार रघुवंश बुढ़ापे को निराशावादिता, निठल्लापन, बेचारगी और पर मुखा पेक्षिता नहीं बनने देता है। अर्थाभाव के बावजूद वह अपने आत्मसम्मान को जीवित रखता है।

यह सर्वविदित है कि आर्थिक विषमता के कारण समाज में कई द्यकार की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, जिनका एक पक्ष आत्मसम्मान से जुड़ा होता है। इस क्रम में अनमेल विवाह भी आर्थिक विषमता की परिणति के रूप में द्रष्टव्य है। इसी वैषम्य के कारण एक सम्पन्न द्यौढ़ (वृ)) गरीब रूपवती बाला से विवाह करता है और ऐसी बाला जीवनपर्यंत अपने आत्मसम्मान को मारकर जीती है। **'संन्यासी'** नाटक की किरणमयी की कथा इसी द्यकार के उलझणपूर्ण समस्याओं का उद्घाटन करती है। किरणमयी का विवाह दीनानाथ नामक एक द्योफेसर से हुआ है, जो ढलती उम्र के हैं। दोनों में वय का ऐसा अंतर है कि किरणमयी जब अपने पति दीनानाथ को देखती है, तब उसे अपने पिता की याद आ जाती है।[32] साथ ही दीनानाथ भी उसके आत्मसम्मान को कुचलने में कोई कसर नहीं छोड़ता है। उसका कहना है कि- ***''मैं नहीं मिलता तो गई होती किसी मजदूर के पास।''***[33] तात्पर्य यह कि अनेमल विवाह का सर्वद्यमुख कारण आर्थिक विषमता है, जिसके कारण कई बालाएँ अभिशप्त जीवन जीती हैं। यद्यपि किरणमयी दीनानाथ के खूँटे से बंधी हुई रहती है, पर वह उन्हें समवयस्क मुरलीधार से द्येम करने से नहीं रोक पाता है और अंततः दोनों को एक-दूसरे की बेड़ी काटनी ही पड़ती है।[34]

(ग) धान-लिप्सा से उत्पन्न समस्याएँ : धान-लिप्सा मनुष्य की सामान्य द्यवृत्ति है। संसार में ऐसे विरले ही होंगे, जिन्हें रूपवान, गुणवान और धानवान होने की इच्छा न होगी। धान ही ऐसा साधान है, जिसके माध्यम से सांसारिक सुखों के सभी साधान द्याप्त किये जाते हैं। यही कारण है कि धान-द्याप्ति की आकांक्षा मानवमात्र में अंतर्निहित होती है। इसी आकांक्षा की पूर्ति करने में कई लोग अनैतिक कार्यों में भी संलिप्त हो जाते हैं। अपने चरित्र का गिराते हैं। कीमत लेकर व्यवस्था को भंग करते हैं। अर्थ-द्याप्ति की होड़ में कानून-व्यवस्था भंग होने लगे हैं। नीचे से लेकर ऊपर की कुर्सी तक आसीन व्यक्ति बिक जाते हैं। परिणामतः अपराधी-अन्यायी सड़क पर खुलेआम घूमते हैं और निरपराधी-निर्दोष सजा काटते रहते हैं। **'सिन्दूर की होली'** नाटक में इसका जीवंत उदाहरण मिलता है, जहाँ राय साहब मुरारीलाल की सेवा में दस हजार रुपयों के साथ उपस्थित होता है और चाहता है कि वह अनदेखी कर जाय, ताकि रायसाहब रजनीकांत की हत्या करक अपने जंगल का अकेला शेर हो जाय।[35] पैसों के बल पर गवाह बदल दिये जाते हैं और न्याय का स्वरूप कुछ और ही हो जाता है। मुरारीलाल कहता है- ***''संसार में भलाई-बुराई का भाव अब नहीं है। आज इसने इसे हजार दिया है। कल दस रूपया देकर गवाहों को बिगाड़ सकता है।''***[36] फिर तो हम सोच ही सकते हैं कि सही द्यतिनिधि का चयन कितना मुश्किल है। **'मुक्ति का रहस्य'** नाटक में दिखाया गया है कि पैसों के लिए लोग अपना वोट बेचते हैं, पर शायद उन्हें पता नहीं है कि आज जो उन्हें खरीद रहे हैं कल बेचेंगे भी। उमाशंकर जो कि एक ईमानदार नेता हैं, उन्हें आष्ठचर्य लगता है कि उनके देश में पढ़े-लिखे लोग भी वोट बेचते हैं।[37]

धान-लिप्सा मनुष्य को अंधा बना देता है। उनकी नैतिकता का पतन करता है। इसमें पड़कर मनुष्य अपने-पराये का भेद भूल जाता है। **'मुक्ति का रहस्य'** नाटक में काशीनाथ धान-लिप्सा में पड़कर ही उमाशंकर (अपने सगे भतीजे) को पैतष्टक संपति से बेदखल कर देता है। वह उनकी पूरी संपत्ति पढ़ाई के खर्चे के नाम पर हड़प लेता है। उमाशंकर कहता है अपनी द्योमिका आशा देवी से- ***''इसके साथ समझौता मैं नहीं कर सकूँगा। मैंने देख लिया अच्छी तरह से, यह संभव नहीं? मैंने रजिस्ट्री कर दी सारी जायदाद पढ़ाई के खर्चे में जिसके लिए पिताजी को वर्षों बाहर रहना पडा था। जिस धान को पैदा करने में उनकी जिंदगी गई थी।''***[38]

संदर्भ-सूची

1. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (संन्यासी), पृ.-34
2. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (मुक्ति का रहस्य) पृ.-176
3. वही, पृ.-176
4. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (राक्षस का मंदिर), पृ.-95
5. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, पृ.-99
6. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (मुक्ति का रहस्य), पृ.-72
7. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (राजयोग), पृ.-192
8. वही, पृ.-192
9. मृत्युंजय, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.-43
10. वही, पृ.-80
21. सिन्दूर की होली, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.-16
32. वही, पृ.-43
43. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (सिन्दूर की होली), पृ.-247
54. मृत्युंजय, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.-81
65. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (मुक्ति का रहस्य), पृ.-176
76. वही, पृ.-177
87. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (मुक्ति का रहस्य), पृ.-171
98. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (राक्षस का मंदिर), पृ.-119
109. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली,भाग-2, (मुक्ति का रहस्य), पृ.-171
20. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (राजयोग), पृ.-211
21. मृत्युंजय, पृ.-18
22. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (राक्षस का मंदिर), पृ.-95
23. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (राक्षस का मंदिर), पृ.-105
24. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, भूमिका से, पृ.-10
25. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (राजयोग), पृ.-196
26. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (राजयोग), पृ.-196
27. गरूड़धवज, पृ.-73
28. वितस्ता की लहरें, पृ.-43
29. मृत्युंजय, पृ.-69
30. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (राजयोग), पृ.-196
31. वही, पृ.-195
32. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (संन्यासी), पृ.-39
33. वही, पृ.-38
34. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (संन्यासी), पृ.-41
35. सिन्दूर की होली, पृ.-16
36. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (सिन्दूर की होली), पृ.-250
37. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (मुक्ति का रहस्य) पृ.-164
38. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (मुक्ति का रहस्य) पृ.-161.

स्मृति ग्रंथों में पराशर स्मृति का स्थान एवं महत्व

तरूण कुमार सिंह

तदर्थ प्राधानाध्यापक, राजाराम इंटर कॉलेज, हरदो, फतेहपुर

धर्मप्राण भारतीय समाज की समस्त सामाजिक व्यवस्थायें धर्म के साथ सम्पृक्त होकर मानव के लिए मार्ग प्रदर्शन का कार्य करती है। वेद भारतीय साहित्य और संस्कृति के अमूल्य निधि है। ये मानव को समाज के अनुकूल आचरण करने की शिक्षा प्रदान करते हैं। किन्तु ये मानवों के आचार को सुव्यवस्थित ही नहीं करते बल्कि इनका प्रतिपाद्य क्षेत्र बहुआयामी है। स्मृति ने उन्हीं आचारगत नियमों से एकत्र कर उसको एक सुसम्बद्ध स्वरूप प्रदान किया। वेदों अथवा श्रुतियों के सिद्धान्तों की इसमें व्याख्या हुई। कदाचित इसी कारण से कालिदास ने 'रघुवंशम्' में स्मृतिग्रन्थों को श्रुतियों का अनुसरण करने वाला कहा है– 'श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरनवगच्छत्।[1]

स्मृति शब्द स्मृ+क्तिन् से निष्पन्न है जिसका तात्पर्य स्मरण और प्रत्यस्मरण आदि से है।[2] अत: स्मृति स्मरण का विषय है और यह परम्परागत रूप से चला आ रहा धार्मिक साहित्य है। तैत्तिरीय आरण्यक में भी 'स्मृति' शब्द का प्रयोग हुआ है। स्मृति शब्द को श्रुति से विपर्यास प्रदर्शित करने के लिए प्रयोग किया गया है। पुरातन काल में लेखन परम्परा की अनुलपब्धता के कारण ऋषि अर्जित ज्ञान से अपने शिष्यों को कण्ठस्थ करा देते थे। यह पराम्परा कुछ काल तक अनवरत रूप से चलती रही। शिष्य को सुनाकर कण्ठस्थ करा दिए जाने के कारण से श्रुति परम्परा का ग्रन्थ माना गया। इस पराम्परा के अन्तर्गत चारों वेद आते हैं। किन्तु स्मृति शब्द का प्रयोग ऋषि प्रकाशित अथवा ऋषि दृष्ट वाङ्मय (श्रुति) से भिन्न अर्थ के लिए हुआ है।[3] इसका सीधा तात्पर्य स्मरण से है। स्मृति का श्रुति परम्परा से स्पष्ट भेद किया जा सकता है। स्मृति स्मरण शक्ति को प्रभावित करती है। इसके लिए किसी विशेष शिखा या साधन की आवश्यकता नहीं पड़ती है।[4]

स्मृति शब्द से पारिभाषिक और सामान्य दोनों अर्थों में प्रयोग किया जा सकता है। गौतम और बोधायन ने स्मृति को 'वेद को जानने वालों का स्मरण' माना है।[5] पूर्ववर्ती आचार्यों की व्याख्या को स्वीकार करते हुए मनु ने भी स्मृति शब्द का अर्थ 'वेदज्ञों का स्मरण' माना और उसका प्रयोग धर्मशास्त्र के अर्थ में किया है।[6] धर्मशास्त्रकारों का ये विचार अत्यन्त संकुचित प्रतीत होता है।

पी.वी. काणे ने स्मृति का व्यापक अर्थ ग्रहण किया है। उनके मतानुसार 'स्मृति का तात्पर्य वेद वाङ्मय से इतर ग्रंथों – तथा पाणिनीय + व्याकरण, श्रोतसूत,' गृह्यसूत्र और धर्मसूत्रों, महाभारत, मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्यस्मृति और अन्य ग्रंथों से है।[7] किन्तु सामान्यत: स्मृति का तात्पर्य संकुचित अर्थ में केवल स्मृति ग्रंथों से ही लिया जाता है तथा मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति आदि।

स्मृति ग्रंथों की प्राचीनता और परम्परा के सम्बन्ध में निर्णायक रूप से कुछ कह पाना बड़ा कठिन है। उपलब्ध स्मृति ग्रंथों में अनेक स्मृतिकारों का नामोल्लेख प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त भी अन्य ग्रंथों तथा विदेशियों के यात्रा वृत्तान्तों में विविध स्मृति-ग्रंथों का उल्लेख मिलता है। अलबेरूनी के अनुसार स्मृति वेद से उद्भूत है। ब्रह्मा के बीस पुत्रों ने बीस स्मृति ग्रंथों की रचना की। वे इस प्रकार है–

आपस्तम्ब, पराशर, शतपथ (शातातप), सामवर्त, दक्ष, वशिष्ठ, अंगिरस, यम, विष्णु, मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि, हारीत, लिखित, शंख, गौतम, बृहस्पति, कात्यायन, व्यास और उशनस्।

मनु और याज्ञवल्क्य की तरह पराशर ऋषि का भी उल्लेख वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। ऋग्वेद में वे शत्यातु और वशिष्ठ के साथ उल्लिखित है। पराशर नाम अति प्राचीन है। तैत्तिरीय आरण्यक एवं बृहदारण्यक (वंश में) में क्रमश: व्यास पराशर्य एवं पाराशर्य नाम की चर्चा हैं। निरुक्त उन्हें वशिष्ठ का पुत्र बतलाया है। पाणिनि के अनुसार भी भिक्षुसूत्र नामक ग्रंथ पराशर–कृत् है। पराशर स्मृति की भूमिका में यह स्पष्ट कहा गया है कि ऋषि लोग ने व्यास के पास जाकर उनसे प्रार्थना की कि वे कलयुग में मानवों के लिए आचार-सम्बन्धी धर्म की बातें बतायें। व्यास जी उन्हें बदरिकाश्रम में शक्तिपुत्र अपने पिता पराशर के पास ले गए और पराशर ने उन्हें वर्णधर्म के विषय में बतलाया। अत: पराशर स्मृति एक अति प्राचीन स्मृति है। क्योंकि याज्ञवल्क्य ने प्राचीन ध र्मवेत्ताओं के रूप में पराशन की गणना की है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपलब्ध प्रति प्राचीन प्रति का संशोधित रूप है गरूड़पुराण ने पराशन स्मृति के 39 श्लोकों सारांश लिया है। तुलना करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि पराशन के श्लोकों का अक्षरश: अथवा कुछ परिवर्तन के साथ आशय लिया गया है।[8] कौटिल्य ने पराशर या पराशरों के विचारों का छ: बार दिग्दर्शन कराया है। पराशर ने राजनीति पर भी लिखा था इससे यह स्पष्ट हो जाता है। महाभारत में पराशर व्यास के पिता के रूप में चित्रित है। एतदर्थ व्यास को पराशर्य अथवा पाराशरि कहा जाता है। अत: पराशर स्मृति पर्याप्त प्राचीन है।

पराशर का काल-निर्णय विवादास्पद है। डॉ. पी.वी. काणे ने लिखा है कि 'विश्वरूप मिताक्षरा अपरार्क, स्मृतिचन्द्रिका, हेमाद्रि ने पराशर को अधिकतर उद्धृत किया है। इससे स्पष्ट है कि नवीं शताब्दी में यह स्मृति विद्यमान थी। इसे मनु की कृतिका ज्ञान था।

अत: यह प्रथम शताब्दी तथा पांचवीं शताब्दी के मध्य में कभी लिखी गई होगी।[9] पिछले पृष्ठों में यह कहा गया है कि स्मृतियों का पौर्वावर्य का निध र्रिण करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। एतदर्थ उनका काल भी विवाद के जाल में फँस जाता है। इसका प्रमुख कारण एक ही नाम से भिन्न-भिन्न ग्रंथों में पाया जाता है। पराशर के काल-निर्णय में प्राय: सभी ने डॉ. काणे के मत का समर्थन किया है। अत: इनका मत अत्यधिक समीचीन प्रतीत होता है।

पराशर नाम पर कई स्मृति ग्रंथों का उल्लेख मिलता है। एक वृहत्पराशर-संहिता भी है जिसमें बारह अध्याय और 3300 श्लोक है। लेकिन यह बाद की रचना प्रतीत होती है। यह पराशर स्मृति का संशोधन है। इसमें विनायकस्तुति की गई है। इस संहिता को मिताक्षरा, विश्वरूप या अपरार्क ने उद्धृत नहीं किया है। लेकिन चतुर्विंशति मत के भाष्य में भट्टोजिदीक्षित तथा दत्तकमीमांसा में नंद पण्डित ने इससे उद्धरण लिया है। अपरार्क के द्वारा एक पराशरनामी स्मृति का उल्लेख है जिसे वृद्धपराशर कहा जाता है। किन्तु यह पराशरस्मृति एवं बृहत्पराशर से भिन्न स्मृति है। हेमाद्रि और भट्टोजिदीक्षित द्वारा ज्योति पराशर का उल्लेख है जिससे वे उद्धरण लिए हैं। परन्तु पराशन स्मृति के नाम से जो मान्य स्मृति ग्रंथ है उसमें बारह अध्याय तथा 593 श्लोक है। इसमें चातुर्वण्याचारादि कथन, सभी वर्णों का साधारण धर्म निरूपण आचार एवं विधि प्रकार के प्रायश्चित का विवेचन है। इस ग्रंथ का कई बार प्रकाशन हो चुका है। इस पर माधव की विस्तृत टीका अधिक प्रसिद्ध है। पराशर ने अन्य 19 स्मृतिकारों का नाम गिनाया है।

पराशर में कुछ विलक्षण बातें पायी जाती है– केवल चार प्रकार के पुत्र (औरस, क्षेत्रज, दत्त और कृत्रिम)। यद्यपि यह ग्रंथ से स्पष्ट नहीं हो पाता कि वे अन्यों को नहीं मानते। सती-प्रथा की उन्होंने खूब स्तुति की है। पराशर ने अन्य धर्मशास्त्रों के मतों की चर्चा की है। मनु का नाम कई बार आया है। बौध ायन धर्मसूत्र की बहुत सी बातें पायी जाती है। पराशर ने उशना, प्रजापति, वेद, वेदांग, धर्मशास्त्र स्मृति आदि की स्थान-स्थान पर चर्चा की है।

पराशरस्मृति के रचयिता पराशर एक प्राचीन ऋषि हैं, लेकिन उनके नाम से उपलब्ध स्मृति बाद की रचना प्रतीत होती है। पराशर ने अपने स्मृतिग्रंथ में आचार और प्रायश्चित का विशद् विवेचन किया है, किन्तु दैन्दिन जीवन के लिए सर्वथा उपयोगी व्यवहार पक्ष को लगभग छोड़ दिया है। मानवों के लिए अकार्य श्रेणी के विषयों की विवेचना विस्तृत रूप से हुई है। वस्तुओं की उपादेयता और हेयता का भी विस्तृत वर्णन है। कौन-सा आचरण स्वीकार्य है और कौन-सा त्याज्य अथवा कौन-सा वस्तु ग्राह्य और अग्राह्य है इस विषय का प्रतिपादन सम्यक् ढंग से हुआ है। राजा के कर्त्तव्यों का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है कि 'क्षत्रिय को चाहिए कि प्रजा की रक्षा करे। हाथ में शस्त्र धारण किए ही रहे। दण्ड भलीभाँति दे और दूसरे की सेनाओं को जीतकर धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन करें।

क्षत्रियो हि प्रजारक्षन शस्त्रप्राणिः प्रदण्डवान्।
निर्जित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत्।।

इसी क्रम में उन्होंने लक्ष्मी को कुक्रमानुगत न मानकर शस्त्रोपार्जित माना है और वीरभोग्या वसुन्धरा का सिद्धान्त स्थापित किया है–

न श्रीः कुलक्रमाज्जाता भूषणोल्लिखिताऽपि वा।
खड्गेनाक्रम्य भुञ्जीत वीरभोग्या वसुन्धरा।[10]

वैश्यों और शूद्रों की वृत्तियों का भी पराशर ने उल्लेख किया है। कृषि कार्य करने वाले लोगों के लिए यह विधान बतलाया गया है कि किस प्रकार के पशुओं को हल में जोते और किस प्रकार को नहीं जोते। मद्य और मांस बेचने अभक्ष्य के भक्षण करने और अगम्य स्त्री का गमन करने से शूद्रों का पतन हो जाना और वेद अक्षरों का विचार करने से नरकगामी होना (शूद्रस्य नरक ध्रुवम्) इस बात की ओर संकेत करते हैं कि मनु की तरह ये भी उनके प्रति अधिक कठोर हैं। यह संकेत व्यवस्थाओं में तो परिलक्षित होते ही हैं, सांस्कृतिक सामग्री में भी झलकते हैं। ये शासन व्यवस्था और राजनीति, धार्मिक विश्वास और सम्प्रदाय, सामाजिक स्थिति, आर्थिक जीवन, शिक्षा पद्धति आदि अनेक क्षेत्रों में देखे जा सकते हैं।

लेकिन इस आरोप का परिष्कार किया जा सकता है। विधि और विधान किसी काल की सांस्कृतिक परिस्थितियों को परिलक्षित करने में कितने समर्थ होते हैं यह विचारणीय है विधि में एक आदर्श विधान होता है जो भविष्य की गतिविधियों और परिस्थितियों को नियमित करने का प्रयास करता है। विधि , देश, काल और परिस्थिति के अनुरूप होती है। वह कल्पना लोक में नहीं विचरती। अतीत के परिवर्तन और विकास के परिणामस्वरूप ही ये होते हैं। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि – 'वे तत्कालीन यथार्थ से सीधे जुड़े होते हैं। वे समकालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में ही बनाये जाते हैं। विधि की व्यवस्था कदम-कदम पर अपने काल की दिशा की ओर संकेत करती है, उसी को व्यवस्थित और नियमित करना चाहती है। इस काल की दशा की पृष्ठभूमि में ही उसे हम समझ सकते हैं।[11]

अकार्य कृत्तियों के किए जाने पर उसका प्रायश्चित और दण्ड का विस्तार से उल्लेख पराशर ने किया है। संभव है उनके समय तक सामाजिक परिस्थितियों के कारण सती-प्रथा की अनिवार्यता हो गयी हो। मानवों के दैन्दिन जीवन के पक्षों का विस्तृत उल्लेख करने के कारण समाज ने पराशरस्मृति को कलियुग के लिए प्रधानस्मृति मान लिया – कलौ पराशर स्मृतः। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि मनु और याज्ञवल्क्य की महत्ता अधिक है फिर भी अन्य स्मृतिकारों में पराशर महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं।

संदर्भ सूचीः

1. रघुवंशम् सर्ग-2 श्लोक 2
2. वी.एस.आप्टे – संस्कृत हिन्दी कोश पृ. 1153
3. याज्ञवल्क्यस्मृति (अनु. – उमेशचन्द पाण्डेय), पृ. 27
4. अल्फ्रेक्ट, बेबर, भारतीय साहित्य (अनु.– उमेश चन्द्र पाण्डेय) इलाहाबाद, 1968, पृ. 11
5. गौतमर्धमसूत्र 1-2, बौधायनधर्मसूत्र-1-1-3
6. श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रः तु वे स्मृतिः। मनु-2-10 मनु ने स्मृति शब्द को धर्मशास्त्र के पर्याय में रखकर उसका क्षेत्र संकुचित कर दिया। तैत्तिरीय आरण्यक (1-2) एवं पूर्व मीमांसा 6-8-23, 12-4-24 में स्मृतिशब्द कुछ व्यापक अर्थ में आया है। वेदान्तसूत्र में भी 'स्मृति' का व्यापक अर्थ लेते हुए उसमें सांख्यदर्शन को भी ग्रहण किया गया है। वेदान्त सूत्र 3-1-14-21, 4-2-14
7. पी.वी. काणे – धर्मशास्त्र का इतिहास भाग - 1, पृ. 40
8. गरूड़पुराण अध्याय-107
9. धर्मरण्स्त्र का इतिहास भाग - 1, पृ. 55
10. पराशरस्मृति अध्याय-1, श्लोक-66-67
11. डॉ. राजदेव दूवे – स्मृतिकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति प्राक्कथन-पृ. 6

मीटूइनइंडियाः एक आलोचनात्मक पड़ताल

अपर्णा दीक्षित

अनुसंधान सहायक, सरोजिनी नायडू महिला अध्ययन केंद्र, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली

एवं, शोधार्थी, स्कूल ऑफ जेंडर एंड डेवलेपमेंट स्टडीज, इग्नू, नई दिल्ली

हाल में ही अनुराग कश्यप पर अभिनेत्री पायल घोष ने यौन शोषण का आरोप लगाया है। जिसके बाद से भारत में रुमीटूइंडिया आंदोलन फिर से चर्चा में हैं। गौरतलब है कि अभिनेत्री ने ये आरोप उन पर दो साल पहले ट्वीटर पर भी उनका नाम लिए बिना लगाए थे। जिसका कुछ असर रहा नहीं। इस पर पायल का कहना है कि उनके ऊपर परिवार का लागातार ये ट्वीट हटा लेने का दबाव था। जिसमें से कुछ उनके मैनेजर व परिवार वालों ने हटा भी लिए। वे इसे पूरी तरह से फर्जी आंदोलन कह रही है और प्रभावशाली लोगों के लिए ही उपयोगी बता रही हैं। वर्तमान में इससे संबंधित उनके दो ट्वीट काफी तेजी से वायरल हो रहे हैं। प्रस्तुत शोध आलेख पायल घोष के रुमीटूइंडिया आंदोलन को फर्जी कहे जाने की पड़ताल है। जिसके तहत 2017 में अमेरिका से शुरु हुए रुमीटू आंदोलन की सार्थकता को हिन्दुस्तान में देखने की कोशिश की जा रही है।

भारतीय परिपेक्ष्य में रुमीटू की उपयोगिता को जांचने से पहले इसे जान लेना जरूरी है। रुमीटू या मेरे साथ भी यौन शोषण का साझा आंदोलन है। महिलाएं सोशल मीडिया का उपयोग करके अपने साथ जीवन में किसी भी वक्त हुई यौन शोषण को सामने ला रही है। किसी व्यक्ति ने अगर उनके साथ अपना प्रभाव, पद या ताकत दिखाकर उनका यौन शोषण किया है तो वे रुमीटू की मदद से अपने साथ हुआ शोषण पर आवाज बुलंद कर रही हैं। महिलाएं लिख रही हैं कि कभी डरकर तो कभी बदनामी से बचने के लिए किस तरह उन्हें चुप रहना पड़ा और आज जब उन्हें एक पटल और दूसरों के लिखने से हिम्मत मिल रही है तो वे अपने उत्पीड़न का दर्द भी साझा कर पा रही हैं। कहन की इस प्रक्रिया में वे प्रभावशाली लोग तो बेनकघब हो ही रहे है साथ ही कह देना मुक्तिगामी भी हैं। ब्लैक नारीवादी बेल हुक्स भी कहती है कि कह देने की प्रक्रिया में हम मुक्ति का अनुभव करते हैं। गौरतलब है कि इस आंदोलन के तहत उन महिलाओं ने अपने शोषण के किस्से सबसे ज्यादा साझा किए जिनके साथ ऐसा उनके कार्य स्थल पर हुआ। लेकिन सवाल ये भी है कि क्या कहन की ये सहूलियत सबको उपल्ब्ध है? अगर नहीं तो फिर क्या ये सारी महिलाएं को मुक्ति का समान अनुभव करवा रहा है? यह भी नहीं तो हम इसको रुमीटूइंडिया क्यूं कह रहे हैं। इन्हीं सवालों की तलाश में यह पर्चा रुमीटूइंडिया को हाशिये की औरतो की तरफ से समझने की कोशिश में लिखा गया है।

"अगर आपने कभी भी जीवन में यौन शोषण या हिंसा झेली है तो इस ट्वीट के जवाब में मीटू यानि मैं भी लिखें"। यह ट्वीट 16 अक्टूबर 2017 की दोपहर अमेरिकी नायिका एलिसा मिलानों ने किया। जिसके बाद सोशल मीडिया में हड़कंप मच गया। आखिरकार 18 अक्टूबर तक इस ट्वीट पर 5 लाख से ज्यादा ट्वीट हो चुके थे। साथ ही फेसबुक पर 1 करोड़ 20 लाख पोस्ट पर रुमीटू लिखा गया। इसमें 45% अमेरिकी लोग थे। महिलाएं लगातार जुड़ रही थीं। अपनी दर्द और उत्पीड़न की कहानियां साझा कर रही थीं। बताते चलें कि इस अभियान में जल्द ही ऐश्ले जूड, जेनीफर लारेंस, उमा थर्मन जैसी बड़ी अभिनेत्रियों के नाम भी जुड़ गए। और आखिरकार सैकड़ों महिलाओं की शिकघयत के बाद इसमें हॉलावुड के दिग्गज प्रोड्यूसर मीरामैक्स के कोफाउंडर हार्वी वींस्टन का नाम सामने आ गया। जिसके बाद वींस्टन से सबसे दूरी बना ली। हॉलीवुड से उठे इस शोर की गूंज म्यूजिक एंव दूसरी इंडस्ट्रीज से होती हुई अकैडमिक्स तक आ गई। इसके बाद रेया सरकार की 24 अक्टूबर 2017 की लिस्ट के जरिए भारत में भी रुमीटू ने दस्तक दे दी। रेया सरकार से भारत के नारीवादियों तक में दो फाड़ हो गए। एक वे जो ऐसा किए जाने के पक्षधर थे। दूसरे वे जो इसके विरोध में खड़े थे। इसे गैरजिम्मेदाराना बताते हुए व्यवस्थित संस्थानिक प्रक्रिया अपनाए जाने की पक्षधरता कर रहे थे। ये विवाद अभी चल ही रहा था कि सितंबर 2018 में अपने एक इंटरव्यू में तनुश्री दत्ता ने नाना पाटेकर यौन उत्पीड़न के आरोप लगाए। उन्होंने बताया की किस तरह 2008 में हॉर्न आके प्लीज की शूटिंग के दौरान नाना पाटेकर ने उनका यौन उत्पीड़न किया। इसके बाद तो जैसे बॉलीवुड में एक फेहरिस्त सी लग गई। महिला कलाकारों ने खुल के लोगों के नाम रुमीटू के साथ लेने शुरू किए और कई नामचीन चेहरे बेनकघब हो गए। वर्तमान में पायल घोष के अनुराग कश्यप पर यौन उत्पीड़न का आरोप लगाने के साथ ही एक बार फिर रुमीटू चर्चा में हैं। लेकिन गौर करने लायक बात ये है कि इस बार पायल घोष इसकी निर्थकता की तरफ इशारा कर रही हैं।

रुमीटू के तहत उठाए गए इन सभी मामलों में हम खघसकर हिन्दुस्तान में अगर आरोपी पर आरोप सिद्ध होने और उसे सजा मिलने का अनुपात देखे तो न के बराबर है। मैं इस पूरी बहस को हाशिए की तरफ ले जाना चाहती हूं। जहां से हिन्दुस्तान की ज्यादातर आबादी आती है। हमारे देश की 90 प्रतिशत आबादी आज भी असंगठित क्षेत्र में काम करती है। विशाखा गाइडलांइस के 20 साल बाद भी आज इन महिलाओं का कार्य और कार्यस्थल निश्चित नहीं हैं। उन्हें इतनी भी आजादी नहीं कि वो यौन शोषण को नोटिस कर सकें। कंस्ट्रक्शन साइट, मिल, भट्टे, या खेतों पर काम करने वाली महिलाएं हर दिन ये उत्पीड़न झेलती हैं, लेकिन आवाज नहीं उठाती, हर दिन अपने कार्यस्थल पर नेगोशिएट करती हैं. ताकि अपना और परिवार का पेट भर सकें। सवाल ये है कि क्या रुमीटू जैसा सोशल मीडिया मूवमेंट उनकी सामाजिक सच्चाई और मुद्दों को उठाता है। रुकमिनी सेन मी टू के संदर्भ में कहती है दो तरह की आबादी है। एक वो जो आवाज उठाती है और सामाजिक राजनैतिक स्पेस में अपनी जगह बनाती है। और दूसरी वो जो कुछ नहीं कहती क्योंकि उन्हें उसके बाद के बैकलैश से डर है। लेकिन उस तीसरी आबादी का क्या जो कहने न कहने के बीच राजनैतिक तौर पर स्वीकार्य वक्तव्य के तथाकथित हुनर से ही

पूरी तरह बाहर है। मैं गीता चड्ढा की डोना हार्वेरियन अवधारणा साइबरॉग से भी इत्तेफाक नहीं रखती। क्योंकि मेरा मानना है मशीन से प्यार करने की सहूलियत उन्हें नहीं जिनकी जिंदगी में मशीन पूंजीवाद, सामंतवाद और जातिवाद को पालन करने टूल के तौर पर आती है। यहां मार्क प्रैन्सकी की अवधारणा डिजिटल नेटिव और डिजिटल इमिग्रेट्स की मदद से भी मैं सोशल मीडिया कैपेन की सच्चाई को हिंदुस्तानी माशरे में देखना चाहूंगी। और इसमें एक नया वर्ड डिजीटली डेड जोड़ना चाहूंगी। प्रैन्सकी के हिसाब से अगर हम भारत में मीटू की शुरुआत करने वाले चंद लोगों को डिजिटल नेटिव, फॉलों करने वाली सीमित मध्यम वर्गीय आबादी को डिजीटल इमीग्रेट्स कहें। तो जिस आबादी की बात मैं कर रही हूं वो डिजिटली डेड है। जिन्होंने कभी कंप्यूटर छुआ नहीं और तमाम ने तो देखा भी नहीं। और वो आबादी हमारे देश का सबसे बड़ा हिस्सा है। लगभग 90 प्रतिशत। तो सवाल ये है कि क्या मी टू इन 90 प्रतिशत औरतों के साथ हो रहे कार्य स्थल के उत्पीड़न को उजागर करने में समर्थ है।

मेरा दूसरा महत्वपूर्ण तर्क अमेरिकी सोशल मीडिया से शुरु हुए मी टू कैंपेन के 24 अक्टूबर 2017 में हिन्दुस्तान में रेया सरकार की लिस्ट के जरिए आने को लेकर है। जिसमें बड़े भारतीय पुरुष अध्येयताओं के नाम सामने आए। जिसके ठीक बाद काफिला ऑन लाइन जरनल में निवेदिता मेनन ने बयान जारी किया जिसके केंद्रीय तर्क में वे लिस्ट बनाने वालों से कहती है कि प्लीज अवेल ऑफ ड्यू इस्टीट्यूशनल प्रॉसेस। निवेदिता मेनन की इस प्रार्थना को मैं उनकी सामाजिक जगह (सोशल पोजीशनिंग) के साथ जोड़कर देखती हूं। जिसमें वे भारतीय व्यवस्था में किसी भी आंदोलन को राजनीतिक तौर पर व्यवस्थित करने की बात कर रही हैं। साथ ही इंटरसेक्शनल फैमिनिस्ट का ये भी मानना है कि दलित व बहुजन परुषों का उत्पीड़न भी इस तरह की कैंपेन की एक बड़ी सीमा है। जिसकी बात रुमीटू में हो ही नहीं रही। वे पूरी तरह से बहस से ही गायब हैं। दूसरा बड़ा सवाल जोशी व मैलगन की 2017 की रिपोर्ट से उभरता है जिसमें उन्होंने बड़ी सरकारी संस्थाओं में अध्येयताओं के अनुपात का सर्वे किया और रिपोर्ट के मुताबिक 512 अध्येयताओं में 13 ओबीसी व 2 एससी थे जबकि एसटी एक भी नहीं। ऐसे में ये भी देखना पड़ेगा की शैक्षणिक जगत में भी कौन ऐसी कैपेन के बहाने पक्ष या विपक्ष में बोल पा रहा है और किसके लिए बोल पा रहा है। और सबसे अहम क्या बोल रहा है या बोल पा रहा है।

हिन्दुस्तान जैसी हिंदू जाति आधारित पुरुष प्रधान समाज में रुमीटू जैसे सोशल मीडिया कैंपेन दलित, बहुजन व आदिवासी औरतों की न तो आवाज है और न ही उनका माध्यम। इस संदर्भ में मार्शल मैक्लूहॉन का प्रसिद्ध वाक्य याद आता है कि माध्यम ही संदेश है। ऐसे में माध्यम खुद्द ही जाहिर कर देता है कि वो किसका संदेश प्रेषित करेगा। ये एक बेहद छोटे उभरते डिजिटली साउंड भारतीय मध्यम वर्गीय औरत की आवाज को तो सामने ला सकता है लेकिन हिंदुस्तान के एक बहुत बड़े तबके की औरतों का प्रतिनिधित्व बिल्कुल नहीं करता। उनमें भी आज जब यूएन वोमेन की रपट के मुताबिकध् हर तीन में से एक औरत इस दुनिया में हर दिन पिट रही है। और घर औरतों के लिए सबसे असुरक्षित जगह बन चुके हैं। जब उन्हें बाहर की दुनिया में काम करने के अवसर खोजने के मौके मिलते हैं। सीधे शब्दों में कहें कि जब वे अपनी परंपरावादी भूमिकाओं से ट्रांसग्रेस कर रही होती हैं। तो इस तरह के कार्यस्थल पर किए जाने वाले उत्पीड़न के साथ समझौता कर लेती है। ऐसे में उनका सवाल उठाना भी उन्हें ही सवालों के घेरे में खड़ा कर देता है। और अंततः वे घर की चारदीवारी में लाकट पटक दी जाती हैं। आंकड़े कहते हैं कि लॉकडाउन के समय में महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा में 20% का इजाफा हुआ। अब अंदाजा लगाइए ऐसी महिलाएं जो घर से काम करती हैं। जिनका कार्यक्षेत्र शुरु से ही उनका घर रहा है, जैसे सिलाई-कढाई या अचार-पापड़ के काम से जुड़ी महिलाएं। वे किस तरह से अपने साथ कार्यस्थल पर होने वाले शोषण के खिलाफ आवाज उठाएं। उनके पास रुमैंभी लिखने की न तो सहूलियत है न ही जरिया। इस तरह के मामलों में बिना जमीनी हस्तक्षेप, उनका जागरुक और सशक्त किए हालात नहीं बदले जा सकते। या फिर हम समझ ले अधिकाशतः जैसा होता रहा है नारीवाद को एक सजातीय श्रेणी मान लिया जाए। मुठ्ठी भर महिलाओं की आवाज को बिना वर्ग, जाति व धर्म के आधार पर समझे सारी औरतों का मुद्दा मान लिया जाय। एक आयातित नारीवाद का बिगुल बजाते रहा जाए। जिसमें न तो हम अपने मुद्दे चुनने को तैयार हैं, न ही उनके हकध् में प्रतिरोध का अपना तरीका। जिसकी अंततः गति पूंजीवाद एंव जातिवाद के मुहाने पर आते ही दम तोड़ देना है। और महिला मुद्दों की कास्मेटिक सर्जरी करते चले जाना है। जिसकी संकल्पना बराबरी के सिद्धात से तो किसी भी तरह उपजी नहीं मानी जा सकती। ऐसे में एक बड़े जमीनी भारतीय आंदोलन का रुमीटू एक समूह के खघस परिस्थतियों में बात रखने का माध्यम तो हो सकता है लेकिन अकेले भारतीय समाज में हम इसे आंदोलन नहीं कह सकते।

तुम्हारी आवाज साफ बुलंद और तेज है।
अफसोस हमारी आवाज से बेहद अलग।
क्यूं नहीं तुम कभी मेरी डेहरी पर आती,
हम....घूमते, नुक्कड़ों, चौराहों, चबूतरों, पगडंडियों पर,
बेसुध-बेतहाशा भागते, चीखते-चिल्लाते, नाचते गाते,
और खोज लाते एक नई आवाज।
कुछ कम बुलंद... भर्रायी, सहमी, अटकटी, भटकती, सिमटती,
कभी कर्कशाती और फिर फैल जाती,
नसों में उनके।
यकीन मानों ...पितशाही के कानों के पर्दे फाड़ देती।
हमारी! हम सबकी आवाज।

संदर्भ

https://www.epw.in/engage/article/caste-gender-matrix-and-promise-and-practice-academia
https://www.epw.in/engage/article/sexual-harassment-limits-speech
https://www.researchgate.net/publication/341881494_Sexual_harassment_is_endemic_in_academic_spaces_An_insider's_perspective https://www.epw.in/engage/article/towards-complex-feminist-solidarities-list-statement#:~:text=This%20article%20 argues%20 that%20 in,some%20contours%20for%20these%20conversations.
https://edition.cnn.com/2017/11/09/health/india-me-too-allegations/index.html
https://navbharattimes.indiatimes.com/india/what-is-metoo-movement/articleshow/66215187.cms
https://medium.com/krantikali/raya-sarkar-and-all-the-lists-men-ae956f21eab1
https://kafila.online/2017/10/24/statement-by-feminists-on-facebook-campaign-to-name-and-shame/

भक्तिकालीन कविता में लोकधर्म

डॉ० अजय कुमार यादव

इस्लाम के आगमन से पूर्व भारतीय सामंतवादी ढाँचा सामाजिक रूढ़ियों के चलते वेगहीन हो चला था, उसकी शोषणवादी प्रवृत्तियाँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। इस्लाम के आगमन ने इस सामाजिक ढाँचे को और भी जटिल बना दिया। प्रतिक्रियात्मक तौर पर समाज की जड़ता में तूफानी विक्षोभ उमड़ा, जिसने समूचे समाज को आत्मनिरीक्षण का अवसर प्रदान किया लेकिन समाज की जड़ता में किंचित कमी होने के बजाय उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। परिवेश के धार्मिक होने के कारण शोषण का स्वरूप भी बहुत कुछ धार्मिक लबादा ओढ़े रहता था। परन्तु इस समूची जड़ता का एक धनात्मक परिणाम यह हुआ कि भारतीय समाज का आत्म निरीक्षण प्रतिदिन प्रबल हुआ। भक्तिकालीन कविता संक्रमण काल की इन्हीं स्थितियों के परिणामस्वरूप आंदोलनात्मक तेवर प्राप्त करती है। प्रो. मैनेजर पांडेय के शब्दों में कहें तो, ''वास्तव में यह सामंती संस्कृति के विरुद्ध जनसंस्कृति के उत्थान का अखिल भारतीय आन्दोलन है।''[1]

आचार्यों ने भी भक्तिकालीन कविता को विवेचित विश्लेषित करते हुए यह पाया है कि प्रथम बार भारतीय समाज की आधार भूमि इतनी विशुद्ध हो सकी कि जाति सम्प्रदाय, धर्म एवं सामाजिक भेद बहुत पीछे छूट गए। मुक्तिबोध का भी मानना है कि प्रथम बार तथाकथित शूद्र जातियों से व्यापक स्तर पर संत आए, प्रथम बार युगों-युगों से दलित शोषित जनता अभिजात्य वर्ग के सामने सिर उठाकर खड़ी हो सकी, यह सब इस कविता की ही देन है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जब भक्ति काव्य का मूल्यांकन करते हैं तो वह इसका मूल्यांकन लोकधर्म और लोकजागरण की दृष्टि से करते हैं। यद्यपि उनकी अपनी कुछ सीमाएँ हैं जिसके तहत वह सन्त काव्यधारा में अन्तर्निहित प्रगतिशील तत्त्वों का सटीक विश्लेषण नहीं कर सके किन्तु उन्होंने साहित्यिक मूल्यांकन को जनवाद की जो कसौटी प्रदान की उससे भक्तिकाव्य के परवर्ती मूल्यांकन को बल मिला। आचार्य शुक्ल से लेकर द्विवेदी जी, रामविलास शर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी, शिवकुमार मिश्र, मैनेजर पांडेय आदि आचार्यों ने इस कविता के सामाजिक मूल्यांकन पर बल दिया एवं इसे राष्ट्र की शिराओं में रक्त का संचार करने वाला कहा है, निम्न वर्ग के अन्दर आत्मविश्वास जाग्रत करने वाला कहा है एवं लोकजागरणकारी कहा है।

भक्तिकालीन कविता में आध्यात्मिक चिन्ता भी है, इसके बावजूद आज भी अगर हमें किसी कारण यह सर्वाधिक प्रभावित, प्रेरित और उद्वेलित करता है तो अपने उदात्त सामाजिक विजन के कारण। चूँकि इस काल के कवियों की आध्यात्मिक चिन्ता आकाशीय नहीं है, बल्कि भारतीय जीवनसे ही उपजी है और इसी पर प्रतिष्ठित है, इसीलिए उनकी आध्यात्मिक चिन्ता सामाजिक चिन्ता में एकमेक हो जाती है।

बुद्ध महावीर आदि महापुरुषों ने जिस विचार क्रान्ति का आरम्भ किया था उसकी भावात्मक निष्पत्ति भक्ति कविता में मिलती है। कबीर, नानक और रैदास का ब्रह्म तमाम पारम्परिक, दार्शनिक मान्यताओं के उपर है चूँकि वह घट-घट में व्याप्त है इसलिए सत्ता की परिकल्पना, सहज साध्य हो जाती है और शायद यही कारण रहा कि अकेले चलने का व्रत लेने वाले कबीर, हिन्दू और मुस्लिम दोनों धर्मों से तटस्थ रहने वाले कबीर, सामंती समाज की दशा को देखकर रो पड़ते हैं-

''चलती चाकी देख के दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय।।''

भक्ति काव्यधारा ऐसे समाज की कल्पना करती है, जिसमें धार्मिक रूढ़ि, परम्परागत, अंधविश्वास, जातिगत, वर्णगत सम्प्रदाय गत भेदभाव एवं नाना प्रकार के कर्मकाण्डों के लिए कोई जगह नहीं है, जो समाज अपने अनुभवों में, अपनी संवेदनाओं में ईमानदार है, श्रमशील है और सद्प्रवृत्ति का साधक है, वह समाज इन संतों के लिए काम्य है।

भक्ति काव्यधारा में कबीर के साहित्य में समाज के प्रति जो प्रगतिशील क्रान्तिधर्मी, वैज्ञानिक विवेकवाद से समर्थित स्वच्छ एवं ईमानदार दृष्टिकोण का परिपाक पाया जाता है, वह सन्तमत के अन्य कवियों दादू, रैदास, मलूका, पीपा, सेन, नानक, पल्ट्, दरिया, भोखा, रज्जब साहब आदि के यहाँ कम प्राप्त होता है। यद्यपि इन सारे संतों की दार्शनिक एवं सामाजिक मान्यताएँ लगभग एक जैसी है लेकिन यह प्रतीत होता है कि जितना आक्रोश व्यक्त करना था वह सब कबीर में ही मूर्त हो गया था। लेकिन इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता है कि प्राय निम्नवर्ग से आये हुए ये सभी संत दलित वर्ग के अंदर अनोखे आत्मविश्वास का संचार करते है और इसी दृष्टि से उनके काव्य के आध्यात्मिक आस्वाद में समाज के लिए प्रगतिशील दृष्टि का उन्मेष भी मिलता है।

निर्गुण भक्ति धारा की दूसरी शाखा सूफी काव्यधारा का महत्त्व उसके लोकधर्मिता के कारण ही बढ़ जाता है। आज हिन्दी में यह एक मुहावरा है कि सूफी काव्य सांस्कृतिक मेल जोल का काव्य है। वस्तुतः सूफी काव्यधारा की जो लोकधर्मी जमीन है उसका सामाजिक मूल्यांकन अनिवार्यतः उसके काव्य को खोलता है। विजयदेव नारायण साही जायसी को सूफी से ज्यादा सेक्युलर मानसिकता के कवि मानते हैं। जिस सामन्ती संस्कृति में नारी भोग की वस्तु थी और उसे पाने के लिए बड़े-बड़े युद्ध हुआ करते थे, जायसी उसे खुदा का दर्जा देते है। सूफी कविता में प्रेम व मानवधर्म की सत्ता को सर्वोपरि माना गया है। इसका सबसे बड़ा रचनात्मक सामाजिक उपक्रम यह है कि सामंती संस्कृति का अतिक्रमण करके सूफी कवि सहज नैसर्गिक जीवनोत्सव की प्रतिष्ठा करते हैं, जिसकी जमीन प्रेम की जमीन है।

मध्यकालीन कविता के सामाजिक प्रश्नों में एक महत्वपूर्ण प्रश्न लोकधर्म की प्रतिष्ठा व लोकमंगल की भावना का ही है। जिसका चरम स्थल हमें तुलसी की कविताई में मिल सकता है। रामचरित मानस के बालकाण्ड में तुलसी ने लिखा है-

'नानापुराण निगमागम सम्मतं यद,
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा,
भाषा निबन्धमतिमंजुलमातनोति।।

'रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि' अर्थात् रामायण के अलावा इसमें और भी कुछ है, शायद यही तुलसी का कवित्त विवेक है। इस और में तुलसी की अपनी आकांक्षा छिपी है जो कि लोकधर्म के प्रतिष्ठापन की है। तुलसी रामराज्य की परिकल्पना देते है। एक आदर्श सामाजिक व सांस्कृतिक व्यवस्था देने की जो चाह है वही तुलसी को लोकमंगलकारी कवि बनाती है। तुलसी ही ऐसे कवि है जिन्होंने अकाल का मार्मिक वर्णन करते हुए यह लिखते हैं 'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख भली।'' तुलसी ने 'पेट के सच' को 'आत्मा के सच' से उपर बताया है और अपनी इसी संवेदना में वह कबीर से आगे बढ़कर लोकजीवन की थाह लेते हैं। वह रामराज्य की परिकल्पना में लोकधर्म की प्रतिष्ठा लोकभाषा में अपने काल के वैचारिक द्वन्दों को समेटते हुए लोकमानस में करते हैं।

सूरदास के यहाँ लोकधर्म का एक नवीन रूप देखने को मिलता है, जो अन्य कवियों के लोकधर्म से अलग जमीन पर प्रतिष्ठित है। सूर की पैठ लोकजीवन के मर्म तक है। वह लोक जीवन की सही नब्ज पकड़ते है और सामन्ती व्यवस्था का शोषाणकारी मार्गा को ठुकराते हुए 'प्रेम की व्यवस्था को सर्वोपरि महत्व देते हैं। जब नारियाँ मुगल राजाओं के हरमों की वस्तु हो गयी थीं, तब सर्वप्रथम सूरदास ने नारी-मुक्ति का बिगुल बजाया था। मजे की बात यह है कि यह मुक्ति किसी महानायक द्वारा नहीं की जाती है, बल्कि नारी अपनी लड़ाई स्वयं लड़कर अपने आत्मविश्वास का परिचय देती है।

एक ऐसे समय में जब नारी विलासिता की वस्तु हो गयी थी, मातष्टत्व गर्हित हो चला था। उस कालखण्ड में सूरदास अपनी ईमानदारी एवं चरम संवेदनशीलता का परिचय देते हुए यशोदा जैसी माँ का प्रतिष्ठा करते है और ब्रह्म को शिशु के रूप में चित्रित करके मानवीय संवेदना के कोमलतम तंतु पर ऊँगली रखते हैं। राजसी विलासिता के समक्ष यह गृहस्थ जीवन की प्रतिष्ठा है। सूर का काव्य, नारी को शक्तिके रूप में प्रतिष्ठा करके उस समय के समाज को सबसे बड़ा उपहार देता है। बलराम तिवारी लिखते हैं कि, ''सूर अपने समय के विलास-जर्जर समाज को देहवाद और भोगवाद की संकीर्ण गलियों से बाहर निकालकर वृदावन के उन्मुक्त विस्तार में ले आते हैं।''[2]

कालान्तर में मीरा सूर की गोपियों की व्यवहारिक व्याख्या ही बनकर आती हैं। सबसे पहले तो मध्यकाल में सामंती चौखटे को लांघकर कृष्णा प्रेम का गीत गाने वाली मीरा राजघराने की अभिजात्यता को मुँह चिढ़ाती है। साधुओं के साथ रहने वाली मीरा के यहाँ अगर लोकधर्म की बात करें तो वह लोकध र्म नहीं है जिसमें प्रेम के रास्ते में लोकलाज दीवार बनती है बल्कि उनका लोकधर्म तो लोकलाज खोने के पश्चात ही उपलब्ध होता है। ''मीरा लोकलाज, कुल की मर्यादा तोड़ने का अदबदा कर उल्लेख करती हैं।''[3]

मीरा ने अपनी कविताओं में अपने व्यक्तिगत अनुभवों को ही अभिव्यक्त किया है, किंतु मीरा का वह अनुभव कमोवेश तमाम मध्यकालीन नारी का अनुभव है। वस्तुतः मीरा व्यक्ति नहीं, मध्यकालीन नारी की पीड़ा, बेचौनी, त्याग, समर्पण और विद्रोह का प्रतीक है। कृष्ण प्रेम में बावरी मीरा ने अपने का निर्भीक चित्रण किया। लेकिन प्रेम के प्रति हमारा समाज कभी सहिष्णु और उदार नहीं रहा, फिर मध्यकाल में तो स्त्रियों का प्रेम करना और डंके की चोट पर उसकी घोषणा करना एक अपराध ही था। मीरा ने यह अपराध जानबूझ कर किया। मीरा तमाम बंधनों को तोड़कर अपने प्रेम की साधना करती हैं। मीरा का यह बंधन उनके साथ और भी ज्यादा है। इस बारे में मैनेजर पांडेय का सूक्ष्म विश्लेषण द्रष्टव्य है- ''अपने प्रेम की रक्षा के लिए मीरा का संघर्ष चौतरफा है। उसके विरोध में राणा की राजसत्ता है और सिसोदिया कुल की मर्यादा भी, पुरुष-प्रभुत्व की सत्ता है और सामंती समाज की रूढ़ियाँ (लोकलाज) भी। इनमें से कोई भी एक स्त्री की स्वतन्त्र चेतना की हत्या करने में सक्षम है। फिर जहाँ चारों एकत्र हों वहाँ आतंक का क्या कहना।''[4] मीरा की कविता में जो मुक्ति की छटपटाहट है वह ठेठ मध्यकालीन भारतीय नारी की छटपटाहट है।

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने मीरा की कविता की एक अद्‌भुत विशेषता की ओर संकेत किया है जो उनकी कविता और उनके संघर्ष को और ज्यादा प्रमाणित करती है। वे लिखते हैं कि- ''मीरा भक्त थीं, लेकिन नारी भी थीं। वह भगवान के पास अपने नारीत्व को छोड़कर नहीं उसके साथ जाती हैं। अपने देशकाल की सामान्य नारी स्थिति के साथ जाती है। यह उनकी भावनाओं की प्रामाणिकता का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण है।''[5]

जहाँ तक नारी संबंधी दृष्टिकोण पर भक्तिकालीन कविता का मूल्यांकन करेंगे तो मीरा के अनुपात में नारी संवेदना अन्य मध्यकालीन कवियों में थोड़ी कम ही दिखती है। जैसा कि मैनेजर पांडेय ने 'भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य' में लिखा है कि, ''यद्यपि कबीर की सामाजिक चेतना अत्यंत प्रखर है, लेकिन उनके स्त्री-संबंधी विचारों पर उस युग की गहरी छाया है। 'सामाजिक व्यवस्था और धार्मिक विश्वास संबंधी कबीर के अधिकांश विचारों से तुलसीदास असहमत है, लेकिन स्त्री के बारे में दोनों की राय लगभग एक जैसी है।''[6] लेकिन कबीर के सम्बन्ध में यह गौरतलब है कि जो कबीर साधना के धरातल पर नारी को नरक का द्वार मानता है- 'नारी कुंड नरक का'। वही कबीर अनुभूति के धरातल पर समूचे प्रेम को स्त्री की निगाह से देखते हैं व प्रियतम के विरह को एक स्त्री की तरह महसूस करते हैं-

बालम आव हमारे गेह रे
तुम बिन दुखिया देह रे।।

तुलसी जहाँ यह लिखते हैं कि 'जिमि स्वतंत्र भए बिगरहिं नारी'। वहीं यह भी लिखते हैं-

कत विधि सृजी नारी जगमांही
पराधीन सपनेहूँ सपनेहूँ सुख नाहीं।

वहीं तुलसी 'सियाराम मैं सब जग जानी' भी लिखते हैं। परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि भक्तिकालीन कविता में स्त्री को लेकर एक स्पष्ट दृष्टिकोण का अभाव है।

मध्यकाल में प्रचलित तमाम सामाजिक बुराइयों जाँति-पाँति वर्ण व्यवस्था, छुआछुत, ऊँच-नीच भेदभाव से मध्यकालीन कविता संघर्ष करती है। अपने संघर्ष में कहाँ तक सफल रही यह तो हिन्दी आलोचना का शुरू से ही विषय रहा और भविष्य में भी रहेगा क्योंकि यह कविता हर बार एक नये रूप से खुलती है और हर बार मध्यकालीन समाज के एक और प्रश्न से जूझती दिखती है।

निष्कर्षत: हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकालीन कविता अपने लोकधर्मी स्वरूप के कारण ही महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह ऐसी कविता है जो अपने समय, समाज और जन संस्कृति से गहरा ताल्लुक रखती है। इसमें तत्कालीन सामाजिक जीवन की तरह-तरह की विसंगतियों की पहचान है। इस कविता में सामंती समाज-व्यवस्था और उसकी विचारधारा के मानव विरोधी रूपों तथा परिणातियों का बोध व चित्रण है तथा साथ ही उसके विरुद्ध विद्रोह भावना और जनसंस्कृति की सृजनशीलता की जैसी अभिव्यक्ति मध्यकालीन कविता में हुई है, वैसी उससे पूर्व की कविता में कम ही मिलती है। इस कविता में मुक्ति की छटपटाहट और जीवन की आकांक्षा है।

संदर्भ

1. पांडेय, मैनेजर. (2003). भूमिका से, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 5
2. तिवारी, बलराम. (2007). सूर की काव्य चेतना. इलाहाबाद: अभिव्यक्ति प्रकाशन, पृष्ठ 15
3. त्रिपाठी, विश्वनाथ. (1998). मीरा का काव्य. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 55
4. पांडेय, मैनेजर. (2003). भूमिका से, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 42
5. त्रिपाठी, विश्वनाथ. (1998). मीरा का काव्य. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 79
6. पांडेय, मैनेजर. (2003). भूमिका से, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 26

मलेरिया रोग में आहार एवं पोषण का चिकित्सा भौगोलिक अध्ययन

देवेन्द्र कुमार शर्मा

शोधार्थी, भूगोल विभाग, राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान, 301001

डॉ० विजय कुमार वर्मा

सह आचार्य, भूगोल विभाग, बाबू शोभा राम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान, 301001

शोध सारांश

मलेरिया मादा मच्छर एनोफिलीज मच्छर के काटने से होता है। एनोफिलीज मच्छर जब कोई व्यक्ति काटता है, तो उसके शरीर में प्लास्मोडियम नामक एक परजीवी छोड़ देता है। इस प्लास्मोडियम परजीवी के कारण आपका शरीर संक्रमित होने लगता है। मलेरिया में आपको बुखार, एनीमिया, सिरदर्द, मलगम में खून आना, उल्टी और ठंड लगना जैसे लक्षणों का सामना करना पड़ता है।

मलेरिया में खान-पान का ध्यान रखना मलेरिया के उपचार का हिस्सा है। इसलिए मलेरिया के रोगियों को यह अच्छी तरह से पता होना चाहिए कि मलेरिया में क्या खाना चाहिए और क्या नहीं। इसके अलावा, आपको यह भी पता होना चाहिए कि मलेरिया में किन चीजों से बचना चाहिए। हम आयुर्वेद के कुछ घरेलू उपायों के बारे में अध्ययन करेंगे जिनका उपयोग बुखार को कम करने के लिए किया जा सकता है। इस शोध पत्र में मलेरिया बुखार की समस्या से छुटकारा पाने के लिए भोजन, पोषण और घरेलू उपचारों का चिकित्सीय भौगोलिक अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्द कुँजी : मलेरिया के अर्थ और प्रकार, प्रदूषित जल के प्रभाव, मलेरिया में खाद्य पोषण, मलेरिया में आहार चार्ट, मलेरिया में संयम, घरेलू उपचार और मलेरिया से बचाव के उपाय।

परिचय

मलेरिया एक वाहक वहन करने वाला संक्रामक रोग है। यह सबसे अधिक प्रचलित संक्रामक रोगों में से एक है। हर साल यह दुनिया में 51.5 करोड़ लोगों को प्रभावित करता है और 10 से 30 लाख लोगों की मौत का कारण बनता है। यह बीमारी भूमध्य रेखा के आसपास के उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाई जाती है, जिसमें अफ्रीका और एशिया के अधिकांश देश शामिल हैं। भारत में, यह रोग पूरे वर्ष रहता है, हालांकि मच्छरों के प्रजनन के कारण अधिक लोगों को यह बीमारी बारिश के दौरान और बारिश के बाद होती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (W-H-O) के अनुसार, दक्षिण पूर्व एशिया में मलेरिया के कुल मामलों में से 77 प्रतिशत भारत में हैं।

यह बीमारी मुख्य रूप से राजस्थान, गुजरात, कर्नाटक, गोवा, दक्षिणी मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, ओडिशा और पूर्वोत्तर राज्यों में प्रचलित है। यह एक ऐसी बीमारी है जिसमें रोगी बार-बार बुखार के साथ सर्दी और सिरदर्द से पीड़ित होता है, बुखार कभी-कभी कम हो जाता है और कभी-कभी वापस आता है और गंभीर मामलों में रोगी कोमा में चला जाता है और मृत्यु तक। मलेरिया प्लास्मोडियम परजीवी के कारण होता है। 100 से अधिक प्रकार के प्लास्मोडियम परजीवी हैं। ये परजीवी खुद को अलग-अलग गति से दोहराते हैं, जिससे पीड़ित थोड़े समय में संक्रमित हो जाता है क्योंकि लक्षण तेजी से बढ़ते हैं। अगर समय रहते इलाज नहीं किया गया तो मरीज की मौत हो सकती है। मलेरिया से पीड़ित होने पर, एक व्यक्ति को ठंड के साथ-साथ तेज बुखार होता है। इसके साथ ही सिर और मांसपेशियों में दर्द, उल्टी जैसी समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है।

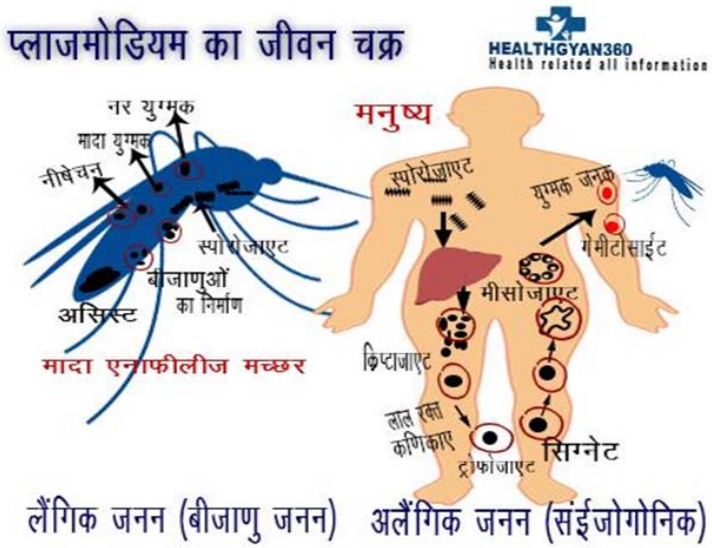

शोध के उद्देश्य

1. मलेरिया का चिकित्सा भौगोलिक अध्ययन किया गया है।
2. मलेरिया रोग में भोजन एवं पोषण का अध्ययन किया गया है।
3. मलेरिया रोग के घरेलू उपचार एवं सुरक्षा के उपाय सुझाए गए हैं।

शोध परिकल्पना

1. प्रदूषित जल के फैलाव से मलेरिया प्रसार अधिक हो रहा है।
2. मलेरिया रोग का उचित पोषण एवं घरेलू उपायों बचाव सम्भव है।

अध्ययन विधि

अध्ययन पद्धति के रूप में प्राथमिक सूचनाओं का संग्रह सूचना एवं जन सम्पर्क केन्द्र, राजकीय चिकित्सालय, स्वास्थ्य विभाग और स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के माध्यम में किया गया है। द्वितीयक सूचनाएं जैसे पत्र पत्रिकाओं, समाचार पत्र, सरकारी अभिलेख, मीडिया और टेलीविजन समाचार चैनल साक्षात्कार आदि का उपयोग किया गया है। यह अध्ययन चिकित्सा भौगोलिक पद्धति पर आधारित है।

मलेरिया का अर्थ

आयुर्वेद में मलेरिया को विषम ज्वर कहा गया है। वात, पित्त और कफ दोष इसमें असंतुलित हैं और बुखार के साथ-साथ विभिन्न लक्षण दिखाते हैं, लेकिन मुख्य रूप से पित्त दोष में महत्वपूर्ण भूमिका है। बुखार में बुखार आना जारी रहता है। कभी दिन में बैठते हैं, कभी एक दिन को छोड़कर, कभी दो दिन के बाद, कभी हल्के या कभी बहुत तेज, कंपकंपी के साथ बुखार बहुत ठंडा होता है। आयुर्वेद में, विषम बुखार के पांच प्रकार हैं, जो इस प्रकार हैं।

1. सन्तत- यह बुखार 7 से 10 दिन या 12 दिन तक लगातार आने वाला बुखार है।
2. सतत- यह दिन रात में दो बार आने वाला बुखार है। यह दिन में दो बार या रात में दो बार या दिन में एक बार आता है।
3. अन्येद्युष्क- इस बुखार को एकाह्निक या इकतरा भी कहते हैं। यह दिन-रात में एक बार आता है।
4. तृतीयक- यह एक दिन छोड़कर हर तीसरे दिन आने वाला बुखार है।
5. चातुर्थिक- यह रात में आने वाला बुखार है, इसे रात्रिज्वर भी कहते हैं।

जब एक संक्रमित मच्छर एक मानव को काटता है, तो स्पोरोज़ोइट्स यख़्त में प्रवेश करते हैं और यख़्त में प्रवेश करते हैं और शरीर में प्रवेश करने के लगभग 30 मिनट के भीतर यख़्त कोशिकाओं को संक्रमित करते हैं, तब यख़्त में अलैंगिक प्रजनन होता है। वे अंडे देने से अधिक अंडे देने लगते हैं। यह चरण 6 से 15 दिनों तक रहता है और यह हजारों मेरोजो बनाता है जो उनकी कोशिकाओं में टूट जाता है और रक्त में प्रवेश करता है और लाल रक्त कोशिकाओं को संक्रमित करना शुरू कर देता है। बीमारी का दूसरा चरण यहीं से शुरू होता है। प्लास्मोडियम विवैक्स और प्लास्मोडियम ओवले के कुछ बीजाणु यख़्त (लिवर) को संक्रमित करना बंद कर देते हैं और सुप्त अवस्था में रहते हैं। 6 से 12 महीने तक निष्क्रिय रहने के बाद वे फिर से सक्रिय होने लगते हैं। ये परजीवी लाल रक्त कोशिका में प्रवेश करके स्वयं को फिर से गुणा करते रहते हैं, इस प्रकार ऐसे कई चरण चलते रहते हैं। मलेरिया बुखार

के हमलों का कारण बनता है जब हजारों नई लाल रक्त कोशिकाएं एक साथ प्रभावित होती हैं। मलेरिया के परजीवी अपने पूरे जीवन को यख्रत कोशिकाओं या लाल रक्त कोशिकाओं में छिपकर बिताते हैं, जिससे मानव शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली बच जाती है। मच्छर के काटने पर कुछ जीव नर-मादा के कीटाणुओं में बदल जाते हैं और उन्हें खून से लथपथ कर देते हैं।

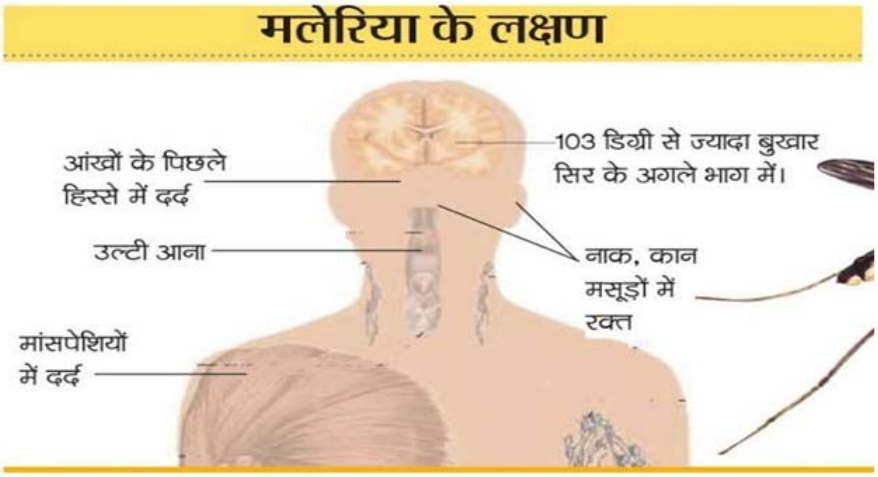

मलेरिया एक ऐसी बीमारी है जिससे कभी-कभी हर कोई पीड़ित हो जाता है। यह बीमारी मानसून के चरम पर और उसके बाद होती है, क्योंकि इस दौरान मच्छरों का आतंक सबसे ज्यादा होता है। मलेरिया मादा एनोफिलीज मच्छर के काटने से होता है। मलेरिया उस परजीवी के कारण होता है जो मच्छरों को ले जाता है। जो लोग पहले से ही मलेरिया से पीड़ित हैं, उन्हें काटें और जो लोग स्वस्थ हैं, उन्हें मच्छर परजीवी पास करें। इस तरह से मलेरिया फैलता है।

प्रदूषित जल के प्रभाव

पूरे विश्व में प्रति वर्ष लगभग 125 मिलियन मौतों के लिए दूषित पानी जिम्मेदार है। लगभग 1.2 बिलियन लोग सुरक्षित मीठे पानी की कमी के कारण गंभीर खतरे में रह रहे हैं। भारत में स्वच्छ जल तक पहुंच का अभाव एक गंभीर समस्या है। भारत मानव आबादी के मामले में दुनिया में दूसरे स्थान पर है और तेजी से आर्थिक विकास के लिए अग्रणी है, लेकिन आज एक बड़ी आबादी के पास स्वच्छ पानी तक पहुंच नहीं है और दूषित पानी के साथ रहना पड़ता है। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार, दूषित पानी से होने वाली बीमारियों से हर दिन कम से कम चार हजार बच्चों की मौत होती है। हमारे देश में ही, दस में से चार लोगों के पास साफ पानी नहीं है। जल जनित रोगों का मुख्य कारण पशुओं और जानवरों के मल के साथ पानी का दूषित होना है। यदि हम पानी, हेपेटाइटिस-ए और हेपेटाइटिस-ई, पोलियो, टाइफाइड और पैरा-टाइफाइड, एंटरटाइटिस या आंत्र रोगों, हैजा से होने वाली मुख्य बीमारियों को देखें। ये रोग बैक्टीरिया, वायरस और अन्य सूक्ष्मजीवों के कारण होते हैं, जो दूषित पानी से एक व्यक्ति से दूसरे तक पहुंचते हैं।

कई ऐसी बीमारियां हैं, जो सफाई की कमी के कारण फैलती हैं। एक ओर जहां मानसून में बारिश का आगमन खुशियां लाता है, वहीं दूसरी ओर बीमारियों का प्रकोप भी बढ़ता है। वास्तव में, मच्छर आदि जमा पानी पर पनपते हैं जो डेंगू, मलेरिया, चिकनगुनिया जैसी बीमारियों के वाहक हैं। यही है, भले ही पानी दूषित न हो, यह बीमारी फैलाने में सक्षम है क्योंकि यह उन वाहक जैसे मच्छर, घोंघे आदि को जीवन देता है जो बीमारी फैलाते हैं। अकेले मलेरिया से प्रतिदिन दुनिया में लगभग 6 हजार लोगों की मौत होती है, जो पानी से होने वाली बीमारियों से पीड़ित हैं।

बारिश का मौसम कई बीमारियां लेकर आता है। इस मौसम में, नमी और पानी के कारण संक्रमण सबसे अधिक होता है। पानी में मच्छरों के काटने से होने वाली बीमारियों के अलावा मलेरिया, डायरिया, हैजा और फूड पॉइजनिंग जैसे बैक्टीरिया से होने वाली बीमारियों का भी खतरा होता है। इस मौसम में, कभी-कभी फ्लू, सर्दी, जुकाम, बुखार, एलर्जी और ठंड के कारण संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है। इस मौसम में, यह महत्वपूर्ण है कि शरीर की सफाई के साथ-साथ इसके पीने के पानी का भी विशेष ध्यान रखा जाए। कारण यह है कि दूषित पानी कई बीमारियों को आमंत्रित करता है। भारत उन देशों में शामिल है, जहाँ पानी से होने वाली बीमारियाँ अक्सर होती हैं। हर साल भारत में दो लाख से अधिक लोग पानी की कमी और प्रदूषण के कारण अपनी जान गंवा देते हैं। नीति आयोग द्वारा पिछले साल प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार, देश में उपलब्ध सत्तर प्रतिशत पानी दूषित है। इसी समय, भारत पानी की गुणवत्ता में एक सौ बाईस देशों की सूची में एक सौ बीसवें स्थान पर है।

मलेरिया में खाद्य पोषण

अगर हम मलेरिया से पीड़ित होने पर एक अच्छा आहार अपनाते हैं, तो आप इस बीमारी से अच्छी तरह से लड़ सकते हैं और ठीक हो सकते हैं। भोजन शरीर परजीवी हमले से लड़ने के लिए ईंधन प्रदान करता है। इसके अलावा, हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली को स्वस्थ रखने के लिए, स्वस्थ खाद्य पदार्थ भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। ये हमारे सिस्टम को अच्छी तरह से काम करते हैं।

जब हम बीमार होते हैं, तो हमें कुछ भी खाने का मन नहीं करता है, लेकिन यह सही नहीं है। इससे शरीर कमजोर हो सकता है। अगर आप मलेरिया से पीड़ित हैं, तो आपको अपने खाने के बारे में कुछ बातों का ध्यान रखना होगा। तो आइए जानते हैं मलेरिया आहार के बारे में।

मलेरिया में क्या खाएं

मलेरिया के तीन चरण हैं और आपको इन तीन चरणों में विभिन्न प्रकार के आहार को अपनाना होगा।

1. पहला चरण : सबसे पहले, आपको यह पता लगाना चाहिए कि आप मलेरिया के मरीज हैं या नहीं। यह जानने के बाद, डॉक्टर आपको पहले चरण में संतरे का रस पीने की सलाह देते हैं। खासकर तब जब आपको मलेरिया में तेज बुखार हो। मलेरिया बुखार आमतौर पर 1 सप्ताह या 10 दिनों तक रहता है।

2. दूसरा चरण : मलेरिया के दूसरे चरण में, डॉक्टर आपको केवल फल खाने की सलाह देते हैं। इस अवस्था में रोगी को ताजे फल खिलाने चाहिए। मलेरिया के रोगी को अनानास, पपीता, संतरा, अंगूर, सेब, अंगूर और आम जैसे फल खाने चाहिए। यह अच्छी तरह से ध्यान दिया जाना चाहिए कि तीन या अधिक लगातार दिनों के लिए फल आहार खाएं। तीसरे दिन, रोगी को फलों के आहार के साथ दूध पीना चाहिए। दूध में वसा और प्रोटीन होता है, जो रोगी को ऊर्जा प्रदान करता है।

3. तीसरा चरण : तीसरे चरण में, जब रोगी ठीक होने लगता है, तो उसे फल के साथ-साथ सब्जियां, साबुत अनाज और सूखे फल खाने चाहिए। एक तरह से, रोगी को तीसरे चरण में संतुलित आहार खाना चाहिए।

मलेरिया में आहार चार्ट

आप इस मलेरिया डाइट चार्ट को अपना सकते हैं।

1. बहुत सवेरे : मलेरिया के रोगी को सुबह के समय गुनगुने पानी में नींबू का रस मिलाकर पीना चाहिए। आप चीनी की जगह नींबू पानी में शहद मिला सकते हैं।

2. सुबह का नाश्ता : सुबह के नाश्ते में एक कटोरी फल के साथ एक गिलास दूध पीना चाहिए।

3. दोपहर का भोजन : लंच में उबली हुई सब्जियां खानी चाहिए। यदि रोगी को अधिक भूख लगती है, तो वह 2 ब्रेड गेहूं भी खा सकता है। इसके अलावा मलेरिया के रोगी के लिए 1 गिलास छाछ पीना ज्यादा फायदेमंद होगा।

4. दोपहर के भोजन के बाद : 1 गिलास सब्जी या फलों का रस पिएं।

5. रात का खाना : रात के खाने में घर का बना पनीर, अंकुरित अनाज और एक कटोरी हरी सब्जी खाएं। आप सलाद और सब्जी में थोड़ा सा नींबू भी निचोड़ सकते हैं।

इस आहार योजना को अपनाने से पहले, अपने चिकित्सक से परामर्श करें। कुछ लोग मधुमेह, हृदय रोग और यख़्रत के रोगी होते हैं, उन लोगों को विशेष आहार योजना की आवश्यकता होती है। इसलिए, ऐसी स्थिति में, मलेरिया रोगियों को डॉक्टर की सलाह के बिना कोई भी आहार योजना नहीं अपनानी चाहिए।

6. ऊर्जा खाद्य पदार्थ : जब रोगी को मलेरिया होता है, तो शरीर की कैलोरी और पोषण संबंधी आवश्यकताएं बढ़ जाती हैं। इसे बीएमआर या बॉडी मेटाबॉलिक रेट के रूप में जाना जाता है। इसके अलावा, कैलोरी का सेवन बढ़ाने की आवश्यकता शरीर के तापमान में वृद्धि पर निर्भर करती है।

ऐसे में हमें उच्च कार्बोहाइड्रेट युक्त आहार को अपनाना चाहिए। इसे पचने में देर नहीं लगती और ऊर्जा भी तुरंत मिलती है। इसके लिए मलेरिया आहार में दाल चावल या खिचड़ी अपनानी चाहिए। चावल को आसानी से पचाया जा सकता है और तेज ऊर्जा जारी की जा सकती है

7. फलों का सेवन : ताजे फल और सब्जियां मलेरिया के रोगियों के लिए उत्ख़्रष्ट हैं। अध्ययनों के अनुसार, विटामिन सी और विटामिन ए से भरपूर फल जैसे पपीता, अंगूर, जामुन, संतरा मलेरिया से पीड़ित रोगी को डिटॉक्सिफाई करने में मदद करते हैं और साथ ही इम्युनिटी को बढ़ाते हैं। इसके अलावा, गाजर और चुकंदर को मलेरिया आहार में शामिल करना अच्छा होगा।

8. प्रोटीन : मलेरिया के दौरान भोजन में प्रोटीन का सेवन बढ़ाना आवश्यक है। मलेरिया आहार में उच्च कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन युक्त खाद्य पदार्थों का समावेश शरीर को ऊतक मरम्मत में प्रोटीन का उपयोग करने की अनुमति देता है। प्रोटीन के लिए दाल, चिकन और अंडा खाया जा सकता है।

9. वसा पर ध्यान दें : यदि आप मलेरिया से पीड़ित हैं, तो आपको वसा का सेवन करने से पहले थोड़ा ध्यान देने की आवश्यकता है। वसा शरीर के लिए आवश्यक है, लेकिन सीमित मात्रा में। मलेरिया डाइट में दूध से बने उत्पाद जैसे मलाई, मक्खन का उपयोग अपच और दस्त का कारण बन सकता है। नट और बीज कई पोषक तत्वों के साथ-साथ स्वस्थ वसा और प्रोटीन का स्रोत हैं। इन्हें आहार में शामिल किया जा सकता है। इसके साथ ही फाइटोन्यूट्रीएंट्स भी पाए जाते हैं, जो संक्रमण के कारण होने वाले एंटीऑक्सीडेंट तनाव से लड़ने में मदद करते हैं।

10. जल अधिक पिये : बुखार होने पर भी, शरीर को हाइड्रेटेड रखने के लिए 3-3.5 लीटर पानी पीना आवश्यक है। निर्जलीकरण आपकी स्थिति को बदतर बना सकता है। इसके लिए आप ग्लूकोज पानी, फलों का रस, नारियल पानी और इलेक्ट्रोड पाउडर ले सकते हैं।

मलेरिया में परहेज़

1. उच्च फाइबर खाद्य : उच्च फाइबर खाद्य पदार्थों का सेवन इस समय रोगी के लिए सही नहीं होगा। इसलिए, साबुत अनाज और सब्जियों से बचें जिनमें फाइबर भरपूर मात्रा में पाया जाता है। उच्च फाइबर खाद्य पदार्थ गैस और अपच का कारण बन सकते हैं।

2. मसालेदार भोजन : मसालेदार भोजन और सॉस का मेलिरिया डाइट में कोई स्थान नहीं है। मलेरिया अक्सर मुंह का स्वाद बिगड़ जाता है, इसलिए लोग मसालेदार भोजन की मांग करते हैं जो सही नहीं है। बीमारी के समय पाचन तंत्र सुस्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में मसालेदार खाद्य पदार्थों के सेवन से पेट में जलन और गैस हो सकती है और पाचन खराब हो सकता है।

3. जंक फूड : मलेरिया के दौरान जंक फूड खाने के बारे में भी न सोचें। इस दौरान जंक फूड खाने से आपकी स्थिति खराब हो सकती है। जंक फूड सामान्य शरीर के लिए भी अच्छा नहीं है, इसलिए यह बीमार शरीर के लिए बुरा साबित हो सकता है। इसके साथ ही केक, पेस्ट्री, चिप्स, अचार आदि से दूर रखें।

4. कैफीन : मलेरिया के दौरान अधिक मात्रा में कॉफी, चाय या कैफीन युक्त पेय का सेवन करने से पाचन तंत्र बिगड़ सकता है।

मलेरिया के घरेलू उपचार

आम तौर पर मलेरिया बुखार से छुटकारा पाने के लिए सबसे पहले घरेलू उपचार को अपनाया जाता है। यहां हम आयुर्वेद के विशेषज्ञों द्वारा पारित कुछ घरेलू उपायों के बारे में बात करेंगे, जिनके उपयोग से बुखार को कम किया जा सकता है।

1. तुलसी के फायदे : 10 ग्राम तुलसी के पत्तों और 7-8 कालीमिर्च को पानी में पीसकर उसमें थोड़ा सा शहद मिला लें। इसे सुबह और शाम लेने से बुखार से राहत मिलती है।

2. अदरक और किशमिश के फायदे : एक गिलास पानी में अदरक का एक छोटा टुकड़ा और 2 चम्मच किशमिश उबालें, जब यह आधा उबल जाए, तो इसे गुनगुना कर लें और इसे दिन में दो बार लें। यह बुखार को कम करने में मदद करता है।

3. हरसिंगार के फ़ायदे : हरसिंगार के पत्ते मलेरिया में फायदेमंद होते हैं। हरसिंगार के 2-3 पत्तों को अदरक के रस के साथ पीस लें और इसमें थोड़ी सी चीनी मिलाकर दिन में एक बार सेवन करें।

4. नीम के फायदे : 2-3 नीम के पत्ते और चार कालीमिर्च को एक साथ पीस लें और फिर इसे थोड़े से पानी में मिलाकर उबाल लें। जब गुनगुना हो जाए तो उसे छलनी और पी लें।

5. गिलोय के फायदे : 40 ग्राम गिलोय को कुचलकर इसे मिट्टी के बर्तन में मिलाएं और इसे रात भर लगा रहने दें। सुबह में, इसे कुचल दें और इसे छान लें और रोगी को दिन में तीन बार पीने के लिए दें।

6. हर्बल चाय के फ़ायदे : नियमित रूप से हर्बल चाय पिएं। इमली को मिलाकर बनाई गई हर्बल चाय मलेरिया के लक्षणों जैसे बुखार और सिरदर्द को कम करने में मदद करती है।

7. मेथी के फायदे : बुखार से होने वाली कमजोरी से निपटने के लिए मेथी का बीज सबसे अच्छा तरीका है और यह किसी व्यक्ति की प्रतिरक्षा प्रणाली को बढ़ाकर मलेरिया के इलाज में भी मदद करता है।

8. दालचीनी के फ़ायदे : चाय में दालचीनी डालकर पीएं। दालचीनी में एक शक्तिशाली जैविक घटक होता है जिसमें सूजन-रोधी गुण होते हैं और यह मलेरिया बुखार और शरीर में दर्द के लक्षणों को कम करने में मदद करता है।

एक गिलास गर्म पानी में 5 ग्राम चिरायता, 2-3 लौंग और आधा चम्मच दालचीनी पाउडर मिलाएं। इसे एक साथ पीने से मलेरिया में बुखार में आराम होता है।

9. फिटकरी के फायदे : थोड़ी सी फिटकरी को पीसकर पाउडर बना लें। बुखार आने से तीन घंटे पहले आधा चम्मच पाउडर पिएं। उसके बाद, इस दवा को हर दूसरे घंटे लेने से बुखार की संभावना कम हो जाती है।

10. भुना हुआ नमक के फ़ायदे : सादे भोजन के नमक को पीसकर तवे पर भूनें ताकि उसका रंग काला, भूरा (कॉफी के समान) हो जाए। ठंडा होने पर शीशी भर दें। बुखार (बुखार) से पहले 6 ग्राम। 1 गिलास भुना हुआ नमक गर्म पानी में मिलाकर 6 ग्राम बुखार के बाद भी लें। भुने हुए नमक का सेवन गर्म पानी के साथ करना चाहिए। इन दोनों खुराक को लेने से निश्चित रूप से बुखार से राहत मिलेगी।

मलेरिया से बचाव के उपाय

1. मच्छर स्थिर पानी में प्रजनन करते हैं, यह आपके घर के पास एक नाली, पड़ोस में पानी से भरे ग्ले या आपके घर के पास एक छोटा तालाब हो सकता है। उन्हें बंद करवाएं या उन्हें जल्द से जल्द साफ करवाएं।
2. पानी, गमले आदि में भी लंबे समय तक स्थिर पानी नहीं रहने देना चाहिए।

3. स्विमिंग पूल के पानी को भी परिचालित और क्लोरीनयुक्त करने की आवश्यकता है। इसका विशेष ध्यान रखें।
4. यदि आप पानी की कमी के कारण घर में पानी स्टोर करते हैं, तो कंटेनर को बंद कर दें।
5. यदि आप एक मच्छर संक्रमित क्षेत्र में रहते हैं, तो अपनी खिड़कियों पर मच्छर स्क्रीन, जाल, फाइबर ग्लास और मच्छर भगाने का उपयोग करें।
6. जब बच्चे शाम को खेलने के लिए बाहर जाते हैं, तो उन्हें मच्छरों से बचने के लिए पूरी बाहों के साथ पहनाएं।
7. शाम को 6-8 के बीच खिड़कियां बंद कर दें। यह मच्छरों के हमले का समय है।

निष्कर्ष

इन उपायों को अपनाकर आप मच्छरों और मलेरिया से बच सकते हैं, लेकिन फिर भी रोगी को उचित उपचार प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। मलेरिया में रोगी को बहुत तेज बुखार के साथ-साथ शरीर में कंपकंपी होती है। मलेरिया बुखार सामान्य बुखार से अलग होता है। इसमें एक दिन छोड़ने पर, एक व्यक्ति

को बुखार, साथ ही सिरदर्द, मतली या उल्टी जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। इस तरह की स्थिति को तुरंत डॉक्टर के पास जाना चाहिए और रक्त परीक्षण और अन्य परीक्षण करवाने चाहिए ताकि बीमारी की पुष्टि के बाद उपचार शुरू किया जा सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. घरेलू उपचार जड़ी बूटियों द्वारा, डॉ. आर पी पाराशर, आयुर्वेद आचार्य।
2. घरेलू औषधियाँ, परमहंस स्वामी जगदीश्वरानंद सरस्वती।
3. हमारा स्वास्थ्य एवं घरेलू उपचार, सुदर्शन भाटिया।
4. रोगों से छुटकारा पाने के घरेलू उपाय, गीतांजलि मौर्य।
5. आयुर्वेद में मलेरिया रोग के उपचार, आयुर्वेद चिकित्सकों से व्यक्तिगत सर्वेक्षण।
6. चिकित्सा भूगोल, डॉ. मुकेश कुमार शर्मा एवं डॉ. स्नेहलता (2012), एम बी पब्लिशर्स, जयपुर।
7. मलेरिया में चिकित्सा एवं बचाव के उपाय, समाचार पत्र में प्रकाशित खबरों का संकलन।
8. ग्रुम हेल्थ., यू.एस.ए. जूकरमेन,ऐ.जी. (ऐड़ीटेड) 1988 वायरल हैपेटाईटिस एण्ड लीवर डिजीज. लीस्स., न्यूयार्क.
9. डॉ. मुकेश कुमार शर्मा (2007) राजस्थान का चिकित्सा भूगोल, हंसा प्रकाशन, जयपुर, राजस्थान
10. शोध अध्ययन, जलजनित रोग मलेरिया में भोजन पोषण, स्नेहलता, जयपुर

वर्त्तमान समय में गाँधियन अर्थशास्त्र की प्रासंगिकता

डॉ० शम्मी कुमारी

व्याख्याता, डोरंडा कालेज, राँची

'हिन्दी स्वराज', 'द कन्सट्रक्शन प्रोग्राम', 'फुड शीर्टेज एण्ड एग्रीकल्चर, 'सेन्ट परसेन्ट स्वदेशी', 'सर्वोदय' आदि प्रमुख है।

गाँधी जी कोई सौद्धान्तिक अर्थशास्त्री नही थे, लेकिन शायद ही ज्ञान की कोई ऐसी शाखा होगी जिसमें गाँधी जी के विचारों का योगदान नहीं होगा। गाँधी जी के आर्थिक विचार कही क्रमबद्व रूप से नहीं मिलते है। उनके आर्थिक विचार लेख, पत्र व्यवहार तथा भाषणों में मिलता है। उनके विचार 'हरिजन' एवं 'यंग इडिया' में उपलब्ध है। गाँधी जी के अधिकांश आर्थिक विचार हमें डॉ0 कुमारप्पा के रचनाओं में मिलता है। गाँधी जी के आर्थिक विचार को निम्न तीन चरणों में बाँटा जा सकता है :-

1. **1919 से पूर्व** - इस समय गाँधी जी अंग्रेजी सम्यता से अभिभूत थे एवं उत्पादन के पश्चिमी ढंग एवं मशीनों के प्रयोग आदि के पक्षधर थे।
2. **1919 से 1934** - इस अवधि में गाँधी जी के विचार स्वदेशी आन्दोलन पर आधारित था।
3. **1934 से 1948 तक** - इस राजनीतिक अवधि में उन्होंने व्यवहारिक दृष्टिकोण अपना कर सर्वोदय के विचार को विकसित किया था। इस कार्यक्रम में वे उत्पादन के संगठन एवं विक्रेन्द्रीयकरण तथा ग्रामीण उद्योगों के पुर्नोद्वार पर बल दिया।

इनके आर्थिक विचार सादगी, अहिंसा, श्रम का महत्त्व तथा सरलता चार मौलिक सिद्धान्तों पर आधारित है। गाँधी जी ऐसे समाज की कल्पना करते थे जिसमें किसी प्रकार का शोषण, बेरोजगारी न हो। सभी को विकास का बराबर एवं समुचित अवसर प्राप्त हो तथा मानव मूल्यों को समादर और आपसी सहयोग के द्वारा सभी कार्य हो। संक्षेप में गाँधी जी के विचारों के निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है -

अधिदेश शासन (Trusteeship)

गाँधी जी पूँजीवादी प्रणाली के दोषों को दूर करने के लिए डाक्ट्रीन ऑफ ट्रस्टीशीप का प्रतिपादन किया। गाँधी जी समाज तथा संसार में स्थायी शांति स्थापित करना चाहते थे। इस मार्ग वे वे आर्थिक विषमता को सबसे बड़ा कांटा मानते थे। इसके लिये वे पूँजीपति को दोषी मानते थे। पूँजीपति की तुलना उन्होंने चोरों से की है। गाँधी जी की यह धारणा थी कि जब तक धनी एवं निर्धन वर्गो के बीच की खाई बनी रहेगी तब तक किसी अहिंसात्मक व्यवस्था की कल्पना नहीं की जा सकती है। अत: आर्थिक समानता धनी और निर्धन दोनों के हित में है और समाज में सद्भाव स्थापित करने के लिए गाँधी जी चाहते थे कि धनी वर्ग के लोग स्वेच्छा से अपने धन एवं आर्थिक सत्ता का दान करें तथा समाज के हितों में प्रयोग करें। गाँधी जी को मनुष्य में निहित अच्छाई पर दृढ़ विश्वास था। इसी विश्वास के आधार पर वे धनी लोगों के हृदय परिवर्तन करके आदर्शात्मक सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना चाहते थे। इसी आधार पर उन्होंने डाक्ट्रीन ऑफ ट्रस्टीशीप का निर्माण किया।

इस सिद्वान्त के अनुसार सारी सम्पत्ति समाज की है। इन सबों को ट्रस्ट में रखा जाना चाहिए तथा पूँजीपति इस सम्पत्ति के प्रति अपने आपको ट्रस्टी समझे। ट्रस्टी के रूप में पूँजीपतियों का यह कर्तव्य होता है कि वे अपने अधिनस्थ उत्पादन साधानों का राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर उचित उपयोग करें।

गाँधी जी ने ट्रस्टीशीप की धारणा को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है -

(क) ट्रस्टीशीप वर्त्तमान पूँजीवादी व्यवस्था को समाजवादी व्यवस्था में बदलने का साधान है। इसमें साधान सम्पन व्यक्तियों को अपने आपको सुधारने का अवसर होता है। इनकी मान्यता है कि मानव स्वभाव को सुधारा जा सकता है।

(ख) इसके अन्तर्गत सम्पत्ति के निजी स्वामित्व को स्वीकार नहीं किया गया है। कोई व्यक्ति उतनी ही सम्पत्ति रख सकता है, जितनी समाज उसे स्वीकृति दे।

(ग) इसके अन्तर्गत धान के स्वामित्व व उपयोग का वैधानिक निर्देशन भी सम्मिलित है।

(घ) ट्रस्टीशीप के अन्तर्गत कोई व्यक्ति बिना समाज के हित का ख्याल करके अपने स्वार्थ हेतु सम्पत्ति रखने या उसका उपयोग करने को स्वतंत्र नही होता है।

(ड.) ट्रस्टीशीप के अन्तर्गत जीवन निर्वाह निश्चित किया जाता है। साथ ही साथ किसी व्यक्ति के अधिकतम आय रखने की सीमा भी निर्धारित कर दी जाती है।

(च) ट्रस्टीशीप के अन्तर्गत उत्पादन का स्वभाव लाभ एवं विचारों से निश्चित न होकर सामाजिक आवश्यकता से निर्धारित होता है। अर्थात् ट्रस्टीशीप के अनुसार निजी एवं गैर निजी सम्पत्ति में कोई अन्तर नहीं है। सभी प्रकार की सम्पत्ति ट्रस्ट में रखी जाती है, चाहे उसकी प्रकृति तरह की हो या उसका स्वामी कोई भी हो।

मशीन एवं औधोगिकरण

गाँधी जी बड़े स्तरीय औधोगिकरण के विरोधी थे। उनके मत से बडे स्तरीय उत्पादन से सम्पत्ति का सकेन्द्रण, असंतुलित विकास, शोषण तथा अन्य सामाजिक एवं आर्थिक दोष उत्पन्न होते है जिससे असंतोष, हिंसा एवं युद्ध की संभावना बढ़ती है। मशीनों के उपयोग से मनुष्य आलसी हो जाता है, अत: उससे गरीबी का निराकरण कठिन हो जाता है। मशीन के संबंध में गाँधी जी ने हिन्दी स्वराज में लिखा था कि - "I cannot recall a single good point in connection with machinery. Book can be written to demonstrate its evils.

गाँधी जी मशीनों के विरूद्ध नहीं थे क्योंकि उन्होंने खुद ही कहा था कि मनुष्य का शरीर संरचना भी मशीन है। वे केवल उसी मशीन के विरूद्ध थे जिसके उपयोग से परिश्रम बचाने की कोशिश की जाती है। वे मशीन के लिए क्रेज के विरोधी थे। उनके अनुसार "What I object to it the craze for machinery so much." उन्हें आशंका थी कि मशीन संबंधी उनके विचार गलत समझा जायेगा। इसलिए वे बारम्बार स्पष्टीकरण देते हुए कहा है कि "My opposition to machinery is much misunderstood. I am not opposed to machinery is such. I am opposed to machinery which displaces labour and leaves it ills."

स्पष्टत: गाँधी इसलिए मशीन का विरोध करते थे क्योकि मशीन श्रम बचत का साधान है फलत: बेरोजगारी बढ़ती है। चूँकि भारत जैसे देश में शारीरिक श्रम करने वालों की संख्या अधिक है, इसलिए गाँधी जी यंत्रीकरण को एक बुराई मानते थे। आलोचकों ने मशीनीकरण के संबंध में गाँधी जी को मध्ययुगीन कहा है लेकिन वे लोग गाँधी जी के विचार को समझने में असफल प्रतीत होते हैं।

Decentralization and Small Scale Industries

गाँधी जी आर्थिक विकेन्द्रीकरण के कट्टर समर्थक थे। वे चाहते थे कि उत्पति का उद्देश्य उपभोग होना चाहिए न कि बड़े-बड़े बजारों का विस्तार। अत: गाँधी जी उत्पादन को विकेन्द्रीकरण तथा समान बनाने के उद्देश्य से छोटे कुटीर उद्योगों का बड़े स्तर पर विकास करना चाहते थे। उनके मत में इससे समान वितरण स्वयं होगा और सट्टेबाजी एवं धोखेबाजी की संभावना कम होगी। विकेन्द्रीकरण संबंधी उनके विचार का अन्य आधार यह था कि आधुनिकीकरण से पूँजी की आवश्यकता तेजी से बढ़ेगी, गरीबी बढ़ेगी एवं शहरीकरण के कारण अधिसंरचनाओं की इतनी आवश्यकता होगी कि भारत जैसा देश उसे पूरा नही कर सकेगा।

इस प्रकार गाँधी जी जी चाहते थे कि उत्पादन विभिन्न स्थानों में लघु स्तर पर हो। Mass Production के बजाय production by mass हो। इसमें शहरीकरण रूकेगा तथा ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में समन्वय होगा और गरीबी का निवारण हो सकेगा। अत: गाँधी जी आधुनिक पूँजीगत विनियोग के बजाय Labour intensive investment के समर्थक थे।

गाँधी जी का विचार था कि भारी उद्योगों का विकेन्द्रीकरण इस प्रकार होना चाहिए कि कुटिर उद्योगों को क्षति नहीं पहुँचे और वह राष्ट्रीय कार्यकलापों का एक बड़ा अंश बना रहे। वे ग्रामीण उद्योगों में धीरे-धीरे मशीनों से उपयोग को लाभप्रद मानते थे। अत: गाँधी जी के विचार में विकेन्द्रीत पैमाने के उद्योगों के द्वारा उत्पादन करना गाँव में रहनेवाले लोगों के लिए लाभप्रद था।

Diginity of Labour

गाँधी जी श्रम को चाहे वह किसी प्रकार का हो, बडे आदर की दृष्टि से देखते थे। उनका 'वर्क इज वर्कशीप' में पूर्ण विश्वास था। उनके विचार से शरीर को स्वस्थ रखने के लिए श्रम एक उत्तम उपाय है। श्रम एक प्राकृतिक नियम है। शारीरिक श्रम एक पवित्र कर्त्तव्य है जिसमें मनुष्य की प्रतिष्ठा नीहित होती है। श्रम मनुष्य के मस्तिष्क को evils workship होने से बचाता है। उनके अनुसार सभी श्रम को समान महत्त्व प्रदान करके ही आर्थिक समानता प्राप्त की जा सकती है। गाँधी जी श्रम का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए ब्रीड लेवर सिद्धान्त प्रस्तुत किया जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं के परिश्रम द्वारा ईमानदारी से अपनी जीविका का उपार्जन करना चाहिए (To each according to need) के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति शारीरिक श्रम करे ताकि जीवन यापन के आवश्यक वस्तुओं के बराबर उत्पादन कर सके। इससे समानता एवं सद्भावनापूर्ण समाज की स्थापना होगी। शारीरिक श्रम नहीं किये जाने के कारण ही सताया जाना, शोषण होना तथा वर्ग विभाजन जैसी समस्या समाज में उत्पन्न होती है।

Village Swaraj

गाँधी जी का मत है कि भारत का निवास गाँवों में है तथा भारत की सम्पन्नता गाँव की समपन्नता है। वे गाँव को सर्वाधिक शक्तिशाली बनाना चाहते थे। ऐसे गाँवों में सबों को समान अवसर मिलेगा और यह सब पुनर्जागरण से संभव हो सकता है।

वे प्रत्येक गाँव को आत्म-निर्भर देखना चाहते थे तथा प्रत्येक गाँव में स्काई, चारगाह, खेलने का मैदान, पानीघाट-कुंआ व तालाब, स्कूल, पुस्तकालय, सहकारिता पर आधारित कार्य, जाति-प्रथा का उन्मूलन, पूजा स्थान, ग्राम रक्षा बल की स्थापना, खाद्यान्न की पूर्ति और वस्त्र सम्बन्धी आत्मनिर्भरता, पंचायत की व्यवस्था तथा पौष्टिक आधार की समुचित मात्र में पूर्ति आदि देखना चाहते थे।

भारतीय गाँवों के पुनर्जन्म के लिए गाँधी जी ने चरखा पर आधारित व्यापक योजना बनायी थी। उनका नारा था- 'सूत काताई के द्वारा स्वराज, खादी उद्योगों एवं स्वदेशी कपड़ा उद्योगों का विकास आदि प्रमुख अंग था।

Simplicity and Wants

Simple living – High Thinking की उक्ति को अक्षरशः अपने जीवन में उतारने वाले महात्मा गाँधी के सम्बन्ध में श्रीमन नारायण अग्रवाल ने ठीक ही कहा है कि ''गाँधी जी एक मधययुग के दृष्टिकोण के व्यक्ति नही थे, वरन् वह व्यवहारिक आदर्शवादी थे।'' गाँधी जी Standard of Living से पहले Standard of life को महत्त्व प्रदान करते थे। उनका कहना था कि जीवन के मूल्यों एवं आदर्शो का पालन करना चाहिए।

कल्याण और जीवन में सच्चे सुख का अनुभव के लिए हमारी आवश्यकताएँ सीमित होनी चाहिए। वास्तव में हमारी आवश्यकता जितनी कम होगी हम उतना ही कम असंतोष या कष्ट का अनुभव करेंगे। इस संबंध में गाँधी जी कहा है – "The human mind is a restless bird, the more it get the more it wants and still remains unsatisfied."

उनका कहना था कि प्रत्येक देशवासी को एक उचित जीवन न्यूनतम स्तर पर व्यतीत करने के लिए वस्तुएँ प्राप्त होनी चाहिए। परन्तु इस स्तर को प्राप्त करने के पश्चात् उसको अपनी लालसा पर नियंत्रण करना चाहिए।

Economics & Ethics

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री सिसमौन्ड के समान गाँधी जी इकॉनामिक्स एण्ड इथीक्स में कोई भेद नहीं मानते थे। वे कहते है कि – ''जो अर्थशास्त्र नैतिक और भावात्मक मूल्यों की अपेक्षा करता है वह एक मधुमक्खी के छत्ते के समान है जिसमें जीवन होते हुए भी एक संजीव जीवन का अभाव होता है।'' आगे वे कहते है कि जो अर्थशास्त्र नैतिकता का पाठ नहीं पढ़ाता वह ग्राह्म नहीं है। गाँधी जी का मत था कि अर्थशास्त्र का अधययन मानव मूल्यों पर केन्द्रित होना चाहिए और इस विज्ञान को मात्र गणितीय सूत्रों का अध्ययन करनेवाला अमूर्त विज्ञान बनकर नही रहना चाहिए। उनका विचार था कि जिस सामाजिक विज्ञानों का संबंध मनुष्य के दैनिक जीवन से है, जैसे राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र उन्हें एक दूसरे से पृथक रखना मूर्खता होगी। सर्वोदय के अन्तर्गत महात्मा गाँधी ने सत्य और अहिंसा पर आधारित व्यवस्था के लिए विचार प्रस्तुत किया था। ग्रामीण सर्वोदय गाँधी जी का आदर्श था। सर्वोदय का दर्शन, स्वतंत्रता, समानता, न्याय तथा बन्धुत्व के उच्च आदर्शों पर आधारित है। सर्वोदय से ऐसे समाज की स्थापना होगी जो शोषण तथा वर्ग संघर्ष से मुक्त होकर लोगों के बहुमुखी विकास के लिए अवसर प्रदान करेगा।

सर्वोदय में ऐसे अर्थिक, समाजिक दाँचे का विकास किया जाता है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण की भावना रहती है। सर्वोदय की स्थिति उस समय प्राप्त की जा सकती है जबकि समाज का प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण विकास की स्थिति प्राप्त कर लेता है। अर्थात् सर्वोदय Social Order – "A system of total and integrated progress of all."

रोजगार (Employment)

गाँधी जी देशवासियों को उत्पादक रोजगार प्राप्त करने की बात करते थे। बेरोजगारी और गरीबी को वे कम से कम समय में दूर करता चाहते थे। वे रोजगार उत्पादन की बात करते थे, न कि पीड़ादायक और उबाउ औद्योगिक जीवन के घुटन की। रोजगार के लिए वे लघु एवं कुटिर उद्योगों को सबसे अच्छा मानते थे जिसमें कम पूँजी में अधिक लोगों को रोजगार मिलने की गुंजाइश रहती है।

जनसंख्या (Population)

गाँधी जी जनसंख्या नियंत्रण के कृत्रिम उपायों के विरोध में थे। उनका कहना था कि भारत में इसके प्रयोग से एक और माध्यम वर्ग के पुरुष दुर्बल होंगे दूसरी ओर प्रजनन शक्ति का दुरूप्रयोग होगा। जनसंख्या नियंत्रण के लिये उन्होंने ब्रह्मचर्य तथा संयम पर बल दिया। वे कहते थे कि सेक्स संबंधी शिक्षा का प्रचार किया जाय जिसका उद्देश्य काम-भावना पर विजय प्राप्त करना हो। स्वास्थ्य समस्या के सन्दर्भ में उनका कहना था कि मेरे विचार में उचित भूमि व्यवस्था, अच्छी कृषि और सहायक उद्योगों द्वारा यह देश आज की तुलना में दुगुनी जनसंख्या का पालन पोषण कर सकता है।

संदर्भ सूची

1. डा.डी.एन. चतुर्वेदी – गाँधी जी के आर्थिक दर्शन का भारत की आर्थिक विचारधारा पर प्रभाव, 194; काशी विद्यापीठ, बाराणसी।
2. चौधारी चरण सिंह – इन्डिन इकोनामिक पालि दी गाँधियन बलूप्रिंट।
3. मोहन दास करमचन्द गाँधी – सर्वोदय 2003, सस्त साहित्य मण्डल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
4. महात्मा गाँधी- मेरे सपनों का भारत, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद।
5. हमारे गाँवों का पुनर्निर्माण – जनजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद – 1948।
6. प्रतियोगिता दर्षण, आतिरांक प्रकाशन 2009-10 – भारतीय अर्थ व्यवस्था।
7. टी टाइम्स आफ इन्डिया, न्यूज पेपर – डा.एस.एन. चतुर्वेदी- आर्थिक नीतियों में गाँधी विचारों की प्रासंगिकता- 2002।
8. आमर्न्य सेन व ज्यांद्रीज 'भारत विकास की दिशाएँ', पृष्ठ 165-66।

पार-सांस्कृतिक विवाहों में महिलाओं की बदलती हुई सांस्कृतिक पहचानः धौलपुर जिले के विशेष संदर्भ में

प्रो० मंजू सिंह

प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, वनस्थली विद्यापीठ

डॉ० पारो मिश्रा

असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, आई.आई.टी. दिल्ली

सुश्री सोनिका

रिसर्च एसोशिएट, समाजशास्त्र विभाग, वनस्थली विद्यापीठ

सार

प्रस्तुत लेख धौलपुर जिले में पार-सांस्कृतिक विवाहों में महिलाओं की बदलती हुई सांस्कृतिक पहचान के संदर्भ में है। इस लेख का प्रमुख उद्देश्य इन विवाहों के कारण महिलाओं के जीवन में किस प्रकार से सांस्कृतिक बदलाव आ रहे है, उन पर चर्चा करना है। वर्तमान समय में, कुछ उत्तर और उत्तर पश्चिमी राज्यों. पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश व राजस्थान में लिंगानुपात असंतुलित होने के कारण महिलाओं की संख्या में कमी आई है, जिस कारण से अन्य प्रदेशों एवं देशों से महिलाएं विवाह करके लायी जाती है, इन विवाहों को पार-सांस्कृतिक या पार क्षेत्रीय विवाहों की संज्ञा दी जाती है। प्रस्तुत अध्ययन में इस प्रकार के विवाहों की प्रकृति कारण एंव प्रभाव का वर्णन किया गया है। यह लेख राजस्थान के धौलपुर जिले के 20 गांवो पर किए गए अध्ययन के पश्चात प्राप्त 117 केस के विश्लेषण पर आधारित है, जो कि पार-सांस्कृतिक विवाहों में महिलाओं की अपनी संस्कृति परिवर्तित हो जाने व नई संस्कृति को अपनाने में होने वाली कठिनाइयों पर प्रकाश डालता है। अध्ययन हेतु सर्वे साक्षात्कार समूह केन्द्रित साक्षात्कार एवं अवलोकन को शामिल किया गया है।

प्रस्तावना

विवाह सम्पूर्ण विश्व के समाजों में होने वाली एक सर्वमान्य संस्था है, जिसमें एक साथी अपने दूसरे साथी का चुनाव विभिन्न माध्यमों से करता है। पारंपरिक हिन्दू मान्यताओं के अनुसार विवाह एक संस्कार है। वंश वृद्धि और शरीर की प्रवृति (संतुष्टि) के लिए विवाह अपरिहार्य है। अधिकांश लोग अपने जातीय समूह व धर्म में ही विवाह को स्वीकार करते हैं। (सोनावत, 2008) भारत में विवाह एक अनिवार्य परंपरा है। प्राचीन वेदों में जीवन के चार महत्वपूर्ण आश्रम माने गए हैं ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व सन्यास आश्रम। जिसमें गृहस्थ आश्रम को विवाह काल के लिए उपयुक्त व अनिवार्य बताया गया है।

विषमलैंगिक विवाह के लिए स्त्री व पुरुष दोनों का होना अनिवार्य होता है जिसके लिए लिंगानुपात का संतुलित होना आवश्यक है। किन्तु वर्तमान समय में कुछ उत्तर और उत्तर पश्चिमी राज्यों, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश व राजस्थान में लिंगानुपात असंतुलित होने के कारण महिलाओं की संख्या में कमी आई है, जिस कारण पुरुष विवाह अल्पता (उंसम उंततपंहम ेनमप्रम) की संकल्पना उभरकर सामने आई है। अर्थात पुरुषों के मुकाबले में महिलाओं की संख्या कम होने के कारण पुरुषों के विवाह होने में कमी आई है, क्योंकि पुरुषों को विवाह हेतु महिला साथी नहीं मिल पाती है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में 1000 पुरुषों पर 924 महिलाएं थी। जिस कारण से प्रति 1000 पर पुरुषों की संख्या की तुलना में 76 महिलाओं की कमी थी। इस आंकड़े का अंतर कुल जनसंख्या के आधार पर और भी अधिक बढ़ जाता है। वही राजस्थान के लिंगानुपात पर गौर करें तो 1000 पुरुषों पर 928 महिलाए हैं, जिसमें प्रति 1000 पर पुरुषों की संख्या की तुलना में 72 महिलाओं की कमी थी तथा राजस्थान के धौलपुर जिले का लिंगानुपात और भी अधिक चिंताजनक है। अन्य जिलों की तुलना में धौलपुर जिले के बेहद खराब लिंगानुपात के कारण अध्ययन हेतु इसका चुनाव किया गया है, धौलपुर का लिंगानुपात 2011 में 845 (1000 प्रति पुरुष) व 2001 में 827 था। यह आंकड़ा प्रति 1000 पुरुषों पर 155 महिलाओं की जनसांख्यिकी की कमी को दर्शाता है। यदि 2001 की तुलना में 2011 का लिंगानुपात देखे तो इसमे थोड़ा सुधार हुआ है, किन्तु इस जनसांख्यिकी कमी का महत्वपूर्ण कारण बाल लिंगानुपात का निम्न होना रहा है। 2001 में बाल लिंगानुपात 860 था, जो कि 2011 में गिरकर 857 हो गया। यदि इसी अनुपात में बाल लिंगानुपात गिरता रहा तो पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की संख्या बहुत कम हो जाएगी और वह स्थिति विषमलैंगिक विवाह संस्कार के लिए घातक सिद्ध होगी। इस कारण से ही प्रस्तुत अध्ययन हेतु धौलपुर का चुनाव

किया गया है, क्योंकि आने वाले समय में यहाँ पुरुष विवाह अल्पता की स्थिति और अधिक गंभीर हो जाएगी। धौलपुर, राजस्थान के चुनाव का दूसरा कारण राजस्थान में इस संदर्भ में कार्य न होने कि वजह से भी किया गया है जबकि हरियाणा (कौर, 2004, मिश्रा 2013, 2016, 2017, कुकरेजा व कुमार, 2013) व उत्तर प्रदेश (कौर, 2012, चौधरी व मोहन, 2011) में पार-सांस्कृतिक विवाहो पर अध्ययन किया जा चुका है। वास्तव में राजस्थान में कुकरेजा ने इस विषय पर अध्ययन किया है, परन्तु राजस्थान में धौलपुर में अध्ययन नही किया गया है। बाल लिंगानुपात के निम्न होने का प्रमुख कारण उत्तर भारत में पायी जाने वाली पितृसत्तात्मक संरचना है, जिसमे लड़को को लड़कियों की तुलना में अधिक महत्ता दी जाती है। अर्थात भारतीय पितृसत्तात्मक समाज में पुत्र वरीयता को प्राथमिकता दी जाती है। सामाजिक संरचना में लड़कियो को निचले स्तर का समझा जाता रहा है। (शेखर व हट्टी, 2010), उन्हे परिवार पर बोझ समझा जाता है, तथा उन्हे लड़को से समाज में कमतर दर्जा प्रदान किया जाता है। लड़कों से परिवार को अपेक्षा होती है कि माँ बाप का के बुजुर्ग होने पर वे उनका साथ देंगे जबकि लड़कियां उन्हे छोड़कर दूसरे परिवार में चली जाएंगी। साथ ही पुत्री के विवाह के समय उन्हे दहेज भी देना होगा, जबकि पुत्र विवाह के पश्चात दहेज लाएगा व रोजगार प्राप्त करके माता-पिता को संरक्षण प्रदान करेगा। इस कारण लड़को को लड़कियों की तुलना में बेहतर पोषण, स्वास्थ्य सेवाएँ, शिक्षा तथा सुविधाएं प्रदान की जाती हैं, जबकि लडकियों को इन सुविधाओं से वंचित रखा जाता है, फलस्वरूप इनकी की संख्या पुरुषों की संख्या से कम हो जाती है। वर्तमान में पितृसत्तामक सामाजिक व्यवस्था, पुत्र वरीयता व कन्या भुण को हत्या नयी तकनीकों को आगमन जैसे-अल्ट्रासाऊण्ड, लिंग चयनात्मक गर्भपात आदि ने बढ़ावा दिया है, जिसने स्त्री, पुरुष के विवाह सम्बन्धों को प्रभावित किया है। जिस कारण से पुरुष विवाह अल्पता की अवधारणा का विकास हुआ है। (गुइल्मोतों, 2012) इस कारण कई लोग सामाजिक मान्यता प्राप्त विवाह से, विवाह योग्य आयु में अविवाहित रह जाते हैं। (भट्ट एवं हल्ली 1999, समाइयर व जोए 2010, कौरेटेल 2016), पुरुष विवाह अल्पता की व्यापकता का अनुमान लगाने वाले जनसांख्यिकीविद और सामाजिक वैज्ञानिको ने विवाह आयु, वैवाहिक जोड़ो में उम्र का अंतर आदि कारकों को ध्यान में रखते हुये आने वाले समय में पुरुष विवाह अल्पमात्रा व शिक्षा अंतराल में बड़े पैमाने पर परिवर्तन आने का पूर्वानुमान लगाया हैं। (गुइल्मोतों, 2010) (कौरेटेल, 2016) उक्त अध्ययन व्यापक रूप से स्पष्ट करते है कि आने वाले वर्षों में पुरुष विवाह अल्पता और भी बढ़ेगी। गुइल्मोतों (2018) ने स्पष्ट किया हैं कि भारत में पुरुष विवाह अल्पता 2010 तक 11%, 2020 तक 18% तक और इसी प्रकार 2040 तक 22% तक हो जाएगी। ये आगे तर्क देते हैं कि भारत में वास्तविक आंकड़ों के आधार पर 2040-2060 के मध्य लगभग 2.3 मिलियन तक विवाहों में कमी आएगी। (गुइल्मोतों, 2018) पृ.154), क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य में उत्तर.-पश्चिमी राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में जैसे हरियाणा, दिल्ली व उत्तर प्रदेश में यह आंकड़ा और भी अधिक वृहद होगा। इस स्थिति को देखते हुये इन क्षेत्रों में अविवाहित पुरूष विवाह के पारंपरिक नियम को तोड़ रहे हैं तथा दूर के भारतीय राज्यों (असम, बिहार, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल, झारखंड आदि) व पड़ोसी देशों (बांग्लादेश, म्यांमार, श्रीलंका आदि) से विवाह करने के लिए वध ु ला रहे हैं, इस प्रकार के विवाह को पार-.क्षेत्रीय विवाह (कौर, 2004, मिश्रा, 2013) तथा दूर क्षेत्रीय विवाह (चौधरी व मोहन, 2011) की संज्ञा दी है। प्रस्तुत लेख के संदर्भ में इन्हे पार-सांस्कृतिक विवाह कहा गया है, क्योंकि इन विवाहों के माध्यम से दो अलग-अलग संस्कृतियों के लोग विवाह के बंध न में बंध जाते हैं। वैसे तो वैवाहिक दृष्टिकोण से एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रवासित होना अपने आप में एक साधारण बात है। समान्यतया प्रवासित होने के विविध कारण हो सकते हैं, जैसे रोजगार, व्यापार, शिक्षा, विवाह, आपदा इत्यादि। महिलाओं के प्रवासित होने का एक महत्वपूर्ण कारण विवाह है। विवाह में साथ रहने के लिए प्राय: लड़कियां अपने पितृ गृह को त्यागकर दूसरे स्थान, जहां भी लड़की का होने वाला पति रहता है, वहीं प्रवासित हो जाती हैं। (मजुमदार,1977) भारत में महिलाओं का विवाह के लिए प्रवासित होना कोई नई बात नहीं है, लगभग 80% महिलाएं विवाह हेतु ''आजीवन प्रवासित'' हो जाती हैं (रोजेनविज एंव स्टार्क, 1989:906) भारतीय समाज में सामान्यतया पुरुष वर्ग के प्रवासित होने का प्रमुख कारण आर्थिक गतिविधियां पाई जाती हैं, वहीं दूसरी तरफ महिलाओं के प्रवासित होने के कारणों पर नजर डालें तो विवाह ही प्रमुख कारण के रूप में उभरकर सामने आता है। भारत की 2011 की जनगणना के अनुसार स्पष्ट होता है कि 2001 में विवाह के कारण 58.8% महिलाएं प्रवासित हुई थी जो आंकड़ा 2011 में बढ़कर 64.9% हो गया है। विवाह के कारण प्रवासन की तुलना में अन्य कारण कम ही प्रभावी हैं। भारत में भी बीते दो दशकों में पार-सांस्कृतिक विवाहों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई है, (मिश्रा, 2016, कौर 2012) इसका एक प्रमुख कारण खराब लिंगानुपात है (कौर, 2004)

भारतीय समाज में 21 वर्ष से कम आयु में की लगभग 1 तिहाई लड़कियों का विवाह हो जाता है और वे अपना जन्मस्थान छोड़ देती है, जिनमे अधि कतर अशिक्षित या प्राथमिक शिक्षा ही प्राप्त कर पाती हैं। इस आयुवर्ग तथा मानसिक स्तर के साथ महिलाएं एक घर को छोडकर दूसरे को बसाने के लिए विवश होती है। समान्यतया महिलाएं आस. पास के भौगोलिक क्षेत्रों में ही विवाह करके जाती हैं (अग्रवाल, 1994: हर्षमन, 1981) किन्तु यह प्रक्रिया उस समय गंभीर हो जाती है जब यह विवाह सबंध एक जैसे समाज में होने की बजाय किसी अन्य सांस्कृतिक परिवेश वाले समाज में हो अथवा अपने मातृ स्थान से बहुत दूर हो या जहां जाकर अपने रीति रिवाज, एवं परम्परा छोड़ने पड़ जाएँ। उत्तर भारत में वधुएँ, विशेषकर हिन्दू वधुएँ, विवाह पश्चात अपने पति के घर चली जाती हैं, वह घर अक्सर काफी दूर क्षेत्र में होता है जिस कारण वे अपने मायके में कभी लौटकर नहीं आ पाती (हरिहर एवं नेल्सन, 2016) ऐसे पार-सांस्कृतिक विवाहों में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसमे महिलाओं को न केवल अपने मातृ स्थान को त्यागना होता है अपितु अपने मातृ स्थान से सीखे हुये व्यवहार को भी त्यागना पड़ता है। यदि सांस्कृतिक परिवेश के संदर्भ में बात की जाती है तो संस्कृति में कौन कौन से पहलू शामिल है इसे जान लेना आवश्यक हो जाता है। सामान्य शब्दों में सीखे हुये व्यवहार को संस्कृति कहा जाता है, जिसमे भोजन, भाषा, वेशभूषा इत्यादि शामिल होता है। कूले, अर्गल व कार के शब्दों में, संस्कृति का अभिप्राय है, ''कृत्रिम वस्तुओं, स्थितियों, औजारों, तकनीकों, विचारों, प्रतीकों और व्यवहार प्रतिमान का सम्पूर्ण संचय है जो लोगो के लिए विशेष होता है जिसमें स्वयं की एक निश्चितता होती है और यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संचरण में सक्षम होती है। ''संस्कृति किसी भी जीवन का एक मुख्य आधार है जो कि विकास एवं आत्मसंतुष्टि के लिए आवश्यक है। संस्कृति जीवन के लिए महत्वपूर्ण स्थितियों का निर्माण करती है।

साधारणत: जब संस्कृति का परित्याग करना पड़ता है तो एक कठिन परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। अत: अध्ययन की दृष्टि से संस्कृति एवं जनजीवन पर इसके प्रभाव को देखना आवश्यक हो जाता है।

अनुसंधान प्रश्न एवं उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन हेतु कुछ अनंसंधान प्रश्न व उदेश्यों का निर्धारण किया गया है। क्या पार सांस्कृतिक विवाहों में महिलाएं अपनी संस्कृति व समाज को त्यागकर एक नए सांस्कृतिक परिवेश को अपनाना बेहतर समझती हैं? सम्बन्धी कारणों व प्रभाव का विश्लेषण करना। पार-सांस्कृतिक विवाहों में महिलाएं किन सामाजिक.सांस्कृतिक उतार.चढ़ाव के चरणों से होकर गुजरती हैं? महिलाओं को अपनी पहचान छोड़ते समय किन संकटों का सामना करना पड़ता है? साथ ही वे कौन.सी परिस्थितियाँ होती हैं, जिनसे वे एक नई पहचान को स्वीकार कर लेती हैं? इस प्रकार उक्त अध्ययन इन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया गया है। पार-सांस्कृतिक विवाह में महिलाओं की पहचान से जुड़े विभिन्न सांस्कृतिक व सामाजिक पहलुओं की समीक्षा करना। इस प्रकार के विवाहों में सांस्कृतिक पहचान छिन जाने के बाद महिलाओं पर पड़ने वाले प्रभावों की चर्चा करना। स्व सांस्कृतिक पहचान छोड़कर नई पहचान अपनाने के अनुभवों को समझना।

अनुसंधान प्रविधि

जैसा कि पहले ही वर्णित किया जा चुका है कि राजस्थान का लिंगानुपात अन्य राज्यो की तुलना में निम्न है व यहाँ अध्ययन बहुत कम किया गया है जबकि पंजाब, हरियाणा व उत्तर प्रदेश में इस संदर्भ में अध्ययन किए जा चुके हैं इसलिए इस अध्ययन हेतु उत्तर-पश्चिमी राज्य राजस्थान के धौलपुर जिले का चुनाव निम्न लिंगानुपात के आधार पर किया गया है। धौलपुर, राजस्थान के पूर्वी क्षेत्र में बसा हुआ है, जो कि 1982 में भरतपुर की चार तहसीलों-ध ौलपुर, राजाखेड़ा, बारी एवं बसेरी से मिलकर बना था। धौलपुर की सीमाएं मध्य प्रदेश एवं उत्तरप्रदेश से लगती हैं। यह जिला चार ब्लॉक में विभाजित किया गया है। इस अध्ययन हेतु निम्न लिगांनुपात के आधार पर प्रत्येक ब्लॉक से 5-5 गाँवों का चुनाव किया गया है, जिसका आधार 2011 की गाँव आधारित जनगणना है। अध्ययन हेतु चयनित 20 गाँवों में आंकड़ों के संग्रहण के लिए सर्वे, समूह केन्द्रित साक्षात्कार, एंव अवलोकन को शामिल किया गया है। इस अनुसंधान के लिए मई 2018 से नवम्बर 2020 तक सर्वे से किया गया जिसमें पार-सास्कृतिक विवाहों को 117 केस प्राप्त हुए। प्रस्तुत अध्ययन के आरंभ में 20 गाँवों का सर्वे करके पार-सांस्कृतिक विवाहों का पता लगाया गया, तत्पश्चात वधुओं का साक्षात्कार किया गया। इस अनुसंधान के दौरान पार सांस्कृतिक विवाह द्वारा लायी गयी वधुओं के जीवन के प्रत्येक पहलूओं को गहन रूप से जानने का प्रयास किया गया।

पार-सांस्कृतिक विवाह करके आई वधुओं का सामान्य विवरण-समाज की विभिन्न परिस्थितियों क्रमशः खराब लिंगानुपात, कन्या भ्रूण हत्या, गरीबी, बहिर्युग्मन, साक्षारता की कमी इत्यादि कारणों से पार-सांस्कृतिक विवाह समाज में प्रवेश कर चुका हैं। इन विवाहों के अनुरूप ही संस्कृति भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन करती है। किन्तु यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जब एक संस्कृति का यह आदान-प्रदान होता है तो किसी महिला के जीवन को यह कहाँ तक प्रभावित करता हैध्? इस सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को जानने के लिए अध्ययन के दौरान 117 पार-सांस्कृतिक विवाह करके आई वधुओं की पहचान कर उनसे साक्षात्कार किया गया तथा इस तथ्य को जानने का प्रयास किया गया कि पार-सांस्कृतिक विवाह पश्चात उन्हे किस प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ा? जिसमें विभिन्न राज्यों से आई हुई वधुओं, जो कि विभिन्न धर्मों, जातियों, आयुवर्गों एभाषाओं एवं भोजन संबंधी आदतों से जुड़ी हुई थी, का अध्ययन किया गया है जिसका विवरण निम्न प्रकार है-

पार-क्षेत्रीय विवाह से आई वधुओं का विवरण

तालिका 1.1

पार क्षेत्रीय विवाह करके आई वधुओं का आयुवर्ग	*पार क्षेत्रीय विवाह करके आई वधुओं की संख्या*
(15-20)	07
(21-25)	10
(26-30)	13
(31-35)	12
(36-40)	10
(41-45)	18
(46-50)	15
(51-55)	10
(56-60)	10
(61-65)	05
(66-70)	05
(71-75)	02
कुल	117

स्त्रोत-क्षेत्रिय अध्ययन

उक्त अध्ययन के दौरान सभी आयुवर्गों (तालिका 1.1) की वधुओं को शामिल किया गया ळें इसमें (15.45) आयु वर्ग की जिन्हे युवा के दर्जे में रखा जा सकता है वे 70 वधुएँ हैं, जबकि (46.75) आयुवर्ग की 47 पार-क्षेत्रीय वधुएँ हैं जो कि अपने जीवन काल का एक बड़ा हिस्सा यहीं पर व्यतीत कर

चुकी हैं। जिनके अनुभव इस नए सांस्कृतिक परिवेश को अपना चुके हैं या ढल चुके हैं अपने जीवन का बड़ा हिस्सा यहाँ व्यतीत करने के कारण ये अपनी सांस्कृतिक पहचान गुम होने व नई पहचान अपनाने के अनुभव लिए हुये हैं। इस अध्ययन में इन वधुओं ने बताया कि इस नए सांस्कृतिक माहौल में खुद को ढालना किसी चुनौती से कम नहीं था। ये वधुएँ एक अलग तरह के परिवेश से आई थी जिन पर अपना परिवेश व संस्कृति को भूलाकर नयी पहचान व रीति रिवाजों को अपनाने का दबाव ढाला गया। आरम्भ में इन्हे समाज में अपना स्थान बनाने में जटिलता महसूस हुई किन्तु लंबे समय तक परिवार में रहने एंव बच्चे को जन्म देकर वंश का नाम आगे बढ़ाने, बूढ़े सास, ससुर की सेवा करने, राजस्थानी रीति. रिवाज एंव भाषा अपनाने जैसे अनेकों कार्य करने के बाद समाज व परिवार ने इन वधुओं को अपनाया है।

तालिका 1.2

धर्म	*पार क्षेत्रीय विवाह करके आई वधुओं की संख्या*
हिन्दू	07
मुस्लिम	10
ईसाई	13
कुल	117

सांस्कृतिक पहलू का एक अन्य पक्ष धर्म से संबन्धित है। ऐसा नहीं है कि पार सांस्कृतिक विवाहों की पृष्ठभूमि केवल हिन्दू धर्म से जुड़ी है, अपितु इसमे मुस्लिम व ईसाई परिवार भी सम्मिलित हैं। इनमे हिन्दू धर्म की 110, मुस्लिम धर्म की 4, जबकि ईसाई धर्म की 3 वधुएँ थी (तालिका 1.2), इन सभी वधुओं ने बताया की इनके धर्म के अनुसार इनके क्षेत्र में अलग तरह के रीति रिवाज अपनाए जाते है जबकि विवाह पश्चात इन्हे अलग तरह के नियम या तौर तरीके सीखने पड़े हैं। सामान्यतया स्वमं का स्थापित करने हेतु ये वधुएँ नए पारंपरिक रीति, रिवाजों को अपनाने के लिए बाध्य होती हैं।

तालिका 1.3

विवाह के समय पार क्षेत्रीय विवाह कर आई वधुओं का आयु वर्ग	*पार क्षेत्रीय विवाह करके आई वधुओं की संख्या*
15.20	97
21.30	13
31.40	7
कुल	117

दूसरा बड़ा तथ्य इस बात को प्रकट करता है कि विवाह के समय अधिकतर वधुओं की आयु 15-20 वर्ष थी (तालिका 1.3) जो की निर्णय निर्माण करने के लिए काफी अल्पायु होती है। इस आयु में अपने क्षेत्र को त्यागकर दूर क्षेत्र में आना और परिवार के उन सदस्यों को जो की उनके लिए अभी बहुत नए हैं, उनके बीच अपने मन की बात रखना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। जिस वजह से उन्ही तौर तरीकों को अपनाना इन वधुओं की विवशता है। 20 वर्ष से कम आयु पर विवाह होने वाली वधुओं से चर्चा करने पर ज्ञात हुआ कि जब उनका विवाह किया जा रहा था तब अल्पायु के कारण उन्हे इस बात कि जानकारी भली भाँति नहीं थी कि वे विवाह करके कहाँ जा रही हैं? उन्हे अपने परिवार के सदस्यों द्वारा केवल यह जानकारी मिली थी कि वे विवाह करके कहीं दूर जा रही हैं। राजस्थान अथवा धौलपुर के बारे में उनका ज्ञान शून्यमात्र था। आरती (बदला हुआ नाम) ने इस बारे में बताया कि, मैं बस 14-15 साल की थी, इतनी छोटी उम्र में शादी हो गयी, तब क्या पता था कि शादी करके कहाँ जा रहे हैं? ''भैया ने बताया था मुझे शादी के बारे में कि वहाँ जाकर तुम खुश रहोगी।''

तालिका 1.4

पार क्षेत्रीय विवाह कर आई वधुओं द्वारा बोली जाने वाली भाषाएं	*पार क्षेत्रीय विवाह कर आई वधुओं की संख्या*
बृज	8
बंगाली	42
हिन्दी	57
उड़िया	2
भोजपुरी	4
अन्य	4
कुल	117

सांस्कृतिक पहलू का एक मुख्य घटक भाषा को माना जाता है। राजस्थान में विवाह करके आई ये पार-सांस्कृतिक वधुएँ भी अलग-अलग भाषा भाषी राज्यों से हैं (तालिका 1.4) जिसमे बंगाली बोली जाने वाली वधुओं की संख्या 42 सर्वाधिक है। इनमे भोजपुरी, उड़िया, बृज एवं अन्य भाषा बोलने वालों की संख्या 18 है। इस प्रकार हिन्दी से इतर भाषा बोलने वाली वधुओं की संख्या अधिक है। इनके द्वारा राजस्थान में आकर राजस्थानी व हिन्दी सीखने की प्रक्रिया काफी जटिल रही है। एक पार-सांस्कृतिक वधू सुनीता (बदला हुआ नाम) के शब्दों में ''एक बार मेरा घरवाला कुछ और सामान मँगवा रहा था, मैने कुछ और लाकर दे दिया। अब बोली समझ ही न आ रही थी तो का करते''। ये वाक्य इस भाषा न समझने की समस्या को गहराई से प्रकट करते है।

तालिका 1.5

पार क्षेत्रीय विवाह कर आई दुल्हनों की विवाह	*पूर्व भोजन संबंधी आदतें पार क्षेत्रीय विवाह कर आई दुल्हनों की संख्या*
शाकाहारी	19
मांसाहारी	42
कुल	117

भोजन न केवल संस्कृति का बल्कि व्यक्तिगत रूप से निजी जीवन का एक हिस्सा है। राजस्थान में 74.9% लोग शाकाहारी भोजन करते है (एस आर एस-संम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम बेस लाइन सर्वे 2014 रजिस्टर जनरल आफॅ इन्डिया) अध्ययन से प्राप्त तथ्य यह स्पष्ट करते है कि पार क्षेत्रीय दुल्हनों में से 83.76% दुल्हने विवाह पूर्व मांसाहारी भोजन खाती थी जबकि विवाह के पश्चात अधिकतर ने शाकाहारी भोजन को अपना लिया है। (तालिका 1.5) अधि कतर वधुओं ने बताया कि उन पर भोजन संबंधी पाबंदी बहुत कम हैं वे चाहे तो अपने पसंद का मांस भी बना सकती हैं, किन्तु जैसा कि ज्ञात है राजस्थान में अधिकतर लोग शाकाहारी भोजन पसंद करते हैं तदुपरान्त पार संस्कृति से विवाह करके आई वधुएँ शाकाहारी भोजन को अपना लेती हैं। कविता (बदला हुआ नाम) ''पहले तो मुर्गा-चावल खा लेते थे, यहाँ कोई खाता ही नहीं है, तो क्या बनाए? अब तो मांस.मुर्गा सब खाना छूट गया, बस रोटी. सब्जी ही खाते हैं''। ऊपर वर्णित आंकड़े पार क्षेत्रीय विवाह करके आई वधुओं की बदलती सांस्कृतिक स्थितियों का वर्णन करती हैं।

पार-सांस्कृतिक विवाहों के सम्पन्न होने के कारण व सांस्कृतिक पहचान

संस्कृति किसी भी व्यक्ति के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किन्तु संस्कृति पर संकट उस समय मंडराने लगता है जिस समय पार-सांस्कृतिक विवाह होते हैं। ये पार सांस्कृतिक विवाह न केवल भारत अपितु विश्व में प्रचलित हो चुका है। यदि चीन को देखे तो पाते हैं कि वहाँ पर वियतनाम व उत्तरी कोरिया से वधुओं को, तस्करी कर लाया जाता है (डेमिक, 2003), अन्य राष्ट्रों में भी अंतर देशीय वधुए लायी जा रही हैं। डेविन 2008, फेन एवं हुंग 1998 यॉग एंव लू 2010), भारत भी इस तथ्य से अछूता नहीं रह गया है। भारत में वधुओं की कमी के चलते पुनः बहुपतित्व की स्थिति पंजाब व हरियाणा में देखने को मिलती है। राजस्थान के धौलपुर जिले में भी स्थिति बेहद खराब है, जिस कारण यहाँ पर अन्य राज्यों से होने वाले विवाहों की संख्या बहुत अधि क है। धौलपुर जिले में अधिकतर बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल, असम, त्रिपुरा, ओड़ीशा, कोलकाता, छत्तीसगढ़ राज्यों से लायी गयी वधुएँ हैं।

भारत एक बहुसंस्कृति वाला देश हैए जिसमे प्रत्येक राज्य की संस्कृति दूसरे राज्य से भिन्न है। ऐसे विवाहित जोड़े जिनकी संस्कृति राष्ट्रीयता एवं नृजातीयता एक दूजे से भिन्न हो उन्हे रॉडमन ने मिश्रित विवाह की संज्ञा दी है। (रॉडमन, 1965), ऐसे मिश्रित विवाह भारत में पार-सांस्कृतिक विवाहों के रूप में प्रचलित हुये है। किन्तु पार-सांस्कृतिक विवाह होने से संस्कृतियों के मध्य अंतर में कमी आई है या यूं कहें की इन विवाहों से महिलाओं के जीवन में बहुत अधि क बदलाव देखने को मिले हैं। जब बदलाव की लहर पर गौर किया जाता है तो एक प्रश्न अवश्य उभरकर सामने आता है कि धौलपुर में लड़कियों की कमी के अलावा और कौन से कारण हैं, जिससे इस प्रकार के विवाह समाज में स्थान पाते हैं तथा इस प्रकार के विवाहों से महिलाओं के जीवन में कौन से सांस्कृतिक बदलाव होते हैं? इन सभी बातों को निम्न तथ्यों के संदर्भों में समझा जा सकता है।

अन्य गाँव में विवाह करने की परंपरा-भारतवर्ष में बहिर्युग्मन विवाह की परंपरा रही है जिसमे बेटी का विवाह समान गाँव में नहीं किया जाता बल्कि किसी अन्य क्षेत्र में किया जाता है। (प्रकाश रावः नंदिनी राव, 2019) इसी परंपरा के कारण लोग अक्सर अपनी बेटियों का विवाह दूर स्थान पर कर देते हैं। जिसके कारण पार-सांस्कृतिक विवाहों को मजबूती मिलती है। साथ ही इस प्रकार के विवाह करने पर समाज एवं परिवार वालों को आपत्ति नहीं होती। गूल्ड, उत्तर भारत में गाँव बहिर्युग्मन विवाह होने के तथ्य पर जोर देते हुये कहते हैं कि ''पारिवारिक नातेदारों से विभिन्न किस्म के विवादों से निपटने के लिए गाँव बहिर्युग्मन विवाह प्रणाली को अपनाते हैं''। (गुल्ड, 1961:299)

लड़की के परिवार की आर्थिक स्थिति खराब होना व बिना दहेज विवाह- पार-सांस्कृतिक दुल्हने निर्धन राज्यों निर्धन जिलों व निर्धन परिवारों से होती हैं। इस प्रकार के विवाह दूल्हे व दुल्हन दोनों ही पक्षों के लिए कम खर्च वाले होते हैं (कौर, 2004), धौलपुर जिला भी राजस्थान के गरीब जिलों में से एक है, साथ ही अधिकांश दुल्हने झारखंड, बिहार, असम, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल, ओड़ीशा से है जहॉ प्रति व्यक्ति आय अत्यन्त निम्न है। इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि ये राज्य आर्थिक रूप से अधिक समृद्ध नहीं है। पार सांस्कृतिक विवाह निर्धन परिवारों को दोहरा लाभ प्रदान करते हैं। दोनों ही पक्ष विवाह में होने वाले खर्च से बच जाते हैं जिसमें रिश्तेदारों को भोज करवाना, बारात, जेवर इत्यादि शामिल है। दूसरी ओर दहेज आज के समाज का एक अभिशाप है जो कि लड़की के परिवार वालों को नष्ट कर देता है। ऐसे विवाह में ससुराल पक्ष द्वारा दहेज के बिना विवाह सम्पन्न करवाया जाता है। अधिकतर उत्तरदाताओं ने यह बताया कि विवाह का खर्च भी दोनों पक्षों द्वारा उठा लिया गया ताकि अनावश्यक खर्च से बचा जा सके।

बेहतर जीवन प्रदान करने की इच्छा-धौलपुर जिले के अध्ययन से यह तस्वीर उभरकर सामने आती है कि पार-सांस्कृतिक विवाहों में दुल्हनों को बेहतर जीवन प्रदान करने का आश्वासन दिया जाता है। उन्हे अपने आस पास के विवाहों का उदाहरण देकर बताया जाता है कि जिस लड़की ने पार-सांस्कृतिक विवाह को अपनाया है वह अपने मायके की तुलना में बेहतर जीवनयापन करती हैं, बजाए जो लड़कियां अपने ही राज्य क्षेत्र में विवाह करती हैं उन्हे निध नता का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार के विवाहों में न केवल जीवन को उत्तम करने की इच्छा रखी जाती है, अपितु दूल्हे के धनवान होने, नौकरी करने एवं सरल व्यवहार होने की पेशकश भी की जाती है।

इसलिए इस प्रकार के विवाहों को आसानी से अपना लिया जाता है। किन्तु यह सत्य अथवा झूठ कुछ भी हो सकता है।

हालॉकि इस प्रकार के विवाह ऊपर वर्णित कारणो की वजह से समाज में स्थान पा जाते हैं किन्तु इन विवाहों के चलते महिलाओं के जीवन में बहुत अधिक परिवर्तन देखने को मिलते हैं।

सांस्कृतिक बदलाव से जुड़े अनुभवों का विश्लेषण

नई संस्कृति में स्वयं को ढालना व उसी के अनुरूप जीवन को दिशा देना अत्यन्त कठिन कार्य है इस संस्कृति परिवर्तन में नई जाति बंधनो में बंधना, नई भाषाए नए रीति रिवाज अपनाना, स्वमं के नित्य भोजन त्यागकर नए प्रकार के भोजन को अपनाना और वो सभी परिवर्तन शामिल है जो कि कोई महिला आम तौर पर नए परिवार के साथ जुडने व सामंजस्य बनाने के लिए अपनाती है।

शालू (बदला हुआ नाम) 37 वर्षीय है जो कि खदिनान, हावड़ा, कलकत्ता की रहने वाली है उसका विवाह धौलपुर जिले के बिशनोदा गाँव में रहने वाले निरोती लाल (39 वर्षीय) से हुआ है। शालू ब्राह्मण (भट्टाचार्य) परिवार से जबकि उसका पति जाट समुदाय का है। राजस्थान में ही नहीं जाट समुदाय को उत्तर भारत में एक सशक्त जाति के रूप में स्वीकारा गया है। जब शालू विवाह करके आई तो उसे उसके पति के परिवार के सदस्यों जैसे भाई-भाभी व पड़ोस के लोगो द्वारा वह दर्जा नहीं दिया गया जिसकी वह एक परिवार के नए सदस्य के रूप में हकदार थी। उसकी बोली बंगाली थी, जिस कारण वह परिवार के लोगो कि बातों को भली प्रकार से समझ नहीं पाती थी। बकौल शालू, ''मुझे हिन्दी व राजस्थानी बहुत कम समझ में आती थी, मेरी देवरानी, जेठानी अक्सर मुझे ''बिहारिन'' कहती थी और उनके रीति रिवाज, पर्दा प्रथा न अपनाने के लिए मेरे साथ दुर्व्यवहार भी करती थी। उनके लिए मैं परिवार की सदस्य नहीं थी। कुए से पानी भरने के लिए भी मैं अकेली जाती थी। मैं जब भी पानी भरने के लिए कुए पर जाती थी तो वहीं पर गाँव के बुजुर्ग बैठे रहते थे जिस कारण मुझे घूँघट, पर्दा प्रथा करना पड़ता था। एक दिन मैं ऐसे ही पानी भरने के लिए गयी हुई थी और उस दौरान मैं गर्भवती भी थी ऊपर से मैंने घूँघट भी ओढ़ रखा था तभी मैं पानी का मटका उठा ही रही थी कि मैं बुरी तरह गिरती.गिरती बची। उसी समय मैंने घूँघट खोल दिया और मटका भी फोड़ दिया व वहाँ बैठे बुजुर्गों को खूब सुनाया कि यहाँ गाँव की बहू बेटियाँ पानी भरने आती हैं जिन्हे तुम घर की इज्जत कहते हो उन्हे इतनी परेशानियाँ उठानी पड़ती है और तुम यहाँ बैठकर ताश खेलते रहते हो। उसके बाद से सभी ने मुझे घूँघट न करने पर टोंकना बंद कर दिया। अब मुझसे कोई भी बुरे तरीके से व्यवहार नहीं करता। यहाँ तक की मेरे जैसी और भी दूसरे राज्यों से आई दुल्हने अपनी किसी परेशानी को मेरे साथ बांटने के लिए आ जाती हैं। इस संदर्भ में यह बात एकदम सटीक साबित होती है कि श्"न्दकमतेजंदकपदह जीम ंहमदबल तवसम पे बमदजतंस जव तमबवहदप्रपदह जीम चमवचसम ं तमेचवदेपइसम चमतेवदे: दवज वदसल ू म ू मसस वत पसस, इनज सेव ू म बज वत तमनिम जव बज, दक बंद बीववेम जव बज पद वदम ू ल वत जीम वजीमत" (मद 2000: 190)

यह केस कई संदर्भो में महत्तपूर्ण हो जाता है। प्रथम संदर्भ में यह कि पार क्षेत्रीय वधुए पर नए रीति रिवाजों को अपनाने की दबाव बनाया गया जिसे वह उसके घर परिवार की शांति के लिए स्वीकार करती है, किन्तु समंजस्य न बैठने की स्थिति में उन परिस्थितियों को अस्वीकार कर देती है। दूसरे संदर्भ में वह स्वयं निर्णय निर्माण करने योग्य हो जाती है। किन्तु सभी वधुए शालू जितनी साहसी नहीं होती, वे चुपचाप संस्कृति के इस दमन को अपना लेती हैं।

गायत्री (बदला हुआ नाम) 32 वर्षीय है, जो कि हजारीबाग, झारखंड की रहने वाली है, उसका विवाह संतोष, 41 वर्षीय, गढ़ी लज्जा, धौलपुर, राजस्थान निवासी से हुआ है। दोनों एक ही जाति धोबी से हैं परन्तु उनके रीति रिवाज एक जैसे नही हैं, तथा खान.पान, वेषभूषा व भाषा में बहुत ज्यादा अंतर है। बकौल गायत्री, ''जब यहाँ शादी करके आई तो बहुत परेशानी उठानी पड़ी थी। हम अपने यहाँ मीट-मांस और चावल खाते थे, जब से यहाँ शादी करके आई तब से रोटी ही खा रहे हैं। शुरुआत में साड़ी पहनने में दिक्कत होती थी, झारखंड में मैं स्कर्ट, फ्रॉक पहनती थी। क्योंकि मेरी उम्र बहुत छोटी थी। इसके अलावा यहाँ की भाषा समझने में दिक्कत होती थी पर अब यहाँ रहते रहते सीख गई हूँ। अब तो अपने मायके की भाषा भी सही से नहीं बोल पाती। वहाँ जब मिलने जाती हूँ तो वो कहते हैं कि तुम तो सब भूल गयी''।

नीरज (बदला हुआ नाम) 42 वर्षीय है जो कि बंगाल के सूदूर गॉव की रहने वाली है। इनका विवाह 14 वर्ष की आयु में राम नरेश के साथ हुआ था जो विश्नौदा धौलपुर, राजस्थान के रहने वाले है नीरज को अपनी जाति का पता नही है उसे इतना याद है कि हमारे यहॉ कुछ त्यौहार जैसे दुर्गापूजा बहुत धूमधाम से मनाया जाता था। उनके अनुसार ''त्यौहारों की वो रौनक यहॉ नही है। हमें अब यहॉ के त्यौहार मनाने पड़ते है। पर हमें वौ त्यौहार याद आते है। अब मैं तो अपनें गॉव जा नही पाती हूॅ क्योंकि वहॉ मेरा कोई नही है'' उक्त वक्तव्य यह स्पष्ट करते है कि बदली हुई परिस्थितियों में समायोजन विवशता का परिणाम भी होता है।

इस केस से यह भली भांति समझा जा सकता है कि ये वधुए स्वयं को नए समाज का हिस्सा बनाने के लिए अपनी सांस्कृतिक पहचान को खुशी-खुशी गँवा देती है। क्योंकि उनके नए परिवार में समायोजन के लिए यह एक आवश्यक प्रक्रिया है। साथ ही यहाँ यह भी जान लेना जरूरी है कि क्षेत्रीय दुल्हन के ऐसा करने पर उन्हे गौरव की अनुभूति कारवाई जाती है। मनोवैज्ञानिक रूप से विश्लेषण करे तो यह निष्कर्ष निकलता है कि वे समाज में व नए परिवार में अपना स्थान पाने के लिए ऐसा करती हैं।

पार सांस्कृतिक विवाह के परिणाम

पार सांस्कृतिक विवाह संस्कृति के परिप्रेक्ष्य से बहुत अधिक घातक साबित हुये हैं। इन विवाहों के कारण एक अंतर क्षेत्रीय दुल्हन से उसके खाने-पीने, रहन सहन, भाषा एवं उसके मानसिक पक्ष पर आघात होता है। धौलपुर के अध्ययन में यह तथ्य सामने आता है कि पार- सांस्कृतिक दुल्हनें अपनी स्वेच्छा से अपनी संस्कृति नहीं त्यागती, बल्कि उनके जीवन में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती हैं कि वे अपनी संस्कृति को छोड़ने के लिए विवश हो जाती हैं और इसके बदले में उन्हे समाज व परिवार से स्वीकार्यता मिलती है। ऐसा करने के लिए वह अपनी सोच, भाषा, मीट-मांस खाना, अपने पसंद के कपड़े पहनना इत्यादि त्याग देती है। वह अपने सभी सगे-संबंधियों सामाजिक नातेदारों, सांस्कृतिक त्योहारों, रीति-रिवाजों को नए परिवार में सम्मान, सुरक्षा, स्वीकार्यता पाने के लिए करती है। ''कौर ने ऐसी पार क्षेत्रीय दुल्हनों के लिए ''सामाजिक शरीर'' प्रयुक्त किया है (कौर, 2004) जिसका इस्तेमाल मजदूर के रूप में काम करने, प्रजनन हेतु किया जाता है। कौर तर्क देती है कि महिला अपना सामाजिक शरीर खो देती है और उसके पास सिर्फ जैविक शरीर ही बचता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से प्राप्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि पार क्षेत्रीय विवाह सांस्कृतिक पहचान कि दृष्टि से काफी जटिल है। इनके कारण सांस्कृतिक जनजीवन एक नयी दिशा में ढलना आरंभ हो जाता है और समय के दूसरे छोर पर प्रारम्भिक सांस्कृतिक पहलू का दमन हो जाता है तथा नई संस्कृति पैर फैला चुकी होती है। इस प्रकार एक संस्कृति का स्थान दूसरी संस्कृति ले लेती है जो कि इन पार क्षेत्रीय दुल्हनों के जीवन में अपने आप में एक बड़ा परिवर्तन है साथ ही अपनी संस्कृति को त्यागकर एक नई संस्कृति को अपनाना बहुत चुनौतीपूर्ण कार्य होता है। जिसमें उनके जीवन का वो हिस्सा (प्रारम्भिक संस्कृति -भाषा, भोज, त्योहार, जातिगत पहचान) जो किसी के लिए भी बहुत सुखकर होता है वह परिवर्तित जाता है। इस परिवर्तन की प्रक्रिया अपने आप में काफी जटिलताओं से परिपूर्ण होती है। यह परिवर्तन विवाह के माध्यम से होता है। विवाह जीवन का एक महत्वपूर्ण पड़ाव है, जो कि भारतीय समाज में आवश्यक माना जाता है, जिसके तहत एक परिवार की पुत्री दूसरे परिवार में वधू बनकर जाती है। किन्तु लिंगानुपात के अंतर के कारण विवाह एक जैसी संस्कृति में होने कि बजाए अन्य संस्कृति वाले समुदाय या राज्य में होता है। राजस्थान के लिंगानुपात में भी बहुत अंतर है, विशेषकर धौलपुर में। जिस कारण से दूर क्षेत्र के विवाह की संकल्पना समाज में जन्म लेती है। यह दूर क्षेत्र के विवाह की संस्कृति को परिवर्तित कर देती है। प्रारम्भिक संस्कृति के बजाय ''प्राकृतिक संस्कृति'' कहा जाना चाहिए, क्योंकि जन्म के बाद अपने परिवार से बालक संस्कृति के रूप में जो भी ग्रहण करता है, वह स्वतंत्र रूप से उसे स्वीकार करता है, जबकि विवाह पश्चात अपनाई जाने वाली संस्कृति दबावकारी है, जो कि समाज के रूढ़िवादी होने का साक्ष्य प्रदान करती है। प्रस्तुत लेख केन्द्रीय प्रश्न व अन्य प्रश्नो का जवाब भली भांति देता है। यह सत्य है कि पार सांस्कृतिक दुल्हने नयी संस्कृति को अपना लेती हैं। किन्तु वे नयी संस्कृति को बेहतर समझने कि बजाय अपनी पारंपरिक संस्कृति व नयी संस्कृति के बीच सामंजस्य स्थापित करना बेहतर समझती हैं। यदि हम पार सांस्कृतिक दुल्हनों की भोजन संबंधी आदत का अवलोकन करे तो पाते हैं कि अधिकतर पार सांस्कृतिक दुल्हने अपने मायके के भोजन (चावल, मांस) को पूरी तरह त्यागने की अपेक्षा अपने ससुराल वालों के भोजन (रोटी, सब्जी, शाकाहारी भोजन) संबंधी आदत को अपना लेती है। इसका महत्वपूर्ण कारण यहाँ के लोगो के साथ रहना इनकी परंपरा को मान लेना है। हॉलांकि ये सामंजस्य स्थापित करने में पार सांस्कृतिक वधुओं को बहुत संकटों का सामना करना पड़ता है। समाज व परिवार इन वधुओं से उन्ही के समाज के पारंपरिक तौर तरीकों के अनुरूप व्यवहार करने की अपेक्षा करता है और ये वधुए समाज व परिवार में अपना स्थान पाने अथवा स्वयं की स्वीकृति हेतु उसी रूप में व्यवहार करती है। यह प्रक्रिया काफी चुनौतीपूर्ण व दीर्घकालिक होती है, किन्तु परिवार व समाज की स्वीकृति पार-सांस्कृतिक वधुए की इस दुविधा को कम कर देती है। इस प्रकार ये वधुए इन सांस्कृतिक बदलावों को अपना लेती है। लेख के माध्यम से यह स्पष्ट किया जा चुका है कि इन विवाहों के होने का प्रमुख कारण राजस्थान-धौलपुर का बेहद निम्न लिंगानुपात है। जिस कारण से धौलपुर जिले के लड़को का विवाह उन्ही के राज्य अथवा जिले में करना कठिन हो जाता है। लड़कियों की कमी समाज के लिए एक गंभीर समस्या है जिसका हल जल्दी ही निकालना आवश्यक है। इसके अलावा अधिकतर सभी पार सांस्कृतिक वधुए बहुत ही गरीब परिवार से हैं उनके लिए बिना दहेज के विवाह होना ही सबसे महत्वपूर्ण है। ऐसे में वधु के परिवार वाले विवाह का दूर क्षेत्र में विवाह होने व सांस्कृतिक बदलाव होने को अधिक महत्व नहीं देते। ऊपर से ससुराल पक्ष से वधु के परिवारों को उनकी बेटी को बेहतर जीवन देने का आश्वासन दिया जाता है जो कि वधु के परिवार वालों को प्रलोभन देने के लिए काफी होता है। इस प्रकार ये विवाह आज के समाज में वर व वधु दोनों पक्षों की आवश्यकता बन गए हैं, किन्तु ये विवाह सांस्कृतिक पहचान के परिप्रेक्ष्य से अधिक सुखकारी साबित नहीं हुये हैं। यदि सांस्कृतिक दमन की दृष्टि से देखे तो ये विवाह अहितकारी हैं, जबकि सांस्कृतिक आदान-प्रदान के पहलू व समाज में विवाह संस्था को आगे बढ़ाने में इनका योगदान भी साबित हो रहा है। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि पार-सांस्कृतिक विवाह, समाज में विवाह संस्था को मजबूत करने में मददगार साबित हो रहे हैं। परन्तु सास्कृतिक समायोजन व वैयक्तित पहचान की दृष्टि से इसका प्रभाव नकारात्मक रहा है। इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन इस तथ्य को स्थापित करते है कि पार-सास्कृतिक वैवाहिक सम्बधों में जहॉ एक तरफ वधुओं की स्व संस्कृति से परिस्थितिवश दूरी बन जाती है वहीं वे एक नयी संस्कृति के साथ द्वन्दात्मक समायोजन कर स्वमं की एक नयी सांस्कृतिक पहचान बना रही है।

धन्यवाद ज्ञापन: प्रस्तुत शोध प्रपत्र (आई सी एस एस आर) द्वारा प्रायोजित शीर्षक ''विवाह प्रवासन या तस्करी? राजस्थान के धौलपुर जिले में जनसांख्यकीय असंतुलन और पार-सांस्कृतिक संघों की जांच परियोजना का भाग है। जिन लोगो ने अनुसंधान परियोजना के दौरान हमारी सहायता की है, हम उन सभी के कार्यों की सराहना करते हैं एवं आभार ज्ञापित करते हैं। हम इस बात की घोषणा करते हैं कि उक्त परियोजना में संकलित तथ्य किसी के हितों की हानि नहीं करते।

संदर्भ सूची

1. Cooley, Charles Horton, Human Nature and Social order, 1902, New York: Charles Scribner"s Sons, revised edition 1922.
2. Chaudhry, Shruti and Taneesha Devi Mohan (2011): "Of Marriage and Migration: Bengali and Bihari Brides in a Up Village', Indian Journal of Gender Studies, 18(3), pp 311-40.
3. Demick, Barbara (2003): N Korea"s Brides of Despair', Los Angeles Times, 18 August, availableat http://articles.latimes.com/2003/aug/18/worldf/ g-brides18.
4. Ghosh, Banshika, 'Marriage Migration in Contemporary India: A critical Analysis', Indian Journal of Development Research And Social Action, Vol.13, No.2 (July-Dec,2017)
5. Gould, Harold A.k 'The Micro-demography of marriages in a north Indian area.'Southwestern Journal of Anthropology 16:476-491(1960). "A Further note on Village exogamy in North India.'" Southwestern Journal of Anthropology 17: 279-300 (1961)
6. Hershman, Paul (1981): Ounjabi kinship ad Marriage (Delhi: Hindustan Publishing).
7. Kaur, Ravinder (2004): 'Across-region Marriage: Poverty, Female Migration and Sex Ratio', (Economic and Political Weekly, 39 (25), pp 2596-603.

8. (2008): "Missing Women and Brides from Faraway: Social Consequences of the Skewed Sex Ratio in India", AAS Working Papers in Social Anthropology/ OAW Arbeitspapie=ur Sozialanthropologie.
9. (2010): Khap Panchayats, Sex Ratioand Female Agency', Economic and Political Weekly, 55 (23), pp14-16.
10. (2012) Marriage and Migration: Citçenship and Marital Experience in Cross Border Marriages between Uttar Pradesh, West Bengal and Bangladesh', Economic and Political weekly, 47(43), pp 78-84.
11. Kukreja, Reena and Paritosh Kumar (2013): Tied in a knot: Cross Region Marriages in Haryana and Rajasthan: Implications for Gender Rights and Gender Relations. (Tamarind Tree Films: Canada and New Delhi).
12. Majumder, P.(1977) Matrimonial Migration: a review with special reference to India." J of Biosocial Science.9:381-401.
13. Mishra, Paro (2013), Sex Ratios, Cross- Region Marriages and The challenges to Caste Endogamy in Haryana', Economic and Political Weekly 48(35): 70-78.
14. Nelson Franklin Soy and Harihar Sahoo, 'Marriage Arrangements and Customs in India', Social Science Spectrum, Vol.k. 2, No.4, December 2016, ISSN 2454-2806.
15. Pandey, Arvind Kumar, 'Moving Identities: Nature and characteristics of Rural-Urban Female Migration in India', Asian Profile, Vol.43, No.2, April 2015.
16. Premi, M.K., 1980. "Aspects of Female Migration in India," Economic and Political Weekly, Vol.15, Issue No.k~ 15, pp 714-720.
17. Rozanweig, Mark. R., and Oded Stark.k~ (1989) 'Consumption Smoothing, Migration and Marriage: Evidence from Rural India', Journal of Political Economy 97 (4): 905-26.
18. .Sonawat, R. (2008) 'Understanding Families in India: A reflection of Social Changes', SNDT Women"s University, Bombay, India.
19. The Economist (2011): 'Asian Demography: The Flight from Marriage', 20 August, available at www.economist.com/node/21526329.
20. V.V. Prakasa Rao and V.K Nandini Rao, 'Endogamy and Exogamy: Particularistic and Universalistic Attitudes of college students in India, Journal of comparative Family Studies, Vol.11, No. 4 (Autumn 1980), University of Toronto Press.

सोशल मीडिया और समाज : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० युवराज कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वर्तमान में सोशल मीडिया एक नई तकनीकी क्रांति के रूप में स्थापित हो चूका है। इसका स्वरूप विशाल, तकनीकी, शक्तिशाली और व्यापक है। सोशल मीडिया हाल ही का एक आविष्कार है। जिसमे फेसबुक, व्हाट्स एप्प, इन्सटाग्राम, माई स्पेस, ट्वीट्र, ब्लाग्स, विक्किस, टैक्सट मैसेजिंग इत्यादि को शामिल किया जा सकता है। इनका उपयोग करते हुए पारस्परिक संवाद के साथ सूचनाओं के आदान-प्रदान किया जाता हैं। यह लोगों के सामाजिक जीवन को बदलने में एक महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाता है। सोशल मीडिया ने दुनिया को एक छोटी सी जगह मे समेट दिया है। मीडिया की प्रगति के साथ लोग किसी भी वेबसाइट से जरूरत की सभी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। सोशल मीडिया ने तमाम जानकारियों, सम्पर्को, वस्तुओ, सेवाओ, सूचनाओ, अनुभवो, विचारो, भावनाओ इत्यादि से व्यक्ति को जागरूक बनाने मे पूरी तरह सहयोग दिया है। सोशल मीडिया व्यक्ति, समाज, और देश के विकास मे महतवपूर्ण भूमिका भी निभाता है। विचारो के आदान-प्रदान से जनमत तैयार करने तथा आन्दोलन के माध्यम से एक स्वस्थ शासन तथा एक मजबूत लोकतंत्र की स्थापना करना सोशल मीडिया की एक महतवपूर्ण भूमिका भी देखी जा सकती है।

व्यक्ति जन्म से मृत्यु तक समाज की सामाजिक दुनिया मे रहता है। इस सामाजिक दुनिया में सोशल मीडिया का सभी आयु वर्ग के लोगो की जिंदगी में जबरदस्त हस्तक्षेप देखा जा सकता है। आज के समय में सभी सोशल मीडिया का भरपूर प्रयोग करके अपने विचारों, सूचनाओं इत्यादि को ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचाने का प्रयास करते हैं, लेकिन इन सूचनाओं, विचारों इत्यादि की सत्यता पर हर समय प्रश्नचिह्न लगा रहता है। जिससे समाज में भ्रम या अव्यवस्था फैलने का भय बना रहता है। जहाँ एक तरफ यह सोशल मीडिया जागरूकता फैलाती है वही दूसरी तरफ यह भ्रमित या गुमराह करने में भी पीछे नहीं रहती। लेकिन दुर्भाग्य इस बात का है कि आज के समय में प्रत्येक सामान्य व्यक्ति भी जिसे विषय की पूरी तरह समझ भी नहीं है, वह भी अपने आप को बुद्धिजीवी समझ अपने विचारों को समाज पर थोपने का प्रयास करता है। जिससे समाज तथा नासमझ या सामान्य नागरिकों का दिशाहीन होने का खतरा बना रहता है। सोशल मीडिया से शुद्ध या विशुद वातावरण बनने में देर नहीं लगती है। क्योंकि एक छोटा सा विचार या कोई घटना बहुत जल्दी से देश ही नहीं, विश्व के कोने-कोने तक सोशल मीडिया के माध्यम से फैल जाती है और एक बड़ा रूप लेने में समय नहीं लगाती है।

व्यक्ति और समाज

राजनीतिक विज्ञान के संस्थापक अरस्तु ने व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी माना है, बिना समाज के कोई व्यक्ति रह नहीं सकता है अगर कोई रह सकता है तो वह जानवर है या भगवान। यह सत्य है कि समाज व्यक्तियों से बनता है समाज को भी बनाने वाले व्यक्ति ही है, जो सामाजिक समझौते के माध्यम से समाज में रहते हैं और समाज को व्यवस्थित रूप से चलाते भी है। समाज में व्यक्तियों को कुछ मौलिक अधिकार दिए जाते हैं। जिससे व्यक्ति उन अधि कारों का प्रयोग करके अपना सर्वांगीण विकास करता है। वास्तव में यह अधिकार वह परिस्थितियां है जो व्यक्ति को अपने विकास के लिए अवसर प्रदान करता है। इन्ही अधिकारों का प्रयोग करके व्यक्ति प्रैस के माध्यम से अपने विचार और अभिव्यक्ति द्वारा जनमत तैयार करके एक स्वस्थ शासन व समाज के निर्माण में भूमिका निभाता है।

व्यक्ति और अधिकार

अंतराष्ट्रीय स्तर पर मनुष्य के अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए सयुंक्त राष्ट्र संघ के मानव अधिकार आयोग ने मनुष्य को मानव होने के नाते मानव अधिकार दिए जाने का समर्थन कर, अपने चार्टर में इसको कानूनी जामा पहना दिया है। 10 दिसंबर 1948 के 'मानव अधिकारों की वैश्विक घोषणा' के चार्टर के अनुच्छेद 1 और 2 के अनुसार "सभी मनुष्य समान अधिकार और सम्मान लेकर जन्म लेते हैं और उन्हें वैश्विक घोषणा में वर्णित सभी अधिकार और स्वतंत्रताए, जाति, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक या अन्य विचारधारा, राष्ट्रीय, सामाजिक मूल्य, सम्पति, जन या अन्य अतिथियों के किसी भेदभाव के बिना स्वयं मिल जाते हैं।" इस प्रकार व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के अंतराष्ट्रीय स्तर पर विशेष प्रमुखता दे गई है, जिससे वह बिना बंधन (केवल सकारात्मक स्वतंत्रता) व भय के अपना विकास कर सके।

भारत के संविधान में भी व्यक्ति अर्थात् नागरिक को अध्याय 3 में अनुच्छेद 12 से लेकर 35 तक व्यक्ति को मौलिक अधिकार दिए गए हैं। अनुच्छेद 19 से लेकर 22 तक व्यक्ति को 'स्वतंत्रता का मौलिक अधिकार' दिया गया है। इसमें अनुच्छेद 19 (1) में नागरिक को छः प्रकार की स्वतंत्रतायें दी गई

है। इन छः स्वतंत्रताओं के अलावा नागरिक किसी और प्रकार की स्वतंत्रता का उपभोग नहीं कर सकता है। स्पष्ट है मानव को राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय स्तर पर कानूनी रूप से सुरक्षित कर, अपने विकास के लिए सुरक्षित मार्ग प्रशस्त किया है।

अब व्यक्ति पर निर्भर करता है की इस आजादी का उपभोग वह कैसे, कब व किन परिस्थितियों में करता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि व्यक्ति को सकारात्मक रूप से 'बंधनों के अधीन स्वतंत्रता' दी गई है, जो व्यक्ति और राज्य दोनों के हित में है।

सोशल मीडिया

वास्तव में सूचनाओं और सीमाओं से मुक्त करने वाले हस्तक्षेप का नाम ही मीडिया है। मीडिया विभिन्न माध्यमों को साथ लाने, माध्यमों के बीच अंतर संबंध विकसित करने, परिवर्तित व समृद्ध करने और नई संभावनाओं से जोड़ने का माध्यम भी है। वर्तमान वैश्वीकरण के युग में सोशल मीडिया समय की मांग और आवश्यकता के रूप में उभर रही है जो समाज के प्रत्येक क्षेत्र में तीव्र गति से अपनी जगह बना रही है क्योंकि इसका उपभोग के लिए किए जाने वाले संसाधन निशुल्क और काफी सस्ते हैं जो समाज के प्रत्येक वर्ग तक आसानी से पहुंच जाते हैं जिसका प्रयोग व्यक्ति पैसा और समय दोनों बचाने के लिए करता है.

सोशल मीडिया और इसका प्रभाव

सोशल मीडिया के दोनों ही (सकरात्मक और नकारात्मक) प्रकार के प्रभाव को समाज के हर वर्ग आयु के लोगों पर देखा जा सकता है। यहां इसमें कोई शक या संदेह नहीं है कि सोशल मीडिया द्वारा नये सोशल ग्रुप निर्माण बड़ी तेजी से करना, विचारों का आदान – प्रदान, सहमती – असहमति, निर्णय तथा परिणाम इत्यादि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सोशल मीडिया पुराने से पुराने मित्रों (अगर वह सोशल मीडिया का उपयोग करता है) और खोये हुए लोगों को भी आसानी से ढूंढने में मददगार साबित होता है। सोशल मीडिया के माध्यम से लोग अपने व्यापार संपर्कों को आसानी से बढा सकते है। सोशल मीडिया के माध्यम से लोग अपने ब्रांड के प्रति लोगों को जागरूक करते है। उत्पादन की जानकारी देना और ग्राहक बनाना, ग्राहक को तुलनात्मक रूप से वस्तु को अपने हितो के अनुरूप पसंद- नापसंद इत्यादी को खोजने तथा को चुनने की समझ देना। सामाजिक नेटवर्किंग के माध्यम से लोग प्रबंधन, उत्पाद विकास, प्रतिष्ठा और समुदाय के निर्माण में इसका भरपूर उपयोग करते है और लाभ प्राप्त करते है, जो निश्चित रूप से व्यक्तिगत और व्यावसायिक दोनों के लिए सस्ता होता है।

सोशल मीडिया का जहां सकारात्मक प्रभाव देखने को मिलता हैं, वहीं इसमें ऐसे बहुत से नकारात्मक प्रभाव भी देख सकते है। सोशल मीडिया ने प्रत्येक वर्ग के लोगों को अपनी चपेट में लेकर इसके प्रति आदत डाल दी है अर्थात निरंतर इसके प्रयोग के कारण अपना बहुमूल्य समय और पैसा दोनों बर्बाद होने लगे हैं, जिससे वर्तमान और भविष्य दोनों ही पीढ़ियों को काफी नुकसान होना स्वाभाविक है। सोशल मीडिया के माध्यम से नए रिश्ते तो बन रहे हैं, लेकिन अपने रक्त सम्बन्धी रिश्तों से दुरी भी बन रही है। नये रिश्ते कहां तक टिकेंगे तथा इस रिश्तों में कितनी सच्चाई है यह कह पाना मुश्किल है क्योंकि यह रिश्ते झूठ व धोखेबाजी के आधार पर ज्यादा बनाये जाते रहे हैं। इससे समाज में एक-दुसरे पर अविश्वास बढ़ता है। इसके अलावा सोशल मीडिया के माध्यम से युवा वर्ग या धार्मिक कट्टरता वाले लोग इसका उपयोग ईसा मसीह, पैगंबर मोहम्मद तथा हिंदू देवी देवताओं से संबंधित अश्लील चित्र का सोशल मीडिया पर डालना, लोगों की धार्मिक आस्था को ठेस पहुचना तथा माहौल को खराब करने का प्रयास करने में लगे रहना है। इसके अलावा पोर्न साइटों, अश्लील पुस्तकों का बढ़ना, रेप, बलात्कार, सेक्स बाजार में बढोतरी, समाज में असुरक्षा का वातावरण, अपमानजनक लेख या टिप्पणियां तथा अपराधिक षड्यंत्र रचना, किसी के मौलिक लेख या सूत्र या सामग्री को बिगाड़ देना, धोखाधड़ी करके बैंक खाते से धन राशि निकाल लेना, क्रेडिट कार्ड का अवैध प्रयोग करना, इलेक्ट्रोनिक मेल, साइबर स्टोकिग, अश्लील/ आपतिजनक सामग्री के प्रसार दवारा हेकिंग या क्रेकिंग अथवा किसी अन्य प्रकार से प्रकाशन- प्रसारण इत्यादि सोशल मीडिया के दुष्परिणामों में देखे जा सकते है। सोशल मीडिया को एक शस्त्र के रूप मे प्रयोग वास्तविक विश्व अपराध को बढाने मे भी किया जाता है। जिसमे साइबर आतंकवाद, बौद्धिक संपदा अधिकारों के उल्लंघन/आईपीआर वायोलेशन्स, क्रेडिट कार्ड धोखाधड़ी, ईएफटी धोखाधड़ी, अश्लीलता आदि शामिल है। इससे व्यक्ति, समाज ओर देश सभी के लिए एक बहुत बड़ी समस्या तथा असुरक्षा का वातावरण बनता है जो सम्पूर्ण विश्व ओर मानव जाति के हित मे नहीं हैप

सोशल मीडिया और दण्डीय प्रावधन

अधिकारों की सुरक्षा और बढते अपराधो पर नियंत्रण लगाने के लिए 30 जनवरी, 1997 को संयुक्त राष्ट्र की जनरल एसेंबली में प्रस्ताव संख्या 51/162 द्वारा सूचना तकनीक की आदर्श नियमावली (जिसे यूनाइटेड नेशंस कमीशन ऑफ इंटरनेशनल ट्रेड लॉ के नाम से जाना जाता है) पेश किए जाने के बाद भारत में सूचना तकनीक कानून 9 जनवरी, 2000 को पेश करना अनिवार्य हो गया था। 17 अक्टूबर, 2000 को भारत में सूचना तकनीक कानून, 2000 अस्तित्व में आया। इसमें 13 अध्यायों में विभक्त कुल 94 धाराएं हैं। 27 अक्टूबर, 2009 को एक घोषणा द्वारा इसे संशोधित किया गया। आधुनिक कानून की शब्दावली में साइबर कानून का संबंध कंप्यूटर और इंटरनेट से है। साइबर आतंकवाद के मामलों में दंड विधान के लिए सूचना तकनीक कानून, 2000 में धारा 66-एफ को जगह दी गई है। यदि कोई कंप्यूटर में वायरस जैसी कोई ऐसी चीज डालता है या अनाधिकार या अधिकारों का अतिक्रमण करते हुए जानबूझ कर किसी कंप्यूटर से ऐसी सूचनाएं हासिल करने में कामयाब होता है, जो देश की सुरक्षा या अन्य देशों के साथ उसके संबंधों के नजरिए से संवेदनशील हैं या कोई भी गोपनीय सूचना इस इरादे के साथ हासिल करता है, जिससे भारत की सुरक्षा, एकता, अखंडता एवं संप्रभुता, अन्य देशों के साथ इसके संबंध, सार्वजनिक जीवन या नैतिकता पर बुरा असर पड़ता हो या ऐसा होने की आशंका हो, देश की अदालतों की अवमानना अथवा मानहानि होती हो या ऐसा होने की आशंका

हो, किसी अपराध को बढ़ावा मिलता हो या इसकी आशंका हो, किसी विदेशी राष्ट्र अथवा व्यक्तियों के समूह अथवा किसी अन्य को ऐसी सूचना से फायदा पहुंचता हो, तो उसे साइबर आतंकवाद का आरोपी माना जा सकता है.यदि व्यक्ति साइबर आतंकवाद फैलाता है या ऐसा करने की किसी साजिश में शामिल होता है तो उसे आजीवन कारावास की सजा सुनाई जा सकती है। आईटी अधिनियम 2000 साइबर अपराधों से निपटने के लिए तरीके प्रदान करता है।

सूचना तकनीक कानून 2000, के अंतर्गत दंडनीये प्रावधान की सुची इस प्रकार है ;-

- कंप्यूटर संसाधनों से छेड़छाड़ की कोशिश-धारा 65
- कंप्यूटर में संग्रहित डाटा के साथ छेड़छाड़ कर उसे हैक करने की कोशिश-धारा 66
- संवाद सेवाओं के माध्यम से प्रतिबंधित सूचनाएं भेजने के लिए दंड का प्रावधान-धारा 66 ए
- कंप्यूटर या अन्य किसी इलेक्ट्रॉनिक गैजेट से चोरी की गई सूचनाओं को गलत तरीके से हासिल करने के लिए दंड का प्रावधान-धारा 66 बी
- किसी की पहचान चोरी करने के लिए दंड का प्रावधान-धारा 66 सी
- अपनी पहचान छुपाकर कंप्यूटर की मदद से किसी के व्यक्तिगत डाटा तक पहुंच बनाने के लिए दंड का प्रावधान- धारा 66 डी
- किसी की निजता भंग करने के लिए दंड का प्रावधान-धारा 66 इ
- साइबर आतंकवाद के लिए दंड का प्रावधान-धारा 66 एफ
- आपत्तिजनक सूचनाओं के प्रकाशन से जुड़े प्रावधान-धारा 67
- इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से सेक्स या अश्लील सूचनाओं को प्रकाशित या प्रसारित करने के लिए दंड का प्रावधान-धारा 67 ए
- इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से ऐसी आपत्तिजनक सामग्री का प्रकाशन या प्रसारण, जिसमें बच्चों को अश्लील अवस्था में दिखाया गया हो-धारा 67 बी
- मध्यस्थों द्वारा सूचनाओं को बाधित करने या रोकने के लिए दंड का प्रावधान-धारा 67 सी
- सुरक्षित कंप्यूटर तक अनाधिकार पहुंच बनाने से संबंधित प्रावधान-धारा 70
- डाटा या आंकड़ों को गलत तरीके से पेश करना-धारा 71
- आपसी विश्वास और निजता को भंग करने से संबंधित प्रावधान-धारा 72 ए
- कॉन्ट्रैक्ट की शर्तों का उल्लंघन कर सूचनाओं को सार्वजनिक करने से संबंधित प्रावधान- धारा 72 ए
- फर्जी डिजिटल हस्ताक्षर का प्रकाशन-धारा 73

इंडियन पेनल कोड (आईपीसी) में साइबर अपराधों से संबंधित प्रावधान–

- ईमेल के माध्यम से धमकी भरे संदेश भेजना- आईपीसी की धारा 503
- आपराधिक षडयंत्र रचने- आईपीसी की धारा 120ब
- ईमेल के माध्यम से ऐसे संदेश भेजना, जिससे मानहानि होती हो- आईपीसी की धारा 499
- फर्जी इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड्स का इस्तेमाल-आईपीसी की धारा 463
- फर्जी वेबसाइट्स या साइबर फ्रॉड-आईपीसी की धारा 420
- युवा व्यक्ति को अश्लील वस्तुओं का विक्रय- आईपीसी की धारा 293
- चोरी-छुपे किसी के ईमेल पर नजर रखना- आईपीसी की धारा 463
- वेब जैकिंग- आईपीसी की धारा 383
- ईमेल का गलत इस्तेमाल- आईपीसी की धारा 500
- दवाओं को ऑनलाइन बेचना-एनडीपीएस एक्ट
- हथियारों की ऑनलाइन खरीद-बिक्री-आर्म्स एक्ट
- अश्लील पुस्तकों का विक्रय आदि–आईपीसी की धारा 292

इसमें कोई शक नहीं है कि न्यू मीडिया ने सम्पूर्ण विश्व को एक सूत्र मे बांधने का काम किया है, दूरियों को नजदीकियों मे परिवर्तित कर दिया है, विचार ओर अभिव्यक्ति के मानव अधिकार तथा मौलिक अधिकारों को व्यवहारीकता प्रदान की है, समय तथा पैसों की बचत की है, जानकारियों के एक खजाने के रूप मे साबित हुआ है जो व्यक्ति के आत्म विश्वास व आत्म विकास के लिए आवश्यक है, लेकिन जहा, सोशल मीडिया का दुरूपयोग हैकिंग, वायरस, साइबर आतंकवाद, बौद्धिक संपदा अधिकारों के उल्लंघन, क्रेडिट कार्ड धोखाधड़ी, ईएफटी धोखाधड़ी, अश्लीलता, सेक्स बाजार मे बढोतरी, देवी-देवताओं से संबंधित अश्लील चित्र और अपमानजनक लेख, समय की बर्बादी व् आदी होना, पोर्न साइटों का अत्यधिक बढना, गोपनीय सूचना को हासिल करना, आरम्भ होता है, वहा समाज और देश दोनों के लिये एक समस्या बन जाती है। जो सभी को भयभीत करती है और डराती है। इसीलिए सरकारों को सूचना तकनीक कानून 2000, बनाने के लिए मजबूर होना पड़ा।

राजधानी की कोर्ट ने 24 क्मबमउइमत 2011 फेसबुक, गूगल और माइक्रोसॉफ्ट समेत 21 सोशल नेटवर्किंग वेबसाइटों को आपत्तिजनक विषय वस्तु प्रदर्शित करने के लिए मुकदमे का सामना करने के लिए समन जारी किया है। अदालत ने उक्त कंपनियों को आइपीसी की धारा-120बी (आपराधिक षडयंत्र रचने), धारा 292 (अश्लील पुस्तकों का विक्रय आदि) और धारा 293 (युवा व्यक्ति को अश्लील वस्तुओं का विक्रय) के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए समन जारी किया है। जो यह स्पष्ट करता है की स्वं यह कम्पनिया अपने मुनाफे के लिए आपत्तिजनक विषय वस्तु प्रदर्शित करने व करवाने की पूरी जिम्मेदार है।

अंत में, यही कहा जा सकता है की सोशल मीडिया समाज को जोड़ने में सहायक बने, न की तोड़ने मे अर्थात विकास करे, विनाश नहीं। इसके लिए सभी नागरिको को स्वयं जागरूक होने की जरुरत है और सरकार को पैनी नजर रखने की। यही देश और सम्पूर्ण मानव जाति के हित मे होगा।

संदर्भ

1. Kumar, Keval J., 'Mass Communication in India', Jaico publishing House, Delhi, 2010.
2. Kiran. Thakur, 'Hand Book of Print Journalism', Makhanlal Chaturvadi National University of Journalis and Communication, Bhopal, 2014.
3. उपाध्याय, उमेश, 'मीडिया का बदलता चहेरा' साहित्य अमृत मीडिया विशेषांक-21, 2015.
4. सिहं, रतनेश्वर के., 'मीडिया लाइव', राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, जयपुर, 2014.
5. सयुंक्त राष्ट्र के सम्बन्ध में बुनियादी तथ्य, सयुंक्त राष्ट्र, 2004.
6. भारत का संविधान, भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय, 2005.
7. नटराजन, जे., 'भारतीय पत्रकारिता का इतिहास', प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2002.
8. अरोड़ा, हरीश, (संपा.), 'पत्रकारिता का बदलता स्वरूप और न्यू मीडिया', साहित्य संचय, दिल्ली, 2014
9. कुमार, मीनाक्षी, 'संचार,जनसंचार एवं जनमाध्यम', स्कोलर टेक प्रेस, दिल्ली, 2016.
10. कपूर, एस.के., मानव अधिकार, सेंट्रल ला एजेंसी, 2001.
11. सूचना तकनीक कानून, 2000.
12. इंडियन पेनल कोड (IPC), 1860.
13. बालेन्दु शर्मा दाधीच वेबसाइट।
14. www.nir.nic.in
15. www.ddindia.nic.in
16. www.prasarbharati.gov.in

असम के आदिवासी लोकगीत : एक परिचयात्मक अध्ययन

मिजानुर हुसैन मण्डल

तदर्थ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, दरंग कॉलेज, तेजपुर, असम

असम में लोकगीतों का प्रचलन प्राचीन काल से ही विद्यमान रही है। लोकगीत का संबंध सामान्य लोकजीवन से है। लोकगीतों की परंपरा उतना ही प्राचीन है जितने की मानव जाति। अत: लोकगीत अत्यंत प्राचीन एवं मानवियों संवेदनाओं के सहजतम उद्‌गार है। लोकगीत का रूप सामूहिक होता है, इसलिए लोकगीत की उत्पत्ति को किसी एक व्यक्ति से जोड़ा नहीं जा सकता है। लोक शब्द का सामान्य अर्थ है- जन, जनता, लोग, मनुष्य, और आम-जन आदि। बृहत हिन्दी कोश के अनुसार लोक का अर्थ-संसार, पृथ्वी, मानवजीवन, समूह, भूभाग, प्रांत आदि से होता है।1 हिन्दी साहित्य कोश भाग-1 में लोकगीतों के तीन अर्थ दिये हैं- (।) लोक में प्रचलित गीत (।।) लोक निर्मित गीत (।।।) लोक विषयक गीत 2। कोश के अनुसार लोकगीत गाँव या देहातो में गाए जाने वाले जनसाधारण के वे गीत है जो परंपरागत रूप से किसी जन-समाज में प्रचलित रहते हैं। 3 प्रसिद्ध लोक चिन्तक ग्रीम महोदय के अनुसार- लोकगीत आपने-आपमें बनते हैं-श। विसा`वदह बवउचवेमे पजेमसि'4 इसी प्रकार भारतीय चिन्तक आचार्य हजारी प्रसाद दिवेदी के अनुसार-''लोकगीत की एक-एक बहू का चित्रण पर रीतिकाल की सौ-सौ मुगधाएँ और खंडिताएं न्यौछावर की जा सकती है, क्योंकि ये निरलंकार होने पर भी प्राणमयी हैं और वे अलंकारों से विभूषित होने पर भी निष्प्राण हैं। ये अपने जीवन के लिए किसी शास्त्र विशेष की मुखापेक्षी नहीं हैं। ये अपने आपमें परिपूर्ण है।''5

सामान्यत: यह कहा जा सकता है कि लोकगीत किसी समुदाय द्वारा विकसित वह गीत है जो प्राचीन काल से विभिन्न उत्सवों, पर्व के अवसरों पर आनन्द की अभिव्यक्ति के लिए गयी जाती है। लोकगीत लिखित न होने के कारण इनके संकलन का कार्य अत्यन्त कष्ट साध्य एवं कठिन है। विभिन्न विद्वानों ने यद्यपि इन लोकगीतों के संकलन का महत्वपूर्ण प्रयास किया है, परन्तु अभी भी लोकगीतों का का बड़ा हिस्सा अलिखित या बिखरा पड़ा है। असम एक बहुभाषी प्रदेश है। यहाँ अनेक जनजाति एक साथ मिलजुलकर निवास करते हैं। असम के विभिन्न भागो में रहने वाले लोग अनेक बातों में अलग-अलग होते हुए सांस्कृतिक दृष्टि से एक ही है। आदिवासी चाय-जनगोष्ठी इसका उदाहरण है। चाय-जनगोष्ठी के लोगों को भले ही बाहर से लाया गया हो, लेकिन इनके खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, आचार-व्यवहार आदि के दृष्टि से एक ही है। इन लोगों का न कोई जाति है, न एक ही धर्म का है। इसलिए चाय खेत या उद्योग में काम करने वाले लोगों को चाय-जनगोष्ठी(आदिवासी) के नाम से नामाकरण किया है। आदिवासी चाय-जनगोष्ठी की भाषा असमिया से भिन्न और बंगला, उड़िया, भोजपुरी के करीब है। आदिवासी चाय-जनगोष्ठी के कुछ उपजाति भी है, जैसे चाउताल, असुर, उराव, काँध, कामार, किचान, खारिया, बराईक, नायक, पानिका, पुर्जा, भील, भुइयाँ, भूमिज, माझी, माली, महली, मिरधा, मुंडा, राजबर, लोहार, लोधा, हो, लिमबु, तामा, डुकपा आदि।

आदिवासी चाय-जनगोष्ठी में प्रचलित गीतो को 'बागानी' गीत भी कहते हैं। इन गीतों का वर्णन हम इस प्रकार देख सकते हैं-

1. संस्कार परक लोकगीत।
2. अनुष्ठान एवं उत्सव परक लोकगीत।
3. प्रेमपरक लोकगीत।
4. श्रमपरक लोकगीत आदि।

1. संस्कार परक लोकगीत :- 'संस्कार एक प्रकार गुण है जिसके कारण एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से सम्मान प्राप्त कर सकता है। संस्कार शब्द 'सम' उपसर्ग 'कृ' धातु और 'धञ' प्रत्यय के योग से बना है। जिसका अर्थ है जिसके होने से कोई भी यज्ञोता होती है।'6

संस्कार भारतीय सामाजिक जीवन की नींव है। संस्कार मनुष्य के शरीर और मन दोनों को पवित्र करवाता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक का सम्बन्ध संस्कार से है। संस्कार हमारे जीवन को उज्ज्वलता की ओर ले जाते हैं। जिसमें संस्कार नहीं उसको उस समाज से बहिष्कृत माना जाता है।

आदिवासी चाय-जनगोष्ठी के सामाजिक जीवन प्रारम्भ से संगीतमय रहा है। इस समाज में विभिन्न प्रकार के संस्कार परक गीत मिलते हैं। एक सोहर गीत में इसका उदाहरण मिलता है। पुत्र-जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को 'सोहर' कहते हैं। संस्कृत के 'शोभन' शब्द से इनका सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है।हिन्दी के तदभव रूप बनते है इसी कारण सोहर को 'शुभ' तथा सुहावना माना जाता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को 'सोहर' कहना सर्वथा समीचीन है। सभी स्त्री-पुरुषों में संतान की लालसा होती है। इसके लिए देवी-देवताओं की पुजा की जाती है। स्त्री-पुरुष दोनों संतान के लिए उपवास भी रखते हैं। एक आदिवासी चाय-जनगोष्ठी के गीतो में टुचू देवी की पूजा करके संतान प्राप्ति का वर्णन मिलता है।एक टुचू गीत में इसका उदाहरण द्रष्टव्य है-

तेल दिलाम शलिता दिलाम

स्वर्गे दिलाम बाती ग
सकल देवी सईन झा लेउवा
घरेर कुलवती ग
गाई आइल बछुर आइल

आइलरे भगवती
एके एके सईनझा लेउवा
घरेर कुलवती ग।7

इस प्रकार विवाह संस्कार भी भारतीय सामाजिक विकास की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस संस्कार के द्वारा स्त्री-पुरुष के यौवन सम्बन्ध को सामाजिक वैधता प्रदान की जाती है और उन्हें जीवन के भावी कर्तव्य और उत्तरदायित्व का बोध कराया जाता है। एक गीत में बारात का कन्या के घर आगमन और उन्हें आँगन मंर स्वीकार कर लेने का वर्णन मिलता है-

कि करग' कन्यार माँ घरे समाये
आंगनाई दश-बिश लोक
किया बाहराव बाछा कि आशा सईब ग'
आमार धनी हलेन परहात।8

2. अनुष्ठान एवं उत्सव परक लोकगीत :- परिवार समाज की महत्वपूर्ण इकाई है। परिवार व्यक्ति की प्रथम पाठशाला होती है। वही पर रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, आचार-व्यवहार आदि सीखता है। इसी से संस्कृति का निर्माण होता है। समाज के इन आचार-व्यवहार आदि को केंद्र में रखकर व्यक्तिगत और सामूहिक आनंद के लिए सभी देशो में कुछ अनुष्ठान एवं उत्सवों का पालन किया जाता है। ठीक वैसे ही आदिवासी चाय-जनगोष्ठी में भी कुछ अनुष्ठान एवं उत्सवों का पालन होता है। जिसको हम इस प्रकार देख सकते हैं-

ए. करम पूजा।

ए्. टुचू पूजा।

ए्ए्. गड़या पूजा।

ए्ट. मनसा पूजा आदि।

।. करम पूजा :- आदिवासी चाय-जनगोष्ठी के लिए यह एक महत्वपूर्ण उत्सव है। नाम से ही स्पष्ट है कि इसका सम्बन्ध कर्म से है। आदिवासी चाय-जनगोष्ठी का लोक-जीवन कष्टदायक होता है। स्त्री-पुरुष दोनों दिनभर चाय खेत में काम करते हैं। इन कष्ट को दूर करने के लिए यह उत्सव पालन किया जाता है। भाद्र महीने के शुक्ल एकादशी के दिन इस पूजा का अनुष्ठान आयोजन किया जाता है। करम उत्सव कृषि प्रधान होने के कारण कृषि जीवन से संबंधित गीत अधिक मिलते हैं। जिस दिन इस पूजा का अनुष्ठान होता है उस दिन गीत गाने का भी परंपरा है। अंग्रेज किस प्रकार आदिवासी चाय-जनगोष्ठी के लोगों को सजा देते थे। एक गीत में इसका उदाहरण मिलता है।

चारदार बोले काम-काम बाबू बोले धरेआन।
चहव बोले निबा पिठेर चाम।
हे निष्ठुर श्याम फाकी दिये आणली आसाम।9

अर्थात सरदार काम के लिए बार-बार बोलते है, साहब बोलते है उनको पकर कर लेके आओ। साहब बोलते है अगर काम नही किया तो तुम्हारे पीठ का चमरा निकाल दूंगा। हे निष्ठुर श्याम(अंग्रेज) तुम फाकी देकर क्यों असम में लाया।

ऽ. टुचू पुजा :- आदिवासी चाय-जनगोष्ठी में प्रचलित लोक कथाओं के अनुसार टुचू एक स्त्री थी। माघ महीने के मकर संक्रांति के दिन टुचू अपने पति के चीते पर देह त्याग दी थी।लोक विश्वासों के अनुसार टुचू की पूजा करने से बीमारी कम और पारिवारिक शांति बृद्धि होती है। इसलिए आदिवासी चाय-जनगोष्ठी के लोग इस दिन टुचू पुजा का अनुष्ठान पालन करते है। टुचू पूजा को 'पुष परब' या 'पौष परब' भी कहते हैं। टुचू पूजा के प्रारम्भिक दिन को 'टुचूर जागरण' और अंतिम दिन को 'टुचूर भाषान' कहते हैं। इस दिन गीत गाने का भी परंपरा है। एक टुचू गीत में टुचू की स्वागत करने का वर्णन मिलता है-

'टुचूक अनिते जाबो
चंदेन काठेर चौड़ले
जदी टुचू दया करे
राखब सनान मंदिरे।'10

घ. गड़या पूजा :- गड़या पूजा भी आदिवासी चाय-जनगोष्ठी का एक महत्वपूर्ण उत्सव है। इस पूजा को 'सांहराई परब' भी कहते हैं। असम का जातीय उत्सव 'बहाग बिहू' की तरह ही आदिवासी चाय-जनगोष्ठी के लोग गड़या पूजा का अनुष्ठान पालन करते हैं। 'बहाग बिहू' की तरहा ही गड़या पूजा में गाय को नहाके तेल, हल्दी, सिंदूर आदि लगाकर ग्वाल में बाबा भोलानाथ, बाघ देवता, धरम देवता, आदि के नाम से जानवर-मुर्गी आदि बलि देकर यह अनुष्ठान का पालन करता है। एक गीत में इसका वर्णन मिलता है-

कन शिंगे लेबे बरदा तेल सिन्दूर ह,
कन शिंगे झकबे चुमान ह,
दाहीन शिंगे लेबे बरदा तेल सिन्दूर ह,

बया शिंगे झाकबे चुमान ह,
सबू दिनेर बरदा मारली पिटलि,
आजत करिब सुछार,
गंगा गहाले बरदा जंगा जूरी बैठव,
कहब सुख दुख बात।11

।ट. मनसा पूजा :- मनसा पूजा श्रावण महीने में की जाती है। मनसा सर्पो की देवी है। साँप से बचने के लिए मनसा देवी की पूजा की जाती है। इस पूजा में फूल, दूध और केला मनसा देवी को चड़ाया जाता है और फिर दूध और केला को ऐसे स्थान पर रखा जाता है जहाँ पर साँप का निवास हो। इसके पीछे मान्यता है कि साँप जाकर उस दूध और केला को खाते है। इस दिन गीत गाने का भी परंपरा है। एक गीत में मनसा अपने भाई से लक्खीन्दर के लिए घर माँग रही है-

'एकटी सनार घर बनाई दे ग सदागर,
किछे राखिब लक्खीन्दर ग किछे राखिब लक्खीन्दर।'12

इसके अलावा सर्जाहि पूजा, ग्राम पूजा, फुछ पूर्णिमार पूजा, कड़ाल बागदेई पूजा, आदि उत्सवों का पालन भी होता है।

3. प्रेमपरक लोकगीत :- नाम से ही स्पष्ट है कि इसका सम्बन्ध प्रेम से है। अर्थात प्रेम से सम्बंधित गीत को प्रेमपरक गीत कहते हैं। चाय-जनगोष्ठी में प्रचलित प्रेमपरक गीत इस प्रकार है-।. झुमइर गीत ६. डमकइच गीत आदि।

।. झुमइर गीत :- झुमइर प्रेम का गीत है। 'झुमर' गीत को चाय बागानी(आदिवासी) अर्थात चाय खेत में या उद्योग में काम करने वाले लोग 'झुमइर' गीत कहते हैं। इसमें संयोग श्रृंगार लबालब भरा हुआ है। एक झुमइर गीत में नायिका के सौन्दर्य का वर्णन मिलता है। नायिका के सौंदर्य पूर्णिमा के साथ तुलना करते हुए कहते हैं-

बाहर आगलै चाइनो पठियालों,
बाहर कोन जुपि पोन,
चेनाइर मुखलै चाइनो पठियालों,
जेन पूर्णिमार जोन।13

पेट की भूख और मन की तृप्ति दोनो सृष्टि का बीज है। पेट का भूख मिटती है खाने से और मन को तृप्ति मिलती है प्रेम से। बास्तव में प्रेम कब कैसे और कौनसा रूप ले लेता है इसका कोई निद्रिष्ट सूत्र नहीं है। प्रेम नीति-नियम, आचार-व्यवहार, धर्म, सामाजिक बंधन आदि की सीमा का अतिक्रमण करता है। झूमाइर गीत में इसका उदाहरण मिलता है। एक गीत में नायिका को बार-बार नायक की याद आती है और कहते हैं-

"कि फुल फुलिल दीदी बुकेर उपरे,
जानिना शुनिना दीदी हिले घने-घने।"14

६. डमकइच गीत :- डमकइच भी प्रेम का गीत है। झुमइर गीत के तरह ही डमकइच गीत में भी प्रेम का अद्‌भुत चित्रण मिलता है। एक गीत में प्रेमी प्रेमिका को कहते हैं तुम्हारी तस्वीर देख-देख कर मुझे नशा लग गया है। ये कैसी रात है जो निन्द नहीं आती है। है ये कैसी निष्ठुर रात है जो नींद नहीं आते। गीत इस प्रकार है-

"तर फटो देखी देखी, मोके जे निचा लागे,
एतना कईमान राति नींद नहीं आवे,
हायरे एतना बेईमान राति नींद नहीं आवे।"15

4. श्रमपरक लोकगीत :- काम करते समय गाये जाने वाले गीतों को श्रम गीत कहते हैं। आदिवासी चाय-जनगोष्ठी के स्त्री-पुरुष दोनो का कार्यक्षेत्र पृथक-पृथक होते हुए भी कहीं-कहीं दोनों का सम्मिलित कार्यक्षेत्र भी पाया जाता है। ये कठिन श्रम का जीवन जीते हैं। कृषि-कार्य, गृह-कार्य, लकड़ी कटना आदि पुरुषों के गीतों का वर्ण विषय है। इन गीतों में करुण श्रृंगार एवं वीर के अलावा कहीं-कहीं हास्य-व्यंग का चित्र भी पाया जाता है। आदिवासी चाय-जनगोष्ठी के एक गीत में उसका जीवन दृष्टि दिखाई देते हैं। वे कहते हैं हमारा जीवन चाय-वृक्ष लगाने में और दुख से ही बीत गया लेकिन कभी सुख नहीं मिला। गीत इस प्रकार है-

"वन लगने जनम हमार,
चा बगानेर घरेरे,
दुखते जनम गेलो,
मिलिल न सुख रे।"16

चाय उद्योग का काम कष्टदायक होता है। इस उद्योग में श्रमिक को अपने माँ-पिता, पत्नी, घर-परिवार आदि सबकुछ छोरकड़ काम करना पड़ता है। इसलिए पत्नी अपने पति को चाय उद्योग में काम करने से माना करती है। एक गीत देखिए-

"कंपानिर चाकरी, नालागे लाहरी,

नालागे तलपर धन,
घरोते थाकिबा बनबारी करिबा,
परिबा रामायण गीत।"

निष्कर्ष के रूप में कहाँ जा सकता है कि किसी देश कि लोक-संस्कृति उस देश के लोक साहित्य में, वहाँ के लोकगीतों, लोककथाओं के अंतर्निहित होती है। संस्कृति का निर्माण विभिन्न तत्व जैसे संस्कार, खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, गीत-संगीत इत्यादि से होता है। मनुष्य इन संस्कृतियों के कारण ही अन्य जीवधारियों के समाज से भिन्न है। अत: इस संस्कृति को रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य बनता है। देश की राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के लिए लोकगीतों का अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है। आदिवासी चाय-जनगोष्ठी के गीतों के माध्यम से न केवल स्थानीय इतिहास का पता चलता है, बल्कि हमारे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनैतिक जीवन की झाँकी भी देखने को मिलती है।

संदर्भ सूची :-

1. कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुंदी लाल श्रीवास्तव, बृहत हिंदी कोश, पृष्ठ सं-996
2. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश, पृष्ठ सं-594
3. आचार्य रामचन्द्र वर्मा,प्रामाणिक हिन्दी कोश,पृष्ट सं-738
4. शांति जैन, लोकगीतों के संदर्भ और आयाम, पृष्ठ सं-2
5. वही पृष्ट-3
6. शांति जैन, लोकगीतों के संदर्भ और आयाम, पृष्ठ सं-12
7. कुमार बरुआ, प्रहलाद, असमिया लोकसाहित्य, पृष्ट-364
8. डिम्बेश्वर तासा, चाह जनगुष्टिर समाज-संस्कृति, पृष्ट-22
9. डिम्बेश्वर तासा, चाह जनगुष्टिर समाज-संस्कृति, पृष्ट-34
10. डिम्बेश्वर तासा, चाह जनगुष्टिर समाज-संस्कृति, पृष्ट-14
11. डिम्बेश्वर तासा, चाह जनगुष्टिर समाज-संस्कृति, पृष्ट-18
12. मलिना देवी राभा, असमर जनजाति आरू संस्कृति-361
13. कुमार बरुआ, प्रहलाद, असमिया लोकसाहित्य, पृष्ट-367
14. डिम्बेश्वर तासा, चाह जनगुष्टिर समाज-संस्कृति, पृष्ट-59
15. कुमार बरुआ, प्रहलाद, असमिया लोकसाहित्य, पृष्ट-368
16. डिम्बेश्वर, तासा, चाह जनगुष्टिर समाज-संस्कृति, पृष्ट-60

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

असमिया ग्रंथ

1. देवजित बरा, उत्तर-पूर्वाञ्चलर जनगोष्टिय लोक-संस्कृति, एम,आर पब्लिकेशन, पनबाजार,गुवाहाटी वर्ष-2014
2. मलिना देवी राभा, असमर जनजाति आरू संस्कृति, असम साहित्य सभा, चन्द्रकान्त संदिके भवन, वर्ष-2011
3. नवीन चन्द्र शर्मा, असमर कृति-कृष्टि-संस्कृति, अशोक पाब्लिकेशन पनबाजार, गुवाहाटी, वर्ष-2012
4. डिम्बेश्वर तासा, चाह जनगुष्टिर समाज-संस्कृति,सदानन्दा गगई सचिव असम प्रकाशन परिषद गुवाहाटी, वर्ष-2012
5. प्रहलाद कुमार बरुआ, असमिया लोकसाहित्यअसम साहित्य सभा षष्टम अधिवेशन, डिब्रुगड़, वर्ष-2001
6. होमेन बरगोहाई, असमर चाह उद्योगर अकथित कहानी,भर्ती बुक ष्टल गोलाघाट,वर्ष-1980
7. प्रसनजित चौधरी, असमर चाह-बनुवा आरू उनईश शतीकर बिद्वत समाज, नरेंद्र चन्द्र दत्त,गुवाहाटी, वर्षा-1989

हिन्दी ग्रंथ

8. शांति जैन, लोकगीतों के संदर्भ और आयाम, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी,वर्ष-1999
9. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश भाग एक, ज्ञानमंडल प्रकाशन, वाराणसी, वर्ष-2011
10. कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुंदी लाल श्रीवास्तव, बृहत हिंदी कोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड वाराणसी,वर्ष-2009
11. आचार्य रामचन्द्र वर्मा,प्रामाणिक हिन्दी कोश, लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद,वर्ष-1996

परम्परागत वैवाहिक जीवन की त्रासदी और प्रेम का द्वन्द्व (सुभद्राकुमारी चौहान की कहानियों के विशेष सन्दर्भ में)

आरती यादव

(पीच.-डी.), जवाहरलाल नेहरु यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली

बीसवीं सदी के तीसरे-चौथे दशक में सुभद्राकुमारी चौहान, महादेवी वर्मा, सुमित्रकुमारी सिन्हा, शिवरानी देवी इत्यादि लेखिकाओं ने परिवार के अन्दर स्त्री की वास्तविक स्थिति क्या है, इसे अपनी रचनाओं के माध्यम से चित्रि किया है। ऐसा माना जाता है कि परिवार स्त्री के लिए सबसे सुरक्षित जगह है, लेकिन इस धारणा के विपरीत सुभद्रा जी परिवार के भीतर स्त्रियों को कितनी दयनीय और विवश जिन्दगी जीनी पड़ती है, इस सच्चाई से अवगत कराती हैं। परिवार ही वह जगह है जहाँ स्त्री के व्यक्तित्व विकास को अवरु) कर दिया जाता है। उसकी मूलभूत मानवीय जरूरतों पर भी पाबंदी लगा दी जाती है। सुभद्राकुमारी चौहान परिवार और विवाह को तोड़ने या जोड़ने की बात नहीं करती बल्कि अन्याय और स्त्री की अधीनता पर आधारित इस विवाह और परिवार व्यवस्था के प्रति सही नज़रिया विकसित करने का प्रयास करती हैं। इसके अन्दर ही वह एक लोकतांत्रिक परिवार की मांग करती हैं, जिसमें स्त्री को भी अपना हक, अपनी इच्छा परिभाषित करने का मौका मिले। जिस घर में एक स्त्री की जगह नौकर से बढ़कर नहीं है, उस घर में उसे सम्मानपूर्वक रहने का हक मिले। सुभद्रा जी परम्परागत विवाह की असफलता पर सवाल उठाती हैं। वो ऐसे विवाह की हिमायती है, जहाँ विवाह लड़के-लड़की के अनुराग पर आधारित हो। उदाहरण के रूप में इनकी***'उन्मादिनी'*** कहानी को लिया जा सकता है। इसके अलावा **'प्रो. मित्रा', 'दो सखिया', 'मंगला'** इत्यादि कहानियाँ इसी विवाह की प्रतिष्ठा करती हैं।

20वीं शताब्दी में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलता है। शिक्षा के जरिये ही वह अपने व्यक्तित्व विकास को नयी दिशा दे सकती थीं। सुध ार-आन्दोलन और स्त्री-जागरुकता से प्रभावित होकर बहुत से पुरुषों ने अपने घरों की लड़कियों को शिक्षित करने का प्रयास किया। शिक्षित होकर स्त्रियों ने स्वयं को सामाजिक और साहित्यिक मंच जोड़ने का प्रयास किया, लेकिन एक सामान्य स्त्री के लिए इन गतिविधियों से जुड़ना इतना आसान नहीं होता था। अभी भी उन्हें घरेलू भूमिकाओं में देखना प्रतिष्ठा और इज्जत का सवाल माना जा रहा था। पुरुष अभी भी रुढ़िवादी मानसिकता से बाहर नहीं निकल पाये थे। इस दौर में साहित्य के मंच पर दर्जनों 'लेखिकाओं ने दस्तक दी। स्वयं को साहित्यिक और राजनीतिक गतिविधियों से जोड़े रखा और परिवार व समाज में स्त्री की स्थिति को लेकर सवाल उठाया।

वर्षों से पारिवारिक दायरे में अपने आप को सीमित कर लेने के बाद जब खुली हवा में उसने सांस लेना चाहा तो उन्हें किस तरह की परेशानियों और परीक्षाओं से होकर गुजरना पड़ा? पुरुषों ने भी चाहा कि परिवार और भारतीय समाज के पिछड़ेपन को दूर करना है तो स्त्रियों को शिक्षित करना जरूरी है। पुरुषों ने स्त्रियों को शिक्षित भी किया लेकिन पुरुष जिस वर्चस्व और उनके मानसिक पटल पर जिस तरह से धार्मिक रुढ़ियों और स्त्रियों के प्रति परम्परागत सोच ने अपनी जगह बना रखा है, क्या स्त्रियों को घर और परिवार से बाहर पहचान बनाने, माँ और पत्नी के घोषित रिश्ते के बाहर एक साहित्यकार बनने को आसानी से स्वीकार कर पा रहे थे? स्त्रियों पर वर्चस्व बनाये रखने के लिए जिन मूल्यों और मान्याताओं, रुढ़ियों और मिथकों का ताना-बाना बुना गया था, उस ताने-बाने को तोड़कर पुरुष-स्त्रियों की प्रतिभा को अपनाने या मानने के लिए खुद को तैयार पा रहा था? कहने को तो अब स्त्रियाँ भी पढ-लिख रही हैं, लेकिन क्या उनकी प्रतिभा को सही दिशा और दशा मिल रही थी? ये कुछ ऐसे सवाल थे जिसे सुभद्रा जी ने अपनी कहानियों में उठाया है। स्त्रियों के सुधार और उदार का जो दावा किया जा रहा था, उस सुधार को सही दिशा में क्रियान्वित भी किया जा रहा था या नहीं। क्या यह सच्चाई नहीं है कि अन्ततः विवश और लाचार होकर, संस्कारों व आदर्शों की जकड़बंदी के कारण स्त्रियों को परिवार के उसी दायरे में जाना पड़ रहा था जिस दायरे के खिलाफ वो संघर्ष कर रही थी। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की पवित्रा तथा सच्चरित्रा का ताना-बाना कुछ इस तरह से बुना गया है कि उसका चरित्र कभी भी संदेह के घेरे से बाहर नहीं होता।

अगर महिलाएँ बाहर निकल कर रही थी तो यह स्वाभाविक है कि वह अन्य लोगों के सम्पर्क में जरूर आएँगी। इस दौर में राजनीतिक आंदोलन सामाजिक-साहित्यिक मंच आमतौर पर स्त्रियों के बाहर निकलने का मुख्य मंच था। स्त्रियाँ साहित्यिक लेखन के माध्यम से सार्वजनिक क्षेत्र में आने लगी थीं। लेकिन ***'आहुति'*** और ***'भग्नावशेष'*** की कुन्तला और नायिका के साथ ऐसा नहीं होता। कुन्तला और भग्नावशेष की नायिका अपने को स्थापित करती इससे पहले ही उनके व्यक्तित्व को कुचल दिया जाता है। पुरुषों को अब डर यह था कि जब स्त्रियाँ पुरुषों के सम्पर्क में आएँगी तो उनकी वर्षों की पूंजी पवित्रा जिसकी संरक्षण की जिम्मेदारी उनकी स्त्रियों पर हैं,खतरे में पड़ सकता है। क्योंकि हमारे व्याकरणिक ढाँचे में स्त्री-पुरुष की मित्रा, उसके साथ बातचीत करने, साथ-साथ साहित्यिक चर्चा करने जैसे कोई मूल्य या मान्याताएँ तो हैं ही नहीं।

जब स्त्री परिवार के बाहर सार्वजनिक क्षेत्र में निकलेगी तो यह स्वाभाविक है कि घर में पुरुष जिस आराम और स्वार्थ का आदी हो चुका है, उस वर्चस्व में कमी आएगी। स्त्री को घर की चारदीवारी में बन्द करके पुरुषों ने जो सम्मान और सत्ता अर्जित की है, उसे इतनी आसानी से उनके लिए नजरअन्दाज करना आसान नहीं था। स्त्री की खुद की इच्छाओं, आकांक्षाओं उसके देह और मन पर पितसत्ता का जो बर्चस्व है, क्या उसे अपने हाथ से जाने-देने के लिए खुद को तैयार कर पा रहे थे? सुभद्रा जी पुरुषों के इसी वर्चस्व और उनके संस्कारों को अपनी कहानियों में पेश करती हैं। यह संस्कार जहाँ 20वीं सदी के पुरुषों की मानसिकता का एक महत्त्वपूर्ण पहलू था, वहीं सुधार आन्दोलन के बीच आये सै)ान्तिक और व्यवहारिक दूरियों को भी व्यक्त करता है।

इसी मानसिकता और गलत सै)ान्तिकी की वजह से स्त्रियों को पुनः किस तरह से विवश और लाचार होकर उसी ढाँचे में लौटना पड़ता है, इसकी स्पष्ट उदाहरण *'आहुति'* कहानी की नायिका कुन्तला है। कुन्तला एक उच्चवर्गीय ब्राह्मण परिवार की लड़की है। *''वह पढ़ी-लिखी, गृहकार्य कुशल और सुन्दर है, पर धानाभाव के कारण अभी तक कुमारी है।''*[1] राधोश्याम अपनी पहली पत्नी मनोरमा की मृत्यु के बाद विवाह न करने की प्रतिज्ञा करते हैं। एक दिन *''कुन्तला को देखते ही राधोश्याम जी की सोयी हुई स्मृति जाग सी उठी। अतः एक बार तिवारी जी पर उपकार करने की सद्भावना से राधोश्यामजी का हृदय आतुर हो उठा.''*[2] तथा दूसरा कि बच्चे की देखभाल करने वाला अब कोई नहीं है, राधोश्याम जी कुन्तला से विवाह करने के लिए तैयार हो जाते है। राधोश्याम जी उम्र पैंतीस-छत्तीस साल का विवाह कुन्तला के साथ हो जाता है। सुभद्रा जी आगे लिखती हैं कि- *''राधोश्याम कुन्तला के असाधारण रूप और यौवन ने तो राधोश्याम जी की ढलती अवस्था भी उन्हें आवश्यकता से अधिक असावधान बना दिया था। राधोश्याम के इस अनाचार से कुन्तल को जो मानसिक वेदना होती, सो तो थी ही किन्तु इसका प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर भी पड़े बिना न रहा।''*[3] कुन्तला इस समय राधोश्याम जी के लिए यौन वस्तु के अलावा ज्यादा कुछ नहीं थी। *''कुन्तला अपने जीवन से कुछ बेजार-सी हो रही थी। किन्तु वह राधोश्याम को किस प्रकार रोक सकती थी? क्योंकि वह उनकी विवाहित पत्नी ठहरी। सात भाँवरे फेरे लेने के बाद राधेश्याम को तो उसके शरीर को पूरी मोनॉपली-सी मिल चुकी थी न!''*[4]

कुछ दिन बाद कुन्तला स्त्री समाज नाम की संस्था के सम्पर्क में आ जाती है। कुन्तला सोचती है कि क्यों न मैं भी कुछ लिखूँ। वह *'भारत की वर्तमान सामाजिक अवस्था में स्त्रियों का स्थान'* विषय पर एक लेख लिखती हैं। इसी दौरान राधोश्याम जी अपने एक समाजसेवी और साहित्य प्रेमी मित्र अखिलेश्वर से कुन्तला का परिचय करवाते हैं ताकि कुन्तला का लिखा हुआ लेख, कविता इत्यादि की भाषा वगैरह ठीक कर दिया करेंगे। अखिलेश्वर कुन्तला की कफी मदद भी करते हैं। साहित्यिक रुचि को देखकर वो कुन्तला को प्रोत्साहित करते हैं तथा उसे साहित्यकारों की किताबें पढ़ने को देते हैं। वे दोनों साहित्य पर घंटों बातें भी करते। इस प्रकार *''कुन्तला को अब एक ऐसा साथी मिला था, जिसकी आवश्यकता वह बहुत दिनों से अनुभव कर रही थी, जो उसे घरेलू जीवन के अतिरिक्त और भी बहुत-सी उपयोगी बातें बता सकता था, जो उसे अच्छे से अच्छे लेखकों और कवियों की कृतियों का रसास्वादन करा सके एवं साहित्यिक जगत की सैर करा सके। कुन्तला अखिलेश्वर का साथ पाकर बहुत सन्तुष्ट थी। अब उसे अपना जीवन उतना कष्टमय और नीरस न मालुम होता था।''*[5] लेकिन ये सब बहुत दिनों तक नहीं चल सका क्योंकि राधोश्याम को कुन्तला के पास अखिलेश्वर का बैठना अखरने लगा। *''कभी-कभी सोचते, शायद कुन्तला के सुन्दर रूप पर ही रीझकर अखिलेश्वर उसके साथ इतना समय व्यतीत करते है।''*[6] कुन्तला जब कविताएँ लिखती तो राधोश्याम जी को ऐसा मालुम होता कि *''कुन्तला ने अखिलेश्वर के विरह में ही विकल होकर यह कविताएँ लिखी हैं। या कि कुन्तला के सुन्दर रूप पर ही रीझकर अखिलेश्वर उसके साथ इतना समय व्यतीत करते हैं।''*[7] अब राधेश्याम जी को दोनों के सच्चरित्रता पर शंका होने लगती है। और अगर स्त्री सुन्दर हुई तो यह संदेह और भी गहरा हो जाता है। अखिलेश्वर के बीमारी का पता लगने पर कुन्तला उनसे मिलने चली जाती है लेकिन कुन्तला जब तक अखिलेश्वर से कुछ पूछ पाती इससे पहले ही राधोश्याम जी वहाँ पहुँच जाते हैं और कुन्तला को वहाँ से आना पड़ता है। इसी में वे अपने मित्र अखिलेश्वर का हाल-चाल भी नहीं पूछते। बिना बताये कुन्तला का अखिलेश्वर के घर चले जाना राधोश्याम जी को बहुत असहनीय जान पड़ता है। कुन्तला घर जाकर देखती हैं कि -*''उसके लेख, कविताएँ, कापियाँ, पेन्सिलें और अखिलेश्वर द्वारा उपहार में दी हुई फाउण्टेनपेन, सब समेटकर किसी ने आग लगा दी है। उसी आग में अखिलेश्वर का वह प्यारा चित्र जो कुछ ही क्षण पहले ड्राइंग रुम की शोभा बढ़ा रहा था, धूा-धूा करके जल रहा है और ऊपर उठती हुई लपटें मानों कह रही हैं कुन्तला यह तुम्हारे साहित्यिक जीवन की चिता है।''*[8] कुन्तला की साहित्य के प्रति अभिरुचि, उसकी विलक्षण कुशाग्र बुद्धि एवं लेखन-शैली की असाधारण प्रतिभा विकसित होने से पहले ही, स्त्री पर उसके पति के एकाधिकार व स्त्री देह की पवित्रता की भावना के कारण अवरु) हो जाती है।

'भग्नावशेष' कहानी में भी सुभद्रा जी ने इसी समस्या को उठाया है। कहानी की नायिका को कुन्तला की ही तरह साहित्य में विशेष रुचि है। वह कवि इत्यादि सम्मेलनों में कविता-पाठ करने भी जाती है। कथावाचक के शब्दों में -*''उनकी कविता के अक्षर-अक्षर में इतनी वेदना भरी थी कि श्रोतागण मंत्र-गुधा से होकर उस कविता को सुन रहे थे। वाह-वाह और खेब-खूब की तो बात ही क्या, लोगों ने जैसे साँस लेना तक बन्द कर दिया था।''*[9] कथावाचक नायिका के साथ साहित्यिक विषयों पर कफी देर तक विचार-विमर्श भी करता है। वह उनकी असाधारण प्रतिभा पर चकित था। इस प्रकार कहानी की यह स्त्री-पात्र असाधारण प्रतिभा की धानी और भविष्य में साहित्य के क्षेत्र में एक प्रतिष्ठित लेखिका बनने की प्रक्रिया में है, लेकिन ऐसा होता नहीं है।

कई दिनों से उनकी कविता आना बन्द हो जाती है। कथावाचक जब उनके बारे में पता लगाता है तो उसे मालुम होता है कि कई महीने हुए उनके पिता का देहान्त हो गया है। कथावाचक जब एक दिन ट्रेन से सफर कर रहा था तो उसने देखा कि *''थर्ड-क्लास के एक डिब्बे से एक स्त्री उतरी। उसका चेहरा सुन्दर, पर मुरझाया हुआ था आँखे बडी-बड़ी किन्तु दृष्टि बड़ी ही कतार थी। कपड़े साधारण और कुछ मैले से थे। गोद में एक साल-भर का बच्चा था, आस-पास और भी दो-तीन बच्चे थे। मैं झपटकर उनके पास गया। मैंने कहा आपने कविता लिखना क्यों छोड़ दिया? उन्होने कहां- लिखने-पढ़ने की बात अब आप मुझसे कुछ न पूछें।*[10] अभी कथावाचक नायिका से बात भी नहीं कर पाया था, *''तब तक एक अधोड़ पुरुष आये और आते ही शायद, उनके पास का मेरा खड़ा रहना उन सज्जन को न सुहाया। इसलिए उन्हें बहुत बुरी तरह से झिड़कर बोले- यहाँ खड़ी-खड़ी, बातें कर रही हो, कुछ ख्याल भी है?''*[11] नायिका के चले जाने के बाद कथावाचक सोचता है कि *''ये वही है या उनका भग्नावशेष!''*[12]

स्पष्ट है कि सुभद्रा जी इस कहानी में एक ऐसी लड़की की दुःखद त्रासदी का मार्मिक वर्णन करती है जो एक लेखिका थी या जिसे एक सुन्दर जिन्दगी जीने का पूरा हक है, लेकिन वो इस हक से वंचित है। आज वह सिर्फ एक अधोड़ पुरुष की पत्नी, चार-पाँच बच्चों की माँ है। वह पढ़ने-लिखने में कफी

होशियार थी लेकिन विवाह के बाद उसकी दु:खद परिणति होती है। वैसे तो एक लड़की को बचपन से ही एक विवश और लाचार औरत बनाने की प्रक्रिया शुरू होती है जिसे वह सुरक्षा कवच की तरह ओढ़े रहती है, लेकिन वैवाहिक जीवन में प्रवेश उसकी लाचारगी और बेचारगी का सर्टिफिकेट होता है। ध्यातव्य है कि सुभद्रा जी की साहित्यिक और राजनीतिक भागीदारी उनके विवाह के बाद शुरू होता है और उत्तरोत्तर उनके व्यक्तित्व का विकास भी होता है, पर सुभद्रा जी इस कहानी में एक ऐसी स्त्री की कहानी कहती हैं जिसका साहित्यिक जीवन ही नहीं, स्वयं की जिन्दगी भी थम गयी है। सुभद्रा जी परिवार और विवाह संस्था के भीतर स्त्री की दु:खद त्रासदी को हृदय से महसूस कर रही थीं, एक साहित्यकार होने के नाते भी और एक स्त्री होने नाते भी। ***'भग्नावशेष'*** की नायिका की सिर्फ प्रतिभा ही नहीं दबा दी जाती उससे एक सामान्य जिन्दगी जीने का हक भी छिन लिया जाता है। सुभद्रा जी बड़ी सूक्ष्मता से पुरुष-मानस में गहरी बैठी रुढ़िगत संस्कारों को निकालने में सिद्धहस्त हैं। देखा जाए तो सुभद्रा जी उच्च वर्गीय ब्राह्मणवादी मूल्यों तले दबी स्त्री की दयनीयता को दिखाती हैं जिसके शोषणकर्ता पढ़ा-लिखा पुरुष है

भारतीय समाज में पारंपरिक विवाह की प्रचलित अवधारणा के कारण स्त्रियों को तमाम तरह के शोषण का शिकार होना पड़ता है। उसे न किसी के साथ प्रेम करने का अधिकार है और ना ही अपनी इच्छानुसार किसी पुरुष से मित्रता करने का अधिकार। इस स्त्री-विरोधी मान्यता के पीछे स्त्रियों के देह और मन पर एकाधिकार की वैचारिक अवधारणा काम करता है। स्त्री को अधीनता की स्थिति में बनाये रखने के लिए उसे सचरित्र और पवित्र होना अनिवार्य माना गया है। अगर कोई स्त्री चारित्रिक दृष्टि से पवित्र एवं पतिव्रता है तो सामाजिक रूप से उसे आदर और सम्मान प्राप्त है। यह आदर और सम्मान भले ही स्त्री की परतन्त्रता का ही दूसरा रूप क्यों न हो 20वीं शताब्दी की लेखिकाओं ने इन कठोर मूल्यों पर प्रहार करना शुरू किया। इनकी रचनाओं में यह विचार व्यक्त हुआ है कि कोई भी स्त्री किसी भी पुरुष से, अगर वह उसके अनुरूप है तो मित्र बना सकती हैं। पारम्परिक विवाह की वजह से पति-पत्नी के बीच सहज सहचार्य की भावना का विकास नहीं हो पाता अत: उसके पसन्द नापसन्द की अहमियत देनी चाहिए।

'सुभद्रा कुमारी चौहान' की कहानियों में इन्हीं रुढ़िगत मूल्यों पर चोट किया गया है। सुभद्रा जी अपनी कहानियों में स्त्री-पुरुष के बीच परम्परागत विचारों और सम्बन्धों के विरुद्ध एक नये सम्बन्धों की व्याख्या करती हैं। वह सम्बन्ध है- समानता और सहजता पर आधारित मित्रता का संबंधा। सुभद्रा कुमारी चौहान स्त्री-पुरुष के बीच मित्रवत् व्यवहार की पैरवी करने के साथ ही अनुराग पर आधारित विवाह सम्बन्धों की भी मांग करती हैं।

इस दृष्टि से *'मझली रानी'* सुभद्रा जी का एक महत्त्वपूर्ण कहानी है। यह कहानी अपने समय और समाज की आधुनिक और प्रगतिशील कहानी है। जब कभी स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की नयी व्याख्या गढ़ी जायेगी, इस कहानी की प्रासंगिकता बनी रहेगी। कहानी की शुरुआत में ही 'मंझली रानी' की नायिका 'तारा' पूरी वर्गगत संरचना और स्त्री विरोधी नैतिकता पर सवाल खड़ी करते हुए कहती है कि*''वे मेरे कौन थे? मैं क्या बताऊँ? वैसे देखा जाये तो वे मेरे कोई भी न होते थे। होते भी तो कैसे? मैं ब्राह्मण, वे क्षत्रिय मैं स्त्री, वे पुरुष फिर न तो रिश्तेदार हो सकते थे और न मित्र। आह् यह क्या कह डाला मैंने! मित्र? भला किसी स्त्री का कोई पुरुष भी मित्र हो सकता है? और यदि हो भी तो क्या समाज इसे बर्दाश्त करेगा? यहाँ तो किसी पुरुष का किसी स्त्री से मिलना-जुलना या किसी प्रकार का व्यवहार रखती है, प्रेम से बातचीत करती है तो वह स्त्री भ्रष्टा है, चरित्रहीन है, नहीं तो पर-पुरुष से मिलने-जुलने का और मतलब ही क्या हो सकता है?''* [13]

'मझली रानी' की नायिका *'तारा'* एक साधारण उच्च वर्गीय हिन्दू परिवार की लड़की है। तारा का विवाह एक ताल्लुकेदार राजाराममोहन के मंझले बेटे मनमोहन के साथ होता है। विवाह पूर्व तारा ने जो स्वर्णिम स्वप्न सजा रखे थे, ससुराल जाते ही उसके स्वर्णिम स्वप्नों का महल बिखर जाता है। ससुराल में पांच दिन रहने के बाद ही तारा को अपनी वास्तविक स्थिति का पता चलता है- ''उसने रानीपने का जो सुनहला सपना देखा था, वह दूर हो चुका था।'' [14] तारा के लिए ससुराल अब किसी कैदखाने से कम नहीं था। तारा अपने देवर के ट्यूशन पढ़ाने वाले मास्टर जी के साथ कुछ किताबों के सिलसिले में बातचीत कर लिया करती थी। मास्टर जी भी उसे किताबें दे दिया करते थे। तारा को किताबें पढ़ने और हारमोनियम बजाने का भी शौक था लेकिन कुलीन घरों के लिए तो हारमोनियम बजाना और गाना गाना तो रेडियों का काम है। तारा को हारमोनियम बजाना भी बन्द करना पड़ता है। तारा उच्च घरों की इस विडम्बना पर सोचती हैं कि *''शराब पीकर रंडियों के बांह में बांह डालकर टहलने में नाक नहीं कटती। गरीबों पर मनमाने जुल्म करने पर नाक नहीं कटती। नाक कटती है मेरे गाने से''।*[15]

एक दिन जब मास्टर जी तारा को 'साकेत' पढ़कर सुना रहे थे, तभी अचानक तारा की जेठानी ने दरवाजे बन्द कर दिया। घर के सभी सदस्यों की उपस्थिति में उसने दरवाजे खोले और दोनों पर अवैधा सम्बन्ध का आरोप लगाया। मास्टर जी ने सफाई देनी चाही कि मैं और मँझली रानी दोनों ही पवित्र और निर्दोष हैं, लेकिन दोनों की सफाई सुनने से इंकार कर दिया गया। इस तरह तारा पर चारित्रिक भ्रष्टता का आरोप लगाकर घर से बाहर निकाल दिया गया। तारा इसी स्थिति में अपने घर जाती है लेकिन तारा के पिता यह कहकर उसे रखने से इंकार कर देते हैं कि *''जब यह भ्रष्ट हो चुकी है तो इसे यहाँ क्यों लाये? रास्ते में कोई खाईं-खन्दक न मिला, जहाँ ढकेल देते? इसे मैं अपने घर रखूँगा?''* [16] तारा अपने पिता से बहुत विनती करती हैं लेकिन उसके पिता किसी भी तरह रखने के लिए तैयार नहीं हुए। इसके बाद तारा ने सोचा कि क्यों न मैं स्वयंसेविका बन जाऊँ और देश-सेवा में जीवन बिता दूँ लेकिन तारा के पास किसी कांग्रेस-कमेटी का प्रमाण पत्र नहीं था अत: उसे स्वयं-सेविका बनने से इंकार कर दिया जाता है। तारा एक भिखारिणी के साथ रहने लगती है, लेकिन दुर्भाग्य से एक दुर्घटना में भिखारिणी की मौत हो जाती है और तारा खुद को अस्पताल में पाती है, जहाँ पर मास्टर बाबू से उसकी मुलाकात होती है। तारा अब मास्टर बाबू के साथ उनके बंगले में रहने लगी लेकिन वो आज भी यह सोचती है कि *''मैं अभी तक नहीं जान सकी कि वे मेरे कौन हैं? वे मुझ पर माता की तरह और पिता की तरह प्यार करते हैं, भाई की तरह सहायता और मित्र की तरह नेक सलाह देते हैं, पति की तरह रक्षा और पुत्र की तरह आदर करते हैं। कुछ न होते हुए भी वे मेरे सब कुछ हैं और सब कुछ होते हुए भी वे मेरे कुछ नहीं है।''* [17]

इस तरह तारा को स्त्री विरोधी नैतिकता और आदर्शों के कारण ससुराल से ही नहीं, मायके से भी बहिष्कृत किया जाता है। तारा यह समझ चुकी है कि रुढ़िगत सामाजिक मान्यताओं को मानने उसका पालन करने पर भी समाज स्त्री के लिए असहिष्णु और असंवेदनशील ही बना रहेगा, अत: इस सामाजिक मूल्यों की *''परवाह मैं क्यूँ करूँ न तो मुझे समाज से कुछ लेना देना है, न समाज से कुछ सरोकार। समाज ने तो मुझे दूधा की मक्खी की तरह निकाल*

कर फेक दिया है। फिर मैं ही क्यों समाज की परवाह करूँ?"[18] और तारा इस निर्णायक स्थिति में पहुँचती है कि क्यों न उस इंसान को जो मुझ पर सब तरह से स्नेह और इंसानियत का रिश्ता रखता है, उसको ही अपना सब कुछ मानूँ? ध्यान देने की बात यह है कि यहाँ मास्टर बाबू तारा के पति की भूमिका में नहीं हैं। स्त्री को यह सीख हमेशा से दिया जाता रहा है कि पति ही उसका सब कुछ होता है, लेकिन तारा मास्टर बाबू को अपना सब कुछ स्वीकार करती हैं सुभद्रा जी ने तारा और मास्टर जी के रिश्ते के बीच किसी भी परम्परागत आदर्शों और नैतिकता की बात नहीं करती। मास्टर बाबू और तारा के बीच जिस रिश्तें की शुरुवात सुभद्रा जी ने किया है यहीं रिश्ता आगे चलकर स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को दृढता प्रदान करेगा। यह एक ऐसा रिश्ता है जो समानता और सम्मानजनक स्थिति पर कायम है।

बचपन से ही स्त्रियों को पिता, पति और पुत्र के अधीन रहने की सीख दी जाती है। तारा को पिता और पति दोनों ही लांक्षित करके निकाल देते है। मास्टर बाबू के रूप में तारा को एक ऐसा साथी मिलता है जो इन सारे रिश्ते को धाता बताता है। सुभद्रा कुमारी चौहान तारा और मास्टर बाबू के बीच एक नये सम्बन्ध की नींव रखती हैं। वह स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की नयी परिभाषा गढ़ती है, जो परम्परागत स्त्री-पुरुष सम्बन्धों से काफी भिन्न है।

पितष्टसत्तात्मक समाज में परम्परागत विवाह स्त्री की अधीनता का एक मुख्य वजह है। जिस समाज में स्त्री-पुरुष के बीच मित्रता की बात ही बेमानी लगे उस समाज में अपनी पसन्द से विवाह करना किसी त्रासद घटना से कम नहीं है। पित्रसत्तात्मक नियम-कायदों के अनुसार चूँकि विवाह दो व्यक्तियों का नहीं, बल्कि दो परिवारों के आपसी समझौते पर होता है अत: पति-पत्नी के बीच सम्बन्ध एक समझौता बनकर रह जाता है। लड़के और लड़की दोनों को ही त्रसद स्थितियों से होकर गुजरना पड़ता है। **'सुभद्रा कुमारी चौहान'** विवाह के इसी परम्परागत नियमों पर सवाल खड़ी करती है। इस दृष्टि से 'उम्मादिनी' कहानी को लिया जा सकता है। यह कहानी आत्मकथात्मक शैली में लिखी गयी है। कहानी की नायिका हीना अपने बचपन के मित्र कुन्दन से प्रेम करती है। उन दोनों के बीच का भावात्मक रिश्ता काफी गहरा है। बचपन के अपने प्यार को स्वीकार करते हुए हीना कहती है- *''बचपन से अनेक बार राधा-कृष्ण की कहानी सुनते-सुनते मैं भी अपने को राधा समझने लगी थी और कृष्ण? कृष्ण, बहुत तलाश करने पर भी सिवा कुन्दन के और कोई न मिलता। कुन्दन बाँसुरी भी बजाता था और सांवला भी था, फिर भला मेरा कृष्ण सिवा कुन्दन के और हो भी कौन सकता था?''*[19] सुभद्रा जी की यह कहानी मात्र एक प्रेम कहानी नहीं है बल्कि पितष्टसत्तात्मक वर्चस्व के गिर"त में घुटती दो व्यक्तियों की कहानी हैं। इस कहानी में सुभद्रा जी पितष्टसत्ता के बुनियादी ढाँचे पर सवाल खड़ी करती हैं। एक अपरिचित व्यक्ति के साथ जिन्दगी-भर के लिए बांधा देने की प्रवृत्ति की आलोचना करती हैं। सुभद्रा जी विवाह की इस अन्यायपूर्ण रीति पर व्यंगय करते हुई लिखती हैं कि-*''युवती होने पर मेरे विवाह की चर्चा स्वाभाविक थी। मैंने सुन रखा था कि विवाह कुछ चक्कर लगार होता है और एक अपरिचित व्यक्ति उन्हीं के चक्करों के बाद लड़की को अपने साथ लिवा ले जाता है, किन्तु मुझे तो विवाह के चक्करों से वे चक्कर अधिक रुचते थे, जो कभी-कभी मैं कुन्दन के लिए और प्राय: कुन्दन मेरे लिए लगाया करता था। मैं चाहती तो यही थी कि मुझे अब और किसी के साथ चक्कर न लगाने पड़ें। मैंने तथा कुन्दन दोनों ने मिलकर जितने चक्कर लाये हैं हमारी जीवन यात्र के लिए उतने ही पर्याप्त हैं।''*[20] लेकिन हीना यह जानती थी कि उसकी बात कोई सुनने वाला नहीं है-

''यहाँ इतने चक्कर लगाकर भी मेरे ऊपर कुन्दन का कुछ अधिकार न हो पाया और इंजीनियर साहब ने, जिनसे न मेरी कभी की जान थी न पहिचान, मेरे साथ केवल सात चक्कर लगाये और मैं उनकी हो गयी।''[21]

हीना विवाह के बाद भी कुन्दन को नहीं भूल सकी। उसे अपने पति के साथ भी भावनात्मक लगाव नहीं हो पाया। वो कहती हैं *''अपने इस साहब बहादुर के पार्श्व में बैठकर भी मैं कुन्दन को न भूल सकती। सिनेमा की तस्वीरों में रेष्ठमी कुरता और धोती पहने हुए मुझे कुंदन की ही तस्वीर दिखाई पड़ती।''* [22] हीना अपने पति के साथ कभी भी स्वाभाविक नहीं हो पायी। अक्सर वह यही अनुभव करती कि जैसे वह बन्दी है और यहाँ जबरदस्ती पकड़कर लायी गयी है। वह सामाजिक दबाव के कारण ही अपने विवाह को निभाने के लिए बाध्य है।

हीना और कुन्दन दोनों का प्यार संवदेना के स्तर पर काफी गहरा और मासूम है। इस गहराई के कारण ही हीना और कुन्दन एक सत्याग्रही की तरह अपने 'प्रेम' को निभाते हैं। हीना की तरह कुन्दन भी अपने प्रेम को नहीं भूला पाता। वह फेरीवाला के रुप में हीना के ससुराल आता है। हीना कपड़ा खरीदने के बहाने कुन्दन को देखने के लिए उसके पास आती है। सास के ये कहने पर कि जो लेना है अपने पसन्द का ले ले। हीना सोचती है कि -*''बेचारी सास क्या जानती थीं कि कपड़ों से अधिक मुझे कपड़े वाला पसंद है।''*[23] दूसरी बार कुन्दन एक माली के रूप में हीना के यहाँ काम करता है-*''इतनी कड़ी तपस्या! हे ईश्वर! क्या इस तपस्या का अंत न होगा?''*[24] वास्तव में कुन्दन की यह कठोर तपस्या पारम्परिक विवाह के विरोध अघोषित विद्रोह ही है, जिसे सुभद्रा जी दिखाना चाहती हैं। इस तपस्या का स्वरूप भले ही आज बदल गया है, लेकिन प्रेम के लिए अभी भी संघर्ष जारी है। हीना कुन्दन को देखने के लिए उसे पास तो जाती है, लेकिन कुन्दन उसकी तरु आँख उठाकर भी नहीं देखा, एक मूक प्रेम और मूकविद्रोही की मुद्रा में कुन्दन अडिग रहता है। हीना सोचती है कि उसे अपने साथ लिवा लाऊँ, *''अब उसकी तपस्या आवश्यकता से अधिक हो चुकी है। उसे अब हमारे निकट रहकर मेरे स्नेह के शीतल छाया में विश्राम करना चाहिए।''*[25] लेकिन कुन्दन की यह तपस्या उसके मौत पर्यन्त चलती रहती है। क्या सुभद्रा कुमारी चौहान इस तपस्या को तब तक जारी रखना चाहती है जब तक कि विवाह की यह पारम्परिक मान्यता समाप्त होने की स्थिति में न पहुँच जाए? क्या सुभद्रा जी कुन्दन और हीना के प्रेम को उस अंतिम परिणति तक पहुंचाना नहीं चाहती, जहाँ दो व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक साथ रहने का निर्णय ले सकें।

हीना अब कुन्दन से मिलने का अवसर ढूँढा करती, लेकिन कुछ ही दिन बाद टीका-टिप्पणी होने लगता है। बाद में रुकावट भी पड़ने लगी, हीना का स्वास्थ्य खराब रहने लगा उसका पति - *''पतिदेव मुझे भुवाली भेजने की तैयार कर रहे थे, किन्तु वे क्या जानते थे कि भुवाली से भी अधिक स्वास्थ्य लाभ मैं कुन्दन के समीप, केवल उसके सहवास से कर सकती हूँ। मेरी दवा तो कुन्दन है। भुवाली और शिमला मुझे वह स्वास्थ्य नहीं प्रदान कर सकते, जो मुझे केवल कुन्दन से स्वतंत्रतापूर्वक मिलने-जुलने से मिल सकता है। मैं उससे केवल स्वतंत्रतापूर्वक बातचीत करना और मिलना-जुलना चाहती थी, और यही मेरे पतिदेव को स्वीकार नहीं था।''* [26] हीना कुन्दन से मिलना नहीं छोड़ती। कुन्दन का यह सत्याग्रही आन्दोलन उसके स्वास्थ्य को बुरी तरह से अपने गिर"त में ले चुका था। हीना के ऊपर भी कुन्दन से न मिलने की पाबंदिया लगायी जाने लगीं, लेकिन *''ज्यों-ज्यों मुझे उसके पास जाने से रोका गया, त्यों-त्यों उसके पास पहुँचने के लिए मेरी उत्कंठा प्रबल होती गई।''* [27] अन्तत: प्रेम का यह सत्याग्रही मृत्यु को को प्राप्त होता है।

हीना रोज ही कुन्दन की समाधि पर फूल चढ़ाने जाती है, जिसके कारण लोग उसे उन्मादिनी कहते हैं। इस कहानी में हीना आत्मकथात्मक शैली में अपनी व्यक्तिगत भावनाओं को स्वीकारती है। कुन्दन और हीना का प्यार पितृसत्ता और परम्परागत विवाह के प्रति मूक विद्रोह है। सुभद्रा जी इस विद्रोह को, बतलाने पर विश्वास नहीं करती, क्योंकि *''वह बतलाने की बात नहीं, किन्तु समझने की बात थी और उसे वही समझ सकता था जिसके पास हृदय हो। जिसके पास हृदय न हो, वह हृदय की बात क्या समझे?''*[28]

'उन्मादिनी कहानी की तरह *'थाती'* में भी मित्रता और विवाहेत्तर प्रेम सम्बन्धों के सवाल को उठाया गया है। परिवार के कठोर अनुशासन और परम्परागत विवाह की वजह से पति-पत्नी के रिश्ते में स्वाभाविक भावनात्मक सम्बन्धों की कमी रहती है। इस कमी के कारण ही कहानी की नायिका एक अन्य पुरुष के प्रति भावनात्मक लगाव महसूस करती है। नायिका को रोज ही कुंओं पर पानी भरने जाना पड़ता है। वहीं पर इसे एक पुरुष से जान-पहचान होती है।

सुभद्रा जी की अधिकांश कहानियों में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को दिखाया गया है। यह सम्बन्ध वासनारहित और त्यागमय प्रेम सम्बन्धों पर आधारित प्रेम सम्बन्ध है। **'थाती'** कहानी में भी इसी प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। एक स्त्री का पराये पुरुष से बात करना संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। 'थाती' कहानी की नायिका आत्मकतात्मक शैली में अपने जीवन की आपबीती सुनाती है। आत्मकथ्य द्वितीय व्यक्ति द्वारा सुनाये गये कहानी से कही ज्यादा मार्मिक और वास्तविक लगता है। जब भोक्ता स्वयं अपनी आपबीती सुनाता है तो उसके दुख-दर्द के साथ पाठक सहज ही तादात्म्य स्थापित कर लेता है। इस कहानी की नायिका विवाहित है। वह कुंआ पर पानी भरने जाया करती थी, वही पर उसे एक पुरुष से जान-पहचान होती है। *''जब मेरी सास मुझे अपने साथ कुएँ से पानी भरना सिखा रही थी अचानक वे न जाने कहाँ से आ गये, हँसकर बोले क्या पानी भरने की शिक्षा दे रही हो, माँ जी! आपने ऐसी अल्हड़ लड़की व्याही ही क्यों, जिसे भरना भी नहीं आता? मैंने घूँघट के भीतर ही जरा* सा मुस्कुरा दिया।''[29] अब जब भी नायिका पानी भरने जाती 'वह' कुछ न कुछ बोल देता और नायिका सिर्फ मुस्करा दिया करती थी। नायिका की मासूमियत के कारण वह उसे अल्हड़ रानी कहा करता था।

धीरे-धीरे रानी के पति और सास को उसका रानी से बातें करना अखरने लगा। रानी को उससे बातचीत करने से मना कर दिया गया। उसे जितना ही मना किया जाता, उससे बोलने की उत्कंठा और ज्यादा बलवती होती गयी। नायिका के शब्दों में *''ज्यों-ज्यों मुझे उनसे बोलने को रोका गया, त्यों-त्यों एक बार जी भरकर उसने बात करने के लिए मेरी उत्कंठा प्रबल होती गई। किन्तु मेरी साधा कभी न पूरी हुई। वे जाते-जाते एक-दो बातें बोल दिया करते थे, जिसके उत्तर में मैं केवल हँस दिया करतीं थी लेकिन लोग यह भी न सह सके और तिल का ताड़ बन गया। अब मुझ पर घर में अनेक प्रकार के अत्याचार होने लगे। हर दो-चार दिन बाद मुझ पर मार भी पड़ती परन्तु मैं कर ही क्या सकती थी? मैं तो उनसे बोलती भी न थी। और उनका बोलना बन्द करना मेरी शक्ति से परे थे।''*[30] नायक को जब यह बात मालूम होती है कि मेरे कारण ही रानी को अत्याचार सहने पड़ते हैं तो एक दिन वह रानी से यह कहकर कि *''आज से मैं तुम पर होने वाले अत्याचार की जड़ ही उखाड़ कर फेंके देता हूँ। तुम खुश रहना, मेरी अल्हड़ रानी! (वे मुझे इसी नाम से पुकाते थे यदि मैं तुम्हें भूल सका तो फिर यहाँ लौटकर आऊँगा, नहीं तो आज ही सदा के लिए विदा होता हूँ।''*[31] *नायक के चले जाने के बाद रानी की हालत और भी खराब हो जाती है। लोग उसे पागल कहने लगे हैं। उसकी बस यही इच्छा रह गयी है कि ''क्या तुम बता सकोगे कि वे कहाँ हैं? मैं एक बार उन्हें और देखना चाहती हूँ। मेरी यह पीड़ा, मेरा यह उन्माद उन्हीं का दिया हुआ तो है। यदि कोइ सदस्य उनका पता बता* दे तो मैं उनकी थाती उन्हीं को सौंप दूँ।''[32]

स्पष्ट है कि नायक और नायिका एक'दूसरे के प्रति आकर्षित हैं। नायिका बड़ी विह्वलता से नायक से मिलने तथा उससे बात करने की अपनी इच्छा प्रकट करती है। उसकी थाती को उसी को सौंप देने की बात कर रही है। आखिर नायिका किस 'थाती' की बात कर रही? क्या यह 'थाती' प्रेम की थाती नहीं है, जिसे देने के लिए नायिका इतनी विह्वल है? नायक जब तक यहाँ था उससे बातचीत करता था, तब तक तो उन दोनों के बीच गहरी मित्रता थी लेकिन अन्ततः यह मित्रता एक गहरे भावनात्मक रूप ग्रहण कर लेती है। इन दोनों को एक-दूसरे के लिए सम्मान का भाव है, त्याग करने की शक्ति भी है, लेकिन प्रेम भी है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता। इस प्रेम की थाती को समर्पित करने की बात ही नायिका कह रही है।

सुभद्रा जी की कहानी 'थाती' की नायिका को भले ही अपने पति के अत्याचार और संदेह के कारण अपने मित्र से अलग होना पड़ा, लेकिन अपनी अगली कहानी *'अनुरोधा'* में सुभद्रा जी का यह संघर्ष समाप्त हो गया है। सुभद्रा जी की इस कहानी की नायिका विवाहित है। वीणा के पति कुंजबिहारी वीणा का बहुत ध्यान रखते हैं। वीणा और निरंजन दोनों ही उमरखैयाम की रुबाइयों का अनुवाद साथ मिलकर करते हैं। दोनों के बीच गहरी मित्रता है। निरंजन अपने घर जाने की इच्छा प्रकट करता है, लेकिन वीणा निरंजन को जाने से मना करती है। एक दिन जब वीणा निरंजन की पत्नी का पत्र पढ़ती है तो उसे बहुत अफसोस होता हे कि *''वह नाहक ही निरंजन को रोके हुए है, उसे ऐसा मालुम होता था कि निरंजन के प्रति उसका प्रेम स्वार्थ से परिपूर्ण है।*[33] और दूसरे ही दिन वह निरंजन को उसके घर जाने का अनुरोधा करती है। लेकिन निरंजन से वह इनती गहरी रूप से जुड़ा हुआ महसूस करती है कि ***''यद्यपि उसकी वह हँसी ओठों तक ही थी, उसकी अन्तरात्मा रो रही थी। उसे ऐसा जान पड़ता था कि निरंजन के जाते ही उसे उन्माद हो जाएगा।''***[34] सुभद्रा जी अपनी कहानियों में जिस सच्चे पुरुष मित्र की खोज कर रही थी, जिस रिश्ते में किसी भी तरह की शंका की गुंजाइश न हो वही रिश्ता यहाँ पर फलीभूत हुआ है। निरंजन और वीणा की गहरी मित्रता और उनके गहरे जुड़ाव को वीणा का पति संदेह की दृष्टि से नहीं देखता। 'थाती' कहानी की नायिका का पति पर पुरुष के साथ बातचीत करने के कारण उस पर अत्याचार करता है लेकिन कुंजबिहारी वीणा का पति इस रुढ़िवादी विचारों से बाहर निकल गया है।

'नारी हृदय' कहानी में प्रमिला ने पत्र शैली में एक विवाहित पुरुष के प्रति अपने प्रेम को अभिव्यक्त किया है। इस पत्र में उसने अपनी हृदय की भावनात्मक उद्गार को पूरी तरह खोलकर रख दिया है। कथानायक को जो कहानी का वक्ता भी है, बहुत दिन के बाद पत्र पढ़ने का संयोग मिल पाता है। कथानायक की पत्नी सुशीला उस पत्र को पहले ही पढ़ चुकी होती है। सुशीला को अपने पति पर क्रोधा नहीं आता। वह नाराजगी जताती हुए कहती है कि *''यदि तुम निभा नहीं सकते थे, तो उस बेचारी को इस रास्ते पर घसीटा ही क्यों?''*[35] सुशीला अपने पति के अतीत के बारे में जानकर भी क्रोधा नहीं करती बल्कि वह अपने पति से कहती है कि तुम यदि *''मुझे उसका पता बता दो तो मैं स्वयं उसे यहाँ लिवा लाऊँ। बेचारी का जीवन कितना दुखी है।''*[36] सुशीला प्रमिला के प्रेम भरे उद्गारों को पढ़कर उसके प्रति दयालु हो उठी है और अपने पति पर इस बात के लिए नाराज होती है कि उसने प्रमिला के साथ सही नहीं किया। अपने पति के इस बेवफाई पर वह कहती है कि *''तुम्हीं क्या पुरुष मात्र ही कठोर होत हैं।''*[37]

'पवित्र ईर्ष्या' कहानी में सुभद्रा जी ने विनोद के माध्यम से स्त्रियों के प्रति पुरुषों की शंकालु प्रवृत्ति का खुलासा किया है। अखिलेश विमला का राखीबन्धा भाई है। बड़ी होने पर विमला की शादी विनोद से होती है। एक बार अखिलेश ने विमला के नाम एक पत्र भेजा। जब विनोद ने अखिलेश का पत्र पढ़ा तो वह अपनी पत्नी विमला पर काफी नाराज हुआ। सुभद्रा जी विनोद के मनोभावों को प्रस्तुत करते हुए कहती है कि *''विनोद को नौकर-चाकर से भी विमला का बात करना अच्छा नहीं लगता। यह विमला पर अपना एकछत्र अधिकार चाहते थे। वह तो कदाचित यहाँ तक चाहते थे कि विमला को किसी प्रकार बहुत ही छोटे आकार में परिवर्तित करके अपने पॉकेट में रख ले जिसमें वहीं केवल विमला को देख सकें, वहाँ तक और किसी की पहुँच ही न हो सके।''*[38] विनोद पढ़ा-लिखा और आधुनिक विचारों का युवक है लेकिन स्त्री के प्रति उसकी मानसिकता में किसी भी तरह का बदलाव नहीं आया है। विमला का अखिलेश के साथ मिलना उससे बातचीत करना उसे अच्छा नहीं लगता। वह अपनी पत्नी विमला से काफी उखड़ा-उखड़ा रहने लगता है। अखिलेश और अपने सम्बन्धों के बारे में विमला अपने पति विनोद को बताती भी है लेकिन विनोद उस पर पग-पग सन्देह करने लगा। अखिलेश विनोद का भी मित्र था इसलिए वह अखिलेश को भी कुछ नहीं कह सकता था। विनोद विमला और अखिलेश के सम्बन्धों को लेकर इतना ईष्यालु हो उठा कि वह विमला को अखिलेश से मिलने नहीं जाने दिया। विमला को आज पहली बार यह अहसास हुआ कि *''विवाह के बाद स्त्री को अपनी इच्छाओं और मनोवृत्तियों का किस प्रकार दमन करना पड़ता है।''*[39] विनोद ने विमला से यह साफ-साफ कह दिया है कि *''उन्हें विमला का अखिलेश के प्रति इतना अधिक स्नेह-भाव सन्देहात्मक ज्ञान पड़ता है।''*[40] जब रक्षा बन्धान के दिन भी विनोद विमला के यहाँ जाने की इजाजत नहीं देता है तो विमला यह सोचती है कि *''पवित्रव्रत धर्म, स्त्री का धर्म तो यही है न कि पति की उचित-अनुचित आज्ञाओं का चुपचाप पालन किया जाय। वह मैं कर रही हूँ विधाता! पर इतने पर भी यदि मेरी दुर्बल आत्मा अपने किसी आत्मीय के लिए पुकार उठे तो मुझे अपराधिनी न प्रमाणित करना।''*[41] विनोद के मुँह से ही अखिलेश को जब यह पता चलता है कि विमला से मिलना-जुलना उसे अच्छा नहीं लगता तो अखिलेश किसी और शहर में तबादला करवाने के लिए इस्तीफा देता है ताकि वह विनोद और विमला से दूर रह सकें। विनोद को अखिलेश के इस्तीफे की बात मालूम होती है। वह अखिलेश का इस्तीफा वापस लेकर उसे यहीं पर रहने का आग्रह करता है और अपने घर लेकर आता है। *''विमला समझ न सकी कि विनोद का ऐसा कौन-सा आत्मीय आया है जो इन्हीं के कमरे में ठहराया जाएगा? इसी समय सीढ़ियों पर विनोद ने आवाज दी विन्नो! यह डाक्टर आया है।''*[42]

अन्ततः सुभद्रा जी विनोद के मन से संदेह निकालने में कामयाब हो जाती हैं। सुभद्रा जी अपनी कहानियों में औरतों के प्रति इतनी कठोर अनुशासन और उस पर संदेह करने की पुरुषों की मानसिकता को बहुत ही शालीनता से रेखांकित करती हैं। वह इस पक्ष में हैं कि पुरुषों को अपनी इस मानसिकता से बाहर आने की जरूरत है। स्त्री-पुरुष के रिश्ते को गलत और संदेहात्मक दृष्टि से देखने की बजाय पुरुष अपने नजरिये को बदले। लेखिका स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को सहजता के साथ लेने की पैरवी करती है सुभद्रा जी की यह नायिका परम्परागत विचारों से मुक्त नहीं है लेकिन उसे अपनी पराधीनता का एहसास है। वह विनोद के इजाजत के बिना अखिलेश से मिलने नहीं जाती है। इस कहानी में विमला का मौन विरोध देखा जा सकता है। आज के नारीवादी लेखन में यह मौन-विरोध विस्फोट कर चुका है। सुभद्रा जी स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में पवित्रता इत्यादि की हिमायती है, लेकिन वह पुरुषों की संदेहात्मक और स्त्रियों पर कठोरतापूर्वक शासन करने की मनोवृत्तियों की भी आलोचना करती है।

1 पृ.63, सुभद्रकुमारी चौहान सीधो-सादे चित्र, हंस प्रकाशन इलाहाबाद, 1983
2 पृ. 63, वही
3 पृ. 63, वही
4 पृ. 63, वही
5 पृ. 66, वही
6 पृ. 66, वही
7 पृ. 66, वही
8 पृ. 66, वही
9 पृ. 9, वही
10 पृ. 11, वही
11 पृ. 11, वही
12 पृ. 11, वही
13 पृ. 22, वही
14 पृ.22, सुभद्राकनमारी चौहान, सीधो-सादे चित्र, हंस प्रकाशन इलाहाबाद, 1983
15 पृ. 25, वही
16 पृ. 27, वही
17 पृ. 17-30, वही
18 पृ. 28, वही
19 पृ. 107, वही
20 पृ. 107, वही
21 पृ. 108, वही

22 पृ. 108, वही
23 पृ. 110, वही
24 पृ. 111,वही
25 पृ. 111,वही
26 पृ. 112,वही
27 पृ. 113,वही
28 पृ. 113,वही
29 पृ. 69,वही
30 पृ. 69,वही
31 पृ.71, सुभद्रा कुमारी चौहाक, सीधो-सादे चित्र, हंस प्रकाशन इलाहाबाद, 1983
32 पृ. 72,वही
33 पृ.94,वही
34 पृ.94,वही
35 पृ.139,वही
36 पृ.139,वही
37 पृ.139,वही
38 पृ.146,वही
39 पृ.148,वही
40 पृ.149,वही
41 पृ.154,वही
42 पृ.157,वही

बिहार में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग और इसकी चुनौतियां

रंजीत कुमार

शोधार्थी, विकास अध्ययन संस्थान, जयपुर

सारांश

खाद्य प्रसंस्करण को भारत में 'उभरते' और 'प्रमुख' क्षेत्रों में से एक माना जाता है। यह अक्सर एक 'उदीयमान' क्षेत्र के रूप में माना जाता है, विशेष रूप से भारत के कृषि समृद्ध राज्यों, जैसे कि बिहार के लिए। साहित्य इस तरह के 'विशेषणों' से भरा हुआ है जो कुछ तथ्यों और आंकड़ों पर आधारित है। वास्तविक रूप में, हालांकि, ये 'विशेषण', बिहार में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के विस्तार में मदद करने वाले बिल्कुल भी नहीं लगते हैं। वर्तमान अध्ययन 1994-95 से 2015-16 तक के उद्यम सर्वेक्षण के अंतिम पांच चरणों के दौरान एकत्र किए गए राष्ट्रीय पतिदर्श सर्वेक्षण कार्यालय के आंकड़ों पर आधारित है, जो बताता है कि असंगठित क्षेत्र में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग न केवल बिहार राज्य में सिकुड़ रहा है बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर भी। इसलिए, यह अध्ययन भारत में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के साथ-साथ बिहार में असंगठित क्षेत्र में औद्योगिक विकास के लिए उत्तरदायी कारणों की पहचान करने का प्रयास करता है। इससे हमें यह समझने में भी मदद मिलेगी कि असंगठित क्षेत्र में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग का आकार दो दशक की अवधि में कम क्यों हो रहा है।

प्रमुख शब्द: असंगठित विनिर्माण क्षेत्र, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग, राष्ट्रीय पतिदर्श सर्वेक्षण कार्यालय, बिहार

1. परिचय

जहाँ औपनिवेशिक भारत की स्थायी बंदोबस्त नीति ने बिहार की कृषि उत्पादकता को छीन लिया, स्वतंत्र भारत की माल ढुलाई नीति ने बिहार की औद्योगिक महत्वाकांक्षाओं को नष्ट कर दिया। भारत सरकार द्वारा 1952 में भाड़ा समानीकरण को एक नीति के रूप में अपनाया गया ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि परिवहन लागतों(माल ढुलाई) की परवाह किए बिना देश भर में एक ही कीमत पर आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध हो। इसका उद्देश्य सभी राज्यों को औद्योगीकरण के लिए एक समान मौका देना था, बिना उनके प्राकृतिक संसाधनों तक पहुंच की परवाह किए। जाहिर है, इसके फलस्वरूप निर्माताओं ने तटीय राज्यों में उद्योगों की स्थापना की ताकि वे अपने तैयार माल को आसानी से जहाज से निर्यात कर सकें। बिहार के लिए खनिजों के पास होना अब कुछ विशेष मायने नहीं रखता था क्योंकि कच्चे माल या खनिजों के करीब होने में कोई लागत लाभ नहीं था (राय, 2017; कुमार,ए, 2015; गोलम, 2014)। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि इस नीति ने उत्तर भारतीय राज्यों बिहार, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश और उड़ीसा से खनिज, कोयला, लौह अयस्कों और अन्य कीमती औद्योगिक कच्चे माल की संगठित लूट का मार्ग प्रशस्तकिया। इस नीति से उत्तरी राज्यों के लिए खनिज की प्राकृतिक प्रचुरताका तुलनात्मक लाभ बेकार हो गया। हालांकि इस नीति को 1992 में बंद कर दिया गया, लेकिन तब तक जो क्षति हो चुकी थी वह अपूरणीय थी, विशेष रूप से बिहार को। बाकी नुकसान बिहार को 2000 में तब हुआ जब उसका दक्षिणी क्षेत्र जो फिर भी खनिजों से समृद्ध था, झारखंड नामक एक नए राज्य के रूप में उससे अलग कर दिया गया। भाड़ा समानीकरण नीति ने न केवल अन्य राज्यों को इन राज्यों की कीमत पर विकास करने का रास्ता तैयारकिया, बल्कि केवल इस नीति के कारण बिहार अब तक भारत के सबसे गरीब राज्यों में शुमार होने का शाप झेल रहा है, बेरोजगारी और पलायन सबसे उच्चस्तर पर है।

समृद्ध कृषि और पशुधन से संपन्न होने के कारण बिहार राज्य में खाद्य प्रसंस्करण औद्योगीकरण की अपार संभावनाएं हैं। फल और सब्जियों की प्रचुरता, अधिशेष श्रम (कुमार, 2019; 2017) और उत्पादन और रोजगार सृजन क्षमता के कारण इसकी विकास संभावनाओं के मद्देनजर इसे अक्सर बिहार की अर्थव्यवस्था के लिए 'उदीयमान' क्षेत्र माना जाता है। यह क्षेत्र भविष्य में बिहार के लिए पर्याप्त रोजगार सृजन के साथ एक समृद्ध औद्योगिक आधार बना सकता है। हालांकि साहित्य इस तरह के उत्साहजनक बयानों से भरा है जो कुछ तथ्यों और एक या दूसरे तरह के आंकड़ों पर आधारित हैं। हालाँकि, इस क्षेत्र को एक 'उदीयमान' क्षेत्र के रूप में चिह्नित करने से ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को बिहार में विस्तार करने में मदद मिली है। वर्तमान अध्ययन नेशनल सैंपल सर्वे ऑर्गनाइजेशन (एनएस एस ओ) अर्थात राष्ट्रीय पतिदर्श सर्वेक्षण कार्यालय के आंकड़ों पर निर्भर करता है, जो 1994-95 से 2015-16 के उद्यम सर्वेक्षण के अंतिम पांच लगातार चरणों के दौरान एकत्र किया गया था, जो दर्शाता है कि खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र न केवल बिहार राज्य में काफी सिकुड़ रहा है, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर भी।

बिहार में छोटे-छोटे भूमि की बहुतायत भूमि अधिग्रहण को सरकार के साथ-साथ उद्योग के लिए एक बड़ी चुनौती बनाता है। वित्त, कुशल कार्यबल, बुनियादी ढांचा, जैसे बिजली और सड़क, और कानून व्यवस्था खाद्य प्रसंस्करण में औद्योगिक विकास के लिए अन्य सहायक मानदंड हैं जो भविष्य में चुनौतियाँ पेश कर सकती हैं। इस पृष्ठभूमि में, इस अध्ययन का उद्देश्य बिहार में खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में औद्योगिक विकास के लिए उत्तरदायी कारणों की पहचान करने का एक प्रयास है। विशिष्ट प्रश्न जो इस अध्ययन के मूल में हैं, वे हैं (i) खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में प्रमुख अड़चनों की पहचान और इसे दूर करने के लिए सर्वोत्तम संभव नीतिगत हस्तक्षेप, (ii) व्यावसायिक असफलताओं की प्रकृति और कारणों और खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में उद्यमों के बाहर निकलने की प्रक्रिया को समझना। वर्तमान पेपर को चार भागों में विभाजित किया गया है। पहले भाग में प्रस्तुत अध्ययन में विषय का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया

गया है। दूसरा भाग वर्तमान संदर्भ में बिहार राज्य में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की संभावना पर चर्चा करेगा; तीसरे खंड में दर्शाया गया हैभारत और बिहार में वैश्वीकरण के दौर में उद्योग कैसे सिकुड़ गया है।

2. बिहार में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की संभावना

एक उद्योग की संभावना कई चीजों पर निर्भर करती है, उदाहरण के लिए, पूंजी संचय, तकनीकी परिवर्तन, उत्पादन के साधनों की उपलब्धता, खुले बाजार की नीति, बाजार का विस्तार और मांग में वृद्धि आदि। प्रतिफल की दर एक और महत्वपूर्ण कारक है जिसे किसी उद्योग की विकास की संभावनाओं को समझने के लिए अक्सर उपयोग किया जाता है। यह निवेश पर लाभप्रदता मापने का एक सिद्धांत है और एक उद्यम की स्थापना और विकास की संभावनाओं को दर्शाता है। प्रतिफल की दर, अधिशेष-पूंजी अनुपात है:

प्रतिफल की दर= ((वर्तमान मूल्य - पुराना मूल्य) / पुराना मूल्य) × 100

देश के पूर्वी हिस्से में एक कृषि समृद्ध राज्य होने के नाते, कृषि आधारित प्रसंस्करण में राज्य के विकास में योगदान करने की अपार क्षमता है। उपयुक्त प्रौद्योगिकी के साथ छोटी पूंजी द्वारा प्रसंस्करण आधार विकसित करने के संदर्भ में इस क्षेत्र की क्षमताओं को समझना चाहिए। इस तरह के प्रसंस्करण आधार के विस्तार का न केवल रोजगार सृजन के दृष्टिकोण से, बल्कि कम पूंजी वाले लोगों के लिए आत्मनिर्भरता के दृष्टिकोण से भी बहुत महत्व है। बिहार जैसे राज्य में विकास की अवधारणा ऐसी होनी चाहिए जो उपयुक्त तकनीक के साथ लोगों द्वारा छोटी पूंजी को औद्योगीकरण की दिशा में इस्तेमाल को बढ़ावा देता हो। इस अध्ययन में कृषि आधारित उद्योगों को पांच (05) श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है जैसा कि तालिका 1 में दिखाया गया है। तालिका 1 से यह प्रकट होता है कि सबसे बड़ा हिस्सा बिहार में अनाज और अनाज आधारित प्रसंस्करण उद्योग का है। इसकी 1.04 लाख औद्योगिक इकाइयाँ हैं, जबकि फल और सब्जी आधारित प्रसंस्करण में राज्य में सबसे कम (581) इकाइयाँ हैं। कृषि समृद्ध एक राज्य जो अनाज और अनाज आधारित प्रसंस्करण उद्यम में अव्वल है, क्यों फल और सब्जी आधारित प्रसंस्करण उद्योग में सबसे पीछे है? जबकि बिहार राज्य देश में फलों और सब्जियों का सातवां सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है (आर्थिक सर्वेक्षण, बिहार, 2014-15) फिर उनसे सम्बंधित प्रसंस्करण उद्योग राज्य में सबसे कम क्यों हैं?

तालिका 1. बिहार में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग से सम्बंधित महत्वपूर्ण जानकारियां

खाद्य प्रसंस्करण श्रेणी (लाभ)	*शुद्ध अधिशेष (भूमि)*	*मूल्य अचल संपत्तियां*	*कुल रोजगार*	*उद्यमों की संख्या*	*प्रतिफल की दर (%)*
मांस आधारित	280442882	1584653558	34356	25014	17.7
डेयरीआधारित	42093601	474852388	5304	2658	8.9
अनाज आधारित	789409514	14367545522	153271	104436	5.5
चीनी और मिष्ठान्न आधारित	200153723	1862575413	41826	12223	10.7
फल और सब्जी आधारित	8947198	262459903	1162	581	3.4
कुल	1321046919	18552086782	235918	144912	7.1

स्रोत: एनएसएसओ 73वाँ दौर, इकाई स्तर के आंकड़ों के आधार परासभी मूल्य रूपये में।

किसी उद्यम का शुद्ध अधिशेष वह राशि है जो मालिक/साझेदारों को श्रमिकों के पारिश्रमिक(व्यक्तिगत या समूह लाभ), भूमि पर किराया, एवं संदर्भ महीने के लिए बकाया ऋण पर ब्याज अदा करने के बाद उद्यमशीलता की गतिविधि हेतु प्राप्त होती है। तालिका 1 में प्रस्तुत विश्लेषण से पता चलता है कि बिहार में मांस आधारित प्रसंस्करण उद्योग में प्रतिफल की दर 17.7 प्रतिशत है, जो कि उच्चतम है। चीनी और मिष्ठान्न आधारित प्रसंस्करण राज्य में अगला लाभदायक उद्योग है। खाद्य प्रसंस्करण की इस श्रेणी में प्रति औद्योगिक इकाई उच्चतम रोजगार भी है। प्रतिफल की दर फल और सब्जी आधारित प्रसंस्करण उद्योग में आश्चर्यजनक रूप से सबसे कम है।

तालिका 2. बिहार में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में वेतन और परिलब्धियाँ

खाद्य प्रसंस्करण श्रेणी	*औपचारिक कामगार*	*वेतन अनौपचारिक कामगार*	*वेतन (कुल कामगार)*	*कुल मेहनताना*
मांस आधारित	597980	22777065	23375045	24515645
डेयरीआधारित	2891430	5074902	7966332	8018952
अनाज आधारित	4622789	44293438	48916226	53439758
चीनी और मिष्ठान्न आधारित	622500	43262196	43884696	44613283
फल और सब्जी आधारित	0	3188730	3188730	3278063
कुल	8734699	118596330	127331029	133865701

स्रोत: तालिका 1 के समान। आंकड़े सर्वेक्षण की तारीख से पहले के 30 दिनों के हैं। वेतन रूपये में।

तालिका 2 से पता चलता है कि सभी खाद्य प्रसंस्करण गतिविधियों में औपचारिक श्रमिकों पर वेतन का खर्च अनौपचारिक श्रमिकों से हमेशा अधिक है क्योंकि कार्य का अधिकांश हिस्सा अनौपचारिक श्रमिकों द्वारा किया जाता है।तालिका 3 वार्षिक सकल मूल्य वर्धित, बकाया ऋणों पर देय ब्याज और ब्याज पर ऋण की गतिविधि वार डेटा प्रस्तुत करती है। तालिका से पता चलता है कि जब सभी खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों पर बकाया ऋण और ब्याज भुगतान बकाया है; फल और सब्जी आधारित प्रसंस्करण उद्योग के पास ऐसा कोई ऋण या ब्याज भुगतान नहीं है। इसकी दो तरह से व्याख्या की जा सकती है: उन्होंने ऋण लिया होगा और इसे पूरी तरह से चुकाया होगा, या उन्होंने ऐसा कोई ऋण नहीं लिया था और इसलिए उनपर ऐसा कोई बकाया ऋण और ब्याज भुगतान नहीं है।

तालिका 3. सकल मूल्यवर्धित, बकाया ऋण और ऋण पर देय ब्याज

खाद्य प्रसंस्करण श्रेणी	*वार्षिक सकल मूल्य वर्धित (रू.)*	*बकाया ऋण संदर्भ वर्ष की अंतिम तारीख को (रू.)*	*पिछले 30 दिनों में ऋण पर देय ब्याज (रू.)*
मांस आधारित	3594168648	60185783	289109
डेयरीआधारित	518179829	23510425	10046
अनाज आधारित	9694150131	190553763	12476723
चीनी और मिष्ठान्न आधारित	2320301306	33160013	569783
फल और सब्जी आधारित	149080437	0	0
कुल	16275880351	307409983	13345661

स्रोत: तालिका 1 के समान।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग का संकुचन

एनएसएसओ ने 1978-79 में असंगठित विनिर्माण उद्यमों के सर्वेक्षण की शुरुआत की; हालाँकि, एक पूर्ण उद्यम-स्तरीय डेटा सेट केवल 1994-95 से उपलब्ध है, इसलिए यह शोध-पत्र एनएसएसओ 51 वें दौर के बाद के उद्यम सर्वेक्षण आंकड़ों पर आधारित है। आंकड़ों पर आधारित विश्लेषण से पता चलता है कि बिहार में असंगठित विनिर्माण क्षेत्र के भीतर खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के सापेक्ष आकार में 1994-95 और 2015-16 के सर्वेक्षणों के बीच औसतन 0.05 प्रतिशत की गिरावट आई है। राष्ट्रीय स्तर पर असंगठित विनिर्माण क्षेत्र के भीतर यह गिरावट 0.08 प्रतिशत है (तालिका 4)। हालाँकि, असंगठित विनिर्माण क्षेत्र के भीतर खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के आकार में गिरावट बिहार में राष्ट्रीय स्तर की तुलना में अधिक अस्थिर है।

तालिका 4: असंगठित क्षेत्र में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में गिरावट

	असंगठित विनिर्माण में खाद्य प्रसंस्करण का हिस्सा (%)		*असंगठित विनिर्माण उद्यमों की संख्या*	
सर्वेक्षण वर्ष	*भारत*	*बिहार*	*भारत*	*बिहार*
1994-95	16.5	23.5	14504570	1022802'
2000-01	16.3	29.8	17024414	808605
2005-06	13.6	26.2	17070820	772397
2010-11	11.8	27.7	17210269	448080
2015-16	11.6	18.8	19668256	771093
यौगिक वार्षिक विकास दर (%)	-0.08	-0.05	0.08	-0.07

स्रोत: एनएसएसओ 51, 56, 62, 67 और 73 दौर के इकाई स्तर के रिकॉर्ड के आधार पर लेखक की गणना।

नोट: (i) खाद्य प्रसंस्करण उद्योग केवल 'खाद्य उत्पादों के निर्माण' का संकेत देता है। चूंकि विशेष रूप सेतीन विनिर्माण गतिविधियों को वर्गीकृत करने, यथा- खाद्य उत्पादों के विनिर्माण, पेय पदार्थों के विनिर्माण और तम्बाकू उत्पादों के निर्माण के लिए अलग-अलग एनआईसी में पारदर्शिता नहीं है; इसलिए विभिन्न दौरों में आंकड़ों की समता बनाए रखने के लिए - हमने निम्नलिखित कार्य किया: 'गतिविधि कोड' आंकड़ों के सभी प्रासंगिक दौरों को वांछित समूह या वर्ग तक अलग कर दिया गया। वह स्तर जहां संबंधित राउंड में उपयोग किए जाने वाले सभी सामान्य राष्ट्रीय उद्योग वर्गीकरण कोड्स(एनआईसी) में खाद्य उत्पादों के निर्माण, पेय पदार्थों के निर्माण और तंबाकू उत्पादों के निर्माण के लिए उस समूह / वर्ग स्तर पर किसी विशेष गतिविधि का बिल्कुल वही अर्थ होता है। (ii) ' बिहार के आंकड़े (झारखंड से अलग) उन सभी जिलों के लिए घटाए गए आंकड़ों के माध्यम से लगाया गया है जो बाद में वर्ष 2000 में झारखंड के रूप में बिहार से अलग हुए थे।

समापन टिप्पणी

माल-भाड़ा समानीकरण नीति केतहत उदारीकरण से पूर्वकी अवधि के दौरान नीतिगत मोर्चे पर हुए अन्याय से बिहार राज्य की औद्योगिक महत्वाकांक्षाओं को एक अपूरणीय क्षति हुई। उदारीकरण के दौर में, हालाँकि, माल-भाड़ा समानीकरण की भेदभावपूर्ण नीति बंद हो गई, फिर भी राज्य में औद्योगीकरण की

गति धीमी रही। वर्ष 2000 में, राज्य ने अपनी खानों और खनिज भंडार को खो दिया जो नवगठित राज्य झारखंड का हिस्सा बन गया। इसने बिहार में औद्योगिक विकास की शेष आशा को भी छीन लिया। ऐसी स्थितियों में, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग बिहार के औद्योगिक विकास के लिए एक आशा की किरण है। लेकिन, यह भी स्पष्ट है कि भले ही राज्य कई फलों और सब्जियों, अनाज, पशुधन, मत्स्य पालन और मुर्गी पालन में प्रमुख राज्यों में से एक है, लेकिन बिहार में औद्योगीकरण की गति काफी कम है। परंतु अधिक गंभीर बात यह है कि बिहार में 1994-95 और 2015-16 के सर्वेक्षणों के बीच असंगठित विनिर्माण क्षेत्र के भीतर खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के सापेक्ष आकार में औसतन 0.05 प्रतिशत की गिरावट आई है। इस गिरावट के कारणों पर और अधिक शोध की आवश्यकता है।

संदर्भ

एन एस एस ओ (1995). अनऑर्गनाइज्ड मैन्युफैक्चर, एन एस एस राउंड 51, जुलाई 1994-जून 1995, नैशनल सैंपल सर्वे ऑफिस, मिनिस्ट्री ऑफ स्टैटिस्टिक्स एंड प्रोग्राम इम्प्लीमेंटेशन, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली.

एन एस एस ओ (2001). अनऑर्गनाइज्ड मैन्युफैक्चर, एन एस एस राउंड 56, जुलाई 2000-जून 2001, नैशनल सैंपल सर्वे ऑफिस, मिनिस्ट्री ऑफ स्टैटिस्टिक्स एंड प्रोग्राम इम्प्लीमेंटेशन, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली.

एन एस एस ओ (2006). अनऑर्गनाइज्ड मैन्युफैक्चरिंग सेक्टर इन इंडिया, एन एस एस राउंड 62, जुलाई 2000-जून 2001, नैशनल सैंपल सर्वे ऑफिस, मिनिस्ट्री ऑफ स्टैटिस्टिक्स एंड प्रोग्राम इम्प्लीमेंटेशन, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली.

एन एस एस ओ (2011). अनइन्कॉर्पोरेटेड नॉन-एग्रीकल्चरल इंटरप्राइजेज (एक्सक्लूडिंग कंस्ट्रक्शंस) इन इंडिया, 2010-2011, राउंड 67, नैशनल सैंपल सर्वे ऑफिस, मिनिस्ट्री ऑफ स्टैटिस्टिक्स एंड प्रोग्राम इम्प्लीमेंटेशन, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली.

एन एस एस ओ (2016). अनइन्कॉर्पोरेटेड नॉन-एग्रीकल्चरल इंटरप्राइजेज (एक्सक्लूडिंग कंस्ट्रक्शंस) इन इंडिया, 2015-2016, राउंड 73, नैशनल सैंपल सर्वे ऑफिस, मिनिस्ट्री ऑफ स्टैटिस्टिक्स एंड प्रोग्राम इम्प्लीमेंटेशन, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली.

कुमार, आशीष (2015). 'इकनॉमिक बैकवर्डनेस ऑफ बिहार: ए हिस्टॉरिकल पर्सपेक्टिव', श्रृंखला एक शोधपरक वैचारिक पत्रिका, वॉल्यूम-प्प्, इशू-IV, दिसंबर, पृष्ठ 16-18.

कुमार, रंजीत (2017): 'स्टेटस एंड ग्रोथ पोटेंशियल ऑफ फूड प्रॉसेसिंग इंडस्ट्री इन इंडिया: ए केस स्टडी ऑफ बिहार, जर्नल ऑफ सोशल एंड इकनॉमिक स्टडीज, वॉल्यूम 27, नंबर 02, पृष्ठ 33-50.

कुमार, रंजीत (2019). इनफॉर्मल फूड प्रॉसेसिंग इंडस्ट्री इन पोस्ट-रिफॉर्म इंडिया: साइज, स्ट्रक्चर एंड ट्रांजीशन, मैन एंड डेवलपमेंट, 41(03).

गोलम आर -एस एकलब्य (2014) अंडरस्टैंडिंग द पुअर इकनॉमिक परफॉरमेंस ऑफ बिहार एंड उत्तर प्रदेश, इंडिया: ए मैक्रो-पर्सपेक्टिव, रीजनल स्टडीज, रीजनल साइंस, 1:1, 221-239.

राय अतुल के (2017). फ्रेट इक्वलाइजेसन हिट बिहार ग्रोथ, सेज प्रेज, मार्च 24, हिंदुस्तान टाइम्स, पटना. डीओआई: https://www.hindustantimes.com/india-news/freight.equalization.hit.bihar.growth.says.prez.story.eF9Dyi3JR1rXF1NDrwJ7oL.html, एक्सेस्सड 28 अक्टूबर 2018 ऐट 10: 05 ए एम.

भारत की विदेश नीति पर सार्क के प्रभाव का विश्लेषण

डॉ० ऋचा सिंह

सहायक प्रोफेसर राजनीति विज्ञान, जी एल ए कॉलेज, डालटनगंज पलामू झारखंड

सारांश

भारत की विदेश नीति मूल रूप से दुनिया के सभी देशों के बीच शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व, मित्रता और सहयोग के सिद्धांतों पर आधारित है, चाहे उनकी राजनीतिक व्यवस्था कुछ भी हो। हाल की सरकार भारत के कूटनीतिक पदचिह्न का विस्तार करने, मजबूत अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को बढ़ावा देने और पारस्परिक लाभ और प्रगति के लिए इन वैश्विक रिश्तों का उपयोग करने के लिए सक्रिय प्रयास कर रही है। भारत ने अपने निकटवर्ती पड़ोसी देशों (सार्क सदस्य राज्यों) के साथ संबंधों को प्राथमिकता देने की आवश्यकता पर जोर दिया है। उच्च आर्थिक विकास के संचयी प्रभाव, अंतर्राष्ट्रीय बाजार अर्थव्यवस्था के साथ स्थिर एकीकरण, संचार की नई तकनीकों का सफल परिचय, परमाणु हथियारों के इस्तेमाल को नियंत्रित करने के हर संभव प्रयास और राष्ट्रीय रक्षा रणनीतियों को को सफलता पूर्वक अंतरराष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित करना वर्तमान सरकार की सर्वोच्च प्राथमिकताओं मे से एक है।भारत की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति पिछले एक दशक में मौलिक रूप से बदल गई है। घरेलू राजनीतिक क्षेत्र में, भारत के नेता अपने देश को एक वैश्विक नीति निर्धारक के रूप में देखते हैं। भारत की तस्वीर एक पिछड़े देश से निरंतर विकासशील देश के रूप मे बदल गई है जिसमें वैश्विक आर्थिक असमानता को विदेश नीति निर्धारण के जरिए कम करने के सामूहिक प्रयास हो रहे हैं। भारत एशिया में एक उभरती हुई शक्ति है और इसे अंतरराज्यीय पदानुक्रम में अपने उचित स्थान की मांग करने की आवश्यकता है। भारत की नीति ने ऐतिहासिक और सांस्कृतिक समानता के एक केंद्रीय धुरी के चारों ओर, सामूहिक रूप से होमोकैट्रिक सर्कल को व्यापक रूप से पड़ोस की अवधारणा माना है। आज, अंतर्राष्ट्रीय व्यापारों में, प्रभावी व्यापार और निवेश के लिए, और लगातार घरेलू प्रगति प्राप्त करने के लिए दूरदर्शीऔर रणनीतिक विदेश नीति महत्वपूर्ण है।

मूल शब्दः भारतीय विदेश नीति, सार्क, डब्ल्यूएचओ

परिचय

प्रत्येक देश की अपनी संस्कृति अन्य देशों से काफी भिन्न हो सकती है। कानून और व्यवस्था, नीति, और एक देश का अर्थशास्त्र सब कुछ अन्य देशों से भिन्न होता है।ये प्रत्येक देश और राष्ट्र के लोगों के लिए एक देश से दूसरे देश में व्यापार करने या अन्य संबंधों को मुश्किल बना देते हैं।प्रत्येक राष्ट्र को अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में उसके राष्ट्रीय हित के लक्ष्यों को सुरक्षित करने का अधिकार और शक्ति है। अपने लोगों की जरूरतों को पूरा करना उसका परम कर्तव्य है। प्रत्येक राष्ट्र गतिविधि के सभी क्षेत्रों में आत्मनिर्भर होना चाहता है। आपस में अंतरराष्ट्रीय संबंधों को बनाए रखने के लिए, वे अपनी स्वयं की विदेश नीति को दुनिया में अपने स्वयं के और अपने अन्य देशों की आवश्यकताओं से निपटने के लिए तैयार करते हैं। विदेश नीति को सिद्धांतों, फैसलों और साधनों के एक समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसे राष्ट्र द्वारा अंतरराष्ट्रीय संबंधों में राष्ट्रीय हित के अपने लक्ष्यों को हासिल करने के लिए अपनाया जा सकता है। इसलिए, विदेश नीति सिद्धांतों, नीतियों और निर्णयों का एक समूह है जिसे अंतरराष्ट्रीय संबंधों में राष्ट्र द्वारा अपनाया जाता है।

एक विदेश नीति को देश की क्षेत्रीय अखंडता की रक्षा करनी चाहिए और देश के भीतर और बाहर दोनों देशों में अपने नागरिकों के हितों की रक्षा करनी चाहिए। राष्ट्र समुदायों के बीच भारतीय विदेश नीति को भारत की अंतरिम सरकार द्वारा 2 सितंबर 1946 को शुरू किया गया था। इस समय केवल सात भारतीय राजनयिक विदेश में सेवा कर रहे थे। स्वतंत्रता के बाद मार्च 1949 में विदेश मंत्रालय को अंतिम रूप दिया गया था और उसके बाद भारतीय विदेश नीति के कार्यान्वयन की सारी जिम्मेदारी इसको दी गई और इसके माध्यम से भारतीय विदेश नीति कार्यान्वित होती रही। भारत के संविधान के अनुसार, भारत की विदेश नीति के संचालन की जिम्मेदारी भारत के राष्ट्रपति, विदेश मंत्री और अंततः प्रधान मंत्री और मंत्रिमंडल के पास होती है, जो विदेश नीति के सिद्धांत और अनुप्रयोग के लिए जिम्मेदार हैं। विदेश मंत्रालय के अधिकारियों द्वारा उपलब्ध आंकड़ों का विश्लेषण और मूल्यांकन किया जाता रहा है और विशिष्ट उपायों की सिफारिश करने के लिए आवश्यक और महत्वपूर्ण जानकारी निरंतर प्रदान की जाती रही है। मूल रूप से प्रधानमंत्री भारतीय विदेश नीति के सबसे महत्वपूर्ण निर्णय निर्माता और कार्यान्वयनकर्ता हैं। भारत के प्रत्येक प्रधानमंत्री ने अपने पड़ोसियों को

महत्व दिया है क्योंकि भारतीय सुरक्षा हित इसमें शामिल हैं। इसके अलावा एक भूराजनीतिक इकाई के रूप में दक्षिण एशिया महत्वपूर्ण इकाई है और इसमें राज्यों की साझी विरासत, सांस्कृतिक संबंध और आम समस्याएं हैं। इसलिए, भारत के द्वि-पार्श्व और बहु-पार्श्व संबंधों में वहाँ सहभागिता ने प्रमुख स्थान प्राप्त किया।

भारतीय विदेश नीति को छह व्यापक चरणों में विभाजित करके समझा जा सकता है:

भारत की विदेश नीति के मुख्य सिद्धांतों को राज्य की पूर्ण स्वतंत्रता सुनिश्चित करने, उसकी सुरक्षा को मजबूत करने और उसके और पड़ोसी राज्यों के बीच शांति को आगे बढ़ाने के लिए निर्देशित किया जाता है। इसमें व्यापार, कूटनीति, प्रतिबंधों, सैन्य / रक्षा, खुफिया, विदेशी सहायता और वैश्विक पर्यावरण

नीति शामिल रहते हैं। व्यापार नीति अन्य देशों के साथ बातचीत और देशों के बीच वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह को आसान बनाने का तरीका है। भारत के विदेशी संबंधों या विदेश मामलों की नीति में राज्य द्वारा अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा करने और अपने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के दायरे में लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए राज्य द्वारा चुनी गई स्व-हित रणनीतियां शामिल हैं।भारतीय विदेश नीति के तीन भाग हैं: आर्थिक भाग, राजनीतिक भाग, और सुरक्षा, या सैन्य, भाग।

पहला चरण (1947-62): आशावादी गुटनिरपेक्षता

इस अवधि को एक द्विध्रुवीय दुनिया की स्थापना के साथ संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के नेतृत्व वाले दो गुटों के युग के रूप मे जाना जाता है।इस चरण में भारत के उद्देश्य अपनी संप्रभुता के कमजोर पड़ने से रोकने, अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण और देश की अखंडता को मजबूत करने के थे। किसी भी गुट मे शामिल होना भारत ने स्वीकार नहीं किया।इस प्रकार, भारत के लिए एक अधिक न्यायसंगत विश्व व्यवस्था की तलाश में एशिया और अफ्रीका का नेतृत्व करना स्वाभाविक था। इसी नीति का अनुसरण करते हुए भारत ने गुटनिरपेक्ष आंदोलन (छाड) (1961) की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसने तीसरी दुनिया के देशों की एकजुटता की प्रबल संभावनाओं को दुनिया के सामने मजबूती से रखा।हालांकि, चीन के साथ 1962 के संघर्ष ने इन संभावनाओं पर गहरी चोट पहुंचाई। बल्कि एक तरह से भारत के गुटनिरपेक्ष आंदोलन के माध्यम से शांति प्रयासों को भी काफी नुकसान पहुंचा।

दूसरा चरण (1962-71): यथार्थवाद और रिकवरी का दशक

1962 के युद्ध के बाद, भारत ने सुरक्षा और राजनीतिक चुनौतियों पर व्यावहारिक विकल्प अपनाए। हालांकि, भारत को अमेरिका और ब्रिटेन से भी कश्मीर (ताशकंद समझौते 1965) पर बाहरी दबावों का सामना करना पड़ा। ताशकंद समझौते के माध्यम से भारत और पाकिस्तान दोनों राजनयिक संबंधों को बहाल करने के लिए सभी सशस्त्र बलों को युद्ध-पूर्व स्थितियों में वापस लेने पर सहमत हुए; और आर्थिक, शरणार्थी, और अन्य सवालों पर चर्चा करने के लिए भी राजी हुए। हालांकि, इस समझौते में कश्मीर में पाकिस्तान की आक्रामकता समाप्त होगी, ऐसा कोई समझौता या कोई संधि-युद्ध संधि नहीं हुई। चूंकि पाकिस्तान अमेरिका का सहयोगी था, इसलिए, भारत ने अब सोवियत संघ की ओर अपना झुकाव करना शुरू कर दिया।

तीसरा चरण (1971-91): ग्रेटर इंडियन रीजनल एश्योरेंस

भारत ने 1971 में भारत-पाकिस्तान युद्ध में बांग्लादेश को आजाद कराने के दौरान कठोर शक्ति का उल्लेखनीय उपयोग किया। यह इंदिरा गांधी का प्रध ानमंत्रित्व काल था।हालांकि, यह अमेरिका-चीन-पाकिस्तान धुरी के रूप में विशेष रूप से जटिल चरण था जो उस समय अस्तित्व में था और भारत की क्षेत्रीय शक्ति की संभावनाओं के लिए गंभीर रूप से खतरा बना रहा। 1974 में एक शांतिपूर्ण परमाणु विस्फोट परीक्षण आयोजित करने के बाद भारत को अमेरिका और इसके सहयोगियों से प्रतिबंधों का सामना करना पड़ा। इसके अलावा, भारत के करीबी सहयोगी सोवियत संघ के विघटन और 1991 में आर्थिक संकट ने भारत को फिर से घरेलू और विदेश नीति दोनों पूर्वसिद्धांतों पर पुनर्विचार के लिए मजबूर किया। खाड़ी युद्ध (1991-1992) के रूप में विविध घटनाओं का संयोजन, सोवियत संघ(1991) का टूटना, लंबे समय तक आर्थिक मंदी और घरेलू अशांति 1991 में एक साथ आए, जिससे भारत में संकट की स्थिति बनी। इससे भारतीय विदेश नीति मे अस्थिरता का दौर आया।

चौथा चरण (1991-98): सुरक्षा संबंधी सामरिक स्वायत्तता

एकध्रुवीय विश्व (अमेरिका के नेतृत्व में) के उद्भव ने भारत को विश्व मामलों के लिए अपना दृष्टिकोण बदलने के लिए प्रेरित किया। भारत द्वारा रणनीतिक स्वायत्तता बरकरार रखने के लिए विभिन्न प्रयास किए गए। विशेष रूप से अपने परमाणु हथियार विकल्प (पोखरण प्प 1998) भारत की रक्षा नीति मजबूत करने पर केंद्रित थी। यह एक ऐसा दौर था जहां भारत अमेरिका, इजरायल और आसियान देशों तक और अधिक गहनता से जुड़ने में सफल रहा।

पांचवां चरण (1998-2013): भारत -एक संतुलन शक्ति

इस अवधि में, भारत ने धीरे-धीरे एक संतुलन शक्ति (चीन के उदय के खिलाफ) की विशेषताओं का अधिग्रहण किया। यह भारत-अमेरिका परमाणु समझौते में परिलक्षित होता है,जो इस अवधि मे हुआ था। उसी समय, भारत जलवायु परिवर्तन और व्यापार के मामले में चीन के साथ सामान्य संबंध की ओर बढ़ा और ब्रिक्स को एक प्रमुख वैश्विक मंच में मजबूती प्रदान करने मे मदद करने के दौरान रूस के साथ और संबंधों को मजबूत कर सका।

छठा चरण (2013-अब तक): ऊर्जावान गठबंधन का दौर

संक्रमणकालीन भू-राजनीति के इस चरण में, भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति बहु संरेखण में बदल गई। इसके अलावा, भारत अब अपनी क्षमताओं और दुनिया की उन अपेक्षाओं के बारे में अधिक जागरूक है जो उसकी अपनी है। अब भारत दुनिया की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। वैश्विक प्रौद्योगिकी को बनाने और बरकरार रखने में भारत के प्रतिभावान लोगों की प्रासंगिकता भी विश्वव्यापी स्तर पर समय के साथ बढ़ने की संभावना है। प्रमुख वैश्विक वार्ताओं (जैसे जलवायु परिवर्तन पर पेरिस में सम्मेलन) को आकार देने के लिए भारत की इच्छा भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। भारत हिंद महासागर क्षेत्र (सागर पहल) और विस्तारित पड़ोस (अधिनियम पूर्व नीति और विचार पश्चिम नीति) के प्रति अपने दृष्टिकोण के माध्यम से दक्षिण एशिया में खुद को मुखर करने में सक्षम रहा है।

उपनिवेशवाद विरोध और गुटनिरपेक्षता भारत की विदेश नीति के प्रमुख स्तंभ बन गए। नियमित रूप से, भारत सार्क का एक हिस्सा है। भारत ने संयुक्त राष्ट्र के कई शांति अभियानों में भाग लिया है, और जून 2020 तक, पांचवां सबसे बड़ा सैन्य योगदानकर्ता है। भारत वर्तमान में अन्य जी 4 राष्ट्रों के साथ संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में एक स्थायी सीट की मांग कर रहा है। भारत वैश्विक मामलों में बहुत अधिक प्रभाव डालता है और इसे एक उभरती हुई महाशक्ति के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

नेहरू काल

जवाहरलाल नेहरू, जिनके पास अपनी विश्वव्यापी यात्राओं और संपर्कों के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय स्थिति का विशाल अनुभव था, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सर्वमान्य नेता बन गए अंतरिम सरकार के प्रधानमंत्री चुने गए।स्वतंत्रता के पश्चात और फिर बाद के वर्षों मे भी भारत की विदेश नीति को आकार देने में उनकी बुद्धिमत्ता और अनुभवों का योगदान था और इसलिए उन्हें भारतीय विदेश नीति का वास्तुकार कहा जाता है। सार्क के बीज भारतीय विदेश नीति के उद्देश्यों में देखे जा सकते हैं, जिन्हें वास्तविकता में जवाहरलाल नेहरू द्वारा लागू किया गया था। उन्होंने एशियाई और अफ्रीकी राज्यों को प्राथमिकता दी और उनके साथ सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित करने के लिए गुटनिरपेक्ष नीति का उपयोग किया।उन्होंने भारत, अफ्रीकी और एशियाई राज्यों को द्विध्रुवीयता से अलग रखने की कोशिश की जो तत्कालीन विश्व की वास्तविकता थी। पूरा संसार दो गुटों मे बंटता जा रहा था। उन्होंने उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, नस्लवाद का विरोध किया और अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा का समर्थन किया और एशियाई राज्यों के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित करने के लिए श्पंचशीलश् को लागू किया। नेहरू ने नेपाल

, भूटान और सिक्किम के साथ संधि की और इन राज्यों को द्विपक्षीय संधि के जरिए उनकी सुरक्षा के लिए भारत के हर संभव सहयोग का आश्वासन दिया। भारत ने श्री लंका को इस हद तक प्रभावित किया कि श्रीलंका गुटनिरपेक्ष आंदोलन के महत्वपूर्ण राज्य में से एक बन गया और इसे विकसित और विस्तारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नेहरू ने चीन के साथ श्पंचशील संधिश् की। नेहरू ने अपने पड़ोसी राज्यों यानी पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, सिक्किम और श्री लंका के साथ भारत के संबंध स्थापित किए थे। उस समय मालदीव एक उपनिवेश था। नेहरू ने प्रधान मंत्री और विदेश मंत्री के रूप में कार्य किया; उन्होंने अपने सलाहकारों के साथ परामर्श करने के बाद सभी प्रमुख विदेश नीति के फैसले खुद किए और फिर भारतीय विदेश सेवा के वरिष्ठ सदस्यों को अंतर्राष्ट्रीय मामलों का संचालन सौंपा। वह पंचशील के मुख्य संस्थापक थे।

(शांतिप्रियता) पंचशील के पाँच सिद्धांतः-

1. शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व 2.एक दूसरे की क्षेत्रीय अखंडता और संप्रभुता के लिए पारस्परिक सम्मान 3.पारस्परिक अनाक्रामकता(हमला न करना) 4. पारस्परिक हस्तक्षेप न करना 5..समानता और पारस्परिक लाभ पूर्ण संबंध

नेहरू जी को उनके कार्यकाल के दौरान तत्काल पड़ोसी पाकिस्तान और बाद में चीन के साथ अशांत संबंधों का सामना करना पंड़ा। वह राष्ट्र के कॉमन-वेल्थ में ब्रिटिश कॉमन वेल्थ ऑफ नेशंस के पुनर्गठन, गुटनिरपेक्ष आंदोलन की स्थापना और विस्तार, राष्ट्र के समुदाय में इंडो अरब ब्लॉक के हितों की रक्षा और उनके माध्यम से गहन शांति और सुरक्षा स्थापित करने में अपने प्रयासों के प्रतिसमर्पित रहे।। संयुक्त राष्ट्र और अन्य अंतरराष्ट्रीय संगठनों में भी भारत को प्रतिष्ठा दिलाने मे उनका योगदान रहा।इसके अलावा, भारतीय पारंपरिक समाज को

समाजवादी पैटर्न में पुनर्गठन करने और गरीब, पिछड़े, कमजोर और विशुद्ध रूप से कृषिप्रथान राज्य को अंतरराष्ट्रीय समुदाय के बीच मजबूत, विकासशील औद्योगिक और महत्वपूर्ण राज्य के रूप मे परिवर्तित करने में उनकी भागीदारी थी।उन्होंने इस विकास यात्रा का नेतृत्व किया और औद्योगिक, विकसित, कृषि रूप से आत्मनिर्भर, वैज्ञानिक और तकनीकी रूप से अग्रिम और परमाणु हथियार राज्य की नींव रखने में अद्वितीय बौद्धिक क्षमता का प्रदर्शन किया, इसलिए उन्हें आधुनिक भारत का वास्तुकार कहा जाता है। उन्होंने शायद दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय संगठन की स्थापना के

लिए कोई पहल नहीं की, लेकिन उनके बीच घनिष्ठ संबंध बनाने के उनके काम ने अंततः सार्क के गठन का मार्ग प्रशस्त किया। नेहरू ने स्टेट्समैनशिप और कूटनीतिक कौशल के माध्यम से विश्व मे ऊंचा दर्जा हासिल किया। उन्होंने क्षेत्रीय संगठनों की तुलना में अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को अधिक महत्व दिया और इसलिए संयुक्त राष्ट्र के सदस्य, राष्ट्रों के राष्ट्रमंडल के सदस्य के रूप में वे एक ष्तीसरी दुनियाष् के नेता के रूप में अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिएअवसर की खोज मे रहे। लेकिन पड़ोसी देश पाकिस्तान के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित करने के लिए उनके सभी प्रयास विफल रहे।1962 में कम्युनिस्ट चीन के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने के उनके ष्पंचशीलष् प्रयासों की असफलता और पाकिस्तान तथा चीन के साथ अव्यावहारिक और भावुकतापूर्ण संबधों ने भारतीय विदेश नीति को दूरगामी आघात पहुंचाया जिसका खामियाजा आज तक भारत को उठाना पड़ रहा है।इन दो आघातों(पाकिस्तान और चीन के साथ विदेश नीति की असफलता) ने राष्ट्रों के समुदाय में उनकी और भारत की छवि को धूमिल कर दिया। इससे उन्हें व्यक्तिगत आघात भी पहुंचा और इन दबावों के कारण 1964 में उनकी मृत्यु हो गई।

सार्क

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ

सार्क या दक्षेस दक्षिण एशिया के राष्ट्रों का भू राजनीतिक और क्षेत्रीय अंतर सरकारी संगठन है।

। इसके सदस्य राज्य हैं;----

अफगानिस्तान, बांग्लादेश, भूटान, भारत, मालदीव, नेपाल, पाकिस्तान तथा श्री लंका सार्क में सन् 2019 तक दुनिया के 3% क्षेत्र, दुनिया की 21% आबादी और वैश्विक अर्थव्यवस्था का 4.21% शामिल है। 1985 में स्थापित, सार्क कृषि, ग्रामीण विकास, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, संस्कृति, स्वास्थ्य में सहयोग को प्रोत्साहित करता है।, जनसंख्या नियंत्रण, मादक पदार्थ नियंत्रण और आतंकवाद विरोधी गतिविधियों के खिलाफ काम करने को प्रतिबद्ध है। यह संगठन आर्थिक और क्षेत्रीय एकीकरण को बढ़ावा देता है।

द्वितीय विश्व युद्ध के अंत के बाद, केवल दो महाशक्तियों के इर्द गिर्द विश्व राजनीति सिमट गई -अमेरिका और सोवियत संघ।इसके साथ साथ सोवियत संघ विश्व राजनीति के क्षितिज पर बहुत अधिक दबाव में आ गया।भूमि के विशाल भू-भाग पर सोवियत संघ द्वारा साम्यवाद का प्रसार, एटम बम बनाने में इसकी तेजी और वैश्विक गठबंधन की शक्तियों को तोड़ना और अपना स्वयं का पावर ब्लॉक स्थापित करना, साथ ही विश्व राजनीति पर वर्चस्व के लिए अमेरिका को चुनौती देना -सोवियत संघ के प्रमुख वैश्विक क्रियाकलाप रहे। इस कारण अमेरिका ने श्नियंत्रणश् की नीति को अपनाया और साम्यवाद को सीमित क्षेत्र में रखने की रणनीति अपनाई। भारत ने गुटनिरपेक्ष नीति 'को अपनाया, लेकिन साथ ही भारत दोनों महाशक्तियों के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित करना चाहता था। ये महाशक्तियां गुटनिरपेक्षता की नीति को ठीक से नहीं समझ पाई थीं। नेहरू ने गुटनिरपेक्षता के अर्थ के बारे में भ्रम को दूर करने का

हर संभव प्रयास किया। अमेरिका और रूस को भारत की गुटनिरपेक्ष नीति पर संदेह था और इसलिए उन्होंने खुद को भारत से दूर रखा। इसने भारत की विदेश नीति को जटिल बना दिया, जिसे आसानी से नहीं समझा जा सकता था। नतीजा यह हुआ कि एशिया विश्व राजनीति में एक तनावपूर्ण स्थान बन गया।

शांतिपूर्ण विश्व को बनाए रखने में संयुक्त राष्ट्र की विफलता -

दो या दो से अधिक राज्यों के बीच विवाद को हल करने के लिए संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद के प्रावधान का समय-समय पर उपयोग किया गया था ताकि अंतरिम समस्या को हल किया जा सके लेकिन बिना किसी सफलता के अनेक विवादअनसुलझे ही रहे। जिन विवादों के समाधान के लिए यूएन की सुरक्षा परिषद को स्थापित किया गया था, वह अंतरराष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण हल अधिकांश मामलों में नहीं निकाल पाया। ईरान विवाद, इंडोनेशियाई विवाद, ग्रीक प्रश्न, कश्मीर प्रश्न, कोरियाई प्रश्न, स्वेज नहर प्रश्न, हंगेरियन प्रश्न, कांगो प्रश्न, साइप्रस प्रश्न और कई ऐसे विवाद अनसुलझे ही रहे। विश्व की दीर्घकालिक शांति और सुरक्षा स्थापित करने की दिशा में संयुक्त राष्ट्र का योगदान बहुत उल्लेखनीय है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

सदस्य राज्यों ने संयुक्त राष्ट्र के ढांचे और चार्टर की कमियों का एहसास किया जो विवादों को हल करने के लिए अप्रभावी थे इसलिए शांति बनाए रखने के काम में बाधा आती रही है।

दक्षिण एशिया में भारत की स्थिति

भारत महान विरासत का देश है। यह प्राकृतिक वनस्पतियों और जीव-जंतु संसाधनों के साथ सबसे समृद्ध है और तीन हजार साल की निरंतरता के साथ दुनिया में सदियों पुरानी सभ्यता का भी घर है। प्राचीन भारत का धन, शक्ति और ज्ञान अकल्पनीय है और मानव जीवन की सबसे बड़ी समस्याओं के लिए उनके समाधान व्यावहारिक हैं। भारत सभी मामलों में एक अत्यधिक विविधता वाला देश है। दक्षिण एशिया यानी भारतीय उप महाद्वीप में उन राज्यों की संख्या है, जो भू-राजनैतिक रूप से एकजुट हैं, श्इंडियन प्लेटश और उस पर विकसित संस्कृति। ये सार्क के गठन का मूल कारण हैं। भारत केंद्रीय रूप से मजबूत राज्य है और क्षेत्र के वैज्ञानिक और तकनीकी और औद्योगिक रूप से सबसे उन्नत राज्य है। इसलिए उसकी नीति सार्क या दक्षेस का नेतृत्व करती है। श्पंचशील ष्पड़ोसी राज्यों के साथ संबंध स्थापित करने का एक आधार है, भारत ने पाकिस्तान के साथ संबंधों में भी इसका इस्तेमाल किया था लेकिन पाकिस्तान ने कभी भी इसका अनुकूल

जवाब नहीं दिया। भारत, नेपाल, श्रीलंका, बांग्लादेश, भूटान और पाकिस्तान निकट संबंध रखते हैं, इस संबंध को अपने विकास के लिए और उपयोग किया जाना है।यह केवल क्षेत्रीय संगठन में समूहीकरण द्वारा हासिल किया जा सकता है। भारतीय उपमहाद्वीप में भारत केंद्रित है और उसके पड़ोसी राज्य इसकी परिधि पर स्थित हैं। भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल और भूटान की लगभग एक जैसी पारंपरिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है, वे एक जैसी जलवायु व पर्यावरण के माध्यम से भी एक-दूसरे के साथ बंधे हैं और हिमालय और हिंद महासागर की प्राकृतिक सीमाओं के साथ जुड़े हुए हैं।परमाणु, अंतरिक्ष, इलेक्ट्रॉनिक्स सॉफ्टवेयर, समुद्र विज्ञान, कंप्यूटर, मिसाइल और वितरण प्रौद्योगिकी और किसी भी क्षेत्र में किसी भी वस्तु के बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए उपलब्ध इन्फ्रा-स्ट्रक्चर के क्षेत्र में वैज्ञानिक प्रगति और तकनीकी विकास ने भारत की स्थिति को दक्षिण एशिया में विशिष्ट बना दिया है। इस वास्तविकता ने भारत के पड़ोसियों को सभी मामलों में भारतीयों से भयभीत भी कर दिया है। कूटनीति और विदेश नीति में भारत ने विश्व राजनीति में सभी

दक्षिण एशियाई देशों को पीछे छोड़ दिया है। भारत को गुटनिरपेक्ष आंदोलन के ष्प्रकाश और प्रेरणा के रूप में माना जाता है; भारत स्थायी सुरक्षा परिषद सीट के आकांक्षी में से एक है।ये अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में भारत के भविष्य की स्थिति के संकेतक हैं। यूएन ओ ने घोषणा भी की है कि भारत - एशिया की एक महाशक्ति है। दक्षेस एशिया में 46,903,000 वर्ग किमी क्षेत्र को कवर करता है। इस कुल क्षेत्रफल में से भारत का कुल क्षेत्रफल 32,880,000 वर्ग किमी है। यदि यह वर्ग किमी भारत का क्षेत्र सार्क से हटा दिया जाता है, तो शेष छह राज्य 13,023,000 वर्ग किमी का क्षेत्रफल है। यदि यह तुलनात्मक रूप से अध्ययन किया जाए तो भारत दक्षेस के 72% क्षेत्र को कवर करता है और इसलिए भारत सार्क की भू-राजनीति में प्रमुख है। भारत अन्य सभी राज्यों पर हावी है क्योंकि यह एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है और इसकी अंतरात्मा मे धर्मनिरपेक्षता है। इस्लाम, सिख धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म और ईसाई धर्म हिंदू धर्म के साथ-साथ समृद्ध हुए।

दक्षेस और भारतीय नेतृत्व का कार्य

सार्क की कार्यप्रणाली का अध्ययन अपनी विभिन्न एजेंसियों के माध्यम से किया जाता है, क्योंकि ये एजेंसियां निर्णय लेने वाली एजेंसी के उच्चतम स्तर पर किए गए निर्णयों को श्शिखर सम्मेलनश कहती हैं। शिखर सम्मेलन हर साल में एक बार आयोजित किया जाता है ताकि वास्तविकता में पिछले साल के निर्णय के कार्यान्वयन की समीक्षा की जा सके और इसकी सफलता या समस्याओं का विस्तार से पता लगाया जा सके और योजनाओं और कार्यक्रमों को मुख्य रूप से सिद्धांतों और उद्देश्यों को महत्व देते हुए समस्याओं के समाधान का पता लगाया जा सके। शिखर सम्मेलन द्वारा निर्धारित सिद्धांतों और उद्देश्यों को मंत्रियों की परिषद के तहत विभिन्न एजेंसियों के माध्यम से निर्धारित किया जाता है जो शिखर सम्मेलन के बाद निर्णय लेने के लिए स्थायी निकाय के रूप में कार्य करता है। स्थायी समिति, प्रोग्रामिंग समिति, तकनीकी समिति और कार्रवाई समिति मंत्री परिषद द्वारा लिए गए निर्णयों से अपनी समितियों से संबंधित विवरण लेती हैं। भारत सार्क के मौसम विभाग का समन्वयक है। भारतीय मौसम विज्ञान विभाग / संस्थानों द्वारा प्राप्त विशेषज्ञता का उपयोग सार्क क्षेत्र की विकास योजनाओं में किया जाता है। कुछ सदस्य राज्यों में मौसम विज्ञान अध्ययन केंद्र स्थापित करने में भारत के योगदान के कारण इस क्षेत्र में बहुत प्रगति हुई है। भारतीय ज्ञान का उपयोग सभी सदस्य राज्यों के लाभ के लिए किया जाता है। भारत ने सार्क द्वारा इसके लिए जिम्मेदारियों को सफलतापूर्वक निभाया। भारत इस संबंध में प्रमुख सदस्य है और इसलिए मौसम संरचना, तकनीकी जानकारी, वित्त, प्रशासन, प्रशिक्षण आदि के लिए मौसम विभाग में नेतृत्व भारत करता रहा है। 1979 में सार्क में मौसम विज्ञान को प्रमुखता दी गई थी, भारत ने क्षेत्रीय मौसम विज्ञान केंद्र की स्थापना का प्रस्ताव रखा और इसकी स्थापना के लिए + 11.6 मिलियन देने पर सहमति व्यक्त की। श उसी वर्ष बांग्लादेश ने भवन की पेशकश की जिसका उपयोग क्षेत्रीय मौसम विज्ञान केंद्र के लिए किया जाता है। इस कदम पर जब सार्क अस्तित्व में आया और भारत ने मौसम क्षेत्र का काम संभाला, तो इसने मौसम विज्ञान पर एक तकनीकी समिति की बैठक का गठन किया। मौसम विज्ञान पर पहली तकनीकी समिति 1984 में आयोजित की गई थी और तब से मौसम विज्ञान क्षेत्र में सार्क के उद्देश्य को पूरा करने के लिए तकनीकी समितियों की कई बैठकें आयोजित की गई। मौसम विज्ञान पर तकनीकी समिति संगोष्ठियों के आयोजन में शामिल रही है, संयुक्त इंटर जैसे क्षेत्रों में कार्यशालाएं - बैरोमीटर, मौसम विज्ञान, उपकरण, कृषि मौसम विज्ञान, संख्यात्मक मौसम भविष्यवाणी, फसल-मौसम संबंध

और फसल उपज पूर्वानुमान, लंबी दूरी के मौसम पूर्वानुमान, रडार मौसम विज्ञान। आदि ' मौसम संबंधी टेली-संचार, प्रबंधन और राष्ट्रीय डेटा केंद्रों की स्थापना, मानसून का पूर्वानुमान आदि पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए गए हैं। पश्चिमी विक्षोभ, उष्णकटिबंधीय चक्रवातों की रिपोर्ट जिनमें पुनरावृत्ति की भविष्यवाणी, आंधी तूफान, मानसूनी वर्षा का लंबा पूर्वानुमान, लघु मॉनसून और उत्तर-पश्चिमी बवंडर और बूंदाबांदी आदि की भविष्यवाणी पूरी हो चुकी है। एग्रो - मौसम विज्ञान जैसे विशेष क्षेत्रों पर विशेषज्ञ पैनल बुलाए गए हैं।क्लाइमेटोलॉजी और डेटा एक्सचेंज; और इंस्ट्रूमेंटेशन के क्षेत्र मे विशेषज्ञता के साथ काम हो रहा है।

जिस उत्साह के साथ सार्क की स्थापना उसके सदस्य राज्यों ने की थी, वह धीरे-धीरे और लगातार कम होता जा रहा है। सार्क भी एक इंटरनेशन बनने जा रहा है।ऐसा संगठन, जो सदस्य राज्यों के लिए एक मंच के रूप में अपनी विदेश नीति का प्रचार और उनके द्वारा किए गए कार्य को सफलतापूर्वक पूरा करने में उनके योगदान का प्रचार करने के लिए काम करता है।

भारतीय विदेश नीति पर सार्क का प्रभाव

भारतीय विदेश नीति पर सार्क के प्रभाव का विश्लेषणात्मक, सैद्धांतिक और व्यवहारिक रूप से अध्ययन किया जाता है और फिर निष्कर्ष निकाले जाते हैं; वे निम्नलिखित उप अध्यायों में व्यक्त किए गए हैं:

दक्षिण एशियाई क्षेत्र भू-राजनीतिक रूप से एक क्षेत्र है; भौगोलिक रूप से भारतीय उपमहाद्वीप के रूप में जाना जाता है। इसमें कई संप्रभु राज्य स्थित हैं। भारतीय उप-महाद्वीप भारत से ब्रिटिश सत्ता के जाने के बाद, पाकिस्तान और श्रीलंका स्वतंत्र हो गए। नेपाल और भूटान संप्रभु और स्वतंत्र राज्य थे। मालदीव द्वीप हिंद महासागर में स्थित थे। 1971 में पूर्वी पाकिस्तान स्वतंत्र और संप्रभु बांग्लादेश बन गया। सात राज्य दक्षिण एशियाई क्षेत्र के प्रमुख घटक हैं। प्रत्येक की राजनीतिक प्रणाली दूसरों से अलग होती है। सात राज्यों में अलग-अलग राजनीतिक विचारधारा, राजनीतिक संस्थान, सरकारी मशीनरी, विभिन्न भाषाएं और संस्कृतियां हैं। फिर भी वे भारतीय उप-महाद्वीप के विषय थे। भौगोलिक रूप से दक्षेस के सदस्य राष्ट्रीय सीमाओं से विभाजित एक क्षेत्र से संबंधित हैं, लेकिन प्राकृतिक रूप से वायुमंडलीय परिस्थितियों और इस क्षेत्र की प्राकृतिक घटनाओं मे लगभग समानता रहती है।सिंधु, ब्रह्मपुत्र, गंडक आदि नेपाली, भूटानी और भारतीय लोग एक दूसरे के साथ सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक संबंध साझा करते हैं।

विधानमंडल पर प्रभाव

भारत एक संघीय राज्य है। केंद्र सरकार अपने विदेश मंत्रालय और प्रधानमंत्री और विदेश मंत्री द्वारा नियंत्रित विभिन्न विदेशी एजेंसियों के माध्यम से सार्क के साथ संबंध रखती हैं। सनाद सार्क में भारत की भागीदारी को नियंत्रित करता है। सार्क से संबंधित लोक सभा और राज्यसभा में प्रस्तुत विधायिका पर दोनों सदनों की संबंधित समितियों में गहन और विश्लेषणात्मक रूप से चर्चा की जाती है और उसके बाद ही संबंधित समिति द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर निर्णय लिया जाता है।

कार्यपालिका पर प्रभाव:----भारत की कार्यपालिका ने पड़ोसी राज्यों के साथ द्विपक्षीय संबंध स्थापित किए और स्वस्थ और मैत्रीपूर्ण संबंध बनाने के लिए उनके साथ सहयोग करने का हमेशा प्रयास किया है। सार्क द्वारा की गई प्रगति और विकास ने सदस्य राज्यों को एक-दूसरे के करीब ला दिया, जिसके परिणामस्वरूप उनके बीच सौहार्दपूर्ण संबंध कायम हुआ। कार्यपालिकाके प्रमुख (प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद) तथा अन्य अधिकारियों द्वारा सार्क के प्रभाव का विश्लेषण, समस्याग्रस्त प्रश्नों पर कार्यान्वयन के काम किए जाते हैं

प्रशासन पर प्रभाव:

सार्क की स्थापना और उसके बाद इसकी वृद्धि और विकास मे ं भारत के केंद्रीय प्रशासन का बहुत ही सौहार्दपूर्ण योगदान व संबंध रहा है। भारतीय प्रशासन को सार्क के विभिन्न क्षेत्रों में सार्क की विभिन्न एजेंसियों के साथ सहयोग करने के लिए कहा गया। इससे उन्हें अपने कौशल और प्रशासनिक क्षमताओं को पूरी तरह से श्रम शक्ति के साथ सहयोग करने और परिणाम प्राप्त करने का अवसर मिला है। इसलिए, सार्क के प्रभाव को निम्नानुसार बताया जाना चाहिए: - ष्सार्क ने अलग-अलग समय में और एक दूसरे के साथ कोई सामान्य स्वभाव या आत्मीयता नहीं रखने वाले लोगों के साथ अलग-अलग परिस्थितियों में अपने कौशल और क्षमता का परीक्षण करने का अवसर प्रदान किया है। नियोजित कार्यक्रमों को निष्पादित करने के लिए सदस्य राज्यों के बीच समन्वय के परिणामस्वरूप भारत का प्रशासनिक क्षेत्र भी अनुभवों से समृद्ध होता रहा है। भारत का वित्तीय योगदान अन्य छह सदस्य राज्यों के कुल योगदान से बहुत अधिक है और इसलिए वित्तीय प्रबंधन के क्षेत्र में वित्त सलाहकार अन्य सदस्य राज्यों के सलाहकारों की तुलना में भारत को अधिक सम्मान देते हैं।

अर्ध-सरकारी संगठनों पर प्रभाव:

भारत के लगभग सभी अर्ध सरकारी संगठन प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से सार्क से संबंधित हैं।भारत के लगभग सभी अर्ध सरकारी संगठन सार्क के कामकाज से प्रभावित हैं। ये संगठन अपनी योजनाओं और कार्यक्रमों को साकार करने में दक्षेस के संस्थानों के साथ सहयोग करते हैं; उदाहरण के लिए भारतीय दूरसंचार निगम सार्क सदस्य राज्यों के बीच दूरसंचार लिंक स्थापित करने में दक्षेस की संबंधित कार्य समिति के साथ सहयोग करता है। इसी तरह सार्क के अस्तित्व में आने के बाद एयर इंडिया और इंडियन एयरलाइंस पर इसका प्रभाव यात्रियों और माल परिवहन में वृद्धि से मापा जा सकता है।

गैर सरकारी संगठनों पर प्रभाव:

दक्षेस दक्षिण एशिया का एक क्षेत्रीय संगठन है जिसमें सरकारों और सदस्य राज्यों के लोगों की भागीदारी एक दूसरे की जरुरतों के अनुसार है। गैर सरकारी संगठन भारत के लोगों के संगठन हैं जो दक्षिण एशियाई समुदाय के जीवन स्तर को उन्नत करने के लिए पूर्वनिर्धारित कल्याण उद्देश्यों को प्राप्त करने में अपने प्रयासों का योगदान देते हैं। सभी गैर सरकारी संगठनों ने महसूस किया कि सरकारों के प्रयासों को गैर सरकारी संगठन द्वारा गरीबी, अशिक्षा, बीमारियों,, आवश्यक वस्तुओं की कम आपूर्ति और पीने के पानी की सुविधा, मनोरंजन, खेल और खेल सुविधाएं आदि प्रदान करने के लिए पूरक बनाया जाना है। भारतीय चिकित्सा एजुकेशन ने सार्क चिकित्सा सेवाओं की निगरानी के लिए विशेषज्ञता और तकनीकी स्टाफ प्रदान करने के लिए भारत सरकार को अपनी सेवाएं

प्रदान कीं। मलेरिया, तपेदिक और अन्य महामारियों को मिटाने के लिए इंडियन मेडिकल एसोसिएशन ने सार्क को अपनी मदद प्रदान की है। सार्क समुदाय के जीवन को खुशहाल बनाने में विभिन्न गैर-सरकारी संगठनों ने योगदान दिया है।

भारत के आम नागरिक पर प्रभाव:

भारतीय नागरिक विभिन्न राज्यों में विभाजित है और इस तरह उन पर प्रभाव अलग अलग होता है। भारतीय नागरिक मुख्य रूप से तीन क्षेत्रों में विभाजित होते हैं अर्थात् उन पर प्रभाव का अध्ययन करने के लिए निम्न मध्य और ऊपरी हिस्से मे बांटना होगा।भारतीय समाज के निचले तबके के नागरिक या तो सार्क के बारे में अनभिज्ञ हैं या सार्क के बारे में कम सूचित व्यक्ति हैं। इसके अलावा, उन्होंने सार्क और इसकी गतिविधियों के बारे में जानने मे कम रुचि ली है और इसलिए भारतीय समाज के निचले तबके पर सार्क का प्रभाव नगण्य है। भारतीय नागरिक जो समाज के मध्य वर्ग से संबंधित है, सार्क और इसकी कुछ गतिविधियों के बारे में जानता है लेकिन उसने खुद को जानकारी तक सीमित रखा है। उसे सार्क गतिविधियों का ज्ञान है लेकिन वह इसे परिभाषित या व्याख्या करने की स्थिति में नहीं है। भारतीय समाज का ऊपरी वर्ग -नागरिक और विशेष रूप से इसका वह हिस्सा जो सीधे सार्क गतिविधियों से संबंधित है;या जिसकी इसमें अकादमिक रुचि है; सार्क या एक्शन प्लान के विभिन्न अंगों की सफलता या विफलता की निगरानी करता है क्योंकि उसकी रुचि विचारधारा और धन के रूप में इसमें शामिल है। समाज का लगभग पूरा अभिजात या

ऊपरी तबका सार्क गतिविधियों में शामिल है। ये सभी लोग सदस्य देशों के लोगों को सार्क समाज में एकीकृत करने के लिए भी चिंतित है।

निष्कर्ष

आधुनिक भारत के वास्तुकार जवाहरलाल नेहरू ने भारतीय विदेश नीति की नींव रखी। वे वह व्यक्ति थे जिन्होने विदेश मंत्रालय बनाया और अंतरराष्ट्रीय समुदाय में भारत की विदेश नीति को लागू किया। स्वतंत्रता के प्रारंभिक चरण में भारत को मित्र राज्यों में दूतावासों और उच्च आयोगों की स्थापना करनी पड़ी। तेजी से विकास विदेश मंत्रालय में किया गया था।भारत ने दूतावासों और विदेश मंत्रालय विभागों में आवश्यक प्रशिक्षित जनशक्ति को शामिल करने के लिए भारतीय विदेश सेवाओं का नया कैडर बनाया।नेहरू ने सफलतापूर्वक विदेश नीति के कार्यान्वयन के लिए आवश्यक बुनियादी ढांचे का निर्माण किया और स्पष्ट किया कि भारत द्वारा अपनाए गए सिद्धांत क्या हैं।गुटनिरपेक्षता की अवधारणा जिसने राष्ट्र के समुदाय में भ्रम पैदा किया, नेहरू और उनके संबद्ध मंत्रियों और अधिकारियों द्वारा स्पष्ट किया गया था। नेहरू ने ब्रिटिश राष्ट्रमंडल को राष्ट्रों के राष्ट्रमंडल में बदल दिया, इस प्रकार उपनिवेशवाद पर भारत के रुख को स्पष्ट किया। भारत ने आपसी समझ बनाने के लिए भारत-अरब ब्लॉक, इंडो-अफ्रीका ब्लॉक बनाया। भारत ने प्राचीन पड़ोसी चीन के साथ संबंधों को पुनर्जीवित करने के लिए श्पंचशील नीतिश को अपनाया। भारत ने संयुक्त राष्ट्र द्वारा सदस्य देशों के बीच शांति, सुरक्षा और युद्ध को समाप्त करने या संघर्ष को कम करने और भाईचारे और सहयोग की भावना के साथ दुनिया को रहने लायक बनाने के लिए अपनाए गए सिद्धांतों का पालन किया।उनके बाद के प्रधानमंत्रियों ने भी क्षेत्रीय सहयोग की भावना को प्रमुखता दी।वर्तमान एनडीए सरकार जो प्रधानमंत्री मोदी के नेतृत्व मे 2014 से कार्यरत है, दक्षिण एशिया के देशों के साथ सौहार्द पूर्ण संबधों को प्राथमिकता देती रही है।प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने सार्क देशों मे जाकर संबधों को मजबूती देने के हर संभव प्रयास किए हैं।हालांकि अनेक ऐतिहासिक भूलों की वजह से पड़ोसी देशों के साथ भारत को चुनौतीपूर्ण स्थितियों का सामना करना पड़ता है।इनमें पाकिस्तान के साथ सीमा विवाद और नेपाल का हाल का सीमा विवाद प्रमुख है।पर वर्तमान सरकार की साफ्ट पावर नीति ने भारतीय वैदेशिक संबधों को नए आयाम दिए हैं। भारत की मजबूत विदेश नीति हर चुनौती का सामना करने मे सक्षम है क्योंकि दुनिया भर मे भारत की छवि शांतिप्रिय और मैत्रीपूर्ण दृष्टिकोण वाले देश की है।

संदर्भ

पुस्तक

बिजनेस टुडे
शोध पत्र
रिपोर्ट
इकोनॉमिक टाइम्स
टाइम्स ऑफ इंडिया।

भारत में कृषि श्रमिकों की प्रास्थिति

दिपेन्द्र सिंह[1]

कृषि श्रमिक वर्ग की उपधारणा का जन्म अंग्रेजों के भारत आगमन के बाद ही हुआ था, क्योंकि अंग्रेजों के भारत आगमन से पूर्व भारत में कृषि श्रमिक जैसा कोई वर्ग अस्तित्व में नहीं था। **सर थॉमस मुमरो**[2] ने 1842 में कहा था कि ''भारत में एक भी भूमिहीन मजदूर नहीं है।'' किन्तु वर्तमान में स्थिति बहुत निराशाजनक हो चुकी है क्योंकि पिछले दशक[3] में किसानों की संख्या में 8.6 लाख से अधिक की गिरावट आई है जो सम्भवतया कृषकों के औद्योगिक श्रमिक या कृषि श्रमिक बनने की ओर इंगित करता है। जिसका मुख्य कारण समय बीतने के साथ-साथ किसानों के पास जमीन का निरंतर कम होते जाना है। रिपोर्ट[4] के अनुसार 263 लाख लोग खेती सम्बन्धी कार्यों में लगे हुए है एवं इसके आधे कृषि-श्रमिक के रूप में इस क्षेत्र में जुड़े थे। भारत में कृषि - श्रमिक 92 प्रतिशत असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत है।

इन कृषि-श्रमिकों को मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है यथा -

1. **पारिवारिक कृषि श्रमिक**- इस वर्ग में वे छोटे किसान आते है जो आर्थिक दृष्टि से कमजोर होते है और मजदूरी देने में असमर्थ होते है। ये छोटे किसान बुआई, निराई व कटाई के समय में मजदूरी पर कार्य करते है। जब परिस्थितियाँ ऐसी हो कि कार्य को जल्द पूरा करना हो और श्रमिकों की अधिक संख्या में आवश्यकता हो तो ऐसे समय में पारिवारिक श्रमिक भी मजदूरी करने लगते है।
2. **मजदूरी पर काम करने वाले श्रमिक** - इसमें मजदूरों के दो उपवर्ग होते है यथा संगठित मजदूर व संलग्न श्रमिक।
   संलग्न श्रमिक कुछ समय या पूरे समय के लिए मालिकों से संविदा पर काम करते है, जबकि आकस्मिक श्रमिक जरूरत पड़ने पर काम पर आते है। आकस्मिक श्रमिक दैनिक मजदूर होते है। इनकी संविदा मालिकों के साथ मौखिक होती है। यह संविदा तिमाही, छःमाही या वार्षिक हो सकती है।
3. **बंधुआ मजदूर** -इस प्रकार के श्रमिक सबसे निचले स्तर के माने जाते है और जिनका जीवन स्तर भी बहुत दयनीय होता है ये श्रमिक मजदूर अपने कर्ज को चुकाने के लिए किसी परिवार के सदस्य या किसी मालिक के बंधक बनकर काम करते है। उसका कर्जा अदा न होने तक निरंतर श्रमिक बना रहता है।

प्रथम कृषि श्रम जाँच समिति[5]- ये वे श्रमिक होते है जो मजदूरी भुगतान के बदले फसल उगाते है। भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल इस परिभाषा को नहीं माना जा सकता क्योंकि भारतीय श्रमिकों की एक बहुत बड़ी संख्या इसमें नहीं आती है। इस परिभाषा को अपूर्ण मानते हुए समिति ने इसे पुनः परिभाषित करते हुए कहा कि उन लोगों को कृषि श्रमिक के रूप में माना जाना चाहिए जो 50 प्रतिशत या उससे अधिक दिन के लिए मजदूरी के भुगतान पर काम करते हो।

द्वितीय कृषि श्रम जाँच समिति[6] – इस समिति ने कृषि श्रमिकों का दायरा बढ़ाया और उसमें खेतों में काम करने वालों के अलावा उन लोगों को शामिल किया जो पशुपालन, डेयरी, मुर्गीपालन, सुअर-पालन आदि इस प्रकार के कार्यों में लगे हुए है।

प्रथम कृषि श्रम-जाँच समिति ने ही कृषि-श्रमिकों को दो श्रेणियों में विभाजित किया यथा-

1. **संगठित मजदूर :**-वे मजदूर जो कृषक घर से किसी लिखित या मौखिक समझौते के तहत जुड़े होते है। उनके लिये यह रोजगार स्थाई और नियमित होता है।
2. **आकस्मिक मजदूर :**- वे मजदूर जो किसी भी किसान के खेत पर काम करने के लिए स्वतंत्र होते है और उनका भुगतान आमतौर पर प्रतिदिन के हिसाब से दिया जाता है।

इस प्रकार कृषि श्रमिक वह शक्ति है जो किसी व्यक्ति की भूमि पर केवल एक श्रमिक के रूप में कार्य करता है तथा अपने श्रम या कार्य के प्रतिफल स्वरूप रूपये या फसल (अनाज) के रूप में मजदूरी प्राप्त करता है, ऐसा श्रमिक कार्य के देखरेख, संचालन या लाभ-हानि के जोखिम के प्रति उत्तरदायी नहीं रहता है और न ही उस भूमि के सम्बन्ध ऐसा श्रमिक कोई अधिकार धारण करता है।

मजदूर या श्रमिक शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है। जिससे मुख्य रूप से परिश्रम करके अथवा अपने हाथ-पांव चलाकर (शारीरिक क्रिया) अपनी आजीविका कमाने वाले व्यक्ति सम्मिलित माने जाते है। वर्कर या लेबर अंग्रेजी शब्द भी इन्हीं के समानार्थी माने जाते है। जिनका अर्थ भी काम करने वाला अथवा मेहनत करने वाले व्यक्ति के रूप में माना जाता है, मजदूर या श्रमिक शब्द में वे सभी व्यक्ति शामिल है जो खेती, दिहाड़ी पर कारखाने या किसी संगठन का मजदूर हो।

सामान्यतया कृषि-श्रमिक को भी मजदूर/श्रमिक शब्द में समाहित माना जाता है। जिन्हें विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है, यथा -सेवकियाँ (झारखण्ड), कमियाँ (बिहार), मूनिस/घरभतुआ (मानभूमि हजारीबाग) हाली /दुबला (गुजरात), सीरी या हाली (राजस्थान)

भारत एक कृषि प्रधान देश है और कृषि हमारे राष्ट्र की अर्थव्यवस्था की आधारशिला है। भारत में कृषि केवल खेती करना नहीं है, बल्कि जीवन जीने की एक कला है। कृषि पर सम्पूर्ण राष्ट्र निर्भर रहता है। यह शासन व्यवस्था की रीढ़ की हड्डी का काम करती है। कृषि से ही मानव सभ्यता का विकास सम्भव हो सका। भारत में कृषि आय राष्ट्रीय आय का 1987-88 में 30.3 प्रतिशत था जो कि 75 प्रतिशत से अधिक लोगों को रोजगार देती है। 2007 तक यह आंकड़ा 52 प्रतिशत तक पहुँच गया था। मुख्य आर्थिक गतिविधि होने के बावजूद विकसित राष्ट्र की तुलना में कृषि में शामिल उत्पादन के कारणों की उत्पादकता बहुत कम है। यह और भी अधिक चिन्तनीय है कि लोगों का पेट भरने वाले किसान को हमारे देश में हीन भावना से देखा जाता है।

कृषि श्रमिकों की संख्या वृद्धि के कारण -

1. जनसंख्या वृद्धि
2. कुटीर उद्योग, हस्तशिल्प उद्योग में मन्दी
3. ऋणग्रस्ता में वृद्धि
4. विनिमय दरों में वृद्धि
5. अलाभकारी कम्पनियों की वृद्धि
6. नशाखोरी की प्रकृति में वृद्धि

कृषि श्रमिकों की समस्याएँ :-

1. **अधिकांशत: पिछड़े वर्ग से सम्बन्धित** -भारत के अन्दर कृषि-श्रमिक विशेषत: एक पिछड़े और उपेक्षित वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। यह समाज में सर्वथा दबा-कुचला वर्ग रहा है। जिसे सामाजिक रूप से विकलांग भी कहा जा सकता है। कृषि-श्रमिकों की यह एक मुख्य समस्या है।
2. **असंगठित** -कृषि-श्रमिको की एक अन्य प्रमुख समस्या उनका असंगठित होना भी है जो अन्य कई समस्याओं को उत्पन्न करता है एवं उन्हें विकसित भी करता है। असंगठन के प्रमुख कारण जागरूकता अभाव, अशिक्षा, साधानों का अभाव, अन्य सामाजिक व आर्थिक विसंगतियाँ होना है।
3. **मौसमी रोजगार** -कृषि श्रमिक जिस समस्या से सर्वाधिक पीड़ित है वह समस्या ''मौसमी रोजगार'' है। जब खेतों में बुआई और कटाई का काम रहता है तो इन्हें रोजगार मिल जाता है और वर्ष में अन्य समय रोजगार उपलब्धा न होने पर इनका जीवनयापन करना बहुत मुश्किल हो जाता है। एक साल में इन्हें लगभग 200 दिन ही काम मिल पाता है। कृषि श्रमिकों को इस कारण से वर्षभर रोजगार नहीं मिल पाता जो इनकी दयनियता में और अधिक वृद्धि करता है।
4. **गैर-कृषि रोजगार का अभाव** -भारतीय कृषि-श्रमिक के पास कृषि सम्बन्धित कार्य के अलावा अन्य विकल्पनात्मक गैर-कृषि रोजगार नहीं होता जिससे वह कृषि-कार्यों में रोजगार न मिलने की स्थिति में अपना जीवनयापन कर सके। इसे मुख्यत: कृषि कार्य के रोजगार पर ही निर्भर रहना पड़ता है। यदि इन श्रमिकों को एक विकल्प भी अन्य किसी गैर कृषि वाले कार्यों में नियोजन का मिल जाता तो वर्तमान में इनकी इतनी दयनीय स्थिति नहीं होती और विषम से विषम परिस्थितियों में भी ये कर्मशील बनकर डटे रहते।
5. **ऋणग्रस्तता** -कृषि-श्रमिकों वह समस्या जो सबसे विकराल रूप में बदल जाती है वह ''ऋणग्रस्तता'' है। कृषि-श्रमिक इससे सर्वाधिक पीड़ित रहते है। जिसका प्रमुख कारण उन्हें रोजगार उपलबध न होना है। उन्हें अपनी आवश्यकताओं और अन्य सामाजिक क्रियाकलापों के लिए धान की आवश्यकता होती है। तब उन्हें सेठ-साहूकार ही याद आते है और वो इनकी मजबूरी का पूरा-पूरा फायदा भी उठाते है। जिसमें वे अमानवता की सारी हदें भी लांघ जाते है। इस उधार दी गई धानराशि पर वे अमानवीय रूप से अत्यधिक ब्याज वसूलते है और ये ब्याज दर इतनी अधिक होती है कि कृषि-श्रमिकों द्वारा मूल उधार लिया धान चुकाने के बाद भी अपनी मृत्यु हो जाने पर भी वह ब्याज नहीं चुकाया जा सकता। इस स्थिति का नाजायज फायदा उठाते हुए सेठ-साहूकार श्रमिक और उसके पूरे परिवार से जीवन्त पर्यन्त काम करवाता रहता है।
6. **अत्यधिक बड़ा परिवार** - कृषि-श्रमिकों की अज्ञानता की वजह से इनकी समस्याएँ भी बढ़ जाती है। ऐसी ही एक समस्या इनका अत्यधिक बड़ा परिवार होना भी है। इनकी अतार्किक सोच रहती है कि जितने परिवार में सदस्य होंगे उतनी ही मजदूरी अधिक प्राप्त होगी। ऐसी अवस्था में इनका परिवार और अधिक अभावों से ग्रसित हो जाता है जिससे इन्हें भोजन, शिक्षा, चिकित्सा और अन्य भौतिक सुख-सुविधाओं से उपेक्षित रहना पड़ता है। इनकी संतानों में 'कुपोषण' एक बड़ी समस्या बन जाता है और इस कारण मृत्यु दर भी बढ़ जाती है।
7. **बेरोजगारी** -कृषि-श्रमिकों को बेरोजगारी की समस्या से निरन्तर जूझना पड़ता है। इसका कारण तकनीकी विकास भी है और अत्यधिक कृषि-श्रमिकों की उपलब्धाता भी है। आज वर्तमान समय में कृषि कार्यों में अत्यधिक मशीनी-यंत्रों का प्रयोग होने लगा है और जो निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। जिससे मानव संसाधानों के प्रयोग का प्रतिशत कम होता जा रहा है। ये मशीन एवं यंत्र इतने प्रभावशाली होते है कि ये 100 श्रमिकों के बराबर का कार्य एक मशीन ही कर लेती है और इस एक मशीन का संचालक एक तकनीकी व्यक्ति कर सकता है। इसके अलावा जनसंख्या वृद्धि के कारण कृषि-श्रमिकों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। जिससे कृषि-कार्यों में इनके अनुपात के अनुसार कार्य नहीं मिल पाता।
8. **निम्न मजदूरी दर** -कृषि-मजदूरों को अन्यश्रमिकों की तुलना में अत्यधिक कम मजदूरी का भुगतान किया जाता है। इसके अलावा बालकों और महिलाओं का इससे भी अधिक शोषण किया जाता है। कृषि-श्रमिकों को रोजगार की अनुपलब्धता के कारण मजबूरीवश अत्यधिक कम मजदूरी पर भी कार्य करना पड़ता है।
9. **अशिक्षा** -कृषि-श्रमिकों को प्रारम्भ से ही ऐसा वातावरण मिला या ऐसी विकट परिस्थितियाँ रही कि 'शिक्षा' उनके लिये दूर के ख्वाब बनकर रह गई। अशिक्षित रहने के कारण वे अपने मानवीय अधिकारों के प्रति उदासीन रहे और अपने हक के लिए अपनी आवाज उठाने में सक्षम भी नहीं हुये। इनकी अशिक्षा इनके लिए एक अभिशाप बन गई। जिसका अवैधा फायदा समाज के प्रभावशाली वर्ग ने उठाया और ये और भी अधिक शोषित ही होते चले गये।
10. **विकट कार्य-परिस्थितियाँ** -अधिकांश कृषि-श्रमिकों को अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों में रहना और कार्य करना पड़ता है जो मानव स्वास्थ्य के लिए बहुत खतरनाक परिणाम उत्पन्न कर देती है। कई परिस्थितियों में इन्हें जानवरों के साथ भी रहना पड़ता है। इनके कार्यस्थल जोखिम पूर्ण रहते है और इन जोखिमों के विरूद्ध कोई भी सुरक्षा संसाधन इन्हें उपलब्ध नहीं रहते है। ये घातक परिस्थितियाँ कई बार इनकी मौत का कारण भी बन जाती है।
11. **बंधुआ मजदूरी** -कृषि-श्रमिकों का जीवन अभावों से ग्रस्त रहता है। पूरे वर्ष रोजगार न मिलने पर ये आर्थिक रूप से टूट जाते है और अपनी आवश्यकताओं के लिए न चाहते हुए भी इन्हें ऊँची ब्याज दर पर पूंजीपति साहूकारों से राशि उधार लेनी पड़ती है। इस उधार ली गई राशि का ब्याज कुछ समय में ही मूल उधार ली गई राशि से कई गुणा हो जाता है। जिसे वह कृषि-श्रमिक चुकाने में असमर्थ रहता है और उसे उस ऋणदाता साहूकार के हमेशा बंधुआ रहकर ऋण न चुकने तक मजदूरी कार्य करना पड़ता है किन्तु ये कृषि-श्रमिक इस ब्याज के जाल से कभी नहीं निकल पाता। इसके विपरीत कई बार ऐसे श्रमिक का पूरा परिवार भी बंधुआ मजदूरी की भेंट चढ़ जाता है।

12. **कार्य-घंटों की समस्या** -कृषि-श्रमिक प्रत्येक कदम पर शोषण का शिकार होना पड़ता है। उन्हें चाहे मजदूरी कम दर सेदी जाती हो किन्तु उन्हें अधिक से अधिक समयावधि तक काम में नियोजित रखा जाता है। भूमि स्वामी या नियोक्ता इन्हें मात्र एक सस्ता साधान मानकर अधिक से अधिक दोहन करना चाहता है। चाहे यह मानवता के कितना ही विपरीत क्यों न हो।
13. **बाल-मजदूरी को बढ़ावा** -कृषि-श्रमिकों को पर्याप्त रोजगार उपलब्धा नहीं होने पर इन्हें अपने बच्चों को भी अपने काम में संलग्न करना पड़ता है जो कि ये अधिक भुगतान प्राप्ति की चाह में करते है। इनकी ऐसी विकट स्थिति हो जाती है कि ये अपने नाबालिक बच्चों को भी अपने कार्यों में नियोजित कर लेते है। कई बार नियोक्ता का दबाव रहता है कि वे कम समय व कम लागत में कार्य करवाने में बालकों को भी कार्यों में लगाये। बाल मजदूरी की समस्या कृषि श्रमिकों की समस्या से विकराल रूप धारण कर लेती है। जिसके दूरगामी परिणाम बहुत घात सिद्ध होते है।
14. **आवास समस्या** -कृषि-श्रमिकों के स्वास्थ्य हित पर अत्यधिक बुरा प्रभाव ड़ालने वाली समस्या इनकी आवास समस्या है। इनके लिए कोई रहने की उपयुक्त व्यवस्था नहीं रहती है, इन्हें कार्यस्थल, खेत, कृषि भूमि पर ही झुग्गी-झोपड़ी बनाकर रहना पड़ता है। जहाँ धूप, बारिस, आँधी-तूफान की तो हमेशा समस्या रहती ही है इसके अलावा वहाँ का वातावरण भी बहुत प्रदूषित रहता है जो इनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव ड़ालता है। इन्हें अमानवीय परिस्थितियों में पशु-पक्षियों के साथ भी रहना पड़ता है जिस कारण ये कई गम्भीर बीमारियों के आसानी से शिकार हो जाते है।
15. **छंटनी की समस्या** -कृषि-श्रमिकों की अत्यधिक संख्या के कारण इनको कार्यों में से हटा भी दिया जाता है। बिना कारण किसी भी समय इन्हें कार्य से हटाने या इनकी छंटनी करने से इनके जीवन में अस्थिरता बनी रहती है। जिस कृषि-श्रमिक ने हमेशा कृषि सम्बन्धित कार्य किया हो और अंत में उसे हटा दिया जाता है तो वह अन्य कार्य भी सहजता से नहीं कर पाता और अपने को असक्षम समझने लगता है।

इसके अलावा कृषि-श्रमिकों की कई समस्याएँ और भी है यथा -

i. सामाजिक स्तर
ii. प्रवासी श्रमिकों की बढ़ोतरी
iii. महिला एवं बालकों का अत्यधिक शोषण
iv. व्यावसायिकजोखिमों से रक्षा के प्रावधानों का अभाव
v. स्वास्थ्य उपेक्षा
vi. धार्मिक अंधाविश्वास
vii. अवैज्ञानिक दृष्टिकोण
viii. जातिवाद एवं धार्मिकवाद

कृषि-श्रमिकों की प्रास्थिति में सुधार -

1. **कृषि-श्रमिकों हेतु न्यूनतम मजदूरी** -भारत में प्रारम्भ में कृषि-मजदूरों के लिए कोई भी न्यूनतम मजदूरी निर्धारित नहीं थी। जिसके कारण उनका अधिकाधिक शोषण किया जाता था, इनकी न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण न होना ही इनके लिए एक बड़ी समस्या बन गया था, किन्तु ''न्यूनतम मजदूरी अधिनियम''[7] इस क्षेत्र में मजदूरी निर्धारण हेतु मील का पत्थर साबित हुआ। सभी कृषि-श्रमिकों को अन्य मजदूरों एवं श्रमिकों के समान न्यूनतम मजदूरी भुगतान का प्रावधान किया गया। यदि न्यूनतम मजदूरी भुगतान सम्बन्धी प्रावधानों का प्रभावी क्रियान्वयन किया जायें तो इस पीड़ित कृषि-श्रमिक वर्ग की एक प्रमुख समस्या का समाधान हो सकता है जो इनके शोषण का मुख्य आधार है।
2. **बंधुआ मजदूरी प्रथा का उन्मूलन** -कृषि-श्रमिकों के लिए बंधुआ-मजदूरी एक अभिशाप बन चुका है, कृषि-श्रमिक बंधुआ मजदूर बन एक पशुतुल्य अवस्था में पहुंच जाता है जहां से मुक्ति उसे उसकी मृत्यु ही दिला पाती थी, भारतीय संसद ने बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम[8]पारित करके एक सकारात्मक पहल करके कृषि-श्रमिकों के जीवन में एक नई आशा की किरण का संचार किया। जिससे समाज के कमजोर एवं शोषित वर्ग की शोषण से रक्षा की जा सके। इस अधिनियम द्वारा सभी बंधुआं मजदूरों को आजाद कर दिया गया एवं उनके कर्जो को भी समाप्त मान लिया गया। इसके साथ ही ऐसे कार्य को दण्डनीय संज्ञेय अपराधा घोषित किया गया[9] और दण्ड का प्रावधान किया गया।[10]

   ऐसे कारगर अधिनियम के होते हुए भी पिछले दशकों में हरियाणा, उत्तरप्रदेश, गुजरात, राजस्थान, कर्नाटक में कई मामले बंधुआ मजदूरी के देखने को मिले। जिसमें 2019 का कांचीपुरम् (कर्नाटक) के काशी नामक वृ) बंधुआ मजदूर का मामला बहुत चर्चा में रहा। केन्द्रीय सरकार द्वारा 2016 में बंधुआ मजदूर पुनर्वास योजना बनाकर इनके लिए प्रतिकर (1 लाख से 3 लाख रूपये), आवास सुविधा, जमीन आवंटन एवं अन्य आजीविका साधन प्रदान करने के प्रावधान बनाये गए। भारत में अभी भी 1 करोड़ 17 लाख के करीब बंधुआ मजदूर है।[11] इसलिए प्रशासन तंत्र को अभी और प्रभावी कदम उठाने होंगे।
3. **कृषि-श्रमिकों हेतु आवास व्यवस्था** -कृषि-श्रमिकों को आवास सम्बन्धी समस्या का सामना भी करना पड़ता था। जो उनकी स्थित को और भी कष्टदायक बना देता था, किन्तु केन्द्रीयसरकार और राज्यों की सरकारों ने इस समस्या के निदान के लिए इनके निवास हेतु मकान निर्माण करवाने हेतु कई योजनाएँ प्रारम्भ की है।
4. **कृषि-श्रमिकों को रोजगार उपलब्धा कराना** -कृषि-श्रमिकों के हित वृद्धि हेतु बहुत-सी रोजगार योजनाएँ प्रारम्भ की गई। जिनमें जवाहर ग्राम समृद्धि योजना (JGSY) राष्ट्रीय खाद्य के लिए कार्य योजना (NFFWP), महात्मा गाँधी ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा), काम के बदले अनाज योजना इत्यादि प्रमुख योजनाएं है। इसके अलावा बीस सूत्री कार्यक्रम ने भी इनके हितों में संवर्धान हेतु कई कार्यक्रम एवं योजनाएँ बनाई है। एजेंसी
5. **कृषि-श्रमिकों के विकास हेतु विशेष एजेंसियों का गठन** -कृषि-श्रमिकों की प्रास्थिति सुधार हेतु सरकार द्वारा कई एजेंसियों का गठन किया गया है और जो सुचारू रूप से इनके कल्याण हेतु कार्यरत भी है। इन एजेंसियों में लघु कृषक विकास एजेंसी (SFDA) सीमांत किसान और कृषि श्रमिक विकास एजेंसी (MFAL)[12] प्रमुख है।
6. **ऋण योजनाएं**-कृषि-श्रमिकों की प्रास्थिति में सुधार हेतु सरकार द्वारा आर्थिक सुधारों को भी महत्व प्रदान कर प्रोत्साहन प्रदान किया। प्रारम्भ में व्यावसायिक बैंकों द्वारा अपनी ऋण-नीतियाँ इस प्रकार नहीं बनाई गई थी। जिससे कृषि और ग्रामीण क्षेत्रों को पर्याप्त ऋण सुविधाएं उपलब्धा हो सके। अतः इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु इन क्षेत्रों में ग्रामीण बैंकों की स्थापना अति आवश्यक थी। इसलिए कई ;ण नीतियाँ और ;ण योजनाएँ बनायी गई यथा-

i. लघु एवं सीमांत कृषकों एवं कृषि श्रमिकों को ऋण योजना
ii. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग के ग्रामीणों को ऋण योजना
iii. ग्रामीण कारीगरों एवं लघु व्यवसायी को ऋण योजना

7. **भूमि वितरण योजना** -केन्द्रीय सरकार द्वारा बंधुआ मजदूर पुनर्वास योजना[13] बनायी। जिसके अन्तर्गत ही ऐसे कृषि-श्रमिक जिनको बंधुआ बनाकर कार्य करवाया जा रहा था, उन्हें मुक्त करवाकर भूमि का आवंटन करने का प्रावधान भी किया गया है। जिससे ऐसे कृषि-श्रमिक की स्थिति सुधार सकें और वो अपना जीवन यापन भी सरलता से कर सके। इनके अतिरिक्त अन्य सुधार के प्रयत्न यथा है -
   i. कृषि-श्रमिकों की मोल-भाव क्षमता का विकास करना
   ii. पुर्नवास व्यवस्था का विस्तार
   iii. विकल्प रोजगारों में वृद्धि करना
   iv. कार्य के घण्टे निश्चित करना
   v. सहकारी कृषि को प्रोत्साहन
   vi. न्यूनतम आवश्यक कार्यक्रम चलाना
   vii. कृषि-श्रमिक सहकारिता संगठन को बढ़ावा देना
   viii. कुटीर एवं लघु उद्योगों का विकास
   ix. मुक्ति हेतु प्रावधान

निष्कर्ष

भारत राष्ट्र के विषय में महात्मा गाँधी ने भी कहा है कि ''भारत गाँवों की भूमि है।'' यदि गाँवों मे स्वस्थ स्वरूप विकसित करना है तो भारतीय किसान की दशा सुधारने पर सर्वप्रथम चिन्तन करना होगा। भारतीय किसान और कृषि कार्य में लगे श्रमिक की दशा में सुधार करके ही राष्ट्र के विकास के मार्ग को प्रशस्त किया जा सकता है। कृषि-श्रमिक के जीवन-स्तर में सुधार हेतु समन्वित कार्यक्रमों का तत्परता से संचालन किया जाना अतिआवश्यक है। कृषि श्रमिक समाज का एक अभिन्न हिस्सा है और अन्य नागरिकों के समान ही इनका भी सभी अधिकारों पर समान रूप से अधिकार है। इसलिए सरकार द्वारा इनकी प्रास्थिति में सुधार हेतु सतत् प्रयास करने होंगे।

सरकार द्वारा इनके हित में जो कार्यक्रम और योजनाएँ बनायी जा रही है, उनका यथोचित समय में इन्हें लाभ मिलना भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए। इनकी शिक्षा, चिकित्सा, भोजन, आवास जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के प्रति सरकार ने सराहनीय कदम भी उठाये है। केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों को कृषि-श्रमिकों की समस्याओं के स्थायी निदान हेतु गम्भीर होकर कठोर कदम उठाने होंगे। जिससे कोई इस वर्ग के शोषण करने के विषय में सोच भी न सके। जिन संस्थाओं की स्थापना और व्यक्तियों की नियुक्ति कृषि-श्रमिकों समाज की मूलधारा में लाने के लिए की गई है। उन्हें और अधिक शक्ति एवं साधान सम्पन्न बनाना होगा जिससे वे और भी अधिक प्रभावी तरीके से इस समस्या के निदान हेतु प्रयास कर सके।

कृषि-श्रमिकों की प्रास्थिति सुधार हेतु न्यायपालिका ने भी सक्रिय भूमिका निभाई है। जिसने दिल्ली के रेहाना के मामले में 1.80 लाख रूपये का मुआवजा दिलवाया। न्यायपालिका ने बंधुआ मजदूरों को मुक्त करवाने के बाद इनके पुर्नवास एवं इनकी आजीविका संचालन के साधान उपलब्ध करवाने पर भी बल दिया है। 2017 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के सदस्य न्यायमूर्ति डी. मुरूगेसन ने कहा कि ''बंधुआ मजदूरी उन्मूलन की जिम्मेदारी जिलाधिकारियों के कन्धों पर है। इन्हें मजदूरों को मुक्ति प्रमाण पत्र देने के साथ-साथआरोपी पक्ष के विरूद्ध अभियोजन चलाने में भी सशक्त भूमिका निभानी है।''

इस प्रकार की स्थिति में केन्द्रीय सरकार की बंधुआ मजदूर पुनर्वास योजना[14] एक महत्वपूर्ण योजना है। जिसके द्वारा इन्हें मुआवजे का अधिकारी मानकर 1 से 3 लाख रूपये इनके खाते में जमा करवाये जा रहे है। इसके साथ ही इन हेतु आवास निर्माण, खेती हेतु जमीन आवंटन एवं अन्य आजीविका संचालन हेतु साधान उपलब्धा करवाये जा रहे है। राष्ट्र द्वारा सभी शोषित वर्ग के कल्याण एवं विकास हेतु भागीरथ-श्रम करना होगा, तभी समाज के सभी वर्गों के लिए एक लोकतांत्रिक व्यवस्था की सच्चे अर्थ में उपादेयता होगी।

संदर्भ

[1] दिपेन्द्र सिंह, शोधार्थी विधि विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)
[2] रूलर्स ऑफ इण्डिया
[3] वर्ष 2011 जनगणना रिपोर्ट
[4] तत्रैव
[5] वर्ष 1950-1951
[6] वर्ष 1956-1957
[7] वर्ष 1948
[8] वर्ष 1976
[9] धारा 22
[10] धारा 16
[11] अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन रिपोर्ट
[12] वर्ष 1970-1971
[13] वर्ष 2016
[14] वर्ष 2016

राजगढ़ तहसील में कृषि उत्पादन को प्रभावित करने वाले कारक

हरीश मीना

शोधार्थी, भूगोल विभाग, राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान, 301001

डॉ० जगफूल मीना

सह आचार्य, भूगोल विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजगढ़, अलवर, राजस्थान

सार संक्षेप

कृषि हमेशा अर्थव्यवस्था की रीढ़ रही है। राजगढ़ तहसील की अधिकांश आबादी उन गांवों में रहती है, जिनका मुख्य व्यवसाय कृषि से जुड़ा हुआ है। कृषि अधिक से अधिक लोगों को रोजगार प्रदान करती है। बदलते समय में कृषि ने भी अपना रूप बदल लिया है, हम औद्योगिक खेती को बहुत पीछे छोड़ रहे हैं और औद्योगिक खेती को अपना रहे हैं। नवीनतम कृषि प्रणाली में, खाद्यान्न उत्पादन के बदले में उद्योगों के लिए कच्चे माल का उत्पादन किया जा रहा है। यही कारण है कि ऐसे कृषि उत्पादों की दर में जबरदस्त वृद्धि हुई है। राजगढ़ तहसील में कृषि का स्वरूप तेजी से बदल रहा है। कृषि अनुसंधान केंद्र और विकास उन्मुख नीतियों के कारण, राजगढ़ तहसील खाद्यान्न और कृषि व्यवसाय के क्षेत्र में उन्नति की ओर बढ़ रहा है, इसलिए इस शोध लेख में राजगढ़ तहसील में कृषि को प्रभावित करने वाले भौतिक एवं आर्थिक कारकों का भौगोलिक अध्ययन किया गया है।

मुख्य बिन्दु: राजगढ़ तहसील में फसल उत्पादन, कृषि को प्रभावित करने वाले कारक, भौतिक कारक जलवायु, तापमान वर्षा, सूर्य का प्रकाश, मृदा, आर्थिक कारक पूँजी, बाजार, परिवहन एवं भूमि जोत का आकार।

परिचय

प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक कारक कृषि कार्य को प्रभावित करते हैं। प्राकृतिक पर्यावरण कृषि का आधार है, इसलिए यह कृषि गतिविधि को सीधे प्रभावित करता है। इन सभी कारकों के परिणामस्वरूप, केवल कृषि ही प्रमुखता में आती है। कृषि में जलवायु एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पौधों को अपनी वृद्धि के लिए पर्याप्त गर्म और आर्द्र जलवायु की आवश्यकता होती है। पौधे के आनुवंशिक गुणों को जलवायु से प्रभावित होना भी दिखाया गया है। मृदा प्रतिक्रियाएँ पौधों के विकास के लिए अनुकूल पारिस्थितिकी तंत्र प्रदान करती हैं। उथली और महीन दाने वाली फसलों के लिए, धान की फसल के लिए ज्वार और मटियार भूमि के लिए दोमट ह्मा और हल्की दोमट भूमि की आवश्यकता होती है। मृदा अम्लता का फसलों की वृद्धि पर भी प्रभाव पड़ता है। कुछ फसलें नमकीन भूमि में अच्छी तरह से विकसित होती हैं

मुख्य शब्द: राजगढ़ तहसील में फसल उत्पादन

अध्ययन क्षेत्र

राजगढ़ तहसील को शोध कार्य के अध्ययन के लिए चुना गया है। यह अलवर जिले के दक्षिण में स्थित है। राजगढ़ जिला मुख्यालय अलवर से दक्षिण की तरफ 36 किमी. की दूरी पर स्थित है। यह 27 डिग्री 4 मिनट उतरी अक्षांश से 27 डिग्री 21 मिनट उत्तरी अक्षांश तथा 76 डिग्री 17 मिनट पूर्वी देशान्तर से 76 डिग्री 52 मिनट पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। राजगढ़ की समुद्रतल से ऊँचाई 479 मीटर है। इस क्षेत्र में भूमि का सामान्य ढ़लान पश्चिम की ओर है। राजगढ़ के उत्तर, पूर्व व दक्षिण की तरफ पहाड़ हैं। राजगढ़ अरावली पहाड़ियों के बीच में स्थित है, पश्चिम की ओर एक सामान्य ढलान के साथ, राजगढ़ के आसपास का क्षेत्र समतल है। अलवर जिले में राजगढ़ एक महत्वपूर्ण कस्बा है, जो अपने पीछे के क्षेत्र के साथ अच्छी तरह से जुड़ा हुआ सड़क और रेल मार्ग है। परिणामस्वरूप, क्षेत्रीय स्तर पर इसका अपना विशेष स्थान है।

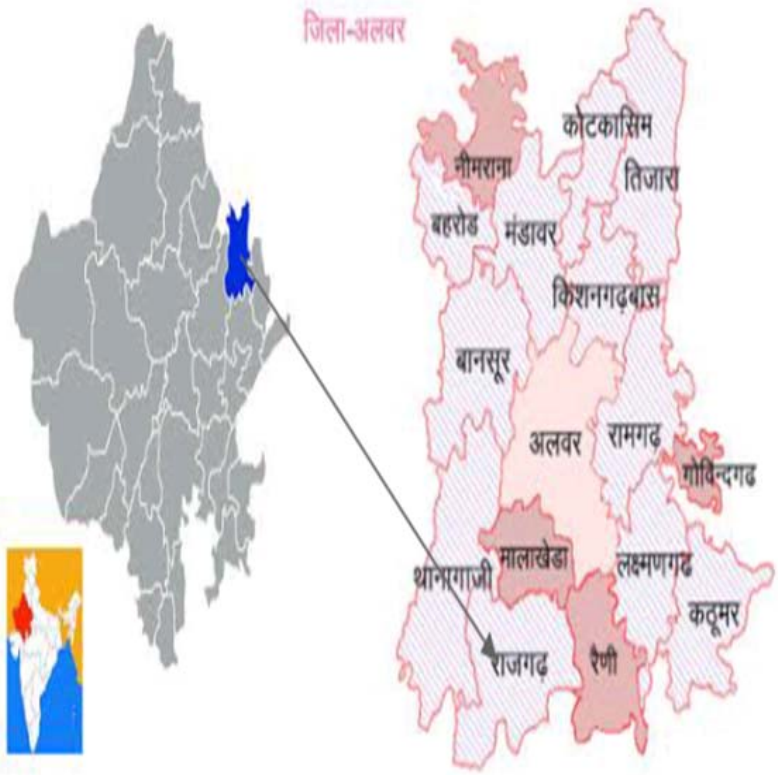

अनुसंधान उद्देश्य

1. राजगढ़ तहसील में फसल उत्पादन का अध्ययन किया गया है।
2. राजगढ़ तहसील में कृषि को प्रभावित करने वाले प्राकृतिक कारकों का अध्ययन किया गया है।
2. राजगढ़ तहसील में कृषि को प्रभावित करने वाले आर्थिक कारकों का अध्ययन किया गया है।

शोध परिकल्पना

1. राजगढ़ तहसील में, प्राकृतिक कारकों के कारण कृषि बदल रही है।
2. राजगढ़ तहसील में आर्थिक कारकों से कृषि उत्पादन प्रभावित हो रहा है।

आँकड़ो का संग्रह और कार्यप्रणाली

अध्ययन क्षेत्र के सूक्ष्म अध्ययन के लिए प्राथमिक डेटा एकत्र किया गया है जो प्रत्येक तहसील से लिया गया है। यह पूरा कार्य प्रश्नावली की तुलना में अधिक अनुभवजन्य है। ये क्षेत्रीय डेटा से प्राथमिक डेटा की तुलना सरकारी डेटा से करने में उपयोगी होंगे। राजगढ़ तहसील से कृषि संबंधी आंकड़े लिए गए हैं जो हमने प्रकाशित और अप्रकाशित स्रोतों से प्राप्त किए हैं। यह अध्ययन प्राथमिक और माध्यमिक डेटा पर आधारित है।

राजगढ़ तहसील में फसल उत्पादन

राजगढ़ तहसील में, प्रति हेक्टेयर फसल उत्पादन में गेहूं की फसल का पहला स्थान है। तहसील में दूसरा स्थान प्रति हेक्टेयर जौ की फसल पैदा करता है। बारिश की फसलों में बाजरा और ग्वार प्रमुख स्थान हैं। व्यावसायिक फसलों में सरसों का प्रमुख स्थान है। वर्ष 2014 से 2017 तक गेहूँ उत्तरोत्तर बढ़ रहा है जो 2018 में बढ़कर 3755 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर हो गया है, इसी तरह यह 2019 में बढ़कर 3805 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर हो गया है। इसी तरह, जौ धीरे-धीरे वर्ष 2014 से 2017 तक बढ़ता जा रहा है जो 2018 तक बढ़ गया है। इसी तरह से प्रति हेक्टेयर 2445 किग्रा। वर्ष 2019 में यह 2488 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर हो गया है। इसी तरह की प्रवृत्ति अन्य फसलों जैसे बाजरा, चना, सरसों और कपास के उत्पादन में भी देखी जाती है। जिसे तालिका संख्या 1 में दिखाया गया है।

तालिका सँख्या :- 1

राजगढ़ तहसील में विभिन्न फ़सलों का उत्पादन (2014 - 2019)

क्रम सँख्या	विभिन्न फसलें	राजगढ़ तहसील में विभिन्न फ़सलों का उत्पादन (2014 -19) किलोग्राम प्रति हेक्टेयर				
		2014-15	2015-16	2016-17	2017-18	2018-19
01	बाजरा	1322	1395	1467	1556	1780
02	मक्का	1345	1453	1529	1645	1895
03	ज्वार	635	696	813	745	790
04	गेंहूँ	3576	3623	3815	3755	3802
05	जौं	2317	2386	2519	2445	2488
06	चना	1148	1046	1123	1115	1185
07	तिल	316	298	345	267	315
08	सरसों	1115	1098	965	1225	1305
09	कपास	417	527	588	398	658
10	दालें खरीफ	287	310	201	147	189
11	दालें रबी	998	1088	1108	1188	1326

स्त्रोत :- कार्यालय उप निदेशक कृषि विभाग , अलवर

कृषि को प्रभावित करने वाले कारक

राजगढ़ तहसील में प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक कारक कृषि कार्य को प्रभावित करते हैं। प्राकृतिक पर्यावरण कृषि का आधार है, इसलिए यह कृषि गतिविधि को सीधे प्रभावित करता है। इन सभी कारकों के परिणामस्वरूप, कृषि में विशेषज्ञता है। इसलिए, कृषि को प्रभावित करने वाले कारकों का विवरण है –

भौतिक कारक

1. जलवायु: राजगढ़ तहसील में कृषि गतिविधियों को प्रभावित करने वाले भौतिक कारकों में जलवायु सबसे महत्वपूर्ण कारक है। जलवायु का कृषि से सीधा संबंध है। भूमि उपयोग का रूप जलवायु द्वारा निर्धारित और नियंत्रित किया जाता है। राजगढ़ तहसील में जलवायु की भिन्नता के साथ-साथ, ख़्रषि क्षेत्र भी बदलते हैं। ख़्रषि एक आर्थिक गतिविधि है जो जलवायु के विभिन्न घटकों – तापमान, वर्षा, आर्द्रता, हवा, ठंढ, ओलावृष्टि, ठंड आदि से प्रभावित होती है।

बीज के अंकुरण, विकास की अवधि, पौधों की वृद्धि और फसलों के पकने के लिए उपयुक्त समय पर विभिन्न तापमानों की आवश्यकता होती है। आमतौर पर, ख़्रषि संयंत्रों के अंकुरण, वृद्धि, वृद्धि और पकने के लिए 65° से 75°C तापमान आवश्यक होता है। कम तापमान पर पौधों की वृद्धि रुक जाती है। रबी फसलों के लिए 10° से 18°C तापमान उपयुक्त हैं। बुवाई के समय यह कम होना चाहिए और खाना बनाते समय उच्च तापमान होना चाहिए। जबकि खरीफ की फसल के लिए 25°C से 28°C तापमान की आवश्यकता होती है।

कृषि में, मिट्टी की नमी या आर्द्रता वर्षा पर निर्भर करती है। पौधे अपनी जड़ों के माध्यम से मिट्टी में मौजूद नमी को अवशोषित करते हैं। और जब नमी की कमी होती है, तो पौधे की वृद्धि रुक जाती है या पौधे नष्ट हो जाता है। मिट्टी को कृत्रिम रूप से नमी प्रदान करने के लिए सिंचाई की आवश्यकता होती है। मिट्टी में नमी अधिक होने के कारण कृषि फसलें नष्ट हो जाती हैं। इसलिए, पौधे की वृद्धि के लिए मिट्टी में आवश्यक नमी होनी चाहिए। रबी की फसलें 50 सेमी लंबी होती हैं। 75 सेमी और उचित सिंचाई की आवश्यकता होती है जबकि खरीफ की फसलें 50 सेमी लंबी होती हैं। की जरूरत है।

इसके अलावा, विभिन्न फसलों को अलग-अलग मात्रा में वर्षा या आर्द्रता की आवश्यकता होती है। तहसील में वर्षा की अनियमितता और अनिश्चितता बनी रहती है। इसलिए नमी बनाए रखने के लिए भूमि की सिंचाई की जाती है। राजगढ़ तहसील में वर्ष 2011 में, राजगढ़ तहसील का औसत तापमान 44.3! था, वार्षिक वर्षा 48.3 सेमी थी। वर्ष 2018 में, राजगढ़ तहसील में औसत तापमान 45.1! था, वार्षिक वर्षा 53.2 सेंटीमीटर थी। इसलिए, इस अध्ययन के आधार पर, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि जब वर्षा और तापमान का एक दूसरे के साथ पूरक संबंध होता है, जब वर्षा का औसत अधिक होता है, कृषि उत्पादन भी अधिक होता है, क्योंकि वार्षिक वर्षा कम हो जाती है, इसलिए ख़रीफ़ का उत्पादन होता है। ऐसा होता है।

(i) तापमान : फसल उत्पादन के लिए अनुकूल तापमान की आवश्यकता होती है। एंजाइम सक्रियण अनुकूल तापमान पर बनाए रखा जाता है, जिसके कारण रासायनिक प्रतिक्रियाएं आसानी से उत्पन्न होती हैं। गर्मियों की फसलों के विकास के लिए 25° - 40°C और सर्दियों की फसलों के विकास के लिए 6° के बीच। - 25°C तापमान उपयुक्त है। और उत्पादन अच्छा है, प्रतिकूल तापमान के अलावा, पौधों की क्रियाएं सुचारू रूप से नहीं चलती हैं, जिसके परिणामस्वरूप दुष्प्रभाव होते हैं। ये उपयुक्त परिस्थितियाँ राजगढ़ तहसील में पाई जाती हैं।

(ii) प्रकाश: पौधों की वृद्धि और विकास में सूर्य के प्रकाश का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि प्रकाश संश्लेषण सीधे सूर्य के प्रकाश से संबंधित है। जो पौधों की वृद्धि में मदद करता है। पौधों और पत्तियों में क्लोरोफिल की मात्रा सूर्य के प्रकाश के समान होती है। पौधे सूरज की रोशनी से भोजन प्राप्त करते हैं और उन्हें विकसित करते हैं, उन क्षेत्रों में जहां सूर्य के प्रकाश की उपलब्धता कम होती है, फसलों का उत्पादन केवल अपेक्षाख़त कम मात्रा में होता है। प्रकाश की अनुपस्थिति में, पौधों और उनकी पत्तियों का रंग प्रभावित होता है और तिलहन का उत्पादन संभव नहीं होता है। प्रकाश की अनुपस्थिति में, पौधों को कई बीमारियाँ हो जाती हैं जिसके कारण उनकी वृद्धि अवरुद्ध हो जाती है, फलस्वरूप उत्पादन भी कम होता है। राजगढ़ तहसील में, पूरे वर्ष सूर्य की रोशनी अपरिवर्तित रहती है।

सूर्य का प्रदीप्त काल पौधों की प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया के लिए और उनमें फल फूलने के लिए आवश्यक है, अर्थात्, प्रकाश की अवधि पौधों की वृद्धि और विकास दोनों को प्रभावित करती है। राजगढ़ तहसील में असामान्य स्थिति पाई जाती है।

(iii) वर्षा : पानी फसलों की वृद्धि और विकास के लिए एक आवश्यक घटक है क्योंकि यह मिट्टी में नमी बनाए रखता है। यही कारण है कि दुनिया के उन हिस्सों में कृषि गतिविधियाँ अधिक विकसित हुई हैं जहाँ पानी की उपलब्धता उनके विकास के लिए आवश्यक है। कृषि क्षेत्रों में विविधता भी पानी की उपलब्धि से प्रभावित होती है। फसलों और जानवरों के वितरण में भिन्नता वर्षा की भिन्नता के अनुसार पाई जाती है। जिन क्षेत्रों में ख़रीफ़ कार्य के लिए पर्याप्त पानी उपलब्ध नहीं है, वहाँ कृत्रिम विधि द्वारा सिंचाई विधियों के माध्यम से पानी की कमी को दूर करके ख़रीफ़ कार्य किया जाता है। प्रत्येक पौधे की वृद्धि के लिए एक निश्चित मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है। पौधों को मिट्टी और वातावरण की नमी से पानी मिलता है। वर्षा पैटर्न फसलों के वितरण पैटर्न को प्रभावित और निर्धारित करता है। बारिश से मिट्टी में पानी की मात्रा बढ़ जाती है। वर्षा के पानी के साथ, भूमि में माइट्रेट, नाइट्रोजन और सल्फर जैसे तत्वों का भी उपयोग किया जाता है। इस प्रकार, वर्षा का पौधे की वृद्धि पर सीधा प्रभाव पड़ता है। राजगढ़ तहसील में बारिश अप्रत्याशित है।

(iv) आर्द्रता : वातावरण में नमी की मात्रा पौधों की क्रिया, मिट्टी से वाष्पीकरण की क्रिया और वातावरण के तापमान को प्रभावित करती है। अंतिम प्रभाव फसलों की वृद्धि पर पड़ता है। सापेक्ष आर्द्रता फसल की बीमारियों और कीटों पर कीटों के हमले को भी प्रभावित करती है। एक निश्चित तापमान पर हवा को पूरी तरह से संतृप्त करने के लिए आवश्यक जल वाष्प की मात्रा की तुलना में सापेक्ष आर्द्रता मौजूदा जल वाष्प की सापेक्ष आर्द्रता है।

(v) वायु : हवा की तेज आवाजाही फसल को नष्ट कर सकती है। इसके अलावा, हवा की गति वाष्पीकरण की दर और मिट्टी से वाष्पीकरण की दर को बढ़ाकर वायु फसलों के विकास को प्रभावित करती है। हवा की गति पर्यावरण के तापमान को भी प्रभावित करती है। उच्च गति के कारण, तापमान गिरता है और पौधों की वृद्धि को प्रभावित करता है।

2. उच्च राहत और सतह पैटर्न किसी राज्य के उच्चतम और निम्नतम भागों की ऊँचाई के बीच के अंतर को ऊँचाई कहा जाता है। सतही राहत से कृषि भूमि का उपयोग और कृषि गतिविधियाँ भी प्रभावित होती हैं। ढाल और ऊंचाई सभी स्थानों में कृषि गतिविधि को सीधे प्रभावित करती है। राहत कृषि के रूप और प्रकार को बदल देती है।

3. मिट्टी की प्रकृति: जलवायु के बाद मृदा कृषि गतिविधि को प्रभावित करने वाला एक प्राकृतिक कारक है। मिट्टी एक आवश्यक सामग्री है जिस पर कृषि आधारित है। मृदा कृषि और अर्थव्यवस्था का आधार है। कृषि के लिए दोमट और चीका-बहुल मिट्टी अधिक महत्वपूर्ण है। सैंडी मिट्टी अक्सर बांझ होती हैं क्योंकि वे आवश्यक तत्वों को शामिल करने में असमर्थ होती हैं। इस प्रकार मिट्टी की प्रकृति किसी भी क्षेत्र के कृषि पैटर्न को बदल देती है। राजगढ़ तहसील में मिट्टी कृषि के लिए अच्छी है।

4. भूजल स्तर: भूजल की उपलब्धता एक जगह कृषि गतिविधि के पैटर्न को निर्धारित और नियंत्रित करती है। जहां भूजल आसानी से और आसानी से जमीन से मिल जाता है, वहां सिंचाई की तीव्रता, फसल की तीव्रता और सर्जिकल विविधता अधिक पाई जाती है। वर्ष 2011 में भूजल स्तर 20.85 मीटर था। वर्ष 2018 में भूजल स्तर बढ़कर 25.23 मीटर हो गया। राजगढ़ तहसील ने वर्ष 2017 में भूजल स्तर में सबसे बड़ी गिरावट दर्ज की। इस अवधि के दौरान तहसील के भूजल स्तर की गहराई बढ़कर 26.79 मीटर हो गई। इसलिए, इस अध्ययन के आधार पर, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि भूजल स्तर, वर्षा और तापमान का एक दूसरे के साथ पूरक संबंध है। जब वर्षा का औसत अधिक होता है, तो वार्षिक वर्षा कम होते ही भूजल स्तर भी बढ़ जाता है। गहराई भी बढ़ जाती है जिसके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन भी प्रभावित होता है।

आर्थिक कारक

1. पूंजी: कृषि को प्रभावित करने वाला पूंजी एक महत्वपूर्ण आर्थिक कारक है। यह कृषि की प्रकृति और प्रकृति को निर्धारित करता है।

2. बाजार: कृषि उपज की उचित खरीद और बिक्री के लिए बाजार उपलब्ध होना आवश्यक है। माल (कृषि उपज) को दूरदराज के बाजारों में ले जाने में, किसानों को उत्पादित वस्तुओं का सही मूल्य नहीं मिलता है। बाजार और विपणन सुविधाओं की कमी के कारण किसानों का अतिरिक्त उत्पादन खराब हो जाता है। बाजार की बदलती कीमतें किसानों में अस्थिरता भी लाती हैं।

यह अच्छी और व्यवस्थित खेती प्रणाली पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है। किसान आमतौर पर केवल उन्हीं उपज का उत्पादन करता है जिनका बाजार मूल्य अधिक होता है। जब किसान को अपनी उपज का उचित मूल्य मिलता है, तो वह कृषि विस्तार और उत्पादन की वृद्धि के लिए आधुनिक वैज्ञानिक कृषि प्रौद्योगिकी का उपयोग बढ़ाता है।

3. परिवहन: राजगढ़ तहसील में परिवहन सुविधाएं उपलब्ध हैं। कृषि उपज को उपभोक्ता या बाजार तक पहुँचाने के लिए परिवहन के सस्ते और आसान साधनों की आवश्यकता होती है। इनके अभाव में कृषि उपज बाजार तक नहीं पहुँच पाती है। और किसान को स्थानीय खरीदारों को कम कीमत पर उपज बेचने के लिए मजबूर किया जाता है। परिवहन फसल की स्थिति निर्धारित करता है। परिवहन के साधनों से दूर जाना फसल की तीव्रता और भूमि उपयोग की तीव्रता को कम करता है। अलवर जिले में राजगढ़ एक महत्वपूर्ण कस्बा है, जो अपने पीछे के क्षेत्र के साथ अच्छी तरह से जुड़ा हुआ सड़क और रेल मार्ग है। स्टेट हाईवे नंबर-25 अलवर-बांदीकुई-सिकंदरा मेगा हाईवे और राज्य राज मार्ग संख्या 25-ए, टहला-राजगढ़-महवा टाउन से होकर गुजरता है। जयपुर-सिकंदरा-आगरा राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 11 राजगढ़ से लगभग 40 किमी दक्षिण में है। की दूरी पर है। इस तरह, राजगढ़ जिला मुख्यालय अलवर, बांदीकुई, भरतपुर, जयपुर, आगरा और आसपास के क्षेत्रों और राज्य और आसपास के राज्यों के प्रमुख शहरों से जुड़ा हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप ख़्रषि फसलों को बाजार तक पहुंचाने में आसानी होती है।

4. कृषि समर्थन मूल्य: हर साल किसानों की प्रत्येक फसल को खरीदने के लिए सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मूल्य को 'समर्थन मूल्य' कहा जाता है। इससे पहले, अनाज फसलों के तहत, मोटे अनाज (बाजरा) का अध्ययन क्षेत्र में खेती की जाती थी। लेकिन वर्तमान में बाजरा के समर्थन मूल्य कम होने के कारण इस क्षेत्र में गिरावट आई है। कपास, बाजरा, चना, सरसों के उच्च समर्थन मूल्य के कारण, राजगढ़ तहसील में ख़्रषि फसलों का उत्पादन बढ़ा है।

5. जोत का आकार: कृषि जोतों का आकार एक क्षेत्र में कृषि और ख़्रषि पैटर्न की तीव्रता को प्रभावित करता है। वाणिज्यिक और व्यापक कृषि बड़ी -2 कृषि फर्मों में की जाती है और कृषि मशीनों, सिंचाई के नवीनतम तरीकों का उपयोग करके इन कृषि फार्मों पर अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन जनसंख्या वृद्धि के कारण, कृषि जोतों का विभाजन हो रहा है और कृषि जोतों का आकार छोटा होता जा रहा है। उन पर ख़्रषि उपकरणों का उपयोग करना संभव नहीं है। इसलिए, राजगढ़ तहसील में, इसका असर कृषि फसलों के उत्पादन पर है।

निष्कर्ष

इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि राजगढ़ तहसील में मौसम के बदलाव, जलवायु परिवर्तन और वर्षा की मात्रा के कारण फसल उत्पादन प्रभावित हो रहा है। इसलिए कृषि उत्पादकता को बढ़ाना आवश्यक हो गया है। कृषि में उन्नत प्रौद्योगिकियों को बढ़ावा देने के लिए, विभिन्न देशों में कई कृषि व्यापार प्रदर्शनियां और कृषि मेले आयोजित किए जाते हैं जहां निवेशक और अन्य प्रौद्योगिकी आधारित कंपनियां अपने विचारों और उन्नत प्रौद्योगिकियों को आम जनता के लिए प्रदर्शित करती हैं। इसलिए, राजगढ़ तहसील में ख़्रषि उत्पादन बढ़ाने के लिए सरकारी योजनाओं को लागू किया जाना चाहिए ताकि तहसील में ख़्रषि उत्पादन में वृद्धि के साथ किसानों को आर्थिक लाभ भी मिल सके।

संदर्भ पुस्तक सूची

1. राजस्थान का भूगोल, डॉ. एचएस शर्मा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
2. कृषि समस्याओं और समाधान, कृषि विभाग, व्यक्तिगत संपर्क।
3. कृषि अनुसंधान कार्यों, पुस्तकालय, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर का अध्ययन
4. जिला सांख्यिकी विभाग, अलवर, राजस्थान
5. कृषि भूगोल, बीएन सिंह, प्रवालिका प्रकाशन, इलाहाबाद।
6. उप निदेशक, ख़्रषि विभाग, अलवर राजस्थान।
7. जिला कलेक्टर कार्यालय, जिला अलवर

संगीत-व्यापार एवं रोजगार के साधन

डॉ० चन्देश्वर प्रसाद कुशवाहा

शोध छात्र, संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा।

जैसा कि सभी लोग जानते हैं कि सामान्य रूप से संगीत का सीध संबंध मनोरंजन से लगाया जाता हैं और इसे मनोरंजन के सर्वोच्च साध्न के रूप में माना जाता है। वर्तमान समय में विश्व के बदलते परिवेश में भारत का आर्थिक एवं सामाजितक छवी जहां मजबूत हो रही है वहीं संगीत का परचम भी पूरी रवानी के साथ विश्व भर में गहरा रहा है।

भारतीय संगीत पर यदि विहंगम दृष्टि डाली जाय तो शास्त्रीय संगीत का अपना एक अलग मुकाम है। समाज के एक खास वर्ग का रूझान शास्त्रीय संगीत की ओर है, परन्तु यदि सामान्य रूप से दृष्टि डाली जाय तो आज चित्रपट संगीत ने भारत ही नही वरन् विश्व भर में लोकप्रियता के जो कीर्तिमान स्थापित किये है उनको कोई नकार नहीं सकता। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण ए.आर. रहमान को 'ऑस्कर आवार्ड' का मिलना है। यह भारत के लिए बड़े गर्व की बात हैं। आज बच्चे से बुढ़े तक चित्रापट संगीत से जुड़े है तथा अपनी अभिरुचि अनुसार इन गीतों को गाते व गुनगुनाते मिलते हैं। चित्रापट संगीत की यह विशेषता है कि इनके गीतों में बहुत विविधता है जहां इनमें एक ओर विशुद्ध भारतीय संगीत (शास्त्रीय संगीत, उप शास्त्रीय संगीत, भजन, गजल, लोकगीत आदिद्ध देखने को मिलता है वहीं दूसरी ओर पाश्चात्य संगीत का भी समुचित आनंद गीतों के माध्यम से मिलता है। सामाचार पत्रों से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार अगले पॉच वर्ष में भारतीय संगीत उपयोग (Indian Music industry) विश्व में सबसे बड़े बाजार के रूप में उभरकर आनेवाली है। ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि सन् 1911 तक ग्लोबल मीडिया और मनोरंजन उद्योग (Intertainment industry) का बाजार दो ट्रिलियन अमरीकी डालर के लगभग होगा और इससे म्यूजिक/ एनटरटेनमेण्ट इन्डस्ट्री से अभिरुचि रखने वालों के लिए कैरियर की असीमित संभावनाए होगी। आज स्थिति यह है कि चित्रापट के गीत जब एक बार तैयर होकर बाजार में आते है तो उनकी कैसेट एवं सीडि का व्यापार शुरू हो जाता है और साथ ही शुरू हो जाता है इन गीतों के माध्यम से रोजगार का दूसरा दौर। आज संगीत उद्योग एक अहम् रोजगार देनेवाली उद्योग का रूप ले चुकी है तथा इससे म्यूजिक कैरियर के अनेक रास्ते खुल गये है जैसे- संगीत निर्देशक, अरेंजर, गीतकार, पार्श्व गायक-गायकी, सहायक कलाकार, संगतकार, साउण्ड रिकार्डिस्ट, साउण्ड इनजीनियर, तकनीशियन्स, म्यूजिक थेरेप्सिट, कैसेट एवं सीडि कम्पनियाँ तथा इनसे संबंध्ति अनेक छोटे-बड़े रोजगार परक क्षेत्रा। संगीत के क्षेत्र में शिक्षण, परफार्मेन्स, कंसर्ट, लाइव शो, डिस्क जाकी, विडियों जाकी, रेडियो जाकी के रूप में कैरियर बनाया जा सकता है।

वर्तमान समय में होटलों में गायन की प्रथा भी आम हो गयी है। जहॉ भी गायक, तीन-चार वादकों के साथ गजल एवं फिल्मी गीतों का कार्यक्रम प्रस्तुत कर अच्छा रोजगार कर लेते हैं। यही नही आज सामाज में इस उद्योग के द्वारा विभिन्न प्रकार से रोजगार किया जा रहा है जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण है आज के कथा वाचक, जो अपने प्रवचन को सरल बनाने के लिए बीच-बीच में भजन एवं संकीर्तन गाते है जो प्राय: इनही फिल्मी धुनों पर अधरित होते हैं। इसके लिए छोटी ऑरकेस्ट्रा पार्टी भी साथ रखते है, इसमें इन सभी को संगीत परख रोजगार मिलता है। संगीत जहां अध्यात्म से जुड़ा है वही मनोरंजन से भी जुड़ा है। मनोरंजन की दुनिया में दूरदर्शन के विभिन्न चैनलों पर फिल्मी गीतों पर अधरित प्रायोजित कार्यक्रम आ रहे है। इनकी लोकप्रियता भारत ही नही वरन् विदेशों में भी बहुत है इसका प्रमाण है जी टीवी का सारेगमप, स्टार प्लस का वाईस ऑफ इण्डिया, सोनी टीवी का इण्डिय आईडल, अन्ताक्षरी एवं अन्य कार्यक्रम आदि। जनता को अपने साथ जोड़कर ये चैनल वाले एस.एम.एस. के माध्यम से जहां का लाखों का आर्थिक लाभ उठाते है वहीं कलाकार यश, कीर्ति एवं पैसा कमाते है। संगीत की लोकप्रियता को देखते हुए कलाकारों आज विभिन्न कम्पनीयों द्वारा अनेक प्राइवेट (शास्त्रीय, गजल, भजन, लोकगीत, पॉप गीत आदिद्ध एलब्म निकलवा कर कीर्ति और पैसा दोनो ही अर्जित की है। जैसा की सभी जानते है कि फिल्म इन्डस्ट्री ग्लेमर की दुनिया है और उस ग्लेमर का प्रभाव संगीत पर पड़ता है। जहां एक ओर इसका प्रभाव संगीत के विडियों एलब्मस में देखने को मिलता है वहीं दूसरी ओर इसके माध्यम से रोजगार के नये रास्ते भी खुल गये है।

आज के बदलते वैश्विक परिवेश में जहां एक ओर शिक्षा का नवीनीकरण हो रहा है वहीं दूसरी ओर संगीत के क्षेत्र में भी नवीनीकरण हो रहा है। गीतों का स्वरूप बदल रहा है। रिमिक्स गीतों का दौर चल गया है। लोकप्रिय एवं प्रचलित फिल्मी गीतों को 'रिद्म' के नये अन्दाज में आरेंज कर, नये रंग के साथ प्रस्तुत करनेवाले प्रोड्यूसर-डायरेक्टर ने इसमें भी रोजगार की सम्भावनाएं खोल दी है। इन सब तथ्यों को देखते हुए यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वर्तमान परिदृश्य में संगीत ने एक उपयोग का रूप ले लिया हैं। जिससे इस क्षेत्र में रोजगार, कैरियर या जॉब की असीमित सम्भावनाओं ने जन्म लिया है। जैसा कि सुद कला ग्रुप के अध्यक्ष श्री बी.एस.के. सुद कहते है-''इस क्षेत्र में आज कैरियर की असीमित सम्भावनाएं है। पहले यह क्षेत्र कुछ खास लोगो के इर्द-गीर्द ही घुमता रहता था, लेकिन हाल के वर्षो में टीवी चैनलस द्वारा म्यूजिक टैलेन्ट हण्ट शो को बढ़ावा देने से इस क्षेत्र के प्रति युवाओं का आकर्षण बढ़ा हैं। लेकिन इस क्षेत्र में प्रवेश की इच्छा रखने वालों में म्यूजिक के प्रति पैशन होना चाहिए।

संदर्भ सूची :-

1. संगीत निबंध माला-जगदीश नारायण
2. संगीत विशारद-लक्ष्मी नारायण गर्ग
3. संगीत बोध- यादवेन्द्र कुमार
4. सांगीतिक एवं धर्मिक पम्परा- भारती शर्मा
5. भारतीय शास्त्रीय संगीत : शास्त्रा, शिक्षण व प्रयोग- राजीव त्रिवेदी
6. निबंध संग्रह-लक्ष्मी नारायण गर्ग

पत्रा एवं पत्रिकाएं

1. संगीत (मासिक पत्रिकाद्ध
2. दैनिक जागरण (दैनिक समाचार पत्राद्ध
3. अमर उजाला (''द्ध
4. हिन्दुस्तान (''द्ध
5. राष्ट्रीय सहारा (''द्ध
6. आज (''द्ध

ध्रुवपद गायन शैली में बिहार का स्थान

डॉ० सुरेन्द्र कुमार राम

पूर्व शोध छात्र, संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा।

भारतीय संगीत में हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति एवं कर्नाटकी संगीत पद्धति नामक दो प्रकार प्रचलित संगीत है। हिन्दुस्तानी संगीत की आत्मा ध्रुवपद अंग की गायकी में निहित है। यह गायकी हमारे संगीत में अनादि काल से ही प्रचलित है। वर्तमान में भी यह गायकी शास्त्रीय संगीत का मुख्य गायन शैली है।

ध्रुवपद गायकी को प्रचलित करने का श्रेय ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर को है। वृहद्देशीयकार मतंग ने इसका नाम चोक्षा, दुग्शक्ति, याष्टिक और शारंगदेव ने 'शुद्ध गीति' कहा है। इसे ध्रुवपद अर्थात अचल पदों वाली गायकी कहते हैं।

भारतीय मान्यता के अनुसार वेद अपैरूषेय, अनादि एवं समस्त विधओं के स्त्रोत हैं। अत: ध्रुवपद गायकी का विकास भी इन्ही के)चाओं के गान से हुआ होगा, ऐसा माना जा सकता है। आचार्य बृहस्पति के अनुसार एला इत्यादि शुद्ध सूड-प्रबन्धें के 'ध्रुव' नामक धातु में नियोजित पद को ध्रुवपद कहा जाता था, साथ ही ध्रुव-प्रबन्धें में नियोजित पद भी 'ध्रुवपद' कहलाता था। इन्हीं एला प्रबन्ध से ध्रुवपद गायकी का विकास हुआ है।

ध्रुवपद वेदों के मंत्रोच्चार का अनुकरण करता है, इसलिए इसमें शब्दों का तोड़-मरोड़ करना वर्जित है। यह गायकी मुख्यत: स्वर के उच्चारण, शब्द का लगाव, विभिन्न लयकारियों पर आधरित है। इस गायकी में प्रयुक्त पद सुनिश्चित सुव्यवस्थित रूप से स्वर-ताल में निबद्ध होते हैं। इसमें राग, ताल, स्वर लगाव आदि शुद्ध शास्त्रीय और परम्परागत रूप में विद्यमान रहते हैं।

ध्रुवपद गायकी के प्रदर्शन के समय पहले उस राग का आलाप किया जाता है, जिस राग में यह गायकी निबद्ध होती है, उसके बाद बंदिश का गायन किया जाता है। आधुनिक काल में यह आलाप दो प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है। प्रथम प्रकार 'अकारदि' का है एवं दूसरा प्रकार 'नोम-तोम' से आलाप किया जाता है। आलाप को चार भागों में स्थाई, अंतरा, संचारी और आभोग में बाँटकर प्रस्तुत किया जाता है। इस गायकी में प्रयुक्त बंदिशों में भी चार भाग होते हैं, कुछ बंदिशों में केवल दो भाग दृष्टिगत होते हैं। इस गायकी में मींड़, गमक, लयकारियों आदि का अध्कि प्रयोग होता है। यह गायकी चारताल, सूलताल, तीव्राताल, रूद्र, ब्रह्म आदि तालों में निबद्ध रहती है। इसके गाने वाले को कलावंत कहा जाता है। इस गायकी के गायन शैलियों को खंडार, गोबरहार, नौहार और डागुर वाणियों के नाम से पहले पुकारा जाता था।

15वीं सदी में राजा मानसिंह तोमर द्वारा प्रचलित ध्रुवपद गान विद्या 16वीं सदी तक भारतीय संगीत की प्रतिष्ठित गान शैली बन गई थी। इसके विकास में मानसिंह तोमर तथा उनके दरबारी संगीतज्ञों जैसे बैजू, बख्शू आदि के साथ अन्य अनेक गायकों तथा रचनाकारों का योगदान रहा है। हरिदास स्वामी, तानसेन, समोखन सिंह, रामदास जैसे धुरंध्र संगीतज्ञों ने इस शैली को उत्कर्ष की चरम सीमा तक पहुँचाया।

तुलसीदास, अटछाप के कवि-संगीतज्ञों आदि ने भगवतसेवा के अनुकूल पदों की रचना की जिससे इस गायकी का प्रचार-प्रसार अध्कि हुआ। कुछ लोग इस गायकी को विष्णुपद भी कहते हैं।

ध्रुवपद के पदों में छन्द का बंधन अनिवार्य नहीं है। ध्रुवपद में प्रयुक्त पदों का विनियोग सभी रसों में किया जाता है और भाषा देशी होती है,[5] ऐसा वर्ण 'मानकुतूहल' नामक ग्रन्थ में आया है। अबुल फजल ने 'आईन अकबरी' में इस गायकी के संबंध में कहा है कि ध्रुवपद तीन या चार लयबद्ध पंक्तियों से निर्मित पद हैं। इन ध्रुवपदों का प्रधान विषय उन व्यक्तियों की प्रशंसा होती है जो अपने पौरूष अथवा गुणों के कारण प्रसिद्ध होते हैं। जिस गीतों में कृश्ण की स्तुति हो उसे अबल फजल ने ध्रुवपद न कहकर 'विष्णुपद' कहा है। इनके दृष्टि में ध्रुवपद गाने वाला 'कलावन्त' है और सम्भवत: विष्णुपदों को गाने वाला कीर्तनियाँ।[6] बाद के सभी विद्वानों ने दोनों को ध्रुवपद कहा है।

ध्रुवपद अंग के वाग्गेयकारों में तानसेन, हरिदास स्वामी, बैजू, बख्शू, गोपाल नायक, तुलसीदास, सूरदास, नंददास आदि प्रमुख रहे हैं, जिन्होंने इस गायकी को समृद्ध किया हैं। वाग्गेयकारों ने स्तुति, आश्रयवादाताओं की प्रशंसा, नायिकाओं के रूप में वर्णन, ऋतुवर्णन, संगीत के परिभाषित शब्दो, भक्तिपरक उद्गारों आदि का निरूपण विषयों के रूप में किया है।

ध्रुवपद गायकी को स्थापित करने में बिहार के संगीतज्ञों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। बिहार में बेतिया, दरभंगा, डुमराव इत्यादि घराना इस गायकी का केन्द्र रहा है। घराने से मतलब किसी विशिष्ट गुरू-परम्परा से होता है। संगीत-विद्या सदैव गुरू-मुख से सीखी जाती रही है। गुरू और उनके शिष्य, इन्हीं के बीच संगीत की खास तालीम दी जाती रही है। घराना एक विशिष्ट गायन शैली का सूचक है। शैली का अनोखापन घराने का विशिष्ट लक्षण होता है।

ध्रुवपद गायन के क्षेत्र में बेतिया घराने का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विष्णुपुर (बंगाल) के संगीतज्ञ भी अपने आप को इसी घराने से सम्बन्धित बतलाते हैं। बेतिया उतर बिहार के पश्चिमी चम्पारण जिले का मुख्यालय है। इस घराने की स्थापना राजा युगलकिशोर सिंह (1763) के समय से मानी जाती है। ये खुद पखावज बजाया करते थे। इन्होंने अपने पुत्र वीरकिशोर को ध्रुवपद गायन की शिक्षा दिलवायी थी। राजा वीरकिशोर के समय में सुदूर प्रान्तों से ध्रुवपदिए आते थें। पं0 शिवदयाल मिश्र नेपाल से बेतिया घूमने आए। इनका गायन सुनकर राजा वीरकिशोर ने अपने कुमार (पुत्र) आनंद किशोर तथा नवल किशोर को शिक्षा देने के लिए अपने यहाँ रख लिया। आनंद किशोर एवं नवल किशोर को चार वाणियों की उतम शिक्षा मिली और उन्हें इन शैलियों की रचना-पद्धति की भी भली-भांति शिक्षा मिली। इन दोनों ने सहस्त्रों ध्रुवपद की रचना की, जो चारों वाणियों में उपलब्ध हैं, जो अन्य किसी घराने में नहीं मिलता। आनंद किशोर की रचनाओं की संख्या कम से कम एक हजार चार सौ गिनी जाती है और नवल किशोर की छ: सौ। इनके द्वारा रचित ध्रुवपदों की भाषा काफी समृद्ध है। इनके अध्किाशं ध्रुवपदों में काली की स्तुति तथा ऋतु वर्णन की गई है।

ये ध्रुवपद, चारताल, झपताल, सूलताल, तीव्राताल आदि में निबद्ध हैं। आनंद किशोर एवं नवल किशोर की शिष्य परम्परा में सुविख्यात गायक हुए हैं। कुछ प्रमुख ध्रुवपदियों के नाम हैं-पं.जयकरण मिश्र, शिवनारायण मिश्र, गुरू प्रसाद मिश्र, पांडे मल्लिक, फकीरचंद मल्लिक आदि। कुछ लोगों का विचार है कि राजा गजसिंह (1659) के समय में ही घराना की स्थापना हुई थी। इनके दरबार में पं.चमारी मल्लिक तथा पं.कंगाली मल्लिक नामक विद्वान संगीतज्ञ रहते थे। पं.मुकुंद मल्लिक, जुमरात मल्लिक, दुखी मल्लिक, भारती मल्लिक, गोपाल मल्लिक, बांके मल्लिक, गोरख मिश्र, कुंज बिहारी मल्लिक, पं.राजकिशोर मल्लिक इत्यादि यहाँ के प्रसिद्ध दरबारी संगीतज्ञ हुए हैं, जिन्होंने इस गायकी को समृद्ध करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वर्तमान में पं.इन्द्रकिशोर मल्लिक, पं. अरूण कुमार मिश्रा आदि प्रमुख गायक इस घराने के कृति स्तंभ हैं। इस घराने की गायकी के अवलोकन करने पर निम्न विशेषताएँ दृष्टिगत होती है।[7]

(1) संक्षिप्त आलाप

(2) बंदिश का गान (ताल) में

(3) सम्पूर्ण गायन में लय का कोई बदलाव नहीं

(4) बोल-बाँट वर्जित

(5) ख्याल की तरह विस्तार वर्जित

(6) बंदिशों में हेराफेरी किए बिना रागानुकूल गायन।

डॉ.मनोरमा झा के अनुसर बेतिया घराने की गायन शैली पर हवेली संगीत की गायकी की छाप दृष्टिगत है। इस घराने में शुद्ध उच्चारण, सच्चा स्वर आदि के साथ बंदिशों का गायन किया जाता है। लयकारी का कार्य न के बराबर किया जाता है।[8]

दरभंगा घराने के मल्लिक ध्रुवपदियों की परम्परा पुरानी मानी जाती है। यह घराना दरभंगा के अमता, हथौड़ी, गंगदह आदि जगहों पर स्थापित है। पं.राधकृष्ण और पं.कर्त्तराम ने इस घराने की नींव डाली। पं.रामचतुर मल्लिक ने इस घराने को संगीताकाश के फलक पर स्थापित किया। इस घराने के मल्लिक ध्रुवपदियों में पं.गजराज मल्लिक, पं.लोचन मल्लिक, पं.बेनी मल्लिक, पं.राजाराम मल्लिक, पं.छितपाल मल्लिक, पं.राजितराम मल्लिक, पं.महावीर मल्लिक, यदुवीर मल्लिक, नरहरि पाठक, पं.विदूर मल्लिक, पं.सियाराम तिवारी आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वर्तमान में इस घराना के प्रमुख गायक पं. अभयनारायण मल्लिक, पं.राजकुमार मल्लिक, पं. प्रेम कुमार मल्लिक, रघुवीर मल्लिक आदि हैं। इस घराने की प्रमुख विशेषता निम्न हैं-

(1) नोम-तोम की अलापचारी का अनोखा ढंग

(2) विशेष तरह एवं बहुत से प्रकारों के गमक का प्रयोग

(3) गायकी में सम-विषम, अतीत-अनाघात की तरकीबों को खुबसूरती से प्रयोग

(4) प्रस्तुति में चैनदारी

(5) गायन रागात्मक, तालात्मक और रसात्मक की जाती है।

दरभंगा के गायक ध्रुवपद अंग के साथ ख्याल, ठुमरी, विद्यापति के पद गायन में दक्ष होते हैं।[9] डुमराव घराना की स्थापना 'धनारंगजी' ने की थी।[10] इस घराने के प्रसिद्ध संगीतज्ञों में पं.मानिक चंद दूबे, अनूपचंद दूबे, पं. बच्चू मल्लिक (दूबे), पं. जवजतन मल्लिक, पं. शिवजतन मल्लिक, पं. राजरतन मल्लिक, पं. पदार्थ मल्लिक, पं. राधिका जी, पं. पृथ्वी जी, पं. सरयुग पाठक, पं.रामप्रसाद मल्लिक, पं.रामप्रसाद पाण्डे आदि हुए हैं। वर्तमान में पं. अवधेश कुमार दूबे, पं.गोपालजी दूबे, रामजी मिश्र, डॉ. कामोद पाठक आदि इस घराने के प्रमुख गायक हैं। इस घराने में ध्रुवपद-धमार के साथ कठिन सरगम, निरोष्टिक, नौरंग, निषड़जी, वेमात्रिक, सार्थक, चतुरंग, रागमाला, त्रिवट आदि प्रचलित हैं। इस घराने में अप्रचलित राग जैसे- मोहिनी, गोहनी, स्नेहा भैरवी आदि गाई जाती हैं। इस घराने में मुख्यरूप से तीन वर्ग के ध्रुवपद की रचना प्राप्त होती है-

(1) साहित्यिक गायन, जिसे प्राचीन छन्दगान, अष्टपदीय अथवा षाडवपदीय गायन भी कहते हैं।

(2) ध्रुवपद गायन और

(3) स्वर साकार अथवा सार्थक गान।

सार्थक गान सर्वप्रथम इसी घराने में दृष्टिगत होता है।[11]

उपर्युक्त तीनों घरानें के अलावे बिहार में बहुत से संगीतज्ञ हुए हैं, जिनका ध्रुवपद गायन शैली के विकास एवं प्रसार में विशेष योगदान है। जिनमें प्रमुख है- उ.काले खाँ, उ. नज्जू खाँ, उ.फजल खाँ, उ. अजीम बख्श, पं. हरिसहाय मल्लिक, पं. हरिशरण मल्लिक, पं. हरिप्रसाद मल्लिक, दुर्गादत्त झा, पं. रमाकान्त झा, पं. रामचन्द्र झा, डॉ.चन्द्रेश्वर झा आदि।

इस प्रकार यह दृष्टिगत होता है कि बिहार के संगीतज्ञों ने ध्रुवपद गायकी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है। वर्तमान समय में भी इस गायकी को यहाँ के संगीतज्ञ अपनाये हुए हैं तथा इस गायकी को शास्त्रीय-मर्यादानुकूल देश के पैमाने पर स्थापित किए हुए हैं।

संदर्भ सूची

1. व्यास, पं. रामकृष्ण, राग-प्रभाकर, पृ.100
2. मदन, पन्नालाल, संगीत शास्त्र विज्ञान, पृ.-105
3. वृहस्पती, आचार्य कैलाशचन्द्र देव, ध्रुवपद और उकस विकास, पृ.-30
4. भरत व्यास, ध्रुवपद समीक्षा, पृ.-21
5. द्विवेदी, हरिहर निवास, मानसिंह और मनकुतूहल, पृ.-90
6. वृहस्पती, आचार्य कैलाशचन्द्र देव, ध्रुवपद और उसका विकास, पृ.-245
7. पं.अरूण कुमार मिश्र से वार्ता के आधार पर
8. डॉ. मनोरमा झा द्वारा दिये गये व्याख्यान के आधार पर
9. पं. राजकुमार मल्लिक से वार्ता के आधार पर
10. सत्यनारायण पाठक से वार्ता के आधार पर।
11. भरत व्यास, ध्रुवपद समीक्षा, पृ.-92

डेविड ह्यूम के ज्ञानमीमांसा का समीक्षात्मक अध्ययन

सुरबाला वर्मा

शोध छात्रा, दर्शन एवं धर्म विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी

ज्ञान के ऊपर जो दार्शनिक चिंतन हुए हैं उन्हें 'ज्ञानमीमांसा' नाम दिया गया है। इस ज्ञानमीमांसा के लिए अंग्रेजी शब्द म्चपेजमउवसवहल का प्रयोग किया जाता है। यह दो शब्दों से मिलकर बना है Epistem अर्थात ज्ञान तथा स्वहवे तथा शास्त्र। अतः "Epistemology का तात्पर्य उस शास्त्र से है जिसमें ज्ञान संबंधी प्रश्नों का अध्ययन किया जाता है। इन प्रश्नों के उत्तर खोजने में जो कुछ भी या जिस विषय पर भी अध्ययन प्रासंगिक हो वह इसमें शामिल कर लिया जाता है"।[1] चूंकि यह अध्ययन दार्शनिक चिंतन का ही अंग है अतः इस शास्त्र को 'ज्ञान दर्शन' भी कहा जाता है।

लॉक और बर्कले कि अनुभववादी परंपरा में ह्यूम का दर्शन सर्वाधिक महत्वपूर्ण कड़ी है। वह लॉक के अनुभववाद को स्वीकार करता है। लॉक के दर्शन की मान्यता है कि समस्त मानवज्ञान अनुभवजन्य है। संवेदना से बाह्य जगत का और स्वसंवेदन से मन के आंतरिक व्यापारों एवं सुख-दुख, आशा-निराशा आदि अनुभूतियों का ज्ञान होता है। "लॉक के अनुसार हम बाह्य वस्तुओं को प्रत्ययों के माध्यम से जानते हैं। किंतु बाह्य वस्तुएं मन से स्वतंत्र हैं। इसके विपरीत बर्कले ने भौतिक वस्तुओं के स्वतंत्र अस्तित्व का निराकरण करके उन्हें प्रत्ययों का संघात बना दिया"।[2] इस प्रकार लॉक का जड़वाद, बर्कले का अभौतिकवाद एवं प्रत्ययवाद में रूपांतरित हो गया। इसी प्रकार लॉक का ज्ञानमीमांसीय द्वैतवाद, बर्कले के ज्ञानमीमांसीय एकतत्ववाद में रूपांतरित हो गया है। बर्कले के अनुसार प्रत्यय हमारे साक्षात ज्ञान के विषय हैं। प्रत्ययों के अतिरिक्त किसी जड़तत्व की सत्ता नहीं है। यदि भौतिक द्रव्य अज्ञात है और उसका कोई संवेदन नहीं प्राप्त हो सकता है तो उसके अस्तित्व को स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। जो प्रत्यक्ष का विषय नहीं है, उसकी सत्ता को मानना अनुभववादी दृष्टि से असंगत है। ह्यूम लॉक के अनुभव को स्वीकार करते हुए उसके तार्किक निष्कर्ष का प्रतिपादन किया है।

उनके अनुसार यदि हम केवल संवेदनों को ही जानते हैं तो हमें न तो भौतिक द्रव्य का और न ही अध्यात्मिक द्रव्य का ज्ञान हो सकता है। यदि जड़त्व, आत्मा और ईश्वर का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता तो उनके अस्तित्व को कैसे स्वीकार किया जा सकता है? यदि ज्ञान का एकमात्र स्रोत इंद्रियानुभव है तो इंद्रियानुभव से परे किसी तत्व का सत्ता को स्वीकार करना एक प्रकार से अनुभववादी ज्ञानमीमांसा का परित्याग करना होगा। लॉक के अनुभववाद का संबंध वस्तुवाद से और बर्कले के अनुभववाद का संबंध प्रत्ययवाद से हो जाता है। किंतु ह्यूम का अनुभववाद इनमें से किसी भी सिद्धांत से संबंधित नहीं है। उनका दावा है कि अनुभव के आधार पर किसी भी तत्व की सत्ता को सिद्ध नहीं किया जा सकता। "ह्यूम का अनुभववाद विशुद्ध रूप से ज्ञानमीमांसीय है, जिसके द्वारा किसी तत्वमीमांसा को तार्किक दृष्टि से स्थापित नहीं किया जा सकता है"।[3] वस्तुतः किसी प्रत्यय के द्वारा वस्तु की सिद्धि नहीं की जा सकती है। प्रायः ऐसा समझा जाता है कि ह्यूम का दर्शन केवल निषेधात्मक अथवा धवांसात्मक है, किंतु ऐसी मान्यता केवल एक भूल है। वह मनुष्य की बोधशक्ति और ज्ञान की सीमाओं का विश्लेषण करते है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वह समस्त पूर्वाग्रहों और परंपरागत मान्यताओं को अस्वीकार कर देता है।

ह्यूम के अनुसार प्रत्यक्ष दो प्रकार का होता है- संस्कार एवं प्रत्यय।

संस्कार और प्रत्यय

बाह्य ज्ञानेंद्रियों से प्राप्त संवेदनों तथा स्वसंवेदनों को 'संस्कार' कहते। "संस्कार अधिक सजीव, प्रबल तथा स्पष्ट होते हैं। इनकी प्रत्यक्ष अनुभूति होती है तथा ये प्राथमिक माने गए हैं"।[4] जैसे किसी वस्तु को देखने, सूंघने, स्पर्श करने, प्रेम एवं घृणा करने से मन में जो तात्विक प्रभाव पड़ते हैं उन्हें संस्कार कहा जाता है। इसके विपरीत प्रत्यय संस्कारों की अपेक्षा धुंधले, निर्बल और कम स्पष्ट होते हैं। इस दृष्टि से प्रत्यय संस्कारों के ही प्रतिबिंब है। वास्तव में संस्कार मौलिक होता है और यह मन के लिए प्रदत्त है। इसके विपरीत प्रत्यय गौण और रचित है। संस्कार अपना जो प्रतिबिंब मन में छोड़ जाते हैं उसे ही 'प्रत्यय' कहा जाता है। "इससे स्पष्ट है कि प्रत्यय संस्कारों पर आश्रित होते हैं। कभी-कभी कुछ प्रत्यय भी अधिक प्रगाढ़, सजीव और तीव्र हो सकते हैं जिसकी तुलना में संस्कारों को क्षीण और मंद माना जा सकता है। ह्यूम के अनुसार सुषुप्ति अवस्था, बुखार, पागलपन की अवस्था इत्यादि में हमारे प्रत्यय, संस्कारों के ही समान हो सकते हैं। कभी-कभी हमारे संस्कार इतने धुंधले एवं मंद होते हैं कि हम उन्हें प्रत्ययों से अलग नहीं कर पाते हैं, किंतु इसके बावजूद संस्कार और प्रत्यय एक दूसरे से भिन्न है"।[5]

ह्यूम ने संस्कारों को दो प्रकारों का माना है– संवेदनों के संस्कार और स्वसंवेदनों के संस्कार, उसी प्रकार ह्यूम ने प्रत्ययों को भी पुनः दो प्रकारों- स्मृति के प्रत्यय और कल्पना के प्रत्यय में बांटा है।

लॉक के समान ह्यूम भी प्रत्ययों का वर्गीकरण सरल और जटिल इन दो वर्गों में करता है किंतु उनके द्वारा किया गया यह वर्गीकरण लॉक से भिन्न है। "लॉक के सरल प्रत्यय संवेदनों एवं स्वसंवेदनों दोनों से उत्पन्न होते हैं किंतु उनके अनुसार सरल प्रत्यय मूल संस्कारों के प्रतिबिंब है। ह्यूम के अनुसार जटिल

प्रत्ययों के अनुरूप उनके मूल संस्कारों का होना अनिवार्य नहीं है। उदाहरणस्वरूप हम सुवर्णागिरी एवं क्षीरसागर की कल्पना कर सकते है"।[6] किंतु संस्कारों के अभाव में सरल प्रत्यय की रचना नहीं की जा सकती है। ह्यूम के अनुसार संवेदना और स्वसंवेदना के संस्कारों का हमें प्रत्यक्ष अनुभव होता है किंतु इन अनुभूतियों के मूल स्रोत को नहीं जाना जा सकता। ह्यूम संवेदनों के स्रोत के रूप में किसी तत्व (भौतिक या अध्यात्मिक) की सत्ता को चुनौती देता है। ह्यूम के अनुसार प्रत्येक प्रत्यय अपने संस्कार पर आश्रित होता है। उदाहरणस्वरूप अंधा व्यक्ति लालिमा का अनुभव न प्राप्त कर सकने के कारण लालिमा का प्रत्यय नहीं बना सकता। ह्यूम के मनोवैज्ञानिक अनुभववाद के अनुसार कोई भी अनुभव अतींद्रिय अथवा और अलौकिक नहीं हो सकता। प्रत्येक अनुभव साधारण मानव अनुभव है। इस प्रकार वह प्लेटो के बुद्धिवादी परंपरा को चुनौती देता है। उनके अनुसार जो कल्पनीय और चिंतनीय है, वह अनुभव की सीमा में समाविष्ट हो जाता है। इसके विपरीत जो अनुभवगम्य नहीं है उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

साहचर्य नियम

ह्यूम के अनुसार समस्त मानव ज्ञान संस्कारजन्य है। ये संस्कार बौद्ध दार्शनिकों के स्वलक्षण के समान मौलिक एवं विशिष्ट इकाइयां है। हमारा मन प्रत्ययों के प्रवाह से युक्त है।ये प्रत्यय परस्पर व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध होते हैं। उनमें परस्पर साहचर्य पाया जाता है लेकिन इस साहचर्य को अनिवार्य एवं सार्वभौमिक नियम कहना ठीक नहीं है। एक प्रत्यय के बाद दूसरा प्रत्यय स्वभावत: आ जाता है। ह्यूम ने इसे 'आनन्तर्य संबंध' कहा है जिसके द्वारा साहचर्य नियम संपन्न होते हैं, उसके तीन प्रमुख आधार है 1. सादृश्य का नियम 2. दैशिक एवं कालिक संबंध 3. कारण कार्य संबंध

यदि दो प्रत्यय परस्पर सामान होते हैं तो इस सादृश्य के कारण एक वस्तु के प्रत्यय के स्मरण से दूसरी वस्तु के प्रत्यय की स्मृति हमारे मन में सजीव हो उठती हैं।

इसी प्रकार दैशिक एवं कालिक संबंधों की दृष्टि से एक ही स्थान अथवा एक ही काल में एक घटना दूसरी घटना के बाद घटित होती हैं। यहां पर भी एक घटना के प्रत्यय के बाद दूसरी घटना का प्रत्यय उपस्थित हो जाता है।

यदि हम किसी व्यक्ति के घाव का स्मरण करते हैं तो उसके ठीक बाद उसके दर्द का भी प्रत्यय हमारे मानस पटल पर आ जाता है। घाव और दर्द में कारण कार्य संबंध है।

ह्यूम के अनुसार इन तीनों नियमों में से किसी एक नियम के आधार पर दो प्रत्ययों में पारस्परिक साहचर्य हो सकता है। ये सभी नियम अनुभवजन्य एवं मनोवैज्ञानिक हैं। उनमें कोई तार्किक संबंध नहीं है जिसे अनिवार्य एवं सार्वभौमिक कहा जा सके। ह्यूम साहचर्य नियम का आधार आगमनात्मक सामान्यीकरण को मानता है। ह्यूम इन तीनों संबंधों को प्राकृतिक संबंध कहता है। हमारे प्रत्ययों की तुलना सिर्फ प्राकृतिक संबंधों पर ही नहीं बल्कि अभेद संबंध, परिमाणात्मक संबंध, गुण की मात्रा का संबंध, विपरीत संबंध, पर की जाती है। "उनके अनुसार प्राकृतिक संबंध वे हैं जो प्रत्ययों के साहचर्य को उत्पन्न करते हैं, किंतु दार्शनिक संबंध प्राकृतिक संबंधों से अधिक व्यापक होते हैं। वे प्रत्यय के साहचर्य को उत्पन्न करने वाले संबंधों के साथ अन्य संबंधों को भी उत्पन्न करते हैं"।[7]

मानव ज्ञान का वर्गीकरण

ह्यूम ने मानव ज्ञान को दो वर्गों में बांटा है– 1. आकारिक ज्ञान–तर्कशास्त्र एवं गणितीय ज्ञान इसी कोटि में आते हैं। यह ज्ञान निश्चित एवं असंदिग्ध होता है। इसे प्रागनुभविक ज्ञान कहा जाता है। चूंकि इसका संबंध वस्तु जगत से नहीं है इसीलिए यह अनिवार्य एवं सार्वभौमिक होता है। 2. तथ्यात्मक ज्ञान–इसका आधार प्रत्यक्ष अनुभव है। तथ्यात्मक ज्ञान का संबंध वस्तु जगत से है। चूंकि यह ज्ञान इंद्रियानुभव पर आधारित होता है इसीलिए इसे सार्वभौम और अनिवार्य नहीं कहा जा सकता है।

कारण कार्य संबंध का विश्लेषण

ह्यूम ने कारणता सिद्धांत की नए ढंग से व्याख्या की है। उसके द्वारा किया गया कारणता का विश्लेषण दर्शन जगत में अत्यंत विवादास्पद रहा है। कारण-कार्य संबंध की व्याख्या भौतिकी के साथ-साथ धर्मशास्त्र और दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में भी एक सार्वभौम और अनिवार्य नियम के रूप में की जाती रही है। उनके पूर्ववर्ती दार्शनिकों ने इसी नियम के आधार पर अपने महत्वपूर्ण सिद्धांतों की स्थापना की थी। वस्तुत: इसी नियम के द्वारा आगमनात्मक अनुमान भी संभव होता है। किंतु ह्यूम ने परंपरागत रूप से प्रचलित कारणता के संप्रत्यय का खंडन किया है। वस्तुत इसी नियम के आधार पर जड़वाद, प्रत्ययवाद, ईश्वरवाद आदि सिद्धांतों की स्थापना की गई है। ह्यूम का मानना है कि परंपरागत विचारधारा के अंतर्गत कारणता में जिस अनिवार्य संबंध की बात की जाती थी, वैसी कोई अनिवार्य संबंध होती ही नहीं है। मात्र इतना ही होता है कि एक घटना के बाद दूसरा घटना घटित होती है।

प्रश्न उठता है कि यदि कारण-कार्य संबंध अनिवार्य नहीं है तो अनिवार्यता की अवधारणा कहां से आती है? ह्यूम के अनुसार कारण कार्य संबंध पर आरोपित अनिवार्यता वास्तविक नहीं बल्कि एक मनोवैज्ञानिक भावनामात्र है। कोई भी व्यक्ति यह प्रमाणित नहीं कर सकता है कि कारण में कार्य को उत्पन्न करने की कोई क्षमता अंतर्निहित है। ह्यूम के अनुसार दो घटनाओं के नियत (शाश्वत) संयोग के अतिरिक्त हमें अन्य किसी प्रकार के अनिवार्य संबंध का अनुभव नहीं होता है। इसप्रकार अनिवार्यता के प्रत्यय की उत्पत्ति किसी संस्कार से नहीं हो सकती है इसीलिए ह्यूम कारण और कार्य के अनिवार्य संबंध को एक काल्पनिक अथवा मनोवैज्ञानिक अवधारणा कहता है। अग्नि से गर्मी पैदा होती हैं, सर्पदंश से मृत्यु हो जाती है, बर्फ शीतल होती है इत्यादि का ज्ञान अनुभव से होता है। इन घटनाओं से नियमित अनुक्रम का ही पता चलता है। जब दो घटनाओं के नियमित अनुक्रम की पुनरावृत्ति हमारे अनुभव में बार-बार होती है तो हम इसे एक अनिवार्य और सार्वभौम संबंध के रूप में स्वभावत: स्वीकार कर लेते हैं। "वस्तुत: आगमन से प्राप्त ज्ञान संभाव्य सत्य की कोटि में आता

है। अनुभव के द्वारा केवल वर्तमान कालिक घटनाओं को एवं स्मृति के आधार पर अतीतकाल की घटनाओं को जानने का दावा किया जा सकता है। किंतु अनुभव के आधार पर यह नहीं जाना जा सकता कि भविष्य में घटित होने वाली घटनाएं भी अनिवार्यता अतीतकाल की घटनाओं के समान ही होगी"।[8]

लॉक और बर्कले के विपरीत ह्यूम किसी भी तत्वों की सत्ता को नहीं स्वीकार करता है। वह जड़ द्रव्य के साथ-साथ आत्मा और ईश्वर की सत्ता का भी खंडन करता है। ह्यूम के अनुसार हम बाह्य जड़ द्रव्य की सत्ता को संवेदनों के कारण के रूप में नहीं स्वीकार कर सकते हैं। कारण-कार्य संबंध की अनिवार्यता को ना तो तर्कबुद्धि के आधार पर और न इन्द्रियानुभव के आधार पर सिद्ध किया जा सकता है इस प्रकार रूप, स्वाद, स्पर्श, आदि संवेदनों के द्वारा द्रव्य का कोई ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता है। उसी प्रकार द्रव्य का ज्ञान आंतरिक अनुभूतियों, संवेग और भावनाओं से भी नहीं हो सकता है। इससे सिद्ध होता है कि द्रव्य का प्रत्यय काल्पनिक है।

ह्यूम आत्मा की अवधारणा का भी खंडन करता है। इस संदर्भ में उनका प्रसिद्ध कथन हैं– "मैं जब जब इस आत्मा का अनुभव करने के लिए इसके अंदर गहराई से प्रवेश करता हूं, तब-तब किसी न किसी संस्कार अथवा प्रत्यय से टकराकर रह जाता हूं। ये संवेदनाएं अथवा प्रत्यय गर्मी- ठंडी, प्रकाश-छाया, प्रेम-घृणा आदि से संबंधित होते हैं"।9 इनके कहने का अर्थ यह है कि आत्मा की प्रतीति किसी संवेदन अथवा स्वसंवेदन एवं उनसे उत्पन्न प्रत्ययों के द्वारा नहीं हो सकती है। वस्तुतः आत्मा की एकता, सरलता आदि में विश्वास भ्रामक है।

ह्यूम ने ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने के लिए दी जाने वाली परंपरागत युक्तियों का खंडन किया है। ह्यूम का मानना है कि धार्मिक मान्यताओं को मनुष्य अपने अनुभव एवं बुद्धि के आधार पर सिद्ध नहीं कर सकता है। अतः अनुभववाद हमें संशयवाद की ओर ले जाता है। "ह्यूम के संशयवाद का एक विशेष अर्थ है। वे अपने संशयवाद के सहारे अनुभवेतर विषयों में मानव बुद्धि की अक्षमता बतलाते हैं। अनुभव से परे विषयों को हम तर्क या प्रमाण से नहीं जान सकते हैं। ह्यूम आस्था और विश्वास का निषेध नहीं करते। वे विश्वास पर आधारित मान्यताओं को पूर्णतः ध्वस्त नहीं करते हैं और न ही उनका बौद्धिक समर्थन ही करते हैं। वे अपने संदेहवाद के द्वारा केवल परंपरागत अंधविश्वासों से समाज को मुक्त करना चाहते हैं। अतः धर्म और तत्वमीमांसा के विषयों में वे कुछ दूर तक अवश्य संशयवादी हैं,परंतु गणित, प्राख्रतिक विज्ञान तथा सामाजिक विज्ञान की यथार्थता स्वीकार करते हैं"।[10]

आलोचना

रसेल के अनुसार ह्यूम के दर्शन का खंडन करना दार्शनिकों का प्रिय विषय रहा है। विचारकों द्वारा उनके दर्शन में निम्न कमियों को प्रकाशित किया गया है

1. विचारकों का मानना है कि इन्द्रियानुभव को समस्त ज्ञान का स्रोत मानना अनुभववादी ज्ञानमीमांसा के गंभीर भूल है। इसके फलस्वरूप ह्यूम का दर्शन संशयवादी हो जाता है। ह्यूम की भूल यह है कि उसने ज्ञान के स्वरूप का सम्यक विवेचन, तार्किक विश्लेषण और मूल्यांकन नहीं किया है। वह ज्ञान की संरचना में बुद्धि की भूमिका का समुचित मूल्यांकन न कर सका है। केवल अनुभव के आधार पर कोई निश्चायक और व्यवस्थित दर्शन की स्थापना नहीं की जा सकती है।
2. ह्यूम के द्वारा कारण-कार्य संबंध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण दोषपूर्ण है। कारण-कार्य नियम की सार्वभौमिकता, अनिवार्यता और निश्चितता की सिद्धि इंद्रियानुभव के द्वारा नहीं की जा सकती है। वस्तुतः कारण कार्य संबंध एक बुद्धि विकल्प है। विभिन्न अस्त-व्यस्त अनुभूतियों को एकता के सूत्र में अनुस्यूत करने के लिए बुद्धि विकल्पों की आवश्यकता है। अतः ज्ञान की उत्पत्ति को बुद्धि के अनुभव- निरपेक्ष आकारों में न खोजना ह्यूम के दर्शन का एक निर्बल पक्ष है।
3. ह्यूम ने जिस रूप में आगमन की समस्या को प्रस्तुत किया है, उसका कोई तार्किक समाधान संभव नहीं प्रतीत होता है। आगमन का स्वभाव है कि उसकी वैधता निगमन के समान नहीं हो सकती हैं। ह्यूम की यह एक भूल है कि वह आगमनात्मक अनुभव के क्षेत्र में निगमन जैसी पूर्ण निश्चितता और वैधता की आशा करता है।
4. ह्यूम के दर्शन का एक अन्य गंभीर दोश आत्मा को संस्कारों एवं प्रत्ययों के संघात के रूप में विषय के स्तर पर ला देना है।किंतु आत्मा एक विषयी या ज्ञाता है। वह समस्त ज्ञान की तार्किक प्रागपेक्षा है। आत्मा का अस्तित्व स्वतः सिद्ध है क्योंकि वह समस्त ज्ञान की आधारशिला है।
5. जिस अनुभववाद का विकास ह्यूम के दर्शन में होता है उसके तीन परिणाम है 1. अहम्मात्रवाद- इसको मानकर ह्यूम संस्कारों एवं प्रत्यय के अतिरिक्त अन्य तत्वों का निराकरण कर देता है, किंतु किसी आश्रय के बिना ये प्रत्यय और संस्कार कैसे संभव है? 2. मनोवैज्ञानिक परमाणुवाद- ह्यूम के प्रत्यय परमाणुओं की तरह असंबद्ध है। वे बाद में साहचर्य नियम से परस्पर संबंधित होते हैं। किंतु जब आत्मा की ही सत्ता नहीं है तो उन्हें कौन संबंधित करेगा। 3. संदेहवाद- ह्यूम का संदेहवाद व्यवहारिक और तार्किक दोनों ख्रष्टिकोण से असंगत प्रतीत होता है। व्यवहारिक जीवन के व्यवस्थित संचालन के लिए विश्वास आवश्यक होता है, किंतु संदेहवाद इसे नष्ट कर देता है।

समीक्षा

ह्यूम के विचारधारा में भावात्मक और अभावात्मक दो पक्ष पाए जाते हैं और यह दोनों पक्ष दर्शन के विकास में महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। ह्यूम के भावात्मक पक्ष में अनेक धाराएं अस्फुट रूप से पाई जाती है जिनका विकास पाश्चात्य दर्शन के भावी विचारों में देखने में आता है। ह्यूम का महत्व तार्किक प्रत्यक्षवाद में विशेष समझा जाता है क्योंकि तार्किक प्रत्यक्षवाद के समान ह्यूम असंदिग्ध ज्ञान को गणित तक ही सीमित रखते हैं और वास्तविक पदार्थ के ज्ञान को संभाव्य ही मानते हैं। उनके अनुभववाद के प्रभाव से थॉमस रीड के नेतृत्व में स्कॉटिश दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ, जिसने उनके संशयवाद का उत्तर देने का प्रयास किया।

ह्यूम के द्वारा जड़ जगत, आत्मा एवं ईश्वर की सत्ता का निराकरण करने के बाद केवल मौलिक संस्कारों की ही सत्ता अवशेष रह जाती है। इस प्रकार बाह्य वस्तुओं एवं आत्मा की सत्ता का निराकरण हो जाने के बाद संवृतिवाद का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

यद्यपि ह्यूम के बाद अनेक परवर्ती आलोचकों और दार्शनिकों ने उनके संशय को आत्मघाती कहा तथापि ना तो उनके दर्शन का महत्व कम हुआ और ना ही कोई विचारक उनकी उपेक्षा कर सका। उनके द्वारा उठाए गए दार्शनिक समस्याएं उनके समय से लेकर आज तक दर्शन जगत में बहस, विवाद, परिचर्चा एवं चिंतन के विषय रही हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि ह्यूम न केवल यूरोप का, अपितु विश्व का एक महान दार्शनिक है।

संदर्भ सूची

1. श्यामकिशोर सेठ, नीलिमा मिश्र, ज्ञान दर्शन, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ-11
2. डॉ. हरिशंकर उपाध्याय, पाश्चात्य दर्शन का उद्भव और विकास, अनुशीलन प्रकाशन, पृष्ठ-223
3. डॉ. हरिशंकर उपाध्याय, पाश्चात्य दर्शन का उद्भव और विकास, अनुशीलन प्रकाशन, पृष्ठ-224
4. डॉ. बद्रीनाथ सिंह, पाश्चात्य दर्शन की रूपरेखा, आशा प्रकाशन, पृष्ठ-271
5. A Treatise on Human Nature
6. डॉ. हरिशंकर उपाध्याय, पाश्चात्य दर्शन का उद्भव और विकास, अनुशीलन प्रकाशन, पृष्ठ-225
7. David Hume, A.H. Baison, P&54 का हिंदी अनुवाद
8. डॉ. हरिशंकर उपाध्याय, ज्ञान मीमांसा के मूल प्रश्न, पृष्ठ-183-186
9. Hume's Treatise, P-252 का हिंदी अनुवाद
10. डॉ. बद्रीनाथ सिंह, पाश्चात्य दर्शन की रूपरेखा, आशा प्रकाशन, पृष्ठ-283-284

अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भारतीय वस्त्रों का आर्थिक महत्त्व

प्रोफेसर (डॉ०) संजय कुमार झा

विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, टी0एन0बी0 महाविद्यालय, भागलपुर, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

भूमिका

वैश्वीकरण दो देशों के बीच अन्तर्सम्बद्धता के रूप में व्यक्त होता है। सैद्धान्तिक रूप से तो वैश्वीकरण विकसित एवं विकासशील दोनों ही प्रकार के देशों के लिए लाभकारी कहा जाता है; क्योंकि पूँजी के मुक्त प्रवाह से जहाँ विकसित देश लाभान्वित होते हैं, वहीं श्रम के मुक्त प्रवाह के लाभ सीधे तौर पर विकासशील देशों एवं अति पिछड़े देशों को मिलते हैं। यह भी कहा जाता है कि भूमण्डलीकरण की नाव पर चढ़कर विकासशील तथा पिछड़े देश निर्धनता, कुपोषण, अशिक्षा, बेरोजगारी की वैतरणी को आसानी से पार कर सकते हैं। भूमण्डलीकरण का उल्लेख विश्व बाजार में विकास के आधुनिक अवधारणा के रूप में भी मिलता है। विश्व के प्राय: देश एक दूसरे देश से सामाजिक, आर्थिक, व्यापारिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक रूप से आपस में जुड़ते हुए एक दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं। भूमण्डलीकरण कोई परिणाम नहीं, अपितु एक प्रक्रिया है, जो विश्व के विभिन्न भागों में बढ़ती हुई अन्तर्सम्बद्धता की ओर झुकाव का इशारा करता है, न कि उनके परस्पर जुड़े होने की ओर। यह मुख्य रूप से आर्थिक, राजनीतिक तथा प्रौद्योगिकी के सहज गुणों का एक विनिमय है जो, दो देशों के बीच उस वक्त होता है, जब वे एक दूसरे के सम्पर्क में आते और मिलकर आगे बढ़ते हैं।

विश्व अर्थव्यवस्था से जुड़ने की प्रक्रिया ने विभिन्न देशों को तेजी से जोड़ने का काम किया है। यह पूंजी, उत्पादों एवं सूचना की अवधि-गति से एक देश से दूसरे देश में गतिशील होने से जन्म लिया है, जो न केवल अर्थव्यवस्था; बल्कि सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, पर्यावरण आदि सभी व्यवस्थाओं को प्रभावित कर रहा है। इसलिए भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया को विभिन्न दृष्टिकोणों से उनके विभिन्न आयामों पर देखा जा सकता है।

अर्थशास्त्रियों की दृष्टि में भूमण्डलीकरण का अर्थ है वृहतर सुसंबद्धता और सीमाओं को तोड़ना। दूसरी ओर जब हम इस प्रक्रिया को आर्थिक दृष्टिकोण से देखते हैं तो हम कह सकते हैं, कि एक अर्थशास्त्री भूमण्डलीकरण को एक ऐसे दृष्टांत के रूप में लेते हैं, जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय रूप से जुड़े हुए बाजार की दो शार्तें पूरी करते हैं।

भूमण्डलीकरण के दो महत्वपूर्ण पक्ष उदारीकरण और निजीकरण हैं। उदारीकरण की मान्यता है कि राज्य एक सुविधादाता की भूमिका निभाए और कोई आर्थिक योजना नहीं बनाये; बल्कि बाजार की शाक्तियों के भरोसे नागरिकों को छोड़ दे। इसके अलावा निजीकरण की मान्यता है कि राज्य सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयाँ स्वयं नहीं चलायें, उन्हें निजी निगमों, पूँजीपतियों को सौंप दे और उन पर व्यापारिक विनियमन आदि लागू न करें, जिससे स्वतंत्र रूप से उनका विकास होता रहे। उदारीकरण का सीधा सा मतलब सामाजिक एवं आर्थिक नीति के क्षेत्र में प्रतिबंधों में छूट मिलना है। आर्थिक उदारीकरण में इस शाब्द का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है; जिसमें व्यापार उदारीकरण एवं पूंजी बाजार उदारीकरण को मुख्यत: शाामिल किया जाता है।

भूमण्डलीकरण के दौर में एक नीति परिवेश का निर्माण हुआ है, जिसमें विशेष रूप से आर्थिक नीति में उदारीकरण शाामिल किया गया है। इसमें विश्व के व्यापारियों के लिए बाजारों को खोल दिया गया है तथा माल व सेवाओं के उत्पादन पर स्वामित्व एवं नियंत्रण के लिहाज से राष्ट्रीय सरकारों की भूमिका घटने लगी है। यह 'उदारीकरण क्रान्ति' उन अनेक कार्यकलापों की वैद्यता के समक्ष चुनौती प्रस्तुत करती हैं, जो आधुनिक (1914 ई0 के बाद) विश्व में विभिन्न देशों की राष्ट्रीय सरकारें किया करती थीं, जैसे-राष्ट्रीयकृत उद्योगों को चलाना, व्यापार विनियम, मूल्य निर्धारण, वांछित आधारभूत ढाँचें एवं सार्वजनिक सेवाओं पर एकाधिकार। पश्चिमी देशों में नव-उदारवादियों द्वारा समर्थित मुक्त बाजार आर्थिक नीतियों, जिन्हें अस्सी के दशक में ब्रिटेन में मार्गरेट थेचर द्वारा और अमेरिका में रोनाल्ड रीगन द्वारा व्यवहार में लाया गया था, जो शाीघ्र ही अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं की औपचारिक नीति बन गई।

भारतीय कपड़े और विश्व बाजार

बंगाल पर अंग्रेजों की विजय से पहले 1750 के आस-पास भारत पूरी दुनिया में कपड़ा उत्पादन के क्षेत्रा में औरों से कोसों आगे था। भारतीय कपड़े लंबे समय से अपनी गुणवत्ता और बारीक कारीगरी के लिए दुनिया भर में मशहूर थे। दक्षिण-पूर्वी एशिया (जावा, सुमात्रा और पेनांग) तथा पश्चिमी एवं ममय एशिया में इन कपड़ों का भारी व्यापार था। सोलहवीं शाताब्दी से यूरोप की व्यापारिक कम्पनियाँ यूरोप में बेचने के लिए भारतीय कपड़े खरीदने लगी थीं। इस फलते-फूलते व्यापार और भारतीय बुनकरों के हुनर की यादें अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के बहुत सारे शाब्दों में आज भी जिंदा हैं। ऐसे शाब्दों की जड़ों को ढूँढ़ना और उनके अर्थ जानना बड़ा मजेदार है।

शब्दों में इतिहास छिपा है

यूरोप के व्यापारियों ने भारत से आया बारीक सूती कपड़ा सबसे पहले मौजूदा ईराक के मोसूल शाहर में अरब के व्यापारियों के पास देखा था। इसी आमार पर वे बारीक बुनाई वाले सभी कपड़ों को 'मस्लिन' (मलमल) कहने लगे। जल्दी ही यह शाब्द खूब प्रचलित हो गया। मसालों की तलाश में जब पहली बार पुर्तगाली भारत आए तो उन्होंने दक्षिण-पश्चिमी भारत में केरल के तट पर कालीकट में डेरा डाला। यहाँ से वे मसालों के साथ-साथ सूती कपड़ा भी लेते गए। कालीकट से निकले शाब्द को 'कैलिको'५कहने लगे। बाद में हर तरह के सूती कपड़े को कैलिको ही कहा जाने लगा। ऐसे बहुत सारे शाब्द हैं जो पश्चिमी बाजारों में भारतीय कपड़ों की लोकप्रियता की कहानी कहते हैं। 1730 में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी ने कलकना स्थित अपने नुमाइंदों के पास भेजा था। बही के मुताबिक, उस साल कपड़े के 5,89,000 थानों का ऑर्डर मिला था। यदि आप इसी बही के पन्नों को पलटते तो आपको पता चलता कि उसमें सूती और रेशमी कपड़े की 98 किस्मों का जिक्र किया गया है। यूरोपीय व्यापारी उन्हें पीस गुड्स कहते थे जो आम तौर पर 20 गज लंबा और 1 गज चौड़ा थान होता था।

अब इसी बही में दी गई विभिन्न किस्मों के नामों को देखें। थोक में जिन कपड़ों का ऑर्डर दिया गया था उनमें छापेदार सूती कपड़े भी शामिल थे। उन्हें ये व्यापारी शिंट्ष, कोसा (या खस्सा) और बंडाना कहते थे। क्या आप जानते हैं कि अंग्रेजी का शिंट्ष शाब्द कहाँ से आया है? जी हाँ, यह हिंदी के 'छींट' शाब्द से निकला है। हमारे यहाँ छींट रंगीन फूल-पत्तियों वाले छोटे छापे के कपड़े को कहा जाता है। 1680 के दशक तक इंग्लैंड और यूरोप में छापेदार भारतीय सूती कपड़े की जबरदस्त माँग पैदा हो चुकी थी। आकर्षक फूल-पत्तियों, बारीक रेशे और सस्ती कीमत की वजह से भारतीय कपड़े का एक अलग ही रुतबा था। इंग्लैंड के रईस ही नहीं बल्कि खुद महारानी भी भारतीय कपड़ों से बने परिधान पहनती थीं। बाँधना शाब्द का इस्तेमाल गले या सिर पर पहनने वाले चटक रंग के छापेदार गुलूबन्द के लिए किया जाता है। यह शाब्द हिंदी के 'बाँधना' शाब्द से निकला है। इस श्रेणी में चटक रंगों वाले ऐसी बहुत सारी किस्म के कपड़े आते थे जिन्हें बाँधने और रँगसाजी की विधियों से ही बनाया जाता था। बही में कई दूसरी तरह के कपड़ों का भी जिक्र है जिनका नाम उनके जन्म स्थान के अनुसार लिखा गया है : कासिम बाजार, पटना, कलकना, उड़ीसा, चारपूर आदि। इन शाब्दों के व्यापक प्रयोग से पता चलता है कि दुनिया के विभिन्न भागों में भारतीय कपड़े कितने मशहूर हो चुके थे।

यूरोपीय बाजारों में भारतीय कपड़ा

अठारहवीं सदी की शुरुआत तक आते-आते भारतीय कपड़े की लोकप्रियता से बेचैन इंग्लैंड के ऊन व रेशम निर्माता भारतीय कपड़ों के आयात का विरोध करने लगे थे। इसी दबाव के कारण 1720 में ब्रिटिश सरकार ने इंग्लैंड में छापेदार सूती कपड़े छींट के इस्तेमाल पर पाबंदी लगाने के लिए एक कानून पारित कर दिया। संयोगवश, इस कानून को भी केलिको अधिनियम ही कहा जाता था। उस समय इंग्लैंड में नए-नए कपड़ा कारख़ाने खुल रहे थे। भारतीय कपड़ों के सामने लाचार अंग्रेज कपड़ा उत्पादक अपने देश में भारतीय कपड़ों के प्रवेश पर पूरी पाबंदी चाहते थे ताकि पूरे इंग्लैंड में केवल उन्हीं का कपड़ा बिके। इस क्रम में इंग्लैंड की सरकार ने सबसे पहले कैलिको छपाई उद्योग को ही सरकारी संरक्षण में विकसित किया। अब सपफेद मलमल या बिना मांड वाले कोरे भारतीय कपड़े पर इंग्लैंड में ही भारतीय डिजाइन छापे जाने लगे। भारतीय कपड़ों के साथ इस होड़ की वजह से इंग्लैंड में तकनीकी सुधारों की जरूरत दिखाई देने लगी थी। 1764 में जॉन के ने स्पिनिंग जैनी का आविष्कार किया जिससे परंपरागत तकलियों की उत्पादकता काफी बढ़ गई। 1786 में रिचर्ड आर्वफराइट ने वाष्प इंजन का आविष्कार किया जिसने सूती कपड़े की बुनाई को क्रान्तिकारी रूप से बदल दिया। अब बहुत सारा कपड़ा बेहद कम कीमत पर तैयार किया जा सकता था। इसके बावजूद, दुनिया के बाजारों पर भारतीय कपड़े का दबदबा अठारहवीं सदी के आखिरी तक बना रहा। डच, फ्रेंच, ब्रिटिश और अन्य यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों ने इस व्यापार से बेहिसाब मुनाफा कमाया। ये कम्पनियाँ भारत आकर चाँदी के बदले सूती और रेशमी कपड़े खरीदती थीं। परंतु जैसा कि आप जानते हैं, जब इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी को बंगाल की राजनीतिक सत्ता मिल गई तो उसे भारतीय चीजें खरीदने के लिए चाँदी मँगाने की जरूरत नहीं रही इसके बाद तो ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत में ही किसानों और जमींदारों से राजस्व इकट्ठा करके उस पैसे से कपड़ा खरीदने लगी।

बुनकर कौन थे?

बुनकर आमतौर पर बुनाई का काम करने वाले समुदायों के ही कारीगर होते थे। वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसी हुनर को आगे बढ़ाते थे। बंगाल के तांती, उत्तर भारत के जुलाहे या मोमिन, दक्षिण भारत के साले व के कोल्लार तथा देवांग समुदाय बुनकरी के लिए प्रसिद्ध थे। सूत कातना कपड़ा उत्पादन का सबसे पहला चरण था। यह काम अधिकांशत: महिलाओं के जिम्मे रहता था। चरखा और तकली घर-घर में पाए जाते थे। माँगे को चरखे पर कात कर तकली पर लपेट दिया जाता था। जब कताई पूरी हो जाती थी तो बुनकर इस माँगे से कपड़े बुनते थे। ज्यादातर समुदायों में बुनाई का काम पुरुष करते थे। रंगीन कपड़ा बनाने के लिए रँगरेज इस धागे को रंग देते थे। छपाईदार कपड़ा बनाने के लिए बुनकरों को चिप्पीगर नामक माहिर कारीगरों की जरूरत होती थी जो ठप्पे से छपाई करते थे। हथकरघों पर होने वाली बुनाई और उससे जुड़े व्यवसायों से लाखों भारतीयों की रोजी-रोटी चलती थी।

भारतीय कपड़े का पतन

ब्रिटेन में सूती कपड़ा उद्योग के विकास से भारतीय कपड़ा उत्पादकों पर कई तरह के असर पड़े। पहला : अब भारतीय कपड़े को यूरोप और अमेरीका के बाजारों में ब्रिटिश उद्योगों में बने कपड़ों से मुकाबला करना पड़ता था। दूसरा : भारत से इंग्लैंड को कपड़े का निर्यात मुश्किल होता जा रहा था क्योंकि

ब्रिटिश सरकार ने भारत से आने वाले कपड़े पर भारी सीमा शुल्क थोप दिए थे। इंग्लैंड में बने सूती कपड़े ने उन्नीसवीं सदी की शुरुआत तक भारतीय कपड़े को अफ्रीका, अमेरीका और यूरोप के परंपरागत बाजारों से बाहर कर दिया था। इसकी वजह से हमारे यहाँ के हजारों बुनकर बेरोजगार हो गए। सबसे बुरी मार बंगाल के बुनकरों पर पड़ी। ब्रिटिश और यूरोपीय कम्पनियों ने भारतीय माल खरीदने बंद कर दिए और उनके एजेंटों ने तयशुदा आपूर्ति के लिए बुनकरों को पेशगी देना बंद कर दिया था। परेशान बुनकरों ने मदद के लिए बार-बार सरकार से गुहार लगाई। लेकिन असली दुर्दिन तो अभी आने वाले थे। 1830 के दशक तक भारतीय बाजार ब्रिटेन में बने सूती कपड़े से पट गए। दरअसल, 1880 के दशक तक स्थिति यह हो गई थी कि भारत के लोग जितना सूती कपड़ा पहनते थे उसमें से दो तिहाई ब्रिटेन का बना होता था। इससे न केवल बुनकरों बल्कि सूत कातने वालों की भी हालत खराब होती गई। जो लाखों ग्रामीण महिलाएँ सूत कातकर ही अपनी आजीविका चला रही थीं वे बेरोजगार हो गईं। लेकिन भारत में हथकरघों से होने वाली बुनाई पूरी तरह खत्म नहीं हुई। इसकी वजह यह थी कि कपड़ों की कुछ किस्में मशीनों पर नहीं बन सकती थीं। भला जटिल और मनभावन किनारियों वाली साड़ी या परंपरागत बुनाई वाले कपड़े मशीनों पर कैसे बन सकते थे? इन कपड़ों की न केवल रईसों के बीच बल्कि मध्यम में भी काफी माँग थी। और न ही ब्रिटेन के कपड़ा मिलों में वह बेहद मोटा कपड़ा बनता था जिसे भारतीय गरीब पहनते थे। आपने पश्चिमी भारत में स्थित शोलापुर और दक्षिण भारत में स्थित मदुरा का जरूर सुना होगा। ये शाहर उन्नीसवीं सदी के आखिर में बुनकरी के नए महत्वपूर्ण केन्द्र बनकर सामने आए। बाद में, राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान महात्मा गाँधीजी ने भी लोगों से आह्वन किया कि वे आयातित कपड़े का बहिष्कार करें और हाथ से कते सूत और हाथ से बुने कपड़े ही पहनें। इस तरह खादी राष्टंवाद का प्रतीक बनती चली गई। चरखा भारत की पहचान बन गया और 1931 में उसे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के तिरंगे झंडे की बीच वाली पट्टी में जगह दी गई। आइए देखें कि आजीविका के सामान गँवा चुके बुनकरों और सूत कातने वालों का क्या हुआ? उनमें से बहुत सारे तो खेतिहर मजदूर बन गए थे। कुछ काम की तलाश में शाहरों की तरफ चले गए और बहुत से देश से बाहर अफ्रीका व दक्षिणी अमेरीका के बागानों में काम करने के लिए चले गए। इनमें से कुछ हथकरघा बुनकरों को बम्बई (अब मुंबई), अहमदाबाद, शोलापुर, नागपुर और कानपुर में खुले नए कपड़ा कारख़ानों में नौकरी भी मिल गई।

सूती कपड़ा मिलों का उदय

भारत में पहली सूती कपड़ा मिल 1854 में बम्बई में स्थापित हुई। यह कताई मिल थी। उन्नीसवीं सदी की शुरुआत से ही भारत से इंग्लैंड और चीन को होने वाले कच्चे कपास के निर्यात के लिए बम्बई एक महत्वपूर्ण बंदरगाह बन चुका था। बम्बई पश्चिमी भारत की काली मिट्टी वाली उस विशाल पट्टी से काफी निकट था जहाँ कपास की खेती की जाती थी। जब वहाँ सूती कपड़ा मिलों की स्थापना हुई तो उन्हें कच्चा माल आसानी से मिलने लगा।

सन् 1900 तक आते-आते बम्बई में 84 कपड़ा मिलनें चालू हो चुकी थीं। उनमें से बहुत सारी मिलें पारसी और गुजराती व्यवसायियों ने खोली थीं जो चीन के साथ व्यापार वेफ जरिए काफी पैसा कमा चुके थे। इस दौरान दूसरे शाहरों में भी ऐसे कई कारख़ाने खोले गए। अहमदाबाद में पहला कारख़ाना 1861 में खुला। अगले ही साल संयुक्त प्रांत स्थित कानपुर में भी एक कारख़ाना खुल गया। सूती कपड़ा मिलों की बढ़ती संख्या के कारण मजदूरों की माँग भी बढ़ने लगी। हजारों गरीब काश्तकार, दस्तकार और खेतिहर कामगार कारख़ानों में काम करने के लिए शाहरों की तरफ जाने लगे। प्रारंभिक कुछ दशकों के दौरान भारतीय कपड़ा कारख़ानों को बहुत सारी समस्याओं से जूझना पड़ा। सबसे पहली समस्या तो यही थी कि इस उद्योग को ब्रिटेन से आए सस्ते कपड़ों का मुकाबला करना पड़ता था। ज्यादातर देशों में सरकारें आयातित वस्तुओं पर सीमा शुल्क लगा कर अपने देश में औद्योगीकरण को बढ़ावा देती थीं। इससे प्रतिस्पर्धा खत्म हो जाती थी और संबंधित देश के नवजात उद्योगों को संरक्षण मिलता था। परंतु औपनिवेशिक भारतीय सरकार ने स्थानीय उद्योगों को आम तौर पर इस तरह की सुरक्षा नहीं दी। लिहाजा, भारत में औद्योगिक सूती वस्त्रोत्पादन की पहली बड़ी लहर प्रथम विश्व युद्ध के समय दिखाई दी जब ब्रिटेन से आने वाले कपड़े की मात्रा में काफी कमी आ गई थी और सैनिक जरूरतों को पूरा करने के लिए भारतीय कारख़ानों से कपड़े का उत्पादन बढ़ाने की माँग की जाने लगी।

सन् 1900 तक आते-आते बम्बई में 84 कपड़ा मिलें चालू हो चुकी थीं। उनमें से बहुत सारी मिलें पारसी और गुजराती व्यवसायियों ने खोली थीं जो चीन के साथ व्यापार के जरिए काफी पैसा कमा चुके थे। इस दौरान दूसरे शाहरों में भी ऐसे कई कारखाने खोले गए। अहमदाबाद में पहला कारखाना 1861 में खुला। अगले ही साल संयुक्त प्रांत स्थित कानपुर में भी एक कारखाना खुल गया। सूती कपड़ा मिलों की बढ़ती संख्या के कारण मजदूरों की माँग भी बढ़ने लगी। हजारों गरीब काश्तकार, दस्तकार और खेतिहर कामगार कारखानों में काम करने के लिए शाहरों की तरफ जाने लगे। प्रारंभिक कुछ दशकों के दौरान भारतीय कपड़ा कारख़ानों को बहुत सारी समस्याओं से जूझना पड़ा। सबसे पहली समस्या तो यही थी कि इस उद्योग को ब्रिटेन से आए सस्ते कपड़ों का मुकाबला करना पड़ता था। ज्यादातर देशों में सरकारें आयातित वस्तुओं पर सीमा शुल्क लगा कर अपने देश में औद्योगीकरण को बढ़ावा देती थीं। इससे प्रतिस्पर्धा खत्म हो जाती थी और संबंधित देश के नवजात उद्योगों को संरक्षण मिलता था। परंतु औपनिवेशिक भारतीय सरकार ने स्थानीय उद्योगों को आम तौर पर इस तरह की सुरक्षा नहीं दी। लिहाजा, भारत में औद्योगिक सूती वस्त्रोत्पादन की पहली बड़ी लहर प्रथम विश्व युद्ध के समय दिखाई दी जब ब्रिटेन से आने वाले कपड़े की मात्रा में काफी कमी आ गई थी और सैनिक जरूरतों को पूरा करने के लिए भारतीय कारखानों से कपड़े का उत्पादन बढ़ाने की माँग की जाने लगी।

सारांश

नव-उदारवादियों का आह्वान राज्य एवं जन-समाज के बीच सम्बधों के बुनियादी पुनर्गठन के लिए है, जो कि आर्थिक गतिविधियों के क्षेत्र में राज्य के साथ अव्यक्त रहें, जिन पर बाजार शाक्तियों की मुक्त गतिविधियों का नियंत्रण होगा। इसमें आयात शुल्कों, निर्यात उदारता, घरेलू उत्पादन रियायतों, व्यापार

कोटा अथवा आयात लाइसेंसों जैसे प्रतिबंधों के बिना ही वाणिज्य अथवा व्यापार को शाामिल किया गया। दुनिया भर के देशों को वित्तीय सहायता अथवा ऋणों के अनुदान के लिए शार्तों के रूप में व्यापार एवं निवेश के क्षेत्र में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के विनियमन एवं उदारीकरण पर जोर देना शुरू कर दिया। समकालीन विश्व में आर्थिक शाक्तियों का व्यापार-कार्य राष्ट्रीय सरकारों के नियंत्रण में होता है।

सन्दर्भ :

1. पी0 भट्टाचार्य : ग्लोब्लाईजेशन एण्ड इंडिया, ए स्टडी, आलेख, अमृत बाजार, प्रकाशन वर्ष-1999, पृष्ठ संख्या-115
2. टी0 जे0 जिता : भूमण्डलीकरण के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयाम, इग्नू, नई दिल्ली, पृ0सं088
3. वेलस्टेन : द रिट्रीट ऑफ द स्टेट : द डिफ्यूजन ऑफ पावर इन द वर्ल्ड इकॉनामी, कैम्ब्रिज प्रेस, न्यूयार्क, प्रकाशन वर्ष-1996, पृष्ठ-2171
4. रोबर्स्टन : बियॉन्ड ग्लोब्लाइजेशन : शोपिंग ए संस्टनेबुल ग्लोबल, इकॉनॉमी बेस्ड हार्डफोर्ड सीटी-लंदन, ईग्लैण्ड, बुमारियन, वर्ष-1999, पृष्ठ संख्या-126
5. लियोडर लेविट : ग्लोबल कैपेटलिज्म एण्ड इण्डियन क्लोथ, ओरियन्ट लौंगमैन लिमिटेड, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ संख्या-198

ई-गवर्नेन्स और डिजिटल इंडिया: भारतीय नागरिकों को सशक्त बनाना

डॉ० संतोष कुमार यादव

एम.कॉम, एम. एड., पी.-एच.डी., नियर एल. सी. एस. कॉलेज, दरभंगा

सार-संक्षेप

हाल के वर्षो में कई विकासशील देशों की तरह भारत में भी ई-गवर्नेन्स अनुप्रयोगों को बढ़ावा देने में काफी प्रगति हुई है। भारत में ई-गवर्नेन्स की विकास यात्रा को 2 चरणों में विभाजित किया जा सकता है। पहला चरण 1960-70 से 1990 तक तथा दूसरा चरण 1990 से वर्तमान तक जारी है। पहले चरण की शुरूआत केन्द्र सरकार ने अपने घर से सूचना प्रौद्योगिकी के सहारे ई-गवर्नेन्स विकसित करने के लिए की। जिसमें मुख्य रूप से केन्द्र सरकार द्वारा मुख्य आवश्यकताओं जैसे रक्षा, अनुसंधान, आर्थिक निगरानी और नियोजन, चुनाव से सम्बन्धित कुछ आँकड़ों का संकलन, राष्ट्रीय जनगणना का आयोजन एवं कर प्रशासन प्रमुख अनुप्रयोग थे। इस प्रथम चरण के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र की कई महत्वपूर्ण विभागीय गतिविधियों में सूचना प्रौद्योगिकी के परिचय के बावजूद स्वचालन प्रारंभ नहीं हुआ। दूसरा चरण नेशनल आई टी टास्क फॉर्स और राज्य सरकार की आई. टी. नीतियों का क्रियान्वयन शहरी क्षेत्रों के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में भी बड़ी संख्या में आवेदनों की एक व्यापकशृंखला के लिए आई. टी. का उपयोग करने की दिशा में शासन की नीतियों में बदलाव का प्रतीक है।

परिचय

ई-गवर्नेन्स से आशय मुख्य रूप से प्रशासनिक दक्षता में सुधार लाने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग करने से है। इसके उपयोग से सरकारी प्रक्रियाओं में बेहतर पारदर्शिता और जवाबदेही होगी, सरकार और नागरिक सम्बन्धों पर प्रभाव पड़ेगा और नागरिकों के समग्र विकास में मदद मिलेगी। सरल शब्दों में ई-गवर्नेन्स नागरिकों को इस बात का विकल्प उपलब्ध करवाता है कि वे सरकारी सूचनाओं, सेवाओं की जानकारी जब चाहें और जहाँ चाहें प्राप्त कर सकें। सरकारी सेवाओं के क्रियान्वयन का केन्द्र बिन्दु सामान्य नागरिक है और सामान्य नागरिक के लिए किए जा रहे प्रत्येक कार्य की जानकारी उसे उपलब्ध करवाने में अधिक से अधिक इलेक्ट्रोनिक्स (कम्प्यूटर) और सूचना प्राद्योगिकी (इन्टरनेट) का उपयोग ही ई-गवर्नेन्स है। सरकार में नियमों और प्रक्रियाओं का अत्यधिक महत्व है। जब रिकॉर्ड ठीक से रखा जाता है तब भी जानकारी तक पहुँचने और पूर्ववर्ती दस्तावेजों को खोजना काफी खर्च व श्रम करने वाली प्रक्रिया होती है और यही सरकारी प्रशासन में देरी का एक कारण बन जाती है। नियमों और प्रक्रियाओं का कठोरता से पालन लालफीताशाही को जन्म देती है और यही भ्रष्टाचार का कारण बनती है। आज हम पाते है कि वर्तमान कागज आधारित प्रणाली अत्यधिक समय खर्च करने वाली और अक्षम है। सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग करके नागरिकों के लिए नियमों एवं प्रक्रियाओं को पारदर्शी बनाया जा सकता है, जानकारियाँ स्वतंत्र रूप से उपलब्ध करवाई जा सकती है, पूर्ववर्ती दस्तावेजों को शीघ्र खोजा जा सकता है और इस प्रकार शासन की प्रभावशीलता की गति में सुधार किया जा सकता है।

ई-गवर्नेन्स सरकार की नागरिक एवं अन्य व्यवसायों के साथ आंतरिक संचालन और बाहरी बातचीत दोनों को स्वचालित (Automatic) करने के लिए सूचना प्रौद्योगिक का उपयोग करने की प्रक्रिया को दर्शाता है। आंतरिक संचालन में ऑटोमेशन लागत को कम करता है और एक ही समय में सरकारी प्रक्रियाओं को अपने प्रभाव को बढ़ाने के लिए सुपरिष्कृत रूप में उपलब्ध करवाता है। इससे सरकारी प्रक्रियाओं की प्रभावशीलता में वृद्धि होती है। शासन का नागरिकों के साथ संवाद का ओटोमेशन सरकार और नागरिकों दोनों के अतिरिक्त खर्चों को कम करता है और इससे अर्थव्यवस्था में नए मूल्यों का निर्माण होता है। सूचना प्रौद्योगिकी के आगमन से जनता में सेवाओं के वितरण एवं निर्णय क्षेत्र के द्वारा उच्च लाभ कमाने में सहायता मिली है। निजी एवं सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में इसे समान सार्वभौमिक मान्यता प्राप्त है। ई-गवर्नेन्स व्यवस्था ने बुनियादी बातों को नए सिरे से परिभाषित किया है और इसमें सेवाओं के वितरण तंत्र को बदलने की क्षमता है।

ई-गवर्नेन्स का इस्तेमाल आधुनिक सूचना-संचार प्रौद्योगिकी जैसे - इंटरनेट, LAN, MAN, मोबाइल आदि के द्वारा होता है जिनका उपयोग कर सरकार शासन व्यवस्था को प्रभावी, दक्ष, पारदर्शी बनाकर लोकतांत्रिक व्यवस्था को बढ़ावा दे सकती है। नब्बे के दशक में वर्ल्ड वाइड वेब (www) के आगमन के साथ एक वैश्विक बदलाव आया और सरकारों ने सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग की दिशा में तीव्र कदम उठाए, उसके पश्चात् सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास के साथ-साथ ई-गवर्नेन्स व्यवस्था ने भी लंबा सफर तय किया है। इंटरनेट और मोबाइल कनेक्शन्स में वृद्वि के साथ नागरिकों को इस नई विद्या को सीखने और उसका उपयोग करने के सहज अवसर उपलब्ध हुए हैं। अब नागरिक, सरकार और व्यवसायिक संगठनों से अधिक से अधिक सेवाएँ ऑनलाइन प्राप्त करने की उम्मीद कर रहे हैं, साथ ही नागरिक प्रचुर मात्रा में ऑनलाइन जानकारी प्राप्त कर उसका इस्तेमाल कर रहे हैं। घर बैठे-बैठे स्वयं को शासन

के साथ अर्न्तसम्बन्धित कर ई-नागरिकता की अवधारणा का उदय हो रहा है। ई-गवर्नेन्स की अवधारणा का उद्‌भव सत्तर के दशक में मूल रूप से गृह प्रबंधन की मूल क्रियाओं जैसे आर्थिक निगरानी, रक्षा, योजना एवं विकास, जनगणना, चुनाव, कर प्रशासन आदि क्षेत्रों में सरकारी अनुप्रयोगों को विकास पर ध्यान देने के लिए हुआ। अस्सी के दशक के दौरान राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र (NIC) का सभी जिला मुख्यालयों को आपस में जोड़ने का प्रयास एक महत्वपूर्ण घटना थी।

नब्बे के दशक के प्रारंभिक वर्षो में सूचना प्रौद्योगिकी को ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुँचाने, गैर सरकारी संगठनों और निजी क्षैत्र से अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने की नीति पर जोर देने के साथ व्यापक क्षेत्रीय अनुप्रयोगों के लिए सूचना प्रौद्योगिकी को आई.सी.टी. (सूचना संचार प्रौद्योगिकी) की पूरक के रूप में उपयोग किया गया। विकासशील देशों में सूचना प्रौद्योगिकी और ई-गवर्नेन्स कानूनों के विकास को उत्प्रेरित करने के लिए ई-गवर्नेन्स के ढाँचे के तहत अन्तर्राष्ट्रीय दानदाता एजेंसियों की भागीदारी में वृद्धि हुई है। जहाँ मुख्य रूप से स्वचालन एवं कम्प्यूटराइजेशन पर अधिक जोर दिया गया है वहीं राज्य सरकारें भी सेवाओं की जानकारी करने में सूचना संचार प्रौद्योगिकी (ICT) के उपकरणों जैसे कनेक्टिविटी, नेटवर्किंग का उपयोग करने का प्रयास कर रही हैं। एक स्तर पर सभी व्यक्तिगत विभागों में इलेक्ट्रोनिक फाइल हेंडलिंग और कार्य प्रवाह व्यवस्था, लोक शिकायत प्रणाली, गरीबी उन्नमूलन के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु, हकदारों को देय राशि के बिल के भुगतान, बाकी करों की प्राप्ति व रोजमर्रा के कामकाज के सम्पादन हेतु आई टी का उपयोग कर स्वचालन को अपनाया गया है। ई-गवर्नेन्स पर जनता का विश्वास इस बात पर निर्भर करता है कि शासन नागरिकों की आवश्यकताओं पर ध्यान केन्द्रित करके उसकी आजीविका को बढ़ाने में कितना सक्षम है। प्रत्येक राज्य सरकार अपने यहाँ आई. टी. कार्य के निर्माण की रूपरेखा तैयार करने हेतु पहल कर रही है। सरकारों के लिए मैनुअल प्रक्रियाओं को स्वचालित प्रक्रियाओं में बदलना एक प्रेरणा का विषय है इससे प्रशासन की सेवा प्रदान करने की क्षमता में वृद्धि होगी। मैनुअल से स्वचालन की और बदलाव से प्रशासन की क्षमता में वृद्धि के साथ इसकी एक सार्थक निवेश के रूप में कल्पना की जा सकती है।

ई-गवर्नेन्स के फायदे

24 × 7 के आधार पर सार्वजनिक सेवाओं की लागत में कमी करना, आम जनता तक पहुँच एवं गुणवत्ता में सुधार लाना। सेवाओं की पारगमन लागत एवं परागमन समय में कमी करना। नागरिकों की सक्रिय भागीदारी को और अधिक सशक्त बनाना। प्रक्रियाओं की पारदर्शिता में वृद्वि करना। प्रक्रियाओं में दक्षता, प्रभावशीलता और उत्पादकता को बढ़ावा देना। सेवाओं में विस्तार करना। सेवाओं का शीघ्र वितरण व क्षमता में वृद्वि करना। ई-गवर्नेन्स अवधारणाओं में तीन मुख्य लक्ष्य समूह सरकार, नागरिक व व्यवसाय को प्रतिबद्ध किया गया है। इन लक्ष्य समूहों को संकेताक्षर G2B (Government to Business), G2C (Government to Consumer) आदि से सम्बोधित किया गया है। इनका उपयोग ई-कॉमर्स की अवधारणाओं की तरह ही किया जा रहा है। एक अन्तर्राष्ट्रीय फर्म GARTNER ने चार चरणों का एक ई-गवर्नेन्स मॉडल तैयार किया है। यह मॉडल ई-गवर्नेन्स रणनीति के समग्र विकास को प्रदर्शित करता है। अधिकांश सरकारों ने ऑन-लाइन जानकारी देना प्रांरभ कर दिया है लेकिन आंतरिक दक्षता, शीघ्रता एवं अधिक सुगम सेवाओं की आवश्यकता वर्तमान में जनता की माँग है। प्रस्तुत अवधारणाएँ धीरे-धीरे मूर्तरूप ग्रहण कर रही है। अन्तर मात्र यह होगा कि कुछ सेवाएँ अन्य की तुलना में शीघ्र ऑन-लाइन हो जायेगी। कुछ योजनाओं की माँग जनता के लिए सर्वोपरि है जबकि अन्य मामलों में परियोजना की लागत व अन्य पहलू आते है।

ई-गवर्नेन्स-एक क्रांतिकारी परिवर्तन

ई-गवर्नेन्स एक ऐसी घटना है जिसने सभी को आश्चर्यचकित किया और धीरे-धीरे यह अधिक समृद्ध हो रही है। पूर्व विश्व में ई-गवर्नेन्स सरकारों की रूचि का विषय है। ई-गवर्नेन्स को साकार रूप प्रदान करने के लिए काफी पैसा इस पर खर्च किया जा रहा है। काफी सारी आई.टी. आधारित परियोजनाएँ विभिन्न स्तरों पर लागू की जा रही है। अतः यहाँ यह मूल्यांकन करना अत्यावश्यक हो जाता है कि ये परियोजनाएँ अपने उद्देश्यों को पूरा करने में कितनी सफल हुई है। इन परियोजनाओं के उचित मूल्यांकन से हम यह जान पाएँगे कि इन्हें सफल बनाने के लिए किस प्रकार के परिवर्तन किए जाने चाहिए।

ई-एनएएम (राष्ट्रीय कृषि बाजार) और अन्य राज्य अनाज बाजार पोर्टल जैसी सरकारी वेबसाइटें किसानों को लॉकडाउन अवधि के दौरान कुशलतापूर्वक अपनी फसल बेचने में मदद कर रही हैं। किसान प्रभावित पौधों की फोटो भेजकर अपनी फसलों के रोगों का भी पता लगा सकते हैं और इन पोर्टलों पर कृषि विशेषज्ञों से सलाह करके आवश्यक कीटनाशक प्राप्त कर सकते हैं। ई-सुविधाओं के उपयोग से हम चिकित्सा सहायता भी प्राप्त कर सकते हैं। अधिकांश अस्पतालों ने अपनी ओपीडी बंद कर दी है और मामूली बीमारियों के लिए ऑनलाइन परामर्श द्वारा हल किया जा रहा है।

आरोग्य सेतु ऐप लोगों को यह जांचने में मदद करता है कि वे सुरक्षित क्षेत्र में हैं या नहीं। ऐसे एप्स पर मरीज अपने लक्षण दे सकते हैं और ई-पर्चे प्राप्त कर सकते हैं और ऑनलाइन दवाएँ भी मंगवा सकते हैं। वेबवीपीएन खातों के साथ आरोग्य सेतु ऐप का उपयोग आवश्यक अधिकारियों के लिए एनआईसी द्वारा बनाया गया है। इस चिंताजनक स्थिति में, मानसिक पेशेवरों से भी समर्थन की मांग में वृद्धि हुई है। कई मनोचिकित्सक आभासी सत्र और टेलीफ़ोनिक समर्थन की पेशकश कर रहे हैं जो अत्यंत महत्वपूर्ण है। संसद की बैठकें और प्रधान मंत्री कार्यालय की बैठकें ऑनलाइन आयोजित की जा रही हैं। स्टेडियम में खेल गतिविधियों को बिना किसी दर्शक के लाइव प्रसारित किया जा रहा है। इससे पता चलता है कि ई-सुविधाएँ हमारी कितनी मदद कर रही हैं। लोग प्रमुख मंदिरों, गुरुद्वारों और अन्य पूजा स्थलों का लाइव दर्शन भी कर सकते हैं।

निष्कर्ष

आज भारत में नागरिकों द्वारा ई-गवर्नेन्स लाभ उठाया जा रहा है। जन्म-मृत्यु पंजिकरण प्रमाण पत्र, पासपोर्ट आवेदन पत्र, परमिट या लाइसेंस (अनुज्ञापत्र) परिवहन विभाग द्वारा प्रदत्त सेवाओं, आरक्षण, इंटरनेट एवं B2C आदि सेवाओं का लाभ भी उठा सकते है। ई-चौपाल, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी पर आधारित

बेजोड़ वेब पहल, किसानों को उत्पादकता बढ़ाने, कृषि उत्पादों की सही कीमत प्राप्त करने, लागत में कमी करने से सम्बन्धित जानकारी, उत्पाद और सेवाऐं प्रदान करती है। अब किसान वेबपॉर्टल के माध्यम से मौसम से सम्बन्धित नवीनतम स्थानीय एवं वैश्विक जानकारी, वैज्ञानिक खेती के तरीके और साथ ही साथ अपने उत्पाद की सही बाजार दर हिन्दी में भी प्राप्त कर सकता है। ई-चौपाल के माध्यम में खेत पर ही उच्च गुणवत्ता युक्त कृषि जीन्स की आपूर्ति के साथ उत्पादित माल की बिक्री भी संभव है। कर्नाटक सरकार ने "भूमि" परियोजना के माध्यम से सदियों पुराने हस्तलिखित ग्रामीण भूमि रिकॉर्ड का कप्यूटरीकरण किया है। इसके माध्यम से राजस्व विभाग ने भूमि की खरीद एवं बेचने, किरायेदारी और खेती के प्रमाण पत्र (RTCs) जारी करने के लिए दी जाने वाली रिश्वत के साथ भ्रष्टाचार में डूबे पूरे सिस्टम को पारदर्शी बनाया है। इस परियोजना से 30,000 गाँवों के 70,000 ग्रामीणों को फायदा होने की उम्मीद है। भारत की डिजिटल गवर्नेंस क्रांति एक दशक से अधिक समय पहले शुरू की गई थी, जिसमें बायोमेट्रिक पहचान योजना "आधार" या "फाउंडेशन" के रूप में जानी जाती थी, तब से भारतीयों को एक 12-अंकों की विशिष्ट पहचान संख्या जारी की गई है, जो पहचान का वैध प्रमाण प्रस्तुत करते हैं और अपने बायोमेट्रिक डेटा को पंजीकृत करते हैं, जिसमें उंगलियों के निशान और आईरिस स्कैन शामिल हैं। बैंक, टेलीकॉम कंपनियाँ और सरकारी एजेंसियों के एक मेजबान अब आधार संख्या को ऑनलाइन सत्यापित करने में सक्षम हैं, जबकि आधार खातों को क्लाउड पर संग्रहीत किया जा सकता है। आधार यूनिक आईडी सिस्टम का निर्माण, अधिकारियों ने आधार-आधारित प्रत्यक्ष लाभ अंतरण और एक प्रेषण प्रणाली शुरू की है जो सरकारी एजेंसियों को पेंशन से अल्पकालिक राहत तक के लाभ को सीधे आधार-लिंक्ड खातों में स्थानांतरित करने की अनुमति देता है।

संदर्भ स्रोत

1. हैरिस रोजर एवं राजोरा राजेश - भारत में ग्रामीण विकास परियोजनाओं का अध्ययन, गरीबों का सशक्तिकरण : शासन और गरीबी उन्नमूलन के लिए सूचना और संचार प्रौद्योगिकी
2. सिंह वाल्मिकी प्रसाद, भारत में ई-गवर्नेन्स की चुनौतियाँ-नई पहल की आवश्यकता, योजना, अक्टूबर 2015, पृ. 53.
3. Jayaradha N. and Shanthakumar C.K., E-Governance: Tackling the Hurdles, Kurukshetra September 2010, p. 26
4. Mahapatra Raghunath and Perumal Sinnakkrishnan, E-Governance in India, Rajakamal Prakashan, New Delhi, p. 152.
5. A Strategic Framework, (International Journal for Infonomics, 2004-06 e-governance for Infonomics), A special issue 'Measuring e-Business for Development', January 2006, p. 370.

भारत में क्षेत्रीयतावाद की समस्या : पृथक मिथिला राज्य के संदर्भ में

डॉ० गुंजन कुमार

एम.ए., पी-एच.डी. (राजनीतिशास्त्र), पी.जी.टी. शिक्षक, मधुबनी
भूईधारा चौक, पो०-धुरलख, समस्तीपुर-848101 (बिहार)

"ब्रिटिश शासकों ने टुकड़ों में विभाजित हिन्दुस्तान को एकत्र कर उसे 'इंडिया' बनाया और 4 प्रान्तों में विभाजित कर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। आजादी के समय साम्प्रदायिकता ने देश का विभाजन किया और जिससे भारत (इंडिया) और पाकिस्तान दो स्वतंत्र देश बने। लेकिन, 28 राज्यों वाला भारत और 4 राज्यों वाला पाकिस्तान आज संघवाद की भावना के अभाव में क्षेत्रीय एकता और अखण्डता के लिए जूझ रहा है। साम्प्रदायिकता ने दो मुल्क बनाए। लेकिन, जब बात क्षेत्र, भाषा और जाति की होगी तब न जाने कितने ही मुल्क बनाने की मांग उठेगी।"

विषय-प्रवेश

आजादी के बाद भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया गया। आज भी कई राज्य बनाने की मांग उठ रही है। कभी संघ से अलग होकर तो कभी संघीय ढाँचे के भीतर ही। एक तरफ खालिस्तान, द्रविड़, मीजों की मांग है तो दूसरी ओर तेलंगाना, विदर्भ, बोडोलैंड, गोरखालैंड, पूर्वांचल की मांग होती रही है। वर्ष 2000 में चार राज्य बनाए गए। यह केवल पृथक राज्य बनाने तक से कहीं अधिक दूसरे प्रांत के लोगों के प्रति नफरत व हिंसा करने तक फैल चुकी है। इसी तरह मिथिला राज्य की माँग है, जो हिन्दी भाषा को साम्राज्यवादी मानता है और यहाँ के निवासियों की भाषा मैथिली को अपनी मातृ-भाषा मानकर चलता है। क्षेत्र का आर्थिक पिछड़ापन और नियमित बाढ़ की समस्या ने लोगों में निराशा भर दिया है कि बिना अलग राज्य बनाये मिथिलांचल का विकास नहीं हो सकता है। फिर भी मिथिला राज्य आन्दोलन और आन्दोलनों से अलग शांतिपूर्ण एवं जनतांत्रिक तरीके से चलाया जा रहा है। हम कह सकते हैं कि यह अराजक विद्रोह नहीं वरन् बौद्धिक संघर्ष है। परन्तु क्षेत्रीय भावना अवश्य निहित है।

क्षेत्रीयतावाद का अर्थ

ब्रिटिश शासन में 1905 ई० का बंगाल विभाजन भारतीयों का क्षेत्र, भाषा एवं धार्मिक आधार पर विभाजित करने का सरकारी प्रयास था। भारत के राष्ट्रवादी इस बात को समझते थे। यही कारण था कि 'बंग-भंग' का पुरजोड़ विरोध किया गया।

16 अक्टूबर 1905 के दिन (विभाजन प्रभावी हुआ) बंगाल में शोक दिवस के रूप में मनाया गया, क्योंकि यह जनता की राष्ट्रवादी एकता को खंडित करने का प्रयास था। बंगाल उस समय राष्ट्रवादी आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र था। इसलिए राष्ट्रवाद का प्रहार करने हेतु 'बंग-भंग' की योजना बनी। बंगाल प्रान्त में बहुसंख्यक बंगालियों को अल्पसंख्यक करने के लिए यह कदम उठाया गया। मूल बंगाल में एक करोड़ 70 लाख बंगाली और तीन करोड़ 70 लाख उड़ीसा व हिन्दी भाषी लोगों को अलग रखने की योजना थी। साम्प्रदायिकता को बढ़ाने के लिए ढाका की राजधानी बनाने की योजना बनी। जहाँ 1 करोड़ 80 लाख हिन्दु होते। बंगाल विभाजन की ब्रिटिशों की योजना सफल हुई और 1907 ई० से हिन्दू-मुस्लिम के बीच साम्प्रदायिक दंगे शुरू हुए।

1912 ई० में बंगाल का पुनः विभाजन हुआ। जिससे हिन्दी व उड़ीसा भाषा-भाषी लोगों पर से बंगालियों का प्रभुत्व समाप्त हो गया। नए प्रान्त में भागलपुर, मुंगेर, पूर्णिया, संथालपरगना और उड़ीसा प्रमंडल को शामिल किया गया। भिन्न सामुदायिकता, इतिहास व परम्पराओं के आधार पर 1956 ई० में बिहार को काट कर उड़ीसा बनाया गया। इसके लिए शासन द्वारा 1935 का एक्ट पारित किया गया था। स्वतंत्र भारत में भी भाषा, संस्कृति, इतिहास एवं आर्थिक आधार पर अनेक राज्यों की माँग उठती रही। जिससे एक राज्य के भीतर ही तनाव व राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न हुई। क्षेत्रीयतावाद कभी जनआन्दोलन के रूप में तो कभी हिंसा के रूप में प्रकट होती रही। भारत में क्षेत्र विशेष को अलग राज्य का दर्जा दिए जाने के लिए कई प्रदेशों में आन्दोलन हुए। जिसमें झारखंड आन्दोलन, कश्मीर में आतंकवाद, पंजाब समस्या, पूर्वोत्तर में अलगाववाद एवं तेलंगाना राज्य आन्दोलन प्रमुख है। झारखंड राज्य बनाने की मांग तो 1920 ई० से ही प्रारंभ हो गयी थी, जब आदिवासी छात्र संगठन अस्तित्व में आए थे। बाद में ब्रिटिश भारत सरकार के समक्ष एवं कांग्रेस के मंच पर भी इसकी चर्चा होती रही। स्वतंत्रता के बाद 1952 ई० में झारखंड पार्टी ने 'राज्य पुनर्गठन आयोग' के समक्ष भी ज्ञापन दिया था। परन्तु निर्णायक रूप से 1998 ई० में बिहार विधानसभा में 'बिहार पुनर्गठन विधेयक' लाया था और 2000 ई० में झारखंड राज्य का निर्माण हुआ। इसी तरह मध्य प्रदेश को काटकर छत्तीसगढ़ और उत्तर प्रदेश के पहाड़ी इलाकों को निकालकर उत्तरांचल बनाया गया। इसी प्रकार महाराष्ट्र में विदर्भ राज्य की मांग की जा रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भाषा के आधार पर आंध्र प्रदेश राज्य बना तो तंलंगाना के किसान भी पृथक राज्य हेतु आन्दोलित थे, जिसे सरदार बल्लभ भाई पटेल ने दबा दिया था, परन्तु 1960 ई० से पुनः यह मांग शुरू हो गयी और आज भी राजनीतिक दांव-पेंच का माध्यम है तेलांगना राज्य की मांग। दूसरी तरफ आसाम में मीजो राज्य एवं गोरखालैंड

की मांग भी की गयी। मीजो को मिजोरम मिला और गोरखालैंड आन्दोलन की धार अब कुंद हो चली है। उपरोक्त सभी आन्दोलन की प्रकृति भी भारत संघ के भीतर पृथक राज्य की मांग। लेकिन, पंजाब और कश्मीर का मुद्दा इनसे भिन्न है। ये दोनों ही राज्यों में भारत संघ से अलग स्वतंत्र देश बनाने की मांग थी। पंजाब में खालिस्तान आन्दोलन चला, जिसमें हिन्दुओं पर हमले हुए यही प्रवृति कश्मीर घाटी में दिखी जहाँ हिन्दुओं को विस्थापित होकर नरक का जीवन भोगना पड़ रहा है। पंजाब में सैन्य शक्ति से अलगाववाद का खात्मा किया गया है। परन्तु श्री जगमोहन के बाद किसी ने भी कश्मीरी चरमपंथियों पर सख्ती नहीं की है। उल्टा अकूत पैसा भारत सरकार कश्मीर पर खर्च कर रही है। भारत सरकार की तुष्टीकरण की नीति जारी है तो श्रीनगर में 'हम लेकर रहेंगे आजादी' का नारा बुलंद है। चरमपंथियों द्वारा वादी में हिन्दुत्व की पहचान भी मिटा देने का प्रयास जारी है, इसलिए अनंतनाग को ईस्लामाबाद और श्रीनगर को सोपोरा कहा जा रहा है।

मिथिला राज्य आन्दोलन

जनक पुत्री माता सीता की जन्मस्थली 'मिथिला' एक ऐतिहासिक नाम है। इस नाम और क्षेत्र का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना कि हिन्दुत्व का इतिहास। वस्तुतः हिन्दुत्व और मिथिला को अलग करके नहीं देखा जा सकता है। 'मिथिला' शब्द अपने आप में एक संस्कृति, इतिहास व परम्परा का नाम है। मिथिला के गौरवपूर्ण इतिहास को पुनः वर्त्तमान में प्रतिष्ठित करने का नाम है 'मिथिला राज्य आन्दोलन'। पान, मखान और मछली के लिए प्रसिद्ध मिथिला को भारत संघ के एक राज्य का स्थान दिलाने के लिए चले आन्दोलन को अब सौ वर्ष हो चुका है और वर्तमान परिस्थिति को देखकर ऐसा लगता है कि यह लड़ाई अभी लम्बी चलेगी। प्रस्तावित मिथिला राज्य अभियान के लोग निम्न तर्क देकर अलग राज्य की आवश्यकता एवं महत्व को सिद्ध करते हैं–

ऐतिहासिकता : मिथिला की चर्चा अनंतकाल से चली आ रही है। महर्षि वाल्मिकी रचित रामायण में एवं महाभारत में मिथिला की चर्चा है। रामायण के बारे में सभी जानते हैं कि श्री राम की पत्नी सीता का जन्म मिथिला में हुआ था। महाभारत में चर्चा है कि भीम एवं अर्जुन ने दो बार मिथिला पर आक्रमण किया, इसलिए मिथिला नरेश ने कौरवों का महाभारत में साथ दिया। पुराण के अनुसार राजा मिथिक के नाम पर मिथिला नगर बसा था। इस क्षेत्र को कभी विदेह, तिरहुत और तीरमुक्ति के नाम से जाना गया। मिथिला की चर्चा उपनिषद्, पातंजली, जातककथा, महाभाष्य और जैन धर्म साहित्य के धर्मसूत्र व कालसूत्र में भी है। 326 ई० पूर्व से 1907 ई० तक यह मगध साम्राज्य के अधीन था। ग्यारहवीं सदी से चौदहवीं सदी तक राजा नान्यदेव से शक्तिदेव (1197–1324) ने शासन किया। 1355–1536 ई० तक आइनवार वंश के कंशनारायण, लक्ष्मीनाथ जैसे राजा हुए। 1527–1962 ई० तक महेश ठाकुर से सर कामेश्वर सिंह का शासन रहा। स्पष्ट है कि मिथिला हमेशा ही शासन का केन्द्र रहा है।

भाषा और संस्कृति : मिथिलांचल की भाषा मैथिली है। जिसे आन्दोलन से जुड़े लोग हिन्दी से अलग मानते हैं। उनका मानना है कि हिन्दी भाषा ने मैथिली को नुकसान पहुँचाया है और क्षेत्र में भाषा को (हिन्दी को) थोपा गया। हिन्दी को इस क्षेत्र में साम्राज्यवादी भाषा के रूप में प्रचारित किया जाता है।

मिथिला को राज्य बनाने के लिए मैथिली भाषा को प्रमुख आधार के रूप में प्रस्तुत किया गया। मैथिली ही मिथिला की मातृभाषा है जो प्राचीनतम भाषाओं में से एक है। मैथिली ने अन्य भाषाओं एवं मिथिला के बाहर भी असम, बंगाल और उड़ीसा तक अपना प्रभाव छोड़ा है। यहाँ तक कि 1919 ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय में मैथिली भाषा के पढ़ाई की व्यवस्था की गई। मैथिली भाषा की लोकप्रियता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि 1951 ई० में मैथिली भाषा बोलने वालों की संख्या 1,39,23,000 से भी ज्यादा थी।

यदि भाषा के आधार पर राज्यों का गठन किया गया है तो स्पष्ट है कि इस दृष्टिकोण से भी मिथिला राज्य बनाना न्यायोचित है। भाषा को लेकर जहाँ तक बिहार सरकार की बात है तो आन्दोलन के समर्थकों का मानना है कि विभिन्न भाषा भाषियों के जो सरकारी आँकड़ें हैं वह वास्तविक नहीं है।

1961 ई० के जनगणना में भागलपुर को हिन्दी भाषा क्षेत्र माना गया है। लेकिन वहाँ के 85.24 प्रतिशत लोग मैथिली भाषी थे। इसी तरह मुंगेर के 79.77 प्रतिशत लोग मगही और मैथिली भाषी हैं।

मैथिली भाषा को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल करने का आन्दोलन वर्ष 2004 में मुकाम तक पहुँचा। इसके बाद तो मिथिला राज्य की लालसा और भी बढ़ गयी है। सभ्यता और संस्कृति के दृष्टिकोण से भी मिथिला क्षेत्र विशिष्ट स्थान रखता है। मैथिली संस्कृति ही नहीं हिन्दू सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित व समृद्ध करने में स्थानीय विद्वानों, पंडितों व मनीषियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। फिर वह ईस्लामी या बौद्ध आक्रमण का समय क्यों न रहा हो। विद्यापति ने अपने ग्रंथ 'पुरुष परीक्षा' एवं 'कीर्तिलता' के माध्यम से हिन्दुओं को धर्म की रक्षा हेतु प्रेरित किया। कवि लिखते हैं–

''पुरिसत्तेणेन पुरिसओं नहु पुरिसओं जन्मत्तेन।
जलदाने नहु जलओ तहु जलओ पुजिओ धुमो।।"

कीर्तिलता में विद्यापति ने लिखा है–

''धरि आनए वामन बरूआ माया बढ़ावए गाइक चुहुआ।।
फोढ चार जनेऊ तोर। उपर चढावए चाह घोर।।
घोआ उरिघाने मदिरासाँघ। देउर मांगि मसीद बाँघ।।
गारि गोसत पुरिल मही। पएदहु देना एकठाम वहीं।।
हिन्दूहि गोहुओं मिलिए हल, तरूक देखि होअ मान।।
अइसेओ जसु परतापे रह, चिर जिअउ सुरूतान।।'"

मिथिला विद्वानों की भूमि रही है। इस क्षेत्र के महापुरुषों में राजा सलहेस, लोरिक मनियार, दुलरा दयाल सिंह, नैका बनिजारा, दीना भदरी, गौतम, कपिल, विभांडक, शतानन्द, श्रृंगीऋषि, मण्डन मिश्र, बाबा नागार्जुन जैसे युग पुरुष ने जन्म लिया। यही कारण है कि हर युग में लोग ज्ञान प्राप्ति हेतु यहाँ आते रहे हैं। वेदव्यास के पुत्र शुकदेव ने यहाँ आकर ब्रह्मविद्या की शिक्षा प्राप्त की।

दहेज मुक्त एवं पंजीकृत विवाह की पुरानी परम्परा मिथिला में रही है। विश्व प्रसिद्ध सौराठ सभा के माध्यम से मैथिली ब्राह्मणों का विवाह इस सभा में सम्पन्न होता है। सौराठ सभा का आरंभ 1310 ई० में हुआ था जो आज भी बदस्तूर जारी है। सभा में ब्राह्मणों की पीढ़ी दर पीढ़ी की वंशावली सहेज कर रखी गई है। ऐसी व्यवस्था विश्व में अद्‌भुत है। यह क्षेत्र संगीत, चित्रकला (मधुबनी पेंटिंग) शिल्पकला एवं तंत्रविद्या के लिए भी प्रसिद्ध है।

निश्चित भू-भाग : मिथिला राज्य आन्दोलन के पुरोधाओं का मानना है कि वर्तमान बिहार की सीमा कृत्रिम है। बिहार का अपना कोई इतिहास भी नहीं है। 1816 ई० में सुगौली संधि इसके बाद 1912, 1936, 1955 एवं 2000 में बिहार का काट-छांट किया गया। ब्रिटिश भारत से मैथिली भाषी क्षेत्रें को नेपाल को सौंप दिया गया। मिथिला की निश्चित भौगोलिक सीमा रही है। विष्णुपुराण के अनुसार-

''कौशिकीं तु सभारम्भ्य गण्डकी मधि गम्यवै।
योजनानि चतुर्वेशद् व्यायामः परिकीर्तितः।।
गंगा-प्रवाहमारम्य यावद्‌द्यैमवतं वनम्।
विस्तारः शोड्‌स प्रोक्तौ देशस्य कुलनन्दन।।
मिथिला नाम नगरी यत्रास्ते कुलनन्दन।
पञ्चाभिः का सौः पुण्या विश्याता जगतो तले।।
-वृहद्‌विष्णु पुराण, मिथिला महात्स्य।।''

इस प्रकार मिथिला की पूर्वी सीमा पर कोशी नदी, पश्चिमी सीमा गंडकी थी उत्तर में हिमालय है और दक्षिणी सीमा गंगा नदी तक है। यानी पूरब से पश्चिम 96 कोस और चौड़ाई 64 कोस है।

अतः मिथिला का कुल क्षेत्रफल 6144 वर्ग कोस यानि 24576 वर्ग मील है। मिथिला 25.28 उत्तरी अक्षांश और 84.56 पूर्वी अक्षांश में अवस्थित है। प्रस्तावित मिथिला राज्य में बिहार झारखण्ड के 21 जिलों को शामिल किया गया है। जिसमें 125 विधानसभा और 22 लोकसभा सीटें होंगी।

आर्थिक पिछड़ापन : मिथिला क्षेत्र बाढ़ प्रभावित है, यहाँ हर वर्ष ही बाढ़ आती है, जिससे जान-माल को भारी नुकसान होता है। क्षेत्र में पलायन का एक प्रमुख कारण बाढ़ की समस्या है। वर्तमान बिहार की कुल जनसंख्या 8 करोड़ 29 लाख 98 हजार 508 है। कुल जनसंख्या का 98.55 प्रतिशत लोग कृषि पर निर्भर करते हैं।

बिहार में 16 जिलों के 86 प्रखंडों के 555 ग्राम पंचायतों और 1611 गांवों में फैले हुए 26.61 लाख आबादी पर 2.38 लाख हेक्टेयर जमीन पर लगी फसलों को औसतन नुकसान होता है। जिसका ज्यादातर भाग उत्तरी बिहार (मिथिलांचल) में पड़ता है। वर्ष 2004 में 248.58 आबादी एवं 14 लाख हेक्टेयर फसल प्रभावित हुआ। लेकिन बाढ़ की समस्या का स्थायी निदान नहीं ढूंढा जा सका है। प्रस्तावित राज्य के 72 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं और प्रतिव्यक्ति औसत आय 3092 है। स्पष्ट है कि आर्थिक पिछड़ेपन भी इस आन्दोलन का एक कारण है।

मिथिला राज्य आन्दोलन : दशा एवं दिशाः स्वतंत्र भारत में मिथिला राज्य बनाने का आन्दोलन 1952 ई० में आरंभ हुआ। जब डॉ० लक्ष्मण झा एवं देवकी नंदन सिंह ने राज्यपुनर्गठन आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति फजल अली को इस संदर्भ में ज्ञापन दिया। डॉ० लक्ष्मीनारायण सिंह एवं डॉ० लक्ष्मण झा ने तो नेपाल सीमा पर जाकर उस खंभे को उखाड़ने का प्रयास किया जो 1816 ई० की सुगौली संधि द्वारा गाड़ी गयी थी। आन्दोलनकारियों का मानना है कि मैथिलीभाषी क्षेत्र को नेपाल में मिलाया जाना अन्यायपूर्ण था। श्री जानकी नंदन सिंह को आसनसोल में गिरफ्तार कर लिया गया जब वे मिथिलांचल संबंधी एक स्मारपत्र आयोग को सौंपने कलकत्ता जा रहे थे।

स्वतंत्रता के बाद तेलांगना व मिथिला राज्य आन्दोलन दोनों घटनाओं पर शासन की प्रतिक्रिया ऐसी मानो अलग राज्य मांगना देश-द्रोह है। खासकर कांग्रेस का केन्द्रीय नेतृत्व भाषाई आधार पर राज्य बनने को पसंद नहीं करता था। यही कारण था कि 1954 ई० में राज्य समर्थक नेता श्री जानकीनंदन सिंह को कांग्रेस से निकाल दिया गया। भाजपा से भी श्री ताराकांत झा को अलग होना पड़ा, क्योंकि श्री झा मिथिला राज अभियान को आगे बढ़ाने के लिए दृढ़ थे और हैं। यद्यपि श्री झा की अध्यक्षता में भाजपा द्वारा मैथिली के समर्थन में एक प्रस्ताव पारित किया गया। श्री वैद्यनाथ चौधरी को भी साम्यवादी दल छोड़ना पड़ा। कुल मिलाकर प्रमुख राजनीतिक दलों का खुला समर्थन इस आन्दोलन को प्राप्त नहीं हो सका है। पंडित ताराकांत झा भी मानते हैं कि राजनीतिक दल अपने जनाधार को सुरक्षित रखने के लिए मिथिलांचल की बात करने से झिझकते हैं, क्योंकि यदि वे मिथिला राज्य का समर्थन करेंगे तो बिहार में अन्य राज्यों के गठन की आवाजें उठेंगी।

उपसंहार

भारत मे क्षेत्रीयतावाद की समस्या देशी राज्यों के विलय और राज्य पुनर्गठन से जुड़ी हुई है। भारत की भाषाई विविधता, बड़े राज्यों की सांस्कृतिक एवं आर्थिक भिन्नता देश की प्रमुख समस्या थी, जिस पर नेताओं ने उतना ध्यान नहीं दिया और समस्या को तब तक छला जाता रहा जब तक वह विकराल रूप न ले ले। कभी भाषा को लेकर विधानसभा में शपथ-ग्रहण समारोह को बाधित करना तो धार्मिक कट्‌टरपंथ के आधार पर राज्य मांगना अशुभ संकेत है। जो व्यवस्था कट्‌टरपंथ से बनेगी वह तालिबानी तर्ज पर चलेगी। आजादी के बाद से ही क्षेत्रीयतावाद की समस्या अलग-अलग राज्यों के मांग के रूप में प्रकट

होती रही है, लेकिन एक प्रमुख बदलाव यह देखने में आया है कि राष्ट्रीय राजनीतिक दल भी अब राष्ट्रीय दलों की घटती लोकप्रियता और केन्द्र राज्य में क्षेत्रीय दलों के समर्थन से बनने वाली गठनबंधन सरकारों की मजबूरी भी है।

यही कारण है कि 2000 ई० में तीन राज्य बनाने के बाद भी गोरखालैंड, बोडोलैंड, तेलांगना, विदर्भ, वृहत झारखण्ड, मिथिलांचल की मांग लगातार जोड़ पकड़ रही है। अब तो उत्तर प्रदेश को भी तीन टुकड़ों (हरित प्रदेश, पूर्वांचल और बुंदेलखंड) में विभाजित करने की बात हो रही है जिसे ज्यादातर दलों (माकपा छोड़कर) का समर्थन प्राप्त है। ऐसा लगता है कि यह सब कुर्सी की राजनीति के चलते हो रहा है। वास्तव में यदि विकास के लिए राज्यों का बंटवारा लाभप्रद होता तो पूर्वोत्तर और झारखण्ड बंटवारे के बाद काफी विकसित हो गए होते। लेकिन, ऐसा नहीं है। ये सभी राज्य आतंकवाद एवं नक्सलवाद से ग्रसित है।

वस्तुतः छोटे राज्यों के गठन से नौकरशाही एवं आधारभूत संरचना पर अनावश्यक व्यय बढ़ेगा, साथ ही राजनीतिक अस्थिरता ही बढ़ेगी जैसा कि गोवा व झारखण्ड में आज बात है। जहाँ तक मिथिला राज्य की बात है तो यह दावा करना कि 19 या 21 जिले जिन्हें प्रस्तावित राज्य में शामिल करने की बात है वहाँ के लोग क्या इसके लिए तैयार हो जायेंगे? क्योंकि मिथिला की तरह ही लिच्छवी व आंगिका जैसे राज्यों का अस्तित्व रहा है। यदि इतिहास व भाषा के नाम पर राज्य बनती रहे तो एक दिन 565 राज्य फिर बनाने पड़ेंगे। वर्तमान समय में उत्तर भारतीय (बिहारी) बनाम मराठी जैसी ओछी राजनीति करने वालों के साथ देशद्रोही जैसा व्यवहार करने की जरूरत है, क्योंकि ऐसी भावना भड़काना संविधान का अनादर करना है जो भारतीय राजव्यवस्था की बुनियाद है।

संदर्भ

1. विस्तार से देखें चंद्र, विपिन, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1998, पृष्ठ संख्या 84-93
2. मिश्र, दीप नारायण, मिथिला राज्य किऐक?, स्वामी प्रकाशन, दरभंगा, 2007, पृष्ठ संख्या 1
3. वही, पृष्ठ संख्या 4
4. झा, कमलाकान्त, 'मिथिला (उत्तर बिहार) के लोकनायक', अक्षरगंधा, देवघर, 19-20, मार्च-जून 2005, पृष्ठ संख्या 17
5. मिश्र, दीपनारायण, पूर्वोक्त, देखें पुस्तक का कॉवर पेज
6. द पब्लिक (कोलकाता) अप्रैल 16, 2008, पृष्ठ संख्या 13
7. कुमारी, दीपा, 'बिहार में बाढ़ का प्रकोप', एम०ए०जी० छठा ज्योगराफर्म कान्फ्रेंस एवं सेमिनार, एब्सट्रेक्ट-कम-सोविनियर (2008), पृष्ठ संख्या एच० 24
8. झा, राकेश कुमार, 'बाढ़ से समस्या एवं निदान', वही, पृष्ठ संख्या एच 20
9. कोठारी, रजनी, भारत में राजनीति : कल और आज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ० 335-46
10. सिन्हा, सच्चिदानंद, लोकतंत्र की चुनौतियाँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ० 62-63

रोजगार में सेवा क्षेत्र की भागीदारी

डॉ० अंगूर कुमारी

अर्थशास्त्र विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

प्रस्तावना

भारत सेवा क्षेत्र में एक अग्रणी राष्ट्र है। भारतीय अर्थव्यवस्था में सेवा क्षेत्र का योगदान कई गुना रहा है। सकल घरेलु उत्पाद में इसका हिस्सा 55.2. प्रतिशत है और यह 10 प्रतिशत के हिसाब से बढ़ रहा है। कुल रोजगार में लगभग एक चौथाई योगदान दे रहा है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में भी काफी अच्छा हिस्सा है और कुल निर्यात में लगभग एक तिहाई है जो की वर्ष 2010-11के प्रथम छमाही में निर्यात में बहुत तेजी से वृद्धि दर्ज की है। प्रस्तुत शोधपत्र भारत में सेवा क्षेत्र के योगदान के बारे में विवरण प्रस्तुत कर इसकी भविष्य में उपयोगिता एवं महत्त्व का दर्शन प्रस्तुत करता है।

परिचय

यह ऐतिहासिक सत्य है कि शहरीकरण की व्यापक प्रक्रिया ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था के प्रति उदासीनता पैदा की है। शहर न केवल उत्पादन, वितरण और प्रबंधन के केंद्र बने हैं बल्कि संपूर्ण अर्थव्यवस्था की दिशा भी तय कर रहे हैं। संपूर्ण आर्थिक व्यवस्था में ग्रामीण क्षेत्र विगत कई दशक से महज कच्चे माल के स्रोत बन कर रह गए हैं। पारंपरिक ग्रामीण अर्थव्यवस्था जोकि कृषि, हस्तशिल्प, लघु-कुटीर उद्योगों पर निर्भर थी, वे औद्योगिकीकरण, शहरीकरण तथा वैश्वीकरण के आगमन के साथ समाप्त-सी होती चली गई। भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार कृषि नवीन तकनीकों के इस्तेमाल के बावजूद संकट का सामना कर रही है। भारत की कुल श्रम शक्ति का करीब 60 प्रतिशत भाग कृषि व सहयोगी कार्यों से आजीविका प्राप्त करता है। इसके बावजूद देश के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का योगदान केवल 16 प्रतिशत है। निर्यात के मामले में भी इसका हिस्सा महज 10 प्रतिशत ही है। ग्रामीण रोजगार के महत्वपूर्ण व आकर्षक क्षेत्र होने के बावजूद कृषि क्षेत्र से लोगों का पलायन जारी है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण की एक रिपोर्ट में पिछले दिनों बताया गया था कि करीब 40 प्रतिशत किसान अन्य रोजगार करना चाहते हैं। देश के ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर भारी संख्या में पलायन भी ग्रामीण रोजगार की निराशाजनक तस्वीर प्रस्तुत करते हैं।

राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पादन में सेवा क्षेत्र का 60% से अधिक योगदान है। यह क्षेत्र रोजगार पैदा करने और निर्यात आय में महत्वपूर्ण योगदान करता है। उन सेवा क्षेत्र उद्यमों में निधियन में काफी कमी है, जिनमें व्यवसाय की अत्यधिक क्षमता है।वित्तवर्ष 2014 की सेवा क्षेत्र सम्बन्धी व्यवसाय नीति का लक्ष्य सेवा क्षेत्र के अधीन वित्तीयन के लिए अत्यंत महत्व वाले क्षेत्रों के पहचान करना, एक लक्ष्य-केन्द्रित व्यवसाय विकास रणनीति तैयार करना, उद्योग-क्षेत्र की आवश्कताओं के अनुकूल उत्पाद नवोन्मेष को बढ़ावा देना, ऋण वितरण बेहतर बनाना और एक ऐसी मूल्यन नीति लागू करना, जो व्यवसाय संवृद्धि का समर्थन करती हो तथा मूल्यन को जोखिम आधारित बनाती हो।

भारत चौथी औद्योगिक क्रांति का सामना कर रहा है जो उद्यमियों, उपभोक्ताओं, युवाओं और वृद्ध लोगों को समान रूप से प्रभावित करेगा। पहली औद्योगिक क्रांति पानी और भाप की शक्ति के कारण हुई, जिसने मानव श्रम को यांत्रिकी निर्माण में परिवर्तित किया वहीं, दूसरी औद्योगिक क्रांति विद्युत शक्ति के कारण हुई जिसकी वजह बड़े स्तर पर उत्पादन संभव हो सका तथा तीसरी औद्यगिक क्रांति ने इलेक्ट्रॉनिक और सूचना प्रौद्योगिकी के प्रयोग द्वारा स्वचालित निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया। चौथी औद्योगिक क्रांति वर्तमान में जारी है और इसमें ऑटोमेशन तथा निर्माण प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आँकड़ों का आदान-प्रदान किया जा रहा है। डिजिटल संचार में पाँच दशकों की बढ़ती क्षमताओं और गिरती लागतों के परिणामस्वरूप वैश्विक सेवा क्रांति हुई यह मौजूदा उद्योगों, श्रम बाजारों को पुनः बदल रहा है और इस तरह से हम एक-दूसरे से संबंधित हैं तथा इससे प्रभवित हो रहे हैं। सेवा क्षेत्र अब विनिर्माण क्षेत्र पर हावी है और विकसित अर्थव्यवस्थाओं में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के 70% से अधिक का योगदान देता है।

सेवा क्षेत्र का विस्तार

सेवाएँ विकासशील देशों के सकल घरेलू उत्पाद में भी व्यापक योगदान देती हैं।युवा श्रमिक जो शहरों के लिये अपने गाँवों और खेतों को छोड़ते हैं, वे विनिर्माण की बजाय शहर के सेवा क्षेत्र की नौकरियों में तेजी से संलग्न हो रहे हैं।चीन के विपरीत, भारत ने विनिर्माण की तुलना में सेवाओं में तेजी से वृद्धि के कारण इस क्षेत्र की वृद्धि का नेतृत्व किया गया है। माल के व्यापार की तुलना में सेवाओं का व्यापार तेजी से बढ़ रहा है। उल्लेखनीय है कि सेवाओं में श्रम उत्पादकता वृद्धि, उद्योगों से अधिक है और भारत में सेवाओं में उत्पादकता वृद्धि चीन के विनिर्माण क्षेत्रों में श्रम उत्पादकता वृद्धि से मेल खाती है। चौथी औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप भूमंडलीकरण नए रूप में सामने आया है जो विकास के दौर में देरी से शामिल होने वाले देशों को लाभान्वित कर रहा है।

उत्पन्न चुनौतियाँ एवं प्रबंधन

हालाँकि, तकनीकी परिवर्तनों ने चिंताओं को और भी बढ़ाया है। इसने हमारे समक्ष कई प्रश्न खड़े किये हैं यथा – क्या कौशल आधारित तकनीकी परिवर्तन नौकरियों को कम करेगा और क्या श्रमिकों तथा नौकरियों की गुणवत्ता में भी कमी होगी? परिणामत: तकनीकी पूरकता की कमी होगी।इन चुनौतियों का प्रबंधन मानव पूंजीगत स्टॉक में अधिक निवेश तथा भारत के जनसांख्यिकीय लाभांश के लिये बफर बनाने, असमानता, लिंग भेदभाव और मशीन लर्निंग आदि विषयों में शिक्षित करके, बेहतर तरीके से कर सकते हैं।इसके अतिरिक्त चौथी क्रांति के लाभ को समझने और जोखिमों का प्रबंधन करने के लिये सभी को मिलकर काम करने की आवश्यकता होगी।

इसके अतिरिक्त, फर्म-स्तरीय डेटा के विश्लेषण के मुताबिक प्रौद्योगिकी, विकसित और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के बीच वैश्विक विकास अभिसरण को बढ़ावा देती है। विकासशील देशों में उत्पादकता वृद्धि तकनीकी सीमा में मौजूद कंपनियों के लिये अपेक्षाकृत अच्छी रही है। डिजिटल प्रौद्योगिकियाँ सतत, समावेशी और स्मार्ट विकास के नए रास्ते खोलती हैं।भारत द्वारा समय-पूर्व विऔद्योगीकीकरण के डर को अच्छी तरह से प्रबंधित किया गया है लेकिन किसी को भी इस उभरने वाले नए विकास एस्केलेटर को नजरअंदाज नहीं करना चाहिये। दरअसल, सेवाएँ अब सबसे अधिक विकास और नौकरियों की रणनीति का एक सक्रिय घटक हैं। स्थानीय उद्योग संघ भी अब नीति तालिका में सेवाएँ प्रदान करते हैं। विकास की दहलीज पर देर से आने के नाते, भारत को अपने भविष्य को आकार देने के लिये स्वर्णिम अवसर है और वह नई औद्योगिक क्रांति के दौर में अधिक लाभ उठा सकता है, बशर्ते नीति निर्माण का केंद्रबिंदु जनसांख्यिकीय लाभांश और तकनीकी परिवर्तनों द्वारा उत्पन्न अवसरों को लक्षित करें।भले ही भौतिक आधारभूत संरचना में निवेश विनिर्माण क्षेत्र के लिये अधिक मायने रखता है, लेकिन नए बुनियादी ढाँचे के रूप में सेवाओं के साथ मानव बुनियादी ढाँचे/ मानव संसाधन में निवेश का महत्त्व भी बढ़ गया है।उल्लेखनीय है कि यू.के. और अमेरिका में मानव पूंजी निवेश पहले ही भौतिक आधारभूत संरचना में निवेश को पार कर चुका है और वहीं विश्व के विभिन्न क्षेत्रों यथा – अफ्रीका और दक्षिण एशिया में जहाँ विकास ने देरी से दस्तक दी है वहाँ तकनीकी परिवर्तन की तीव्र गति के कारण मानव पूंजीगत स्टॉक बहुत पीछे रह गया है।

इसके अतिरिक्त कार्यों के संदर्भ में कई और नौकरियों को पुनर्परिभाषित किया जाएगा और बड़ी संख्या में नई नौकरियाँ सृजित की जाएंगी जिनके लिये विभिन्न कौशल, तकनीकी जानकारियों, समस्या निवारण और महत्त्वपूर्ण ज्ञान कौशल, साथ ही सहयोग और सहानुभूति की आवश्यकता होगी।विकास के दायरे में देरी से प्रवेश करने के कारण भारत उन सभी सुविधाओं से लाभान्वित होगा क्योंकि भारत दुनिया की सबसे युवा आबादी वाला देश है जहाँ सीखने क्षमता और उत्सुकता अधिक है। उल्लेखनीय है कि वर्ष 2020 तक चीन और अमेरिका (37), पश्चिमी यूरोप (45) और जापान (49) की तुलना में भारत में औसत आयु केवल 28 होगी।भारत की युवा आबादी कई माध्यमों से आर्थिक विकास में वृद्धि करेगी। इसमें पहला, मानव पूंजी स्टॉक चौनल है। अगर मानव पूंजीगत स्टॉक में निवेश बढ़ाया जाता है तो भारत का जनसांख्यिकीय नया विकास चालक बन जाएगा।उल्लेखनीय है कि जैसे-जैसे युवा आबादी कामकाजी उम्र तक पहुँचेगी, उन्हें आसानी से प्रशिक्षित किया जा सकता है और नए उद्योगों में शामिल होने के लिये कौशल प्रदान किया जा सकता है। जनसांख्यिकीय लाभांश द्वारा वित्तीय संसाधनों को खर्च करने की दिशा में भी परिवर्तन होगा और जो उन्हें बच्चों की उच्च शिक्षा और कौशल में निवेश करने हेतु प्रेरित करेगा।दूसरा चौनल महिलाओं के कार्यबल में वृद्धि संबंधी है जो स्वाभाविक रूप से प्रजनन क्षमता में गिरावट से जुड़ा हुआ है। तीसरा चौनल, बचत दर में वृद्धि है, क्योंकि कामकाजी उम्र ही बचत के लिये प्रमुख अवधि होती है तथा चौथा चौनल, बचत के लिये अधिक दीर्घायु के साथ सेवानिवृत्ति की लंबी अवधि को प्रोत्साहित करता है।इसके अतिरिक्त पाँचवाँ चौनल, एक मध्यम श्रेणी के समाज की मानसिकता में व्यापक बदलाव से संबंधित है, जो पहले से ही बना हुआ है। गौरतलब है कि प्रौद्योगिकी पहले से ही विश्व अर्थव्यवस्था का सबसे बड़ा क्षेत्र है, यहाँ तक कि इसने वित्तीय सेवाओं का क्षेत्र भी समाहित कर लिया है।

भारत वर्ष की वित्त मंत्री श्रीमती निर्मला सीतारमन ने 31 जनवरी, 2020 को आर्थिक सर्वेक्षण 2019-20 को पटल पर रखा। सर्वेक्षण सेवा क्षेत्रकी मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

- सेवा क्षेत्र में 2018-19 में 7.5% की तुलना में 2019-20 में 6.9% की दर से वृद्धि का अनुमान है। 2019-20 में भारत की जीवीए में सेवा क्षेत्र का योगदान 55.3% होने का अनुमान है। वर्तमान 15 राज्यों और यूटी के सकल राज्य मूल्य संवर्धन में सेवा क्षेत्र का हिस्सा 50% से अधिक है। इस अवधि में व्यापार, होटल, परिवहन, ब्रॉडकास्टिंग से संबंधित संचार और सेवा, वित्तीय और रियल एस्टेट जैसे उपक्षेत्रों में गिरावट देखी गई।
- भारत में समूचे निर्यात क्षेत्र में सेवा निर्यात की हिस्सेदारी बढ़ रही है। विश्व के वाणिज्यिक सेवा निर्यात में भारत की हिस्सेदारी 2018 में 3.5% और व्यापारिक निर्यात में 1.7% थी।

मानव विकास और रोजगार

- मानव विकास सूचकांक में भारत का स्थान 2018 में 129वां था। 2014-20 की अवधि के दौरान सामाजिक सेवाओं (स्वास्थ्य एवं शिक्षा सहित) पर व्यय 1.5% बढ़ गया। कुल स्वास्थ्य व्यय के प्रतिशत के रूप में आउट ऑफ पॉकेट व्यय 2013-14 में 64.2% की तुलना में 2016-17 में 58.7% हो गया। सर्वेक्षण में कहा गया कि माध्यमिक, उच्च माध्यमिक और उच्च शिक्षा के स्तरों पर सकल दाखिला अनुपात में सुधार की जरूरत है।
- अर्थव्यवस्था में कुल औपचारिक रोजगार 2011-12 में 8% से बढ़कर 2017-18 में 10% हो गया। 2011-18 की अवधि के दौरान नियमित वेतन/वेतनशुदा कर्मचारियों के बीच 2.62 करोड़ नई नौकरियों का सृजन हुआ। श्रम बल में महिलाओं की भागीदारी में गिरावट हुई, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में।

बाजार में भरोसा बढ़ा

- सर्वेक्षण में कहा गया कि 2025 तक भारत की 5 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था बनने की अभिलाषा के लिए यह जरूरी है कि बाजार में भरोसा बढ़े। इसके लिए कारोबार समर्थक नीतियों की भी जरूरत होगी। इन नीतियों में निम्नलिखित शामिल हैं (i) नए लोगों को समान अवसर प्रदान करना, निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा और ईज ऑफ डूइंग बिजनेस को कायम करना, (ii) सरकारी हस्तक्षेप के जरिए ऐसी नीतियों को समाप्त करना जोकि अनावश्यक रूप से बाजार को कमजोर बनाती हैं, (iii) रोजगार सृजन के लिए व्यापार को सक्षम बनाना, और (iv) बैंकिंग क्षेत्र को अर्थव्यवस्था के सानुपातिक बनाना। जबकि प्रो-बिजनेस नीतियों को बढ़ावा देने की जरूरत है, निजी हितों और ताकतवर लोगों का पक्ष लेने वाली प्रो-क्रोनी नीतियों को समाप्त किया जाना चाहिए।
- सर्वेक्षण में कहा गया कि जिन मामलों में सरकारी हस्तक्षेप जरूरी नहीं, उन मामलों को समाप्त करने से प्रतिस्पर्धी बाजार सक्षम बनेंगे और निवेश एवं आर्थिक विकास में तेजी आएगी। उदाहरण के लिए खा। के सबसे बड़े खरीदार के रूप में सरकार के उभरने से कई समस्याएं हो सकती हैं, जैसे सबसिडी का दबाव बढ़ना, अनाज की मांग और आपूर्ति के बीच डायवर्जन और फसल विविधीकरण के प्रति उत्साह कम होना।
- ईज ऑफ डूइंग बिजनेस की रैंकिंग में भारत 2014 में 142वें स्थान पर था और 2019 में 63वें स्थान पर पहुंच गया। हालांकि भारत विभिन्न मानदंडों पर पिछड़ रहा है जैसे ईज ऑफ डूइंग बिजनेस (रैंक 136), संपत्ति रजिस्ट्रेशन (रैंक 154), टैक्स भुगतान (रैंक 115), और कॉन्ट्रैक्ट्स को लागू करना (रैंक 163)। ये मानदंड भविष्य में सुधार की गुंजाइश प्रदान करते हैं।

जमीनी स्तर पर उद्यमशीलता

- जमीनी स्तर पर संपत्ति सृजन में जिला स्तरीय उद्यमशीलता का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। जिले में नई कंपनियों के पंजीकरण में 10% की वृद्धि से जिले की जीडीपी में 1.8% की वृद्धि होती है। सर्वेक्षण में कहा गया है कि विश्व में नई निर्मित कंपनियों की संख्या के लिहाज से भारत तीसरे स्थान पर है। उल्लेखनीय है कि विभिन्न जिलों और सेक्टर्स में नई कंपनियां शुरू हो रही हैं।
- जिले में शिक्षा और इंफ्रास्ट्रक्चर की क्वालिटी का स्तर नई कंपनियों के सृजन को बहुत प्रभावित करता है। ईज ऑफ डूइंग बिजनेस को सक्षम बनाने वाली नीतियों और लचीले श्रम कानूनों से नई कंपनियों का सृजन होता है, विशेष रूप से मैन्यूफैक्चरिंग क्षेत्र में।

रोजगार सृजन के लिए नेटवर्क प्रॉडक्ट्स का निर्यात

- नेटवर्क प्रॉडक्ट्स का निर्यात 2025 तक भारत को 5 ट्रिलियन + की अर्थव्यवस्था बनाने के लिए जरूरी मूल्य संवर्धित वृद्धि में एक चौथाई योगदान दे सकता है। नेटवर्क प्रॉडक्ट्स ऐसे उत्पादों को कहते हैं जिनमें ग्लोबल वैल्यू चेन के जरिए उत्पादन किया जाता है। इन चेन्स को मल्टीनेशनल कॉरपोरेशंस संचालित करते हैं। 'विश्व के लिए भारत में एसेंबल' को 'मेक इन इंडिया' अभियान में एकीकृत करके यह हासिल किया जा सकता है। इससे 2025 तक 4 करोड़ अच्छे वेतन वाली नौकरियां और 2030 तक 8 करोड़ नौकरियों का सृजन किया जा सकता है।

बैंकिंग क्षेत्र

- अर्थव्यवस्था का आकार देखते हुए भारत का बैंकिंग क्षेत्र गैर अनुपातिक रूप से कम विकसित हुआ है। भारत में केवल एक बैंक ऐसा है जोकि विश्व स्तर के टॉप 100 बैंकों में शुमार होता है। भारतीय बैंकिंग में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों (पीएसबी) की हिस्सेदारी 70% है। हालांकि विभिन्न प्रदर्शन मानदंडों पर पीएसबी निजी बैंकों की तुलना में अकुशल हैं।
- सर्वेक्षण में बैंकों के कामकाज में वित्तीय तकनीक के इस्तेमाल, सभी स्तरों पर कर्मचारी स्टॉक स्वामित्व का सुझाव दिया गया जिससे पीएसबीज की कार्यकुशलता में इजाफा होगा। ऋण संबंधी फैसले लेने के लिए एक जीएसटीएन टाइप एंटिटी का गठन किया जा सकता है जोकि पीएसबी के संबंध में बिग डेटा, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और मशीन लर्निंग का इस्तेमाल कर सकती है। ऐसे निवेश बड़े उधारकर्ताओं की बेहतर स्क्रीनिंग और निरीक्षण को सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का विनिवेश

- केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के 11 उपक्रमों का विश्लेषण बताता है कि औसतन, निजीकृत होने वाले उपक्रम निजीकरण के बाद अपने जैसे अन्य उपक्रमों की तुलना में अच्छा प्रदर्शन करते हैं जैसे उनकी शुद्ध कीमत, शुद्ध लाभ और प्रॉफिट मार्जिन अच्छा होता है।
- सीपीएसईज की रणनीतिक बिक्री के जरिए किए जाने वाले विनिवेश से संपत्ति सृजित करने की उनकी क्षमता बढ़ती है। इस प्रकार उच्च लाभपरकता के लिए बड़े पैमाने पर विनिवेश किया जाना चाहिए।

ग्रामीण पर्यटन और सेवा क्षेत्र में रोजगार

ग्रामीण क्षेत्र अपनी प्राकृतिक सुंदरता व देशज विशिष्टताओं के कारण पर्यटकों के लिए हमेशा से आकर्षण का केन्द्र रहे हैं। इधर कुछ वर्षों से ग्रामीण विकास मंत्रालय ने ग्रामीण पर्यटन के विकास के लिए कई व्यापक कदम उठाए हैं। पर्यटन क्षेत्र में रोजगार की असीम संभावनाएं हैं। संयक्त राष्ट्र विश्व पर्यटन संगठन के अनुसार पर्यटन क्षेत्र विश्व के कुल रोजगार का प्रत्यक्ष रूप से 7 प्रतिशत तथा अप्रत्यक्ष रूप से इससे कई गुना अधिक रोजगार प्रदान करता है। भारत में ही देखें तो देश के सकल घरेलू उत्पादन में इसका योगदान 2007-08 में प्रत्यक्ष तौर पर 6 प्रतिशत तथा अप्रत्यक्ष तौर पर 9 प्रतिशत रहा है। देश में ग्रामीण पर्यटन की असीम संभावना को देखते हुए सरकार देश में हस्तशिल्प, ज्ञान, संस्कृति आदि को बढ़ावा दे रही है।

ग्रामीण क्षेत्रों में आज सेवा क्षेत्र की भूमिका भी बढ़ती जा रही है। इस हेतु सरकार विभिन्न योजनाओं व कार्यक्रमों के द्वारा ग्रामीणों को प्रशिक्षित कर रही है। दूरसंचार, चिकित्सा, शिक्षा, मरम्मती कार्यों में सरकार व्यापक सहयोग दे रही है।

स्वरोजगार

सेवा क्षेत्र के उभार, शिक्षा तकनीक, जागरूकता के बढ़ने के साथ लोगों में स्वरोजगार के प्रति काफी आकर्षण है। स्वयंसहायता समूह, खादी ग्रामाद्योग के रोजगार सृजन कार्यक्रमों, मनरेगा के तहत नवीन कार्यों मसलन तालाब निर्माण, मवेशी पालन आदि के तहत सरकार ग्रामीणों को स्वरोजगार हेतु प्रेरित व सहयोग कर रही है। इसके लिए प्रशिक्षण, कौशल विकास, संसाधन, वित्त व्यवस्था, विपणन, प्रबंधकीय क्षमता विकास के लिए सरकार व्यापक प्रावधान व प्रयास कर रही है।

नवीन संभावनाएं

औद्योगिकीकरण, आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण का स्पष्ट प्रभाव गांवों की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक संरचना पर देखा जा सकता है। इन सबका सम्मिलित प्रभाव ग्रामीण उपयोग स्तर में वृद्धि के मामले में दिखता है। ग्रामीण क्षेत्रों में उपभोक्ता वस्तुओं, सेवाओं की मांग लगातार बढ़ रही है। इस बढ़ती मांग ने गांवों में रोजगार के नवीन अवसरों को भी बढ़ाया है। गांवों का भविष्य रोजगार की असीम संभावनाओं से यक्त दिख रहा है। जरूरत है इसके बेहतर तरीके से नियमन, संचालित प्रबंधन के द्वारा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में ग्रामीण भागीदारी का स्तर उठाया जाए।

आज सूचना प्रौद्योगिकी, सेवा, कृषि, उद्योग सहित अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहां गांवों की जरूरत महसूस की जा रही है। गांवों का बदलता स्वरूप अब कच्चे माल के स्रोत के तौर पर नहीं दिखता। बल्कि गांव शहरों से मुकाबला करने को तैयार हो चुके हैं। सस्ता श्रम बल, सस्ती संरचना, सस्ता परिवहन व्यय आदि कुछ ऐसी विशेषताएं हैं कि अब उद्योग जगत गांवों की तरफ आकर्षित हो रहे हैं। संभावना है पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप और निजी दोनों रूपों में गांव औद्योगिकीकृत होंगे। इस संभावना के साथ ग्रामीण रोजगार के असीम दरवाजे खुलेंगे। सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार ने ग्रामीण क्षेत्रों में संभावनाएं पैदा की हैं। कॉल सेंटर, बीपीओ, इंटरनेट संबंधी रोजगार के नए अवसर ग्रामीण क्षेत्रों की ओर रूख कर रहे हैं। यह ग्रामीण रोजगार क्षेत्रों के लिए क्रांतिकारी बदलाव होगा।

चुनौतियां और समाधान

नई संभावनाओं के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में चुनौतियों की कमी नहीं है। इनसे निपटे बगैर हम ग्रामीण रोजगार सृजन और इसकी बेहतरी की कल्पना नहीं कर सकते।

शिक्षण-प्रशिक्षण

सबसे बड़ी चुनौती शिक्षा व प्रशिक्षण की है। हम अब भी पारंपरिक शैक्षणिक पद्धति से जुड़े हुए हैं जबकि आधुनिक समय में व्यावसायिक शिक्षा की मांग जोर पकड़ रही है। आधुनिक रोजगार हेतु हमारी शिक्षा प्रणाली बेहतर श्रम बल तैयार नहीं कर पाती। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश लोग प्राथमिक और थोड़े-बहुत लोग माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करते हैं। लेकिन यह शिक्षा विशेषीकृत नहीं होती। हमारा प्रयास ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक से ही व्यवसाय केन्द्रित शिक्षण पद्धति को अपनाने के प्रति होना चाहिए।

इसके अलावा अशिक्षित लोगों के लिए वैकल्पिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए। औद्योगिक प्रशिक्षण, गैर-कृषिगत कार्यों का प्रशिक्षण, सूचना प्रौद्योगिकी, सेवा क्षेत्र आदि से जुड़े रोजगार हेतु आवश्यक कौशल विकास के लिए शिक्षण-प्रशिक्षण का प्रयास करना होगा।

ऊर्जा उपलब्धता

नये उद्योग, उत्पादन इकाई या ग्रामीण औद्योगिकीकरण के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा ऊर्जा उपलब्धता की है। ग्रामीण विद्युतीकरण योजनाओं के बावजूद अब भी 25 प्रतिशत गांव पूर्णत: विद्युतीकृत नहीं हैं। 20 राज्यों के करीब 1.15 लाख गांवों में विद्युतीकरण अब भी प्रतीक्षारत है। ग्रामीण रोजगार के लिए ग्रामीण उद्योगीकरण का रास्ता तो खुल रहा है परन्तु ऊर्जा उपलब्धता के नजरिए से यह बड़ी चुनौती है। हमें ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों पर ऐसे गांवों की निर्भरता बढ़ाने के प्रति गंभीर होना होगा। इसके लिए सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा जैसे विकल्पों के प्रसार को गति देनी चाहिए।

संरचना निर्माण

इसके अलावा आधारभूत संरचनाओं के निर्माण के प्रति भी हमें सचेत प्रयास करने होंगे। प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना ने ग्रामीण क्षेत्रों में सड़क नेटवर्क को मजबूत करने की दिशा में अच्छा काम किया है। परंतु अब भी 30 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र पक्की सड़क से नहीं जुड़ पाए हैं। मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, अरुणाचल प्रदेश, असम, बिहार में तो करीब 55 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र पक्की सड़क सुविधा से नहीं जुड़े हैं। पीयूआरए जैसी योजनाओं से ग्रामीण क्षेत्रों में शहरों जैसी सुविधा उपलब्ध कराने के प्रयासों से धीरे-धीरे अच्छे नतीजे आ रहे हैं। इस दिशा में हमारे लिए काफी काम शेष हैं। सड़क, संचार, ऊर्जा ये तीन चीजें उद्योगीकरण के लिए बहुत जरूरी हैं। इसे केवल ग्रामीण रोजगार के नजरिये से ही नहीं, बल्कि पूरी अर्थव्यवस्था के लिहाज से देखना होगा। इन सबके साथ ग्रामीण औद्योगिकीकरण का सामना पर्यावरण के मुद्दे से भी होगा। इसके लिए पर्यावरण हितैषी उपायों को ध्यान में रख कर योजनाएं बनाने की जरूरत है।

नक्सलवाद

देश के कई ग्रामीण क्षेत्रों में नक्सलवाद जैसी समस्या भी मौजूद हैं। नक्सली हमलों में प्रायः सरकारी इमारतों, स्कूलों, टेलीफोन टावरों, कारखानों आदि को निशाना बनाया जाता है। इस तरह की स्थितियों के साथ ग्रामीण युवाओं में विघटन की प्रवृत्ति भी पनप रही है। या तो वे शहरों में पलायन कर जाते हैं या नक्सली बन जाते हैं। दूसरी ओर, ऐसे क्षेत्रों में कोई उद्यमी भी नहीं जाना चाहता। हालांकि पिछले दिनों ग्रामीण विकास मंत्रालय ने विकास के बल पर नक्सल समस्या से निपटने की रणनीति बनाई है। इसके साथ ही हमें विकास की प्रक्रियाओं में स्थानीय लोगों की व्यापक भागीदारी सुनिश्चित करनी होगी। खनन, भूमि अधिग्रहण से विस्थापित ग्रामीणों को परियोजनाओं में रोजगार उपलब्ध कराने चाहिए।

कृषि पर अत्यधिक निर्भरता

पारंपरिक रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि पर अत्यधिक निर्भरता है। जिस काम को 2 लोग आसानी से कर सकते हैं वहां काम के अभाव के कारण 5-7 लोग लगे रहते हैं। हमें गैर-कृषि कार्यों को प्रोत्साहन देना होगा और इसमें नये रोजगार अवसर बनाने होंगे।

निष्कर्ष

जैसा की हम उपरोक्त अध्ययन से पाते है कि हमें इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि नए डिजिटल प्लेटफॉर्म का उपयोग लोगों को बाजारों से जोड़ने, सूक्ष्म लघु एवं मध्यम उद्यमों (एसएमई) को वैश्विक व्यापार से जोड़ने और लिंग आसमानता को दूर करने वाली क्रांति को बढ़ावा देने हेतु उपयोग किया जाना चाहिये ताकि अपेक्षित विचार परिवर्तन किया जा सके।नई नौकरियों के लिये तकनीकी जानकारियों, समस्या निवारण और महत्त्वपूर्ण ज्ञान कौशल का संयोजन, साथ ही अन्य कौशल जैसे दृढ़ता, सहयोग और सहानुभूति आदि विशिष्ट कौशल की आवश्यकता होगी।भारत की सबसे बड़ी संपत्ति इसकी युवा आबादी है, मानव पूंजी में निवेश भारत के लिये एक बड़ी कामयाबी साबित होगी और यह भारत को जनसांख्यिकीय अभिशाप का सामना करने से भी रोक देगी।नीति निर्माताओं को बुनियादी ढाँचे के वितरण योजना बनाते समय भौतिक और मानव संसाधन दोनों पर जोर देने की जरूरत है, लेकिन साथ ही मानव पूंजीगत स्टॉक में निवेश के महत्त्व पर बल देना होगा।हमें अपनी समझ को अभी भी और विकसित की आवश्यकता है कि कैसे इंफ्रास्ट्रक्चर बढ़ते शहरीकरण, सार्वजनिक निजी साझेदारी को अनुकूल प्रदान कर सकता है या डिजिटल प्रौद्योगिकी का उचित उपयोग तथा वर्तमान में शिक्षा और सामाजिक जरूरतों की लागत को कम करता है? गौरतलब है कि आज किए गए निर्णयों का दशकों बाद भारत के जनसांख्यिकीय लाभांश पर असर पड़ेगा अतः भविष्य के प्रति सचेत होकर सही निर्णय लेने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. आर्थिक सवेक्षण विभाग भारत सरकार, 2020
2. थ्योरी प्रभाग (२०२०): 'अर्थव्यवस्था: एक सामान्य अध्ययन', मोक टाइम प्रकाशन
3. निति आयोग की योजना रिपोर्ट २०१९
4. रमेश सिंह (२०१८): 'भारतीय अर्थव्यवस्था', 10 व एडिशन, मक्ग्रा हिल पब्लिकेशन नई दिल्ली, ७९५ पेजेज
5. वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, वार्षिक रिपोर्ट २०२०
6. संजीव वर्मा (२०१८) भारतीय अर्थव्यवस्था', यूनीक पब्लिकेशन, नई दिल्ली ३३६ पेजेज

स्वामी विवेकानंद तथा भारतीय युवा वर्गः एक दृष्टि

डॉ० प्रियतोष शर्मा

इतिहास विभाग पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

भूमिका

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत कई चुनौतियों का सामना कर रहा था "उपनिवेशवाद तथा उसके दुष्परिणाम भारतीय समाज पर दिखने शुरू हो चुके थे" उपनिवेशवादी शक्ति भारत को कमजोर करने के लिए इसकी शिक्षा नीति बदल चुकी थी तथा भारतीय रीति-रिवाजों को प्राचीन रूढ़ीवादी तथा बुराइयों से भरे बताकर उन पर लगातार प्रहार कर रही थी "ऐसे वक्त में भारत में कई सामाजिक तथा धार्मिक आंदोलनों की शुरुआत हुई जिनमें से प्रमुख ब्रह्मो समाज (1828 ई), सिंह सभा आंदोलन (1873 ई), आर्य समाज (1875 ई), अलीगढ़ आंदोलन (1875 ई) थे, जिन्होंने भारत की संस्कृति की दोबारा अध्ययन करना शुरू किया" उनका प्रयास था कि भारतीय युवा वर्ग के सामने भारतीय प्राचीन सभ्यता प्रथा आधुनिकता का सुमेल किया जा सके "परंतु इन सब कड़ियों में रामकृष्ण मिशन तथा स्वामी विवेकानंद जी का योगदान अनुपम माना जा सकता है" स्वामी विवेकानंद ने भारतीय वैदिक संस्कृति को विश्व के पटल में पुनर्जीवित किया।

स्वामी विवेकानंद, जिनका असली नाम नरेंद्र नाथ था, भारतीय समाजिक तथा धार्मिक आंदोलनों में ध्रुव तारा है जिन्होंने पश्चिम में शिकागो में जाकर भारतीय संस्कृति का ध्वज फहराया। उन्होंने उस समय पर भारतीय युवा वर्ग का मार्गदर्शन किया जब वह इस कशमकश में था की उसके आगे का समय कैसा होगा। पश्चिमी सभ्यता की परिकल्पना तथा आधुनिकतावाद और उसके सामने भारतीय दर्शन, हर युवा को एक ऐसे दोराहे पर खड़ा कर रहा था, जोकि भारत के आने वाले भविष्य का मार्ग सुनिश्चित करने वाला था। स्वामी जी का सबसे बड़ा योगदान इस समय में भारतीय संस्कृति तथा आधुनिकतावाद का सुमेल था। गुहा के हिसाब से स्वामी विवेकानंद ने अपने परिपेक्ष में हिंदू धर्म को एक नई ऊर्जा से भरा तथा यूरोप के शक्ति पूर्ण संदर्भ में हिंदू सभ्यता को दोबारा पुनर्स्थापित किया। बेशक इसी योगदान की वजह से स्वामी जी आने वाले भारत में एक अहम भूमिका निभाते दिखते हैं। और इसी वजह से भारत सरकार ने 12 जनवरी को भारतीय युवा दिवस घोषित किया क्योंकि स्वामी जी की परिकल्पना में भारत का भविष्य भारत के युवा के हाथ में था।

भारत के कई महान नेताओं तथा समाज सुधारको ने अपने जीवन में स्वामी विवेकानंद के योगदान को सहर्ष माना है। इनमें से प्रमुख महात्मा गांधी, सुभाष चंद्र बोस थे जिन्होंने अपना जीवन देश के लिए समर्पित किया। हमारे सामने जीवंत उदाहरण अन्ना हजारे की हैं जिन्होंने अपने साक्षात्कार में कहा की एक समय जब वे रेलगाड़ी से जा रहे थे, तो दिल्ली के स्टेशन पर उन्होंने स्वामी जी की किताब पढ़ी। इस किताब ने उनको इतना प्रभावित किया कि उन्होंने अपना जीवन स्वामी जी के मूल्य 'दरिद्र नारायण', यानी हर गरीब में भगवान का निवास है, के प्रति समर्पित कर दिया।

स्वामी जी के समाज के लिए परिकल्पना

स्वामी विवेकानंद का सबसे बड़ा योगदान भारतीय पटल पर यह भी है उन्होंने संकीर्णता को त्याग कर उस समय में विश्व भाईचारे की बात की जब राष्ट्रवाद की संकीर्णता विश्व को युद्धों की तरफ धकेल रही थी। स्वामी जी ने शिकागो की धार्मिक सभा में अपने भाषण की शुरुआत 'अमेरिका की बहनों तथा भाइयों' (Sisters and Brothers ofAmerica) के साथ की। इस तरह से यह बात महत्वपूर्ण है की जहां एक तरफ स्वामी विवेकानंद भारतीय सभ्यता के पुनरुत्थान तथा महानता की बात करते हैं, परंतु वह युवा वर्ग को विश्व स्तर पर एक समान मानते हैं और यह विश्वास रखते है, की भारत का अध्यात्म तथा पश्चिम की कर्म साधना का सुमेल भारतीय युवा वर्ग को नवीन बुलंदियों पर पहुंचा सकता है। इसीलिए उन्होंने भारतीय युवाओं को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वह यह याद रखें कि वह कृष्ण के संताने हैं, जिन्होंने भागवत गीता में अर्जुन को यह उपदेश दिया की धर्म के प्रति निष्ठा को रखते हुए अर्जुन को युद्ध से कायरों की तरह नहीं भागना चाहिए। इस संदर्भ में वे आगे लिखते हैं की अर्जुन का भय उसके धार्मिक तथा अध्यात्म संवादों में दिख रहा था परंतु यह अध्यात्म तथा निर्भयता से परिपूर्ण ना होकर भय से ग्रसित था। इसीलिए अर्जुन को कृष्ण ने उपदेश दिया की उसे कर्म योग की साधना करनी चाहिए तथा फल की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। इसी तरह स्वामी जी भारतीय युवा वर्ग को प्रेरित करते हैं कि उन सबको धर्म की आड़ में अपने डर को नहीं छुपाना चाहिए। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा की धर्म बिना शारीरिक शक्ति के अर्थहीन है। उनके हिसाब से समय आ गया था की भारतीय युवा निडरता के साथ सशक्त हो तथा अपने कंधों पर पूर्ण जिम्मेदारी लेकर अपनी किस्मत का निर्माता खुद बने। स्वामी जी ने एक व्यक्ति जो उनसे धर्म की शिक्षा लेने आया था को यह निर्देश दिया कि पहले युवा वर्ग को ताकतवर होना पड़ेगा। धर्म की बात वह बाद में करें। उन्होंने आगे कहा कि बेशक एक सशक्त शरीर के साथ तुम अध्यात्म को जल्दी समझ सकोगे। इसीलिए तुम्हें स्वर्ग की अनुभूति फुटबॉल खेल कर गीता पढ़ने के मुकाबले जल्दी हो सकती है।

युवा वर्ग को सन्देश

युवा वर्ग का आधुनिक समय में महत्व को समझने से पहले हमें यह समझना होगा कि आखिर युवा है क्या? क्या यौवन एक शारीरिक अवस्था है या एक मानसिक पहचान? आखिर युवा को परिभाषित कैसे किया जाए? अंग्रेजी ज्ञानकोश के अनुसार 'युवा' उस समय को कहते हैं जो बचपन तथा एडल्टहुड के बीच में है। परंतु स्वामी जी इन वैज्ञानिक परिभाषा से परे सोच रहे थे। उन्होंने यौवन को परिभाषित विज्ञानिक रूप से ना किया बल्कि एक ऐसी अवस्था के साथ किया जब व्यक्ति का अपने पर विश्वास, जिसे वह श्रद्धा कहते थे, परिपूर्ण हो। स्वामी जी के अनुसार भारत का भविष्य उन युवाओं के कंधों पर टिका है, जो अपने जीवन को समाज तथा भारत माता के चरणों पर समर्पित करने को तत्पर हो परंतु ऐसा करने से पहले उन युवाओं का अध्यात्म तथा अपने शरीर तथा जीवन के प्रति श्रद्धा परिपूर्ण होनी चाहिए। क्योंकि जिस तरह ईश्वर को सबसे सुंदर पुष्प चढ़ता है, उसी तरह से समाज तथा राष्ट्र की सुरक्षा तथा सेवा की वेदी लिए सब से परिपूर्ण व्यक्ति ही अपने जीवन को त्याग कर सकता है। स्वामी जी ने ऐसे जीवन जिसमें बड़बोलापन, कमजोरी तथा दिखावा ज्यादा हो की निंदा की। स्वामी जी का मानना था कि भारतीय इतिहास में कई नायकों ने अपना बलिदान इसीलिए दिया, क्योंकि उनको अपने जीवन की परिपूर्णता के प्रति श्रद्धा थी। सबसे अच्छी उदाहरण गुरु तेग बहादुर जी की है जिनके पास कश्मीरी ब्राह्मण जब मदद के लिए आए तो उन्होंने उनसे कहा की समय की मांग किसी महान व्यक्ति की कुर्बानी है। इसीलिए उन कश्मीरी ब्राह्मणों को किसी ऐसे महान व्यक्ति के पास जाना चाहिए जो उनके धर्म की रक्षा के लिए अपने जीवन का बलिदान करने को तत्पर हो। यह सुनकर पास बैठे बालक गोविंद, जो बाद में गुरु गोविंद सिंह बने, ने अपने पिताजी से पूछा कि आखिर आपसे महान व्यक्तित्व इस वक्त और कौन है। गुरु तेग बहादुर जी ने बालक गोविंद की बात सुनी तथा उन ब्राह्मणों को कहा कि वह जाकर मुगल बादशाह को कह दे कि अगर वह गुरु तेग बहादुर जी का धर्म परिवर्तन कर दे, तो वह सब भी अपना धर्म परिवर्तन कर लेंगे। इस तरह से गुरु तेग बहादुर जी ने कश्मीरी ब्राह्मणों के धर्म की रक्षा के लिए अपने जीवन को बलिदान किया। इस तरह की कई ज्वलंत उदाहरण है जहां पर शिवाजी, रानी लक्ष्मी बाई, तथा कई और वीरों ने अपना बलिदान दिया। 'इसीलिए स्वामी विवेकानंद जी का कथन है की हमें अपने राष्ट्र रुपी रक्त से इस अजीब बीमारी को उखाड़ फेंकना चाहिए जो हर किसी का उपहास करती है, तथा चिंतित कम रहती है। समय आ गया है कि सबको पूर्ण शक्ति तथा श्रद्धा के साथ आगे बढ़ना चाहिए और ऐसा करने से फल हमारा पीछा खुद करेगा। शायद इसीलिए भगवत गीता में भी भगवान कृष्ण अर्जुन को कई बार धर्म के मार्ग पर चलते हुए श्रद्धा भाव से अपना कार्य करने का उपदेश दिया, क्योंकि धर्म तथा शक्ति विहीन पुरुष कभी भी सही रास्ते पर नहीं चल सकता।

बेशक हर व्यक्ति अपने भाग्य का निर्माता खुद है। और स्वामी विवेकानंद जी के अनुसार भारतीय युवा वर्ग की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि वह बातें तो बड़ी बड़ी करते हैं परंतु कार्य बहुत कम कार्य। स्वामी जी के हिसाब बिना कार्य में लयाया जाने वाला चिंता अथवाहिन है। इसलिए राष्ट्रीय शक्ति से पहले व्यक्तिगत शक्ति का संचार आवश्यक है। मद्रास में अपने संबोधन में स्वामी जी ने सशक्त आवाज में वहां पर बैठे लोगों का आह्वान किया, 'तुम सब सुधारो तथा आदर्शों की बात पिछले कई सालों से कर रहे हो परंतु जब इसे प्रयोग में लाने का समय होता है तो यह कहीं अदृश्य हो जाता है। तुम लोगों को खुद में विश्वास नहीं है। कई सदियों तथा हजारों सालों से राजाओं ने तथा विदेशी हमलावरों ने तुम सबकी शक्ति को संचित होने से रोक दिया है तुम्हारी रीड की हड्डी टूटी हुई है तुम एक जमीनी कीड़े की तरह दबाए जाते हो। तुम्हें क्या चाहिए? मैं तुम्हें कहता हूं शक्ति, शक्ति ही एक ऐसा जरिया है जिससे तुम दोबारा विश्व के पटल पर गौरव प्राप्त कर सकते हैं' स्वामी जी के अनुभव से एक बात स्पष्ट होती है कि स्वामी जी नहीं चाहते थे कि उनके अनुमोदन सिर्फ कागजों तक ही सीमित रह जा प उन्होंने युवाओं से यह आवाहन किया कि वह अपने विचारों को शक्ति पूर्ण रखें। स्वामी विवेकानंद जी ने भारतीय युवा वर्ग को इस बात के प्रति सावधान रहने को कहा कि वह किसी भी तरह का वह समझौता ना करें जो उनको कमजोर करें। वह नहीं चाहते कि वह किसी और से देश द्वेष की भावना रखें, परंतु इसके साथ साथ उन सब को यह सुनिश्चित करना पड़ेगा कि वह अपने सिद्धांतों पर हर वक्त चट्टान की तरह खड़े रहे तथा अपने आपको दूसरों के सामने अर्थपूर्ण बनाने के लिए मैं दूसरे की विचारधारा को ना अपनाए।

स्वामी जी यह जानते थे की सच्चाई हमेशा बलिदान की मांग करती है। महानता सिर्फ शाब्दिक ना होकर कर्म के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। इसलिए उन्होंने भारतीय युवा वर्ग को उपदेश दिया की वह आराम में रहकर सत्य के प्रकाश की अनुभूति नहीं कर सकते। सत्य किसी भी तरह के आराम से परे है। इसीलिए जब तक युवा चेतन सत्य के मार्ग में निर्भय होकर चलने के लिए तत्पर नहीं होगा तब तक वह अपने शब्दों को कर्म रूपी भूमि पर नहीं बीज सकता। उन्होंने अपने जीवन की एक कथा के बारे में बात की जो कि उनकी बनारस यात्रा के समय की है। उन्होंने बताया किस तरह जब वह बनारस की गलियों में जा रहे थे तो कुछ बंदर उनका पीछा करने लग पड़े। शुरुआत में जैसे-जैसे बंदरों से बचने की कोशिश करते, बंदर उनका पीछा करते। परंतु तभी उन्होंने एक आवाज सुनी 'भागो मत इनका सामना करो,'। जैसे ही उन्होंने रुक कर बंदरों का सामना करने का निश्चय किया तब वह बंदर डर के मारे पीछे हटने लग पड़े। स्वामी जी ने कहा इस घटना ने उन्हें इस बात पर यकीन दिलवाया की बड़ी से बड़ी मुश्किल बिना सामना किए नहीं टाली जा सकती। इसीलिए भारतीय युवा से वह आशा करते थे, कि वह भी अपनी सामाजिक तथा राष्ट्रीय समस्याओं से भागकर अध्यात्म तथा धर्म की आड़ नहीं लेंगे। इसके विपरीत भारतीय युवा पूरी शक्ति के साथ इन समाजिक तथा राष्ट्रीय समस्याओं का सामना करेगा। स्वामी जी के अनुसार इन समस्याओं का सामना करने का धैर्य सिर्फ कर्म के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि गीता में भी भगवान कृष्ण ने हर मनुष्य को कर्म की स्वतंत्रता प्रधान की है। गीता के अध्याय 2 श्लोक 48 में भगवान कृष्ण कहते हैं 'तुम्हारा तुम्हारा अधिकार सिर्फ तुम्हारे कर्तव्य के प्रति है परंतु इन कर्तव्यों का फल तुम्हारे अधिकार क्षेत्र से परे है। असफलता का डर हमें भावनापूर्ण हर कार्य के फल की तरफ जोड़ता है, जोकि किसी भी कार्य की सफलता को साध्य करने में सबसे बड़ी बाधा साबित होती है। एक किसान अपने खेत पर काम करने के लिए स्वतंत्र है परंतु उपज कैसी होगी इस पर उसका साधे नहीं है। परंतु अगर वह अपने खेत पर काम करने से ही इंकार कर दे तो शायद फसल हो ही नहीं। इस तरह से हर व्यक्ति का अधिकार क्षेत्र व्यक्ति के कार्यक्षेत्र के साथ ही खत्म हो जाता है। हर व्यक्ति को पूर्ण बल के साथ कार्य करना चाहिए इसीलिए हे अर्जुन तुम भी अपना कार्य पूरे मन के साथ करो। परंतु इस कार्य का परिणाम ईश्वर पर छोड़ दो। तुम बस सफलता या विफलता दोनों को एक समान समझो क्योंकि इच्छा विहीन कार्य मन में शांति और एकाग्रता लेकर आता है।

निष्कर्ष

स्वामी विवेकानंद जी ने भारतीय युवा को एक सिंह की भांति बलपूर्वक अपने कार्य को सिद्ध करने का आह्वान दिया। उन्होंने यह आशा की कि भारतीय युवा सशक्त, सबल उर्जा पूर्ण रूप से अपने अंदर धारण कर इस अनुभूति को प्राप्त करेगा की भारत एक ऐसी पुण्यभूमि है जिसने विश्व को अध्यात्म, सहनशीलता और भाईचारा सिखाया। भारत सदियों से विश्व के लिए एक ऐसी मशाल की तरह काम करता रहा, जिसने धर्म की राह को सशक्त किया और मोक्ष की चाह पाने वाले व्यक्तियों को मार्ग दिखाया प इस बातों को स्मरण रखने के बाद ऐसी कोई वजह नहीं है कि भारतीय युवा किसी भी हीन भावना से ग्रसित हो। स्वामी जी के अनुसार बीसवीं सदी भारत की सदी है, जिसमें भारत एक गुलाम देश ना होकर विश्व गुरु बनकर उठेगा, क्योंकि भौतिकताबाद तथा उपनिवेशवाद ने विश्व में कई समस्या खड़ी कर दी है। बेशक भारत का युवा भी इस पश्चिमी सभ्यता के भौतिकता बाद से ग्रस्त होकर अपनी जड़ों से अलग हो रहा है। पश्चिमी नीतियां तथा दर्शन, भारतीय युवाओं को लुभा रहा है, परंतु यह बहुत समय तक सार्थक नहीं रहेगा। आने वाला समय भारतीय युवाओं का हो सकता है अगर वह अपने आप को शरीक तथा आध्यात्मिक रूप से ज्वलित करें। भारत के ऋषि मुनियों ने योग पद्धति द्वारा युवाओं के सामने शारीरिक मानसिक तथा आध्यात्मिक मार्ग को सुनिश्चित किया है। परंतु यह सब तभी हो सकता है, अगर नौजवान अपने आप को उस प्राचीन श्रद्धा से भर ले जिस श्रद्धा ने नचिकेता को अपना बलिदान देने के लिए प्रेरित किया। कथा उपनिषद में जब नचिकेता के पिता बीमार होने के कारण कमजोर पशुधन का दान कर रहे थे नचिकेता ने अपने पिता से आग्रह किया कि वह उसको भी दान कर दे। नचिकेता यह समझते थे कि पिता द्वारा दिए गए दान नचिकेता के जीवन के सामने शून्य है। पिता ने क्रोध में आकर नचिकेता को यम को दान कर दिया। पिता की आज्ञा मानकर ने स्वयं को यम को समर्पित कर दिया, जिसके परिणाम स्वरूप नचिकेता को बाद में यम से जीवन तथा मृत्यु का बोध हुआ। ऐसी श्रद्धा स्वामी विवेकानंद जी हर भारतीय युवा में देखना चाहते थे जो उसको अपने समाज और राष्ट्र के प्रति बलिदान के लिए प्रेरित कर सके। कर्म के बिना स्वामी जी के लिए धर्म का कोई महत्व नहीं था उनके अनुसार पीड़ित व्यक्ति को लगता है कि धार्मिक विद्या, चिंतन तथा मोक्ष की शिक्षा को ग्रहण करना है अध्यात्म है। इसके लिए वह अपने संसार कर्तव्यों का पालन नहीं करता। परंतु ईश्वर को समर्पित व्यक्ति कर्म सर्वोपरि होता है। उसके लिए समाज की सेवा ईश्वर की सेवा के तुल्य होती है। उसके लिए कर्म तथा धर्म के मार्ग में कोई विभिनता नहीं है। इसीलिए वह कृष्ण के इस सिद्धांत को की पालना करता है जिसमें उन्होंने अर्जुन को कहा कि वह अपने सामर्थ्य के अनुसार बिना फल की इच्छा किए अपने कर्तव्य की पालना करें तथा धर्म युद्ध में भागीदार बने'

संदर्भ सूची

1. रामचंद्र गुहा, मेकर्स ऑफ मॉडर्न इंडिया, पेंगुइन, न्यू दिल्ली, 2010, पु. 13.
2. जीतआत्मानंद स्वामी, विवेकानंद प्रॉफिट एंड पाथफाइंडर, श्री रामकृष्ण मठ, मद्रास, 1985, प. 278
3. अभिजीत घोष, 'अन्ना हजारे रिबॉर्न इन द फील्ड ऑफ खेमकरण', इकोनामिक टाइम्स, 17 अप्रैल 2012. (https://economictimes.indiatimes.com/anna-hazare-reborn-in-battlefield-of-khem-karan/articleshow/8005166.cms on March 24, 2018 at 10:00 AM.)
4. एनी बेसेंट तथा भगवान दास, भगवत गीता, फीमेल एंड को लिमिटेड, बनारस, पु. 59-60.
5. ओ.पी. शर्मा, 'स्वामी विवेकानंद व्यू ऑफ फुटबॉल', हिंदुस्तान टाइम्स, 24 जून 2006. (https://www.hindustantimes.com/india/swami-vivekananda-s-view-of-football/story tIkRSmS6wAmRtwPidrsTrN.html on Jan., 25, 2018 at 14:30)
6. जिओ दिया, 'self-concept वेट इश्यूज एंड बॉडी इमेज इन चिल्ड्रन एंड एडोलिसेंट्स', थॉमस प्रेस्टर (संपादन), साइकॉलजी ऑफ एडोलिसेंस, नोवा साइंस, NY, 2003, पु. 88.
7. स्वामी विवेकानंद, 'वेदांता एंड इट्स एप्लीकेशन टू इंडियन लाइफ', कंपलीट वर्क्स आफ स्वामी विवेकानंद (इ. बुक संस्करण) वॉल्यूम 3 अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2018
8. एकनाथ रानाडे, स्वामी विवेकानंद राउसिंग कॉल टू द हिंदू नेशन, विवेकानंद केंद्र प्रकाशन ट्रस्ट, चेन्नई 1963, पु 6.
9. स्वामी विवेकानंद, 'वेदांता एंड इट्स एप्लीकेशन टू इंडियन लाइफ', ...
10. स्वामी विवेकानंद, 'ओन परफैसर मैक्स मूलर', कंपलीट वर्क्स आफ स्वामी विवेकानंद (इ. बुक संस्करण) वॉल्यूम 4, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2018
11. स्वामी मधुरआनंद, संपादक, भगवद गीता एस व्यूड बाय स्वामी विवेकानंद (इ. बुक संस्करण), अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2016.
12. स्वामी मधुर आनंद (संपादक), भगवद गीता एस व्यूड बाय स्वामी विवेकानंद ...
13. मैक्स मूलर, सैक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट, वॉल्यूम 15, पार्ट 2, पु 684.
14. स्वामी मधुरआनंद (संपादक), भगवद गीता एस व्यूड बाय स्वामी विवेकानंद ...

अटल बिहारी वाजपेयी की कविता : विविध परिवेश

डॉ० भारत भूषण

अध्यक्ष, हिंदी विभाग, गुरु नानक कॉलेज, किलियांवाली, श्री मक्तसर साहिब 151211

सारांश

अटल बिहारी वाजपेयी जी विलक्षण प्रतिभा के धनी कवि है। अटल बिहारी वाजपेयी राजनीतिक क्षेत्र से अलग एक साहित्यकार के रूप में काव्य-जगत में अपनी पहचान बनाने वाले अद्‌भुत कवि हैं। अटल बिहारी वाजपेयी जी ने अपनी कविताओं में जीवन के विविध पहलुओं पर गम्भीर चिन्तन-मनन किया है। निजी अनुभवों को नई शैली में अभिव्यक्ति देकर स्वयं को काव्य-धारा में प्रवाहित किया है। उन्होंने अपने सामाजिक और राजनीतिक जीवन को सीधे-साफ मन से प्रस्तुत किया है। बचपन से ही उन्हें कविता लिखना और पढ़ना बेहद पसंद था। पिता जी के देहावसान के उपरांत जब उन्होंने उनकी अलमारियों को खोला तब तक सारी अमूल्य पुस्तकें नष्ट हो चुकी थी। खंडित प्रतियों को देख उन्हें बहुत धक्का लगा। उनका यह रूप उन्हें एक साहित्य-प्रेमी के रूप में प्रतिष्ठित करता है। उनके राजनीतिक भाषणों में भी संवेदनात्मक शब्द-शक्ति की झलक देखी जा सकती है।

बीज शब्द : अटल बिहारी वाजपेयी, कविता, विविध परिवेश

"अटल जी मूलत: कवि हैं। कवि की सहज संवेदना उसमें स्पन्दित है। काव्य-रचना की ओर उनका झुकाव बचपन से ही है। यह उन्हें विरासत में मिली है।...उनके सीधे-सच्चे-साफ मन-सी कविताएँ भी जैसे स्वत: ही स्फुरित हैं-वाणी से निसृत हैं। वे जब बोलते हैं, यानि वक्तव्य देते हैं, तो उसमें काव्यात्मकता की झलक मिलती है। लगता है, सरस्वती उनकी वाणी में विद्यमान है ऐसे कवि विरले होते हैं। यही विरलता उनकी काव्यात्मकता को कुछ नया-सा अर्थ देती है।"[1]

अटल बिहारी वाजपेयी जी ने अपनी कविताओं में निजी अनुभूतियों, राष्ट्रीयता, चुनौतियों जैसे अनेक पक्षों को उजागर किया है–

टूट सकते हैं मगर हम झुक नहीं सकते
सत्य का संघर्ष सत्ता से,
न्याय लड़ता निरकुंशता से,
अँधेरे ने दी चुनौती है, किरण अंतिम अस्त होती है।[2]

कविता केवल एक खेल नहीं बल्कि साधना है अगर व्यक्ति ईमानदारी से इसका निर्वहन करता है। वही सफल साहित्यकार कहलाने का हकदार है। बहुत से लोग राजनेता होकर कुर्सी से स्नेह बना लेते हैं। राजनीती का चोला पहनकर लोकतंत्र का उपहास करना क्या न्याय है? यहाँ जनमानस की उम्मीदों से खेला जाता है। अटल बिहारी वाजपेयी जी ने अपनी बौद्धिक क्षमता को भाव-संवेदना के स्तर खड़ा कर समकालीन समाज में चेतना लाने का प्रयास किया है।

"वाजपेयी का कवि उन्मक्त चेतना का उद्‌घोषक है। वह स्वतंत्र चेता है। उसकी कविताओं में भावों की तीव्रता है। विचारों में भी तथ्यों की गहनता-गम्भीरता है, जो उसे ऊँचाई और गहराई देती है। अटल जी की कविताओं में युग का संघर्ष बरबस ही प्रतिबिंबित होता है। उनके कवि का व्यक्तित्व समसामयिकता की हलचलों से जुड़ा है।"[3]

अटल जी सत्ता को उतना अधिक महत्वपूर्ण नहीं मानते जितना मानवता को सबल बनाने के लिए वचनबद्ध हैं यह उनका वैयक्तिक चिन्तन है जिसकी उदात्तता का गुण उनके काव्य को सामूहिकता की भावना से भर देता है।

बाधाएँ आती हैं आएं,
घिरे प्रलय की घोर घटाएँ,
पाँवों के नीचे अंगारे,
सिर पर बरसे यदि ज्वालाएँ,
निज हाथों में हँसते-हँसते,
आग लगाकर जलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा।[4]

चाहे जितनी भी मुश्किलें हो, अवरोध और विपदाएँ हों, उसी में जीवन को आगे बढ़ाना सार्थकता है। असल में सच्चाई को नंगी आँखों से देखने का साहस प्रत्येक मनुष्य में नहीं हो सकता क्योंकि तमाम सवालों का सीधा- सा जवाब देकर हम अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं। जब कोई राजनीति से सम्बन्ध

रखता हो तब मामला ओर पेचीदा तथा गंभीर हो जाता है। लोकतंत्र में देश के नये निर्माण तथा अतीत में लिए संकल्पों तथा गम्भीर समस्याओं को अनदेखा कर पतली गली से निकलने की फिराक में रहना वर्तमान राजनीति में जो भ्रष्ट रूप देखने को मिलता है वह सदियों से चला आ रहा है। भयावह भ्रष्टाचार और अराजकता के कारण समाज को वास्तविकता से दूर रखने का प्रयास किया जाता रहा है। सत्य का उद्‌घाटन करने का साहस किसी ने नहीं किया बल्कि उसे देखा और काल्पनिक रूप में बयान किया। अटल बिहारी वाजपेयी की कविताओं में यथार्थ का जो रूप देखने को मिलता है वैसा चित्रण करने की हिम्मत प्रत्येक रचनाकार नहीं कर सकता। जब स्वयं उस राजनीती का हिस्सा हो तब बिलकुल भी संभव नहीं। किन्तु अटल बिहारी वाजपेयी जी ने सबके साथ निजता की भावना को प्रकट किया है। स्वतन्त्रतापूर्व तथा स्वतंत्रता के बाद देश की जनता की आवाज उनकी कविताओं में दिखाई पड़ती है–

जो बरसों से लड़े जेल में,उनकी याद करें
जो फांसी पर चढ़े खेल में, उनकी याद करें
याद करें काला पानी को,
अंग्रेजों की मनमानी को
कोल्हू में जुट तेल पेरते,
सावरकर से बलिदानी को।
याद करें बहरे शासन को,
बम से थर्राते आसन को,
भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु
के आत्मोसर्ग पावन को,
अन्यायी से लड़ें, दया की फरियाद करें।
उनकी याद करें।[5]

अटल बिहारी देश के नवयुवकों को सचेत करते हुए देश के लिए दिए गये बलिदानों का स्मरण करवाते हैं। देश के प्रति उनकी व्यापक काव्य-दृष्टि और उदार दृष्टिकोण राष्ट्रवादी विचारधारा को और अधिक मजबूत बनाता है। विषमताओं के समय भी देश की जनता को विकास की और बढ़ने का हौंसला देते हैं। अन्याय से लड़ने की प्रेरणा भी देते हैं। कवि अटल बिहारी जी परिवेश की विसंगतियों के प्रति कभी उदासीनता नहीं दिखाई देते बल्कि समस्याओं को सामने लाते हैं।

"वाजपेयी जी के काव्य में समाज सुधार, सांस्कृतिक, पुनरुत्थान, आदर्शवाद, प्रकृति प्रेम और राष्ट्रीयता की प्रवृतियाँ दिखाई देती हैं। लेकिन इसमें राष्ट्रीयता का स्वर सर्वाधिक प्रबल है। राष्ट्रीयता के जितने भी स्थूल-सपाट और सूक्षम-संश्लिष्ट रूप हो सकते हैं वे सभी अटल जी की कविताओं में मिलते हैं।"6

कलकते के फूटपाथों जो आँधी पानी सहते हैं।
उनसे पूछो पन्द्रह अगस्त के बारे में क्या कहते हैं।[7]

असल में पीड़ित, शोषित तथा उपेक्षित समाज को अटल जी ने वाणी दी है। कुछ स्वार्थी लोग अपने निजी स्वार्थ के लिए लोगों के लिए बनाई जा रही लाभकारी योजनाओं का लाभ खुद हड़प रहे है और गरीब लोग दयनीय जीवन जीने के लिए विवश हैं। अटल जी ने वर्तमान विडम्बनाओं के प्रति आक्रोश प्रकट किया है। संभवत: अलग-अलग काल में इतिहास खुद को बार-बार दोहराता है आज के दिन हमारी और रोमन साम्राज्य की स्थितियों में समानता है। तरह-तरह की चाटुकारों, दलालों से घिरे और विदूषकों में तबदील होते राजनेता हैं जो आत्ममुग्धता के चरम पर खड़े है और शायद अर्धविक्षिप्त भी हैं। पितृहंताओ की कोई भी कमी नही है करोड़ो की चाय पार्टियाँ हो रही है और अरबो के लंच डिनर! किसानो की आत्महत्याएं जारी हैं।

इन्सान जहाँ बेचा जाता है ईमान खरीदा जाता है।
इस्लाम सिसकियाँ भरता है, डालर मन में मुस्काता है।
भूखों को गाली, नंगों को हथियार पिन्हाए जाते हैं।
सूखे कंठों से जेहादी नारे लगवाए जाते हैं।[8]

देश आजाद तो हो गया मगर आजादी का वो सपना हमारे शहीदों ने पूरा करने के लिए अपने प्राणों की आहुति लगा दी। कवि अटल बिहारी जी उसे पूरा करने का आह्वान देश के नवयुवको से करते हैं क्योंकि जिसका जमीनी अनुभव हम अनदेखा नहीं कर सकते। हमारी सरकार कागजों में योजनाएं बना देती है। मगर उसे व्यवहारिक रूप नहीं दे पाती। हमारी युवा पीढ़ी इसका कोई प्रतिरोध नहीं करती बल्कि भाग्य के भरोसे बैठ कर समय की बर्बादी करती है। कवि उनको फटकार लगाते हैं, ताकि वह जागे और आगे बढ़ें कवि ने देशवासियों के हितार्थ जो प्रण लिया है वही अपने देश के युवा वर्ग को भी लेने हेतु प्रेरित करते हैं। जिसका वर्णन अटल जी की इन पंक्तियों में दिखाई पड़ता है–

लानत उनकी भरी जवानी पर जो सुख की नींद सो रहे,
लानत है, हम कोटि-कोटि हैं किसी के चरण धो रहे।
अब तक जिस जग ने पग चूमे आज उसी के सम्मुख नत क्यों?

गौरव-मणि खोकर भी मेरे सर्पराज आलस में रत क्यों?
गत गौरव का स्वाभिमान ले वर्तमान की ओर निहारो,
जो जूठा खा कर पनपा है उसके सम्मुख कर न पसारो।[9]

कवि देश के नौजवानों को सचेत करते हुए कहते हैं तुम्हें जागना होगा और देश को आगे ले जाना होगा। केवल हाथ-पांव जोडकर नहीं बल्कि मेहनत के बल पर। आज का युवा विकृत मानसिकता का शिकार हो रहा है। उसकी सोच को जंग लग गया है। उसे आगे बढ़ने के लिए मेहनत की आवश्कता तथा भीतर सार्थक-कर्म को करने की जरूरत है क्योंकि बातें करने से तरक्की नहीं हो सकती। अटल बिहारी वाजपेयी जी अपनी इन पंक्तियों में इसका वर्णन करते हैं–

अपनी रक्षा के लिए
औरों के विनाश के समान जुटाता है
आकाश को अभिशप्त,
धरती को निर्वसन,
वायु को विषाक्त,
जल को दूषित करने में संकोच नहीं करता।[10]

प्रत्येक कवि अपने चारों ओर की गतिविधियों को देखता है उसका वर्णन करता है परन्तु कवि अटल बिहारी वाजपेयी जी स्वयं उसे भोगा है। देश के लिए आंदोलनों के समय जेल यात्राओं का कटु अनुभव उन्होंने प्रस्तुत किया है। भारत देश को आजाद करवाना और उस आजादी का लाभ प्रत्येक वर्ग को मिले यह भी उतना ही महत्व रखता है। अपनी जेल यात्राओं का स्पष्ट चित्रण करते हुए उन्होंने अपने तथा अपने कवि मन की तत्प्रेरित निराशा चित्रित की है।

"अटल जी एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने युग सत्यों का अपनी रचनाओं के माध्यम से साक्षात्कार करवाया है। उनकी जीवन-दृष्टि ने काव्य को चमत्कार का पिटारा न बनाते हुए कविता को कविता ही रहने दिया, क्योंकि अटल जी के काव्य में उनका उन्नत दृष्टिकोण और भारतीय परिवेश स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। अटल जी की वीरवाणी में ओज का स्थायित्व है, और वाही उनकी सम्पदा है, वही उनका वैभव तथा वही उनका उत्साह है। अनुभूति की ईमानदारी और विचारों का सुनिश्चित स्वरूप और शिल्प के टटकेपन के साथ अटल जी ने हिंदी साहित्य के पाठकों को बहुत कुछ अनूठा प्रदान किया है जिससे उनका काव्य क्षेत्र प्रचलित हो गया है।"[11]

आजादी का दिन मना, नई गुलामी के बीच,
सुखी धरती, सुना अम्बर, मन-आंगन में कीच;
मन-आंगन में कीच कमल सारे मुरझाये,
एक एककर बूझें दीप, अंधियारा छाये,[12]

कवि का अंतर्मन इतना विचलित है कि अपनी कविताओं के माद्यम से अपने मानसिक भूगोल में उभर रहे विशाल पर्वतों, जंगलों व रेगिस्तान से घिर गया मानता है। उनकी आन्तरिक दशा उन्हें कहीं चौन नहीं लेने देती। वह स्वंय को निस्सहाय महसूस करता है। कवि अपने कवि मन को अपने साथ बने रहने की प्रार्थना करता है। इनकी कविताओं में राष्ट्र प्रेम का जादुई स्पर्श है और नवीनता भी है। अटल जी की कविताओं में मानवीयता की भावना प्रबलता के साथ विद्यमान है यहाँ पर संकीर्णता की भावना को कोई स्थान नहीं है। व्यक्तिगत अहं मनुष्य को संवेदनहीन बना देता है अटल जी का काव्य जीवन की सार्थकता और उद्देश्य को अधिक गहराई से समझाने का प्रयास करते हैं जिससे मनुष्य की श्रेष्टता सामने आती है।

जो जितना ऊँचा
उतना ही एकाकी होता है
हर भार को स्वयं ढोता है,
चेहरे पे मुस्काने चिपका
मन-ही-मन रोता है।
जरूरी यह है कि
ऊँचाईयों के साथ विस्तार भी हो
जिससे मनुष्य ...
किसी के संग चले[13]

अक्सर कई कवि राष्ट्र प्रेम के साथ-साथ मानवीयता की भावना का चित्रण करते हुए चिंतित दिखाई देते हैं मगर अटल जी के काव्य में ऐसा कही देखने को नही मिला और जहाँ कहीं भी कवि ने अपने कवि कर्म का निर्वाह किया है साथ ही सहानुभूति, करुणा तथा अपने मानव मन के भीतर की हलचल का भी अंकन किया है। सभी कविताएँ समसामयिक परिवेश का प्रतिविम्ब प्रस्तुत करती हैं। सत्य और यथार्थ को एक साथ प्रस्तुत करके संघर्ष के काव्य

में प्रेम तथा मानव की सद्व्यवहार की भी अभिव्यंजना की है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि अटल जी समाज के विभिन्न परिदृश्यों का उद्घाटन करने के साथ-साथ अंतर्विरोध का भी सूक्ष्मता से अवलोकन करते हैं और नैतिकता, आदर्श जीवन-मूल्य तथा चारित्रिक वैशिष्ट्य को भी प्रतिष्ठित करने में सफल हुए है। कवि जीवन के जटिल एवं सरल, उलझाव, टकराव तथा अलगाव का यथार्थ वर्णन करता है। कोई भी रचनाकार तभी सफल हो सकता है जब वह यथार्थ की भावभूमि पर खड़ा होकर समाज तथा लोकतंत्र की गतिविधियों को पहचान कर उसे अपनी कलम से आकार दे कवि ने सामयिकता का बिना किसी समझौते के स्पष्ट चित्रण किया है। माना कविता किसी क्रांति को जन्म नहीं दे सकती किन्तु अन्याय का विरोध करने का माध्यम तो बन सकती है। अटल बिहारी वाजपेयी जी की कविताएँ राजनीति से हटकर महान कार्य करने की प्रेरणा देती हैं यही उन्हें उत्कृष्ट कवि के रूप में स्थापित करता है। वहीं दूसरी तरफ हिंदी साहित्य के आलोचकों ने अटल बिहारी वाजपेयी जी के काव्य को साहित्य जगत में वह स्थान नहीं दिया जिसकी हकदार थी। इनके काव्य को गहराई से पढ़ने के बाद ही अटल जी के कवि हृदय की असल झलक देखने को मिल सकती है। समाज तथा देश और देश को चलाने वाली व्यवस्था और पथभ्रष्ट राजनीति के प्रति चिंतित होते हुए अटल बिहारी वाजपेयी जी ने अपने जीवन के यथार्थ का ईमानदारी से उद्घाटन किया है। वास्तव में अटल बिहारी वाजपेयी जी की कविताएँ हमें समाज व देश की वास्तविक स्थिति से अवगत करवाती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. राहुल, अटल बिहारी वाजपेयी की काव्य साधना, मंजुली प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1999, पृष्ट भूमिका से
2. www.kvitakosh.org
3. डॉ. राहुल, अटल बिहारी वाजपेयी की काव्य साधना, मंजुली प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1999, पृष्ट 19
4. www.kvitakosh.org
5. डॉ. राहुल, अटल बिहारी वाजपेयी की काव्य साधना, मंजुली प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1999, पृष्ट 132
6. डॉ. राहुल, अटल बिहारी वाजपेयी की काव्य साधना, मंजुली प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1999, पृष्ट 84
7. अटल बिहारी वाजपेयी, मेरी इक्यावन कविताएँ, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2014, पृष्ट 26
8. www.kvitakosh.org
9. डॉ.राहुल, अटल बिहारी वाजपेयी की काव्य साधना, मंजुली प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1999, पृष्ट 1
10. अटल बिहारी वाजपेयी, मेरी इक्यावन कविताएँ, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2014, पृष्ट 84
11. अटल बिहारी वाजपेयी का हिंदी साहित्य में योगदान, पृ. 87
12. अटल बिहारी वाजपेयी, मेरी इक्यावन कविताएँ, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली,संस्करण-2014, पृष्ट 46
13. www.kvitakosh.org

भारतीय दर्शन में धर्म विचार

डॉ० नागेन्द्र तिवारी

एसोसिएट प्रोफेसर-दर्शनशास्त्र विभाग, मुरारका कॉलेज, सुलतानगंज, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सारांश

धर्म की महनीयता, उपादेयता का गान भारतीय दर्शन शास्त्र में स्थान-स्थान पर किया गया है। वैदिक दृष्टि में धर्म वास्तव में जीवन व्यवस्था की एक प्रणाली है। मानव व्यक्तित्व के पूर्ण विकास हेतु जीवन को समग्रता व् संपूर्णता प्रदान करने वाली विधि ही धर्म है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त सुख समृद्धि, लौकिक अभ्युदय का ही नहीं, अपितु देहत्याग के अनन्तर अमृत्व सिद्धि का संविधान है धर्म। मानव जीवन का वह सर्वस्व है। इसलिए भारतीय दार्शनिकों ने धर्म संबंधी विचार पर बहुत ही गहनता से मंथन किये हैं। विभिन्न दार्शनिकों के धर्म संबंधी विचार इस प्रकार हैं– 'शुभाशुभ कर्मों की वासना से वासित परमाणु ही धर्म है' ऐसा विवसन (जैनियों)– का कहना है। 'क्षणिक विज्ञान संतति के आश्रित वासना ही धर्म है' यह 'सौगतों' (बौद्धों)- का अभिमत है। योग-ज्ञानादि से वृत्तियों के निरोध द्वारा जीवन्मुक्ति धर्म है- यह सांख्ययोगवादियों का मत है और 'विहित प्रतिषिद्ध कर्मों के आचरण तथा वर्जन द्वारा विशिष्ट गुण धर्म है'– यह न्याय-वैशेषिकों का मत है। 'अपूर्व ही धर्म है' यह प्रभाकरादि मीमांसकों का कहना है। वेदों से बोधित 'चोदनालक्षणोंअर्थो धर्मः'– इस जैमिनि-सूत्र से प्रवर्तित, वेदशास्त्र-वाक्य से बोधित, राग-द्वेषरहित सत्पुरुषों से सेवित होम, याग, दानादि ही धर्म है, यह जैमिनि के अनुयायी मीमांसकों का मत है।

भारतीय दर्शन में धर्म विचार

हमारे पूर्वज प्राचीन ऋषि महर्षियों ने समय-समय एवं स्थान-स्थान पर धर्मतत्व का विशद विवेचन किया है। दिव्यदृष्टि सम्पन्न इन्हीं ऋषियों ने अपनी भावी पीढ़ी के लिए स्वव्यक्तित्व विकास एवं लोकव्यवहार संपादनपूर्वक अभ्युदय प्राप्ति तथा परमपुरुषार्थ मोक्ष सिद्धि हेतु धर्म रूप पथ को प्रस्तुत किया। देश, काल, व्यक्ति एवं समाज की दृष्टि से उसी की व्याख्या होती चली आ रही है। वैदिक काल से लेकर आज तक धर्म शब्द का प्रयोग कई अर्थों में होता आया है। अधिक स्थानों पर यह धार्मिक विधियों[1] या धार्मिक क्रिया संस्कारों के रूप में प्रयक्त हुआ है। कहीं-कहीं धर्म का अर्थ निश्चित नियम[2] या आचार नियम है। 'छान्दोग्योपनिषद'[3] में धर्म का एक महत्त्वपूर्ण अर्थ मिलता है, जिसके अनुसार धर्म की तीन शाखाएँ मानी गयी है– (1) यज्ञ, अध्ययन और दान अर्थात गृहस्थ धर्म, (2) तपस्या, अर्थात तापस धर्म तथा (3) ब्रह्मचारित्व, आचार्य के गृह में अंत तक रहते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करना। धर्म शब्द का अर्थ समय-समय पर परिवर्तित होता रहा है, किन्तु अंत में यह मनुष्य के विशेषाधिकारों, कर्तव्यों एवं बंधनों का द्योतक हो गया द्य'तैत्तिरियोपनिषद' में छात्रों के लिए जो धर्म शब्द प्रयक्त हुआ है, वह इसी अर्थ में है। आजकल भी धर्म शब्द का प्रयोग कर्तव्यात्मक अर्थ में ही किया जाता है। जिस नैतिक आचार और कर्त्तव्य के लिए धर्म शब्द का व्यवहार किया जाता है, उसके वर्गीकरण के तीन आधार दिखायी पड़ते हैं। पहला मनुष्य का स्वगत परिष्कार और विकास, दूसरा उसकी सामाजिकता या समाज के साथ उसका सम्बन्ध और तीसरा उसका पारमार्थिक कल्याण। भारतीय दर्शन में इन तीनों आधारों को दृष्टि में रखते हुए धर्म का चिंतन किया गया है। प्रथम दोनों आधार तो दर्शन के व्यावहारिक पक्ष के लिए उपादेय है तथा अंतिम उसके आध्यात्मिक या सात्विक पक्ष के लिए। पारमार्थिक कल्याण को लेकर तो चार्वाक के अतिरिक्त प्रायः सभी आस्तिक और नास्तिक भारतीय दर्शनों ने विचार प्रस्तुत किया है।

नास्तिक दर्शनों में सर्वप्रथम चार्वाक दर्शन की ही गणना होती है। उसके मत में देहातिरिक्त आत्मा का अस्तित्व नहीं है। प्रत्यक्ष के अतिरिक्त कोई प्रमाण भी नहीं है। अतः उसके लिए स्वाभाविक है कि लौकिक जीवन में अर्थ-संग्रह, भोग-वैशिष्ट्य, आधिपत्य, यश, उत्कर्ष आदि प्राप्त करना ही कर्म का लक्ष्य हो सकता है। इसलिए पुनर्जन्मवादी और परलोकवादी जिस अर्थ में 'धर्म' शब्द का प्रयोग करते हैं, वह उसके लिए नहीं हो सकता। वह यदि परिच्छिन्न स्वार्थ से ऊपर उठकर कोई कर्म करता भी है तो भी उसका उद्देश्य लौकिक ही होता है। उस लौकिक कर्म का उद्देश्य भी देह तक ही सीमित होता है। उसकी दृष्टि में 'धर्म' लौकिक जीविका का साधन मात्र है। उससे मनुष्य के मन में अंधविश्वास, भय, परावलंबन तथा झूठी आशा का जन्म होता हो। इसलिए यदि हम बलात उसके सिर पर धर्म का आरोप करें तो यह कहना पड़ेगा कि व्यक्तित्व का जिस कर्म से लौकिक उत्कर्ष सिद्ध हो, वही 'धर्म' हो[4]

जैन-संप्रदाय में देहातिरिक्त आत्मा को स्वीकार करते हैं। पुनर्जन्म और परलोक भी मानते हैं। प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अनुमान और अपने आगमों को भी स्वीकार करते हैं। इन्होंने धर्म का एक सूक्ष्म पदार्थ के रूप में अध्ययन किया है। ये कहते हैं कि धर्म के परमाणु होते हैं। पुण्य-विशेष के अनुष्ठान से उनका निर्माण होता है। जैन-संप्रदाय में उन्हें 'पुदगल' कहते हैं। उनके द्वारा धर्मात्मा के शरीर की रचना होती है और वह सुख संयम प्रधान होता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि पुण्य विशेष से निर्मित देहारम्भक, पुदगल नामक परमाणुओं को ही 'धर्म' कहते हैं।[5] पुण्य ही धर्म नहीं है, उससे उत्पन्न परमाणु धर्म है। इससे यह प्रेरणा मिलती है कि हमें पुण्य कर्म करना चाहिए।

बौद्ध-संप्रदाय में 'धर्म' शब्द बहुत ही व्यापक अर्थ में प्रयक्त हुआ है। उनके मत में आत्मा, विज्ञान सब क्षणिक है और अंततः सबका उच्छेद शून्यता ही 'निर्वाण' है। पाँचों स्कन्धों को ही वे 'धर्म' कहते हैं। प्रचलित भाषा में कहना हो तो व्यवहार में अहिंसा और निर्वाण प्राप्ति के उपाय मात्र को 'धर्म' कहते

हैं। एक ज्ञान से दूसरे ज्ञान में उत्पन्न होनेवाली वासना ही 'धर्म' है।[6] ज्ञान क्षणिक हैं। वे जब नष्ट होते हैं, तब अपनी एक वासना छोड़ जाते हैं। वह भी ज्ञान के साथ बदलती ही रहती है। हमारे इस विज्ञान-संतान-परम्परात्मक जीवन में जो आर्यसत्य के ज्ञान के अनुसार अर्थात बुद्ध के अनुभव के अनुसार वासनाएँ उत्पन्न होती हैं, वही 'धर्म' है। दु:ख, क्षणिकता, स्वलक्षण और शून्य– ये चारों आर्यसत्य हैं। जब इनके अनुभव के अनुकूल ज्ञानधारा प्रवाहित होने लगती है, तब उसको 'धर्म' कहते हैं।

सांख्य मत में यागादि कर्मों के अनुष्ठान से उत्पन्न होने वाली अन्त:करण की एक विशिष्ट वृत्ति ही 'धर्म' है। यह वस्तुत: असंग आत्मा अविवेक के कारण प्रकृति-प्राकृत पदार्थों में 'अहं', 'मम' (मैं, मेरा) करके बद्ध हो गया है। विवेक-ख्याति के बिना यह त्रिगुणमयी प्रकृति के बंधन से मक्त नहीं हो सकता। विवेक का उदय होता है- सत्त्व गुण की स्थिति में। जिस शारीरिक, मानसिक अथवा बौद्धिक कर्म के द्वारा अन्त:करण में वैराग्य, शांति आदि का उदय हो और विवेक का प्रकाश हो, उसी को 'धर्म' कहते हैं। थोड़े शब्दों में यह कह सकते हैं कि प्रकृति के विकार-विलास से अनासक्त करके पुरुष को अपने स्वरुप-बोध के अनुकूल अन्त:करण को निर्मित करनेवाला कर्म ही 'धर्म' है।[7]

योग दर्शन के उपदेष्टा महर्षि पतंजलि के अनुसार वृत्ति को क्लेशानुवेध से बचाकर समाधि के उपयक्त बनाने और पुरुष को निरोधोन्मुख करके स्वरूपावस्थित करने में सहायक जो कर्म हैं- उसे 'धर्म' कहते हैं।

योग दर्शन के मत में मन ही बंधन और मोक्ष का कारण है। सब वृत्तियों का यही आधार है। सब कर्मों के संस्कार भी अन्त:करण में ही संचित होते हैं। वृत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं- क्लेशयक्त, जिन्हें 'क्लिष्ट' कहते हैं और क्लेशरहित, जिन्हें 'अक्लिष्ट' कहते हैं। क्लेश पाँच प्रकार के होते हैं- अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। जो साधन या कर्म- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि अक्लिष्ट वृत्ति के पोषक हैं, वे पुरुष ख्याति और कैवल्य के अनुरूप हैं। इस मत में उन्हें ही 'धर्म' माना जाता है। उनमें शौच, तपस्या, ईश्वरप्रणिधान, मैत्री, मुदिता आदि की परिगणना है। योग दर्शन के मत में निरोधानुकूल अनुष्ठेय कर्म ही 'धर्म' है।

न्याय दर्शन के प्रवर्तक महर्षि गौतम के मत में 'धर्म' आत्मा का एक विशेष गुण है। वह विहित कर्म से अथवा शुभ प्रवृत्ति से उत्पन्न होता है। उसे 'अदृष्ट' भी कहते हैं। मनुष्य के जीवन में दोष-मूलक प्रवृत्तियाँ होती रहती हैं। कहीं राग नचाता है तो कहीं क्रोध उदंड बना देता है, तो कहीं मोह बाँध देता है। इनके कारण मनुष्य संसार की वस्तुओं में फँस जाता है और अंधा, क्रूर तथा पक्षपाती हो जाता है। यही अधर्म का मूल है। जब मनुष्य इनसे बचकर ऐसे कर्म करने लगता है, जिनसे वह कायिक, वाचिक एवं मानसिक- दस प्रकार के पापों से बचकर दस प्रकार के धर्म के अनुष्ठान में लग जाय तो वह नीचे न जाकर ऊर्ध्व गति को प्राप्त हो और अविद्या से मक्त होकर जन्म और दु:ख से भी सर्वदा के लिए छूट जाय। वे दस पाप ये हैं, जिनसे मनुष्य धर्म-विमुख हो जाता हैं-

1. मुझे दूसरे का धन कैसे मिल जाएगा- ऐसा चिंतन।
2. मन से निषिद्ध कर्म करने की आकांक्षा।
3. नरक-स्वर्ग, पुनर्जन्म, जीव-ईश्वर को कौन जानता है? यह देह ही सब कुछ है- ऐसा मान बैठना।
4. कठोर बोलना।
5. मिथ्या भाषण करना।
6. दूसरे की निंदा करना।
7. निष्प्रयोजन वार्ता करना।
8. बिना दिए किसी की वस्तु ले लेना।
9. तन, मन और कर्म से किसी को दु:ख पहुँचाना।
10. पर-स्त्री और पर-पुरुष के साथ सम्बन्ध होना।

इन दसों का परित्याग कर देने पर वृत्ति अंतर्मुख हो जाती है। वृत्ति का आत्मसामीप्य ही 'धर्म' की उत्कृष्ट अवस्था है[8]।

महर्षि कणाद प्रणीत वैशेषिक दर्शन में कहा गया है 'जिससे अभ्युदय और नि:श्रेयस की सिद्धि हो, वह 'धर्म' है[9]। अर्थात धर्म के आश्रय से ही इस लोक में प्राणियों को अभ्युदय प्राप्त होता है तथा परलोक में नि:श्रेयसरूप मुक्ति मिलती है। कणाद ने ऐहलौकिक उन्नति को धर्म के साथ जोड़कर लोक का बहुत बड़ा कल्याण किया है। वस्तुत: धर्म केवल अगला जन्म सुधारने के लिये, स्वर्ग में पहुँचाने के लिए, ईश्वर की प्राप्ति के लिए अथवा अन्त:करण शुद्धि द्वारा ब्रह्मनुभूति के लिए ही उपयोगी नहीं है, बल्कि धार्मिक पुरुष संयम के द्वारा कामभोग को नियम में रखकर स्वयं अपने शरीर और मन को स्वस्थ रखता है। दीर्घकाल तक भोग भोगता है और दूसरों को हानि नहीं पहुँचाता। पदार्थों के धर्म की परीक्षा में प्रवृत्त होकर कणाद ने मनुष्य के धर्म की भी उत्कृष्ट रूपरेखा प्रस्तुत की है। जैसे धर्म के बिना पदार्थ का पदार्थत्व ही नष्ट हो जाता है, इसी प्रकार धर्म के बिना मनुष्य का मनुष्यत्व ही नष्ट हो जाता है। अत: इस लोक में उन्नति तथा परलोक में कल्याण हेतु धर्म का पालन करना आवश्यक है।

पूर्वमीमांसा दर्शन में धर्म के व्यावहारिक और आध्यात्मिक दोनों पक्षों को ध्यान में रखते हुए सर्वांगीण चिंतन प्रस्तुत किया गया है। इसीलिए इस दर्शन को प्राय: धर्म शास्त्र के साथ जोड़ा जाता है। वस्तुत: धर्म ही पूर्वमीमांसा दर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है[10]। मीमांसा दर्शन के प्रवर्तक महर्षि जैमिनि अपने सूत्र ग्रन्थ की रचना करते समय प्रथम सूत्र[11] में ही धर्म को स्थान दिया है। धर्म की जिज्ञासा होने पर ही जैमिनि ने अपने द्वितीय सूत्र[12] के द्वारा उसकी वास्तविकता की ओर संकेत किया है। वेद से बोधित होने पर साक्षात् या फल द्वारा जो अनर्थ से परे एवं इष्ट को सिद्ध करनेवाला हो, वही 'धर्म' है। यह जैमिनि के सूत्र का अभिप्राय है। वेद से यहाँ पर विधि, अर्थवाद,मंत्र और नामधेय वेद के चारो भाग अभिप्रेत हैं। वार्तिकार कुमारिल भट्ट ने भी धर्म का यही अर्थ निर्धारित किया है। वेद के आधार पर विहित लिङ्ग, लेट, लोट, तव्य, प्रत्यय आदि से अभिहित अपूर्व नाम से कार्य, नियोग आदि पर्याय रखनेवाला व्यापार

ही प्रभाकर के मत में धर्म है।[13]

वेदांत दर्शन के प्रणेता वादरायण (वेदव्यास) के मत में अन्तःकरण की शुद्धि के साधक कर्म को ही 'धर्म' कहते हैं। धर्मानुष्ठान से उच्छृंखल कर्म पर नियंत्रण स्थापित होता है। वासनाएँ मर्यादित होती हैं। वेद-वचन पर श्रद्धा होती है। कर्तव्याकर्तव्य की मीमांसा से विवेक-शक्ति बढ़ती है। देहातिरिक्त आत्मा की ओर ध्यान जाता है। धर्म के द्वारा आराध्य देवी शक्तियों का ज्ञान होता है। धर्म के न्यूनाधिक्य के अनुसार पितृलोक, देवलोक, ब्रह्मलोक आदि का विचार होता है। फलदाता ईश्वर है- इस पर विश्वास होता है। धर्म का निष्काम अनुष्ठान करने पर निष्कामता की प्रतिष्ठा होती है। वस्तुतः अन्तःकरण का जागरूक रहकर निष्काम होना ही उसकी 'शुद्धि' है। शुद्धि से वैराग्य और जागरूकता से विवेक का उदय होता है।

व्यासाचार्य ने लोकहितकारी कर्म को भी 'धर्म' कहा है। उनका अभिमत है कि प्रबुद्ध पुरुष अन्वयव्यतिरेक दृष्टि से हिताहित का विचार करके जो कर्म करता है, वह लोककल्याणकारी होता है। इस प्रकार के धर्म-विचार में साधारण मनुष्य का अधिकार नहीं है; क्योंकि वह अपने विवेक को वासनाओं से अभिभूत कर देता है। इसलिए इस संबंध में सावधान रहना चाहिए कि किसी निषिद्ध कर्म को लोकहितकारी न समझ लिया जाय।

उत्तरमीमांसा का मुख्य प्रतिपाद्य 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' है। ब्रह्म प्रकृति आदि तत्त्व जगत के धारक होने से धर्म मान्य है।

निष्कर्ष

भारतीय दर्शन में धर्म संबंधी गहन अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि धर्म शब्द से दार्शनिकों का अभिप्राय किसी ईश्वरीय मत अथवा संप्रदाय से नहीं है, बल्कि जीवन के एक ऐसे तरीके अथवा आचरण की एक ऐसी संहिता से है, जो एक व्यक्ति के रूप में तथा समाज का सदस्य होने के रूप में व्यक्ति की क्रियाओं को नियमित करती है तथा जिसका प्रयत्न, व्यक्तित्व का क्रमबद्ध विकास करना और व्यक्ति को इस योग्य बनाना है कि वह मानव अस्तित्व के लक्ष्य को प्राप्त कर सके। अतः लोक व्यवहार का नियामक, सामाजिक मूल्यों का रक्षक यह धर्मतत्त्व है।

सन्दर्भ

1. तानि धर्माणि प्रथमान्यासन। ऋग्वेद, 10,90,96, प्रथमानुधर्मा-ऋ 3.17.1
2. आ.प्रा. रजांसि दिव्यानि प्रार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मनेद्य- ऋ, 4.53.3
3. त्रायो धर्म स्कन्धा यग्योअध्ययनं दानमिति प्रथम स्तष एवद्वितीयो ब्रह्मचर्याचार्यकुलवासी तृतीयोअत्यन्तमानमाचार्य कुलेअवसादनसर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसंस्थोमृतत्वमेति।
4. कल्याण धर्मशास्त्रांक, धर्म के लक्षण, अनंतश्री स्वामीजी श्रीअखंडानन्दजी सरस्वती महाराज, पृष्ठ -64
5. न्यायकुमुदचंद्र, पृष्ठ 811
6. धम्मपद, 01
7. सांख्यकारिका, 23
8. धर्म पुरुषगुणः (प्रशस्तपाद भाष्य, पृष्ठ 128) अधर्मोअयात्मगुणः। प्रशस्तपाद भाष्य, पृष्ठ 142
9. यतोअभ्युदयनिःश्रेयसिद्धिः स धर्मः। वैशेषिक सूत्र, 1-2
10. धमाख्यम विषयं वक्तुम् मीमांसायाः प्रयोजनं। श्लोकवार्तिक, श्लोक11, पृष्ठ 03
11. अथातो धर्म जिज्ञासा। जैमिनी सूत्र 1.1.1
12. चोदनालक्षणोअर्थो धर्मः। जैमिनी सूत्र 1.1.2
13. क्रियादिभिन्नम यत्कार्य वेद्य मानान्तरैर्नतत। अतो मानान्तरापूर्वमपूर्वमिति गीयते कार्यत्वेन नियोज्यम च स्वात्मनि प्रेरयन्नसौ। नियोग इति मीमांसा निष्णा तैरमि घ्रीयते।। प्रकरण पंचिका, पृष्ठ 44

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (1885)

सुनील कुमार पासवान

नेट, पीएचडी (इतिहास) लक्ष्मीसागर दरभंगा

भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस भारत का सबसे प्राचीन राजनीतिक दल है। इस दल की वर्तमान अध्यक्ष सोनिया गांधी है। कांग्रेस दल का युवा संगठन 'भारतीय युवा कांग्रेस' है। 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना 28 दिसम्बर, 1885 ई. में दोपहर बारह बजे बम्बई में 'गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कॉलेज' के भवन में की गई थी। इसके संस्थापक 'ए.ओ. ह्यूम' थे और प्रथम अध्यक्ष व्योमेश चन्द्र बनर्जी बनाये गए थे। 'भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस' में कुल 72 सदस्य थे, जिनमें महत्त्वपूर्ण थे- दादाभाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, दीनशा एदलजी वाचा, काशीनाथा तैलंग, वी. राघवाचार्य, एन.जी. चन्द्रावरकर, एस. सुब्रमण्यम आदि। इसी सम्मेलन में दादाभाई नौरोजी के सुझाव पर 'भारतीय राष्ट्रीय संघ' का नाम बदलकर 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' रख दिया गया था। 'भारतीय राष्ट्रीय संघ' (कांग्रेस की पूर्वगामी संस्था) की स्थापना का विचार सर्वप्रथम लॉर्ड डफरिन के दिमाग में आया था। कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने हिस्सा नहीं लिया। 1916 ई. में लाला लाजपत राय ने 'यंग इण्डिया' में एक लेख में लिखा, 'कांग्रेस लॉर्ड डफरिन के दिमाग की उपज है।'

इतिहास

'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' नामक संगठन का आरंभ भारत के अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों द्वारा किया गया, और यह आश्चर्य की बात नहीं है कि इसके पहले बाद के कुछ ऐसे अध्यक्ष भी हुये, जिन्होंने विलायत में अपनी शिक्षा प्राप्त की थी। पहले तीन अध्यक्ष, व्योमेश चन्द्र बैनर्जी, दादा भाई नौरोजी तथा बदरुद्दीन तैयबजी, ब्रिटेन से ही बैरिस्टरी पढ़कर आये थे। जॉर्ज युल तथा सर विलियम बैडरवर्न तो अंग्रेज ही थे और यही बात उनके कुछ अन्य अनुयायियों, जैसे कि एलफर्ड बेब तथा सर हेनरी काटन के बारे में भी कही जा सकती है। उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के उस दौर में शिक्षा प्राप्त की, जबकि इंग्लैंड में लोकतांत्रिक मूल्यों तथा स्वाधीनता का बोलबाला था। कांग्रेस के आरंभिक नेताओं का ब्रिटेन के सुधारवादी (रेडिकल) तथा उदारवादी (लिबरल) नेताओं में पूरा विश्वास था। भारतीय कांग्रेस के संस्थापक भी एक अंग्रेज ही थे, जो 15 वर्षों तक कांग्रेस के महासचिव रहे। ऐ. ओ. ह्यूम ब्रिटिश संस्कृति की ही देन थे। इसलिए कांग्रेस का आरंभ से ही प्रयास रहा कि ब्रिटेन के जनमत को प्रभावित करने वाले नेताओं से सदा सम्पर्क बनाये रखा जाये, ताकि भारतीय लोगों के हित के लिए अपेक्षित सुधार कर उन्हें उनके राजनीतिक अधिकार दिलवाने में सहायता मिल सके। यहाँ तक कि वह नेता, जिन्होंने इंग्लैंड में शिक्षा नहीं पाई थी, उनकी भी मान्यता थी कि अंग्रेज लोकतंत्र को बहुत चाहते हैं।

मदन मोहन मालवीय ने अपने पहले भाषण में, जो कि उन्होंने 1886 ई. में कलकत्ता में हुये दूसरे कांग्रेस अधिवेशन में दिया था, कहा- 'प्रतिनिधिक संस्थाओं के बिना अंग्रेज से भला क्या होगा। प्रतिनिधिक संस्थान ब्रिटेन का उतना ही अनिवार्य अंग है, जितना कि उसकी भाषा तथा साहित्य।' कांग्रेस का चौथा अधिवेशन इलाहाबाद में जॉर्ज युल की अध्यक्षता में हुआ, जिसमें मांग की गई कि एक संसदीय समिति की नियुक्ति की जाये, जो कांग्रेस की 1858 ई. की उद्घोषणा को लागू करने तथा राजनीतिक सुधार स्वीकार करने की मांगों पर विचार करे। यह निर्णय भी किया गया कि संसद के सदस्य ब्रैडला से अनुरोध किया जाये कि वह इसके लिए उन्हें अपना समर्थन दें।

चार्ल्स ब्रैडला ने 1889 ई. में 'बम्बई कांग्रेस अधिवेशन' में भाग लिया तथा सर विलियम बेडरवर्न को अध्यक्ष चुना गया। इस अधिवेशन में ब्रैडला को एक मानपत्र भेंट किया गया, जिसे सर विलियम रेडरवर्न ने पढ़ा। इसी अधिवेशन में वह संकल्प स्वीकार किया गया, जिसमें कहा गया है, 'कि यह अधिवेशन सर विलियम बेडरवर्न, बार्ट तथा मैसर्ज डब्ल्यू एस. केनी, एम. पी., डब्ल्यू. एस. ब्राईट मैकलारिन एम.पी., जे.ई. इलियस एम.पी., दादाभाई नौरोजी तथा जॉर्ज युल की समिति, जिसके पास अपनी संस्था बढ़ाने की शक्ति होगी, के रूप में नियुक्ति की पुष्टि करता है तथा यह समिति नेशनल कांग्रेस एजेंसी के कार्य संचालन तथा नियंत्रण के बारे में दिशा-निर्देश देती रहेगी तथा उन महानुभावों का धन्यवाद करती है तथा उनके साथ ही डब्ल्यू. दिग्बे, सी.आई.सी. सचिव का भारत को दी जाने वाली सेवा के लिए धन्यवाद करती है।'

इस संकल्प से पता चलता है कि समिति कांग्रेस के पांचवे अधिवेशन से पहले भी कार्यरत रही होगी और यह 20वीं शताब्दी के दूसरे दशक तक कार्यरत रही, जब तक कि महात्मा गांधी, लाला लाजपत राय की अध्यक्षता में कलकत्ता में 1920 ई. के विशेष अधिवेशन में अपना असहयोग आंदोलन का संकप पारित करवाने में सफल नहीं हो गये। यह समिति इतनी सशक्त होती चली गई कि दादाभाई नौरोजी ने, 1906 ई. में कलकत्ता में होने वाले अपने अध्यक्षीय भाषण में इस तथ्य का उल्लेख करते हुये कहा कि 'भारतीय संसदीय कमेटी के सदस्यों की संख्या 200 तक पहुंच गई है।' लेबर सदस्यों, आयरिश नेशनल सदस्यों तथा रेडीकल सदस्यों की हमारे साथ पूर्ण सहानुभूति है। हम इसे भारत का एक सशक्त अंग बनाना चाहते हैं। हमने देखा है कि सभी दलों के लोग चाहे वह लेबर पार्टी के हरें सर छेमरेक्रेटिक पार्टी के हों, ब्रिटिश नेशनल पार्टी के, या फिर उग्र-सुधारवादी (रेडिकल) या उदारबादी (लिबरल) सभी भारत के मामलों में गहरी दिलचस्पी लेते हैं

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पूर्व स्थापित कुछ राजनीतिक संस्थायें

संस्था	स्थापना वर्ष	स्थान	संस्थापक/सदस्य	उद्देश्य
हिन्दू कॉलेज	1817 ई.	कलकत्ता		पश्चिम के उदारवादी दर्शन का ज्ञान प्राप्त करना
साधारण ज्ञान सभा	1838 ई.	पश्चिम बंगाल		सरकारी विभागों में हो रहे भ्रष्टाचार, समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता आदि के बारे में विचार विमर्श कर समस्या का हल करना।
बंगाल जमींदार सभा (लैण्ड होल्डर्स सोसाइटी)	1838 ई.	कलकत्ता	द्वारका नाथ टैगोर के प्रयासों से	जमींदारों के हितों की देखभाल करना। पश्चिम बंगाल, बिहार और उड़ीसा के जमींदारों की यह संस्था आधुनिक भारत की पहली सार्वजनिक एवं राजनीतिक संस्था थी।
बंगाल ब्रिटिश एसोसिएशन	1843 ई.			सार्वजनिक हितों की रक्षा करना
ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन	28 अक्टूबर, 1851	कलकत्ता	राजेन्द्र लाल मित्र, राधाकान्त देव (अध्यक्ष), देवेन्द्र नाथ टैगोर (महासचिव), हरिश्चन्द्र मुखर्जी आदि।	भारत के लिए राजनीतिक अधिकारों की मांग करना। यह संस्था लैण्ड होल्डर्स सोसइटी एवं बंगाल ब्रिटिश एसोसिएशन के आपस में विलय के बाद बनी। भारत के राजनीतिक अधिकारों की मांग करने वाली यह प्रथम संस्था थी।
इण्डियन एसोसिएशन	26 जुलाई, 1876	इल्बर्ट हाल, कलकत्ता	सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, आनन्द मोहन बोस	शिक्षित मध्यम वर्ग का प्रतिनिधित्व करना एवं सार्वजनिक कार्यों में उनकी दिलचस्पी पैदा करना। कांग्रेस के पूर्ववर्ती संगठनों में यह सबसे महत्त्वपूर्ण संगठन था। इस संगठन ने 1876 मेंनागरिक सेवा परीक्षा की आयु 21 वर्ष से घटाकर 19 वर्ष करने पर ब्रिटिश भारत सरकार के खिलाफ एक बड़ा आंदोलन चलाया। प्रो. हीरालाल के अनुसार सुरेन्द्र नाथ बनर्जी का राजनीतिक जीवन 'इण्डियन सिविल आंदोलन' से आरम्भ हुआ जो कि 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' जैसे अधिक व्यापक राजनीतिक आंदोलन का अग्रसर बना।
बम्बई प्रेसीडेंसी एसोसिएशन	1885	मुम्बई	फिरोजशाह मेहता, बदरुद्दीन तैयबजी, के.टी. तैलंग आदि।	भारत में सिविल सर्विस परीक्षा को आयोजित करना एवं सरकारी पदों पर भारतीयों की नियुक्ति कराना आदि। बम्बई प्रेसीडेंसी एसोसिएशन को पहले 'बाम्बे एसोसिएशन' के नाम से जाना जाता था। इसकी स्थापना 1852 ई. में की गई थी।
ईस्ट इंडिया एसोसिएशन	1866 ई.	लंदन	दादा भाई नौरोजी	तत्कालीन भारतीय समस्याओं पर विचार करना तथा ब्रिटिश जनमत को प्रभावित करना।
मद्रास नेटिव एसोसिएशन	1852	मद्रास		इस संस्था ने 1857 ई. के विद्रोहों की निंदा की। अत: इसे जनसमर्थन नहीं प्राप्त हो सका, जिससे शीघ्र ही इसका अस्तित्व समाप्त हो गया।
मद्रास महाजन सभा	मई, 1884	मद्रास		स्थानीय संगठनों व संस्थाओं के कार्यो को समन्वित करना।
पूना सार्वजनिक सभा	1876 ई.	पुणे	महादेव गोविन्द रानाडे	जनता में राजनीतिक चेतना का जागरण करना एवं महाराष्ट्र में समाज सुधार करना आदि।
इण्डिया लीग	1875		शिशिर कुमार घोष	भारतीय जनमानस में राष्ट्रयता की भावना को फैलाना वं उन्हें राजनीतिक शिक्षा प्रदान करना आदि।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का ध्वज, 1931

भारतीयों के सबसे बड़े इस राजनीतिक संगठन की स्थापना 28 दिसम्बर, 1885 ई. को की गयी। इसका पहला अधिवेशन बम्बई में कलकत्ता हाईकोर्ट के बैरेस्टर उमेशचन्द्र बनर्जी की अध्यक्षता में हुआ। कहा जाता है कि वाइसराय लॉर्ड डफरिन (1884-88 ई.) ने कांग्रेस की स्थापना का अप्रत्यक्ष रीति से

समर्थन किया। यह सही है कि एक अवकाश प्राप्त अंग्रेज अधिकारी एनल आक्टेवियन ह्यूम कांग्रेस का जन्मदाता था और 1912 ई. में उसकी मृत्यु हो जाने पर कांग्रेस ने उसे अपना श्जन्मदाता और संस्थापक' घोषित किया था। गोखले के अनुसार 1885 ई. में ह्यूम के सिवा और कोई व्यक्ति कांग्रेस की स्थापना नहीं कर सकता था। परन्तु वस्तुस्थिति यह प्रतीत होती है, जैसा कि सी.वाई. चिन्तामणि का मत है, राजनीतिक उद्देश्यों से राष्ट्रीय सम्मेलन का विचार कई व्यक्तियों के मन में उठा था और वह 1885 ई. में चरितार्थ हुआ।

सम्मेलन में लाये गये कुल 9 प्रस्तावों के द्वारा संगठन ने अपनी मांगे सरकार के सम्मुख प्रस्तुत की। ये प्रस्ताव निम्नलिखित थे–

1. भारतीय शासन विधान की जांच के लिए एक श्रायल कमीशन' को नियक्त किया जाय।
2. इंग्लैड में कार्यरत श्इण्डिया कौंसिल' को समाप्त किया जाय।
3. प्रान्तीय तथा केन्द्रीय व्यवस्थापिका का विस्तार किया जाय।
4. श्इण्डियन सिविल सर्विस' (भारतीय प्रशासनिक सेवा) परीक्षा का आयोजन भारत एवं इंग्लैण्ड दोनों स्थानों पर किया जाय।
5. इस परीक्षा की उम्र सीमा अधिकतम 19 से बढ़ाकर 23 वर्ष की जाय।
6. सैन्य व्यय में कटौती की जाय।
7. बर्मा, जिस पर अधिकार कर लेने की आलोचना की गई थी, को अलग किया जाय।
8. समस्त प्रस्तावों को सभी प्रदेशों की सभी राजनीतिक संस्थाओं को भेजा जाय, जिससे वे इनके क्रियान्वयन की मांग कर सकें।
9. कांग्रेस का अगला सम्मलेन कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) में बुलाया जाय।

कांग्रेस की स्थापना का सच

28 दिसम्बर, 1885 ई. को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना अवकाश प्राप्त आई.सी.एस. अधिकारी स्कॉटलैंड निवासी ऐलन ओक्टोवियन ह्यूम (ए. ओ. ह्यूम) ने श्थियोसोफिकल सोसाइटी' के मात्र 72 राजनीतिक कार्यकर्ताओं के सहयोग से की थी। यह अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्रवाद की पहली सुनियोजित अभिव्यक्ति थी। आखिर इन 72 लोगो ने कांग्रेस की स्थापना क्यों की और इसके लिए यही समय क्यों चुना? यह प्रश्न के साथ एक मिथक अरसे से जुड़ा है, और वह मिथक अपने आप में काफी मजबूती रखता है। 'सेफ्टी वाल्ट' (सुरक्षा वाल्व) का यह मिथक पिछली कई पीढ़ियों से विद्यार्थियों एवं राजनीतिक कार्यकर्ताओं के जेहन में घुट्टी में पिलाया जा रहा है। लेकिन जब इतिहास की गहराईयों को झाँकते हैं, तो पता चलेगा कि इस मिथक में उतना दम नहीं है, जितना कि आमतौर पर इसके बारे में माना जाता है। मिथक यह है कि ए.ओ. ह्यूम और उनके 72 साथियों ने अंग्रेज सरकार के इशारे पर ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की थी। उस समय के मौजूदा वाइसराय लॉर्ड डफरिन के निर्देश, मार्गदर्शन और सलाह पर ही हयूम ने इस संगठन को जन्म दिया था, ताकि 1857 की क्रान्ति की विफलता के बाद भारतीय जनता में पनपते असंतोष को हिंसा के ज्वालामुखी के रूप में बहलाने और फूटने से रोका जा सके, और असतोष की वाष्प' को सौम्य, सुरक्षित, शान्तिपूर्ण और संवैधानिक विकास या 'सैफ्टी वाल्व' उपलब्ध कराया जा सकें। 'यंग इंडिया' में 1961 प्रकाशित अपने लेख में गरमपथी नेता लालालाजपत राय ने 'सुरक्षा वाल्व' की इस परिकल्पना का इस्तेमाल कांग्रेस की नरमपंथी पक्ष पर प्रहार करने के लिये किया था। इस पर लंम्बी चर्चा करते हुए लाला जी ने अपने लेख में लिखा था कि ष्कांग्रेस लॉर्ड डफरिन के दिमाग की उपज है।ष इसके बाद अपनी बात आगे बढ़ाते हुए उन्होंने लिखा था कि ष्कांग्रेस की स्थापना का उद्देश्य राजनीतिक आजादी हासिल करने से कही ज्यादा यह था कि उस समय ब्रिटिश साम्राज्य पर आसन्न खतरो से उसे बचाया जा सकें।ष यही नहीं उदारवादी सी. एफ. एंड्रूज और गिरजा मुखर्जी ने भी 1938 ई. में प्रकाशित 'भारत में कांग्रेस का उदय और विकास में सुरक्षता बाल्ब' की बात पूरी तरह स्वीकार की थी।

1939 ई. में श्राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' के संचालक एम.एस. गोलवलकर ने भी कांग्रेस की धर्म-निरपेक्षता के कारण उसे गैर-राष्ट्रवादी ठहराने के लिए 'सुरक्षा वाल्व' की इस परिकल्पना का इस्तेमाल किया था। उन्होंने अपने परचे 'वी' (हम) में कहा था कि हिन्दू राष्ट्रीय चेतना को उन लोगो ने तबाह कर दिया, जो राष्ट्रवादी होने का दावा करते हैं।' गोलवलकर के अनुसार, ह्यूम कॉटर्न और वेडरबर्न द्वारा 1885 ई. में तय की गई नीतियाँ ही जिम्मेदार थीं- इन लोगो ने उस समय उबल रहे राष्ट्रवाद के खिलाफ सुरक्षा वाल्व के तौर पर कांग्रेस की स्थापना की थी।[4]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन और उनके अध्यरक्ष

क्र.सं.	अधिवेशन	स्थान	अध्यक्ष
1	1885 (28 दिसम्बर)	बम्बई	व्योमेश चन्द्र बनर्जी
2	1886 (28 दिसम्बर)	कलकत्ता	दादाभाई नौरोजी
3	1887 (27-28 दिसम्बर)	मद्रास	सैयद बदरुद्दीन तैयबजी
4	1888 (28-29 दिसम्बर)	इलाहाबाद	जॉर्ज यूल
5	1889 (27-28 दिसम्बर)	बम्बई	सर विलियम वैडरबर्न
6	1890 (28-29 दिसम्बर)	कलकत्ता	फिरोजशाह मेहता
7	1891 (26-27 दिसम्बर)	नागपुर	आनन्द चार्लू

8	1892 (28-29 दिसम्बर)	इलाहाबाद	व्योमेश चन्द्र बनर्जी
9	1893 (27-28 दिसम्बर)	लाहौर	दादाभाई नौरोजी
10	1894 (27-28 दिसम्बर)	मद्रास	अल्फ्रेड वेब
11	1895 (28-29 दिसम्बर)	पूना	सुरेन्द्र नाथ बनर्जी
12	1896 ()27-28 दिसम्बर	कलकत्ता	एम.ए.सयानी
13	1897 (28-29 दिसम्बर)	अमरावती	एम.सी.शंकरन
14	1898 (27-28 दिसम्बर)	मद्रास	आनंद मोहन बोस
15	1899 (27-28 दिसम्बर)	लखनऊ	रमेश चंद्र दत्त
16	1900 (27-28 दिसम्बर)	लाहौर	एन.जी.चन्द्रावरकर
17	1901 (27-28 दिसम्बर)	कलकत्ता	दिनशा ई.वाचा
18	1902 (27-28 दिसम्बर)	अहमदाबाद	सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
19	1903 (28-30 दिसम्बर)	मद्रास	लाल मोहन घोष
20	1904 (26-28 दिसम्बर)	बम्बई	सर हेनरी कॉटन
21	1905 (27-30 दिसम्बर)	बनारस	गोपालकृष्ण गोखले
22	1906 (26-29 दिसम्बर)	कलकत्ता	दादाभाई नौरोजी
23	1907 (26-27 दिसम्बर)	सूरत	रासबिहारी घोष
24	1908 (29-30 दिसम्बर)	मद्रास	रासबिहारी घोष
25	1909 (27-29 दिसम्बर)	लाहौर	मदनमोहन मालवीय
26	1910 (28-29 दिसम्बर)	इलाहाबाद	विलियम वेडरबर्न
27	1911 (26-28 दिसम्बर)	कलकत्ता	बिशन नारायण धर
28	1912 (27-28 दिसम्बर)	बांकीपुर	आर.एन.मधुकर
29	1913 (26-28 दिसम्बर)	कराची	नबाब सैयद मुहम्मद
30	1914 (28-30 दिसम्बर)	मद्रास	भूपेन्द्रनाथ बसु
31	1915 (27-30 दिसम्बर)	बम्बई	एस.पी.सिन्हा
32	1916 (26-30 दिसम्बर)	लखनऊ	अम्बिका चरण मजूमदार
33	1917 (28-29 दिसम्बर)	कलकत्ता	एनी बेसेन्ट
34	1918 (26-31 दिसम्बर)	दिल्ली	मदनमोहन मालवीय
35	1919 (27-28 दिसम्बर)	अमृतसर	मोतीलाल नेहरू
36	1920 (26-31 दिसम्बर)	नागपुर	सी. विजयाराघवाचार्य
37	1921 (27-28 दिसम्बर)	अहमदाबाद	सी.आर.दास
38	1922 (26-31 दिसम्बर)	गया	सी.आर.दास
39	1923 (28-31 दिसम्बर)	काकीनाडा	मौलाना मुहम्मद अली
40	1924 (26-27 दिसम्बर)	बेलगाँव	महात्मा गाँधी
41	1925 (26-28 दिसम्बर)	कानपुर	सरोजिनी नायडू
42	1926 (26-28 दिसम्बर)	गुवाहाटी	एस.श्रीनिवास आयंगर
43	1927 (26-27 दिसम्बर)	मद्रास	एम.ए.अंसारी
44	1928 (28-31 दिसम्बर)	कलकत्ता	मोतीलाल नेहरू
45	1929 (29-31 दिसम्बर)	लाहौर	जवाहरलाल नेहरू
46	1931 (29 मार्च)	करांची	वल्लभभाई पटेल
47	1932 (24 अप्रैल)	दिल्ली	अमृत रणछोड दास सेठ
48	1933 (1 अप्रैल)	कलकत्ता	श्रीमती एन.सेन गुप्ता

49	1934 (26-28 अक्टूबर)	बम्बई	डॉ राजेन्द्र प्रसाद
50	1936 (12-14 दिसम्बर)	लखनऊ	जवाहरलाल नेहरू
51	1937 (27-28 दिसम्बर)	फैजपुर	जवाहरलाल नेहरू
52	1938 (19-21 फरवरी)	हरिपुरा	सुभाष चंद्र बोस
53	1939 (10 मार्च)	त्रिपुरा	सुभाष चंद्र बोस
54	1940 (17-19 मार्च)	रामगढ	मौलाना अबुल कलाम आजाद
55	1946 (23 नवम्बर)	मेरठ	जे.बी.कृपलानी
56	1947	दिल्ली	डॉ राजेन्द्र प्रसाद
57	1948 (18-19 दिसम्बर)	जयपुर	डॉ पट्टाभि सीतारमैया

काँग्रेस का प्रथम अधिवेशन

काँग्रेस का प्रथम अधिवेशन बंबई में 28 दिसंबर,1885 को प्रारंभ हुआ। इस अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण देते हुए उमेशचंद्र बनर्जी ने कांग्रेस के निम्नलिखित उद्देश्य बताये-

- सारे भारतवर्ष में देश के हित में काम करने वाले लोगों का आपस में संपर्क बढाना और उनमें मित्रता की भावना उत्पन्न करना।
- व्यक्तिगत मित्रता और मेल-मिलापों के द्वारा जाति-पाँति के भेदभाव, वंश, धर्म और प्रांतीयता की संकीर्ण भावनाओं का नाश करना।
- पूरे वाद-विवाद के बाद भारत में शिक्षित लोगों की सामाजिक समस्याओं के बारे में सम्मितियाँ प्राप्त कर उनका प्रामाणिक संग्रह तैयार करना।
- उन तरीकों पर विचार कर निर्णय करना, जिनके अनुसार आने वाले बारह महीनों में राजनीतिज्ञ देशहित के लिए कार्य करेंगे।

कांग्रेस के इस प्रथम अधिवेशन में नौ प्रस्ताव स्वीकृत हुए, जिनके द्वारा विभिन्न सुधारों की मांग की गई। प्रथम प्रस्ताव में भारतीय प्रशासन की जाँच के लिए एक रॉयल कमीशन नियक्त करने तथा दूसरे में केन्द्रीय व प्रांतीय व्यवस्थापिका सभाओं में नामजद सदस्यों के स्थान पर निर्वाचित भारतीय सदस्यों की संख्या बढाने की माँग की गई।इन प्रस्तावों में ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं था, जिस पर पहले से ही विचार-विमर्श न हो रहा हो। विभिन्न प्रांतीय राजनीतिक संस्थाओं ने इन विषयों पर कई बार प्रस्ताव पास किये थे। अधिवेशन की समाप्त पर ह्यूम ने महारानी विक्टोरिया की जय के नारे लगवाये। इस प्रकार कांग्रेस के जीवन का प्रारंभ इंग्लैण्ड के प्रति भक्ति-भाव रखते हुए आरंभ हुआ। किन्तु इस घटना ने भारतीय राजनीतिक चेतना को एक नवीन और निश्चित मोङ प्रदान कर दिया।यह राजनीतिक चेतना याचिकाओं तथा स्मरण-पत्रों द्वारा कुछ राजनीतिक अधिकार माँगने की ओर मोङ दी गई। काँग्रेस की स्थापना एक प्रबल और बढती हुई शक्ति के निष्कासन के लिए एक रक्षा-नली के रूप में हुई थी। कांग्रेस के नेता भारत पर अंग्रेजी नियंत्रण को सौभाग्य की बात समझते थे।

संदर्भ

1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास (हिन्दी) (पी.एच.पी) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस। अभिगमन तिथि: 30 दिसंबर, 2010।
2. गांधीजी उस समय तक कांग्रेस की आजीवन सदस्यता से इस्तीफा दे चुके थे, वो किसी तरफ नहीं थे, लेकिन गाँधी जी दोनों पक्ष के लिए आदरणीय थे क्योंकि गाँधी जी देश के लोगों के आदरणीय थे
3. वन्दे मातरम टे जन गण मन (हिंदी) घर बैठे समाज सेवा के तरीके (ब्लॉग)। अभिगमन तिथि: 11 दिसम्बर, 2012।
4. कांग्रेस की स्थापना का सच (हिन्दी) (पी.एच.पी) प्रवक्ता डॉट कॉम। अभिगमन तिथि: 30 दिसंबर, 2010।

श्रीराधाचरित महाकाव्य के कथानक का पौराणिक आधार

डॉ० दिनेश कुमार

मोबाइल नंबर 9417131787

भारतीय संस्कृत साहित्य दो रूपों में उपलब्ध है, आर्ष और लौकिक। चारों वेद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथो को आर्ष साहित्य कहा गया है तथा इस साहित्य के पश्चात् वाले लौकिक साहित्य में कालिदास, भास आदि महाकवियों द्वारा रचित काव्य-महाकाव्यों आदि ग्रंन्थो को माना गया है द्यलौकिक संस्कृत साहित्य के ग्रंन्थो में जितनी भी भिन्न-भिन्न प्रकार की कथाएँ छन्दोबद्ध पद्य अथवा गद्य रूपों में उपलब्ध होती हैं। उनका कोई न कोई आधार ग्रन्थ अवश्य ही है द्यइसी बात को दृष्टि में रखते हुए ही श्री राधा चरित महाकाव्य के पौराणिक आधार का अवलोकन करना अत्यन्त उचित है क्योंकि इस महाकाव्य में भी वर्णित विस्तृत कथा का पौरणिक आधार अवश्य ही रहा है।

पौराणिक आधारः श्री राधाचरितमहाकाव्य में कवि द्वारा श्री राधा- कृष्ण का ही वर्णन मुख्य रूप से प्रस्तुत किया गया है द्यकवि के दृष्टिकोण का तो ज्ञात नहीं किन्तु इस महाकाव्य के सूक्ष्म अवलोकन से यही ज्ञात होता है कि महाकवि ने ब्रह्मवैवर्त पुराण, श्रीमद्भागवतपुराण तथा गर्ग संहिता को आधार मानकर अपने महाकाव्य की रचना की होगी। अब इस महाकाव्य में वर्णित कथा के मुख्य अंशों तथा इन तीनों पुराणों में उपलब्ध कथांशों में समानताएं परिवर्तन तथा अनुपलब्धि क्रमश : निम्न प्रकार से प्रस्तुत हैं :-

श्री राधा के जन्म के विषय में समानताएं

यद्यपि महाकवि संक्षिप्त कथा को अपनी स्वतंत्र तथा नवीन विचारधारा से उसे कल्पना प्रसूत करते हुए विस्तृत रूप दे देते हैं तथापि उन मे कुछ अति सूक्ष्म समानताएं अवश्य ही होती है। जैसे इस महाकाव्य में भी गर्गसंहिता, ब्रह्मवैवर्तपुराण तथा श्रीमद्भागवत पुराण से कुछ श्रीराधा के जन्म के विषय में समानताएं परिवर्तन तथा अनुपलब्धि इस प्रकार है :-

अथैव राधा वृषभानुपत्न्या -

मावेश्य रूपं महस : पराख्याम्।
कलिन्दजाकूलनिकुञ्ज देशे,
सुमन्दिरे सावततार राजन्।।

इस पद्य के पूर्वार्द्ध भाग की समानता श्री राधाचरित में उद्धृत पद्य के साथ की जा सकती है। जैसे :-

प्रियतमानुभवामि विलक्षणं मम भुजान्तरमेतदहो महः।
नवसरोजवपुश्शिशुभावतः प्रविशतीव मनोऽवशतां नयत्।।

अर्थात् हे प्रियतम! मैं कुछ विलक्षण ही अनुभव कर रही हूँ कि यह तेज नवोद्गत कमल रूप शरीर से मेरे मन को पराधीन करता हुआ मेरे अंक में प्रवेश सा कर रहा है।

परिवर्तित

किन्तु महाकवि ने इसी बात को स्वप्न कह कर श्रीराधा की प्राप्ति को अपने ही ढंग से प्रस्तुत किया है। जैसेः-

अथ समर्चितदेवविभावसुर्व्रजहृदब्जविकासविभावसुः
वृजिनवर्जितनिर्मलमानस : समवलोकतकञ्जमलौकिकम्।।

अर्थात् अर्घ्य दानानन्तर सूर्योपासना करने वाले,व्रजवासियों के हृदय कमल को विकसित करने वाले तथा पाप से शून्य, निर्मल मन वाले वृषभानु ने अलौकिक कमल को देखा।

इस प्रकार श्री राधा के जन्म के विषय में समानता तथा परिवर्तत प्रस्तुत किए गए, किन्तु अनुपलब्धि के विषय में अध्ययन किया जाए तो ज्ञात होता है कि महाकवि ने श्री राधा के जन्म का कारण अपने महाकाव्य में प्रस्तुत नहीं किया है ; जबकि ब्रह्मवैवर्तपुराण में निम्न प्रकार से प्रस्तुत है।

मानुष्या इव कोपस्ते तस्मात्वं मानुषी भुवि।

भविष्यसि न संदेहो मया शप्ता त्वमम्बिके।।

अर्थात् हे अम्बिके! तुम्हारा क्रोध भी मनुष्यों की तरह है अत: मेरे शाप से तुम्हें भी पृथ्वी में मनुष्य होना पड़ेगा इसमें कोई संन्देह नहीं है। यह श्राप श्री दामा ने श्री राधा के द्वारा दिए गए श्री दामा को श्राप के प्रत्युत्तर में दिया था।

जन्मोत्सव

श्री राधा के जन्मोत्सव का उल्लेख केवल गर्ग संहिता में संकेत रूप में प्रतीत तो होता है किन्तु महर्षि गर्ग द्वारा विहित श्री राधा के नामकरण संस्कार के प्रकरण का उल्लेख कहीं भी प्राप्त नहीं होताद्यऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने श्री राधा तथा महाकाव्य के महत्त्व की वृद्धि हेतु ही नामकरण संस्कार के प्रकरण को अपने कवित्व - चातुर्य से नवीन शैली से संयक्त कर दिया है। इतना अवश्य है कि श्रीराधा के नाम की व्युत्पत्ति का उल्लेख ब्रह्मवैवर्तपुराण में सक्षिप्त रूप में उपलब्ध होता है। अब सर्वप्रथम गर्ग संहिता में सांकेतिक श्री राधा जन्मोत्सव रूप उदाहरण निम्नप्रकार से है:-

सुतां शरच्चन्द्रशताभिरामां दृष्ट्वाथ कीर्तिमुदमाप गोपी।

शुभं विधायाशु ददौ द्विजेभ्यो द्विलक्षमानन्दकरं गवांश्च।

इस पद्य के उत्तरार्द्ध भाग में ब्राह्मणों के लिए गौओं को दान में देनें का संकेत दिया गया है। इससे यही प्रतीत होता है कि जन्मोत्सव के अवसर में ही शुभ मानकर गौ दान दिया गया है द्य

अब श्री राधा के जन्मोत्सव का उदाहरण श्रीराधाचरित महाकाव्य में इस प्रकार प्रस्तुत है:-

वेदान्तिने विप्रगणाय धेनू: सुवर्णशृङ्गा: शफबद्धहंसा:।

संभूषिताभूषणवस्त्रमाल्यैर्ददौ मुदा भक्तिभृतान्तरात्मा।।

अर्थात् वृषभानु ने सोने के सींगों वाली तथा रजतबद्धखुरों वाली आभूषण वस्त्र एवं मालाओं से सुशोभित गाएं वेदान्तियों, ब्राह्मणों को दीं।

इस प्रकार गहन अध्ययन से ज्ञात होता है कि गर्ग संहिता में श्री राधा के संक्षिप्त रूप में वर्णित जन्मोत्सव को महाकवि ने अपने महाकाव्य में विस्तृत रूप देते हुए महाकाव्य की महत्ता बढ़ाई है।

अब श्री राधा के नाम की व्युत्पत्ति का ब्रह्मवैवर्तपुराण में से उदाहरण इस प्रकार है–

रा इत्यादानवचनो धा च निर्वाणवाचक:।

ततोऽवाप्नोति मुक्तिं च तेन राधा प्रकीर्तिता।।

किन्तु महाकवि ने श्री राधाचरित महाकव्य में महर्षि गर्ग के माध्यम से प्राय: 9 पद्यों में श्री राधा के नाम की व्युत्पत्ति प्रस्तुत की है। उन में से एक उदाहरण निम्नलिखित है:-

शक्तिं परां शान्तिमथो समृद्धिं राति स्वभक्ताय जनाय शश्वत।

दधाति जीवान् यदनन्यभावान् राधामत: शब्दविदो वदन्ति।।

अर्थात् जो अपने भक्त के लिए शक्ति, शान्ति तथा समृद्धि को निरन्तर देती हैं, अनन्यभाव यक्त अर्थात् भक्तिभावना रखने वाले जीवों को सहारा देती हैं, अत: इसे शब्दविद् श्राधा' कहते है।

श्रीराधा के नाम की व्युत्पत्ति का संकेत ब्रह्मवैवर्तपुराण में भी संक्षिप्त रूप से प्राप्त होता है।

माता कीर्ति द्वारा शिशुलीला अवलोकनार्थ प्रार्थना

महाकवि ने माता द्वारा शिशु लीला अवलोकनार्थ श्रीराधा के प्रति प्रार्थना के प्रसंग को अपनी नवीन कल्पना से चित्रित करते हुए महाकाव्य को और भी अलंकृत कर दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो महाकवि ने श्री राधा की बाल लीलाओं को प्रत्यक्ष में देखा हो। यह वर्णन केवल ग्यारह पद्यों में प्रस्तुत है। जैसे इसका एक उदाहरण अधोलिखित है।

अभिनवबहुवस्नकान्तवासो मृदु परिधाय रजोऽवकीर्णकम्रे।

सुखमवनितले मुहुर्लुठन्तीं सपदि कदाङ्कमहं विरोपयेयम्।।

अर्थात् कोमल तथा बहुमूल्य वस्त्र पहन कर धूलि से धूसर पृथ्वी पर बार-बार लोटती हुई तुम को मै कब गोद में उठाऊँगी?

इस प्रसंग को इस महाकाव्य का प्राण कहें तो अनुचित न होगा।

श्री कृष्ण जन्म

समानता : यद्यपि ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीमद्भागवतपुराण तथा गर्ग संहिता में श्री कृष्ण जन्म की कथा का जन्म से पूर्व अथवा पश्चात् का उल्लेख समानरूप से मिलता है किन्तु श्री राधाचरित महाकाव्य में वर्णित श्री कृष्ण के जन्म का प्रसंग उपरोक्त ग्रन्थों से भिन्न रूप में प्राप्त होता है तथापि केवल श्री कृष्ण के जन्म को ही समान दृष्टि से अवलोकन करते हुए यहां पहले श्रीमद्भागवतपुराण से एक उदाहरण निम्न प्रकार से प्रस्तुत है।

निशीथेतम उद्भूते जायमाने जनार्दने।
देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः।
अविरासीद्यथाप्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः।।

इसी प्रकार श्री राधाचरित महाकाव्य में संक्षिप्त रूप से एक पद्य निम्न प्रकार से है–

जगतां निवासमथ यं श्रुतिर्जगौं स हि नन्दनन्दनतया व्रजगतः।
प्रभवोऽपि भक्तिवशगाः स्ववैभवं जहतीति भक्तिपदतोऽपि सिद्धयति।।

यद्यपि उपरोक्त पद्यों में श्री कृष्ण जन्म को प्रस्तुत करने की शैली में असमानता दृष्टिगोचर होती है तथापि केवल जन्म होने को ही समान कह सकते है।

परिवर्तन

महाकवि ने इस महाकाव्य में श्री कृष्ण के जन्म से पूर्व प्रासंगिक कथा को अपनी कविता रचने की अद्भुत नूतन शैली से प्रस्तुत किया है। जब नन्द तथा यशोदा को पुत्र प्राप्ति की इच्छा होती है तो वे दोनों यमुना के तट पर विहारार्थ जाते है वहाँ नन्दराज द्वारा "मेरे घर में भी एक सुन्दर बालक हो" ऐसा सोचने पर एक सुन्दर बालक तुरंत उनके समक्ष उपस्थित होता है, जो उनको भविष्य में उनके घर में पुत्रोत्पति का संकेत देता है द्यइसका उदाहरण अधोलिखित है–

वचनं सुताभिलषितं सुधाशयं कलयञ्जगाद मृदु वृद्धदम्पती।
नमतं कलिन्दगिरिनंदिनीं शिशुः सुतपूतसद्मयुवयोर्भविष्यति।।

अर्थात् पुत्राभिलाषा से लसित सुधोपम वचन को सुनकर उन दोनों को उस शिशु ने कहा–"तुम दोनों यमुना को नमस्कार करो, तुम्हारा घर पुत्र यक्त हो जाएगा।" अर्थात् तुम दोनों को पुत्र की प्राप्ति होगी।

इसे आचार्य श्रीशुक्ल की कल्पना का परिणाम कहना अनुचित न होगा।

अनुपलब्धि

इस महाकाव्य में उद्धृत सम्पूर्ण 13 सर्गो में श्री कृष्ण के जन्मदाता माता-पिता देवकी तथा वसुदेव का वर्णन उपलब्ध नहीं होता जबकि इस महाकाव्य की विस्तृत कथा के आधार ग्रन्थ उक्त तीनों पुराणों में इनका उल्लेख प्राप्त होता है। जैसे ब्रह्मवैवर्तपुराण में श्री कृष्ण द्वारा श्रीराधा को अपने जन्म के विषय में कहते हुए एक पद्य का उदहारण निम्नलिखित है :

अहं यास्यामि मथुरां वसुदेवालयं प्रिये।
पश्चात्कंसभयव्याजाद् गोकुलं तव संनिधिम्।।

अर्थात् हे प्रिये! मैं भी मथुरा में वसुदेव के घर जाऊँगा अर्थात् वहाँ मेरा जन्म होगा द्यतत्पश्चात् कंस के भय के बहाने से मैं तुम्हारे पास गोकुल चला आऊँगा।

श्री कृष्ण का नामकरण संस्कार

समानता : इस महाकाव्य मे वर्णित श्री कृष्ण के नामकरण संस्कार की समानता, गर्ग संहिता मै उद्धृत कुछ पद्यों से कर सकते है। 'गर्ग संहिता तथा श्री राधाचरित महाकाव्य मैँ महर्षि गर्ग द्वारा ही नामकरण संस्कार का उल्लेख किया गया है। जैसे गर्ग संहिता से एक निम्नलिखत उदहारण इस प्रकार है–

अघ्घनानि पवित्राणि जगतां मङ्गलानि च।
ककारः कमलाकान्त ऋकारो राम इत्यपि।।
षकारः षड्गुणपतिः श्वेतदीपनिवासकृत।
णकारो नारसिंहोऽयमकारोह्यक्षरोऽग्निभुक्।।

उपरोक्त पद्य मैँ से श्अघ्घनानि पवित्राणि 'अंश का संकेत इस महाकाव्य मैँ श्कलिकाल' पद मैँ दृष्टिगोचर होता है द्यजैसे इसका उदहारण निम्नलिखत है :

मुनिमण्डलेन महिते मणेर्गृहे स्फटिकोपलै रचितकुट्टिमावनौ।
उपविश्य हीरकवरसानं मुनि :कलिकाल श्कृष्ण ' इति नाम सञ्जगौ।।

इस प्रकार नामकरण प्रकरण की समानता के कुछ अंश उपरोक्त दोनों ग्रन्थों के पद्यों में उपलब्ध हुए।

परिवर्तन : गर्ग संहिता में श्री कृष्ण के जन्मोत्सव तथा नामकरण संस्कार के प्रकरणों को पृथक् - पृथक् दो अध्यायों के साथ प्रस्तुत किया है किन्तु महाकवि ने इसका परिवर्तन करके उपरोक्त प्रकरणों को एक साथ प्रस्तुत किया है। श्री कृष्ण का नामकरण जन्मोत्सब में ही प्रस्तुत किया है। जैसे एक उदाहरण :-

यदुवंश कौस्तुभमणेः शिशोर्महे परमर्षिगर्ग इतवान् महर्षिभिः।
शुभजातकर्ममिषतः सविग्रहं परतवमीक्षितुमहो महोज्ज्वलः।।

अर्थात् यदुवंश में उत्पन्न कौस्तुभमणि रूप बालक के महोत्सव में महातेजस्वी महर्षियों के साथ मुनि गर्ग भी शुभजात कर्म के बहाने से परम तत्त्व को शरीर सहित देखने के लिए उपस्थित हुए।

इस पद्य से प्रतीत होता है कि उपरोक्त गर्गसंहिता के श्रीकृष्ण नामकरण तथा महोत्सव के प्रकरण का परिवर्तन महाकवि ने अपनी कल्पना से प्रस्तुत किया है।

अनुपलब्धि : इस महाकाव्य में श्री कृष्ण जन्मोत्सव प्रकरण में वृषभानु तथा कलावती के आगमन का वर्णन प्राप्त नहीं होता जबकि गर्ग संहिता में इनका उल्लेख किया गया है। जैसे :-

श्रुत्वा पुत्रोत्सवमं तस्य वृषभानुवरस्तथा।
कलावत्या गजारूढ़ो नन्दमन्दिरमाययौ।।

अर्थात् नन्द के पुत्र का महोत्सव सुनकर वृषभानु कलावती के साथ हाथी पर चढ़कर नंद के घर आए द्य

इसका उल्लेख आचार्य शुक्ल ने श्री राधा चरित महाकाव्य में नहीं किया है।

श्री कृष्ण की बाललीलाएँ

समानता : श्री कृष्ण की बाललीलाओं का बर्णन श्रीमद्भागवतपुराण के समान गर्ग संहिता में भी दृष्टिगोचर होता है। गर्ग संहिता में से एक उदाहरण उद्धृत किया जा रहा है जो इस महाकाव्य में वर्णित श्री कृष्ण की बाललीला से समानता रखता है। जैसे :-

जनयन् गोपगोपीनामानन्दं बाललीलया।
वयस्यैश्चोरयामास नवनीतं घृतं हरि:।।

अर्थात् श्री कृष्ण अपनी बाललीलाओं से गोप तथा गोपियों को आनंदित करते हुए अपने साथियों के साथ घी माखन चुराने लगे।

अब इसी पद्य के साथ समानता रखने वाला एक पद्य आलोच्य महाकाव्य में निम्न प्रकार से उद्धृत है :-

शिक्यभाण्डनवनीतमाहरन् मन्दमन्दमपसृत्य शावक:।
भक्षयत्यनुदिनं यशोदया भर्त्सितोऽपि शिशुमध्य एषक:।।

परिवर्तन की दृष्टि से अध्ययन किया जाए तो ज्ञात होता है कि महाकवि ने श्री कृष्ण की बाल लीलाओं का विस्तृत वर्णन नहीं किया है द्यएक घटना का वर्णन करने का ढंग प्रत्येक कवि-महाकवि का अपना पृथक् ही होता है द्यअत : इसमें कोई विशेष परिवर्तन प्रतीत नहीं होता।

अनुपलब्धि : उपरोक्त तीनों आधार ग्रंन्थों में श्री कृष्ण की बाललीला वर्णन में बलराम का उल्लेख भी प्राप्त होता है किन्तु महाकवि ने इस महाकाव्य में उसका कही भी वर्णन नहीं किया है द्यजैसे गर्ग संहिता में से बलराम विषयक एक उदाहरण निम्नलिखित है :

कालिन्द्युपवने श्यामैस्तमालै:सघनैर्वृते।
कदम्बकुञ्जशोभाढ्ये चरन्नौ रामकेशवौ।।

अत: गर्ग संहिता में भी बलराम का उल्लेख श्री कृष्ण के साथ प्राप्त होता है द्य

रास वर्णन

समानता : यघपि रास कीड़ा का वर्णन श्रीमद्भागवतपुराण ब्रह्मवैवर्तपुराण तथा गर्ग संहिता में भिन्न -भिन्न रूप में प्राप्त होता है तथापि श्री राधा चरित में श्री राधा कृष्ण की रास क्रीड़ा का वर्णन श्रीमद्भागवतपुराण में वर्णित रास वर्णन के साथ समानता दृष्टिगोचर होती है। जैसे - श्रीमद्भागवतपुराण में श्री कृष्ण का रास में प्रत्येक गोपी के साथ विविध रूप होना, उनका अभिमान दूर करने के लिए भगवान् श्री कृष्ण का अन्तर्ध्यान हो जाना तथा पुन: गोपियों द्वारा विलाप करने पर फिर उन के पास लौट आना, यह समान रूप से ही दृष्टिगोचर होता है। जैसे -गोपियों में अभिमान के वर्णन का उदाहरण अधोलिखित है :

एवं भगवत: कृष्णाल्लब्धमाना महात्मन:।
आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि।।

अर्थात् इस प्रकार भगवान् कृष्ण के द्वारा जब उनको अधिक मान प्राप्त हुआ, तब उन मानवती गोपियों ने अपने आप को भूमण्डल पर सबसे अधिक मान लिया।

श्रीराधाचरित महाकाव्य में गोपियों के अभिनय तथा श्री कृष्ण के अन्तर्हित होने का संकेत एक ही पद्य में उपलब्ध होता है द्यजैसे इसका एक उदाहरण निम्न प्रकार से प्रस्तुत है-

मयैव साकं नटराजराजो नान्यापि काचित् सुभगा यथाऽहम्।
इत्थं मनोभावपरम्परायामेकाकिनीं स्वां सकलापि मेने।।

अर्थात् श्री कृष्ण मेरे साथ नृत्य कर रहे है, जैसी मैं सौभाग्यशालिनी हूँ वैसी कोई और नहीं है। इस प्रकार का सभी गोपियों का मनोभाव होने पर सभी ने अपने आप को अकेले ही पाया। अर्थात् उनका इस प्रकार का मनोभाव होते ही श्री कृष्ण वहां से अदृष्ट हो गए।

परिवर्तन : श्रीमद्भागवत पुराण तथा श्री राधा चरित में रास - कीड़ा के प्रारम्भ का वर्णन भिन्न- भिन्न प्रकार से है। श्रीमद्भागवत पुराण में श्री कृष्ण द्वारा रात्रि में वंशी बजाने पर सभी गोपियां अपने - अपने कार्यों का परित्याग करके श्री कृष्ण की ओर उस वन में रास - कीड़ा के लिए शीघ्र ही उपस्थित होती हैं। किन्तु इसी प्रसंग को महाकवि कलिका प्रसाद शुक्ल ने परिवर्तित करके इस महाकाव्य के नवम सर्ग में पहले से ही कृत दोलोत्सव के तुरन्त पश्चात् गोपियां रास - कीड़ा के लिए मण्डलाकार में स्थित हो जाती है। यथा क्रमशः पहले श्रीमद्भागवत पुराण तथा फिर राधा चरितमहाकाव्य में से उद्धहरण इस प्रकार प्रस्तुत है :

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्द्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः।
आजग्मुरन्योऽन्यमलक्षितोद्यमाः स यत्र कान्तो जललोलकुण्डलाः।।

अर्थात् जब व्रजबालाओ ने उस कामोत्तेजक गीत को सुना तो उन का मन श्री कृष्ण में आसक्त हो गया। वे सभी परस्पर किसी दूसरे को सुचना न देकर वहाँ पहुँची जहाँ श्री कृष्ण स्थित थे द्यउस समय वेग के कारण उन के कुण्डल हिल रहे थे अब श्री राधाचरित महाकाव्य से उद्धृत एक उदाहरण निम्न प्रकार है :-

यमानुजायाः कमनीयकूले विभावरी कान्तमरीचिमाले।
व्रजद गनामण्डलमणिदतेले राधामुरारी लसतीऽतराले।।

अर्थात् यमुना के मनोहर, चंद्रकिरणो से लिप्त, व्रजाङ्गनाओं के मंडल से सुशोभित, तट के मध्य राधा-कृष्ण सुशोभित हो रहे है।

इस प्रकार महाकवि द्वारा रास-क्रीड़ा का प्रारम्भिक वर्णन अपने ही नवीन ढंग से परिवर्तित किया गया है। इस महाकाव्य में उक्त वर्णन में कही भी अनुपलब्धता दृष्टिगोचर नहीं होती।

होलिकोत्सव

समानता : गर्ग सहिंता में ही होलिकोत्सव का वर्णन मिलता है। इसी को आधार मानकर ही महाकवि ने इस महाकाव्य में इसका विस्तृत वर्णन किया हुआ लगता है।

जैसे इसका एक उदाहरण गर्ग संहिता से निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत है :-

अथ मानवती राधा मानं त्यक्त्वा समुत्थिता।
सखीसङ्घैः परिवृता प्रकर्तुं होलिकोत्सवम्।।

अर्थात् तत्पश्चात् वह मानवती राधा अभिमान त्यागकर उठ गई तथा सखिओं के साथ होलिकोत्सव मनाने के लिए उद्यत हो गई।

होलिकोत्सव ही का वर्णन श्री राधाचरित महाकाव्य में इस प्रकार से है :-

नीपनिवारिततापे सुरभिवनानिलनिषेवितपरिसरे।
वैणवलगुडाघातं भङ्ग्याक् दीव्यन्ति होलाकाम्।।

अर्थात् सुगन्धित पवन वन में चलने पर, कदम्बों की शीतल छाया में युवक तथा युवतियाँ वेणु दंडों के प्रहार से होलिकोत्सव मनाते हैं।

इस प्रकार सूक्ष्म अवलोकन करने पर उक्त दोनों पद्यों को होलिकोत्सव के वर्णन में समान रूप दे सकते है।

परिवर्तन : महाकवि ने इस उत्सव वर्णन में एक बड़ा परिवर्तन किया है। इस महाकाव्य में होलिकोत्सव वर्णन में श्री राधा- कृष्ण को इस उत्सव में सम्मिलित नहीं किया है। जबकि गर्ग सहिंता में इन दोनों की उपस्थिति दृष्टिगोचर होती है। जैसे गर्ग संहिता में से एक उदाहरण इस प्रकार है–

सर्वतो जगृहुः कृष्णम्कराभ्यां व्रजगोपिकाः।
यथा मेघञ्च दामिन्यः सन्ध्यायां श्रावणस्य च।।

महाकवि ने अपने महाकाव्य में श्री राधा - कृष्ण के होलिकोत्सव में उपस्थित होना उल्लेख नहीं किया है बल्कि उन के नाम से अंकित ध्वज को ही वहाँ उपस्थित करते है जैसे :-

राधामाधवकेतुं निखाय मध्ये व्रजांगना दीपैः।
कुङ्कुमकृत्रिमधूपैर्मलयजसुमयक्षकर्दमैश्च।

अर्थात् गोपियों ने राधा - कृष्ण से अंकित ध्वज को मण्डल के मध्य रखकर, दियों, कुंकुम . कृत्रिम धूपों, चन्दन तथा विभिन्न लेपों से पूजा की।

अनुपलब्धि के विषय में गहन अध्यन करने से इस होलिकोत्सव में श्री राधा - कृष्ण की उपस्थिति का न होना ही ज्ञात होता है, जिसका उल्लेख पूर्व किया जा चुका है।

यमुनावर्णन

यमुना का वर्णन गर्ग सहिंता में भी उपलब्ध होता है क्योंकि जहां व्रज भूमि का वर्णन होगा वहीं यमुना का वर्णन भी होना अत्यावश्यक है। अतः इसका प्रमाण गर्ग संहिता में निम्न प्रकार से उपलब्ध होता है :

श्रीगोकुले च यमुना यूथीभूत्वातिसुन्दरी।
श्री कृष्णचन्द्रारासार्थं निजवासं चकार ह।।

अर्थात् श्री गोकुल में यमुना ने अति सुन्दर चमेली रूप धारण कर श्री कृष्ण की रासलीला के लिए वहां अपना निवास बनाया है।

अब इस महाकव्य में इसका वर्णन निम्न लिखित प्रकार से है–

व्रजधामविलोललोचना प्रिय सन्देशहरा कलिन्दजा।
व्रजराजमहो अहर्ननिश व्यथमाना प्रतिधाम पश्यति।।

अर्थात् रासोत्सव के अन्त में अन्तर्हित हुए श्री कृष्ण के लिए प्रतिपादनीय व्रजाङ्गनाओ का सन्देश लेकर कष्ट सहती हुई यमुना भगवान् श्री कृष्ण को स्थान - स्थान पर ढूंढ रही है।

इस महाकाव्य के अन्त में महाकवि ने मथुरा तथा यमुना के उद्यान का वर्णन प्रस्तुत किया है। इसका उल्लेख गर्ग सहिता में निम्नलिखित प्रकार से प्राप्त होता है।

हरिरक्रूररामभ्यां मथुरोपवनं गतः।
यमुनानिकटं स्थित्वा वारि पीत्वा रथं ययौ।।

यहां केवल मथुरा तथा यमुना के उद्यान के प्रमाण हेतु ही उपरोक्त पद्य प्रस्तुत किया गया है। अब इस महाकाव्य में मथुरा तथा यमुना के निकटवर्ती उद्यान का उदाहरण इस प्रकार है।

कलिन्दकन्यासलिलैः सलीलं सोपानवीथि व्रजवल्लवीनाम्।
यत्रालयानां परिमार्ष्टि नित्यं विभाति भव्या मथुरा पुरी सा।।

अर्थात् जिस नगरी में यमुना खेल -खेल में गोपाङ्गनाओं के महलों की सीढ़ियों के मार्ग को अपने जल से पवित्र करती है वह मनोहर मथुरा नगरी सुशोभित हो रही है।

अब तक केवल मुख्य- मुख्य वर्णनों को ही आधार ग्रंन्थों के साथ समानता परिवर्तन तथा अनुपलब्धियों के साथ ही प्रस्तुत किया गया है। अब कुछ उन प्रकरणों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है जो केवल श्री राधाचरित महाकाव्य में महाकवि शुक्ल ने नवीन रूप से उद्धृत किया है। जैसे :-

प्रथम सर्ग में श्री राधा के सरोवर का वर्णन, चतुर्थ सर्ग में श्री राधा के नामकरण संस्कार का देवों द्वारा समर्थन, नवम सर्ग में श्रीराधा- कृष्ण कृत दोलोत्सव, दशम तथा एकादश सर्ग में श्री कृष्ण के पास शबरियों का आगमन तथा प्रेमोपालम्भ, श्री कृष्ण का श्री राधा के समीप प्रयाण, द्वादश सर्ग में निकुंज में " यदि तुम दासी पद को ग्रहण करोगे तो क्या - क्या दुःख सहने पड़ेंगे" इस प्रकार श्री राधा द्वारा श्री कृष्ण को कहे गए वचन, श्री कृष्ण का देवों तथा उत्कलदेशवासियों को मंदिर निर्माण तथा अपनी मूर्तिस्थापना के लिए कहना तथा अन्त में श्रीमद्भागवत कथा के प्रसंग प्रस्तुत किए है।

इन में से दासी पद ग्रहण हेतु श्री राधा द्वारा श्री कृष्ण को कहे गए वचन तथा मूर्ति स्थापना करने हेतु भगवान कृष्ण के कथन रूप उदाहरण क्रमश : इस प्रकार से प्रस्तुत है :

प्रथम उदाहरण :-

उपोष्य सम्यग् दिवसं समग्रं,
भुङ्वाष् बले पायसमेकमन्नम्।
सम्पूज्य गौरीं विधिवच्च सायं
पतिं लभस्वात्ममनोऽनुकूलम्।।

अर्थात् (श्रीराधा श्रीकृष्ण को दासी रूप प्राप्त करने के पश्चात् क्या - क्या क्रियाएं करनी पड़ती है, इस प्रसंग को कहती है कि-) हे अबले। समस्त दिन में व्रत कर के, सायंकाल को विधि - वत् गौरी पूजन करके केवल पायसन्न ही भक्षण करो। इस से तुम्हें पति की प्राप्ति होगी। (इस प्रकार तुम्हें वृद्ध महिलाएं कहेंगीं)।

द्वितीय उदाहरण :

सौवर्णी न च रोचते हि सुभगा मूर्तिस्तु मह्यं सुरा,
देशेऽस्मिन् धनहीनमानवमये स्वर्णस्य किं गौरवम।
पाषाणी सुमनोऽतिकोमलमनोलक्ष्याश्चं हास्यास्पदं
तस्मात् दारुमयी स्वभावसरला संस्थाप्यतां भूतिदा।।

अर्थात् हे देवो इस निर्धन देश में मेरी सोने की प्रतिमा न हो

क्योंकि सुवर्णपात्र का गौरव नहीं होता द्यपाषाणी मूर्ति तो अति कोमल मन वाली लक्ष्मी के लिए हास्यास्पद होगी द्यअतः स्वभाव-सरल काष्ठमयी मेरी प्रतिमा हो।

इन नवीनप्रकरणों को महाकवि ने अत्यन्त सुन्दरता से प्रस्तुत किया है। सूक्ष्म अवलोकन किया जाये तो महाकवि ने इस महाकाव्य में यद्यपि श्रीराधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन विस्तार से प्रस्तुत किया है तथापि श्री राधा-कृष्ण के विवाह का प्रकरण इस महाकाव्य को कुछ अधूरा सा बना देता है। श्री राधा- कृष्ण के विवाह का वर्णन गर्ग सहित में उपलब्ध होता है जो निम्न प्रकार से है :

स कारयामास हरिञ्च राधिकाम्,
प्रदक्षिणः सप्त हिरण्यरेतसः।
ततश्च तौतम् प्रणम्य् वेदवित्
तौ पाठयामास च सप्त मन्त्रकम्।।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि श्रीराधाचरित महाकाव्य के सूक्ष्म अबलोकन से ज्ञात होता है कि महाकवि आचार्य श्रीकलिकाप्रसाद शुक्ल ने गर्गसंहिता, श्री मद्भागवतपुराण तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण को उपजीव्य मानकर ही अपनी स्वतन्त्र कल्पना शक्ति से काव्य सृजन किया लगता है।

शोध-पत्रागत ग्रन्थ सूचि

- श्री राधा चरित महाकाव्य :- कवि - आचार्य श्री कालिका प्रसाद शुक्ल, प्रकाशन– वाराणसी सुधि प्रकाशन, 1985।
- गर्गसंहिता :- वाराणसेय डायरेक्टर रिसर्च इन्स्टीच्यूट वाराणसी संस्कृत यूनिवर्सिटी, 1959।
- ब्रह्मवैवर्त पुराण :- प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1981।
- श्रीमद्भागवत पुराण :- निज श्याम काशी प्रेस, मथुरा।

संदर्भ

1. गर्गसंहिता गो लोक खंड 8/6
2. श्रीराधचरित महाकाव्य 3/22
3. श्रीराधचरित महाकाव्य 3/57
4. ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्णजन्मखण्ड 3/113
5. गर्गसंहिता गोलोकखण्ड 8/9
6. श्रीराधाचरित महाकाव्य 4/53
7. ब्रह्मवैवर्त पुराण 48/42
8. श्रीराधाचरित महाकाव्य 4/37
9. श्रीराधाचरित महाकाव्य 5/34
10. श्रीमद्भागवत पुराण 10/2/8
11. श्रीराधाचरित महाकाव्य 7/15
12. श्रीराधाचरित महाकाव्य 7/13
13. ब्रह्मवैवर्त पुराण कृष्णजन्मखण्ड 6/266
14. गर्गसंहिता गोलोकखण्ड 5/28,29
15. श्रीराधाचरित महाकाव्य 7/21
16. श्रीराधाचरित महाकाव्य 7/20
17. गर्गसंहिता गोलोकखण्ड 12/11
18. गर्गसंहिता गोलोकखण्ड 17/17
19. श्रीराधाचरित महाकाव्य 8/4
20. गर्गसंहिता गोलोकखण्ड 17/16
21. श्रीमद्भागवत पुराण 10/29/47
22. श्रीराधाचरित महाकाव्य 9/34
23. श्रीमद्भागवत पुराण 10/29/4
24. श्रीराधाचरित महाकाव्य 9/19
25. गर्गसंहिता माधुर्यखण्ड 12/13
26. श्रीराधाचरित महाकाव्य 6/48
27. गर्गसंहिता माधुर्यखण्ड 12/18
28. श्रीराधाचरित महाकाव्य 6/53
29. गर्गसंहिता वृन्दावनखण्ड 3/17
30. श्रीराधाचरित महाकाव्य 2/55
31. गर्गसंहिता मथुराखण्ड 5/1
32. श्रीराधाचरित महाकाव्य 13/1
33. श्रीराधाचरित महाकाव्य 12/26
34. श्रीराधाचरित महाकाव्य 12/72
35. गर्गसंहिता गोलोकखण्ड 16/32

सामाजिक परिवर्तन में दर्शन की भूमिका

डॉ० अमृता कुमारी

असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, वाई.एन. कॉलेज, दिघवारा, जे.पी.यू., छपरा (बिहार)

सारांश

परिवर्तन नया ज्ञान का बोध है। इसमें दर्शन की महती भूमिका है। दर्शन वह बौद्धिक निष्पक्ष ज्ञान है जो विश्व को उसकी सम्पूर्णता में समझने का प्रयास करता है। इस तरह सामाजिक परिवर्तन रूपी अवधारणा भी दर्शन के विषय क्षेत्र में आ जाता है। वैसे भी दर्शन जीवन के उच्चतम् आदर्श की प्राप्ति में सहायक होने के नाते सामाजिक परिवर्तन पर अपना विचार न दें, या इससे इसका सम्बन्ध न हो यह सम्भव नहीं। यह भी संभव है कि परिवर्तन उन्नति की जगह अवनति की दिशा ले लें; ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कहा जाता है, प्रत्येक बालक समाज का प्रकाश है, लेकिन वह समाज का प्रकाश नहीं बनता है तो समाज में अंधकार को फैलाने का कारण भी बनता है। प्रस्तुत शोधपत्र सामाजिक परिवर्तन में दर्शन की भूमिका के विश्लेषण पर केन्द्रित है। यद्यपि इनको प्रभावित करने वाले कारकों में संस्कृति, समाजदर्शन, राजनीतिदर्शन, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र और धर्म-दर्शन महत्वपूर्ण आयाम है। इन आयामों का सामाजिक परिवर्तन पर प्रभाव साकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों तरह से पड़ता है।

साकारात्मक प्रभाव से अभिप्राय है सामाजिक परिवर्तन की दिशा समुन्नत या विकासोन्मुख होना, वही इन कारकों के नकारात्मकता समाज को अवनति की दिशा देगी। वर्तमान में इन कारकों से प्रतिफलित समाज में साकारात्मक परिवर्तन की दिशा में दर्शन की भूमिका का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

संकेत शब्द: परिवर्तन, संस्कृति, समाजदर्शन, राजनीतिदर्शन, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र और धर्म-दर्शन

साहित्य की समीक्षा

17वीं शताब्दी में **GALILIO, DESCARTES** आदि दार्शनिकों ने दर्शन में जिस पद्धति का विकास किया उससे नैतिक विज्ञान का मार्ग प्रशस्त हुआ एवं उद्योग प्रधान समाज का विकास संभव हुआ। रूसो, मोन्टेस्क्यू एवं वाल्टेयर दार्शनिकों ने लुई 16वाँ के अन्याय, शोषण, अत्याचार के खिलाफ एवं मिहनती मध्यमवर्ग की स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु क्रान्ति को नया आयाम दिया। रूसो का यह कथन कि प्रकृति की ओर लौटे, सामाजिक परिवर्तन को एक दिशा दी। मोन्टेस्क्यू एवं वाल्टेयर ने बताया कि कार्यपालिका, व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका को अलग-अलग काम करना चाहिए। वह इसलिए की जब ये तीनों शक्तियाँ किसी एक व्यक्ति में केन्द्रित हो तो वह निरंकुश हो जाता है। **SIMON DE BEAUVOIR** ने साहित्य और समाज के कार्यों में मिथकों के गहरे निहित पितृसत्तात्मक निमार्ण को मानव प्रकट करने के लिए अस्थिर कर दिया है।[1] भारतीय परिप्रेक्ष्य में महात्मा गाँधीजी का योगदान बहुमूल्य रहा है। सत्याग्रह, ट्रस्टीशिप एवं सर्वोदय का सिद्धान्त तो काल निरपेक्ष एवं सार्वभौम है। गाँधीजी ने सत्य एवं अहिंसा का जो व्यावहारिक प्रयोग किया वह अतुलनीय है। जे0 पी0 का नारा-

"जात-पात तोड़ दो, तिलक-दहेज छोड़ दो,
समाज के प्रवाह को नई दिशा में मोड़ दो।"[2]

ने तो श्रीमती इंदिरा गाँधी की सिंहासन तक को हिला डाली थी। 19 वीं सदी में जिस **FORMAL LOGIC** या **SYMBOLIC LOGIC** का विकास हुआ उसने **MATHEMATICAL METHOD** के **FOUNDATIONS** की खोज की एवं आगे चलकर **COMPUTER** के विकास में महती भूमिका अदा की।[3] **MIND BODY RELATION** की दिशा में व्यवाहारवादी नजरिये का विकास दर्शन में हुआ उसने मनोविज्ञान के क्षेत्र में क्रान्ति ला दी।[4]

भूमिका

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है जिसे टाला नहीं जा सकता। समान्यत: परिवर्तन किसी भी क्रिया अथवा वस्तु के पूर्व की स्थिति में बदलाव आ जाना है। इसतरह वस्तु, मानव, प्रकृति और समाज सभी परिवर्तनशील है। एस.के. चौधरी ने लिखा है- "सामाजिक परिवर्तन पर सर्वप्रथम समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विवेचन 1922 ई0 में **W.F. Ogburn** की पुस्तक '**SOCIAL CHANGE**' में प्रकाशित हुआ।"[5] ग्रीन के शब्दों में 'सामाजिक परिवर्तन समाज में सदैव विद्यमान रहता है, क्योंकि समाज में कुछ-न-कुछ सीमा तक असंतुलन सदैव बना रहता है।[6] ग्रीन के बातों का दो दृष्टियों से अध्ययन कर सकते हैं। समाज में अधिकांश व्यक्ति या तो इस असंतुलन को दूर करने के लिए नई व्यवस्था के पक्ष में हो जाते हैं अथवा वे परिवर्तन लाने का प्रयत्न करने वाले व्यक्तियों का विरोध करते है। किन्तु वजह जो भी हो ये दोनों दशाएँ सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहन देती है। इस तरह हम कह सकते हैं परिवर्तन एक सर्वव्यापी नियम है। सामाजिक परिवर्तन की कुछ प्रक्रियाएँ हैं जिनका उल्लेख भी आवश्यक है। 1. उद्विकास-जब परिवर्तन में निरन्तरता ही नहीं वरन् एक दिशा भी होती है तो ऐसे परिवर्तन को उदविकास कहते हैं। 2. क्रान्ति- जिसमें पुरानी व्यवस्था के स्थान पर नई व्यवस्था तथा प्राचीन संस्थाओं के स्थान

पर नई संस्थाओं की स्थापना की जाती है। 3. प्रगति- इसके अंतर्गत ऐसे परिवर्तन आते है जो समाज को मान्यता प्राप्त लक्ष्यों की ओर ले जाते हैं तथा इन लक्ष्यों का निर्धारण नैतिक मूल्यों व आदर्शों पर किया जाता है। 4. विकास- विकास से तात्पर्य किसी वस्तु में होने वाले ऐसे परिवर्तन से है जो कि श्रेष्ठता की ओर ले जाता है। हैरी एम0 जॉनसन[7] ने 'सामाजिक परिवर्तन' को 'सामाजिक संरचना' में परिवर्तन के रूप में परिभाषित करते हुए इसके प्रकारों की चर्चा किये हैं, जो निम्न हैं- 1. सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन, 2. सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन, 3. सामाजिक लाभ के स्वामित्व और वितरण में परिवर्तन, 4. सामाजिक कर्मियों में परिवर्तन, 5. सामाजिक कर्मियों की योग्यता एवं मनोवृत्ति में परिवर्तन।

मानव प्रकृति की सबसे उत्तम रचना है। अतएव मानव के सामाजिक क्रियाओं में बदलाव ही सामाजिक परिवर्तन है। यह परिवतन दो दिशाओं को तय करती है- विकृत दिशा तथा प्रकृत दिशा। दूसरों के रोटी खा जाना विकृति है तथा स्वयं के हिस्से की रोटी खाना मानव की प्रकृति होती है। इसके अतिरिक्त परिवर्तन की एक और भी दिशा है- संस्कृति। अपने हिस्से की रोटी भी दूसरों को खिला देना हमारी संस्कृति है। विकृति को रोकना एवं प्रकृति और संस्कृति की दिशा में दर्शन की भूमिका महत्वपूर्ण है।

दर्शन एक विशिष्ट नज़रिये का नाम है और कोई भी व्यक्ति जो इस नज़रिये का अनुशरण करता है चाहे वह आम आदमी हो, समाजशास्त्री हो, कानून, राजनीति, विज्ञान आदि किसी भी क्षेत्र में काम करता हो - दार्शनिक कहा जायेगा। आखिर यह नज़रिया क्या है? किसी भी विषय को समझने के लिए दो बातों को समझना आवश्यक है - उसका विषय-वस्तु एवं उसकी पद्धति। मूल्यों की खोज दर्शन का विषय है। फिर चाहे वह चरम सत्ता के स्परूप के रूप में हो, ज्ञान की पद्धतियों के विश्लेषण के रूप में या नैतिक प्रश्नों के समाधान के रूप में। इसी प्रकार तथ्यों की खोज एवं उसे **CONTROL** करने के लिए विधि का विकास करना विज्ञान का विषय होता है। ये दोनों परस्पर पूरक एवं एक-दूसरे में अंतर्निहित होते हैं। इसी प्रकार **RATIONAL, LOGICAL, A RGUMENTATIVE, CONCEPTUAL FORMATION** एवं **THEORIZING** या **THEORY FORMATION** दर्शन की पद्धतियाँ हैं। पहले दार्शनिक क्षेत्र में **VALUE SHIFTING** की स्थिति आती है, तदनुकूल सामाजिक नज़रिये एवं व्यवहार में परिवर्तन आना शुरू हो जाता है। उदाहरणस्परूप-तत्वमीमांसा के क्षेत्र में प्रारंभिक आदिम काल में जगत की घटनाओं के मूल में **SUPER NATURAL POWERS** को देखा जाता था। परन्तु धीरे-धीरे दर्शन के क्षेत्र में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि आदि को मूल तत्व मानकर व्याख्या का प्रयास हुआ, जिसने धीरे-धीरे प्रकृतिवादी, भौतिकवादी एवं परमाणुवादी व्याख्या की नींव डाली और विज्ञान के विकास एवं परिवर्तन को संख्यात्मक भाव का रास्ता प्रशस्त किया। वर्तमान में विज्ञान कहाँ खड़ा है इससे हम अनभिज्ञ नहीं है। विज्ञान को दृष्टि देने के साथ-साथ विज्ञान विध्वंस का रूप न ले लें इसका भी ख्याल दर्शन रखते हुए समय-समय पर विज्ञान की आलोचना भी करता रहता है। विज्ञान विकास करे पर विकास में **MORAL VALUES** सन्निहित हो। वर्तमान में कोविड-19 जैसा महामारी विज्ञान की अतियता (हठधर्मिता) का प्रतिक माना जा सकता है जिसने विश्व में भयावह स्थिति ला दी है। आज तीन करोड़ से भी अधिक लोग इसकी चपेट में हैं। भारत जैसे 130 करोड़ की आबादी वाले देश में जहाँ अब तक 50 लाख का आँकड़ा पार कर गया है। वर्त्तमान में भारत की G.D.P. -24 है। G.D.P. को शून्य तक लाना भी कितनी बड़ी चुनौती है, इससे हम सभी परिचित हैं।

क्या सामाजिक परिवर्तन में दर्शन की भूमिका नहीं भी हो सकती है? अर्थात् क्या हम ऐसा कह सकते हैं कि **CONCEPTUAL** या **NON-EMPIRICAL** होने के कारण दर्शन एक **THEORITICAL EXCERCISE** है? अत: इसका **SOCIAL AND PRACTICAL IMPACT** या **RELEVANCE** आवश्यक नहीं है। इसे इस तरह समझ सकते हैं, जब हम कहते हैं कि **स्व्ज्ञम** के अमुक सिद्धान्त ने अमुक कानूनी या संवैधानिक या सामाजिक परिवर्तन को **INITIATE** (आरंभ) किया तो अभिप्राय यही है कि अमुक परिवर्तन के लिए लॉक का अमुक सिद्धान्त एक अनिवार्य शर्त (**NECESSARY CONDITION**) थी। पाष्चात्य दार्शनिक प्रो0 जोड के अनुसार- "यदि दर्शन केवल मानसिक कसरत भर है तो इससे यह फायदा है कि मन की कसरत हो जाती है जो मन के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है"।[8] अर्थात मन या चेतना में जो विचार बनता है वही जब कार्यरूप लेता है तो परिवर्तन या विकास कहलाता है। इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन में दर्शन की अनिवार्यता को देख सकते हैं।

शोधपत्र का प्रमुख विवरण

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दर्शन सामाजिक परिवर्तन से जुड़ा है। अब दर्शन के विभिन्न शाखाओं द्वारा समझने का प्रयास करेगें कि यें किस प्रकार सामाजिक परिवर्तन में अपनी भूमिका निभाता है।

तर्कशास्त्र: तर्कशास्त्र का विषय अनुमान है। अनुमान मनुष्य के ज्ञान प्राप्त करने का साधन है। अशोक कुमार वर्मा के अनुसार - "तर्कशास्त्र का लक्ष्य है अनुमान में सत्यता की प्राप्ति और भूलों का निवारण इसलिए तर्कशास्त्र को सही अनुमान के सिद्धांतों या नियमों का व्यवस्थापक विज्ञान कहा जाता है।"[9] अनुमान तार्किक वाक्यों का बना होता है। वाक्य में पद होते है। इसलिए तर्कशास्त्र में वाक्यों (**PREPOSITIONS**) और पदों (**TERMS**) का अध्ययन होता है। इसमें परिभाषा (**DEFINITION**), विभाजन (**DIVISION**), वर्गीकरण (**CLASSIFICATION**), निरीक्षण (**OBSERVATION**), प्रयोग (**EXPERIMENT**), कल्पना (**HYPOTHESIS**), व्याख्या (**EXPLANATION**) आदि का अध्ययन भी शामिल है। अनुमान एक तरह से विचार है और विचार की अभिव्यक्ति भाषा के द्वारा होती है। विचार प्राय: वस्तु के अनुकूल होता है। इस तरह विचार, भाषा, और वस्तु तीनों का अध्ययन होता है।

तर्कशास्त्र अंधविश्वासी मानसिकता से तार्किक-वैज्ञानिक दृष्टिकोण की ओर ले जाने का प्रयास करता है। यह अपने आप में सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण स्त्रोत है। समीक्षात्मक दृष्टिकोण का विकास होने पर हम अपनी परंपरा या सांस्कृतिक विरासत का अंधानुकरण करने के बजाय उसमें जो कुछ तर्कसंगत और नैतिक है, उसे संरक्षित रखते हुए और अधिक विकसित कर सकते हैं, जबकि जो कुछ अतर्कसंगत और अनैतिक है उसका त्याग कर सकते हैं। सांस्कृतिक विरासत के अंतर्गत भाषा, खान-पान, वेशभूषा, रहन-सहन के अलावा विचार और नैतिक मूल्य भी शामिल है। भूमंडलीकरण के प्रभाव से हम बच नहीं सकते, किन्तु सजगता हमारे लिए लाभकारी सिद्ध हो सकता है। विदेशी संस्कृति जो तर्कसंगत लगे उसे अपनाने में कोई बुराई नहीं, किन्तु अतर्कसंगत बातों को नकारना भी आवष्यक है।

LOGIC के क्षेत्र में 19 वीं सदी में जिस **SYMBOLIC LOGIC** का विकास हुआ उसने न सिर्फ **MATHETICAL METHOD** के **FOUNDATION** की खोज की बल्कि आगे चलकर **COMPUTER** के विकास में भी महती भूमिका अदा की। आज वर्तमान में **COMPUTER**, **MOBILE** हमारे जीवन का अभिन्न अंग के समान हो गया है। इनसे अलग रहकर हम जो दुनिया को रफ्तार देना चाहते है, वह नहीं दे पायेंगें। कोरोना वायरस से उत्पन्न वर्तमानी समस्या को जानने समझने में भी इसकी भूमिका है।

नीतिशास्त्र- हम सभी "भलाई", "न्याय", "सुख" और "अंत:करण" जैसी धारणाओं से परिचित हैं। ये सभी धारणाएँ मनुष्य पर विशाल प्रभाव डालती है। किन्तु व्यक्ति पर उनके जादुई प्रभाव का क्या स्त्रोत है? मनुष्य जैसे जी रहा है वैसे जी सकता है लेकिन अच्छा और योग्य जीवन जीने का प्रयास किया जा सकता है। किस प्रकार के जीवन को हम अच्छा और योग्य मानते है? मानव जीवन का क्या अर्थ है? अपने को निरंतर बेहतर और परिष्कृत करने के लिए व्यक्ति अपनी असीम आवश्यकताओं को कैसे संतुष्ट करे? नीतिशास्त्र, जो कि दर्शन का एक प्राचीन तथा आकर्षक क्षेत्र है, इन्हीं और अन्य प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करता है।

वर्तमान में नीतिशास्त्र की तीन उपशाखाएँ मानी जाती है- मानकनीतिशास्त्र, अधिनीतिशास्त्र और व्यावहारिक नीतिशास्त्र। मानक नीतिशास्त्र नैतिक निर्णय के माध्यम से मानव आचरण का आदर्श अथवा मानक प्रस्तुत करता है। जिन वाक्यों में विधेय के स्थान पर नैतिक पद का प्रयोग होता है, उसे नैतिक निर्णय कहते हैं। ऐसे पदों में उचित-अनुचित, शुभ-अशुभ आदि प्रमुख है। मानक नीतिशास्त्र के निष्कर्षों के आधार पर किसी समाज की प्रचलनात्मक नैतिकता (**CUSTOMERY MORALITY**) की समीक्षा भी की जा सकती है। जैसे - अगर हम स्वतंत्रता और समता के मूल्यों की दृष्टि से देखें तो जाति, लिंग, रंग या धार्मिक विश्वास के आधार पर भेद-भाव का कोई औचित्य नहीं है। अधिनीतिशास्त्र का उदेश्य नैतिक निर्णय के स्वरूप प्रमाणीकरण तथा उसमें पदों के अर्थ का स्पष्टीकरण है। ए0 जे0 एयर की दृष्टि में नीतिशास्त्र आचरण एवं उसके नियमों में रूचि नहीं रखता, अपितु इन नियमों को व्यक्त करने वाली भाषा में उसकी रूचि है।[10] अधिनीतिशास्त्र को विश्लेषी नीतिशास्त्र भी कह सकते हैं। इसमें नैतिक भाषा के स्वरूप और अर्थ पर विचार किया जाता है कि जब हम 'अच्छा' शब्द का प्रयोग करते है तो हमारा आशय क्या रहता है? उदाहरण के लिए जब किसी चाकु के संदर्भ में 'अच्छा' शब्द का प्रयोग किया जाता है तो उसका आशय उसके 'तेजधार और बनावट' की प्रशंसा करना है। इसी प्रकार जब कार के संदर्भ में कहा जाता है कि यह कार बहुत बुरी चलती है तो यहाँ कार की निंदा की जा रही है। ये सब 'अच्छा' और 'बुरा' शब्द का निर्नैतिक प्रयोग है। यहाँ हमारा आशय 'अच्छा' शब्द के प्रयोग से चाकू का नैतिक मूल्यांकन नहीं है, बल्कि इतना ही बतलाना है कि चाकु तेज काटता है। एम0 पी0 चौरसिया के अनुसार-' अधिनीतिशास्त्र एक छननी है जो सम्पूर्ण नियामक नीतिशास्त्र को छान कर व्यावहारिक दृष्टि से उसे उपयोगी बनाता है। कितना अंश तक कोई नैतिक सिद्धान्त प्रयोग में लाने योग्य है और कितना नहीं इसी बात की छान-बीन अधिनीतिशास्त्र करता है।"[11] जहाँ तक अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र का सवाल है तो इसे अधिनीतिशास्त्र की प्रक्रिया के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। देखा जाये तो, अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र की दार्शनिक पृष्ठभूमि तर्किक प्रत्यक्षवाद, अर्थक्रियावाद एवं अस्तित्ववाद ने निर्मित की है। यह सिद्धान्त को व्यवहार में रूपान्तरित करने की दृष्टि है। इसी संदर्भ में श्पर्यावरणीय नैतिक संचेतना एक वैज्ञानिक अनुशीलन' नामक पुस्तक में लिखा है -'अनुप्रयुक्त दर्शनशास्त्र किसी तात्कालिक महत्व की व्यावहारिक समस्याओं का दार्शनिक समाधान खोजने का प्रयास करता है, जबकि अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र इनका नैतिक समाधान ढूँढने का प्रयास करता है।"[12] अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र से संबंद्ध प्रमुख चिंतक एवं विचारक पीटर सिंगर, जे0 एल0 मैकी, साइमन डी बुआ, डोरेथी पार्कर, मरविन कोल, विलियम ग्रे, अर्नेनैस, पीटर ड्रंकर इत्यादि है। सिंगर एवं मैकी अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में अनेक नैतिक समस्याओं का विश्लेषण करते हैं। साइमन एवं डोरेथी मुख्यत: लिंगीय असमानता का विश्लेषण किया। कोल एवं ग्रे इच्छा-मृत्यु तो वहीं इहरनफेल्ड, नैस एवं मर्चेन्ट पारिस्थितिकीय असंतुलन एवं पर्यावरण की समस्या का विवेचन करते हैं। ड्रंकर प्रबंधन नीतिशास्त्र से संबंद्ध समस्याओं का विश्लेषण करते हैं। वस्तुत: सभी विचारक उन समस्याओं और उनके समाधान की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं जिसे हम समाज में रहते हुए अनुभव करते है। साइमन डी बुआ का स्त्रियों कि स्वतंत्रता के संबंध में विचार है- "समाजवादी परिस्थितियों में भी स्त्री की स्थिति में परिवर्तन तब तक संभव नहीं, जब तक की वे मानवीय चेतना की सत्तामूलक विशिष्टता से परिचित नहीं हो जाती, जिसके अंतर्गत उन्हें 'अन्य' से व्यवहृत किया जाता है तथा उनकी आत्मनिष्ठता अथवा व्यक्तित्व को स्वीकार नहीं किया जाता है।"[13] इनके बातों का आशय यही है कि जबतक स्त्रियाँ स्वयमं अपनी प्रदत्त सामाजिक भूमिका के विरूद्ध प्रतिक्रिया एवं विरोध नहीं व्यक्त करेगी तथा सामाजिक स्थिति के प्रति सहनशील बनी रहेगी, तब तक वे अत्याचार एवं शोषण से मुक्ति एवं स्वतंत्रता की अनुभूति नहीं कर सकती है। इसतरह सभी चिंतक एक बेहतर दिशा में सामाजिक परिवर्तन को ले जाने में लगे हुए है, जो कि वर्तमानी समस्या की मांग भी है।

समाज और राजनीति दर्शन– दर्शनशास्त्र एक ऐसा विषय है जिसके क्षेत्र के अंतर्गत समस्त मानवीय ज्ञान समाहित हो जाते हैं। डॉ0 शैल कुमारी सिंह के अनुसार "अगर विश्व के समस्त मानवीय चिंतन दर्शनशास्त्र के अंतर्गत समाहित हो जाते हैं तो सामाजिक तथा राजनीतिक चिंतन भी दर्शनशास्त्र के क्षेत्र के अंतर्गत समाहित है- इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता।"[14] इसमें समाज और राजनीति का दार्शनिक दृष्टि से अध्ययन किया जाता है। तर्कशास्त्र के साथ-साथ नीतिशास्त्र का भी समाज और राजनीति दर्शन से निकट का संबंध है। समाज और राजनीतिदर्शन के मानक पक्ष के अंतर्गत मानक नीतिशास्त्र के निष्कर्षो को समाज और राजनीति पर लागू किया जाता है। मेरे विचार में कुछ संशोधनों के साथ उपयोगितावाद ही नैतिकता का सर्वश्रेष्ठ मापदण्ड है। यहाँ स्वतंत्रता, समता और बंधुता के सामाजिक आदर्श का उपयोगितावादी दृष्टि से समर्थन किया जा सकता है। फिर इन मूल्यों, परिवर्तनों का मूल्यांकन किया जा सकता है। जाति, वर्ग, लिंगभेद, नस्लभेद, विवाह, परिवार, तलाक और संपत्ति जैसे विषयों पर मानक दृष्टि से विचार किया जा सकता है। इसी तरह, राजनीतिक जीवन पर अन्य बातों के अलावा राजनीतिक विचारधाराओं का भी काफी प्रभाव होता है, जैसे- भारतीय संदर्भ में लोकतंत्र (उदारवाद), धर्मनिरपेक्षतावाद, समाजवाद, साम्यवाद, सम्पूर्णक्रान्ति, अम्बेडकरवाद, हिन्दुत्ववाद राजनीति पर प्रभाव है। इन विचारधाराओं का स्पष्टीकरण और विश्वासों का समीक्षात्मक मूल्यांकन द्वारा राजनीतिक दार्शनिक एक बेहतर राजनीतिदर्शन की ओर बढ़ने में सहायक हो सकते हैं। इस तरह यदि धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र नैतिकता, मानवतावाद, लोकतांत्रिक समाजवाद की दिशा में बढ़े तो यह बेहतर दिशा में सामाजिक परिवर्तन है।

धर्म-दर्शन- धर्म मानवता की भलाई के लिए बना था, किन्तु धर्म के नाम पर कितने युद्ध हुए खुन की नदियां बही, इससे हम अनभिज्ञ नहीं है। धर्म-दर्शन धार्मिक तथ्यों का विष्लेशण कर विभिन्न धर्मों के बीच समन्वय करने का प्रयास करता है, ताकि संसार के सभी धार्मिक व्यक्तियों के बीच आत्मीयता एवं बंधुत्व की भावना का सृजन हो। वैसे देखा जाए तो सभी धर्मों का लक्ष्य है सत्य की प्राप्ति। अन्तर सिर्फ साधन-पक्ष एवं क्रिया-पद्धति को लेकर ही परिलक्षित होता है। वस्तुतः धर्म-दर्शन, धर्म को वैज्ञानिक एवं बौद्धिक आधार पर मजबूत बनाने का प्रयास करता है। यह दर्शनशास्त्र की एक शाखा है। डॉ0 रमेन्द्र अपनी पुस्तक में कुछ प्रश्नों को शामिल करते हैं- "धर्म क्या है? विभिन्न धर्मों की सामाजिक मान्यताएँ क्या है? धर्म का आधार क्या है? विभिन्न धर्मों की सामाजिक मान्यताएँ कहाँ तक सत्य है? विभिन्न धर्मों में क्या समानताएँ है और उनमें क्या अंतर है? क्या विभिन्न धर्मों के बीच सामंजस्य स्थापित कर पाना संभव है? धर्म-दर्शन के अंतर्गत इन और ऐसे ही अन्य प्रश्नों का उत्तर ढूँढा जाता है।"[15] आमतौर से विभिन्न धर्मावलम्बियों की अपने-अपने धर्म में आस्था रहती है। वे अपने धर्म की बुनियादी मान्यताओं के बारे में तार्किक दृष्टि से सोच भी नहीं पाते हैं, बल्कि कई बार ऐसा करना उनकी कल्पना से भी परे होता है। दार्शनिक विधि से धर्मों का अध्ययन-अध्यापन कर धार्मिक अंधविश्वासों से मुक्ति दिलाना दार्शनिकों का कर्त्तव्य है। इस तरह धर्मनिरपेक्षीकरण की दिशा में सहायक बन सकते हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र 'सामाजिक परिवर्तन में दर्शन की भूमिका' का उद्देश्य निम्न है, जो इसप्रकार है।

1. अपने शेध पत्र के माध्यम से प्रयास किया है कि सामाजिक परिवर्तन प्रकृति एवं संस्कृति दिशा में हो।
2. वर्तमान परिवेश में सामाजिक परिवर्तन हेतु आधुनिक क्रान्तिकारी विचारधारा से साकारात्मक पहल करना।
3. मानवीय मूल्य की गरिमा को बनाए रखते हुये, व्यक्ति-निर्माण से विश्व-निर्माण के पथ पर अग्रसर होना।

निष्कर्ष

परिवर्तन प्रकृति का शाष्वत नियम है हम चाहे या न चाहे बदलाव अवश्यंभावी है। बदलाव होगी है तब नई पीढ़ी एवं पुरानी पीढ़ी में टकराव होना भी स्वभाविक है। इतिहास गवाह है, नई पीढ़ी का पुरानी पीढ़ी से टकराव में जीत हमेशा नई पीढ़ी का ही होता है। यदि नई पीढ़ियों में नैतिक मूल्यों को नहीं डाला गया, तो विचारने की बात है कि बदलाव किस दिशा में होगी। अटल बिहारी वाजपेयी के शब्दों में- आज हम मंगल पर चरण चिन्ह अंकित कर दिये किन्तु क्या हमारे जीवन में मंगल है? दर्शन इसी जीवन रूपी मंगल को बनाएं रखने में प्रयासरत है। दर्शन का उद्देश्य ही है सत्य की खोज करना और उस सत्य से समाज को अवगत कराना। तर्क एवं बुद्धि की कसौटी पर सत्यान्वेशण दर्शन के मूल में है।

हमने देखा है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण नैतिकता पर आधारित होता है जो एक दार्शनिक ज्ञान है। यदि समाज में अनैतिकता और विकृति का बोलबाला है तो वहाँ दार्शनिक ज्ञान का अभाव समझा जाना चाहिए। परन्तु यदि समाज नैतिक तथा सुसंस्कृत है तो वहाँ दर्शन का प्रभाव होता है। अतः दर्शन तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, समाजदर्शन, राजनीतिदर्शन एवं धर्म-दर्शन नामक विभिन्न शाखाओं की मदद से सामाजिक परिवर्तन की दिशा तय करते हुये नैतिक और सुसंस्कृत समाज के निर्माण में भी अपनी अहम् भूमिका सिद्ध करता है।

संदर्भ सूची

1. www.bachelorandmaster.com 'The Second Sex by Simone de Beauvoir- bachelorandmaster.com.
2. www.pravakta.com> समाज लोकनायक जयप्रकाश नारायण pravakta.com
3. सिन्हा, इन्द्रदेव नारायण (संपा0), 2015, 'दार्शनिक अनुगूज,' ISSN: 0975-2749, वर्ष-9, जनवरी-जून, अंक-1, पृष्ठ-16.
4. वही, पृष्ठ-16.
5. चौधरी, एस0 के0, 'सिविल सर्विसेज प्रारंभिक परीक्षा समाजशास्त्र', उपकार प्रकाशन, आगरा-2, पृष्ठ-406
6. Green, A.W, Sociology, Page-615, उद्धृत : 'दार्शनिक अनुगूंज' नारायण, इन्द्रदेव (संपा0), 2015, दार्शनिक अनुगूंज, जनवरी-जून, वर्ष-9, अंक-1 पृष्ठ-68.
7. Johnson, Harry M, 1978, 'Sociology: A systematic Instroduction' (New Delhi: Allied Publisher Pvt. Ltd.) Page- 626.
8. Joad, Cyril Edwin Michinson, 1935, 'Return to philosophy', London: Faber & Faber, Page-141-2
9. वर्मा, अशोक कुमार, 2008, 'वैज्ञानिक प्रविधि एवं तर्कशास्त्र', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृष्ठ-03
10. शुक्ल, संजय कुमार, 2010, 'दार्शनिक चिंतन के विविध आयाम', सत्यम पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, पृष्ठ-147
11. चौरसिया, एम0 पी0, 2006, 'अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र', मोतीलाल बनारसीदास, पटना, पृष्ठ-03-04
12. कुमार, रज्जन, 2012, 'पर्यावरणीय नैतिक सचेतना एक वैज्ञानिक अनुशीलन', उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृष्ठ-03
13. शुक्ल, संजय कुमार, 2010, 'दार्शनिक चिंतन के विविध आयाम', सत्यम पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ-159.
14. सिंह, शैल कुमारी, 2015, 'समाजदर्शन एवं राजनीति दर्शन की मूल अवधारणाएँ', जानकी प्रकाशन, पटना, पृष्ठ-ix
15. रमेन्द्र, 2006, 'धर्म-दर्शन सामान्य एवं तुलनात्मक', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली पृष्ठ-07

बालक के विकास में वातावरण का प्रभाव

डॉ० शोभा कुमारी

सहायक प्राध्यापिका, गृहविज्ञान विभाग, जे. एल. एन. एम. कॉलेज, सुरसण्ड, सीतामढ़ी, बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सामान्यतया बालकों का विकास एक समान नहीं होता है। कोई स्वस्थ होता है तो कोई अस्वस्थ, कोई शान्त स्वभाव का होता है तो कोई स्वभाव से अशान्त और चिड़चिड़ा होता है। निस्सन्देह बालक के स्वास्थ्य का उसके शारीरिक और मानसिक विकास से गहरा सम्बन्ध होता है, जिस पर वातावरण का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

'वातावरण' से अभिप्राय 'व्यक्ति के चारों ओर जो कुछ भी है' उससे है। वातावरण को पर्यावरण से भी संज्ञापित किया जाता है। इसके लिए आंग्ल भाषा में 'Environment' शब्द प्रचलित है।

बोरिंग, लैंगफील्ड तथा वेल्ड (Boring, Langfeld & Weld, 1962) के अनुसार, ''जीन्स के अतिरिक्त व्यक्ति को प्रभावित करने वाली वस्तु वातावरण है। एक व्यक्ति के वातावरण से तात्पर्य उन सभी उद्दीपकों के योग से है, जिन्हें वह जन्म से मृत्यु तक ग्रहण करता है।[1] (The environment is everything that effects the individual except his genes-a person's environment consists of the sum total of the stimulation which he receives from his conception until his death.)

बालक का शारीरिक और मानसिक विकास उन सभी बाहरी शक्तियों एवं परिस्थितियों से प्रभावित होता है, जो वातावरण में शामिल होती हैं। बालक का शारीरिक और मानसिक विकास भौतिक और मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार के वातावरण से प्रभावित होता है।

वातावरण के प्रभाव के मूल्यांकन के प्रयास अनेक मनोवैज्ञानिकों ने किये हैं। फ्रीमैन (Freeman et. al. 1928) को अपने एक अध्ययन में 671 बालकों को चुना, जिसमें 401 बच्चे वह थे, जो गोद लिए हुए परिवारों से थे। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह मालूम करना था कि क्या वातावरण की विशेषताएँ बुद्धि को प्रभावित करती हैं। इस अध्ययन के कुछ प्रमुख परिणाम निम्न प्रकार से हैं-(1) गरीब परिवार में पलनेवाले सहोदरों (Siblings) की I.Q. 86 तथा सम्पन्न परिवारों में पलनेवाले सहोदरों की I.Q. 95 थी। (2) उन गोद लिए बच्चों को बुद्धि में अधिक सुधार हुआ, जो पोष्य घरों (Foster Homes) में पाये गये। गरीब पोष्य घरों की अपेक्षा धनी पोष्य घरों के बालकों की बुद्धि में अत्यधिक वृद्धि हुई है। (3) जिन बच्चों का पालन-पोषण साथ-साथ हुआ था, उनकी बुद्धि में अधिक समानता थी तथा जिनका पालन-पोषण अलग-अलग घरों में हुआ था, उनकी बुद्धि में समानता कम थी। (4) उन असम्बन्धी (Unrelated) बालकों की बुद्धि में भी समानता थी, जो एक साथ पाले गये थे।[2]

फ्रीमैन के समान बर्क्स (B.S. Barks, 1928) ने भी अध्ययन किया है। इनके अध्ययन के प्रयोगात्मक समूह में 214 पोष्य बालक (Foster Children) थे तथा नियंत्रित समूह में 105 बालक थे। इस समूह के बालक अपने माता-पिता के पास ही निवास कर रहे थे। इस अध्ययन का उद्देश्य बालकों और उनके माता-पिता की मानसिक समानताओं का अध्ययन करना था। इस अध्ययन के कुछ परिणाम निम्न प्रकार से थे-(1) वातावरण के प्रभाव के कारण I.Q. में अधिक से अधिक 20 I.Q. की वृद्धि होती है। (2) बालकों के घर का वातावरण उनकी बुद्धि को लगभग 25 प्रतिशत प्रभावित करता है। (3) वातावरण को देखते हुए वंशानुक्रम का योगदान लगभग 75 से 80 प्रतिशत तक होता है।[3]

वातावरण के प्रभाव को जानने के लिए कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण अध्ययन भी हुए हैं, इनमें एक अध्ययन स्कोडक (M. Skodak, 1939) द्वारा किया गया। इनके अध्ययन में 150 अवैध बालक चुने गये, जिनकी औसत आयु 3 माह तथा जिन्हें 6 माह की अवस्था से पहले गोद ले लिया गया था। इन बालकों की माताओं की औसत I.Q. 80 थी। यह बालक पोष्य घरों में दो वर्ष तक रखे गये। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला कि बालकों की बुद्धि वातावरण से महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित होती है।[4]

कतिपय मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अलग-अलग अध्ययनों में यह पाया गया कि निर्धन परिवारों में पलनेवाले बालकों के स्वास्थ्य तथा सामान्य ज्ञान को प्रायः अपर्याप्त निद्रा, अत्यधिक भीड़भाड़, विद्यालय-समय के उपरान्त अन्यत्र नौकरी करने, घर के निम्न स्तर के बौद्धिक वातावरण, पुस्तकों के अभाव आदि से हानि पहुँचती है।

कई ऐसे वातावरणीय कारक भी होते हैं, जिनका बालकों के व्यक्तित्व पर स्थायी प्रभाव पड़ता है तथा इसका प्रदर्शन उसी रूप में होगा जिस रूप में बालक अपनी योग्यता का प्रदर्शन करता है, जिसका मुख्य कारण सीखने के प्रभाव से उनमें क्या इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं तथा वे मध्यम वर्ग के किन आदर्शों को मानते हैं? जिस घर में केवल एक ही बच्चा है तथा उसकी बुद्धि-लब्धि अधिक होने का यह कारण हो सकता है, माता बालक के व्यक्तित्व पर अधिक ध्यान देती है। यदि उसके और अधिक बालक होते तो वह उस दशा में इतना ध्यान नहीं दे पाती तथा यह तथ्य बुद्धि-लब्धि को प्रभावित करता है। संभवतः अत्यधिक संरक्षण तथा अत्यधिक उपेक्षा करने का भी यह परिणाम हो सकता है कि बालक में अधिक उपलब्धि प्राप्त करने की इच्छा जाग्रत कर दी जाय। उनमें यह भावना भी कार्य करती है कि उसकी उपलब्धि अच्छी नहीं होगी तो माता-पिता रुष्ट हो जायेंगे। संवेगात्मक पृथक्कीकरण उल्टे रूप में कार्य करता

है। बालक के निष्पादन में उद्दीपन तथा अभिरुचि का अभाव बुद्धि-लब्धि के परीक्षण के प्राप्तांकों में न्यूनता लाता है। इस बात के भी प्रमाण मिले हैं कि बुद्धि पर पोषक तत्त्वों का भी प्रभाव पड़ता है।5

निष्कर्ष

यह कहा जा सकता है कि बालक के शारीरिक एवं मानसिक विकास में वातावरण का प्राय: अधिक प्रभाव होता है।

संदर्भ सूची

1. बाल मनोविज्ञान : बाल विकास, डॉ. डी.एन. श्रीवास्तव, डॉ. प्रीति वर्मा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ.-68
2. वही, पृ.-69
3. वही, पृ.-69
4. वही, पृ.-70
5. मातृकला एवं शिशु कल्याण, डॉ. जी.पी. शैरी, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृ.-156-157

केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में प्रकृति चित्रण

डॉ० हरिश्चन्द्र अग्रहरि

अतिथि विद्वान (हिन्दी), शासकीय महाविद्यालय, जैतवारा, सतना (म.प्र.)

हिन्दी साहित्य के रचनाकारों ने अपनी काव्य सृजना में जीवन जगत के बहुविध चित्रों को उकेरने के साथ-साथ प्राकृतिक सुषमा के बिम्ब भी बिम्बित किये है। महा कवि भक्ति काव्य के भक्त और संत कवि तो प्रकृति में रम कर ही ब्रह्म सत्ता से साक्षात्कार करते आये है। सेनापति का प्रकृति चित्रण भी हिन्दी काव्य जगत में अद्वितीय बना हुआ है। महाकवि बिहारी का श्रृंगार वर्णन प्रकति की छत्र्-छाया में है। महाकवि निराला, महादेवी वर्मा की कविता में भी प्रकृति की अनुपम छटायें अंकित है। महाकवि पंत तो प्रकृति के चितेरे कवि ही कहे जाते है।

केन नदी के किनारे का कवि केदारनाथ अग्रवाल भी अपनी कविता में प्रकृति, नया समुद्र, नये घन-जन, नारी सौन्दर्य को चित्रित करते है। उनकी कविता में कृषि और किसान के साथ प्रकृति का सौन्दर्य भरा पड़ा है। आधुनिक हिन्दी प्रगतिशील विचारधारा के कवि केदारनाथ अग्रवाल ने प्रकृति नटी का श्रृंगार बड़ी तन्मयता से किया है। कवि अपने आसपास जो देखता है उससे प्रभावित होता है। कवि सृजनशील, सामाजिक प्राणी होता है, जो समाज में रहकर अपनी कलम चलाता हैं ऐसे श्रेष्ठ, जेष्ठ कवियों में केदारनाथ अग्रवाल जी का नाम शीर्ष स्थान पर बना हुआ है।

केदारनाथ अग्रवाल ग्राम जीवन से हमेशा जुड़े रहे है इसीलिए उनकी कविता में ग्रामीण चेतना उभरकर आयी है। केदारनाथ जी ने सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक समस्या को गहरायी से अनुभव कर, अपनी कविता में स्थापित किया है। लेखक ने गहन अध्ययन कर, अज्ञात तथ्यों को भी उद्घाटित किया है।

कवि केदारनाथ ने अपने काव्य में ग्रामीण शब्द के विविध अर्थोसहित स्वरूपगत् विचार किया है। प्राकृतिक, चेतना, सामाजिक चेतना, राजनीतिक चेतना, आर्थिक चेतना, और धार्मिक तथा सांस्कृतिक चेतना आदि पर गहरी अनुभूति के साथ अपनी अभिव्यक्ति प्रदान की है। केदारनाथ अग्रवाल की कविता में प्रगतिशील चेतना की अवधारणाएँ और सामाजिक यथार्थ की दृष्टि, समसामयिक चेतना, राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय भाव धारा, शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति और शोषकों के प्रति घृणा, क्रान्ति और परिवर्तन में विश्वास आदि का विस्तार से चित्रण किया गया है। इसी के साथ उनकी कविता में व्यक्त प्राकृतिक सौन्दर्य को भी अभिव्यक्ति मिली है। नदी, धूप, खेत, खलिहान, धान, बादल, फूल, पेड़ पौधे, पशु-पक्षी, हवा, चांद, सूरज, पहाड़, ऋतुएँ आदि के आधार पर उन्होंने प्रकृति के असीम सौन्दर्य को कविता में वाणी दी है।

केदारनाथ अग्रवाल जी का जन्म 1 अप्रैल 1911 को बांदा जिला के बवेरू तहसील के 'कमासिन' नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता कुशल वैद्य थे। इसी के साथ वे साहित्य रूचि से परिपूर्ण काव्य सृजन में भी संलग्न रहते थे। काव्य गोष्ठियों में जाना और अपने मित्रों से साहित्य पर चर्चा करना उनकी आदत थी, जिसका प्रभाव केदार जी पर काफी पड़ा। इन्ही गोष्ठियों में उनकी भेंट सुभ्रदाकुमारी चौहान से, महाप्राण निराला से मुलाकात में हुई। इन्हीं के सम्पर्क में आने के कारण आपकी काव्य सृजन प्रेरणा जाग्रत हुई। आगे चलकर बच्चन जी, शमशेर जी, नरेन्द्र शर्मा आदि से मित्रता हुई, जो आजन्म बनी रही। बाद में उनके शैक्षणिक जीवन में ही ब्रजभाषा और खड़ी बोली का प्रभाव उनके अन्तर्गमन/जीवन पर पड़ता रहा। इनकी अप्रतिम काव्य प्रतिभा से प्रभावित होकर विख्यात आलोचक डॉ. नामवर सिंह जी ने लिखा-'डॉ. रामविलास शर्मा और बाबू केदारनाथ की जोड़ी मुझे मार्क्स व एंगेल्स की जोड़ी की याद दिलाती है।'[1] केदारनाथ अग्रवाल जी ने अपने ग्रह गांव बांदा आने पर अपनी कविता में जनकवि नागार्जुन के भावों को भी प्रस्तुत किया है। नागार्जुन और केदार बाबू दोनो की वैचारिक पृष्ठभूमि एक सी ही रही है। दोनों ने प्रगतिशीलता एवं प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण समान रूप से किया है। केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिशील काव्य धारा के प्रमुख कवि है। वस्तुतः वे एक ऐसे साहित्यकार है, जिनके जीवन, व्यक्तित्व, परिवेश और सृजन को परस्पर अलग कर पाना प्रायः असम्भव है। उन पर मार्क्सवाद का काफी प्रभाव पड़ा है। उन्हीं विचारों के आधार पर उन्होंने अपनी कविता में समता, स्वातंत्र्य तथा बन्धुभाव को प्रतिष्ठा दी। आरम्भ में उनकी रोमानी, सौन्दर्यवादी थी, किन्तु धीरे-धीरे इन विचारों में परिवर्तन हुआ और वे पूरी तरह से मानवतावादी, प्रगतिवादी कवि की श्रेणी में प्रतिष्ठित हुए। केदारनाथ अग्रवाल का व्यक्तित्व निश्छल, स्वस्थ एवं उदात्त है इसी कारण उनकी कविता में कहीं भी किसी प्रकार का आडम्बर, भेदभाव, छलकपट आदि के पूर्वाग्रह नही है। वे अपने आप में एकमेव है। उनके व्यक्तित्व के संबंध में मुंशी फयाजुद्दीन साहब के शब्द इस तरह है-'केदारनाथ अग्रवाल ओरीजनल हैं, जिनकी टू कापी नहीं हो सकती है।

वे अंतिम समय तक साहित्य सृजन करते रहे। उनकी कविता हिन्दी जगत को अक्षय निधि है। उन्हें अपने सृजन संसार पर बड़े-बड़े पुरस्कार प्राप्त हुये जिनमें सोवियत लैंड् नेहरू पुरस्कार, उत्तरप्रदेश हिन्दीं संस्थान लखनऊ का विशिष्ट पुरस्कार, अपूर्वा पर साहित्य अकादमी का सम्मान, मध्यप्रदेश साहित्य परिषद भोपाल का तुलसी सम्मान, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा 'साहित्य वाचस्पति' उपाधि, मध्यप्रदेश साहित्य परिषद, भोपाल का मैथिलीशरण गुप्त सम्मान मिला। आपकी काव्य प्रतिभा से प्रभावित होकर बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी द्वारा डी.लिट. उपाधि भी प्रदान की गई।

आपके द्वारा सृजित रचनाओं में 'नींद के बादल, युग की गंगा, लोक और आलोक, फूल नहीं रंग बोलते है, आग का आईना, गुलमेंहदी, आधुनिक कवि, पंख और पतवार, हे मेरी तुम, मार प्यार की थापें, कहें केदार खरी-खरी, अपूर्वा, जमुन जल तुम, बोले बोल अबोल, जो शिलाएँ तोड़ते है, आत्मगंध, अनहारी हरियाली, खुली आंखे खुले डैने, पुष्पदीप, बसन्त में प्रसन्न हुई पृथ्वी आदि के साथ अनुवाद साहित्य, उपन्यास, निबन्ध, यात्रा साहित्य आदि।

सृष्टि के आरम्भ से ही प्रकृति और मानव का अभिन्न सम्बन्ध रहा है। सहृदय रचनाकारों को प्रकृति में एक विलक्षण सौन्दर्य के दर्शन होते रहे हैं। निश्चित रूप से उस सौन्दर्य का प्रभाव उनके मन पर भी पड़ता आया है। मानव का मूल स्वभाव सौन्दर्य के प्रति जिज्ञासु और आकर्षक रहा है। उससे भी आगे मानव का जीवन प्रकृति की कोख में अधिक बीता है। प्रकृति ही मानव को सजाती एवं संवारती है, कहना उचित होगा। जल से प्यास बुझती, मीठे फल से भूख मिटती और वायु से मानव जीवन में प्राण स्पंदन होता है। आशय यह है प्रकृति का प्रत्येक तत्व मानव जाति के लिए अद्‌भुत वरदान लेकर हमारे सामने है। मिट्‌टी, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नदी-झरना, बाग-फूल, पहाड़-पत्थर, सूरज-धूप आदि तत्वों का अपना विशिष्टि सौन्दर्य होता है। जिसका प्रभाव मानव मन पर स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है। डॉ. बारे लाल जैन की ये काव्य पंक्तियाँ प्रकृति सौन्दर्य के प्रति विशिष्ट सी लगती है-

'पंचतत्व का जो करे, जीवन में सम्मान।
उसके हृद्र-संसार में, दधि सुत अरु दिनमान।।[2]

हिन्दी साहित्य के रचनाकारों ने 'प्रकृति सौन्दर्य को सहचरी रूप में देखते हुए कभी आलम्बन, कभी उद्‌दीपन तो संवेदनात्मक, रहस्यात्मक, प्रतीकात्मक, अलंकार योजना, मानवीकरण, लोकशिक्षा, दूती रूप में चित्रण किया है।'[3] प्रकृति के चितेरे केदारनाथ अग्रवाल ने भी अपने रचना संसार में प्रकृति चित्रण को प्रभावी भूमिका प्रदान की है। प्रकृति के प्रत्येक तत्व से उनका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सम्बन्ध गहरा रहा है। इस दृष्टि से देखा जाय तो कवि केदार जी के काव्य में ग्रामीण सम्वेदना, भावनाएं एवं प्रकृति की सुंदरता के जो सजीव चित्रण हुए है वे वन्दनीय हैं। चाहे वह नदी हो या पहाड़, पशु हो या पंछी, पेड़ हो या पौधा, सूरज हो या संध्या सभी का चित्रण करने में कवि सिद्धहस्त दिखलाई देता है। खेत-खलिहानों का वास्तविक उल्लास, फसलों का मनोहरी रूप उनके काव्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। कवि ने जीवनपर्यंत कुल मिलाकर बाईस काव्य संकलन लिखे, जिसमें एक भी संकलन ऐसा नहीं मिलेगा, जिसमें प्रकृति का चित्रण न किया गया हो। पत्नी (स्व. पार्वती देवी) के पश्चात प्रकति ही उनके काव्य का मूलाधार रही है। प्रकृति का नैसर्गिक सौन्दर्य अंकित करना उनके काव्य का प्रथम उद्‌देश्य है। कवि जब भी दैनिक कार्य से मुक्त होता है तो वह प्रकृति के सानिध्य में चला जाता है मानों प्रकृति उनको अपनी ओर खींचती है। 'केन' नदी का परिसर उनको अधिक प्रिय है। वहीं पर बैठकर उन्होंने अधिकांश रचनाएं लिखी। साथ ही फूल, पेड़ और पशुओं से उनका लगाव रहा है। फूलों में गुलाब, पेड़ो में बबूल, अशोक, नीम, पशु-पक्षियों में कुत्ता, बैल, घोड़ा, गिलहरी, चिडिया, कबूतर आदि को उनके व्यक्तित्व से अलग नहीं किया जा सकता। इनके साथ बिताए क्षणों का और उनकी सुन्दरता का वर्णन वे मार्मिक शैली में करते है। वस्तुतः कवि साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित होते हुए भी प्रकृति धारा में बहता रहता है। मानों उनका यह संदेश हो की प्रकृति हमारी चिरसंगनी है। प्रकृति हमें जीवन वरदायनी है। केदारनाथ अग्रवाल जी ने अपनी कविता में प्रकृति का सूक्ष्म चित्रण किया है। जब वे नदी किनारे बैठते है तो उन्हें अनुभूत होता है और वे उसी को मार्मिक अभिव्यक्ति देते है। उन्हें नदी कभी नौजवान ढीठ लड़की दिखलाई देती है जो अपनी सुन्दरता से सबको मोहित करती है-

'नदी एक नौजवान ढीठ लड़की है
जो पहाड़ से मैदान में आयी है।
जिसने बला की सुदरता पायी है।[4]

खेत खलिहान, पहाड़, फूल, पशु-पक्षी, सूरज, चांद के साथ-साथ झरने, नदी भी प्रकृति की सुन्दरतम इकाई है। ऐसा कौन है जो प्रकृति प्रेमी हो, प्रकृति सौन्दर्य प्रेमी हो और धार से बहती हुई नदी उसे प्रभावित न करे। केदारनाथ जी ने नदी का मानवीय सम्बन्ध आधार बनाकर जो चित्रण किया है वह अद्‌भुत है-

मायके से आई
दूर देश की बेटी नदी।
शहर के बाहर
शिलाओं की ससुराल में पड़ी।
लहँरा लहरायें
लहरे लेती हैं।।[5]

कवि ने इसी तरह अपनी कविता में धूप का वर्णन भी किया है। संध्या, प्रातः, दोपहर, पूस, माघ, जेठ, वैशाख, गरमी-सरदी सभी समयों की धूप का मनोहारी चित्रण अपने रचना संसार में किया है। साथ ही साथ प्रकृति का लोकतंत्र में धूप के दर्शन से कवि स्वयं भी आनन्दित हो उठता है। और यदि धूप नही आयी तो केदार जी को प्रकृति नीरस लगती है-

'सुबह हुई
पर धूप न निकली
नभ का गुम्बद चमक न पाया
बैठा रहा विपन्न मूड़ सा।।[6]

इसी तरह केदारनाथ अग्रवाल जी काव्य में प्रकति का किसानी रूप चित्रित है खेत उन्हें प्रभावित करते है। उनके हृदय का उल्लास गांव और गांव के खेतों को देखने से बढ़ जाता है। फसलों का मनोहारी रूप उनकी काव्य संवेदना का अंग बन जाता है। खेत के हलवाही कृषक का एक बिम्ब देखे-

'मेरे खेते में हल चलता है
फाड़ कलेजा गड़ जाता है।
तड़-तड़ धरती तड़काता है
राह बनाता बढ़ जाता है।।'[7]

कवि की कविता में फसलों का चिताकर्षक चित्रण हुआ है। गेहूँ हो, धान हो। इसी फसल के खेत में सरसों पर खिले फूल रचनाकार को नववधू जैसी दिखती है जो हाथ पीले कर विवाह मण्डप में पधारी है। इसका एक दृश्य देखते ही बनता है-

'और सरसों की न पूछों
हो गई है सबसे सयानी
हाथ पीले कर लिये है
व्याह मण्डप में पधारी।।'[8]

इसी तरह भारतीय संस्कृति में फूलों का महत्व बना हुआ है। कमल भारत का राष्ट्रीय फूल है। वह शांति, अहिंसा और सत्य का भी प्रतीक है। वे लिखते है-

'यही कहूँगा
क्षण प्रतिक्षण मैं यही कहूँगा
जीत लिया सबको फूलों ने
सबके सिर पर फूल चढ़े है।'

इसी तरह कवि अग्रवाल जी को गुलाब का फूल भी बहुत सुहाता है उन्हें मंत्रमुग्ध भी करता है। उन्हें चेतनाशील भी बनाता है। वे लिखते है-

गुलाब के फूल
चुनता हूँ मैं
काव्य की सृष्टि में
अमर रहने के लिए।'[9]

इस तरह कवि को गुलमोहर भी अच्छा लगता है। उन्हें यह बहुत सालता है कि माली प्रकति के इन सुन्दर फूलों की डालों को कैंची से कतरता रहता है। अर्थात् उन्हें यह लगता है कि कोई निर्दयी उनके ही हांथ-पांव काट रहा है। यहाँ कवि प्रकृति के माध्यम से पर्यावरण को संरक्षित करने का संदेश देता है। कवि की कविता में बादल, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, हवा, सूरज, चांद, पहाड़ भी शामिल है। धरती उनके लिए पूरा जीवन है। मातृभूमि है। कर्मभूमि है। धरती माता है और हम उसके पुत्र। कवि को ऋतुएँ भी प्रिय है। उनका वर्णन करते हुए उन्हें वसंत ऋतु बहुत भाती है। वे वसंत को यार भी कहते है-

'मेरा यार वसंत
तुम भी आ गए,
मेरा यार वसंत
जेल से निकल आये बन्दियों के स्वागार्थ
पहनाने को उन्हें अपना पुष्पहार
खुशनुमा खुशुबूदार।'[10]

इस तरह केदारनाथ अग्रवाल जी का व्यक्तित्व जितना व्यापक और प्रभावी है। उनका रचना संसार उतना ही बहुआयामी। सौन्दर्य बोध और ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण के साथ नारी और प्रकृति सौन्दर्य उनका असाधारण प्रयत्न है। वे मूलतः प्रकृति सौन्दर्य से प्रेरित कवि है।

संदर्भ सूची

1. केदारनाथ अग्रवाल काव्य में ग्रामीण चेतना, डॉ. डी. जी. रानभरे, पराग प्रकाशन, कानपुर, 2015
2. समय के दोहे, डायरी, डॉ. बारेलाल जैन

3. आधुनिक हिन्दी के प्रतिनिधि कवि, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1977
4. फूल नही रंग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1965
5. अपूर्वा, केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1984
6. अनहारी हरियाली, केदारनाथ अग्रवाल, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, 1990
7. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, 1978
8. आत्मगंध, केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1988
9. पंख और पतवार, केदारनाथ अग्रवाल, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, 1979

(Footnotes)

1. केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में प्रगतिशील चेतना कु. प्रज्ञा शर्मा, पृ. 26
2. समय के दोहे, डायरी, डॉ. बारेलाल जैन, पृ. 09
3. आधुनिक हिन्दी के प्रतिनिधि कवि, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृ. 280
4. फूल नही रंग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 122
5. अपूर्वा, केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 36
6. अनहारी हरियाली, केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 107
7. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 67,
8. फूल नही रंग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 17
9. आत्मगंध, केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 17
10. पंख और पतवार, केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 164, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, 1979

कोविड लॉकडाउन, टेलीविजन कार्टून और बच्चे

राखी गौरवम एवं अनिंद्य देब

मिडिया एवं जनसंचार विभाग, दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया

सारांश

कोरोना जनित विश्वव्यापी लॉक डाउन में लोग अपने घरों में बंद थे। इस समय टेलीविजन ही मनोरंजन का महत्वपूर्ण स्त्रोत था। बच्चे टेलीविजन के एक विशेष दर्शक हैं। टेलीविजन पर इस वर्ग के दर्शक के लिए दिन भर कार्टून प्रोग्राम दिखाए जाते हैं। लॉक डाउन के समय बच्चों के स्कूल बंद थे और घर के बाहर जा कर खेलना भी बंद था। ऐसे में बच्चे ज्यादातर समय टीवी पर पसंदीदा कार्टून देख रहे थे। इस शोध पत्रा का उद्देश्य यह पता लगाना है कि ५ महीने से ज्यादा चले लॉक डाउन के दौरान ज्यादा टीवी कार्टून देखने से बच्चों पर किस प्रकार के प्रभाव पद रहे हैं।

कुंजी शब्दः टीवी कार्टून, बच्चे, कोरोना वायरस, लॉक डाउन

शोध परिचय

पूरी दुनिया एक अदृश्य, घातक शत्रु का सामना कर रही है। सभी मुल्कों की सरकारें यह समझने की कोशिश कर रही है कि कोरोना वायरस द्वारा उत्पन्न खतरेके साथ कैसे जीना है। पिछले दिसम्बर तक लोग सिर्फ इस महामारी के उद्‌भव के बारे में जान रहे थे। तीन माह के भीतर इसने एक वैश्विक महामारी का रूप ले लिया। विश्व स्वस्थ्य संगठन ने ११ मार्च २०२० को इसे एक सर्वव्यापी महामारी करार दिया। दुनिया के अधिकांश देशों में लॉक डाउन की घोषणा हो गई। लोगों ने सोशल डिस्टेंस (सामाजिक दूरी) और लॉक डाउन जैसे शब्द जीवन में पहली बार सुने। इस बीमारी से बचने का तत्काल एक मात्रा उपाय सुझाया गया, अपने घरों में बंद रहिये। इस बीमारी की भयावहता को देखते हुए भारत सरकार ने सभी शैक्षणिक संस्थानों को १६ मार्च २०२० को तत्काल प्रभाव से बंद करने का आदेश जरी किया। इस आदेश के साथ ही बच्चों का स्कूल जाना बंद हो गया जो अभी तक जारी है। २२ मार्च २०२० को माननीय प्रधान मंत्री ने जनता कर्फ्यू का आह्वाहन किया। २४ घंटे के लिए सड़कें सुनी हो गयीं, रेल बंद हो गए और सबकुछ थम सा गया। २४ मार्च २०२० को राष्ट्रीय चौनल दूरदर्शन से माननीय प्रधान मंत्री जी ने भारत में देश व्यापी लॉक डाउन की घोषणा कर दी। कोरोना संक्रमण को रोकने के लिए दुनियां के दूसरे देश भी लॉक डाउन का पालन कर रहे थे। भारत में आवश्यक सेवाओं को छोड़कर सबकुछ बंद हो गया।

बच्चे बड़े सभी घरों के भीतर कैद हो गए, जो आवश्यक था। ऐसे में टेलीविजन मनोरंजन और समय बिताने का एक महत्वपूर्ण साधन बना। भारत के राष्ट्रीय चौनल दूरदर्शन पर रामायण और महाभारत जैसे धार्मिक धारावाहिकों को पुनः प्रसारित किया गया और दर्शकों ने इसे खूब सराहा भी। टीवी दर्शकों का एक विशेष वर्ग बच्चे हैं, लॉक डाउन की स्थिति में जब स्कूल, पार्क, बाजार, खेल के मैदान सब बंद थे, लोग अपने पड़ोसियों से भी नहीं मिल रहे थे तब बच्चे खूब टीवी कार्टून देख रहे थे। कार्टून बच्चों के बीच सबसे लोकप्रिय मनोरंजन का साधन है. टीवी पर अनवरत कार्टून कार्यक्रम का प्रसारण चलता रहता है. एक ही एपिसोड तो कई बार दिखाया जाता है. सोफे पर बैठकर कार्टून देखने से अच्छा है कि बाहर जाकर खेला जाए जिससे कुछ फायदा हो, लेकिन कोरोना काल में घर से बाहर निकल कर खेलना बिलकुल असंभव रहा।

टेलीविजन पर दिखाए जाने वाला कार्टून अपने आप में एक अलग संसार है, और बच्चें इसके दीवाने हैं। बच्चों को टेलीविजन कार्टून से रूबरू कराने में उनके माता-पिता का भी बहुत बड़ा योगदान है। एकल परिवार के अन्दर भाग दौड़ भरी जिंदगी में माता पिता को कार्टून कार्यक्रम मुफ्त के बेबी- सिटर की तरह दिखता है। लॉक डाउन में जहाँ माता पिता वर्क फ्रॉम होम में व्यस्त रहे वहां टेलीविजन ही एक विकल्प था, बच्चों को व्यस्त रखने के लिए। तोतली जुबान में जब दूध की बोतल पकड़े बच्चे कार्टून कार्यक्रमों की तरह गिट-पिट करते हैं तब तो यह आकर्षक लगता है।परन्तु इसके कुप्रभाव बच्चों के कोमल हृदय को धीरे-धीरे दूषित करते हैं। इस शोध पत्रका उद्देश्य यह पता लगाना था कि, कोरोना लॉक डाउन के समय, पटना शहर के स्कूल जाने वाले बच्चे टेलीविजन कार्टून से किस प्रकार प्रभावित हो रहे थे।

शोध प्राविधि

कोरोना काल में लॉक डाउन के दौरान बच्चे टीवी कार्टून देखने में ज्यादा समय बिता रहे थे। टीवी कार्टून पर ज्यादा समय व्यतीतकरने से बच्चों पर क्या असर पड सकता है, इस विषय पर माता पिता की राय एकत्रित करने के लिए पटना शहर में ऑनलाइन सर्वेक्षण किया गया। सर्वेक्षण करने के लिए, गूगल

फॉर्म पर एक द्विभाषी (अंग्रेजी और हिंदी) ऑनलाइन प्रश्नावली तैयार की गईथी। गूगल फॉर्म प्रश्नावली का लिंक व्हाट्सएप के माध्यम से शोधकर्ता के संपर्कों को भेजा गया, और उनसे कहा गया की पटना शहर में रहने वाले ऐसे अभिवावकों को भी वे इस प्रश्नावली की लिंक को भेज सकते हैं जिनके बच्चे पटना के स्कूल में पढ़ते हैं और बच्चों की आयु ५ से १२ वर्ष के बीच है। कुल ७८ उत्तरदाताओं ने ऑनलाइन सर्वेक्षण में भाग लिया। प्रश्नावली तीन हिस्से में विभाजित थी। पहले हिस्से में व्यक्तिगत जानकारी (डेमोग्राफी) से सम्बंधित प्रश्नों को रखा गया था। दूसरे खंड में बच्चों के कार्टून देखने के पैटर्न से सम्बंधित प्रश्न रखे गए थे। जैसे बच्चा सप्ताह में कितने दिन टीवी कार्टून देखता है, तथा बच्चा औसतन रोजाना कितने घंटे कार्टून देखता है आदि। तीसरे खंड में रखे गए प्रश्नों का उद्देश्य बच्चे पर टीवी कार्टून के प्रभावों के बारे में जानकारी एकत्र करना था। इस खंड में कुल ९ प्रश्न रखे गए थे। एकत्रित की गई प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण विवरणात्मक सांख्यकी के माध्यम से किया गया।

परिणाम

यह ऑनलाइन सर्वेक्षण पटना शहर में अगस्त के दूसरे सप्ताह में किया गया। ऑनलाइन सर्वेक्षण में ६३.३% महिला और ३६.५% पुरुषों ने भाग लिया, ये सभी माता पिता थे। इनकी आयु २५ से ४२ वर्ष थी। ७८% उत्तरदाताओं ने बताया की लॉक डाउन के दौरान उनके बच्चे पहले की तुलना में ज्यादा टीवी कार्टून देखने लगे हैं। प्राप्त आंकड़ों से स्पष्ट होता है की इस दौरान बच्चे औसतन ४-५ घंटे टीवी कार्टून देखने में व्यस्त रहते थे। ९३% उत्तरदाताओं ने बताया कि लॉक डाउन के दौरान उनके बच्चे रोज टीवी कार्टून देखते हैं। अभिभावकों के माध्यम से यह भी पता चला की सिनचेन टीवी कार्टून पटना शहर के बच्चों के बीच सबसे पसंदीदा कार्टून कार्यक्रम है, साथ ही दूसरे पायदान पर डोरेमोन और तीसरी पसंद छोटा भीम है। कार्टून कार्यक्रम बच्चों पर क्या प्रभाव डाल रहे हैं इसे जानने के लिए ९ प्रश्न पूछे गए। इससे सम्बंधित प्राप्त जानकारी को चित्र १ में प्रस्तुत किया गया है। अभिभावकों से प्राप्त जानकारी के अनुसार ६९% उत्तरदाता इस बात से सहमत हैं कि 'बच्चा टीवी कार्टून चरित्रों की नकल करना पसंद करता है, वहीँ १८% इस बात से असहमत है और १३ % अभिभावक यह तय करने में असमर्थ हैं। ७०% अभिभावक मानते हैं कि 'बच्चा टीवी कार्टून चरित्रों की तरह बात करना पसंद करता है', जबकि १८% इस बात से इनकार करते हैं और १२% की कोई राय नहीं। लॉक डाउन के दौरान ६३% कार्टून अभिभावकों ने यह माना की उनके बच्चों की भाषा पर देखने का प्रभाव पड़ा है जबकि २१% इस बात से इंकार करते हैं। जब अभिभावकों से यह पूछा गया कि क्या उनके बच्चे टीवी कार्टून में मार धाड़ के दृश्य देखना पसंद करते हैं? तो ६८% का जवाब हाँ की ओर रहा और १८% का ना की ओर।कार्टून में हिंसा देखने से बच्चों के मानस पटल पर इसका प्रभाव पड़ता है। काल्पनिक दुनिया का असल जीवन में ऐसा दखल घातक है। इससे बच्चों की मनोवृति बदल रही है, उनकी सहनशीलता और धैर्यवान रहना प्रभावित होता है. ८१% माता पिता इस बात से सहमत हैं की उनका बच्चा खाना खाते समय जरुर टीवी कार्टून देखता है। वे बच्चे जिन्हें कार्टून देखने की आदत होती है वे केवल स्क्रीन के सामने ही खाना खाते हैं। यह भी एक प्रमुख कारण है जिससे बच्चों को खाने की गलत और अस्वास्थ्यप्रद आदतें लगती हैं। बच्चों को बचपन में खाने की जो आदतें लगती हैं वह पूरी उम्र उनको प्रभावित करती हैं। ८६% माता पिता ने माना कि लॉक डाउन की अवधि में खाली समय होने के कारण उनका बच्चा टीवी कार्टून देखता रहता है।कार्टून की आदत बच्चों के सामाजिक जीवन को प्रभावित कर सकती है। कार्टून देखने की आदत की वजह से बच्चे हम उम्र बच्चों के साथ खेलना पसंद नहीं करते. ऐसी स्थिति उन्हें सामाजिक जीवन से अलग करती है।जब भविष्य में उन्हें समाज के साथ घुलने मिलने का मौका आता है तो उन्हें परेशानी होती है। ८०% माता पिता ने इस बात पर सहमती जताई कि उनके बच्चे को लगता है कि कि टीवी कार्टून चरित्र वास्तविक दुनिया में मौजूद हैं। ७५% उत्तरदाताओं के बच्चों को लगता है कि, टीवी कार्टून के पात्र बहुत ही शक्तिशाली और बुद्धिमान होते हैं, वो बच्चों को किसी भी मुसीबत से बचा सकते हैं। ६०% परिपालकों ने यह भी माना कि उनका बच्चा टीवी कार्टून देखने में व्यस्त रहता है और दुसरे लोगों से कम बातचीत करता है।

उपसंहार

ज्यादातर कार्टून सही शब्दों का प्रयोग नहीं करते। जिसके कारण बच्चे भी इसका अनुकरण करते हैं। बात करने के बजाय वे अपने पसंदीदा कार्टून की तरह आवाज निकालना पसंद करते हैं। घर के बाहर जा कर बच्चे प्रकृति को करीब से देखते हैं और समझते हैं। तितलियाँ, चिड़ियाँ, बगिया और खेल के मैदान छोटे बच्चों को अपने पास बुलाते हैं, उनमे उर्जा भरते हैं, और उन्हें सक्रिय बनाते हैं। वहीँ कार्टून बच्चों को आलसी, बना रहे हैं। एक तो कोरोना काल और उसके साथ ज्यादातर समय टीवी कार्टून के साथ बिताना, बच्चों को उदासीन बना रहा है। वे अपने आसपास की घटनाओ से वाकिफ नहीं हैं, वो बस उन्ही बातो को समझते हैं जो उन्हें टीवी पर दिखाया जा रहा है। इससे बच्चों का सामाजिक व्यवहार प्रभावित हो रहा है। जो नैरेटिव कार्टून के माध्यम से उनके कोमल मानस के सामने चलाया जा रहा है, उनके लिए वही चीजें दुनिया को देखने का तरीका बन रही हैं।बच्चा है तो कार्टून तो देखेगा ही। ज्यादातर माता पिता की यही सोच है, इस सोच को बदलने की जरुरत है।यह स्थिति भयावह है।

आभार

मैं भारतीय समाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद (ICSSR), नई दिल्ली के प्रति आभारी हूँ, जहाँ से मुझे "Television cartoons and its influence on school going children of Patna" विषय पर शोध करने के लिए डाक्टरल फेलोशिप प्रदान की गई. यह शोध पत्र भी इसी शोध विषय काएक हिस्सा है।

ग्रन्थ सूची

1. अमरनाथ अमर (2008), टेलीविजन साहित्य और सामाजिक चेतना, आलेख प्रकाशन, नवीन शाहदरा, नई दिल्ली
2. जगदीश्वर चतुर्वेदी और सुधा सिंह (2008), भूमंडलिकरन और ग्लोबल मीडिया, मीडिया सिद्धान्तकार -1, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (पी) लिमिटेड
3. https://www.mygov.in/covid-19
4. विश्व स्वस्थ्य संगठन (https://www.who.int/)
5. हबीब, के एवं सोलिमान, टी. (2015), कार्टून्स इफेक्ट इन चेनजिंग चिल्ड्रेन मेंटल रेस्पोंस एंड बिहविएर. ओपन जर्नल आफ सोशल साइंस, 3 (09), 248
6. हसन, ए., एवं डेनियल, एम. (2013), कार्टून नेटवर्क एंड इट्स इम्पैक्ट ओं बेहविएर ऑफ स्कूल गोइंग चिल्ड्रेन: ए केस स्टडी ऑफ भावलपुर, पाकिस्तान
7. राय, एस., वास्केल, बी., सकले, एस., दीक्षित, एस., माहोरे, आर. (2017), इफेक्ट ऑफ कार्टून प्रोग्राम ऑन बेहविएरल, हैबिचुअल एंड कम्युनिकेटिव चेनजेस इन चिल्ड्रेन. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कम्युनिटी मेडिसिन एंड पब्लिक हेल्थ, 3(6), 1375-1378

दलित महिलाओं की परिस्थिति पर मनरेगा का प्रभाव: मध्य प्रदेश के गांवों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ० पवन कुमार मिश्र

सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ-226007

सारांश

प्रस्तुत प्रपत्र महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम के अधीन चलाए जा रहे कार्यक्रमों का दलित महिलाओं की प्रस्थिति पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करने का प्रयास करता है। आजाद भारत के इतिहास में मनरेगा वह पहला कार्यक्रम है जो न्यूनतम 100 दिनों के रोजगार की गारंटी देता है। चूंकि मनरेगा में अनुसूचित जातियों और महिलाओं को प्राथमिकता देने की बात कही गई है। अत: प्रस्तुत प्रपत्र यह भी विश्लेषित करने का प्रयास करता है कि मनरेगा के द्वारा दलित महिलाओं की रोजमर्रा की जिंदगी में किस तरह के बदलाव आए हैं। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में अनुसूचित जातियां और महिलाएं, दोनों ही हमेशा वंचित रहे हैं। अत: अनुसूचित जाति की महिला पर विकास के कार्यक्रम के प्रभावों को जानना अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। प्रस्तुत प्रपत्र इस संबंध में एक सूक्ष्म स्तरीय विश्लेषण है।

मुख्य शब्द : मनरेगा, दलित जाति, दलित जाति की महिलाएं।

'दलित' शब्द की अवधारणा

व्यापक अर्थों में दलित शब्द का प्रयोग समाज के अति पिछड़े एवं निचले पायदान पर खड़े लोगों के लिए किया जाता है। अत: कई बार अनुसूचित जनजाति, महिलाएं तथा कभी-कभी अल्पसंख्यकों को भी दलितों की श्रेणी में रख लिया जाता है। दलित शब्द में कई बार गरीब लोगों को भी रखा जाता है। लेकिन लोकप्रिय सामाजिक-राजनैतिक अर्थों में दलित शब्द का प्रयोग "अनुसूचित जातियों" के लिए किया जाता है।

विवेक कुमार (2005, 2010) ने दलित कही जाने वाली जातियों को एक ऐसे समूह के रूप में परिभाषित किया है जिनकी विशेषताएं हैं - हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में अद्वितीय संरचनात्मक स्थिति, अपने संरचनात्मक स्थिति के कारण पहले से चले आ रहे सामाजिक बहिष्करण का दुष्परिणाम भुगतना, सामाजिक बहिष्करण का दीर्घ इतिहास, जाति आधारित सामाजिक प्रस्थिति जिसका कोई विकल्प नहीं है तथा अपने ऐतिहासिक सामाजिक बहिष्करण के कारण चेतना का निर्माण।

जाति व्यवस्था में पाई जाने वाली असमानता अपनी चरम सीमा को पृथक जातियों के विकास में प्रदर्शित करती है जिन्हें 'अस्पृश्य' जातियां कहा जाता है। इन जातियों को अधिकत: सामाजिक व सांस्कारिक अशुद्धि से परिपूर्ण माना जाता था तथा उनके धन्धे निम्नतम माने जाते थे। 1935 में 'अनुसूचित' बनने से पूर्व इन जातियों को 'बाह्य' जातियां, पतित जातियां, भग्न व्यक्ति तथा विजातीय कहा जाता था। 'अनूसूचित जाति' शब्द का प्रयोग सबसे पहले साइमन कमीशन ने 1928 में किया। आगे चलकर इसकी परिभाषा 1935 के भारत सरकार अधिनियम में दी गई। इस परिभाषा के आधार पर समकालीन भारत में कुल 1038 जातियां अनुसूचित जातियां मानी जाती हैं। आज ये भारत की आबादी में 2011 की जनगणना में करीब 16% हैं। दलित शब्दावली का सर्वप्रथम प्रयोग पत्रकारिता की भाषा के रूप में 1931 के आसपास अस्पृश्य जातियों के लिए किया गया तथापि यह 1971 के बाद ही खुलकर ही प्रचलन में आया जब महाराष्ट्र में दलित पैंथर्स ने इसे लोकप्रिय बनाया।

दलित स्त्रियां

प्राचीनकाल से अनुसूचित जातियां भारतीय समाज के निम्न स्तर पर रही है। हिन्दू समाज में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों की तुलना में निम्न रही है। दलित महिलाएं भी इसका अपवाद नहीं है। दलित स्त्रियों पर अत्याचार और शोषण शुरू से होता रहा है और कन्याओं को बोझ व पराया समझा जाता रहा है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। जोगदंड (1995) के अनुसार दलित महिलाओं का वर्ग, महिला वर्ग से भी पृथक विशेष समस्याओं वाला वर्ग है। जोगदंड ने लिखा है कि दलित महिलाएं भारतीय समाज के निम्न स्तर का प्रतिनिधित्व करती हैं। उन्हें सामाजिक धरातल पर दोहरे मापदण्ड का सामना करना पड़ता है। दलित होने के कारण उन्हें सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सीमांतता का शिकार होना पड़ता है तथा महिला होने के कारण लिंग आधारित असमानता को भी चुनौती के रूप में स्वीकार करना पड़ता है। जीवन की महत्वपूर्ण आवश्यकताओं भोजन, ईंधन एवं पानी प्राप्त करने हेतु उन्हें कठिन संघर्ष करना पड़ता है।

ए. एन. जाधव ने अपने लेख 'दलित एमंग दलितस् : सिड्यूल्ड कास्ट्स एण्ड सिड्यूल्ड ट्राइब वुमन' में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की स्त्रियों की स्थिति का महाराष्ट्र में जायजा लिया और बताया कि जहां शिक्षा में इन स्त्रियों की भागीदारी कम है वहीं काम में भागीदारी अधिक है। 1981 की जनगणना के अनुसार सवर्ण स्त्रियों की उत्पादन के काम में भागीदारी 21.88 प्रतिशत थी। जबकि अनुसूचित जाति (अ.जा.) में यह 29.08 प्रतिशत तथा अनुसूचित जनजाति (अ.ज.जा) में यह 38.78 प्रतिशत थी। यह भागीदारी सर्वाधिक मध्य महाराष्ट्र में थी। जाधव ने बताया कि अत्यधिक अ.जा.(अ.ज.जा. की स्त्रियां खेती तथा कृषि से जुड़े धंधों में काम करती है। इसका अर्थ है, उन्हें शिक्षा के अभाव में अन्य क्षेत्रों में काम नहीं मिलता। इस प्रकार राज्य के विभिन्न जिलों तथा जातियों के बीच काम की दर में भेद है। गरीबी की वजह से अ.जा. और अ.ज.जा. की स्त्रियों को धनी सवर्ण स्त्रियों के घरों में काम करना पड़ता है जबकि बहुत कम सवर्ण स्त्रियां अपने घर के बाहर काम करने जाती हैं। अशिक्षा की वजह से ये स्त्रियां शारीरिक श्रम ही करती हैं। घर और कृषि के अलावा ये फैक्टरियों में भी काम करती हैं। निर्माण के क्षेत्र में भी ये स्त्रियां सक्रिय हैं। परन्तु इनको न तो पुरुषों के बराबर मजदूरी मिलती है और न ही इनको रोजगार मिलता है। मौसम (सीजन) के अनुसार इनके श्रम की मांग घटती बढ़ती रहती है। न्यूनतम मजदूरी भी इनको नहीं दी जाती। पुरुषों से इनको कम मजदूरी मिलती है परंतु ये पुरुषों से ज्यादा लंबे समय तक काम करते हैं। नवजात शिशुओं की मांओं को अकसर काम पर नहीं लिया जाता या फिर जमींदार उनको बच्चे को दूध पिलाने की छुट्टी नहीं देते। स्वरोजगार वाली स्त्रियों को अपना सामान बेचने की समस्या रहती है। कच्चा माल तथा पूंजी (ऋण) पाना भी समस्या होती है। 90 प्रतिशत अ.जा., अ.ज.जा. स्त्रियों को अपनी आवश्यकता से कम पोषण मिलता है। इन स्त्रियों का बाहर भी यौन शोषण होता है तथा घर में भी इनके साथ हिंसा होती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आम दलित और आदिवासी स्त्री को अपने आर्थिक, सामाजिक तथा यौन शोषण से निजात नहीं मिलती है।

सामान्यत: अनुसूचित जातियों के परिवारों में स्त्रियों को घर से बाहर कार्य करने को अनुचित नहीं माना जाता था परन्तु बेहतर आर्थिक स्थिति वाले स्त्रियों के बाहर काम करने को सम्मानपूर्ण नहीं समझते थे परन्तु बदले हुए परिवेश के साथ यह भ्रम समाप्त हुआ है। पुरुष वर्ग भी स्त्रियों के प्रति भेदभाव की भावना के प्रति अपनी सोच को बदलने की कोशिश कर रहा है जिसके फलस्वरूप स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन आया है। दलित स्त्रियों के व्यवसाय के प्रति दृष्टिकोण के संदर्भ में यह परिलक्षित होता है कि पुरुष घर की महिला को अपने पैरों पर खड़ा होने को प्रेरित करते हैं। इसमें महिला सशक्तिकरण का विशेष योगदान है। आज के दौर में दलित स्त्रियां समाज पर बोझ नहीं बनना चाहती हैं।

दलितों को जागरुक करने के लिए सरकार ने अनेक कल्याणकारी योजनाओं का शुभारम्भ किया है जिससे बहुत हद तक दलित वर्गों का विकास एवं उत्थान हुआ है लेकिन इसकी गति काफी धीमी रही है। नवीन योजनाओं द्वारा दलित महिलाओं को समाज में नवीन जीवन अवश्य प्राप्त हुआ है लेकिन इन कार्यक्रमों ने विशेष रूप से उच्च वर्गों को ही प्रभावित किया है। अभी उनका विकास नहीं हो पाया है। वह आज भी पारम्परिक जीवन जीने को मजबूर हैं हालांकि सरकार इनको जागरुक करने तथा सुविधाएं प्रदान करने के लिए अनेक कदम उठा रही है लेकिन इसका कितना प्रभाव दलित महिलाओं पर पड़ता है तथा वह इससे कितना प्रभावित होती है, यह ज्ञात करने के लिए सरकार ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जिसका परिणाम है कि दलित स्त्रियां आज भी जागरुक नहीं हो पाई है तथा वह आज भी समाज में पिछड़ी हुई है। सरकार और समाज दोनों के द्वारा महिला सशक्तिकरण की बहुत सी कोशिशें की जा रही हैं जिनको महिला सशक्तिकरण का नाम दिया जा रहा है। सशक्तिकरण के यह प्रयास समस्त महिलाएं विशेष रूप से दलित महिलाओं के लिए भी केन्द्रित हैं।

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम : एक संक्षिप्त परिचय

भारत के ग्रामीण लोगों को रोजगार प्रदान करने व गाँवों में स्थानीय स्तर पर आधारभूत ढांचे के निर्माण के द्वारा भारत के पुर्ननिर्माण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक वैधानिक स्वरूप एवं अधिकार आधारित दृष्टिकोण के साथ मनरेगा को अधिसूचित किया गया था। यह देश के ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार का एक अधिकार आधारित कार्यक्रम है। इसका उद्देश्य ऐसे प्रत्येक परिवार, जिनके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करना चाहते हैं, उन्हें एक वर्ष में कम-से-कम 100 दिनों की गारंटीशुदा मजदूरी रोजगार उपलब्ध कराते हुए आजीविका सुरक्षा को बढ़ाना है। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना (मनरेगा) - 7 सितम्बर 2005 को पारित ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम के तहत 2 फरवरी 2006 को तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह द्वारा आन्ध्र प्रदेश के बन्दापल्ली नामक स्थान से राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना (नरेगा) को 200 पिछड़े जिलों में लागू किया गया। इस योजना में सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना तथा काम के बदले अनाज योजनाओं को इसमें समाहित कर लिया गया। 1 अप्रैल 2008 से यह योजना देश के सभी जिलों में लागू कर दी गई। 12 अक्टूबर 2009 को इसका नाम परिवर्तित करके 'महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम' (मनरेगा) कर दिया गया। इसका उद्देश्य ग्रामीण परिवारों को जिनके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक कार्य करना चाहते हैं, एक वित्तीय वर्ष में 100 दिन का सुनिश्चित रोजगार प्रदान करके, ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को जीविकोपार्जन सुरक्षा में बढ़ोतरी करना है। इसके अतिरिक्त इसका लक्ष्य मजदूरी रोजगार कार्यक्रम के माध्यम से सूखे, वनों के कम होने और भू क्षरण के कारणों का निवारण करते हुए ग्रामीण अधोसंरचना को विकसित करना था। गांवों में स्थायी सामुदायिक परिसम्पत्तियों का सृजन करना तथा पंचायती राज संस्थाओं को आर्थिक एवं प्रशासनिक दृष्टि से सुदृढ़ बनाना भी इसके लक्ष्यों में सम्मिलित है। भारत में पहली बार काम के अधिकार "मनरेगा" को वैधानिक अधिकार के रूप में मान्यता प्रदान की गई है।

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम के उद्देश्य

इस अधिनियम के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. ग्रामीण भारत में निवास करने वाले सबसे ज्यादा गरीब लोगों को रोजगार के अवसर प्रदान कर सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करना।
2. गाँवों में दीर्घकालीन आधारभूत संरचना के विकास, जल सुरक्षा, भूमि की उत्पादकता को बढ़ाना, भू- सुरक्षा, सूखा प्रभावित इलाकों का विकास करना इत्यादि।

3. यह अधिकार आधारित विधायन द्वारा गाँवों में रहने वाले वंचित समूहों विशेषकर-महिलाओं, अनुसूचित जातियों, जनजातियों और अन्य कमजोर वर्गों को सहायता प्रदान कर उन्हें सशक्त करना।
4. इस योजना के क्रियान्वयन में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका को बढ़ाकर, उन्हें मजबूती प्रदान कर लोकतंत्र को समावेशी व सशक्त बनाना।
5. भारत में व्याप्त लिंग भेद को दूर करने के लिए इस योजना के द्वारा रोजगार की गारंटी में महिलाओं को प्राथमिकता प्रदान कर उन्हें आर्थिक रूप से मजबूत करने की कोशिश करना।

भारत में स्वाधीनता के पश्चात ग्रामीण विकास और रोजगार देने संबंधी समस्त कार्यक्रमें में मनरेगा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। एक समन्वित कार्यक्रम के रूप में यह प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन तथा उनके द्वारा सृजित रोजगार के मध्य समन्वय भी स्थापित करता है। यह एक ऐसा अधिनियम है जिसकी दिशा नीचे से ऊपर है और यह एक जनकेंद्रित, मांग आधारित, स्वयं चयनित अधिकार प्राप्त कानून है। यह मांग आधारित ऐसी योजना है जिसके तहत प्रत्येक राज्य से रोजगार की मांग के आधार पर केंद्र से राज्यों को आर्थिक संसाधनों का वितरण किया जाता है। इसके अतिरिक्त यह उन राज्यों को विशेष रियायत देता है, जो गरीबों के रोजगार की मांग को पूरा करने की दृष्टि से ज्यादा अच्छा काय सम्पादित करते हैं। यह महिलाओं और वंचित वर्गों पर ध्यान केन्द्रित कर उनके आर्थिक सशक्तीकरण में सहायता करता है।

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के प्रावधान

इस अधिनियम से हर ग्रामीण परिवार को सरकार से सौ दिन का काम मांगने का अधिकार मिल गया है। इसके प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं -

1. इस अधिनियम के तहत ग्रामीण परिवार का कोई भी वयस्क सदस्य, जो अकुशल कार्य करना चाहता हो, वह इसके लिए स्थानीय ग्राम पंचायत में अपना पंजीयन करा सकता है।
2. इस कानून के तहत प्रत्येक ग्रामीण परिवार एक साल में 100 दिन कार्य करने का अधिकारी होता है।
3. निवास स्थान, कार्य की मांग करने वाले व्यक्ति की उम्र की समुचित जांच के बाद एक जॉब कार्ड दिया जाता है, जिसपर उसका फोटो लगा रहता है। जॉब कार्ड कार्य की मांग का एक पहचान पत्र होता है। इसे आवेदन के 15 दिनों के अंदर जारी किया जाता है।
4. प्रत्येक जॉब कार्ड की अपनी अलग पहचान संख्या होती है। इसी जॉब कार्ड के आधार पर गाँव या ब्लाक स्तर पर कार्य करने की मांग की जाती है और हर दिन कार्य के बाद तथा कार्य की मजदूरी मिलने के बाद उस कार्ड को अपडेट किया जाता है।
5. कार्य की मांग करने वाले व्यक्ति को एक लिखित आवेदन, जिसमें कार्य का स्थान, समय और कार्याविधि का वर्णन हो, गाँव या ब्लाक स्तर पर जमा किया जाता है। इसके पश्चात ग्राम पंचायत उस आवेदन के आधार पर 15 दिनों के अंदर आवेदन करने वाले व्यक्ति को जॉब की रसीद जारी करती है।
6. यदि किसी स्थिति में जॉब की मांग करने वाले व्यक्ति को 15 दिन के अदंर कार्य नहीं मिल पाए तो उसे राज्य द्वारा बेरोजगारी भत्ता दिया जाता है।
7. जॉब का आवंटन करते समय कुछ स्थितियों जैसे-कार्य की मांग करने वाले व्यक्ति को उसके निवास स्थान से पांच किलोमीटर की परिधि में वह कार्य प्रदान कराना होगा, अगर कार्य पांच किलोमीटर की परिधि से बाहर मिलता हो तो उस स्थिति में परिवहन व आवास व्यय के रूप में 10 प्रतिशत की अतिरिक्त मजदूरी प्रदान की जाएगी।
8. मनरेगा के तहत कार्य प्रदान करने में महिलाओं को वरीयता प्रदान की जाएगी।
9. मजदूरी का भुगतान साप्ताहिक आधार पर किया जाता है। किसी भी कार्य के लिए अधिकतम 15 दिन के भीतर मजदूरी का भुगतान करना अनिवार्य है। मजदूरी का भुगतान मेट की ओर से तैयार की गई मस्टर रोल के हिसाब से किया जाता है, तथा इसके लिए जॉब कार्डधारी का पोस्ट ऑफिस अथवा बैंक में खाता खोला जाता है।
10. मनरेगा अधिनियम में केंद्र सरकार एवं राज्य सरकार की जिम्मेदारी अलग-अलग तय की गई है। इस योजना में होने वाले खर्च में कुल मिलाकर 90 प्रतिशत केंद्र सरकार देगी और शेष 10 प्रतिशत धन राज्य सरकार लगाएगी।
11. कार्यस्थल पर मजदूरों के लिए अनेक सुविधाएं देने का प्रावधान है। जैसे- कार्यस्थल पर मजदूरों को पेयजल, प्राथमिक स्वास्थ्य, आराम के लिए शेल्टर का निर्माण करना आदि।
12. कार्यस्थल पर बच्चों वाली महिलाओं के बच्चों के लिए पालना आदि की भी व्यवस्था की गई है। यदि कार्यस्थल पर महिलाएं अपने साथ छह वर्ष से कम आयु के बच्चे लेकर आती हैं और उनकी संख्या पांच या अधिक हो तो एक महिला बच्चों की देखभाल (अस्थायी क्रेच) में रहेगी और उसे पूरी मजदूरी मिलेगी।
13. सभी प्रकार के रिकॉर्ड और अन्य कागजातों की जांच का कार्य ग्राम सभा के माध्यम से वस्तुतः गाँव के लोगों द्वारा किया जाता है।

मनरेगा ने ग्रामीण मजदूरी रोजगार कार्यक्रम के रूप में जेंडर समानता और सशक्तिकरण को महत्व देते हुए इसे अपनी परिकल्पना में सम्मिलित किया है। इस अधिनियम के अंतर्गत विभिन्न प्रावधानों और दिशा-निर्देशों का लक्ष्य महिलाओं को समान काम और उस काम तक सरल पहुंच, अनुकूल कार्य परिस्थितियां, समान वेतन और निर्णय-निर्माण में उनका प्रतिनिधित्व आदि को शामिल किया गया है।

मनरेगा और दलित महिलाएं: कुछ अध्ययन

ग्रामीण विकास मंत्रालय (2012) के अनुसार 47% राष्ट्रीय भागीदारी दर के साथ आँकड़े यह स्पष्ट करते हैं कि मनरेगा योजना में महिलाओं की भागीदारी अन्य योजनाओं की तुलना में अधिक सक्रिय है। शोध अध्ययनों से यह तथ्य सामने आया है कि मनरेगा महिलाओं के लिए काम का एक महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करता है जो अन्यथा बेरोजगार अथवा कम रोजगार में लगी रहती थीं।

आँकड़ों द्वारा यह भी स्पष्ट होता है कि मनरेगा के कारण प्रदत्त काम तक पहुंच बढ़ गई है और इससे महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक स्तर और उनके सामान्य कल्याण पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। 6 राज्यों में किए गए सर्वेक्षण के अनुसार 82% विधवाओं ने मनरेगा को आय का महत्वपूर्ण स्रोत माना और कुल निदर्शन की 69% महिलाओं ने कहा कि मनरेगा ने उनको भूख से बचाया है। इसके अलावा एक अध्ययन द्वारा यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि मनरेगा के बाद महिलाओं का अपनी मजदूरी पर अधिक नियंत्रण हो गया है और वे उन्हें अपने छोटे ऋणों को चुकाने, बच्चों के स्कूल की फीस चुकाने व स्वास्थ्य संबंधी खर्चों पर खर्च कर रही हैं।

धीरजा एवं राव (2010) का अध्ययन यह भी संकेत करता है कि महात्मा गांधी नरेगा से प्राप्त मजदूरी को लेने और खर्च करने में महिलाओं ने स्वतंत्रता दिखाई है जोकि परिवार में उनकी बेहतर निर्णय निर्माण क्षमता का संकेत करता है। आंध्र प्रदेश के 5 जिलों में जब 600 महिला श्रमिकों का साक्षात्कार लिया गया, यह पाया गया कि उत्तर देने वाली लगभग 47 प्रतिशत महिलाएं अपनी मजदूरी स्वयं लेती हैं, 50 प्रतिशत अपनी मजदूरी अपने पति के साथ लेती हैं और लगभग 4 प्रतिशत महिलाएं अपने पति को मजदूरी दे देती हैं। इसी अध्ययन में राजस्थान में उत्तर देने वाली 600 महिलाओं में लगभग 91 प्रतिशत अपनी मजदूी स्वयं लेती थीं और अन्य 4 प्रतिशत अपने पति के साथ मजदूरी लेती थीं। अन्य राज्यों, जिसमें बिहार और छत्तीसगढ़ शामिल है, में भी इसी तरह का रूझान दिखाई देता है।

धीरजा एवं राव (वही) का यह अध्ययन 27 राज्यों के 102 जिलों में जेंडर संबंधों पर महात्मा गांधी नरेगा के प्रभावों से संबंधित है। इस अध्ययन में यह बताया गया है कि महात्मा गांधी नरेगा के बाद महिलाओं के पक्ष में जेंडर संबंध विकसित हुए हैं। महात्मा गांधी नरेगा के तहत महिलाओं की भागीदारी से उनमें आत्म सम्मान, आत्म बल और आत्मविश्वास बढ़ा है। एसएचजी (सेल्फ हैल्प ग्रुप) ने सदस्यों के बीच जेंडर में बदलाव के लिए योगदान किया है और महात्मा गांधी नरेगा ने इन बदलावों को मजबूत आधार दिया है। महात्मा गांधी नरेगा लागू होने के बाद महिलाओं में पारिवारिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक आयामों वाला जेंडर रिलेशन इंडेक्स बढ़ा है।

इस अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि नेतृत्व प्रतिबद्धता से इतर राज्य स्तरीय राजनीति का महात्मा गांधी नरेगा के क्रियान्वयन पर न्यूनतम प्रभाव रहा है। इसके विपरीत ज़िले, प्रखंड और जीपी प्रशासनिक और संगठनात्मक क्षमता ही इतनी मजबूत है जिससे इसकी सफलता सुनिश्चित लगती है। तमिलनाडु में महात्मा गांधी नरेगा का अनुकूल प्रदर्शन मुख्य रूप से प्रभावी प्रशासनिक क्षमता के कारण संभव हुआ है। तमिलनाडु में शीर्ष से निचले क्रम तक के क्रियान्वयन की तुलना में उत्तर प्रदेश ने ग्राम पंचायत स्तर पर कर्मचारियों को अहम जिम्मेदारी सौंपी है। अध्ययन में यह भी बताया गया है कि तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश में महात्मा गांधी नरेगा लागू करने की बाधाओं में कर्मचारियों के बीच बेरोजगारी भत्ता वितरित करने की राज्यों की अरुचि और महात्मा गांधी नरेगा की लोक निर्माण कार्य परियोजनाओं के जरिये तैयार की गई संपत्तियों की उत्पादनशीलता पर सवालिया निशान शामिल हैं।

इसके अलावा तमिलनाडु में महात्मा गांधी नरेगा के तहत महिलाओं की उच्च भागीदारी मुख्य रूप से सांस्कृतिक कारणों, प्रभावी राज्य और स्थानीय संस्थाओं, एसएचजी और निजी क्षेत्र में मजदूरी के अत्यधिक अंतर के आकर्षण से संभव हुई है। इसक विपरीत उत्तर प्रदेश में मुख्य रूप से जाति और धर्म के कारण निम्न भागीदारी रही है।

बाबू, वी.एस. एवं राव (2010) का अध्ययन मनरेगा का अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति पर पड़ने वाले प्रभावों से संबंधित है। यह अध्ययन त्रिपुरा, राजस्थान, छत्तीसगढ़, मिजोरम, उड़ीसा, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश एवं पश्चिम बंगाल में किया गया था। इसमें लाभार्थियों के मध्य जागरूकता का स्तर भी एक पक्ष था। यह पाया गया कि इस परियोजना के संचालन में इससे जुड़ी जागरूकता का अभाव एक महत्वपूर्ण तथ्य है। इसके अलावा इस अध्ययन में यह भी पाया गया कि मनरेगा की वजह से मिलने वाली मजदूरी ने महिलाओं में आत्मविश्वास को बढ़ाया है।

मध्य प्रदेश में किए गए होम्स और सदाना (2011) के अध्ययन में गुणवत्ता और मात्रात्मक शोध के परिणाम दर्शाए गए हैं। इसमें उस पहल को विस्तार दिया गया है जिसमें महात्मा गांधी नरेगा गरीबी उन्मूलन और विकास प्रक्रियाओं में महिलाओं की भागीदारी का समर्थन करने के लिए लोक निर्माण के कार्यक्रमों तक जेंडर-विशेष की पहुंच सुनिश्चित करता है। इसके नतीजे बताते हैं कि महात्मा गांधी नरेगा में महिलाओं को रोजगार मिलने से कुछ महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है और कुछ परिवारों में उनकी नीति निर्धारण क्षमता थोड़ी बढ़ी है। यह नीति निर्धारण ज्यादातर मामलों में परिवार में खपत के लिए खाद्यान्नों की खरीद से संबंधित है। अन्य मामलों में महात्मा गांधी नरेगा का पारिवारिक संबंधों पर कोई प्रभाव नहीं देखा गया है।

हालाँकि इस योजना से रोजगार बढ़ा हैं और महिलाओं की मजदूरी बढ़ी है लेकिन रोजगार दिवसों की कुल संख्या और मजदूरी के वास्तविक प्रावधान पर गहरी नजर डाली जाए तो कहीं ज्यादा असमान तस्वीर उभरती है। महात्मा गांधी का मौजूदा डिजाइन, हालाँकि इसमें विभिन्न जेंडर संवेदी पहल की गई है, उन विभिन्न स्तरों पर समग्र रूप से कारगर नहीं है जिनमें महिलाओं की गरीबी और असुरक्षा के मुद्दे शामिल हैं। नतीजन इसके प्रभाव खराब क्रियान्वयन की कटुता के कारण जेंडर संवेदी डिजाइन में अंतर के साथ घालमेल हो गए हैं। अध्ययन बताता है कि जेंडर असमानता की कटुता दूर करने के लिए महात्मा गांधी नरेगा के डिजाइन और क्रियान्वयन को मजबूत बनाना चाहिए, नीति निर्धारण में महिलाओं की भागीदारी का समर्थन करना चाहिए और जेंडर संवेदी क्रियान्वयन में निवेश ही महिलाओं को सशक्त बनाएगा तथा जेंडर समानता को बढ़ावा देगा।

आई. आई. टी. चैन्नई (2010) के अध्ययन में गांव की जरूरतों के संदर्भ में महात्मा गांधी नरेगा योजनाओं के कार्यकलापों का मूल्यांकन किया गया। रिपोर्ट छह प्रमुख पहलुओं पर आधारित हैं, वे हैं - कामकाज के अनुरोधों की प्रभावी जानकारी, विभिन्न जिलों में मजदूरी में अंतर, कृषि पर महात्मा गांधी

नरेगा का प्रभाव, महात्मा गांधी नरेगा योजनाओं में महिलाओं की अधिक सहभागिता, महात्मा गांधी नरेगा और मानव अधिकार, निर्णय लेने में ग्राम सभा की प्रभाविकता और महात्मा गांधी नरेगा में बी पी एल की कम सहभागिता। मूल्यांकन के खुलासों में यह निष्कर्ष निकला है कि महात्मा गांधी नरेगा गरीबों के लिए एक वरदान है तथा इसने रोजगार मांगने वाले परिवारों को 100 दिनों का रोजगार प्रदान करके ग्रामीणों से एक बड़े हिस्से को लाभ प्रदान किया। इसमें अच्छी प्रथाओं पर भी प्रकाश डाला गया है जैसे शीघ्र मजदूरी भुगतान, ग्रामीण महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा और हेल्पलाइन का प्रावधान।

उपर्युक्त अध्ययनों के विश्लेषण से यह पता चलता है कि मनरेगा की वजह से ग्रामीण महिलाओं में रोजगार के क्षेत्र में भागीदारी बढ़ी है। उनके अंदर आत्मविश्वास भी आया है। हालांकि उपर्युक्त अध्ययन यह भी दर्शाते हैं कि मनरेगा के सैद्धांतिक प्रावधानों और व्यवहार में कुछ अन्तर अवश्य है। अनेक कारण महिलाओं की भागीदारी को सीमित कर रहे हैं, साथ ही महिलाओं में मनरेगा को लेकर जागरूकता का भी अभाव है। कुछ स्थानों पर सरकारी तंत्र के सहयोग का अभाव भी देखा गया है।

शोध कार्य का विश्लेषण

प्रस्तुत प्रपत्र आईसीएसएसआर संस्था द्वारा प्रायोजित शोध कार्य से प्राप्त वृहद् निष्कर्षों में से लिए गए कुछ निष्कर्षों पर आधारित है। आईसीएसएसआर द्वारा प्रायोजित शोध कार्य बहुत विस्तृत आयाम लिए हुए है जिसमे दलित महिलाओं के सशक्तिकरण में मनरेगा के योगदानों को उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश के लगभग 700 उत्तरदाताओं के उत्तरों के विश्लेषण के रूप में देखा गया है। प्रस्तुत प्रपत्र इसी शोध कार्य से संबंधित मध्य प्रदेश के कुछ गांवों के क्षेत्र अध्ययन से प्राप्त वृहद् निष्कर्षों के एक हिस्से का समाजशास्त्रीय विश्लेषण है। प्रस्तुत शोध प्रपत्र में मध्य प्रदेश के "भोपाल" जिले के "फंदा" ब्लॉक के "नरोन्ह सांकल" ग्राम सभा तथा "उज्जैन" जिले के "तराना" ब्लॉक के ग्राम सभा "छड़ावद" तथा "इंदौर" जिले के "महू" ब्लॉक के ग्राम सभा "कोडरिया" पर किए गए शोध कार्य के निष्कर्ष शामिल हैं। उत्तरदाताओं से बात करने के लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया। इस शोध कार्य के निष्कर्षों का सारांश निम्नवत् है –

शोध के विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ कि 32.67 प्रतिशत सूचनादाताओं का आय का स्रोत मनरेगा के पूर्व कृषि मजदूरी, 10.67 प्रतिशत की स्वयं की खेती, 49.67 प्रतिशत गैर कृषि मजदूर एवं 7 प्रतिशत का निजी व्यवसाय था। अनेक सूचनादाताओं ने यह स्वीकार किया कि मनरेगा में मजदूरी करने के पश्चात भी यदि वे खाली होती हैं या जिन दिनों उनको मनरेगा में रोजगार नहीं मिलता उन दिनों वे कृषि कार्य सम्बन्धित मजदूरी ही करती है। यहां यह भी पाया गया कि कुछ महिलाएं आस-पास के घरों में सुबह और शाम घरेलू मजदूरी जैसे चौका-बर्तन का भी कार्य करती हैं। उत्तरदाताओं से प्राप्त जानकारी में यह पाया गया कि 96 प्रतिशत लोगों को मनरेगा में अपनी इच्छानुसार कार्य मिलने की जानकारी है जबकि 4 प्रतिशत लोगों को इसकी जानकारी नहीं है।

मनरेगा की जानकारी सम्बन्धी प्रश्न पूछने पर सूचनादाताओं ने उत्तर दिया कि उनको मनरेगा योजना के बारे में जानकारी ग्राम रोजगार सहायक एवं ग्राम पंचायत द्वारा प्राप्त हुई। ग्राम रोजगार सहायक ग्रामवासियों तक सूचना पहुंचाते हैं तथा इन्हें हर सम्भव मदद भी करते हैं। इसके अलावा सचिव भी सक्रिय भूमिका निभाते हैं तथा लाभार्थियों को जागरूक बनाए रखते हैं। मध्य प्रदेश में ग्राम रोजगार सहायकों को ग्रामीण लोग "मंत्री जी" कहते हैं।

शोध के दौरान यह तथ्य भी सामने आया है कि सूचनादाताओं में काम न मिलने की दशा में बेरोजगारी भत्ता सम्बन्धी जागरूकता अपेक्षित रूप से कम है। लगभग 38.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया कि उनको इस बात की जानकारी है कि कार्य न मिलने की दशा में बेरोजगारी भत्ता मिलना चाहिए। जबकि 61.67 प्रतिशत लोगों ने इस तथ्य की जानकारी होने से इंकार किया। यह पूछे जाने पर कि क्या उनको कभी बेराजगारी भत्ता मिला है तो उन्होंने कहा कि इस दशा की कभी नौबत नहीं आई क्योंकि मनरेगा के तहत उनको काम मिला है। अप्रत्यक्षत: यह मालूम हुआ कि जागरूक लोगों ने भी बेरोजगारी भत्ते की मांग कभी नहीं की। इसके पीछे तमाम दबाव जिम्मेदार हैं। अधिकांश महिला सूचनादाता मनरेगा के तहत सड़क निर्माण, इन्दिरा आवास, प्रधानमंत्री आवास, पंचायत भवन, तालाब निर्माण इत्यादि कार्यों में संलग्न पाई गईं। यह पाया गया कि मनरेगा के तहत अभी मुख्य कार्य प्रधानमंत्री आवास योजना के तहत आवासों का निर्माण किया जा रहा है। वृक्षारोपण तथा जलसंरक्षण इत्यादि कार्यों पर भी थोड़ा बहुत बल दिया जा रहा है।

जब सूचनादात्रियों से यह पूछा गया कि मनरेगा में व्याप्त सबसे बड़ी बाधा क्या है तो उनका कहना था कि मनरेगा में प्रदान की जाने वाली मजदूरी एवं रोजगार के 100 दिन बहुत कम हैं तथा मजदूरी भुगतान में विलंब, इन्हीं तीनों तत्वों को मनरेगा की सबसे बड़ी बाधा माना जा सकता है। अधिकतम सूचनादाताओं की यही मांग है कि मिलने वाली मजदूरी कम से कम 300 या उससे अधिक होनी चाहिए तथा कार्यदिवस भी 100 से बढ़कर 200 दिन न्यूनतम करना चाहिए। इसके साथ ही दैनिक मजदूरी के आधार पर दैनिक भुगतान नियमित रूप से होना चाहिए। यदि ऐसा होता है तो मनरेगा के प्रति लोगों का रूझान बढ़ेगा तथा आसपास के शहरों एवं कस्बों की ओर उनका पलायन रूकेगा। विशेष रूप से दलित महिलाओं में इसके बेहतर परिणाम सामने आएंगे। प्रस्तुत अध्ययन में मनरेगा में महिलाओं को रोजगार के उचित अवसर न मिलने के कारणों में यह पाया गया कि 16.33 प्रतिशत महिलाएं अशिक्षा, 43 प्रतिशत जानकारी का अभाव, 6.67 प्रतिशत रूढ़िवादिता तथा 34 प्रतिशत असुरक्षा की भावना को बताया।

मनरेगा का सूचनादाताओं की आर्थिक स्थिति पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा परन्तु सामाजिक स्थिति पर अवश्य पड़ा है। इसके अलावा मनरेगा द्वारा उनकी आर्थिक स्थिति में कोई मूलभूत सुधार तो नहीं हुआ परन्तु छोटे-मोटे खर्चे हेतु महिलाओं की पुरुषों पर निर्भरता काफी हद तक कम हुई है। मनरेगा के अधिकारियों एवं कर्मचारियों का महिला श्रमिकों के प्रति व्यवहार उदार एवं तटस्थ पाया गया। महिला श्रमिकों के साथ कठोरता एवं दुर्व्यवहार से सम्बन्धित कुछ मामले पाए गए परन्तु तुलनात्मक रूप में पुरुष श्रमिकों के प्रति अधिकारियों का रवैया सख्त था।

मनरेगा के अन्तर्गत मजदूरी करने में महिलाएं में उत्सुकता अधिक हैं क्योंकि उनको उसी गांव में काम मिल जाता है, अन्यत्र कहीं जाना नहीं पड़ता। इसके अलावा यह भी महत्वपूर्ण है कि परंपराओं के प्रभावों के कारण महिलाओं का गांव के बाहर जाकर मजदूरी करना उचित नहीं माना जाता इसलिए वे स्थानीय स्तर पर मनरेगा में काम करती हैं। यहां यह भी एक चिन्तनीय मुद्दा यह उभरकर सामने आया कि यदि महिलाओं को उनके घर के एक-दो किलोमीटर या उनके ही मजरे के दायरे में काम उपलब्ध नहीं होता तो वे उसके बाहर जाकर काम करने में कम रूचि रखती हैं। उनके काम करने पर परिवार के समर्थन

के बारे में पूछने पर महिला सूचनादाताओं ने बताया कि उनके परिवारों ने उनको काम करने की अनुमति इसलिए प्रदान की ताकि घर की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो सके। एक-दो मामले ऐसे भी सामने आए जिनमें महिला सूचनादाताओं के पति उनके काम करने के खिलाफ थे परन्तु जब उनको ग्राम रोजगार सहायक तथा अन्य लोगों ने समझाया तो वे तैयार हो गए।

शोध के दौरान यह तथ्य भी सामने आया है कि बेसहारा तथा विधवा महिलाओं के लिए मनरेगा लाभदायक सिद्ध हो रहा है। प्राप्त होने वाली मजदूरी को वे ज्यादातर भोजन, वस्त्र तथा घर के लिए सामान आदि खरीदने पर व्यय करती हैं।

कुछ परिवारों में ऐसा भी देखा गया कि जॉब कार्ड धारक तो महिला है लेकिन उसके नाम पर कार्य उसके घर का कोई पुरुष सदस्य कर रहा है। यहां तक कि कुछ मामलों में घर के नाबालिग बच्चे भी अपनी मां, बहन अथवा भाभी के नाम पर काम करते हुए पाए गए।

शोध कार्य के दौरान यह भी पाया गया कि महिलाएं काम करने के बाद पहले की तुलना में स्वयं को आत्मनिर्भर महसूस करने लगी हैं, उनमें पहले की तुलना में स्वतन्त्रता एवं आत्मसम्मान की अधिक भावना भी जाग्रत हो रही है। हालांकि कार्यस्थलों पर उनको शौचालय एवं अन्य बुनियादी सुविधाओं का अभाव उन्हें कभी-कभी मुश्किल हालातों में डाल देता है। इसके अलावा कभी-कभी भुगतान में देरी भी उनके लिए कठिनाई बनती है। कभी-कभी बैंक द्वारा कुछ कार्यवाही की वजह से भुगतान में देर हो जाती है। भुगतान में देरी की एक प्रमुख वजह सरकार द्वारा कई बार पैसे का विलम्ब से भेजा जाना भी है। इसके अलावा कुछ अशिक्षित ग्रामीणों के मामले में यह पाया गया कि वे लोग अपना बैंक खाता आधार से लिंक नहीं करा पाए हैं इसलिए उनको भुगतान में देरी हुई है।

शोध के दौरान यह भी ज्ञात हुआ कि जैसे-जैसे मनरेगा में भुगतान सम्बन्धी भ्रष्टाचार दिखाई नहीं दे रहा है। इसका प्रमुख कारण है कि अब भुगतान एवं धनराशि सम्बन्धी विवरण वेबसाइट पर उपलब्ध होते हैं। इसलिए मजदूरी में किसी प्रकार का कोई भ्रष्टाचार नहीं हो पाता तथा मजदूरी भी समय से प्राप्त हो जाती है।लेकिन विश्लेषक यह मानते हैं कि कई बार निर्माण कार्यों की लागत जानबूझकर बहुत ज्यादा दिखाई जाती है। जिससे मनरेगा में भ्रष्टाचार के आरोपों से इंकार नहीं किया जा सकता। कुछ सूचनादाताओं ने यह अलिखित रूप में स्वीकार भी किया कि उन्हें कभी-कभी अपने भुगतान में से कुछ हिस्सा गांवों के प्रतिनिधियों के साथ बांटना पड़ता है।

निष्कर्ष -

ज्यां द्रेज ने अपनी पुस्तक 'सोशल एसपेक्ट ऑफ इण्डियन पॉलिसीज' (2017) में मनरेगा कार्यक्रम में महिलाओं की भागीदारी के लिए उनके समक्ष आ रही बाधाओं को छः राज्यों बिहार, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश में एक सैंपल सर्वे से प्राप्त निष्कर्षों में बताया है कि -

"बहुत से क्षेत्रों में महिलाओं के घर से बाहर काम करने के बारे में सख्त सामाजिक मानकों का अस्तित्व है। उत्तर प्रदेश और बिहार में हम ऐसी महिलाओं से मिले जिन्होंने यह बताया कि वे नरेगा के अन्तर्गत कामों में अपना पंजीकरण नहीं करवा पायी और उनसे यह कहा गया कि यह कार्यक्रम उनके लिए नहीं है। सीतापुर जिला (उत्तर प्रदेश) में नरेगा के कार्यों में महिलाओं की भागीदारी को लेकर काफी आक्रोश था। ग्राम सभा के पदाधिकारियों और महिलाओं के पुरुष सम्बन्धियों - दोनों ने ही इसका जबरदस्त विरोध किया। नौकरी के कार्ड से वयस्क महिलाओं का नाम हटा दिया गया और सामान्य तौर पर यह दलील दी गयी कि महिलाएं कार्यस्थल पर काम नहीं कर 'सकती' हैं, वे 'काफी कमज़ोर' हैं, और उनके द्वारा यह काम करना 'सामाजिक रूप से अस्वीकार्य है'। नारी श्रम के बारे में व्यापक रूप से प्रचलित इन विचारों के चलते ही सीतापुर (उत्तर प्रदेश) के सैम्पल में सिर्फ 5% महिलाएं नरेगा में काम कर रही थीं।"

ज्यां द्रेज (वही) के अनुसार ऐसा लगता है कि इस पूर्वग्रह का आंशिक कारण यह था कि नरेगा के अन्तर्गत मिलने वाले कानूनी न्यूनतम वेतन और स्थानीय बाजार के वेतन दर (विशेष रूप से महिलाओं के वेतन दर) में अन्तर था। इसके साथ यह तथ्य भी जुड़ा हुआ था कि नरेगा में पुरुष और महिलाओं को समान वेतन के प्रावधान के चलते भी महिलाओं की भागीदारी का विरोध किया गया क्योंकि पुरुष (तुलनात्मक रूप से ऊँचे वेतन वाले) इन कामों पर विशेषाधिकार कायम रखना चाहते थे।

ज्यां द्रेज (वही) के अनुसार तकदीरी (सीतापुर जिला, उत्तर प्रदेश) ने यह बताया कि उसे बहुत से कार्यस्थलों से वापस लौटा दिया गया-और जब 'मजदूरों की अधिकता' हो जाती है तो महिलाओं को ही काम छोड़ने के लिए कहा जाता है। यहां यह गौरतलब है कि तकदीरी ने काम बढ़ने की जिस समस्या की ओर ध्यान दिलाया, वह अपने-आप में 'गैर-कानूनी' है, क्योंकि नरेगा के अन्तर्गत काम चाहने वाले सभी मजदूरों को काम का अधिकार है, और कानून के मुताबिक उन्हें सरकार द्वारा काम उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, नरेगा के कानूनी प्रावधानों के विपरीत अधिकांश स्थानों पर काम 'माँग से प्रेरित' नहीं है। इसके बजाय, अधिकांश स्थानों पर कार्य स्थानीय सरकारों की पहल से आरम्भ हुआ है, तथा किसी भी समय इसकी एक सीमित आपूर्ति ही हो सकती है। मौजूदा अध्ययन में साक्षात्कार देने वाले बहुत से लोगों के बारे में भी यही बात सच है। मुश्किल आर्थिक हालात का सामना कर रहे बहुत से लोगों के लिए आवश्यकता के अनुसार काम मिलना, काम के नियमित पारिश्रमिक मिलने जितना ही महत्वपूर्ण है। बहरहाल, विशेष रूप से ऐसी परिस्थितियों में महिलाओं को काम पर न रखना चिन्ता का विषय है।

ज्यां द्रेज (वही) के अनुसार ठेकेदारी की अनुचित उपस्थिति भी एक नकारात्मक कारक की भूमिका अदा करती है। इससे महिलाओं को काम मिलने में दिक्कत होती है और उन्हें इस कार्यक्रम का लाभ नहीं मिलता। जिन कार्यस्थलों पर ठेकेदारों की दखल थी, वहां 35% महिला श्रमिकों ने यह कहा कि उनका उत्पीड़न हुआ, जबकि ठेकेदारों से मुक्त कार्यस्थलों पर सिर्फ 8% महिलाओं ने ही ऐसी शिकायत की। इसके अलावा, जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है कि ठेकेदारों द्वारा संचालित कार्यस्थलों के ज्यादा शोषकारी होने की सम्भावना होती है।

प्रस्तुत शोध प्रपत्र में ज्यां द्रेज द्वारा बताई गई उपर्युक्त समस्याएं भी पाई गई हैं। इसके अलावा पारिश्रमिक मिलने में होने वाली देरी भी गरीब महिलाओं की भागीदारी में बाधक बनती हैं। ऐसी स्थिति में वे अपने गांव में ही उच्च वर्गों और प्रायः उच्च जातियों के घरों में सफ़-स्फ़ाई का काम करने को प्राथमिकता देती हैं क्योंकि वहां उनको नियमित रूप से मजदूरी प्राप्त होती है। बच्चों के पालन-पोषण का इंतजाम मनरेगा कार्यस्थल पर ही किए जाने का प्रावधान है लेकिन बहुत कम जगहों पर ऐसी समुचित व्यवस्थाएं की जाती हैं। अतः उन महिलाओं की मनरेगा में भागीदारी मुश्किल हो जाती है। सरकारी तंत्र का अपेक्षाकृत कम सहयोग, जागरूकता का पर्याप्त स्तर पर न होना तथा सड़ी-गली परंपराओं का दबाव भी महिलाओं की मनरेगा की भागीदारी को मुश्किल बनाता है। इन सबका स्पष्टतया प्रभाव दलित महिलाओं की प्रस्थिति पर भी पड़ता है।

हालांकि सैद्धांतिक धरातल पर यह तो स्पष्टतया दिखाई देता है कि मनरेगा के प्रावधान निश्चित रूप से ग्रामीण जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में मदद करते हैं। हाल के कोविड महामारी के दौरान प्रवासी मजदूरों को मनरेगा के कार्यक्रमों से जोड़कर उनके जीवन स्तर को बनाए रखने की कोशिशें काफी चर्चित रही हैं। यह यह भी महत्वपूर्ण है कि कोविड के दौरान मनरेगा के तहत कुछ राज्यों में 100 दिनों का न्यूनतम मजदूरी कार्यदिवस का स्तर प्राप्त कर लिया गया है जो कि सामान्य दिनों में संभव प्रतीत नहीं होता है। लेकिन मनरेगा का समग्र मूल्यांकन इसके आरंभ से लेकर आजतक की तिथि के आधार पर किया जाए तो यह पाया गया है कि यह कार्यक्रम दलित महिलाओं की प्रस्थिति को कुछ तो बेहतर जरूर बनाता है लेकिन अभी भी यह कार्यक्रम वह स्तर नहीं प्राप्त कर पाया है जो इससे अपेक्षित था।

References :

1. **Ahuja, Ram**, **1995 :** *Indian Social System*, New Delhi, Rawat Publiation.
2. **Azam, M**., 'The Impact of Indian Job Guarantee Scheme on Labour Market Outcomes : Evidence from a Natural Experiment', http:èèssrn.com/abstract:1941959. (From Ministry of Rural Development, 2012. Government of India, *MGNREGA sameeksha)*
3. **Boner, K., J. Dom, J. Dunkan, E. Dinsmore, K. Fuglesten, L. Lei etc., 2012 :** *MGNREGA Implementation* : *A Cross- State Comparison*, Woodro Wilson School, New Jersey, Prinston University.
4. **Babu, V.S. and K. H. Rao, 2010 :** *Impact of MGNREGS on Schduled Castes & Scheduled Tribes : Studies Conducted in Eight States*, Hyderabad, National Institute of Rural Development.
5. **Central Institute of Fisheries Education (CIFE)**, 2009. 'A study report on appraisal on MRNREGA Programme in Thane and Ankola Districts of Maharashtra', Report Ministry of Rural Development/UNDP.
6. **Chandrashekhar, C., and J. Ghosh**, 2011. 'Public Works & Wages in Rural India', Retrive from Macroscan : An Alternative Economic Webcentre (From Ministry of Rural Development, 2012. Government of India, *MGNREGA sameeksha)*
7. **Desai, Neera and M. Krishnaraj, 1990 :** *Women and Society in India*, New Delhi, Ajanta Publication.
8. **Dheerja, C. and H. Rao, 2010 :** *Changing Gender Relation : A Study of MGNREGS A Cross Different States*, Hyderabad, National Institute of Rural Development (NIRD).
9. **Drenz, J.** 2017. Bhartiya Nitiyon ka Samajik Paksha, sub-editor – **Kamal Nayan Chaubey**, EPW and Vani Prakashan, First Edition, New Delhi
10. **Homes, R.S. Rath and N. Sadana,** 2011. '*An opportunity for Challenge? Gender analysis of Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act*', London : Overseas Development Institute and Indian Institute of Dalit Studies.
11. **IIT Chennai,** 2010. '*NAREGA in Districts of Dharmpuri, Erode, Nagapattinam, Meramavlur, Tanjavur, Theni, Thodukundi, Tiruvallur, Vellor, Villupuram of Tamil Nadu*', report presented to Ministry of Rural Development/UNDP
12. **Jogdand, P.G., 1995 :** *Dalit Women in India : Issues and Perspective*, Pune, Gyan Publication.
13. **Kumar, V., 2005 :** 'Situating Dalits in Indian Sociology', *Sociological Bulletin* (special issue of *South Asia: The State of Sociology, Issues of Relevance and Rigour*), 54 (3, September-December). New Delhi.
14. **Kumar, V., 2010 : '**Teaching Caste and the Hindu Social Order: Dalits in Indian Sociology', in M. Chaudhuri (ed.), *Sociology in India: Intellectual and Institutional Practices*. New Delhi: Rawat Publications.
15. **Ministry of Rural Development**, 2012. Government of India, *MGNREGA sameeksha: An Anthology of Research Studies on the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee, Act 2005-2012*, edited and compled by Mihirshah, Neelakshi Mann and Varad Pande: New Delhi: Orient Blackswan.
16. **Michel, S. M.,** 2015. *Dalit in Modern India : Vision and Value*, New Delhi, Sage Publications.
17. **Nanda, Aradhana and P.G. Arul,** 2008. "Aarthik Vikas evam Mahilaiya" by Tapan Biswal (ed.) Manvadhikaar, Gender evam Paryavaran, New Delhi : Vivah Books Pvt. Ltd.

विनायक दामोदर सावरकर और 1857 : एक पुनरावलोकन

डॉ० अमृता कुमारी

सहायक प्राध्यापिका, इतिहास विभाग, आर.एन. कॉलेज, हाजीपुर

हाल ही में विनायक दामोदर सावरकर को भारत का सबसे बड़ा नागरिक सम्मान भारत रत्न दिए जाने की बात चर्चा के केन्द्र में रही। हालांकि इसका एक पक्ष द्वारा विरोध किया गया। इस पक्ष द्वारा गांधी की मौत में उनकी भूमिका, अंग्रेजी शासन के सामने माफीनामा दिए जाने का संदर्भ देकर विरोध किया गया, वहीं दूसरे पक्ष द्वारा समर्थन किया गया। समर्थक पक्ष द्वारा कहा गया कि 1857 जिसे 'भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' माना जाता है, के मानक इतिहास लेखन की शुरूआत विनायक दामोदर सावरकर ने की।

1857 के विद्रोह की 50वीं वर्षगांठ पर विनायक दामोदर की पुस्तक *1857 का स्वातंत्र्य समर* आई। लेकिन यह पुस्तक छपने से पहले ही ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिबंधित हो गई। ब्रिटिश सरकार द्वारा समाचार पत्रों, पुस्तकों, पत्रिकाओं एवं पैम्फलेट आदि पर प्रतिबंध कोई नई नीति नहीं थी, बल्कि प्रतिबंध रूपी इस हथियार का उपयोग पूरे औपनिवेशिक काल में किया जाता रहा, लेकिन यह प्रतिबंध इसलिए अनोखा था कि इसे पुस्तक के प्रकाशन के पूर्व ही लगाया गया। जैसा कि देवेन्द्र स्वरूप ने लिखा है कि "संभवत: यह विश्व की पहली पुस्तक है, जिसे प्रकाशन के पूर्व ही प्रतिबंधित होने का गौरव प्राप्त हुआ।"[1]

इस पुस्तक में सावरकर द्वारा पहली बार साम्राज्यवादी इतिहास लेखकों द्वारा स्थापित मान्यता 'सिपाही विद्रोह' का खंडन करते हुए भारतीय दृष्टि से विद्रोह का विश्लेषण किया गया एवं इसे 'भारत का स्वतंत्रता-संग्राम' के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। 1857 से जुड़े तथ्यों के प्रति ब्रिटिश सरकार की अत्यधिक संवेदनशीलता इस पुस्तक को प्रतिबंधित करने से जुड़ी थी, क्योंकि उस समय तक अंग्रेज इतिहासकारों ने इसे केवल सिपाही विद्रोह के रूप में चित्रित किया था। अंग्रेज इतिहासकारों की इस धारणा के विपरीत सावरकर ने इसे 'भारत की स्वाधीनता की लड़ाई' कहा, तथा गहराई से विद्रोह के कारण, विस्तार एवं नेतृत्व का विश्लेषण करते हुए इसे राष्ट्रीय आंदोलन के रूप में स्वीकार किया। इस तरह उन्होंने 1857 के संदर्भ में राष्ट्रवादी इतिहास लेखन की परंपरा की शुरूआत की।

सन् 1909 ई0 में प्रकाशित प्रथम गुप्त संस्करण की भूमिका में सावरकर ने लिखा था कि यद्यपि उन्हें इंडिया ऑफिस लाईब्रेरी एवं नेशनल म्यूजियम लाईब्रेरी में केवल ब्रिटिश सरकार के दस्तावेजों वं ब्रिटिश लेखकों की पुस्तकों पर ही निर्भर रहना पड़ा, किन्तु उस पूर्वाग्रह-युक्त विशाल सामग्री में भी उन्हें 'सिपाही विद्रोह' के परदे के भीतर एक सुनियोजित स्वातंत्र्य समर की स्पष्ट दर्शन हुए, जिसे उन्होंने मराठी पुस्तक में प्रस्तुत किया। दृष्टि परिवर्तन से उन्हीं तथ्यों में से कैसा नया चित्र उभरता है, इतिहास लेखन के क्षेत्र में उसका यह अत्युत्तम उदाहरण है।[2] नि:संदेह भारत रत्न की चर्चा छोड़ भी दें तो उनकी यह पुस्तक 1857 के इतिहास लेखन में एक प्रस्थान बिन्दु है।

1857 के विद्रोह के कारण के संदर्भ में सावरकर का कहना है कि प्रत्येक कार्य के पीछे कई कारण होते हैं; जैसे-कुछ प्रत्यक्ष, कुछ अप्रत्यक्ष कुछ आकस्मिक और कुछ प्रधान आदि। परन्तु इतिहासकार आकस्मिक कारण को प्रधान कारण का रूप दे देते हैं जिससे किसी ऐतिहासिक घटना का महत्व कभी समझ में नहीं आता। 1857 के विद्रोह के संदर्भ में साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने कारतूस वाली घटना को प्रधान कारण बताया। अगर सिर्फ यही कारण होते तो फिर बहादुर शाह जफर, नाना साहब, रानी लक्ष्मीबाई, वीर कुवंर सिंह इस विद्रोह की अगुवाई नहीं करते।[3]

सावरकर के अनुसार स्वधर्म एवं स्वराज्य इन दो मूल तत्वों को ध्यान में रखकर 1857 की क्रांति का संकल्प लिया गया, परन्तु विद्रोह की शतवार्षिकी पर प्रकाशित अपनी पुस्तक में मार्क्सवादी साहित्यकार रामविलास शर्मा लिखते हैं कि क्या सन् सत्तावन की राज्यक्रांति को हम स्वधर्म और स्वराज्य के लिए युद्ध कह सकते हैं? विद्रोहियों में अजीमुल्ला जैसे लोग थे जो अपने को सब धर्मों से परे मानते थे। उनमें नाना साहब जैसे लोग भी थे, जिन्हें ईसाई धर्म से कोई बैर न था। इसलिए यह मानते हुए कि बहुत से लोग धर्म की रक्षा के लिए लड़े, इसे स्वधर्म और स्वराज्य के लिए युद्ध कहना अनुचित होगा।[4]

1857 के विद्रोह के संगठन एवं योजनाबद्धता के संदर्भ में अंग्रेजी इतिहासकारों ने लिखा है कि सिपाहियों के बीच आपसी तालमेल नहीं था और कोई योजना भी नहीं थी। कुछ जगहों पर विद्रोह हुए और कुछ बागी नेताओं ने उनका नेतृत्व किया। इस प्रकार उनकी दृष्टि में विद्रोह का स्वरूप संगठित एवं सुनियोजित नहीं था। इस बिन्दु पर आज भी मतैक्य नहीं है लेकिन सावरकर इसे सुनियोजित मानते हैं एवं लिखते हैं कि इसे अत्यंत गोपनीयता से संगठित करने का कार्य श्रीमन्त नाना साहब, मौलवी अहमद शाह, वजीर अली नक्की खान आदि नेताओं ने किया।

साम्राज्यवादी इतिहास लेखन में इसे मूलत: 'सिपाही विद्रोह' के रूप में स्वीकार किया गया जिसे कुछ सामन्तों ने अपने स्वार्थ हेतु नेतृत्व प्रदान किया था। यह ठीक है कि विद्रोह का आरंभ बागी सिपाहियों ने किया था, लेकिन सावरकर लिखते हैं कि इस क्रांति में मात्र सिपाही ही भागीदार नहीं थे, अपितु

स्वत: स्फूर्त भावना से संत-सामंत, पुरुष एवं महिलाएँ, धनी एवं गरीब, तरूण और वृद्ध, सिपाही और नागरिक, मौलवी और पंडित सारे के सारे स्वदेश के नीचे अपने-अपने शस्त्र निकालकर परदेसी दासता पर हमला कर रहे थे।[5]

सावरकर ने इस क्रांति में अंग्रेजों के खिलाफ हिन्दुओं तथा मुसलमानों की एकता को रेखांकित किया है। 1857 में हिन्दुओं और मुसलमानों ने ईसाईयों से लड़ने के लिए अपने सदियों से चले आ रहे धार्मिक युद्ध को परे खिसका दिया था। उन्होंने 1857 के सिलसिले में हिन्दुओं और मुसलमानों का जिक्र सहोदर भाईयों के रूप में किया है जो मातृभूमि को समान रूप से प्यार करते थे।[6] इस तरह उन्होंने अपनी इस रचना में सप्रमाण यह सिद्ध किया कि भारत के हिन्दू-मुसलमानों ने कंधे से कंधा मिलाकर 1857 के स्वातंत्र्य समर में योगदान किया था।

इतिहासकारों का एक वर्ग यह मानता है कि 1857 के विद्रोह में पूरे देश ने भाग नहीं लिया था बल्कि यह कुछ निश्चित स्थानीय क्षेत्र तक ही सीमित था अत: इसे राष्ट्रीय जनविद्रोह नहीं माना जा सकता, लेकिन विद्रोह की व्यापकता एवं प्रसार के संदर्भ में सावरकर लिखते हैं कि इस क्रांति हेतु गुप्त योजना की तैयारी उत्तर से दक्षिण से चल रही थी, किन्तु निर्धारित समय से पहले मेरठ के सैनिकों द्वारा क्रांति शुरू किये जाने से समस्त हिन्दुस्तान में एक साथ इस क्रांति की लहरें नहीं उठ पायी। विद्रोह के प्रमुख केन्द्र के रूप में मेरठ, दिल्ली, अलीगढ़, नसीराबाद, रूहेलखंड, बनारस, इलाहाबाद, कानपुर, झांसी एवं अवध शामिल था। अत: यह सीमित नहीं था। साथ ही वे इलाके जो जनविद्रोह पट्टी के क्षेत्रों से बाहर पड़ते थे, जैसे-पंजाब, राजपूताना, महाराष्ट्र, हैदराबाद, आदिवासी बिहार और बंगाल के जनजातीय क्षेत्र उनसब जगहों में भी सैन्य विप्लव, स्थानीय मुठभेड़ और ब्रिटिश विरोधी संघर्ष हुए तथा जनसाधारण की सहानुभूति भी क्रांतिकारियों के साथ थी।[7]

नेतृत्व के संदर्भ में सावरकर लिखते हैं कि स्वराज्य एवं स्वधर्म, इन दोनों तत्वों से प्रेरित होकर कानुपर के नाना साहब पेशवा, मध्यप्रदेश के तॉत्याटोपे, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, बिहार के कुंवर सिंह एवं अमर सिंह, अवध की बेगम हजरत बेगम महल तथा मौलवी अहमदशाह ने इस महान क्रांति में अनुपम योगदान दिया। इन नेतृत्वकताओं को सावरकर ने महान बलिदान के रूप में प्रस्तुत किया तथा उन्हें आदर्श रूप में भारतीय जनमानस के समक्ष पेश किया। इसी आदर्श को सामने रखकर सुभाष चन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फौज में रानी झांसी रेजीमेन्ट का गठन किया था। जबकि उस समय तक साम्राज्यवादियों ने इन राष्ट्रभक्त क्रांतिकारी बलिदानियों को लूटेरा, विद्रोही, उपद्रवी, हत्यारा के रूप में चित्रित किया था।[8]

1857 के विद्रोह के दमन का साम्राज्यवादी इतिहास लेखन में एकांगी वर्णन किया गया जिसमें विद्रोहियों द्वारा किए गए कार्यों को काफी बढ़ा-चढ़ा कर पेश किया गया है। सावरकर ने इसके दमन के एकांगी विवरण से परे सच्चाई उजागर करने की कोशिश की है एवं लिखा है-"सन् 1857 में सारे हिन्दुस्तान में जितने अंग्रेज पुरुष, महिला और बच्चे कत्ल नहीं हुए उतने अकेले नील ने केवल इलाहाबाद में किए थे।....[9]

1857 की क्रांति की असफलता के बारे में सावरकर लिखते है कि अपनों के निकृण्टतम स्वराज्य की अपेक्षा अंग्रेजों का शांतिपूर्ण शासन भी स्वदेश के लिए अधिक हानिकारक है, इस तथ्य को भलीभांति न समझने के कारण ही अनेक मूर्खों ने अंग्रेजों का साथ दिया। ज्यादातर राजाओं ने वहीं भूमिका अदा की जिसे सावरकर ने 'दुविधा चरित्र' का नाम दिया है।[10] उन्होंने क्रांति की विजय होने पर भी अपना हित सुरक्षित रहे, इसलिए पूरी तरह अंग्रेजी का साथ नहीं दिया और परिणाम उलटा हो जाए तो भी हित बना रहे, इसीलिए पूरी तरह क्रांति का भी साथ न देने का दाँव चलाया था। कच्छ, बुंदेल, ग्वालियर, इंदौर, राजपूताना आदि अधिकतर रियासतों ने यहीं व्यवहार अपनाया था।[11]

इस तरह हम देखते हैं कि अंग्रेजों ने इसे 'सिपाही विद्रोह' कहकर इसके महत्व को कम करने की कोशिश की लेकिन साम्राज्यवादी इतिहास लेखन से बिल्कुल अलग सावरकर ने एक नई दृष्टि यानि भारतीय दृष्टि से विद्रोह का सांगोपांग विश्लेषण किया तथा इसे 'भारत का स्वतंत्रता संग्राम' कहा। राष्ट्रवादी इतिहास लेखन के रूप में 1857 की क्रांति को उन्होंने जिस तरह से देखा, वह भारतीय क्रांतिकारियों के लिए पथ प्रदर्शक एवं प्रेरणा का स्रोत बन गई। सन् 1914 के गदर आंदोलन से लेकर 1943-45 की आजाद हिन्द फौज तक कम-से-कम दो पीढ़ियों को स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी।

सावरकर के व्यक्तित्व के अनेक पहलू हैं, जिसको लेकर आलोचनाएँ भी होती है। जैसा कि नलिनी तनेजा का कहना है कि सावरकर के व्यक्तित्व को हिन्दुत्व से बाद में जुड़कर नहीं देखा जाना चाहिए बल्कि शुरू से ही वो इसके हिमायती थे। उन्होंने 1857 के विद्रोह में अंग्रेजों के खिलाफ हिन्दुओं तथा मुसलमानों की एकता को रेखांकित किया है, क्योंकि 1909 ई0 तक सांप्रदायिक इतिहास लेखन अपना वर्चस्व कायम नहीं कर पाया था, साथ ही 1909 के दौर में 1857 लोगों के लिए एक जिंदा अनुभव था एवं लोकगीतों में अलग-अलग धर्मों, जातियों तथा इलाकों से आये विद्रोह के अपने नायकों की याद की जिंदा बनाए रखे हुए थे।[12]

सावरकर की पुस्तक में वर्णित बहुत सारी बातें ऐतिहासिक रूप से त्रुटिपूर्ण हो सकती है लेकिन इस पुस्तक की महत्ता इस बात में निहित है कि वे 1857 को एक राष्ट्रीय आंदोलन मानते है। इस मूल्यांकन के साथ 1857 की चेतना का एक नया मूल्यांकन शुरू हुआ। इसके स्वरूप के संबंध में तमाम विवादों के बावजूद एक बात गौरतलब है कि मार्क्सवादी इतिहासकार आज उसी बिंदु पर पहुँच रहे हैं, जहाँ 1857 के पचास साल बाद सावरकर खड़े थे। 1957 में विद्रोह की शतवार्षिकी अवसर पर वरिष्ठ इतिहासकार आ. सी. मजूमदार ने इसे 'सिपाही विद्रोह' कहा तो डॉ. एस. बी. चौधरी ने 'जन विद्रोह' का शीर्षक दिया। भारत सरकार ने विवाद से बचने के लिए इतिहासकार सुरेन्द्रनाथ सेन द्वारा लिखित पुस्तक में केवल *अठारह सौ सत्तावन* जैसा शीर्षक अपनाया। पर दो वर्ष बाद सन् 1959 ई0 में मास्को से सोवियत संघ ने अमेरिका के एक दैनिक पत्र न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून में कार्ल मार्क्स एवं फ्रेडरिक एंगिल्स द्वारा 1857 की क्रांति पर लेखों का एक संकलन 'भारतीय स्वाधीनता की पहली लड़ाई' के नाम से प्रकाशित किया, यानी मार्क्स भी इसे भारतीय जनता की मुक्ति की आकांक्षा और अंग्रेजी साम्राज्य के खिलाफ उसके संघर्ष के रूप में परिभाषित कर चुके थे।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 1857 के विद्रोह के स्वरूप को लेकर वैचारिक स्तर पर मतभेद के बावजूद आज लगभग सर्वसम्मति से इसे 'जनविद्रोह', 'भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' के रूप में स्वीकार किया जा रहा है जो कि सावरकर द्वारा विद्रोह की गई व्याख्या को मान्यता देना है। अतः हमें नहीं भूलना चाहिए कि उन्होंने ही सर्वप्रथम साम्राज्यवादी व्याख्या द्वारा निर्मित भ्रम जाल को तोड़कर इसे राष्ट्रवादी इतिहास लेखन का अंग बनाया। इतिहासकार न होते हुए भी उन्होंने एक इतिहासकार की तरह तथ्यों का संकलन किया तथा औपनिवेशिक शासकों के एकांगी स्रोतों को पलटकर देखने की परंपरा की शुरूआत की थी, जो इतिहास लेखन की मुख्य धारा में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। रंजीत गुहा ने इसे ही तथ्यों को पलटकर देखने की 'नई विधा' की संज्ञा दी है।

संदर्भ सूची

1. देवेन्द्र स्वरूप, 'यह इतिहास की पुस्तक नहीं, स्वयं भी इतिहास है', विनायक दामोदर सावरकर, *1857 का स्वातंत्र्य समर*, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013 पृष्ठ सं.-7
2. वही, पृष्ठ सं.-21
3. वही, सावरकर, पृष्ठ सं.-34
4. रामविलास शर्मा, *सन सत्तावन की राज्यक्रांति और मार्क्सवाद,* लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007, पृष्ठ सं.-385
5. पूर्वोक्त, सावरकर, पृष्ठ सं.-80
6. नलिनी तनेजा, 'सावरकर के पहले दौर का मिथक', *1857 : इतिहास कला साहित्य,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010 पहला संस्करण 2007, पृष्ठ सं.-85-87
7. पी. सी. जोशी, 'हमारे इतिहास में 1857', प्रदीप सक्सेना (संपादित), *हमारे इतिहास में 1857*, शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ सं.-114
8. पूर्वोक्त, देवेन्द्र स्वरूप, पृष्ठ सं.-8
9. वही, सावरकर, पृष्ठ सं.-160
10. पूर्वोक्त, पी.सी. जोशी, पृष्ठ सं.-111
11. पूर्वोक्त, सावरकर, पृष्ठ सं.-221-22
12. पूर्वोक्त, नलिनी तनेजा, पृष्ठ सं.-86-87

कोरोना संक्रमण काल में फेक न्यूज़ रोकने में पीआईबी की भूमिका

डॉ० शैलेश शुक्ला

सहायक प्रबंधक (राजभाषा), एनएमडीसी [भारत सरकार का उपक्रम] दोणिमलै कॉम्प्लेक्स, सांदूर, बेल्लारी-583118 कर्नाटक, मो. 8759411563, ईमेल: poetshailesh@gmail.com

सार

चीन से पैदा हुए कोरोना वायरस कोविड-19 का संक्रमण विश्व के अन्य राष्ट्रों में फैल चुका है। इसी के साथ देश-दुनिया में फेक न्यूज़ (तथ्य हीन समाचार) भी तेजी से फैली है। अविश्वसनीय और भ्रामक सूचनाएं पूरे विश्व में इस हद तक फैल रही हैं कि कुछ समालोचक कोविड-19 वैश्विक महामारी से जुड़ी गलत सूचनाओं के इस नये अंबार को 'सूचनाओं की महामारी' कह रहे हैं। भ्रामक और अपुष्ट सूचनाओं को फैलाने में न्यूज मीडिया एक माध्यम बना है। लगातार फेक न्यूज़ के फैलने पर भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने चिंता जाहिर की और केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने कोरोना संक्रमण काल में भ्रामक और अपुष्ट सूचनाओं को लोकतंत्र के लिए खतरा बताया है। देश में 23 मार्च 2020 से लॉकडाउन शुरू होने के बाद सबसे ज्यादा भ्रामक और अपुष्ट सूचनाएं कोरोना वायरस के संक्रमण, सरकारी योजना एवं दिशा-निर्देश से संबंधित रही है। इसे देखते हुए केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के अधीन गठित 'पत्र सूचना कार्यालय' (पीआईबी) ने विशेष तौर पर तथ्यों की जांच कर लोगों को सही जानकारी देने का जिम्मेवारी उठाई. इसके आधार पर मुख्य धारा की कई मीडिया संस्थानों ने खबरें छापीं और प्रसारित कीं।

कुंजी/बीज शब्द : कोरोना वायरस, संक्रमण, फेक न्यूज़, न्यू मीडिया, पत्र सूचना कार्यालय, फर्जी समाचार

शोध विषय का चयन : सोशल मीडिया एक अभिव्यक्ति का स्वतंत्र माध्यम है। परंतु, इसका अर्थ यह नहीं है कि इस माध्यम के द्वारा लोग गलत एवं भ्रामक सूचनाओं का प्रसारण करें। भ्रामक, अपुष्ट और तथ्य हीन सूचनाएं आने के बाद जरूरी है कि जनता को तथ्यपरक और पुष्ट जानकारी दी जाए और भ्रामक एवं तथ्य हीन सूचनाओं के बारे में बताया जाए। सरकार से संबंधित योजनाओं एवं दिशा-निर्देश की भ्रामक सूचनाओं पर स्पष्टीकरण और तथ्य जांच करने की जिम्मेवारी भारत सरकार के 'पत्र सूचना कार्यालय' (पीआईबी) के पास है। कोरोना वायरस के संक्रमण के काल में किस तरह की फेक न्यूज का प्रचलन था और पीआईबी ने क्या कदम उठाए थे? इसका अध्ययन करने के लिए इस विषय का चयन किया गया है।

शोध का उद्देश्य

अध्ययन के उद्देश्य इस तरह है :

1. कोरोना वायरस के संक्रमण काल में फेक न्यूज़ की स्थिति का अध्ययन करना
2. फेक न्यूज़ को रोकने के लिए मुख्यत : पीआईबी द्वारा उठाए गए कदम का अध्ययन करना
3. फेक न्यूज़ से तथ्यों की जांच की विधि का विश्लेषण करना
4. पीआईबी द्वारा फेक न्यूज़ सत्यापित होने के बाद के असर का अध्ययन करना

शोध प्रविधि

शोध अध्ययन में अवलोकन विधि का प्रयोग किया गया है। इसके लिए मुख्य तौर पर पीआईबी मुख्यालय द्वारा जारी सूचनाओं, पीआईबी के फेसबुक और ट्विटर हैंडल का अध्ययन किया गया है। इसके अलावा मुख्य धारा की मीडिया में पीआईबी द्वारा तथ्यों को जांच कर दी गई सूचनाओं के आधार पर प्रकाशित समाचारों को अध्ययन में शामिल किया गया है।

अध्ययन की सीमा : भ्रामक, तथ्यहीन और अपुष्ट सूचनाओं को जांचने का काम कई निजी संस्थान और एजेंसियां अपने स्तर पर करती है, लेकिन अध्ययन के लिए केवल पत्र एवं सूचना कार्यालय द्वारा तथ्यात्मक जांच के लिए उठाए गए कदम का अध्ययन किया गया है। इसमें किसी अन्य संस्थान या एजेंसी को शामिल नहीं किया गया है।

शोध चयन प्रक्रिया : शोध अध्ययन के दौरान द्वितीयक आंकड़ों (सेकेंडरी डाटा) की मदद ली गई। इसमें न्यू मीडिया के माध्यम फेसबुक और ट्विटर पर अधिक ध्यान केंद्रित किया गया है। तथ्यात्मक पुष्टि के बाद खबरें देने वाले न्यूज पोर्टल/वेबसाइट को भी शामिल किया गया है। द्वितीयक आंकड़ों की मदद से ऑनलाइन खबरों और समाचार पत्रों के संबंध में उपलब्ध जानकारियों का प्रयोग किया गया है। तथ्य विश्लेषण शोध अध्ययन से तथ्यों का विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तावना : चीन से शुरू हुआ कोरोना वायरस कोविड-19 के संक्रमण को नियंत्रित करने के लिए वैश्विक स्तर पर वैज्ञानिक, शोधकर्ता और चिकित्सक इलाज ढूंढने के लिए कार्यरत हैं, लेकिन 14 सितंबर तक कोई ठोस सफलता हाथ नहीं लगी थी। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू एचओ) ने इस बीमारी के इलाज के लिए सबसे ठोस कदम 'सोशल डिस्टेंसिंग' (शारीरिक दूरी) को बताया। विश्व के दूसरे देशों की गंभीर स्थिति देखते हुए भारत सरकार ने 22 मार्च, 2020 को **'21 दिन के देशव्यापी लॉकडाउन'** की घोषणा की और बाद में इसकी समय-सीमा बढ़ा दी गई। चाहे टेलीवीजन हो या सोशल मीडिया हर जगह कोरोना वायरस ही बहस के केंद्र में है।

इस दौरान लोगों ने न्यूज मीडिया/ सोशल मीडिया पर अधिकांश समय व्यतीत करने लगे। कोरोना वायरस एक नई किस्म की बीमारी है और इसे लेकर पहले कोई ठोस अध्ययन नहीं किया गया था। ऐसे में लोगों ने अपुष्ट और तथ्यहीन सूचनाएं सोशल मीडिया जैसे फेसबुक, ट्विटर आदि और मैसेजिंग एप्लीकेशन वाट्सऐप, हाइक और टेलीग्राम आदि के माध्यम से फैलाने लगे। अपुष्ट, भ्रामक और तथ्यहीन सूचनाओं के चलते समाज में अलगाव और अंधविश्वास फैलने का खतरा बढ़ रहा है।

क्या है कोरोना वायरस : कोरोना वायरस कोई एकल विषाणु का नाम नहीं, बल्कि पूरा परिवार है। जिसे कोरोनवीरिडे कहा जाता है। इनमें से कुछ सामान्य जुकाम का कारण बनते हैं। कोरोना का अर्थ लैटिन भाषा में 'ताज' होता है। जब वैज्ञानिकों ने कोरोना वायरस को विद्युदणु सूक्ष्मदशंक यंत्र (इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप) से देखा तो यह विषाणु, सूर्य के कोरोना जैसा दिखाई दिया। वास्तव में यह विषाणु वर्तुलाकार है और इसकी सतह पर सूर्य के कोरोना जैसी प्रोटीन की शाखाएं उगी हुई है, जो हर दिशा में फैलती हुई ज्ञात होती हैं। परिणाम स्वरूप, इसका नाम 'कोरोना' रखा गया। इस कोरोना वायरस का अधिकारिक नाम कोविड-19 (COVID-19), इंटरनेशनल कमिटी ऑन टैक्सनॉमी ऑफ वायरस (आईसीटीवी) ने दिया है। इसमें 'सीओ' (CO) का मतलब कोरोना, 'वीआई' (VI) का मतलब वायरस, 'डी' (D) का मतलब डिजीज और संख्या '19' वर्ष 2019 को दर्शाती है, क्योंकि पहली बार यह वर्ष 2019 में मनुष्य में पाया गया था।[1] विषाणु एक संक्रमित व्यक्ति से दूसरे स्वास्थ्य व्यक्ति में फैलता है और कई दिनों तक जिंदा रह सकता है।

भारत में कोरोना वायरस का प्रवेश : भारत में सबसे पहले कोरोना वायरस से संक्रमित मरीज 30 जनवरी 2020 को केरल में पाया गया था। चीन के वुहान विश्वविद्यालय से केरल लौटी एक छात्रा में इसकी पुष्टि हुई थी।[2] इस बात की जानकारी केंद्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने पीआईबी द्वारा प्रेस विज्ञप्ति जारी करके दी। इसके बाद देश में लगातार कोरोना संक्रमित मरीजों की संख्या बढ़ती चली गई। 14 सितंबर 2020 तक की प्रतिवेदन के अनुसार, भारत में कुल संक्रमित मरीजों की संख्या 48,46,427 थी। इसमें 9,86,558 संक्रमित इलाजरत थे। जबकि 79,722 कोविड-19 संक्रमित मरीजों की मृत्यु हो चुकी थी। स्वाास्थ्य मंत्रालय के मुताबिक, 78 प्रतिशत की दर से मरीज स्वस्थ हुए है।[3]

क्या है फेक न्यूज़ : फेक न्यूज़ में काल्पनिक लेख, समाचार एवं सूचनाएं इत्यादि को शामिल किया जाता है जिसे पाठकों को गुमराह करने के उद्देश्य जानबूझकर प्रसारित किया जाता है। यह एक तरह की पीत पत्रकारिता है। इसके अंतर्गत किसी के पक्ष में प्रचार करना व झूठी खबर फैलाने जैसे कृत्य आते हैं। किसी व्यक्ति या संस्था की छवि को नुकसान पहुंचाने या लोगों को उसके खिलाफ झूठी खबर के माध्यम से भावनाओं को ठेस पहुंचाने या भड़काने की कोशिश फेक न्यूज है। सनसनीखेज और झूठी खबरों, बनावटी हेडलाइन के माध्यनम से पाठकवर्ग और ऑनलाइन सहभाजन बढ़ाकर राजस्व कमाना भी फेक न्यूज की श्रेणी में शामिल हैं।[4]

कोरोना काल में फेक न्यूज़ : सही सूचनाएं जहां आम लोगों की दुश्चिंताएं कम करती हैं, वहीं इंटरनेट और सोशल मीडिया के माध्यम से फैलने वाले दुष्प्रचार लोगों की परेशानियां बढ़ाने का कारण बनते हैं। इस महामारी से बचाव के लिए जहां विशेषज्ञों की टीम के माध्यम से सही सूचनाएं लोगों तक पहुंचती हैं, वहीं बेबुनियाद और अवैज्ञानिक समाधान से भी सूचना संसार भरा पड़ा है। कोरोना महामारी के बीच इस तरह के दुष्प्रचार को 'इंफोडेमिक' कहा जा रहा है। शब्दकोष में यह शब्द अभी जगह नहीं पा सका है, पर वर्ष 2002-03 में सीवियर एक्यूट रेस्पिरेटरी सिन्ड्रोम (सार्स) विषाणु के फैलने के दौरान पहली बार इस शब्द की चर्चा हुई थी। शाब्दिक अर्थ में इसे 'सूचना महामारी' कह सकते हैं यानी सूचनाओं की अधिकता, जो दुष्प्रचार, अफवाह आदि की शक्ल ले लेती है।

कोरोना वायरस के बारे में गलत जानकारी के कारण कम से कम 800 लोग मारे गए हैं। यह जानकारी 'अमेरिकन जर्नल ऑफ ट्रॉपिकल मेडिसिन एंड हाइजीन' के शोध में सामने आई है। विश्व भर में कोरोना से जुड़ी अफवाह के कारण लोगों को आंख की रोशनी से लेकर जान तक गंवानी पड़ी है। बीमारी से जुड़े 'कलंक और साजिश' के सिद्धांतों ने दुनिया भर में हजारों लोगों की पीड़ा को बढ़ा दिया है। 87 देशों की 25 भाषाओं में उपलब्ध डाटा का विश्लेषण से किए गए अध्ययन में पाया गया कि कुछ एशियाई देशों में, महामारी को रोकने के लिए काम कर रहे स्वास्थ्यकर्मियों और संक्रमित नागरिकों को बदनाम करने की बार-बार कोशिश की गई है। फलतः उन्हें कई बार गालियां सुननी पड़ी और शारीरिक हमले सहने पड़े।[5] भारत में भी यह घटनाएं हुई है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की ईकाई यूनेस्को ने कहा कि अविश्वसनीय और गलत सूचनाओं के कारण समालोचक कोविड-19 वैश्विक महामारी को 'सूचनाओं की महामारी' कह रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र के महासचिव एंटोनियो गुटेरेस ने 28 मार्च 2020 को कहा कि 'हमारा साझा दुश्मन कोविड-19 है, लेकिन दुष्प्रचार के माध्यम से जो 'इंफोडेमिक' फैला है, वह भी दुश्मन है।[6]' एक अप्रैल 2020 को भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने फर्जी खबरों को लेकर चिंता जताई और मीडिया (प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक और सोशल मीडिया) को अपनी जिम्मेदारी सही तरह से निभाने, घबराहट पैदा करने वाले और असत्यापित समाचारों के प्रसार पर रोक लगाने के निर्देश जारी किए।[7] 25 अगस्त, 2020 को विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लूएचओ) के महानिदेशक टेडरोस गेब्रेयसस ने कहा कि 'हम न सिर्फ महामारी से लड़ रहे हैं, बल्कि इंफोडेमिक से भी लड़ रहे हैं।[8]' 28 अगस्त को केंद्रीय सूचना प्रसारण मंत्री प्रकाश जावेड़कर ने फेक न्यूज को घातक वायरस बताया।[9]

फेक न्यूज़ की पहचान : भारत में फर्जी खबरों के अधिकांश मामले भ्रामक तस्वीरों या वीडियो वाले होते हैं जिसके नीचे "शब्द" लिखे होते है। इस तरह की खबरें 70 प्रतिशत तक फर्जी होती हैं। भारत में खास कर दो प्रकार की फर्जी खबरें होती हैं। एक राजनीतिक और दूसरी चिकित्सा जगत से संबंधित। चिकित्सा जगत से संबंधित फर्जी खबरों की निगरानी करना कठिन होता है क्योंकि उनका कोई निश्चित प्रतिमान या उद्देश्य नहीं होता है।[10] उदाहरणार्थ, गर्मी आने पर कोरोना वायरस खत्म हो जाएगा।

भ्रामक खबरें फैलाने में सोशल मीडिया की भूमिका : नागपुर के राष्ट्रसंत तुकोजी महाराज विश्वविद्यालय के जनसंचार विभाग ने 28 मार्च 2020 से चार अप्रैल 2020 के बीच करीब 1200 लोगों पर सर्वेक्षण किया है। सर्वेक्षण कहता है कि सोशल मीडिया पर कोरोना वायरस से जुड़ी 50 से 80 फीसदी जानकारी या खबर फर्जी होती हैं। उत्तरदाताओं में छात्र, सरकारी और निजी कर्मचारी, व्यापारी, पेशेवर और गृहणियां शामिल हैं। 39.1 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि सोशल मीडिया पर 50 से 80 प्रतिशत जानकारी झूठी थी। करीब 10.8 फीसदी लोगों को लगता है कि सोशल मीडिया पर 80 फीसदी से अधिक जानकारी फर्जी होती है।[11]

पत्र सूचना कार्यालय (पीआईबी) क्या है : केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के अंतर्गत मीडिया इकाई, पत्र सूचना कार्यालय, भारत सरकार का आधिकारिक वक्ता है। यह सरकार की नीतियों, कार्यक्रमों तथा प्रयासों के बारे में सूचना प्रसारित करने के लिए भारत सरकार की नोडल एजेंसी है। सरकार को उसकी नीतियों और कार्यक्रमों पर लोगों की राय उपलब्ध कराना है। यह कार्यालय प्रेस विज्ञप्तियों, प्रेस नोट, विशेष लेखों, संदर्भ सामग्री, प्रेस ब्रीफिंग, फोटोग्राफ, संवाददाता सम्मेलन, साक्षात्कार आदि कार्यालय की वेबसाइट के माध्यम से सूचना को सर्वत्र पहुंचाता है। पत्र सूचना कार्यालय 1919 में एक छोटे-से प्रकोष्ठ के रूप में स्थापित किया गया था, जो अब 8 क्षेत्रीय कार्यालयों और 34 शाखा कार्यालयों के राष्ट्रव्यापी नेटवर्क में विकसित हो चुका है।[12]

पीआईबी ने तथ्य जांच इकाई गठित की : फर्जी खबर यानी फेक न्यूज से निपटने की कोशिश के अंतर्गत पीआईबी ने केंद्र सरकार के मंत्रालयों, विभागों और योजनाओं के बारे में खबरों का सत्यापन करने के लिए 29 नवंबर 2019 को एक 'तथ्य जांच इकाई' गठित की थी।[13] इसका उद्देश्य सोशल मीडिया उपयोगकर्ता से सूचना एकत्रित कर और स्वयं परिवीक्षक विधि द्वारा सूचना एकत्रित कर जांचने के बाद सत्याापित करना और लोगों तक अधिकारिक जानकारी देना था। इसके लिए ट्विटर, फेसबुक और इंस्टाग्राम पर अधिकारिक अकाउंट पीआईबी फैक्ट चेक के नाम से बनाया गया।

'पीआईबीफैक्टचेक' ट्विटर पर एक सत्यापित हैंडल है, जो सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर ट्रेंडिंग संदेशों की निगरानी करता है और फर्जी खबर को उजागर करने के लिए प्रसारित सामग्री की व्यापक समीक्षा करता है। तथ्य जांच के बाद अधिकारिक जानकारी दी जाती है। इसके अलावा, पीआईबी इंडिया और पीआईबी की कई क्षेत्रीय यूनिटों के हैंडल से ट्विटर समुदाय के हित में हैशटैग पीआईबीफैक्टचेक के साथ किसी भी सामग्री के आधिकारिक और प्रामाणिक बयान पोस्ट किए जाते हैं।

पीआईबी फैक्ट कोविड-पोर्टल की शुरुआत : कोरोना काल में लगातार असत्यापित सूचनाओं के प्रसारण को देखते हुए 02 अप्रैल 2020 को पत्र सूचना कार्यालय (पीआईबी) ने एक पोर्टल- कोविड 19 तथ्य सत्यापित इकाई स्थापित की थी। कोविड 19 पर सरकार के फैसलों और घटनाक्रमों व प्रगति से संबंधित जानकारी देने के लिए पीआईबी ने प्रतिदिन रात 8 बजे एक बुलेटिन भी जारी करना शुरू किया है।[14] इसके अलावा पीआईबी अपने सोशल मीडिया हैंडल और प्रेस विज्ञप्ति के माध्यम से इंटरनेट की दुनिया में चल रहे फर्जी समाचारों की एक सूची भी जारी करता है। सत्यापित सूचनाएं भी प्रसारित की जाती हैं।

पीआईबी के आधार पर छपी खबरों का अध्ययन : पूर्ण लॉकडाउन के दौरान सोशल मीडिया पर कई ऐसी योजनाओं की सूचना प्रसारित हो रही थी, जो वास्तव में नहीं थी। कई ऐसी अपुष्ट सूचनाएं भी प्रसारित हो रही थी। जिसके आधार पर देश-समाज में भ्रम की स्थिति पैदा हो रही थी। इसे देखते हुए पीआईबी ने सरकार और संबंधित मंत्रालय का पक्ष लेते हुए पूरे तथ्यों की जांच की और उसकी सही सूचना को प्रसारित किया। जिसे मुख्य धारा की मीडिया ने भी स्थान दिया और पाठकों एवं दर्शकों तक सूचनाएं पहुंचाई। कुछ उदाहरण इस प्रकार है :-

1. प्रसारित सूचना : 15 जून से देश भर में दोबारा लॉकडाउन लग जाएगा
   पीआईबी : गृह मंत्रालय द्वारा 15 जून से फिर से देश में पूर्ण तालाबंदी की कोई योजना नहीं है। इस तरह की कोई योजना भारत सरकार की नहीं है।[15]
2. प्रसारित सूचना : भारत सरकार सभी मोबाइल यूजर्स को 3 मई तक मुफ्त में इंटरनेट देगी।
   पीआईबी : भारतीय दूरसंचार विभाग 3 मई तक यूजर्स को किसी भी तरह का मुफ्त इंटरनेट डेटा नहीं दे रहा है। यह दावा पूरी तरह से फर्जी और भ्रामक है।
3. प्रसारित सूचना : कोरोना महामारी को देखते हुए पीएम मास्क योजना के अंतर्गत सरकार ने मुफ्त मास्क बांटने का निर्णय लिया है।
   पीआईबी : सरकार की ऐसी कोई योजना है। मुफ्त मास्क लेने के लिए दिए गए लिंक के माध्यम से धोखाधड़ी हो सकती है। इस तरह की फर्जी खबर न फैलाए और सावधान रहे।

इसी तरह पीआईबी ने सोशल मीडिया पर पीएम धन लक्ष्मी योजना के अंतर्गत महिलाओं को पांच लाख रुपये तक शून्य प्रतिशत ब्याज पर लोन की बात समेत कई सूचनाओं के तथ्यों की जांच कर फर्जी करार दिया। इन सूचनाओं को फर्जी करार देते हुए पीआईबी की तथ्य जांच इकाई ने अपने ट्वीटर हैंडल से ट्वीट किया। जिसे इकोनॉमिक टाइम्स[16], एबीपी न्यूज[17], अमर उजाला[18], वेब दुनिया[19], पत्रिका[20], डीडी न्यूज समेत दर्जनों व अखबारों, न्यूज पोर्टल व चौनल ने प्रकाशित एवं प्रसारित किए।

मीडिया संस्थानों पर भी उठाए सवाल : कोरोना वायरस के संक्रमण से उपजे स्थिति में सोशल मीडिया के अलावा कुछ मीडिया संस्थानों ने भी अपुष्ट और भ्रामक खबरों को प्रसारित व प्रकाशित किया। पीआईबी की टीम ने उसे परखा, जाँचा और फिर चैनल, समाचार पत्र और न्यूज पोर्टल में प्रकाशित खबरों को फर्जी और भ्रामक करार देते हुए नोटिस भी जारी किए।

कन्नड़ न्यूज चैनल 'पब्लिक टीवी' चैनल ने 15 अप्रैल को रात 8.30 बजे हेलिकॉप्टर मनी नाम से एक कार्यक्रम प्रसारित किया था, जिसमें लोगों को मुफ्त पैसा दिए जाने की बाते बताई। पीआईबी की तथ्य जांच करने वाली टीम ने चैनल के दावे का खंडन किया। पीआईबी के अतिरिक्त महानिदेशक एम. नागेंद्र स्वामी की ओर से 16 अप्रैल को कारण बताओ नोटिस जारी किया।[21] अंग्रेजी न्यूज पोर्टल स्क्रॉल ने एक खबर में बताया कि पूर्ण तालाबंदी की वजह से बिहार के जहानाबाद जिले के बालगृह में किशोर मेढक खा रहे हैं। इस दावे को पीआईबी तथ्य जांच इकाई ने स्थानीय जिला उपायुक्त व प्रशासन के

माध्यम से मेढक खाने की बात को फर्जी करार दिया। स्क्रॉल की एक अन्य खबर में बताया कि भारत ने जनवरी से मई 2020 तक 65 लाख टन अनाज बर्बाद कर दिया है। पीआईबी ने इसे पूरी तरह गलत बताया और कहा कि यह लेख बेबुनियाद है और इसमें तथ्यों को गलत तरीके से पेश किया गया है। भारतीय खा। निगम द्वारा ट्रांजिट में स्टॉक भेजने को अन्न की बर्बादी के रूप में व्याख्या की गई है।[22]

निष्कर्ष

न्यूज मीडिया/सोशल मीडिया की रफ्तार तेज है। किसी व्यक्ति के द्वारा डाली गई भ्रामक सामग्री (विषय वस्तु) कुछ समय में हजारों-लाखों लोगों तक पहुंच जाती है। सोशल मीडिया का दौर कहे जा रहे इस युग में फेक न्यूज के बढ़ते मामलों ने उसकी विश्वसनीयता पर भी सवाल खड़े किए हैं। लोगों में जागरूकता की कमी की वजह से ज्यादातर लोग सोशल मीडिया पर तैर रही लगभग हर बात पर भरोसा कर लेते हैं।

कोरोना काल में "इंफोडेमिक" ने कोविड-19 से जुड़ी पीड़ा को सोशल मीडिया और अफवाहों के जरिए और अधिक बढ़ाया है। इसका मुख्य कारण समुचित विनियमन का अभाव है। ऑनलाइन समाचार/सूचना पोर्टल के खोलने के लिए आवश्यक बाध्यकारी नियमों की कमी की वजह से भी भ्रामक खबरों को प्रसार मिला है। कुछ मामलों में क्लिक के द्वारा प्रत्येक ऑनलाइन व्यू से लाभ कमाने के उद्देश्य से फर्जी खबर फैलाई गई। पीआईबी ने कोरोना संक्रमण काल में भ्रामक और अपुष्ट खबरों की जांच कर सभी के सामने तथ्य रखे और उसे चैनल, अखबार व न्यूज पोर्टल ने समाचार के तौर पर प्रकाशित किया। सरकारी वक्ता के तौर पर पीआईबी द्वारा तथ्य रखने पर सही जानकारी भी लोगों को मिली। तथ्य जांच की प्रक्रिया सटीक होने के कारण किसी भी सूचनाओं को लेकर दोबारा स्पष्टीकरण जारी नहीं करना पड़ा।

अनुशंसा : अध्ययन के आधार पर कुछ संस्तुतियाँ इस प्रकार है :

1. सोशल मीडिया साक्षरता को बढ़ावा दिया जाए।
2. फेक न्यूज की पहचान के लिए उन्नत वेब टूल्स को विकसित करना चाहिए, जिनसे सूचनाओं की निगरानी और विश्लेषण किया जा सके।
3. फेक न्यूज के संदर्भ में एक मानक प्रस्तुत किया जाना चाहिए, जिसके उल्लंघन पर संबंधित पक्ष को दंडित किया जा सके।
4. समाचार पत्रों एवं सोशल मीडिया की नैतिक जिम्मेदारी सुनिश्चित की जाए, जिससे वे फेक न्यूज प्रदान नहीं करें।
5. इस संबंध में विनियमन और नीतिगत अपंगता को दूर किया जाए एवं इसका विस्तार समग्र मीडिया तक हों।

संदर्भ सूची

1. https://www.who.int/emergencies/diseases/novel-coronavirus-2019/technical-guidance/naming-the-coronavirus-disease-(covid-2019)-and-the-virus-that-causes-it
2. https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1601095,
3. https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1654144
4. https://journals.sagepub.com/doi/pdf/10.1177/0924051917738685
5. https://www.dw.com/hi/spread-of-coronavirus-misinformation-online-causes-hundreds-of-deaths/a-54536394
6. https://www.un.org/en/un-coronavirus-communications-team/un-tackling-%E2%80%98infodemic%E2%80%99-misinformation-and-cybercrime-covid-19
7. https://www.amarujala.com/india-news/fake-news-supreme-court-directed-to-media-including-print-electronic-and-social-media-to-stop-unverified-and-panic-news
8. https://www.who.int/news-room/feature-stories/detail/immunizing-the-public-against-misinformation
9. https://www.samachar4media.com/industry-briefing-news/fake-news-is-more-dangerous-than-paid-news-says-prakash-javadekar-54166.html
10. https://caravanmagazine.in/politics/alt-news-pratik-sinha-fake-news-election-hindi
11. https://www.livehindustan.com/national/story-80-percent-information-regarding-coronavirus-on-social-media-are-fake-3131225.html
12. https://bharatdiscovery.org/india/पत्र सूचना कार्यालय
13. https://thewirehindi.com/102842/pib-set-up-fact-check-unit-to-deal-with-fake-news-about-the-government/
14. https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/pibs-covid-19-fact-check-unit-becomes-operational/articleshow/74948166.cms
15. https://twitter.com/PIBFactCheck/status/1270641032909123585
16. https://economictimes.indiatimes.com/hindi/news/will-complete-lockdown-be-imposed-again-from-june-15-2020/articleshow/76335765.cms
17. https://www.abplive.com/news/india/will-their-be-again-lockdown-after-june-15-know-what-is-the-truth-1427573
18. https://www.amarujala.com/india-news/pib-fact-check-unit-explained-there-is-no-no-provision-of-free-internet-and-other-fake-news
19. https://hindi.webdunia.com/web-viral/social-media-claims-government-is-giving-free-internet-to-all-users-till-3rd-may-fact-check-120042300029_1.html
20. https://www.patrika.com/indore-news/fact-check-free-internet-recharge-to-mobile-user-due-to-lockdown-india-6033200/
21. https://www.samachar4media.com/tv-media-news/pib-has-sent-show-cause-notice-to-public-tv-for-spreading-false-information-53276.html
22. https://hindi.opindia.com/fact-check/media-fact-check/fci-food-corporation-of-india-scroll-65-lakh-tonnes-of-food-grain-fact-check/

गुप्तकाल: आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था

डॉ० रिंकु कुमारी

एम.ए,पीएच.डी, ललित नारायण मिथिला यूनिवर्सिटी, दरभंगा, बिहार
मु. सुंदरपुर बीरा, पो. वासुदेवपुर बीरा, दरभंगा, बिहार

गुप्त राजवंश प्राचीन भारत के प्रमुख राजवंशों में से एक था। मौर्य वंश के पतन के बाद दीर्घकाल में हर्ष तक भारत में राजनीतिक एकता स्थापित नहीं रही। कुषाण एवं सातवाहनों ने राजनीतिक एकता लाने का प्रयास किया। मौर्योत्तर काल के उपरान्त तीसरी शताब्दी ईस्वी में तीन राजवंशो का उदय हुआ जिसमें मध्य भारत में नाग शक्ति, दक्षिण में वाकाटक तथा पूर्वी में गुप्त वंश प्रमुख हैं। मौर्य वंश के पतन के पश्चात नष्ट हुई राजनीतिक एकता को पुन: स्थापित करने का श्रेय गुप्त वंश को है। गुप्त साम्राज्य की नींव तीसरी शताब्दी के चौथे दशक में तथा उत्थान चौथी शताब्दी की शुरुआत में हुआ। गुप्त वंश का प्रारम्भिक राज्य आधुनिक उत्तर प्रदेश और बिहार में था। गुप्त्त सामाज्य्य का उदय तीसरी शताब्द्दी के अन्त में प्रयाग के निकट कौशाम्ब्बी में हुआ था। जिस प्राचीनतम गुप्त राजा के बारे में पता चला है वो है श्रीगुप्त। हालांकि प्रभावती गुप्त के पूना ताम्रपत्र अभिलेख में इसे श्आदिराजश कहकर सम्बोधित किया गया है। श्रीगुप्त ने गया में चीनी यात्रियों के लिए एक मंदिर बनवाया था जिसका उल्लेख चीनी यात्री इत्सिंग ने ५०० वर्षों बाद सन् ६७१ से सन् ६९५ के बीच में किया। पुराणों में ये कहा गया है कि आरंभिक गुप्त राजाओं का साम्राज्य गंगा द्रोणी, प्रयाग, साकेत (अयोध्या) तथा मगध में फैला था। श्रीगुप्त के समय में महाराजा की उपाधि सामन्तों को प्रदान की जाती थी, अत: श्रीगुप्त किसी के अधीन शासक था। प्रसिद्ध इतिहासकार के. पी. जायसवाल के अनुसार श्रीगुप्त भारशिवों के अधीन छोटे से राज्य प्रयाग का शासक था। चीनी यात्री इत्सिंग के अनुसार मगध के मृग शिखावन में एक मन्दिर का निर्माण करवाया था। तथा मन्दिर के व्यय में २४ गाँव को दान दिये थे। श्रीगुप्त के बाद उसका पुत्र घटोत्कच गद्दी पर बैठा। २८० ई. से 320 ई. तक गुप्त साम्राज्य का शासक बना रहा। इसने भी महाराजा की उपाधि धारण की थी।प्रभावती गुप्ता के पूना एवं रिद्धपुर ताम्रपत्र अभिलेखों में घटोत्कच को गुप्त वंश का प्रथम राजा बताया गया है, इसका राज्य सम्भवत: मगध के आस-पास तक ही सीमित था।

गुप्तकाल सामाजिक व्यवस्था

गुप्त काल में वर्ण व्यवस्था पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित थी वराहमिहिर ने गुप्त काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र के लिए क्रमश पाँच, चार, तीन व दो कमरे हों ऐसा विचार दिया था गुप्तकालीन भारतीय समाज परंपरागत 4 जातियों मे विभत है:

- ब्राह्मण
- क्षत्रिय
- वैश्य एवं
- शूद्र में विभाजित था।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में तथा वराहमिहिर ने वृहतसंहिता में चारों वर्णो के लिए अलग अलग बस्तियों का विधान किया है। न्याय संहिताओं में यह उल्लेख मिलता है कि ब्राह्मण की परीक्षा तुला से, क्षत्रिय की परीक्षा अग्नि से, वैश्य की परीक्षा जल से तथा शूद्र की विषय से की जानी चाहिए।गुप्त काल में भेदभाव न्याय व्यवस्था में वर्ण के अनुसार था इस काल में समाज के सभी वर्णों व जातियों में ब्राह्मणों को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था अनेक मिश्रित व संकर जातियां अस्तित्व में आ चुकी थीं। गुप्त कालीन अभिलेखों से कायस्थ नामक पदाधिकारी का जिक्र मिलता है यह पेशेवर लेखक था गुप्त काल में कायस्थ विशिष्ट जाति नहीं बन पाये थे। मृच्छकटिकम के उल्लेख से यह प्रमाणित होता है कि चारुदत्त नामक ब्राह्मण वाणिज्य का कार्य करता था। उसे ब्राह्मण का 'आपद्धर्म' कहा गया है। मृच्छकटिकम गुप्तकलीन रचना उज्जयिनी में कुछ शूद्र अधिकारी थे ऐसा विवरण देती है। फाह्यान ने अछूतों को चाण्डाल कहा था गुप्तकलीन साहित्य में स्त्रियों को प्रतिष्ठित स्थान मिला है इस काल मेनस्ट्रीम प्राय: विवाह सजातीय होते थे

गुप्तकाल मेनस्ट्रीम कन्याओं का विवाह सामान्यत: 12-13 वर्ष की अवस्था में होता था गुप्त काल में सम्भवत: कन्या का उपनयन बन्द हो गया था याज्ञवल्क्य स्मृति ग्रन्थ में उपनयन का निषेध किया गया है गुप्त काल में सती प्रथा का प्रमाण भानुगुप्त के एरण अभिलेख से (510 ई.) मिलता हैइस काल में शूद्रों की स्थिति में सुधार हुआ तथा अब वे रामायण, महाभारत और पुराणों को सुनने के लिए स्वतंत्र थे। याज्ञवलक्य स्मृति में पत्नी को भी पति के संपत्ति का अधिकारी बताया गया है। समाज में वेश्याओं के अस्तित्व का भी प्रमाण मिला है। स्मृतिग्रंथों से समाज में दास-प्रथा के प्रचलन का भी प्रमाण मिलता है।

मिश्रित जातियाँ

गुप्त काल में अनेक मिश्रित जातियों का भी उल्लेख मिलता है जैसे– मूर्द्धावषिृत्क, अम्बष्ठ, पारशव, उग्र एवं करण। इनमें मुख्य रूप से अम्बष्ठ, उग्र, पारशव की संख्या गुप्तकालीन समाज में अधिक थी।

अम्बष्ठ- ब्राह्मण पुरुष एवं वैष्य से उत्पन्न संतान अम्बष्ठ कही गई. विष्णु पुराण में इन्हें नदी तट का निवासी माना गया है। मनु ने इनका मुख्य व्यवसाय चिकित्सा बताया है।पराशव- इस जाति की उत्पत्ति ब्राह्मण पुरुष एवं शूद्र स्त्री से हुई है इन्हें निषाद भी कहा जाता है। पुराणो में इनके विषय में जानकारी मिलती है।उग्र ख़ गौतम के अनुसार वैश्य पुरुष एवं शूद्र स्त्री से उत्पन्न जाति उग्र कहलाई पर स्मृतियों का मानना है कि इस जाति की उत्पत्ति क्षत्रिय पुरुष एवं शूद्र जाति की स्त्री से हुई है। इनका मुख्य कार्य था बिल के अन्दर से जानवरों को बाहर निकाल कर जीवन-यापन करना।

गुप्तकालीन व्यवसायी समाज

श्रेणी : समान व्यवसायियों का संगठन।

- निगम : शिल्पियों का संगठन।
- पट्टवाय : रेशमी वस्त्र बुनने वाले जुलाहे
- मृत्तिकार :-कुंभकार (कुम्हार)।
- अंतेवासी : आचार्य के निर्देशन में गुरुकुल में ही रहकर शिक्षार्जन करने वाला।
- साहूकार : ब्याज की दर पर रुपया उधार लेने वाला।
- गन्धव्य : इत्र बनाने वाला गन्धी।
- कासवन : नाई।
- चम्मचाह : चमड़े का काम करने वाला।
- कंकार : बर्तन गढने वाला कसेरा।
- भिल्ल : आखेट कर जीविका उपार्जन करने वाला वर्ग।
- गुआर : पशुओं को चराने वाले ग्वाले। छिप्प छीपा वर्ग।
- अंतपीलक : तेल निकलने वाले तेली।

गुप्तकालीन धार्मिक जीवन

गुप्त शासकों का शासन-काल ब्राह्मण (हिन्दू) धर्म की उन्नति के लिये विख्यात है। यद्यपि, फाह्यान के अनुसार बौद्ध धर्म उन्नत अवस्था में था, लेकिन यथार्थ रूप में इस धर्म का जो उत्कर्ष अशोक और कनिष्क के काल में था वह गुप्त काल में नहीं रहा, परन्तु कुछ स्तूपों और विहारों का निर्माण हुआ तथा नालंदा बौद्ध शिक्षा का केन्द्र था।

गुप्त शासक वैष्णव धर्म के अनुयायी थे तथा उनकी उपाधि 'परमभागवत' थी। उन्होंने कई वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान किया। गुप्तकालीन शासक पूर्णतया धर्म-सहिष्णु थे तथा वे किसी भी अर्थ में प्रतिक्रियावादी नहीं थे। उनकी धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारता की नीति ने इस काल में विभिन्न धर्मों एवं संप्रदायों को फलने-फूलने का समुचित अवसर प्रदान किया था। वे बिना किसी भेदभाव के राज्य के प्रशासनिक पदों पर सभी धर्मानुयायियों की नियुक्तियाँ करते थे जैसे-समुद्रगुप्त ने अपने पुत्र की शिक्षा-दीक्षा के लिए प्रख्यात बौद्ध विद्वान् वसुबन्धु को नियुक्त किया था

तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' ने शैव वीरसेन तथा बौद्ध अभ्रकादव को क्रमशः अपना प्रधानमंत्री एवं प्रधान सेनापति के रूप में नियुक्त किया था। स्कंदगुप्त के शासनकाल में पाँच जैन तीर्थंकरों की पाषाण प्रतिमाओं का निर्माण करवाया गया था।परवर्ती शासक वैन्यगुप्त जो शैव था, 'वैवर्क्तिक संघ' नामक महायान बौद्ध संस्थान को दान दिया था। वस्तुतः गुप्तकालीन जनता को अपनी इच्छानुसार धर्म अपनाने की स्वतंत्रता प्राप्त थी। गुप्त काल के बहुसंख्यक अभिलेखों में भगवान विष्णु के मंदिरों का उल्लेख मिलता है।इस काल में विष्णु के अतिरिक्त शिव, गंगा-यमुना, दुर्गा, सूर्य, नाग, यक्ष आदि देवताओं की उपासना होती थी। मंदिर निर्माण का अस्तित्व इसी काल में आया, जैसे-देवगढ़ का दशावतार मंदिर, भूमरा का शिव मंदिर तथा भीतर गाँव का मंदिर आदि।

हिन्दू देवी-देवताओं के अतिरिक्त जैन एवं बौद्ध मतानुयायी भी देश में बड़ी संख्या में विद्यमान थे। इस काल में विदेशों में भी हिन्दू धर्म एवं क्रियाओं (संस्कार आदि) को अपना लिया गया था, जैसे-जावा, सुमात्रा, बोनियों आदि। दक्षिण पूर्व एशिया के विभिन्न द्वीपों में हिन्दू धर्म का व्यापक प्रचार हो चुका था।

गुप्तकालीन साहित्य

गुप्तकाल में साहित्य का सर्वाधिक विकास हुआ। गुप्त साम्राज्य की स्थापना के साथ ही संस्कृत भाषा की उन्नति को बल मिला तथा यह राजभाषा के पद पर आसीन हुई।गुप्त शासक स्वयं संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रेमी थे तथा उन्होंने योग्य कवियों, लेखकों एवं साहित्यकारों को राज्याश्रय प्रदान किया

था।प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त को कविराज कहा गया है। चन्द्रगुप्त द्वितीय भी बड़ा विद्वान एवं साहित्यानुरागी था जिसकी राजसभा नवरत्नों से अलंकृत थी।

गुप्त काल में लौकिक साहित्य का अत्यधिक विकास हुआ। भास के तेरह नाटक इसी काल के हैं। शूद्रक का लिखा नाटक 'मृच्छकटिक' जिसमें निध न ब्राह्मण के साथ वैश्या का प्रेम वर्णित है, प्राचीन नाटकों में सर्वोत्कृष्ट कोटि का माना जाता है।गुप्तकाल में सबसे ज्यादा ख्याति कालिदास की कृतियों ने प्राप्त की है, क्योंकि कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' विश्व की उत्कृष्टतम साहित्यिक कृतियों में एक है। यह प्रथम भारतीय रचना है जिसका अनुवाद यूरोपीय भाषा में हुआ तथा दूसरी रचना भगवद्गीता है।गुप्तकालीन नाटकों में स्त्री और शूद्र प्राकृत बोलते हैं जबकि सभ्यजन संस्कृत। गुप्तकाल में धार्मिक साहित्य की रचना में भी प्रगति हुई, जैसे-रामायण और महाभारत ईसा की चौथी सदी में आकर लगभग पूरे हो चुके थे। इस काल में बहुत सी स्मृतियाँ भी लिखी गई जिनमें सामाजिक और धार्मिक नियम-कानून पद्य में बाँधकर संकलित किये गये हैं।

स्मृतियों पर टीकाएँ लिखने की अवस्था गुप्तकाल के बाद आई. इस काल में पाणिनी और पतंजलि के ग्रंथो के आधार पर संस्कृत व्याकरण का भी विकास हुआ। अमरकोश का संकलन अमर सिंह ने किया। भारवि ने 18 सर्गों का 'किरातार्जुनियम' महाकाव्य लिखा।

गुप्तकालीन साहित्य

- मृच्छकटिकम् शूद्रक
- मुद्राराक्षस, देवीचंद्रगुप्तम् विशाखदत्त
- वासवदता सुबंधु
- पंचतंत्र विष्णु शर्मा
- नीतिसार कामंदक
- कामसूत्र वात्सायन
- कुमारसंभव, मेघदूत, रघुवंश, ऋतुसंहार, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीयम, अभिज्ञान शाकुन्तलम् ... कालिदास
- स्वप्नवासवदत्ता भास
- महाभारत वेद व्यास
- सूर्य सिद्धांत आर्यभट्ट
- मालती माधव भवभूति
- गणित सार श्रीधर
- निघन्टु धनवन्तरि
- गाथा सप्तसती हाल

गुप्तकालीन विज्ञान और प्रोद्योगिकी

गुप्तकाल में अंकगणित, ज्योतिष, रसायन, धातु विज्ञान आदि का सम्यक विकास हुआ। प्रसिद्ध गणितज्ञ आर्यभट्ट ने गणित के विविध नियमों का प्रतिपादन किया तथा यह बताया कि पृथ्वी अपनी धुरी के चारों ओर घुमती है। ब्रह्मगुप्त का 'ब्रह्म सिद्धांत' खगोलशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रंथ है। धनवंतरी तथा सुश्रुत इस युग में प्रख्यात वैद्य थे। वराहमिहिर ने 'बृहज्जातक' की रचना की तथा विभिन्न ग्रहों एवं नक्षत्रों की स्थिति पर विचार किया।लौह तकनीक का सबसे अच्छा उदाहरण दिल्ली में मेहरौली स्थित लौह स्तंभ है, जिसका निर्माण ईसा की चौथी सदी में हुआ।

गुप्तकालीन अर्थव्यवस्था

कृषि: गुप्तकाल में कृषि की उन्नति पर विशेष ध्यान दिया गया। गुप्त अभिलेखों में कई प्रकार के भूमि की चर्चा मिलती हैं, जैसे-

- क्षेत्र ख़ खेती करने योग्य भूमि।
- वास्तु ख़ निवास करने योग्य भूमि।
- खिल ख़ जो भूमि कृषि योग्य नहीं होती थी।
- अपरहत ख़ जंगली भूमि।
- चारागाह ख़ पशुओं के चरने के लिए छोड़ी गयी भूमि।

भूमि की माप के लिए विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न तौर तरीकों को अपनाया गया। कुछ क्षेत्रों में भूमि की माप के लिए निवार्तन प्रणाली का उपयोग किया जाता था जबकि बंगाल से प्राप्त अभिलेखों में भूमि को मापने के लिये कुल्यावाप और द्रोणवाद पद्धति के प्रयोग की जानकारी मिलती है।

अमरकोष में 12 तरह की भूमि बताई गयी है। गुप्तकाल में साधारणतया छोटे-छोटे कृषक होते थे जो स्वयं अपने परिवार के साथ जमीन जोतते थे। जो भी बड़ी भूमि दानस्वरूप दी जाती थी उसे ग्रहीता स्वयं नहीं जोतता था बल्कि भूमिहीन मजदूरों द्वारा उसकी जुताई करवायी जाती थी।फाह्यान और इत्सिंग

के विवरण से पता चलता है कि विहारों और मठों की भूमि अस्थायी पट्टेदार लोग जोतते थे तथा ये भू-स्वामियों को मालगुजारी दिया करते थे। कृषक अधिकांशत: वर्षा पर निर्भर होते थे।बराहमिहिर की वृहत्संहिता में वर्षा की संभावना और वर्षा के अभाव प्रश्न पर काफी विचार-विमर्श हुआ है। वृहत्संहिता में तीन प्रकार की फसलों की चर्चा मिलती है-श्रावण, वसंत और चौत्र या वैशाख में बोयी जाने वाली फसल।सिंचाई का थोड़ा बहुत प्रबंध राजा की ओर से किया जाता था जिसका प्रमाण स्कंदगुप्त के जूनागढ अभिलेख में मिलता है। पशुपालन जीविका का अन्य प्रमुख साधन था।

दस्तकारी उत्पादन और व्यापार

गुप्तकालीन स्थलों के उत्खनन से मिट्टी के मृदभाँण्ड, परिकोठे, काँच की वस्तुएँ, धातु की बनी वस्तुएँ आदि प्राप्त हुए हैं। अगर गुप्तकालीन दस्तकारी वस्तुओं की तुलना शक एवं कुषाण काल में बनी दस्तकारी वस्तुओं के साथ की जाये तो ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त काल में दस्तकारी का कुछ पतन हुआतरह-तरह के खनिज पदार्थ, जैसे-सोना, चाँदी, ताँबा और लोहे का ज्ञान गुप्तकालीन लोगों को हो चुका था। तत्कालीन साहित्य और मूर्तियों में प्रचुर आभूषणों का अंकन हुआ है।मेहरौली लौहस्तंभ तत्कालीन लोहे का उत्कृष्ट नमूना प्रस्तुत करता है। गुप्तकाल में वस्त्र उद्योग विकसित अवस्था में थी। अमरकोष में कताई, बुनाई, हथकरघा, धागे इत्यादि का उल्लेख हुआ है।कालिदास के नाटकों में महीन कपड़ों का उल्लेख मिलता है तथा कपड़ों की सिलाई से भी लोग परिचित थे। गुप्तकाल में नालंदा, वैशाली आदि स्थानों से प्राप्त श्रेष्ठियों, सार्थवाहों, प्रथमाकुलिकों आदि की मुहरें शिल्पियों की संघटनात्मक गतिविधियों को प्रदर्शित करती है।गुप्तकालीन आर्थिक स्थिति जानने के साधनों में मुद्राशास्त्र अत्यंत महत्वपूर्ण साक्ष्य हैं। परवर्ती गुप्त मुद्राओं का वजन बढ़ता गया किन्तु उसमें सोने की मात्रा में कमी आयी।

चाँदी के सिक्के भी कम प्रचलन में थे। ताँबे पर चाँदी की परत चढ़ाकर सिक्कों का निर्माण किया जाता था। इससे स्पष्ट होता है कि गुप्तकालीन आर्थिक व्यवस्था में गिरावट आयी।कुषाण युग की तुलना में देखा जाय तो गुप्त युग में वाणिज्य व्यापार के पतन के पर्याप्त चिह्न मिलते हैं। इस समय ग्राम लगभग आत्मनिर्भर उत्पादक इकाई के रूप में उभरकर सामने आये।स्वयं फाह्यान ने लिखा है कि साधारण जनता के बीच व्यापार का माध्यम विनिमय था जिसमें वस्तुओं की अदला-बदली अथवा कौडियों के माध्यम से विनिमय होता था। पाश्चात्य देशों से संपर्क की स्थिति अब वह नहीं थी जो कुषाण तथा सातवाहन काल में थी।रोमन साम्राज्य के विघटन के पश्चात् देशों से हो रहे व्यापार में गिरावट आ गयी क्योंकि फारसवासियों ने रेशम के व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त कर लिया था तथा रोमन साम्राज्य से इनकी शत्रुता चल रही थी जिससे भारतीय व्यापार प्रभावित हुआ।

चंद्रगुप्त प्रथम

सन् ३२० में चन्द्रगुप्त प्रथम अपने पिता घटोत्कच के बाद राजा बना। चन्द्रगुप्त गुप्त वंशावली में पहला स्वतन्त्र शासक था। इसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की थी। बाद में लिच्छवि को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। इसका शासन काल (320 ई. से 335 ई. तक) था। पुराणों तथा हरिषेण लिखित प्रयाग प्रशस्ति से चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्य के विस्तार के विषय में जानकारी मिलती है। चन्द्रगुप्त ने [लिच्छवि] के सहयोग और समर्थन पाने के लिए उनकी राजकुमारी कुमार देवी के साथ विवाह किया। स्मिथ के अनुसार इस वैवाहिक सम्बन्ध के परिणामस्वरूप चन्द्रगुप्त ने लिच्छवियों का राज्य प्राप्त कर लिया तथा मगध उसके सीमावर्ती क्षेत्र में आ गया। कुमार देवी के साथ विवाह-सम्बन्ध करके चन्द्रगुप्त प्रथम ने वैशाली राज्य प्राप्त किया। चन्द्रगुप्त ने जो सिक्के चलाए उसमें चन्द्रगुप्त और कुमारदेवी के चित्र अंकित होते थे। लिच्छवियों के दूसरे राज्य नेपाल के राज्य को उसके पुत्र समुद्रगुप्त ने मिलाया। हेमचन्द्र राय चौधरी के अनुसार अपने महान पूर्ववर्ती शासक बिम्बिसार की भाँति चन्द्रगुप्त प्रथम ने लिच्छवि राजकुमारी कुमार देवी के साथ विवाह कर द्वितीय मगध साम्राज्य की स्थापना की। उसने विवाह की स्मृति में राजा-रानी प्रकार के सिक्ष्कों का चलन करवाया। इस प्रकार स्पष्ट है कि लिच्छवियों के साथ सम्बन्ध स्थापित कर चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने राज्य को राजनैतिक दृष्टि से सुदृढ़ तथा आर्थिक दृष्टि से समृद्ध बना दिया। राय चौधरी के अनुसार चन्द्रगुप्त प्रथम ने कौशाम्बी तथा कौशल के महाराजाओं को जीतकर अपने राज्य में मिलाया तथा साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र में स्थापित की।

समुद्रगुप्त

चन्द्रगुप्त प्रथम के बाद 335 ई. में उसका तथा कुमारदेवी का पुत्र समुद्रगुप्त राजगद्दी पर बैठा। सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय इतिहास में महानतम शासकों के रूप में वह नामित किया जाता है। इन्हें परक्रमांक कहा गया है। समुद्रगुप्त का शासनकाल राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से गुप्त साम्राज्य के उत्कर्ष का काल माना जाता है। इस साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र थी। समुद्रगुप्त ने श्महाराजाधिराजश की उपाधि धारण की। समुद्रगुप्त एक असाधारण सैनिक योग्यता वाला महान विजित सम्राट था। विन्सेट स्मिथ ने इन्हें नेपोलियन की उपाधि दी। उसका सबसे महत्वपूर्ण अभियान दक्षिण की तरफ (दक्षिणापथ) था। इसमें उसके बारह विजयों का उल्लेख मिलता है। समुद्रगुप्त एक अच्छा राजा होने के अतिरिक्त एक अच्छा कवि तथा संगीतज्ञ भी था। उसे कला मर्मज्ञ भी माना जाता है। उसका देहान्त 380 ई. में हुआ जिसके बाद उसका पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय राजा बना। यह उच्चकोटि का विद्वान तथा विद्या का उदार संरक्षक था। उसे कविराज भी कहा गया है। वह महान संगीतज्ञ था जिसे वीणा वादन का शौक था। इसने प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान वसुबन्धु को अपना मन्त्री नियुक्ष्त किया था। हरिषेण, समुद्रगुप्त का मन्त्री एवं दरबारी कवि था। हरिषेण द्वारा रचित प्रयाग प्रशस्ति से समुद्रगुप्त के राज्यारोहण, विजय, साम्राज्य विस्तार के सम्बन्ध में सटीक जानकारी प्राप्त होती है। काव्यालंकार सूत्र में समुद्रगुप्त का नाम 'चन्द्रप्रकाश' मिलता है। उसने उदार, दानशील, असहायी तथा अनाथों को अपना आश्रय दिया। वैदिक धर्म के अनुसार इन्हें धर्म व प्राचीर बन्ध यानी धर्म की प्राचीर कहा गया है। समुद्रगुप्त का साम्राज्य-समुद्रगुप्त ने एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया जो उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी से पश्चिम में पूर्वी मालवा तक विस्तृत था। कश्मीर, पश्चिमी पंजाब,

पश्चिमी राजस्थान, सिन्ध तथा गुजरात को छोड़कर समस्त उत्तर भारत इसमें सम्मिलित थे। दक्षिणापथ के शासक तथा पश्चिमोत्तर भारत की विदेशी शक्तियाँ उसकी अधीनता स्वीकार करती थीं।

रामगुप्त

समुद्रगुप्त के बाद रामगुप्त सम्राट बना, लेकिन इसके राजा बनने में विभिन्न विद्वानों में मतभेद है। विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर पता चलता है कि समुद्रगुप्त के दो पुत्र थे- रामगुप्त तथा चन्द्रगुप्त। रामगुप्त बड़ा होने के कारण पिता की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठा, लेकिन वह निर्बल एवं कायर था। वह शकों द्वारा पराजित हुआ और अत्यन्त अपमानजनक सन्धि कर अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी को शकराज को भेंट में दे दिया था, लेकिन उसका छोटा भाई चन्द्रगुप्त द्वितीय बड़ा ही वीर एवं स्वाभिमानी व्यक्ति था। वह छद्म भेष में ध्रुवस्वामिनी के वेश में शकराज के पास गया। फलतः रामगुप्त निन्दनीय होता गया। तत्पश्चात् चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने बड़े भाई रामगुप्त की हत्या कर दी। उसकी पत्नी से विवाह कर लिया और गुप्त वंश का शासक बन बैठा।

चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की मुद्राः चन्द्रगुप्त द्वितीय ३७५ ई. में सिंहासन पर आसीन हुआ। वह समुद्रगुप्त की प्रधान महिषी दत्तदेवी से हुआ था। वह विक्रमादित्य के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुआ। उसने ३७५ से ४१५ ई. तक (४० वर्ष) शासन किया। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शकों पर अपनी विजय हासिल की जिसके बाद गुप्त साम्राज्य एक शक्तिशाली राज्य बन गया। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में क्षेत्रीय तथा सांस्कृतिक विस्तार हुआ। हालांकि चन्द्रगुप्त द्वितीय का अन्य नाम देव, देवगुप्त, देवराज, देवश्री आदि हैं। उसने विक्रमांक, विक्रमादित्य, परम भागवत आदि उपाधियाँ धारण की। उसने नागवंश, वाकाटक और कदम्ब राजवंश के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने नाग राजकुमारी कुबेर नागा के साथ विवाह किया जिससे एक कन्या प्रभावती गुप्त पैदा हुई. वाकाटकों का सहयोग पाने के लिए चन्द्रगुप्त ने अपनी पुत्री प्रभावती गुप्त का विवाह वाकाटक नरेश रूद्रसेन द्वितीय के साथ कर दिया। उसने ऐसा संभवतः इसलिए किया कि शकों पर आक्रमण करने से पहले दक्कन में उसको समर्थन हासिल हो जाए। उसने प्रभावती गुप्त के सहयोग से गुजरात और काठियावाड़ की विजय प्राप्त की। वाकाटकों और गुप्तों की सम्मिलित शक्ति से शकों का उन्मूलन किया। कदम्ब राजवंश का शासन कुंतल (कर्नाटक) में था। चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त प्रथम का विवाह कदम्ब वंश में हुआ।

चन्द्रगुप्त एक महान प्रतापी सम्राट था। उसने अपने साम्राज्य का और विस्तार किया।

1. शक विजय- पश्चिम में शक क्षत्रप शक्तिशाली साम्राज्य था। ये गुप्त राजाओं को हमेशा परेशान करते थे। शक गुजरात के काठियावाड़ तथा पश्चिमी मालवा पर राज्य करते थे। ३८९ ई. ४१२ ई. के मध्य चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा शकों पर आक्रमण कर विजित किया।
2. वाहीक विजय- महाशैली स्तम्भ लेख के अनुसार चन्द्र गुप्त द्वितीय ने सिन्धु के पाँच मुखों को पार कर वाहिकों पर विजय प्राप्त की थी। वाहिकों का समीकरण कुषाणों से किया गया है, पंजाब का वह भाग जो व्यास का निकटवर्ती भाग है।
3. बंगाल विजय- महाशैली स्तम्भ लेख के अनुसार यह ज्ञात होता है कि चन्द्र गुप्त द्वितीय ने बंगाल के शासकों के संघ को परास्त किया था।
4. गणराज्यों पर विजय- पश्चिमोत्तर भारत के अनेक गणराज्यों द्वारा समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी गई थी।

कुमारगुप्त प्रथम

कुमारगुप्त प्रथम, चन्द्रगुप्त द्वितीय की मृत्यु के बाद सन् 415 में सत्तारूढ़ हुआ। अपने दादा समुद्रगुप्त की तरह उसने भी अश्वमेघ यज्ञ के सिक्के जारी किये। कुमारगुप्त ने चालीस वर्षों तक शासन किया। कुमारगुप्त प्रथम (४१५ ई. से ४५५ ई.)- चन्द्रगुप्त द्वितीय के पश्च्चात ४१५ ई. में उसका पुत्र कुमारगुप्त प्रथम सिंहासन पर बैठा। वह चन्द्रगुप्त द्वितीय की पत्नी ध्रुवदेवी से उत्पन्न सबसे बड़ा पुत्र था, जबकि गोविन्दगुप्त उसका छोटा भाई था। यह कुमारगुप्त के बसाठ (वैशाली) का राज्यपाल था। कुमारगुप्त प्रथम का शासन शान्ति और सुव्यवस्था का काल था। साम्राज्य की उन्नति के पराकाष्ठा पर था। इसने अपने साम्राज्य का अधिक संगठित और सुशोभित बनाये रखा। गुप्त सेना ने पुष्यमित्रों को बुरी तरह परास्त किया था। कुमारगुप्त ने अपने विशाल साम्राज्य की पूरी तरह रक्षा की जो उत्तर में हिमालय से दक्षिण में नर्मदा तक तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में अरब सागर तक विस्तृत था।

स्कन्दगुप्त

पुष्यमित्र के आक्रमण के समय ही गुप्त शासक कुमारगुप्त प्रथम की ४५५ ई. में मृत्यु हो गयी थी। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र स्कन्दगुप्त सिंहासन पर बैठा। उसने सर्वप्रथम पुष्यमित्र को पराजित किया और उस पर विजय प्राप्त की। हालाँकि सैन्य अभियानों में वो पहले से ही शामिल रहता था। मन्दसौर शिलालेख से ज्ञात होता है कि स्कन्दगुप्त की प्रारम्भिक कठिनाइयों का फायदा उठाते हुए वाकाटक शासक नरेन्द्र सेन ने मालवा पर अधिकार कर लिया परन्तु स्कन्दगुप्त ने वाकाटक शासक नरेन्द्र सेन को पराजित कर दिया। स्कंदगुप्त ने 12 वर्ष तक शासन किया। स्कन्दगुप्त ने विक्रमादित्य, क्रमादित्य आदि उपाधि याँ धारण कीं। कहोम अभिलेख में स्कन्दगुप्त को शक्रोपन कहा गया है। स्कन्दगुप्त का शासन बड़ा उदार था जिसमें प्रजा पूर्णरूपेण सुखी और समृद्ध थी। स्कन्दगुप्त एक अत्यन्त लोकोपकारी शासक था जिसे अपनी प्रजा के सुख-दुःख की निरन्तर चिन्ता बनी रहती थी। जूनागढ़ अभिलेख से पता चलता है कि स्कन्दगुप्त के शासन काल में भारी वर्षा के कारण सुदर्शन झील का बाँध टूट गया था उसने दो माह के भीतर अतुल धन का व्यय करके पत्थरों की जड़ाई द्वारा उस झील के बाँध का पुनर्निर्माण करवा दिया।

गुप्तकालीन सामाजिक स्थिति

गुप्तकालीन भारतीय समाज परंपरागत 4 जातियों –

1. ब्राह्मण,
2. क्षत्रिय,
3. वैश्य एवं
4. शूद्र में विभाजित था।

- कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में तथा वराहमिहिर ने वृहतसंहिता में चारों वर्णो के लिए अलग अलग बस्तियों का विधान किया है।
- न्याय संहिताओं में यह उल्लेख मिलता है कि ब्राह्मण की परीक्षा तुला से, क्षत्रिय की परीक्षा अग्नि से, वैश्य की परीक्षा जल से तथा शूद्र की विषय से की जानी चाहिए। पहले की तरह ब्राह्मणों का इस समय भी समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। गुप्त काल में जाति प्रथा उतनी जटिल नहीं रह गई थी जितनी परवर्ती कालों। ब्राह्मणों ने अन्य जातियों के व्यवसायों को अपनाना आरम्भ कर दिया था।
- मृच्छकटिकम के उल्लेख से यह प्रमाणित होता है कि चारुदत्त नामक ब्राह्मण वाणिज्य का कार्य करता था। उसे ब्राह्मण का 'आपद्धर्म' कहा गया है। इसके अतिरिक्त कुछ ब्राह्मण वंश जैसे वाकाटक एवं कदम्ब का उल्लेख मिलता है। गुप्त काल के पूर्व ब्राह्मण केवल छः कार्य – अध्ययन, अध्यापन, पूजा-पाठ, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना, माना जाता था।
- ब्राह्मणों के अतिरिक्त कुछ वैश्य शासक जैसे हर एवं सौराष्ट्र, अवन्ति, मालवा के शूद्र शासकों आदि के विषय में भी जानकारी प्राप्त होती है। स्कन्दगुप्त के इंदौर ताम्रपत्र अभिलेख में कुछ क्षत्रियों द्वारा वैश्य का कार्य करने का उल्लेख मिलता है।
- [ह्वेनसांग] ने क्षत्रियों के कर्मनिष्ठा की प्रशंसा की है तथा उन्हें निर्दोष, सरल, पवित्र, सीधा और मितव्ययी कहा है। उसके अनुसार क्षत्रिय राजा की जाति थी। कुछ गुप्तकालीन ग्रंथों में ब्राह्मणों को निदेर्शित किया गया है कि वे शूद्रों द्वारा दिए गए अन्न को ग्रहण न करें, जबकि बृहस्पति ने संकट के क्षणों में ब्राह्मणों द्वारा शूद्रों और दासों से अन्न ग्राहण करने की आज्ञा दी। इस काल में शूद्रों द्वारा सैनिक वृत्ति अपनाने हुए इन्हें व्यापारी, कारीगर एवं कृषक होने की अनुमति प्रदान की।
- ह्वेनसांग के विवरण एवं नृसिंह पुराण के उल्लेख से यह संकेत मिलता है कि शूद्रों ने कृषि कार्य को अपना लिया था। इस प्रकार गुप्त काल में इन्हें रामायण, महाभारत, एवं पुराण सुनने का अधिकार मिल गया।
- याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि शूद्र वर्ग नमः शब्द का प्रयोग कर पंच महायज्ञ कर एकता है।
- मार्कण्डेय पुराण में दान करना और यज्ञ करना शूद्र का कर्तव्य बताया गया है।

मिश्रित जातियाँ

- गुप्त काल में अनेक मिश्रित जातियों का भी उल्लेख मिलता है जैसे – मूर्द्धावशिक्त, अम्बष्ठ, पारशव, उग्र एवं करण। इनमें मुख्य रूप से अम्बष्ठ, उग्र, पारशव की संख्या गुप्तकालीन समाज में अधिक थी।

अम्बष्ठ

- ब्राह्मण पुरुष एवं वैष्य से उत्पन्न संतान अम्बष्ठ कही गई.
- विष्णु पुराण में इन्हें नदी तट का निवासी माना गया है।
- मनु ने इनका मुख्य व्यवसाय चिकित्सा बताया है।

पराशव

- इस जाति की उत्पत्ति ब्राह्मण पुरुष एवं शूद्र स्त्री से हुई है इन्हें निषाद भी कहा जाता है।
- पुराणों में इनके विषय में जानकारी मिलती है।

उग्र

- गौतम के अनुसार वैश्य पुरुष एवं शूद्र स्त्री से उत्पन्न जाति उग्र कहलाई पर स्मृतियों का मानना है कि इस जाति की उत्पत्ति क्षत्रिय पुरुष एवं शूद्र जाति की स्त्री से हुई है।
- इनका मुख्य कार्य था बिल के अन्दर से जानवरों को बाहर निकाल कर जीवन-यापन करना।
- फाह्यान ने गुप्तकालीन समाज में अस्पृश्य (अछूत) जाति के होने की बात कही है। स्मृतियों में इन्हें 'अत्यज' व 'चाण्डाल' कहा गया है।
- पाणिनी ने इसका उल्लेख 'निरवसित' शूद्र के रूप में किया है। सम्भवत इस जाति के उत्पत्ति शूद्र पुरुष एवं ब्राह्मण स्त्री से हुई. यह जाति के बाहर निवास करती थी, इनका मुख्य कार्य था शिकार करना एवं शमशान घाट की रखवाली करना।
- गुप्त काल में लेखकीय, गणना, आय-व्यय का हिसाब रखने आदि कार्यो को करने वाले वर्ग को कायस्थ कहा गया। सम्भवतः इनकी उत्पत्ति भूमि एवं भू राजस्व के हस्तान्तरण के कारण हुई. गुप्त काल के प्राप्त अभिलेखों में नाम उल्लेख प्रथम कायस्थ या ज्येष्ठ कायस्थ में रूप में हुआ।

दास प्रथा

गुप्त काल में दास प्रथा का प्रचलन था। नारद ने 18 प्रकार के दासों का उल्लेख किया है जिनमें मुख्य थे-

1. प्राप्त किया हुआ दास (उपहार आदि से),
2. स्वामी द्वारा प्रदत्त दास,
3. ऋण का चुकता न करने पाने के कारण बना दास,
4. दांव पर लगाकर हारा हुआ दास (पास आदि खेलों),
5. स्वयं से दासत्व ग्राहण स्वीकार करने वाला दास,
6. एक निश्चित समय के लिए अपने को दास बनाना,
7. दासी के प्रेमजाल में फंस कर बनने वाला दास एवं
8. आत्म-विक्रयी दास (स्वयं को बेचकर)।

ख मनु के सात प्रकार के दासों का उल्लेख किया है। दासियों के बारे में भी जानकारी मिलती है।

ख अमरकोष में दासी समग्र का वर्णन आया है।

इस समय दासों को उत्पादन कार्यो से अलग रखा गया था जबकि मौर्यो के समय में दास उत्पादन के कार्यो में लोग सक्रिय रूप से भाग लेते थे। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि दासों की स्थिति गुप्तों के समय ठीक नहीं थी। अमरकोश में 'दासीसभम' शब्द के उल्लेख से यह संकेत मिलता है कि गुप्तकाल में दासियों का भी आस्तित्व था। दासों को दासत्व भाव से मुक्त कराने का प्रथम प्रयास नारद ने किया।

स्त्रियों की स्थिति

गुप्तकालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति के विषय में इतिहासकार 'रोमिला थापर' ने लिखा है कि 'साहित्य और कला में तो नारी का आदर्श रूप झलकता है पर व्यावहारिक दृष्टि से देखने पर समाज में उनका स्थान गौण था। पितृप्रधान समाज में पत्नी को व्यक्तिगत सम्पत्ति समझा जाता था। पति के मरने पर पत्नी को सती होने के लिए प्रेरित किया जाता था। उत्तर भारत की कुछ सैनिक जातियों के परिवारों में बड़े पैमाने पर सती होने की प्रथा उल्लेख है। प्रथम सती होने का प्रमाण 510 ई. के भानुगुप्त के एरण के अभिलेख से मिलता है जिसमें किसी गोपराज (सेनापति) की मृत्यु पर उसकी पत्नी के सती होने का उल्लेख है। गुप्त काल में पर्दा प्रथा का प्रचलन केवल उच्च वर्ग की स्त्रियों में था।'

स्त्रियों के अधिकारों की वृद्धि

- फाह्यान एवं फ्वेनसांग के अनुसार इस समय पर्दा प्रथा प्रचलन नहीं था।
- नारद एवं पराशर स्मृति में 'विधवा विवाह' के प्रति समर्थन जताया गया है।
- गुप्तकालीन समाज में वेश्याओं के अस्तित्व के भी प्रमाण मिलते हैं, पर इनकी वृत्ति की निन्दा की गई.
- गुप्त काल में वेश्यावृति करने वाली स्त्रियों को 'गणिका' कहा जाता था। 'कुट्टनी' उन वेश्याओं को कहा जाता था जो वृद्ध हो जाती थी।
- किन्तु गुप्त काल में स्त्रियों के धन संबधी अधिकारों की वृद्धि हुई. स्त्री धन का दायरा बढ़ा।
- कात्यायन ने स्त्री को अचल सम्पत्ति की स्वामिनी माना है।
- गुप्त काल के स्मृतिकारों के अनुसार पुत्र की अचल सम्पत्ति की स्वामिनी माना है।
- गुप्त काल के स्मृतिकारों के अनुसार पुत्र के अभाव में पुरुष की सम्पत्ति पर उसकी पत्नी का प्रथम अधिकार होता था। (याज्ञवल्क्य स्मृति)
- अपुत्र पति के मरने पर विधवा पत्नी को उसको उत्तराधिकारी - याज्ञवल्क्य, बृहस्पति और विष्णु मानते हैं।
- स्त्रियों के स्त्रीधन पर प्रथम अधिकार उसकी पुत्रियों का होता है। (विज्ञानेश्वर)
- स्त्रियों की सम्पत्ति के अधिकार पर सर्वाधिक व्याख्या याज्ञवल्क्य ने दी है। गुप्तकाल में ब्राह्मण और क्षत्रिय को संयुंक्त रूप से 'द्विज' कहा गया है।
- याज्ञवल्क्य एवं बृहस्पति ने स्त्री को पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारिणी माना है।
- इस समय उच्च वर्ग की कुछ स्त्रियों के विदुषी और कलाकार होने का उल्लेख मिलता है।
- अभिज्ञान शकुन्तलम् में अनुसूया को इतिहास का ज्ञाता बताया गया है।
- मालवी माधव में मालती को चित्रकला में निपुण बताया गया है।
- अमरकोष स्त्री शिक्षा के लिए 'आचार्यी', 'अपाध्यायीयश तथा 'उपाध्यया' शब्दों को व्यवहार किया गया है।

- गुप्तकाल के सिक्कों पर स्त्रियों जैसे - कुमारदेवी, तथा लक्ष्मी के चित्र उच्च वर्ग के स्त्रियों के सम्मानसूचक है।
- पर्दा प्रथा का प्रचलन था।
- बाल विवाह एवं बहुविवाह की प्रथा व्यापक हो गई थी।
- 'मेघदूत' में उज्जयिनी के महाकाल मंदिर में कार्यरत देवदासियों का वर्णन मिलता है।
- मनु के अनुसार जिस स्त्री को पति ने छोड़ दिया हो या जो विधवा हो गई हो, यदि वह अपनी इच्छा से दूसरा विवाह करें तो वह 'पुनर्भू' तथा उसकी संतान 'पनौर्भव' कहा जाता था।

निष्कर्ष

गुप्त सम्राटों ने अपने प्रसिद्ध उत्कीर्ण लेखों में अपने वंश, सामाजिक पद, वर्ण अथवा जाति इत्यादि का कोई उल्लेख नहीं किया है इसलिए उनकी उत्पत्ति का इतिहास बहुत कुछ अन्धकारमय है.काशी प्रसाद जायसवाल का मत है कि गुप्त सम्राट शूद्र और मूलत: पंजाब के निवासी थे। उनका मत कौमुदी महोत्सव नाटक के नायक चण्डसेन (जिनकी वह चन्द्रगुप्त प्रथम के रूप में कल्पना करते हैं) को 'कारस्कार' कहे जाने पर आधारित है.बौधयान कामसूत्र के आध ार पर डा० जायसवाल 'कारस्कर' जाति को शुद्र मानते हैं। कुछ विद्वान गुप्त साम्राज्य के शासकों को उनके नामान्त "गुप्त" के आधार पर वैश्य वर्ण का मानते हैं क्योंकि स्मृतियों के अनुसार ब्राह्मण की उपाधि शर्मा, क्षत्रिय अथवा भूति की वर्मा और वैश्य की गुप्त तथा शुद्र की दास होनी चाहिए। लेकिन इस मत को कुछ लोग दो कारणों से नहीं मानते। एक तो गुप्त उपाधि नहीं नामांत है और प्राय: सभी नामों के अन्त में गुप्त आने से इसे सुविधा के लिए गुप्त वंश मान लिया गया है.दूसरा, इतिहास में बहुत से ब्राह्मणों के नाम के साथ भी "गुप्त" या "भूति" उपाधियों का प्रयोग हमें मिलता है जैसे ब्रह्मगुप्त, विष्णुगुप्त, भवभूति, देवभूति आदि. गौरीशंकर ओझा गुप्त शासकों को क्षत्रिय मानते हैं. उनके विचार का प्रमुख आधार मध्य प्रदेश के गुप्त वंशीय नरेश महाशिव गुप्त से सम्बन्धित सिरपुर की प्रशस्ति है जिसमें उसे चन्द्रवंशीय क्षत्रीय कहा गया है। इस प्रकार एक ऐसा प्रश्न है जो निश्चित प्रमाण के अभाव में अभी भी एक विवादस्पद बना हुआ है।

संदर्भ सूची

1. अश्विनी अग्रवाल (1989)। इम्पीरियल गुप्तों का उदय और पतन। मोतीलाल बनारसीदास। आईएसबीएन 978-81-208-0592-7।
2. दिलीप कुमार गांगुली (1987)। इंपीरियल गुप्त और उनका टाइम्स। अभिनव। आईएसबीएन 978-81-7017-222-2।
3. एचसी रायचौधुरी (1923)। प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास: परीक्षित के प्रवेश से लेकर गुप्त वंश के विलुप्त होने तक। कलकत्ता विश्वविद्यालय। आईएसबीएन 978-1-4400-5272-9।
4. जेसी हर्ले (1994)। भारतीय उपमहाद्वीप की कला और वास्तुकला। येल यूनिवर्सिटी प्रेस। आईएसबीएन 978-0-300-06217-5।
5. आरसी मजूमदार (1981)। भारत का एक व्यापक इतिहास। 3, भाग I: 300-985 ई. इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस / पीपल्स पब्लिशिंग हाउस। पीपी। 17-52A OCLC 34008529
6. शंकर गोयल (2001)। प्राचीन भारतीय इतिहास की समस्याएं: नए परिप्रेक्ष्य और धारणाएं। पुस्तक एनक्लेव। आईएसबीएन 978-81-87036-66-1
7. तेज राम शर्मा (1989)। इंपीरियल गुप्तों का एक राजनीतिक इतिहास: गुप्त से स्कंदगुप्त तक। संकल्पना। आईएसबीएन 978-81-7022-251-4
8. विद्या धर महाजन (1990)। ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया। स्टेट म्युचुअल बुक और आवधिक सेवा। आईएसबीएन 978-0-7855-1191-5
9. उपिंदर सिंह (2017)। प्राचीन भारत में राजनीतिक हिंसा। हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। आईएसबीएन 978-0-674-98128-7

बाल मनोविज्ञान के द्वारा बालकों के स्वभाव एवं विकास

डॉ० श्याम सुन्दर शर्मा

मनोविज्ञान ग्राम-छातापुर, पोस्ट-सुरपतगंज, जिला-सुपौल (बिहार) पिन-852137

सार

बाल मनोविज्ञान सामान्य मनोविज्ञान की एक विशेष शाखा है जो बच्चों के विकास और व्यवहार पर केंद्रित है। बाल मनोविज्ञान में जन्म से किशोरावस्था तक के बच्चों का अध्ययन होता है। बाल मनोविज्ञान में शिक्षा मनोविज्ञान का भी अध्ययन होता है जो स्कूल जाने वाले बच्चों के शारीरिक, संवेगात्मक, संज्ञानात्मक और सामाजिक विकास का अध्ययन करता है। इसके साथ ही इस बात ध्यान केंद्रित करता है कि परिवेश और बाहरी प्रेरणा का सीखने के ऊपर क्या असर पड़ता है।मस्तिष्क के क्षेत्र में होने वाले शोध (जैसे ब्रेन बेस्ड लर्निंग इत्यादि) का भी इस्तेमाल बाल मनोविज्ञान व शिक्षा के क्षेत्र में किया जा रहा है ताकि 21वीं सदी के ज्ञान और समझ का इस्तेमाल जमीनी स्तर पर बच्चों के बारे में समझ को वैज्ञानिक सोच के ज्यादा करीब लेकर आ सके। इसका उद्देश्य बच्चों के बारे नें पहले से बनी परंपरागत अवधारणाओं को चुनौती देना भी है ताकि लोग बच्चों को कच्ची मिट्टी का घड़ा या खिलौना न समझे, बल्कि उनके व्यक्तित्व को समझने की कोशिश करें और उसके व्यवहार को व्यक्तित्व के साथ जोड़कर देख सकें।

कुंजी/बीज शब्दः बाल मनोविज्ञान, विकास, शिक्षा मनोविज्ञान, बाल विकास

बाल मनोविज्ञान का महत्व

बाल मनोविज्ञान बच्चों के व्यवहार से जुड़ी विभिन्न समस्याओं का विश्वसनीय समाधान देता है। उदाहरण के तौर पर अगर कोई बच्चा पढ़ाई पर ध्यान केंद्रित नहीं कर पा रहा है, या फिर कोई बच्चा बहुत ज्यादा सक्रिय है, अवसाद, झिझक और विस्तर गीला करने जैसी समस्याओं का भी अध्ययन बाल मनोविज्ञान में किया जाता है। बाल मनोविज्ञान में आयु के अनुरूप शारीरिक व मानसिक विकास हो रहा है या नहीं इस बात का भी अध्ययन किया जाता है। इसके साथ ही बाल्यावस्था में संवेगात्मक व संज्ञानात्मक विकास से जुड़ी अवस्थाओं का भी अध्ययन किया जाता है।बाल मनोविज्ञान बतौर माता-पिता आपको अपने बच्चे को समझने में मदद करती है। अपने स्कूल या क्लास में पढ़ने वाले बच्चे को समझना एक शिक्षक के लिए भी पढ़ाने की रणनीति बनाने में काफी उपयोगी साबित होता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अपने बच्चे को समझने का सबसे आसान तरीका उनके सोने, खाने और खेलने की आदतों को गौर से देखना है। ऐसी खूबियों को पहचानने की कोशिश करें जिसमें निरंतरता दिखाई देता है। जैसे कुछ बच्चे खेल में सदैव आगे रहते हैं। बाकी बच्चों की भागीदारी थोड़ी कम होती है। या फिर उनमें भागीदारी को लेकर शुरुआती स्तर पर झिझक होती है जो बाद में थोड़े से सहयोग के बाद दूर हो जाती है।हम यह भी देख सकते हैं कि किसी नई परिस्थिति में होने वाले बदलाव के साथ खुद को समायोजित करना उनके लिए आसान होता है या फिर बदलाव के साथ खुद को समायोजित करने के लिए उनको समय लगता है।

अपने बच्चों को कैसे समझें

बच्चों को समझने के लिए सबसे आसान तरीका है कि उनसे रोजमर्रा के अनुभवों के बारे में बात की जाए। बच्चों से बात करें कि स्कूल में उनका दिन कैसा रहा? कौन सी बात उनको सबसे ज्यादा अच्छी लगी। खेल इवेंट में उनको कौन सी बात अच्छी लगी। उनको कौन सी शिक्षक सबसे ज्यादा पसंद हैं? उनको कौन सी चीजें पसंद है इत्यादि। जो माता-पिता अपने बच्चों के साथ ज्यादा समय बितातें हैं उनके लिए बच्चों को समझना काफी आसान होता है।सरकारी स्कूल में पढ़ने वाले बच्चे अपना लिखा हुआ दिखाते हुए।आत्म-सम्मान जीवन में सफल होने की कुंजी है। ऐसे में जरूरी है कि बच्चों में सकारात्मक स्व-प्रत्यय (सेल्फ कांसेप्ट) का विकास हो, ताकि बच्चों का बचपन और किशोरावस्था खुशियों से भरपूर हो। बच्चे और माता-पिता का अच्छा रिश्ता बच्चे के खुद के बारे में एक सकारात्मक आत्म-छवि का निर्माण करता है और बच्चा दूसरे लोगों को भी सकारात्मक नजरिये से समझने की कोशिश करता है।आमतौर पर बच्चे माता-पिता का समय चाहते हैं, यह बड़ी स्वाभाविक सी बात है। इससे बच्चे खुद को विशिष्ट महसूस कराते हैं। इससे बच्चों को लगता है कि लोग उनकी परवाह करते हैं। उनके ऊपर ध्यान देते हैं। उनकी जरूरतों को पूरा करने के लिए तत्पर हैं।

बच्चों के साथ खेलने के लिए वक्त निकालें

माता-पिता को अपने बच्चों के साथ नियमित रूप से खेलने का समय निकालना चाहिए। यह बच्चों के संवेगात्मक विकास के लिए काफी अच्छा माना जाता है। अगर आप सिंगल पैरेंट हैं तो अपने दोस्तों को घर पर इनवाइट करें या फिर बच्चे को अपने साथ लेकर दोस्तों के घर जाएं ताकि बच्चों को अन्य बच्चों व लोगों का साथ मिल सके।

मिट्टी के खिलौने बनाते बच्चे

बच्चों के स्वाभाविक विकास के क्रम में सामाजिक कौशलों की विकास भी होता है। मगर कुछ बच्चों में सामाजिक कौशलों का विकास अन्य बच्चों की भांति सहजता के साथ नहीं हो पाता। ऐसे में जरूरी होता है कि हम ऐसे बच्चों को सामाजिक कौशलों के विकास में सपोर्ट करें उदाहरण के तौर पर एक बच्चा घर पर तो काफी शोर मचाता है। अगर कोई चीज उसके मन की नहीं होती तो रोकर अपनी बात मनवाने की कोशिश करता है।पांचवीं कक्षा में पढ़ने वाला यह बच्चा स्कूल में बिल्कुल खामोश रहता है। वह अपनी बात किसी के साथ शेयर करना चाहता है। कभी-कभी वह अपनी छोटी बहन के साथ अपनी बात साझा करता है जो उससे क्लास में एक साल पीछे हैं। उसका एक बड़ा भाई है, जो दसवीं कक्षा में है। वह चाहता है कि उसकी बराबरी करे। इसलिए वह हर बात में अपनी तुलना उससे करता है जबकि अपनी कक्षा के अन्य बच्चों के बारे में वह ज्यादा नहीं सोचता कि उसे उनके साथ घुलना-मिलना चाहिए ताकि वह सहजता के साथ स्कूल में समायोजन स्थापित करके आगे बढ़ सके।

शिक्षा मनोविज्ञान की परिभाषा

शिक्षा मनोविज्ञान के सिद्धांतों का शिक्षा में प्रयोग ही नहीं करता अपितु शिक्षा की समस्याओं को हल करने में योग देना है। इसलिए शिक्षा विदो ने शिक्षा की समस्याओं के अध्ययन, विश्लेषण, विवेचन तथा समाधान के लिये इसकी परिभाषाएं इस प्रकार दी है।

1. स्किनर - शिक्षा मनोविज्ञान के अन्तर्गत शिक्षा से संबंधित संपूर्ण व्यवहार आरै व्यक्तित्व आ जाता है।
2. क्रो एण्ड क्रो - शिक्षा मनोविज्ञान व्यक्ति के जन्म से वृद्धावस्था तक सीखने के अनुभवों का वर्णन और व्याख्या करता है।
3. सॉरॅरे व टेलेलफोडेर्ड - शिक्षा मनोविज्ञान का मुख्य संबंध सीखने से है। वह मनोविज्ञान का वह अंग है जो शिक्षा के मनोवैज्ञानिक पहलुओं की वैज्ञानिक खोज से विशेष रूप से संबंधित है।

शिक्षा मनोविज्ञान की आवश्यकता

1. बालक के स्वभाव का ज्ञान प्रदान करने हेतु।
2. बालक के वृद्धि और विकास हेतु।
3. बालक को अपने वातावरण से सामंजस्य स्थापित करने के लिए।
4. शिक्षा के स्वरूप, उद्देश्यों और प्रयोजनों से परिचित करना।
5. सीखने और सिखाने के सिद्धांतों और विधियों से अवगत कराना।
6. संवेगों के नियंत्रण और शैक्षिक महत्व का अध्ययन।
7. चरित्र निर्माण की विधियों और सिद्धांतों से अवगत कराना।
8. विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले विषयों में छात्र की योग्यताओं का माप करने की विधियों में प्रशिक्षण देना।
9. शिक्षा मनोविज्ञान के तथ्यों और सिद्धांतों की जानकारी के लिए प्रयोग की जाने वाली वैज्ञानिक विधियों का ज्ञान प्रदान करना।

शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र

हमने यह देखा कि विभिन्न लेखकों ने शिक्षा मनोविज्ञान की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं दी है। इसलिए शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र के बारे में निश्चित तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा मनोवैज्ञानिक एक नया तथा पनपता विज्ञान है। इसके क्षेत्र अनिश्चित है और धारणाएं गुप्त है। इसके क्षेत्रों में अभी बहुत सी खोज हो रही है और संभव है कि शिक्षा मनोविज्ञान की नई धारणाएं, नियम और सिद्धांत प्राप्त हो जाये। इसका भाव यह है कि शिक्षा मनोविज्ञान का क्षेत्र और समस्याएं अनिश्चित तथा परिवर्तनशील है। चाहे कुछ भी हो निम्नलिखित क्षेत्र या समस्याओं को शिक्षा मनोविज्ञान के कार्य क्षेत्र में शामिल किया जा सकता है। क्रो एण्ड क्रो- ''शिक्षा मनोविज्ञान की विषय सामग्री का संबंध सीखने को प्रभावित करने वाली दशाओं से है।''

1. व्यवहार की समस्या।
2. व्यक्तिगत विभिन्नताओं की समस्या।
3. विकास की अवस्थाएं।
4. बच्चों का अध्ययन।
5. सीखने की क्रियाओं का अध्ययन।
6. व्यक्तित्व तथा बुद्धि।
7. नाप तथा मूल्यांकन।
8. निर्देश तथा परामर्श।

बाल-विकास की आवश्यकता

1. बालकों के स्वभाव को समझने में सहायक- विभिन्न आयु स्तर पर बालकों के व्यवहार में कौन-कौन से परिवर्तन आते हैं तथा उन परिवर्तनों के क्या कारण होते हैं उनका क्या प्रभाव पड़ता है यह सब बाल विकास बताता है इसलिए अभिभावक, अध्यापक, बाल निदेशक बाल मनोविज्ञान के अध्ययन से अधिक आयु के बालक के व्यवहार को आसानी से समझ सकते हैं।
2. बालकों की शिक्षा में सहायक- बालक की शारीरिक उम्र में कितनी मानसिक आयु रखता है या उसे रखनी चाहिए या किसी बालक की मानसिक आयु क्या है। इसका पता बाल विकास के द्वारा ही किया जाता है तथा उसी के अनुसार उस बालक विशेष की शिक्षा की व्यवस्था में सहायता मिलती है। कक्षाओं के पाठ्यक्रम निर्धारण में सहायता मिलती है कि किस कक्षा में कितनी मानसिक आयु होती है उसी के अनुसार पाठ्यक्रम निध र्रिण किया जाता है। विभिन्न अवस्था में बालक की ग्राही शक्ति कितनी होगी उसी के अनुसार पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाता है।
3. बालक के विकास को समझने में सहायक- प्रत्येक बालक का विकास कुछ विशेष नियमों के अनुसार होता है। कुछ विशेष उम्र में विकास में परिवर्तन आते हैं उनके बारे में बाल विकास बताता है जिससे यह ज्ञात होता है कि किसी विशिष्ट उम्र में बालक का व्यवहार कैसा होना चाहिए जिससे बालक के विकास को समझा जा सकता है।
4. बालक के व्यक्तित्व विकास को समझने में सहायता- बालक के व्यक्तित्व विकास को कौन से तत्व प्रभावित करते हैं तथा किस प्रकार प्रभावित करते हैं। उचित व्यक्तित्व विकास के लिए कौन-कौन से तत्व आवश्यक है, कैसा वातावरण होना चाहिए, इन सब की जानकारी बाल विकास देता है। इसके अध्ययन से व्यक्तित्व विकास में होने वाले क्रमिक परिवर्तनों को समझा जाता है।
5. बालक के व्यवहार नियंत्रण में सहायता- प्रत्येक बालक अपने व्यवहार संबंधी कुछ समस्याएं उत्पन्न करता है। उन्हें नियंत्रित करने तथा दूर करने में बाल मनोविज्ञान सहायता करता है।
6. बाल-निर्देशन में सहायता- बच्चों में माता पिता, अध्यापक तथा बाल निर्देशक जो कि बच्चों को आगे बढ़ाने के लिए निर्देशित करते हैं। बाल विकास उनकी मदद करता है। बाल विकास सिखाता है कि विभिन्न प्रकार के बालकों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए तथा उन्हें किस प्रकार की व्यवहारिक शिक्षा देनी चाहिए जो कि उनके आगे बढ़ने में सहायक होद्य
7. सुखी पारिवारिक जीवन में सहायक- यदि बच्चे चरित्रवान उचित व्यक्तित्व वाले होते हैं तो माता-पिता तथा परिवार सुखी तथा प्रसन्न रहता है। बाल मनोविज्ञान के अध्ययन द्वारा बालकों में उचित व्यवहार उत्पन्न कर पारिवारिक जीवन सुखी बनाया जा सकता है।
9. बाल विकास का महत्व- यदि आप बच्चे का सर्वांगीण विकास उचित तरीके से करना चाहते हैं तो आप को बच्चों को जानना और समझना होगा। एक सफल शिक्षक के रूप में बच्चे का सर्वांगीण विकास तभी कर सकते हैं जब आप बच्चे की आयु, मानसिक स्तर, अभिवृद्धि विकास के साथ होने वाले परिवर्तनों, सीखने की क्षमता, आदतों, रुचियों, आवश्यकता, समस्याओं आदि के साथ साथ सीखने सिखाने की रुचि पूर्ण एवं आनंदमय शिक्षण विधियों से परिचित होंगे। बाल मनोविज्ञान में हम इन्हीं के बारे में अध्ययन करते हैं।
10. बाल विकास का उद्देश्य- बाल विकास का उद्देश्य बदलती हुई सामाजिक व्यवस्था में कुशल आत्मा निर्देशन की योग्यता में वृद्धि, व्यक्तित्व का अभिवर्धन और उसका संतुलित विकास करना तथा मानव स्वभाव को समझने में शिक्षक की सहायता करना है। मानव स्वभाव के ज्ञान के द्वारा शिक्षक बालकों को उचित निर्देश देने और उनका पथ प्रदर्शन करने में सफल हो सकते हैं। उचित मार्गदर्शन मिलने पर बालक सामाजिक परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित करने और सामाजिक दायित्वों का भली-भांति निर्वाह करने में सफल होगा। अत: बाल विकास का उद्देश्य बालकों में सदाचार की भावना विकसित करना है। बाल विकास का उद्देश्य शिक्षक के तथ्यों समानीकरण से अवगत करा कर उसके कार्य में सहायता देना है, जिससे वह बालको को उसके संतुलित व्यक्तित्व के निर्माण में सहायता दे सके।

निष्कर्ष

बतौर माता-पिता हमें बच्चों बच्चे के दीर्घकालीन भविष्य को ध्यान में रखकर फैसला लेना चाहिए। इससे हम बच्चों को सामाजिक कौशलों के विकास और समायोजन में ज्यादा व्यवस्थित ढंग से मदद कर पाएं। बच्चे के नए प्रयासों के लिए उसे प्रोत्साहित करना चाहिए। जबकि किसी प्रतिस्पर्धा में पीछे रहने पर भी बच्चों का हौसला बढ़ाना चाहिए कि में हर बार जीत नहीं मिलती। हमें कोशिश करनी पड़ती है खुद को प्रतिस्पर्धा में बनाए रखने के लिए और उसमें कामयाबी हासिल करने के लिए। बाल्यावस्था से किशोरावस्था में संक्रमण काल के दौरान माता-पिता को अपने बच्चों को समझने और समझाने में परेशानी होती है। बच्चों से लगातार होने वाला संवाद और शिक्षकों से उनके प्रगति के बारे में लगातार पूछते रहना इस दिशा में काफी मददगार साबित हो सकता है। स्कूली शिक्षा में बाल मनोविज्ञान का अध्ययन उपरोक्त स्थितियों में समाधान की दिशा में प्रयास करने में मदद करता है। यह एक शिक्षक के साथ-साथ माता-पिता के लिए भी समान रूप से बेहद उपयोगी है।

संदर्भ सूची

1. मम्मोर आरएम, लिबर्ट आर, विक्स पी, स्ट्रॉस जी (1977)। विकासात्मक मनोविज्ञान (2 डी एड।)। एंगलवुड क्लिफ्स, एनजे: प्रेंटिस-हॉल। पीपी। 20-37। आईएसबीएन 978-0-13-208231-0।

2. शफर डीआर (2009)। सामाजिक और व्यक्तित्व विकास (6 वां संस्करण)। ऑस्ट्रेलिया: वाड्सवर्थ। पीपी। 21ख36। आईएसबीएन 978-0-495-60038-1।
3. बर्क ले (2018)। जीवनदान (सातवां संस्करण) के माध्यम से विकास। होबोकेन, एनजे: पियर्सन एजुकेशन। पीपी। 76-81। आईएसबीएन 978-0-13-441969-5। OCLC 946161390।
4. ब्रेमर जेजी (1994)। प्दिबल (2 संस्करण)। ब्लैकवेल। आईएसबीएन 978-0-631-18466-9।
5. बी डी, बॉयड एच (2011-12-12)। विकासशील बच्चा (13 वां संस्करण)। अपर सैडल रिवर, एनजे: पियरसन एजुकेशन। पी. 36, आईएसबीएन 978-0-205-25602-0।
6. स्लेटर ए, लुईस एम (2006)। शिशु विकास का परिचय। ऑक्सफोर्ड: OUPA आईएसबीएन 978-0-19-928305-7।
7. वलाचर आरआर (2017)। कम्प्यूटेशनल सामाजिक मनोविज्ञान। रूटलेज। आईएसबीएन 978-1138951655।
8. मायर्स डी (2008)। मनोविज्ञान की खोज। योग्य प्रकाशक। आईएसबीएन 978-1-57259-096-0।
9. रोंफेनब्रेनर, यू। (1979)। मानव विकास की पारिस्थितिकी: प्रकृति और डिजाइन द्वारा प्रयोग। कैम्ब्रिज, एमए: हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। (आईएसबीएन 0-674-22457-4)
10. अप्टन पी (2011)। विकासात्मक मनोविज्ञान: मनोविज्ञान में महत्वपूर्ण सोच। एक्सेटर: लर्निंग मैटर्स। पी। 84. आईएसबीएन 978-0-85725-276-0।
11. अप्टन पी (2011)। विकासात्मक मनोविज्ञान: मनोविज्ञान में महत्वपूर्ण सोच। एक्सेटर: लर्निंग मैटर्स। पी। 62. आईएसबीएन 978-0-85725-276-0।
12. सीगलर आर (2006)। कैसे बच्चे विकसित होते हैं, बाल विकास छात्र मीडिया टूल किट और वैज्ञानिक अमेरिकी रीडर की खोज के लिए कैसे बच्चे विकसित होते हैं। न्यूयॉर्क: वर्थ पब्लिशर्स। आईएसबीएन 978-0-7167-6113-6।
13. होगन जेडी (2000)। "विकासात्मक मनोविज्ञान: क्षेत्र का इतिहास"। में एलन कज्दिन (सं.)। मनोविज्ञान का विश्वकोश। मात्रा 3. पीपी। 9-13। डोई : 10.1037 / 10518-003।
14. आईएसबीएन 978-1-55798-652-8।

भारत पर तुर्क आक्रमण एवं गुलाम वंश

डॉ० संजय कुमार

एम.ए, पीएच.डी., ललित नारायण मिथिला यूनिवर्सिटी, दरभंगा,
मु. सुंदरपुर बीरा, पो. वासुदेवपुर बीरा, दरभंगा, बिहार

सार

तुर्की के इतिहास को तुर्क जाति के इतिहास और उससे पूर्व के इतिहास के दो अध्यायों में देखा जा सकता है। सातवीं से बारहवीं सदी के बीच में मध्य एशिया से तुर्कों की कई शाखाएँ यहाँ आकर बसीं। इससे पहले यहाँ से पश्चिम में आर्य (यवन, हेलेनिक) और पूर्व में कॉकेशियाइ जातियों का बसाव रहा था। तुर्की में ईसा के लगभग ७५०० वर्ष पहले मानव बसाव के प्रमाण यहां मिले हैं। हिट्टी साम्राज्य की स्थापना १९००-१३०० ईसा पूर्व में हुई थी। १२५० ईस्वी पूर्व ट्रॉय की लड़ाई में यवनों (ग्रीक) ने ट्रॉय शहर को नेस्तनाबूत कर दिया और आसपास के इलाकों पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। १२०० ईसापूर्व से तटीय क्षेत्रों में यवनों का आगमन आरंभ हो गया। छठी सदी ईसापूर्व में फारस के शाह साईरस ने अनातोलिया पर अपना अधिकार जमा लिया। इसके करीब २०० वर्षों के पश्चात ३३४ इस्वीपूर्व में सिकन्दर ने फारसियों को हराकर इसपर अपना अधिकार किया। बाद में सिकन्दर अफगानिस्तान होते हुए भारत तक पहुंच गया था। इसापूर्व १३० इस्वी में अनातोलिया रोमन साम्राज्य का अंग बना। ईसा के पचास वर्ष बाद संत पॉल ने ईसाई धर्म का प्रचार किया और सन ३१३ में रोमन साम्राज्य ने ईसाई धर्म को अपना लिया। इसके कुछ वर्षों के अन्दर ही कान्स्टेंटाईन साम्राज्य का अलगाव हुआ और कान्स्टेंटिनोपल इसकी राजधनी बनाई गई. छठी सदी में बिजेन्टाईन साम्राज्य अपने चरम पर था पर १०० वर्षों के भीतर मुस्लिम अरबों ने इसपर अपना अधिकार जमा लिया। बारहवी सदी में धर्मयुद्धों में फंसे रहने के बाद बिजेन्टाईन साम्राज्य का पतन आरंभ हो गया। सन १२८८ में ऑटोमन साम्राज्य का उदय हुआ और सन् १४५३ में कस्तुनतुनिया का पतन। इस घटना ने यूरोप में पुनर्जागरण लाने में अपना महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

कुंजी/बीज शब्दः तुर्क, भारत, आक्रमण, महमूद के आक्रमणों, तुर्की शासन

भारत में तुर्की शासन की स्थापना

इस लेख में हम तुर्कों के आक्रमण (11वीं-12वीं शताब्दी) और भारत में तुर्की शासन की स्थापना के बारे में चर्चा करेंगे।भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना का श्रेय तुर्कों को जाता है। इस्लाम के नेतृत्व को अरब से पहले फारसियों द्वारा और फिर तुर्कों द्वारा कब्जा कर लिया गया था। शुरुआत में, तुर्क बर्बर भीड़ थे और उनकी एकमात्र ताकत उनकी हथियारों की शक्ति थी। लेकिन, एक सदी से भी कम समय में, उन्होंने खुद को बेहद सुसंस्कृत लोगों में बदल दिया और मंगोलों के हमले के खिलाफ भी इस्लामी संस्कृति के सर्वोत्तम तत्वों को संरक्षित करने में सफल रहे।तुर्क इस्लाम के नए धर्मान्तरित थे और इसलिए, फारसी और अरबों की तुलना में उनके धार्मिक उत्साह में अधिक कट्टर साबित हुए। वे अपनी जाति की श्रेष्ठता में भी विश्वास करते थे। इस प्रकार, अपने नए धर्म से प्रेरित, अपनी नस्ल की श्रेष्ठता में विश्वास के साथ, इस्लाम का प्रचार करने और अपनी बाहों के बल पर भरोसा करने के लिए, तुर्कों ने पश्चिमी एशिया के एक बड़े हिस्से पर विजय प्राप्त की और अंततः, पूर्व की ओर बढ़ते हुए भारत में प्रवेश किया।।

गजनी के सुल्तान महमूद भारत में सबसे पहले घुसने वाले थे। वह हिंदुओं की सैन्य ताकत को तोड़ने और भारत के धन को लूटने में सफल रहा। लेकिन, उसने यहां अपना साम्राज्य स्थापित नहीं किया। भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना का श्रेय गौर के मुहम्मद को जाता है जिन्होंने लगभग 148 वर्षों के अंतराल के बाद उनका अनुसरण किया।

महमूद के आक्रमणों के कारण

इतिहासकारों द्वारा विभिन्न कारण दिए गए हैं जिसके परिणामस्वरूप भारत पर महमूद द्वारा बार-बार हमले हुए।

1. महमूद भारत में इस्लाम की महिमा को स्थापित करना चाहता था। प्रोफेसर मुहम्मद हबीब ने इस दृष्टिकोण का खंडन किया है। वह कहते हैं कि महमूद के पास धार्मिक उत्साह नहीं था; वह कट्टर नहीं था; वह उलेमा की सलाह का पालन करने के लिए तैयार नहीं था; वह विशुद्ध रूप से इस दुनिया का आदमी था; और उसके बर्बर कार्यों ने, इस्लाम की प्रतिष्ठा बढ़ाने के बजाय, दुनिया के सामने उसकी छवि को नष्ट कर दिया। जाफर उसका समर्थन करता है और ऐसा ही प्रोफेसर नाजिम और हैवेल के मामले में भी हुआ है।

जाफर ने कहा कि उन्होंने अपने धार्मिक उत्साह के कारण हिंदू मंदिरों पर हमला नहीं किया, बल्कि इसलिए कि उन्होंने अपना धन प्राप्त करना चाहा। नाजिम का तर्क है कि अगर उसने हिंदू राजाओं को परेशान किया और उनकी संपत्ति लूट ली, तो उन्होंने मध्य एशिया के मुस्लिम शासकों के साथ भी यही कहानी दोहराई. प्रो। हैवेल ने यह विचार व्यक्त किया कि वह बगदाद को उसी तरह से लूट सकते हैं जैसे उन्होंने भारतीय शहरों को लूटा अगर उन्हें वहां

से धन मिल सकता है।इस प्रकार, इन इतिहासकारों ने यह सुनिश्चित किया है कि महमूद के आक्रमणों का प्राथमिक मकसद धार्मिक नहीं बल्कि आर्थिक था। उनके अनुसार, वह भारत की संपत्ति के अधिकारी थे। लेकिन महमूद के दरबारी इतिहासकार उत्पी ने भारत में महमूद के हमलों को इस्लाम फैलाने और छवि-पूजा को नष्ट करने के लिए जिहाद (पवित्र युद्ध) के रूप में वर्णित किया।उस युग की परिस्थितियों और तुर्कों के धार्मिक उत्साह से देखा गया, जो इस्लाम में नए धर्मान्तरित थे, यह भी बहुत संभव है। इसके अलावा, महमूद ने न केवल हिंदू मंदिरों की संपत्ति को लूटा, बल्कि उन्हें और हिंदू देवताओं की छवियों को नष्ट कर दिया। इसलिए, यह अधिकतर स्वीकार किया जाता है कि महमूद का एक उद्देश्य इस्लाम का प्रचार और भारत में अपनी महिमा स्थापित करना था।

2. महमूद का एक अन्य उद्देश्य भारत के धन को लूटना था। किसी भी इतिहासकार ने इस दृष्टिकोण का खंडन नहीं किया है। महमूद ने धन के लिए धन की इच्छा की। इसके अलावा, उसे साम्राज्य के विस्तार की अपनी नीति को जारी रखने की भी आवश्यकता थी। इसलिए, भारत की संपत्ति उसके लिए आकर्षक थी और उसने भारत से अधिक से अधिक संपत्ति हासिल करने के लिए अपने हमलों को दोहराया।

3. इसके अलावा, महमूद का एक राजनीतिक उद्देश्य भी था। गजनविड्स और हिन्दूशाही एक दूसरे के खिलाफ लड़ रहे थे जब से एल्प्टिगिन और हिन्दुशाही शासकों ने गजनी पर हमला किया था। महमूद के लिए इस आक्रामक और शक्तिशाली पड़ोसी को नष्ट करना आवश्यक था। इसलिए, उन्होंने खुद इसके खिलाफ एक आक्रामक नीति अपनाई. हिंदुशाही राज्य के खिलाफ सफलता ने उन्हें भारत में गहराई से प्रवेश करने के लिए प्रोत्साहित किया।

4. अपनी उम्र के अन्य सभी महान शासकों की तरह, महमूद भी अपनी विजय और जीत से प्रसिद्धि पाने के इच्छुक थे और उन्होंने भारत पर अपने हमलों का एक कारण भी बनाया।

महमूद के आक्रमणों के समय भारत की स्थिति

राजनीतिक रूप से, भारत विभाजित था। कई राज्य थे जो लगातार अपने क्षेत्र की प्रसिद्धि और विस्तार के लिए एक-दूसरे के खिलाफ लड़े थे। उनमें से कई काफी व्यापक और शक्तिशाली थे, लेकिन उनके आंतरिक संघर्षों के कारण, उनमें से कोई भी इसके संपूर्ण संसाधनों का उपयोग नहीं कर सका, और न ही वे खुद को महमूद के खिलाफ एकजुट कर सके, जो उनकी प्राथमिक कमजोरी थी। मुल्तान और सिंध ने भारत के दो मुस्लिम राज्यों का गठन किया।उत्तर-पश्चिम में हिंदूशाही राज्य था जिसका समकालीन शासक जयपाल था। कश्मीर भी एक स्वतंत्र राज्य था और हिंदुओं के साथ उसके पारिवारिक संबंध थे। प्रतिहारों ने कन्नौज पर शासन किया। इसके तत्कालीन शासक राज्यपाल थे। महिपाल प्रथम ने बंगाल पर शासन किया लेकिन उसका राज्य कमजोर था। गुजरात में स्वतंत्र राज्य थे। मालवा और बुंदेलखंड भी। दक्षिण में, बाद के चालुक्यों और चोलों के शक्तिशाली साम्राज्य थे।सामाजिक रूप से, हिंदुओं को जातियों और उपजातियों में विभाजित करने से समाज के वर्गों के बीच तीखे मतभेद पैदा हो गए थे और इसलिए, इसे कमजोर कर दिया था। पारंपरिक चार जातियों के अलावा, अंत्याजा नामक लोगों का एक बड़ा वर्ग था। शिकारी, बुनकर, मछुआरे, जूता बनाने वाले और पेशे से जुड़े लोग इस खंड के थे।

उनकी स्थिति सुदास से कम थी। फिर भी सामाजिक स्थिति में निचले लोग हदीस, डम्स, चांडाल, बागतु आदि थे जो स्वच्छता बनाए रखने के काम में लगे थे, लेकिन शहरों और गांवों के बाहर रहने के लिए मजबूर थे। वे बाहर की जातियां और अछूत थे। समाज में निचली जातियों की स्थिति की केवल कल्पना की जा सकती है जब हमें बताया जाता है कि यहां तक कि वैश्यों को धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करने की अनुमति नहीं थी।अल बेरुनी ने लिखा कि अगर किसी ने इसे आजमाने की हिम्मत की, तो उसकी जीभ काट दी गई. इस प्रकार, वैश्यों सहित निचली जातियों की स्थिति बहुत कम हो गई थी और जाति-व्यवस्था भी बहुत कठोर हो गई थी। इस तरह के मामलों ने समाज को कई अलग-अलग विरोधी समूहों में विभाजित कर दिया था।

स्त्री की स्थिति भी बहुत बिगड़ गई थी और उसे केवल पुरुष के लिए आनंद और आनंद के लेख के रूप में माना जाता था। बाल विवाह, पुरुषों में बहुविवाह और उच्च जातियों की महिलाओं के बीच सती प्रथा काफी व्यापक होती जा रही थी, जबकि विधवाओं के विवाह की अनुमति नहीं थी। इस सबने हिंदू समाज को कमजोर कर दिया था। यही कारण है कि इस्लाम यहां बड़ी संख्या में धर्मान्तरित हो सकता है।धर्म और नैतिकता में भी गिरावट थी। हिंदू धर्म और बौद्ध धर्म दोनों अज्ञानता और भ्रष्टाचार से पीड़ित थे। लोगों, विशेष रूप से अमीर और उच्च वर्ग ने खुद को भ्रष्ट आचरण में लगा लिया, धर्म की सच्ची भावना को खो दिया या, बल्कि, इसे अपनी सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए एक साधन बना दिया।मंदिर और बौद्ध मठ भ्रष्टाचार के केंद्र बन गए। मंदिरों में देवदासियों को रखने की प्रथा भी मंदिरों में व्याप्त भ्रष्टाचार की एक विधा थी। यहां तक कि शिक्षण संस्थान भी भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं रहे।

सामाजिक और धार्मिक संस्थानों में प्रचलित भ्रष्टाचार दोनों एक कारण था और भारतीय समाज में सामान्य रूप से प्रचलित भ्रष्टाचार का परिणाम था। शायद, आम लोग अभी तक इससे मुक्त नहीं थे। लेकिन शिक्षित और शासक वर्गों में भ्रष्टाचार देश को कमजोर करने के लिए पर्याप्त था। इस तरह के समाज में एक मजबूत आक्रमणकारी का विरोध करने की इच्छा और क्षमता का अभाव था।समाज और धर्म के बिगड़ने से संस्कृति में भी गिरावट आई. साहित्य और ललित कलाओं को भी नुकसान उठाना पड़ा। पुरी और खजुराहो के मंदिर और कुटिनी-मटामा और समाया-मटरका (एक वेश्या की जीवनी) जैसी किताबें उस समय के लोगों के स्वाद का प्रतिनिधित्व करती हैं।

हिंदुओं ने अपने हथियारों और युद्ध के तरीकों में सुधार करने का प्रयास नहीं किया था। वे काफी हद तक अपने हाथियों पर निर्भर थे। तलवार अभी भी उनका मुख्य हथियार था और उनकी नीति अभी तक रक्षात्मक नहीं थी। उन्होंने न तो उत्तर-पश्चिम में किलों के निर्माण की परवाह की और न ही अपने सीमांतों की रक्षा के लिए कोई अन्य साधन अपनाया। इस प्रकार, सैन्य रूप से, भारत भी कमजोर था।राजनीतिक, सामाजिक और सैन्य रूप से भारत महमूद के आक्रमणों के समय कमजोर था। भारतीयों की कमजोरी का एक मुख्य कारण यह था कि उन्होंने राजनीतिक, सैन्य, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में जो कुछ भी हो रहा था, उसमें सुधार या जानने और समझने की कोशिश नहीं की। इसलिए, वे अज्ञानी हो गए और उन्होंने एक झूठी शान भी विकसित कर ली।

महमूद के आक्रमण

हेनरी इलियट ने वर्णन किया कि महमूद ने सत्रह बार भारत पर आक्रमण किया। इसके पर्याप्त प्रमाण नहीं हैं, फिर भी, सभी इतिहासकार इस बात से सहमत हैं कि महमूद ने कम से कम बारह बार भारत पर हमला किया। उनका पहला अभियान 1000 ईस्वी में हुआ था जब उन्होंने कुछ सीमांत किले पर कब्जा कर लिया था। 1001 ई. में उसने फिर आक्रमण किया। इस बार हिन्दूशाही राजा जयपाल ने उसे पेशावर के पास युद्ध के लिए उकसाया, लेकिन पराजित हो गया और अपने कई संबंधों के साथ उसे पकड़ लिया गया। महमूद वैहंद की राजधानी के रूप में आगे बढ़ा और फिर अच्छी लूट पाकर गजनी लौट गया। उन्होंने 25 हाथियों और 2,50,000 दीनार प्राप्त करने के बाद जयपाल को रिहा किया। जयपाल अपने अपमान को बर्दाश्त नहीं कर सका और खुद को जलाकर मार डाला। उनका उत्तराधिकार उनके पुत्र आनंदपाल ने 1002 ई. में प्राप्त किया था

1004 ई. में महमूद ने भीरा पर हमला किया। इसके शासक बाजी रे ने उनका विरोध किया, लेकिन हार गए और उन्होंने मुसलमानों द्वारा कब्जा करने से पहले खुद को मार डाला। 1006 ई. में, महमूद मुल्तान के शिया साम्राज्य पर हमला करने के लिए आगे बढ़ा। हिन्दूशाही राजा, आनंदपाल ने उसे पास देने से इनकार कर दिया, पेशावर के पास उसके खिलाफ लड़ाई लड़ी, लेकिन हार गया और भाग गया। महमूद ने 1006 ई. में मुल्तान पर कब्जा कर लियाइसके शासक, अबू-ए-फत दाउद, 20,000 दिरहम की वार्षिक श्रद्धांजलि देने के लिए सहमत हुए। महमूद ने नवासा शाह (जयपाल के पोते, जिन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया था) को अपने भारतीय क्षेत्रों के गवर्नर के रूप में छोड़ दिया और सेल्जूक-तुर्क से लड़ने के लिए वापस चले गए जो उत्तर से अपने क्षेत्रों को खतरा पैदा कर रहे थे। दाउद और नवासा शाह ने उसकी अनुपस्थिति में विद्रोह किया और इसलिए, वह 1008 ईस्वी में भारत आया, उन दोनों को हराया और मुल्तान सहित सभी क्षेत्रों को अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया।

हिंदूशाही राज्य शुरू से ही गजनवीडों का विरोध कर रहा था। इसने कई बार आक्रामक नीति अपनाई थी। इसके अलावा, यह एकमात्र हिंदू राज्य था जिसने अन्य हिंदू राज्यों की मदद से विदेशी आक्रमणकारियों को पीछे हटाने की कोशिश की। फिर से, 1009 ईस्वी में, इसके शासक आनंदपाल ने अन्य हिंदू राज्यों से समर्थन मांगा, एक बड़ी सेना एकत्र की और महमूद को चुनौती देने के लिए पेशावर की ओर रवाना हुए।महमूद ने वैहंद के पास उसके खिलाफ लड़ाई लड़ी और उसे हरा दिया। महमूद ने नगरकोट तक चढ़ाई की और उस पर विजय प्राप्त की। आनंदपाल की पराजय ने हिंदुओं के साम्राज्य की ताकत और क्षेत्रों को कम कर दिया। आनंदपाल को महमूद के साथ एक संधि स्वीकार करने के लिए मजबूर किया गया था जिसने सिंध और पश्चिम पंजाब में अपनी शक्ति को मजबूती से जमाया। आनंदपाल ने अपनी राजधानी नंदना में स्थानांतरित कर दी और अपनी खोई हुई ताकत का निर्माण करने की कोशिश की लेकिन असफल रहा।1012 ईस्वी सन् 1013 में उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र त्रिलोचनपाल द्वारा उनका उत्तराधिकार लिया गया, महमूद ने नंदना पर आक्रमण किया और उस पर कब्जा कर लिया। त्रिलोचनपाल कश्मीर भाग गया और अपने शासक की मदद मांगी लेकिन महमूद ने अपनी संयुक्त सेना को हरा दिया। महमूद ने कश्मीर पर हमला नहीं किया, हालांकि उसने अपनी सीमा पर स्थानों को लूट लिया।

त्रिलोचनपाल ने शिवालिक पहाड़ियों से संन्यास ले लिया, अपनी स्थिति को मजबूत किया और बुंदेलखंड के चंदेला शासक विद्याधर की मदद भी ली, लेकिन उन्हें 1019 ई. में महमूद द्वारा फिर से हरा दिया गया क्योंकि हिंदुशाही राज्य अब एक छोटे से जगिर की स्थिति में सिमट गया था। 1021-1022 ई. के बीच, त्रिलोचनपाल की किसी अज्ञात व्यक्ति ने हत्या कर दी थी और उसके पुत्र भीमपाल ने उसे मार डाला था। भीमपाल की मृत्यु 1026 ईस्वी में एक क्षुद्र प्रमुख के रूप में हुई और उसके साथ उत्तर-पश्चिमी भारत के एक बार शक्तिशाली हिंदुशाही राज्य का अंत हुआ।हिंदुशाही राज्य की हार और क्षय ने महमूद को भारत में और गहरे तक घुसने के लिए प्रोत्साहित किया था। इसके अलावा, पंजाब और नगरकोट में मिली लूट ने भारतीय धन के लिए उसकी भूख को कम कर दिया था। उन्होंने भारत पर अपनी छापेमारी को दोहराया और कहीं भी कोई चुनौती नहीं दी।ऐसा लग रहा था कि भारत पक्षाघात से पीड़ित है और उसने खुद को महमूद के खिलाफ लड़ने में असमर्थ पाया, तब भी जब वह व्यवस्थित रूप से अपनी संपत्ति लूट रहा था, अपनी महिलाओं को बदनाम कर रहा था, अपने मंदिरों और छवियों को नष्ट कर रहा था और अपने लोगों को बदनाम कर रहा था।

1009 ई. में, महमूद ने नारायणपुर के शासक को हराया था और उसके धन को लूटा था। 1014 ई. में, उसने थानेश्वर पर हमला किया, डेरा के प्रमुख राम को हराया और फिर थानेश्वर को लूट लिया। थानेश्वर के सभी मंदिरों और चित्रों को नष्ट कर दिया गया था, जबकि चक्रस्वामी के प्रमुख देवता को गजनी ले जाया गया और उन्हें सार्वजनिक क्षेत्र में अवज्ञा के लिए रखा गया।1018 ई. में, महमूद गंगा-यमुना दोआब पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा। उसने पहले मथुरा पर हमला किया और लूटपाट की। मथुरा शहर एक सुंदर शहर और हिंदुओं का एक पवित्र धार्मिक स्थान था, जिसमें एक हजार मंदिर थे। महमूद ने अपने संस्मरण में इसका मुख्य मंदिर बताया।उन्होंने लिखा, "अगर किसी को एक कपड़े का निर्माण करना चाहिए, तो वह एक हजार दीनार के एक लाख पैकेट खर्च करेगा, और इसे 200 वर्षों में पूरा नहीं करेगा, और सबसे सरल वास्तुकारों की सहायता से।"

सोने और चाँदी की कई विशाल मूर्तियाँ थीं जो महंगी मोती और हीरों से जड़ी थीं। महमूद ने शहर को बीस दिनों तक लूटा, सभी मूर्तियों को तोड़ दिया और सभी मंदिरों को नष्ट कर दिया। मथुरा से उन्हें भारी लूट हुई. मथुरा से, महमूद ने कन्नौज तक मार्च किया।उन्हें कुछ स्थानों पर हिंदुओं के प्रतिरोध का सामना करना पड़ा लेकिन उन पर विजय प्राप्त की। कन्नौज के प्रतिहार शासक राज्यपाल ने भागकर अपनी राजधानी महमूद की दया पर छोड़ दी। उसने शहर को लूट लिया और फिर उसे नष्ट कर दिया। उसने कुछ और स्थानों पर आक्रमण किया और फिर गजनी वापस चला गया।

महमूद की वापसी के बाद, गंडा (विद्याधर) और कुछ अन्य हिंदू प्रमुखों ने एक संघर्ष आयोजित किया, राजपला पर हमला किया और उसे मार डाला जो महमूद के खिलाफ लड़ने में विफल रही थी। 1019 ई. में विद्याधर को दंड देने की दृष्टि से महमूद भारत लौट आया। उसने हिंदुशाही शासक को हराया। रास्ते में त्रिलोचनपाल और कभी 1020-21 ईस्वी के दौरान बुंदेलखंड की सीमा पर पहुँचेपविद्याधर ने एक बड़ी सेना के साथ उनका सामना किया लेकिन,

किसी अज्ञात कारण से, रात के समय मैदान छोड़ दिया। इतने बड़े चंदेलों को देखकर महमूद, जो हिम्मत हार गया था, खुश हो गया। उसने विद्याधर के प्रदेशों को उजाड़ दिया और फिर छोड़ दिया। अगले साल वह फिर आया।रास्ते में, उसने ग्वालियर के शासक को जमा करने के लिए मजबूर किया और फिर कालिंजर के किले में पहुंच गया। किले की घेराबंदी लंबे समय तक चली। विद्याधर ने महमूद को 300 हाथियों को श्रद्धांजलि के रूप में देने पर सहमति व्यक्त की। बदले में, उससे पंद्रह दुर्गों पर शासन करने का अधिकार प्राप्त किया।

1024 ई. में, महमूद काठियावाड़ के तट पर सोमनाथ मंदिर में अपने प्रसिद्ध अभियान पर आया था। मंदिर में लाखों भक्तों से प्रतिदिन विभिन्न रूपों में प्रसाद प्राप्त होता था और दस हजार गाँवों के संसाधनों से स्थाई आय होती थी। यह एक सुंदर मंदिर था और इसमें अकूत संपत्ति थी। इसके शिव-लिंग में हजारों रत्नों और हीरे के साथ एक चंदवा था।इसकी एक घंटी से जुड़ी श्रृंखला में 200 मग सोने का वजन था, एक हजार ब्राह्मणों को लिंग की पूजा करने के लिए नियुक्त किया गया था और 350 पुरुषों और महिलाओं को देवता के सामने गाने और नृत्य करने के लिए नियुक्त किया गया था। सोमनाथ का मंदिर अद्भुत था, लेकिन उनके पुजारियों का गौरव अद्वितीय था जिन्होंने दावा किया कि महमूद अपने देवता को कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकते थे और दावा किया कि अन्य देवताओं को महमूद ने नष्ट कर दिया था क्योंकि उन्होंने भगवान सोमनाथ के क्रोध को भड़काया था।महमूद मुल्तान से होते हुए, अनहिलवाड़ा की राजधानी पहुँच गया, जिसे उसके शासक भीम प्रथम ने बिना किसी प्रतिरोध के छोड़ दिया और 1025 ईस्वी में सोमनाथ के मंदिर में पहुँचे, मंदिर के भक्तों ने उन्हें प्रतिरोध की पेशकश की, लेकिन अगले ही दिन महमूद ने मंदिर में प्रवेश किया, इसे लूट लिया और बाद में इसे नष्ट कर दिया। वह एक विशाल लूट के साथ लौटा। वह अपने हिंदू गाइडों के रास्ते में परेशान था, जिसने अपनी सेना को रेगिस्तान के एक सुनसान हिस्से तक पहुंचाया। लेकिन, आखिरकार, वह अपनी लूट के साथ सुरक्षित रूप से गजनी पहुंच गया।महमूद आखिरी बार 1027 ई. में भारत आए थे, जो कि सोमनाथ से उनकी वापसी की यात्रा पर परेशान हुए जाटों को दंडित करने के लिए आए थे। जाटों को कड़ी सजा दी गई. महमूद ने उनकी संपत्ति लूट ली, सभी पुरुषों को मार डाला और उनकी महिलाओं और बच्चों को गुलाम बना लिया।

इस प्रकार, महमूद ने भारत पर बार-बार आक्रमण किया। वह कभी यहां पराजित नहीं हुआ था। उसने भारत से जो कुछ भी ले सकता था और बाकी को नष्ट कर दिया। खुद को लूट और लूट में संलग्न करने के अलावा, उन्होंने अफगानिस्तान, पंजाब, सिंध और मुल्तान को अपने साम्राज्य में मिला लिया। महमूद की मृत्यु 1030 ईस्वी में हुई

महमूद के चरित्र और उपलब्धियों का एक अनुमान

महमूद एक साहसी सैनिक और एक सफल सेनापति था। वह दुनिया के उन सफल जनरलों में शुमार होता है, जिन्हें जन्मजात सेनापति माना जाता रहा है। उनके पास नेतृत्व के गुण थे और अपने संसाधनों और परिस्थितियों का सर्वोत्तम तरीके से उपयोग करना जानते थे। वह मानव स्वभाव का एक अच्छा न्यायाधीश था और अपनी क्षमता के अनुसार दूसरों को काम और जिम्मेदारी सौंपता था।उनकी सेना में अरब, तुर्क, अफगान और यहां तक कि हिंदू जैसे विभिन्न राष्ट्रीयताओं के लोग शामिल थे। फिर भी, यह उनकी कमान के तहत एक एकीकृत शक्तिशाली शक्ति बन गया। इस प्रकार, महमूद के पास कई गुण थे। महमूद भी उतना ही महत्वाकांक्षी था। उसने हमेशा महिमा जीतने और अपने साम्राज्य का विस्तार करने का प्रयास किया। उन्हें अपने पिता से केवल गजनी और खुरासान के प्रांत मिले थे।

उन्होंने इस छोटे से विरासत को एक शक्तिशाली साम्राज्य में बदल दिया, जो पूर्व में इराक और पश्चिम में कैस्पियन सागर से लेकर पूर्व में गंगा नदी तक फैला हुआ था और जो निश्चित रूप से उस समय बगदाद के खलीफा के साम्राज्य से अधिक व्यापक था।यह कहना गलत होगा कि महमूद कमजोर और विभाजित हिंदू शासकों के खिलाफ ही सफल हुआ था। उसने ईरान और मध्य एशिया में अपने दुश्मनों के खिलाफ वही सफलता हासिल की थी। इसलिए, महमूद एशिया के महानतम कमांडरों और साम्राज्य-बिल्डरों में शुमार है।महमूद एक शिक्षित और सुसंस्कृत व्यक्ति था। वह छात्रवृत्ति और ललित कला के संरक्षक थे। वह अपने दरबार के विद्वानों के प्रतिनिधि सभा में एकत्रित हुए। अल बरूनी, तुर्क, संस्कृत, गणित, दर्शन, ज्योतिष और इतिहास के विद्वान उनके दरबार में थे। उसी तरह से, उतबी, फारबी, बैहाकी, ईरानी कवि उजारी, तुसी, अनसुरी, असजादी, फर्रुखी और फिरदौसी, जो अपनी उम्र के ख्याति के विद्वान थे, वे सभी उनके दरबार में थे।

बेशक, उनमें से प्रत्येक एक सक्षम व्यक्ति था लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है कि महमूद के संरक्षण ने निश्चित रूप से उनकी क्षमताओं को बढ़ाने में उनकी मदद की थी। महमूद ने एक विश्वविद्यालय, एक अच्छी लाइब्रेरी और गजनी में एक संग्रहालय की स्थापना की। उन्होंने कलाकारों को संरक्षण भी दिया।उन्होंने अपने साम्राज्य के सभी हिस्सों, यहां तक कि विदेशों से भी सभी प्रकार के कलाकारों को आमंत्रित किया, और उन्हें गजनी के सौंदर्यीकरण में लगाया। उन्होंने गजनी में कई महलों, मस्जिदों, मकबरों और अन्य इमारतों का निर्माण किया। उनके शासन के दौरान, गजनी न केवल पूर्व का एक सुंदर शहर बन गया, बल्कि इस्लामी छात्रवृत्ति, ललित कला और संस्कृति का केंद्र भी बन गया।महमूद एक न्यायप्रिय शासक था। उसने अपने भतीजे को अपने हाथों से मार डाला जब उसने उसे दूसरे व्यक्ति की पत्नी के साथ यौन संबंध रखने का दोषी पाया। उसने राजकुमार को खुद को अदालत में पेश करने के लिए मजबूर किया और फैसले को स्वीकार किया क्योंकि राजकुमार एक व्यापारी के ऋण का भुगतान करने में विफल रहा था। इसी तरह की कई कहानियां महमूद के न्याय की भावना के बारे में जानी जाती हैं। महमूद शांति और व्यवस्था बनाए रखने, व्यापार और कृषि की रक्षा करने और अपने साम्राज्य की सीमाओं के भीतर अपने विषयों के सम्मान और संपत्ति की रक्षा करने में सफल रहा।

महमूद एक कट्टर सुन्नी मुसल्मान था और हिंदुओं का क्या कहना, वह शियाओं के प्रति भी असहिष्णु था। मुहम्मद हबीब जैसे कई इतिहासकार हैं जिन्होंने उन्हें इस आरोप से बाहर निकालने की कोशिश की है। लेकिन हमें समकालीन इतिहासकारों द्वारा व्यक्त की गई राय को भी ध्यान में रखना चाहिए। अल

बरूनी ने उनके असहिष्णु धार्मिक कृत्यों की आलोचना की थी। समकालीन श्मुसलमानों ने उन्हें इस्लाम के चौंपियन के रूप में माना और उन्हें गाजी (काफिरों का कातिल) और छवियों को नष्ट करने वाला कहा गया।

खलीफा ने अपनी सफल लूट और सोमनाथ के मंदिर की लूट के बाद उसे सम्मानित किया। समकालीन इस्लामी दुनिया ने महमूद को काफिरों को नष्ट करने वाले और भारत जैसे दूर के स्थानों पर इस्लाम की महिमा को स्थापित करने वाले के रूप में मान्यता दी।कई विद्वानों ने यह माना है कि महमूद ने हिंदू मूर्तियों और मंदिरों को नष्ट कर दिया, मुख्यत: आर्थिक कारणों से। बेशक, उसका एक कारण निश्चित रूप से आर्थिक था। लेकिन समान रूप से देखने योग्य है, जो उनके समकालीनों द्वारा व्यक्त किया गया था, कि महमूद ने अपने धार्मिक उत्साह के कारण इन कृत्यों में खुद को व्यस्त किया।महमूद ने ध न अर्जित करना चाहा या, बल्कि, इसे प्यार किया, लेकिन साथ ही, इसे उदारता से खर्च भी किया। वह अपने दरबारी कवि, फिरदौसी को उनके द्वारा रचित हर श्लोक के लिए सोने का दीनार देने के लिए तैयार हो गया था।लेकिन जब फिरदौसी ने उनके सामने शाहनामा पेश किया, जिसमें एक हजार श्लोक थे, तो उन्होंने उन्हें एक हजार दीनार की पेशकश की, जिसे फिरदौसी ने मना कर दिया। बेशक, उसने बाद में सोने के एक हजार दीनार भेजे, लेकिन तब तक फिरदौसी की मौत हो चुकी थी। प्रोफेसर ब्राउन ने देखा, "महमूद ने हर संभव तरीकों से धन अर्जित करने की कोशिश की। इसके अलावा, उनके चरित्र में कुछ भी गलत नहीं था।"

लेकिन महमूद की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि वह एक सक्षम प्रशासक नहीं था। उन्होंने अपने प्रभुत्व को शांति और व्यवस्था देने से कम नहीं किया। वह एक स्थिर साम्राज्य बनाने में विफल रहा। उनका साम्राज्य केवल अपने जीवन काल के दौरान ही था। जैसे ही उनका निधन हुआ, उनके उत्तराधि कारियों के अधीन साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया। इस प्रकार, वह कुछ स्थायी संस्थानों पर अपना साम्राज्य स्थापित करने में विफल रहा।लेन-पूले ने लिखा, "महमूद एक महान सैनिक था और उसके पास जबरदस्त साहस और अथक मानसिक और शारीरिक क्षमता थी। लेकिन, वह एक रचनात्मक और दूरदर्शी राजनेता नहीं थे। हमें कोई कानून, संस्था या प्रशासनिक व्यवस्था नहीं मिली जिसकी नींव उसके द्वारा रखी गई हो। " उन्होंने अपनी भारतीय विजय को मजबूत करने के लिए कुछ नहीं किया। इस प्रकार, महमूद निश्चित रूप से एक अच्छा प्रशासक नहीं था।फिर भी महमूद एक महान मुस्लिम शासक था। मुस्लिम चिरजीवी महमूद को अपने सबसे बड़े राजाओं में से एक मानते थे। वास्तव में, इस्लाम के इतिहास में वह पहला शासक था जिसने सुल्तान की पदवी का हकदार था। वह मध्य एशिया के महान शासकों में शुमार है। प्रोफेसर मुहम्मद हबीब लिखते हैं, "महमूद की अपने समकालीनों में प्रधानता उनकी योग्यता के कारण थी न कि उनके चरित्र के कारण।" महमूद ने एक व्यापक साम्राज्य की स्थापना की, अपनी सीमाओं के भीतर शांति और समृद्धि लाई, इसकी सांस्कृतिक प्रगति में मदद की और दूर स्थानों पर इस्लाम की महिमा को स्थापित किया। गजनी इस्लाम की शक्ति और शिक्षा, छात्रवृत्ति और ललित कलाओं सहित संस्कृति में इसकी प्रगति का केंद्र बन गया। यह सब महमूद की सफलता और उपलब्धियों के कारण था।

लेकिन, भारत के इतिहास में, महमूद एक कट्टर सुन्नी मुस्लिम, एक बर्बर विदेशी डाकू, एक लुटेरा और ललित कला का विध्वंसक था। वास्तव में, महमूद गजनी का शासक था, भारत का नहीं। पंजाब, सिंध और मुल्तान, जिसने अपने साम्राज्य के कुछ हिस्सों का गठन किया, ने भारत में अपने आक्रमणों के लिए ठिकानों के उद्देश्य को पूरा किया। उन्होंने उन्हें अच्छी तरह से संचालित करने की परवाह नहीं की। भारत में गहराई से प्रवेश करते हुए, उन्होंने बस लूट, लूट और रूपांतरण को वांछित किया।अपने हर आक्रमण में, वह जहाँ भी गया, उसने जो भी लूटा, लूटा, जो कुछ भी वह अपने साथ नहीं ले जा सका उसे हिंदू मंदिरों और मूर्तियों सहित ले गया, लाखों लोगों को इस्लाम स्वीकार करने के लिए मजबूर किया, अन्यथा उन्हें मार डाला, जबकि हजारों खूबसूरत महिलाओं को गजल में ले लिया। यहां हजारों लोगों को बेइज्जत किया गया, सैकड़ों गांवों और खूबसूरत शहरों को जला दिया गया और कला के बारीक टुकड़े नष्ट कर दिए गए। इस प्रकार, अपने दिन के भारतीयों के लिए, महमूद एक सत्यनिष्ठ अवतार था।

कई विद्वानों द्वारा कहा गया है कि महमूद ने भारत पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं डाला। वह एक मजबूत तूफान की तरह आया और सब कुछ नष्ट कर दिया और फिर गुजर गया। भारतीयों ने जल्द ही अपने छापे और अत्याचारों को भुला दिया और अपने मंदिरों, मूर्तियों और शहरों का पुनर्निर्माण किया। बेशक, भारतीयों ने अपने आक्रमणों को भुला दिया और इसलिए बाद में भारी कीमत चुकानी पड़ी। लेकिन, यह स्वीकार करना गलत होगा कि महमूद ने भारतीयों और भारतीय इतिहास पर कोई स्थायी छाप नहीं छोड़ी।महमूद ने भारतीयों की आर्थिक और सैन्य ताकत को तोड़ दिया और मुस्लिम आक्रमणकारियों का विरोध करने के लिए उनका मनोबल भी बढ़ाया। महमूद भारत में एक गंभीर चुनौती से कभी नहीं मिला और भारतीयों के खिलाफ उसकी लगातार सफलता ने भारतीयों में भय और एक पराजयवादी रवैया पैदा कर दिया कि मुसलमान अजेय थे। यह डर लंबे समय तक बना रहा। पंजाब, मुल्तान और सिंध को गजनवी साम्राज्य में शामिल करने से बाद के मुस्लिम आक्रमणकारियों का भारत में आगे बढ़ना आसान हो गया।घूर के मुहम्मद ने अपने दुश्मन गजनवी शासक से इन स्थानों को छीनने के लिए सबसे पहले भारत में प्रवेश किया। और महमूद की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि अफगानिस्तान के हिंदुशाही राज्य का विनाश था।इसने मुसलमानों द्वारा भारत की विजय का मार्ग प्रशस्त किया। डॉ। डीसी गांगुली लिखते हैं, "गजनी के राज्य में पंजाब और अफगानिस्तान को शामिल करने से भारत की इस्लामी विजय एक तुलनात्मक रूप से आसान प्रक्रिया बन गई. यह अब सवाल नहीं था कि क्या, लेकिन जब, उस शक्तिशाली बाढ़ ने पूरे देश को प्रभावित किया।"

भारत पर मुहम्मद के आक्रमण के कारण

मुहम्मद ने कई कारणों से भारत पर हमला किया।

इतिहासकारों ने निम्नलिखित कारणों को स्वीकार किया है:

1. मुहम्मद एक महत्वाकांक्षी शासक थे। अपनी उम्र के सभी महान शासकों की तरह वह शक्ति और महिमा के लिए अपने साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था। उन्होंने इसी उद्देश्य के लिए भारत को जीतने का फैसला किया।
2. घूर और गजनी के शाही परिवार वंशानुगत दुश्मन थे और उस समय तक, पंजाब में गजनवीडों का शासन था। गजनी पर कब्जा करने के बाद मुहम्मद ने पंजाब के साथ-साथ अपने राज्य का भी चयन किया ताकि वह अपने वंशानुगत शत्रु की शेष शक्ति को समाप्त कर सके और अपने राज्य को पूर्व की ओर से सुरक्षा प्रदान कर सके।
3. पश्चिम की ओर अपनी शक्ति बढ़ाने के घुर वंश की महत्वाकांक्षा को फारस के ख्वारिज्म वंश की बढ़ती शक्ति द्वारा चुनौती दी गई और जाँच की गई. इसलिए, घोरीड्स से पहले अगला विकल्प पूर्वी अर्थात .. भारत की ओर बढ़ना था। इसके अलावा, घियास की शक्ति को पश्चिम की ओर बढ़ाने की जिम्मेदारी घियास-उद-दीन के कंधों पर थी। इसलिए, मुहम्मद ने खुद भारत को जीतने का फैसला किया।
4. सम्भवत:, मुहम्मद ने भारत से धन प्राप्त करना भी चाहा और इस्लाम के विस्तार को भी बढ़ाया और ये भी उन्हें भारत पर आक्रमण करने के लिए लुभाते थे। लेकिन, किसी भी मामले में, ये उसके आक्रमण के मूल कारण नहीं थे।

घुर के मुहम्मद के आक्रमण के समय भारत

1027 ई. में महमूद के अंतिम आक्रमण के बाद लगभग 148 वर्ष व्यतीत हो गए, क्योंकि भारत पर मुहम्मद का पहला आक्रमण 1175 ई. में हुआ था, लेकिन सत्तारूढ़ राजवंशों और उनके राज्यों के क्षेत्रों में परिवर्तन को छोड़कर भारत की स्थिति में एक भी उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ था।।

राजनीतिक रूप से, भारत को कई राज्यों में विभाजित किया गया था, दोनों उत्तर और दक्षिण में। विदेशी आक्रमणकारी की चुनौती को पूरा करने के लिए उनमें से कई काफी व्यापक और शक्तिशाली थे, लेकिन महिमा और शक्ति के लिए एक दूसरे के खिलाफ उनकी निरंतर लड़ाई ने उनकी प्राथमिक कमजोरी का गठन किया, क्योंकि इसने उन्हें अपने सबसे बड़े खतरे की घड़ी में भी खुद को एकजुट करने की अनुमति नहीं दी। एक विदेशी शत्रु के खिलाफ या उनके खिलाफ अपने संपूर्ण संसाधनों का उपयोग करने के लिए उन्हें स्वतंत्र छोड़ दिया।

उस समय, सिंध और मुल्तान दो स्वतंत्र शिया मुस्लिम शासकों द्वारा शासित थे, जबकि पंजाब अंतिम गजनवी शासक, खुसरव शाह के हाथों में था। खुशव शाह शक्तिशाली शासक नहीं था। वह भारत में कोई भी सफलता हासिल करने में विफल रहे थे। बल्कि, दिल्ली का चौहान शासक उससे कुछ खास स्थानों को छीनने में सफल रहा था। गुजरात और काठियावाड़ पर चालुक्यों का शासन था।

उनकी राजधानी अन्हिलवाड़ा थी। चालुक्यों ने दिल्ली और अजमेर के चौहानों से लड़कर अपनी बहुत शक्ति खो दी थी। उनके शासक, तब, मुलराजा II थे। दिल्ली और अजमेर पर चौहानों का शासन था। वहां तत्कालीन शासक पृथ्वीराज तृतीय था। पृथ्वीराज तृतीय एक सक्षम सेनापति और महत्वाकांक्षी शासक था। उन्होंने अपने पड़ोसी राज्यों के खिलाफ सफलतापूर्वक लड़ाई लड़ी थी।इसलिए, उसने उन सभी की ईर्ष्या को उकसाया था। उन्होंने गुजरात के चालुक्यों को पराजित और अपमानित किया, चंदेल शासक परमलदेव से महोबा छीन लिया और, कन्नौज के शासक जयचंद्र की बेटी के साथ संभोग करके, अपनी स्थायी दुश्मनी साबित की। पृथ्वीराज तृतीय कोई शक नहीं था, एक उत्साही और साहसी शासक लेकिन उसके पास दूरदर्शिता और कूटनीतिक चतुरता का अभाव था।

इसलिए, वह मुस्लिम आक्रमणकारी के खिलाफ लड़ाई में अपने किसी भी शक्तिशाली पड़ोसी से कोई समर्थन प्राप्त करने में विफल रहा। कन्नौज पर गाह-दवलों ने शासन किया। उनका साम्राज्य उस समय उत्तर भारत में सबसे व्यापक था और उनके तत्कालीन शासक जयचंद्र थे। चंदेलों ने बुंदेलखंड में शासन किया जबकि पलास और सेना ने बंगाल में शासन किया। दक्षिण समान रूप से राजनीतिक रूप से विभाजित था और उत्तर भारत के भाग्य के प्रति पूरी तरह से उदासीन था।ग्यारहवीं शताब्दी की स्थितियों की तुलना में भारतीय समाज में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था, सिवाय इसके कि मुसलमानों का एक बड़ा वर्ग भारत के कई हिस्सों में शांति से बस गया था। मुसलमानों की ये छोटी कॉलोनियां भारतीय राजनीति में किसी भी तरह से प्रभावी नहीं थीं, लेकिन निश्चित रूप से अप्रत्यक्ष रूप से उपयोगी थीं क्योंकि किसी भी मुस्लिम आक्रमणकारी को कुछ सहानुभूति मिल सकती थी और कभी-कभी, इन उपनिवेशवादियों से कुछ उपयोगी जानकारी। इसके अलावा, भारत ने महमूद के आक्रमणों के दिनों से ही सामाजिक, सांस्कृतिक या सैन्य रूप से खुद को नहीं बदला था।

मुहम्मद के आक्रमण और भारत में तुर्की शासन की स्थापना

मुहम्मद ने सबसे पहले 1175 ईस्वी में मुल्तान पर हमला किया और इसे आसानी से जीत लिया। इसके बाद उन्होंने उच और निचले सिंध को अपने प्रदेशों में मिला लिया। 1178 ई. में, मुहम्मद ने गुजरात पर हमला किया। मूलराज द्वितीय ने माउंट आबू के पास उसका सामना किया और उसे हराया। भारत में मुहम्मद की यह पहली हार थी। बाद में, उन्होंने भारत में अपना मार्ग बदल दिया। उन्होंने पंजाब के माध्यम से अगली कोशिश की। मुहम्मद ने 1179 में पेशावर पर विजय प्राप्त की, दो साल बाद लाहौर पर हमला किया और अंतिम गजनवी शासक, खुसरव शाह से बहुत बड़े सम्मान प्राप्त किए, 1185 ईस्वी में सियालकोट पर विजय प्राप्त की और 1186 ई. में लाहौर पर फिर से हमला किया, जिसने खुसरव शाह को छल से और पंजाब के पूरे प्रदेश पर कब्जा कर लिया। बाद में, 1192 ई. में खुसरव की हत्या कर दी गई

पंजाब पर कब्जा करने के बाद, मुहम्मद और पृथ्वीराज प्प् के राज्यों की सीमाएं, दिल्ली और अजमेर के चौहान शासक ने एक-दूसरे को छुआ। 1198 ई. में, मुहम्मक ने भटिंडा पर हमला किया और कब्जा कर लिया। वह तब वापस जाने की योजना बना रहा था जब उसे भटिण्डा को वापस लेने की दृष्टि

से पृथ्वीराज के आगे बढ़ने की खबर मिली। मुहम्मद उसका सामना करने के लिए आगे बढ़े। दुश्मन दिल्ली के 80 मील दूर तराइन के रणक्षेत्र में एक दूसरे से मिले और तराइन की पहली लड़ाई 11-12- ईसवी में हुई।

मुहम्मद युद्ध में हार गया था। हम्मीर-महाकवि का वर्णन है कि मुहम्मद को पृथ्वीराज द्वारा बंदी बना लिया गया था लेकिन अनुग्रह से मुक्त छोड़ दिया गया था। लेकिन यह दृश्य इतिहासकारों द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता है। मुहम्मद को घायल कर दिया गया और एक खिलजी कुलीन द्वारा सुरक्षा के लिए ले जाया गया। मुस्लिम सेना को भगा दिया गया और राजपूतों द्वारा लड़ाई पूरी तरह से जीत ली गई. इसके बाद पृथ्वीराज ने भटिंडा के किले पर हमला किया, लेकिन तेरह महीनों के बाद ही इसे पकड़ सका। तराइन की लड़ाई में मुहम्मद अपनी हार को नहीं भूल सके।पृथ्वीराज ने न केवल उसे अपमानित किया था, बल्कि भारत को जीतने के लिए अपना रास्ता भी अवरुद्ध कर दिया था। मुहम्मद ने खुद को अच्छी तरह से तैयार किया, एक सौ बीस हजार लोगों की एक मजबूत ताकत एकत्र की और फिर अपनी हार का बदला लेने के लिए भारत की ओर आगे बढ़ा। भटिंडा पर कब्जा करने के बाद, मुहम्मद ने फिर से तराइन के मैदान में मार्च किया।

यद्यपि पृथ्वीराज एक बड़ी सेना के साथ उसका सामना करने के लिए आया था लेकिन निर्णायक रूप से हार गया था। उसने भागने की कोशिश की लेकिन कैदी को पकड़ लिया गया। उन्हें अजमेर ले जाया गया और जैसा कि प्रोफेसर हसन निजामी कहते हैं, उन्होंने मुहम्मद की आधिपत्य को स्वीकार कर लिया, लेकिन जब मुहम्मद के खिलाफ साजिश का दोषी पाया गया, तो उन्हें मौत की सजा सुनाई गई।इसलिए 1192 ई. में लड़ी गई तराइन की दूसरी लड़ाई भारतीय इतिहास की निर्णायक लड़ाइयों में से एक साबित हुई. इसने भारतीय इतिहास के भविष्य के पाठ्यक्रम को निपटाया और जैसा कि डॉ। डीसी गांगुली लिखते हैं: "तराइन की दूसरी लड़ाई में पृथ्वीराज की हार ने न केवल चरणमानस (चौहानों) की शाही शक्ति को नष्ट कर दिया, बल्कि पूरे हिंदुस्तान पर भी आफत ला दी।"

लड़ाई ने मुसलमानों द्वारा भारत की विजय का मार्ग खोल दिया। अजमेर और दिल्ली दोनों पर मुहम्मद का कब्जा था जिसने भारत में उसकी आगे की विजय का मार्ग प्रशस्त किया। इसके अलावा, लड़ाई ने निश्चित रूप से मुस्लिम आक्रमणकारी का विरोध करने के लिए अन्य राजपूत शासकों के मनोबल को कमजोर कर दिया। कुतुब-उद-दीन ऐबक को दिल्ली और अजमेर के राज्यपाल के रूप में छोड़ने के बाद, मुहम्मद वापस चले गए। ऐबक ने मुहम्मद की भारतीय विजय को समेकित किया, अजमेर में चौहानों के विद्रोह को दबाया, 1111 ईस्वी में दिल्ली को भारत में मुस्लिम साम्राज्य की राजधानी बनाया और मेरठ, बुलंदशहर, अलीगढ़, आदि पर विजय प्राप्त की।1194 ई. में मुहम्मद भारत वापस आया इस समय उसका लक्ष्य कन्नौज राज्य था। कन्नौज के शासक जयचंद्र की पृथ्वीराज तृतीय के साथ दुश्मनी थी और इसलिए उन्होंने तुर्कों के खिलाफ उनकी मदद नहीं की थी। अब, उसे भी अकेले मुहम्मद का सामना करना पड़ा। मुहम्मद और जयचंद्र के बीच लड़ाई इटावा और कन्नौज के बीच यमुना नदी पर चंदावर के पास हुई।राजपूतों की हार हुई और जयचंद्र युद्ध में मारे गए। मुहम्मद बनारस तक आगे बढ़े और कन्नौज राज्य के सभी महत्वपूर्ण स्थानों पर कब्जा कर लिया, हालांकि इसकी विजय बाद में धीरे-धीरे और धीरे-धीरे समेकित हो गई. अब, मुहम्मद की सेनाओं का विरोध करने के लिए उत्तर भारत में कोई अन्य शक्तिशाली राज्य नहीं था।

ऐबक को छोड़कर, मुहम्मद वापस चले गए। ऐबक ने अपनी ताजा विजय प्राप्त की और अजमेर, अलीगढ़, आदि में हुए विभिन्न विद्रोहों का दमन किया। मुहम्मद 1195 ई. में भारत वापस आया और इस बार उसने बयाना पर विजय प्राप्त की और ग्वालियर पर आक्रमण किया।प्रतिहार प्रमुख, सुलक्षणनपाल ने मुहम्मद की आत्महत्या स्वीकार की और उन्हें शांति प्रदान की गई. मुहम्मद ने राजपुताना और दोआब के बीच के प्रदेशों की कमान बहा-उद-दीन तुगरिल को सौंप दी और वापस चले गए। तुगलक ने डेढ़ साल की लड़ाई के बाद अपनी अनुपस्थिति में ग्वालियर के किले पर कब्जा कर लिया।मुहम्मद अगले कुछ वर्षों तक भारत वापस नहीं आ सके और भारत में अपनी विजय को मजबूत करने की जिम्मेदारी यहां के राज्यपालों, विशेष रूप से ऐबक पर रखी गई. राजस्थान में एक गंभीर विद्रोह को ऐबक ने बहुत कठिनाई के बाद दबा दिया था। इसके बाद, ऐबक ने गुजरात पर हमला किया और 1197 ई. में अपनी राजधानी अनहिलवाड़ा को लूट लियाऐबक ने बदायूं, बनारस और चंदावर को भी जीत लिया जो तुर्कों से हार गए थे और इस तरह, उन्होंने कन्नौज की विजय को मजबूत किया। ऐबक की सबसे महत्वपूर्ण विजय बुंदेलखंड की थी। चंदेला शासक, परमलदेव, अब मध्य भारत में एकमात्र स्वतंत्र राजपूत शासक था और कालिंजर का किला अभे। माना जाता था।

1202-1203 ई. में ऐबक ने इस पर हमला किया, लड़ाई के इस काल में परमलदेव की मृत्यु हो गई, लेकिन चंदेलों ने अपने मंत्री, अजदेवदेव के नेतृत्व में लड़ाई लड़ी। लेकिन, आखिरकार, चंदेलों को किला छोड़ना पड़ा, जिस पर ऐबक का कब्जा था। ऐबक ने महोबा और खजुराहो पर भी कब्जा कर लिया।बंगाल और बिहार की विजय का प्रयास या तो मुहम्मद या ऐबक ने नहीं, बल्कि इख्तियार-उद-दीन मुहम्मद बख्तियार खिलजी नाम के एक कुलीन व्यक्ति ने किया। इख्तियार-उद-दीन खिलजी ने अपने करियर की शुरुआत एक साधारण सैनिक के रूप में की और अपने गुरु हिसाम-उद-दीन अघुल ईक से अवध के गवर्नर के रूप में कुछ गांव प्राप्त किए। वहाँ इख्तियार-उद-दीन ने अपने स्वयं के अनुयायियों की एक छोटी सी सेना एकत्र की और बिहार के आस-पास के प्रदेशों में छापेमारी शुरू कर दी। अपने आश्चर्य के लिए, उन्होंने पाया कि किसी ने कहीं भी उनका विरोध करने की कोशिश नहीं की। जिससे उसकी महत्वाकांक्षाएं बढ़ गईं। वह अपने संसाधनों और अपने सैनिकों को बढ़ाता चला गया। 1202-1203 ईस्वी में, उसने ओदंतपुरी पर हमला किया और वहां बौद्ध मठ को लूट लिया। इसके बाद, उन्होंने नालंदा और विक्रमशिला पर भी विजय प्राप्त की। बंगाल की शासक लक्ष्मण सेना ने अब तक उसकी जाँच करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया और अंततः, उसकी उपेक्षा की कीमत चुकाई. इख्तियार-उद-दीन ने 1204-1205 ई. में बंगाल की राजधानी नादिया पर हमला किया।

वह इतनी तेजी से आगे बढ़ा कि उसने सेना के थोक को अपने पीछे छोड़ दिया और केवल अठारह अश्व-पुरुषों के साथ महल-द्वार पर पहुँच गया। लक्ष्मण सेना ने महसूस किया कि तुर्कों ने एक आश्चर्यजनक हमला किया था और डर से भाग गए थे। इस बीच, तुर्की सेना भी वहां पहुंच गई और

इख्तियार-उद-दीन ने नादिया को लूट लिया। पूर्वी बंगाल लक्ष्मण सेना के साथ रहा, जबकि दक्षिण-पश्चिम बंगाल में घुर के मुहम्मद के लिए इख्तियार-उद-दीन का कब्जा था। उन्होंने लखनौती में अपना मुख्यालय स्थापित किया। इख्तियार-उद-दीन ने तिब्बत को भी जीतने की कोशिश की, लेकिन अभियान बुरी तरह विफल रहा। उसे भौगोलिक खतरों के कारण तिब्बत की सीमा के पास से लौटना पड़ा। अपनी वापसी की यात्रा पर, वह पहाड़ी-जनजातियों और कामरूप राज्य के सैनिकों से परेशान था।

वह केवल एक सौ सैनिकों के साथ देवकोट पहुंच सकता था। वहाँ वह बीमार पड़ गया और उसकी हत्या उसके ही एक लेफ्टिनेंट अली मरदान ने कर दी। लेकिन अपनी मृत्यु से पहले, उन्होंने बिहार और बंगाल के एक बड़े हिस्से को तुर्की के नियंत्रण में ला दिया था जिसकी कल्पना भी मुहम्मद या ऐबक ने नहीं की थी।जब मुहम्मद के रईस भारत में अपने साम्राज्य का विस्तार और समेकन कर रहे थे, वह खुद फारस के ख्वारिज्म शाह के खिलाफ लड़ने में व्यस्त था। मुहम्मद के बड़े भाई, ग्यारस-उद-दीन की 1202 ईस्वी में मृत्यु हो गई थी और इसलिए, मुहम्मद पूरे घुर साम्राज्य का शासक बन गया था। घियास-उद-दीन ने हमेशा अपने पश्चिमी पड़ोसी, ख्वारिज्मियों के खिलाफ लड़ाई लड़ी थी।

मुहम्मद ने उसी नीति का अनुसरण किया। लेकिन, 1205 ई. में अंधखुद की लड़ाई में वह उनसे बुरी तरह हार गया। वह बड़ी मुश्किल से अपनी जान बचा सका और अपनी राजधानी घूर वापस पहुंचा। मुहम्मद की इस हार ने भारत में भी उसकी प्रतिष्ठा को झटका दिया और यह अफवाह उड़ी कि वह मारा गया था। इसने भारत के विभिन्न हिस्सों में विद्रोह का नेतृत्व किया। उत्तर-पश्चिम में, खोखरों ने लाहौर पर कब्जा करने की कोशिश की, मुहम्मद 1205 ईस्वी में भारत आए और उन्होंने चेनाब और झेलम नदियों के बीच खोकरों के खिलाफ लड़ाई लड़ी।खोकरों ने जमकर युद्ध किया, लेकिन हार गए और निर्दयता से दंडित हुए। लाहौर पर अधिकार स्थापित करने के बाद, मुहम्मद गजनी लौट आए। रास्ते में, वह 15 मार्च 1206 ई. को सिंधु नदी के तट पर दमायका में घूर गया, जबकि वह अपनी शाम की प्रार्थना में व्यस्त था।चाहे हत्यारे खोकर थे या विधर्मी इस्माइली संप्रदाय के कट्टर शिया, निश्चित नहीं थे। शायद, दोनों ने इसके लिए साजिश रची थी और सफल रहे। मुहम्मद के शव को गजनी ले जाया गया और वहाँ दफनाया गया।

निष्कर्ष

मुहम्मद की सफलता काफी हद तक अपने चरित्र की ताकत के कारण थी। उनके पास एक उच्च आदर्श था जिसमें से उन्होंने भारत में अपनी प्रारंभिक विफलताओं और ख्वारिज्म शाह द्वारा अपनी हार के बाद भी विचलित होने से इनकार कर दिया। मुहम्मद ने अपने हमलों की योजना बनाई और पहले से ही विजय प्राप्त की, जब भी आवश्यक हो, उन्हें बदल दिया जब ज्ञात होने पर अपनी कमजोरियों को दूर किया और लड़ाई और राजनीति में अनावश्यक जोखिम नहीं लिया।अंहिलवाड़ा में अपनी हार के बाद, उसने भारत पर हमले के अपने पाठ्यक्रम को बदल दिया और एक बार तराइन की लड़ाई में हारने के बाद, वह पूरी तैयारी के साथ आया और अपनी सैन्य रणनीति में भी संशोधन किया। एक सैन्य कमांडर के रूप में, वह अपने सभी अभियानों पर अपनी नजर रखता था। जब वह भारत में खोखरों से लड़ रहे थे, तब उन्होंने मध्य एशिया में अपने अभियानों के साथ संपर्क नहीं खोया था और ऑक्सस नदी के तट पर एक फ्रंटियर किले के निर्माण कार्य में समान रूप से रुचि रखते थे। यही कारण है कि वह अपने सैन्य अभियानों में अंततः सफल रहा। मुहम्मद भारत में तुर्की शासन का वास्तविक संस्थापक था और उसमें उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि और महानता थी।मुहम्मद के पास भारत में अपने क्षेत्रों के प्रशासन की देखभाल करने का समय नहीं था। वस्तुतः, वह गजनी और घूर का शासक बना रहा। उनकी भारतीय विजय का कार्य करने का कार्य अधिकतर उनके गुलाम और भारतीय प्रांतों के गवर्नर कुतुब-उद-दीन ऐबक के पास छोड़ दिया गया। मुख्य रूप से, उनके भाई, घियास-उद-दीन, घुर को अपने साम्राज्य की संस्कृति का केंद्र बनाने के लिए जिम्मेदार थे।लेकिन, मुहम्मद अपने विषयों की सांस्कृतिक प्रगति के प्रति भी उदासीन नहीं थे। उन्होंने फख्र-उद-दीन रजी और निजामी उरजी जैसे विद्वानों का संरक्षण किया। हालाँकि, उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि भारत में तुर्की साम्राज्य की स्थापना थी भारतीय इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा।

संदर्भ सूची

1. बोसवर्थ, सीई (1975)। "शुरुआती गजनविड्स"। फ्राइ में, आरएन (एड।)। ईरान का कैम्ब्रिज इतिहास, खंड 4: अरब आक्रमण से सलजूकों तक। कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस। पीपी। 162-198। आईएसबीएन 0-521-20093-8।
2. बोसवर्थ, सी। एडमंड (1985) विश्वकोश ईरानी, वॉल्यूम। मैं, Fasca 8A लंदन एट अल: सी। एडमंड बोसवर्थ। पी। 872।
3. बोसवर्थ, सी। ई. (1995)। द लेजर गजनविड्स: स्प्लेंडर एंड डेके: द डायनेस्टी इन अफगानिस्तान एंड नॉर्दर्न इंडिया 1040-1186। आईएसबीएन 97881215057 72। 9 मई 2014 को लिया गया।
4. बोसवर्थ, सीई (1996)। द न्यू इस्लामिक राजवंश। कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. बोसवर्थ, सीई (2011)। हिस्ट्रीज ऑफ द हिस्ट्रीज: ए हिस्ट्री ऑफ द ईस्टर्न इस्लामिक लैंड्स ईस्वी सन् 650-1041: अबू सईद के फारसी पाठ श्अब्द अल-हय गार्दिजी। IBTaurisa पीपी। 1-169। आईएसबीएन 978-1-84885-353-9।

विदेशी व्यापार एवं अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों का अध्ययन

डॉ० पवन कुमार वर्मा

पी.एच.डी., सेंटर फॉर रसियन एंड सेंट्रल एशियन स्टडीज, स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067

सार

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं या क्षेत्रों के आर-पार पूंजी, माल और सेवाओं का आदान-प्रदान है। अधिकांश देशों में, यह सकल घरेलू उत्पाद (GDP) के महत्त्वपूर्ण अंश का प्रतिनिधित्व करता है। जबकि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, इतिहास के अधिकांश भाग में मौजूद रहा है (देखें सिल्क रोड, एम्बर रोड) इसका आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक महत्व हाल की सदियों में बढ़ने लगा है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था पर औद्योगीकरण, उन्नत परिवहन, वैश्वीकरण, बहुराष्ट्रीय निगम और बाह्यस्रोत से कार्यनिष्पादन, इन सभी का व्यापक प्रभाव पड़ता है। वैश्वीकरण की निरंतरता के लिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में बढ़ोतरी महत्त्वपूर्ण है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के बिना, देश सिर्फ अपनी खुद की सीमा के भीतर उत्पादित माल और सेवाओं तक सीमित रह जाएंगे. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, सिद्धांत रूप में घरेलू व्यापार से भिन्न नहीं है क्योंकि एक व्यापार में शामिल पक्षों की अभिप्रेरणा और व्यवहार मौलिक रूप से बदलता नहीं है भले ही व्यापार सीमा पार का हो या नहीं। मुख्य अंतर यह है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार आम तौर पर घरेलू व्यापार से अधिक महंगा है। इसका कारण है कि एक सीमा आम तौर पर अतिरिक्त शुल्क लगाती है जैसे प्रशुल्क, सीमा पर विलंब के कारण आवधिक लागत और भाषा, कानूनी प्रणाली या संस्कृति जैसे देशीय भिन्नताओं से जुड़ी लागतें. घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के बीच एक और अंतर यह है कि पूंजी और श्रम जैसे उत्पादन कारक आम तौर पर बाहर की तुलना में देशों के भीतर अधिक गतिशील होते हैं। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ज्यादातर माल और सेवाओं के व्यापार तक सीमित है और पूंजी, श्रम या उत्पादन के अन्य कारकों के व्यापार में केवल एक छोटे पैमाने पर. इसके अलावा माल और सेवाओं का व्यापार, उत्पादन कारकों में व्यापार के लिए एक विकल्प के रूप में कार्य कर सकता है। उत्पादन का एक कारक आयात करने के बजाय, एक देश माल आयात कर सकता है जो उत्पादन के कारक का गहन इस्तेमाल करे और इस प्रकार संबंधित कारक को सम्मिलित कर ले. एक उदाहरण है, चीन से संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा श्रम-प्रधान वस्तुओं का आयात. चीनी श्रम का आयात करने के बजाय अमेरिका, चीन से ऐसे माल आयात कर रहा है जिसे चीनी श्रम के इस्तेमाल से उत्पादित किया गया है।

मुख्य शब्द: अंतरराष्ट्रीय व्यापार, विदेशी निवेश, निर्यात, पूंजीगत वस्तु

अंतरराष्ट्रीय व्यापार के फायदे

अपने उत्पादों या सेवाओं का व्यापार दुनिया भर में अंतरराष्ट्रीय विकास की नींव प्रदान करता है। इससे आपके व्यवसाय के वित्तीय प्रदर्शन में सुधार हो सकता है, केवल घरेलू व्यापार के साथ आने वाले जोखिम को विविधता में लाया जा सकता है, और आपके प्रतिस्पर्धियों के स्तर को कम कर सकता है। ये वैश्विक होने के कुछ लाभ हैंएक अंतरराष्ट्रीय अग्रणी पीढ़ी के मंच है जो आपको अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों का उपयोग करने में सक्षम बनाता है। यह सुनिश्चित करता है कि आपके उत्पाद या सेवाएं 110 देशों में और 20 भाषाओं में सामग्री का अनुवाद करके और अनुकूलित करके विश्व व्यापार बाजार का 84% हो सकता है।

अंतरराष्ट्रीय व्यापार के फायदे

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापार के कई लाभ:

फायदा	प्रभाव
अंतर्राष्ट्रीय विकास के लिए नींव	घरेलू बाजारों पर ध्यान केंद्रित करने वाली कंपनियां उस क्षेत्र तक ही सीमित हैं। व्यापार अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपने ग्राहकों को कई अंतरराष्ट्रीय बाजारों में फैलता है, जिससे आप दुनिया भर में बढ़ सकते हैं।
बेहतर वित्तीय प्रदर्शन	वैश्विक बाजार आपको राजस्व के नए स्रोत तक पहुंच प्रदान कर सकता है, जो आपके व्यवसाय को अधिक वित्तीय क्षमता दे सकता है।

विविध जोखिम	एक बाजार में व्यापार करके, आप जोखिम को कम करते हैं कि घरेलू व्यापार के मुद्दे आपके व्यवसाय पर हो सकते हैं।
स्थिरता में वृद्धि	कारोबार और राजस्व में वृद्धि सुनिश्चित करता है कि आपका व्यवसाय अधिक स्थिर है।
कम प्रतिस्पर्धा	आपके उत्पादों या सेवाओं को घरेलू स्तर पर बहुत अधिक प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में कम प्रतिस्पर्धा हो सकती है।
जीवन काल में वृद्धि	आपके उत्पाद या सेवाएं घरेलू बाजार में अपने जीवन काल के अंत तक पहुंच सकते हैं। उन्हें अंतरराष्ट्रीय बाजारों में बेचने से उनकी उम्र बढ़ जाएगी
अधिक आकर्षक	अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापार करने वाले कंपनियां अन्य व्यवसायों और संभावित कर्मचारियों के लिए अधिक आकर्षक हैं।
राष्ट्रीय सुधार	अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से राजस्व में वृद्धि ने आपकी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में सुधार किया

कैसे निर्यात वर्ल्डवाइड आप अंतरराष्ट्रीय व्यापार के फायदे प्रदान कर सकते हैं :

ExportWorldwide एक अंतरराष्ट्रीय अग्रणी पीढ़ी के मंच है जो आपके उत्पादों या सेवाओं को दुनिया भर में बढ़ावा देता है। यह मंच अंतरराष्ट्रीय बाजारों में आपके व्यवसाय को दिखाई देने के लिए अंतरराष्ट्रीय अंत:क्रिया विपणन रणनीतियों, वैश्विक एसईओ तकनीकों और एक अद्वितीय हाइब्रिड अनुवाद उपकरण का उपयोग करता है।

वैश्विक एसईओ मंच निम्नलिखित प्रदान करता है:

1. अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आपके उत्पादों या सेवाओं का विज्ञापन, साल में 365 दिन। यह सुनिश्चित करता है कि आपके व्यापार को अंतरराष्ट्रीय वितरकों और आपूर्तिकर्ताओं द्वारा पाया जा सकता है
2. अंतर्राष्ट्रीय बी 2 बी लीड पीढ़ी
3. अंतर्राष्ट्रीय कीवर्ड अनुसंधान और स्थानीय सामग्री सहित अनुभवी बहुभाषी एसईओ सेवाएं। यह सुनिश्चित करता है कि आपकी सामग्री का अनुकूलन और सही अंतरराष्ट्रीय बाजारों का लक्ष्य है
4. आपके उत्पाद या सेवाओं का विज्ञापन करने के लिए अनूठे उत्पाद पृष्ठों सहित विशेषज्ञ सामग्री लेखन
5. अपनी सामग्री का 20 भाषाओं में हाइब्रिड अनुवाद, इसे 110 देशों में पठनीय और विश्व व्यापार बाजार का 84% हिस्सा बना। हाइब्रिड पद्धति मशीन अनुवाद और मानव अनुवाद का उपयोग करती है, जिसका अर्थ है कि अनुवाद, त्वरित, लागत प्रभावी और सटीक हैं। यह सुनिश्चित करता है कि अनुवादित सामग्री इन अंतरराष्ट्रीय बाजारों के लिए समझ में और उचित है
6. आपके उत्पादों या सेवाओं की विस्तृत प्रदर्शन रिपोर्ट यह आपको देता है और समझता है कि आपकी लीड्स और विजिटर कहां से आते हैं
7. वैश्विक दृश्यता

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार विनियमन

परंपरागत रूप से दो देशों के बीच व्यापार द्विपक्षीय संधियों के माध्यम से विनियमित किया जाता था। कई सदियों तक वणिकवाद में विश्वास के तहत अधिकांश देशों में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर सीमा शुल्क उच्च था और कई प्रतिबंध थे। 19वीं सदी में, विशेष रूप से यूनाइटेड किंगडम में, मुक्त व्यापार में विश्वास सर्वोपरि बन गया। उसके बाद से यह धारणा पश्चिमी देशों के बीच प्रभावी सोच बन गई. द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के वर्षों में, विवादास्पद बहुपक्षीय संधियों जैसे जनरल एग्रीमेंट ऑन टैरिफ एंड ट्रेड (GATT) और विश्व व्यापार संगठन ने वैश्विक स्तर पर विनियमित व्यापार ढांचे को निर्मित करते हुए मुक्त व्यापार को बढ़ावा देने का प्रयास किया। इन व्यापार समझौतों ने, अनुचित व्यापार के दावों के साथ जो विकासशील देशों के लिए लाभदायक नहीं हैं, अक्सर विरोध और असंतोष को जन्म दिया है।

मुक्त व्यापार का आम तौर पर, आर्थिक रूप से सर्वाधिक मजबूत देशों द्वारा सबसे अधिक समर्थन किया जाता है, हालांकि वे अक्सर उन उद्योगों के लिए चयनात्मक संरक्षणवाद में संलग्न होते हैं जो रणनीतिक रूप से महत्त्वपूर्ण हैं, जैसे अमेरिका और यूरोप द्वारा कृषि पर लगाया जाने वाला सुरक्षात्मक प्रशुल्क. नीदरलैंड और यूनाइटेड किंगडम उस वक्त मुक्त व्यापार के कट्टर पैरोकार थे जब वे आर्थिक रूप से प्रभावशाली थे, आज संयुक्त राज्य अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम, ऑस्ट्रेलिया और जापान इसके सबसे बड़े समर्थक हैं। हालांकि, कई अन्य देश (जैसे भारत, चीन और रूस) तेजी से मुक्त व्यापार के हिमायती बनते जा रहे हैं क्योंकि वे आर्थिक रूप से खुद अधिक शक्तिशाली बन रहे हैं। जैसे-जैसे प्रशुल्क स्तर में गिरावट आ रही है, गैर-प्रशुल्क उपायों पर चर्चा करने की इच्छा भी बढ़ रही है, जिसमें शामिल है विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, वसूली और व्यापार सरलीकरण. व्यापार सरलीकरण में सीमा शुल्क प्रक्रियाओं और व्यापार को पूरा करने से संबंधित लेनदेन लागत पर ध्यान दिया जाता है।

परंपरागत रूप से कृषि हित, आम तौर पर मुक्त व्यापार के पक्ष में हैं जबकि विनिर्माण क्षेत्र अक्सर संरक्षणवाद का समर्थन करते हैं।हालांकि, हाल के वर्षों में इसमें कुछ हद तक बदलाव आया है। वास्तव में, कृषि से जुड़े गुट, विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोप और जापान में, प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय

व्यापार संधियों में खास नियमों के लिए मुख्यत: जिम्मेदार हैं जो अधिकांश अन्य वस्तुओं और सेवाओं की अपेक्षा कृषि में अधिक संरक्षणवादी उपायों की अनुमति देते हैं।

मंदी के दौरान, घरेलू उद्योगों की रक्षा के लिए प्रशुल्क बढ़ाने का अक्सर अत्यधिक घरेलू दबाव होता है। महान मंदी के दौरान यह दुनिया भर में हुआ। कई अर्थशास्त्रियों ने विश्व व्यापार में पतन के लिए प्रशुल्क को अंदरूनी कारण के रूप में रेखांकित करने का प्रयास किया है जिसके लिए कई लोगों का मानना है कि इसने मंदी को अधिक विकट कर दिया। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का विनियमन, विश्व व्यापार संगठन के माध्यम से वैश्विक स्तर पर किया जाता है और कई अन्य क्षेत्रीय व्यवस्था के माध्यम से जैसे दक्षिण अमेरिका में MERCOSUR, अमेरिका, कनाडा और मैक्सिको के बीच नॉर्थ अमेरिकन फ्री ट्रेड एग्रीमेंट (NAFTA) और 27 स्वतंत्र देशों के बीच यूरोपीय संघ. फ्री ट्रेड एरिया ऑफ द अमेरिका (FTAA) की योजनाबद्ध स्थापना पर 2005 ब्यूनस आयर्स वार्ता, मुख्य रूप से लैटिन अमेरिकी देशों की आबादी के विरोध से विफल हो गई. ऐसे ही अन्य समान समझौते जैसे कि मल्टीलेटरल एग्रीमेंट ऑन इन्वेस्टमेंट (MAI) भी हाल के वर्षों में विफल हो गए।

अंतरराष्ट्रीय व्यापार में आईटी की भूमिका

विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है :

पिछले लेख में चर्चा की है कि कैसे अंतरराष्ट्रीय कारोबार का समर्थन पारिस्थितिकी प्रणालियों और व्यापार के अनुकूल नीतियों की जरूरत है, तो वे उभरते बाजारों में सफल होने के लिए कर रहे हैं। विशेष महत्व तय है कि वे सेटअप उनके संचालन के लिए अंतरराष्ट्रीय कारोबार की अनुमति देने और उन्हें आगे बढ़ने और सफल होने के लिए प्रोत्साहित करेगा में सरकारों की भूमिका है। अक्सर, कई देशों की सरकारों के लिए एक विकल्प नहीं है लेकिन अंतरराष्ट्रीय कारोबार का स्वागत करने के रूप में वे "नकदी" या डॉलर की जरूरत है, क्योंकि वे भी जाना जाता है। उदाहरण के लिए, निर्यात और आयात के बीच के अंतर को चालू खाते के घाटे या सीएडी के रूप में जाना जाता है। कई उभरते बाजारों (चीन जो एक सकारात्मक सीएडी है, को छोड़कर) के बाद से घाटे डॉलर के साथ वित्त पोषण की जरूरत है कि लोगों की है। फिर, सरकारों उच्च दरों पर इन डॉलर उधार लेने या प्रत्यक्ष विदेशी निवेश या विदेशी प्रत्यक्ष निवेश और इक्विटी के माध्यम से घाटा वित्त एफआईआई या विदेशी संस्थागत निवेशकों से शेयर बाजारों में बहती कर सकते हैं।

सरकार की भूमिका

इसके अलावा, घरेलू उद्योग क्षमताओं को एक विशेष क्षेत्र है और न ही विशेषज्ञता है कि क्षेत्र का विकास करने में सफल होने के लिए नहीं हो सकता है। इसलिए, एफडीआई कि क्षेत्र के विकास के लिए आवश्यक हो जाता है। इसके अलावा, अर्थव्यवस्था के खुलने विश्व व्यापार संगठन या विश्व व्यापार संगठन, जिसका मतलब है कि आदेश में, अन्य देशों को निर्यात करने के लिए उभरते बाजार और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में खोलने के लिए है कि में प्रवेश के लिए आवश्यक है। इन वजहों से विकासशील देशों में कई सरकारें अपने-अपने देशों में सेटअप के संचालन के लिए अंतरराष्ट्रीय कारोबार में विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने और अनुमति देने के कुछ कर रहे हैं। हालांकि, एक ही सरकारों की नीतियों को जारी रखने या नहीं कारक है कि सरकारों की वैचारिक तुला, राजनीति की मजबूरियों, और तथ्य यह है कि विदेशी निवेश की योजना बनाई अर्थव्यवस्था के रूप में शुरू किक में सफल नहीं हो सकता है शामिल की एक मेजबान पर निर्भर करता है।

प्रक्रिया सतत और आम सहमति से होना चाहिए

यहां महत्वपूर्ण पहलू यह है कि उभरती अर्थव्यवस्थाओं के कई सरकारें अक्सर क्योंकि उपरोक्त कारणों का खुली बाहों से अंतरराष्ट्रीय कारोबार का स्वागत है। हालांकि, बीच में ही प्रक्रिया के माध्यम से, उनमें से कुछ नीतिगत पक्षाघात की वजह से ठंड पैर विकसित करने, और कारकों से ऊपर सूचीबद्ध है। यह समझा जा सकता है कि अंतरराष्ट्रीय कारोबार उभरती अर्थव्यवस्थाओं में प्रवेश करने की इजाजत दी द्विदलीय अर्थ है कि वहाँ सभी हितधारकों से इस मुद्दे पर व्यापक सहमति होना चाहिए होना चाहिए की जरूरत है। तभी तो अंतरराष्ट्रीय कारोबार उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में कामयाब होगी। इसके अलावा, विदेशी पूंजी के लिए प्रतिस्पर्धा है कि किसी में प्रक्रिया पर प्रतिकूल अर्थव्यवस्था और इसलिए, इस प्रक्रिया को जारी रखा जाना चाहिए और कारण प्रोत्साहन दिया अंतरराष्ट्रीय कारोबार को प्रभावित करते हैं इतनी तीव्र है।

विचार समापन

अंत में, चीन, ब्राजील, दक्षिण अफ्रीका, और वियतनाम के उदाहरण (जो अभी भी उभर रहा है) अर्थव्यवस्थाओं में से खोलने और इस प्रक्रिया के माध्यम से निम्नलिखित पर आम सहमति के लिए की आवश्यकता को दर्शाते हैं। दूसरी ओर, भारत और रूस के उदाहरण के अन्य तरीके से इन देशों खुली बाहों के साथ मजबूरियों के कारण उनकी अर्थव्यवस्थाओं को खोला और फिर लेकिन गति को बनाए रखने के रूप में असफल आसपास हैं। इसका मतलब यह है कि वैश्विक अर्थव्यवस्था में एकीकरण ही होगा जब सुधारों की प्रक्रिया को तहे दिल से और रुक जाता है या यू-टर्न के बिना किया जाता है।

भारत का विदेशी व्यापार

विदेश व्यापार में वस्तुओं, सेवाओं और वितीय संसाधनों का अंतर्देशीय प्रवाह शामिल हैं। विदेश व्यापार द्वारा विदेशी पूंजी और विशेषज्ञों की मदद से देश में उपलब्ध संसाधनों का बेहतर इस्तेमाल होता है। यह एक देश को विदेशी विनिमय प्राप्त करने की क्षमता प्रदान करता है। आयात और निर्यात अक्सर दुर्लभ

या बहुतायत में प्राप्त वस्तु की कीमतों में भारी परिवर्तन (उतार-चढ़ाव) को कम करता है। व्यापार एक देश की उपभोग क्षमताओं का विस्तार करता है, और दुर्लभ संसाधनों तक पहुंच प्रदान करता है और उत्पाद के लिए विश्वभर के बाजार तक विस्तार देता है जो संवृद्धि के लिए आवश्यक है। अंततः विदेश व्यापार नीति संवृद्धि एवं विकास को बढ़ाने में सहायक होती है।

विदेशी व्यापार की रूपरेखा

भारत के विश्व के भौगोलिक प्रदेशों और बड़े व्यापारिक समूहों के साथ व्यापारिक संबंध हैं जिसमें पश्चिमी यूरोप, पूर्वी यूरोप, पूर्ववर्ती सोवियत संघ (रूस) और बाल्टिक राज्य, एशिया, ओसीनिया, अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका और लैटिन अमेरिका आते हैं। 1950-51 में भारत का कुल विदेश व्यापार (आयात एवं निर्यात) ₹ 1214 करोड़ था। तब से, यह समय-समय पर मंदी के साथ लगातार वृद्धि करने का साक्षी है।

जबकि भारत की व्यापार संवृद्धि का विश्व व्यापार बढ़ोतरी के साथ एक मजबूत सह-संबंध है, यह विश्व व्यापार संवृद्धि की तुलना में ऊंचा रहा है, विशेष रूप से, 1990 के सुधार का अनुसरण करने पर और वर्ष 2003 के बाद की दो समयावधियों में।

संगठनः व्यापार संगठन का दो श्रेणियों के तहत् अध्ययन किया जा सकता हैः आयात और निर्यात। (हालांकि तकनीकी रूप से, व्यापार में सेवाओं और वित्तीय संसाधनों को शामिल किया जाता है, भारत में व्यापार से संबंधित आंकड़ों में सामान्यतः केवल वस्तुओं पर सूचना शामिल होती है)।

आयातः आयात को अम्बारी आयात (Bulk Imports) और गैर-अम्बारी आयात (Non bulk Imports) में वर्गीकृत किया जा सकता हैः अम्बारी आयात मदों में शामिल हैं-

1. पेट्रोलियम, तेल एवं लुब्रिकेंट (पीओएल)
2. नॉन-पीओएल जैसी उपभोग वस्तुएं (खाद्य तेल, चीनी इत्यादि), उर्वरक और लौह एवं इस्पात।

गैर-अम्बारी आयात मदों में शामिल हैं-

1. पूंजी वस्तुएं जिनमें धातुएं, मशीनी औजार, इलेक्ट्रिक एवं गैर-इलेक्ट्रिक मशीनरी
2. मोती, बहुमूल्य और अल्प मूल्य पत्थर
3. अन्य

अभी हाल तक, भारत के आयात की संरचना देश द्वारा द्वितीय नियोजन के दौरान 1956 की शुरुआत में अपनाई गई औद्योगीकरण की रणनीति को प्रतिबिम्बित करती है। इस समय बड़ी मात्रा में मशीनरी, परिवहन उपकरण, यंत्र एवं उपकरण इत्यादि पूंजीगत सामान का आयात हुआ। लौह एवं इस्पात, पेट्रोलियम, रसायनों इत्यादि के औद्योगिक विकास हेतु आगतों का भी आयात किया गया। इन वस्तुओं के आयात ने औद्योगिक विकास को प्रारंभ करने में मदद की और कई वर्षों के लिए इसके विस्तार में भी मदद की। बढ़ती जनसंख्या की जरूरतों तथा प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़ इत्यादि के कारण घरेलू उत्पादन में आयी कमी को पूरा करने के लिए भी उपभोक्ता वस्तुओं जिसमें बड़ी मात्रा में अनाज एवं इनके बने उत्पाद भी आयात किए गए।

निर्यात

भारत के निर्यात मोटे तौर पर चार वर्गों में विभक्त किये जाते हैं-

1. कृषि और सम्बंधित उत्पाद जिसमें कॉफी, चाय, खल (oil Cakes), तम्बाकू, काजू, गरम मसाले, चीनी, कच्ची रुई, चावल, मछली और मछली से बनी वस्तुएं, गोश्त और गोश्त से बनी वस्तुएं, वनस्पति तेल, फल, सब्जियां और दालें।
2. अयस्कों और खनिजों में मैंगनीज अयस्क, अभ्रक और कच्चा लोहा शामिल किए जाते हैं।
3. निर्मित वस्तुओं में सूती वस्त्र और सिले-सिलाए कपड़े, पटसन की बनी वस्तुएं, चमड़ा और जुटे., हैंडीक्राफ्ट्स, हैण्डलूम, कुटीर एवं क्राफ्ट वस्तुएं, मोटी और बहुमूल्य पत्थर, रसायन, इंजीनियरिंग वस्तुएं तथा लौह एवं इस्पात शामिल किए जाते हैं।
4. खनिज, ईधन और लुब्रिकेन्ट्स।

भारत ने धीरे-धीरे स्वतंत्रता पूर्व मुख्य रूप से प्राथमिक उत्पाद निर्यात करने वाले देश से वर्तमान में निर्मित उत्पादों के निर्यातक के रूप में स्वयं को परिवर्तित किया है। अर्थव्यवस्था में हुए विकास को प्रतिबिम्बित करते हुए, निर्यात की जाने वाली मदों में परम्परागत से गैर-परम्परागत मदों की ओर परिवर्तन हुआ।

आयात-निर्यात नीति 1997-2002ः वर्ष 1997-2002 के लिए पंचवर्षीय आयात-निर्यात नीति की घोषणा 31 मार्च, 1997 को भारत सरकार के वाणिज्य मंत्रालय ने की। आयात-निर्यात नीति के माध्यम से निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति की आशा की गई है-

- विश्व बाजार के विस्तार का लाभ उठाना एवं इसके लिए अर्थव्यवस्था में समुचित परिवर्तन लाना व उसे गत्यात्मकता प्रदान करना।
- उत्पादन वृद्धि के लिए आवश्यक कच्चे माल, मध्यवर्ती वस्तुओं, कलपुजों, उपभोग व पूंजीगत वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित करना जिससे आर्थिक विकास की गति तीव्र हो सके।

- भारतीय कृषि, उद्योग व सेवा क्षेत्र की प्रतिस्पद्धी क्षमता में वृद्धि के लिए प्रौद्योगिकी में उन्नयन करना, रोजगार के नवीन अवसरों का सृजन करना एवं विश्वस्तरीय गुणवत्ता वाली वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करना।
- उपभोक्ताओं को उच्च गुणवत्ता की वस्तुएं समुचित कीमतों पर उपलब्ध करवाना।

नवीन आयात-निर्यात नीति के अनुकूल अधिक पारदर्शी व अल्प विवेकाधीन नीतियों को अपनाने व अनुकूल कार्यप्रणाली विकसित करने के प्रयास करने की भी घोषणा नवीन नीति में की गई है।

आयात-निर्यात (एक्जिम) नीति, 2002-07: विशेष आर्थिक क्षेत्र (एसईजेड) योजना को अपतटीय बैंकिंग इकाइयों के गठन, वस्तु मूल्य जोखिमों के बचाव तथा लघु अवधि विदेशी वाणिज्यिक उधारों को जुटाने की अनुमति देकर मजबूत किया गया है। इस नीति ने एसईजेड इकाइयों द्वारा की गई उपसंविदा की प्रक्रिया में प्रक्रियात्मक सरलीकरण भी सुनिश्चित किया है। एसईजेड में तथा इसके आस-पास विद्युत की स्थिति को सुधारने के लिए, वियुत की उत्पादन तथा वितरण की इकाइयों की एसईजेड में स्थापना की अनुमति दे दी गई है।

रुपये में निर्यात ने वृद्धि के चलन का प्रदर्शन किया और सालों में इसके आधार का विविधिकरण किया। जबकि साल-दर-साल परिवर्तन होता रहा, वस्तुएं जिनकी विगत् कुछ वर्षों में निर्यात में वृद्धि परिलक्षित हुई, उनमें कृषि और सम्बद्ध उत्पाद, अयस्क एवं खनिज, हीरे-जवाहरात, रसायन एवं सम्बद्ध उत्पाद, इंजीनियरिंग समान, इलेक्ट्रॉनिक समान, कपडा, पेट्रोलियम उत्पाद और प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ शामिल हैं।

वर्तमान में हमारे निर्यात की मदों में टेक्सटाइल (कारऐट, हस्तकला, कपास), हीरे-जवाहरात, रसायन एवं सम्बद्ध उत्पाद, (विशेष रूप से प्लास्टिक और लिनोलियम उत्पाद) कृषि एवं सम्बद्ध उत्पाद,चमड़ा एवं चमड़ा निर्मित वस्तुएं (विशेष रूप से जूते-चप्पल), वनीकरण, इंजीनियरिंग सामान, निर्मित कपड़े, फूलों के उत्पाद तथा समुद्री उत्पाद शामिल हैं। प्रौद्योगिकी में नए कदम बढ़ाते हुए, इलेक्ट्रॉनिक और कंप्यूटर सॉफ्टवेयर बेहद व्यापक निर्यात क्षमता के साथ एक संभावित क्षेत्र के तौर पर उभर रहा है।

विदेशी व्यापार निदेशालय, सीमाशुल्क तथा बैंकों की लेनदेन लागत को और कम करने के लिए एक्जिम नीति में प्रक्रियात्मक सरलीकरण किए गए हैं। एक्जिम नीति 2002-07 के अन्य मुख्य लक्षणों में निर्यातों के बाजार संवर्धन पर ध्यान देने के लिए आवश्यक समझी गई गतिविधियों को शामिल करने के लिए बाजार पहुंच पहल योजना के कार्यक्षेत्र को बढ़ाना, निर्यातकों को एक सुविधाकारी माहौल सुनिश्चित करने के लिए भारतीय निर्यातकों/व्यावसायियों से विदेश में इंडिया मिशनों में व्यापार केंद्र की स्थापना, पूर्वोत्तर, सिक्किम तथा जम्मू एवं कश्मीर में स्थित इकाइयों को निर्यात हेतु परिवहन सब्सिडी तया बाजारों को विविध रूप देने के लिए अनुसरण हेतु फोकस सीआईएस सहित फोकस अफ्रीका का सूत्रपात करना शामिल है।

विदेशी व्यापार की दिशा

आजादी के पूर्व भारत के विदेशी व्यापार की दिशा तुलनात्मक लागत लाभ स्थितियों के द्वारा निर्धारित न होकर ब्रिटेन और भारत के बीच औपनिवेशिक संबंधों द्वारा निर्धारित थी। दूसरे शब्दों में, भारत किन देशों से आयात करेगा और कहां पर अपना माल बेचेगा, यह ब्रिटिश शासक अपने देश के हित में तय करते थे। यही कारण है कि स्वतंत्रता से पूर्व भारत का अधिकांश व्यापार ब्रिटेन, उसके उपनिवेशों और मित्र राष्ट्रों के साथ था। यही प्रवृत्ति आजादी के बाद कुछ वर्षों में भी देखने को मिलती है क्योंकि तब तक भारत की अन्य देशों के साथ व्यापार संबंध स्थापित करने में कोई विशेष सफलता नहीं मिल पाई थी। उदाहरणार्थ, 1950-51 में भारत की निर्यात आय में इंग्लैंड और अमेरिका का हिस्सा 42 प्रतिशत था। उसी वर्ष भारत के आयात व्यय में उनका हिस्सा 39.1 प्रतिशत था। अन्य पूंजीवादी देशों जैसे फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी, इटली, जापान इत्यादि और समाजवादी देशों जैसे सोवियत संघ, रोमानिया, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया इत्यादि के साथ बेहद थोड़ा व्यापार था। जैसे-जैसे इन देशों के साथ राजनैतिक संबंधों का विकास हुआ वैसे-वैसे आर्थिक संबंध भी मजबूत होने लगे। इस प्रकार बहुत से देशों के साथ व्यापारिक संबंधों के विकास करने के अवसर खुलने लगे। अब स्थिति काफी बदलचुकी है और 6 दशक के आयोजन के बाद व्यापारिक संबंध काफी बदल चुके हैं।

भारत के व्यापार भागीदार देशों को प्रमुख तौर पर पांच भागों में बांटा जा सकता है-

1. आर्थिक विकास सहयोग संगठन: जिसमें यूरोपीय समुदाय, अमेरिका, कनाडा, जापान, इत्यादि शामिल हैं।
2. तेल निर्यातक देशों का संगठन: जिसमें इराक, कुवैत, ईरान, सऊदी अरब, इत्यादि शामिल हैं।
3. पूर्वी यूरोप: जिसमें रूस प्रमुख राष्ट्र है।
4. विकासशील राष्ट्र: जिसमें अफ्रीका, एशिया, लैटिन अमेरिका एवं कैरेबिया के विकासशील राष्ट्र शामिल हैं।
5. पांचवां समूह अन्य राष्ट्रों का है।

भारतीय निर्यातों की चुनौतियां

भारत में कई निर्यात मदें उच्च आयात प्रवृति रखती हैं जो उनके प्रतिस्पर्द्धात्मक लाभ में कमी करते हैं, विशेष रूप से तब जब रुपये की कीमत कमजोर होती है। उदाहरण के लिए, भारत का हीरा उद्योग कीमती एवं कम कीमती पत्थरों के आयात पर भारी धन खर्च करता है। मुद्रास्फीति भारतीय मुद्रा को कमजोर करने में योगदान करके स्थिति को और अधिक बदतर बना देती है।हस्तांतरण की उच्च लागत एक अन्य बड़ी समस्या है। यह निर्यात उद्योग के लाभ को खा जाती है।

एक और सम्बद्ध कारक है जो भारतीय निर्यात में रुकावट डालता है और वह है निर्यात अवसंरचना की खराब स्थिति। उदाहरण के लिए, हमारे पत्तनों में निर्यात मदों के सुचारू परिवहन के लिए आवश्यक सुविधाओं एवं मानकों का अभाव है।भारत और अन्य विकासशील देशों से निर्यात को हस्तोत्साहित करने के लिए इन पर गैर-टेरिफ बाधाओं (श्रम, पर्यावरण, स्वास्थ्य मानक, एंटी डम्पिंग) का आरोपण आज भारतीय निर्यात क्षेत्र द्वारा सामना की जाने वाली बेहद गंभीर चुनौती है।प्रविधि पर केंद्रीकरण के परिणामस्वरूप निर्यात दिशाओं का अधिक प्रादेशिक विस्तार होगा और प्रादेशिक संवृद्धि उतार-चढ़ाव के कारण उत्पन्न निर्यात चक्र का न्यूनीकरण करेगी।

भारत को नवोदित अर्थव्यवस्थाओं तक पहुंच द्वारा अपने निर्यात बाजार का विविधीकरण करना चाहिए। उदाहरण के लिए, पूर्वी यूरोप और मध्य एशिया की अर्थव्यवस्थाएं परिवर्तन के दौर में हैं। हमें इन पर ध्यान देना चाहिए और इन बाजारों में अपनी उपस्थिति दर्ज करनी चाहिए, विशेष तौर पर, क्योंकि, कम से कम कुछ समय के लिए, ये बाजार विकसित देशों के बाजारों की तरह प्रतिस्पर्द्धात्मक नहीं होंगे।

विदेश व्यापार नीति (2009-14)

भारत सरकार ने 2009-14 की पांच वर्ष की अवधि के लिए विदेश व्यापार नीति की घोषणा 27 अगस्त, 2009 को की। 15 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि के साथ 2014 तक वस्तुओं एवं सेवाओं के निर्यातों को दोगुना करने का लक्ष्य है। नीति का दीर्घकालिक लक्ष्य 2020 तक वैश्विक व्यापार में भारत की हिस्सेदारी बढ़ाकर दोगुना करना है।

व्यापार नीति की विशेषताएं

1. फोकस बाजार योजना का विस्तार: वैश्विक वित्तीय संकट के कारण मांग में गिरावट की समस्या के निदान के लिए इस नीति में फोकस बाजार योजना के अंतर्गत 26 नए बाजार शामिल किए गए हैं।
2. फोकस बाजार योजना एवं फोकस उत्पाद योजना में प्रेरणाएं: फोकस बाजार योजना के अंतर्गत उपलब्ध प्रेरणाओं (या रियायतों) को 2.5 प्रतिशत से बढ़ाकर 3.0 प्रतिशत तथा फोकस उत्पाद योजना के अंतर्गत उपलब्ध प्रेरणाओं को 1.25 प्रतिशत से बढ़ाकर 2 प्रतिशत कर दिया गया है।
3. निर्यात प्रोत्साहन पूंजीगत वस्तु योजना: एफटीपी (2009-14) में इंजीनियरिंग व इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों, मूल रसायनों व औषधियों, वस्त्रों, प्लास्टिक, हस्तशिल्प तथा चमड़े की वस्तुओं के उत्पादन के लिए पूंजीगत वस्तुओं को बिना सीमा शुल्क दिए, आयात करने की सुविधा दी गई है।
4. डीईपीबी की समयावधि बढ़ाना: इयूटी इन्टाइटलमेंट पासबुक योजना (डीईपीबी) को जो निर्यात उत्पादों के उत्पादन में प्रयुक्त आयातों पर प्रशुल्क दरों को निष्प्रभावी करती है।
5. निर्यात उन्मुख इकाइयां (ईओयू): पहले निर्यात उन्मुख इकाइयों को यह छूट थी कि अपने उत्पादन का अधिकतम 75 प्रतिशत घरेलू प्रशुल्क क्षेत्र में बेच सकती है। एफटीपी में इस अधिकतम सीमा को 75 प्रतिशत से बढ़ाकर 90 प्रतिशत कर दिया गया।
6. ईपीसीजी योजना के अधीन आवेदन पत्रों व ऋणमोचन पत्रों को सरल बना दिया गया है।
7. कार्य संपादन लागतों को कम करने के लिए आयातित वस्तुओं को बंदरगाहों से सीधे उत्पादन स्थल ले जाने की सुविधा दी गई है।
8. सरकार द्वारा उत्पादकों को यह छूट दी गई है कि वे उत्पाद शुल्क की अदायगी के बाद विनिर्माण अपशिष्ट का निपटान कर सकते हैं।
9. शीघ्र कार्यवाही व निर्णय के लिए अधिकाधिक कम्प्यूटरीकरण की व्यवस्था की जाएगी तथा इलैक्ट्रॉनिक माध्यमों का प्रयोग किया जाएगा।
10. परियोजना के निर्यातों एवं कई विनिर्मित उत्पादों को फोकस उत्पाद योजना के अधीन शामिल किया गया है।
11. टेक्सटाइल्स (हथकरघा समेत) हैंडीक्राफ्ट, कारपेट, चमड़ा, रत्न एवं जवाहरात, समुद्री उत्पाद एवं एसएमई जैसे निर्यात के श्रम गहन क्षेत्रों को 1 दिसंबर 2008 से 30 सितंबर, 2009 तक 2 प्रतिशत की व्याज सहायता। बाद में इसे बढ़ाकर मार्च 2010 तक किया गया।
12. विशेष कृषि और ग्राम उद्योग योजना में दस्तकारी मदों का समावेशन।
13. ऐसी सभी मदों के लिए डीईपीबी दरों की बहाली, जहां इन्हें नवंबर 2008 में घटाया गया तथा सितंबर 2008 से कतिपय मदों पर इयूटी ड्रा बैक की दरों में वृद्धि की गई।
14. पेट्रोलियम उत्पादों तथा ऐसे उत्पादों को छोड़कर जहां वर्तमान दर 4 प्रतिशत से कम थी, सभी उत्पादों के लिए उत्पाद शुल्क को घटाकर 4 प्रतिशत करना।
15. प्रौद्योगिकी स्तरोन्यून निधि (टीयूएफ) के पिछले दावों को निपटाने हेतु टेक्सटाइल क्षेत्र के लिए ₹ 1400 करोड़ की अतिरिक्त निधि का प्रावधान।
16. मार्च 2010 तक बुरी तरह प्रभावित क्षेत्रों को 95 प्रतिशत का परिवर्द्धित निर्यात क्रेडिट गारंटी (ईसीजीसी) कवर प्रदान करने हेतु समायोजन सहायता योजना का विस्तार।
17. एसटीपीआई एवं ईओयू योजनाओं हेतु समापन खण्ड से संबंधित क्रमश: धारा 10क एवं 10ख का वित वर्ष 2010-11 के लिए विस्तार किया गया।
18. फोकस बाजार योजना तथा बाजार संबद्ध फोकस उत्पाद योजना के अंतर्गत अफ्रीका, लैटिन अमेरिका, ओसियाना एवं सीआईएस देशों के उभरते बाजारों के निर्यात का विविधीकरण।

19. सेवा कर से संबंधित उपाय जिनमें अन्य बातों के साथ शमिल हैं- निर्यात संबद्ध सेवाओं पर सेवाकर से छूट, जैसे-सड़क मार्ग से माल की दुलाई विदेशी एजेंटों को संदत कमीशन।
20. मार्च 2011 के अंत तक इंजीनियरिंग एवं इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों, बुनियादी रसायनों, फार्मास्युटिकल्स, अपैरल्स एवं टेक्सटाइल्स, प्लास्टिक, दस्तकारी तथा चमड़ा एवं चमड़ा उत्पादों के लिए शून्य उत्पाद शुल्क पर ईसीजीसी शुरू करना

निष्कर्ष

जब भारत ने 1950 के दौरान नियोजन काल पर पोतारोहण किया, तो आयात प्रतिस्थापन भारत के व्यापार और औद्योगिक नीति के लिए मुख्य चुनौती थी। भारतीय नीति-निर्माताओं ने भारत की आर्थिक संवृद्धि के उत्प्रेरक के तौर पर विदेश व्यापार के विकल्प पर गंभीर रूप से विचार नहीं किया। इसका मुख्य कारण निर्यात आय अर्जन क्षमता के प्रति बेहद निराशाजनक दृष्टिकोण था। विशाल घरेलू बाजार के अस्तित्व ने आंतरिक उन्मुखता की ओर आवेशित होने का काम किया। नीति-निर्माताओं ने न केवल निर्यात क्षमताओं एवं संभावनाओं का अवमूल्यांकन किया अपितु स्वयं आयात प्रवृति के आयात प्रतिस्थापन प्रक्रिया को भी नकारा। हालांकि औद्योगिकीकरण की आंतरिक उन्मुखता प्रक्रिया ने 1956 और 1966 के बीच घरेलू औद्योगिक संवृद्धि की उच्च दर हासिल की, लेकिन इस प्रकार के औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया की कई कमियां जल्द ही उजागर हो गई. पूरे तंत्र में अक्षमता फैल गई और अर्थव्यवस्था उच्च लागत की बढ़ती दर में तब्दील हो गई. एक समय पश्चात, इसने प्रौद्योगिकीय विलम्ब को प्रवृत किया जिससे निर्यात निष्पादन में गिरावट आने लगी।जबकि, समय के साथ, निर्यात के प्रति दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन हुआ, 1970 के दशक के अंत तक बड़ी संख्या में मदों का आयात प्रतिस्थापन भारत की विकास रणनीति का आधारभूत सिद्धांत रहा।1980 के शुरुआत में, 1970 के अंत में आश्चर्यजनक निर्यात निष्पादन और 1980-82 की मंदी के सफलतापूर्वक अपक्षय ने, भारत की निर्यात क्षमताओं की स्थापना के संबंध में आशाजनक माहौल पैदा किया।विदेश व्यापार को संसाधनों के दक्षतापूर्ण आवंटन के संचालक के तौर पर और तकनीक में वैश्विक उन्नयन का साधन माना गया।1991 के बाद व्यापार नीति में आए बदलावों ने मात्रात्मक प्रतिबंधों की भूमिका को न्यून किया और तात्विक रूप से टैरिफ दरों में कमी की। भारत के व्यापार नीति के उदारीकरण ने भी विश्व व्यापार संगठन के प्रति इसकी प्रतिबद्धता को प्रतिबिम्बित किया।

संदर्भ सूची

1. शियोजावा, वाई 2007. ए न्यू कंस्ट्रक्शन ऑफ रिकार्डियन ट्रेड थिअरी, इवोल्युशनरी एंड इंस्टीट्युशनल इकोनोमिक्स रिव्यू, 3 (2) पृ. 141-187
2. Mankiw, G. (April 2007). "Ricardo versus Heckscher-Ohlin".
3. Leontief, W. W. (1953). "Domestic Production and Foreign Trade: The American Capital Position Re-examined". Proceedings American Philosophical Society. **97**: 332–349.
4. Leamer, E.E. (1980). "The Leontief Paradox Reconsidered". Journal of Political Economy. **88**: 495–503.
5. Brecher (1982). "The Leontief Paradox: Continued". Journal of Political Economy. **90**: 820–823.
6. Bowen, H.P.; E.E. Leamer and L. Sveiskas (1987). "A Multi-country Multi-Factor Test of the Factor Abundance Theory". American Economic Review. **77**: 791–809.
7. Trefler, D. (1995). "The Case of Missing Trade and Other HOV Mysteries". The American Economic Review. **85** (5): 1029–1046.
8. Krugman, P.R. (1988). International Economics: Theory and Policy. Glenview: Scott, Foresman. नामालूम प्राचल |coau thor = की उपेक्षा की गयी (|author = सुझावित है) (मदद)
8. Bowen, H.P.; A. Hollander and J-M. Viane (1998). Applied International Trade Analysis. London: Macmillan Press.
9. ठवूमद, ध्.च;।. भ्वससंदकमत दंक श्र-ड. टपंदम (1998).।चचसपमक प्दजमतदंजपवदंस ज्तंकम।दंसलेपे. स्वदकवद: डंबउपससंद च्तमे.
10. फ्रांसिस स्टीवर्ट, रीसेंट थिअरीज ऑफ इंटरनैशनल ट्रेड: सम इम्प्लीकेशंस फॉर द साउथ, हेनरिक किएरजकोवस्की (सं.) 1989 मोनोपोलिस्टिक कॉम्पटीशन एंड इंटरनैशनल ट्रेड, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ.84-108.
11. "Leading merchandise exporters and importers, 2016".
12. International Trade Centre (ITC). "Trade Map - Trade statistics for international business development".
13. Aggarwal, Raj; A. Reisman and D. C. Fuh (1989). "Seeking Out Profitable Countertrade Opportunities: A Proactive Approach". Industrial Marketing Management. **18** (1): 65–71..

(यह लेख दोहरे व्यारिक माल की मांग और आपूर्ति का विश्लेषण करता है और लाभदायक दोहरे व्यापार और बाजार सहक्रिया अवधारणाओं की संभावनाओं को परिभाषित और उपयोग करता है, तथा व्यापारी को उन उद्योगों की तरफ निर्देशित करता है जो सबसे बड़े लाभ की क्षमता दिखाते हैं).

बिहार में 20-सूत्री कार्यक्रम क्रियान्वयन का विश्लेषणात्मक अध्ययन

मो० नौशाद

पीएच. डी. रिसर्च स्कॉलर, राजनीति विज्ञान विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

शोध-सारांश

बीस-सूत्री कार्यक्रम की शुरुआत तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी के द्वारा 1975 में शुरू की गई। इसे समय-समय पर 1982, 1986 तथा 2006 में इसकी पुनः संरचना की गई। 2006 में शुरू की गई इस कार्यक्रम को बीसूका, 2006 के नाम से जाना जाता है जो 01 अप्रैल 2007 से परिवर्तनीय[1] है। इसे ही 'नया बीस-सूत्री कार्यक्रम' के नाम से जाना जाता है। यह कार्यक्रम गरीबी हटाने, ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर पैदा करने, आवास, शिक्षा, परिवार कल्याण एवं स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण तथा अनेक अन्य योजनाओं पर बल देने के लिए बनाया गया है जिनसे विशेष तौर पर गाँवों में रहनेवाले लोगों के जीवन स्तर पर सकारात्मक प्रभाव पड़े।

दो शब्द : बीस सूत्री, रोजगार, गरीबी, पर्यावरण, स्वास्थ्य, आवास, शिक्षा इत्यादि।

परिचय

नया बीस सूत्री कार्यक्रम 2006 में मूल रूप से 20 सूत्र और 66 मदें हैं, जिनकी निगरानी एवं क्रियान्वयन क्रमशः अनेक विभागों एवं विभिन्न संबंधित केंद्रीय नोडल मंत्रालयों द्वारा अलग-अलग की जाती है।[2] 66 मदों में से एक अर्थात् संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (एस.जी.आर.वाई.) को 01 अप्रैल 2008 से 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम' नामक एक अन्य मद में सम्मिलित कर दिया गया है। 31 दिसंबर, 2009 से इसका नाम बदलकर 'महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार सृजन अधिनियम' रख दिया गया है।[3] शेष 65 मदों से 19 मदों की निगरानी इस समय तिमाही आधार पर की जा रही है। इसके अतिरिक्त 12 वीं योजना में 'स्वर्ण जयंती ग्राम स्व-रोजगार योजना' को संशोधित किया गया है और इसे 'राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन' का नाम दिया गया है।[4] लक्षित जन-वितरण प्रणाली के स्थान पर धीरे-धीरे 'राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम' को लाया जा रहा है। इस समय बीसूका 2006 के अंतर्गत 65 मदों की निगरानी की जा रही है।

बिहार राज्य में बीस सूत्री कार्यक्रम 2006 के 65 मदों का अनुश्रवण राज्य स्तर पर मंत्रिमंडल सचिवालय के अंतर्गत गठित बीस सूत्री समिति, प्रमंडल स्तर पर आयुक्त, जिला स्तर पर जिलाधिकारी एवं प्रखंड स्तर पर बीडीओ द्वारा किया जाता है। बीस सूत्री कार्यक्रम के अंतर्गत 20 मदें निम्नलिखित हैं :-

1. सर्वप्रथम, गरीबी हटाने के उद्देश्य से इस कार्यक्रम में राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम, स्वर्ण जयंती रोजगार योजना, एस.जी.एस.वाई. व एस.जे.एस.वाई के अतिरिक्त अन्य स्त्रोतों से गठित स्वयं सहायता समूह को शामिल किया गया है।[5]
2. जनमानस को अधिकार संपन्न बनाने तथा शीघ्र न्याय की व्यवस्था सुनिश्चित करने हेतु पंचायती राज तथा स्थानीय निकायों को सशक्त बनाए जाने पर विशेष बल दिया गया है।
3. कृषकों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए वाटरशैड विकास और शुष्क भूमि पर कृषि, किसानों को विपणन हेतु अधिसंरचनात्मक सहायता, सिंचाई सुविधाएँ (वृहद एवं लघु सिंचाई), डिप तथा बौछारी सिंचाई, किसानों को ऋण हेतु क्रेडिट कार्ड, अतिरिक्त भूमिहीनों को भूमि आबंटन, आवास स्थल आबंटन जैसे मदों के साथ सूत्र तैयार किया गया है।
4. ग्रामीण असंगठित मजदूर, विशेषतः असंगठित क्षेत्रों में कार्य की कमी के कारण बेरोजगार हो जाते हैं। सभी कर्मकारों के कल्याण हेतु इस सूत्र के अंतर्गत श्रमिकों के लिए सामाजिक तथा न्यूनतम मजदूरी प्रवर्तन (फार्म श्रमिकों सहित) मदें सम्मिलित की गई हैं।
5. लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली, अंत्योदय अन्न योजना तथा खाद्य अभावग्रस्त/क्षेत्रों में खाद्य बैंकों की स्थापना जैसे मदों को इस सूत्र के अंतर्गत शामिल किया गया है।
6. ग्रामीण क्षेत्रों में आवासहीन बी. पी. एल. परिवारों को आवास सुविधा मुहैया कराने के लिए इंदिरा आवासों का निर्माण तथा शहरी क्षेत्रों में निर्बल वर्ग आवास व अल्प आय वर्ग आवास बनाया जाना इस सूत्र के अंतर्गत समाहित है।

7. ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में प्रत्येक घर में शुद्ध पेयजल प्रदान करना तथा पेयजल उपलब्धता बढ़ाना सरकार की प्राथमिकता रही है। इस सूत्र के अंतर्गत 'स्वजल धारा', 'त्वरित ग्रामीण जलापूर्ति कार्यक्रम' तथा शहरी क्षेत्रों के लिए 'त्वरित शहरी जलापूर्ति कार्यक्रमों को सम्मिलित किया गया है।[6]
8. मानव संसाधन विकास के अंतर्गत स्वास्थ्य में सुधार लाया जाना इस सूत्र का प्रमुख उद्देश्य है। स्वच्छ पेयजल, साफ-सफाई तथा रोगों का निवारण के साथ-साथ उचित दवाइयों का वितरण, सफाई प्रोत्साहन आदि पर विशेष ध्यान दिया जाना सरकार का उद्देश्य है।
9. देश के आर्थिक विकास एवं मानव विकास हेतु शिक्षा का अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस सूत्र के अंतर्गत शिक्षकों की नियुक्ति, स्कूल भवनों का निर्माण, प्राथमिक स्तर पर स्कूल छोड़नेवालों की दर का प्रबोधन किया जा रहा है।[7]
10. अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ा वर्ग व अल्पसंख्यक के हितों की सुरक्षा व विकास में सामाजिक न्याय प्रदान करने के उद्देश्य से कार्यक्रम को संचालित किया गया है। इस सूत्र का उद्देश्य उक्त वर्गों को शिक्षा व रोजगार के अवसर तथा उनके जीवन-स्तर में गुणात्मक सुधार लाना है।[8]
11. सभी कार्यक्रमों में महिलाओं के लिए समान अवसरों तथा महिला विकास से संबंधित आवश्यकताओं, महिला सशक्तीकरण आदि हेतु सरकार द्वारा विभिन्न योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही है।
12. इस मद में मुख्यत: समन्वित बाल विकास केंद्रों तथा उसके अंतर्गत आंगनबाड़ी केंद्रों के संचालन को विशेष बल दिय गया है। बाल्यावस्था विकास के लिए आई.सी.डी.एस. विश्व के सबसे बड़े कार्यक्रमों में एक कार्यक्रम है।
13. युवा विकास पर बल देने के उद्देश्य से 'युवा कल्याण' सूत्र से ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में सभी के लिए खेल 'राष्ट्रीय सद्भावना योजना' और 'राष्ट्रीय सेवा योजना' मदों को समाहित किया गया है।
14. शहरों की मलिन बस्तियों में निवास करनेवाले परिवारों के विकास हेतु बस्तियों के सुधार की योजना लागू है। बीस सूत्री कार्यक्रम 2006 में सात विकास सूत्री चार्टर-भूमि पट्टा, वहन करने योग्य आवास, स्वच्छ पेयजल, स्वच्छता, स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक सुरक्षा के अधीन मलिन बस्तियों के निर्धन परिवारों की संख्या का अनुश्रवण किया जाएगा।
15. सार्वजनिक व वन भूमि पर वृक्षारोपन के कार्य : पर्यावरण की सुरक्षा करना प्रत्येक मानव जीवन का कर्तव्य है। इस उद्देश्य से भी इस सूत्र में सम्मिलित किया गया है।
16. समाज के कमजोर वर्गों को सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से इस सूत्र में विकलांगों और अनाथों के पुनर्वास और वृद्धजनों के कल्याण मद सम्मिलित हैं।[9]
17. भारत निर्माण के छ: घटकों में से ग्रामीण सड़क निर्माण एक मुख्य घटक है। प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना अंतर्गत पर्वतीय क्षेत्रों में 1000 से कम जनसंख्या वाले ग्रामों व आदिवासी क्षेत्रों में 500 तक आबादी वाले क्षेत्रों में योजना के तहत वर्ष 2009 तक सभी मौसमों के अनुकूल सड़कें जोड़े जाने का लक्ष्य है।
18. इस कार्यक्रम का उद्देश्य वायु, जल विद्युत और बायोगैस पावर द्वारा परंपरागत विद्युत में वृद्धि, दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में खाना बनाना और बिजली के लिए नवीकरणीय ऊर्जा पहुँचाना और शहरी औद्योगिक और व्यावसायिक उपयोग में नवीकरणीय ऊर्जा को बढ़ावा देना, स्टेशनरी, पोर्टेबल और ट्रांसपोर्ट एप्लीकेशन का विकास करना है।[10]
19. पिछड़े क्षेत्र के विकास के उद्देश्य से पिछड़ा क्षेत्र अनुदान निधि नामक मद प्रबोधनार्थ सूत्र में सम्मिलित है।
20. इसका उद्देश्य नागरिकों और व्यवसायों को बेहतर सरकारी सुविधा प्रदान करना है। आम आदमी को अपने क्षेत्र की सेवाएँ मुहैया करवाना तथा योजनाओं की पारदर्शिता सुनिश्चित करना है।

बिहार में बीस-सूत्री योजनाओं का क्रियान्वयन वर्ष 2016 के अप्रैल से सितंबर तक भिन्न-भिन्न रूप में रहा है।

बिहार में अप्रैल से सितंबर 2016 तक एमजीएनआरईजी योजना के अंतर्गत सृजित रोजगार निम्नलिखित हैं[11]:-

तालिका 1.1

1	जारी किए गए जॉब कार्ड संख्या	2,60,933
2	सृजित रोजगार की संख्या	3,15,00,000
3	दी गई मंजूरी (रुपये)	8,61,85,05,000

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के अंतर्गत बढ़ावा दिए गए स्वयं सहायता समूह की संख्या (नए और पुनर्जीवित

तालिका 1.2

1	2016-17 के दौरान लक्ष्य	55,902
2	अप्रैल से सितंबर 2016 तक उपलब्धि	87,427
3	उपलब्धि का प्रतिशत	313

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (एन.आर.एल.एम.) के अंतर्गत उन स्वयं सहायता समूह की संख्या, जिन्हें रिवॉल्विंग निधि उपलब्ध कराई गई :

तालिका 1.3

1	वर्ष 2016-17 के दौरान निर्धारित लक्ष्य	33,000
2	अप्रैल से सितंबर 2016 तक उपलब्धि	17,020

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के अंतर्गत सामुदायिक निवेश कोष प्रदान की गई स्वयं सहायता समूहों की संख्या

तालिक 1.4

1	वर्ष 2016-17 के दौरान निर्धारित लक्ष्य	33,000
2	अप्रैल से सितंबर 2016 तक उपलब्धि	15,878
3	उपलब्धि का प्रतिशत	96

भूमिहीनों को वितरित बंजर भूमि (ईकाई हेक्टेयर)

तालिका 1.5

1	अप्रैल से सितंबर 2016 के दौरान	24 हेक्टेयर
2	जून 2016 तक की उपलब्धि यानी शत-प्रतिशत	24 हेक्टेयर
3	अप्रैल से सितंबर 2016 के दौरान अनुसूचित जाति को वितरित भूमि	11 हेक्टेयर
4	अनुसूचित जनजाति को वितरित भूमि	1 हेक्टेयर
5	अन्य को वितरित भूमि	12 हेक्टेयर

ग्रामीण आवास--प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण) निर्मित आवास वर्ष 2016-17 वित्तीय वर्ष के दौरान निर्धारित लक्ष्य 4,76,715 थी जबकि अप्रैल से सितंबर, 2016 के दौरान निर्धारित लक्ष्य 2,38,357 की तुलना में प्राप्त उपलब्धि 1,20,928 है। उपलब्धि का प्रतिशत 58 है।

शहरी क्षेत्रों में ईडब्ल्यूएस/एलआईजी आवास की लक्षित संख्या वित्तीय वर्ष 2016-17 के दौरान 18,302 थी। अप्रैल से सितंबर 2016 के दौरान निर्धारित लक्ष्य 9,151 की तुलना में 8,827 की प्राप्ति हुई जो निर्धारित लक्ष्य का 96 प्रतिशत है।

ग्रामीण क्षेत्र : राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल योजना (एनआरडीडब्ल्यूपी) आंशिक रूप से समाविष्ट बसावटों के अंतर्गत वर्ष 2016-17 के दौरान निर्धारित लक्ष्यों की संख्या 5,800 थी। अप्रैल से सितंबर 2016 के दौरान निर्धारित लक्ष्यों 2,900 की तुलना में प्राप्त लक्ष्यों की संख्या 173 थी जो बहुत ही खराब यानी केवल 6 प्रतिशत थी।

ग्रामीण क्षेत्र : राष्ट्रीय पेयजल योजना (एनआरडीडब्ल्यूपी) गुणवत्ता से प्रभावित बसावटों के अंतर्गत वर्ष 2016-17 के दौरान निर्धारित लक्ष्यों 1977 की तुलना में अप्रैल से सितंबर 2016 में निर्धारित लक्ष्य 988 थी। इन निर्धारित लक्ष्यों में मात्र 272 यानी 28 प्रतिशत की उपलब्धि प्राप्त हुई जो बहुत ही खराब थी।

ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छता कार्यक्रम के अंतर्गत वैयक्तिक घरों के लिए शौचालयों का निर्माण में बिहार में वित्तीय वर्ष 2016-17 के दौरान अप्रैल से सितंबर तक कुल 62,133 शौचालयों का निर्माण किया गया।

बिहार में वित्तीय वर्ष 2016-17 के दौरान अनुसूचित जाति उपयोजना तथा राष्ट्रीय अनुसूचित जाति वित्त एवं विकास निगम द्वारा विशेष केंद्रीय सहायता प्रदान किए गए अनुसूचित जाति परिवार की संख्या निम्नलिखित है :-

तालिका 1.6

1	निर्धारित लक्ष्यों की संख्या 2016-17	16,675
2	निर्धारित लक्ष्य अप्रैल से सितंबर, 2016	8,339
3	अप्रैल से सितंबर में प्राप्त उपलब्धि	2,249
4	उपलब्धि का प्रतिशत	27

20 सूत्री कार्यक्रम के अंतर्गत बिहार में ग्रामीण सड़कें– प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (पी.एम.जी.एस.वाई.) के अंतर्गत वित्तीय वर्ष 2016-17 के अंतर्गत निर्धारित लक्ष्य 6,540 किलोमीटर था, वहीं अप्रैल 2016 से सितंबर 2016 के दौरान निर्धारित लक्ष्य 3270 किलोमीटर की तुलना में 3424 किलोमीटर सड़क का निर्माण किया गया जो निर्धारित लक्ष्य से भी ज्यादा यानी 105 प्रतिशत की प्राप्ति हुई।[12]

बिहार एक कृषि-प्रधान राज्य है। यहाँ की सिंचाई व्यवस्था पंपसेटों पर भी बहुत हद तक निर्भर करती है। इसलिए वित्तीय वर्ष 2016-17 के दौरान 2764 पंपसेटों को बिजली प्रदान करने हेतु लक्ष्य रखा गया था। वहीं अप्रैल 2016 से सितंबर 2016 के दौरान निर्धारित लक्ष्य 1382 पंपसेटों को बिजली प्रदान करने की तुलना में उपलब्धि शून्य रही है।

बिजली की आपूर्ति के संबंध में बिहार में वित्तीय वर्ष 2016-17 के दौरान 98 प्रतिशत लक्ष्यों की प्राप्ति की। माँगी गई बिजली 13,619 (मिलियन यूनिट) की तुलना में 13,368 (मिलियन यूनिट) की लक्ष्य प्राप्ति हुई।

20 सूत्री कार्यक्रम पर अब तक किए गए पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, समाचार-पत्रों एवं अभिलेखों आदि के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यह साहित्य बिहार में व्याप्त प्रशासनिक समस्याओं का समाधान करने में सक्षम नहीं है। क्योंकि ये साहित्य उन सिद्धांतों, व्याख्याओं पर विचार नहीं करता है जो वर्तमान समस्याओं के लिए महत्त्वपूर्ण है। इसलिए कहा जा सकता है कि उपर्युक्त साहित्य समस्या समाधान हेतु समुचित नहीं है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तावित शोध-विषय का उद्देश्य निम्नलिखित है–

1. तत्कालीन समस्या पर ध्यान केंद्रित कर शोध को प्रासंगिक बनाना।
2. 20-सूत्री के प्रशासनिक कार्यान्वयन की वृहद अध्ययन पर जोर देना।
3. बिहार में 20-सूत्री कार्यक्रम किस रूप में अब तक सक्रिय है, उन तमाम पहलुओं पर गहनता से प्रकाश डालना।
4. बिहार में किस प्रकार से ग्रामीण विकास कार्यक्रम--ग्रामीण नियोजन भूमिहीन नियोजन गारंटी कार्यक्रम, समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम इत्यादि। इन तमाम परियोजनाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पना –

1. विगत चार दशकों में बिहार में 20-सूत्री कार्यक्रमों के स्वरूप में व्यापक वृद्धि हुई है। परंतु वृद्धि के अनुरूप योजनाओं का व्यावहारिक धरातल पर क्रियान्वयन नहीं हुआ है।
2. प्रशासनिक लालफीताशाही एवं भ्रष्टाचार बिहार में अपनी जड़ें जमा ली हैं, जो योजनाओं के क्रियान्वयन में अवरोधक है।
3. बिहार सरकार द्वारा 20-सूत्री कार्यक्रमों के क्रियान्वयन एवं मॉनिटरिंग के लिए राज्य, जिला एवं प्रखंड स्तर पर जिन समितियों का गठन किया गया है, वे राजनीतिक दलों के आपसी संघर्ष में उलझकर रह गए हैं।

अध्ययन की पद्धति–

1. नया 20-सूत्री कार्यक्रम से संबंधित शोधकार्य हेतु मैंने विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन पद्धति को अपनाया है।
2. शोधकार्य की भाषा हिंदी रहेगी तथा शैली अन्वेषणात्मक एवं विश्लेषणात्मक होगी।
3. इस शोधकार्य हेतु मुख्य रूप से सरकारी प्रतिवेदनों का अध्ययन किया गया है। इन प्रतिवेदनों में मुख्य रूप से भारत सरकार एवं बिहार सरकार के विभिन्न विभागों द्वारा जारी प्रतिवेदन शामिल है।
4. प्रखंड स्तर पर बीडीओ एवं सीओ कार्यालय द्वारा, जिला के सांख्यिकी एवं अन्य विभाग द्वारा, राज्य सचिवालय में स्थित सांख्यिकीय एवं निरीक्षण निदेशालय द्वारा, भारतीय जनगणना आयोग द्वारा प्रकाशित जिलेवार हैंडबुक द्वारा तथा विगत वर्षों में हुए शोधकार्य से भी सहायता मिली है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि 20-सूत्री कार्यक्रम केंद्र सरकार की बहुत ही महत्त्वपूर्ण योजना है। खास तौर पर बिहार जैसे राज्य के लिए इस योजना का महत्त्व और भी बढ़ गया है, जहाँ वर्तमान समय में कई तरह की समस्याएँ मौजूद हैं। इन समस्याओं में गरीबी, युवाओं को रोजगार, उद्योग का अभाव, शिक्षा की लचर व्यवस्था, सिंचाई की समस्या, मजदूरों की श्रम समस्या, अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों को भूमि, आवास एवं काम की समस्या, संस्थागत प्रसव में कमी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में शुद्ध पेयजल, शौचालय एवं सड़कों की समस्या इत्यादि। इन सभी समस्याओं का हल 20-सूत्री कार्यक्रम में निहित है। जहाँ तक इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन का प्रश्न है तो इसकी सफलता एक मजबूत प्रशासनिक संरचना एवं उसमें कार्य करनेवाले अधिकारियों एवं कर्मचारियों का योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु उत्तरदायी होना है। इस कार्यक्रम के अनुश्रवण के लिए राज्य स्तर से लेकर प्रखंड स्तर तक समितियों का निर्माण किया गया है। इन सबके बावजूद यह कार्यक्रम पूरी तरह से सफल नहीं हो पाया है। बशर्ते आवश्यकता इस बात की है कि इसे धरातल पर सही तरीके से क्रियान्वयन करना। कोई भी योजना वित्तीय कुप्रबंधन, भ्रष्टाचार, लालफीताशाही, समन्वयन के अभाव तथा सही तरीकों से पर्यवेक्षण न होने से असफल हो जाता है। इसलिए 20-सूत्री कार्यक्रम के क्रियान्वयन में उपर्युक्त बातों का ध्यान रखना अति आवश्यक है।

संदर्भ-सूची

1. डॉ. बी. बी. भट्टाचार्या, नया 20-सूत्री कार्यक्रम, भारती प्रकाशन, वाराणसी, 2011, पृ. 74-78
2. सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन निदेशालय, भारत सरकार प्रगति रिपोर्ट 2014-15, पृ. 5-7
3. ग्रामीण विकास विभाग, भारत सरकार, वार्षिक प्रतिवेदन 2016-17, पृ. 38-39
4. राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन, भारत सरकार के वेबसाइट से प्राप्त आँकड़े
5. वार्षिक रिपोर्ट 2017-18, ग्रामीण विकास विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 11-13
6. श्रम कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, वार्षिक प्रतिवेदन 2015-16
7. लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग, बिहार सरकार, वार्षिक रिपोर्ट 2017-18
8. सर्वशिक्षा अभियान कार्यक्रम, शिक्षा विभाग, बिहार सरकार रिपोर्ट 2018
9. लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग, बिहार सरकार, वार्षिक रिपोर्ट 2016-17
10. शहरी विकास एवं आवास विभाग, बिहार सरकार, वार्षिक प्रतिवेदन 2016-17
11. सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन निदेशालय, भारत सरकार प्रगति रिपोर्ट 2015-16
12. प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना, ग्रामीण कार्य विभाग, बिहार सरकार, वार्षिक प्रतिवेदन 2016-17

प्राचीन काल में स्त्रियों के कानूनी अधिकार

डॉ० नूतन कुमारी

असिस्टेंट प्रोफेसर, अतिथि संकाय, इतिहास विभाग, पूर्णिया, विश्वविद्यालय, पूर्णिया

प्रागैतिहासिक काल में कन्या को चल-संपत्ति समझा जाता था। वह पिता के घर में गृह कार्य में माता-पिता की सहायता करती थी। अत: जब वह विवाह करके उसे अपने साथ ले जाता था तो वह पुत्री की सेवा से वंचित करने के बदले में उसके पिता को कुछ धन देता था। पुत्री को इस समय पिता की संपत्ति में कोई अधिकार न था। इस प्रकार इस काल में दहेज की प्रथा बिलकुल नहीं थी। पिता विवाह के समय अपनी पुत्री को बहुमूल्य उपहार अवश्य देता था, किन्तु इन उपहारों को दहेज नहीं कहा जा सकता था, क्योंकि पिता स्वेच्छा से अपनी आर्थिक स्थिति के अनुरूप इन उपहारों को पुत्री को देता था। इसके लिए वर पक्ष से कोई ठहराव नहीं होता था।

विवाह विच्छेद करने का अधिकार-प्राचीन भारत में विवाह को ऐसा संस्कार समझा जाता था जिसमें किसी भी परिस्थिति में विच्छेद संभव न था। स्त्रियों को किसी भी दशा में पति को तलाक देने का अधिकार न था। मनु के अनुसार तो पति यदि पत्नी को बेच दे या छोड़ दे तो भी पत्नी को उसको तलाक देने का अधिकार नहीं है।[1] कन्यादान केवल एक बार होता है।[2] उसके अनुसार पति-पत्नी का संबंध जीवन पर्यन्त के लिए होता है।[3] अन्य धर्मशास्त्रों से ज्ञात होता है कि कुछ विशेष परिस्थितियों में पत्नी को पति को छोड़ने का अधिकार था। मनु ने स्वयं लिखा है कि यदि पति नपुंसक हो, पागल हो, छूत का रोगी हो, या ऐसे रोग से पीड़ित हो जिसकी चिकित्सा न हो सके तो यदि पत्नी उसका परित्याग कर दे तो उसे दोष नहीं है।[4] मनु ऐसी स्त्री को जिसने पहले पति के साथ सहवास न किया हो दूसरे पुरुष से विवाह करने का भी अधिकार देता है। उसके अनुसार जिस स्त्री को पति ने छोड़ दिया हो, या जो विधवा हो गई हो यदि वह अपनी इच्छा से दूसरा विवाह करे और पुत्र उत्पन्न करे तो उस संतान को पौनर्भव कहते हैं।[5] इस दूसरे विवाह से उत्पन्न संतान को पिता का कानूनी उत्तराधिकारी समझा जाता था, किन्तु यह विवाह विच्छेद की स्थिति नहीं है, क्योंकि वह स्त्री अपनी इच्छा से दूसरे पुरुष से विवाह करती थी। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि समाज में लगभग ईसवी शती के आरंभ तक पत्नी द्वारा विवाह विच्छेद के अधिकार को स्वीकार नहीं किया। वह स्त्री समाज के दृष्टिकोण की परवाह न करके अपनी इच्छा से दूसरे पुरुष से विवाह करने का दु:साहस करती थी। नारद ने ऐसी स्त्री को 'स्वैरिणी' कहा है।[6] जिसका अर्थ है कि मनमाना आचरण करने वाली। ऐसी स्त्री के प्रति निरादर प्रकट किया गया है। पति को विवाह विच्छेद करने की आवश्यकता ही नहीं थी, क्योंकि वह एक पत्नी के होते हुए भी दूसरी से विवाह कर ही सकता था। धनी पुरुषों से विवाह करने की अनुमति देने को तैयार न था। ऐसी दशा में हिन्दू समाज में विवाह विच्छेद निरर्थक था। किन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों में भारतीय धर्म-शास्त्रकारों ने स्त्री को दूसरा विवाह करने की अनुमति दी है।

धर्मसूत्र (600 ई. पू. से 300 ई. पू.) के अनुसार यदि किसी ब्राह्मणी स्त्री का पति विदेश गया हो तो उसे पांच वर्ष तक पति के विदेश से लौटने की प्रतीक्षा करनी चाहिए[7] इसके बाद वह दूसरे पुरुष से विवाह कर सकती थी। कौटिल्य के अनुसार स्त्री को केवल दस महीने पति के लौटने की प्रतीक्षा करनी चाहिए। उसके बाद उस स्त्री को न्यायाधीश से अनुमति लेकर दूसरे पुरुष से विवाह करने का अधिकार है।[8] कौटिल्य ने आसुर, गांधर्व, क्षात्र और पैशाच विवाहों में विवाह-विच्छेद की अनुमति दी है। उसने निम्नलिखित दशाओं में तलाक को वैध माना है। जब पति या पत्नी एक दूसरे को घृणा करते हों। यदि पति को पत्नी से अपने जीवन को खतरा हो।[9]

ब्राह्मण साहित्य में विवाह-विच्छेद के उदाहरण नहीं मिलते किन्तु बौद्ध साहित्य में ऐसे कुछ उदाहरण मिलते हैं।[10] ऐसा प्रतीत होता है कि साधारणतया विवाह-विच्छेद का प्रचलन केवल समाज के निम्नलिखित वर्गों में था। जब किसी शूद्र पिता को पुत्री का अपने पति से विरोध होता था तो वह उसका विवाह दूसरे पुरुष के साथ कर देता था। परन्तु अन्य वर्गों में विवाह-विच्छेद बहुत ही कम होता था।[11]

पांचवी शती ई. पू. से तप और ब्रह्मचर्य पर बहुत बल दिया गया अत: स्त्रियों का दूसरा विवाह करना अनैतिक समझा जाने लगा। समाज के अनुसार पति कितना ही अनैतिक आचरण क्यों न करता हो पत्नी को उससे विवाह-विच्छेद नहीं करना चाहिए। किन्तु यह विचार समाज में निम्न-स्तरीय वर्गों ने स्वीकार नहीं किया। वे पति का व्यवहार ठीक होने पर अपनी पुत्री का विवाह दूसरे पुरुष से कर देते थे जैसा कि सत्रहवीं शती में लिखे हुए ग्रंथ 'शूद्रकमलाकर' से स्पष्ट है।[12]

पतियों को अप्रिय बोलने मात्र पर ही पत्नी से अप्रसन्न होकर विवाह-विच्छेद करने का अधिकार था।[13] धर्मशास्त्रकार आशा करते हैं कि पत्नी शराबी और रोगी पति की भी सेवा करे। यदि वह ऐसा करे तो पति उससे वस्त्रभूषण लेकर तीन मास बाद उसे छोड़ सकता था।[14] जब कन्याओं का विवाह कम अवस्था में होने लगा तो वे उच्च शिक्षा भी प्राप्त न कर सकीं। ऐसी दशा में पति उनके साथ मनमाना अत्याचार करने लगे। मनु के अनुसार कन्यादान केवल एक बार ही होता है।[15] अन्य धर्मशास्त्रकारों ने भी विवाह को जीवन भर चलने वाला बंधन बतलाया है। मनु का मत था कि यदि पति दूसरी स्त्री से विवाह कर ले तो उसकी पहली पत्नी को अपने माता-पिता के पास रहने का अधिकार है।[16] मनु जैसा हम ऊपर कह चुके हैं पति से छोड़ी हुई स्त्री को, या विधवा को फिर अपनी इच्छा से प्रेरित होकर विवाह करके पुत्र उत्पन्न करने की अनुमति देते हैं किन्तु विवाह-विच्छेद की अनुमति नहीं देते।[17] चौथी शती ई. तक पत्नी को स्थिति पति की अपेक्षा बहुत निम्न हो गई। इस पर भी पति के नष्ट हो जाने, मर जाने, सन्यासी हो जाने, नपुंसक होने और पतित होने पर स्त्री

को दूसरे पुरुष से विवाह करने की अनुमति दी गई है।[18] इसका यह अर्थ है कि इन पांच परिस्थितियों में स्त्री अपने पहले पति को छोड़ सकती थी किन्तु इसका अर्थ विवाह-विच्छेद नहीं हो सकता। गौतम के अनुसार स्त्री का सतीत्व नष्ट हो जाने पर भी पति को उसके भोजन, वस्त्र और रक्षा का प्रबंध करना चाहिए।[19] याज्ञवल्क्य व्यभिचारिणी पत्नी को भी गर्भवती होने पर ही परित्याग करने की अनुमति देते हैं।[20] व्यास के अनुसार तो व्यभिचारिणी स्त्री भी मासिक धर्म के बाद शुद्ध हो जाती है।[21] ऐसी दशा में हिन्दू समाज में विवाह-विच्छेद का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दू विवाह के बाद विवाह-विच्छेद की स्थिति संभव नहीं है। पत्नी को त्याग देने के बाद भी पति को उसके भरण-पोषण और रक्षा का प्रबंध करना पड़ता था। किन्तु जब पत्नी दूसरा विवाह कर लेती थी तो उसके भरण-पोषण और रक्षा का उत्तरदायित्व पहले पति पर नहीं रहता था और पत्नी की भी पहले पति के प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं रहती थी। इस परिस्थिति को हम विवाह-विच्छेद की स्थिति कह सकते हैं।

विधवा का विवाह करने का अधिकार-मनु (लगभग 200 ई.) के अनुसार विधवा को विवाह का विचार भी नहीं करना चाहिए।[22] विष्णु का भी मत था कि विधवा को ब्रह्मचर्य व्रत का ही पालन करना चाहिए। नारद (लगभग 500 ई.) के अनुसार भी कन्या का विवाह केवल एक बार ही होता है।[23] परन्तु एक अन्य प्रसंग में नारद विधवा को विवाह करने का अधिकार देते हैं।[24] इसका यह अर्थ है कि नारद के समय में कुछ विधवा विवाह होते थे किन्तु उन्हें समाज में अच्छा नहीं समझा जाता था। महाभारत में बाल-विधवा के विवाह को वैध कहा गया है।[25] वशिष्ठ के अनुसार भी यदि कन्या का विवाह हो गया हो किन्तु उसने पति के साथ सहवास न किया हो तो वह दूसरा विवाह कर सकती है।[26] बौधायन ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त किए हैं।[27]

600 ई. के बाद विधवा विवाह बहुत बुरा समझा जाने लगा। आदित्यपुराण में लिखा है कि विधवा विवाह कलियुग में वर्जित है।[28] लगभग 1000 ई. से बाल विधवाओं को भी विवाह करने का अधिकार न रहा। देवण्णभट (लगभग 1150 ई.) ने लिखा है कि कलियुग में विधवा विवाह वैध नहीं है।[29] यदि विधवा मृत-पति के परिवार में रहती तो उसे सेविका की भाँति कठिन परिश्रम करना पड़ता था। यदि वह अलग रहती तो उसे केवल रोटी-कपड़ा मिलता था।

व्यवसाय करने की स्वतंत्रता -नीच जातियाँ अपने पतियों के व्यवसाय में पूर्ण रूप से भाग लेती थीं। वे पति के स्थान पर स्वयं इकरार भी कर सकती थीं और पति की साख को गिरवी रख सकती थीं।[30]

संपत्ति संबंधी अधिकार पत्नी के रूप में-अत्यंत प्राचीन काल में पत्नी को चल संपत्ति समझा जाता था अत: उसके स्वयं की स्वामिनी होने का प्रश्न नहीं उठता। वैदिक काल में स्त्रियों को उपहार रूप में दिया जाता था।[31] महाभारत में भी धृतराष्ट्र कृष्ण का आदर करने के लिए एक सौ दासियां देने का उ९त हो जाते हैं।[32] पति को पत्नी का पूर्ण रूप से स्वामी समझा जाता था। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि पति अपनी पत्नी का जुए में दांव पर लगा सकता था। इसी आधार पर हरिशचन्द्र अपनी पत्नी शैव्या को बेचने को तैयार हो गए। युधिष्ठिर ने जब जुए में द्रौपदी को दांव पर लगाया था द्रौपदी पति के इस अधिकार के विषय में शंका नहीं करती वह केवल यह कहती है कि जब युधिष्ठिर ने ऐसा किया उस समय क्या वे स्वतंत्र व्यक्ति थे। किन्तु जिस समय युधिष्ठिर द्रौपदी को दांव पर लगाने लगे तो सभासदों ने उनके इस कार्य का अनुमोदन नहीं किया।[33] इसका यह अर्थ है कि सिद्धांत रूप से पत्नी पर पति का पूर्ण स्वामित्व होता था किन्तु समाज पति के इस अधिकार को पूर्णतया स्वीकार नहीं करता था।

वैदिक काल से ही पति और पत्नी दोनों को परिवार की संपत्ति का संयुक्त स्वामी समझा जाता था। पति को विवाह के समय प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी किवह पत्नी के आर्थिक अधिकारों की अवहेलना नहीं करेगा। आपस्तंब के अनुसार परिवार की संपत्ति के संयुक्त स्वामित्व का यह अर्थ है कि पति की अनुपस्थिति में पत्नी परिवार के लिए आवश्यक व्यय कर सकती थी।[34] मनु के अनुसार पति को अपनी पत्नी का भरण-पोषण करना चाहिए चाहे परिवार की कोई संपत्ति न हो और उसे ऐसे कार्य भी करने पड़े जो उसके वर्ण के लिए उपयुक्त न हों[35] याज्ञवल्क्य के अनुसार यदि पति अनुचित रूप से आज्ञाकारिणी, कुशल, वीर पुत्रों को जन्म देने वाली और मधुर भाषिणी पत्नी से विवाह-विच्छेद कर ले तो उसे पति की संपत्ति का तिहाई भाग मिलना चाहिए।[36] किन्तु समाज में स्त्री के इस अधिकार को स्वीकार नहीं किया। अचल-संपत्ति में से उसे कोई भाग नहीं दिया गया। यदि कोई व्यक्ति किसी स्त्री से बलात्कार कर लेता तो भी उसके पति को उसका भरण-पोषण करना पड़ता था।[37] प्रारंभिक स्मृतिकारों ने अपना यह अधिकर प्राप्त करने के लिए पत्नी को न्यायालय में जाने की अनुमति नहीं दी थी किन्तु विज्ञानेश्वर के अनुसार यदि कोई पति अपनी गुणवती पत्नी को छोड़ दे, या जान-बूझकर उसकी संपत्ति का दुरूपयोग करे या उसे वापिस न दे तो पत्नी न्यायालय में जाकर अपने दु:खों को दूर करा सकती है।[38] किन्तु विज्ञानेश्वर के अनुसार भी बिना पति की अनुमति के पत्नी को धन व्यय करने का अधिकार नहीं था।[39] वास्तव में परिवार की कुल संपत्ति का स्वामी पति ही होता था। हिन्दू धर्मशास्त्रकारों ने पत्नी के भरण-पोषण के लिए उस दशा में भी कोई उचित व्यवस्था नहीं कि जबकि उसका पति अपनी पूरी कमाई व्यर्थ गंवा दे।

स्त्री-धन- जहाँ तक आभूषण, वस्त्र आदि चल संपत्ति का प्रश्न है बहुत प्राचीन काल से ही स्त्री का उस पर पूर्ण स्वामित्व समझा जाता था। इसे स्मृतिकारों ने स्त्री धन कहा हें इसका मूल उस उपहार में है जो माता-पिता विवाह के समय अपनी पूत्री को देते थे। आपस्तंब धर्मसूत्र से ज्ञात होता है कि कुछ विद्वानों का मत था कि आभूषण और संबंधियों से प्राप्त धन स्त्री का होता है।[40] किन्तु आपस्तंब स्वयं इस मत के समर्थक न थे। कौटिल्य के अनुसार आजीविका और वस्त्र, आभूषणों को स्त्री का धन कहते हैं। आजीविका अधिक से अधिक दो हजार पण होनी चाहिए।[41] स्मृतिलेखकों के अनुसार असुर विवाह के द्वारा विवाहित पत्नी की मृत्यु के बाद यदि उसकी कोई संतान न हो तो उसका स्त्री-धन उसके भाई या माता-पिता को मिलना चाहिए।[42] स्त्री साधारणतया इस उपहार में प्राप्त धन राशि को अपने लिए आभूषण या अपने परिवार के लिए बरतन और फर्नीचर आदि खरीदने में व्यय करती थी। माता-पिता से प्राप्त उपहार (परिणाह्य) की वह पूर्ण रूप से स्वामिनी होती थी।[43]

मनु के अनुसार पत्नी की अपनी निजी कोई संपत्ति नहीं होती। उसकी समस्त संपत्ति उसके पति की होती है।[44] किन्तु बौधयान और मनु दोनों के अनुसार पत्नी का स्त्रीधन पर पूर्ण स्वामित्व होता है।[45] मनु के अनुसार स्त्री-धन में वे सब उपहार सम्मिलित होते हैं जो माता-पिता या भाई ने किसी भी समय दिए हों, वे उपहार जो किसी अन्य पुरुष ने भी विवाह के समय वधू को दिए हों और वे उपहार जो पति ने विवाह के बाद अपने प्रेम के प्रतीक के रूप में उसे दिए हों।[46] विष्णु ने स्त्री धन की परिभाषा में तीन नए वर्ग जोड़ दिये अर्थात् (1) पुत्र द्वारा दिए हुए उपहार, (2) किसी अन्य संबंधी द्वारा दिए उपहार, तथा

(3) पति के दूसरी स्त्री से विवाह करने पर दी जाने वाली क्षतिपूर्ति।[47] स्त्रीधन में स्त्री द्वारा कमाई हुई धन राशि सम्मिलित नहीं की जाती थी क्योंकि धर्मशास्त्रकारों का मत था कि पति-पत्नी दोनों की आय परिवार पर खर्च की जानी चाहिए। कात्यायन के अनुसार स्त्री-धन में अचल सम्पत्ति शामिल नहीं की जा सकती।[48] किन्तु बृहस्पति के अनुसार स्त्री-धन में भूमि भाग भी सम्मिलित किया जा सकता था।[49]

सातवीं शताब्दी के बाद स्मृतिकारों ने स्त्री-धन में कुछ अन्य धन राशियां भी सम्मिलित कर दीं जैसे कि देवल ने निर्वाह के लिए मिले धन और आकस्मिक रूप से मिली धन राशियों की भी स्त्री-धन में गणना की है।[50] विज्ञानेश्वर ने स्त्री-धन में उस सभी संपत्ति को गिना है जो किसी स्त्री को उत्तराधिकारी में मिली हो, उसने स्व खरीदी हो, बंटवारे में उसे मिली हो, सौभाग्यवश उसे प्राप्त हुई हो या (परिग्रहाधिकृत) दीर्घकाल तक उसके पास रहने के कारण उसे मिली हो।[51] स्त्री-धन की यह परिभाषा इतनी व्यापक है कि इसमें सभी प्रकार से प्राप्त स्त्री की संपत्ति शामिल हो गए मध्यकालीन भारत के अधिकतर धर्मशास्त्रकार विज्ञानेश्वर की इस परिभाषा से सहमत है किन्तु विश्वरूप, देवण्णभट और जीमूतवाहन, विज्ञानेश्वर के विचारों से सहमत नहीं है। इसका यह अर्थ है कि स्त्री-धन को समाज के कुछ व्यक्ति सीमित अर्थ में लेते थे और कुछ उसका व्यापक अर्थ लेते थे।

स्त्री-घन को खर्च करने के विषय में धर्मशास्त्रकारों के भिन्न-भिन्न मत हैं। मनु के अनुसार स्त्री को अपना धन भी बिना पति की अनुमति के खर्च नहीं करना चाहिए।[52] बाद के धर्मशास्त्रकारों ने स्त्री-धन को दो वर्गों में बांटा है। सौदायिक और असौदायिक। सौदायिक स्त्री-धन में माता, पिता, पति और अन्य संबंधियों से दिए हुए उपहारों की गणना की गई है। 'असौदायिक' स्त्री-धन में स्त्री की अन्य चल-संपत्ति की गणना की गई है। स्त्रियों को सौदायिक स्त्री-धन को स्वयं खर्च करने का पूर्ण अधिकार था किन्तु असौदायिक स्त्री-धन की आय मात्र का उपयोग स्त्रियां केवल अपने जीवन में कर सकती थीं। उसे किसी को देने या बेचने का अधिकार उन्हें न था।[53]

स्त्री-धन के अन्तर्गत आने वाली अचल-संपत्ति के विषय में धर्मशास्त्रकार एकतम न थे। कात्यायन के अनुसार स्त्री-धन में आने वाली अचल-संपत्ति को भी बेचने का अधिकार स्त्रियों को था।[54] किन्तु नारद के अनुसार स्त्री को केवल चल-संपत्ति को ही दान में देने या बेचने का अधिकार है।[55] इसका कारण संभवत: यह था कि अचल-संपत्ति पर परिवार का सामूहिक स्वामित्व होता था और धर्मशास्त्रकार यह नहीं चाहते थे कि पारिवारिक अचल संपत्ति का विभाजन हो। मध्यकालीन धर्मशास्त्रकार भी नारद के विचारों से सहमत है। जीमूतवाहन (लगभग 1100 ई. से 1150 ई.) ने स्त्री-धन में केवल माता-पिता, पुत्र, पति या अन्य सम्बन्धियों से दिए हुए उपहारों की ही गणना की है किन्तु उसने इसे दान में देने या बेचने का स्त्रियों को पूरा अधिकार दिया है।

सभी स्मृतिकार इन उपहारों पर स्त्री को पूर्ण स्वामित्व प्रदान करते हैं किन्तु देवल के अनुसार यदि पत्नी पतिव्रता न हो तो वह स्त्री-धन की अधिकारिणी नहीं रहती। देवल का मत था कि यदि पति स्त्री-धन को खर्च करे तो उसे यह धन ब्याज सहित पत्नी को लौटाना चाहिए।[56] किन्तु याज्ञवल्क्य के अनुसार संकट के समय पति द्वारा खर्च किए हुए स्त्री-धन को लौटाना पति के लिए अनिवार्य नहीं है।[57] कात्यायन के अनुसार यदि पति ने इसका उपयोग करते समय लौटाने का वचन दिया था तो उसे इस धन को अवश्य लौटाना चाहिए।[58]

यदि कोई स्त्री बिना सन्तान के मर जाए और उसका विवाह असुर, राक्षस आदि अवैध प्रकार से हुआ हो तो उसका स्त्री-धन उसके भाई या माता-पिता को वापिस मिलता था।[59] सन्तान होने पर अधिकतर धर्मशास्त्रों के अनुसार स्त्रीधन पुत्री को मिलना चाहिए उनमें भी विवाहित पुत्रियों की अपेक्षा अविवाहित पुत्रियों का माता के स्त्री-धन पर अधिक अधिकार समझा जाता था।[60] मनु के अनुसार स्त्री-धन पुत्र और पुत्रियों दोनों को दिया जाए।[61]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जैसे-जैसे समय बीतता गया धर्मशास्त्रकारों ने स्त्री धन को स्त्री को प्राप्त होने वाले सभी धन-राशियों और सम्पत्ति को सम्मिलित कर लिया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन भारत में स्मृतिकारों का दृष्टिकोण स्त्रियों को आर्थिक अधिकार देने के विषय में सहानुभूतिपूर्ण था।

पुत्री के रूप में-वैदिक साहित्य में अनेक ऐसे प्रसंग हैं जिनसे ज्ञात होता है कि स्त्रियों को दाय का कोई अधिकार न था।[62] पुत्री को पैतृक सम्पत्ति में से कोई भाग नहीं मिलता था। इसके विपरीत पिता को बहुधा पुत्री के विवाह मे वर से धन प्राप्त होता था। पुत्री को पिता, माता, भाई या पति से केवल उपहार के रूप में ही आभूषण, वस्त्र आदि प्राप्त होते थे।

यदि किसी कन्या का भाई नहीं होता था, उसी दशा में उसे पिता की सम्पत्ति मिलती थी क्योंकि वह अपने पुत्र द्वारा श्राद्ध आदि करा सकती थी।[63] कभी-कभी पिता धेवतों में से एक को गोद भी ले लेता था जिससे कि उसका वंश चलता रहे।[64] 400 ई. पू. तक बिना भाई वाली कन्या को पिता की सम्पत्ति मिलती थी यह बौद्ध साहित्य से स्पष्ट है। थेरीगाथा में सुन्दरी नामक कन्या की माता उसे भिक्षुणी होने से रोकती है और कहती है कि वह पिता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी है क्योंकि उसका कोई भाई नहीं है और उसका पिता भिक्षु हो गया है।[65]

आपस्तंब (लगभग 400 ई. पू.) केवल उसी दशा में पुत्री को पिता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी मानते हैं जब उसका कोई सपिंड उत्तराधिकारी न हो। ऐसा बहुत कम होता था क्योंकि पिता की सात पीढ़ियों में कोई न कोई पुरुष उत्तराधिकारी मिल ही जाता था।[66] वशिष्ठ[67], गौतम[68] और मनु[69] ने भी पुत्री को पिता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी नहीं माना है किन्तु महाभारत के अनुसार भाई न होने पर पिता की सम्पत्ति कन्या को मिलनी चाहिए।[70] उसे कम से कम पिता की सम्पत्ति का आधा भाग तो अवश्य ही मिलना चाहिए।[71] कौटिल्य भी पुत्री को पिता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी मानते हैं।[72] याज्ञवल्क्य के अनुसार विधवा पत्नी और पुत्र के बाद पुत्री को पिता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी माना जाना चाहिए।[73] बृहस्पति और नारद का भी यही मत है।[74] 500 ई. के बाद के धर्मशास्त्रकारों के याज्ञवल्क्य, बृहस्पति और नारद के मत को ही स्वीकार किया। कात्यायन के अनुसार पुत्री को उसी समय तक दाय भाग मिलना चाहिए जब तकवह अविवाहित रहे किन्तु समाज ने कात्यायन के मत को नहीं अपनाया। शुक्र के अनुसार यदि पिता अपने जीवन-काल में सम्पत्ति का बंटवारा करे तो उसे निम्नलिखित अनुपात में सम्पत्ति का विभाजन करना चाहिए- पत्नी को एक भाग, प्रत्येक पुत्र को एक-एक भाग, और प्रत्येक पुत्री को आधा भाग।

हिन्दू समाज मे साधारणतया भाई के जीवित रहते कन्या को उत्तराधिकारिणी नहीं माना जाता था। कौटिल्य का भी यही मत था।[75] केवल शुक्र का मत था कि भाईयों के साथ बहिन को भी पिता की सम्पत्ति का कुछ भाग मिलना चाहिए किन्तु सभी धर्मशास्त्रकारों के अनुसार भाई पर बहिन के विवाह का

व्यय रहने का पूरा उत्तरदायित्व समझा जाता था। याज्ञवल्क्य के अनुसार भाई को अपने दाय का चौथा भाग बहिन के विवाह पर खर्च करना चाहिए।[76] इसी प्रकार के विचार बाद के धर्मशास्त्रकारों ने व्यक्त किए हैं।[77]

विधवा के रूप में -वैदिक काल में नियोग की प्रथा विद्यमान थी अत: ऐसी बहुत कम विधवा होंगी जिनके पुत्र न हों अत: उन्हें स्वयं की सम्पत्ति की आवश्यकता नहीं होती थी। इसीलिए 300 ई. पू. तक किसी भी धर्मशास्त्र में विधवा के दाय का उल्लेख नहीं है। आपस्तंब, बौधायान और मनु ने विधवा को दाय का कोई भाग नहीं दिया है।[78]

ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में नियोग और विधवा विवाह दोनों प्रथाएं समाप्त हो गयी। विधवा के लिए अपने निर्वाह के लिए धन की आवश्यकता समझी गई अत: समाज ने विधवा के निर्वाह-मात्र धन देना आवश्यक समझा। प्रारम्भिक धर्मशास्त्रकारों और कौटिल्य ने विधवा को निर्वाह के लिए आवश्यक धन देने का विधान किया है।[79] गौतम के अनुसार विधवा को सपिंडों के साथ उत्तराधिकारिणी माना जाना चाहिए।[80] विष्णु के अनुसार विधवा को पति की पूरी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी माना जाना चाहिए।[81] याज्ञवल्क्य ने विष्णु के मत का ही समर्थन किया है।[82] इसके बाद के धर्मशास्त्रकार इस विषय में एक मत नहीं है। नारद (लगभग 400 ई.), कात्यायन (लगभग 600 ई.) और मालवा के राजा भोज (1025 से 1050 ई.) का मत था कि विधवा को किसी भी दशा में भी दाय नहीं मिलना चाहिए।[83] कुछ धर्मशास्त्रकारों के अनुसार विधवा को स्त्री-धन के अतिरिक्त 2000 से 3000 पण तक की सम्पत्ति मिलनी चाहिए।[84] अन्य धर्मशास्त्रकारों का मत था कि उसे केवल चल-सम्पत्ति मिलनी चाहिए।[85] किन्तु सुधारवादी स्मृतिकारों ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि परिवार की सम्पत्ति के पति और पत्नी दोनों संयुक्त स्वामी हैं अत: विधवा को पति की सम्पत्ति अवश्य मिलनी चाहिए।[86] याज्ञवलक्य के अनुसार विधवा माता और पुत्री को मृत-पुरुष की सम्पत्ति का आधा-आधा भाग मिलना चाहिए।[87] विधवा का सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार दक्षिण भारत में पहले स्वीकार किया गया और उत्तर भारत में बाद में। गुजरात में बारहवीं शती के मध्य तक विधवा का सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार स्वीकार नहीं किया गया। मिताक्षरा शाखा के मानने वाले उसी दशा में विधवा का अधिकार मानतें हैं जबकि उसके पति ने मृत्यु से पूर्व अपनी सम्पत्ति का बंटवारा कर दिया हो। जीमूतवाहन (1100-1150 ई.) ने विधवा को दाय भाग दिए जाने का जोर से समर्थन किया है।[88] 1200 ई. के प्राय: सभी धर्मशास्त्रकारों ने विधवा को पति की उत्तराधिकारिणी माना है। किन्तु विधवा के दाय भाग के समर्थकों ने भी उसे पति की पूरी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी नहीं माना है। महाभारत के अनुसार विधवा पति की सम्पत्ति से जो आय होती थी वही खर्च कर सकती थी।[89] बृहस्पति ने स्पष्ट लिखा है कि विधवा को पति की सम्पत्ति को बेचने या गिरवी रखने का अधिकार नहीं है।[90] उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बारहवीं शती ई. तक विधवा को पति की सम्पत्ति का आंशिक रूप से ही स्वामिनी माना जाता था।

माता के रूप में-मनु के अनुसार यदि पुत्र बिना सन्तान के मर जाए तो उसकी सम्पत्ति माता को मिलनी चाहिए।[91] इसी विचार से प्राय: सभी धर्मशास्त्रकार सहमत हैं। याज्ञवल्क्य के अनुसार पुत्रों के जीवित होने पर भी माता को उनके बराबर पैतृक सम्पत्ति का एक भाग मिलना चाहिए। शुक्र का मत है कि माता के भाग चौथाई भाग मिलना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि परिस्थितियां बदलने पर समाज स्त्रियों की आर्थिक स्थिति में सुधार करना चाहता था। पुरुषों को अपने अधिकारों को सुरक्षित रखने के अधिक अवसर प्राप्त थे और स्त्रियों को ये अवसर प्राप्त न थे किन्तु समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर धर्मशास्त्रकारों ने आवश्यक परिवर्तन किए। स्त्री-धन का क्षेत्र बारहवीं शती ईसवी तक बहुत विस्तृत हो गया। किन्तु पति से बंटवारा करने का अधिकार पत्नी को कभी नहीं दिया गया। पुत्री के विवाह का उत्तरदायित्व पिता पर था। उसकी मृत्यु होने पर भाई को बहिन के विवाह का पूरा व्यय करना होता था। भाई न होने पर बहिन दाय की स्वामिनी होती थी। बहुत काल तक विधवा को दाय का भाग नहीं दिया गया किन्तु वह पति की सम्पत्ति की आय को खर्च कर सकती थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन भारत के धर्मशास्त्रकारों ने स्त्रियों के भरण-पोषण का उत्तरदायित्व सदा ही पति या उसके सम्बन्धियों पर रखा। जब संयुक्त परिवार में उनके भरण-पोषण की व्यवस्था करना कठिन हो गया तो धर्मशास्त्रों ने स्त्री की प्रत्येक प्रकार की आय को चाहे वह चल-सम्पत्ति हो या अचल स्त्री-धन में सम्मिलित कर दिया। विवाह-विच्छेद की स्थिति हो जाने पर भी पति पत्नी के भरण-पोषण के उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं होता था।

पाद टिप्पनियां :-

1. मनुस्मृति ,9, 46.
2. वही 9, 47.
3. वही, 9, 101.
4. मनुस्मृति , 9, 79.
5. वही, 9, 175-176
6. पांडुरंग वामन काणे-हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र जिल्द 2, भाग 1, पृ0 608.
7. वशिष्ठ, ध, सू. 17, 67
8. अंतत: परं धर्मस्थर्विसृष्टा यथेष्टं विंदेत। अर्थशास्त्र, 3, 4
9. अर्थशास्त्र 3, 3
10. धम्मपद 2, 82 और उसकी टीका, थेरीगाथा 72 और उसकी टीका.
11. जातक संख्या 444
12. न शूद्राया: स्मृत: कालो न धर्म व्यतिक्रम। विशेषतो प्रसूताया: स्त्रिया: संवत्सराद्विधि।। नारद- शूद्रकमलाकर।
13. संधस्तत्वप्रियवादिनी। मनु. 9, 81.
14. मनुस्मृति, 78.

15. वही, 9, 47
16. वही, 9, 83
17. वही, 9, 75
18. नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पति ने पतौ। पे्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते। नारद स्त्री पुंस. 97; पराशर 4, 30. अग्नि पुराण, 454, 5-6
19. गौतम, ध. सू, 22, 35.
20. याज्ञवल्क्यस्मृति, 1, 70, 72
21. व्यासस्मृति, 2, 49-50.
22. मनुस्मृति, 5(157
23. नारदस्मृति, 12, 28.
24. वही, 12, 97
25. महाभारत, 13, 55, 7
26. वशिष्ठ, ध. सू. 17, 66
27. बौधायन, ध. सू. 2,2,4,7
28. ऊदाया: पुनरूद्राहं ज्येष्ठाशं गोवधं तथा। कलौ पंच न कुर्वीत भ्रातृ-जायां कमण्डलुम। आदित्यपुराण, 21, 14
29. स्मृति-चंद्रिका, पृ. 211
30. विष्णुस्मृति, 6, 21, याज्ञवल्क्यस्मृति 2, 47
31. ऋग्वेद, 1, 126, 3
32. महाभारत, 5,86,8
33. वही, 2, 86, 40, 289, 17
34. आपस्तंब, ध. सू. 2,6,14,16-20
35. वृद्धौ च माता पितरौ साध्वी भार्या सुत: शिशु: अप्यकार्यशतं कृत्य भर्तव्यं मनुरब्रबीता।।
36. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2, 76
37. वशिष्ठ, ध. सू. 28, 2 आदि
38. विज्ञानेश्वर टीका याज्ञवल्क्य 2, 32
39. वही, 2, 52
40. आपस्तंब, ध. सू. 2, 6 14, 9
41. अर्थशास्त्र, 3; 2
42. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2, 145
43. तैत्तिरीय संहिता, 6, 2, 1, 1
44. मनुस्मृति, 8, 416
45. बौधायन, ध. सू. 2, 2, 44
46. मनुस्मृति, 9, 194
47. विष्णुस्मृति, 17, 18
48. पितृ मातृ पति भ्रातृ सातृभि: स्त्री धनं स्त्रियै। यथाशक्तया द्वि साहस्त्रत दात्वयं स्थवरदृते।। उद्धत स्मृतिचंद्रिका।
49. द्द्याद् धनं पर्याप्तं क्षेत्रंशं या यदिच्छति। पराशर- माधवीय, पृ0 369
50. वृत्तिराभरणं शुल्कं लाभाश्च स्त्रीधनं भवेत्। देवल।
51. विज्ञानेश्वर टीका याज्ञवल्क्य स्मृति, 2, 143
52. मनुस्मृति, 9, 299
53. कात्यायनस्मृति दायं भाग।
54. वही।
55. व्यवहारमयूख, पृ. 97 पर उद्धृत।
56. वही, पृ. 98 पर उद्धृत।
57. दुर्भिक्षे धर्म-कार्ये च व्याधौ सम्प्रति रोधके। गृहीतं स्त्रीधन भर्ता न स्त्रियों दातुमर्हति।। याज्ञवल्क्य स्मृति 2, 147
58. स्मृतिचंद्रिका व्यवहारकांड, पृ0 659 पर उद्धृत।
59. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2, 145
60. विज्ञानेश्वर-टीका, याज्ञवल्क्य स्मृति, 2, 145

61. मनुस्मृति, 9, 192
62. तैत्तिरीय संहिता, 6, 5, 8, 2. शतपथ ब्राह्मण, 4, 4, 2, 13.
63. ऋग्वेद, 7, 4, 8
64. वही, 1, 124, 7
65. थेरीगाथा, पृ. 327
66. आपस्तंब ध. सू. 15, 7
67. वशिष्ठ, ध. सू. 15, 7
68. गौतम, ध. सू. 28, 21
69. मनुस्मृति, 9, 185
70. महाभारत 13, 80, 11
71. वही, 13, 88, 22
72. अर्थशास्त्र, 3, 5
73. याज्ञवल्क्यस्मृति, 2, 135

महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं डॉ. बी.आर. अम्बेडकर की दृष्टि में सामाजिक सामञ्जस्य का आधार

डॉ० संदीप कुमार

उल्लेखनीय है, जिस समाज मे जाति, सम्प्रदाय, छुआछूत, शिक्षा सम्बन्धी भिन्नताएं विद्यमान हो और टकराव या संघर्ष की आशंका बनी हो वहां ऐसी स्थिति में सामाजिक सामञ्जस्य स्थापित करने की आवश्यकता होती है। क्योंकि जिस समाज और देश में आपसी मतभेद और लड़ाई झगड़े होते हैं, वह समाज और देश छिन्न-भिन्न होकर अधोगति को प्राप्त हो जाता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती और डॉ०बी.आर.अम्बेडकर ने सामाजिक विषमता को दूर करने के साथ-साथ सामाजिक सामञ्जस्य स्थापित करने का मुख्य प्रयत्न किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती मानते है, कि- "स्वायम्भूव राजा से लेकर पाण्डवपर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य था, तत्पश्चात् आपस के विरोध से लड़ कर नष्ट हो गये।" जिसके उपरांत वैदिक समाज व्यवस्था- जो वर्णाश्रम पर आधारित थी और व्यक्ति के गुण एवं कर्मो के आधार पर वर्ण का निर्धारण किया जाता था, इस व्यवस्था में दोष आने के उपरांत वर्ण का निर्धारण गुण एवं कर्मो पर न रहकर जन्म पर माना जाने लगा, जिसके कारण समाज में अनेक विषमता प्रारम्भ हुई, यथा- जातिवाद, सम्प्रदायवाद, छुआछूत आदि।

वहीं डॉ०बी0आर0अम्बेडकर भी जातिवाद, सम्प्रदायवाद, अशिक्षा , छुआछूत आदि को सामाजिक विषमता का मुख्य कारण मानते है। इसी कारण समाज में आपसी मतभेद और टकराव की आशंका बनी रही है। वैसे तो डॉ. अम्बेडकर उपर्युक्त सामाजिक विषमता की जड़े वर्ण व्यवस्था में मानते है, परंतु वें स्वामी दयानन्द के वर्ण सम्बन्धी विचारों से सहमति भी प्रकट करते है , इस सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर कहते हैं, कि-

"स्वामी दयानन्द की वर्ण व्यवस्था काफी हद तक न्यायसंगत और औचित्य पूर्ण है,- यद्यपि मैं वर्ण-व्यवस्था को अस्वीकार करता हूँ ,लेकिन मैं मानता हूँ कि स्वामी दयानन्द व कुछ अन्य लोगों ने वैदिक वर्ण व्यवस्था की जो व्याख्या की है वह बुद्धिमत्तापूर्ण और घृणास्पद नहीं है।"

इसके साथ-साथ उनका उनका अन्य मन्तव्य है,कि- वर्ण व्यवस्था के नाम पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नाम देना उचित नहीं है। उनका मानना है,कि- व्यक्ति की पहचान इन लेबलो के बिना भी हो सकती है। वर्ण के बदले हुए रूप को ही वें जाति के रूप में देखते हैं। परंतु वे स्वामी दयानंद द्वारा प्रतिपादित वर्ण व्यवस्था से इसलिए सहमत है, क्योंकि इसमें गुणों के आधार पर वर्ण का निर्धारण किया गया है और सभी के लिये समान अवसर की बात की गयी है।

प्रेरक परंपरा- स्वामी दयानन्द सरस्वती वैदिक परंपर का अनुकरण करते हुये सामाजिक सामञ्जस्य हेतु वैदक समाज व्यवस्था की पुनर्स्थापना को अनिवार्य मानते है। इसीलिए वें कुछ मंत्रों के माध्यम से कहते है,यथा-

"सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ओ शान्तिश्शान्तिश्शान्ति:।"

उपर्युक्त मन्त्र के माध्यम से स्वामी दयानन्द कहते हैं, कि-"सभी स्त्री-पुरुष, सेवक-स्वामी, मित्र-मित्र, पिता-पुत्र, हम दोनों प्रीति से एक-दूसरे की रक्षा करे और प्रीति से मिलके एक-दूसरे के पराक्रम की बढ़ती सदा किया करें। हम एक-दूसरे से कभी विद्वेष, विरोध न करें किन्तु सदा मित्रभाव और एक-दूसरे के साथ सत्य प्रेम से वर्त्तकर सब गृहस्थों के सद्व्यवहारों को बढ़ाते हुए सदा आनन्द में बढ़ते जावे।"

पुन: इसी संदर्भ में वें कहते है-

"गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि .....संजानाना उपासते।"

स्वामी दयानन्द उपर्युक्त वेद मन्त्र के माध्यम से सामाजिक सामञ्जस्य सम्बन्धी विचारों को प्रस्तुत किया है। जिसमें वें कहते हैं, कि "सत्य और असत्य का निर्णय करके असत्य को छोडके सत्य की उपासना करते हुए एक-दूसरे की उन्नति सदा किया करें।"

वहीं डॉ.बी.आर.अम्बेडकर सामाजिक समरसता हेतु बौद्ध धम्म की अनिवार्यता को मानते है। इन्ही दार्शनिक आधार पर वें स्वतन्त्रता, समता, बन्धुता के साथ-साथ शिक्षा, संगठन, एवं संघर्ष की बात करते है। जो सभी के लिए ग्राह्य है जिसके अनुकरण से स्वयं की उन्नति के साथ-साथ, समाज एवं राष्ट्र की उन्नति भी सम्भव हैं।

उपर्युक्त परम्पराओ आधार पर दोनों समाज दार्शनिकों ने समाज में सामञ्जस्य कैसे स्थापित हो? कैसे सभी को समान अवसर प्राप्त हो? आपसी मतभेद, जातिगत द्वेष, ऊँच-नीच की भावना को समाप्त कैसे किया जा सकता है ? आदि-आदि अनेक समस्याओं का निराकरण करने का प्रयास किया है। इसी आध ार पर कुछ बिंदुओ को इस शोध लेख में दे रहा हूँ,यथा-

समान शिक्षा का अधिकार -स्वामी दयानन्द सामाजिक सामञ्जस्य हेतु वैदिक समाज व्यवस्था के अनुसार सर्व प्रथम सभी के लिए शिक्षा के अधिकार को देने की अनिवार्यता को मानते हैं। जिसमें सभी वर्ग/समाज के बच्चे बिना किसी भेद-भाव, के शिक्षा का अर्जन कर स्वयं की उन्नति के साथ-साथ सामाजिक उन्नति भी कर सके। इसके लिए वे वर्तमान में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था के स्थान पर गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली को लागू करने हेतु समाज को प्रोत्साहित करते हैं। जिसमें सभी अमीर-गरीब के बच्चों को एक छत के नीचे समान शिक्षा दी जा सके।

इस सम्बन्ध में स्वामी दयानन्द कहते हैं, कि- सभी के लिए पाठशाला में तुल्य वस्त्र, खान-पान, आसन दिये जावे, चाहे वह राजाकुमार या राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सभी तपस्वी हो। इस प्रकार की व्यवस्था लागू होने पर बाल्यकाल से ही बच्चों के अन्दर से ऊँच-नीच स्वत: ही समाप्त हो जायेगी। क्योंकि गुरुकुलीय शिक्षा व्यवस्था में बिना जाति की जानकारी के सभी शिक्षा प्रारम्भ करते हैं। जिसके बाद बच्चे की योग्यता और कार्यकुशलता के अनुसार वर्ण का निर्धारण होता है। इसके साथ-साथ वे लड़कियों को भी लड़को के समान शिक्षा के अधिकार की बात करते हैं। इस सन्दर्भ में स्वामी दयानन्द कहते हैं। कि ष कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्य कुल अर्थात् अपनी-अपनी पाठशाला में भेज देंष। इसके साथ-साथ स्वामी दयानन्द ने स्त्री और शूद्रों को भी अन्य वर्णों की तरह समान शिक्षा देने की बात कही है।

इसी संबंध में डॉ. बी. आर. अम्बेडकर भी सामाजिक सामञ्जस्य हेतु समान शिक्षा के अधिकार को मुख्य स्थान देते है जिससे सभी जाति, धर्म, संप्रदाय के बच्चे समान शिक्षा के लाभ से लाभान्वित हो सके।

इस सन्दर्भ में डॉ. बी. आर. अम्बेडकर कहते हैं कि- शूद्रों का उपनयन न करके उन पर विद्या आदि न ग्रहण करने हेतु प्रतिबन्ध लगाया गया जिससे वे समाज में निम्न स्तर पर पहुँच गये। एसलिए उन्होंने ऐसी समाज व्यवस्था का विरोध करते हुए सभी के लिए समान शिक्षा सम्बन्धी विचारों को समाज के सम्मुख रखा। वें मानव जाति को समृद्धिशील बनाने एवं सामंजस्य स्थापित करने के लिए शिक्षा की अनिवार्यता को स्वीकार करते हैं। इसी उदेश्य से उन्होंने शिक्षा में सुधारत्मक दृष्टि के साथ-साथ निम्न वर्गों के विद्यार्थियों को भी विज्ञान एवं टैक्नॉलोजी में शिक्षा प्रदान कर उनके लिए "आरक्षित सीट और नि:शुल्क शिक्षा के साथ-साथ छात्रवृत्तियों की व्यवस्था का प्रावधान अनिवार्य माना है।"

इसी संबंध में वें पुन: कहते है- राज्य द्वारा पोषित या राज्य-निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी के आधार पर किसी को शिक्षा से वञ्चित नहीं किया जायें

डॉ. अम्बेडकर सामाजिक सामञ्जस्य हेतु समाज के सभी वर्गों के बच्चों के लिए शिक्षा की अनिवार्यता पर इसलिए बल देते हैं, क्योंकि बाल्यकाल में जब सभी वर्गों के बच्चे एक ही स्कूल में बिना भेद-भाव के शिक्षा ग्रहण करेगे तो बचपन से ही उनके अन्दर से जातिगत विषमता, ऊँच-नीच के भाव स्वत: ही समाप्त हो जाएगी। लेकिन आज के समय में शिक्षा का औद्यौगिकरण हो चुका है। जिसके कारण निजी शिक्षण संस्थानों का बोलबाला हो चुका है और इन शिक्षण संस्थानों में केवल उच्च या मध्यम वर्ग के बच्चे ही शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। धन के अभाव में निम्न वर्ग इससे वञ्चित होते जा रहे है। उन्होंने समान शिक्षा हेतु निजी शिक्षण संस्थानों के स्थान पर समाज और राज्य द्वारा संचालित शिक्षण संस्थानों को ही उचित माना है।

अत: शिक्षा का निजिकरण न होकर राज्य के आधीन होना अनिवार्य हो, जिससे सभी को समान शिक्षा के अवसर प्रदान हो तथा गरीब एवं वञ्चित वर्गों को भी शिक्षा का लाभ मिले जिससे सभी मिलकर राष्ट्रोन्नति में सहभागिता कर सकें।

स्वामी दयानंद और डॉ० अंबेडकर के विचारों से स्पष्ट होता है कि- दोनों समाज दार्शनिकों ने सामाजिक सामञ्जस्य/समरसता हेतु समान शिक्षा की अनिवार्यता को स्वीकार किया है।

जाति व्यवस्था का विरोध-स्वामी दयानन्द वैदिक समाज के पर आधार पर जाति व्यवस्था का विरोध किया है। वे सभी मनुष्यों की जन्म से एक जाति मानते हैं, यथा-

जैसे स्त्री के गर्भ से पैदा होने पर सभी मानव जाति से सम्बन्ध रखते हैं। वैसे ही पशु आदि के गर्भ से पैदा होने पर पशु ओर पक्षी आदि से पैदा होने पर पक्षी के अन्तर्गत गिना जाता है। ठीक उसी प्रकार सभी मनुष्यों को स्वामी दयानन्द मनुष्य जाति के अन्तर्गत मानते हैं। इस सम्बन्ध में वे अन्य ग्रन्थों का भी प्रमाण देते हैं। यथा- न्याय दर्शन में कहा है- "समानप्रसवात्मिका जाति:।"

उपर्युक्त दर्शन सूत्र आधार पर जाति शब्द का उच्चारण इस प्रकार होना चाहिए कि मनुष्य जाति, पशु जाति, आदि।

स्वामी दयानन्द ने उपुर्यक्त आधार पर सभी मनुष्य को एक जाति के अन्तर्गत रखा है। इसके साथ-साथ उन्होंने जन्म पर आधारित वर्तमान में प्रचलित जाति, उपजातियों का विरोध करते हुए वैदिक वर्णव्यवस्था को लागू करने का आह्वान किया है। जिसमें व्यक्ति के गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार व्यक्ति को जाति के स्थान पर वर्ण के अन्द गिना जावे।

"स्वामी दयानन्द के जाति और वर्ण व्यवस्था को समझने के लिए जतिनिर्मूलन और दलितोद्धार हेतु आर्य समाज के माध्यम से 1936 में डॉ. अम्बेडकर को जात-पाँत तोड़कर अधिवेशन में अध्यक्षता के लिए आमन्त्रित भी किया था।" जससे जाति और वर्ण को ठीक-ठीक समझकर समाजिक सामञ्जस्य मजबूत किया जा सके।

उल्लेखनीय है-डॉ.बी०आर०अम्बेडकर भी भारतीय समाज में सामाजिक सामञ्जस्य हेतु जाति एवं छूआछूत विहीन समाज को मान्यता देते हैं। वें मानते है,कि-व्यवस्था के कारण आपसी मनमुटाव की भावना लगातार बढ़ रही है। जाति के कारण ही उनमें अनेक रीति रिवाज और खानपान भी भिन्न-भिन्न है। इस सन्दर्भ में उनका कथन विचारणीय है -जिसमें उन्होंने जाति के सम्बन्ध में कहा है- "जाति संस्था के कारण ही हिन्दू समाज का विघटन हुआ है ,उसका नैतिक पतन हुआ है, हिन्दू समाज कोई समाज नहीं है बल्कि यह विभिन्न जातियों की 'पोटली' है।"

इसी सन्दर्भ में उनका पुन: विचार है- "इसी जाति व्यवस्था ने लाखों परिवारों को पशुवत् जीवन जीने पर विवश किया हुआ है, उनकी सामाजिक स्थति पशु से भी बदतर है। छूआछूत को भी समाज से बाहर निकालना होगा।" उन्होंने जाति एवं छुआछूत आधारित समाज व्यवस्था को राष्ट्र के लिए भी अहितकर

माना है।-इस सम्बन्ध में उनका कथन है- "जाति एवं छुआछूत प्रथा के कारण ही समाज में विषमता पैदा हुयी है और इसी व्यवस्था के कारण कोई भी समाज एवं राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता इसलिए वे इस व्यवस्था को नेस्तनाबूद करने की सलहा देते।" जिससे समाज में आपसी सामजंस्य की स्थापना हो सके।

अन्तर्जातीय भोज एवं विवाह को प्रोत्साहन- दोनों ही समाज दार्शनिकों ने जहां जाति व्यवस्था का विरोध किया वही अंतर्जातीय विवाह और खान-पान को सामाजिक सामन्जय हेतु उचित माना है। स्वामी दयानन्द ने सामाजिक सामन्जय को बढ़ावा देने के लिए गुण, कर्म के आधार पर विवाह को प्रोत्साहन दिया है, जिसको आज अंतर्जातीय विवाह के नाम से भी जाना जाता है। इस सम्बन्ध में वें वेदोक्त मंत्र देते हुए कहते हैं,-यथा "ब्रह्मचर्य्येण कन्या3युवानां विन्दते पतिम।"

उपर्युक्त वेद मन्त्र के माध्यम से स्वामी दयानन्द कहते है, कि- सभी को ब्रह्मचर्य पूर्वक पूर्ण विद्या को पढ़के अपने-अपने गुणों के सादृश विवाह करने का विधान है। जिसको स्वामी दयानन्द ने भी माना है। इसी पद्धति के आधार पर ही स्वामी दयानन्द के अनुयायियों ने आर्य समाज के द्वारा अंतर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन दिया। इसी उद्देश्य से आर्य समाज ने "20 फरवरी 1925 में जात-पात तोड़कर मण्डल के द्वारा अपने वार्षिक अधिवेशन में इसका प्रस्ताव रखते हुए कहा था कि विवाह आदि के कार्यों में जो मौजूदा बन्धन हैं, उन्हें तोड़े और जाति से बाहर निकलकर विवाह करें।" इसी प्रेरणा स्वरूप पढ़ा-लिखा वर्ग परिवार की सहमति से अपने गुण और कर्मों के आधार पर विवाह कर जाति बन्धन को तोड़ रहा है, जो समाज को जोड़ने का कार्य कर जाति व्यवस्था को समाप्त कर आपसी सामञ्जस्य को बढ़ावा देता हैं।

डॉ. अम्बेडकर ने भी अन्तर्जातीय विवाह को भी प्रोत्साहन दिया। जिसका उन्होंने स्वयं भी पालन किया और उन्होंने पहली पत्नी के देहावसान के उपरान्त दूसरी शादी ब्राह्मण कुल की महिला डॉ.शारदा कबीर जो बाद में सविता अम्बेडकर के नाम से जानी गयी उनके शादी की। वें मानते है,कि- अन्तर्जातीय विवाह हमे पीढ़ीदर-पीढ़ी करना होगा तभी दशों पीढ़ी के बाद जाति के वर्चस्व को समाप्त कर सामाजिक सामञ्जस्य को स्थापित किया जा सकता है।

उपर्युक्त आधार पर डॉ०अम्बेडकर कहते हैं कि रक्त के "एकीकरण से ही आपसी भाईचारे की भावना पैदा की जा सकती है।" वें मानते हैं सामाजिक सामञ्जस्य हेतु अन्तर्जातीय अनिवार्य है। जिससे समाज में सभी आपस में मिलकर रहे और जातिविहीन समाज के द्वारा आपसी सामञ्जस्य को बढायें।

उल्लेखनीय है,- आज भी समाज मेन अनेक स्थानों पर शूद्रों के प्रति खान-पान, रहन-सहन के आधार पर भी उनसे भेद-भाव किया जाता है। इसी आध र पर उनको सामुहिक भोज में एक अलग स्थान पर अन्य जातियों से अलग बिठाया जाता है,जो एक विषमता का प्रमुख कारण है। इसके साथ-साथ कहीं-कहीं पर ग्रामीण समाज में उनकी बस्तियां भी अलग ही होती है और उनको समाज में अन्य जातियों की अपेक्षा अलग दृष्टि से देखा जाता है। इसी कारण समाज में आपसी द्वेष बढ़ रहा है ,जिसका निवारण वें उचित मानते है। डॉ०अम्बेडकर मानते है,कि-जब समाज मे अन्तर्जातीय विवाह अर्थात बेटा-बेटी का संबंध होगा तो वहाँ रोटी का संबंध तो होना स्वाभाविक है ,इससे आपसी खान-पान ,रहन-सहन को बढ़ावा मिलेगा। इसीलिए उन्होने समाज में आपसी सामञ्जस्य को बढ़ाने के लिए अन्तर्जातीय विवाह के साथ-साथ एक साथ बैठकर अन्तर्जातीय भोज को भी प्रोत्साहन दिया है।

कुल मिलाकर हम कह सकते है,कि- दोनों ही समाज दार्शनिको ने मध्यकालीन भारतीय समाज व्यवस्था यथा- जातिवाद, छुआछूत, ऊँचनीच, आपसी द्वेष आदि को नकारते हुए सामाजिक सामञ्जस्य स्थापित करने का अथक प्रयास किया। जिसके लिए स्वामी दयानंद ने वैदिक समाज/वर्णाश्रम व्यवस्था की अनिवार्यता को स्वीकार किया है।

वहीं डॉ.बी.आर.अंबेडकर ने बौद्ध धर्म की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुये स्वतन्त्रता, समता और बंधुता मूलक समाज को सामाजिक सामञ्जस्य हेतु अनिवार्य माना है।

Footnote

1- पूर्व शोध छात्र दर्शन शास्त्र विभाग गुरुकुल काँगड़ी वि०वि० हरिद्वार-(वर्तमान पता-गाँव व पोस्ट, झबीरन निकट रविदास मंदिर सरसावा सहारनपुर पिन-247232,मो०-9457085161,मेल skarya8319@gmail-com

2- सरस्वती, महर्षि, दयानन्द : सत्यार्थ प्रकाश, एकादश समुल्लास, उत्तरार्ध भाग, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिसम्बर, 2014, पृ. सं. 225
3- अम्बेडकर डॉ. बी.आर. : बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड-01 भारत में जाति....., डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, पृ. सं. 119
4- तै0आर0अष्टमप्रपाठक/प्रथम अनुवाक
5- सरस्वती स्वामी दयानन्द : संस्कार विधि गृहाश्रमप्रकरण, 2010 आर्ष साहित्य प्रकाशन दिल्ली, पृ. सं. 201
6- ऋग्वेद मं010/सू0191/मं02
7- सरस्वती स्वामी दयानन्द : संस्कार विधि गृहाश्रम प्रकरण, 2010 आर्ष साहित्य प्रकाशन दिल्ली, पृ. सं. 200
8- सरस्वती स्वामी दयानन्द : सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ..., दिल्ली, पृ. सं. 40
9- सरस्वती स्वामी दयानन्द : सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ..., दिल्ली, पृ. सं. 40
10- अम्बेडकर डॉ बाबासाहेब- डॉ. अम्बेडकर का सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड-13, पृ. सं. 164
11- अम्बेडकर डॉ बाबासाहेब-खण्ड-19, शैक्षिक शिकायते, पृ. सं. 27
12- जाटव डॉ. डी. आर. : सामाजिक न्याय का सिद्धांत, समता साहित्य सदन, जयपुर, 2015, पृ. सं. 174
13- न्यायदर्शन : 1/1/59/
14- भारतीय डॉ भवानीला: ऋषि दयानन्द के सर्वश्रेष्ठ प्रवचन, विजय कुमार हासानन्द, दिल्ली, 2016, पृ. सं. 128
15- शास्त्री, डॉ. कुशलदेव : आर्य समाज और डॉ. अम्बेडकर, श्री घूड़मल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, 2008, पृ. सं. 27

16. अम्बेडकर डॉ. बी. आर. बाबासाहेब–जातिभेद का बीजनाश(जातिवाद का उच्छेदक) सम्यक् प्रकाशन, 2013 दिल्ली, पृ. सं. 08
17. अम्बेडकर बाबा साहेब : सम्पूर्ण वाङ्मय–अस्पृश्यता अथवा भारत की बहिष्कृत जातियों के प्राणी, खण्ड–9, पृ. सं. 39
18. अम्बेडकर डॉ. बी. आर. बाबासाहेब : जातिभेद का बीजनाश(जातिवाद का उच्छेदक)सम्यक प्रकाशन, 2013 दिल्ली, पृ. सं. 66
19. अथर्ववेदसंहिता अ03/प्र024/कां011/मं018
20. शास्त्री डॉ. कुशलदेव शास्त्री : आर्य समाज और डॉ. अम्बेडकर, श्री घूड़मल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, 2008, पृ. सं. 26
21. अम्बेडकर डॉ. बी. आर. बाबा साहेब : जाति भेद का बीजनाश (जातिवाद का उच्छेदक) सम्यक् प्रकाशन, 2013 दिल्ली, पृ. सं. 65

भारत के दलितों में शिक्षा ग्रहण करने की स्थिति: एक विश्लेशणात्मक अध्ययन

डॉ० सीमा कुमारी

असिस्टेंट प्रोफेसर, गृह-विज्ञान विभाग, पी0 आर0 आर0 डी0 कॉलेज, बैरगनिया, सीतामढ़ी

सार

शैक्षिक प्रणाली में दलितों के खिलाफ भेदभाव जाति-प्रभावित देशों में एक व्यापक समस्या है। प्राथमिक शिक्षा से विश्वविद्यालय तक अलगाव, सामाजिक बहिष्कार और शारीरिक शोषण शिक्षा के सभी स्तरों को पार करते हैं। कई सामाजिक और भौतिक कारकों के कारण दलितों में निरक्षरता और ड्रॉप-आउट की दर बहुत अधिक है। क्षेत्र पर विधान सीमित है, और जो उपाय किए गए हैं वे अक्सर अपर्याप्त रूप से लागू किए जाते हैं। सरकारों को अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार सिद्धांतों के अनुसार दलितों के लिए शिक्षा के समान पहुंच सुनिश्चित करने के लिए विशिष्ट उपाय करने की सिफारिश की जाती है। विशेष रूप से, आईडीएसएन सरकारों, राष्ट्रीय संस्थानों, संयुक्त राष्ट्र के विशेषज्ञों और एजेंसियों, साथ ही नागरिक समाज संगठनों को बुलाता है, संयुक्त राष्ट्र के सिद्धांतों और दिशानिर्देशों में काम और *वंश के आधार पर भेदभाव के प्रभावी उन्मूलन के लिए मसौदा सिफारिशों में निहित सिफारिशों को ध्यान* में रखना चाहिए। प्रस्तुत पत्र के अन्तर्गत भारत में दलितों में शिक्षा ग्रहण करने की स्थिति पर विश्लेशण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्द:दलित शिक्षा; ड्रॉप आउट दर; शौक्षणिक भेदभाव; विधायी प्रावधान; सिफारिशें।

परिचय

अन्य देशों की तुलना में प्रभावित देशों में दलित बच्चों की निरक्षरता दर आम तौर पर अधिक है। हालाँकि पिछले वर्षों में दलितों के बीच साक्षरता दर में वृद्धि हुई है, फिर भी उनके और अन्य बच्चों के बीच साक्षरता की खाई चौड़ी है। शिक्षा की पहुंच में बाधा उत्पन्न करने के अलावा, व्यापक अशिक्षा के परिणामस्वरूप दलितों के लिए रोजगार के बेहतर विकल्प नहीं हैं। 2006 से यूनिसेफ की एक रिपोर्ट इस तथ्य की ओर इशारा करती है कि शिक्षा की गुणवत्ता अक्सर इतनी कम होती है कि बच्चे ह्यंत्र्वत् प्राथमिक शिक्षा के पांच साल गुजारते हैं और मुश्किल से साक्षर बनते हैंह (यूनिसेफ, 2006: ए))। एक ही अध्ययन का निष्कर्ष है कि प्राथमिक शिक्षा में निम्न स्तर की पूर्णता दर की व्याख्या करने में शिक्षा की खराब गुणवत्ता एक महत्वपूर्ण कारक है। दलित बच्चों के लिए ड्रॉपआउट दर आम तौर पर उच्च है, खासकर प्राथमिक स्तर पर। दरअसल, यूनिसेफ के अनुसार भारत में दलितों के बीच ड्रापआउट दर प्राथमिक स्कूल (2006: B) में 44.27 प्रतिषत है। नेपाल के आँकड़े अशिक्षा दरों और नामांकन शेयरों के संबंध में दलित आबादी की हिस्सेदारी के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर को दर्शाते हैं। हालांकि सामान्य ड्रॉपआउट दर में आम तौर पर कमी आई है, दलित बच्चों और अन्य बच्चों के बीच ड्रॉपआउट दरों में अंतर वास्तव में कुछ देशों में व्यापक है। भारत में, दलित युवाओं और सभी भारतीय युवाओं के बीच ड्रॉपआउट दरों में अंतर वास्तव में 4.39 प्रतिषत से बढ़ा है। (IDSN और नवसर्जन ब्रीलग नोट, 2010)।

स्कूलों में दलित बच्चों के खिलाफ भेदभावपूर्ण व्यवहार, संरचनात्मक भेदभाव, अलगाव और दुर्व्यवहार के रूप जो दलित बच्चों का सामना स्कूलों में होता है, वे इतने कलंकित हैं कि वे अक्सर स्कूल से बाहर निकलने के लिए मजबूर हो जाते हैं। मुख्य मुद्दों में से एक शिक्षकों द्वारा आयोजित भेदभावपूर्ण अभ्यास है। 2006 में, शिक्षा के अधिकार पर विशेष रूप से उल्लेख किया गया कि हशिक्षकों को यह घोषित करने के लिए जाना जाता है कि दलित छात्र तब तक नहीं सीख सकते जब तक कि उन्हें पीटा न जाए'' (HRW, 2007)। शिक्षकों द्वारा प्रयोग किए जाने वाले दलित बच्चों के खिलाफ भेदभावपूर्ण प्रथाओं में शारीरिक दंड, स्कूल के पानी की आपूलृत तक पहुंच से वंचित करना, क्लास रूम में अलगाव, और दलित बच्चों को स्कूल परिसर (आईडीएनएन और नवसर्जन ब्रीलग नोट, 2010) पर मैनुअल मैला ढोने के लिए मजबूर करना शामिल हो सकता है। स्कूल में जाति-आधारित भेदभाव पर एक नेपाली अध्ययन ने प्रलेखित किया कि शिक्षकों द्वारा अप्रत्यक्ष भेदभाव, जैसे कि उपेक्षा, बार-बार दोषारोपण, और दलित छात्रों को कमजोर प्रदर्शन के रूप में लेबल करना, स्कूलों में दलित छात्रों के सामाजिक बहिष्कार का कारण बनता है। इसका परिणाम कक्षा में अनियमित उपस्थिति, पढ़ाई में कम एकाग्रता, स्कूल की गतिविधियों में कम भागीदारी, कम प्रदर्शन, किलता और स्कूल ड्रॉप-आउट (डी.आर. बिरवा, 2010) था। इसके अतिरिक्त, दलित बच्चों को समग्र रूप से साथी छात्रों और समुदाय से भेदभावपूर्ण रवैये का सामना करना पड़ता है, विशेष रूप से उच्च जाति के सदस्यों से जो दलितों के लिए शिक्षा को बर्बादी और एक खतरा मानते हैं। यह कुछ उच्च जाति के लोगों के बीच एक धारणा से जुड़ा हुआ है, जो शिक्षित दलितों को गांव की पदानुक्रमों और शक्ति संबंधों के लिए खतरा पैदा करते हैं, और यह कि दलित आमतौर पर शिक्षित होने में असमर्थ हैं (वासवी एट अल., 1997)। उच्च ड्रॉप-आउट दरों को जोड़ने वाले अन्य कारक दलितों की खराब शैक्षिक स्थिति सामाजिक और भौतिक दोनों कारकों के कारण है। अत्यधिक गरीबी जिसमें अधिकांश दलित परिवार रहते हैं, एक और अंतर्निहित कारण है कि दलित बच्चों की ड्रॉप-आउट दर इतनी अधिक है। कई माता-पिता बस अपने बच्चों को स्कूल भेजने का जोखिम नहीं

उठा सकते हैं और परिवार के अस्तित्व को सुनिश्चित करने के लिए अपने कार्यबल पर निर्भर हैं। स्कूलों की दूरी को दलित बच्चों के लिए एक बड़ी बाधा माना जाता है, और कम नामांकन दर और उच्च ड्रॉपआउट दर के स्पष्टीकरण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। दलितों के साथ-साथ रहने के लिए उच्च जाति समूहों की अनिच्छा के कारण, दलित परिवार अक्सर मुख्य गांवों और स्कूलों से दूर, दूरदराज के इलाकों में रहते हैं। इस आवासीय पैटर्न के दो प्रमुख निहितार्थ हैं। सबसे पहले, मुख्य गांवों के भीतर स्कूलों का स्थान, और इसलिए उच्च जाति क्षेत्रों के भीतर, दलित बच्चों के लिए जाति के तनाव के कारण स्कूलों तक पहुंच प्राप्त करना मुश्किल हो जाता है। दूसरे, स्कूलों के लिए बड़ी शारीरिक दूरी अक्सर दलित बच्चों को छोड़ देती है, क्योंकि यह दूरी हर रोज (यूनिसेफ, 2006: ए) के आधार पर चलने के लिए बहुत दूर है। प्रवासी श्रम एक अन्य कारक है जो उच्च ड्रॉपआउट दरों में जोड़ता है। कई दलित भूमिहीन हैं और प्रवासी श्रम में मजबूर हैं, क्योंकि यह अक्सर उनके परिवारों के आर्थिक अस्तित्व को सुनिश्चित करने का एकमात्र तरीका है। श्रम की तलाश में निरंतर प्रवास दलित बच्चों की शिक्षा में लगातार व्यवधान उत्पन्न करता है और उन्हें अन्य बच्चों की शैक्षिक उन्नति (HR, 2007) के साथ बनाए रखने में असमर्थ बनाता है। अंत में, कई स्कूलों में उचित सुविधाओं की कमी एक सामान्य समस्या है। कई पब्लिक स्कूलों में दूसरी दर की सुविधाएं हैं, यानी कक्षाओं की कमी, बुनियादी ढाँचा, योग्य शिक्षक और शिक्षण सहायक।

उच्च शिक्षा में भेदभाव

दलितों के प्रति असहिष्णुता, पूर्वाग्रह और उत्पीड़न न केवल प्राथमिक विद्यालय स्तर पर पाए जाते हैं। उच्च शिक्षा के संस्थानों में कई घटनाएं हुई हैं जहां वरिष्ठ सवर्ण छात्रों, शिक्षकों, संकायों और प्रशासनों द्वारा भेदभाव किया जाता है। जातिगत पूर्वाग्रह खुद को उस तरीके से प्रकट करते हैं जिस तरह से शिक्षक दलित छात्रों की उपेक्षा करते हैं और उन्हें सामाजिक बहिष्कार और शारीरिक शोषण में, और विश्वविद्यालय प्रशासन की अनिच्छा में दलितों की सहायता करने और उनका समर्थन करने में असफल होते हैं। इस उत्पीड़न के गंभीर परिणाम के रूप में, दलित छात्रों की अनुपातहीन संख्या ने आत्महत्या कर ली है (द डेथ ऑफ मेरिट, 2011: ए)। वास्तव में, अकेले भारत में, 2008-2011 के बीच देश के प्रमुख संस्थानों में से 18 दलित छात्रों ने आत्महत्या की है और यह संख्या केवल आधिकारिक मामलों का प्रतिनिधित्व करती है। उन सभी दलित छात्रों को गिना जा रहा है जिनके परिवारों ने लगातार भेदभाव के खिलाफ विरोध नहीं किया था, जो अंततः आत्महत्या का कारण बना, संख्या बहुत अधिक होने की संभावना है (द डेथ ऑफ मेरिट, 2011: बी)।

विधायी प्रावधान

कई प्रभावित देशों में, जातिगत भेदभाव का व्यवहार उनके गठन के अनुसार स्पष्ट रूप से निषिद्ध है। हालांकि, इन देशों में से अधिकांश इस मुद्दे को हल करने के लिए विशिष्ट विधायी कार्रवाई करने में किल रहते हैं। भारत इसका अपवाद है, और वर्षों में देश की बड़ी दलित आबादी के अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए कई विधायी उपाय और सकारात्मक कार्रवाई की गई है, जिसमें आरक्षण नीतियां और कोटा शामिल हैं। इस बात के अच्छे उदाहरण हैं कि कैसे सकारात्मक कार्रवाई के उपायों को सबसे अधिक हाशिए पर रखा गया है। उदाहरण के लिए, अनुसूचित जातियों के लिए प्राथमिक स्कूल ट्यूशन शुल्क को समाप्त कर दिया गया है, और अनुसूचित जाति के बच्चों के लिए मुफ्त पाठ्यपुस्तकें, वर्दी और स्टेशनरी जैसे प्रोत्साहन प्रदान किए जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के प्रतिभाशाली बच्चों के लिए 43.000 छात्रवृत्ति में से 13.000 अनुसूचित जाति के बच्चों (यूनिसेफ, 2006: ए) को दी गई हैं।

दुर्भाग्य से, इस तरह के उपायों का कार्यान्वयन अत्यधिक अपर्याप्त है। भारत में दलितों की शैक्षिक स्थिति को प्रभावी ढंग से सुधारने के लिए विशेष उपायों और बाधाओं के गैर-प्रवर्तन के उदाहरण नीचे दिए गए हैं:

- भारत में अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण नीतियां और कोटा केवल पब्लिक स्कूलों पर लागू होते हैं, न कि निजी स्कूलों पर। इसके अलावा, उदाहरण के लिए ईसाई और इस्लाम धर्म परिवर्तन करने वाले दलित अब भी इन प्रावधानों से लाभान्वित नहीं हो सकते हैं।
- उच्च शिक्षण संस्थानों में 15 प्रतिषत सीटें अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित हैं। तकनीकी शिक्षण संस्थानों का भी यही हाल है। हालांकि, उच्च शिक्षा में तकनीकी और व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में, कुछ

आरक्षित सीटें अधूरी हैं।

- विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) (भारत सरकार) द्वारा दलित छात्रों के लिए निर्धारित दिशानिर्देशों का पालन करने में अक्सर विश्वविद्यालय किल होते हैं।

पूरे शैक्षणिक तंत्र में दलितों के खिलाफ व्यापक भेदभाव यह दर्शाता है कि कानूनों, कार्यक्रमों और कोटा के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए प्रभावित सरकारों द्वारा और अधिक किए जाने की आवश्यकता है।

कार्रवाई उन्मुख सिफारिशें

IDSN सरकारों को दलितों की शिक्षा में समान भागीदारी और गैर-भेदभाव के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए निम्नलिखित उपायों को उचित रूप में लेने की सिफारिश करता है:

1. सरकारों को मानव अधिकारों और मौलिक स्वतंत्रता, विशेष रूप से सार्वजनिक कार्यों, रोजगार और शिक्षा की पहुंच के विषय में उनके आनंद को सुनिश्चित करने के लिए अवरोही समूहों और समुदायों के पक्ष में विशेष उपाय अपनाने चाहिए।
2. राष्ट्रीय और स्थानीय सरकारों को सार्वजनिक और निजीकरण के सभी स्तरों पर प्रभावित समुदायों के बच्चों के बीच ड्रॉपआउट दरों को कम करने और नामांकन दर बढ़ाने के लिए प्रभावी उपाय करने चाहिए।

3. सरकारों को स्कूलों में जाति-आधारित भेदभाव की मौजूदा व्यापकता को मिटाने के लिए ठोस कदम उठाने चाहिए, जिसमें उदासीनता और उदासीनता जैसे संदर्भ शामिल हैं। स्कूल की किताबें; स्कूलों में प्रभावित समुदायों के बच्चों को शामिल करना सुनिश्चित करना; और पूरी शिक्षा प्रणाली में गैर-भेदभाव और प्रभावित समुदायों के लिए सम्मान के महत्व के बारे में सामान्य जानकारी का प्रसार।
4. सरकारों को बाल श्रम सहित बाधाओं को दूर करने के लिए सभी आवश्यक उपाय करने चाहिए, जो बच्चों को नियमित पूर्णकालिक शिक्षा से दूर रखें। सरकारों को अनपढ़ बच्चों और वयस्कों को पर्याप्त शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए जिनकी कोई औपचारिक शिक्षा नहीं है।
5. सरकारों को दलित लड़कियों और लड़कों के लिए शैक्षिक और व्यावसायिक प्रशिक्षण को सक्षम और बेहतर बनाना चाहिए ताकि वे अपनी पसंद के अन्य व्यवसायों में जा सकें।
6. राष्ट्रीय और स्थानीय सरकारों को काम और वंश पर आधारित भेदभाव पर जनता और सरकारी अधिकारियों, शिक्षकों और मीडिया चिकित्सकों के बीच जागरूकता बढ़ाने के लिए एक सार्वजनिक अभियान को बढ़ावा देना चाहिए। ध्यान के क्षेत्रों में न केवल प्रिंट और प्रसारण मीडिया को शामिल किया जाना चाहिए, बल्कि सूचना प्रसार के वैकल्पिक रास्ते भी शामिल हैं, जैसे कि थिएटर के माध्यम से स्थानीय मौखिक जानकारी, गाने आदि और साथ ही इंटरनेट के माध्यम से जानकारी।

निष्कर्ष

सभी जातीय समूहों, जातियों और समुदायों से संबंधित भेदभाव वाली युवा और किशोर लड़कियों के स्कूल में नामांकन और प्रतिधारण के लिए ज्ञात बाधाओं को हटा दें; प्राथमिकता के कारण पता है कि वे क्यों छोड़ते हैं, और यह सुनिश्चित करने के लिए कार्रवाई करते हैं कि वे पाठ्यक्रम में या स्कूल की गतिविधियों में कलंकित न हों।

संदर्भ

- भारत सरकार, 1996-1997 और 1997-1998: रिपोर्ट, एससी और एसटी के लिए राष्ट्रीय आयोग, भारत सरकार, नई दिल्ली
- ह्यूमन राइट्स वॉच, 2007: हिडन रंगभेद, 2007 में भारत की समीक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र की नस्लीय भेदभाव उन्मूलन समिति के लिए छाया रिपोर्ट
- IDSN, 2010: भारत में दलित बच्चे-जातिगत भेदभाव के शिकार, नवसर्जन ट्रस्ट द्वारा संक्षिप्त नोट, मानवाधिकार और वैश्विक न्याय केंद्र और अंतर्राष्ट्रीय दलित एकजुटता नेटवर्क
- द डेथ ऑफ़ मेरिट, 2011: ए: ऑन सुसाइड्स, कास्ट एंड हायर एजुकेशन
- द डेथ ऑफ मेरिट, 2011: बी: भारत के प्रमुख संस्थानों में पिछले चार वर्षों में आत्महत्या करने वाले दलित छात्रों की सूची
- द टेलीग्राफ, 2007: एम्स रंगभेद, क्रिकेट टू क्लास, कलकत्ता, भारत
- यूनिसेफ 2006, ए: भारत में प्राथमिक शिक्षा से अनुसूचित जाति के बच्चों का सामाजिक बहिष्कार, यूनिसेफ, भारत
- यूनिसेफ, 2006, बी: स्कूल में अछूत-गुजरात में स्कूलों में दलित बच्चों के अनुभव, यूनिसेफ, भारतीय दलित अध्ययन संस्थान द्वारा आयोजित
- विष्वकर्मा, ध्रूबा राज, एम.फिल, काठमांडू विश्वविद्यालय: स्कूल में जाति आधारित भेदभाव: नेपाल में दलितों का एक अध्ययन,
- नवसर्जन ट्रस्ट और आरएफके सेंटर फॉर जस्टिस एंड ह्यूमन राइट्स, 2010: ''अंडरस्टैंडिग अनटचेबिलिटी: ए कॉम्प्रिहेंसिव स्टडी ऑफ प्रैक्टिस एंड कंडीशंस इन 1589 विलेजेज''
- भारतीय दलित अध्ययन संस्थान, 2009: नेपाल में जाति-आधारित भेदभाव। IIDS वह्वकग पेपर सीरीज़, वॉल्यूम III, नंबर 8।
- वन वर्ल्ड एक्शन और नागरिक उद्योग, 2011: बांग्लादेश में दलित महिला: एकाधिक बहिष्करण

वैदिक युग में सामाजिक स्थिति

डॉ० कामेश्वर कुमार

पूर्व शोध छात्र, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा

वैदिक युग भारत के सांस्कृतिक इतिहास में प्राचीनतम युग माना गया है। भारत की सांस्कृतिक उपलब्धियों का सर्वप्रथम रूप इसी युग के वाङ्मय में उपलब्ध है। वैदिक वाङ्मय का गौरव इस बात में है कि संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक का संपूर्ण दिग्दर्शन करते हुए समकालीन अन्य प्राचीन संस्कृतियों के संबंध में अमूल्य सामग्री उससे उपलब्ध होती है।

वैदिक युग से अभिप्राय उस सुदीर्ध काल खण्ड से है, जिसमें चार वेदों तथा उनके विविध अंगों का विस्तार हुआ है। प्राचीन आचार्यों के अनुसार वेद वाङ्मय ईकाई है, जिसके अंतर्गत विनियोग भेद के कारण ऋक्, यजु, साम तथा अथर्व का पृष्ठथक् संहिता के रूप में निर्माण हुआ। वैदिक युग के इस विशाल कालखण्ड में तत्कालीन संगीत-साधना के अनेक उल्लेख पाये जाते हैं। ऋग्वेद काल में गीत वाद्य तथा नृत्य तीनों का पर्याप्त प्रचलन दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद के शांखायन ब्राह्मण के अनुसार इन तीनों शिल्पों का प्रयोग प्रायः अभिन्न साहचर्य के रूप में प्राप्त होता है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार इन शिल्पों की गणना दैवी[1] शिल्पों में है तथा इनकी सहायता से यजमान का व्यक्तित्व सुसंस्कृत हो जाता है-

"एतेषां वै शिल्पनां अनुकृतीह शिल्पमधिगम्यते।
ओइम् शिल्पानि शंसन्ति देवशिल्पानि शिल्पमिदमस्मिधि
गम्यते स एवं वेद यदिव शिल्पानि"।[2]
"आत्म संस्कृतिर्बाव शिल्पानि छन्दोमयं वा एतैर्यजमान आत्मानं संस्कुरूते"।[3]

यही शिल्प देवताओं की प्रसन्नता के लिए साधक बतलाये गए हैं। ऋग्वेद के अनुसार 'रथकार के कौशल से निर्मित रथ-चक्र जिस प्रकार संतोशजनक होता है, उसी प्रकार कुशल रूप से प्रयुक्त संगीत आकर्षण का केन्द्र बन जाता है।

वैदिक कालीन समाज के निर्देशक वेद ने भी संगीत के महत्व को स्वीकारा और एकता में सहायक माना है। इसलिए तो ऋग्वेद की ऋचाओं को स्वरात्मक करके एक वेद का निर्माण कर उसे 'सामवेद' नाम दे दिया। वैदिककालीन समाज के सामाजिक संगठन का मूलाधार परिवार था। प्रत्येक परिवार में संगीत का उत्कृष्ट स्थान था। परिवार में संगीत का आयोजन परिवार की अधिष्ठात्री नारी गृह-लक्ष्मी ही हुआ करती थी। सुबह-शाम प्रत्येक परिवार में ईश्वर-उपासना हुआ करती थी। प्रातःकाल काम शुरू करने से पूर्व घर की सब नारियां, बूढ़े-बच्चे सब एक स्थान पर एकत्रित होकर अपने इष्टदेव की आराधना गा-बजाकर किया करते थे। उनका गाना-बजाना ताल स्वर में होता था। ऋग्वेद काल का प्रत्येक गृह संगीत का सुन्दर केन्द्र बना हुआ था।[4]

वैदिक काल में संगीत का प्रदर्शन सार्वजनिक रूप से हुआ करते थे मगर बहुत कम। इस काल में ग्रामों की स्थापना हो चुकी थी, अतएव संगीत कई वर्गों में बंट गया था। संगीत ज्ञान दर्शन, काव्य आदि ज्ञानों का निर्माण एवं उसके प्रचार-प्रसार का कार्य ब्राह्मण जाति की ही जिम्मेवारी थी, जिसे ब्राह्मण बखूबी अंजाम दिया करते थे। सकलद्विपीय ब्राह्मण यज्ञ, आयुर्वेद, ज्योतिष शिक्षा तथा आध्यात्मिक संगीत के प्रचार-प्रसार तथा संरक्षण संवर्धन का कार्य करते थे। वैदिक ऋचाओं के उच्चारण और गायन के विधि विधानों का निर्णय भी समाज में उच्च स्थान प्राप्त ब्राह्मणों ने ही किया।[5] इस काल में संगीत की बागडोर मुख्य रूप से ब्राह्मणों के हाथ में ही थी। यही से मार्ग संगीत का प्रारंभ माना जाता है। जैसा कि शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे ने अपनी पुस्तक में लिखा है - "सामवेद भारतीय संगीत-कला का प्राचीनतम निदर्शन है। इसका स्रोत तत्कालीन लोकसंगीत ही रहा है। तथापि यज्ञ योग जैसे धार्मिक समारोहों से तथा समाज के उच्च वर्ग से सम्बद्ध होने के कारण उसमें संस्कार तथा नियमबद्धता की मात्रा बढ़ गयी और उसे शिष्ट सम्मत मार्ग-संगीत का स्वरूप प्राप्त हुआ।"

इस काल में समाज में पुरुष गायक वादकों के अतिरिक्त स्त्रियों का संगीत में स्वाभाविक रूचि एवं योग्यता के कारण पर्याप्त सहयोग हुआ करता था। यज्ञ के अवसर पर जब गायन-वादन होता था, यजमानों की स्त्रियां भी समान रूप से भाग लेती थी। स्त्रियां नृत्य भी करती थी। नृत्य से उनका विशेष प्रेम था।

समाज में अन्य वर्गों की भांति एक वर्ग संगीतज्ञों की भी निर्मित हो रहा था। संगीत के सार्वजनिक आयोजन में नर्त्तकियां खुलकर भाग लिया करती थीं, उन्हें किसी किस्म की हिचकी नहीं थी, क्योंकि समाज में गायकों वादकों नर्त्तकियों का उच्च स्थान था। संगीतज्ञों को समाज उच्च दृष्टि से देखता था। संगीतज्ञों का सामाजिक सम्मान किया जाता था।

वैदिक कालीन समाज में वर-वधु महोत्सव होता था। वर-वधु महोत्सव 'समन' कहलाता था। 'समन' एक प्रकार का सांगीतिक मेला था, जहां आमोद के लिए नारियां जाती थी। 'समन' ने समाज के अंदर संगीतमय वातवरण को खूब फैलाया। 'समन' के अंदर नारियां कई प्रकार के नृत्य को प्रदर्शित किया

करती थीं, पुरुष वर्ग कंठ संगीत का सुन्दर ढंग से प्रदर्शन किया करते थे। लोक संगीत के कलाकारों का भी प्रदर्शन समाज के विभिन्न कार्यक्रमों में किया जाता था। लोक कलाकारों का तत्कालीन समाज में विशेष सम्मान था।

पौराणिक काल की तुलना में इस काल में समाज के अंदर उच्छृंखलता का बढ़ना शुरू हो गया था, जबकि पौराणिक काल में समाज में संगीत तथा संगीतज्ञों, ब्राह्मणों, आचार्यों की स्थिति आदरणीय थी। वैदिक कालीन समाज में संगीतज्ञों, आचार्यों ज्योतिष विद्वानों, ब्राह्मणों, संतों, चिंतकों आदि का जीवन संतुलित था। वैदिक कालीन सामाजिक उत्सव 'समन' ने इस काल में 'समज्जा' का रूप ले लिया था। भाष्य में कहा गया है कि जिसमें समुदाय इकट्ठा हो वह उत्सव 'समज्जा' कहलाता था।[6]

'समज्जा' को समाज के नाम से भी जाना जाता था। सम्राट अशोक के अभिलेख में समाज नामक उत्सव का ही उल्लेख है। महाभारत में भी विस्तार से समाज नामक क्रीडोत्सव का उल्लेख है। समाज में सम्मिलित होने वाले लोग सामाजिक कहलाते थे। अत: 'समज्जा' या समाज महाजनपद युग के नागरिक जीवन की बहुत बड़ी विशेषता थी। समाज में सम्मिलित होनेवाले लोग संगीत के आयोजन में प्रतियोगिता भी करवाया करते थे। इस काल में समाज में संगीतज्ञों की संख्या बढ़ रही थी। संगीतज्ञ अशिक्षित नहीं होते थे, जिस कारण आम जनता प्रतियोगिता का आनंद लिया करती थी। मेलों में रथों और गाड़ियों को दौड़ाने की प्रतियोगिता हुआ करती थी। लोग रथों और गाड़ियों में बैल की जोड़ी को बांधा करते थे। बैलों के गर्दनों में ऐसी घंटियां बांधते थे, जिससे बड़े ही सुरीले संगीत का प्रस्फुटन होता था। जिस गाड़ी का बैल अधिक मंत्रमुग्ध संगीत का प्रस्फुटन करने में सफल होते, उनको पुरस्कृत किया जाता था। इन दौड़ प्रतियोगिताओं से समाज में संगीत का चाव बढ़ रहा था।[7] लोग दूर-दूर से इस प्रतियोगिता में शामिल होने आते थे।

समाज में संगीत का मनोरंजक पहलू मानव समुदाय में विकसित होता जा रहा था। इस समय समाज में अनेक छोटे वर्ग बन गए थे। हर वर्ग अपने संगीत को तथा उसके मूल स्वरूप को छिपा कर रखने की चेष्टा करने लगा था, परंतु यह संकीर्ण प्रकृति समाज के अंदर अधिक मात्रा में नहीं फैली थी।

सूत्र तथा जातक कथा (साहित्य) से भी हमें तत्कालीन समाज में संगीत की स्थिति का पता चलता है। सूत्र-साहित्य संगीत के धार्मिक पक्ष का, तो जातक साहित्य संगीत के सामाजिक पक्ष का दिग्दर्शन कराते हैं।[8]

वैदिक कालीन समाज में संगीत के ज्ञाता आचार्य कहलाते थे। संगीत के आचार्य ही संगीत की शिक्षा दिया करते थे। 'वीणागणगिन' संज्ञा इसी तथ्य की पुष्टि करती है। संगीत को सामाजिक एवं व्यक्तिगत मनोरंजन के एक प्रमुख तत्व के रूप में, इस काल में देखा जा सकता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय इत्यादि उच्च वर्गों में संगीत का खूब प्रचार-प्रसार था। इससे यह मानना असंभव नहीं है कि इस समय संगीत के बड़े-बड़े विद्वान कलाकार और कला साधक भी समाज में रहे होंगे। समाज के सहयोग से उस समय संगीत की प्रतियोगिता भी हुआ करती थी, किन्तु गुरू-शिष्य के मध्य किसी भी तरह की प्रतियोगिता को उचित नहीं समझा जाता था।

जातक साहित्य से तत्कालीन समाज के बारे में अन्य कई बातों का पता चलता है। समाज में संगीत के सार्वजनिक आयोजन भी हुआ करते थे, जो 'समज्ज' एवं महासमज्ज के रूप में उल्लेखित मिलते हैं। इस सामाजिक उत्सव पर अन्य मनोरंजन के साथ-साथ गायन, वादन और नृत्य आदि के कार्यक्रम भी हुआ करते थे। कभी कभी इसमें अतिशय अभद्रता भी हो जाती थी। संभवत: इसी कारण सम्राट अशोक ने उसका निषेध कराया था।[9] इस समज्जों का उल्लेख मौर्य सम्राट अशोक के अभिलेख में भी प्राप्त होता है।

इस काल में साम गायन यज्ञ के अलावा अन्य सामाजिक अवसरों पर भी संगीत का आयोजन हुआ करता था। विवाह के अवसर पर भी वर-वधु सहित गृह प्रवेश करते समय "वामदेव्य" नामक साम के गायन का उल्लेख आता है।[10]

सामगान जैसे धार्मिक अवसर पर तथा यज्ञ एवं धार्मिक क्रिया कलापों जैसे सामाजिक अवसर पर स्त्रियां पुरुषों के साथ मिलकर संगीत की प्रस्तुति तथा आनंद दोनों किया करती थीं। सांगीतिक तथा सामाजिक दोनों अवसरों पर स्त्री तथा पुरुष का संबंध घनिष्टतम था। सूत्र-साहित्य समाज के धार्मिक पक्ष का अवलोकन कराता है। उससे यह सूचना मिलती है कि महाव्रत आदि यक्ष के अवसर पर सामगायक पुरुषों के साथ उनकी स्त्रियां भी गायन तथा तदनुकूल वादन करती थीं। विवाह इत्यादि धार्मिक संस्कारों के अवसर पर भी स्त्रियां तथा कन्या स्वयं संगीत में सहयोग देती थी। दास-कुमारियां भी यज्ञ के अवसर पर उद्कुम्भ शीर्ष नृत्य तथा गाथाओं का गायन करती थी।

इस काल में संगीत न केवल राजाओं एवं संभ्रांत कुलीनों के जीवन का अंग था, अपितु साधारण जनता भी गायन, वादन एवं नृत्य में रूचि रखती थी। गरीब-से-गरीब ईंधन एकत्र करनेवाली लड़की भी अपना कार्य गायन के साथ करती थी।

ऋग्वेद काल में सामों के आविष्कर्ता आचार्यों में अंगिरस भारद्वाज तथा वशिष्ठ का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में अंगिरसों के साथ साम के द्वारा स्तोत्र गाये जाने का उल्लेख निम्न मंत्र में दृष्टिगत् होता है–

"देवा: अंगिरसां सामभि: स्तूयमाना:"[11]

सामों में वरिष्ठ 'वृहत्सापम' के आविष्कर्ता के रूप में भारद्वाज का उल्लेख निम्नवत् है–

भरद्वाजो वृहदाचक्रे अग्ने:[12]

सामों का गान कुछ विशिष्ट छन्दों के साथ किया जाता था और ऐसे प्रसंग पर उन्हीं छन्दों के नाम से साम प्रसिद्ध हो जाते थे। गायत्र तथा शाक्वर साम इसी कोटि में आते हैं।[13] उपर्युक्त सामों के अतिरिक्त निम्न साम-भेदों का उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है। यथा वेरूप, रैवत, अके, भद्र इत्यादि।[14] इन सामों का

गायन यज्ञादि धार्मिक कार्यों के अतिरिक्त अन्य लौकिक प्रसंगों पर भी किया जाता था। भारूण्ड साम का गान पितृकर्म के किए जाने के संबंध में सत्यव्रत का मत उल्लेखनीय है। ऋग्वेद के यम सूत्र में अन्त्येष्ठि के समय पर साम के गायन का स्पष्ट विधान है–

'यं कुमार प्रावर्त्तयों रथं विप्रेम्यस्परि तं सामानु प्रावर्त्तत सामितो नाधयाहितम्।'[15]

उपरोक्त श्लोक यह स्पष्ट धारणा बनाता है कि अन्त्येष्टि के समय किया गया सामगान मृत व्यक्ति को यम-धाम तक सुलभता से पहुंचा सकता है।

ऋग्वेद काल में गायन के साथ-साथ वाद्य का निरंतर साहचर्य दृष्टिगत होता है।

वैदिक काल में निम्न वाद्यों का भूरिशः उल्लेख मिलता है- दुन्दुभि, वाण, नाड़ी, वेणु, कर्करि, गर्गर, गोधा, पिंग तथा आधाटि।

ऋग्वेद में मरूद्रणों को संगीत प्रिय बताया गया है। निम्न ऋक् में मरूतों वाण बजाकर पराक्रम करने का उल्लेख है-

'धमन्तों वाणं मरूतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे।'[16]

संगीत का विशेष अध्ययन उद्गाता उसके सहकारी तथा गाथी आदि गायक वर्ग के द्वारा किया जाता था। इसके अतिरिक्त सामान्य परिवार की महिलाओं में भी संगीत का विशेष प्रचार था। शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि स्त्रियां ऐसे ही पुरुष से अनुराग करती है, जो 'संगीत-कला' में प्रवीण हों।[17] तैत्तिरीय संहिता की निम्न पंक्ति महिलाओं की संगीत कुशलता की दृष्टि से उल्लेखनीय है-

'पत्नय उपगन्ति मिथुनत्वाय प्रजात्यै:[18]

अर्थात् महाव्रत नामक सोमयाग में जब उद्रातृ वर्ग "भद्र" नामक साम गाते हैं। तब यजमान की पत्नी अपने कंठ स्वर से उनकी संगत किया करती थी। ऐसा उपगान प्रजा की वृद्धि के लिए सहायक माना जाता था। सूत्र वाङ्मय के अनुसार यजमान की पत्नियां उपगान के साथ विविध वीणाओं के द्वारा "उपवादन" भी किया करती थी।

सामगान के साथ स्वर संगीत तथा वीणा संगति दोनों तत्कालीन महिलाओं की संगीत विषयक कुशलता का संकेत करती है। नर कंठ तथा नारी कंठ से उद्भूत एवं नानाविध वाद्यों के समन्वित सामगान तत्कालीन संगीत विषयक उत्कर्ष को प्रमाणित करता है।

उत्सवों के समय पर समस्त स्त्री में वीणा तथा तूणव की ध्वनि में जन-समूह जागरण किया करता था, निम्न पंक्ति से यह स्पष्ट होता है-

'वीणा तूणवेनै न मेतां रात्रिं जागरयन्ति'[19]

कात्यायन श्रौत सूत्र में साम के विभिन्न भेद, लौकिक संगीत तथा नानाविध वाद्यों का प्रचुर उल्लेख प्राप्त होता है। लौकिक संगीत के अंतर्गत नृत्यगीत तथा वादित्र का एक साथ उल्लेख दृष्टिगत होता है, जो निम्न श्लोक से स्पष्ट होता है-

'नृत्तगीतवादित्र वच्च'[20]

यजुर्वेद के वाङ्मय से स्पष्ट है कि संगीत का प्रसार तात्कालीन समाज के दास वर्गों में भी था। महाव्रत नामक सोमयाग में कलशधारिणी दासियों का वर्तुलाकार नृत्य होता था, जिसका पद क्रम गीत के लयानुकूल हुआ करता था। ये गीत गाथा नामक लोकगीत कहलाते थे। सूत्र वाङ्मय में इन गाथाओं के निम्न अभिधान पाये जाते हैं- हिल्लका, हिम्बिनी, हस्ताबारा, सम्वत्सरगाथा, भिल्लुका इत्यादि।[21]

वैदिककाल में सामगान की शिक्षा केवल सामवेदियों तक ही सीमित न थी, अपितु अन्य वेदानुयायी ऋत्विजों को उसकी दीक्षा दी जाती थी। साम जैसे वैदिक संगीत के अतिरिक्त गायक नारशंसी आदि लौकिक संगीत का प्रचार तत्कालीन जनता में था। सूत नामक जाति लोक संगीत तथा गाथा पर आधारित गीत तथा नृत्य का व्यवसाय करती थी। राजसभाओं में उनका गौरवपूर्ण स्थान था।

तत्कालीन महिलाओं में संगीतकला कौशल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता था। अभिजात कुल की महिलाओं को गान तथा वाद्य की शिक्षा दी जाती थी, जिससे वे सामगायकों की संगति सहज रूप से कर सकें। निम्न कुल की महिलाओं का लोकनृत्य संज्ञादि समारोह पर सम्पन्न होता था। सिर पर कलश लेकर वे एक से अधिक नर्तकियां वर्तुलाकार नृत्य करती थीं और मुंह से गीत के चरणों को गाती थी, इसके स्पष्ट है कि कुलीन तथा अभिजात्य वर्गों में सामगान, स्तोत्र पाठ, हवन आदि तथा निम्न कूल में लोक संगीत का प्रचलन था।

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में भी संगीत न केवल राजनैतिक वरन् सामाजिक व्यवसाय के स्वस्थ आदर्श हेतु भी महत्वपूर्ण माना गया था। राजा के दैनिक जीवन में प्रहर सूचना के लिए मनोरंजन आदि के लिए संगीत का विधान था। संगीत समाज में जीविका का साधन भी था। समाज वे ही गणिका एवं नट वर्ग की जीविका संपूर्ण रूप से संगीत पर आधारित थी।

गणिका एवं उनके पुत्रों को गायन विधा के स्थानों पर सर्वप्रथम प्रवेश दिया जाता था। गणिकाओं से संबंधित संगीत का स्वरूप अधिकांशतः जनसाधारण के स्तर का तथा हल्का-फुल्का होता था। समाज में केवल संगीत उच्च वर्गों के ही अधीन न था, निम्न वर्ग भी संगीत किया करते थे। उच्च वर्गों तथा निम्न वर्गों में संगीत के चिंतन, प्रस्तुति एवं स्वरूप का फर्क था।

संगीतकारों को राज्य एवं समाज का प्रश्रय होने पर उनपर राज्य की ओर से कुछ नियंत्रण भी थे, यथा-वर्षा ऋतु में एक ही स्थान पर रहना, अधिक दान को स्वीकार न करना आदि। नियम तोड़ने पर दंड का भी विधान था। संगीत से समाज को कोई हानि न हो इस पर पूर्ण नियंत्रण था। उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संगीत वही विहित था, जिससे सामाजिक व्यवस्था, चिंतन एवं आधयात्मिक पृष्ठभूमि की क्षति न हो।

संदर्भ

1. कथा सरित्सागर, 25/175
2. परांजपे डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर, भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ 19
3. परांजपे डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर, भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ 8
4. शर्मा डॉ. सत्यवती, संगीत का समाजशास्त्र, पृष्ठ 59
5. शर्मा डॉ. सत्यवती, संगीत का समाजशास्त्र, पृष्ठ 59
6. जोशी उमेश, भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ 95
7. जोशी उमेश, भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ 97
8. शर्मा डॉ. सत्यवती, संगीत का समाजशास्त्र, पृष्ठ 60
9. श्रीवास्तव डॉ. धर्मावती, प्राचीन भारत में संगीत, पृष्ठ 37
10. श्रीवास्तव डॉ. धर्मावती, प्राचीन भारत में संगीत, पृष्ठ 23
11. ऋग्वेद, 1/107/02
12. ऋग्वेद, 10/181/02 तथा भगवतगीता अध्याय, 10 में वृहत्साय व साम्नाम्
13. ऋग्वेद, 7/33/4 तथा 10/71/11
14. उपाध्याय बलदेव, वैदिक साहित्य, पृष्ठ 135
15. ऋग्वेद, 10/135
16. ऋग्वेद, 1/85/10
17. महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश, वैदिकखण्ड, 3/1/19, 3/2/4/2-6, पृष्ठ 161
18. तैत्तिरीय संहिता, 7/5/8
19. कात्यायन श्रौत, 5/8/2, 20/42
20. कात्यायन श्रौत, 5/8/2, 21/42
21. कात्यायन श्रौत, 5/8/2, 13/3, बोध (16/22-23)

हिंदी उपन्यास का उद्‌भव

जगदीश सिंह

शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

साहित्य के रूपों का विकास समाज के विकास से जुड़ा हुआ होता है, इसलिए साहित्य रूपों की संरचना का उस सामाजिक संरचना से गहरा सम्बन्ध होता है, जिसमें साहित्य के रूप पैदा होते हैं। प्रत्येक साहित्य-रूप का एक विचारधारात्मक आधार भी होता है, जो सामाजिक विकास की विशेष अवस्था में व्याप्त विचारधारा से प्रेरित और प्रभावित होता है। महाकाव्य का जन्म सामन्ती दौर से पहले के जनपदीय समाजों में हुआ था और उसका विकास सामन्ती समाजों में होता रहा। ऐसे सामजिक आधार के कारण ही महाकाव्यों की संरचना में एक ओर जनपदीय समाजों का खुलापन मिलता है तो दूसरी ओर सामन्ती समाजों की सांस्कृतिक और विचारधारात्मक परिणतियों की अभिव्यक्ति भी। विकासशील महाकाव्यों से कलात्मक महाकाव्यों की संरचना भिन्न प्रकार की होती है, लेकिन दोनों में नाटक और अन्य मुख्य पात्र अभिजात वर्ग के होते हैं। यही नहीं कथा की संरचना में निर्णायक भूमिका पारलौकिक तत्वों, शक्तियों और प्रवृतियों की होती है। महाकाव्यों का आधार वह मिथक-कला होती है जो आदिम समाजों से लेकर सामन्ती समाजख्र व्यवस्था तक निर्मित और विकसित होती रहती है। सामन्ती समाज-व्यवस्था के अंत के साथ दुनिया भर में महाकाव्यों का युग समाप्त होता दिखाई देता है। बाद के समय में महाकाव्य केवल पुराने महाकाव्यों की स्मृतियों की अभिव्यक्त ही है। यही करण है कि आधुनिक काल में महाकाव्यों की रचना सम्भव नहीं रही। महाकाव्य एक स्तर पर अपने समय और समाज के मनुष्यों की स्थिति और नियति की पहचान और अभिव्यक्ति के प्रयत्न करते थे। आधुनिक काल में यह काम उपन्यास के माध्यम से होने लगा, इसलिए उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य भी कहा जाता है।

उपन्यास शब्द कहाँ से आया, कैसे आया? इसका जवाब किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता है। संस्कृत में यह शब्द इसी अर्थ में नहीं था। वहाँ इसका प्रयोग अलग संदर्भ में किया जाता है। न्यस्त, उपन्यस्त। जब भी हम उपन्यास की पृष्ठभूमि की बात करते हैं संदर्भ रूप में हमारा ध्यान 'कादम्बरी' तक जरुर जाता है। कादम्बरी के अनेक अर्थ होते हैं। हम उपन्यास पर बात कर रहे हैं तो यहाँ कथा ही महत्वपूर्ण हो जाती है। मराठी में अब भी उपन्यास को कादम्बरी कहते हैं। संस्कृत में 'जातकों की कथा', 'कथासरित्सागर', 'सत्यनारायण' की कथा कुछ प्रचलित संदर्भ हैं। उपन्यास के लिए कथा शब्द को जोड़कर देखना जरुरी है। और उपन्यास शब्द कहाँ से आया यह अलग शोध का विषय है। अगर हम परिभाषा की बात करें तो हिंदी 'शब्दसागर' में लिखा है, "वह काल्पनिक गद्य कथा जिसमें वास्तविक जीवन से मिलते-जुलते चरित्रों और कार्यख्रकलापों का विस्तृत और सुसंलद्ध चित्रण हो।"[1]

उपन्यास की कथा की एक प्रवृत्ति होती है। उसमें देश-कालबद्ध मानव की कथा होती है। डॉ मैनेजर पाण्डेय का मनना है, "कथा के भिन्न रूप तो बहुत पहले से हैं। मतलव, जातक की सारी कथाएँ, कथासरित्यसागर की कथाएँ, कादम्बरी की कथा या दशकुमारचरित्र की कथा, ये सारी कथाएँ हैं। किन्तु इन कथाओं से उपन्यास की कथा का स्वभाव एकदम भिन्न होता है। आप गोदान के होरी को पहचान सकते हैं कि वह इस देश का है। यह भी पहचान सकते हैं कि वह किस काल का है। इसी कारण बुनियादी तौर पर उपन्यास इतिहास से जुड़ा होता है।"[2]

(1) हिंदी उपन्यास : अवधारणा और स्वरूप

गद्य की अन्य विधाओं की तरह उपन्यास का प्रादुर्भाव भी भारतेन्दु युग में हुआ। पुनर्जागरण के इस दौर में ज्ञान और कला के अनछुए क्षेत्रों की खोज की जो प्रक्रिया आरम्भ हुई थी, हिंदी उपन्यास वस्तुत: उसी की स्वाभाविक परिणति के रूपों में सामने आया। हिन्दी उपन्यास रचना की प्रेरणा बांग्ला साहित्य से प्राप्त हुई मानी जाती है। बंगाल में भी उपन्यास रचना की मूल प्रेरणा अंग्रेजी साहित्य से प्राप्त हुई है। जब भी हम हिन्दी उपन्यास के उद्‌भव पर दृष्टि डालेंगे हमारे सामने सबसे पहला सवाल खड़ा होता है भारतीय नवजागरण के इस दौर में विकसित अन्य चीजों की तरह उपन्यास भी सीधे पश्चिम की देन है या इस में भारतीय आख्यान परम्परा की कोई भूमिका रही है?

मीनाक्षी मुखर्जी ने इस सवाल पर गहन दृष्टि डाली है। उनका कथन है, "अंग्रेज और ब्रिटिश साम्राज्य के संपर्क के परिणामस्वरूप विकसित यह साहित्य रूप भी ठीक वैसे ही भारत में नहीं आया जैसे रेलवे और क्रिकेट आए थे। भारत में उपन्यास की शुरुआत अंग्रेजी पढ़े ...लिखे तेजी से विकसित मध्यवर्ग की ही देन है। यही कारण है कि उपन्यास पहले उन भारतीय भाषाओं में लिखे गए, मरठी और बांग्ला, जो पहले सीधे तौर पर अंग्रेजी के सीधे संपर्क में आ चुकी थी। अंग्रेजी पढने वाले लेखकों ने, जो स्वभाविक रूप से शहरों में रहते थे, शहरी जीवन को ही केंद्र में रखकर विभिन्न भारतीय भाषाओं में उपन्यास की शुरुआत की। यही कारण है कि साहित्य... रूप के तौर पर उपन्यास, कहीं थोड़ा पहले कहीं थोड़ा बाद में, उन्नीसवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में भारतीय मिट्टी

में अपनी जड़े रोपता दिखाई देता है। भारत में चूंकि संस्कृत और अन्य भाषाओं में भी आख्यान-साहित्य के सुसमृद्ध परम्परा रही है, हिन्दी उपन्यास के रूप-निर्माण में उसकी भूमिका को भी पूरी तरह नकारा नहीं जा सकता। विकास के आरम्भिक दौर में ही नहीं, परवर्ती उपन्यास पर भी, विशेष रूप से ऐतिहासिक ख़सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले उपन्यासों पर, इस आख्यानख़ परम्परा के तत्वों को खोज निकालना कठिन नहीं है।"[3]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी का पहला मौलिक उपन्यास लाला श्री निवास द्वारा रचित परीक्षागुरु (1882)को मानते हैं जो अंग्रेजी ढग का था। एक तरह से आचार्य शुक्ल हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव ब्रिटिश संपर्क से ही जोड़ने हैं। हिन्दी के पहले मौलिक उपन्यास को लेकर अनेक विद्वानों ने अलग-अलग दावे किए हैं। ये दीगर बात है कि उन दोनों को स्वीकृति नहीं मिल सकी। विजयशंकर मल्ल ने श्रद्धाराम फिल्लौरी के 'भाग्यवती'(1877)का उल्लेख किया। गोपाल राय ने गौरीदत्त ने 'देवनागरी जेठानी की कहानी' (1870) को पहला मौलिक हिन्दी उपन्यास माना। हालांकि इस सन्दर्भ में गोपालराय की टिप्पणी से परीक्षागुरू को ही स्वीकृति मिलती है। उपन्यासों में जटिल वस्तु विन्यास, नाटकीय शिल्प और मनोवैज्ञानिक तथा विश्वासोत्पादक चरित्र-चित्रण का होना महत्वपूर्ण है। इस दृष्टि से पहले 'परीक्षागुरू' ही हिन्दी के पहले उपन्यास के रूप में स्वीकृति है। इस उपन्यास में दिल्ली के एक सेठ मदन-मोहन की कहानी कही गई है जो कुसंगति के कारण अपना बहुत सा धन बर्बाद कर देता है और फिर एक मित्र के प्रयासों से इस स्थिति से बाहर निकलता है। मूलभाव इस लोकोक्ति में चरितार्थ होता है, 'जैसे पैर पसारिये तैते लांबी सेर'। कहीं-कहीं उपन्यास में नई शिक्षा, आधुनिक कृषि, औद्योगीकरण तथा निज भाषा की उन्नति जैसे विचार भी दिखते हैं।

हिंदी की अन्य आधुनिक विधाओं की तरह ही उपन्यास का जन्म हुआ। हिंदी उपन्यास का उद्‌भव वास्तविक रूप से उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से माना जाता है। यह वह समय था जब भारत में नवजागरण के कारण सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिस्थितियों में काफी बदलाब हो रहा था। राजा राम मोहन राय, दयानन्द सरस्वती, महादेव गोविन्द रानाडे, केशवचन्द्र सेन, रवीन्द्रनाथ टैगोर, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, लोकमान्य तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, मादाम-ब्लेवास्की, श्रीमती ऐनी बेसेन्ट आदि ने और ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसायटी, रामकृष्ण मिशन जैसी कुछ सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं ने भारत में नवजागरण के अंकुर को तेजी से प्रसारित किया। यहाँ से भारतीय समाज में एक बदलाब की चिंगारी सुलगना शुरू हुई जिसका परिणाम हम बाद के नव-सुधारवादी आन्दोलनों के रूप में पाते हैं। स्त्री-शिक्षा, विधवा विवाह, अनमेल विवाह, जाति-पांत, छुआछूत और अस्पृश्यता का विरोध आदि सामाजिक परिवर्तन की पहल का ही एक रूप था। इससे समाज में धीरे-धीरे प्रगतिशील चेतना का फैलाव हो रहा था। साथ ही साथ नगरीकरण (Urbanization)और औद्योगीकरण (Industrialization) की प्रवृत्ति के चलते समाज और परिवार के मूलभूत ढाँचे में तेजी से बदलाब होने लगा था। कलकत्ता, मद्रास, बम्बई जैसे महानगरों में विश्वविद्यालयों की स्थापना से शिक्षा का प्रसार बढ़ा। ये प्रवृत्तियाँ इस बात की सबूत हैं कि सामाजिक-मूल्य और जीवन मूल्यों में एक गुणात्मक परिवर्तन हो रहा था। इस बदलाब से समाज का स्वरुप और अधिक पेचीदा होने लगा था। बदलते वक्त की करवट को समझने के लिए साहित्य के अन्य रूप या अन्य विधाएँ नाकाफी थी। समाज के भीतर से अब एक ऐसा गुबार बाहर आने को था जिसे कविता, कहानी या नाटक जैसी विधाओं में नहीं समेटा जा सकता था। इसलिए हमें एक ऐसी विधा की उपादेयता महसूस हो रही थी जो बदलते वक्त की आहटों और करवटों को सम्पूर्णता में समेट सके। मुझे लगता है इस व्यापक फलक को समेटने के लिए ही उपन्यास जैसी विधा का उद्‌भव हुआ।

अत: हिंदी के प्रबुद्ध लेखकों ने उपन्यास के विषय में कुछ स्थापनाएँ देते हुए लिखा है-

उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद के शब्दों में, "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्रों पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"[4]

बाबू श्यामसुन्दर दास के अनुसार, "उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।"[5]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, "वर्तमान जगत में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। समाज जो रूप पकड़ रहा है, उसके भिन्न-भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करता बल्कि आवश्यकता के अनुसार उसके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न करता है।"[6]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, "यह गलत धारणा है कि उपन्यास और कहानियाँ संस्कृत की कथा और कथाख्यायिकाओं की सीधी संतान है। कथा और आख्यायिका नाम मात्र के गद्य हैं। उनमें वह झंकार है जो छंद का प्राण है। उपन्यास तथ्य जगत से अधिक संपृक्त है। उनमें विशुद्ध गद्य युग की उपज है, उसकी प्रकृति में गद्य का सहज प्रभाव है। उपन्यास में दुनिया जैसी है वैसी ही चित्रित करने का प्रयास प्रधान होता है। उपन्यास तथ्य प्रधान जगत के पास रहता है।"[7]

रामविलास शर्मा का विचार है, "उपन्यास में जितने विस्तार से समाज की गतिविधि का चित्रण किया जाता है उतने विस्तार से न कविता में संभव है न नाटक में, यही कारण है कि साहित्य में यथार्थवाद के विकास के साथ-साथ उपन्यास ही उसका मुख्य रूप बन गया।"[8]

राल्फ फॉक्सके अनुसार, "The eighteen century was the golden age of the Novel---- It (Novel) was not afraid of man and spoke the truth about life with an uncompromising courage- It had wit also and humour and it completted man to understand that the individual had an inner as well as an outer life-"9

डी.एच.लॉरेंस के शब्दों में, "उपन्यास जीवन की एक उज्जवल पुस्तक है। पुस्तकें जीवन नहीं हैं, वे सिर्फ हवा में थरथराहट है, जो समूचे जीवित मनुष्य को कम्पा सकती हैं। कविता, दर्शन, विज्ञान तथा किसी भी पुस्तक की थरथराहट से कहीं जबरदस्त उपन्यास की थरथराहट है।"[10]

जोर्ज मूर के शब्दों में, "उपन्यास समकालीन जीवन का इतिहास है। हम जिस युग में जी रहे हैं, उपन्यास उस सामाजिक परिवेश में पूर्ण और सही पुनःनिर्माण हैं।"[11]

इस तरह भारतीय और पाश्चात्य साहित्य चिंतकों ने उपन्यास को पारिभाषित करते हुए अपने विचार प्रस्तुत किए। इस आधार पर इतना जरूर कहा जा सकता है कि उपन्यास एक व्यापक फलक को अपने में दर्ज कर सकता है। यह समाज में प्रतिबिम्बित उथल-पुथल एवं समग्र जीवन की कहानी को व्यापकता में प्रस्तुत करने में भी समर्थ है। यह अतीतोंमुखी घटनाक्रम को भविष्योन्मुखी जीवन दृष्टि के रूप में व्यंजित करने की सामर्थ्य रखता है। अतः उपन्यास खंडशः जीवन को एक सूत्र में पिरोने का एक अद्‌भुत आख्यान है।

संदर्भ ग्रंथ

1. हिंदी शब्दसागर चतुर्थ भाग, मूल संपादक श्याम सुन्दरदास बी ए, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी,पृष्ठ सं-301
2. उपन्यास का वर्तमान, सं ओमप्रकाश सिंह, प्रकाशन संस्थान, 2018, पृष्ठ सं -49
3. हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, 2016, पृष्ठ सं-120
4. वही, पृष्ठ सं – 126
5. वही, पृष्ठ सं - 130
6. वही, पृष्ठ सं – 135
7. वही, पृष्ठ सं - 136
8. वही, पृष्ठ सं - 137
9. उपन्यास और लोक जीवन, राल्फ फॉक्स, मेधा बुक्स, 2008, पृष्ठ सं -143
10. पक्षधर पत्रिका, संपादक विनोद तिवारी
11. वही

भीष्म साहनी के साहित्य में नारी-चेतना : राजनीतिक पक्ष

मनकी रानी

शोधार्थी, पीएच.डी. (हिन्दी), मानविकी एवं समाज विज्ञान विभाग, प्रबंधन एवं मानविकी संकाय, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर

डॉ० निरुपमा हर्षवर्धन

शोध निर्देशिका, मानविकी एवं समाज विज्ञान विभाग, प्रबंधन एवं मानविकी संकाय, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर

''किसी देश की अर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियां राजनीतिक परिस्थितियों पर अवलम्बित और रहती है। इन्हीं परिस्थितियों के अनुसार किसी देश की जनता की चितवृतियां होती है और जनता की चितवृति का संचित प्रतिबिम्ब ही साहित्य कहलाता है।''[1] इसका तात्पर्य यह है कि साहित्य और राजनीति का अटूट सम्बन्ध है जो अन्योन्याश्रित रूप में स्थित है।

प्राचीन संस्कृत साहित्य के अनुशीलन से ज्ञान होता है कि नारी अपने गृह की सम्पूर्ण व्यवस्था रखने वाली सामग्री, ज्ञान-विज्ञान और ललित कलाओं में प्रवीण तथा युद्ध कला एवम् शासन व्यवस्था में परामर्श देनें वाली मंत्रिणी के रूप में अंकित की गई है। यही नहीं वह शुद्ध स्थलों पर पति और पुत्र की सहायता करके राजनीति में प्रमुख स्थान रखती है।

भीष्म साहनी की प्रत्येक रचना में अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक स्थिति विद्यमान है। यह राजनीति सामाजिक सम्बन्धों के परिवर्तन की वैचारिक भूमिका बनकर उपस्थित होती है। उनके आलोचनात्मक विवेक की सामाजिकता में राजनीति भी सूक्ष्म रूप से व्याप्त है। यह राजनीति वह दृष्टि है जो कथा के अंग-अंग को जागृत किए रहती है तथा उसे चुस्त बनाए रखती है। यह राजनीतिक दृष्टि समसामयिक प्रासंगिकताओं को क्षीण नहीं होने देती। भीष्म साहनी के लिए, ''राजनीति का अर्थ किसी पार्टी की सदस्यता नहीं है। देश और समाज की समस्याओं के प्रति लेखक की सजगता ही उसकी राजनीति है। वह जितना गहरा देश के जीवन से जुड़ा होगा, उतनी ही गहरी और साफ उसकी आस्थाएं भी होगी।''2

अंग्रेजी शासन और नारी

भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के विस्तार के कारणों एवं साम्राज्यवादी व्यवस्था से जन-मानस पर पड़ने वाले प्रभावों का ब्यौरा साहनी जी ने अपने उपन्यासों में किया है। जिस समय अंग्रजों ने भारत में प्रवेश किया, उस समय भारत छोटी-छोटी रियासतों में विभाजित था। राजनीति एक सूत्रता का अभाव था। अंग्रेजों ने तत्कालीन सामन्ती व्यवस्था को लालच देकर, भय देकर या युद्ध के माध्यम से नेतृत्व विहिन किया। अंग्रेजों ने ''फूट डालो राज करो'' के सूत्र को अपनाकर भारत पर शासन किया। भारतीय समाज में व्याप्त सामन्ती तत्वों, जाति, धर्म आदि के आधार विभाजित जनता की एकता को तोड़कर इन्हें अपने सुरक्षा कवच के रूप में प्रयोग किया। ''भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना में अंग्रेजी शासन से चिन्तित व्यक्ति का वर्णन किया है, ''पिताजी की टिप्पणी घर के किसी मामले के बारे में नहीं है, उसका सम्बन्ध अंग्रेजों से है, अंग्रेजी राज से है। कभी उनकी टिप्पणी का सम्बन्ध हिन्दू समाज में पायी जाने वाली कुरीतियों से होता है।''[3]

'तमगे' कहानी में अंग्रेजी शासन का वर्णन किया गया है। राजो का बेटा-मीरजमान एक अंग्रेज अफसर की जान बचाता है, जिसके कारण उसे तमगा देने की घोषणा की जाती है। सभी अंग्रेजी शासन की प्रशंसा करते हैं, ''मीरजमान का जहाज अदन की बंदरगाह से चल चुका है, और वह बडें दिनों में कराची पहुंचेगा और नए साल की परेड़ पर उसे बहादुरी का तमगा मिलेगा, क्योंकि उसने जंग में किसी अंग्रेज अफसर की जान बचाई है..... कोई कहता मीरजमान को ऊंचा दर्जा देकर फौज में रखेगें, कोई कहता पेंशन देकर बर्खास्त कर देगें। कोई कहता सात रुपये, कोई कहता ग्यारह रुपये! फैजअली बार-बार अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरकर कहता, ''इंसाफ देखा है तो अंग्रेज का। धोबन के बेटे को सरकार तमका देगी।''[4]

परन्तु राजो जब अपने बेटे को अपाहिज देखती है तो वह उससे मिलने के लिए दौड़ पड़ती है। परन्तु अंग्रेजी शासन के नियमों के अन्तर्गत उसे रोक दिया जाता है। वह अंग्रेजी शासन को मन ही मन कोसने लगती है, ''राजो उसे देखकर लड़खड़ा गई और ''फैजअली की आस्तीन छोड़कर मीरजमान के पलंग

की ओर जाने लगी, मगर फिर किंकर्तव्यविमूढ़ फैजअली के मुंह की तरफ देखने लगी। फैजअली ने उसे रोक दिया, परेड़ में फौजी के पास कोई नहीं जा सकता। कर्नल साहब नाराज होंगे। जहां पांच साल इन्तजार किया है, थोड़ी देर और ठहर जाओ। और राजो चुपचाप सिर पकड़कर जमीन पर बैठ गई।''[5]

इस प्रकार अंग्रेजी शासन भारतीय नारी के पक्ष में न होकर उनका और समस्त हिन्दुस्तानियों का शोषण करता है।

शासन व्यवस्था और नारी

भीष्म साहनी जी के साहित्य में जिस शासन व्यवस्था का वर्णन किया गया है उसमें नारी का शोषण ही होता रहा है, नारी अधिकारों के विरुद्ध है। 'पटरियाँ' कहानी संग्रह में भारतीय शासन व्यवस्था में पिसती हुई नारी का चित्रण किया हुआ है। ''उसके मरने के तेरह दिन बाद घर-बाहर सब सुनसान हो गये। एकाध सम्बधी कभी आ जाता, तो आ जाता। मैं सुबह से शाम अपने ससुर के पीछे-पीछे घिसटने लगी, कभी कभी किसी वकील के दफ्तर में और कभी बीमा कम्पनी के दफ्तर में। उसके मरने के बाद मैं और भी त्रस्त हो उठी थी, निराश्रय और त्रस्त। छोटे से कद का मेरा ससुर, बड़ा-सा पग्गड़ रखे आगे-आगे चल रहा होता, बगल में कागजों की दबाये और मैं पीछे-पीछे घिसटती जाती। मुझे नहीं मालूम था कि मेरे दोनों बच्चे कहां पर हैं, उनकी कोई सुध लेता है या नहीं।''[6] पति के देहान्त के बाद भी अबला का शोषण किया जाता है। शासन के ठेकेदार भी उससे रिश्वतखोरी की कामना करते हैं। बगैर पैसें के उसके कार्य को उलझा कर रखते हैं। नारी को मजबूर व असहाय बना देतें हैं।

'भटकती राख' में पत्नी अपने पति की नौकरी के विषय में चिंतित है। खन्ना द्वारा लिखी गई चिट्ठी को लेकर उसका पति चिंतित है और डरता है कि उसकी नौकरी ना छूट जाए। वह अपनी पत्नी से तक्र-वितक्र भी करता है। ''तुम बात को समझा करो कुन्तो, दफ्तर में सभी कभी काम फाइलों पर होते हैं। सैक्रेटरी ने ज्यों ही मेरी फाइल मंगवायी कि सुपरिडेण्ट को पता चल जाएगा। बल्कि जिस तरह वह मुझे देख-देखकर मुस्करा रहा था, मुझे यकीन है, उसे अभी पता चल चुका है। मुझसे यों भी डाह करता है, क्योंकि मैं उससे ज्यादा पढ़ा हुआ हूँ। ये जान-बूझकर रिपोर्ट खराब कर देते हैं।'[7] कुन्तो के कथन से प्रतीत होता है। कि आज की शासन-व्यवस्था में बिना सिफारिश के कुछ भी काम नहीं होता। अगर आज कोई आगे है तो वो केवल सिफारिश के बल पर। ''खुद कह रहे थे कि सिफारिश के बिना काम नहीं चलता। अब किसी ने पीठ पर हाथ रखा तो उल्टा बिगड़ने लगे हो। अगर सुपरिडेण्ट ने देख लिया, तो तुम्हारी बला से। अगर क्लर्क जलते हैं तो जलने दो, हमने किसी का ठेका ले रखा है।''[8]

सिफारिश, रिश्वतखोरी आदि तो है ही शासन-व्यवस्था में इसके साथ-साथ लोगों को धर्म, राजनीति के नाम पर आपस में झगड़ा, दंगेफसाद कराने भी शासन व्यवस्था का विरोध करती है परन्तु रिचर्ड उसकी बातों को गम्भीरता से नहीं लेता। तमस की पक्तियां हैं-

''यह धार्मिक पर्व नहीं है लीजा, दरअसल शहर में हिन्दुओं और मुस्लमानों के बीच फसाद हो गया है।''

''तुम्हारे रहते फिसाद हो गया है रिचर्ड?''

''हम इनके धार्मिक झगड़ों में दखल नहीं देते। लीजा, तुम जानती हो।''

''तुमने इसे बन्द क्यों नहीं करवा दिया रिर्चड? यहां मुझे डर लगता है। ये लोग आपस में लड़े, क्या यह अच्छी बात है?''[9]

इस प्रकार से शासन व्यवस्था के प्रति नारी को जागरूक होने की अवश्यकता है। हमें भी चाहिए कि नारी के अधिकारों को ध्यान में रखकर शासन व्यवस्था का निर्माण करना चाहिए। आधुनिक समाज में शासन व्यवस्था कुछ हद तक परिवर्तित हुई है। नारी का शासन व्यवस्था में आगमन से नारी-समाज को अत्याधिक लाभ मिला है। नारियों के लिए उन्नति के मार्ग खुल गए है जो आधुनिक समाज की उन्नति के लिए भी अतिआवश्यक है।

चुनाव व्यवस्था

''लोकतंत्र में विधि निर्माण और प्रशासन का कार्य जनसाधारण के प्रतिनिधियों के हाथों में रहता है और उन्हें उचित अन्तराल के बाद फिर से जनता का सर्मथन प्राप्त करना पड़ता है। यदि जनता उनके कार्य, नीतियां या कार्यक्रम से संतुष्ट न हो तो वह उनकी जगह नए प्रतिनिधियों का चुनाव कर सकती है।''[10]

भीष्म साहनी जी ने अपने साहित्य में चुनाव व्यवस्था का बहुत कम परन्तु स्पष्ट वर्णन किया है। 'मौकापरस्त' सम्पूर्ण कहानी चुनाव व्यवस्था पर आधारित है। राजनीति स्वार्थों से युक्त है। अगर उनकी पार्टी का ही कोई उम्मीदवार मर जाता है तो उसके अंतिम संस्कार में जाना भी उनको अनावश्यक लगता है क्योंकि उनके स्वंय के काम उन्हें महत्वपूर्ण लगते है।

''शहर के दूसरे किनारे, एक गली में शम्भू मर गया था और मुझे उसके दाह-कर्म का प्रबन्ध करना था। तभी मुझे रामदयाल का ख्याल आया था। यदि रामदयाल साथ में हुआ, तो सभी काम सुभीते से हो जाएगा और मैं आठ बजते-बजते ही उसके घर जा पहुंचा था। पहले तो उसने इन्कार कर दिया था और टस से मस न हुआ। नगर-निगम का कोई इलेक्शन होने वाला था और मत दो दिन बाद पड़ने वाले थे। 'वहां बड़ा कड़ा मुकाबला है, वह बोला ''एक-एक वोट कीमती है आज माफ कर दो। मैं तुम्हारे साथ नहीं चल सकता।''

मैनें मृतक का वास्ता डाला, शर्मिन्दा किया, जो आदमी मर गया था, वह भी हमारी पार्टी का ही आदमी था। अचानक हादसे में मारा गया था। उसके दाह-कर्म का प्रबन्ध करने वाला काई नहीं था।

मैं मुर्दे जलाता फिरूं, तो इलैक्शन कौन लडेगा? तुम चले जाओ, आज मैं नहीं जा पाऊँगा। मुझे बहुत काम है।''[11]

चुनाव व्यवस्था राजनीति का आधार होता है क्योंकि चुनाव में विजय प्राप्त करना उसका सर्वप्रथम लक्ष्य होता है और यहीं से उसकी राजनीति शुरू होती है। शम्भु की मौत के बाद अंतिम संस्कार को भी राजनीति से जोड़ दिया जाता है। रामदयाल चुनाव में जीतने के लिए और लोगों का मत प्राप्त करने के

लिए काफी दिखावा और ढोंग करता है। मृतक शम्भू की पत्नी विवश, बेबश और लाचार होती है। वह रामपाल को ऐसा करने से मना भी नहीं कर सकती क्योंकि उसका और कोई सहारा भी नहीं है। ''जब अरथी को ट्रक में रखा गया, तो वह कुछ नहीं बोली। मूक आंसुओं से भीगी आंखों से देखती-भर रही। उसके दोनों बेटे लपककर ट्रक पर चढ़ गये जो काफी छोटे थे। देखते-देखते सारा दृश्य बदल गया। ट्रक में एक ऊँची मेज पर शम्भू की देह रखी गई, उस पर पार्टी का झण्डा बिछाया गया, फूलों के गजरों से शम्भू की देह को लाद दिया गया। पार्टी के ही दस-बारह स्वयंसेवक ट्रक के चारों ओर दिखाई देने लगे। ट्रक के दाएं-बाएं जहाँ सफेद चादर टंगी थी, फूलों के गजरे लटका दिये गए और पार्टी के झण्डे लगा दिये गए। मौत का समां इतना नहीं रहा, जितना समारोह का।

भाषण लम्बा नहीं था, उसमें शम्भू के गुणों का बखान था, पर साथ ही उसमें होने वाले चुनाव की ओर इशारा था, जो मुझे असंगत-सा लगा। लेकिन रामदयाल के दिमाग पर चुनाव छाया हुआ था। उसे अन्य किसी बात की सुध नहीं थी।''[12]

इस प्रकार भारतीय नारी चुनाव-व्यवस्था की शिकार भी है। उसे सब कुछ सहना पड़ता है। चाहे शम्भू की पत्नी के रूप में हो या फिर किसी अन्य रूप में। साहनी जी ने चुनाव व्यवस्था का वर्णन बहुत कम वर्णन किया है। परन्तु जितना भी वर्णन बहुत स्पष्टीकरण करती है और उद्देश्यपूर्ण है। 'मौकापरस्त' कहानी में आधुनिक राजनीति की स्पष्ट झलक मिलती है जो स्वार्थपरता और अनैतिकता से ओत-प्रोत है।

राजनीति का अपराधीकरण

राजनीतिक कुचक्रों झूठे वादों, कोरे आश्वासनों और सत्ता के प्रति मोह ने जनता को सदैव ही उत्पीड़ित किया है। ''राजा इस विश्वास के साथ बनाया जाता है कि वह सत्ता की ताकत का उपयोग प्रजा के पोषण और रक्षण में करेगा, परन्तु राजा सत्ता पाते ही निरंकुश हो जाता है और कुछ भूल कर शोषण करने लगता है। इसी प्रतिक्रिया में सत्ता के साथ विरोध जन्म लेता है और विरोध प्रायः संघर्ष, शडयन्त्र और हत्याओं की रचना करता है।''[13]

भीष्म साहनी जी का साहित्य क्रांतिधर्मी मानव संवेदनाओं की ऊँचाईयों तक पहुंचा हुआ है। उसके राजनीतिक पहलू प्रखर और स्पष्ट हैं, वे सकारात्मक प्रभाव पैदा करने वाले वाले है। उनकी प्रत्येक रचना की राजनीतिक स्थिति कायम है। यह राजनीति सामाजिक सम्बधों के परिवर्तन की वैचारिक भूमिका बन कर उपस्थित होती हैं। उनके आलोचनात्मक विवेक की सामाजिकता में व्याप्त है। यह राजनीति दृष्टि है जो कथा के अंग-अंग को जागृत किए रहती है तथा उन्हें चुस्त बनाए रखती है। वह सम-समायिक प्रासगिकताओं को क्षीण नहीं होने देती। साहनी जी के साहित्य में स्पष्ट होता है कि राजनीतिक अधिकारों की आड़ में लोग गरीबों का शोषण करते हैं। 'नीली आंखे' कहानी में वर्णन है कि एक पुलिस वाला गरीबों का शोषण करता है। ''ऐन उसी वक्त दूर से लाल पगड़ीवाला सिपाही अपनी गश्त पर आता हुआ नजर आया। लड़की ने उसे देखा तो झट से पेड़ के पीछे छुपकर खड़ी हो गई। बीमार ने सिपाही को आते देखा तो उसका सारा शरीर कांपने लगा। घबराया हुआ बोला, 'बाबू जी इससे सारे पैसे ले लो, नहीं तो सिपाही सब छीन लेगा। 'अरे घबराओं नहीं, कुछ नहीं कहेगा।'

'नहीं बाबूजी, यह सब छीन लेगा, यह हमें मिलने भी नहीं देता।'

लड़की ने फौरन आगे बढ़कर साथ खड़े दाढ़ी वाले के हाथ में पैसे रख दिए और फिर छिपकर खड़ी हो गयी। सिपाही की नजर जब बीमार पर पड़ी तो वह बढ़ता हुआ चला आया, उठ हरामजादे अभी तक यहीं पर बैठा है।''[14] इस प्रकार प्रकार पुलिस प्रशासन आपराधीकरण को बढ़ावा दे रहा है। 'मालिक का बन्दा' कहानी में भी इसी प्रकार का वर्णन है। 'रेलवे यार्ड में स्लीपरों की कमी है क्या? लकड़ी भी यहां से ली। गोदाम में स्लीपरों के ढ़ेर रखे है। मैं पांच-पांच क्विंटल सीमेंट रेलवे के गोदाम से ले जाता रहा हूँ। किसी की हिम्मत नहीं हुई कि मुझसे पूछे कि क्यों ले जा रहा हूँ। किसी की हिम्मत नहीं हुई कि मुझसे पूछे कि क्यों ले जा रहे हो।''[15] अपनी वर्दी की धौंस दिखाकर ये गरीबों को लूटते रहते हैं, सरकार का फायदा उठाते रहे है। इनके कारण आम नागरिक, नारी सभी का जीवन दूभर हो जाता है, वे न्याय भी प्राप्त नहीं कर पाते।

''लीला नन्दलाल की कहानी में स्कूटर चोरी हो जाने पर लड़के की माता और पत्नि का बूरा हाल होता है। बाद में स्कूटर की जानकारी होने पर भी उसको प्राप्त करने के लिए बहुत धक्के खाने पड़ते हैं। उसकी पत्नी और मां राजनीति में फैले अपराधिकरण को कोसती है।''[16] वास्तव में राजनीति में फैले भ्रष्टाचार ने सामाजिक जीवन को अस्त-व्यस्तकर दिया है।

'सरदारनी' कहानी में हिन्दू धर्म के लोग मुस्लिम धर्म के लोगों को मार देना चाहते हैं, परन्तु सरदारनी अपनी अपनी जान पर खेलकर मुस्लिम मास्टर की जान तो बचाती है ही बल्कि साथ-साथ उसको उसके घर तक छोड़कर भी आती है। राजनीति के विरूद्ध नारी का यह साहसिक कार्य विचारणीय है।

''यह गुरू महाराज की तलवार है, किसी आततायी को नहीं छोड़ेगी। हट जाओ सामने से, जिसे जान प्यारी है।''

मास्टर मुस्लमानों के मोहल्ले में पहुंच चुका था जब सरदारनी का दमकता हुआ चेहरा मास्टर को देखने को मिला। गम्भीर कठोर जैसे चट्टान में से तराशा गया हो।

'जाओ मास्टर! उसने कहा और उन्हीं कदमों अपने मुहल्ले की और लौट पड़ी।'

''फिसाद की आग धू-धू करके बहुत दिनों तक जलती रही। बसा-बसाया नगर शमशान जैसा बन गया। बुनकरों के करघे जल गये, मण्डी जल गयी, अनगिनत दुकानें लूटी गयी, आग के शोले आसमान को छुते थे, कितने ही लोग मारे गये।''[17]

सरदारनी का साहस और निर्भिकता सम्पूर्ण नारी समाज के लिए अनुकरणीय है। वे भी राजनीति के अपराधीकरण के विरूद्ध आवाज उठा सकती है।

भीष्म साहनी जी ने आत्मकथा 'आज के अतीत' में राजनीति के विषय में कहा है, ''संस्थागत धर्म, इंसान को इंसान से अलग करते हैं, उनमें भेदवाद

को वैमनस्य के स्तर तक बढ़ावा देते है। सत्तालोलुप धार्मिक संगठन और सत्तालोलुप राजनीति में गठजोड़ होने लगता है। इस तरह संस्थागत धर्म की भूमिका अपने चरम रूप मानवता विरोधी होने लगती है, यह अकारण नहीं है कि ऐसे धार्मिक संगठन उन तानाशाहों के गुण गाते हैं जिन्होंने भारी संख्या में नरसंहार किए।''[18] इस प्रकार साहनी जी के साहित्य में अध्ययन से ज्ञान होता है कि राजनीति में न्याय की अपेक्षा अपराधों, अन्याय, रिश्वतखोरी का बोलबाला है।

संदर्भ सूची

1. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 12
2. भीष्म साहनी, अपनी बात, पृ. 146
3. राजेश्वर सक्सेना, प्रताप ठाकुर, भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना, पृ. 55
4. भीष्म साहनी, भाग्य रेखा (तमगे), पृ. 46
5. भीष्म साहनी, भाग्य रेखा (तमगे), पृ. 49
6. भीष्म साहनी, पटरियाँ (तस्वीर), पृ. 57
7. वही, भटकती राख (सिफारिशी चिट्ठी), पृ. 86
8. भीष्म साहनी, भटकती राख (सिफारिशी चिट्ठी), पृ. 85
9. वही, तमस, पृ. 110-111
10. डॉ. ओम प्रकाश गाबा, समाज विज्ञान कोश, पृ. 72
11. भीष्म साहनी, पटरियाँ (मौकापरस्त), पृ. 68
12. भीष्म साहनी, पटरियाँ (मौकापरस्त), पृ. 74-75
13. विपिन गुप्त, हिन्दी नाटक में समसामयिक परिवेश (1971-1990 ई॰), पृ. 114
14. भीष्म साहनी, भाग्य रेखा (नीली आँखें), पृ. 70
15. वही, वॉ्चू (मालिक का बन्दा), पृ. 60-61
16. वही, शोभायात्रा (लीला नन्दलाल की), पृ. 116-117
17. वही, निशाचर (सरदारनी), पृ. 163
18. वही, आज के अतीत, पृ. 292

जन्म एवं परिचय

माधुरी राजनाथ सिंह

शोध छात्रा, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. विवेकी राय हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार थे। ये मूलत: मुहम्मदाबदा तहसील के सोनबानी गाँव के रहने वाले थे। उनका जन्म अपने ननिहाल भरौली (बलिया) जिला गाजीपुर, उत्तर प्रदेश में 19 नवंबर 1924 को हुआ था। विवेकी राय के जन्म से डेढ़ माह पहले पिता शिवपाल राय का प्लेग की महामारी में निधन हो गया था। माँ जविता देवी थीं। पिता के अभाव में उनका बचपन ननिहाल में मामा बसाऊ राय की देख-रेख में बीता था। ये देहाती धरती की ऊश्मा से बने एक सीधे सच्चे कर्मठ इंसान थे। उन्होंने अपनी कड़ी मेहनत में अपने को कहाँ से कहाँ तक उठाया था। विवेकी राय गाँव की खेती-बारी भी देखते थे और गाजीपुर में अध्यापन तथा साहित्य सेवा में भी लीन रहते थे। गाँव के उत्तरदायित्व का पूरा निर्वाह करते हुए भी उन्होंने बहुत लगन से विपुल साहित्य पढ़े लिखे थे। विवेकी राय अपने मित्रों और परिचतों में तथा पाठकों में भी बहुत प्यार से जाने जाते थे। वे स्वभावत: गंभीर एवं खुश-मिजाज रचनाकार थे। बहुमुखी प्रतिभा के धनी, सीधे, सच्चे, उदार एवं कर्मठ व्यक्ति थे। ललाट पर एक बड़ज्ञ सा तिल, सादगी, सौमनस्य, गंगा की तरह पवित्रता, ठहाका मारकर हँना, निर्मल आचार-विचार इनकी विशेषताएँ थीं। सदा खादी के घवल वस्त्रों में दिखने वाले, अतिर्थियों का ठठाकर आतिथ्य सत्कार करने वाले साहित्य सृजन हेतु नवयुवकों को प्रेरित करने वाले आप भारतीय संस्कृति की साक्षात प्रतिमूर्ति थे। डॉ. विवेकी राय का जीवन सादगी पूर्ण था। गंभीरता उनका आभूषण था। दूसरों के प्रति अपार स्नेह एवं सम्मान का भाव सदा वे रखते थे। सबसे खुलकर गंभीर विषय की निष्पत्ति एवं चर्चा करना उनका स्वभाव था। अपने इन्हीं गुणों के कारण विवेकी राय बहुतों के लिए वे परम पूज्य एवं आदरणीय बने गए थे। कुल मिलाकर वे संत प्रकृति के सज्जन थे। विवेकी राय 1964 में गाजीपुर के पीजी कॉलेज के हिन्दी विभाग में नियुक्त हुए थे। सालों विभागाध्यक्ष रहे थे। 1988 में वहाँ से सेवानिवृत्त हुए थे। उनके पूर्व विवेकी राय ने 13 साल तक अपने निकटवर्ती गाँव खरडीहा के सर्वोदय इंटर कॉलेज में अध्यापन किया था।

शिक्षा

डॉ. विवेकी राय की प्रारंभिक शिक्षा पैतृक गाँव सोनवानी के लोअर प्राइमरी स्कूल (गाजीपुर) से शुरू हुई थी। मिडिल की पढ़ाई 1940 में निकटवर्ती गाँव महेंद में हुई। उर्दू मिडिल भी 1941 में उन्होंने महेंद से ही पढ़े। आगे की पढ़ाई उन्होंने व्यक्तिगत छात्र के रूप में पूरी की। हिन्दी विशेष योगयता 1943 में, विशारद 1944 में, साहित्यरत्र 1946 में, साहित्यालंकार 1951 में, हाईस्कूल 1953 में नरही (बलिया0 से किया था, इंटर 1958 में, बीए 1961 में और एम.ए. की डिग्री श्री सर्वोदय इण्टर कॉलेज खरडीहां (गाजीपुर) 1964 में ली थी। उसी क्रम में वह 1948 में नार्मल स्कूल, गोरखपुर से हिन्दुस्तानी दीचर्स सर्टिफेकेट भी प्राप्त किया। सन् 1970 ई. में स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन विषय पर काशी विद्यापठी, वाराणसी से पी.एच.डी. की उपाधि मिली थी। स्नातकोत्तर परीक्षा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण क थी। यह अपने आप में शैक्षिक मूल्यों की प्राप्ति और प्रदेय का अनूठा उदाहरण है। जब विवेकी राय 7वीं कक्षा में अध्ययन कर रहे थे उसी समय से डॉ. विवेकी राय जी ने लिखना शुरू किया। गाजीपुर के एक कॉलेज में प्रवक्ता होने के साथ-साथ अपने गाँव के किसान बने रहे थे। डॉ. विवेकी राय गाँव की बनती-बिगड़ती जिंदगी के बीच जीते हुए और उसे पहचानते हुए चलते रहे थे। इसलिए गाँव के जीवन से सम्बंधित उनके अनुभवों का खजाना चुका नहीं, नित भरता ही गया।

लेखन कार्य

सन् 1945 ई. में डॉ. विवेकी राय की प्रथम कहानी 'पाकिस्तानी' दैनिक 'आज' में प्रकाशित हुई थी। इसके बाद इनकी लेखनी हर विधा पर चलने लगी जो कभी थमने का नाम ही नहीं ले सकी। इनका रचना कार्य कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्वाज, डायरी, समीक्षा, सम्पादन एवं पत्रकारिता आदि विविध विधाओं से जुड़े रहे थें अब तक इन सभी विधाओं से सम्बन्धित लगभग 60 कृतियाँ आपकी प्रकाशित हो चुकी हैं और लगभग 10 प्रकाशनाधीन है।

साहित्यिक सफरनामा

डॉ. विवेकी राय साहित्यिक सफर मिडिल स्कूल की पढ़ाई के वक्त ही शुरू हो गया था लेकिन लेखन का प्रामाणिक शुरूआत 1945 से माना जाता है। 1947 से 1970 तक उसी समाचार पत्र में उन्होंने नियमित स्तंभ मनबोध मास्टर की डायरी लिखी थी। उस में ललित निबंध, रेखाचित्र और रिपोर्ताज समाहित रहते थे। फिर तो विवेकी राय लेखन में प्रतिष्ठापित हो गए। तब की हिन्दी की चोटी की पत्रिकाएं धर्मयुग, कल्पना, ज्ञानोदय, कहानी, साप्ताहिक हिन्दुस्तान,

सारिका, नवनीत और कादंबिनी आदि पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ नियमित प्रकाशित होती रहीं थी। समीक्षा और प्रकर में विवेकी राय की रचनाओं की समीक्षाएं आती थी। रविवार में उनका स्तंभ गाँव काफी लोकप्रिय हुआ। ज्योत्सना, शिखरवार्ता तथा जनसत्ता में भी डॉ. राय के स्तंभ आते थे। ललित निबंध में हजारी प्रसाद द्विवेदी और डॉ. विद्या निवास मिश्र जैसे महान् रचनाकार के समकक्ष उन्हें मान मिला था। वर्ष 2004 तक उनके लेखन पर देश के जाने-माने विश्वविद्यालयों में कुल 61 शोध कार्य हो चुके थे। डॉ. राय आकाशवाणी, दूरदर्शन से भी जुड़े थे। डॉ. विवेकी राय ने 5 भोजपुरी ग्रन्थों का सम्पादन भी किया था। सर्वप्रथम इन्होंने अपना लेखन कार्य कविता से शुरू किया था। विवेकी राय विशुद्ध भोजपुरी अंचल के महान् साहित्यकार थे। सत्यपथ पर दृढ़ निश्चय के साथ बढ़ते रहने का सतत प्रेरणा देने वाले डॉ. विवेकी राय मूलत: गँवई सरोकार के रचनाकार थे। बदलते समय के साथ गाँवों में होने वाले परिवर्तनों एवे ऑचलिक चेतना विवेकी राय के कथा साहित्य की एक विशेषता थ। इन्होंने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में किसानों, मजदूरों, स्त्रियों तथा उपेक्षितों की पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान की थी। अपने रचनाधार्मिता के कारण डॉ. विवेकी राय को हम प्रेमचन्द्र और फीणीश्वर नाथ रेणी के बीच का स्थान दे सकते हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय ग्रामीण जीवन में परिलक्षित परिवर्तनों को डॉ. विवेकी राय ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया था। विवेकी राय के कथा साहित्य में गाँव की खूबियाँ एवं अन्तर्विरोध हमें स्पष्ट रूप से दिखाई देती थी। उनकी सृजन यात्रा अर्धशती से आगे निकली थी। जीवन के साकारात्मक पहलुओं की ओर, लोक मंगल की ओर इन्होंने अब तक विशेष ध्यान दिया था।

पुरस्कारों एवं मानद उपाधियों से सम्मानित

डॉ. विवेकी राय को अनेकों पुरस्कारों एवं मानद उपाधियों से सम्मानित किये गये थे। डॉ. राय ने हिन्दी के साथ ही भोजपुरी साहित्य जगत में राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बना ली थी। उन्होंने आंचलित उपन्यासकार के रूप में ख्याति अर्जित की।

उत्तर प्रदेश सरकार–यश भारती पुरस्कार, महात्मा गाँधी सम्मान

हिन्दी संस्थान (उ.प्र.) द्वारा–'सोनामाटी' उपन्यास–प्रेमचन्द्र पुरस्कार, साहित्यभूषण (1994) अखिल भारतीय भोजपुरी परिषद, भोजपुरी भास्कर (1994)

हिन्दी संस्थान लखनऊ (उ.प्र.) द्वारा–साहित्य भूषण पुरस्कार,

बिहार सरकार द्वारा–आचार्य शिवपूजर सहाय सममान (1994), 'आचार्य शिवपूजन सहाय पुरस्कार,

मध्य प्रदेश सरकार द्वारा'–शरद चन्द जोशी (1997)

राजस्थान–हिन्दी सेवी सम्मान (1999)

श्रीमठ, काशी–जगदगुरू रामानंदाचार्य पुरस्कार

भोजपुरी साहित्य सम्मेलन–अखिल भारतीय का अभय आनंद पुरस्कार,

दिल्ली–स्वामी सहजानंद सरस्वती सेवा पुरस्कार,

2000–वाँचल विश्वविद्यालय का पूर्वाचल रत्र

2001–महापंडित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार,

2002–केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा–महापंडित राहुल सांकृत्यायन,

2004–विश्व भोजपुरी देवरिया का सेतु,

2004–उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन–महावीर प्रसाद द्विवेदी सममान, प्रयाग का साहित्य वाचस्पति,

2005–दैनिक समाचार पत्र दैनिक जागरण–नरेंद्र मोहन आंचलिक लेखक सममान

2006–उत्तर प्रदेश–यश भारतीय सम्मान

पुरस्कारों एवं मानद उपाधियों से सम्मानित डॉ. विवेकी राय को सम्मान केन्द्रीय हिन्दी संस्थान एवं मानव संसाधन विकास मंत्रालय, के संयुक्त तत्वावधान में दिया गया था, पंडित राहुल सांकृत्यायन' सम्मान, केडिया सांस्कृतिक संस्थान, देवरिया का आनंद सम्मान, विक्रमशीला विद्यापीठ, गाँधीनगर इशीपुर भागलपुर का विद्यासागर सम्मान, हिन्दी सम्मेलन का विद्यावाचसपति, साहित्य महोपध्याय की मानद उपाधि तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की ओर से प्रदान 'साहित्य वाचस्पति' उपाधि जैसे अनेकों सम्मान इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं।

विश्वविद्यालय पर शोध

डॉ. विवेकी राय के उपन्यासों, कहानियों, ललित निबन्धों, उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व, उनकी समपूर्ण साहित्य साधना पर पंजाब वि.वि., गोरखपुर विश्वविद्यालय, रूहेल खण्ड विश्वविद्यालय, पटना विश्वविद्याल, विक्रमाशिला विश्वविद्यालय,, काशी विद्यापीठ, मगध विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, मुम्बई विश्वविद्यालय,, उस्मानिया विश्वविद्यालय, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सबा मद्रास, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, देवी अहिलया विश्वविद्यालय, डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय,, पंडित दीन दयाल विश्वविद्यालय, शिवाजी विश्वविद्यालय, महाराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजस्थान विश्वविद्यालय, वीर बहादुर सिंह पर्वांचल विश्वविद्यालय, बेंगलोर विश्वविद्यालय, जेयोति बाई विश्वविद्यालय, जम्मू विश्वविद्यालय, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय आदि विश्वविद्यालयों में एम.फिल, पी.एच.डी. के 70 शोध प्रबन्ध लिखे जा चुके थे और कई विश्वविद्यालय, में छात्रों द्वारा इन पर शोध कार्य किया गया।

विवेकी राय की रचनाएँ

ललित निबंध	कहानी संग्रह	संस्करण
1. किसानों का देश (1956)	1. जीवन-परिधि (1952)	1. मेरे शुद्ध श्रद्धेय
2. गाँवों की दुनिया (1957)	2. नयी कायेल (1975)	**रिपोर्ताज**
3. त्रिधारा (1958)	3. गूंगा जहाज (1977)	1. जुलूस रूका है (1977)
4. फिर बैतलवा डाल पर (1980)	4. बेटे की बिक्री (1981)	**डायरी**
5. गंवई गंध गुलाब (1980)	5. कलातीत (1982)	1. मनबोध मास्टर की डायरी (2006)
6. नया गाँवनाम (1984)	6. चित्रकूट के घाट पर (1988)	**काव्य**
7. यह आम रास्ता नहीं है (1988)	7. श्वेत पत्र (1996)	1. दीक्षा
8. आस्था और चिंतन (1991)	8. सर्कस (2005)	**साहित्य समालोचना**
9. जगत् तपोवन सो कियो (1995)	9. मेरी तेरह कहानियाँ	1. कल्पना और हिन्दी साहित्य (1999)
10. वन तुलसी की गंध (2002)	10. आंगन के बंधनवार	2. नरेन्द्र कोहली अप्रतिम कथा यात्री
11. जीवन अज्ञात का गणित है (2004)	11. अतिथि	
12. उठ जाग मुसाफिर (2012)	12. लौटकर देखना	
13. मनबोध मास्टर की डायरी	13. लोकरिन	**अन्य**
14. जुलूस रूका है उठ जाग मुसाफि	14. मंगल भवन	1. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचना (1984)
उपन्यास	15. नममी ग्रामम	2. सवालों के सामने
1. मंगल भवन (1944)	16. देहरी के पार	3. ये जो है गायजी
2. बबूल (1964, डायरी-शैली में)	17. सोनमती	4. मुहम्मद इलियास हुसैन
3. पुरुष पुराण (1975)	18. पुरुष पुरान	
4. लोकऋण (1977)	19. समर शेष है	
5. श्वेत पत्र (1979)	20. आम रास्ता नहीं है	
6. सोनमाटी (1983)	21. आस्था और चिंतन	
7. समर शेष है (1988)	22. अतिथि	
8. मंगल भवन (1994)	23. जीवन अज्ञान का गणित है	
9. नमामि ग्राम् (1997)	24. लौटकर देखना	
10. देहरी के पार (2003)	25. लोकरिन	
	26. मेरे शुद्ध श्रद्धेय	
	27. मेरी तेरह कहानियाँ	

भोजपुरी

निबंध एवं कविता–

- भोजपुरी निबंध निकुंज : भोजपुरी के तैन्तालिस गो चुनल निम्बंध, अखिल भारतीय भोजपुरी साहित्य सम्मेलन, 1977
- गंगा, यमुना, सरस्वती : भोजपुरी कहानी, निबंध, संस्मरण, भोजपुरी संस्थान, 1992
- जनता के पोखरा : तीनि गो भोजपुरी कविता, भोजपुरी साहित्य संस्थान, 1984

उपन्याय

- अमंगलहारी, भोजपुरी संस्थान, 1998
- के कहला चुनरी रंगा ला, भोजपुरी संसाद, 1968
- गुरू-गृह गयी पढ़ान रघुराय, 1992

विवेकी राय की किताबों और निबंध में इनके जीवन का सार दिखाई पड़ता है जो की ग्रामीण व्यवस्था के प्रति प्रेम और दूरदर्शिता का जीता जागता उदाहरण थे।

निधन : हिन्दी और भोजपुरी के प्रख्यात साहित्यकार डॉ. राय काफी दिनों से बीमार चल रहे थे। नवंबर को अचानक तबीयत गंभीर होने के बाद उन्हें वाराणसी के निजी अस्पताल में दाखिल कराया गया था। डॉ. विवेकी राय का 22 नवम्बर, 2016 वाराणसी में निधन हो गया। इनका वाराणसी के मणिकर्णिका घाट पर अंतिम संस्कार हुआ था। केन्द्रीय संचार ओर रेल राज्यमंत्री मनोज सिन्हा ने दिवंगत विवेकी राय को उनके घर पहुँचकर पुष्पांजलि दी थी। इस दौरान उन्होंने कहा था कि "साहित्य जगत को डॉ. विवेकी राय के निधन से अपूरणीय क्षति हुई है। डॉ. राय को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था कि "50 से अधिक पुस्तकों के लेखक के जाने से आंचलिक साहित्य के एक बड़े युग का अंत हो गया।"

डॉ. विवेकी राय (जन्म-19 नवम्बर, 1924, जिला गाजीपुर, उत्तर प्रदेश: मृत्यु-22 नवम्बर, 2016 वाराणसी) हिन्दी और भोजपुरी भाषा के प्रसिद्ध साहितयकार थे। वे ग्रामीण भारत के प्रतिनिधि रचनाकार थे। विवेकी राय ने 50 से अधिक पुस्तकों की रचना की थी। वे ललित निबंध, कथा साहित्य और कतिवा कर्म में समभ्यस्त थे। आज भी विवेकी राय को 'कविजी' उपनाम से जाना जाता है।

संदर्भ-सूची

1. विवेकी राय–आस्था और चिंतन, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, प्र. सं. 1991. पृष्ठ 18
   निबंध–हिन्दी निबंध की विकास-यात्रा
2. विवेकी राय–आम रास्ता नहीं है, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1988, पृष्ठ 101
   निबंध–मेरा लेखक

टेलीविजन का विकासक्रम

सिंह मीरा विश्वनाथ

शोध छात्रा, मुंबई विश्वविद्यालय

भारत में अपने आरंभ से लगभग 30 वर्ष तक टेलीविजन की प्रगति धीमी रही किंतु वर्ष 1980 और 1990 के दशक में दूरदर्शन ने राष्ट्रीय कार्यक्रम और समाचारों के प्रसारण के जरिये हिंदी को जनप्रिय बनाने में कफी योगदान किया। वर्ष 1990 के दशक में मनोरंजन और समाचार के निजी उपग्रह चौनलों के पदार्पण के उपरांत यह प्रक्रिया और तेज हो गई। रेडियो की तरह टेलीविजन ने भी मनोरंजन कार्यक्रमों में फिल्मों का भरपूर उपयोग किया और फीचर फिल्मों, वृत्तचित्रों तथा फिल्मों गीतों के प्रसारण से हिंदी भाषा को देश के कोने-कोने तक पहुंचाने के सिलसिले को आगे बढ़ाया। टेलीविजन पर प्रसारित धारावाहिक ने दर्शकों में अपना विशेष स्थान बना लिया। सामाजिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, पारिवारिक तथा धार्मिक विषयों को लेकर बनाए गए हिंदी धारावाहिक घर-घर में देखे जाने लगे। रामायण, महाभारत हमलोग, भारत एक खोज जैसे धारावाहिक न केवल हिंदी प्रसार के वाहक बने बल्कि राष्ट्रीय एकता के सूत्र बन गए। देखते-ही-देखते टीवी कार्यक्रमों के जुड़े लोग फिल्मी सितारों की तरह चर्चित और विख्यात हो गए। समूचे देश में टेलीविजन कार्यक्रमों की लोकप्रियता की बदौलत देश के अहिंदी भाषी लोग हिंदी समझने और बोलने लगे।

'कौन बनेगा करोड़पति' जैसे कार्यक्रमों ने लगभग पूरे देश को बांधे रखा। हिंदी में प्रसारित ऐसे कार्यक्रमों में पूर्वोत्तर राज्यो, जम्मू-कश्मीर और दक्षिणी राज्यों के प्रतियोगियों ने भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और इस तथ्य को दृढ़ता से उजागर किया कि हिंदी की पहुंच समूचे देश में है। विभिन्न चौनलों ने अलग-अलग आयु वर्गों के लोगों के लिए आयोजित प्रतियोगिताओं के सीधे प्रसारणों से भी अनेक अहिंदीभाषी राज्यों के प्रतियोगियो ने हिंदी में गीत गाकर प्रथम और द्वित्तीय स्थान प्राप्त किए। इन कार्यक्रमों में पुरस्कार के चयन में श्रोताओं द्रारा मतदान करने के नियम ने इनकी पहुंच को और विस्तृत कर दिया। टेलीविजन चौनलों पर प्रसारित किए जा रहे तरह-तरह के लाइव-शो में भाग लेने वाले लोगों को देखकर लगता ही नहीं कि हिंदी कुछ खास प्रदेशों की भाषा है। हिंदी फिल्मों की तरह टेलीविजन के हिंदी कार्यक्रमों ने भी भौगोलिक, भाषाई तथा सांस्कृतिक सीमाएं तोड़त दी हैं।

टेलीविजन को विज्ञान का एक अदभुत आविष्कार माना जाता है। इसको हिन्दी में दूरदर्शन कहा जाता है क्योंकि इसके द्वारा दूर की वस्तुओं के दर्शन होते हैं । दूरदर्शन पर ख्रश्यों को देखकर लगता है कि घटनाएँ दूर नहीं बल्कि आँखों के सामने घट रही हैं। जनता का मनोरंजन करने वाला तथा देश-दुनिया की खबर बताने वाला यह उपकरण आज बहुत लोकप्रिय हो गया है। टेलीविजन का आविष्कार वैज्ञानिक जे.एल.बेयर्ड ने किया था। शुरू-शुरू में इस पर केवल श्वेत-श्याम चित्र देखे जाते थे। अब इस पर रंग-बिरंगे चित्र भी देखे जा सकते हैं। लिया गया चित्र जिस रंग में है हमें वह चित्र उसी रंग में देखने को मिलता है। टेलीविजन पर कार्यक्रमों का प्रसारण इसके केन्द्र से होता है जो विभिन्न प्रसारण कर्त्ताओं द्वारा स्थान-स्थान पर बनाए गए हैं। इन केन्द्रों को स्टूडियो कहा जा सकता है। टेलीविजन पर कार्यक्रमों के प्रसारण में संचार उपग्रहों की मदद की जाती है। आजकल प्रसारण डिजिटल हो गए हैं जिससे दर्शकों को साफ-सुथरे चित्र देखने को मिलते हैं।

टेलीविजन दर्शकों के लिए मनोरंजक कार्यक्रमों का एक बड़ा पैकेट लेकर आता है। दूसरे शब्दों में यह इतने तरह के मनोरंजक कार्यक्रमों को प्रस्तुत करता है कि दर्शक दुविधा में होते हैं कि किसे देखें और किसे छोड़ दें। यह दुविधा इसलिए कि पहले जहाँ एक ही चौनल सरकारी दूरदर्शन था वहीं अब सौ-दो सौ चौनल हैं। हर चौनल पर रात-दिन कुछ-न-कुछ चलता ही रहता है। कोई फिल्म दिखा रहा होता है तो कोई धारावाहिक। किसी पर मदारियों का खेल चल रहा है तो किसी पर नुक्कड़ शो। कोई सर्कस तो कोई जादू दिखा रहा है। किसी पर नाच-गाना चल रहा है तो किसी पर खेल का आँखों देखा हाल। समाचार सुनाने एवं दिखाने वाले भी कई चौनल हैं। एक ही खबर बार-बार सुनते-सुनते ऊब सी होने लगती है।

टेलीविजन के आने से मनोरंजन की दुनिया में हलचल मच गई। जो लोग पहले सिनेमाघरों पर खिड़कीतोड़ भीड़ लगाते थे अब घर में टेलीविजन के सामने बैठकर फिल्मों का आनंद लेने लगे। बच्चों की तो चाँदी हो गई। वे कामिक्स के कार्टूनों से नजरें हटाकर टेलीविजन पर कार्टून धारावाहिक देखने लगे। गृहणियाँ दुपहरी में पड़ोसिनियों से मनोरंजक वार्ता छोड़कर टेलीविजन के सामने बैठकर सास-बहू की सीरियल देखने लगीं। छात्र एन.सी.इ.आर.टी. के शैक्षिक कार्यक्रमों को घर बैठे देखकर पाठ्य-क्रमों की समझ बढ़ाने लगे। बौद्धिक मिजाज के लोगों को मनोरंजक अंदाज में प्रस्तुत की गई खबरों के प्रति लौ लग गई। वृद्ध टेलीविजन के माध्यम से आध्यात्मिक जगत में पहुँच गए। उनकी धार्मिक आस्था मजबूत दिखाई देने लगी। तात्पर्य यह कि टेलीविजन पर हर कोई अपने लायक कार्यक्रमों को ढूँढ ही लेता है। दूरदर्शन का ऐतिहासिक विकास समस्त संचार माध्यमों में दूरदर्शन शक्तिशाली परिवर्तनकारी तत्व है दूरदर्शन ने जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है आधुनिक संचार क्रांति में दूरदर्शन की भूमिका प्रमुख रही है इन के माध्यम से हमारे जीवन में सूचनाओं का विस्फोट हो रहा है फलस्वरूप हमारी जीवन शैली और रूचि बदल रही है जिस तत्परता से अपनी संस्कृति प्रभावित हुई है तात्कालिक कथा तात्कालिक ता घनिष्ठता

और विश्वसनीयता के कारण दूरदर्शन सामाजिक परिवर्तन लाने में सर्वाधिक सशक्त जनसंचार माध्यम है जो एक शिक्षक और विकास के साथ-साथ मनोरंजन करता और सूचना देने वाला समाज का निर्माता है दूरदर्शन विदेशों में सर्वप्रथम 1920 ईस्वी में जोरा क्षेत्र का वाणी देने की समस्या उठी 1930 में डॉक्टर वैकेंसी जने दूरदर्शन उपकरण का प्रदर्शन किया 1927 ईस्वी में वाशिंगटन और न्यूयॉर्क के मध्य बेल टेलीफोन द्वारा टीवी कार्यक्रम भेजा गया किसी विकास के क्रम में बीबीसी के ने 1936 ईस्वी में सर्वप्रथम दूरदर्शन का नियमित कार्यक्रम प्रारंभ किया जनता ने निर्यात में लगे मेले में 1939 में टीवी देखा 15 सितंबर 1968 को यूनेस्को की सहायता से भारतीयों ने दूरदर्शन का आनंद लिया 17 राम राम प्रकाशन समूह ने यज्ञ के उप संपादक जोकि सन 1980 अब तक जनसंचार माध्यमों की भूमिका पर अनेक विचारों और गोष्ठियों में विभिन्न देशों में बोल चुके हैं ताकि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर उनके निबंधों का बड़ा महत्व माना जाता है उनके शब्दों में आज पूरे विश्व में करीब 36000, 35000, 30,000 और तीन विशालकाय टीवी नेटवर्क एनबीसी सी बी ई आर एबीसी 1000 से ज्यादा देशों में बिकती है अर्जेंटीना दक्षिण अफ्रीका उपदेशों उपदेशों में अनेक 'कार्यक्रम' कंपनी अमेरिका टीवी के समाचार सेवाओं की निर्मित किया 70 से ज्यादा देशों के 200 से अधिक स्टेशनों पर दिखाई जाती है और 70 से 70: ज्यादा नहीं बल्कि आधी दुनिया विधि महाद्वीप के अनुसार टीवी उत्तरी अमेरिका भारत में दूरदर्शन की शुरुआत भारत में नियमित रूप से 1 घंटे टीवी कार्यक्रम को 15 अगस्त 1965 में प्रारंभ किया गया 18 सन 1967 ईस्वी में डॉ विक्रम साराभाई के अनुसार के प्रयास से एमएससी स्पेस एप्लीकेशन सेंटर की स्थापना हुई साक्षी ग्रामीणों मुखी site upagraha उपग्रह शैक्षणिक दूरसंचार के क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त की भारत के भारत में दूरदर्शन का विकास 1964 ईस्वी में प्रारंभ हुआ एकमात्र तेरी विज्ञान केंद्र की स्थापना दिल्ली में की गई यूनेस्को की सहायता से गांव में दूरदर्शन का भी श्री गणेश 15 सितंबर 1930 को हुआ जिस में सामूहिक रूप से टेलीविजन देखने की व्यवस्था की गई सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय से संबंधित दूरदर्शन के लक्ष्य अप्रैल 1966 में चंद्रा समिति नियम दूरदर्शन को आकाशवाणी से अलग करनी और दोनों के संचालन हेतु स्वायत्त निगम बनाने की सिफारिश की 1 अप्रैल 1976 को स्किारिश का क्रियान्वित हुई जो अब तक चल रही है सूचना प्रसारण में संवत दूरदर्शन के लक्ष्य को निम्नलिखित प्रकार से दर्शाया है 19 नंबर एक सामाजिक परिवर्तन में प्रेरक की भूमिका निभाना राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहित करना सामान्य में वैज्ञानिक चेतना परिवार कल्याण और जनकल्याण जनसंख्या नियंत्रण पांच कृषि उत्पादन को प्रोत्साहित करके हरित क्रांति और पशुपालन को बढ़ावा देकर श्वेत क्रांति के क्षेत्र में प्रेरणा देना पर्यावरण संतुलन बनाए रखना सातवा गरीब और निर्धन वर्ग हेतु उपायों पर बल देना खेलकूद में रूचि बढ़ाना भारत की कला और संस्कृति के प्रति जागरूकता पैदा करना।[1]

1 अप्रैल 1976 को सिफारिश क्रियान्वित हुई जो अब तक चल रही है सूचना प्रसारण मंत्रालय ने संबद्ध दूरदर्शन के लक्ष्य को निम्न प्रकार से दर्शाया है एक सामाजिक परिवर्तन में प्रेरक की भूमिका निभाना दो राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहित करना तीन जन सामान्य में वैज्ञानिक चेतना 4 परिवार कल्याण और जनसंख्या नियंत्रण पांच कृषि उत्पादन को प्रोत्साहित कर हरित क्रांति और पशुपालन को बढ़ावा देकर श्वेत क्रांति के क्षेत्र में प्रेरणा देना पर्यावरण संतुलन बनाए रखना सर गरीब एवं निर्धन वर्गों हेतु उपायों पर बल देना 8 खेलकूद में रूचि बढ़ाना नवभारत की कला और भारत की सांस्कृतिक गरिमा के प्रति जागरूकता पैदा करना भारत में रंगीन दूरदर्शन भारत में रंगीन का प्रसारण 15 अगस्त 1982 को हुआ बीएफ 20000 भारत में पहला स्वदेशी उपग्रह इंसेक्ट 1। April 1982 मैं छोड़ा गया जिसके कारण राष्ट्रीय कार्यक्रमों का एक साथ प्रसारण हुआ पहले दूरदर्शन महानगरीय संस्कृति के अभिजात्य वर्ग के मनोरंजन का साधन मात्र था 1984 पचासी में श्रव्य माध्यम देश के घर-घर में फैल गया दूरदर्शन पत्रकारिता दूरदर्शन पत्रकारिता में समाचार संकलन लेखन प्रस्तुतीकरण में विशेष ध्यान दिया जाता है इसमें आलेख संकेत पत्रिका और ग्राफ तैयार करने वाले को लेखक माना जाता है।[2]

इसमें चित्र अंकित करने वाले को और वीडियो टेप रिकॉर्डर वालों का कार्य भी अति महत्वपूर्ण होता है दूरदर्शन पत्रकारिता में आवश्यक होता है कि कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक बात कर दी जाए इसके लिए आलेख तैयार किया जाता है और आलेख तैयार करते समय विशेष ध्यान रख दिया जाता है विभिन्न स्रोतों से प्राप्त समाचारों के संपादन का उत्तरदायित्व समाचार संपादन समाचारों को उनकी विशेषता के अनुसार क्रमबद्ध संपादित करके करता है तथा उन्हें व्हाट्सएप को प्रस्तुत करने योग्य बनाता है समाचार प्राविधिक दृष्टि से प्रसारित करने की दिशा में समाचार संयोजक तब तब तब सचेत रहता है और प्रसारण के पहले वह समाचार संपादक से आवश्यक विचार-विमर्श करके अपेक्षित तैयारी कर लेता है दूरदर्शन में कार्यरत पत्रकारों को लेखन शब्द ध्वनि के साथ ही सभी वीडियो तकनीक साउंड पत्नी और फिल्म तकनीक में भी निपुण होना चाहिए साथ ही माइक्रोफोन वीडियो से रिकॉर्डिंग फिल्म स्टील फोटोग्राफ से संबंधित ध्वनि स्त्रोत की भी जानकारी होनी आवश्यक है दूरदर्शन समाचार दूरदर्शन समाचारों का एक अलग स्वरूप होता है दूरदर्शन दृश्य माध्यम है इसलिए इस पर समाचार कि नहीं व्यक्ति समाचारों को चित्र के रूप में चित्रित करके प्रस्तुत किया जाता है दूरदर्शन पर समाचारों के साथ ही साथ घटनाक्रम को देखकर उसकी विश्वसनीयता बढ़ती है उसमें चित्र के साथ साथ प्राविधिक ज्ञान लेखन एवं वाचन की क्षमता तथा इलेक्ट्रॉनिक्स की जानकारी की संप्राप्ति द्वारा टेलीविजन सामग्री के समाचारों में सफलता पाई जा सकती है दूरदर्शन समाचार के तीन तत्व होते हैं जो इस प्रकार हैं संक्षिप्त तथा दूरदर्शन के समाचारों की संक्षिप्त थापर ध्यान दिया जाता है इसमें कम से कम समय में अधिक से अधिक समाचारों को देना पड़ता है समाचार पत्रों में इसी घटना को हम अगले दिन देख सकेंगे लेकिन दूरदर्शन में उसी दिन घटना को देख लेते हैं कभी-कभी कुछ ऐसे महत्वपूर्ण समाचार होते हैं जिन्हें हम देखकर सुनकर ही समझ लेते हैं यह कार्य दूरदर्शन के द्वारा ही संभव है दूसरा चित्रात्मक था चित्रात्मक ता दुर्गा स्थान का संक्षिप्त प्राण है एक चित्र को 1000 शब्दों के बराबर माना जाता है अर्थात हजारों शब्दों में मेरी ही स्थिति भाव या घटना का भी अभिव्यक्त नहीं हो पाता उसे हम मात्र एक चित्र द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं चित्र जो समाचार को पूर्ण करते हैं वही दर्शकों के मन में सब पहुंचकर उन को प्रभावित करते हैं और इससे ता देते हैं तीसरा कलात्मकता दूरदर्शन के समाचार प्रस्तुत करते समय कल आत्मकथा पर विशेष ध्यान दिया जाता है दूरदर्शन समाचार वाचक को इसलिए न्यूज रेल भी कहा जाता है।[3]

कई देशों में समाचार वाचक प्रतोता जी कहते हैं।[4] समाचार वाचक समाचार को प्रस्तुत करता है और व्यक्तिगत रिपोर्ट समाचार वाचक समाचार प्रस्तुत करता है और व्यक्तिगत रिपोर्टिंग समाचार लेखन शैली और विविध समाचारों की संबद्धता निर्धारण करके उनके स्वरूप को प्रस्तुत करता है समाचार वाचक का नेतृत्व[5] उसकी बाड़ी का उतार-चढ़ाव वह वाचक सैनी समाचारों के प्रस्तुतीकरण को जीवंत बना देती है।

संदर्भ सूची

1. सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय (वार्षिक रिपोर्ट 2000-2001) – पेज, -35
2. आधुनिक पत्रकारिता - डॉ. अर्जुन तिवारी, पेज- 36
3. जनसंचार कल और आज - डॉ. मुक्ति नाथ झा पेज- पेज 39
4. जनमाध्यम और पत्रकारिता – डॉ. राजेंद्र राही- पेज-19
5. आधुनिक रिपोर्टिंग - डॉ राजेंद्र राही पेज 45

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 : एक मूल्यांकन

नागेश्वर कुमार

सहायक प्राध्यापक, बी0 एम0 डी0 कॉलेज, दयालपुर (वैशाली)

शोध-सारांश

मानव इतिहास के उदय से लेकर अब तक शिक्षा ने विकास तथा अभिवृद्धि की प्रक्रिया को सातत्य प्रदान किया है। हर देश ने अपनी सामाजिक सांस्कृतिक पहचान बनाने के लिए अपनी शिक्षा प्रणाली विकसित की और समय की चुनौती को स्वीकार किया। इतिहास में ऐसे भी क्षण आये हैं जब परम्परागत प्रक्रिया को नई दिशा दी गयी। ऐसा ही क्षण आज है। देश, आर्थिक, तकनीकी विकास की उस अवस्था पर पहुंच गया है, जहां सृजित परिसम्पत्तियों का अधिकतम लाभ सभी वर्गो तक पहुंचाने का प्रयाय किया जाना है। शिक्षा इस उद्देश्य कीद प्राप्ति का राजमार्ग है। इस उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए भारत सरकार ने जनवरी 1985 ई0 में घोषणा की कि देश के लिए एक नई शिक्षा नीति की रचना की जाएगी। विद्यमान शिक्षा की सघन समीक्षा, देश भर में बहस कराकर की गयी। देश के विभिन्न भागों से प्राप्त विचारों तथा सुझावों का अध्ययन सतर्कतापूर्वक किया गया। सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत सम्पूर्ण देश में 10+2+3 शिक्षा व्यवस्था लागू कर दी गयी।

10+2+3 का अर्थ इस प्रकार समझाा जा सकता है कि 10 के अन्तर्गत कक्षा 1 से10 तक की प्राप्त की जाने वाली शिक्षा। यह शिक्षा 6 से 16 वर्ष की आयु तक प्राप्त की जा सकती है। +2 के अन्तर्गत कक्षा 11 तथा 12 तक की प्राप्त की जाने वाली शिक्षा आती है। इन दो वर्षो में सामान्य एवं विशेष दोनों प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाएगी। वह शिक्षा 16 से 18 वर्ष की आयु तक चलेगी। +3 से तात्पर्य है कि 12 वर्ष की शिक्षा के पश्चात् 3 वर्षीय उच्च शिक्षा की प्रथम उपाधि (स्नातक उपाधि) हेतु निर्धारित अवधि होगी। इस अवधि में शिक्षार्थी को सामान्य एवं विशेष दोनों में किसी भी शिक्षा के विषयों की शिक्षा प्रदान की जाएगी। यह शिक्षा 18 से 21 वर्ष की आयु तक प्राप्त की जा सकती है। सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अन्तर्गत सम्पूर्ण देश में तीन वर्ष का डिग्री (स्नातक) पाठ्यक्रम लागू कर दिया गया है।

प्रस्तुत शोध आलेख में राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 का एक विहंगम मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है।

शब्द कुंजी- आंचलिक, विनियोग, राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली, सामान्य शिक्षा प्रणाली, मूल्यांकन प्रणाली, गुणात्मक सुधार।

परिचर्चा

स्वतंत्रता भारत में 1968 की शिक्षा नीति एक महत्वपूर्ण कदम रही है। इसका उद्देश्य राष्ट्रीय प्रगति, सामान्य नागरिकता तथा संस्कृति की भावना और राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करना है। इसने शिक्षा प्रणाली के क्रांतिकिारी नव-निर्माण की आवश्यकता पर जोर दिया। सभी स्तरों पर शिक्षा के गुणात्मक सुधार, विज्ञान तथा तकनीकी पर विशेष ध्यान, नैतिक मूल्यों के विकास तथा शिक्षा और जीवन के पारस्परिक सम्बंधों को घनिष्ठ बनाने पर बल दिया। 1968 की नीति के अनुसार शिक्षा के सभी स्तरों पर शैक्षिक सुविधाओं का प्रसार किया गया। एक वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में ग्राम क्षेत्रों की 90 प्रतिशत जनता के लिए विद्यालयी सुविधायें प्राप्त हैं। अन्य स्तरों पर भी वांछित सुविधाओं में भी प्रगति हुई है। सम्पूर्ण देश में शिक्षा की सामान्य संरचना की स्वीकृति और अधिकांश राज्यों में 10+2+3 शिक्षा पद्धति का अनुसरण महत्वपूर्ण घटना है। लड़के-लड़कियों के सामान्य पाठ्यक्रम के अतिरिक्त विज्ञान तथा गणित की अनिवार्य शिक्षा, कार्यानुभव को, महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। उपाधि स्तर पर पाठ्यक्रमों की पुनर्रचना की गयी। स्नातकोत्तर स्तर पर शिक्षा तथा अनुसंधान के लिए 'सेन्टर फॉर एडवांस्ड स्टेडीज' खोले गए। जो शिक्षित जनशक्ति की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सक्षम हुई।

यों तो उपरोक्त उपलब्धियां प्रभावशाली थीं किंतु 1968 की शिक्षा नीति सम्मिलित अनेक कार्यो को संगठनात्मक-सहयोग प्राप्त नहीं हो सका। उनकी रणनीति, विनियोग को आर्थिक सहायता न मिल सकी। परिणाम यह हुआ कि आधिक्य, गुण, मात्रा, उपयोग तथा आर्थिक ढांचें में निरंतर वृद्धि होती रही और अब इन सभी को प्राथमिकता देकर हल किया जाना आवश्यक है। भारत में शिक्षा आज चौराहे पर खड़ी है। सामान्य रेखीय प्रसार और न ही विद्यमान स्थिति और सुधार की प्रकृति इन परिस्थितियों का सामना कर सकती है। भारतीय चिन्तन के अनुसार एक सकारात्मक एसेट तथा बहूमूल्य राष्ट्रीय स्रोत है जिसका विकास सावधानीपूर्वकम गतिशीलता के साथ किया जाना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति की अभिवृद्धि विभिन्न प्रकार की समस्याओं तथा आवश्यकताओं को प्रस्तुत करती है। जन्म से मरण तक चलने वाली शिक्षा की इस जटिल तथा गतिशील प्रक्रिया का नियोजन सुसंबद्ध रूप से किया जाना चाहिए और पूरी निष्ठा के साथ इसका क्रियान्वयन किया जाना चाहिए। भारत का राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन ऐसी अवस्था से गुजर रहा है जहां पूर्ण स्वीकृत दीर्घकालीन मूल्यों का विनाश हो रहा है। इसी दबाव में धर्म निरपेक्षता, समाजवाद, जनतंत्र तथा व्यावसायिक नैतिकता पिस रहे हैं। निर्बल संरचना तथा समाजसेवा के कारण ग्रामीण क्षेत्रों के प्रशिक्षित युवाओं को लाभ उस समय तक नहीं मिल पाएगा जब तक नगर-ग्राम के भेद समाप्त नहीं होंगे और रोजगार के अवसरों में वृद्धि नहीं होगी। आने वाले दशकों में देश की जनसंख्या वृद्धि की गति को धीमा करना होगा। स्त्रियों में शिक्षा प्रसार तथा साक्षरता में वृद्धि इस समस्या को हल

करेगी। आने वाले दशक अत्यंत संघर्ष के होंगे। इनमें अनेक प्रकार के अवसर होंगे। नये वातावरण का लाभ उठाने के लिए मानव विकास के नये प्रतिमानों की रचना करनी होगी। नई पीढ़ी में नव विचार तथा सर्जनात्मकता को ग्रहण करने की क्षमता होनी चाहिए। सामाजिक न्याय तथा मानव मूल्यों के प्रति इसी पीढ़ी में प्रतिबद्धता होनी चाहिए। इन सबका अर्थ है-उत्तम शिक्षा। इनके अतिरिक्त, सरकार के समक्ष देश के लिए नई शिक्षा नीति प्रस्तुत करने की आवश्यकता नवीन चुनौतियों तथा सामाजिक आवश्यकताओं ने उत्पन्न की है। परिस्थिति का सामना यों ही नहीं हो सकता।

शिक्षा की भूमिका तथा मूल तत्व

राष्ट्रीय संदर्भ में शिक्षा सभी के लिए अनिवार्य है। हमारे सर्वांगीण विकास, भौतिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिए यह आधारभूत तत्व है। शिक्षा उभय सांस्कृतिक भूमिका प्रस्तुत करती है। यह राष्ट्रीय एकता में योगदान देने वाली संवेदनशीलता तथा प्रतिबंध को परिष्कृत कर वैज्ञानिक मनोवृति एवं मानसिक स्वतंत्रता एवं भावना विकसित कर समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता तथा जनतंत्र का विकास संविधान के अंतर्गत करती है। अर्थव्यवस्था के सभी स्तरों पर शिक्षा, जनशक्ति का विकास करती है, राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता की पूरी गारंटी, शोध एवं विकास के माध्यम से शिक्षा प्रदान करती है। कुल मिलाकर, शिक्षा वर्तमान तथा भविष्य में एक विशेष विनियोग है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति की यह मूल कुँजी है।

राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली जिन आधारों पर विकसित हो रही है, उसके मूल सिद्धांत संविधान द्वारा प्रदान किए गये हैं। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की अवधारणा यह है कि वांछित स्तर तक, जाति, धर्म, क्षेत्र तथा लिंग के भेदभाव के बिना शिक्षा के अवसर समान रूप से प्रदान किए जाने चाहिए। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त धन के साथ निश्चित कार्यक्रम सरकार द्वारा चलाये जाएंगे। 1968 की नीति में प्रस्तावित सामान्य शिक्षा प्रणाली को अपनाने के लिए प्रभावशाली कदम उठाने होंगे। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली सामान्य शैक्षिक संरचना पर विचार करती है। देश के सभी भागों में 10+2+3 प्रणाली को स्वीकार कर लिया गया है। 10 वर्षीय व्यवस्था के पुनर्विभाजन-5 वर्षीय आरम्भिक, 3 वर्षीय अपर प्राइमरी एवं 2 वर्षीय हाईस्कूल के प्रयास चल रहे हैं। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का आधार एक सामान्य पाठ्यक्रम की संरचना है, जिसमें सामान्य मूल विषयों के साथ-साथ अन्य विषय लचीले होंगे। सामान्य मूल विषयों में भारतीय स्वाधीनता का इतिहास, संवैधानिक प्रतिबंध तथा राष्ट्रीय एकता के अन्य तत्व होंगे। यह तत्व विषय क्षेत्रों से पृथक होंगे और इस प्रकार बनाये जाएंगे, जिसमें भारत की सामान्य सांस्कृतिक विरासत, समतावाद, जनतंत्र, धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों का विकास लिंगभेद के बिना होगा। वातावरण की रक्षा, सामाजिक बुराईयों को दूर करना, छोटे परिवार के मानकों का निर्माण तथा वैज्ञानिक स्वभाव विकसित हो। सभी प्रकार के शैक्षिक कार्यक्रम इस प्रकार बनाये जाएंगे जो धर्मनिरपेक्ष मूल्यों को पूरी निष्ठा के साथ विकसित करेंगे। भारत ने विश्व को एक परिवार माना है और इसी आधार पर राष्ट्रों के मध्य शांति एवं अवबोध बनाये रखने की आवश्यकता अनुभव की है। इस पुरातन परम्परा का निर्वाह करने के लिए इस तथ्य मत को सशक्त बनाने हेतु, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, शांतिपूर्ण सह अस्तित्व को नई पीढ़ी में अभिप्रेरित करें। इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता। समानता के विकास के लिए, समानता के अधिकतम अवसर प्रदान करने के साथ उसमें फ़लता प्राप्त करना आवश्यक है। आधारभूत पाठ्यक्रम के माध्यम से आन्तरिक समानता को जागृत करना है, जन्म से प्राप्त तथा सामाजिक परिवेश से उत्पन्न पूर्वाग्रहों तथा जटिलताओं को समाप्त करना है। शिक्षा की प्रत्येक अवस्था के लिए अधिगम का न्यूनतम स्तर निर्धारित करना होगा। देश के विभिन्न भागों में रहने वाले व्यक्तियों की संस्कृति तथा सामाजिक व्यवस्थाओं को समझने के लिए, पाठ्यक्रम में व्यवस्था करनी होगी। सम्पर्क भाषा के विकास के लिए विभिन्न भाषाओं में पुस्तकों के अनुवाद करने होंगे तथा बहुभाषी शब्द की रचना करनी होगी। उच्च शिक्षा में सामान्य रूप से तथा तकनीकी शिक्षा में विशेष रूप से अन्तक्षेत्रीय गतिशीलता को विकसित करती है। वांछित योग्यता के द्वारा ऐसे अवसर देने होंगे। विश्वविद्यालयों तथा अन्य संस्थाओं का अवमूल्यन हुआ है। अनुसंधान तथा विकास, विज्ञान तथा तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में ऐसा जाल बिछाना होगा कि विभिन्न संस्थाओं के स्रोतों का एकत्रीकरण राष्ट्रीय महत्व की परियोजनाओं को कम करते हुए, प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण, प्रौढ़ साक्षरता, वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकी शिक्षा का दायित्व वहन करना होगा। शैक्षिक प्रक्रिया का चिरसंचित उद्देश्य जीवनपर्यन्त शिक्षा है। सार्वभाम साक्षरता की यह उपेक्षा है। युवकों, गृहणियों, कृषकों, श्रमिकों तथा अन्य व्यवसायों में लगे लोगों को अपनी रुचि की शिक्षा, जो समय के साथ विकसित हो जाएगी। मुक्त तथा सुदूर अधिगम इस दिशा में भावी प्रयास है। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली को आकार देने तथा सशक्त बनाने में सहयोग देने वाली संस्थाएं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद्, अखिल भारतीय कृषि शिक्षा परिषद् तथा अखिल भारतीय चिकित्सा परिषद् हैं। संस्थाओं के मध्य सम्मिलित योजना बनायी जाएगी जिससे कार्यात्मक संपर्क के द्वारा कार्यक्रमों का क्रियांवयन किया जाए। यह NCERT इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशनल प्लानिंग एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, इंस्टीयूट ऑफ एजुकेशनल टैक्नोलॉजी के सहयोग से होगा। शिक्षा नीति के क्रियांवयन में इनको सम्मिलित किया जाएगा।

एक सार्थक साझेदारी

1976 के संविधान के अनुसार शिक्षा को समवर्ती सूची में रखा गया। इसके अनुसार केन्द्र तथा राज्य सरकारों का दायित्व महत्वपूर्ण है। यह दायित्व, आर्थिक, प्रशासनिक रूप से सातत्यपूर्ण है। राज्यों के शैक्षिक दायित्वों में कोई परिवर्तन नहीं होगा। केन्द्रे सरकार राष्ट्रीय एवं सम्मिलित विशेषता वाली शिक्षा को लागू करने का दायित्व वहन करेगी। शिक्षा के गुणात्मक (शिक्षण व्यवसाय सभी स्तरों पर) स्तर, देश की शैक्षिक आवश्यकता के अध्ययन एवं नियंत्रण, कुल मिलाकर विकास के लिए जनशक्ति, शिक्षा, संस्कृति, मानव संसाधन विकास के अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण को आना होगा। शिक्षा के पिरामिड की सार्थकता सम्पूर्ण देश में फ़ैलानी होगी। यह समेकित, साझेदारी के महत्व को प्रदर्शित करती है। यह सार्थक भी है और चुनौतीपूर्ण भी। राष्ट्रीय नीति सही मायनों में प्रभावशाली ढ़ंग से चालू की जाएगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के मुद्दे

शिक्षा नीति किसी भी राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देती है। भारत में प्रत्येक शासन काल में शासकों ने अपने आदर्शों तथा दर्शन के संदर्भ में शिक्षा नीति का निर्माण किया। इसका प्रमुख कारण रहा है कि शिक्षा सदा से मानव इतिहास को विकसित करती रही है, इसने काल की चेतावनी तथा

सामाजिक, सांस्कृतिक चुनौती का सामना किया है। आदि काल से चली आ रही शिक्षा की, प्रक्रिया आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है। भारत सरकार ने नई शिक्षा नीति की घोषणा की। इस नीति में निम्नलिखित तथ्य अपनाये गये-

शिक्षा की भूमिका और तत्व

राष्ट्रीय संदर्भ में शिक्षा सभी के लिए आवश्यक है, सर्वांगीण विकास का यह आधार है। शिक्षा सांस्कृतिक सम्मिश्रण की भूमिका प्रस्तुत करती है। इसमें संविधान में प्रदत्त जनतंत्र और धर्म निरपेक्षता के लक्ष्य को प्राप्त करने की शक्ति है। बौद्धिक स्वतंत्रता, वैज्ञानिक स्वभाव और राष्ट्रीय समग्रता की दृष्टि से यह संवेदना का विकास करती है, सभी आर्थिक स्तरों पर यह जनशक्ति का निर्माण करती है राष्ट्र में आत्म-निर्भरता के लिए अनुसंधान द्वारा नये क्षेत्रों का पता लगाती है और इन सबसे परे शिक्षा वर्तमान तथा भविष्य में विनियोग है और राष्ट्रीय शिक्षा नीति का यह महत्वपूर्ण बिन्दु है।

शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली

नई शिक्षा नीति में पूरे देश में एक समान शिक्षा प्रणाली लागू करने पर बल दिया गया है। शिक्षा के सभी स्तरों पर एक जैसी शिक्षा प्रणाली राष्ट्र के शैक्षिक विकास के लिए होनी चाहिए।

शिक्षा और समानता-समाज के विभिन्न वर्गो में शिक्षा की भिन्नताएं पाई जाती है। इन असमानताओं को दूर करने के लिए अनेक उपाय इन क्षेत्रों में किए गये है।

नारी समानता के लिए शिक्षा- नयी शिक्षा नीति में कहा गया है कि शिक्षा नारियों के आधारभूत स्तर में परिवर्तन लाने का एक सशक्त साधन है। नारी शिक्षा के क्षेत्र में अनेक भिन्नताएं पायी जाती है, इन भिन्नताओं को दूर करने के लिए विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमों का निर्माण किया जाना आवश्यक है। निरक्षरता उन्मूलन, व्यावसायिक शिक्षा, पोषण और कल्याण, गृहकला और प्रबंध आदि पाठ्यक्रमों के साथ-साथ विभिन्न गैर पारस्परिक पाठ्यक्रमों के निर्माण पर भी बल दिया गया है।

अनुसूचित जातियों की शिक्षा- नई शिक्षा नीति में गांव और शहर के अनुसूचित जाति के स्त्री और पुरूषों की शिक्षा के लिए विशेष व्यवस्था पर बल दिया गया है। अनेक पारस्परिक पाठ्यक्रम, छात्रवृति अध्यापन, प्रौढ़ शिक्ष कार्यक्रम आदि के द्वारा अनुसूचित जाति में शैक्षिक समानता के अवसर प्रदान करने पर बल दिया गया है।

जनजातियों की शिक्षा- जनजातिय कल्याण के लिए जनजातीय भाषाओं के आधारपर आवासीय आश्रम, विद्यालयों की स्थापना, विभिन्न प्रकार के तकनीकी पाठ्यक्रम, उच्च शिक्षा के लिए छात्रवृतियों आदि की व्यवस्था की गयी है।

अन्य पिछड़े वर्गो की शिक्षा- अन्य पिछड़ें वर्गो में अल्पसंख्यकों, विकलांगों तथा सामाजिक आर्थिक रूप से पिछड़ें लोगों की शिक्षा की व्यवस्था के लिए छात्रवृत्ति, विशेष विद्यालयों, विशेष तकनीकी तथा प्राविधिक पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की गयी है।

प्रौढ़ शिक्षा- भारत की बहुत बड़ी जनसंख्या निरक्षर है, इसलिए ग्राम तथा नगर क्षेत्रों में सतत् शिक्षा, श्रमिक शिक्षा, प्रौढ़ साहित्य तथा पुस्तकालय, जन संचार, सुदूर शिक्षा, स्वयं शिक्षा अन्य प्रकार के पाठ्यक्रमों को लागू करने का प्रयास किया जाएगा।

शिक्षा का पुनर्गठन

पूर्व बाल्यावस्था- पूर्व बाल्यावस्था बालक की शिक्षा का महत्वपूर्ण वर्ष है। इस अवस्था में बालकों को उचित पोषण, स्वास्थ्य, सामाजिक, मानसिक, शारीरिक, नैतिकि तथा संवेगात्मक विकास की आवश्यकता है। इसलिए पूर्व प्राथमिक स्तर पर सुसंगठित पाठ्यक्रम का निर्माण आवश्यक है।

प्राथमिक शिक्षा- प्राथमिक शिक्षा 14 वर्ष तक की आयु के बालकों के लिए गुणात्मक रूप से आवश्यक है। इस स्तर पर शिक्षा का संगठन निम्न प्रकार किया गया है-

(क) शिक्षा का केन्द्र बालक को माना गया है-बिना भय और आतंक के बालक की आवश्यकताओं को आधार मानकर शिक्षा दी जाए।

(ख) प्रत्येक प्राथमिक विद्यालय में कम-से-कम ऐसे दो कमरें होंगे जिन्हें हर मौसमों में इस्तेमाल किया जाएगा। प्रत्येक शिक्षा प्रणाली में कम-से-कम एक दिन आदर्श रूप में निर्मित कराया जाएगा।

(ग) प्राथमिक स्तर पर अनौपचारिक शिक्षा पर भी बल दिया जाएगा। यह शिक्षा उन लोगों के लिए होगा जो अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ देते है।

(घ) पाठ्यक्रम का निर्माण बालकों और समुदाय की आवश्यकताओं के अनुरूप होगा और यह शिक्षा 14 वर्ष तक की आयु के बालकों के लिए अनिवार्य रूप से निःशुल्क दी जाएगी।

माध्यमिक शिक्षा-नई शिक्षा नीति में माध्यमिक स्तर पर शिक्षा तथा मनाविकी, मानव विकास के लिए नई भूमिकाओं का अध्ययन करता है। स्वस्थ, चेतन और कर्त्तव्यनिष्ठ नागरिकों के निर्माण के लिए माध्यमिक शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करती है। इस स्तर पर जो पीढ़ी तैयार होती है, वह समाज में सेतु का निर्माण करती है। इसलिए माध्यमिक स्तर पर शिक्षा के विभिन्न पक्षों का आधार पर शिक्षा का व्यावसायिकीकरण करने पर बल दिया गया। स्वास्थ्य योजनायें और सेवायें लागू की जाएगी। शिक्षा के इस स्तर पर अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी।

उच्च शिक्षा- उच्च शिक्षा व्यक्ति में तार्किक दृष्टिकोण विकसित करती है। शिक्षा का चरम बिन्दु होने के कारण इस स्तर पर शिक्षकों का महत्व बढ़ जाता है। इस समय भारत में लगभग 222 से अधिक विश्वविद्यालय है और 8000 से अधिक महाविद्यालय हैं। महाविद्यालय विश्वविद्यालय के साथ सम्बद्ध हैं। उच्च स्तर पर शोध का बढ़ावा देना आवश्यक है इसलिए देश के 500 महाविद्यालयों को स्वायत्तता प्रदान करने का संकल्प किया है, यह स्वायत्तता

महाविद्यालय के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अंतर विद्याध्यन, कृषि चिकित्सा, तकनीकी, विधि तथा अन्य व्यावसायिक क्षेत्रों में नवीन पाठ्यक्रमों को लागू किया जाएगा।

खुले विश्वविद्यालय और सुदूर शिक्षा- ऐसे व्यक्ति जो किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाये हैं या अपनी कारोबारी जिन्दगी के साथ-साथ शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं, ऐसे लोगों के लिए खुले विश्वविद्यालय की स्थापना की जाती है। देश का पहला राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय इन्दिरा गांधी विश्वविद्यालय नयी दिल्ली में स्थापित किया गया है।

डिग्री का रोजगार से सम्बंध समापन- नई शिक्षा में डिग्री तथा रोजगार के सम्बंध को समाप्त करने की दिशा में प्रयास किया गया है। ऐसा सम्बंध समापन उन व्यावसायों के लिए होगा जिनके लिए विश्वविद्यालयी ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। यह बात चिकित्सा, इन्जीनियरिंग, कानून शिक्षण तथा ऐसे अन्य व्यवसायों पर लागू नहीं होगी जिनके लिए विज्ञान का उच्च शैक्षिक ज्ञान आवश्यक है।

ग्रामीण विश्वविद्यालय- नई शिक्षा नीति में महात्मा गांधी के क्रांतिकारी विचारों के आधार पर नये ग्रामीण विश्वविद्यालयों की स्थापना और पुराने विश्वविद्यालयों के पुनर्गठन पर बल दिया जाएगा।

तकनीकी तथा प्रबंध शिक्षा- यद्यपि तकनीकी तथा प्रबंध शिक्षा दो अलग-अलग धाराओं में चल रही है, इसका समन्वय करना आवश्यक है, इसलिए तकनीकी तथा प्रबंध शिक्षा को आर्थिक, सामाजिक वातावरण, उत्पादन तथा प्रबंध प्रक्रिया के सम्बंध में पुनर्गठित करना होगा। ग्राम, नगर उद्योग और व्यवसाय सभी को प्रबंध शिक्षा के अन्तर्गत लाना होगा। कम्प्यूटर की शिक्षा विद्यालय स्तर से करनी होगी। सतत् शिक्षा के अन्तर्गत इन सबको लाना होगा। देश में चल रहे पॉलिटैक्निक को भी इसी आधार पर पुनर्गठित करना होगा।

नवीनीकरण अनुसंधान तथा विकास- तकनीकी शिक्षा के उच्च स्तरों पर नवीनीकरण आवश्यक है। इस दृष्टि से अनुसंधान तथा विकास पर विशेष बल दिया जाएगा। शिक्षा के सभी स्तरों पर कुशलता तथा प्रभावशीलता के विकास के लिए प्रयास करने होंगे। देश, काल और परिस्थिति के अनुसार पाठ्यक्रमों का पुनर्निर्माण करना होगा। इस दृष्टि से अनेक स्वायत्त संस्थाओं का गठन किया जाएगा।

व्यवस्था कार्य का निर्माण- नई शिक्षा नीति के विभिन्न कार्यक्रमों को सम्पन्न करने के लिए व्यवस्था विकसित की जाएगी। जिसके अधीन शिक्षकों, छात्रों, शिक्षण संस्थाओं और उनकी उपलब्धियों को राष्ट्रीय स्तर पर विकसित किया जाएगा।

शिक्षा की प्रक्रिया का अभिनव- वर्तमान शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन करने के लिए इसके दोषों को दूर करना होगा, जिसके लिए मानविकी, समाजविज्ञान तथा शिक्षा का उचित शिक्षण आवश्यक है। विशेष विषयों जैसे ललित कला, संग्रहालय विज्ञान, लोक साहित्य के शिक्षण तथा अनुसंधान की व्यवस्था करनी होगी। मानवीय, सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय मूल्यों का विकास करने की दिशा में कदम उठाये जाएंगे। 1964 की भाषानीति को अपनाया जाएगा। पुस्तकालयों का विकास करना होगा और शैक्षिक तकनीकी के द्वारा नवीन शिक्षण विधियों को विकसित कर वांछित उपलब्धियां संचित की जाएगी। कार्यानुभव, पर्यावरण, गणित, विज्ञान, खेलकूद तथा शारीरिक शिक्षा के द्वारा सर्वांगीण विकास पर बल दिया जाएगा।

मूल्यांकन प्रणाली

आन्तरिक मूल्यांकन शिक्षा का अनिवार्य अंग होगा। छात्रों की उपलब्धि के मूल्यांकन के लिए ठोस उपाय अपनाये जाएंगे।

शिक्षक- शिक्षकों के स्तर को ऊंचा रखने के लिए विशेष प्रयास किए जाएंगे जिसमें शिक्षकों के चयन पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। शिक्षक परिषदों को मान्यता दी जाएगी और शिक्षक शिक्षा के लिए विशेष उपाय किए जाएंगे।

शिक्षा की व्यवस्था- शिक्षा को पुनर्गठित करने के लिए आमूल परिवर्तन किया जाएगा। जिसके अधीन दीर्घकालीन योजना का निर्माण, विकेन्द्रीकरण, शिक्षण संस्थाओं की स्वायत्तता, नारी शिक्षा पर विशेष बल दिया जाएगा। राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय शिक्षा सेवा का गठन जाएंगे। 20 वीं सदी की समाप्ति तक यह आशा की जाती है कि जीवन की विभिन्न भूमिकाओं का निर्वाह करने में भारतीय शिक्षा विश्व में उच्चतम स्थान बना लेगी। होगा और राज्य स्तर पर शिक्षा सलाहकार परिषदों का गठन होगा, जिला स्तर पर जिला बोर्ड सकेण्ड्री शिक्षा तक शिक्षा का गठन करेंगे। इस दिशा में विशेष रूप से प्रशिक्षित व्यक्तियों का सहयोगे लिया जाएगा।

साधन- कोठारी कमीशन तथा 1968 की शिक्षा नीति ने शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के साधनों के निर्माण पर विशेष बल दिया है। इस दृष्टि से दान, अनुदान, ीस, उद्योग आदि के द्वारा धन एकत्र किया जाएगा। प्रत्येक पांच वर्ष में शिक्षा की प्रगति का सिंघावलोकन होगा।

भविष्य- भावी शिक्षा का क्या स्वरूप होगा, यह कहना कठिन है; फिर भी परंपरा के प्राप्त उच्चतम बौद्धिक स्तर को बनाये रखने के प्रयास किए।

मूल्यांकन

स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् यद्यपि राष्ट्रीय शिक्षा के स्वरूप तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति की आवश्यकता चौथे दशक की समाप्ति पर तीव्रतर हुई। इस दिशा में देश के पहले राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (कोठारी कमीशन) ने पहली बार विचार किया और 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्रस्तावित की। संयोंगों तथा विद्यमान सामाजिक संघर्षो ने जनता सरकार का गठन किया और उसने भी लक्ष्यों का निर्धारण कर 1979 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का भारतीय विकल्प प्रस्तुत किया। काल की परिवर्तित धारा ने पुनः कांग्रेस सरकार की स्थापना की और वर्तमान सरकार ने इसके महत्व को समझा। शिक्षा की चुनौती-नीति परिप्रेक्ष्य पर दस्तावेज जारी कर राष्ट्रव्यापी बहस कराई गई। इस बहस का परिणाम है नई शिक्षा नीति।

भारत सरकार ने 1986 में नई शिक्षा नीति, राष्ट्र विकास के व्यापक एवं महत्वपूर्ण संकल्प की पूर्ति के लिए प्रकाशित की। गुजरात के तत्कालीन राज्यपाल 'माननीय रामकृष्ण त्रिवेदी' ने नई शिक्षा नीति की सार्थकता पर प्रकाश डालते हुए कहा-देश के सर्वोमुखी विकास का उद्देश्य रखकर नई शिक्षा नीति का

ढांचा तैयार किया गया है। शिक्षण केवल चार दीवारों के बीच की एक जड़ प्रक्रिया न रहकर देश के सर्वांगीण विकास को गतिशील और ठोस बनाये और राष्ट्रीय एकता, अपनी पुरातन सभ्यता और भारतीय संस्कारों के अनुसार इस देश के विद्यार्थियों को आधुनिक शिक्षा प्रवाह से इस तरह अवगत कराया जाए ताकि वे सब इस देश के आदर्श नागरिक बन सकें, यह नई शिक्षा नीति का परम ध्येय है, यही है इसका मुख्य लक्ष्य।

शिक्षा का दायित्व किस पर है, समाज पर, सरकार पर; कौन इससे लाभ उठाया है, कौन किस पर खर्च करता है; आदि ऐसे प्रश्न है, जिन पर पुनर्विचार आवश्यक है। इस प्रश्न की गंभीरता तथा नई शिक्षा नीति की आवश्यकता तथा प्रतिबद्धता के विषय में हरियाणा प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री माननीय देवीलाल का कथन है- आज हमारी शिक्षा दिनों-दिन महंगी होती जा रही है, एक तरफ इस प्रकार के पब्लिक स्कूल है और दून स्कूल है जहां प्रति विद्यार्थी, प्रति मास हजारों रुपया खर्च होता है और दूसरी तरु ऐसे स्कूल हैं, जहां विद्यार्थियों को बैठने तक को टाट पट्टी भी नसीब नहीं है। शिक्षा के दोहरे मानदण्डों को जब तक समाप्त नहीं किया जाता, अमीर और गरीब, दोनों के बच्चों को जब तक एक ही बेंच पर बैठाकर शिक्षा देने की व्यवस्था नहीं की जाती, तब तक हम उन मानव मूल्यों और नैतिक गुणों तथा भारतीय आदर्शो को प्राप्त नहीं कर सकते जो हमारी शिक्षा का मुख्य आधार होने चाहिए। इसलिए नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के सर्वांग स्वरूप पर गंभीरता से विचार करने की जरूरत है।

निष्कर्ष

शिक्षा नीति किसी भी राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योग देती है। भारत में प्रत्येक शासन काल में शासकों ने अपने आदर्शो तथा दर्शन के संदर्भ में शिक्षा नीति का निर्माण किया। इसका प्रमुख कारण रहा है कि शिक्षा सदा से मानव इतिहास को विकसित करती रही है, इसने काल की चेतावनी तथा सामाजिक, सांस्कृतिक चुनौती का सामना किया है। आदि काल से चली आ रही शिक्षा की, प्रक्रिया आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् यद्यपि राष्ट्रीय शिक्षा के स्वरूप तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति की आवश्यकता चौथे दशक की समाप्ति पर तीव्रतर हुई; इस दिशा में देश के पहले राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (कोठारी आयोग) नेक पहली बार विचार किया और 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्रस्तावित की।

भारत सरकार ने 1986 में नई शिक्षा नीति, राष्ट्र विकास के व्यापक एवं महत्वपूर्ण संकल्प की पूर्ति के लिए प्रकाशित की। गुजरात के राज्यपाल माननीय रामकृष्ण त्रिवेदी ने नई शिक्षा नीति की सार्थकता पर प्रकाश डालते हुए कहा- देश की सर्वोन्मुखी विकास का उद्देश्य रखकर नई शिक्षा नीति का ढांचा तैयार किया गया है। शिक्षण केवल चार दीवारों के बीच की एक जड़ प्रक्रिया न रहकर देश के सर्वांगीण विकास को गतिशील और ठोस बनाये और राष्ट्रीय एकता, अपनी पुरातन सभ्यता और भारतीय संस्कारों के अनुसार इस देश के विद्यार्थियों को आधुनिक शिक्षा प्रवाह से इस तरह अवगत कराया जाए ताकि वे सब इस देश के आदर्श नागरिक बन सकें, यह नई शिक्षा नीति का परम ध्येय है, यही है इसका मुख्य लक्ष्य।

संदर्भ

1. सक्सेना, एन0 आर0, मिश्रा, मोहन्ती, बी0 के0; अध्यापक शिक्षा, विनय रखेजा पब्लिशर्स, राज प्रिन्टर्स, यू0 पी0, पृ0 सं0 30-31
2. वही, पृ0 सं0 32
3. वही, पृ0 सं0 33
4. पाण्डेय, डॉ0 बृजविलास; पर्यावरण अध्ययन, प्रकाशन केन्द्र लखनऊ; पृ0 सं0 38-39
5. वही, पृ0 सं0 40
6. वही, पृ0 सं0 55
7. भटनागर, प्रो0 सुरेश, कुमार, डॉ0 संजय; भारत में शिक्षा का विकास, विनय रखेजा पब्लिशर्स, यू0 पृ0; पृ0 सं0 60-62
8. वही, पृ0 सं0 63
9. वही, पृ0 सं0 64
10. मंगल, डॉ0 एस0 के0, मंगल, श्रीमति शुभ्रा; शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबंधन, इण्टरनेशलन पब्लिशिंग हाउस, यू0 पी0; पृ0 सं0 55
11. वही, पृ0 सं0 67
12. वही, पृ0 सं0 68
13. पाण्डेय, ब्रजकुमार; विविध प्रसंग, अभिधा प्रकाशन, रामदयालु नगर मुजफ्फरपुर; पृ0 सं0 120
14. वही, पृ0 सं0 121-122

भारतीय महिला आन्दोलन

डॉ० पिंकी पुनिया

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, पीजीडीएवी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

महिला आन्दोलन, महिला संगठनों द्वारा लिंग समानता, स्वतंत्रता और न्याय लाने की दिशा में किए गए संगठित प्रयास है। ये आन्दोलन लिंग आधारित श्रम विभाजन तथा पितृसत्ता के विरोध की विचारधारा से प्रेरित है तथा महिला अधीनता की समाप्ति जैसे कुछ विशिष्ट मुद्दों के लिए कार्यरत है। महिला आन्दोलन की गिनती नवीन सामाजिक आन्दोलनों के अन्तर्गत की जाती है जिनका परिदृष्य मुख्य रूप से मध्यमवर्गीय है तथा वे ज्यादातर पहचान की खोज में लगे हुए हैं। यद्यपि महिला आन्दोलन काफी हद तक सामाजिक आन्दोलन का एक हिस्सा है तथापि दूसरे सामाजिक आन्दोलनों की तुलना में यह उपेक्षित ही रहा है। महिला आन्दोलन महिला मुद्दों को अन्य सामाजिक उद्देश्यों के अधीनस्थ के रूप में न देखकर इन्हें अन्य सामाजिक प्रश्नों के केन्द्र में रखते हैं। ये आन्दोलन अन्य सामाजिक आन्दोलनों के साथ एकीकृत रूप में रहते हैं।

गेल ओमवेट ने महिलाओं से जुड़े हुए चार प्रकार के आन्दोलनों की बात की है जिन्हें महिला आन्दोलन कह सकते हैं साथ ही उनमें भेद भी किया जा सकता है।[1]

1. ऐसे आन्दोलन जिनमें महिला और पुरुष दोनों ही अधीनता के खिलाफ लड़ते हैं लेकिन लिंग आधारित भेदभाव के कारण अधीनता इन आन्दोलनों का मुख्य मुद्दा नहीं होती है। इसलिए ओमवेट इस प्रकार के आन्दोलनों को महिला आन्दोलन नहीं मानती हैं।
2. ऐसे आन्दोलन जो सामान्य मुद्दों जैसे कीमतों में वृद्धि, झुग्गियों के विकास आदि पर केन्द्रित होते हैं और जिनमें सिर्फ महिलाएँ ही भागीदार होती हैं। परन्तु सिर्फ महिलाओं की भागीदारी इन्हें महिला आन्दोलन नहीं बनाती है। बल्कि इस प्रकार के आन्दोलन श्रम के लिंग विभाजन, जिसमें महिलाएँ कीमतों में वृद्धि के विरुद्ध संघर्ष करती हैं और पुरुष वेतन वृद्धि के लिए, बिना पुरुष प्रधान परिवार और सामाजिक संरचना को चुनौती दिए पुख्ता करने या स्वीकार करने का कार्य करते हैं। गेल के अनुसार हालांकि इस प्रकार के आन्दोलन महिलाओं को प्रगतिशील भूमिका के द्वारा अपनी संगठित ताकत को अनुभव करने का अवसर प्रदान करते हैं।
3. वो आन्दोलन जिन्हें समाज सुधार आन्दोलनों के रूप में जाना जाता है जैसे महिला शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह, सती प्रथा की समाप्ति आदि के लिए किए गए आन्दोलन। परन्तु गेल इन्हें भी महिला आन्दोलन नहीं मानती क्योंकि इनमें परिवार तथा समाज में महिलाओं की अधीनता की मूल संरचना को चुनौती नहीं दी गई।
4. ये वो आन्दोलन हैं जो लिंग आधारित श्रम विभाजन और पितृसत्ता की विचारधारा से प्रेरित होकर महिला अधीनता के विशेष मुद्दों के लिए कार्य करते हुए महिला स्वतन्त्रता के लिए अग्रसर है। गेल के अनुसार सिर्फ इसी प्रकार के आन्दोलनों को महिला आन्दोलन कहा जा सकता है।

'महिला आन्दोलन' और 'नारीवाद' शब्दों का प्रयोग एक दूसरे के समानार्थक के रूप में किया जाता रहा है हालाँकि इसको लेकर काफी विवाद भी सामने आते रहे। नारीवाद को भारतीय सन्दर्भ में एक आयातित विचार माना जाता रहा है क्योंकि भारत की सांस्कृतिक परम्परा में महिलाओं को काफी ऊँचा स्थान प्रदान किया गया है। जिनसे त्याग और बलिदान की माँग की जाती रही है, यहाँ पर महिलाओं की कर्तव्य भावना को धर्म के साथ जोड़कर उसकी स्वतन्त्रता को कुंठित कर दिया गया अत: ऐसे समाज में जहाँ महिलाओं की पहचान दूसरों के द्वारा निर्धारित होती है, वहाँ नारीवाद एवं महिला आन्दोलन की शुरुआत होना काफी कठिन था। परन्तु इन कठिनाइयों को पार करते हुए भारतीय महिला आन्दोलन आज काफी मुखर हो चुका है और महिला अधीनता और असमानता ने लगभग हर मुद्दे को उठा रहा है। हालाँकि भारतीय महिला आन्दोलन के अन्दर भी कई प्रकार का बिखराव दिखाई देता है परन्तु फिर भी इसे हम मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं –

1. 19वीं शताब्दी के समाज सुधार आन्दोलन
2. 20वीं शताब्दी का राष्ट्रीय आन्दोलन
3. स्वतन्त्रता पश्चात् का महिला आन्दोलन एवं मुद्दे

इन तीनों चरणों में महिलाओं से संबंधित सभी दूरगामी मुद्दों को उठाया गया।

1. भारत में समाज सुधार आन्दोलन एवं महिला मुद्दे

भारत में महिला आन्दोलन का विकास समाज सुधार आन्दोलन से जुड़ा हुआ है। 19वीं शताब्दी में महिला मुक्ति के लिए जिन वैधानिक सुधारों और उपायों को अपनाया गया, उन्हें महिला आन्दोलन के रूप में जाना गया हालांकि उस दौरान महिला मुद्दों का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई औपचारिक संगठन मौजूद नहीं था। हिन्दू समाज में महिलाओं की निम्न स्थिति को स्वीकार करते हुए पुरुष समाज सुधारकों ने ही महिला आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान किया।

19वीं शताब्दी का भारतीय महिला आन्दोलन मुख्य रूप से उच्चवर्गीय और उच्चजातीय महिलाओं की समस्याओं से सम्बन्धित था। उच्चवर्गीय और उच्चजातीय हिन्दू महिलाओं का जीवनयापन, उनके विवाह और विधवापन से जुड़ी हुई परम्पराओं ने उस वक्त काफी ध्यान आकर्षित किया। उस समय के समाज-सुधारकों ने मुख्य रूप से महिला जीवन से जुड़े हुए तीन पहलुओं और समस्याओं पर अपना ध्यान केन्द्रित किया–महिला विवाह की उम्र, विधवा महिला का जीवन और पुनर्विवाह का अधिकार तथा महिला शिक्षा।[2] महिलाओं से जुड़ी हुई इन समस्याओं के लिए जहाँ एक तरफ सरकार द्वारा वैधानिक सुधार किए जाने पर जोर दिया गया वहीं दूसरी तरफ महिला जागृति पर भी जोर दिया गया जिसमें एक "परिवर्तित महिला"[3] की बात की गई जो न सिर्फ भावनात्मक स्तर पर पुरुष के साथ सहयोग कर सके बल्कि महिलाओं की समस्याओं का भी प्रतिनिधित्व कर सके जिसका मुख्य उपाय या माध्यम औपचारिक शिक्षा थी। वास्तव में औपनिवेशिक काल में शिक्षा के प्रारम्भ ने ही अपने आप को आधुनिक कहने वाले पुरुषों को महिलाओं के लिए अपनाई जाने वाली बर्बरतापूर्ण परम्पराओं के लिए आईना दिखाने का काम किया। महिलाओं के विरुद्ध अपनाई जाने वाली इन परम्पराओं ने ही औपनिवेशिक शासकों को भारत में रहने और महिलाओं के हितों का हितैषी बनने का नैतिक आधार प्रदान करके सभ्यता आन्दोलन चलाने का कारण भी प्रदान किया। इस प्रकार यह भी एक महत्वपूर्ण और रोचक बात है कि स्त्रियों के सरोकारों से संबंधित ऐसे अनेक मुद्दे जो उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में नारी आन्दोलन का आधार बने, वे एक जैसी सोच वाले लोगों द्वारा शुरू किए गए परन्तु वे अलग-अलग तरह से विकसित हुए। हिन्दू समाज में भारतीय महिलाओं की दशा को सुधारने वाला आन्दोलन हालांकि धीमा था परन्तु वह लगातार जारी रहा।

भारत में स्त्रियों की दशा सुधारने के प्रारम्भिक प्रयास समाज सुधार आन्दोलन के अन्दर सती प्रथा के विरोध में दिखाई देने लगे थे। राजा राममोहन राय पहले भारतीय थे जिन्होंने सती प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन चलाया। प्रारंभ में तो ब्रिटिश संसद सती विरोधी कानूनों को बनाने से यह कहकर बचती रही कि यह हिन्दू धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप होगा। बाद में जो कानून बनाए गए उनमें जबरन सती और स्वेच्छा से सती में अंतर करते हुए इसे कानूनी जामा पहनाने की कोशिश की गई। इसने सती प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन चलाने वालों को झकझोर कर रख दिया। 1817 में पंडित मृत्युंजय विद्यालंकार ने घोषणा की कि सती की कोई शास्त्रीय मान्यता नहीं है। इसके एक वर्ष बाद 1818 में बंगाल के तत्कालीन प्रांतीय गर्वनर जनरल विलियम बैंटिक ने प्रांत में सती पर रोक लगा दी और 1829 में जब वे भारत के गर्वनर जनरल बने तो उन्होंने सती उन्मूलन एक्ट पास किया।[4]

यदि सती उन्मूलन आन्दोलन स्त्रियों की दशा सुधारने के एक प्रयास के रूप में आगे बढ़ा तो स्त्रियों की शिक्षा का आन्दोलन दूसरा प्रयास था। लड़कियों की शिक्षा के प्रारम्भिक प्रयास 1820 में अंग्रेज और ईसाई मिशनरियों द्वारा किए गए थे।[5] जिससे डरकर बंगाल में हिन्दू और ब्राह्मण कन्याओं के लिए पाठशालाएँ खोली गई तथा स्त्रियों की शिक्षा का मुद्दा उदार हिन्दुओं, ब्राह्मणों और प्रगतिशील छात्रों के लिए आन्दोलन का विषय बन गया। जहाँ मिशनरी स्कूलों में गरीब लड़कियाँ पढ़ने आती थी वहीं इन नए स्कूलों में ऊँची जाति की लड़कियाँ पढ़ने गई।[6] पूणे में ज्योतिबा फूले ने अछूत लड़कियों की शिक्षा के लिए स्कूल खोले। परन्तु स्त्री शिक्षा की वकालत करने वाले अधिकांश समर्थकों का ऐसा विश्वास था कि स्त्रियों की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे वो अपनी गृहस्थी में और परिपक्वता ला सके[7], ताकि पति तथा बच्चे दोनों को लाभ मिले। ब्राह्मण कन्या पाठशालाओं, खासतौर से केशवचन्द्र सेन द्वारा चलाई जा रही कन्या पाठशालाओं में लड़कियों को खाना पकाने, सिलाई-कढ़ाई करने तथा सेवा की शिक्षा दी जाती थी तथा इन कार्यों में प्रवीणता प्राप्त करने के लिए लड़कियों को प्रोत्साहन तथा पुरस्कार भी प्रदान किए जाते थे। उस समय कम प्रभावशाली परन्तु कालान्तर में जबरदस्त महत्वपूर्ण बन कर उभरा एक विचार था–बच्चों के चरित्र निर्माण में माँ के रूप में स्त्रियों की भूमिका।

उस समय विधवा पुनर्विवाह की समस्या भी बहुत मुखर थी। अन्य समाज सुधारकों की भांति ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने 1850 में विधवा पुनर्विवाह पर लगे प्रतिबंध को समाप्त करने के लिए अभियान चलाया, साथ ही उन्होंने बंगाली भाषा में एक पुस्तिका प्रकाशित की जिसमें कहा गया कि विधवा पुनर्विवाह शास्त्र-सम्मत है। 1856 में विधवा पुनर्विवाह कानून पारित कर दिया गया किन्तु इसके परिणामस्वरूप बहुत ही कम पुनर्विवाह हुए। समाज सुधारकों ने खुद भी इसे एक 'मुर्दा पत्र' की संज्ञा दी। 1890 के दशक में यह तथ्य सामने आया कि विधवा पुनर्विवाह कानून बनने के बाद विगत 40 वर्षों में कुल 500 विधवा पुनर्विवाह हुए।[8]

इसके अलावा समाज सुधार आन्दोलन में स्त्रियों की स्थिति से सम्बन्धित एक अन्य आन्दोलन बाल विवाह से सम्बन्धित था। 19वीं शताब्दी में विवाह की औसत आयु 8 और 9 वर्ष थी हालांकि कुछ जातियों और क्षेत्रों में यह थोड़ी भिन्न थी। सरकार ने कम उम्र की बालिका की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए 1860 में एक कानून पास किया जिसमें कहा गया कि 10 वर्ष से कम आयु की बालिका के साथ संभोग को बलात्कार माना जाएगा। परन्तु यह कानून स्त्रियों को न के बराबर सुरक्षा प्रदान कर पाया।[9] इस प्रकार 19वीं सदी के अंतिम वर्षों में बहरम मालाबारी द्वारा इस मुद्दे को उठाए जाने से पूर्व इसके विरोध में कोई आन्दोलन नहीं चलाया गया तथा विवाह की उम्र बढ़ाने के लिए दी गई ज्यादातर दलीलों को सामाजिक तथा नैतिक आधार पर ठुकरा दिया गया। इस बहस में स्त्रियों के कूदने से यह और भी गर्म हो गई। कलकत्ता की महिला चिकित्सकों ने विवाह की उम्र बढ़ाने के लिए समाज सुधारकों द्वारा दिए जा रहे तर्कों का समर्थन किया तथा एक हजार छह सौ हिन्दू स्त्रियों ने कानूनी सुधार लागू करने के लिए महारानी विक्टोरिया के सम्मुख 1890 में एक याचिका प्रस्तुत की। जिसके फलस्वरूप संभोग के लिए सहमति की उम्र विवाहित स्त्री के लिए 12 वर्ष और अविवाहित के लिए 14 वर्ष निर्धारित कर दी गई। 1929 में महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए हरिविलास शारदा द्वारा स्त्री विवाह की उम्र को 14 वर्ष करने के लिए एक विधेयक प्रस्तावित किया गया। यह महिलाओं के लिए किया गया सबसे नया सुधार था।[10]

इस प्रकार उन्नीसवीं सदी के आखिर तक समाज सुधार आन्दोलनों का असर दिखाई देने लगा था। हालांकि रमाबाई[11] सरीखे व्यक्तिगत विद्रोह तब भी नाममात्र को ही दिखाई पड़े परन्तु सार्वजनिक जीवन में विद्रोही स्त्रियों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। जिसमें हम रसुन्दरी देवी का उदाहरण ले सकते

है जिन्होंने अपने स्वयं के प्रयत्नों द्वारा शिक्षा अर्जित की तथा आत्मकथा (बंगाली भाषा में 'आमार जेबान') लिखने वाली पहली भारतीय महिला बनी। इसके बाद विशेष रूप से बंगाली महिलाओं ने तेजी से प्रगति की। निरूपमा देवी एवं अनुरूपा देवी जैसी प्रतिष्ठित उपन्यास लेखिकाओं का उदाहरण बंगाली साहित्य में दिया जाने लगा। यह बात अलग है कि उनके कृतित्व को 'हल्का' तथा मात्र 'मनोरंजक' कहकर उसकी उपेक्षा की गई। महाराष्ट्र की पहली महिला उपन्यासकार काशीबाई कानितकर ने 1890 के दशक में लेखन प्रारंभ किया तथा ठीक उसी समय महाराष्ट्र की पहली महिला डॉक्टर आनंदीबाई जोशी ने अपनी शिक्षा पूरी की। 1883 में कादम्बिनी बासु और चन्द्रमुखी बासु ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातक की शिक्षा प्राप्त की, परन्तु महिला शिक्षा मुख्य रूप से बम्बई, पूणे और मद्रास जैसे शहरी क्षेत्रों तक सीमित थी। इस "परिवर्तित महिला" ने 1880 के दशक में आवाज उठाना प्रारम्भ कर दिया था और अपनी अधीनता की स्थिति के लिए जिम्मेदार कारकों पर प्रश्न करने लग गई थी। प्रगति के इन लक्षणों के बावजूद जिस माहौल में ये महिलाएँ रहती थी वह बड़ा रूखा एवं असहनीय था। एक बार की बात है, काशीबाई कानितकर तथा आनंदीबाई जोशी–दोनों सहेलियाँ जब पहली बार जूते पहनकर तथा छाता लेकर बाहर निकली तो उन पर यह कहकर गलियों में पत्थर बरसाए गए कि उन्होंने पुरुष अधिकार वाले प्रतीकों को अपनाकर उनका अपमान करने की हिमाकत की है। 1882 में एक युवा लेखिका ताराबाई शिन्दे ने अपनी पुस्तक "स्त्री-पुरुष तुलना" में ब्राह्मणवादी पितृसत्तात्मक व्यवस्था की कटु आलोचना की। इस पुस्तक की भावनाएँ परम्परागत थी लेकिन फिर भी सुधारवादियों के अन्दर सत्यशोधक समाज जैसे सुधारवादी संगठन में भी पुस्तक का बड़ा तिरस्कार हुआ।[12]

इस प्रकार हम पाते है कि समाज सुधार आन्दोलन में स्त्रियों की जीवन दशा सुधारने की आवश्यकता इसलिए नहीं महसूस हुई कि वे बहुत कठिन दौर से गुजर रही थीं, बल्कि उनकी दशा में सुधार उनके पति तथा बच्चों के लिए भी जरूरी था। यह विचार बड़े प्रभावशाली तरीके से उभरा कि स्त्री की भूमिका माँ के रूप में अधिक स्वीकार्य है। इसके पक्ष में तर्क देते हुए कहा गया कि "जिन स्थितियों में स्त्रियाँ शिशुओं को जन्म देती हैं तथा जिन परिस्थितियों में बच्चे पलते हैं, वे इतनी दयनीय हैं कि 'भारतीय मूल' पूरी तरह 'विकृत' हो जाता है। रुग्ण बच्चे पैदा होते हैं तथा आगे चलकर वे जर्जर युवा के रूप में दिखाई पड़ते हैं। माताओं और बच्चों की उपेक्षा से भारतीयों की एक पूरी पीढ़ी 'उद्यमशीलता' खो चुकी है, इसीलिए भारत को अँग्रेजों का गुलाम बनना पड़ा। अत: भारतीय राष्ट्र के लिए यह आवश्यक है कि उसके बच्चे उत्तम परिस्थितियों में जन्म लेकर पले-बढ़ें।"[13]

2. राष्ट्रीय आन्दोलन में महिला भागीदारी और मुद्दे

2.1 राष्ट्रीय आन्दोलन में महिला भागीदारी का पहला दौर: इन्हीं वर्षों के दौरान महिलाओं ने राष्ट्रवादी आन्दोलनों एवं संगठनों में भी भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। हालांकि काफी हद तक उन्हें पुरुषों के विरोध का सामना भी करना पड़ा। सन् 1889 के कांग्रेस के बम्बई सत्र में महिलाओं को दरी पर बैठने की अनुमति तो दी गई परन्तु उन्हे प्रस्तावों पर बोलने तथा मत देने की इजाजत नही दी गई।[14]

सन् 1905-08 के दौरान बंगाल में चले स्वदेशी आन्दोलन में बड़े पैमाने पर राष्ट्रवादी गतिविधियों में महिलाओं की भूमिका की शुरूआत दिखाई पड़ती है। अपने दौर की सबसे जुझारू राष्ट्रवादी महिला **सरला देवी घोषाल**, जिन्होंने 'भारती' के संपादक के रूप में 1895 में पदभार ग्रहण किया। उन्होंने अपनी पत्रिका के जरिए युवाओं को 'भौतिक संस्कृति' में लिप्त होने से बचने तथा भारतीय स्त्रियों का अंग्रेज सिपाहियों द्वारा गलियों तथा थानों में बलात्कार किए जाने से रक्षा करने के लिए प्रेरित करना शुरू किया।[15] अगस्त सन् 1905 के बाद स्वदेशी आन्दोलन में स्त्रियों की सहभागिता की खबरें आने लगी। ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्रियों को राष्ट्रवादी आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करने के प्रारम्भिक कदम इसी दौरान उठाए गए। चाहे छोटे पैमाने पर ही सही, स्त्रियों को राष्ट्रवादी आन्दोलनों में शामिल होने के लिए इसलिए तैयार किया गया क्योंकि वे राष्ट्रवादियों की पत्नियाँ, बहनें तथा पुत्रियाँ थी और आन्दोलन के लिए समर्थक समूह स्थापित कर सकती थी। मध्यमवर्गीय स्त्रियों ने स्वदेशी आन्दोलन के लिए धन के साथ-साथ अपने जेवर भी उपलब्ध कराए।[16] सन् 1909 में लाहौर में स्त्रियों ने अपना अलग 'महिला खण्ड' स्थापित किया।[17]

राष्ट्रवादी आन्दोलन में स्त्रियों के प्रवेश के साथ ही स्त्री शिक्षा आन्दोलन को भी नई दिशा मिली। स्त्री शिक्षा की प्रबल समर्थक **मैडम कामा** का विचार था कि महिलाओं के समर्थन के बगैर भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन सफल नहीं होगा। उन्होंने नारी शिक्षा के नए प्रतिमान निर्धारित किए। परन्तु प्रारंभ से ही स्त्री शिक्षा आन्दोलन ने स्त्रियों को पत्नियों एवं माताओं के रूप में उनकी भूमिका को ध्यान में रखते हुए शिक्षा देना शुरू किया तथा उस समय शिक्षा को स्त्रियों का जन्मसिद्ध अधिकार नहीं बल्कि पुत्रों को उनकी माताओं से विरासत में मिलने वाला गुण माना गया।

गैरलडाइन फोर्ब्स कहती हैं कि इस दौरान एक नई प्रकार की नारीवादी राजनीतिक भूमिका देखने को मिली। जहाँ पर वैचारिक और भौतिक माध्यमों के द्वारा महिलाओं की सार्वजनिक और निजी भूमिकाओं में विभाजन कर दिया गया था। महिलाओं की राजनीतिक गतिविधियाँ ब्रिटिश अधिकारियों से छिपी हुई थी, महिलाएँ हथियारों को छुपाने तथा पुरुषों को प्रोत्साहित करने जैसे कार्यो में सलंग्न थी, उनकी घरेलू भूमिका ने इन कार्यो के लिए समर्थन प्रदान किया। यह सहभागिता भारतीय राष्ट्रीय काग्रेंस में महिला सहभागिता से भिन्न थी। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेंस में महिला प्रतिनिधियों को पुरुषों के बराबर स्थान दिया गया परन्तु वास्तव में उनका महत्व केवल प्रतीकात्मक था। स्वदेशी आन्दोलन के अन्तर्गत भारतमाता की प्रशंसा में गीत गाए गए और भारतीय स्त्रीत्व के पुर्नउत्थान की कामना की गई जबकि दूसरी तरफ निजी और सार्वजनिक वर्गीकरण साथ- साथ चलते रहे अर्थात महिलाओं के लिए उन कार्यो की मनाही रही जो पुरुष करते थे।[18]

उन्नीसवीं शताब्दी के आखिर में समाज सुधार आंदोलन में तेजी आने के साथ इसका राष्ट्रवाद से अलगाव शुरू हुआ तथा अगले कुछ वर्षों में यह और अधिक बढ़ा। समाज सुधार के क्षेत्र में स्त्रियों से संबंधित विषय छाए हुए थे जबकि राजनीतिक क्षेत्र में ऐसी बात नहीं थी। अगर पहले का दौर सुधारवादी स्त्रियों में राष्ट्रवाद के प्रसार को दर्शाता है, तो दूसरी तरफ हम देखते हैं कि सन् 1910 के बाद से उग्रराष्ट्रवादी स्त्रियाँ महिला अधिकारों के मुद्दे पर होने

वाले आन्दोलनों में ज्यादा सक्रिय नजर आई। सन् 1913 में क्रान्तिकारी आतंकवाद की समर्थक **कुमुदिनी मित्रा** को बुडापोस्ट में सम्पन्न हुई इंटरनेशनल वीमेन सफरेज कांग्रेस में भारतीय स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए भारतीय प्रतिनिधि के रूप में आमन्त्रित किया गया। इस पर टिप्पणी करते हुए एक मध्यमार्गी महिला पत्रिका 'इण्डियन लेडीज मैगजीन' ने लिखा : "सुश्री मित्रा को कांग्रेस में भारतीय स्त्रियों के द्वारा किए जा रहे कार्यों का ब्यौरा देने वाला पर्चा पढ़ने के लिए आमन्त्रित किया गया है। ऐसा लगता है कि भारत का उद्धार अब निश्चित है।"[19] 1920 के बाद भारतीय महिलाओं ने महिला समानता को प्राप्त करने के लिए अपना ध्यान दो मुख्य माध्यमों–*विभिन्न संगठन स्थापित करना* तथा *राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की और अधिक सक्रियता*–पर केन्द्रित किया।

2.2 महिला संगठनों का गठन : 1920 में ये दूसरी पीढ़ी की महिलाएँ और अधिक सक्रिय हो गई थी। उन्होंने महिलाओं की आवश्यकताओं, समाज की आलोचना और विदेशी शासन की समाप्ति के लिए एकत्रित होना प्रारम्भ कर दिया था। उग्रवादी राष्ट्रवादी महिला सरला देवी का स्थान इसमें अविस्मरणीय है। इन्होंने सर्वप्रथम महिलाओं के लिए अलग संगठन स्थापित करने की आवश्यकता को महसूस किया। उन्होंने यह तर्क दिया कि महिला मुद्दों का ठीक प्रकार से प्रतिनिधित्व किसी भी ऐसे संगठन द्वारा नहीं किया जा सकता जो पुरुषों द्वारा स्थापित हो और इसी आधार पर उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा स्थापित संगठन नेशनल सोशल कान्फ्रेंस को महिलाओं का ठीक प्रतिनिधित्व नहीं करने वाला संगठन बताया। सन् 1910 में सरला देवी ने इलाहाबाद में स्त्री महामंडल की स्थापना की। स्त्री महामंडल की स्थापना महिलाओं के समान हितों तथा भारत में महिलाओं की प्रगति के उद्देश्य से की गई थी। इसमें बिना किसी भेदभाव के सभी जातियों एवं वर्गों की महिलाओं को शामिल किया गया परन्तु संगठन बड़े पैमाने पर लाहौर, इलाहाबाद तथा कलकत्ता की मात्र तीन शाखाओं में सिमट कर रह गया।

सरला देवी ने पुरुषों द्वारा समर्थित संगठनों की ओर इशारा करते हुए कहा कि "ये संगठन महिलाओं की उसी पुरानी स्त्रीपरक भूमिका और मूल्यों पर जोर देते हैं और जब यहाँ महिलाएँ 'स्त्री प्रश्नों' पर अपने स्वयं के द्वारा सोचने का कार्य प्रारम्भ करती है तो उन पर सीमाएँ लगा दी जाती है"[20] इस प्रकार सरलादेवी के पदचिन्हों पर चलते हुए 20वीं शताब्दी के आरम्भिक दशकों में महिला आधारित संगठन स्थापित किए गए। सन् 1910–1920 का दशक ऐसा था जिसमें सर्वप्रथम अखिल भारतीय महिला संगठनों के गठन के प्रयास किए गए। उन्नीसवीं सदी के आखिर तथा बीसवीं सदी के शुरुआती सालों में बंगाल में बंग महिला समाज एवं अघोरी कामिनी नारी समिति, महाराष्ट्र में सतारा अवलोन्नति सभा, बेंगलूर में महिला सेवा समाज, बनारस में भारत महिला परिषद तथा इलाहाबाद में प्रयाग महिला समिति जैसे स्थानीय एवं क्षेत्रीय संगठनों ने अखिल भारतीय संगठनों का समर्थन किया। इनमें से कुछ क्रियाशील समाज सुध ार संगठन थे जबकि अन्य दूसरे संगठन स्त्रियों की चर्चा के मंच मात्र थे।

इससे पहले बड़े पैमाने पर महिलाओं को एक साथ लाने का पहला प्रयास सन् 1908 में किया गया। मद्रास में "महिला परिषद" या "लेडीज कांग्रेस" सम्पन्न हुई जिसमें समूचे दक्षिण भारत से आई महिलाएँ शामिल हुई। इसके बाद सन् 1917 में ऐनी बेसेंट, डोरोथी जिन राजदास, मालती पटवर्धन, अन्नू स्वामीनाथन, श्रीमती दादाभाई एवं श्रीमती अम्बुजफल ने मिलकर वूमेन इंडियन एसोसिएशन (डब्ल्यू.आई.ए.) की स्थापना की। इस एसोसिएशन के बारे में टिप्पणी करते हुए राजकुमारी अमृत कौर ने सन् 1932 में इसे "भारत में उदित होने वाले पहले शुद्ध नारीवादी संगठन की संज्ञा दी।"[21]

इसके बाद सन् 1925 में स्थापित नेशनल काउन्सिल ऑफ इन्डियन वूमन (NCIW: National Council of Indian Women) भी उच्च वर्ग से सम्बन्धि त विशिष्ट वर्गीय संस्था ही बनी रही तथा राष्ट्रीय रूप ग्रहण नही कर पाई। इसे अर्न्तराष्ट्रीय महिला परिषद् की शाखा के रूप में स्थापित किया गया था जिस पर लेडी टाटा तथा बम्बई के धनी औद्योगिक घरानों की महिलाओं का प्रभुत्व था। इनमें से ज्यादातर महिलाएं परिषद् के मुख्य उद्देश्य के रूप में सामाजिक परोपकार को देखती थी। परिषद् ने उस "प्रबोधन क्रियात्मकता" के लिए स्थान प्रदान किया जो ब्रिटिश मध्यम वर्ग की महिलाओं की सोच पर आधारित था। फिर भी परिषद् ने श्रम, विधि निर्माण और प्रेस से सम्बन्धित अनेक समितियों का गठन किया जिसमें विधि निर्माण से सम्बन्धित समिति सबसे ज्यादा सक्रिय थी। ये दोनों संस्थाएं–डब्ल्यू.आई.ए. (WIA : Women IndianAssociation) और एन.सी.आई.डब्ल्यू. (NCIW : National Council of Indian Women)–सभी भारतीय महिलाओं का प्रतिनिधित्व करने का दावा करती थी लेकिन ये महिलाओं के उस जनसमूह से बहुत दूर थी जिनको वे लाभ पहुचाँना चाहती थी। इनका मुख्य उद्देश्य सरकार को विभिन्न समस्याओं पर सलाह और सुझाव देना मात्र था जिसके लिए उनकी कार्यप्रणाली प्रार्थना पत्र देने पर केन्द्रित थी।[22]

इन दोनों की तुलना में 1927 में स्थापित तीसरा महिला संगठन ऑल इन्डिया वूमेन कान्फ्रेंस (IWC) महिला मुद्दों को प्रतिनिधित्व देने में अपनी राष्ट्रीय पहचान बनाने में सफल रहा। दस वर्षों के अन्दर ही सम्मेलन को श्रम, ग्रामीण पुनः निर्माण, उद्योग, पुस्तकों, अफीम और बाल विवाह कानून से सम्बन्धि त उपसमितियों में शामिल किया जाने लगा। यह 1927 के शारदा एक्ट या हिन्दू बाल विवाह निषेध कानून के प्रचार के द्वारा अपनी पहचान बनाने में सफल रहा। 1930 के प्रारम्भ तक महिला संगठन एक प्रभुत्वशाली ताकत के रूप में उभरे जो हर राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय मुद्दे पर जवाब दे रहे थे। वे भारत के भविष्य को तय करने वाली हर समिति, योजना और कार्यक्रमों में हिस्सा ले रहे थे। [23]

2.3 राष्ट्रीय आन्दोलन में महिला भागीदारी का दूसरा दौर : सन् 1920 के दशक में महिलाओं की दूसरी पीढ़ी आगे आई और सही मायने में राष्ट्रवादी आन्दोलन में महिलाओं की व्यापक सहभागिता सन् 1919 में रौलट कानून बनने के बाद शुरू हुई। इस कानून के विरोध में संघर्ष छेड़ कर गांधी एक अखिल भारतीय नेता के रूप में उभरे तथा सन् 1920–21 में शुरू हुआ असहयोग आन्दोलन जैसे-जैसे आगे बढ़ा महिलाओं की भागीदारी भी बढ़ती गई। बम्बई तथा कलकत्ता में सन् 1920–21 के दौरान महिलाओं ने शराब की दुकानें लूट ली तथा सरकार द्वारा शराब के ठेकों के लाइसेंस की नीलामी के अवसर पर बम्बई में टाऊन हॉल का घेराव कर लिया और नीलामी रोक दी। बम्बई की प्रमुख महिला आन्दोलनकारियों में सरोजिनी नायडू, उमा कुण्डापुर, नंदूबेन कानुगा, पेरिस कैप्टन तथा मणिबेन शामिल थी। 13 अप्रैल को जलियाँवाला बाग की बरसी पर महिलाओं ने बम्बई में राष्ट्रीय स्त्री सभा की स्थापना की। कलकत्ता में बसंती देवी (श्रीमती सी.आर. दासद्ध, उर्मिला देवी तथा सुनीति देवी तीन प्रमुख महिला संगठन कर्ता थी। सन् 1922 में बसंती देवी ने चटगांव में सम्पन्न हुए बंगाल

प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन की अध्यक्षता की तथा सन् 1923 में काकीनाडा में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन से पूर्व उसकी तैयारी के लिए दुर्गाबाई के नेतृत्व में एक विशेष 'बालिका कार्यकर्ता कोर' की स्थापना की।[24]

1920 के दशक में श्रमिक वर्ग की महिलाओं में चेतना आई इससे पहले उनके लिए काम करने के कोई विशेष प्रयत्न नही किये गये थे। 1920 के दशक के अन्त तक श्रमिक आन्दोलनों में महिलाओं की उपस्थिति महसूस की जाने लगी थी, न केवल कई नामी ट्रेड यूनियनी महिलाएँ सामने आई वरन श्रमिक महिलाओं ने स्वंय प्रयत्न करके संगठित होना शुरू कर दिया था। इसके साथ ही 1920 के बाद राष्ट्रीय आन्दोलन और महिला भागीदारी पर गांधी जी का प्रभाव दिखाई देने लगा था। अब तक गाँधी जी एक युग पुरुष बन चुके थे और जिन क्षेत्रों का दौरा उन्होंने कभी नहीं किया था वहाँ भी लोग उनके नाम से परिचित हो चुके थे। गाँधी जी पर एक विचारपूर्ण लेख में मधु किश्वर ने इसका उल्लेख किया है कि उन्होंने सार्वजनिक जीवन में महिलाओं को ऊँचा स्थान दिया उनमें नया आत्मविश्वास जगाया और नया आत्मविचार यह कहते हुए पैदा किया कि "स्त्रियाँ उदासीनता त्यागकर सुधार के सकारात्मक उद्देश्य की ध्वजवाहिका बन गई है।"[25] इसमें कोई संदेह नहीं है कि गाँधी जी का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह था कि उन्होंने सार्वजनिक गतिविधियों में महिलाओं की सहभागिता के औचित्य को सिद्ध करते हुए उसे विस्तार दिया ताकि वे वर्ग एवं सांस्कृतिक बंधनों को तोड़कर आगे बढ़ सके।

1920 के दशक के अंतिम दिनों में गाँधी ने अपने स्वर में परिवर्तन करते हुए महिलाओं को घर से निकलकर नागरिक अवज्ञा आन्दोलन में शामिल होने की अपील की किंतु उन्होंने उनकी सहभागिता को विदेशी और शराब की दुकानों की घेराबंदी करने तक सीमित कर दिया क्योंकि गाँधी जी की नजर में स्त्रियों को यह कार्य स्वाभाविक रूप से फबता था, इसलिए नहीं की शराब की दुकानों की वजह से महिलाएँ अपने पतियों की नशाखोरी से त्रस्त थी बल्कि इसलिए भी कि यह निजी जीवन में नैतिकता एवं शुचिता का मुद्दा था।[26] सन् 1930 के दशक तक गाँधी के दृष्टिकोण में उल्लेखनीय परिवर्तन आया। उन्होने नागरिक अवज्ञा आन्दोलन में स्त्रियों की भूमिका की सराहना की। सविनय अवज्ञा आंदोलन से राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी का एक नया चरण शुरू हुआ। 1930 के इस आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी संख्यात्मक और गुणात्मक दोनों ही दृष्टियों से 1920 के दशक की शुरूआत की भागीदारी से भिन्न थी।

डांडी यात्रा के बाद महिलाओं को स्वाधीनता आंदोलन में पूरी तरह सम्मिलित कर लिया गया, जैसे-जैसे आंदोलन भारत के अन्य भागों में फैला स्थानीय नेताओं ने महिलाओं की भागीदारी पर कोई रोक नहीं लगाई। हजारों महिलाओं ने नमक सत्याग्रह आंदोलन में नमक बनाने से लेकर बेचने तक के काम किए। 1930 के दशक में महिलाओं को पहली बार पुलिस दमन का सामना करना पड़ा। महिलाओं के जुलूसों पर भी लाठीचार्ज किया गया तथा कई बार पुलिस ने उन्हें काफी बेहरमी से मारा। इस तरह की घटनाओं से जनता में काफी आक्रोश फैला और आंदोलन ने और जोर पकड़ा। प्रेस भी अंग्रेजी राज्य में महिलाओं के प्रति पुलिस के बर्बर व्यवहार पर खूब खबरें छापती। सामाजिक सुधारवादी और राष्ट्रवादी, दोनों ही धाराओं की पत्रिकाओं में पुलिस की काफी निंदा हुई।

जहां एक ओर महिलाएं सविनय अवज्ञा और असहयोग आंदोलनों में भाग ले रही थीं, वही दूसरी तरफ काफी संख्या में महिलाएं क्रांतिकारी और कम्युनिस्ट आन्दोलन से भी जुड़ रही थीं, इनमें अधिकतर छात्राएं थीं। आंदोलन की शुरूआत में उनका काम थोड़ा सीमित था जैसे क्रांतिकारियों को घर में पनाह देना, प्रचार करना, पैसा इक्ट्ठा करना, हथियारों को छिपाकर रखना और एक जगह से दूसरी जगह ले जाना तथा विस्फोटक बम बनाना। धीरे-धीरे वे प्रत्यक्ष गतिविधियों में शामिल की गई और कोर ग्रुप का हिस्सा बनीं। यहां ध्यान देने वाली बात यह है कि इस सबके बावजूद उनको उनकी लैंगिक भूमिका से आजादी नहीं मिली हुई थी। उनका काफी समाजीकरण किया जाता कि कैसे उन्हें अपना व्यवहार शालीन और नियंत्रित बनाए रखना है।

नमक सत्याग्रह को आमतौर पर भारतीय स्वाधीनता के संघर्ष में पहली बार भारतीय स्त्रियों की व्यापक सहभागिता के रूप में याद किया जाता है। सन् 1930 के दशक में राष्ट्रवादी गतिविधियों में महिलाओं की सक्रियता का एक महत्वपूर्ण लाभ यह हुआ कि महिला संगठनों पर उच्चवर्गीय स्त्रियों का प्रभाव समाप्त हुआ। मिसाल के तौर पर कमला देवी बताती है कि ए.आई.डब्ल्यू.सी. में पहले प्रान्तीय राज्यों की महारानियों को अध्यक्ष बनाया जाता था। 1930 के दशक में महिलाओं ने महसूस किया कि ऐसी अध्यक्ष मात्र 'मुखौटा' होती है जबकि ए.आई.डब्ल्यू.सी. सक्रिय स्त्रियों का संगठन है इसलिए किसी सक्रिय महिला को इसका अध्यक्ष बनाए जाने की जरूरत है। इसीलिए सन् 1931 में सरोजिनी नायडू को सम्मेलन का अध्यक्ष चुना गया।"[27]

यद्यपि क्रांतिकारी आंदोलन में सम्मिलित कुछ महिलाओं ने महिलाओं की परम्परागत लैंगिक भूमिका को तोड़ने का प्रयास किया परन्तु ये संख्या में बहुत कम थी। इन महिलाओं की राजनीतिक उपलब्धियाँ सराहनीय थी परन्तु समाज उन्हें इज्जत और प्रतिनिधित्व के लायक नहीं मानता था। प्रीतीलता वाडेकर जो कि स्वतन्त्रता आन्दोलन की प्रसिद्ध शहीद थी ने जब यह प्रश्न उठाया कि "मुझे आश्चर्य होता है कि क्यों देश की आजादी की लड़ाई जैसे कार्य के लिए महिलाओं और पुरुषों के कार्यो में अन्तर होना चाहिए? यदि हमारे भाई मातृभूमि की लड़ाई में हिस्सा ले सकते है तो बहनें क्यों नही? यदि सत्याग्रह आन्दोलन में बहनें अपने भाईयों के आस-पास खड़ी हो सकती है तो वे क्रांतिकारी आन्दोलन में भाग लेने की अधिकारी क्यों नही?" तो पुरुष प्रधानता वाली राष्ट्रवादी विचारधारा के पास इसका कोई उत्तर नहीं था।[28]

क्रांतिकारी महिलाओं वाला उग्रवाद 1940 के दौरान वामपंथी महिलाओं में भी देखने को मिला। इनमें से कई महिलाओं ने महिलाओं की गतिविधियों पर लगाए गए प्रतिबन्धों, अलगाव वाले मूल्यों तथा भेदभावपूर्ण यौनिक नैतिकता को थोपे जाने पर सवाल खड़े किए परन्तु क्रांतिकारी महिलाओं की तरह ये भी एक छोटा समूह था जो कि मुख्यधारा से बाहर था।

2.4 महिला आन्दोलन का विभाजन तथा कुछ अन्य मुद्दे : इसी दौरान राष्ट्रवाद और कुछ महिला मुद्दों को लेकर महिलाओं में मतभेद पैदा होने शुरू हो गये थे। 1 नवम्बर 1930 से जनवरी 1931 के मध्य जब पहला गोलमेज सम्मेलन आयोजित हुआ तो बेगम शाहनवाज तथा कमला सुब्बारायन उसमें शामिल हुई। ये दोनों ही महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित किये जाने की हिमायत करने वाली लॉबी की सदस्य थी। इनका मत था कि महिलाओं को आरक्षण

देने के बाद ही पुरुषों से समानता की जा सकती है। राष्ट्रवादी स्त्रियों ने उनकी इस दलील का विरोध किया तथा राष्ट्रीय स्त्री सभा एवं देश सेविका संघ ने गोलमेज सम्मेलन में बेगम शाहनवाज तथा कमला सुब्बारायन के शामिल होने के विरोध में प्रदर्शन आयोजित किया। बेगम शाहनवाज तथा सरोजिनी नायडू दोनों ने दूसरे गोलमेल सम्मेलन में भी भाग लिया परंतु इस बार परिदृश्य पर राष्ट्रवादी महिलाएं हावी रही। उन्होंने सम्मेलन में मेमोरेंडम प्रस्तुत करके आरक्षण, नामांकन या विनियुक्ति जैसे सभी रियायती सुझावों को ठुकरा दिया और कहा कि किसी भी प्रकार की तरजीही कोशिश का अर्थ होगा भारतीय स्त्रियों को समान राजनीतिक दर्जा दिए जाने के एकमात्र निर्णय का खुलेआम उल्लंघन।[29]

महिला आन्दोलन के परस्पर विरोध धीरे-धीरे स्पष्ट रूप से बड़े हो रहे थे। राष्ट्रवादी विचारधारा वाली महिलाएं, क्रांतिकारी महिलाओं द्वारा किए जा रहे कार्यो और विचारधारा से सहमत नहीं थी। उनके अनुसार क्रांतिकारी महिलाएं अपनी परम्परागत भारतीय छवि को छोड़कर पश्चिमी महिलाओं का अनुसरण कर पश्चिमी नारीवाद को अपना रही थी, जो सिर्फ महिलाओं की स्वतन्त्रता जैसे मुद्दो पर ही केन्द्रित था, जबकि हमें अपनी परम्परागत पारिवारिक भूमिका में रहते हुए अपने राष्ट्र और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना है। सरोजिनी नायडू तथा बेगम शाहनवाज ने घोषणा की कि भारतीय महिलाओं का आन्दोलन पश्चिमी महिलाओं के आन्दोलन की तरह केवल 'स्त्रीवादी' नहीं है।[30]

इस प्रकार राष्ट्रवादी महिलाओं का क्रांतिकारी और कम्युनिस्ट विचारधारा वाली महिलाओं से अलगाव था और साथ ही यहाँ पर उच्चवर्गीय हिन्दू महिलाओं का प्रभुत्व होने के कारण महिला संगठनो द्वारा निम्न और ग्रामीण महिलाओं को बड़े पैमाने पर आकर्षित करने के प्रयास भी विफल हो चुके थे। किसानों और कामगार महिलाओं की बड़े पैमाने पर सहभागिता वामपंथी नेतृत्व में देखने को मिली। जिसमें हम उत्तरी बंगाल का तेभागा आन्दोलन, आन्ध्रप्रदेश का तेलंगाना आन्दोलन और पश्चिमी भारत में कपास मीलों के कारीगरों के आन्दोलन को शामिल कर सकते है। परन्तु फिर भी महिला आन्दोलन के अन्तर्गत कोई भी संगठन सिर्फ महिला मुद्दों पर महिलाओं को आकर्षित नहीं कर पाया। महिला मुद्दों पर किए जा रहे आन्दोलन शहरी अभिजन महिलाओं तक ही सीमित थे, हालांकि गरीब महिलाएं वर्ग और राष्ट्रवाद जैसे मुद्दों पर सक्रिय थी। शुरूआत में कम्युनिस्ट समूहों के अन्दर महिला मुद्दों और सम्बन्धों पर उठाए गए सवाल भी शीघ्र ही व्यर्थ लगने लगे क्योंकि कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दर ही उसके पितृसतात्मक चेहरे पर सवाल उठने लग गए थे। अब किसान और कामगार महिलाओं द्वारा पूछे गये इस चर्चित प्रश्न कि "मेरा कामरेड मुझे घर पर क्यों पीटता है?" का कम्युनिस्ट पार्टी के पास कोई उत्तर नहीं था।[31]

आंदोलन के अगले चरण, 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में हजारों की संख्या में महिलाओं ने भाग लिया। हजारों महिलाएं भूमिगत हुईं, समानांतर सरकार बनाने में सहायक बनीं तथा कई गैर कानूनी कामों में भी भागीदार बनीं। इस दौरान कईयों की हत्या भी की गई और इसलिए बड़े पैमाने पर महिलाओं को आत्मरक्षा-संबंधी प्रशिक्षण दिया गया ताकि वे जापानी बमों और अंग्रेजों तथा अमरीकन यौनिक उत्पीड़न से अपनी रक्षा कर सकें। बारीसाल में महिलाओं की आत्मरक्षा समितियां बनीं, जहां उन्हें लाठी चलाने का प्रशिक्षण दिया गया।[32]

1940 के दशक में देश के स्वाधीन होने के आसार दिखने लगे थे और महिला आंदोलन पूरी तरह से स्वाधीनता आंदोलन में समाहित हो गया था। यह सब इतनी सहजता से हुआ कि सबको लगा कि शायद महिलाओं की मुक्ति संबंधी सभी मुद्दों का हल देश की स्वतंत्रता है। यह बात काफी गहराई से महसूस की जा रही थी कि स्वतंत्रता प्राप्ति से महिलाओं और पुरुषों के बीच की गैरबराबरी भी दूर हो जाएगी, यह भी उसी सोच का विस्तार था कि देश की स्वतंत्रता से देश की औरतों की समस्याएं दूर हो जाएंगी, महिला एक्टीविस्टों को महिला मुक्ति का प्रतीक और स्वतंत्रता के ठोस आधार की तरह देखा गया तथा महिला एक्टीविस्टों की जो सीमित और प्रतिबंधित छवि उस समय दिखती है उस पर कोई सवाल नहीं उठे। राष्ट्रवादी, क्रांतिकारी, उग्रवादी और कम्युनिस्ट सभी ने महिला एक्टीविज्म को एक खतरे की तरह महसूस किया और अपने-अपने ढंग से सभी ने इसे सीमित करने की कोशिशें कीं। इन सबका जोर इस बात पर था कि महिलाओं को घरेलू और अधीनस्थ के रूप में देखा जाए। उदाहरण के लिए कम्युनिस्ट केवल पुरुष एक्टीविस्टों की पत्नियों को ही पार्टी में शामिल करना चाहते थे। महिलाओं में स्वयं भी इस विषय पर विरोधी विचार थे।

इस प्रकार जब हम राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी को देखते हैं तो वह उनकी घरेलू भूमिका का विस्तारमात्र ही दिखती हैं। इस भागीदारी में उन्हें राजनीतिक क्षेत्र में पुरुषों के समान चुनाव या स्वतंत्र कार्य करने की गुंजाइश नहीं थी। आंदोलन में उनकी भागीदारी से न तो घरेलू जीवन या पारिवारिक समीकरणों में कोई अंतर आया, न उनकी जीवन शैली में कोई परिवर्तन आया और न ही उनकी राजनीतिक भूमिका में कोई विशेष बदलाव आया। महिलाओं को कभी भी राजनीतिक एक्टीविस्ट की तरह नहीं देखा गया और महिलाओं की राजनीतिक भूमिका तय करने में उनकी समाज में स्वीकृत पारंपरिक भूमिका के साथ बारीकी से जोड़-तोड़ की गई। महिलाओं को राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल करने के लिए जो ढांचा और रणनीति बनाई गई उससे उनके राजनीतिकरण की सम्भावनाएं बहुत सीमित हो गई थी।

पुरुष राजनीतिज्ञों ने महिलाओं को ऐसे काम दिए जिससे स्त्री-पुरुष क्षेत्रों का वैचारिक और व्यवहारिक अलगाव बना रहे। राष्ट्रवादियों ने महिलाओं की भीतरी या बाहरी राजनीतिक गतिविधियों में परंपरा से हटकर कुछ बदलाव लाने की सोची ही नहीं। महिला का कार्यक्षेत्र घर था, उनकी पोषक और त्यागमयी मां की छवि को ज्यों का त्यों बनाए रखा गया। साथ ही इस बात पर विशेष जोर दिया जाता रहा कि महिलाएं सार्वजनिक क्षेत्र में जाएं तो भी अपने नारीसुलभ गुण नहीं छोड़ें। बार-बार उनके विनम्र और विनयशील गुणों की पुष्टि की जाती रही।

स्वाधीनता आंदोलन को केवल राजनीतिक आंदोलन न मानकर एक विशेष प्रकार का त्याग और बलिदान माना गया। आंदोलन एक धार्मिक प्रक्रिया और सांस्कृतिक जंग थी। देशभक्ति को धर्म में समाहित कर देने से महिलाओं का राजनीतिकरण पारंपरिक सांस्कृतिक ढांचे में सही उतरता था। राष्ट्रीय आंदोलन का सारा विरोध पाश्चात्य मानदंडों और प्रतिमानों से था और आंदोलन की भाषा, अवधारणा, प्रतीक आदि सबमें भारतीय धर्म एवं परंपरा को बनाए रखने पर विशेष जोर था।

इस तरह राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं को एक नई पितृसत्ता तले बाध्य रहने को मान्यता मिली। राष्ट्रवादियों ने महिलाओं की मुक्ति तथा उत्थान की स्वायत्त महत्ता को नही देखा इसके विपरीत महिलाओं की पत्नी, पुत्री और मां की भूमिकाओं की और अधिक पुष्टि हुई, केवल राष्ट्रीय आंदोलन की आवश्यकताओं को देखते हुए उसे थोड़ा-बहुत विस्तार मिल गया। राष्ट्रवादियों ने महिलाओं की भूमिकाएं और सीमाएं पहले ही तय कर दी थीं और महिलाओं को उन सीमाओं को लांघने की अनुमति नहीं थी। राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में महिलाओं का योगदान केवल उनकी पारंपरिक भूमिका का विस्तारमात्र था और राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं का कहीं कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं दिखाई दिया।

3. स्वतन्त्रता पश्चात भारतीय महिला आन्दोलन एवं मुद्दे

आजादी के बाद भारतीय महिला आन्दोलन और कार्यकर्ता हाशिए पर आ गए। सन् 1947 से 1970 का समय इससे पहले और इसके बाद दोनों ही कालों के मुकाबले निष्क्रिय था 1947 तक कई महिलाएँ और महिला समूह काफी सक्रिय थे। भारत की स्वतन्त्रता के साथ उनको महसूस हुआ कि शायद उनके लक्ष्य भी भिन्न हो गए हैं। स्वतन्त्र भारत में नारीवादियों में काफी बिखराव आया क्योंकि अब उन्हें अंग्रेजों के समान शत्रु दिखाई नहीं पड़ रहा था। इस दौर में राजनीतिक अलगाव पहले की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हो गया। इसका कारण शायद यह था कि नारीवादियों ने कभी भी लिंग आधार पर शत्रु की पहचान नहीं की थी। इसका आंशिक कारण एक तो साम्राज्यवादी दमनात्मक कार्यवाइयाँ थी साथ ही आजादी के संघर्ष में महिलाएँ सीधे राजनीति में आने के बजाय पर्दे के पीछे सक्रिय थी जिनके पास पितृसत्ता की कोई काट मौजूद नहीं थी। अतः आजादी के बाद महिलाओं की चिंताओं या मुद्दों को सामाजिक तथा आर्थिक न्याय के लिए किए गए संघर्षों में शामिल नहीं किया गया। स्वाधीनता पूर्व के नारीवादियों में से अधिसंख्य किसी अन्य राजनीतिक दल से जुड़ने के बजाय कांग्रेस की सदस्य बन गई क्योंकि कांग्रेस स्त्रियों की दशा में सुधार लाने के लिए वचनबद्ध थी। अगर कहीं असंतोष की भावना उभर भी रही थी वो बहुत मामूली थी। इसीलिए पचास एवं साठ के दशक में महिला आन्दोलन में खामोशी रही। 'ए.आई.डब्ल्यू.सी.' जैसे संगठनों ने सोचा कि अब उन्हें राजनीतिक मुद्दों से कुछ लेना-देना नहीं है। उन्होंने अपना लक्ष्य समाज कल्याण बनाया। इस दौरान महिला संगठनों ने समाज सेवा और कल्याण के क्षेत्र में कार्य किया, देश के विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न साम्प्रदायिक दंगों में काफी मारकाट, दंगे फसाद, लूटमार एवं बलात्कार हुए। महिला संगठनों ने शरणार्थियों के पुनर्वास, उनकी बुनियादी जरूरतों को उपलब्ध कराने और साम्प्रदायिक सद्भाव बढ़ाने की दिशा में कार्य किया। परन्तु इसके बावजूद महिलाओं संबंधी कुछ मुद्दे ऐसे थे जो उस दौरान भी उठाए जाते रहे। जैसे सभी नारीवादी और महिला अधिकारों के प्रखर समर्थक डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने एक समेकित हिंदू कोड की मांग की। जिसे पूरा नहीं किए जाने के विरोध में डॉ. अम्बेडकर ने नेहरु मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया तथा महिला संगठनों की चीख पुकार भी आहिस्ता-आहिस्ता मंद पड़ गई और मामला शांत हो गया। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की तरफ से महिला नेतृत्व के अन्तर्गत 1954 में भारतीय महिलाओं के राष्ट्रीय संघ (एन.एफ.डब्ल्यू.) की स्थापना की गई। तेलंगाना आन्दोलन 1950 तक जारी रहा तथा औद्योगिक कामगारों का मजदूरी के लिए संघर्ष 1950 और 1960 के दशक में अपने शिखर पर था। तेलंगाना आंदोलन में हड़तालों तथा रैलियों में हजारों स्त्रियां सक्रिय थीं। आंदोलन के नेताओं ने असामान्य रूप से 'घरेलू हिंसा' जैसी समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित किया। उत्तराखंड के पहाड़ी क्षेत्रों में सर्वोदय आन्दोलन के परिणामस्वरूप जंगलों की कटाई और शराबंदी पर अंकुश लगाने के प्रयास किए गए जिसके परिणामस्वरूप साठ के दशक के पूर्वार्द्ध में महिलाओं का शराब विरोधी आन्दोलन अस्तित्व में आया। परन्तु अभी तक ये सिर्फ एक छोटी सी आहट मात्र थी। अभी भी ऐसा कोई मंच नहीं था जहाँ से महिला मुद्दों को उठाया जा सके और उनके लिए लड़ा जा सके।

1970 के दशक में भारत में और भारत के बाहर घटी घटनाओं ने भारतीय महिला आन्दोलन को एक क्रांतिकारी मोड़ दिया। अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष और महिला दशक ने पाश्चात्य देशों में 'नव नारीवाद' को नई पहचान दी। 1950 में भारतीय राज्य के विकास के लिए जिस मॉडल को अपनाया था उसमें यह कल्पना की गई थी कि इस मॉडल के द्वारा यहाँ पर भी वैसे ही परिणाम प्राप्त होगे जैसे विकसित देशों में हुए थे। यह सभी के हितों को बढ़ावा देने वाला होगा। परन्तु यह कार्य भारतीय पितृसत्तात्मक व्यवस्था में बहुत कठिन था और यह बात उस वक्त सही साबित हुई जब संयुक्त राष्ट्र संघ के दबाब में आकर भारतीय सरकार ने महिलाओं की स्थिति की जांच के लिए 1974[33] में एक समिति का गठन किया इस समिति की रिर्पोट के अनुसार 1911 से भारतीय महिलाओं की स्थिति विकास के हर क्षेत्र में बद-से बदतर होती जा रही है। लिंग आधारित भेदभाव रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा और राजनीतिक भागीदारी आदि क्षेत्रों में साफ नजर आया।

इस दशक में नई पीढ़ी की मध्यमवर्गीय महिलाएं जो कि सार्वजनिक जीवन में अलगाव और अयोग्यता को महसूस कर रही थी, ने "महिला प्रश्नों" को नई सोच प्रदान की। 1970 का मध्यकाल भारतीय राजनीति के लिए एक विभाजक रेखा था। जहाँ काग्रेंस ने इन्दिरा गाँधी के नेतृत्व में लोकप्रिय राजनीति के नए दौर का उदघाटन किया वहीं मुख्यधारा की राजनीतिक संस्थाओं के लोकतान्त्रिक आधार को धीरे-धीरे और बढ़ावा मिला। साथ ही संगठित स्थानीय और लोकप्रिय आन्दोलनों की श्रृंखला की बाढ़ आ गई। यह नए सामाजिक आन्दोलनों की शुरूआत का दौर था जिसमें महाराष्ट्र का शहादा आन्दोलन प्रथम था।

शहद की अधिक पैदावार वाले धूलिया जिले के शहादा शहर में आन्दोलन शुरु हुआ। यह भील आदिवासी बहुत क्षेत्र है। इस क्षेत्र में ज्यादातर भील आदिवासी भूमिहीन मजदूर हैं जबकि अधिसंख्य जमींदार गैर आदिवासी थे। वे भीलों से बेगार कराते और उन्हें अमानवीय यातनाएं देते थे इनके विरुद्ध तथा 1872-73 में देश में पड़े भयंकर सूखे के परिणामस्वरूप यहाँ आन्दोलन प्रारम्भ हुआ जिसमें शहादा में सरकार से सर्वाधिक अकाल सहायता प्राप्त हुई। आन्दोलन में सक्रिय मजदूरों में महिलाओं ने शुरु से आखिर तक सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आन्दोलन में स्त्रियों की ताकत या उनका जुझारूपन जैसे-जैसे बढ़ता गया वैसे-वैसे उन्होंने लिंग आधारित मुद्दे भी उठाने शुरु कर दिए। पत्नी को पीटने की जिस समस्या को आजादी के पहले कम्युनिस्ट आन्दोलन में उठाया गया था, शहादा आन्दोलन में भी वही प्रश्न महिला आंदोलनकारियों द्वारा उठाया गया। पत्नी उत्पीड़न के पीछे पतियों की नशाखोरी मुख्य कारण

था जिसके परिणामस्वरूप शराब विरोधी आन्दोलन का उदय हुआ। सन् 1972 के अंत में शुरु हुआ, शराब विरोधी आन्दोलन सन् 1973 में भी जारी रहा। इस बीच इसकी ताकत कई गुना बढ़ गई। स्त्रियाँ अब जत्थे बनाकर एक गाँव से दूसरे गाँव में जाकर शराब की भट्टियों को तोड़ रही थी। इस प्रकार शहादा आन्दोलन शराब की बिक्री एवं शराबखोरी के विरोध से शुरु होकर पत्नी-उत्पीड़कों की पिटाई में तब्दील हो गया। जो मुद्दा अभी तक निजी माना जाता था, उसे पत्नी पिटाई को किसी का घरेलू मामला मान कर टाल दिया जाता था, स्त्रियों के आन्दोलन के परिणामस्वरूप वह अब सार्वजनिक बन गया।

इसी बीच सन् 1972 में गांधीवादी समाजवादी इला भट्ट ने सेल्फ-एम्प्लॉयड वीमेन एसोसिएशन (सेवा) की स्थापना की। सेवा एक ऐसा वंगठन था जो असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली स्त्रियों के लिए बनाया गया था। इसमें दिलचस्प बात यह है कि सत्तर के दशक में उभरी नारीवादी आन्दोलन की कुछ शाखाओं ने सुधारवादी रवैये के कारण 'सेवा' को कोई कारगर संगठन मानने से इनकार कर दिया साथ ही 'सेवा' ने स्वयं भी नारीवादियों से दूरी बनाए रखी।

1973 में महिलाओं ने बड़े पैमाने पर बम्बई और गुजरात में कीमतों में हुई वृद्धि के विरोध और उपभोक्ता संरक्षण के लिए आन्दोलन किया। मूल्यवृद्धि विरोधी आन्दोलन इतनी तेजी से उभरा की कुछ ही समय में यह उपभोक्ता सुरक्षा का स्त्रियों का व्यापक आन्दोलन बन गया। इसे गुजरात में नवनिर्माण आन्दोलन के नाम से जाना गया। नवनिर्माण आन्दोलन मूलत:, मूल्यवृद्धि, भ्रष्टाचार एवं कालाबाजारी के खिलाफ चलाया जाने वाला छात्रों का आन्दोलन था जिसमें आगे चलकर हजारों स्त्रियाँ शामिल हो गईं और वह एक विशाल मध्यवर्गीय आन्दोलन बन गया। नवनिर्माण आन्दोलन मूल्यवृद्धि के विरोध से हटकर सरकार की अलोकतान्त्रिक एवं रिश्वतखोर प्रवृत्ति की आलोचना की तरफ मुड़ गया। इसी कारण मूल्यवृद्धि विरोधी और नवनिर्माण आन्दोलन को पितृसत्ता विरोधी कहा जाए या नहीं यह बहस का विषय है क्योंकि दोनों में से किसी ने भी यह नहीं पूछा कि घरेलू खर्च में हुई वृद्धि को पुरुषों के बजाय सिर्फ स्त्रियों की चिंता का विषय क्यों माना जाए?

नवनिर्माण आन्दोलन के उत्थान एवं पतन के वर्षों में ही समकालीन नारीवादी आन्दोलन का पहला महिला संगठन प्रोग्रेसिव ऑग्रेनाइजेशन ऑफ वीमन (प्रगतिशील महिला संगठन) का हैदराबाद में गठन किया गया। प्रगतिशील महिला संगठन की अपने घोषणापत्र के द्वारा स्त्रियों की सम्पूर्ण समस्याओं का विश्लेषण किया जिसने नारीवाद के उदय का आभास कराया। महाराष्ट्र में 1975 में 'पुरोगामी महिला संगठन' बना जिसकी प्राथमिकता दलित महिलाएं और देवदासियां थीं। महाराष्ट्र में ही 'स्त्री मुक्ति संगठन' और 'महिला समता सैनिक दल' बने जिन्होंने दलित महिलाओं के मुद्दे उठाए। इस प्रकार भारत में स्वायत्त महिला संगठनों की शुरुआत हो चुकी थी। अलग-अलग विचारधाराओं से सहमत होते हुए भी वे इस पर एकमत थी कि इनकी सदस्यता महिलाओं तक ही सीमित रखेंगे। सन् 1975 का वर्ष महिला आन्दोलन के लिए काफी महत्वपूर्ण रहा। संयुक्त राष्ट्र ने इसे अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष और 1975-85 को महिला दशक घोषित किया। इस कारण कई स्तरों पर महिला मुद्दों की तरफ ध्यान गया। अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों से नई गतिविधियों को प्रोत्साहन मिला। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शोध हुए और नेटवर्किंग हुई। हालाँकि 1975 में आपातकाल की घोषणा ने शशवकालीन महिला आन्दोलन के विकास को अवरुद्ध कर दिया क्योंकि अनेक राजनीतिक संगठन भूमिगत हो गए। सन् 1977 में आपातकाल की समाप्ति तथा 1978 में जनता पार्टी की स्थापना के साथ 1970 के दशक के प्रारंभिक एवं बीच के आन्दोलनों का नवीकरण हुआ तथा सारे देश में मुख्यत: शहरों में नारीवादी संगठन स्थापित हुए। ये स्वायत्त संगठन महिला मुद्दों पर चेतना जगाने पर केन्द्रित थे। इसके साथ ही कुछ स्थानीय आन्दालनों जैसे-चिपको आन्दोलन जिससे पर्यावरणीय नारीवाद का जन्म हुआ और बोधगया आन्दोलन जिसमें महिलाओं के भूमि अधिकारों की मांग की गई थी-का जन्म हुआ।

इसी बीच भारत सरकार द्वारा भारतीय महिलाओं की स्थिति को जाँचने के लिए गठित समिति की रिपोर्ट 'स्टेटस ऑफ विमिन इन इण्डिया' आई। रिपोर्ट में महिलाओं की स्थिति को प्रत्येक क्षेत्र बदतर स्थिति में आया, साथ ही यह भी पाया गया कि देश में स्त्रियों का अनुपात लगातार घट रहा है। इस रिपोर्ट ने राष्ट्रीय स्तर पर अपना ध्यान आकर्षित किया। इससे जुड़े अनेक सवाल और अटकलें सामने आई। जिनके उत्तर ढूँढने हेतु अधिक शोध और विश्लेषण की जरूरत समझी गई।

एक तरफ महिला आन्दोलन की फैलती स्वदेशी जड़ें, दूसरी तरफ अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष और महिलाओं की स्थिति पर रिपोर्ट, इनसे काफी लोगों ने भारत में महिला आन्दोलन की आवश्यकता महसूस की। जिसके परिणामस्वरूप सन् 1970 और 2000 के बीच अनेक स्वायत्त महिला समूह एवं संगठन बने जैसे मुंबई में 'फोरम अगेंस्ट रेप' 'फोरम अगेंस्ट ऑप्रेशन ऑफ विमिन' दिल्ली में सहेली, हैदराबाद में अस्मिता, बंगलौर में 'विमोचना', तमिलनाडु में 'पुनरम्मा इयाक्कम', उत्तर प्रदेश में 'महिला मंच' आदि। स्वायत्त महिला समूहों ने समय-समय पर राष्ट्रस्तरीय सम्मेलन आयोजित किए। मुंबई में 1980 व 1985 में, पटना में 1988 में, कालीकट में 1990 में, तिरुपति में 1994 और रांची में 1999 में। इनमें हजारों की संख्या में महिलाओं ने भाग लिया। हर सम्मेलन में नए मुद्दे और आयाम जोड़कर इसका दायरा विस्तृत किया गया। सातवें, आठवें और नौवें दशक मे महिलाओं की कई पत्रिकाएँ, सूचना पत्र, कलात्मक कृतियाँ और शोध एवं अध्ययन केन्द्र उभरे। 1980 के दशक के प्रारम्भ में महिला अध्ययन केन्द्रों ने महिला आन्दोलन के अनुभवों और साक्ष्यों को स्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया। 1981 में महिला अध्ययन पर हुए राष्ट्रीय सम्मेलन के कुछ महीनों बाद ही महिलाओं से संबंधित विभिन्न मुद्दों जैसे महिला स्वास्थ्य, पाठ्य पुस्तकों में लिंग पक्षपात, मीडिया में महिलाओं की छवि, महिलाओं के प्रति हिंसा, घरेलू हिंसा और वेश्यावृत्ति आदि मुद्दों पर चर्चा की जाने लगी। महिलाओं पर अध्ययन को विभिन्न विश्वविद्यालयों में जगह दी गई। साथ ही विभिन्न विषयों जैसे राजनीति, इतिहास, समाजशास्त्र, साहित्य और दर्शन का भी हिस्सा बनाया गया।

जनवरी 1979 में 'मानुषी' का प्रकाशन महिला मुद्दों को उठाने की दिशा में एक लम्बी छलांग थी। 1980 के दशक में 'कॉली फॉर वूमन' एक पूर्ण महिला प्रकाशक संस्थान खुला। इससे महिलाओं संबंधी उच्च श्रेणी की पुस्तकों के प्रकाशन का सिलसिला जारी हुआ। इस प्रकार महिला आन्दोलन और महिला अध्ययन के संयुक्त प्रयासों के परिणामस्वरूप भारतीय महिलाओं की समस्याओं को समझने सम्बन्धी दो महत्वपूर्ण दस्तावेज सामने आए। पहला 'श्रम शक्ति

रिपोर्ट' जो कि असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली गरीब महिलाओं पर केन्द्रित थी। दूसरा राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना (1988-2000 ई.)। इन दस्तावेजों ने मुख्यधारा की राजनीतिक निकायों और महिला संगठनों को राजनीतिक सूची प्रदान की।

3.1 महिला आन्दोलन द्वारा उठाए गए विभिन्न मुद्दे : 1980 का काल नारीवादी राजनीति पर जागरुक प्रतिबद्धता का काल था। इसका पहला मामला पुलिस हिरासत में नाबालिग बच्ची मथुरा के बलात्कार के मामले में उच्चतम न्यायालय के फैसले के विरुद्ध था। महाराष्ट्र उच्च न्यायालय ने बलात्कारियों को यह कहकर छोड़ दिया था कि "मथुरा के कई प्रेमी हैं, उसका चरित्र खराब है।" इस फैसले से नारीवादी समूहों में बहुत रोष उत्पन्न हुआ। महिला आन्दोलन की इस लहर की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसको मीडिया का भरपूर समर्थन मिला। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की घटनाओं को मीडिया में खूब जगह मिली, चाहे वह 1990 का भंवरी देवी सामूहिक बलात्कार कांड हो या दिसम्बर 2012 का निर्भया बलात्कार कांड। मीडिया के सहयोग से बलात्कार के विरुद्ध पूरे देश में एक रोश की लहर दौड़ गई जिसके परिणामस्वरूप बलात्कार कानूनों में संशोधन किया गया। मथुरा बलात्कार के बाद जहाँ नए बलात्कार कानून में पीड़िता पर शक करने के बजाय आरोपी पर अपने आपको निर्दोश साबित करने की जिम्मेदारी डाल दी गई। वहीं निर्भया बलात्कार कांड में निर्भया को मिले जनसमर्थन का दबाव था कि सुप्रीम कोर्ट के सेवानिवृत्त न्यायधीश जस्टिस वर्मा की अध्यक्षता में बलात्कार कानूनों में संशोधन के लिए कमेटी गठित की गई, इस प्रकार के जुर्म के लिए फास्ट कोर्ट के गठन और नाबालिग की उम्र सीमा घटाने पर कानून बनाने पड़े। साथ ही बलात्कार जैसे ज्वलंत मुद्दों पर समाज में जागरुकता आई है। इन्हीं आन्दोलनों का ही नतीजा है कि आज बलात्कार के मुद्दों पर खुलकर चर्चा की जा रही है। लड़कियों पर तेजाब से हमला, ऑनर किलिंग, डायन बताकर महिलाओं की हत्या और हिंसा भी महिला आन्दोलन के मुद्दों में शामिल रहे हैं।

1990 के दशक में बच्चियों के यौन उत्पीड़न के अपराध का भी पर्दाफाश हुआ। महिला समूहों ने इस तथ्य का खुलासा किया कि यह घृणित कृत्य घरों के भीतर रिश्तेदार और पड़ोसियों द्वारा भी होता है। विकृत मानसिकता वालों द्वारा लड़कियों की खरीद-फरोख्त भी आम बात है। महिला आन्दोलन ने पतियों द्वारा यौनिक हिंसा और उत्पीड़न का मामला भी उठाया।[34] भारतीय समाज इस बात को आसानी से मानने को तैयार नहीं है कि वैवाहिक रिश्ते में भी इस प्रकार के अपराध होते हैं। किंतु जैसे महिलाओं की खामोशी टूटी है अनेक तथ्य और कहानियाँ सामने आई हैं। धीरे-धीरे यह स्पष्ट होता चला गया कि यौन उत्पीड़न आम घटना है। यह दफ्तरों, स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों, सड़कों और घरों आदि सब जगह घटती रहती हैं। काम के स्थान पर यौन हिंसा, तेजब फेंकने जैसी घटनाओं को भी महिला आन्दोलन ने उठाया। 1997 में विशाखा केस में सुप्रीम कोर्ट ने कार्यस्थल पर यौन हिंसा पर अंकुश लगाने की जिम्मेदारी संस्था चलाने वालों पर डाल दी गई।[35]

मीडिया में महिलाओं का अश्लील प्रदर्शन, सुंदरता प्रतियोगिता भी महिला आन्दोलन के संघर्ष के मुद्दे रहे हैं। इसी दबाव के कारण 1986 में इन्डीमेन्ट रिप्रिजेंटेशन ऑफ विमेन कानून बना। इसके अलावा 1980 के दशक में शहरों में दहेज के लिए नव विवाहित लड़कियों को जलाए जाने के समाचार आम हो गए थे 1980 के दशक में दहेज के खिलाफ आंदोलन में देश के तमाम भागों से महिलाएं एकजुट हुई। दहेज हर वर्ग और जाति की समस्या बन गया है। महिला समूहों ने दहेज की बढ़ती मांग, उससे जुड़ी हिंसा, उत्पीड़न और दहेज हत्या के खिलाफ आवाजें उठाई हैं। फलस्वरूप दहेज कानून में महत्वपूर्ण संशेधन हुए। यदि किसी स्त्री की शादी के सात वालों के भीतर अस्वाभाविक कारणों से मृत्यु होती है तो उसे दहेज हत्या दहेज के कारण आत्महत्या का केस माना जाएगा तथा पति और ससुराल वालों को साबित करना होगा कि वे बेकसूर हैं।

1980 के दशक में सती के मुद्दे ने पुनः जोर पकड़ा। राजस्थान के देवराला गांव में एक युवती रूपकँवर को पति की चिता के साथ जिन्दा जला दिया गया। इस मामले ने पूरे देश को झकझोर दिया एवं सती की मूल प्रतिष्ठा पर बहस शुरु हो गई। इसका कड़े स्वर में विरोध किया गया और इस पर कई अध्ययन किए गए। वास्तव में यह पितृसत्ता द्वारा स्त्रियों के दमन का एक तरीका है। परन्तु कानून और विरोधों के बावजूद यह प्रथा समाप्त नहीं हो पाई है। 1999 में उत्तर प्रदेश के ललितपुर जिले में सती की एक घटना सुर्खियों में आई। ये कुछ मामले हैं जो प्रकाश में आए कई मामले तो संस्कृति की सुरक्षा के नाम पर प्रकाश में भी नहीं आ पाते हैं।

1980 के दशक के मध्य में महिला संगठनों ने पीड़ित महिलाओं को कानून की जानकारी देने, अपने अधिकारों की पहचान कराने तथा उनको प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना सिखाने के लिए अपने दरवाजे खोल दिए। 1980 और 90 के दशकों में विकलांगता जाँचने के लिए किए गए परीक्षण द्वारा बच्चे का लिंग जानने और लड़की होने पर मादा भ्रूण की हत्या या गर्भपात की घटनाएँ मीडिया में आने लगी थी जिसके परिणामस्वरूप नारीवादी संगठन सक्रिय होने लगे और 1984 में महाराष्ट्र सरकार और 1994 में केन्द्र सरकार ने लिंग परीक्षण या जांच पर रोक लगाने सम्बन्धी कानून पास किया गया वर्तमान में गर्भ में बच्चे का लिंग परीक्षण अपराध है।

1990 के दशक में महिलाओं ने प्रजनन और यौन स्वास्थ्य का मुद्दा भी उठाया। महिलाओं का स्वास्थ्य गर्भनिरोधकों से नजदीकी से जुड़ा हुआ है। नए नारीवादी संगठनों का मानना है कि महिलाओं को गर्भनिरोधक तरीका चुनने का अधिकार मिलना चाहिए। लेकिन यह चयन तभी संभव है जब उन्हें सही गर्भनिरोधक उपलब्ध हो और उसकी पूरी जानकारी दी जाए। नारी मुक्ति आंदोलन ने गर्भनिरोधकों के मामले में पुरुषों की जिम्मेदारी बढ़ाने के हक में भी अभियान चलाया है। कई महिला संगठन एड्स तथा अन्य यौन जनित बिमारियों से बचने के उपायों की जानकारी भी फैला रहे हैं।

नब्बे के दशक में वेश्याओं के अधिकारों तथा सुरक्षा के मुद्दे भी महत्वपूर्ण रहे हैं। कई समूह उनके काम के हालात, इनके बच्चों की परवरिश के अधिकार तथा उनकी कानूनी स्थिति पर जाँच पड़ताल कर रहे हैं। महिला आन्दोलन द्वारा घरेलू हिंसा, महिलाओं का वस्तुकरण, उनके नाम संपत्ति न होना आदि मुद्दे भी बराबर उठाए। महिला आन्दोलन का ही प्रभाव था कि भारत सरकार ने 2005 में महिलाओं को जहाँ एक तरफ पैतृक संपत्ति में बराबरी का अधिकार देने सम्बन्धी कानून पास किया वहीं दूसरी तरफ घरों में महिलाओं के प्रति होने वाली शारीरिक और मानसिक हिंसा से बचाव के लिए महिलाओं के विरुद्ध घरेलू हिंसा अधिनियम 2005 पास किया।

3.1.1 महिलाएँ और काम का अधिकार: स्वायत्त महिला संगठनों के साथ-साथ राजनीतिक दलों से जुड़े ट्रेड यूनियन की कामकाजी महिलाओं के लिए बराबर वेतन, प्रसूति अवकाश, बच्चों के लिए कार्यस्थल पर क्रेच जैसी सुविधाओं की मांग करते रहे हैं।

नारीवादी अर्थशास्त्री और समाज विज्ञान विशेषज्ञ देवकी जैन और वीना मजूमदार इत्यादि ने अवेतनिक (घरेलू कार्य) काम को काम न माने जाने का मुद्दा उठाया। उन्होंने तर्क दिया कि काम की ऐसी परिभाषा अपर्याप्त है जिसके अवेतनिक काम को काम न माना जाए। इसी परिभाषा के चलते वह सारा घरेलू काम जिसमें महिलाएं इतना श्रम और समय लगाती हैं नकार दिया जाता है। घर का काम और बच्चों की परवरिश समाज के लिए आवश्यक काम होते हुए भी इनका कोई आर्थिक मूल्यांकन नहीं किया जाता है। जिसके कारण महिलाओं, विशेष रूप से ग्रहणियों की स्थिति कमजोर होती चली जाती है। महिलाओं के घरेलू कार्य और कुशलता का मूल्यांकन और परीक्षण किया जाना चाहिए क्योंकि यह पितृसत्ता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। महिलाओं को आमतौर पर उस कामों पर रखा जाता है जिन्हें वे परिवार में करती आई है और उनके लिए कम वेतन दिया जाता है।

3.1.2 अनुचित धार्मिक कानून और रीति रिवाजों का विरोध : जब महिला संगठनों ने महिलाओं को शादी, तलाक, भरण पोषण, मुआवजा, संपत्ति अधिकार, बच्चों की अभिभावकत्व जैसे मुद्दों पर सहायता प्रदान करनी चाही तो उन्होंने पाया कि ज्यादातर धार्मिक कानून और रीतिरिवाज महिलाओं के प्रति भेदभाव से परिपूर्ण है। हिन्दू बेटियों पैतृक संपत्ति में समान अधिकार से वंचित थी। ईसाई स्त्रियों को अपने पति से परस्त्रीगमन पर उससे तलाक का अधिकार नहीं है जबकि ईसाई पुरुष अपनी पत्नी से इस आधार पर तलाक ले सकता है। पारसी कानूनों के अनुसार यदि एक पारसी लड़की गैर-पारसी लड़के से शादी करती है तो ये उसका अपनी पैतृक सम्पत्ति में अधिकार समाप्त हो जाता है और गैर पारसी पत्नी अपने पारसी पति की सम्पत्ति में सिर्फ आधा अधिकार ही रखती है। शरीयत का कानून जहाँ एक तरफ मुस्लिम महिलाओं को पर्दे में रहने की हिदायत देता है वहीं दूसरी तरफ उन्हें बहुपत्नी प्रथा और तीन तलाक जैसी अनुचित कानूनों के अन्तर्गत रहने को बाध्य करता है। 80 के दशक की समाप्ति से पहले शाहबानों के मुकदमें पर उच्चतम न्यायालय के फैसले पर हुई प्रतिक्रिया ने महिला अधिकारों की बहस को नया मोड़ दे दिया। 1985 में सुपग्रीम कोर्ट ने शाहबानों को धारा 125 सीआर.पी.सी. के तहत अपने पति से आर्थिक मदद पाने की हकदार बताया। इसकी पूरे देश में जबरदस्त प्रतिक्रिया हुई। हालाँकि जस्टिस चन्द्रचूड़ ने अपने फैसले में शरीयत का भी हवाला दिया था। साथ ही समान नागरिक संहिता की आवश्यकता भी बताई। परन्तु मुस्लिम धार्मिक नेताओं ने इस निर्णय को अपने सम्प्रदाय पर हमला बताया। उलेमाओं ने एक फतवा जारी कर कहा कि यह इस्लाम के विरुद्ध है और कुछ ही महीनों में यह फतवा इस तरह प्रचारित किया गया कि 'इस्लाम खतरे में है' और इसने साम्प्रदायिक संघर्ष का रूप धारण कर लिया। बाबरी मस्जिद मुद्दे पर आए निर्णय और शाहबानों केस को एक साथ जोड़कर इसे मुसलमानों पर हिंदू साम्प्रदायिकता के जबरदस्त हमले के रूप में देखा गया। मुस्लिम महिलाओं के भरण-पोषण के लिए आंदोलनरत नारीवादियों के लिए यह कड़वा सबक था। इससे जहाँ यह पता चलता है कि किस प्रकार कोई समुदाय बड़ी आसानी से 'समुदाय खतरे में है' की दुहाई देकर अपनी दकियानूसी सोच को पूरे समाज पर थोप देता है जिसमें स्त्रियों पर नियन्त्रण को सर्वोपरि स्थान दिया जाता है। इसके साथ-साथ नारीवादियों का इस सच्चाई से भी सामना हुआ कि किस प्रकार सरकार धार्मिक कानूनों पर कार्यवाही न करके साम्प्रदायिकता को संरक्षण देती है।

इस प्रकार समान नागरिक संहिता पर बहस ने साम्प्रदायिक रूप धारण कर लिया तथा महिलाओं से संबंधित महत्वपूर्ण सवाल, जैसे उत्तराधिकार, मुआवजे का अधिकार जैसे प्रश्न हाशिए पर आ गए। 1986 में पुनः नारीवादियों, वामपंथियों एवं सुधारवादियों के द्वारा राजीव गांधी सरकार द्वारा प्रस्तुत किए गए बिल के खिलाफ एक संयुक्त अपील दायर की। उन्होंने अपील में कहा कि किसी भी 'पर्सनल लॉ' की मौजूदगी का तात्पर्य 'पुरुष की तुलना में महिलाओं की असमानता एवं अधीनता' है। अतः धर्म को व्यक्ति एवं व्यक्ति के बीच न लाकर व्यक्ति एवं ईश्वर के बीच ही रखा जाना चाहिए।

वर्तमान (2017) समय में पुनः मुस्लिम महिलाओं द्वारा तीन तलाक के विरुद्ध याचिकाएँ देने के कारण सुप्रीम कोर्ट ने इस पर सुनवाई करना स्वीकार किया है और उम्मीद है कि मुस्लिम महिलाएँ इस दर्दनाक प्रथा से मुति प्राप्त कर पाएंगी हालाँकि अभी भी मुस्लिम धार्मिक नेता इसे मुस्लिम धार्मिक कानूनों में दखल बता कर इस पर सुनवाई नहीं चाहते हैं। परन्तु फिर भी महिला आन्दोलन का ही प्रभाव है कि आज का विरोध उतना उग्र नहीं है जितना 1980 के दशक में था। साथ ही इसने महिला आन्दोलन को काफी मुस्लिम संगठनों का समर्थन भी प्राप्त हो रहा है। महिला आन्दोलन ने इसके साथ ही साम्प्रदायिक तनाव, नृजातीय तनाव और हिंसक झड़पों के दौरान शान्ति की पहल की है। 1992 और 2002 को गुजरात के साम्प्रदायिक दंगों के दौरान हिंसा के शिकार लोगों की सहायता करने में महिला आन्दोलन ने महत्वपूर्ण भीमिका अदा की है।

3.1.3 शराब विरोधी आन्दोलन : 1970 के दशक के मदद से ही देश के विभिन्न भागों में–आन्ध्र प्रदेश, मणिपुर, महाराष्ट्र–में आदिवासी महिलाएँ, शराब की बिक्री के कारण महिलाओं ओर बच्चों पर होने वाली हिंसा के खिलाफ लड़ाई लड़ती रही। 1992-93 में आन्ध्र प्रदेश में शराबविरोधी आन्दोलन काफी तीव्र था जो धीरे-धीरे पूरे देश में फैल गया। 40000 से ज्यादा महिलाओं द्वारा आन्ध्रा में शराब की नीलामी को रुकवा देना भारतीय महिला आन्दोलन का एक ऐतिहासिक अध्याय है। महाराष्ट्र में स्थानीय महिला प्रतिनिधियों ने उन सभी गाँवों, तालुकों और ब्लाक को 'शराबमुक्त क्षेत्र' घोषित करने के लिए राज्य सरकार पर दबाव बनाया। वर्तमान में उत्तर प्रदेश और बिहार में महिलाओं द्वारा शराब के ठेकों को तोड़ने की घटनाएं मीडिया में आती रहती हैं क्योंकि शोध के अनुसार महिलाओं के विरुद्ध होने वाले ज्यादातर अपराधों में शराब एक मुख्य कारण रहा है।

3.3.4 पहचान का संघर्ष : महिला आन्दोलन के दौरान महिलाओं की अलग पहचान भी बनी है। 1990 के दशक में जहाँ समलिंगीय महिलाओं के अस्तित्व को स्वीकार किया वहीं इनके सम्मुख आने वाली समस्याओं तथा पुलिस और समाज द्वारा दी जाने वाली प्रताड़ना को भी उठाया है। जिसके परिणामस्वरूप 2009 में दिल्ली हाई कोर्ट ने आई.पी.सी. की धारा 377 को समाप्त करने का निर्णय लिया परन्तु बाद में सुप्रीम कोर्ट ने इस निर्णय को रद्द कर दिया।

भारतीय महिला आन्दोलन ने एकल महिला और तलाकशुदा महिलाओं के प्रश्नों को भी उठाना है। इसमें बच्चों के नाम के साथ माता के नाम को जोड़ने और पिता के नाम की अनिवार्यता को समाप्त करने सम्बन्धी मुद्दे भी प्रमुख रहे हैं।

3.3.5 राजनीति में भागीदारी और प्रतिनिधित्व : भारत में प्रतिनिधियात्मक संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी और प्रतिनिधित्व का विचार लम्बे समय से वाद-विवाद का विषय रहा है। स्वतन्त्रता से पूर्व भारत शासन अधिनियम 1935 के तहत प्रान्तीय विधान सभाओं में कुछ स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किए गए थे।[36] संविधान सभा में भी महिलाओं के प्रतिनिधित्व का मुद्दा उभरा था परन्तु उसे अनावश्यक बतलाकर अस्वीकार कर दिया गया।

इसके बाद सत्तर के दशक के प्रारम्भ में महिलाओं की स्थिति की जांच के लिए गठित समिति (सी.एस.डब्ल्यू.आई. 1974) ने अपनी रिपोर्ट में महसूस किया कि भारतीय महिलाओं की स्वत: राजनीति में आने की प्रक्रिया बहुत धीमी और ठहरी हुई है क्योंकि भारतीय संस्कृति अराजनीतिक है तथा परंपराएँ महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी के विरुद्ध है।[37] परन्तु समिति ने महिलाओं के लिए आरक्षण को अस्वीकार कर दिया तथा ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं के लिए वैधिक पंचायतों (जंजनजवतल ॅवउमदशे च्ंदबींलंजे) के गठन का समर्थन किया। हालांकि इससे पहले बलवंत राय मेहता समिति (1957) ने भी पंचायतों में दो महिला सदस्यों को मनोनीत करने की बात की थी।

1970 के दशक में कुछ स्वायत्त महिला संगठन भी अस्तित्व में आए और उन्होंने महिला आन्दोलन, औपचारिक राजनीतिक संस्थाओं और शक्ति संगठनों के बीच व्याप्त सम्बन्धों जैसे क्रान्तिकारी प्रश्नों को उठाया।[38]

1985 में राजीव गांधी सरकार ने महिलाओं के विषयों को प्राथमिकता के आधार पर लिया और महिला आरक्षण पर बहस का नया दौर उस समय प्रारम्भ हुआ जब सरकार द्वारा गठित राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना (छंजपवदंस च्मतेचमबजपअम च्संद 1988.2000) ने अपना मसौदा प्रस्तुत किया। एन.पी.पी. की अन्तिम रिपोर्ट में सिर्फ पंचायतों और नगर पालिकाओं में ही महिलाओं को 30% स्थान दिए जाने की सिफारिश की गई। एन.पी.पी. द्वारा की गई सिफारिशों के आध ार पर राजीव गांधी सरकार ने महिलाओं के लिए पंचायतों और नगरपालिकाओं में एक-तिहाई स्थान आरक्षित करने के लिए 1989 में 64वां और 65वां संविध ान संशोधन प्रस्तुत किया गया, परन्तु उस समय यह कानून का रूप नहीं ले सका। 1993 में नई सरकार ने पुन: ग्रामीण और शहरी स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में महिलाओं के लिए एक-तिहाई स्थान आरक्षित करने के लिए 73वें और 74वें संविधान संशोधन विधेयक को प्रस्तुत किया जिसे बहुमत से स्वीकार कर लिया गया।[39] इन संविधान संशोधनों के द्वारा जहां एक तरफ राजनीतिक शक्ति का ग्रामीण स्तर तक विकेन्द्रीकरण किया गया, वहीं दूसरी तरफ देश की आध ी आबादी महिलाओं के लिए शहरी और ग्रामीण स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में एक-तिहाई स्थान आरक्षित कर दिए गए। इन संशोधन द्वारा अनुसूचित जाति और जनजाति की महिलाओं के लिए भी उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित किए गए।

1993 और 1996 के बीच के समय में संसद तथा राज्य विधान सभाओं में भी महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित करने की मांग जोर पकड़ने लगी। राजनीति में महिलाओं की समान भागीदारी के मनोवैज्ञानिक दबाव के बीच मोर्चा सरकार ने भारत की राजनीति में महिलाओं की अधिक भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु संसद तथा राज्यों की विधान सभाओं में महिलाओं को 33% आरक्षण प्रदान करने की घोषणा की। इस घोषणा को क्रियान्वित करने की दृष्टि से 12 सितम्बर, 1996 को भारत की संसद में 'महिला आरक्षण विधेयक' प्रस्तुत किया गया, परन्तु इस विधेयक को प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा। 1996 से लेकर अब तक इस विधेयक को कई बार संसद में रखा जा चुका है और संसद की विभिन्न समितियों द्वारा इस पर विचार किया जा चुका है परन्तु यह अभी तक अधिनियम का रूप प्राप्त नहीं कर पाया है।

निष्कर्ष

इस प्रकार भारतीय महिला आन्दोलन ने महिलाओं से सम्बन्धित लगभग सभी मुद्दों को सम्बोधित किया है चाहे वह महिलाओं के विरुद्ध हिंसा का मामला हो, धर्म और रीति रिवाज के आधार पर अनुचित और अमानवीय व्यवहार का सवाल रहा हो, महिलाओं के लिए आर्थिक अधिकारों जैसे-रोजगार, समान कार्य के लिए समान वेतन, घरेलू कार्य का महत्व देना या राजनीतिक भागीदारी और प्रतिनिधित्व का सवाल हो, महिला आन्दोलन ने स्त्री प्रश्नों को उठाया है, परन्तु इसके बावजूद हमें इसमें एक विभाजन दिखाई देता है। यह विभाजन स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान भी दिखाई दिया था जब क्रान्तिकारी, कांग्रेसी, मुस्लिम और कम्युनिस्ट आन्दोलन के दौरान विचारधाराओं के आधार पर महिलाओं को भूमिकाएं दी गई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद बिना किसी भेदभाव के सभी भारतीय महिलाओं को समानता और स्वतन्त्रता का अधिकार प्रदान किया गया। परन्तु यह समानता और स्वतन्त्रता हमारे सामाजिक जीवन का हिस्सा नहीं बन पाई। आज आजादी के लगभग 70 वर्षों के बाद भी भारतीय महिलाएँ अपने आपको सुरक्षित महसूस नहीं करती हैं। महिलाओं के विरुद्ध सामूहिक बलात्कार, ऐसिड अटैक, ऑनर किलिंग, कन्या भ्रूण हत्या जैसे अपराधों में लगातार वृद्धि होती जा रही है जो हमारे समाज में महिलाओं के प्रति नजरिए को दिखाता है। साथ ही हम इसे भारतीय महिला आन्दोलन की सफलता के रूप में भी देख सकते हैं कि आज हम इन मुद्दों पर खुलकर बात कर पा रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला संगठनों का गठन, सम्मेलनों का आयोजन, विद्यालय और विश्वविद्यालय स्तर पर महिला मुद्दों और विषयों का शामिल किया जाना, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर महिला आयोगों का गठन, जेण्डर बजटिंग जैसे मुद्दे भी महिला आन्दोलन की सफलता का सूचक हैं। इसके बावजूद महिला आन्दोलन को अभी बहुत कुछ प्राप्त करना बाकी है। कुछ ऐसे मुद्दे जहाँ पर यह सफल नहीं हो पाया है, इसका मुख्य कारण शायद महिला आन्दोलन का विभिन्न वर्गों में विभाजित होना है। यही कारण है कि भारतीय महिला आन्दोलन को हम कई वर्गों का आन्दोलन भी कह सकते हैं क्योंकि महिला मुद्दों और समस्याओं का स्वरूप वर्गीय भी है जिसके कारण हिन्दू, मुस्लिम, दलित, आदिवासी, शहरी, ग्रामीण, मध्यमवर्गीय संगठित और असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली महिलाएँ अपने से सम्बन्धित मुद्दों पर अधिक मुखर नजर आती है। भारतीय महिला आन्दोलन को अपनी इस कमजोरी को दूर करके इसे महिलाओं का आन्दोलन बनाना होगा तभी आधी आबादी, जेण्डर समानता और जेण्डर न्याय को प्राप्त कर पाएगी।

Refrences:

- Towards Equality: Report of the Committee on the Status of Women in India, Ministry of Education and Social Welfare, Department of Social Welfare, GOI, New Delhi, India, 1974.
- Brill, Alida (ed.), *A Rising Public Voice: Women in Politics Worldwide,* Feminist Press, New York, 1995.
- Chattopadhya, Kamaladevi, *Indian Women's Battle for Freedom,* Abhinav Publications, New Delhi, 1983.
- Deckard, Barbara, *The Women's Movement : Political Socio-Economic and Psychological Issues,* Harper and Row, New York, 1983.
- Desai, Neera and Krishnaraj Maithreyi, *Women and Society in India,* Ajanta, Delhi, 1987
- Desai, Neera and Vibhuti Patel, *Indian Women, Change and Challenge in the International Decade,* 1975-85, Popular Prakashan, Bombay, 1985.
- Desai, Neera, (ed.), *A Decade of Women's Movement in India,* Himalaya Publishing House, Bombay, 1988.
- D'Souza, A., ed, *Women in Contemporary India, Traditional Images and Changing Roles,* Manohar Book Service, New Delhi, 1977
- Everett, Jana M., *Women and Social Change in India,* Heritage Publishers, New Delhi, 1979
- Forbes, Geraldine, *The New Cambridge History of Indian Women in Modern India,* Cambridge University Press, Cambridge, 1996.
- Kapur, Promilla (ed.), *Empowering the Indian women*, Publication Division, New Delhi, 2001.
- Kaur, Amrit, *Challenge to Women,* New Literature, Allahabad, 1946.
- Kaur, Manmohan, *Role of Women in the Freedom Movement—1857-1947,* Sterling, Delhi, 1968.
- Kaushik, Susheela (ed.), *Panchayati Raj in Action: Challenges to Women's Role,* Friedrich Ebert Stiftung, New Delhi, 1995.
- Kaushik, Susheela (ed.), *Women's Oppression: Patterns and Perspectives,* Shakti Books, New Delhi, 1985.
- Kaushik, Susheela (ed.), *Knocking at the Male Bastion: Women in Politics,* National Commission for Women, Paperback, New Delhi, 1997.
- Kaushik, Susheela (ed.), *Why Women in Legislatures,* National Commission for Women, Paperback, New Delhi, 1996.
- Kaushik, Susheela (ed.), *Women's Participation in Politics (Women in Changing Society Series),* Vikas Publication, New Delhi, 1993.
- Kaushik, Susheela (ed.), *Knocking at the Male Bastion: Women in politics*, National Commission for Women, New Delhi, 1997.
- Kirkpatrick, J.J., *Political Women,* Basic Books Inc. Publications, New York, 1974.
- Kishwar, Madhu and Vanita Ruth, eds., *In Search of Answers,* Zed Books Ltd., London, 1984.
- Gail, Omvedt, *We Will Smash this Prison,* Orient Longman, New Delhi, 1980.
- Gandhi, M.K., *Women and Social Injustice*, Navjeevan Publishing House, Ahamdabad, 1954.
- Lateef, Shahida, *Muslim Women in India : Political and Private Realities 1890s-1980s,* Kali for Women, New Delhi, 1990.
- Mukherjee, Kanak, *Womekn's Emancipation Movement in India,* National Book CEntre, New Delhi, 1989.
- Sen, Ilina, *A Space Within the Struggle: Women's Participation in People's Movements,* Kali for Women, New Delhi, 1990.
- Shah, Ghanshyam, *Social Movement in India : A Reviw of Literature*, Second edition, Sage Publication, New Delhi, 2004.
- Shah, Nandita and N. Gandhi. *The Quota Question: Women and Electoral Seats,* Akshara, Bombay, 1991.
- आर्य, साधना; मेनन, निवेदिता; लोकनीता, जिनी, *नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2001
- कुमार, राधा, *स्त्री संघर्ष का इतिहास 1800-1990,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
- तिवारी, डॉ. आर.पी. एवं शुक्ला, डॉ. पी., *भारतीय नारी : वर्तमान समस्याएं और भावी समाधान,* ए.पी.एच. पब्लिशिंग कारपोरेशन, नई दिल्ली, 1999

(Footnotes)

1. Retrive from http://socioguide.blogspot.in/2015/11/womens-movement-in-india.html, dated 14 May, 2017, p. 1.
2. Vijay Agnew, *Elite women in Indian politics*, Vikas Publishing House, Delhi, 1986, p.13.
3. *Ibid.,* p.14.
4. राधा कुमार, *स्त्री संघर्ष का इतिहास 1800-1990,* वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृष्ठ 26-27
5. वही, पृष्ठ 38
6. राधा कुमार में उद्धृत विनय घोष, "द प्रेस इन बंगाल", मुख्य पुस्तक *हिस्ट्री ऑफ बंगाल 1757-1905*, (संपादित) एन.के. सिन्हा, कलकत्ता, 1967, पृष्ठ 452
7. राधा कुमार में उद्धृत सुषमा सेन, "*मैमोरिज ऑफ एन आक्टोजेनेरियन*", कलकत्ता, एल्म प्रेस,1971, पृष्ठ 147
8. राधा कुमार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 44
9. Vijay Agnew, *Op. cit*., p.18-20.
10. Vijay Agnew, *Op. cit*., p.22.
11. पंडिता रमाबाई एक विधवा स्त्री थी उन्हें पहली महिला प्रचारिका और महिला हितेषी होने का गौरव प्राप्त है। उन्होंने 1887 में 'विधवा समस्या' पर अपनी पुस्तक `The High Caste Women' के द्वारा ध्यान आकर्षित किया था तथा विधवाओं के लिए उनके द्वारा स्थापित शारदा सदन टालस्टाय के आत्म समुदाय के आदर्श की अवधारणा से प्रेरित था।
12. राधा कुमार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 78.79
13. वही, पृष्ठ 81

14. Seeta Ram Singh*, Nationalism and Social Reform in India 1885-1992,* Ranjeet Prints and Publishers, Delhi, 1995, p.206.
15. Pattabhi Sitaramiya, *History of the Indian national Congress*, Part 1, S. Chand & Sons Publication, Delhi, 1969, p.114.
16. Usha Chakarvarty, *Condition of Bangali women Around the Second Half of 19th Century*, Culcutta, 1963, p.621.
17. Manmohan Kaur, *Role of women in the freedom movement 1857-1947,* Starling Publishers, Delhi, 1968, p.971.
18. Geraldine Forbes, *The New Cambridge History of Indian Women in Modern India,* Cambridge University Press, Cambridge, 1996, pp.123-124.
19. राधा कुमार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 120
20. राधा कुमार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 120
21. Manmohan Kaur, *Op. cit*, p.106.
22. Samita Sen, "Toward a feminist polities? The Indian womens movement in historical perspective", *policy research report on gender and development, working paper series no. 9,* the world bank development research group, April 2000, p.15-16.
23. *Ibid*., p.17.
24. राधा कुमार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 141
25. वही, पृष्ठ 172
26. राधा कुमार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 172
27. Gail Pearson, "Reserved Seats – Women and the Vote in Bombey", *I.E.S.H.R,* year 1920, Vol. 1, p.61.
28. *Ibid*., p.17.
29. M.K Gandhi, *Women and Social Injustice*, Navjeevan Publishing House, Ahamdabad, 1954, pp.18-19.
30. Pearson Gail, *Op.cit.,* pp.53-54.
31. Samita Sen, *Op. cit.,* p.16.
32. लता सिंह, पूर्वोक्त, पृष्ठ 171–173
33. Report of the *"Committee on the Status of Indian Women"*, "Towards Equality", Chapter III, Poitical Status in Goernment of India, 1974, p. 238.
34. Shilpa Phadke, Thirty Years on Women Studies, Reflects on The Women Movement, EPW, Oct 25, 2003, p. 4567.
35. Kalpana Kannabiran, *Rithinking The Law on Sexual Assault in India*, www.sac.net
36. Background Paper, "Symposium on Political Empowerment of Women: Reservation for Women in Political Bodies", *W.S.D.C.,* p.8.
37. Kumud Sharma, "Power vs. Representatin: Feminist Dilemmas, Ambivalent State and the Debate on Reservation for Women in India", *C.W.D.S.,* 1998, pp.11-12.
38. *Ibid.,* p.13.
39. Kumud Sharma, *Op. cit.,* p.15.

21वीं सदी के हिंदी उपन्यास में मुस्लिम समाज : 'अपवित्र आख्यान' के विशेष संदर्भ में

अनिल कुमार

पी.एच.डी. शोधार्थी, हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब

डॉ. रीता सिंह

निर्देशिका

भारत एक धर्मनिरपेक्ष, लोकतंत्रत्मक राज्य है। यह सभी जाति धर्मों के लोगों को एक समान रूप से देखा जाता है और सभी को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और न्यायविचार, विश्वास, उपासना, धर्म की स्वतंत्रता प्राप्त है। भारत की मुख्य विषेशता यह है कि सब मिल-जुलकर संस्कृति के विकास में सहायक होते हैं। डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव *इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर उपन्यासिक दस्तक* में लिखते है, ह्लोकतांत्रिक ढ़ांचे का लोकविरोधी चेहरा और चरित्र, हिन्दू मुस्लिम सम्बन्ध, धार्मिक अतिवादों के घातक टकराव और हिंसक मुठभेड़, इस सदीं के मुख्य सरोकार एवं चिताएँ है।' (63) भारत में बहुसंख्यक जनता हिन्दुओं की है। इसके बाद मुसलमान का स्थान है। मुस्लिम लोगों के यहां सामाजिक जीवन धर्म के आधार पर होता है। धर्म के प्रति आस्था और उनकी वेशभूषा, आचार-विचार, संस्कृति कुछ अलग होती है। उनके जीवन में भी अंधविश्वास का प्रभाव, प्रचलित मान्यताओं का चित्रण किया गया है। ग्रामीण उपन्यासों में मुस्लिम समाज को भी आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आधार पर झूझता इक्कीसवीं सदी के ग्रामीण उपन्यासों में दिखाया गया है।

मुस्लिम धर्म और प्रचलित मान्यताएँ

भारत में अनेक धर्म, जाति के लोग रहते हैं। धर्म के आधार पर भगवान को मानते हैं, ये सभी अंधविश्वास है, इसका विवरण भारतीय मुसलमान : वर्तमान और भविष्य *हंस विशेषांक पत्रिका* में इस तरह से दिया गया है :

इस्लाम की ऐसी शिक्षा किसी भी मुसलमान को धर्मांध बना सकती है। लेकिन इससे यह तो पता चलता ही है कि पैंगबरों-इस्लाम को अपने समय में भौतिकवादी लोगों के तर्कों का सामना करना पड़ता था। उनके तर्क अकाट्य थे। संभवत: इसलिए उन्हें 'शैतान' की संज्ञा देकर उनसे मुसलमानों को दूर रहने की शिक्षा दी गई थी। इस्लाम का भविष्य अब चाहे जो भी हो, पर मुझे नहीं लगता कि आधुनिक शिक्षा के विकास के साथ मुसलमान हमेशा-हमेशा इस 'शैतान' से दूर रह सकेंगे।(67)

धर्म और संप्रदाय एक सिक्के के दो पहलू हैं। अगर इसको हम मान ले तो सिक्का भगवान होता है। क्योंकि धर्म-संप्रदाय किसी न किसी भगवान के नाम पर ही होता है। भगवान में विश्वास करने वाले को भी यह नहीं पता है कि भगवान कैसा है। आज तक कोई धर्म-सम्प्रदाय के लोग भगवान को नहीं देखा है। लेकिन भगवान पर विश्वास रखते है। जिसको देखा नहीं, जिसको छुआ नही तो यह प्रतीत होता है कि वह है नहीं। जो नही है उस पर विश्वास करना अंधविश्वास ही होता है। भगवान है तो फिर भूत ही रहता है। लेकिन आज तक भूत को नहीं देखा, जिसने देखा उसने उसकी पूजा शुरू कर भगवान बना दिया। हर एक धरम के अनुसार स्वर्ग उपर एक अलग दुनिया में है। ऊपर तो चाँद सूरज और तारों तक विज्ञान घूम आया है कहीं स्वर्ग नही दिखा सिवाय आकाश गंगा, ब्राह्माण्ड के। पृथ्वी के लोग भी जाके वापस आ गये हैं। सूरज तक लैंका नामक कुत्ता भेजा गया और आसमान में कहाँ स्वर्ग है? धर्म के नाम पर चल रहे कुछ एक संस्थाएं भगवान के नाम पर लोगों का अंधविश्वास पालकर समाज को पीछे ले जा रही है। एक घर का आजकल अपना एक देवता बन गया है। हिन्दू में भगवान का एक रूप, मुस्लिम में अल्ला का एक रूप, और रूपों को पूजते-पूजते असली भगवान को सारा जगत भूल ही गया जो सबके अंदर है सबने मार दिया है।

मुस्लिम धर्म में सामाजिक यथार्थ

भारतीय मुसलमानों के पिछड़ेपन के मूल में शिक्षा को माना जाता है। क्योंकि शिक्षा अन्य सभी कारणों को प्रभावित करती है। भारतीय मुसलमान शिक्षा में देश के अन्य समूहों की अपेक्षा काफी पीछे है यह स्थापित सत्य है। इस स्थिति को मुसलमानों के पिछड़ेपन का एक महत्त्वपूर्ण कारण बताया गया है। हालांकि यह भी विचारणीय है कि मुसलमानों का आर्थिक रूप से पिछड़ा होना भी अनेक शैक्षिक पिछड़ेपन के लिए जिम्मेदार है। यूँ शिक्षा में आगे नहीं होने के कारण वे आर्थिक व सामाजिक रूप से पीछे रह जाता है।

इस्लाम धर्म के अनुसार विवाह पुण्य कार्य है। अल्लाह के निगाह में औरत और मर्द के बीच कोई अंतर नहीं है दोनों समान हैं। मुस्लिम विवाह पद्धति में मेहर और मौतुक (दहेज)। इतना अल्प रखने की आज्ञा दी है। जिसका दोनों पक्ष सफलतापूर्वक पालन कर सकें। पति-पत्नी में अच्छे संबंधों पर जोर देता है। कुरान में स्थान-स्थान पर रिज़्तेदारों से पड़ोसियों से सद्व्यवहार करने का आदेश दिया गया। इस्लाम के पैगम्बर मुहम्मद शिक्षा पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया। उनका कहना है कि तुमने अगर एक मर्द को पढ़ाया तो केवल एक को तालीन दी। लेकिन अगर एक औरत को पढ़ाया तो एक खानदान को शिक्षित किया। व्याभिचार से बचाव, विधवाओं का उद्धार करने के लिए मुस्लिम समाज में चार शादियों की इज़ाजत है। लेकिन चार शादियाँ करना अनिवार्य नहीं है।

मुस्लिम समाज में पर्दा करने की व्यवस्था हैं। कुरान में कहा गया है, 'हे नवो अपनी पत्नियों और बेटियों और ईमान वाली स्त्रियों से कह दो कि वे (बाहर निकलने पर) अपने ऊपर चादर के पल्ले लटका लें। इसके इस बात की अधिक संभावना है कि पहचान ली जाए और सतायी न जाए और अल्लाह बड़ा क्षमाशील व दयावान हैह इस प्रथा का पालन करने वाली स्त्रियों के प्रतिनिधि प्रस्तुत अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यास *अपवित्र आख्यान* में यासमीन है। हिन्दू समाज की तरह मुस्लिम समाज में भी जाति-पाति के भेद, छुआछुत की समस्या हैं। मुसलमानों में भी अपनी जाति पर रोब दिखाने वाले ज्यादा है :

फिर जातिवाद और साम्प्रदायिकता...यह तो समझिये एक जंगल है। जिसमें हर शिकारी का शिकार मौजूद है। अगर जंगल ही न रहेगा, तो शिकारी अपना शिकार कहाँ ढूँढ़ेगा? और असल बात तो यह है कि अपनी फितरत में हर आदमी कहीं न कहीं जातिवादी और कम्यूनल है।(84)

मुसलमानों में भी नीच जातियाँ होती थीं। उनसे उच्च जाति के लोग नफरत करते हैं। सिद्दीकी, असार जैसे पात्र के माध्यम से इसका निरूपण किया जा रहा है :

मुसलमानों की जितनी भी तथाकथित नीची जातियाँ होती थीं, उन सबसे उनको सख्त परहेज था।...जातिगत श्रेष्ठता पर उन्हें (अंसार साहब को) सिद्दी की साहब से भी ज्यादा आस्था थी। तथाकथित नीची जाति के मुसलमानों से वे नफरत करते थे।(64)

बदलती परिस्थितियों के अनुरूप मुस्लिम जन नारी की शिक्षा और नौकरी को प्रोत्साहन देते रहे है। यासमीन के भाई डॉ. सादिक अपने पिता से कहता है:

तो क्या हुआ, आजकल की लड़कियाँ न जाने कहाँ-कहाँ जाकर अपना कैरियर बना रही है। फिर यह तो सोचिये कि, इस शहर में रखा ही क्या हैं? वह शहर तो मकर्जे-हिन्दुस्तान के बहुत करीब है और मकर्जे हिन्दुस्तान में क्या नहीं हैं?....पूर्र मुल्क की सरकार वहाँ है।(18)

आजकल मुसलमानों मे ज्यादा लोग अपनी लड़कियों के प्रति भरोसा रखने वाले होते हैं। यासमीन के परिवार वाले इसके उदाहरण हैं। यासमीन कहती हैं:

दोपहर वाली बात कि, मैं तुम्हें साथ नहीं ले आई। डरते-डरते छोटे भईया ने बताया, तो सभी लोग गुस्सा होने लगे मुझ पर। कहने लगे, बेटी को कॉलेज में भेजा है, तो यकीन भी है, उस पर।(82)

आधुनिक सामाजिक जीवन में लोग अपनी सुविधा से ज्यादा अपने को प्रदर्शित करने की धुन में लगे हुए हैं। मुस्लिम जन भी इसके अपवाद नहीं है :

डिनर पार्टी का आयोजन लक्ष्मी विलास के लॉन में किया गया है। हाँलाकि गर्मी शुरू हो गई थी, मगर लोग वाकायदा सूट-टाई से सुसज्जित होकर आये थे। धोती अथवा कुर्ता-पजामा पहनकर आने वालों की संख्या कम थी।द्ध84ऋ

हिन्दी विभाग में मुसलमानों को नौकरी मिलना बहुत मुश्किल होता है। विश्वविद्यालय के बी.सी. स्वयं नकवी साहब से कहते हैं, 'हिस्ट्री, इकोनॉमिक्स, कॉमर्स वगैरह डिपार्टमेंट्स में तो यह पौसीबल है। मगर हिन्दी? हिन्दी में तो किसी मुसलमान का होना हमारे यहाँ बहुत मुश्किल है। ऐसा नहीं हो सकता। लोग ऐसा होने नहीं देंगे।'(84, 85) इसका कारण यह है कि भारत समाज में शिक्षा के विषय भी धर्म व जातिगत आधार पर बंटे है। जैसे हिन्दू द्वारा किसी भी विषय को पढ़ा जायेगा, पर उर्दू को नहीं क्योंकि उर्दू तो मुसलमानों से जुड़ी है। इसी तरह प्रत्येक धर्म के लोगों ने भाषा को भी अपना और पराया बना दिया है। मुसलमान इलाके के जन-जीवन का वर्णन उपन्यासकार ने इस प्रकार किया :

गली में ससती आईसक्रीम और चाट बेचने वालों की आवाजें गूँजने लगी थी। नंगे-अधनंगे बच्चे अपनी मिट्टियों में पैसे दबाये उनके इर्द-गिर्द चक्कर काट रहे थे। दरवाजों पर पड़े मैले-कुचैले पर्दो की आड़ से उनकी अम्माओं के चेहेरे झाँक रहे थे। मुहल्ले की दुकानों में बत्तियां जल गई थी।...सड़क के किनारे लगे एकमात्र नल पर नहाने वालों की भीड़ जुटने लगी।(14)

इकबाल अहमद अपनी बिगड़ी जीवन स्थिति का जिक्र करते हुए जमील को बताता है-

मैं यहाँ हिन्दू बनकर रहा हूँ। राय के फुसफसाते हुए कहा, कम्बख्त क्या मुसीबत है। इस शहर के मुहल्ले भी हिन्दू और मुसलमान हैं। मगर कोई भी मुसलमान मुझे मुसलमान मानने को तैयार नहीं। कहते है, राय भी कहीं मुसलमान होता है। (101, 102)

मुसलमान मुहल्ले के मकानों के बारे में प्रस्तुत उपन्यास में वर्णन यों मिलता है :

मुसलमान मुहल्लों में या तो किराये के घर मिलते ही नहीं थे या फिर इसी तरह के ऊटपटाँग कमरे मिलते हैं। जो मकान ठीक-ठीक होते थे, उनका किराया बहुत ज्यादा होता था।...टॉयलेट बाहर था, कुएँ के पास। नल नहीं था। आस-पास के लोग भी उसी टॉयलेट का इस्तेमाल करते थे। दोनों कमरों में एक-एक बल्ब लगाया चालीस वॉट के। उन दोनों बल्बों के स्विच पीछे, मकान-मालिक के मकान में थे। शाम को अँधेरा होने के बाद वे औन कर दिये जाते थे और रात ग्यारह बजे के बाद ऑफ।(103)

उच्च पद प्राप्त करते ही गर्व होने लगता है हर एक व्यक्ति को। मुसलमान भी इसके अपवाद नहीं है। यासमीन के पात्र के द्वारा इसका निरूपण किया जा रहा है। यासमीन और जीमल सहपाठी थे। एक-दूसरे को पहले-पहल चाहने वाले थे। यासमीन यूनिवर्सिटी में हिन्दी विभागाध्यक्ष होती है। जीमल उसके

मिलने जाने पर अपने रोब का प्रदर्शन करती है, ह्मैं विभागाध्यक्ष हूँ। इसलिए यहाँ आप मुझे 'प्लीज' तुम मत कहिये।...विश्व हिन्दी सम्मेलन...में भी आमंत्रित थी। खूब मजा आया। हिन्दी के बड़े-बड़े विदेशी विद्वानों से मुलाकात हुई। यासमीन की आवाज में गर्व था।(126-129)

गाँव के मुसलमानों के सामाजिक जीवन का वर्णन जीमल से करवाते है। उपन्यासकार अब्दुल बिस्मिल्लाह मुस्लिम समाज का ग्रामीण पक्ष इस तरह से प्रस्तुत करते है 'अपवित्र आख्यान' में :

आप गाँवों में जाकर देखिए, वहाँ के हिन्दु और मुसलमान कैसे हैं? उनका जीवन एक जैसा है, उनकी समस्याएँ एक जैसी हैं। जो समस्या हिन्दू किसान की है वही समस्या मुस्लिम किसान की भी है। अगर गरीब मुसलमान अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा नहीं दे पाता तो गरीब हिन्दू भी नहीं दे पाता। यही नहीं तो भाषा हिन्दू बोलता है, वही भाषा मुसलमान भी बोलता है। और अगर आप यह सोचते हो कि हर मुसलमान उर्दू बोलता है तो यह आपकी गलतफहमी है। अधिकांश मुसलमान उर्दू का आलिक-वे नहीं जानते। गाँव में चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, वो अपनी बातचीत में एक जैसी बोलियों, एक जैसे मुहावरों का प्रयोग करते है।(133)

इस प्रकार सामाजिक संदर्भ में आदर्शमय मुस्लिम जीवन का प्रस्तुतीकरण जमील पात्र के द्वारा प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया गया है।

मुस्लिम धर्म में सांस्कृतिक यथार्थ

संस्कृति शब्द का अर्थ है परिष्कृत या परिमार्जित करना। इस शब्द से परिमार्जित के साथ-साथ शिष्टता और सौजन्य के भावों का भी बोध होता है। अत: संस्कृति शब्द का संबंध संस्कार से है, जिसका अर्थ संशोधन करना, उत्तम बनना, परिष्कार करना। मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों, प्राकृतिक शक्तियों और उसके परिष्कार का घोतक संस्कृति शब्द है। संस्कृति संस्कार की क्रिया है। संस्कृति से तात्पर्य है कि खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन, साहित्य-कला, आचार-विचार, व्यवहार, राजनीति, दर्शन, नीति, रीति, रूचि, धर्म, अर्थ आदि समाज और जीवन से संबंधित सभी तत्व आते हैं। इन सभी के संस्कार, सुधार और विकास से इसका संबंध होता है।

किसी भी समाज में संस्कृति को जानने के लिए उस समाज में प्रचलित रूढ़ि परंपरा के अनुसार ही उसे हम जान सकते हैं। आज आधुनिकता के कारण व्यक्ति के सोच-समझ में परिवर्तन आ रहा है। मानवतावादी संस्कृति के विकास की संभावना ने जन्म लिया। संस्कृति के क्षेत्र में अध्ययन के स्थान पर भौतिकवाद को स्वीकृति दी गई। प्राय: सांस्कृतिक मूल्य धर्म दर्शन को आधार बनाकर मानव जीवन के अंतरिक तथ्य जीवन को सशक्त अभिव्यक्ति देते हैं। लेकिन आज संस्कृति विज्ञान से अत्यधिक प्रभावित है। युगीन परिवर्तन के साथ सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन होता है।

संस्कृति युगीन परिस्थितियों से प्रभावित होती है। इसका निरूपण *अपवित्र आख्यान* उपन्यास में कई स्थानों व संदर्भो में किया गया। उदाहरण के तौर पर पहले पहल दहेज प्रथा मुस्लिम संस्कृति में नहीं थी। लेकिन आज भी स्थिति श्यामू भैया के विवाह के संदर्भ में प्रस्तुत की गयी है।

हम हिन्दूअन में यही न खराबी है। जमील बोला, तो लोग चौंके ख़्रख़्रख़्र मंगनी के नाम पर वहाँ भी यही सब होता है। .... मुसलमानों के यहाँ भी अब दूल्हे बिकने लगे हैं। .. डिमांड से भी शादियाँ होती है। स्कूटर और कार से लेकर नकद रूपये तक वहाँ भी माँग की जाती है।'(150)

एक धर्म के त्यौहारों को दूसरे धर्मावलंबी न मानने पर भी उसकी संस्कृति का प्रभाव तो दूसरे धर्मालंबियों पर पड़ता है। दीपावली त्यौहार मुसलमान नहीं मानते है। लेकिन उस दिन हिन्दू लोग जहाँ-जहाँ दिया जलाते हैं, वहाँ-वहाँ मुसलमान लोग भी जलाते हैं। खासकर गाँवों में यह दिखाई देता है।

हदिवाली के दिन मुसलमान औरतें भी चूल्हे के पास देहरी पर दिया जलाती है।..दिवाली रात राबिया देवी ने....देहरी पर और चूल्हे के पास दीया जलाया।' त्यौहारों के दिनों में एक-एक त्यौहार में एक-एक तरह का खास पकवान या मिठाई बनाने की संस्कृति जीवन में है। मुस्लिम जीवन में भी यह संस्कृति दिखाई देती है। 'दिवाली बीतने न बीतने शबे-बरात त्यौहार आ टपका। घर-घर हलवे बनाने की तैयारियाँ शुरू हो गई।'(104)

रहन-सहन, पहनावे ओढ़ावे में भी धर्म की अपनी-अपनी संस्कृति होती है। लेकिन इस आधुनिक युग में यह भी दूसरे धर्म व वातावरण से प्रभावित होती रहती है। प्रस्तुत उपन्यास में राबिया पात्र के माध्यम से इसका निरूपण किया गया। राबिया वेदी के वेश-भूषा हिन्दू स्त्री जैसी है। इसे देखकर इकबाल बहादुर राय जमील की पत्नी को हिन्दू समझने लगा तो जीमल कहता है, ह्मतलब यह कि, जैसे तुम नाम से तो हिन्दू लगते हो, मगर हो मुसलमान। उसी तरह यह देखने में तो हिन्दू लगती है, मगर है मुसलमान।ह (206)

उपर्युक्त विवेचन से यह मालूम होता है कि लोग देखने में हिन्दू, मुस्लिम, पारसी तो है, लेकिन सभ्यता व संस्कृति ही ऐसी हो गई है कि कोई यह नहीं कह सकता है, यह हिन्दू है या यह मुसलमान या यह फारसी। युगीन परिवर्तन के साथ सांस्कृतिक मूल्य में परिवर्तन होता है। अत: सांस्कृतिक नेतृत्व देने वाले लोगों में भी आज परिवर्तन दिखाई देता है।

सन्दर्भ ग्रंथ

- यादव, वीरेन्द्र सिंह. *इक्कीसवीं सदीं की दहलीज पर उपन्यासिक दस्तक.* ओमेगा पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण, 2012.
- भारतीय मुसलमान : वर्तमान और भविष्य *हंस विषेशांक पत्रिका.* 13 दिसम्बर 2018.
- बिस्मिल्लाह, अब्दुल. *अपवित्र आख्यान.* राजकमल प्रकाशन, 2008.

ऋग्वेद में अश्विनीकुमार

डॉ० नीलम सिंह

एम०ए०, पी-एच०डी० (बी०एच०यू०)

चारों वेदों में ऋग्वेद सबसे प्राचीन है। ऋग्वैदिक मंत्रों में देवताओं की स्तुति की गयी है। यास्क ने देवताओं को दान देने वाले, प्रकाशित करने वाले अथवा द्युस्थान में रहने वाला बताया है[1]। वादरायण ने भी देवों को ज्योतिर्मय कहा है[2]। अधिकांश विद्वानों ने देवताओं को प्रकाश से सम्बन्धित किया है। यास्क ने प्राकृतिक शक्तियों के आधार पर वैदिक देवताओं को तीन भागों में विभाजित किया है-

1-पृथिवीञ्स्थानीय

2-अंतरिक्षञ्स्थानीय

3-द्युस्थानीय[3]

प्रायः सभी विद्वान उपर्युक्त मत का समर्थन करते हैं।

ऋग्वेद में सूक्तों की संख्या के आधार पर इन्द्र, अग्नि और सोम के पश्चात् अश्विनीकुमारों का स्थान आता है। इनके सम्बन्ध में पचास सूक्त और अनेक सूक्तांश मिलते हैं। ये देवयुग्म हैं तथा सदा साथ-साथ रहते हैं। द्युस्थानीय देवों में अश्विनों सर्वप्रथम आने वाले देवता हैं[4]। वैसे तो ऋग्वेद में अश्विनों के अनके विशेषण मिलते हैं किन्तु नासत्य और दस्र उनके प्रचलित नाम हैं। ऋग्वेद के अश्विन् परवर्ती साहित्य में अश्विनीकुमार के नाम से प्रसिद्ध हुए।

ऋग्वेद में अश्विनीकुमारों का महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ वे प्रायः कल्याणकारी कार्यों में ही प्रवृत्त दिखलाई पड़ते हैं। इनका कार्य अद्भुत है। ये समस्त कार्यों के प्रेरक हैं। ये मनुष्यों के पूरक, संपालक, अभीष्टदाता एवं सुखप्रदाता हैं। ये विविधकर्मा हैं इनका कर्म पवित्र है। आपत्ति काल में ये तुरन्त सहायता प्रदान करते हैं। ऋग्वैदिक ऋचाओं में इनके द्वारा किये गये अनेकों कार्यों का विवरण मिलता है जो कि संक्षेपतः इस प्रकार हैं-

दान कर्म

ऋग्वेद में अश्विनीकुमारों को 'सुदानुः' कहा गया है[5]। ये अपने आश्रयदाताओं को उदार मन से दान देते हैं। अनेक स्थलों पर ये अपने स्तोता को अन्न, धनादि प्रदान करते हुए दिखलाई पड़ते हैं[6]। उन्होंने सुदास नामक राजा को अन्न सामग्री प्रदान की[7]। एक स्थान पर उल्लेख मिलता है कि वे अपने स्तोता को अरूण वर्ण की गायें प्रदान करते हैं[8]। पेदु नाम के राजर्षि को सहस्रों प्रकार का धन देने वालाश्वेत वर्ण वाला अश्व प्रदान किया[9]। उनका यह दान महान कीर्तनीय हुआ[10]। वे दानाधिपति हैं अतः स्तोता भी अश्विनीकुमारों से धन, सन्तति और समस्त कल्याण की कामना करते हैं।

यज्ञ कर्म

अश्विनीकुमार यज्ञ के प्रवर्तक एवं निर्वाहक हैं। वे अपने यजमान की अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए विचरण करते हैं[11]। वे सोमपान के निमित्त यज्ञ में आहूत किये जाते हैं[12]। व्यश्व तथा दीर्घतमा ऋषि एवं वेन राजा के पुत्र पृथ्वी यज्ञ गृह में इनका आह्वान करते हैं[13]। एक ऋचा में स्पष्ट रुप से कहा गया है कि जो यजमान इनके निमित्त यज्ञ में हविर्दान करता है वह यजमान कर्म द्वारा अपने पुत्र का पालन करता है[14]। सुख प्रदान करने के लिए भी यज्ञ में इनका आह्वान किया जाता है।

कृषि कर्म

स्तोता अश्विनीकुमारों से जल दोहन की प्रार्थना करते हैं। इन्होने अनेकों कूपों को वर्द्धित किया है[15]। ये यज्ञ कर्त्ता के निमित्त मेघ को फाड़ते हैं फलतः वृष्टि होती है[16]। इनकी वृष्टि से शस्य आदि उत्पन्न होते हैं[17]। ये मनु के निमित्त हल से यव की खेती कर मनुष्यों को कृषि कार्य की शिक्षा देते हैं[18]।

रक्षा कर्म

अश्विनीकुमार उत्तम कर्मों के रक्षक हैं। वे किसी भी दुर्लभ परिस्थिति में आह्वानकर्त्ता की रक्षा करते हैं। वे असुर पाशों से बद्ध कूप में गिरे हुए रेभ ऋषि को बाहर निकाल देते हैं[19]। अश्विनीकुमार कण्व ऋषि की अनेकों प्रकार से रक्षा करते हैं[20]। वे कूप में निक्षिप्त वन्दन ऋषि को बाहर निकाल देते हैं[21]। असुरों से पीड़ित अन्तक नामक राजर्षि की वे रक्षा करते हैं। उन्होंने अपने नौकारूप उपायों द्वारा समुद्र में डूबे हुए भुज्यु को सुरक्षा प्रदान की। असुरों द्वारा पीड़ित कर्कन्धु और वय्य नामक मनुष्यों की रक्षा की[22] एवं क्षेत्रपति के कार्य में राजर्षि मान्धाता की रक्षा की। उन्होंने अन्नदान कर भारद्वाज ऋषि की सहायता की। उन्होंने दूरवर्ती सूर्य को ग्रहण के अंधकार से मुक्त किया[23]। शम्बर के साथ युद्ध करते हुए दिवोदास की रक्षा की और त्रसदस्यु को संग्राम में बचाया[24]। नमुचि असुर के साथ होने वाले युद्ध में इन्द्र की सुरक्षा की[25]। एक ऋचा में शरीर की रक्षा के लिए विश्वक इनका आह्वान करता है[26]।

भैषज्य कर्म

अश्विन् के कार्यों में सर्वश्रेष्ठ कार्य है उनका भैषज्य कर्म। ये प्रख्यात देवभिषक् हैं[27]। अश्विनीकुमारों की औषधीय कार्यों में विशेष अभिरूचि है। भैषज्य सम्बन्धी कार्यों के कारण ही इन्हों 'देवानां भिषजौ' देवताओं के वैद्य) कहा गया है[28]। ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर उनके चिकित्सकीय कार्यों का विवरण मिलता है। ये अपने उपचारों से रोगों की शांति करते हैं। आह्वानकर्त्ता अश्विनीकुमारों से वात, पित्त, श्लेष्मा आदि धातु सम्बन्धी सुख प्रदान करने की कामना करते हैं[29]। इन्होंने लोक प्रचलित च्यवन ऋषि को युवा बनाया[30]। परावृज को दृष्टि-सम्पन्न व पंगु श्रोण को गमन समर्थ बनाया[31]। क्रुद्ध पिता के द्वारा नेत्रहीन कर दिये जाने पर ऋजाश्व को नेत्र-ज्योति प्रदान की[32]। खेल राजा की स्तत्री विश्पला का पैर युद्ध में कट जाने पर उसे लौहमयी जंघा[33] प्रदान कर उसे निरोगी बनाया[34]। रेभ ऋषि के क्षतिग्रस्त अंगों को औषधियों से ठीक किया[35]। कुष्ठ रोग से जर्जर घोषा को निरोगी काया प्रदान की[36]। नेत्रहीन कवि को आँखे प्रदान की[37]। एक ऋचा में अश्विनीकुमारों से सहदेव के पुत्र सोमक को दीर्घायु करने की प्रार्थना की गयी है[38]। अश्विनीकुमारों से संसार के प्राणियों में अंत:स्थित गर्भो की रक्षा करने की प्रार्थना की गई है। वे शोभनीय औषधियों के भी रक्षक हैं, अत: दूरस्थ एवं समीपस्थ औषधियों के साथ इनका आह्वान किया जाता है। ऋग्वैदिक ऋचाओं में उन्हें जल और औषधि को व्याप्त करने वाला बताया गया है। वे द्युलोक से आकर जल, वनस्पति और औषधियों से भेषज करते हैं[39]। अत: ऋग्वेद में अश्विनीकुमार श्रेष्ठ वैद्य के रूप में प्रतिष्ठित है[40]। ये न केवल कायचिकित्सक के रूप में अपितु महान शल्यचिकित्सक के रुप में भी प्रख्यात हैं। एक ऋचा में यह उल्लेख मिलता है कि अश्विनीकुमारों ने अथर्वा ऋषि के पुत्र दधीचि के स्कन्ध पर अश्व का मस्तक जोड़ दिया था फलस्वरुप उन्हों प्रवर्ग्यविद्या रहस्य की प्राप्ति हुई[41]। उनका यह कार्य न केवल अत्यधिक चमत्कारपूर्ण है अपितु शल्यचिकित्सा की वैदिक संकल्पना की पुष्टि करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऋग्वेद में अश्विनीकुमारों के कार्य लोककल्याण और परमार्थ के निमित्त हैं। उनके इन कार्यों से ऋग्वेद में उनकी श्रेष्ठता प्रदर्शित होती है तथा उनके भैषज्यविद्या से चिकित्सा विज्ञान की प्राचीनता भी सूचित होती है।

संन्दर्भ-

1. निरूक्त, 7. 4
2. ब्रह्मसूत्र 1.3.32
3. निरूक्त 7-5
4. निरूक्त 12.1
5. ऋग्वेद 1. 112. 11
6. ऋग्वेद 1. 46. 2
7. ऋग्वेद 1. 47. 6
8. ऋग्वेद 1. 112. 19
9. ऋग्वेद 1. 118. 9
10. ऋग्वेद 1. 116. 6
11. ऋग्वेद 1. 158. 2
12. ऋग्वेद 1. 22. 1
13. ऋग्वेद 8. 9. 10
14. ऋग्वेद 5. 77. 4
15. ऋग्वेद 8. 22. 12
16. ऋग्वेद 10. 40. 8
17. ऋग्वेद 10. 40. 9
18. ऋग्वेद 8. 22. 6
19. ऋग्वेद 1. 116. 24
20. ऋग्वेद 8. 5. 23
21. ऋग्वेद 1. 116. 11
22. ऋग्वेद 1. 112. 6
23. ऋग्वेद 1. 112. 13
24. ऋग्वेद 8. 8. 21
25. ऋग्वेद 10. 131. 4
26. ऋग्वेद 8. 8. 6
27. ऋग्वेद 8. 18. 8
28. ऋग्वेद 1. 157. 6, 8. 18. 8
29. ऋग्वेद 1. 34. 6

30. ऋग्वेद 1. 117. 3
31. ऋग्वेद 1. 112. 8
32. ऋग्वेद 1. 116. 16
33. ऋग्वेद 1. 116. 15
34. ऋग्वेद 1. 117. 11
35. ऋग्वेद 1. 117. 4
36. ऋग्वेद 1. 117. 7
37. ऋग्वेद 1. 117. 8
38. ऋग्वेद 4. 15. 10
39. ऋग्वेद 8. 9. 5
40. ऋग्वेद 10. 39. 5
41. ऋग्वेद 1. 117. 22

आथर्वणायष्विना दधीचे ऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम्।
स वां मधु प्र वोचदशतायन् त्वाष्ट्रं यद् दस्रा वपिकक्ष्यं वाम्।।

अन्य सन्दर्भ-

1. ऋग्वेद संहिता - सं0पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य
हिन्दी अनुवाद संस्कृति संस्थान बरेली
(सायणभाष्य सहित)
2. ऋग्वेद संहिता- अनु पं रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा
हिन्दी अनुवाद विद्याभवन वाराणसी

कोशी अंचल के लोकगीतों में दाम्पत्य भावना

विनय कुमार चौधरी

पार्वती साइंस कॉलेज, मधेपुरा

''भारतीय लोकगीतों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की चर्चा किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष या परोक्ष, अवश्य ही हुई है और इसी से लोकगीतों में आकर्षण आ गया है। खेती-गृहस्थी, उद्योग-व्यापार, परिवार, समाज, जन्म-मरण, मुंडन- उपनयन, विवाह, दाम्पत्य, इहलोक, परलोक, आत्मा, परमात्मा, देव-देवी-पूजन, स्तुति, शिष्टाचार, देश-भक्ति, विश्व बंधुत्व आदि तरह-तरह के जीवन संबंधी महत्वपूर्ण तत्वों का वर्णन यहाँ के लोकगीतों में हुआ है। अध्यात्म, भक्ति, प्रेम, वात्सल्य, स्नेह, विरह, करूणा, वीरता, त्याग, श्रद्धा, वैराग्य, हास-परिहास आदि सारे भावों का स्वाभाविक चित्रण हम लोकगीतों में पाते हैं। मानव जीवन संबंधी दुर्गुणों की निन्दा और सद्‌गुणों की प्रशंसा द्वारा लोकगीतों में मानव चेतना को ऐसा जगाया है कि लोग श्रद्धालु और निष्ठावान होकर चरित्रवान बनने के लिये सतत प्रयत्नशील रहते हैं। साथ ही साथ मंगलमयी भावनाओं का भी उदय होता है, जिससे स्वस्थ मन विकास की ओर अग्रसर होता है।''[1]

कोशी अंचलीय लोकगीतों की उपलब्ध सामग्री के अनुशीलन से यह तथ्य उजागर होता है कि इन लोकगीतों में देश, काल, पात्र, जाति, वर्ग, विषय, भाव, आदि के कारण विविधता है। इन विविधताओं में गोसांय गीत, संस्कारगीत, प्रेमगीत, विरह या विरहागीत, वैराग्यगीत, विदाईगीत, बालगीत, व्रतगीत, महाप्रयाण गीत, या मृत्युगीत, चैती, बारह मासा, निर्गुणगीत, होली गीत, अभिनयात्मक गीत, जँतसार, झूमर झूमटा, लाड़न, गाली, बटोहिया, लोरी, नारदीय, मर्शिया, स्तुति, लोकभजन आदि उल्लेखनीय हैं।

''समन्वय, सामन्जस्य, सहयोग और संघटन की प्रवृत्ति ने मानव की सामाजिक भावना को बहुत ही आगे बढ़ाया। मानव अपने स्वभाव से ही एक सामाजिक प्राणी माना गया है। समाज से अलग होकर वह नहीं रह सकता। समाज का प्रभाव उसके ऊपर बहुत अधिक पड़ता है। मानव की इस प्रवृत्ति में जब समन्वय और सामन्जस्य के भाव विशिष्ट रूप से पहुँचने लगते हैं तो मानव-मानव के निकट इतना अधिक हो जाता है कि वे एक दूसरे से अलग कभी भी नहीं हो सकते। मानव की सामाजिक बनने की प्रवृत्ति को समन्वय का भाव और ठोस बना देता है और यही असली सामाजिकता है। एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ मिलकर रहना, समाज के एक वर्ग का दूसरे वर्ग के साथ हिलमिल कर काम करना, एक जाति का दूसरी जाति के साथ सहयोग करना और एक मानव संस्था का दूसरी मानव संस्था के साथ एकजुट होकर मानव कल्याण के कार्य में लग जाना सामाजिकता है।''[2]

कोशी अंचल के लोक साहित्य के विश्लेषण के लिये समाजशास्त्रीय दृष्टि अपनाते हुए यहाँ के लोकगीतों में अभिव्यक्त सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक-संदर्भों पर विचार करना होगा। प्रथमत: सामाजिक संदर्भ को देखें सामाजिक स्थिति मुख्यत: तीन कोणों से विचारणीय हो सकती है (अ) व्यक्ति, (आ) परिवार (इ) समाज।

व्यक्ति के अन्तर्गत नर-नारी संबंध महत्वपूर्ण है यह संबंध प्रेम पर आश्रित होता है। प्रेम की दो स्थितियाँ होती हैं- मिलन और विरह। यह मिलन-विरह प्रेम के दोनों रूपों-वैध एवं अवैध में विद्यमान रहता है। प्रेम जब स्थायीत्व ग्रहण करता है तो विवाह में उसकी परिणति होती है। विवाहोपरान्त परिवार की उत्पत्ति होती है। परिवार के दो रूप हैं संयुक्त एवं एकल। परिवारों के समूह से समाज निर्मित होता है। भारतीय समाज में वर्णाश्रभ व्यवस्था है, ऊँच-नीच है, विभिन्न जाति सम्प्रदाय की मिश्रित संस्कृति ही समाज में विद्यमान होती है।

कोशी अंचल के लोक साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने के क्रम में इन गीतों में विभिन्न सामाजिक स्थिति का अवलोकन उपर्युक्त व्यवस्था क्रम में ही हम यहाँ प्रस्तुत करेंगे।

सामाजिक संबंधों की आधारभूत प्राथमिक इकाई व्यक्ति है। व्यक्तियों के योग से समाज बनता है और हर सामाजिक संबंध के निर्माण में व्यक्ति की अपरिहार्य भूमिका होती है। संबंधों के निर्माण में पारस्परिक लगाव अथवा प्रेम ही वह तत्व है, जो सेतु का काम करता है। प्रेम के विभिन्न रूप हुआ करते हैं। जिसमें दाम्पत्य का रूप सबसे प्रमुख है। यह विवाह ही है जो नर-नारी के बीच एक सुदृढ़ संबंध स्थापित कर एक दूसरे की यौन आकांक्षा की तृप्ति का सहज सुअवसर पैदा करता है और सन्तानोत्पत्ति द्वारा परिवार का विकास कर समाज को समृद्ध करता है। पश्चिमी समाज में जहाँ प्रेमोपरान्त विवाह की स्थिति आती है, भारतीय समाज में इसके विपरीत विवाहोपरान्त ही प्रेम की उत्पत्ति मानी जाती है। अर्थात् प्रेम आनुवंशिक है। विवाह ही प्रेम का जनक है। यद्यपि आधुनिक समाज में पश्चिमी प्रभाव बढ़ा है तथा विवाहेतर प्रेम घटनाएँ भी होती हैं, जिसे समाजशास्त्रीय शब्दों में 'अवैध प्रेम' की संज्ञा दी गई है।

हिन्दुओं में ख्याति प्राप्त सोलह संस्कार हैं, जिनमें जातकर्म (जन्मोत्सव), चूड़ाकरण (मुंडन), उपनयन (यज्ञोपवीत), विवाह एवं अंत्येष्टि संस्कार प्रमुख हैं। इनमें विवाह एक ऐसा संस्कार है जो नर-नारी संबंधों को स्थायीत्व प्रदान करने वाला एक अति महत्वपूर्ण संस्कार है। इसकी महत्ता इसी से प्रमाणित हो जाती है कि एक लाख बात पूरी होने पर ही एक विवाह सम्पन्न होता है। चूँकि भारतीय समाज में संयुक्त परिवार की व्यवस्था है, जहाँ ऐसे निर्णय में बहुत से संबंधियों के सुझाव-परामर्श एवं सहमति की आवश्यकता होती है। लोक जीवन में कोई लड़का या लड़की इसका स्वतंत्र रूप से निर्णय नहीं ले सकता; अत: इसे अंजाम देने में काफी वक्त की भी जरूरत होती है। नर-नारी के बीच सामन्जस्य अथवा दाम्पत्य संबंध के सुदृढ़ीकरण के लिये मनोवैज्ञानिक अनुकूलन

की दीर्घ प्रक्रिया के फलस्वरूप ही विवाह का विधान है और विवाह के विधान भी विस्तृत हैं, अत: स्वाभाविक है कि विवाह गीतों में विभिक्र विधानों के अनुरूप विविधता के भाव हैं। विवाह अवसर के कुछ प्रमुख प्रसंग है- लगन, तिलक, उबटन, कासा भुजाय, दलधोय, मटकोड़, बिलोकी, बटगमनी, ओमोर, विवाह, सुहाग, मड़वा, मिलन, कन्या निरीक्षण, परिछन, अठोंगर, भांवर, कन्यादाान, जोगपिसाय, लवाछिटाय, कंगन बंधाई, सिन्दुरदान, कोहबर, घूँघट, चतुर्थी, मधुश्रावणी, पनबिच्छी दुरागमन, बेटी विदाय, समधी मिलन, खीर खवाय, समधी व बराती के भोजन में गाली आदि गीत प्रसंगों की बरसात है।

नर-नारी के बीच वैवाहिक संबंध स्थापन के महत्वपूर्ण सामाजिक विधान को अंजाम देने की विभिन्न प्रक्रियाओं को कोशी अंचल के लोकगीतों में बड़ी सूक्ष्मता, विशदता एवं मार्मिकता के साथ निरूपित किया गया है। एक गीत में एक अविवाहिता कन्या यत्नपूर्ण पालित अपने सुग्गे को योग्यवर की तलाश का गुरूतर भार सौंपती हुई कहती है कि- मैंने गुड़-घी और चने की दाल खिला-खिला कर तुझे पाला; अब तुम मेरे लिये सुयोग्य वर ढूंढ़ने जाओ-

"जे वर सुगना तू देख सुन्दर, जेकरी चाल गंभीर;*
जेहि घर सुगना तू सम्पति देखिहो, वही घर रचेहु विवाह।"

चूँकि भारतीय कन्या अपनी इच्छा को अपने पिता-माता के सामने रखने में भी संकोच का अनुभव करती है। ऐसा प्रस्ताव अमर्यादित भी माना जा सकता है अत: सुग्गे को ही दूत बनाती है और अन्योक्ति के माध्यम से ही अपने मनोभाव अभिभावक तक प्रेषित कर पाती है।

किसी कन्या के लिये उसके वैवाहिक संबंध का ैसला अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह उसके भाग्य-भविष्य को जीवन-मरण के प्रश्न से जोड़ देता है। इस संबंध द्वारा कौन नहीं स्वर्ग प्राप्ति के सलोने स्वप्न को हस्तगत करना चाहती; लेकिन स्वर्ग पाना आसान नहीं, सस्ता नहीं है। इसके लिये हैसियत भी तो चाहिये। दहेज-लिप्सा ने विवाह जैसे पुनीत संस्कार को भी व्यवसाय बना दिया है। रूप-गुण संपक्र वर के लिये रूपये भी तो चाहिये। गरीब बाप के लिये तो बेटी भी एक ग्रहण की तरह ही त्रासद समस्या है-

''धीया गरहनवां बेटी अवघट लागे, कबधौं उगरह होई
हाथ में कुश लिये काँपइ बाबा, कबधौं उगरह होई''

और ऐसा लाचार बाप ईश्वर से भी अनुनय-विनय करता है-

''धिया के जनम तब दीह विधाता, जब घर संपत्ति होई।''

नर और नारी मानव समाज जीवन के दो प्रमुख अंग हैं। एक के बिना दूसरा नहीं रह सकता। यही कारण है कि मानव जीवन में नारियों का सदैव महत्वपूर्ण स्थान रहा है। राजा-महाराजा, सामन्त-सरदार जैसे अमीरों के घर में नारी अधिकतर कामवासना की तृप्ति के लिये ही रहती आई है लेकिन लोक जीवन या जन जीवन में नारी काम साधिका नहीं, नर की वास्तविक जीवन संगिनी बनी रहती है। वह नर के साथ हिलमिल कर खेत खलिहान, हाट-बाजार, परिवार-समाज सभी जगह काम करती है। कहीं किसी तरह का दूषित भाव नही, दुराव-छिपाव नहीं, छल-प्रपंच नहीं। वह हर अवसर पर स्वच्छ हृदय से नर का साथ देती है। पति-पत्नी, माँ-बेटी, पिता-पुत्री, भाई-बहन, दादी-पोती, नाती-नतनी, सास-पतोहू, ननद-भौजाई, देवर-भावी, साली-सरहज आदि नारी के हर रूपों का वर्णन यहाँ के लोकगीतों में हुआ है। यह वर्णन इतना सरस, रोचक, कोमल और मधुर है कि लोकगीतों को बार-बार सुनते रहने की अभिलाषा बनी रहती है। नारियों का श्रृंगार, नारियों का प्रेम, स्नेह और प्यार, नारियों का भक्तिभाव, नारियों का हास परिहास, नारियों की कार्य-कुशलता आदि की चर्चा से हृदय खिल उठता है। नारी सौन्दर्य की प्रतिमूर्त्ति मानी जाती है, उसके रमणीय रूप का वर्णन लोकगीतों में मिलता है। नारी के प्रति उपेक्षा का भाव नहीं; आदर का भाव ही अपनाया गया है।''[3]

नर-नारी समानता/विषमता

कोशी अंचल के लोकगीतों में चित्रित समाज प्राय: पितृ सत्तात्मक अर्थात पुरूष प्रधान है। इसमें नर-नारी संबंध का रूप कहने भर के लिये समानता पर आधारित है। परिवार रूपी गाड़ी के दो पहिये होने के बावजूद स्त्री-पुरूष के सामाजिक स्तर में व्यवहारत: विषमतापूर्ण विभेद है। यह विभेद सन्तानोत्पत्ति काल से ही दृष्टिगोचर होने लगता है। पुत्र के जन्म पर भव्य समारोह आयोजित किया जाता है तो पुत्री के जन्म पर संक्षिप्त और उत्साहहीन छठियारी भोज का आयोजन होता है। बल्कि पत्नी के गर्भ धारण काल से ही हर पति यह कामना करने लगता है कि संभावित संतान पुत्र ही हो। वह ईश्वर से मनौती करने लगता है-

''धिया के जनम जनु देहु विधाता, जब घर संपत्ति होई''

होश संभालने के साथ ही पुत्री को यह अहसास होने लगता है कि वह माँ-बाप के लिये एक बोझ है, एक अभिशाप है-

'आहे अम्मां के कोखिया धिया रे जनम लेल वंश रतियाउन है''।

बेटी को पराये घर की सम्पत्ति मानकर ही, साथ ही उसके विवाह में होने वाले संभावित खर्च का अनुमान करके उसके रहन-सहन एवं शिक्षा-दीक्षा में भी उचित खर्च नहीं किया जाता। कन्या की आन्तरिक इच्छा पढ़ने की हो तब भी उसकी इच्छा के विरूद्ध अल्पव्यय किया जाता है और असमय ही उसकी शादी कर दी जाती है। बेचारी बेटी गुहार ही करती रह जाती है-

''कदम के पेड़ तले बेटी अरज करती, पापा जी मत करो शादी,
उमरिया बारह बरस की है, उमरिया पढ़ाई की है।''

बेटी की जायज अरज भी पिता के फर्ज तले दफन हो जाती है। वह अपने भाई को पढ़ते और डॉक्टर, इंजीनियर बनते देखती रह जाती है और अपने कुन्द व्यक्तित्व लेकर चुल्हा-चौका में खुद को झोंकने, ससुराल जाने को विवश होती है। जो बाप पुत्र के भविष्य के एक से एक खुबसूरत सपने बुनता है, वही

अपनी बेटी को जैसे-तैसे घर में डालकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेता है। अपने ही सहोदर भाई की तुलना में स्वयं को हीन-दीन दशा में पाकर बेटी का हृदय चीत्कार कर उठता है-

''पापा के पैर पड़ी रोबै बेटी रूना कैसन घर करल्हो हमार''- यद्यपि वह अपनी परिस्थिति से प्राय: समझौता कर ही लेती है, लेकिन उसके भीतर का हाहाकार कभी शांत नहीं होता, जबतब फूट ही पड़ता है- नितान्त अकेलेपन में। किसी गोपन क्षण में उसका दर्द आरोप की शक्ल ले लेता है-

''मोहे हो बाबा फेंकल
बुहारन जोगे हो बाबा फेंकल''

पिता की विभेदपरक दृष्टि का एक परिणाम तो होता है कि बेटी गरीब घर में व्याही चली जाती है, जीवन भर बिसूरने के लिये। एक दूसरा परिणाम भी होता है, जिसको कबूल करना एक गाय सी मूक बेटी के लिये सह्य भी हो स्वयं बेटी की मां को जीती मक्खी निगलने जैसा अप्रिय और असह्य होता है। वह चाहे अपने पति को नारी की निम्न सामाजिक स्थिति की समझ के कारण- कुछ न कहे, लेकिन बेटी के बेमेल विवाह के विरूद्ध भाग्य को अवश्य दोष देती है-

''एको मनोरथ बाबा दैवो न बूझल, आबी गेल बुढ़वा जमाय''

और आर्थिक रूप से लाचार बाप बेटी के बहाने अपने आप को ही समझाने का विवश प्रयास करता है-

''उत्तर खोजल बेटी, दखिन खोजल खोजल मगहा मुंगेर हे
तोहरा जुगुत बेटी वर नहीं भेटल, भेटल ठग, बनिहार हे।''

वर बेमेल और बूढ़ा भी हो सकता है, ठग बनिहार भी और भिखारी भी। लेकिन कन्या को तो उसके साथ जाना ही है। ससुराल जाती कन्या अपनी पूर्व निर्धारित नियति का इजहार साथ चल रहे भाई से नहीं करती, अपने ही दुखित मन को तसल्ली देने का यत्न करती है, नर-नारी अर्थात् भाई-बहन के सामाजिक विभेद से वह अपने जन्म काल से ही वाकिफ है-

''जाहि दिन आहे भैया तोहर जनम छल, भै गेलै चाँदनी रात हे''
हँसुआ खोजतै भैया सोना छूरी भेंटल ओही से अम्मा छीलै नार हे,
छल जाहि दिन आहे भैया हमरो जनम भै गैले अन्हारी रात हे,
हंसुआ खोजते भैया पसनी भेटल ओही से अम्मां छिलै नार हे
बाबा के संपतिया हमरा के जोगिया भिखार हे,

लेकिन एक गीत में नारी स्थिति को भी रेखांकित किया गया है-

''नारी के जनम रामा लाचार करम रामां सीता के भी भये निर्वास सीता को अकारण राम द्वारा निर्वासित किये जाने की घटना न केवल त्रेताकालीन समाज की मनोवृत्ति को उद्घाटित करती है अपितु यह आज भी- आजाद भारत के समाज में विद्यमान है-

''पुरूष प्रधान भेलै, नारी अपमान झेले, कि आगे दैया
पशु जैसन जीवन बिताबौं रे की
जननी बनलां हम दुनियाँ बसैलाँ गे दैया, कि आगे दैया
फंदा गुलामी के गले हम लेलां रे की;''

निष्कर्षत: नर-नारी के बीच विभेद की सामाजिक स्थिति को कोशी अंचल के लोकगीतों ने बड़ी सघनता एवं मार्मिकता के साथ व्यंजित किया गया है।

दाम्पत्य प्रेम-कोशी अंचल के लोकगीतों में दाम्पत्य प्रेम के अनेक सुकुमार एवं मार्मिक चित्रण हुए हैं। एक गीत में मानवेतर प्राणियों के दाम्पत्य प्रेम के माध्यम से मानवीय प्रेम की मार्मिक झांकी प्रस्तुत की गई है-ढाक के पेड़ के नीचे अनमनी खड़ी हिरणी से जब हिरण उसकी उदासी का कारण पूछता है, तो वह कहती है कि 'आज कुँवर रामचन्द्र जी की छट्ठी के भोज में मांस बनाने के निमित्त उन्हें मारा जायेगा। और जब हिरणी के पति को सचमुच में मार दिया जाता है; तब वह कौशल्या जी से पति के खाल को वापस मांगती है ताकि उसी को देख-देखकर वह तसल्ली करेगी। खलड़ी उसे न देकर उसकी खंजड़ी बनायी जाती है। जब-जब खंजड़ी बजती है-

''हिरणी ठाढ़ि तेही गछिया हिरण के बिसूरई।''

दाम्पत्य प्रेम का ऐसा बेमिशाल उदाहरण हिन्दी साहित्य में, अन्यत्र दुर्लभ है। पशुओं के दाम्पत्य प्रेम के इस उदाहरण के पश्चात् एक अन्य नमूना द्रष्टव्य है जिसमें पक्षियों के जोड़े के माध्यम से दाम्पत्य प्रेम की अभिव्यंजना की गई है। कोशी माय झबरा कुत्ते को साथ लेकर शिकार के लिये जंगल जाती है। वहाँ वह हरिण और खरहे का शिकार न करके केवल मयूर को चुन-चुन कर मारती है। इस पर मोरनी अनुनय करती है-

''बखसू-बखसू कोशी माय सिर के सिनुरिया हे,
तोहरे शरणे सब साध।''

मोरनी केवल अनुनय नहीं करती, जार-बेजार रोने भी लगती है-

''हकन करी कानै कोशीमाय वन के मयूरनी, बारी बैस हरले सिन्दूर''

और कोशी के इंगित पर उसके मनोरंजन के लिये मयूरनी रात भर नाचती है, गाती है।

दाम्पत्य प्रेम के उपर्युक्त उदाहरण किसी सत्यवान के लिये सावित्री द्वारा किये गये तप-त्याग की याद दिलाता है। मानवेतर प्राणियों के दाम्पत्य प्रेम का यह अनन्य एवं अनुपम उदाहरण मानव मात्र के लिये प्रेरणा का पाथेय है।

दाम्पत्य प्रेम में माधुर्य लाने का काम करता है- पति-पत्नी का पारस्परिक नोंक-झोक, रूठना और मनाना। इस प्रसंग में एक गीत में- ''एक भल हम मांगलौं रे जाटा सेहो नै तोरा जुटलौ रे'' और जटिन भागकर किसी दूसरे समर्थ पुरूष की प्रेमिका बन जाने की धमकी देती है। बदले में जाटा भी पत्नी को किसी अन्य लड़की से संबंध जोड़ लेने का भय दिखाता है। एक दूसरे गीत में नैहर भाग जाने की बात करती है तो पति स्मृति धरोहर रूप में विभिन्न आभूषणादि छोड़ जाने का आग्रह करता है-

'जों तोंय बारी धनि जइबे नैहरबा,
टीका धरी जाहु रे सेजरिया।'

दाम्पत्य प्रेम में मिलन की स्थिति बड़ी ही सहज और स्वाभाविक है। कोशी अंचल के लोकगीतों में मिलन की विभिन्न दशाओं के सुन्दर चित्र दृष्टिगोचर होते हैं। नायिका कहती है कि 'आज सोहाग की रात है, अत: केवल चंदा ही उदित हो। सूर्योदय तो हो ही नहीं। आज की रात इतनी बड़ी हो कि न तो इसके समापन की सूचना में मुर्गा बोले और न ही पौ फटे। क्योंकि मुर्गा के बोलने से मेरा हृदय विरस हो जायेगा और पौ फटने के साथ तो कलेजा ही फट जायेगा। अत: हे सूर्य तुम उगना भी तो बहुत बिलम्ब से। एक दूसरे गीत में नायिका को बारह वर्षों का वियोग झेलने के बाद मिलन रात्रि का सौभाग्य मिला है। वियोग की दीर्घकालीन पीड़ा के रेगिस्तान को शब्दों द्वारा पार करने, नेह को अद्यतन करने में ही रात समाप्ति की ओर बढ़ गई है। अभी दिल भरा या जुटा भी नहीं कि मुर्गे ने बांग देकर काल बोध कराने की गुस्ताखी कर दी है। नायिका को मुर्गे की खलनायिकी पर बड़ा गुस्सा आता है और वह उसकी चोंच ही तोड़ डालने को आमदा हो जाती है। एक तीसरे गीत में परदेश यात्रा पर सुबह निकलने वाले पति को प्राकृतिक व्यवधान से रोक रखने की चेष्टा में पत्नी बरसात के मेघ से सहयोगी भूमिका निभाने का मनुहार करती है-

'बरसहु-बरसहु मेघ आज केर रतिया,
अरे पिया के जतरवा,
सेहो विलमाबहु रे की।'

और जब पति छाता ओढ़कर जाने की बात करता है तो अतृप्त पत्नी डोम से भाई का रिश्ता जोड़ती उसे छाता बुनने में बिलम्ब करने के लिये आग्रह करती है और कार्य शिथिलता के लिये पुरस्कार में सोना देने का प्रलोभन देती है।

दाम्पत्य प्रेम और वियोग- जिस प्रकार प्रेम में मिलन वांछित एवं परम प्रिय होते हुए भी शाश्वत नहीं है, उसी प्रकार वियोग अप्रीतिकर होते हुए भी अनिवार्य है। कर्म एवं दायित्व का संसार पुरूष को प्रिया की बाँहों से दूर खींच ले जाता है- ''और भी गम हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा।'' परिस्थिति के हाथों मजबूर पति को प्रवास का जीवन जीना ही पड़ता है और पिया जब परदेश में हों तो विभिन्न मौसम का प्रहार अनेक साम्य बैषम्यपूर्ण घटनाओं का प्रभाव विरहिणी को पति की यादों की आग में झोंक ही देता है।

मौसमी प्रभाव में बरसात तो सर्वाधिक विह्वल कर देती है विरहिणी को- 'बदरी जाइ बरसहु उही देसवा, जहाँ पिया मोर बसे'-एक गीत में अन्य विदग्धा पत्नी अपनी सास से पूछती है कि 'आपने आंगन में यह नीम का पेड़ कब लगया था और कब आपका लाड़ला विदेश को गया?' हताश आकुलता के स्वर में वह कहती है-

''फरि गये निबिया लहसी गये डरिया,

तबहु न आये तोर विदेसिया हो रामा।'' धनार्जन हेतु विदेश गये पति की प्रतीक्षा करते हारी टूटी पत्नी किसी अपरिचित से भी अपनी मनोव्यथा का इजहार करने में संकोच नहीं करती- बटोही मोरा पियवा, अबहू न आयो रे; बारह बरिस भये अमुंवा मंजरी गये''

अनेक विरहिणियों को तो पता भी नहीं कि उसका पति विदेश के किस अनाम शहर को गया है? वह पहले प्राय: मोरंग जाया करता था, भौगोलिक निकटता के कारण; फिर औद्योगिक शहर के रूप में कलकत्ते का विकास हुआ तो कलकत्ता जाने लगा और न आने का अपराध कर बैठा- ''कलकत्ते में पिया दगाबाज, बलम नहीं आया जी- और फिर बलम न आये तो पत्नी का सोलहों श्रृंगार फीका हो जाता है-

''लंबी-लंबी केसिया, उलट के बाँधे चोटिया अधूरी जिनगी ना''
जिनकर बलम परदेसिया, अधूरी जिनगी ना''

कलकत्ता को जाने वाला बलम स्वातन्त्रयोत्तर भारत में दिल्ली जाने लगा और जब हरित क्रांति ने पंजाब, हरियाणा को आकर्षण का केन्द्र बनाया तो उस तरफ मुड़ गया-

''अहां पंजाब में बनल छी पंजाबी
हमरो पंजाबिन बनाबियो पहुना''

संदर्भ सूची -

1. अंगिका लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन
2. अंगिका लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन
3. अंगिका लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

हिंदी पत्राकारिता में नैतिक मूल्य : वर्तमान परिप्रेक्ष्य

डॉ० साताप्पा लहू चव्हाण

शोध निर्देशक एवं एसोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, अहमदनगर महाविद्यालय, अहमदनगर 414001 (महाराष्ट्र)

हिंदी पत्रकारिता शुरू से नैतिक मूल्यों का पुरस्कार करती आयी है। महात्मा गांधीजी के सत्य, अहिंसा, प्रेम और सदभाव आदि नैतिक मूल्यों को केंद्र में रखकर अनेक पत्रकारों ने हिंदी पत्रकारिता को मौलिक परिवर्तन की दिशा में अग्रेसित किया। हिंदी पत्रकारिता के माध्यम से विज्ञान, कला, साहित्य, दर्शन आदि सभी क्षेत्रों में नैतिक मूल्यों की स्थापना करने पर बल देनेवाले पत्रकारों में संपादक प्रेमचंद, युगलकिशोर शुक्ल, बालकृष्ण भट्ट, केशवराम भट्ट, बालमुकुंद गुप्त, बाबुराव विष्णुराव पराडकर, पंडित सुंदरलाल, बनारसीदास चतुर्वेदी, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, ईश्वरीप्रसाद प्रसाद शर्मा, आचार्य शिवपूजन सहाय स्वामी भवानी दयाल संन्यासी, अंम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, माखनलाल चतुर्वेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी, माधवराव सप्रे, कृष्णदत्त पालीवाला, अमृतलाल चक्रवर्ती, रामवृक्ष बेनीपुरी, मदन मोहन मालवीय, प्रतापनारायण मिश्र आदि जुझारू पत्रकारों को अग्रणी मानना होगा। "जीवन के यथार्थ को उसके नग्न रूप में चित्रित करना हमारे प्राचीन साहित्यकारों को योग्य नहीं लगा। वे तो साहित्य को 'ब्रह्मानंद सहोदर आनंद' देने वाली मंगल शक्ति ही मानते थे। परंतु जैसे-जैसे युग बदलता रहा,, ज्ञान और विज्ञान की उन्नति होती रही, वैसे-वैसे साहित्य में कल्पना के स्थान पर यथार्थ की प्रतिष्ठा होती गई। यह भौतिक जगत नश्वर होने के बावजूद भी महत्त्वपूर्ण है। जीवन जीने के लिए है और उसकी जीने की सार्थकता उस दूसरे जगत में नहीं, यहीं पर इसी ठोस भूमि पर ढूँढनी है,इस विचारधारा ने ही पारम्परिक आदर्शवादी धारा को यथार्थवादी धारा के साथ जोड दिया।"[1] डॉ. मृदुला वर्माजी के उपर्युक्त विचार आज अधिक प्रासंगिक लगते है।

हिंदी पत्रकारिता में नैतिक मूल्यों को आदर्शवादी और यथार्थवादी धारा एक साथ जुडने के कारण अधिकाधिक बल मिला,इसे नकारा नहीं जा सकता। साहित्य और पत्रकारिता दोनों नैतिक मूल्यों को मानवीय जीवन के लिए नितांत आवश्यक मानते है। हिंदी पत्रकारिता स्थाई मूल्यों पर जोर देती है। संपादक प्रेमचंद ने गुलामी के विरोध में कडा संघर्ष किया। प्रेमचंदजी ने सभी नैतिक मूल्यों का सार 'मानवीयता' को माना। सत्य प्रतिपादन करते समय पत्रकार प्रेमचंदजी ने 'मानवीयता' को पाठकों के सामने रखा। सादा जीवन ही नैतिक मूल्यों का मूलाधार बन सकता है। वर्तमान समाज और हिंदी पत्रकारिता का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि आज पूँजीवाद का प्रभाव पत्रकारिता पर हावी हो रहा है। अत: दिन-ब-दिन नैतिक मूल्यों को ह्रास हो रहा है। यह स्थिति भयावह है। अन्याय के खिलाफ खडे रहना,राष्ट्रप्रेम का नारा लगाना,धर्म निरपेक्ष समाज निर्माण के लिए कार्यरत रहना और संपूर्ण मानव कल्याण की बात छेडना हिंदी पत्रकारिता ने शुरू से अनुवार्य माना है। वर्तमान काल में भी अनेक पत्रकारों ने इस विचारधारा का स्वीकार किया है लेकिन पूँजीवादी शक्तियाँ अपने पूँजी नामक हथियार से सच्चे पत्रकारों को घायल कर रहीं हैं। इस परिस्थिति को बदलना वर्तमान हिंदी पत्रकारिता के सामने चुनौती है। सन 1930 में छपे अपने पहले संपादकीय में प्रेमचंद लिखते हैं "अपने छात्रों का विलास-प्रेम देखते हैं, तो हमें उनके विषय में बडी चिंता होती है। वह रोज अपनी जरूरतें बढाते जाते हैं विदेशी चीजों की चमक-धमक ने उन्हें अपना गुलाम बना लिया है। वे चाय और कॉफी के साबुन और सेंट के और न-जाने कितनी अल्लम गल्लम चीजें खरीदने में रत पाएँगे। वह ये समझ रहें कि विलास की चीजें बढा लेने से ही जीवन का आदर्श ऊँचा हो जाता है। युनिवर्सिटियों में अपने अध्यापकों का विलास-प्रेम देखकर यदि उन्हें ऐसा विचार होता है तो उनका दोष नहीं। यहाँ तो आवें का आवाँ बिगडा हुआ है। सादे और सरल से उन्हें घृणा सी होती है। अगर उनका कोई सहपाठी सीधा साधा हो तो वे उसकी हँसी उडाते है उस पर तालियाँ बजाते हैं... दुनिया के जितने बडे-से-बडे महापुरूष हो गये हैं और हैं वे जीवन की सरलता का उपदेश देते आए हैं और दे रहें हैं मगर अपने छात्र हैं कि हैट और कॉलर की फिक्र में अपना भविष्य बिगाड रहें हैं।"[2] कहना सही होगा कि स्वातंत्र्योत्तर काल में भी पत्रकार प्रेमचंदजी ने हिंदी पत्रकारिता के माध्यम से नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिए कडा संघर्ष किया। प्रेमचंदजी चाहते थे कि देश के युवा सादा और सरल जीवन अपनाएँ। वैचारिक जीवन का स्वीकार करें। भारतीय चिंतन परंपरा को अपने मूलभूत विचारों के माध्यम से प्रेमचंद जैसे पत्रकारों ने आगे बढाया।

हिंदी साहित्यिक पत्रकारिता का मुख्य: उद्देश्य नैतिक मूल्यों की स्थापना कर सामाजिक गुलामी को समाप्त करना रहा है,इसे मानना होगा। "मनुष्य के जीवन में प्रारंभ से लेकर आज तक पत्रकारिता का बडा महत्त्व रहा है। हिंदी पत्रकारिता का इतिहास 170 वर्ष पुराना है। भारतीय पत्रकार अपनी देशभक्ति,निष्ठा लगन परिश्रम एवं अपूर्व त्याग के लिए विख्यात रहें हैं। प्रारंभ में स्वाधीनता के लिए संघर्ष एवं राष्ट्रीयता के लिए प्रचार करना ही पत्रकारिता का कर्तव्य था और अपने ऊँचे आदर्शों का पालन प्रारंभ से ही करती आ रहीं है।"[3] प्रख्यात पत्रकार सविता चड्ढाजी के उपर्युक्त विचारों से हमें सहमत होना होगा। वर्तमान समय हिंदी पत्रकारिता के इतिहास के साथ जुडकर नैतिक मूल्यों का पुन:वैचारिक मंथन करने का समय है। अगर हम ऐसा नहीं करेंगे तो तमाम सुविधाओं,तकनीकी विकास के बावजूदा भी नैतिक मूल्यों के अभाव में हिंदी पत्रकारिता विश्व संतुष्ट नहीं रहेगा। नैतिक मूल्यों का रक्षण करना आवश्यक मानने वाले पत्रकार और उनकी पत्रकारिता कुछ अंशो तक आज भी जीवित है लेकिन सौ साल पहले जैसी नैतिकता अब हिंदी पत्रकारिता में दृष्टिगोचर नहीं होती है।

इस सत्यता को हम नकार नहीं सकते। "जहाँ तक हिंदी पत्रकारिता की प्रवृत्ति और प्रभाव का प्रश्न है,, अधिकांश पत्रकारों का यह मत है कि हिंदी पत्रकारिता अपना महत्त्वपूर्ण काल का तेज और स्वाधीनता दोनों खो चुकी है।"[4] हिंदी पत्रकारिता का वर्तमान काल रचनात्मक लेखन का जरूर रहा है लेकिन व्यवसायिकता ने इस रचनात्मक लेखन प्रक्रिया को अपने चपेट में लिया है। मानवी तत्त्व दिन-ब-दिन कम होते जा रहें हैं। साहित्य और संस्कृति का पाठ पढाने वाली हिंदी पत्रकारिता आज 'विज्ञापनों' का पाठ पढा रहीं है। व्यवसायिकता के नाम पर नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है,मानवता के उपासक,देशभक्त और गंभीर अनुसंधानात्मक लेखन करनेवाले संपादक आज बहुत ही कम है। वेतन भोगी संपादकों की संख्या बढ रहीं है। इस बात को मानना होगा। "वर्तमान

हिंदी पत्रकारिता पर यह भी एक आक्षेप लगाया जाता है कि वह एक विशुद्ध व्यावसायिक पत्रकारिता है। लोकशिक्षा की अपेक्षा उसका ध्यान लोकरंजन की ओर अधिक लगा हुआ है। इस आरोप में काफी कुछ तथ्य है नई तकनीक के कारण समाचार पत्रों के रूप आकर्षक नयनाभिराज और मनोरंजक बन गए। चूँकि उसका व्यवसाय प्रधान है, इसलिए इन सब बाह्य बातों पर ध्यान देना जरूरी हो गया।"[5] हम जानते हैं कि समय के अनुसार पत्रकारिता को भी बदलना चाहिए लेकिन नैतिक मूल्यों का पतन कर होनेवाले बदलाव समाजविघातक मानने होंगे। मनुष्य का जीवन सआनंद करने हेतु वर्तमान हिंदी पत्रकारिता का प्रयास कम मात्रा में दृष्टिगोचर होता है। निष्ठापूर्वक काम करनेवाले पत्रकारों की संख्या दिन-ब-दिन कम होती नजर आ रही है। हिंदी पत्रकारिता और राजनीति का जुडना, भण्डफोड वृत्ति का विकास नैतिक मूल्यों की जगह आर्थिक मूल्यों का विकास, भ्रष्ट राजनीतिक चरित्रों के साथ लेन-देन वर्तमान काल में बढ रहीं है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता। वर्तमान हिंदी पत्रकारिता का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि आज भी अनेक पत्रकार अभिनंदनीय कार्य कर रहें हैं। अपना स्वतंत्र अस्तित्व निर्माण कर नैतिक मूल्यों के प्रचार-प्रसार में कार्यमग्न है। यह स्थिति निश्चित ही सुखदायक है। फिर भी व्यवसायी और साहित्यिक पत्रकारिता के बीच आज भी संघर्ष कायम है।

"कला-प्रयोजन त्रैमासिक जयपुर-उदयपुर संस्थापक-संपादक-हेमंत शेष आलोचना, दिल्ली, प्रधान संपादक-नामवर सिंह समकालीन भारतीय साहित्य, दिल्ली, संपादक- अरुण प्रकाश प्रगतिशील वसुधा, भोपाल, संपादक - कमला प्रसाद तद्भव, दिल्ली, संपादक- अखिलेश इंद्रप्रस्थ भारती, दिल्ली संपादक- नानक चंद हिंदी, (दिल्ली), संपादक - अशोक वाजपेयी कसौटी, (पटना, बिहार), संपादक - नंदकिशोर नवल नटरंग, (दिल्ली), संपादक - नेमिचंद्र जैन अकार, (कानपुर, उ.प्र.), संपादक - गिरिराज किशोर संधान, (इलाहबाद, उ.प्र.), संपादक - लालबहादुर वर्मा दलित साहित्य, (दिल्ली), संपादक - जयप्रकाश कर्दम वागर्थ, (कोलकाता, प.ब.), संपादक - रवीन्द्र कालिया कथा क्रम, (लखनऊ, उ.प्र.), संपादक - शैलेन्द्र सागर रचनाक्रम, (दिल्ली), संपादक - अशोक मिश्र कथा, (इलाहाबाद, उ.प्र.), संपादक - मार्कण्डेय हंस, (दिल्ली), संपादक - राजेन्द्र यादव समयांतर, (दिल्ली),संपादक - पंकज विष्ट समीक्षा, (दिल्ली), संपादक - गोपालराय बहुवचन, (दिल्ली), संपादक - अशोक वाजपेयी संचेतना, (दिल्ली), संपादक - महीप सिंह उत्तरशती, (पटना, बिहार), संपादक - खगेन्द्र ठाकुर दायित्वबोध, (लखनऊ, उ.प्र.), संपादक - विश्वनाथ मिश्र समकालीन सृजन, (कोलकाता), संपादक - शंभुनाथ साखी, वाराणसी, संपादक- सदानंद शाही पक्षधर, दिल्ली, संपादक- विनोद तिवारी संस्कृति, (दिल्ली), प्रकाशक- संस्कृति मंत्रालय इस्पातिका [2], जमशेदपुर, संपादक- अविनाश कुमार सिंह उदभावना, दिल्ली, संपादक - अजेय कुमार हाइकु दर्पण, नोएडा, संपादक- डा० जगदीश व्योम। सम्यक, मथुरा, संपादक- मदनमोहन उपेन्द्र पल प्रतिपल, (पंचकुला, हरियाणा), संपादक - देश निर्मोही वातायन, (बीकानेर, राजस्थान), संपादक - हरीश भदानी साहित्य अमत, (दिल्ली), संपादक - डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी मनस्वी, (इंदौर, म.प्र.), संपादक - मुरली मोहन समरलोक, (भोपाल, म.प्र.), संपादक - मेहरुन्निसा परवेज समकालीन सेतु, (दिल्ली), संपादक - लक्ष्मीप्रसाद पंत अक्षर पर्व, (रायपुर, छत्तीसगढ़), संपादक - आलोक प्रकाश पुतुल सापेक्ष, (दुर्ग, छ.ग.), संपादक - महावीर अग्रवाल सद्भावना दर्पण, (रायपुर, छ.ग.), संपादक - गिरीश पंकज साहित्य वैभव, (रायपुर, छ.ग.), संपादक - डॉ. सुधीर शर्मा कल के लिये, (बहराइच, उ.प्र.), संपादक - डा। जयनारायण शेष, (जोधपुर, राजस्थान), संपादक - हसन जमाल मूलप्रश्न, (उदयपुर, राज.), संपादक - वेददान सुधीर संबोधन, (कांकरोली, राज.), संपादक - कमर मेवाड़ी कलादीर्घा, (लखनऊ, उ.प्र.) संपादक - अवधेश मिश्र स्वर सामरथ, (कोलकाता, प.ब.), संपादक - इंदु जोशी आकल्प, (मुंबई), संपादक - शोभनाथ यादव कहन, (दमोह, म.प्र.), संपादक - मनीष दुबे अभिनव कदम, (मऊ, उ.प्र.), संपादक - चंद्रदेव राय अभिध ा (मुजफ्फरपुर, बिहार), संपादक - अशोक गुप्त अलाव, (दिल्ली), संपादक - रामकुमर कृषक सांस्कृतिक उपहार, (वारणसी, उ.प्र.), संपादक - तथागत चौटर्जी सजन पथ, (सिलीगुड़ी, प.ब.), संपादक - रंजना श्रीवास्तव संप्रेषण, (जयपुर, राज.), संपादक - चंद्रभानु साक्ष्य, (पटना, बिहार), संपादक - जाबिर हुसैन कथन, (दिल्ली), संपादक - रमेश उपाध्याय उत्तर पूर्वांचल, (सिलीगुड़ी), संपादक - ओमप्रकाश पांडेय माजरा, (आगरा, उ.प्र.), संपादक - हेतु भारद्वाज साक्षात्कार, (भोपाल, म.प्र.), संपादक - आग्नेय सहित, (दिल्ली), संपादक - यतीन्द्र मिश्र अब (सासाराम, बिहार), संपादक - शंकर अभय मानस चंदन (सीतापुर), संस्थापक संपादक- डॉ. गणेश दत्त सारस्वत परिवेश, (मुरादाबाद, उ.प्र.), संपादक - मूलचंद्र गौतम धरती, अनियतकालीन, संपादक -शैलेन्द्र चौहान साहित्य त्रिवेणी, त्रैमासिक, (कोलकाता, प.बं.), संपादक -कुँवर वीर सिंह मार्तण्ड"[6] उपर्युक्त साहित्यिक पत्रिकाओं ने हिंदी साहित्य के प्रचार-प्रसार का कार्य नैतिक मूल्यों को अपनाते हुए किया है,इस में कोई संदेह नहीं। देश- विदेश में और भी अनेक साहित्यिक पत्रिकाएँ हैं जो आज भी हिंदी साहित्य प्रसार का कार्य अपनी -अपनी वैचारिक परंपरा के अनुसार कर रहीं हैं। कुछ ऐसे संपादक हैं जिन पर गुटबाजी का आरोप होता रहा है। फिर भी हिंदी साहित्य के प्रचार-प्रसार का उनका कार्य मूल्याधिष्ठीत है,इस सत्यता को हम नकार नहीं सकते। "व्यावसायी पत्रकारिता ने साहित्यिक पत्रकारिता के विरूदविरूद्ध सभी स्तर पर मोर्चा कायम किया था। तडक-भडक के साथ रंगीन चित्रों के बीच लेखकों की रचनाओं को छापना अच्छा पारिश्रमिक देना जो व्यवसायी मिशन में सहायक हो सके उससे अति विनम्रता से पेश आना समय-समय पर पत्रिका की ओर छोटे-छोटे सेमीनार करना जिसमें अपने वर्ग के लेखकों को बुलाकर उपकृत करना, महत्त्वपूर्ण बनाना आदि-आदि"[7] कहना उचित होगा कि व्यावसायी पत्रकारिता ने अपना रंग दिखाना शुरू किया है। गुटबाजी पत्रकारिता के विरोध में खडे रहने का विचार ही नैतिक मूल्यों के विकास में सहायक सिद्ध होगा। "समकलीन पत्रकारिता के एक हिस्से ने अपने को 'उपहार संस्कृति' के हवाले हो जाने दिया है। बल्कि आधुनिक सुख-सुविधाओं साधनों के आगे घुटने भी टेक दिए हैं। ऐसे पत्रकरों में भोग-लिप्सा और धन इकट्ठा करने की ललक बढती जा रही है। आचरण का ही यह दूसरा पक्ष है। हालत यहॉ तक पहुँच गई है कि 'उपहार' न मिलने पर कई तरह की खबरें खासकर वाणिज्य की खबरें छापी ही नहीं जाती।"[8] इस बात की सत्यता को स्वीकार करना होगा। हिंदी पत्रकारिता में अनेक विकृतियाँ नैतिक मूल्यों पर प्रहार कर रहीं हैं। जनोत्मुख पत्रकारिता का विकास होने के बावजूद भी यह स्थिति बदली नहीं।

स्वातंत्र्यपूर्व काल में हिंदी पत्रकारिता ने जिन नैतिक मूल्यों का विकास किया और जनमानस में अपना आदर्श निर्माण का कार्य किया आगे आजादी के बाद स्थिति बदलती गयी। हिंदी पत्रकारिता में स्पर्धा का आगमन हुआ। तीव्र स्पर्धा के कारण 'मूल्यों' को झुठलाया जाने लगा। इस भयावह स्थिति को हम नकार नहीं सकते। वर्तमान हिंदी पत्रकारिता का अध्ययन करने से पता चलता है कि आज भी अनेक पत्रकार,संपादक नैतिक मूल्यों के साथ हैं, जन-शिक्षा और आम जनता के प्रश्नों पर संघर्ष जारी रख रहें हैं। भले ही संख्या की दृष्टि से सच्चे पत्रकार, संपादक कम नजर आते होंगे लेकिन नैतिक मूल्यों का रक्षण तो हो रहा है। पत्रकारिता में अच्छी संभावनओं के बीज बोने का और नई चेतना निर्माण करने का कार्य नैतिक मूल्यों को अपनाकर करने से ही पत्रकारिता का खासकर हिंदी पत्रकारिता का भविष्य उज्वल होगा।

निष्कर्ष

हिंदी पत्रकारिता के वर्तमान परिप्रेक्ष्य का नैतिक मूल्यों को केंद्र में रखकर अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि हिंदी पत्रकारिता शुरू से नैतिक मूल्यों का पुरस्कार करती आयी है। महात्मा गांधीजी के सत्य, अहिंसा, प्रेम और सदभाव आदि नैतिक मूल्यों को केंद्र में रखकर अनेक पत्रकारों ने हिंदी पत्रकारिता को मौलिक परिवर्तन की दिशा में अग्रेसित किया। आज भले ही स्थिति गंभीर हो लेकिन हिंदी पत्रकारिता के माध्यम से विज्ञान, कला, साहित्य, दर्शन आदि सभी क्षेत्रों में नैतिक मूल्यों की स्थापना करने पर बल देनेवाले पत्रकारों की परंपरा अखंड है। हिंदी पत्रकारिता में नैतिक मूल्यों को आदर्शवादी और यथार्थवादी धारा एक साथ जुडने के कारण अधिकाधिक बल मिला, इसे नकारा नहीं जा सकता। साहित्य और पत्रकारिता दोनों नैतिक मूल्यों को मानवीय जीवन के लिए नितांत आवश्यक मानते है। हिंदी पत्रकारिता स्थाई मूल्यों पर जोर देती है। वर्तमान समाज और हिंदी पत्रकारिता का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि आज पूँजीवाद का प्रभाव पत्रकारिता पर हावी हो रहा है। अत: दिन-ब-दिन नैतिक मूल्यों को ह्रास हो रहा है। यह स्थिति भयावह है। अन्याय के खिलाफ खडे रहना,राष्ट्रप्रेम का नारा लगाना,धर्म निरपेक्ष समाज निर्माण के लिए कार्यरत रहना और संपूर्ण मानव कल्याण की बात छेडना हिंदी पत्रकारिता ने शुरू से अनुवार्य माना है। वर्तमान काल में भी अनेक पत्रकारों ने इस विचारधारा का स्वीकार किया है लेकिन पूँजीवादी शक्तियॉ अपने पूँजी नामक हथियार से सच्चे पत्रकारों को घायल कर रहीं हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल में भी पत्रकार प्रेमचंदजी ने हिंदी पत्रकारिता के माध्यम से नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिए कडा संघर्ष किया। प्रेमचंदजी चाहते थे कि देश के युवा सादा और सरल जीवन अपनाएँ। वैचारिक जीवन का स्वीकार करें। भारतीय चिंतन परंपरा को अपने मूलभूत विचारों के माध्यम से प्रेमचंद जैसे पत्रकारों ने आगे बढाया। हिंदी साहित्यिक पत्रकारिता का मुख्य: उद्देश्य नैतिक मूल्यों की स्थापना कर सामाजिक गुलामी को समाप्त करना रहा है, इसे मानना होगा। वर्तमान समय हिंदी पत्रकारिता के इतिहास के साथ जुडकर नैतिक मूल्यों का पुन:वैचारिक मंथन करने का समय है। अगर हम ऐसा नहीं करेंगे तो तमाम सुविधाओं,तकनीकी विकास के बावजूदा भी नैतिक मूल्यों के अभाव में हिंदी पत्रकारिता विश्व संतुष्ट नहीं रहेगा। नैतिक मूल्यों का रक्षण करना आवश्यक मानने वाले पत्रकार और उनकी पत्रकारिता कुछ अंशो तक आज भी जीवित है लेकिन सौ साल पहले जैसी नैतिकता अब हिंदी पत्रकारिता में दृष्टिगोचर नहीं होती है। इस सत्यता को हम नकार नहीं सकते। हिंदी पत्रकारिता का वर्तमान काल रचनात्मक लेखन का जरूर रहा है लेकिन व्यवसायिकता ने इस रचनात्मक लेखन प्रक्रिया को अपने चपेट में लिया है। मानवी तत्त्व दिन-ब-दिन कम होते जा रहें हैं। साहित्य और संस्कृति का पाठ पढाने वाली हिंदी पत्रकारिता आज 'विज्ञापनों'का पाठ पढा रहीं है। व्यवसायिकता के नाम पर नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है, मानवता के उपासक, देशभक्त और गंभीर अनुसंधानात्मक लेखन करनेवाले संपादक आज बहुत ही कम है। वेतन भोगी संपादकों की संख्या बढ रहीं है। इस बात को मानना होगा। समय के अनुसार पत्रकारिता को भी बदलना चाहिए लेकिन नैतिक मूल्यों का पतन कर होनेवाले बदलाव समाजविघातक मानने होंगे। मनुष्य का जीवन सआनंद करने हेतु वर्तमान हिंदी पत्रकारिता का प्रयास कम मात्रा में दृष्टिगोचर होता है। निष्ठापूर्वक काम करनेवाले पत्रकारों की संख्या दिन-ब-दिन कम होती नजर आ रही है। हिंदी पत्रकारिता और राजनीति का जुडना,भण्डफोड वृत्ति का विकास नैतिक मूल्यों की जगह आर्थिक मूल्यों का विकास, भ्रष्ट राजनीतिक चरित्रों के साथ लेन-देन वर्तमान काल में बढ रहीं है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता। वर्तमान हिंदी पत्रकारिता का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि आज भी अनेक पत्रकार अभिनंदनीय कार्य कर रहें हैं। अपना स्वतंत्र अस्तित्व निर्माण कर नैतिक मूल्यों के प्रचार-प्रसार में कार्यमग्न है। यह स्थिति निश्चित ही सुखदायक है। फिर भी व्यवसायी और साहित्यिक पत्रकारिता के बीच आज भी संघर्ष कायम है। वर्तमान में व्यावसायी पत्रकारिता ने अपना रंग दिखाना शुरू किया है। गुटबाजी पत्रकारिता के विरोध में खडे रहने का विचार ही नैतिक मूल्यों के विकास में सहायक सिद्ध होगा। हिंदी पत्रकारिता में अनेक विकृतियाँ नैतिक मूल्यों पर प्रहार कर रहीं हैं। जनोत्मुख पत्रकारिता का विकास होने के बावजूद भी यह स्थिति बदली नहीं।

स्वातंत्र्यपूर्व काल में हिंदी पत्रकारिता ने जिन नैतिक मूल्यों का विकास किया और जनमानस में अपना आदर्श निर्माण का कार्य किया आगे आजादी के बाद स्थिति बदलती गयी। हिंदी पत्रकारिता में स्पर्धा का आगमन हुआ। तीव्र स्पर्धा के कारण 'मूल्यों' को झुठलाया जाने लगा। इस भयावह स्थिति को हम नकार नहीं सकते। वर्तमान हिंदी पत्रकारिता का अध्ययन करने से पता चलता है कि आज भी अनेक पत्रकार,संपादक नैतिक मूल्यों के साथ हैं,जन-शिक्षा और आम जनता के प्रश्नों पर संघर्ष जारी रख रहें हैं। भले ही संख्या की दृष्टि से सच्चे पत्रकार,संपादक कम नजर आते होंगे लेकिन नैतिक मूल्यों का रक्षण तो हो रहा है। पत्रकारिता में अच्छी संभावनओं के बीज बोने का और नई चेतना निर्माण करने का कार्य नैतिक मूल्यों को अपनाकर करने से ही पत्रकारिता का खासकर हिंदी पत्रकारिता का भविष्य उज्वल होगा। वर्तमान काल में वैचारिक विवाद खडे करने से पहले अपने सामाजिक सरोकारों का हिंदी पत्रकारिता विचार करेगी तो निश्चित ही नैतिक मूल्यों की नई परंपरा का आरंभ होगा।

संदर्भ-निदेश

1. डॉ. मृदुला वर्मा–हिंदी की सर्वोदय पत्राकारिता,पृष्ठ 12,13।
2. संपा। प्रेमचंद–हंस अंक एक,मार्च 1930 पृष्ठ 65।
3. सविता चड्ढा–आजादी के पचास वर्ष और हिंदी पत्राकारिता, पृष्ठ 21।
4. डॉ. मृदुला वर्मा–हिंदी की सर्वोदय पत्राकारिता,पृष्ठ 192।
5. वहीं–पृष्ठ 193।
6. www-wikipedia-com
7. डॉ. ध्मेंद्र गुप्त–लघु पत्रिाकाएँ और साहित्यिक पत्राकारिता, पृष्ठ 120।
8. कृपाशंकर चौबे–पत्राकारिता के उत्तर–आधुनिक चरण, पृष्ठ 76।

कोविड-19 महामारी और भारत में प्रवासी संकट: एक विश्लेषण

The Covid-19 Pandemic and the Migrant Crises in India: An Analysis

वीना कुकरेजा[1]

सार

कोविड-19 ने भारत के लिए एक अभूतपूर्व चुनौती पेश की है। महामारी के सबसे महत्वपूर्ण और दृश्यगत परिणामों में से एक प्रवासी संकट की समस्या रही है। अनियोजित और अचानक किए गए लॉकडाउन के कारण प्रवासी श्रमिकों को अपने जीवन और आजीविका के संदर्भ में महामारी का सबसे बुरा प्रभाव झेलना पड़ा है। करोना वायरस महामारी के दौरान प्रवासी संकट की वजह से प्रवासी श्रमिकों और करोना वायरस के बीच हमें कई बहुपक्षीय व बहुस्तरीय संबंधों का पता चलता है। इस लेख के माध्यम से समकालीन भारतीय प्रवासी संकट का विश्लेषण विशेष रुप से प्रवासी श्रमिकों की गतिशीलता, सामाजिक सुरक्षा और स्वास्थ्य प्रबंधन के साथ-साथ सरकार द्वारा इनके हित में उठाए गए नीतिगत राहत उपायों के संदर्भ में किया गया है।

मुख्य शब्द/सूचक शब्द (Key Words): कोविड-19, महामारी, सामूहिक निरोधक क्षमता, अनौपचारिक क्षेत्र, स्वास्थ्य देखभाल, सामाजिक सुरक्षा, मानसिक स्वास्थ्य।

कोविड-19 महामारी इतिहास का सबसे बड़ा और भयंकर संकट रहा है क्योंकि यह त्रिस्तरीय संकट के रूप में हमारे समक्ष आया ख्र स्वास्थ्य, मानवता और आर्थिक संकट। अब तक इस महामारी ने राज्यों की सीमाओं को पार करते हुए कई महाद्वीपों में लाखों लोगों के जीवन को काल का ग्रास बना लिया है। यदि इस वर्तमान संकट को अतीत में घटित हो चुके संकटों के संदर्भ में देखा जाए ख्र उदाहरण के तौर पर जैसे कि वर्ष 1930 की आर्थिक महामंदी ख्र तो इस संकट ने मांग और आपूर्ति दोनों के समक्ष कई नए प्रकार के व्यवधान उत्पन्न कर दिए हैं। वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला व अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर कोविड-19 के प्रभाव को बहुत ही दृढ़ता से महसूस किया गया है। इसी संदर्भ में विभिन्न विद्वानों का भी कहना है कि इस महामारी नें श्रम बाजार की मांग में गिरावट लाने के साथ-साथ आपूर्ति श्रृंखला और श्रम बाजार को भी संकुचित कर दिया है। इस प्रकार के व्यवधान ने उत्पादन में श्रम को प्रभावित करने वाली श्रृंखला के निचले हिस्से में एक लहर पैदा कर दी है और जिसके परिणामस्वरूप गहरे झटके और ज्वलंत स्थिति उत्पन्न कर दी है (राजन व अन्य, 2020)।

भारत में महामारी पर राज्य की प्रतिक्रिया

State Response to the Pandemic in India

कोविड-19 महामारी वैश्विक स्तर पर एक बुरे स्वप्न का निर्माण किया, वैश्विक स्तर पर अनेक राष्ट्र-राज्यों ने कुछ कानूनी प्रतिक्रियाओं के माध्यम से इस वायरस के खिलाफ युद्ध शुरू करने, इसके प्रसार और प्रभाव को स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर रोकने के लिए जन स्वास्थ्य प्रबंधन (Public Health Management) पर विशेष ध्यान केंद्रित किया है। ब्रिटेन और सिंगापुर के विपरीत, भारत में कोविड-19 कानून लागू नहीं किया और इस करोना वायरस महामारी से निपटने के लिए आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 (Disaster Management Act 2005) और औपनिवेशिक महामारी आपदा अधिनियम 1897 (Colonial Epidemic Disaster Act 1897) का सहारा लिया।

इस वायरस के प्रसार और प्रभाव को रोकने के लिए भारत सरकार ने 25 मार्च, 2020 (4 घंटे के नोटिस के आधार पर) से देशव्यापी लॉकडाउन की तत्काल घोषणा कर दी और जोकि लगभग दो महीने तक जारी रही। यह विश्व में लागू किया गया सबसे बड़ा और सबसे कठोर लॉकडाउन था। इस दौरान बहुत से व्यवसाय बंद हो गए, वस्तुओं की आपूर्ति श्रृंखला बाधित हुई, रेल और अंतर-राज्य बस सेवा रोक दी गई, कई बार लॉकडाउन की समय सीमा को बढ़ाया गया और बहुत से अनुबंध निलंबित कर दिए गए जिसके चलते देश के संगठित और विशेष रुप से असंगठित क्षेत्र को अभूतपूर्व आर्थिक नुकसान उठाना पड़ा। असंगठित क्षेत्र में पूर्णरूप से रुकावट पैदा हो गई और विशेषरूप से उन लोगों को कोई सहायता नहीं दी गई जो इससे सबसे ज्यादा प्रभावित हुए, जबकि इस लॉकडाउन का मुख्य उद्देश्य कोविड-19 के प्रसार को रोकना था। (शुनमुगा सुंदरम, 2020)

इस महामारी से निपटने के लिए राज्य की प्रतिक्रियाओं में अनेक आंतरिक दरारे देखी जा सकते हैं और प्रवासी मजदूरों के संदर्भ में यह दरारे और भी गहरी देखी जा सकती है। कोविड-19 के संकट से निपटने में नीतिगत समस्या और विवादों की सीमा का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि इस

वायरस के प्रसार को समय रहते नहीं रोका गया। 'यह विचार की खतरा बाहर से है', इस आधार पर इस महामारी से सामना करने की रणनीति बनाई गई। (सामादार, 2020, बी.3)। इस रणनीति के संदर्भ में इस दृष्टिकोण में निहित उस विरोधाभास का पता चलता है जिसने भारत में 'प्रवासी संकट' (Migrant Crises) और 'सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट' (Public Health Crises) के निर्माण में योगदान दिया।

सबसे सख्त लॉकडाउनः अनौपचारिक श्रम पर युद्ध

The Most Stringent Lockdown% War on the Informal Labour

हर्ष मंडर और अमितांशु वर्मा के अनुसार, 'भारत ने दुनिया की सबसे छोटे राहत पैकेज के साथ सबसे कठोर लॉकडाउन को देखा'। इस लॉकडाउन से आ प्रवासी श्रमिकों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है (कपूर, 2020)। राज्य के द्वारा लगाए गए इस लॉकडाउन ने प्रवासी श्रमिकों को केवल विपत्तिपूर्ण कष्टों में छोड़ दिया। अर्थशास्त्री और विकास अध्ययन के प्रोफेसर बारबरा हैरिस वाइट ने लॉकडाउन को श्रमिकों के अस्तित्व के प्रति नीति निष्क्रियता के माध्यम से अनौपचारिक श्रम पर एक 'युद्ध की घोषणा' (Declaration of War) के रूप में दर्शाया है।

जैसा कि हम जानते हैं संपूर्ण लॉकडाउन के लिए अलगाव, सामाजिक दूरी और स्वच्छता की भी आवश्यकता होती है जोकि भारत की कई भीड़-भाड़ वाली मलिन बस्तियों में संभव नहीं है, जहां पर एक साथ पांच से दस लोग एक ही कमरे में रहने को मजबूर है। तो इनके बीच में कैसा अलगाव और कैसी सामाजिक दूरी? स्वच्छता के लिए, आपका बार-बार धोया जाना आवश्यक है और यह साफ पानी और साबुन के बिना कैसे संभव हो सकता है? इसी संदर्भ में अरुण कुमार का कहना है कि लॉकडाउन ने विशेष रूप से मध्यम वर्ग और उच्च मध्यम वर्ग (धनी लोगों) के लिए बेहतर था क्योंकि उनके पास घर से काम करने की सुविधाएं थी और यह सुविधा गरीब लोगों के लिए असंभव थी, जब तक कि राज्य द्वारा इस दिशा में कोई सकारात्मक प्रयास नहीं किया जाता। गरीब, श्रमिक व मजदूर वर्ग के लिए निशुल्क कोविड-19 परीक्षण और अस्पताल में भर्ती के साथ-साथ जीवन के आवश्यक संसाधनों का प्रावधान करते हुए इनके लिए स्वच्छ जल का प्रबंध भी किया जाना चाहिए। जहां इस लॉकडाउन को पूर्ण तरीके से क्रियान्वित किया जाना था वहां केवल इसे आंशिक रूप से लागू किया गया, जिसके चलते यह महामारी व्यापक रूप से देश के कई भागों मे शहरी क्षेत्रों से ग्रामीण क्षेत्रों तक फैल गई (कुमार 2020: 7)।

इसमें लोगों का भारी संख्या में शहरों से अपने ग्रामीण क्षेत्रों की तरफ पलायन देखा जा सकता है, जिसमें अदृश्य (गरीब, श्रमिक, मजदूर और हाशिए पर स्थित कामगार वर्ग) भी दृश्यवान हो गया। भारत सरकार के आंकड़े उस वास्तविक स्थिति का विवरण नहीं देते जिसमें प्रवासी मजदूरों का बहुत बड़ी संख्या में पलायन या विस्थापन हुआ है। भारत सरकार के आर्थिक सर्वेक्षण 2017-18 में इस विस्थापन और प्रवासन को लेकर कुछ आंकड़े दिए गए हैं जिसमें कहा गया है कि यदि वर्ष 2011 की जनगणना के दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह प्रवासन 450 मिलियन था, जोकि देश के विभिन्न हिस्सों (अविकसित से विकसित क्षेत्रों की ओर) में हुआ, इसमें अल्पकालीन प्रवासन को छोड़ दिया गया था। वर्ष 2011 से 2016 के बीच भारतीय रेलवे के आंकड़ों और जत्थो या कारवां पर आधारित प्रवासन संबंधित आंकड़ों का उपयोग करते हुए, भारत के आर्थिक सर्वेक्षण (आर्थिक सर्वेक्षण 2017-2018) में गणना की गई है की इस महामारी के दौरान राज्यों के बीच प्रवास करने वाले लगभग 9 लाख लोगों का वार्षिक औसत प्रभाव अधिक देखा गया है।

प्रवासन कोई नई घटना नहीं है, यदि नए प्रवासन और पुरानी प्रवासन के मध्य अंतर देखा जाए तो यह कहा जा सकता है की एक तरफ, यह प्रवासन दयनीय रसद (Unobtrusive Logistic) के साथ किया गया प्रवासन था। तो वहीं दूसरी तरफ, इस संकट की घड़ी में परिवार सहित सुरक्षित घर लौटने की अनिवार्यता भी थी। शहरों के संसाधन इस बार इन प्रवासियों की कोई मदद नहीं कर पाए जिसने एक प्रकार से शहरों की जर्जर और असमान वितरणात्मक व्यवस्था को उजागर किया – विशेष रूप से स्वास्थ्य, शिक्षा, मजदूरी और कल्याणकारी योजनाओं के संदर्भ में – और अर्थव्यवस्था में विपरीत प्रवसन (Reverse Migration) को बढ़ावा दिया। यह प्रवसन भारतीय इतिहास में आज तक के सबसे बड़े प्रवसन के रूप में सामने आया। अमिताभ कुंडू और मोहनन (2017) के अनुमान अनुसार, इस प्रवसन ने 12 लाख लोगों को अस्थिर किया और 22 लाख लोग अपने-अपने घरों को मजबूर होकर लौट गए। अन्य स्रोतों के अनुसार, इस महामारी के दौरान लगभग 20 लाख लोग या 15 से 20 प्रतिशत के लगभग कुल प्रवासी विस्थापित हुए हैं। अनौपचारिक क्षेत्रों में कार्यरत 93 प्रतिशत प्रवासियों को रोजगार का नुकसान हुआ है। भारत के औद्योगिक आंकड़ों के अनुसार, भारत के 470 लाख श्रमिकों में से लगभग 80 प्रतिशत असंगठित क्षेत्रों में आज कार्यरत है जिसमें मुख्य रुप से रिक्शा चलाना, सब्जी बेचना, भवन या मॉल निर्माण में कार्यरत मजदूर, गृह कार्य में हाथ बटाने वाले घरेलू नौकर इत्यादि। असंगठित क्षेत्रों में कार्य कर रहे श्रमिकों ने अर्थव्यवस्था के पहिए को चालू रखने में हमेशा अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस महामारी के विषाणु को रोकने के लिए देशव्यापी स्तर पर हुए लॉकडाउन ने भूख, बेघर और अप्रत्याशित दुखो से घिरी हुई एक दयनीय स्थिति की और प्रवासी श्रम को फिर से धकेल दिया है। अप्रैल 2020 के मध्य में प्रवासी कामगार एक्शन नेटवर्क (Migrant Workers Action Network) के द्वारा कराए गए सर्वेक्षण (1,11,159 प्रवासी मजदूरों के नमूनों के सर्वेक्षण के आधार पर) के अनुसार इस दौरान 90 प्रतिशत लोगों को उनकी उचित मजदूरी तक नहीं दी गई, 96 प्रतिशत लोगों को सरकारी विभागों से राशन तक प्राप्त नहीं हुआ और 70 प्रतिशत लोगों को पका हुआ भोजन भी इस लॉकडाउन के दौरान प्राप्त नहीं हो सका (द हिंदू, 20 अप्रैल, 2020)।

इस लॉकडाउन की वजह से प्रवासी श्रमिकों को अलगाव, असुरक्षा और अपमानजनक जैसी स्थिति पर धकेल दिया। देशव्यापी लॉकडाउन के प्रारंभिक दिनों में देश ने मानवीय और स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियों के साथ-साथ एक अभूतपूर्व पलायन शहरों से गांव की ओर (प्रवासी श्रमिकों का) देखा। अदृश्य प्रवासी श्रमिक अचानक देश की मीडिया में दृश्यमान होने लगे।

अदृश्य प्रवासी श्रमिक अचानक रातोरात जोकि काम से वंचित हो गए थे, पूरे परिवार सहित भूख और स्वास्थ्य सुरक्षा को दांव पर लगाकर सुरक्षित आश्रय की तलाश में अपने-अपने गांव की ओर प्रस्थान कर रहे थे। अपने परिवार के साथ भीषण गर्मी में बहुत लंबी दूरी को तय करते हुए पुरुष अपने बच्चों को

कंधे पर लिए हुए थे और महिलाएं अपने सामान को अपने सर पर ढोते हुए, बिना भोजन के और पुलिस के रोब का भाजन बनते हुए बिना आराम लिए अविराम चलते जा रहे थे (सिंह व अन्य 2020: 2)। कई प्रवासी श्रमिक रास्तों में हताहत भी हुए। इसके साथ ही इसने भारतीय अर्थव्यवस्था में श्रम उद्योग में भूख को उजागर करते हुए उनके डिकेंसियन (चार्ल्स डिकेंस के उपन्यासों जैसा जिसमें विशेष रुप से सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों की गरीबी को दिखाया गया है) काम करने की स्थिति पर प्रकाश डाला (कुमार, 2020; लाल, 2020)। बहुत सारी रिपोर्टों में यह भी दिखाया गया कि किस प्रकार अवैतनिक श्रमिक आज भी श्रम कानूनों के दायरे से बाहर है? उन्हें कोई सामाजिक सुरक्षा का दायरा प्राप्त नहीं है। (चौधरी व अन्य, 2020; बेल्स, 2020)।

उपरोक्त संदर्भ में रणबीर सामादार कहते हैं, कि राज्य के लिए प्रवासी श्रमिक समाज को संगठित करने का कार्य एक बुरे स्वप्न के जैसा था। प्रवासी श्रमिकों का समाज में तार्किक पुनर्गठन का कार्यक्रम केवल एक बुरे स्वप्न की भांति है और यह सत्य, भारत का भी सत्य है। तर्कशील संगठित समाज का अर्थ था बंद अर्थात आधुनिक अर्थव्यवस्था को बंद करना, राज्यों की सीमाओं को बंद करना और सामुदायिक जीवन को बंद करना। जीवन की अर्थव्यवस्था को सीमाओं तक बाधित कर राज्य ने लोगों का क्षरण करना शुरू किया और इसे एक अपरिहार्य गतिविधि में बदल दिया। रणबीर सामादार का मानना हैं, कि हम इस दृश्यता (जो कुछ इस महामारी के फलस्वरुप दृष्टिगोचर हुआ सामाजिक आर्थिक जीवन में) की एकरूपता, इसकी अर्थव्यवस्था में उपस्थिति और औपचारिक क्षेत्र में इसकी अनुपस्थिति को कैसे समझते हैं? (समाचार 2020 ए: 14-15)।

संक्षेप में, इस दौरान बड़े पैमाने पर हुए विपरीत प्रवसन (Reverse Migration) ने एक पैडोंरा बॉक्स (यूनानी पौराणिक कथाओं के अनुसार, वह पहली महिला जो परेशानियों और दुखो से भरे बक्से के साथ दंडस्वरूप मनुष्य को मिली और यहीं से इंसान की परेशानियां शुरूआत हुई) को खोल दिया है और यह देखने पर मजबूर किया कि किस प्रकार भारतीय आर्थिक विकास में श्रम को देखा जाता है? जैसा कि इंदिरा हिरवे और नेहा शाह ने अपने लेख में टिप्पणी की है कि उदारवादी नीतियों में श्रम शायद ही कहीं आता है। उदारवादी नीतियां सीधे तौर पर श्रम और रोजगार को इस अर्थ में प्रत्यक्ष रूप से कभी संबोधित नहीं करती की ये कारक उनके लिए महत्वपूर्ण भी है। इसके बजाय इस श्रम को लाभ की पूर्ति हेतु बाजार के कामकाज के तौर-तरीकों से कम आकंने की कोशिश की जाती है। (हिरवे और शाह, 2011)। इसी प्रकार, यह भी एक सच है कि श्रम पर नव-उदारवादी शासन का प्रतिकूल प्रभाव सक्रिय ध्यान प्राप्त करने में धीमा, अपर्याप्त और अप्रभावी है।

शासक वर्ग श्रम के लिए गरिमामय जीवन के अधिकार की उपेक्षा करते हैं और अक्सर यह तर्क दिया करते हैं कि कई श्रमिकों की भौतिक स्थितियों में मामूली सुधार भी पर्याप्त होता है। वह कहते हैं कि मजदूरों को इस मामले में सामान आर्थिक व्यवस्था का आभारी होना चाहिए। सत्तारूढ़ आर्थिक विचारधारा में उनकी हिस्सेदारी एजेंडे में अधिक नहीं है। नतीजतन, ना तो राज्य और ना ही व्यवसाय जगत श्रमिकों को उनके उचित अधिकार प्रदान करते हैं। उदाहरण के तौर पर, बड़ी संख्या में कार्यस्थल पर न्यूनतम मजदूरी या फिर सामाजिक सुरक्षा या सुरक्षात्मक उपाय भी उन्हें उपलब्ध नहीं होते हैं। यदि पिछले 75 वर्षों के दौरान और विशेषरूप से 1991 के पश्चात हुए विकास पर यदि गौर किया जाए तो बहुत से व्यवसायों पर कुछ-एक लोगों का एकाधिकार स्थापित हो गया है और इन्होंने ना केवल सफेद बल्कि काले में भी बहुत धन अर्जित किया है (कुमार, 2020)।

सामाजिक सुरक्षा तंत्र का अभाव

Absence of Social Protection Mechanism

सामाजिक सुरक्षा तंत्र से अनौपचारिक श्रमिकों का बहिष्कार उनकी कमजोरियों और परेशानियों को और बढ़ाता है। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के एक अनुमान के अनुसार, सामाजिक सुरक्षा प्रावधानों तक पहुंच के मामले में भारत की आबादी एशिया और प्रशांत क्षेत्र में सबसे कमजोर है। भारत में प्रवासी श्रमिक सामाजिक सुरक्षा के दायरे से ज्यादा लाभान्वित नहीं है क्योंकि ग्रामीण शहरी प्रवासियों में से अधिकांश मुख्य रूप से आकस्मिक वेतन पर या अनौपचारिक क्षेत्र में स्व-कार्यरत है। भारत में विभिन्न राज्यों के बीच सामाजिक सुरक्षा समन्वय की कमी दिखाई देती है हालांकि कभी-कभी स्रोत और गंतव्य तो दिखाई देते हैं परन्तु अधिकांशत: श्रम बाजार में प्रवासन की प्रकृति अदृश्य ही होती है (राजन व अन्य, 2020)।

महामारी की चुनौती कई सारी समस्याओं के साथ देखने को मिली, विशेषरुप से महामारी के प्रसार और श्रम अधिकारों के ह्रास के रूप में। बिना किसी पूर्व निर्धारित योजना के अचानक ही और अनियोजित तरीके से लॉकडाउन के पश्चात असुरक्षा व अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गई। इसी संदर्भ में एक विद्वान (रणबीर सामादार) का भी तर्क था कि राज्य की लापरवाही के कारण स्थिति और ज्यादा खराब हो चुकी है और अपने घरों की ओर लौटते हुए प्रवासियों के प्रति उदासीनता और जीनोफोबिया (ऐसा व्यवहार जिसमें विदेशी अथवा अन्य प्रकार के लोगों को पसंद नहीं किया जाता) का रवैया भी इसके लिए एक जिम्मेदार कारण रहा है (सामादार 2020: भी:20)। कोई भी व्यक्ति तीन स्तरों पर श्रमिक प्रवासियों के संकट का अवलोकन कर सकता है जैसे गंतव्य (Destination), पारगमन (Transit) और स्रोतों (Source) के आधार पर। श्रम प्रवासियों की सुरक्षा और गरिमा को सुनिश्चित करने के लिए उपरोक्त तीनों क्षेत्रों में उचित नीतिगत प्रक्रियाओं की आवश्यकता है, सरकार ने श्रम प्रवासियों के लिए मुफ्त आवास, मजदूरी का भुगतान और सार्वजनिक वितरण प्रणाली के जरिए कानूनी अधिकारों का उपयोग इनके हित में सुनिश्चित नहीं किया। इसी प्रकार उनके लिए सुचारू और सुरक्षित परिवहन व्यवस्था को भी सुनिश्चित करने हेतु कोई नीति नहीं अपनाई गई। श्रमिकों का अनिवार्य पंजीकरण नहीं किया गया ताकि आपदा के समय में उनको आवश्यक मदद पहुंचाई जा सके (वही)।

केंद्र सरकार ने 9 अप्रैल 2020 को घोषणा की कि 20 लाख पंजीकृत श्रमिकों को 3000 करोड़ रुपए वितरित किए गए थे। इसके अतिरिक्त सरकार प्रवासी श्रमिकों को मुफ्त खाद्यान्न और किसानों को रियायती ऋण देने की भी घोषणा की। (टाइम्स ऑफ इंडिया 10 अप्रैल 2020, द हिंदू 10 अप्रैल, 2020) तत्कालीन वित्त मंत्री ने की घोषणा की कि आठ करोड़ प्रवासियों को 2 महीने के लिए 5 किलोग्राम अनाज और 1 किलोग्राम दाल मुफ्त मिलेगी (नवंबर 2020 तक)।

हालांकि, सरकार द्वारा प्रवासी श्रमिकों की समस्याओं को हल करने के लिए सरकार द्वारा टुकड़ों में नियोजित उपागम (Piecemeal Approach) का पता चलता है। बड़ी संख्या में निर्माण श्रमिक प्रवासियों की श्रेणी में आते हैं और कई प्रवासी श्रमिकों की तरह वह भी पंजीकृत नहीं है और इस तरह सरकार द्वारा दी जाने वाली नकद हस्तांतरण योजना से वह वंचित रहे। हाल ही में सरकार द्वारा राशन कार्ड पाने वाले 8 लाख लोगों के लिए 3 महीने तक मुफ्त राशन देने की घोषणा की गई, लेकिन प्रवासी श्रमिकों के पास उनके राशन कार्ड उनके गृह राज्यों में रखे हुए थे और जब इस महामारी के दौरान उनको अपने कार्य स्थलों में भोजन की आवश्यकता थी तब वह इस से वंचित रह गए। इस प्रकार, नकद वितरण और सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System) तक पहुंच का लाभ लेने के लिए फंसे हुए प्रवासी श्रमिकों को अपने कार्यस्थल से बाहर निकल कर सड़कों पर आना पड़ा ताकि इस महामारी के दौरान वह अपने-अपने घरों को लौट सके।

वर्तमान श्रम कानूनों के मौजूदा टुकडे जैसे अनुबंध श्रम विनियमन और उन्मूलन अधिनियम 1970 (Contract Labour Regulation and Abolition Act 1970), अंतर-राज्य प्रवासी श्रमिक अधिनियम 1979 (Inter&State Migrant Worker Act 1979), राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 (The National Disaster Management Act 2005), श्रम संहिता 2019 (The Labour Code-2019) केवल कागजी शेर साबित हुए हैं और वर्तमान संकट का सामना करने मैं इनकी कोई प्रसंगिकता नहीं है। प्रवासियों को शहरी केंद्रों से बाहर फेंक दिया गया और यह प्रवासी श्रम के संबंध में भारतीय राज्य के निष्क्रिय भूमिका को उजागर करता है (सेन, 2020: 3-4)। यह सभी हालात यही प्रकट करते हैं कि पूंजीपति और शासक वर्ग के बीच घनिष्ठ गठजोड़ है जोकि बड़े पूंजीपतियों के हितों की रक्षा के लिए अधिकारिक नीतियों में दर्शाया गया है।

अब कोविड-19 के संदर्भ का इस्तेमाल कर कामगारों के अधिकारों को और सीमित किया गया है। इससे भी अधिक क्रूर विरोधाभास यह रहा कि प्रवासी श्रमिकों के श्रम अधिकारों की अनुचित उपेक्षा से शर्मिंदा होने के बजाय कई राज्य सरकारों ने वर्तमान में प्रदान किए जाने वाले कमजोर सुरक्षात्मक उपायों को और अधिक कमजोर करने के लिए महामारी का उपयोग करने की कोशिश की (मंडेर और वर्मा 2020: 6; सूद पारितोष, 2020)। उत्तर प्रदेश मध्य प्रदेश और गुजरात के साथ ही कम से कम 14 श्रम कानूनों को जिसमें न्यूनतम आय अधिनियम और औद्योगिक विवाद अधिनियम को 3 साल के लिए बर्खास्त (मुअत्तल) कर दिया गया ताकि अधिक पूंजी और आर्थिक गतिविधियों को पुनर्जीवित किया जा सके।

इससे पहले कि संसद द्वारा इस नए कानून को पारित किया जाता उससे पहले ही कुछ राज्यों ने जैसे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और गुजरात ने मौजूदा श्रम कानूनों को निलंबित कर दिया और नियोक्ता को अपने संबंधित व्यवसाय को मुक्त रूप से चलाने की अनुमति दे दी गई। अब मजदूरों को अब 12 घंटे कार्य करने के लिए मजबूर किया जाएगा और सप्ताह में 6 दिन फैक्ट्री अधिनियम 1948 के तहत प्रावधानों का पालन करते हुए, अब अतिरिक्त घंटों के लिए सामान्य दर की दुगनी दर से अतिरिक्त भुगतान करने के लिए कहा गया है। इसे आगे बढ़ते हुए, कमजोर और असुरक्षित मजदूरों को श्रम अधिकार संरक्षण से अलग किया गया जिसे शाह और लार्शे ने श्अति शोषणश (Super Exploitation) के रूप में अंकित किया है (शाह और लार्शे, 2020)।

प्रवासी श्रमिक और स्वास्थ्य प्रबंधन संकट

Migrant Workers and Health Management Crises

लॉकडाउन के दौरान प्रवासी श्रमिक महामारी और स्वास्थ्य प्रबंधन संबंधी संकट से सबसे ज्यादा पीड़ित रहे। महामारी ने प्रवासी श्रमिकों को भय, असुरक्षा, चिंता, कलंक और अवसाद के संयोजन की चपेट में ले लिया है। कोरोनावायरस ने प्रवासी श्रमिकों की मौजूदा स्थिति को और ज्वलंत बना दिया है। लॉकडाउन के दौरान प्रवासी श्रमिकों को उन स्थानों पर सार्वजनिक स्वास्थ्य के बुनियादी ढांचे से कोई समर्थन नहीं मिला जहां पर वह कार्य कर रहे थे या जब वह अपने 'घर' पहुंच गए थे। उनके साथ ऐसा व्यवहार किया गया जैसे वे श्जनताश से ताल्लुक ही ना रखते हो। वे स्वास्थ्य बीमा न्यूनतम चिकित्सा सहायता कार्ड और सामाजिक सुरक्षा कार्ड या फिर कल्याणकारी उपायों से वंचित थे (सामादर 2020, b: 8)। भारत में मजबूत सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली (Strong Public Health System) और जन स्वास्थ्य आपातकाल (Public Health Emergency) कानून की अनुपस्थिति के परिणामस्वरूप समन्वय और संचार विफलताओं के साथ देखा गया जिसने बड़े पैमाने पर मजदूरों को विस्थापन को प्रेरित किया (डसूजा, 2020)।

मनोविज्ञान और मानसिक स्वास्थ्य पर कोविड-19 का प्रभाव विविध और जटिल रहा है। इसके अतिरिक्त, प्रवासी गतिशीलता को सही ढंग से नहीं संभालनां, पुलिस की आक्रामकता, अधिकारियों के हाथों दुर्व्यवहार, परिवहन में देरी और प्रवासियों को बलि का बकरा बनाए जाने के कारण प्रवासी श्रमिकों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ उनका विश्वास भी कम हुआ है (राजन व अन्य, 2020)। देखा जाए तो कोविड-19 महामारी एक महान तुल्यकारक/समतामूलक भी रही है और इसने प्रत्येक व्यक्ति पर चाहे वह किसी भी जाति, वर्ग, लिंग, आयु, क्षमता, धर्म और क्षेत्र का ही क्यों ना हो सबको बराबर प्रभावित किया है। हालांकि, प्रवासी मजदूरों को बीमारी का वाहक माना गया और प्रवासी शरीर को निष्कासन की नई चुनौती का सामना करने के साथ-साथ कलंकित सामाजिक बहिष्कार रूपी निगरानी तंत्र को उन पर लागू किया गया (डे, 2020: 103)।

इस उतार-चढ़ाव के समय में, मानवता और मानवीय संवेदनशीलता का 'भय' के दायरे के साथ समझौता किया जा रहा है... और यह भय इस बात से विदित होता है कि अंतर सामुदायिक संबंधों पर सरकारी अधिकारियों द्वारा उभरते सामाजिक तनावो पर रसायनिक छिडकाव का किया गया (झा और पंकज, 2020: 61)।

जीवन बनाम आजीविका बहस

Life and Livelihood Debate

भारत में श्जीवन बनाम आजीविकाश के बहस चली, सरकार ने पहले घोषणा की कि जीवन को आजीविका पर प्राथमिकता दी जाएगी जो कुछ समय पश्चात जीवन और आजीविका को दिए जाने वाले सामान महत्त्व में बदल गई (लाइवमिटं 11, अप्रैल, 2020)। मई माह के मध्य तक केंद्र सरकार आर्थिक गतिविधियों को फिर से शुरू करने की इच्छुक थी, जबकि विभिन्न राज्यों के मुख्यमंत्रियों की इस पर मिश्रित प्रतिक्रियाएं थी (शर्मा, 2020)। बाजार के दबाव में लॉकडाउन को हटाया जाना, जीवन और आजीविका के बीच व्यापार के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। इस दौरान यह भी कहा गया कि बिना काम और आय के बहुत सारे मजदूर भूख से मर सकते हैं (यादव, 2020)। इसी दौरान 'झुंड प्रतिरक्षा' या 'सामूहिक निरोधक क्षमता' (Herd Immunity) के विचार की तस्करी की गई। 'सामूहिक निरोधक क्षमता' के लिए यह तर्क दिया गया कि बहुत संख्या के द्वारा इस समूहिक रोग निरोधक क्षमता को विकसित किया जाना अतिआवश्यक होगा। इसके साथ ही यह भी दलील दी गई कि सामूहिक निरोधक क्षमता को विकसित किया जाना ही एकमात्र तरीका होगा जिसके माध्यम से इस महामारी से सामना किया जा सकता है। यह प्रतिरक्षा तंत्र अपने निर्माण की प्रक्रिया में कुछ लोगों की मृत्यु को भी शामिल कर सकता है। ये मौतें नहीं टाली नहीं जा सकती, इसलिए यह सस्ती (झुंड प्रतिरक्षा) है (सामाचार, 2020 भी:10 -11)। इस सस्ती 'झुंड प्रतिरक्षा' को इसाबेल फ्रे द्वारा 'महामारी विज्ञान के नव-उदारवाद' (Epidemiological Neo-Liberalism) के रूप में चित्रित किया गया है क्योंकि यह इस धारणा पर निर्भर करता है इस महामारी से तभी बाहर आया जा सकता है जब इसे अनियंत्रित छोड़ दिया जाए (फ्रे, 2020)

निष्कर्ष

Conclusion

कोरोनावायरस संकट ने प्रवासी श्रमिकों पर बहुपक्षीय रूप से प्रतिकूल प्रभाव डाला है। प्रवासी संकट ने भारत में महामारी की नैतिक और राजनीतिक प्रतिक्रियाओं को भी उजागर किया है, विशेष रूप से प्रवासी श्रमिकों के संदर्भ में। इसने नव-उदारवादी अर्थव्यवस्था में श्रम के क्षेत्र और सामाजिक न्याय के मुद्दों को भी उठाया है। निकट भविष्य में प्रवासन के मुद्दे के बेहतर प्रबंधन के लिए और महामारी से निपटने के लिए एक वैकल्पिक समावेशी और प्रवासी श्रम केंद्रित नीतियों को पुनर्जीवित और पुनर्गठित किया जाना आज बहुत आवश्यक है।

संदर्भ (Refrences):

- Bales, Kevlin, (2020), 'COVID-19: Ensure Labour Laws benefit both Workers and Economy', *Financial Express,* August 3. https://www.financialexpress.com/opinion/covid-19-ensure- labour- laws-benefit-both-workers-and-economy/2042741/Accessed on: 20 September, 2020.
- Chaudhary, Monika, P. R. Sodani, and Shankar Das, (2020), 'Effect of COVID-19 on Economy in India: Some Reflections for Policy and Programme', *Journal of Health Management,* Vol.22, No.2, pp.169-180.
- https://journals.sagepub.com/doi/pdf/10.1177/0972063420935541Accessed on: 10 September, 2020.
- D'souza, Kim, (2020), 'India's Kept Improvising During Coronavirus: Age of Pandemic Needs a New Public Health Law', *The Print*, 12 July,2020. https://theprint.in/opinion/india-kept-improvising-during-coronavirus-age-of-pandemics-needs-a-new-public-health-law/459122/ Accessed on: 14 July, 2020.
- Economic Survey of India, (2017), Ministry of Finance, Government of India https://www.indiabudget.gov.in/budget2017-2018/survey.asp
- Frey, Isabel, (2020), 'Herd Immunity is Epidemiological Neoliberalism', *The Quarantimes: Life and Politics in the Times of Corona-Pandemic*, 19
- Hirway, Indira and Neha Shah, (2011), 'Labour and Employment under Globalisation: The Case of Gujarat', *Economic and Political Weekly*, Vol.46, No.22, pp.57-65.
- Jha, Manish K and Ajeet Kumar Pankaj, (2020), (2020a), *Borders of An Epidemic: COVID-19 and Migrant Workers*, Kolkata: Calcutta Research Group, 2020.
- Kapoor, Radhicka, (2020), 'The Unequal Effects of the Covid-19 Crisis on Labour Market', *The India Forum,* August 7. https://www.theindiaforum.in/article/unequal-effects-covid-19-crisis- labour-market Accessed on: 10 August, 2020.
- Kumar, Arun, (2020), 'The Pandemic in Changing the Face of Indian Labour', *The Wire,* May 9. https://thewire.in/economy/covid-19-pandemic-indian-labour Accessed on: 15 May, 2020.
- Kundu, Amitabh and Mohanan, P.C., (2017), 'Internal Migration in India: A very Moving Story', *Economic Times,* April 11. https://economictimes.indiatimes.com/blogs/etcommentary/internal- migration-in-india-a-very-moving-story/ Accessed on: 15 April, 2020.
- Lal, Neeta, (2020), 'The Pandemic Revealed India's Invisible Workforce', *The Diplomat,* June 5. https://thediplomat.com/2020/06/the-pandemic-revealed-indias-invisible-workforce/ Accessed on: 10 June, 2020.
- Mander, Harsh and Amitanshu Verma, (2020), 'The Corona Virus Lockdown has been a War on India's Informal Labour', *The Wire,* Aug 22. https://thewire.in/labour/coronavirus-lockdown-informal-labourAccessed on: 25 August, 2020.
- Rajan, S. Irudaya, P. Sivakumar and Aditya Srinivasan, (2020), The COVID-19 Pandemic and Internal Labour Migration in India: A 'Crisis Mobility', *The Indian Journal of Economics,* November, https://doi.org/10.1007/s41027-020-00293-8 Accessed on: 5 December, 2020.
- Samaddar, Ranbir (ed.), (2020a), *Borders of An Epidemic: COVID-19 and Migrant Workers*, Kolkata: Calcutta Research Group, 2020.

- Samaddar, Ranbir (ed.), (2020b), *Burdens of An Epidemic: A Policy Perspective on COVID-19 and Migrant Workers*, Calcutta: ACPG Publication.
- Sen, Sunanda, (2020), 'Rethinking Migration and the Informal Indian Economy in the Time of a Pandemic', *The Wire,* June1. https://thewire.in/economy/rethinkingmigration-and-the-informal-indian-economy-in-the-time-of-a-pandemic Accessed on: 10 June, 2020.
- Shah, Alpa and Jens Lerche, (2020), 'The Five Truths about the Migrant Workers' Crisis', *Hindustan Times,* July, 13.
- https://www.hindustantimes.com/analysis/the-five-truths-about-the-migrant-workers-crisis-opinion/story awTQUm2gnJx72UWbdPa5OM.html Accessed on: 20 July, 2020.
- Sharma, Yogima Seth, (2020b), 'Unemployment Rate Falls to pre- Lockdown Level: CMIE', *The Economic Times,* June 24. https://economictimes.indiatimes.com/news/economy/indicators/unemployment-rate-falls-to-pre-lockdown-level-cmie/articleshow/76528571.cms Accessed on: 27 June, 2020.
- Shunmugasundaram, Manuraj, (2020), 'India needs to enact a COVID-19 Law', *The Hindu,* May 8. https://www.thehindu.com/opinion/lead/india-needs-to-enact-a-covid-19-law/article31529036.ece Accessed on: 12 May, 2020.
- Singh, S.K., Patel, Vibhuti, Aditi Chaudhary and Nandlal Mishra, (2020), 'Reverse Migration of Labourers Amidst COVID-19', *Economic and Politically Weekly,* Vol.55, Issue No.32-33, Aug 8.
- Sood, Atul and Paaritosh Nath, (2020), 'Innocuous Mistakes or Sleight of Hand'?: Labour Law Changes, *Economic and Political Weekly,* Vol. 55, Issue No.22, May 30.
- Yadav, Yogendra, (2020), 'No matter how you look at it, India's lockdown- 2 can cost as many lives as it will save'*The Print,* 15 May, 2020, https://theprint.in/opinion/indias-lockdown-2-can-cost-as-many-lives-as-it-saves/402269/ Accessed on: 16 May 2020.

Footnotes

1 प्रोफेसर वीना कुकरेजा राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय में विभागाध्यक्ष पद पर कार्यरत है।

• यह लेख मुख्य रूप से लेखक द्वारा दिए गए आधार व्याख्यान (ज्ञमलदवजम ।ककतमे) का संशोधित स्वरूप है, जिसे एक व्याख्यान के दौरान प्रस्तुत किया था। यह व्याख्यान संयुक्त रूप से राजनीति विज्ञान विभाग, देशबंधु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय और महानिर्बन कोलकाता शोध समूह द्वारा 15 ख्र16 सितंबर 2020 को आयोजित किया गया।

वैश्वीकरण में शैक्षिक प्रबन्धन और कम्प्यूटर का अनुप्रयोग

डॉ० सन्तोष कुमार सिंह

राई०वीगो, कादीपुर, सुल्तानपुर, उ०प्र०

वैश्विकरण में शैक्षिक प्रबंधन

संस्था के प्रबन्धन का कार्य प्रबन्ध समिति एवं प्रधानाचार्य संयुक्त रूप से करते है। इनमें से किसी एक में या कमी-कमी दोनों में परिवर्तन हो जाता है या शिक्षक का स्थानान्तरण होने के कारण नई परिस्थितियों में कार्य करना पड़ता है।

इस प्रबन्धन में बदली परिस्थिति अभिग्रहण और अनुकूलन का प्रशिक्षण दिया जाता है जिससे शिक्षक एवं प्रधानाचार्य इन परिस्थितियाँ में सम रहकर छात्रों के भली भांति शैक्षणिक विकास में निरन्तता बनाऐ रखें।

परिवर्तन के कारण गुणवत्ता में गिरावट न आऐ अपितु उसकी उत्कृष्टता उर्द्धवगामी हो। इसमें मानव संसाधनों के उत्कृष्ट उपयोग का प्रबन्धन करना बताया जाता है।

इस वैश्वीकरण के काल में निरन्तर प्रतियोगिता के कारण अन्य राष्ट्र, राज्यों की शिक्षा को सम्मिलित करना व शैक्षिक व्यवस्था में परिवर्तन करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है जिसका प्रभाव राष्ट्र से लेकर ग्रामीण शैक्षिक व्यवस्था तक परिवर्तन के रूप में होता है। अत: इस का अभिग्रहण और अनुकूलन का प्रबन्धन भी आवश्यक हो जाता है।

शिक्षा का समाजिक सन्दर्भ

शिक्षा का समाज से बहुत गहरा सम्बन्ध है। समाज की आवश्यकतानुसार शिक्षा दी जानी चाहिए। शिक्षा के सामाजिक सन्दर्भ के अन्तर्गत सर्वप्रथम हम समाज की आवश्यकताएं क्या है और वातावरण कैसा है इसका आकलन करते है। तत्पश्चात उसके अनुरूप शिक्षा प्रदान की जाती है। वैदिक काल में शिक्षा धर्म पर आधारित थी। मुगल काल की शिक्षा इस्लाम धर्म तथा युद्ध कला पर आधारित थी, अंग्रेजों के समय की शिक्षा क्लर्क संबंधी कार्य सम्पन्न कराने के लिए दी जाती थी। वर्तमान समय में शतप्रतिशत साक्षरता का उद्देश्य लेकर शिक्षा की नीति बनाई जा सकी है। इसमें गुणवत्ता परक शिक्षा, आयु, संगठन, प्रवेश, अपवंचित परिवार शिक्षा व्यवस्था आदि है। इसमें कुछ समस्याऐं भी है जो निम्नवत है-शिक्षकों की उपस्थिति की समस्या मानीटरिंग की समस्या, लेखन सामाग्री का अभाव आदि।

शैक्षिक नियोजन

संकल्पना और उपागम पूर्व निश्चित लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए निष्पादित होने वाले कार्यों के विभिन्न योजना निर्माण की प्रक्रिया ही नियोजन है। व्यक्ति की उत्पादकता, राष्ट्रीय आय और सामाजिक व्यवस्था के विकास में शिक्षा सशक्त कारक है। इन लक्ष्यों को उचित शैक्षिक नियोजन द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

शैक्षिक संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए भविष्य में कार्यों के निर्णयों की सूची निर्माण करने की प्रक्रिया को शैक्षिक नियोजन कहते हैं।

(क) समवेत योजना:

शिक्षा की प्रत्येक शाखा यथा प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च शिक्षा, तकनीकी व अल्पसंख्यकों की शिक्षा आदि के लिए एक साथ बनाई जाने वाली योजना समवेत योजना होनी है। इसमें आवश्यकता की प्राथमिकता को ध्यान रखकर संसाधनों का आवंटन करते हैं।

(ख) भौगोलिक सीमा पर आधारित प्रकार:

राष्ट्रीय स्तर पर नियोजन में क्षेत्रीय विषमताओं या आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाता है। इसे केन्द्रित नियोजन कहते हैं।

राज्य या क्षेत्र योजना, जिला योजना, संस्थागत योजना इसके अन्तर्गत होती है।

(ग) आच्छादन पर आधारित, अवधि पर आधारित, उपागम पर आधारित नियोजन के अतिरिक्त परिणात्मक, प्रशासनात्मक आर्थिक, नगरीय एवं ग्रामीण योजना भी बनाई जाती है।

शिक्षा में प्रबंधन

शैक्षिक नियोजन के गुणात्मक व परिमाणात्मक पक्ष के विश्लेषण के बाद वित्तीय नियोजन का क्रम आता है। घर, परिवार, दुकान, देश, और शिक्षण संस्थाए सभी को वित्तीय नियोजन का कार्य करना पड़ता है। इसके अन्तर्गत हम यह देखते है कि शिक्षा के विकास के लिए वित कहां-कहां से और कितना प्राप्त होगा और उसे किस प्रकार खर्च किया जाए ताकि अधिक से अधिक प्रक्तिल की प्राप्ति हो सकें। वित्तीय नियोजन के अन्तर्गत शिक्षा के आय-व्यय का विश्लेषण संसाधनों की गतिशीलता व उनका उपयोग बजट व अंकेक्षण आदि कार्य किए जाते है।

कम्प्यूटर का अनुप्रयोग

भूमिका

कम्प्यूटर एक इलेक्ट्रानिक उपकरण है। सूचना प्रौधोगिकी के इस युग में कम्प्यूटर का उपयोग सभी क्षेत्रों में हो रहा है जैसे-मनोरंजन, बैंकिग, व्यापार, वैज्ञानिक अनुसंधान, शिक्षा इत्यादि।

शिक्षा में कम्प्यूटर के माध्यम से सूचिपूर्ण शिक्षण, डिजिटल कम्यूनिकेशन, ऑनलाइन परीक्षाएं और परीक्षा परिणामों का प्रकाशन किया जा रहा है।

प्रक्रम प्रणाली (Oprating System)

आपरेटिंग सिस्टम वह सा"वेयर है जो कम्प्यूटर के कार्य को आयोजित और नियंत्रित करता है जैसे Unix, Windows XP, Windows 7, Windows 8 इत्यादि।

आपरेटिंग सिस्टम के साफ्वेयर दो प्रकार के होते है।

1. सिस्टम साफ्टवेयर
2. अप्लीकेशन साफ्टवेयर

एम0एस0 ऑफिस-

माइक्रोसाफ्ट ऑफिस एक ऐसा अप्लीकेशन साफ्टवेयर है डाटा इन्ट्री, कैलकूलेशन, प्रस्तुतीकरण इत्यादि कार्यों में सहयोग प्रदान करता है।

शिक्षा के लिए जिला सूचना प्रणाली (DISE)

कम्प्यूटर के माध्यम से जिले की एक ऐसी सूचना प्रणाली की जाती है जिससे किसी छात्र विशेष, अध्यापक, छात्रों की संख्या, छात्रों का कक्षावार वर्गीकरण, छात्र-छात्राओं का जानिवार वर्गीकरण इत्यादि सूचनाएं पलभर में ज्ञात किए जा सकते है। इसमें प्रत्येक छात्र के रजिस्ट्रेशन आनलाइन करने से उससे सम्बन्धित विवरण आसानी से प्राप्त किए जा सकते है।

शैक्षिक नियोजन में कम्प्यूटर का अनुप्रयोग

शैक्षिक नियोजनके क्षेत्र में कम्प्यूटर का अत्यधिक योगदान है। कम्प्यूटर के माध्यम से छात्रों के रजिस्ट्रेशन कार्य से लेकर उसके परीक्षा परिणाम तक के सभी कार्य नियोजित तरीके से किए जा सकते है।

इण्टरनेट की भूमिका

कम्प्यूटर नेटवर्क को वर्ल्ड वाइड वेब नेटवर्क के माध्यम से जोड़ने को इण्टरनेट कहते है। इससे अन्यत्र सूचनाओं का सम्प्रेषण व उपयोग हो सकता है। इसके द्वारा शिक्षा से जूड़े हर पहलू को खोजकर देश और समाज का सर्वागीण विकास किया जा सकता है। इण्टरनेट के माध्यम से कुछ सेकेण्डों में सूचना को Email के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को भेज सकते हैं।

कार्यालय प्रबंधन

इस प्रशिक्षण के अन्तर्गत कार्यालय प्रबन्धन के विषय में बताया जाता है। यदि विद्यालय का कार्यालय निष्क्रिय या शिथिल होगा तो वहाँ की प्रगति में बाधक होगा अपितु अवनति का कारण बनेगा। किसी भी कार्य की सूचना भी कार्यक्रम व योजना के लिए पत्र अथवा पत्राचार प्रथम पायदान है। उसके पश्चात विभिन्न अभिलेखों का जन्म होता है। अर्थात कार्यो का लेखा-जोखा। अभिलेख को दो वर्गो मे बाँटा जा सकता है-

(1) पत्र एवं पत्रावलियाँ। (2) पंजिकाऐं।

विद्यालय, शिक्षा विभाग और अन्य अभिकरणों के मध्य सहयोग

समुदाय तथा विद्यालय का सम्बन्ध प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक निरन्तर रहा है। बिना समुदाय के विद्यालय की परिकल्पना व्यर्थ है। समुदाय के वातावरण की विद्यालय पर तथा विद्यालय के वातावरण की समुदाय पर छाप दिखाई देती है।

विद्यालय की वास्तविक उन्नति विद्यालय प्रधानाचार्य शिक्षक, कर्मचारी, समुदाय, शिक्षा विभाग तथा अन्य अभिकरणों के सकारात्मक सहयोग पर निर्भर करती है। इन सबके विचारोपरान्त नियोजन निर्माण तथा उसके क्रियान्वन तथा इसके सहयोग से प्रशासन, अनुशासन तथा शैक्षिक उत्थान में सहायता मिलती

है। समय-समय पर आने वाली वित्तीय समस्याओं का समाधान की इन सभी के सहयोग से सरलता पूर्वक हो जाता है। वर्तमान में विज्ञान व प्रौद्योगिकी के विकास हो जाने के कारण सम्प्रेषण माध्यमों व अन्य खण्ड/क्षेत्रों से सम्पर्क व नेटवर्किंग आदि के द्वारा आपसी जुड़ाव होता है।

निष्कर्ष

हम कह सकते है कि नित-निरन्तर परिवर्तनशील समाज को दिशा देने के लिये सजग-सतर्क शैक्षिक नवाचार की सदैव आवश्यकता होती है। इन बातों को विविध आयोगों द्वारा समय-समय पर स्वीकार किया जाता रहा है। इसी आधार पर लोक प्रशासन में जहाँ एक ओर पदोन्नति के आधार पर उच्च प्रशासनिक पदों पर नियुक्ति होती है। वहां दूसरी ओर बड़ी संख्या में नई योग्यता तथा नये रंग रूटों को नियुक्ति IAS/IPS परीक्षाओं द्वारा चयन व प्रशासनिक आकादमियों द्वारा प्रशिक्षण देकर किया जाता है। लोक प्रशासन ने इन नियमों का बहुत पुराने समय से पालन किया हैं आज जब उच्च शैक्षिक प्रशासन के पदों को IAS तथा दूसरे वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी सुशोभित कर रहे है तब लोक प्रशासन के समान ही शैक्षिक प्रशासन में भी उन्हीं सूत्रों को लगाना तर्कसंगत व समीचीन होगा। अर्थात् योग्यता तथा प्रशिक्षण को महत्व तथा भारिता प्रदान करना।

शैक्षिक प्रशासन में भारिता इसे भये युग के अनुरूप प्रासांगिक बना कर रखेगी।

भारिता से शैक्षिक प्रशासन में उत्तरदायित्व (Accountability) का समावेश हो सकेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अभिनव पत्रिका
2. www.ncert.nic.in
3. www.nuepa.org
4. www.ricbbs.ac.in

बाल गंगाधर तिलक व एनी बेसेंट के होम रूल लीग आंदोलन का मूल्यांकन (1916-1918)

मोहन लाल

शोद्यार्थी, इतिहास विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, (हरियाणा)

शोध-सार

प्रथम महायुद्ध काल में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत श्रीमती एनी बेंसेट तथा तिलक के द्वारा संचालित होम रूल आन्दोलन एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम सिद्ध हुआ। होम रूल का आशय है - स्वायत शासन ! होमरूल आन्दोलन का मुख्य उदेश्य यह था कि जिस प्रकार से गोरे उपनिवेशो में वहा की जनता को उनकी अपनी सरकार बनाने का अधिकार है ठीक उसी प्रकार से यही अधिकार भारतवासियों को भी मिले। ये चाहते थे कि सरकार पर दबाव बनाया जाए ताकि वे भारत को जल्द से जल्द स्वशासन दे। होम रूल आन्दोलन को तिलक व एनी बेंसेट ने अपने-अपने क्षेत्रों का बंटवारा कर चलाया था। तिलक के हिस्से में कर्नाटक, महाराष्ट्र (बंबई छोड़कर), मध्य प्रांत और बरार क्षेत्र आए जबकि अन्य बचे हुए क्षेत्र एनी बेंसेट के हिस्से में आए। 1915 ई. से 1916 के बीच में दो होम रूल लीगे की स्थापना हुई थी। 'पुणे होम रूल लीग' बाल गंगाधर तिलक ने और 'मद्रास होम रूल लीग' की स्थापना एंनी बेंसेट ने की थी। इस संस्था ने 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की सहयोगी संस्था के रूप में अपना कार्य किया। होम रूल लीग आन्दोलन में शस्त्रों के प्रयोग की अनुमति नहीं थी। होम रूल लीग की मांगे पूरी तरह से धर्मनिरपेक्षता पर आधारित थी। होम रूल लीग आन्दोलन के मुख्य पत्र 'न्यू इंडिया' (दैनिक), तथा कामनवील (साप्ताहिक) था इन पत्रो के माध्यम से ही होम रूल आन्दोलन का प्रचार प्रसार किया जाता था। इनकी बैठके स्थानीय अदालतो के पुस्तकालयों में ज्यादातर होती थी जहा पर छात्र, व्यवसायी, अन्य पेशे के लोग, ग्रामीण इक्ठे होकर देश की गरीबी, बदहाली का मुद्दा उठाते थे। लोगों को अतीत की याद दिलाई जाती थी और यूरोप के स्वतन्त्रता आन्दोलन पर प्रकाश डाला जाता था ताकि लोग प्रेरणा लेकर अंग्रेजो की नीतियों का विरोध कर सके। धीरे-धीरे होम रूल लीग ने लोगों के दिलो में अपनी जगह बनाई और इसी वजह से एनी बेंसेट को 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' के बत्तीसवे अधिवेशन (दिसम्बर 1917) का अध्यक्ष चुना गया। होम रूल लींग की उपलब्धि दूरगामी प्रभाव वाली थी कांग्रेस में लींग ने एक नई स्फूर्ति का संचार किया तथा ब्रिटिश सरकार को एक नवीन नीति के निर्धारण के लिए विवश किया, जो कालान्तर में मांटेन्यू घोषणा (1919) के रूप में सामने आया। और आगे चलकर इस संगठनिक तंत्र (लींग) का उपयोग गांधी जी ने अपने आरम्भिक सत्यग्रहो में किया क्योकि ज्यादातर नेता लींग से थे।

परिचय

होम रूल लीग की स्थापना की योजना मूलत: एनी बेंसेट द्वारा बनाई गई थी। एनी बेंसेट आयरलैण्ड की रहने वाली थी। वे थियोसोफियल सोसायटी की संचालिका थी। एनी बेंसेट भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति से काफी प्रभावित थी इसलिए वह भारत में बस गई थी तथा भारत को ही अपना देश मानने लगी थी। वे भारत के नवजागरण के लिए कार्य कर रही थी क्योंकि भारत के दर्शन का उनके दिमाग पर गहरा प्रभाव था[1]। वे भारतीय राजनीति में 1914 से शामिल हुई। वे आयरलैण्ड के होम रूल आन्दोलन से प्रभावित थी तथा वह चाहती थी कि ठीक ऐसा ही आन्दोलन भारत में भी चलाया जाना चाहिए। वैसे भी होम रूल आन्दोलन भारतवासियों के लिए कोई नया आन्दोलन नहीं था इससे पहले ही 1906 से कांग्रेस अपना उदेश्य 'स्वराज प्राप्ति' का घोषित कर चुकी थी[2]।

एनी बेंसेट को लगा कि इसके लिए पहले कांग्रेस और गरमपंथियों की अनुमति लेना जरूरी है। गरमपंथी नेता बालगंगाधर तिलक जब मांडले जेल से वर्ष 1914 को छूटे तो उन्होने देखा कि स्वदेशी आन्दोलन के नेता अरविन्द घोष ने सन्यास ले लिया है तथा वे अब पाडिचेरी में रहने लगे है और लाला लाजपत राय अब अमेरिका में है। तिलक को लगा कि देश को उनके नेतृत्व की जरूरत है उनका सबसे पहला लक्ष्य यह था कि कैसे न कैसे करके कांग्रेस में शामिल हुआ जा ! क्योंकि कांग्रेस ही उस समय मजबूत स्थिति में थी। इसके लिए उन्होंने एनी बेंसेट का साथ लिया था। ऐनी ने उदारवादियों को काफी समझाया परन्तु कोई गायदा न हुआ। उदारवादियों ने उनका विरोध किया समय के साथ-साथ परिवर्तन हुए फिरोजशाह मेहता तथा गोपाल कृष्ण गोखले दोनो का देहांत होने से स्थिति में परिवर्तन आया। एनी बेसेंट तिलक व उनके अनुयायियो को कांग्रेस में शामिल करवाने में सफल रही। अप्रैल 1915 के बाद एनी बेसेंट ने काफी कडा रूख लीग बनाने के लिए किया। उन्होंने दैनिक पत्र 'न्यू इंडिया' तथा साप्ताहिक पत्र 'कामनवील' से आन्दोलन का प्रचार प्रसार शुरू किया। 23 व 24 दिसम्बर को पूना में बम्बई, मध्यप्रदेश, और बरार के राष्ट्रवादियों को तिलक ने इकठा किया। व तिलक की लींग की स्थापना 28 अप्रैल 1916 बेलगांव (पूना) में स्थापना हुई[3]। वही एनी बेसेंट की लींग पांच महीने बाद सितम्बर 1916 में स्थापित हुई। तिलक व एनी बेसेंट दोनो ने अपने-अपने क्षेत्रो का बंटवारा किया तिलक के हिस्से में कर्नाटक महाराष्ट्र (बम्बई छोड़कर), मध्यप्रात, और बरार आया तथा बाकि का भारतीय क्षेत्र की जिम्मेवारी एनी बेसेंट को मिली। एनी व तिलक की लींग काफी प्रसिद्ध हुई धीरे-धीरे काफी महत्वपूर्ण व्यक्ति इनकी सदस्यता ग्रहण करने लगे। जिन्ना, नेहरू, जार्ज आरुडेल, जमनादास द्वारकादास, शंकरलाल बैकर, इन्दुलाल यागिनक जैसे नेता इसमे शामिल हुए।

दोनो संस्थाए तालमेल से काम करने में लगी रही। कांग्रेस मौजूदा समय में अपनी नीतियों में परिवर्तन नहीं करना चाहती थी[4]। इसीलिए ये दोनों लींगे स्वतन्त्र कार्य करती रही। जनता को भी आशा हो गई थी कि लींगे उन्हे स्वशासन दिलाने में मद्द करेगी।

नेहरू के शब्दो में 'देश के वातावरण में बिजली दौड गयी थी और हम नवयुवक एक अजीब उत्साह तथा स्फूर्ति का अनुभव कर रहे थे[5]।'

होम रूल के चार मुख्य उदेश्य थे। पहला, इसका उदेश्य था स्थानीय संस्थाओं और विधानसभाओं में जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों का स्वशासन स्थापित करना। स्वंय बेसेंट ने कहा था कि, ह्यराजनीतिक सुधारो से हमारा तात्पर्य ग्राम पंचायतो से लेकर जिला, नगरपालिका और प्रान्तीय धारा-सभाओं तक राष्ट्रीय संसद के रूप में स्वशासन की स्थापना है जब सम्राज्ञी संसद में स्वशासित राज्यों के प्रतिनिधित्व किए जाए तो भारत का प्रतिनिधि भी उस संसद में हो।[6]'

दूसरा, बेसेंट सम्राज्य विरोधी नहीं थी। उनका मानना है कि स्वशासित भारत अंग्रेजो की प्रथम विश्व युद्ध में सहायता करेगा। क्योंकि भारतीय नेता व आम जनता अंग्रेजो की धन व सेना में भर्ती करवाकर उनकी सहायता पहले से ही कर रहे थे।

तीसरा, युद्ध काल में भारतीय राजनीति ठंडी पड़ गई थी, फिरोजशाह मेहता व गोखले जैसे नेता स्वर्गसिधार गए थे। राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति थम सी गई थी। अत: अब भारतीय जनता को उनकी नींद से जगाना जरूरी था। समय की मांग को पहचानकर लीग के नेताओं ने भारतीय जनता को झकझोर देना चाहा। एनी बेसेंट कहती है कि 'मै भारत में वैतालिक का कार्य कर रही हूँ ताकि वे उठ बैठे और अपनी मातृभूमि के लिए कार्य कर सके[7]।'

चौथा, ऐसे शिक्षा कार्यक्रम चलाना, जो भारतीयो में मातृभूमि के लिए गर्व की भावना का देशवासियो में विकास करे।[8] इनकी मांग थी कि जिस प्रकार से अंग्रेजो ने अपने अन्य उपनिवेशो में वहा की जनता को जो अधिकार वहा पर दिए गए थे ठीक वैसे ही अधिकार होम रूल लींग चाहती थी।

तिलक ने भी लींग बनाकर महाराष्ट्र का दौरा किया तथा जनता को सम्मेलनो में भाषण देकर बताया कि ह्यभारत उस बेटे की तरह है जो अब जवान हो चुका है समय का तकाजा है कि बाप या पालक इस बेटे को उसका वाजिब हक दे दे। भारतीय जनता को अब हक लेना ही होगा। उन्हे इसका पूर्ण अधिकार है।[9]

कांग्रेस की नीतियों से तंग आकर अनेक नरमपंथी नेता भी 'होम रूल लींग' में शामिल होने लगे। गोखले की 'सर्वेंट इडियां सोसायटी' के सदस्यो को लींग में शामिल नहीं किया गया वे केवल जनता में परचे बॉटकर व भाषण देकर ही आन्दोलन का समर्थन कर सकते थे।

तिलक के विचार हिन्दु मुसलमान सभी सदस्यो के लिए स्पष्ट थे उनके किसी भी भाषण में धार्मिक अपील नहीं थी लीग की मांगे धर्मनिरपेक्षता पर आधारित व स्पष्ट थी।

तिलक कहते है कि 'अंग्रेज हो या मुसलमान, यदि वह इस देश की जनता के हित के लिए काम करता है तो वह हमारे लिए पराया नहीं है। इस पराएपन का धर्म या व्यवसाय से कोई रिश्ता नहीं है। यह सीधे-सीधे हितो से जुडा प्रश्न है।[10]'

23 जुलाई 1960 को तिलक के 60 वे जन्मदिन पर बडे समारोह का आयोजन किया गया, जिसमें तिलक को लोगों ने एक लाख रूपये की थैली भेंट की। जब सरकार को इसकी जानकारी हुई तो सरकार ने 'कारण बताओं नोटिस' जारी किया था 60 हजार रूपये का मुचलका भरने को कहा गया। तिलक ने आदालत में अपना मुकदमा लडा उनके केस को कई वकीलो की टीम ने लड़ा जिसका लीडर मुहुम्द अली जिन्ना थे। तिलक यह मुकदमा हार गए परन्तु नवम्बर में हाईकोर्ट ने उनको निर्दोष करार दिया गया। तिलक की इस जीत की पूरे देश में सराहना की गई।

गाँधी ने 'यंग इंडिया' अखबार में होम रूल आन्दोलन की स्कलता पर बधाई दी तथा कहा कि यह अभिव्यक्ति की आजादी की जीत है। तिलक ने यह केस जीतकर जनता को संदेश दिया और अपने भाषणो में लोगों को बताया कि सरकार ने स्वशासन की मॉग को व्यक्त करने की आजादी हमें दे दी है।

तिलक व बेसेंट लीग की लोकप्रियता को देखते हुए सरकार ने लीग के कई नेताओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया। तिलक पर दिल्ली व पंजाब जाने पर प्रतिबंध लगा वही एनी बेसेंट पर बरार व मध्यप्रांत में जाने पर प्रतिबंध लगा। देखते ही देखते लीग ने विरोध प्रदर्शन शुरू किया। बेसेन्ट पर सरकार ने 'न्यू इंडिया' पर प्रतिब्ध लगाया व जमानत की एक बडी रकम मांगी, वह जब्त कर ली गई। 1917 में बेसेंट को ऊटकमड़ में नजरबंद कर दिया गया।[11] वाडिया व अरूडेल भी नजरबंद किए गए।

लीग की लोकप्रियता इससे काफी बढ गई। बेसेन्ट की गिरुतारी का विरोध करते हुए एस. सुब्रहम्ण्यम अय्यर ने नाइटहुड की उपाधि वापिस कर दी। गिरुतारी के खिलाफ तिलक ने एक सभा में दिनांक 28 जुलाई 1917 को कांग्रेस की एक बैठक में कहा कि सरकार अगर लोगों को तुरन्त रिहा नहीं करती तो शान्तिपूर्ण असहयोग आन्दोलन किया जाएगा। पूरे देश में विरोध प्रदर्शन हुए। लोगों ने शंकर लाल बैकर व जमनालाल, द्वारकादास के नेतृत्व में दस्तखत इक्ठे किए जो सरकारी आदेशो की अवेहलना करके जुलुस की शक्ल में एनी बेसेंट से एक बार मिलना चाहते थे।[12] उनको सरकार ने रिहा करना पड़ा। तिलक चाहते थे, कि कोंग्रेस उनको होम रूल आंदोलन का प्रसार करने के लिए इंग्लैंड भेज दे! परंतु कांग्रेस तब हिचकिचा रही थी! अब तिलक को स्वयं जाने का अवसर मिला क्योंकि तिलक को भारतीय अशांति का जनक कहने के कारण तिलक ने मिस्टर चिरौल पर मानहानि का केस ठोक दिया था, इस के सिलसिले में उनको 30 सितंबर 1918 को लंदन रवाना होना पड़ा !उन्होंने इंग्लैंड में होमरूल का प्रचार प्रसार शुरू किया व मिस्टर चिरोल के खिलाफ केस भी जीत गए ! वहां उन्होंने ब्रिटिश लेबर पार्टी का विश्वास भी जीत लिया ! अब वहां रहकर उन्होंने लाला लाजपत राय की सहायता से होमरूल आंदोलन को अमेरिका तक फैलाया, न्यूयॉर्क में संगठन का कार्यालय बनाया परंतु तिलक के जाते ही भारत में हो होमरूल का स्वरूप ढीला पड़ गया! जिससे माटेम्यू सुधार 1919 सरकार को करना पड़ा।

निष्कर्ष

होम रूल आन्दोलन ने जनता में प्राण फूकने का काम किया। जिससे राष्ट्रीय आन्दोलन में तेजी आई। तिलक, जिन्ना व बेसेंट के प्रयासो से कांग्रेस के गरमपंथी, नरमपंथी, व मुस्लिम लीग में समझौता हुआ जो 'लखनऊ समझौता' कहलाया अब दोनों दलो ने औपनिवेशिक राज्य प्राप्त करने के प्रयासो में तेजी

की एनी बेसेंट का रवैया मानेटेगु सुधारो के बाद ढीला पड गया और उन्होने सविनय अवज्ञा कार्यक्रमो को स्थगित कर दिया। जिनसे लोगों व खासकर युवाओ में कुठा हुई। जल्दी ही होम रूल लीगे ठप पड़ गई। फिर भी देखा जाह तो इसका राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति में तेजी लाई व इसी संगठन तंत्र का गांधी ने अपने शुरूआती आन्दोलनो में प्रयोग किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 शेखर बधोपाध्याय: पलासी से विभाजन तक और उसके बाद, ऑरियंट ब्लॅकस्वॉन, 2006.
2 डॉ. सत्य एम.राय: भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1983.
3 बिपिन चन्द्र: भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1990.
4 बी.एल. ग्रोवर: आधुनिक भारत का इतिहास, एस.चन्द पब्लिकेशन
5 डॉ. वीरकेश्वर प्रसाद भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं सवैधानिक विकास
6 एम.एल.घवन: भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का उद्भव एवं विकास
7 एन०आर० इनामदार: पॉलीटिकल थॉट्स एंड लीडरशिप ऑफ लोकमान्य तिलक कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी नई दिल्ली ,1983

(Footnotes)

1 डॉ वीरकेश्वर प्रसाद, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एवं संवैधानिक विकास, पृष्ठ संख्या 218
2 एम एल धवन, भारत में राष्ट्रीय आंदोलन का उद्भव एवं विकास, पृष्ठ संख्या -161
3 डॉ सत्या एम० राय, भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, पृष्ठ संख्या -259
4 बी०एल० ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास, पृष्ठ संख्या -304
5 डॉ वीर केश्वर प्रसाद, पूर्व उद्धृत, पृष्ठ संख्या-220
6 वही, पृष्ठ संख्या-219
7 वही, पृष्ठ संख्या-220
8 शेखर बंदोपाध्याय, पलासी से विभाजन तक और उसके बाद, पृष्ठ संख्या -289
9 विपिन चंद्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृष्ठ संख्या -131
10 वही, पृष्ठ संख्या-140
11 डॉ सत्या एम० राय ,पूर्व उद्धृत पृष्ठ संख्या -260
12 विपिन चंद्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृष्ठ संख्या -145
13 एन०आर० इनामदार, पॉलीटिकल थॉट्स एंड लीडरशिप ऑफ लोकमान्य तिलक, पृष्ठ संख्या-300

निजी और सार्वजनिक क्षेत्र में अन्तर्विरोध का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ० जयराम बैरवा

Associate Professor of Sociology, BSR Govt. Arts College Alwar (Raj.)

सरांश

20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र में अन्तर्विरोध जारी है। निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र में अन्तर्विरोध का अध्ययन करना समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण ही नहीं वरन् आवश्यक भी है। निजी और सार्वजनिक अन्तर्विरोध के संदर्भ में कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण के समाजशास्त्र से सम्बन्धित एक प्रमुख मुद्दा आज निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र (Private and Public sector) से सम्बन्धित विरोधपूर्ण दशा है। वैचारिक स्तर पर जहां बहुत से नीति-निर्माता तथा आर्थिक विशेषज्ञ यह मानते हैं कि वैश्विक अर्थव्यवस्था के संचालन में निजी क्षेत्र से सम्बन्धित उद्यमी अधिक उपयोगी योगदान कर सकते हैं, वहीं बहुत से विचारकों की यह मान्यता है कि अर्थव्यवस्था का संचालन निजी क्षेत्र के उद्यमियों के द्वारा होने से अधिक-से-अधिक लाभ प्राप्त करने की प्रवृत्ति राष्ट्रीय और सार्वजनिक हितों के प्रतिकूल होती है। इस वैचारिक मतभेद को लेकर एक लम्बे समय तक विश्व के विभिन्न देश दो विभिन्न खेमों में विभाजित रहे। एक ओर अमरीका तथा यूरोप की नीति निजी क्षेत्र के आधार पर आर्थिक व्यवस्था को विकसित करने की रही तो दूसरी ओर साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित देशों ने अर्थव्यवस्था पर राज्य के अधिक-से-अधिक नियन्त्रण पर बल दिया। सामान्य रूप से अर्थव्यवस्था के संचालन और विकास के विषय को अर्थशास्त्र की अध्ययन-वस्तु के रूप में देखा जाता है, लेकिन विकास के समाजशास्त्र की यह एक प्रमुख मान्यता है कि आर्थिक विकास के लिए हम जिन व्यवस्थाओं और कार्य-प्रणालियों का अध्ययन करते हैं, उन्हें कुछ विशेष सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों तथा सामाजिक संरचना से पृथक् करके नहीं समझा जा सकता।

आर्थिक व्यवस्था तथा आर्थिक संस्थाओं की प्रकृति का अध्ययन करते समय समाजशास्त्र का मुख्य ध्यान इस तथ्य पर होता है कि वे कौन-सी संस्थाएं अथवा नियम हैं जो आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित करते हैं। इसी ख्रष्टिकोण के आधार पर समाजशास्त्र में अध्ययन की एक नयी शाखा का विकास हुआ जिसे नील स्मेल्सर (Neil J. Smelser) ने अपनी पुस्तक 'आर्थिक जीवन का समाजशास्त्र' (Sociology of Economic Life) में स्पष्ट किया है। इस शाखा को उन्होंने 'आर्थिक समाशास्त्र' (Economic Sociology) के नाम से सम्बोधित किया। इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है, "आर्थिक समाजशास्त्र का सम्बन्ध सीमित वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन, वितरण, विनिमय तथा उपभोग से सम्बन्धित क्रियाओं को समाजशास्त्र के व्याख्यात्मक प्रारूपों तथा सामान्य नियमों के उपयोग द्वारा समझने से है।'' इसका तात्पर्य है कि आर्थिक विकास से सम्बन्धित निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र की प्राथमिकता पर कोई भी विचार ऐसे दृष्टिकोण से करना आवश्यक है जो इसकी आर्थिक उपयोगिता के साथ सामाजिक प्रासंगिकता से भी सम्बन्धित हो। वास्तविकता यह है कि विकास के निजी और सार्वजनिक क्षेत्र का सम्बन्ध अर्थव्यवस्था के दो मुख्य प्रारूपों से है। इन प्रारूपों की प्रकृति तथा अन्तर्सम्बन्धों को समझने से पहले यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था उन व्यवहारों का एक संगटित प्रतिमान है जिसका सम्बन्ध वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन, वितरण तथा उपभोग से होता है। इस दृष्टिकोण से आधुनिक अर्थव्यवस्था के प्रारूपों की प्रकृति समझकर ही निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र से सम्बन्धित अन्तर्विरोध अथवा टकराव की दशा को समझा जा सकता है।

मुख्य शब्द : वैश्वीकरण, पूंजीवाद, समाजवाद, मिश्रित अर्थव्यवस्था, आर्थिक विकास, उत्पादन, प्रतिस्पर्द्धा

उद्देश्य

1. निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र में उत्पादन एवं विभिन्न सेवाओं की व्यवस्थाओं का अध्ययन करना।
2. निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र की आर्थिक गतिशीलता का अध्ययन करना।
3. निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र क मध्यवर्ती वस्तुओं के उत्पादन में रचनात्मक भूमिका का अध्ययन करना।
4. दोनों क्षेत्रों की कार्यकुशला को मालुम करना।
5. दोनों क्षेत्रों का राष्ट्रीय आय में योगदान का अध्ययन करना।
6. निजी और सार्वजनिक क्षेत्र में अन्तर को मालुम करना।

प्रस्तावना

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के संचालन में जब निजी क्षेत्र के उद्यमियों के द्वारा उत्पादन करने लग जाते हैं तो इसका तात्पर्य है कि सरकार विभिन्न क्षेत्रों का निजीकरण कर रही है तो इसे निजी क्षेत्र कहा जाता है। इसी प्रकार यदि किसी देश की अर्थव्यवस्था का संचालन में सार्वजनिक/सरकारी संस्थाओं के द्वारा ही होता है तो इसे सार्वजनिक क्षेत्र के रूप में परिभाषित किया जाता है। निजी-सार्वजनिक अन्तर्विरोध को समझने के लिए हमें यहां आधुनिक अर्थव्यवस्था के प्रारूप को समझना आवश्यक है। औद्योगिक या जटिल अर्थव्यवस्था आज संसार के अधिकांश देशों की मुख्य व्यवस्था है। यह सच है कि यह अर्थव्यवस्था विकसित प्रौद्योगिकी, बडी मात्रा के उत्पादन, उन्नत बाजारों, प्रतिस्पद्धा, श्रम-विभाजन, विशेषीकरण, समझौते पर आधारित सम्बन्धों तथा व्यावसायिक गतिशीलता पर आधारित है लेकिन दुनिया के विभिन्न देशों में इस व्यवस्था का रूप पूरी तरह एक-दूसरे के समान नहीं है। आधुनिक अर्थव्यवस्था के तीन मुख्य प्रारूप हैं, जिन्हें हम पूंजीवादी, समाजवादी और मिश्रित अर्थव्यवस्था कहते हैं। निजी क्षेत्र का सम्बन्ध पूंजीवादी अर्थव्यवस्था से है जबकि समाजवादी अर्थव्यवस्था सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक महत्व दती है।

1. पूंजीवादी अथवा निजी अर्थव्यवस्था (Capitalistic or Private Economy)

यह वह अर्थव्यवस्था है जिसके संचालन में व्यक्तिगत उद्यमियों को अधिक अधिकार प्राप्त होते हैं। इसका स्पष्ट रूप अमरीका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया तथा जापान जैसे देशों में देखा जा सकता है। व्यक्तिगत उद्यमियों द्वारा उत्पादन और श्रम का तार्किक संगठन करना इस अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। स्पष्ट है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के क्षेत्र को ही हम निजी क्षेत्र के नाम से सम्बोधित करते हैं।

2. समाजवादी अथवा सार्वजनिक अर्थव्यवस्था (Socialistic or Public Economy)

आधुनिक अर्थव्यवस्था का दूसरा प्रतिमान समाजवादी अथवा सार्वजनिक आर्थिक तन्त्र है। विश्व के विभिन्न साम्यवादी देशों में एक लम्बे समय तक इसी को विकास की प्रमुख अर्थव्यवस्था के रूप में देखा गया। समाजवादी अर्थव्यवस्था में भी औद्योगीकरण, बैंकिंग, श्रम-विभाजन और विशेषीकरण कछ प्रमख विशेषताएं हैं, किन्तु आन्तरिक रूप से इससे सम्बन्धित आर्थिक संस्थाओं की प्रकृति पूंजीवादी अर्थव्यवस्था से बहुत भिन्न होती है। इसकी प्रकृति को स्पष्ट करते हुए ब्रेडले ने लिखा है, "समाजवाद निजी सम्पत्ति को स्वीकार नहीं करता तथा यह मानता है कि राज्य को ही सभी तरह की सम्पत्तियों का स्वामी होना चाहिए तथा राज्य का यह दायित्व है कि वह उत्पादन और श्रम पर अपना नियन्त्रण रखकर लोगों के बीच साधनों का समान वितरण करें।"

3. मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy)

यह अर्थव्यवस्था का वह प्रारूप है जिसका सम्बन्ध उपनिवेशवादी शासन से स्वतन्त्र होने वाले अधिकांश विकासशील तथा अल्पविकसित देशों से है। इनमें से अधिकांश देश वे हैं जिनकी अर्थव्यवस्था मूल रूप से खेती और कुटीर उद्योग-धन्धों पर निर्भर रही। जनसंख्या के अधिक घनत्व के कारण इनमें प्रति व्यक्ति आय का स्तर बहुत नीचा रहा। ऐसे देशों में भारत, ब्राजील, इण्डोनेशिया, इराक, ईरान, म्यांमार तथा मध्य एशिया के अनेक देश सम्मिलित हैं। जिन देशों ने पूंजीवादी अथवा समाजवादी अर्थव्यवस्था को अपने विकास का मॉडल न मानकर इन दोनों व्यवस्थाओं की मिश्रित विशेषताओं के आधार पर अपना विकास करना आरम्भ किया, उन्हीं पर आधारित अर्थव्यवस्था को हम मिश्रित अर्थव्यवस्था कहते हैं। इस अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषता यह है कि राज्य द्वारा निजी सम्पत्ति को मान्यता देने के बाद भी उन उद्योगों और सेवाओं पर अपना नियन्त्रण रखा जाता है जिनका सम्बन्ध व्यापक सार्वजनिक हितों से होता है।

निजी और सार्वजनिक क्षेत्र में अन्तर

निजी तथा सार्वजनिक अर्थव्यवस्था की उपर्युक्त प्रकृति से स्पष्ट होता है कि इन दोनों का मूल उद्देश्य उत्पादन तथा विभिन्न सेवाओं की व्यवस्था इस तरह करना है जिससे देश का आर्थिक एवं सामाजिक विकास हो सके। इसके बाद भी इन दोनों तरह की व्यवस्थाओं क उद्देश्यों, कार्य-प्रणाली तथा विभिन्न संस्थाओं के बीच एक स्पष्ट भिन्नता देखने को मिलती है। इन्हीं भिन्नताओं के आधार यह सरलतापूर्वक समझा जा सकता है कि निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के बीच टकराव और विरोध की दशाएं क्यों विद्यमान रहती हैं। इन भिन्नताओं का मुख्य रूप से निम्नांकित क्षेत्रों में देखा जा सकता है :

(1) निजी एवं आर्थिक क्षेत्र का सर्वप्रमुख अन्तर इनके उद्देश्यों की भिन्नता पर आधारित है। निजी क्षेत्र का उद्देश्य उद्यमियों को उत्पादन तथा वितरण के क्षेत्र में अधिक-से-अधिक स्वतन्त्रता देकर उन्हें लाभ प्राप्त करने तथा देश की पूंजी को बढाने का अवसर देना होता है। दूसरी ओर सार्वजनिक क्षेत्र का उद्देश्य उत्पादन तथा सेवाओं पर राज्य के नियन्त्रण को इसलिए प्रोत्साहन देना है जिससे विभिन्न उद्यमी जनसाधारण के हितों विरुद्ध कार्य न कर सकें। इसी कारण निजी क्षेत्र में जहां प्रतिस्पर्धा के द्वारा कीमतों पर नियन्त्रण रखा जाता है, सार्वजनिक क्षेत्र में कीमतों पर नियन्त्रण रखने का कार्य राज्य की नीतियों पर आधारित होता है।

(2) उत्पादन के स्वामित्व और प्रबन्धन के आधार पर भी निजी और सार्वजनिक क्षेत्र की प्रकृति एक-दूसरे भिन्न है। निजी क्षेत्र में उद्योगों का स्वामित्व निजी हाथों में होता है तथा विभिन्न उद्योगों की स्थापना निजी पूंजी के द्वारा होने के साथ ही उनका प्रबन्धन भी उद्योगों के मालिकों के हाथों में ही रहता है। उद्योगों में बड़ी पूंजी का विनियोजन करने के लिए जनसाधारण की आर्थिक हिस्सेदारी (shares) पर आधारित बड़ी-बड़ी कम्पनियों और कॉरपोरेशनों का निर्माण होता है जो एक विशेष संचालक मण्डल के द्वारा अपनी नीतियों का निर्धारण करने के लिए स्वतन्त्र होती है। सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योगों के स्वामित्व और उनके प्रबन्धन उत्तरदायित्व सरकार का होता है। सरकार ही प्रत्येक औद्योगिक इकाई में नीतियों के निर्धारण के लिए संचालन मण्डल की नियुक्ति करती है।

(3) निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र में अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित वित्तीय व्यवस्था की प्रकृति में भी भिन्नता देखने को मिलती है। निजी क्षेत्र में विभिन्न उद्योगों और उपक्रमों के लिए एकत्रित की जाने वाली पूंजी कम्पनी के अंशों को बेचकर, ऋणपत्र (bonds) जारी करके या बड़ी-बड़ी निजी

संस्थाओं से ऋण लेकर पूरी की जाती है। इसका तात्पर्य है कि निजी क्षेत्र में विभिन्न उत्पादक अपनी वित्तीय व्यवस्था के लिए स्वतन्त्र होते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में सभी आर्थिक उपक्रमों की वित्तीय व्यवस्था का दायित्व सरकार का होता है। विभिन्न उद्योगों को स्वयं वित्तीय व्यवस्था करने अथवा जनसाधारण से ऋणों या अंशधारिता के रूप में पूंजी एकत्रित करने का अधिकार नहीं होता।

(4) सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित सभी उपक्रमों का प्रबन्ध ऐसे सरकारी अधिकारियों द्वारा किया जाता है जिनके अपने कोई निजी आर्थिक हित नहीं होते। दूसरी ओर निजी क्षेत्र में उपक्रमों का सम्पूर्ण प्रबन्ध उन अधिकारियों द्वारा किया जाता है जो अपने-अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ होते हैं तथा उनका उद्देश्य किसी विशेष उपक्रम के द्वारा अधिक-से-अधिक लाभ प्राप्त करना होता है। जो अधिकारी जितना अधिक लाभ अर्जित करने में सफल होते हैं, उन्हें उसी के अनुपात में आर्थिक पुरस्कार तथा अन्य सुविधाएं दी जाती है।

(5) निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र में आर्थिक लागत तथा सामाजिक लागत (social cost) की प्रकृति एक-दूसरे से भिन्न होती है। निजी क्षेत्र में उत्पादन केवल उतना ही किया जाता है जो मांग और पूर्ति के सिद्धान्त पर आधारित हो तथा जिससे अधिक-से-अधिक लाभ प्राप्त किया जा सके। यदि कोई उद्योग घाटे में होता है तो उसे बन्द कर दिया जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र का उद्देश्य आर्थिक लागत के साथ उपभोक्ताओं और कर्मचारियों के हितों का भी ध्यान रखना है जिसे हम उद्योग की सामाजिक लागत कहते हैं। इस दृष्टिकोण से यदि कोई उद्योग उपभोक्ताओं और कर्मचारियों के हितों से सम्बन्धित हो तो उससे होने वाली आर्थिक हानि के बाद भी उसे चालू रखा जाता है।

(6) आर्थिक विकास के लक्ष्य भी निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र को एक-दूसरे से पृथक करते हैं। निजी क्षेत्र इस मान्यता पर आधारित है कि आर्थिक विकास का लक्ष्य व्यक्तिगत और राष्ट्रीय पूंजी में वृद्धि करना है। फलस्वरूप केवल उन्हीं वस्तुओं के उत्पादन पर अधिक बल दिया जाता है जिन्हें एक लाभप्रद राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मिल सके। सार्वजनिक क्षेत्र उन उपक्रमों की स्थापना पर बल देता है जो देश के विभिन्न वर्गों की स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करने से सम्बन्धित होते हैं। इसके अन्तर्गत विभिन्न उद्योगों की स्थापना सरकार के आर्थिक साधनों के अनुसार प्राथमिकता के आधार पर की जाती है।

(7) इन दोनों क्षेत्रों की क्रियाविधि में भी स्पष्ट अन्तर है। सार्वजनिक क्षेत्र में अर्थव्यवस्था को सामाजिक परिवर्तन के एक साधन के रूप में देखा जाता है। इसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था को आर्थिक शक्तियों के विकेन्द्रीकरण का रूप देने का प्रयत्न किया जाता है जिससे देश के सभी भागों का सन्तुलित विकास हो सके तथा सभी क्षेत्रों के लोगों को रोजगार के अवसर मिल सकें। निजी क्षेत्र की क्रियाविधि आर्थिक एकाधिकार तथा आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण पर आधारित होती है।

निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र में सम्बन्धित उपर्युक्त भिन्नताओं के कारण ही एक लम्बे समय तक विभिन्न देशों के बीच विरोधपूर्ण दशाएं पैदा होती रहीं। इस अन्तर्विरोध को आर्थिक आधार के अतिरिक्त राजनीतिक आधार पर भी समझा जा सकता है। **पॉल स्टार ने अपने लेख 'द मीनिंग ऑफ प्राइवेटाइजेशन'** में निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के मूल अन्तर का उल्लेख करते हुए लिखा है कि सार्वजनिक क्षेत्र बाजार को राज्य के नियन्त्रण पर आधारित एक ऐसी व्यवस्था के रूप में देखता है जो सभी लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित हो तथा जन-जीवन से भावनात्मक रूप से भी जुड़ा हुआ हो। दूसरी ओर निजी क्षेत्र एक और आर्थिक क्षेत्र में राज्य के नियन्त्रण की जगह बाजार की दशाओं के नियन्त्रण को अधिक महत्त्व देता है

दूसरी ओर उन वस्तुओं के उत्पादन में अधिक रुचि लेता है जिससे किसी देश की आर्थिक और राजनीतिक पूंजी में वृद्धि हो सके। **पॉल स्टार** के अनुसार यही दशा निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र के विरोध का वास्तविक कारण है।

निजी क्षेत्र के पक्ष में तर्क

वैश्वीकरण तथा उदारीकरण के वर्तमान युग में अधिकांश विचारक यह मानते हैं कि सार्वजनिक क्षेत्र पर आधारित अर्थव्यवस्था न तो वर्तमान आवश्यकताओं के अनुकूल है और न ही इसके द्वारा सतत विकास की प्रक्रिया सम्भव है। उनके अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र से सम्बन्धित सभी अधिकारी और कर्मचारी सरकार द्वारा वेतन प्राप्त करने के कारण अपने दायित्वों के प्रति उदासीन रहते हैं। नियुक्तियों में राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण अक्सर अनुभवी और कुशल प्रबन्धकों की नियुक्ति नहीं हो पाती और न ही बाजार की मांग के अनुसार उत्पादन सम्बन्धी समुचित नीतियों का निर्धारण करना सम्भव हो पाता है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को सरकार द्वारा कम कीमत पर कच्चा माल मिलने के कारण इनसे मिलने वाले लाभ का समुचित मूल्यांकन करना सम्भव नहीं होता। ऐसे उद्योगों द्वारा विभिन्न उत्पादों की गुणवत्ता पर भी अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। अधिकारियों तथा कर्मचारियों में आर्थिक प्रेरणाओं का अभाव होता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को उसके पद के अनुसार आर्थिक पुरस्कार प्राप्त होते हैं जिसमें व्यक्तिगत योग्यता पर विचार नहीं किया जाता। पूंजी की कमी, उत्पादन की अधिक लागत, धन का अपव्यय, पुरानी प्रौद्योगिकी का उपयोग तथा परिस्थिति के अनुसार समुचित निर्णयों का अभाव भी सार्वजनिक क्षेत्र से सम्बन्धित कुछ प्रमुख दोष हैं। इन दशाओं के बीच निजी क्षेत्र पर आधारित अर्थव्यवस्था में अनेक ऐसे गुण हैं जिनके कारण इसी के आधार पर किसी देश का आर्थिक विकास होना सम्भव है। निजी क्षेत्र के पक्ष में जो तर्क दिए जाते हैं उनमें से कुछ तर्क इस प्रकार

(1) आर्थिक विकास की गतिशील प्रक्रिया- शूम्पीटर ने लिखा है कि निजी क्षेत्र औद्योगिक विकास का एक प्रेरक और गतिशील आधार है। निजी क्षेत्र में लाभ की प्रेरणा वह महत्वपूर्ण आधार है जो विभिन्न उद्यमियों को उत्पादन में वृद्धि करने, नवाचारों के द्वारा उत्पादित वस्तुओं की गुणवत्ता में सुधार लाने और इस प्रकार देश का आर्थिक विकास करने की प्रेरणा देता है। पश्चिमी देशों के उदाहरण से भी यह सिद्ध हो चुका है कि औद्योगिक विकास के लिए निजी क्षेत्र ही अधिक लाभप्रद है।

(2) मध्यवर्ती वस्तुओं के उत्पादन में रचनात्मक भूमिका- आर्थिक विकास के लिए उन वस्तुओं के उत्पादन की विशेष आवश्यकता होती है जो भारी और लघु उद्योगों के बीच स्थित होते हैं तथा जिनका सम्बन्ध जनसाधारण की सामान्य आवश्यकताओं को पूरा करने से होता है। ऐसी वस्तुओं का उत्पादन सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों द्वारा नहीं हो सकता क्योंकि इससे सम्बन्धित प्रबन्धकों को बाजार की समुचित जानकारी नहीं होती।

(3) कार्यकुशलता में सुधार- निजी क्षेत्र में प्रत्येक प्रबन्धक, अधिकारी तथा कर्मचारी को मिलने वाला वेतन उसकी कार्यकुशलता पर आधारित होता है। इस दशा में उद्योग से सम्बन्धित सभी अधिकारी और कर्मचारी अपने दायित्वों का निर्वाह इस तरह करते हैं जिससे उद्योग को अधिक से-अधिक लाभ मिल सके। इससे कुल उत्पादन में वृद्धि होने के साथ राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि होती है।

(4) खुली प्रतिस्पर्धा पर आधारित लाभ- निजी क्षेत्र की एक आधारभूत विशेषता खुले बाजार की प्रतिस्पर्धा में सफलता प्राप्त करना है। यह तभी सम्भव है जब वस्तुओं की उत्पादन की लागत कम होने के साथ ही उनकी गुणवत्ता में लगातार सुधार किया जाता रहे। जब समान वस्तुओं का उत्पादन अनेक उत्पादकों के द्वारा किया जाता है तो उनके बीच होने वाली प्रतिस्पर्धा से वस्तुओं की कीमतों पर अपने आप नियन्त्रण लगा रहता है। यह दशा अवांछित एकाधिकार की दशा पर भी नियन्त्रण रखती है।

(5) राजनीतिक हस्तक्षेप से स्वतन्त्र- निजी क्षेत्र से सम्बन्धित उत्पादन पर किसी तरह का राजनीतिक दबाव नहीं होता। कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए उद्योगों के प्रबन्धक स्वतंत्र होते हैं तथा उपभोक्ताओं एवं बाजार की आवश्यकता के अनुसार वस्तुओं का उत्पादन करने राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं होता। निजी क्षेत्र की कार्य-पद्धति इस भय से स्वतन्त्र होती है कि अकुशल कर्मचारियों को हटाने से उसे कोई राजनीतिक हानि हो सकती है। निजी क्षेत्र विभिन्न वर्गों के आरक्षण क अधिकार से स्वतन्त्र होने के कारण भी अधिक कुशलतापूर्वक कार्य करने में सक्षम बना रहता है।

(6) अंशधारकों का नियन्त्रण- निजी क्षेत्र के उद्योगों के संचालन के लिए बड़ी मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होती है जिसे जनसाधारण के बीच कम्पनी के शेयर्स बेचकर प्रात किया जाता है। कम्पनी को प्रत्येक वर्ष अपने अंशधारकों की बैठक में उन्हें इसके लिए सन्तुष्ट करना आवश्यक होता है कि कम्पनी की कार्य-प्रणाली, विपणन की व्यवस्था, वस्तुओं की लागत तथा प्राप्त आय की सीमा सन्तोषप्रद है। प्रबन्धन में किसी तरह का दोष होने पर अंशधारकों द्वारा कम्पनी के प्रबन्धन अथवा कार्य-प्रणाली में परिवर्तन भी किए जा सकते हैं। यह एक ऐसा दबाव है जिससे निजी क्षेत्र के उद्योग निरंकुश नहीं बन पाते।

(7) राष्ट्रीय आय में योगदान- सार्वजनिक क्षेत्र का एक बड़ा दोष यह है कि कोई उद्योग घाटे में चल रहा हो तो सरकार उसे समय-समय पर अनेक वित्तीय छूटें देकर उसकी कमियों पर पर्दा डालती रहती है। इसके विपरीत, निजी क्षेत्र के उद्योगों के उत्पादन तथा लाभ से सरकार को वस्तुओं की कीमतों का लगभग 40 प्रतिशत हिस्सा विभिन्न करों के रूप में प्राप्त होता है। यह किसी भी देश की राष्ट्रीय आय का एक बड़ा स्रोत होने के साथ ही आर्थिक विकास का भी एक मुख्य आधार है।

(8) लघु उद्योगों का विकास- किसी भी देश के आर्थिक विकास में लघु उद्योगों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ऐसे उद्योग निजी क्षेत्र के द्वारा ही संचालित हो सकते हैं। भारत में आज 1000 से भी अधिक लघु उद्योग ऐसे हैं जो निजी क्षेत्र द्वारा संचालित हैं तथा कम कीमत की उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन का आधार है।

सार्वजनिक क्षेत्र के पक्ष में तर्क

सार्वजनिक क्षेत्र के समर्थक यह मानते हैं कि निजी क्षेत्र पर आधारित अर्थव्यवस्था एक ऐसी पूंजीवादी व्यवस्था से सम्बन्धित है जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जनसाधारण के आर्थिक शोषण का स्रोत है। निजी क्षेत्र के उद्योगों का प्रबन्ध उन बौद्धिक तकनीकों पर आधारित होता है जिनके माध्यम से आरम्भिक स्तर पर वस्तुओं की कीमतें कम करके उपभोक्ताओं को आकर्षित किया जाता है तथा बाद में प्रचार के माध्यमों का उपयोग करके उपभोक्ता वस्तुओं की मनमानी कीमतों को वसूल करने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। यह अवांछित एकाधिकार की प्रवृत्ति है जिसे रोकना सम्भव नहीं हो पाता। निजी क्षेत्र से सम्बन्धित उद्योगों में वित्तीय अनियमितताओं का होना एक सामान्य बात है। इसके द्वारा कम्पनी के खर्चों को बहुत बढ़ा-चढाकर दिखाकर कुल लाभ की सीमा को इस तरह कम कर दिया जाता है जिससे अंशधारकों तथा सरकार को भारी आर्थिक हानि होती है। ऐसे उदाहरणों की भी कमी नहीं है जब निजी क्षेत्र की कम्पनियां जनता के हजारों करोड़ रूपये का गबन करके बाजार से बाहर हो जाती हैं। जन-सेवाओं से जुड़ी हुई वस्तुओं के मूल्य पर यदि सरकार द्वारा कोई नियन्त्रण स्थापित किया जाता है तो निजी क्षेत्र द्वारा उनसे सम्बन्धित उद्योगों को बन्द कर दिया जाता हैं जिससे सार्वजनिक कल्याण में बाधा उत्पन्न होने लगती है। सार्वजनिक क्षेत्र से सभी दोषों से मुक्त है।

(1) एकाधिकार पर नियन्त्रण- आर्थिक व्यवस्था पर जब निजी स्वामित्व का एकाधिकार बढ़ने लगता है तो इससे विभिन्न प्रकार के आर्थिक संकट पैदा होने का भय रहता है। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के द्वारा ही एकाधिकार की प्रवृत्ति को रोकना सम्भव है। इसके द्वारा मांग और पूर्ति के बीच इस तरह सन्तुलन रखा जाता है जिससे वस्तुओं की कीमतों में अधिक वृद्धि न हो सके।

(2) क्षेत्रीय सन्तुलन में सहायक- पूंजीवादी व्यवस्था से सम्बन्धित निजी क्षेत्र से कुछ स्थानों पर उद्योगों का केन्द्रीकरण हो जाता है जबकि अनेक क्षेत्र औद्योगिक विकास से वंचित रह जाते हैं। यही दशा अनेक क्षेत्रीय आन्दोलनों तथा असन्तोष का कारण बन जाती है। सार्वजनिक क्षेत्र को प्रोत्साहन मिलने से यह ध्यान रखा जाता है कि जिन क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों तथा आर्थिक विकास की अधिक आवश्यकता है, उन क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना को प्राथमिकता दी जाए। वह दशा देश के विभिन्न भागों में क्षेत्रीय सन्तुलन बनाए रखने में सहायक होती है।

(3) प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण- देश में उपलब्ध विभिन्न प्रकार के खनिज पदार्थ, जल सम्पदा, वन क्षेत्र, तेल और प्राकृतिक गैस की उपलब्धता आदि ऐसे प्राख्रतिक संसाधन हैं जिनका तार्किक रूप से उपयोग करना देश के दीर्घकालीन विकास के लिए आवश्यक होता है। निजी क्षेत्र द्वारा ऐसे संसाधनों का उपयोग केवल लाभ के ख्रष्टिकोण से किया जाता है, राष्ट्रीय हित के दष्टिकोण से नहीं। सार्वजनिक क्षेत्र एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा सरकार एक व्यापक नीति के आधार पर प्राकृतिक संसाधनों का इस तरह सीमित उपयोग करती है जिससे उन्हें भविष्य के लिए भी सुरक्षित रखा जा सके।

(4) जनहित का समावेश- सार्वजनिक कल्याण एक व्यापक अवधारणा है जिसका सम्बन्ध उद्योगों का संचालन तथा उत्पादन की नीति को इस तरह क्रियान्वित करना है जिससे समाज के दुर्बल वर्गों के हितों का संरक्षण हो सके। यह सिद्ध हो चुका है कि निजी क्षेत्र के उद्योगों में बाल-श्रमिकों तथा महिला श्रमिकों का बहुत अधिक शोषण होने के साथ ही एक ऐसी वस्तुओं का भी उत्पादन किया जाता है तो जनहित में नहीं होती। सार्वजनिक क्षेत्र ऐसे दोषों से

स्वतन्त्र होता है। सार्वजनिक क्षेत्र इस अर्थ में भी अधिक उपयोगी है कि इससे प्राप्त होने वाले लाभांश का उपयोग जनसाधारण के हित में ही किया जाता है।

(5) संसाधनों का विवेकपूर्ण आबंटन- सार्वजनिक उपक्रम के द्वारा उत्पादन तथा वितरण के क्षेत्र में इस तरह की नीतियां अपनायी जाती हैं जिससे देश की पूंजी तथा भौतिक संसाधनों का विभिन्न क्षेत्रों एवं वर्गों के बीच तार्किक आधार पर आवंटन किया जा सके। निजी क्षेत्र द्वारा ऐसे उद्योग स्थापित नहीं किए जाते जिनसे सम्बन्धित उत्पादन या तो अधिक लाभप्रद नहीं होता अथवा उनकी मांग कम होती है। इससे साधनों के वितरण की सम्पूर्ण प्रणाली दोषपूर्ण हो जाती है। सार्वजनिक क्षेत्र से सम्बन्धित उद्योगों द्वारा ऐसी सभी वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है जिससे जनसाधारण की आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।

(6) आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्रोत्साहन- आज सभी विकासशील देश नियोजन के द्वारा आर्थिक विकास के कुछ अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन लक्ष्यों का निर्धारण करते हैं। सार्वजनिक उपक्रम ही वह प्रभावपूर्ण माध्यम है जो सरकार की नीतियों के अनुसार अर्थव्यवस्था में इस तरह सन्तुलन बनाए रखने का प्रयत्न करते हैं जिससे सरकार द्वारा निर्धारित आर्थिक विकास के लक्ष्य को पूरा किया जा सके। राष्ट्र के आर्थिक साधन तथा पूंजी वैयक्तिक उद्यमियों की तुलना में कहीं अधिक होती है। इस दशा में सार्वजनिक उपक्रमों से कोई ऐसा आर्थिक संकट पैदा होने की सम्भावना नहीं रहती जो निजी क्षेत्र की कार्य-प्रणाली से सम्बन्धित एक मुख्य सीमा है।

(7) राष्ट्रीय सुरक्षा में योगदान- वर्तमान युग में बहुत से उद्योग ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध राष्ट्रीय सुरक्षा से होता है। रक्षा उपकरणों तथा सैन्य सामग्री का उत्पादन, आणुविक शक्ति का उपयोग, गुप्तचर विभागों द्वारा उपयोग में लायी जाने वाली वस्तुओं तथा राहत सामग्रियों का निर्माण आदि ऐसे क्षेत्र हैं जिन पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण होना देश की सुरक्षा के लिए आवश्यक होता है। इस क्षेत्र में आज सभी व्यक्ति सार्वजनिक क्षेत्र की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं।

(8) संरक्षात्मक विभेद का आधार-विकासशील देशों की एक मुख्य समस्या समाज के उन वंचित तथा अत्यधिक निर्धन वर्गों की सामाजिक तथा आर्थिक सुरक्षा से सम्बन्धित है जो अपने सीमित आर्थिक साधनों के कारण अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाते। सार्वजनिक क्षेत्र में उत्पादित वस्तुओं का मूल्य सरकार द्वारा इस तरह निर्धारित किया जा सकता है जिससे एक ही वस्तु समाज के सम्पन्न वर्गों की तुलना में निर्धन वर्गों को कम मूल्य पर प्राप्त हो सके। समाजशास्त्र की भाषा में इसे संरक्षात्मक विभेद की दशा के नाम से सम्बोधित किया जाता है जो समाज कल्याण के क्षेत्र में आज अनेक देशों की आर्थिक नीति का एक प्रमुख हिस्सा है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त सभी तर्कों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि देश की आधारभूत आर्थिक संरचना को विकसित करने में निजी क्षेत्र की अपेक्षा सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान कहीं अधिक है। निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र के पक्ष और विपक्ष में जो तर्क दिए जाते हैं, उनसे एक सामान्य धारणा यह बनने लगती है कि निजी और सार्वजनिक क्षेत्र पूरी तरह एक-दूसरे से भिन्न और परस्पर विरोधी हैं। वास्तविकता यह है कि निजी और सार्वजनिक क्षेत्र का विरोध व्यावहारिक की अपेक्षा सैद्धान्तिक अधिक है। व्यावहारिक रूप से निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र एक-दूसरे के सहयोगी तथा पूरक है। कुछ समय पूर्व भारत के प्रधानमंत्री ने भी एक अधिवेशन में यह विचार व्यक्त किया था कि निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के बीच कुछ विवाद रहना आवश्यक है लेकिन इन दोनों के सह-अस्तित्व से ही विश्व के विभिन्न देश एक-दूसरे के अधिक नजदीक आ सकते हैं। वास्तविकता यह है कि निजी क्षेत्र में एकाधिकारवादी अर्थव्यवस्था भी उतनी ही दोषपूर्ण हो सकती है जितनी कि अनेक क्षेत्रों में सार्वजनिक क्षेत्र की निष्क्रियता से विभिन्न समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। प्रोफेसर आर्थर श्लेसिंजर ने भी यह स्पष्ट किया कि सार्वजनिक अर्थव्यवस्था वाले समाजों में भी शोषण, विषमता और असमानता का पूरी तरह समाधान करना सम्भव नहीं है। आर्थिक विकास का आधार चाहे निजी क्षेत्र हो अथवा सार्वजनिक क्षेत्र, नई प्रौद्योगिकी के उपयोग, नवाचारों, विभिन्न वर्गों की आवश्यकता के अनुसार उत्पादन तथा आर्थिक व्यवस्था पर राष्ट्रीय नीतियों के अनुसार एक सद्भावपूर्ण नियन्त्रण दोनों तरह की व्यवस्थाओं के लिए आवश्यक दशाएं हैं।

अनेक लेखक यह भी मानते हैं कि वैश्वीकरण तथा उदारीकरण के वर्तमान युग में केवल राजनीतिक या वैचारिक आधार पर ही निजी अथवा सार्वजनिक क्षेत्र का विरोध होना देश के हित में नहीं हो सकता। वास्तविक विकास तभी सम्भव होता है जब सरकार की नीतियां एक ऐसी अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित हों जो व्यावहारिक, राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुकूल तथा दीर्घकालीन हितों के अनुकूल हों। विकासशील देशों की अनेक सरकारें भी अब यह मानने लगी हैं कि सार्वजनिक उपक्रम को घाटे में चलाने की जगह उन्हें निजी हाथों में सौंप देना राष्ट्र के व्यापक हित में हो सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा के वर्तमान युग में विभिन्न उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए आज उद्योगों के प्रबन्धन, अन्तर्राष्ट्रीय सेवाओं के आदान-प्रदान तथा नयी प्रौद्योगिकी के कुशल उपयोग को आवश्यक समझा जाने लगा है। यही कारण है कि निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र के बीच का वैचारिक मतभेद कम हुआ है तथा आर्थिक व्यवस्था के एकीकरण की प्रक्रिया बढ़ने के साथ ही निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के ऐसे आयाम विकसित होने लगे हैं जो इनकी पारस्परिक निर्भरता से सम्बन्धित हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1- John C. Bogle and Arthur Levitt Jr. : The Clash of the Cultures: Investment vs. Speculation. 2012
2. Thomas A. Cellucci : A Guide to Innovative Public-Private Partnerships: Utilizing the Resources of the Private Sector for the Public Good
3. Eduardo Engel , Ronald D. Fischer, Alexander Galetovic : The Economics of Public-Private Partnerships: A Basic Guide, Kindle Edition
4. N. J. Smelser : The Sociology of Economic Life.
5. G.K. Agrawal : Introducing Sub-Sociologoes, Sahitya Bhawan Publication Agra

6. Jeffrey Delmon : Public-Private Partnership Projects in Infrastructure: An Essential Guide for Policy Makers 2nd Edition, Kindle Edition
7. E. R. Yescombe : Public-Private Partnerships: Principles of Policy and Finance 1st Edition, Kindle Edition
8. E. R. Yescombe, Edward Farquharson : Public-Private Partnerships for Infrastructure: Principles of Policy and Finance 2nd Edition, Kindle Edition
9. Eduardo Engel, Ronald D. Fischer, Alexander Galetovic : The Economics of Public-Private Partnerships: A Basic Guide, Kindle Edition
10. Thomas A. Cellucci : A Guide to Innovative Public-Private Partnerships: Utilizing the Resources of the Private Sector for the Public Good, Kindle Edition
11. Dyuch, Karl, W. : Social Mobilization and Political Development. American Political Science Review. 1961.
12. Levic W.A. : The Theory of Economic Growth.
13. David R. Godschalk , Emil E. Malizia : Sustainable Development Projects: Integrated Design, Development, and Regulation 1st Edition, Kindle Edition
14. **एपस्टेन, टी.पी.;** इकॉनोमिक डवलपमेन्ट एण्ड सोशल चेन्ज, न्यू देहली, 1969.
15. **ईश्वरन, आर.;** ट्रेडिशन एण्ड इकॉनोमिक विलेज इण्डिया, रोलेज एण्ड केंशन पॉल एल.टी.डी., लंदन, 1966.

माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के व्यक्तित्व एवं संवेगात्मक बुद्धि के तुलनात्मक अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष

रत्नाकर सिंह

शोध छात्र, आर0आर0पी0जी0 कालेज, अमेठी, डॉ0 राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद, उ0प्र0

शोधकार्य में आँकड़ों का विश्लेषण करने के पश्चात् यह आवश्यक है कि उनके निष्कर्ष प्राप्त किये जायँ। निष्कर्ष किसी भी अनुसंधान को मौलिकता प्रदान करते हैं। किसी भी शोध को तब तक पूर्ण नहीं कहा जा सकता है जब तक कि उसका कोई सार्थक परिणाम या निष्कर्ष न निकले। निष्कर्ष एवं सुझाव, किसी भी अनुसंधान कार्य का अंकित पड़ाव होता है जहाँ पर सम्पूर्ण अनुसंधान की गुणवत्ता व विशेषताएँ समाहित होती हैं। निष्कर्ष किसी भी समस्या का निदान व सत्य का मानक चरण होता है। मानवीय विषयों या व्यावहारिक समस्याओं पर किये गये अनुसंधानों के निष्कर्ष स्थायी नहीं हो सकते क्योंकि देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार शिक्षा में परिवर्तन होते रहते हैं। एक अच्छे शोधकार्य का महत्व इसी में है कि शोधकर्ता निर्धारित उद्देश्यों एवं परिकल्पनाओं का मूल्यांकन प्रस्तुत करे जो कि शोधकार्य के प्रारम्भ में परिकल्पनाएँ रखी गयी हैं उनकी सत्यता के परीक्षण हेतु उनका परिणाम निकालना आवश्यक है क्योंकि परिणाम द्वारा ही किसी समस्या का निष्कर्ष ज्ञात होता है एवं भावी शोध के लिए सुझाव दिये जा सकते हैं। इसके साथ ही शोधकार्य में ली गयी समस्या एवं उनका विश्लेषण करके यदि निष्कर्ष नहीं निकाले जाए तो शोधकार्य महत्वहीन हो जाता है। अत: निष्कर्ष एवं सुझावों का शोधकार्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इससे-

- निष्कर्ष द्वारा ही किसी समस्या का परिणाम ज्ञात होता है एवं उस परिणाम के आधार पर भावी शोधों के लिए सुझाव दिये जा सकते हैं।
- निष्कर्ष ही किसी समस्या को वैध एवं विश्वसनीय ठहरा सकते हैं। शोध कार्य में रही त्रुटियों को दूर करने का सुझाव भी दिया जा सकता है।
- निष्कर्ष द्वारा ही किसी समस्या का प्रमाणीकरण किया जा सकता है एवं सुझाव दिये जा सकते हैं। किसी भी शोध समस्या का निष्कर्ष ही वह महत्वपूर्ण पड़ाव होता है जिस पर सम्पूर्ण शोध कार्य की गुणवत्ता निर्भर करती है।
- निष्कर्ष द्वारा ही किसी समस्या को मापा जा सकता है और मापन के आधार पर ही विभिन्न सुझाव दिये जा सकते हैं।
- निष्कर्ष द्वारा किसी समस्या का मूल्यांकन करके भावी शोध के लिए सुझाव दिये जा सकते हैं।
- निष्कर्ष, भविष्य में शोध कार्य में लगे शोधकर्ताओं अथवा विद्यार्थियों के लिए एक आधार प्रदान करता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि निष्कर्ष एवं सुझाव किसी भी शोध कार्य के लिए महत्वपूर्ण स्तम्भ होते हैं। आँकड़ों के विश्लेषण के उपरान्त जो भी परिणाम प्राप्त हुए हैं उनका विवरण निम्न प्रकार है-

निष्कर्ष

परिकल्पना संख्या-(1)

माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के व्यक्तित्व में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, का परीक्षण करने पर दोनों सार्थकता स्तरों क्रमश: 0.05 व 0.01 स्तर पर सार्थक अन्तर नहीं पाया गया तथा शोधकर्ता की सम्बन्धित शून्य परिकल्पना स्वीकृत कर ली गयी।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि विद्यालय में प्रभावशाली शिक्षण- अधिगम प्रक्रिया को लागू करने, उचित शिक्षण विधियों का प्रयोग करने व बच्चों के सर्वांगींण विकास के लिए शिक्षक व शिक्षिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है तथा इस भूमिका में शिक्षकों के व्यक्तित्व का अहम योगदान होता है। वर्तमान समय में प्राय: देखा जा रहा है कि अध्यापकों के व्यक्तित्व में गिरावट आ गयी है जिसका नकारात्मक प्रभाव कक्षागत शिक्षण व बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ रहा है। शोधकर्ता ने माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षक व शिक्षिकाओं के व्यक्तित्व का अध्ययन किया। परिकल्पना के निरसन व सत्यापन में हालाँकि विद्यालय के शिक्षक व शिक्षिकाओं के व्यक्तित्व में कोई सार्थक अन्तर प्राप्त नहीं हुआ। विद्यालय में नियुक्त अध्यापकों का व्यक्तित्व विद्यालय के अन्दर संचालित क्रियाकलापों का आधार स्तम्भ होता है तथा सम्पूर्ण शिक्षण अधिगम प्रक्रिया इसी आधार स्तम्भ के इर्द-गिर्द केन्द्रित होती है। माध्यमिक विद्यालयों में नियुक्त अध्यापक तथा अध्यापिकायें अध्यापन प्रभावशीलता एवं बहुत से मनोवैज्ञानिक गुणों को धारण करते हैं जिसका प्रभाव उनकी शिक्षण प्रभावशीलता व शिक्षण के समय प्रयुक्त शिक्षण विधियों पर अनिवार्य रूप से दृष्टिगोचर होती है। इसलिए माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों व शिक्षिकाओं का यह मूलभूत उत्तरदायित्व होना चाहिए कि वे अपने व्यक्तित्व व अन्य मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर बच्चों के सर्वांगींण विकास में योगदान दें जिससे उनकी शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि की जा सके।

परिकल्पना संख्या-(2)

प्रस्तुत शोध की परिकल्पना संख्या (2) में शोधकर्ता ने माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक व शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अन्तर का पता लगाने का प्रयास किया जिसमें परिकल्पना की सांख्यिकीय विधियों द्वारा परीक्षणोपरान्त यह ज्ञात हुआ कि दोनों समूहों की सांवेगिक बुद्धि में किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं होता है।

चूँकि विद्यालयों में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाने में शिक्षकों की भूमिका महत्वपूर्ण है। साथ ही साथ अध्यापकों के अन्दर विद्यमान संवेगात्मक बुद्धि की महत्ता को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि इन्हीं सभी मनोवैज्ञानिक गुणों का प्रयोग कर अध्यापक विद्यालयों में सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को सहज, सरल, बोधगम्य व विद्यार्थियों के अनुकूल बनाता है। शिक्षाविदों का विचार है कि शिक्षक के बिना शिक्षार्थियों के सर्वांगींण विकास की संकल्पना नहीं की जा सकती। इसी प्रकार संवेगात्मक बुद्धि के अभाव में शिक्षक की शिक्षण विधियों व शिक्षण तकनीकियों में व्याप्त धार कुंद हो जाती है और वह बच्चों के सर्वांगींण विकास में स्वयं को अक्षम महसूस करता है।

शोध में माध्यमिक विद्यालयों में अध्यापनरत शिक्षक व शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि में किसी भी प्रकार का अन्तर प्राप्त नहीं हुआ। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास व शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि करने के लिए अध्यापक व अध्यापिकाओं की जिम्मेदारी समान रूप से है। शिक्षक अपनी संवेगात्मक बुद्धि के आधार पर कक्षा में सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को सरल व प्रभावशाली बनाते हैं जिसके परिणामस्वरूप छात्र बिना किसी कठिनाई व रुकावट के विषयवस्तु को आसानी से समझने व सीखते हैं तथा अपने दैनिक जीवन में सीखी हुई विषयवस्तु का अनुप्रयोग करते हैं जिससे उनका ज्ञान स्थायित्व को प्राप्त करता है।

परिकल्पना संख्या-(3)

परिकल्पना संख्या (3) के अन्तर्गत शोधकर्ता ने ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के व्यक्तित्व में सार्थकता का पता लगाने का प्रयास किया है। आँकड़ों के एकत्रीकरण व सांख्यिकीय विश्लेषण व गणना के उपरान्त यह ज्ञात हुआ कि ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक व शिक्षिकाओं के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर नहीं है। शोधकर्ता का मानना था कि वर्तमान समय में माध्यमिक विद्यालयों के ग्रामीण क्षेत्रों के अध्यापक तथा अध्यापिकाओं में अच्छे व्यक्तित्व का अभाव होता है, ऐसा कुछ शोध अध्ययनों से भी ज्ञात होता है। अच्छे व्यक्तित्व के अभाव में ऐसे अध्यापक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को भी प्रभावशाली ढंग से संचालित नहीं कर पाते। इन्हीं सभी बातों को दृष्टिगत रखते हुए शोधकर्ता ने अपने इस प्रस्तुत शोध में उपर्युक्त परिकल्पना का निर्माण किया। यह परिकल्पना प्रस्तुत शोध में सम्बन्धित शोध उपकरणों से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर कसौटी की गयी जिसमें यह परिकल्पना सत्य सिद्ध हुई।

दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अध्यापक शिक्षा प्रक्रिया का नेतृत्व करता है। उसके अन्दर प्रभावी मनोवैज्ञानिक गुणों का समावेश होना आवश्यक होता है। व्यक्तित्व जैसे मनोवैज्ञानिक गुण के आधार पर अध्यापक तथा अध्यापिकाएँ चाहे वे शहरी क्षेत्र के विद्यालय में कार्यरत हों या ग्रामीण क्षेत्र में, विद्यालय में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाकर अपने छात्रों का सर्वांगींण विकास करते हैं। इसके अतिरिक्त अपने मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर वह स्वयं को विद्यार्थियों के समक्ष आदर्श रूप में प्रस्तुत करता है।

प्रस्तुत परिकल्पना में ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षक तथा शिक्षिकाओं का व्यक्तित्व समान व आदर्श रूप में होता है, ऐसा सिद्ध होता है। इसी व्यक्तित्व जैसे मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर वे कक्षागत व अन्य पाठ्यसहगामी क्रियाओं के सकारात्मक विकास में अपना अमूल्य योगदान देते हैं।

परिकल्पना संख्या-(4)

परिकल्पना संख्या (4) के अन्तर्गत शोधकर्ता ने शहरी क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के व्यक्तित्व में सार्थकता को ज्ञात करने का प्रयास किया। जिसके लिए दोनों समूहों के मध्यमानों के मध्य सार्थक अन्तर ज्ञात करने के लिए क्रांतिक निष्पत्ति (t) की गणना की गयी। t के मान के आधार पर सार्थकता स्तरों 0.05 तथा 0.01 पर गणना की गयी जिसमें पाया गया कि दोनों समूहों के मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं है अर्थात् शहरी क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

आज की शिक्षा व्यवस्था में प्राय: यह देखने को मिल रहा है कि माध्यमिक शिक्षा में लोगों के साथ कुछ चुनौतियाँ उभरकर सामने आयी हैं जिसमें शिक्षक अपने शिक्षण कार्य के प्रति उदासीन होते जा रहे हैं जिसके कारण माध्यमिक विद्यालयों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा लुप्तप्राय सी हो गयी है। इस समस्या के हालाँकि अनेक कारण हो सकते हैं परन्तु इस समस्या में जो मूलभूत कारण शोधार्थी को दिखाई पड़ता है- उसमें शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के कुछ मनोवैज्ञानिक कारण हैं इसमें भी प्रमुख रूप से उनके व्यक्तित्व में होने वाला उतार-चढ़ाव है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के समय शिक्षार्थियों को चुनौतीपूर्ण शिक्षा देकर उनका सर्वोत्कृष्ट विकास करने में शिक्षकों के व्यक्तित्व की अहम भूमिका होती है जिसके आधार पर वे विद्यार्थियों मे व्यावसायिक परिवर्तन लाकर उनके आंतरिक गुणों का परिमार्जन व परिवर्द्धन करते हैं।

शोधकर्ता के मन में यह प्रश्न उठा कि क्या माध्यमिक विद्यालयों में अध्यापनरत् शिक्षक व शिक्षिकायें अपने व्यक्तित्व के आधार पर विद्यार्थियों के सर्वोत्कृष्ट विकास में समान रूप से योगदान देते हैं अथवा नहीं क्योकि समाज में शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की जिम्मेदारियाँ अलग-अलग होती हैं तो क्या उनका व्यक्तित्व कक्षा में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को समान रूप से प्रभावित करता है? अत: सम्बन्धित परिकल्पना के परीक्षण से यह बात सिद्ध होती है कि शहरी क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक व शिक्षिकाओं के व्यक्तित्व समान होते हैं।

परिकल्पना संख्या-(5)

परिकल्पना संख्या (5) में स्थित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अन्तर ज्ञात किया गया। सम्बन्धित परिकल्पना का सांख्यिकीय विधियों के आधार पर सत्यापन करने पर यह ज्ञात हुआ कि दोनों समूहों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।

कक्षागत शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में विद्यालयी वातावरण के साथ-साथ शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के बहुत से मनोवैज्ञानिक गुणा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शोधकर्ता ने ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक व शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि के विषय में अध्ययन किया चूँकि संवेगात्मक बुद्धि किसी भी व्यक्ति की स्वयं तथा अन्य की आंतरिक भावनाओं, संवेगों तथा विचारों को समझने, व्यक्त करने तथा उन पर नियंत्रण रखने की योग्यता है तथा इन सभी गुणों का उसके क्रियाकलापों पर भी प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि भी कक्षा-अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करती है। प्राय: कुछ शोध अध्ययनों द्वारा ज्ञात हुआ है कि महिलाओं तथा पुरुषों की संवेगात्मक बुद्धि में अन्तर होता है। शोधकर्ता ने इसी बात को ध्यान में रखते हुए इस परिकल्पना का निर्माण किया है कि यदि माध्यमिक विद्यालयों में अध्यापनरत् शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि में अन्तर होगा तो उनके द्वारा संचालित शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में भी अन्तर होगा। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कक्षागत अधिगम में उतार-चढ़ाव देखने को मिलेगा परन्तु उपर्युक्त परिकल्पना के विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं है तथा दोनों ही समूह शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाने में समान रूप से योगदान देते हैं।

परिकल्पना संख्या-(6)

परिकल्पना संख्या (6) में प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता ने शहरी क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है का परीक्षण किया है। जिसमें दोनों समूहों के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि शहरी क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक व शिक्षिकायें समान संवेगात्मक बुद्धि को धारण करते हैं। एक प्रकार से संवेगात्मक बुद्धि मनुष्य की व्यक्तिगत तथा सामाजिक योग्यता होती है। जिसके द्वारा उसके अन्दर स्वजागरूकता, स्वनियमितता व आत्म प्रेरणा, विश्वसनीयता, स्वनियंत्रण, चेतनता इत्यादि आंतरिक गुणों का विकास होता है। शिक्षक तथा शिक्षिकायें चाहे वे जिस प्रकार या जिस क्षेत्र में अध्यापनरत हों, बच्चों के सर्वांगीण विकास करने में इन गुणों को उपयोग में लाते हैं।

प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता ने वे माध्यमिक विद्यालय जो शहरी क्षेत्रों में स्थित हैं में अध्यापनरत शिक्षक व शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि की तुलना करने का प्रयास किया है क्योंकि वर्तमान समय में कक्षागत अधिगम को सकारात्मक रूप से प्रभावित करने के लिए शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि का अध्ययन किया जाना अति आवश्यक है क्योंकि इन्हीं सब मनोवैज्ञानिक गुणों के द्वारा शिक्षक तथा शिक्षिकायें बच्चों के लिए सीखने का एक स्वस्थ वातावरण तैयार कर सकते हैं जिसका प्रभाव उनके शिक्षण अधिगम प्रक्रिया पर पड़ेगा व उनका सर्वांगींण विकास हो सकेगा। शिक्षकों व शिक्षिकाओं के मनोवैज्ञानिक गुणों का सीधा प्रभाव शिक्षार्थियों के सीखने की क्रिया पर दृष्टिगोचर होता है। शोधकर्ता द्वारा माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक व शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि का अध्ययन करना इस बात का द्योतक है कि इस आधार पर कक्षागत अधिगम को प्रभावी बनाया जा सके जिसका अधिकाधिक लाभ शिक्षार्थियों को प्राप्त हो सके।

परिकल्पना संख्या-(7)

परिकल्पना संख्या (7) में माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के व्यक्तित्व तथा संवेगात्मक बुद्धि का कक्षागत अधिगम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इस संदर्भ में शोधकर्ता का मानना है कि कक्षागत अधिगम पर शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के व्यक्तित्व तथा संवेगात्मक बुद्धि का प्रभाव पड़ता है। शिक्षक तथा शिक्षिकायें अपने व्यक्तित्व व संवेगात्मक बुद्धि की सहायता से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी, सरल, सहज व रुचिकर बनाकर विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करते हैं। इसलिए शिक्षक व शिक्षिकाओं में अच्छे व्यक्तित्व निर्माण व परिपक्व संवेगात्मक बुद्धि का होना अति आवश्यक है जिसका प्रभाव विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ता है तथा वे कक्षा में विषयवस्तु को अपेक्षाकृत सरलता व सहजता से सीखते हैं। इसके अतिरिक्त कक्षा-कक्ष का वातावरण भी सुगम व पठन-पाठन के अनुकूल बना रहता है।

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्राप्त आँकड़ों व विश्लेषण के उपरान्त यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के व्यक्तित्व व संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं होता है बल्कि दोनों ही अपने अच्छे व्यक्तित्व व संवेगात्मक बुद्धि के द्वारा कक्षा-शिक्षण को सकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं तथा बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि के अधिकतम विकास में योगदान देते हैं।

संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कपिल, एच0के0: अनुसंधान विधियाँ, हर प्रसाद भार्गव प्रकाशन, आगरा, 1994
2. गैरेट, हेनरी ई0: शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकी के प्रयोग, द्वितीय संस्करण, कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना, 1972
3. गुप्ता, एस0पी0: सांख्यिकीय विधियाँ, शारदा पुस्तक भवन, युनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद, 2009
4. राय, पी0एन0: अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1998
5. शर्मा, आर0पी0: शिक्षा अनुसंधान, लायल बुक डिपो, 1990
6. Sixth Survey of Educational Research (1993-2000) Vol. I, N.C.E.R.T., New Delhi, 2006

हिन्दी नारी कविता और अनामिका

डॉ० सुरेन्द्र सिंह

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, श्रीमती मनभरी देवी पी जी महाविद्यालय चनाना, झुंझुनू (राज.)

डॉ० यदुवीर सिंह खिरवार

सह आचार्य, हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय दूदू जयपुर (राज.)

कविता साहित्य की एक ऐसी विधा है, जो जीवन संस्पर्शिता है, जिसमें मानव जीवन को अति निकट से स्पर्श करने की क्षमता है। यह जीवन की विसंगतियों को प्रस्तुत करने में सक्षम है। हिन्दी कविता का प्रारम्भ आदिकाल से माना जाता है। इस काल से लेकर, विकास काल तक नारी कवयित्रियों की भी अतीव महत्वपूर्ण भूमिका रही है। निश्चय ही नारी साहित्य को अत्यन्त समृद्ध और गौरवान्वित किया है, परन्तु नारी कवयित्रियों ने कुछ विलम्ब से अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। इसके प्रमुख कारण थे- नारी में जागरूकता एवं शिक्षा का अभाव होना एवं उसे घर की चार दीवारी तक ही सीमित रखना। परिवर्तन सृष्टि का नियम है। समाज में जब परिवर्तन के चिह्न दिखायी दिये, तो धीरे-धीरे भारतीय नारियों में भी जागरूकता बढ़ी, वह सुशिक्षित होने लगी। इस परिवर्तित युग में जब नारी शिक्षित एवं जागरूक हुई, तब उसने अपने अस्तित्व को पहचाना। संभवत: यहीं से नारी ने अपने अनुभूत सत्य को लेखन के द्वारा अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया, जिससे लाखों-करोड़ों नारियों को जागरूक बनाकर उन्हें दासता की बेड़ियों से मुक्त कराया जा सके। नारी रचनाकारों की दृष्टि से काव्य सृजन यह सिद्ध करता है कि हिन्दी का काव्य सृजन अत्यन्त व्यापक, गहन, प्रभावपूर्ण एवं समृद्धशाली है।

आधुनिक युग में महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान, शकुन्तला माथुर आदि को नारी लेखन के आधार स्तम्भों के रूप में जाना जाता है। इन नारी रचनाकारों में लोकप्रियता और सर्जनात्मक गुणवत्ता की दृष्टि से अनामिका का स्थान सर्वोपरि है। आज वे असंख्य पाठकों की प्रशंसा की पात्र बनी हुई हैं। अनामिका की कविताओं में नारी जीवन के संघर्ष का ताप, जीवन के बहुरंगी चित्र एवं औदात्य भावना के विकास का भाव है। फिर भी सौन्दर्य प्रियता, भावुकता, मार्मिक दृश्यों का भावपूर्ण चित्रण एवं उनकी सक्षम अभिव्यक्ति उनके काव्य संग्रहों की महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। आज की सामाजिक विसंगतियों ने जिस टूटन, घुटन, ऊबन एवं अन्त:संघर्ष को जन्म दिया है, उसका यथार्थ रूप में चित्रण करने में अनामिका को अत्यन्त सफलता मिली है। यही कारण है कि आज कवयित्री अनामिका नारी कवयित्रियों में सर्वोपरि स्थान पर आसीन हैं। इस बारे में अनामिका का कहना है- वास्तविक जीवन-जगत के चरित्र हों या क्लासिकों के चरित्र मेरी कल्पना के स्थायी नागरिक वही बनते जिन्हें कभी न्याय नहीं मिला, जो हमेशा लोगों की गलतफहमी का शिकार हुए, दुनियॉ ने जिन्हें कभी प्रेम न दिया, न मान। भीतर से वे जितने अगाध होते उतने ही अकेले।[1]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् नारी साहित्य समृद्ध करने में नारी कवयित्रियों का योगदान विशेष सराहनीय रहा है। नारी होने के कारण इन कवयित्रियों ने पुरुष से भी अधिक सूक्ष्म चित्रांकन अनेक संदर्भों में किया है। अनामिका ने नारी की अस्मिता की तलाश बड़ी गहराई और छानबीन के साथ की है। इतना ही नहीं, नारी के जिस परम्परागत मध्ययुगीन स्वरूप से हम परिचित थे, उस स्वरूप के विपरीत आज अनामिका ने अपनी कविताओं में नारी लेखन ने नारी के आधुनिक रूप को तथा उसकी सामाजिक स्थिति को बड़ी गहराई से चित्रित किया है। नारी रचनाकारों ने समाज, राजनीति, धर्म, विज्ञान, संस्कृति, नैतिकता आदि को विविध संदर्भों में उकेरा है। हिन्दी नारी कविता में रचनाकारों का योगदान निरन्तर विकास के पथ पर गतिमान है।

हिन्दी कविता और अनामिका

आज साहित्य में नारी लेखन को मात्र नारी जीवन और वह भी निम्न एवं मध्यवर्गीय नारी जीवन तक सीमित मानना उचित प्रतीत नहीं होगा। इनके लेखन में मानवीय संबंधों की व्यापकता के चित्र भी हैं। कहने का आशय यह है कि आज नारी लेखन मात्र नारी जीवन चित्रण तक ही सीमित नहीं रहकर व्यापक सामाजिक-राजनीतिक परिवेश में सांस ले रहा है।

आलवार भक्त शिरोमणि आण्डाल से शुरू हुआ नारी लेखन का सफर आज जिस मुकाम पर पहुँचा है, उसका अपना एक विशिष्ट महत्त्व है। नारी मन की पीड़ा की अभिव्यक्ति में तो उसे पुरुष रचनाकारों से भी श्रेष्ट माना गया है, परन्तु भारतीय समाज में नारी की स्थिति और नियति को व्याख्यायित करना आज पहले से भी जटिल हो गया है। उसी समाज में चूल्हे की आँच से तपी नारी पनपती है। इसी समाज में सामाजिक अन्याय और पुरुष शोषण की शिकार नारी धधकते अग्नि कुण्ड में कूदती है, इसी समाज में स्वतंत्रता-समानता से जैसे बेख़बर खेतों तथा कारखानों में घुटने वाली नारी सांस लेती है। नारी की ये छवि कभी सूक्ष्म किस्म की मानसिक हिंसा से बिलबिलाकर, तो कभी परम्परा में ढालकर हमारे चारों ओर नाचती देखी जा सकती है। आज भी नारी के भीतर पुरुष की श्रेष्टता का भाव है, तो कभी-कभी स्वयं पुरुष हो जाने का भाव दृष्टिगोचर होता है।

आज विषम परिस्थितियों में तो कवयित्रियों का अस्तित्व एवं महत्त्व और भी बढ़ जाता है। उसे ही जीवन में पनपती नारी और साहित्य में रची जाती नारी के विभेद को देखना, समझना व अनुभव करना भी है। आज मानव जीवन अनेक परिस्थितियों में उलझकर रह गया है। भूमण्डलीकरण के दौर में अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर चुके हैं। आज उपभोक्तावादी, बाज़ारवादी, पूंजीवादी, भोगवादी संस्कृति का बोलबाला है, मानव समाज में वैचारिक धरातल पर परिवर्तन हो रहा है, मानव धर्म से हट कर जाति, धर्म की चर्चा है, पद का सम्मान हो रहा है, व्यक्तित्व के स्थान पर। आधुनिक जीवन में मूल्य चर्चा का निरन्तर विस्तार हो रहा है, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन आ रहे हैं। भौतिक एवं सांस्कृतिक जगत् में तनाव व्याप्त है। नये मूल्यों के स्थान पर युगानुकूल नवीन मूल्यों को ग्रहण किया जा रहा है। नारी रचनाकारों ने इन सभी समस्याओं एवं चुनौतियों को अपनी कविताओं में सच्चाई के साथ अभिव्यक्त किया है। अर्थात् कहा जा सकता है कि इनका चिंतन एवं इनकी दृष्टि समाज की सच्चाई के अति निकट है।

आज के युग में नारी न केवल अपने अस्तित्व को पहचान रही है, बल्कि उसे स्थापित भी करने का प्रयास कर रही है। नारी जीवन में प्रेम की अनुभूति उसके केन्द्र में है और इसकी अपनी सीमाएँ एवं मर्यादा भी हैं। वस्तुत: एक नारी के जीवन में व्याप्त संत्रास, घुटन, त्रासदी, प्रेममय भाव और व्यापार को नारी मन की अपेक्षा और कौन समझ सकता है। इस संदर्भ में साहित्यकार हज़ारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि- यह विचित्र बात है कि नरी जब साहित्य लिखती है, स्त्रियों के बारे में लिखती है और जब पुरुष लिखता है तब भी स्त्रियों के संबंध में लिखता है। दोनों में अन्तर यह होता है कि नरी के लिखने का उद्देश्य है अपने विषय में फैले हुए भ्रम का निराकरण और पुरुष का उद्देश्य है उसके विषय में और भ्रम पैदा करना।[2] वस्तुत: नारी के सूक्ष्म मन का चित्रण करने में पुरुष रचनाकारों की अपेक्षा नारी रचनाकार ही अधिक समर्थ सिद्ध हो सकती हैं। अर्थात् नारी मन की अथाह गहराईयों को नारी ही जान सकती है। जितनी सत्यता और ईमानदारी से एक नारी दूसरी नारी के मन में छिपे हुए रहस्यों को भेद सकती है उतना पुरुष नहीं। यही कारण है कि नारी रचनाकार कविता लेखन के क्षेत्र में सफलता अर्जित कर रही हैं।

यों तो विगत तीन-चार दशकों में नारी लेखन के क्षेत्र में कवियों की तुलना में कवयित्रियों का अभूतपूर्व योगदान रहा है। इन्हीं कवयित्रियों में अग्रणी अनामिका एक लब्ध प्रतिष्टित कवयित्री के रूप में पहचानी जाती हैं। इनका मौलिक चिंतन अनेक नवीन मान्यताओं के साथ इनकी काव्य कृतियों में दिखायी देता है। यों तो अनामिका ने साधारण नारी जीवन और उसके आसपास के परिवेश के यथार्थ को आधार बनाकर अपनी काव्य कृतियों का सृजन करके पहली कवयित्री के रूप में आज प्रतिष्टित हो चुकीं हैं। यों तो इन्होंने शीतल स्पर्श एक धूप को, अनुष्टुप, गलत पते की चिट्ठी, बीजाक्षर, समय के शहर में, कवि ने कहा आदि काव्य संग्रहों की सर्जना कर ख्याति अर्जित की। लेकिन कवि ने कहा नामक काव्य कृति ने इन्हे उस मुकाम पर पहुँचा दिया, जहाँ पहुँचने के लिए रचनाकार तमाम उम्र गुज़ार कर भी नहीं पहुँच पाता। इनकी काव्य कृतियों में नारी जीवन की यथार्थ स्थिति के साथ-साथ निम्नवर्गीय जीवन की विसंगतियों और वैषम्य को भी देखा जा सकता है। इतना ही नहीं, इनके काव्य संग्रह बड़े रोचक एवं शिल्प की कसावट लिए हुए हैं। भाषा में सहज प्रभाव और गतिशीलता है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है अनामिका के काव्य संग्रह लीक से हटकर हैं। इस नारी साहित्य लेखन की रचना प्रक्रिया में न जाने कितने मोड़ आये और न जाने कितने ही पड़ाव। परन्तु यह लेखन की प्रक्रिया दुर्गम मार्गों से होती हुई आज अपने मुकाम तक पहँच चुकी है। कवयित्रियों ने हिन्दी कविता लेखन के क्षेत्र में अनवरत् संघर्ष किया, कष्टों को झेला और अवरोधों को साहसपूर्वक पार कर आज हिन्दी कविता लेखन के क्षेत्र में अपना एक पृथक व विशिष्ट स्थान बना लिया है। वास्तव में घर की चार दीवारी एवं परिवार के समस्त दायित्वों को अपने में समेटते हुए और कभी-कभी तो घर बाहर दोनों उत्तरदायित्वों को वहन करते हुए भी अपने भीतर घुमड़ती चीख को शब्दबद्ध करने का प्रयास किया है।

भारतीय समाज में चतुर्दिक व्याप्त विषमताएँ और विसंगतियॉ जब चाहे-अनचाहे किसी नारी के संवेदनशील रचनाकार मन तक पहँचकर उसे आंदोलित करती रही हैं। इतना ही नहीं, वह उन्हें अभिव्यक्ति देने को बाध्य हो जाती है। वस्तुत: आलवार भक्त आण्डाल ने कोई विशेष सर्जनात्मक कर्म नहीं किया, परन्तु अपने सामाजिक उपदेशों के माध्यम से इस क्षेत्र के लिए भावभूमि अवश्य निर्मित की। आण्डाल ने नारी चेतना और नारी लेखन की जो भाव भूमि तैयार की, उसी आधार भूमि पर अक्कमहादेवी, ताराबाई शिंदे, मुक्ताबाई एवं मीराबाई आदि को नारी लेखन की दृष्टि से नींव का पत्थर माना जा सकता है। इसके बाद महादेवी वर्मा और सुभद्राकुमारी चौहान, शकुन्तला, गगन गिल आदि ने हिन्दी कविता के क्षेत्र में जो रचना कर्म किया, उसी के कारण आज हिन्दी नारी साहित्य लेखन अपने मुकाम पर पहुँचा है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि प्राचीन काल से ही नारी को साहित्य के केन्द्र में रखा गया है। वाल्मीकि से लेकर आज तक के युग की कविता नारी के अधिकारों की पक्षधर रही है। आधुनिक समय में इस कविता ने समाज के अन्तर्विरोधों को व्यक्त करने के लिए मुख्यत: नारी पात्रों को ही चुना है। मलयालम के महान् कवि कुमारन आशान की तीन प्रमुख कविताएँ सीता, चाण्डालभिक्षुणी एवं वासवत्ता नारी के अधिकारों के लिए संघर्ष का स्वर उठाती हैं। सीता कहती है खंपड़ी में फूटते चने के समान मन में विचार मुझे तंग करते हैं। खंपड़ी में फूटते चने का बिम्ब नारी की समस्त पीड़ा को उजागर करता है। प्रेम ही वह शक्ति है, जो सब को समानता प्रदान करती है। नारी ने भी अपने लिए प्रेम का अधिकार मांगा है। विश्व में प्रत्येक स्थान पर कविता में प्रेम को ही केन्द्र में रखा गया है। रविन्द्रनाथ और शरत्चन्द्र तो नारी चेतना के प्रखर पक्षधर रहे हैं और यही क्रम निरन्तर चला आ रहा है। परन्तु एक बात और उभर कर सामने आती है कि मात्र पुरुषों ने ही नहीं, बल्कि स्वयं नारियों ने अपनी चेतना और मानव मात्र की चेतना के अद्भुत गीत गाये हैं। विश्व की जितनी भी मर्मस्पर्शी कविताएँ हैं, उनकी रचनाएँ केवल नारियों द्वारा ही हुई हैं। थैरी गाथाएँ जो बौद्ध भिक्षुणियों ने रची, नारी मन की स्वतंत्र अभिव्यक्ति तो हैं ही साथ में प्रतिरोध के भी जीवन्त दस्तावेज हैं। भक्तिकाल में अक्कमहादेवी, ललदद और मीराबाई जैसी कवयित्रियों ने नारी चेतना की अदम्य आकांक्षा को अभिव्यक्ति दी।

स्वाधीनता आंदोलन के समय में महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान व रशीद जैसी नारी रचनाकारों ने नारी जीवन के मन और आंतरिक लालसा को उद्दाम आवेग के साथ अभिव्यक्ति दी। आज तो हिन्दी में अनेक कवयित्रियाँ सक्रिय हैं। जो नारी चेतना एवं नारी चेतना को प्रमुखता से अपनी लेखनी के माध्यम

से सृजित कर रही हैं। इतनी बड़ी संख्या में श्रेष्ट कवयित्रियाँ इससे पूर्व कभी नहीं हुई और ये स्वयं अपनी कविता की शक्ति के कारण आज महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं। गगन गिल, अनामिका, कात्यायनी, निर्मला पुतुल, निर्मला गर्ग, सविता सिंह, नीलेश रघुवंशी जैसी अनेक नारी रचनाकारों की कविताएँ केवल नारी चेतना की चेतना हो ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को बदलने की पुरजोर कोशिश कर रही हैं।

कविता जीवन को चित्रित करते हुए कुछ मूल्यों, आदर्शों व आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करती है, जिसका आज बड़ा महत्त्व है। जब सब चुपचाप बैठे हों तो सत्य का एक शब्द भी गोली दगने जैसी आवाज़ करता है। फिर भी आज नारी चेतना का प्रश्न मात्र कविता का प्रश्न ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण मानव समाज के पुर्ननिर्माण का प्रश्न है। आज हमें ऐसे समाज की आवश्यकता है, जहाँ नरी-पुरुष में कोई भेद भाव न हो, नारी-पुरुष में आपसी सामन्जस्य की भावना हो एवं एक दूसरे में प्रतिस्पर्धा न हो, कोई भी शोषण एवं अत्याचार का शिकार न हो। नारी ने अपनी चेतना के जो प्रयास किये हैं, उनमें एक प्रश्न स्वयं नारी की जैविक स्थिति यानी शरीर के प्रति रुख से जुड़ा रहा। नरी-पुरुष को परस्पर विरोधी नहीं होना चाहिए। बल्कि दोनों को एक दूसरे के प्रति सामंजस्य स्थापित करना चाहिए। जिससे जीवन सरलता और सुगमता से व्यतीत हो सके। वस्तुतः नारी-पुरुष तो एक दूसरे के पूरक होते हैं। आज के समय में नारी और पुरुष दोनों ही शोषण के शिकार हो रहे हैं। आज दोनों को ही आर्थिक चेतना चाहिए। इनको समाज में होने वाली जाति-धर्म-भाषा एवं नस्ल के नाम पर होने वाले सभी उत्पीड़नों से चेतना की आवश्यकता है। इसके लिए नारी और पुरुष दोनों को ही संघर्ष करना होगा, क्योंकि एक के अभाव में दूसरे की चेतना संभव प्रतीत नहीं होती। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आज नारी चेतना की दिशा में तत्काल जो आवश्यक है- वह है नारी की आर्थिक स्वाधीनता। आज के समय में स्वावलम्बी बने बिना स्वयं की आर्थिक चेतना संभव नहीं है। यह आज के समय की पहली आवश्यक शर्त है। चेतनाा के समस्त बीजांकुर यहीं से फूटते हैं। वस्तुतः समाज की धुरी नारी को ही माना जाता है। इसलिए आवश्यक है कि उसे समाज में सम्मान पूर्वक केन्द्रीय स्थान मिलना चाहिए। नारी की जैविक संरचना ही उसकी असल शक्ति है न कि यह इसकी दुर्बलता या विवशता है। सुब्रह्मण्य भारती की कविता इसी दृष्टि को उजागर करती है। उद्धरण दृष्ट्व्य है-

नाचो! खुशियाँ मनाओ!
जो कहते थे कि स्त्रियों का पुस्तक छूना पाप है
वे मर चुके हैं।
जो मूर्ख कहते थे कि वे स्त्रियों को
घरों में कैद कर देंगे
वे अब अपनी सूरत नहीं दिखा सकते
उन्होंने हमारी जगह घर में दिखाई
जैसे हम कोई बैल हों जो
चारा खाए, पीटा जाए और
मुंह बंद करके काम करे।
हमने यह सब ख़त्म कर दिया है।
नाचो गाओ खुशी मनाओ।

आज के समय में शोषण मुक्त समाज में सामाजिक व आर्थिक समानता के बावजूद प्रेम और समानता का भाव सबसे आवश्यक माना जाता है।

कवयित्री अनामिका की कविता में नारी देह से जुड़ा यह अनूठा अनुभव है लड़की के पहली बार ऋतुमति होने का। नारी देह से जुड़ा यह रजस्राव हमारी रोज़मर्रा की दुनियाँ में अस्पृष्य और अकथनीय माना जाता है, लेकिन इस आनुभविक तथ्य की अभिव्यक्ति कैसे एक नई सौन्दर्य अनुभूति रचती है। यह अनायास ही उपस्थित हो जाती है।

कुण्डलिनी सी जगी बैठी थी
लड़की पलंग पर
+++++++++
काढ़ दिये थे
कत्थई गुलाब रात भर में। [3]

निश्चय ही प्रस्तुत पंक्तियों में परी माँ का प्रयोग पूरे प्रसंग को ममत्व एवं वात्सल्य का स्पर्श देता है। यह अनुभव पुरुष का नहीं हो सकता। दैहिक अनुभवों की यह अभिव्यक्ति चाहे, वह प्रसव पीड़ा की हो, माँ बनने की हो, पुरुष की बलात्कारी निगाहों को अपने शरीर को टटोलते देखने की हो आदि बातें नारी देह और नारी मन की ही हो सकती हैं। नारी के सबसे निकट और अन्तरंग होता है बच्चा। आश्चर्य नहीं कि आज की नारी कविता का दूसरा निजी और अधिकृत विषय है बच्चा। चाहे गर्भस्थ भ्रूण हो या माँ से अक्सर लिखना सीखता हुआ बच्चा। उद्धरण दृष्टव्य है-

चौखटे में अंटता नहीं
बच्चे का क

बनकर कबूतर फुदक जाता है ज़रा सा
पंक्ति से उतर जाता है उसका ख

+++++++++

वह कहता है-बेटा
और उसके ड को समझता है माँ।[4]

इस प्रकार माँ और बेटे के संबंध को परिभाषित करती यह नई वर्णमाला है। माँ की ममता के इस अभूतपूर्व विस्तार ने ऐसे विषयों को कविता में समेट लिया है। जो हमारे रोज़मर्रा के जीवन में देखने-सुनने में तो शामिल हैं, लेकिन इन पर कविता लिखना आज से पूर्व अकल्पनीय था।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास- डॉ. नगेन्द्र
2. आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना- शैल कुमारी
3. कवि ने कहा - अनामिका
4. अनुष्टुप- अनामिका
5. नारी प्रतिभा - कमला पत्रिका अक्टूबर 1939
6. नन्दिनी गुण्डूराव अनुवाद - अक्कमहादेवी के वचन भीतर की बात - आज कल : अंक अगस्त 1993

(Footnotes)

1. कवि ने कहा : अनामिका आत्मकथ्य पृ 5
2. नारी प्रतिभा - कमला पत्रिका अक्टूबर 1939 पृ 03
3. अनुष्टुप अनामिका पृ 28
4. अनुष्टुप अनामिका पृ 73

शोषण का दस्तावेज-'जूठन'

डॉ० सुमित्रा महरौल

एसोसिएट प्रोफेसर, श्याम लाल कॉलेज (सांध्य), शहादरा, दिल्ली

दलित जीवन की पीड़ा, उन के शोषण, उन पर होने वाले अत्याचारों, उन के अर्न्तमन पर पड़ने वाले हजारों दंशों की अभिव्यक्ति है आत्म कथा जूठन। लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखी गई उनकी आत्मकथा। इस कृति में न केवल वाल्मीकि समाज के परिवेश आचार-विचार, विश्वास, मान्यताओं, पूजा, पद्धतियों, रहन सहन संस्कारों इत्यादि का जीवन्त वर्णन है अपितु इस वर्ग के प्रति सवर्ण समाज की सोच और व्यवहार का प्रामाणिक चित्रण उपलब्ध है। सदियों से यह वर्ग न केवल समाज के अन्य वर्गों के शोषण को सह रहा है अपितु अनेक स्थानों पर तो ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें मनुष्यता के दायरे से भी बाहर रखा जा रहा है। पेड़ पौधों जानवरों तक को पूजने वाला भारतीय समाज अपने पूर्वाग्रहों, संस्कारों एवं सामाजिक आग्रहों के कारण इस जाति के प्रति चरम सीमा तक असहिष्णु है, यह एक अजीब विडम्बना हैं। किन्तु सम्पूर्ण घृणा, तिरस्कार, अस्वीकार के बाद भी सवर्ण समाज इस वर्ग से सरोकार रखता है क्योंकि घृणित एवं गर्हित कार्यों के लिए, खेतों में बेगार के लिए एवं सेवा कार्यों के लिए उन्हें इस वर्ग की आवश्यकता है। दलित वर्ग सवर्ण समाज के सुखसुविधा जुटाने का उपकरण मात्र है। इन उपकरणों की अनुपस्थिति में सवर्ण समाज का जीवन सुचारू रूप से चल पाएगा-यह असम्भव है। जूठन में एक स्थान पर उल्लेख है कि सवर्ण समाज के किसी व्यक्ति का गाय, बैल या भैंस जब मर जाता था तो उसे उठा कर दूर फेंकने का काम इस जाति को ही करना पड़ता था। इस काम के बदले किसी मेहनताने का सवाल ही नहीं उठता था। मेहनताने के बदले में मिलती थी गालियाँ, अपमान, तिरस्कार व दुत्कार। इतने श्रमसाध्य काम के बदले कृतज्ञता के स्थान पर गालियां यह एक अजीब विसंगति है।

गांव में आयोजित किसी समारोह में काम काज करने का पूरा अधिकार दलितों को है किन्तु बदले में कृतज्ञता या आदर पाना तो दूर की बात है समारोह में बनने वाले भोजन तक पर उनका अधिकार नहीं है। ''सुखदेव त्यागी की पुत्री के विवाह के अवसर पर दस-बारह दिन पहले से माँ-पिता जी ने घर आंगन से लेकर बाहर तक के अनेक काम किए थे। गाँव भर से चारइपायां ढो-ढोकर जनवासे में इकट्ठा की थी पिता जी ने,''[1] किन्तु विवाह के अवसर पर सबके खाना खा चुकने के बाद जब करूण स्वर में माँ ने बच्चों के लिए थोड़ा खाना देने की गुहार लगाई तो सुखदेव त्यागी गुस्से से आग बबूला हो गये -'टोकरा भर तो जूठन ले जा रही है .... ऊपर से जाकतों के लिए खाता मांग रही है, अपनी औकात में रह चूड़ी''[2] कहकर इस वर्ग के प्रति अपनी असीम घृणा और आक्रोश का प्रस्फुटन किया और ऐसा नहीं है कि यह मानसिकता अशिक्षित कूपमंडूक ग्रामीण समाज की हो तथाकथित उच्च शिक्षा प्राप्त वर्ग भी अपने पूर्वाग्रहों और संस्कारों के कारण इनके प्रति असंवेदनशील, क्रूर व असहिष्णु है।

शिक्षकीय अत्याचारों के वर्णन से पूरी आत्मकथा भरी पड़ी है। यह विडंबना ही है कि शिक्षित होने के बावजूद सवर्ण पूर्वाग्रहों एवं सामाजिक संस्कारों के कारण इस वर्ग के शोषण में एक मुख्य भूमिका निभाते हुए दिखाई देते हैं!

उनकी शिक्षा का क्या औचित्य है जो उन्हें पूर्वाग्रहों से मुक्त न कर सके, उनकी संवेदना का विस्तार न कर सके, स्वस्थ समाज के निर्माण में उनकी भूमिका का उन्हें अहसास न करा पाए। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी को अनेक बार शिक्षकों के भेदभाव का सामना करना पड़ा था। वास्तव में सवर्णों से संबंध रखने वाले यह शिक्षक यह चाहते ही नहीं थे कि दलित वर्ग शिक्षित हो अपनी चेतना का विस्तार करें, यदि ऐसा हो गया तो उनकी सुख सुविधा के सरंजाम में मुख्य भूमिका निभाने वाले इस वर्ग से मुफ्त में काम करवा पाने में वह सफल नहीं हो पाएंगे। वर्णगत मिले संस्कारों के कारण इस स्थिति को स्वीकार करने में उन्हें मानसिक पीड़ा होगी वह अलग। श्रेष्ठता ग्रन्थि से वह इस सीमा तक आक्रान्त है कि योग्यता, मानवीयता, समानता जैसे भावों को तो वह पास में फटकने तक नहीं देते, तभी तो हेडमास्टर तक इतना क्रुर हो जाता है कि वह प्राइमरी में पढ़ने वाले बालक ओमप्रकाश को पढ़ाने की बजाए पूरे स्कूल में नित्य झाड़ू देने के काम पर लगा देता है। पिता द्वारा विरोध करने पर उन्हें दुत्कार कर भगा देता है। आश्चर्य होता है छोटे से बालक के प्रति उसकी संवेदन शून्यता पर। वास्तव में उसकी वर्णगत श्रेष्ठता उसे यह स्वीकार करने से रोकती है कि एक शूद्र का पुत्र पढ़ लिख कर अपना व अपने वर्ग का किसी प्रकार का कोई भला कर पाए! एक अन्य स्थान पर यही प्राइमरी का मास्टर वर्ग चौथी कक्षा के निरीह बालक सुक्खन सिंह के पेट पर वहीं घूँसा मारते है जहाँ उसे फोड़ा निकला हुआ था। वह बालक असह्य वेदना से तड़पकर रो उठता है उसकी वेदना से द्रवित हो बालक ओमप्रकाश का भी रूदन फूट पड़ता है।

एक अन्य स्थान पर निर्दोष सुरजन की शिक्षक द्वारा पिटाई का वर्णन द्रष्टव्य है - ''वे सुरजन को बेरहमी से पीट रहे थे। लगता ही नहीं था एक अध्यापक अपने छात्र को सजा दे रहा है।''[3] विद्यालय में इतना अधिक भेदभाव था कि दलित बालक को नाम से पुकारने की बजाए जाति से पुकारा जाता था। साथ में पढ़ने वाले विद्यार्थी ही नहीं अपितु शिक्षक तक निरीह अबोध, मासूम दलित बालकों के आत्मविश्वास को रौंद उन्हें उनकी हीन जाति से पुकारते थे. .... ''अबे साले चूहड़े की औलाद''।[4]

शिक्षकों के द्वारा रचा गया षडयंत्र केवल शोषण व प्रताड़ना के स्तर पर ही नहीं था अपितु शिक्षकीय कर्त्तव्यों के निर्वाह में भी वह पूरा भेदभाव बरतते थे। तभी तो मास्टर ब्रिजपाल ओमप्रकाश जी को बारहवीं कक्षा में रसायन के प्रैक्टिकल में जानबूझ कर बैठने नहीं देता व पूरा साल छल से प्रयोगशाला से दूर रखता है। तटस्थ दृष्टिकोण अपना कर प्रिंसिपल भी इस छल में उसका साथ देता है। परिणामस्वरूप ओमप्रकाश रसायन शास्त्र के प्रेक्टिकल में फेल हो जाता है, उसका पूरा भविष्य दाव पर लग जाता है। यही मास्टर ब्रिजपाल शिक्षकीय मदद करने का वादा कर उससे अपने घरेलू कार्य करवाता है। एक अन्य शिक्षक योगेन्द्र त्यागी कक्षा में बालक ओमप्रकाश को घृणित तरीके से अपमानित करते है व सम्पूर्ण कक्षा के समक्ष उसे उपहास का पात्र बना देते हैं..... ''कोई गलती हो जाने पर पीटने के बजाए मेरी कमीज पकड़ कर ऐसे खींचते थे कि कमीज अब फटी..... मेरा पूरा ध्यान अपनी कमीज पर रहता था। अपनी ओर खींचते हुए पूछते..... सूअर की कितनी टांगे खाई हैं''[5]..... मास्टर साहब की बातें सुनकर पूरी कक्षा हंसने लगती थी दलित बालक को विद्यालय में ना घड़ा छूने का अधिकार था न हेन्डपम्प। प्यास लगने पर उन्हें दूसरों के रहमों करम पर रहना पड़ता था। कोई आए और ऊपर से पानी डालकर ओंक से उन्हें पिलाए। यदि यह बालक साफ कपड़े पहनकर जाएं तो भी उन्हें सहपाठियों की छींटाकशी का सामना करना पड़ता था व यदि मैले कपड़े पहनकर जाएं तो भी..... ''अबे चूहड़े के दूर हट, बदबू आती है।''[6] ऐसे शोषित प्रताडित दमघोटू परिवेश में लेखक ने अपनी शिक्षा अर्जित की थी।

ग्राम्य जीवन की व्यवस्था कुछ ऐसी बन पड़ी है कि दलित वर्ग समस्त परिवार के साथ श्रम साध्य घृणित काम में लगा रहने के उपरांत भी दो जून की दाल रोटी की व्यवस्था नहीं कर पाता। कारण यह है कि इन्हें श्रम के बदले अत्यंत न्यूनतम मजदूरी दी जाती है जूठन में उल्लेख हैं.... 'प्रत्येक तगा के घर में दस से पन्द्रह मवेशी सामान्य बात थी। उनका गोबर उठाकर गाँव से बारह कुरंडियाँ पर या उपले बनाने की जगह पर डालना होता था। सर्दी के महीनों में यह काम बहुत कष्टदायक होता था....' ''इतने दिनों में दालानो में भरी दुर्गंध में से गोबर ढूंढ ढांढ के निकालना बहुत तकलीफ देय होता था, दुर्गन्ध से सिर भन्ना जाता था। इतना घृणित, गर्हित काम करने के बाद मजदूरी मिलती थी, दस मवेशी वाले घर से साल भर में लगभग 12-13 किलो अनाज! त्यागियों के खेतों में मजदूरी की - एक पूली में एक किलो से भी कम गेहूँ निकलते थे। यानि दिन भर की मजदूरी एक किलो गेहूँ से कम।''[7]

यही नहीं इस वर्ग से बेगार भी ली जाती थी अर्थात् अपना काम करवा कर मजदूरी न देना। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के दसवीं के इम्तहान से एक दिन पहले गाँव का फौज सिंह त्यागी उसे जबरन पकड़ कर ले जाता है व बगैर इसका ख्याल किए कि अगले दिन उसकी परीक्षा है उससे दोपहर भर फसल कटाई का काम लेता है। गाँव में एक बार जब बेगार के विरुद्ध चेतना जागृत हो रही होती है तो सवर्ण गाँव वाले पुलिस के साथ मिल निर्दोष, निरीह, दुर्बल, दीन दलित वर्ग के लोगों को पकड़ कर ले जाते है व उन पर अमानवीय पुलिसिया कहर ढ़ाते हैं-''बस्ती से पकड़कर लाए लोगों को मुर्गा बनाकर लाठियों से पीटा जा रहा था..... बस्ती के किसी व्यक्ति में इतनी हिम्मत नहीं थी जो दरोगा से पूछ सके कि उन्हें क्यों पीटा जा रहा है? क्या कसूर है उनका।'

इस प्रकार के अनेक अमानुषिक, असंवेदनशील चित्र इस आत्मकथा में आए हैं।

अब बात आती है स्थिति में सुधार परिष्कार की। स्थिति में सुधार के लिए सर्वाधिक आवश्यकता है इस वर्ग में शिक्षा के प्रचार प्रसार की। शिक्षित होने के उपरान्त उनमें अपनी दशा के प्रति चेतना उत्पन्न होगी। अपनी स्थिति का विश्लेषण कर, शोषण का विरोध करने की हिम्मत व आत्मविश्वास इस वर्ग में जागृत होगा। समाज को भी इस वर्ग के प्रति अपनी सोच बदलनी चाहिए।

आम धारणा है कि समाजशास्त्र समाज को समझने का सशक्त माध्यम है। समाजशास्त्र की अवधारणा, उपागम और निष्कर्ष पाश्चात्य समाजदर्शन पर आधारित है, तो भारतीय समाज का प्रामाणिक ज्ञान उससे किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है। स्वदेशी समाजशास्त्र का आधार इतिहास, धर्मशास्त्र और साहित्य है, जिसमें दलितों का न तो उचित प्रतिनिधित्व है और न ही महत्त्व। इसलिए समाजशास्त्र के माध्यम से दलित समाज ..... सही समझ नहीं विकसित की जा सकी है।

अकारण नहीं कि इस समाज के विकास के लिए बनी सरकारी योजनाएं फलीभूत नहीं हो पा रही हैं। ऐसे में दलित आत्मकथाओं के माध्यम से जो सच निखरकर आ रहा है, उसे देखने और समझने की जरूरत है।''[8]

'जूठन' जातिगत उत्पीड़न और अतिदलित समाज के संघर्ष का आख्यान है। यह आत्मकथा नहीं अतीत की घटनाओं और पीड़ादायी अनुभवों से उपजी कराह है, जहां यातनामय भयावहता के साथ लेखक ही नहीं समय-समाज भी उपस्थित है।[9]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' की तीन विशेषताओं की मैं चर्चा करना चाहूंगा। मैं पहले से ही कहता आया हूँ कि ललित भाषा में दलित साहित्य नहीं लिखा जा सकता है क्योंकि दलित अपने जीवन में सदियों से जिस भाषा को सुनते और सहते चले आ रहे हैं, उसी भाषा में उनकी जिंदगी की हकीकत, उनकी जिंदगी की समस्याएँ और जिंदगी की संवेदनाएँ प्रामाणिक रूप से व्यक्त की जा सकती हैं।

वैसी भाषा, सच कहने का साहस और एक विशेष रचाव को विकसित करने की कोशिश उनकी आत्मकथा 'जूठन' में है। इसीलिए जब वो आत्मकथा आई थी तो उसने लेखकों का ध्यान अपनी ओर खींचा। असल में दलित साहित्य हिन्दी में एक आंदोलन के रूप में थोड़ी देर से शुरू हुआ। मुख्य रूप से 1990 के बाद यह शुरू हुआ। उसमें जो प्रतिभाशाली लेखक थे, उनमें ओमप्रकाश वाल्मीकि सबसे आगे थे।

इन लेखकों की रचनाशीलता की गुणवत्ता के कारण वो मुख्यधारा के समांतर धारा के रूप में स्थापित हुआ और उसे स्वीकार भी किया गया। एक व्यक्ति के रूप में ओमप्रकाश वाल्मीकि बहुत ही सहज, निर्भीक और साहस के साथ अपनी सोच-विचार का सच कहने वाले व्यक्ति थे।[10]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. जूठन (आत्मकथा), लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 24.
2. वही, पृ. 25.
3. वही, पृ. 16.
4. वही, पृ. 17.
5. वही, पृ. 27.
6. वही, पृ. 15.
7. वही, पृ. 19.
8. गद्य कोश, (लेख) दलित समाज और जूठन, लेखक-चंद्रभान सिंह यादव
9. सेतु (पत्रिका) दिसंबर 2017, एक दलित की आत्मकथा - लेखक आनंद दास
10. ओमप्रकाश वाल्मीकि जी पर मैनेजर पांडे के विचार (स्रोत बीबीसी इंडिया साक्षात्कार)

गाँधीवादी आर्थिक दर्शन के परिदृश्य में अम्बेडकर का आर्थिक चिंतन

डॉ० अनिल कुमार

सहायक प्राचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, बी0एन0एम0यू0 (पश्चिमी परिसर), पी0जी0 सेन्टर सहरसा

परिचयः- दुनिया का प्रत्येक व्यक्ति राष्टपिता महात्मा गाँधी के जीवन इतिहास से परिचित है। गाँधीजी का जीवन दर्शन बहुत विशाल है। उन्होंने 1915 से लेकर अपनी जीवन के अंतिम समय तक भारत की मुक्ति के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया था। उनके विचारों में विभिन्न विचारधाराओं, विचारकों तथा दर्शनों की स्पष्ट छाप दिखायी देती है। आर्थिक स्वावलम्बन, सादा जीवन उच्च विचार, पंचायती राज भू-स्वामित्व, सर्वोदय सम्बन्धी जो विचार गाँधी जी ने दिये, उन सब की मूल में गाँव की समस्या या उसका निदान दिखायी देता है। उनके आर्थिक सिद्धांत उसी प्रगतिशील अर्थशास्त्र का अंग था जिसके मूल में कहीं यह तथ्य छिपा था कि "भारत ग्रामों का देश है और कोई भी देश अपना प्राकृतिक स्वभाव त्याग कर तरक्की नहीं कर सकता है।

एक अर्थशास्त्री के रूप में डॉ बाबा साहेब अम्बेडकर के योगदानों की ओर बहुत कम ही विद्वानों का ध्यान गया है। अधिकांश लोग उन्हें संविधान निर्माता के रूप में ही जानते हैं। साथ ही यह भी जानते हैं कि उन्होंने दलितों के उत्थान हेतु काफी संघर्ष किया। अर्थशास्त्री के रूप में अम्बेडकर के योगदानों को केवल एक लेख या लेखांश से आंकना असंभव है। अर्थशास्त्र अम्बेडकर का सर्वाधिक प्रिय विषय था। कोलंबिया विश्वविद्यालय से 'इवोल्यूशन ऑफ पब्लिक फाइनेंस इन ब्रिटिश इंडिया' विषय में पी-एच0 डी0 की डिग्री प्राप्त की थी। मात्र 27 वर्ष की उम्र में उन्हें मुम्बई के एक कॉलेज में राजनीति अर्थशास्त्र के प्रोफेसर की नौकरी मिल चुकी थी। अम्बेडकर के आर्थिक चिंतन का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि वे अपने अर्थशास्त्र संबंधी ज्ञान के आधार पर एडम स्मिथ एवं डेविड रिकार्डो जैसे परम्परागत अर्थशास्त्रियों के कतार में खड़े है। सच कहा जाए तो वे भारत के पहले अर्थशास्त्री थे जिसने अर्थशास्त्र में लंदन स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स तथा कोलम्बिया विश्वविद्यालय से दो डॉक्टरेट की उपाधियां प्राप्त की थी। महात्मा गाँधी और बाबा साहेब अम्बेडकर दोनों की कोशिशें भारत को गुलामी से मुक्ति दिलाना था। परन्तु सामाजिक-आर्थिक न्याय की प्राप्ति हेतु दोनों ने अलग-अलग रास्ता दिखाया जिसकी प्रासंगिकता वर्तमान समय में भी बनी हुई है।

अध्ययन का उद्देश्यः- आज हमारा देश संक्रमण काल से गुजर रहा है। धीरे-धीरे यहाँ पुरानी मान्यताओं की जगह नयी मान्यताएँ स्थापित हो रही है। आज की सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के कारण मनुष्य विकास के मार्ग के बदले विनाश के कगार पर अग्रसर हो रहे हैं। अतः प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य गाँधीवादी एवं अम्बेडकरवादी आर्थिक दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन कर देश के आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल एक उचित रणनीति प्रस्तुत करना है। इन दोनों द्वारा प्रस्तुत आर्थिक दर्शन हमारे देश के आर्थिक विकास के लिए कितना श्रेयकर है, इस बात का निर्णय लेने की आवश्यकता आज के उदारवादी युग में काफी प्रासंगिक है। गहन चिंतन और अध्ययन के आधार पर यह पता लगाना आवश्यक है कि किस मार्ग का अनुसरण किया जाए और कौन सा मार्ग हमारे लिए अधिक वांछनीय है।

अध्ययन विधिः- ऐतिहासिक अनुसंधान का सबसे बड़ा गुण यह है कि इसमें अतीत के अनुरूप वर्तमान पर प्रकाश डालने की क्षमता होती है। वर्तमान आर्थिक प्रणाली के मुख्य क्षेत्रों को उजागर करने के लिए प्रस्तुत अध्ययन में ऐतिहासिक अनुसंधान विधि को अपनाया गया है। जिसमें गाँधीजी एवं डॉ0 अम्बेडकर के मुख्य आर्थिक दर्शनों के आधार पर वर्तमान आर्थिक प्रणाली पर प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत अध्ययन में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, लेखकों, विचारकों इत्यादि के माध्यम से सूचनाओं का संग्रह कर दोनों के आर्थिक चिन्तनों का वैज्ञानिक अध्ययन किया गया है।

आर्थिक दर्शनः- गुलाम भारत में महात्मा गाँधी एवं बाबा साहेब अम्बेडकर ने अनेक मुद्दों पर एक जैसे विचार प्रस्तुत किए थे। दोनों गुलामी की जंजीरों को तोड़ने की पुरजोर वकालत की और दोनों ने आजाद भारत की एक परिकल्पना देश के सामने रखी। अतः वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में भी दोनों की प्रासंगिकता बनी हुई है। परन्तु हमें इस बात पर गौर करना होगा कि क्यों गाँधीजी और अम्बेडकर अलग थे ? जबकि दोनों की कोशिश देश को सामाजिक, आर्थिक न्याय और एकता पर आधारित करने की थी और दोनों ने इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अलग-अलग रास्ता दिखाया जिसे ग्रामीण अर्थव्यवस्था, जमींदारी प्रथा, मशीनीकरण एवं औद्योगिकरण के संदर्भ में देखा जा सकता है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्थाः- गाँधीजी कहा करते थे कि भारत ग्रामों में रहता है शहरों में नहीं। ग्रामीण लोग गरीब है क्योंकि वे बेरोजगार है या अल्प रोजगार की स्थिति में है। अतः ग्रामीण लोगों को रोजगार उपलब्ध कराना होगा जिससे देश समृद्ध हो सके। उनका कहना था कि जब देश में मानव बल अत्यधिक है जबकि उसकी तुलना में भुमि व अन्य प्राकृतिक साधन सीमित है तो ऐसी स्थिति में गाँवों में ही कुटीर उद्योगों के माध्यम से ग्रामीणों को रोजगार उपलब्ध करवाया जाय। देश की आर्थिक उन्नति और पूर्ण विकास के लिए जहाँ गाँधीजी ने लोगों को गाँव का रूख करने की वकालत की वहीं अम्बेडकर ने लोगों से गाँव छोड़कर षहरों का रूख करने की अपील की इस संदर्भ में गाँधीजी का तर्क था कि देश की इतनी बड़ी जनसंख्या का पेट सिर्फ उद्योग या फैक्ट्री के जरिए नहीं भरा जा सकता हैं। इसके लिए जरूरी है कि औद्योगिक विकास को ग्रामीण अर्थव्यवस्था के क्रेन्द्र में रखते हुए विकसित किया जाय। स्वतंत्रता

आंदोलन मे भाग लेने के बाद से ही महात्मा गाँधी गाँवों की दशा को लेकर काफी चिंतित रहते थे और गाँवों के प्रति नया दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता पर जोर देते थे। दरअसल अंग्रेजों की आर्थिक नितियों से ग्रामीणों में बेरोजगारी बढ रही थी और छोटे उद्धोग-धंधे चौपट हो गए थे। जबकि डॉ0 अम्बेडकर का तर्क था कि गाँव को छोड़ना इसलिए जरूरी है क्योंकि आर्थिक उन्नति और बेहतर शिक्षा सिर्फ शहरों में मिल सकती है। और बिना इसके दलित समाज को विकास के चक्र में लाना नामुमकिन है। बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा था कि राज्य का दायित्व है कि वह लोगों के आर्थिक जीवन की ऐसी योजना बनाए, जो उच्च उत्पादकता की ओर ले जाए, लेकिन ऐसा करते समय दूसरे अवसर बंद नहीं होना चाहिए। उनका कहना था कि कृषि क्षेत्र में उत्पादकता बढाई जा सकती है, लेकिन इसके लिए पूँजी और मशीनरी में बढोतरी के साथ-साथ प्रयास करें ताकि भूमि और श्रम की उत्पादकता बढ़ाई जा सके।

मशीनीकरण एवं औद्योगिकरणः- मशीनीकरण, औद्योगिकरण और बड़े पैमाने पर उत्पादन से देश बर्बाद होगा या उन्त? इस मुद्दे पर भी इन दोनों में काफी मतभिन्नता थी। जहाँ गाँधी जी कहते थे कि मशीनें आधुनिक सभ्यता की सबसे बड़ी प्रतीक है और यह सभ्यता एक बड़े पाप का प्रतिनिधित्व करती है। उन्होंने भारत की गरीबी के लिए मशीनों को भी जिम्मेदार ठहराया। मशीनरी ने ही भारत को निर्धन बनाया है और इसके कारण ही भारतीय हस्तकला गायब हो गई है। गाँधीजी, दादाभाई नौरोजी (दी पॉवर्टी एण्ड अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया, 1901), आर0 सी0 दत्त (दी इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, 1906) के लेखन से वाकिफ थे और उन्होंने इन स्रोतों के आधार पर ही आधुनिक सभ्यता पर निशाना साधा तथा औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के श्रमिकों और किसानों पर नाकारात्मक प्रभाव की ओर इंगित किया। गाँधीजी ने लिखा है ''मशीन में मुझे कोई अच्छाई नजर नहीं आती। इसकी बुराई पर ग्रन्थ लिखें जा सकते हैं। इसलिए मुख्य बात मत भूलो। यह समझना आवष्यक है कि मशीनें खराब चीज हैं। क्रमशः हम उन्हें दूर कर सकेंगे, इसलिए मशीनों का स्वागत करने की अपेक्षा हमें इन्हें खराब चीज मानना चाहिए, जिसे हटाना है।'' वहीं दूसरी ओर अम्बेडकर ने मशीनों के उपयोग का स्वागत करते हुए यह आशा व्यक्त किए थे कि वे आम लोगों की मुक्तिदाता बनेगी और उबाऊ मेहनत से मुक्त कर उन्हें सांस्कृतिक जीवन जीने के लिए समय उपलब्ध करवाएंगी। उन्होंने गाँधीवादी दर्शन को सनातनवाद बताते हुए उसकी कड़ी निंदा की और यह तर्क दिया कि वह हमें आदिमकाल और पशुवत जीवन की ओर ढ़केल देगा।

यद्यपि बाबा साहब अम्बेडकर भी मशीनों पर आत्मनिर्भरता से उत्पन्न होने वाली समस्याओं से वाकिफ थे परन्तु वे गाँधीजी द्वारा इस समस्या के हल वाले विचार से सहमत नहीं थे कि मशीनों को सिरे से खारिज कर दिया जाना चाहिए। अम्बेडकर का कहना था कि हमें मशीनरी नहीं बल्कि दोषपूर्ण सामाजिक संगठन पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। जहाँ गाँधीवादी दर्शन वर्गीय हितों की रक्षा करता था वहीं अम्बेडकर 'निजी सम्पत्ति' और व्यक्तिगत लाभ को पूर्ण अनुमोदन देने के खिलाफ थे। दोषपूर्ण समाजिक संगठन से उनका आशय यही था। मशीनों और आधुनिक सभ्यता ने कई बुराईयों को जन्म दिया है, इस तथ्य को तो स्वीकार किया जा सकता है परन्तु इन बुराईयों के कारण मशीनरी और आधुनिक सभ्यता नहीं है। यदि मशीनरी और आधुनिक सभ्यता से सभी को लाभ नहीं हुआ है तो इसका इलाज मशीनरी और सभ्यता की आलोचना करना नहीं बल्कि सामाजिक संगठन को इस तरह बदलना है ताकि इनसे केवल कुछ लोग ही नहीं बल्कि सभी लाभान्वित हों। वे चाहते थे कि सभी प्रमुख और आधारभूत उद्योग सरकार के अधीन हों। वे मानते थे कि आर्थिक सुधार की कोई भी योजना बिना भूमि सुधार के असंभव है। इसके लिए उन्होंने बड़े भू-स्वामियों की आय को आयकर के दायरे में लाने का सुझाव दिया था।

जमींदारी प्रथाः- जमींदारी प्रथा और पूँजीपतियों के संदर्भ में गाँधीजी का कहना था कि- मैं जमींदारों और पूँजीपतियों को जनता की सेवा के लिए इस्तेमाल करना चाहता हूँ। हमें यह भरोसा रखना चाहिए कि वे जनता की सेवा के लिए अपने लाभों का त्याग करने में समर्थ हो सकेंगे। मैं जमींदार को नष्ट करना नहीं चाहता, पर मैं जमींदार को अपरिहार्य भी नहीं मानता मैं आशा करता हूँ कि अहिंसक तरीके से जमींदारों और पूँजीपतियों का हृदय परिवर्तन किया जा सकता है। किसान या खेतिहर मजदूर चाहे वह भूमिहीन श्रमिक हो या काश्तकार हो, पहले नम्बर पर आता है। वे सही अर्थों में धरतीपुत्र हैं, लेकिन अहिंसा के नियम के श्रमिक जबरदस्ती अन्यत्रवासी जमींदार को बेदखल नहीं कर सकता। उसे इस प्रकार काम करना होगा कि जमींदार के लिए उसका शोषण करना असंभव हो जाए। इस प्रकार कहा जा सकता है कि गाँधीजी का दर्शन एक प्रकार से जीवन, मानव समाज और जगत का नैतिक भाष्य है। वहीं दूसरी ओर बाबा साहेब अम्बेडकर ने 1946 में अखिल भारतीय स्तर पर भूमि सुधार की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा कि भूमि वितरण में असमानता के कारण समाज के बड़े हिस्से को बहुत छोटी जोतों से काम चलाना पड़ता है। परिणामस्वरूप एक ओर जहाँ श्रम शक्ति का दुरूपयोग होता है, वहीं ढेरों श्रम शक्ति निष्क्रिय पड़ी रहती है। आवश्यकता से कई गुना भूमि के स्वामी बने जमींदार अपने श्रम शक्ति का उपयोग इसलिए नहीं करते, क्योंकि उन्हें जरूरत से कई गुणा श्रम शक्ति बेगार या मामूली मजदूरी पर उपलब्ध हो जाती है। अर्थात् समाज का एक वर्ग संसाधनों के अभाव में अपनी श्रम शक्ति के लाभों से वंचित रह जाता है। जबकि दूसरा आवश्यकता से कहीं अधिक संसाधनों पर काबिज होने के कारण दूसरे के श्रम को कम मूल्य पर खरीदने में सफल हो जाता है। इस तरह न केवल श्रम का अवमूल्यन होता है, बल्कि समाज की बहुत सी श्रम शक्ति व्यर्थ चली जाती है। इसके लिए अम्बेडकर कृषि, उद्योग, बीमा, बैंक इत्यादि का सम्पूर्ण राष्ट्रीयकरण चाहते थे। वे व्यापक भूमि सुधार के समर्थक थे। वे चाहते थे कि सरकार समस्त कृषि योग्य भूमि का अधिग्रहण कर उसे उचित आकार के फर्मों में विभाजित करें और उत्पाद का समुचित अनुपात में समाज के सभी सदस्यों के बीच संवितरण हों। सामाजिक समानता की स्थापना के लिए अम्बेडकर का यह क्रांतिकारी सोच था। अम्बेडकर की विचारों पर समाजवादी चिंतन की छाया अवश्य देखा जा सकता है परन्तु उन्हें समाजवादी के बदले आमूल परिवर्तनवादी कह सकते हैं।

निष्कर्षः- वस्तुतः ऐसा लगता है कि मशीनों के द्वारा होने वाली हानियों से वे इतने विचलित हो गये थे कि इस पर तटस्थ भाव से उनको चिन्तन करने का अवसर नहीं मिला। मशीनों का उपयोग समाज के शोषण के लिए किया गया है, परन्तु स्वयं जड़ मशीनों का इसमें कोई कसूर नहीं है। उनका आविष्कार निस्सन्देह मनुष्य के कल्याण के लिए हुआ है। संसार क्या स्वयं भारत ही यन्त्रों की दिशा में बढ़ता जा रहा है, क्योंकि यन्त्रों के बिना कार्य चल ही नहीं सकता। संसार की निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या को भोजन, वस्त्र, दवाएं, आदि केवल मशीनें ही जुटा सकती है। खेती में क्रान्तिकारी परिवर्तन मशीनों और विज्ञान के द्वारा ही सम्भव है। बिजली, रेल, मोटर, सिंचाई-सभी यन्त्रों से हीं सम्भव है। इसके बिना पीने का पानी तक मिलना सम्भव नहीं है। आज निजीकरण और वैश्वीकरण के दौर में हम राजकीय नियंत्रण से स्वतंत्रता को वास्तविक स्वतंत्रता मान बैठे हैं। लेकिन अम्बेडकर ने इसमें व्यक्तिगत मालिकों की तानाशाही देखी थी। वे भारत में व्याप्त आर्थिक और समाजिक अंतर्विरोधों को दूर करने के लिए जिस राज्य की कल्पना की थी वह राजनितिक दृष्टि से लोकतांत्रिक और आर्थिक दृष्टि से समाजवादी था। अतः इसे समाजवादी लोकतंत्र भी कहा जा सकता है, जो कि आज भी प्रासंगिक है।

'स्मॉल होल्डिंग्स इन इंडिया एण्ड देयर रेमेडीज' शीर्षक शोध प्रबंध अम्बेडकर ने सन् 1918 में लिखा था। यह शोध प्रबंध जमीनी यथार्थ की व्याख्या करने में उनके कौशल और आर्थिक समस्याओं से निपटने के लिए व्यावहारिक नीतियों का सुझाव देने में उनकी प्रवीणता को दर्शाता है। अनकी व्याख्या आज भी हमारे देश की कृषि क्षेत्र के लिए प्रासंगिक है। अगर अम्बेडकर जैसे लोग, हमारी अर्थव्यवस्था के शीर्ष पर होते तो शायद पिछले 16 वर्षों में 2,50,000 किसानों ने आत्महत्या नहीं की होती। उन्हें इस बात का एहसास था कि श्रम, पूँजी और पूँजीगत माल- तीनों भारत में कृषि उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण हैं। यह आज के भारत की कृषि नीति के बिल्कुल विपरीत है। वर्तमान कृषि नीति मशीनीकरण और पूँजी प्रधान उत्पादन पर जोर देती है। इससे छोटी जोतों के किसानों के लिए खेती अलाभकारी व्यवसाय बन जाती है और कृषि श्रमिक या तो पलायन करने पर मजबूर हो जाते हैं या आर्थिक दृष्टि से इतने विपन्न हो जाते है कि उनके सामने आत्महत्या के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं बचता। गाँधीजी के आर्थिक चिंतन आधुनिक वैश्विक युग एवं वर्तमान आर्थिक परिस्थितियों में व्यहारपरक नहीं माना जा सकता है। उनका मशीनीकरण, औद्योगिकरण, ट्रस्टीशीप स्वदेशी इत्यादि सम्बन्धी विचार इस उदारवादी युग में ठहर नहीं पाते। नैतिक शक्ति से पूँजीपतियों और जमींदारों का हृदय परिवर्तन की कल्पना संभव नहीं है। वहीं डॉ0 अम्बेडकर के आर्थिक चिंतन बहुत ही व्यापक और व्यवहारिक है। उन्होंने भारतीय अर्थव्यवस्था में लोगों के आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक कल्याण की दृष्टि से मूर्त रूप देने का प्रयास किया। वे निरन्तर किसानों, पिछड़ों एवं दलितों के आर्थिक-सामाजिक उत्थान के लिए संघर्षरत रहे। उनका आर्थिक चिंतन एवं मानवतावादी दर्शन सदैव लोगों के आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण से जुड़ा रहेगा।

संदर्भ

1. चतुर्वेदी महेष चन्द्र एवं चतुर्वेदी मिथलेष चन्द्र, ''आर्थिक विचारों का इतिहास'' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स: आगरा।
2. हजेला टी0 एन0, ''आर्थिक विचारों का इतिहास'' कोणार्क पब्लिषर्स प्रा0 लि0 दिल्ली।
3. उपाध्याय राम नारायण (2015), ''गाँधी विचार यात्रा भारतीय प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।
4. अग्रवाल अलका एवं अग्रवाल, शिखा ''गाँधी दर्शन (विविध आयामा)'' पोइन्टर पब्लिशर्स जयपुर।
5. सिंह चरण, ''भारत की भयावह आर्थिक स्थिति कारण और निदान'' नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
6. सिंह चरण, ''इंडियाज इकोनोमिक पॉलिसी''
7. सिन्हा वी0 सी0 एवं सिंघई जी0 सी0, ''आर्थिक विचारों का इतिहास'' नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
8. योजना, नवम्बर-2009, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार।
9. मकवाना किशोर ''डॉ0 आंबेडकर जीवन दर्शन'', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
10. शहारे डॉ0 म0 ला0 एवं अनिल डॉ0 नलिनी, ''बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर की संघर्ष यात्रा एवं संदेश, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।

जयशंकर प्रसाद की नारी दृष्टि

डॉ० अनिल कुमार

व्याख्याता-हिन्दी विभाग, इलाहाबाद पी0जी0 कॉलेज, प्रयागराज

तद्युगीन समाज में विभिन्न स्तरों पर होने वाली नारी उत्पीड़न को प्रसाद गहनता से अनुभव किया था। नारी समस्याओं का चित्रण करते समय वह अतिरंजना से काम नहीं लेते वरन् उन्हें घर-घर की समस्या मानते हुए यथार्थ रूप में चित्रित करते हैं और इन समस्याओं का विश्लेषण केवल तत्कालिक लक्षणों के आधार पर नहीं करते वरन् अतीत की गहराइयों में उतर कर उसके मूल में अवस्थित कारकों के सूक्ष्म तत्वों को सामने लाते हैं क्योंकि अतीत की परम्परा और रूढ़ियों से टकराए बिना वर्तमान विसंगतियों का निदान सम्भव नहीं ऐसा उनका विश्वास था।

जयशंकर प्रसाद अपने समकालीनों में कदाचित सर्वाधिक अनुभूतिशील, संवेदनशील रचनाकार हैं। वे सहज तथा सुलभ मानवीय भावनाओं के साहित्यकार हैं। उनका साहित्य मानवतावाद का पर्याय है। प्रसाद का युग स्वाधीनता आन्दोलन, क्रान्ति एवं संघर्षों का युग था। जिसमें एक ओर भारतीय जनता की विदेशी शासकों से मुक्ति प्राप्त करने की उत्कट अकांक्षा थी तो दूसरी ओर समाज में व्याप्त विसंगतियों, अंधविश्वासों कुरीतियों एवं रूढ़ियों तले दबे पीड़ित जन-समुदाय उनसे त्राण पाने को व्याकुल थे। युगीन यथार्थ के इन भयावह दृश्यों को प्रसाद अपनी आँखों से देख रहे थे। ये समाज की यह दुर:वस्था प्रसाद जैसे सहृदय रचनाकार को किसी कीमत पर स्वीकार्य नहीं थी- "पराधीनता के उस युग में जगह-जगह घुसी पराधीनता की तलाश और उसे निकालने का उद्यम सतही समकालीनता भर नहीं था धर्म के हाथों, पूँजी और सत्ता के हाथों बिकी हुई मानसिकता और संस्कारगत दासता के बहत भयावह और दर्दनाक चित्र प्रसाद ने खींचे हैं .....नारी प्रसाद के लिए संस्कार मूलक शोषण का सबसे बड़ा माध्यम और प्रतीक रही है, क्योंकि वह दोहरे ढंग से शोषित हैं स्त्री होने के कारण भी और संस्कार-विवश होने के कारण भी।''[1]

प्रसाद की नारी भावना को उनके नारी पात्रों के माध्यम से भली-भाँति समझा जा सकता है। अपने इन नारी पात्रों द्वारा उन्होंने विश्व प्रहलेलिका के रहस्य बीज नारी जीवन का उन्होंने कितनी सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया है। उनका साहित्य इस बात का साक्षी है। नारी के प्रति उनके मन में अटूट श्रद्धा और निष्ठा की भावना रही है। इसलिए उन्होंने नारी को संसार की सर्वोप्युक्त प्रेम पात्री माना है। और उनके हृदय को प्रेम का रंगमंच कहा है। प्रसाद के यहाँ नारी सौन्दर्य प्रेम की परक और प्रतीक है। जिसे उन्होंने "महाचिति, जगतछात्री, इच्छा-ज्ञान- क्रिया-रुपिणी मानकर उसे श्रद्धा रूप से प्रतिष्ठापित किया है। प्रसाद की नारी पुरुष के रिक्त जीवन में बहने वाली अजस्र रस की धारा है। जो उसकी जड़ता को अपने समर्पण से हर लेती है और उसके उत्थान में सहायक होती है।''[2]

नारी गौरवमयी व्यक्तित्व के श्रेष्ठ गुणों यथा प्रेम-लज्जा करुणा, क्षमा त्याग आदि की प्रतिष्ठा उन्होंने पूरे मनोयोग से की है प्रसाद के अनुसार नारी में जो "सर्वस्व समर्पण करने का विश्वास'' है वह केवल उत्सर्ग जानता है प्रतिदान नहीं -

''इस अर्पण मे कुछ और नहीं केवल उत्सर्ग छलकता है।
मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ इतना ही सरल झलकता है।''[3]

प्रसाद नारी को प्रेम, करुणा, दया, ममता, माया का सागर मानते हैं उन्होंने स्थान-स्थान पर अपने इस विचार को अभिव्यक्त किया है- "नारी का हृदय कोमलता का पालना है, दया का उदगम है, शीतलता की छाया है और अनन्य भक्ति का आदर्श है।''[4] उनके अनुसार पुरुष शासन चाहता है नारी प्रेम पुरुष अधिकारों का अभिलाषी है नारी समर्पण की इच्छुक है।इस तथ्य को वह कंकाल उपन्यास में गाला के मुख से कहलवाते हैं- "स्त्री का हृदय प्रेम का रंगमंच है ..... पद्मिनी के समान जल भरना स्त्रियाँ ही जानती हैं और पुरुष केवल उस जली हुई राख को उठाकर अलाउद्दीन के सदृश बिखेर देना ही तो जानते हैं।''[5]

नारी के प्रकृति प्रदत्त, श्रेष्ठ मानवीय गुणों का महात्म्य प्रकट करते हुए नाटक अजातशत्रु का एक पात्र कहता है- "मनुष्य कठोर परिश्रम करके जीवन संग्राम में प्रवृत्ति पर यथाशक्ति अधिकार करके भी एक शासन चाहता है, जो उसके जीवन का परम ध्येय है। उसका एक शीतल विश्राम है और वह स्नेह-सेवा-करुणा की मूर्ति तथा सान्तवना के अभय वरद हस्त की आश्रय, मानव समाज की सारी वृत्तियों की कुंजी, विश्व शासन की एक मात्र अधिकारिणी प्रकृति स्वरूपा थी स्त्रियों के सदाचार पूर्ण स्नेह का शासन ..... है तुम्हारे राज्य की सीमा विस्तृत है और पुरुष की संकीर्ण/कठोरता का उदाहरण है पुरुष और कोमलता का विश्लेषण है स्त्री जाति/पुरुष क्रूरता है तो स्त्री करुणा है जो अन्तरतम का उच्च विकास है। इसीलिए प्रकृति ने उसे इतना सुन्दर और मनमोहक आवरण दिया है।''- रमणी का रूप।''[6]

प्रसाद के अधिकतर नारी पात्रों में यह समस्त गुण विद्यमान हैं। प्रेम और मधुमयी लालस-इन पात्रो की मूलवृत्ति है। परन्तु इसके रूप अलग-अलग है। इसी के चलते कोई 'रसिया बालम' कहानी की राजकुमारी के समान घुटने टेक कर प्रेम की वेदी पर स्वयं को उत्सर्ग कर देती है। कोई परिस्थिति वश चन्द्र कहानी की चन्दा के समान प्रतिशोध की ज्वाला में अपने प्रतिरोधी को जलाकर स्वयं भी उसी में जल जाती है। परन्तु एक गुण जो प्रसाद के लगभग सभी

नारी पात्रों में समान रूप से दृष्टिगोचर होता है वह है करुणा की भावना फिर चाहे वह प्रतिशोध का अग्नि में जलने वाली चन्दा हो. प्रतिध्वनि, संग्रह की 'गदड़ी में लाला' की स्वाभिमानी अगम बुढ़िया हो। आकाशदीप में मानसिक द्वन्द्व से जूझती चम्पा हो अथवा इन्दजाल संग्रह की नियति की शिकार नूरी हो इन सब पात्रियों का जीवन करुणा से परिपूर्ण है।

प्रेम करुणा तथा उत्सर्ग के अतिरिक्त नारी मन की विविध अनुभूतियों हर्ष, उल्लास, शौर्य-वीरता तथा राग द्वेष आदि की प्रसाद ने अत्यन्त व्यापक अभिव्यंजना की है। उनके कुछ पात्र ऐसे हैं जिनमें परिस्थिति जन्य मानसिक द्वन्द्व के कारण प्रति हिंसा की भावना जन्म लेती। प्रसाद की स्पष्ट धारणा है कि नारी जिस पुरुष से प्रेम करती है पूरी निष्ठा से प्रेम करती है। जीवन भर उसकी हो के रहती है। पर -पुरुष की विचार तक मन में लाना पाप समझती है। ऐसे में यदि पुरुष उसकी उपेक्षा करता है उसके साथ विश्वासघात करता है। तो उसका सारा प्रेम मन की सारी कोमलता उस विश्वासघात की अग्नि में जलकर स्वाहा हो जाते हैं। पुरुषों की तुलना में प्रसाद के नारी पात्र अधिक विद्रोही है। पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था तथा धर्म की संकीर्ण रुढ़ियों और प्राचीन जड़ संस्कारों के विरुद्ध आक्रोश नारी पात्रों में अधिक दिखाई देता क्योंकि वह समाज में सर्वाधिक पीड़ित तथा प्रताड़ित हैं। ''इन नारी पात्रों के विद्रोह के पीछे वैयक्तिक मनोवैज्ञानिक कारण कम और सामाजिक वस्तुगत कारण अधिक हैं- "जनमेजय का नागयज्ञ की यादवी सरमा अजातशत्रु की बर्बर लिच्छवी रक्त छलता, दरिद्र-कथा के रूप में तिरस्कृता मागंधी और कोसल में कंकड़ी से भी गई बीती दासी पुत्री राजमहिषी शक्ति मती सब अपने में शेष सुलगती दीखती है।''[7]

व्यक्ति स्वातंत्र्य का पक्ष ग्रहण करने वाले प्रसाद साहित्य में नारी मुक्ति के स्वर सर्वत्र मुखरित हुए है। उन्होंने विवाह संस्था के क्षत-विक्षत स्वरूप और तथा कथित नैतिकता के नाम पर होने वाली नारी शोषण को पाठकों के समक्ष रखते हुए इनसे नारी की मुक्ति तथा उसके स्वतंत्र प्रेम के अधिकार का प्रश्न उठाया है। स्त्री की सामाजिक अधिकारों की स्थिति पर असंतोष व्यक्त करते हुए उन्होंने नारी के न्यायोचित अधिकारों की जगह-जगह माँग की है-"हिन्दू स्त्रियों का समाज भी कैसा है, उसमें कुछ अधिकार हो तब तो उसके लिए कुछ सोचना विचारना चाहिए ..... जहाँ अन्धानुकरण करने का आदेश हो वहाँ प्राकृतिक, स्त्री-जनोचित प्यार कर लेने का जो हमारा नैसर्गिक आधार है - जैसा कि घटनावश प्राय: स्त्रियाँ किया करती हैं- उसे क्यों छोड़ दें। यह कैसे हो, क्या हो और क्यों हो- इसका विचार पुरुष करते हैं। वे करें- उन्हें विश्वास है, कौड़ी पाई लेना रहता है और स्त्रियों को भरना पड़ता है। तब इधर-उधर देखने से क्या भरना है- यही सत्य है। उसे दिखावे के आदर के ब्याह करके भरा लो व्यभिचार कहकर तिरस्कार से। अधमर्ण की सान्तवना के लिए यह उत्तमर्ण का शाब्दिक मौखिक प्रलोभन था तिरस्कार है।''[8] नारी पुरुष के लिए भोग्या मात्र है, उसकी ऐन्द्रिक सन्तुष्टि का साधन जिसके लिए वह चाहता है "स्त्रियाँ सुन्दर हो. अपने को सजाकर निकले और हम लोग देखकर उनकी आलोचना करे। वेशभूषा का वह नये-नये ढंग निकालना है। फिर उनके लिए नियम अधिकार प्रमाणित करना होता है।''[9] अपने अधिकार तथा मान सम्मान के लिए किए जाने वाली नारी विद्रोह का प्रसाद सुलेमन से स्वागत करते हैं क्योंकि उन्हें केवल वह सामाजिक नियम मान्य है। जो व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन न करते हों, उसके विकास में बाधक न हैं।

प्रसाद साहित्य में नारी की गरिमा और उसकी स्वातंर्त्य चेतना देखते ही बनती है उनके साधारण नारी चरित्र के साहस के आगे बड़े-बड़े योद्धा भी नतमस्तक दिखाई देते हैं इसका सर्वोत्तम उदाहरण पुरस्कार कहानी की 'मधूलिका' है जो एक साधारण किसान कन्या होते हुए भी अदम्य साहस की अनूठी मिसाल है जो राजा से भी नहीं डरती। इस सम्बन्ध में प्रसाद की एक और कहानी "स्वर्ग के खण्डहर में'' की नायिका लज्जा का उदाहरण भी दृष्टव्य है जो इस कहानी के कल्पित स्वर्ग के अधिष्ठाता शेख की रानी बनने के प्रस्ताव को यह कह कर ठुकरा देती है। "स्वर्ग इस पथ्वी को स्वर्ग की आवश्यकता क्या है शेख? ना, ना, इस पृथ्वी को स्वर्ग के ठेकेदारों से बचाना होगा। पृथ्वी का गौरव स्वर्ग बन जाने से नष्ट हो जायेगा ..... पृथ्वी को केवल वसुन्धरा होकर मानव जाति के लिए जीने दो अपनी आकांक्षा के कल्पित स्वर्ग के लिए क्षुद्र स्वार्थ के लिए इस धरती को नरक न बनाओ, जिसमें देवता बनने के लिए प्रलोभन में पड़कर मनुष्य राक्षस न बन जाए।''

नारी के इस बेखौफ तथा विद्रोही स्वरूप के दर्शन हमें उनकी ऑधी, दासी, नीरा आदि कहानियों में भी होते है। जिनमें प्रसाद ने सामाजिक रुढ़ियों कुरीतियों एवं कठोर विधानों के दुष्परिणाम को चित्रित करते हुए उनके प्रति विद्रोह प्रकट किया है।

प्रसाद साहित्य में इन सामाजिक विद्रुपताओं के प्रति जो क्रोध और क्षोभ की लहर दिखाई देती है। वह इसलिए कि प्रसाद स्त्री पुरुष साम्य के प्रबल समर्थक हैं वह नर-नारी को समता और सहकारिता के सूत्र में बाँधकर एक संगठित मोर्च का निर्माण करना चाहते हैं जो एक स्वरूप समाज के निर्माण के सहायक हो "वास्तव में, प्रसाद मानव के रहस्यमय मानव के कुशल चित्रकार थे। उसके गूढ़ व्यापार, उसकी गहन संवेदनाओं और लहकती आकांक्षाओं के वे मर्मज्ञ पण्डित थे उनके अनुसार नारी-पुरुष का मधुर सम्बन्ध ही सृष्टि का लक्ष्य है। उनका नैसर्गिक मिलन ही जीवन की पूर्णता का प्रतीक है।''[10]

इसी कारण वह गृहस्थ जीवन की मर्यादा का निर्वाह करने वाली कुलबधू के एक निष्ट प्रेम को सर्व श्रेष्ठ मानते हैं उनके अनुसार "उसमें सेवा ही नहीं विलास का बाह्य यौवन (भी) हैं, क्योंकि स्त्री-पुरुष के शारीरिक बंधन में वह पर्यवसित नहीं है। बाह्य साधनो के विकृत हो जाने तक ही उसकी नहीं ग्राहस्थ्य जीवन उसके लिए प्रचुर उपकरण प्रस्तुत करता है, इसलिए वह प्रेम भी है ओर श्रेय भी है।''[11]

प्रसाद ने अपने कथा साहित्य में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की जटिल तथा रहस्यमय गुत्थियों को मनोवैज्ञानिक ढंग से सुलझाने का प्रयत्न किया है। इस दृष्टि से कंकाल उनका एक ऐसा ही उपन्यास है "भारतीय संस्कृति के अनुसार स्त्री-पुरुष संबंध पूरे समाज की आधारशिला है। किन्तु दाम्पत्य का जैसा अवमूल्यन इस उपन्यास में चित्रित है, वह रोंगटे खड़े कर देने वाला है। यहाँ विवाह ने अपना सारा अर्थ गर्ज वासनाओं से और बेगैरत पाखण्ड से संचालित है, किन्हीं मूल्यों से नहीं। इस विकृति का सबसे बड़ा पोषक स्वयं समाज का धर्मतंत्र है। उपन्यास का सीधा प्रहार इस धर्मतंत्र और उसके ठेकेदारों पर ही है। महज सुधारों से कुछ नहीं हो सकता स्त्री-पुरुष संबंधों में तथा अन्य क्षेत्रों में एक आमूल चूल क्रान्ति आये बिना यह नासूर ठीक नहीं हो सकता यहीं इस उपन्यास को पढ़कर प्रतीत होता है।''[12]

जयशंकर प्रसाद की नारी भावना के उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहते हैं कि प्रसाद ने अपनी साहित्य में नारी की सृष्टि बड़े मनोयोग से की है। उन्होंने अपने नारियों का रूपांकन पूरी श्रद्धा और निष्ठा से करते हुए उसे मानवता के श्रेष्ठ गुणों से सजाया और संवारा है। प्रसाद के नारी पात्र नारी जाति

के प्रति उनके संगात्मक लगाव और भावनात्मक जुड़ाव के द्योतक है। यह नारियों के लिए उनकी करुणा और संवेदनशीलता आदर और सम्मान की भावना ही है। जिसने उनके साहित्य में नारी के विद्रोह उसकी कुण्ठा, घुटन और टूटन उसके बलिदान का यथार्थ चित्रण करवाया है। सामाजिक अन्याय एवं अत्याचार की शिकार वंचित, उत्पीडित तथा उपेक्षित नारी का मार्मिक और हृदयग्राही परन्तु यथार्थ चित्रण साहित्य की बहमुल्य निधि है। वस्तुतः प्रसाद का लगभग पूरा साहित्य स्त्री के विस्तृत, अस्तित्व उसकी खोई हुई अस्मिता और उसकी गरिमा को पुनः प्रतिष्ठित करने का एक प्रशंसनीय प्रयास है। प्रसाद के नारी पात्र अपने आदर्श तथा गौरवमयी चरित्र से न केवल नारी जाति अपितु समुचित मानवता को गौरवान्वित करने वाले है।

सन्दर्भ सूची

1. जयशंकर प्रसाद की प्रासंगिकता -प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ. 75
2. प्रसाद नाट्य और रंग शिल्पः गोविन्द चातक, पृ. 42
3. कामायनी - जयशंकर प्रसाद, 105
4. अजातशत्रु - 102
5. कंकाल - 246
6. अजातशत्रु - 125
7. प्रसादः नाट्य और रंग शिल्प गोविन्द चातक, पृ. 16.
8. कंकाल - 177
9. तितली, पृ. 159 .
10. "स्वर्ग के खण्डहर में'
11. संगम प्रसाद स्मृति अंक 18, फरवरी 195 ई. पृ. 43
12. आकाश द्वीप संग्रह की "चूड़ी वाली' कहानी
13. प्रसाद रचना संचयन-सम्पादक विष्णु प्रभाकर, रमेश चन्द्र शाह, प्रकाशन साहित्य एकेडमी, पृ. 109.

श्रीमद्भागवत के अनुसार भारत का भौगोलिक अध्ययन

सीमा चिनप्पा

शोधार्थी, संस्कृत विभाग, डॉ. सी.वी.रामन् विश्वविद्यालय कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

डॉ० वेदप्रकाश मिश्र

प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, डॉ. सी.वी.रामन् विश्वविद्यालय कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश

प्राचीन भारत में अन्य विज्ञानों की भाँति भौम्याकृति विज्ञान का अध्ययन किया जाता था। अंग्रेजी भाषा के शब्द 'फिजियोग्राफी' का प्रयोग किया गया है जिसके अन्तर्गत भूमण्डल के तीन भौतिक विभागों-थलमण्डल, वायुमण्डल एवं जलमण्डल के अध्ययनों का समावेश है। भूमण्डल पर भौतिक परिवर्तन शनैः-शनैः होते हैं परन्तु मानव को ये परिवर्तन अदृश्य से लगते हैं। वर्तमान घटनाओं में चक्रीय तथा उच्चावचीय परिवर्तन ही नहीं अपितु संचयी परिवर्तन भी होते हैं। फलतः वर्तमान प्रवृत्तियों को निर्धारित करने में भूतकाल का निरीक्षण आवश्यक होता है। प्रस्तुत शोध पत्र में गुणात्मक विश्लेषण उपागम विधि तन्त्र को अपनाया गया हैं क्योंकि समंकों के अभाव में परिमाणात्मक विधि तन्त्र का अनुप्रयोग सम्भावना से परे है। इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन का प्राथमिक आधार श्रीमद्भागवतपुराण है तथा तार्किक व्याख्या हेतु अन्य स्रोतों की सहायता ली गयी है। भौगोलिक तथ्यों की तुलनात्मक व्याख्या वर्तमान वैज्ञानिक दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में की गयी है जिसमें आधुनिक भौगोलिक साहित्य का पर्याप्त सहयोग लिया गया है। मानचित्रों का निर्माण श्रीमद्भागवतपुराण में उल्लेखित वर्णनों एवं सूचनाओं के आधार पर किया गया है। उपसंहार आधुनिक संकलपनात्मक तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में है।

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय ज्ञान के आधार पर ही पाश्चात्य जगत् ने भूगोल को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य भौगोलिक सामग्री से परिपूर्ण है परन्तु उसके तार्किक अध्ययन एवं मूल्यांकन हेतु समुचित प्रयास नहीं किये गये हैं। अधिकांश भूगोलविद् जो इस क्षेत्र में प्रविष्ट हुए हैं, केवल उन भौगोलिक तथ्यों का चयन किया है जो उनके विशिष्ट दृष्टिकोण को दर्शाते हैं। उल्लेख्य है कि प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य में प्रत्यक्ष रूप से भौगोलिक तथ्य नहीं मिलते हैं अपितु इन तथ्यों का उल्लेख धार्मिक एवं सामाजिक क्रियाकलापों के साथ किया गया है। अतः प्राचीन भारतीय भूगोल के परिज्ञान हेतु संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों का वैज्ञानिक विधि से तार्किक विवेचन अपरिहार्य है। भूगोल का उद्देश्य पृथ्वी तल पर प्रतिरूप के आधार पर स्थानिक संगठन का अध्ययन करना है जिसमें क्षेत्रों का समातित अध्ययन, उनका कालिक परिवर्तन, उनका सांस्कृतिक अवगम तथा वातावरण की पारिस्थितिक व्याख्या भी सम्मिलित है।

इन तथ्यों को ध्यान में रखकर प्रस्तुत अध्याय में श्रीमद्भागवतपुराण में उपलब्ध सन्दर्भो के आधार पर स्थलमंच एवं सागर द्रोण की उत्पत्ति, अंतर्जात और बहिर्जात बलों तथा तलनित स्थलाकृतियों एवं अन्य भौतिक स्वरूपों का अध्ययन किया गया है। इसके साथ ही वायुमण्डलीय परतें, तापमान, ऋतुयें, पवन, मेघ, वर्ग, महासागर, सागरीय तरंगें एवं ज्वार-भाटा का अध्ययन सम्मिलित हैं जिनका मानव जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। सम्पदा उपोत्पात भूगोल की जड़ें पुरातन काल में भी प्रशस्त थी परन्तु प्राचीन भारत में भूगोल विज्ञान का अध्ययन विषय के रूप में विकसित था तथा उसके अंतर्गत भौतिक एवं मानव विज्ञान के तत्वों, क्रियाओं तथा प्रभावों का अध्ययन होता था।

इस सन्दर्भ में भारत के ऐतिहासिक भूगोल के अध्ययन से आशय अतीतकालीन भौगोलिक तथ्यों का वैज्ञानिक ढंग से तार्किक विवेचन कर भूगोल का पुनर्निर्माण करना है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थ श्रीमद्भागवत में भौगोलिक सामग्री से परिपूर्ण है। वस्तुतः प्राचीन भारत के ग्रन्थों का भौगोलिक दृष्टि से तर्कसंगत एवं वैज्ञानिक विवेचन वर्तमान भूगोलविदों द्वारा बहुत कम किया गया है। पुराणों की रचना का मुख्य उद्देश्य प्राचीन परम्पराओं को सुरक्षित रखना था तथा इनमें विभिन्न युगों में प्रचलित लोक कथाओं, तत्कालीन दर्शन, इतिहास, भूगोल, धार्मिक नियम आदि से सम्बन्धित सभी विचारों एवं नीतियों का संकेत मिलता है। अट्ठारह महापुराणों में श्रीमद्भागवत पुराण को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसमें ब्रह्माण्डोत्पत्ति, पृथ्वी की उत्पत्ति, पर्वत क्रम, नदियाँ, ऋतुएँ, वायुमण्डल आदि भौगोलिक वर्णन उपलब्ध हैं। स्पष्टतः इस ग्रन्थ में भूगोल के सभी पक्षों का विशद् वर्णन किया गया है।

स्थल मण्डल

स्थलमण्डल पृथ्वी का वह भाग है जिस पर मानव क्रीड़ा सबसे अधिक होती है। यह मानव निवास स्थान भी कहा जाता है। भौगोलिक दृष्टि से यह वह क्षेत्र है जिसका गूढ़ अध्ययन आवश्यक है। श्रीमद्भागवत पुराण में जल-थल वितरण, महाद्वीप एवं महासागरीय नितल की उत्पत्ति, ज्वालामुखी, भूकम्प आदि के साथ पर्वतश्रृंग, पर्वतकूट, मैदानों, पठारों एवं विविध भौतिक स्थल रूपों के वर्णन मिलते हैं, जिससे स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय स्थलमण्डल में होने वाले कालिक परिवर्तनों के अध्ययन में गहन रूचि रखते थे, परन्तु उस काल में स्थल रूपों का ज्ञान धरातल के अवलोय लक्षणों पर ही आधारित था, जबकि आधुनिक युग में यह ज्ञान धरातल के अवलोक्य एवं अवलोक्य-तथ्यों का गुणात्मक एवं संख्यात्मक विश्लेषण द्वारा प्राप्त किया जाता है।

महासागर

भूपटल का लगभग तीन चौथाई भाग जल एवं एक चौथाई भाग स्थल है। इस तथ्य की जानकारी के लिए प्राचीन भारतीयों के तर्कसंगत प्रमाण दिये। वृहदारण्यक उपनिषद् में स्थाल एवं समुद्र का अनुपात 1:2 कहा गया है जो आधुनिक आंकड़ों के सदृश्य है परन्तु भागवतपुराण में यह अनुपात समान बतलाया गया है। महासागरों के नाम को विविध रूपों एवं रंगानुसार दर्शाया गया। जिसमें लवण या क्षार सागर, इक्षुरसोद सागर, घृतोद सागर, सुरोद सागर, क्षीरोद सागर, दधिमण्डोद सागर एवं स्वादु सागर या शुद्धोद सागर वर्णित है। ये सातों द्वीपों की खाइयों के समान हैं और परिणाम में अपने भीतरवाले द्वीप के बराबर हैं। इसमें से एक-एक क्रमशः अलग-अलग सात द्वीपों को बाहर से घेरकर स्थित हैं। श्रीमद्भागवत् के श्लोक से स्पष्ट है-

क्षारोदेक्षुरसोदसुरोदघृतोदक्षीरोददधिमण्डोददशुद्धोदाः सप्त जलधयः सप्त द्विपपरिखा।।[1]

यद्यपि अन्यत्र ऐसे विवरण मिलते हैं जिनमें थल भाग की अपेक्षा जल भाग अधिक विस्तार में होना प्रमाणित होता है। उल्लेख है कि पृथ्वी समुद्र में मग्न है। श्रीमद्भागवत् के तृतीय स्कन्ध के श्लोक में वर्णित है-

यदोकः सर्वसत्तवानां मही मग्ना महाम्भसि।[2]

सम्भवतः यहाँ पृथ्वी से आशय महाद्वीपों से है जो कि विशाल जल भागों से चतुर्दिक आवृत्त है।

पर्वत

पर्वत उच्चस्थलीय भूभाग है। पृथ्वी के स्थलरूपों में इनका विशिष्ट स्थान है। ये मनुष्य के लिए मनोरंजक एवं स्वास्थ्यवर्धक स्थल को दर्शाता है। साथ ही साथ यह आर्थिक, व्यवसाय, परिवहन मार्ग और जनसंख्या आदि को भी प्रभावित करता है। इसके फलस्वरूप इन भूस्वरूपों का अध्ययन भूगोल का एक अपरिहार्य एवं अभिन्न अंग बन गया है। श्रीमद्भागवत पुराण में इन्द्र के वज्राघात से विघूर्णित पर्वत का उल्लेख अप्रत्यक्ष रूप से पर्वत निर्माण से सम्बन्धित सम्पीड़न बल को स्पष्ट करता है।

येन में पूर्वमद्रीणां पक्षच्छेदः प्रजात्यये।

कृतो निविशतां भारैः पतत्रैः पततां भुवि।।[3]

पूर्व युग में पर्वत पक्षियों के समान आकाश में उड़ते थे। जिससे सभी जीव जन्तु भयभीत रहते थे। फलतः इन्द्र ने इन पर्वतों के पंख काट दिये थे। श्रीमद्भागवत पुराण की इस लोक कथा के अनुवीक्षण से महाद्वीपीय एवं पर्वत निर्माण की प्रक्रियाओं की संकल्पना की पुष्टी होती है। दो पर्वतों के विभिन्न रूपों में स्थित होने का उल्लेख मिलता है -

उपर्यगेन्द्रं गिरिराडिवान्य आक्रम्य हस्तेन सहत्रबाहुः।

तस्थौ दिवि ब्रह्मभवेन्द्रमुख्यैरभिष्टुवद्भिः सुमनोऽभिवृष्टः।।[4]

इधर पर्वत के ऊपर दूसरे पर्वत के समान बनकर सहुबाहु भगवान् अपने हाथों से उसे दबाकर स्थित हो गये। उस समय अकाश में ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र आदि उनकी स्तुति और उनके ऊपर पुष्पों की वर्षा करने लगें। इस प्रकार भगवान् ने पर्वत के ऊपर उसको दबा रखने वाले के रूप में नीचे उसके आधार कच्छप के रूप में, देवता और असुरों के शरीर में उनकी शक्ति के रूप में, पर्वत में दृढ़ता के रूप में और नेती बने हुए वासुकीनाथ निन्द्रा के रूप में मदराचल पर्वत के द्वारा समुद्रमंथन करने लगे।

मन्दरो मेरूमन्दरः सुपार्श्वः कुमुद इत्ययुतयोजन विस्तारोन्नाहा

मेरोश्चतुर्दिशमवष्टम्भगिरय उपक्लृप्ताः।।[5]

श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार सभी पर्वत श्रेणियाँ मेरू पर्वत को केन्द्र मानकर विस्तारित है। जिसके अंतर्गत अवष्टम्भगिरि जो मेरू पर्वत के आधार स्तम्भ का कार्य करती है। जम्बू द्वीप में मेरू के पूर्व में स्थिति मन्दिर, पश्चिम में स्थित विपुल, दक्षिण में स्थित गन्धमादन तथा उत्तर में स्थित सुपार्श्व अवष्टम्भ पर्वत कहे गये हैं। जम्बू द्वीप में कमल की कर्णिका के केसर के समान मेरु के मूल देश में चतुर्दिक त्तृति पर्वत श्रृंखलाओं में पूर्व की ओर स्थित कुरंग, कुरर, कुसुम्भ, वैकंक, दक्षिण की ओर स्थित त्रिकूट, शिशिर, पतंग, रुचक, निषध, पश्चिम की ओर स्थित शिनीवास, कपिल, शंस, वैदूर्य, जारूधि तथा उत्तर की ओर स्थित हंस, नाग, कालन्नर, नारद आदि केसराचल कहे गये हैं।

ज्वालामुखी

श्रीमद्भागवत पुराण में उल्लेखित संवर्तक अग्नि जो आंतरिक ऊष्मा या ज्वालामुखी को स्पष्ट करती है। संवर्तक अग्नि संकर्षण के मुख से ऊपर की ओर निकलती है। वायु के वेग से वह अग्नि की ज्वालायें निकलने लगती है।

रश्मिभिः पिबते घोरैः सर्वं नैव विमुंचति।

ततः संवर्तको वह्निः संकर्षणमुखोत्थितः।।

दह्यमानं विभात्यण्डं दग्धगोयपिण्डवत।

ततः प्रचण्डपवनो वर्षाणामधिकं शतम्।।[6]

उस जलती हुई ज्वाला को लावा कहते है। जिससे पृथ्वी की सतह जलने लगता है। संवर्तक अग्नि से निकलने वाले पदार्थ धुंआ, धुल एवं जलवाष्प हैं। संवर्तक वायु इन पदार्थो को आकाश में उछालकर चतुर्दिक फैला देती हैं, तदनन्तर जलवाष्प से रंग बिरंगे मेघों का निर्माण हो जाता है। वे आकाश में छा जाते हैं तथा भयंकर गर्जना के साथ वर्षा होने लगती है। उस समय ब्रह्माण्ड के भीतर का सारा संसार एक समुद्र हो जाता है, सब कुछ जलमग्न हो जाता है।

भूकम्प

श्रीमद्भागवत पुराण में भूकम्प का वर्णन मिलता है। पुराणों के अनुसार पृथ्वी के आंतरिक भाग में जलवाष्प तथा तप्त गैसें विद्यमान है अतः भूगर्भ में गैसीय उपद्रव के कारण भूमि के सतह एवं आंतरिक भागों में कम्पन होने लगता है। जिसे भूकम्प कहते हैं।

द्यौस्तत्सटोत्क्षिप्तविमानसङ्.कुला प्रोत्सर्पत क्ष्मा च पदापिपीडिता।

शैलाः समुत्पेतुरमुष्य रंहसा तत्तेजसा खं ककुभो न रेजिरे।।[7]

भारतीय भूगर्भशास्त्रीयों के अनुसार मैदानी भाग में भूस्खलन के कारण भूकम्प आया करते हैं। मैदानी जगहों जैसे कुरू घ्क्षेत्र, वृन्दावन, इन्द्रप्रस्थ, द्वारका आदि मैदानी क्षेत्रों में स्थित केन्द्र स्थलों में भूकम्पों के संदर्भ उपलब्ध है। द्वारका के स्थल में भूकम्प का वर्णन किया है-

पद्भ्यां तालप्रमाणाभ्यां कम्पन्नवनीतलम्।[8]

प्रायद्वीपीय पठारी क्षेत्र भारत के सार्वाधिक प्राचीन और कठोर स्थल खण्ड है तथा भूसन्तुलन की दृष्टि से स्थिर भाग है।

नदियाँ

नदियाँ भूपटल की अति व्यापक एवं विशिष्ट भौतिक रूप हैं। भागवतपुराण में नदी के लिये नदी, नद, सरित्, कन्या, हदिनी, निम्नगा, आपगा, सिन्धु पत्नी आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है जिनसे इसकी भौतिक विशेषताओं का परिचय प्राप्त होता है। नदी का वर्णन इस श्लोक में किया गया है-

यथाद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो।

विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत्त्वां गतयोऽन्ततः।।[9]

नदियों की उत्पत्ति पर्वतों से कही गयी है तथा वे सागर में गिरती हैं। नदियों की उत्पत्ति स्थान नग पर्वत हैं। इसीलिये उन्हें 'नगदुहिता' पर्वत पुत्री कहा जाता था। जल स्वभावतः नीचे की ओर प्रवाहित होता है। फलतः पर्वतों से निकलकर ढाल के अनुसार नीचे की ओर प्रवाहित होने के कारण नदियों को 'निम्नगा' कहा जाता था। सभी प्रकार के जलनदी, भूमिगत जल आदि का आश्रय समुद्र है अप्रत्यक्ष रूप से समुद्र के जल से ही नदियों को पानी प्राप्त होता है। भागवत पुराण में चन्द्रमा, कृतमाला, कावेरी, तुंगभद्रा, कृष्णा, भगीरथ, गोदावरी, यमुना, ताप्ती, रेवा, सुरसा, नर्मदा, सिन्धु, सोन, गंगा आदि नदियाँ है।

आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः।

पुंसो यथास्वतन्त्रस्य देहद्रविणसम्पदः।।[10]

इस प्रकार दक्षिणी भारत में प्रवाहित होने वाली सभी नदियों तथा सिन्धु नदी को 'नद' तथा उत्तरी भारत की सभी नदियों को 'नदी' या 'महानदी' से सम्बोधित किया गया है।

उपसंहारः- संस्कृत-साहित्य विशेषकर पुराण-साहित्य में श्रीमद्भागवत का स्थान अप्रतिम है। यह ज्ञान, कर्म, उपासना का अद्वितीय ग्रन्थ है। यह इतने गहन विवेचन और विभिन्न विषयों से परिपूर्ण है कि इसे विद्वानों ने वैदिक एवं संस्कृत-साहित्य के गहन विषयों का अनावृत रहस्य स्वीकार किया है। इसमें भूगोल, खगोल, इतिहास, नीति, दर्शन, विज्ञान, कला एवं गणीत आदि विषयों का विशद और आकर्षक वर्णन है। इसके साथ ही श्रीमद्भागवत ईश्वरीय ज्ञान, वेदों की कुंजी, प्राकृतिक रहस्यों का उद्घाटक, अभ्युदय आदि का सर्वोत्तम सोपान है। इसमें आध्यात्मिक, वैदिक और आधिभौतिक विज्ञान का अतीव आकर्षक वर्णन है। इसका सर्वाधिक महत्त्व यह है कि इसमें वेदों का रहस्य उद्घाटित किया गया है। श्रीमद्भागवत पुराण के मूल सिद्धान्त में भक्ति, अहिंसा, तप, प्रकृति, मानव, पशु, जगत एवं वनस्पति जगत के संरक्षण तथा उनके प्रति श्रद्धा भाव को दर्शाया गया है। इसलिए विष्णु तत्व का मूल भाव प्रकृति पालक है। प्रकृति एवं पर्यावरण में समुच्चय के रुप में पृथ्वी, जल, नदियाँ, झील, पर्वत, समुद्र आदि सभी सम्मिलित हैं। जिसका वर्णन श्रीमद्भागवत में किया गया है।

संदर्भ

1. श्रीमद्भागवत पुराण (प्रथम खण्ड) पंचम् स्कन्ध प्रथम अध्याय श्लोक 33 पृ. 581
2. श्रीमद्भागवत पुराण (प्रथम खण्ड) तृतीय स्कन्ध त्रयोदशः अध्याय श्लोक 15 पृ. 293
3. श्रीमद्भागवत पुराण (प्रथम खण्ड) अष्टम स्कन्ध अष्टम् अध्याय श्लोक 34 पृ. 961
4. श्रीमद्भागवत पुराण (प्रथम खण्ड) अष्टम स्कन्ध सप्तम् अध्याय श्लोक 12 पृ. 936
5. श्रीमद्भागवत पुराण (प्रथम खण्ड) पंचम् स्कन्ध षोडशोऽध्यायः श्लोक 11 पृ. 642
6. श्रीमद्भागवत पुराण (द्वितीय खण्ड) द्वादश स्कन्ध चतुर्थ अध्याय श्लोक 9,11 पृ. 925
7. श्रीमद्भागवत पुराण (प्रथम खण्ड) सप्तम् स्कन्ध अष्टम् अध्याय श्लोक 33 पृ. 852
8. श्रीमद्भागवत पुराण (द्वितीय खण्ड) द्वादश स्कन्ध षट्षष्टितमोऽध्यायः श्लोक 34 पृ. 541
9. श्रीमद्भागवत पुराण (द्वितीय खण्ड) द्वादश स्कन्ध चत्वारिंशोऽध्यायः श्लोक 10 पृ. 382
10. श्रीमद्भागवत पुराण (द्वितीय खण्ड) द्वादश स्कन्ध विंशोऽध्यायः श्लोक 10 पृ. 260

प्रमुख हिन्दी उपन्यासों में दलित विमर्श

डॉ० तारु एस० पवार

उपाचार्य एवं विभागाध्यक्ष, हिन्दी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, पेरिया (पो.), कासरगोड (जिला), केरल - 671320

साहित्य ठहरा हुआ पानी नहीं, वह हमेशा बहती नदी जैसा है, यानी लगातार बदलते हुए आगे बढ़ना ही उसकी शक्ति एवं स्वरूप है। अत: स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी उपन्यास साहित्य के अंतर्गत अनेक बदलाव आया और विभिन्न दशकों को अलग-अलग नामों से अभिहित किया गया। जैसे- स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास, साठोत्तरी उपन्यास, समकालीन उपन्यास, प्रतिबद्ध उपन्यास आदि है। सन् 1980 के आस-पास लिखे गये उपन्यास साहित्य को समकालीन उपन्यास के नाम से जाना जाता है। यह 'समकालीन' शब्द अंग्रेजी 'कन्टेम्परेरी' का पर्यायवाची माना जाता है। 'समकालीन' का अर्थ एक ही समय में या समान समय में रहे या हुए हैं। अर्थात् एक ही समय में आने वाले व्यक्तियों या रचनाकारों को 'समकालीन' और अपने समय की महत्वपूर्ण समस्याओं के साथ उलझना 'समकालीनता' है। इसमें साहित्यकार की अविरलता वर्तमान की यथार्थ पीड़ा के साथ होता है और वह उसी की अभिव्यक्ति अपनी कृतियों में करता है।

समकालीन हिन्दी उपन्यास साहित्य को समय की सीमा में बाँधकर देखना बहुत ही अटपटा-सा लगता है, क्योंकि प्रेमचन्द तथा उनके समकालीन उपन्यासकारों के कई उपन्यास समकालीन विचारधारा से परिपूर्ण है। इतना ही नहीं आज के अनेक विमर्शों के अंतर्गत आने वाले उपन्यास भी इसी को समृद्ध करने वाले हैं। समय की माँग तथा बोध कराने वाला मानवीय दायित्व एवं परिवर्तन में विश्वास रखने वाले साहित्यों में दलित साहित्य सबसे आगे है। आज समकालीनता को अनुस्मरण कराने वाले कुछ प्रमुख हिन्दी उपन्यासों में दलित विमर्श देखने का प्रयास किया गया है। सन् 1982 में प्रकाशित डी.पी.वरुण का 'अमर ज्योति' दलित विमर्श को उजागर करनेवाला पहला मौलिक उपन्यास है। यह एक प्रेमपरक उपन्यास होते हुए भी दलितों के जुल्मों का आईना हैस धर्म के नाम पर अंधविश्वास फैलाने वाले पाखण्डियों के छल-कपट, अंतर्जातीय विवाह आदि सामंतवादी व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह प्रकट कर लेखक ने अम्बेडकरवादी दृष्टिकोण को उभारने का प्रयास किया है। डॉ. तेजसिंह का विचार है कि- "हिंदुत्व के जाति शास्त्र का विखंडन किया गया है ताकि साहित्य और समाज में समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व जैसे मानवतावादी मूल्यों की स्थापना की जा सके। अम्बेडकरवादी साहित्य का समाजशास्त्र विखंडन का ही समाजशास्त्र नहीं है, बल्कि वह समाज के पुनर्निर्माण का समाजशास्त्र है।" दलित अमर और सवर्ण ज्योति के बीच की प्रेम कथा को केंद्र में रखा गया है। अमर मानव निर्माण को वैज्ञानिक तत्वों के आधार पर देखता है तो ज्योति धर्मशास्त्र और सामाजिक परंपराओं की दृष्टि से देखती है। अंत में दोनों जाति-वर्ण व्यवस्था के बारे में समझते हैं, तब अपने सवर्ण परिवारवालों के छल-कपट का पता चलता है। इस जाति व्यवस्ता नामक कुप्रवृत्ति को जड़ से उकाड फेंकने का प्रयास अमर और ज्योति करते हैं। इस तरह प्रस्तुत उपन्यास में डी.पी.वरुण ने वर्ण एवं जाति व्यवस्था के आड़ में छिपी कुरीतियों का पर्दा उठा कर मानव-मानव के बीच की इस रेखा को मिटाकर एक नए समाज का निर्माण करने का प्रयास किया है।

'छप्पर' जयप्रकाश कर्दम का सन् 1994 में प्रकाशित उपन्यास है। इसमें गंगा किनारे बसा मातापुर गाँव के चन्दन, सुक्खा, हरिया, रमिया, कमला आदि दलितों के जुल्म एवं संघर्ष को दर्शाया गया है। सुक्खा अपने बेटे चन्दन को पढने शहर भेजता है तो पूरे गाँव में भूचाल आ जाती है। अब तक सवर्णों का कोई बच्चा शहर में जाकर नहीं पढ़ास इसलिए गाँव का पूरा सवर्ण समुदाय यानि ब्राह्मण-पुरोहित, ठाकुर-जमींदार, लाला-साहूकार आदि उसे वापस बुलाने का आदेश करते हैं। काणे-पंडित सुक्खा से कहता है- "अनर्थ कर दिया तूने, महा अनर्थ।" इस तरह कहने या डराने-धमकाने से भी सुक्खा पीछे नहीं हटता, तो इसे अपमान समझकर ठाकुर हरनाम सिंह सवर्णों की पंचायत में अपना फैसला सुनाता है- "न तो सुक्खा को खेत-क्वार में घुसने दिया जाए और न उसे किसी डौले-चकरोड में से घास खोदने दी जाए और न उसे मजदूरी के लिए बलुया जाए।" इतना ही नहीं आगे चलकर सुक्खा का घर और खेत भी छिन लिया जाता है।

चन्दन पढाई के साथ-साथ शहर की उस बस्ती में दीन-हीन बच्चों के लिए स्कूल खोलता है। इसके साथ वह समाज सुधार के आन्दोलनों में भाग लेने लगता है। इसका आन्दोलन जब गाँव तक फैल जाता है तो सभी सवर्ण मुखिया मिलाकर इसे कुचलने के लिए जिला-कलेक्टर एवं पुलिस-अधीक्षक के साथ मीटिंग करते हैं। काणे-पंडित कहता है कि- "वे मिटाएंगे भेद स ऐसा कैसे हो सकता है, कैसे बराबर हो सकते हैं, ब्राह्मण और भंगी सब? यह कोई उनकी बनाई व्यवस्था है कि लिया और खत्म कर दियास सनातन व्यवस्था है, यह तो रहेगी ही।" यह सुनते ही ठाकुर की बेटी रजनी प्रतिकार में कहती है- "आखिर आदमी की ही तो बनाई हुई है सारी व्यवस्थाएँ और सारी व्यवस्थाएँ आदमी के लिए ही है।" कलेक्टर इस बात का समर्थन करता है तो जमी हुई महफिल उठ जाती है। रजनी ठाकुर परिवार की बेटी होने के बावजूद भी दीन-हीन को अपना अधिकार दिलाना चाहती है। चंदन के आन्दोलन के परिणामस्वरूप गाँवों में सहकारी समितियाँ बनती है। खूदखोर, मजदूर आदि मजदूरी के लिए अड़ाने लगते हैं। सही मजदूरी न मिलने पर लोग शहरों की ओर चले जाते हैं। इससे खेत में काम करने वालों की संख्या कम और धर्म-कर्म पर से लोगों का विश्वास उड़ने लगता है। इस परिवर्तन से सवर्णों का सांस लेना भी मुश्किल होने लगता है। यह सब सहा नहीं जाता है तो ठाकुर कुँए में कूदकर अपने जान देने निकल पड़ता है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक कर्दम जी ने शिक्षा, संघटन और संघर्ष के माध्यम से दलितों को जागृत कर, जाति-वर्ग के भेद-भाव को मिटाने का प्रयास किया है। इसके साथ चन्दन और रजनी का प्रेम दिखाकर दलित एवं सवर्णों में समानता का भाव जागृत कर, एक नए समाज की स्थापना करने की कोशिश की है।

सन् 1986 में प्रकाशित जयप्रकाश कर्दम जी का एक और उपन्यास है 'करुणा'। इसमें भी लेखक ने रमेश के माध्यम से गाँव के लोगों में समानता स्थापित करने का प्रयास किया है। 'छप्पर' की रजनी एक ठाकुर होने पर भी दलितों को अधिकार दिलाने के लिए आन्दोलन करती है, परन्तु 'करुणा' का सूरज हमेशा दलितों पर अत्याचार, शोषण एवं अन्याय करना अपना धर्म समझता है। सन् 1994 में प्रकाशित प्रेम कपाडिया का 'मिट्टी की सौगंध' में जाति, भेद-भाव, शोषण, अत्याचार को केंद्र में रखा गया उपन्यास है। 'छप्पर' की रजनी की तरह इसमें भी नायक विजेन्द्र दलितों को सामाजिक न्याय एवं परिवर्तन के लिए आन्दोलन करता है। दलितों के उद्धार के लिए वह अपनी खानदानी वसीयत को ठुकराने का साहस करता है। सच के मार्ग पर चलने वाला यह युवक दलितों में नायकत्व के गुण भरने का प्रयास करता है। इसमें प्रेम कपाडिया ने भी दलितों में सामाजिक समानता एवं बंधुत्व की भावना जागृत करने का प्रयास किया है। सन् 1998 में प्रकाशित 'जस तस भई सवेर' उपन्यास में सत्यप्रकाश ने दलितों के बेबसी का यथार्थ चित्रण किया है। भगत धार्मिक आडम्बरों के नाम पर लूटता है, तो चौधरी कर्ज देकर गाँव के दलितों को बेघर कर देता है। इसके साथ भगत, ओझा, पंडित-पुरोहित आदि सामंती लोग जाति, भेद-भाव एवं अंध धार्मिकता का भय दिखाकर दलित महिलाओं का अत्याचार करते हैं। लेखक ने यहाँ जाति भेद-भाव को मिटाने के लिए दलित शिवदास एवं सवर्ण सुमेधा को विवाह के बंधन में बाँध दिया है। इस तरह समानता के साथ एक नए समाज की संकल्पना को उजागर किया है।

'मुक्ति पर्व' सन् 1999 में प्रकाशित मोहनदास नैमिशराय का प्रसिद्ध उपन्यास है। लेखक ने 1947 में अंग्रेजों द्वारा मिली राजनीतिक आजादी की नहीं, हमारी सामाजिक आजादी के सपनों को आधार बनाकर इसकी रचना की है। स्वतंत्र भारत में हम जाति तथा वर्ण के घेरे में आज भी बंटे हुए हैं। इस बंटवारे में सबसे ज्यादा शोषित, पीड़ित तथा कलंकित का बहुत बड़ा भागाध्य दलित समाज का है। इसमें एक संघर्षशील दलित परिवार की व्यथा की कथा है। दलित अपनी मेहनत की बदौलत समाज में सर उठाकर जीना चाहता है, परन्तु सवर्णों की मानसिकता एवं समाज की बेड़ियाँ ऐसे जीने नहीं देती। जब अंग्रेजों से आजादी मिली तो अपने मालिक से नायक बंसी कहता है- "जनाबे अली, हम न गुलाम थे, न गुलाम है और न गुलाम रहेंगेस" यह परिवर्तनकारी आवाज एक व्यक्ति का नहीं पूरे दलित समाज का है। यही क्रांतिकारी विचार अगली पीढी यानि अपने बेटे सुनीत के लिए प्रेरणा बनती है।

सुनीत स्वाभिमान एवं सम्मान के साथ पढ़कर आगे अपने समाज में सुधार लाना चाहता है, परन्तु छप्पर के चन्दन की तरह यहाँ भी सवर्णों द्वारा विरोध एवं बाधाएँ सामने खडी हो जाती है। फिर भी सुनीत पढने शहर जाता है। वहाँ एक दिन मंदिर में प्रवेश मना करने पर, वह अपने पिता से पूछता है- "क्या हमारे हिस्से में देवी-देवता नहीं है, हमारे कौन से देवी-देवता है। हम किसकी पूजा करेंस" लेखक ने यहाँ हमारे समाज में फैली हुयी कुरीति-रिवाज एवं कुसंप्रदायों का खुलासा किया है। स्वतंत्र भारत में आत्मविश्वास तथा इज्जत के साथ बंसी का बेटा सुनीत जीना चाहता है, परन्तु छात्त्वृत्ति, आरक्षण आदि देने में सवर्ण शिक्षक या अधिकारी आना-कानी करते हैं तो वह उसका विरोध करता है। इसकी शिकायत अपने पिता से कहता है तो बंसी कहता है - "लोगों को दु:ख होता है हमारी आजादी से। पशु-पक्षियों की आजादी उन्हें भाती है। चिड़ियों को वह पिंजरे से मुक्त कर देते हैं, पर हमारी मुक्ति के सवाल पर चुप्पी साध लेते हैंस जैसे हम काठ के हों। हमारे भीतर संवेदनाएँ हीन हों। हम कोई मुर्दा हैं। अब हम गुलाम नहीं।" इस तरह बंसी के माध्यम से विद्रोह प्रकट करवाकर मोहनदास नैमिशराय ने जात-पांत या वर्ण-भेद को मिटाने का कार्य किया है। इतना ही नहीं दलितों के मुक्ति विमर्श को रेखांकित कर समाज में परिवर्तन लाने का प्रयास भी किया गया है।

सन् 2003 में प्रकाशित मोहनदास नैमिशराय का एक और उपन्यास है 'वीरांगना झलकारी बाई'। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की हमशक्ल झलकारी बाई की वीरता का वर्णन है। इसमें भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में लक्ष्मीबाई के साथ मिलकर अंग्रेजों से युद्ध किया था। उस समय दलित और महिलाओं को प्रशिक्षण देकर सेना में भर्ती किया करते थे, तो कोरी जाति की झलकारी बाई भी झाँसी के निवासी पूरन से शादी कर वहीं पति के साथ सेना में भर्ती हो गयी थी। सवर्णों ने इसका खूब विरोध किया, परन्तु लक्ष्मीबाई को अपना साम्राज्य बचाना था।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने दलित के वीरता का परिचय देते हुए, समानता स्थापित करने के लिए ब्राह्मण नारायण शास्त्री और भंगी मछरिया का प्रेम और अंतर्जातीय विवाह करवा दिया है। परन्तु शूद्रों ने जनेऊ पहनने का प्रयास किया तो सवर्णों ने विरोध किया। इसका समर्थन करते हुए राजा का आदेश मिलता हैं कि - "शूद्रों को जनेऊ मत पहनने दोस अगर पहने तो उनके जनेऊ तोड़कर फेंक दिए जाएँ। साथ ही दूसरा आदेश भी था। यह कि ताँबे और लोहे के जनेऊ आग में लाल-लाल कर उन्हें पहनाया जाएँ।" उस समय जात-पाँत, छुआ-छूत के नाम पर सवर्णों को बल मिला तो दलितों पर जुल्म करना और आसान हो गया। इसी के आधार पर सवर्ण दलितों का बुरी तरह से शोषण करना शुरू कर देते हैं। 'वीरांगना झलकारी बाई' उपन्यास डेढ़ सौ साल पहले के दलित जुल्मों को उजागर करने वाला एक ऐतिहासिक उपन्यास है।

गौतम बुद्ध का विचार है - "संसार में दु:ख हैं, उस दु:ख का कारण है। उस दु:ख को दूर करने का उपाय भी है।" इस बात से प्रेरित अम्बेडकर कहते हैं कि -"आप दुखी हैस धर्म व्यवस्था, धर्मग्रन्थ और ईश्वरशाही में तुम्हारे दु:ख-दर्द की जड़ें हैं। इस व्यवस्था का त्याग करना, उसके लिए संगठित होकर संघर्ष करना ही दु:ख से मुक्ति का उपाय है।" इन आदर्शों का अनुसरण करते हुए दलित विमर्श को समर्थ बनाने वाले रूपनारायण सोनकर इक्कीसवीं सदी के सशक्त उपन्यासकार रहें हैं। सन् 2010 में प्रकाशित इनका 'सुअरदान' उपन्यास दलित विमर्श के विकसित रूप का सच्ची दस्तावेज है। इसमें दलितों का शोषण, अत्याचार, जुल्म, अंतर्जातीय विवाह, सवर्णों की चालाकी, कुनीति-नियम, धर्म के नाम पर सड़ी हुई संस्कृति एवं परंपरा, अंधविश्वास आदि जड़ से उखाड़ फेंकना और पूर्व प्रचलित दलित विमर्श की परंपरा में शिक्षा, संघटन एवं संघर्ष के द्वारा समाज में स्वतंत्रता, समता एवं बंधुत्व की भावना जागृत करना आदि तो 'सुअरदान' की मूल संवेदना है ही, परन्तु इसके अलावा मानवीयता को मानकर धर्म से कर्म को अधिक महत्व दिया गया हैस लेखक सोनकर ने सूअर को यहाँ दान नहीं वरदान करने का प्रयास किया है।

'सुअरदान' में रामचन्द्र त्रिवेदी एक ब्राह्मण है और सज्जन खटिक, घसीटे चमार, सलवंत यादव ये तीनों दलित हैं, पर इनमें गहरी मित्रता है। ये चारों एम. बी.ए., बी.टेक., बार एट-ला तथा वेटेनरी डॉक्टर जैसी उच्च शिक्षा विदेश से हासिल करने वाले नवयुवक हैं। वे चारों चाहे तो शहर में नौकरी कर आराम की जिन्दगी जी सकते थे, परन्तु अपने गाँव सिंहासनखेडा को शैक्षिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से सुधारना इनका मूल उद्धेश्य हैं। ऐसी एक घटना उस गाँव में घट चुकी है। रतनलाल पढ़-लिखकर डिप्टी कलेक्टर बनने के बाद अपनी पत्नी अनुसूईया, छः साल की बेटी जानकी और

वृद्ध माता-पिता को छोड़कर एक शिक्षित शहरी लड़की रश्मि सिंह से शादी कर आराम की जिन्दगी जी रहा है। अनुसूईया उसकी चिंता में घुल-घुलकर मर जाती है तो बेटी जानकी वेश्या बन जाती है। पिता सन्तु और उसकी माँ आँसुओं में नहाते जिंदगी घसिट रहे हैं। दु:खी सन्तु कहता है- "हम का जानी कि हमार बेटवा डिप्टी कलेक्टर हैं, हम जैसेन पहले मजदूर रहै आज भी मजदूरी करत हैं।"

गाँव के सवर्ण एवं ब्राह्मण मिलकर हमेशा कुतंत्र की योजनाएँ बनाते रहते हैं। गाँव के सवर्ण एवं ब्राह्मण मिलकर हमेशा कुतंत्र की योजनाएँ बनाते रहते हैं। वे कभी सूअर को चोरी करवाता है तो कभी गौशाला बनाते हैं। कभी अस्पताल की दवाईयाँ चुराते हैं तो कभी स्कूल के फर्नीचर एवं अनुदान हडपते हैं। परन्तु कभी कामयाब नहीं होते। अंत में पुजारी एड्स रोग से तडपता है तो, पिगरी फार्म की सहायता से उसे इस रोग से मुक्त करवाते है। इससे ब्राह्मण पुजारी दयाशंकर बदल जाता है। सूअरों को मंदिर के अन्दर ले जाने लगता है। सवर्ण और ब्राह्मण समझाते हैं तो वह कहता है-"यदि कुत्ता इन मूर्तियों के ऊपर पेशाब कर सकता है तो सूअर मंदिर के अंदर क्यों नहीं जा सकता?" इस तरह पुजारी में परिवर्तन आ जाता है। वह जान गया कि धर्म से कर्म बड़ा होता है और जीवन दान देनेवाला तो भगवान होता है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक रूपनारायण सोनकर जी दलित स्त्री विमर्श को भी जमकर चित्रित किया है। शहर में एक ईंट के भट्टों पर काम करते समय यानि गाँव का धरमू पासी-कच्ची ईंट को पात्थता था तो उसकी पत्नी सन्नो मिट्टी के लौंदे बना-बनाकर रखती थी। वह भट्टी मजदूरों के लिए जेल से कम नहीं थी। एक बार काम पर लग गए तो ईंट तैयार होने तक किसी को बाहर जाने नहीं दिया जाता। खूँखार गुंडे वहाँ की रखवाली करते थे। एक रात पति-पत्नी वहाँ से भागने की कोशिश करते हैं तो उन्हें पकडकर गुंडे बहुत पीटते हैं। ठेकेदार सन्नो को पाने कमरे में ले जाना चाहते हैं तो सन्नो कहती है- "तू मुझे क्या ले जाएगा। तेरे में हिम्मत हैं। तेरी मूँछे न उखाड़ लूँ तो मेरा नाम सन्नो नहीं।" जब घसीटते इसे ले जाना चाहता है तो सन्नो आवाज देती है और दलित सब एक जुट होकर ठेकेदार को पीटते है। लेखक सन्नो में इतना साहस भर दिया है कि ह एक ईंट का अद्धा उठाकर जयंत के सर पर मार देती है। सन्नो इक्कीसवीं सदी की दलित नारी है। मुहं तोड़ जवाब देना वह अच्छी तरह से जानती है। इस तरह प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने शिक्षा, संघटन एवं संघर्ष को उजागर कर हमारे समाज में परिवर्तन लाने का प्रयास किया है। पिगरी फार्म के चारों मित्रों का अंतर्जातीय विवाह कर समानता और मन्त्र के बदले डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के संविधान की समानता एवं मौलिक अधिकारों की धाराएँ पढ़वाकर रूपनारायण सोनकर ने स्वतंत्रता, समता एवं की भावनाओं को मजबूत कर दिया है।

'डंक' रूपनारायण सोनकर का सन् 2009 में प्रकाशित उपन्यास है। इसमें यथार्थ घटनाओं पर आधारित दलित के वास्तविक जीवन की तस्वीरें हैं। इसका शीर्षक प्रतीकात्मक है। यहाँ डंक बरैयों के हैं। बरैंयों कई प्रकार की होती हैं, लेकिन सभी के डंक तेज होते हैं। डंक के अंदर जातिवाद, छुआछूत, ऊँच-नीच, असमानता, साम्प्रदायिकता का विषैला द्रव भर होता है। उसके डंक चुबते ही दलित, पिछड़े या निम्न वर्ग के लोग कराहने लगते हैं। लेखक कहते हैं - "बरैंयों के छत्ते शहद नहीं जहरीले वंशज पैदा करते हैं, ऐसे बरैंयों के छत्तों को मशाल से जलाया जाता है।" इस तरह प्रस्तुत उपन्यास के माधम से रूपनारायण सोनकर ने समाज में जात-पाँत, छुआछूत, ऊँच-नीच के विष फैलाने वाले ब्राह्मण एवं सवर्ण रूपी कीड़ों के जहर को खत्म करने का प्रयास किया है। अब तक इनके गंदे पर्यावरण को स्वच्छ कर, एक सुन्दर समाज का पुनर्निर्माण करना दलित विमर्श की मूल संवेदना हैं।

'एक स्वप्नदर्शी की मौत' उपन्यास में विपिन बिहारी ने दलित समाज के आंतरिक और बाहरी द्वंद्व को बताने का प्रयास किया है। मनुष्य को सामाजिक आजादी के साथ-साथ आर्थिक आजादी भी जरूरी है। जंगी को अपना पक्का मकान बनाने का एक सपना है। सवर्ण इसका विरोध करते हैं, परन्तु अपने षड्यंत्र में इनको उसकी मौत के बाद ही सफलता मिलती है। जंगी आधुनिकता और परम्परा की बीच संघर्ष करता है, तो बेटा जतिन आधुनिक शिक्षा के कारण सामाजिक, आर्थिक आदि समानता पर बल देते हुए शिक्षा को विशेष महत्व देता है। जतिन कहता है- "सारे कर्मकाण्ड व्यक्ति को तोड़ते हैं। इसमें न प्रोग्रेस है और न शक्ति। एक डर हमारे भीतर इस तरह बैठ गया है कि कुछ नहीं पाते, जबकि उस डर के पीछे कोई कारण नहीं हैं।" प्रस्तुत उपन्यास में जो पिता द्वन्द के कारण अपने सपनों के साथ मर जाता है, वहीँ बेटा यथार्थ की वास्तविकता पर जोर देता है। डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर की दृष्टि में- "सामाजिक तथा आर्थिक पुनर्निर्माण के आमूल परिवर्तनवादी कार्यक्रम के बिना अस्पृश्य कभी भी अपनी दशा में सुधार नहीं कर सकती।" इस विचार से प्रेरित आज की दलित युवा पीढी सामाजिक एवं आर्थिक पुनर्निर्माण कर, प्रस्तुत समाज में फैली जाति भेद-भाव को नकार कर, एक नये स्वच्छे समाज की स्थापना करना चाहती है।

उपरोक्त के अलावा और भी अनेक उपन्यास है जो दलित विमर्श को दर्शाते हैं। 'मानव की परख' उपन्यास में देवी दयाल सेन ने जातिवाद को मिटाने के लिए अंतर्जातीय विवाह को महत्व दिया है। लेखक ने दलित समुदाय के परंपरागत पेशों का परित्याग और उच्च वर्णीय के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित कर सामाजिक एवं समानता का भाव निर्माण करने का प्रयास किया है। डॉ. धर्मवीर ने 'पहला खत' उपन्यास द्वारा रेल व्यवस्था में स्थित वर्ग-भेद, वर्ण-व्यवस्था एवं ब्राह्मणवादी संस्कृति के खिलाफ अपना विद्रोह व्यक्त किया है।

अजय नावरिया ने 'उधर के लोग' उपन्यास में आज के पढ़े-लिखे नौकर पेशा दलित वर्ग की चेतना को दर्शाया है। यहाँ दलितों की दूसरी पीढी है, जो आरक्षण का लाभ उठाकर आई.ए.एस., आई.पी.एस. और प्रोफेसर बनकर अपने अपने समाज में एक नए मध्यम वर्ग की शुरुआत की है। यह वर्ग सवर्णों की दुनिया में अजनबी और महसूस कराने वाला है, परन्तु अपनी पहचान को दबाने वाला नहीं हैं। इसकी उपेक्षाएँ बदली हुयी है। सवर्णों की घृणा अब ईर्ष्या में बदल गयी है। यह उपन्यास दलित समाज की वह तस्वीर प्रस्तुत करता है, जो महानगरीय जीवन में हमारे आस-पास मौजूद है।

कावेरी का 'मिस रमिया' दलित साहित्य में पहला स्त्री प्रधान उपन्यास है। लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से अपने जुल्मों के प्रति दलित-पिछड़े समाज को एकजुट होकर लड़ने की प्रेरणा डी है। रमिया अविवाहित रहकर अपने समाज सेवा का संकल्प करती है। उपन्यास की नायिका दलित नायिका मायावती से प्रेरित कहा जाता है। इसमें अम्बेडकरवादी विचारधारा का अनुसरण हुआ हस मिस रमिया शिक्षा, संघटन और संघर्ष के माध्यम से अन्याय, अत्याचार एवं उत्पीडन के खिलाफ विद्रोह प्रकट कर, प्रस्तुत समाज में फैली हुई कुरीति-रिवाज को समाप्त करना चाहती है। इसी तरह दलित लड़की किरन को केंद्र

में रखकर लिखा गया कमल तेजस का 'गवाह तथागत' उपन्यास भी प्रसिद्ध है। इसमें दलित स्त्री के संघर्ष के द्वारा इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षित एवं आत्मनिर्भर होने पर भी जीवन जीना उतना आसान नहीं है।

निष्कर्षत: दलित विमर्श या दलित संवेदना हमारी परंपरा, व्यवस्था या उच्च वर्गों की नीच सोच के खिलाफ है और यह वैयक्तिक नहीं सामूहिक है। यह विमर्श दलितेतर की तरह कल्पना की उड़ान नहीं, सवर्ण एवं ब्राह्मणों से पीड़ित, दुखी, शोषित एवं भूख-प्यास से तड़पते दलितों की सच्चाई है। यह तो डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर की कृपा है कि सदियों से पीड़ित दलितों को कम से कम आधुनिक युग में जगाया, नहीं तो और कितनी सदियाँ इंतजार करना पड़तास अम्बेडकर कहते हैं कि - "गुलाम को यदि उसकी गुलामी का अहसास कर दिया जाये, फिर वह गुलाम नहीं रह सकता, तब अपनी बेड़ियाँ वह स्वयं तोड़ देता है।" इससे प्रभावित दलित ने अपने विद्रोह को अहिंसात्मक ढंग से सहनशीलता के साथ व्यक्त किया हैस हमारी लडाई मनुष्य से नहीं, सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ है। अर्जुन डांगले लिखते हैं कि - "सामाजिक व्यवस्था और विषमता के विरुद्ध आन्दोल खड़ा करके एक नए समाज का निर्माण करना यह दलित साहित्य का प्रमुख उद्देश्य है।"

दलितों की पुरानी पीढ़ी अशिक्षित थी। इसलिए सवर्ण एवं ब्राह्मणों के जुल्म को चुप-चाप सहन कर झुकी-झुकी रहा करती थी। आज की युवा पीढी शिक्षित है और इनके चाल को जान चुकी है। अत: उनके जुल्म शोषण एवं अत्याचार को सहना नहीं चाहती और शिक्षा, संघटन एवं संघर्ष के मार्ग पर चल रही है। आज का दलित आत्मसम्मान और स्वाभिमान की जिन्दगी जीना चाहता है। इसके लिए किसी की सहानुभूति की जरूरत नहीं क्योंकि यह उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। अंध-धार्मिकता, खोखली परंपरा, कुनीति-नियम, बेकार की रीति-रिवाज आदि के प्रति सवर्णों में बदलाव की भावना जागृत करना ही दलित विमर्श का मूल संवेदना है। अंतत: जाति-पाँति के भेद-भाव को मिटाकर सवर्ण एवं दलितों में समानता एवं बंधुत्व की भावना जागृत करना यह दलित विमर्श की नयी दृष्टि भारतीय समाज में महापरिवर्तन का द्योतक है, जो यही दलित साहित्य का गर्भ चेतना भी है।

संदर्भ

1. डी. पी. वरुण - अमर ज्योति (1982)
2. जयप्रकाश कर्दम - छप्पर (1994)
3. जयप्रकाश कर्दम - करुणा (1986)
4. प्रेम कपाड़िया - मिट्टी की सौगंध (1994)
5. सत्य प्रकाश - जब तस भई सवेर (1998)
6. मोहनदास नैमिशराय - मुक्ति पर्व (1999)
7. मोहनदास नैमिशराय - वीरांगना झलकारी बाई (2003)
8. रूपनारायण सोनकर - सुअरदान (2010)
9. रूपनारायण सोनकर - डंक (2009)
10. विपिन बिहारी - एक स्वप्नदर्शी की मौत (2017)
11. अजय नावरिया - उधर के लोग (2008)
12. कावेरी - मिस रमिया (2007)

योग दर्शन में ध्यान के सूक्ष्म आयाम: समापत्ति एक अध्ययन

सचिन भारद्वाज

शोध छात्र, योग शिक्षा विभाग, डॉक्टर हरिसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश

प्रो० गणेश शंकर गिरी

विभागाध्यक्ष, योग शिक्षा विभाग, डॉक्टर हरिसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश

सारांश- योगदर्शन में वर्णित अन्तरंग व बहिरंग की साधना मे अन्तरंग साधना के अन्तर्गत धारणा, ध्यान व समाधि को माना जाता है, अन्तरंग साधनों को मन के पार की यात्रा में एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है, संसारिक विषयों से अनासक्ति के भाव को बहिरंग साधनों यम, नियम, आसन, प्राणायाम व प्रत्याहार के द्वारा आंशिक रूप से प्राप्त कर लिया जाता है, परन्तु चित्त में उपस्थित सुक्ष्म संस्कारों को दूर कर परम सत्य की उपलब्धि मात्र बहिरंग से ही संभव नही है, चित्त में गहनता व दीर्घता से अपनी जगह बनाये हुए वासनाओं व स्मृतियों को नष्ट करने के लिये अन्तरंग साधना बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, यह साधना चित्त को निर्मल कर ध्येय विषय मे चित्त को एकाग्र करती है, ध्यान की अवस्था में साधक की ध्येय विषय के साथ एकात्मिकता सात्विक वृति के द्वारा बनी रहती है, तत्पश्चात् साधक ध्येय विषय से संम्बन्धित विभिन्न सूक्ष्म आयामों को जानकर तथा क्लेशों को क्षीण कर साथ ही समापत्ति रूपी प्रज्ञा को प्राप्त कर क्रमशः सम्प्रज्ञात व असम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त करता है, समाधि प्राप्ति की अवस्था में उपलब्ध ज्ञान ही संसारिक विषयो के यथार्थ स्वरूप का परिचय हमे प्रदान करता है, बुद्धि के उच्चतम स्तर को प्राप्त करने में समापत्तियो का ज्ञान योग साधना में प्रमुख स्थान रखता है।

मूल शब्दः चित्त शुद्धि, अन्तरंग, समापत्ति, ध्यान, योग

प्रस्तावनाः भारतीय दार्शनिक परम्परा में योगदर्शन द्वारा प्रतिपादित साधना प्रणाली को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से अधिकांशतः विचारधाराओ, सम्प्रदायों व मतों में देखा जाता है, योग द्वारा निर्देशित यह अनुशसित व व्यवस्थित मार्ग मनुष्य जाति को सत्य प्राप्ति की ओर प्रेरित करता है, तन व मन दोनों की स्थिरता व शुद्धता को योग साधना में प्राथमिकता प्रदान की गयी है, महर्षि पंतजलि द्वारा 300 ई.पू. में 4 पादों व 195 सूत्रो में रचित यह शास्त्र शरीरिक, मानसिक, व आध्यात्मिक उन्नति के साथ-2 आधुनिक जीवन में उत्पन्न होने वाली अनेकों समस्याओ का भी सकारात्मक समाधान प्रस्तुत करता है, योगशास्त्र में अन्तःकरण शुद्धि के लिये चित्त प्रसादन से लेकर शास्त्रानुकूल स्वमत अनुसार ध्यान करने जैसी अनेक विधियों की चर्चा स्पष्ट व सक्षिप्त रूप से की गयी है, महर्षि पंतजलि ने उत्तम, मध्यम व निम्न कोटि के साधकों के लिये भिन्न-2 विधियों का वर्णन किया है, मन निरन्तर विचारों की एक श्रखंला मे खोया रहता है, इन श्रृंखलाओं से निर्मित काल्पनिक दुनिया को वह यथार्थ समझने लगता है, जिस कारण उसकी जैविक उर्जा का एक बहुत बडा भाग इसी प्रकार के व्यर्थ चितंन में चला जाता है, दर्शन का विषय मानव को यथार्थ सत्य से परिचित कराना है, भौतिक समृद्धि एक व्यवहारिक सत्य है, जो आज नही तो कल अपने स्वरूप को परिवर्तित कर अन्य किसी अवस्था को प्राप्त हो जाता है, मनुष्य की जिज्ञासा को गहनता से देखा जाये तो प्रतीत होता है कि वह एक ऐसे सुख की खोज में निरंन्तर प्रयत्नशील रहता है जो हमेशा निश्चल रहें, वह परिवर्तित न हों, हमारा मन हमेशा आन्नद से पुर्ण रहें, इसी सुख की खोज मानव को निरंतर संसारिक विषयों में भ्रमणशील बनायें रखती है, योग दर्शन इस भ्रमण को एक उचित लक्ष्य प्रदान करता है।

योग ज्ञान किसी भी प्रकार के जाति, धर्म व सम्प्रदाय के बंधन में नही बंधता है, यह चित्त को अस्थिरता से मुक्त कर उसे उसके सार्वभौमिक धर्म कैवल्य की और अग्रसर करता है, संसार में उत्पन्न नित्य नवीन विचारधारायें भी योग के प्रयोगात्मक पक्ष की महत्ता को स्वीकार करती है, योग के द्वारा वर्णित प्रमुख साधना विधियों में अष्टांग योग का प्रचलन आधिकांशतः देखने को मिलता है, परन्तु योग दर्शन केवल इसी एक मार्ग तक सीमित नही है, अपितु अन्य विधियों द्वारा भी लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग का वर्णन करता है, वस्तुतः योगदर्शन एक आध्यत्मिक ग्रन्थ है परन्तु यह अपने दार्शनिक व प्रयोगात्मक सिद्वान्तों में समग्र व्यक्तित्व के उत्थान की संभावनाओं को छिपायें हुए रखता है, आज हमे आवश्यकता है कि हम योगदर्शन को पढे तथा इसके ज्ञान का आचरण करने का प्रयास करें, तत्पश्चात् आप देखेगें कि योगियों व संन्यासियों तक सीमित रहने वाली यह विद्या हमारे सामान्य जीवन को भी एक सकारात्मक दिशा दे सकती है, 20 व 21वीं सदी में योगाभ्यासों पर हुए कुछ प्रमुख वैज्ञानिक अनुसंधानों नें योग को मधुमेह, उच्च रक्तचाप, पाचन संम्बन्धी समस्याओ में व अनेक मनोवैज्ञानिक रोगो में बिना किसी दुष्प्रभाव के प्रभावी बताया है, योग विज्ञान मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ कर जीवन में आने वाली चुनौतियों के प्रति संतुलित दृष्टि प्रदान करता है।

अध्ययन क्षेत्रः योगदर्शन में वर्णित साधना मार्गो को साधकों की साधना स्तर के अनुसार तीन भागों में विभजित किया गया है, उत्तम साधक के लिये- अभ्यास और वैराग्य, मध्यम साधक के लिये- क्रियायोग तथा निम्न कोटि के साधक के लिये अष्टागं योग का वर्णन किया गया है, चित्त की क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र व निरूद्ध पांचों अवस्थाओं में समाधि की प्राप्ति हो सकती है, परन्तु एकाग्र और निरूद्ध अवस्था में प्राप्त समाधि ही योग के अनुकूल है, आधुनिक समय में हमारे द्वारा आसन, प्राणायाम का अभ्यास ही मुख्य रूप से किया जाता है, परन्तु योग मार्ग में आधिक गहराई तक जाने के इच्छुक साधक धारणा, ध्यान व समाधि का भी अभ्यास करते है, साधना पथ पर आगे बढते हुए उन्हें अनेक कठिनाइयों का भी सामना करना पडता है, उसका मन साधना से विमुख सा होने लगता है, ऐसी स्थितियों अपने मन को स्थिर कर, दुर्भावनाओं से दूर रहने के लिये महर्षि पंतजलि कुछ प्रमुख विधियो का वर्णन करते है, प्रदत्त विधियों को सही प्रकार से अनुपालित करने पर साधक का चित्त निर्मल हो जाता है, तत्पश्चात् एकाग्र अवस्था में प्रवेश करता हुआ साधक का चित्त ध्यान का उच्च अवस्थाओं मे पहुॅचकर समाधि के गहन अनुभवों द्वारा विभिन्न स्तर की समापत्तियों में प्रज्ञा लाभ प्राप्त करता है। चित्त निर्मलता प्राप्त साधक के लक्षणों को बताते हुए महर्षि पंतजलि प्रथम पाद के 40वें सुत्र में निम्न प्रकार वर्णन करते है,

परमाणुपरममहत्वान्तो अस्य वशीकारः।। 1/40।।

अर्थात- चित्त निर्मलता व एकाग्रता के लिये पूर्व मे वर्णित विधियों के अभ्यास के पश्चात् जब साधक के चित्त में संसार के सूक्ष्म पदार्थ परमाणु व विशालतम तत्व महत् को बिना किसी बाधा के ध्यान का विषय बनाने की क्षमता आ जाती है, तब उस चित्त को एकाग्र चित्त कहा जाता है, उपरोक्त वर्णित दोनों विषयों में ध्यान का अभ्यास करते-2 जब साधक के चित्त मे अप्रतिबद्ध भाव आ जाता है- अर्थात् जहॉ इच्छा हो वही चित्त को एकाग्र करने का सामर्थ्य प्राप्त हो जायें, उसी स्थिति को वशीकार कहते है।

सामान्यतः हम साधना का अभ्यास करते हुए विभिन्न प्रकार के काल्पनिक अनुभवों को विशिष्ट उपलब्धि मानने लगते है, इसी को ध्यान में रखते हुए महर्षि पतंजलि ने इस सूत्र का वर्णन किया है, चित्त की एकाग्रता के लिये बतायी गई विधियों को केवल समाधि प्राप्ति के लिये ही नही अपितु जीवन मे उत्पन्न होने वाली दुर्लभ समस्याओं के सकारात्मक समाधान में भी प्रयोग मे लाया जा सकता है, योगदर्शन में प्रयुक्त विधियों का अभ्यास सभी के द्वारा किया जा सकता है, विद्यार्थियों के लियें ये विधियॉ उनके अध्ययन में उनकी प्रभावी समझ के लिये, एक पेशेवर युवक को उसकी शरीरिक व मानसिक थकान मिटाने के लिये, एक ग्रहस्थ धर्म पालन करने वाले व्यक्ति को जीवन में उत्पन्न होने वालें द्वन्द्वों से बचाने के लिये, एक वृद्ध मनुष्य को उसकी वृद्धावस्था से संम्बन्धित समस्याओं को दूर करने के लिये, ये सभी विधियॉ सहायक होती है, चुॅकि योग ज्ञान किसी भी साम्प्रदायिक सिद्धान्तों से सीमित नही होता है,योग द्वारा प्राप्त लाभ प्रत्येक मनुष्य को उसकी वर्तमान स्थिति के साथ बेहतर तरीके से सामंजस्य करना सीखाता है, चित्त की स्थिरता में सहायक वर्णित विधियो सूत्र संख्या- 1/32,1/33,1/34,1/35,1/36,1/37,1/38,1/39 में दी गयी है, उनमें से कुछ का वर्णन यहॉ किया गया है।

प्रच्छर्दनविद्यारणाभ्यां वा प्राणस्य।। 1/34

अर्थात्- प्रश्वास करने के पश्चात् प्राण को बाहय कुभक के द्वारा बाहर रोकने से चित्त में स्थिरता उत्पन्न होती है।

वीतरागविषयं वा चित्तम्।। 1/ 37।।

अर्थात्- ऐसे योगी व महापुरूष जिन्होनें साधना के द्वारा चित्त की सर्वोच्च स्थिरता को प्राप्त किया है, उन्हे भी ध्यान का आलम्बन बनाने से चित्त को स्थिरता को प्राप्त कर लेता है।

यथाभिमतध्यानाद्वा ।। 1/39।।

अर्थात्- शास्त्रानुकूल विषयों में से चित्त की सहजता व अनुकूलता जिस विषय पर अधिक हों, उसको भी ध्यान का विषय बनाकर चित्त की स्थिरता को प्राप्त किया जा सकता है।

इसी प्रकार की अन्य विधियॉ का भी योगसूत्र में वर्णन किया गया है।

विश्लेषण- संसारिक दुःखों से मुक्ति के लिये मोक्ष प्राप्ति का प्रयास करने वाले साधक को चित्त निर्मलता व एकाग्रता के पश्चात् कुछ प्रमूख स्थितियों से भी साधक को गुजरना पडता है, जो साधक के चित्त को इस प्रकृति के स्थुल तत्व से लेकर सूक्ष्म तत्व तक का ज्ञान प्रदान करती है, ज्ञान वैराग्य का आगमन करता है, बिना ज्ञान के इस परिवर्तनशील जगत की नश्वरता का समझना दुर्लभ कार्य है, धारणा द्वारा ध्येय को स्पष्ट रूप से चित्त में स्थिर कर, ध्यान के द्वारा उसमें एकाग्रता स्थापित कर, समाधि की अवस्था में ध्येय के साथ एकात्मिकता को प्राप्त किया जाता है, योगदर्शन में ध्यान से समाधि की अवस्था मे प्रवेश करते समय हमें समापत्ति रूपी प्रज्ञा को भी प्राप्त करना होता है, शास्त्रों में समापत्ति जैसे विषय के बारे में हमें कम ही वर्णन देखने को मिलता है, इसिलिये हमने इस विषय को स्पष्ट और संक्षिप्त रूप से यहॉ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

एकाग्र भूमि को प्राप्त चित्त वशीकार भाव को ग्रहण करता हुआ, क्रमशः सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि की और आगे बढता है, इसी समयान्तराल में साधक को प्रज्ञा प्राप्ति में सहायक समापत्तियों की अवस्थाओं से भी गुजरना पडता है, योगदर्शन समापत्ति का प्रथम पाद के 41वें सूछ्त्र मे इस प्रकार वर्णन करते है,

क्षीणवृतेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्ति ।। 1/41।।

अर्थात्- जिस प्रकार शुद्ध स्फाटिक मणि सामीप्य प्राप्त वस्तु के समान स्वयं को प्रतिबिम्बित करनी लगती है, उसी प्रकार वृतियों के क्षीण हो जाने पर शुद्ध मणि के समान चित्त भी ग्रहीता, ग्रहण व ग्राहय के समान प्रतीत होने लगता है, चित्त का सामीप्य स्थित पदार्थ के साथ एकात्मकता को ग्रहण करना ही समापत्ति कहा जाता है।

एकाग्र भूमि प्राप्त चित्त अभीष्ट विषय में स्थिर होकर जिस समाधि स्थिति को प्राप्त करता है, उसे भी समापत्ति कहते है, समापत्ति रूपी प्रज्ञा ही परिपक्व होकर सम्प्रज्ञात योग को सिद्ध करती है, समापत्ति प्राप्त चित्त के जो भेद होते है, उन्हें निम्न प्रकार कहॉ गया है।

विषय भेद से समापत्ति तीन प्रकार की होती है, ग्रहीत विषयक, ग्रहण विषयक, व ग्राहय विषयक, प्रकृति के भेद से समापत्ति के सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार, निर्विचार आदि प्रमुख भेदो को बताया गया है।

ग्राहय विषयक समापत्तिः इसके तीन विभाग है, प्रथन –भौतिक पदार्थ गौ, घट आदि, द्वितीय- स्थूल पंचमहाभूत, तृतीय- सूक्ष्म तंमात्राएँ।

ग्रहण विषयक समापत्तिः बाहय आभ्यान्तर इन्द्रिय विषयक, बाहयन्द्रिय – ज्ञानेन्द्रिय , कर्मेन्द्रिय व प्राण. अन्तःइन्द्रिय- बाहयन्द्रिय का नेता मन जो संकल्पात्मक है, मन, बुद्धि व अहंकार ही मूल अन्तःकरण है।

ग्रहीत विषयक समापत्तिः यहॉ ग्रहीता से आशय पुरूष तत्व यानि आत्मा से नही है, अपितु बुद्धि तत्व से है,

यहॉ समापत्ति का विषय पुरूष तत्व नही अपितु अज्ञान के कारण बुद्धि की पुरूष के स्वामित्व के साथ एकरूपता है।

योगसूत्र के 42 वें सूत्र मे सवितर्क समापत्ति का स्वरूप बताया गया है,

तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः।। 1/42।।

अर्थात्- शब्द, अर्थ व ज्ञान अपने भिन्न-2 धर्म रखते है,एकाग्र अवस्था में संम्पन्न समाधि में प्राप्त जो प्रज्ञा शब्द अर्थ व ज्ञान के मिश्रित रूप में प्राप्त होती है, उसे सवितर्क समापत्ति कहते है, वितर्क का अर्थ है विशेष तर्क, तर्क शब्द का प्राचीन अर्थ शब्दमय चिंता है, तर्क का विश्लेषण करके देखने से उसमें शब्द अर्थ तथा ज्ञान की सकीर्ण या मिश्रित अवस्था देखने को मिलती है, इस प्रकार का ज्ञान ष्ऋतम्भरा प्रज्ञा के लिये उपयोगी नही है, यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिये साधक को साधना मार्ग पर और आगे जाना होता है, समापत्ति के द्वारा साधक केवल लौकिक विषयो का ही ज्ञान प्राप्त नही करते है, अपितु तत्व विषयक प्रज्ञा लाभ ही समापत्ति का मुख्य फल होता है, इसके द्वारा वैराग्य सिद्ध होता है, सवितर्क समापत्ति में प्राप्त ज्ञान श्रुतानुमान ज्ञान से मिश्रित होता हैं ।

योगसूत्र के 43 वें सूत्र मे निंवितर्क समापत्ति का स्वरूप बताया गया है,

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ।। 1/43।।

अर्थात्- निर्वितर्क समापत्ति में ध्येय विषय के केवल अर्थ मात्र का ज्ञान होता है, यहॉ विषय सुक्ष्म रूप में प्रकट होता है,यह परम प्रत्यक्ष है, यह ज्ञान श्रुतानुमान ज्ञान से अलग है तथा उनका बीज रूप है, इस स्थिति में शब्द व ज्ञान से मिश्रित स्मृति विलीन होने पर ग्राहय स्वरूप सें उत्पन्न प्रज्ञा अपने पूर्व संचित ग्रहणात्मक प्रज्ञा स्वरूप को मानो त्यागकर केवल पदार्थ के आकार की ग्राहय स्वरूप की प्राप्ति के अनुकूल हो जाती है, इसे ही निंवितर्क समापत्ति कहते है, इस समापत्ति में प्राप्त ज्ञान ध्येय विषय का सूक्ष्मतम ज्ञान होता है, तंमात्राओं को भूतों जनक का कहा जाता है, निंवितर्क समापत्ति में ध्येय निर्माण में सहायक तंमात्राओं का उनके धर्मो सहित ज्ञान होता है,यह ज्ञान सत्य ज्ञान होता है, परन्तु इसे ऋत ज्ञान नही कहा जा सकता है, यह विकल्प रहित ज्ञान होता है, साधक इस समापत्ति के अन्तर्गत ध्येय को सूक्ष्म गुणों से युक्त देखता है।

योगसूत्र के 44 वें सूत्र मे सविचार व निंविचार समापत्ति का स्वरूप बताया गया है,

एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ।। 1/44।।

अर्थात्- ध्येय के सूक्ष्म तंमात्राओं का व सूक्ष्म भूत विषयों का शब्दादि विकल्पों से सकीर्ण प्रज्ञा के द्वारा जब चित्त को ज्ञान होता है, तब उसे सूक्ष्म भूत-विषयक सविचार समापत्ति कहा जाता है,ध्येय विषय की तंमात्राएँ ही सविचार समापत्ति का विषय होते है, इस समापत्ति में प्राप्त ध्येय विषयक ज्ञान देश, काल व निमित्त से रहित होकर होता है।

निंविचार समापत्तिः सविचार समापत्ति में कुशलता होने पर जब शब्दादि की सकीर्ण स्मृति हट जाती है, देश,काल तथा निमित्त सहित ध्येय विषयक सूक्ष्म पदार्थ का ज्ञान प्राप्त होता है, यह ज्ञान सर्वदेशस्थ, सर्वकालव्यापी एवं साथ ही सर्वधर्मो के साथ प्रकाशित होता है, इस अवस्था में प्राप्त ज्ञान में हम ध्येय विषय के निर्माण में कारणभूत तंमात्राओं का तथा उस पदार्थ के स्वरूप का सभी देशों में, सभी कालों में व पदार्थ विशेष की ज्ञान प्राप्ति में सहायक सभी निमित्त धर्मो का ज्ञान प्राप्त कर लेते है।

निर्विचार समापत्ति की सिद्धता के पश्चात् साधक को अध्यात्म प्रसाद की प्राप्ति होती है जो ऋत रूपी प्रज्ञा की प्राप्ति में सहायक होता है, ऋत ज्ञान शुद्ध ज्ञान होता है, इसमे किसी भी प्रकार का अन्य ज्ञान मिश्रित नही होता है, ये सब समापत्तियॉ दृश्य पदार्थो का अवलम्बन करके उत्पन्न होती है, अतः ये बहिर्वस्तुबीज कहलाते है,

इसके उपरान्त आनन्दानुगत समाधि में साधक इन्द्रियों का साक्षात्कार करता है, फिर क्रमशः आगे आस्मितानुगत समाधि में अहंकार का साक्षात्कार करता है, ध्यान की अवस्था को पूर्ण करने के पश्चात् समाधि की उच्च अवस्थरओं में जब साधक अहंकार का भी साक्षात्कार कर लेता है, उस अवस्था मे उसकी बुद्धि कलेशों आदि से पूर्णतः शुद्ध होकर विवेक ज्ञान प्रकट करती है, इस स्थिति तक प्राप्त समाधियों को सालम्बन समाधि कहा जाता है, तद्उपरान्त विवेकख्याति, धर्ममेघ समाधि आदि की उच्च अवस्थाओं को प्राप्त करता हुआ साधक असम्प्रज्ञात समाधि या निर्बीज समाधि को प्राप्त करता है, इसके बाद साधक कैवल्य अवस्था में प्रवेश कर संसारिक बंधनों से पूर्णतः मुक्त हो जाता है।

निष्कर्षः योगदर्शन में वर्णित ज्ञान हमें जीवन के परम लक्ष्य की प्रप्ति की ओर अग्रसर करता है, अन्तरंग साधना में प्रवेश के बाद चित्त की एकाग्रता गहनता की ओर बढने लगती है,परिर्तनशील जगत की नश्वरता का बोध तथा संस्कारों के सम्मुच्चय को नष्ट करने की प्रकिया ध्यान की उच्च अवस्थओं

में ही संभव हो पाती है,प्रस्तुत लेख अन्तरंग साधनाओं के अन्तर्गत आने वाली महत्वपूर्ण स्थितियों समापत्तियों का उल्लेख करता है, इनके द्वारा प्राप्य ज्ञान भौतिक जगत की क्षणभगूरता का क्रमशः बोध कराकर बुद्धि के शुद्धत्तम स्वरूप का निकट ला देता है, जो हमारी आन्तरिक जगत की आध्यात्मिक यात्रा के मार्ग मे आने वाले अनेक रहस्यमयी आयामों का आर्विभाव करते है, सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति में ध्यान की उपयोगिता को समापत्ति का अभ्यास व चितंन एक नयी दिशा प्रदान करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. स्वामी हरिहरानन्द आरण्य (1980), पातंजल योग दर्शन, अनुवादक डा0 रामशंकर भट्टाचार्य, तृतीय संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली
2. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती (2013), मुक्ति के चार सोपान, योगा पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर (बिहार).
3. डा0 पी. वी. करंमवेलकर (2005), पातंजल योगसूत्र, कैवल्यधाम योग संस्थान, लोनावला (महाराष्ट्र).
4. https:/www. researchgate.net/profile/ganesh-giri, Access April 2021.
5. डॉ सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव (1988), पातंजल योगदर्शनम्, द्वितीय संस्करण, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
6. डॉ. बी. आर. शर्मा, पातंजल योगसूत्र की दार्शनिक पृष्ठभूमि. आध्यात्म बोध, बाबू गोपीचंद जी गुप्त, नेहरू रोड, विले पार्ले पूर्व, मुबई
7. वाचस्पति मिश्र (1935), तत्ववैशारदी (सांख्यदर्शनम्), दामोदर शास्त्री चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
8. विज्ञानभिक्षु (1935), (योगवर्तिक सांख्यदर्शनम), दामोदर शास्त्री चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
9. एस. राधाकृष्णन (1989), भारतीय दर्शन, राजपाल एंड सन्स नई दिल्ली
10. http://www.enigmatic.yoga/portfolio/god-in-patanjalis-yoga-sutra

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में आकलन

डॉ० दीपाली द्विवेदी

सहायक आचार्य, बी.एड. विभाग, डी.बी.एस. कॉलेज, कानपुर

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, 21वीं सदी की शिक्षा के लिए आकांक्षात्मक लक्ष्यों, जिसमें एस.डी.जी. 4 शामिल है के संयोजन मे शिक्षा व्यवस्था उसके नियमन और गवर्नेस सहित, सभी पक्षों के सुधार और पुर्नगठन का प्रस्ताव रखती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्रत्येक व्यक्ति में निहित रचनात्मक क्षमताओं के विकास पर विशेष जोर देती हैं यह नीति इस सिद्धान्त पर आधारित है कि शिक्षा से न केवल, साक्षरता और संख्याज्ञान जैसी बुनियादी क्षमताओं के साथ-साथ 'उच्चतर स्तर' की तार्किक और समस्या-समाधान सम्बन्धी संज्ञानात्मक क्षमताओं का विकास होना चाहिए बल्कि नैतिक, सामाजिक और भावनात्मक स्तर पर भी व्यक्ति का होना चाहिये।

'उच्चतर-स्तर' की तार्किक और समस्या-समाधान सम्बन्धी संज्ञानात्मक क्षमताओं के विकास में परीक्षा प्रणाली तथा आकलन का विशेष योगदान होता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में विद्यार्थियों के सार्वभौमिक विकास के लिए आकलन में आमूल-चल परिवर्तन किए गए हैं।

भारत में दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली की समस्या लगभग एक शताब्दी से अधिक समय से विधमान है। सन् 1949 में विश्वविद्यालय शिक्षा आयेाग ने यह विचार प्रकट किया ''यदि हमसे विश्वविद्यालय शिक्षा में केवल एक बात के बारे में सुझाव देने के लिए कहा जाए तो वह सुझाव परीक्षाओं के सम्बन्ध में होगा।'' परीक्षा सुधार के लिए लगभग सभी आयोग तथा शिक्षा नीतियों मे सुझाव दिए गए लेकिन अभी भी उनको पूरी तरह से लागू नही किया जा सका है।

वर्तमान परीक्षा प्रणाली में व्याप्त दोष

1. स्मरण-शक्ति प्रधान प्रश्न पूछे जाते हैं। विश्लेषण क्षमता का आकलन नहीं हो पाता है। रटने पर बल दिया जाता है। दक्षता की जांच नहीं हो पाती है।
2. परीक्षा अभी भी निबन्धात्मक प्रकार की होती है। इस परीक्षा में प्रश्न पत्र सम्पूर्ण पाठ्य विषय पर आधारित न होकर केवल एक अंश पर आध ारित होता हैं, इसमें वैधता व्यापकता, वस्तुनिष्ठता एवं विश्वसनीयता का पूर्ण अभाव होता है। संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों का आकलन नहीं हो पाता है।
3. वाह्य परीक्षा का शीर्षस्थ स्थान है, आन्तरिक परीक्षाओं को कम महत्व दिया जाता है। यदि कोई छात्र पूरे वर्ष मेहनत से पढ़ता है लेकिन किसी कारण वह बाह्य परीक्षा में अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पाता तो उसकी पूरी मेहनत बेकार हो जाती है तथा आंकलन सही नहीं हो पाता।
4. बोर्ड परीक्षाओं को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। 10-12 वर्षो तक इन्तजार के बाद केवल तीन घण्टों में छात्र का आकलन सीमित पाठ्यवस्तु से कर लिया जाता है इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि परीक्षक मात्र 3-4 मिनट में एक उत्तर-पुस्तिका का आकलन कर लेते है।
5. परीक्षाऐं छात्रों के भावी जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है इसलिए छात्रों में भय तथा तनाव की उत्पत्ति होती है तथा छात्र परीक्षाओं में गलत साधनों का प्रयोग करने लगते है।
6. चूंकि परीक्षाओं में छात्रों का बहुत कुछ दॉव पर लगा होता है इसलिए परीक्षाओं के प्रबन्धन की भी समस्या आती है, प्रश्न पत्र लीक हो जाते हैं तथा गोपनीयता नहीं रह पाती है। परीक्षकों पर अंकों के लिए दवाब बनाया जाता है। इस कारण भी छात्रों का सही मूल्यांकन नहीं हो पाता है।
7. परीक्षा को अत्यधिक महत्व दिए जाने के कारण कोचिंग संस्कृति का विकास हुआ। छात्र कक्षा में पढ़ने के बजाय कोचिंग में पढ़ना पसन्द करते हैं शिक्षक भी कक्षा में पढ़ाने के बजाय कोचिंग में अधिक रूचि लेते है।
8. भारत के सभी मान्यता प्राप्त स्कूल बोर्डो के लिए विद्यार्थी आकलन एवं मूल्यांकन के लिए मापदण्ड, मानक और दिशा-निर्देष अलग-अलग होते है। जैसे-सी.बी.एस.ई., आई.सी.एस.सी. तथा यू.पी. बोर्ड में आकलन का पैटर्न अलग-अलग होता है। सी.बी.एस.ई. में बहुविकल्पीय प्रश्न अधिक पूछे जाते है जबकि यू.पी. बोर्ड में प्रश्न-पत्र में निबन्धात्मक प्रश्न अधिक पूछे जाते है। छात्रों के मूल्यांकन में अन्तर होता है।
9. प्रत्येक विश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षा अलग-अलग होती है इस कारण छात्रों को अलग-अलग आवेदन करना होता है तथा अलग-अलग प्रवेश परीक्षा देनी होती हैं समय धन तथा श्रम की बर्बादी होती है।
10. वर्तमान परीक्षा प्रणाली में यदि कोई छात्र स्नातक अन्तिम वर्ष की परीक्षा किसी कारणवश परीक्षा नही दे पाता तो उसकी दो वर्ष की परीक्षा का कोई महत्व नहीं रह जाता है। उसकी शिक्षा इण्टरमीडिएट ही मानी जाती है। वर्तमान परीक्षा का यह बहुत बड़ा दोष है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में छात्रों के विकास के लिए आकलन में आमूल चूल परिवर्तन किए गए है जो इस प्रकार है:-

1. नियमित रचनात्मक आकलन होगा जो कि अधिक दक्षता-आधारित होगा तथा विद्यार्थियों में सीखने की क्षमता को बढ़ाता है तथा उनकी उच्चतर-स्तरीय दक्षताओं जैसे विश्लेषण, तार्किक-चिन्तन और अवधारणात्मक स्पष्टता को जाँचता है।
2. प्रगति कार्ड एक समग्र 360 डिग्री, बहुआयामी कार्ड होगा, जिसमें विद्यार्थी के संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों का सूक्ष्मता से विश्लेषण करके विस्तृत विवरण तथा विशिष्ट विशेषताओं को अंकित किया जाएगा। इसमे स्व-अध्ययन, सहपाठी-मूल्यांकन, प्रोजेक्ट कार्य, खोज-आधारित अध्ययन में प्रदर्शन, क्विज, रोल प्ले, समूह कार्य, पोर्टफोलियो तथा शिक्षकों द्वारा मूल्यांकन भी शामिल होगा।
3. ए0आई0 आधारित साफ्टवेयर के उपयोग द्वारा छात्रों के स्कूली वर्षों में होने वाले विकास को ट्रैक किया जाएगा तथा छात्रों को उनकी रुचि, सामर्थ्य, फोकस के आवश्यक क्षेत्रों में बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान की जाएगी तथा उन्हें इश्टतम कैरियर विकल्प बनाने में मदद की जाएगी।
4. ग्रेड-10 और 12 में बोर्ड परीक्षाएँ होंगी तथा उनको लचीला बनाया जाएगा। कोई भी छात्र जो स्कूल की कक्षा में जाता है और अपनी ओर से एक बुनियादी प्रयास करता है, वह आसानी से बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के बोर्ड परीक्षा पास कर लेगा तथा अच्छा प्रदर्शन कर सकेगा। बोर्ड परीक्षाओं के 'उच्चतर जोखिम' पहलू को समाप्त करने के लिए सभी छात्रों को किसी स्कूल में दो बार बोर्ड परीक्षा की अनुमति दी जाएगी। एक मुख्य परीक्षा तथा यदि आवश्यक हो तो एक सुधार के लिए।
5. बोर्ड परीक्षाएँ मुख्य क्षमताओं की ही जाँच करेंगी। परीक्षाओं के दबाव को कम करने के लिए बोर्ड/सेमेस्टर/मॉडयुलर कोई भी प्रणाली विकसित की जा सकती है। परीक्षा काफी कम सामग्री से तथा सम्बन्धित कोर्स के तुरन्त बाद लिया जाए ताकि माध्यमिक स्तर में परीक्षा का दबाव बेहतर तरीके से वितरित हो, दबाव कम हो तथा परीक्षा में बहुत कुछ दाँव पर न लगा हो। गणित से शुरू करके सभी विषयों का आकलन दो स्तरों पर होगा। एक कक्षा के स्तर पर और कुछ उच्चतर स्तर पर। बोर्ड परीक्षाओं को दो भागों में तैयार कराया जाएगा - एक बहुविकल्पीय प्रश्न तथा दूसरे में वर्णनात्मक प्रश्न होंगे।
6. सभी विद्यार्थियों को एक उपयुक्त प्राधिकरण द्वारा संचालित ग्रेड 3, 5 8 मे स्कूल की परीक्षा देनी होगी। ये परीक्षाएँ रटकर याद करने के बजाय प्रासंगिक उच्चतर-क्रम के कौशलों और वास्तविक जीवन स्थितियों में ज्ञान के मूल्यांकन के माध्यम से बुनियादी साक्षरता, संख्या ज्ञान और अन्य मूलभूत कौशलों का परीक्षण करेंगी।
7. एम0एच0आर0डी0 के तहत एक मानक निर्धारक निकाय के रूप में एक राष्ट्रीय मूल्यांकन केन्द्र, परख स्थापित किए जाने का प्रस्ताव है, जो भारत के सभी मान्यता प्राप्त स्कूल बोर्डों के लिए विद्यार्थी आकलन एवं मूल्यांकन के लिए मानदण्ड, मानक और दिशा निर्देष बनाने जैसे कुछ मूल उद्देश्यों को पूरा करेगा। इस नीति के घोषित उद्देश्यों तथा 21वीं सदी की कौशल आवश्यकताओं को पूरा करने की दिशा में अपने मूल्यांकन पैटर्न को बदलने के लिए स्कूल बोर्डों की मदद करना भी इसका उद्देश्य होगा।
8. राष्ट्रीय परीक्षण एजेन्सी (NTA) विश्वविद्यालयों में प्रवेश के लिए उच्चतर-गुणवत्ता वाली सामान्य योग्यता परीक्षा के साथ ही साथ विज्ञान, मानविकी, भाषा, कला, व्यावसायिक विषयों की साल में कम से कम दो बार परीक्षा लेगी। इन परीक्षाओं में अवधारणात्मक-समझ व ज्ञान को लागू करने की क्षमता की जाँच की जाएगी लेकिन इन परीक्षाओं को पास करने के लिए कोचिंग की आवश्यकता नहीं होगी।

   प्रत्येक विश्वविद्यालय छात्रों के व्यक्तिगत विषय पोर्टफोलियो को देख पाएगा तथा छात्रों को रुचि एवं क्षमता के अनुसार उन्हें अपने विश्वविद्यालय में प्रवेश दे पाएगा। एन0टी0ए0 स्नातक, परास्नातक तथा छात्रवृत्ति के लिए प्रवेश परीक्षा आयोजित करेगा तथा एन0टी0ए0 एक प्रमुख विषय, स्वायत्त टेस्टिंग संगठन के रूप में काम करेगा। इन परीक्षाओं की उच्चतर गुणवत्ता, प्रसार और लचीलेपन से अधिकांश विश्वविद्यालय इन सामान्य प्रवेश परीक्षाओं का उपयोग करने में सक्षम होंगे लेकिन बाध्य नहीं।
9. स्नातक उपाधि 3 या 4 वर्ष की अवधि की होगी, जिसमें उपयुक्त प्रमाणपत्र के साथ निकास के कई विकल्प होंगे। एक वर्ष पूरा करने में सर्टीफिकेट तथा 2 वर्ष पूरा करने में डिप्लोमा या 3 साल के कार्यक्रम के बाद स्नातक की डिग्री दी जाएगी। एक अकादमिक क्रेडिट कार्ड स्थापित किया जाएगा, जो अलग-अलग मान्यता प्राप्त उच्चतर शिक्षण संस्थानों से प्राप्त क्रेडिट को डिजिटल रूप से संकलित करेगा ताकि प्राप्त क्रेडिट के आधार पर उच्चतर शिक्षण संस्थान द्वारा डिग्री दी जा सके।

उपरोक्त के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में आकलन की निम्नांकित विशेषतायें है -

1. दक्षता-आधारित रचनात्मक आंकलन
2. उच्चतर स्तरीय दक्षताओं जैसे- विश्लेषण विश्लेषण, तार्किक-चिन्तन और अवधारणात्मक स्पष्टता को जाँचने वाला आकलन।
3. समग्र 3600 बहुआयामी (ज्ञानात्मक, बोधात्मक तथा क्रियात्मक पक्ष) का सूक्ष्मता से विश्लेषण।
4. स्वअध्ययन, सहपाठी मूल्यांकन, प्रोजेक्ट कार्य, खोज आधारित अध्ययन में प्रदर्शन, क्विज, समूह कार्य, पोर्टफोलियो तथा शिक्षकों द्वारा मूल्यांकन।
5. ए0आई0 आधारित साफ्टवेयर के द्वारा छात्रों के स्कूली वर्षों में विकास को ट्रैक करना।
6. बोर्ड परीक्षाओं को आसान और लचीला बनाना तथा परीक्षाओं की अपेक्षा सीखने को महत्व देना।
7. ग्रेड 3, 5, 8 में प्रासंगिक उच्चतर-क्रम के कौशलों और वास्तविक जीवन स्थितियों में ज्ञान के मूल्यांकन के माध्यम से मूलभूत कौशलों का परीक्षण।

8. राष्ट्रीय मूल्यांकन केन्द्र (परख) के द्वारा 21वीं सदी के कौशल आवश्यकताओं को पूरा करना।
9. राष्ट्रीय परीक्षण एजेन्सी (NTA) परीक्षाओं में अवधारणात्मक समझ व ज्ञान को लागू करने की क्षमता की जाँच।
10. स्नातक उपाधि में निकास के कई विकल्प।

यदि राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के आकलन से सम्बन्धित सुझावों का क्रियान्वयन सफलतापूर्वक किया जाए तो वर्तमान परीक्षा प्राली के दोषों को दूर किया जा सकता है।

सन्दर्भ

1. अल्तेकर, अ0 स0 (2009), एजुकेशन इन एन्सिएण्ट इण्डिया, नई दिल्ली, ज्ञान बुक्स।
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020), मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
3. मुखर्जी, एस0 एन0 (1990), हिस्ट्री आफ एजुकेशन इन इण्डिया।
4. त्यागी, जी0 एस0 डी0 (1992), भारतीय शिक्षा का परिदृष्य, आगरा-2, विनोद पुस्तक मन्दिर।
5. गुप्ता, एस0 पी0 और गुप्ता अ0 (2005), आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, इलाहाबादः शारदा पुस्तक मन्दिर।
6. कई, एफ0ई0 (1954), इण्डियन एजुकेशन इन एन्सियन्ट एण्ड लैटर टाइम्स, लंदनः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

वर्तमान समय के राजनीति परिप्रेक्ष्य में मन्नू भंडारी का उपन्यास 'महाभोज'

सरिता कुमारी

सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, बलरामपुर कॉलेज, पुरूलिया, पश्चिम बंगाल

हमारे समाज पर प्राचीन काल से ही राजनीति का प्रभाव रहा है। आज वर्तमान समय में यह हमारे जीवन का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है। इसका प्रभाव हमारे जीवन पर इतना हावी हो चुका है कि इसके बिना हमारे किसी भी दृष्टिकोण का कोई महत्व नहीं। समाज में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। हिंदी साहित्य ज्ञानकोश के अनुसार –"राजनीति का अस्तित्व प्राचीन समुदायों, विभिन्न राजतंत्रों और परंपरागत समाजों की जन-परिषदों से लेकर दुनिया के देशों में आधुनिक सरकारों और अंतरराष्ट्रीय संबंधों तक विस्तृत है। राजनीति का संबंध सत्ता से है और सत्ता पाने के संघर्ष से है। हर राजनीतिक व्यवस्था देश-काल सापेक्ष होती है। राजनीति के चिह्न प्राचीन समाजों में पाए गए हैं। ये भारत में वैदिक ग्रंथों, रामायण-महाभारत, बौद्ध ग्रंथों और कौटिल्य के अर्थशास्त्र में हैं।"[1] बृहत् प्रामाणिक हिंदी कोश के अनुसार – "राज्य की वह नीति जिसके अनुसार प्रजा का शासन और पालन तथा दूसरे राज्यों से व्यवहार होता है।"[2] अर्थात् एक ऐसी नीति जिसमें मानव समुदाय का जीवन-यापन व्यवस्थित रूप में चलें। लेकिन आज वर्तमान समय में राजनीति के चेहरे में बदलाव आ चुका है। यह सत्ता स्वार्थ की सत्ता बनकर रह गयी है। इसी संदर्भ में ललिता श्रीवास्तव लिखती है – "दुर्भाग्य की बात यह है कि जब राजनीति का एकमात्र उद्देश्य सत्तालोलुपता हो जाता है, तो उसकी दिशा विध्वंसात्मक होती है। एकता-संगठन, विच्छिन्न हो जाता है और स्वार्थपूर्ति ही एकमेव लक्ष्य बन जाता है। इसका तात्कालिक परिणाम समाज पर यह पड़ता है कि राष्ट्रीय चरित्र का पतन हो जाता है। नैतिकता विघटित होने लगती है, देशभक्ति का ह्रास होता है और घूसखोरी तथा भ्रष्टाचार का बोलबाला हो जाता है। समाज की प्रगति अवरूद्ध हो जाती है और क्षेत्रीयता तथा संकीर्ण एवं नकारात्मक दृष्टिकोण का विकास होता है, जैसा कि आज हम देख रहे हैं।"[3] राजनीति अब छलनीति में परिवर्तित हो गयी है, जहाँ आम जनता को उनकी छोटी-छोटी सुविधाओं के लिए सपने दिखाए जाते है। यह जनता की हक की लड़ाई थी। लेकिन अब यह गठबंधन पर निर्भर हो चुकी है, जिसका एकमात्र उद्देश्य है चुनाव में अपनी जीत हासिल करना।

साहित्य समाज का वह आईना होता है जिसमें साहित्यकार समाज की विसंगतियों का पर्दाफाश करता है। अपने युग के संदर्भ में घट रही समाज की गतिविधियों से साहित्यकार परिचित होता है और उसे अपने लेखनी के द्वारा उसका विरोध भी करता है। इसी संदर्भ में शंभुनाथ लिखते है – "राजनीति के छलनीति में बदलने पर साहित्यिक चिंता व्यक्त करने का एक लंबा इतिहास है। इसलिए प्रेमचंद ने साहित्य को राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई न कह कर उसके आगे रहने वाले मशाल के रूप में देखा था। साहित्य और राजनीति के अंत:संबंध पर चली बहस में एक समय साहित्य को राजनीतिक हथियार के रूप में देखने की संकीर्ण दृष्टि छा गई थी, साहित्य का अतिराजनीतिकरण हो गया था। दरअसल साहित्य मूल्यों के लिए संघर्ष का क्षेत्र है। यह सत्ता के लिए किसी संघर्ष के प्रति सहानुभूति रखते हुए भी अंध-समर्पण नहीं करता है।"[4] मन्नू भंडारी का उपन्यास 'महाभोज' भी राजनीति के आड़ में छलनीति का पर्दाफाश करता है। सत्तर के दशक में मन्नू भंडारी ने 'महाभोज' उपन्यास में सत्ता की राजनीति की छलनीति का जो चित्रण की हैं, वह आज के वर्तमान समय में भी जारी है। हिंदी कथा साहित्य में मन्नू भंडारी का महत्त्वपूर्ण योदान रहा है। मन्नू भंडारी ने अपने साहित्य में एक ओर जहाँ नारी संघर्ष को दिखलाती है, वही 'महाभोज' जैसे उपन्यास में वर्तमान समय के राजनीति के दाव-पेंच और नेताओं के स्वार्थनीति का पर्दाफाश भी करती है।

'महाभोज' उपन्यास में लेखिका ने नैतिकता, अंतर्विरोध, सत्ताधारी वर्ग का षड़यंत्र और विपक्ष नेताओं की सच्चाई, पत्रकार और इसके साथ ही प्रशासनिक वर्ग के असली चेहरे को सामने लाती है। उपन्यास में सरोहा शहर से बीस मील की दूरी पर स्थित एक गाँव है, जहाँ सामंती साम्राज्य का बोलबाला है और वहाँ निवास कर रहें किसानों और मजदूरों को जमींदारों के हाथों शोषण का शिकार बनना पड़ता है। अगर ये किसान और मजदूर अपने अधिकारों की माँग करते है तो उसके बदले में उन्हें घोर यंत्रणाएँ सहनी पड़ती है। उनके घरों को जला दिया जाता है। लेखिका के शब्दों में – "गाँव की सरहद से जरा परे हटकर जो हरिजन-टोला है, वहाँ कुछ झोंपड़ियों में आग लगा दी गई थी, आदमियों सहित। दूसरे दिन लोगों ने देखा तो झोपड़ियाँ राख में बदल चुकी थीं और आदमी कबाब में। लोग दौड़े-दौड़े थाने पहुँचे, पर थानेदार साहब उस दिन छुट्टी पर थे; और जो दो लोग वहाँ ड्यूटी पर थे उन्होंने यह कहकर बात टाल दी कि थानेदार साहब के आने पर ही मौके पर तहकीकात होगी। इसके बाद पता नहीं गाँववालों को कौन-सा जहरीला साँप सूँघ गया कि सबके मुँह सिल गए। बस, सबकी साँसों के साथ निकला हुआ एक गुस्सा, एक नफरत-भारी तनाव बनकर हवा में यहाँ से वहाँ तक सनसनाता रहा!"[5] घर जल जाने का आतंक लोगों के मन से मिटा भी नहीं था, तब तक गाँव में एक दूसरी घटना घटित होती है। गाँव का नवयुवक बिसेसर उर्फ बिसू की हत्या। बिसू पढ़ा-लिखा युवक है और अपने अधिकारों के प्रति सचेत भी है। वह गाँव के किसान और मजदूरों को अपने अधिकार के प्रति सचेत करना चाहता है। शोषण से भरे इस वातावरण में वह क्रांति लाना चाहता है। लेकिन उसे इस क्रांति के बदले एक षड़यंत्र का शिकार बनाया जाता है और उसकी हत्या कर दी जाती है। लेखिका ने इन दो घटनाओं से राजनीति के स्वार्थनीति को दिखलाती है कि किस तरह इस घटना की खबर मिलते ही – "मंत्रियों, नेताओं और अखबारनवीसों की गाड़ियों का ताँता लग गया। आग से उठनेवाले धुएँ के बादल तो एक ही दिन में छँट गए, पर शहरी गाड़ियों से उठनेवाली धूल के बादल

कई दिन तक मँडराते रहे। नेताओं ने गीली आँखों और रूँधे हुए गले से क्षोभ प्रकट किया और बड़े-बड़े आश्वासन दिए। अखबारनवीस आए तो दनादन उस राख के ढेर की ही फोटो खींचकर ले गए।"[6] बिसू की हत्या उस समय होती है जब विधानसभा का उपचुनाव होनेवाला था और ऐसी हालत में बिसू की मौत एक सामान्य घटना न होकर राजनेताओं के लिए महाभोज बन जाता है। उपन्यास का आरम्भ ही इस पंक्ति से होता है - "लावारिस लाश को गिद्ध नोच-नोचकर खा जाते हैं।"[7] यहाँ लेखिका ने गिद्ध राजनेताओं को कहा है, जो मृत्यु जैसी घटना को भी अपने लड़ने का अखाड़ा बनाते है। इस उपचुनाव में वर्तमान मुख्यमंत्री दा साहब और भूतपूर्व मंत्री सुकुल बाबू दोनों ही सत्ता को हथियाने के लिए बिसू की हत्या को अपना औजार बनाते है जैसे उसकी मृत्यु से उन्हें बहुत दु:ख पहुँचा है। दोनों के दल अपने-अपने तरीकों से बिसू को इंसाफ दिलाने का बहाना करके लोगों के वोट को अपने पक्ष में लाना चाहते है। लेखिका लिखती है - "इस दर्दनाक हादसे से विरोधी दल के नेताओं के हृदय तो चकनाचूर हो गए। विधानसभा में उनके फटे गले से निकली चीख-पुकार वास्तव में उनके फटे हृदय की अनुगूँज ही थी जिसने सारे सदन में धरती-फाड़ हंगामा मचा दिया। मंत्रियों ने आत्मग्लानि में डूबकर रूँधे गले से खेद प्रकट किया और भविष्य के लिए आश्वसन दिए! उधर सत्तारूढ़ दल के असंतुष्ट विधायक अलग बिलबिलाने लगे! ऐसी अमानुषिक घटना! पार्टी के माथे इतना बड़ा कलंक! अब तो मुख्यमंत्री भी त्यागपत्र देकर ही इस पाप का प्रायश्चित कर सकते हैं। लेकिन मुख्यमंत्री को लगा कि जब तक वे असली मुजरिम का पता लगवाकर सजा नहीं दिलवा देते, उनकी आत्मा बोझमुक्त नहीं होगी और पता तो सत्ता पर बैठकर ही लगवाया जा सकता है।"[8]

दा साहब और सुकुल बाबू के माध्यम से लेखिका राजनीति के एक ऐसे चेहरे से परिचित करवाती है जहाँ सत्ता को हथियाने के लिए लोग कुछ भी कर सकते है। अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए ये गरीबों को सिर्फ वोट बैंक के रूप में देखते है। इन्हें झूठे सपने दिखाकर इनके वोट को हासिल करते है और जिसके कारण पीड़ित जनता की पीड़ा कभी कम नहीं होती। ऐसे ही स्वार्थसिद्धि नेताओं में सुकुल बाबू है जो पिछले चुनाव में हारने के बाद उन्होंने यह ऐलान किया था कि - "वे अब सक्रिय राजनीति से संयास ले लेंगे और जीवन के बचे हुए दिन जनता की सेवा में ही बिताएँगे। पर पहला अवसर आते ही वे फिर लपक लिए। क्या करते, पद से उतरने के तुरंत बाद उन्होंने यह महसूस किया कि जनता की सच्ची सेवा उच्च पद पर बैठकर ही की जा सकती है।"[9] वही दा साहब के रूप में लेखिका ने एक ऐसे भ्रष्ट राजनीति के पहलू का उजागर करती है, जो धर्म की चादर ओढ़े हुए जनता का शोषण करता है। लेखिका ने धर्म के नाम हो रही राजनीति पर प्रहार करती है कि किस तरह यह जनता के सेवक कहे जाने वाले जनता को ही धर्म की आड़ में उनके साथ घिनौनी राजनीति करते है। यह सबसे सस्ती राजनीति है कि लोगों में धर्म का भेद डाल दो। ऐसी ही राजनीति की चालें चलते है दा साहब। धर्म की आड़ में जनता के शोषण करने की नीति चलती है। दा साहब गीता जैसे धार्मिक ग्रंथों के उपदेशों में विश्वास रखते है। और उनसे जुड़े हुए हर व्यक्ति को गीता के ही उपदेशों पर चलने के लिए सलाह देते है और कहते है - "मेरे लिए राजनीति धर्मनीति से कम नहीं। इस राह पर मेरे साथ चलना है तो गीता का उपदेश गाँठ बाँध लो-निष्ठा से अपना कर्त्तव्य किए जाओ, बस। फल पर दृष्टि ही मत रखो। पढ़ते हो गीता या नहीं? पढ़ा करो। चित्त को बड़ी शांति मिलती है।"[10] दा साहब अपने आप को ईमानदार समाज सेवक के रूप में देखते है। बिसू की हत्या की छान-बीन भी बड़ी ईमानदारी से करवाना चाहते है। इसलिए उन्होंने ऊँचे स्तर पर तहकीकात और प्रमाण जुटाने के आदेश दिए है। वह लखन से कहते है - "जिस दिन अपने लोगों का विश्वास खो दूँगा ....उस दिन कुर्सी पर नहीं बैठूँगा। सबके विश्वास पर ही टिकी हुई है मेरी कुर्सी। सबके सद्भाव पर ही जिंदा हूँ मैं।"[11] लेकिन वे अपने सत्ता को कायम रखने के लिए उन सारी पद्धितियों का प्रयोग करते है, जो जनता के हित में अनुचित होता है। आगजनीवाली घटना और बिसू की हत्या से गाँव वालों के मन में सरकार के प्रति सुकुल बाबू ने अपने भाषण द्वारा जो आग लगायी थी, उसे दा साहब ने 'घरेलू उद्योग योजना' बनाकर शान्त कर दिया। इन्हीं दो नेताओं का खुराक बन जाता है बिसू। सुकुल बाबू के शासन काल में जब बिसू गरीब किसान और मजदूरों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत करता है तो उसे चार वर्ष बिना किसी अपराध के जेल में डाल दिया जाता है। वही दा साहब के शासन काल में आगजनीवाली घटना को लेकर जब बिसू ने प्रमाण सहित आवाज उठाई तो उसकी हत्या कर दी गई। बिसू का सिर्फ इतना ही कहना था कि - "पूरे-का-पूरा मामला जान-बूझकर दबा दिया गया है। झूठी तसल्ली देने के लिए बेचारे कांस्टेबल को संस्पेंड कर दिया गया। मामूली जुर्म करनेवाला सजा पा गया और असली मुजरिम के खिलाफ कुछ नहीं ....कभी कुछ होगा भी नहीं। ...आठ महीनों तक रात-दिन समझा-समझाकर इस लायक बनाया था कि छाती ठोंककर अपना हक माँग सकें ...अब बहुत दिनों तक ये लोग अपने हक के लिए लड़ने का हौसला नहीं जुटा पाएँगे!"[12]

लेखिका ने उपन्यास में पत्रकारों की सच्चाई सामने लाती है कि जिन्हें प्रजातंत्र का चौथा स्तंभ माना जाता है, वे किस तरह अपने स्वार्थ में राजनेताओं के हाथों बिक चुके है। दा साहब ने भी 'मशाल' पत्रिका के सम्पादक दत्ता बाबू को अपने पक्ष में खबरें छापने के लिए कर लिया। दूसरे दिन ही 'मशाल' का अंक आया जिसमें हेडलाइन बिसू हत्याकांड की तहकीकात की खबर थी। तहकीकात के आधार पर यह साबित किया गया कि उसकी मौत आत्महत्या थी। इसके साथ ही सुकुल बाबू के द्वारा दिए गए भाषण को गैर-जिम्मेदाराना बताया गया। लेखिका लिखती है - "मि. बिसू की मौत ने एकाएक 'मशाल' को प्रजातंत्र की जिम्मेदारियों से लैस करके एक महत्त्वपूर्ण अखबार बना दिया और दत्ता बाबू को एक जिम्मेदार संपादक।"[13]

उपन्यास में लेखिका ने भ्रष्ट राजनेताओं के एक ऐसे चेहरे से परिचित करवाती है जो नित्य दिन अपने अमानवीय शोषणचक्र को फैलाए जा रहे। इन उद्देश्यों को साकार करने के लिए जोरावर जैसे गुंडे भी पाले जाते है। जिनका सिर्फ एक ही काम है इंसाफ के लिए उठे हुए आवाज को दबाना और वोट के लिए भोले-भाले लोगों को डराना और धमकाना। जोरावर विरोधी पक्ष सुकुल बाबू का विरोध करते हुए कहता है - "हमारे रहते बूथ पर पहुँच पाएँगे वे लोग? जोरावर के राज में वे ही वोट दे पाएँगे जिन्हें जोरावर चाहेगा।"[14] गाँव में जोरावर का आतंक इतना फैला हुआ है कि कोई उसके विरूद्ध आवाज तक नहीं उठा सकता। बिंदा कहता है - "लोगों के घर, जमीन और गाय-बैल ही नहीं रखे हुए हैं जोरावर और सरपंच के यहाँ, उनकी आवाज और जबान तक बंधक रखी हुई है। कोई चूँ तक नही कर सकता है।"[15] वोट की राजनीति में ये भ्रष्ट राजनेता गरीब जनता की भूख को भी नहीं बख्सा है और उनके वोट की कीमत पर लेखिका लिखती है - "दो समय का खाना और पाँच रूपया प्रति व्यक्ति तय हुआ है। बच्चों के लिए भी दो-दो रूपए दिए जाएँगे। लोगों का क्या है, मजदूरी नहीं की और मौज कर ली पूरे कुनबे ने-बच्चों के पैसे और खाना मुफ्त! राजनीति स्वर और आदमी के वोट की कीमत को पाँच रूपए पर उतार दिया जाए, बड़ी शोचनीय स्थिति है यह।"[16]

भ्रष्ट राजनीति के क्षेत्र में ईमानदार लोगों के लिए कोई जगह नहीं होती। लेखिका ने उपन्यास में त्रिलोचन सिंह के रूप में दिखाया है कि वे एक ऐसे नेता जो दा साहब के मंत्रीमंडल में शिक्षा-मंत्री के पद पर बहाल है। लेकिन दा साहब के शोषणनीति से व्याकुल होकर लोचन बाबू उन्हीं के विरोध में खड़े हो जाते है। उसके साथ ही दा साहब की पार्टी को त्यागकर एक नई पार्टी बनाने की योजना करते है। इस योजना में राव और चौधरी जैसे नेता भी उनका साथ दे रहे हैं। पार्टी-अध्यक्ष सदाशिव अत्रे जिन्हें अप्पा साहब भी कहा जाता है। अप्पा साहब जब उन्हें पार्टी की एकता को बरकार रखने के लिए समझाते है, तब लोचन बाबू अपनी व्यथा व्यक्त करते हुए कहते है - "अत्याचारी को संरक्षण दो और पीड़ितों को कुचलों। यही थे हमारे आदर्श-हमारे सिद्धांत, जिन्हें लेकर चले थे हम? ...मजदूरों को सरकारी-रेट पर मजदूरी न मिलना ...आदमियों को जिंदा जला दिया जाना ...दिन-ब-दिन बढ़ते अत्याचार ...असुरक्षा ...बिसू की मौत ...इन सबसे तो चार चाँद लग रहे हैं न पार्टी की इमेज पर? पार्टी का ध्या नही किसे रह गया है आज?"[17] इसका नतीजा यह होता है कि दा साहब राव को शिक्षा मंत्री का पद देकर इस योजना को खत्म कर देते है और लोचन बाबू को पार्टी से बर्खास्त कर दिया जाता है। राजनीति की स्वार्थनीति को देखकर लोचन बाबू चमत्कृत हो जाते है और कहते है - "क्या इसी परिवर्तन के लिए सुकुल बाबू की पार्टी और विधानसभा छोड़ी थी उन्होंने? इसी क्रांति का सपना देखा था? और क्या इसी टुच्चेपन की सौदेबाजी के लिए मंत्रिमंडल गिराने की बात सोच रहे हैं वे? नाम, चेहरे, लेबुल भले ही अलग-अलग हों-पर अलगाव है कहाँ-सुकुल बाबू ...दा साहब ...राव ...चौधरी ...।"[18]

मन्नू भंडारी उपन्यास में न्याय व्यवस्था में हो रहे भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करती हैं कि आज के भ्रष्ट राजनीति में हमारे देश की न्याय व्यवस्था भी भ्रष्ट हो चुकी है। यहाँ भी स्वार्थनीति का बोलबाला है। अपने स्वार्थ के लिए कानून के रखवाले ही कानून को भ्रष्ट नेताओं के हाथों में बेच दिया है। अगर कोई इस भ्रष्ट नीति में ईमानदार बनने की कोशिश करता है तो उसे ट्रांसफर या संस्पेंड कर दिया जाता है। अब न्याय व्यवस्था गुनाहगारों को बचाने के लिए बेगुनाहों को सजा दिलाने के लिए षड्यंत्र रचती है। दा साहब ने गाँव वालों से यह वादा कर चुके है कि बिसू के हत्यारे को कड़ी सजा दी जाएगी। उसके लिए उन्होंने एस. पी. सक्सेना को तहकीकात करने भार सौंपा है। सक्सेना एक ऐसे ईमानदार ऑफिसर है जिनके ईमानदारी की कीमत रिटायरमेंट तक एस. पी. बनकर रहना या फिर ट्रांसफर होते रहना। जब वे तहकीकात के दौरान रिपोर्ट बनाते है कि बिसू ने आत्महत्या नहीं की थी बल्कि जोरावर ने उसके चाय में जहर डाल कर हत्या की है। जब डी.आई.जी. सिन्हा ने इस रिपोर्ट को दा साहब के हाथों दिया, तब दा साहब ने अपनी असली राजनीति दिखाते हुए ईमानदारी का गला घोंट देते है। जोरावर की जगह उन्होंने बिसू के दोस्त बिंदा को अपराधी बना दिया क्योंकि बिसू के मरने के बाद बिंदा के पास आगजनीवाली घटना के सारे प्रमाण मौजूद थे। बिंदा उन प्रमाणों के लेकर दिल्ली जाकर इंसाफ माँगने और बिसू के सपने को पूरा करने वाला था। इसके साथ ही सेक्सना को भी सस्पेंशन ऑर्डर दे दिया जाता है और डी.आई.जी. सिन्हा को आई जी का स्थान दे दिया जाता है। 'मशाल' पत्रिका में प्रमुख खबरों के रूप में छपती है - "दोस्ती की आड़ में बिसू की हत्या करनेवाला बिंदा गिरफ्तार!"[19]

ऐसी राजनीति करने वाले और अपने आप को देश के रखवाले कहने वाले नेताओं की नीतियों पर लेखिका प्रहार करते हुए कुर्सी की असलियत को दिखलाती है - "अरे यों तो धोती के नीचे सभी नंगे ससुरी इस रालनीति मे तो धोती के बाहर भी नंगे। पर दा साहब एकदम अपवाद? धोती के नीचे भी धोती ही निकलेगी इस गीता बाँचनेवाले के। खाल खींचने पर ही सामने आ सकता है इनका नंगापन।"[20] इसी संदर्भ में मधुरेश लिखते है - "मन्नू भंडारी का 'महाभेज' अंतर्वस्तु के विस्तार का एक विस्मयकारी और अभूतपूर्व उदाहरण है। महिला-लेखक और लेखन की परम्परागत छवि को वह एक झटके से ध्वस्त करता है। भारतीय राजनीति के अमानवीय चरित्र पर इससे तीखी टिप्पणी मुश्किल है। कमलेश्वर के 'काली आँधी' के साथ रखकर इस अंतर को आसानी से समझा जा सकता है। भारतीय समाज में, राजनीतिक जीवन में घुसपैठ करती मूल्यविहीनता और तिकड़म को 'महाभोज' गहरी सलंग्नता के साथ उद्घाटित करता है। आज राजनीति व्यक्ति समाज और साहित्य का सबसे बड़ा खलनायक है। दा साहब के दोहरे व्यक्तित्व को, उनके अंदर के शैतान और ऊपर के सत-रूप को, मन्नू भंडारी ने आश्चर्यजनक विश्वसनीयता से साधा है।"[21] बिंदा की गिरफ्तारी, सक्सेना के सस्पेंशन, लोचन बाबू को पार्टी से बर्खास्त और इसके साथ ही डीआईजी सिन्हा को आई जी का पद मिलना इन सारी खबरों से पूरे शहर में उत्साह भर जाता है। शहर में अलग-अलग भागों में, अलग-अलग ढंग से मौज-मस्ती में जश्न मनाया जा रहा है और इन सबसे पूरी तरह उपेक्षित, परित्यक्त और एक तरफ फेंके हुए है - सेक्सना, लोचन बाबू और बिंदा। न्याय व्यवस्था के इस भ्रष्ट नीति पर लोचन बाबू के मन में हजार-हजार प्रश्न उठ कर आते है कि - "अब कहाँ से होगी दूसरी क्रांति और कौन उस क्रांति को जो सब कुछ बदल दे? आज तो परिवर्तन का नाम लेनवाले की आवाज घोंट दी जाती है-उसे काटकर फेंक दिया जाता है। एक तरफ फिंके गिने-चुने आदमियों के घुटे गले और रूँधी आवाजों से क्रांति का स्वर फूट सकेगा अब कभी?"[22] वही सक्सेना डीआईजी से कहते है - "बिसू मरा नहीं है, साहब! सबके लिए वह मर चुका है, पर मैं तो अपने भीतर उसे महसूस करता हूँ।"[23] और बेगुनाह बिंदा पुलिसवालों के मार खाता हुआ चीखता है - "मार डालो, मार डालो। तुमने बिसू को मार डाला, मुझे भी मार डालो, लेकिन देखना बिसू की इच्छा को कोई नहीं मार सकता।"[24]

निष्कर्षत: मन्नू भंडारी ने 'महाभोज' उपन्यास में वर्तमान समय के राजनीति परिवेश को दिखाती हैं। वर्तमान समय में राजनीति के कारण जो समस्याएँ उठ कर आ रही है, वही इसका मुख्य विषय है। लेखिका ने सत्ता पर अधिकार और अपने स्वार्थ से भरे मनोभावों को पूरा करने के लिए दा साबह जैसे राजनेताओं का यथार्थ चित्रण करती है। इसके साथ ही गाँव और शहरों में राजनीति के प्रभाव को दिखलाया गया है कि किस तरह लोगों के जीवन को विकृत कर रहा है। वोट के नाम पर दो रूपये और खाने का लोभ देकर आम जनता के वोट को लूटा जा रहा है। बिसू के द्वारा लेखिका ने गरीब किसान और मजदूरों को सचेत करती है कि वे अपने हक के लिए लड़े। अगर सब मिलकर शोषण के खिलाफ आवाज नहीं उठाएँगे तो बिसू जैसे कई नवयुवकों को हत्या का शिकार बनना पड़ेगा। स्वार्थी राजनेताओं के शोषणचक्र में ईमानदार लोगों के लिए कोई स्थान नहीं है। परन्तु लेखिका ने सक्सेना के द्वारा समाज में वह साहस जगाना चाहती है कि जिस तरह सक्सेना सस्पेंड होकर भी सच्चाई का साथ नहीं छोड़ते। वे बिसू की मौत के प्रमाणों से भरी फाइल को लेकर उच्च स्तर तक अपनी कोशिश को बरकरार रखते हैं। इसके साथ ही लेखिका ने अपने स्वार्थ में लिप्त पत्रकारों की सच्चाई से अवगत कराती है कि हम अखबार में वही पढ़ते है जो सरकार चाहती है। कुल मिलाकर यह उपन्यास सत्तारूढ़ के उस पक्ष को सामने लाता है, जिसके बारे में किसी को भी कोई जानकारी नहीं है। भ्रष्ट राजनेता देश की सेवा के नाम पर आम जनता को लूट रहे हैं।

संदर्भ सूची

1) शंभुनाथ (सं०), हिंदी साहित्य ज्ञानकोश, खण्ड-6, प्रथम संस्करण-2019, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ० 3076
2) कपूर डॉ० बदरीनाथ (सं०), बृहत् प्रामाणिक हिंदी कोश, तेरहवां संस्करण: 2017, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ० 803
3) https://archive.org.details.in.ernet.dli.2015.447525
4) शंभुनाथ (सं०), हिंदी साहित्य ज्ञानकोश, खण्ड-6, पृ० 3076
5) भंडारी मन्नू, महाभोज, छठी आवृत्ति: 2013, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ० 7
6) वही, पृ० 8
7) वही, पृ० 7
8) वही, पृ० 8
9) वही, पृ० 9
10) वही, पृ० 23
11) वही, पृ० 17
12) वही, पृ० 95
13) वही, पृ० 48
14) वही, पृ० 157
15) वही, पृ० 128
16) वही, पृ० 134
17) वही, पृ० 52, 54
18) वही, पृ० 62
19) वही, पृ० 153
20) वही, पृ० 164
21) मधुरेश, हिन्दी उपन्यास का विकास, संस्करण-2011, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 201
22) भंडारी मन्नू, महाभोज, पृ० 167
23) वही, पृ० 165
24) वही, पृ० 167

हिन्द महासागर में शांति एवं भारत की सामरिक रणनीति का भौगोलिक अध्ययन

डॉ० साधना रानी

भूगोल विभागाध्यक्ष, बी.एस.एस.डी. कालेज कानपुर

उमा प्रसाद

प्रवक्ता भूगोल, +2 राजकीयकृत विद्यालय लिट्टीपाड़ा, पाकुड़ (झारखण्ड)

युद्ध, शांति और उसके बीच के अन्तराल को प्राय: जंग का कुहासा या अनिश्चतता की स्थिति कहा जाता है। प्रथम विश्व युद्ध ने द्वितीय विश्व युद्ध की दिशा दी और यह प्रक्रिया तीसरे मुकाम यानि शीत युद्ध तक चलता गया। वर्तमान में यह चौथे युद्ध अर्थात् आतंक के खिलाफ जंग में तब्दील हो गया। यह जंग न तो वर्दी में लड़ी जा रही है और ना ही इसका केन्द्र यूरोप है; जैसाकि पिछले युद्धो में था। इस जंग का मैदान एशिया है; इतना ही नहीं एशिया सिर्फ आर्थिक कामयाबी का प्रतीक नहीं बल्कि विश्व का नाभिकीय धुरी के रूप में भी विकसित हो रहा है। जैसे- ईरान, पाकिस्तान, भारत, इजराइल, चीन, उ0 कोरिया, तथा रूस।

किसी देश के लिए किसी हद तक अपना सब कुछ बलिदान करने की जो ललक मानव जाति में विद्यमान है वही किसी राष्ट्र की सुरक्षा की वास्तविक उर्जा होती है।

हिटलर के अनुसार - "राष्ट्र की सुरक्षा पहला कर्तव्य, नागरिकों की सुरक्षा दूसरा कर्त्तव्य और स्वयं की सुरक्षा अंतिम कर्त्तव्य होना चाहिए"। राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा तब तक अधूरी मानी जाती है जब तक राष्ट्रीय हितों की व्याख्या न किया जा सके। राष्ट्रीय सुरक्षा का रिश्ता उसी प्रकार है जिस प्रकार सभ्यता और संस्कृति का यह भी ध्यान रखना चाहिए कि राष्ट्र के लिए सुरक्षा के विभिन्न आयामो प्रतिमानो का निर्वहन अच्छी तरह से हो।

- हिटलर ने अपनी विस्तार वादी नीतियो का जर्मन के राष्ट्रीय हित के लिए सही माना जबकि भारत कभी भी इस निति का साहारा नहीं लिया।
- अमेरिका ने सदैव नये व विध्वंसकारी शस्त्रों के विकास को अमेरिकी सुरक्षा के लिए सही माना है।
- रूस अपनी राष्ट्रीय हितो के नाम पर अफगानिस्तान में दखलनदाजी करता रहा है।
- चीन का भारत तथा रूस से सीमा संबंधी विवाद जो है; इसे चीन अपना राष्ट्रीय हित मानता है। इस प्रकार ये सभी उदाहरण राष्ट्रीय हितो के दो अर्थ हाने का प्रमाण प्रस्तुत करते है।
- प्रत्येक राष्ट्र का अपना राष्ट्रीय सम्मान होता है और इन्ही सम्मान की रक्षा के लिए पहले शांतिपूर्ण साधनों को अपनाया जाता है तथा इसके विफल होने की स्थिति में युद्ध का सहारा लिया जा सकता है
- युद्ध का मार्ग अपनाने से राष्ट्रों को कोई रोक नहीं सकता क्योंकि सम्प्रभुता सम्पन्न कोई भी राष्ट्र निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र होता है।

हिन्द महासागर की स्थिति एवं विस्तार

- यह विश्व का तीसरा बड़ा महासागर है। जिसमें कुल समुद्री जल का 20% भाग समाहित है।
- इस महासागर के उत्तर में भारतीय उप महाद्विप, पश्चिम में पूर्वी अफ्रीका, पूर्व में हिन्द चीन, सुण्डाद्वीप और आष्ट्रेलिया तथा दक्षिण में दक्षिण ध्रूवीय महासागर स्थित है।
- विश्व का एक मात्र महासागर जिसका नाम किसी देश के नाम पर है।
- संस्कृत में इस महासागर को रत्नाकार अर्थात रत्न उत्पन्न करने वाला और प्राचीन ग्रंथो में इसे हिन्द महासागर कहा जाता है।

अक्षांशीय व देशान्तरीय विस्तार

200 पूर्वी देषान्तर रेखा अंध महासागर और हिन्द महासागर की सीमा जो केप अगुलहास से गुजरती है तथा 146055' पुवी देशान्तर रेखा प्राशन्त महासागर और हिन्द महासागर की सीमा रेखा बनाती है। हिन्द महासागर की उतरी सीमा का निर्धारण फारस की खाड़ी में 300 उत्तरी अक्षॉश द्वारा होता है।

- अफ्रीका और अष्ट्रेलिया के दक्षिणी सिरों पर इस महासागर की चौड़ाई 10000 किमी0 तथा क्षेत्रफल 73556000 वर्ग किमी0 है। जिसमें लाल सागर व फारस की खाड़ी भी सम्मिलित है।

उद्देष्य

1. हिन्द महासागर के तटीय देशों का मध्यपन करना।
2. सामरिक दृष्टि से हिन्द महासागर के तटीय देशों का भारत से संबंधो का अध्ययन।
3. हिन्द महासागर में चीन के प्रभाव का अध्ययन।
4. सामरिक दृष्टि से मलक्का जलसंधि का अध्ययन।

परिकल्पनाएँ

1. हिन्द महासागर सामरिक दृष्टि से भारत के लिए महत्वपूर्ण है।
2. हिन्द महासागर के तटीय देशों का भारत के साथ संबंधो का अध्ययन आवश्यक है।
3. हिन्द महासागर में सामरिक दृष्टि से चीन का प्रभाव बढ़ रहा है।
4. चीन के प्रभाव को कम करने हेतु महासागर के पड़ोसी देशों से अच्छे संबंध होना जरूरी है।

भारत-मालद्वीप संबन्ध - मालद्वीप भारत के दक्षिण पश्चिम में हिन्द महासागर में स्थिति एक द्वीपीय देश है। मालद्वीप दक्षिण एशिया में सबसे छोटा देश है; लेकिन यह भारत के लिए सामरिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक, आर्थिक और पर्यटन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। यह सार्क का सदस्य भी है। यह इस क्षेत्र में हमेशा निशस्त्रीकरण, परमाणु अप्रसार तथा शांति का पक्षधर रहा है। वर्तमान में मालद्वीप भारत और चीन के बीच हिन्द महासागर में उभरती प्रतिद्वंदिता का केन्द्र बिन्दु बन गया है। यह भी हो सकता है कि अमेरिका दोनो के बीच मध्यसस्ता की भूमिका निभाये।

भारत ने मालद्वीप को पानी के संकट से बचाने के लिए आपरेशन नीर चलाया तथा यहॉ चीन के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए भारत ने मालद्वीप के प्रतिरक्षा, अवसंरचना आदि संबंधो को मजबूत कर रहा है। भारत सदैव पड़ोसी देशों के साथ घनिष्ट संबंध बनाता रहा है। हम्मनटोटा बन्दरगाह का विकास कर चीन श्रीलंका के माध्यम से भारत के दक्षिणी भाग में अपनी उपस्थिति दर्ज कर रहा है; जो भारत के हित में नही है। 2017 के अन्तराष्ट्रीय वेसाक महोत्सव श्रीलंका में मनाया गया। भारत और श्रीलंका के बीच सांस्कृतिक रिश्ते बहुत प्राचीन है जो पर्यटक को बढ़ावा दे सकता है। सामरिक दृष्टि से श्रीलंका भारत के लिए महत्वपूर्ण रहा है।

हिन्द महासागर के तटीय देशों में आपसी संबंधो को मजबूत करने के लिए हिन्द महासागर तटीय सहयोग संघ की स्थापना 06 मार्च 1997 को मॉरीशस में की गई। प्व। के कुल 21 सदस्य देश है। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य विकासात्मक, तटस्थतापूर्ण और आमराय आधारित पंचशील सिद्धांतो को अपनाते हुए क्षेत्रीय सहयोग और अन्तर्महाद्वीपीय व्यापार में वृद्धि करना। 29 जुलाई 1987 में भारत - श्रीलंका समझौते से भारतीय शांति स्थापना बल की स्थापना की गई। इस समझौते से ट्रिकोंमाली बन्दरगाह भारत के लिए खोल दिये गये। इसका मुख्य उद्देष्य श्रीलंकाई सेना को ट्रांसपोर्ट व आपूर्ति संबंधी मदद और स्थलसेना को सक्रिय सहायता पहुँचाना था।

ईरान से लेकर कराची तक अरब सागर के तट से होते हुए राष्ट्रीय राजमार्ग और ग्वादर बन्दरगाह का निर्माण आर्थिक व सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है; इससे पाकिस्तान को लाभ व चीन की भागीदरी बढ़ेगी। पाकिस्तान व चीन के प्रभाव को यहां नियंत्रित करने हेतु भारत ईरान के चाबहार बन्दरगाह को विकसित कर कहा है। तथा इस बन्दरगाह के द्वारा एशिाया के मध्य भाग तक भारत अपना प्रभाव बना सकता है। तथा सामरिक दृष्टि से पाकिस्तन को घेर सकता है।

बंगलादेश के चिटगॉव व मोंगला बन्दरगाह सामरिक दृष्टि से भारत के लिए महत्वपूर्ण है। वर्तमान मे यह बन्दरगाह भारत के लिए खोल दिया गया है। इस बन्दरगाह के द्वारा चीन को नियंत्रित व बंगलादेश से मजबूत संबंध बनाया जा सकता है।

मलक्का जलसंधि प्रशान्त व हिन्दमहासागर के बीच जल मार्ग होने के कारण भारत के लिए सामरिक, आर्थिक, पर्यटन आदि क्षेत्रों के लिए बहुत उपयोगी है; इसलिए इसे पूर्व का द्वार कहा जाता है। इससे सटे हुए देश थाईलैण्ड, मलेशिया, सिंगापुर व इण्डोनेशिया है। जो भारत के लिए महत्वपूर्ण है। भारत को इन देशों से मैत्रीपूर्ण संबंध बनाना होगा; जिससे हिन्द महासागर में चीन के प्रभाव को कम किया जा सके। इस जलसंधि के द्वारा चीन हिन्द महासागर में अपना प्रभाव स्थापित करना चाहता है। इस जल संधि के द्वारा भारत का व्यापार जापान, चीन, कोरिया आदि देशों से होता है।

दक्षिणी चीन सागर का महत्व

- विश्व के सर्वाधिक व्यस्ततम् नौपरिवहन मार्ग का संचालन इसी सागर से होता है। तथा चीन इस सागर के 90% भाग पर अपना दावा करता रहा है।
- चीन इस सागर के अधिकतर भागो पर अपना प्रभाव बनाना चाहता है। जो इस सागर के तटीय देशों के विश्व को परेशानी में डाल सकता है।
- भू-वैज्ञानिक स्तर पर यहॉ विश्व का सर्वाधिक समृद्ध समुद्री तेल और गैस का भंडार है।
- सैन्य स्तर पर चीन की अमेरीकी नौसेना का अपने तटो से भागने की इच्छा है, जो भारत के हित में नहीं है। अमेरिका का सातवॉ बेड़ा प्रशान्त महासागर में है, जिसे चीन अब प्रभावित करना चाहता है।
- चीन इस क्षेत्र के देशों पर अपना प्रभाव व ताकत दिखाना चाहता है तथा पूरे क्षेत्र में एकाधिकार स्थापित करना चाहता है।

इस प्रकार द0 चीन सागर में भारत की पहुॅच अभी उतनी नहीं है; जितना की चीन का, हिन्द महासागर में भारत को दक्षिण चीन सागर के तटीय देशों से अपने सामरिक, आर्थिक, सांस्कृतिक रिश्तो को मजबूत कर वहां के संसाधनो का दोहन अपने तथा उन देशो के हितो में करना होना जिससे दोनो सागरो में शांति बनी रहे।

हिन्द महासागर के द्वीपीय देशों व द्वीप का महत्व

इस महासागर में मेडागास्कर और श्रीलंका को छोड़कर मालद्वीप, मॉरीशस, सेशेल्स और कामोरेस छोटे द्वीप समूहो का भारत से घनिष्ट संबंध है। भारत ने ही सर्वप्रथम मालद्वीप को संप्रभु राष्ट्र का दर्जा दिया इसके विकास में भारत ने आर्थिक सहयोग किया। सेशेल्स अफ्रीकी द्वीप राष्ट्र है जिसके साथ भारत के मधुर संबंध है। भारत इसे सेन्य सहयोग भी देता रहा है। भारत के दक्षिण हिन्द महासागर में एक बहुत छोटा द्वीप है,डिएगो गार्सिया । यह इंग्लैंड के कब्जे में था । वर्तमान में अमेरिका इस द्वीप पर अपना वायुसेना और नौसेना का बहुत बड़ा अड्डा बना रखा है जो चीन को रोकने के लिए भारत के हित में है । चीन भी इस महासागर में इसी तरह का अड्डा बनाने की जुगत में है। लेकिन भारत को ऐसी किसी भी मंशा को सफल नहीं होने देना चाहिए जो हिन्द महासागर के शांति को प्रभावित करे ।

इस प्रकार हिन्द महासागर में शांति स्थापित करने हेतु भारत को तटीय देशों व द्वीपों से सामरिक ,आर्थिक,राजनैतिक पर्यटन आदि सम्बन्धों को घनिष्ट व व्यवहारिक बनाने का प्रयास करना चाहिए तथा दक्षिणी चीन सागर के तटीय देशों से सैन्य संबन्धों के साथ-साथ आर्थिक सम्बन्धों को मजबूत कर वहॉ के संसाधनों का दोहन कर विकास को बढ़ाना चाहिए। जिससे भारत अपने कल्याण के साथ विश्व के कल्याण में सहयोग कर सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह डॉ0 अशोक कुमार,एच.ई.एस. 1, राष्ट्रीय सुरक्षा, प्रकाश बुक डिपो, बरेली।
2. जैन, श्रीमती पुष्पा-सम्पुर्ण सैन्य विज्ञान भाग1, विश्व विद्यालय प्रकाशन ग्वालियर।
3. मिश्र, डॉ0 सुरेन्द्र कुमार-भारतीय सैन्य संगठन, संस्करण 2007 मार्डन पब्लिशर्स, जालन्धर।
4. कपूर, आर.के.-सैन्य विज्ञान संस्करण 1979, अजन्ता प्रकाशन, मेरठ।
5. गुप्ता, मेजर धनपाल-सरल सैन्य विज्ञान, संस्करण 1976-77 रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ।
6. पाण्डेय, डॉ0 बाबूराम-सैन्य अध्ययन, संस्करण 1993, प्रकाश बुक डिपो, बरेली।
7. भटनागर, डॉ0 अनिल-सैन्य विज्ञान, आनन्द पब्लिशर्स, ग्वालियर।

अनामिका की कविताओं में प्रतिरोध के स्वर

प्रवीण कुमार यादव

शोध छात्र, हिन्दी, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)

डॉ० वंदना कुमार

सहायक प्राध्यापक, शासकीय नवीन महाविद्यालय, गुढ़ियारी, रायपुर

सारांश

हिन्दी साहित्य में कविता और प्रतिरोध का संबंध नया नहीं है। सदियों से कविताओं में प्रतिरोध के स्वर गूंजते रहे हैं। वर्तमान परिदृश्य में यह क्रम थमा नहीं है, अपितु प्रतिरोध दर्ज कराने का कार्य तेजी से किया जा रहा है। हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं में प्रतिरोध के स्वर सुनाई पड़ते रहे हैं। भक्तिकाल से वर्तमान परिदृश्य में प्रतिरोध दर्ज करती कविताएँ अनिवार्य नजर आती है। हिन्दी कविता की समूची विकास की गति में हिन्दी कवयित्रियों की भूमिकाओं को तथा प्रतिरोध व्यक्त करने की परंपराओं को रेखांकित करना सरल कार्य नहीं है। पितृसता प्रधान भारतीय समाज में नारी का अस्तित्व सामाजिक स्तर पर या सृजनात्मक स्तर पर उसके खो जाने का भय सदैव बना रहता है। प्रसिद्ध साहित्यकार अनामिका ने अपनी रचनाओं में स्त्री मुक्ति की स्थिति, त्रासदी तथा विसंगतियों पर कड़ा प्रहार किया है। वे अपनी अस्मिता की रक्षा अधिकार के लिए निरंतर संघर्ष करती नारी अव्यवस्था तथा असमानताओं के प्रति प्रतिरोध के स्वर बुलंद करती हैं। स्त्री मुक्ति की चाह का भाव अनामिका की कविताओं में बार-बार दिखलाई पड़ता है। अनामिका के साहित्य में मानव जीवन में उतार-चढ़ाव का एक आम दृश्य नजर आता है। अनामिका अपने समय के तमाम अनुभवों के बीच से गुजरकर अपनी अभिव्यक्ति को एक सूत्र में बाँधने की कोशिश करती हैं।

समकालीन हिन्दी कविता में कवयित्री अनामिका का अपना एक अलग मुकाम है। अनामिका का काव्य संसार आम आदमी के जीवन से जुड़ी समस्त चुनौतियों,पीड़ा तथा अनिवार्य आवश्यकताओं पर प्रकाश डालता है। स्त्री विमर्श शोषण, अत्याचार , शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण, दमन आदि विषयों को कवयित्री ने अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। अपने इस प्रयास में वे सदैव सफल रही हैं। अनामिका की कविताएँ मानवीय मूल्यों, संवेदनाओं तथा यथार्थवाद से परिचय कराती हैं। अनामिका के विषय में प्रसिद्ध साहित्यकार मैनेजर पाण्डेय कहते हैं कि ''भारतीय जन-जीवन में जो घटित हो रहा है और घटित होने की प्रक्रिया में जो कुछ गुम हो रहा है अनामिका की कविता में उसकी पहचान और अभिव्यक्ति देखी जा सकती है।''[1] कवयित्री ने अपने लेखन में प्रतिरोध के स्वर को कभी मौन होने नहीं दिया। आमजनों की पीड़ा, आकांक्षा, अभिव्यक्ति को अपनी कविताओं में स्वर प्रदान करने का कार्य उन्होंने बखूबी किया है।

अनामिका बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कवयित्री हैं। उनकी कविताओं में विविध विषयों,पक्षों को सामने लाया गया है। समाज तथा वैश्विक परिदृश्य में स्त्री विमर्श विषय पर लगातार विमर्श की स्थिति बनी हुई है। शोषण, भेदभाव, दासता, त्रासदी, विडंबना, असमानता, अत्याचार आदि प्रत्येक क्षेत्र में संघर्ष कर रही स्त्रियों के मर्म आपकी कविताओं में सहज दिखाई देता है। समाज की कुरीतियों, विसंगतियों वर्षों से स्त्री के लिए अलग तथा पुरूषों के लिए अलग नियम कानुनों के विरोध में आवाज बुलंद की है। अनामिका की कविता धीरे- धीरे मेरे कंधे से उतर रहा हैं 'मेरा घर, धीरे - धीरे उतर रही है चमडी मेरे ये कपडे, मेरे सामने घुटनों के बल बैठे कह रहे हैं कि अब बहुत हुआ।'[2] इसी तरह अनामिका अपनी कविता गृहलक्ष्मी में कहती हैं 'जैसे की मजदूरनी, तोड़ती पत्थर मैंने तोड़ा खुद को टूट-टूटकर'[3] महिलाओं की पीड़ा को मर्मस्पर्शी रूप में व्यक्त किया गया है। दरवाजा कविता में कवयित्री कहती हैं कि मैं दरवाजा थी, मुझे जितना पीटा गया, मैं उतना खुलती गई। अनामिका की कविता सत्य से सामना कराती है। आज के परिदृश्य में स्त्रियों की दशा पर प्रहार करती अनामिका की कविता सब कुछ बयाँ करती है।

अनामिका ने अपनी रचनाओं में नारी स्वालंबन के विषय को प्रमुखता से स्थान दिया है। पितृसत्तात्मकता का प्रभाव सदियों से समाज में दिखाई देता है। समाज के द्वारा बनाए गए नियम जिसमें स्त्री-पुरूष के लिए अलग-अलग मापदण्ड़ हैं। ऐसी विसंगतियों का कवयित्री ने आरंभ से विरोध किया है। समाज में स्त्री की भूमिका हमेशा पुरूष के अधीन बनाई गई है, बचपन में माता-पिता के अधीन युवा तथा विवाह के बाद पति के अधीन वृद्धा अवस्था में संतान के अधीन । इस विकट स्थिति से संवाद करती हैं अनामिका की कविता-'पढ़ा गया हमको जैसे पढ़ा जाता है कागज बच्चों की फटी कॉपियों का चनाजोरगरम के लिफाफे बनाने के पहले।'[4]

''बेवजह'' कविता में कवयित्री ने सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया है। नारी स्वालंबन तथा सशक्तिकरण के लिए अनिवार्य शिक्षा विषय पर तंज कसते हुए कहती हैं कि 'जगह-जगह क्या होती है? यह वैसे जान लिया था हमने अपनी पहली कक्षा में ही याद था हमें एक-एक अक्षर आरम्भिक पाठों का, राम पाठशाला जा, राधा खाना पका, राम आ बताशा खा राधा, झाड़ू लगा, भैया अब सोएगा, जाकर बिस्तर बिछा।'[5] कवयित्री एक महिला की मनोदशा तथा अभिव्यक्ति को संवेदनाओं के माध्यम से कविताओं में प्रस्तुत किया है। जीवन की आपा-घापी में अपने वजूद तथा पहचान के लिए संघर्ष करती महिलाओं की वास्तविक दशा को बयाँ करती हैं अनामिका की कविताएँ।

सदियों से परम्पराओं के नाम पर महिलाओं को पराधीन तथा घर की चारदीवारी में सीमित रखा गया। आज भी महिलाओं की दशा-दिशा में सुधार नहीं दिखाई देता है। स्त्रियों के प्रति लोगों का नजरिया आज भी नहीं बदला है। यह मुख्य चिंता का विषय है। समय के आंशिक परिवर्तन ने स्त्री में निर्भीकता, संघर्ष करने के लिए इच्छाशक्ति को प्रबल किया है। आज स्त्री अपने अधिकार, समानता, हो रहे शोषण, अत्याचार के विरूद्ध आवाज बुलंद कर रही है। निरन्तर उपेक्षित नारी इस व्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त करती है। अनामिका ने इस सत्य को अपनी कविता गृहलक्ष्मी के माध्यम से उभार है-

''एक चीख मेरे भी भीतर दबी है,
इसका बस चले अगर तो,
मेरी पसलियाँ तोड़ती,
निकल आएं बाहर''[6]

विस्थापन का दंश अलगाव को बढ़ावा देता है। विस्थापन की पीड़ा समाज के लिए सबसे बड़ी त्रासदी है। यह त्रासदी प्रत्येक काल में अपनी गति बनाए है। आज समाज इस त्रासदी को सदियों से भोग रहा है। विस्थापन के दर्द का अहसास लोग अच्छे से समझते हैं जिन्होंने इसे जिया है। अपनों को अपनों से दूर होने की तकलीफ को विस्थापित परिवार के सदस्य ही समझते हैं। विस्थापन की इस पीड़ा को रोजमर्रा के कामकाज में किन कठिनाईयों का सामना करना होता है इस संघर्ष को कवयित्री ने अपनी कविता में बखूबी चित्रण किया है:-

''प्रौढ़ाओं के प्रकूल्ल, श्वेत-श्याम केशों के,
ठीक बीचों बीच जहाँ पड़ता है सेनुर,
ऐसा ही तो बीच का रास्ता,
होता है अतिथों की बीच कहीं,
जहाँ न दिन होता है, न ही रात,
न घरमुहाँ राग, न कहर बैराग''।
''एक दूसरे के जुएँ चुनतीं,
बीनती जीवन के सारे खटराग,
जानती हैं औरतें बीच का रास्ता,
साम-दाम दण्ड-भेद से गुजरता''[7]

अनामिका का अपना एक रचना संसार है। वे ऐसी रचनाकार है जिन्होंने अपनी कविता में स्त्री जीवन से संबंधित समस्त पहलुओं को पूरी जवाबदेही के साथ दर्शाया है। नारी चेतना, नारी जागरण, आत्मसम्मान, स्वालंबन, सशक्तिकरण आदि विषयों पर उन्होंने अपनी आवाज आमजन के मध्य बुलंद की है। इन विषयों से सरोकार रखती हुई अनामिका की कविता बेजगह -

''अपनी जगह से गिरकर,
कहीं के नहीं रहते,
अपना केश, औरतें और नाखून,
अन्वय करते थे किसी श्लोक को ऐसे''[8]
''जैसे की मजदूरनी
तोड़ती है पत्थर
मैंने तोड़ा खुद को
फूट-फूटकर
धूल-धूल कंकडी-कंकडी हुई,
उड़ी तो चुंभी आंखों में किरकिरी सी,
गिरी धंसी तो छोड़ी नीव में पड़ी''[9]

अनामिका की कविता में नारी अनेक कष्टों से गुजरती है, वावजूद हारती नहीं हैं। अपनी पहचान अस्तित्व को बनाए रखती है। नारी अपने अदम्य साहस के फलस्वरूप प्रत्येक काल में शक्ति स्वरूपा का अहसास कराती है।

प्रारंभ से ही समाज में नारी को दोयम दर्जे का व्यवहार, असमानता, शोषण आदि का सामना करना पड़ता है। स्त्री का समस्त जीवन पुरूष वर्चस्व के बीच सर्वमान्य परिस्थितियों के बीच गुजर जाता है। पुरूष प्रधान समाज में महिलाओं को सदैव अग्नि परीक्षा से गुजरना होता है। कभी परंपराओं के नाम पर तो कभी परिवार के नाम पर। सदैव हाशिए में रहती है नारी, जिस पर लांक्षन, तोहमत शब्द सदैव प्रतिबिंब की तरह प्रभावी रहते हैं। कवयित्री स्वयं एक नारी है, नारी की पीड़ा एक नारी ही बेहतर समझती हैं। एक नारी के जीवन में पितृसत्तात्मकता का क्या प्रभाव रहता है, इस चिंतन को कवयित्री ने संवेदना तथा अनुभव के द्वारा अभिव्यक्त किया है। अनामिका की कविता स्त्रियाँ इस बात की साक्षी है:-

"सुना गया है हमको,
यों ही उड़ते मन से,
जैसे सुने जाते हैं फिल्मी गाने,
सस्ते कैसटों पर,
ठसाठस्स ठूँसी हुई बस में,
भोगा गया हमको,
बहुत दूर के रिश्तेदारों के,
दुख की तरह,
एक दिन हमने कहा,
हम भी इंसान हैं"[10]

परिवार एक ऐसा शब्द है जो तमाम परेशानियों को दरनिार कर एकता, भाईचारा, सुख-दुख, शांति, प्यार, विश्वास का अहसास जगाता है। भारतीय परंपराओं में परिवार का जितना अधिक महत्व है उससे कहीं अधिक परिवार के मुखिया का होता है। घर के बड़े-बुजुर्ग। पश्चिमीकरण के बढ़ते प्रभाव ने हमारी सभ्यता, संस्कृति तथा परंपराओं पर कठोर प्रहार किया है, आज छोटा परिवार तथा एकाकी परिवार के बढ़ते प्रभाव ने घर के मुखिया को एकांतवास या वृद्धा आश्रम में रहने को मजबूर कर दिया है। समाज तथा देश में वृद्धजनों के साथ बढ़ते अमानवीय व्यवहार ने हमारे सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों को तार-तार कर दिया है। परिवार के मुखिया या वृद्धजनों के अकेलेपन की त्रासदी को अनामिका ने बड़े ही सुन्दर ढंग से अपनी रचना ''वृद्धाएँ धरती का नमक है'' में बताया है-

''रहती हैं वृद्धाएँ धर में रहती हैं,
लेकिन ऐसे जैसे अपने होने की खातिर हो क्षमाप्रार्थी, लोग
लोगों के आते ही बैठक से उठ जाती,
छुप-छुपकर रहती है छाया सी माया सी,
पति-पत्नि जब भी लड़ते उनको लेकर,
कि तुम्हारी माँ ने दिया क्या, किया क्या"[11]

समकालीन परिवेश के ऐसे अनेक विषय हैं जिन पर अनामिका ने दुख-दर्द, पीड़ित, उपेक्षित लोगों के मनोभवों को संवेदना के साथ से चित्रित किया है। उन्होंने अपने समय की विसंगतियों पर प्रतिरोध व्यक्त किया है साथ ही निडरता के साथ-साथ सवाल और संवाद भी किया है। उनका यह संवाद समाधान प्राप्त करने की पहल करता है। स्त्रियों में जागरूकता का भाव जागता है, अधिकारों के प्रति सचेत करता है। स्त्रियों की स्वतंत्रता, अधिकार, समानता, वैचारिक आजादी आदि विषयों के प्रति पूर्ण समर्थन करता है। समाज में नारी को अनेक पीड़ादायी शब्दों से सम्बोधित किया जाता है। जिनका प्रतिकार कर वे कहती हैं:-

''एक दिन हमने कहा,
हम भी इंसान हैं,
हमें कायदे से पढ़ो एक-एक अक्षर,
जैसे पढ़ा होगा बी ए के बाद,
नौकरी का पहला विज्ञापन"[12]
''देखे तो ऐसे,
जैसे कि ठिठुरते हुए देखी जाती है,
बहुत दुर जलती हुई आग,

सुनो हमें अनहद की तरह,
और समझों जैसे समझी जाती है,
नई-नई सीखी भाषा।''[13]

कवयित्री बेरोजगार कविता में यथार्थ से परिचय करते हुए कहती है -

''ये मेरे बंधे हुए हाथ हैं अधीर,
ये कुछ करना चाहते हैं,
इनमें है अभी बहुत जांगर,
ये पहाड़ खोदकर बहा सकते हैं,
दूध की धार''[13]

स्त्री की मनोदशा तथा संवेदनाओं का ज्वार अनामिका की कविताओं में उफान पर रहता है। अपनी व्यथा को प्रतिरोध की ध्वनि से प्रकट करती यह मर्मस्पर्शी कविता:-

''मैं दरवाजा थी,
मुझे जितना पीटा गया,
मैं उतनी खुलती गई,
अन्दर आये आने वाले ने देखा,
चल रहा है एक वृहत्चक्र,
चक्की रूकती है, चरखा चलता है,
चरखा रूकता है तो, चलती हैं कैंची सुई''[14]

सदियों से नारी विषय को लेकर समाज में अनेक विसंगतिपूर्ण धारणाएँ विराजमान रही हैं तथा आज भी है। जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव स्त्रियों के जीवन पर दिखाई देता है। रूढ़िवादी,स्वार्थवादी, पुरूषसत्तावादी अनेक स्वंय सिद्ध लाभों के लिए बनाई गई धारणाओं को कवयित्री बदलना चाहती है, इस दोषपूर्ण धारणाओं के समक्ष विरोध, प्रकट करते हुए वे कहती है:-

''ओ पगली,
लड़कियाँ हरा, घूप, मिट्टी होती है,
उनका कोई घर नहीं होता,
उनकी होती है भला कौन सी जगह''[15]

अनामिका की कविता अनब्याही औरतें हैं, जिसमें एक कामकाजी नारी के समक्ष प्रतिदिन अनेक घटनाऐं या चुनौतियाँ बनी रहती है, इन सब के बीच स्त्रियाँ अपने कार्यो को मंजिल तक पहुँचाती है। इस कश्मकस को बहुत ही खूबसूरती से कवयित्री उजाकर करती है:-

''माई री मैं कासे कहूँ,
पीर अपने जिया की भई री,
जब भी सुनती हूँ मैं गीत आपका मीरा बाई,
सोच में पड़ जाती हूँ वे क्या था,
जो माँ से भी आपको कहते नहीं बनता था। ''[16]

अनामिका की स्त्रियाँ कविता पर विचार करें तो निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि समाज के विभिन्न क्षेत्रों में नारी के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता रहा है, अनगिनत असमानता के बीच नारी अपने आत्मसंबल को सशक्त बनाती हैं तथा अपने प्रति हो रहे व्यवहार पर प्रतिरोध व्यक्त करते हुए कहती हैं

''हे परम् पिताओं,
परम पुरूषों,
बख्शो, बख्शो, अब हमें बख्शों''[17]

ये पांतियाँ हताशा, प्रताड़ित, व्यथित व्यक्ति की अंतआत्मा की गुहार है। बस अब बहुत हुआ अब हमें बख्श दो। निरन्तर उपेक्षित, शोषित, संघर्ष करती महिलाओं के वजूद पर जब-जब प्रहार किया जाता है वह नारी हर बार अपनी उर्जा को एकजूट कर अपने को मजबूत बनाती है। अपनी पहचान बनाए रखने

का लाख जतन करती हैं। स्त्री की अनकही पीड़ा एक ऐसे समय की प्रतीक्षा कर रही है जब पुरूषसत्ता में उसे समतुल्य माना जाएगा। अनामिका सृजनधर्मी कवयित्री हैं। अपनी रचनाओं में 'समय के शहर', 'बीजाक्षर', 'अनुष्टुप कविता में औरत', 'खुरदरी हथेलियाँ', 'दूबधान' आदि में स्त्रियों की दबी आवाज को बुलंद किया है। जीवन से जुड़ी यथार्थवादी समस्याओं को बारीकी से उकेरा है। इन कविताओं में अनुभव, संवेदनाओं का मिश्रण झलकता है। स्त्री विमर्श को नया रूप देने में कवयित्री का महत्वपूर्ण स्थान है। अनामिका की कविता आमआदमी के मध्य की कविता है। सृजनधर्मी अनामिका का यह विशेष गुण है कि विषयों को अपने नजरिये से प्रस्तुत करती हैं, जीवन के सत्य, मौलिकता, संवेदना को महत्व देती है। कवयित्री की कविताओं में जरा भी बनावटीपन नजर नहीं आता है। आमजन की पीड़ा को उनकी ही भाषा-भाव, विचार के साथ प्रस्तुत करने की कला में अनामिका को महारत हासिल है।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. अनामिका, शीतल स्पर्श एक धूप को, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 1975
2. अनामिका, गलत पते की चिट्ठी ,नई दिल्ली: सारांश प्रकाशन, 1979
3. अनामिका, बीजाक्षर, नई दिल्ली: राधा प्रकाशन संस्थान, 1993
4. अनामिका, अनुष्टुप, नई दिल्ली: किताबघर प्रकाशन, 1998
5. अनामिका, अब भी बसंत को तुम्हारी जरूरत है, नई दिल्ली: साहित्य अकादमी, 2004
6. अनामिका, दूब-धान, नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, 2007
7. www.google.com
8. कविता-कोष
9. हिन्दवी

महात्मा गांधी एवम् भारत छोड़ो आन्दोलन

गुरलाल

शोधार्थी, इतिहास विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

शोध पत्र-सार

महात्मा गांधी जी ने भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में स्थानीय स्तर से काम शुरू करते हुए 1919 में रोलट एक्ट के विरोध के दौरान ही सत्याग्रह को प्रयोग करके भारतीय जनता का समर्थन हासिल किया। सुमित सरकार के अनुसार, "गांधी जी ने सत्याग्रह का मार्ग प्रस्तुत कर एकताकारी छतरी का निर्माण किया जिसके नीचे सभी भारतीय एकत्रित हो सकते थे।" गांधी जी से पहले राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व उदारपंथियों और उग्रपंथियों के हाथ में था जो आम लोगों की दशा को नहीं समझ पाए थे। गांधी जी ने आम लोगों की दशा को भली-भांति समझा। सुमित सरकार के अनुसार, "प्रबल धार्मिक स्वर लिए हुए गांधी जी जैसा नेता उस काल की ऐतिहासिक आवश्यकता था।" 1934 ई. के आसपास सविनय अवज्ञा आन्दोलन की समाप्ति के बाद कांग्रेस के अन्दर गंभीर मतभेद पैदा हो गए थे जैसे असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के बाद हुए थे। द्वितीय विश्व युद्ध में भारतीयों की सहमति के बिना भारत को युद्ध में शामिल करने के विरोध में कांगेस सहित 8 प्रांतीय मंत्रालयों ने त्याग पत्र दे दिए थे। मुस्लिम लीग ने कांग्रेस की इस प्रतिक्रिया को मुक्ति दिवस के रूप में मनाया। भारत छोड़ो आन्दोलन के आरम्भ होते ही गांधी जी व कांग्रेस कार्यकारिणी के नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया था जिसके परिणामस्वरूप इस आन्दोलन में हिंसा व अहिंसा का मिश्रण देखने को मिलता है ब्रिटिश सरकार ने इस आंदोलन को कठोरता से दबाया। माइकल ब्रचर के अनुसार, "सरकार का दमनकारी चक्र बहुत कठोर था और क्रांति दबाने के लिए पुलिस राज्यों की स्थापना हो रही थी।" चर्चिल ने हाऊस आफ कामन में कहा "सरकार ने खड़े हाथों से आन्दोलन को दबा दिया।" सरकार की दमनकारी नीति के विरोध में गांधी जी ने 21 दिन का उपवास रखा जिसके बाद गांधी जी की तबीयत बिगड़ने के कारण उनको रिहा कर दिया गया तथा 1945 में जर्मनी की हार के साथ ही कांग्रेस के अन्य नेताओं को रिहा कर दिया गया था इसके साथ ही यह आन्दोलन समाप्त हो गया था। लेकिन इसके बावजूद भी इस आन्दोलन ने सम्पूर्ण ब्रिटिश सरकार की जड़ें हिलाते हुए ब्रिटिश सरकार को भारतीय राष्ट्रवाद की शक्ति का परिचय दिया था।

शोध-पत्र

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में महात्मा गांधी का एक महान नेता के रूप में उदय अचानक नहीं हुआ था। वास्तविकता यह थी कि भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन 20वीं सदी के दूसरे दशक तक आते आते काफी व्यापक हो चुका था। राष्ट्रीय आन्दोलन उच्च एवं मध्यम वर्गों से होते हुए निम्न वर्गों तक भी कुछ हद तक अपनी पहुंच बना चुका था लेकिन उस समय राष्ट्रीय नेतृत्व नई परिस्थितियों के अनुसार स्वतंत्रता संघर्ष के नए मार्ग खोजने में विफल हो रहा था।[1]

इसी समय 1919 में रोलट एक्ट के विरोध के दौरान ही गांधी जी ने सत्याग्रह के रूप में ऐसा नया मार्ग प्रस्तुत किया जो भारतीय जनता में काफी लोकप्रिय हुआ। सुमित सरकार के शब्दों में, "गांधी जी ने सत्याग्रह का मार्ग प्रस्तुत कर एकताकारी छतरी का निर्माण किया जिसके नीचे सभी भारतीय एकत्रित हो सकते थे।[2]

इसके पहले के तीन दशकों में राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व उदारपंथियों और उग्रपंथियों के हाथ में था जो केवल प्रतिनिधित्व या स्वशासन जैसे राजनैतिक मुद्दों को ही उठाता आ रहा था। गांधी जी ने आम लोगों की दशा को पहली बार समझा जिसके परिणामस्वरूप उनको भारतीय जनता का समर्थन मिला वे स्वयं को सनातनी व्यक्ति कहते थे। सुमित सरकार के अनुसार, "प्रबल धार्मिक स्वर लिए हुए गांधी जैसा नेता सम्भवत: उस काल की ऐतिहासिक आवश्यकता था।"[3]

गांधी जी ने भारतीय राजनीति में प्रवेश ऊपर से नहीं किया हालांकि अपनी प्रसिद्धि के आधार पर वे ऐसा कर सकते थे। उन्होंने स्थानीय स्तर से काम करना शुरू किया। जैसे चंपारन, खेड़ा ओर अहमदाबाद को नेतृत्व दिया। 15 मार्च, 1918 को अहमदाबाद मिल मजदूरों की हड़ताल के समर्थन में गांधी जी ने स्वयं पहली बार अनशन शस्त्र का प्रयोग किया।[4]

भारत छोड़ो आन्दोलन

1920 से ही कांग्रेस ने सम्राज्यवाद तथा फांसीवाद के प्रति विरोध प्रकअ करना आरम्भ कर दिया था। 1934 के आसपास सविनय अवज्ञा आन्दोलन की समाप्ति के बाद कांग्रेस के अंदर ही गंभीर मतभेद पैदा हा गए थे जैसे असहयोग आंदोलन की वापसी के बाद पैदा हुए थे।[5] 1 सितम्बर, 1939 को द्वितीय

विश्व युद्ध शुरू हो चुका था। 3 सितम्बर, 1939 ई. को वाइसराय लार्ड लिनलिथगो ने भारतीयों से बिना पूछे ही ब्रिटेन की ओर से जर्मनी, इटली, जापान के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। 5 सितम्बर, 1939 को गांधी जी वाइसराय से मिले और ब्रिटेन के प्रति नैतिक समर्थन जाहिर किया और कहा "यद्यपि भारत ब्रिटेन के बीच भारतीय स्वतंत्रता के प्रश्न पर मतभेद है लेकिन भारत को इस खतरे की स्थिति में ब्रिटेन की सहायता करनी चाहिए।[6] 4 सितम्बर, 1939 को वर्धा में हुई बैठक में फारवर्ड ब्लाक ने कहा कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम आरम्भ हो जाना चाहिए यदि कांग्रेस इस बात को अस्वीकार कर देती है तो फारवर्ड ब्लाक अपनी इच्छा से देश हित के लिए कार्य आरमभ कर देगा। इसके पश्चात 4 सितम्बर, 1939 को कांग्रेस ने प्रस्ताव पास कर कहा कि भारत स्वतंत्रता के बाद ही ब्रिटिश को युद्ध में अधिक सहायता दे सकेगा। इसके उत्तर में वाइसराय ने श्वेत पत्र प्रकाशित कर कहा ब्रिटेन का महायुद्ध से तत्काल कोई भौतिक लाभ नहीं होने वाला है ब्रिटेन का उद्देश्य केवल एक नई अंर्तराष्ट्रीय व्यवस्था की स्थापना करना है ताकि भावी पीढ़ी को युद्ध से बचाया जा सके।[7]

इसके विरोध में 22 अक्टूबर, 1939 को निंदा प्रस्ताव पास किया गया जिसके बाद कांग्रेस शासित 8 प्रांतीय मंत्रालयों ने त्याग पत्र दे दिए। कांग्रेस की इस प्रतिक्रिया को मुस्लिम लीग ने 22 दिसम्बर, 1939 को मुक्ति दिवस के रूप में मनाया।[8] दूसरे विश्व युद्ध में जापान के बढ़ते हुए प्रभाव को देखते हुए गांधी जी ने हरिजन में लिखा ''अंग्रेजो भारत को जापान के लिए मत छोड़ो बल्कि भारत को भारतीयों के लिए छोड़ दो।''[9] मार्च, 1942 में भारतीयों से समझौता करने आए क्रिप्श मिशन का भारतीय मांगों के प्रति प्रतिकूल रवैया तथा उसकी असफलता से यह स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश सरकार द्वितीय विश्व युद्ध में भारत की अन्च्छिुक भागीदारी की उपेक्षा तो रखती है लेकिन किसी सम्मानजनक समझौते को तैयार नहीं है। इस पृष्ठभूमि को देखते हुए अब गांधी जी को लगने लगा था कि आंदोलन का सही वक्त आ गया है यद्यपि कांग्रेस इससे पूरी तरह से सहमत नहीं थी।[10]

गांधी जी ने कांग्रेस को अपने प्रस्ताव को स्वीकार न किए जाने की स्थिति में चुनौती देते हुए कहा मैं देश की बालू से ही कांग्रेस से भी बड़ा आंदोलन खड़ा का दूंगा।'' 14 जुलाई, 1942 ई. में कांग्रेस कार्य समिति की वर्धा बैठक में गांधी की बात को मानते हुए भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित किया गया।[11] 1 अगस्त, 1942 को इलाहाबाद में तिलक दिवस मनाया गया इस समय नेहरू ने कहा, "हम आग से खेलने जा रहे हैं जिसकी चोट उल्टी हमारे ऊपर भी पड़ सकती है।'' 7 अगस्त, 1942 को बम्बई कांग्रेस अधिवेशन जिसकी अध्यक्षता अबुल कलाम आजाद कर रहे थे इसी अधिवेशन में जवाहर लाल नेहरू ने भारत छोड़ो प्रस्ताव पेश किया जिसे थोड़े संशोधन के बाद 8 अगस्त, 1942 को स्वीकार कर लिया गया। इस सम्मेलन में गांधी जी ने 70 मिनट तक भाषण दिया और कहा मैं आपको एक मंत्र देता हूँ करो या मरो'। गांधी जी के इस भाषण के सम्बंध में पटाभि सीतारमैया ने लिखा है कि, "वास्तव में गांधी जी उस दिन अवतार एवं पैगम्बर की प्रेरक शक्ति से प्रेरित होकर भाषण दे रहे थे।'' इसी भाषण में गांधी जी ने कहा था, ''हम अपनी गुलामी स्थाई बनाया जाना नहीं देख सकते।''[12]

गांधी जी ने भारतीयों के लिए निम्नलिखित निर्देश दिए सरकारी कर्मचारी नौकरी न छोड़े लेकिन कांग्रेस के प्रति निष्ठा की घोषणा कर दे। रियासतों में रहने वाली जनता अपने आप को भारतीय राज्य का अंग घोषित कर दे। किसानों को कहा गया यदि जमींदार उनका साथ न दे तो वे कर का भुगतान ना करे।[13]

8 अगस्त, 1942 को अखित भारतीय कांग्रेस समिति के सम्मेलन में गांधी जी ने कहा, "मामूली संघर्ष का अर्थ आंदोलन की शुरूआत नहीं है आपने केवल अपनी शक्ति मेरे हाथ में दे दी है। मैं अब वाइसराय से भेंट करूंगा तथा उसके द्वारा कांग्रेस की मांग स्वीकार करने की प्रतीक्षा करूंगा।'' लेकिन गांधी की वाइसराय से मिलने से पहले ही 9 अगस्त की सुबह ही ओपरेशन जीरो आवर के तहत कांग्रेस के सभी महत्वपूर्ण नेता गिरफ्तार कर लिए गए। गांधी जी को आगा खां पैलेस में तथा कांग्रेस कार्यकारिणी के अन्य सदस्यों को अहमदनगर के दुर्ग में रखा गया। कांग्रेस को असंवैधानिक संस्था घोषित कर इसकी सम्पत्ति को सरकार ने जब्त कर लिया। इस आंदोलन में हिंसा और अहिंसा का मिश्रण देखने को मिलता है। सरकार ने इस आंदोलन का कठोरतापूर्ण दमन किया। जिसके परिणामस्वरूप इस आंदोलन में एक भूमिगत संगठनात्मक ढांचा तैयार हो गया जिसमें जय प्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया, अरूणा आसफ अली ने मुख्य भूमिका निभाई।[14]

जनता तक आंदोलन का संदेश पहुंचाने के लिए गुप्त रेडियो प्रसारण उषा मेहता द्वारा आरम्भ किया गया जो 12 नवम्बर, 1942 को पकड़ लिए गए उन्हें 4 साल की कैद की सजा दी गई। नवयुवक खुलकर क्रान्तिकारी गतिविधियों में भाग ले रहे थे। सरकार का दमनकारी रवैया जारी रहा। 1943 के अन्त तक 91,836 लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया जिनमें से अधिक संख्या में संयुक्त प्रान्त, बिहार व बम्बई के लोगों की रही।

अकेले बम्बई में 447 बम्बकांड हुए। 1060 लो सेना या पुलिस की गोली से मारे गए। पुलिस गांवों को जला रही थी सामूहिक जुर्माने लगाए गए। सुमित सरकार के अनुसार, "इस विद्रोह के दमन की तुलना 1857 के विद्रोह के दमनसे की जा सकती है। 15 अगस्त, 1942 को स्वयं वायसराय ने पटना में हिंसा कर रही भीड़ पर हवाई फायरिंग करने के आदेश दिए थे।[15]

माइकल ब्रचर के अनुसार, "सरकार का दमनकारी चक्र बहुत कठोर था और क्रांति दबाने के लिए पुलिस राज्यों की स्थापना हो रही थी।'' चर्चिल ने हाऊस ऑफ कामन में कहा, "सरकार ने खड़े हाथों से आंदोलन को दबा दिया।''[16]

गांधी जी का उपवास

इस आंदोलन में हिंसा के लिए सरकार ने गांधी जी जिम्मेवार ठहराया लेकिन गांधी जी इसका दोष सरकार को दिया। अतः गांधी जी ने पूना की जेल से वाइसराय को पत्र लिखा कि वे 21 दिन का उपवास करेंगे। 10 फरवरी, 1943 को 21 दिन का उपवास शुरू हुआ। जनता में उपवास की खबर फैलते

ही जनसभाओं के माध्यम से गांधी जी की रिहाई की मांग होने लगी। इसी दौरान वायसराय कार्यपरिषद के 3 सदस्यों एम.एस. एनी, एन. आर. सरकार और एच.पी. मोदी ने इसी सवाल पर इस्तीफा दे दिया इससे सरकार की प्रतिष्ठा में कमी आई। लेकिन ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल ने कहा, "जब दुनिया में हम हर कहीं जीत रहे हैं ऐसे वक्त में हम एक कमबख्त बुढे के सामने कैसे झुक सकते हैं जो हमेशा हमारा दुश्मन रहा है।"[17]

गांधी जी ने सफलतापूर्वक 7 मार्च, 1943 को अपना उपवास समाप्त किया। गांधी जी की बिगड़ती दशा को देखकर 6 मई, 1944 को रिहा कर दिया गया। भारत छोड़ो आंदोलन के समय ही बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश, बंगाल, महाराष्ट्र, कर्नाटक, उड़ीसा आदि में समानान्तर सरकारें स्थापित हो गई। श्रमिक वर्ग ने शुरू में इस आन्दोलन में काफी भाग लिया लेकिन बाद में यह वर्ग पीछे हट गया। सबसे अधिक भागीदारी किसानों की रही। मुस्लिम लीग ने इस आंदोलन में अपना योगदान नहीं दिया। 1945 में जर्मनी की हार के साथ ही कांग्रेस के अन्य नेताओं को रिहा कर दिया गया इसके साथ ही यह आंदोलन अंतिम रूप से समाप्त हो गया।[18]

असफलता के कारण

1. इस आंदोलन को चलाने हेतू कांग्रेस नेतृत्व कोई स्पष्ट योजना नहीं दे पाया। खुद गांधी जी ने का था उनकी गिरफ्तारी के बाद हर व्यक्ति अपना नेतृत्व खुद करेगा।
2. इस आंदोलन में बड़े स्तर पर हिंसा हुई जिसके चलते सरकार ने क्रूर दमनचक्र चलाया स्वयं गांधी जी ने करो या मरो का नारा दिया जिसका अर्थ आम लोग हिंसा या तोड़फोड़ करना ही समझते थे। इस प्रकार यह आंदोलन गांधीवादी अहिंसक मार्ग से शुरू से विचलित हो गया।
3. इस आंदोलन में कांग्रेस ने अन्य दलों व नेताओं का सहयोग नहीं लिया जिसके चलते कई समुदाय इस आंदोलन से अलग रहे।

प्रभाव

यह आंदोलन गांधी जी द्वारा चलाए गए आंदोलनों में सबसे ज्यादा उग्र था। सरकारी दमन के बावजूद भी यह व्यापक प्रभाव छोड़ने में सफल रहा।

1. इस आंदोलन ने औपनिवेशिक हुकूमत के राजनैतिक, प्रशासनिक, सामाजिक एवं आर्थिक सभी आधार खोखले कर दिए थे।
2. इस आंदोलन ने गांधीवादी बुर्जुआ आंदोलन और क्रांतिकारी- जनवादी आंदोलनों के बीच का अन्तर मिट गया।
3. इस आंदोलन का विश्व जनमत पर भी काफी प्रभाव पड़ा। इससे अमेरिका, यूरोप, सोवियत संघ आदि में भारत की स्वतंत्रता के लिए समर्थन उत्पन्न हुआ।
4. इसने देश में एक नए जनवादी नेतृत्व को जन्म दिया। राममनोहर लोहिया व जय प्रकाश नारायण जैसे समाजवादी नेता इस आंदोलन के नायक थे।

निष्कर्ष

उपरोक्त वर्ण के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत छोड़ो आंदोलन ने ब्रिटिश सरकार को भारतीय राष्ट्रवाद की शक्ति का परिचय दिया। इस आंदोलन के बाद ब्रिटिश सरकार को अहसास हो गया था कि अब भारत में उनका शासन अधिक दिनों तक नहीं चल सकता। संसार के अन्य देशों को भी स्वतंत्रता के इस प्रश्न ने अपनी ओर आकर्षित किया। अमेरिका तथा इंग्लैण्ड में भी भारतीयों की आशाओं के प्रति सहानुभूति प्रकट हो गई।

भारत छोड़ों आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के संघर्ष की अन्तिम कड़ी थी और इस समय जो जनमत तैयार हुआ उसकी अभिव्यक्ति आजाद हिंद फौज के कैदियों की रिहाई और विद्रोहों में भी मिलती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बिपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम-कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, 1990
2. रामलखन शुक्ल, आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, 1987
3. सुमित सरकार, आधुनिक भारत (1885-1947)
4. सत्या एम.राय, भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, 1983
5. ताराचन्द, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, खण्ड-3, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली, 1972
6. गोपाल कृष्ण, दि डेवल्पमेण्ट ऑफ दी इण्डियन नेशनल कांग्रेस राज ए मास आर्गेनाइजेशन (1918-1923), दी जनरल ऑफ एशियन स्टेडीज, खण्ड-25, 1966
7. बिपिन चन्द, नेशनलिज्म एण्ड क्लोनियलिज्म इन मार्डन इण्डिया, ओरियण्टल ब्लैक स्वान, प्रथम संस्करण, 1981

फुटनोट

1 सत्य एम.राय, भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, पृष्ठ 314

2 सुमित सरकार, आधुनिक भारत (1885-1947), पृष्ठ 412

3 उपरोक्त, पृष्ठ 412-413; सत्य एम.राय, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 266

4 बिपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृष्ठ 154-155
5 शेखर बंदोपाध्याय, प्लासी से विभाजन तक और उसके बाद, पृष्ठ 403
6 सत्य एम.राय, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 324
7 सत्य एम.राय, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 324
8 सुमित सरकार, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 410
9 उपरोक्त।
10 राम लखन शुक्ल, आधुनिक भारत का इतिहास, पृष्ठ 838
11 उपरोक्त, पृष्ठ 839
12 पटाभि सीतारमैया, हिस्ट्री ऑफ दी इण्डियन नेशनल कांग्रेस, भाग-3, पृष्ठ 212
13 राम लखन शुक्ल, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 329
14 ताराचन्द, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, भाग-4, पृष्ठ 495
15 सुमित सरकार, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 415
16 सत्या एम. राय, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 334
17 बिपिन चन्द्र, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 445-446
18 सत्या एम. राय, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 337-338

पुष्टिमार्ग तृतीय पीठ कांकरोली स्थित नटवर सदन के चित्रों का संक्षिप्त परिचय

डॉ० हितेश पालीवाल

व्याख्याता, SDIMS कॉलेज, कांकरोली (राजसमन्द)

भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का स्वर्णिम इतिहास रहा है, भारत वर्ष मे अनेको स्थानों पर प्रागेतिहासिक काल से हि मनुष्य द्वारा आनंद प्राप्ति हेतु अंकन करने के उदाहरण हमे प्राय: देखने को मिलता है।

भारत मे कलाओं के अन्त:सम्बन्ध को स्थापित करने की प्रेरणा में धर्म को भी माना गया है। धर्म के लोकोत्कर अनुभवों को प्रस्तुत करने हेतु ईश्वर की काल्पनिक घटनाओं की सृष्टि एवं स्वरूपो को विभिन्न माध्यम से व्यक्त किया जाता है।

कलाओं के विभिन्न प्रकारो से मनुष्य ने नृत्य, संगीत, नाटक, चित्रकला, आदि मे अपने आनन्द के लिये अभिनव प्रयोग किए है, अपनी बौधिक क्षमता एवं कल्पना शक्ति के माध्यम से प्रस्तुतीकरण किया है।

जहा महान दार्शनिकों ने कला की अलग परिभाषाए व्यक्त की है प्लाटिनस ने कला को केन्द्रिया कल्पना ना मानकर बौद्धिक कल्पना माना है।[1]

वहीं भारतीय रचनाओं मे ब्रम्हसुत्र मे कला को आन्तरिक भावों को कलात्मक रूप् से व्यक्त करना हि सार्थक माना है।[2]

भारतीय चित्रकला मे राजस्थानी चित्रकला का अपना एक विशिष्ठ महत्व है एवं राजस्थानी चित्रकला का इतिहास हम देखेंगे तो मेवाड़ चित्रशैली एवं मेवाड़ की चित्र परम्परा को हम नजर अंदाज नही कर सकते दक्षिणी राजस्थान का भु भाग मेवाड़ क्षेत्र के नाम से जाना जाता है जो भारत वर्ष मे अपना एक विशिष्ठ स्थान रखता है, मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विकास को उद्रीत करने वाले क्षेत्र के रूप मे भी यह भू भाग महत्वपुर्ण है, मेवाड़ का प्राचीन नाम मेदपाट मिलता है इस सन्दर्भ मे इतिहासकार पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा जी के अनुसार इस क्षेत्र पर पूर्व मे मेद अथवा मेर जाति के लोगों के रहने से इस क्षेत्र का नाम मेदपाट पड़ा जो धीरे-धीरे बाद मे जाकर मेवाड़ शब्द के रूप मे प्रयुक्त किया जाने लगा।[3]

वर्तमान मे मानचौत्रिक पहचान की दृष्टि से उदयपुर (उदयपुर व राजसमंद, भीलवाड़ा तथा चितौड़ चारो जिलों को मिलाकर बनने वाला भू भाग पूर्णकालीक मेवाड़ राज्य से सम्बन्धीत था।[4] मेवाड़ के गुहिल वंशीय शासक स्वयं को सुर्यवंशी मानते है एवं अपने कुल का सम्बन्ध भगवान राम के ज्येष्ठ पुत्र कुश से जोड़ते है।[5] मेवाड़ राजवंश जो गुहादित्य द्वारा स्थापीत होने के कारण गुहिल वंश के नाम से जाना जाता है।[6]

यही मेवाड़ का राजवंश अपनी प्राचीन परंपरा, अद्भुत, शौर्य और कलात्मक अवदानो के कारण भारत के परीदृश्य मे अग्रणीय स्थान रखता है यहा की सांस्कृतिक, सामाजीक परंपराऐं भारतीय संस्कृति का हृदय रही है मुगल शासक ओरंगजेब ने जब हिन्दू मन्दीरों व पाठशालाओं को तोड़ने का आदेश दिया तो उसकी अव्हेलना करते हुये मेवाड़ के तात्कालीक महाराणा राजसिंह ने अपनी वंश परंपरा का निर्वहन करते हुये प्रभु द्वारकाधीश की मुर्ति को कांकरोली(राजसमंद) मे प्रतिष्ठीत करवाई एवं उन्हीं के बाद श्रीनाथजी की मुर्ति भी सिंहाड़(नाथद्वारा) मे सम्मान एवं उत्साहपुर्वक पधराई(स्थापीत की)।[7]

नाथद्वारा एवं कांकरोली दोनों पुष्टीमार्ग संप्रदाय की पीठे है जो वैष्णवजन मे सम्मानित एवं आस्था का केन्द्र है, वल्लभ संप्रदाय की स्थापना श्रीमद् वल्लभाचार्य द्वारा की गयी एवं इनके वंशजो द्वारा सात ग्रहों की स्थापना एक-एक विग्रह(मुर्ति) देकर की गयी जो सात पीठो के रूप मे पारंपरीक रूप से सेव्य है इस संप्रदाय का मुलभाव राग-भोग-श्रृंगार है जिसके द्वाराही सांस्कृतिक रूपो का सामान्य जन जीवन एवं विभिन्न कलाओं के विकास पर भी प्रभाव पड़ता है। मेवाड़ चित्रशैली मे नाथद्वारा चित्रांकन परंपरा का अपना एक विशिष्ठ स्थान है साथ ही नाथद्वारा की सहयोगी शैली के रूप मे कांकरोली मे भी प्रचुर मात्रा मे चित्रांकन कार्य हुआ है परिष्ठ कला समीक्षक स्व. श्री राधाकृष्ण वशिष्ठ द्वारा अपनी पुस्तक आर्ट एण्ड आर्टीस्ट ऑफ राजस्थान मे राजस्थान की विभिन्न शैलियो का उल्लेख किया गया है इसी उल्लेख मे मेवाड़ शैली के अर्न्तगत नाथद्वारा शैली एवं उसकी सहयोगी शैली के रूप मे कांकरोली का उल्लेख मिलता है।[8]

पुष्टिमार्ग सम्प्रदाय की तृतीय ग्रह परम्परा की पीठ कांकरोली में समय समय पर कला को सवंर्धन एवं प्रोत्साहन मिला है। मंदिर परिसर में बनने वाले भित्ति चित्रों से प्रभावित होकर मन्दिर से जुडे सेवादारोंए परिवारों एवं श्रद्धालुओं ने भी अपने अपने निजि निवास स्थलों पर भित्ति चित्रों का निर्माण करवाया है। कांकरोली स्थित बागोरा भवनए विद्या विहार भवन की तरह काकंरोली मन्दिर मार्ग पर स्थित मन्दिर से जुडे श्री मदन जी सनाढ्य के भवन में एक कक्ष में चित्रों का सजीव संसार है। कांकरोली में सनाढ्य जाति के लोग मन्दिर एवं पुष्टिमार्ग सम्प्रदाय से जुडे हुए एवं सेवा में सेवादार माने जाते है।

कांकरोली मे मंदिर परिसर के साथ-साथ नगर के भवनों मे भी धार्मिक भीत्तिचित्रों का निर्माण हुआ है रूचिस्वरूप के अप्रकाशित शोध-ग्रंथ(मोहनलाल सुखाड़ीया विश्वविद्यालय, उदयपुर 1995) मे कांकरोली के बागोरा भवन के भीत्तिचित्रों का उल्लेख मिलता है।[9]

कांकरोली मंदिर मंडल के व्यवस्थापक सदस्य श्री विनीत सनाढ्य से साक्षात्कार के माध्यम से मुझे मंदिर की ढ़ाल मार्ग पर स्थित श्री मदनजी सनाढ्य के भवन नटवर भवन के भीत्तिचित्रों की जानकारी मिली। उन्होने मुझे बताया की उस भवन के एक कक्ष मे बहुतायत संख्या मे धार्मीक भीत्तिचित्र बने हुये है, जिज्ञासा वश मेने वहां जाकर उन चित्रों को देखा वास्तव मे वह एक सुन्दर चित्रों का भण्डार था जिनका संक्षिप्त मे परिचय इस लेख मे प्रस्तुत करने का प्रयास है।

श्रीमदन जी सनाढ़य का परिवार भी मन्दिर परम्परा एवं पुष्टिमार्ग सम्प्रदाय से जुडा हुआ है, आपके पिता श्री ने मन्दिर परिसर में बनने वाले भित्ति चित्रों से प्रेरित होकर लगभग 70 से 80 वर्ष पूर्व इन चित्रों का निर्माण अपने निज निवास के प्रथम तल स्थित बड़े कमरे में करवायाए चित्रों का मुख्य विषय धार्मिक ही रहा है एवं परिवार में सब इन्हे 'मगंला' कहकर पुकारते है। यह चित्र कांकरोली में चित्रकला के महत्व और सम्मान को दर्शाते है। कक्ष के चित्रों का क्रम निर्धारण तीन भागों में किया है।

(1) दिवारों के चित्र

(2) दिवार ओर छत के बीच बनी वॉकर के चित्र

(3) छत के चित्र

(4) दिवारों के चित्र

कक्ष में प्रवेश करते ही बांयी और की दिवार से चित्र श्रृंखला को प्रारम्भ करते है क्रमशः

माखन चोर गोपीयों सेः- दरवाजे से प्रवेश करते ही ऊपर की और एक चित्र है जिसमें सर पर मटकिया रखकर गोपियों को जंगल के रास्ते से होकर जाते हुए दर्शाया है कृष्ण जो राजसी मोर मुकुट को धारण किए हुए है एक गोपी की मटकी को छीन रहे है जिसमें से दही मक्खन कुल रहा है, साथ हि पास में ही एक ग्वाल को बनाया गया है जो हाथ से ईशारा कर रहा हैए इसी के पास कुछ गोपिया है उन में से एक गोपी एक ग्वाल को अपनी मटकी से मक्खन खिला रही है ग्वाल दोनो हाथ फैलाए बैठा हुआ हे जिसमें मक्खन उडेला जा रहा हैं।

मटकी फोड का दृश्यः- आगे के चित्र में चित्रकार ने एक कक्ष में कुछ मटकिया छत से बंधी हुई दर्शाई है और ग्वाल बालक उससे मक्खन लूट रहे है एक बालक एक कुर्सीनुमा मुड़े के सहारे जुका हुआ है जिसकी पीठ पर एक श्याम वर्ण के बालक जो (कृष्ण) प्रतीत हो रहे है खडे हैं और अपने हाथों से मटकी से मक्खन निकाल कर दूसरे ग्वालों को दे रहे है। इस चित्र में एक मोर ओर बन्दर को भी मक्खन खाते चित्रित किया गया है।

पक्षी पर आरुढ़ देवीः- एक चित्र के जिसमें एक विशाल पक्षी पर एक देवी को बैठे हुए चित्रित किया गया है देवी चार हाथो वाली हे जिनके हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, गद्दा और पुष्प है।

चित्रः दद कृष्ण-सुदामा मिलन एवं कृष्ण लीलाएँ, नटवर सदन

कृष्ण सुदामा मिलनः- आगे के दृश्य में कृष्ण सुदामा मिलन को चित्रित किया गया हैए राजमहल का प्रवेश द्वार चित्रित है जहॉ रानीया खडी हुई है पक्का फर्श हे एवं पास ही बगीचा है एक जल का फव्वारा बना हुआ है एक श्वेत धोती ओर दुसरे में सुदामा खडे है पास ही राजसी वेश में श्याम वर्ण के कृष्ण को खडे दिखाया है दोनो अपनी बाँहे फैलाकर आलिंगन की ओर बढ़ रहे है।

मुरलीवादक कृष्ण एवं राधाः- इस चित्र में राधा कृष्ण को वन में खडे हुए दर्शाया है पिछे कुछ गाये खड़ी है एवं कृष्ण बासुंरी वादन कर रहे है।

कमल पुष्प में देवीः- एक चित्र श्वेत कमल के पुष्प में एक देवी जो सम्भवतयारू तीन मुखों वाली है को चित्रित किया गया है, देवी चार हाथ वाली है जिनमे शस्त्र व पुष्प एवं माला धारण कर रखी है।

चारधामः- बांयी ओर की दिवार पर आधे भाग में चार भागों में क्रमशः चार धाम, बद्रीनारायण, जगदीशपुरी, रामेश्वरम ओर गोमती द्वारका को ओर आधे भाग पर प्रभु द्वारकाधीश, श्रीनाथजी, एवं राधा कृष्ण को चित्रित किया गया है।

(1) बद्रीनारायणः- इस चित्र में बर्फीले पहाड़, उनसे निकलती गंगा नदी, पहाड़ो पर पुल एवं नदी में श्रद्धालुओं को स्नान करतेए सिढ़ियों पर चढ़कर मन्दिर दर्शनों हेतु जाते चित्रित किया गया है। पहाड़ी पर शिव है जिनकी जटा से गंगा निकल रही है।

चित्रः बद्री नारायण, जगदीश पुरी धाम, नटवर सदन

(2) जगदीश पुरी धामः- इस चित्र में एक मन्दिर में तीन प्रतिभाएँ जो जगदीश पुरी में है वह चित्रित है मन्दिर के समीप ही एक विशाल रथ बना हुआ है जो जगदीश पुरी मन्दिर को प्रतीक रूप में प्रदर्शित करता है।

(3) सेवाबंद रामेश्वरः- इस चित्र में समुन्द्र को दर्शाया हे जिसके किनारे बडी बडी चट्टानों से सेतु बनाते हुए दर्शाया है, राम लक्ष्मण एवं हनुमान को भी इस चित्र में उकेरा गया है।

(4) गोमती द्वारकाः- इस चित्र में एक मन्दिर को दर्शाया है जो सिढिया चढ़कर ऊपर की ओर है सिढियों को दिखाया गया है पास ही ईंटों से निर्मित भवनए छतरियाँ आदि को बनाया गया है। मंदिर में श्रीनाथ जी की छवि अंकित कर चित्रण किया गया है।

श्रीनाथ जी एवं राधा कृष्णः- बांयी दिवार के नीचे वाले आधे भाग पर तीन बडे आकार के चित्र बने हुए है, जिनमें क्रमशः श्रीनाथ जी के दो स्वरूप विविध श्रृंगारों में और एक चित्र में व्रज की पहाड़ी कन्दरा गुफा पर राधाकृष्ण को प्रेममय आलिंगन मुद्रा में चित्रित किया गया है। इन तीनो चित्रों को पुनरू रंगों के द्वारा रंगा गया है जिससे इनके रंगों की चमक ज्यादा और चित्र नए लग रहे है। इसके आगे की दिवार जो प्रवेश द्वार के ठीक सामने वाली है उस पर बांयी ओर से क्रमशः चित्र इस प्रकार हैः- एक दृश्य है जिसमें कुछ मानव आकृतियाँ हाथ जोड़े खड़ी है प्राकृतिक दृश्य है एवं साधु संत एवं पक्षियों मोर आदि को दिखाया गया है चित्र का रंग उतर जाने के कारण चित्र अस्पष्ट है।

राधाकृष्ण मन्दिर स्वरूपः- चित्र में एक सफेद मन्दिर में राधाकृष्ण की मूर्ति को चित्रित किया गया है सिढियो के पास केले के पेड़ चित्रित है।

गोपिका नृत्यः- चित्र में बीच में कृष्ण को बांसुरी बजाते हुए चित्रित किया है, कृष्ण के चारो और गोपियों को नृत्य करते हुए चित्रित किया है।

कृष्ण निद्रा की मुद्रा मेंः- इस चित्र में नदी के किनारे शांत प्राकृतिक दृश्य के बीच एक छतरी बनी है जिस पर कृष्ण (श्याम वर्ण) लेटे हुए है पास ही एक फव्वारा है हंस एवं मोर व अन्य पक्षी घुम रहे है, गोपीया सेवा में खड़ी है एक गोपी कृष्ण को हवा कर रही है।

मदन जी सनाढ्य के पिताजी का आदमकद चित्रः- यह चित्र कलाकार की सिद्धहस्तता को दर्शाता है चित्रकार ने सनाढ्य जी को ब्रजवासी पारम्परिक वेशभूषा में चित्रित किया गया है चित्र के चेहरे को चित्रकार ने हुबहू बनाया है चित्र आकर्षक है।

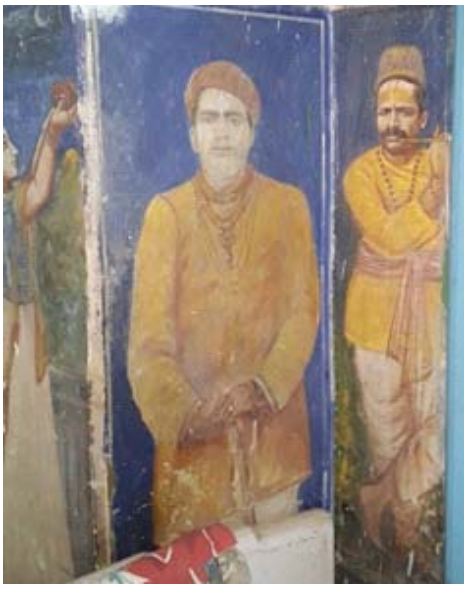

चित्रः व्यक्ति चित्र, नटवर सदन

श्री द्वारकाधीश विग्रह स्वरूपः- चित्र में तृतीय पीठ के आराध्य प्रभु द्वारकाधीश का विग्रह (मूर्ति) स्वरूप चित्रित किया गया है।

लालन की सेवाः- इस चित्र में श्वेत चोक पर श्वेत आसन पर कृष्ण के बाल स्वरूप लालन को चित्रित किया गया है पास ही पूजा की सामग्री और दो सेवादारो को बनाया गया है जो सेवा में छत्र लिए हवा कर रहे है।

गिरिराज धरण दृश्यः- इस चित्र में कृष्ण को अपने हाथ की अगुंली पर पर्वत को उठाएँए गांव वालों एवं जन समुदाय, पशु पक्षीए आदि को इन्द्र के प्रकोप वर्षा से बचते हुए खडे गिरिराज धारण की मुद्रा में चित्रित किया गया है।

विष्णु भगवानः- चित्र में भगवान विष्णु जिनके चारो हाथों में शंख, चक्र, पद्म, गदा चित्रित किया गया है पास ही हाथ जोड़े लक्ष्मी जी को खडा चित्रित किया गया है।

कृष्ण की प्रेम लीलाएँ:- इस चित्र में राजमहल का दृश्य है बीच में जल का फव्वारा है, राजमहल के तीन झरोखे बने हुए है पृथम दृश्य में राधा जी सोए हुए है और समीप खडे कृष्ण पंखों द्वारा हवा कर रहे है। द्वितीय दृश्य में कृष्ण एवं राधा को चौपर पासो का खेल खेल रहे है एवं तृतीय दृश्य में राधाजी बैठे हुए है सामने की ओर एक दासी कॉच लिए खडी है और कृष्ण राधा के पीछे बैठकर उनके बाल बना रहे है। चित्र भव्य और राधा कृष्ण के प्रेम को प्रकट करता है।

गुरूकुल में कृष्णः- इस चित्र में कृष्ण प्राकृतिक वन प्रदेश में कुरिया के समीप एक ऋषि और उनके सम्मुख कृष्ण को विद्यार्थी की तरह चित्रित किया गया है।

तृतीय ग्रह महाराज श्री बालकृष्णाजी का चित्रः- यहाँ तृतीय ग्रह के ग्यारवे पीठाधिकारी गोस्वामी बालकृष्ण जी महाराज का आदमकद चित्र बना हुआ है।

चित्रः व्यक्ति चित्र, नटवर सदन

महाराज श्री ब्रजभुषणलाल जी का चित्रः- एक चित्र महाराज तिलकायित ब्रजभुषण लाल जी महाराज का आदमकद आकार में बना हुआ है।

मदन जी सनाढ्य की भुआजी का चित्रः- एक चित्र मदन जी सनाढ्य के भुआ जी का बना हुआ है जो भी आदमकद है।

होली की अठखेलियाः- प्रवेश द्वार से सीधे दिवार की दांये कोने में एक चित्र बना जिसमें ग्वालो को होली खेलते दिखाया गया है एवं गोपीया उन पर रंगों की बोछार कर रही है।

वन में संगीत वादनः- यह चित्र पर से रंग की पपडी निकल जाने से स्पष्ट है पर कुछ कुछ दिखने से लग रहा है कि कृष्ण वन में पेड के नीचे बांसुरी वादन कर रहे है और ग्वाल भी कुछ वाद्य यन्त्र बना रहे है।

कच्छप अवतारः- इस चित्र में समुद्र के ऊपर कछुए को बनाया गया है जिसके मुँह पर से आधे भाग पर चार हाथों में संख, चक्र, गदा पुष्प धारण किए भगवान विष्णु के अवतार 'कच्छप अवतार' को दर्शाया गया है।

यमुना जीः- इस चित्र में प्राकृतिक दृश्य में एक महिला आकृति को चित्रित किया है जिनके हाथ में कमल के पुष्पों की लम्बी माला है, पुष्टिमार्ग में इस आकृति को यमुना जी कहकर श्रद्धा के भाव से व्यक्त किया है।

नृसिंह अवतारः- भगवान विष्णु के नृसिंह अवतार का चित्र बना हुआ है जिसमें मानव शरीर पर सिंह मुख है और गोद में एक बालक है जिसको वह सहला रहे है प्यार कर रहे है, उनके चरणों में एक मृत व्यक्ति है जो मरा पडा है।

विठ्ठलनाथ जी और उनके सात पुत्रः- इस चित्र में वल्लभ सम्प्रदाय के पुजनीय विठ्ठल नाथ जी बीच बैठे हुए है और उनके समीप उनके सात पुत्रों को जिन्हे बाद में सात विग्रह देकर सात ग्रहों की स्थापना की थी, उन्हे शिक्षा दे रहे है।

महारासः- चित्र का रंग फीका पड गया है चित्र में एक पुष्प वाटिका में कृष्ण को बहुत सारी गोपीयों के साथ नाचते हुए चित्रित किया गया है, सभी गोपीयों के साथ कृष्ण है जो रास नृत्य कर रहे है। वही चित्र में एक तरफ संगीत मण्डली भी चित्रित की गई है जो वाद्य यन्त्रों को बजा रहे है इस मण्डली में महिलाएं एवं पुरूष दोनो है।

चित्रः भित्ति चित्र, नटवर सदन

बामन अवतारः- चित्र में राजा बली को दान देने की स्थिति और पास मे एक सन्त महात्मा को आदेश देते हुए और एक बालक को दान लेने की स्थिति में चित्रित किया गया है।

वल्लभाचार्य जीः- चित्र में वल्लभसम्प्रदाय के आचार्य और संस्थापक श्री वल्लभाचार्य जी का चित्र अंकित है जो श्वेत वस्त्रों में खडे हुए माला जाप करते हुए दिखाया गया है।

कृष्ण गोपीया सरोवर स्नानः- चित्र में एक सरोवर का दृश्य है जिस पर कृष्ण, गोपीयों ग्वालों को नहाते हुए चित्रित किया है, सरोवर के बीच में एक फिसल पट्टी बनी हुई है जहाँ ग्वाल फिसल रहे है और सरोवर में प्रवेश कर रहे है।

बालकृष्ण और बलरामः- चित्र में सरोवर किनारे वाल्म रूप में कृष्ण और बलराम को खेलते हुए दिखाया है, पास हि उनकी माता बैठी हुई है, मोर और अन्य पक्षी को भी चित्रित किया है।

मतस्य अवतारः- इसमें विष्णु के मतस्य अवतार को चित्रित किया गया है जिसमें मछली को समुद्र में दिखाया है और मुँह के भाग पर चार हाथ वाले विष्णु को चित्रित किया है।

राधा कृष्ण को माला पहनाते हुएः- इस चित्र में प्राकृतिक वन क्षेत्र में राधा जी द्वारा कृष्ण को माला पहनाते हुए चित्रित किया गया है।

हंसवाहिनी दैवीः- एक चित्र है जिसमें हंस पर श्वेत वस्त्र धारण कर देवी को चित्रित किया गया है जिनके चार मुख है और चार हाथ है जिनमे क्रमशः तीर, पुस्तक, माला और कमण्डल है।

रथ का मार्ग रोकती गोपीयाः- एक चित्र हे जिसमें गोपीयों के द्वारा रथ के श्वेत घोडों के सामने खडे होकर उस रथ का मार्ग रोक रही है रथ के पास कृष्ण, बलराम और एक व्यक्ति और चित्रित है जो मथुरा की और जाना चा रहे है लेकिन गोपीया उन्हे जाने से रोक रही है चित्र से रंग की पपडी कुछ भागों से निकल गई है।

बाल्य कृष्ण और ग्वालः- चित्र में एक छतरी का दृश्य है जिसमें यशोदा दही मंथन कर रही है पास में कृष्ण बलराम और ग्वाल बाल स्वरूप में खेल रहे है।

नंदी आरूढ़ देवीः- इस चित्र में एक देवी को नन्दी पर सवार चित्रित किया गया है।

(2) द्वितीय प्रकार के चित्र जिनमें दिवारों एवं छत के बीच के किनारे पर उकेरे चित्र है:- इस प्रकार के चित्रों में कक्ष में प्रवेश करने के दायी ओर से बांयी ओर रामकथा एवं कृष्ण कथा महाभारत के प्रमुख दृश्यों को चित्रित किया गया है जिनके विषय निम्न है:-

1. रथ पर देवकी वासुदेव एवं आकाशवाणी।
2. कंस द्वारा देवकी वासुदेव को वंधी बना लेना।
3. कारागार में देवकी वासुदेव को विष्णु के दर्शन।
4. वासुदेव द्वारा बालक नवजात कृष्ण को यमुना पार कराते हुए।
5. राक्षसी पुतना का बालक कृष्ण द्वारा वध।
6. भगवान शिव का कृष्ण दर्शन हेतु गोकल में द्वार पर खडे रहना।
7. कृष्ण द्वारा वकासुर का वध।
8. कृष्ण बलराम का माता के साथ अठखेलिया।
9. कृष्ण द्वारा घोडानुमा राक्षस का वध।
10. कालिया नाग का मान मर्दन कर कृष्ण का नाग पर नृत्य।

11. कृष्ण की बाल लीलाए।
12. कृष्ण द्वारा वेल को काकु करना।
13. कृष्ण बलराम का मथुरा प्रवेश।
14. कृष्ण बलराम द्वारा हाथियों से युद्ध।
15. कंस का वध।
16. गणपति द्वारा महाभारत का लेखन।
17. द्रोपदी द्वारा दुर्योधन का अपमान।
18. कौरव पाण्डव चौसर का खेल खेलते हुए।
19. द्रोपदी का चीर हरण।
20. महाभारत युद्ध में कृष्ण द्वारा रथ का पहिया उठाना।
21. युद्ध की आज्ञा लेता अभिमन्यु।
22. अभिमन्यु का कौरवों द्वारा घेरकर वध।
23. वाणों की सैय्या पर लेटे भीष्म।
24. युधिष्ठिर का राज्यभिषेक।

कृष्ण लीला के चित्रों के बाद द्वितीय श्रृंखला प्रारम्भ होती है जो प्रवेश के ठीक सामने कि दिवार के बांयी ओर से रामकथा के चित्र प्रारम्भ होते है जो क्रमशः इस प्रकार है:-

- रामलक्ष्मण भरत शत्रुधन माताओं के साथ गोद में।
- चारो भाई नारद के साथ।
- गुरू विश्वामित्र के साथ वन में जाते राम लक्ष्मण।
- राम सीता का पुष्प वाटिका का दृश्य।
- राम द्वारा धनुष भंग एवं स्वम्बर सभा का दृश्य।
- राम बारात का हाथीयों, घोडो, वाजो का दृश्य।
- रामसीता विवाह चित्र।
- केवर द्वारा राम लक्ष्मण सीता को नदी पार करवाना।
- राम द्वारा स्वर्ण हिरण वध हेतु जाना एवं लक्ष्मण रेखा वाला दृश्य।
- रावण द्वारा ऋषि वेश में भिक्षा मांगने का दृश्य।
- सीताहरण का दृश्य।
- राम लक्ष्मण द्वारा शवरी के बेर खाने का चित्रण।
- हनुमान द्वारा अशोक वारिका में सीता को प्रणाम
- रामलक्ष्मण द्वारा रामेश्वरम् लिंग स्थापना का दृश्य।
- हनुमान के कन्धो पर राम लक्ष्मण।
- राम रावण युद्ध का चित्र।
- रामभरत मिलन एवं चरण पादुकाएँ
- राम राज्य अभिषेक का दृश्य।
- वन में लव कुश के साथ युद्ध।
- सीता का भूमि में प्रवेश।

(3) छत का चित्र

छत पर विष्णु लोक को उकेरा गया है जिसमें पुरी छत क्षीर सागर बनाया गया है जिसमें कमल पुष्प खिले हुए है। शेष नाग की शैया पर विष्णु मसन्द के सहारे बैठे है लक्ष्मी माता विष्णु के चरणों को दवा रही हैए सामने गयण हाथ जोडे बैठे हुए है। श्री विष्णु की नाभी से निकल कर खिले हुए कमल पुष्प पर ब्रह्मा बैठे हुए है जिनके हाथों में ग्रन्थ है। यह चित्र पुरी उल्टी छत पर भव्य बनाया गया है विष्णु, लक्ष्मी और गरूड के चेहरों की भाव भंगिमाएँ कलाकार के सिद्धहस्तता का भाव प्रकट करती है।

निष्कर्ष स्वरूप हम चित्रों का आंकलन करेंगे तो कुछ नवीन तत्व उभर कर आयेंगे। मदनजी की बुजुर्ग माताजी के बताऐं अनुसार यह चित्र लगभग 50 से 70 साल पुराने है एवं इनको चित्रित करने मे लगभग चार महिने का समय लगा, प्रभावित करने वाली बात यह है कि चित्रकारों द्वारा दिन भर अपने कार्य व्यवसाय करने के बाद रात्रि काल मे चिमनी के सहारे भी यहा चित्रण कार्य किया है। चित्र सभी वैष्णव एवं हिन्दू सनातन धर्म से सम्बन्धित है जिसमें रामायण, कृष्णलीला, चारधाम, विष्णु के विभिन्न अवतार, देवीय अवतार स्वरूप आदि आदि प्रकार के चित्र है। चित्रकार की धार्मिक विषयों के बारे मे जानकारी का भी ज्ञान हमें चित्रों को देखने से हो जाता है।

चित्रकारों की सिद्धहस्तता का उदाहरण हमें कमरे के विभिन्न पिल्लरों पर बने आदमकद चित्रों को देखकर मिलता है, पीले, नीले, भुरे, रंगो का प्रयोग करते हुये बहुत हि सुन्दर तरीके से इनके दुःखद चित्र बनाये गये है।

चित्रों मे पेस्टल रंगो का प्रयोग किया गया है, सुखे रंग मे गांद मिलाकर चित्रांकन किया गया है, चमकदार एवं चटकीले रंगो से चित्रो को आकर्षक बनाया गया हैं चित्र के संयोजन के सिद्धान्त का पुर्ण पालन चित्रकारों द्वारा किया गया ज्ञात होता है। मुख्य आकृतियों को दुसरी आकृतियों से प्रभावी बनाया गया है। चित्रों मे शिव, कृष्ण, राम को नीले रंगो द्वारा चित्रित किया गया है एवं अन्य आकृतियो को गौर रंग द्वारा बनाया गया है।

चित्रों के बीच रिक्त स्थानों पर विभिन्न अलंकरण भी हमें देखने को मिलते है जिनमे कमल पुष्प, पत्ते, वेल वुटे, स्वास्तिक, शंख आदि बनाये गये है। चित्रों मे पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय से प्रेरणा एवं प्रभाव को हम स्पष्ट रूप से देख सकते है।

मेवाड़ की चित्रशैली मे नाथद्वारा चित्रशैली की सहयोगी के रूप मे कांकरोली चित्रशैली की महत्वता एवं प्रभाव को भी यह चित्र प्रकट करते है यहां के अलावा नगर के अन्य स्थानों पर भी ऐसे प्राचीन चित्र बने हुये है जिनका भी अध्ययन आगामी समय मे यथासंभव किया जायेगा साथ हि कांकरोली क्षेत्र के चित्रकारों के सृजन के भावपक्ष एवं कलापक्ष का भी अध्ययन इस माध्यम से हो पाना सम्भव है।

सन्दर्भ

1. चतुर्वेदी ममता ''सौन्दर्य शास्त्र'' चतुर्थ संस्करण (2009) राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पृष्ठ-10
2. चतुर्वेदी ममता ''सौन्दर्य शास्त्र'' चतुर्थ संस्करण (2009) राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पृष्ठ-11
3. ओझा गौरीशंकर हिराचंद ''राजपुताने का इतिहास'' राजस्थानी ग्रन्थागार जोधपुर पृष्ठ-305
4. व्यास राजशेखर ''मेवाड़ की कला और स्थापत्य'' राजस्थान प्रकाशन जयपुर 1988 पृष्ठ- 4
5. राजपुताना गजेटियर्स भाग-2(ए) पृष्ठ-13
6. ओझा गौरीशंकर हिराचंद ''उदयपुर राज्य का इतिहास'' राजस्थानी ग्रन्थागार जोधपुर 1984 पृष्ठ- 65-66
7. कोठारी ''राष्ट्र निर्माण में मेवाड़ का योगदान उदयपुर 2006 डॉ. देव (सम्पादित) पृष्ठ-50
8. वशिष्ठ आर.के. ''आर्ट एण्ड आर्टिस्ट ऑफ राजस्थान'' अभिनव पब्लिकेशन न्यू दिल्ली 110016, (1995) पृष्ठ-50
9. स्वरूप कचि ''मेवाड़ में वल्लभ सम्प्रदाय सम्बंधित कृष्णलीला के चित्रों का सर्वेक्षण एवं समीक्षात्मक अध्ययन (अप्रकाशित शोध ग्रन्थ मोहनलाल सुखाड़ीया विश्वविद्यालय उदयपुर 1995)
10. सनाढ्य विनित ''साक्षात्कार के माध्यम से प्राप्त जानकारी''

प्रो० अभय मोर्य कृत 'त्रासदी' उपन्यास में चित्रित समाज

रीतू

शोध छात्रा, हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

डॉ० सुमन राठी

शोध निर्देशिका, सहायक प्रोफेसर, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

शोध सार

'समाज' शब्द अंग्रेजी के Society शब्द का हिंदी रूपांतरण है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के बिना मनुष्य का और मनुष्य के बिना समाज का कोई अस्तित्व नहीं होता। एक के अभाव में दूसरे की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कहने को तो हमारा देश दिन-प्रतिदिन तरक्की कर रहा है परंतु समाज के नियमों में बदलाव नगण्य ही है। सामाजिक नियम व्यक्ति के गले की फाँस बन जाते हैं। मुख्यत: भावी पीढ़ी इन नियमों से निभा नहीं पाती। ये नियम भावी पीढ़ी हेतु रूढ़ियाँ बन जाते हैं। समाज के प्रत्येक हिस्से पर इन रूढ़ियों और गलत विचारों से लोगों को जूझते हुए हम प्रतिदिन-प्रतिपल देख सकते हैं। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। सामाजिक नियमों के रूढ़ि बनने से पहले ही हमें इनमें सुधार करना आवश्यक है। प्राचीन समय से ही समाज में बहुत से गलत नियमों को समाज की ही आड़ लेकर पोषित किया जाता रहा है। महिलाओं की स्थिति प्राचीन समय से ही बहुत अच्छी नहीं रही है। स्त्री को पुरुष अपने पैर की जूती समझता आया है। एक स्त्री को विवाह पूर्व पिता व भाइयों की तथा विवाह पश्चात् पति और बेटों की मर्जी का पालन करना पड़ता है। समाज में एक साधारण सा व्यक्ति जो कि किसान है सदैव अपनी समस्याओं का बोझ लेकर जीवन काटता दिखाई देता है। एक तरफ जमींदार और दूसरी तरफ सरकार किसान की प्रगति व उन्नति के दुश्मन है। समाज में व्याप्त बुराइयों में अंधविश्वास भी एक मुख्य समस्या है। मुख्यत: अनपढ़ व ग्रामीण लोग इस समस्या से ग्रस्त है।

'त्रासदी' उपन्यास में लेखक ने समाज में चित्रित कई समस्याओं को उजागर किया है। उपन्यास में लेखक ने किसानों की दुर्गति, सरकार का भ्रष्टाचार, विधवाओं की स्थिति व अन्य ग्रामीण स्त्रियों की दशा आदि कई समस्याओं की तरफ पाठकों का ध्यान केंद्रित करने का भरसक प्रयास किया है। समाज में रहने वाले हम हैं, हम से ही समाज बनता है और इन गलत नियमों की पैरवी करने वाले भी हम ही हैं। हम ही गलत नियमों को समाप्त कर सकते हैं। सामाजिक सुधार हेतु सर्वप्रथम अपने वैचारिक परिवेश में सुधार लाना आवश्यक है। एकमात्र दिवस में यह बदलाव आना असंभव है। इसकी प्रक्रिया बहुत व्यापक है। इस प्रक्रिया को आरंभ करने में हमें स्वयं प्रयासरत होना पड़ेगा। यह परिवर्तन का प्रयास आज नहीं होगा तो फिर कब होगा ? लेखक ने इसी समस्या की ओर हमारा ध्यान केंद्रित किया है।

मुख्य शब्द: त्रासदी, उपन्यास।

समाज का शाब्दिक अर्थ

1. समाज: (1) एक स्थान पर रहने वाले लोगों का वर्ग या समुदाय, (2) समूह, समुदाय, (3) किसी विशेष उद्देश्य से स्थापित की गई संस्था या सभा, (4) किसी संप्रदाय के लोगों का समुदाय, (5) सभा, गोष्ठी, मंडली।[1]

2. समाज: समूह, सभा, समिति, दल, वृंद, समुदाय, संस्था, एक स्थान - निवासी तथा समान विचारधारा वाले लोगों का समूह, किसी विशेष उद्देश्य कार्य के लिए अनेक व्यक्तियों की बनाई या स्थापित की हुई सभा, जैसे - आर्य समाज।[2]

उपर्युक्त शाब्दिक अर्थों के आधार पर हम कह सकते हैं कि समाज एक से अधिक लोगों और समुदाय से मिलकर बने एक वृहद समूह को कहते हैं, जिसमें सभी व्यक्ति मानवीय क्रियाकलाप करते हैं।

सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री गिडिंग्स ने समाज को स्पष्ट करते हुए कहा, ''समाज स्वयं एक संघ है, संस्था है, संगठन है, औपचारिक संबंधों का योग है, जिसमें सहयोग देने वाले व्यक्ति एक-दूसरे के साथ जुड़े रहते हैं।[3]

समाज में विधवा की स्थिति

भारतीय समाज में विवाह का बहुत महत्व है। ग्रामीण परिवेश में बाल विवाह की प्रथा विशेषत: प्रचलित है। बच्चों का छोटी उम्र में रिश्ता आना बड़े गर्व की बात समझी जाती है। इस उम्र में बालकों का विवाह करके अभिभावक बालकों का जीवन मुसीबत में डाल देते हैं। विवाह के बाद लड़की के जीवन पर जैसे ससुराल वालों की पैठ जम जाती है पति की मृत्यु के बाद लड़की का ससुराल में जीवन दूभर हो जाता है।

'त्रासदी' उपन्यास में प्रो. अभय मौर्य ने विधवा की दारुण व्यथा का चित्रण किया है। उपन्यास में सुनहरी नामक पात्र एक ऐसी लड़की के रूप में उभरी जो बाल विवाह का शिकार हुई। बाल वधू से बाल विधवा तक का सफर सुनहरी ने कुछ ही समय में तय कर लिया। उसका गौणा होने से पहले ही उसके बाद पति की किसी कारण अकाल मृत्यु हो गई।

सुनहरी के पति की मृत्यु के बाद उसके ससुराल में उसके लिए कुछ नहीं बचा क्योंकि वह विधवा हो गई थी, उसका गौणा भी नहीं हुआ था, निसंतान थी। ससुराल के दरवाजे खुलने से पहले ही सुनहरी के लिए बंद भी हो गए थे। मायके में भी सुनहरी की कोई आवश्यकता नहीं थी। वहाँ वह भाई भाभियों की दया की मोहताज बनी रहती।

सुनहरी की स्थिति पर उसके पिता को दया आती है और वह अपनी जमीन का कुछ हिस्सा उसके नाम करवाना चाहता है लेकिन विधवा बेटी के नाम पर जमीन करवाने से उसके भाई उसकी जान के दुश्मन बन बैठेंगे यह भी वह भली-भांति जानती है। सुनहरी कहती है ''ना बाब्बू इसा जुल्म ना करणा। मेरे भाई मेरी जान के दुश्मन हो जैंगे; काट के मन्ने जमीन में गाड़ देंगे।''

ग्रामीण समाज में बेटी का अपना हक लेना पाप माना जाता है। एक विधवा के लिए तो जीवन जीना ही बहुत मुश्किल है तो इस प्रकार जमीन में हक लेना तो और भी पाप है। सुनहरी के विधवा होने पर उनके भाइयों व समाज ने कोई रहम नहीं किया बल्कि उस पर अनेकों जुल्म किए।

समाज में किसान की स्थिति

किसान ग्रामीण परिवेश में रहने वाले एक सीधा-सादा सा व्यक्ति है। दिन-रात कड़ी मेहनत से खेतों में अन उगाता है। संपूर्ण विश्व का अन्नदाता कहलाता है। संपूर्ण विश्व को अन्न उपलब्ध कराकर संपन्न करने वाला किसान स्वयं परेशानियों से जूझता रहता है। पारिवारिक स्थिति, सामाजिक नियमों, आर्थिक समस्या के कारण दुखी रहता है। वह कभी प्रशासन तंत्र के धोखे का शिकार होता है तो कभी साहूकार, सूदखोर सभी उसकी दशा को अत्यंत दयनीय बनाते हैं।

'त्रासदी' उपन्यास में लेखक ने पात्र रामफल के माध्यम से किसान की आर्थिक स्थिति, मन: स्थिति, शारीरिक हालत को बखूबी चित्रण किया है। रामफल ने अपनी बेटी की शादी के लिए ऋण लिया, जिसे वह उतार नहीं सका। एक दिन साहूकार उनकी अंतिम बची संपत्ति, बैलों को खोल कर ले जाता है और रामफल के साथ मारपीट करता है। रामफल को लगता है अब उसके पास कुछ नहीं बचा। उसका कितना अपमान होगा गाँव भर में, उसे अपनी आबरू की बहुत फिक्र हुई और मानसिक तनाव में आकर वह आत्महत्या करने को तैयार होता है ''आखिर उसने खेत में खड़ी कीकर के पेड़ की मजबूत टहनी पर पगड़ी बाँधी, वहीं पड़ी टूटी सी खटिया पर चढ़कर पगड़ी के एक सिरे को अपने गले में बाँधा और पाँव तले से खटिया को सरका दिया। रामफल पेड़ से झूल गया। यही एक रास्ता बचा था उसके सामने अपनी जिल्लत भरी जिंदगी से मुक्ति पाने का।''[5]

''क्यों है किसान इतना बदहाल ?[6] यह सवाल स्वयं लेखक का भी है और हम सब का भी। एक किसान दिन-रात खेतों में कड़ी मेहनत करता है तो भी उसकी हालत इतनी बुरी क्यों है ? वह क्यों आत्महत्या जैसा कदम उठाने पर मजबूर है। इतनी मेहनत के बाद भी उसे मिलता है तो सिर्फ साहूकारों का अत्याचार, शोषण जिसके कारण वह आत्महत्या करने पर मजबूर होता है।

समाज में व्याप्त लैंगिक असमानता

भारतीय समाज में बेटे को वंश चलाने वाला समझा जाता है। नारी संतान प्राप्ति की कामना करती है परंतु समाज में बेटे व बेटी के अंतर के कारण जब तक बेटा पैदा नहीं हो जाता जब तक संतानें पैदा करना बंद नहीं किया जाता। लड़के और लड़की के लालन-पालन में भेदभाव किया जाता है।

'त्रासदी' उपन्यास में लेखक ने पात्र रामफल के माध्यम से उसका चित्रण किया है। रामफल एक ऐसा किसान है जो पुत्र की इच्छा रखता है। इस इच्छा के चलते उनके यहाँ पाँच बेटियों ने जन्म लिया है।

एक अन्य पात्र समता के पिता है, पढ़े-लिखे व्यक्ति जोकि जज है। गाँव के लोग उन्हें एक बेटा पाने के लिए प्रेरित करते कहते हैं कि ''जज साब, एक बेट्टा तो होणा ई चाहिए, अपना वंश चलैण खैत्तर अर जीमन-जायदाद संभालण वास्तै बेट्टा होणा तो लैजमी सै''[7] ग्रामीण क्षेत्र के लोगों में अक्सर ऐसी प्रतिक्रिया देखने को मिलती है। बेटियों को पराया धन व बेटे को वंश चलाने वाला, कुल का दीपक माना जाता है। घर में एक बेटे का होना जरूरी समझा जाता है।

समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार

वर्तमान समय में प्रत्येक क्षेत्र में भ्रष्टाचार की समस्या बड़े व्यापक रूप से उभरी है। भ्रष्टाचार की मार जब गरीबों पर पड़ती है तो गरीबों की हालत अत्यंत दयनीय हो जाती है।

'त्रासदी' उपन्यास में बीरसिंह को भ्रष्टाचारी व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। बीरसिंह गाँव का सरपंच है, वह सरकार द्वारा गाँव के विकास कार्यों के लिए मिलने वाली ग्रांट के पैसों को पटवारी आदि के साथ मिलकर स्वयं के कार्य में लगा लेता है। ''जानबूझकर गलत-सलत गिरदावरी करवाकर जमीन

पर मालिकाना हक को विवादास्पद बनाकर झगड़े में फँसी दोनों पार्टियों से बेतहाशा पैसा ऐंठता रहता। लोगों के आपसी लड़ाई-झगड़ों का पंचायती फैसला करते समय भी चांदी ही चांदी होती थी बीरसिंह की।''[8]

प्रशासन तंत्र के भ्रष्टाचार के कारण रिश्वत के पैसों के कारण गरीबों की आर्थिक स्थिति और अधिक बिगड़ रही है।

निष्कर्ष

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज कई व्यक्तियों व परिवारों के समूह से बनता है। भारतीय समाज पुरुष प्रधान है, जिसमें स्त्रियों के हितों को दबाया जाता है। लैंगिक असमानता व्यापक रूप से विद्यमान है। बेटे को वंश चलाने वाला तथा बेटी को परिवार में बोझ समझा जाता है। प्रशासनिक भ्रष्टाचार गरीब व्यक्ति को उभरने नहीं देता। गरीब किसान को ऋण की समस्या हर पल सताती है; वह एक बार ऋण लेकर जीवन भर साहूकार के चंगुल से निकल नहीं पाता। अंततः परिणाम कुछ भी रहे व्यक्ति सामाजिक है। वह समाज से अलग होकर नहीं रह सकता।

'त्रासदी' उपन्यास में लेखक सुनहरी, रामफल, जज, बीरसिंह आदि पात्रों के माध्यम से समाज का वास्तविक दृश्य हमें दिखाते नजर आते हैं। सामाजिक नियमों में सुधार स्वंय से शुरू करके ही हम समाज को बदलने का प्रयास कर सकते हैं।

संदर्भः

1. राम प्रकाश सक्सेना, वर्धा हिंदी शब्दकोश, पृष्ठ संख्या 1139
2. डॉ. महेंद्र कुमार मिश्रा, हिंदी विश्वकोश (भाग 5), पृष्ठ संख्या 1877-1878
3. ई. एच. गिडिंग्स, प्रिंसिपल ऑफ सोसाइटी, पृष्ठ संख्या 256
4. प्रो. अभय मौर्य, 'त्रासदी' उपन्यास, पृष्ठ संख्या - 89
5. प्रो. अभय मौर्य, 'त्रासदी' उपन्यास, पृष्ठ संख्या - 78
6. प्रो. अभय मौर्य, 'त्रासदी' उपन्यास, पृष्ठ संख्या - 77
7. प्रो. अभय मौर्य, 'त्रासदी' उपन्यास, पृष्ठ संख्या - 128
8. प्रो. अभय मौर्य, 'त्रासदी' उपन्यास, पृष्ठ संख्या - 31

प्रागैतिहासिक गुफाओं में ज्यामितीय प्रतीक चित्रों के स्त्रोत

डॉ० कुसम गोयत

शोधार्थी, ललित कला विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक - 124001

भारत का कला इतिहास उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी यहाँ की सभ्यता। वैसे गुफा-चित्रां के लोक-चित्रण तथा संकेत चित्रण मे ज्यामितियता का प्रभाव देखने को मिलता है तो आदिमानव गुफाओं में चित्रण प्रागैतिहासिक युग से करता आ रहा है। बीते प्राचीन काल में ना तो कोई ऐसी पुस्तकों और ना ही लिखित दस्तावेज कला संबंधी उपलब्ध है। उस समय ना तो कोई कागज होता था और ना ही कोई लिखित जन भाषा होती थी। ऐसी परिस्थिति में आदिमानव क्या करते थे और कैसे रहते थे इसकी प्राचीन लिखित सामग्री नग्न है। यह तब तक बहुत कठिन हुआ जब तक कि विद्वानों ने इन प्राकृतिक गुफाओं को खोजना शुरू नहीं किया। प्रागैतिहासिक काल में आदिमानव इन गुफाओं में निवास करते थे, ऐसे स्थलों में पुराने औजार, हाथ पैरों के निशान, जानवरों के चिन्ह गुफाओं की दीवारों पर ज्यामितीय प्रतीक आदि के निशान मिले हैं।[1] आदिमानव द्वारा गुफाओं की दीवारों पर लाल, काले, हरे, गेरवा रंगों से खींची गई रेखाओं के द्वारा अनेकों प्राचीन ज्यामितीय प्रतिक चिन्ह प्राप्त हुए हैं। प्राचीन काल में जब आदिमानव की चेतना का विकास हुआ तो वे अपने विचारों तथा अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने का भी प्रयास मान्यतानुसार चित्रित करने लगे। इसके लिए उन्होंने गुफाओं की दीवारों को चित्रों का आधार बनाकर प्राकृतिक रंगों के साथ रेखाओं को खींचना शुरू कर दिया, जिसमें से कुछ आकार रेखाओं में ज्यामितीय रूप लिया और कुछ रेखाओं ने जानवरों, औजारों तथा मनुष्य का रूप ले लिया। भारत में भीम बेटका गुफा तथा चट्टान पर की गई कला में भी ज्यामितिय आकार नजर आते हैं।

प्रागैतिहासिक काल में आदिमानव ने गुफाओं में ज्यामितिक प्रतीक व आकार क्यों बनाने शुरू किए या यह कह सकते हैं कि टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं की गुफा की दीवारों पर क्यों रेखाकिंत शुरू किया ? यह एक लम्बी गहरी शोध का विषय रहता है। उस समय आदिमानव अपनी गुफाओं की दीवारों को रंगीन व सुंदर बनाने के लिए क्यों ज्यामितीय प्रतीक व ज्यामितीय आकृतियाँ बनाता था। हो सकता हैं कि उन्होंने अपनी रोजमर्रा के जीवन का दृश्य अभिलेख रखने के लिए ये ज्यामितीय चित्र दीवारों पर बनाए हों जैसे कि आजकल हम में से कुछ लोग डायरी लिखते और साथ ही डायरी में चित्र रेखांकन करते हैं। ग्रामीण जीवन में झांक कर देखे तो आज भी वैसे अभिलेख ग्रामीण महिलाएं अपने घरों की दीवारों पर ज्यामितीय चित्रण करती नजर आती है।

लोक कला का स्वरूप सीधा गुफा चित्रों से मेल खाता है इन चित्रों में प्राकृतिक आकार में सूरज, चान्द, पहाड़ के आकार की त्रिभुज आदि ज्यमितीयता में है। उत्तर पाषाण काल में मानव बहुत ही ज्यादा क्रियात्मक भावनाओं से जुड़ गया था। पूरी दुनिया में प्रागैतिहासिक काल की अनेक गुफाएँ पाई गई है। जिनकी दीवारों पर ज्यामितीय प्रतीक आकृतियाँ प्रभावित तरीके से चित्रित की हुई है। गुफाओं में रहने वाले आदिमानव उस समय शिकार किया करते थे और इनकी गतिविधियों के ही दृश्य चित्रित करते थे। वर्ग, वृत, आयत जैसी अनेक ज्यामितीय आकृतियाँ और प्रतीकों को रेखाओं के साथ चित्रित करते थे। भीम बेटका के ये ज्यामितीय आकार जरूर इनकी मान्यताओं को दर्शाते हैं।

यह जानना दिलचस्प होगा कि शैलचित्रों की खोज सर्वप्रथम 1867-68 में पुराविद् आर्किबोल्ड कालीइल ने की। ऑलतीमीश की खोज में एक 12 वर्ष की लड़की के अचानक गुफा की दीवारों पर नजर पड़ने से हुई थी। दरअसल यह लड़की अपने पिता के साथ इस जगह शिकार करने के लिए गयी हुई थी। काम्कबर्न, एंडरसन, मित्र और घोष पहले ऐसे अनुसंधानकर्ता थे, जिन्होंने भारतीय उपमहाद्वीप में ऐसे स्थलो की खोजे की थी।[2]

शैलचित्र वर्तमान में मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और बिहार के कई जिले में स्थित गुफाओं की दीवारों पर ज्यामितीय तरीके के पाए गए हैं। मध्यप्रदेश में भीमबेटका की खोज वर्ष 1957 और 1958 में डॉक्टर वी.ए. वाकणकर द्वारा की गई थी। वाकणकर ने इन गुफा चित्रों का वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए दुर्गम पहाड़ियों और जंगलों का सर्वेक्षण किया। यहाँ पर इनको अनेक प्रकार के चित्र-विषय देखने को मिले हैं। इन चित्रो में उस समय की रोजमर्रा की जिंदगी की घटनाएं, धार्मिक विषय, ज्यामितीय आकारो के कुछ संकेत मिलते हैं। इन चित्रों की कुछ रेखांकन प्रतिलिपियाँ इनके द्वारा तैयार करवायी गई है। नृत्य, शिकार, हाथी, घोड़े की सवारी, जानवरों की लड़ाई कुछ ज्यामितीय रेखाओं द्वारा दर्ज हुई। इनमें घरेलू गतिविधियों के चित्र भी शामिल है। उत्तरपाषाण काल, मध्यपाषाण काल, ताम्रपाषाण काल इन तीनों में से दो युगो में ही प्रागैतिहासिक चित्रों का विवेचन मिलता है।

उत्तरपाषाण युग

उत्तरपाषाण काल में चित्रों के लिए प्राकृतिक हरा और लाल रंगों का प्रयोग हुआ है। इन्हीं रंगों के द्वारा ही ज्यादातर चित्र रेखाओं का उकेरा गया है। इनमें से कुछ टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं से मानव आकृतियों को भी चित्रित किया गया है। अधिकांश चित्रों में भैंसा, हाथी, सांड, सूअर आदि के चित्र आकार बने हुए

हैं। कुछ चित्र वॉश तकनीक जैसे प्रतीत होते हैं और अधिकांश ज्यामितीय आकृतियों को साधरण व सुंदर ढंग से उकेरा गया है।[3] भीम बेटका गुफा चित्रो के युग में हरे रंगों का प्रयोग नृत्यकी के लिए और लाल रंग का प्रयोग शिकारी के रूप में दर्शाया गया है। हरे रंग को प्रकृति का तत्व रूप भी मान सकते हैं और लाल रंग को ऊर्जा शक्ति का रूप माना जा सकता हैं। इस युग में प्राचीन चिन्हों के अनेकों रूप में दर्शाया गया है। यहाँ के चित्र आकारों का यह दर्शन किसी भारतीय तन्त्र विद्या के नजदीक ला खड़ा कर देता है। यह भी हो सकता है कि आदि मानव के रहस्यमयी मान्यताओं की और इशारा करता हो। ज्यातितीय आकार, रेखाऐ लगाना साधारणता को भी दर्शाता हैं और गहरे ज्ञान को भी प्रकट करता हैं। आज के शोध ने यह तो स्पष्ट कर दिया है कि ज्यामितीय आकार एक अर्मूत दर्शन को प्रदर्शित करता है। यही विचार रहस्यमयी दुनिया को साधारण आकारों में प्रदर्शित भी करता है।

मध्यपाषाण काल

मध्यपाषाण युग में शिकार के दृश्य को समूह में दिखाकर कांटेदार, भाले, तीर कमान, नौकदार डंडे आदि के साथ मानव को शिकार करते हुए दिखाया गया है।[4] कुछ आकृतियों में आदिमानव को जाल-फंदे लेकर या गड्ढे आदि खोदकर जानवरों को पकड़ते हुए दिखाया गया है। शिकारियों को साधारण कपड़ों और मुखोटों में भी दिखाया गया है। मुखोटे के ऊपर ज्यामितीय आकृतियाँ बनाई हुई है। मध्यपाषाण काल के कलाकार जानवरों को चित्रित करना पसंद करते थे। चित्रों में जानवरों के प्रति प्यार और सौहार्द भाव आदि उस समय के चितेरों ने बखूबी दिखाया है तथा कुछ चित्र ऐसे भी चित्रित किए हुए हैं कि शिकारी और जानवरों का एक दूसरे के प्रति स्नेह प्रेम दिखाया गया है। जानवरों को प्राकृतिक अवस्था में भी इन कलाकार ने चित्रित किया। आदिमानव के रीति-रिवाज के साथ-साथ साज-सज्जा में भी चित्रित किया है। मध्यपाषाण काल में नृत्य संगीत को सामूहिक विषय चित्रों के रूप में दर्शाया गया है, जिसमें स्त्रियों को अनाज पीसते हुए और लोगों को पेड़ों पर चढ़कर फलो को तोड़ते हुए बनाया है। अनेक शैलचित्रों में हाथ और मुट्ठी के छाप को देखा गया है और कुछ दीवारों पर उंगलियों के ऊपर के निशान पाए गए हैं। इनको देखकर यह माना गया है कि आदिमानव ने प्राकृतिक रंगों में अपने हाथ को डुबोकर दीवारों पर निशान छोड़ दिए गए हो।

गुफा में रहने वाले आदि चितेरे अनेक प्राकृतिक रंगों का प्रयोग करते थे, जिसमें पीला, काला, लाल, बैंगनी, भूरा आदि रंगों का प्रयोग करते थे और कहीं-कहीं सफेद रंगों की रंगत शामिल थी। रंगों को विभिन्न चट्टानों और खनिजों को पीस-पीसकर ये कलाकार रंगों को हाथ द्वारा तैयार करते थे। जैसे कि लाल रंग जैसे गैरू रंग से बनाया जाता है। हरा रंग कैल्सेडोनी नामक पत्थर की हरी किस्म से तैयार किया जाता है। सफेद रंग को चुना पत्थर से बनाया जाता था। रंग बनाने के लिए कलाकार खनिज की चट्टानों को कूट पीसकर पाउडर जैसा बना लेता था फिर उसमें पानी या गाढ़ा चिपचिपा पदार्थ जैसे कि जानवरों की चर्बी, पेड़ों से निकला गोंद मिलाता था। इस प्रकार रंग तैयार होने पर कलाकार पेड़ों की पतली रेशेदार टहनियों को तोड़कर ब्रश बनाता था। इस तरह के इतिहासिक तथ्य इस और इशारा करते हैं कि उस समय मनुष्य कला की गतिविधियों को लेकर काफी सक्रिय थे साथ ही कला की जरूरत को जीवन का अहम् हिस्सा मानते हैं। काला, पीला तथा लाल रंग ज्यमितीय आकारों के दर्शन को भी बढ़ा देता है।

इस प्रकार से गुफाओं के चितेरे वृक्ष और प्राकृतिक रंगों की सहायता से चित्रों को चित्रित करते थे। आश्चर्य की तो बात यह है कि हजारों सालों पहले बने हुए ये चित्र हवा, पानी की मार को झेलने के बाद भी बरकरार हैं। यह समझा जाता है कि चट्टानों की सतह पर जो ऑक्साइड मौजूद हैं[5], उनके साथ रंगों की रासायनिक प्रतिक्रिया ने इनको स्थायी बना दिया है। हालांकि यह चित्र बहुत प्राचीन हैं पर इनके गुणात्मक व चित्रात्मक गुण आधुनिक से लगते है। कलाकारों ने रोजमर्रा की जिंदगी को रंगों के साथ अपने विषय के चित्रों को चित्रित किया है, उस समय को के आदि पुरुष बड़े ही साहसी थे जो जीवन और कला को अपने जीवन का आनंद बनाये हुये थे। पशुओं को तो इन्हांने वास्तिविकता से भी अधिक तगड़ा और रोबदार दिखाया गया है। तो वही शिकारियों को हल्का दिखाया गया है। यह भी प्रतीत होता है कि आदिकालीन चित्रकार कहानी कहने और सुनने में भी रुचि लेते थे। इन गुफा चित्रों को चित्रित करने वाले कलाकार शायद अलग-अलग ढंग से चित्रों को चित्रित करना पसंद करते है। जब किसी कलाकार को अपना चित्र वास्तविक व यर्थात पसंद नहीं आया तो वह ज्यामितिय आकारों में बदलकर चित्रित करना पसंद करता था। क्योंकि ज्यामितिय आकार सरल स्वभाव के होते थे। कलाकार दूसरी वजह से इसलिए चित्रों को चित्रित करता है कि वह स्थान इनके लिए पवित्र व विशिष्ट होता था।

प्रागैतिहासिक चित्रों में तत्कालीन मनुष्य, उनकी जीवन शैली, उनका खानपान, उनकी आदतें, उनका दैनिक जीवन, मन, मस्तिष्क तथा चिंतन को जानने समझने में सहायता मिलती है।[6] प्रागैतिहासिक काल में औजार, पत्थरों के हथियार, मानव आकृतियाँ, ज्यामितिय प्रतीक आदि मानव के विकास के महान साक्ष्य हैं। उन सबसे अधिक महत्वपूर्ण तो यह शैलचित्र हैं, जो आदिकालीन मानव हमारे लिए एक अमूल्य धरोहर के रूप में छोड़ गए और शोध के कारणों में शामिल हुये।

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि गुफा चित्र किसी गहरे दर्शन और रहस्यमयी गतिविधियों का नतीजा है। विश्व की अनेक गुफा चित्रों में ज्यामितीय आकारों का दर्शन ब्रह्माण्ड में मौजूद कुछ आकारों का सार नजर आता सूरज हमेशा ही पृथ्वी से गोल नजर आता है। पहाड़ हमेशा त्रिभुजी दिखाई पड़ता है। पेड़ों की टहनियाँ लयदार रेखाएं नजर आती है, चांद का आकार धीरे-धीरे बदलता है। आदि पुरुष का तीर और धनुष भी ज्यमितीय रूप है। इसलिए ये सब आकार गुफा चित्रों में दिखाई पड़ते है तो भले ही एक अविकसित समाज में बने हो लेकिन आधुनिकता का आधार बनकर सामने आये हैं। इन सब गतिविधियों ने कला का पहिया चलाया और समाज विकास की ओर बढ़ा। साथ ही मानव जीवन को रूचिकर तथा साधारण बनाती रही है। कला की गतिविधियों ने एक सभ्य संस्कृति को जन्म दिया है। आधुनिकता की तरह कला कला के लिए नही थी ब्लकि उस समय यह कला इनके जीवन की श्वास प्रकिया थी।

संदर्भ

1. मुखर्जी कुमोद राधा (प्रोफेसर), प्राचीन भारत, पहला हिंदी संस्करण 1960, चौथा संशोधित संस्करण 1990, सातवीं आवर्ती 2009, प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, 110002
2. वाजपेई कृष्णदत्त, भारतीय वास्तुकला का इतिहास, पृ. संख्या 20
3. प्रताप रीटा डॉक्टर भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, प्रकाशक राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, प्लॉट नंबर 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर-302004
4. ब्राउन, पर्सी-इण्डियन पेंटिंग्स, 1953
5. वाकणकर, बी.एस., भारतीय प्रागैतिहासिक चित्रकला धर्मयुग, 14 जून 1959 ई.
6. गुप्त जगदीश, प्रागैतिहासिक चित्रकला, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1967 ई.
7. प्रागैतिहासिक शैल चित्र, ए.सी.ई.आर.टी. प्रकाशक सहयोग, अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग-एम. सिराज अनवर, मुख्य संपादक - श्वेता उप्पल।
8. अग्रवाल, कला रश्मि, मूर्ति राम शिव, सी., भारतीय चित्रकला, प्रथम संस्करण-2008, निर्देशक राष्ट्रीय पुस्तक व्यास, भारत नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशन एरिया, फंज-2, वसंत कुंज, नई दिल्ली - 110070 द्वारा प्रकाशित www.nationindia.gov.in
9. चंद्रकेश, डॉ. जगदीश, वैदिक कालीन रूपकर कलाएं (चित्र मूर्ति एवं वास्तु) सत्वाधिकार, प्रथम संस्करण, अक्टूबर 2003

भारतीय समाज में दलित महिलाओं की स्थिति

मनोज कुमार गौतम

असि० प्रोफेसर-समाजशास्त्र, राजकीय महिला पी.जी.कालेज, अदलहाट, मीरजापुर

भारतीय समाज में यदि कुछ अपवादों को छोड़ दें तो अधिकतर कालों में लैंगिक-भेद, जातिगत-भेद, असमानता एवं श्रम विभाजन विद्यमान रहा है। महिलाओं की स्थिति परिवार और समाज में निम्न रही है। महिलाओं को निजी सम्पत्ति एवं वस्तु के रूप में उपभोग करने की प्रवृत्ति रही है। इनके ऊपर अनेक कुप्रथाएँ लादी गयी हैं, इनका शोषण एवं उत्पीड़न हुआ है, इनके कार्यक्षेत्र को घर की चारदिवारी में सीमित कर इनके व्यक्तित्व के विकास को अवरूद्ध कर विकास के अवसरों से वंचित किया गया है। स्त्रियों को इस स्थिति में पहुँचाने के लिए धर्म ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है और प्रचारतन्त्र का कार्य किया है। हालांकि ऐसी मान्यता रही है कि आरम्भ में समाज मातृसत्तात्मक था और धीरे-धीरे व्यक्तिगत सम्पत्ति और स्वामित्व के पैदा होने के साथ स्त्री की षक्ति में ह्रास हुआ और वह गुलाम बनती चली गयी। मासिक धर्म, गर्भाधान एवं प्रसव ये सारी जैविकीय घटनाएँ उसकी काम करने की क्षमता का ह्रास करने वाली साबित हुई। ऐसे में उसे पूरी तरह पुरूष पर ही निर्भर रहना पड़ता था, वह असमर्थ थी खतरों का सामना करने में। उसे भोजन और सुरक्षा दोनों की आवश्यकता थी। चूंकि उन दिनों गर्भ निरोध का कोई साधन नहीं था और न ही प्रकृति ने अन्य जीवों की भाँति उसे समय-समय बंध्या या अप्रजननशील बनाया, अत: निरंतर संतानोपत्ति से उसकी शक्ति का ह्रास जरूर हुआ होगा। (खेतान प्रभा 2008:50)

इस प्रकार अधिकतर समय तक गर्भवती रहने, बच्चों को स्तनपान और देखभाल एवं मासिक धर्म के कारण वह पूरी तौर पर सुरक्षा एवं भोजन के लिए पुरूशों पर निर्भर हो गयी, जो उसको समाज व परिवार में निम्न स्थिति के लिए उत्तरदायी हुआ।

उच्च जातियों की तुलना में शूद्रों की स्त्रियों को अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी। ब्राह्मणिक ढाँचे के भीतर सामाजिक स्तर-भेद के कारण स्त्रियों की स्थिति में अन्तर था। बौधायन धर्म सूत्र से ज्ञात होता है कि, उसके आर्थिक कारण थे। बौधायन ऋशि कहते हैं कि, कृषि आदि सेवा कर्म में सन्नद्ध होने के कारण वैश्य एवं शूद्र स्त्रियों को वश में रखना सम्भव नहीं है। (सिंह श्रद्धा 2014:40)। निम्न जातियों की स्त्रियॉ घर और बाहर दोनों जगहों पर कार्य करती है इसलिए उनके अपने पति पर निर्भरता कम होगी। इसके विपरीत उत्पादन कार्यो से उच्च वर्गो का अलगाव उनकी स्त्रियों के पतियों पर आश्रित होने का कारण था।

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति परिवार और समाज में निम्न रही है, इनमें भी दलित महिलाओं की स्थिति और भी दयनीय रही है। मानवाधिकारों के उल्लंघन की समस्या सभी समाजों में पायी जाती रही है, भारतीय समाज में भी यह प्राचीन समय से होता आया है, जिसमें दलित, पिछड़े एवं महिलाओं को अधिकारों से वंचित किया जाता रहा है। यदि हम दलित वर्ग को स्त्री एवं पुरूष में बॉट कर देखें तो पता चलेगा कि दलित महिलाएँ सामाजिक संस्तरण में सबसे निचले पायदान पर हैं। दलित महिलाएँ पितृसत्तात्मक व्यवस्था एवं पुरूषवादी मानसिकता की शिकार तो हैं ही, साथ ही ये जाति-व्यवस्था में निचले पायदान पर होने के कारण उच्च जातियों से शोषण एवं भेद-भाव की भी शिकार हैं। ''दलित महिलाओं की त्रासदी यह है कि उन्हें एक गाल पर ब्राह्मणवाद का तो दूसरे गाल पर पितृसत्ता का थप्पड़ खाना पड़ता है। (नैमिशराय, मोहनदास 2002:230)

विजिया भारती ने अपने लेख 'हिन्दू एपिक्स: पोर्टेन्यल ऑफ दलित वोमेन' में कहा है कि सवर्ण और अवर्ण स्त्री के दमन, शोषण की प्रकृति भिन्न है। दलित होने की वजह से सवर्ण स्त्री भी उसके लिए वैमनस्य रखती है। सवर्ण स्त्री शिक्षा तथा अन्य सामाजिक क्षेत्रों में दलित स्त्री से आगे रही है। स्त्री मुक्ति आंदोलनों में अभी तक सवर्ण स्त्री का वर्चस्व रहा है। सवर्ण स्त्रियों ने दलित स्त्रियों को अपने साथ आंदोलनों में ले जाने की कोशिश नहीं की। (जोशी, गोपा 2006:135)

दलित महिलाएँ दोहरे शोषण की शिकार हैं। पहला जातिवाद और दूसरा लिंग-भेद इसी परिप्रेक्ष्य में यह शोध-पत्र भारतीय समाज में दलित महिलाओं की वास्तविक स्थिति को दर्शाते हुए इसमें बनी रहने वाली निरंतरता एवं बदलावों की समीक्षा करेगा।

प्राचीन समय से ही दलित महिलाएँ कई प्रकार के शोषण, उत्पीड़न एवं असमानता की शिकार रहीं हैं। भारतीय समाज में इनके मानव अधिकारों का हनन होता रहा है, लैंगिक-भेद एवं जातीय संस्तरण में निचले पायदान पर होने के कारण जातीय-भेद की शिकार हैं। दलित महिलाओं को हिन्दू सामाजिक व्यवस्था तथा पितृ-सत्तात्मक व्यवस्था में केवल उतना ही महत्व दिया गया, जिससे उनकी सेवाओं का उपभोग उच्च जातियों के लोग एवं पितृ-सत्तात्मक व्यवस्था में किया जा सके। बहुत से विद्वान और समाज सुधारक स्त्री और दलित स्त्री को समान मानकर उनकी समस्याओं को देखते और समझते हैं, जो उचित प्रतीत नहीं होता है। स्त्री और दलित स्त्री को एक ही सॉचें में रखकर उनकी समस्याओं के समाधान के लिए प्रयास करना इनकी वास्तविक समस्याओं की अवहेलना करना है। भारतीय समाज में उच्च जाति की स्त्रियॉ केवल पितृसत्ता के शोषण और असमानता की शिकार हैं, जबकि दलित स्त्री को दोहरे शोषण, असमानता और अन्याय का शिकार होना पड़ता है। एक तो पितृसत्ता के द्वारा लैंगिक-भेद और दूसरा उच्च जातियों के द्वारा जातिवाद अन्याय और असमानता, कुछ विद्वानों का मत है कि इनके साथ जाति और लिंग के आधार पर केवल पुरूषों द्वारा ही भेद-भाव नहीं होता बल्कि अपने वर्ग महिला की उच्च जातियों की महिलाओं के द्वारा भी भेद-भाव किया जाता है। इस प्रकार ये तिहरे वर्ग, जाति एवं लिंग के आधार पर शोषण की शिकार है। दलित स्त्री अपनी जाति, लिंग और वर्ग

की वजह से सर्वाधिक दमित और शोषित रही है। इस दमन की प्रकृति को ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक संदर्भ में देखना होगा।

वैदिक काल की समाप्ति के बाद से स्त्रियों को धार्मिक कर्मकाण्ड से बाहर रखने एवं वस्तु के रूप में रखने के नियम बनने लगे, कंठ संहिता में भी स्त्री और शूद्र को धार्मिक कर्मकाण्ड तथा शिक्षा से बाहर रखने के सबूत मिलते हैं। लेकिन बाद के साहित्य में अक्सर स्त्री और शूद्र को एक साथ इस प्रकार से सामाजिक कार्यो से बाहर रखा गया है। वैदिक काल में दासियों के सबूत मिले हैं, जिनको घरेलू कार्यो में लगाया जाता था। आर0एस0 शर्मा का कहना है कि ऊँची जातियों ने अपने सामाजिक, आर्थिक तथा अन्य प्राधिकार बनाये रखने के लिए ही शुद्ध और अशुद्ध की मान्यता को एक हथियार की तरह इस्तेमाल किया। विवाह संबंध, विवाह की स्थिरता और विवाह-विच्छेद वर्णो के आधार पर ऑकी गयी। 'मनुस्मृति' ने ब्राह्मणवाद के वर्चस्व को सुदृढ़ करने के लिए लिंग आधारित दमन, शोषण के अलावा जाति आधारित दमन, शोषण का संस्थानिकरण किया। मनुस्मृति ने चातुर्वर्ण व्यवस्था को भी कठोर बना दिया। जब स्त्रियों के लिए वेदों का अध्ययन पाप करने के समान बना दिया गया, तो दलित स्त्रियों की बात ही क्या करना। डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर का मानना है कि, मनुस्मृति में अनुलोम विवाह पद्धति को जारी तो रखा गया है, परन्तु शिशु की सामाजिक और आर्थिक स्थिति का निर्णय करने वाले नियमों को पितृ-सवर्ण के स्थान पर मातृ-सवर्ण बना दिया गया, जिससे शिशु की स्थिति माता की स्थिति के आधार पर निर्धारित की जाने लगी। इससे ऊँचे वर्ग के पुरूष निम्न वर्ग से उत्पन्न अपने बच्चों की जिम्मेदारी से मुक्त हो गये। इस प्रकार अनुलोम विवाह को उच्च वर्गो को निम्न वर्ण की स्त्रियों के साथ कानूनी रूप से वेश्याकर्म करने का एक साधन बना दिया गया। (जोशी, गोपा 2006:113)

स्त्रियों के साथ यौन-सम्बन्धों एवं विवाह में भी जाति के आधार पर भेद-भाव किया गया। एन. प्रभावती अपने लेख में उन धार्मिक कर्मकाण्डों का जिक्र करती हैं जो दलित स्त्री के शोषण को बढ़ावा देते हैं। इसमें देवदासी प्रथा ने पूरे देष का ध्यान अपनी ओर खींचा और इसको समाप्त करने के प्रावधान बने। इस प्रकार सामाजिक क्षेत्र में दलित स्त्रियों को असमानता एवं शोषण का शिकार होना पड़ता था जो वर्तमान समय में भी देखने को मिलता है।

आर्थिक क्षेत्र में अधिकांश दलित महिलाओं के पास उत्पादन के साधन नहीं हैं। वे गरीबी रेखा से नीचे रहती हैं। उत्पादन के क्षेत्र में बढ़ते हुए तकनीकिकरण के कारण इनके लिए रोजगार के अवसर घटते जा रहे हैं। अधिकांश दलित महिलाओं को असंगठित क्षेत्र में होने के कारण मजदूरी में भेद-भाव का सामना करना पड़ता है, उन्हें कम मजदूरी मिलती है। आर्थिक मंदी के समय तो और भी परेशानी का सामना करना पड़ता है। दोयम सामाजिक दर्जे तथा सामाजिक और आर्थिक असमानता के कारण दलित स्त्रियों को जातिवादी हिंसा एवं भेद-भाव का शिकार भी होना पड़ता है। आर्थिक क्षेत्र में अधिकतर दलित स्त्रियों के पास उत्पादन के साधन नही हैं, वे गरीबी रेखा से नीचे हैं तथा पितृ सत्तात्मक व्यवस्था के चलते लैंगिक भेद का शिकार होती हैं।

एम0 प्रभावती कहती हैं कि, देश की राजनीति में स्त्रियों की भागीदारी उनकी जनसंख्या के अनुपात में बहुत कम है। दलित स्त्रियों की भागीदारी और भी कम है। राजनीतिक दल भी राजनीति में स्त्रियों की भागीदारी बढ़ाने में कोई सक्रिय भूमिका नहीं निभाते। दलों के आंतरिक संगठनों में भी स्त्रियों को जगह नहीं दी जाती। (प्रभावती एम.:भारत में स्त्री असमानता, गोपा जोशी 2006:134) जो थोड़ी ऊँची जाति की स्त्रियॉ राजनीति में सक्रिय हैं वे भी दलित स्त्रियों की विशेष समस्याओं एवं उनके प्रतिनिधित्व के प्रश्न को नहीं उठातीं। इस प्रकार नीति-निर्धारण के क्षेत्र में भी दलित स्त्रियॉ कमोवेश अदृष्य ही रहती हैं। जहाँ तक दलित महिलाओं की राजनीति में सहभागिता का सवाल है तो इनकी राजनीति में भागीदारी बहुत ही कम है, इन वर्गो की महिलाओं को ग्राम पंचायतों एवं नगर निकायो में आरक्षण के बावजूद भी इनकी निर्णय निर्माण में भागीदारी बहुत कम है। वे केवल पुरूषों का मोहरा साबित हो रही है। संसद में भी महिला आरक्षण का मुद्दा अभी तक विचाराधीन है। तमाम प्रयासों के बाद भी यह अभी तक पारित नहीं हो सका है। 33 प्रतिशत महिला आरक्षण का मुद्दा हमेशा से विवादों में रहा है। प्रत्येक सरकार कहती है कि हम तो महिला आरक्षण का बिल पास कराना चाहते है, परन्तु कुछ राजनीतिक दल नहीं चाहते हैं कि, यह पास हो। इन राजनैतिक दलों का तर्क है कि जब तक महिला विधेयक में अनुसूचित जाति, जनजाति व अन्य पिछड़ा वर्ग की महिलाओं को उचित संवैधानिक व्यवस्था नहीं की जायेगी तब तक यह विधेयक अपूर्ण और असंगत ही रहेगा। परन्तु कुछ दलों का मूल उद्देश्य यह है कि महिला विधेयक में 33 प्रतिशत आरक्षण मोटे तौर पर मान्य किया जाये न कि उनमें भी वंचित वर्गो की महिलाओं के अधिकार को सुनिश्चित किया जाए, जिस कारण यह विधेयक हर बार पारित होने से रोका जाता है। (तिवारी विपिन कुमार 2016:34)

एस.सी., एस.टी. और ओ.बी.सी. वर्ग की महिलाओं को इसमें आरक्षण का समर्थन करने वालों दलों का तर्क है कि, उच्च जातियों के पुरूषों की भॉति ही उच्च जातियों की महिलाएँ भी महिला आरक्षण का लाभ ले सकती हैं। इसलिए वंचित और कमजोर वर्गो की महिलाओं के लिए आरक्षण को सुनिश्चित किया जाए। अन्यथा महिला आरक्षण अप्रसांगिक ही रहेगा और दलित महिलाओं के अधिकारों और उनको मुख्य धारा में लाने की बात बेईमानी साबित ही होगी। संसद में महिलाओं की संख्या कम है तो दलित महिलाओं को संसद में सांसद के तौर पर संख्या का सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है।

अविनाश दोलास ने भी अपने लेख 'दलित वीमेन एण्ड द वीमेन मूवमेण्ट इन इण्डिया' में दलित महिला के मुद्दों को महिला आंदोलनों द्वारा न उठाये जाने को दोहराया है। दलित महिलाओं ने दलित आंदोलनों में सक्रिय सहभाग किया लेकिन महिला आंदोलनों में उदासीनता दिखाई, इस उदासीनता में जाति और वर्ग मुख्य कारण था। आंदोलनों के मुद्दे केवल घरेलू हिंसा, यौन शोषण, दहेज और यौन समानता रहे, महिला आंदोलन ने दलित स्त्रियों के साथ भेद-भाव को मुद्दा नहीं बनाया। एम. प्रभावती बताती हैं कि, राष्ट्रीय महिला आयोग के पास भी दलित स्त्री के उत्थान की कोई योजना नहीं है।

दलित महिलाएँ औरत के रूप में पुरूष वर्चस्व तथा निचली जाति का होने के कारण जातिवाद की प्रताड़ना सहते हुए न तो सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत कर पाती हैं और न ही अपने व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास कर पाती हैं। दलित महिलाओं को गुलामी की अदृश्य जंजीरें सर्वदा से ही पुरूष वर्ग, पूंजी और धर्म के हाथों में रही है, दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि, जाति व्यवस्था पर आधारित समाज व पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में ताकत के जितने रूप व संस्थान हैं सब या तो दलित महिलाओं का शोषण करते हैं या उनका इस्तेमाल (राजकिशोर 2002:111)

शिक्षा के क्षेत्र में दलित महिलाओं की भागीदारी कम एवं काम में भागीदारी अधिक दिखलाई पड़ती है, साथ ही दलित स्त्रियों के साथ छेड़-छाड़, भेद-भाव, बलात्कार, अश्लील भद्दे कमेंट्स एवं अपराध अधिक होते हैं। सामान्यत: उच्च जातियों के लोगों द्वारा अपनी जातिय श्रेष्ठता, दलित स्त्रियों की कमजोर स्थिति एवं व्यवस्था में कम भागीदारी या व्यवस्था उच्च जातियों के हाथों में होने के कारण इनके साथ अपराध किये जाते हैं।

देश के विभिन्न राज्यों में दलित महिलाओं के साथ आये दिन अत्याचार, अन्याय, भेद-भाव, छेड़खानी एवं बलात्कार की घटनाएं अखबारों की सुर्खियॉं बनती हैं। एन.सी.आर.बी. के आँकड़े भी दलित महिलाओं के साथ भेद-भाव एवं बलात्कार की घटनाओं की पुष्टि करते है और अभी हाल ही में जारी एन. सी.आर.बी. के आँकड़े से इनके साथ अपराध बढ़ने की बात भी स्पष्ट होती है। ये स्थिति तब है जब दलित महिलाओं के साथ होने वाले अधिकांश मामले प्रकाश में भी नहीं आ पाते एवं इनकी रिपोर्ट दर्ज नहीं हो पाती है। अभी हाल ही में उ0प्र0 के अनेक जनपदों में दलित महिलाओं के साथ बलात्कार, भेद-भाव एवं अत्याचार की धटनाएं घटित हुई हैं। हाथरस जिले के एक गॉव में 14 सितम्बर 2020 को एक 19 वर्षीय दलित लड़की के साथ गैंगरेप की घटना दरअसल 'बेटी-बचाओं' के नारे के साथ पूरे सिस्टम का ही घृणित बलात्कार है, जिसमें प्रशासन द्वारा रेप की एफ.आई.आर. दर्ज न करना, समुचित इलाज की व्यवस्था न करना और फिर मृत्यु के बाद रात के 2 बजे अंधेरे में पीड़िता को जबरदस्ती जलवा देना और पुलिस अधिकारी द्वारा बयान देना कि पीड़िता के साथ बलात्कार हुआ ही नहीं है। पूरे सिस्टम एवं कानून पर प्रश्नचिन्ह् खड़ा करता है। (अमर उजाला 2020) उ0प्र0 की पूर्व मुख्यमंत्री सुश्री मायावती पर दयाशंकर सिंह द्वारा की गई अश्लील टिप्पणी भी दलित महिलाओं के प्रति सोच को दर्शाती है। इसके अलावा महोबा जनपद में अभी हाल ही में ग्राम प्रधान बनी एक दलित महिला को ग्राम पंचायत भवन में जिले के वरिष्ठ अधिकारियों के साथ वीडियों कान्फ्रेंसिंग मीटिंग के दौरान कुर्सी से उतरने को कहते हुए जातिसूचक टिप्पणियाँ की गई (अमर उजाला 2021)।

समाचार पत्रों में आये दिन दलित महिलाओं के साथ उत्पीड़न, भेद-भाव और बलात्कार एवं एन.सी.आर.बी. के आँकड़ों के आधार पर स्पष्ट होता है कि बलात्कार, भेद-भाव एवं अत्याचार की घटनाएं अधिकांश दलित महिलाओं के साथ ही होती है, यह एक सोचनीय प्रश्न है? और यह स्पष्ट भी करता है कि दलित महिलाओं की स्थिति अन्य वर्ग की महिलाओं की अपेक्षा ज्यादा खराब है। निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि, दलित महिला अपनी कमजोर आर्थिक स्थिति, पुरूषवादी एवं जातिवादी मानसिकता के कारण आज भी भेद-भाव और शोषण की शिकार है। बिना पक्षपात कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन, इनकी व्यवस्था में समुचित भागीदारी एवं आर्थिक स्थिति में सुधार कर तथा पुरूषवादी और जातिवादी मानसिकता को छोड़ने से इनकी स्थिति में सुधार सम्भव हो सकता है।

सन्दर्भ

- खेतान प्रभा (2008), स्त्री उपेक्षिता, सिमोन द बोउवार, हिन्दी पॉकेट बुक्स प्रा0लि0, नई दिल्ली, पृष्ठ 50।
- नैमिशराय मोहनदास (2002), दोनों गालों पर थप्पड़, अभय कुमार दूबे द्वारा सम्पादित, आधुनिकता के आईने में दलित, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 230।
- जोशी गोपा (2006), भारत में स्त्री असमानता एक विमर्श, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 135।
- जोशी गोपा (2006), भारत में स्त्री असमानता एक विमर्श, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 113।
- प्रभावती एम. (2006), भारत में स्त्री असमानता एक विमर्श: गोपा जोशी, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 134।
- तिवारी विपिन (2016), सामाजिक न्याय की अवधारणा और महिला विधेयक, योजना, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृष्ठ 34।
- राजकिशोर (2002), स्त्री के लिए जगह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 111।
- सिंह श्रद्धा (2014), आधी आबादी संदर्भ एवं प्रसंग, कला मंदिर नई सड़क, नई दिल्ली, पृष्ठ 40।
- अमर उजाला, 01 अक्टूर 2020
- अमर उजाला, 09 जून 2021
- एन.सी.आर.बी. रिपोर्ट, 2020

विनय मिश्र की गजलों में सामाजिक चेतना का स्वरूप

अशोक कुमार यादव

शोधार्थी, पीएच.डी. (हिन्दी विभाग), राज ऋर्षि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

डॉ० बुद्धमति यादव

शोध निर्देशक, सह-आचार्य (हिन्दी विभाग), गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

गजल हिन्दी कविता की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। गजल के शेर जीवन के विविध प्रसंगों में उसी तरह उद्धृत किये जाते रहे हैं। जिस तरह हम तुलसी, कबीर, सूर, रहीम आदि कवियों के रचे दोहों को करते रहे हैं। अमीर खुसरो को हिन्दी का पहला कवि और पहला गजलकार भी माना जाता है। हालांकि इस बात पर बहुत सारे विद्वानों का मतभेद है। लेकिन इतना तो कहा ही जा सकता है कि हिन्दी गजल का सूत्रपात आदिकाल में हो गया था। हाँ उसे विशिष्ट पहचान मिली आधुनिक युग में एवं विशेषत: दुष्यन्त कुमार के समय। इस विधा को हिन्दी कविता में प्रतिष्ठित करने का श्रेय दुष्यन्त कुमार को ही जाता है। उनकी गजलों में आमजन की पीड़ा और व्यवस्था परिवर्तन का स्वर विद्यमान है क्योंकि गजल को रूमानियत और महफिलों से बाहर लाने तथा उसे जन सामान्य की कविता बनाने में दुष्यन्त कुमार की बड़ी भूमिका रही है।

कविता का कार्य कलात्मक रूप से सौन्दर्य का वर्णन करना मात्र नहीं है। कविता जन मानस की पीड़ा की वह अभिव्यक्ति है जो अपने हवाले से आमजन की व्यथा कहती है। आधुनिक काल में कविता इस परिधि से बाहर निकली और समकालीन कवियों ने अपने समय के यथार्थ को व्यंजित किया। गजल कविता की एक ऐसी विधा है जो जन सामान्य में अधिक प्रचलित है तथा इसमें अपने समय को बेहतर रूप से बयां करने की सामर्थ्य है। दुष्यन्त कुमार के बाद समकालीन गजलकारों ने समाज की पीड़ा को उठाया है। अपने समय और भाषा के मुहावरों को गजल में समाहित किया है। विनय मिश्र ऐसे ही गजलकार के रूप में जाने जाते हैं। समकालीन गजल के प्रतिनिधि गजलकार के रूप में विनय मिश्र की पहचान बन चुकी है।

उनकी गजलें हिन्दी कविता को एक नया मुहावरा, नया संस्कार, नई दिषा और नई चेतना से जोड़ती हैं। पिछले पैंतीस वर्षों से वे निरन्तर हिन्दी कविता के विभिन्न काव्य रूपों में सृजनरत हैं। देष भर की सभी महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में उनकी गजलों पर लिखे शोध आलेख प्रकाषित हुए हैं। अब तक उनके तीन गजल संग्रह (1) 'सच और है' (2) 'तेरा होना तलाशूँ' (3) 'लोग जिंदा हैं' प्रकाशित और चर्चित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त उनका एक दोहा संग्रह 'इस पानी में आग', एक कविता संग्रह 'सूरज तो अपने हिसाब से निकलेगा' तथा एक गीत संग्रह 'समय की आँख नम हैं' भी पूर्व में प्रकाशित हैं। 'बनारस की हिन्दी गजल' का भी चयन एवं संपादन विनय मिश्र ने किया है, इसके अलावा 'गजलकार जहीर कुरेशी: महत्त्व और मूल्यांकन' समीक्षा पुस्तक तथा 'शब्द कारखाना' पत्रिका के समकालीन गजल विशेषांक, 'अलाव' पत्रिका का दुष्यंतोत्तर आलोचना केन्द्रित विषेषांक एवं 'संवदिया' पत्रिका के युवा लेखन पर केन्द्रित विशेषांक (2021) का भी विनय मिश्र ने संपादन किया है।

'गजल गरिमा' पत्रिका ने उन पर केन्द्रित एक विशेष अंक भी निकाला है। हाल ही में आई एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'समकालीन हिन्दी गजलकार' में एक लेखक हरेराम नेमा 'समीप' ने विनय मिश्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर एक पूरा अध्याय ही केन्द्रित किया है। इसके अतिरिक्त 'डॉ. लवलेष दत्त द्वारा सम्पादित पुस्तक 'समकालीन गजल और विनय मिश्र' में देश भर के समीक्षकों और गजलकारों ने विनय मिश्र के रचना संसार पर केन्द्रित अपने लेख लिखे हैं। डॉ. मधु खराटे ने भी अपनी पुस्तक 'हिन्दी गजल का परिदृश्य' में विनय मिश्र के एक लेख 'समकालीन हिन्दी गजल और उसकी जनपक्षधरता' को स्थान दिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि विनय मिश्र ने स्वयं भी और उनके रचना संसार को लेकर अन्य शोधार्थियों और समीक्षकों ने भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

प्रख्यात आलोचक डॉ. जीवन सिंह ने उनकी गजलों में निहित सामाजिक और राजनीतिक चेतना पर लम्बा आलेख लिखा है और समकालीन दस प्रतिनिधि गजलकारों की सम्पादित पुस्तक 'दसखत' में ''विनय मिश्र को दुष्यन्त कुमार और अदम गोण्ड़वी की परम्परा को विकसित करने वाला गजलकार कहा है''[1]

डॉ. जीवन सिंह द्वारा सम्पादित पुस्तक 'आलोचना की यात्रा में हिन्दी गजल' में प्रसिद्ध जनधर्मी समीक्षक पंकज गौतम ने विनय मिश्र को ''गहरे मानवीय मूल्यों और सरोकारों से जुड़ा हुआ कवि बताया है''[2] वास्तव में अगर देखें तो विनय मिश्र की गजलों में गहन सामाजिक संवेदना, अलगाव, अर्न्तमन में व्याप्त पीड़ा को व्यक्त करने का भाव है। इनकी गजलों में सामाजिक चेतना के स्वर भरपूर हैं।

सामान्य मनुष्य के जीवन से जुड़ीं अनेक सामाजिक समस्याओं को विनय मिश्र ने अपनी गजलों में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। आज मनुष्य, रोटी, कपड़ा, मकान आदि की समस्याओं से बहुत परेशान है उसका जीवन गरीबी, शोषण, दु:ख, अभावों के साथ बद से बदतर होता जा रहा है। भ्रष्टाचार, मंहगाई, कालाबाजारी और धोखाधड़ी ने समाज में गहरी जड़ें जमा रखी हैं। इसी कारण आम जनजीवन खतरे में है समाज में आपसी भाईचारा पतन की स्थिति में है। यही गहन संवेदना ही जनधर्मी कवि एवं गजलकार की उत्कृष्ट पहचान है। 'तेरा होना तलाशूँ' संग्रह में एक जगह विनय मिश्र कहते हैं -

''हाशिये पर हम तो जिन्दा है यहाँ लेकिन
किस तरह इस जिन्दगी को जिन्दगी मानें''[3]

ख्याति लब्ध जनधर्मी कवि एवं आलोचक नचिकेता ने समकालीन हिन्दी गजल के आठ प्रतिनिधि गजलकारों की सम्पादित पुस्तक 'अष्टछाप' में विनय मिश्र को शामिल कर यह प्रमाणित कर दिया है कि ''विनय मिश्र समकालीन हिन्दी गजल के महत्त्वपूर्ण जनधर्मी गजलकार हैं।''[4]

वास्तव में अगर देखा जाए तो जनधर्मी कवि एवं गजलकार वही होता है जो आमजन की समस्याओं, समाज की कुरूतियों, नारी उत्पीड़न, बेरोजगारी, भुखमरी एवं शोषण के विरूद्ध अपनी आवाज उठाए और जनमानस को अपनी उत्कृष्ट रचनाओं के माध्यम से लड़ने के लिए तैयार करे। विनय मिश्र भी ऐसे ही कवि हैं, वे कहते हैं -

''भूख की बेचौनियों को गुनगुनाता हूँ
मैं तुम्हें सच का सही चेहरा दिखाता हूँ
हाशिये पर क्यों ठहर जाती हैं उम्मीदें
ये सुलगते प्रश्न हैं जिनको उठाता हूँ''[5]

समाज के सुलगते प्रश्नों को उठाने की विलक्षण क्षमता ही कवि को आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त करती है और इसी विलक्षण क्षमता के धनी विनय मिश्र हैं। उनके अन्दर बहुआयामी प्रतिभा है। समाज के हरेक पहलू पर वे सूक्ष्मता से पैनी नजर रखते हैं तथा आमजन से जुड़ी हरेक समस्याओं का अपनी गजलों के माध्यम से खुलकर विरोध करते हैं।

गजल समीक्षक श्रीधर मिश्र ने भी स्वीकार किया है कि ''विनय मिश्र की गजलों में मध्यमवर्गीय गृहस्थ, सर्वहारा वर्ग सहित समूची मानवता के लिए तड़प की हद तक की आत्मीयता है। जिसे वे क्षतिग्रस्त नहीं होने देना चाहते, इन गजलों में कठिन समय में जूझ रहे सरल आदमी की जिम्मेदारियों, विवशताओं व संघर्षो का बिम्ब बार-बार उभरता है।''[6]

विनय मिश्र अपने समय और समाज के युवा वर्ग की भावनाओं एवं सरोकारों से भलीभाँति परिचित हैं। उनकी गजलें युवा वर्ग को उत्साहित करती है। वे अपनी गजलों में निराशा को छोड़ आशा की बात करते हैं तथा व्यक्ति के दृढ़निश्चय, कर्मनिष्ठा और एकाग्रचित होकर कार्य करने की प्रेरणा देते हैं। विनय जी के शब्द हैं-

''मंजिल को छोड़ और मुझे क्या दिखाई दे
मैं चल पड़ा हूँ बस मुझे रस्ता दिखाई दे''[7]

इन पंक्तियों को पढ़कर आमजन के जह्न में नई ऊर्जा एवं स्फूर्ति का समावेश होता है और जीवन में कुछ नया करने की प्रेरणा मिलती है। यह धारणा गजलकार में गहन सामाजिक संवेदना एवं सरोकारों में डूबने से आती है जो अपने समय एवं समाज के निकटतम यथार्थ से जुड़े होते हैं। डॉ. मधु खराटे ने भी प्रमाणित किया है कि ''विनय मिश्र की गजलों को दीर्घानुभावों और गहरी संवेदना, गहन वैचारिकता, सामाजिक चिन्तन का प्रतिफल बताया है''[8]

विनय मिश्र अपने समय और समाज के प्रत्यक्ष दृष्टा हैं। वे समकालीन परिस्थितियों से भलीभाँति रूबरू हैं। उनकी गजलें समाज के युवा वर्ग के लिए प्रेरणा का विषय हैं।

विनय मिश्र समाज के शोषित, पीड़ित व्यक्तियों की व्यथा कहते हैं। वे अपनी गजलों में व्यक्ति के अकेलेपन, अन्तर्विरोधों, मानसिक संताप, अलगाव, समाज से दूरियों का भी जिक्र करते हैं। वे अपनी गजल संग्रह 'सच और है' में एक गजल में कहते हैं -

''एक अकेला मैं ही क्यों हूँ
तेरा अपना मैं ही क्यों हूँ
मँहगे-मँहगे बाजारों में
सस्ता सौदा मैं ही क्यों हूँ
पाँचों उँगली उसकी घी में
भूखा प्यासा मैं ही क्यों हूँ''[9]

'सच और है' संग्रह में उद्धृत इस गजल में व्यक्ति के अकेलेपन और उसकी वेदना को उद्घाटित किया है। इस गजल में व्यक्ति अकेलेपन के कारण कुण्ठाग्रस्त, ईर्ष्या एवं मानसिक संताप से ग्रसित है। स्वार्थीपन, लोभ लालच के कारण जो मनुष्य अपने व अपनों के साथ कुठाराघात कर रहा है वह समाज के लिए निंदनीय है। समाज की इन विकट समस्याओं को मानस पटल पर रखना ही एक जनधर्मी कवि एवं गजलकार का मूल उद्देश्य है। सामाजिक चेतना के इन पक्षों को विनय मिश्र अपनी गजलों में महत्त्व देते हैं। आगे और भी शेर व्यक्ति के अकेलेपन, बिछड़ाव, अशिक्षा, बेरोजगारी जैसी अनेक समस्याओं को लेकर कहे गये हैं जैसे -

''अपने घर में ही किरायेदार हूँ
सोचिये मैं किस कदर लाचार हूँ
धीरे-धीरे फर्क इतना आ गया
बर्फ था लेकिन हुआ अंगार हूँ''[10]

विनय मिश्र की गजलों में वर्तमान समय की सच्चाई है। एकल परिवार व आपसी मतभेद ने मनुष्य को अकेला कर दिया। आज समाज की ऐसी स्थिति है कि लोग अपने दु:ख से दु:खी नहीं हैं अपितु दूसरों के सुख से दु:खी हैं। समाज की इन गम्भीर समस्याओं में भी विनय मिश्र उम्मीद की किरण देखते हैं और अपनी गजलों में आमजन को हौंसला देने का कार्य करते हैं। उनकी एक गजल का एक शेर है –

''दु:ख की खुषबू से खुशियों का संसार बसाते हैं
कुछ लोग अकेलेपन को भी औजार बनाते हैं''[11]

इस संदर्भ में यदि देखें तो व्यक्ति अकेला रहकर भी सकारात्मक सोच, दूरदृष्टि एवं मानसिक परिश्रम से समाज तथा राष्ट्र को महत्त्वपूर्ण दिशा प्रदान कर सकता है। विनय मिश्र की गजलों में उम्मीदें हैं, हौंसला है तथा डूबते को किनारा दिखाने की प्रगाढ़ चेतना है। जीवन की विसंगतियों, शोषण, उत्पीड़न और मानवीय संवेदनाओं के अनेकानेक रंग हैं। कई शेरों में व्यवस्था के खिलाफ असहमति, असंतोश, आक्रोश और प्रतिरोध अत्यन्त बुलंदी के साथ मुखरित हुआ है और पाठक के मन को बेध गया है। इस विषय में हम कवि कर्म को लेकर चर्चा करें तो कवि या गजलकार भी अकेलेपन का शिकार होता है। वह अगर चाहे तो समाज में परिवर्तन ला सकता है। विनय मिश्र अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं –

''कविताएँ भी लड़ सकती हैं दुनिया की चालों से
ये कवि पर है वे कैसा किरदार निभाते हैं''[12]

भारतीय समाज में साम्प्रदायिकता की समस्या प्रत्येक कालखण्डों में रही है चाहे वह आदिकाल, भक्तिकाल से लेकर आज तक, समय के साथ अनेक कवि, साहित्यकार, समाज सुधारक इसको लेकर आवाज उठाते रहे हैं। समकालीन गजलकारों ने भी इसको लेकर चर्चाएं की हैं। जिसमें दुष्यन्त कुमार से लेकर विनय मिश्र तक अनेक नाम हैं। गजलकारों ने अपनी भाषा व भाषा के माध्यम से कहीं न कहीं समाज को एकजुट करने का कार्य किया है। हिन्दी गजल के समीक्षक डॉ. जियाउर्रहमान जाफरी ने भी माना है ''सच और है' की गजलें गजल के तकाजे पर तो खरी उतरती ही हैं ये हिन्दुस्तानी जुबान के भी बेहतरीन नमूने है जैसा कि शायर विनय मिश्र ने खुद स्वीकारा है कि मैं उर्दू शायरी में गजल के मिजाज तगज्जुल और अँदाजेबयाँ का कायल रहा हूँ।''[13] साम्प्रदायिकता, समाज में जातिगत भेदभाव, छुआछूत जैसी विभ्रंष समस्याओं से विनय मिश्र भी परे नहीं हैं उनका एक शेर है –

''हरदम रहती जिन्दगी अपनों से हैरान
जूता काटे पाँव को सोना काटे कान''[14]

विनय मिश्र अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए धर्म जाति, छुआछूत एवं भाषा के आधार पर समाज को बाँटने वालों का जिक्र करते हुए कहते हैं –

''धर्म जाति के नाम पर बो नफरत के बीज
नेता पंडित मौलवी बाँट रहे इंसान
सुनी है दीपावली खाली खाली ईद
खुषियों का घर छोड़कर कहाँ गई मुस्कान''[15]

विनय मिश्र की गजलों के शेरों की तुलना कबीर से की जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। उनकी गजलों के शेर गाने योग्य हैं, मधुर हैं तथा समाज को आपसी भाईचारे में पिरोने वाले हैं। इस तरह की गहन सामाजिक संवेदना विनय मिश्र की गजलों में दिखाई देती है।

आज समाज में सबसे विकट समस्या है – मानवीय मूल्यों का पतन, संस्कृति का ह्रास, धोखाधड़ी, बेईमानी, अहिंसा आदि। समकालीन गजलकारों ने आमजन की इन गम्भीर समस्याओं को अपनी गजलों के केन्द्र में रखा है। विनय मिश्र की गजलों में आक्रोश है तथा व्यवस्था के खिलाफ टकराहट की स्थिति है। उनका एक शेर है–

''इक अदद उम्मीद लेकर मैं हूँ रातों के खिलाफ
रोशनी की जंग जारी है अँधेरों के खिलाफ''[16]

विनय मिश्र अपने काल की विकट से विकट समस्याओं से पूरी तरह वाकिफ हैं। वे समाज में व्याप्त बुराईयों, समस्याओं के खिलाफ बेदाग आवाज उठाने में सक्षम हैं। उनकी गजलों के शेर बड़े ओजस्वी एवं गम्भीर हैं तथा उम्मीदों एवं हौंसलों से भरे हुए हैं।

आज सम्पूर्ण समाज में नारी उत्पीड़न, शोषण एवं अत्याचार गम्भीर समस्याएं हैं। नारी को भोग की वस्तु समझा जाता है। चन्द रूपयों के खघतिर नारी को अपमानित तथा बेइज्जत किया जाता है। नारी चेतना, संघर्ष एवं साहस को लेकर विनय मिश्र एक सचेतक गजलकार के रूप में सामने आते हैं वे कहते हैं –

''जो भी है सब कुछ है उनके नाज नखरे के लिए
है कहाँ धरती हमारे पाँव रखने के लिए
भूख के बाजार में फिर से नई रौनक हुई
जिस्म बेचा है जो उसने चंद रूपये के लिए''[17]

आजादी के इतने वर्षों बाद भी नारी की स्थिति जब इतनी दयनीय हो तो गजलकार को कहना पड़ता है। स्त्री की इस अवाचिक पीड़ा या वाचन विनय मिश्र अपनी गजलों में करते हैं। इससे स्पष्ट है कि विनय मिश्र नारी संवेदना को लेकर चिन्तित हैं, व आक्रोषित हैं। उनकी पहचान हिन्दी गजल के एक प्रतिनिधि एवं जनधर्मी गजलकार के रूप में है उनकी गजलें बहुआयामी हैं। उन्होंने अपनी गजलों के केन्द्र में नारी समस्या, व्यवस्था विरोध, साम्प्रदायिकता,

युवावर्ग जागरूकता जैसी आम जन-जीवन से जुड़ी गम्भीर समस्याओं को रखा है। विनय मिश्र की गजलें समाज को नयी दिषा देने वाली हैं। वे बुद्धिजीवी समाज तथा विज्ञान के प्रभाव से पर्यावरण तथा संस्कृति के विनाष को लेकर भी चिन्तित हैं। इस विषय को गम्भीरता से लेते हुए उनकी एक गजल है -

''मौसम से हरियाली गायब
जीवन से खुशहाली गायब
ईयरफोन हुआ है गहना
अब कानों से बाली गायब
ईद खुशी की आये कैसे
होली गुम दीवाली गायब''[18]

आज आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण, बाजारवाद, उपनिवेशवाद के प्रभाव से जो मानवीय मूल्यों, संस्कारों तथा पर्यावरण की जो हानि हुई है उसे विनय मिश्र ने बहुत निकटता से देखा है। उन्होंने अपनी गजलों में अपने समय और समाज का यथार्थ चित्रण किया है। प्रसिद्ध आलोचक हरेराम नेमा 'समीप' भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि ''विनय मिश्र के गहरे मानवीय सरोकार हैं इसलिए वे सच्चाई की आत्मा में उतरने के लिए एक नयी गजल दृष्टि की खोज में लगे हैं उनकी गजलें जीवन में अन्वेशण की गजलें हैं।''[19]

विनय मिश्र की गजलों में वर्तमान की सच्चाई एवं भविष्य की चिंता है। वे अपनी गजलों में समाज में दोगला व्यवहार करने वालों का भी जिक्र करते हैं। चाहे वे राजनीति से जुड़े हों, किसी सत्ता व्यवस्था से या आम जनजीवन से। ऐसे लोग समाज में कलुशित वातावरण बनाते हैं। इसी संदर्भ में विनय जी का एक शेर है -

''वो रंजिश में नहीं अब प्यार में है
मेरा दुश्मन नए किरदार में है''[20]

एक कवि की समाज के प्रति जिम्मेदारी बनती है कि वह समाज को सच का आईना दिखाएं और आमजन की सूक्ष्म से सूष्क्ष्म समस्याओं पर अपनी दृष्टि रखे और अपनी उत्कृष्ट रचनाओं के माध्यम से आमजन को व्यवस्था विरोध, भ्रष्ट राजनीति, विसंगतियों के खिलाफ लड़ने के लिए तैयार करे। विनय मिश्र भी उन्हीं में से एक हैं। वे अपनी गजलों में मनुष्य की सामाजिक-सांस्कृतिक मुक्ति और उसकी गरिमा की प्रतिष्ठा के पक्ष में बहस करने की कोशिष करने वाले कवि हैं।

आज का युग इन्टरनेट एवं तकनीकी का है। विज्ञान के प्रभाव ने मनुष्य को बहुत कुछ दिया है और छीना भी। आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण, बाजारवाद एवं उपनिवेशवाद के प्रभाव से मानवीय मूल्यों संस्कारों, जनजीवन तथा पर्यावरण का जो विनाश हुआ है उसे समकालीन गजलकारों ने बहुत निकटता से देखा है। विनय मिश्र भी इस युग के साक्षी हैं। उनका नया गजल संग्रह 'लोग जिंदा हैं' इसी दौर का है। जिसमें विनय मिश्र ने समय की सच्चाई को मानस पटल पर रखा है तथा महामारी के दौर तथा विज्ञान के प्रभाव को केन्द्र में रखकर वे अपनी महत्त्वपूर्ण गजल कहते हैं-

''ये जो सारा दिमागी सफर है
इस तरक्की में भी एक डर है
कितनी ऊँचाई से हम गिरेंगे
क्या हमें इसकी कोई खबर है
हर तरफ सोने के ही हिरन है
चाहतों का तिलस्मी नगर है
और ये जो सूरज उगा है ना देखो
इसके ढलने का रस्ता ऊधर है
नींद है ख्वाब है जाने क्या है
मेरी आँखों में जो रात भर है
तेरे अहसास की हर गजल में
जिन्दगी एक छोटी बहर है
इस उजाले के दीपक के नीचे
जाने कितने अँधेरों का घर है''[21]

समकालीन हिन्दी गजल सामाजिक चेतना के क्षेत्र में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। दुष्यन्त, अदम गोण्डवी की परम्परा में विनय मिश्र ने भी सामाजिक चेतना का सजीवता और समकालीनता के साथ यथार्थ चित्रण किया है।

निष्कर्ष

इस अध्ययन के उपरान्त कहा जा सकता है कि हिन्दी कविता विधा में गजल अपना विशेष योगदान रखती है। हिन्दी गजल का कथ्य एवं षिल्प दोनों दृष्टि से अपना अनोखा अंदाज है। समकालीन हिन्दी गजल की दुष्यंतोत्तर परम्परा में विनय मिश्र एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। उन्होंने अपने समय और समाज की सूक्ष्म समस्याओं का बड़ी बारिकी से अपनी गजलों में यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने अपनी गजलों में व्यवस्था विरोध, आमजन की पीड़ा, नारी समस्या, बाजारवाद, वैश्वीकरण तथा जनजीवन से जुड़ी विकट से विकट समस्याओं का बड़ी सूक्ष्मता से विवेचन किया है। वे समकालीन हिन्दी गजल के क्षेत्र में अपनी एक विशिष्ट पहचान रखते हैं तथा समाज के ज्वलन्त मुद्दों को अपनी गजलों में उद्घाटित कर रहे हैं। विनय मिश्र उम्मीदों के कवि हैं। उनकी गजलों में निराशा को छोड़ आशा के स्वर दिखाई देते हैं। वे अपनी गजलों के माध्यम से आमजन को जगाने का प्रयत्न करते हैं। विनय मिश्र की गजलों में आक्रोश है तथा समाज में व्याप्त बुराईयों, कुरूतियों एवं व्यवस्था के खिलाफ लड़ने का साहस है। उनकी गजलें बहुआयामी हैं। वे हर तबके का ख्याल रखने वाले गजलकार हैं। वास्तव में अगर देखा जाए तो विनय मिश्र समकालीन हिन्दी गजल के सशक्त हस्ताक्षर हैं तथा आमजन के गजलकार हैं। विनय मिश्र की गजलों में सामाजिक चेतना का स्वरूप विविध रंगों में दिखाई देता है। समाज के अनेक पक्षों को उन्होंने गजल के माध्यम से उद्घाटित किया है। उनकी गजलों के अध्ययन से पता चलता है कि उनमें सामाजिक चेतना का स्वरूप विद्यमान है।

संदर्भ सूची

1. दसखत, सं.-जीवन सिंह, पृ. 50
2. आलोचना की यात्रा में हिन्दी गजल, सं.-डा. जीवन सिंह, पृ. 88
3. तेरा होना तलाशूँ-विनय मिश्र, पृ. 23
4. अष्टछाप, नचिकेता, पृ. 40
5. समकालीन गजल और विनय मिश्र - सं.- डॉ. लवलेश दत्त, पृ. 209
6. समकालीन हिन्दी गजलकार हरेराम नेमा 'समीप', पृ. 491
7. तेरा होना तलाशूँ-विनय मिश्र, पृ. 92
8. समकालीन गजल और विनय मिश्र - सं.- डॉ. लवलेश दत्त, पृ. 201
9. सच और है - विनय मिश्र, पृ. 34
10. सच और है - विनय मिश्र, पृ. 53
11. सच और है - विनय मिश्र, पृ. 54
12. सच और है - विनय मिश्र, पृ. 54
13. समकालीन हिन्दी गजलकार हरेराम नेमा 'समीप', पृ. 491
14. सच और है - विनय मिश्र, पृ. 73
15. सच और है - विनय मिश्र, पृ. 73
16. समकालीन गजल और विनय मिश्र - सं.- डॉ. लवलेश दत्त, पृ. 38
17. तेरा होना तलाशूँ-विनय मिश्र, पृ. 73
18. सच और है - विनय मिश्र, पृ. 43
19. समकालीन हिन्दी गजलकार हरेराम नेमा 'समीप', पृ. 500
20. दसखत, सं.-जीवन सिंह, पृ. 213
21. लोग जिंदा हैं, विनय मिश्र, पृ. 11

साम्प्रतिक संस्कृत रचनाधर्मिता: एक विवेचना

डॉ० अर्चना सिन्हा

सहायक प्राध्यापिका, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, दि ग्रैजुएट स्कूल, कॉलेज फॉर वीमेन, जमशेदपुर, कोल्हान विश्वविद्यालय, चाईबासा।

'संस्कृत साहित्य' ब्रह्माण्ड की अलौकिकता, अद्भुतता एवं उत्कृष्टता की पवित्र त्रिवेणी से युक्त एक ऐसा वांग्मय है जिसकी विलक्षण रचना शताब्दियों में हुई एवं मौखिक रूप में एक से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होती रही। हमारे बहुमूल्य विचार, उच्च दार्शनिक उड़ान, अध्यात्मिकता और हमारी उन्नत नैतिकता संस्कृत में ही समाहित है। संस्कृत साहित्य वह उच्च गिरिश्रृंग है जिस पर चढ़कर मनुष्य काल के सुदीर्घ स्रोत को बड़ी दूर तक निहार सकता है।

संस्कृते संस्कृतिज्ञया, संस्कृते सकला: फला:।
संस्कृते सकलं ज्ञानम्, संस्कृते किं न विद्यते।।

"सांस्कृतिक भाषा होने के कारण संस्कृत शताब्दियों से भारतीय जनमानस को एक सूत्र में पिरोने का कार्य किया है। उसके महत्त्व की प्रतिपादक पुरातन उपलब्धियाँ ही नहीं है, अपितु अद्यतन प्रवृतियाँ भी है। संस्कृत साहित्य की अज्रस धारा वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक प्रवहमान है। संस्कृत साहित्य ने भारतीय साहित्य को प्राणवान बनाते हुए सदैव युगानुकूल प्रवृतियों को आत्मसात किया।"[1]

"आधुनिकता की कालसीमा निर्धारण करना कठिन है किन्तु वर्तमान इतिहास, राजनीति, विज्ञान और समाजशास्त्र तथा उनकी साहित्यगत क्रिया-प्रतिक्रियाओं के अनुशीलन के आधार पर स्पष्ट है कि सन् 1784 से 1919 ई0 तक का काल संस्कृत साहित्य के इतिहास में एक अविस्मरणीय अध्याय है।"[2]

संस्कृत और प्राच्य विद्या के पठन-पाठन में आंग्ल विद्वानों की सहभागिता द्वारा आधुनिक संस्कृत साहित्य के अनुशीलन का पुनर्जागरण हुआ। इस काल में संस्कृत की अवरुद्ध रचना-प्रक्रिया भी पुन: आरम्भ हुई और लेखकों के प्रयास से जनमानस में संस्कृत साहित्य के प्रति जागरुकता भी बढ़ी। "गणपति शास्त्री द्वारा 1909 ई0 में भास के तेरह नाटकों को खोज निकालना इस नवजागरण की मुख्य घटना है। राजराज वर्मा द्वारा 1919 ई0 में विरचित नाटक गीर्वाणवाणी विजयम् आधुनिक संस्कृत साहित्य की चरमावस्था का प्रतीक है।"[3] "1911 ई0 में शिमला कॉन्फ्रेंस, 1914 ई0 में अखिल भारतीय संस्कृत सम्मेलन एवं 1919 ई0 में ओरियन्टल कॉन्फ्रेंस ने संस्कृत की वैज्ञानिक गवेषणा का कार्य प्रशस्त किया।"[4] संस्कृत की सभी साहित्यिक विधाओं में नयी-नयी स्थापनाओं के साथ इसके स्वर मुखरित हुए। काव्य की शैली और विषयवस्तु बदले जिससे संस्कृत-रचनाधर्मिता को नवीन भावभूमि मिली। कविता, कहानी, उपन्यास, रूपक, चम्पूकाव्य, जीवनी, निबन्ध, पत्र-लेखन, डायरी, संगीतमय रेडियोनाटक, लघुकथा, यात्रा-विवरण, दूरदर्शन रूपक आदि अनेक अभिनव साहित्यिक विधाएँ प्रकाश में आई जो पहले कभी देखी नहीं गई थीं। संस्कृत में नवीन साहित्यिक प्रतिमानों की स्थापना से संस्कृत वांग्मय न केवल समृद्ध हुआ, अपितु लोकप्रिय और जीवन्त भी बना।

आधुनिक संस्कृत कविता में प्राचीनता और नवीनता दोनों का सन्निवेश मिलता है। "इस युग के कवियों ने अनेक महाकाव्य, खण्डकाव्य, संदेशकाव्य, गीतिकाव्य, श्रृंगारिक काव्य, प्रकृतिकाव्य, व्यंग्य काव्य, प्रतीकात्मक काव्य, राष्ट्रगीत, स्त्रोत्रकाव्य, लहरीकाव्य आदि पृथक काव्यसंग्रहों को प्रस्तुत किया है जिनमें विषयवस्तु और रसनिवेश की दृष्टि से सर्वथा नूतन उदभावनायें मिलती हैं।"[5]

आधुनिक काव्य विधाओं में विपुल साहित्य की सर्जना करने वाले रेवाप्रसाद द्विवेदी, शिवजी उपाध्याय, ब्रह्मानन्द शर्मा, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, राधावल्लभ त्रिपाठी, रईसबिहारी द्विवेदी आदि काव्य शास्त्रियों ने संस्कृत काव्य-रचना के प्रभेदों को निर्दिष्ट करते हुए आधुनिक काव्य-प्रभेदों और प्रयोगों को भी समेटने का स्तुत्य प्रयास किया है। आज संस्कृत काव्य कहने से उनकी पुरातनता तथा दीर्घता की ध्वनि निकलती है। अत: आधुनिक कवि भावप्रवणता, स्वच्छन्द प्रवाह तथा छन्दोमुक्ति की दृष्टि से संस्कृत कविता कहना अधिक उपयुक्त मानते हैं। आधुनिक काल में संस्कृत में सौ से अधिक महाकाव्य लिखे गये हैं। रामायण, महाभारत, पुराणों से विषयवस्तु ग्रहण करने के बाद भी उनका निष्कर्ष, शैली, वस्तु-निरूपण, भाषा की शय्या भी अधुनातन होते हैं। सत्यव्रत-शास्त्री ने बौद्धसाहित्य के प्राचीन कथानक पर बोधिसत्वचरितम् महाकाव्य लिखा जो प्राचीन जातकमाला तथा क्षेमेन्द्र की अवधानकल्पलता से सर्वथा भिन्न है, कवि ने कलावाद के आकर्षण में शब्दालंकारों का व्यापक प्रयोग किया है। आधुनिक रचनाकारों ने अपने-अपने महाकाव्यों द्वारा अतीव उत्कृष्ट रचना से सीता में निहित करुणा को नूतन भावबोधों से भरा है। उनमें प्रथम है रेवाप्रसाद द्विवेदी, इन्होंने सीताचरितम् (1968) लिखा जिसका षष्ठ परिष्कृत संस्करण उत्तररामचरित (1990) नाम से प्रकाशित हुआ। दूसरे कवि हैं अभिराज राजेन्द्र मिश्र जिन्होंने जानकीजीवनम् महाकाव्य लिखा जिसमें रामराज्यभिषेक तक सीताचरित वर्णित है। सत्यव्रत शास्त्री ने श्रीरामकीर्तिम् महाकाव्य लिखा। भरत के जीवन पर आधारित भरतचरितम् नाम दो महाकाव्य रचे गये हैं एक के प्रणेता भवानी दन्तशर्मा, दूसरे के राजकुमार शर्मा हैं। दोनों की पृथक-पृथक काव्य शैलियाँ और प्रस्तुतियाँ हैं। प्राचीन विषयवस्तु पर आश्रित आधुनिक महाकाव्यों में भवानी दन्त शर्मा द्वारा रचित सौमित्रिसुन्दरीचरितम् काव्य उर्मिला के जीवन की पीड़ाओं पर आश्रित है। प्रमुख महाकाव्यकारों कृत वामनचरितम्, गणपतिसम्भवम्, रूक्मिणीहरणम्, कर्णार्जुनीयम्, भीष्मचरितम्, शुम्भवधम् तथा विन्ध्यवासिनीविजयम् आदि महाकाव्य प्राचीन भागवत् एवं पुराणमूलक कथानक की प्रस्तुति नये लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रतीक रूप में करते हैं।

बीसवीं सदी में शताधिक महाकाव्य धर्मपुरुषों, राजपुरुषों, जननायकों एवं संतो पर लिखे गये। जिनमें उन नायकों के संघर्ष, तात्कालिक परिस्थितियों एवं उनके विचारों को प्रस्तुत किया गया है। हरिनन्दनभट्ट ने पंचमजार्ज के जीवन पर आधारित 75 सर्गो का सम्राटचरितम् (1920) लिखा, अखिलनन्दनकविरत्न ने दयानन्ददिग्विजयम् एवं सनातनधर्मविजयम् महाकाव्य, श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने 68 सर्गो का विशाल महाकाव्य शिवराज्योदयम्, सत्यव्रतशास्त्री ने गोविंदसिंहचरितम् एवं महाकाव्यश्रीरामकीर्तिम्, इन्दिरागान्धिचरितम्, अधोध्याप्रसाद शास्त्री ने नेहरुदयम् काव्य अम्बिकादत्तव्यास ने शिवराजविजयम्, सुबोधचन्द्रपन्त ने झाँसीश्वरीचरितम् लिखा। वस्तुतः आधुनिक काल में संस्कृत महाकाव्यों की विपुलता है। इस संदर्भ में शास्त्रीय परम्परा में दीक्षित कवि रेवाप्रसाद द्विवेदी का स्वान्तन्त्रसम्भवम् (1990) महाकाव्य उल्लेखनीय है जिसमें प्राचीन परम्परा से भिन्न 1857 ये 1947 के बीच 90 वर्षो तक जो स्वाधीनता की लड़ाई हुई उसका वस्तुपरक किन्तु काव्यात्मक वर्णन है।

"आधुनिक युग में गीतिकाव्य के कुछ नवीन रूप दृष्टिगोचर होते हैं। इस अवधि में खण्डकाव्य, स्तोत्रकाव्य, मुक्तककाव्य के अतिरिक्त दूतकाव्य, शतक, राष्ट्रीय गीत एवं कोश-ग्रन्थ अधिक प्रणीत हुए हैं।"[6]

शतककाव्य या खण्डकाव्य में छन्द अनिवार्य है। प्राचीन शैली के विद्वान् कवि समस्त आधुनिक भावबोधों के प्रकाशन में समर्पित होने पर भी संस्कृत छन्दों को नहीं छोड़ते हैं। इस प्रसंग में महादेव शास्त्री (भारत शतक) रेवाप्रसाद, द्विवेदी, वेंकट राघवन, रामावतार शर्मा, गंगाधर शास्त्री (अलिविलासि संलापाः) हरिदास सिद्धान्त वागीश (शंकरसंभव, वियोगवैभवनामक खण्डकाव्य), नागार्जुन, श्रीधर भास्कर वर्णेकर, रतिनाथ झा, जगन्नाथ पाठक जैसे संस्कृत कवियों ने छन्द को काव्यशरीर मानकर उसे कभी नहीं छोड़ा। किन्तु अभिराजराजेन्द्र मिश्र, राघावल्लभ त्रिपाठी, श्री निवासरथ, कैशवचन्द दान, हर्षदेव, पुष्पा दीक्षित जैसे कवियों ने आधुनिक छन्दों का भी प्रयोग किया अथवा छन्दोमुक्त कविता में भी अपने भाव व्यक्त किये।

सम्प्रति विभिन्न भाषाओं से संस्कृत में अनुदित काव्य कृतियाँ एक नई विधा के रूप में प्रसिद्ध है। अनुवाद कर्म कदाचित् मूल रचना करने से भी अधिक कठिन है। अनुवाद में मूलभाव की रक्षा करनी पड़ती है। अनुदित भाषा की प्रकृति को संभालते हुए अनुवादक अपना व्यक्तित्व भी उसमें डाल देता है। लक्ष्मणशास्त्री तैलंग ने शेक्सपीयर के नाटकों को अनुवाद किया। रामशास्त्री ने सिन्दवाद की यात्राकथाओं का भी अनुवाद सिन्धुवादवृतम शीर्षक से किया। प्रेमनारायण द्विवेदी ने बिहारी के दोहों का अनुवाद सप्तशती शीर्षक से किया। अंग्रेजी की रोमांटिक कविताओं का संस्कृत में आंग्लरोमाञ्चम् के नाम से एल. ओ. दोशी तथा हरिहर त्रिवेदी ने अनुवाद किया।

आधुनिक संस्कृत साहित्य अनेक विधाओं एवं दिशाओं में प्रवृत है। संस्कृत कवि एकांगी नहीं, सर्वदर्शी है। जापानी काव्यविधा हायकू (17 अक्षरों का 3 पंक्तियों वाला काव्य) भी संस्कृत में लिखी जा रही है। हर्षदेव, माधव ने लगभग 3000 हायकू कविताएँ लिखी हैं। विभिन्न विषयों पर दूतकाव्य लिखे जा रहे हैं यथा-रामावतार शर्मा ने व्यंग्यरूप में मुदगरदूतम्, इच्छाराम द्विवेदी ने मित्रदूतम्, रामाशीषपांडेय ने मयूखदूतम्, दिनेशप्रसाद पाण्डेय ने पत्रदूतम् और हरिनारायण दीक्षित ने श्रीहनुमददूतम्, अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने मृगांकदूतम्, राघावल्लभ त्रिपाठी ने धरित्रीदर्शनम् दूतकाव्य लिखा। काव्य साहित्य में शतककाव्य की स्त्रोत तथा राष्ट्रीय भावना से जुड़ी अनेक उत्कृष्ट कृतियाँ भी आधुनिक कालखण्ड की विशिष्ट उपलब्धियाँ हैं। धार्मिक, नीतिसंबंधी एवं श्रृंगारी तीनों रूपों में शतक लिखे गये। राम, कृष्ण आदि विविध अवतार, शिव-पार्वती, गणेश, दुर्गा, गंगा, लक्ष्मी, प्रभृति देवी-देवताओं के स्तवन में अर्वाचीन कवियों द्वारा प्रणीत स्तोत्रकाव्यों की संख्या दो सौ से भी ऊपर है। लहरीकाव्यों में कृष्णब्रह्म तंत्र की पीयूषलहरी, चिरंजीवलाल की पीयूषलहरी, बिहारी जोशी की करुणाकटाक्षलहरी, रूद्रदेव त्रिपाठी की बदरीलहरी, राघावल्लभ त्रिपाठी की जनतालहरी, रोटिकालहरी जैसी 10 (दस) लहरीकाव्यों की लहरीदशकम् प्रमुख हैं। राष्ट्रीय भावनापरक शतककाव्य बीसवीं शताब्दी की सर्वोपरी विशेषता है। पहले स्वतंत्रता प्राप्ति की भावना और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश पर गौरव के साथ उनकी प्रगति और समृद्धि की कामना इन काव्यों का मुख्य विषय रहा है। महादेव शास्त्री का भारतशतकम् रामकैलाश पांडे का भारत शतकम्, रमाकान्त शुक्ल का भाति में भारतम्, जय भारतभूमे, भाति मौरीशसम्, भारतजनताहम्, अभिराज राजेन्द्र मिश्र का भारतशतकम् आदि अनेक काव्य भारत के उज्ज्वल रूप और भारतीयों की कल्याण भाव को प्रकट करते हैं।

संस्कृत काव्यधारा को नयी शैली में नूतन भावबोध के साथ प्रवाहित करनेवाले कवियों में जानकीवल्लभ शास्त्री अनुपम तथा प्रथम भी है। 1935 ई0 में प्रकाशित काकली उनकी स्फुटकविताओं का संग्रह है। नये कथ्य और नयी साज-सज्जा से सज्जित इस काव्य-संकलन में संस्कृत की ऐश्वर्यमयी परम्परा और नवीनतम का समन्वय किया। राधावल्लभ त्रिपाठी ने गीतधवरम् में रागकाव्य की रचना गीतगोविन्द की परम्परा के नव्य स्वरूप में की। पुराने विषयों को आधुनिक संदर्भ से जोड़ने के प्रयासों में रेवाप्रसाद द्विवेदी के शाकटार काव्य का नाम लिया जा सकता है। नन्दों के कुचक्र से बन्दी बनाये शाकटार की कारागार से मुक्ति के प्रसंग को अफ्रीका के स्वाधीनता सेनानी नेल्सन मण्डेला की कारागार मुक्ति से जोड़ा गया। आचार्य महाप्रज्ञ की अश्रुवीणा दार्शनिक उपदेशों से पूर्ण है। गोविन्दचन्द्र पाण्डेय की भागीरथी में सात खण्ड हैं जिसमें समकालीन परिदृश्य, इतिहास, प्रकृति, मिथक आदि से जुड़ी 163 कविताएँ हैं। संस्कृत जगत् को संख्या और गुणवत्ता में सर्वाधिक रचनाएँ देने वाले अभिराज राजेन्द्र मिश्र के कई काव्यग्रन्थ प्रकाशित हैं यथा-अरण्यानी, मधुपर्णी, अभिराजसहस्त्रक, मत्तवारणी, चर्चरी, शालभञ्जिका, कौमारम्, वैतरणी तथा अभिराजगीता निश्चय ही आधुनिक संस्कृत कवियों के विविधतापूर्ण काव्यों से संस्कृत साहित्य समृद्ध है।

भाषाओं की स्वाभाविक अभिव्यक्ति का साधन गद्य ही है। जब इसमें काव्य के उपादानों, लालित्य पदशय्या, अलंकरण, बिम्बयोजना, चमत्कार आदि का समावेश होता है तो यह काव्यस्वरूप बनकर स्थायित्व प्राप्त कर गद्य साहित्य कहलाता है। आधुनिक संस्कृत गद्य के अनेक लेखन विधा सुलभ है यथा-कहानी, उपन्यास, लघुकथा, संस्करण, डायरी, पत्रलेखन, जीवनी, निबंध, प्रबंध आदि जिन्हें सर्जनात्मक रचना कह सकते हैं।

आधुनिक लघुकथा या कहानी की विषयवस्तु समाज के यथार्थता के साथ उसकी विविध विकृतियों को दर्शाती है। प्रमोद भारतीय की कथा संकलन सहपाठिनी में नारी-जीवन की विसंगतियों को दर्शाया गया है। अन्य कथासंग्रहों में अम्बिकादत्तव्यास की रत्नाष्टकम् एवं कथाकुसुमम् वैंकटशक शास्त्री की कथाशतकम् है। पाश्चात्य प्रतिमानों पर आधारित जनसंवेदना से जुड़ी कथा की सर्जना का शुभारम्भ बीसवीं शताब्दी में मथुरानाथ शास्त्री की कथाओं से हुआ। पण्डिताक्षमाराव के कथापंचम्, ग्रामज्योति और कथामुक्तावली नामक तीन कथा-संग्रहों और रामशरण त्रिपाठी की कौमुदीकथाकल्लोलिनी ने उसी परम्परा को

आगे बढ़ाया। अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने इक्षुगन्धा, चित्रपर्णी, छिन्नमस्तिका, एवं कान्तार कहानियों को अपनी लेखनी से समृद्ध किया है। कान्तार कथा में पंचतंत्र एवं मोगली की कहानियों को नये भाव और शिल्प मिले हैं। हास्यव्यंग्य के क्षेत्र में प्रतिभाशाली व्यंग्यकार प्रशस्य मित्र शास्त्री है, जिन्होंने अनाघ्रातं पुष्पम् तथा आषाढ़स्य प्रथमदिवसे लिखा है। नारायणदास की कहानियों का संकलन गंगे च यमुने चौव, मत्स्यगन्धा तथा लज्जा में प्रकाशित है। हत्याकारी कः कथा से संस्कृत में जासूसी कथा का भी अवतरण हुआ।

"प्राचीन गद्यकाव्य के अनुकरण पर उपन्यास नामक नयी गद्यकाव्यरीति का जन्म ऐतिहासिक उपन्यास शिवराजविजय से माना जाता है।"[7] संस्कृत उपन्यासों में निर्विवाद रूप से अम्बिकादत्तव्यास का शिवराजविजय प्रथम एवं सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास है। यथुरानाथ शास्त्री का उपन्यास आदर्शरमणी, रमानाथ शास्त्री का दुःखिनी, बलभद्र शर्मा का बाला नारी जीवन के विविध आयामों को दर्शाता है। सत्यप्रकाशसिंह कृत गुहावासी एक दार्शनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। आधुनिक संस्कृत उपन्यासकारों में कैशवचन्द्र दास ने निकषा, ऋतम्, मधुयानम्, अंजलि, शिखा शशिरेखा, अरुणा ओमशांति जैसे प्रसिद्ध तेरह उपन्यास लिखा है। राधावल्लभ त्रिपाठी ने भारतीय इतिहास को आधुनिकता में ढालकर तीन संस्कृत उपन्यास लिखा है-अभिनवशुकसारिका, अन्यच्च, तथा ताण्डव। हिन्दी, अंग्रेजी, तेलुगु, तमिल, बंगला आदि के प्रसिद्ध उपन्यासों के अनुदित संस्कृत रूपान्तरों से भी संस्कृत उपन्यास समृद्ध हुआ है।

गद्य लेखन के अन्तर्गत निबन्ध और प्रबन्ध की शैली का विकास भिन्न रूप में हुआ है। समसामयिक पत्र-पत्रिकाओं में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक आदि विषयों पर आज तक हजारों निबंध लिखे जा चुके हैं। दीर्घ निबंधों को प्रबंध कहते हैं जो शास्त्रीय परिपाटी पर किसी एक को विस्तार से मौलिक रूप में प्रस्तुत करते हैं। "संस्कृत विद्वानों ने अनेकानेक शास्त्रीय ग्रन्थों का प्रणयन कर संस्कृत साहित्य के वैशिष्टय को बढ़ाया है। साहित्य शास्त्रपरक ग्रंथों की एक अलग परिपाटी समीक्षा का भी विकास हुआ है। सम्प्रति आधुनिक संस्कृत आलोचना अनेक रूपों में सक्रिय हैं और उसके सभी अंग परिपुष्ट है।"[8]

"आधुनिक युग की नयी साहित्यिक विधाओं में पत्रलेखन एवं डायरी का अपना विशेष स्थान है। इनका आरंभ उन्नीसवीं शताब्दी ई0 के प्रारंभ में मनोरमा तम्बुराटी और कार्तिक तिरूनाल महाराज के प्रेमपत्रों से माना जा सकता है। पद्यात्मक पत्रों का आदान-प्रदान जो प्रेमचंद तर्कालंकार एवं दूसरे विद्वानों और एच0एच0 बिलसन के मध्य हुआ वह एक बंगाली ग्रंथ में संग्रहित है। शताधिक पत्र अनेक प्राचीन और प्रसिद्ध संस्कृत पत्रिकाओं में प्रकाशित रूप में मिलते हैं।"[9] सत्यव्रत शास्त्री की विशाल संस्कृत डायरी (600 पृष्ठ) दिने-दिने याति मदीयजीवितम् (2011) शीर्षक से प्रकाशित हुई जो संस्कृत जगत् की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसके प्रांजल तथा परिष्कृत गद्य में 2006 से 2011 तक के वर्षों की दैनन्दिन घटनाएँ लेखक की मनः स्थितियाँ, यात्राएँ, सभा-समितियों की बैठकें, विद्वान् और गणमान्य जनों से भेंट, शास्त्री जी के अपने अभिनन्दनों के वितरण तथा अन्य भी बहुत कुछ इसमें आकर्षक ढंग से समाविष्ट हैं। घर-परिवार, आसपास का परिवेश तथा समकालीन जीवन का भी इसमें निरुपण है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य के सम्वर्द्धन एवं प्रसार में संस्कृत के पत्र और पत्रिकाओं का विशेष योगदान रहा है। संस्कृत में पत्र-पत्रिकाओं की परम्परा का प्रारंभ वर्ष 1869 ई0 माना जाता है जब हृषीकेश भट्टाचार्य ने लाहौर से विद्योदयः नामक संस्कृत मासिकपत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया। इसके बाद कई पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। जिनमें संस्कृत भारती (काशी), शारदा (प्रयाग) संस्कृत भास्करः (मथुरा), साहित्य सुधा (पटना), मनोरमा (उत्कल) कुछ प्रसिद्ध नाम हैं। वर्तमान समय में वरदराज अय्यंगार जैसे संस्कृतनिष्ठ और व्रती महानुभाव सर्वथा प्रशसंनीय हैं जिन्होंने महती साधना के साथ 1970 ई0 में दैनिक संस्कृत पत्र सुधर्मा का बीस वर्षो से भी अधिक समय तक नियमित प्रकाशन किया। धन की न्यूनता, साधनों की सीमा और पाठकों की अल्पता, संस्कृत पत्रों के प्रकाशन में प्रायः व्यवधान बने हैं। फिर भी संतोष का विषय है कि आज संस्कृत के विद्वान् सम्पादकों के दृढ़ निश्चय और प्रशासन की सहायता से देश में अनेक संस्कृत पत्र और संस्कृत पत्रिकाएँ नियमित रूप से प्रकाशित हो रही हैं - संस्कृत प्रतिभा, संस्कृत-मंजरी, सरस्वती-सुषमा, सागरिका, दूर्वा, सम्भाषणसंस्कृतम्, विश्वभाषा जैसे संस्कृत माध्यम की पत्रिकाएँ विश्वख्याति पा चुकी है। इलाहाबाद से प्रकाशित षाण्मासिक पत्रिका दृक् केवल आधुनिक संस्कृत साहित्य की समीक्षा को ही समर्पित है। इसे आधुनिक संस्कृत का विश्वकोश कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

रूपक या नाटय्कृतियों की दृष्टि से आधुनिक संस्कृत साहित्य अपने उत्कर्ष पर दिखाई देता है। नाटक द्वारा रोचक रूप में भावों की सम्प्रेषणशीलता इसका प्रधान कारण है इस काल में रूपक के प्राचीन प्रकार नाटक, प्रहसन, वीथी, भाण, अंक, प्रकरण आदि तदनुरूप लिखे गये पर साथ ही नयी विधाओं का भी प्रादुर्भाव हुआ। एकांकी और गीतनाट्य या छाया नाटक इस युग की विशेष उपलब्धियाँ माने जा सकते हैं। लम्बे नाटकों के स्थान पर लघु नाटिकाएँ अधिक लोकप्रिय हुई। "संस्कृत में ध्वनिनाटक या रेडियोनाटक की रचना और प्रसारण की बीसवीं शताब्दी ई0 की नवीनतम विधा माना जा सकता है। "संस्कृत नाटकों के मंचन में भी कुछ विशेषताओं एवं नवीनताओं का समावेश हुआ है।"[10]

सम्प्रति नुक्कड नाटक जो गली, चौराहे आदि पर जमा हुए सामाजिकों के बीच प्रदर्शित होता है, बहुत प्रसिद्ध है। अभी तक संस्कृत में नुक्कड़ नाटकों के दो संकलन प्रकाशित हुए है - अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने चतुष्पथीयम् संकलन में चार नुक्कड नाटक लिखा-इन्द्रजालम्, निगृहघट्टम्, वैद्येयविक्रम् तथा मोदकं केन भक्षितम्। अभिराजराजेन्द्र मिश्र ने 75 एकांकी तथा दूसरे प्रकार के रूपक भी लिखे हैं यथा-विद्योतमा नाटिका, नाट्यपंचामृतम, नाट्य प्रपदम् आदि। नुक्कड़ नाटकों का दूसरा संकलन राधावल्लभ त्रिपाठी का प्रेक्षणकसप्तकम् है जिसमें सात प्रक्षेणक सोमप्रभम् मशकधानी आदि हैं।

गीतिनाट्य के क्षेत्र में वनमालाभवालकर के रामवनगमनम् तथा पार्वतीपरमेश्वरीयम् प्रसिद्ध है। आनन्दवर्द्धन रत्नपारखी ने संवादमाला में 13 संवादो द्वारा एक नई विधा का प्रवर्तन किया था। रेडियोनाटक आज भी बड़ी संख्या में लिखे एवं प्रसारित किया जा रहे हैं। इस संदर्भ में रेवाप्रसाद द्विवेदी, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, उमांशकर शर्मा 'ऋषि,' दयानन्द भार्गव समर्थ हस्ताक्षर हैं जिन्होंने पुरातन कथानकों को प्रांसगिक बनाकर प्रसारित किया है। प्राचीन शैली में रचे गये नाटक शिखाबन्धन् को रामाशीष पांडे ने नये परिप्रेक्ष्य में रचा है।

"आधुनिक संस्कृत साहित्यकारों ने चम्पूकाव्यों का प्रणयन एक नयी और व्यापक पृष्ठभूमि पर किया और शताधिक चम्पूकाव्य लिखे गये। इनमें प्राचीन धार्मिक और पौराणिक विषयों के अतिरिक्त काल्पनिक जीवनीपरक और सामाजिक विषयों को भी काव्य का विषय बनाया गया है।"[11] "आज चम्पूकाव्य विधा में साहित्य प्रणयन संस्कृत संरचना के अबाध प्रवाह का सूचक है साथ ही उसमें हो रहे परिवर्तन आधुनिक प्रवृत्तियों के प्रभाव के द्योतक हैं।"[12]

देवभाषाप्रसारस्य कार्य यत् पुरतोडस्ति नः
न केवलं तदस्माकं कर्त्तव्य धर्म एव वा।
यत्सत्यं तत्तु पूर्वेषामृषीणामृशोधनम्
महत्फलं महत् पुण्यमिति मे निश्चितं मतम्।।

अर्थात् संस्कृत भाषा के प्रसार का जो कार्य हमारे सामने है वह न केवल हमारा कर्त्तव्य या धर्म है अपितु सत्य तो यह है कि पूर्व ऋषियों का ऋण चुकाना है जो महाफलदायी है तथा पुण्यवाला है।

समग्रतः इसमें किञ्चित् भी संदेह नहीं कि संस्कृत साहित्य के इतिहास की दीर्घ परम्परा को आधुनिक साहित्य में उत्तरोत्तर उत्कर्ष और नूतन स्वरूप से संवलित किया है। अब तक सहस्त्रों ग्रन्थों को प्रकाशित करके अर्वाचीन संस्कृत कवियों और साहित्यकारों ने उसकी सभी विधाओं के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया है।

संदर्भ संकेत सूची

1. आधुनिक संस्कृत साहित्य, डॉ0 हीरालाल शुक्ल, प्राक्कथन से गृहीत, पृष्ठ संख्या - 5
2. वही, पृष्ठ संख्या - 9
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ0 शशि तिवारी, पृष्ठ संख्या - 156
4. वही, पृष्ठ संख्या - 156
5. आधुनिक संस्कृत साहित्य , डॉ0 हीरालाल शुक्ल, पृष्ठ संख्या - 16
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ0 शशि तिवारी, पृष्ठ संख्या - 161
7. दुर्वा, मध्य प्रदेश संस्कृत अकादमी पत्रिका, अंक 19,
8. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ0 शशि तिवारी, पृष्ठ संख्या - 172
9. वही, पृष्ठ संख्या - 173
10. वही, पृष्ठ संख्या - 173
11. वही , पृष्ठ संख्या - 165
12. वही , पृष्ठ संख्या - 167

सहायक संदर्भ ग्रन्थ सूचीः-

- आधुनिक संस्कृत साहित्य, डॉ0 हीरालाल शुक्ल, रचना प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1971।
- साहित्य विद्याओं की प्रकृति, देवी शंकर अवस्थी, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली।
- इक्षुगन्धा, डॉ0 अभिराज राजेन्द्र मिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 2010।
- संस्कृत साहित्य बीसवीं शताब्दी, डॉ0 राधावल्लभ त्रिपाठी, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, संस्करण - 1998।
- संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ0 शशि तिवारी, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1999।
- संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक शारदा निकेतन वाराणसी प्रकाशन, दशम संस्करण 1978।

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के आत्म-विश्वास का अध्ययन

कमलाधर मिश्र

शोध-छात्र (शिक्षाशास्त्र विभाग), मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

सारांश

शिक्षा मानव जगत की धरोहर है जिससे समाज के विकास की सही दिशा व दशा निर्धारित की जाती है। शिक्षा मनुष्य में आत्मविश्वास उत्पन्न करने वाला एक प्रमुख कारक है। आत्मविश्वास व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण पहलू है। आत्मविश्वास व्यक्ति के उस व्यवहार से सम्बन्धित है जिससे वह किसी अन्य व्यक्ति की उपस्थिति या बाहरी वातावरण के बिना स्वयं को सकारात्मक रूप से निर्देशित कर सके। वर्तमान समय में विद्यार्थियों में आत्मविश्वास की कमी देखने का मिल रही है। आज का विद्यार्थी सफलता तो प्राप्त करना चाहता है पर इस सफलता की प्राप्ति के लिए वह आशंकित रहता है, जिसका कारण उसमें आत्मविश्वास की कमी है। अभिप्रेरणा तथा उचित शैक्षिक, सामाजिक वातावरण द्वारा विद्यार्थियों के आत्म विश्वास में वृद्धि की जा सकती है। विद्यार्थियों का आत्म विश्वास उनके विद्यालय में उच्च शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त करने में सहायक होता है, साथ ही आत्मविश्वास द्वारा विद्यार्थियों की असफलता और निम्न शैक्षिक उपलब्धि की समस्या को सुलझाया जा सकता है।

मूल शब्द: आत्मविश्वास, शैक्षिक उपलब्धि, उच्च माध्यमिक स्तर।

1.1 प्रस्तावना

शिक्षा अन्धकार से प्रकाश की ओर मानव यात्रा का नाम है। शिक्षा द्वारा मनुष्य के अन्त: चक्षु खुलते हैं, उसे आन्तरिक व अलौकिक प्रकाश मिलता है। 'नास्ति विद्या समं चक्षु' अर्थात् विद्या के समान कोई नेत्र नहीं है। जिस प्रकार भौतिक वस्तुओं को देखने के लिए आखों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार सभी दृश्य तथा अदृश्य वस्तुओं और घटनाओं को समझने में ज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षा बालक की शक्तियों का प्रकटीकरण करती है। शिक्षा मनुष्य में आत्मविश्वास का संचार करती है। ऐसा मनुष्य जीवन के हर क्षेत्र में सुनियोजित ढंग से परिश्रम करके लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है।

किसी व्यक्ति का स्वयं के बारे में या जीवन के किसी एक पक्ष पर काफी अधिक आत्मविश्वास हो सकता है तथा किसी अन्य पक्ष में, किन्हीं अन्य परिस्थितियों में स्वयं के ऊपर आत्मविश्वास कम हो सकता है। यदि व्यक्ति के अन्दर किसी क्षेत्र विशेष में अभिरूचि, योग्यता, अभिव्यक्ति क्षमता, कार्यक्षमता, सामाजिक कुशलता आदि गुणों की अधिकता है तो उसका सम्बन्धित क्षेत्र में सकारात्मक दृष्टिकोण परिलक्षित होता है तथा उस क्षेत्र में आत्मविश्वास भी अधिक होता है। जबकि अन्यत्र क्षेत्र में उसमें इन सब गुणों की कमी होती है तथा वहां उसका आत्मविश्वास भी कम होता है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि आत्मविश्वास व्यक्ति के सकारात्मक व नकारात्मक आत्ममूल्यांकन का योग है।

बसवाना (1975) के अनुसार: "आत्मविश्वास से तात्पर्य व्यक्ति की किसी परिस्थिति विशेष में बाधाओं का सामना करने तथा सब कुछ ठीक करने की योग्यता से है।"[1]

स्ट्रॉमैनन एवं हिस्गिंग्स (1988) के अनुसार: "आत्मविश्वास एक सकारात्मक व्यक्तित्व की चाह है जो हमें अनिश्चित परिस्थितियों में भी प्रभावपूर्ण तरीके से समायोजन करने की क्षमता देता है"[2]।

ब्राउन मैक्गिल (1989) के अनुसार: "जिस व्यक्ति में आत्मविश्वास अधिक होता है वह व्यक्ति मानसिक दबाव का बेहतर ढंग से सामना कर सकता है तथा ऐसे व्यक्तियों का लक्ष्यों को प्राप्त करने में भी पूर्ण विश्वास रहता है।"[3]

अग्निहोत्री (1987) के अनुसार: "एक आत्मविश्वासी व्यक्ति स्वयं को सामाजिक रूप से सक्षम, भावनात्मक रूप से परिपक्व, बौद्धिक रूप से पर्याप्त, प्रतिस्पर्धात्मक रूप से सफल, संतुष्ट, निर्णायक, आशावादी, आत्मनिर्भर, अवलम्बित, आश्वासित आगे बढ़ने वाला तथा दृढ़ निश्चयी मानता है तथा ऐसे व्यक्ति में नेतृत्व की क्षमता भी अधिक होती है"[4]

1.2 अध्ययन का औचित्य

प्राय: यह देखा जाता है कि प्रत्येक क्षेत्र में सफल होने के लिए युवाओं में आत्मविश्वास का गुण होना चाहिए। चाहे खेल हो, शिक्षा हो या अर्न्तवैयक्तिक सम्बन्ध हों। निम्न आत्मविश्वास अपर्याप्त सामाजिक कौशल से सम्बन्धित है। जिन व्यक्तियों का आत्म विश्वास कम होता है उनका सामाजिक विकास उचित प्रकार नहीं हो पाता है तथा असफलता का सामना करना पड़ता है। आत्मविश्वास को विद्यार्थियों के अधिगम व उपलब्धियों को प्रभावित करने वाले एक मुख्य

घटक के रूप में देखा जा सकता है। अकारण चिंता, अत्यधिक भारी तनाव, असुरक्षा की भावना जैसी नकारात्मक प्रवृतियों के कारण विद्यार्थी अपने अध्ययन पर ध्यान केंद्रित नहीं कर पाते हैं तथा कक्षा कक्ष में स्थाई ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाते हैं जिससे उनका अधिगम प्रभावित होता है, अत: उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के आत्मविश्वास का अध्ययन करना आवश्यक प्रतीत होता है। उच्च माध्यमिक स्तर पर कार्यरत शिक्षा बोर्ड केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड सी.बी.एस.ई. तथा प्रादेशिक बोर्ड विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास पर बल देते हैं, परंतु उनकी कार्यप्रणाली में भिन्नता पाई जाती है अत: दोनों बोर्ड द्वारा संचालित विद्यालयों की कार्यपद्धति, शैक्षिक व्यवस्था, मूल्य, अधिगम अनुभव द्वारा विद्यार्थियों का आत्मविश्वास तथा शैक्षिक उपलब्धि प्रभावित होंगे या नहीं यह भी प्रश्न उठना स्वाभाविक है। आत्मविश्वास शैक्षिक उपलब्धि की आधार शिला है, विभिन्न बोर्ड परीक्षाओं तथा प्रतियोगी परीक्षाओं में उच्च स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों से जब उनकी सफलता के सम्बन्ध में साक्षात्कार लिया जाता है तो आत्मविश्वास ही प्रमुख कारक के रूप में दृष्टिगोचर होता है। आत्मविश्वास विद्यार्थियों की सफलता का मूल मंत्र ही नहीं बल्कि उनके व्यक्तित्व का दर्पण भी है। यही वह शक्ति है जो व्यक्ति को सफलता की सीढ़ी दर सीढ़ी आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है। आत्मविश्वास, विषय सम्बन्धी अधिगम व सहगामी क्रियाओं में विद्यार्थियों की सहभागिता को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख कारक होने के साथ-साथ शैक्षिक उपलब्धि को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला कारक है तथा आत्मविश्वास शैक्षिक उपलब्धि अर्जित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

जिस प्रकार आत्मविश्वास शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाने वाला प्रमुख कारक माना जाता है उसी प्रकार शैक्षिक उपलब्धि भी आत्मविश्वास को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। तथा संवेगात्मक बुद्धि शैक्षिक उपलब्धि तथा आत्मविश्वास को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यदि विद्यार्थी परीक्षा में उच्च अंक प्राप्त करते हैं तो उनके आत्मविश्वास स्तर में भी वृद्धि होती है तथा वह इच्छित सफलता प्राप्त करने हेतु अधिक उत्साह से प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि शैक्षिक उपलब्धि, आत्मविश्वास तथा संवेगात्मक बुद्धि में घनिष्ठ सम्बन्ध है। अत: माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में इन दोनों चरों की सार्थक भूमिका होनी चाहिए। प्रस्तुत अध्ययन में इसी सम्बन्ध को खोजने का प्रयास किया गया है।

1.3 समस्या कथन

उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के आत्म-विश्वास का अध्ययन।

1.4 शोध के उद्देश्य

उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के आत्मविश्वास एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि में सम्बन्ध का लिंग संकाय विद्यालयी बोर्ड के सन्दर्भ में अध्ययन करना।

1.5 शोध परिकल्पनाऐं

परिकल्पना 1

उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के आत्मविश्वास व शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक सम्बन्ध नहीं पाया जाता है।

परिकल्पना 2

उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्रों के आत्मविश्वास व शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक सम्बन्ध नहीं पाया जाता है।

परिकल्पना 3

उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्राओं के आत्मविश्वास व शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक सम्बन्ध नहीं पाया जाता है।

परिकल्पना 4

उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् कला संकाय के विद्यार्थियों के आत्मविश्वास व शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक सम्बन्ध नहीं पाया जाता है।

1.5 अध्ययन में प्रयुक्त तकनीकी शब्द

आत्मविश्वास: अपनी योग्यता पर विश्वास होना ही आत्म विश्वास है (Self Confidence means "Faith in one's own ability.") अपने ज्ञान और योग्यता के बारे में जानना तथा कोई भी कार्य कर सकने की प्रवृत्ति का होना आत्मविश्वास है। व्यक्ति की दूसरों पर निर्भर न रहते हुए परिस्थितियों का सफलतापूर्वक सामना करने एवं सकारात्मक आत्ममूल्यांकन करने की प्रत्यक्षीकृत योग्यता ही आत्मविश्वास है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में आत्मविश्वास को इसी अर्थ में लिया गया है

शैक्षिक उपलब्धि: (शैक्षिक उपलब्धि का तात्पर्य विद्यालयी विषयों में अर्जित ज्ञान या विकसित कौशल का शिक्षक द्वारा परीक्षा प्राप्ताकों या अंको द्वारा निर्दिष्ट करने से है)। (Academic Achievement means attained skills or Knowledge developed in the school subject, usually designated by test scores or by marks assigned by teachers or by both.") विद्यार्थियों ने किस सीमा तक अपनी योग्यताओं का विकास किया है उसका आंकिक रूप से प्रस्तुतीकरण ही उनकी उपलब्धि का सूचक है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में शैक्षिक उपलब्धि से तात्पर्य विद्यार्थियों द्वारा कक्षा 11 की 'बोर्ड ऑफ स्कूल एजुकेशन बिहार द्वारा आयोजित विभिन्न परीक्षाओं (मासिक, अर्द्धवार्षिक एवं वार्षिक) में अर्जित प्राप्ताकों से है।

अध्ययन के स्रोत:-बिहार राज्य के सी.बी.एस.ई. द्वारा संचालित विद्यालयों में नियमित रूप से कक्षा 12 में अध्ययनरत् विद्यार्थी।

जनसंख्या:- प्रस्तुत शोध अध्ययन में बिहार राज्य के पटना में स्थित उच्च माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को जनसंख्या के रूप में सम्मिलित किया गया है।

न्यादर्श:- शोधकर्ता द्वारा पटना के कई क्षेत्रों का चयन सोद्देश्य न्यादर्शन विधि द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत शोध में प्रयुक्त उपकरण:- प्रस्तुत शोध अध्ययन में आत्मविश्वास मापन के लिए डॉ0 रेखा अग्निहोत्री द्वारा निर्मित मानकीकृत सेल्फ कॉन्फिडन्स इन्वेन्टरी का प्रयोग किया गया है। शैक्षिक उपलब्धि के रूप में कक्षा 11 के विद्यार्थियों के वार्षिक उपलब्धि अंक विद्यालय से प्राप्त किये गये ।

तालिका 1: आत्मविश्वास व शैक्षिक उपलब्धि में सहसंबंध

Variables	N	r-value	Correlation	r-table value		Significance level
आत्मविश्वास	960	0.287	धनात्मक	0.01	0.081	0-01
शैक्षिकउपलब्धि			सहसम्बन्ध	0.05	0.062	

तालिका 1 से ज्ञात होता है कि उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के आत्मविश्वास व शैक्षिक उपलब्धि का सहसम्बन्ध गुणांक 0.287 प्राप्त हुआ है। दोनों चरों के मध्य सहसम्बन्ध की सार्थकता की जाँच करने पर पाया गया कि विद्यार्थियों के आत्मविश्वास व शैक्षिक उपलब्धि के मध्य 0.01 स्तर पर सार्थक सहसम्बन्ध है। प्रस्तुत विश्लेषण के आधार पर परिकल्पना 1-'उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के आत्मविश्वास व शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक सम्बन्ध नहीं पाया जाता है।' अस्वीकृत होती है। अर्थात् विद्यार्थियों के आत्मविश्वास व शैक्षिक उपलब्धि में धनात्मक सहसम्बन्ध पाया जाता है।

तालिका 2: लिंग वार विद्यार्थियों के आत्मविश्वास व शैक्षिक उपलब्धि में सहसंबंध

Gender	Variables	N	r-value	Correlation	r-table value		Significance level
छात्र	आत्मविश्वास	497	0.267	धनात्मक	0.01	0.115	0.01
	शैक्षिकउपलब्धि			सहसम्बन्ध	0.05	0.088	
छात्रायें	आत्मविश्वास	463	0.315	धनात्मक	0.01	0.115	0.01
	शैक्षिकउपलब्धि			सहसम्बन्ध	0.05	0.088	

तालिका 2 से ज्ञात होता है कि उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्रों के आत्मविश्वास व शैक्षिक उपलब्धि का सहसम्बन्ध गुणांक 0.267 प्राप्त हुआ है। दोनों चरों के मध्य सहसम्बन्ध की सार्थकता की जाँच करने पर पाया गया कि विद्यार्थियों के आत्मविश्वास व शैक्षिक उपलब्धि के मध्य 0.01 स्तर पर सार्थक सहसम्बन्ध है। प्रस्तुत विश्लेषण के आधार पर परिकल्पना 2-'उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्रों के आत्मविश्वास व शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक सम्बन्ध नहीं पाया जाता है।' अस्वीकृत होती है अर्थात् छात्रों की आत्मविश्वास व शैक्षिक उपलब्धि में धनात्मक सहसम्बन्ध पाया जाता है। तालिका 2 से ज्ञात होता है कि छात्राओं के आत्मविश्वास व शैक्षिक उपलब्धि का सहसम्बन्ध गुणांक 0.315 प्राप्त हुआ है। दोनों चरों के मध्य सहसम्बन्ध की सार्थकता की जाँच करने पर पाया गया कि विद्यार्थियों के आत्मविश्वास व शैक्षिक उपलब्धि के मध्य 0.01 स्तर पर सार्थक सहसम्बन्ध है। अर्थात् छात्राओं के आत्मविश्वास बढ़ने पर उनकी शैक्षिक उपलब्धि बढ़ती है व आत्मविश्वास के घटने पर उनकी शैक्षिक उपलब्धि घटती है। प्रस्तुत विश्लेषण के आधार पर परिकल्पना 3-'उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्राओं के आत्मविश्वास व शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक सम्बन्ध नहीं पाया जाता है।' अस्वीकृत होती है अर्थात् छात्राओं के आत्मविश्वास व शैक्षिक उपलब्धि में धनात्मक सहसम्बन्ध पाया जाता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन का उद्देश्य विद्यार्थियों के आत्मविश्वास एवं शैक्षिक उपलब्धि में धनात्मक सम्बन्ध को विकसित करना है। अनुसंधान कार्य के परिणाम भावी नीति निर्धारण की आधारशिला बनते है। व्यक्ति विगत अनुभवों से सीखता है तथा उसके अनुरूप कार्य करता है। अतीत के अनुभव व्यक्ति के वर्तमान और भावी समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त करते हैं एवं नीति निर्धारण का निर्णय लेने में सहायक बनते हैं। प्रस्तुत शोध अध्ययन अध्यापकों का ध्यान इस ओर इंगित करता है कि वे विद्यार्थियों की व्यक्तिगत व शैक्षिक समस्याओं को समझ कर उन्हें दूर करने का यथा संभव प्रयास कर अभिप्रेरित करें व विद्यार्थियों में निम्न आत्मविश्वास, एवं निम्न शैक्षिक उपलब्धि के कारणों को जानकर उन्हें दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिए। प्रस्तुत शोध अध्ययन विद्यार्थियों के लिए भी उपादेयता रखता है। विभिन्न आत्मविश्वास वाले विद्यार्थी मेहनत करके अच्छी शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त कर सकते हैं। विद्यार्थी समय समय पर विद्यालय में आयोजित पाठ्य सहगामी क्रियाओं में भाग लेकर सहभागिता एवं उत्तरदायित्व के गुणों को विकसित कर सकते हैं। प्रस्तुत शोध अध्ययन अभिभावकों के लिए विशेष रुप से उपयोगी है। अभिभावकों को चाहिए कि वे अपने पाल्यों की मुक्त कंठ से प्रशंसा करें एवं उनमें स्वस्थ प्रतियोगिता व आत्मविश्वास को विकसित करें जिससे उन में तनाव प्रबंधन की क्षमता विकसित हो और सफलता प्राप्ति के निर्धारक तत्व आत्मविश्वास एवं शैक्षिक उपलब्धि का विकास हो सके।

संदर्भ-सूची

1. अग्निहोत्री, आर. (1987), अग्निहोत्री, आर. (1987), 'मैनुअल फॉर अग्निहोत्री सेल्फ कॉन्फिडन्स इन्वेंन्टरी' आगरा नैशनल साइकलॉजिकल कॉरपोरेशन

2. भूषण, एस. 'योग निद्रा एज इन्टरवेनर टु प्रमोट सेल्फ कॉनफिडन्स अंमग टीनेजर्स' इन्डियन जनरल ऑफ साइकोमेटरी एन्ड एजुकेश्ने,(2006) 37(1): 11-16, उद्धृत द कोस्ट ऑफ गुड फॉचून वेन पॉजटिव लाइफ इवेंटस प्रडयूस नेगटिव् हेल्थ कॉन्सिक्वन्सेज, जनरल ऑफ पस 'नैलटि एन्ड सोशल साइ' कॉलजि 57, 103. 110।
3. भूषण, एस..'योग निद्रा एज इन्टरवेनर टु प्रमोट सेल्फ कॉनफिडन्स अंमग टीनेजर्स' इन्डियन जनरल ऑफ साइकोमेटरी एन्ड एजुकेश्ने,(2006) 37(1): 11-16, उद्धृत मैन्युअल फॉर अग्निहोत्रीज सेल्फ कान्फिडनस इन्वेंटरी आगरा: नेशनल साइक' लॉजिकल कॉपरेशन।
4. अग्निहोत्री, आर. (1987), अग्निहोत्री, आर. (1987), 'मैनुअल फॉर अग्निहोत्री सेल्फ कॉन्फिडन्स इन्वेंन्टरी' आगरा नैशनल साइकलॉजिकल कॉरपोरेशन
5. बसवाना, एम. (1971), 'ए स्टडि ऑफ सेल्फ कॉन्फिडन्स एज एन एट्रिव्यूट ऑफ सेल्फ कॉन्सेप्ट' पीएचडी साइकलॉजि, एस.वी. यूनिवर्सिटी 1971, थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन्, 1978-83, वॉल्यूम पृष्ठ 328 (416)।
6. फर्नान्डस, एल. (1984),' ए स्टडि ऑफ द इफैक्ट ऑफ गाइडन्स एन्ड काडन्सलिंग ऑन द एक'डेमिक एचीवमेंट ऑफ अन्डरएचीविंग प्रिडॉलसेन्ट एन्ड एड'लेस्न्स गर्ल्सं' पीएच.डी. एजुकेशन् मैसूर युनिवर्सिटी, 1984 फोर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन्, 1983-88 वॉल्यूम. पृष्ठ 531 (591)।
7. सक्सेना वन्दना (1988) 'इम्पैक्ट ऑफ फैमिली रिलेशनशिप ऑन सेल्फ कन्फिडन्स एण्ड एकडेमिक अचीवमेंट ऑफ हाई स्कूल स्टयूडेन्टस 'एम.बी. बुच, फिफ्थ सर्वे ऑफ एजूकेशनल रिसर्च एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, वाल्यूम 2, पृ. 1914 ।
8. भूषण, सिद्वार्थ (2006),'योग निद्रा एज इन्टरवेनर सेल्फ कॉन्फिडन्स अमंग टीनेजर्स' इन्डियन जरनल ऑफ साइकोमेट्री एन्ड एजुकेशन्, 2006, 37 (1): 11-16 आई.एस.एस.एन. 0378-1003।
9. कौर, टी. एवं मेहता, एम. (2007),'कम्पैरटिव स्टडि ऑफ द लैवल ऑफ एचीवमेंट मोटि'वेशन, सेल्फ कॉन्फिडन्स एन्ड अ'सर्टिवनैस अमंग एड'लेसन्स गर्ल्स' इन्डियन जनरल ऑफ साईकोमेट्री एन्ड एजुकेशन्, 2007, 38 (2) 166-169, आई.एस.एस.एन.:0378-1003।
10. धल, शिखा एवं ठुकराल, प्रवीन (2009), (2009), 'इन्'टेलिजन्स एज रिलेटेड टु सेल्फ कॉनफिडन्स एन्ड एक'डेमिक एचीवमेंट ऑफ स्कूल स्टूडेंट्स' जनरल ऑफ आल इन्डिया एसोसिएशन फॉर एजुकेशन्ल् रिसर्च, वाल. 21, नं. 2 दिसम्बर 2009, पृष्ठ 81-83 ।
11. देवगन, पी (2010), 'माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में आत्मनियंत्रण एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन' भारतीय आधुनिक शिक्षा, जुलाई 2010 31(1) 97-105 एन.सी.ई.आर.टी.आई.एस.एस.एन. 0972-5636,

महिला मानवाधिकारों के विकास में संयुक्त राष्ट्र संघः प्रावधान एवं प्रयास

अनीता मीणा

शोधार्थी, राजऋषि भर्तहरि मत्स्य विश्विद्यालय, अलवर (राजस्थान)

शोध सारांश

नारी की महिमा अपरंपार है। उसके रूप अनेक हैं। वह जन्म देती है और जीवन भी। इस तरह वह नियामक है। उसमें अनेक भाव निहित हैं। अपने हर रूप, हर भाव में वह सृजन, चेतना और शक्ति की प्रतीक है। वह ईश्वर की श्रेष्ठ कृति है। संसार के हर चर-अचर में सर्वश्रेष्ठ है। स्त्री संवेदना का विस्तार अनंत है। महिला को वो सभी मानव अधिकार प्राप्त हैं जो एक नागरिक होने के नाते मिलते हैं। विसंगति तब पैदा होती है जब संस्थागत आधार पर नहीं अपितु व्यवहारिक आधार पर सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में इन अधिकारों को प्रयोग करते समय महिला को भेदभाव पूर्ण परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। वस्तुतः महिलाओं के मानवाधिकारों का प्रश्न आंशिक रूप से सार्वभौमिक एंव आंशिक रूप से सांस्कृतिक है। यद्यपि महिला पुरुष से प्राकृतिक रूप से भिन्न है किंतु इस भिन्नता को असमानता में प्रकृति ने नहीं अपितु सामाजिक संरचनाओं ने परिणित किया है अतः यह असमानता, अधिकारहीनता, अन्याय की स्थिति परिवर्तनीय है, यदि इसकी उचित व्याख्या एवं प्रतिरोध किया जाए।

इस व्याख्या एवं प्रतिरोध का सुदृढ़ आधार है- महिला की मानव के रूप में स्वीकारोक्ति तथा उन सभी अधिकारों की वैधता जो मानव अधिकार के रूप में उसके साथ जुड़े हुए हैं। अतः यह निर्विवाद तथ्य होना चाहिए कि महिला अधिकारों का हनन मानव अधिकारों का हनन है, परंतु ऐसा नहीं है। इस सामान्य, स्वाभाविक, सतही तौर पर निर्विवाद वक्तव्य के लिए कानूनी दर्जा हासिल करने के लिए भी महिला आंदोलनों को लंबे संघर्ष की आवश्यकता पड़ी।

मूल शब्द - स्वायत्तता, संगठनात्मक, अन्तर्निहित, सार्वभौमिकरण, वस्तुनिष्ठता, सृजनात्मक दीर्घकालिक, आदर्शात्मक, लौकिकीकरण, उपनिवेशवाद।

परिचय - विश्व पटल पर आज राजनीतिक उपनिवेशवाद का पटाक्षेप हो रहा है और उसके स्थान पर आर्थिक उपनिवेशवाद अपनी जड़ें मजबूत कर रहा है। तब प्रश्न उठता है कि महिलाओं को अधिकार कैसे और कब दिये जायें तथा कितनी हद तक दिये जाएं? इस पर भी मतैक्य की स्थिति नहीं की है। पित्रसत्तात्मक समाज की अवधारणा ने मानव जीवन को दो ध्रुवों में बाँट कर स्त्री व पुरुष को परस्पर पूरक होने का अवसर न देकर स्त्री को पुरुष का अनुगामी घोषित किया। मानव सभ्यता के विकास, साम्यवाद एवं समाजवाद की अवधारणा की व्यापक स्वीकृति, शिक्षा एवं विज्ञान के प्रचार-प्रसार के द्वारा 20वीं शताब्दी मे महिलाओं की समानता तथा भूमिका के मुद्दे पर जागृति के स्वर लगभग प्रत्येक देश में उठे हैं।

धर्म, राजनीति व सत्ता सभी महत्त्वपूर्ण बुनियादी पक्षों को इस सदी में यह स्वीकारना पड़ा है कि महिला का स्थान पुरुष के समान है और कोई भी ऐसा अधिकार, कानून या विधान नहीं हो सकता जो लिंग-भेद के आधार पर स्त्रियों को द्वितीय श्रेणी का नागरिक करार दे सके। महिलाओं के मानव अधिकार अभिन्न और अविभाज्य है क्योंकि महिलाएँ, महिलाएँ होने के नाते और मानव होने के नाते, विशिष्ट रूप में और समान तौर से संसार की विभिन्न जनसंख्या का अंग होने के नाते हर क्षेत्र के मानवाधिकार के मुद्दों से प्रभावित होती हैं। इनको मानव अधिकार के मुद्दों से पृथक, विभाजित या अलग नहीं किया जा सकता।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपनी स्थापना के समय से ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला मुक्ति एवं महिला सशक्तिकरण हेतु किए गए प्रयासों को अधिक मजबूती प्रदान की है। महिलाओं द्वारा मौलिक स्वतंत्रता की पूर्णता संयुक्त राष्ट्र की प्राथमिकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवाधिकार घोषणा पत्र में अधिकार संरक्षण और संवर्धन के उद्देश्यों को स्पष्ट कर स्त्री- पुरुष दोनों को एक पूर्ण इकाई मानकर अग्रिम विकास का श्रीगणेश किया। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला मानवाधिकारों को विकसित करने एवं स्थापित करने में संयुक्त राष्ट्र संघ, समय-समय पर जारी किये गये अभिसमयों व घोषणाओं के अतिरिक्त धरातलीय स्तर पर विकसित किये गये संस्थानात्मक तन्त्रों के माध्यम से भी प्रयासरत है।

अध्ययन के उद्देश्य

- वैश्विक स्तर पर महिलाओं के मानवाधिकारों की वास्तविक स्थिति का आंकलन करना, जिसमें उनके विरूद्ध किए जा रहे अपराधों का तथ्यात्मक विश्लेषण कर उनके मानवाधिकार हनन की परिस्थितियों का अध्ययन करना।
- संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा महिलाओं के मानवाधिकार हनन को रोकने हेतु किए गए विधायी उपायों का अध्ययन करना।
- वैश्विक स्तर पर महिलाओं के मानवाधिकारों की वास्तविक स्थिति का आंकलन कर उनके कल्याण और उन्नयन हेतु सुझावों का अध्ययन करना।

उपलब्ध साहित्य की समीक्षा - डॉ. सुशील अग्रवाल ने पुस्तक 'स्टेट्स ऑफ वीमन' (1986) में लिखा है कि महिलाओं के हितों की रक्षा हेतु किए गए संवैधानिक प्रावधान समानता का भ्रम उत्पन्न करते हैं। भारतीय समाज में महिलाएँ अभी भी सम्मानजनक स्थान प्राप्त करने के लिए छटपटा रही हैं।

- डॉ. एस. मेहरताज बेगम ने 'ह्यूमन राइट्स इन इण्डिया-इश्यूज एण्ड पर्सपेक्टिव' (2000) में लिखा है कि वैश्वीकरण, उदारीकरण के दौर में मानवाधिकारों का क्रियान्वयन सम्भव है।
- सतीश कानिटकर ने "इण्टरनेशनल प्रोविजन्स ऑफ ह्यूमन राइट्स" (2000) में नये उभरते हुए नारीवादी आन्दोलन और सतत् विकास हेतु जारी आन्दोलन की पृष्ठभूमि में मानवाधिकारों की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण किया है।
- आर सी. पॉल ने 'प्रोटेक्शन ऑफ ह्यूमन राइट्स' (2000) में बताया है कि मानवाधिकारों की सुरक्षा राजनीतिक, दार्शनिक और कानूनी संदर्भों में एक मुख्य केन्द्र बिन्दु है। सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक संदर्भों में भी इसका विस्तृत भाग है, जिस पर अनेक घोषणाएँ और संवैधानिक सुरक्षात्मक प्रावधान आधारित है।
- अनुराधा कुमार ने 'ह्यूमन राइट्स (ग्लोबल पर्सपेक्टिव्स)' (2002) में कहा है कि विकास मानवाधिकारों का आधार है और विकास ही शांति के लिए सर्वाधिक सुरक्षित नींव है। उनके कार्य में मानवाधिकारों के प्रति दृष्टिकोण को व्यक्त किया है और उनके सभी तत्वों के प्रबल तीव्र वार्तालाप को उद्दीप्त किया है।
- एम.ए. अंसारी 'महिला और मानवाधिकार' (2002) में लिखते हैं कि नारी ने बहुत सहा है। पुरुष ने अपने मोह जाल में फंसाकर उसे सदा ही "शासिता" के रूप में रखा है। विडम्बना है कि इस महिला के रूप 'उत्सवाध्हर्षिता' के साथ पुरुष का व्यवहार अमानवीय ही रहा है। परन्तु अब चेतना के स्वर बदले हैं और नारी ने अपने अस्तित्व के अर्थ को समझा है।
- प्रकाश नारायण नाटाणी की पुस्तक 'मानवाधिकार और कर्तव्य' (2003) में मानवाधिकारों की प्राप्ति को कर्तव्यों के परिप्रेक्ष्य में वर्णित किया है। जिसमें व्यक्ति बनाम राज्य, अन्तर्राष्ट्रीय घोषणाएँ, सार्वभौम मानवाधिकार के बदलते परिदृश्य के साथ ही मानवाधिकार सम्बन्धी कई मुद्दों और उनकी क्रियान्विती का सुन्दर तरीके से वर्णन किया है।

शोध प्रविधिः- (अ) प्राथमिक स्त्रोत - अनुसंधानकर्ता द्वारा मानवाधिकारों की बदलते भारतीय परिवेश में स्थिति, आयोगों व संस्थाओं द्वारा महिलाओं के हित में उठाये गए कदम, वास्तविक स्थिति जानने के लिए साक्षात्कार के माध्यम से जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया।

(ब) द्वितीयक स्त्रोत - इस संदर्भ में विभिन्न प्रतिवेदनों, कानूनों, विभिन्न पुस्तकालयों, अप्रकाशित शोध ग्रन्थ, स्नातक, स्नातकोत्तर स्तर की पुस्तकों, विषय से सम्बन्धित पुस्तकों, नवीन व पुराने अधिनियम विषय सम्बन्धित विभिन्न पत्र पत्रिकाएँ आदि से उपलब्ध अध्ययन सामग्री के आधार पर विविध तथ्य एकत्रित किये गए ताकि प्राथमिक स्त्रोत के आधार पर प्राप्त सामग्री के संदर्भ में उनका विश्लेषण प्रस्तुत किया जा सके।

निष्कर्ष व सुझाव - उपरोक्त समस्त विधियों का समर्पित भाव से अध्ययन कर अन्तिम निष्कर्ष निकाले गए तथा सुधार हेतु सुझाव दिये गए।

प्राक्कल्पना - (1) मानवाधिकार मनुष्य का प्राकृतिक अधिकार है।

(2) संयुक्त राष्ट्र संघ महिलाओं के अधिकारों को विशेष संरक्षण प्रदान करता है।

(3) संयुक्त राष्ट्र संघ में महिलाओं के अधिकारों के लिए विशेष प्रस्ताव पारित किए गए हैं।

(4) समाज के सशक्तिकरण के लिए महिलाओं की समान भागीदारी आवश्यक है।

(5) सतत् विकास और प्रजातन्त्र की सफलता के लिए महिलाओं के मानवाधिकार एक अपरिहार्य शर्त है।

शोध से प्राप्त परिणाम

वैश्विक स्तर पर महिला अधिकारों से संबंधित विभिन्न प्रावधान - संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपनी स्थापना के समय से ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला मुक्ति एवं महिला सशक्तिकरण हेतु किए गए प्रयासों को अधिक मजबूती प्रदान की है। महिलाओं द्वारा मौलिक स्वतंत्रता की पूर्णता संयुक्त राष्ट्र की प्राथमिकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवाधिकार घोषणा पत्र में अधिकार संरक्षण और संवर्धन के उद्देश्यों को स्पष्ट कर स्त्री- पुरुष दोनों को एक पूर्ण इकाई मानकर अग्रिम विकास का श्रीगणेश किया। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला मानवाधिकारों को विकसित करने एवं स्थापित करने में संयुक्त राष्ट्र संघ, समय-समय पर जारी किये गये अभिसमयों व घोषणाओं के अतिरिक्त धरातलीय स्तर पर विकसित किये गये संस्थानात्मक तन्त्रों के माध्यम से भी प्रयासरत है -

1. अभिसमय तथा घोषणाएँ - महिलाओं के अधिकारों से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय कानूनों एवं संधियों द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ ने समाज में पुरुष व महिलाओं के बीच में समानता के विकास में सहायता की है। समझौते या अंतर्राष्ट्रीय सधियाँ या अभिसमय, जो संयुक्त राष्ट्र द्वारा किए गए हैं, उन्हें उन राष्ट्रों द्वारा पालन करना अनिवार्य है, जिन्होंने इन संधियों या समझौतों को अपनी मान्यता प्रदान की है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा समय-समय पर किए गए अभिसमय व घोषणाएँ इस प्रकार है -

महिला हैसियत आयोग 1946 - यह सत्य है कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर 1945 से प्रारम्भ मानवधिकार एवं महिला आन्दोलनों ने लिंग-भेदभाव एवं असमानता के प्रश्नों को अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय मंचों पर राजनीतिक मुद्दों के रूप में प्रस्थापित किया। इस प्रक्रिया में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार घोषणा से पूर्व 1946 में महिला प्रस्थिति के अध्ययन के लिए गठित समिति की भूमिका महत्वपूर्ण रही, जिसको "कमीशन ऑन द स्टेटस ऑफ वूमेन" का नाम दिया गया। आयोग ने समस्त विश्व में महिलाओं की स्थिति के संबंध में आंकड़े एकत्रित किए तथा सार्वभौम मानव अधिकार उद्घोषणा का मसौदा तैयार करने में मदद की। 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की, जिसे विश्व के अधिकांश देशों द्वारा स्वीकार किया जा चुका है। इस घोषणा में सभी प्रकार के लैंगिक भेदभाव समाप्त करने का आह्वान किया गया। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर की प्रस्तावना में कहा गया है कि "हम संयुक्त राष्ट्र के लोग मूलभूत मानवाधिकारों में मानव की गरिमा और महत्व व मूल्य में तथा स्त्री पुरुष के समान अधिकारों में आस्था व्यक्त करते हैं"।

महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों पर अभिसमय (1952) - संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 20 दिसम्बर, 1952 को श्महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों पर अभिसमयश् हस्ताक्षर एवं पुष्टिकरण के लिए प्रस्तुत किया गया। यह अभिसमय 7 जुलाई, 1954 को क्रियान्वित हुआ। इस अभिसमय के माध्यम से सदस्य राष्ट्रों द्वारा महिलाओं को बिना किसी भेदभाव के पुरुषों के समान चुनाव में वोट देने, राष्ट्रीय कानून द्वारा स्थापित सरकारी संरचनाओं का चुनाव लड़ने तथा राष्ट्रीय कानून द्वारा स्थापित सरकारी दफ्तरों एवं सरकारी कार्यों में भागीदारी का अधिकार दिया गया। विवाहित महिलाओं की राष्ट्रीयता से संबंधित अभिसमय(1957) - संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा न्यूयार्क में 26 जनवरी, 1957 में "विवाहित महिलाओं की राष्ट्रीयता से संबंधित अभिसमय" हस्ताक्षर एवं पुष्टिकरण के लिए प्रस्तुत किया गया। यह अभिसमय 11 अगस्त, 1958 से क्रियान्वित हुआ तथा भारत ने 15 मई, 1957 को इस अभिसमय पर हस्ताक्षर किए। इसके अंतर्गत विवाह के पश्चात् भी पत्नी को अपनी नागरिकता बनाए रखने का अधिकार दिया गया है।

विवाह की सहमति, विवाह की न्यूनतम आयु एवं विवाह के पंजीकरण पर अभिसमय (1962) - महिलाओं के प्रति बाल विवाह जैसी कुरीतियों का निराकरण करने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 7 नवम्बर, 1962 को विवाह की सहमति, विवाह की न्यूनतम आयु एवं विवाह के पंजीकरण से संबंधित अभिसमय हस्ताक्षर एवं पुष्टिकरण के लिए प्रस्तुत किया गया। इस अभिसमय का क्रियान्वयन 9 दिसम्बर, 1964 को हुआ। यह समझौता राज्य पक्षकारों को विवाह की न्यूनतम आयु निश्चित करने का आह्वान करता है।

आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों की घोषणा (1966) - 16 दिसम्बर, 1966 की आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों की घोषणा द्वारा महिलाओं के पक्ष में रोजगार, समान कार्य के लिए समान वेतन, सामाजिक सुरक्षा तथा नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा का अधिकार सुनिश्चित किया गया है।

नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों की घोषणा (1966) - 16 दिसम्बर, 1966 की नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों की घोषणा के अंतर्गत भी महिलाओं के लिए जीवन का प्राकृतिक अधिकार, यातना के अमानवीय व्यवहार से संरक्षण व निजत्व के संरक्षण अधिकार को प्रदत्त किया जाना विधिक व्यवस्था का एक अंग घोषित किया गया।

महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभावों की समाप्ति की घोषणा (1967) - मूलभूत मानव अधिकारों, मानवीय गरिमा, मनुष्य के गुणों एवं स्त्री पुरुष के समान अधिकारों में विश्वास अभिव्यक्त करते हुए 7 दिसम्बर, 1967 को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समाप्ति की घोषणा की गई।

युद्ध एवं सैन्य आपदा के समय महिलाओं एवं बच्चों की सुरक्षा से संबंधित उद्घोषणा, 1974 - संयुक्त राष्ट्र महासभा के द्वारा 14 दिसम्बर, 1974 को युद्ध एवं सैन्य आपदा के समय महिलाओं एवं बच्चों की सुरक्षा से संबंधित उद्घोषणा की गई। जिसमें कहा गया कि "आपातकाल एवं सशक्त संघर्ष के दौरान महिलाओं व बच्चों को पर्याप्त सुरक्षा दी जाएगी।

महिलाओं की स्थिति से सम्बद्ध आयोग ने 1974 की अपनी रिपोर्ट में महिलाओं के साथ भेदभाव का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है कि "लिंग के आधार पर विशिष्टता प्रदान करना, वंचित करना या प्रतिबंध लगाना जिसकी परिणति या प्रभाव मानव अधिकारों को नकारने या उनका उपभोग करने से रोकने में हो तथा राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा सार्वजनिक जीवन के किसी अन्य क्षेत्र में मूलभूत स्वतंत्रताओं के हनन के रूप में हो"।

महिलाओं के प्रति सभी प्रकार के भेदभाव समाप्त करने संबंधी अभिसमय (1979) - महिलाओं के प्रति सभी प्रकार के भेदभावों को समाप्त करने के उद्देश्य से 18 दिसम्बर, 1979 को इस आशय का अभिसमय संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा प्रस्तुत किया गया। यह 03 सितम्बर, 1981 से क्रियान्वित हुआ।

महिला मानवाधिकारों के संदर्भ में किए गए विश्व सम्मेलन

विश्व महिला सम्मेलन - सम्पूर्ण विश्व में महिला उत्थान व विकास के प्रति चेतना जगाने के लिए संयुक्त राष्ट्र की महासभा में 18 दिसम्बर 1972 की बैठक में वर्ष 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित करने का निर्णय लिया।

इसके तीन उद्देश्य स्पष्ट किये गए -

(1) विश्व शांति स्थापना की दिशा में महिला सहयोग प्राप्त करना।

(2) पुरुष और महिलाओं को समानता का दर्जा देना।

(3) विकास कार्यों में स्त्रियों का योगदान।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं के समुचित विकास पर संयुक्त राष्ट्र ने विश्व महिला सम्मेलन आयोजित करने का निर्णय किया जिससे कि महिलायें स्वयं के विकास के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त कर सकें तथा नीति निर्धारण में उनके विचारों को प्रमुखता दी जा सके। इस परम्परा में अभी तक निम्न विश्व महिला सम्मेलन आयोजित हो चुके हैं।

1. प्रथम विश्व महिला सम्मेलन 1975 मैक्सिको
2. दूसरा विश्व महिला सम्मेलन 1980 कोपेनहेगन
3. तीसरा विश्व महिला सम्मेलन 1985 नैरोबी
4. चौथा विश्व महिला सम्मेलन 1995 बीजिंग (पेइचिंग)

1. मैक्सिको सम्मेलन वर्ष - महिला कल्याण हेतु प्रथम प्रयास के रूप में 19 जून से 2 जुलाई 1975 तक मैक्सिको में प्रथम अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन संयुक्त राष्ट्र ने आयोजित किया। इस सम्मेलन में संघ के 133 सदस्य राज्यों से प्रतिनिधि मंडलों ने हिस्सा लिया तथा 6000 गैर सरकारी संगठन के प्रतिनिधि भी

एकत्रित हुए। सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र संघ ने महिला कल्याण हेतु 1975 से 1984 तक के दशक को महिला दशक घोषित किया गया। इसके तहत दो एजेन्सी बनाने का निर्णय लिया गया–

(अ) अन्तर्राष्ट्रीय शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान – महिलाओं के उत्थान हेतु 1975 में महासभा द्वारा इसकी सिफारिश की। इसका प्रमुख उद्देश्य महिलाओं से संबंधित समस्याओं का शोध करना था।

(ब) संयुक्त राष्ट्रीय विकास फंड – इसकी स्थापना 1976 में महासभा द्वारा की गई। इसका प्रमुख उद्देश्य महिलाओं को विकास कार्यक्रम में भागीदारी बनाना था।

सम्मेलन की समाप्ति पर विश्व कार्य योजना बनाई गई जिसे मैक्सिको उद्घोषणा के नाम से जाना जाता है, जिसमें निम्नलिखित बातों पर बल दिया गया –

1. स्त्री शिक्षा पर बल
2. लिंग भेदभाव मिटाना
3. महिलाओं के लिये रोजगार के अवसर बढ़ाना
4. नीति निर्धारण में महिलाओं को शामिल करना एवं समान राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, नागरिक अधिकार देने की घोषणा करना शामिल है।

2. कोपेनहेगन सम्मेलन वर्ष 1980 – द्वितीय विश्व महिला सम्मेलन कोपेनहेगन में 14 जुलाई से 31 जुलाई 1980 तक आयोजित हुआ। इस सम्मेलन में निम्न लक्ष्य रखे गये –

- राजनीति व निर्णय प्रक्रिया में महिलाओं को कानूनन भागीदारी।
- महिलाओं के लिये ऐसे कार्यालय कक्ष या आयोग बनाना जो महिलाओं से संबंधित है।
- सरकारी और गैर सरकारी संगठन में सहयोग स्थापित करना।
- सामाजिक और आर्थिक विकास के लिये सभी को मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य संबंधी सेवाएं उपलब्ध कराना।
- शिक्षा और प्रशिक्षण में सभी की समानता का दर्जा देना।
- रोजगार के संदर्भ में समानता।

3. नैरोबी सम्मेलन – नैरोबी में 1985 में 15 से 26 जुलाई के बीच तीसरा विश्व महिला सम्मेलन आयोजित हुआ। इस सम्मेलन में महिला विकास के लिये प्रगतिशील रणनीति तैयार की गई तथा मैक्सिको कार्य योजना में सुधार किया गया। विभिन्न कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर समानता स्थापित करना प्रमुख रणनीति के रूप में शामिल किया गया। तथा प्रत्येक देश को अपनी विकासात्मक नीतियों के अनुसार अपनी प्राथमिकताएं तय करने का अधिकार दिया गया।

4. बीजिंग सम्मेलन – बीजिंग में 1995 में 4 से 15 सितम्बर तक चौथा विश्व महिला सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में सरकारी अधिकारियों के अतिरिक्त गैर सरकारी संगठनों ने भी भाग लिया। इसमें संयुक्त राष्ट्र संघ के 185 सदस्य देशों ने भाग लिया। इसके मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित निर्धारित किये गये –

- महिलाओं को समर्थ बनाने के लिये योजनाएँ बनाना।
- प्रतिनिधि मण्डलों की प्रगतिशील उपलब्धियों का पुनरावलोकन करना।
- ऐसी कार्य योजना की रूपरेखा बनाना जिससे प्रगतिशील नीतियों का क्रियान्वयन किया जा सके।
- 21वीं शताब्दी की वैज्ञानिक, तकनीकी, आर्थिक और सामाजिक विकास संबंधी आवश्यकताओं का सामना करने के लिये साधन उपलब्ध कराना।

विश्व मानवाधिकार सम्मेलन 1993 – यह महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की समाप्ति पर घोषणा पत्र है। 1993 में वियना में हुए विश्व मानवाधिकार सम्मेलन में उन सभी मानवाधिकारों की पुनर्पुष्टि की, जो 1948 के घोषणा पत्र में शामिल है। इसके अन्तर्गत कहा गया कि महिलाओं और बच्चों के मानव अधिकार सार्वभौमिक मानव अधिकारों का एक अभिन्न, आंतरिक और अविभाज्य अंग है। राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर राजनीतिक, नागरिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में महिलाओं की पूर्ण और समान भागीदारी और स्त्री-पुरुष के आधार पर हर प्रकार के भेदभाव का उन्मूलन, अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के प्राथमिक उद्देश्य हैं।

1994 में काहिरा में हुए अन्तर्राष्ट्रीय जनसंख्या और विकास सम्मेलन में महिलाओं के संतानोत्पत्ति अधिकार और विकास के अधिकार की पुनर्पुष्टि की गई।

महिला मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता हेतु विश्व में 1990 से 2000 तक का दशक महिला दशक के रूप में मनाया गया।

संस्थानात्मक तंत्र – संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा विभिन्न संस्थानात्मक तंत्र विकसित किए गए जिसके परिणामस्वरूप महिला अधिकारिता एवं महिला विकास के लिए विभिन्न अभिकरणों की स्थापना की गई जो अपने क्षेत्र में इस आशय के कार्य कर रहे हैं।

यूनिसेफ – 1946 में युद्धोपरांत बच्चों को राहत देने के लिए स्थापित की गई संस्था यूनिसेफ विकासशील देशों में बच्चों एवं माताओं के जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए सहायता पहुँचाती है। यह संस्था युद्ध, हिंसा और शोषण की शिकार स्त्रियों एवं बच्चों की पीड़ा घटाने के लिए शिक्षा, सलाह – मशविरा और देखभाल उपलब्ध कराने वाली विशेष परियोजनाओं को समर्थन देती है।

यूनाइटेड नेशंस एजेंसी ऑफ पॉपुलेशन फण्ड – यह संयुक्त राष्ट्र की एक ऐसी एजेंसी है जो जनसंख्या संबंधी ऑपरेशनल गतिविधियों का नेतृत्व करता है। यह अपने बुनियादी कार्यक्रम में स्त्रियों के प्रजनन स्वास्थ्य जिसमें परिवार नियोजन, यौन स्वास्थ्य तथा सुरक्षित मातृत्व शामिल है, को प्राप्त करने में मदद

करता है । यून.एन. ए. पी. एफ. जनसंख्या एवं विकास पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन (काहिरा 1994) में पुष्ट एवं 1999 में वृहत्सभा के विशेष सत्र द्वारा समीक्षित कार्यक्रम को आगे बढ़ाने संयुक्त राष्ट्र का प्रमुख संगठन है।

महिलाओं की प्रस्थिति संबंधी आयोग - 1946 में संयुक्त राष्ट्र की आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् द्वारा महिलाओं की प्रस्थिति पर एक आयोग की स्थापना की गई। यह आयोग विश्व में पुरुष एवं महिलाओं के बीच समानता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से स्थापित किया गया है। यह आयोग महिलाओं की समस्याओं को संयुक्त राष्ट्र की विभिन्न एजेंसियों के सामने लाने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव उन्मूलन समिति - महिलाओं के विरूद्ध होने वाले भेदभाव को दूर करने के उद्देश्य से 1982 में एक समिति की स्थापना की गई जिसका मुख्य उद्देश्य 1979 में महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव को समाप्त करने के लिए किए गए समझौते की शर्तों को लागू करवाना है।

महिलाओं के निमित्त संयुक्त राष्ट्र विकास निधि - यह एक स्वैच्छिक निधि है जो महिलाओं के मानवाधिकारों उनके आर्थिक तथा राजनीतिक सबलीकरण और लैंगिक समानता को प्रोत्साहित करने वाले नये ढंग के कार्यक्रमों को समर्थन एवं तकनीकी सहायता देती है ।

1976 में यूनिफेम की स्थापना संयुक्त राष्ट्र के महासभा द्वारा महिलाओं के विकास कोष के लिए की गई, ताकि महिलाओं के विकास के लिए बनी योजनाओं को सीधे तौर पर सहायता प्रदान की जा सके। 1985 में इस कोष को यू.एन.डी. पी. (संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम) के साथ संयुक्त कर इसका नाम यूनिफेम कर दिया गया, जिसे स्वायत्तता प्रदान कर दी गई।

स्त्रियों की प्रगति के निमित्त अंतर्राष्ट्रीय शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान - इसकी स्थापना महासभा द्वारा 1976 में प्रथम महिला सम्मेलन की सिफारिश पर की गई। यह एक संयुक्त राष्ट्र के तहत स्वायत्त निकाय है, जिसका मुख्य कार्य पूरे विश्व में रिसर्च, प्रशिक्षण तथा सूचना संबंधी गतिविधियाँ करना है जिससे महिलाओं को विकास का प्रमुख अभिकर्ता बनाया जा सके।

महिलाओं का विकास विभाग (Divison for Development of Women) - महिलाओं का विकास विभाग महिलाओं के ऊपर हो रहे सम्मेलनों के सचिवालय के रूप में कार्य करता है। यह विभाग नीतियों पर शोध करता है। यह देखता है कि सम्मेलन में महिलाओं के ऊपर लिए गए निर्णय ठीक तरह से कार्यान्वित हो रहे हैं अथवा नहीं। यह आयोग उन गैर-सरकारी संगठन, राष्ट्रीय संस्थाएँ तथा अकादमियों से सदैव सम्पर्क बनाए रखता है जो महिलाओं के उद्धार तथा विकास के लिए प्रयासरत् हैं।

मानवाधिकार परिषद् - 15 मार्च, 2006 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने एक नई मानवाधिकार परिषद् के गठन का प्रस्ताव पारित किया। इस 47 सदस्यीय मानवाधिकार परिषद् ने 53 सदस्यीय मानवाधिकार आयोग का स्थान लिया है। उल्लेखनीय है कि नई परिषद् स्थायी है तथा प्रत्यक्ष रूप से महासभा के अधीनस्थ है। यह कहीं भी एवं किसी भी देश में मानवाधिकारों के उल्लंघन का गहन विश्लेषण कर सकेगी। इसका कार्य सार्वभौमिकरण, निष्पक्षता, वस्तुनिष्ठता एवं सृजनात्मक अंतर्राष्ट्रीय संवाद के सिद्धांतों (सिद्धान्त) के अंतर्गत (अन्तर्गत) निर्देशित होगा इसे समय पर सभी एजेंसियों एवं निकायों को अपैनी रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होगी ताकि मानवाधिकार उल्लंघन की व्यवस्थापरक ढंग से रोका जा सके।

यू.एन. वीमेन' (UN Women) - वर्ष 2010 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 'यू.एन. वीमेन' (UN Women) का गठन किया गया था। यह संस्था महिलाओं की सुरक्षा और सशक्तीकरण के क्षेत्र में कार्य करती है। शांति और सुरक्षा के मामले में अपने काम के तहत यूएन वुमैन शांति रक्षकों को संघर्ष से जुड़ी यौन हिंसा का पता लगाने और उसे रोकने का प्रशिक्षण देता है। इसके तहत संयुक्त राष्ट्र तंत्र के 4 अलग-अलग प्रभागों के कार्यों को संयुक्त रूप से संचालित किया जाता है -

महिलाओं की उन्नति के लिये प्रभाग (Division for the Advancement of Women & DAW)

महिलाओं की उन्नति के लिये अंतर्राष्ट्रीय अनुसंधान और प्रशिक्षण संस्थान (International Research and Training Institute for the Advancement of Women & INSTRAW)

लैंगिक मुद्दों और महिलाओं की उन्नति पर विशेष सलाहकार कार्यालय (Office of the Special Adviser on Gender Issues and Advancement of Women & OSAGI)

महिलाओं के लिये संयुक्त राष्ट्र विकास कोष (United Nations Development Fund for Women & UNIFEM)

'यू.एन. वीमेन' (UN Women) की एक नई रिपोर्ट के अनुसार, जलवायु आपातकाल, संघर्ष और बहिष्कार की राजनीति के बढ़ते चलन ने भविष्य में लैंगिक समानता की प्रगति को खतरे में डाल दिया है।

International Women's Day - 1908 में न्यूयार्क में कपड़ा श्रमिकों ने हड़ताल कर दी थी। उनके समर्थन में महिलाएं खुलकर सामने आई थीं। उन्हीं के सम्मान में 28 फरवरी 1909 के दिन अमेरिका में पहली बार सोशलिस्ट पार्टी के आग्रह पर महिला दिवस मनाया गया था। 1910 में महिलाओं के ऑफिस की नेता कालरा जेटकीन ने जर्मनी में इंटरनेशनल वूमंस डे मनाए जाने की मांग उठाई थी। इस महिला का सुझाव था कि दुनिया के हर देश को एक दिन महिलाओं को आगे बढ़ाने के लिए मनाना चाहिये। अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस को सबसे पहली बार वर्ष 1911 में आधिकारिक रूप से पहचान मिली थी। इसके बाद वर्ष 1975 में न्दपजमक छंजपवदे यूनाइटेड नेशन्स (संयुक्त राष्ट्र) ने अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस 8 मार्च को मनाना शुरू किया। तभी से प्रत्येक वर्ष 8 मार्च को अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस मनाया जाता है।

अंतरराष्ट्रीय महिला हिंसा उन्मूलन दिवस - (International Women's Violence Eradication Day) 25 नवंबर को मनाया जाता है। यह दिवस पूरे विश्व मे महिलाओं के खिलाफ हो रही हिंसा को रोकने के लिए मनाया जाता है। यह अभियान महिलाओं के खिलाफ हिंसा को समाप्त करने के लिए एकजुट होने के अभियान का एक हिस्सा है।

चुनौतिया - उपर्युक्त उपबंधों और अधिनियमों के बावजूद महिला मानवाधिकारों का हनन निरंतर जारी है जो कि भारतीय राष्ट्र एवं समाज के समक्ष प्रश्नचिह्न खड़ा करता है। इसका कारण हमारे पुरुष प्रधान समाज की संरचना है, जिसने समस्त जनमानस को कुप्रभावित कर रखा है। स्वयं स्त्रियाँ भी अपनी पिछड़ी संस्कार जनित मानसिकता से उबर नहीं पायी हैं। पूँजीवाद से सत्तावाद तथा सत्तावाद, सम्पत्ति विलासितावाद, भोगवाद की ओर बढ़ रहा है। वहाँ नैतिक आदर्शात्मक मूल्यों का इस वर्तमान समाज में कोई स्थान नहीं है। इस अर्थयुगीन समाज में नारी अस्तित्व की एक विडम्बना है। आतंकित होने के लिये स्त्री एक कमजोर प्राणी का नाम है। महिलाओं के अधिकारों के हनन के विभिन्न तरीके है जिसमें महिलाओं के साथ-साथ मासूम और अबोध बालिकाएँ भी सदियों से पुरुषों द्वारा यौन उत्पीड़न की शिकार है।

निष्कर्ष - एक मानव होने के नाते महिला के भी वही अधिकार हैं, जो कि पुरुष के, यदि इस अवधारणा को विश्व स्तर पर पूर्ण रूप से स्वीकृति प्राप्त हो जाए तो आज महिला सशक्तिकरण के जो प्रयास विश्व स्तर पर चल रहे हैं उनसे संबंधित समस्याओं का स्वतः हो समाधान हो जाएगा। किंतु जहाँ मानव अधिकारों की अपरिहार्यता पर दीर्घकालिक संघर्ष के बावजूद आम सहमति संभव हो सकी है, वहीं अधिकारों की आवश्यकता, प्रकृति और उनकी सही रूप में क्रियान्विति के विविध पक्षों पर आज भी विवाद बना हुआ है। तथापि आज वर्तमान समय में विश्व में महिलाओं के समुचित विकास के लिये अनुकूल वातावरण बनता जा रहा है। इसी आधार पर 21वीं शताब्दी को महिलाओं की शताब्दी के नाम से भी पुकारा जाने लगा है। चाहे विकसित देश हो या विकासशील महिलाएं पुरुषों के साथ कदम मिलाकर अपनी अन्तर्निहित क्षमता व आत्मविश्वास और साहस के साथ पुरुष प्रधान समाज में अपने अस्तित्व हेतु सफल प्रयास कर रही है। महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति में सुधार करने के लिए विश्व में सभी जगह प्रयास किये जा रहे हैं।

वस्तुतः महिला अधिकारों का प्रश्न जितना कानूनी एवं राजनीतिक है उतना ही सामाजिक परिवेश, सांस्कृतिक परम्पराओं तथा आर्थिक संरचनाओं द्वारा निर्धारित एवं प्रभावित है। महिलाओं की अपनी स्वयं की मनोवृत्तियों में भी परिवर्तन अपेक्षित है। यह परिवर्तन शिक्षा एवं आर्थिक स्वायत्तता, चेतना एवं संगठनात्मक प्रयासों द्वारा सम्भव है। महिला सशक्तिकरण का लक्ष्य विकास का उतरोत्तर सोपान है। आधुनिक युग में शिक्षा व्यक्तित्व को विकसित करने का एक माध्यम है, अधिकार उसकी परिस्थितियाँ हैं, सशक्तिकरण उसका रास्ता है एवं समाज विकास में नारी की पुनः स्थापना उसकी मंजिल है।

सुझाव - मानव अधिकारों को हम कागजों एवं गोष्ठियों तक ही सीमित न रख कर कुछ यथार्थवादी बनाएँ। महिलाओं में मानव अधिकारों के प्रति चेतना जाग्रत कर कानूनी अधिकारों की जानकारी दी जाए। संविधान में नारी प्रदत्त अधिकारों, कानूनों, अधिनियमों की सूचना, विज्ञापनों, पुस्तकों, टेलिविजन, पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकालयों के माध्यम से जन-जन को पहुंचाई जाए। मानव अधिकारों में प्रमाण-पत्र पाठ्यक्रम, डिप्लोमा पाठ्यक्रम आदि वर्तमान में विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा चलाये जा रहे हैं लेकिन महिला मानव अधिकार से सम्बंधित पृथक से कोई पाठ्यक्रम नहीं है। अतः ऐसे अधिकारों को नवीन पाठ्यक्रम के रूप में जोड़ा जाना आवश्यक है।

समाज के सदस्यों को अपनी मानसिकता में परिवर्तन करना होगा कि स्त्री-पुरुष दोनों की समाज के अत्यावश्यक अंग हैं, अतः अपनी संकीर्ण विचारधारा में बदलाव करना होगा। महिलाओं को जागरूक तथा आत्मविश्वासी होना होगा तभी महिला मानवाधिकार सार्थक होंगे अन्यथा इनका कोई औचित्य नहीं रह जाएगा। यदि उपर्युक्त प्रावधानों के साथ-साथ इन सुझाओं पर भी गौर किया जाए तो महिलाओं के मानवाधिकारों का सही रूप में संरक्षण हो सकता है तथा महिलाएं समाज का अभिन्न अंग बनकर सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में अपना विशिष्ट योगदान दे सकती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अग्रवाल, अमिता: 'ह्यूमन राइट्स एण्ड सर्वाइवल ऑफ सिविलाइजेशन' कलिंग पब्लिकेशंस, दिल्ली (2004)

अंसारी, एम. ए.: 'महिला और मानवाधिकार' ज्योति प्रकाशन, जयपुर (2000)

आचार्य, नन्दकिशोर: 'मानवाधिकार के तकाजे' वागदेवी प्रकाशन, बीकानेर (2003)

बावेल, बसन्ती लाल: 'मानवाधिकार' सैन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद (1999)

राजकिशोर: 'स्त्री पुरुष कुछ पुनर्विचार' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (1992)

नाटाणी, प्रकाश नारायण: 'मानवाधिकार और कर्त्तव्य' (2003)

कुमार, अनुराधा: 'ह्यूमन राइट्स (ग्लोबल पर्सपेक्टिव्स)' (2002)

अग्रवाल, डॉ. सुशील: 'स्टेट्स ऑफ वीमन' (1986)

बेगम, डॉ. एस. मेहरताज: 'ह्यूमन राइट्स इन इण्डिया रू इश्यूज एण्ड पर्सपेक्टिव' (2000)

कानिटकर, सतीश: 'इण्टरनेशनल प्रोविजन्स ऑफ ह्यूमन राइट्स' (2000)

पॉल,आर सी.: 'प्रोटेक्शन ऑफ ह्यूमन राइट्स' (2000)

मुक्तिबोध के काव्य में जीवन का एक्स-रे

डॉ० राम किशोर यादव

श्री वेंकटेश्वर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मुक्तिबोध की कविताओं में जीवन को समग्रता में देखा गया है। मनुष्य जीवन के भीतर विद्यमान सभी भावों का व्यापक रूप में परीक्षण किया गया है। इसमें हृदय के भावों को, अनुभूति के क्षणों को अभिव्यक्ति के क्षणों को संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह जीवन का एक्स-रे करता है। समाज के भीतर विद्यमान सभी समस्याओं का मूल्यांकन करता है। शोषण के रूपों को उजागर करता है। इनके काव्य में व्यष्टि चेतना नहीं बल्कि समष्टि चेतना है। व्यष्टि के रूप में विद्यमान चीजों को समष्टि के स्तर पर चित्रित करते हैं। इसमें कभी 'मैं' शैली कभी अन्य शैली का सहारा लेते हैं। स्वतंत्रता के बाद भटकता मनुष्य का जीवन्त रूप मुक्तिबोध की रचना में मिलता है। मानवीय धरातल पर प्रतिबद्ध विचारधारा के तहत मुक्तिबोध मनुष्य का सूक्ष्य विश्लेषण करते हैं। वे अभावग्रस्त जिन्दगी की पूरी तस्वीर पेश करते हैं। 'नई कविता का आत्मसंघर्ष' में कवि की दृष्टि स्पष्ट है। उनकी मान्यता है,

''किसी न किसी रूप में हमारे पास व्यापक जीवन दर्शन आवश्यक है। इसमें अगर कुछ भी न हो तब भी यह बुनियादी बातें तो हैं ही जिन्हें साधारण जन अपने हृदय में अनुभव करते हैं। जैसे अन्याय का प्रतिकार मानव सभ्यता की स्थापना के प्रयत्न, विकृत स्वार्थवाद और भ्रष्टाचार का विरोध, समझौतापरस्ती के खिलाफ लड़ाई और साधारण भारतीय जनमत के प्रति भक्ति और अनुराग।''[1]

मुक्तिबोध की कविता में मानव जीवन की पड़ताल है। जीवन और साहित्य के साथ कला संबंधी प्रश्नों को भी कवि ने समेटने का प्रयास किया है। जीवन, जगत, कला के बारे में कवि निरंतर सचेत है। अमानवीय व्यवस्था के खिलाफ संघर्षशील है। समाज से रॉ मैटीरियल लेकर समाज की समस्या को दूर करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील दिखता है। मुक्तिबोध की यात्रा संघर्षों से भरा है। मानव के भटकाव को लेकर निरंतर चेतनशील कवि अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने के लिए तैयार है। 'चांद का मुंह टेढ़ा है' में कवि का प्रयास द्रष्टव्य है। चांद जो गतिकालिक सौन्दर्य का प्रतीक है। उसकी कुरूपता को पहचान ली गई है इसीलिए इसका मुंह टेढ़ा नजर आ रहा है। 'अंधेरे में' पर शमशेर बहादुर सिंह ने लिखा है, ''यह कविता देश के आधुनिक जन इतिहास का स्वतंत्रता पूर्व और पश्चात का एक दहकता इस्पाती दस्तावेज है।''[2] मुक्तिबोध में अपनी कविताएं, 'ब्रह्म राक्षस', 'चकमक की चिंगारियां', 'अन्तःस्थल का आयतन', 'अंधेरे में', 'प्रश्न जब बौखला उठे', 'चांद का मुंह टेढ़ा है' के माध्यम से मानव जीवन का एक्स-रे किया है। जिन्दगी के रास्तों की तलाश की गई है। सभ्यता की समीक्षा की गई है। मुक्तिबोध में लिखा है, ''यह ध्यान रखने की बात है कि नई कविता वर्तमान संकटग्रस्त अद्यःपतनशील सभ्यता की असलियता को जब तक पहचानते नहीं, सभ्यता के मूलभूत प्रश्नों से अपने को जब तक जोड़ नहीं लेती है, मानवता के भविष्य निर्माण के संघर्ष से जब वह स्वयं को संयोजित नहीं कर पाती, जब तक उत्पीड़ित और शोषित मुखों के बिम्ब उसमें दिखाई नहीं देते तब तक हमारा कार्य अधूरा रहेगा।''[3]

मुक्तिबोध किसी भी रचना को आधार बनाकर ही उसका मूल्यांकन करते हैं। अपने आलोचनात्मक विवेक के अनुरूप रचना पर विचार केन्द्रित करके अपनी बात स्पष्ट करते हैं। आलोचना के संदर्भ में मुक्तिबोध की दृष्टि स्पष्ट है, ''वह आलोचना, जो रचना प्रक्रिया को देखे बिना की जाती है, आलोचक के अंहकार से निष्पन्न होती है। भले ही वह अहंकार से आध्यात्मिक शब्दावली में प्रकट हो, चाहे कलावादी शब्दावली में, चाहे प्रगतिवादी शब्दावली में।''[4]

मुक्तिबोध रचना को केन्द्र में रखकर उसकी व्याख्या करते हैं। 'कामायनी : एक पुनर्विचार' में कामायनी को फैंटेसी कहा है। इसमें मूल्यांकन का आधार प्रसाद की रचना प्रक्रिया को बनाते हैं। छायावादी कवियों पर विचार करते हैं। मुक्तिबोध के शब्दों में, ''पहली बात तो यह है कि पंत जी की वास्तवोन्मुखता की जितनी भी, जो भी प्रवृत्ति है, वह पालन-पोषण, परिवार, वर्ग, स्वयं के जीवनानुभव परिस्थिति आदि से सीमित तो है ही, साथ ही वह मनोरचना से भी सीमित है। प्रसार और उससे अधिक निराला के जीवन संघर्ष के अपने-अपने ढंग के अनुभव हैं।''[5]

रचना की रचना प्रक्रिया पर मुक्तिबोध ने गहनता से विचार किया है। 'एक साहित्य की डायरी' में कला के तीसरा क्षण पर अपना विचार व्यक्त करते हैं। वे कला के तीन क्षणों का विवेचन करते हैं। मुक्तिबोध ने लिखा है, ''कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव को अपने दुखते कसकते मूलों से अलग हो जाना और फैंटेसी का रूप धारण कर लेना, मानो वह फैंटेसी अपनी आंखों के सामने खड़ी हो। तीसरा क्षण अन्तिम क्षण है। इस फैंटेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का आरंभ और उस प्रक्रिया की पूर्णावस्था की गतिमानता। शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया में भीतर जो प्रवाह बहता रहता है वह समस्त व्यक्तित्व और जीवन का प्रवाह होता है।''[6]

मुक्तिबोध अपने जीवन के अनुभव के आलोक में रचना को देखते हैं। व्यक्ति के जीवन के भीतर के कर्म को खोजते हैं। समाज के जीते-जागते प्राणियों की तस्वीर पेश करते हैं। कवि की चेतना प्रगतिशील है। कलाकार के अर्न्तजगत पर प्रकाश डालते हैं। समाज का वास्तविक रूप, समाज के भीतर की मानवता को विभिन्न दृष्टिकोण से विश्लेषित करते हैं। जीवन का उत्कट तीव्र क्षण भयानक है।

'हर पल चीखता हूं शोर करता हूं
कि वैसी चीखती कविता बनाने से लजाता हूं।'

कवि जगत से आत्मसाक्षात्कार करते हैं और आत्म से जगत साक्षात्कार करते हैं। वह अत:करण के वाह्यीकरण और वाह्य का आभ्यांतरीकरण करते हैं। मुक्तिबोध में लिखा है, ''वाह्य का आभ्यांतरीकरण और आभ्यंतर का वाह्यीकरण एक निरन्तर चक्र है। यह आभ्यंतरीकरण और वाह्यीकरण मात्र एक मनन जन नहीं है, वरन् कर्म जन्म भी है।''[7]

मुक्तिबोध यथार्थवादी शिल्प के स्थानपर भाववादी शिल्प को अपनाते हैं। इस संदर्भ में 'कामायनी :

एक पुनर्विचार' में लिखा है, ''ख़्रसंक्षेप में यथार्थवादी शिल्प और यथार्थवादी दृष्टिकोण में अन्तर है। यह बहुत संभव है कि यथार्थवादी शिल्प के विपरीत, जो भाववादी शिल्प है उस शिल्प के अन्तर्गत जीवन को समझने की दृष्टि यथार्थवादी रही हो।''[8]

मुक्तिबोध की कविताओं का समस्त विश्लेषण करने पर पाते हैं कि उन्होंने फैंटेसी शिल्प में अपने जीवन के यथार्थ को प्रकट किया है। उनका जीवन न जाने कितने अंतर्विरोधों, घटनाओं, प्रघटनाओं से भरा है। जीवन को सूक्ष्म रूप चित्रित करते हैं। आत्मीयता और सहजता के साथ सभी पक्षों पर दृष्टि डालते हैं। मानव की समष्टि चेतना से युक्त रहस्यमय जगत के आवरण को तोड़कर उसे नया आयाम प्रदान करते हैं। वे व्यक्ति को सभी प्रकार से मुक्त देखना चाहते हैं। समस्या एक मेरे सभ्य नगरों और गांवों में सभी मानव, सुखी, सुन्दर व शोषण मुक्त कब होंगे? वे मनुष्य के जिजीविषा को जानते हैं। बड़े ही सटीक शब्दों में इसकी विवेचना करते प्रतीत होते हैं। 'ब्रह्म राक्षस' कविता इसका प्रमाण है। ''मैं ब्रह्म राक्षस का सजल-उर-शिष्य/होना चाहता/जिससे कि उसका वह अधूरा कार्य/उसकी वेदना का स्रोत/संगतपूर्ण निष्कर्षों तलक/पहुंचा सकूं।''[9]

वे कुंठा, हताशा, ग्लानि, संत्रास, दुख आदि को पूंजीवादी व्यवस्था की देन मानते हैं। पूंजीवादी व्यवस्था की अमानवीय क्रूरता को प्रकट करते हैं। उनकी कविता दृष्ट्व्य है–

''बीसवीं सदी के इस पचासवें चरण के प्रयास में जनजन के दमन के काले अंधकार बीच
गगन में उठते गरीबों के हाहाकार बीच, रामू के सोचे हुए हृदय को
अकस्मात किसी ने सत्य की शक्ति दी औ, हिम्मत की राह दी
पूंजीवादी झूठ के विराट अत्याचार बीच''[10]

आज व्यक्ति सफलता की प्राप्ति के लिए गलत मार्ग पर चलना शुरू करता है। अन्याय तथा शोषण के बल पर सुविधाएं चाहता है। मुक्तिबोध अन्याय के विरोधी हैं। उनके लिए समाज के प्रत्येक जन की मुक्ति प्रमुख है। कवि मानवीय धरातल पर सभी चीजों का परीक्षण करता है। वे मार्क्सवादी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध हैं। मुक्तिबोध तत्कालीन समाज की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थितियों को सिर्फ बाहरी स्तर पर न देखकर भीतरी स्तर पर देखते हैं। पूरी गहराई से उन सभी बिन्दुओं की पड़ताल करते हैं। वे शोषण के खिलाफ हैं। जनमत के साथ हैं। पूंजीवादी सभ्यता को खरी-खोटी सुनाते हैं। ''इतने प्राण, इतने हाथ, इतनी बुद्धि/इतना ज्ञान संस्कृति और अन्त:शुद्धि/इतना दिव्य, इतना भव्य, इतनी शक्ति/ यह सौन्दर्य, वह वैचित्र्य, ईश्वर भक्ति/... तू है मरण तू है रिक्त, तू है व्यर्थ तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।''[11] मुक्तिबोध में स्थितियों की गहरी समझ है। वे समाज में व्याप्त पीड़ा को देखकर दुखी हैं। इस पीड़ा की अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में है। उनके भीतर के आत्मसंघर्ष को वाणी प्रदान किया गया है।

''पिस गया वह भीतरी/ और बाहरी दो कठिन पाटों के बीच/ऐसी ट्रेजेडी है नीच।''[12]

व्यक्ति की व्यथा और टूटन को मुक्तिबोध की कविताओं में जगह मिली है। उन्हें मानव की अपराजेय शक्ति पर दृढ़ विश्वास है। उनकी कविता का सामाजिक सरोकार स्पष्ट है। वे व्यक्ति की दु:ख और पीड़ा को अपनाने के लिए तत्पर रहते हैं। उदाहरणस्वरूप–

''मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर में
चमकता हीरा है;
हर एक छाती में आत्मा अधीरा है,
प्रत्येक सुस्मित में विमल सदा नीरा है,
मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी में महाकाव्य पीड़ा है,
पलभर में सबसे गुजरना चाहता है
प्रत्येक उर में से तिर आना चाहता हूं
इस तरह खुद को ही दिए दिए फिरता हूं
अजीब है जिन्दगी!!''[13]

मुक्तिबोध की कविताओं में व्यथा, पीड़ा, वेदना, यातना, कष्ट, दुख, तनाव व्याप्त है। वे कवि कर्म को मानव तक ले जाते हैं। उन्होंने लिखा हैद

''मैं उनका ही होता जिनसे मैंने रूप भाव पाए हैं
वे मेरे ही हिय बंधे हैं। जो मर्यादाएं लाए हैं।''[14]

कवि ने स्वीकार किया है कि जिन्दगी में जो कुछ है, उसे सहर्ष स्वीकार किया है। उसे कोई गिला-शिकवा नहीं। ''जिन्दगी में जो कुछ है, जो भी है

सहर्ष स्वीकारा है;
इसलिए जो कुछ भी मेरा है वह तुम्हें प्यारा है।''[15]

कविता में जो कुछ है उनका अपना है, स्वयं का है, वह मौलिक है। वे अपने-आप में विशिष्ट हैं। इसमें भावात्मकता है। यथार्थ के धरातल पर विद्यमान सभी चीजें व्याप्त हैं। कवि संसार का निरीक्षण परीक्षण करता है। उसे पता चलता है कि हर जगह व्यवस्था में कमी है। राजनैतिक वास्तविकता से कवि का परिचय होता है। ''एकाएक मुझे भान होता है जग का/अखबारी दुनिया का फैलाव/फैलाव, घेराव, तनाव है सब ओर/पत्ते न खड़के/सेना ने घेर ली हैं सड़कें/बुद्धि की मेरी रग/गिनती है समय की ध क-धक/यह सब क्या है? किस जन क्रांति के दमन निमित्त यह/मार्शल लॉ है।''16

मुक्तिबोध की कविताएं सत्य से आभास कराती हैं। गरीबी की स्थिति को उजागर करती हैं। जीवन के मर्म को खोलती हैं। आक्रोश, आत्मसंघर्ष, बाह्य परिस्थितियों से टकराहट उनके काव्य में विद्यमान है। उनकी कविता का कैनवास बहुत बड़ा है। उनके विचारों, भावों और उनके भीतर विद्यमान भावों को पकड़ने में कठिनाई होती है। उनकी कविताएं मन की बेचैनी को व्यक्त करती हैं। उनकी कविता में मानवीय दृष्टि विद्यमान है। उनमें विश्व दृष्टि समाहित है। कई स्थलों पर मुक्तिबोध पकड़ में नहीं आते हैं। उनका आवरण बहुत सूक्ष्म होता है। वे सकारात्मक स्थिति तक पहुंचते हैं। मुक्तिबोध की चिंता भौतिकता से मुक्ति की है। उनके काव्य में फैंटेसी शिल्प है। इसमें कथ्य को नेपथ्य में डाल दिया जाता है। कल्पना के सहारे उन सभी स्थितियों का चित्रण किया जाता है जो मानव के आवश्यक हैं। उनकी कविता को समझने के लिए रूपात्मक ढांचा को समझना पड़ेगा। वे स्वप्न में जाते हैं। उसमें स्वप्न चित्र तरंगायित होते रहते हैं। उनकी कविता 'ब्रह्म राक्षस' मेधावी व्यक्तित्व का प्रतीक है। वे नैतिक, बौद्धिक मर्यादाओं को सम्मान देता है। जोड़-तोड़, अवसरवादी, छल-प्रपंच के साथ सामंजस्य नहीं स्थापित कर पाता है। इसलिए अवचेतन में वह उदात्त विवेक चेतना का प्रतीक भी प्रतीत होता है।

कवि ने मार्क्सवाद का उपयोग वर्गीय शोषण को समझने के लिए किया है। ''जीवन को यथार्थ के प्रतीत आग्रह के कारण ही वे प्रगतिशीलता को स्वीकार नहीं कर सके। वे जीवन को उसकी व्यापकता में ग्रहण करना चाहते थे।''17

उनके मन के भीतर हलचल निरन्तर चलती रहती है। उन्हीं हलचलों को कविताओं में अभिव्यक्त किया है। ''अपनी ही धारा में बहता चला गया। वह दुखद आत्मा/पत्थरी ढांचे में कैदी हैं हम सब।''18

मुक्तिबोध की कविताओं में प्रतीकात्मकता है, बिम्बात्मकता है, नाटकीयता है, जीवन की सच्ची तस्वीर उनके यहां मिलती है। कवि का अध्ययन करते समय हम उसमें खो जाते हैं। मुक्तिबोध के काव्य में संगीतात्कता का अभाव है। श्रीकान्त वर्मा के शब्दों में, ''मुक्तिबोध ने संगीत के अभाव से भरे शून्य को तनाव से भरा। संगीत का स्थान तनाव ने ले लिया।''19

'अंधेरे में' मुक्तिबोध की लम्बी कविता है। इस कविता पर आलोचकों की दृष्टि भिन्न रही है। इस कविता ने वर्गहीन समाज की स्थापना का प्रयास किया गया है। इसमें क्रांति की बात की गई है। इस कविता का आरंभ नाटकीय रूप में होता है। ''जिन्दगी के /कमरों में अंधेरे/लगाता है चक्कर!/कोई एक लगातार/आवाज पैरों की देती सुनाई। बार-बार.../वह नहीं दिखता...।किन्तु रहा घूम/तिलस्मी खोह में गिरफ्तार कोई एक।''20

जिन्दगी के अंधेरे कमरों में चक्कर लगाने वाले व्यक्ति के पैरों की आवाज सिर्फ सुनाई पड़ती है। वह दिखाई नहीं पड़ता है। इसकी पड़ताल करने की कोशिश है। यह मुक्तिबोध का मनु है। मन है। यह सामान्यीकृत होकर जन-जन का मन है। कविता नौ खंडों में वर्णित है। 'मैं' और 'वह' के रूप में नायक का चित्रण किया गया है। अन्त में 'मैं' का 'वह' के साथ रिश्ता जुड़ जाता है। 'मैं' तिलस्मी खोह से निकला हुआ रक्तालोकस्नात पुरुष से साक्षात्मकार करता है। यहां वह क्रांतिधर्मी चेतना का प्रतीक है। 'मैं' स्पष्ट करता है- ''वह रहस्यमय व्यक्ति/अब तक न पाई गयी मेरी अभिव्यक्ति है/पूर्व अवस्था/निज संभावनाओं, निहित प्रभावों, प्रतिभावों/मेरे परिपूर्ण का आविर्भाव/ हृदय में रिस रहे ज्ञान का तनाव वह/आत्मा की प्रतिमा।''21

वह वास्तव में 'मैं' को ही अभिव्यक्त करता है। जिस 'मैं' की अभिव्यक्ति जीवन के संघर्ष में, तनाव में, पीड़ा में, अभिव्यक्त नहीं हो पाता। 'मैं' का संघर्ष निरन्तर जारी है। वह मध्यवर्गीय संस्कारों के जकड़न से संघर्ष करता है। वह अवसरवादिता समझौतापरस्ती का प्रतीक है। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी के शब्दों में,

''अंधेरा प्रकृति की विवेकहीनता का इरेशनलिटी का प्रतीक है। यह विवेकहीनता दो स्तरों पर है- सामाजिक व्यवस्था के स्तर पर और व्यक्ति के अवचेतन में।''22

'अंधेरे में' कविता में नाटकीयता है। कविता में बैंड दल का चित्रण किया गया है। बैंड दल में शामिल लोगों को कवि पहचानता है। इसमें सभी लोग शामिल हैं। बड़े-बड़े चिन्तक, शिल्पकार, नतर्क, कवि, समीक्षक, आलोचक, पत्रकार, राजनेता, उद्योगपति यहां तक कि डोमा जी उस्ताद भी शामिल हैं। सभी अपने स्वार्थ को साधने के लिए एकजुट हो गये। ये सभी लोग रक्तपायी वर्ग के हैं। इस कविता में कवि ने नौकरशाही, व्यवस्था उसका भ्रष्टतंत्र, राजनैतिक शड्यंत्र सभी की परतें को उधेड़ देता है। वे दिन में अलग-अलग कार्यालय में बैठकर छल करते हैं। रात में इकट्ठे होकर शोषण का स्वरूप निर्धारित करते हैं। सभी का गठजोड़ है। यह जीवन का एक्स-रे नहीं तो क्या है? व्यक्ति की भावना का पूरा अन्वेषण किया गया है। प्रो. नामवर सिंह ने इसे परम अभिव्यक्ति की खोज कहा है। फैंटेसी शैली में रचित यह कविता जीवन के हर पहलू को उजागर करती है। इसमें स्वप्न चित्र बनते हैं। प्रो. नामवर सिंह के शब्दों में, ''स्वप्न शैली में कथा कहने के कारण 'अंधेरे में' कविता में काफी मितव्ययता और संघनता आ गयी है तथा वर्णन के अनावश्यक विस्तार से अपने आप निजात मिल गई है।''23

लम्बी कविताओं के संदर्भ में डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव के विचार महत्वपूर्ण हैं। डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव के शब्दों में, ''मुक्तिबोध अपनी कविताओं में अनुभव परिप्रेक्ष्य की शक्ल देना चाहते थे इसलिए वे छोटी कविताएं नहीं लिख सके। उनकी छोटी कविताएं वस्तुतः अधूरी कविताएं हैं, वे पूरी हुई हैं तो दूसरी कविताओं में।''24

मुक्तिबोध में फैंटेसी शैली में इस कविता को जीवन्त बनाया है। मन की निगुढ़ वृत्तियों और इच्छित विश्वासों का इसमें प्रक्षेपण किया गया है। फैंटेसी को कवित कविता की आत्मा मानते हैं। वे फैंटेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया को महत्वपूर्ण मानते हैं। फैंटेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया ही काव्य भाषा निर्मित करती है। इस शब्दों को कवि जीवन के अनुभव से जोड़ता है। यह साधना का परिणाम है। फैंटेसी के कारण ही उनकी कविता समृद्ध हुई है। फैंटेसी

के शब्दों को व्यापक बनाया है। उसमें नये अर्थ भरने का कार्य किया है। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में, ''उनकी फैंटेसी की विशेषता यह है कि अनेक वस्तुएं फेंटेस्टिक रूप में, अतिरंजित, विकृत, हास्यास्पद होकर प्रस्तुत होती हैं। यथार्थ चित्रण का यह भी एक तरीका है और उसमें कोई दोष नहीं। जब तक मुक्तिबोध के शब्दों में वास्तव रूप को निरपेक्ष भाव से देखने के बदले मन उस पर लद न जाये।''

मुक्तिबोध की दृष्टि विश्व आलोचना की दृष्टि है। यथार्थबोध, आदर्श की नयी दृष्टि, मूल्य, चेतना, विवेक, अतिरेक से मिलकर फैंटेसी बनती है। उनकी कविता को समग्रता में ही समझा जा सकता है। भाषा का बेहद सटीक प्रयोग किया गया है। उनकी भाषा समकालीन कवियों से भिन्न है। मुक्तिबोध कुछ शब्दों का बार-बार प्रयोग करके प्रभावात्मकता लाने का प्रयास किया है। ''अधीर यंत्र वेग से अजीब एक रूपवान/शब्द-शब्द-शब्द में।''[25]

इस प्रकार मुक्तिबोध की कविताओं में जीवन का एक्स-रे किया गया है। हर क्षण, हर बिन्दु को परत-दर-परत उभारकर रख दिया गया है। यह सामान्य व्यक्ति की स्थिति को रेखांकित करता है। उसके जीवन को समग्रता में चित्रित करता है। उसके दुख, पीड़ा, अवसरवादिता, छल-प्रपंच, चुनौतियां, विवेक, अतिश्यता रूपी कुछ प्रतिबिम्बित हो जाता है। यह जीवन का सच्ची तस्वीर पेश करता है। हमें सोचने के लिए विवश करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नयी कविता का आत्मसंघर्ष, ग.मा. मुक्तिबोध, पृ. 185
2. चांद का मुंह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ. 26
3. नयी कविता का आत्मसंघर्ष, ग.मा. मुक्तिबोध, पृ. 19
4. नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, मुक्तिबोध, पृ. 92
5. नयी कविता का आत्मसंघर्ष, ग.मा. मुक्तिबोध, पृ. 77
6. एक साहित्यिक की डायरी, मुक्तिबोध, पृ. 20
7. नयी कविता का आत्मसंघर्ष, ग.मा. मुक्तिबोध, पृ. 8
8. कामायनी : एक पुर्नविचार, मुक्तिबोध, पृ. 6
9. मुक्तिबोध रचनावली-2, पृ. 349
10. मुक्तिबोध रचनावली-1, पृ. 251
11. प्रतिनिधि कविताएं, (पूंजीवादी समाज के प्रति), मुक्तिबोध, पृ. 11
12. चांद का मुंह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ. 17
13. वही, पृ. 73
14. प्रतिनिधि कविताएं, (मैं उनका ही होता), मुक्तिबोध, पृ. 12
15. प्रतिनिधि कविताएं, (सहर्ष स्वीकारा है), मुक्तिबोध, पृ. 20
16. चांद का मुंह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ. 275
17. नयी कविता का आत्मसंघर्ष, ग.मा. मुक्तिबोध, पृ. 28
18. वही, पृ. 455
19. आलोचना, नवांक 6, श्रीकांत वर्मा
20. प्रतिनिधि कविताएं (अंधेरे में), मुक्तिबोध, पृ. 126
21. मुक्तिबोध रचनावली-2, पृ. 352
22. गजानना माधव मुक्तिबोध, सं. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृ. 192
23. कविता के नये प्रतिमान, प्रो. नामवर सिंह, पृ. 23
24. माध्यम, सितम्बर, 1966, पृ. 35
25. चांद का मुंह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ. 80

समकालीन हिन्दी नवगीतः स्त्री पीड़ाओं की प्रतिध्वनि

मदनलाल

सहायक आचार्य, हिन्दी, राजकीय कन्या महाविद्यालय, बालोतरा
एवं
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, जयनारायण विश्वविद्यालय, जोधपुर

सारांश

नवगीत नयी कविता के समानांतर स्वयं को विषय वैविध्य युक्त नव कथ्य एवं शिल्प के साथ स्थापित किए हुए है। नवगीतकारों ने स्त्री जीवन से संबंधित सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है। नवगीत समाज में स्त्री की पीड़ाओं की प्रतिध्वनि को स्वर देने का प्रयास कर रहा है। स्त्री आदिम काल से ही अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत है बावजूद इसके उसे इस पुरुष प्रधान समाज में वह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हुई है जिसकी वह हकदार है। समाज में व्याप्त विभिन्न व्यवस्थाओं एवं कुरीतियों के कारण संतृप्त स्त्री की अवस्था का यथार्थ चित्रण नवगीत की प्रधान विशेषताओं में एक है। जब नारी अबला से सबला होने के लिए संघर्षरत है तब नवगीतकारों ने इसे वैचारिक स्वीकृति देकर उसके संघर्ष को संबल देने का भी प्रयास किया है। नवगीत नारी समस्याओं के आलोक में नारी मुक्ति का पथ प्रशस्त करता है।

संकेताक्षर- स्त्री अस्मिता, स्त्री विमर्श, यथार्थ, समाज, नवगीतकार।

शोध आलेख

नवगीत नयी कविता के समानांतर स्वयं को विषय वैविध्य युक्त नव कथ्य एवं शिल्प के साथ स्थापित किए हुए है। परंपरागत गीत की वायवीयता एवं अतिशय सौन्दर्य बोध से इतर नवगीत यथार्थ भावभूमि पर अंकुरित हो सामाजिक चेतना से संपृक्त जन हृदय की वेदना का गान कर रहा है। स्त्री विमर्श वर्तमान साहित्य के केन्द्र में मौजूद है जिससे कविता भी असंपृक्त नहीं है। इसमें भी समकालीन हिन्दी नवगीत समाज की युगीन समस्याओं, विसंगतियों एवं विद्रूपताओं को लेकर यथार्थपरक दृष्टि के साथ हमारे समक्ष उपस्थित है। नवगीतकारों ने स्त्री जीवन से संबंधित सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है। समकालीन नवगीत में स्त्री अस्मिता की महता को प्रतिपादित किया गया है परंतु रूढ़ियों और आडम्बरों से ग्रस्त पुरुष प्रधान समाज ने अब तक स्वयं की सहूलियत के हिसाब से परम्पराओं को प्रश्रय देते हुए अनेक कुप्रथाओं की आड़ में नारी चेतना को सदैव अपनी क्षुद्र मानसिकता से आच्छादित कर बाहरी वातावरण से विच्छिन्न किया हुआ है। त्याग एवं ममता की प्रतिमूर्ति स्त्री किसी भी रूप में बिना कुछ अपने लिए चाहे मानवता को जीवित रखते हुए देते ही आ रही है उसकी उपेक्षा अत्यंत कष्टकारक है। नवगीत समाज में स्त्री की पीड़ाओं की प्रतिध्वनि को स्वर देने का प्रयास कर रहा है।

स्त्री आदिम काल से ही अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत है बावजूद इसके उसे इस पुरुष प्रधान समाज में वह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हुई है जिसकी वह हकदार है। केवल उच्चादर्शों की रक्षा करना उसके गले डाल देना पुरुष की दकियानूसी एवं छिद्रान्वेषी मानसिकता का परिचायक है। सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक रूप से सशक्त स्त्री भी अपने समाज की आदर्श हो सकती है। केवल भाषणों, किताबों, अखबारों में स्त्री के बारे में सकारात्मक चार बातें लिख कर यथार्थ से मुँह नहीं मोड़ सकते है। इस यथार्थ तक हमें वह साहित्यकार पहुँचाता है जो संवेदनाओं से सराबोर है, जिसने इस वेदना को अनुभूत कर शब्द देने का प्रयत्न किया है। स्त्री विमर्श पर व्याख्यान देने वाला रात को शराब के नशे में क्या क्या कह जाता है यही उसका वास्तविक रूप है और पहला रूप कृत्रिम। कृत्रिमता का लबादा ओढ़े महोदय का वास्तविक रूप खुलकर सामने तब आता है जब वह अपनी औरत को वो सब नहीं देना चाहता है जो उसने अपने व्याख्यान में नारियों को प्रदान किया है। जब कोई महिला स्त्री स्वतंत्रता एवं अधिकारों पर व्याख्यान देकर घर में कामवाली बाई के अधिकारों को कचरापात्र में डाल देती है तब पुरुष से तो क्या अपेक्षा की जा सकती है। परमानंद श्रीवास्तव का मत है कि ''पुरुष सत्तात्मक वर्चस्व का आतंक सारी दुनिया में है जबकि स्त्रियाँ सभी क्षेत्रों में स्वाधीनता सहित बहुत कुछ पाने के लिए संघर्ष कर रही हैं।''[1] यह विडंबना पाश्चात्य देशों की अपेक्षा भारतीय समाज में बहुतायत आसीन है।

इक्कीसवीं सदी का नवगीत नारी वेदना की मुखर अभिव्यक्ति है। समाज में व्याप्त विभिन्न व्यवस्थाओं एवं कुरीतियों के कारण संतृप्त स्त्री की अवस्था का यथार्थ चित्रण नवगीत की प्रधान विशेषताओं में एक है। नारी वेदना के साथ स्वर मिलाता नवगीत उसकी अनुभूति से अपनी अनुभूति को एकाकार कर सिसकते हृदय को प्रश्रय प्रदान कर रहा है। नवगीत उनकी पीड़ा को स्वर देकर समाज तक पहुँचाने का प्रयास कर रहा है जिससे हम जान पाएँ कि आदिम काल से पूजनीय नारी का समाज में क्या स्थान है। 'नारी केवल पैर की जूती,' 'औरत की अक्ल एड़ी' में जैसे पुरुष प्रधान आप्तवाक्यों में भी संयोजित षड्यंत्र की बू आ रही है। हमारे इर्द गिर्द हजारों चुटकुले स्त्री पुरुष संबंद्धों को लेकर निर्मित होते है जिसमें उस पर व्यंग्य बाणों की बौछार के अलावा कुछ भी नहीं होता है।

नवगीतकार अवध बिहारी श्रीवास्तव के नवगीत 'बहू का बयान' में एक बहू की वेदना का यथार्थ चित्रण स्त्री अस्मिता पर प्रश्न चिह्न खड़ा कर रहा है। यहाँ एक वासनाग्रस्त जीव का वहशीपन उसकी स्त्री की वेदना में परिवर्तित हो रहा है। स्त्री परतंत्रता का दृष्टांत द्रष्टव्य है–

''जितना खिड़की से दिखता है/ उतना ही सावन मेरा है
डगमग पैरों से बूटों को/ हर रात खोलना मजबूरी
बिन बोले देह सौंप देना/ मन से हो कितनी भी दूरी
है जहाँ नहीं 'नीले निशान' बस उतना ही 'तन' मेरा है।''[2]

इनकी ही कुछ पंक्तियाँ हमें यह सोचने पर विवश कर देती है कि क्या हम एक सभ्य समाज के नागरिक है– '''दस' की 'बारह' की दो बहनें/ रोज जुटाती हैं/ घर के लिए 'रोटियाँ' दिनभर/ कूड़े से चुनकर''।[3] नारी मात्र भोग की वस्तु बन कर रह गयी है। अपनी वासनापूर्ति के लिए उसको केवल साधन मान लेना मानसिक विकृति है जिससे शायद प्रत्येक पुरुष ग्रस्त है। वर्तमान की तकनीकी तथा सामाजिक माध्यम आग में घी का काम करते है। वीरेन्द्र आस्तिक समाज में विकराल होती हुई बलात्कार की समस्या को स्वर देते हुए कहते है कि– ''सेक्स उतर आया/ हिंसा पर/बालाओं का/ करता मर्डर

दुराचार की खबरों से हैं/पेपर लथपथ
महिलाओं का/ सड़कों पर है/आंदोलन रथ
कोमल कोमल/ हाथों में है/ गैंगरेप के/ खूनी बैनर।''[4]

आधुनिक सभ्य समाज में दहेज प्रताड़ना, कन्याभ्रूण हत्या, लैंगिक असमानता, बलात्कार जैसी विकराल होती समस्याएँ हमारे सभ्य होने पर प्रश्न चिह्न खड़ा कर रही हैं। बेटियों का दर्द जगदीश पंकज के नवगीतों में मुखर है। उत्तर आधुनिक दौर में स्त्री तथा दलित विमर्श साहित्य के केन्द्र में है इसके बावजूद भी वर्तमान समाज एवं पुरुष प्रताड़ना से ऐसी विपरीत परिस्थितियाँ उत्पन्न की जा रही है कि विवश लड़की फँदे पर झूलने को मजबूर है या झुला दी जाती है–

''पेड़ पर लटके हुए/ शव लड़कियों के
सिर्फ मादा जिस्म, या/ कुछ और हैं
कौन हैं ये लड़कियां/ रौंदा गयी/ देह जिनकी
क्यों प्रताड़ित हैं/ दलित अपमान को/ पीते हुए भी
कौन हैं वे/ गर्व जिनको/लाडलों की क्रुरता पर
क्यों समय निर्लज्ज/ बैठा मौन को/ जीते हुए भी।''[5]

वर्तमान में नारी असुरक्षा का प्रश्न यक्षप्रश्न बना हुआ है। दृढ़ राजनीतिक एवं सामाजिक इच्छाशक्ति के अभाव में कानून भी विकलांगता की शरण में जाने को उत्सुक है। नारी अस्मिता को लेकर चलने वाले बड़े-बड़े आंदोलन, संस्थान, विमर्श, नारे, व्याख्यान धरे के धरे रह जाते है जब–

''डेरे, मठ, आश्रम, शरणालय/ सभी सवालों के घेरे में
ऐसी जगह कहाँ पर खोजें/ जहाँ सुरक्षित रहे बेटियाँ''।[6]

समाज के लिए इस भयावह स्थिति से बुरा और क्या हो सकता है। यद्यपि वर्तमान में स्त्री के लिए शैक्षिक सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक स्तर पर परिवर्तन अवश्य हुए है परंतु कुछेक क्षेत्रों को छोड़कर आज भी स्त्री अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत है। संविधान प्रदत्त अधिकारों ने इसे अवश्य सक्षम बनाया है परंतु धरातल पर कभी कभी इनके साथ खिलवाड़ करने के दृष्टांत भी मिलते रहते है। इस स्थिति के लिए हम सब जिम्मेदार है परंतु जिस राजनीतिक-प्रशासनिक एवं लोकतांत्रिक प्रणाली को द्रौपदी के लिए कृष्ण बनना होता है वहीं इनकी लचर व्यवस्था दु:शासन का काम कर रही है तब जगदीश पंकज की धिक्कार जायज है– "धिक्कार तुम्हारा तन्त्र/ और धिक्कार तुम्हारे संस्कार

बेबस नारी का चीरहरण/ कर रहे सभ्यता पर प्रहार
धिक्कार तुम्हें! धिक्कार तुम्हें!!''[7]

त्रिलोक सिंह ठकुरेला का दर्द भी वर्तमान परिपेक्ष्य में प्रासंगिक बन पड़ा है–

"बिटिया/ जरा संभल कर जाना/ लोग छिपाये रहते खंजर
तोड़ चुकी दम/ कई दामिनी/ भरी भीड़ के आगे
मुन्नी, गुड़िया हुईं लापता,/ परिजन हुए अभागे,
हारी पुलिस/ न वे मिल पायी,/ मिला न अब तक उनका पंजर।''[8]

जीवन के प्रारंभ से ही लड़के और लड़की में प्रत्येक स्तर पर असमानता हीनता या लघुता ग्रंथि में परिवर्तित हो जाती है तब से वह हर चरण पर स्वयं को हारती रहती है उस दौरान उसे अपने अस्तित्व का बोध ही नहीं रहता है। जन्म से मृत्यु पर्यंत इसे अनेक दुष्चक्रों का सामना करना पड़ता है। स्त्री के ही कँधे से बंदूक चला समाज किस प्रकार से एक स्त्री को स्त्री बनने के लिए विवश कर देता है इसका दृष्टांत अवध बिहारी श्रीवास्तव के गीत में अभिव्यक्त हो रहा है–

''मैं तो जन्मी थी पंख किए/ पर उड़ने का अवसर न मिला
माँ ने अपना अतीत मुझमें/ वैसा का वैसा भर डाला
डोली में बिठा दिया मुझको/ जैसा चाहा था कर डाला
सबके संकेत मिले मुझको/ पर अपना कोई स्वर न मिला
अच्छी 'मुन्नी' अच्छी 'पत्नी'/ अच्छी 'माँ' मुझको होना था
सबके साँचों में ढलने से/ अपना ही साँचा खोना था
मैं सबकी बनकर खड़ी रही / कोई मेरा बनकर न मिला।''[9]

स्त्री के बालिका रूप की यह पीड़ा पत्नी रूप में और सघन होकर व्याकुल कर देती है तब कभी कभी भावना तिवारी की तरह मन में प्रश्न उठना स्वाभाविक सा जान पड़ता है-

"देह हमारी/ तुम अधिकारी,/ अगन-परीक्षा कब तक होगी?
यन्त्र-सरीखा/ कटता हर दिन,/ नहीं आंकलित काम हमारे
गृहलक्ष्मी कहलाते लेकिन/ नाम-पट्टिका नाम तुम्हारे
हार हमारी/ जीत तुम्हारी/ मरण प्रतीक्षा कब तक होगी?''[10]

स्त्री के 'माँ' रूप पर जिम्मेदारियों का बोझ और अधिक लाद दिया जाता है अधिकारच्युत माता अपनी बेटी के अधिकारों में कटौती करने के लिए विवश कर दी जाती है, रही बात उसकी नींद की वो तो तब भी नहीं थी और अब भी नहीं, मधुसूदन साहा की पंक्तियाँ द्रष्टव्य है

"जिस दिन माँ ने/ बेटी को साड़ी पहनाई
उस दिन से ही / नींद नहीं आँखों में आई।''[11]

नवगीत की नारी रीतिकालीन नायिका की तरह न तो शृंगारिक उपमानों से अलंकृत है और न ही छायावाद की भाँति कल्पनाओं तथा अलंकारों से आच्छादित। वह चाँदनी रात में रातरानी की ओट लिए प्रियप्रतीक्षातुर नहीं है। इसका संयोग है तो केवल श्रम और पसीने से तथा वियोग है तो बस सुख और सम्मान से। अपने स्वप्नों की बलि देकर घर गृहस्थी में उलझी निर्धन मजदूर किसान तथा मध्यमवर्गीय परिवार की नारी को अपने अस्तित्व का आभास करने का अवकाश ही नहीं है। धीरे-धीरे किस प्रकार वह कोल्हू का बैल बन जाती है कुमार शिव की पंक्तियाँ सटीक चित्रण करती है-

''कितनी भी विपदाएँ आईं/ साथ न छोड़ा हिम्मत ने
मेंहदी रचे हुए हाथों पर/ लिखा यही अब किस्मत ने
चक्की, चारा, झाड़ू, बर्तन/ मिट्टी, ईंधन और धुआँ
गीली लकड़ी, चूल्हा चौका/ चिमटा, बेलन और धुआँ ।''[12]

शहर की भीड़भाड़ भरी सड़को पर विकसित होती नवीन अपसंस्कृति ने परंपरागत जीवन मूल्यों को किनारे कर अपने स्वार्थपूर्ति एवं वासनापूर्ति हेतु नवीन मुहावरों का निर्माण कर नैतिक मूल्यों को तिलांजलि दे दी । यहाँ नवगीतकार ओम धीरज की पीड़ा जायज है-

''घर से कॉलिज बस में/ करती/ रोज सफर लड़की
व्यंग्य, फब्तियाँ/ छेड़छाड़/ जहरीली फुफकारें
भूखी-प्यासी/ हत्यारी नजरों की/ तलवारें
एक साथ लाखों/ विषधर/ ढोती तन पर लड़की।''[13]

वहीं ग्रामीण परिवेश उसकी उड़ान से पूर्व ही पर कतरने का कार्य कुतर्को के साथ बड़ी सफाई से कर जाता है कि उसे भी पता नहीं चलता और वह अपने अधिकारों पर होते कुठाराघात को पुष्पाघात समझ लेती है जो स्त्री की सबसे बड़ी कमजोरी है क्योंकि वह घर की मान मर्यादा की घोषित प्रतिमूर्ति है जिसका बड़ी तन्मयता के साथ पालन करना ही उसका कर्तव्य है जो सदियों से समाज ने घोषित कर रखा है। योगेन्द्र दत्त शर्मा की मछलियाँ उन सभी लड़कियों का प्रतीक है जो किसी के प्रेमजाल में फँसकर सर्वस्व समर्पण कर देती है और बदले में छल के अलावा कुछ प्राप्त नहीं कर पाती है-

''बड़े बड़े हैं मगर नदी में/ कहाँ शरण लें डरी मछलियाँ
पानी में छटपटा रही हैं/ कहने को जलपरी मछलियाँ
देख- देख घड़ियाली आँसू/ द्रवित मछलियाँ हो जाती हैं
अपनी सुधबुध भूल, मगर के/ छल प्रपंच में खो जाती हैं
खोटेपन के महाजाल में/ फँसती जाती खरी मछलियाँ ।''[14]

जब नारी अबला से सबला होने के लिए संघर्षरत है तब नवगीतकारों ने इसे वैचारिक स्वीकृति देकर उसके संघर्ष को अपना संबल देने का प्रयास किया है। नवगीत समाज में हो रहे सूक्ष्म परिवर्तनों पर भी दृष्टि जमाए हुए है। आत्मरक्षा के लिए किया जा रहा हर प्रयास वंदनीय होता है-

''आदमी हो या/ मगर का वंशधर हो/ आत्म-रक्षा तो जरूरी है सभी से
मछलियाँ या लड़कियाँ या/ नारियाँ हों सृष्टि जब से, आचरण यह है तभी से
एक सामूहिक/ सफल संघर्ष करने/ मछलियाँ अब मुट्ठियों को तानती हैं''[15]

यहाँ कवि उस संघर्षशील लड़की की हिम्मत की सराहना कर रहा है। सामाजिक परंपराओं की शृंखलाओं में आबद्ध लड़की जब उन्हें तोड़कर स्वतंत्र होने का यत्न करती है तब भी उसे भय रहता है कि कहीं अनहोनी न हो जाए। वह धीरे -धीरे उन वर्जनाओं, असमानताओं की शृंखलाओं को काट रही है-

"एक लड़की/ वक्त को ठेंगा दिखाकर/ रात के गहरे अँधेरे में/ अकेली चल रही है
डर उसे भी लग रहा है/ बढ़ रही हैवानियत के/ इस बदलती सभ्यता में/ दनदनाते हर चलन से
और उन थोथी प्रथाओं/ में छिपी संकीर्णताओं/ यातना या वासना के/ वहशियाना क्षुद्रपन से
एक लड़की/ आँककर नैतिक पतन को क्रूरता के हर चलन की/काट लेकर ढल रही है।''[16]

समग्रत: नवगीत की युगीन संवेदना में स्त्री संवेदना को स्वर देना उसकी पीड़ा की प्रतिध्वनि है। जब तक यह श्रुतिकटु प्रतिध्वनि आती रहेगी तब तक स्त्री अधिकारों की चर्चा करना ही बेमानी है क्योंकि समाज ने अभी तक तो उसे अपने मौलिक अधिकारों से भी वंचित रखा है परंतु अब समाज को बदलना होगा। सामाजिक यथार्थ की तलाश में नवगीतकार नारी की उस कातर दृष्टि एवं कारुणिक कराह तक अवश्य पहुँचे है जहाँ से वह वेदना प्रस्फुटित होकर लेखनी के माध्यम से शब्दों में घुलकर हमारे काले कच्चे चिट्ठे खोलकर उनकी अनुभूति को स्वर प्रदान कर रही है। नवगीत सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक व्यवस्था पर चोट कर स्त्री समस्याओं को प्रकाशित करने में प्रयत्नरत है। नवगीत स्त्री को ही अपने अधिकारों के लिए संघर्ष का आह्वान करता है। समकालीन नवगीत नारी समस्याओं के आलोक में नारी मुक्ति का पथ प्रशस्त करता है।

संदर्भ

1. सिंह, ओमप्रकाश, आलेख-नवगीत में नारी संघर्ष का चित्रण, अभिव्यक्ति पत्रिका अप्रैल 2014
2. सिंह ओमप्रकाश, नयी सदी के नवगीत भाग-1, नमन प्रकाशन, दिल्ली, (2015), पृष्ठ-55
3. वही, पृष्ठ-57
4. सिंह ओमप्रकाश, नयी सदी के नवगीत भाग-2, नमन प्रकाशन, दिल्ली, (2016), पृष्ठ-158
5. पंकज जगदीश, निषिद्धों की गली का नागरिक, अनुभव प्रकाशन, गाजियाबाद, (2015), पृष्ठ-56
6. पंकज जगदीश, मूक संवाद के स्वर, ए.आर.पब्लिशिंग कम्पनी, दिल्ली, (2019), पृष्ठ-32
7. वही, पृष्ठ-36
8. सिंह ओमप्रकाश, नयी सदी के नवगीत भाग-5, नमन प्रकाशन, दिल्ली, (2018), पृष्ठ-69-70
9. सिंह ओमप्रकाश, नयी सदी के नवगीत भाग-1, नमन प्रकाशन, दिल्ली, (2015), पृष्ठ-54
10. सिंह ओमप्रकाश, नयी सदी के नवगीत भाग-5, नमन प्रकाशन, दिल्ली, (2018), पृष्ठ-187-188
11. सिंह ओमप्रकाश, नयी सदी के नवगीत भाग-2, नमन प्रकाशन, दिल्ली, (2016), पृष्ठ-78
12. सिंह ओमप्रकाश, नयी सदी के नवगीत भाग-1, नमन प्रकाशन, दिल्ली, (2015), पृष्ठ-190
13. सिंह ओमप्रकाश, नयी सदी के नवगीत भाग-3, नमन प्रकाशन, दिल्ली, (2016), पृष्ठ-167-168
14. योगेंद्र दत्त शर्मा, संवदिया अंक-2, संवदिया प्रकाशन,अररिया, जनवरी-मार्च 2018, पृष्ठ- 40
15. पंकज जगदीश, मूक संवाद के स्वर, ए.आर.पब्लिशिंग कम्पनी, दिल्ली, (2019), पृष्ठ-49
16. पंकज जगदीश, आग में डूबा कथानक, ए.आर. पब्लिशिंग कम्पनी,शाहदरा, दिल्ली, (2019), पृष्ठ-55

भारतीय राजव्यवस्था के आधार

(The basis of Indian polity)

सूर्य भान सिंह

Assistant Professor & Co-ordinator, Deptt. of Political Science,
Uttarakhand Open University, Haldwani, Nainital

भारत दुनिया का दूसरी सबसे बड़ी आबादी वाला देश है। यह 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्र हुआ। इसके पूर्व ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन था। स्वतंत्रता की प्राप्ति के पहले ही भारतीय संविधान के निर्माण का कार्य प्रारंभ हुआ। इस संविधान के निर्माण के कार्य का जिम्मा संविधान सभा के ऊपर था। यह संविधान सभा एक ऐसे संविधान के निर्माण लिए जिम्मेदार थी जिसमें उन आकांक्षाओं और अपेक्षाओं को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके, उन आदर्शों और मूल्यों को स्थान मिल सके जिनको सामने रखकर के स्वतंत्रता आंदोलन आगे बढ़ रहा था। इस बात को ध्यान में रखते हुए संविधान सभा ने भारतीय संविधान के निर्माण की प्रक्रिया में अभी तक चले आ रहे भारत में ब्रिटिश शासन व्यवस्था के अनुभव, दुनिया के संविधान के महत्वपूर्ण पक्ष जो भारतीय राजव्यवस्था और समाज के लिए अनुकूल हो सकते थे जिन्हें यहां के सामाजिक और राजनीतिक आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला जा सकता था, उनका समावेश भारतीय संविधान में किया गया। भारतीय संविधान दुनिया का सबसे विस्तृत संविधान भी है। इसके पीछे जो प्रमुख कारण है कि यह जहां भौगोलिक दृष्टि से बहुत ही विस्तृत, जनसंख्या की दृष्टि से दूसरे नंबर पर है। विविधता की दृष्टि से भी भी बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि यहां जाति धर्म भाषा क्षेत्र स्थान मूल्यों मान्यताओं आदि में बहुत ही भिन्नता पाई जाती है। संविधान निर्माताओं का उद्देश्य इन विविधताओं को भी एक सूत्र में पिरोना था जिससे भारत निर्माण का कार्य पूर्णता के स्तर तक ले जाया जा सके। सभी को एक सूत्र में पिरो कर राष्ट्र के विकास की दिशा और गति सुनिश्चित की जा सके। जिससे जनता की आकांक्षाएं और अपेक्षाएं पूर्ण हो। इसीलिए भारतीय संविधान में 22 भाग 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियां हैं। मूल संविधान में 8 अनुसूचियां थी विभिन्न संशोधनों के द्वारा 4 अनुसूचियां जोड़ी गई इस वजह से 12 अनुसूचियां हैं।

शोध पत्र के विषय वस्तु के अनुरूप अब हम उन विषयों का अध्ययन करेंगे जो पूरी भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को निर्धारित करते हैं। क्योंकि भारत में संविधान के सर्वोच्च ता का सिद्धांत लागू किया गया है इसलिए हम यह कह सकते हैं कि भारत का संविधान देश की शासन व्यवस्था के संचालन के लिए आधार विधि है। इसलिए भारतीय संविधान में किए गए प्रावधानों के आलोक में भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप और तत्वों का अध्ययन इस शोधपत्र में किया गया है। जिसमें हम देखेंगे कि भारतीय संविधान में वह कौन कौन से प्रावधान हैं और उनके क्या प्रभाव है जो भारतीय राजव्यवस्था को एक निश्चित स्वरूप प्रदान करते हैं।

इस बात का अध्ययन करने से पहले यह देखना है कि वह कौन से कारक हैं जो भारतीय संविधान को इतना विस्तृत बनाने में योगदान करते हैं। जैसा कि हमने ऊपर कहा कि भारत में विविधता बहुत अधिक है। विविधता को एक सूत्र में पिरोने और राज्यव्यवस्था में सभी को सम्मानजनक और महत्वपूर्ण भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए सभी के हितों को प्रत्यक्ष रूप से संविधान में समाहित करने का प्रावधान किया गया है।

जब भारतीय संविधान की प्रस्तावना को देखते हैं तो उसमें स्पष्ट रूप दिखाई देता है कि भारत के लोग संविधान को स्वीकार कर रहे हैं और लागू कर रहे हैं, उसे अधिनियम का स्वरूप दे रहे हैं। वहीं दूसरी तरफ शासन के स्वरूप का भी निर्धारण करते हुए प्रस्तावना में दिखाई देते हैं। इससे आगे भी शासन के लक्ष्यों की बात भी प्रस्तावना में की गई है। जिनसे संबंधित प्रावधान भारतीय संविधान के भागो अध्यायों, अनुसूचियों और अनुच्छेदों में स्पष्ट रूप से देखने को मिलते हैं। भारतीय संविधान निर्माताओं ने स्पष्टता को बहुत महत्व दिया। जिससे विविधता टकराव का कारण न बने। भारती समाज में परंपरागत रूप से बहुत सारे समूह समुदायों के लिए सामाजिक निर्योग्यता थी।जब भारतीय संविधान निर्माता संविधान के भाग 3 में मूल अधिकार[1] का प्रावधान कर रहे थे तो उक्त सामाजिक समस्या के निराकरण के लिए भी प्रावधान करते हुए दिखाई देते हैं अनुच्छेद 14,15,16,17[2] में उपलब्ध है। इसके साथ ही शासन के स्वरूप की बात करते हैं तो उसमें स्पष्ट है कि भारत में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को अपनाया गया है। एक ऐसा लोकतंत्र जो गणतंत्र भी है। एक ऐसा लोकतंत्र जो समाजवादी है। एक ऐसा लोकतंत्र जो संघात्मक है। यह कैसा लोकतंत्र जो सभी को संविधान के माध्यम से समावेशित करने का कार्य किया है। भारतीय संविधान के विस्तृत होने के विविध कारणों में एक अन्य बहुत ही महत्वपूर्ण कारण है वह यह है कि केंद्र और राज्य के बीच संबंधों का भी सविस्तार वर्णन किया गया है इस वर्णन के पीछे मंतव्य था की अस्पष्टता न रहे, ताकि केंद्र और राज्य के बीच अपने अधिकार क्षेत्र को लेकर के किसी प्रकार का विवाद या तनाव की स्थिति न हो। अपने अपने क्षेत्र में संवैधानिक सीमा में रहते हुए शासन संचालन यह दोनों करें। इसके साथ ही संघात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है। संघात्मक शासन प्रणाली अपनाने के कारण केंद्र और राज्य के के बीच शक्तियों के विभाजन का सिद्धांत अपनाया गया है। शक्तियों के विभाजन के सिद्धांत के स्वरूप के संदर्भ में काफी विवाद और आलोचना बहुत से आलोचक करते हैं।

अध्ययन के इस चरण में हम उन मूल आधारभूत तत्वों का अध्ययन करेंगे जो राजनीतिक व्यवस्था को स्वरूप प्रदान लोकप्रिय प्रभुसत्ता।

इस विषय के अध्ययन के लिए भारतीय संविधान की प्रस्तावना का अध्ययन करना आवश्यक है जो इस प्रकार है

''हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढाने के लिए दृढ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्ग शीर्ष शुक्ल सप्तमी, सम्वत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।[3]

इस प्रकार हम देखते हैं भारतीय संविधान की प्रस्तावना का प्रारंभ हम भारत के लोग और अंतिम पंक्तियां कि इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मार्पित करते ह।यहां स्पष्ट है कि संविधान निर्माताओं ने जिस संविधान का निर्माण किया उसे भारत के लोग स्वीकार कर रहे हैं और अपने स्वीकार से उसे अधिनियम का स्वरूप प्रदान कर रहे हैं।जो देश की सर्वोच्च विधि है जब भारत की जनमानस संविधान को स्वीकार कर रही है और अधिनियमित कर रही है और यह भारतीय संविधान ही देश की सर्वोच्च विधि है। ऐसी स्थिति में निश्चित रूप से संप्रभुता जनमानस में निवास करती है। क्योंकि भारतीय जनमानस ने यह निर्णय ले रहा है यह संविधान हमारा है और इसे लागू किया जाए ।ऐसी स्थिति में जनता की प्रभुसत्ता की स्थापना इस माध्यम से हो रही है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना के अध्ययन के क्रम में हम देखते हैं किस प्रकार का शासन होगा? इसका स्पष्ट उल्लेख है ।संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न, समाजवादी पंथ निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य। संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न का तात्पर्य है कि यदि देश का संविधान सर्वोच्च विधि है और इस सर्वोच्च विधि के माध्यम से घोषणा की जा रही है कि देश अपने आंतरिक और बाह्य मामलों में पूरी तरह से स्वतंत्र है। इस पर किसी भी प्रकार का कोई बंधन नहीं है ।कोई नियंत्रण नहीं है। आंतरिक प्रशासन का संचालन किस प्रकार से किया जाएगा और परराष्ट्र संबंधों का संचालन किस प्रकार से किया जाएगा, भारत का अपना निर्णय होगा ।इस पर किसी भी प्रकार की किसी वाह्य सत्ता का कोई नियंत्रण नहीं है।

लोकतंत्र

उक्त के साथ यहां उल्लेखनीय है कि भारत में लोकतंत्र की स्थापना की गई है।[4] लोकतंत्र का तात्पर्य है जनता का शासन। जनता का शासन का तात्पर्य उत्तरदाई शासन। उत्तरदाई शासन का तात्पर्य है सीमित शासन। सीमित शासन का तात्पर्य है विधि का शासन। देश में सर्वोच्च विधि भारतीय संविधान है। उस संविधान के निर्माण का कार्य जनता के प्रतिनिधि ने किया है। सुशासन के संचालन का जिम्मा जिसके प्रतिनिधि के पास है। वह उत्तरदाई है जनता के हितों के प्रति। वह जनता की आकांक्षाओं के प्रति। वह उत्तरदाई है जनता के अपेक्षाओं के प्रति। वह सीमित है जनता के हितों से। इस प्रकार से भारत में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली की स्थापना की गई। जिसमें नियतकालिक चुनाव की व्यवस्था है। जिसकी अवधि 5 वर्ष है। यद्यपि समय से पूर्व भी इस का विघटन हो सकता है लेकिन सामान्य स्थिति में 5 वर्ष ही है। नियतकालिक चुनाव में विकल्प होना नितांत आवश्यक है। क्यों की विकल्पों की उपलब्धता के विना लोकतंत्र नहीं हो सकता। लोकतंत्र की आधारभूत मांग चयन की स्वतंत्रता है। यह विकल्प के उपलब्धता की स्थिति में ही संभव है। इसलिए प्रतियोगी राजनीतिक दलों की उपस्थिति सुनिश्चित की गई है। क्योंकि राजनीतिक दलों की उपस्थिति में ही जनता को अपने पसंद के राजनीतिक प्रतिनिधि चुनने का अधिकार प्राप्त होता है। इसके साथ ही साथ यह चुनाव निष्पक्षता के साथ संपन्न हो सके इसके लिए स्वतंत्र निष्पक्ष निर्वाचन आयोग की व्यवस्था की गई है। भारतीय संविधान के द्वारा जो किसी भी प्रकार के वाह्य नियंत्रण से मुक्त रहते हुए संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग करते हुए निष्पक्ष चुनाव कराने के लिए उत्तरदाई है। शोधपत्र के अनुरूप इसके आगे इसके विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया जाएगा लेकिन वर्तमान समय में वर्तमान क्रम में यहां गणतंत्र को भी जानना आवश्यक है गणतंत्र का तात्पर्य एक ऐसी शासन प्रणाली से है जहां राज्य का प्रधान निर्वाचित हो कोई वंशानुगत राजा न हो।

पंथनिरपेक्ष[5]

विश्व की राजव्यवस्थाओं में एक बड़ी संख्या में धार्मिक राज्य है। किसी विशेष पूजा पद्धति के सिद्धांतों और मान्यताओं अनुरूप संचालित किया जाने वाला शासन धार्मिक राज्य में होता है। जबकि भारत में इतनी विविधता है कि भारत ने धार्मिक राज्य के बजाय पंथनिरपेक्ष राज्य का विकल्प चुना है। देश में बहुत सी विविधताएँ हैं सभी को अपनी पसंद की पूजा पद्धति को अपनाने और उसके अनुरूप आचरण करने की स्वतंत्रता संविधान के भाग 3[6] में मौलिक अधिकारों के उपबंध में किया गया है। लेकिन 42वें संवैधानिक संशोधन 1976[7] के द्वारा पंथनिरपेक्ष शब्द का प्रावधान भी भारतीय संविधान में किया गया है। जिसका तात्पर्य है कि राज्य का कोई पंथ नहीं होगा। राज्य किसी भी प्रकार के पूजा पद्धति को अपनाने वाले के साथ साथ कोई भेदभाव नहीं करेगा और किसी विशेष पंथ को विशेष प्रोत्साहन देने का कार्य नहीं करेगा।

उत्तरदाई शासन व्यवस्था

संविधान निर्माताओं ने संविधान के माध्यम से ऐसी शासन प्रणाली की व्यवस्था की है कि उत्तरदाई कार्यपालिका के गठन मार्ग प्रसस्त रहे। भारत में संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है जो उत्तरदायित्व के सिद्धांत के आधार पर काम करती है। इस बात को जानने के लिए यह जानना आवश्यक है कि संसदीय शासन प्रणाली का गठन किस प्रकार से होता है संसदीय शासन प्रणाली में कार्यपालिका का गठन व्यवस्थापिका में से ही होता है उदाहरण स्वरूप यदि भारत को ले तो स्पष्ट है कि भारत में कार्यपालिका अर्थात मंत्रिपरिषद जिसमें प्रधानमंत्री भी शामिल हैं का गठन व्यवस्थापिका में से होता है। भारत में व्यवस्थापिका के दो सदन हैं- लोकसभा और राज्यसभा। मंत्रिपरिषद का सदस्य वही हो सकता है जो संसद के किसी सदन का सदस्य हो। कार्यपालिका और व्यवस्थापिका घनिष्ठ रूप से संबंधित है व्यवस्थापिका का निम्न सदन प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित करती है और भी सभी जनता के प्रति उत्तरदाई होते हैं। मंत्रिपरिषद भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75(3)[8] के अनुसार सामूहिक रुप से लोकसभा के प्रति उत्तरदाई है अर्थात कार्यपालिका लोकसभा के माध्यम से जनता के प्रति उत्तरदाई है। साथ ही वह अपने अस्तित्व में तभी तक बनी रह सकती है जब तक लोकसभा उसमें विश्वास प्रकट करें अर्थात लोकसभा के बहुमत का समर्थन मंत्रीपरिषद को प्राप्त हो।

भारतीय राजव्यवस्था के मूल तत्वों में एक बार महत्वपूर्ण विषय अध्ययन के क्रम में सामने आता है वह है संविधान के कठोर और लचीलापन में समन्वय होना। संविधान निर्माताओं ने इस बात का ध्यान रखा कि भारतीय संविधान बदलते हुए समय की आवश्यकता ओं के अनुसार अनुकूलन की सामर्थ से युक्त हो ताकि गतिशीलता बनी रहे और विकास और उन्नति के मार्ग प्रशस्त होते रहे। साथ ही उन्होंने इस बात का भी ध्यान रखा कि लचीलापन इतना नहीं हो जाए कि भारतीय राज व्यवस्था का मूल स्वरूप ही, मूल प्रकृति ही क्षणिक स्वार्थ के लिए बदल दिया जाए। इसलिए कठोरता के भी तत्वों का समावेश किया गया। लचीलापन का तात्पर्य है कि भारतीय संविधान के कुछ भागों में परिवर्तन सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से किया जा सकता है। जबकि कठोरता का तात्पर्य है उन प्रावधानों से जिनको सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। भारतीय संविधान में संशोधन के लिए तीन पद्धतियों का समावेश किया गया है। एक तो सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन दूसरा संसद के विशेष बहुमत से संशोधन और तीसरा संसद के विशेष बहुमत के साथ आधे राज्यों के विधान मंडल के समर्थन से संशोधन। यहां विशेष बहुमत से तात्पर्य है इस संपूर्ण का दो तिहाई लेकिन यह दो तिहाई कुल संख्या के आधे से अधिक अवश्य होना चाहिए अर्थात सदन में उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई जो सदन की संपूर्ण संख्या के आधे से अधिक हा, उनके समर्थन को ही विशेष बहुमत कहा जाता है।

भारतीय राजव्यवस्था में उक्त अध्ययन की विषय वस्तु के अलावा शासन के विभिन्न रूप स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। जो इसकी आधारभूत विशेषताओं को निर्मित करने में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। भारत में शासन की दृष्टि से संसदीय शासन प्रणाली अपनाया गया है संघात्मक शासन प्रणाली अपनाया गया है इसके साथ ही विशेष परिस्थितियों के निराकरण के लिए एकात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है। सबसे पहले संसदीय शासन प्रणाली के अध्ययन करेंगे संसदीय शासन प्रणाली ब्रिटेन का अनुकरण करते हुए अपनाया गया है। भारत में संसद के अंग के रूप में राष्ट्रपति लोकसभा और राज्यसभा है।[9] संसदीय शासन की मुख्य विशेषता है जैसा कि ऊपर अध्ययन के क्रम में हमने देखा भी है कि व्यवस्थापिका और कार्यपालिका में घनिष्ठ संबंध होता है। कार्यपालिका का गठन व्यवस्थापिका में से होता है यदि भारत का उदाहरण ले तो मंत्रिपरिषद का गठन संसद के दोनों सदनों में से होता है। व्यवहारिक दृष्टि से परंपरा अनुसार संसद के निचले सदन अर्थात लोकसभा से ही मंत्री बनाए जाते हैं लेकिन राज्यसभा से मंत्री बनाने के लिए किसी भी प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं है समय-समय पर देखा गया है कि राज्यसभा के सदस्य मंत्री और प्रधानमंत्री नियुक्त होते रहे हैं। पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी, डॉ मनमोहन सिंह, अरुण जेटली पूर्व में राज्यसभा के सदस्य के रूप में ही क्रमशः प्रधानमंत्री और मंत्री पद पर नियुक्त हुए हैं।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि इसमें नाम मात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका का भेद पाया जाता है। नाम मात्र की कार्यपालिका भारत में राष्ट्रपति हैं जिनके नाम से समस्त कार्य किए जाते हैं वास्तविक शक्तियों का प्रयोग उनके नाम से मंत्रिपरिषद करती है। यहां एक विषय और रखना विशेष रूप से महत्वपूर्ण है वह यह की राष्ट्रपति में भी संसदीय शासन प्रणाली की विशेषताएं दिखाई देती हैं। जहां एक तरफ राष्ट्रपति देश की कार्यपालिका के प्रमुख है वहीं दूसरी तरफ संसद के अंग भी हैं अर्थात व्यवस्थापिका और कार्यपालिका दोनों में राष्ट्रपति दिखाई देते है। संसद के दोनों सदनों के द्वारा पारित कोई भी विधेयक तभी कानून बनता है जब राष्ट्रपति उसे स्वीकृति प्रदान करते हैं और उस कानून का क्रियान्वयन वर्तमान में प्रचलित कानून का क्रियान्वयन राष्ट्रपति के द्वारा ही कराया जाता है। उनके नाम से मंत्रिपरिषद ही करती है।

इसके साथ ही साथ भारत में संघात्मक शासन प्रणाली का भी प्रावधान किया गया है। संघात्मक शासन प्रणाली का आदर्श स्वरूप अमेरिका में दिखाई देता है और जो सबसे पुराना भी है। यहां यह उल्लेखनीय है कि भारत में संघात्मक शासन प्रणाली को अपनाया गया है लेकिन अमेरिका का अनुसरण नहीं किया गया है। उसके स्थान पर कनाडा का अनुसरण किया गया है। अमेरिका में संघात्मक शासन प्रणाली में संघ की शक्तियों का उल्लेख कर दिया गया है और अवशिष्ट शक्तियां राज्यों के पास है जबकि कनाडा में अवशिष्ट शक्तियां संघ की सरकार के पास है। अब हम मुख्य रूप से संघात्मक शासन के मुख्य तत्वों का अध्ययन करेंगे। इसमें प्रथम है केंद्र और राज्य की सरकार के बीच शक्तियों का विभाजन दूसरा है संविधान की सर्वोच्चता तीसरा स्वतंत्र निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायपालिका। यह तीन मुख्य विशेषताएं हैं। इसके साथ ही उच्च सदन में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व, दोहरी नागरिकता आदि। अब हम क्रमशः अध्ययन करते है। जैसा कि हमने देखा केंद्र और राज्य के बीच शक्तियों का विभाजन मुख्य विशेषता है भारत में भी केंद्र और राज्य के बीच शक्तियों का विभाजन किया गया है। यह विभाजन तीन सूचियों के माध्यम से किया गया है जो संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची है। संघ सूची में राष्ट्रीय महत्व के महत्व के विषयों का समावेश किया गया है। राज्य सूची में प्रांतीय स्तर के महत्व के विषयों का समावेश किया गया है। समवर्ती सूची में उन विषयों का समावेश किया गया है जो संघ और राज्य दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। संघ सूची के विषय पर कानून बनाने का अधिकार तथा उन पर प्रशासन करने का अधिकार संघीय सरकार का है। जबकि राज्य सूची के विषय पर कानून बनाने का और उन पर प्रशासन करने का अधिकार राज्य सरकार का है जहां तक समवर्ती सूची की बात है इस पर कानून बनाने का अधिकार संघ की सरकार और राज्य की सरकार दोनों को है लेकिन यदि दोनों द्वारा बनाए गए कानूनों में विवाद उत्पन्न हो जाए तो संघ के द्वारा बनाया गया कानून मान्य होगा।

यहां पर एक बात का उल्लेख और करना आवश्यक है कि इन तीनों सूचियों के अलावा अवशिष्ट शक्तियों का भी प्रावधान भारतीय संविधान में किया गया है। ऐसा करने के पीछे संविधान निर्माताओं की क्या मंशा रही होगी इस संदर्भ में यह कहना है की वह चाहते थे कि संविधान समय की परिस्थितियों के अनुसार अपने आप को ढालने की सामर्थ्य से युक्त हो। वह यह भी जानते थे कि समय के साथ आवश्यकताओं के बदलने के साथ नए-नए विषय का उद्भव होना स्वभाविक है। उन विषयों का समावेश भी भारतीय संविधान और राजनीतिक व्यवस्था में आवश्यक है। इसलिए इन विषयों को अवशिष्ट विषय कहते हुए इन पर विधान और प्रशासन का अधिकार संघ की सरकार को प्रदान किया गया है। यह विभाजन जो शक्तियों का दिखाई दे रहा है इस को कानूनी रूप देने के लिए इसको सर्वोच्चता प्रदान करने के लिए इसका प्रावधान एक लिखित निर्मित और सर्वोच्च संविधान में किया गया है। एक ऐसा संविधान जिसके कुछ पक्षों को आसानी से बदला जा सकता है जबकि कुछ के लिए विशेष बहुमत के साथ राज्यों का समर्थन भी आवश्यक है भारतीय संविधान इन विशेषताओं से युक्त है। इसके माध्यम से ही संघ और राज्य के बीच शक्तियों के विभाजन के सिद्धांत की बात की गई है। शासन के संगठन, नागरिकों के अधिकार आदि विविध पक्षों का समावेश भारतीय संविधान में किया गया है।

संविधान में विस्तृत प्रावधान होने के बाद यह संभव है कि संघ और राज्य के बीच विवाद उत्पन्न हो राज्य, राज्य के बीच विवाद उत्पन्न हो, कई राज्य और संघ के बीच विवाद उत्पन्न हो, कई राज्यों और अन्य कई राज्यों के बीच विवाद उत्पन्न हो, नागरिक अधिकारों की सुरक्षा के संदर्भ में विवाद उत्पन्न हो। इन सारे विषयों को ध्यान में रखते हुए भारत में इनके निराकरण के लिए स्वतंत्र निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायालय का भी प्रावधान किया गया है। यह न्यायालय एक तरफ तो संविधान के रक्षक के रूप में कार्य करता है। दूसरी तरफ नागरिकों के अधिकार के संरक्षक के रूप में भी अपनी भूमिका का निर्वहन करता है। न्यायालय देखता है कि संघ की सरकार या राज्य की सरकार के द्वारा निर्मित कोई कानून या कोई कार्य संविधान के प्रावधानों के अनुरूप है या नहीं। परीक्षण में यदि वह पाता है कि वह संविधान के अनुरूप नहीं है तो जिस सीमा तक प्रावधान संविधान के उपबंधों के अनुरूप नहीं होते उस सीमा तक उसे रद्द घोषित करता है। संविधान के उपबंधों के अनुरूप है तो उसे वैध घोषित करता है। इसके साथ ही साथ जैसा कि हमने देखा कि नागरिक अधिकार के रक्षक के रूप में भी न्यायपालिका कार्य करती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32[10] के तहत कोई भी नागरिक अपने मूल अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय मैं जा सकता है और उपचार प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार अनुच्छेद 226[11] के अनुसार उच्च न्यायालय में जा सकता है और उपचार प्राप्त कर सकता है। इसलिए भारतीय संविधान निर्माताओं में इस बात का ध्यान रखा और उन सभी तत्वों का समावेश किया जो भारत में नागरिक व्यक्तिगत रूप रूप से और सामूहिक रूप से प्रांत के स्तर पर अपनी स्वतंत्रता का उपयोग करते हुए अपने विकास के लिए अपने आकांक्षाओं के अनुरूप कार्य कर सकें। लेकिन इसके साथ ही साथ संविधान निर्माता इस बात से भी अवगत थे की देश की विविधता को संविधान में स्थान देने के साथ राष्ट्रीय एकता और अखंडता की सुरक्षा को भी स्थान देना है। देश की आजादी के साथ ही देश का दुखद विभाजन भी सांप्रदायिक आधार पर हुआ था। इसलिए वह नहीं चाहते थे कि ऐसी कोई स्थिति पुनः उत्पन्न हो। ऐसी विशेष परिस्थितियों के लिए केंद्र की सरकार को बहुत अधिक शक्तियां देते हुए दिखाई देते हैं। जिसमें राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियां विशेष रूप से उल्लेखनीय है जैसे 352[12] के अनुसार युद्ध हुआ है आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह की स्थिति में राष्ट्रपति मंत्रिमंडल की सिफारिश पर देश में या उसके किसी हिस्से में राष्ट्रीय आपात की घोषणा कर सकते हैं। अनुच्छेद 356[13] के अनुसार राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता की घोषणा राष्ट्रपति कर सकते हैं। इसको करने के लिए राष्ट्रपति स्वतः संज्ञान ले सकते हैं या राज्यपाल की सिफारिश पर ऐसा कर सकते हैं। राज्यपाल की सिफारिश का आधार यह है कि राज्य में शासन व्यवस्था संविधान के प्रावधानों के अनुसार चलाया जाना संभव नहीं है। इस प्रकार से देखते हैं कि संकटकालीन प्रावधानों के कारण केंद्र तो मजबूत होता है लेकिन कानून निर्माण की प्रक्रिया में भी केंद्र की सरकार को मजबूत किया गया है राज्यों की अपेक्षा ज्यादा शक्तिशाली किया गया है। इस संदर्भ में अनुच्छेद 249, 250, 252, 253, 256 और 257[14] विशेष रूप से उल्लेखनीय है जो राज्य के संदर्भ में केंद्र को अधिक शक्तियां प्रदान करते है।

इस प्रकार अध्ययन में हमने पाया कि देश में शासन व्यवस्था का कोई एक स्वरूप नहीं अपनाया गया है यहां पर संघात्मक शासन, संसदीय शासन और एकात्मक शासन के मूल तत्व स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। सवाल उठता है कि संविधान निर्माताओं ने किसी एक ही शासन को अपनाने पर जोर क्यों नहीं दिया। शासन के किसी एक रूप को शुद्धता के साथ क्यों नहीं स्वीकार किया, क्यों नहीं लागू किया? यह बहुत ही कठिन और जटिल सवाल है। लेकिन जब गंभीरता देखें तो इसको समझना कठिन नहीं है। शोधपत्र के प्रथम चरण में हमने यह देखा कि भारत में बहुत ही विविधता पाई जाती है यह विविधता जाति धर्म भाषा क्षेत्र आदि की पाई जाती है। इन विविधताओं के कारण जीवन निर्वाह की प्राथमिकताओं में भी भिन्नता पाई जाती है इस भिन्नता को स्थान मिले और यह सभी एक साथ जुड़ी रहे एक साथ चलती रहे और एक रूप हो करके देश को मजबूती के साथ आगे बढ़ाते रहें यह चुनौती संविधान निर्माताओं के सामने थी। इसलिए इसके निराकरण के लिए संविधान निर्माताओं ने शासन के विभिन्न रूप रूप को अपनाने पर बल दिया। जहां विविधता को सम्मान और स्थान देने के लिए संघात्मक शासन प्रणाली अपनाया गया है क्योंकि संघात्मक शासन प्रणाली में संविधान के द्वारा संघ और राज्य अपने अपने क्षेत्र में स्वतंत्रता पूर्वक संविधान के द्वारा प्रदान की गई शक्तियों के अनुसार कार्य करते हैं। इस शक्ति के माध्यम से राज्य की सरकारें अपनी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुरूप कार्य योजना बनाकर विकास को नई ऊंचाइयों तक ले जा सकते हैं। इसी के साथ आवश्यकता इस बात की भी थी कि यह सभी राष्ट्रीय स्तर पर एक साथ एक मंच पर हो, ताकि सभी अपने को एक समझ कर देश के लिए काम कर सकें ।ऐसा करने के लिए देश में संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई। संसदीय शासन प्रणाली में मंत्रिपरिषद जिसमें प्रधानमंत्री भी शामिल है मुख्य कार्यपालिका की भूमिका में होती है। भारत में व्यवस्था के अनुसार निम्न सदन अर्थात लोकसभा में संपूर्ण संख्या का 15 प्रतिशत तक मंत्री हो सकते हैं अर्थात 545 सदस्यों में 15 प्रतिशत के लिहाज से 82 मंत्री हो सकते हैं। मंत्रिपरिषद के गठन में प्रधानमंत्री इस बात का ध्यान रखते हैं कि देश के सभी जाति धर्म भाषा क्षेत्र से मंत्री पद पर नियुक्ति हो। इसके माध्यम से वह सभी जाति धर्म भाषा क्षेत्र के लोग अपने आप को भारत सरकार में हिस्सेदारी पाते हुए दिखाई देते हैं। जिसका परिणाम होता है कि सभी एक मंच पर एक साथ होते हैं इस एहसास के साथ कि हमारा प्रतिनिधि हमारी सरकार में है और यह सरकार हमारी है इसका तात्पर्य है कि इस सरकार के गठन में जो विविधता को स्थान दिया गया है अर्थात जो सभी जाति धर्म भाषा क्षेत्र के सदस्य को मंत्रिपरिषद में शामिल किया गया है, वह सभी हमारे अपने हैं। इस प्रकार से विविधता केंद्र की मंत्रिपरिषद में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इसीलिए संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है। यद्यपि समय-समय पर अध्यक्षीय शासन प्रणाली की मांग भी उठती रही है ताकि एक मजबूत और सशक्त सरकार का गठन हो सके। अध्यक्षीय शासन प्रणाली में समस्त कार्यपालिका शक्तियां एक व्यक्ति में ही निहित होती हैं। लेकिन क्या यह संभव था की इस शासन प्रणाली में पूरे देश की विविधता केंद्र की सरकार में अपने को शामिल हुआ एहसास करें और उस सरकार को अपनी सरकार माने निश्चित रूप से नहीं। संविधान निर्माता इस बात से अवगत थे इसीलिए संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई। अभी एक विषय और महत्वपूर्ण है वह यह कि वह कौन से कारक हैं जिनके कारण संसदीय और संघात्मक शासन प्रणाली अपनाने के साथ ही महत्वपूर्ण एकात्मक शासन की विशेषताओं को भी शामिल किया गया। जैसा कि पूर्व में हमने देखा कि संविधान निर्माता जब संविधान निर्माण का कार्य कर रहे थे उसी समय देश का दुखद विभाजन हुआ यह विभाजन सांप्रदायिक आधार पर हुआ। इसलिए संविधान निर्माता एक ऐसी सरकार का गठन करना चाहते थे जो सरकार देश की संकटकालीन स्थिति से निपट सके। देश को एकजुट रख सके। इस आवश्यकता के दृष्टिगत संकटकालीन स्थिति यों के निराकरण के लिए एकात्मक शासन का भी प्रावधान किया गया इसलिए यह दिखाई देता है कि भारतीय राजव्यवस्था में शासन व्यवस्था का संश्लेषण दिखाई देता है। इसका तात्पर्य है कि भारतीय राजव्यवस्था में शासन का कोई एक रूप शुद्धता लागू नहीं है वरन संघात्मक संसदीय और एकात्मक शासन की महत्वपूर्ण विशेषताएं

जो देश की आवश्यकता और जरूरतों का निराकरण कर सके उन को शामिल किया गया है। आलोचक आलोचना करते हैं कि भारतीय संविधान में संघात्मक होते हुए इसमें एकात्मक तत्व कठोरता से पाए जाते हैं संसदीय होते हुए संघात्मक विशेषताएं पाई जाती हैं तो यहां स्पष्ट रूप से उल्लेखनीय है कि संविधान निर्माता शासन की किसी रूप की शुद्धता बनाए रखने के लिए संकल्पबद्ध नहीं थे। ऐसे स्वरूप का निर्माण करना चाहते थे जो देश की आवश्यकताओं के अनुरूप हो और देश को प्रगति की राह पर ले जा सके इसलिए उन्होंने शासन के इन रूपों के संश्लेषण अर्थात सभी के मिले-जुले स्वरूप को अपनाने पर बल दिया है।

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के मूल तत्व के बारे में निम्नलिखित पक्ष उभरकर सामने आते है। एक तो यह कि भारतीय संविधान भारत की विविधता को संपूर्णता में समाहित करने का काम करता है इसके साथ ही साथ शासन के संगठन नागरिकों के अधिकार और विविधता के विविध पक्षों को शामिल करने के साथ यह बहुत ही विस्तृत हो जाता है। दुनिया का सबसे विशाल संविधान बनकर के सामने आता है। इसके साथ ही यह भी दिखाई देता है कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में शासन का कोई एक स्वरूप शुद्धता नहीं मिलता है वरन विभिन्न आवश्यकताओं के निराकरण के लिए शासन का संश्लेषण दिखाई देता है जिसमें संघात्मक शासन एकात्मक शासन और संसदीय शासन तीनों का संश्लेषण पाया जाता है। यहां यह भी पाया है कि देश और समाज की गतिशीलता बनी रहे इस बात के लिए संविधान में संशोधन करने की क्षमता प्रदान की गई है लेकिन यह क्षमता राज व्यवस्था की मूल प्रकृति को ही खंडित कर दे उसको रोकने के लिए बहुत से प्रावधान ऐसे हैं जिनमें संघ की संसद के विशेष बहुमत और आधे से अधिक राज्यों के निजी आकांक्षाओं के लिए संविधान में परिवर्तन की सोच पर भी अंकुश लगाने का कार्य किया है। इसके साथ ही शक्तियों के विभाजन के संदर्भ में राज्यों की बजाय केंद्र की सरकार को मजबूती देते हुए संविधान निर्माता दिखाई देते हैं इसमें किसी प्रकार के संशय में वह नहीं थे क्यों क्योंकि जैसा कि ऊपर देखा की देश का विभाजन भी आजादी के साथ हुआ। पुनः उसी स्थिति को आने से रोकने के लिए एक मजबूत और सशक्त केंद्र की सरकार की आवश्यकता को महसूस करते हुए शक्ति विभाजन में संविधान में केंद्र की सरकार की तरफ झुकाव रखा डॉक्टर भीमराव अंबेडकर ने भी इस प्रकार से शक्तिशाली केंद्र के बनाने का बहुत ही समर्थन किया है। इस प्रकार भारतीय राजव्यवस्था मैं यह जो उक्त मूल तत्व है वह न केवल राज व्यवस्था की प्रकृति को निर्धारित करने का कार्य करते हैं। शासन के स्वरूप और उसके लक्ष्यों को स्पष्ट करने का कार्य करते हैं। साथ ही नागरिक अधिकारों का भी प्रावधान करते हैं। उससे आगे भी रक्षा व्यवस्था के रूप में स्वतंत्र सर्वोच्च न्यायालय का प्रावधान कर राजनीतिक व्यवस्था के मूल तत्व की सुरक्षा कवच के रूप में उपलब्ध कराते हैं साथ ही नागरिक अधिकारों के संरक्षक के रूप में भी न्यायपालिका को महत्वपूर्ण भूमिका देते हैं।

1. Constitution of India (https://legislative.gov.in/sites/default/files/CONSTITUTION%20OF%20INDIA-2019-UPLOAD.pdf]) पृष्ठ संख्या 5।
2. Constitution of India (https://legislative.gov.in/sites/default/files/CONSTITUTION%20OF%20INDIA-2019-UPLOAD.pdf]) पृष्ठ संख्या 5 से 9।
3. Constitution of India (https://legislative.gov.in/sites/default/files/CONSTITUTION%20OF%20INDIA-2019-UPLOAD.pdf]) पृष्ठ संख्या 1।
4. Constitution of India (https://legislative.gov.in/sites/default/files/CONSTITUTION%20OF%20INDIA-2019-UPLOAD.pdf]) पृष्ठ संख्या 1।
5. Constitution of India (https://legislative.gov.in/sites/default/files/CONSTITUTION%20OF%20INDIA-2019-UPLOAD.pdf]) पृष्ठ संख्या 1।
6. Constitution of India (https://legislative.gov.in/sites/default/files/CONSTITUTION%20OF%20INDIA-2019-UPLOAD.pdf]) पृष्ठ संख्या 5।
7. Constitution of India (https://legislative.gov.in/sites/default/files/CONSTITUTION%20OF%20INDIA-2019-UPLOAD.pdf]) पृष्ठ संख्या 1।
8. Constitution of India (https://legislative.gov.in/sites/default/files/CONSTITUTION%20OF%20INDIA-2019-UPLOAD.pdf]) पृष्ठ संख्या 34।
9. Constitution of India (https://legislative.gov.in/sites/default/files/CONSTITUTION%20OF%20INDIA-2019-UPLOAD.pdf]) पृष्ठ संख्या 36।
10. Constitution of India (https://legislative.gov.in/sites/default/files/CONSTITUTION%20OF%20INDIA-2019-UPLOAD.pdf]) पृष्ठ संख्या 18से 19।
11. Constitution of India (https://legislative.gov.in/sites/default/files/CONSTITUTION%20OF%20INDIA-2019-UPLOAD.pdf]) पृष्ठ संख्या 104।
12. Constitution of India (https://legislative.gov.in/sites/default/files/CONSTITUTION%20OF%20INDIA-2019-UPLOAD.pdf]) पृष्ठ संख्या 207.. .208।
13. Constitution of India (https://legislative.gov.in/sites/default/files/CONSTITUTION%20OF%20INDIA-2019-UPLOAD.pdf]) पृष्ठ संख्या 210 से 211।
14. Constitution of India (https://legislative.gov.in/sites/default/files/CONSTITUTION%20OF%20INDIA-2019-UPLOAD.pdf]) पृष्ठ संख्या 146 से 151।

छत्तीसगढ़ के कलचुरी राजवंश कालीन अभिलेखों में शैवधर्म

सुश्री शुभ्रा रजक

(शोध छात्रा), प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्व विद्यालय, रायपुर, छ.ग.

प्राचीन भारत में धर्म शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में होता रहा है, स्पष्टतः धर्म शब्द के अंतर्गत वे सभी आचार, नियम, परम्पराएं और विधि-विधान समाहित है जो सामाजिक एवं आध्यात्मिक जीवन को व्यवस्थित करती हैं। इसी कारण प्राचीन भारत में धर्म तथा संस्कृति का गौरवपूर्ण स्थान रहा है। भारतवर्श में शिव की उपासना अनंत काल से चली आ रही है। शिव ब्राम्हण धर्म के प्रभावशाली देवता माने जाते हैं, जिनकी गणना त्रिदेवों में भी की गई है। यह भी माना जाता है कि शिव की उपासना सिंधुघाटी सभ्यता के समय से प्रचलित रही है। विष्णु के सदृश्य ही शिव की उपासना और पूजा सामान्यजनों के साथ ही विशिष्ट जनों में भी प्रचलित रही है। शिव की पूजा मूर्तियों और लिंग के रूप में की जाती थी। कालान्तर में एकमुख, त्रिमुख एवं पंचमुख शिवलिंगो के साथ ही शिव की मानवीय आकृतियों में प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा होने लगी एवं कालक्रमानुसार शैव धर्म के अनेक सम्प्रदायों का उदय हुआ।

इसी परिप्रेक्ष्य में छत्तीसगढ़ की संस्कृति में भी धर्म के विकासक्रम का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि यहां पर भी सभी धर्मों में समभाव रहा है। जिसका सर्वोत्तम उदाहरण कलचुरी कालीन समाज है। छत्तीसगढ़ में कलचुरियों के पूर्व कुछ शताब्दियों तक विभिन्न राजवंशों ने शासन किया, जिनमें नलवंश, शरभपुरीय वंश, पाण्डुवंश, मेकल के पाण्डु वंश तथा त्रिकलिंगाधिपति सोमवंश आदि राजवंश प्रमुख है। इन राजवंशों के पुरातात्त्विक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि उन्होंने अनेक धर्म को आश्रय दिया था, जिसका प्रभाव कलचुरि काल तक बना रहा। कलचुरि कालीन विभिन्न शासकों द्वारा दान एवं निर्माण के उपलक्ष्य में जारी किये गये विविध शिलालेखों एवं ताम्रपत्रों, से ज्ञात होता है कि इस वंश के शासकों की धार्मिक क्षेत्र में विशेश रूचि थी। समस्त धर्मों में सामंजस्य स्थापित करते हुए ही उन्होंने उसे उदार संरक्षण प्रदान किया। जिसके परिणाम स्वरूप इनके काल में सभी धर्मों तथा सम्प्रदायों का विकास हुआ। कलचुरी काल के पूर्व ही भारत में मंदिर एवं मूर्ति निर्माण की एक लंबी परम्परा रही है अतः कलचुरी काल भी स्थापत्य एवं शिल्प की दृश्टि से समृद्ध था। तात्कालीन कलचुरी कालीन अभिलेखों में मंदिरों एवं मूर्तियों के निर्माण की अनेक स्थानों पर चर्चा की गई है। जिससे उनके निर्माण कर्ताओं के साथ ही उन आराध्य देवताओं की भी जानकारी प्राप्त होती है, जिनके सम्मान एवं भक्ति को प्रदर्शित करते हुए अनेक मंदिरों एवं मूर्तियों का निर्माण कराया गया।

कलचुरी शासकों का राजधर्म शैव रहा है, कलचुरी शासकों के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि कलचुरी शासक परम शैव थे इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि कलचुरी शासकों के अभिलेखों में उनकी उपाधियां 'परममाहेश्वर' मिलती है।[1] कलचुरी शासकों के अधिकांश अभिलेखों का प्रारंभ 'ऊँ नमः शिवाय' से होता हैं। उनके द्वारा अनेक शिव मंदिरों के निर्माण कराये जाने की भी सूचना प्राप्त होती है। कलचुरीकालीन अभिलेखों से जानकारी प्राप्त होती है कि इस वंश के अधिकांश शासक शैव धर्मानुयायी रहे है। इसके ही परिणामस्वरूप छत्तीसगढ़ में तुम्माण, रत्नपुर, जाजल्लपुर, खल्लवाटिका, राजिम, रायपुर, डीपाडीह, चंद्रखुरी, मल्हार, घटीयारी, सिरपुर, नारायणपुर, भोरमदेव, देवरबीजा, गंडई, खरौद, देवबलौदा जैसे अनेक स्थानों में देवालय कूप, वापी, मठ, मंदिर आदि निर्माण कराये गये। जिनमें कलचुरी कालीन कला के उन्नत स्वरूप की संरचनात्मक विविधता एवं कलात्मक विशेषता ज्ञात होती है। इस काल के स्थापत्य संरचना संबंधि विवरणों का उल्लेख करते हुए अभिलेखिय साक्ष्यों में कहा गया है, कि मंदिर निर्माण के लिए प्रस्तर के साथ - साथ ईष्टिका, स्वर्ण एवं काष्ठ आदि का प्रयोग करते हुए अनेक पंचायतन एवं उत्तुंग देवालय बनाये गये है।

जाजल्लदेव प्रथम के रतनपुर प्रस्तर अभिलेख[2](कलचुरी संवत् 866) में रत्नराज (रत्नदेव प्रथम) द्वारा तुम्माण में वंकेश और रत्नेश आदि मंदिरों का निर्माण कराये जाने, मंदिर, उद्यान, आम्रवन एवं अन्य विशाल इमारतों से नगर की शोभा बढ़ाई जाने का उल्लेख किया गया है। साथ ही अपने नाम से रतनपुर नामक नगर की स्थापना कर बहुत से मंदिरों का निर्माण कर उसे अलंकृत किये जाने का वर्णन प्राप्त होता है। इसी तरह छत्तीसगढ़ में पाली में महादेव मंदिर की प्राप्ति हुई है। पाली बिलासपुर से लगभग 60 किलो मीटर की दूरी पर स्थित है। यह मंदिर पूर्वाभिमुख है। इस मंदिर के गर्भगृह में जलहरि सहित एक गोलाकार शिवलिंग स्थापित है। इस मंदिर के बारे में जानकारी हमें अभिलेखों से प्राप्त होती है। जिसके आधार पर इस मंदिर का निर्माण बाणवंशी शासक विक्रमादित्य ने 870-900 ईसवी के मध्य करवाया था। बाद में लगभग दो सौ वर्षो के पश्चात् रतनपुर के कलचुरी शासक जाजल्लदेव प्रथम द्वारा ही इस मंदिर का जिर्णोद्धार करवाया गया था।

पृथ्वीदेव द्वितीय कालीन कोनी प्रस्तर लेख[3] के अनुसार उनके सर्वाधिकारिन पुरूषोत्तम द्वारा रत्नपुर में गहरा और निर्मल जल वाला तालाब तथा पंचायतन शैली में शिव का सुंदर मंदिर का निर्माण करवाया गया था। संभवतः चारों ओर से जल से घिरे होने के कारण यह शिव मंदिर द्वारिकापुरी की तरह सुशोभित होता था।

कलचुरी कालीन पंचायतन शैली के निर्माण से संबंधित मंदिर के अभी तक केवल दो ही अभिलेखीय साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। इस अभिलेख में शिव के ताण्डव नृत्य की भी चर्चा की गई है। पृथ्वीदेव द्वितीय के रतनपुर प्रस्तर अभिलेख[4] (कलचुरी संवत् 915) से ज्ञात होता है कि ग्राम साम्बा में हिमालय की भांति

ऊँचा और सुंदर बिल्वपाणि नामक शिव मंदिर का निर्माण कराया गया था। रतनपुर प्रस्तर अभिलेख में अनेक मंदिरों एवं विभिन्न सुंदर एवं कमल युक्त सरोवरों के निर्माण का वर्णन किया गया है। इसके अनुसार पृथ्वीदेव द्वितीय ने मल्हार में धूर्जटि शिव का मंदिर बनवाया था। इसमें पुनः कैलाश की भांति विशाल एवं सुंदर त्रैयम्बक् भगवान शिव के दस मंदिरों के निर्माण का उल्लेख मिलता है। इसके पश्चात् बरेलापुर में चंद्रमा की भांति धवल (सफेद एवं सुंदर) श्रीकंठ भगवान शिव के मंदिर निर्माण की जानकारी प्राप्त होती है एवं नारायणपुर में धूर्जटि शिव मंदिर के निर्माण करवाने का वर्णन है। कुमराकोटपत्तन में पार्वती पति शिव के मंदिर के निर्माण तथा इसके साथ ही जनकल्याण के उद्देश्य से आम्रवाटिका एवं सोपानयुक्त कुआं का निर्माण कराये जाने कि जानकारी भी इस अभिलेख से प्राप्त होती है।[5]

कलचुरी काल में पृथ्वीदेव द्वितीय का यह रतनपुर प्रस्तर अभिलेख तात्कालीन वास्तुशास्त्र की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है, जिसमें दो धूर्जटी शिव मंदिर, दस त्र्यंबक शिव मंदिर, एक श्रीकंठ मंदिर, तथा पार्वती के नौ मंदिरों के निर्माण कराये जाने की चर्चा की गई है, साथ ही एक आम्रवाटिका, एक कुंआ तथा सात सरोवरों के निर्माण की जानकारी प्राप्त होती है। जाजल्लदेव द्वितीय के शिवरीनारायण अभिलेख[6] में छीतूक को शिल्पशास्त्र का ज्ञाता बताया गया है। इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि सर्वदेव ने सोण्ठिवपुर में बादलों को छूने वाला भगवान शम्भु का मंदिर तथा सरोवर बनवाया था। इस अभिलेख में चन्द्रचूड़ भगवान शिव के मंदिर का भी वर्णन किया गया है, जो संभवतः जाजल्लदेव द्वितीय के काल में अथवा पूर्ववर्ती शासकों के समय निर्मित हुआ होगा। रत्नदेव तृतीय के खरोद प्रस्तर अभिलेख[7] से ज्ञात होता है कि गंगाधर ने वड़देपुर के वन में शिव के मण्डप का निर्माण करवाया था साथ ही शिव एवं गणपति के दो विशाल मंदिर के निर्माण की चर्चा की गई है। यह भी उल्लेखित है कि गंगाधर ने पोरथ में भगवान शम्भु का बादलों को छुने वाला मंदिर का निर्माण करवाया था, जिसका तात्पर्य बहुत ऊंचे मंदिर के निर्माण करवाये जाने से है।

रत्नदेव के खरौद प्रस्तर अभिलेख के अनुसार शिवमंदिर के दक्षिण भाग में तपस्वियों के निवास के लिए काष्ठ-भवन निर्मित किया गया था। वाहर के रतनपुर प्रस्तर अभिलेख में सूत्रधार छीतुक को काष्ठ, पाषाण, स्वर्ण, यन्त्रविद्या, महाविद्या, वंक, त्रिवंक, वादन, लता-वल्लरी, त्रिताल और सप्ततात आदि कलाओं में पारंगत बताया गया है। पुरातात्त्विक स्थल मदकूद्विप से स्मार्त लिंग की प्राप्ति हुई है। छत्तीसगढ़ के कलचुरी शासकों के अनुसार स्मार्त पूजा के द्वारा साम्प्रदायिक आसमन्जस्य एवं जातिगत विषमताओं को दूर करने तथा प्रजा को संगठित करने के उद्देश्य से उनमें राष्ट्रीयता की भावना विकसित करने के लिए इस स्मार्त पूजा को वरीयता दी गई थी। छत्तीसगढ़ में तुम्माण (जिला कोरबा) में भी मदकूद्विप की भाँति स्मार्त लिंगों में पांच पिण्डों का अंकन मिलता है जो शैव, वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य और सौर धर्म का द्योतक है जो धार्मिक समन्वय की भावना को प्रदर्शित करता है।

इस प्रकार पूर्व मध्यकाल में छत्तीसगढ़ से प्राप्त कलचुरीकालीन अभिलेखों में वर्णित स्थापत्य एवं मूर्तिकला, कला के विविध आयामों को प्रदर्शित करती है। यद्यपि अभिलेख उत्कीर्ण कराएं जाने हेतु, अधिकांश विषयों का प्रयोजन धार्मिक रहा है। अभिलेखों में उल्लेखित मंदिर स्थापत्य वर्तमान समय में भी जनसामान्य के आस्था का केन्द्र है। कलचुरी कालीन अभिलेखों में उल्लेखित, स्थापत्य एवं कला की ये संरचना प्राचीन छत्तीसगढ़ के इतिहास की अनुपम निधि है।

संदर्भ - ग्रंथ

1. चक्रवर्ती, एन. पी., 1935-36, एपिग्राफीका इंडिका, भाग 23, पृ. 113.
2. मिराशी, वि.वि., कार्पस इन्सक्रिप्सनम, इण्डिकेरम्, भाग 4, पृ. क्र. 412.
3. का.इ.इ., जिल्द 4, पृ. 469.
4. का.इ.इ., जिल्द 4, पृ. 487.
5. परिहार, दिनेश नंदिनी, रजक, शुभ्रा, प्रोसेडिंग ऑफ द सेमिनार ऑन रीसेन्ट रीसर्चेस इन इंडियन ऑर्कियोलॉजी वीद स्पेशल रीफ्रेन्स टू द बुद्धिस्ट आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर, डायरेक्टोरेट ऑफ कल्चर एण्ड ऑर्कियोलॉजी गवर्नमेन्ट ऑफ छत्तीसगढ़, रायपुर, 2018, पृ. 40.
6. का.इ.इ., जिल्द 4,पृ. 524.
7. पूर्वोक्त, पृ. 539.
8. सिंह, प्रभात कुमार, मदकूद्विप उत्खनन, (2010-11) संचालनालय, संस्कृतिक एवं पुरातत्त्व, छत्तीसगढ़, 2013, पृ. 64.

माध्यमिक स्तर पर पुरुष तथा महिला शिक्षकों के शिक्षण दक्षता का तुलनात्मक अध्ययन

सन्तोष कुमार गुप्ता

शोध छात्र, शिक्षा संकाय, राजा हरपाल सिंह पी.जी. कॉलेज, सिंगरामऊ, जौनपुर (उ0प्र0)

डॉ० अनुभा शुक्ला

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, राजा हरपाल सिंह पी.जी. कॉलेज, सिंगरामऊ, जौनपुर (उ0प्र0)

संक्षिप्त सारांश

वर्तमान समय में विभिन्न प्रकार के निर्देशनों तथा शैक्षणिक व्यावसायिक एवं वैयक्तिक क्षेत्र में शिक्षकों की विशेष योग्यता अभिरुचि एवं उनमें उत्पन्न दक्षता को समझना अति आवश्यक समझा जाता है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए अभिक्षमता, अभिरुचि, रुचि तथा दक्षता के परीक्षणों का निर्माण किया गया है। शिक्षा प्रणाली की कुशलता शिक्षकों की योग्यता, दशता, एवं प्रतिबद्धता पर निर्भर करती है। अच्छे शिक्षकों के अभाव में सर्वोत्तम शिक्षा प्रणाली का भी असफल होना अवश्य समभावी है। शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने शिक्षण को प्रभावी बनाकर छात्रों को अध्ययन के प्रति जागरुक बनाने और उनमें ऐसी भावनाएँ विकसित करे की वे हर समय सीखने की जिज्ञासा रखे अर्थात् शिक्षण प्रभाविकता में ही शिक्षण के सिद्धान्त शिक्षण में उद्देश्य तथा शिक्षण के प्रतिमान निहित है। शिक्षण दक्षता से तात्पर्य है प्रभावाक रुप से विषयवस्तु का प्रस्तुतीकरण अर्थात् पूर्व निर्धारित उद्देश्यो तथा वांछित व्यवहारगत परिवर्तनों की सरस सुगम तथा वस्तुनिष्ठ रुप से ऐसा शिक्षण जो रोचक हो आकर्षक हो तथा विद्यार्थियों को पूर्वलवलन प्रदान करता हो प्रभावी समझा जाता है शिक्षण दक्षता के साथ-साथ शिक्षक की अपने व्यवसाय के प्रति, प्रतिबद्धता भी शिक्षण कार्य को प्रभावित करता है। अत: शिक्षक की सकारात्मक व्यवसाय के प्रति प्रतिबद्धता ही शिक्षण कार्य को सुगम बना सकता है।

मुख्य शब्द:- शिक्षण दक्षता, स्वनिर्मित मापनी, अभिवृत्ति मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, Cr~ मूल्य इत्यादि।

प्रस्तावना:- मानव समाज भारतीय संस्कृति की सनातनता चिरस्थापित्वता और ओजस्विता से परिचित है। इसमें काल और स्थानगत भेदों को आत्मसात् करने की अपूर्व क्षमता है। इसकी संस्कृति और सभ्यता में वृद्धि महान शिक्षकों (गुरुओं) के समय-समय पर दिये गये उपदेशों की व्यवहारिकता, से होती रही है। अत: आज भी समाज निर्माण उत्थान एवं विकास में शिक्षक समाज का विशेष महत्व रहा है। सेमिनार 'अध्यापक शिक्षा का नवीनीकरण' में डॉ0 रामशकल पाण्डेय और प्रो0 मलिक (गिरावट) तथा प्रो0 टी0 पति आदि ने शिक्षकों की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आज शिक्षक की गुणवत्ता, दक्षता तथा चरित्र आदि में गिरावट आती जा रही है। इस प्रकार हमारी शिक्षा व्यवस्था बालवाड़ी, पूर्वप्राथमिक, प्राथमिक, पूर्व माध्यमिक, माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक व्यवस्था में बँट जाती है जिसका उद्देश्य है कि बच्चा अपने शैशवाकाल, बाल्यकाल, पूर्व किशोरावस्था तथा किशोरावस्था तक अपनी मातृभाषा, क्षेत्रीय भाषा तथा एक अन्य किसी भाषा में पारंगत हो जाय और उसकी अभिव्यक्ति खुल जाये। माध्यमिक शिक्षा किशोरावस्था से जुड़ती है और शिक्षा व्यवस्था की मेरुरज्जू होती है। एस0एन0 मुखर्जी माध्यमिक शिक्षा को तीन भागों में बॉटते है।

1. स्थिति के रुप में माध्यमिक शिक्षा वह शिक्षा है जो प्राथमिक शिक्षा के बाद आती है।
2. प्रकार के रुप में माध्यमिक शिक्षा वह है जिसका सम्बन्ध निश्चित व बौद्धिक वस्तुओं के विभाजीकरण से है इसके भी तीन रुप है- भ्रमित नाम, मानवीयता तथा उदार शिक्षा
3. स्तर के रुप में माध्यमिक शिक्षा वह शिक्षा है। जिसे हम बौद्धिकता की कसौटी कह सकते है क्योंकि इसी पर विश्वविद्यालय शिक्षा आश्रित है। वैश्विीकरण के वर्तमान दौर में शिक्षकों को अपने व्यवसाय के सामर्थ को सिद्ध करने के लिए ज्ञान, कौशल, दक्षता, मूल्य सम्बन्धी योग्यताओं को अधिक परिवर्तन करने की आवश्यकता है शिक्षण सर्वाधिक सामान्यजनक व्यवसायों में से एक है शिक्षक को अपने शिक्षण कार्य को प्रभावी ढंग से दक्षता के स्तर पर खरा उतरने व उपयुक्त कौशल योग्यताओं तथा व्यवसाय के प्रति प्रतिबद्धता से सम्पन्न होना था। व्यावसायिक शिक्षा विकास शैक्षिक सुधार के लिए लगभग हर आधुनिक प्रस्ताव में एक महत्वपूर्ण घटक है। शिक्षा का केन्द्रीय घटक विद्यार्थी है और उन्हें सही दिशा निर्देशन करने वाला प्रमुख घटक अध्यापक है। लर्निंग टू बी (1972) यूनेस्को में कहा गया है 'शिक्षाशास्त्रीय प्रशिक्षण' मानव व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों के खोज एवं सम्मान की दृष्टि से संचालित किये जाने चाहिए। व्यावसायिक स्थितियों जिनमें कि शिक्षकों को शिक्षित किया जाना है उनमे गहन परिवर्तन की आवश्यकता है, ताकि मात्र पुराने ढेर के पाठ्यक्रमों को छात्रों तक पहुँचाने विशेषज्ञ न बनकर सही शिक्षा प्रदान बन सकें। इण्टरनेशनल

एनसाइक्लोपिडिया ऑफ टीचिंग एण्ड टीचर एजूकेशन (1987) को देखते है तथा शिक्षण दक्षता ज्ञान योग्यता एवं विश्वास का वह समूह हो जो शिक्षक मानता है और उनका अनुप्रयोग शिक्षण में करता है। दक्षता उस संप्रत्यय एवं कौशल को भी मानते है जिनमें लचीलापन होता है और विभिन्न परिस्थितियों में प्रयोग में आते है।

अध्ययन का औचित्यः- शिक्षक के द्वारा समाज का सन्तुलन स्थापित होता है। आदिकाल से लेकर वर्तमान तक में शिक्षक का अपना महत्व तथा स्थान रहा है। अतः शिक्षकों के बारे में जानना, उनकी समस्याओं को समझना और उनको आज राष्ट्र निर्माता मानना आज की महती आवश्यकता है। आज उन्हें अपना स्वाभिमान बनाये रखने का अवसर मिला होता है शिक्षक संगठनों का जन्म ही न होता। शिक्षक को आज ही नही वैदिक काल से समाज को दिश देना, राष्ट्र की आवश्यकतानुसार नागरिक तैयार करना और समाज तथा राजशक्ति के बीच सामंजस्य बनाये रखना आदि उत्तरदायित्वों का वहन निस्वार्थ करना होता है।

शिक्षक व्यावसायिक प्रतिबद्धता में कमी एक जागरुक समाज के लिये चिन्ता का विषय रहा है और समय-समय पर अनुसंधानकत्ताओं ने उन कारणों को खोजने क प्रयास किया है जो इसे सकारात्मक रुप से प्रभावित करते है। आज शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता में कमी है। माध्यमिक स्तर पर शिक्षकों से ये अपेक्षा की जाती है कि वे व्यावसायिक रुप से प्रतिबद्ध रहे, क्योंकि व्यावसायिक रुप से प्रतिबद्ध होने पर ही वह अपने कार्य को ईमानदारी के साथ पूर्ण कर सकेंगे। माध्यमिक स्तर के शिक्षकों को अपने कार्य के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिये यह कहा जात है कि माध्यमिक स्तर के शिक्षकों पर कार्य का इतना दबाव होत है कि वे कक्षा में पढ़ाने के लिये नहीं जा पाते और यदि वे जाते है तो समय से नहीं पहुँच पाते। अधिकतर शिक्षक आमदनी के अन्य श्रोतों से सम्बन्धित कार्य में व्यस्त रहते है। ऐसे में माध्यमिक स्तर के शिक्षकों को अपना प्रथम कर्त्तव्य नही भूलना चाहिए। उनका प्रथम कर्त्तव्य विद्यार्थियों को पढ़ाना है। माध्यमिक शिक्षा के शिक्षकों को अपने कार्य के प्रति प्रतिबद्ध होना जीवन का निर्वाह करना चाहिए इससे उन्हें मानसिक शान्ति एवं सन्तोष की प्राप्ति होगी और उनका योगदान शिक्षा के क्षेत्र में होता रहेगा शिक्षानीतियाँ शिक्षा सिद्धाँन्त शिक्षा प्रविधियाँ आदि बालकों की अर्न्तनिहित शक्तियों के विकास के लिये बनायी गयी है, परन्तु अध्यापक अपने शिक्षण को नीरस बनाता हुआ छात्रों को मानसिक रुप से कक्षा में उपस्थिति करने में असफल रहता है जिसका परिणाम है कि अधिगम स्तर की अवनति और सृजनात्मकता की क्षति होती हैं। बचपन की अवस्था से ही विद्यार्थी रटकर परीक्षा पास करना सीख जाता है। कुछ शिक्षक अभिभावकों के यहाँ बच्चों के ट्यूशन व कोंचिग भी पढ़ाने पहुँचते है। जिससे उनका आर्थिक विकास तो होता है लेकिन बच्चों कि सांवेगिक हत्य हो जाती है और भविष्य का कुंठित नन्हा प्रौढ़ बनता जाता है आज अध्यापक अपने शिक्षण कार्य को मात्र एक व्यवसाय के रुप में देख रहे है। और वह अपने इस व्यवसाय से अधिक से अधिक धनोपार्जन करने में लगा हुआ है। भौतिकवादी इस विचारधारा के कारण गुरु-शिष्य के सम्बन्धों में भी एक प्रश्न चिन्ह लग गया है। शिक्षक व्यवसाय में इस तरह मसगुल हो गया है कि वह शिक्षण दक्षता को भी नजर अन्दाज करते हुये शिक्षण कार्य में जुटा हुआ है। माध्यमिक स्तर के शिक्षक अपने विद्यालय में अध्यापन करने के साथ-साथ ट्यूशन व कोंचिग में भी व्यस्त नजर आते है। विद्यालय के छात्रों पर ही शिक्षकों द्वारा अपने कोंचिग संस्थान में पढ़ने के लिए इतना दबाव बनाया जाता है कि मजबुरी में छात्र न चाहते हुये भी कोंचिग करना शुरु कर देता है। समाज में ऐसे शिक्षकों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है उसका मुख्यकारण है कि शिक्षक अपने व्यवसाय के प्रति प्रतिबद्ध नही है और जब शिक्षक में व्यवसाय के प्रतिबद्धता नही रहेगी तब उसके अन्दर की शिक्षण दक्षता भी धीरे-धीरे समाप्त होता जायेगा। यही विषमस्थिति को देखकर शोधकर्त्ता के मन विचार आया कि आखिर में क्या कारण है कि माध्यमिक स्तर के शिक्षकों में अपने व्यवसाय के प्रति प्रतिबद्धता समाप्त हो रही है। ऐसी कौन सी परिस्थिति बन गयी है जिसके कारण उनमें शिक्षण दक्षता का अभाव दिखाई पड़ रहा है। शोधकर्त्ता के मन में यह विचार उठता है कि क्या आज अध्यापकों की दक्षता कक्षा के बाहर ट्यूशन या कोंचिग तक सीमित हो गयी है? एक प्रश्न और उठता है कि क्या आज का शिक्षक अपनी शिक्षण प्रक्रिया के प्रति वचनबद्ध नही है? क्या शिक्षकों की दक्षता एव प्रतिबद्धता में कोई अन्तर है? ऐसे ही कुछ प्रश्न है। जिनका समाधान प्राप्त करने के लिये शोधार्थी ने शोध के निर्मित्त प्रस्तुत समस्या का चयन किया है।

साहित्यावलोकनः- सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण की आवश्यकता शोधकार्यों में विशेषकर होती है। सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन के बिना अनुसंधानकर्त्ता का कार्य अन्धे के तीर के समान होगा। इसके अभाव में उचित दिशा में वह एक पग भी आगे नही बढ़ सकता। जब तक उसे ज्ञात न हो कि उस क्षेत्र में कितना कार्य हो चुका है, किस विधि से कार्य किया गया है तथा उसके निष्कर्ष क्या आये है, तब तक वह न तो समस्या का निर्धारण कर सकता है और न उसकी रुप रेखा तैयार कर कार्य को सम्पन्न ही कर सकता है। केवल मानव ही एक ऐसा प्राणी है जो सदियों से एकत्र किये गये ज्ञान का लाभ उठा सकता है। मानव ज्ञान के तीन पक्ष होते है। ज्ञान को एकत्र करना, एक दूसरे तक पहुँचाना और ज्ञान में वृद्धि करना। यह तथ्य शोध में विशेष रुप से महत्वपूर्ण है जो कि वास्तविकता के समीप आने के लिए निरन्तर प्रयास करता रहता है। व्यावहारिक रुप में तो धन की भाँति सम्पूर्ण मानव ज्ञान सम्पूर्ण पुस्तकों तथा पुस्तकालयों में मिल सकता है। अन्य प्राणियों से भिन्न मानव का अतीत से प्राप्त ज्ञान को प्रत्येक पीढ़ी के साथ नये रुप में प्रारम्भ करना चाहिए। ज्ञान के विस्तृत भण्डार में इसका निरन्तर योगदान प्रत्येक क्षेत्र में मानव द्वारा किये गये प्रयासों की सफलता को सम्भव बनाता है। शोधकर्त्ता यह निश्चित कर सकता है कि उसके द्वारा प्रस्तावित शोध से सम्बन्धित विषयों पर विचारणीय कार्य पहले हो चुका है या नहीं किसी भी विषय के विकास में किसी विशेष शोध प्रारुप का स्थान बनाने के लिए शोधकर्त्ता को पूर्ण सिद्धांतों व शोधों से भलि-भाँति अवगत होना चाहिए। इस जानकारी को प्राप्त करने के लिए व्यावहारिक ज्ञान में प्रयोग शोध प्रारुप की प्रारम्भिक अवस्था में इसके सैद्धान्तिक एवं शोध साहित्य का पुर्ननिरीक्षण करना होता है।

साहित्य की समीक्षा का अर्थ, शोध के विशेष क्षेत्र के ज्ञान की व्यवस्था करना एवं ज्ञान को विस्तृत करके यह दिखाना है कि उसके द्वारा किया गया अध्ययन इस क्षेत्र में एक योगदान रहा। साहित्य पुनरावलोकन का कार्य अत्यन्त सृजनात्मक एवं थकाने वाला होता है, क्योंकि शोधकर्त्ताओं को अपने अध्ययन को युक्ति पूर्वक कथन प्रदान करने के लिए प्राप्त ज्ञान को विलक्षण ढ़ंग से एकत्र करना होता है।

ए0एम0एल0 आर्ट्स (2021); ''हम उन माध्यमिक शिक्षा शिक्षकों द्वारा किये गये शोध की गुणवत्ता का आंकलन करना चाहते थे। इसलिये हमें शिक्षक अनुसंधान के मूल्यांकन के मानदंड़ों की जाँच करने की आवश्यकता है। इस अध्ययन की शोध समय रेखाओं चार स्कूल वर्ण शामिल थे। हमने शोध रिपोर्ट

और मूल्यांकन प्रपत्रों को विशलेषण किया। हमने पाया कि शिक्षक अनुसंधान के आंकलन के लिये पांच गुणवत्ता मानदंड उपयोगी है। हमने इन पांचों मानदंड़ों और उनके संकेतको का ठोस संचालन किया। हमने पाया कि सफलतापूर्वक आयोजित शिक्षक अनुसंधान पेशेवर और स्कूल विकास में योगदान देता है। व्यावसायिक विकास में इसका योगदान स्कूल के विकास की तुलना में अधिक और अधिक ठोस है।''

सिंह लक्ष्मण (2019); ''स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिये शिक्षक शिक्षा एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। यह भावी शिक्षकों को शिक्षण कौशल और दक्षता प्रदान करने से सम्बन्धित है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक परिवेश में चल रहे परिवर्तनो को देखते हुये शिक्षक शिक्षा में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है ताकि शिक्षक समाज की बदलती जरुरतों के साथ अपना स्तर ऊँचा कर सकें। आजकल, बड़ी संख्या में निजी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में अभूतपूर्व वृद्धि ने शिक्षण कार्यक्रम की गुणवत्ता को खराब कर दिया है। यह देखा गया है कि निजी संस्थानों में पर्याप्त भौतिक बुनियादी ढाँचे का अभाव है और बड़ी संख्या में अक्षम शिक्षक है। इसके अलावा शिक्षकों की मांग और आपूर्ति में अन्तर ने भी एक बड़ी समस्या पैदा की है।''

लिंडा डार्लिंग हैमंड (2016); ''पिछली आधी सदी शिक्षक शिक्षा अनुसंधान पर USA में बैठक हुयी नया शिक्षा और शिक्षक मूल्यांकन से सम्बन्धित नीति और व्यवहार पर अनुसंधान के कुछ महत्वपूर्ण प्रभावों का पता लगता है अनुसंधान समितियां शिक्षा शिक्षक शोध की चुनौतियों को बहुत करीब से अपनाता है यह शिक्षक की तैयारी की गुणवत्ता, शिक्षण प्रभावशीलता के अंकलन और शिक्षक जबाबदेही की प्रतिस्पर्धा अवधारणाओं पर तथा शैक्षिक नीति पर स्थापित करने के साथ समाप्त हो जाती है।''

खंग दुआ (2016); ''इस पेपर का उद्देश्य शिक्षार्थियों के दृष्टिकोण और मूल्यांकन से एक उच्च शिक्षा संस्थान में एक विशिष्ट पाठ्यक्रम में एक अच्छे शिक्षक की विशेषताओं का पता लगाना है। यह अनुभवजन्य शोध ग्दान्सक विश्वविद्यालय में शिक्षकों की विशेषताओं के बारे में प्रतिभागियों के दृष्टिकोण प्राप्त करने के लिए सर्वेक्षण और एक साक्षात्कार के साथ किया गया है। प्रतिभागियों के दृष्टिकोण से शोध के सन्दर्भ में अच्छे शिक्षकों की पहचान करने में इस शोध के दौरान विशेषताओं की एक श्रृंखला पायी गयी है। ये विशेषतायें उनके मान्यताओं में एक अच्छे शिक्षक की छवि का संकेत देती है जो व्यक्तिगत लक्षणों से लेकर शिक्षण तक कई अलग-अलग अभिन्यासों से सम्बन्धित है। इन छात्रों के दृष्टिकोण एक अच्छे शिक्षक के बारे में सामान्य समझ में योगदान कर सकते है लेकिन सीमित नहीं है।''

अध्ययन के उद्देश्यः- प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्त्ता द्वारा अध्ययन के उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि ''माध्यमिक स्तर पर पुरुष तथा महिला शिक्षकों के शिक्षण दक्षता का तुलनात्मक अध्ययन करना।''

शोध अध्ययन की परिकल्पनाः- उद्देश्य की पूर्ति हेतु शून्य परिकल्पना निर्मित की गई थी कि ''माध्यमिक स्तर पर पुरुष तथा महिला शिक्षकों के शिक्षण दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।''

शोध के प्रकारः- प्रस्तुत अध्ययन विवरणात्मक प्रकार का अध्ययन है। वेस्ट के शब्दों में, ''विवरणात्मक अनुसंधान वर्तमान स्थिति की व्याख्या तथा विवेचना प्रस्तुत करता है। इसका सम्बन्ध उन स्थितियों तथा सम्बन्धों से है जिनका अस्तित्व वर्तमान में है, अथवा उन व्यवहारों से है, जो कि प्रचलित है, व उन दृष्टिकोणों अथवा अभिवृत्तियों से है, जिनका प्रचलन है, व ऐसे प्रक्रमों से है, जोकि सक्रिय है, तथा अपने प्रभावों से है, जिन्हें अनुभव किया जा रहा है, अथवा उपनीतियों से है, जोकि विकासशील हैं।

स्पष्टतः ऐसे अनुसन्धान का स्वरुप अत्यधिक व्यापक, विस्तृत तथा विषम होता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के अध्ययन-जैसे सर्वेक्षण, विकासात्मक अध्ययन, व्यक्तिवृत अध्ययन, अर्न्तवस्तु अध्ययन, जनमत अध्ययन, सहसम्बन्ध अध्ययन, व उनति अध्ययन आदि सम्मिलित रहते हैं। इन विभिन्न तथा विविध अध्ययनों को एक ही प्रकार के अनुसंधान के अन्तर्गत सम्मिलित करना निश्चिततः सुविधाजनक तथा वैधानिक है।

शोध विधिः- प्रस्तुत अध्ययन विवरणात्मक प्रकार का अध्ययन है। जिसमें वर्तमान से सम्बन्धित घटनाओं का विशलेषणात्मक विवरण होता है इसकी सर्वेक्षण विधि के तहत आंकड़ों का संकलन करते हुए निरीक्षण किया जाता है। जिसमें आंकड़ों की सहायता से वर्तमान घटनाओं पर प्रकाश डाला जाता है। सर्वेक्षण का इंगलिश रूपान्तर Survey दो शब्दों Sur+vey से मिलकर बना है। मूल रुप से, Sur (Sor) तथा very (veeir) पर आधारित है, जबकि Sor का अर्थ over तथा veeir का अर्थ to look होता है। इस प्रकार Survey का सम्मिलित मूल अर्थ 'ऊपर से देखना' अवलोकन अथवा अन्वेषण होता है। शब्द कोष के अनुसार भी सर्वेक्षण का अर्थ प्रायः सरकारी आलोचनात्मक निरीक्षण होता है, जिसका उद्देश्य एक क्षेंत्र की किसी एक स्थिति अथवा उसके प्रचलन के सम्बन्ध में यथार्थ सूचना प्रदान करना होता है, जैसे स्कूलों का सर्वेक्षण।

समष्टिः- प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि समस्त अनुदानित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक थे। समष्टि की विशेषतायें निम्नलिखित है। समष्टि परिमित तथा अपरिमित दो प्रकार ीं होती है। जिसमें प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि परिमित प्रकार की है क्योंकि शिक्षकों की संख्या सीमित होती है। प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि समांगी प्रकार की है क्योंकि माध्यमिक स्तर के अध्यापकों का चयन की योग्यता का मानक एक ही होता है। किसी अध्ययन की वह सम्पूर्ण ईकाई समष्टि कहलाती है। जिस पर शोध कार्य आधारित होता है।

प्रतिदर्शः- प्रस्तुत अध्ययन के प्रतिदर्श का आकार 400 होगा। किसी बड़ी राशि में से चुनी हुई एक छाटी सी मात्रा को प्रतिदर्श या नमूना है। यह माना जाता है कि प्रतिदर्श के सांख्यिकीय गुण पूरी राशि के सांख्यिकीय गुणों का प्रतिनिधित्व करते है।

न्यादर्शः- शोधकर्त्ता द्वारा समय धन के अभाव के कारण आगमनात्मक प्रविधि अपनाते हुए समष्टि से एक छोटा समूह अध्ययन हेतु चयनित किया जाता है। जिसे न्यादर्श कहते है। न्यादर्श पूरी समष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। प्रस्तुत अध्ययन में जौनपुर जनपद के यादृच्छिक न्यादर्श प्रविधि द्वारा कुल चार सौ अध्यापकों का चयन किया गया था जिनके वितरण का आधार क्षेत्र, लिंग, विषय तथा वित्तपोषण था। अनुसंधान में प्रायः प्रचलित विधि का प्रयोग सम्भव नही होता, क्योंकि इस विधि के द्वारा अध्ययन धन, समय व सुविधा के दृष्टिकोण से सापेक्षिकतः अत्याधिक खर्चीला व जटिल होता है। इसके विपरीत, व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से अप्रसचलिक विधि द्वारा अध्ययन पर्याप्त मात्रा में सुगम, सरल, अल्प-व्ययी तथा शुद्ध रहता है। अप्राचलिक विधि के अध्ययन का आधार प्रतिदर्श होता है।

प्रतिदर्श एक समष्टि का वह अंश होता है जिसमें अपनी समष्टि की समस्त विशेषताओं का स्पष्ट प्रतिलम्ब रहता है। पी0 वी0 यंग के शब्दों में एक प्रतिदर्श अपने समस्त समूह का एक लघु-चित्र होता है।

यदि समष्टि का स्वरुप सजातीय रहता है, तब प्रतिदर्श के चयन में विशेष कठिनाई नहीं होतीं, परन्तु जब समष्टि का स्वरुप विषम जातीय रहता है, तब प्रतिदर्श की इकाईयों के चयन के लिए प्रतिचयन प्रक्रिया का उपयोग करना पड़ता है।

तालिका -न्यादर्श वितरण

विवरण	*ग्रामीण*		*शहरी*		*योग*
	पुरुष	*महिला*	*पुरुष*	*महिला*	
	136	69	90	105	400
योग	205		195		400

तालिका -न्यादर्श में चयनित माध्यमिक विद्यालय का वितरण-

क्र0सं0	*माध्यमिक विद्यालय*	*संख्या*
1.	राजा हरपाल सिंह इण्टर कालेज सिंगरामऊ, जौनपुर	38
2.	तिलकधारी इण्टर कालेज, जौनपुर	35
3.	राजा श्री कृष्णदत्त इण्टर कालेज, जौनपुर	30
4.	नगर पालिका इण्टर कालेज जौनपुर	25
5.	गवर्नमेंट्स गर्ल्स इण्टर कालेज, जौनपुर	30
6.	मुक्तेश्वर बालिका इण्टर कालेज, जौनपुर	35
7.	बी. आर. पी. इण्टर कालेज, जौनपुर	30
8.	हरिहर सिंह पब्लिक इण्टर कालेज, जौनपुर	32
9.	गोबर्द्धन इण्टर कालेज, मुफ्तीगंज, जौनपुर	35
10.	सिरसी इण्टर कालेज, बरईपार, जौनपुर	30
11.	सिरसी इण्टर कालेज, बरईपार, जौनपुर	22
12.	सल्तनत बहादुर इण्टर कालेज, बदलापुर, जौनपुर	32
13.	मो0 हसन इण्टर कालेज, जौनपुर	26
योग		**400**

शोध उपकरण:- प्रस्तुत अध्ययन में आंकड़ों के संकलन हेतु दो शोध उपकरण मानकीकृत किये गये थे। प्रयुक्त सॉख्यिकी तकनीकी:- प्रस्तुत अध्ययन में CR मूल्य 2 x 2 प्ररसरण विश्लेषण सारणी तथा प्रोडेक्ट मूमेंन्ट सहसम्बन्ध गुणांक का प्रयोग आंकड़ों के विश्लेषण हेतु किया गया जिनके विवरण निम्नलिखित है।

शिक्षण दक्षता मापनी:- शोधकर्त्ता ने स्वनिर्मित उपकरण शिक्षण दक्षता मापनी का प्रयोग किया है जिसमें अन्तिम रुप से कुल 45 कथन चयनित हुये जिनका चयन का आधार (t) टी परीक्षण था। जो भी सार्थकता स्तर 0.05 पर आया उसे ही चयनित किया गया। प्रत्येक कथन के तीन विकल्प सहमत, अनिश्चित व असहमत थे। इसका फलांकन सहमत पर 02, अनिश्चित पर 01 तथा असहमत पर 0 अंक था। इस प्रकार पूरी मापनी पर न्यूनतम 0 और अधिकतम 90 अंक आता है। इसकी विश्वसनीयता गुणांक अर्द्धविच्छेद विधि द्वारा 0.72 प्राप्त हुयी है और विशेषज्ञ वैधता गुणांक 0.84 प्राप्त हुआ है। इसका मानक प्रतिशतांक है। इस प्रश्नावली पर प्रतिक्रियायों की व्याख्या का आधार निम्नलिखित सारणी के अनुसार है।

तालिका-व्याख्यात्मक सारणी

अति निम्न	*निम्न*	*सामान्य*	*उच्च*	*अति उच्च*
0-20	20-40	40-60	60-80	80-90

निर्धारित उद्देश्य से सम्बन्धित विश्लेषण तथा व्याख्या:- प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि ''माध्यमिक स्तर पर पुरुष तथा महिला शिक्षकों के शिक्षण दक्षता का तुलनात्मक अध्ययन करना'' इस उद्देश्य के अध्ययन हेतु परीक्षण के लिये शून्य परिकल्पना बनायी गयी थी कि ''माध्यमिक स्तर पर पुरुष तथा महिला शिक्षकों के शिक्षण दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।'' इस शून्य परिकल्पना के विश्लेषण के लिये निम्नलिखित विश्लेषण तालिका बनी है।

तालिका -पुरुष शिक्षक तथा महिला शिक्षिकाओं के शिक्षण दक्षता सम्बन्धी सी0आर0 मूल्य विश्लेषण तालिका-

समूह	*संख्या*	*मध्यमान*	*मानक विचलन*	*मानक त्रुटि*	*सी0आर0मूल्य*	*P*
पुरुष शिक्षक	226	63.48	18.36			
महिला शिक्षक	174	68.31	22.24	2.08	2.32	.05

df (398) at .05 =k 1.97

उपरोक्त विश्लेषण तालिका से स्पष्ट है कि पुरुष शिक्षकों का शिक्षण दक्षता के प्राप्तांकों का मध्यमान 63.48 और मानक विचलन 18.36 है और महिला शिक्षिकाओं के लिये मध्यमान 68.31 और मानक विचलन 22.24 है। मानक विचलनों की सहायता से अभिकलित मानक त्रुटि 2.08 प्राप्त हुयी। अभिकलित सी0आर0 मूल्य 2.32 प्राप्त हुआ जो स्वतंत्र संख्या (398) के सार्थकता स्तर .05 पर सारणी मान 1.97 से अधिक है जिसके आधार पर बनायी शून्य परिकल्पना ''माध्यमिक स्तर पर पुरुष तथा महिला शिक्षकों के शिक्षण दक्षता में सार्थक अन्तर नहीं है।'' अस्वीकृत हो जाती है और स्पष्ट हो जाता है कि महिला शिक्षकों में पुरुष शिक्षकों की तुलना में शैक्षिक दक्षता अधिक होती है। इस परिणाम का समर्थन रवि (2021) का अध्ययन करता है। इस परिणाम के सम्भवत: कारण है कि शिक्षण व्यवसाय मातृत्व व अपनेपन से अधिक संचालित होता है जिसमें महिलायें ही अग्रणी हो सकती हैं।

शोध निष्कर्ष:- विश्लेषणोपरान्त प्रस्तुत अध्ययन का शोध निष्कर्ष प्राप्त किया गया। महिला शिक्षकों में शिक्षण दक्षता पुरुष शिक्षकों की तुलना में उच्च स्तर की होती है।

शैक्षिक निहितार्थ-शिक्षा पूर्ण मानव क्षमता को प्राप्त करने, एक न्याय संगत और न्यायपूर्ण समाज के लिऐ विकास और राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिये मूलभूत आवश्यकता है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सार्वभौमिक पहुँच प्रदान करना वैश्विक मंच पर सामाजिक न्याय और समानता, वैज्ञानिक उन्नति, राष्ट्रीय एकीकरण और सांस्कृतिक संरक्षण के सन्दर्भ में भारत की सतत् प्रगति और आर्थिक विकास की कुंजी है। सार्वभौमिक उच्चतम स्तरीय शिक्षा वह उचित माध्यम है, जिससे देश की समृद्धि, प्रतिभा और संसाधनों का सर्वोत्तम विकास और संवर्द्धन व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व की भलाई के लिये किया जा सकता है। अगले दशक में भारत दुनियां का सबसे युवा जनसंख्या वाला देश होगा और इन युवावों को उच्चतर गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अलैक्जैंड्रिया (2019): 'जबाबदेही व प्रतिबद्धता में कमी प्रशिक्षण की प्रभावशीलता बाधा डालती है' ATD -2019।
- अब्द रजाक, एन (2007): ''शिक्षक प्रतिबद्धता'' टीचर्स ऐंड टीचिंग पर रिसर्च की इन्टरनेशनल हैंडबुक पी0पी0 343-360।
- आलस एन0 (2009): ''छात्र उपलब्धि में लाभ पर पेशेवर विकास का प्रभाव'' http/files.eric.ed.gov/full text/ Ed. 544।
- अल्टुन एम0 (2017): ''प्रभाव में जुनून की भूमिकाई शिक्षण और सीखना अर्न्तराष्ट्रीय पत्रिका सामाजिक विज्ञान और शैक्षिक अध्ययन 3(3) 155-158.।
- आरोसन डी0 (2007): ''शिकागों पब्लिक हाईस्कूलों में शिक्षक और छात्र, उपलब्धि'' जर्नल ऑफ लेबर इकोनामिक्स 25 (1) 99-135।
- अदिबा (2007):''देशों में शिक्षक गुणवत्ता अवसर अंतराल और उपलब्धियां'' शैक्षिक शोधकर्त्ता 36 (7), 369-387।
- आलम महमूद मोहम्मद (दिसम्बर 2018): ''तुलनात्मक अध्ययन कुल जनसांख्यिकीय चरों में माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की व्यवसायिक प्रतिबद्धता का अध्ययन'' DIP-18.01-105/20180604, DOI -10.25215/0604.105

ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में महिलाओं एवं पुरूषों की सामुदायिक कार्य और सामाजिक जिम्मेदारी- एक संक्षिप्त अध्ययन

श्री सच्चिदानन्द पाठक

असिस्टेंट प्रोफेसर, मगध कॉलेज ऑफ एजूकेशन, दुबहल, गया (बिहार)

विकास में जनसहभागिता आज एक प्रमुख मुद्दा हो गया है। आज मानव उन घटनाओं और प्रक्रियाओं में सामाजिक जिम्मेदारी के प्रति अधिकाधिक रूचि दिखाते हैं जो उनके जीवन को दिशा देते हैं। सामाजिक जिम्मेदारी में व्यक्ति समाज को महसूस करता है और स्थापित नियमों को मानता है और उसका पालन करता है जहां वह रहता है। यह व्यक्ति और समाज के बीच पारस्परिक लाभप्रद संबंधों के निर्माण का आधार है। यह व्यक्ति के कार्यों को भी संदर्भित करता है जिस हद तक वह समाज के संबंध में अपने कर्तव्यों का पालन करता है। सामुदायिक कार्य से सामाजिक जिम्मेदारी उत्पन्न होता है और किसी समुदाय के उत्थान के लिए किया जानेवाला कार्य सामुदायिक कार्य की श्रेणी में आता है। सामाजिक आवश्यकताओं और अयोग्यताओं की रोकथाम और समाप्ति, साधनों और आवश्यकताओं का स्पष्टीकरण और बदलती हुई आवश्यकताओं को अच्छे तरीके से पूरा करने के लिए साधनों का पुन:समायोजन, कल्याणकारी कार्यक्रमों और सेवाओं को आरम्भ करना, विकसित करना और उनमें आषोधन करना जिससे साधनों और आवश्यकताओं के बीच समायोजन स्थापित किया जा सके आदि सामुदायिक कार्य के महत्वपूर्ण लक्ष्यों का निर्धारण करते हैं। भारत में सभ्यता के आरम्भ से ही समुदाय आधारित समाज रहा है और जहॉ महिला और पुरूष सम्पूर्ण समुदाय के साथ सहायक होकर सामुदायिक कल्याण के लिए संगठित रहे हैं। प्रस्तुत आलेख महिला और पुरूष के सामुदायिक कार्य और सामाजिक जिम्मेदारी को उद्घाटित करता है।

कुंजी शब्द - सामुदायिक, जनसहभागिता, पुन:समायोजन

अध्ययन प्रविधि

शोध-आलेख वर्णानात्मक पद्धति पर आधारित है। यह पद्धति 'क्या है' का विश्लेषण करता है। इसे अप्रयोगात्मक अनुसंधान भी कहा जाता है। इस पद्धति में मल रूप से क्या है का वर्णन किाय जाता है। परिस्थितियॉ अथवा संबंध जो वास्तव में वर्तमान है, अभ्यास जो चालू है, विश्वास, विचारधारा अथवा अभिवृतियॉ जो पाई जा रही हैं, प्रक्रियाएँ जो चल रही है, अनपुभव जो प्राप्त किये जा रहे हैं, इन्हीं से इनका संबंध है। यह सरल एवं अत्यंत कठिन दोनो प्रकार का हो सकता है। इसका एक विशिष्ट उद्देश्य होता है, इसलिए व्याख्या और विश्लेषण में सावधानी रखी जाती है। इसके अंतर्गत किसी वैज्ञानिक नियम का निर्धारा नहीं करते अपितु समस्या के समाधान हेतु उपयोगी सूचना प्रदार करते हैं। वर्णन शाब्दिक भी हो सकता है तथा इसे गणितीय सूत्रों द्वारा भी विकसित कर सकते हैं।

स्त्रोत सामग्री का संकलन

अनुसंधान में स्त्रोत सामग्री का संकलन दो प्रकार से किया जा सकता है। प्राथमिक स्त्रोत और द्वितीयक स्त्रोत, जहॉ प्राथमिक स्त्रोत के अंतर्गत अतीत की घटनाओं के अध्ययन क्षेत्र में जाकर अध्ययन इकाइयों से स्वयं या अपने सहयोगी अनुसंधानकर्ताओं के साथ संपर्क कर तथ्यों का संकलन करते हैं। यह तथ्य संकलन की 'प्राथमिक स्त्रोत' कहलाती है। यह एक ऐतिहासिक प्रदत्त मूल भंडार होता है। यह किसी महत्वपूर्ण अवसर का मौलिक अभिलेख हेता है या एक प्रत्यक्षदर्शी द्वारा प्रस्तुत एक घटना का विवरण होता है अथवा किसी छाया-चित्र या किसी संगठन की बैठक का विस्तृत विवरण होता हैं। न्यायालयों के पत्र, कार्यालय संबंधी अभिलेख, शिलालेख, विज्ञापन पत्र, समाचार पत्र एवं पत्रिकाएँ प्रमुख लिखित प्राथमिक स्त्रोत हैं। द्वितीयक स्त्रोत में एक व्यक्ति ऐतिहासिक तथ्यों के विषय में मूल स्त्रोत से ज्ञान न प्राप्त करके घटना से संबंधित व्यक्तियों के सुनाए गए वर्णन को अपने शब्दों में व्यक्त करता है। इस वर्णन को द्वितीयक स्त्रोत या गौण स्त्रोत कहते हैं। जिसके कारण उसके दोष-युक्त होने की संभावना रहती हैं द्वितीयक स्त्रोत की अपेक्षा प्राथमिक स्त्रोत अधिक विश्वसनीय होता है। जीवन इतिहास, व्यक्तिगत विवरण, संस्मरण, पत्र-पत्रिकाओं से प्राप्त सामग्री द्वितीयक स्त्रोत के उदाहरण हैं।

प्रस्तुत आलेख में तथ्यों का संकलन द्वितीयक श्रोतों से किया गया है। अनेक शोध-पत्र एवं पत्रिकाओं, शोध-आलेख एवं शोध-ग्रन्थों में संकलित सूचनाओं का गहन अवलोकन कर तथ्यों का विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष ज्ञानवर्द्धन में अति महत्वपूर्ण और लाभकारी साबित होगा।

विवरण

सामुदायिक कार्य वैयक्तिक अथवा सक्रिय समूह की एक ऐसी गतिविधि है जिसमें समुदायिक हित के लिए कार्य किया जाता है। यह गतिविधि स्थानीय, अनौपचारिक या स्वाभाविक हो सकता है। सामूहिक कल्याण के लिए अपनी रूचि और इच्छानुसार कार्य करने की वांछा रखना सामुदायिक कार्य के शाब्दिक अर्थ हैं। यह समग्र रूप से जनहित में कार्य करने के लिए उत्प्रेरित करता है। इसकी शुरूआत तब होती है जब व्यक्ति किसी समुदाय को लाभान्वित करने के लिए गतिविधियों में स्वयं को संलग्न करता है। सामुदायिक जिम्मेदारी अथवा दायित्व सामुदायिक कार्यों से उत्पन्न होता है और यह सामुदायिक जिम्मेदारी सामुदायिक भावना से अंत:प्रेरित होता है। सामान्यत: इसके उद्धेश्य हैं-सामाजिक आवश्यकताओं और अयोग्यताओं की रोकथाम और समाप्ति, साधनों और आवश्यकताओं का स्पष्टीकरण और बदलती हुई आवश्यकताओं को अच्छे तरीके से पूरा करने के लिए साधनों का पुन:समायोजन, कल्याणकारी कार्यक्रमों और सेवाओं को आरम्भ करना, विकसित करना और उनमें आषोधन करना जिससे साधनों और आवश्यकताओं के बीच समायोजन स्थापित किया जा सके, समाज कार्य के स्तर को ऊँचा करना और व्यक्तिगत संस्थाओं के प्रभाव में वृद्धि करना, समाज कल्याण के लिए कार्यक्रमों एवं सेवाओं के प्रदान करने से संम्बन्धित संगठनों, समूहों और व्यक्तियों के बीच समन्वय लाने के लिए प्रोत्साहित करना और समाज कल्याण संबंधी क्रियाकलापों के प्रति जनता का समर्थन और सहभागिता का विकास करना।

देश में महिलाओं की बड़ी जनसंख्या होने के बावजूद अगर उनकी भागीदारी सामुदायिक कार्यों में न हो तो इस जनसंख्या को उचित अवसर नहीं प्राप्त होगा और साथ ही इस विशाल जनशक्ति की भागीदारी के बिना किसी भी प्रकार के विकास की कल्पना नही की जा सकती इसलिए शहरी एवं ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में महिलाओं में सामुदायिक जिम्मेदारी और सामुदायिक कार्य के प्रति रूचि देखा गया है। उदाहरण के लिए राजनीतिक मंच पर देखा जाय तो आज ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में महिलाएं राजनीतिक एवं विकास संबंधी कार्यों की जिम्मेदारियों का निर्वहन कर रही है।विकास के लिए विकास कार्यों की योजना बनाना, कार्यस्थल का दौरा करना तथा विकास कार्यों की तकनीकी जानकारी रखना इत्यादि अनेक सामूहिक हित के लिए न केवल चिंतनशील हैं अपितु इनमें सामाजिक जिम्मेदारी के कारण विभिन्न सेकटर में मौलिक विकास के नए-नए आयाम खुल रहे हैं। चूंकि महिला होने के नाते वे महिलाओं की कठिनाइयों को भलि-भांति समझेगी, अत: महिलाओं का विकास सहज हो जाएगा जिसकी आज नितांत आवश्यकता है। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में महिलाओं की सामुदायिक कार्य और सामाजिक जिम्मेदारी से वातावरण की भी उन्नति हुई है और इसके अतिरिक्त महिलाओं के मनोबल में वृद्धि, महिला शिक्षा, महिला स्वास्थ्य, महिला प्रतिष्ठा आदि में उल्लेखनीय परिवर्तन दिख रहे हैं। महिलाओं को जनप्रतिनिधि के रूप में चुने जाने से महिलाओं में व्याप्त पर्दा प्रथा, झिझक एवं घबराहट भी दूर हूई है तथा सही निर्णय करने की क्षमता का विकास भी हुआ है। वस्तुत: महिलाओं में सामाजिक जिम्मेदारी से विकास कार्यों में बढ़ोतरी हो रही है जिससे विकास के नए आयाम सुनिश्चित हो रहे हैं।

सार्वजनिक जीवन में सहभागिता और सक्रियता के लिए शिक्षित होना आवश्यक नहीं है किन्तु यदि शिक्षित व्यक्ति सार्वजनिक जीवन में सहभागिता करता है तो उसे अपने उद्धेश्यों की पूर्ति में सफल होने के आसार अधिक होते हैं। चूंकि, सार्वजनिक जीवन में प्रवेश का उद्धेश्य जन-कल्याण करना होता है इसलिए आम-अवाम की समस्याओं और उनकी मूलभूत आवश्यकताओं के प्रति सजग होकर समाधान के लिए तत्पर रहना जन-प्रतिनिधियों का दायित्व हो जाता है। यदि जनप्रतिनिधि उच्च शिक्षा प्राप्त महिला हो तो उसकी सफलता की संभावनाएं अधिक हो जाती है। यद्यपि सार्वजनिक जीवन में उच्च शिक्षा प्राप्त महिला जनप्रतिनिधियों की संख्या अशिक्षित या कम शिक्षित जनप्रतिनिधियों की तुलना में अधिक नहीं है, इसके बावजूद जन-समस्या और जन-कल्याण के प्रति इनका दृष्टिकोण उच्च शैक्षणिक स्थिति के कारण अधिक व्यापक होता है। सामाजिक सहभागिता और जिम्मेदीर व्यक्ति को समाज में सम्मान और प्रतिष्ठा दिलाता है। सार्वजनिक जीवन में प्रवेश का उद्धेश्य भी सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त करना होता है। व्यक्ति का सार्वजनिक जीवन में सक्रिय प्रदर्शन ईमानदारी, निष्ठा और सर्मपण के आधार पर टिका होता है। राजनीतिक सहभागी होकर वह सार्वजनिक जीवन में सक्रिय प्रदर्शन भी करता है। पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से न केवल ग्रमीण और शहरी क्षेत्रों के राजनीतिक फलक पर महिलओं एवं पुरूषों में सामुदायिक सहभागिता को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। ग्राम पंचायत राज व्यवस्था में भागीदारी ने महिला औरपुरूष दोनो को उनके अधिकार के प्रति जागरूक किया है। व्यवस्था से संबंधित विभिन्न अद्यतन प्रावधान महिला उत्थान और सशक्तिकरण के लिए काफी लाभदायक हैं। महिलाओं की सामाजिक, राजनैतिक और वैचारिक परिप्रेक्ष्य में यह व्यवस्था एक व्यापक बदलाव लाया है। पंचायतों की स्थानीय समस्याओं के प्रति संवेदनशील होकर उसके निराकरण के लिए हरसंभव प्रयत्न किए जा रहे हैं। घर की चाहरदीवारी में बन्द रहनेवाली महिलाओं को इस व्यवस्था ने संवैधानिक पदों पर आरूढ़ होने का अवसर प्रदान किया है। पंचायत के विभिन्न पदों पर वे निर्वाचित हुई हैं। किन्तु आज यह व्यवस्था अनेक समस्याओं का सामना कर रही है, जो इसकी सफलता के लिए एक चुनौती है, और इसके निराकरण की तत्काल आवश्यकता है।

ग्रामीण महिलाओं के लिए सामुदायिक कार्य और सामाजिक जिम्मेदारी

बिहार सरकार द्वारा संचालित स्वयं सहायता समूह ग्रामीण महिलाओं के विकास में मील का पत्थर साबित हो रहा है। इसके तहत महिलाएं समूह निर्माण कर परिवार के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। आज ग्रामीण महिला जो समाज के अंतिम पंक्ति में खड़ी थी जहॉ विकास की रोशनी नहीं पहुंची थी वैसी महिला इस योजना में शामिल होकर न केवल अपना सम्मान और प्रतिष्ठा समाज में बढ़ाया बल्कि परिवार के विकास में भी अपनी भूमिका निभा रही है। ग्रामीण महिलाओं में इस कार्यक्रम के प्रति इतनी जागरूकता देखी जा रही है कि अधिक से अधिक संख्या में समूह बनाकर महिलाओं ने रोजगार प्राप्त किया है।

ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने केंद्रीय योजना स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना को राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन में पुनर्गठित किया है और इसक कार्यान्वयन के लिए राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन के रूप में नामित किया है। इस परियोजना मे सामूहिक गतिविधियों में रूचि रखने वाली महिलाएं बिहार ग्रामीण आजीविका संवर्धन समाज-जीविका के तहत बिहार के सभी जिलों और अनुमण्डल अस्पतालों की कैंटीन चलाएंगी जिसके एवज में

बिहार सरकार उन्हें समुचित पारिश्रमिक देगी जो ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक समृद्धि में भी सहयोगी होगी। इसके अतिरिक्त जल-जीवन-हरियाली अभियान के तहत नव सृजित और विकसित सार्वजनिक जलाशयों का रख-रखाव और प्रबंधन इस संस्था के अंतर्गत ग्रामीण महिलाएं करेंगी। देश के अन्य राज्यों में भी सामुदायिक कार्य में महिला भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए इसी प्रकार के विभिन्न कार्यक्रमों का क्रियान्वयन हो रहा है।

उत्तर प्रदेश के ग्राम पंचायतों में सामुदायिक शौचालयों का निर्माण कर उसक रखरखाव और संचालन की जिम्मेदारी महिला स्वयं सहायता समूहों को दी गई है। स्वच्छ भारत मिशन के तहत सामुदायिक शौचालय का निर्माण चल रहा है जिसमें प्रत्येक ग्राम पंचायल में एक-एक सामुदायिक शौचालय बनाए जा रहे हैं। संचालन पर पड़ने वाला खर्च महिला समूहों को दो किस्तों में उपलब्ध कराया जा रहा है।

महिला समाख्या योजना: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के लक्ष्यों के अनुसार वर्ष 1989 में महिला समाख्या कार्यक्रम शुरू किया गया जिसने समानता के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए शिक्षा के केंद्रीकरण को मान्यता प्रदान की है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए महिला समाख्या के तहत एक नवाचारी दृष्टिकोण अपनाया गया है जिसमें मात्र लक्ष्यों को प्राप्त करने के बजायप प्रक्रिया पर विशेष ध्यान दिया गया है। इसके तहत महिला स्वयं अपनी ओर से ऐसे वातावरण का निर्माण करती है जिसमें वे अपनी प्राथमिकताएं अपनी पसंद के अनुसार निर्धारित कर सके। महिला संघ ग्रामीण स्तर पर महिलाओं को मिलने, सवाल करने और अपने विचार रखने तथा अपनी आवश्यकताओं को व्यक्ति करने के अलावा अपनी इच्छाओं को जाहिर करने का साधन मुहैया कराते हैं। इस कार्य में ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी ने महिलाओं के दृष्टिकोण में विभिन्न कार्यक्रमों और जागरूता अभियानों के माध्यम से बदलाव ला दिया है जिसका प्रभाव घर, परिवार, खंड और पंचायत स्तर पर देखा जा सकता है।

महिला स्व-सहायता समूह: समूह में कार्य करना मानव स्वभाव का हिस्सा होता है।यह अनुभव किया गया है कि समाज में रहकर मानव एक दूसरे के सहयोग के बिना जीवन-यापन नहीं कर सकता है। इसी अनुभव से निकलकर स्वयं सहायता समूह की अवधारणा ग्रामीण विकास के क्षेत्र में आयी एक समान सोच वाले लोगों ने मिलकर विभिन्न प्रकार के कार्यों को करने के लिए स्वयं सहायता समूह का गठन किया। यह मूलत: बचत की अवधारणा पर कार्य करता है और इसका उद्देश्य साथ में रहकर छोटी छोटी आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। स्वयं सहायता समूह के सदस्य एक समान सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति वाले होते हैं और अपनी इच्छानुसार नियमित रूप से बचत करने की क्षमता रखते हैं। समूह की महिलाओं को चिन्हित करने के बाद, सामुदायिक सहजकर्ता इन संभावित महिला सदस्यों के साथ स्वयं सहायता समूह की लाभ के बारे में विस्तार से चर्चा करती है। यह काम सूचना, क्षिक्षा एवं सामग्री जैसे फिल्म आदि निर्मित फिल्मों के माध्यम से किया जाता है। सामुदायिक सहजकर्ता समूह के सदस्यों से परामर्श कर प्रथम औपचारिक बैठक की तिथि तय कर यह सुनिश्चित करते हैं कि पहली बैठकों में प्रत्येक सदस्य के घर जाकर उसका बैठक में आना सुनिश्चित करवाये जिससे सामाजिक जिम्मेदारी का भी बोध हो जाता है।

चिपको आंदोलन- भारत के उत्तराखंड राज्य की पहाड़ियों की ऐसी ग्रामीण महिलाओं द्वारा चलाया जा रहा एक ऐसा साहसिक आन्दोलन जिससे वे उन वनों तथा पर्यावरण की रक्षा करने में सफल रही हैं जिन पर उनका जीवन निर्भर है।

निष्कर्ष

सामुदायिक जिम्मेदारी के कारण समुदाय के सदस्यों की सहायता के लिए उनकी आवश्यकताओं एवं उपलब्ध साधनों का ज्ञान प्राप्त करने में सहायक हो रहा है। समस्याओं के अध्ययन और उनके समाधान के प्रति जो कार्य किए गऐ हैं वह सामुदायिक जिम्मेदारी को दर्शाता है जिससे जन कल्याण का काम आसान हो गया है। यह उन क्षेत्रों में भी सफल सिद्ध हुआ है जहॉ समाज की अधिकाधिक जनसंख्या किसी न किसी कारण से मुख्यधारा से विलग है। एक लक्षित वर्ग के रूप में महिलाओं के लिये पंचायत विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन में एवं अपनी योजनाओं में उन्हें प्राथमिकता देकर उनके सशक्तिकरण में सहायक हो सकती है। इसके अलावा, महिलाओं के लिये विशेष रूप से बनी योजनाओं में अधिक से अधिक महिलाओं को सहभागी बना सकती है, जैसे-

राज्य महिला विकास निगम द्वारा चलाई जानेवाली योजनाओं- स्वशक्ति, स्वयंसिद्ध, स्वाबलंबन आदि में उन्हें शामिल करके। वास्तव में ये कार्यक्रम स्वयं सहायता समूह द्वारा महिलाओं को संगठित करते हैं एवं बचत को प्रोत्साहित करते हैं तथा उन्हें प्रशिक्षण के माध्यम से लघु उद्यमीं के रूप में भी विकसित होने में सहायता प्रदान करते हैं। इस तरह की योजनाओ के माध्यम से पंचायत के अन्दर महिलाओं में भी निर्भिकता एवं एकजुटता लायी जा सकती है।

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

सामुदायिक विकास (ग्रामीण एवं नगरीय): सक्सेना शालिनी, खत्री रीया, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल

मेहता, शिव रतन: इमर्जिंग पैटर्न ऑफ रूरल लीडरशिप, न्यू देल्ही, 1972

Social Participation; Henk Spies; Johny Vanschoren

Participation and Organization, Elizabeth chell

Women, participation and Development, Narayan K. Banerjee

Women's leadership and participation; case studies on Learning for action, Edited by Joanna Hoare Fiona Gell

संवेदना के शिल्प को गढ़ता गीतकार विरेन्द्र मिश्र का व्यक्तित्व

मोहन बैरागी

शोधार्थी, डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम विश्वविद्यालय, इंदौर, मप्र.

डॉ० अवनिश अस्थाना

शोध निर्देशक, डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम विश्वविद्यालय, इंदौर, मप्र.

प्रस्तावना

विरेन्द्र मिश्र का व्यक्तित्व बहुआयामी दृष्टिकोण का परिचायक है। उनके व्यक्तित्व में जहां प्रगतिगत सोच परिलक्षित होती है तो वहीं व्यापक दृष्टिकोण भी नजर आता है।

विरेन्द्र मिश्र के नवगीतों में जनसामान्य के प्रति व्यापक दृष्टिकोण के साथ संवेदनशीलता के साथ मानवतावादी दृष्टिकोण नजर आता है। विरेन्द्र मिश्र के व्यक्तित्व में संवेदनशीलता इस बात से प्रमाणित होती है कि वे अपने गीतों में प्रकृति,परिवेश के साथ महानगरों की समस्या,गंदी बस्तियों एवं झोपडपट्टियों की यथार्थता के साथ किसानों,कामगारों व मछुआरों के प्रति भी व्यापक दृष्टि से लिखते हैं। उनके हृदय में शहरीकरण के प्रति विचार है तो गांवों बिंब भी हैं।

वे स्त्री, बच्चे, बेसहारा के लिए भी यथार्थ जीवन के मर्म को अपनी लेखनी से उकेरते है। विरेन्द्र मिश्र ने अपने स्मृति गीत में वृद्धजनों को उम्र के पडाव पर अपने जीवन साथी के छोड जाने के दर्द को समाज से अवगत कराया। विरेन्द्र मिश्र ने आधुनिक नारी का चित्रण किया है एवं सांस्कृतिक समन्वय की भावना से समाज को जोडने का प्रयत्न किया है।

विरेन्द्र मिश्र का व्यक्तित्व संवेदनशील होने के साथ साथ प्रगतिशील भी है,उन्होनें अपने गीतों में समाज को सामाजिक विसंगतियों से मुक्त कराने का भी प्रयास किया। मनुष्य के जन्म से संघर्षो का प्रारंभ हो जाता है जा मृत्यु तक चलता रहता है, इसी भाव के चलते विरेन्द्र मिश्र अपने संघर्षो के साथ आगे बढते रहते है। अपने भीतर की संवेदना ,करूणा, दया को मिश्र जी अपने गीतों के माध्यम से लिखते है। विरेन्द्र मिश्र ने, अंग्रेजी शासन के समय भारतीय नागरिकों पर हुए जुल्म तथा तब कि परिस्थितियों से रूबरू करवाकर जनता को संदेश दिया कि यदि जनता एक हो जाय, तो वह अपने उपर होने वाले अत्याचार से लड सकती है और अपनी सुरक्षा भी कर सकती है। तब के समय में बंगाल में रोजाना लाखो लोगों को अंग्रेजी शासन द्वारा भूखा मार दिया जाने पर मिश्र जी ने बंगाल के लोगों के दर्द को लयात्मक तरीके से व्यक्त किया जो इन पंक्तियों में दिखता है-

''रोज सुबह कलकत्ते के
पथ लाशों से पट जाते
रोज सुबह अगणित
बंगाली दुनिया से उठ जाते
एक टीस-सी उठती मन में,
दिखता घोर अंधेरा
अंधकार में खो जाता
मेरा स्वर्ण सवेरा''[1]

मनुष्य अपने संपूर्ण जीवन में संघर्ष करते रहता है और अंतत: मर जाता है किंतु उसके बलिदानों का कोई मुल्य नहीं रहता है। विरेन्द्र मिश्र जी ने मनुष्य की विरोधी स्थितियों तथा प्रतीकों के यथार्थ का वर्णन बखुबी किया है। अपने एक गीत में विरेन्द्र मिश्र लिखते है कि महिलाओं को खिलौना समझ कर उनका यौन शोषण किया जाता है एवं इसकी वर्तमान स्थिति को निम्न गीत में चित्रित किया है-

''तडप-तडप कर मानव मरता कीमत किसने जानी,
जीवन के संघर्षों की है, करूणा भरी कहानी।
बूढे,तरूण, किशोर, बहन या भाई सभी हमारे,
दूनियॉ में जिंदा रहने को फिरते मारे- मारे।
लाशों से हैं, भरे पडे फुटपाथ, सडक और गलियॉ,
किन्तु उधर देखो कोने पर होती हैं, रंगरलियॉ।
मॉ- बहनों की लाज आज करती है, तन का सौदा,
मानव जीवन बना क्षीण मिट्टी का एक घरौंदा।[2]

विरेन्द्र मिश्र के गीतों में हदय को स्पर्श करता यथार्थ का चित्रण देखने को मिलता है। मनुष्य के कुरूप मन व स्वभाव के समक्ष प्रकृति के सौन्दर्य को मिश्र जी ने सामने लाने का प्रयास किया है। खुला नीला आसमान, वासंती सांझ, समुद्र किनारे का उल्लास बरबस ही मन को मोहित करता है। वर्षा काल में प्रकृति जैसे अपनी चादर बिछा देती है, ऐसे में गीतकार का तात्पर्य गंदी बस्तियों, गरीब की झोंपडियों के यथार्थ तथा उनके दुख:दर्द व वर्षा के वजह से उनकी दयनीय स्थिति, जिसमें बस्तियों में गंदगी, दुर्गंध के बारिश के पानी का भर जाना और गरीबों का अपने झोंपडों से बेसहारा-बेघर हो जाना?

विरेन्द्र मिश्र ने प्रकृति तथा मानव के बीच की इस स्थिति को बडी ही संवेदनशीलता के साथ व्यक्त किया है। मिश्र जी ने अपने गीत ''नीला बादल'' इस भावना को कहा है, वे कहते है-

''संध्या सतरंगी
सगर के तट पर नाची जब मस्ती में
हमने बूंदों को
घायल होते देखा गंदी बस्ती में,
जलती भट्टी में झोपडपट्टी में,
जलता- भुनता है,
वर्षा- गीतों का हरियाला ऑचल।[3]

अमीर तथा पुंजीपति, गरीब के साथ जानवरों जैसा व्यवहार करते है तथा उन्हें खिलौना समझकर उनका इस्तेमाल मशीन की तरह से करते है। गीतकार विरेन्द्र मिश्र ने इस दुख: को तथा गरीब पर होते अत्याचार को अपने गीत से अवगत कराया।

''सपनों की तरह दिखने वाले
आबाद भी हैं, वीरान भी हैं,
बादल का मुखौटा पहले जो,
इंसान भी है, हैवान भी है,
हर इन्द्रधनुष का उद्घाटन
केवल छलना आकाशी है
मेघों ने सताया है जिसको
वो धरती अब भी प्यासी है।[4]

गीतकार विरेन्द्र मिश्र के गीतों में संवेदना हर पक्ति में परिलक्षित होती है। वे अपने एक गीत '' दूरी और निकटता का....'' में प्रेम संबंधों में व्याप्त दूरी तथा इसकी निकटता को बडी ही बखुबी लिखते है-

वे कहते है-

''दूरी और निकटता का अद्भुत विस्तार हुआ जाता है
इतनी दूर रहा न करो तुम जीवन भार हुआ जाता है
गिनती की सॉसे हैं उन पर भी संभार नहीं कुछ कम है
अनहोनी बातें है जिनका दुर्व्यहार नहीं कुछ कम है
तिस पर तिल-सा एकाकी हर निमिष पहाड हुआ जाता है''[5]

गीतकार कहता है कि पतझर भी नीवंहीन हो रहा है तथा जैसे कोई वीरान सा नगर बस रहा हो,जहॉ पंछी उड-उडकर भाग रहे है तथा अटरिया शेष रह जाती हो जैसे,और मधुबन का मधुबन मिस्मार हुआ जाता हो।

मिश्र जी प्रकृति के साथ साथ मनुष्य मन के भीतर की संवेदना को अपने हर गीत में लयबद्ध पिरोकर प्रदर्शित करते है।

वे कहते हैं कि लाख उदासी हो भीतर किंतु फिर भी मुस्कूराने का प्रयास करना चाहिये व उदासियों में कोई सपना नहीं देखा जा सकता एवं ऐसे में उम्मीद मरने लगती है तथा सपने भी पूर्ण नहीं हो सकते।

अपने एक गीत में वे उदासी को त्यागकर मुस्कूराने की बात करते है-

''मेरे नयन की उदासी तुम्हें ज्ञात है
रूठे अगर तुम सपन तिलमिला जाएँगें
मैं कह रहा हूँ कि तुम मुस्कराओ जरा''[6]

विरेन्द्र मिश्र की संवेदनशीलता का पता इस बात से चलता है कि उन्होनें अपने व्यक्तिगत जीवन को समाज के साथ जोडकर अपने सुख-दुख को भी सामाजिक बना दिया। उन्होनें अपनी पत्नी प्रेमा की स्मृति में कई गीत लिखे। मिश्र जी ने अपनी उम्र के उत्तरार्ध में में अपनी पत्नी के निधन के पश्चात सभी एकाकी वृद्धों की पीडा को अपने गीतों में ढाला। उन्होनें स्मृति गीतों में घर-परिवार, गृहस्थी, उल्लास, सपने और बिखराव की स्मृति को 'इतिहास' शीर्षक से व्यक्त किया-

''संघर्षो की यात्रा
हूई साथ तेरे
मिट्टी के चूल्हे से कुकिंग गैस तक
छोटी-छोटी मंजिल, लंबी यात्राएँ
अपने जीवन का है, इतना इतिहास
पद, पदवी, कुर्सी से दूर, साथ चलती
अक्षरवर्णी-सी तू थी मेरे पास''[7]

जीवन रूपी गाडी में पति व पत्नी एक साथ रहकर जीवन के सभी उतार चढाव को देखते है तथा हर सुख दुख में साथ रहते है, ऐसे में यदि पति या पत्नी में से किसी एक का भी साथ छुट जाता है तब अकेले रह कर जीवन निर्वाह करना मुश्किल हो जाता है। मिश्र जी ने अकेलेपन की इसी संवेदना को 'अभाव' शीर्षक से संवेदना को व्यक्त किया है-

''खाली हो जाता जब
घर का कोना कोई
चौखट को लाँघना
मुश्किल हो जाता है।''[8]

साथ ही यदि किसी घर में महिला नहीं रहती तो घर का हर एक कोना सुना लगने लगता है, व्द्धावस्था में यदि पत्नी का देहांत हो जाता है तब स्थिति बडी विकट हो जाती है। विरेन्द्र मिश्र में अपने गीतों घर की हर एक वस्तु को बिंब बनाकर अपनी भावना को चित्रित किया है जो उनके संवेदनशील होने का प्रमाण है।

गीतकार की संवेदना न केवल मनुष्य या रिश्तों के प्रति है बल्कि वे घर की हर एक वस्तु को बिंब बनाकर अपने गीत में प्रस्तुत करते है-

''एक पुरानी संडासी उँघती रसोई में
लडखडा रहे बर्तन,टूट गया सपना है
बडी-बडी चीजो से भरी पडी है, बसंती
फिर भी यह खालीपन जैसा है, अपना है,
बिखरे एकांतो को छोड एक कुर्ते को
खूंटी पर टांगना मुश्किल हो जाता है।''[9]

विरेन्द्र मिश्र मनुष्यता व मानवता में गहरी आस्था रखते है। वे अपने गीतों में मानव के कल्याण का भाव रखते है तथा विषम परिस्थितियों में मनुष्य के भीतर की पशुता के विनाश की बात करते है। वे भाग्य के अधीन न होकर ईश्वर से मंगल कामना की विनती करते है-

''बच्चे हट करते खौआ- खिलौने को
टाकुल हो-हो, माँ-बाप तडप रह जाते है।
देखा करते 'सम्मानित', 'सभ्य' पडोसी के
फूले 'गुलाब' मुँह मांगी चीजे पाते है।
जो है गरीब पैसे के आगे कार रहे
तन-मन की बीमारी पर थकता है पैसा
कीमती अनिश्चित फिर भी यह क्रम है कैसा।''[10]

गीतकार मिश्र जी जीवन की वास्तविकता एवं यथार्थपरकता को भी भली-भाँति समझते है। वे मानते हैं कि मानव-मन की संवेदना मनुष्य के भीतर ही होती है तथा धरती-आकाश को इससे कोई फर्क नहीं पडता और प्रकृति अपनी जगह रहती तथा समय चलता रहता है।

प्रकृति तथा उसकी वास्तविकता को मिश्र जी ने अपने एक गीत में कुछ इस तरह से वर्णित किया है-

''गीतों में रो देने भर से
दर्द नहीं हो पाता हलका
उसकी बाहर की खामोशी
चीर-चीर देती है मन को
धरती के अंतर्निनाद का
पता न चलता नीलगगन को''[11]

विरेन्द्र मिश्र के भीतर संबंधों के प्रति संवेदना का आलत यह था कि अपनी पत्नी के देहांत के बाद थोडे समय रूकने के बाद फिर उन्होनें लिखना शुरू किया, क्योकि बहुत दिनों तक लिखने से रोके रखना उनके लिए संभव नहीं था। इसके बाद जब उन्होनें लिखना शुरू किया तो मानो रचनात्मक धरातल पर जलप्लावन आ गया हो।

उन्होनें लिखा कि 'तेरे जाने के बाद रहा मैं जीवित/मेरे जाने के बाद गीत रह जाएगा/ मैं नहीं कह सका था जो, वह कह जाएगा'- यह भी कि संघर्षो की यात्रा/हुई साथ तेरे/मिट्टी के चूल्हे से/कुकिंग गैस तक' या फिर यह कि 'चला गया भारी भूकंप/तबाही करे/धरधरा रही अभी तक धरती' अथवा 'देहरी, दरवाजों, मेहराबों में तुम हो/कुर्सी में, मेज में, किताबों में तुम हो' और यह भी कि 'तूने संघर्ष किया/मैने यश पाया।'

पत्नी के प्रति प्रेम के व्याख्यायित करते उनके ये गीत गीतकार के संबंधों तथा पत्नी के प्रति प्रेम एवं संवेदनशील होने के प्रमाण को दर्शाते हैं। पत्नी के प्रति प्रेम और इसकी संवेदना मिश्र जी के भीतर कुट-कुट कर भरी थी तथा उन्होनें अपने पत्नी की स्मृति में इतने गीतों को लिख लिया कि बाद में ये सारे स्मृति संदर्भ के गीतों को 'जलतरंग' नाम से प्रकाशित भी किया गया। मिश्र जी इतने संवेदनशील इंसान थे कि उनके गीत,जो पत्नी की स्मृति में रचे गए होने के बावजूद नितांत व्यक्तिगत एकालाप और विलाप नहीं, बल्कि उनमें व्यक्तिगत को सामाजिक बना दिया और पत्नी की स्मृति के बहाने रोजमर्रा के जीवन के सुख-दुख:,समस्याओं आदि को बडे सहज ढंग से व्यक्त किया गया जो एक पुस्तक के प्रथम संस्करण के रूप में 1996 में प्रकाशित हुआ।

पत्नी के प्रति प्रेम को गीतकार मिश्र जी पत्नी के देहांत के भाद भी याद करते है तथा खुद को फकीर समझ पत्नी को अक्षय कोष समझते हैं, और अपने एक ' यादों के साए' में लिखते है-

''यादों के साए हॅसते हैं
आज उम्र के
हर पडाव पर
दुख की लंबी सहयात्रा में
कोई एक साथ था मेरे
माना मैं फकीर था फिर भी
अक्षय कोष हाथ था मेरे''[12]

विरेन्द्र मिश्र पत्नी के स्मृति संग्रह 'जलतरंग' में अपनी बात कहते हुए लिखते है कि 'जलतरंग' मेरी वैयक्तिक अनुभूति का करूण गीत है, प्रेमालाप है। इसमें प्रेमा है, उससे संबद्ध मैं हूँ, मेरा परिवार है। वे कहते है कि 'जलतरंग' में मेरी व्यक्तिगत और अभिव्यक्तिगत विवशता के खास गीत है।

विरेन्द्र मिश्र इतने संवेदनशील गीतकार हैं कि पत्नी के स्मृति संग्रह 'जलतरंग' की प्रथम गीत की प्रथम पंक्ति 'बिखर गया अंजुरी से जल' में अपनी पत्नी प्रेमा की महायात्रा के तुरंत बाद फुटता है। इस संग्रह के विषय में एक जगह वे कहते हैं कि मुझे रूला-रूलाकर लिखवाने के लिए प्रेरित करने वाला दोस्त तो अब नहीं रहा, पर अपनी एक घनीभूत प्रतिच्छवि इन गीतों में जरूर छोड गया है।

विरेन्द्र मिश्र के गीतों में भाषायी स्पंदन

विरेन्द्र मिश्र की भाषा अत्यंत ही सहज, सरल व मृदु रही। वीरेन्द्र मिश्र इकहरी संवेदना के कवि नहीं थे। उनमें जीवन का स्पंदन और संग्राम दोनों था। इसीलिए वे कह सके कि 'क्या हुआ जो दूरियों में बॅट गई है शाम/मैं अंतरालों में करूंगा रात-दिन संग्राम।' यों वे जानते थे कि संग्राम से वह सब कुछ उपलब्ध नहीं होगा, जिसके सहारे संपन्नता आती है। यदि संपन्नता ही सब कुछ होती तो कला-संस्कृति-साहित्य की रचना न हो पाती और न ऐसी काव्य-पंक्तियाँ सामने आती-

''हम जो बंद किताबों में हैं
हस्ताक्षर हैं अगले कल के।
एक दिवस वह भी आएगा
लोग मिलेंगे आकर हमसे

अर्धसत्य ही जान सके जो
या फिर जुडे रहे जो भ्रम से
एक नया सूर्योदय होगा
हट जाएँगे धुंध-धुँधलके।''

इस तरह का आशावाद बहुत कम कवियों में देखने को मिलता है। एक ऐसे समय में जबकि जीवन जटिल होता जा रहा है और बाजार की अर्थव्यवस्था संपूर्ण सामाजिक ताने-बाने को छिन्न-भिन्न करने पर आमादा है, ऐसे आशावादी स्वर जीवन के स्पंदन और संग्राम के बीच सचमुच एक नए सूर्योदय का भरोसा दिलाते है, मनुष्य को टूटने से बचाते हैं और उसकी अस्मिता की रक्षा करते है- यह संकेत देते हुए कि कल धुध-धुँधलके हटेंगे-छटेंगे ही। यही प्रगतिशील सोच है। फिर भी कहना होगा कि यह आश्चर्यजनक ही है कि प्रगतिशील विचारधारा के आलोचकों ने वीरेन्द्र मिश्र की और ठीक से ध्यान नहीं दिया। यह कुंठित मानसिकता है। यदि हम तटस्थ होकर अपने साहित्यकारों का सम्मान करना चाहते हैं तो इस कुंठित मानसिकता से मुक्ति पानी होगी। यदि ऐसा नहीं किया गया तो आलोचना और विमर्श पीछे छूट जाएगा और साहित्य की धारा समय की गति के साथ निर्बाध आगे बढती जाएगी क्योंकि समय ही सबसे बडी निर्णायक शक्ति है। वीरेन्द्र मिश्र इस स्थिति को भाँपते हुए ठीक ही कहते है -

''नहीं शब्द भर हैं केवल हम
यही न रूपाकार हमारा
हम युग के शिखरस्त गीत हैं
हमने ही तोडी है कारा।
आज नही तो कल गूँजेंगे
भ्रमर गीत ये ब्रह्म-कमल के
हम जो बंद किताबों में हैं
हस्ताक्षर हैं अगले कल के।''

और यह भी कि-

''आप देखते चले जाइए
मेरा गीत, पलाश रहेगा
रहूँ या कि में रहूँ नहीं भी
मेरा कुछ अहसास रहेगा।''

मिश्र जी अत्यंत ही सरल और सहज भाषा में कहते हैं कि हमारा कोई रूपाकार नहीं हैं लेकिन युग के शिखरस्त गीत हम हीं हैं और आज नही तो कल हम गुंजायमान होंगे। बडी विनम्रता से मिश्र जी कहते हैं कि भले ही आज बंद किताबों में हम हैं लेकिन आने वाले कल के हम ही हस्ताक्षर हैं। एक और रचना में मिश्र जी ने वाणी की विनम्रता का अतुलनीय उदाहरण प्रस्तुत किया और कहा कि 'मेरा गीत पलाश रहेगा, रहूँ या कि रहूँ नहीं भी, मेरा कुछ अहसास रहेगा। इस जीवंत कवि का अहसास तो रहेगा ही क्योंकि उसकी भाषा तथा उसके गीतों में प्रगतिशील विचार है। सत्ता-व्यवस्था के विरोधाभासों और विद्रूप पर पैने व्यंग्य हैं, व्यापक विश्व-दृष्टि के साथ निजी जीवन के उल्लास और सुख-दु:खों की समाजोन्मुख संलग्नता भी है। प्रकृति और मनुष्य के रिश्तों की पडताल है। गहरी सामाजिक संलग्नता हैं, समय की धडकनें और उसका स्पंदन हैं, छंदो के असंख्य प्रयोग और एक बड़ी विशेषता यह भी हैं कि वीरेन्द्र मिश्र के विपुल गीत-लोक में संगीत की अद्भुत गूँज-अनुगूँज है जहाँ हमें प्राय: रागों और वाद्यों का उल्लेख भी मिलता है। यथा- धैवत, निषाद, अनहद, नाद, मिश्र जोगिया, यमन, सप्तक, ध्रपद, जयजयवंती, वागेश्वरी, आसावरी और सारंगी, संतूर, जलतरंग, मृदंग, सरोद, तानपूरा, बाँसुरी, ढोल, मादल, शहनाई आदि। सच तो यह है कि श्रेष्ठ गीतों की रचना अत्यंत ही सहल और सरल भाषा में ज्ञान के बिना संभव ही नहीं है। अज्ञेय की पुस्तक 'स्मृति-लेख' में निराला पर एक संस्मरणात्मक लेख है- 'वसंत के अग्रदूत: निराला।' इस लेख में एक जगह पर स्वयं निराला कहते हैं- 'हमारे सामने संगीत का स्वर रहता था और तुम्हारे सामने बोलचाल की भाषा का स्वर रहता है।' कुछ रूककर वह बात आगे बढ़ाते हैं- 'हमने शब्द के स्वर को वैसा महत्व नहीं दिया, हमारे लिए संगीत का स्वर ही प्रमाण था।' कहा जा सकता है कि गीत की प्रामाणिकता की पृष्ठभूमि संगीत ही है। और संगीत के साथ-साथ अर्थोचित भाषा का उपयोग कर मिश्र जी ने अत्यंत सरलता से गाँव, देश तथा समाज की पीड़ा को व्याख्यायित किया।

जिस कवि के पास गहन विश्व-दृष्टि और गहरी सामाजिक संलग्नता होती है, वह अपने व्यक्तिगत जीवन के दु:ख-दैन्य और हर्षोल्लास को भी समाजोन्मुख बना देने की क्षमता रखता है। वीरेन्द्र मिश्र के काव्य-लोक में एकांतिक एकालाप नहीं है, बल्कि हैं सघन सामाजिक अनुभूतियाँ। उन्होनें सिलसिलेवार अनेक स्मृति गीत लिखे हैं जो ऊपरी तौर पर पत्नी की स्मृति में हैं, किंतु उनमें कोरी निजता नहीं बल्कि व्यापक सामाजिकता है। वे हमें रोजमर्रा की जिंदगी की जद्दोजहद से रूबरू कराते है और तब सहसा आभास होता है कि यह हमारी अपनी ही जद्दोजहद है। इसीलिए उनके गीतों में दु:ख-दैन्य की, आशा-निराशा की जितनी भी स्मृतियाँ, छायाएँ और बिंब है, उन सब में सार्वजनिकता स्पष्ट दिखाई पड़ती है। यही कारण है कि वीरेन्द्र मिश्र पत्नी के निधन के बाद अकेलेपन की यातना भुगतते हुए 'आयु के किनारे पर/एक वृद्ध होता हैं' कहते है तो लगता है कि उनकी पीड़ा केवल उन्हीं की नहीं, किसी भी एकाकी वृद्ध की हो सकती है।

वीरेन्द्र मिश्र के स्मृति-गीतों की भाषा में घर-परिवार, गृहस्थी, शहर-दर-शहर की भटकन, उल्लासमय सपनों और उनके टूटने-बिखरने की असंख्य छवियाँ है। 'इतिहास' शीर्षक गीत में वे जो कुछ कहते है, वह केवल उन्ही की नहीं, किसी भी मध्यवित्त परिवार की जीवन-गाथा है -

'' संघर्षो की यात्रा
हुई साथ तेरे
मिट्टी के चूल्हे से
कुकिंग गैस तक।''

इसी प्रकार अभाव शीर्षक गीत का अभाव उनका अपना होते हुए भी एकदम निजी नहीं है। यह अभाव किसी का भी हो सकता है।

''खाली हो जाता जब
घर का कोना कोई
चौखट को लाँघना
मुश्किल हो जाता है
एक पुरानी सँड़सी, ऊँपती रसोई में
लड़खड़ा रहे बर्तन, टूट गया सपना है
बड़ी-बड़ी चीजों से भरी पड़ी है बस्ती
फिर भी खालीपन जैसा है, अपना है
बिखरे एकांतों को छोड़ एक कुर्ते को
खूँटी पर टाँगना मुश्किल हो जाता है।''

वीरेन्द्र मिश्र अपने गीतों में जैसे अछूते बिंब-विधानों तथा दैनंदिनी से जुड़े शब्दों का उपयोग कर पृथक काव्य का सृजन करते है, यह गीत उसका भी एक उदाहरण है। प्राय: सँड़सी, लड़खड़ाना जैसे शब्द गीतों की दुनिया में इस्तेमाल नहीं किए जाते, लेकिन विरेन्द्र मिश्र न केवल ऐसे शब्दों का बेधड़क इस्तेमाल करते हैं बल्कि वे इनके सहारे एक पूरा चित्र ही खड़ा कर देते है। रसोई, सँड़सी, बर्तन आदि स्त्री की दुनिया का जरूरी हिस्सा बन चुके है, इसीलिए स्त्री के चले जाने, संसार से विदा हो जाने पर रसोई में भी एक अजब सन्नाटा पसर जाता है। एक ऐसा सन्नाटा जो पुरूष की दुनिया को भी बदल और झकझोरकर रख देता है। रह जाती है बस यादें। लेकिन यादों का संबंध किसी कवि-विशेष के एकांतिक संसार से नहीं, सभी से है। यह भी कि ऐसी याद न केवल चिर-स्थायी होती है, वरन् घर में हर कहीं बिखरी भी होती है। इसीलिए वीरेन्द्र मिश्र कहते हैं- 'घर की जरूरी वस्तुओं में/अब तुम्हारी याद भी शामिल हुई।' और इसी के साथ गीत में 'चौधराहट' शब्द के प्रयोग से सहज ढंग से निर्मित एक अलग किस्म की यह बिंब-रचना देखिए- 'जिंदगी पर यह तुम्हारी चौधराहट/गीत के पूजा क्षणों में,/आरती-सी आज उतरी' या फिर सदा के लिए स्मृति-शेष हो जाने वाली को लेकर रचा गया यह चित्र-

''धूप ने अंतिम विदा ले ली महल से
एक छायाचित्र-सी अवशेष है तू
खिड़कियों की जालियों-नक्काशियों में
याद में ढलता हुआ परिवेश है तू!"

धूप की अंतिम विदाई, छायाचित्र और खिड़कियों की जालियों और नक्काशियाँ के सहारे वीरेन्द्र मिश्र जिस अवसादपूर्ण चित्र की रचना करने का कलात्मक कौशल दिखाते है, वह कम ही कवियों में देखने को मिलता है। इस कलात्मक कौशल के पीछे शब्दों का सटीक इस्तेमाल और कुल मिलाकर भाषा की ताजगी की योगदान है। भाषा की ताजगी ही नहीं, हर नए गीत में नया छंद-विधान और नई विषय-वस्तु को ये प्राय: छोटी-छोटी बातों से उठाते हैं और अनेक छोटी-छोटी बातें मिलकर बड़ी बात बन जाती है। और यह बड़ी बातें उनके गीतों को बड़ा भी बनाती है, सहज भी और संप्रेषणीय भी। यथा, 'शहर-दर-शहर साथ रहे हम/एकल कमरे के मकान में/जिन शहरों में डेरा डाला/सड़कों में गलियाँ विलीन थीं/ घर की मंजिल का क्या कहना/कहीं एक थीं, कहीं तीन थीं/लोग बहुत से थे जमीन पर/कुछ रहते थे आसमान में'। ऐसे दृश्य हर कहीं सब देखते है।, लेकिन कितनों ने इन्हें गीत विषय बनाया है? और कितनो ने ऐसे दृश्यों को 'लोग बहुत से थे जमीन पर/कुछ रहते थे आसमान में' कहकर नया अर्थ दिया है? बहुतों के जमीन पर रहने और कुछ के आसमान में रहने अर्थात वैभवपूर्ण जीवन जीने के विरोधाभास को कितने कवि पकड़ पाते है?

इसी तरह एक अन्य गीत में वे पत्नी को संबांधित करते हुए देश की राजधानी की हकीकत को तो सामने लाते ही हैं, अपनी गीत-यात्रा के बारें में भी एकदम सहज होकर बताते हैं, इन शब्दों में- 'दों दशक के बाद लौटीं/तुम कि जब दिल्ली शहर में/शहर है जो राजधानी/ सियासत के सिवा जिसमें/आज भी कुछ नहीं बदला/जहाँ तेरे साथ रहकर/गीत मेरा हँसा-रोया/रासतों पर गिरा-संभला/उसे हमने बहुत भुगता/कई शहरों के सफर में/दो दशक के बाद लौटीं/तुम कि जब दिल्ली शहर में।'

एक ऐसे समय में जब स्त्री केवल इस्तेमाल की, नुमाइश और विज्ञापन की वस्तु मान ली गई है, वीरेन्द्र मिश्र पत्नी प्रेमा के स्मृति-गीतों के माध्यम से स्त्री की वह छवि प्रस्तुत करते हैं जिसमें वह साधारण के बीच असाधारण नजर आती है- रोजमर्रा की जिंदगी की तकलीफें झेलने के बावजूद मुस्कराती रहने वाली, मोन रहकर भी बहुत कुछ कह जाने वाली, बराबरी के स्तर पर पुरूष का साथ देने वाली। स्त्री की ऐसी छवियों और मुद्राओं को वीरेन्द्र मिश्र

ने कोरी भावुकता से मुक्त होकर सघन और संपन्न रचनात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है। यह उन्हीं के शब्दों में उनके 'परिवेश की महागाथा' है। एक ऐसा परिवेश जहॉ कष्टों की इन सच्चाईयों को वीरेन्द्र मिश्र काव्यात्मक अभिव्यक्ति न दे पाते यदि उन्हें पत्नी के रूप् में प्रेमा मिश्र का साथ मिला होता, ऐसी स्त्री जिसके साथ तकलीफ में भागीदारी संभव थी तो कुछ मतभेद भी हो सकते थे-

''माथे पर आए तनाव के क्षणों में
हाथ कंधे पर हुआ महसूस हरदम
थे बहुत से मूल्य कुछ मतभेद भी थे
किंतु हम साथ ज्यादा और कुछ कम''।

और, कहना न होगा, कि यह तस्वीर निश्चय ही एक जीती-जागती स्त्री की है, उस तेज-तर्रार और चपल-चंचल स्त्री की नहीं जो मतभेदों को सहन नहीं कर सकती, और उस स्त्री की भी नहीं जो केवल मूर्ति बन बैठी रहती है। दरउसल यह तस्वीर उस स्त्री की है जो हमें अपने आसपास दिखाई देती है- प्रत्येक मुद्रा में, सुखी भी और दुखी भी, क्योंकि यह स्त्री हमारे समाज और देश-काल की है, कहीं देवलोक से आई हुई अति सुंदरी नहीं। उसकी साधारणता में ही असाधारणता निहित है।

गीतकार की सृजनात्मक रूची

विरेन्द्र मिश्र ने प्राय: अपने आप को गीतों से व्यक्त किया। गीत की या कहें कि छंदबद्ध कविता की अपनी सीमाएँ हाती है। अपने समय से लगातार रू-ब-रू होकर लिखना और जनसामान्य की चिंताओं से अपने को एकाकार कर देना अनेक गीतकारों को कठिन महसूस होता है। इसी कारण वे प्राय: अपने एकांत संसार में ही लीन रहते है और इसी कारण 'गीत' कहते ही प्राय: फूल-पत्तों और सुंदर नैन-नक्श वाली स्त्री को अथवा कल्पित या अकल्पित प्रेमिका को लेकर रचे गए अश्रुपूर्ण छंद की ही छवि उभरती है। यह सच भी है। गीत रचने वालों में स अधिकांशा ने अपने को एकसी ही सीमाओं में समेटकर रखा। वीरन्द्र मिश्र ने शुरू से ही इन सीमाओं का अतिक्रमण किया है। यह तो नि:संकोच कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने आरंभिक दौर में और कालांतर में कभी-कभी अनेक प्रेम गीत लिखे हैं, लेकिन उनमें न तो अन्य अनेक गीतकारों वाली भावुकता है, न प्रेम-विलाप और न मूर्ति जैसी स्त्री का नख-शिख वर्णन। इसके बरक्स वे चाहे प्रेमगीत रच रहे हों या प्रेम के इतर, प्राय: अपने समय और समाज के रू-ब-रू होकर ही लिखते रहे और उनके गीतों में निरंतर जनधर्मी पक्षधरता बनी रही। इसीलिए अपने आयु के सत्रहवें साल में, यानी लेखन के एकदम आरंभिक समय में, वे बंगाल के अकाल पर सन् 1944 में 'भूखा बंगाल' जैसी सशक्त लंबी कविता लिख सके। कुछ पंक्तियॉ-

''रोज सुबह सूरज की किरणें नया संदेशा लातीं
रोज सुबह सागर की लहरें नभ को छूने जाती
रोज सुबह महलों की सखियॉ हॅसी-खुशी से गातीं
रोज सुबह आँखें सपनों की नई बात बतलातीं
रोज सुबह कलकत्ते के पथ लाशों से पट जाते
रोज सुबह अगणित बंगाली दुनिया से उठ जाते''।

इतिहास की पुस्तकों में ब्रिटिश काल में बंगाल के अकाल का विवरण-वर्णन दर्ज है, लेकिन यह केवल शुष्क विवरण मात्र है। जबकि विरेन्द्र मिश्र शब्दों की आवृत्ति-पुनरावृत्ति और चमत्कृत करने वाली लयात्मकता के जरिये मात्र सत्रह वर्ष की आयु में तब की उस विभीषिका का ऐसा चित्र प्रस्तुत करते हैं जो आज भी दहला देता है। छोटी-सी आयु में अपने समय के बडे प्रश्नों के प्रति ऐसी परिपक्व जनपक्षीय सजगता और ऐसी गहन संलग्नता अत्यंत विरल प्रतिभाओं में ही देखने को मिलती है। विरेन्द्र मिश्र की इस प्रतिभा का कालांतर में निरंतर विकास हुआ तथा उनकी कविता का परिसर लगातार विस्तार पाता चला गया। इसी के चलते उनके लेखन में हमें कदम-कदम पर मर्माहत कर देने वाला यथार्थ देखने को मिलता है। यहॉ तक कि वे प्रकृति के सौंदर्य के बीच से भी बेहाल मनुष्य के कुरूप सच को सामने लाकर खडा कर देते है। ऊपर सत्रह वर्ष की आयु में लिखें उनके छंद की चर्चा की गई थी और इसके कई दशक बाद अब 1981 में लिखी गई उनकी जनपक्षीय कविता ''नीला बादल'' की ये पंक्तियॉ-

''सारे अंबर में है कोलाहर
मन में घिरता है नीला बादल
पल में हॅसते हम
पल में रोते हम
या तो हम ही भूले हैं या
मौसम ही है ये पागल
संध्या सतरंगी
सागर के तट पर नाची जब मस्ती में
हमने बूंदों को

घायल होते देखा गंदी बस्ती में
जलती भट्टी में
झोपडपट्टी में
जलता-भुनता है वर्षा-गीतों का
हरियाला आँचल''।

एक ओर है प्रकृति का सौंदर्य-अंबर, नीला बादल, सतरंगी संध्या, सागर-तट का उल्लास- और दूसरी ओर है गंदी बस्तियों, झोपड़पट्टियों का दारूण यथार्थ। एक ऐसा यथार्थ जहाँ वर्षा-गीत का अर्थ ही बदल जाता हैं। ऐसा दारूण यथार्थ कवि के रचधाधर्मी तथा प्रगतिशील सोच के चलते ही संभव है। जो सजृनशील नहीं, जिसके पास प्रगतिशील दृष्टि नहीं होगी, उसकी नजर न तो प्रकृति के रास्ते झोपड़पट्टी के दारूण यथार्थ पर पड़ सकती है और न वह प्रकृति तथा मनुष्य के रिश्तों की पड़ताल कर सकता है।

गीतों के विभिन्न स्वरूप

विरेन्द्र मिश्र ने आरंभिक दौर के काफी गीत अनगढ से गीत हैं और इनमें कई प्रणय गीत भी हैं, लेकिन इनमें से अनेक गीतों में स्वाधीनता के तत्काल बाद के वर्षों में देश-काल और समय-समाज की चिंता यत्र-तत्र नजर आती हैं, यहाँ तक कि एशिया की चिंता भी। यह एक नए उभरते हुए कवि के संदर्भ की बडी बात थी। उनके गीत शुरू से ही प्रयोजनयुक्त थे, और जिंदगी की धडकनों से जुडे रहे हैं। उन्होनें साफ शब्दों में कहा हैं- ''जिंदगी से दूर जाकर जो कला को है सजाता/ मैं नहीं हूँ वह, मुझे वह गीत लिखना हैं न आता।'' कवि, विशेषत: गीतों के रचनाकार प्राय: कल्पनालोक में विचरण करते है, लेकिन अपने शुरूवाती दौर में ही वीरेन्द्र मिश्र घोषणा कर देते हैं कि 'दूर होती जा रही है कल्पना/ पास आती जा रही है जिंदगी।'

गीतों तथा अपनी लेखनी के विषय में स्वयं वीरेन्द्र मिश्र ने एक जगह लिखा कि- ''कवि-सम्राट कालिदास तथा स्वर-सम्राट तानसेन की पुण्यमयी और रसवंती कला-साधना की अप्रतिहत, अपरिमित एवं सृजनशीला प्रेरणाओं का महानद जो कभी मध्य भारत से चलकर दूर विश्व तक प्रवाहमान हुआ था, जो कभी गीत-गोविंद में झंकृत हुआ था, रवि ठाकुर ने जिसे तुलसी, सूर मीरा, कबीर, शेक्सपीयर आदि की लोक-संस्कृतियों के स्वरों से जोड़ा था, और जो आज देश-देश के अर्थत्रस्त किंतु महान गीतकारों की नवीनतम संभावनाओं एवं मान्यताओं में मूर्तिमंत होकर अग्रसर हो रहा है युग और युग-युग की उसी संगीतमयी तथा प्राण-प्रेरक संवेदन-दृष्टि में अपने नम्र-नूतन प्रगति-प्रगीत की एक सरगम-ध्वनि आज भी गरीब एवं भव्य हिंदी सरस्वती के जीवन-कूटीर में मैं छेड़ रहा हूँ। यह एक अनिवार्य आवश्यकता की पूर्तिमात्र है। मुझे इससे असंतोष अधिक है-संतोष कम। फिर भी जो इसे पढ़े, सुनें, निरखें ओर परखें उन्हें यदि इसमें उनके अपने जीवन-संघर्ष और युग-प्रभाव का कोई एक स्पष्ट संकेत-प्रतिबिंब भी दिख सका तो मुझे अधिक विश्वास से बढ़ने की प्रेरणा मिल सकेगी- गीत में भी और जीवन में भी।''[13]

वीरेन्द्र मिश्र के दूसरे गीत-संग्रह 'लेखनी-बेला के प्रकाशन के दस वर्ष बाद 1967 में सामने आया उनका तीसरा संग्रह- 'अविराम चल मधुवंती'। 'लेखनी-बेला' की ही भाँति इस गीत-संग्रह को भी भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता ने प्रकाशित किया। यह उल्लेख इसलिए आवश्यक है क्योंकि इतने वर्षो में कविता का रूप-विधान बदल चुका था, जिसमें सप्तकों की प्रमुख भूमिका थी। भारतीय ज्ञानपीठ ने कविता को 'नई कविता' के नए रूप में अनेक कृतियों के माध्यम से सामने लाने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नई कविता के इस उन्मेष के परिणामस्वरूप् गीतों के अनेक रचयिता मानो पीछे रह गए या कवि-सम्मेलनों तक सिमट गए। लेकिन वीरेन्द्र मिश्र उन विरल कवियों में थे जिनकी गीत-यात्रा नए छंद-प्रयोगों, नई विषय-वस्तु, नए बिंब-विधान और नए शब्द-संयोजन के साथ निर्बाध गति से जारी रही।

'अविराम चल मधवंती' में अपने पिछले संग्रहों की भाँति गीत छांदिक प्रयोग के उदाहरण मिलते है। जहाँ वे परंपरागत, छंद-रूप को लगातार छोड़ते चलते है। एक माने में वे छंद की हदबंदी को छंद के भीतर से ही तोड़ते है। 'अविराम चल मधवंती' संग्रह के अधिकांश गीतों व कविताओं में प्रकृति अपनी विभिन्न छवियों और मुद्राओं में उपस्थित है। इन्हें प्रकृति राग के गीत भी कहा जा सकता है। दूसरा पक्ष यह कि अधिकांश कविताएँ प्रकृति और उसकी मुद्राओं-भंगिमाओं के साथ मनुष्य के प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष संबंधो पर केंद्रित है। साथ ही वीरेन्द्र मिश्र अपने गीतों में अपनी सामाजिक जिम्मेदारी का निर्वहन भी पूर्ण रूपेण करते है। यथा, 'टूंटती है परेल के गरीब पर बिजली/फरफरा जाता है मेरीनड्राईव का अंचल।' यद्यपि ऐसे गीत गहरे सामाजिक दायित्वबोध की ओर इंगित करते है।

निष्कर्ष

वीरेन्द्र मिश्र का व्यक्तित्व परिवर्तन के दौर में उर्जा और सर्जनात्मकता के साथ गीतों की रचना करने वाले रचनाकार का रहा है। इसका मुख्य कारण उनकी गहरी सामाजिक संलग्नता और प्रगतिशील सोच, जिस वजह से वे किशोर वय से युवावस्था की ओर बढ़ने के दौर में बंगाल के भीषण अकाल पर सशक्त छांदिक रचनाएं प्रस्तुत कर सके। उन्होनें जहां मछुआरों, कामगारों, मध्यमवर्गीय जीवन के सुख: दु:खों और हर्ष-विषाद पर सार्थक गीत लिखे, वहीं एशिया के नव स्वतंत्र राष्ट्रों पर मंडराते युद्ध के खतरे, साम्राज्यवादी महत्वकांक्षाओं और विश्व-शांती के प्रश्नों को भी गीतों के माध्यम से प्रस्तुत किया। साहित्यिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक जीवन के प्रदूषण आदि की उनकी चिंता के केंन्द्र में थें। बड़े पैमाने पर उन्होनें गीतों के माध्यम से विसंगतियों पर व्यंग्य किए, जबकि गीत में व्यंग्य का इस्तेमाल अधिकांश कवियों के यहाँ बहिष्कृत-सा ही रहा है। अद्भूत शब्द-संयोजन, असंख्य छांदिक प्रयोग, संगीतात्मकता आदि ऐसे उपकरण हैं, जिन्होंने उनके गीतों को उजास दी। वीरेन्द्र मिश्र की गीत-यात्रा सही अर्थो में अप्रतिम हैं।

वीरेन्द्र मिश्र प्रगतिशील सोच के कवि रहे हैं। आलोचक 'प्रगतिशीलता' और 'प्रगतिशील सोच' जैसे शब्दों का इस्तेमाल प्राय: करते रहे है। डॉ. नामवर सिंह ने निर्मल वर्मा को उनकी कहानी 'परिंदे के आधार पर प्रगतिशील कथाकार घोषित किया था और इसके बाद वे लंबे समय तक निर्मल वर्मा को प्रगतिशील

मानते रहे। निश्चय ही निर्मल वर्मा एक अत्यंत महत्वपूर्ण कथाकार थे। उनकी कहानियों का अद्‌भुत क्लासिक अंदाज है, उनमें करिश्माती भाषायी तरलता जैसे अनेक गुण हैं, लेकिन निश्चय ही उनमें प्रगतिशील चेतना नहीं थी और बाद-बाद में तो वे स्वयं प्रगतिशील होने को साम्यवादी होना मानते हुए साहित्यिक स्तर पर प्रगतिशीलता के धुर विरोधी हो गए थे। सीधे शब्दों में कहा जाए तो प्रगतिशील उसे माना जाएगा जिसकी रचनाओं में जनधर्मी पक्षधरता होगी। जो सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों और विद्रूपताओं के खिलाफ खड़ा होगा, जो युद्ध-विरोधी और शांतिकामी शक्तियों के साथ होगा, जो हालात की मार के कारण मूक हो गए वंचितों और पीड़ितों को वाणी देगा। इन्हीं या ऐसे ही अन्य कारणों से हम प्रेमचंद, यशपाल, भीष्म साहनी आदि अनके कहानीकारों-उपन्यासकारों और निराला, सुमित्रानंदन पंत, नागार्जुन, मुक्तिबोध आदि काावियों को निःसंकोच प्रगतिशील कह सकते है। तथा निश्चय ही वीरेन्द्र मिश्र का व्यक्तित्व भी हमें ऐसे ही रचनाकारों की पाँत में खड़े करने को विवश करता है। भले ही गीत-विरोधी आलोचकों के तंग नजरिये के कारण उनकी उपेक्षा करने की विफल कोशिश क्यों न हुई हो। वीरेन्द्र मिश्र का व्यक्तित्व जहां एक और भूख और गरीब के जीवन यथार्थ की मीमांसा अपने गीतों में करता हैं तो वहीं वे प्रकृति के सौंदर्य के बीच भी बेहाल से मनुष्य के कुरूप सच को सामने लाकर खड़ा कर देते है। वीरेन्द्र मिश्र की रचनाधर्मिता में उनका व्यक्तित्व परिलक्षित होता है। देश की स्वतंत्रता के तत्काल बाद जहाँ अनेक रचनाधर्मी उल्लासमय सपने सजा रहे थे, वहीं वीरेन्द्र मिश्र आजादी के बाद के मोहभंग की स्थितियों का अहसास करने लगे थे। सन् 1950 में उन्होनें ' सरकार का जनतंत्र' शीर्षक से एक गीत लिखा था। इस शीर्षक के नीचे कोष्ठक में ये शब्द थे- 'सरकार के एक पिट्ठू का वक्तव्य' और यह वक्तव्य इन पंक्तियों से आंरभ होता है-

''कितनी बड़ी बातें हुई आजाद हिंदुस्तान में
फिर भी हमेशा लोग हैं सरकार को ही कोसते!
कुछ लोग जो बदमाश हैं, इंसानियत से दूर हैं
कहते हमेशा यह कि 'भूखों मर रहे मजदूर हैं'
हमने कहा उनसे कि 'उत्पादन बढ़ाना चाहिए'
कहने लगे 'पहले मगर शोषण मिटाना चाहिए'
क्या इस तरह बट्टा नहीं लगता हमारी शान में
फिर भी हमेशा लोग हैं सरकार को ही कोसते!''

समय के सवालों से मुठभेड़ करती इस रचना के माध्यम से वीरेन्द्र मिश्र जनंतत्र को हमारे सामने रखा, जो आज भी अधिक विसंगतियों के साथ सामने है।

फुटनोट

1 विरेन्द्र मिश्रः गीत समग्र भाग चार, संपादकः प्रदीप पंत, पृ. 49
2 विरेन्द्र मिश्रः गीत समग्र भाग चार, संपादकः प्रदीप पंत, पृ. 50
3 विरेन्द्र मिश्रः गीत समग्र भाग चार, संपादकः प्रदीप पंत, पृ. 66
5 विरेन्द्र मिश्रः गीत समग्र भाग एक, संपादकः प्रदीप पंत, पृ. 138
6 विरेन्द्र मिश्रः गीत समग्र भाग एक, संपादकः प्रदीप पंत, पृ. 141
7 विरेन्द्र मिश्रः गीत समग्र भाग चार, संपादकः प्रदीप पंत, पृ. 27
8 विरेन्द्र मिश्रः गीत समग्र भाग चार, संपादकः प्रदीप पंत, पृ. 208
9 विरेन्द्र मिश्रः गीत समग्र भाग चार, संपादकः प्रदीप पंत, पृ. 208
10 विरेन्द्र मिश्रः गीत समग्र भाग दो, संपादकः प्रदीप पंत, पृ. 269
11 विरेन्द्र मिश्रः गीत समग्र भाग चार, संपादकः प्रदीप पंत, पृ. 215
12 विरेन्द्र मिश्रः गीत समग्र भाग चार, संपादकः प्रदीप पंत, पृ. 112
13 विरेन्द्र मिश्रः गीत समग्र भाग एक, संपादकः प्रदीप पंत, पृ. 40

अष्ट चामुण्डा - अग्निपुराण के विशेष सन्दर्भ में

प्रो० प्रभात कुमार

प्रो०, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्धार, उत्तराखण्ड

कल्पना देवी

शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्धार, उत्तराखण्ड

सारांश

हिन्दू धर्म की देवियों में 'चामुण्डा' सर्वाधिक उग्र देवी के रुप में प्रमुख है। उग्र स्वरूप में प्रदर्शित की जाने वाली देवी का सम्बन्ध संहार से है। इस रुप में प्राय: वह आक्रमक चरित्र ग्रहण करती है जो उन राक्षसों के संहार के लिए आवश्यक था जो पृथ्वी की स्थिरता के लिए खतरा थे। शारीरिक प्रवृत्ति भय पैदा करने वाली है। इसका मुख मण्डल भयानक, आंखे कोटर में धंसी हुई प्रतीत होती है, मुख खुला, जिह्वा लपलपाती, केश विखरे हुए, दांत बाहर की ओर निकले हुए तथा पेट अन्दर की ओर धंसा हुआ है जैसे वह अत्याधिक भूख से व्याकुल हो। स्तन लटकते हुए ऐसे प्रतीत होते है जैसे मातृत्व का अभाव हो। नग्न अवस्था में हाथ में खड्ग, खेटक, खटवांग तथा कपाल लिए अधिकतर शव पर आसीन होती है। गले में मुण्डमाला पहने अस्थि तथा सर्पाभूषणों से सुशोभित रहती है। इसका निवास शमशान भूमि में है तथा यह सियारों तथा प्रेतों से घिरी रहती है। इसका एक अन्य रुप योगेश्वरी का भी है जिसमें इसके त्रिनेत्र होते है। प्रस्तुत शोध पत्र प्रस्तुत करने का मेरा उद्धेश्य अग्निपुराण में वर्णित अष्टचामुण्डा प्रतिमाओं को कला के माध्यम से प्रस्तुत करने के साथ चामुण्डा के महत्व को उजागर करना है।

प्रस्तावना

भारतीय धार्मिक जीवन पद्वति में देवियों को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है। प्रारम्भ से ही देवी के दो रुपों (सौम्य तथा उग्र की प्रधानता रही है। यह रुप सृष्टि के संचालन तथा कल्याण के लिए मातृशक्ति के द्वारा धारण किए गए। इन देवियों में 'चामुण्डा' का प्रमुख स्थान है। यह देवी के उग्र रुप को प्रदर्शित करती है। यह दिव्य सिद्धान्त को प्रस्तुत करती है जिसका सम्बन्ध संहार काल के साथ है। काली (देवीमहात्म्य)[1], कृष्णा[2], रक्तचामुण्डा[3], योगेश्वरी[4], रक्तदन्ता (रूपमण्डन)[5] आदि इसके नाम है। इसकी उत्पत्ति से सम्बन्धित कथानक विभिन्न पुराणों में मिलते है जैसे:- मार्कण्डेयपुराण, मत्स्य, वराह, लिंग, वामन, ब्रह्मवैवर्त्त तथा कालिका आदि।

पौराणिक ग्रन्थों के आधार पर चामुण्डा की उत्पत्ति

चामुण्डा देवी की उत्पत्ति से सम्बिन्धित अनेक कथानक देवीमहात्म्य, महाभारत, वामन पुराण, वराह पुराण, शिव पुराण तथा देवीभागवत आदि में मिलते है। विभिन्न पुराणों में देवी की उत्पति से सम्बन्धित विभिन्न आख्यान मिलते है। वामन पुराण[6] में वर्णित है कि एक बार शिव ने पार्वती को काली कह दिया इस बात से नाराज होकर वह हिमालय में तपस्या करने चली गई तथा ब्रह्मा जी से सुन्दर रुप का वरदान प्राप्त किया। गौर वर्ण प्राप्त कर श्यामवर्ण का त्याग कर पार्वती हिमालय चली गई। यही श्यामवर्ण कौशिकी व कत्यायनी कहलाई। कौशिकी को इन्द्र ने विन्ध्य पर्वत पर वास करने तथा असुरों से देवों की रक्षा करने को कहा इस कारण वह विन्ध्यवासिनी कहलाई। अत: यही देवी चण्ड तथा मुण्ड नामक दैत्यों के संहार के लिए चामुण्डा कहलाई।[7] मत्स्य पुराण[7]में भी वामन पुराण की भांति वर्णन मिलता है परन्तु यहां ब्रह्मा जी द्वारा श्यामवर्ण देव रात्रि को अपने वाहन सिंह पर सवार होकर विन्ध्यपर्वत पर देवताओं की रक्षा के लिए भेजा गया। देवी भागवत पुराण[8] में शुम्भ तथा निशुम्भ की कहानी को विस्तृत रुप से वर्णित किया गया हैं। इसमें वर्णित है कि शुम्भ तथा निशुम्भ नामक असुर भ्राताओं के बढ़ते अत्याचारों को रोकने के लिए देवी कौशिकी का अवतार हुआ। दोनों असुर देवी के सौन्दर्य को देखकर मोहित हो गए तथा विवाह का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। देवी ने इस विषय में कहा कि वह उस वीर पुरुष से विवाह करेगी जो उसे युद्व में परास्त करेगा। अत: असुर भाईयों ने चण्ड तथा मुण्ड नामक दूतों के अधिन युध करने के लिए सेना भेजी तब देवी ने उग्र रुप धारण कर चण्ड-मुण्ड नामक दैत्यों का संहार किया तथा चामुण्डा के नाम से प्रसिद्व हुई।[9] चामुण्डा की उत्पत्ति का सबसे सटिक वर्णन मार्कण्डेयपुराण के देवीमहात्म्य में मिलता है। इसमें वर्णित है कि पूर्वकाल में देवासुर संग्राम हुआ तब देवगण शुम्भ तथा निशुम्भ नामक दैत्यों से पीड़ित होकर हिमालय पर्वत पर देवी से सहायता लेने के लिए स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर देवी पार्वती के कोश से देवी उत्पन्न हुई जो शिवा, अम्बिका या कोश से उत्पन्न होने के कारण कौशिकी कहलाई जिसकी स्तुति शुम्भ तथा निशुम्भ से हारे देवगणों ने की। कौशिकी के निकल जाने पर पार्वती ने कृष्णवर्ण धारण कर लिया; यही अम्बिका, कालिका के नाम से हिमालय में वास करने लगी।[10] इसके रुप को देखकर मोहित हुए दैत्य असुर भ्राताओं ने अपने दूत चण्ड तथा मुण्ड को देवी का हरण करने के लिए भेजा। इन दूतों का नाश

करने के लिए देवी ने रौद्र रुप धारण कर लिया; उनका मुख क्रोध से तमतमा उठा, भौंहे चढ. गई तथा ललाट पर सिंकुडन आ गई। उनके शरीर से कराल वदना, नरमुण्डमाला पहने भयंकर मुखवाली देवी कालिका उत्पन्न हुई जो दैत्य सेना का संहार कर तथा चण्ड-मुण्ड के सिर काटकर देवी के पास गई। कालिका के इस कृत्य से प्रसन्न होकर देवी ने उसे 'चामुण्डा' नाम से जगत प्रसिद्व होने का आशीर्वाद दिया। इस सन्दर्भ में मार्कण्डेयपुराण[11] में वर्णित है :-

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती।

कालिकेति समाख्ता हिमाचलकृताश्रया।। मार्कण्डेयमहापुराण/82/44

यही कालिका आगे चण्ड तथा मुण्ड नामक दैत्यों का संहार करके 'चामुण्डा' के नाम के प्रसिद्व हुई। इस सन्दर्भ में वर्णित है:-

तवानीततौ ततो दृष्टा चण्डमुण्डौ महासुरौ।

उवाच काली कल्याणी ललितंचण्डिकावध:।। 26

यस्माच्चण्डं च मुण्डे च गृहीत्वा त्वमुपागता।

चामुण्डेति ततो लोकेख्याता देवि भविश्यसि।। 27 मार्कण्डेय एवं देवीमहात्म्य 27/71

अग्निपुराण के अनुसार चामुण्डा का स्वरुप:- अग्निपुराण में चामुण्डा के प्रतिमाशास्त्रीय लक्षणों का वर्णन मिलता है। इसके साथ ही चामुण्डा के आठ स्वरुपों को इसी पुराण में प्रस्तुत किया गया है, जिनमें रूद्रचर्चिका, रूद्रचामुण्डा, महालक्ष्मी, सिद्वचामुण्डा, सिद्वयोगेश्वरी, रूपविद्या, क्षमा तथा दन्तुरा प्रमुख है। इस पुराण में चामुण्डा को त्रियाक्षी, कृशोदरी, उर्ध्वकेशी, निर्मासा तथा अस्थिसारा रुप में वर्णित किया गया हैं। इसके दाएं हाथ में शूल तथा कटार विद्यमान है और बाएं हाथ में कपाल एवं पट्टिश।

यह व्याघ्रचम्रधारिणी तथा अस्थाभूषणों से अलंकृत; शववाहिनी देवी है।

चमुण्डा कोटराक्षी स्याकिर्मासा तु त्रिलोचना।।

निर्मासा अस्थिसारा व उर्ध्वकेशर कृशोदरी।

द्वीपीचर्मधरा ककी दक्षिणे स्याछवारुढ़ास्थिभूषणा। (21/50/अग्निपुराण)

अग्निपुराण के अनुसार चामुण्डा के प्रतिमा लक्षण:- अग्निपुराण के अनुसार चामुण्डा के प्रतिमा लक्षण में इसकी भुजाओं, आयुधों, वाहनों तथा शारीरिक सरंचना को शामिल किया गया है। जिनका वर्णन निम्नलिखित अनुसार है-

शारीरिक संरचना:- चामुण्डा माँस रहित शरीर वाली, धँसे हुए पेट वाली, अस्थिस्वरुप में वर्णित किया गया है। इसकी आँखें कोटर में धंसी हुई।[12] अग्निपुराण के अनुसार चामुण्डा की दो, छ:, आठ, दस, बारह तथा बीस भुजाएं होनी चाहिए। बीस भुजाओं वाली चामुण्डा का वर्णन निम्न अनुसार है:-

चण्डी विशंतिबाहु: स्याद बिभ्रती दक्षिणै: करै: शूलासि; शक्तिचक्राणि पाशखेटायुधाभयम।

डमरुं शक्तिां वामैनागिपाशं च खेटकम। कुठारड्गशसपांशाश्च घण्टायुधगदास्ताथा।।

(1/50/अग्निपुराण)

देवी की बीस भुजाएं होनी चाहिए। इसके दाएं हाथ में शूल, कृपाण, शक्ति, चक्र, पाश एवं खेटक आयुध, एक हाथ अभय मुद्रा में, डमरु तथा शक्ति हैं। बाएं हाथ में नागपाश, कुठार, अंकुश, घण्टा, दर्पण तथा मुदगर से युक्त है।चामुण्डा के आयुधों में शूल, कृपाण, शक्ति, चक्र, पाश एवं खेटक आयुध, डमरु तथा शक्ति, नागपाश, कुठार, अंकुश, घण्टा, दर्पण मुदगर आदि प्रमुख है।

अष्टचामुण्डा प्रतिमा लक्षण:-

रुद्रचर्चिका:-

गजचर्मभृदर्वास्यापादा स्याद्रद्रुचर्चिका।।

(31/50/अग्निपुराण)

रुद्रचर्चिका के पैर और मुख उपर की ओर होते है। इसकी छ: भुजाएं होती है। इसके दो उर्ध्व (उपर) हाथों में गजचर्मधारण करती है। अन्य हाथों में कपाल, शूल, कर्त्तरी (कटार) तथा पाश होता है। चामुण्डा का यह रुप उत्तर प्रदेश (जागेश्वर, जमसोत), मध्य प्रदेश (खजुराहो), राजस्थान, आदि से प्राप्त होती है। खजुराहों की शड़भुजी प्रतिमा में रुद्रचर्चिका का रुप प्रतिदर्श होता है। चामुण्डा के पांच हाथों में क्रमश: डमरु, त्रिशूल, कर्तरी, कपाल, तथा नरमुण्ड का अंकन है। प्रतिमा का छठवां हाथ खण्डित अवस्था में है।[13]

रुद्रचामुण्डा:-

सैव चाष्टभुजा देवी शिरोडमरुकान्विता।।

तेन सा रुद्रचामुण्डा नाटेश्वर्यथ नृत्यती।।

(32/50/अग्निपुराण)

रुद्रचामुण्डा अष्टभुजी देवी है। इसके छ: आयुध रुद्रचर्चिका की भांति हैं। सिर तथा डमरु धारण करके यह रुद्रचर्चिका, रुद्रचामुण्डा की भांति है। यह रुद्रचर्चिका सिर तथा डमरु धारण करके रुद्रचामुण्डा कहलाती है तथा नृत्य मुद्रा में नाटेश्वरी कहलाती है। प्राप्ति स्थल- चामुण्डा का यह रुप राजस्थान, बंगाल आदि क्षेत्रों से प्राप्त मूर्त्तियों में देखा जा सकता है। यह मूर्त्तियां स्थानक, आसन तथा नृत्य प्रकार की है।

चामुण्डा का यह रुप राजस्थान, बिहार, बंगाल आदि क्षेत्रों से प्राप्त होता है। यह मूर्त्तियां स्थानक, आसन तथा नृत्य मुद्रा में पायी गई है।

झालवाड़ संग्रहालय में संरक्षित 10 वीं शताब्दी की मूर्त्ति है। इसमें अष्टभुजी चामुण्डा की मुखाकृति भयावाही, कृशोदरी और शरीर कंकाल रुपिणी या देही है। दानों उर्ध्व हाथों में नवगृहों के पट्ट को उठाया गया है। एक दाएं और एक हाथ में पुरुष है जिसका चित्रण स्पष्ट दृश्य नहीं हो रहा है। शेश दोनों हाथों में कर्तरी तथा शव है। दो बाएं हाथ के आयुध खण्डित है। वाहन के रुप में प्रेत के स्थान पर दाएं पार्श्व में शृंगाल अंकित है। देवी ने नरमुण्डों की माला धारण की हैं। और यह यज्ञोपवीत से अलंकृत है। नवग्रहों में राहु के अतिरिक्त अन्य ग्रहों के मस्तक खण्डित हो चुके है।

महालक्ष्मी –

इयमेव महालक्ष्मीरुपविष्टा चतुर्मुखी। (32/50/अग्निपुराण)

महालक्ष्मी, रुद्रचामुण्डा की भांति है परन्तु इसके एक के स्थान पर चार मुख है। अर्थात् रुद्रचामुण्डा की बैठी हुई चतुर्मुखी प्रतिमा का स्वरुप महालक्ष्मी कहलाता है। चामुण्डा के महालक्ष्मी रुप की मूर्त्तियां अत्यंत दुलर्भ पाई गई है। महाराष्ट्र के ऐलोरा में इसका वर्णन मिलता है। नागपुर संग्रहालय[14] की एक चामुण्डा प्रतिमा इस सन्दर्भ में दर्शनीय है। देवी के तीन मुख तथा छः भुजाएं है। देवी स्थानक मुद्रा में प्रेत पर खड़ी है। दाएं हाथ में कर्तरी, खड्ग, और त्रिशूल है तथा बाएं हाथ में एक खण्डित अवस्थता में है दूसरा स्पष्ट आयुध सदृष्य नहीं है। केवल तीसरा हाथ कपाल से युक्त है। यह विकरालमुखी, निर्मासा तथा कृशोदरी है। त्रिमुख जटाजूट है। यह नरमुण्डों तथा भुजंगावरणों से युक्त है। तीनों मुखों के पीछे चौथे की कल्पना की जा सकती है। इसका कुछ साम्य अग्निपुराण में वर्णित चामुण्डा से कुछ साम्य रखता है।

सिद्धचामुण्डा –

नृवाजिमहिशेभोश्च खादनी च करे स्थिताम।
दशबाहुस्त्रिनेत्रा च शस्त्रासिडमरुत्रिकम।।
बिभ्रती दक्षिणे हस्तेवामेघण्टां च खेटकम।
खटवांङ्ग च त्रिशूल च सिद्ध चामुण्डा। (34/50/अग्निपुराण)

सिद्धचामुण्डा देवी का वर्णन हाथ में विद्यमान मनुष्य तथा महिश को खाती है। इसके दस हाथ और त्रिनेत्र है। दाएं हाथ में कृपाण तथा तीन डमरु धारिणी है। बाएं हाथ में घण्टा, खेटक, खटवांग तथा त्रिशूल धारण किए हुए है। यह रुद्रचर्चिका की भांति दोनों हाथ में गजचर्म धारण करती है। चामुण्डा के इस रुप का वर्णन राजस्थान, बंगाल आदि क्षेत्रों से प्राप्त होता है। राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में इस रुप का वर्णन मिलता है।

राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में संग्रहीत एक पालकालीन मूर्त्ति है। इसमें दस भुजाओं से युक्त है। यह वृक्ष के नीचे विकसित पद्मासन पर ललितासन मुद्रा में बैठी है। यहां भी देवी की मुखाकृति रौद्र, पयोधर शुष्क, उदर कृष एवं शरीर कंकाल मात्र है। शरीर की अस्थियां और शिराएं दिखाई देती है। वे दोनों उर्ध्व करों से मस्तक के पीछे गजचर्म को फैलाये है। उनके शेष दाएं हाथों में से दो कर्तरी और खड्गधारी है एवं दो खण्डित है तथा बाएं हाथों में से एक खण्डित है। देवी यज्ञोपवीत, नरमुण्डों की माला एवं भुजंगाभरण से अलंकृत है। आसन के नीचे प्रेत वाहन है। वृक्ष की शाखाओं पर पक्षी बैठे हुए है और नरमुण्ड लटके हुए है। पाद पीठ के मध्य में हाथों एवं नरमुण्डों से युक्त कुण्ड तथा पार्श्वों में उलूक और शव का भक्षण करते हुए गृध, श्वान का अंकन किया गया है। यह दृष्य चामुण्डा के शमशान का दृष्य करता है जिसमें चामुण्डा वास करती है।

सिद्धयोगेश्वरी –

सिद्धयोगेश्वरी देवी सर्वसिद्धिप्रदायिका।

एतद्रूपा भवेदन्या पाशाङ्कशतारुणा।। (35/50/अग्निपुराण)

सिद्धयोगेश्वरी देवी सब प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाली है। इसकी बारह भुजाएं (द्वाद्वशभुजी) है। इस देवी के आयुध उपरोक्त सिद्धचामुण्डा की भांति है (देवी के हाथ में पाश तथा अंकुश से युक्त देवी के आयुध पूर्ववत ही है। द्वाद्वशभुजी चामुण्डा की मूर्तियां सिद्धयोगेश्वरी के रुप के अन्तर्गत अध्ययन की जाती है। राजशाही संग्रहालय की मूर्ति विशेष रुप से उल्लेखनीय है।[15] प्रेतारुढ़ा चामुण्डा का स्वरुप कंकाल रुपिणी है। बारह भुजाओं से युक्त इस प्रतिमा का साम्य सिद्धयोगेश्वरी के रुप से साम्य रखता है।

रुपविद्या –

भैरवी रुपविद्या तु भुजैद्वाद्वशभिर्युता।

एताः श्मशानजा रौद्रा अम्बष्टकमिंद स्मृतम।। (36/50/अग्निपुराण)

रुपविद्या द्वाद्वशभुजाओं से युक्त है। रक्तवर्ण के पाश तथा अंकुश को धारण करने वाली भैरवी नामक देवी कहलाई। ये श्मशान से उत्पन्न होने वाली देवियां है, इसको अम्बष्टक कहा गया है। अतः यह द्वाद्वशभुजी देवी है जो रौद्र रुप में श्मशान में निवास करती है। इसके आयुधों का कोई उल्लेख नहीं किया गया। प्रायः द्वाद्वशभुजी चामुण्डा प्रतिमाओं को सिद्धयोगेश्वरी के रुप में वर्णित किया जाता है।[16]

क्षमा –

क्षमा शिवावृता वृद्धा द्विभुजा विवृताननना। (37/50/अग्निपुराण)

क्षमा द्विभुजी और वृद्ध स्त्री के रुप में शृंगालियों से घिरी हुई होती है।. क्षमा–चामुण्डा के इस रुप का वर्णन उड़ीसा और बंगाल में प्रमुखतः मिलता है।

प्रस्तुत प्रतिमा उड़ीसा के जाजपुर क्षेत्र की है। 10 वीं शताब्दी की इस प्रतिमा में चामुण्डा का क्षमा रुप प्रतिबिम्बित होता है। इसमें देवी द्विभुजी वृद्ध अवस्था में चित्रित घुटनों के बल बैठी है। इसका दाहिना हाथ इसके दाहिने पैर पर अवस्थित है तथा बायां हाथ घुटनों पर है। यह लम्बकर्णा, लम्बस्तना, तथा शरीर की नासिकाओं को स्पष्ट रुप से देखा जा सकता है। चेहरे पर भयावाही मुस्कान प्रतीत होती है। प्रतिमा में प्रदर्शित देवी के हाथो, पैरों तथा गले में आभूषणों का अंकन है। प्रस्तुत प्रतिमा का यह रुप अग्नि पुराण में वर्णित अष्ट चामुण्डा के भेदों में क्षमा के रुप को प्रदर्शित करता है।

दन्तुरा -

दन्तुरा क्षेमकारी स्याद भूमो जानुकरा स्थित। (37/50/अग्निपुराण)

दन्तुरा भूमि पर जानुओं के बल पर बैठी हुई भयंकर मुख तथा रौद्र दांतो से युक्त भयावही देवी है। चामुण्डा के इस रुप का वर्णन अधिकतम रुप से कला क्षेत्र में नहीं मिलता है। दीनाजपुर की चामुण्डा प्रतिमा इस रुप से साम्य रखती है।[17] चामुण्डा का यह रुप बंगाल की अधिकतर चामुण्डा प्रतिमाओं में पाया जाता है। यह घुटनों के बल बैठी हुई है जिसका दायां हाथ दायें घुटने पर तथा बायां हाथ सतह पर स्पर्ष करता है। देवी के काकपक्ष के समान केष अवस्थित है। पादपीठ पर गदर्भ पर अंकित है। गदर्भ पीठ का अंकन मत्स्य पुराण में वर्णित है।

प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से चामुण्डा प्रतिमाओं का अध्ययन किया गया जो कि अग्नि पुराण में वर्णित है। इसमें चामुण्डा के विषेषतः आठ रुपों का वर्णन किया गया है। मूर्तिकार मूर्ति के निर्माण में स्वतंत्र होता था। वह सारे नियमों का पालन करना आवष्यक नहीं समझता था। अतः प्रस्तुत प्रतिमाओं का कुछ स्वरुप पुराणों में वर्णित स्वरुप से पूर्णतयः साम्य नहीं रखता। कुछेक समान्यताओं के साथ विभिन्नताओं का अंकन भी इन प्रतिमाओं में देखा जा सकता है। इसका कारण स्थानीय प्रभाव है जो कलात्मक क्षेत्र को प्रभावित करता है। इसी कारण इन प्रतिमाओं के निर्माण में अन्तर पाया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी, भगवानदासः 1942, श्री मार्कण्डेय पुराण, ज्ञानलोक प्रकाशन, प्रयाग।

काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी।। 6।।

विचित्रखट्वांड्गधारा नरमालरविभूषणा। मार्कण्डेयमहापुराण/6/71

2. श्रीवास्तव, बलराम (अनुवादक) : 1989, रुपमण्डन, मोतीलाला बनारसीदास, वाराणसी, पृ0 264 कपालमालिनी कृष्णा शवारुढ़ा भयावहा।

त्रिशूल खेटक खड्ग धनुः पाशाड्कुशौशर।।41।।

3. वही, रुपमण्डन- खड्गं पात्रेच मुशलं लाड्ग्ल्च विभतिं सा। आख्याता रक्तचामुण्डा देवी योगेश्वरीति च।।43।।
4. वही
5. वही, रुपमण्डन- अधीते य इमं नित्यं रक्तदन्त्या वपुःस्तवम्।
   तें सा परिचरेद्भेवी पतिं प्रियमिवाड्गना।।44।।
6. 'मिश्र' पण्डित रुद्रप्रसादः (2015) वामनपुराणम (हिन्दी अनुवाद सहित), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (इलाहाबाद)। पृ. 257
7. आचार्य, पं0 श्रीराम शर्माः1970, मत्स्य पुराण द्वितीय खण्ड, संस्कृत संस्थान बरेली, उ0 प्रदेश, पृ0 465
8. विद्याभास्कर पं0 संरयूप्रसादशास्त्री द्विजेन्द्र (गार्ग्यमुनि) : 2014, श्रीमद्भदेवीभागवत पुराण, रुपेश ठाकुर प्रसाद प्रकाशन, वाराणसी। पृ. 651
9. अवस्थी, भगवानदास : 1942 श्री मार्कण्डेय पुराण, ज्ञानलोक प्रकाशन, प्रयाग। पृ0 176
10. वही
11. वही
12. राव, टी0 ए0 गोपीनाथ : 1971 ऐलिमेंटस ऑफ हिन्दू आइकनोग्राफी, वाल्यूम 1, पार्ट 2, इन्डोलॉजिकल बुक हाउस, दिल्ली, पृ0 386
13. जयसवाल कुसुमकुमारी :1992, उत्तर भारत की प्राचीन हिन्दू देवी-मूर्तियां, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली। पृ0 38
14. Descriptive list of Exhibits in the Archaeological Section of the Nagpur Museum, pp. 18-19
15. एन0 के0 भट्टाशाली : 1929, बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मणिकल स्कल्पचर्स इन दी डेका म्यूजियम, डेका म्यूजिम कामेटी, डेका। पृ0 211-12
16. वही
17. सरस्वती एस0 के0 : 1962 अर्ली स्कल्पचर ऑफ बंगाल, सम्बोधि पब्लिकेशन प्रा0 लि0, कलकत्ता। पृ0 188

पूर्व मध्य काल में मुद्रा विनिमय

राकेश कुमार यादव

शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

पूर्व मध्य काल में क्रय विक्रय और परस्पर विनियम हेतु मुद्राओं का प्रचलन था जिनमें सिक्के प्रभुत्व थे। इस काल में 'माष', अर्थमाष, और रूवंग को क्रय विक्रय का माध्यम होता था।[1] हिरण्य एवं सुवर्ण नामक उस युग के प्रचलित सिक्के थे।[2] दास-दासियों को उनका पारिश्रामिक सोने, चांदी और तांबे में दिया जाता था।[3] हिरण्य एवं सुवर्ग नामक उस युग के प्रचलित सिक्के थे। राजा श्रेणिक ने अपनी पुत्र वधुओं को 8 करोड, हिरण्य, और 8 करोड सुर्वण प्रदान किये थे।[4]

मुद्रा के प्रकार-

- रूवर्ग सिक्के
- रजत सिक्के
- ताम्र सिक्के
- अन्य सिक्के

रूवर्ग सिक्के- स्वर्ण सिक्को में निष्क, सुर्वण, दीनार, केवाडित्रक और सुवर्णभाष के उल्लख प्राप्त होते है। निष्क एक स्वर्ण धातु का सिक्का थ। 'णाषक' को पूर्व देश में दीनार कहा जाता था।[5] निशीथचूर्ण में 'केवडिय' केवग का उल्लेख है। इस सिक्के का अन्य कही उल्लेख नहीं मिलता है। अत:: यह किसी प्रान्त विशेष का सिक्का रहा होगा। पूर्व देश में एक और सिक्का प्रचलित था जिसे 'केषडिक' कहा जाता था। इसकी धातु का स्पष्ट उल्लेख नहीं हुआ है पर स्र्वण सिक्को के साथ ही उल्लेख होने की सम्भवत: यह भी स्र्वण सिक्का ही ज्ञात होता है। इसी सिक्के को अन्यत्र केतरात कहा गया है।[6]

रजत सिक्के- पूर्व मध्यकाल में चांदी के सिक्के प्रचूर मात्रा में मिलते है चांदी के सिक्कों में कार्षापण, भाषा कार्षापण,पद कार्षापण, रूवम, सुझाण, नेलक और द्रम्प का उल्लेख हुआ है। चांदी के गोल, चौकोर और आयत सिक्को को कार्षापण कहा जाता था। विपाक सूत्र के अनुसार एक गणिका एक रात के लिए सहस्त्र कार्षापण ग्रहण करती थी।[7] एक राजा द्वारा अपने सिपाहियों को सभारगो में वेतन दिये जाने का उल्लेख मिलता है।[8] दक्षिणपथ में चांदी की 'काकिणी' भी प्रचलित थी।[9] कार्षायण के छोटे सिक्के भी प्रचलित थे अर्ध मूल्य के सिक्को को अर्ध-कार्षापण और चौथाई मूल्य के सिक्को को पाद-कार्षपण कहा जाता था। सोलहवे भाग का सिक्का 'भाष-कार्षापण' कहा जाता था। चांदी के सिक्के रूवग और रूप्य नाम से भी प्रचलित थे भिन्न-2 राज्यों में रूवग किन-2 मूल्य और नामों से प्रचलित थे। सौराष्ट्र और दक्षिणापथ में रूवग को समारग कहा जाता था।[10]

ताम्र सिक्के - तांबे के सिक्को पण, भाष, काकिणी का उल्लेख हुआ है। एक व्यापारी का उल्लेख है कि जिसने व्यापार में व्यवहार हेतु पणों से भरी बोरी गाड़ी में रखी थी, जब वह एक सार्थ के साथ यात्रा कर रहा था तो मार्ग में उसकी बोरी फट गयी और उसके सारे पण गिर गये। वह अपनी गाड़ी रोककर पण इकट्ठा करने लगा। सारा सार्थ आगे निकल गया। वह बीहड जंगल में अकेला रह गया। चोरों ने उसे अकेला पाकर उसका सारा धन लूट लिया।[11]

उत्तर पुराण से ज्ञात होता है कि नैमिंत्तक की पत्नी ने क्रोधित होकर कौड़ियो को फेंक दिया था, क्योंकि उसके पति ने अपने परिश्रम के प्रतिफल में कौड़ियों ही प्राप्त की थी।[12] छोटे सिक्को में कौड़िया का भी प्रयोग होता था। यह समुद्री जीव के शरीर का आवरण था। वृहत्कल्पभाष्य में इसे 'कवदुक' कहा गया है।[13]

मुद्रा की बनावट और प्रकार- पूर्व मध्यकाल में अधिकतर सिक्के गुप्त शैली के बनते रहे। छटी सदी में मौखरि, वर्धन तथा हूण राजाओं ने गुप्त ढंग के चांदी के सिक्के तैयार कराये थे। मध्य भारत में ससैनियन ढंग से सिक्के इतने विकृत रूप से चलते रहे कि उन पर किसी तरह की आकृत दिखलाई नहीं पड़ती। ऐसे सिक्के गधिया नाम से पुकारे जाते थे और अधिकतर तांबे के बनते थे। ये ज्यादातर गुजरात, मालवा और राजस्थान में मिलते थे इनका वजन मोटे तौर पर 5.4 ग्राम है। विद्वानों के अनुसार ये 7वीं से 12वीं सदी तक चलन में थे। इन सिक्कों का वास्तविक मूल्य सोने और चांदी के सिक्को से बहुत कम है। लेकिन इनकी भारी संख्या से मालूम होता है कि आंतरिक आर्थिक कारोबार में इनका खास उपयोग होता था। गधैया सिक्कों सबसे बड़ा संग्रह जयपुर के स्टेट म्यूजियम में है।[14]

पूर्व मध्यकाल में उत्तर भारत के राजवंशो में चंदेलो, चौलुक्यों, शाहियो, गुर्जर प्रतिहार कलचुरियो, गाहडवालो एवं चाहमानों के राजवंशों के शासको ने दक्षिण भारत के चालुक्यो, होयसलो, चोलो, यादव, पल्लव, पांड्यो कदम्बो आदि ने सिक्के जारी किये। गुप्त शासको में चन्द्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय और कुमार गुप्त की सुर्वण मुद्राओं का भार 118-123 प्रतेन था और स्कन्द्रगुप्त तथा उसके उत्तराधिकारियों के सिक्को का भार 144-146 ग्रेन था। परन्तु पूर्व मध्य काल की स्र्वण मुद्राओं का औसत केवल 60 ग्रेन था। इस काल में जारी किए गए चांदी तथा तांबे के सिक्को का औसत भार भी इसी के आस-पास था और यह यूनानी द्रम्म के भारमान 67.5 ग्रेन के निकट थ। विवेच्य काल में श्रेणी संगठनों स्थानीय संस्थाओं, नगरो एवं व्यापारियों को भी सिक्के

जारी करने का अधिकार दे दिया गया था।[15] कल्याणी के चालुक्य सोमेश्वर तृतीय ने 1126 ई0 के एक अभिलेख में उल्लिखित वार्तकलोगिगधाण नाम सिक्का लोकगुंडि की व्यापारिक श्रेणी द्वारा चलाया गया था।[16] लेख पद्वति से भी हमें पता चलता है कि बीसल देव नाम धारी द्रम्य सिक्को को तीन बार जांचने के बाद ही किया गया था।[17] 8वीं से 13वीं सदी के बीच के अन्तराल में दक्षिण भारत में चीनी शासकों के भी सिक्के मिले है जिन्हें दक्षिण के अभिलेखों में चीनकाणम कहा गया है।[18] ये सिक्के नि:संदेह व्यापार के माध्यम से दक्षिण भारत में आए होंगे। गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद कम से कम 400 वर्षों तक उत्तर भारत में सोने के सिक्के अत्यन्त अल्प संख्या में जारी किये गये थे[19] भाष्कराचार्यकृत लीलावती के अनुसार चांदी के 16 द्रम्म एक विषम के बराबर थे और द्वयाश्रम काव्य के अनुसार निष्क 108 पलभार की स्र्वण मुद्रा थी।[20] कल्हण तथा सोमदेव के ग्रन्थों में सुर्वण रूपक के विवरण मिलते है।[21]

पूर्व मध्यकाल के साक्ष्यों में ताम्र मुद्राओं के किए पण कार्षापण णडिग एवं विंशोपक (द्रम्म का 20वां भाग) शब्द प्रयुक्त हुए। एक लीटर की कीमत एक कार्षापण बतायी गयी है और एक भिखारी द्वारा 1000 कार्षापण एकत्र करने का उल्लेख मिलता है।[22] जैस साक्ष्यों मे भी क्रय विक्रय में कौडियों के प्रयोग का उल्लेख आए है।[23] सुलेमान ने लिखा है कि पालो के शासनकाल में लेन-देन में कॉडियों का व्यवहार होता था।[24] लीलावती के अनुसार एक रजत द्रम्म था 16 ताम्र पण 1280 कौडियो के बराबर मूल्य का था।[25]

मुद्राओं की कमी की अवधारणा- पूर्व मध्यकाल के दौरान भारत में अनेक राजवंशों का उदय हुआ। जितने राज्य इस काल में थे उतने इससे पहले के किसी भी काल में नहीं थे। सिक्कों के गुप्तकालीन परम्परा 650 ई0 तक उत्तरी पूर्वी और मध्य भारत तथा आन्ध्र प्रदेश के तटवर्ती क्षेत्रों में जैसे तैसे कायम रही। इसके बाद के राजवंशों द्वारा जारी किए जाने वाले सिक्कों में भारी कमी आ गयी। इस काल में भारतीय राजवंशों ने सोने के सिक्के प्राय: जारी ही नहीं किए। सातवीं सदी के पूर्वार्ध में शासन करने वाले हर्ष, शशांक, जयनण और समाचारदेव द्वारा जारी किए गए सोने के थोड़े बहुत सिक्के की हमें जानकारी है। इसके अलावा सोने के और सिक्कों की जो जानकारी हमें है वह गुप्तों की स्र्वण मुद्राओं के बारे में है जिनका केन्द्र दक्षिण पूर्वी बंगाल था।[26]

पूर्व मध्यकाल में मुद्राओं की कमी को लेकर दो प्रकार के मत प्रकाश में आते है इनमें से एक मत यह है कि इस काल में मुद्राओं की कमी दिखायी देती है इसके विपरीत दूसरा मत यह मानता है कि इस काल में मुद्राएं कम नहीं है। दोनों एक दूसरे के विरोधी मत है। पहले मत के समर्थक आर0एस0 शर्मा[27] लल्लन जी गोपाल[28] जय प्रकाश सिंह[29] सुशील मालती देवी[30] दूसरे मत के समर्थक डी.सी. सरकार[31] दोनों मतो के विचारको ने अपने-अपने ढंग से तर्क प्रस्तुत किये है प्रथम मत के विचारको में लल्लन जी गोपाल का विचार है कि गुप्तोत्तर भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया था। हर्ष के पश्चात् सम्पूर्ण उत्तर भारत को एकता के सूत्र में बांधने का महत्वपूर्ण कार्य किसी भी राजवंश के द्वारा नहीं हुआ सामन्तवाद ने की मुद्राओं को प्रभावित किया। प्रो0 जयशंकर सिंह ने इस राजनीतिक अस्थिरता को व्यापारिक हास के साथ ही मुद्राह्रास से भी सम्बद्ध किया है। राजनीतिक अस्थिरता ने व्यापारिक ह्रास को जन्म दिया।

मुद्राओ की उपयोगिता - व्यापारिक लेन-देन एवं कर्मचारियों के वेतन आदि भुगतान के लिए मुद्रा की उपयोगिता सर्व विदित है। पूर्व मध्यकाल में स्र्वण, रजत एवं ताम्र मुद्राओं के व्यवहार से व्यापार में श्रीवृद्धि हुई। मुद्राओं के कारण विनिमय तथा आर्थिक सौदो के स्वरूप में नाटकीय परिवर्तन हुए। कराधान पद्धति में भारी परिवर्तन आया और उपभोक्ताओं एवं विक्रेताओं तथा राज्य और उसके कर्मियों के बीच निवैयक्तिक सम्बंध स्थापित हुए आर्थिक विकास के विभिन्न स्तरों से गुजरते दूर-दूर के क्षेत्र विनिमय-सम्बन्ध के व्यापक क्षेत्र के सूत्र से बंधकर एक दूसरे से जुड़ गए। जिससे सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान का मार्ग प्रशस्त हुआ। इन सबके फलस्वरूप राजनीतिक प्रभुत्व में व्यापकता आयी और उससे ये सम्बंध और भी मजबूत हुए । कांस्य युगीन संस्कृतियों में सिक्को के पतन के बिना भी वाणिज्य व्यापार चलता था। कुछ कांस्ययुगीन संस्कृतियों में चांदी के ठीकरे चलते थे। जिनका मूल्य उनके वजन से तय होता था। किन्तु पूर्व में लौह युग में मानकीकृत तथा राज्य प्रमाणित धातु के सिक्को के अविष्कार से एक क्रान्ति आ गयी।

पूर्व मध्यकाल में मुद्रा की उपयोगिता नकद फसलो के उत्पाद एवं व्यापार से जुड़े प्रान्तो में दृष्टिगत होती है। नकद फसलों में कपास, गन्ना, सुपारी, शण एवं गर्म मसाले वर्णित है। बंगाल एवं गुजरात जहां मुद्राओं का विशेष प्रचलन था, मे, इन फसलों का बहुतायात उत्पाद एवं व्यवहार होता था। मध्य एवं पश्चिमी भारत भी इसके उत्पाद क्षेत्र थे और गुजरात कपास की खेती के लिए सर्वाधिक प्रसिद्ध थे।[32]

पूर्व मध्यकाल में मुद्रा की उपयोगिा मुद्रा के अभाव में भी विद्वानों द्वारा द्रष्टव्य है मुद्रा का अभाव ऐसी अर्थ व्यवस्था का संकेत देता है जिसमें करो या दूसरे शब्दों में किसानों पर लगायी देनदारियों के नगद वसूली लगभग बंद हो गयी स्पष्ट है कि पूर्व मध्य काल में राज्यों की ओर से पर्याप्त परिणाम के सिक्के नहीं जारी किये गये।

संदर्भ सूची

1. क्रय- विक्रय मास-अद्वमास -रूवग सववेधाराओं सूत्रकृतांक 2.2.7.3
2. कुवलयमाला कहा पृ0 58
3. पिंडनिर्युक्ति गाथा 405
4. अट्ठ हिरण्णकोडीओ अट्वण्ण पीड्याव - ज्ञाताधर्मकथोग 1, 91
5. पीयत्ति सुवन्न, जद्रा पूत्वेदेसे दीणारी - निशीथचूर्णि 3.3070
6. कवड्डगमादी पंच, रूप्पे पीते तदेव केविडया - बृहत्कल्प भाष्य, 2.1969, पीयत्रि सुवन्न जहां पुत्वदेते दीणारे। केवडिओ यथा तत्रैव केतराता - निशीय यूर्णि 3. 3037, 3070, 3714
7. विपाकसूत्र 2.2
8. निशीथचूर्णि 3.957
9. जहा दक्षिणावहे कामगोरूप्पमयं

10. निशीथचूर्णि, 2.958
बृहत्कल्पभाष्य, 4.3891
11. संघ दास गणि - वासुदेवाहिण्डी 1.13
12. उत्तरपुराण, पृष्ठ 151
13. बृहत्कल्प भाष्य 2.1969
14. राय.एस.सी.: स्टैटीग्राफिक एविडेंस आफ क्वायंस इन इण्डियन एक्सकैवेशंस एण्ड सम एलाइड एश्यूज, वाराणसी 1959, पृ0 39, तालिका सेकेण्ड
15. थापर रोमिला: हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, 1, पृ0 250
16. जे0 एन0 एस0 आई0 53 (1991), पृ0 84
17. गोपाल: इकनामिक लाइफ, पृ0 195-96
18. वही, 53 (1991), पृ0 21
19. गोपाल: पूर्वोद्धत, पृ0 217
20. द्वयाश्रयकाव्य 17.84
21. दृष्टव्य जे.एन.एस.जे. 19, पृ0 116 तथा आगे
22. जैन: पूर्वोद्धत, पृ0 160
23. लाइफ ऐज डेपिक्टिड इन जैन केनन्स, पृ0 161
24. जर्नल ऑफ एंशियंट हिस्ट्री, 18, पृ0 34
25. जर्नल ऑफ एशियंट हिस्ट्री, 18 पृ0 36
26. विक्स रॉबर्ट एस0: द न्यूमिस्मेटिक ज्यौग्राफी ऑफ पोस्ट गुप्त एण्ड प्रि-इस्लामिक सिल्वर फ्रॉम बंगाल, बांग्लादेश असम एण्ड अराकान, पी.एन. गुप्त और ए.के. झा (सं) न्युमिस्मेटिक्स एण्ड आर्किओलॉजी दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, भारतीय मुद्रा शास्त्र शोध संस्थान, अंजनेरी, जिला नासिक, 1987, पृ0 54-55
27. शर्मा आर.एस. क्वायंस एण्ड अर्ली इण्डियन इकोनामी मेरोरायर्स नं. 6 (न्यू. सो.इं), पृ0 1-8
28. गोपाल लल्लन जी: इकोनामिक लाइफ ऑफ नार्थ इण्डिया, पृ0 215-21
29. सिंह, जय प्रकाश: क्वायंस एण्ड इकोनॉमी ऑफ नार्थ इस्टर्न स्टेटस ऑफ इण्डिया न्यू, सो. एस. मोमोरायर्स, नं. 7, पृष्ठ 135-46
30. सुशील मालती देवी: क्वापन्स एण्ड अर्ली इण्डियन इकोनॉमी मेमोरायर्स नं. 6, पृ0 125-37
31. सरकार डी.सी: द न्यूमिसमेटिक एण्ड इपिग्राफिकल स्टडीज, पृ0 16-30
32. मार्कोपोलो, ट्रवेल्स, 2, पृ0 393 यादव, बी.एन.एस. सोसाइटी एण्ड कल्चर, पृ0 259-60

उच्च शिक्षा में संस्कृत की भूमिका

डॉ० उषा नागर

सह आचार्य संस्कृत, बाबू षोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

शोध सारांश

अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण एवं दु:खद है कि देश की आधारभूत भाषा संस्कृत की उच्च शिक्षा में क्या भूमिका हो जैसे विषय पर हमें विचार करना पड़ रहा है। 1986 में गई शिक्षा-नीति के अन्तर्गत त्रिभाषा सूत्र में से संस्कृत को बहिष्कृत कर दिया गया। सामान्य शिक्षा क्रम में इसके साथ ही उच्च शिक्षा में संस्कृत ज्ञान को महत्त्व अन्य विदेशी भाषाओं के साथ प्रतिपादित भी किया गया है। इससे एक ओर तो यह गन्ध आती है कि संस्कृत का महत्त्व भारत के लिए केवल विदेशी भाषाओं के समकक्ष है और दूसरे जब स्कूल के स्तर पर संस्कृत को जड से ही काट देंगे तो उच्च- शिक्षा में वह कैसे पनप सकती है? त्रिभाषा सूत्र के विरोध में संस्कृत के कुछ विद्यार्थियों ने सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दी जिसके आधार पर विद्वान् न्यायाधीशों ने स्थगन आदेश दिए जिससे विद्यालयों में पूर्ववत् संस्कृत का अध्ययन चालू है। विद्वान् न्यायाधीशों ने कहा है कि संस्कृत भारत की आत्मा है और आत्मा के बिना शरीर की कल्पना नहीं की जा सकती।

इस सारे प्रसंग में 9 मार्च 1991 को संस्कृत-विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय में 'आधुनिक भारत में संस्कृत की उपादेयता' विषय पर एक संगोष्ठी की गई। इस अवसर पर प्रख्यात संस्कृत विद् डॉ. लोकेश चन्द्र ने अपने देश के अतिरिक्त विदेशों में भी संस्कृत की महत्ता के विषय में प्रकाश डालते हुए कहा कि धन-धान्य सम्पन्न जापान के लोग भी आध्यात्मिक शान्ति के लिए संस्कृत का आश्रय ले रहे हैं। उन्होनें जापान के एक ऐसे मन्दिर का उल्लेख किया जहाँ सरस्वती की उपासना के उपरान्त कई घन्टों की साधना द्वारा परिश्रमपूर्वक संस्कृत के ऊँ लक्ष्मी आदि शब्दों को एक कैलेण्डर में लिपिबद्ध किया जाता है और शान्ति के प्रतीक के रुप में लोग इसे अपने घर में रखते हैं। संस्कृत भाषा के महत्व के अनेक आयाम है। संस्कृत वस्तुत: भारत का प्राण है। इसलिए कहा गया है कि 'संस्कृतमेव हि 'भारतम्' मानव मात्र की उदात्ततम संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए संस्कृत के ग्रन्थों का आश्रय लेना आवश्यक है। संस्कृत की इस उदात्तता के कारण प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक शोपेनहावर ने कहा कि उपनिषद् ने मुझे जीवन में शान्ति प्रदान की है और वे मुझे मृत्यु पर भी शान्ति प्रदान करेंगे। गीता का अनुवाद संसार की सभी प्रमुख भाषाओं में हो चुका है। गीता का त्याग, समन्वय और निष्काम कर्म का संदेश सारे संसार में माना जाता है। भारत संसार को यदि अपना कुछ मौलिक योगदान देना चाहता है तो उसके पास ऋषियों तथा प्राचीन विचारकों द्वारा प्रदत्त संस्कृत ज्ञान की यह अमूल्य थाती है।

मुख्य शब्द:- शिक्षा-नीति, अवसाद, वेदाध्ययन, ऋग्वेद

उद्देष्य - उच्च षिक्षा में संस्कृत भाषा की क्या भूमिका को जानने का प्रयास किया गया है?

इसी के आधार पर स्वामी विवेकानन्द ने अमरीका वासियों को भारतीय अध्यात्म के प्रति उन्मत बना दिया था। मानसिक शान्ति के लिए योग से अच्छा और कुछ नहीं। किन्तु अत्यन्त दु:खद स्थिति है कि आधुनिक भारत में योग का आदर तभी बढ़ा जब वह पश्चिम ने अपनाया और वह 'योगा' बनकर यहाँ आया। मेरा विश्वास है कि यदि स्कूली शिक्षा में इस आध्यात्मिक ज्ञान को त्याग, निष्काम-कर्म आदि दर्शन को छोटी-छोटी कहानियों के माध्यम से जोड़ दिया जाए और तदनुरुप बड़ों का आचरण बच्चों को दिखाई दे तो निश्चित रूप से उच्च शिक्षा तक पहुँचे हुए नवयुवकों में पाया जाने वाला डिप्रैशन, टैन्शन, अवसाद आदि आधुनिक बीमारियों से पर्याप्त सीमा तक मुक्त रहा जा सकता है।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में जब यूरोप संस्कृत के ज्ञान से परिचित हुआ तो यूरोप के सभी देशों के विद्वान् उससे चमत्कृत हुए बिना न रहे। संस्कृत विद्याओं के वैज्ञानिक महत्त्व के कारण इग्लैंड, अमेरिका आदि में वैदिक गणित को शिक्षा के पाठ्यक्रम का अंग ही बना दिया गया है। वहाँ के विश्वविद्यालयों में संस्कृत अध्ययन की व्यवस्था की गई है। संस्कृत के विशेष पीठ स्थापित किए गए जो आज तक विद्यमान हैं। सभी विद्वानों ने एक स्वर से ऋग्वेद को (65) संसार की प्राचीनतम पुस्तक स्वीकार किया। मैक्समूलर, वेबर, लुड्ग, ओल्डनबर्ग, हिटने, ब्लूमफील्ड प्रभृति विद्वानों ने अपना जीवन वेदाध्ययन को समर्पित कर दिया। संस्कृत अध्ययन से जुड़ी इन अन्तर्राष्ट्रीय उपलब्धियों से यह भली भांति सिद्ध हो जाता है कि आज भारत में संस्कृत को महत्त्व देना कितना आवश्यक है।

संस्कृत ने न केवल भारतीय भाषाओं हिन्दी, बंगाली, गुजराती, पंजाबी आदि को ही पुष्ट किया है अपितु ग्रीक, लैटिन, अवेस्ता, जर्मन आदि के साथ इसकी समानता से तुलनात्मक भाषाविज्ञान लिपि विज्ञान जैसे नवीन अध्ययन के विषय प्रकाश में आए हैं।

ऋवैदिक ऋषियों ने संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ लोक-भाषाओं के अभ्युदय की कामना भी की है। भारतवर्ष के संविधान में अपनाए गए 'सर्व भाषा उन्नति के सिद्धान्त को मूल स्वर ऋग्वेद में प्रदान करते हुए कहा है दृआ भारती भारती भि: सजोषा' (ऋग्वेद 7. 28) भले ही हम अपने क्षुद्र

राजनैतिक स्वार्थो के कारण 'प्रान्तवाद और क्षेत्रीयवाद' को अपनाते रहे परन्तु जब भी जन जीवन में 'राष्ट्रीय चेतना' और -अखण्ड भारत' की भावना आई है उसका कारण - संस्कृत भाषा और संस्कृत-साहित्य' ही रहा है।

संस्कृत ने प्राचीनकाल से ही संसार को अनेक विद्याओं का ज्ञान प्रदान किया है। गणित, विज्ञान, ज्योतिष, भूगोल, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, युद्धनीति, राजनीति दर्शन, साहित्य, संगीत आदि सभी ज्ञान-विज्ञान की महनीय परम्पराए हैं जिनका ज्ञान संस्कृत के ज्ञान के बिना पूर्ण नहीं हो सकता। कम्प्यूटर विशेषज्ञों ने पाणिनीय व्याकरण एवं संस्कृत भाषा का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला है कि अपनी पूर्णता एवं सम्पन्नता के कारण यह भाषा कम्प्यूटर के लिए सर्वाधिक उपयोगी है। प्रो.मोनियर विलियम ने कहा है 'संस्कृत व्याकरण उस मानव मस्तिष्क की प्रतिभा का आश्चर्यतम नमूना है, जिसे किसी देश ने अब तक सामने नहीं रखा। सर डब्ल्यू हण्टर कहते है कि संसार के व्यकरणों में पाणिनि का व्याकरण चोटी का है। उसकी वर्णशुद्धता, भाषा का धात्वन्वय सिद्धान्त और प्रयोग विधियाँ अद्वितीय एवं अपूर्व है.... यह मानव मस्तिष्क का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अवष्किार है। भूगर्भ शास्त्र का विषय है कि जल कहाँ और कितनी गहराई पर प्राप्त होगा। इसके विषय में चाक्रपाणि मिश्र का ग्रन्थ 'विश्ववल्लभ, महत्त्वपूर्ण सूचनाएं देता है। कृषि, वृक्ष, पादप-विज्ञान आदि सम्बन्धी सूचनाएं भी 'संस्कृत-साहित्य में भरी पड़ी हैं।

भारतीय इतिहास के ज्ञान के लिए संस्कृत भाषा का महत्त्व और भी अधिक है। शिलालेखों, सिक्कों, मुद्राओं, ताम्रपत्रों, मूर्तियों, चित्रों आदि को समझने के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है। आज सारे संसार के सम्मुख प्रदूषण का जो भय बना हुआ है उसके निवारण के लिए यज्ञ की सहज विधि संस्कृत ग्रन्थों में बताई गई है।

संस्कृत में संरचना की यह विशेषता है कि धातु में उपसर्ग एवं प्रत्यय आदि के योग से अनेक पदों का निर्माण किया जा सकता है। इसी क्षमता को देखकर ही राजभाषा हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओं के लिए भी यह निर्देश दिया गया है कि वे अपनी तकनीकी एवं पारिभाषिक शब्दावली के लिए मुख्य रुप से संस्कृत का आश्रय लें गें। इससे एक ओर जहाँ उस शब्दावली की पूर्णता समीचीनता और वैज्ञानिकता निश्चित होगी वहीं राष्ट्रीय एकता भी सुदृढ़ होगी। महात्मा गान्धी ने राष्ट्रीय एकता में संस्कृत के महत्व पर बल देते हुए कहा है कि 'संस्कृत हमारी भाषा के लिए गंगा नदी के समान है यदि वह सूख जाए तो भाषाएं निर्बल बन जाएंगी।

एक विद्वान् का कथन है कि आज संस्कृत को हमारी आवश्यकता नहीं, बल्कि हमें संस्कृत की आवश्यकता है। आज जब नैतिक मूल्यों का हास हो रहा है, मानवता आपस में टकरा रही है ऐसे में संस्कृत की ओर ध्यान देना जरुरी है, क्यों कि वास्तव में भारत की आत्मा देववाणी संस्कृत ही है।

विचित्र स्थिति तो यह है कि आज प्रत्येक व्यक्ति संस्कृत की स्तुति तो कर रहा है परन्तु उसकी प्रस्तुति के लिए कोई आगे नहीं आता। कालेज स्तर पर संस्कृत की इतनी दयनीय स्थिति है कि बारहवीं कक्षा में 45 प्रतिशत नम्बर लेने वाला विद्यार्थी भी पास-कोर्स में संस्कृत विषय नहीं पढ़ना चाहता । प्रवेश के लिए वह संस्कृत लेता है और फिर पूरा साल इसे बदलने के चक्कर में घूमता रहता है । इसका कारण क्या है! मेरे विचार में इसके अनेक कारणों में से सबसे महत्त्वपूर्ण कारण स्कूल में प्रारम्भ से संस्कृत भाषा का न पढ़ाया जाना है । यदि प्रथम कक्षा से ही संस्कृत को पाठयक्रम का एक हिस्सा बना दिया जाए और संस्कृत माध्यम से ही पढ़ाया जाए एवं संस्कृत भाषा के प्रति बच्चों में आस्था, श्रद्धा भरी जाए तथा समाज में भी चेतना उत्पन्न की जाए कि यह केवल पंडितों की भाषा नहीं है अपितु ज्ञान-विज्ञान की विविध धाराओं से जुड़ी है, इस मान्यता के बाद ही हम विद्यार्थियों में इसके प्रति अनुराग पैदा कर पाएंगे और उच्च शिक्षा में इसका उपयोग भी तभी संभव है।

यहि हम ज्ञान विज्ञान की कुछ नई उपलब्धियाँ विश्व के सामने रखना चाहते हैं तो उसके लिए सरकार को गम्भीरता से इस ओर सोचना होगा, नई प्रयोगशलाएं बनानी होंगी, मुटठी भर बचे संस्कृत विद्वानों को सम्मान एवं संरक्षण देना होगा जिससे वे अपनी दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने में ही न जूझते रहें अपना परिश्रम शोध कार्य में लगा सकें।

संदर्भ ग्रथ सूची

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास - परमानन्द गुप्त सरस्वती हाऊस दिल्ली, 1980
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास - कीथ, अनुवादक डॉ० मङ्गलदेव शास्त्री मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1970
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास -डॉ० बलदेव उपाध्याय शारदा निकेतन, वाराणसी-1978
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास -वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याप्रकाशन, वाराणसी, 1960
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास -वेद वरदाचार्य रामानारायण लाल वेणीप्रसाद, इलाहाबाद, 1962
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास -डॉ० श्याम शर्मा वाशिष्ठ नितिन पब्लिकेशन, अलवर-1995
8. संस्कृत साहित्य का इतिहास -डॉ० बाबूराम तिवारी, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा-1988
9. संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास-कृष्ण चौतन्य, अनु० विनयकुमार राय चौखम्बा विद्याप्रकाशन, वाराणसी,
10. संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ-जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1969
11. संस्कृत साहित्य परिचय -कमलकान्त मिश्र राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 1985
12. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा -चन्द्रशेखर पाण्डेय साहित्य निकेतन, कानपुर, 1980
13. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर-एम. विण्टर नित्स तृतीय वाल्यूम मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1963
14. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर -एस.एन.दास गुप्त, एस.के. वाल्यूम प्रथम यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता 1962
15. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर-एस. कृष्णाचार्यरियर मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1970
16. संस्कृत गीतिकाव्य का विकास -डॉ० परमानन्द शास्त्री प्रकाशन प्रतिष्ठान, मेरठ

17. संस्कृत आलोचना -बलदेव उपाध्याय प्रकाशन ब्यूरो सूचना विभाग, वाराणसी, उत्तरप्रदेश 1957
18. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-सत्यनारायण पाण्डेय साहित्य भण्डार, मेरठ 1975
19. संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास-युधिष्ठर, मीमासक फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर 1950
20. इत्सिंग की भारत यात्रा -सन्तराम द्वारा 1925
21. संस्कृत साहित्य का प्रमाणिक इतिहास-डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 1996
22. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास-पद्म श्री डॉ० कपिल द्विवेदी आचार्य रामनारायण लाल विजय कुमार, 1997
23. संस्कृत साहित्य का इतिहास -डॉ० कलानाथ शास्त्री, यूनिक ट्रेडर्स, जयपुर, 1996
24. संस्कृत साहित्य का इतिहास दृमैकडॉनल, हिन्दी अनुवाद-चारुदत्त शास्त्री, 1962

कोश ग्रन्थ

1. संस्कृत-हिन्दी कोश - वामन शिवराम आप्टे, नाग प्रकाशन दिल्ली, 1988
2. अमरकोशः --अमर सिंह, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1927 सुधाकारका सहित
3. आदर्श हिन्दी-संस्कृत कोश -रामस्वरूप शास्त्री
4. महाभारत कोश -मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1904
5. वैदिक कोश -मधुसूदन शर्मा, बालचन्द्र प्रेस-जयपुर 1906
6. पौराणिक कोश -लीलाधर शर्मा
7. वाल्मीकि रामायण कोश -डॉ० रामकुमार राय
8. भारतीय संस्कृति ज्ञान कोश -पं० चन्द्रशेखर उपाध्याय भाग 1-3

लोकायुक्त की भ्रष्टाचार निवारण में सार्थकता : राजस्थान के सन्दर्भ में

तुलसी राम

(विद्यार्थी), एल.एल.एम. राजकीय स्नातकोत्तर विधि महाविद्यालय सीकर, राजस्थान

भूमिका/ सारांश

भारत में लोकपाल एक भ्रष्टाचार निरोधक संस्था है, जो केंद्रीय स्तर पर भ्रष्टाचार के संबंध में की गयी शिकायतों की जाँच करती है। राज्य स्तर पर, राज्य के निवासियों द्वारा की गई भ्रष्टाचार की शिकायतों के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए लोकायुक्त की नियुक्ति की गयी है।

भ्रष्टाचार, किसी लोकसेवक या एक निर्वाचित राजनेता द्वारा प्रशासनिक नियमों के स्वहित में इस्तेमाल को संदर्भित करता है। यह एक गैरकानूनी आचरण है। प्रशासनिक भ्रष्टाचार को रोकने के लिए सबसे पहले स्वीडन ने पहल की थी। जिसकी बाद अन्य कई देशों ने भी अपने यहाँ भ्रष्टाचार-विरोधी संस्थाओं की स्थापना की। भारत में प्रशासनिक सुधार आयोग (ARC) की सिफारिश पर, लोकपाल और लोकायुक्त जैसी संस्थाओं का निर्माण लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013 के तहत किया जाता है। राजस्थान में लोकायुक्त तथा उपलोकायुक्त अध्यादेश 3 फरवरी 1973 से प्रभावी हुआ।

राजस्थान में लोकायुक्त एक स्वतंत्र संस्थान है जिसके अधिकार क्षेत्र में पूरा राजस्थान आता है। वर्तमान में राजस्थान के लोकायुक्त का कार्यकाल 5 वर्ष का है।

प्रस्तुत आलेख राजस्थान में लोकायुक्त की जरुरत, नियुक्ति, और उसके भ्रष्टाचार नियंत्रण की भूमिका पर प्रकाश डालता है।

मूल शब्दः राजस्थान, लोकायुक्त, भ्रष्टाचार, लोकसेवक, अधिनियम, अधिकार

परिचय

चुने गए नेताओं व सरकारी अधिकारियों द्वारा उनके प्रशासनिक अधिकारों का स्वहित में दुरूपयोग भ्रष्टाचार की श्रेणी में आता है। इससे जनता के पैसे और राष्ट्रीय संसाधनों की बर्बादी होती है। निजी लाभ के लिए किया जाने वाला भ्रष्टाचार, सामूहिक विकास व न्यायपूर्ण समाज के निर्माण में सबसे बड़ी चुनौती है।

वस्तुस्थिति

आज भले ही भारत की गिनती तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था के तौर पर होती हो, लेकिन भ्रष्टाचार के मुद्दे पर हमें दुनिया के सामने शर्मिन्दगी झेलनी पड़ती है। भ्रष्टाचार ने हमारी उपलब्धियों को सीमित कर दिया है। राष्ट्रहित व जनहित के कार्यों में लगाई जाने वाली बहुत बड़ी राशि भ्रष्टाचारियों द्वारा हड़प ली जाती है। भ्रष्ट प्रशासनिक अधिकारी और लोकसेवक राष्ट्रीय प्रगति की राह में रोड़ा हैं। देश को लूटना और जनता का भरोसा तोड़ना अक्षम्य अपराध है।

लोकायुक्त की आवश्यकता

भारत की भ्रष्टाचार नियंत्रक व्यवस्था में काफी कमियां हैं, जिनके कारण भ्रष्टाचारियों के खिलाफ पर्याप्त प्रमाण मिलने के बाद भी ईमानदार जांच और मुकदमें नहीं होते। इस कारण अधिकांश भ्रष्टाचारियों को कोई सजा नहीं मिलती। पूरा तंत्र भ्रष्टाचारियों की रक्षा करता है और नए भ्रष्ट पैदा करता है।

भ्रष्टाचार नियंत्रक व्यवस्था की कमजोरियां निम्नलिखित हैं:-

1. स्वतंत्रता रूप से काम करने में बाधा: हमारी अधिकांश भ्रष्टाचार रोधक संस्थाएं (उदा. सीबीआई, राज्य सतर्कता विभाग, विभिन्न विभागों के आंतरिक सतर्कता विंग, राज्य पुलिस की भ्रष्टाचार निरोधक शाखा आदि) स्वतंत्र नहीं हैं। बहुत से मामलों में जांचकर्ता को आरोपी अथवा आरोपी से प्रभावित अधिकारी के ही नियंत्रण में रहकर काम करना और रिपोर्ट देना पड़ता है ।
2. कार्यवाही करने के अधिकार और शक्ति का अभाव: यद्यपि केन्द्रीय सतर्कता आयोग (ब्टब) या लोकायुक्त एक स्वतंत्र निकाय हैं, लेकिन उनके पास कोई दंड देने की शक्तियां नहीं हैं। उन्हें महज सलाहकार संस्था बनाकर रख दिया गया है। वे सरकार को केवल दो तरह की सलाह देते हैं:

i) अमुक अधिकारी पर विभागीय दंड लगाया जाये

ii) तमुक अधिकारी पर अदालत में उसका मुकदमा चलाया जाये

3. आंतरिक जवाबदेही और पारदर्शिता का अभाव: इन भ्रष्टाचार निरोधक संस्थाओं में पारदर्शिता और जवाबदेही का अभाव भी एक बड़ी समस्या है। वर्तमान में, भ्रष्टाचार नियंत्रक संस्थाओं में कार्यरत लोगों के भ्रष्ट आचरण को जांचने के लिए कोई अलग और प्रभावी तंत्र नहीं है। इसी कारण इतनी संस्थाएं होने के बाद भी भ्रष्ट लोग बहुधा जेल जाने से बच जाते हैं, और भ्रष्टाचार पर रोक लगाने के वांछित इच्छित परिणाम नहीं मिल पाते।

इतनी बाधाओं के बावजूद लोकायुक्त, शिकायत या स्वप्रेरणा के आधार पर की गई जाँच एवं अन्वेषणों के माध्यम से लोक प्रशासन में स्वच्छता, निष्पक्षता, संवेदनशीलता, समर्पण, वचनबद्धता, जवाबदेही, पारदर्शिता एवं उच्च गुणवत्ता लाने हेतु प्रयासरत है।

इतिहास

1809 में स्वीडन के राजा किंग चार्ल्स 12 के शासनकल में 'आम्बुड्समैन फार जस्टिस' के रूप में इस संस्था की व्यवस्था की गई थी। इसमें एक गैरसरकारी अधिकारी को लोकसेवकों से सम्बंधित कानून को तोड़ने के आरोपों की जाँच करने का अधिकार दिया गया।

भारत में राष्ट्रीय स्तर पर, श्री मोरारी देसाई की अध्यक्षता में 5 जनवरी 1966 को प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन किया गया।

इस आयोग ने अपनी रिपोर्ट में शासन में व्याप्त अकुशलता, भ्रष्टाचार तथा जनसामान्य की शिकायतों के प्रति प्रशासन की असंवेदनशीलता के निवारण के लिए केंद्रीय स्तर पर लोकपाल तथा राज्य स्तर पर लोकायुक्त नामक संस्था का निर्माण किया जाए। हालांकि लंबे समय तक आयोग की सिफारिशों को स्वीकार नहीं किया गया। आखिर वर्ष 1973 में राजस्थान में लोकायुक्त स्थापना की गई।

लोकायुक्त की स्थापना से पहले राजस्थान में जनता की शिकायतों के निवारण का काम 'जन अभियोग निराकरण विभाग' करता था।

जिस संस्था को भारत में लोकपाल या लोकायुक्त कहा जाता है, उसे अन्य राष्ट्रों में ओम्बुड्समैन के नाम से जाना जाता है।

लोकायुक्त की शक्तियां

राजस्थान लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त अधिनियम 1973 की धारा 7 के अन्तर्गत लोकायुक्त को विभिन्न आरोपों में मंत्रियों तथा लोकसेवकों के विरूद्ध की गयी शिकायतों की जाँच करने का अधिकार दिया गया है। ये शिकायतें निम्नलिखित हैं:-

- लोक सेवकों द्वारा किसी को अनुचित हानि या कष्ट पंहुचाना,
- लोकसेवक के रूप में अवैध लाभ की प्राप्ति हेतु अपने पद का का दुरूपयोग करना,
- अपनी जिम्मेदारियों का के पालन में व्यक्तिगत हित, भ्रष्ट अथवा अनुचित लाभ के लालच से प्रभावित होना,
- लोकसेवक की हैसियत में भ्रष्टाचार या सच्चरित्रता की कमी का दोषी पाया जाना।

राजस्थान लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त अधिनियम 1973 की धारा 2(i) में दी गई लोक सेवक की परिभाषा के अनुसार लोकायुक्त को निम्न लोगों के विरूद्ध जाँच और नियमानुसार कार्यवाही करने का अधिकार है:-

(i) मुख्य मंत्री को छोड़कर, राजस्थान राज्य की मंत्रिपरिषद का प्रत्येक सदस्य, जो चाहे किसी भी नाम से ज्ञात हो, अर्थात् मंत्री, राज्यमंत्री या उप-मंत्री,

(ii) राजस्थान राज्य में किसी लोक सेवा कार्यालय में या लोक पद पर नियुक्त व्यक्ति,

(iii) (a) जिला परिषद का प्रमुख और उप-प्रमुख, पंचायत समिति का प्रधान तथा उप-प्रधान और राजस्थान पंचायती राज अधिनियम के अधीन या उसके द्वारा गठित किसी भी स्थायी समिति का अध्यक्ष,

(b) नगर निगम के सभी महापौर और उप-महापौर, नगरपालिका/परिषद का प्रत्येक अध्यक्ष और उपाध्यक्ष, नगरपालिका बोर्ड का अध्यक्ष, और उपाध्यक्ष तथा राजस्थान नगरपालिका अधिनियम के अधीन गठित किसी समिति का अध्यक्ष,

(iv) हर वो व्यक्ति, जो निम्नलिखित की सेवा में है या उनका वेतन भोगी है, अर्थात्:-

(a) राजस्थान राज्य के समस्त स्थानीय प्राधिकरण, जिसे राज पत्र में राज्य सरकार द्वारा, इस निमित्त अधिसूचित किया जाये,

(b) स्थानीय प्राधिकरण को छोड़कर, राज्य अधिनियम के द्वारा स्थापित या अधीन और राज्य सरकार के स्वामित्वाधीन या उसके द्वारा नियंत्रित सभी निगम,

(c) कम्पनी अधिनियम की धारा 617 के अनुसार कोई भी सरकारी कम्पनी, जिसमें समाहित अंशपूंजी का 51% से अधिक राज्य सरकार द्वारा धारित है या कोई भी कम्पनी जो किसी भी ऐसी कम्पनी की सहायक है जिसमें लगी अंशपूंजी में राज्य सरकार के हिस्सेदारी 51% से ज्यादा है,

(d) राजस्थान सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन रजिस्टर्ड कोई भी सोसाइटी, जो राज्य सरकार के नियंत्रण में आती है और जिसे राजपत्र में उस सरकार द्वारा इसके लिए अधिसूचित किया गया है।

लोकायुक्त संस्था के पदस्त अधिकारियों की शक्तियाँ एवं कर्तव्य

लोकायुक्त संस्था में पदस्थ अधिकारियों की शक्तियाँ एवं कर्तव्य निम्नलिखित हैं: -

सचिव	
शक्तियाँ	विभागाध्यक्ष के अधिकार से राजस्थान सेवा नियमों, जी.एफ.एण्ड ए.आर., बजट मेन्युअल, टी.ए. व सी.सी.ए. रुल्स के अन्दर उल्लेखित तमाम शक्तियाँ
कर्तव्य	राजस्थान लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त अधिनियम, 1973 के प्रावधानों व उसके अन्तर्गत बने राजस्थान लोकायुक्त एवं उप-लोकायुक्त (कार्यवाहियाँ) नियम, 1974 के द्वारा दिए गए और लोकायुक्त द्वारा निर्देशित समस्त कार्य पूर्ण करना.

उप सचिव	
शक्तियाँ	कार्यालयाध्यक्ष की हैसियत से राजस्थान सेवा नियमों, जी.एफ.एण्ड ए.आर., बजट मेन्युअल, टी.ए. व सी.सी.ए. रुल्स के अधीन मिली समस्त शक्तियाँ
कर्तव्य	राजस्थान लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त अधिनियम, 1973 के प्रावधानों व उसके अन्तर्गत बने राजस्थान लोकायुक्त एवं उप-लोकायुक्त (कार्यवाहियाँ) नियम, 1974 के द्वारा मिले और माननीय लोकायुक्त द्वारा निर्देशित सभी जिम्मेदारियां निभाना.

सहायक सचिव	
शक्तियाँ	विभागाध्यक्ष एवं कार्यालयाध्यक्ष द्वारा निर्देशित सभी काम और जिमेदारियां.
कर्तव्य	राजस्थान लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त अधिनियम, 1973 के प्रावधानों व उसके अन्तर्गत बने राजस्थान लोकायुक्त एवं उप-लोकायुक्त (कार्यवाहियाँ) नियम, 1974 के द्वारा मिले और माननीय लोकायुक्त द्वारा निर्देशित सभी कार्य निष्पादित करना.

अनुभाग अधिकारी (संस्थापन)	
शक्तियाँ	विभागाध्यक्ष एवं कार्यालयाध्यक्ष द्वारा निर्देशित संस्थापन कार्य और धूम्रपान का प्रतिषेध नियमावली, 2008 के नियम 3(2) के अधीन अपराधों का प्रशमन और कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (निवारण, निषेध एवं निदान) अधिनियम, 2013 की धारा 4(1) के अधीन गठित समिति के सदस्य का कार्य.
कर्तव्य	राजस्थान लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त अधिनियम, 1973 के प्रावधानों व उसके अन्तर्गत बने राजस्थान लोकायुक्त एवं उप-लोकायुक्त (कार्यवाहियाँ) नियम, 1974 के द्वारा प्रदत्त और माननीय लोकायुक्त महोदय द्वारा निर्देशित समस्त कार्य निष्पादित करना.

अनुभाग अधिकारी (गण)	
कर्तव्य	राजस्थान लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त अधिनियम, 1973 के प्रावधानों व उसके अन्तर्गत बने राजस्थान लोकायुक्त एवं उप-लोकायुक्त (कार्यवाहियाँ) नियम, 1974 के द्वारा प्रदत्त और माननीय लोकायुक्त महोदय द्वारा निर्देशित समस्त कार्य निष्पादित करना.

सहायक अनुभाग अधिकारी (गण)	
कर्तव्य	राजस्थान लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त अधिनियम, 1973 के प्रावधानों व उसके अन्तर्गत बने राजस्थान लोकायुक्त एवं उप-लोकायुक्त (कार्यवाहियाँ) नियम, 1974 के द्वारा प्रदत्त और माननीय लोकायुक्त महोदय द्वारा निर्देशित समस्त कार्य पूरे करना.

भ्रष्टाचार के नियंत्रण में लोकायुक्त को निम्नलिखित प्रावधान मदद करते हैं

- लोकायुक्त का चुनाव गैर-राजनीतिक पृष्ठभूमि से किया जाता है। जिससे इसमें कार्यों में राजनीतिक हस्ताक्षेप कम होता है।
- लोकायुक्त किसी भी अन्याय से पीड़ित व्यक्ति की शिकायत पर जाँच प्रक्रिया प्रारम्भ कर सकता है।
- लोकायुक्त दीवानी न्यायालय की शक्ति प्राप्त है, अर्थात् वह किसी को भी समन कर सकता है व कोई भी सार्वजनिक ब्यौरा जाँच सकता है।
- जनता द्वारा लोकायुक्त की शक्ति का दुरुपयोग न हो इसलिए झूठी शिकायत पर लोकपाल सी.आर.पी.सी-1973 के अन्तर्गत उचित कार्यवाही भी कर सकता है। इस मामले में न्यायालय लोकायुक्त को कोई भी प्रमाण प्रस्तुत करने को बाध्य नहीं कर सकता है।

राज्य सरकार राजपत्र के माध्यम से लोकायुक्त को किसी विशिष्ट कार्य के लिए अतिरिक्त शक्तियाँ दे सकती है। फिर भी निम्नलिखित बंदिशें लोकायुक्त के प्रभाव को कम करती हैं:

- लोकायुक्त कुछ संवैधानिक निकायों जैसे- उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, महालेखापाल, लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या इसके सदस्य, मुख्य चुनाव आयुक्त, मुख्य चुनाव अधिकारी के खिलाफ मिली शिकायतों पर कार्यवाही नहीं कर सकता है।
- अपराध, आंतरिक सुरक्षा, उपाधि व सम्मान के विषय लोकायुक्त के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखे गए हैं।
- किसी भ्रष्ट जनसेवक की जाँच से पहले संबंधित विभाग या मंत्रालय से अनुमति लेना लोकायुक्त की शक्ति को कमजोर करता है।

लोकायुक्त को गंभीर भ्रष्टाचार के मामलों में संवैधानिक निकायों पर भी कार्यवाही करने का अधिकार दिया जाना चाहिए । इससे अब तक बचे हुए भ्रष्टाचारियों के मन में भी डर पैदा होगा।

निष्कर्षः

भ्रष्टाचार राष्ट्र का कोढ़ और प्रशासन की एक प्रमुख समस्या बन गया है। इसे मिटाने और दूर करने के लिए विभिन्न देशों और राज्यों में समय समय पर अनेक कदम उठाये गये हैं। वर्ष 1963 में राजस्थान में भी प्रशासनिक सुधार समिति ने अपने प्रतिवेदन में 'ऑम्बुड्समैन' जैसी एक कानूनी संस्था के गठन की सिफारिश की, जिसका कार्य कार्यपालिका की कार्यवाहियों पर नजर रखना तथा सरकार की किसी भी एजेन्सी द्वारा किये गए भ्रष्ट, अवैध और अन्यायपूर्ण कार्यों की शिकायतों की जाँच कर कार्यवाही करना हो । वर्तमान में लोकायुक्त भारत के राज्यों द्वारा अपने प्रदेश में गठित भ्रष्टाचार नीरोधी संस्था है।

भ्रष्टाचार, राज्य एवं राष्ट्र की प्रगति के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा है। इसपर नियंत्रण और इसका उन्मूलन आम जनता के सहयोग के बिना संभव नहीं है। भ्रष्टाचार से लड़ना यह प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य भी है।

लोकपाल की संस्था भारतीय राजनीति के इतिहास में एक ऐतिहासिक कदम रही है, लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम 2013 ने भ्रष्टाचार के कभी न खत्म होने वाले खतरे का मुकाबला करने के लिए एक उत्पादक समाधान की पेशकश की है।

सन्दर्भ

1. प्रणव वर्धन (1997), 'करप्शन ऐंड डिवेलपमेंट : अ रिव्यू ऑफ इशूज', जरनल ऑफ इकॉनॉमिक लिटरेचर 35।
2. एम. रोबिंसन (सम्पा.) (1998), करप्शन ऐंड डिवेलपमेंट, फ्रैंक कैस, एबिंग्डन, यूके.।
3. ए.जे. हीदनहाइमर (सम्पा.) (1970), पॉलिटिकल करप्शन : रीडिंग्ज इन कम्परेटिव एनालैसिस, ट्रांजेक्शन, न्यू ब्रंसविक, एनजे।
4. माइकल जांस्टन (2005), सिड्रॉम्स ऑफ करप्शनः वेल्थ, पॉवर, ऐंड डेमोक्रैसी, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज।
5. डैनियल ट्रीजमान (2007), 'व्हाट हैव वी लर्न्ड अबाउट द काजिज ऑफ करप्शन फ्रॉम टेन इयर्स ऑफ क्रॉस-नैशनल इम्पिरिकल रिसर्च?', एनुअल रिव्यू ऑफ पॉलिटिकल साइंस।
6. सूजन रोज-एकरमैन (1999), करप्शन ऐंड गवर्नमेंटः कॉजिज, कांसिक्वेंसिज, ऐंड रिफॉर्म, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज।

नयी स्त्री का जन्मः मित्रो मरजानी

डॉ० प्रभात रंजन

शोध निर्देशक, सहायक प्राध्यापक, संत गुरूघासीदास शासकीय स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, कुरूद, जिला-धमतरी, (छ.ग.)

नम्रता

शोधार्थी, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

कृष्णा सोबती हिन्दी साहित्य का विश्वसनीय स्वर है कृष्णा सोबती की रचना कर्म कभी भी एक विषय पर नहीं रहीं। उन्होनें प्रत्येक बार अपनी रचना में एक नयी प्रेरणा प्रदान की कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यासों में स्त्रियों के विलक्षण स्वरूप का चित्रण किया है। उनकी स्त्रियां अपनी दुनियां का निर्माण स्वयं कर रहीं है। कृष्णा जी ने उपन्यास मित्रों मरजानी में स्त्री को एक नये स्वरूप में गढ़ा है। यह उपन्यास हिन्दी साहित्य में मिल का पत्थर साबित होती है। जहां मित्रो मरजानी के माध्यम से कृष्णा जी ने एक नयी स्त्री को जन्म दिया हैं। मित्रो जो स्वयं के अस्तित्व और स्वयं के देह के अनुभवों को लेकर समाज और परिवार की नारी संबंधी मान्यताओं और यौन सुख तथा स्त्री चेतना संबंधी धारणाओं को कठघरें में लाकर खड़ा करती हैं मित्रों अपनी यौन आवश्यकताओं को लेकर कभी भी नैतिकता का छदम आवरण नहीं ओढती है।

मित्रो मरजानी उपन्यास में कृष्णा जी ने मित्रो के माध्यम से स्त्री विमर्श की एक नयी धारा को जन्म दिया है। पंजाबी परिवेश में रचित एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार की मंझली बहु है मित्रो मरजानी। मित्रो एक संयुक्त परिवार मे निवास करती है, जहां सास-ससुर, जेठ-जेठानी, देवर-देवरानी से मिलकर भरा पूरा परिवार है मित्रो का। इस पूरे उपन्यास मे अहम और निर्याणक स्त्री चरित्र है मित्रो मरजानी। अपनी विलक्षणता के साथ मित्रो ने साहित्य मे अपनी एक अलग पहचान कायम की । मित्रो एक निर्भीक, साहसी, बेबाक, बोल्ड, जिंदादिल स्त्री है।

"मित्रो मरजानी कृष्णा सोबती का वह उपन्यास है जिसके कथ्य और चरित्र ने एक लंबे अरसे के लिए समस्त हिंदी साहित्य मे बवंडर खड़ा कर दिया। सुमित्रावंती उर्फ मित्रो मरजानी के रूप मे दृढ़, निर्भयी और वाचाल किन्तु साथ ही साथ कोमल तथा बेझिझक पात्र का निर्माण कृष्णा सोबती ने किया है। वह संपूर्ण हिन्दी साहित्य मे अनूठा है।"[1]

कृष्णा जी के स्त्री चरित्रों में मित्रो मरजानी एक महत्वपूर्ण और विलक्षण चरित्र के रूप मे उभर कर निकलती है। मित्रो अपने अधिकारो के लिए पूरी ताकत और जुनून से लडती है, और अपने हक की प्राप्ति करती है। मित्रों से पहले हिंदी कथा साहित्य में नारी एक भारतीय परंपराओं मर्यादाओं की चादर ओढ कर बैठी थी। जिनके लिए परंपराओं का वहन ही सब कुछ होता था। लेकिन मित्रो ने सारी परंपराओं का खंडन कर एक नयी स्त्री का चित्र खींचा है। उपन्यास के फ्लैप पर अंकित है -"मित्रो एक विवादास्पद नारी चरित्र कि हिंदी साहित्य क्षेत्र में प्रवेश किया कि पूरे शिक्षित समाज में इसके प्रति एक जिज्ञासा जागृत हो गयी थी।..... इसे आदर्श का कोई मोह नहीं है..... न समाज का भय , न ईश्वर का । ..... नारी के तमाम पुराने बिंबो को चुनौती देती यह मित्रो वास्तव में हिंदी साहित्य के इतिहास की एक मणि है।"[2]

हिंदी साहित्य के इतिहास में नजर डाले तो ऐसी नारी चरित्रों की सृष्टि हुयी है जो सदियों से पीडित, शोषित है। उन्होंने हर शोषण को नियति मानकर भोगा है। कभी आवाज उठाने की हिम्मत किसी स्त्री चरित्र ने नहीं की। हर अन्याय, अत्याचार को गुलाम बनकर जिया है, भोगा है। अपनी स्वतंत्रता के लिए कभी भी एक कदम नहीं बढ़ाया लेकिन मित्रो ऐसी नारी है जिसने हर अन्याय के खिलाफ विद्रोह किया। जिसने भी उसे रोकने की कोशिश की जहां भी समाज परंपराओं के नाम पर बंधन डालने के कोशिश होती हर बंधनों, जंजीरों को उखाडकर फेंक देती है। ऐसी स्त्री चरित्र मित्रो के अलावा साहित्य में अन्यत्र नहीं है। मित्रो इस पुरूषवादी समाज में अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए सीना तान कर खडी है। वह डार से बिछुडी की पाशों नहीं है। जो हर पुरूष द्वारा भोगी जाती है जिसे वह अपनी नियति मानकर स्वीकार करती है और न ही वह रविन्द्रनाथ या शरतचंद्र के स्त्री पात्र है जो केवल आंसु बहाये। मित्रो ऐसी नारी है जो अपने अधिकार के लिए किसी से भी लड़ जाती है।

भारतीय समाज मे स्त्रियों को हमेशा परंपरागत, मर्यादा, लज्जा, शर्म को ढोने के लिए विवश किया जाता रहा है। जहां वह सदा ही सत्यवती पत्नी, लज्जाशील औरत, पतिव्रता स्त्री बनकर पति, परिवार और समाज की शोभा बढाये। लेकिन मित्रो इन सारी मान्यताओ, परंपराओं के गढ़ को तोड़ती है। मित्रो का मानना है कि स्त्रियों को अपने अधिकार के लिए किसी से भीख नहीं मांगनी है चाहे वह समाज में मान सम्मान हो या अपने यौन सुख की प्राप्ति। मित्रो कहती है - "तुम ही बताओं जिठानी, तुम जैसा सत, बल कहां से पाऊं-लाऊं ? देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता। ..... बहुत हुआ हफ्ते-पखवारे .... और मेरी इस देह मे इतनी प्यास है, इतनी प्यास की मछली सी तडपती हूं....।"[3]

मित्रो ने यहां परंपरागत भारतीय स्त्री के सारी मर्यादा, लज्जा, समर्पण, सती सावित्री स्वरूप की तिलांजली दे दी है। यहां मित्रो एक आधुनिक नारी के रूप में सजग है, जिसे अपनी देह की प्यास, यौनिकता की चाहत उजागर करते तनिक भी संकोच का अहसास नहीं है। यहां मित्रो एक नयी स्त्री के रूप में उभर कर सामने आती है। मित्रो समाज की बनी बनायी उन तमाम परिपाटियों को ध्वस्त करती है जिसने स्त्री को औरत के पैमाने पर मापा है। एक ऐसा सांचा तैयार किया है जहां से औरत स्वयं के अस्तित्व को भूल जाता है लेकिन मित्रो उन सभी सांचो को तोडकर एक नये समाज का निर्माण करती नजर आती है। जहां स्त्री स्वयं के शारिरीक सुख की बात को बडे बेझिझक तौर पर कह सकती है। डॉ. उर्मिला भटनागर जी मित्रो की इस बेबाक चरित्र नयी सोंच का वर्णन करते हुये कहती है- "मित्रो मरजानी नयी धारणाओं में विश्वास करने वाली असाधारण व्यक्तित्व तथा असाधारण चरित्र की नारी है। मित्रो के चरित्र में लेखिका ने नये समाज के नये प्रश्नों को उभारा है।"[4]

मित्रो एक निर्भीक और बेझिझक बात करने वाली स्त्री है मित्रो एक साफ दिल की स्त्री है जो कभी तेज तेवर तो कभी मधु की भांति मिठास लिये है। मित्रो दिल में किसी के लिए कोई ईर्ष्या, द्वेष जैसी भावना नहीं है वह अपनी बात पूरी सच्चाई और इमानदारी से कहती है। पति सरदारी लाल के मारपीट, गाली-गलौच के सामने कभी झुकी नहीं। मित्रों की अतृप्त देह प्यास पति कभी समझ नहीं पाया। मित्रो तो केवल अपने पति के प्रेम का दान चाहती है लेकिन उसे वह नहीं मिलता यहीं कारण है कि मित्रो बडी निडरता से अपनी इच्छा को सबके सामने प्रकट करती है। मित्रों के इसी आचरण की वजह से परिवार में हमेशा तनाव का माहोल बना रहता है। लेकिन मित्रो कभी भी किसी चीज की परवाह नहीं करती है। सास धनवंती के कहने पर जब जेठ बनवारी मित्रो से सच्चाई जानने जाता है तो वह निडरता से उसके सामने अपनी सच्चाई कहती है- "सोने सी अपनी देह झुर-झुरकर जला लूं या गुलजारी की घरवाली की न्यायी-सुई-सिलाई के पीछे जान खपा लूं ? सच तो यूं जेठ जी, कि दिन दुनियां बिसरा मै मनुष्य की जात से हस खेल लेती हूँ झूठ यूं कि खसम का दिया राजपाठ छोडे मै कोठे पर तो नहीं जा बैठी।"[5]

भारतीय समाज में कभी भी किसी स्त्री के द्वारा अपनी यौन सुख, देह प्यास की इच्छा को समाज ने स्वीकार नहीं किया स्त्रियों को कभी भी अपनी यौन सुख की इच्छा जाहिर करने को समाज परिवार ने सम्मान नहीं दिया। हमारा समाज पुरूष प्रधान समाज है, जहां पर सारे अधिकार केवल पुरूषों को प्राप्त है इसीलिए मित्रो अपने पति सरदारी लाल 'देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता' कहकर हर उस पुरूष को कठघरे में लाकर खडा करती है। कभी भी कोई पुरूष अपने अहम पर चोट बर्दाश्त नहीं कर पाता जिसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया मारपीट होती है, जो मित्रो के साथ भी होता है। समाज में पुरूषों ने कभी भी वह सम्मान नहीं दिया लेकिन समाज में ऐसी भी स्त्रियां है जिसने अन्याय के खिलाफ स्त्रियों का ही साथ नहीं दिया। कहते है एक औरत ही दूसरी औरत की पीडा को समझ सकती है लेकिन यहां एक औरत ही दूसरी औरत को पुरूषों की क्रूरता, नीचता और खोखले आंडबरों को स्वीकारने की सीख देती है। दुर्भाग्य की बात है कि ऐसी स्त्रियां ही पितृ सत्तामक समाज की पोषण होती है-"सुमित्रावंती इसे जिद चढी है तो तू ही आंख नीची कर ले। बेटी, मर्द मालिक का सामना हम बेचारियों को क्या सोहे।?"[6]

धनवंती एक स्त्री होने के बावजूद दूसरी स्त्री की पीड़ा को नहीं समझ पाती है ऐसी स्त्रियां ही पुरूषों की प्रवृत्ति को बढावा देती है। लेकिन मित्रो पुरूषो के वर्चस्व को अस्वीकारती है। मित्रो हर अन्याय, अत्याचार के खिलाफ विद्रोह करती है। वह सास द्वारा दी गयी सीख को नकारते हुये कहती है कि-"मां जी बेटे की चिंता में तन न सुखाओं। इसकी करनी आप हीं इसे काले पानियों भेजवायेगी।"[7] मित्रो सिर्फ अपने पति सरदारी लाल की नहीं बल्कि अपने जेठ बनवारी लाल पर भी तंज कसती हुयी कहती है-"बुरे माथे वाले। मर्द जन होते तो यह चटखारे ले ले मुझे चाटते या फिर शेर की तरह कच्चा चबा डालते।"[8]

मित्रो को यह कभी स्वीकार नहीं था कि एक पुरूष अपने ताकत और जोश का परिचय स्त्री पर हाथ उठाकर करे, बल्कि मित्रो चाहती है कि हर स्त्री अपने अधिकार के लिए सजग हो स्वयं अपने लिए लडना सीखे। औरत को कभी भी किसी बैशाखी की जरूरत नहीं होनी चाहिए असुरक्षा की भावना ने स्त्रियों को विवश कर दिया है कि वह पुरूषो के बंधन में जकडकर स्वयं को सुरक्षित महसूस करें, और वहीं पर पुरूष औरत के लिए देवता बन जाते हैं। ऐसा देवता जो निरंतर अपनी कुंठा, हताशा, तनाव, निरंकुशता और अहम की चोट को स्त्री पर बरसाता है। लेकिन मित्रो अपने पति को परमेश्वर नहीं समझती है वह उसे मनुष्य ही मानती है और हर स्त्री को अपने पति को मनुष्य ही मानने की सीख देती है। मित्रो यहीं मानती है कि पति पत्नी आपस मे प्रेमपूर्ण और मित्रतारूपी संबंधों में बनकर रहे। लेकिन पति यह कभी स्वीकार नहीं करता। पति सरदारी लाल को मित्रो को चूडी चमारन कहने से भी पीछे नहीं हटते है। अपने इस पीडा को जिठानी के सामने व्यक्त करते हुये मित्रो कहती है- "जिठानी तुम्हारे देवर- सा बगलोल और दूजा न होगा। न दु:ख-सुख, न प्रीति-प्यार, न जलन-प्यास.... बस आये दिन धौल धप्पा.... लानत मलानत।"[9]

कृष्णा सोबती जी ने मित्रो के माध्यम से साहित्य में एक ऐसी स्त्री की सृष्टि की जिसकी केवल एक ही मांग है अबूझ, अतृप्त, शारीरिक प्यास और यौन सुख। अपनी इस देह तन की प्यास को स्वयं उजागर करती है मित्रो। मित्रो के अंग-अंग मे तन की प्यास है जिसे वह किसी भी हाल मे प्राप्त करना चाहती है। मित्रो अपनी इस स्थिति का जिक्र करते हुऐ कहती है कि यह लत उसे उसके मायके से मिली है। तो वह उससे अनभिज्ञ कैसे रह सकती है-"सात नदियों की तारू, तवे सी काली मेरी मां और मै गोरी, चिट्टी उसकी कोख पडी। कहती है इलाके की बडभागी मुहदरां है मित्रो। अब तुम ही बताओं, जिठानी तुम जैसा सत-बल पाऊ-लाऊ?।"[10]

मित्रो का चरित्र नारियल की भांति है जो बाहर से कठोर और भीतर से नरम शीतल है। मित्रो की कटुता का कारण है असफल मातृत्व की पीड़ा। मित्रो को कभी भी वह प्रेम और सम्मान प्राप्त नहीं हुआ न ही मां बनने का सुख जिसकी वजह से उसका व्यवहार अधिक कठोर हो गया था। लेकिन स्वभाव से एक नन्हीं बालिका की जैसी है मित्रो। पति सरदारीलाल को तकलीफ मे देखकर अपने जीवन की सारी जमां-पूँजी भी लूटा देती है। वहीं देवरानी फूलावंती द्वारा जेठानी सुहागवंती का अपमान सह नहीं पाती। मित्रो ने स्वयं के लिए कभी गलत नहीं सहा तो सामने वाला सही होते हुए भी गलत लोगों की रोष का शिकार हो तो उसे फटकारने से भी मित्रो पीछे नहीं रहती है। मित्रों दूसरे के हक के लिए भी लडना जानती है। फूलावंती का जिठानी पर गहने, कपडों के लिए तंज कसना देखकर उसे फटकारती है-"मैं तेरी यमदूती, बस । तूने सास से टक्कर ली मैने माना, पर जिसकी तू जूती बराबर भी नहीं अब उसकी इज्जत-पत उतारने चली है? अरी चुपचाप यह गहने अंदर डाल लें नही तो उनसे भी जायेगी।"[11]

मित्रो के सपाट, बेबाक, बोल्डनेस व्यवहार और बात कुछ हद तक किसी को आहत कर देता है। लेकिन मित्रो जिस सच को उजागर कर रहीं है, उससे यह समाज अनभिज्ञ नहीं है। मित्रो ऐसी नारी है जो स्वयं का जीवन अपनी शर्तो पर जीना चाहती है। वह आज की नारी के उस वास्तिवक सच को प्रकट कर रहीं है जहां स्त्रियां स्वाभिमान, आत्मसम्मान के साथ जीवन जीना चाहती है। समाज ने औरतो के लिए एक ऐसी लकीर खींच दी है जिसे पार कर जाना बहुत मुश्किल है लेकिन आज की नारी हर उस लकीर को मिटा देना चाहती है जिसने उसके रास्ते में परंपराओं, बंधनों की बेड़ियां बिछा रखी हैं। वह अपने अधिकार पाना चाहती है। कृष्णा जी कहती है -"मित्रो व्यक्ति की जिन छटपटाहट का प्रतीक है वह यौन उफान ही नहीं व्यक्ति की अस्मिता का अक्श है, जिसे नारी की पारिवारिक महिमा में भूला दिया गया है।"[12]

मित्रो यथार्थ को निर्मित ही नहीं करती उसे बदलती भी है मित्रो के विचार मे स्त्री देह और उसकी नियति जैसी धारणा के अर्थ बिलकुल भिन्न है। जिस तरह समाज स्त्री के देह पर पुरूष का नियंत्रण समझता है, जिसे हर स्त्री अपनी नियति मानकर स्वीकार कर लेती है। लेकिन मित्रो का मानना है कि स्त्री देह पर स्वयं का नियंत्रण हो कोई अन्य क्यों स्त्री पर अपना अधिकार स्थापित करे। देह स्वयं का, फिर अधिकार स्वयं का क्यों नहीं हो सकता? जिठानी सुहागवंती की गर्भवती होने की खुशखबरी से जब परिवार झूम उठता है तो मित्रो सोचती है- "जिंद-जान का यह कैसा व्यापार ? अपने लडके बीज डाले तो पुण्य, दूजे डाले तो कुकर्म।"[13]

मित्रो का यह कथन स्त्री विमर्श को विमर्श का एक नया स्वरूप प्रदान करता है उसे एक ऐसे धरातल पर लाकर खडा कर देता है, जहां मित्रो के तेवर मे उग्र नारी चेतना के दर्शन होते है। उग्र विचारधारा ने स्त्रियों में एक नयी चेतना को जन्म दिया है, जहां सदियों के अपमान को तोडकर एक ऐसे संसार की रचना करना चाहती है, जहां पर केवल आक्रोश और परंपराओं का खंडन हो वह हर पुरूष को लताडना चाहती है जिसने उसका जीवन अभिशापित बना दिया।

मित्रों स्त्री मुक्ति की प्रखर अभिव्यक्ति है जहां वह हर स्त्री को अपनी अस्मिता और अस्तित्व के प्रति सजग होने का उदाहरण प्रस्तुत करती है। मित्रो सदियों से पुरातन परंपरा के बंधन में जकड़ी स्त्री का मुक्ति संग्राम है। राजेन्द्र यादव जी लिखते है-"मित्रो हिंदी की अकेली कथानारी है जो सदियों से लादे गये संस्कारों, संबंधों, सुंदर- सुंदर उपमाओं को ललकारती, मुह-चिढाती और उन्हे झूठलाती हुयी अपनी मूलभूत जरूरत और जबान के साथ हमारे सामने खडी है। छिन्नमस्ता काली की तरह मानों हम उसके तेज को बर्दाश्त नहीं कर पाते।"[14]

मित्रो किसी की गुलामी और जी-हुजरी करने वाली स्त्री नहीं है, वह अपनी हर बात को तर्क के साथ प्रस्तुत करती है। कृष्णा जी की मित्रों एक बेबाक स्त्री है सास द्वारा पुत्रों का आशीष देने पर अपनी ममता की चोट पर वार समझकर तिलमिला उठती है। मित्रो के इसी स्वभाव को प्रकट करते हुये निर्मला जैन जी लिखती है-"उसके बोल में व्यंग्य के जो पटाखे फूटते है, उसका उत्स तो भीतर का लावा है जो पत्नी और मां बनने की अमुक्त कामना के रूप मे खदबदाता है।"[15]

कृष्णा सोबती का मित्रो मरजानी की मित्रो कृष्णा जी के व्यक्तित्व और प्रखरता को स्वर प्रदान करती है। मित्रो जैसी चरित्र की सृष्टि कृष्णा सोबती जैसी प्रखर लेखिका ही कर सकती है। एक स्त्री के द्वारा ऐसी विलक्षणता, ओज, प्रखर भाषा और स्त्री का सृजन करना अद्वितीय है। कृष्णा सोबती ने अपने स्त्री विमर्श में पुरूषों को अपने धरातल से निकालकर स्त्री को केंद्र मे रखा, जहां पर स्त्री किसी देवी, दासी न बनकर स्वयं के अस्तित्व का निर्माण करें। मित्रो मरजानी की मित्रो भी अपनी देन की सम्मान, आदरपूर्ण स्वीकृति चाहती है। वह अपनी देह की प्यास को किसी से नहीं छिपाती है, न ही किसी से डरकर भागने की कोशिश करती है। वह उसे पूरी हिम्मत और निडरता से स्वीकार करती है। हिंदी कथा जगत में मित्रो ऐसी पहली नायिका हैं जिसने अपनी देह प्यास को स्वीकारा है। कृष्णा जी की मित्रो मरजानी ने जिस दिन इसे अपनाया उसी समय से साहित्य जगत मे एक नयी स्त्री का जन्म हुआ। मित्रों का यही बेबाक, बोल्डनेस अवतार उसे परंपरावादी समाज से अलग कर एक नये समाज का निर्माता स्वीकारता है और मित्रो साहित्य में एक नयी स्त्री बन जाती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. संवेद पत्रिका, संपादक- किशन कालजयी, जनवरी- 2010
2. मित्रो मरजानी: कृष्णा सोबती- फ्लेप से
3. वहीं - पृष्ठ 20
4. हिंदी उपन्यास साहित्य में दाम्पत्य चित्रण: डॉ उर्मिला भटनागर, पृष्ठ 177
5. मित्रो मरजानी: कृष्णा सोबती - पृष्ठ 36
6. वही - पृष्ठ 12
7. वहीं - पृष्ठ 13
8. वहीं - पृष्ठ 17
9. वहीं - पृष्ठ 18
10. वहीं - पृष्ठ 20
11. वहीं - पृष्ठ 31
12. समकालीन भारतीय साहित्य- जनवरी - मार्च- 1991 पृष्ठ 184
13. मित्रो मरजानी: कृष्णा सोबती पृष्ठ 64
14. औरो के बहाने: राजेन्द्र यादव - पृष्ठ 42
15. कथा समय मे तीन हमसफर: निर्मला जैन- पृष्ठ 124

उच्च शिक्षारत ग्रामीण एवं शहरी छात्राओं की मनोवैज्ञानिक, सामाजिक समस्याओं का अध्ययन

संतोष कुमार सिंह

शोध छात्र, शिक्षाशास्त्र विभाग, बयालसी महाविद्यालय, जलालपुर, जौनपुर, (उ0प्र0)
(सम्बद्ध-वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, (उ0प्र0))

डॉ० गायत्री प्रसाद सिंह

शोध निर्देशक एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, बयालसी महाविद्यालय, जलालपुर, जौनपुर, (उ0प्र0)
(सम्बद्ध-वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, (उ0प्र0))

संक्षिप्त सारांश

प्रस्तुत शोध अध्ययन के इस अध्याय में प्रयुक्त उत्तरदायियों (चरों) से प्राप्त उनके वयैक्तिक अभिमतों का विश्लेषण किया गया है। यद्यपि कोई भी चीज जिसका मान बदले उसे चर कहा जा सकता है। अर्थात् वस्तुओं घटनाओं या व्यक्तियों के मापन योग्य किसी गुण या विशेषता को चर कहा जा सकता है। इस प्रकार शोध अध्ययनों में चर एक चिन्ह होते हैं जिसमें अंक या मूल्य अंकित किये जा सकते हैं। उत्तरदायित्वों से प्राप्त गुणात्मक अभिमत को संख्यात्मक चरों में परिवर्तित करके शोध अध्ययन के उद्देश्यों के अनुरूप आँकड़ों का निरुपण का वर्गीकरण कर सारणी का आकार प्रदान किया जाता है। तत्पश्चात् उन आंकड़ों का सांख्यकीय विश्लेषण कर शोध अध्ययन की प्राप्तियों को प्राप्त किया जाता है और शोध समस्या के आधार पर किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है।

मुख्य शब्द:- उच्च शिक्षारत, ग्रामीण, शहरी, छात्राओं, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक समस्याओं, शैक्षिक अध्ययन।

प्रस्तावना:- नि:संदेह मानव एक सामाजिक प्राणी है तथा वह प्रारम्भ से ही एक जिज्ञासु प्राणी रहा है। उसने प्रकृति को समझने एवं अपने समस्याओं के समाधान के लिए सदैव सतत् प्रयास किया है। वास्तव में सभ्यता और संस्कृत का विकास मानव की इसी जिज्ञासा द्वारा प्रेरित अपने पर्यावरण को अनवरत रूप से समझने के प्रयासों का ही परिणाम रहा है। आज भी इसी प्रकृति को समझने तथा सामाजिक जीवन के बारे में नवीन ज्ञान प्राप्त करने के प्रयासों को ही शोध कहा जाता है। अर्थात् शोध मानव ज्ञान की नवीन खोज है। परन्तु अनुसंधान केवल ज्ञान की पुन: खोज ही नहीं रहा अपितु किसी प्रघटना या समस्या के बारे में नवीन जानकारी प्राप्त करना या उपलब्ध ज्ञान में संशोधन करना भी शामिल है।

किसी भी शोध अध्ययन में अनुसंधान की समस्या के समाधान में आंकड़ों के संग्रह एवं विश्लेषण को सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी तथा आवश्यक माना जाता है। अनुसंधान की समस्या के निरुपण एवं समाधान हेतु आंकड़ों के संग्रह में जितनी सावधानी रखी जायेगी प्राप्त निष्कर्ष उतना ही विश्वसनीय तथा वैध होता है। प्रदत्तों के संग्रह के समय निम्नांकित दो तथ्यों पर ध्यान दिया जाता है:-

1. अनुसंधान के सामग्री के स्रोत
2. अनुसंधान हेतु संकलित प्रदत्तों का वर्गीकरण करना।

शोध अध्ययनों में प्रदत्त संकलन हेतु प्रयुक्त साधनों का प्रयोग अनुसंधान की प्रकृति पर निर्भर करता है। जिन समंकों का संग्रह शोधार्थी अपने परीक्षणों एवं सर्वेक्षणों के आधार पर करता है उन्हें प्राथमिक सामग्री कहते हैं। प्राथमिक सामग्री के आंकड़ों के लिये अनुसंधानकर्ता स्वयं प्रयोग का आयोजन करता है तथा सर्वेक्षण करके समंकों का संकलन करता है।

शोधार्थी प्रतिनिधिकारी न्यादर्श का चयन करके भी समंकों का संकलन करता है परन्तु इसमें न्यादर्श का शोध समस्या से परिचित एवं उसके प्रति जागरूक होना आवश्यक होता है। शोधार्थी प्रश्नावली एवं परीक्षण अनुसूचियों के माध्यम से भी समंकों का संकलन करता है। इसमें स्वयं द्वारा निर्मित या किसी प्रमापीकृत (जंदकंतप्रमक) उपकरण का प्रयोग भी शोधार्थी द्वारा किया जाता है।

आंकड़ों का संग्रहण: शोधार्थी ने अपनी चयनित समस्या 'सुलतानपुर जनपद के उच्च शिक्षारत छात्राओं की मनो-सामाजिक समस्यायों का शैक्षिक अध्ययन' के समाधान हेतु समंकों के संकलन के लिये अपने शोध-अध्ययन केन्द्र के प्राचार्य एवं शोध निर्देशक से अधिकार-पत्र प्राप्त करके न्यादर्श में सम्मिलित निम्नलिखित महाविद्यालयों के प्राचार्यों से सम्पर्क स्थापित किया-

तालिकाः न्यादर्श में चयनित महाविद्यालयों का विवरण

सुलतानपुर जनपद के अनुदानित महाविद्यालय
1. राणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सुलतानपुर
2. गनपत सहाय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सुलतानपुर
3. कमला नेहरू भौतिक एवं सामाजिक विज्ञान संस्थान, सुलतानपुर
4. संत तुलसीदास स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कादीपुर, सुलतानपुर
5. संजय गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चौकिया, सुलतानपुर
सुलतानपुर के स्ववित्तपोषित महाविद्यालय
1. महात्मा गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सैदखानपुर, कूरेभार, सुलतानपुर
2. धर्मा देवी बद्री प्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुड़वार, सुलतानपुर।
3. कामायनी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अलीगंज, सुलतानपुर
4. माँ वैष्णो शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान, अलीगंज, सुलतानपुर।
5. एन.बी.एस. कालेज ऑफ एजूकेशन एण्ड मैनेजमेन्ट, भादा, सुलतानपुर

शोधार्थी ने उक्त महाविद्यालयों में जाकर वहाँ के प्राचार्य की अनुमति से महाविद्यालय के शिक्षकों से सम्पर्क स्थापित किया तथा उनसे अपने शोध अध्ययन के सम्बन्ध में विस्तृत विचार-विमर्श किया। उन्हें अपने शोध के प्रयोजन से अवगत कराकर आंकड़ों के संकलन हेतु अनुमति प्राप्त किया। इसके पश्चात शोधार्थी ने शिक्षकों की सहायता से विभिन्न कक्षाओं में अध्ययनरत छात्राओं से सम्पर्क स्थापित किया तथा उनसे अपने शोध प्रयोजन के विषय में विचार-विमर्श किया। इसके पश्चात उन्हें मनो-सामाजिक अनुसूची के संबंध में दिशा-निर्देश प्रदान किया। शोधार्थी द्वारा प्रश्नों को हल करने तथा कथनों पर अपनी प्रतिक्रिया देने सम्बन्धी सावधानियों एवं विधियों से अवगत कराया। छात्राओं द्वारा अनुसूची को प्रतिउत्तरित कर लेने के पश्चात उनसे इसे धन्यवाद ज्ञापित कर संग्रहीत कर लिया गया। इस प्रकार शोधार्थी ने उक्त महाविद्यालयों में जाकर अपने शोध सम्बन्धी प्रदत्तों का संकलन सर्वेक्षण विधि द्वारा किया गया।

अनुसंधान सामग्री का वर्गीकरणः- अनुसंधान की प्रक्रिया में समंकों का संकलन करने के पश्चात उसका वर्गीकरण करना अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। वर्गीकरण के अभाव में समंकों का समुचित विश्लेषण किया जाना संभव नहीं है। अतः वर्गीकरण सामग्री को व्यवस्थित एवं संक्षिप्त करने की वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत समान एवं असमान लक्षणों के अनुसार सामग्री को इस प्रकार विभाजित करते हैं कि समान लक्षणों वाली सामग्री एक वर्ग में तथा असमान लक्षणों वाली सामग्री अन्य वर्गों में आ सके।

कोनर (Conar) महोदय का कथन है कि- ''वर्गीकरण वस्तुओं को उनके सामान्य गुणों के अनुसार समूहों या वर्गों में व्यवस्थित करने की एक प्रक्रिया है जो उन लक्षणों की एकता को अभिव्यक्त करती है जो व्यक्तियों की भिन्नता में स्थित है।''

डॉ0 एलहंस (Elhance) के अनुसारः ''सामग्री को उनकी एकरूपता एवं समानता के अनुसार समूह अथवा वर्गों में व्यवस्थित करने की प्रक्रिया को पारिभाषित रूप में वर्गीकरण कहा जाता है।''

अनुसंधान में वर्गीकरण की उपयोगिताः संकलित आंकड़ों का वर्गीकरण एवं व्यवस्थापन करने की उपयोगिता निम्नांकित बिन्दुओं में स्पष्ट की जा सकती है-

1. संक्षिप्तीकरणः मूल रूप में एकत्रित सामग्री विस्तृत एवं अव्यवस्थित होती है, वर्गीकरण करने से समंकों में संक्षिप्तता, स्पष्टता एवं व्यवस्थितता आ जाती है जिससे विश्लेषण में सुविधा होती है।
2. सामग्री के विभिन्न गुणों का वर्गीकरणः वर्गीकरण में संकलित समंकों को विभिन्न आयामों के आधार पर अलग-अलग वर्गों में विभाजित किया जाता है। इससे प्रत्येक भाग के अलग-अलग विश्लेषण एवं निष्कर्ष प्राप्त करने में सरलता होती है।
3. स्पष्टताः सामग्री का समुचित वर्गीकरण करने से उसका स्वरूप स्पष्ट हो जाता है तथा गणितीय संक्रिया करने में आसानी होती है।
4. अनुसंधान की अनुवर्ती क्रियाओं के लिये सरलताः वर्गीकरण के माध्यम से समंकों का व्यवस्थित स्वरूप विकसित होता है जिससे निश्चित परिणाम तक सरलता से पहुँचा जा सकता है। उचित वर्गीकरण आंकड़ों के विश्लेषण, सांख्यिकी के उपयोगी, सामान्यीकरण एवं निष्कर्ष निकालने में सहायक होता है।
5. तुलनात्मक अध्ययन का आधारः प्रदत्तों के सारणीयन एवं वर्गीकरण के द्वारा सामग्री को गुण, लक्षण, संख्या, स्थान आदि में विभाजित किया जाता है। जिससे सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन करना सरल हो जाता है।
6. नवीन सामग्री को जोड़ने की सुविधाः आंकड़ों के समुचित वर्गीकरण करने से सबसे महत्वपूर्ण लाभ यह है कि पाद में प्राप्त सामग्री को भी उसके गुण एवं लक्षणों के आधार पर उस सामग्री से सम्बन्धित वर्ग में व्यवस्थित किया जा सकता है।

प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषणः शोधार्थी द्वारा न्यादर्श में चयनित महाविद्यालयों की छात्राओं द्वारा भरी गयी मनो-सामाजिक अनुसूची को संकलित कर उसका उत्तर पत्रक की सहायता से अंकन कर, आंकड़ों का विश्लेषण एवं परिगणन का कार्य किया गया। प्राप्त परिणामों को निम्नांकित सारणियों में प्रस्तुत किया गया है-

सारणी संख्या-1: ग्रामीण एवं शहरी छात्राओं की मनोवैज्ञानिक समस्याओं का अध्ययन

क्रं0 सं0	विवरण	M_1	M_2	S_1	S_2	D	σD	CR
1.	हीनभावना	3.48	3.22	0.81	0.83	0.26	0.066	3.939
2.	प्रेरणाओं का अभाव	3.21	2.97	0.87	0.96	0.24	0.074	3.243
3.	तीव्र सांवेगिकता	2.97	2.65	0.87	0.92	0.32	0.073	4.383
4.	समायोजन सम्बन्धी समस्याएँ	2.87	2.58	0.93	0.91	0.29	0.075	3.866
5.	मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ	2.67	2.49	0.63	0.80	0.18	0.058	3.103

$df = N_1+N_2-2 = 598$

उक्त सारणी संख्या-1 के विश्लेषण से स्पष्ट है कि ग्रामीण महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्राओं की मनोवैज्ञानिक समस्याओं के अन्तर्गत हीनभावना सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 3.48 तथा मानक विचलन 0.81 है, जबकि शहरी क्षेत्र की उच्च शिक्षा स्तर की छात्राओं की हीनभावना सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 3.22 तथा मानक विचलन 0.83 है, परिगणित सी0आर0 अनुपात 3.929 है जो स्वतंत्रयांश 598 के लिए 0.01 स्तर पर सी0आर0 सारणीमान 2.59 से अधिक है जो सार्थक है। अत: उच्च शिक्षारत ग्रामीण छात्राओं की हीनभावना शहरी छात्राओं से अधिक है।

ग्रामीण महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्राओं की मनोवैज्ञानिक समस्याओं के अन्तर्गत प्रेरणाओं के अभाव सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 3.21 तथा मानक विचलन 0.87 है, जबकि शहरी क्षेत्र की उच्च शिक्षा स्तर की छात्राओं की प्रेरणाओं के अभाव सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 2.97 तथा मानक विचलन 0.96 है, परिगणित सी0आर0 अनुपात 3.243 है जो स्वतंत्रयांश 598 के लिए 0.01 स्तर पर सी0आर0 सारणीमान 2.59 से अधिक है जो सार्थक है। अत: उच्च शिक्षारत ग्रामीण छात्राओं में प्रेरणाओं का अभाव शहरी छात्राओं से अधिक है।

ग्रामीण महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्राओं की मनोवैज्ञानिक समस्याओं के अन्तर्गत तीव्र सांवेगिकता सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 2.97 तथा मानक विचलन 0.87 है, जबकि शहरी क्षेत्र की उच्च शिक्षारत छात्राओं की तीव्र सांवेगिकता सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 2.65 तथा मानक विचलन 0.92 है, परिगणित सी0आर0 अनुपात 4.383 है जो स्वतंत्रयांश 598 के लिए 0.01 स्तर पर सी0आर0 सारणीमान 2.59 से अधिक है जो सार्थक है। अत: उच्च शिक्षारत ग्रामीण छात्राओं में तीव्र सांवेगिकता शहरी छात्राओं से अधिक है।

ग्रामीण महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्राओं की मनोवैज्ञानिक समस्याओं के अन्तर्गत समायोजन सम्बन्धी समस्याओं से सम्बन्धित प्राप्तांकों का मध्यमान 2.87 तथा मानक विचलन 0.53 है, जबकि शहरी क्षेत्र की उच्च शिक्षारत छात्राओं की समायोजन सम्बन्धी समस्याओं से सम्बन्धित प्राप्तांकों का मध्यमान 2.58 तथा मानक विचलन 0.91 है, परिगणित सी0आर0 अनुपात 3.866 है जो स्वतंत्रयांश 598 के लिए 0.01 स्तर पर सी0आर0 सारणीमान 2.59 से अधिक है जो सार्थक है। अत: उच्च शिक्षारत ग्रामीण छात्राओं में समायोजन सम्बन्धी समस्याएँ शहरी छात्राओं से अधिक है।

ग्रामीण महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्राओं की मनोवैज्ञानिक समस्याओं के अन्तर्गत मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं से सम्बन्धित प्राप्तांकों का मध्यमान 2.67 तथा मानक विचलन 0.63 है, जबकि शहरी क्षेत्र की उच्च शिक्षारत छात्राओं की मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं से सम्बन्धित प्राप्तांकों का मध्यमान 2.49 तथा मानक विचलन 0.80 है, परिगणित सी0आर0 अनुपात 3.103 है जो स्वतंत्रयांश 598 के लिए 0.01 स्तर पर सी0आर0 सारणीमान 2.59 से कम है जो असार्थक है। अत: उच्च शिक्षारत ग्रामीण एवं शहरी छात्राओं की मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ समान है।

उक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि उच्च शिक्षारत ग्रामीण एवं शहरी छात्राओं की मनोवैज्ञानिक समस्याओं में हीनभावना, प्रेरणाओं का अभाव, तीव्र सांवेगिकता एवं समायोजन सम्बन्धी समस्याएँ ग्रामीण छात्राओं में शहरी छात्राओं की अपेक्षा अधिक है। जबकि मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ समान हैं। ग्रामीण क्षेत्र की छात्राओं की मनोवैज्ञानिक समस्याओं के उच्च होने का सम्भावित कारण छात्राओं के लिए आत्मबल प्रदान करने हेतु पारिवारिक एवं सामाजिक सहयोग न मिल पाना। उन्हें अपने शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तनों के प्रति अधिक जागरूक न होने से उसके प्रति सकारात्मक सोच विकसित न कर पाना, छात्राओं को विद्यालय एवं परिवार में सामंजस्य स्थापित करने में समस्या आना, उनके संवेगों को न समझने के कारण उन्हें इनके प्रति अधिक संवेदनशील होना, परिवार, समाज एवं विद्यालय में तालमेल कम होने से छात्राओं में इनके साथ समायोजन स्थापित करने में समस्या आना आदि कारण हो सकते हैं। जबकि शहरी क्षेत्रों में इन समस्याओं पर अभिभावकों एवं समाज तथा विद्यालय के द्वारा समुचित मार्गदर्शन मिलने से छात्राओं में मनोवैज्ञानिक समस्याओं का स्तर न्यून पाया जाता है।

सारणी संख्या-2: ग्रामीण एवं शहरी छात्राओं की सामाजिक समस्याओं का अध्ययन

क्रं0 सं0	विवरण	M_1	M_2	S_1	S_2	D	D	CR
1.	घरेलू कार्यों का बोझ	3.16	2.94	0.79	0.84	0.22	0.066	3.333
2.	माता-पिता की उदासीनता	3.09	2.85	0.75	0.79	0.24	0.062	3.870
3.	असुरक्षा की भावना	2.69	2.43	0.59	0.71	0.26	0.053	4.905
4.	आर्थिक विपन्नता	2.91	2.63	0.59	0.71	0.28	0.053	5.283
5.	रूढ़िवादी विचारधारा	3.13	2.83	0.69	0.75	0.30	0.058	5.172

$df = N_1 + N_2-2= 598$

निष्कर्षः- उक्त सारणी संख्या-2 के विश्लेषण से स्पष्ट है कि ग्रामीण महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्राओं की सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत घरेलू कार्यों का बोझ सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 3.16 तथा मानक विचलन 0.74 है, जबकि शहरी क्षेत्र की उच्च शिक्षारत छात्राओं की घरेलू कार्यों का बोझ सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 2.94 तथा मानक विचलन 0.84 है, परिगणित सी0आर0 अनुपात 3.333 है जो स्वतंत्रयांश 598 के लिए 0.01 स्तर पर सी0आर0 सारणीमान 2.59 से अधिक है जो सार्थक है। अतः उच्च शिक्षारत ग्रामीण छात्राओं की घरेलू कार्यों का बोझ शहरी छात्राओं से अधिक है।

ग्रामीण महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्राओं की सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत माता-पिता की उदासीनता सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 3.09 तथा मानक विचलन 0.75 है, जबकि शहरी क्षेत्र की उच्च शिक्षारत छात्राओं के माता-पिता की उदासीनता सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 2.85 तथा मानक विचलन 0.79 है, परिगणित सी0आर0 अनुपात 3.870 है जो स्वतंत्रयांश 598 के लिए 0.01 स्तर पर सी0आर0 सारणीमान 2.59 से अधिक है जो सार्थक है। अतः उच्च शिक्षारत ग्रामीण छात्राओं के माता-पिता की उदासीनता शहरी छात्राओं से अधिक है।

ग्रामीण महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्राओं की सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत असुरक्षा की भावना सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 2.69 तथा मानक विचलन 0.59 है, जबकि शहरी क्षेत्र की उच्च शिक्षारत छात्राओं की असुरक्षा की भावना सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 2.43 तथा मानक विचलन 0.71 है, परिगणित सी0आर0 अनुपात 4.905 है जो स्वतंत्रयांश 598 के लिए 0.01 स्तर पर सी0आर0 सारणीमान 2.59 से अधिक है जो सार्थक है। अतः उच्च शिक्षारत ग्रामीण छात्राओं की असुरक्षा की भावना शहरी छात्राओं से अधिक है।

ग्रामीण महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्राओं की सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत आर्थिक विपन्नता सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 2.91 तथा मानक विचलन 0.59 है, जबकि शहरी क्षेत्र की उच्च शिक्षारत छात्राओं की आर्थिक विपन्नता सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 2.63 तथा मानक विचलन 0.71 है, परिगणित सी0आर0 अनुपात 5.283 है जो स्वतंत्रयांश 598 के लिए 0.01 स्तर पर सी0आर0 सारणीमान 2.59 से अधिक है जो सार्थक है। अतः उच्च शिक्षारत ग्रामीण छात्राओं की आर्थिक विपन्नता शहरी छात्राओं से अधिक है।

ग्रामीण महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्राओं की सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत रूढ़िवादी विचारधारा सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 3.13 तथा मानक विचलन 0.69 है, जबकि शहरी क्षेत्र की उच्च शिक्षारत छात्राओं की रूढ़िवादी विचारधारा सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 2.83 तथा मानक विचलन 0.75 है, परिगणित सी0आर0 अनुपात 5.172 है जो स्वतंत्रयांश 598 के लिए 0.01 स्तर पर सी0आर0 सारणीमान 2.59 से अधिक है जो सार्थक है। अतः उच्च शिक्षारत ग्रामीण छात्राओं की रूढ़िवादी विचारधारा शहरी छात्राओं से अधिक है।

उक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि उच्च शिक्षारत ग्रामीण एवं शहरी छात्राओं की सामाजिक समस्याओं में घरेलू कार्यों का बोझ, माता-पिता की उदासीनता, असुरक्षा की भावना, आर्थिक विपन्नता एवं रूढ़िवादी विचारधारा ग्रामीण छात्राओं में शहरी छात्राओं की अपेक्षा अधिक पायी गयी। यद्यपि असुरक्षा की भावना एवं आर्थिक स्थित सम्बन्धी समस्याएँ शहरी क्षेत्र की छात्राओं में भी दिखाई पड़ी किन्तु ग्रामीण छात्राओं में इसका अनुपात अधिक दिखाई पड़ा। इसका संभावित कारण ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के स्तर का अधिक विस्तार न होने से माता-पिता का शिक्षा के प्रति उदासीन होना और उन्हें अपने बालिकाओं को घरेलू कार्यों में अधिक लगाना तथा ग्रामीण महाविद्यालयों के दूर-दूर स्थित होने के कारण छात्राओं में महाविद्यालय जाने के प्रति अधिक सुरक्षित महसूस न करना तथा ग्रामीण परिक्षेत्रों में रूढ़िवादी विचारधारा का अधिक मान्य होने के कारण छात्राओं को शिक्षा से वंचित कर देना आदि कारण हो सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता एस0पी0 : अनुसंधान संदर्भिका, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज, (2015) पृ0सं0 24-26
2. राय पारसनाथ : अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा-3, (2002), पृष्ठ- 261-263
3. शर्मा आर0ए0 : शिक्षा अनुसंधान के मूलतत्त्व एवं शोध प्रक्रिया, आर0लाल बुक डिपो, मेरठ, (2015), पृ0सं0 103-104
4. राय पारसनाथ : अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा-3, (2002), पृष्ठ- 278-294
5. शर्मा आर0ए0 : शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्त्व एवं शोध प्रक्रिया, आर0लाल बुक डिपो, (2015) मेरठ, पृ0सं0-109-111
6. वही : पृष्ठ सं0 304-305

सुलतानपुर जनपद के महाविद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की अष्टांग योग के प्रति जागरूकता का अध्ययन

शिल्पी सिंह

शोध छात्रा, शिक्षाशास्त्र विभाग, बयालसी महाविद्यालय, जलालपुर, जौनपुर, (उ0प्र0)

(सम्बद्ध-वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, (उ0प्र0))

डॉ० गायत्री प्रसाद सिंह

शोध निर्देशक एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, बयालसी महाविद्यालय, जलालपुर, जौनपुर, (उ0प्र0)

(सम्बद्ध-वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, (उ0प्र0))

संक्षिप्त सारांश

प्रस्तुत अध्ययन के इस भाग में शोध अध्ययन के लिए चयनित न्यादर्शों के वैयक्तिक उत्तरों का विश्लेषण किया गया है। न्यादर्शों से प्राप्त उत्तरों के संग्रह को आँकड़े कहा जाता है। किसी भी शोध कार्य में चयनित समस्या के समाधान हेतु आंकड़ों या प्रदत्तों का संकलन तथा उनका निरूपण और विश्लेषण एक अति महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी कार्य माना जाता है। बिना आंकड़ों के विश्लेषण और परिमार्जन के शोध परिणाम की प्राप्ति असंभव होती है। इतना ही नहीं अनुसंधानिक कार्यों में समस्या को समाधानित करने हेतु प्रदत्तों के संग्रह और वर्गीकरण में जितना सर्तकता और सावधानी रखी जायेगी। शोध परिणाम उतना ही विश्वसनीय तथा वैध प्राप्त होगा।

मुख्य शब्दः- सुलतानपुर, महाविद्यालयों, अध्ययनरत, विद्यार्थियों, अष्टांग योग, जागरूकता।

प्रस्तावनाः- आंकड़ों के संग्रहण में जिन तथ्यों पर विशेष ध्यान की आवश्यकता होती है, उनमें प्रमुख हैं-

1. शोध सामग्री संग्रहण स्रोत
2. संकलित प्रदत्तों का वर्गीकरण।

प्रदत्त संकलन हेतु प्रयुक्त साधनों का प्रयोग शोध की प्रकृति पर निर्भर करता है। जिन प्रदत्तों का संग्रह शोधार्थी अपने परीक्षण उपकरणों एवं सर्वेक्षण के आधार पर करता है उन्हें प्राथमिक सामग्री कहते हैं। प्राथमिक सामग्री के प्रदत्तों के लिए शोधार्थी स्वयं शोध उपकरणों को प्रशासित करके सर्वेक्षण तकनीक का उपयोग कर आँकड़ों का संकलन करता है।

प्राप्त प्रतिउत्तरों का वर्गीकरणः- शोध की प्रक्रिया में प्रदत्तों का संकलन करने के पश्चात उसका वर्गीकरण करना अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। वर्गीकरण के अभाव में प्रदत्तों का समुचित विश्लेषण किया जाना संभव नहीं हो सकता। अतः वर्गीकरण शोध सामग्री को व्यवस्थित एवं संक्षिप्त करने की वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत समान एवं असमान लक्षणों के अनुसार सामग्री को इस प्रकार विभाजित करते हैं कि समान लक्षणों वाली सामग्री एक वर्ग में तथा असमान लक्षणों वाली सामग्री को अन्य वर्गों में स्थानान्तरित किया जा सके।

क्रोनर के अनुसार- वर्गीकरण वस्तुओं को उनके सामान्य गुणों के अनुसार समूहों या वर्गों में व्यवस्थित करने की प्रक्रिया है जो उन लक्षणों की एकता को अभिव्यक्त करती है जो व्यक्तियों की भिन्नता में स्थित है।

इसी संदर्भ में डॉ0 एलहन्स का कथन है कि - सामग्री को उनकी एकरूपता एवं समानता के अनुसार समूह या वर्गों में व्यवस्थित करने की प्रक्रिया को परिभाषित रूप में वर्गीकरण कहा जाता है।

शोध अध्ययन में वर्गीकरण की उपयोगिताः- संकलित प्रदत्तों का वर्गीकरण एवं व्यवस्थापन करने की उपयोगिता निम्नांकित तत्वों से स्पष्ट की जा सकती है-

संक्षिप्तीकरण:- मूल रूप में एकत्रित सामग्री विस्तृत एवं अव्यवस्थित होती है वर्गीकरण करने से प्रदत्तों में संक्षिप्तता स्पष्टता एवं व्यवस्थितता आ जाती है जिससे विश्लेषण में सुविधा होती है।

सामग्री के विभिन्न गुणों का वर्गीकरण:- वर्गीकरण में संकलित प्रदत्तों को विभिन्न आयामों के आधार पर अलग-अलग वर्गों में विभाजित किया जाता है। इससे प्रत्येक भाग के अलग-अलग विश्लेषण एवं निष्कर्ष प्राप्त करने में सरलता होती है।

स्पष्टता:- सामग्री का समुचित वर्गीकरण करने से उसका स्वरूप स्पष्ट हो जाता है तथा गणितीय संक्रिया करने में आसानी होती है।

शोध की अनुवर्ती क्रियाओं के लिए सरलता:- वर्गीकरण के माध्यम से प्रदत्तों का व्यवस्थित स्वरूप विकसित होता है। जिससे निश्चित रूप से परिणाम तक सरलता से पहुँचा जा सकता है। उचित वर्गीकरण आंकड़ों के विश्लेषण, सांख्यिकीय उपयोग, सामान्यीकरण एवं निष्कर्ष निकालने में सहायक होता है।

तुलनात्मक अध्ययन का आधार:- प्रदत्तों के सारणीयन एवं वर्गीकरण के द्वारा सामग्री को गुण, लक्षण संख्या, स्थान आदि में विभाजित किया जाता है। जिससे अध्ययन सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन करना सरल हो जाता है।

नवीन सामग्री को जोड़ने की सुविधा:- प्रदत्तों का समुचित वर्गीकरण करने से सबसे महत्वपूर्ण लाभ यह है कि अध्ययन से प्राप्त सामग्री को भी उसके गुण एवं लक्षणों के आधार पर उस सामग्री से सम्बन्धित वर्ग में व्यवस्थित किया जा सकता है। न्यादर्शन प्रक्रिया में प्रतिनिधिकारी न्यादर्श का चयन करके भी प्रदत्तों का संकलन किया जा सकता है। इसमें न्यादर्श का शोध समस्या से परिचित होना एवं उसके प्रति जागरूक होना आवश्यक होता है। शोधकर्ता प्रश्नावली एवं परीक्षण उपकरणों व अनुसूचियों के माध्यम से भी प्रदत्तों का संकलन कर सकता है। इसमें शोधार्थी स्वयं द्वारा निर्मित या किसी प्रमापीकृत उपकरण को भी प्रयोग में ला सकता है।

प्रदत्तों का संकलन:- शोधार्थिनी ने प्रस्तुत शोध अध्ययन ''सुलतानपुर जनपद के महाविद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की अष्टाँग योग के प्रति जागरूकता का अध्ययन'' में निर्मित शोध उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु प्रदत्तों (वयैक्तिक उत्तरदाताओं के अभिमतों) के संकलन के लिए अपने शोध निर्देशक एसोसिएट प्रोफेसर डॉ0 गायत्री प्रसाद सिंह जी के निर्देशानुसार स्व-निर्मित अनुसूची का निर्माण कर न्यादर्श संकलन हेतु चयनित सुलतानपुर के महाविद्यालयों में जाकर उनके प्रशासकों तथा प्राचार्यो से अनुमति लेकर स्नातक स्तर के विद्यार्थियों से उनकी कक्षाओं में जाकर सम्पर्क स्थापित किया और अपने उपस्थित होने के प्रयोजन को स्पष्ट कर अनुसूची को वितरित किया। तत्पश्चात अनुसूची में प्रतिउत्तर के लिए दिये गये दिशा निर्देशों और सूचनाओं से अवगत कराकर निर्धारित समय में प्रतिउत्तर देने का अनुरोध किया। निर्धारित समयान्तराल के बाद शोधार्थिनी ने अनुसूची तथा उनके अभिमतों को संकलित कर लिया, और सभी विद्यार्थियों को अच्छे सहयोग के लिए धन्यवाद ज्ञापित कर अपने प्रयोजन को पूरा किया।

प्रतिउत्तरों का विश्लेषण एवं व्याख्या:- प्रस्तुत अध्ययन में वयैक्तिक उत्तरदाताओं से प्राप्त अभिमतों को उनके वर्गों व श्रेणियों के अनुसार वर्गीकृत करके सारणीयन की प्रक्रिया पूरी की गयी। तत्पश्चात शोध उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु अभिमतों की उपादेयता के अनुसार उन्हें विश्लेषित कर व्याख्या किया गया है।

शोध अध्ययन के इसी क्रम में शोधार्थिनी ने प्राप्त उत्तरदाताओं के अभिमतों को निम्नांकित सारणी के माध्यम से विवेचित किया गया है-

विद्यार्थियों की अष्टांग योग के प्रति जागरूकता का अध्ययन

शोध उद्देश्य सं0 1: सुलतानपुर जनपद के महाविद्यालयों में अध्ययनरत ग्रामीण और शहरी छात्रों में अष्टांग योग की जागरूकता का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना सं0 1: सुलतानपुर जनपद के महाविद्यालयों में अध्ययनरत ग्रामीण और शहरी छात्रों के अष्टांग योग की जागरूकता में सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी सं0 1: ग्रामीण और शहरी छात्रों के अष्टांग योग की जागरूकता का अध्ययन

शोधचर	*संख्या*	*मध्यमान*	*मानक विचलन*	*मानक त्रुटि*	*माध्य अंतर*	*क्रान्तिक अनुपातमान*
ग्रामीण छात्र	125	43.65	9.18	1.050	4.85	4.619
शहरी छात्र	125	48.50	7.32			

स्वतन्त्रांश = 248 के सार्थकता स्तर 0.05 तथा 0.01 के सार्थकतामान 1.97 तथा 2.60 पर सार्थक

विश्लेषण एवं व्याख्या

प्रस्तुत अध्ययन में महाविद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों में अष्टांग योग के प्रति जागरूकता के अध्ययन में सारणी सं0 4.5.1 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि महाविद्यालयों के ग्रामीण स्तर के छात्रों का अष्टांग योग के प्रति जागरूकता का मध्यमान 43.65 तथा मानक विचलन 9.18 प्राप्त हुआ जबकि शहरी स्तर के छात्रों में अष्टांग योग के प्रति जागरूकता का मध्यमान 48.50 तथा मानक विचलन 7.32 प्राप्त हुआ। प्राप्त प्राप्तांकों का सांख्यकीय विश्लेषण करने पर दोनों वर्गों के मध्यमानों की मानकत्रुटि 1.050 तथा माध्य अन्तर 4.85 प्राप्त हुआ।

जिसके आधार पर क्रान्तिक अनुपात मान 4.619 प्राप्त हुआ जो कि पूर्व निर्धारित स्वतन्त्रांश मान 248 के सार्थकता स्तर 0.05 तथा 0.01 के मान 1.97 तथा 2.60 से अधिक प्राप्त हुआ। इस प्रकार कल्पित परिकल्पना निरस्त हो जाती है और स्पष्ट हो जाता है कि महाविद्यालयों में अध्ययनरत ग्रामीण और शहरी छात्रों में अष्टांग योग के प्रति जागरूकता में असमानता के साथ-साथ सार्थक अन्तर है। इसी प्रकार दोनों वर्गों मध्यमान मानों की तुलना करने पर शहरी स्तर के महाविद्यालयी छात्रों का अष्टांग योग के प्रति जागरूकता का मध्यमान, ग्रामीण स्तर के छात्रों के मध्यमान से उच्च स्तर का पाया गया। अर्थात् शहरी स्तर के महाविद्यालयी छात्रों में अष्टांग योग की जागरूकता अधिक पायी गयी। प्राप्त परिणामों को चित्रारेख के द्वारा भी अधिक स्पष्ट किया जा सकता है-

चित्रारेख सं0 1: ग्रामीण और शहरी छात्रों के अष्टांग योग के प्रति जागरूकता का अध्ययन

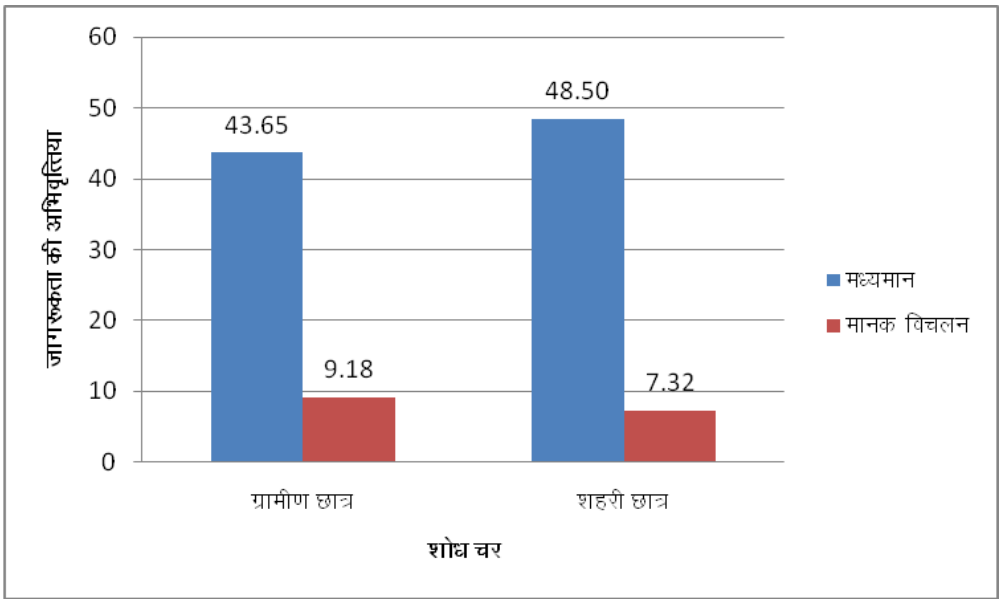

शोध उद्देश्य सं0 2: सुलतानपुर जनपद के महाविद्यालयों में अध्ययनरत ग्रामीण और शहरी छात्राओं के अष्टांग योग के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना सं0 2: सुलतानपुर जनपद के महाविद्यालयों में अध्ययनरत ग्रामीण और शहरी छात्राओं में अष्टांग योग के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी सं0 2: ग्रामीण और शहरी छात्राओं के अष्टांग योग के प्रति जागरूकता का अध्ययन

शोधचर	*संख्या*	*मध्यमान*	*मानक विचलन*	*मानक त्रुटि*	*माध्य अंतर*	*क्रान्तिक अनुपातमान*
ग्रामीण स्तर की छात्रायें	125	41.30	8.92	1.218	6.8	5.582
शहरी स्तर की छात्रायें	125	48.10	10.29			

स्वतन्त्रांश = 248 के सार्थकता स्तर 0.05 तथा 0.01 के सार्थकतामान 1.97 तथा 2.60 पर सार्थक

विश्लेषण एवं व्याख्या

प्रस्तुत अध्ययन में महाविद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों में अष्टांग योग के प्रति जागरूकता के अध्ययन में सारणी सं0 4.5.2 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि महाविद्यालयों के ग्रामीण स्तर के छात्राओं का अष्टांग योग के प्रति जागरूकता का मध्यमान 41.30 तथा मानक विचलन 8.92 प्राप्त हुआ जबकि शहरी स्तर के छात्राओं में अष्टांग योग के प्रति जागरूकता का मध्यमान 48.10 तथा मानक विचलन 10.29 प्राप्त हुआ। प्राप्त प्राप्तांकों का सांख्यकीय विश्लेषण करने पर दोनों वर्गों के मध्यमानों की मानकत्रुटि 1.218 तथा माध्य अन्तर 6.80 प्राप्त हुआ। प्राप्त परिणामों को चित्रारेख के द्वारा भी अधिक स्पष्ट किया जा सकता है-

चित्रारेख सं0 2: ग्रामीण और शहरी छात्राओं के अष्टांग योग के प्रति जागरूकता का अध्ययन

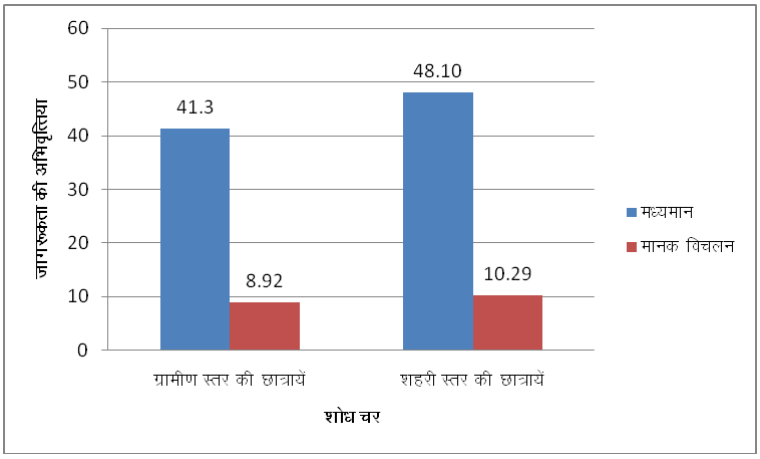

निष्कर्ष

जिसके आधार पर क्रान्तिक अनुपात मान 5.582 प्राप्त हुआ जो कि पूर्व निर्धारित स्वतन्त्रांश मान 248 के सार्थकता स्तर 0.05 तथा 0.01 के मान 1.97 तथा 2.60 से अधिक प्राप्त हुआ। इस प्रकार कल्पित परिकल्पना निरस्त हो जाती है और स्पष्ट हो जाता है कि महाविद्यालयों में अध्ययनरत ग्रामीण और शहरी छात्राओं में अष्टांग योग के प्रति जागरूकता में असमानता के साथ-साथ सार्थक अन्तर है। इसी प्रकार दोनों वर्गों मध्यमान मानों की तुलना करने पर शहरी स्तर के महाविद्यालयी छात्राओं का अष्टांग योग के प्रति जागरूकता का मध्यमान, ग्रामीण स्तर के छात्राओं के मध्यमान से उच्च स्तर का पाया गया। अर्थात् शहरी स्तर के महाविद्यालयी छात्राओं में अष्टांग योग की जागरूकता अधिक पायी गयी।

सन्दर्भ सूची

1. अस्थाना विपिन एवं निधि अस्थाना (2016) : शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकी प्रकाशन, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा-2, पृ0सं0- 3-5
2. अग्रवाल गोपाल कृष्ण एवं स्वरूपशील पाण्डेय (2006) : सामाजिक अनुसंधान की पद्धतियाँ, प्रकाशक लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा-3, पृ0सं0 1-3
3. तोमर देवेन्द्र पाल (2008) : सामाजिक शोध प्रविधि डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली पृ0सं0 39-42
4. महाजन धर्मवीर व कमलेश महाजन (2010) : सामाजिक अनुसंधान की पद्धतियाँ, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, पृष्ठ सं0 123-125
5. श्रीवास्तव जी0एन0 (2010) : मनोवैज्ञानिक अनुसंधान स्वमापन प्रकाशन, अग्रवाल पब्लिशिंग हाउस, आगरा-2 पृ0सं0 86-89
6. राय पारसनाथ (2016) : अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नरायण अग्रवाल पब्लिशिंग हाउस, आगरा-3, पृ0सं0 118-119
7. वही, : पृ0सं0 68-73
8. वही, : पृ0सं0 109-113
9. पाण्डेय के0पी0 (2010) : शैक्षिक अनुसंधान प्रकाशन चौक प्रकाशन वाराणसी, पृ0सं0 67-69
10. अस्थाना विपिन एवं निधि अस्थाना (2016) : शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकी, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा-2, पृ0सं0 7-9

साहित्यिक पत्रकारिता के विकास में 'संचेतना' की भूमिका

आनन्द प्रकाश सिंह

शोध छात्र, क्राइस्ट चर्च महाविद्यालय, कानपुर

'संचेतना' पत्रिका का जन्म एक कहानी आंदोलन से हुआ था। अर्थात परिवर्तन के उद्देश्य को ही लेकर चली थी यह पत्रिका और सदैव नई सोच एवं नई ऊर्जा से परिपूर्ण थी। इसका कारण है कि यह एक ऐसे व्यक्ति के मन और मस्तिष्क की उपज थी, जो स्वयं नई सोच और चेतना से सम्पन्न थे। 'डा० कन्हैया लाल नन्दन' लिखते हैं, "उनका लेखन और व्यक्तित्व दोनों ही बेबाकी से अपनी बात को कहने के लिए जाने जाते हैं। अगर किसी बात को कहना वे मुनासिब मानते है तो उसे कहे बिना नहीं रहते। निर्भय होकर अपनी बात को शालीन ढंग से मगर साफ सुथरे शब्दों में कहने को वे साहित्यकार का बुनियादी धर्म मानते हैं।"[1]

'डा० महीप सिंह' को 'संचेतना' से एक नई पहचान मिली। 'संचेतना' के दलित विशेषांक से ही हिन्दी में दलित साहित्य की सुगबुगाहट आरम्भ हो गई थी। इसी प्रकार उर्दू साहित्य पर, विष्णु प्रभाकर पर और अन्य कई विषयो पर यादगार अंक प्रकाशित हुये, जो इनकी नई सोच के ही परिचायक हैं। 'संचेतना' त्रैमासिक से मासिक हुई, फिर लगा कि बंद हो गई है पत्रिका, लेकिन फिर त्रैमासिक रूप में निकली और निरन्तर निकल रही है। बड़ी बात यह है कि 'संचेतना' खुले मन से निकाली जाने वाली पत्रिका बन सकी है। अनेक नए मुद्दों को केंद्र में लाने वाली पत्रिका बनने के साथ ही इसने नए लेखकों के नवोदित विचारों को केंद्र में ला दिया, जो चर्चा के विषय बने हैं।

डा० बलदेव बंशी लिखते हैं, "नई सोच से परिपूर्ण, साहस, चुनौती और जोखिम उठाने का नाम हैं 'महीप सिंह'। 'महीप सिंह' कि व्यावहारिक तर्कख़ विचार से संतुलित और विरूद्धों से भिड़ने कि कार्य ख़शैली को जिन लोगो ने 'हट्टी' का फतवा दिया था, उन्हीं की अपनी हट्टियों के दिवाले निकल गए। चुहलबाजी, चाटुकरिता और चोंचलेबाजी कि उनकी पूंजी चुक गई, किन्तु 'महीप सिंह' की पूंजी थी- सृजनशीलता, जीवटता, साहस, बंधुभाव सहकारिता, दर्द भीगी लोक भावना, श्रम शीलता, संगठन-कुशलता, प्रवाही ऊर्जा, धैर्य एवं सच्ची सामाजिक चेतना, जो उत्तरोत्तर बढती हुई आंदोलनी तेवरों में बदलती गई और साथ ही यह जड़ताओं को तोड़ती गई।"[2]

'डा० महीप सिंह' सामाजिक चेतना से परिपूर्ण लेखक हैं, उनकी कहानियाँ हों, उपन्यास हों, लेख हों अथवा 'संचेतना' की संपादकीय हों, उनकी सामाजिक चेतना स्पष्ट रूप से परिलक्षित है। 'डा० वीरेंद्र सक्सेना' के शब्दो में, दोनों उपन्यासों, 'यह भी नहीं' और 'अभी शेष है' के माध्यम से 'महीप सिंह' ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद मध्यमवर्गीय जीवन मे नए बदलावों सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक अतिवाद के परिणामस्वरूप आम जनजीवन पर पड़ने वाले प्रभावों, स्त्री-पुरुष की परस्पर सहभागिता और स्पर्धा के कारण प्रेम, विवाह और सेक्सख़संबंधो में आए परिवर्तनों का बहुत ही प्रामाणिक और स्वाभाविक चित्रण किया है।"[3]

इसी प्रामाणिकता और स्वाभाविकता को नए आयाम देने के लिए श्यह भी नहींश में फिल्मजगत और शिक्षण-संस्थाओं से जुड़े अनुभवों की भी सहायता ली गई और 'अभी शेष है' में पत्रकारिता के साथ-साथ गुरुद्वारों आदि के अनुभव की भी सहायता ली गई, लेकिन दोनों उपन्यासों में एक बात समान है; और वह है 'महीप सिंह' की नारी को समझने-समझाने की दृष्टि। इस दृष्टि के अनुसार ही वे अपने नायक 'पंकज' के माध्यम से 'गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर' का अनुसरण करते हुये नारी को दो तरह की मानते हैं; 'एक माँ जाति को और दूसरी प्रिय जाति को"। ऋतुओं से उनकी तुलना करते हुए टैगोर ने एक को 'वर्षा' कहा था, जो हमारी तपन मिटाती है और ऊर्ध्वमुखी होकर हमें विलगित करती है और दूसरी 'वसंत' है, जिसकी महकती बयार हमारे अंदर के सोये तारों को झंकृत करती है और हमारे अंदर उन्माद कितने ही कोनों से निकल-निकलकर नर्तन करने लगता है।"[4]

इसी प्रकार का उल्लेख दूसरे नायक आनंद के माध्यम से 'अभी शेष है' उपन्यास में भी मिलता है, "स्त्रियाँ दो प्रकार की होती हैं एक, जिन्हें 'माँ' जाति कहा जाता है और दूसरी जिन्हें 'प्रिय' जाति माना जाता है। ऋतुओं से उनकी तुलना की जाये तो एक वर्षा की भांति होती है। वह ऊपर घुमड़ते हुए बादलों से जल की वर्षा करती है, धरती की तपिश दूर करती है, हमें तृप्त करती है, दूसरी हमारी नस नस में उन्माद भर देती है, हमें इस प्रकार उद्वेलित करती हैं कि व्यक्ति तुरंत एक स्वप्निल संसार में पहुंचकर उसमें डूब जाना चाहता है।"[5]

'डा० महीप सिंह' भारतीय समाज की मूल संरचना में ही 'दलित-अछूत', 'जाति-पांति को', नारी को अनेक प्रकार की जंजीरों में जकड़ने की समस्याओं के रूप में देखते हैं, जहां कर्मफल, पुनर्जन्म आदि के सिद्धान्त अपनी जकड़बंधी बनाए हैं। प्रमाण-रूप में लेखक 'एकलव्य', 'शंबूक' और 'कर्ण' के आख्यानों को सामने लाता है जहां वर्ण व्यवस्था, ब्राह्मणवाद आदि की जकड़न को चुनौती देने वाले 'सिद्ध' और 'नाथ' योगियों की तथा संतों की परम्पराओं का उल्लेख करता है। कर्मफल के सिद्धान्त को नामदेव (दर्जी), कबीर (जुलाहा), दादू (धुनिया), रविदास (चमार), सेन (नाई), नाभादास (डोम), सधना (कसाई),

धन्ना (जाट), आदि छोटी एवं अछूत समझी जाने वाली जातियों ने नकारा। निर्गुण ब्रह्म के अद्वैत मार्ग के माध्यम से सभी प्रकार के विभेदी दीवार को ढहा दिया गया। नारी कि स्थिति भी भारतीय समाज में दलितों जैसी है।

वस्तुत: भारतीय समाज की मानसिकता में नारी के दो रूप हैं- वह कामिनी अथवा प्रेयसी है या ममतामयी माँ है, घर उसकी सीमा है और यही उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। दलितों और नारियों की स्थिति सुधारने के लिए चलाये गए आंदोलनो की चर्चा भी लेखक ने की है और गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा, दुर्गाबाई, लक्ष्मीबाई, अवंतिकाबाई के नामों का उल्लेख भी किया है और इस संदर्भ में अपना महत्वपूर्ण मत 'महीप सिंह' इन शब्दो में रेखांकित करते हैं, षकिन्तु लोकतन्त्र की अवधारणा ने कुछ अनिवार्यताएं उत्पन्न कर दी हैं। कोई चाहे या न चाहे, कोई कितना भी नाक-भौं चढ़ाए, राजनीति अब न दलितों की स्वीकृति के बिना चल सकती है, न महिलाओं की।"[6]

'संचेतना' पत्रिका सन 1984 के बाद मासिक बन चुकी थी, जो उन दिनों कांग्रेस की सिख-विरोधी नीतियों को बेझिझक उजागर कर रही थी। राजीव गांधी अभूतपूर्व बहुमत से जीतकर प्रधानमंत्री बन चुके थे, सरकारी और गैर सरकारी पूरा मीडिया एक स्वर से सिख-विरोधी राग अलाप रहा था। ऐसे में 'संचेतना' सिख मानस के जख्मों पर मरहम लगा रही थी। 'संचेतना' में 'इंदिरा गांधी' की हत्या के उस तीसरे आरोपी 'बलबीर सिंह' का साक्षात्कार छापा गया जिसे बरी कर दिया गया था। उन 'अनवर कौर' से बातचीत भी प्रकशित हुई, जिसने बाहरी दिल्ली से कांग्रेस के सांसद 'सज्जन कुमार' पर अपने पति की हत्या का आरोप लगाया था। 'रंगनाथ मिश्र' आयोग की रिपोर्ट आने के बाद 'सज्जन कुमार' को गिरफ्तार करने गई सी०बी०आई की टीम पर उसके समर्थकों द्वारा हमला कर उन्हे खदेड़ दिये जाने के बाद 'संचेतना' ने इस किस्से को अपनी 'आवरण-कथा' बनाया था जिसका शीर्षक दिया गया था- 'सज्जन कुमार : कौन करेगा गिरफ्तार?'

इसके अतिरिक्त दंगा पीड़ित परिवारों की दुर्दशा पर भी सामग्री दी जाती थी। उसी प्रकार विरोधी रवैये के कारण लोग 'संचेतना' को अपने पास रखने से भी डरने लगे थे। 'डा० महीप सिंह' से उनके घनिष्ठ मित्र भी कतराने लगे थे। 'संचेतना' से जुड़े होने के कारण, उनके मित्रो को भी घनिष्ठ संबंधियों का अघोषित बहिष्कार झेलना पड़ा था। 'डा० कमलेश सचदेव' लिखती हैं, "उन दिनों जब मैं किसी संबंधी के घर से लौटती थी तो मेरे निकलने के बाद मेरे घर को ठीक से जाँचा जाता था कि मैंने कहीं कोई बम तो नहीं छिपा दिया। बहरहाल, मासिक 'संचेतना' में धर्मनिरपेक्षता, मानवाधिकार, स्त्री अस्मिता जैसे मुद्दों पर भरपूर सामग्री प्रकाशित हुई थी।"[7]

वह दौर आर्थिक रूप से तोड़ देने वाला रहा, जैसे कि 'संचेतना' के अंक 171 के संपादकीय में 'डा० महीप सिंह' ने कहा है, ऐसे प्रयासों की प्रशंसा तो सभी कर देते हैं, लेकिन कोई आपके साथ खड़ा नही होता है। दबी-दबी सी सुगबुगाहटें तो बहुत थी कि 'संचेतना' के लिए 'महीप सिंह' को कहाँ-कहाँ से कितना धन मिलता है, लेकिन वास्तविकता यह है कि उन पर लाखों का कर्ज हो गया था। सरकार विरोधी होने के कारण लोग विज्ञापन देते भी डरते थे। ग्राहकों के दम पर तो कोई भी पत्रिका चल नहीं सकती है, फिर 'संचेतना' के तो ग्राहक बनने से भी लोग डरने लगे थे, उन्ही दिनों 1990 में एशियन द्वारा चिंगम (थाईलैंड) में 'धार्मिक कट्टरतावाद की चुनौतियों' पर आयोजित संगोष्ठी में भाग लेने गए डा० साहब को जबरदस्त हार्ट अटैक हुआ। उनके बेटे जयदीप उन्हे वहां से लेकर आए और इसी के साथ 'संचेतना' का प्रकाशन बंद हो गया।

'संचेतना' के जून 1995 के अंक में संपादकीय में 'डा० महीप सिंह' लिखते हैं, "मैं सोचता हूँ कि वह स्थिति कितनी अच्छी होती कि पाकिस्तान बन जाने के बाद वहाँ बसे सभी हिन्दू सिख वहीं बसे रहते। वे उसी को अपना देश मानते और उसकी समृद्धि में अपना योगदान देते, किन्तु ऐसे में आबादी के अधिकांश को वहाँ से निकलना पड़ा और जो वहाँ रह गए हैं उन्हें दूसरे तीसरे दर्जे का नागरिक बनकर ही वहाँ रहना पड़ता है। विभाजन के बाद भारत ने विभिन्न स्थिति अपनाई। इस्लामी राज्य के जवाब में यह हिन्दू राज्य घोषित नही हुआ। इसने अपने आपको 'सेक्युलर' राज्य घोषित किया और सभी नागरिकों को समान नागरिकता प्रदान की, किन्तु व्यवहार में यह बात पूरी तरह परिणित नहीं हो सकी। बिल्कुल पड़ोसी देश, पाकिस्तान से 'इस्लामी जेहाद' और हिन्दू-विरोधी स्वर थोड़े-थोड़े अंतराल से इस ओर लगातार सुनाई पड़ जाता है। जुल्फकार अली भुट्टो जैसे नेता पाकिस्तान और भारत के बीच तनाव को इतिहास के एक हजार वर्ष की लम्बी अवधि में फैलाकर 'पाकिस्तान' और 'हिन्दू भारत' के रूप में ही देखा करते थे।"[8]

आगे लिखते हैं, "किन्तु मैं इस देश की उदार और धर्म निरपेक्ष शक्तियों के प्रति पूरी तरह आश्वस्त हूँ। ये शक्तियाँ चाहती हैं कि मुसलमानों सहित इस देश के सभी अल्पसंख्यक अपने सम्पूर्ण सम्मान और गौरव के साथ जिएँ। देश कि बहुसंख्यक, गरीब, पिछड़ी और दलित जनता साथ मिलकर अपनी त्रासद स्थिति से उबरने के लिए संघर्षरत हों। अल्पसंख्यक वर्ग में अपनी सभी समस्याओं के लिए सरकार और बहुसंख्यक वर्ग को जिम्मेदार मानने की प्रवृति बड़ी सहजता से पैदा हो जाती है। इस वर्ग के नेता कभी उन्हे आत्म -विश्लेषण नही करने देते हैं, वे हमेशा उनके सामने एक वृहत-आकारीय शत्रु की काली भयावह छाया का हौवा खड़ा करके उसमें गहरी असुरक्षा बोध जगाए रखते हैं। यह असुरक्षा बोध उनके नेतृत्व को सुरक्षित और सुनिश्चित रखता है, किन्तु इसका दूरगामी परिणाम उन समूचे वर्ग को भोगना पड़ता है, क्योंकि वह अपने यथार्थ को अनदेखा करता रहता है।"[9]

'डा० महीप सिंह' धर्म के नाम पर होने वाले अत्याचारों और पाखंडो पर तीखा प्रहार करते हैं। गुजरात में हुये दंगो में धर्म के नाम पर लड़ने वाले श्वीरश दंगाइयों ने जो 'कारनामें' किए उनसे विचलित होकर वे कहते हैं, "गुजरात के दंगों में सबसे लज्जाजनक बात स्त्रियों के प्रति किए गए अत्यंत पाशविक व्यवहार की है। यह बात तो समझ में आती है कि दंगाई स्टेशन पर खड़ी ट्रेन में लोगो को जिंदा जला दें। यह बात भी समझ आती है कि उसका बदला लेने के लिए दूसरे पक्ष के लोग बस्तियों - गावों पर आक्रमण करके उससे दस गुना लोगो की हत्या कर दें, किन्तु यह बात बिलकुल समझ नही आती है कि किसी गर्भवती स्त्री को पकड़ कर उन्मादी भीड़ के लोग पहले उसके साथ सामूहिक बलात्कार करें, फिर उसका पेट चीर कर उसमें से भ्रूण निकालकर फेंक दें और उसकी हत्या कर दें। इसलिए मैं कहता हूँ कि जैसे-जैसे मनुष्य अपने सभ्य और सुसंस्कृत होने का दावा करने में बड़बोला बनता जा रहा है वैसे-वैसे उसके अंदर बैठा हिंसक पशु कहीं अधिक खूंखार और नीच बनता जा रहा है।"[10]

डा० महीप सिंह स्वयं 'संचेतना' पत्रिका के संपादक एवं एक प्रसिद्ध दैनिक के स्तंभकार भी थे। देश-समाज की समस्याओं को लेकर अपने सुचिंतित विचार व्यक्त करने में वे तर्क एवं तटस्थता बनाए रखते हैं, किन्तु उनके लेखों में समाज को सचेत करने की जिम्मेदारी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। उनकी कहानियों और उपन्यासों में तो 'समाज-चिंतन' विशेष रूप से दिखता है।

अत: 'डा० महीप सिंह' के साहित्य एवं सम्पादन दोनों में ही राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। भारत की तत्कालीन स्थितियों को वे न केवल उद्घाटित करते हैं, बल्कि उस पर उन्होनें अपने विचार भी व्यक्त किए हैं। यद्यपि तत्कालीन भारतीय राजनीति में बड़ी ही उठा-पटक की स्थिति थी, किन्तु महीप सिंह न केवल उन स्थितियों से व्यथित होते हैं ; बल्कि अपने लेखन में उसे समाहित कर समाधान ढूंढने का भी प्रयत्न करते हैं। अपने स्पष्ट लेखन के कारण कई बार उन्हे राजनीतिक शक्तियों का कोप भाजन भी बनना पड़ा, लेकिन उनके लेखन की धार उससे कभी भी कमजोर नहीं पड़ी, बल्कि और तीखी ही होती चली गई।

संदर्भ सूची:

1. सचदेव, डा० कमलेश - संपा० - करक करेजे माहि, भारत पुस्तक भंडार, दिल्ली, संस्करण -2005, पृ० -17
2. सचदेव, डॉ० कमलेश - संपा० - करक करेजे माहि, भारत पुस्तक भंडार, दिल्ली, संस्करण -2005, पृ०-2
3. सचदेव, डॉ० कमलेश - संपा० - करक करेजे माहि, भारत पुस्तक भंडार, दिल्ली, संस्करण -2005, पृ०-203
4. सिंह, डॉ० महीप - यह भी नहीं - नया साहित्य केंद्र - सोनिया बिहार-दिल्ली, संस्करण-1976, पृ० -151
5. सिंह, डॉ० महीप - अभी शेष है - किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2004, पृ०-78
6. सिंह, डॉ० महीप - महीप सिंह की लोकप्रिय कहानियाँ, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2016, पृ० -58
7. सचदेव, डॉ० कमलेश - संपा० - करक करेजे माहि, भारत पुस्तक भंडार, दिल्ली, संस्करण -2005, पृ०164
8. डॉ० महीप सिंह - संपा०- 'संचेतना', वर्ष - 26, अंक 1-2 जून-1995, पृ०-8
9. डॉ० महीप सिंह - संपा०- 'संचेतना', वर्ष - 26, अंक 1-2 जून-1995, पृ०-9
10. डॉ० महीप सिंह - संपा०- 'संचेतना', वर्ष - 26, अंक 1-2 जून-1995, पृ०-10

भारतीय संस्कृति और हिन्दी साहित्य का निर्गुण काव्य

हेमंत कुमार

डॉ० राम मनोहर लोहिया राजकीय महाविद्यालय, मुफ्तीगंज, जौनपुर, उत्तर प्रदेश
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उत्तर प्रदेश

भक्तिकाल का अभ्युदय हिन्दी साहित्येतिहास में गंभीर विचिकित्सा का विषय है। आचार्यों ने इसे विविध स्रोतों से प्रकट आंदोलन कहा है। एक वर्ग तत्कालीन राजनीतिक प्रसाद के रूप में स्वीकारता है तो दूसरा उसमे 'आलवार' जगत की प्रेरणा अनुभूत करता है। किन्तु, इतना तो स्पष्ट है कि यह स्वत: स्फूर्त आंदोलन था जिसने समकालीन जनमानस को खूब झकझोरा था। इसका उद्भव तत्कालीन परिस्थितियों की कोख से हुआ था। उस समय तक देश में इस्लाम का प्रवेश 'तलवार' और 'कुरान' के साथ हो चुका था। अर्थ स्पष्ट था कि कुरान को स्वीकारने पर तलवार हाथ में और नकारने पर उसकी धार सम्मुख होती। परिणामस्वरूप त्रिविध प्रतिक्रियायें लक्षित हुई। एक वर्ग वह था जिसने तलवार के आगे आत्मसमर्पण कर दिया और मुसलमान हो गया। दूसरे वर्ग ने तलवार का उत्तर तलवार से देने को ठानी और युद्ध के लिये तत्पर हो गया। धार्मिक धरातल पर भी 'अनी' और 'अखाड़ों' की शक्ति बढ़ने लगी। किन्तु एक तीसरा वर्ग था,जो न तो इस्लाम को स्वीकार करना चाहता था और न तलवार का उत्तर तलवार से देने में सक्षम था। संख्या में सर्वाधिक इस वर्ग के सामने जीवन जीने का संकट था। आँखों के सामने मंदिर टूट रहे थे, आस्थाएं आहत हो रही थीं, धर्म के नाम पर कर थोपे जा रहे थे। किंकर्तव्यविमूढ़ता बढ़ रही थी। ऐसे ही समय में युगवातार स्वामी रामानंदाचार्य का अवतरण हुआ, जिन्होंने तत्कालीन स्तब्ध समाज में चेतना का स्फुरण किया और समाज के विभिन्न वर्गों से आये लोगों को शिष्यत्व प्रदान करते हुए घोषित किया- 'राम' हृदय में रहते हैं, हृदय की भाषा समझते हैं। उनके अनुसंधान के लिये तीर्थ-तीर्थ भटकने की आवश्यकता नहीं, तिलक-फटाका आवश्यक नहीं, वह तो 'अजपाजप' से सुगम हैं, मन से पुकारने वाले के लिये ही प्रकट होते रहे हैं। अत: 'मन की मथुरा' में 'दिल की द्वारका' में, 'काया की काशी' में उन्हें खोजने की आवश्यकता है। इस प्रकार भक्ति की अभिनव व्याख्या ने अनिश्चय के भँवर में डूबते जनमानस को सहारा दिया। उन्हें जीने का मंत्र मिल गया। कबीर, रैदास, अनंतानन्द, सुरसुरानंद, सेना आदि रामानन्द जी के शिष्यों ने तत्कालीन समाज को नव जीवन-दर्शन थमाया।

इस्लाम की कट्टरता के बीच से 'प्रेम' के दर्शन को गा-गाकर सुनाने को आतुर 'सूफियों' का अभ्युदय भक्ति-आंदोलन को गतिमान करने लगा। हिन्दू घरानों की प्रेम-कहानियों को अवधी अर्थात उन्ही की भाषा में सुनाना जिनका अभिप्रेत था। इस प्रकार जायसी-कुतुबन जैसे कवियों ने प्रेम के मनोराज्य को स्थापित करने का प्रयत्न किया। इन कवियों ने परमात्मा के निराकार रूप का गायन किया। आगे चलकर सूरदास ने मुरझाये मनों को सींचा और गोस्वामी तुलसीदास ने भक्ति के 'राजडगर' का निर्माण किया। इसी समय रहीं ने लोकानुभव के ताजे संदर्भों को उभारकर जीवन जीने का रास्ता बनाया।

भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्णकाल है। उसे स्वर्णकाल की अभिधा प्रदान करने का श्रेय उस केन्द्रीय तत्व को जाता है, जिसे 'मानव' कहते हैं, जिसकी अभ्यर्थना, प्रतिष्ठा भक्तिकाल में पूरे मनोयोग से हुई। आत्मकेंद्रिता के जल मे उलझे मनुष्य को उसकी शक्ति का ज्ञान कराना और 'राजपथ' का अविकल पथिक बनाना कदाचित उनका अभिप्रेत था। पथिक के रूप मे इन कवियों ने पावन प्रेम को आगे किया। प्रेम अर्थात भक्तिभावना अभेद स्थापित करती है। भगवान से प्रेम करने अधिकार सबको है। वहाँ पुरुष और नारी, कुलीन-अकुलीन का भेद मान्य नहीं है। सूरदास का यह पद द्रष्टव्य है-

कियौ सुरकाज गृह चले तोके
पुरुष औ नारी को भेद-भाव नहीं, कुलीन अकुलन अवतर्यो काके।
दास दासी कौन प्रभु निप्रभु कौन है, आखिल ब्रह्माण्ड इक रोम जाकें ।।
भाव साँचौ हृदय जहाँ, हरि तहाँ हैं, कृपा प्रभु की माथ भाग वोके ।।
दास दासी स्याम भजनहुँ तै जिये, रमा भई सो कृष्ण दासी ।।[1]

तुलसीदास 'विनय पत्रिका' में सूर के ही स्वर में कहते हैं कि गुह जैसे अकुलीन गरीब ने, जिसने भला किस जीव का भक्षण नहीं किया था, पावन प्रेम के प्रभाव से सखा का सम्मान प्राप्त किया-

गुह गरीब गत जातिहूँ ते जेहि जिउ न भका को।
पायो पावन प्रेम ते, सनमान सखा को ।।[2]

इनसे न केवल आश्रम धर्म व्यंजित हुआ अपितु वैष्णव भक्ति का सामाजिक दृष्टिकोण भी स्थापित हुआ। जायसी के सामने सामाजिक समता या एकता का प्रश्न नहीं था। उनके लिये प्रेम सर्वस्व था, जहां भेद-अभेद का प्रश्न नहीं था। जन्मजात उच्चता और निम्नता को तर्क, विश्वास, शक्ति और दृढ़ता के साथ प्रबल चुनौती कबीर ने दी-

एक बूँद एकै मलमूतर, एक चाम एक गूदा।
एक जोति थैं सब उत्पन्ना, को बामन को सूदा ।।[3]

'मनुष्य होने के नाते हम सब एक हैं और यह एकता सामाजिक स्तर पर भी मान्य होनी चाहिए'- कबीर की यह बहुत बड़ी उपलब्धि थी। डॉ० रामचन्द्र तिवारी के शब्दों में- "संत कवियों को वाणियों मे जिस मनुष्य-सत्य, सामाजिक एकता और मानव-धर्म की प्रतिष्ठा मध्ययुग मे हुई, वह हिन्दी के लिए गौरव और गर्व की बात है।"[4]

युगकवि देश, काल के बंधन से मुक्त होता है। वह कालातीत होता है प्रत्येक युग अपने को उससे जोड़ने में गौरवान्वित होता है आधुनिक युग मे अनेक कवियों को 'आज का कबीर' प्रमाणित करने मे आलोचकों को आत्मतोष मिलता है। तुलसीदास पर कविता लिखकर आज का कवि आलंबनत्व धर्म का निर्वाह करता है। सूरदास का भ्रमरगीत तो भ्रमरगीत परंपरा का विकास आज के स्थापित कवियों तक करता है। संत रविदास प्रासंगिकता पर प्रतिवर्ष चर्चाएं आयोजित होती है। कारण स्पष्ट है ये सभी युगकवि हैं, क्रांत द्रष्टा हैं, इनकी वाणी कभी बासी नहीं होती, इसीलिए ये सदा प्रासंगिक हैं।

हिन्दी साहित्य के इतिहास का चतुर्थ चरण 'आधुनिक काल' है। 'आधुनिक' शब्द कालबोधी और प्रवृत्तिबोधी ख़ दोनों होता है। कालबोध अर्थात प्रत्येक कवि अपने काल की आवाज होता है, उसके साहित्य मे उसका काल ध्वनित होता है। समकालीन परिस्थितियाँ उनमें संगुम्फित होती है प्रवृतिबोधि अर्थात वह आधुनिक युग का बोध है, जिसकी अनेक सर्वमान्य विशेषताएं रेखांकित होती है। 'आधुनिक काल' का 'आधुनिक' शब्द अब रूढ़ हो गय है। वह भारत के स्वातंत्र्य आंदोलन और उसके बाद के भारत की साहित्यिक विकास गाथा है, व्यथा-कथा है, इतना ही नहीं, भारत का विचार- दर्शन है। इसी वैचारिकता ने हिन्दी के समृद्ध 'गद्य साहित्य का सृजन किया है, जो बेजोड़ है।

आधुनिक दृष्टि बहुआयामी है। हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल समाज, राजनीति, अर्थ, अध्यात्म, संस्कृति से निर्मित विविध मानकों से सम्बलित है। समाज मे समानता का अधिकार,राजनीति मे कर्तव्य एवं अधिकार के प्रति जनसहभागिता, शोषणमुक्त समाज की अवधारणा, श्रम की शक्ति का रेखांकन मानव धर्म की प्रतिष्ठा, संस्कृतिक एकता, राष्ट्रीयता का गौरवगान- आज के प्रथम पांक्तेय मानबिन्दु हैं। भक्तिकाल में इनके उत्स विद्यमान हैं, जो काभी प्रेरक की भूमिका में तो काभी नियामक की भूमिका में उपस्थित रहते हैं। सामाजिक उदारता की प्रतिष्ठा में भक्तिकाल अप्रतिम है। संतसाहित्य तोइसकी अक्षय निधि है। राजनीति में 'रामराज्य' की अवधारणा सर्वविदित है। नैतिक दृष्टि तो भक्तिकाल की बहुत बड़ी उपलब्धि है। आचरण की शुद्धता भरतभूमि की अन्यतम विशेषता रही है। पवित्रता, सत्यता, अहिंसा, दया, उदारता, सहानुभूति, कथनी करनी की एकता, अहंत्याग, उपकार, करुणा, प्रेम- आचरण निष्ठा नैतिकता के अंगभूत तत्व के रूप मे स्वीकृत है। प्रख्यात आलोचक डॉ० राम विलास शर्मा तो इन्हीं तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में आधुनिककाल का प्रारंभ भक्तिकाल से मानते हैं। उनकी दृष्टि में "पूर्व मध्यकाल में व्यापारिक पूंजीवाद के विकास के कारण सामंतीय ढांचा कमजोर और शिथिल पड़ गया था। निम्नवर्गीय दलित जनता में आत्मविश्वास जागृत हुआ था। वह मुखर हो उठी थी। उसने सामंतीय जीवन मूल्यों का विरोध किया था। भक्तिकाल सामंतीय जीवन मूल्यों को चुनौती देने वाला और निम्नवर्गीय जनता की भवनावों को व्यक्त करने वाला नई स्फूर्ति और चेतन का वाहक व्यापक लोकजागरण का काव्य है।"[5]

भक्तिकाल में आधुनिक दृष्टि डालने पर हमें देशज आधुनिकता के दर्शन होते हैं, इस काल की मुख्य ध्वनि लोक है। वहीं से इस काल के कवि अनुप्राणित हैं। उनका चिंतन देशी है अर्थात स्थानिक है। उसमें आयातितता को रंचमात्र भी अवकाश नहीं है। दरबारी संस्कृति, शास्त्र-स्थिति-सम्पादन इन कवियों के लिए आकर्षणच्युत संदर्भ थे। डॉ० राम चंद्र तिवारी ने कहा "कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, आदि सभी कवियों ने अलंकार शास्त्र के सीमित दायरे से अलग 'मति अनुरूप' इष्टदेव के गुणगान को ही श्रेयष्कर माना। राज्याश्रय और उसके प्रलोभनों को ठुकरा दिया। व्यक्तित्व-संस्कार और लोक-संग्रह को काव्य का लक्ष्य स्वीकार किया। परंपरागत दरबारी साहित्य में प्रतिष्ठित जीवन मूल्यों को महत्व न देकर जनता के दु:ख-दर्द को विशेष महत्व दिया। शास्त्र-स्थिति-सम्पादन से हटकर निजी अनुभूति का चित्रण किया। काव्यशास्त्र-निर्दिष्ट काव्य विषयों का वर्णन न करके सामाजिक यथार्थ और मानवीय एकता का प्रतिपादन किया। जनभाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। कबीर ने लोक प्रचलित काव्यरूपों को अपनाया। तुलसी ने लोकगीतों को काव्यरूप में प्रतिष्ठित किया। सूर ने काव्य की कीर्तन पदशैली को पुष्ट किया।"[6] कहना न होगा की हिन्दी के निर्गुण काव्य के साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि देशज है।

भक्तिकाल के कवियों की परंपरा सुदीर्घ है। चार धाराओं में प्रवहमान उनकी काव्य-साधना विपुल है।

सबका अध्ययन अपना अभिप्रेत भी नहीं है। यहाँ भारतीय संस्कृति की दृष्टि से संत कवियों की जीवन दृष्टि का अनुशीलन अपेक्षित है। भारतीय जीवन दृष्टि के आधारभूत मूल्य संत कवियों की वाणी में समान रूप से सर्वत्र विद्यमान है। वस्तुत: हिन्दी का संतसाहित्य भारतीय मूल्यों का वाहक, पोषक व उद्घोषक है। कबीरदास का युग भीषण सांस्कृतिक संघर्ष एवं जीवन मूल्यों के संक्रमण का युग था। पूर्ववर्ती साधनायें रुढ़िजर्जर और प्रेरणाहिन हो गयी थीं। अपना रास्ता उन्हें स्वयं चुनना था। कहा भी गया है "कबीर की वाणी वह लता थी जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज पड़ने से अंकुरित हुई थी।"[7] भक्ति की विलक्षण लता एक पूर्ण जीवन दर्शन के साथ विकसित हुई, जिसके द्वारा उन्होंने प्रेम की प्रतिष्ठा के साथ त्याग बलिदान जैसे मानवमूल्यों को प्रतिष्ठित किया।

भगति दुहेली राम की, नहिं कायर का काम।
सीस उतारै हाथि करि, सो लेसी हरिनाम ।।[8]

संत रविदास उपाख्य 'रैदास' स्वामी रमानन्द के शिष्य थे अपनी साधना, साधुता से तत्कालीन समाज में पर्याप्त लोकप्रिय थे। अपनी कविताओं के माध्यम से इन्होंने सहजता-सात्विकता को साधना का अनिवार्य अंग बनाया और दूसरी ओर आडंबरमुक्त जीवन-पद्धति को विकसित किया।

जायसी की साधना का केंद्र बिन्दु प्रेम। प्रेम समज को एकसूत्र में बाँधने का महामंत्र है। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि 'जो नहिं सीस प्रेम पथ लावा। सो पृथ्वी महँ काहे को आवा।। उन्होंने अपनी क्रांत आँखों से इस सत्य का साक्षात्कार किया था कि वस्तुत: मनुष्य तो मिट्टी का पुतला ही था, प्रेम की साधना से वह दिव्य हो गया-

'मानुष प्रेम भया बैकुंठी। नाहि टी कहा छार भर मूठी।।

सत्य है कि पद्मावत के रूप में उनके अंतस की प्रेम-पीड़ा कथा का आधार लेकर साकार हो उठी। उनकी रचना मानव जीवन की जिस गूढ, गंभीर, सर्वभूतव्यापिनी एवं मर्मस्पर्शिनी वृत्ति उदात्त स्वरूप का उद्घाटन करती है, वह मनुष्य को देवत्व प्रदान करने में समर्थ है।[9]

सूरदास भक्तिकाल के श्रेष्ठ गायक हैं। वल्लभचार्य के सिद्धांतों को मन में बसाकर उन्होंने हताश-निराश जनमानस में कृष्ण-लीलाओं के माध्यम से आशा का संचार ही नहीं जीवन के सार्थकता की प्रतिष्ठा भी की। इसीलिए सूर-काव्य मर्मज्ञ आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी सूर की भक्ति को पूर्णत: सामाजिक मानते हैं और कहते हैं कि "रास वह स्थल है, जहां प्रेमी-प्रेमिका का सम्बन्ध समाज व्यापी होकर रहस्यमयी भक्ति में परिणित ओ जाता है। वह व्यक्तिगत संबंध का पूर्ण समाजीकरण है, जीसे हम भक्ति कहते हैं।"[10] अर्थात राधाकृष्ण का सम्बन्ध प्रेमी प्रेमिका का सम्बन्ध है और कृष्ण गोपियों का सम्बन्ध भक्त भगवान का सम्बन्ध है जो एक प्रकार से सामाजिक प्रेम का प्रतीक है। इतना ही नहीं, कृष्ण लीला वर्णन में विविध असुरों के साथ कंस का वध सूर की लोक रक्षा की धारणा को ही बल प्रदान करता है।

तुलसीदास हिन्दी कायाकांश के उज्ज्वलतम नक्षत्र हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति की उदारता को उसकी समग्रता में अंकित किया है। जीवन को अभिव्यक्ति का पूर्ण अवसर तुलसी के यहाँ प्राप्त है। समाज, राजनीति, अर्थ, धर्म, दर्शन-सभी मनुष्य की व्याख्या में तल्लीन रहते हैं। लोक कल्याण के लिए किया गया उनका प्रयत्न पूर्ण जीवनख्रदर्शन है। तुलसी ने अपने समय को ईमानदारी से प्रस्तुत किया है। उन्होंने देखा कि पेट की आग बड़वाग्नि से भी भीषण है इसके लिये लोग अनेक प्रकार के कर्म करते हैं यहाँ तक की बेटा और बेटी तक बेचते हैं। सारी दुनियाँ 'दारिद दशानन के द्वारा आक्रांत है। न किसान को खेती की सुविधा है न बनिए को व्यापार की और न चाकर को चाकरी की। भिखारी को भीख भी नहीं मिलती। लोग जीविका विहीन होकर दुखी चित्त से एक दूसरे से कहते हैं- कहाँ जायँ? क्या करें?[11] समाज की आर्थिक हीनता का इससे प्रामाणिक साक्ष्य ग्रंथों में ढूँढना व्यर्थ है। तुलसी का रामचरितमानस तो मानव जीवन का अप्रतिम कोश है। वहाँ पग-पग पर मानव निर्माण का सूत्र निर्झरित होता रहता है।

रहीम गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन हिन्दी कविता मर्मज्ञ थे। स्वभाव से दानी और परोपकारी थे। इनकी दानशीलता हृदय की सच्ची प्रेरणा के रूप में थी संसार का इन्हे बड़ा गहरा अनुभव था। आचार्य शुक्ल कहते हैं कि "अनुभवों के मार्मिक पक्ष को ग्रहण करने की भावुकता इनमें अद्वितीय थी। अपने उदार ऊंचे हृदय को संसार के वास्तविक व्यवहारों के बीच रखकर जो संवेदना इन्होंने प्राप्त की, उसकी व्यंजना अपने दोहे में ही की है। तुलसी के वचनों के समान रहीम के वचन भी हिंदीभाषी भू-भाग में सर्वसाधारण के मुंह पर रहते हैं। इसका कारण है जीवन की सच्ची परिस्थितियों का मार्मिक अनुभव। रहीम के दोहे कोरे नीति के पद्य नहीं हैं। उनमें मार्मिकता है, उनके भीतर से एक सच्चा हृदय झांक रहा है। रहीम का हृदय द्रवीभूत होने के लिये कल्पना की उड़ान की अपेक्षा नहीं रखता था। वह संसार के सच्चे और प्रत्यक्ष व्यवहारों में ही अपने द्रवीभूत होने के लिये पर्याप्त स्वरूप पा जाता था।"[12] रहीम के भारतीय जीवन की सच्ची झलक मिलती है-

दुरदिन परे रहीम कह, भुलत सब पहिचानि।
सोच नहीं वित हानि को, जौ न होय हित हानि।।[13]

इस प्रकार भारतीय संस्कृति के प्रधान मूल्य- दया, क्षमा, करुणा, परोपकार, समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व इत्यादि हिन्दी के निर्गुण काव्य में सर्वथा उपलब्ध हैं। यही वे तत्व हैं जिनसे भारतीयता परिभाषित होती है। ये भारतीय संस्कृति और जीवन साधना के प्राण तत्व हैं। इन्ही शाश्वत मूल्यों से भारतवर्ष दुनियाँ की समस्त संस्कृतियों में पृथक व विशिष्ट महत्व रखता है। हिन्दी का निर्गुण काव्य मानव निर्माण का आकांक्षी है। भारतीय जीवन के दो महान शीर्षक- 'न दैन्यम, न पलायनम' इस साहित्य के मूल में हैं अत: हिन्दी का निर्गुण काव्य मानव को मानव बनाने की प्रयोगशाला है।

संदर्भ-सूची

1. सूरसागर, दशम स्कन्ध, पद 3719, पृ० 1320 (सभा संस्करण)
2. विनयपत्रिका, पद-152, तुलसी ग्रंथावली पृ० 536
3. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदरदास, पद 59, पृ० 106
4. मध्ययुगीन काव्यसाधना, डॉ० रामचंद्र तिवारी, पृ० 19
5. देखिए- वही (भूमिका भाग) पृ० 1
6. वही
7. कबीर- डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० 153 (1953)
8. कबीर ग्रंथावली, पृ० 70, साखी 24
9. मध्ययुगीन काव्य साधना, पृ० 38
10. महाकवि सूरदास, नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० 152
11. कवितावली, छंद 96-97
12. हिन्दी साहित्य का इतिहास- रामचंद्र शुक्ल, पृ० 129
13. वही पृ० 130

ज्योतिषीय गणना में माधावाचार्य का योगदान

डॉ० आभा द्विवेदी

असिस्टेंट प्रोफेसर (संस्कृत) सोनालाल झा महिला डिग्री कॉलेज, जंगल, छत्रधारी, झुंगियां, गोरखपुर

माधवाचार्य असाधारण प्रतिभा सम्पन्न विद्वान थे। धर्मशास्त्र के क्षेत्र में उनकी रचना 'कालमाधव' को अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त है। इस ग्रन्थ में माधवाचार्य ने काल (समय) को अत्यन्त वृहद् रूप से स्पष्ट किया है, जिससे ज्योतिषीय गणना सुगम हो जाती है।

मानव के दैनिक जीवन में प्रारम्भ से ही ज्योतिष का विशेष महत्व रहा है। ज्योतिष शब्द की व्युत्पत्ति 'ज्योतिषां सूर्यादि ग्रहाणां बोधकं शास्त्रं' की गयी है। ज्योतिष विशुद्ध रूप से एक विज्ञान है। ज्योतिष शब्द की उत्पत्ति 'युज दीप्तौ' धातु से हुई है। जिसका अर्थ अग्नि, प्रकाश व नक्षत्र होता है।

ज्योतिष न सिर्फ हमें तीज त्यौहार, उत्सव एवं शुभ-अशुभ समय का ज्ञान कराता है अपितु हमारे भविष्य में होने परिवर्तन का पूर्वानुमान लगाने में भी सहायक होता है। ज्योतिष का पूर्वानुमान पूर्णतः कालगणना पर आधारित होता है।

माधवाचार्य ने ज्योतिष कालगणना को अपने ग्रन्थ 'कालमाधव' में पाँच प्रकरणों के माध्यम से विस्तृत रूप से स्पष्ट किया है-

व्याख्या माधवाचार्यो धर्मान्पारा शरानथ।

तदनुष्ठान कालस्य निर्णयं वक्तुमुद्यत।।

प्रथम उपोद्घात प्रकरण- 'प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते' इसे चरितार्थ करते हुए माधवाचार्य ने प्रथम प्रकरण में इस ग्रन्थ के प्रयोजन को बताते हुए लिखा है कि धर्मानुष्ठान हेतु काल का निर्णय करने के लिए इस ग्रन्थ की रचना की गयी है। उन्होंने काल के विषय में दार्शनिक विवेचन करते हुए लिखा है कि नित्य काल ही ईश्वर का स्वरूप है, इसलिए सभी कार्यों के आरम्भ में ईश्वर का स्मरण किया जाता है-

उपोद्घाते कालसत्वं तस्य निर्णय योग्यता।

ईश्वरो नित्य कालात्मा चिन्तोऽयं सर्वकर्मसु।। कालमाधवकारिका 1/9

इस प्रकार उन्होंने काल को ईश्वर से अभिन्न माना है अर्थात् काल ईश्वर का ही रूप है।

दूसरा (वत्सर) प्रकरण- इस प्रकरण में उन्होंने वर्ष की कल्पना, चान्द्र, सावन तथा सौरवर्षों का पारस्परिक विभेद अयन, ऋतु, मास, मलमास तथा उसमें वर्जित कर्म-कलाप का विस्तृत विवेचन किया है। संवत्सर के भेद को बताते हुए माधवाचार्य ने लिखा है- सौर, सावन, नक्षत्र, चान्द्र और बार्हस्पत्य। इसके विषय में इन्होंने लिखा है कि 'सौर' नामक संवत्सर संक्रान्ति काल से बारह मास तक रहता है। 'सावन' नामक संवत्सर तीस दिन से लेकर बारह मास तक रहता है।

'बार्हस्पत्य' नामक संवत्सर बृहस्पति के एक राशि के भोगकाल तक रहता है और चान्द्र नामक संवत्सर ग्रहण तिलकादि व्रत में होता है। इन संवत्सरों को क्रमशः संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर, इदहवत्सर के नामों से भी जाना जाता है।

इस प्रकार में ही उन्होंने 'षडऋतुओं' के विषय में लिखा है कि चैत्र और वैशाख को वसन्त ऋतु, ज्येष्ठ और आषाढ़ को ग्रीष्म ऋतु, श्रावण और भाद्रपद को वर्षाऋतु आश्विन और कार्तिक को शरद्ऋतु, मार्गशीर्ष और पौष को हेमन्त ऋतु तथा माघ और फाल्गुन को 'शिशिर ऋतु' कहते हैं।

वसन्त ऋतवो द्वेधा चान्द्राः सौराश्च चान्द्रकाः।

चैत्राद्या अथ मीनाद्यमेषाद्या वा विवश्वतः।। कालमाधव 2/15

मास का निर्णय करते हुए माधवाचार्य जी ने लिखा है कि सावन तीस दिन और रात्रियों से युक्त है, ऐसा लोकव्यवहार में भी प्रसिद्ध है।

असंक्रान्त चान्द्रमास को 'मलमास' के नाम से जाना जाता है। इसे अधिमास भी कहते हैं। इस प्रकरण में उन्होंने मलमास में विहित एवं निषिद्ध कर्मों का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है।

तृतीय (प्रतिपद) प्रकरण- इस प्रकरण में माधवाचार्य ने तिथि का अर्थ काल, सीमा तथा कर्त्तव्य कर्म का वर्णन किया है। सर्वप्रथम प्रतिपद तिथि का वर्णन करते हुए माधवाचार्य ने लिखा है- यद्यपि चन्द्रमा की सोलह कलाओं का वर्णन मिलता है लेकिन तिथियों की गणना पन्द्रह ही होती है।

मुहूर्त के विषय में माधवाचार्य ने लिखा है कि दिन के पन्द्रहवें भाग को मुहूर्त कहा जाता है। प्रतिपदा तिथि को मुहूर्त के आधार पर पाँच भागों में बाँटा गया है। प्रतिपदा तिथि में ही व्रतोपवास का विधान करना चाहिए एवं बलि पूजा करनी चाहिए। प्रदोष व्यापिनी तिथि को नक्त तिथि कहते हैं।

प्रदोषव्यापिनी नक्ते तिथिः व्याप्तिर्दिनद्वये।। कालमाधव 3/42

चतुर्थ (द्वितीयादि तिथि) प्रकरण- इस प्रकरण में द्वितीया से लेकर पंचमी तिथि के विषय में विस्तार से विवेचन किया गया है। द्वितीया विधि का विवेचन करते हुए माधवाचार्य ने कहा है कि जो निर्णय प्रतिपदा तिथि के विषय में लिये गये हैं वही द्वितीय के विषय में जानना चाहिए।

अमावस्या की प्रतिपदा तिथि यदि युग्म ही होक महाफल देने वाली होती है।

जिस दिन के अन्तिम प्रहर में प्रथम चन्द्रदर्शन हो उसे शुक्ल पक्ष, की 'द्वितीय' मानना चाहिए। तृतीया के विषय में बतलाया है कि इस तिथि को यत्नपूर्वक 'रम्भा' नामक व्रत का पालन करना चाहिए। द्वितीया के शेष रहते तृतीया का निषेध किया गया है।

इस तिथि को विनायक, नाग और गौरी आदि का व्रत धारण करना चाहिए।

पंचमी- पंचमी के विषय में लिखा है कि पंचमी चतुर्थी से युक्त हो तो पंचमी तिथि विषयक कार्य नहीं करना चाहिए। शुक्लपक्ष की चतुर्थी को देवकर्म और पितृकर्म करना चाहिए।

षष्ठी- षष्ठी के विषय में उन्होंने बताया है कि स्कन्दव्रत को धारण करने वाले को षष्ठी में पारण करना चाहिए।

सप्तमी- सभी व्रतों में अष्टमी के पूर्व सप्तमी का ही ग्रहण करना चाहिए।

अष्टमी- अष्टमी के विषय में कहा है कि यह कृष्ण पक्ष की अष्टमी और चतुर्दशी हो तो व्रतादि करना चाहिए पर तिथियों पर विवाद की स्थिति में शुभकर्म नहीं करना चाहिए। रोहिणी नक्षत्रयुक्त अष्टमी तिथि उत्तम है।

'नवमी'- चैत्रमास शुक्ल पक्ष की नवमी 'रामनवमी' के नाम से जानी जाती है। मध्याह्न व्यापिनी पुनर्वसु नक्षत्र की चैत्रशुक्ल पक्ष की रामनवमी महाफलदायिनी होती है।

'दशमी तिथि'- दशमी तिथि के विषय में उन्होंने कहा है कि जिसमें सूर्य का उदय हो उस शुक्ल पक्ष की दशमी ग्राह्य होती है। जिसमें सूर्य अस्त हो वह कृष्णपक्ष की दशमी श्रेयस्कर होती है।

'एकादशी तिथि'- एकादशी के विषय में माधवाचार्य ने लिखा है कि दोनों पक्ष की एकादशी को व्रत रहना चाहिए। उन्होंने गरुण पुराण का उद्धरण देते हुए लिखा है कि जो व्यक्ति एकादशी व्रत नहीं करता वह अन्धकार से युक्त 'रौरव' नामक नरक में जाता है-

'रौरव' नरक

न करोति हियो मूढ़: एकादश्या मुयोषणम्।

स नरो नरकं याति रौरवं तमसावृत्तम्।। कालमाधवकारिका पृ0-29

यदि एकादशी का क्षय हो तो द्वादशी व्रत का पालन करना चाहिए। द्वादशी के विषय में माधवाचार्य ने लिखा है श्रावण से युक्त द्वादशी पुण्यतमा होती है। श्रावण के योग वाली द्वादशी यदि बुधवार को हो तो वह द्वादशी महती फलदायिनी होती है। भाद्रपद मास की द्वादशी भी यदि श्रावण नक्षत्र से युक्त हो तो वह भी फलदायिनी होती है। 'त्रयोदशी तिथि' के विषय में लिखा है कि 'शुक्ल पक्ष' की त्रयोदशी लाभकारी नहीं होती है। अपितु कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी फलदायिनी होती है।

कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी को 'अनङ्ग त्रयोदशी' के नाम से जाना जाता है। अनङ्ग त्रयोदशी 'मार्गदशीर्ष शुक्लपक्ष' में हो तो वह पुण्य देने वाली होती है।

चतुर्दशी निर्णय- चतुर्दशी के सम्बन्ध में माधवाचार्य जी ने लिखा है कि भाद्रपद की शुक्लपक्ष की चतुर्दशी में अनन्तव्रत रहना चाहिए। चतुर्दशी में पृथक्-पृथक् देवताओं की पूजा करनी चाहिए।

कुछ स्थानों पर शुक्ल चतुर्दशी का विधान बतलाया गया है। माघकृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तथा शिवरात्रि का फल अश्वमेघफल के समान बतलाया गया है।

पञ्चदशी तिथि- पञ्चदशी के निर्णय में माधवाचार्य ने बताया है कि पूर्व विद्या अमावस्या या पूर्णिमा को कोई भी व्रत धारण नहीं करना चाहिए। इसमें सावित्री व्रत को उत्तम बताया गया है।

भूतविद्वान् कर्त्तव्या अमावस्या च पूर्णिमा।

वर्जयित्वा मुनिश्रेष्ठ: सावित्रीव्रतमतुत्तमम्।। कालमाधवकारिका पृ0 38

सावित्री व्रत के निर्णय में बताया गया है कि जब अष्टादश घटी चतुर्दशी व्यतीत हो जाय तो सावित्री व्रत का पालन करना चाहिए। इस व्रत के पश्चात् परविद्वा पूर्णिमा या अमावस्या में व्रत धारण करना चाहिए।

तिथियों के निर्णय के पश्चात् माधवाचार्य जी ने 'श्राद्ध के निर्णय' में लिखा है कि अपराह्न में ही पितरों का श्राद्ध करना चाहिए। पर्व के निर्णय में बौधायन के वचन को प्रमाण देते हुए उन्होंने लिखा है कि सन्धि के पूर्व अथवा पर काल में ही याग का आरम्भ करना चाहिए। सन्धिकाल में कभी भी याग का आरम्भ नहीं करना चाहिए।

तत्पश्चात् इस प्रकरण में माधवाचार्य जी ने अत्यन्त प्रामाणिक उद्धरणों के आधार पर सन्धि निर्णय, प्रवृत्ति निर्णय तथा विकृति काल निर्णय का विशद् विवेचन किया है।

पञ्चम् (नक्षत्र) प्रकरण- इस प्रकरण में माधवाचार्य जी ने धार्मिक कृत्यों, नक्षत्रों, योग तथा करण का उपयुक्त वर्णन किया है। सर्वप्रथम धार्मिक कृत्य के लिए नक्षत्रों के विषय में उन्होंने कहा है कि सूर्य के उदय और अस्त से नक्षत्रों का निर्णय करके धार्मिक कृत्यों को करना चाहिए। यदि रात्रियोग हो तो दूसरे दिन अपवास करना चाहिए परन्तु रात्रियोग का निर्णय ज्योतिष-शास्त्र से ही करना चाहिए लौकिक से नहीं। नक्षत्र के निर्णय के पश्चात् ही उपवास व्रत धारण करना चाहिए। योग के विषय में माधवाचार्य जी ने कहा है कि अर्धरात्रि का योग ग्राह्य नहीं होता है अत: शास्त्र द्वारा बनायी गयी रीति से उपवास के पश्चात् ही पारण करना चाहिए।

करण की चर्चा करते हुए कहा है कि जिसमें करण हो उसी दिन वह कार्य करना चाहिए, भद्राकाल में किसी भी प्रकार का शुभकर्म नहीं करना चाहिए। साथ ही उपवास व्रत धारण करने वाले के सम्बन्ध में यह विनियोग है कि उन्हें भद्राकाल में कुछ भी ग्रहण नहीं करना चाहिए, उससे पृथक् ही कुछ ग्रहण करना चाहिए।

संक्रान्तिकाल- संक्रान्तिकाल का निर्णय करते हुए माधवाचार्य ने लिखा है कि मेषादि द्वादश राशियों का सूर्य के चारो ओर संक्रमण करना अथवा प्रवेश करना 'संक्रान्ति' काल कहा जाता है। इस संक्रान्ति काल में शास्त्रविहित एवं निषद्ध कर्मों का वर्णन करते हुए माधवाचार्य जी ने कहा है कि संक्रान्ति काल में होम, स्नानादि विहित कर्मों को करना चाहिए । इस प्रकरण में उन्होंने बारह राशियों के संक्रमणकाल में विहित एवं निषिद्ध कर्मों का विशद् विवेचन किया है।

ग्रहण निर्णय- ग्रहण काल का निर्णय करते हुए माधवाचार्य जी ने लिखा है कि दो ग्रहण होते हैं- सूर्यग्रहण एवं चन्द्रग्रहण। चन्द्रग्रहण पूर्णिमा को ही होता है। यदि पूर्णिमा तिथि को राहु सम्पूर्ण चन्द्रमण्डल को ग्रसता है तो उसे पूर्ण चन्द्रग्रहण के नाम से जाना जाता है। सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण के समय भोजन नहीं करना चाहिए। मोक्ष के पश्चात् ही स्नान करके भोजन करना चाहिए।

ग्रहणं तु भवेदिन्दोः प्रथम दधियानतः।

भुञ्जीताऽऽवर्तनात्पूर्वं पश्चिमे प्रथमादथ।। कालमाधवकारिका पृष्ठ 47

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि माधवाचार्य द्वारा विरचित कालमाधव नामक ग्रन्थ का ज्योतिषीय कालगणना में महत्वपूर्ण योगदान है। इस ग्रन्थ में कालविषयक संवत्सर अयन ऋतु, मास, तिथि, नक्षत्र आदि की जो चर्चाएं हुई हैं, उसमें काल समय विशेष के रूप में वर्णित है।

सही काल गणना के आधार पर ही ज्योतिष में पूर्वानुमान व परिणाम के बीच की भ्रान्ति (अन्तर) को कम किया जा सकता है। इस ग्रन्थ के माध्यम से आज हम ज्योतिषीय गणना में पूर्णरूपेण सक्षम हो पा रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

(i) माधवाचार्यकृत कालमाधव- सम्पादक- डॉ0 ब्रजकिशोर स्पाई, श्री जयेन्द्र सरस्वती, प्रकाशक-चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

(ii) माधवाचार्य कृत, व्याख्या-भट्ट वैद्यनाथ सूरि कृत, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली वृत्ति-1977

(iii) बौधायन धर्मसूत्रम्- श्री गोविन्द स्वामी प्रणीत, चौखम्बा संस्कृत सिरीज ऑफिस वाराणसी।

(iv) धर्मशास्त्र का इतिहास- पी0वी0 काणे, ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना, 1953

(v) पुराणानुशीलन- म0म0 गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी प्रकाशक- विहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना-1970

(vi) पुराण विमर्श- लेखक आचार्य बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक-चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

स्वतंत्रता आंदोलन में उत्तराखण्ड क्षेत्र की महिलाओं की भूमिका-एक अवलोकन

डॉ० अर्चना डिमरी

अस्सिटेंट प्रोफेसर(तदर्थ), प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, कन्या गुरूकुल परिसर, देहरादून

उत्तराखण्ड क्षेत्र अपनी विषम भौगौलिक संरचना के कारण कई प्रकार की कठिनाईयों से हमेशा जूझने के साथ ही भविष्य की असीम सम्भावनाओं में विकास की ओर अग्रसर होने के लिए हमेशा प्रयासरत रहा है। उत्तराखण्ड क्षेत्र भी भारतीय समाज की तरह पुरूष प्रधान रहा है परन्तु इसके बावजूद यहाँ की महिलाओं की जिजीविषा ने यहाँ हमेशा वैचारिक उर्जा व चेतना का संचार किया है, फिर वो आर्थिक, सामाजिक, राष्ट्रीय या फिर अन्तराष्ट्रीय मुद्दे ही क्यों न रहे हों। यहाँ की महिलाओं ने संघर्ष व आदोलनों की ऐसी मजबूत नींव रखी है जिससे यहाँ के आंदोलन विश्व पटल पर छा गये जैसे-मद्यनिषेध, वन-आंदोलन, उत्तराखण्ड राज्य निर्माण आंदोलन और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन आदि। सभी आंदोलनों में महिलाओं ने अपनी कठिन दिनचर्या, विषम परिस्थितियों में भी सामाजिक हितों, समता, न्याय हेतु अपने आप को समर्पित किया। प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तराखण्ड क्षेत्र में स्वतंत्रता आंदोलन में यहाँ की महिलाओं की भूमिका पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है, जिससे नई पीढ़ियों कों उत्तराखण्ड में महिलाओं के संघर्ष व आंदोलन की जानकारी के साथ ही प्रेरणा प्रदान की जा सके, ताकि हम इस बात का भली-भाँति मनन कर सके कि: किसी सभ्यता की मूल भावना को समझने और उसकी श्रेष्ठता को पहचानने तथा सीमाओं को चिन्हित करने का सबसे अच्छा तरीका है, उसके समाज में महिलाओं की स्थिति और उनको दिए जाने वाले अवसरों का अध्ययन किया जा सके। विवाह, कानून और परम्परायें हमें यह पहचानने की क्षमता देती हैं कि पुरूष स्त्रियों को बाजारी वस्तु या युद्ध में जीती गई सम्पत्ति मानते थे ,या फिर यह मानते थे कि पत्नी अंतत: अपने पति की बेशकीमती साथी है जिसके सहयोग के बिना पारिवारिक जीवन में आनंद और सफलता असम्भव है।[1]

स्वतंत्रता आंदोलन में भारतीय महिलाओं की सहभागिता की आरंभिक पृष्ठ भूमि

स्वतंत्रता संघर्ष में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी की शुरूआत एनी बेसन्ट के प्रयासों से शुरू हुई। 1917 में एनी बेसन्ट कांग्रेस की प्रथम महिला अध्यक्षा बनी।उन्होनें राष्ट्रीय आंदोलन में भागीदारी को स्त्रियों का धार्मिक कर्तव्य बताया। राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्षा के रूप में उन्होनें कहा कि -सहनशीलता तथा आत्मबलिदान से ओत-प्रोत स्त्रियों की बड़ी संख्या में, हमारी सहायता के लिए आगे आने से होमरूल आंदोलन की ताकत दस गुना अधिक बढ़ गई है। हमारी लीग के सर्वोत्तम सिपाही और सिपहसालर भारतीय स्त्रियों में से ही है।[2] एनी बेसन्ट के साथ ही स्त्री चेतना को राष्ट्रीय आंदोलन में जागृत करने की सक्रियता सरोजनी नायडु द्वारा भी की गयी। 1917 में कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में अपने उद्बोधन में उन्होनें कहा कि: एक स्त्री को अंधेरे में पथ-प्रदर्शन के लिए प्रकाश पुंजों की तरह कार्य करना होगा, और निष्ठा की राह में आपकी मृत्यु होने पर आपके मानक ध्वजवाहकों की आवश्यकता पड़ेगी, भारत का स्त्रीत्व आपके ध्वजवाहकों एवं शक्ति संबल के रूप में आपके साथ होगा, और यदि आप मर भी जाती हैं, तो याद रखिए चित्तौड़ की पद्मिनी की भावना ने सदृष भारत के पुरूषों के दिलों में आपका सम्मानीय स्थान होगा।[3] स्त्रियों की वैचारिक चेतना व उर्जा को स्वाधीनता आंदोलन में प्रत्यक्ष भागीदारी के द्वारा सामने लाने में गाँधी जी के द्वारा अभूतपूर्व योगदान दिया गया। आधुनिक भारत में गाँधी जी पहली बार आम भारतीय नारी को चूल्हे-चौके, पर्दे की अलंघ्य सीमा रेखा से बाहर सामाजिक घटना प्रवाह के बीच खींच लाने में तथा उसकी वैयक्तिक अस्मिता का बोध कराने में सफल रहे।[4]

उत्तराखण्ड के औपनिवेशिक काल में नीतियों के विरूद्ध महिलाओं के विरोध की शुरूआत

औपनिवेशिक उत्तराखण्ड में अंग्रेजी हुकूमत द्वारा शोषण की विभिन्न नीतियों ने यहाँ महिलाओं व पुरूषों दोनों ही वर्गों में वैचारिक चेतना के साथ विरोध के स्वरों को गतिशीलता प्रदान की। उत्तराखण्ड में अंग्रेजी हुकूमत ने सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था पर बड़ा प्रभाव डाला। क्षेत्र में प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करती स्थानीय अर्थव्यवस्था पर अपना नियंत्रण स्थापित किया। वनों पर आश्रित उत्तराखण्ड की जीवनशैली में अंग्रेजी वन नीतियों ने स्थानीय लोगों को शोषित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। 1911-1917 के मध्य हुआ वन बन्दोबस्त अंग्रजों कें अनियंत्रित अधिकार व शोषण का सर्वोच्च बिन्दु के रूप में बन कर उभरा। 1911-1917 तक गढ़वाल में जो वन व्यवस्था की गयी उसमें अस्सी साल के लिए निर्धारित गाँवों की सीमा को छीन लिया गया।[5] वनों से पत्तियाँ तोड़ने पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया और जुर्माना भी लिया गया।[6] इसका एक उदाहरण शिवप्रसाद डबराल ने देते हुए कहा कि एक व्यक्ति ने पत्ता बीड़ी बनाने के लिए सड़क से लगे जंगल से बाँज की एक छोटी सी टहनी तोड़ी, जिसमें 10-12 पत्तियाँ थी, उस व्यक्ति को दण्ड के रूप में पाँच रूपया जुर्माना भरना पड़ा।[7] इसके अलावा उत्तराखण्ड क्षेत्र में कुली बेगार, कुली उतार, कुली बर्दायश जैसी शोषक प्रथायें स्त्री पुरूष दोनों का ही शोषण करती थी। जिसमें कुली बेगार का अभिप्राय उत्तराखण्ड में मजदूरी रहित या निम्न मजदूरी सहित किया जबरन श्रम और जबरन सामग्री ले जाने की प्रक्रिया से है।[8] कुली उतार से अभिप्राय सरकारी या गैर सरकारी बोझों के ठुलान हेतु जबरन मजदूरी सहित बुलाहट से था।[9] और तीसरी प्रथा बर्दायश के अंतर्गत अंग्रेजी हुकुमरानों, अंग्रेजी

सैलानियों, सैनिको के उत्तराखण्ड में आने पर नि:शुल्क या बहुत कम कीमत पर उन्हें बर्तन, सत्तु, अनाज जैसी सामग्रियाँ प्रदान की जाती थी।[10]

इन तीनों प्रथाओं की भुक्तभोगी उत्तराखण्ड की महिलाएँ भी हुई। एक उदाहरण से शोषण की पराकाष्ठा को समझा जा सकता है। अधिकारियों, कर्मचारियों की क्रूरता व सामान्य परिवारों की भयग्रस्तता के तहत गाय भैंस की कमी में, दूध उपलब्ध कराने मे असमर्थता के बावजूद, प्रशासनिक कर्मचारियों से आतंकित एक विधवा ने स्वयं के दूध को जमाकर दही बनाया तथा उससे "साहब" की दही की मांग को पूरा किया।[11] इस प्रकार शोषण की पराकाष्ठा होने पर जब इन प्रथाओं के विरोध के स्वर उठे तब इसमें स्त्रियों ने भी प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप में साथ दिया।

उत्तराखण्ड के स्वतंत्रता आंदोलन मे महिलाओं की सक्रिय भूमिका का आरंभ

उत्तराखण्ड मे महिलाओं में वैचारिक चेतना के विकास के लिए स्त्री शिक्षा के विकास पर विभिन्न स्तरों पर प्रयास किये गये। देहरादून के एक वकील ज्योति स्वरूप, जिन्होने देहरादून में राजनीतिक गतिविधियों की शुरूआत की, उनकी पत्नी महादेवी ने 1902 में छ: लड़कियों के साथ कन्या पाठशाला की नीव रखी और औपचारिक उद्घाटन 15 सितम्बर 1902 में हुआ। इसके बाद इस पाठशाला ने स्वतंत्रता आंदोलन की गतिविधियों में अपनी प्रतिभागिता को बनाया।[12] 1912 में देहरादून में ही 'स्त्री समाज' की स्थापना की गई। नौ नवम्बर, 1917 को हुक्मा देवी ने स्त्री समाज की एक सभा में कहा कि: महिलाओं की दयनीय दशा का मुख्य कारण अज्ञानता है। इसी अज्ञानता के कारण एक पुरूष को उन्हें दबाने का मौका मिल जाता है। धर्म ने स्त्री और पुरूष को बराबर का स्थान दिया है। बिना पत्नी की उपस्थिति के कोई भी धार्मिक क्रिया कलाप पूर्ण नही हो सकता।[13] 1920 के अंत में गाँधी जी द्वारा शुरू किये गये असहयोग आंदोलन में स्त्रियों की भागीदारी के आह्वान ने उत्तराखण्ड की महिलाओं पर भी प्रभाव डाला है, और फिर उत्तराखण्ड में सक्रिय रूप में महिलाओं की भूमिका उभर कर सामने आयी।

उत्तराखण्ड में स्वतंत्रता आंदोलन मे महिलाओं की सक्रियता का दौर

1920-21 के असहयोग आन्दोलन के द्वारा शुरू हुई राजनीतिक गतिविधियों मे महिलाओं की सक्रियता निरन्तर बढ़ती चली गई। आन्दोलनकारियों की छिपने में मदद करना, भोजन तथा अन्य सामग्रियाँ छिपे आन्दोलनकारियों तक पहुँचाना, गिरफ्तार लोगों के परिवारों की देखभाल करना।[14]

6 अप्रैल, 1930 को गुजरात में दांडी क्षेत्र में नमक बनाकर गाँधी जी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरूआत की। नमक कानून को भंग करने में शहरों की, धनी और निर्धन युवा व वृद्ध सैकड़ों-हजारों स्त्रियाँ परंपरागत प्रथा की श्रृखंलाओं को तोड़कर घरों से बाहर आ गई। निषेद्ध नमक की पुड़िया लेकर वे गली-कूचों के मोड़ों पर खड़ी हो जाती और आवाज लगाती-हमने नमक का कानून तोड़ दिया है। हम स्वतंत्र हो गए हैं, यह लो स्वतंत्रता का नमक। कौन लेगा स्वतंत्रता का नमक।[15] देश भर में नमक आंदोलन के तहत उत्तराखंड में भी खाराखेत नामक जगह पर नून नदी में नमक बनाया गया-20 अप्रैल, 1930 में कई आंदोलन कारियों जिसमें पं. नारायण डंगवाल, श्री नरदेव शास्त्री, श्री बिहारीलाल, श्री हुलास वर्मा व श्री महावीर त्यागी को सजा हुई।[16] इसी आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी भी देखने को मिली। महावीर त्यागी की पत्नी शर्मदा त्यागी ने महिलाओं का नेतृत्व किया, श्रीमती राम लुभाई, श्रीमती आशा देवी, श्रीमती भुवनेश्वरी देवी, श्रीमती करदार देवी ने सक्रिय भूमिका निभाई। शर्मदा त्यागी अपनी एक महिने की पुत्री के साथ जेल भी गयी। स्वतंत्रता आन्दोलन में महिलाओं के प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप में भागीदारी की कई घटनाऐं घटी है जिनमें महादेवी कन्या पाठशाला में विदेशी वस्तुओं का त्याग कर खादी पहनने से विरोध की शुरूआत के पश्चात उन्होंने सक्रिय रूप में स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी भागीदारी निभानी शुरू की जिसके तहत उमा रानी जो कि गुरूकुल काँगड़ी में संस्थापन स्वामी श्रद्धानंद की बाद में पौत्र वधु भी बनी, ने अपने अदम्य साहस का परिचय कई बार दिया उन्होंने 1931 में अंग्रेज सरकार द्वारा शहीद भगत सिंह को फाँसी देने के शोक और विरोध में पाठशाला की अन्य छात्राओं के साथ सभा की। 1942 में भी महात्मा गांधी के सचिव महादेव देसाई, की मृत्यु पर शोक प्रकट करने के लिए देहरादून के बाजार उमा रानी के अनुरोध पर बंद रहें। उमा रानी की पुकार पर सभी कक्षाओं से छात्राओं ने बाहर आकर नारे लगाए और पाठशाला से बाहर जाकर उमा रानी के साथ आन्दोलन में शामिल भी हुई। जब 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, तब सभी शीर्ष राष्ट्रीय नेताओं को जेल में डाल दिया गया। इस बात से पूरे देश में जनता क्रोधित होकर सड़कों पर आ गयी थी और आन्दोलन की बागडोर उन्होने खुद सभाँल ली थी। ऐसे समय में महादेवी कन्या पाठशाला की छात्राओं ने भी जुलूस निकाले व प्रदर्शन किये और उन्होंने पाठशाला कें विस्तृत क्षेत्र में हो रही सरकारी खेती को भी नष्ट किया ताकि इनसे होने वाली आमदनी सरकार के पास न जा सके। जब 26 जनवरी 1930 में लाहोर में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने वार्षिक अधिवेशन में 'पूर्ण स्वराज' का प्रस्ताव पारित किया था, तब से 26 जनवरी स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाया जा रहा था। 26 जनवरी, 1943 को महादेवी कन्या पाठशाला की छात्राओं ने अंग्रेज सरकार का झंडा यूनियन जैक उतार दिया और तिरंगा झण्डा फहरा दिया था। जो कि उस समय की बहुत बड़ी घटना थी। 15 अगस्त, 1947 में जब देश की स्वतंत्रता की घोषणा हुई थी तो उस दिन, रात में महादेवी कन्या पाठशाला की छात्राओं ने हॉस्टल की छत से लटकते तांबे के घण्टे को रात भर बजाया ताकि स्वतंत्रता की गूँज चहुँ ओर हमेशा गूंजती रहे।[17]

1923 में एक और महत्वपूर्ण घटना घटी, आर्य प्रतिनिधि पंजाब की संरक्षता में कन्या गुरूकुल की स्थापना दिल्ली में हुई। इसके बाद 1927 में कन्या गुरूकुल देहरादून में स्थापित किया गया। श्रीमति विद्यावती सेठ इसकी आचार्या बनी।[18] कन्या गुरूकुल ने स्त्री शिक्षा व वैचारिक चेतना को जागृत करने का अभूतपूर्व कार्य किया। कन्या गुरूकुल की आचार्य रह चुकी चन्द्रावती लखनपाल ने आचार्य रामदेव के स्त्री शिक्षा को विकसित करने के लिए किये गये उनके लगन के लिए कहा कि: आचार्य ने कन्या गुरूकुल में स्त्रियों की वैचारिक चेतना व लगन को बढ़ाने के लिए अनगिनत प्रयास किये। उनके इस लगन के कारण पं. जवाहरलाल, राजेन्द्र प्रसाद, पुरूषोत्तम दास टंडन और महात्मा गाँधी जैसे नेता कई बार कन्या गुरूकुल परिसर, देहरादून आये।[19] कन्या गुरूकुल का गाँधी जी से पुराना नाता रहा। उन्होंने अपने अनेक लेखों में गुरूकुल के बारे में लिखा। जब सन् 1928 के जुलाई अगस्त के महिने में यहाँ की छात्राओं ने अपने फलाहार के पैंसे बचाकर 200 रू. गाँधी जी को आन्दोलन के लिए भेजे, तो यह बात गाँधी जी को गहराई तक छू गई और उन्होंने 'नवजीवन' में 'छात्राओं का त्याग' नामक शीर्षक से एक लेख लिखा।[20] अक्टूबर, 1929 को गाँधी जी कन्या गुरूकुल आए और उन्होने छात्राओं से संवाद भी किया। इसके अलावा कन्या गुरूकुल में छात्राओं ने सूत कातने की एक प्रतियोगिता में भी भाग लिया। छात्राओं ने सूत के इतने ज्यादा गट्ठर बना दिए कि महात्मा गांधी

ने कहा कि मैं इन्हें तो उठा नहीं सकता, पर आप इनसे चादर बनायें जिसे मैं स्वयं इस्तेमाल करूंगा।[21] ऐसे कई उदाहरणों से स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी नजर आती है, जिसमें उन्होंन अपने अदम्य साहस व बलिदान से निभाया। इसी तरह जेल का कष्ट झेलने वाली में से श्रीमती लुभाई देवी और श्यामा देवी के अलावा भी कुछ महिलाएँ थी।[22] अल्मोड़ा तथा नैनिताल में भी स्वतंत्रता आंदोलन में पहाड़ की महिलाओं ने सक्रिय भूमिका निभाई। अल्मोड़ा में बिसनी देवी साह का नाम कांग्रेस कार्यकर्ताओं की भूमिका में सर्वप्रथम है।[23] बिसनी देवी किशोरावस्था से ही स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय हो गयी थी, और भारत की स्वतंत्रता के बाद भी अपनी वैचारिक भागीदारी को निभाती रही। भारत छोड़ो आंदोलन में भी उन्होनें अहम भूमिका निभाई। अल्मोड़ा की बिसनी देवी को जब गिरफ्तार किया गया और उन्हें अल्मोड़ा जेल मे रखा गया तब उन्होने वहाँ भी जन चेतना को फैलाने का कार्य किया उनकी कही हुई पंक्तियाँ आज भी स्मरणीय है-

जेल न समझो बिरादर
जेल जाने के लिए
यह कृष्ण मन्दिर है
प्रसाद पाने के लिए।।

इसके अलावा देहरादून की चन्द्रावती लखनपाल ने आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई।[24] चन्द्रावती लखनपाल को जून 1932 में आगरा में हुए संयुक्त प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन की सभानेत्री चुना गया। उन दिनों सविनय अवज्ञा आन्दोलन अपने चरम पर था।जब सम्मेलन में प्रतिभाग करने के लिए वो पहुँची तो उन्हे गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें एक वर्ष का कारावास की सजा भी मिली। जेल से रिहायी के पश्चात चन्द्रावती जी ने अध्यापन क्षेत्र में पदार्पण किया। उन्होने महादेवी पाठशाला में 1936 से 1942 तक प्रधानाध्यापिका का पद संभाला। इसके अलावा उन्होंने 1945 से 1952 तक कन्यागुरूकुल देहरादून में भी प्रधानाध्यापिका के पद को संभाला। चन्द्रावती देहरादून में महिला कांग्रेस की अध्यक्षा भी बनाई गई।[25] एक शिक्षाविद् व स्वतंत्रता सेनानी के रूप में चन्द्रावती लखनपाल ने अभूतपूर्व कार्य किये, उन्होने दिसंबर 1927 में अपनी पहली पुस्तक लिखी 'मदर इंडिया का जवाब' यह पुस्तक उन्होंने मिस कैथरीन मेयो की पुस्तक 'मदर इंडिया के उत्तर में लिखी थी। उनकी यह पुस्तक इतनी लोकप्रिय हुई कि इसके दो संस्करण प्रकाशित हुए। यह महिला चिंतको की महत्वपूर्ण कृतियों में से एक मानी जाती है। मिस मेयो की पुस्तक साइमन कमीशन के आगमन से पूर्व ब्रिटिश सरकार द्वारा फैलाए जा रहे भारत विरोधी प्रचार पर आधारित थी। भारत की छवि को विश्व पटल पर धूमिल करती मिस मेयो की पुस्तक के जवाब में 'मदर इंडिया का जवाब' चन्द्रावती लखनपाल के द्वारा मेयो के फैलाए भ्रम को दूर करने का एक महत्वपूर्ण कदम था।[26] चन्द्रावती लखनपाल ने अपनी पुस्तक में आमुख में लिखा है कि: मिस मेयो की बहुत सी बातें झूठी हैं। मैं चाहती हुँ, कि भारतवर्ष में एक-एक व्यक्ति के हाथ में मेरी यह पुस्तक पहुँचें और सबको मालूम हो जाए कि हमें बदनाम करने के लिए जहाँ मिस मेयो ने झूठ बोलने में कसर नहीं छोड़ी, वहाँ कहीं-कहीं सच बोलने में भी कसर नहीं छोड़ी। पाठक इन शब्दों की गूँज में पुस्तक के पन्ने पलट दिए और अपने समाज की गन्दगी को भस्म कर देने के लिए आँखों से चिनगारियाँ निकालते चलिए। यही मदर इंडिया का असली जवाब है।[27] इस प्रकार अपनी लेखनी से स्वतंत्रता आंदोलन की अलख जगाने का महत्वपूर्ण कार्य चन्द्रावती लखनपाल ने किया जो कि आज इतिहास में कहीं दब सा गया है जिसे आज की पीढी को जानना बेहद जरूरी है।

14 जून, 1929 की शाम नैनीताल डॉट (वर्तमान में बस स्टेशन) में सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया जिसमें गाँधी जी कुमाऊँ की दूसरी यात्रा पर आये थे। गाँधी जी ने यहाँ महिलाओं की जन सभा में चर्खा व स्वदेशी अपनाने पर बल दिया।[28] 26 जनवरी, 1930 में हुए झण्डा सत्याग्रह में पुरूषों के असफल होने पर निर्भीक होकर महिला सत्याग्रहियों ने प्रशासन के विरोध के बावजूद अल्मोड़ा के नगरपालिका भवन में अपने प्राणों की बाजी लगाकर झंडा फहराया।[29] नैनीताल क्षेत्र की स्वतंत्रता सेनानी महिलाओं की तो एक लंबी सूची है, जिसमें श्रीमती कुंती देवी, श्रीमती कविया देवी, श्रीमती भगवती देवी, श्रीमती भागीरथी देवी, श्रीमती शोभावती मित्तल, श्रीमती सरस्वती देवी आदि अनगिनत महिलाओ नें कैद की सजा पाई है।[30] इस प्रकार महिलाओं ने नि:स्वार्थ राष्ट्र प्रेम को दर्शाते हुए स्वतंत्रता आन्दोलन की जन चेतना फैलाने का न केवल कार्य किया बल्कि कई बार जेल यात्रा भी की। सभी तरह की बाधाओं के बावजूद उत्तराखण्ड की महिलाओं नें स्वतंत्रता आन्दोलन में अपनी सहभागिता को सक्रिय रूप से निभाया। आज आवश्यकता है कि स्वतंत्रता आन्दोलन में क्षेत्रीय महिलाओं की भूमिका को सामने लाकर महिलाओं के मध्य प्रेरणा स्रोत व गर्व की अनुभूति उत्पन हो सके ताकि उत्तराखण्ड की महिलाओं द्वारा किए गए अभूतपूर्व योगदान को वो मुकाम मिला सकें जिसकी वो हकदार हैं।

सन्दर्भ व टिप्पणियाँ

1 अल्तेकर,एङ्ग्एसङ्ग्: द पोजिशन ऑफ वीमेन इन हिंदू सिविलाइजेशन,(1939) पुनमुद्रित(1987), नयी दिल्ली प्रकाशन।
2 सरकार, सुमित: मार्डन इंडिया,1983, प्रकाशन नयी दिल्ली।
3 सीता रमैया, पट्टाभि: हिस्ट्री ऑफ दि इंडियन नेशनल कांग्रेस, खण्ड-1, 1969, प्रकाशन-एस. चाँद एण्ड सन्स, नयी दिल्ली।
4 देसाई, ए.आर: भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, 1977 प्रकाशन मैकमिलन दिल्ली।
5 गैरोला, तारादत्त: सलेक्टेड रैवन्यू डिसीजंस ऑफ कुमाऊँ, 1938, प्रकाशन-इलाहबाद प्रकाशन।
6 डबराल, शिवप्रसाद: उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग-7,1969, प्रकाशन दोगड्डा(गढ़वाल)।
7 डबराल, शिवप्रसाद: उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग-8, 1976, प्रकाशन दोगड्डा (गढ़वाल)।
8 दि रेग्यूलेशन ऑफ दि गवर्नमेंट ऑफ फोर्टविलीयम,वा. II, रेग्यूलेशन III अभिलेखागार, देहरादून।
9 जब ब्रिटिश अधिकारी उत्तराखण्ड क्षेत्र में दौरा करते तो स्थानीय लोगों को उनके सामान उठाने के लिए कुली की व्यवस्था करनी होती थी कुली उतार एक अनिवार्य व्यवस्था थी इसमें किसी भी व्यक्ति की स्थिति हैसियत नही देखी जाती थी। (अल्मोड़ा,अखबार:4 अगस्त 1913)
10 स्टोवैल, बी.ए: ए मैन्यूअल ऑफ दि लैण्ड टैन्यूर्स ऑफ दि कुमाऊँ डिविजन, (1906), 1966 प्रकाशन- इलाहबाद।

11 पाठक शेखर: उत्तराखण्ड में कुली बेगार प्रथा, 1987 दिल्ली।

12 भटनागर, स्वदेश: प्रकाश-पुंज महादेवी कन्या पाठशाला, 2018 समय साक्ष्य देहरादून द्वारा प्रकाशित।

13 हरिहर लाल, प्रेम: दूनवैली डाऊन दि ऐजेस, 1993,देहरादून।

14 कैंडा, सावित्री: कुमाऊँ की महिलाओं का राष्ट्रीय संग्राम तथा स्थानीय जन आंदोलनों में योगदान (20वीं शताब्दी में), 1989, अप्रकाशित शोध प्रबंध, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनिताल।

15 पालीवाल, कृष्णदत्त: नारी विमर्श की भारतीय परंपरा, 2014, सस्ता साहित्यमंडल प्रकाशन नयी दिल्ली।

16 नमक सत्याग्रह आंदोलन में उत्तराखण्ड का योगदान, क्षेत्रीय अभिलेखागार में प्रदर्शित अभिलेखों के चित्र 1।

17 भटनागर, स्वदेश: प्रकाश-पुंज महादेवी कन्या पाठशाला, 2018 समय साक्ष्य देहरादून द्वारा प्रकाशित।

18 विद्यालंकार, रामगोपाल: आचार्य रामदेव, संपादक डॉ. धर्मपाल: आचार्य रामदेव जी आदर्शवाद के जयोति स्तम्भ व्यक्तित्व एवं कृतित्व, 1991, वैदिक प्रकाशन, हनुमान रोड़ नई दिल्ली।

19 लखनपाल, चन्द्रावती: श्री आचार्य रामदेव- एक महान आत्मा, संपादक डॉ. धर्मपाल: आचार्य रामदेव जी आदर्शवाद के जयोति स्तम्भ व्यक्तित्व एवं कृतित्व, 1991, वैदिक प्रकाशन, हनुमान रोड़ नई दिल्ली।

20 गांधी महात्मा: कलैक्टेड वर्कस ऑफ महात्मा गांधी, 1985 वा.. 42 पृ. 351, सस्ता साहित्य प्रकाशन।

21 भेंटवार्ता: सुनील भट्ट, क्षेत्रीय इतिहास व साहित्य पर लेखन करने वाले, प्रसार भारती, नई दिल्ली उपनिवेशक दिनांक-12/03/21 समय सांय 4:00 बजे।

22 सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1972।

23 उत्तर प्रदेश वार्षिकी पत्रिका: अगस्त 1985, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित।

24 पोलीस ऐब्स्ट्रेक्ट ऑफ इन्टेलिजेन्स 1930, पैरा 765 उत्तर प्रदेश।

25 श्वेता: भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एवं महिलाएँ (1920-50), 2018 वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

26 लखनपाल, चन्द्रावती, सिन्हा रमण भूमिका एवं प्रस्तुति: मदर इंडिया का जवाब, 2019, अनन्य प्रकाशन शहादरा दिल्ली।

27 लखनपाल, चन्द्रावती मदर इंडिया का जवाब, 1927, गुरूकुल काँगड़ी द्वारा प्रकाशित।

28 चित्र, स्वतंत्रता आंदोलन के ऐतिहासिक स्थल, क्षेत्रीय अभिलेखागार देहरादून द्वारा प्रदशित अभिलेख से उदधृत।

29 अखबार का चित्र, स्वतंत्रता संग्राम स्मारिका, अल्मोड़ा, 1985, अल्मोड़ा राज्य अभिलेखागार उत्तराखण्ड, भोपालपानी देहरादून में प्रदर्शित।

30 चित्र क्षेत्रीय अभिलेखागार नैनिताल द्वारा संकलित एवं प्रदर्शित।

चित्र 1 – खराखेत , उत्तराखंड - नमक सत्याग्रह

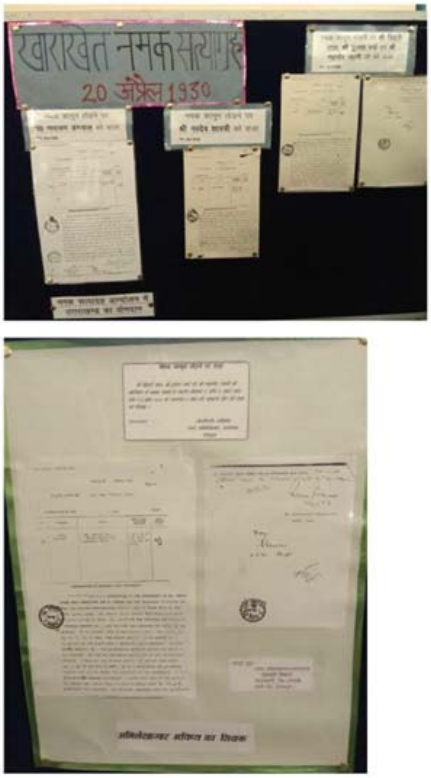

चित्र स्रोत – राज्य अभिलेखागार देहरादून , उत्तराखंड

चित्र 2 – अल्मोड़ा का झंडा सत्याग्रह

चित्र स्रोत – राज्य अभिलेखागार देहरादून , उत्तराखंड

चित्र 3 – नैनीताल की महिला स्वतंत्रता आन्दोलनकारियों के नामों की सूची

चित्र स्रोत – राज्य अभिलेखागार देहरादून , उत्तराखंड

गणतंत्रकालीन मिथिला का ग्रामीण आर्थिक विकास

राम कुमार भारती

शोध छात्र, इतिहास विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

गंगा और हिमवंत के मध्य पन्द्रह नदियों द्वारा अभिसिंचित होने वाला प्रख्यात तथा पावन देश तीर युक्ति है।[1] इसकी उत्तरी सीमा पर नगाधिराज हिमालय, दक्षिण में पावनी गंगा नदी, पूर्व में कौशिकी तथा पश्चिम में नारायणी (गंडक या सदानीरा) नदी प्रवाहित है।[2] इन्हीं क्षेत्रों में गणतंत्रकालीन मिथिला भी था। गणतंत्रकालीन मिथिलावासियों में अधिकांश गाँवों में ही निवास करते थे। यहाँ कृषि आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था थी। वर्तमान बिहार में जिस प्रकार की झोपड़ी देखने को मिलती है वैसी ही मिथिला में हुआ करती थी। वज्जि क्षेत्र में इसे रमणीय कुटिक कहा गया है। सम्पन्न परिवारिक घरों में ईंटों लकड़ियों का प्रयोग किया जाता था।

आर्थिक समानता के लिए प्रत्येक कार्य की समान प्रतिष्ठा करनी होती है, जिसके अन्तर्गत शारीरिक श्रम अत्यधिक महत्त्व रखता है। उद्योग, उत्पादन एवं अन्य सामाजिक अवयवों में श्रम एक महत्त्वपूर्ण साधन है। श्रम के अन्तर्गत वर्गीय स्तर का पृथक महत्त्व नहीं होता है। जो वर्ग विभेद का कारण होता है। काम और आराम में जो भेद है, वहीं विरोध का कारण है। उसे कम करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक श्रम करना अपेक्षित है।[3] मिथिलावासी श्रम पर विश्वास करते थे। जनता का प्रधान जीविका व्यवसाय कृषि था। जातकों में दुष्काल-दुर्भिक्ष की चर्चा संबंधी अनेक कथाएँ हैं। कौशल एवं हिमवत् प्रदेश (इसमें मिथिला जनपद भी आ जाता है) में महादुर्भिक्ष का उल्लेख है। अनावृष्टि के परिणामस्वरूप जल सूख गया था और पशुओं को चारे एवं पानी की कमी के कारण अपार कष्ट था।[4]

शतपथ ब्राह्मण में कृषि का उल्लेख मिलता है। उसमें कर्षण (हल जोतना), वपन (बीज डालना), लुनन (उपज को काटकर एकत्रित करना) आदि का उल्लेख है।[5] साहित्यिक स्रोतों के अनुसार मिथिला क्षेत्र का कृषिकरण उत्तर वैदिक कृषि प्रसार के साथ जुड़ा हुआ है। उत्तर वैदिक काल में आर्य सिंधुधारी और उसकी सहायक नदियों के मैदानों से सिंधु गंगा विभाजन और उच्च गंगा देवी के विस्तार में आ गए। पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर हाल के विश्लेषणों से यह स्पष्ट है कि ऊपरी गंगा के मैदानी क्षेत्र में चित्रित धूसर मृदभांड का चरण विस्तृत अध्यावास (उपनेशीकरण) तथा उत्तरी कृष्ण मार्जित मृदभांड (एन. बी.पी.) का चरण गहण अध्यावास का परिचायक है। बिहार क्षेत्र में चित्रित धूसर मृदभांड की समकालीन संस्कृति ताम्र पाषाणयुगीन कृष्ण लोहित मृदभांड का चरण है।[6]

जैसा कि श्रीमती राइस डेविड्स ने लिखा है कि बुद्ध के समय में भी भारत ग्रामीण अर्थतंत्र मुख्य रूप से भू-कृषकों द्वारा आबाद ग्राम समुदायों के ढाँचे पर आधारित था।[7] बौद्ध एवं जैन साहित्यों में खेती से संबंधित विभिन्न जानकारियाँ है साथ ही बड़ी संख्या में भिक्षुओं को भोजन व दान का उल्लेख है। इससे कृषि की असाधारण प्रगति व अधिशेष उत्पादन की जानकारी मिलती है। मेगास्थनीज का उल्लेख है कि युद्धों के दौरान किसान इससे अप्रभावित रहते थे। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में इस बात की निगरानी रखने का आग्रह किया कि नट, नर्तक, गायक, चारण आदि अपने कार्य में लगे कृषकों को परेशान न करे।[8] खेतों में उगी फसल की रक्षा का कितना विशेष ध्यान रखा जाता था। यह इस तथ्य से जाहिर है कि बुद्ध के शिष्यों द्वारा विचरण से हुए फसल के हानि की भी चर्चा है। इन सब बातों से प्रतीत होता है कि कृषि गणतंत्रकालीन मिथिला के अर्थनीति की रीढ़ थी।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखते है कि सरकार और जनता का जिस प्रकार भूमि पर हक है वैसी ही उस काल में भी थी। राजा भूमि का स्वामी केवल इस अर्थ में था कि वार्षिक कर के रूप में उपज का एक निश्चित भाग उसे प्राप्त होता था।

हल्की एवं गहरी जुताई के लिए क्रमशः छोटे और बड़े फाल वाले हलों का प्रयोग किया जाता था जिसे नंगल या महानंगल कहा जाता था। विभिन्न प्रकार के उपकरणों का उल्लेख मिलता है। हल, फाल, कुदाल, खनती, खुरपी, कुल्हारी आदि औजारों का उल्लेख है। जातकों से स्पष्ट होता है कि लोहार कृषि के लिए उपयोगी औजार, जैसे हल के फाल, फाबड़ा, कुल्हाड़ी, हँसिया इत्यादि बनाते थे और कृषकों को उपलब्ध कराते थे। इन सब औजारों की निरंतरता बनी हुई है।

जातकों में उर्वर भूमि की तुलना मधुमक्खी के छत्ते से की गयी है। ऐसी भूमि की मिट्टी अत्यंत चिकनी और महीन होती थी। मिथिला की काली जलोढ़ मिट्टी जहाँ धान की नस्ल के लिए सर्वोत्तम थी, वहीं चिकनी मिट्टी वाले अपेक्षाकृत कम भू-भाग में रबी की खेती होती थी। मिट्टी की गुणवत्ता और उसके विविध प्रकारों का ज्ञान कृषक वर्ग से लेकर भिक्षुओं तक को था।9 प्राचीन मिथिला के कृषक मिट्टी के गुणों के प्रति सजग रहा करते थे। किस प्रकार की फसल किस प्रकार की मिट्टी में उपजायी जा सकती है, इसका समुचित ज्ञान कृषकों को था। अनुभव के आधार पर कृषि से सम्बद्ध अर्जित ज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी समान रूप से चलता था। विशेष-प्रकार की फसलों की उपज के लिये विशेष प्रकार की मिट्टी के चयन में भारतीय कृषिक काफी निपुण रहे हैं। समकालीन साहित्य से जानकारी मिलती है कि बैल हलों को खिंचते थे। खेती की अच्छी जुताई कर लेने के बाद ही बीज वपन का कार्य किया जाता था। खेतों में वपन करने योग्य पाँच प्रकार के बीजों की सूची एक पालि ग्रंथ में प्राप्त होती है। यथा (1) मूलबीज (2) खन्यबीज (3) अग्गबीज (4) फलबीज

और (5) बीज।[10] संयुक्त निकाय में खेतों में कृषिक द्वारा बार-बार बीज बोने का वर्णन मिलता है और यह कार्य उनके कृषि जीवन का एक आवश्यक अंग माना जाता था। अगहनी, रबी और भइई फसलों के बीज वपन का कार्य अलग-अलग महीनों और नक्षत्रों में किया जाता था।

बीज वीजन के बाद जब पौधे होते थे तब आवश्यकतानुसार सिंचाई की जाती थी। मिथिला जैसे समशीतोष्ण प्रदेश में, जहाँ वर्षा में मात्र तीन या चार महीने ही वर्षा होती है, फसलों की हरियाली बनाए रखने और उनके नैसर्गिक प्रस्फूटन के लिए सिंचाई अपरिहार्य था। पूरे मिथिला प्रदेश में सामान्य रूप से सिंचाई की सुविधा उपलब्ध नहीं थी। कुएँ के जल को खींचने के लिए हाथ से चलाये जाने या बैलों द्वारा वहन के योग्य चक्र को 'करवट यंत्र' कहा जाता था। यह भिक्षुओं के लिए भी उपयोगी था। जल खींचने में सहायक दूसरा महत्त्वपूर्ण यंत्र चक्कवट्टक' था। गणतंत्रकालीन मिथिला में सिंचाई प्रबंध पर कृषिकों ने विशेष ध्यान दिया, ताकि अधिक से अधिक पैदवार हो।

उस समय धान सर्वाधिक उत्पादन किया जाता था। क्योंकि मिथिला की मिट्टी धान की पैदावार के लिए उपर्युक्त थी। धान के बाद दलहन, तेलहन और कतिपय मसालों का उत्पादन इस अवधि में किया जाता था। ईख का रस भिक्षुओं के लिए सुझाया गया है। विनय पिटक में लगने वाले एक रोग की चर्चा है, जिससे पीड़ित पौधे लाल हो जाते थे वस्तुत: विनिष्ट हो जाते थे।[11] मिथिला में कपास की खेती भी होती थी। कपास के अतिरिक्त वस्त्र तैयार करने के उद्देश्य से पटसन और रेशम की खेती भी होती थी। रेशम के धागों का निर्माण जिससे किया जाता था उसको शालिमल वृक्ष कहा जाता था। संभवत: शालिमल वृक्षों पर ही रेशम के कीड़े पाये जाते थे। परन्तु रेशों से किस प्रकार उत्तम धागे तैयार किया जाता था, कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। जातकों में नीलिय रंग का उल्लेख है। परन्तु रंग कैसा बनाया जाता था इसकी विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। जातकों से भी जानकारी मिलती है कि मुंगफली की खेती भी होती थी। पान की खेती से भी जीविका चलाते थे बहुत सारे लोग। तत्कालीन साहित्य में विभिन्न फलों और फूलों की चर्चा भी मिलती है। राजाओं के बाग हुआ करते थे। पुष्पों में किंसुक, पाटलि, कण्णिकार, जयसुमन, वदम्य, सिरित, लाल, केतक आदि प्रमुख थे, जिनकी खेती व्यवसायिक तौर पर की जाती थी।

मिथिलावासियों के ग्रामीण अर्थव्यवस्था का प्रमुख स्तंभ कृषि के बाद पशुपालन था। प्रारंभ काल से ही पशुपालन जीविका का प्रमुख साधन रहा है। प्रमुख पालतु पशुओं में हाथी, घोड़ा, ऊँट, गाय, बैल और गदहा को परिगणित किया गया था। वैश्यों की आर्थिक समृद्धि पूर्णत: कृषि पर आधारित मानी जाती थी। परन्तु उनकी सम्पन्नता का आधार पशुपालन भी था। वास्तव में वैश्यों के पास न केवल बड़े-बड़े कृषि योग्य भूमि खंड थे, अपितु यथेष्ट पशुधन भी होते थे। धनिक ग्वाला पशुपालन से ही अपनी जीविका चलाता था। उसके पास बड़ी संख्या में गाय, बछड़े और बैल थे। चरवाहे दो प्रकार के थे- एक स्वयं स्वतंत्र रूप से पशुपालक थे दूसरे प्रकार के चरवाहे किसी के अधीन रहकर जंगलों में पशुओं को चराते थे। तत्कालीन पालि साक्ष्यों में वनों में घूम-घूमकर घास काटने और लकड़ी काटने का वर्णन प्राप्त है। अनेक प्रकार की लकड़ियाँ, बाँस, लतायें, रेशेदार पौधे, तम्बूल, जंगली पुष्प और जड़ी-बुटी थी, जिनसे विभिन्न प्रकार की औषधियाँ प्राप्त होती थी। महावग्ग से जानकारी मिलती है कि हींग, हींग की गोंद, हरा, बहेरा, बिडंग, पिघली, गोष्ठफल और तक्षपनी, जिनका बहुतायत उपयोग औषधियों के निर्माण में होता था।[12] पशुओं एवं वनों की प्रचुरता इस क्षेत्र में आर्थिक जीवन के विकास के लिए उपयोगी था।

इस क्षेत्र के लोग शिकार द्वारा भी अपना जीवन यापन करते थे। जलाशय के तटों पर मृगों का शिकार करते थे। मदों के लोगों में मांस भक्षण की प्रवृति भी थी। जैन आगमों में मृग-तुच्छिकों की चर्चा की गयी है, जो पशुओं को पकड़ कर मारते और उसका मांस बेचकर अपनी जीविका चलाते थे।[13] पक्षियों को भी पकड़ते थे। उसका व्यवसाय भी करते थे। तोता, मैना और तीतर को पालतु बनाकर उसे बेचा जाता था। इसके साथ मत्स्य पालन व इसका स्रोत है। मछली पकड़ने का व्यवसाय भी काफी लाभकारी माना जाता था। अन्य पेशेवरों की तरह केवटों या मलाहों के भी अपने अलग गाँव हुआ करते थे।

गणतंत्रकालीन मिथिला में विविध प्रकार के शिल्पों का विकास हो चुका था। इन शिल्पों का संबंध ग्रामीण अर्थव्यवस्था से जोड़ा जा सकता है। शिल्प को दो कोटियों में विभाजित किया गया है। हीन और उच्च कोटि के शिल्प-जलाकार कुम्भकार, वेशकार, चम्मकार महापित का कार्य माना गया है।[14] शिल्प चयन के लिए व्यक्तिगत दृष्टिकोण की ही प्रधानता रहती थी। एक निम्न जाति का नट अपने अन्तेवासी से अपने कला का वर्णन शिल्प के रूप में करता है। इसी तरह कृषि और पशुपालन को उत्कृष्ट कोटि का कर्म माना गया है। वास्तव में इस अवधि में अनेक प्रकार के शिल्पों का विकास हुआ और लोग अपनी रूचि, परम्परा तथा जाति के आधार पर आजीविका के तौर पर विभिन्न शिल्पों को अपनाते थे। इसी तरह कृषि और पशुपालन को उत्कृष्ट कोटि का कर्म माना गया है। वास्तव में इस अवधि में अनेक प्रकार के शिल्पों का विकास हुआ और लोग अपनी रूचि, परम्परा तथा जाति के आधार पर आजीविका के तौर पर विभिन्न शिल्पों को अपनाते थे। जीविका प्राप्ति के लिए क्रमश: मुद्दा, गणना, संधान, कृषि, वाणिज्य, पशुपालन, अस्त्रचालन, या राजकीय सेवा जैसे कार्यों या शिल्पों का उल्लेख किया जा सकता था। जातकों में 18 शिल्पों या शिल्प श्रेणियों का विवरण प्राप्त होता है। कुम्हारों एवं कलाकारों का कार्य कुम्भकार अपने उत्पादन का समस्त भाग उपभोक्ताओं को बेच देते थे। इससे प्राप्त आय से ही उनका तथा उनके परिवार का जीवन निर्वाह होता था। मालाकारों की जीविका भी इसी सृजन की ऐसी प्रविधि है, जो मनुष्य की भौतिक, मानसिक एवं बौद्धिक आवश्यकाताओं को पूरा करनी है। शिल्पों में नलाकार, कुम्भकार, यानकार, सुचिकार, सुवण्णकार, कम्मार, मलगण्ड, दन्तकार, मालाकार और कोसियकार प्रभृति कलाकरों का ऐसा वर्ग था जो उत्पादन करता था और वस्तुओं को बेचकर अपनी जीविका चलाता था।

वैसे कृषक जो सम्पन्न हुआ करते थे वे दासों के द्वारा कृषि व घरेलु कार्य करवाते थे। मेण्डक गृहपति के पास दासों का एक बड़ा समूह था। इन दासों को वेतन पर नियुक्त किया जाता था। दासों के समकक्ष ही दासियों को भी सम्पन्न घराने की गृह स्वामिनी की सेवा के लिए रखे जाते थे। दास-दासियों को खरीदरकर दूसरों को समर्पित करने की प्रथा भी थी।[15] निमि जातक में एक अभायदासी का उल्लेख मिलता है। धन से खरीदे जातकी का अनेकों उदाहरण विद्यमान है। दास-दासियों को घर में प्रतिष्ठा और समृद्धि की निशानी थी। दास अपनी दासता से मुक्ति के लिए भागकर भुझु वन जाया करते थे। प्राचीन पालि संदर्भों से भी स्पष्ट है कि दास अपने स्वामी के अधीन रहकर पूर्णत: पराधीन बन जाते थे और अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं कर पाते थे। बंदी और युद्ध बंदियों को भी दास बनाया जाता था। सीमान्त दस्युओं द्वारा अपहरण करके लोगों को दास बनाया जाता था। राजा द्वारा किसी देश को पराजित करने के क्रम में अनेक लोगों को दास के रूप में बेच दिया जाता था। विवाह के समय स्त्री दासी को अर्पित किया जाता था। यद्यपि दास प्रथा शहरी जीवन से मुख्य रूप

से सम्बद्ध था, परन्तु ग्रामीण अर्थव्यवस्था में भी उनकी भूमिका को पूरे तौर पर नकारा नहीं जा सकता। कृषि और घरेलू कार्यों के अतिरिक्त विभिन्न शिल्पों के विकास में दासों का बहुमूल्य योगदान था।

तात्कालीन साहित्य में कहा गया है कि प्राप्त जीविका की रक्षा के लिए कुछ-न-कुछ उपाय जरूर करता है। बौद्ध साहित्य में कहा गया है कि उसके द्वारा अर्जित भोग को राजा न हर ले, चोर न ले जाये, आग न जलाये, जल न बहाये, अप्रिय दायाद उसकी जीविका से प्राप्त योग का स्वामी न बन जाए। इन सभी चिंताओं से मनुष्य ग्रस्त रहता था। विनयपिटक के अनुसार वर्ष के पाँच मास या अधिक चोरवृति से जीविका कमाने वाला चोर कहा जाता था।[16] कभी-कभी जीविका के निन्दनीय एवं हीन साधनों को अपनाकर भी जीवन निर्वाह किया जाता था, जैसे-सेंध लगाना, गाँव उजाड़कर ले जाना, एकागारिक (एक घर में घुसकर चुराना) तथा राहजनों से उसके सामग्री को छीन लेना जैसे घृणित कार्य भी करते थे। ऐसे लोगों को पकड़े जाने पर राजा द्वारा अनेक प्रकार के दंड दिये जाते थे। घृणित व्यवसायों में ही भेड़, सूअर और मृग मारने, मत्स्य, गोघत तथा बन्धनागरिक माने गये हैं। मांस के विक्रय से जीविका प्राप्त करने वाला वर्ग सामाजिक दृष्टि से निम्न कोटि का माना जाता था।

गणतंत्रकालीन मिथिला में ज्यादातर आबादी गाँवों में निवास करती थी और वह कृषि के क्षेत्र में लगातार बेहतर कर रही थी। अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि ही था। तात्कालीन साहित्य में इन सब बातों की चर्चा है। न केवल देशी बल्कि विदेशी साहित्य भी सभी बातों की चर्चा करता है। भूमि का मालिकाना हक आन की ही तरह प्रदर्शित होती है। कृषि उपकरणों की भी चर्चा हमने की। जिसकी निरंतरता बनी हुई है। औजारों का चलन किस प्रकार से कृषि व आर्थिक जीवन में बहुमूल्य योगदान दिया है। यहाँ की उपजाऊ भूमि की भी चर्चा ऊपर की गयी है साथ ही मुख्य फसलों की चर्चा भी है। जुताई बुआई की भी चर्चा है जो उत्तम प्रवृति की थी। सिंचाई के साधन नहरों का निर्माण तो नहीं था परंतु उस समय बड़ी नदियों, तालाबों और कुँए के जल से ही संचाई की जाती थी। वर्ष में दो बार अच्छी पैदावार होती थी। जब फसल पककर पूरी तरह तैयार हो जाती थी तब उसकी कटाई की जाती थी जिसे लवनी कहा जाता था। फसलों की कटाई अर्थात् लवनी के बाद उससे अनाज प्राप्त करने की प्रक्रिया को मणनी कहा जाता था। कृषि के साथ ही पशुपालन भी महत्त्वपूर्ण योगदान इस समय की अर्थव्यवस्था का प्रमुख स्तंभ थी। जीवन यापन के लिए लोग चोरी-डकैती के साधन का भी उपयोग करते थे व पकड़े जाने पर विभिन्न प्रकार की सजा भी पाते थे। जीविका प्राप्ति के लिए क्रमशः मुद्दा, गणना, संधान, कृषि, वाणिज्य, पशुपालन, अस्त्र चालन, राजकीय सेवा जैसे कार्यों या शिल्पों का उल्लेख किया जा सकता है। इन सब बातों को देखते हुए पाते हैं कि गणतंत्रकालीन मिथिला के ग्रामीण अर्थव्यव्था में आये बदलावों के रेखांकन से स्पष्ट होता है कि इस समय न कवेल कृषि असाधारण प्रगति कर रही थी बल्कि व्यवसायों एवं शिल्पों का भी विकास हुआ। इन सब कारणों से आर्थिक सुदृढ़ता बढ़ी।

संदर्भ

1. मिथिला महात्म्य, पृ.-14
2. Dr. Lakshman Jha, Mithila, Mithila Mandal, (1954), P.-10
3. मिथिला सांस्कृतिक परम्परा में लोकगीत, पृ.-254
4. राम प्रकाश शर्मा, मिथिला का इतिहास, पृ.-54, 55
5. वही, पृ.-54
6. सत्येन्द्र कुमार झा, विगनिंग्स ऑफ अवनाइजेशन इन दी गंगा वैली, पटना 1999
7. कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, जि. 1, अध्याय 8, पृ.-176
8. अर्थशास्त्र, 47
9. वलिनगेम, बुद्धिस्ट लीजेंड्स, पार्ट 1, पृ.-70
10. पाचित्तिय, 11, पृ.-55
11. चुल्लवग्ग, 10/2/2
12. महावग्ग, 6/2/3
13. जगदीशचन्द्र जैन, आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ.-145
14. वी. अग्रवाल, भारती कला, पृ.-66-67
15. महावग्गा, 3/7/18
16. पाराजिक, पृ.-59

हिंदी पत्रकारिता और राष्ट्रधर्मः एक विमर्श

सूर्य प्रकाश मिश्र

शोध छात्र, (SRF) हिंदी विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्यप्रदेश

स्वतन्त्रता से पहले हिंदी पत्रकारिता, अनेक उद्देश्यों के सापेक्ष लक्ष्य केन्द्रित थी, जिसमें एक मिशन और आदर्श का भावबोध दृष्टिभूत होता है, परन्तु आजाद भारत की पत्रकारिता के समक्ष न तो कोई लक्ष्य था, और न ही समाज के उत्थान का दृढ़ संकल्प। इसका सबसे बड़ा कारण अशिक्षा एवं गरीबी थी। पत्रकारिता और शिक्षा आपस में एक दूसरे के पूरक हैं, इसलिये समाज में शिक्षा के प्रति जागरुकता के बगैर पत्रकारिता का उत्थान सम्भव न था। चूँकि 19वीं शताब्दी के शुरुआत में भारतीय कला और उद्योग-धन्धों को गर्त में पहुँचाने का काम ईस्ट इण्डिया कम्पनी पहले ही कर चुकी थी, इसलिये स्वाधीनता के उपरान्त देश में चहुँ ओर केवल निर्धनता और बेरोजगारी चरम पर थी। राष्ट्र को पुनः समृद्धशाली बनाने हेतु लोगों को एक होकर सामाजिक जागरण करने की आवश्यकता थी, परन्तु यह जागरण कैसे सम्भव हो, समाज तक कोई भी सन्देश और कोई सूचना कैसे पहुँचे, ये बड़ा संकट था। पूर्व की शिक्षा पद्धति ध्वस्त कर दी गयी थी, शिक्षा की आवश्यकता समाज को महसूस हुई और वर्तमान शिक्षा प्रणाली के रूप में लार्ड मैकाले के प्रयासों के बाद भारत में अंग्रेजी शासन वाली शिक्षा प्रणाली परोसी जाने लगी। इसके कारण भारतीय भाषाओं पर कुठाराघात प्रारम्भ हो गया। अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली की शुरुआत ने यह तय कर दिया कि अब हिंदी भाषा का विकास न हो पाना लगभग स्वाभाविक था। ऐसी तमाम समस्याओं को देखकर हिंदी के प्रबुद्ध वर्ग ने भारत में हिंदी शिक्षा और पत्रकारिता के विकास हेतु शनैः शनैः कार्य करना प्रारम्भ किया। इस क्षेत्र में पहला प्रयास पं. जुगुल किशोर शुक्ल जी द्वारा हुआ। 'हिंदी का प्रथम पत्र 'उदत्त मार्तण्ड' 30 मई 1826 को प्रकाशित हुआ। जुगुल किशोर जी कानपुर के निवासी थे परन्तु ये पत्र उन्होंने कलकत्ता से निकाला। ये पत्र एक वर्ष सात महीने तक चला परन्तु साप्ताहिक पत्र जो प्रत्येक मंगलवार को प्रकाशित होता था, वह आर्थिक विषमताओं के कारण अधिक दिनों का सफर नहीं तय कर सका, और 4 दिसम्बर 1827 को हमेशा के लिए बन्द करना पड़ा। इस पत्र के अन्तिम अंक में सम्पादक शुक्ल जी लिखते हैं किदृ ''आज दिवस लौं उग चुक्यों मार्तण्ड उदन्त, अस्ताचल को जात है दिनकर दिन अब अन्त।'' सरकारी सहायता एवं अल्प ग्राहकों के कारण यह पत्र जल्द समाप्त हो गया था। श्री शुक्ल जी की उक्त पांक्ितयाँ उनकी व्यथा तथा हिंदी पत्रकारिता के प्रारम्भ से ही आर्थिक संकट को दर्शाती हैं।[1] 'उदन्त मार्तण्ड' के पश्चात् राजा राममोहन राय ने 10 मई 1829 को 'बंगदूत' का प्रकाशन किया।[2] 'बनारस अखबार को हिंदी भाषी क्षेत्र से निकलने वाले प्रथम हिंदी समाचार पत्र के रूप में मान्यता दी जाती है।'[3] इसे राजा शिवप्रताप सितारे हिन्द ने प्रकाशित किया। इसके बाद 1852 में आगरा से 'बुद्धि प्रकाश', 1854 में सुधा वर्षण, 1855 में 'सर्वहितकारक' 1859 में 'धर्म प्रकाश' मासिक पत्र, 1869 में सूरज प्रकाश' नामक पत्रों का उदय हुआ। 1865 में 'तत्वबोधिनी' हिंदी पत्रिका, 1866 में 'ज्ञान प्रदायिनी' पत्रिका का प्रकाशन हुआ। 15 अगस्त 1867 में भारतेन्दु हरिश्चन्द जी द्वारा 'कवि-वचन सुधा' पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इसके अलावा 'बाला बोधिनी' और हरिश्चन्द मैग्जीन भी प्रकाशित हुई। 1868 में सदासुखलाल जी के सम्पादकत्व में 'वृत्तान्तदर्पण' पत्र निकला। 1871 में 'अल्मोड़ा अखबार' 1875 में दयानन्द सरस्वती जी द्वारा 'धर्म प्रकाश' फिर 'सुदर्शन समाचार, आनन्दलहरी, प्रकाशित हुये। 1875 में भारत मित्र, 1877 में बालकृष्ण भट्ट जी द्वारा 'हिंदी प्रदीप' 1881 में बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन' जी का मासिक पत्र 'आनन्द कादम्बिनी' 1896 में नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा काशी से 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 1900 में 'सरस्वती' 1901 में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी का 'समालोचक', 1907 में पं. मदन मोहन मालवीय जी का 'अभ्युदय' इसके बाद 'स्वराज्य' 'कर्मयोगी' जैसे अनेक पत्रों का प्रकाशन हुआ। तदोपरान्त 1901 में 'इन्दु' जयशंकर प्रसाद और 'मर्यादा' कृष्णकान्त मालवीय, 1913 में गणेश शंकर विद्यार्थी जी का 'प्रताप' पत्र, इसके बाद क्रमशः 'विश्वमित्र' 'स्वदेशी' 'आज' माखन लाल चतुर्वेदी जी का 'कर्मवीर' एवं 'माधुरी' जैसे पत्रों का प्रादुर्भाव हुआ। इसी प्रकार 1930. 31 में प्रेम चंद जी के 'हंस' तत्पश्चात् 'जागरण' 1936 में 'दैनिक हिन्दुस्तान', 1936 में सुमित्रानन्दन पंत का 'रूपाभ', हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का 'विश्वभारती' और 1938 में यशपाल जी के 'विप्लव' पत्र का प्रकाशन हुआ। तत्पश्चात् 1942 में इलाचन्द्र जोशी जी का 'संगम' 1947 में 'नवभारत टाइम्स', वर्ष 1947 में प्रयाग से 'हिंदी अनुशीलन', दिल्ली से सरिता, इलाहाबाद से प्रतीक, उदयपुर से 'शोध पत्रिका' इलाहाबाद से 'मनोरमा' इन्दौर से नई दुनिया आदि महत्त्वपूर्ण पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। 1947 ई. के पश्चात् पत्र पत्रिकाओं के क्षेत्र में अदभूत विकास हुआ, स्वतन्त्रता के बाद पत्रकारिता के क्षेत्र में हुये विकास को स्वातन्त्रयोत्तर पत्रकारिता के रूप में जाना जाता है। 15 अगस्त 1947 को 'प्रदीप' नामक दैनिक पत्र, एवं 'स्वतन्त्र भारत' 'दैनिक जागरण' और 1947 में ही राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के मुखपत्र 'पांचजन्य' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन भी लखनऊ से प्रारम्भ हुआ। 'वर्ष 1947 में पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने 'राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड' की स्थापना की। इसके अन्तर्गत 'राष्ट्रधर्म' 'पांचजन्य' व 'स्वदेश' नामक पत्र प्रकाशित होते थे। इनमें स्वदेश दैनिक पत्र था, जबकि पांचजन्य साप्ताहिक तथा 'राष्ट्रधर्म' मासिक प्रकाशित होता था।

'राष्ट्रधर्म पत्रिका' राष्ट्र के निर्माण की पत्रिका के रूप में निकलकर समाज के समक्ष उठकर खड़ी हुई, इस पत्रिका की पटकथा में राष्ट्रभक्ति एवं राष्ट्रीय चेतना के इतिहास और उसके विकास की कहानी है। जब देश अंग्रेजी सल्तनत के अट्टाहास से थरथरा रहा था, और भारतीय जनमानस के समक्ष रुदन के अलावा कोई और विकल्प नहीं था, ऐसे में जनमानस निष्प्राण था, तत्पश्चात् पराधीनता की बेड़ियां खुल तो गयी परन्तु परतन्त्रता के भाव बोध से समाज मुक्त नहीं हो पा रहा था, स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रनिर्माण के लिये दृढ़ संकल्पित राजनेता मदमस्त थे, और भारत का विभाजन हो रहा था, देश अभी भी अंग्रेजों

की बनी बनायी लीक पर ही आगे बढ़ रहा था। राष्ट्र और समाज के शुभचिन्तक आगाह कर रहे थे, लोगों को चेताने की कोशिश कर रहे थे, परन्तु उनकी यह चेतावनी जनमानस तक कैसे पहुँचे यह यक्ष प्रश्न था। और इसके प्रतिउत्तर में पत्रकारिता ही एक मात्र ऐसा विकल्प था, जिससे जनसामान्य को जाग्रत करने का कार्य सम्भव दिखायी पड़ रहा था। जाहिर सी बात थी कि अब पत्रिकारिता नया कलेवर ग्रहण करने को लालायित थी, और राष्ट्रधर्म पत्रिका के रूप में पं. दीनदयाल उपाध्याय जी, अटल बिहारी वाजपेयी जी और भाऊराव देवरस के साथ नानाजी देशमुख जी का नेतृत्व समाज को प्राप्त हुआ। अटल जी चेतावनी दे रहे थे कि 'देश अपना घिर रहा है संकटों के बादलों से' और पं. दीनदयाल जी राष्ट्रधर्म पत्रिका के माध्यम से अटल जी के सानिध्य में राष्ट्रहित के ज्वलन्त मुद्दों पर 'सम्पादकीय' को माध्यम बनाकर राष्ट्रनिर्माण की प्रबल संकल्पना के साथ हर चुनौती का डटकर मुकाबला कर रहे थे। 'राष्ट्रधर्म पत्रिका' पत्रकारिता के क्षेत्र में नित नये आयाम गढ़ रही थी, समाज को दशा-दिशा देने का काम कर रही थी, इस पत्रिका को विद्यासागर जी, राजीव लोचन अग्निहोत्री जी सहित तमाम मूर्धन्य सम्पादकों का आशीर्वाद प्राप्त हुआ, और अटल विहारी वाजपेयी जी जैसा नायकत्व प्राप्त हुआ, तब तो इस पत्रिका को राष्ट्रवाद के चरम को छूना ही था। साथ-साथ देश को परमवैभव तक पहुँचाने के लिये दृढ़ संकल्पित 'राष्ट्रधर्म' पत्रिका ने तमाम समस्याओं व बाधाओं को दरकिनार करते हुए न सिर्फ सफल प्रकाशन बल्कि आपातकाल जैसी परिस्थितियों में भी राष्ट्र के समक्ष एक पारिवारिक एवं वैचारिक पत्रिका के रूप में अपने आप को स्थापित किया। यही नहीं इस पत्रिका के सभी सम्पादकों ने न सिर्फ पत्रकार जगत में बल्कि आम जनमानस के समक्ष भी सफलता एवं जागरूकता के नये कीर्तिमान गढ़े व इस पत्रिका को समाज के प्रतिविम्ब के रूप में एक नया आयाम व नवीन चेतना प्रदान की।

संदर्भ सूची

1. चड्ढा सविता, आजादी के 50 वर्ष और हिंदी पत्रकारिता, राजसूर्य प्रकाशन, दिल्ली, 2000, पृ. 25
2. कुमार, डॉ. अवधेश, हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता, के.के. पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2004, पृ. 96
3. शर्मा हरीश दत्त, पं. दीनदयाल उपाध्याय, फ्यूजन बुक्स, नई दिल्ली 2015, पृ.दृ17.18
4. पन्त, एन.सी. पत्रकारिता का इतिहास, तक्षशिला प्रकाशन, ई दिल्ली दृ 2002
5. जैन, डॉ. रमेश कुमार, हिंदी पत्रकारिता का आलोचात्मक इतिहास, हंस प्रकाशन, जयपुर, 1987
6. पं. दीनदयाल उपाध्यायदृ सम्पूर्ण वाङ्गमय-खण्ड 1 'प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली, संस्करण प्रथम 2016
7. पं. दीनदयाल उपाध्यायदृ सम्पूर्ण वाङ्गमय-खण्ड 15, 'प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 25 सितम्बर 2016
8. पं. दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक चिंतनदृ डॉ. विनोद चन्द्र पाठक, सत्यम पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009

चिकित्सा विज्ञान और बौद्ध धर्मः एक विवेचना

रेनू शुक्ला

प्रोफेसर, प्रा.भा. इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, कन्या गुरुकुल परिसर, देहरादून, गुरुकुल कॉगड़ी (सम विश्वविद्यालय, हरिद्वार)

आधुनिक युग तर्क और विवेक और वैज्ञानिक विचारों की प्रधानता का युग है। वर्तमान काल में किसी विचार, सिद्धांत अथवा व्यक्ति के कार्यों को स्वीकार्यता तभी प्राप्त होती है जब वह तर्क की कसौटी पर खरे उतरते हैं। समस्त मानवीय प्रगति, वैचारिक, राजनीतिक, सामाजिक अथवा आर्थिक परिवर्तन एवं प्रगति का आधार वैज्ञानिक सोंच है। अकादमिक जगत भी इसी आधार परनवीन सिद्धांतो की स्थापना करता है। 17वीं-18वीं शताब्दी के बाद का विश्व पूर्णतया तर्क पर आधारित विश्व है, ईश्वर पर मनुष्य की प्रधानता का विश्व है। वहीं दूसरी ओर धर्म का भी मानव जीवन पर गहरा प्रभाव रहा है जिसने व्यक्ति के विचार और कार्यों को दिशा दी है। अतः धर्म में तर्क और विवेक का क्या स्थान है और आध्यात्मिक प्रगति के उद्देश्य से संचालित धर्मों में लौकिक जीवन एवं स्वास्थ्य को कितना महत्व दिया गया है यह जानने का प्रयास अत्यंत रोचक प्रक्रिया है। प्रस्तुत शोध पत्र बौद्ध धर्म के संदर्भ में इस विषय की विवेचना का प्रयास है जो धम्म में स्वास्थ्य एवं चिकित्सा विज्ञान के महत्व की समीक्षा करता है। बौद्ध साहित्य के संदर्भ उसके व्यवहारिक व वैज्ञानिक स्वरूप को स्पष्टता हमारे सम्मुख रखते हैं और चिकित्सा विज्ञान के प्रति बुद्ध एवं बौद्धों के विषेष विषेष सरोकार को स्पष्ट करते हैं।

क्षमा, मैत्री और करुणा का संदेश देने वाले बुद्ध संवेदनशील होने के साथ अत्यन्त व्यवहारिक भी थे। उनकी इसी प्रवृत्ति ने उन्हें एक वैज्ञानिक की भांति निरंतर प्रयोग करने एवं विवेक के द्वारा निर्देशित होकर विभिन्न समस्याओं के वैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया। द्:ख की शाष्वत समस्या का समाधान उन्होंने एक वैज्ञानिक की तरह किया और प्रतीत्यसमुत्पाद का महत्वपूर्ण सिद्धांत दिया। इस सिद्धांत के अनुसार कार्य की सत्ता बिना कारण के संभव नहीं है। यदि प्रत्येक कार्य के पीछे कारण होता है तो प्राणिमात्र के दुख के पीछे भी कारण होना चाहिए।

इसी विवेक के आधार पर उन्होंने दुख के मूल कारण को 'अविद्या' और उसके कारण उत्पन्न 'तृष्णा' के रूप में देखा। 'तृष्णा' को समाज में अविश्वास, संघर्ष एवं असंतुलन का भी कारण माना गया। भारतीय धर्मिक विचारधाराओं के सम्बन्ध में एक सामान्य अवधारणा यह रही है कि वे मूलतः आध्यात्मिक हैं अतः उनमें सांसारिक एवं भौतिक जीवन सम्बन्धी विषयों को महत्वहीन मानते हुये उनके विषय में विमर्श नहीं हुआ है। भौतिक जीवन को मिथ्या और उससे मुक्ति को मानवीय जीवन का चरम लक्ष्य एवं जीवात्मा का वास्तविक स्वरूप कहा गया। वैराग्य व कठिन शारीरिक क्रियाओं के रूप में मुक्ति मार्ग की व्याख्या की गयी। वस्तुतः यह भारतीय धर्मों का एक पक्ष है। विभिन्न धार्मिक विचारधाराओं में सांसारिक जीवन को भी उचित महत्व देते हुये सांसारिक सुखों के भोग व कर्तव्य निर्वहन पर बल दिया गया। नैतिक मूल्यों एवं कर्म व कर्मफल के सिद्धांत का प्रतिपादन द्वारा व्यक्ति के कार्यों को नियंत्रित करने का कार्य भारत में धर्म के माध्यम से किया गया। यह भी एक रोचक तथ्य है कि प्रायः धर्मों में भौतिक शरीर को बन्धन के रूप में देखे जाने के कारण उसकी व्याधियों के प्रति उपेक्षा भाव दिखायी देता है परंतु बौद्ध धर्म इसका अपवाद है। बौद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध मूलतः एक व्यवहारिक व्यक्ति थे। उन्होंने न तो जीव को आत्मा के रूप में देखा और न ही उसके भौतिक शरीर को बन्धन के रूप में। उन्होंने मानवीय जीवन में दुख को सर्वत्र देखा और किसी दार्शनिक विवाद में उलझे बिना मनुष्य की जिज्ञासाओं एवं मानवीय जीवन की विभिन्न समस्याओं का समाधान तार्किक एवं वैज्ञानिक आधार पर किया।

बुद्ध की जीवन यात्रा 'निब्बान' हेतु व्यक्तिगत प्रयत्नों से आरंभ हुई। कालान्तर में मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा जैसे विचारों से समाज को पोशित करते हुए बौद्ध विचारधारा ने अपनी विकास यात्रा के विभिन्न चरणों में अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय दिया। तार्किक आधार पर सामाजिक अंधविश्वासों पर करारी चोट करते हुये बुद्ध ने मानवीय अनुभव के अध्ययन की वैज्ञानिक प्रक्रिया की नींव रखी जिसमें निरीक्षण, प्रयोग, परीक्षण एवं तदुपरांत सिद्धांत की स्थापना के वैज्ञानिक नियम का पालन किया गया। अपने समय में प्रचलित आत्मवाद का अनेक प्रकार से खण्डन करने वाले बुद्ध ने मानव सहित समस्त जीवों को पंच स्कन्धों का संघात माना एवं भौतिक पदार्थों चित्त और चौत्तसिक धर्मों में अनित्यता के लक्षण को देखा। उनकी इस नवीन विचारधारा ने भौतिक शरीर उसके द्वारा किये जाने वाले कर्म को समस्त मानवीय जीवन के सुख-दुख का मूल कारण बताया। मनुष्य के भौतिक काया को इतना महत्व इससे पूर्व किसी धार्मिक विश्वास में नहीं दिया गया था। इस विशिष्ट दृष्टि ने बौद्ध धर्म में चिकित्सा विज्ञान के महत्व को सुनिश्चित किया।

अतिसंवेदनशील बुद्ध को प्राणीमात्र के दुखों ने इतना व्यथित किया कि वे इससे मुक्ति का मार्ग खोजने के प्रयास में गृहत्याग के लिए प्रस्तुत हुए। इस समस्या के समाधान के प्रयास में बुद्ध की दृष्टि पारंपरिक राह पर गई और उन्होंने संन्यासी जीवन की कठोर तपश्चर्या का पालन किया।[1] परंतु तार्किक दृष्टिकोण ने शारीरिक कष्ट द्वारा निर्वाण प्राप्ति के पारंपरिक मार्ग के अनुकरण में उनके विश्वास को हिला दिया। कठोर तप के मार्ग की निरर्थकता को समझने पर उन्होंने अपने दूसरे गुण प्रयोगधर्मिता का परिचय दिया। कठिन तप के मार्ग को त्याग कर उन्होंने दोनो ही अतियों से भिन्न मध्यम मार्ग- ''मज्झिमापटिपदा'' के नवीन सिद्धांत का प्रतिपादन किया।[2] स्पष्ट है कि बुद्ध अनुभव एवं प्रयोग के वैज्ञानिक सिद्धांत को अपने मार्ग का आधार बना रहे थे।

दुःख की शाश्वत समस्या के समाधान हेतु उन्होंने एक चिकित्सक भाँति उसके कारण की खोज की और प्रतीत्यसमुत्पाद का महत्वपूर्ण सिद्धांत दिया। दुःख की सत्ता, दुःख के कारण, कारण के निदान एवं अंततः निरोध मार्ग के प्रतिपादन प्रक्रिया चिकित्सा विज्ञान के चार चरण सी प्रतीत होती है जो मानव मात्र के आध्यात्मिक उपचार के लिये थी।[3] प्रतीत्यसमुत्पाद के इस सिद्धांत के अनुसार कार्य की सत्ता बिना कारण के संभव नहीं है। कारण की व्याख्या

करते हुए उन्होंने 12 कारणों की एक लम्बी श्रंखला बताई जो एक दूसरे परस्पर सम्बद्ध थे। तृष्णा एवं अविद्या की उन्होंने मूल कारण के रूप में पहचान की जिसका समाधान अष्टांगिक मार्ग के रूप में प्रस्तुत किया।

तर्क एवं विवेक प्रधान बौद्ध धर्म ने भिक्षुओं एवं जनसामान्य के कल्याणार्थ चिकित्सा विज्ञान में स्वाभाविक रूप से रुचि ली। आधुनिक ईसाई मिशनरियों की भाँति प्राचीन काल में बौद्ध भिक्षुओं ने भी जनसामान्य के लिये चिकित्सा का कार्य किया, साथ ही स्वयं एवं अपने साथी भिक्षुओं का ध्यान रखने के लिये भी उन्हें प्रोत्साहित किया गया।[4] बौद्ध धर्म में बुद्ध को अलौकिक वैद्य[5] बताते हुये कहा गया है कि बुद्ध सभी जीवों के हितैषी, अहित को दूर कर हित करने वाले हैं,[6] उन्होंने अपने धर्म रूपी बक्से में सारे क्लेशों के भयंकर रोग की सबसे अचूक दवा रखी है, जो चतुर और बुद्धिमान हैं वे उस दवा को पीकर क्लेष रोग से छूट जायेगें।[7] 7वीं -8वीं शताब्दी के महायान परंपरा के ग्रंथों में बुद्ध के भैषज्यगुरु स्वरूप का उल्लेख है। एक ग्रंथ भैषज्यगुरु सूत्र में प्राप्त विवरण के अनुसार वैशाली में एक वृक्ष के नीचे 8000 भिक्षुओं, 36000 बोधिसत्वों-महासत्वों, शासकों, मन्त्रियों, ब्राह्मणों, उपासकों, देवों, नागों व यक्षों की उपस्थिति में मंजुश्री द्वारा विभिन्न बुद्धों के विषय में पूँछे जाने पर बुद्ध नेकरुणामयी भैषज्यगुरु बुद्ध के विषय में बताया। (चित्र 1) भैषज्यगुरु के रूप में बुद्ध की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं जिनमें प्राय: नीले रंग का आसन मुद्रा में बुद्ध के बायें हाथ में औषधीय अमृत का पात्र व दायें हाथ में आँवला का पौधा दर्शाया गया है। ऐसी एक प्रतिमा उत्तराखण्ड के लाता से प्राप्त हुई है। (चित्र 2) बौद्ध साहित्य में उन्हें अनेक चामत्कारिक उपचारों का श्रेय दिया गया है जिनकी झलक पुरातात्विक प्रमाणों से भी प्राप्त होती है। (चित्र 3 एवं 4) श्रावस्ती में जेतवन विहार के उत्तर-पूर्व में एक स्तूप के अवशेष मिलते हैं जहाँ बुद्ध ने एक रोगी भिक्षु के उपचार के लिये उसके हाथ पैर धोये थे।[8] प्रसेनजित के आदेश पर 500 डाकुओं अंधा कर दिया गया था बुद्ध द्वारा इन सभी की नेत्र दृष्टि पुन: ठीक किये जाने का विवरण भी प्राप्त होता है।[9] बौद्ध स्थलों से चिकित्सालयों के अवषेष भी प्राप्त होते हैं। (चित्र 5 एवं 6)

बौद्ध धर्म ग्रंथों में वैद्यों की शिक्षा उनके प्रयोगात्मक अनुभव, चिकित्सकीय कुशलता, गुणवत्ता, चिकित्सा प्रक्रिया, उसमें प्रयुक्त होने वाले उपकरणों, विभिन्न औषधियों आदि से सम्बन्धित बड़ी संख्या में प्राप्त संदर्भों से बौद्ध धर्म में चिकित्सा विज्ञान की केन्द्रीय स्थिति की पुष्टि होती है। बौद्ध ग्रंथों में उल्लिखित अध्येय विषयों में ''वैद्यक'' भी एक है जिससे ध्वनित होता है कि चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा तत्कालीन भारत में नियमित पाठ्यक्रम का अंग थी।[10] चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा एवं प्रशिक्षण के लिये तक्षशिला एवं नालन्दा महत्वपूर्ण केन्द्र थे जहाँ दूर-दूर से विद्यार्थी शिक्षा गृहण करने आते थे।[11] बुद्ध के समकालीन कश्यप और जीवक प्रसिद्ध बाल रोग विशेषज्ञ थे।[12] कश्यप ने अपने चिकित्सकीय अनुभव एवं ज्ञान द्वारा सर्प के विष के दुष्प्रभाव को दूर करके एक वृक्ष एवं मानव को जीवन दान दिया था।[13] बॉवर मेन्यूस्क्रिप्ट में उनके द्वारा विभिन्न रोगों के उपचार हेतु प्रतिपादित अनेक औषधियों का उल्लेख है।[14] बाल रोग की चिकित्सा के विशेषज्ञ जीवक को राजकुमार अभय द्वारा तक्षशिला शिक्षा केन्द्र में चिकित्सा विज्ञान के अध्ययन के लिये भेजा गया था, जहाँ उन्होंने भारद्वाज के शिष्य अत्रेय से सात वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की एवं उसमें निपुण हो गये।[15] तदुपरान्त उन्हें एक प्रयोगात्मक परीक्षा भी देनी पड़ी। उन्हें तक्षशिला नगर के चारों ओर एक योजन की दूरी तक प्राप्त सभी प्रकार के पौधों का निरीक्षण करके उनके चिकित्सकीय तत्वों का पता लगाना था। जीवक ने चार दिनों तक सभी पौधों के परीक्षण के उपरांत प्राप्त परिणाम गुरु को सूचित किये, जिसके अनुसार एक भी पौधा ऐसा नहीं था जिसमें कोई चिकित्सकीय तत्व न हो।[16]

संदर्भों से स्पष्ट है कि तक्षशिला में जो चिकित्सा कानून एवं सैन्य विज्ञान के अध्ययन के लिये विशेष रूप से प्रसिद्ध था,[17] सैद्धांतिक ज्ञान के साथ प्रयोगात्मक प्रशिक्षण भी दिया जाता था। चिकित्सा शिक्षा की अवधि सात वर्ष थी और अध्ययन का समाप्ति प्रयोगात्मक परीक्षा से होती थी। जीवक ने तक्षशिला छोड़ते ही अपने पुराने प्रयोगात्मक प्रशिक्षण के अनुभव के आधार पर अत्यन्त कठिन रोगों के उपचार एवं गंभीर रोगों से पीड़ित रोगियों की शल्य चिकित्सा की और इसके लिये जो धन प्राप्त किया वह आधुनिक चिकित्सकों को प्राप्त होने वाले धन का कई गुना था।[18] ह्वेनसांग के अनुसार नालन्दा विश्वविद्यालय में भी चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा की व्यवस्था थी।[19]

वैद्य तत्कालीन समाज के अत्यधिक सम्मानित सदस्य थे।[20] कुशल एवं अनुभवी चिकित्सक के पास असाध्य रोग से पीड़ित व्यक्ति बड़े विश्वास के साथ रोग के निदान के लिये जाते थे।[21] चिकित्सा विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करने के लिये वैद्य सर्वप्रथम किसी योग्य गुरु की खोज करके उसके पास जाता था। तदुपरान्त उसे वेतन या अपनी सेवायें देकर सम्पूर्ण विद्या सीखने के बाद ही स्वतंत्र रूप से किसी रोगी की चिकित्सा अपने हाथ में लेता था।[22] कुशल वैद्य वैद्यक शास्त्र के प्रचीन आचार्यों का अध्ययन करते थे। सूत्र मथा मन्त्र पदों को ठीक-ठीक समझते थे। उनका सारा संकोच समाप्त हो जाता था वे रोग की सूक्ष्म पहचान कर लेते थे, उनकी चिकित्सा कभी व्यर्थ नहीं जाती थी।[23] मानव शरीर विज्ञान का उनका ज्ञान बहुत विस्तृत था।[24] मिलिन्दप०ह(25) में अट्ठानवे प्रकार के रोगों का संदर्भ प्राप्त होता है, जिनसे सामान्य व्यक्ति एवं अर्हत कोई भी मुक्त नहीं था।[26]

चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा में विद्यार्थी सर्वप्रथम चिकित्सा शास्त्रों का अध्ययन पदों और श्लोको के माध्यम से करता था। शास्त्रों को कण्ठस्थ करने के बाद उनके अर्थ को हृदयंगम करता था। उसको सिद्धांत (शास्त्र) एवं व्यवहार (कर्म) दोनों में निपुणता प्राप्त करनी होती थी।[27] वैद्य के गुणों पर प्रकाश डालते हुये कहा गया है कि उसे चिकित्या शास्त्रों का भली-भाँति अध्ययन करना चाहिये, पढ़े हुये को भली-भाँति समझना चाहिये, प्रयोगात्मक कार्य शल्य-क्रिया एवं लेप करने में कुशलता प्राप्त करनी चाहिये, उपलब्ध संसाधनों के प्रयोग में मौलिकता का परिचय देना चाहिये, उसे कोमल स्पर्श एवं हल्के हाथ वाला, स्वच्छ, सकारात्मक, प्रसन्नचित्त, उपचार के लिये आवश्यक उपकरणों के साथ तैयार, साधन सम्पन्न, अति बुद्धिमान, सत्य एवं नैतिकता को समर्पित होना चाहिये।[28] चिकित्सा आरम्भ करने से पहले चिकित्सक रोगी की आयु देख लोता था।[29] चिकित्सा रोग के लक्षणों के आधार पर की जाती थी।[30] चिकित्सक उपचार पद्धति एवं औषधियों की प्रकृति से भली-भाँति परिचित थे।[31] कुछ गंभीर रोगों की चिकित्सा के लिये कई जडीघ्-बूटियों को मिलाकर औषधि तैयार करनी पड़ती थी।[32] चिकित्सा विज्ञान के प्रति बौद्ध धर्म का लगाव इस सीमा तक है कि निर्वाण की तुलना भी औषधि से की गयी है।[33] बौद्ध ग्रन्थों में ज्वर,[34] तीर लगने से हुये घाव,[35] गंभीर फोड़े,[36] नेत्रों की शल्य क्रिया,[37] उदर रोग[38] व विष आदि की चिकित्सा[39] के संदर्भ प्राप्त हैं।

बौद्ध ग्रन्थों में मात्र चिकित्सा पद्धति से सम्बन्धित ही नहीं अपितु भोजन में संयम से सम्बन्धित संदर्भ भी प्राप्त होते हैं,[40] जो स्वास्थ्य के प्रति जागरुकता के परिचायक हैं। भिक्षु अपने शरीर एवं स्वास्थ्य की समुचित देखभाल करते थे।[41] महावग्ग में भिक्षुओं को रोग निवारक औषधि प्राप्त न होने पर वर्षावास

छोड़ने की अनुमति दी गयी है।[42] यही नहीं भिक्षुओं को यह निर्देश भी दिया गया है कि उन्हें किसी अन्य भिक्षु, भिक्षुणी, शिक्ष्यमाणा, श्रामणेर, श्रामणेरी, माता एवं पिता के रुग्ण होने पर बिना बुलाये भी सप्ताहपर्यन्त जाना चाहिये।[43] महावग्ग में सुप्पिया (सुप्रिया) नामक उपासिका का संदर्भ प्राप्त होता है जो प्रतिदिन विहार में जाकर भिक्षुओं से पूँछती थी कि कौन रोगी है? किसको क्या चाहिये?[44] उनकी आवश्यकता ज्ञात होने पर वह उनके लिये औषधि पथ्य व अन्य वस्तुओं की व्यवस्था करती थी। बुद्ध ने उसके प्रयत्नों की सराहना करते हुये सुप्पिया को भिक्षु रोगियों की परिचर्या करने वाली उपासिकाओं में श्रेष्ठ घोषित किया।[45]

तत्कालीन भारतीय औषधियों एवं स्वास्थ्य के पास्परिक सम्बन्धों को समझते थे।[46] महावग्ग के भैषज्य स्कन्धक में बुद्ध द्वारा रोगी भिक्षुओं को, रोग निवारण हेतु प्रयुक्त होने वाली विभिन्न औषधियों के विषय में विस्तार से बताया गया है।[47] कुछ संदर्भों से विज्ञान एवं अंधविश्वास के बींच संघर्ष के भी संकेत प्राप्त होते हैं जो तत्कालीन भारत के यथार्थ स्वरूप का बोध कराते हैं परन्तु दोनो के इस संघर्ष में विज्ञान की भूमिका ही अधिक प्रभावी प्रतीत होती है।

स्पष्ट है कि विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक रोगों से त्रस्त मानव जीवन की पीड़ा के प्रति अतिसंवेदनशील बुद्ध ने 'दु:ख के कारण' एवं उससे 'मुक्ति के उपाय' की खोज की और 'अष्टांगिक मार्ग' के द्वारा ध्यान को महत्वपूर्ण स्थान देते हुये निर्वाण की अतुलनीय स्थिति की प्राप्ति का मार्ग बताया जो व्यक्तिगत प्रयत्नो के द्वारा सभी के लिये सुलभ था। बौद्ध ग्रन्थों में प्राप्त चिकित्सा विज्ञान सम्बन्धी संदर्भ एवं द:ुख से मुक्ति के लिये एक मनो चिकित्सक की भाँति प्रयासरत बुद्ध, बौद्ध धर्म में चिकित्साविज्ञान के महत्व एवं स्वस्थ व्यक्ति एवं समाज के निर्माण के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को प्रमाणित करते हैं।

संदर्भ एवं टिप्पणियॉ

1. दृष्टव्य मज्झिमनिकायपालि, भाग 1(वाल्यूम 1-2), संपा. एवं अनु. स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, वाराणसी, 1998, पृ. 336-40; हार्नर, आई. बी., दि कलेक्शन्स ऑफ द मिडिल लेन्थ सेइन्गस, वाल्यूम 1, दिल्ली, 2004, पृ. 297-301।
2. ''द्वेमे, भिक्खवे, अन्ता पब्बजितेन न सेवितब्ब।..यो चायं कामेसु कामसुखाल्लिकानुयोगो हीनो गम्मो पोथुज्जनिको अनरियो अनत्थसंहितो, यो चायं अत्तकिलमथानुयोगो दुक्खो अनरियो अनत्थसंहितो। एते खो, भिक्खवे, उभो अन्ते अनुपगम्म, मज्झिमापटिपदा तथागतेनअभिसम्बुद्धा, चक्खुकरणी ाणकरणी उपसमाय अभिाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति।'' महावग्गपालि, 1.7., संपा. एवं अनु. स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, वाराणसी, 1998, पृ. 17; विनय टेक्सट्स, एस.बी.ई. वाल्यूम, 13, भाग 1, अनु. टी. डब्ल्यू. रीज डेविड्स एवं एच. ओल्डेनबर्ग, संपा. एफ. मैक्समूलर, 1995, दिल्ली, पृ. 94।
3. केर्न, जे., मेन्युअल ऑफ इण्डियन बुद्धिज्म, स्ट्रासवर्ग, 1896, पृ. 46।
4. बाशम, ए. एल., दि वन्डर दैट वाज इण्डिया, न्यूयार्क, 1954, पृ. 501।
5. मिलिन्दपङ्ह्हपालि, 4.5.3।
6. तदैव, 4.1.3।
7. तदैव, 4.1.5।
8. आर्क्योलॉजिकल रिपोर्ट, वाल्यूम 1, 1862-65, पृ. 341।
9. मुखोपाध्याय गिरिन्द्रनाथ, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन मेडिसिन, वाल्यूम 3, मुन्शीराम मनोहरलाल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 672।
10. मिलिन्दप०हपालि, 1,1, संपा. एवं अनु. स्वामी द्वारकादास शास्त्री, वाराणसी, 1990; जातक, 4, 171।
11. दास, एस. के., दि एजुकेशनल सिस्टम ऑफ दि एन्श्येन्ट हिन्दूज, कलकत्ता, 1930, पृ. 217।
12. गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, पूर्वोद्धृत, पृ. 675।
13. तदैव पृ. 676।
14. हर्नले रुडोल्फ, बॉवर मेन्यूस्क्रिप्ट, ए. एस. आई. भाग 3-7, पृ. 170-72।
15. महावग्गपालि, 8,1; पृ. 440-441; विनय टेक्सट्स, एस.बी.ई. वाल्यूम, 17, भाग 2, अनु. टी. डब्ल्यू. रीज डेविड्स एवं एच. ओल्डेनबर्ग, संपा. एफ. मैक्समूलर, 1996, दिल्ली, पृ. 175।
16. तदैव, पृ. 441।
17. झा, डी. एन., हायर एजुकेशन इन एन्श्येन्ट इण्डिया, (संपा. मुनीस रजा, हायर एजुकेशन इन इण्डिया रेट्रोस्पेक्ट एण्ड प्रास्पेक्ट), नई दिल्ली, 1991, पृ. 3।
18. दृष्टव्य मुकर्जी, राधा कुमुद एन्श्येन्ट इण्डियन एजुकेशन, ब्रह्मेनिकल एण्ड बुद्धिस्ट, दिल्ली, 1960, पृ. 469।
19. दास, एस. के., पूर्वोद्धृत, पृ. 218।
20. बाशम, ए. एल., पूर्वोद्धृत, पृ. 502।
21. मिलिन्दप०हपालि, 4.1.9।
22. तदैव।
23. तदैव।
24. तदैव, 2.1.2।
25. तदैव, 4.1.1।
26. तदैव, 5.1.6।
27. मुकर्जी, राधा कुमुद, पूर्वोद्धृत, पृ. 347।
28. तदैव

29. मिलिन्दप०हपालि, 4.4.4।
30. जातक, 2, 213।
31. मिलिन्दप०हपालि, 3.2.20।
32. तदैव, 2.2.4।
33. तदैव, 4.3.10।
34. तदैव, 4.1.1।
35. तदैव, 3.6.1।
36. तदैव, 4.1.4।
37. जातक, 4, 408।
38. मिलिन्दप०हपालि, 4.5.9।
39. तदैव, 5.3.6; मुकर्जी, राधा कुमुद, पूर्वोद्धृत, पृ. 472।
40. मिलिन्दप०हपालि, 4.2.4; 4.3.2; 5.1.1।
41. तदैव, 3.6.1।
42. ''इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगता भिक्खू .....लभन्ति, सप्पायानि भोजनानि, न लभन्ति सप्पायानि भेसज्जानि। एसेव अन्तरायो ति पक्कतितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स'' महावग्गपालि, 3.7; पृ. 244; विनय टेक्सट्स, पूर्वोद्धृत, पृ. 315।
43. तदैव, 3.4-7; पृ. 236-242; विनय टेक्सट्स, एस.बी.ई. वाल्यूम, 13, पृ. 312।
44. तदैव, 6.8; पृ. 358; विनय टेक्सट्स, एस.बी.ई. वाल्यूम, 17, पृ. 80-81।
45. अंगुत्तरनिकायपालि, 4.8.10, वाल्यूम 1,संपा. एवं अनु. स्वामी द्वारकादास शास्त्री, वाराणसी, 2009, पृ. 40; हरे, ई., एम., वाल्यूम 1, द बुक ऑफ द ग्रेजुअल सेइंग्स, दिल्ली, 2001, पृ. 25।
46. मिलिन्दप०हपालि, 5.3.10; 5.4.2।
47. महावग्गपालि, 6.1-29, पृ. 332-409; विनय टेक्सट्स, एस.बी.ई. वाल्यूम, 17, पृ. 41-145।

चित्र संख्या 1
भैषज्यगुरु सूत्र व्याख्यान करते बुद्ध का चित्र (चीन के तांग वंश परवर्ती काल की पैराडाइज गुफा सं. 12 से प्राप्त)

चित्र सं. 2
भैषज्य बुद्ध, लाता, चमोली, गढ़वाल (कठोच, यशवन्त सिंह, मध्य हिमालय, खण्ड 2 से साभार)

चित्र संख्या 3
बुद्ध द्वारा की गई एक शल्य क्रिया
स्टडी ऑफ बुद्धिस्ट मेडिसिन एण्ड सर्जरीइन गांधार से साभार

चित्र संख्या 4
पंचभैषज्य का दान
इलाहावाद संग्रहालय से साभार

चित्र संख्या 5
आरोग्य विहार, कुम्रहार
पटना संग्रहालय, इण्डियन आर्क्योलॉजी 1954-55

चित्र संख्या 6
जीवक का आम्रवन विहार, राजगीर

ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत भारत में पाश्चात्य शिक्षा का विकास

डॉ० संजय कुमार मिश्र

सहायक आचार्य इतिहास विभाग, डी.ए.वी.पी. कालेज गोरखपुर

अंग्रेजों के भारत में आ जाने से अंग्रेजी भाषा थोड़ा-बहुत पॉव फैलाने लगी थी और इस काम में उसके सहायक कुछ तो कम्पनी के कर्मचारी थे, कुछ धनी-मनी, उदार भारतीय लोग और सबसे अधिक ईसाई धर्म प्रचारक। किन्तु कम्पनी शासन प्रारम्भ में इस प्रकृति को प्रोत्साहन देना नहीं चाहते थे, उसका कारण यह था कि अंग्रेज इस देश में अपने राज्य की जड़ जमाना चाहते थे अभी तक उन्होने यह तय नहीं किया था कि भारतवर्ष में अंग्रेजी शिक्षा देना ठीक होगा या नहीं।

भारतवर्ष में शिक्षा की दिषा में पहला कार्य सन् 1781 ई0 में तब हुआ जब वारेन हैस्टिंग ने कलकत्ते में एक मदरसा खोला। इसके ठीक दस वर्ष बाद सन 1791 ई0 में बनारस के रेजिडेंट जोनाथन डंकन के कहने पर लार्ड कार्नवालिस ने बनारस में हिन्दुओं के लिए भी एक संस्कृत कालेज की स्थापना की जो शिक्षा के क्षेत्र में कम्पनी सरकार का दूसरा कदम कहा जा सकता है।[1]

भारतवासियों को पाश्चात्य शिक्षा दी जाय, यह विचार सर्वप्रथम सर चार्ल्स ग्रांट के मस्तिष्क में सन् 1792 में आया और उन्होने कम्पनी के डायरेक्टरों के बोर्ड के समक्ष यह प्रस्ताव सन 1793 ई. मे रखा। किन्तु इस प्रस्ताव पर विचार करने के लिए बोर्ड का कोई भी सदस्य तैयार नहीं हुआ।[2] राजा राममोहन राय बराबर कम्पनी सरकार के सामने यह आन्दोलन कर रहे थे कि भारत में अंग्रेजी शिक्षा का आरम्भ अविलम्ब किया जाना चाहिए। राममोहन राय ने अपने दो मित्रों मिस्टर डेविड हेयर और सर हाइड ईस्ट चीफ जस्टिस की सहायता से सन् 1816 ई. में कलकत्ते में हिन्दू महाविद्यालय की स्थापना की, जो आगे चलकर प्रेसीडेन्सी कालेज कहलाने लगा।[3] प्राच्य और पश्चात का विवाद मुख्यत: कलकत्ते मे ही चला और वहीं लार्ड मैकाले के परामर्श से लार्ड विलियम बेंटिगने अपनी सन 1835 ई. की घोषणा में यह प्लान किया कि भारतवर्ष में शिक्षा का माध्यम पाश्चात्य भाषा अंग्रेजी होगी। यह बड़े ही महत्व की घोषणा थी, क्योंकि इसी के कारण भारत का मानसिक कायाकल्प पूर्ण हुआ।

कम्पनी सरकार भारतवासियों की शिक्षा की जिम्मेदारी लेने को तैयार नही थी। सरकार कई प्रकार की कठिनाइयों से डरती थी। सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि अगर सारी जनता को शिक्षित करने का कार्यक्रम बनाया जाय तो इस विशाल कार्य के लिए धन कहॉ से आयेगा, दूसरी कठिनाई यह थी कि जनता को शिक्षित करना है तो यह शिक्षा किन-किन भाषाओं में दी जा सकती है। सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि अगर पूरोपीय ज्ञान भारतीयों को दिया गया तो वे स्वराज्य की मांग करेंगे और कम्पनी शासन के सामने मुसीबत खड़ी हो जायेगी।

चार्ल्स ग्राण्ट (1746-1823 ई.) ने प्रयास किया कि कम्पनी की जिम्मेदारीयों में शिक्षा भी सम्मिलित कर दी जाय। कम्पनी का चार्टर हर बीस साल के बाद बदला जाता था। सन 1813 ई. वाले चार्टर में कम्पनी को शिक्षा की जिम्मेदारी दे दी गयी और इस मद में उस समय केवल एक लाख रूपये रखे गये। बीस वर्ष बाद 1833 ई. में कम्पनी का नया चार्टर आया, तब यह रकम बढ़ाकर 10 लाख कर दी गयी।

जब ईस्ट-इण्डिया कम्पनी ने मुगल सम्राट से बंगाल की सत्ता वैधानिक रूप से प्राप्त कर ली, तो प्रारम्भिक वर्षो में प्रशासक के रूप में उसका उद्देश्य पूर्व के शासक के कार्य को ही पूरा करना था। अत: उन्होंने प्राच्य विद्या के शैक्षणिक संस्थाओं का विरोध नहीं किया। शिक्षा के विकास के क्षेत्र में उनका प्रारम्भिक प्रयास कुछ मदरसों एवं संस्कृत स्कूलों के खोलने तक सीमित रहा। कम्पनी के शासन व्यवस्था के बढ़ने के साथ ही अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों की जरूरत हुई तो प्रेसीडेन्सी शहरों में अंग्रेजी स्कूल खोले गये।[1] 1813 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी में पहली बार भारतीयों के लिये शिक्षा की व्यवस्था करने के अपने कर्तव्य को महसूस किया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के चार्टर के नवीनीकरण के समय 1813 में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने 15 करोड़ भारतीय जनता के लिये मात्र 1 लाख रुपये शिक्षा के मद में स्वीकृत किया। इतना रुपया तो अवध के नवाब वाजिद अलीशाह ने अपनी शादी में खर्च किया था।[2] 1833 में यह बजट बढ़ाकर 10 लाख रुपये किया गया। 1835 में लार्ड मैकाले के प्रयास से भारत में शिक्षा देने का माध्यम अंग्रेजी भाषा रखने का निश्चय किया गया। शिक्षा के माध्यम के रूप में देशी भाषाओं की उपेक्षा की गयी। इस तरह ब्रिटिश शिक्षा पद्धति को अपनाकर देशी शिक्षा पद्धति की समाप्ति को उचित समझा गया। शिक्षा नीति के निर्माण में अंग्रेजों ने इस सिद्धान्त का अक्षरश: पालन किया कि यदि किसी देश को दास रखना है तो उसके साहित्य और संस्कृति का विनाश कर देना चाहिए।[3] कम्पनी सरकार के अन्तर्गत भारत में पाश्चात्य शिक्षा का विकास धीमी गति से चलता रहा।

1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम ने हमारे राष्ट्रीय जीवन के प्रवाह को बदल दिया।[4] 1857 के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन का अन्त कर दिया गया। 1857 में कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में तीन विश्वविद्यालय खोले गये। स्कूल कालेजों की संख्या में धीरे-धीरे वृद्धि होने लगी। 1857 के बाद पाश्चात्य शिक्षा में सुधार के साथ ही स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय में मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने की माँग की जाने लगी लेकिन ब्रिटेन अपनी नीति में परिवर्तन करना नहीं चाहता था।[5] पंजाब के अन्जुमरी (Anjumari) ने प्राचीन विद्या (Oriental Education) के अध्ययन हेत हिन्दी माध्यम के एक

विश्वविद्यालय की स्थापना की माँग की। इस कार्य हेतु उन्होंने जनता से चन्दा प्राप्त कर एक बड़े कोष की स्थापना भी कर ली। जनता की माँग को देखते हुए 1882 में लाहौर में पंजाब विश्वविद्यालय की स्थापना की गयी। इस विश्वविद्यालय में प्राच्य विद्या के अध्ययन व्यवस्था के साथ ही शिक्षण का माध्यम हिन्दी रखा गया। यह अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा के पक्षधर एलेक्जेन्डर डफ, थामस मैकाले और चार्ल्स टर्वेलियन के मुँह पर तमाचा था। जिनका मत था कि भारतीय भाषाओं के माध्यम से उच्च शिक्षा देना सम्भव नहीं है।[6] सरकार ने पाश्चात्य शिक्षा के विकास के उद्देश्य से 1887 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना की।

1870-71 से लेकर 1881-82 के बीच भारत में प्राथमिक शिक्षा का विस्तार तेजी से हुआ। 1870-71 में जहाँ प्राथमिक विद्यालयों की कुल संख्या 16,473 थी, वहीं 1881-82 में यह संख्या बढ़कर 82,916 हो गयी।[7] लेकिन प्राथमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के दृष्टि से यह संख्या बहुत ही कम थी। 1881-82 में भारत की जनसंख्या के मान 1.92 प्रतिशत छात्र एवं 0.08 प्रतिशत छात्राएं ही इस प्राथमिक शिक्षा से लाभान्वित थी।[8] 1881-82 में प्राथमिक शिक्षा पर सरकार द्वारा 16.77 लाख रुपया खर्च किया गया।[9] 1881-82 में माध्यमिक विद्यालयों की संख्या 3916 थी। 1857 में जहाँ उच्च शिक्षा के लिये मात्र 13 सामान्य महाविद्यालय थे, वहीं 1881-82 में इनकी संख्या बढ़कर 72 हो गयी।

1885-86 में माध्यमिक विद्यालयों की कुल संख्या 4145 हो गयी, जिसमें 2263 अंग्रेजी माध्यम के साथ 1882 देशी भाषा के विद्यालय थे। इनमें पढ़ने वाले कुल छात्रों की संख्या 3,94,508 थी। इनमें अंग्रेजी माध्यम से पढ़ने वाले छात्रों की संख्या 2,64,918 थी जबकि देशीभाषा के माध्यम से पढ़ने वाले छात्रों की संख्या 1,29,590 थी।[10] महाविद्यालयों की संख्या में वृद्धि के साथ ही उच्च शिक्षा के क्षेत्र में एम0ए0 तथा बी0ए0 डिग्री धारकों की संख्या में तेजी से वद्धि होने लगी। विज्ञान के शिक्षा में इस काल में प्रगति नहीं के बराबर थीं निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है कि बी0ए0 डिग्री धारकों की संख्या जहाँ बढ़ रही थी, वहीं वी0एस0सी0 डिग्री धारकों की संख्या न्यून से न्यूनतर होती जा रही थी।[11]

डिग्री धारकों की संख्या

डिग्री	*1884-85*	*1885-86*
बी0ए0	569	707
बी०एस०सी०	04	03
एम0ए0	23	46

ब्रिटिश सरकार ने उच्च शिक्षा के प्रसार के प्रयत्न किये। लेकिन वांछित सफलता नहीं मिली। इसके पीछे मुख्य बात यह थी कि सरकार ने योजनाबद्ध ढंग से उच्च शिक्षा के प्रसार की नीति नहीं बनायी थी।[12]

1886-1897 के बीच ब्रिटिश सरकार ने उच्च शिक्षा के अन्तर्गत इन्जीनियरिंग कालेज, मेडिकल कालेज तथा । विधि महाविद्यालयों के प्रसार पर भी ध्यान दिया। इन कालेजों की संख्या एवं उसमें पंजीकृत छात्रों की संख्या को हम निम्नलिखित तालिका से देख सकते हैं।[13]

कालेज वर्ष 1886-87 वर्ष 1891-92 वर्ष 1896-97

कालेज सं. छात्र सं. कालेज सं. छात्र सं. कालेज सं. छात्र सं

इन्जीनियरिंग कालेज 4 474 4 448 4 667

मेडिकल कालेज 4 654 4 778 4 1067 विधिमहाविद्यालय 17 1697 27 1932 29 2524

मेडिकल कालेज में छात्रों के पंजीकरण की तुलना में इन्जीनियरिंग कालेजों में छात्रों का पंजीकरण कम था। इसके पीछे यह एक कारण यह था कि उस समय रोजगार के क्षेत्र में तकनीकी स्नातकों की माँग अपेक्षाकृत कम थी।

1888 में ब्रिटिश सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय सेवा देने से अपने को अलग करने के एक प्रस्ताव की घोषणा की। इस तरह सरकार के निष्क्रियता की नीति का लाभ ईसाई मिशनरियों को मिला।[14] मिशनरियों ने ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से असंख्य स्कूल एवं कुछ कालेजों की स्थापना की। 1883 में हन्टर आयोग ने प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय में सुधार के लिये एक रिपोर्ट सरकार को दी। इस रिपोर्ट का प्रभाव भारत में शिक्षा के विकास के क्षेत्र में दिखलायी पड़ने लगा था। सरकार द्वारा रिपोर्ट के सुझावों को स्वीकार कर लेने के बाद आने वाले वर्षों में माध्यमिक एवं कालेज शिक्षा में अभूतपूर्व विकास हुआ।[15]

1886 से 1897 के बीच प्राथमिक विद्यालयों की संख्या एवं उसमें पढ़ने वाले छात्रों की संख्या में तेजी से वृद्धि खिलायी पड़ती है। 1886-87 में प्राथमिक विद्यालयों की कुल संख्या 84673 थी एवं पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या 1238,1217 थी वहीं 1896-97 में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या बढ़कर 97881 हो गयी तथा इनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या 3,02,8203 हो गयी।[16]

1899 में लार्ड कर्जन भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया। साम्राज्यवादी कर्जन भारतीय शिक्षा पद्धति पर पूर्ण सरकारी नियंत्रण रखना चाहता था। कर्जन के प्रशासन काल में 1902 में सर थामस रैले (Sir Thomas Releigh) की अध्यक्षता में एक आयोग बनाया गया, जिसका उद्देश्य विश्वविद्यालयों की स्थिति की समीक्षा करते हुए उसके संविधान तथा कार्य-क्षमता के सम्बन्ध में सुझाव देना था।[17] 1904 में भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम द्वारा भारतीय विश्वविद्यालय कानून से राष्ट्रवादियों को लगा कि भारत के विश्वविद्यालयों पर और भी सख्त सरकारी नियंत्रण स्थापित करने तथा उच्च शिक्षा का प्रसार रोकने का प्रयास किया जा रहा है।[18] तत्कालीन विधान परिषद् के अन्दर तथा बाहर राष्ट्रवादी तत्वों ने इस अधिनियम की कड़ी आलोचना की। लार्ड कर्जन के शिक्षा नीति का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने उच्च शिक्षा की अपेक्षा प्राथमिक शिक्षा पर ही शहरी क्षेत्रों की

अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों पर. व्यावसायिक शिक्षा की अपेक्षा कृषि शिक्षा पर जोर देना उचित समझा, क्योंकि विटिशराज का विरोध करने वाले शहरी शिक्षित भारतीय ही थे कर्जन की इस नीति का प्रभाव भारत की उच्च शिक्षा के क्षेत्र में पड़ना भी प्रारम्भ हो गया था। सम्बद्ध महाविद्यालयों की संख्या 1902 में जहाँ 192 थी 1907 में पटकर 174 हो गयी जो 1912 में यह संख्या और घटकर 170 पर पहुँच गयी।

21 फरवरी, 1913 को शिक्षानीति पर सरकारी प्रस्ताव में घोषणा की गयी कि प्रत्येक प्रान्त में विश्वविद्यालय को स्थापना की जायेगी। राष्ट्रवादी नेता अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की माँग कर रहे थे। उनका तथा अन्य राष्ट्रवादियों का मत था कि यदि बड़ौदा जैसी रियासत 1906 में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा लागू कर सकती है तो भारत सरकार को भी समस्त ब्रिटिश भारत में ऐसा करना चाहिए। 1915 के सरकारी प्रस्ताव ने इस सिद्धान्त को स्वीक्रति नहीं दी। केवल प्रान्तीय सरकारों को प्रोत्साहन दिया कि वे समाज के पिछडे तथा गरीब वर्ग को नि:शुल्क शिक्षा देने का प्रबन्ध करे। माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में विकास के लिये निजी प्रयत्नों को प्रोत्साहन देने पर भी जोर दिया गया।

1917 में सर माइकेल सैडलर की अध्यक्षता में कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग की नियुक्ति की गयी। इस आयोग ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के साथ-साथ माध्यमिक एवं स्नातकोत्तर शिक्षा पर विचार किया तथा अपने सुझाव दिये। सैडलटर कमीशन के सुझावों के परिणामस्वरूप कुछ और विश्वविद्यालयों की स्थापना की गयी। 1916 में मैसूर में प्रबन्धन विश्वविद्यालय, 1917 में पटना विश्वविद्यालय एवं उसी वर्ष बनारस में एक अध्ययन एवं आवासीय विश्वविद्यालय, 1820 में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और ढाका में एकात्म अध्ययन एवं आवासीय विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। उस्मानियाँ विश्वविद्यालय ने जिसकी स्थापना 1918 में निजाम ने की थी, शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी को न रखकर उर्दू को रखा।

1919 के भारत सरकार अधिनियम द्वारा प्रान्तों में द्वैध-शासन की स्थापना की गयी और शिक्षा को भी भारतीय मंत्रियों के हाथ में रखा। यूरोपीय तथा एंग्लो-इण्डियन शिक्षा अभी भी मंत्रियों के अधीनता से दूर रखा गया। द्वैध शासन के स्थापना के साथ ही शिक्षा के लिये दिये जाने वाले केन्द्रीय अनुदान बन्द कर दिये गये। यद्यपि प्रान्तीय सरकारें वित्तीय कठिनाइयों के अनुरूप शिक्षा योजनाओं को आरम्भ न कर सकी तथापि लोकोपकारी व्यक्तियों एवं सहायता के परिणामस्वरूप प्रान्तों में शिक्षा का विकास हुआ।

1857 के विद्रोह से लेकर 1919 के प्रान्तों में द्वैध शासन की स्थापना तक का यह काल शिक्षा के विकास के इतिहास में एक महत्वपूर्ण काल था। इस काल की प्रमुख विशेषता यह रही कि आधुनिक शिक्षा पद्धति का प्रसार तीव्र गति से हुआ। इसके साथ ही देशी पद्धति का अधिकांशत: लोप हो गया। नयी शिक्षा पद्धति की उपलब्धियाँ गुणात्मक ही थी, परिणात्मक नहीं। इस पाश्चात्य शिक्षा पद्धति ने भारतीय विचारधारा को उद्दीप्त करने, समाज की प्रगति में बाधक बन्धनों को खत्म करने तथा राष्ट्र के सभी क्षेत्रों में पुनर्जागरण लाने में प्रारम्भ इसी नयी शिक्षा नीति के विकास ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस शिक्षा व्यवस्था की सबसे बड़ी कमी थी कि इसमें साहित्य की शिक्षा पर आवश्यकता से अधिक बल दिया गया। इस शिक्षा पद्धति में तकनीकी वैज्ञानिक एवं औद्योगिक जानकारी का अभाव था। यह शिक्षा-पद्धति छात्रों को केवल लिपिक तथा अध्यापन व्यवसायों के लिये ही योग्य बनाती थी। शिक्षण माध्यम का अंग्रेजी भाषा का होना तथा परीक्षाओं को अधिक महत्व दिया जाना इसकी एक और कमी थी।

संदर्भ

1. संस्कृति के चार अध्याय-रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 496-497
2. इनसाइक्लोपीडिया आफ एजुकेशन सिस्टम इन इण्डिया: पृ. 134 एडिटेड बी.एम. शंखधर, नई दिल्ली
3. रामलखन शुक्ला: आधुनिक भारत का इतिहास: पृ. 294 दिल्ली यूनिवर्सिटी 2002
4. अशोक मेहता: द ग्रेट रिबेलियन, पृ. 91
5. इनसाइक्लोपीडिया आफ एजुकेशन सिस्टम इन इण्डिया: वोल्युम 2 पृ. 4 एडिटेड बी.एम. शंखधर, नई दिल्ली 1999
6. वही: पृ.9
7. वही: पृ. 265
8. वही: पृ. 270
9. राम लखन शुक्ला: एडिट आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. 315 दिल्ली यूनिवर्सिटी 2002
10. इनसाइक्लोपीडिया आफ एजुकेशन सिस्टम इन इण्डिया:वोल्युम 3,पृ. 274-775, एडिटेड बी.एम. शंखधरन नई दिल्ली, 1999
11. वही: वोल्युम 3 पृ. 244
12. हायर एजुकेशन रिफार्म इन इण्डिया: एक्सपीरियेन्स एण्ड प्रोस्पेक्टिव, एडिटेड सुमा चिटनिस एण्ड फिलीप जी. अलबच: पृ. 14 सेगा पब्लिकेशन नई दिल्ली 1993
13. इनसाइक्लोपीडिया आफ एजुकेशन सिस्टम इन इण्डिया: वोल्युम 4 पृ. 202, 2012,452,453, एडिटेड बी.एम. शंखधर, नई दिल्ली 1999
14. वही: वोल्युम 2 पृ. 10
15. डॉ. आर.सी. दुबे: उच्च माध्यमिक इतिहास: पृ. 177, भारती सदन कोलकाता, 2003
16. इनसाइक्लोपीडिया आफ एजुकेशन सिस्टम इन इण्डिया, वोल्युम 5 पृ. 319, एडिटेड, बी.एम. शंखघर, नई दिल्ली 199
17. डॉ. आर.एस. पाण्डेय: डेवलपमेन्ट आफ माडर्न सिस्टम आफ एजुकेषन इन इण्डिया: ए लेक्चर डाइवेंट इन 88वॉ ओरिऐंटेशन प्रोग्राम: यू.जी.सी. ऐकेडेमिक स्टाफ कालेज, इलाहाबाद, दिनांक 12.10.2009, अनपब्लिश समरी रिपोर्ट
18. विपिन चन्द्रा: आधुनिक भारत का इतिहास: पृ. 241-42: ओरियेन्टल ब्लैक स्वान प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2009

आधुनिक काव्य में सर्प-बिम्ब: दिनकर

डॉ० वर्षा अग्रवाल

हिन्दी विभाग, सी.एम.पी. डिग्री कॉलेज, प्रयागराज

आधुनिक काव्य में सर्प बिम्ब का प्रयोग सर्वाधिक दिनकर के काव्य में मिलता है। दिनकर के काव्य में सर्प बिम्ब का प्रयोग मानवीय जिह्मताओं के प्रतीक के रूप में हुआ है। यह साँप एक 'एम्बिबैलेंट' का प्रतीक है। इसको सामूहिक अवचेतन (Collective Unconcious) के मुख्य विचारों को व्यक्त करने वाले प्रतीक के रूप में भी जाना जाता है। हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले मुहावरों में 'आस्तीन का साँप' एक बहुप्रचलित मुहावरा बन गया है। यह साँप ईर्ष्या, द्वेष, दुष्टता, रोज, संहार, छलछंद आदि अनेक प्रतीकों के रूप हमारे सम्मुख प्रस्तुत होता है। ईसाई धर्मशास्त्रों में 'सर्प' मनुष्य को लुब्ध कर पाप की ओर ढकेलने वाला माना गया है। प्राचीन काल से ही 'सर्प' शब्द भय की ध्वनि उत्पन्न करता है। जीवन के अनेक स्थलों पर हमें छल, धोखा, फरेब, प्रपंच, विश्वासघात आदि के रूप में इसकी उपस्थिति प्राप्त हो जाती है। यही 'सर्प' बिम्ब के रूप में दिनकर जी की कविताओं में भी परिलक्षित होता है। जिसका प्रयोग रूढ़िगत अर्थ में ही मुखरित हुआ है।

समस्त आधुनिक काव्य में 'सर्प-बिम्ब का सर्वाधिक प्रयोग दिनकर ने किया है। दिनकर की सभी कविताओं में सर्प बिम्बों की कुल संख्या 111 है। 'रेणुका' में 5, 'हुँकार' में 7, 'कुरुक्षेत्र में 13, 'बापू' में 7, 'धूप-छाँह' में, 1, 'रश्मिरथी' में 22, 'नील कुसुम' में 11, 'नये सुभाषित' में 1, 'सीपी और शंख' में 4, 'उर्वशी' में 8, 'परशुराम की प्रतीक्षा' में, 15, 'कोयला और कवित्व' में 1, 'आत्माा की आंखें' में 2 और 'मृत्ति तिलक' में 7 सर्प-बिम्ब है। सर्वाधिक बिम्बों की संख्या हमें 'रश्मिरथी' में प्राप्त होती है। सबसे कम बिम्बों की सँख्या 'धूप छाँव', नये सुभाषित और 'कोयला और कवित्व' में मिलती है। 'द्वन्द्वगीत' और 'रसवंती' में एक भी सर्प-बिम्ब प्राप्त नहीं होता है। मनुष्य की जिह्मताओं को व्यक्त करने वाले सर्प-बिम्ब दिनकर-काव्य में निम्न हैं-जिनकी संख्या 75 से अधिक है।

कुरुक्षेत्र-

1. क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो,
2. उठता कराल हो फणीश फुफकार है,
3. क्यों युधिष्ठिर! इस नागिन का विष से भरा दशन है।
4. थी परस्व ग्रासिनी भुजांगिनि,
   वह जो जली समर में।
5. कहीं प्रतिशोध का कोई भुजंगम
6. द्रुपदा-कच में थी जो लोभ की नागिन,
7. प्राण में अब भी वही फुंकार भरता नाग।

रेणुका (हिमालय)-

1. व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे,
   डँस रहे चर्तुदिक विविध व्याल।

रेणुका (कस्मै देवाय?)-

1. गूँज रही संस्कृति-मंडप में
   भीषण फणियों की फुफकारें,
   गढ़ते ही भाई जाते हैं,
   भाई के बध-हित तलवारें।

बापू-

1. विष के मतवाले कुटिल नाग
2. पर, तुम साँपों से भी कराल,
   काँटों से भी काले निकले,

रश्मिरथी-

1. ये नर-भुजंग मानवता का
   पथ कठिन बहुत कर देते हैं।
2. नागिन होगी वह, नारि नहीं।
3. पुरूष की बुद्धि गौरव खो चुकी है
   सहेली सर्पिणी की हो चुकी है।
4. मानवी रूप में विकट साँपिनी हूँ मैं
5. सर्पिणी परम विकराली थी।
6. वय अधिक आजतक व्यालों के
   पालन पोषण में बीता है।

सामधेनी (अतीत के द्वार पार)

1. आज कठिन नरमेध! सभ्यता ने
   ये क्या बिषधर पाले!

सामधेनी (दिल्ली और मास्को)-

1. यह नागिनी स्वदेश हृदय पर
   गरल उड़ेल लोटने वाली।

हुंकार (विपगथा)-

1. भूखी वाधिन की घात-क्रूर,
   आहत भुजंगिनी के दसन!

मृत्तितिलक-

1. श्रम पिला पालता स्वार्थ-व्याल
2. पालता अन्य विषधर भुजंग

परशुराम की प्रतीक्षा-

1. डँसे एक को सर्प अगर तो दस मिलकर हँसते हैं।
2. सुनती हो नागिनी। समझती हो महाभयानक व्याल
3. तोड़ेगा सिर नहीं विषधर भुजंग का?
4. पर्वत पर से उतर रहा है महाभयानक व्याल

नील कुसुम (व्याल विजय)-

1. विषधारी! मन डोल कि मेरा आसन बहुत कड़ा है
2. ओ शंका के व्याल! देखमत

मेरे श्याम वदन को।

3. कृष्ण आज लघुता में भी साँपों से बहुत बड़ा है।

नये सुभाषित-

1. जहाँ-जहाँ हैं फूल, वहाँ क्या साँप है?

1. सर्प 'काल के प्रतीक के रूप में

सर्प काल का प्रतीक है, क्योंकि वह लम्बा होता है, पाँव उठाकर नहीं चलता, केवल सरकता है। काल की अनंतता का यह प्रभावशाली प्रतीक माना जाता है। विष्णु के शेषशायी रूप की पौराणिक परिकल्पना काल की ही परिकल्पना है। काल में बिना हम अपने अस्तित्व की कल्पना नहीं कर सकते। पुराणों में शेषनाग के दस हजार मस्तक हैं ऐसा वर्णन आया है। यह दस सहस्र भी उपलक्षण मात्र है। तात्पर्य है कि उसके मस्तक की संख्या असंख्य है। यह शेष, जो कि काल का प्रतिरूप है, असंख्य रूपों में सृष्टि में विकास और संकोच का कार्य करता रहता है यथा-

त्वयाधृतोऽयं धरणीं विभर्ति चराचरं विश्वमनन्तमूर्ते।
कृतादिभेंदैरजकाल रूपो निमेषपूर्वो जगदेतदत्सि।।[1]

अर्थात् 'हे अनन्त रूप वाले! तुम जिस धरती को धारण किये रहते हो, वह चराचर विश्व को धारण किये रहती है। हे अज! निमेष (पल) से ले कर कृत (सत्य) युग आदि विभाग-युक्त कालरूप से इस संसार को खाते रहते हो।''

'चक्र' को भी काल का प्रतीक माना गया है, किन्तु 'सर्प' ही प्रमुखत: काल का प्रतीक माना गया है-

रामात् त्रस्यति कालभीमभुजंग:।[2]

अर्थात् 'राम से भयंकर काल सर्प डरता रहता है।' 'रामचरित मानस' में तुलसीदास ने लिखा है कि 'काशीश शिव काल रूपी भयंकर सर्प को भूषण की तरह धारण किये रहते हैं-

कालव्यालकरालभूषणधरम् (काशीशम्)।[3]

अध्यात्मरामायण में उल्लेख मिलता है कि 'जिस प्रकार सर्प' के मुँह में पड़ा हुआ बेंग, मच्छड़ इत्यादि को खाना चाहता है, उसी तरह काल, सर्प से ग्रस्त लोग क्षणिक सुख को भोगना चाहते हैं-

यथा व्यालगलस्थोऽपि भेको दंशानपेक्षते।
तथा कालाहिना ग्रस्तो लोको भोगानशाश्वतान।[4]

ब्रह्म पुराण में कहा गया है कि भगवानकृष्ण, रूद्र, रूप धारण कर सारी सृष्टि को आत्मस्थ करने के लिए संहार का यत्न करते हैं। तत्पश्चात सृष्टि का हरण करने वाले में कालाग्नि हर, शेषनाग की साँसों के ताप से नीचे पाताल लोकों को भी जला देते हैं-

तत: स भगवान कृष्णो रुद्ररूपधरोऽव्यय:।
कर्माय यतते कर्तुमात्मस्था: सकलारू प्रजा:।
तत: कालाग्निरूद्रोसौ भूतसर्गहरो हर:।
शेषहिश्वासतंतापात् पातालाग्नि वहत्यघ:।[5]

यहाँ सृष्टि की संहारक शक्ति को काल, रुद्र, कृष्ण और शेष कहा गया है। इनमें किसी में भी कोई भेद नहीं माना गया है। डॉ. जनार्दन मिश्र के अनुसार-'काल के उत्प्रेक्षा और संकोच क्रिया की लपेट में सारी सृष्टि पड़ी हुई है। संसार के ऊपर यही काल-सर्प की लपेटे हैं। काल गति और दिक की स्थिति इन दोनों की खींचा-खींची में सृष्टि, स्थिति और संहार की क्रिया चलती रहती है। दिक् की स्थिति-शक्ति का प्रतीक पृथ्वी है। पृथ्वी और सर्प-अर्थात् दिक् और काल-इस महालीला में, प्रभु के प्रधान सेवक बनकर उनके इच्छानुसार अपने कार्य में लगे रहते हैं। जब सारी सृष्टि का लोप हो जाता है, तब सब के अन्त के बाद अंतिम लय तक यह गति-शक्ति कुछ-न-कुछ बची रहती है। इसलिए इसका नाम शेष है। यह शेष (बचा हुआ) भी अंत में अपनी उद्गम-भूमि महाकाल में लीन हो जाता है। 'शेष' कारण के अर्णव में तैरता रहता है। यह कारण भी पीछे अशेष कारण-ब्रह्म में लीन हो जाता है।[6] यदि कार्य और कारण को एक रूप में देखा जाय तो विष्णुरूप में काल अनन्त बन जाता है और महेशरूप में महाकाल। 'काल के सर्परूप में पाँच और सात मुँख बनाने का विधान है। यह पंचभूत और सप्तलोक में व्याप्त, काल की क्रियाओं का प्रतीक है।[7]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आदि, मध्य और अन्तावस्था में सृष्टि का प्रवर्तन और समावर्तन करने वाली शक्ति ही काल है। सर्प इसी का प्रतीक है। सर्प का काल के प्रतीक के रूप में दिनकर ने अच्छा उपयोग दिया है। दिनकर शेष नाग को काल के प्रतीक के रूप में ही स्वीकार करते हैं। जैसे-

हुँकार-(चाह एक)-

1. जा रहा बीतता होम लग्न
   करवटें चुका ले शेष व्याल।

हुँकार (मेघ-रन्ध्र में बजी रागिनी)

1. अशेषफण शेष! सजग हो
   थामो धरा, धरो भूधर,
   मेघ रन्ध्र में बजी रागिनी
   टूट न पड़े कहीं अम्बर।

अर्थात् शेष को अशेषफण कहने का तात्पर्य यह है कि काल के चरण अनंत हैं। भारतीय पौराणिक कल्पना में 'शेष को तो काल का ही प्रतीक माना गया है। किन्तु दिनकर ने 'सर्प' को ही काल के प्रतीक के रूप में उपस्थित किया है। 'नागपंचमी' इत्यादि पर नाग देवता की आराधना करना एक अत्यन्त प्राचीन परम्परा रही है। हम सर्प की पूजा करते हैं क्योंकि हमें मृत्यु से भय लगता है। यह पूजा केवल भारतवर्ष में ही नहीं होती। मिश्र में भी पत्थर की प्राचीन कब्रों पर सर्प की प्रतिकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। मैक्सिको के पंख वाले सर्पो की बातें हम सुनते आये हैं। भारतीय पुराणों में तो सर्प कथाओं के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। सर्पदंश विषैला होता है। अधिकांश दंश की अंतिम परिणति मृत्यु है। इसलिए यह मरण और संहार का प्रतीक बन गया है। काल को वृद्धावस्था तथा मृत्यु का कारण माना गया है, इसलिए सर्प भी काल का प्रतीक है। सर्प से प्रत्येक व्यक्ति को भय लगता है, क्योंकि यह भय अनुभव की अपेक्षा जन्मजात अधिक होता है। हम अँधेरे में रस्सी के टुकड़े को भी भय के कारण सर्प समझ बैठते हैं। कहने का आशय यह है कि सर्प-भय हमारे संस्कार का अपरिहार्य अंश बन गया है। शेष से भिन्न, केवल सर्प को भी दिनकर ने काल के ही रूप में देखा है-

हुंकार (विपगथा)-

1. जानें, किस दिन फुंकार उठे
   पद-दलित काल सर्पों के फन।
2. मेरे मस्तक के छत्र-मुकुट
   वसु-काल सर्पिणी के शतफन।

सीपी और शंख-

1. हो गया तिरोहित काल-नाग

सामधेनी (जयप्रकाश)-

1. स्वागत है जाओ, काल सर्प के
   फण पर चढ़ चलने वाले।
2. तूफाँ से ले कर काल सर्प तक
   मुझको छेड़ बजाता है।

सामधेनी (राही और बाँसुरी)

1 मैं काल सर्प से ग्रसित
  कभी कुछ अपना भेद न गा सकती

रश्मिरथी (सर्ग 6)

1. वह काल सर्पिणी की जिह्वा,
   वह अटल मृत्यु की सगी स्वसा,

उपर्युक्त सभी उद्धहरणों में सर्प को काल के प्रतीक के रूप में ही दर्शाया गया है, और साथ ही मृत्यु के प्रतिरूप में भी। किंतु आधुनिक काव्य में काल-सर्प की सर्वाधिक विराट कल्पना हमें पंत के 'परिवर्तन' में प्राप्त होती है। सांगरूपक की भाषा को प्रयुक्त करते हुए पंत ने छायावाद की विराट उपमान-योजना का चमत्कार प्रस्तुत किया है।

2. उरोबोरिक इमेज-

पश्चिम में उरोबोरॉस की कथा में सर्प को इसी काल का प्रतीक माना गया है। उरोबोरॉस कुण्डली मारे साँप है, अपने मुँह से अपनी ही पूँछ को काट रहा है। मृत्यु जीवन का अपरिहार्य अंग है और वह जन्म से कम महत्वपूर्ण नहीं है। ज्यों-ज्यों हम वृद्धावस्था की तरफ जाते हैं त्यों-त्यों बाह्य विश्व का रंग हमें फीका महसूस होने लगता है, इसकी तीव्रता शामित होने लगती है और उद्धेग ठंडा पड़ जाता है। 'जीवन की चरम वास्तविकता तो यह है कि बूढ़ा होने के क्रम में व्यक्ति समूह मन (collective psyche) में बूँद-बूँद करके शनैः-शनैः पिघलने लगता है। यह वही समूह मन है जिससे बड़े आयास द्वारा वह शिशु रूप में निकला था।'[9] इसी तरह मानव-जीवन का चक्र अर्थपूर्ण सामंजस्य में परिणति पाता है और प्रारम्भ और अंत एक दूसरे से मिल जाते हैं। यही घटना अनादि काल से उरोबोवॉस की कथा के माध्यम से व्यक्त की जाती रही है। यह अनंतता का साँप है। 'उर्वशी' के तृतीय अंक में पुरुरवा एक एक उद्वेग में कहता है-

सामने टिकते नहीं वनराज, पर्वत डोलते हैं,
काँपता है कुंडली मारे समय का व्याल,
मेरी बाँह में मारुत, गरुढ़, गजराज का वल है।[10]

यह 'उरोबोरिक इमेज' है। दिनकर ने यह बिम्ब अरविन्द से लिया है। अरविन्द ने 'उर्वशी में लिखा है, 'Time like a snake coiling amang the stars.' सर्प का कुंडली मार कर बैठना उसकी एक प्रभावशाली अदा है। दिनकर को उसकी यह अदा अत्यंत पसंद है। 'उर्वर्शी' में एक स्थान पर लिखते हैं-

'कहीं' कुंडली मार बैठ जाओ नक्षत्र निलय में,
मत ले जाओ खींच निशा को आज सूर्य-वेदी पर।[11]
काल के रूप में सर्प बिम्बों की संख्या 10 है।

3. सर्प विशेषः अश्वसेन

दिनकर ने आधुनिक काव्य में सर्प-बिम्बों का सर्वाधिक प्रयोग तो किया ही है इसके साथ ही साथ उनका सर्प-कोश सबसे अधिक समृद्ध है। साँप के लगभग 15 पर्यायवाची शब्द उन्होंने दिये हैं यथा-भुजंग, सर्प, नाग, विषधर फणीश, साँप, विषधारी, अजगर, व्याल, फणी, सरीसृप, अहि, काकोदर, चक्षुरूश्रवा, महानाग। इसके अतिरिक्त व्याली भुजंगिनी, नागिन, सर्पिणी, साँपिनी आदि स्त्रींलिग प्रयोग तो अलग से हैं।

सर्प-विशेष में शेष और अश्वसेन का उल्लेख प्राप्त होना है। 'अश्वसेन' महाभारत में वर्णित सर्प है जो कर्ण की सहायता के लिए प्रस्तुत हुआ था। उसे अर्जुन से द्वेष था। कर्ण ने उसकी सहायता लेना स्वीकार नहीं किया-

इतने में शर के लिए कर्ण ने देखा को अपना निषंग
उसमें से फुफकार उठा कोई प्रचंड विषधर भुजंग
कहा कर्ण 'मैं अश्वसेन विश्रिम भुजंगों का स्वामी हूँ
जन्म से पार्थ का परम शत्रु, तेरा प्रतिबल हितगामी हूँ
कर कृपा चढ़ श्रव्य पर, मुझे पार्थ तक जाने दे
इस महाशत्रु को अभी यही स्पंदन में मुझे सुलाने दे

उसके उत्तर स्वरूप कर्ण ने कहा-

उसपे भी सर्पों से मिलकर, मैं मनुज मनुज से युद्ध करुँ
जीवन भर जो निष्ठा पाली उसके आचरण विरुद्ध करुँ
संसार कहेगा जीवन का सब सुकृत कारन ने क्षार किया
प्रतिमान के वध के लिए नीच ने सर्पों का सहारा लिया
रे अश्वसेन तेरे अनेक वंशज हैं छुपे नरों में भी
बसतें बनों में ही नहीं बसते कुल, ग्राम घरों में भी
ये नर भुजंग मानवता का पथ कठिन बहुत कर देते हैं।
प्रतिभट के वध के लिए नीच सहाय सर्प का लेते हैं।
अर्जुन है मेरा परम शत्रु पर वह सर्प नहीं नर ही तो है। (मनुष्य और सर्प)

दिनकर की कविताओं में सर्प के अंगों और क्रियाओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है। उसके निवास स्थान वामी का भी उल्लेख हुआ है। सर्प की क्रिया, दंश का भी वर्णन मिलता है। सर्प का कुंडली मार कर बैठना भी क्रिया स्वरूप वर्णित हुआ है। दिनकर ने सर्प के पर्यायवाची शब्दों का कितनी बार प्रयोग किया है उसका विवरण यहाँ प्रस्तुत है-साँप 21, सर्प 15, व्याल 12, भुजंग 11, नाग 9, नागिन 6, सर्पिणी 6, भुजंगिनी 4, विषधर 3, फणी 3, चक्षुरूश्रवा 2, व्याली 1, फणीश 1, साँपिनी 1, काकोदर 1, विषधारी 1, महानाग 1, सरीसृप 1, अजगर 1, अहि 2। इसके सर्प विशेष, साथ ही, विषदन्त, मणि, दंश, गरल, फण जिह्वा, कुंडली' आदि को लेकर इन बिम्बों की संख्या 111 हो जाती है। कविताओं में शब्द अनुभूति के ताप से ज्योतित रहते हैं। ठीक इसके विपरीत कोश के शब्द निर्जीव और निष्प्राण होते हैं। 'कवि किसी भी शब्द को जब चुनता है, तब उसकी आभ्यन्तरिक चेतना को वह परख कर ही ऐसा करता है। इसलिए कविताओं में कोई भी शब्द पर्यायवाची नहीं होता है और उसी से उसकी अर्थवत्ता खुलती है। सर्प के लिए जो दिनकर ने अनेक पर्यायवाची शब्दों को चुना है, वह केवल उनके शब्द कोश की समृद्धि का ही प्रमाण नहीं है।'[12]

दिनकर सर्प के विभिन्न पर्यायवाची शब्दों का साभिप्राय प्रयोग करते हैं। इस कारण कोई भी शब्द पर्यायवाची बनकर ही नहीं रह गया है। इसको निम्न तालिका के माध्यम से समझा जा सकता है-

1. काल के लिए-व्याल, सर्पिणी, सर्प, नाग
2. सरकना-भुजंगिनी, भुजंग, साँप
3. डसना, फुफकार मारना-व्याल, फणी, साँप, भुजंग, नाग,
4. बोझ-अजगर
5. कुटिलता-व्याल, नाग
6. लोभ-नागिनि
7. प्रतिशोध-भुजंग
8. रेंगना-साँप
9. चूसना-साँप
10. शंका-व्याल
11. परस्वग्रासिनी-भुजांगिनी, व्याली।
12. लटों से उपमा-नागिन
13. यौवन से सादृश्य-नाग

'भुजंग' में जो प्रबलता है, दबंगपन है, वह प्रतिशोध के लिए सही है। बोझ के लिए अजगर के अतिरिक्त कोई दूसरा शब्द आ ही नहीं सकता। क्योंकि वह ही भारी होना है। यह बिम्ब एक ही जगह प्रयुक्त हुआ है-

यही काल अजगर समान प्राणों पर बैठ गया था।[13]

साँप शब्द जितना ही पिच्छिल है, उतना ही वह 'रेंगना' को ध्वनित कर देता है। 'रेंग' साँप ही सकता है, व्याल, भुजंग, सर्प या अजगर नहीं। क्योंकि व्याल शंकर की तरह टेढ़ा है। इन शब्दों के उचित प्रयोगों से आभास होता है कि दिनकर की आभ्यन्तरिक चेतना पूर्णता प्राप्त कर चुकी थी।

4. व्याधि से मुक्ति का साधन

जिस सर्प को मृत्यु-भय का कारण माना गया है, स्वयं मृत्यु ही है, किन्तु वह सृष्टि में प्रवर्तन का भी कारण माना गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि सृष्टि का प्रवर्तन और समावर्तन करने वाली शक्ति काल ही है। एस्कुलेपियस के समय से ही सर्प को व्याधि से मुक्ति का साधन भी माना जाता रहा है। सर्प विष तो आधुनिक चिकित्सा का अपरिहार्य अंग है। अनादि काल से इसको अमरत्व के प्रतीक के रूप में स्थान प्राप्त है। यह अपना केंचुल बदल सकता है, अतः इसे पुर्वजन्म के प्रतीक के रूप में भी जाना जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि मृतक व्यक्ति सर्प-काया में प्रकट होते हैं। इस प्रकार यह एक 'एम्बीवैलेट' (ambivalent) का प्रतीक है।

दिनकर के काव्य में 'नीलकुसुम' में संग्रहीत 'स्वप्न और सत्य' शीर्षक कविता को एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का विंदु मानना चाहिए। इसी कविता में उन्होंने 'सर्प' को प्रथम बार फ्रायडवादी प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है। भारतीय पौराणिक कल्पना में भी इसका उत्स ढूँढ़ निकाला जा सकता है। दिनकर ने सर्वप्रथम इसी कविता में साँप को काम भावना के प्रतीक के रूप में देखा है। 'स्वप्न और सत्य' की पक्तियाँ इस प्रकार हैं-

हृदय में सृगबुगा उठती जूही के फूल-सी कविता,
लहू में रेंगने लगते हजारो साँप सोने के।[14]

यह साँप काम क्षुधा का प्रतीक है। 'सोने विशेषण को जोड़कर दिनकर ने इस बिम्ब को और प्रभावशाली बना दिया है 'सोना' कामना का प्रतीक है। कामिनी के साथ कंचन का अपरिहार्य सम्बन्ध है। यही बिम्ब उर्वशी में हू-ब-हू आया है-

रेंगने लगते सहस्रों साँप सोने के रुधिर में,
चेतना रस की लहर में डूब जाती है।[15]

उद्दाम वासना से उद्वेलित पुरुष के रुधिर में सोने के सहस्रों साँप का रेंगना कला की दृष्टि से अनमोल है। उसी प्रकार 'सीपी और शंख में भी साँप को वासना का प्रतीक माना गया है-

आज का मनोविज्ञान इस बात का साक्षी है कि वासना का साँप (Snake of Passion), जो कि मनुष्य में अपृथक्कृत सहजात वृत्ति का प्रतीक है, हृदय से निकलकर अवचेतन के समुद्र पर तैरता रहता है। आधुनिक काव्य में दिनकर एक मात्र ऐसे कवि हैं, जिन्होंने सर्प बिम्ब का प्रयोग काम-क्षुधा के प्रतीक के रूप में किया है। इसका प्रयोग हमें उनकी तीन कविताओं में प्राप्त होता है, एक सीपी और शंख में 1, नील कुसुम में 1, और उर्वशी में 1।

5. पुराणकथाः समुद्रमंथन

दिनकर जी ने कई स्थानों पर पुराणकथा का उल्लेख किया है। क्षीरसागर का मंदराचल को मथानी कर सर्प को रस्सी बनाकर मंथन किया गया था। 'एक कविता में इसका वर्णन है-

जनमों सागर-शिला-नाग के भीषण संघर्षों से।[16]

इसी आधार पर एक लोकविश्वास चला आ रहा है कि पाताल इत्यादि या अन्यत्र कहीं पर भी गगरी में रखे हुए स्वर्ण की रक्षा सर्प करता है। इस बात का उल्लेख भी इस कविता में प्राप्त होता है-

सोने का तेज मोह साँप यह
गगरी छोड़ चला जायेगा।[17]

6. व्याल विजय

दिनकर के काव्य में सर्प की दिधा-विभक्त जिह्म का विलक्षण प्रयोग मानव की चारित्रक सहिष्णुता के प्रसंग में किया गया है जिसकी चरण परिणति 'व्याल विजय' कविता में मिलती है। यह व्याल मनुष्य का कलुष है, उसका पाप है। बर्तमान युग में भी सर्पिक मनोवृत्तियों का अभाव नहीं है। व्यक्ति प्रत्येक युग में अपने ही कलुष से संघर्ष करता रहा है। मनुष्य की जय-यात्रा देवत्व की ओर से रही है। ये व्याल (मनुष्य) की अपनी जिह्वताएँ ही उसकी बाधक हैं। इसी कारण 'व्याल-विजय' में कवि विषधर को फण तानने के लिए कहता है जिस पर खड़ा होकर वह कृष्ण की तरह सुरुचि और सौन्दर्य-बोध की बाँसुरी बजा सके। 'कालिहदह' पशुता का पुर्जाभूत कोश है। मनुष्य को उससे बाहर निकलना ही है। अपने ही विष से मत्त यह साँप अपने ही भाई को पहचानता नहीं है। मनुष्य के प्रत्येक कलुष पर अमृत छिड़कने वाला कवि साँपों की पीठों पर कुसुम लादने आया है। कृष्ण आज का मनुष्य है जो अपनी ही जिह्वाताओं के कारण लघुता को प्राप्त हुआ है, फिर भी वह साँपों से अभी भी श्रेष्ठ है। मनुष्यता मरी नहीं है। फिर भी, 'कल्याण तब तक नहीं दीखता, जब तक ये साँप, युग के ये साँप, समाज के साँपप, व्यक्ति के भीतर के ये साँप दमित न हो जाएँ। इसके लिए कृष्ण जैसा कर्मठ चाहिए और बाँसुरी जैसा अहिंसात्मक माध्यम।'[18]

'ब्याल विजय' कविता की पृष्ठभूमि यही है। यह कविता दिनकर-काव्य की आकस्मिक घटना नहीं है प्रत्युत सांस्कृतिक क्षयिष्णुता और मनुष्य की विरूपता से संघर्षशील काव्य की श्रेष्ठ स्वाभाविक परिणति है। 'ब्याल-विजय' दिनकर-काव्य की प्रमुख चेतना का अत्यन्त सशक्त उदाहरण है।

'इसी प्रकार चित्तात्मकता लाने के लिए एक और पद्धति को अपनाया है। वाचक शब्द अभिधा से संबद्ध हो-सकते हैं। उन्हीं के आधार पर लक्ष्यार्थ भी ग्रहण किया जा सकता है। वाचक शब्दों के स्थान पर लक्षक शब्दों का प्रयोग करके चित्त को और भी प्रभावात्मक और अनुभूति पूर्ण बनाया जा सकता है।'19 'उर्वशी' में लक्षक शब्दों के प्रयोग के अनेक उदाहरण मिलते हैं। उनमें से एक उदाहरण इस प्रकार है-

'रेंगने लगते सहस्रों साँप सोने के रुधिर में
चेतना रण की लहर में डूब जाती है,
कौन है यह देश जिसकी स्वामिनी मुझे निरन्तर
वारुणी की धार से बहला रही है?
कौन है यह जग समेटे अंक में ज्वालामुखी को,
चाँदनी चुमकारकर बहला रही है।[20]

यहाँ पर सहस्रों साँप स्नायविक तनावों को लक्ष्य करते हैं और सोने का रुधिर चेतना के स्फूर्ति और क्रान्ति प्रवाह की अभिव्यक्ति करता है। वारुणी के धार मादक सौन्दर्य है। कामनाओं से बहकता हुआ हृदय ही ज्वालामुखी है और चाँदनी रत्यानुभूति का अनुभव है। इस प्रकार के अनेक प्रयोग 'उर्वशी' की शैली को लाक्षणिक बना देते हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि सर्पबिम्ब का सबसे अधिक प्रयोग आधुनिक काव्य में दिनकर ने ही किया है। सांस्कृतिक क्षयिष्णुता से संघर्ष करने के कारण कवि ने अधिक स्थलों पर साँप को मनुष्य की जिह्मताओं का ही प्रतीक माना है। काल के प्रतीक के रूप में इसका सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। यह काल सृष्टि को प्रवर्तन और समावर्तन दोनों करता है। जिसका प्रतीक भारत में शेषनाग और पश्चिम में उरोबोरॉस है। यह प्रयोग इस बात का संकेत प्रस्तुत करता है कि दिनकर ने पाश्चात्य और प्राच्य दोनों पौराणिक परिकल्पनाओं को अपने काव्य में शामिल किया है। पुन: साँप फ्रायड्वादी प्रतीक के रूप में भी आया है। यह काम क्षुधा का प्रतीक है। दिनकर की विक्षणता यह है कि उन्होंने मरण के प्रतीक 'सर्प' को बड़ी कलात्मकता से काम के प्रतीक के रूप में परिवर्तित कर एक नवीन प्रयोग हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है।

सन्दर्भ

1. विष्णु पुराण 5, 9, 29
2. स्कन्द पुराण (उत्तर खंड)
3. रामचरित मानस, लंकाकांड के प्रारम्भिक श्लोक।
4. अध्यात्मरामायण, अयोध्याकांड, 4-21।
5. ब्राह्मपुराण, अध्याय 232, श्लोक 16, 24।
6. भारतीय प्रतीकविद्या, 67 (डॉ. जनार्दन मिश्र)
7. भारतीय प्रतीक विद्या, 69 (डॉ. जनार्दन मिश्र)
8. अहे वासुकि सहस्र फन।
   लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरंतर
   छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्ष: स्थल पर।
   शत शत फोनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर
   घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर।
   मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पांतर,
   अखिल विश्व ही विवर, वक्र कुंडल दिरुङ्मंडल। (पल्लव)
9. दिनकर एक पुनर्मूल्यांकन, विजेन्द्र नारायण सिंह,
10. उर्वशी, पृ. 53
11. वही पृ. 69
12. दिनकर एक पुनर्मूल्यांकन, विजेन्द्र नारायण सिंह
13. उर्वशी, 44
14. नील कुसुम, 14
15. उर्वशी, 52
16. मृत्ति-तिलक
17. नील-कुसुम, 75
18. हिन्दी काव्य: व्यवहारिक आलोचना; 'व्याल विजय' पर जगदीश नारायण चौबे के निबन्ध से उद्धृत गंगा पुस्तकालय, पटना)।
19. दिनकर व्यक्तित्व एवं कवित्व एस. के. पद्मावती, लहर पुस्तकालय, मथुरा
20. उर्वशी, पृ. 52

कोविड काल में भारतीय अर्थव्यवस्था का परिदृश्य

अशोक कुमार वर्मा

वाणिज्य प्रवक्ता, चम्पा अग्रवाल इण्टर कॉलेज, मथुरा

किसी भी देश की उन्नति और विकास के लिए उस देश की जनसंख्या का शारीरिक और मानसिक रुप से स्वस्थ होना आवष्यक है। इसी लिए स्वास्थ्य को सबसे बड़ा धन माना जाता है। स्वस्थ व्यक्ति क्रियाशील रहकर अपने सभी कार्यों को प्रसन्न रहकर सही रुप से पूर्ण कर सकता है। हम समय-2 पर अनेक प्रकार की बीमारियों के शिकार होते रहते है, परन्तु कुछ बीमारियां बहुत ही घातक और अल्पसमय में जानलेवा साबित होती है। कोविड-19 महामारी इसी श्रेणी की एक घातक बीमारी है। कोरोना वायरस, वायरसों का एक बड़ा परिवार है, इनमें अनेकों की पहचान हो चुकी है, ये सूअर, चमगादड़, ऊँट और बिल्लियों आदि में पाये जाते है। कोविड-19 कोरोना वायरस परिवार का सातवॉ प्रारुप है जो जानवरों से इंसानों तक पॅहुचा है। नोवेल कोरोना वायरस, कोरोना वायरस का नया नस्ल है। चीन देश के वुहान शहर में पता लगने वाले नोवेल कोरोना वायरस से होने वाली बीमारी को कोरोना वायरस डिजीज या कोविड-19 कहते है। कोरोना वायरस के प्रमुख लक्षण-1-बुखार, 2-थकान, 3-सूखी खॉसी, 4-नाक का बन्द होना, 5-नाक का बहना, 6- गले की खराश, 7- सॉस लेने में तकलीफ आदि है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कोविड-19 या कोरोना जैसी महामारी लोगों को अस्वस्थ बनाती है और थोड़ी सी भी लापरवाही जानलेवा साबित होती है। कोई भी व्यक्ति कोरोना मरीज के सम्पर्क में आने से इस बीमारी की चपेट में आ जाता है। इसीलिए दो गज की दूरी- मास्क है जरुरी, जैसा नारा दिया गया। किसी देश के आर्थिक विकास के लिए उस देश के मानव संसाधन का पूर्ण स्वस्थ होना एक अनिवार्य शर्त है। भारतीय अर्थव्यवस्था की बुनियाद कृषि क्षेत्र है। वर्तमान समय में भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के पीछे मिडिल क्लास और लोअर मिडिल क्लास का सबसे अधिक योगदान है। इसीलिए भारत को एक मिडिल इनकम ग्रुप की अर्थव्यवस्था के रुप में परिभाषित किया जाता है। कोविड-19 के वैष्विक संकट के बीच आर्थिक दृष्टिकोण से भारतीय परिदृष्य की चर्चा निम्न बिन्दुओं पर की जा सकती है-

1. भारतीय अर्थव्यवस्था को बल देने वाले किसान, असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले मजदूर, दैनिक मजदूरी के लिए शहरों में पलायन करने वाले मजदूर, सड़कों के किनारे रेहड़ी, ठेला या जमीन पर बैठकर दुकान लगाकर आजीविका चलाने वाले लोग, जिन्हें हैण्ड टू माउथ कहा जा सकता है।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास हेतु उत्पादन करने वाला वह क्षेत्र जो इस देश में पूॅजी और गैर पूॅजी वस्तुओं का उत्पादन करता है अर्थात मैन्यूफैक्चरिंग सेक्टर या विजनेस सेक्टर।

कोविड काल में लम्बी अवधि के लिए देष में लॉकडाउन लगाना पड़ा, जिसका अर्थव्यवस्था पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा। दुनियाभर की सरकारों ने अपने देश की आर्थिक मंदी से निपटने और उत्पादन क्षेत्र को संजीवनी देने के लिए बड़े राहत पैकेज का ऐलान किया, क्योंकि आर्थिक विकास का पहिया एकदम थम सा गया था। इसीक्रम में हमारी सरकार को भी गरीबों की मदद के लिए बड़े पैकेज का ऐलान करना पड़ा। पूरी तरह से कमजोर और असंगठित क्षेत्र के लोगों की समस्याओं के निवारण के लिए कोरोना वायरस से आये आर्थिक संकट से जूझ रहे लोगों के लिए सरकार ने पैकेज जारी किया है। जल्द ही मैन्यूफैक्चरिंग सेक्टर के लिए भी किसी बड़े पैकेज के एलान की सम्भावना है। कोविड-19 का संकट ऐसा कुछ संकेत दे रहा है कि छोटी सेलरी पर काम करने वाला मिडिल क्लास इस संकट में और अधिक आर्थिक रुप से कमजोर हो जाय, इस प्रकार उसकी गणना लोअर मिडिल क्लास या उससे भी निम्न श्रेणी में की जाय।

पिछले दो वर्षों से आर्थिक सुस्ती चल ही रही थी, इसी बीच कोविड-19 ने आकर भारतीय अर्थव्यवस्था की सुस्ती को और बढ़ा दिया। इस प्रकार देश में मॉग आधारित आर्थिक सुस्ती आ चुकी थी और अब इसने मॉग के साथ-साथ आपूर्ति आधारित सुस्ती का रुप धारण कर लिया है। वर्तमान की बात करें तो भारतीय अर्थव्यवस्था एक गहरे संकट की तरफ बढ़ रही है। प्रतिष्ठित अन्तर्राष्टीय संस्थाओं ने भीतर की आर्थिक वृद्धि दर के सन्दर्भ में जो ऑकलन जारी किये है, वे चिन्ताजनक हैं। सेन्टर फॉर मॉनिटरिंग इन्डियन इकोनॉमी द्वारा जारी ऑकड़ों के अनुसार भारत में लॉकडाउन की वजह से कुल 12 करोड़ नौकरियां चली गई है। कोरोना संकट से पहले भारत में कुल रोजगार आबादी की संख्या 40.4 करोड़ थी जो इस संकट के बाद घटकर 28.5 करोड़ हो चुकी है। हमें जान और जहान दोनों बचाना है। यदि जान बचाने के लिए लॉकडाउन करना है तो जहान बचाने के लिए लोगों की जीविका के साधनों को पुनः स्थापित करना है। अतः आर्थिक मोर्चे पर कुछ बड़े फैसले लेने होंगे। हेल्थ इमरजैंसी और इकोनॉमिक इमरजैंसी में तालमेल बैठाना होगा। भारतीय अर्थव्यवस्था में रिवर्स माइग्रेषन भी दिख रहा है। लोग षहरों से वापस गॉव की तरफ लौट रहे है। आने वाले समय में कोरोना वायरस की समस्या भारत में कितनी गंभीर होती है और उस पर कबतक पूर्णतः काबू पाया जा सकता है? इसका असर भी भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ेगा। कोरोना के कारण भारत की आर्थिक वृद्धि दर में

गिरावट आयेगी, कोरोना ने भारत ही नही बल्कि दुनिया की अर्थव्यवस्था को खराब कर रखा है। वर्ल्ड बैंक के अनुमान के मुताबिक वित्तीय वर्ष 2019-20 में भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर घटकर मात्र 5 प्रतिशत रह जायेगी, तो वहीं वर्ष 2020-21 में तुलनात्मक आधार पर अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर में भारी गिरावट आयेगी, जो घटकर मात्र 2.8 प्रतिशत रह जायगी।

लॉकडाउन के कारण, फैक्टी, ऑफिस, मॉल्स, व्यवसाय आदि बन्द हो जाते है, घरेलू मॉग और आपूर्ति प्रभावित होने के कारण आर्थिक वृद्धि दर प्रभावित होती है। अत: जोखिम बढ़ने से घरेलू निवेश के सुधार में देरी होती है जिसके कारण अर्थव्यवस्था मुश्किल दौर में पहुॅच जाती है। इंटरनेशनल लेबर आर्गनाइजेशन ने कहा था कि कोरोना वायरस सिर्फ वैश्विक स्वास्थ्य संकट नही रहा बल्कि ये एक बड़ा लेबर मार्केट और आर्थिक संकट भी बन गया है जो लोगों को बड़े पैमाने पर प्रभावित करेगा। विश्व बैंक ने भी आगाह किया है कि इस महामारी की वजह से भारत ही नही बल्कि समूचा दक्षिण एशिया गरीबी उन्मूलन से मिले फायदे को गॅवा सकता है। अत: भारत को भी कोविड महामारी को फैलने से रोकने के लिए जल्द से जल्द प्रभावी कदम उठाना होगा, इसके साथ स्थानीय स्तर पर अस्थायी रोजगार सृजन कार्यक्रमों पर भी ध्यान देना होगा। सरकार द्वारा कोविड-19 के प्रसार को रोकने के लिए लॉकडाउन और सोशल डिस्टेंसिंग जैसे प्रयासों से औद्योगिक उत्पादन प्रभावित हुआ है। लॉकडाउन के कारण बेरोजगारी बढ़ी है, जिससे सार्वजानिक क्षेत्र में भारी कटौती हुई है, कच्चे माल की उपलब्धता, उत्पादन और तैयार उत्पादों के वितरण की श्रंखला प्रभावित हुई है, जिसे पुन: शुरु करने में लम्बा समय लग सकता है। उत्पादन स्थगित होने के कारण मजदूरों का पलायन बढ़ा है, इस दशा में पुन: कुशल मजदूरों की नियुक्ति करके पूरी क्षमता के साथ उत्पादन शुरु करना एक बड़ी चुनौती है। इसका अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। खनन और उत्पादन जैसे अन्य क्षेत्रों में गिरावट का प्रभाव सेवा क्षेत्र की कम्पनियों पर भी पड़ा है। एविएशन सेक्टर में वेतन कम करने की खबर है, रेस्टोरेंट बन्द होने से लोग घूमने नहीं निकल रहे है। सामान की खरीदारी भी नहीं हो रही है। कम्पनियों को किराया, वेतन तथा अन्य खर्चों का भुगतान करना पड़ रहा है। घाटा झेल रही कम्पनियॉ अधिक समय तक यह भार सहन नही कर सकती। लॉकडाउन का सबसे अधिक असर अनौपचारिक क्षेत्र पर पड़ा है, अर्थव्यवस्था का 50 प्रतिशत जीडीपी अनौपचारिक क्षेत्र से ही आता है। यह क्षेत्र लॉकडाउन के दौरान काम नही कर सकता, और न कच्चा माल खरीद सकते न बनाया हुआ माल बाजार में बेच सकते, अत: उनकी कमाई बन्द हो जायेगी। अनौपचारिक क्षेत्र में फेरीवाले, विक्रेता, कलाकार, लघुउद्योग और सीमापार व्यापार शामिल है। लॉकडाउन के दौर में सबसे ज्यादा असर एविएशन, पर्यटन, होटल आदि क्षेत्रों पर पड़ा है। कोरोना के कारण भारत सरकार द्वारा विदेषी निवेश के जरिये अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने की जो कोशिश थी, उसे भी धक्का लगेगा।

रिजर्व बैंक ने सभी बैंकों से सभी कर्जो पर तीन माह तक कर्जो का भुगतान (किस्तों को) टालने को कहा है। साथ ही ब्याज दरों में कमी की है। हमारे देश में छोटे-छोटे कारखानों और लघु उद्योगों की संख्या बहुत ज्यादा है। कोरोना से उनकी कमाई रुक जायेगी, आर्थिक तंगी में आकर कई लोग महाजनों से ऊॅचे ब्याज दर पर कर्ज ले लेते है और कर्जजाल में फॅस जाते है। ऑटोमाबाइल सेक्टर, रियल स्टेट, लघुउद्योग आदि असंगठित क्षेत्रों में सुस्ती छायी है।

बैंक एन.पी.ए. की समस्या से निपट रहे है। सरकार ने निवेश के जरिए नियमों में राहत और आर्थिक मदद देकर अर्थव्यवस्था को राहत देने की कोशिश की। परन्तु कोरोना के कारण लोग घरों में है, कारखानों और दुकानों पर ताले लगे है। इस तरह से कोविड काल ने देश की अर्थव्यवस्था की जड़ों को खोखला किया है। अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्था आई.एम.एफ ने एक टास्क फोर्स का गठन किया है। इस टास्क फोर्स का उद्देश्य है कि बिगड़ती हुई अर्थव्यवस्था को कैसे पटरी पर लाया जाय? इस टास्क फोर्स में आर.बी.आई. के पूर्व गवर्नर रघुराम राजन भी है। इसी तरह भारत को भी चाहिए कि प्रतिभाशाली अर्थशास्त्रियों की एक कमेटी का गठन किया जाय, जिसमें प्रोफेशनल हो और वे भारतीय चुनौतियों के अनुसार देश की अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए चरणबद्ध तरीके से नीतिगत समाधान सरकार के सामने रखें। यद्यपि कोविड-19 के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था का परिदृष्य अच्छा नही दिख रहा है, पर वह दिन दूर नही जब हम कर्मठ भारतीय श्रम और संघर्ष से अर्थव्यवस्था को नई ऊॅचाइयों तक पहुॅचाने में सक्षम होंगे।

सन्दर्भ

1. कोरोना संकट के बीच क्या है भारतीय अर्थव्यवस्था की चुनौतियां
   ET Contributors - 20 April-2020
2. कोराना वायरस के कारण भारत में पैदा हुई आर्थिक चुनौतियां
   orfanline.Org 26 August-2020
3. कोविड-19 के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था-नये समय में नई उम्मीदें
   orfanline.Org 26 April-2020
4. कोरोना वायरस- लॉकडाउन से टूटेगी अर्थव्यवस्था की कमर
   BBC.Com 25 March-2020

महिला कैदियों की समस्याएं एवं पुनर्वास के प्रावधान

पूनम गौतम

प्रवक्ता, गृहविज्ञान, मानव विकास एवं पारिवारिक अध्ययन विभाग

शोध सारांश

महिला सशक्तिकरण के इस युग में भी महिलाओं को समाज में वह स्थान प्राप्त नहीं हो पा रहा है जिसकी वह प्रारंभ से ही अधिकारी है। सामाजिक परिवर्तन के दौर में महिलाओं के व्यवहार में आक्रामकता देखने को मिल रही है जो उनके और समाज दोनों के लिए विनाशकारी सिद्ध हो रही है। आज महिलाएं अपराध की ओर उन्मुख होने लगी है जिसके परिणाम स्वरूप महिला कैदियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है जबकि महिलाएं समाज के आधे भाग का प्रतिनिधित्व करती है। इसलिए महिलाओं का कैदी के रूप में परिभाषित होना समाज में भावी पीढ़ी के लिए घातक सिद्ध हो सकता है।

महिला कैदियों के लिए सामान्यत: नकारात्मक दृष्टिकोण ही अपनाया जाता है। समाज में अनुकूल प्रस्तुति देने पर भी उसे तिरस्कार झेलना पड़ रहा है तो अपराध के उपरांत उसके प्रति हेय दृष्टिकोण का होना स्वाभाविक है। महिला कैदियों को कारावास में भी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। महिला कैदी प्रारंभ में कारावास के भीतर स्वयं को समायोजित नहीं कर पाती है जिसके कारण वह अवसाद और तनाव से ग्रसित होने लगती है। मानसिक तनाव पुरुष कैदियों की तुलना में महिला कैदियों में अधिक देखने को मिलता है। महिला कैदियों को कारावास में कठिन वातावरण के साथ-साथ पारिवारिक और सामाजिक तिरस्कार भी झेलना पड़ता है। परिवारजन उनकी रिहाई के लिए अधिक प्रयासरत नहीं दिखाई देते हैं।

कारावास में भी महिला कैदियों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसका मुख्य कारण कारावास नियमावली में महिला कैदियों के लिए बुनियादी तौर पर कोई पृथक प्रावधान नहीं किए गए हैं। देश में अधिकांश कारावास व्यवस्था का स्वरूप पुरुष प्रधान नियमावली पर ही आधारित है जबकि पुरुष एवं महिलाओं की प्रकृति एवं आवश्यकताओं में भिन्नता पाई जाती है इसलिए महिला कैदियों को स्वास्थ्य, स्वच्छता आदि समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यह समस्या और भी गंभीर तब हो जाती है जब महिला कैदियों के साथ उनके नवजात शिशु से लेकर अबोध बालक तक साथ रहने को विवश होते हैं।

भारत में वर्तमान में लागू जेल व्यवस्था सैकड़ों वर्षों से भी अधिक पुरानी है। यदि हम कारावास प्रशासन तथा कैदियों की स्थिति को ध्यान से देखे तो इसमें विशेष परिवर्तन दिखायी नहीं पड़ते है। कारावास प्रशासन तथा कैदियों की समाज में पुर्नस्थापना सम्बन्धी प्रयास अभी भी वाद विवाद का विषय बना हुआ है। अनेक स्थानों पर कारावास जीर्ण-शीर्ण संरचना में हैं तो कहीं अति भीड़ की समस्या, विचाराधीन कैदियों की बढ़ती संख्या, अपर्याप्त जेल कर्मचारी, पर्याप्त देखभाल की कमी आदि समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने जेल प्रशासन तथा कैदियों की स्थिति के सम्बन्ध में लगातार चिन्ता व्यक्त की है। भारतीय कारागारो में व्याप्त निर्मम, अमान्य तथा दमनात्मक कारागार प्रथाओं के विरूद्ध दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए उच्चतम न्यायालय ने कैदियों के अधिकारों के बारे में अनेक निर्णयों में यह निर्धारित किया है कि कैदियों के साथ मानवतापूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिए और उनके प्रति प्रशासकों का व्यवहार भी न्यायोचित मापदंडो के अनुसार होना चाहिए।

मुख्य शब्द - सशक्तिकरण, अवसाद, दमनात्मक, निर्मम, अमान्य, आक्रामकता, अबोध, मानवतापूर्ण, न्यायोचित मापदंड।

प्रस्तावना - सृष्टि के सृजन की सर्वोत्तम रचना मनुष्य को को माना जाता है उसमें भी स्त्री जाति को सृष्टि के उद्भव से ही उत्कृष्ट रचना के रूप में स्वीकार किया गया है। स्त्री को स्वयं उस रचनाकार द्वारा एक सृजनकर्ता के रूप में स्थापित किया गया है। स्त्री ने जननी, भार्या आदि रूपों में ईश्वर की भाँति ही जीवन का सृजन और पालन-पोषण किया है जिसके परिणामस्वरूप सृष्टि के प्रारंभ से ही स्त्री सदैव पूजनीय रही है। विश्व की समस्त संस्कृतियों की तुलना में स्त्री के स्वरूप की देवतुल्य व्याख्या भारतीय संस्कृति में अधिक विस्तृत रूप से की गई है। भारतीय दर्शन में स्त्री को प्रथम स्थान दिया गया है। पुरुष की पूर्णता के लिए स्त्री को उसके जीवन का अनिवार्य अंग माना गया है। वह भोग की सामग्री नहीं अपितु सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करवाने वाली देवी रूपा है। वैदिक कालीन नारी का आचरण शोभनीय एवं सदाचार के लिए प्रसिद्ध रहा है विश्व की समस्त विधाएं प्रत्येक स्त्री के ही विभिन्न रूप माने गए हैं।

तत्कालीन समय में स्त्रियों को समाज में बराबर का भागीदार माना जाता था। उन्हें स्वयं निर्णय लेने की स्वतंत्रता थी स्वयंवर सभा का आयोजन स्त्रियों के जीवनसाथी चुनने की स्वतंत्रता के अधिकार का महत्वपूर्ण उदाहरण है। वैदिक काल में जहां पत्नी के बिना पति द्वारा यज्ञ संपन्न नहीं माना जाता था वही उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों को पुरुष से निम्नतम साबित करने का षड्यंत्र प्रारंभ हो गया स्मृति एवं साहित्य के माध्यम से स्त्री को सीमित व पुरूषाधीन करने का प्रयास किया गया। मातृसत्तात्मक परिवेश से पितृसत्तात्मक समाज की स्थापना की गई और समय के साथ साथ बेहद अतर्कपूर्ण तथ्यों के आधार पर स्त्री का उद्धार पुरुष के चरणों में स्थापित कर दिया गया। वह एक जननी, अन्नपूर्णा देवी स्वरूपा होते हुए भी पुरुष की भोग की वस्तु और संतानोत्पत्ति का उपकरण मात्र बनकर रह गई। धीरे धीरे उसके अधिकारों समाप्त किये जाने लगे। यह शाश्वत सत्य है कि स्त्री और पुरुष कर्म और कर्तव्य के आधार

पर सृष्टि और समाज का संचालन करते हैं परंतु फिर भी स्त्री की समान भूमिका को दरकिनार करते हुए समाज की पुरुषवादी विचारधारा और अहंवादी सिद्धांतों की बेड़ियों ने स्त्री को अत्यंत सीमित और कुंठित कर दिया और धीरे-धीरे वह अपने समस्त अधिकारों से वंचित होती चली गई।

कन्या पूजन और कन्या वध जैसी समाज की दोहरी मानसिकता ने स्त्री को ही अनुचित और अनर्थ के लिए दोषी बना दिया। कहीं ना कहीं स्त्री द्वारा भी 'लड़की पराया धन है,' जैसे कथनों को संस्कार मानकर डोली से अर्थी तक की अपनी जीवन यात्रा पुरुष के अत्याचारों, समाज के तिरस्कार के भय आदि से उस परायापन के एहसास के साथ तय करती है। वैदिक युग से लेकर वर्तमान में स्त्री ने अनेक सभ्यताओं का उतार-चढ़ाव देखा है। उदाहरण के तौर पर बौद्ध काल में महिलाओं की दशा अत्यंत ही शोचनीय थी। जैसे नदी, पथ, शराब खाने आदि सबके उपभोग की वस्तु है, वैसे ही स्त्रियां भी सबके उपभोग की वस्तुएं है, ऐसा तत्कालीन जातक कथाओं के अध्ययन से पता चलता है। तब दासी प्रथा भी अपने चरम पर थी। स्त्रियों को सामान्य रूप से रहने का अधिकार समाप्त प्राय था, उनकी विशेष जगह एवं उपयोग निश्चित कर दिए गए थे। यह पुरुष की हृदय हीनता एवं संकीर्ण मानसिकता का परिचय है।

वैश्वीकरण के इस मशीनी दौर में समाज में गरीबी, भ्रष्टाचारी, बेकारी की समस्या को बढ़ावा मिला है। लघु उद्योग और कुटीर उद्योग लगभग समाप्त हो चुके हैं। बेरोजगारी बढ़ गई है, साथ ही बढ़ती महँगाई से आर्थिक तनाव भी बढ़ रहा है। जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति जितना हो सके अधिकाधिक लाभ कमाने के लिए लगा हुआ है। आज व्यक्ति येन केन प्रकारेण आर्थिक लाभ प्राप्ति के लिए आपराधिक कृत्य से भी परहेज नहीं करता है और महिलाएं भी अपने परिस्थिति को सुधारने में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से आपराधिक गतिविधियों में लिप्त होने लगी है। महिलाओं द्वारा अधिकांशत: अपराध परिस्थिति वश किए जाते हैं, जैसे फूलन देवी ने अपने प्रति हुए अत्याचारों का प्रतिशोध लेने के लिए दस्यु सरगना बनना स्वीकार किया। ऐसे अनेक उदाहरण समाज में है जिसमें महिलाओं को परिस्थिति वश अपराधी बनना पड़ा।

भारतीय समाज की दोहरी मानसिकता का परिणाम है कि उसने महिलाओं को दूसरे दर्जे का ही माना है। संभवत यदि कोई पुरुष द्वारा किसी अपराध अथवा कानूनी या सामाजिक नियमों के विरुद्ध कार्य किए जाने पर सजा के तौर पर जेल में जाने के बाद भी वह समाज में सहज रूप से अपना समायोजन कर लेता है किंतु यही अपराध किसी महिला द्वारा किया जाता है तो उसे समाज में और परिवार को पुन: अपनाने में वर्षों लग जाते हैं। समाज में अपराधियों के सुधार हेतु नियम कानून बनाए गए राज्य द्वारा ऐसी एजेंसी निर्माण किया गया जिससे कि अपराध और अपराधियों को सुधारा जा सके, जिससे अपराधों में कमी आ सके। इसके लिए दंड की व्यवस्था की गई है।

इसमें भी कारागृह नामक महत्वपूर्ण संस्था के रूप में विशेष व्यवस्था की गई है। क्योंकि प्रत्येक समाज के संचालन के अनिवार्य रूप से कुछ नियम होते है। इन नियमों के विरुद्ध कार्य करना अपराध की श्रेणी में आता है। दंड व्यवस्था के प्रावधानों में कारावास एक सुधारात्मक संगठन के रूप में कार्य करता है। कारावास के माध्यम से समाज में अपराध के प्रति भय और अपराधियों के सुधार का प्रयास किया जाता है। एनसीआरबी 2015 के आंकड़ों के आधार पर जेलों में पुरुष कैदियों का 4.3 प्रतिशत महिला कैदी है और इन आंकड़ों में पुरुषों की तुलना में कई गुना तेजी से वृद्धि हो रही है।

महिला समाज का आधार स्तंभ है, उसी के व्यवहार पर हमारी संस्कृति का भविष्य निर्भर है। इस परिस्थिति में महिला कैदियों के अधिकारों एवं समाज में उनके पुन: समायोजन की व्यवस्था को जानने के लिए उसे सुदृढ़ बनाने के लिए महिला कैदियों की समस्याओं के संबंध में अध्ययन की आवश्यकता है। वे महिलाएं जिनके द्वारा जाने अनजाने में अपराध किया जाता है, चाहे परिस्थिति के बदलाव हेतु अथवा उनके बचाव हेतु, उस अपराध के लिए दोष सिद्ध महिला को कारावास की सजा होने पर अधिकांश मामलों में उस महिला से समाज एवं परिवार का अलगाव सा हो जाता है। क्योंकि जिस समाज के लिए महिला को पीड़ित माना गया हो, उसका किसी अपराध को करना ही अकल्पनीय है। इस अलगाव एवं तिरस्कार पूर्ण व्यवहार के कारण पहले ही अपराध बोध से ग्रस्त वह महिला कारावास की अवधि के दौरान अन्य महिला कैदियों के साथ जिनमें आदतन अपराधी भी होती हैं, ऐसे वातावरण में उक्त महिला का कुंठित मनोवृत्ति के साथ अन्य महिला कैदी एवं कारावास प्रशासन के दुर्व्यवहार के उपरांत समाज में स्वयं को समायोजित कर पाना मुश्किल प्रतीत होता है।

जब समाज में रहते हुए महिलाएँ आपराधिक गतिविधियों में लिप्त हो जाती हैं तो कारावास की प्रताड़ना जिसे कभी ना भूल सकने वाले भयावह स्वप्न की भांति उसकी मानसिक स्थिति को अस्थिर करते हुए पुन: किसी अपराध की ओर स्वत: ही अग्रसर कर सकती हैं। क्योंकि सामान्यत: कारावास शब्द जहन में आते ही आँखों के सामने नकारात्मक वातावरण से युक्त अंधकारमय, अमानवीय दृश्य कौंध जाता है, जो शारीरिक पीड़ा से अधिक मानसिक आघात की अमिट छाप छोड़ जाता है।

अध्ययन के उद्देश्य- महिला कैदियों की समस्याएं एवं पुनर्वास के प्रावधान- इस विषय वस्तु को चयन करने का मुख्य उद्देश्य महिलाओं के ऐसे सूक्ष्म वर्ग के विषय को प्रकाश में लाना है जिसे अपेक्षित जानकर अनदेखा कर दिया जाता है। कारावास में महिला कैदियों की स्थिति, समस्याओं आदि को सिर्फ संगोष्ठी तथा वाद विवाद के विषय के रूप तक ही सीमित नहीं करते हुए महिला कैदियों के विषय में व्यावहारिक अध्ययन करना है।

- कारावास में महिला कैदियों की स्थिति के साथ - साथ समस्याओं को दृष्टिगोचर करना है।
- महिला कैदियों के व्यवहार एवं स्थिति के साथ-साथ कारागृह प्रशासन के व्यवहार का भी अध्ययन करना विषय का केन्द्र बिंदु है।
- महिला कैदियों के प्रति पारिवारिक - सामाजिक प्रतिक्रिया का भी अध्ययन करना है।
- कारावास में कैदियों को रोजगार हेतु दिए जाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रम की प्रासंगिकता के स्तर का पता लगाना।
- कारावास प्रशासन का सामान्य अवलोकन कर इसकी कार्य प्रणाली को समझने का प्रयास करना।
- कारावासीय सुधार हेतु सिफारिशों के क्रियान्वयन का आंकलन करना है।
- वर्तमान कारावास व्यवस्था को बेहतर बनाने के लिए सुधारात्मक सुझाव प्रस्तुत करना।
- महिला कैदियों के अबोध बालकों के विकास के लिए सकारात्मक योगदान देना है।

साहित्य अवलोकन - वीमन क्राइम एण्ड प्रिजन लाइफ(2009), डॉ. मधुरिमा की यह पुस्तक अंतर-अनुशासनात्मक क्षेत्र की एक व्यापक समझ के साथ जटिल मुद्दा प्रदान करती है। यह जेल में बंद महिलाओं के जीवन की पड़ताल करती है कि उनके द्वारा किए गए अपराधों की पृष्ठभूमि क्या है। अधिकांश असहाय महिलाएँ अनपढ़ हैं और समाज के हाशिए के वर्गों से संबंधित हैं। यहा स्थापित किया गया है कि महिला अपराध उस भूमिका को प्रतिबिंबित करता है जो सामान्यत: महिलाओं से अपेक्षित नहीं है।

अधिकांश महिलाओं को पुरुषों के लिए निर्धारित यार्डस्टिक पर मापा जाता है, इसलिए यह पुस्तक इन कैद की गई महिलाओं की जरूरतों को समझने में मदद करेगी। इसमें वर्णित सुझावों से उनके लिए उपयुक्त संसाधन और सेवाएं प्रदान कर अधिकारी न केवल आपराधिक वैचारिकता की दर को कम करेंगे, बल्कि उनके बच्चों को अपराध के मार्ग पर चलने से सुरक्षा प्रदान करेंगे। इस पुस्तक की सामग्री में परिचय भारत में जेल प्रशासन जेल में महिला कैदियों की आबादी, अपराध के प्रकार तथा जेल में कैदियों के जीवन से संबंधित विभिन्न बिंदुओं पर प्रकाश डाला गया है।

प्रोफेसर एन० वी० परांजपे द्वारा लिखित 'अपराधशास्त्र एवं दण्डशास्त्र' नामक पुस्तक में इस अपराध-शास्त्र तथा दण्ड-प्रशासन से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं की सूक्ष्म विवेचना की है तथा आपराधिक न्याय प्रशासन से सम्बद्ध संवेदनशील बिन्दुओं की अत्यन्त प्रभावी ढंग से रेखांकित किया है। लेखक ने विषय से सम्बन्धित सभी विधियों, अधिनियमों तथा नियमो आदि का उनके संशोधनों तथा सुसंगत वाद-निर्णयों सहित समावेश करके पुस्तक को अद्यतन रूप में प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया है जो सराहनीय है।

पुस्तक में साइबर अपराध, विडियो कान्फ्रेंसिंग द्वारा अभियुक्तों, साक्ष्यों के परीक्षण, ई-अन्वेषण पद्धति तथा ई-न्यायालयीन व्यवस्था अपराध का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, अपराध के प्रकार, कैदियों और कारावास की व्यवस्था आदि का आधुनिकतम तकनीकों का यथास्थान उल्लेख किया गया है, जिससे यह कृति अपराध-शास्त्र एवं अपराध-विज्ञान के छात्रों, प्राध्यापकों तथा शोधार्थियों के साथ-साथ न्यायाधीशों, अधिवक्ताओं तथा दाण्डिक न्याय प्रशासन से जुड़ी सभी संस्थाओं के अधिकारियों आदि के लिए भी अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती हैं।

सुनेत्रा चौधरी एक जानी मानी पत्रकारा है उन्होंने अपनी पुस्तक 'सलाखों के पीछे' में भारत के प्रसिद्ध लोगों के जेल यात्रा से जुड़े किस्सों का संकलन किया है इस पुस्तक में अमर सिंह, पप्पू यादव, पीटर मुखर्जी आदि के कैदी जीवन के संबंध में अपने अनुभवों के आधार पर लिखा है कि हिन्दुस्तान के जाने-माने कैदी पहली बार अपने किस्से सुना रहे हैं ब्लेडबाजों से लेकर यातना-कक्षों तक, एयर कंडिशनरों से युक्त जेल की कोठरियों से लेकर पाँच सितारा होटलों से आने वाले भोजन तक, गुदगुदे बिस्तरों से लेकर प्राइवेट पार्टियों तक के किस्से और यह भी कि वे किस तरह जेल या तथाकथित 'जेल-आश्रम' के भीतर जिंदगी के लिए राह बनाते हैं। जेल के भीतर की जिंदगी के अविश्वसनीय ब्यौरों और अपने मुकदमों से जूझते, जेलों में सड़ रहे सैकड़ों कैदियों की दर्दनाक कहानियों के साथ यह पुस्तक बन्दी बनाये जाने के मूलभूत उद्देश्य पर सवाल उठाती है - क्या यह वाकई सुधार है, सजा है या उस व्यवस्था का दुरुपयोग है जिसका हम हिस्सा हैं?

डॉ. विप्लव द्वारा लिखित 'महिला सशक्तिकरण के विविध आयाम 2013' इस पुस्तक में यह बताने का प्रयास किया गया है कि महिलाएँ अब अबला नहीं सबला और सर्वसक्षम है। वे अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिये सजग, सतर्क और सामय है। वस्तुत: नारी की स्थिति धीरे-धीरे निरन्तर विकासोन्मुख है। नारी सम्बन्धी जो धारणाएँ, जो मुद्दे अब तक नेपथ्य में पड़े हुए थे और पर्दा खिंचा हुआ था, वे एक-एक करके बाहर आ रहे हैं और अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं।

डॉ. के.के. शर्मा द्वारा लिखित 'मानवाधिकार - सिद्धांत एवं व्यवहार, 2011' पुस्तक के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया गया है कि जीवन की सुलभता में मानवाधिकार की अहम् भूमिका रही है तथा इस दिशा में मानवाधिकारों के प्रति जागृति, अनुसंधान एवं अध्ययनार्थ यह पुस्तक प्रस्तुत की गई है। पुस्तक में मानवाधिकार का अर्थ, संकल्पना, उद्भव एव विकास से लेकर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के समस्त पहलुओं का विवेचन किया गया है। भारत में अवस्थित राज्य मानवाधिकार आयोगों के अध्यक्षों, सदस्यों जानकारी का बेहद खूबसूरत ढंग से विवेचन किया गया है जो एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज से किसी भी तरह कम नहीं है।

भारतीय दंड संहिता, (33वाँ संस्करण, 2010), शकील अहमद खान द्वारा अनुवादित पुस्तक में सामान्य आशय, सामान्य उद्देश्य, आपराधिक मानव-वध, हत्या, उतावलापन और उपेक्षा तथा स्त्रियों के विरुद्ध अपराध जैसे शीर्षकों पर विस्तार से व्याख्या की गई है। इस पुस्तक में बलात्संग संविधान के अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण करने वाला मूल मानवाधिकारों के विरुद्ध अपराध मानते हुए, ऐसे अपराध से कठोरता और गम्भीरता के साथ निपटा जाने का समर्थन किया है। इसके अतिरिक्त समुचित स्थानों पर उच्च न्यायालय के मामलों को संकलित किया गया है। तथा यह भी स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि न्यायनिर्णयन की प्रक्रिया में एक नयी प्रवृत्ति यह भी रही है कि प्रत्येक मामला भारी जटिलताओं का शिकार हो जाता है इस प्रकार यह पुस्तक नवीन मामलों और विधि तथा न्यायिक विचारधारा में नई उद्घटनाओं को शामिल कर न्याय के विस्तृत क्षेत्र को आकर्षित करती है।

नारी शोषण और मानव अधिकार, श्रीमती मंजू शर्मा द्वारा लिखित यह पुस्तक महिलाओं के संबंध में वैदिक काल की स्वतंत्रता, मध्यकाल की परतंत्रता और आधुनिक काल में अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष की यात्रा वृतांत कहती है। इस पुस्तक के द्वारा महिलाओं के पूजनीय से शोचनीय स्थिति का वर्णन किया गया है। इसमें भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति से लेकर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं के लिए किए जाने वाले कार्यों का उल्लेख किया गया है। यह पुस्तक व्यावहारिक रूप में महिलाओं के विकास चक्र को समझने में सहयोगी है।

'महिला सशक्तिकरण' निधि भारद्वाज द्वारा लिखित यह पुस्तक महिलाओं के जीवन के प्रत्येक पहलुओं पर प्रकाश डालती है, यह महिलाओं के ऐतिहासिक परिवेश, वर्तमान और बदलते समाज की आवश्यकताओं के आधार पर महिलाओं की बदलती भूमिका पर भी प्रकाश डालती है। इस पुस्तक में महिलाओं के अधिकारों, उनका आधुनिकरण, शिक्षा, राजनीति में बढ़ती भागीदारी एवं योगदान, महिलाओं के विकास, आधुनिक समाज में नारी के योगदान आदि महत्वपूर्ण बिंदुओं सम्मिलित किया है।

परिकल्पना - महिलाओं की उपेक्षित प्रस्थिति के कारण महिलाओं द्वारा किए गए अपराध और महिला कैदियों को अक्सर नजर अंदाज किया जाता है, उनके अधिकारों की अनदेखी की जाती है। जेल में रहने वाले पुरुषों पर विस्तार से अध्ययन किया गया किन्तु तुलनात्मक रूप से महिला कैदियों के बारे में बहुत कम जानकारी है। महिला कैदियों की जरूरतों और आवश्यकताओं के लिए उदासीनता प्रकट की गई है। जब ज्यादातर महिलाएं पहली बार जेल में प्रवेश करती हैं तो स्वयं को एक कलंकित स्थिति के अधीन मानती हैं। जैसे-जैसे महिला कैदियों की संख्या बढ़ रही है, यह समस्या और भी गंभीर हो रही है।

कारावास में कैदियों की बढ़ती संख्या, विचारण में देरी, पारिवारिक अलगाव, चिकित्सा एवं मूलभूत आवश्यकताओं का अभाव आदि उत्पीड़न न केवल उनके जीवन पर, बल्कि उनके बच्चों के जीवन पर भी एक स्थायी छाप छोड़ देता है क्योंकि उनमें से अधिकांश बच्चों की निर्भरता उन्हीं पर है। कारावास की भूमिका सुधार गृह की अपेक्षा उत्पीड़न केन्द्र के रूप में अधिक देखने को मिलती है। इस भयावह परिस्थिति में महिला कैदियों का पुनर्वास सहज प्रतीत नहीं होता है।

शोध पद्धति एवं अध्ययन क्षेत्र - अध्ययन में प्रयुक्त संकलित तथ्यों के स्रोतों का विवरण निम्नानुसार है -

तथ्य संकलन प्रविधि में प्राथमिक व द्वितीयक स्रोतों का विषयानुसार उपयोग किया गया। प्राथमिक रूप से तथ्यों के संकलन में साक्षात्कार प्रविधि का उपयोग किया है जिसमें दोषमुक्त महिलाएँ एवं महिला कैदियों के साथ-साथ एवं जेल प्रशासन के सम्बन्धित कर्मचारीगण, चिकित्सक आदि को सम्मिलित किया। साक्षात्कार के माध्यम से महिलाओं कैदियों की समस्या,आवश्यकताओं आदि के विषय में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया है। साक्षात्कार के साथ-साथ अवलोकन प्रविधि के द्वारा कारागृह की व्यवस्था, संरचना एवं वातावरण के वास्तविक स्वरूप को जानने का प्रयास किया गया।

विषय वस्तु को विस्तार देने हेतु द्वितीयक स्रोत को भी उपकरण रूप में सम्मिलित किया गया। जैसे महिला कैदियों से संबंधित पुस्तकें, समाचार पत्रों में प्रकाशित लेख, विभिन्न समितियों, आयोगों द्वारा प्रकाशित आँकड़े जेल विभागों, भारतीय कैदी सांख्यिकी द्वारा उपलब्ध आंकड़े तथा नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो द्वारा समय - समय पर जारी रिपोर्ट और भारतीय संविधान में कैदियों के लिए किए गए प्रावधान एवं कारावास तथा कैदियों के पुनरूत्थान हेतु न्यायिक निर्णय आदि।

शोध से प्राप्त परिणाम - भारत में महिलाओं में अपराधिकता के विषय को नजरअंदाज किया जाता रहा है क्योंकि भारत में महिला अपराधी की संख्या कम है। लेकिन विगत कुछ वर्षों में महिला अपराधों में वृद्धि होने से शैक्षणिक संस्थाओं की रूचि इस विषय के संदर्भ में शोध कार्य हेतु बढी है। विभिन्न सर्वे द्वारा यह पता पाया गया है कि महिला कैदियों की स्थिति विचलित कर देने वाली है। महिला कैदियों के बैरक बदबूदार होते हैं। साथ ही साफ कपड़े में शौचालय की सुविधा भी उचित प्रकार से नहीं है।

उनके सुधार हेतु व्यवसायिक प्रशिक्षण का अत्यंत सीमित होना भी उनकी दुर्दशा उनके भविष्य के अंधकार में होने का प्रमाण है। इसके अतिरिक्त में महिला कैदी जो अपने बच्चों के साथ में रहने को बाध्य हैं, उनके बच्चों को पौष्टिक आहार शिक्षा उचित मात्र का अभाव से जूझना पड़ रहा है। इन महिलाओं को कैदियों को मानसिक व भावनात्मक रूप से आता है। अनेक महिला कैदियों द्वारा तो यह भी स्वीकार किया गया था कि यहां पर जेल शिकायत संबंधी कोई सुविधा नहीं है, उनकी निजता को बनाए रखने के पर्याप्त साधन नहीं है। कर्मचारियों का व्यवहार उनके और उनके बच्चों के प्रति क्रूर रहता है और अभद्र भाषा का प्रयोग दिनचर्या का हिस्सा है।

महिला कैदियों की समस्याएँ - "मानव अधिकार एवं संवैधानिक जनहित आदेशों की आभा में कारावास को मानव चिड़ियाघर में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है कि अपराधी को पकड़ा, बंद किया और भूल गए और ना ही उनके साथ जानवर जैसा व्यवहार किया जाना चाहिए। इसके अलावा जीवन के नाम पर केवल इतना ही भोजन ना दिया जाए कि वे सिर्फ जीवित भर रहें।" - न्यायाधीश शिवकुमार शर्मा

1. कारागारों में कैदियों की अनुशासन की समस्या - कारागारों में कैदियों की लगातार बढ़ती हुई संख्या के कारण कारावासियों को अनुशासन में रखने की समस्या विशेष रूप से चिंता का विषय बनी हुई है। कारागार में कैदियों के स्वतंत्र जीवन पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये जाते है जिनके कारण उनके कारागार प्रशासकों के प्रति रोष उत्पन्न होना स्वाभाविक है। अत: वे उन्हें परेशान करने के लिए प्रतिकूल व्यवहार करते है जिससे कारागार की अनुशासन व्यवस्था भंग होने की सम्भावना बनी रहती है। कारागारों की व्यवस्था जानबूझकर ऐसी रखी जाती है जिससे अपराधी को सामान्य सुखमय जीवन के वातावरण से वंचित रखकर कठोर जीवन बिताना पड़े ताकि वह पुन: अपराध करके कैदी जीवन बिताने की न सोच सके। कारागारों के कड़े अनुशासन, नीरस वातावरण तथा एकान्तता का उदेश्य ही यह होता है कि लोगों को कारावासी जीवन के प्रति अरुचि उत्पन्न हो तथा वे ऐसा कार्य करने से बचे जिसके कारण उन्हें कारावास का दंड दिया जा सकता है।
2. जेल-अभिरक्षा में बन्दियों को यातनायें - कारावास के ऐसे बन्दियों को जो गरीब और असहाय होने के कारण कारावासी अन्याय के शिकार होते हैं, संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन समुचित संरक्षण दिया गया है, फिर भी जेल अभिरक्षा में कैदियों के साथ अमानवीय व्यवहार तथा यातनायें देने की घटनायें प्राय: होती रहती हैं। उच्चतम न्यायालय ने डी. बी. एम. पटनायक बनाम आन्ध्रप्रदेश राज्य, के वाद में विनिश्चित किया कि किसी व्यक्ति के कारागार में निरोध मात्र के आधार पर उसे उसके मूलभूत अधिकारों से वंचित नहीं रखा जा सकता है।

   'शीला बारसे बनाम महाराष्ट्र राज्य' के मामले में एक जनहित याचिका द्वारा जेल की महिला कैदियों के प्रति शोषण और अन्याय की शिकायत पर उच्चतम न्यायालय ने महाराष्ट्र शासन को आदेशित किया कि कारावास का दण्ड भोग रही ऐसी सभी असहाय पीड़ित महिला कारावासियों को राज्य के खर्चे पर विधिक सहायता उपलब्ध कराई जाए तथा उन्हें यातना और दुर्व्यवहार के विरुद्ध समुचित संरक्षण प्रदान किया जाए। इसी प्रकार 'संजय सूरी बनाम दिल्ली प्रशासन' के प्रकरण में भी उच्चतम न्यायालय ने कारागार प्राधिकारियों को निर्देशित किया कि वे कैदियों के मूलभूत अधिकारों के संरक्षण की समुचित व्यवस्था करें तथा उनके प्रति अन्याय न होने दें। फिर भी महिला कैदियों के साथ कारावास में क्रूरता और हिंसा की वारदातों की खबरें आती रहती हैं।

महाराष्ट्र के ही कारावास में वार्डन द्वारा कथित रूप से महिला कैदी की हत्याकांड को अंजाम दिया गया। महिला कैदियों की सामान्य गलती किये जाने या जेल प्रशासन के आदेश को न मानने पर उन महिला कैदियों को निर्वस्त्र कर पीटना, अश्लील बातें कहना, गालियाँ देना आदि सामान्य दिनचर्या है। एक आँकड़ों के मुताबिक, जेलों की बदहाल स्थिति के कारण 2015 में 1,584 कैदियों की मृत्यु हुई। इन मौतों में 1,469 प्राकृतिक रूप से हुई मौतें हैं जबकि 115 लोगों की मृत्यु अप्राकृतिक रूप से हुई। यदि महिला कैदियों की बात करें तो पता चलता है कि इस एक साल के दौरान 51 महिला कैदियों की मृत्यु हुई। इनमें से 48 प्राकृतिक मौतें थीं, जबकि तीन मौतें अप्राकृतिक थीं। प. बंगाल की एक रिपोर्ट के अनुसार 149 कैदियों की अप्राकृतिक मृत्यु में से, 129 कैदियों ने आत्महत्या की है, 5 कैदियों की मृत्यु दुर्घटनाओं में हुई, 10 कैदियों की हत्या अन्य कैदियों ने की है और 2018 के दौरान 1कैदी की मृत्यु बाहरी तत्वों द्वारा मारपीट के कारण हुई। कुल 57 कैदियों की मृत्यु का कारण अभी पता नहीं चल पाया है।

3. स्वच्छता का समस्या - भारतीय जेल में बंद महिला कैदियों की समस्याओं में स्वच्छता की समस्या अधिकांशत: पायी गई है। उनके बैरक में पर्याप्त रोशनी व सफाई का अभाव रहता है कई बार बैरक के एक भाग का उपयोग शौचालय के रूप में किया जाता है। जिससे अस्वच्छता बनी रहती है जिसके कारण उन्हें कई प्रकार संक्रमण होते हैं। 2 जुलाई 2018 बैसूला जेल मुम्बई में 78 महिला कैदियों को जे.जे. अस्पताल में विषाक्त भोजन के कारण भर्ती कराया गया। उन महिलाओं के शारीरिक परीक्षण में पाया गया किवे विषाक्त भोजन से ही पीड़ित नहीं है। अपितु उनके शरीर में संक्रमण भी पाया गया जो अस्वच्छता, अपर्याप्त व अपौष्टिक भोजन आदि के कारण हो सकता है।

4. विचारणाधीन महिला बन्दियों की समस्या - कारागारों में कारावासियों की एक बड़ी संख्या ऐसी होती है जो न्यायालय द्वारा विचारण की प्रतीक्षा में लम्बे समय से जेल के सीखचों के अन्दर बन्द हैं। इनमें से अनेक अपराधियों के अपराध इतने तुच्छ होते हैं कि उनके लिए कुछ ही महीने या एकाध वर्ष की सजा ही दी जा सकती है। परन्तु मानवीयता द्वारा विस्मृत ये व्यक्ति वर्षों तक अपनी स्वतन्त्रता से वंचित रखे जाते हैं। इनमें से अनेक ऐसे भी हैं जिनके विरुद्ध सम्भवत: अपराध सिद्ध भी न हो और उन्हें निर्दोष छोड़ना पड़े। ऐसे विचारणाधीन व्यक्तियों को लम्बे समय तक अन्य कैदियों के साथ कारागार में रखना उनके प्रति घोर अन्याय है क्योंकि उन्हें केवल सुरक्षात्मक अभिरक्षा में रखा जाना पर्याप्त है न कि कैदियों की भाँति कारागार में।

   विचारणाधीन बन्दियों की कारागार में दयनीय स्थिति के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए उच्चतम न्यायालय ने 'हुसैनआरा बनाम बिहार राज्य' के ऐतिहासिक मामले में विनिश्चित किया कि विचारण की प्रतीक्षा में अपराधियों का दीर्घ परिरोध स्वयं में अनुच्छेद 21 के उपबन्धों का उल्लंघन है जो जीवन तथा वैयक्तिक स्वतन्त्रता को संरक्षित करते हैं। इस समस्या के निदान के लिए यह नियम लागू किया जाना उचित होगा कि यदि विचारण की प्रतीक्षा में बन्दी रखे गये कारावासियों का विचारण दो वर्ष तक पूरा नहीं होता, तो उन्हें रिहा कर दिया जाये।

5. कारावास में कैदियों की बढ़ती संख्या की समस्या - कारागारों में कैदियों की भीड़ की समस्या यह सर्वविदित है कि भारत के अधिकांश कारागारों में कैदियों की संख्या निर्धारित संख्या से बहुत अधिक है। उदाहरणार्थ, सन् 1995 में तिहाड़ जेल में कैदियों की कुल संख्या 8500 थी जबकि उसकी क्षमता मात्र 2500 कैदियों की है। कारागार में कैदियों की भीड़ का दुष्परिणाम यह होता है कि छुटपुट अपराध करने वाले कैदियों को गंभीर और आदतन अपराधियों से पृथक् रखना सम्भव नहीं हो पाता, जिसके कारण सामान्य अपराधी भी घोर अपराधी बन जाते हैं।

   आदतन महिला अपराधी व सामान्य महिला कैदी (विचाराधीन) को साथ में रखा जाना भारतीय जेलों में महिला बैरकों में आदतन महिला अपराध ी व प्रयास अपराध करने वाली महिला कैदी या विचाराधीन महिला कैदियों के पृथक-पृथक रखने की व्यवस्था नहीं है। जिसके कारण अभ्यस्त महिला कैदी द्वारा अन्य महिला कैदी के साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। साथ ही अपनी बात मनवाने के लिए प्रताडित किया जाता है। यह प्रताड़ना कितनी भयानक हो सकती है कि कई बार तिहाड़ जेल में कैदी महिलाओं द्वारा आत्महत्या की गई है। कारावास महिला कैदियों की अत्यधिक संख्या एक गंभीर समस्या है। 31 दिसम्बर, 2015 तक केंद्रीय जेलों में कैदियों की संख्या 1,85,182 थी जबकि जेलों की भराव क्षमता 1,59,158 थी। इससे जेलों में कैदियों को बुनियादी सुविधाएँ जैसे साफ-सफाई, भोजन और चिकित्सा संबंधी सुविधाएं नहीं मिल पाती है और साथ ही साथ जेलों पर वित्तीय भार और बढ़ जाता है

6. विधिक जागरूकता का अभाव की समस्या - भारत की जेल में बंद अधिकांश महिला कैदी समाज के पिछड़े वर्ग से आती है जो अनपढ़ या कम पढ़ी-लिखी होती है जिसके परिणामस्वरूप वह अपने विधिक अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं होती है। इन महिला कैदियों में से लगभग 70 प्रतिशत महिला कैदी यह तक नहीं जानती कि किस अपराध में दोषी है। अधिकांशत: महिला कैदी उन अपराधों जैसे जो जुर्माना या तुच्छ प्रवृति के है से सम्बन्धित है परन्तु उन्हें समय पर विधिक सहायता न मिलने के कारण काफी समय तक जेल में रहने पर बाध्य होती है। तथा जेल प्रशासन द्वारा महिला कैदियों को यह नहीं बताया जाता है कि अनु. 21 के तहत नि:शुल्क विधिक सहायता प्राप्त करना उनका विधिक अधिकार है।

7. महिला व उनके बच्चों के लिए बुनियादी सुविधा के अभाव की समस्या - सामान्यत: कारावास में कैदियों की मूलभूत आवश्यकताओं को दरकिनार किया जाता रहा है। यहां तक कि महिलाओं कैदी अपने प्राधिकृत जेल कर्मचारियों से भयभीत रहती हैं। अपने अधिकारों के प्रति उनमें पूर्व में ही जागरूकता का अभाव पाया जाता है जिसके कारण वे अपनी एवं अपने बच्चों की आवश्यकता के विषय में भी कारावास प्रशासन से कुछ माँग नहीं कर सकतीं। जिससे उनके बच्चों के शारीरिक, मानसिक वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उनकी बुनियादी आवश्यकता जैसे पौष्टिक आहार, शिक्षा, त्वरित विचारण आदि की पूर्ति को अनदेखा किया जाता है।

8. चिकित्सा सुविधा संबंधी समस्याएँ - चिकित्सा सुविधा भी जेल में सन्तोषप्रद नहीं है। चिकित्सा सेवा में कमी व देरी इस बात से ही स्पष्ट हो जाती है कि कैदी को तब तक चिकित्सा सुविधा उपलब्ध नहीं होती है, जब तक कैदी की स्थिति मरणासन्न न हो जाए या फिर उसकी मृत्यु हो जाने के बाद इसलिए राष्ट्रीय मानवाधिकार की रिपोर्ट में बताया गया है कि पुलिस हिरासत की अपेक्षा जेल हिरासत में मृत्यु दर अधिक है जिसमें अधि काशत: चिकित्सा सुविधा के अभाव में होती है।

9. गर्भवती महिला कैदियों एवं नवजात शिशु से संबंधित समस्या – कारावास में कभी-कभी गर्भवती महिला का विचाराधीन अथवा दोषी रूप में आना उक्त महिला एवं गर्भस्थ शिशु के लिए अत्यंत गंभीर स्थिति पैदा कर सकता है, कारावास का वातावरण निराशाजनक एवं अभावग्रस्त होता है, पौष्टिक आहार के अभाव तथा कारावास प्रशासन का कठोर व्यवहार से दोनों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है।

उच्चतम न्यायालय ने 'आर. डी. उपाध्याय बनाम आंध्र प्रदेश राज्य' तथा अन्य वादों में महिला कैदियों की स्थिति के प्रति गहरी चिंता व्यक्त करते हुए कहा कि जो महिला कारावास में अपने शिशुओं के साथ सजा भोग रही है, उनके प्रकरण प्राथमिकता के आधार पर निपटाए जाने चाहिए ताकि उनके बच्चों के पालन पोषण, आश्रय, चिकित्सीय सुविधा तथा शिक्षा एवं मनोरंजन के अधिकारों को सुरक्षित रखा जा सके। जिन गर्भवती महिला कैदियों की प्रसूति कारागार में होती है, उनके शिशु के जन्म प्रमाण पत्र में जन्म स्थान पर कारागार नहीं दर्शाया जाना चाहिए। न्यायालय ने यह भी आदेशित किया है कि छः वर्ष से अधिक आयु के बालकों को उसकी कारावासीय माता के साथ जेल में नहीं रखा जाना चाहिए, इस संबंध में विभिन्न राज्यों को अपनी जेल पुस्तिका में आवश्यक संशोधन कर लेना चाहिए। कारावास में महिला कैदियों की देखरेख, सुरक्षा तथा स्त्री-जनित आवश्यकताओं की उचित व्यवस्था रखना भी जेल प्रशासन का ही उत्तरदायित्व है।

कारावास सुधार हेतु विभिन्न समितियों के सुझाव

प्रथम सुधार समिति 1836 – उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में भारत में ब्रिटिश राज्य स्थापित हो जाने के पश्चात अंग्रेजों ने भारतीय कारागार की दयनीय दशा में सुधार करने का प्रयत्न किया जिससे कारावास जीवन की यातना को कम किया जा सके। भारतीय कारावास व्यवस्था में सुधार का प्रारंभिक स्वरूप 1836 में लार्ड मैकाले के सुझाव पर एक कारावास सुधार समिति गठित की गई थी, इस समिति के द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि कारावास की सजा के प्रति लोगों में आतंक को प्रेरित करना किंतु यह अमानवीय नहीं होनी चाहिए। इस समिति ने 1838 में अपनी रिपोर्ट का कुछ अंश प्रस्तुत किया जिसमें कैदियों के आवास, अनुशासन, स्वास्थ्य, आहार, परिश्रम सिद्धांत, पुरस्कार एवं दंड, शिक्षा आदि के लिए सुझाव की रूपरेखा तैयार की । इसके साथ महिला कैदियों को रखने के लिए पृथक व्यवस्था की अनुशंसा भी इसी समिति के तहत प्रथम बार की गई थी।

द्वितीय सुधार समिति 1862 – सर जॉन लारेन्स के कार्यकाल में द्वितीय कारावास समिति गठित हुई थी जिसके अंतर्गत कारावास में गंदगी स्वास्थ्य की दशाओं पर गंभीरता से चिंतन किया गया। इस समिति द्वारा उचित चिकित्सा, भोजन और सफाई, त्वरित विचारण को विशेष महत्व दिया गया। इस समिति ने किशोर, महिला कैदियों के आहार, अनुशासन के पहलुओं पर विचार किया तथा सजायाफ्ता एवं अभ्यस्त कैदियों के वर्गीकरण के साथ साथ कारावास प्रणाली में सुधार की सिफारिश की। इन्हीं सिफारिशों के क्रियान्वयन के परिणामस्वरूप ही जेल में मृत्यु दर में काफी कमी आई।

अखिल भारतीय कारावास समिति 1889 – इस समिति के द्वारा प्रत्येक कारावास में अस्पताल की स्थापना की स्थापना का सुझाव दिया गया। समिति के अधिकांश सिफारिशों को विभिन्न प्रांतों के जेल मैनुअल में शामिल किया गया था। इस समिति के आधार पर ही कैदियों के कार्य के घंटे निश्चित किए गए जिसमें एक कैदी को अपनी क्षमता अनुसार 9 घंटे तक ही कार्य करना चाहिए तथा इसके लिए वह परिश्रम का हकदार है।

भारतीय कारावास सुधार समिति 1919 – सर अलेक्जेंडर कार्डियों की अध्यक्षता में यह समिति गठित की गई थी। इस समिति के अंतर्गत भारत के साथ बर्मा जापान और ब्रिटेन आदि जिलों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया था। इस समिति ने यह परामर्श दिया था कि कारावास की कार्य व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए कि कैदियों की मानसिकता में परिवर्तन किया जा सके वे स्वयं ही अपराध करने का विचार त्याग दें और जीवन में सच्चरित्र और सुधरने के लिए संकल्पित हों। समिति का सुझाव था कि कैदियों से कठोरता की बजाय उदारतापूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिए।कैदियों की अधिकतम संख्या के स्पष्ट आधार तय किए जाने चाहिए जिससे कारावास की क्षमता निर्धारित की हो सके। एकांत कारावास के दंड को पूर्णता समाप्त किया जाए।

मुल्ला समिति 1980 – सन् 1980 में गठित न्यायमूर्ति ए.एन. मुल्ला की अध्यक्षता में गठित इस समिति ने भारतीय कारावास के आधुनिकीकरण की प्रगति में विशेष योगदान दिया है। इन्हीं के प्रयासों से 1986 में किशोर न्याय अधिनियम पारित हुआ था। इस समिति ने कारावास और कैदियों की दशा सुधारने हेतु विभिन्न सुझाव प्रस्तुत किए, जिनमें कैदियों की दशा सुधारने के लिए उनकी स्वच्छता, वातानुकूलित परिस्थितियाँ, भोजन, कपड़े आदि पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। कारागार के कर्मियों तथा प्रशासकों को विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत करके उनके प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

कारावास में विचाराधीन कैदियों को सिद्ध दोष कैदियों से अलग रखना अत्यंत आवश्यक माना है तथा विचाराधीन कैदियों के शीघ्र विचारण की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे उन्हें कम से कम जेल जाना पड़े। कैदियों के पैरोल और पुनर्वास की व्यवस्था को भी कारावास का अभिन्न अंग बनना चाहिए। प्रचार माध्यम तथा लोक सेवी संस्थाओं के प्रतिनिधियों को समय-समय पर कारावास का निरीक्षण की सुविधा दी जानी चाहिए जिससे जनता कारावास की स्थिति से अवगत हो सके और सरकार द्वारा अनिवार्य रूप से पर्याप्त अनुदान दिया जाना है।

कृष्णा अय्यर समिति 1988 – न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर की अध्यक्षता में यह विशेष समिति गठित की गई। इसमें महिला कैदियों के लिए महिला पुलिस कर्मियों की नियुक्ति की मांग की। इसी समिति के अनुशंसा पर किशोर न्यायालय अधिनियम 2000 समाविष्ट किया गया। इसी समिति ने शहरी क्षेत्रों के बाल अपराधों को जड़ से निपटने के लिए बाल अपराध प्रकोष्ठ स्थापित किए जाने की सिफारिश भी की। महिला कॉन्स्टेबल को ही महिला कैदियों की तलाशी लेनी चाहिए। पुरुषों की तरह महिला कैदियों को भी कानून के तहत उनके अधिकारों की जानकारी देनी चाहिए। महिलाओं के लिए अलग जेल उपलब्ध कराई जाए। महिला कैदियों को अपने बच्चों को साथ रखने की अनुमति देनी चाहिए। महिला डॉक्टर ही महिला कैदी या विचारण कैदी का चिकित्सीय मुआयना करेंगी। महिला कैदियों को अपने परिवार, वकील, सामाजिक कार्यकर्ताओं, एवं स्वैच्छिक संगठनों से संपर्क करने की अनुमति दी जानी चाहिए। महिला कैदियों के नवजात शिशु से लेकर अबोध बालकों की समुचित व्यवस्था उचित वातावरण में करने का प्रयत्न करना चाहिए।

मुल्ला समिति, न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर समिति और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग आदि ने जेल प्रशासन में ही नहीं बल्कि संपूर्ण आपराधिक न्याय प्रणाली में सुधार लाने के लिए कई मूल्यवान सिफारिशें प्रस्तुत की है। इतने प्रयासों के बावजूद जेल और कैदियों की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ है प्रत्येक

समिति मुख्य रूप से कैदियों के लिए सुधार के लिए प्रयासरत रही है परंतु महिला कैदियों के लिए कृष्णा अय्यर समिति में ही विशेष प्रावधान का उल्लेख मिलता है अन्य समितियों में नहीं। महिला अपराधियों की बढ़ती दर के परिणामस्वरूप इस समिति ने अपने सुझाव प्रस्तुत किए थे इससे पूर्व महिला कैदियों के लिए अलग से कोई विशेष प्रावधान कम ही प्राप्त है।

कारावासियों की पुनर्स्थापन हेतु अन्य सुझाव - कारागार प्रशासन तथा सुधारक सेवाओं का मुख्य उद्देश्य कारावासियों को पुनर्वासित करके समाज की मुख्य धारा में उनकी वापसी करना हैं। यह कार्य कैदियों की कारावास से रिहाई के पश्चात उत्तरवीक्षा द्वारा सुचारु रूप से सम्पन्न किया जाता है जिससे कारावास के मुक्त हुए कैदियों को सामाजिक लांछन तथा तिरस्कार या बहिष्कार की समस्या से जूझने की शक्ति प्राप्त होती है और वे अपने अतीत को भुलाकर एक बार पुनः सामान्य नागरिक जीवन बिताने की ओर प्रवृत्त होते हैं। कारागार प्रशासन को कैदियों के पुनर्वास में जिन समस्याओं का समाधान संक्षेप में निम्नानुसार हैं -

1. कारावासियों के समुचित वर्गीकरण के अभाव में किस कारावासी के लिए कौन सी उपचार पद्धति अपनाई जाए इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होने से उनके पुनर्वास में कठिनाई होती है। साथ ही आवश्यक अधोसंरचनात्मक सुविधाओं का अभाव भी एक गम्भीर समस्या है।
2. कारागार प्रशासकों को यह ध्यान में रखना चाहिए कारावासित होना कैदी के लिए स्वयं में एक कष्टप्रद अनुभव है, अतः उन्हें जेल में यातनाएँ देना या प्रताड़ित करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है।
3. विधि द्वारा भी कारावासियों या निरुद्ध व्यक्तियों को यातनाएँ पहुँचाना निषिद्ध ही नहीं वरन् एक गम्भीर अपराध माना गया है।
4. अधिकांश कारावासी अशिक्षित या -अर्द्धशिक्षित या अकुशल होने के कारण उनके लिए उचित रोजगार-मूलक व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था अधिक कारगर सिद्ध होगी जो उन्हें रिहाई के पश्चात रोजगार प्राप्त करने में सहायक होगी।
5. कुछ चुनिंदा अच्छे कैदियों के लिए घ्घ्घ - अर्द्ध-दण्डात्मक तरीके जैसे फर्लो पैरोल, सजा में कटौती,समाधान एवं उनके पुनर्वास हेतु उपयोगी सिद्ध हो सकते है।
6. आगे पढ़ाई जारी रखने के इच्छुक कैदियों के लिए शैक्षणिक साधन जैसे वाचनालय,पुस्तकालय, शिक्षक, परीक्षा में सम्मिलित होने की सुविधा आदि उपलब्ध कराई जानी चाहिए ताकि रिहाई के पश्चात वे समाज में आसानी से पुनःस्थापित हो सके। इस दिशा में इग्नू जैसे मुक्त विश्वविद्यालयध्संस्थानों की सहायता ली जा सकती है।
7. कतिपय अर्द्ध-संस्थागत सुविधाएँ जैसे दिन में श्रमकार्य के लिए भेजा जाना या पढ़ाई के लिए भेजा जाना या सामुदायिक सेवा में लगाया जाना भी कैदियों के पुनर्वास के दृष्टिकोण से लाभप्रद हो सकता है।
8. उच्चतम न्यायालय ने सुनील बत्रा के वाद में कैदियों की सुधारात्मक चिकित्सा के सन्दर्भ में तीन बातों पर विशेष ध्यान दिये जाने पर बल दिया है जो निम्नानुसार है-
   (1) अभिरक्षा या निरोध के कारण सम्बन्धित व्यक्ति का व्यक्तित्व समाप्त नहीं हो जाता है।
   (2) कैदी भी मानवाधिकार के अधिकार रखते हैं।
   (3) कारावधि में कैदियों को प्रताड़ित करना या यातना पहुँचना प्रतिबन्धित है।

निष्कर्षः - विषय वस्तु के संदर्भ में किए गए अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि भारत में महिला कैदियों के लिए विशेष प्रावधान नहीं किए गए हैं और जो है उन्हें व्यवहारिक रूप से लागू नहीं किया जाता है। महिला कैदियों का अधिकांश भाग निरक्षर है तथा आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग से सम्बन्धित है या पिछड़ा हुआ है। जिसके परिणामस्वरूप वह जमानत जैसे सामान्य प्रावधानों को भी नहीं जानता है। अधिकांश महिला कैदियों को उनके अपराध के स्वरूप में भी पूर्ण जानकारी नहीं है। प्रायः महिला कारागृह की संख्या कम होने के कारण महिला कैदियों को सामान्य कारागृह में रखा जाता है और उस कारागृह की नियमावली पुरूष कैदियों के आधार पर है जिससे महिला कैदियों की निजता व सम्मान को खतरा बना रहता है।

जेल प्रशासन द्वारा भी कैदियों के साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। इसका प्रभाव महिला कैदी पर ही नहीं अपितु उनके साथ रह रहे बच्चों पर भी पड़ता है। जिस कारण महिला कैदी भावनात्मक रूप से कमजोर पड़ जाती है। जेल में चलाए जा रहे पुनर्वास के लिए व्यवसायिक प्रशिक्षण की रूपरेखा भी प्रासंगिक नहीं है जिससे उन्हें रिहाई के बाद विशेष आर्थिक लाभ नहीं होता है। भारतीय संविधान में वर्णित 'प्राण व दैहिक स्वतंत्रता' व 'समानता के अधिकार' कैदियों के लिए भी प्रस्तावित है परन्तु जेल में प्रशासन द्वारा उनके मूलभूत अधिकारों को नजर अन्दाज किया जाता है। 'मंजुला सेठी' जैसे अनेक उदाहरण भारतीय जेलों के संदर्भ में प्रकाशित हुए कि जहाँ कैदियों को अधिकारी द्वारा अमानवीय यातना का शिकार होना पड़ा अथवा उनकी निमर्म हत्या की गई। इन परिस्थितियों में भारतीय प्रस्तावना में वर्णित 'समानता' प्रतिष्ठा, व्यक्ति की गरिमा' जैसे शब्द खोखले प्रतीत होने लगते है। आवश्यकता है एक नागरिक के रूप में चाहे वे अन्दर हो या बाहर उनके लिए 'जहाँ अधिकार है वहाँ उपचार है' की अवधारणा को व्यवहारिक रुप से लागू करने की जिससे भारत का प्रत्येक नागरिक सम्मान व गरिमा के साथ अपने अस्तित्व को बनाए रखें।

सन्दर्भ सूची -

1 डॉ. मधुरिमा : '' वीमन क्राइम एण्ड प्रिजन लाइफ(2009)
2 आहूजा, राम : ''फिमेल ओफेन्डर्स इन इण्डिया'', मिनाक्षी प्रकाशन, इण्डिया, 1969.
3 भारद्वाज, निधि : '''महिला सशक्तिकरण'
4 शर्मा, मंजू : '' नारी शोषण और मानव अधिकार .

5 खान, शकील अहमद : '' भारतीय दंड संहिता, (33वाँ संस्करण, 2010).
6 कटारिया, सुरेन्द्र : ''मानव अधिकार, सभ्य समाज एवं पुलिस'', आर.बी.एस.ए. पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2003.
7 कुल्हरी, सुमन : ''महिला एवं मानव अधिकार'', नेहा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर, 2010.
8 कौशिक, सुशीला : ''वूमेन ऑपरेशनः पैटर्न एण्ड परस्पेक्टिव'', शक्ति बुक्स, नई दिल्ली, 1985
9 गुप्त, कैलाशनाथ एवं शाह, सरिता : ''मानव अधिकारः संघर्ष, संदर्भ एवं निवारण'', अभिव्यक्ति प्रकाशन, दिल्ली 2012.
10 परांजपे, एन० वी० : ''अपराधशास्त्र एवं दण्डशास्त्र''.
11 डॉ. विप्लव : '' महिला सशक्तिकरण के विविध आयाम 2013.
12 बेदी, किरण : ''इट इज आलवेज पॉसिबल वन वूमेन्स ट्रांसफोर्मेशन ऑफ इण्डिया प्रिजन सिस्टम'', हिमालयान इन्स्टीट्यूट प्रेस, 2007.
13 चौधरी, सुनेत्रा : ''सलाखों के पीछे'' .
14 लक्ष्मीकांत, एम. : ''भारत की राजव्यवस्था'', एम.सी. ग्रो एजुकेशन प्रा.लि. 2017.
15 शर्मा, मंजु : ''नारी शोषण एवं मानवाधिकार'', राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2008.
16 शास्त्री, उर्मिला : ''माइ डेज इन प्रिजन'', हार्पर वेन्टेज पब्लिशिंग हाउस, 2012.
17 शर्मा के.के. : '''मानवाधिकार - सिद्धांत एवं व्यवहार, 2011'.
18 सुवर्णा, चेरूकुरी : ''वूमेन इन प्रिजन'', कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, इण्डिया प्रा.लि. 2007.
19 हाशमी, नाड़िया : 'ए हाउस विदाउट विण्डो'', विलियम मोरा, 2016

गांधी की लोकतंत्र में भूमिका : मतदान व्यवहार के विशेष संदर्भ में

देवेन्द्र कुमार

शोधार्थी, राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर

महात्मा गांधी भारत के उन बिरले व्यक्तित्व में से एक हैं जिनके विचारों और जीवन गाथा को वैश्विक स्तर पर आदर से स्वीकार किया जाता है। उन्होंने अपना जीवन एक वकील के रूप में आरम्भ किया और उसके पश्चात अपने जीवन के प्रथम वयस्क बीस वर्ष दक्षिण अफ्रीका में दक्षिण अफ्रीकी सरकार की रंगभेद नीति के विरुद्ध लडाई लडकर व्यतीत किए। 1915 में भारत वापस आने के पश्चात् वे भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ गए और 1920 तक आते आते उन्होंने इस राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व करना आरम्भ कर दिया। भारत की स्वतंत्रता तक वे भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के सबसे प्रमुख राजनेता के रूप में स्थापित रहे। उन्होंने राजनीति में एक नए प्रकार की जीवन शैली, नेतृत्व की कला, नए राजनीतिक साधनों एवं मूल्यों को स्थापित किया, जिसके कारण उनके नेतृत्व में लड़ा गया राष्ट्रीय आंदोलन एक विशेष प्रकार का आंदोलन बना। पिछले 72 वर्षों के विश्व इतिहास में गांधी द्वारा स्थापित नई राजनीतिक मान्यताओं, साधनों एवं विचारों को महत्त्वपूर्ण माना गया है और विश्व में कई स्थानों पर उनके विचारों पर आधारित सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन करने का प्रयास किया गया है। गांधी को अपने जीवन काल में ही महात्मा और राष्ट्रपिता की संज्ञा दी गई थी तथा उनके द्वारा प्रचलित वेशभूषा विशेषकर खादी का पहनावा आज भी भारतीय राजनीति का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतीक माना जाता है। गांधी के विचार एवं व्यक्तित्व ने स्वाभाविक रूप से राष्ट्रीय शिक्षा के पाठ्यक्रमों में प्रवेश किया और वह भारत में शिक्षा के सभी स्तरों पर किसी न किसी रूप में पढ़ाया जाने लगा। उच्च शिक्षा के स्तर पर गांधी के विचारों की विवेचना एवं विश्लेषण विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में अनिवार्य रूप से शामिल हुआ। गांधी ने अपने जीवन में डेढ़ करोड़ से अधिक शब्द लिखे और उनके विचार समसामयिक स्तर पर सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर प्राप्त होते हैं उन्होंने शाश्वत प्रश्नों के भी अपने सुलझे हुए उत्तर देने का प्रयास किया है।

गांधी हमारी राष्ट्रीय धरोहर के महत्वपूर्ण अंग हैं। समय बीतने के साथ-साथ गांधी हमारे लिए और अधिक महत्त्वपूर्ण बनते जा रहे हैं और अलौकिक भी। आवश्यकता इस बात की है कि वैज्ञानिक दृष्टि से गांधी के विचारों का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। उन्हें सार्वभौमिक रूप से एक महान व्यक्ति माना जाता है और एक महान व्यक्ति की महानता का मूल्यांकन साधारण व्यक्ति के शब्दों एवं विवेक क्षमता से नहीं किया जा सकता।

गांधी एक इतिहास पुरुष हैं। उन्होंने भारत के इतिहास में ऐतिहासिक आवश्यकताओं के संदर्भ में पदार्पण किया और वे ऐतिहासिक इच्छाओं का सजीव बल बन सके इसलिए कई बार उन्हें ऐतिहासिक शक्तियों की आत्मा माना जाता है। राजनीति में निरंतर लिप्त रहने के बावजूद गांधी को एक धार्मिक व्यक्ति माना जाता है। उनके बारे में यह सही कहा गया है कि वह एक महात्मा तो है ही साथ ही जनता के व्यक्ति भी हैं। वह एक पैगम्बर है लेकिन एक अलग प्रकार के। रोमा रोलां ने उनके बारे में कहा कि महात्मा गांधी इस तरह के प्रतिभाशाली थे जो अपनी परिस्थितियों के आदर्शों पर खरे उतरे और उन्होंने एक ऐसा नेतृत्व प्रदान किया है. जो अपनी प्रजाति. समय और विश्व की आवश्यकताओं पर खरा उतरा है। वे इसी प्रकार की प्रतिभा के धनी थे। उनकी सामाजिक सोच और दर्शन उस समय की परिस्थितियों के अनुकूल थी लेकिन उसमें कुछ ऐसे सार्वभौमिक तत्त्व थे, जो आज अधिक महत्त्वपूर्ण बनते जा रहे हैं और आने वाले समय में अधिक महत्त्वपूर्ण होंगे। गांधी ने कभी भी अपने चिंतन को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत नहीं किया। वे कभी भी अपने आपको बुद्धिजीवी के रूप में प्रस्तुत नहीं करना चाहते थे। उन्होंने बार-बार यह कहा है कि गांधीवाद नाम की कोई वस्तु नहीं है और मैं किसी नए सिद्धान्त को जन्म नहीं दे रहा हूं। मैं अपने पीछे किसी वाद को भी छोड़ कर नहीं जाना चाहता। मैंने सिर्फ अपनी तरह से दैनिक जीवन में छिपे हुए अंतिम सत्यों को लागू करने की कोशिश की है। अगर इसे दर्शन कहा जाए तो यही मेरा दर्शन है। गांधी जी ने विविध विषयों पर अपने विचार रखे उनमें लोकतंत्र भी एक है जिस पर उनके विचार हैं:-

प्रजातंत्र एक युगधर्म बन चुका है। वह एक आकांक्षा एवं षब्द के रूप में सर्वत्र विजयी हो चुका है। 1950 के बाद उसका एक भी विरोधी नहीं रहा है। चाहे कोई षासन व्यवस्था, विचारवाद या राजनेता ही क्यों न हो, सभी अपने आपको प्रजाप्रेमी उद्घोषित करते हैं। इसने षासन-सत्ताओं का स्वरूप बदला है और साम्राज्यों को धाराषाही किया है। यह सभी स्वीकार करते हैं कि मानव षक्ति को उन्मुख करने के लिए कोई भी व्यवस्था इतनी अधिक प्रबल नहीं है जितनी कि प्रजातंत्र। अब यह विचारवाद मात्र न रहकर मानव धर्म बन गया है। वर्तमान काल साधारण आदमी का युग कहा जाता है।

शाब्दिक उत्पत्ति की दृष्टि से 'डेमोक्रेसी' शब्द यूनानी भाषा के 'डेमोस' तथा 'क्रेशिया' से मिलकर बना है। जिसमें प्रथम का अर्थ है 'लोग' दूसरे का अर्थ है 'शासन' इस प्रकार लोकतंत्र का शाब्दिक अर्थ है- 'जनता का शासन'।

लोकतंत्र के इतने रूप हैं कि इसकी एक निश्चित परिभाषा देना कठिन है अत: समय परिस्थितियों तथा विभिन्न हितों की आवश्यकतानुसार विभिन्न युगों के विचारकों ने लोकतंत्र की भिन्न-भिन्न परिभाषाए दी हैं।

जयप्रकाश नारायण की ''सम्पूर्ण क्रांति'' की विचारधारा का भी यही भावार्थ है।

गांधी एवं सर्वोदयी विचारधारा के अनुसार प्रजातंत्र अहिंसा पर आधारित होता है और वहां लोगों पर कम से कम षासन किया जाता है।

गांधी के विचारों से ऐसा प्रतीत होता है कि वे दल विहीन राजनीति में भी विश्वास रखते थे। चूंकि गांधी सर्वोदयी समाज में विश्वास रखते हैं इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि वे सभी व्यक्तियों को निर्णय प्रक्रिया में हिस्सा लेने को प्रेरित करते हैं और व्यक्तियों के प्रतिनिधित्व को अधिक महत्त्व नहीं देते। उनके आदर्श समाज में राजनीतिक दलों का कोई स्थान नहीं है क्योंकि राजनीतिक दल जनता के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले समूह होते हैं और गांधी ऐसे लोकतंत्र में विश्वास रखते हैं जो ग्राम आधारित हो और जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी बात कह सके।

गांधी हिंसा विहीन राजनीति की बात भी करते हैं और ऐसा करते हुए वे प्रचलित राजनीति के दलदल से मुक्त करना चाहते हैं। वे पाश्चात्य देशों के लोकतंत्र से संतुष्ट नहीं हैं क्योंकि पश्चिमी लोकतन्त्र पूंजीवाद पर आधारित है और उसमें सामान्य व्यक्ति के हितों की चिंता नहीं होती। लोकतंत्र में बहुमत का शासन होता है और बहुमत के द्वारा चुने जाने पर उनके प्रतिनिधि भी लोक कल्याणकारी राज्य का अर्थ बहुसंख्यक लोगों के हितों का साधना मानते हैं। गांधी इससे सहमत नहीं हैं क्योंकि वे अल्प मत के विचारों को भी महत्व देते है। उनके अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करना सबसे महत्त्वपूर्ण है। वे उपयोगितावादियों के विरुद्ध शासन व्यवस्था को केवल बहुमत के कल्याण के लिए उपयोग में नहीं लाना चाहते। वे अल्पमत और बहुमत के मध्य का भेद मिटा कर सामान्यजन के कल्याण की बात करते हैं। यह कुछ हद तक ब्रिटिश आदर्शवादी विचारक टी. एच. ग्रीन के सामान शुभ की अवधारणा के अनुकूल है। गांधी मानते थे कि आधुनिक पश्चिमी लोकतंत्र समता, सादगी और शांति के सिद्धान्तों पर आधारित नहीं है और केन्द्रीकरण के कारण इसका लाभ सामान्यजन तक नहीं पहुंच पाता।

गांधी 'अहिंसक लोकतंत्र पर बल देते हैं और मानते हैं कि अहिंसा लोकतंत्र का सबसे महत्त्वपूर्ण आधार स्तम्भ है। उनके अनुसार, राज्य की संरचना में इस प्रकार का परिवर्तन करना चाहिए जिससे उसमें हिंसा की संभावनाएं न्यूनतम रह जाएं। इसके लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण करना आवश्यक है जिससे लोकतंत्र गांव के स्तर पर स्थापित होगा और गांव अगर स्वावलंबी होंगे तो हिंसा की संभावनाएं न्यूनतम हो जाएंगी। अहिंसक लोकतंत्र धर्म आधारित भी होगा लेकिन यहां धर्म का अर्थ संप्रदाय नहीं है। वे इसे नैतिकता के सामान्य सिद्धान्तों के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस अर्थ में ऐसा लोकतंत्र पंथ निरपेक्ष लोकतंत्र होगा। गांधी अपने अहिंसक लोकतंत्र में पुलिस और सेना के स्वरूप को भी परिवर्तित करना चाहते हैं। उनके अनुसार, पुलिस और सेना अहिंसा में आस्था रखेगी और उन्हें इसका प्रशिक्षण दिया जाएगा।

रोनाल्ड टर्चेक मानते हैं कि गांधी का प्रजातांत्रिक सिद्धान्त में मुख्य योगदान यह नहीं है कि वह बहुलवाद या प्रतिनिध्यात्मक प्रजातंत्र के विकल्प में कछ विशिष्ट संस्थाओं की उल्लेख करते हैं, लेकिन उनका महत्त्व इस बात में है कि उन्होंने राजनीति के बारे में सामान्य स्तर पर और प्रजातंत्र के बारे में विशेष स्तर पर नए प्रकार से सोचने के लिए राजनीतिक सिद्धान्तकर्ताओं को मजबूर किया। वे एक ऐसी सरकार की व्यवस्था का निर्माण करना चाहते थे जो न केवल व्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करे, व्यक्ति की सत्यनिष्ठा की भी रक्षा करे अपितु अहिंसा को भी बढ़ावा दे। इस प्रकार प्रजातांत्रिक सिद्धान्त से अहिंसा को जोड़ना गांधी का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान है। रोनाल्ड टर्चेक (1986: 321-324) के अनुसार, गांधी ने प्रजातंत्र को केवल एक राजनीतिक तंत्र के रूप में ही नहीं देखा था। वे मानते थे कि प्रजातंत्र एक भावना है और समाज के अन्य सिद्धान्तों के संदर्भ में इसे परिभाषित किया जाना चाहिए उन्होंने उन सरकारों की आलोचना की जो केवल राजनीतिक और कानुनी रूप से प्रजातांत्रिक थी लेकिन प्रजातंत्र को जीवन दर्शन के रूप में स्वीकार नहीं करती थीं।

गांधी के अनुसार, प्रजातंत्र और हिंसा एक साथ नहीं चल सकते। उनके अनुसार केवल शुद्ध अहिंसा ही सफल प्रजातंत्र का आधार बन सकती है। अहिंसा और प्रजातंत्र दोनों साधन हैं जिससे कि एक ऐसे समाज का निर्माण किया जा सकता है जिसमें सभी व्यक्ति सुखी और प्रगतिशील एवं शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें। चूंकि सामान्यतया अच्छे लोग सार्वजनिक रूप से अपने हितों के लिए संघर्ष करना उचित नहीं समझते और इसे अपनी मानवीय गरिमा के विपरीत मानते हैं बुरे लोग राज्य पर नियंत्रण कर लेते हैं और इसलिए आधुनिक प्रजातंत्र में सामान्यतया एक ऐसी सरकार होती है जिसमें कुछ लोग शक्ति को नियंत्रित करते समय यह आश्वासन देते हैं कि वे सभी व्यक्तियों के लिए कार्य करेंगे और बाद में उसका दुरुपयोग करते हैं। गांधी ने कहा है कि मैं राज्य में बढ़ती हुइ शक्ति को अत्यंत भय की दृष्टि से देखता हूं क्योंकि राज्य ऐसा आभास देता कि वह जनसाधारण का न्यूनतम शोषण कर जनहित के कई अच्छे कार्य कर रहा है लेकिन वास्तव में यह मानवता को सर्वाधिक क्षति पहुंचा रहा है। और यह क्षति है व्यक्ति की विशिष्टता समाप्त करना जो कि सभी प्रकार के विकास का आधार है।

गांधी ने हिंद स्वराज में ब्रिटिश संसदीय प्रणाली की प्रक्रियाओं तथा व्यवहार की आलोचना की है। 2 अप्रैल, 1910 को मगनलाल गांधी को लिखे अपने पत्र में गांधी ने लिखा कि ऐसा लगता है कि प्राचीन बर्बर समाज की राजनीतिक व्यवस्था की तुलना में संसदीय प्रणाली बहुत मानवीय प्रणाली है लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि संसद की निरंकुशता चंगेज खां और तैमूर लंग की निरंकुशता से अधिक गंभीर है। आधुनिक निरंकुशता लालच का सहारा भी लेती है और इसलिए अधिक पीड़ादायक है। इसी निरंकुशता का विरोध किया जा सकता है, जब वह शुद्ध रूप से आपका अहित कर रही हो लेकिन अगर निरंकुशता व्यक्तियों के कल्याण के नाम पर व्यक्तियों पर लादी जाए तो उसका विरोध करना भी कठिन हो जाता है। 1938 में उन्होंने लिखा कि पश्चिम का प्रजातंत्र मेरे मत में केवल आभासीय प्रजातंत्र है। इसमें यह संभावना है कि यह सही रूप में प्रजातंत्र बन सके लेकिन वह तब तक संभव नहीं है जब तक पश्चिमी प्रजातंत्र अहिंसा पर आधारित नहीं हो जाता। अगर भारत को सही प्रकार के प्रजातंत्र का निर्माण करना है तो उसे हिंसा और असत्य का किसी प्रकार का समझौता नहीं करना चाहिए। 1938 के हरिजन में उन्होंने लिखा कि प्रजातंत्र और हिंसा साथ-साथ नहीं रह सकते। अप्रैल 1940 में सेवाग्राम में एक अमेरिकन पत्रकार से लंबी वार्ता में उन्होंने प्रजातंत्र के बारे में अपने विचारों को स्पष्ट किया।

गांधी की पश्चिमी प्रजातंत्र की आलोचना के मुख्य रूप से तीन कारण माने जा सकते हैं। पहला- कुछ पूंजीपति मालिकों द्वारा अधिक संख्या में रहने वाले कमजोर लोगों का शोषण। दूसरा- पूंजीवाद का प्रसार जो कि कमजोर वर्ग के शोषण में परिणित होता जाता है। तीसरा - श्वेत रंगभेद। गांधी के अनुसार, किसी भी प्रकार के शोषण को हिंसा से अलग नहीं किया जा सकता। प्रजातंत्र के स्वरूप को बनाए रखने के लिए समय-समय पर चुनाव करवाने की व्यवस्था आवश्यक है। गांधी चुनावों के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी यह मानते थे कि बहुमत के द्वारा लिया गया प्रत्येक निर्णय सही हो यह आवश्यक नहीं। 1920 में उन्होंने लिखा कि अंत:करण के मामले में बहुमत के कानून का कोई स्थान नहीं है। अगले वर्ष उन्होंने यह टिप्पणी की कि जनमत के सिद्धान्त

को इतनी अति पर नहीं ले जाना चाहिए जिससे कि वह बहुमत के प्रस्तावों का दास बन जाए। ऐसा होने पर बहुमत की निरंकुशता का शासन आरंभ होगा जिसमें अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करना असंभव हो जाएगा। यह आवश्यक है कि बहुमत या बहुसंख्यक अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करे। ऐसा स्वराज सही स्वराज नहीं होगा जो केवल बहुसंख्यक की इच्छा के अनुसार चलता हो। प्रजातंत्र का मूल आधार व्यक्तिगत स्वतंत्रता है। उन्होंने (यंग इंडिया. 2 मार्च 1922) लिखा कि प्रजातंत्र कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है, जहां पर व्यक्ति भेड़चाल चलते हों। प्रजातंत्र के अंतर्गत व्यक्तिगत स्वतंत्रता. उनके विचार और उनके कृत्यों की रक्षा की जानी चाहिए। इसलिए मैं यह मानता हूँ कि अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों से अलग व्यवहार करने का पूर्ण अधिकार है। गांधी किसी ऐसी सरकार को स्वीकार नहीं करते हैं जो बहुसंखयकों या बहुमत के मत को बाध्यतापूर्वक मत पर लादने की कोशिश करती हो।

गांधी वयस्क मताधिकार को स्वीकार करते हुए भी यह मानते हैं कि अहिंसा के आधार के बिना वयस्क मताधिकार का कोई अर्थ नहीं। वे वयस्क मताधिकार में जाति, धर्म, संपत्ति सेक्स किसी भी प्रकार के भेद को मानने को स्वीकार नहीं करते। वे मानते थे कि स्वराज या प्रजातंत्र साधारण व्यक्ति की नैतिक सत्ता के समर्थन पर आधारित है। प्रजातंत्र तब तक एक असंभव स्थिति है.जब तक कि इसमें निहित शक्ति सभी के द्वारा समान रूप से साझा नहीं की जाती है। गांधी के अनुसार, जनता का स्वराज अहिंसा पर आधारित समाज में ही संभव है। प्रजातंत्र का प्रमुख मूल्य यह है कि इसमें विचारों की स्वतंत्रता हो और इसलिए गांधी मानते थे कि विचारों की स्वतंत्रता बनाए रखना प्रजातांत्रिक राज्य का कर्तव्य है। वे मानते थे कि इस स्वतंत्रता का उपयोग व्यक्ति समाज में अहिंसात्मक परिवर्तन लाने में करेगा। वे मानते थे कि जिस प्रकार पशु की प्रकृति का हिस्सा हिंसा है, उसी प्रकार आत्म पीड़ा भोग मनुष्य की प्रकृति का हिस्सा है। सभ्यता का विकास मनुष्य की इसी अहिंसा की विभिन्न स्थितियों को प्राप्त करने का इतिहास है।

गांधी मानते थे कि मनुष्य के पूर्णरूपेण मानसिक और नैतिक विकास के लिए आवश्यक है कि प्रजातंत्र में विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था को लागू किया जाए। केंद्रीकरण समाज की अहिंसात्मक संरचना से बिलकुल असंगत है। उनका मानना था कि केन्द्रीकरण बिना शक्ति बल की सहायता के सफल नहीं हो सकता। इसलिए केन्द्रीकरण अंततः कुछ व्यक्तियों के हाथों में शक्ति को संकुचित कर देता है और व्यक्तियों के स्वतंत्र सोचने और बोलने के अधिकार को समाप्त करता है, इस प्रकार एक अति केंद्रीकृत राज्य में व्यक्ति अपनी गरिमा से भी वंचित हो जाता है और वह एक मशीन का हिस्सा बन जाता है तथा मानवता विहीन हो जाता है। इसलिए गांधी ने अहिंसक क्रांति करने के लिए रचनात्मक कार्यक्रम की वकालत की। उनके अनुसार, प्रजातंत्र सभी व्यक्तियों के शारीरिक, आर्थिक और आध्यात्मिक स्रोतों को एकत्रित कर समाज के हित में कार्य करने के विज्ञान और कला का नाम है।

गांधी के इसी विकेन्द्रीकृत स्वराज की कल्पना भारत में पंचायतीराज व्यवस्था के रूप में की गई है। गांधी ने ग्रामीण प्रजातंत्र का विवरण देते हुए कहा है कि मेरे राज्य में ग्राम स्वराज अपनी सभी महत्त्वपूर्ण इच्छाओं और आवश्यकताओं के संदर्भ में अपने पड़ोसियों से पूर्णतया स्वतंत्र है और पर्याप्त साधन रखने वाला है। यह पंचायत के द्वारा शासित होना चाहिए जिसमें पांच वयस्क व्यक्ति प्रतिवर्ष वयस्क गांव वालों के द्वारा चुने जाएं और इनके पास यह अधिकार और न्याय की शक्ति होनी चाहिए जिससे वे अपने गांव के विकास के लिए दिशा निर्देश दे सकें और उसका पालन करवा सकें। इस प्रकार गांधी मानते हैं कि प्रजातंत्र की सफलता के लिए विकेन्द्रीकृत प्रजातंत्र का होना आवश्यक है। गांधी मानते हैं कि प्रजातंत्र संख्या का तंत्र है लेकिन वे बहुसंख्यकों की तानाशाही से भी परिचित थे और इसलिए वे यह निश्चित करना चाहते थे कि प्रजातंत्र इस प्रकार का हो कि अल्पसंख्यक या एक व्यक्ति की आवाज को भी दबाया न जा सके और उसके विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता की रक्षा की जा सके। गांधी इस प्रकार प्रजातांत्रिक संरचनाओं में। ऐसे नियम बनाने के पक्षधर थे जो व्यक्ति के मत व्यक्त करने की स्वतन्त्रता का रक्षा कर सकें। इसलिए गांधी उदारवादी चिंतकों के भी नजदीक माने जाते हैं।

गांधी चूंकि शक्ति के केंद्रीकरण के पक्ष में नहीं थे और न बड़े राज्यों के, इसलिए स्वभावतः वे नौकरशाही के विरुद्ध थे क्योंकि मैक्स बेवर ने जिस आदर्श नौकरशाही का चित्र प्रस्तुत किया है। वह एक बड़े विशाल राज्य की नीतियों को सही प्रकार से क्रियान्वित करने के लिए एक आवश्यक माध्यम है। गांधी मानते हैं कि लोक कल्याणकारी योजनाएं केन्द्रीकृत राज्यों से नहीं बन सकती क्योंकि उन्हें गांव में रहने वाले लोगों की समस्याओं की अधिक समझ नहीं है इसलिए यह बेहतर होगा कि गांव के विकास की योजनाएं गांव स्तर पर ही निर्मित हो और उसे कार्यान्वित करने के लिए फिर किसी बड़े नौकरशाही की आवश्यकता नहीं होती। नागरिक स्वयं ही स्वेच्छा से उसे कार्यान्वित कर सकेंगे। इसलिए गांधी व्यवहार में अपने आदर्श प्रजातंत्र को पंचायती राज के रूप में देखते हैं जिसमें पंचायत या गांव के स्तर तक शासन की व्यवस्था होगी और गांव आत्मनिर्भर बन पाएंगे।

संदर्भ सूची

1. अग्रवाल, जे.सी. एवं चौधरी, एन.के.: इलेक्शन इन इण्डिया, 1952-1996 क्षिप्रा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1996.
2. अग्निहोत्री, रामावतार: ट्वेल्थ पार्लियामेंटरी इलेक्शन, जनरल इलेक्शन 1998 कामनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1998.
3. चौधरी, डी. एस.एण्ड कार, जी.के.: इलेक्शन इलेक्टोरल बिहेवियर इन इण्डिया, कानि पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1992.
4. जौहरी, जे.सी. एण्ड जौहरी, सीमा: आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धांत, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2004.
5. गांगुली, वी.एवं गांगुली, एम.: वोटिंग बिहेवियर इन चेनि्जंग सोसायटी, स्टर्लिंग पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली,1975.
6. गोयल, ओ.पी.: कास्ट एण्ड वोटिंग बिहेवियर, रितु पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1978
7. नारायण, इकबाल: इलेक्शन स्टडीज इन इण्डिया, एलाईड पब्लिशर्स, बम्बई, 1978.
8. नारंग, एस.ए.: भारतीय शासन और राजनीति, गीतांजलि पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
9. बसु, दुर्गादास: भारत का संविधान, वाथवा एण्ड कम्पनी, विथि प्रकाशन नागपुर, 2001.
10. राठौड़, मीना: भारत में राजनीतिक दल, आर.आ.बी.एस.ए. पब्लिशर्स जयपुर, 2003
11. महात्मा गांधी: हिन्द स्वराज, 1909.
12. महात्मा गांधी: सत्य के साथ मेरे प्रयोग, 1927
13. महात्मा गांधी: इंडियन ओपीनियन, पत्रिका

विचार धारा से जुड़ा था मुक्तिबोध का संघर्ष

डॉ० प्रतिमा सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष-हिन्दी एवं शोध निर्देशिका, के० एन० आई० पी० एस० एस०, सुलतानपुर

सारांश-मुक्तिबोध गहरे अन्तर्द्वन्द्व और तीव्र अनुभूतियों के कवि हैं। यह हमारे समाज का दुर्भाग्य ही है कि जीते जी मुक्तिबोध को सम्मान, इज्जत, पहचान वह कुछ भी नहीं मिला जिसके वे हकदार थे। उन्हे पहचानने वाले लोग थे किन्तु वे सत्तासीन नहीं थे, इमानदार थे। फलतः व्यक्ति की या साहित्यकार की पहचान के रास्ते, जो पूँजीवादी समाज में सत्ता के गलियारों, पैसों और मीडिया की चकाचौंध से होकर जाते हैं, मुक्तिबोघ को न तो स्वीकार्य थे, न प्राप्त। जिस व्यवस्था के खिलाफ वे सीना तानकर खड़े थे, उसके चाकर वे बन भी कैसे सकते थे। मुक्तिबोध ने अपना मोर्चा पूँजीवादी, साम्राज्यवादी शक्तियों ओर व्यवस्था के किले के खिलाफ बनाया था। इस किले में घुसकर इस व्यवस्था के भीतरी संसार को उजागर करना और उसके प्रति जनता को जागरूक करने का बीड़ा उठाया और कविता को भी हिन्दी साहित्य में वो उचाई दी जो उनसे पहले सिर्फ निराला में मिलती है। उन्होने पूँजीवादी व्यवस्था के शोषण, बर्बरता और मनुष्य की मानसिकता को कुन्द करते जाने के तरीकों का अपनी पचना में पर्दाफाश किया है। मुक्तिबोध के अभिव्यक्ति का आत्म संघर्ष उनकी कविताओं में हर जगह मौजूद हैं। वे समाज में गली -सड़ी पूँजीवादी व्यवस्था के परिवर्तन के पक्षधर हैं।

बीज शब्द- मुक्तिबोध की युगीन पृष्ठभूमि,काव्य की अन्तर्वस्तुऔर कथ्य, अन्तर्द्वन्द्व और तीव्र सामाजिक अनुभूति, फंतासी

गजानन माधव मुक्तिबोध छायावादोत्तर साहित्यिक परिदृष्य के एक ऐसे महत्वपूर्ण लेखक के रूप में जाने गए जिन्होंने विचारधारा और कला का जटिल गहन और द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध अपनी कृतियों के माध्यम से प्रमाणित किया ओर अपने कठिन जीवन आदर्श का मूल्य अपने आकस्मिक त्रासद अंत से चुकाया। मुक्तिबोध का विचारधारात्मक संघर्ष उनके जीवन संधर्ष से जुडा रहा है और इसीलिए यदि वह उनकी कृतियों में अभिव्यक्त हुआ तो जटिल अनुभव बिम्बों में ढ़लकर-

''आत्म चेतस किन्तु इस/
व्यक्तित्व में थी प्राणमय अनबन/
विश्वचेतस वे बनाम।''

मुक्तिबोध की नियत थी कि वे भीतरी व बाहरी दो कठिन पाटों के बीच पिस गए। 'अंधेरे में' कविता का कल्पनात्मक मुक्तिबोध का प्रतिपाद्य हो न हो, उसकी बहुत सारी समस्याएं मुक्तिबोध के व्यक्तित्व को उद्घाटित करने वाली हैं, साथ ही उनसे मुक्तिबोध की जटिल रचना प्रक्रिया का अनुमान भी किया जा सकता है। यह मुक्तिबोध की रचना प्रक्रिया का ही संकेत है कि पूर्णतम परम अभिव्यक्ति के लिए लेखक का संघर्ष निरन्तर चलता रहता है-

'' हृदय में रिस रहे ज्ञान का तनाव वह/
आत्मा की प्रतिमा।''

मुक्तिबोध इसी आत्मा की प्रतिमा को अपने समूचे संघर्ष से अनवेषित और मूर्त करते हैं। कोई छिपी वेदना कोई गुप्त चिन्ता भीतर छटपटाती रहती है--

''चल रहा वसूला/
छीले जा रहा मेरा यह निजत्व ही कोई/
भयानक जिद कोई जाग उठी मेरे अन्दर/
कोई बड़ा भारी हठ उठ खड़ा हुआ है।''

मुक्तिबोध छायावादोत्तर साहित्य के उन प्रमुख रचनाकारों में हैं जिन्हें आधुनिक यथार्थ की जटिलताओं का चित्रण करने के लिए अनेक विधाओं का उपयोग आवष्यक जान पड़ा। कहानियों में भी उनका कवि रूप प्रकट है ओर कविता में भी उनका आलोचन कर्म जगह जगह सक्रिय दिखाई देता है। ' काव्य की रचना प्रक्रिया ''शीर्षक्र निबन्ध के अन्तर्गत मुक्तिबोध कहते हैं--'' जीवन जगत के संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना में समाई हुई मार्मिक आलोचन दृष्टि के बिना कवि कर्म अधूरा है।''

मुक्तिबोध की कविताएं उनकी विचारधारा का निश्चित प्रमाण देती हैं। यद्यपि उनकी कविता की प्रकृति के अनुसार विचारधारा के सूत्रअनुभवों में बहुत गहराई से गुथे हुए जान पड़ते हैं। मुक्तिबोध एकओर यथार्थ की जटिलता को पहचानते हैं दूसरी ओर उनके पास अतीत वर्तमान भविष्य काल के सभी आयामों में फैली हुई संघर्ष की स्मृतियां हैं फिर भी अपने समय के प्रत्यक्ष यथार्थ का दबाव उनपर सबसे अधिक है। भले ही वे फैन्टेसी या दूसरे कलात्मक उपकरणें द्वारा अभिव्यक्ति करते हुए दिखाई देते हैं। मुक्बिोध किसी संकल्पधर्मा चेतना के पक्ष में हैं और जानते हैं कि एक दिन वही चेतना उन्हें हार का बदला चुकाने में सक्रिय भूमिका निभाएगी। यहां मुक्तिबोध का स्वर संघर्ष और प्रतिरोध साथ गहरी भविष्योन्मुखी आस्था का है-

हमारी हार का बदला चुकाने आएगा/
संकल्पधर्मा चंतना का रक्तप्लावित स्वर/
हमारे ही हृदय का गुप्त स्वर्णाक्षर/
प्रकट होकर विकट हौ जाएगा।

सृजन का उनका संकल्प दुनिया को बदलने को है इसलिए कि जो है उससे बेहतर चाहिए। वे बहुत उत्तेजक शब्दावली में अपने अनुभव व्यक्त करते हैं जिसकी परिणति विचारधारा में व्यक्त होती है। उनके लिए वह पीड़ा महत्वपूर्ण है जो जनता के हित में कर्मनिष्ठा का पर्याय बनती है-

''जन-जन के आंसू के द्रव का/
तूल ओसजन मूल उद्‌गम/
जहां ज्वलंत रष्मिपुंजों में/
प्रक्षोभित जाज्वल्यमान है।'

मुक्तिबोध अपने समय के अन्तर्विरोधों कोपहचानते हैं। संक्रमण काल में भी मुक्तिबोध ईमान बचाने के लिए सम्बद्ध हैं। दुनियादारी व समझौतापरस्ती का जीवन जीने वालों से उनकी निभ नहीं सकती।ये बात वे बार बार कविताओं में करते हैं-

''अपने समाज में अकेला हूं बिलकुल/
मुझमें जो भयानक छटपटाहट है/
नहीं वह किसी में/
इसलिए अपना ही श्रेणीगत/साम्य हैजिनसे/
उनसे ही गहरा है विद्वेष।''

मुक्तिबोध की कविता में विचारधारा कहीं से भी आरोपित नहीं लगती बल्कि नह काव्य संवेअना में ही अभिन्नरूप सै घुली मिली है।मुक्तिबोध ने कविता में व्यक्तित्व रूपान्तरण पर बहुत बल दिया है इसी प्रक्रिया में उनकी कविता जन चरित्री बनती हैं इतिहास ओर वर्तमान के कठिन तनाओं के भीतर मुकितबोधे की कविताएं लम्बी होती जाती हैं। तीखे विचारधारात्मक संघर्ष के कारण ही उनकी कविताएं भयानक हिडिम्बा का रूप ले लेती हैं मुक्तिबोध की विचारघारा में आनंद की जगह वेदना का महत्व है। सत् चित् मिलकर अब आनंद की सृष्टि नहीं करते, वेदना को जन्म देते हैं-

''चमकता है अंधेरे में/
प्रदीपित द्वन्द्व चेतस एक/
सत् चित् वेदना का फूल/
क्याकहूं/मस्तक कुंड में जलती/
सत् चित् वेदना सच्चाइ व गलती/
मस्तक सिराओं में तनाव दिनरात।''

मुक्तिबोध की कविता में इतिहास के प्रति कठोर जिज्ञासा दिखाइ देती है। वे इतिहास को बार-बार टटोलते हैं तब उन्हें पृथ्वी के खोदे हुए गड्ढों में रहस्यमय पुरूषों के पंजर और जंग खाई नोकों के अस्त्र दिखाई इेते हैं। यह संकेत है कि संघर्ष एक चिरन्तन प्रक्रिया है। हर दौर में ाान ही अपराध बना है क्योंकि वही रहस्य को रहस्य नहीं रहने देता। संघर्ष ही यहां मुक्तिबोध की मुख्य विचारधारा है-

'' कोशिश करो/--'' कोशिश करो/
जीने की जमीन में गड़कर भी।''

मुक्तिबोध की आत्मचेतना विश्वचेतना से बराबर जुड़ती है। संघर्ष के कठिनतम अनुभवों में मुक्तिबोध अपने अवरोध की भी समीक्षा करते हें। यह समीक्षा भी विचारधरात्मक सजगता से ही पैदा हुई है-

''मैं एक थमा हुआ मात्र आवेग/
रूका हुआ एक जबरदस्त कार्यक्रम/
में एक स्थगित हुआ अगला अध्याय/
अनिवार्य/ आगे ढ़केली गयी प्रतीक्षित/महत्वपूर्ण तिथि/
में एकशून्य में छटपटाता हुआ/उद्देष्य ।''

प्रतिबद्धता मुक्तिबोध की विचारघारा है। अभिव्यक्ति के खतरे उठाने की कल्पना उसी से सम्बद्ध है। यथार्थ को जानना ही नहीं, यर्थाथ को बदलना भी मुक्मिबोध की कविता का आवश्यक विचार सूत्र है-

''कविता में कहने की आदत नहीं पर/
कह दूं/वर्तमान समाज चल नहीं सकता/

पूंजी से जुड़ा हुआ हृदय बदल नहीं सकता/
स्वातन्त्रय व्यक्ति का वादी/
छल नहीं सकता मुक्ति के मन को/जन को ।''

अपने समय के कठोर यथार्थ को व्यक्त करने के लिए अगर उन्हें अयथार्थवादी शिल्प का फैन्टेसी का सहारा लेना पड़ता है तो इसके पीछे भी कुछ कारण रहे होंगे। यथार्थ इतना सरल नहीं है कि कविता में ज्यों का त्यों चित्रित हो सके। मुक्तिबोध का सम्पूर्ण साहित्य आधुनिक त्रस्त मानवता का 'आत्म साक्षात्कार' है।शोषण से पीड़ित समाज में उन्होंने नए मूल्यों की दृष्टि ही नहीं प्रदान की वरन् उसका उदात्तीकरण भी किया है, जहां उनका रचनात्मक और शिल्पगत सौन्दर्य नवीन प्रतीकों एवं बिम्बों के माध्यम से जीवन्त और प्रांजल हो उठा है। उनकी चेतना वर्तमान सृजन प्रक्रिया के सभी पक्षें से आश्चर्य जनक रूप से जुड़ी है। विकासवादी विचारधारा से एक कदम आगे जाकर वे अपनी चेतना के अथाह ज्ञान सागर से मोती चुनकर लाते हैं

मुक्तिबोध का कृतित्व उनके व्यापक जीवन अनुभवों, गंभीर सौन्दर्यानुभूति एवं रचनात्मक क्षमता को स्पष्ट कर देता है। आज की प्रगतिवादी काव्यधारा, प्रयोगवादी लेखन, नयी कविता की फन्तासी को उनकी रचनाओं से दिशा प्राप्त है। उनके जीवन के कठोर संघर्षो ने उनकी प्रतिभा को, सामाजिक परिवेश की विसंगतियों के बीच से उभारकर, चांद का मुंह टेंढ़ा है के रूप में प्रस्फुटित किया है। उनके साहित्य की ''अर्न्तवस्तु एवं कथ्य'' सामाजिक दर्शन के व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक पक्ष से जुड़े हैं और जिस आम आदमी की बात आज कथाजगत में उठायी जा रही है, वह उनके साहित्य में सम्पूर्ण विशिष्टता के साथ जीवन्त है। जिस प्रतिबद्धता की बात आज नारे के रूपाा में उभरकर आ रही है, वह उनकी रचनाओं में जिन्दगी की तलाश, संवेदना एवं भावबोध में, आश्चर्य्रजनक रूप से मिट्टी की गन्ध से जुड़ी है। मुक्तिबोध मानव मूल्यों के लिए निराला के समान ही जिए और मरे। जहां निराला का जगत् कल्पना लोक और संघर्ष का है, अज्ञेय भाषा की प्रांजलता एवं विशिष्टता जेकर चलते हैं तथा प्रसाद आदर्श एवं भारतीयता की भित्ति पर खड़े हैं वहीं मुक्तिबोध इन सबसे अलग कल्पना को स्वानुभव द्वारा सौन्दर्य के नए आयामों में उतारकर आन्तरिक वेदना एवं सामाजिक चेतना का समन्वय करते हैं। उनके इसी साहित्यिक इमानदारी के कारण अज्ञेय ने तारसप्तक में उन्हें सर्वोच्च स्थान दिया है। अपनी छटपटाहट को लेकर ही वे अकेले युग की अन्धी गुफाओं के ''अंधेरे में'' सधन जंगलों की दुरूहता में और अचेतन के तहखानों से गुजरते हुए भी मानव प्रेम और आस्था की दीप शिखा जलाए रहे। वे ''महागुरू'' एवं ''ब्रम्ह राक्षस 'बन ऐतिहासिक जनसंघर्ष के विराट फलक पर अपनी आवाज उठाते रहे।

उनकी कविताओं का प्रबल आकर्षण एवं गहरे झकझोर देने की क्षमता, भाषा एवं शिल्प से भी कहीं अधिक उनके ''भोगे हुए यथार्थ'' की पीड़ा से उपजा तार-तार अनुभव है--

''आत्मा के चक्के पर चढ़ाया जा रहा/
संकल्पशक्ति के लोहे का मजबूत''।

ब्रम्हाक्षस की ज्ञान देने की पीडा एवं षिष्य की ज्ञानप्राप्ति की छटपटाहट, दोनों मुक्तिबोध की अपनी पीड़ा है। वे बौद्धिकता के जिस एकाकी कक्षमें जीवन भर तड़पे हैं वही इनषब्दों में उतराया है--''गुरू ने दुखपूर्ण कोमलता से कहा -

शिष्य में ब्रम्हाक्षस हूं/
किनतु फिर भी तुम्हारा गुरू हूं/
मुझे तुम्हारा स्नेह चाहिए।''

अभिशप्त जीवन की संगति व स्नेह की चाह ने उनको जीवन भर भूख के, दयनीयता के, अपमान के, अभाव के, रोग के, कुत्तों से लड़वाया है। ऐसे जीवनमूल्य की खोज उन्होने की जो सामान्यत: वर्तमान मानव सम्बन्ध चेतना के भीतर प्रवेश कर उसके एक अुग बन जाते हैं। रूपाकार के बिम्बों के निर्माण में उनकी भूमिका प्रमुख होती है। ''मानसपटल पर बिम्बित कल्पना रूपों में डूबकर मन साघारण जीवन की अपनी निजबद्धता का परित्याग करता है, और निजबद्धता से उपर उठकर, उनसे परे जाकर, उससे सम्पूर्ण मुक्त होकर, मानसपटल पर उद्दीप्त उन बिम्बों में खो जाता है, तन्मय हो जाता हे- इसी को वे रचना घर्मिता की केन्द्रीय उर्जा मानते हैं । वे रचना प्रक्रिया के बारे में भी स्पष्ट हैं-पहला है जीवन का उत्कट अनुभव-क्षण। दूसरा है उस अनुभव का अपने कसकते दुखते हुए मूलों से पृथक हो जाना और एक ऐसी फैन्टेसी का रूप ले लेना, मानों वह फैन्टेसी आंखों के सामने खड़ी हो।''

उनकी कविता में नए मानव की ,युग की समस्याओं से जूझते आदमी की दहशत का भय है,त्रास है, धृणा है, स्नेह हैं सामाजिक क्रान्ति के सन्दर्भ में अकेलेपन की अनुभूति को जितना टूटकर इन्होंने गहरे जिया है, उतनी गहराई में अन्य किसी कवि ने नहीं। इसी विशिष्टता के कारण उनकी कविता सतह पर सहज एवं संत है पर गूढ़ हो जाती है। उन्होंने प्रत्येक उर की पीडा को स्वर दिया है-

''मुझे भ्रम होता हैकि प्रत्येक वाणी में/
महाकाव्य की पीडा है/
पल भर मैं सबसे गुजरना चाहता हूं/
प्रत्येक उर से तिर आना चाहता हूं।''

और यही मानवीय चेतना उन्हें षक्तिपुंज बनाती है। ष्षोषण के बिम्बों में उनकी आत्मपीड़ा, विष्ववेदना मे ढ़लकर 'सर्वहारा की आवाज उठाती है-

''मैं कनफटा हूं/हेठा हूं/
श्वलेंट डाज के नीचे लेटा हूं/

तुम्हारी आज्ञाएं ढ़ोता हूं। ''वस्तुत:'' यह आज्ञा ढ़ोने की मजबूरी'' उनके हाथें में पड़कर विद्रोह की ज्वाला बन जाती है।

युग के प्रति उनकी जागरूकता आश्चर्य जनक है और कह सकते हैं कि उनकी कविता में आदमी का अस्तित्व समाज से गहरे जुड़ा है। वह आदमी कल्पना लोक का न होकर ठोस यथार्थ की विसंगति में जीता है। उन्हीं के शब्दों में-हृदय में संचित प्रतिक्रियाएं, अनुभव आवेशमय अनुरोध, अतृप्त स्वप्न, जो हृदय में संचित है, उत्थित तरंगित प्रवाहित होकर, संवेदनात्मक उद्देष्यों की दिशा में जब उमड़ने लगती है और साथ ही जीवन दृष्टि द्वारा ज्योतित होकर अन्तर्नेत्रों के सम्मुख दृश्यमान होने लगती है, तब वस्तुत: 'एस्थेटिक इमोशन प्राप्त होता है''-(नयी कविता का आत्मसंघर्ष, पृ0 16)

जनमानस के कवि के रूप में उनके बिम्ब कविता जगत के अपवाद बन जाते हैं वह जिन्दगी भूरी नहीं खाकी है मानकर फूट पड़ते हैं, बदरंग जिन्दगी के नाम-

''गेरूआ मौसम में उडते हैं अंगारे/
जंगल जल रहे हैं जिन्दगी के अब/
जिनके कि ज्वलन्त प्रकाशित भीषण/
फूलों से बहती वेदना नदियां।''

मुक्तिबोध स्वयं ही एक नहीं दो दो जिन्दगी के जंगल जला डालते हैं और देहों की उसी धूलि से गुलाबी फूल खिलाना चाहते हैं। त्रास के गहन अंणकार के बीच भी उनकी आस्था की लौ निष्कंप जलती है। वे मिट्टी की गंध से जुड़े हैं और सम्पूर्ण परिवेष से परिचय करने लगते हैं-

''ओसुओं से नमकीन/
वह मिट्टअी की सुगन्ध/
मेरे हिए में समाती है।''

ओर उनकी पहचान स्पष्ट हो उठती है-

'गन्ध के सुकोमल मेंघों में डूबकर/
प्रत्येक वृक्ष से करता हूं पहचान/
प्रत्येक पुष्प् से पूछता हूं हालचाल/
प्रत्येक लता से करता हूं सम्पर्क।''--(चांद का मुंह टेढ़ा है पृ0 66, 86)

उनकी रचनाओं में शोषण से पीड़ित समाज के प्रति करूण पिघल उठती है, वे कराह उठते हैं और विरोध भावना से भरकर, विद्रोही अंगारों से कविता में शोषण के चीखते बिम्ब भर देते हैं-

आंखें में तैरता है चित्र एक/
उर में संभाले दर्द गर्भवती नारी का/
अपनी सारी थकान के बावजूद मजदूरी करती है/
पुत्रों के भविष्य के लिए सब उसके अवसाद भरे मुख पर/
जाने किस धोखे भरी आषा की दृढ़ता।'' ''--(चांद का मुंह टेढ़ा है पृ0 78)

श्रम करती नारी के पास उसकी ष्याम छाया ही साथ होती हैं कवि के शब्दों में --

''शोषिता व व्यभिचारिता आत्मा के पुत्र हुआ/
स्तन मुंह में डाल मरा बालक/उसकी झांइ/
अबतक लेटी है पास उसी की परछांइं।''''--(चांद का मुंह टेढ़ा है पृ0 129)

वह नगर की झूठी सभ्यता के प्रति जब विद्रूप से भर उठते हैं तब उनके कविमन को आक्रोश फूटता है। वे शोषण के विरोध में समाज को ललकारते हैं, उनका समाज मानव मूल्यों का समाज है जहां रम की गरिमा से पूर्ण समानता हो-

''अचानक सनसनी भौचक /
कि पैरों के तलों को काट खाती कौन सी यह आग/
भयानक हाय अन्धा दौर/ छातियों और चेहरों पर /
कदम रखकर चलते हैं ये पैर '' ''खूबसूरत कमरों में कई बार/
हमारी आंखों के सामने/हमारे विद्रोह के बावजूद/
बालात्कार किए गए/
मासूम चेहरे निर्दोष तन बदन/
दैत्यों की बांहों की शिकंजों में।''''''--(चांद का मुंह टेढ़ा है पृ0 142 , 62)

उनकी संवेदना शोषित वर्ग से जुड़ी है और वे उनके श्रम से निर्मित प्रकाश बल्ब को जीवन में लगाना चाहते हैं- यहां पर साधारण सा बल्ब शोषण से उपजे ज्ञान का एवं श्रम की गरिमा का प्रतीक बन जाता है। मुक्तिबोध कहते हैं कि:-

मै ही क्यों इसतरह बदल गया/

इसीलिए मेरी ये कविताएं/

भयानक हिडिम्बा हैं वास्तव की विस्फारित प्रतिभांएं/

विकृताकृत बिम्ब हैं।''''''--(चांद का मुंह टेढ़ा है पृ0 180)

उनके सृजन के लोक में अमूर्त आकृतियां आती हैं, लगातार विकास की कड़ियों सी एवं प्रश्नों से उपजे अन्तराल को आत्मनिर्वासन से भरती जाती है। वह उसी आत्म निरीक्षण में अचानक विचारों की मणियां पाता है या क्रान्ति का शिशु 'वह 'के कन्धों से लग रोता है ओर संघर्षो के बीच 'उसके' गतिमान अस्तित्व का 'सूरजमुखी के गुच्छे' में रूपान्तरित हो जाना एक प्रभामण्डल की रचना करता है जिसके आलोक में क्रान्तिकारी 'वह' की 'विचार मणियां" अंधेरे में जगमगाती हैं।

''आत्मनिर्वासित'' व्यक्ति की यह त्रासदी विश्वव्यापी है। सार्त्र, कामू और काफका के लेखन का मोड़ यही स्पष्ट करता है। विश्व युद्ध के भयंकर परिणामों को देख कविता में भी एक प्रकार की सपाट सतह उभरकर आई। यही विरोध का प्रलयंकारी स्वर गोया की ''बार सिरीज'' के निर्माण का कारण बना। इसी त्रस्त मानवता ने पिकासो से चीखते घोड़े, टूटी विद्रूपभरी आकृतियां, फूटी रोशनी के रहस्यमय बल्ब और धारदार कटाव चित्रित करवाए। ''गुएर्निका'' एवं ''द दामीजल दे रफयूजे'' के पीछे विश्वव्यापी प्रतीकों का यही आर्तनाद है, अपनी अस्तित्वहीनता की सीमा का चीत्कार है। इसी ''फलीटिंग मोमेंट'' को पकड़ने में मुक्तिबोध 'अपनी आत्मा गीलापन लिए' जो मैं कर न पाया /वह कह रहा हूं'' की अभिव्यक्ति पा जाते हैं। वे अनंत तनाव व बेचौनियों में जीवन भर भटके तो वहीं उनका ''में'' पाता है ज्योति मणियां--''अकस्मात पाता हूं/दीपित में वे बलयित रत्न नहीं हैं/ मेरे ही यहीं पड़े हुए हैं/ विचारों की रक्तिम अग्नि के मणि वे /प्राण जलप्रपात में घुलतें हें प्रतिपल।''

इसप्रकार उनके जीवन अनुभवों ने सहजरूप में रूपान्तरित होकर साहित्य जगत में उवकी रचनाओं को वैषिष्ट्य प्रदान किया है। रूपविधान, बिम्बविधान से भी परे जाकर वे सीमा तोड़ते हुए विष्वचेतना की विराट प्रक्रिया का अंग बन गए जहां चिन्तन अपदी सम्पुर्ण बौद्धिकता के प्रखर तेज से रचना करता है। ''काव्यधारा'' में ''एक मित्र के प्रति'' या ''सवेरा संकेत के रूप में कहते हैं--''मुक्तिकामी पैरों की मोच की चीख।'' यही छटपटाहट 'वीणा'' (1964)में ''कहने दो जो कहते हैं'' में तथा ''काठ का सपना'' में उभरकर सामने आई। ''कामायनी एक पुनर्विचार'' (1961) एवं सतह से उठता हुआ आदमी ''(1971) में उनकी मौलिकता, निष्ठा, एवं यातनाग्रस्त मानवता को प्रगतिवाद, प्रयोगवाद के माध्यम से--चाहे विपात्र हों या 'क्लाइड इथरली'-वे फन्तासी में भी गंभीर चिन्तन का सूत्र प्रदान करते हैं। जीवन के विद्रूप को उभारकर मौलिक समाधान प्रस्तुत करने में वे अलौकिक हैं। नवीन षिल्पप्रयोगों से लेकर भावधारा तक में वे सर्वथा मौलिक और अग्रगणी हैं। अपनी चेतना का मूल खोजने में वे नहीं चूके हैं, उनकी जिज्ञासाएं ज्ञान विज्ञान सभी को आत्मसात करती हुई, नितान्त परिवर्तित रूप में युग परिवेष से जुड़कर सामने आती है-

''तलघर अन्दर/ छिपे हुए प्रिंटिंग प्रेस को खोजो/

कहां है सरगना टुकड़ी का/ कहॉ है आत्मा?/

स्क्रीनिंग करो मि0 गुप्ता/ क्रास इग्जामिन हिम थारोली।'''--(चांद का मुंह टेढ़ा है पृ0 277)

जीवन के प्रति जिजीविषा एवं अदम्य साहस उनकी रचनाओं में सामाजिक दायित्व एवं प्रतिबद्वता के रूप में व्यक्त हुआ है। उनकी कल्पना सहज ही विश्वफलक को घेर लेती है-

''सचमुच मुझको तो जिन्दगी सरहद है/

सूर्यों के प्रांगण पार भी जाती सी दीखती/मैं परिणत हूं।''

वह न केवल आत्मबोध पाता है बल्कि उससे भी एक पग आगे जाकर मुक्ति का आह्वान करता है-

''पूंजी से जुड़ा हृदय बदल नहीं सकता, स्वातन्त्र्य व्यक्ति का वादी/

छल नहीं सकता मुक्जि के मन को/जन को। (चांद का मुंह टेढ़ा है पृ0 284)

उनके 'सूर्यों के आंगन पार 'में 'मैं' की परिणति अपनी अस्मिता की खोज है। दरअसल मुक्तिबोध का काव्य एक बैठक में पढ़ लिया जाने वाला उपन्यास का परिच्छेद नहीं है, उसे तो बार-बार संभल-संभलकर पढ़ने पर ही उसका रसास्वादन किया जा सकता है। मुक्तिबोध ने विषाद भरी अधूरी जिन्दगी को जिस धैर्य और साहस के साथ जिया, उसी धैर्य और साहस के साथ पढ़ी जाने की मांग उनकी कविताएं करती हैं। मुक्तिबोध के मुश्किलों से भरे जीवन और जीवन संघर्ष से समूचा हिन्दी साहित्य संसार वाकिफ है। आत्म संवाद कविता में मुक्तिबोध ने लिखा-

''प्राण की बुरी हालत/ और जर्जर देह/

यह है खरी हालत।''

अत: उनका बिम्बविधान, व्यंजना बौद्विकता, प्रतीक एवं फन्तासी समाज के साथ गुम्फित होकर मानवता का स्वर बन जाती है और वे कह उठते हैं- ''मैं परिभ्रमण करता जाउंगा/जीवन भर/मैं जिप्सी हूं।''(चांद का मुंह टेढ़ा है पृ0 119)

इन प्रमाणों से सुस्पष्ट हो जाता है कि उनकी रचनाधर्मिता, नवीन शिल्प प्रयोगात्मक अभिव्यक्ति एवं कथ्य दोनों के स्तर पर युवा बुद्विजीवी वर्ग की चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। श्री के0 पार्थ सारथी ने 'कन्टम्परेरी इण्डियन लिटरेचर' में लिखा है- ''हिन्दी को आधुनिक प्रवृत्ति के साथ, एक असाधारण बात यह है कि इसके शीर्ष स्थान पर मुक्तिबोध जैसी सत्यनिष्ठ, उच्च मानवीयता से सम्पन्न, सर्वतोन्मुखी प्रतिभा प्रतिष्ठित है।'' इसमें सन्देह नहीं कि आने वाले समय में भी उनसे सृजन की पर्याप्त प्रेरणा एवं दिशा निर्देश हिन्दी साहित्य को मिलता रहेगा। वे भारतीय 'सर्वहारा वर्ग' के सबसे सशक्त कवि थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) विश्वनाथ प्रसाद तिवारी- मुक्तिबोध, ज्ञानभारती प्रकाशन नई दिल्ली।
(2) डॉ0 लक्ष्मणदत्त गौतम- गजानन माधव मुक्तिबोध, विद्याार्थी प्रकाशन नई दिल्ली।
(3) डा0 वर्षा अग्रवाल- मुक्तिबोध का रचना संसार संघर्ष और सृजन के आयाम, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
(4) आलोचना पत्रिका त्रैमासिक अंक 48
(5) डॉ0 नामवर सिंह- आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली।

बाल जीवन में मनोवैज्ञानिक समस्याएँ

अफसाना ओली मोहम्मद खान

पी.एच.डी. शोधार्थी, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास

एक बच्चे के समुचित मानसिक, सांवेगिक तथा स्नायुविक विकास के लिए उसके अभिभावकों से उसे मिलने वाली प्राकृतिक विशेषताओं एवं आनुवांशिक गुणों के साथ-साथ जन्म के पश्चात् उपलब्ध होने वाले वातावरण की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। परिवार विशेष की संरचना, परिवार के सदस्यों की अभिवृत्तियाँ, माता-पिता के पालन-पोषण के ढंग, उनके मूल्य व व्यवहारों का उनके प्रेम, अपनत्व तथा वात्सल्य, इन सबका समवेत रूप से बच्चों के व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। बच्चों के प्रारम्भिक जीवन के अनुभव उनके सम्पूर्ण आगामी जीवन के स्वरूप-निर्धारण में आधारशिला का महत्त्व रखते हैं। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने कहा था - ''बाल्यावस्था के नाटकीय अनुभव वाले क्षण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं जो वयस्क व्यक्तित्व का आधार हैं तथा व्यक्तित्व की विशेषताओं का नील पत्र है।[1] यानि वयस्क व्यक्ति के व्यक्तित्व में पाए जाने वाले गुणों व अवगुणों के बीज उन सभी परिस्थितियों के गर्भ में छिपे हुए माने जा सकते हैं जो उन्हें बाल्यावस्था में प्राप्त हुई। मनोवैज्ञानिक वांग का मत भी इस तथ्य की पुष्टि करता प्रतीत होता है। उनका कथन है - ''जैसे-जैसे बालक की आयु बढ़ती है वैसे-वैसे उसका वातावरण बदलता है परन्तु प्रारम्भिक जीवन की स्मृतियाँ भुलाने पर भी नहीं भूलतीं। अतएव व्यक्तित्व पर उनकी गहरी छाप पड़ती है वह मिट नहीं सकती।[2] ऊपर से स्वस्थ, शांत तथा सामान्य प्रतीत होने वाले कई बच्चे आन्तरिक रूप से अस्त-व्यस्त मानसिकता के शिकार, टूटन, अवसाद, निराशा वह हीनता ग्रन्थि से भरे हो सकते हैं अथवा इसके विपरीत क्रोध आक्रामक प्रवृत्ति, हिंसात्मक वृत्ति या आपराधिक मनोवृत्ति वाले बन सकते हैं। इसका कारण वे मनोवैज्ञानिक समस्याएँ हैं जिन्होंने बच्चों के मन-मस्तिष्क को आक्रान्त कर रखा है। उनकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को समझे बिना हम उनकी मनोवैज्ञानिक तथा मानसिक समस्याओं की अच्छी तरह पड़ताल नहीं कर सकते। सुश्री अमिता जोशी तो अपने लेख में यहाँ तक कहती हैं कि ''हमारे समाज में अभिभावक आमतौर पर शारीरिक रूप से कमजोर और बीमार बच्चों पर ज्यादा ध्यान देते हैं। मानसिक उलझनों और व्यावहारिक असामान्यताओं के शिकार बच्चों पर एक ओर तो ध्यान नही दिया जाता, दूसरी ओर उनकी इन व्यवहारगत असामान्यताओं पर अंकुश लगाने के लिए सजा, मारपीट या धमकी जैसे सख्त उपाय अपनाए जाते हैं। ये बच्चे बीमार मन वाले बच्चे हैं, जिन पर गम्भीरता से ध्यान दिए जाने की जरूरत है।''[3] बच्चों की कतिपय मूलभूत मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ हैं - सुरक्षित अनुभव करने की आवश्यकता, आत्मीय सम्बन्धों की आवश्यकता, प्यार तथा अपनत्व प्राप्त करने और प्रदान करने की आवश्यकता, परिवार, समवयस्कों के मध्य तथा समाज में मान्यता व स्वीकृति प्राप्त कर सकने की आवश्यकता, नीरसता से मुक्ति की आवश्यकता, जिज्ञासाओं के उचित समाधान की आवश्यकता आदि। किन्तु अनेक कारणों से आज बच्चों की इन आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो रही है। तीव्र नगरीकरण और पारिवारिक संरचना में आए बदलाव के कारण संयुक्त परिवारों के स्थान पर एकाकी परिवारों का प्रचलन ही परिलक्षित होता है। वहीं माता-पिता दोनों के कामकाजी होने की स्थिति में बच्चे न केवल माता-पिता के भरपूर संरक्षण, प्रेम वह साहचर्य से वंचित रह जाते हैं बल्कि उनमें परस्पर सम्पर्क व संवादों के अभाव के कारण आपसी सम्बन्धों की आत्मीयता भी घटती जा रही है। बड़ों की बढ़ती हुई अहंवादी वृत्ति तथा अपने-अपने खोलों में सिमटे रहने की प्रवृत्ति ने बच्चों को एक प्रकार से 'कैदी' बनाकर उनकी उन्मुक्तता, स्वतन्त्रता तथा समवयस्क समूहों में सम्मिलित होकर अनेक गुणों के अर्जन के मार्ग में बाधा पहुँचाई है। पारिवारिक इकाई का टूटना, अभिभावकों की उपेक्षा का शिकार होना, बच्चों में उत्पन्न होने वाली अन्य मनोवैज्ञानिक समस्याओं के कारण हैं। बच्चों की मूलभूत मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के अपूर्ण तथा असन्तुष्ट रह जाने से अथवा बच्चों द्वारा उन्हें अनुचित तरीकों या अनुचित माध्यमों के द्वारा पूरा करने के प्रयास से उनके शारीरिक व मानसिक कार्य-व्यापार, आचरण तथा स्वभाव सभी बुरी तरह दुष्प्रभावित होते हैं।

फुटनोट

1. बाल विकास एवं शिक्षा मनोविज्ञान: डॉ0 शशि चित्तौड़ा, पृ0 11
2. विद्यालय और बाल विकास: डॉ0 चित्रा वारेरकर, पृ0 70
3. 'तनाव की समस्या' (लेख): अमिता जोशी, 'बच्चे और हम' संपा0 राजकिशोर से उद्धृत, पृ0 71

राही मासूम रजा के कथा साहित्य में भारतीयता

डॉ० संजीव कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर, परास्नातक हिन्दी अध्ययन एंव शोध केन्द्र, किशोरी रमण पी.जी. कॉलेज, मथुरा

साहित्य सृजन की तीसरी आँख है। साहित्यकार सृष्टिकर्ता है। उसकी रचना उसके समय की, उस संसार की निर्मिति है जिसमें वह रहता है। वह उस संसार की निर्मिति करता है जिसे वह चाहता है। कवि को मनीषि परिभू: स्वयंभू संज्ञाएँ ऐसे ही नहीं दी गयी हैं। सच्चे साहित्यकार के साहित्य में उसके युग के सभी प्रश्न देखे जा सकते हैं तो आने वाले कल के लिए वह जिस दुनिया का निर्माण करना चाहता है उसकी नींव को भी पड़ते हुए देखा जा सकता है।

साहित्य अपने समय का जीवंत दस्तावेज है जो इतिहास नहीं बता सकता उस मौन को मुखर करने का कार्य साहित्य ही करता है। कदाचित इसीलिए मानव और मानवता की विकास-यात्रा को समझने के लिए हर भाषा का साहित्य सर्वदा महत्वपूर्ण होता है।

सच्चा साहित्यकार न केवल अपने समय के प्रश्नों पर विचार करता है अपितु उन प्रश्नों से टकराकर एक नई सोच, नई दृष्टि का निर्माण भी करता है। हर भाषा में वही कालजयी रचनाकार होता है जिसके पास सूक्ष्म दृष्टि और व्यापक विचारधारा होती है। साहित्य का उद्देश्य अन्तत: मानव है, उसकी चिंताएँ उसकी समस्याएँ और उसके मनुष्य बने रहने के संस्कार हैं।

हिंदी के साहित्यकारों ने अपनी-अपनी रचनाओं द्वारा अपने समय की ज्वलंत समस्याओं को उठाया है। सभी कालजयी रचनाकारों की रचनाओं में ऐसी संजीवनी शक्ति होती है जिसमें मानवता ऐसे प्रकाश को पाती है जो पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ता ही जाता है।

राही मासूम 'रजा' हिंदी के ऐसे ही सशक्त हस्ताक्षरों में से एक हैं जिनका साहित्य मानवता के भाल का तिलक है। राही अपने समय के प्रखर चेतना सम्पन्न साहित्यकार हैं। वे हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं में शीर्षस्थ साहित्यकारों की श्रेणी में आते हैं। उनका साहित्य देश और समाज का जीता-जागता आईना है। उनका साहित्य मानवतावादी साहित्य है। जाति-भाषा-वर्ग से ऊपर वह केवल इंसान है और इसी इंसानियत को जीवित रखने की चिंता उनकी प्राय: हर रचना में है। उनके प्रश्न उनके समय के सर्वाधिक ज्वलंत प्रश्न है और इन प्रश्नों को बिना लाग-लपेट के वह जिस तरह रखते हैं उसके लिए राही जैसा साहित्यकार ही चाहिये था।

एक सहज साहित्यकार कल्पनाजीवी नहीं हो सकता। समय के साथ चलकर उसका साक्षात् कर वह उस समय में उपस्थित सभी परिवर्तनों, घटनाओं का न केवल साक्षी होता है, एक अन्तर्दृष्टा की भाँति वह उन परिवर्तनों और घटनाओं के दूरगामी परिणामों को वह भली-भाँति पहचानता है। समस्याएँ जितनी बड़ी होती हैं सशक्त साहित्यकारों का स्वर उनके लिए उतना ही बुलंद होता है। राही ऐसे ही समर्थ साहित्यकार हैं जिनकी निगाहें अपने समय की जबर्दस्त पड़ताल करती हैं और बड़ी बेबाकी से वह उन सवालों को उठाते हैं। आने वाली पीढ़ी को हम क्या दे जायेंगे ये प्रश्न हर पीढ़ी के सामने होते हैं। यदि हम उन्नत और विकसित समाज की परिकल्पना करते हैं तो हमें इन प्रश्नों की गंभीरता पर विचार करना होगा कि जिस दुनिया में हम रह रहे हैं वह आने वाली नस्लों के लिए उपयुक्त है या हमें उसकी बेहतरी के लिए प्रयास करने होंगे। राही अपने समग्र कृतित्व में इन प्रश्नों के हल ढूढ़ते नजर आते हैं। उनके सृजन की गंभीरता और प्रासंगिकता के कारण साहित्यकारों ने उन्हें 'कबीर' की श्रेणी में रखा है।

"केवल हिंदी नहीं केवल उर्दू नहीं' समस्त भारतीय भाषाओं में राही मासूम रजा नाम का व्यक्ति अपने किस्म का अकेला था। इतना बेबाक, इतना साफगो, इतने बड़े दिल का इंसा कि उसमें समूचा हिंदुस्तान समा सकता था। भाषा, धर्म, प्रदेश की सीमाओं से बहुत-बहुत ऊपर एक निपट हिंदुस्तानी। जिसे जिंदगी भर यही अफसोस रहा कि इस देश में हिन्दू-मुसलमान सब बहुसंख्यक हैं। सचमुच में अल्पसंख्यक कोई है तो वह केवल वह आदमी जो अपने को केवल हिंदुस्तानी मानता है। कबीर की परम्परा के इस जागरूक लेखक ने समय-समय पर सबकी खबर ली है। भारत की सही संस्कृति यानि मिली-जुली संस्कृति को जिसने एक नया संस्कार दिया और विरासत में दी एक नयी परम्परा।"[1]

वस्तुत: राही का पूरा लेखन हिन्दुस्तानी सभ्यता-संस्कृति और उनकी साझी विरासत का प्रबल पक्षधर है। राही हमेशा उन प्रवृत्तियों के विरोधी रहे जो भारतीय जनता की एकता को धर्म, संप्रदाय, क्षेत्रीयता, जातिवाद और भाषा के आधार पर अपने राजनैतिक और आर्थिक स्वार्थों के लिए बांट रहे हैं।

भारतीयता राही की दृष्टि से अत्यन्त स्पष्ट और व्यापक है। जो भारत में रह रहा है वह भारतीय है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भी भारतीयता का अर्थ कुछ ऐसा ही मानते हैं। 'भारतीय' अर्थात् भारत में रहने वाले विभिन्न धर्म और जाति के लोग ही नहीं बल्कि सदियों से अनेक आक्रमणकारी यहाँ आये और बस गये। उनके द्वारा कई मान्यतायें रीति-रिवाज हमारी संस्कृति से मिलकर एक हो गये हैं। वह सब भी भारतीयता का ही एक भाग है। अर्थात् हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि भारत अथवा भारतीय कोई एक धर्म विशेष या जाति-विशेष का पर्याय नहीं परन्तु भारत के नाम से जानी जाती इस भौगोलिक भूमि पर जिस किसी ने भी (उसके साहित्य, धर्म और संस्कृति में) योगदान दिया है वे सब भारतीय हैं और यह सब भारतीयता के नाम से ही जाना जा सकता है। भारतीयता की सबसे मजेदार बात तो यह है कि इसमें शैवों, वैष्णवों, वेदातियों, सनातनियों, शाक्तों, बौद्धों और जैनों इन सभी का समावेश होता है और इसी तरह मुस्लिम, पारसी और ईसाई भी शामिल हो जाते हैं।[2]

राही के यहाँ भी भारतीयता इसी व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुई है और उन्हें अपने भारतीय होने पर बड़ा अभिमान है। अपनी धरती के प्रति जो लगाव, समर्पण और प्रेम उनमें विद्यमान था, जो संवेदनशीलता थी वह "मैं एक फेरीवाला" संग्रह में एक कविता 'वसीयतनामा' में देखा जा सकता है।

"मुझे ले जाकर गाजीपुर की गंगा में सुला देना
वो मेरी माँ है, मेरे बदन का जहर पी लेगी
मगर शायद वतन से दूर मौत आये
तो यह मेरी वसीयत है
अगर उस शहर में एक छोटी सी इक नदी भी बहती है
तो मुझको उसकी गोद में सुलाकर उससे कह दो
कि गंगा का यह बेटा आज से तेरे हवाले है
वो नदी भी मेरी माँ है, मेरी गंगा की तरह
मेरे बदन का जहर पी लेगी।"[3]

जिस युग में राही पले-बढ़े उसी युग का, परिवेश का चित्रण उन्होंने किया है। उनके उपन्यास सन् 1937 से लेकर 1984 तक के समय को समेटते हैं (नीम का पेड़ 2004 में राजकमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हुआ) उनका समग्र साहित्य समसामयिक समस्याओं पर लिखा गया है। ये समस्याएँ धर्म, राजनीति और समाज के विविध पक्षों से जुड़ी है।

जिस 1937 से राही अपने साहित्य की निर्मिति करते हैं उसका भारत के इतिहास में बड़ा महत्व है। भारत में स्वातंत्र्य आन्दोलन चरम पर था। देश में नवीन जागृति आ गई थी। जाग्रत जनता के कारण ही सन् 1935 में प्रतिनिधि चुनाव कानून बना, जिसके तहत 1937 में आम चुनाव हुए। इन चुनावों के साथ ही भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता का एक नया दौर प्रविष्ट हुआ। जिन हिंदु-मुसलमानों ने एक साथ आजाद भारत के लिए संघर्ष किया, जो राष्ट्रवादी थे वे अलग देश की मांग करने लगे। 1936 तक किसी महत्वपूर्ण नेता ने पाकिस्तान की मांग नहीं की थी। चुनावों में कांग्रेस ने मुस्लिम लीग के साथ समझौता किया था किंतु चुनाव में भारी जीत के बाद कांग्रेस ने लीग के साथ अपने समझौते को तोड़ दिया और घोषणा की कि कांग्रेस अकेले ही सरकार बनायेगी। परिणामत: मुस्लिम नेताओं का कांग्रेस से विश्वास उठ गया। 'इस्लाम खतरे में है' यह नारा यहीं से उठा।

1937 के बाद ही जिन्ना पूर्णत: अलगाववादी बन गये और एक अलगाववादी, द्विराष्ट्रवाद के समर्थक मुस्लिम नेता के रूप में सामने आये। फरवरी 1940 में जिन्ना ने ये घोषणा कर दी कि भारत एक नहीं दो राष्ट्र हैं। संयुक्त मंत्रिमण्डल से लीग को दूर रखने की कीमत भारतीयों को पाकिस्तान देकर चुकानी पड़ी।

माउण्टबेटन ने बहुत समझकर भारत-विभाजन की तैयारी की। उनकी योजना को मई 1947 में ब्रिटिश सरकार ने स्वीकृति प्रदान की। इधर 2 जून 1947 को कांग्रेस कार्यकारिणी की लम्बी बहस के बाद विभाजन की योजना को स्वीकृति प्रदान की। इस बैठक में गांधी जी को आमंत्रित नहीं किया गया था। गाँधी जी ने विभाजन का पूरा विरोध किया। वे बड़े दुखी थे किंतु पण्डित नेहरु और पटेल ने उनका मत परिवर्तन किया। पण्डित नेहरु ने कहा 'अराजकता और निष्पाप नागरिकों की हत्या की अपेक्षा विभाजन का निर्णय अधिक योग्य है।'

विभाजन के पूर्व ही दंगों का क्रम शुरू हो गया था विशेषत: कलकत्ता, नोखाली, बिहार, पंजाब, बंबई आदि जगहों पर। हिन्दू-मुसलमान में विभाजन के बाद तो जैसे जंग छिड़ गई थी। चारों ओर भयावह वातावरण था। हिंदु मुस्लिम एक दूसरे को शक की दृष्टि से देख रहे थे। किसी को भी यह ठीक से मालूम नहीं था कि कौन सा गाँव, कौन सा जिला पाकिस्तान जायेगा। हजारों परिवार बिखर गये।

"जो कुछ हिंदुस्तान पर गुजरी उसमें मैं एक मामूली नीम का पेड़। मैं तो खुद भी अपनी कहानी भूल गया। कहने को तो सियासत ने एक लकीर खींची मगर वह लकीर आग और खून का दरिया बन गई और हजारों हजार लोग अपनी जड़ों समेत बह गये उस दरिया में।"[4]

"शहर की हालत बहुत खराब हो चुकी थी। हर आदमी अकेला हो गया था। जानी-पहचानी गलियाँ साँप बनकर रेंग रही थीं ..... परछाईयाँ, हिन्दू-मुसलमान बन गई थीं और आदमी अपनी ही परछाईयों से डरकर भाग रहा था।"[5]

ऐसे ही कितने भयावह वर्णन राही के लगभग हर उपन्यास में मिल जायेंगे। इस घटना ने उनकी आँखों में जो पानी और दिल में दर्द भरा वो ताउम्र खत्म नहीं हुआ। जो अजनबीपन और बेगानापन इस विभाजन से पनपा उसमें इंसान और इंसानियत तो बची ही नहीं और जिनमें बची उनके लिए दर्द के समंदर तैयार हो गये जिन्हें समझने वाला कोई नहीं था। 'ओस की बूँद' में दीनदयाल अपने सबसे प्यारे दोस्त वजीर हसन की पोती शहला के तेवर और शब्दों से हिल जाते हैं क्योंकि अभी तक वो दो दोस्त थे हिंदु-मुसलमान नहीं पर तस्वीर बदल जाती है "वह जमीन देख रहे थे, उन दिनों को याद कर रहे थे जब पाकिस्तान नहीं बना था..... जब वह भी बच्चे थे; हिन्दू नहीं थे और वजीर हसन भी बच्चे थे मुसलमान नहीं थे। एक ही मौलवी से पढ़ा करते थे और एक ही साथ शरारतें किया करते थे।"[6]

राजनीति के कर्णधारों ने विभाजन को एक समाधान मान लिया था परिणामत: पाकिस्तान बन जाने पर ऐसा प्रतीत हुआ कि भारत से सांप्रदायिकता सदा सर्वदा के लिए विदा हो गयी परन्तु ऐसा नहीं हुआ। वोटों की राजनीति के खिलाड़ी और हमारे कर्णधारों ने मुस्लिम लीग को गले लगाया और वोट प्राप्त करने के लिए विशेष सुविधाएँ और संरक्षण आदि प्रदान किया। इस प्रकार वोट की राजनीति ने अनेक सांप्रदायिक वर्गवाद का सृजन किया।

विभाजन ने हिन्दू-मुसलमान या हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के दिलों में जो नफरत पैदा कर दी उस नफरत को धार्मिक या राजनैतिक लोगों ने खत्म भी नहीं करना चाहा वरन् वो तो इसे हवा देने में लगे रहे। राही इस प्रवृत्ति से अंदर तक दु:खी थे कि जिस आजादी को सबने मिलकर पाया आखिर उस आजादी

के मायने क्या हैं? "इस कहानी में आपको हदें भी दिखायी देंगी और सरहदें भी। नफरतों की आग में मौहब्बत के छींटे दिखाई देंगे। सपने दिखाई देंगे तो उनका टूटना भी..... और इन सबके पीछे दिखायी देगी सियासत की काली स्याह दीवार। हिन्दुस्तान की आजादी को जिसने निगल लिया, जिसने राज को कभी सुराज नहीं रहने दिया। जिसे हम रोज झंडे और पहिये पीछे ढूँढ़ते रहे कि आखिर उसका निशान कहाँ है?"[7]

राही ने अपना सारा जीवन सांप्रदायिकता से लड़ने में गुजार दिया। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार "हर-हर महादेव का नारा लगाकर हमला बोलने वालों को इस तरह ललकारना हिम्मत का काम है और कबीर के बाद मुझे ऐसी हिम्मत सिर्फ राही में दिखाई पड़ी। राही मैं यह हिम्मत इसलिए है कि वे इसी तरह 'अल्लाह हो अकबर' के नारेबाज जेहादियों को चुनौती देते हैं एकदम कबीर की तरह।"[8]

राही का स्वर समग्र उपन्यासों में एक-सा रहा है वह सवालों से नजरें नहीं चुरा सकते। गलती कहाँ हुई और हो रही है वह पहचानकर उसे दूर करने के प्रयास करने होंगे। हिन्दू-मुसलमानों को और मुसलमान-हिंदुओं को इस नफरत से क्या हासिल होगा? हिन्दू-मुसलमानों को इसके समाधान के लिए साझा-प्रयास करने पड़ेंगे और कट्टरपंथ से मुकाबला करना होगा। जो भी कट्टरपंथ को बढ़ावा दे उसे रोकना होगा। "अगर लड़कों के दिमाग में यही बातें भरी जाती रहीं तो इस मुल्क का क्या बनेगा? नयी नस्ल तो हमारी नस्ल से भी ज्यादा घाटे में है। हमारे पास कोई ख्वाब नहीं है मगर इनके पास झूठे ख्वाब हैं..... लगता है हिंदुस्तान की किस्मत में हिस्ट्री है ही नहीं। मुझे अंग्रेजों की लिखी हुई हिस्ट्री पढ़ाई जा रही है। यही हाल पाकिस्तान में होगा। वहाँ इस्लामी छाप होगी तारीख पर। पता नहीं हिंदुस्तानी हिस्ट्री कब लिखी जायेगी।"[9]

राही का मानना है कि मंदिर-मजिस्द का झगड़ा वर्तमान खेल है जिसे राजनैतिक लोग बड़ी कुशलता से खेल रहे हैं। नफरतों को बढ़ावा देना और उसे जिंदा रखने में राजनैतिक पार्टियों का ही स्वार्थ है अन्यथा जन-सामान्य का स्वभाव यह नहीं है। "राम और मस्जिद का बैर पुराना नहीं है। यदि इनमें झगड़ा होता तो रसखान ने मक्के के गड़रिये की जगह ब्रज के गड़रिये को अपने काव्य की आत्मा क्यों बनाया होता और सूफियों ने कृष्ण की काली कमली अपने मौहम्मद को उढ़ाकर उन्हें काली कमली वाला क्यों कहा होता।"

सत्ता और सांप्रदायिकता के इस अपवित्र गठबंधन ने धर्म-निरपेक्षता की जड़ें खोखली कर दी हैं। देश में एक जैसा माहौल बनाया गया जिसमें नफरत, डर और शक जैसे तीन राक्षस पैदा किये। राही कहते हैं "यह कैसा अजीब शब्द है - नफरत! यह एक अकेला शब्द राष्ट्रीय आंदोलन का फल है। बंगाल, पंजाब और उत्तर-प्रदेश के इंकलाबियों की लाशों की कीमत केवल एक शब्द है - नफरत

नफरत!

शक!

डर!

इन तीनों डोंगियों पर हम नदी पार कर रहे हैं यही तीन शब्द बोये और काटे जा रहे हैं। यही शब्द धूल बनकर माँओं की छातियों से बच्चों के हलक में उतर रहे हैं। दिलों के बंद किवाड़ों की दराजों में यही तीन शब्द झाँक रहे हैं। आवारा रूहों की तरह ये तीन शब्द आँगनों पर मँडरा रहे हैं।"[10]

यह वह हिंदुस्तान है जो 1947 में विभाजित होने के पश्चात् नई स्फूर्ति, नये सपनों को लेकर विकास के मार्ग पर आगे बढ़ा लेकिन उसके सामान्य जन के स्वप्न राजनीतिज्ञों के चंगुल में उलझकर रह गये। रही-सही कसर सांप्रदायिकता ने पूरी कर दी। 'ओस की बूँद' में राही ने भिवंडी, ठाणे, कल्याण और बम्बई के दंगों का वर्णन किया है और सांप्रदायिकता, क्षेत्रवाद, जातिवाद, भाषावाद से बंटते हिन्दुस्तान का दर्द बयान किया है -

"जिसे हिंदुस्तान कहते हैं हम सब
वह हिंदुस्तान नहीं है
वह मुर्दा बस्तियों का एक कब्रिस्तान है अब
वह एक श्मशान है।"[11]

वह चिंतित है कि हम भारतीय इतने कमजोर क्यों है कि कोई भी हमें आकर बहका जाता है और हम बहक जाते हैं। "धर्म निरपेक्षता की जमीन बहुत कमजोर है। कुदाल-फावड़े की जरूरत नहीं, नाखून से जरा खुरचें तो निरपेक्षता कागज की तरह फट जाती है और कोई शाही इमाम, कोई भिण्डरावाला कोई देवरस, कोई बाल ठाकरे निकल आता है। सांप्रदायिकता का प्रेत हमारे अंदर बैठा है।"[12]

ये कैसी आजादी हमने हासिल की जहाँ हर ओर असंतोष का मौसम ही दिखाई देता है। राही के प्रश्न उन सभी के प्रश्न हैं जिनमें मानवीयता बाकी बची है, जिन्हें अपने मुल्क से अतिशय प्रेम है इसीलिए वह अपने साहित्य में सांप्रदायिक शक्तियों की भयावहता तो दिखाते ही हैं भारत में रहने वाले मुसलमानों का दर्द भी। "जनसंघ का कहना है कि मुसलमान यहाँ के नहीं हैं। मेरी क्या बिसात कि मैं उसे झुठलाऊँ मगर यह कहना ही पड़ता है कि मैं गाजीपुर का हूँ। गंगौली से मेरा अटूट सम्बन्ध है। वह एक गाँव ही नहीं, वह मेरा घर भी है। घर! यह शब्द दुनिया की हर बोली और भाषा में है और वह हर बोली और भाषा में उसका सबसे खूबसूरत शब्द है।"[13] इसीलिए वे गंगौली छोड़कर कहीं नहीं जाना चाहते और पराया कहने का हक किसी को नहीं दे सकते।

राही की यह निर्भीकता, साहस और सबसे बड़ी साफगोई उन्हें सभी लेखकों से अलग करती है। राही समय से आँखे चुराने वाले लेखक नहीं है। लोग उनके पक्ष में रहें या प्रतिकूल वे किसी कीमत पर अपने धर्म से च्युत नहीं हो सकते।

राही प्रेमचंद और कबीर की परम्परा के, उनकी 'सेक्युलिरज्म' मानसिकता के रचनाकार हैं। उनकी दृष्टि वर्ग-वर्ण-मजहब-नस्ल, संप्रदाय, क्षेत्र से परे आदमी को आदमीयत की जमीन पर देखती है और उसे स्वीकार या अस्वीकार करती है। वे जानते हैं कि उनके जैसे लोग बहुत कम हैं। अपने अकेलेपन के दर्द को वह जानते हैं, अपनी उस चेतना को भी जो उन्हें हर अन्याय के खिलाफ खुलकर टकराने का साहस देती है। यही उनका कर्म है और धर्म भी -

"लेखक या अदीब का काम दुनिया में अमन फैलाना है। उसका काम मौहब्बत के ऐसे अफसाने गढ़ना है, जिसे पढ़ते ही लोग आपसी दीवारों को भूल जायें। लेखकों का काम तो सरहदें मिटाना होता है।"[14]

संदर्भ-संकेत

1. साप्ताहिक हिन्दुस्तान - 5 अप्रैल 1993, पृष्ठ-54
2. भारतीयता और नारी चेतना - रंजना अरगड़े - समकालीन भारतीय साहित्य, मई-जून 2012, पृष्ठ 237
3. राही मासूम रजा-मैं एक फेरी वाला, पृ. 60
4. नीम का पेड़ - राही मासूम रजा, पृ. 19
5. टोपी शुक्ला - राही मासूम रजा, पृ. 33
6. ओस की बूँद - राही मासूम रजा, पृ. 62
7. नीम का पेड़ - राही मासूम रजा, पृ. लेखकीय (ट)
8. इंडिया टुडे - अप्रैल 92, पृ. 75
9. टोपी शुक्ला - राही मासूम रजा, पृ. 43
10. टोपी शुक्ला - राही मासूम रजा, पृ. 55
11. असंतोष के दिन - राही मासूम रजा, पृ. 67
12. असंतोष के दिन - राही मासूम रजा, पृ. 84
13. आधा गाँव - राही मासूम रजा, पृ. 290
14. नीम का पेड़ - राही मासूम रजा, लेखकीय (ट)

आचार्य उमास्वामी और उनका तत्वार्थसूत्र

विकास जैन

शोधच्छात्र, जैन विद्या एवं तुलनात्मक धर्म-दर्शन, जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय, लाडनूं

जैनाचार्यों की एक प्रमुख विशेषता रही है कि वे अपने बारे में कहीं कुछ नहीं लिखकर मात्र स्वपरकल्याण कार्य करने में ही तत्पर रहते हैं, यही कारण हैं कि वे लोकैषणा से दूर ही रहते हैं। आचार्य गृद्धपिच्छ अथवा उमास्वामी भी इसके अपवाद नहीं हैं, अतः उनके बारे में भी अधिक परिचय प्राप्त नहीं होता। कम से कम लिखकर अधिक से अधिक प्रसिद्धि पाने वाले आचार्य गृद्धपिच्छ उमास्वामी के तत्वार्थसूत्र से जैन समाज जितना अधिक परिचित है, उनके जीवन परिचय के संदर्भ में उतना ही अपरिचित है।[1]

तत्वार्थसूत्र के रचयिता आचार्य गृद्धपिच्छ हैं। इनका अपरनाम उमास्वामी या उमास्वाति भी प्राप्त होता है। आचार्य वीरसेन ने जीवस्थान के काल अनुयोगद्वार में तत्वार्थसूत्र और उसके कर्ता गृद्धपिच्छाचार्य के नामोल्लेखपूर्वक उनके तत्वार्थसूत्र का एक सूत्र उद्धृत किया है-

'तह गिद्धपिंछाइरियप्पयासिदतच्चत्थसुत्ते वि ''वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य'' इदि दव्वकालो परूविदो।[2]

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि तत्वार्थसूत्र के रचयिता गृद्धपिच्छाचार्य है। इस नाम का समर्थन आचार्य विद्यानन्द के तत्वार्थश्लोकवार्तिक से भी होता है-

''एतेन गृद्धपिच्छाचार्यपर्यन्तमुनिसूत्रेण व्यभिचारता निरस्ता।''[3]

यहां विद्यानन्द ने भी तत्वार्थसूत्र के कर्ता का नाम गृद्धपिच्छाचार्य बतलाया है। तत्वार्थसूत्र के किसी टीकाकार ने भी निम्न पद्य में तत्वार्थसूत्र के रचयिता का नाम गृद्धपिच्छाचार्य दिया है-

तत्वार्थसूत्रकर्तारं गृद्धपिच्छोपलक्षितम्।
वन्दे गणीन्द्रसंजातमुमास्वामिमुनीश्वरम्।।[4]

इसमें गृद्धपिच्छाचार्य नाम के साथ उनका दूसरा नाम 'उमास्वामिमुनीश्वर' भी बताया गया है। वादिराज ने अपने पार्श्वनाथचरित में गृद्धपिच्छ नाम का उल्लेख किया है-

अतुच्छगुणसम्पातं गृद्धपिच्छं नतोऽस्मि तम्।
पक्षीकुर्वन्ति यं भव्या निर्वाणायोत्पतिष्णवः।।[5]

अर्थात् आकाश में उड़ने की इच्छा करने वाले पक्षी जिस प्रकार अपने पंखों का सहारा लेते हैं, उसी प्रकार मोक्ष रूपी नगर को जाने के लिए भव्य लोग जिस मुनीश्वर का सहारा लेते हैं उस महात्मा अगणित गुणों के भण्डारस्वरूप गृद्धपिच्छ नामक मुनिमहाराज के लिए मेरा नमस्कार हो।

इन प्रमाणोल्लेखों से स्पष्ट है कि तत्वार्थसूत्र के कर्ता गृद्धपिच्छाचार्य हैं। यद्यपि यह नाम उनके द्वारा गिद्ध पक्षी के पंखों की पिच्छी धारण करने के कारण प्रचलित हुआ होगा- ऐसा प्रतीत होता है, किन्तु उनका वास्तविक नाम क्या था, इस बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता।

यहां एक बात और कही जा सकती है कि यही नाम आचार्य कुन्दकुन्द के लिए भी प्रयुक्त किया जाता है, जैसा कि निम्न पद्य में आचार्य कुन्दकुन्द के पांच नाम गिनाये हैं-

आचार्यकुन्दकुन्दाख्यो वक्रग्रीवो महामुनिः।
एलाचार्यो गृद्धपिच्छ इति तन्नाम पंचधा।।[6]

इस नाम से यद्यपि दोनों आचार्यों को जाना जाता है, तथापि इससे यह अनुमान भी लगाया जा सकता है कि आचार्य उमास्वामी आचार्य कुन्दकुन्द के अनुगामी रहे हैं।

श्रवणबेलगोला के एक अभिलेख में गृद्धपिच्छ नाम की सार्थकता और कुन्दकुन्द के वंश में उनकी उत्पत्ति बतलाते हुए उनका उमास्वाति नाम भी दिया गया है। यथा-

अभूदुमास्वातिमुनिः पवित्रे वंशे तदीये सकलार्थवेदी।
सूत्रीकृतं येन जिनप्रणीतं शास्त्रार्थजातं मुनिपुंगवेन।।
स प्राणिसंरक्षणसावधानो बभार योगी किल गृद्धपक्षान्।
तदा प्रभृत्येव बुधा यमाहुराचार्यशब्दोत्तरगृद्धपिच्छम्।।[7]

अन्य शिलालेख में भी गृद्धपिच्छ का उल्लेख प्राप्त होता है-

अभूदुमास्वातिमुनीश्वरोऽसावाचार्यशब्दोत्तरगृद्धपिच्छः।

तदन्वये तत्सदृशोऽस्ति नान्यस्तात्कालिकाशेषपदार्थवेदी।।[8]

आचार्य कुन्दकुन्द के पवित्र वंश में सकलार्थ के ज्ञाता उमास्वाति मुनीश्वर हुए, जिन्होंने जिनप्रणीत द्वादशांगवाणी को सूत्रों में निबद्ध किया। इन आचार्यने प्राणिरक्षा के लिए गृद्धपिच्छों को धारण किया। इसी कारण वे गृद्धपिच्छाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। अभिलेखीय प्रमाण में गृद्धपिच्छाचार्य को श्रुतकेवलिदेशीय भी कहा गया है। इससे उनका आगमसम्बन्धी सातिशय ज्ञान प्रकट होता है।

तत्वार्थसूत्र के रचयिता गृद्धपिच्छाचार्य का उल्लेख श्रवणबेलगोला के अभिलेखों में 40, 42, 43, 47 और 50 संख्यक में भी पाया जाता है। अभिलेखसंख्या 105 और 108 में तत्वार्थसूत्र के कर्ता का नाम उमास्वाति भी आया है और गृद्धपिच्छ उनका दूसरा नाम बताया गया है। यथा–

श्रीमानुमास्वातिरयं यतीशस्तत्वार्थसूत्रं प्रकटीचकार।

यन्मुक्तिमार्गचरणोद्यतानां पाथेयमग्र्यं भवति प्रजानां।।

तस्यैव शिष्योऽजनि गृद्धपिच्छ-द्वितीयसंज्ञस्य बलाकपिच्छः।

यत्सूक्तिरत्नानि भवन्ति लोके मुक्त्यंगनामोहनमण्डनानि।।[9]

अर्थात् यतियों में अधिपति श्रीमान् उमास्वाति ने तत्वार्थसूत्र को प्रकट किया, जो मोक्षमार्ग के आचरण में उद्यत मुमुक्षुजनों के लिए उत्कृष्ट ग्रन्थ है। उन्हीं का गृद्धपिच्छ दूसरा नाम है। इन गृद्धपिच्छाचार्य के एक शिष्य बलाकपिच्छ थे, जिनके सूक्तिरत्न मुक्त्यंगना के मोहन करने के लिए आभूषणों का काम करते हैं।

इस प्रकार दिगम्बर साहित्य और अभिलेखों का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि तत्वार्थसूत्र के रचयिता गृद्धपिच्छाचार्य, अपरनाम उमास्वामी या उमास्वाति है।

आचार्य उमास्वामी का समय-निर्धारण

तत्वार्थसूत्र के रचयिता उमास्वामी श्रावकाचार और पंचनमस्कारस्तवन के रचयिता उमास्वामी से भिन्न हैं। आचार्य उमास्वामी का समय नन्दिसंघ की पट्टावलि के अनुसार वीर निर्वाण संवत् 571 है, जो कि वि0 सं0 101 आता है। 'विद्वज्जनबोधक' में निम्नलिखित पद्य आया है–

वर्षसप्तशते चैव सप्तत्या च विस्मृतौ।

उमास्वामिमुनिर्जातः कुन्दकुन्दस्तथैव च।।[10]

अर्थात् वीर निर्वाण संवत् 770 में उमास्वामि मुनि हुए, तथा उसी समय कुन्दकुन्दाचार्य भी हुए। नन्दिसंघ की पट्टावलि में बताया है कि उमास्वामी 40 वर्ष 8 महीने आचार्य पद पर आसीन रहे। उनकी आयु 84 वर्ष की थी और विक्रम संवत् 142 में उनके पट्ट पर लोहाचार्य द्वितीय प्रतिष्ठित हुए।

प्रो0 हार्नले,[11] डॉ. पिटर्सन[12] और डॉ सतीशचन्द्र[13] ने इस पट्टावलि के आधार पर उमास्वामी को ईसा की प्रथम शताब्दी का विद्वान माना जाता है, जबकि विद्वज्जनबोधक के अनुसार उमास्वामी का समय विक्रम संवत् 300 निश्चित होता है और वह पट्टावलि के समय से 150 वर्ष पीछे आता है।

इन्द्रनन्दि ने अपने श्रुतावतार में 683 वर्ष की श्रुतधर आचार्यों की परम्परा दी है ओर इसके बाद अंगपूर्व के एकदेशधारी विनयधर, श्रीदत्त और अर्हद्दत्त का नामोल्लेख करके नन्दिसंघ आदि संघों की स्थापना करने वाले अर्हद्बलि का नाम दिया है। श्रुतावतार में इसके पश्चात् माघनन्दि, घरसेन, पुष्पदन्त और भूतबलि के उल्लेख हैं। उसके बाद कुन्दकुन्द का नाम आया है। अतः आचार्य गृद्धपिच्छ कुन्दकुन्द के पश्चात् अर्थात् 683 वर्ष के अनन्तर हुए हैं। यदि इस अनन्तरकाल को 100 वर्ष माना जाये तो वीर निर्वाण संवत् 783 के लगभग आचार्य गृद्धपिच्छ का समय रहा होगा।

यद्यपि श्रुतधर आचार्यों की परम्परा का निर्देश धवला, आदिपुराण नन्दिसंघ की पट्टावलि और त्रिलोकपज्ञप्ति आदि में आया है, पर ये सभी परम्पराएं 783 वर्ष तक का ही निर्देश करती हैं। इसके आगे के आचार्यों का कथन नहीं मिलता। अतएव श्रुंतावतार आदि के आधार से गृद्धपिच्छ का समय निर्णीत नहीं किया जा सकता है।

डॉ0 ए. एन. उपाध्ये ने बहुत अनुसंधान के पश्चात् कुन्दकुन्द के समय का निर्णय किया है, और जिससे गृद्धपिच्छ, आचार्य कुन्दकुन्द के शिष्य प्रकट होते हैं। उपाध्ये जी के मतानुसार कुन्दकुन्द का समय ई0 प्रथम शती के लगभग है। इसलिए गृद्धपिच्छाचार्य उसके बाद ही हुए हैं– यह कहा जा सकता है।

आचार्य कुन्दकुन्द का समय निर्णीत हो जाने के बाद आचार्य गृद्धपिच्छ का समय अवगत करने में कोई कठिनाई नहीं है। क्योंकि पट्टावलियों और शिलालेखों में आचार्य कुन्दकुन्द के बाद गृद्धपिच्छ का नाम आया है।

अतएव निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पट्टावलियों, प्रशस्तियों और अभिलेखों के अध्ययन से इनका समय ई0 प्रथम शती का अन्तिम भाग और द्वितीय शती का पूर्वभाग निश्चित होता है।

तत्वार्थसूत्र का सामान्य परिचय

आचार्य गृद्धपिच्छ की एकमात्र रचना तत्वार्थसूत्र है। इस सूत्रग्रन्थ का प्राचीन नाम तत्वार्थ रहा है। तत्वार्थ की तीन टीकाएं प्रसिद्ध हैं, जिनके साथ तत्वार्थपद लगा है, पूज्यपाद की 'तत्वार्थवृत्ति', जिनका दूसरा नाम 'सर्वार्थसिद्धि' है। अकलंकाचार्य का 'तत्वार्थवार्तिक' और विद्यानन्दि आचार्य का तत्वार्थश्लोकवार्तिक। अतएव इस ग्रन्थ का मूल नाम तत्वार्थ ही रहा है। सूत्रशैली में निबद्ध होने के कारण उत्तरकाल में इसका नाम तत्वार्थसूत्र प्रचलित हो गया है। इस ग्रन्थ की रचना के हेतु का वर्णन करते हुए, तत्वार्थसूत्र के कन्नड़ टीकाकार बालचन्द्र ने लिखा है–

सौराष्ट्र देश के मध्य उर्जयन्तगिरि के निकट गिरिनगर नाम के पत्तन में आसन्नभव्य स्वहितार्थी द्विजकुलोत्पन्न श्वेताम्बर भक्त सिद्धय्य नाम का एक विद्वान श्वेताम्बर शास्त्रों का जानने वाला है। उसने 'दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' यह सूत्र बनाकर एक पटिये पर लिख दिया था। एक दिन चर्या के लिए गृद्धपिच्छाचार्य मुनि वहां आये और उन्होंने उस सूत्र के पहले 'सम्यक्' शब्द जोड़ दिया। जब वह विद्वान् बाहर से लौटा और उसने पटिये पर 'सम्यक्' शब्द लगा देखा तो वह अपनी माता से मुनिराज के आने का समाचार मालूम करके खोजता हुआ उनके पास पहुंचा और पूछने लगा- ''आत्मा का हित क्या है''।

इसके बाद का प्रश्नोत्तर प्रायः वही सब है, जो सर्वार्थसिद्धि के प्रारम्भ में आचार्य पूज्यपाद ने दिया है। प्रभाचन्द्राचार्य ने सर्वार्थसिद्धि पर एक टिप्पण लिखा है और उस टिप्पण में उन अव्याकृत पदों की व्याख्या की है, जो सर्वार्थसिद्धि में छूट गये हैं। इस टिप्पण में प्रभाचन्द्र ने प्रश्नकर्ता भव्य का नाम तो सिद्धय्य ही दिया है, किन्तु कथा नहीं दी है। उक्त कथा में कितना तथ्यांश है, यह नहीं कहा जा सकता है।

श्रुतसागर सूरि ने तत्वार्थवृत्ति के प्रारम्भ में लिखा है कि किसी समय आचार्य उमास्वामी गृद्धपिच्छ आश्रम में बैठे हुए थे। उस समय द्वैपायक नामक भव्य ने वहां आकर उनसे प्रश्न किया- भगवन! आत्मा के लिए हितकारी क्या है? भव्य के ऐसा प्रश्न करने पर आचार्यवर्य ने मंगलपूर्वक उत्तर दिया- मोक्ष। यह सुनकर द्वैपायक ने पुनः पूछा- उसका क्या स्वरूप है? और उसकी प्राप्ति कैसे हो?

इसके उत्तर में आचार्य ने कहा कि यद्यपि प्रवादिजन इसे अन्य प्रकार से मानते हैं, कोई श्रद्धानमात्र को मोक्षमार्ग मानते हैं, कोई ज्ञाननिरपेक्ष चारित्र को मोक्षमार्ग मानते हैं। परन्तु जिस प्रकार औषधि के केवल ज्ञान, श्रद्धान या प्रयोग से रोग की निवृत्ति नहीं हो सकती है, उसी प्रकार केवल श्रद्धान, केवल ज्ञान या केवल चारित्र से मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती।

भव्य ने पूछा- तो फिर किस प्रकार उसकी प्राप्ति होती है? इसी के उत्तर में आचार्य ने ''सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'' यह सूत्र रचना है और इसके पश्चात् अन्य सूत्रों की रचना हुई है। ऐसी ही उत्थानिका प्रायः तत्वार्थवार्तिक में भी आई है। अतः उपर्युक्त कथा में कुछ तथ्य तो अवश्य प्रतीत होता है। इस कथा के लेखक कन्नड़ी टीका के रचयिता बालचन्द्र विक्रम की तेरहवीं शती के पूर्वार्द्ध में हुए हैं।

इस ग्रन्थ में प्रथम सूत्र में ही मोक्ष का मार्ग प्ररूपित किया गया है और अन्तिम अध्याय में मोक्ष तत्व को ही समर्पित है, यही कारण है कि प्रारम्भ से अन्त तक एक मोक्ष को लक्ष्य बनाने के कारण इस ग्रन्थ का अपर नाम मोक्षशास्त्र भी है।

पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि तत्वार्थसूत्र की उपलब्ध टीकाओं में आद्य एवं प्राचीन टीका है। इसके आरम्भ में ग्रन्थ रचना का जो संक्षिप्त इतिवृत्त निबद्ध है उसके आधार से स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि तत्वार्थसूत्रकार ने तत्वार्थसूत्र की रचना किसी आसन्नभव्य के प्रश्न के उत्तर में की है। इस भव्य का नामोल्लेख सर्वार्थसिद्धिकार ने नहीं किया। उत्तरवर्ती लेखकों ने किया है। उनका आधार क्या है, कुछ कहा नहीं जा सकता। वह अन्वेषणीय है। इतना स्पष्ट तथ्य है कि तत्वार्थसूत्र किसी आसन्नभव्य मुमुक्षु के हितार्थ लिखा गया है।

मात्र सात-आठ पृष्ठों में समाहित हो जाने वाली इस महानतम कृति के संदर्भ में कहा गया है-

दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्वार्थे पठिते सति।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुंगवैः।।

तत्वार्थसूत्र के दश अध्यायों के भाव को भलीभांति जानकर उसका पाठ करने से एक उपवास का फल प्राप्त होता है- ऐसा कथन मुनिपुंगवों अर्थात् श्रेष्ठ मुनिराजों द्वारा किया गया है।

गागर में सागर- इस सूक्ति को सार्थक करने वाला यह तत्वार्थसूत्र नामक सूत्र ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे गये जैन ग्रन्थों में सर्वाधिक प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ है। यह ग्रन्थराज देश एवं विदेश के सभी विश्वविद्यालयों और जैन समाज द्वारा संचालित परीक्षा बोर्डों के पाठ्यक्रम में निर्धारित है।

सूत्रशैली में लिखित इस होने से यहां सूत्र का तात्पर्य भी अपेक्षित है, अतः सूत्र पद की परिभाषा जयधवल नामक ग्रन्थ के अनुसार इसप्रकार जानने योग्य है-

अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद् गूढनिर्णयम।
निर्दोषं हेतुमत्तथ्यं सूत्रमित्युच्यते बुधैः।।[14]

जो थोड़े अथरों से संयुक्त हो, संदेह से रहित हो, जिसमें सार भरा हो, गूढ़ पदार्थों का निर्णय करने वाला हो, निर्दोष हो, युक्तियुक्त हो और यथार्थ हो, उसे बुधजन सूत्र कहते हैं।

तत्वार्थसूत्र का विशेष महत्व

तत्वार्थसूत्र में जिनागम की मूल तत्वमीमांसा को बहुत ही संक्षिप्त में प्रकट किया है। इसमें कुल दस अध्याय हैं और 357 सूत्र हैं। कुछ प्रतियो में सूत्रों की संख्या में कुछ अन्तर पाया जाता है, लेकिन वह नगण्य ही है, क्योंकि कुछ सूत्रों को दो बना दिया गया है और कुछ में किंचित् परिवर्तन भी हुआ है।

संस्कृत भाषा में सूत्रशैली में लिखित यह प्रथम सूत्रग्रन्थ है। इसमें जिनवाणी के चारों अनुयोगों का सार समाहित है। इसकी सबसे बड़ी महत्ता यह है कि इसमें साम्प्रदायिकता नहीं है। इसलिए इस ग्रन्थ को दिगम्बर श्वेताम्बर- दोनों ही सम्प्रदाय थोड़े से पाठभेद के अतिरिक्त समानरूप से स्वीकार करते हैं। इसकी महत्ता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि दोनों ही सम्प्रदायों के महान आचार्यों में इस पर टीकाएं लिखी हैं। पूज्यपाद, अकलंक और विद्यानन्द ने दार्शनिक टीकाएं लिखकर इस ग्रन्थ महत्व व्यक्त किया है। विद्यानन्द ने अपनी आप्तपरीक्षा में इसे बहुमूल्य रत्नों का उत्पादक, सलिलनिधि कहा है-

श्रीमत्तवार्थशास्त्राद्भुत- सलिलनिधेरिद्धरत्नोद्भवस्य,
प्रोत्थानारम्भकाले सकलमलभिदे शास्त्रकारैः कृतं यत्।

स्तोत्रं तीर्थोपमानं प्रथितपृथुपथं स्वामिमीमांसितं तत्
विद्यानन्दैः स्वशक्त्या कथमपि कथितं सत्यवाक्यार्थसिद्ध्यै।।[15]

अर्थात् प्रकृष्ट रत्नों के उद्भव के स्थानभूत श्रीमत्तत्वार्थशास्त्ररूपी अद्भुत समुद्र की उत्पत्ति के प्रारम्भकाल में महान मोक्षपथ को प्रसिद्ध करने वाले और तीर्थोपमस्वरूप जिस स्तोत्र को शास्त्रकार गृद्धपिच्छाचार्य ने समस्त कर्ममल के भेदन करने के अभिप्राय से रचा है और जिसकी स्वामी ने मीमांसा की है, उसी स्तोत्र का सत्यवाक्यार्थ की सिद्धि के लिए मुझ विद्यानन्द ने अपनी शक्ति के अनुसार किसी प्रकार व्याख्यान किया है।

तत्वार्थसूत्र जैनधर्म का सारग्रन्थ होने से इसके मात्र पाठ या श्रवण का फल एक उपवास बताया गया है, जो इसके महत्व को सूचित करता है। वर्तमान में इस ग्रन्थ को जैन परम्परा में वही स्थान प्राप्त है जो हिन्दू में गीता को, इस्लाम में कुरान को और ईसाई में बाइबिल को प्राप्त है। इस ग्रन्थ के संक्षिप्तकरण के सम्बन्ध में डॉ0 भारिल्ल का निम्न कथन दृष्टव्य है-

''तत्वार्थसूत्र नामक सूत्र ग्रन्थ में जैनदर्शन का मूल प्रतिपाद्य अत्यन्त संक्षेप में है। यद्यपि यह परम सत्य है कि सूत्र ग्रन्थ में तो संक्षिप्त कथन ही होता है, तथापि यह इतना अधिक संक्षिप्त हो गया है कि यह ग्रन्थ जैनदर्शन के मूल प्रतिपाद्य का मात्र सूची-पत्रक बनकर रह गया है। जो कुछ भी विस्तार है, वह सब टीका ग्रन्थों में ही है। टीका ग्रन्थों में भरपूर अवकाश था, अतः उनमें वह सबकुछ भरने का प्रयास किया गया है कि जिसकी अत्यन्त आवश्यकता थी।''[16]

तत्वार्थसूत्र का वर्ण्यविषय

तत्वार्थसूत्र धर्म एवं दर्शन का सूत्रग्रन्थ है। इसकी रचना वैशेषिक दर्शन के 'वैशेषिक सूत्र' ग्रन्थ के समान हुई है। वैशेषिक दर्शन के प्रारम्भ में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव-इन सात पदार्थों के तत्वज्ञान से मोक्षप्राप्ति की बात कही गई है। अतः इस सूत्रग्रन्थ में मुख्यरूप से सात तत्वार्थों का विवेचन किया गया है।

जिसप्रकार सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरुष का विचार करते हुए जगत के मूल भूत पदार्थों का विचार किया है। वेदान्त दर्शन में जगत के मूलभूत तत्व ब्रह्म की मीमांसा की गई है। न्यायदर्शन में प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान इन सोलह पदार्थों के तत्वज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति बताई गई है। इस प्रकार सभी दर्शनों का विषय ज्ञेयप्रधान या ज्ञानसाधनप्रधान अथवा चरित्रप्रधान है।

परन्तु तत्वार्थसूत्र में ज्ञान, ज्ञेय और चारित्र का समानरूप से विवेचन किया गया है। इसका प्रधान कारण यह है कि जहां वैशेषिक आदि दर्शनों में केवल तत्वज्ञान से निःश्रेयस् प्राप्ति बताई गई है वहां जैनदर्शन में सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र के समुच्चय को मोक्ष का मार्ग कहा है। तत्वार्थसूत्र के प्रथम अध्याय के द्वितीय सूत्र में जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष- इन सात तत्वों के सम्यग्दर्शन और छठे सूत्र में इनके यथार्थज्ञान को सम्यक् ज्ञान कहा है।

आचार्य उमास्वामी ने अपने ग्रन्थ तत्वार्थसूत्र में दश अध्यायों की रचना की है, जिनमें इन्हीं सात तत्वों का निरूपण किया है। प्रथम से चतुर्थ अध्याय तक जीव तत्व का, पंचम अध्याय में अजीव तत्व का, षष्ठ और सप्तम अध्याय में आस्रव तत्व का, अष्टम अध्याय में बंध तत्व का, नवम अध्याय में संवर और निर्जरा तत्वों का और दशम अध्याय में मोक्ष तत्व का वर्णन किया गया है।

तत्वार्थसूत्र की प्रमुख टीकायें

तत्वार्थसूत्र पर संस्कृत भाषा में आचार्य पूज्यपाद देवनन्दि ने सर्वार्थसिद्धि नामक वृत्ति, आचार्य अकलंकदेव ने तत्वार्थराजवार्तिक और आचार्य विद्यानन्द ने श्लोकवार्तिक नामक वार्तिक लिखे, जो आज उपलब्ध हैं। कहा जाता है कि आचार्य समन्तभद्र ने इस तत्वार्थसूत्र पर गंधहस्तिमहाभाष्य नामक भाष्य लिखा था, जो आज अनुपलब्ध है। कहते हैं कि तत्वार्थसूत्र के मंगलाचरण को आधार बनाकर लिखा गया देवागम स्तोत्र अर्थात् आप्तमीमांसा, उस गंधहस्तिमहाभाष्य का ही मंगलाचरण है।

इस मंगलाचरण रूप देवागमस्तोत्र अर्थात् आप्तमीमांसा पर भी अकलंकदेव ने आठ सौ श्लोक प्रमाण, अष्टशती नामक ग्रन्थ लिखा एवं आचार्य विद्यानन्द ने उक्त अष्टशती को गर्भित करते हुए आठ हजार श्लोक प्रमाण, अष्टसहस्री नामक महान ग्रंथ लिखा। इसके अतिरिक्त योगीन्द्र देव कृत तत्वप्रकाशिका, अभयनन्दि कृत तत्वार्थवृत्ति, भास्करनन्दि कृत सुखबोधातत्वार्थवृत्ति आदि अनेक टीकाएं संस्कृत भाषा में प्राप्त होती हैं।

हिन्दी भाषा में भी इस पर वचनिका के रूप में अनेक टीकाएं लिखी गईं। आधुनिक विद्वानों ने भी इस पर कलम चलाई है। इसप्रकार यह जैनदर्शन का सर्वाधिक लोकप्रिय सर्वमान्य सूत्र ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के दस अध्यायों में छोटे-बड़े कुल मिलाकर 357 सूत्र हैं और मंगलाचरण का एक छन्द है।

इसके नाम में मूल शब्द तत्वार्थ है। तत्वार्थों का अत्यन्त संक्षेप में प्रतिपादन होने के कारण इस ग्रन्थ का नाम तत्वार्थसूत्र रखा गया। सूत्र का अर्थ ही संक्षिप्त होता है। मूल शब्द तत्वार्थ होने से ही सर्वार्थसिद्धि नामक इसकी टीका को तत्वार्थवृत्ति, राजवार्तिक नामक वार्तिक को तत्वार्थवार्तिक एवं श्लोकों में लिखे गये वार्तिक को तत्वार्थश्लोकवार्तिक कहा गया है। इसप्रकार हम देखते हैं कि इन ग्रन्थों में तत्वार्थों का सूत्र, वृत्ति और वार्तिकों में प्रतिपादन किया गया है।

इस ग्रन्थ पर छठवीं शती में आचार्य पूज्यपाद अपर नाम देवनन्दि द्वारा उक्त सूत्रों में प्रतिपादित तत्वार्थों का विशेष स्पष्टीकरण करने के लिए बारह हजार श्लोक प्रमाण तत्वार्थवृत्ति लिखी गई है, जिसका नाम सर्व अर्थको सिद्ध करने वाली होने से सर्वार्थसिद्धि रखा गया है।

इसके बाद विक्रम की आठवीं शती में आचार्य अकलंकदेव ने उक्त तत्वार्थों का विस्तार से विशेष स्पष्टीकरण करने के लिए सोलह हजार श्लोक प्रमाण भाष्य सहित वार्तिक लिखे, जिसको तत्वार्थवार्तिक, तत्वार्थराजवार्तिक अथवा राजवार्तिक कहा गया।

तदुपरान्त विक्रम की नौंवी शताब्दी में आचार्य विद्यानन्द ने विशेष विस्तार से प्रतिपादन के लिए बीस हजार श्लोकों में भाष्य सहित वार्तिक लिखे, जिसका नाम तत्वार्थश्लोकवार्तिक रखा गया। इसे अकेले श्लोकवार्तिक नाम से भी जाना जाता है।

आचार्य कुन्दकुन्द कृत महान ग्रन्थ समयसार, प्रवचनसार और पंचास्तिकाय पर मार्मिक टीकायें लिखने वाले दसवीं शती के महान आचार्य अमृतचन्द्र ने भी तत्वार्थसूत्र पर तत्वार्थसार नामक ग्रन्थ लिखा है, जो गद्य में न होकर पद्य में है।

उक्त ग्रन्थ में भी तत्व या अर्थ का नहीं, अपितु तत्वार्थ का ही विवेचन है। इसके साथ लगा सार शब्द इस बात का सूचक है कि इस ग्रन्थ में अमृतचन्द्र के पूर्व लिखे गये तत्वार्थ प्रतिपादक सभी शास्त्रों का सार समाहित है। यद्यपि यह बात परम सत्य है, तथापि तत्वार्थसूत्र के आधार पर लिखे गये इस शास्त्र में आचार्य अकलंक देव ने तत्वार्थराजवार्तिक का विशेष आधार लिया गया है।

तत्वार्थसार अनुष्टुप छन्दों में लिखा गया है। इस में कुल 686 अनुष्टुप श्लोक हैं। इसप्रकार उपर्युक्त सभी महान ग्रन्थों का मूल आधार एक मात्र आचार्य उमास्वामी का यह तत्वार्थसूत्र ही है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. तत्वार्थमणिप्रदीप, डॉ0 हुकमचन्द, भरिल्ल, टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर, 20019
2. षट्खण्डागम, धवला टीका, जीवस्थान, काल, अनुयोगद्वार, जीवराज ग्रन्थमाला, सोलापूर
3. तत्वाथ्रश्लोक वार्तिक, आचार्य विद्यानन्दि, जीवराज ग्रन्थमला, सोलापूर, महाराष्ट्र
4. तीर्थकर भगवान महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, नेमिचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
5. सर्वार्थसिद्धि, आचार्य पूज्यपाद, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली,
6. आप्तपरीक्षा, सम्पा0-डॉ0 दरबारीलाल कोठिया, वीर सेवा मन्दिर, सरसावा सहारनपुर

फुटनोट

1. तत्वार्थमणिप्रदीप, डॉ0 हुकमचन्द, भरिल्ल, पृष्ठ- 1, पृष्ठभूमि
2. षट्खण्डागम, धवला टीका, जीवस्थान, काल, अनुयोगद्वार, पृष्ठ- 316
3. तत्वाथ्रश्लोक वार्तिक, आचार्य विद्यानन्दि, पृष्ठ-6
4. तत्वार्थसूत्र की अनेक प्रतियों के अन्त में उपलब्ध पद्य।
5. पार्श्वनाथचरित, 1/16
6. जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग-1, किरण-4, उद्धृत- तीर्थकर भगवान महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, पृष्ठ- 102
7. जैन शिलालेख संग्रह, प्रथम भाग, अभिलेख संख्या 108, पृष्ठ- 210-211
8. जैन शिलालेख संग्रह, प्रथम भाग, अभिलेख संख्या 43, पृष्ठ- 43
9. जैन शिलालेख संग्रह, प्रथम भाग, अभिलेख संख्या 105 पृष्ठ- 198
10. सर्वार्थसिद्धि प्रस्तावना, पृष्ठ- 78
11. And, Ant, XXX, p- 341, 351
12. Perrsons fourth oreport on Sanskrit Manuscripts, p- XVI
13. History of the Mediaval school of Indian Logic, p- 8 and 9
14. तत्वार्थसार वचनिका, पण्डित चेतनदास, पृष्ठ' 37
15. आप्तपरीक्षा, उपसंहार पद्य, डॉ0 दरबारीलाल कोठिया, पद्यसंख्या- 123, वीर सेवा मन्दिर, सरसावा सहारनपुर
16. तत्वार्थमणिप्रदीप, पृष्ठभूमि, डॉ0 हुकमचन्द भारिल्ल, पृष्ठ- 7

हिन्दी कविता का गन्धर्व लोक

अरविन्द कुमार अवस्थी

M.A., NET (HINDI), M.Phil., Ph.D. (JNU)

एसोसिएट प्रोफेसर 'हिन्दी', वी०श०के०च० राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डाकपत्थर, देहरादून

सारांश - गढ़वाल हिमालय के कवि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल उस स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा के शिखर कवि हैं, जिसे आचार्य शुक्ल ने स्वाभाविक स्वच्छन्दतावाद कहा है। उनकी काव्यसृष्टि एक ऐसा अद्‌भुत रंगमंच है, जिस पर प्राकृत और अतिप्राकृत शक्तियाँ एक साथ ही उतर कर अपनी क्रीड़ा करती हैं। चेतन-अवचेतन का ऐसा क्रीड़ामय लोक हिन्दी की काव्यसृष्टि में कम ही मिलता है। हिन्दी कविता में गन्धर्वों के गान सा अपूर्व माधुर्य लिए पार्थिव जगत में अपार्थिव सोमरस की सुधा बरसाती कविता खोजी जाए, तो एक ही नाम मिलेगा - चन्द्रकुँवर बर्त्वाल।

शोध पत्र - हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का चरम उत्कर्ष गढ़वाल हिमालय के अमर कवि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की कविता में पाया जाता है। परन्तु यह आश्चर्यजनक है कि साहित्य के इतिहास में उनका नाम आज भी अनुल्लिखित-सा है। इसका एक प्रधान कारण उनके काव्य का ऐतिहासिक सीमांकन प्रतीत होता है। उनका रचनाकाल छायावादी काव्यान्दोलन के लगभग मध्य से आरम्भ होकर सितम्बर 1947 में उनकी मृत्युपर्यन्त पन्द्रह वर्षों की छोटी-सी अवधि में फैला है। रचनाकाल को ध्यान में रखने के कारण उनके काव्य को जबरन 'छायावाद' और 'छायावादोत्तर' के बीच कहीं फिट करने की कोशिशें होती रही हैं। परन्तु सत्य यह है कि वे श्रीधर पाठक से आरम्भ होने वाली उस 'स्वाभाविक स्वच्छन्दतावाद' की काव्यधारा का चरम उत्कर्ष हैं, जिसके स्वरूप का लोप होने के कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'छायावाद' को अस्वाभाविक करार दे रहे थे। दुर्भाग्यवश चन्द्र का काव्यसंसार आचार्य शुक्ल के जीवनकाल में सामने न आ सका और आचार्य शुक्ल को अस्वाभाविकता के बावजूद 'छायावाद' के उसी स्वरूप को 'स्वच्छन्दतावाद' के तृतीय उत्थान का दर्जा देना पड़ा। आज इस बात की आवश्यकता है कि आचार्य नामवर सिंह के विवेचन से 'छायावाद' सम्बन्धी जो समझ आम हिन्दी पाठक का संस्कार बन गई है, उस पर चन्द्र की काव्यसृष्टि को दृष्टिगत करते हुए पुनर्विचार किया जाए।

चन्द्र की काव्यसृष्टि एक ऐसा अद्‌भुत रंगमंच है, जिस पर प्राकृत और अतिप्राकृत शक्तियाँ एक साथ ही उतर कर अपनी क्रीड़ा करती हैं। वस्तुजगत, भावजगत और मिथकीय जगत की ऐसी सघन अन्तर्क्रीड़ा कविता के रंगमंच पर और कहीं मिल पानी दुर्लभ है। उसमें केवल हिमालय पर उतरती हुई विविध ऋतुओं का सौन्दर्य, बलखाती नदियाँ, प्रभाती गान और रागारूण सन्ध्याएँ, काफलपाक्कू और हिलाँस के स्वर ही नहीं हैं, वरूण की प्रणयलीला, महिषकण्ठकिंकिणी बजाते हुए आते यम, अपने अश्वों को हाँकते सूर्यदेव, महादेव, गिरिजा आदि के साथ ही वनदेवी, वनदेवता, अप्सरियाँ, किन्नर और किन्नरियाँ भी अपना-अपना अभिनय कर रहे हैं। चेतन-अवचेतन का ऐसा क्रीड़ामय लोक हिन्दी की काव्यसृष्टि में कम ही मिलता है। 'कामायनी' इस सन्दर्भ में अवश्य अपवाद है, परन्तु रूपक की ओर झुक जाने के कारण उसमें भी मिथकों का रचनात्मक प्रयोग इतना स्वच्छन्द और भरा-पूरा नहीं है।

चन्द्रकुँवर की प्रमुख काव्यकृतियाँ 'माधवी'(1950), 'पयस्विनी'(1950), 'जीतू'(1951), 'कंकड़-पत्थर' और 'मेघनन्दिनी'(1953) हैं। इनमें से 'कंकड़-पत्थर' संग्रह की कवितायें रोमानी चेतना से यथार्थवादी चेतना की ओर संक्रमण का पता देती हैं। सारे काव्यसंग्रह उनके मरणोपरान्त आचार्य शम्भूप्रसाद बहुगुणा द्वारा प्रकाशित कराये जाने के कारण ठीक-ठीक रचनाकाल निश्चित कर पाना काफी कठिन प्रतीत होता है। 'माधवी' एक सौ बारह मुक्तकों का एक संग्रह है, जिसके अन्तर्गत 'पूर्वा' में 49, 'उत्तरा' में 41, 'मानस मंथन' में 12 तथा 'शान्तिदूत' में 10 छन्द हैं।[1] इनके क्रम से किसी प्रणयकथा की क्षीण उपस्थिति का छायाभास-सा मिलता है, परन्तु किसी भी आधार पर इसमें प्रबन्धात्मकता स्वीकार नहीं की जा सकती। 'मेघनन्दिनी' को अवश्य गीतिकथा की श्रेणी में रखा गया है। राकेश वत्स ने अपने अनुसन्धान कार्य द्वारा सिद्ध किया है कि श्रीधर पाठक के 'एकान्तवासी योगी'(1886), 'ऊजड़ ग्राम'(1889), 'श्रान्त पथिक' से प्रेमपथिक काव्यों की जो परम्परा हिन्दी में चली थी, जयशंकर प्रसाद के 'प्रेमपथिक'(1913), रामनरेश त्रिपाठी के 'मिलन'(1917), 'पथिक'(1921), 'स्वप्न'(1939), हरिऔध के 'प्रियप्रवास'(1914) तथा सुमित्रानन्दन पन्त की 'ग्रन्थि'(1928) आदि से होते हुए वह अपना चरम उत्कर्ष 'मेघनन्दिनी' में प्राप्त करती है।[2]

'पयस्विनी' तीन सौ पचास कविताओं का[3] तथा 'जीतू' एक सौ कविताओं का[4] संकलन है। 'जीतू' संग्रह में ही इसी शीर्षक की एक अति महत्वपूर्ण लम्बी कविता भी है। यह फैण्टेसी शिल्प की एक लम्बी कविता है, जिसमें कवि का अचेतन मन हिमालय के अछूते सौन्दर्य, उसकी कुमारी नदियों तथा प्राक्तन सरल चरवाहा जीवन के आद्य बिम्ब उपस्थित करता है और उसका चेतन मन सभ्यतामूलक आशयों को गूँथता हुआ उन बिम्बों का परस्पर संयोजन करता है। तीन सौ चौबीस पंक्तियों की इस लम्बी प्रगीत कविता में कुछ नैरेटिव भी मौजूद है। पात्र रूप में केवल 'जीतू' ही है। दूसरे पात्र के तौर पर उस 'छाया' को कल्पित किया जा सकता है, जिससे मिलने जाते हुए 'जीतू' को नभ की मुग्ध हवाएँ हर ले जाती हैं। नारी के मैत निर्वासन तथा निर्मल शैशव के मुख पर लगने वाले अमिट लांछन के बीच-बीच में उभरने वाले बिम्ब अवचेतन मन में दबी पापबोध-सम्बन्धी भावना का भी संकेत देते हैं तथा शैशव की निर्मल अवस्था प्राक्तन सरल चरवाहा जीवन का समानान्तर उपस्थित करती है जो औद्योगिक नगरीकरण के सम्पर्क से सदा के लिए भ्रष्ट हो गई है। प्राक्तन सरल

चरवाहा जीवन और आधुनिक औद्योगिक नगरीय जीवन के 'जक्स्टापोजीशन'(आमने-सामने रखना) की बहुप्रयुक्त साहित्यिक युक्ति का भी कुशल प्रयोग इसमें मिलता है।

'पयस्विनी' और 'जीतू' संग्रह की कतिाओं में हिमालय को अनेक रूपों और रंगों में उद्भासित किया गया है। शुद्ध और भावाक्षिप्त दोनों ही तरह के बिम्बों में उन्होंने हिमालयी प्रकृति को चित्रित किया है। उनके प्रकृतिचित्रों में वायवीयता न होकर यथार्थपरकता और आंचलिकता है। छायावाद की तरह सार्वभौम प्रकृति को चित्रित करने के बजाय उन्होंने उसके देशकालसम्बद्ध रूप को चित्रित किया है। उनमें भावावेग के स्थान पर त्रासद बोध और कलात्मक सधाव पाया जाता है। विशेषण विपर्यय उनके काव्य में अधिक नहीं है। जब वह रूपचित्र रचते समय विशेषण के तौर पर रंगों का उपयोग करते हैं तो दूरारूढ़ कल्पना के बजाय एक चित्रकार की सी यथार्थपरक परन्तु सूक्ष्म कल्पना का प्रयोग पूरे सधाव के साथ स्वाभाविक रूप से करते हैं। पहाड़ी नदी के ठेठ यथार्थपरक रूपों के अनगिनत चित्र उनके रचनालोक में मिलते हैं। 'पयस्विनी' संग्रह की 'हिमवन्त', 'सामगान', 'हिमप्रात', 'हिमवान', 'हिमस्तबक', 'हिमछाया', 'रैमासी', 'प्रत्यूषी हिमालय', 'बीदो हिमालय', 'हिमचाँदनी', 'हिममाधुरी' जैसी न-जाने कितनी कवितओं में छाई हिममाधुरी की सुषमा देखते ही बनती है। गोविन्द चातक लिखते हैं,'' चन्द्रकुँवर की कविता में हिमालय के विविध चित्र हैं। हिमालय पर लिखी इतनी अधिक कविताएँ किसी और कवि के नाम से नहीं मिलतीं और भावों का इतना वैविध्य भी अन्यत्र नहीं दिखता।''[5]

निष्कर्ष - चन्द्र के रचनालोक का हिमालय केवल नैसर्गिक और भावात्मक वैविध्य की दृष्टि से ही समृद्ध नहीं है, प्राक्तन वैदिक आभाओं से भी मण्डित और संस्कारित है। गढ़वाल के लोकजीवन के विश्वास उसमें पूरी तरह मुखरित हुए हैं। पहाड़ के स्तब्ध हृदय को चीर कर बहते हुए झरनों के निर्मल जल में दिखाई देते वनपरियों के मनोहर मुख, भोजपत्रों के जंगलों में चन्द्रिकास्नान करते किन्नर और किन्नरियाँ, हिमशिखरों पर उड़ते यज्ञधूम से सुरभित पवन में बहती हुई गुंजरित मन्त्रों की सूक्ष्म स्वरलहरियाँ, उदयगिरि शिखरों पर सजते हुए सूर्यदेव के अरूण अश्व, हिमशिखरों पर से सन्ध्या के समय छन कर आने वाली किन्नरियों के कोमल पदनर्तन की रूणझुण, स्वीलीघाम तापने के लिये क्षण भर को यमलोक से आई हुई प्रसूता स्त्री तथा मानस के तटवासी पक्षियों का उन्मन चन्द्रिकास्नान जैसे अनगिनत बिम्बों की प्रचुरता से चन्द्र का रचनालोक जगमगा रहा है। सच तो यह है कि कवि का अचेतन मन उस प्राक्तन जगत की आदिम शक्तियों और रूपों का ऐसा विशाल क्रीड़ागार है, जिसके भीतर से हजारों साल की जातीय स्मृति ऐतिहासिकता का अतिक्रमण करके जीवन्त परम्परा के रूप में प्रवाहित हो रही है।

बीज शब्द - स्वाभाविक स्वच्छन्दतावाद, छायावाद, गीतिकथा, लम्बी कविता, आद्य बिम्ब।

सन्दर्भ सूची

1. विमल, गंगाप्रसाद. चन्द्रकुँवर बर्त्वाल संचयिता, दिल्ली: विजया बुक्स प्रकाशन, 2012
2. वत्स, राकेश. प्रेमपथिक परम्परा में चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की मेघनन्दिनी, दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 1996, पृ0सं 06
3. बर्त्वाल, चन्द्रकुँवर. पयस्विनी, प्रकाशक - शम्भूप्रसाद बहुगुणा, लखनऊ: सार्थी प्रेस, 1950
4. बर्त्वाल, चन्द्रकुँवर. जीतू, प्रकाशक - शम्भूप्रसाद बहुगुणा, लखनऊ: सार्थी प्रेस, 1951
5. चातक, गोविन्द. लेख: सौन्दर्यबोध पीड़ा और चेतना के चन्द्रकुँवर, सम्पादक - जगमोहन आजाद, पुस्तक: प्रकृति के कवि चन्द्रकुँवर, देहरादून: विनसर प्रकाशन, 2012, पृ0सं0 52

बाल साहित्यकार दीनदयाल शर्मा जी के बाल काव्य मे प्रेरणा के स्तर

खरात विलास पांडुरंग

शोध -छात्र, संत रामदास कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, घनसावंगी, जिला-जलाना

डॉ० जाधव सुभाष दलसिंह

शोध निर्देशक, (सहयोगी प्राध्यापक), संत रामदास कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, घनसावंगी, जिला-जलाना

बाल साहित्य का सृजन करना आसान नहीं होता, बच्चों की दृष्टि से महसूस कर सृजन किया जाता है और बच्चों का मन तो सहज सरल निष्कपट और भोला होता है ऐसा ही मन दीनदयाल शर्मा जी का है।अखिल भारतीय स्तर पर बाल साहित्यकारों में अपनी पहचान बनाने वाले दीनदयाल शर्मा जी राजस्थान हनुमानगढ़ के निवासी हैं। आप हिंदी और राजस्थानी दोनों भाषाओं में बाल साहित्य का सृजन करते हैं। तीन दर्जन से भी अधिक पुस्तकों के रचयिता व कई राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित दीनदयाल शर्मा जी पाशविक पत्रिका श्टाबर टोलीश का संपादन कार्य भी संभालते हैं। कहानी, कविता और नाटक के साथ-साथ बच्चों के लिए अच्छी पहलियाँ भी उन्होंने खूब लिखे हैं। आपके अब तक प्रकाशित हिंदी बाल साहित्य निम्नलिखित है -

बाल कहानियां

- चिंटू पिंटू की सूझ (1987)
- पापा झूठ नहीं बोलते (1997)
- चमत्कारी चूर्ण (2003)
- मित्र की मदद(2016

शिशु गीत

- कर दो बस्ता हल्का (1998)
- सूरज एक सितारा है (2000)
- चूं चूं (2010)
- नानी तू है कैसी नानी (2010)
- गिली- गिली गप्पा (2014)
- अगड़म बगड़म(2014)
- चिड़िया के गीत सुनाए (2016) रसगुल्ला (2016)

एकांकी

- सपने (2007)
- जंग जारी है (रेडियो नाटक 2017)
- इक्यावन बाल पहेलियां (2009) राजस्थानी बाल साहित्य :एक दृष्टि (शोध आलेख 2009)

बाल साहित्यकार के रूप में दीनदयाल जी की सोच बच्चों के मन को गहराई से समझने वाली है मनोरंजन और रोचकता के साथ-साथ जीवन से जुड़ी सीधी, सरल सीख उनके बाल साहित्य के माध्यम से मिलता है। उनकी बाल कविताएं और कहानियां बच्चों में चेतन जगाते हैं ,प्रेरणा देते हैं ।साथ ही बाल मन की जिज्ञासाओं को भी समेटे हुए हैं। बच्चों के मन में होने वाले द्वंद्व और प्रश्नों को उकेरे उनकी कई रचनाएं प्रभावित करती हैं। उन्होंने अपनी कविताओं

के माध्यम से पर्यावरण को दूषित न करने की और उसे स्वच्छ सुंदर रखने की सीख भी दी है। साथ ही उनकी कविताओं में देश भक्ति राष्ट्र प्रेम का भी संदेश मिलता है। गंभीर हो यहां सरल, हास्य बाल मनोविज्ञान पर दीनदयाल जी की पकड़ चकित करती हैं। उन्होंने गीतों के माध्यम से बच्चों को ज्ञानवर्धक संदेश दिया है। आपके शिशु एवं बाल गीतों के माध्यम से निम्नलिखित शिक्षा बच्चों को प्राप्त होती हैं-

- चरित्र का विकास
- सहज आनंद
- आंतरिक एवं बाहरी व्यक्तित्व को उच्च बनाने की शिक्षा
- सृजनात्मकता को बढाने की प्रेरणा
- पशु- पक्षी, प्रकृति अन्य कई वस्तुओं की जानकारी व गीत गुनगुनाने की शैली
- शिक्षा एवं खेल का महत्व
- राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय त्योहार
- महान पुरुषों की व्यक्तित्व की जानकारी
- समाजिक संबंधों का विकास
- स्व मूल्यांकन
- बड़े वृद्धों के प्रति आदर
- कृषि एवं किसान का महत्व
- त्याग का सम्मान
- आत्मनिर्भर बनना
- संवेदनशील होना
- जीवन में सहयोग देना
- कर्तव्य ईमानदारी का महत्व
- वैयक्तिक विचारों का विकास
- भाईचारा, प्रेम ,विश्वास ,मित्रता
- चुनौतियों का सामना करना आदि इस तरह इनके बाल गीत एवं शिशु गीतों के माध्यम से उपरोक्त सभी विचारों की शिक्षा प्राप्त होती है।

इस आलेख मेदीनदयाल शर्मा जी के प्रमुख बाल गीत एवं शिशु गीतों में अभिव्यक्त प्रेरणा, प्रोत्साहन, उत्साह-उमंग, प्रगति से संबंधित गीतों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। बच्चों में सृजनात्मकता या रचनात्मक गुण बढ़ाने के लिए कवि 'गीत बनाएं' गीत मे लिखते हैं-

बिस्तर में लेटे -लेटे ही,
आओ कोई गीत बनाएं ।
नहीं आए जब कोई गीत तो,
उल्टे - सीधे शब्द सजाएं। (गिली-गिली गप्पा, 26)

यूं तो बच्चों को हमेशा पढ़ना -लिखना पसंद नहीं आता है इसीलिए उनको पढ़ने की सलाह देते हुए 'बगिया के फूल' कविता में लिखते हैं -

कंप्यूटर में दुनिया सारी,
हम भी जाने दुनियादारी।
कभी खेल कभी ड्राइंग बनाएं,
ड्रामा करें कभी डांस दिखाएं।
सारे मिलकर दौड़े आएं,
पढ़ने से फिर नां कतराएं।
ऐसा कोई बने स्कूल,
हम बच्चे बगिया के फूल।।(वही28)

'अक्कड़ बक्कड़' शिशु गीत में दीनदयाल जी एकता का महत्व समझाते हैं-

सारे मिलकर हो जाएँ एक
एक-एक मिल बनेंगे ताकत
ताकत सफलता लाएगी
लाएगी खुशियां हर घर- घर
घर -घर दीप जलाएगी ।। (वही17)

बचपन से ही बच्चों को समय का महत्व बताना जरूरी है, अगर वह समय से अपना काम करेंगे, उठेंगे- बैठेंगे, भोजन करेंगे तो जीवन में एक सफल व्यक्ति बनेंगे। 'मुर्गी की सीख' शिशु गीत के माध्यम से सभी बच्चों को यही संदेश देते हैं-

कब से जगा रहा हूं तुमको,
तू क्या मेरा मुवक्किल है।
समय पर सोना समय पर जगना,
जो भी करेगा समय पर काम।
समय बड़ा बलवान जगत में
समय करेगा उसका नाम।।

बच्चों के लिए मां अनमोल उपहार है। उसका त्याग, प्रेम ममता के सामने कै वस्तु नही। उसका कर्ज उतारना नामुमकिन है। कवि मां कविता में लिखते हैं-

कैसे तेरा कर्ज चुकाऊँ
मैं तो अपना फर्ज निभाऊँ
तुझ पर मैं कुर्बान,
मां तू बहुत महान।।(वही 6)

नया साल कविता में तो पूरी प्रेरणा से भरी हुई है इसमें कभी जातीय भेदभाव को त्यागने के लिए कहते हैं दिनभर प्रेम प्यार बांटने का संदेश देते हैं और लिखते हैं-

तजें बुराई भीतर कि हम,
दृढ़ संकल्प हमारे
दुख सुख को अपनाएं मिलकर, सबके काज संवारे।
नया साल फैलाता हरदम,
ठंडी मस्त बयारा ।
भला ही सोचें, करें भलाई
जग में होगा नाम
सज्जनों ने आजन्म किया है
हरदम अच्छा काम।
नया साल बतलाता हमको, सज्जनता का सार।। (वही, 8)

'बापू जी के बंदर' कविता के माध्यम से कवि ने बच्चों को बुरा ना सुनने की बुरा ना देखने की और बुरा ना बोलने से संदेश दिया है-

बापू गांधी जी के बंदर
तीनों मेरे मन के अंदर
पहला बंदर कहता है,
बुरा मत सुनो ।
दूजा बंदर कहता है
बुरा मत देखो ।

तेजा बंदर कहता है,

बुरा मत कहो । (नानी तूं है कैसी नानी, 6)

इन्हीं को अपने साथी बना कर अपने भविष्य को उज्वल बनाने तथा ऊंचाइयों तक ले जाने के लिए कहते हैं।

बच्चों का मन बहुत ही कोमल होता है इसीलिए उन्हें बचपन से ही अच्छे संस्कार, गुण देना चाहिए। सच-झूठ में अंतर, परोपकार जीवन, हमेशा दूसरों के लिए भला सोचना आदि विचारों को उनके साथ मिलजुल कर बांटना चाहिए समझाना भी चाहिए। 'भलाई' कविता के माध्यम से कवि ने यही संदेश दिया है-

आपस में हम सब हैं भाई,
नहीं करें हम कभी लड़ाई ।
प्रेम मधुरता का रस घोलें,
एक दूजे से मीठा बोलें
आओ मिलकर बातें करें हम
आपस में बांटे खुशियां गम (वही 7)

'पेड़' कविता के माध्यम से कवि ने पेड़ का महत्व और उसे क्यों नहीं काटना चाहिए इसका ज्ञान दिया है। फल, फूल हवा देनेवाली पेड हम सबके लिए जीवन देनेवाला कल्पतरु है। निस्वार्थ भाव से हम हब की सेवा करता है हमें भी उसके जैसा बनना चाहिए-

जीवन के सिंगार पेड़ है
जीवन के आधार पेड़ हैं
बीमारों को दवा यह देते ,
प्राणवायु औजार पेड़ हैं
रबड़, कागज ,लकड़ी देते
पक्षियों के घर बार पेड़ हैं
शीतल छाया फल देते हैं।
कितने यह दातार पेड़ हैं।
खुद को समर्पित करने वाले,
ईश्वर के अवतार पेड़ हैं। (वही 21)

'जीवनदाता पेड' के माध्यम से बच्चों को पेड़ के जैसे निडर बनने के लिए कहते हैं जीवन में कितनी भी समस्याएं उसका सामना करने के लिए कहते हैं। 'जय जवान जय किसान' कविता के माध्यम से कवि बच्चों को देश भक्ति और वीरता का महत्व समझाते हैं। स्वतंत्रता सेनानी जैसे निडर बनने के लिए कहते हैं। त्याग बलिदान का महत्व समझाते हैं। महान पुरुषों का परिचय करवाते हैं। और जवान व किसान का हमारे जीवन में क्या महत्व है उसे मान सम्मान क्यों देना चाहिए इसे भी समझाते हैं-

राजगुरु, सुखदेव भगत सिंह
सच्चीकी शान है,
खतरों से ना डरे कभी ये
निडरता पहचान है।।
जय जवान बोल जय किसान बोल
जय जवानबोल जय किसान बोल
अन्न उपजाएँ खुशियां लाएं,
हम भारत की आन हैं,
मेहनतन से न डरने वाले,
हम मजदूर किसान हैं।
जय जवान जय किसान बोल
जय जवान जय किसान बोल(वही 25)

निष्कर्षः

इस प्रकार बहुआयामी व्यक्तित्व के दीनदयाल शर्मा जी ने अपने बाल साहित्य के माध्यम से बाल मनोविज्ञान पर आधारित रचनाओं का सृजन किया है और सरल सुबोध प्रेरक उद्‌बोधन मनोरंजक रचनाओं का समावेश आपकी बालगीतों मे मिलता है। कवी ने सभी आयु वर्ग के बच्चों की अभिरुचि, प्रवृत्ति, प्रकृति को ध्यान में रखते हुए भाव, भाषा, शैली की दृष्टि से उत्कृष्ट शिशु गीतों का बाल गीतों की रचना की है।

बच्चों को प्रेरणा देना आगे बढ़ाना अपनी संस्कृति, संस्कार, महापुरुषों की त्याग बलिदान का पहचान करवाना ही बाल साहित्य का मूल उद्देश्य होता है। दीनदयाल शर्मा जी की बाल काव्य पाठकों को निरंतर प्रेरणा, आगे बढ़ने की हिम्मत और प्रकृति की पहचान भी करा रहे हैं। बच्चों में प्रेम, देशभक्ति, धैर्य, विश्वास और वीरत्व जगाने का प्रयास शिशु गीतों के माध्यम से किया गया है।

संदर्भ पुस्तकें

1. नैतिक विकास की शिक्षा, जमुनालाल बायती
2. गिली –गिली गप्पा ,दीनदयाल शर्मा, बोधी प्रकाशन, 2014
3. अगड़म बगड़मदीनदयाल शर्मा, बोधी प्रकाशन, 2014

आजमगढ़ मण्डल में पंजीकृत कारखाने, लघु औद्योगिक इकाइयाँ, उनमें कार्यरत व्यक्ति तथा औद्योगिक पिछड़ेपन के कारण एवं उनका प्रबंधन

अक्षय वर्मा

शोध छात्र, भूगोल विभाग, का.सु. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या (उ.प्र.)

डॉ० जैशराज शुक्ल

शोध निर्देशक, भूगोल विभाग, का.सु. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या (उ.प्र.)

सारांश

इस पृथ्वी का मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सदैव उपयोग करता रहा है। वह प्रकृति से वस्तुओं को प्राप्त कर अपनी आवश्यकता अनुरूप परिष्कृत करता है। प्राकृतिक वस्तुओं के स्वरूप परिष्करण की प्रक्रिया उद्योगों के माध्यम से होता है। प्रस्तुत अध्ययन मण्डल आजमगढ़ में पंजीकृत कारखाने, लघु औद्योगिक इकाईयों, उनमें कार्यरत व्यक्ति तथा औद्योगिक पिछड़ेपन के कारण एवं प्रबन्धन से सम्बन्धित है। वर्तमान समय में मण्डल में कुल 428 पंजीकृत कारखानें तथा 1629 लघु औद्योगिक इकाईयाँ संचालित हैं। जिसमें क्रमशः 2537 एवं 8106 व्यक्ति कार्यरत हैं। मण्डल औद्योगिक दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ क्षेत्र है। औद्योगिक पिछड़ेपन के लिए अवस्थापनात्मक सुविधाओं की कमी, उद्योगों की रूग्णता, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में घाटा, पूँजी का अभाव, कच्चे माल की अनुपलब्धता, उत्पादित वस्तु की गुणवत्ता में कमी तथा सरकार की असहयोगात्मक नीतियाँ आदि उत्तरदायी कारक हैं। मण्डल में औद्योगिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए महत्वपूर्ण सुझाव एवं उचित प्रबन्धन पर जोर दिया गया है।

मूल शब्द- पंजीकृत कारखानें, लघु औद्योगिक इकाईयाँ, औद्योगिक पिछड़ापन, अवस्थापनात्मक सुविधा, प्रबन्धन।

किसी क्षेत्र विशेष में भारी मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन अथवा बड़े पैमाने पर सेवा प्रदान करने के मानवीय कार्य को उद्योग का नाम दिया जाता है। उद्योगों के द्वारा ही हमें उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद कम दामों में उपलब्ध होते हैं जिसके फलस्वरूप लोगों के रहन-सहन के स्तर में सुधार होता है और जीवनशैली सुविधा युक्त होती चली जाती है। वर्तमान समय में मण्डल में कुल 428 पंजीकृत कारखाने तथा 1629 लघु औद्योगिक इकाइयाँ चल रही हैं। मण्डल में सर्वाधिक पंजीकृत कारखाने लालगंज विकासखण्ड में हैं जिनकी संख्या 60 है तथा इसमें 420 व्यक्ति कार्यरत हैं।

तालिका संख्या - 01: आजमगढ़ मण्डलः पंजीकृत कारखानें, लघु औद्योगिक इकाईयाँ एवं उनमें कार्यरत व्यक्ति, वर्ष 2018-19

क्रमांक	*विकासखण्ड*	*पंजीकृत कारखाने*		*लघु औद्योगिक इकाईयाँ*	
		संख्या	*कार्यरत व्यक्ति*	*संख्या*	*कार्यरत व्यक्ति*
1.	अतरौलिया	30	180	30	180
2.	कोयलसा	10	40	10	40
3.	अहिरौला	13	52	13	52
4.	महाराजगंज	11	55	11	55
5.	हरैया	12	60	12	60
6.	विलरियागंज	10	45	10	45
7.	अजमतगढ़	23	115	23	115
8.	तहबरपुर	20	130	20	130
9.	मिर्जापुर	3	10	3	10

10.	मोहम्मदपुर	5	25	5	25
11.	रानी की सराय	10	45	10	45
12.	पल्हनी	30	150	30	150
13.	सठियांव	40	200	40	200
14.	जहानागंज	5	30	5	30
15.	पवई	0	0	0	0
16.	फूलपुर	20	120	20	120
17.	मार्टीनगंज	5	25	5	25
18.	ठेकमा	10	20	10	20
19.	लालगंज	60	420	60	420
20.	मेहनगर	30	150	30	150
21.	तरवां	20	100	20	100
22.	पल्हना	3	15	3	15
23.	दोहरीघाट	0	0	10	22
24.	फतेहपुर मण्डाव	0	0	15	42
25.	घोसी	0	0	20	44
26.	बड़राव	0	0	10	15
27.	कोपागंज	0	0	10	26
28.	परदहा	0	0	83	215
29.	रतनपुरा	0	0	15	33
30.	मुहम्मदाबाद गोहना	0	0	30	73
31.	रानीपुर	0	0	19	53
32.	सीयर	0	0	35	200
33.	नगरा	0	0	45	325
34.	रसड़ा	0	0	65	452
35.	चिलकहर	0	0	25	180
36.	नवानगर	0	0	35	170
37.	पन्दहा	0	0	35	210
38.	मनियार	0	0	50	260
39.	बेरुआरबारी	0	0	20	115
40.	बाँसडीह	0	0	60	415
41.	रेवती	0	0	15	75
42.	गड़वार	0	0	25	150
43.	सोहांव	0	0	25	142
44.	हनुमानगंज	0	0	105	535
45.	दुबहड़	0	0	40	240
46.	बेलहरी	0	0	20	180
47.	बैरिया	0	0	60	345
48.	मुरली छपरा	0	0	40	210
	मण्डल	**428**	**2537**	**1629**	**8106**

स्रोत- जिला सांख्यिकीय पत्रिका, आजमगढ़ मण्डल, 2017-18।

इसके बाद दूसरे स्थान पर सर्वाधिक पंजीकृत कारखाने सठियांव विकासखण्ड में है जिनकी संख्या 40 है तथा इस में कार्यरत व्यक्तियों की संख्या 200 है। मण्डल में तीसरे स्थान पर सर्वाधिक पंजीकृत कारखाने तीन विकासखण्डों अतरौलिया, पल्हनी एवं मेहनगर में है जिनमें सभी की संख्या 30 है तथा इसमें कार्यरत व्यक्तियों की संख्या क्रमशः 180, 150 एवं 150 है। इसके बाद मण्डल में अन्य विकासखण्डों यथा- कोयलसा में 10, अहिरौला में 13, महाराजगंज में 11, हरैया में 12, विलरियागंज में 10, अजमतगढ़ में 23, तहबरपुर में 20, मिर्जापुर में 3, मोहम्मदपुर में 5, रानी की सराय में 10, जहानागंज में 5, फूलपुर में 20, मार्टीनगंज में 5, ठेकमा में 10, तरवा में 20 तथा पल्हना में 3 पंजीकृत कारखाने हैं।

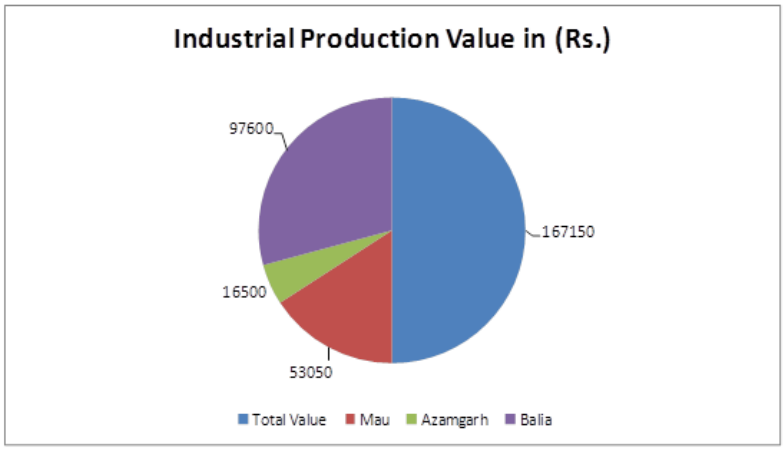

Fig. 1

पंजीकृत लघु औद्योगिक इकाइयों में सर्वाधिक इकाइयाँ 105 हनुमानगंज विकासखण्ड में है जिनमें 535 व्यक्ति कार्य कर रहे हैं। दूसरे स्थान पर सर्वाधिक पंजीकृत लघु औद्योगिक इकाइयों 83 परदहा विकासखण्ड में है जिनमें कुल 215 व्यक्ति कार्यरत हैं। तीसरे स्थान पर सर्वाधिक लघु औद्योगिक इकाइयाँ 65 रसड़ा विकासखण्ड में है जिनमें 452 व्यक्ति कार्यरत हैं। शेष विकासखण्डों के लघु औद्योगिक इकाइयों एवं उन में कार्यरत व्यक्तियों की संख्या को तालिका संख्या 01 में दर्शाया गया है।

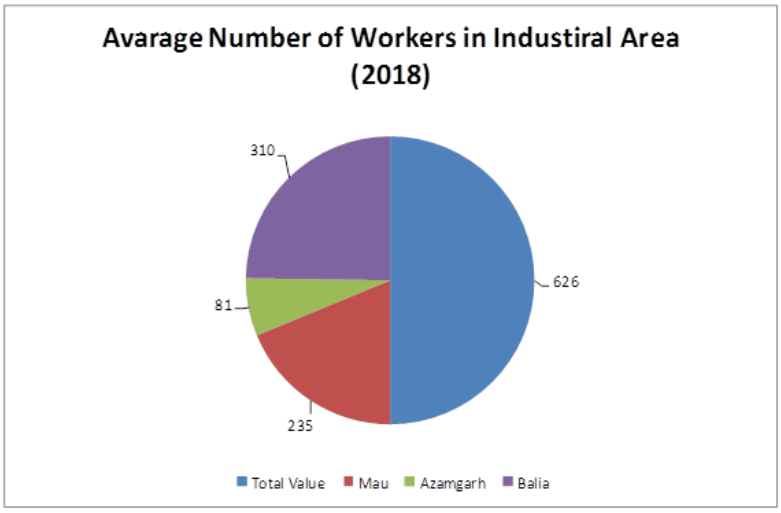

Fig. 2

मण्डल के औद्योगिक पिछड़ेपन के कारण

अध्ययन क्षेत्र मण्डल आजमगढ़ औद्योगिक रूप से काफी पिछड़ा हुआ क्षेत्र है। यहाँ पर औद्योगिक विकास की गति बहुत ही धीमी है। जिसके लिए निम्न कारण जिम्मेदार हैं-

1. अवस्थापनात्मक सुविधाओं की कमी- मण्डल में अवस्थापनात्मक सुविधाओं की स्थिति काफी दयनीय है। सर्वाधिक विकट समस्या ऊर्जा की कमी है। मण्डल में जब भी विद्युत की माँग आपूर्ति की तुलना में अधिक होती है तो विद्युत कटौती के शिकार सर्वप्रथम औद्योगिक क्षेत्र ही होता है। इसी प्रकार जनपदों में रेल परिवहन की उचित व्यवस्था तो है परन्तु उनकी वहन क्षमता काफी कम है जबकि अध्ययन क्षेत्र के सड़क परिवहन की स्थित भी काफी खराब है।

2. उद्योगों की रूग्ण अवस्था-अध्ययन क्षेत्र में अवस्थित अधिकांश निजी क्षेत्र के उद्योगों में औद्योगिक व्याधि की समस्या व्याप्त है। पुराने उद्योग एवं कारखाने जैसे- वस्त्र निर्माण, चीनी एवं अधिकांश लघु कल कारखानों में यह समस्या बड़े पैमाने पर व्याप्त है। अधिकांश निजी क्षेत्र के उद्योगपति इन कारखानों का आधुनिकीकरण नहीं करवा पाते हैं परिणाम स्वरूप इनमें घाटा होता है और ये बंद हो जाते हैं।

3. सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में घाटा-निजीकरण उदारीकरण के पूर्व क्रमिक पंचवर्षीय योजनाओं में सरकार की औद्योगिक नीति के अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों में विनियोग बढ़ता गया है, परन्तु इन कारखानों से संतोषप्रद लाभ नहीं प्राप्त हो रहा है जिसके कारण भावी उद्योगों में विनियोग तथा धनाभाव होता रहा। इसका प्रमुख कारण लालफीताशाही एवं अकुशलता माना जाता है जिससे इनकी उत्पादकता कम होती जाती है तथा लागत बढ़ जाता है।

4. पूँजी का अभाव-अध्ययन क्षेत्र में उद्योगों के लिए सबसे बड़ी समस्या पूँजी की है। बिना पूंजी के ना तो उद्योगों का विकास किया जा सकता है और न ही नये उद्योगों को लगाया जा सकता है।

5. औद्योगिक कच्चे माल का अभाव-मण्डल के प्राय: समस्त वृहद एवं मध्यम आकार के उद्योगों के लिए कच्चा माल दूर-दूर के क्षेत्रों से मंगाया जाता है जिसमें पूंजी तथा समय दोनों का व्यय अधिक होता है। इस प्रकार मण्डल में उद्योगों के लिए कच्चा माल आसानी से उपलब्ध नहीं हो पाता है।

6. उत्पादित वस्तु की गुणवत्ता में कमी-मण्डल के उद्योगों की सबसे बड़ी समस्या यह भी है कि दिन-प्रतिदिन इनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की गुणवत्ता में कमी आ रही है। इसका प्रमुख कारण सरकारी नीतियाँ तथा कंपनियों का अधिक लाभ कमाने का दृष्टिकोण है।

7. सरकार की असहयोगात्मक नीतियाँ-सरकारी सहयोग एवं नीतियों के अभाव में उद्योगों का विकास संभव नहीं है। आजमगढ़ मण्डल के उद्योगों के सामने भी सरकारी नीतियाँ प्रमुख समस्या है। सरकार के असहयोगात्मक रवैये के फलस्वरूप मण्डल के अधिकांश उद्योग बंद हो गए हैं।

मण्डल के औद्योगिक विकास हेतु उचित प्रबंधन

- मण्डल में औद्योगिक विकास के लिए कच्चे माल के प्रबंधन पर ध्यान दिया जाए।
- अध्ययन क्षेत्र के कारखानों में उच्च प्रौद्योगिकी का प्रयोग हो तथा अनुसंधान कार्य किए जाए।
- पूँजी की समस्या से ग्रस्त उद्योगों के लिए सरकार की तरफ से ऋण की व्यवस्था की जाये।
- विद्युत कटौती की समस्या से त्रस्त उद्योगों के लिए सरकार को कारगर कदम उठाए उठाने होंगे।
- उत्पादित वस्तुओं की गुणवत्ता पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।
- अध्ययन क्षेत्र में यातायात एवं सड़कों के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. Kumar, Arvind (2006) : "Industrial Pollution : Problems and Solution", Daya Publication, New Delhi.
2. Mahesh, Ram (2012) : "Resource Utilisation and Conservation in District Ambedkar Nagar", unpublished Ph.D. Thesis, Avadh University Faizabad.
3. Kaushik, S.D. (2005) : "Geography of Resources", Rastogi Publication, Meerut.
4. Sharma, R.L. : "Geography of Conservation of Resources" (in Hindi) Kitab Ghar, Kanpur.
5. Agrawal, S.K. (1996) : "Industrial Environment", A.P.H. Publication Company, New Delhi.

बौद्ध काल में वर्ण एवं जाति व्यवस्था

डॉ० रजनीकान्त राय

सहायक प्राध्यापक, श्यामा प्रसाद मुखर्जी राजकीय महाविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्रयागराज।

भूमिका- छठी शताब्दी ई.पू. का काल भारत के लिए ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए सामाजिक क्रान्ति का काल रहा है। वैदिक धर्म के अलावा नये धर्म समाज को अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे। यह एक संघर्ष का काल था। इसी पृष्ठभूमि में बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। इस काल में ब्राह्मण-क्षत्रिय में, राजतंत्र एवं गणतंत्र में, आर्यो तथा आर्येत्तर जातियों के बीच संघर्ष ने धार्मिक क्रान्ति को जन्म दिया। उत्तर वैदिक कालीन सामाजिक परिस्थितियों ने इस क्रान्ति के लिए महत्वपूर्ण भूमिका बनाई। जाति प्रथा की कठोरता, कर्मकाण्डों की बहुलता, हिंसामय यज्ञों का आधिक्य, बहुदेववादजन्य पारस्परिक वैम्नस्य, विविध धार्मिक आडम्बर आदि इस क्रान्ति के प्रमुख कारण थे। ईसा पूर्व छठी शताब्दी से द्वितीय शताब्दी ई0 तक का काल प्राचीन भारतीय सामाजिक-आर्थिक दृष्टिकोण से काफी महत्वपूर्ण है। इसी काल में प्राचीन भारतीय सामाजिक-आर्थिक जीवन के मूल आधार और विशेषताएं आकार ग्रहण करती हैं।

एक ओर सैन्धव नगर सभ्यता और दूसरी ओर ग्रामीण एवं धार्मिकता प्रधान वैदिक संस्कृति की सम्मिलित बुनियाद पर प्रतिष्ठित एवं विकसित उत्तरकालीन प्राचीन भारतीय समाज एवं सभ्यता का स्वरूप ईसा पूर्व छठी शताब्दी में स्पष्ट होता है। जन से जनपद, जनपद से महाजनपदों का उत्कर्ष हो चुका था। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था धीरे-धीरे जाति-व्यवस्था की तरफ अग्रसर हो रही थी। प्राचीन भारतीय सामाजिक जीवन में वर्ण एवं जाति व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वर्ण-व्यवस्था के सैद्धान्तिक पक्ष ऋग्वेद के पुरूषसूक्त' पर आधारित होते हुए भी परवर्ती कालीन साहित्य में समाज व्यवस्था की कुछ अन्य विशेषताओं की व्याख्या उपस्थित करने की प्रवणता मिलती है। इससे यह स्पष्ट है कि विराट पुरूष के चार अंगों से चार वर्ण की उत्पत्ति के सरलीकृत सिद्धान्त बहुत से विचारकों के दृष्टिकोण में सामाजिक वास्तविकता को परिभाषित करने में पर्याप्त नहीं लगता था। महर्षि भृगु ने शिष्य भारद्वाज से कहा कि प्रारम्भ में समाज में केवल एक ही वर्ण था, लेकिन आगे चलकर रंग के आधार पर यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार भागों में विभाजित हो गया। ब्राह्मणों का रंग श्वेत, क्षत्रिय का लोहित, वैश्य का पीत और शूद्र का श्याम।[1] रंग की भिन्नता को सिर्फ दैहिक न मानकर इसको गुण के प्रतीक के रूप में चित्रित करने की प्रवृत्ति भी मिलती है। ब्राह्मण का श्वेत रंग पवित्रता, क्षत्रिय का लोहित (लाल) रंग बल वैश्य का पीत (पीला) रंग धन एवं जीवनदायक सामग्री और शूद्र का असित (काला) अपवित्रता का प्रतीक माना गया। इस प्रकार पुरूषसूक्त के सिद्धान्त को वर्ण (रंग) गत और गुणगत (सत्व, रज, तम) व्याख्या करने का प्रयास स्पष्ट है। गुण के साथ-साथ कहीं-कहीं कर्म सिद्धान्त को भी जोड़ दिया गया।[2] इन कथनों में यह व्यक्त करने का प्रयास मिलता है कि रंग ही वर्ण विभाजन का आधार नहीं है, बल्कि वास्तविक आधार गुण और कर्म है, और रंगों पर आधारित ये गुणात्मक अभिव्यक्तियाँ मनुष्य की त्वचा के रंग को नहीं उद्भाषित करती, बल्कि उनके कर्म प्रधान को। सर्वप्रथम ब्राह्मण ही समाज में थे, बाद में अपने कर्त्तव्यों की विभिन्नता यानि गुण एवं कर्म के कारण कई वर्ण हो गए।[3] सत्य, धर्म, नैतिकता और सदाचरण करने वाले ब्राह्मण, काम-भोग प्रेमी, तीक्ष्ण क्रोधी स्वधर्मत्यागी, साहसिक, क्षत्रिय, पशुपालन में लिप्त पीत वर्ण वाले वैश्य और अपवित्र, हिंसाप्रिय, कालेरंग वाले शूद्र हुए (महाभारत शान्तिपर्व 188 11.2 13) समाज में बिखरे हुए तमाम सारे समुदायों को चातुर्वण्य व्यवस्था के संयोजित करने की प्रवृत्ति भी हमें प्राप्त होती है जैसे-महाभारत के शान्तिपर्व में जनक ने अपने गुरू पराशर से प्रश्न किया कि ब्रह्मा द्वारा सभी को समान बनाने के बावजूद भी उनमें वर्ण-भेद क्यों हुआ? उत्तर में पराशर ने स्पष्ट किया कि यद्यपि यह सत्य है कि आरम्भ में सभी एक ही वर्ण के थे, लेकिन जिस प्रकार भूमि और बीज के आन्तरिक गुण बदल जाने से खेती का रूप भी बदल जाता है, उसी प्रकार मनुष्य के गुण और कर्म बदल जाने से उनका वर्ण भी परिवर्तित हो जाता है, साथ ही साथ मिश्रित विवाह के आधार पर नवीन अनुलोम एवं प्रतिलोम जातियों की उत्पत्ति के विचार भी प्रस्तुत किए गए है। इन सबसे यह स्पष्ट है कि चातुवर्ण्य व्यवस्था के साथ-साथ जाति-व्यवस्था के सिद्धान्त का विकास भी हो रहा था।

सैद्धान्तिक रूप से समाज में ब्राह्मण की प्रधानता मानी जाती थी। महाभारत में ब्राह्मण को भूमिचर देवता कहा गया।[4] स्मृतियों में यह उल्लिखित है कि देवता लोग ब्राह्मण के मुख से हव्य और पितर लोग कव्य खाते है भूतों में प्राणधारी जीव श्रेष्ठ हैं प्राणियों में बुद्धिजीवी श्रेष्ठ है बुद्धिजीवियों में मनुष्य श्रेष्ठ है और मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है।[5]

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनाः बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः।। मनु एक-96।।

वेद पढ़ना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान लेना, ये प्रधान रूप से उसके कर्म बतलाए गए हैं जो उसके स्वधर्म के अन्तर्गत आते हैं।[6] इसके अलावा ब्राह्मण के लिए सुन्दर आचरण और चरित्रबल को कायम रखना भी उसके कर्तव्य माने गये है। यद्यपि दान के सम्बन्ध में स्मृतियों में विरोधाभाष भी दृष्टिगोचर होता है, एक तरफ दान देना और दान लेना दोनों बातें उसके धर्म का अंग समझी गई हैं, वहीं दूसरी ओर एक अन्य स्थल पर यह भी कहा गया है कि ब्राह्मण के लिए दान लेना वर्जित है, क्योंकि इससे उसके तेज का ह्रास होता है।[7] महाभारत में कथित है कि स्वाध्याय और तप रहित ब्राह्मण को दान प्राप्त करने का विधान नहीं है।[8] सिर्फ परिग्रह को सारे ब्राह्मणों के लिए अपनी जीविका बनाना न तो बहुत सम्मानजनक था न आर्थिक दृष्टिकोण से सम्भव ही हो सकता था। इसी कारण सम्भवतः दान लेने के बारे में इस प्रकार के कथन प्राप्त होते है अतः ब्राह्मणों में विद्वान ब्राह्मण को श्रेष्ठ, विद्वानों में शास्त्रोक्त कर्तव्य में आस्था रखने वाले श्रेष्ठ तथा इनमें भी शास्त्रोक्त कर्त्तव्यों के अनुसार आचरण करने वाले श्रेष्ठ हैं और इनमें भी ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण श्रेष्ठ है, यह कहा गया है।[9]

सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों रूपों में ब्राह्मण को सामाजिक महत्ता प्रदान थी। राजनैतिक क्षेत्र में भी ब्राह्मण प्रभावशाली वर्ग रहे होंगे और बौद्ध ग्रन्थ महावग्ग में ऐसे ब्राह्मणों का उल्लेख हुआ है जो राजकार्यों से अपने को जोड़ रखे थे और जिनका सम्बन्ध राजा से था।[10] मन्त्रियों में राजपुरोहित का पद महत्वपूर्ण था। पुरोहित की नियुक्ति के लिए कुछ विहित योग्यताएं थी- सत् की रक्षा करने वाला, असत् का निवारक, विद्वान, बहुश्रुत, धर्मात्मा, मन्त्रिविज्ञ व्यक्ति को पुरोहित पद पर आसीन किया जाता था।[11] कौटिल्य के अनुसार उन्नत कुल में उत्पन्न शील तथा सदाचार सम्पन्न, सभी वेदों और व्याकरणों आदि वेदांगों में पारंगत, दैवी विपत्तियों एवं शकुनशास्त्र के विज्ञ, दंडनीति (राजनीति) शास्त्रों में निपुण और दैवी तथा मानवी आपदाओं को अर्थववेदोक्त मन्त्रों द्वारा हटा देने में कुशल व्यक्ति को ही राज पुरोहित बनाएं, जैसे-शिष्य गुरू को, पुत्र पिता को तथा सेवक स्वामी को मानता है, ठीक उसी प्रकार राजा भी पुरोहित को अपना पूज्य मानकर उसका अनुसरण करें।[12] ब्राह्मणों की राजनीतिक महत्ता पुरोहित के रूप में समाज और राज्य में प्रभावकारी थी।[13]

साहित्यिक स्रोतों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि सैद्धान्तिक दृष्टिकोण चाहे जो रहा हो पेशे के मामले में ब्राह्मण को कृषि, गोपालन, व्यापार और राजकीय सेवाओं में कार्यरत रहने की स्वतन्त्रता थी। यद्यपि स्रोतों में ब्राह्मण के लिए अपने धर्मसंगत जीविकाओं के अतिरिक्त अन्य प्रकार की जीविका से धनोपार्जन करने की प्रवृत्ति का तिरस्कार किया गया है फिर भी सन्देहातीत रूप से नहीं कहा जा सकता हैं कि महत्वपूर्ण राजकीय सेवारत ब्राह्मण या कृषि अथवा वाणिज्य से धनाढ्य ब्राह्मण की वास्तविक सामाजिक प्रतिष्ठा बहुत अच्छी नहीं थी। इस प्रकार के साहित्यिक स्रोत जैसे, मनुस्मृति जिनमें वास्तविक सामाजिक जीवन का घनिष्ठतर चित्रण मिलता है, ऐसे स्रोत इसी ओर इंगित करते हैं कि राजनैतिक या आर्थिक प्रभावशाली ब्राह्मण की सामाजिक मर्यादा बहुत अच्छी थी।

वैदिक परम्परानुसार ब्राह्मण के बाद क्षत्रिय का स्थान आता है। प्रजा की रक्षा करना, दान, यज्ञ करना, विषयों में आसक्ति न रखना प्रधान रूप से क्षत्रिय के कर्म बतलाएं गए हैं।[14] रामायण में कहा गया है कि उनका प्रधान कार्य चातुर्वर्णों की रक्षा करना है। क्षत्रियों को वर्णव्यवस्था क्रम में ब्राह्मण के बाद रखकर समाज में उसे दूसरे स्थान पर रखा गया है, लेकिन साहित्यिक साक्ष्यों विशेष रूप से बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों में इस बात को चुनौती दी गई है और क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य ऐसा ही क्रम मिलता है। बुद्ध ने अम्बष्ट से खुले रूप में कहा है कि ब्राह्मणहीन है क्षत्रिय श्रेष्ठ। रिजडेविस ने इस बात का समर्थन किया है और कहा कि क्षत्रिय अपने को ब्राह्मण से श्रेष्ठ मानते थे तथा ब्राह्मण के द्वारा अपने को सर्वश्रेष्ठ घोषित करना क्षत्रिय जनता को स्वीकार भी नहीं था। बुद्ध और महावीर दोनों ने जन्मनावर्ण-व्यवस्था के स्थान पर कर्म प्रधान वर्ण-व्यवस्था की बात कही तथा ऐसा माना कि न तो कोई जन्म से चांडाल होता है न तो ब्राह्मण केवल ब्राह्मण ही स्वर्ग भोगने के अधिकारी नहीं है वरन् पुण्य कर्मो द्वारा शेष वर्ण भी इसके अधिकारी हो सकते है। महाभारत में भी ऐसा उद्धरण मिलता है जहाँ राजकुमारी शर्मिष्ठा ब्राह्मण पुत्री देवयानि से यह कहती है कि तुम्हारा पिता मेरे पिता के यहाँ हमेशा बैठकर चाटुकारिता किया करता है। ब्राह्मण से क्षत्रियों की श्रेष्ठता के बारे में जो साक्ष्य मिलते हैं उन साक्ष्यों के महत्व का अतिरंजन अनुचित होगा, क्योंकि सामान्य रूप से इसी प्रकार के साक्ष्य में प्राप्त होते हैं, जिसमें इसके ऊपर जोर दिया गया कि समाज के कल्याण के लिए ब्रह्म और क्षत्र दोनों का सहयोग होना चाहिए। सामाजिक, धार्मिक एवं प्रशासकीय क्षेत्र में दोनों वर्णो के पारस्परिक सहयोग को नकारा नहीं जा सकता। गौतम ने इस बातके सम्बन्ध में लिखा है कि राजा एक विद्वान ब्राह्मण, क्षत्रिय दोनों को पारस्परिक सहयोग से काम करना चाहिए। प्रजा-रक्षण और प्रजा पालन ही क्षत्रिय का मुख्य कर्म माना गया है। प्रजा-रक्षण के लिए युद्ध करना और राज्य शासन की व्यवस्था करना ही क्षत्रिय का कर्म था दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि क्षत्रिय कर्म के दो ही मुख्य क्षेत्र थे प्रथम 'सामरिक' द्वितीय 'प्रशासनिक।

यद्यपि सामान्य रूप से क्षत्रिय के जीविका की चर्चा में कहा गया है कि शस्त्रास्त्र के की ऊपर उनकी जीविका निर्भर है।[15] लेकिन ऐसा नहीं लगता कि क्षत्रिय वर्ण का प्रत्येक व्यक्ति युद्ध के ही ऊपर निर्भर रहकर अपनी जीविका चलाता था।बौद्ध ग्रन्थो में भी इस बात के काफी प्रमाण है कि क्षत्रिय खासकर राजकीय सेवाओं और सैन्य कार्यो से ही अपने को जोड़ रखे थे[16] और यही इनके जीवन के साधन थे मनु ने ऐसे भी क्षत्रियों का उल्लेख किया है, जिनके पास जमीन और पशु दोनो ज्यादा मात्रा में थी।[17] सूत्रकारो एवं स्मृतिकारों ने भी यह लिखा है कि अगर शस्त्र से जीविका चलने में कठिनाई हो तो क्षत्रिय को वैश्यकर्म अपना लेना चाहिए।[18]

वर्ण-व्यवस्था क्रम में ब्राह्मण और क्षत्रिय के बाद वैश्य को तृतीय स्थान प्राप्त था जिसका प्रमुख व्यवसाय कृषि और वाणिज्य था। महाभारत में वैश्यों के कर्म का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि इन लोगो का प्रधान उद्देश्य था धनार्जन करना।[19] धनार्जन के निमित्त वह कृषि गोरक्षा और वाणिज्य का कार्य करता था।[20] महाभारत में ही कहा गया है कि वह समाज का ऐसा वर्ग था जिसने अध्ययन और यजन के कर्मो को छोड़कर कृषि कर्म तथा गोपालन वृत्ति का पालन किया।[21]

वशिष्ट ने कृषि, पशुपालन, व्यापार और रूपया ब्याज पर देना है वैश्य का मुख्य पेशा माना। गौतम ने इनके कर्मो का उल्लेख करते हुए कहा कि ये लोग अपने को कृषि, वाणिज्य, पशुपालन और कुसीय में लगाए रहे।[22] कौटिल्य ने वैश्यों के कर्म के रूप में अध्ययन यजन, दान कृषि पशुपालन, वाणिज्य का

उल्लेख किया, जबकि मनु ने भी ऐसा ही माना और कहा कि पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना वेद पढ़ना, व्यापार करना व्याज लेना कृषि करण वैश्यों के कर्म थे। ब्राह्मण-क्षत्रिय कर से मुक्त थे, अधिकतर शूद्र साधन हीन होने के कारण कर देने की स्थिति में ही नहीं थे। अतः कृषि व्यापार, शिल्प से जुड़े होने के नाते इन्ही लोगों के ऊपर राज्य के कर का बोझ था। महाभारत[23] में ऐसा उल्लेख आया है कि सर्वाधिक धनी होने के कारण वही राजा को सबसे अधिक कर देता था। मनु[24] ने भी माना है कि स्थल और जल के मार्ग से व्यापार करने में चतुर और बाजार के सौदों का मूल्य लगाने में निपुण व्यक्ति बाजार के अनुसार जिस वस्तु का जो मूल्य निश्चित करता था।उसके लाभ में से राजा को कर के रूप में बीसवाँ भाग मिलता था, पशु और सुवर्ण का कर मूलधन का पचासवॉ भाग, धान्य का छठा भाग या आठवाँ या बारहवाँ भाग राजा को प्राप्त होता था।[25] वर्ण-व्यवस्था क्रम के अन्तिम चरण में शूद्र थे मनु ने ऐसा माना है कि द्विज वर्णो की सेवा ही शूद्र का अपना धर्म है और इसी से उसे परमसुख की प्राप्ति हो सकती है।[26] महाभारत में भी अन्य वर्णो की सेवा करना ही उसका प्रधान कर्म कहा गया[27] अगर वह क्षत्रिय वैश्य की सेवा न करें तो क्षम्य है, लेकिन ब्राह्मण की सेवा करना उसका प्रधान लक्ष्य है। ब्राह्मण उसे सेवा के बदले जूठा अन्न, पुराने वस्त्र धान का पुआल तथा पुरानी खाट एवं पुराने बर्तन देता था। ब्राह्मण सेवा से शूद्र का जीवन निर्वाह न हो तो उसे क्षत्रिय-वैश्य की सेवा करनी चाहिए।[28] जातकों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि सेवा के बदले शूद्र को डेढ़ मासक मजदूरी प्रतिदिन मिलती थी। बौद्ध साहित्यों, सूत्र ग्रन्थों, स्मृतियों के अध्ययन से लगता है कि समाज में शूद्रो की स्थिति अत्यन्त हेय थी। समाज में अत्यन्त निम्नतम स्थान प्राप्त होने के कारण वैदिक साहित्य के अध्ययन की बात तो दूर ही वेद को सुनना भी उसके लिए मना था। गौतम ने लिखा भी है कि वैदिक मन्त्रो को सुनने वाले शूद्र की जिह्वा काट लेनी चाहिए।[29] आपस्तम्ब ने उसके सामने वेद पाठ करने की मनाही कर दी। उपनयन संस्कार से हीन होने के कारण वह शिक्षा का अधिकारी नहीं था और मन्त्र हीन होने के कारण वह यज्ञ नहीं कर सकता था। क्योंकि वह श्मसान की तरह अपवित्र माना जाता था। महाकाव्यों से ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि अनाधिकार रूप से वह यज्ञ तपस्या करता थी था तो समाज में उसे उपेक्षित माना जाता था। तपस्या करने के कारण शूद्रवर्ण के शम्बूक का वध राम ने कर दिया था।[30] लेकिन महाकाव्यों के कथनों में कहीं-कहीं विरोधाभास भी मिलता है जहाँ एक ओर शूद्र प्रतिनिधियों को वेद पढ़ने और यह करने की मनाही थी। वही दूसरी ओर युधिष्ठर ने राजसूय यज्ञ में शूद्र प्रतिनिधियों को आमन्त्रित भी किया था ऐसा भी उल्लेख मिलता है। यज्ञ करने की भी स्वीकृति शूद्रों को मिल चुकी थी।[31] साथ ही साथ मन्त्रिमण्डल में भी शूद्र प्रतिनिधयों को आवश्यक माना गया जो उसकी सामाजिक स्थिति का ही बोध कराता है। तमाम साक्ष्यों के अवलोकन से एक बात स्पष्ट होती है कि सामान्य रूप से शूद्रों की स्थिति दयनीय थी भले ही कुछ शूद्र अपने सत्कर्मो एवं सदगुणों के चलते समाज में प्रतिष्ठित रहे हो। महाभारत में विदूर, मातगं जैसे शूद्रवर्ण के लोगों का उल्लेख करना इसी रूप में आवश्यक जान पड़ता है।

उपसंहार- इस प्रकार इन तमाम साक्ष्यों के अवलोकन से एक बात स्पष्ट होती है कि समाज में कतिपय जातियां यथा-मागध, वैदेहक आदि प्रदेश विशेष से सम्बन्धित थीं और इनके नामकरण का प्रधान आधार भी यही था। अयस्कार, कुम्भकार, चर्मकार, तक्षा, तैलिक, रथकार आदि जातियों का नामकरण व्यवसायों एवं शिल्पों पर आधारित है। जातकों से ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि ऐसी भी जातियां समाज में विद्यमान थी, जो घुमन्तू जीवन व्यतीत करती थीं और जिनका पेशा लोगों का मनोरंजन करना। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि जाति प्राप्ति की उत्पत्ति और विकास में पेशेवर अथवा व्यावसायिक समुदायों की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही होगी और जाति-प्रथा के स्वरूप का अध्ययन पेशेवर समूहों के सन्दर्भ-रहित होने से अधूरा रह जायेगा। ऐसा कहा जा सकता है कि वर्ण और जाति-प्रथा के सन्दर्भ में समाज में भिन्न-भिन्न समुदायों की उत्पत्ति के प्रधान आधारों में रक्त और भोजन की शुद्धता के अलावा पेशों अथवा व्यवसायों की शुद्धता को सबसे प्रबल पक्ष मिला। यद्यपि सूत्रग्रन्थों में शूद्र तुलना पशुओ से की गई लेकिन महाकाव्यों स्मृतियों के उल्लेखों से शूद्रों की परिवर्तित दशा का आभाव मिलता है। महाभारत में कहा गया है कि सेवा-वृत्ति से आजीविका न चल पाने की स्थिति में वे व्यापार, पशुपालन और विभिन्न शिल्प को ग्रहण कर सकते थे।[32] कौटिल्य ने भी लिखा है कि शूद्र का निर्वाह द्विजों की सेवा से ही सम्भव है, किन्तु वे शिल्पियों, नर्तको अभिनेताओ आदि का व्यवसाय करके भी अपना जीवन निर्वाह करते हैं। बौद्ध ग्रन्थों में भी शूद्रों के शिल्पी वर्गो तच्चक, कुम्भार, दन्तकार, कुम्भकार का उल्लेख है और इनके व्यवसायों को हीन कोटि का माना गया है। गौतम ने लिखा है कि शूद्र यान्त्रिक शिल्पों को सहारा ले सकते है। निश्चित रूप से शूद्र समुदाय के कुछ लोग बुनकर, लकड़हारे, लोहार चर्मकार, कुम्भकार, रंगरेज के रूप में काम करते थे। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बौद्धकाल में वर्ण एवं जाति व्यवस्था को एक नवीन स्वरूप मिला।

संदर्भ ग्रन्थ-

1. महाभारत, शान्तिपर्व-185.5
2. गीता 4.13, मनुस्मृति 1.30
3. महाभारत, शान्तिपर्व-188.10
4. महाभारत, 12.39.1
5. मनुस्मृति-1.95
6. मनुस्मृति-1.88 याज्ञ, स्मृति 5.188
7. मनुस्मृति-1.97
8. महाभारत अनुशासन पर्व 13.36.41
9. मनुस्मृति 1.97
10. महावग्ग पृष्ठ 243-44
11. महाभारत शान्तिपर्व 72.1.2

12. अर्थ0 1.91
13. गौतम धर्म सूत्र 13.26
14. अर्थशास्त्र 3.6
15. मनुस्मृति-10.79
16. मज्झिम निकाय 2 पृष्ठ 180
17. मनुस्मृति-11.14
18. गौतम धर्म सूत्र-7.26
19. महाभारत-5.132.30
20. महाभारत-6.42.44
21. महाभारत-12.60.13-20
22. गौतम धर्म सूत्र।
23. महाभारत-2.47.28
24. मनुस्मृति-8.398
25. मनुस्मृति-7.130
26. मनुस्मृति-1.91
27. महाभारत 4.50.6
28. मनुस्मृति-10.121
29. गौतम धर्म सूत्र-12.4
30. रामायण-7.73.76
31. बौद्ध धर्म सूत्र 2.10-19.1
32. महाभारत-294.4

मानवाधिकार और सामाजिक न्याय

डॉ० गिर्राज प्रसाद बैरवा

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान विभाग, राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालयद्ध राजा गार्डन, नई दिल्ली-110015

प्रस्तावना

मानवाधिकार और सामाजिक न्याय एक दूसरे के पूरक है तथा आपस में जुड़े हुए हैं। इन्हें सही प्रकार से लागू करना सरकार या प्रशासन की जिम्मेदारी है। सामाजिक-विकास या सामाजिक न्याय तभी संभव है जब हम सभी वर्गों के अधिकारों की रक्षा कर सकें। मानव अधिकार समाज में शांति स्थापित करते हैं। जबकि सामाजिक न्याय स्थिरता प्रदान करता है। वर्तमान में सामाजिक न्याय और मानवाधिकारों की सुरक्षा किसी भी राज्य के लिए एक चुनौती बन गया है। हमारे देश में भी मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय एक गंभीर विषय बना हुआ है। मानवाधिकारों को सामाजिक गतिशीलता का आधार माना जाता है। समाज तभी समतावादी बन सकता है जब वह समानता एवं एकता के सिद्धांतों पर आधरित हो। मानव जाति का सम्मान और उसकी रक्षा से ही मानव समाज का अस्तित्व बना रह सकता है। सामाजिक न्याय कायम किसे बिना हम मानवाधिकारों का संरक्षण नहीं कर सकते। वर्तमान में मानवाधिकार और सामाजिक न्याय का सवाल नये संदर्भों में परिवर्तित हो रहा है। समाज के सभी वर्ग चाहे वो दलित हो, आदिवासी हो, अल्पसंख्यक हो, महिलाऐं हो, या पिछड़ा वर्ग हो, सभी वर्ग अपने-अधिकारों की सुरक्षा की माँग कर रहे हैं। ये वर्ग कहीं न कहीं अपने आप को असुरक्षित महसूस कर रहे हैं। समाज में असमानता, अमीरी-गरीबी का असंतुलन निरंतर बिगड़ रहा है। भूमंडलीकरण के दौर में भारत जैसे विकासशील देश के सामने भी कई चुनौतियाँ खड़ी हैं। इन परिस्थितियों में भारतीय-राज्य अपने नागरिकों के मानवाधिकारों की रक्षा कैसे करें? सभी वर्गों को सामाजिक न्याय कैसे प्रदान करें। हाशिये पर खड़े कमजोर वर्गों के विकास के लिये राज्य की नीतियों में संतुलन कैसे बनें? आज इन्हीं सवालों का सकारात्मक जवाब तलाशने की जरूरत है।

शब्दावली - मानवाधिकार, सामाजिक न्याय, नैतिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, जातिवाद, भेदभाव, लिंग।

मानवाधिकार का अर्थ एवं विशेषताऐं - मानवाधिकार व्यक्ति के वे अधिकार हैं जो उसके पूर्ण शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए बहुत बुनियादी माने गये हैं। मानवाधिकारों का शब्दिक-अर्थ है दृढ़तापूर्वक रखे गये दावे, अथवा वे जो होने चाहिये अथवा कभी-कभी उनको भी कहा जाता है जिनकी विधिक रूप से मान्यता है और उन्हें संरक्षित किया गया है। जिनका प्रयोग प्रत्येक व्यक्ति के लिए व्यक्तित्व, आध्यात्मिक, नैतिक और अन्य स्वतंन्त्रता का अधिक से अधिक पूर्ण और स्वतंत्रा विकास सुनिश्चित करने की है। किसी भी व्यक्ति के जीवन, स्वतन्त्रता, समानता, सम्मान या अधिकार ही मानवाधिकार कहलाते हैं। मानवाधिकारों को समाज की आधारशिला माना जाता है। मानवाधिकार को मूल अधिकारों के रूप में सर्वोच्ता प्राप्त है, क्योंकि इन अधिकारों का राज्य द्वारा भी अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है। मानव अधिकार किसी भी राजा अथवा किसी भी राजनीतिक संप्रभु द्वारा दिया गया उपहार नहीं है, बल्कि ये वे अधिकार हैं जो प्राकृतिक हैं तथा मानव अस्तित्व में समाहित रहते हैं। मानवाधिकार सार्वभौमिक, अविभाज्य और परस्पर निर्भर होते हैं। मानवाधिकारों की कुछ विशेषताऐं भी हैं जैसे कि ये - (1) सभी लोगों के पास अधिकार है (2) ये सार्वभौमिक है, (3) ये सभी लोगों को समान मानते हैं, (4) ये अधिकार मूलतः वैयक्तिक होते हैं, (5) मानवधिकारों के अंतर्गत मानवता के मौलिक सिद्धांत समाहित हैं तथा (6) मानवाधिकारों का संवर्धन एवं संरक्षण केवल देश की सीमा के अंदर ही सीमित नहीं है बल्कि वह कुछ आदर्शों को स्थापित करता है जो पूरे विश्व में माने जाते हैं।

मानवाधिकारों द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपनी भौतिक आवश्यकताओं के साथ-साथ सामाजिक, आत्मिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। ये अधिकार मनुष्य की गरिमा बढ़ाते हैं तथा समाज में संपन्नता एवं सौहार्द, बढ़ाते हैं। मानवाधिकारों के अंतर्गत शांति, भाईचारा, साम्प्रादायिक बंधुत्व को बढ़ावा दिया जाता है। इन्हीं सब कारणों के फलस्वरूप अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर 10 दिसंबंर को मानव अधिकार दिवस के रूप में मनाया जाता है क्योंकि इसी दिन 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ ने जनरल असेंबली में 'मानवाधिकारों का सार्वजनिक घोषणापत्रा' प्रस्तुत किया था।

संयुक्त राष्ट्रसंघ एवं मानवाधिकार

मानव अधिकारों की संकल्पना प्राचील काल से ही चली आ रही है जिन्हें प्राकृतिक विधि और प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांतों में पाया जाता है। किंतु व्यवहारिक दृष्टि से मानवाधिकारों को लागू करने का श्रेय संयुक्त राष्ट्र संघ को जाता है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात जब संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई थी तब अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को अधिक महत्व दिया गया था। अपने वर्तमान स्वरूप में मानवाधिकारों की संकल्पना संयुक्त राष्ट्र संघ की देन है। विश्व में शांति एवं सुरक्षा की स्थापना के लिये मानवाधिकारों का शांति एवं सुरक्षा की स्थापना के लिये मानवाधिकारों का होना आवश्यक है इसी

उद्देश्य के साथ संयुक्त राष्ट्र संघ ने 10 दिसंबर 1948 को उसकी महासभा ने 'मानवअधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्रा' प्रस्तुत किया था। इस घोषणा पत्रा का शीर्षक था सब मनुष्य स्वतन्त्र और बराबर गरिमा एवं अधिकारों के साथ पैदा होत हैं। इस घोषणा पत्र का विश्वव्यापी असर हुआ और यह संपूर्ण विश्व में फैल गया। इस घोषणा पत्र के 30 अनुच्छेद हैं। इसकी प्रस्तावना में कहा गया है कि हर व्यक्ति और देश की उपलब्धि का स्तर बराबर होना चाहिए।

प्रथा राष्ट्र संघ के चार्टर में मूल अधिकारों और मानव की गरिमा की पुष्टि की गई और मानव अधिकारों को प्रोत्साहित करने को विश्व निकाया का उत्तरदायित्व बनाया गया। इस चार्टर की उद्देशिका में कहा गया है कि मानव परिवार के सभी सदस्यों को अंर्तनिहित गरिमा और समान तथा अभेद्य, अधिकार विश्व में शांति, स्वतंत्रता तथा न्याय के आधार है। इस चार्टर में यह भी कहा गया है कि मानवाधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रताओं के प्रति जाति, लिंग, भाषा और धर्म के आधर पर भेदभाव किये बिना आदर को प्रोत्साहित एवं बढ़ाना संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों में से एक है।

मानव अधिकार एवं सामाजिक न्याय

सामान्य तौर पर सामाजिक न्याय की परिकल्पना मानव अधिकारों के बिना अधूरी है। सामाजिक न्याय का अर्थ है कि समाज में मनुष्य एवं मनुष्य के बीच कोई भेद-भाव न हो, कानून सबके लिए बराबर हो, और कानून के समक्ष सभी बरबर हो ताकि सामाजिक न्याय हो। सामाजिक न्याय समाज के कमाजेर वर्गों के प्रति अच्छे बर्ताव की माँग करता है। यह समाज में उत्पन्न विकास के सभी अवसरों जैसे वस्तु एवं सेवाओं को न्यायोंचित तरीके से वितरण भी है। सामान्यत: सामाजिक न्याय का उद्देश्य एक ऐसी व्यवस्था की स्थापना करने से है जिसमें समाज के उपेक्षित, दलित एवं हाशिये पर स्थित लोगों तथा महिलाओं को समाज की मुख्य धारा से जोड़ा जा सके। आधुनिक समय में लोक कल्याणकारी राज्य का मूल लक्ष्य भी 'सामाजिक न्याय' की स्थापना करना है। अर्थात राज्य सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान करता है, प्रत्येक वर्ग के कल्याण के लिये कार्य करता है। किसी भी प्रकार का लैंगिक, जातिगत, नस्लीय, एवं भाषाई भेदभाव के बिना सभी नागरिकों को मूलभूत अधिकारों तक समान पहुँच सुनिश्चित करना राज्य का कर्त्तव्य है।

ज्यादातर विचारकों ने मानव अधिकार को अधिक महत्व देते हुए समाज में प्रत्येक व्यक्ति के साथ न्यायोचित व्यवहार हो एवं उनकी गरिमा का सम्मान हो इसकी बात करते हैं। उनका मानना है कि समाज में सभी व्यक्ति समान नहीं होते उनके बीच कई प्रकार की असमानताएँ भी पाई जाती हैं। इसलिये उनके साथ जाति के आधर पर, लिंग के आधर पर, क्षेत्रीयता के आधार पर भाषा के आधर पर भेद-भाव किया जाता है। उन्हें इन आधर पर बहिष्कृत भी किया जाता है। समाज में प्रत्येक व्यक्तियों की मांगे एवं जरूरतें भी अलग-अलग होती हैं। राज्य का कर्त्तव्य है कि वह इन माँगों को बिना किसी भेदभाव के पूरा करे। क्योंकि मानवाधिकार और सामाजिक न्याय एक सिक्के के दो पहलू हैं, एक दूसरे के बिना इसका औचित्य अधूरा सा लगता है। मानव अधिकार का औचित्य तभी स्वीकार होगा जब समाज में सामाजिक न्याय को स्थापित किया जायेगा।

भारतीय संविधान, मूल अधिकार एवं सामाजिक न्याय

भारत के स्वतंत्रता संघर्ष का मूल उद्देश्य था सामाजिक न्याय और सर्वोगीय मानवाधिकारों की स्थापना करना। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए भारतीय संविधन की संरचना की गई थी। भारतीय संविधन एक ऐसा दस्तावेज है जो सभी नागरिकों को मूल अधिकार प्रदान करने के साथ-साथ सामाजिक न्याय एवं समता की व्यवस्था करता है। भारतीय राजव्यवस्था में उदारवादी राजनीतिक लोकतंत्र के साथ-साथ समाजवादी आदर्शों को भी अपनाया गया है और उसे ध्यान में रखते हुए ही संविधान की प्रस्तावना में 'सामाजिक' आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय का उल्लेख किया गया है। भारत के संविधान निर्माताओं ने 'व्यक्तिगत स्वतंत्रता' और 'सामाजिक न्याय' में संतुलन स्थापित करने के उद्देश्य से संविधन के भाग-3 में मौलिक अधिकारों के साथ-साथ भाग-4 में राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत सामाजिक न्याय को सुनिश्चित किया गया है। हमारे संविधन में मानवाधिकारों के संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है। मौलिक अधिकारों के अंतर्गत मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय के तत्व निहित हैं। जिसमें सभी व्यक्तियों को शांतिपूर्ण जीवन जीने के लिए समानता, स्वतंत्रता एवं घूमने-फिरने के अधिकार प्राप्त हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकार आयोग गठन करने के बाद हमारे देश में भी 1993 में मानव अधिकार आयोग का गठन किया गया तथा देश के विभिन्न राज्यों के भी मानवाधिकार संरक्षण के लिये मानवाधिकार आयोगों का गठन किया गया ताकि किसी भी प्रकार के अन्याय एवं मानवाधिकारों के हनन के विरुद्ध कार्यवाही सुनिश्चित की जा सके। संविधन के भाग-3 में सम्मिलित मूल, अधिकारों के माध्यम से व्यक्ति की गरिमा तथा लोगों के मध्य समानता स्थापित करने का प्रावधान किया गया है। एक ऐसे समतामूलक समाज की स्थापना को लक्षित किया गया है जिसमें सामाजिक स्तर के आधर पर विभेद का निषेध एवं अवसर की समानता हो। संविधन संरक्षण के साथ-साथ भारतीय संविधन के भाग-4 के अंतर्गत विभिन्न सामाजिक-आर्थिक अधिकारों के माध्यम से सामाजिक न्याय की अवधारणा को और अधिक सशक्त बनाने का प्रयत्न किया गया है। भाग-4 में निहित सभी प्रावधान सामाजिक न्याय को एक सुदृढ़ सोपान प्रदान करते हैं।

भारत मानव अधिकारों की सार्वजनिक घोषणा का एक हस्ताक्षरकर्त्ता है। अनुच्छेद 12 में कहा गया है कि कोई भी मनमाने ढंग से उसकी गोपनीयता, परिवार के साथ हस्तक्षेप नहीं करेग ना ही उसके सम्मान और प्रतिष्ठा पर हमला करेगा। सभी लोगों को इस तरह के हस्तक्षेप के खिलाफ या कानून पर हमले के खिलाफ सुरक्षा का अधिकार है।

अंतर्राष्ट्रीय नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर कानून जिस पर भारत ने हस्ताक्षर किये हैं, उसके अनु. 17 में कहा गया है कि किसी को भी उसकी गोपनीयता, परिवार या घर पर गैर-कानूनी हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा, और न ही उसके मान-सम्मान और प्रतिष्ठा पर हमला करेगा। सभी को इस तरह के हस्तक्षेप के खिलाफ या हमले के खिलाफ कानून की सुरक्षा का अधिकार है। अनु. 51 के आधर पर संविधान भारत को अंतर्राष्ट्रीय कानून एवं संधि दायित्वों को बढ़ावा देने का संकल्प का प्रयास करता है।

डॉ. अंबेडकर और सामाजिक-न्याय

सामाजिक न्याय की स्थापना करने में डॉ. अंबेडकर का योगदान काफी महत्वपूर्ण है। वे एक ऐसे समाज की स्थपना करना चाहते थे जिसमें जाति, लिंग, जन्मस्थान, प्रजाति, धर्म, रंग आदि के आधर पर कोई भेदभाव, विषमता, शोषण या विशेषाधिकार न हो। सभी को समान अधिकार एवं समान अवसर मिले। उन्होंने भारतीय समाज की अमानवीय प्रथाओं, श्रम विभाजन, मानवाधिकारों का हनन, उच्च वर्गों के विशेषाधिकारों एवं निम्न वर्ग की निर्योग्यताओं को अस्वीकार करके मनुष्य के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक अधिकारों की वकलात की। उनका चिंतन मुख्यत: दलित एवं वंचित वर्ग के अधिकारों के लिये संघर्ष एवं अस्पृश्यता का अंत पर केन्द्रित रहा है। जिसका विस्तृत विश्लेषण उन्होंने अपनी पुस्तक 'जाति का उन्मूलन' (Annihilation of Caste) 1936 के अंतर्गत किया है। वे महात्मा ज्योतिबा फूले से अत्यधिक प्रभावित थे जिनका मानना था कि जन्म से सभी मनुष्य समान है और भारत के लिए विदेशी शासन से स्वतंत्रता की तुलना में सामाजिक लोकतंत्र ज्यादा महत्वपूर्ण है। डॉ. अंबेडकर ने संविधान की रचना की तथा वंचितों एवं शोषितों के लिये संविधान में अनेक प्रावधान भी किये ताकि इन वर्गों को समाज में उचित स्थान दिया जा सके।

डॉ. अंबेडकर का प्रमुख लक्ष्य था भारत के कोटि-कोटि दलितों, शोषितों को सामाजिक-उत्पीड़न से मुक्ति दिलाना। उन्होंने यह चेतावनी भी दी कि 26 जनवरी 1950 को प्रत्येक व्यक्ति को बराबर के मूल अधिकार तो मिल जायेंगे लेकिन सामाजिक और आर्थिक अधिकार नहीं मिलेंगे। उन्होंने भारतीय समाज में सदियों से प्रचलित वर्ण व्यवस्था का विरोध किया और उसके स्थान पर ऐसी व्यवस्था की स्थपना का समर्थन किया जोकि ठोस सामाजिक न्याय के सिद्धांतों पर आधारित हो। उनका मानना था कि वर्ण-व्यवस्था, जात-पात, छुआ-छूत आदि की आड़ में दलितों को उनके अधिकारों से सदियों से वंचित रखा गया है। उनका मानना था कि जाति व्यवस्था का उन्मूलन किये बिना भारत में न तो समतावाद की स्थापना की जा सकती है और न ही लोकतंत्र की। उन्होंने जाति व्यवस्था का विरोध करने के साथ ही दलित वर्गों को समानता का अधिकार दिलाने के लिये आंदोलन शुरु किया। उन्होंने दलितों के अंदर आत्मसम्मान विकसित करने और उनको अपने अधिकारों के लिये संघर्ष का रास्ता दिखाया था। आज उन्हीं की वजह से दलित वर्ग अपने आत्म सम्मान एवं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है। उनके भीतर राजनीतिक चेतना जागृत हो गई है।

डॉ. अंबेडकर ने संविधन के माध्यम से वंचित वर्गों के उत्थान के लिये अनेक प्रावधान किये हैं। उन्होंने भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय की संकल्पना को सर्वोपरी माना और इसके लिये सही प्रक्रिया क्या है इस पर अधिक बल दिया था। उन्होंने मूल अधिकारों एवं नीति-निर्देशक सिद्धांतों के माध्यम से 'व्यक्तिगत स्वतंत्रता' व सामाजिक-आर्थिक न्याय के मध्य एक संतुलन स्थापित करके सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करने की कोशिश की थी। लेकिन सामाजिक न्याय की स्थापना में सभी प्रावधान तभी सार्थक हो सकते हैं जब इन्हें सही ढंग से लागू किये जाये। सभी संस्थाऐं स्वतंत्र एंव निष्पक्ष भाव से अपने दायित्वों का निर्वहन करें।

भारत में मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय का मूल्यांकन

हमारे देश को आजाद हुए लगभग 74 वर्ष हो गये हैं। अगले साल हम आजादी की 75 वीं वर्षगाँठ मनायेंगे। इसी संदर्भ में आज हमें नागरिकों के मूल अधिकारों एवं समाजिक न्याय का मूल्यांकन करना आवश्यक है। क्या हमारे नागरिकों को उनको बुनियादी अधिकार प्राप्त हुए हैं? क्या सभी नागरिकों को सामाजिक न्याय मिला है? इनके क्रियान्वयन के लिये नीतिगत एवं व्यवहारिक कदम पूरी तरह से सफल हुए हैं? यदि हम सही प्रकार से इनका आकलन एवं मूल्यांकन करें तो हम यह पायेंगे कि हमारे नागरिकों को अभी भी उनके अधिकारों से वंचित रखा गया है। प्रतिदिन मानवाधिकारों के उल्लंघन की ढेरों घटनाऐं देखने को मिलती हैं। आज भी समाज एक बड़ा वर्ग अभाव की जिंदगी गुजर बसर कर रहा है। अभी भी लोग अपनी बुनियादी आवश्यकताऐं जैसे कि रोटी, कपड़ा और मकान के लिए इधर-उधर भटक रहे हैं। हमारे देश में आजादी के 74 वर्ष के बाद भी गरीबी का स्तर कम नहीं हुआ है। आज भी लगभग एक तिहाई से अधिक आबादी गरीबी से त्रस्त है या गरीबी की रेखा से नीचे हैं। लोगों के पास आज भी रहने के लिये पक्के मकान नहीं है। करोड़ों लोग बेरोजगार घूम रहे हैं। पीने के स्वच्छ पानी और शौचालयों का अभाव है, स्कूल शिक्षा और उपचार-व्यवस्था का अभाव है, सार्वजनिक सेवाओं का अभाव है।

भारत में गरीबों के उत्थान के लिए बहुत सारी योजनाऐं बनाई गई हैं परंतु इन योजनाओं का लाभ गरीबों तक नहीं पहुंच पा रहा है। भ्रष्टाचार चरम सीमा तक पहुंच गया है। भारत में करोड़पतियों की संख्या बढ़ रही है, अर्थात आर्थिक एवं सामाजिक असमानता घटने के बजाय तेजी से बढ़ रही है। आजादी के सात दशक बाद भी भारत में सामाजिक न्याय के क्षेत्र में संतोषजनक परिणाम नहीं मिल पाया है। आज भी विभिन्न समुदायों के बीच कई कारणों से असंतोष व्याप्त है। समाज में व्याप्त हर तरह की असमानता को दूर करना होगा तभी जाकर हम स्वस्थ समाज का निर्माण कर पायेंगे।

सारांश

मानवाधिकार और सामाजिक न्याय एक दूसरे के पूरक हैं। इनके बिना मनुष्य का विकास असंभव है। वर्तमान में मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय की सुरक्षा किसी भी सरकार के लिये चुनौती बन गया है। भारत में भी स्वतंत्राता की माँग के साथ सामाजिक न्याय के लिये आंदोलन हो रहे हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह परमावश्यक है कि समाज के गरीब एवं वंचित वर्गों को उनके मूल अभावों की क्षतिपूर्ति की जाये और उन्हें गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार मिले। मानव जीवन का मूल अधिकार है सार्वजनिक सेवाओं की पर्याप्त उपलब्धि और पर्याप्त आय तथा रोज़्गार। यह तभी होगा जब आर्थिक-व्यवस्था नैतिकता पर आधारित होगी। यह तभी संभव होगा जब उत्पादन, वितरण और उपभोग का आधार सामाजिक न्याय और मानवाअधिकारों की रक्षा करना होगा। अत: आज सामाजिक न्याय और मानवाधिकारों की व्यवस्था को संतोषजनक तरीके से स्थापित करने की जरूरत है।

संदर्भ सूची

1. दाधीच, नरेश, (2015) समसामयिक राजनीतक सिद्धांत, जयपुर, रावत प्रकाशन।
2. कश्यम, डॉ. सुभाष, (2015) भारत का संविधान, नई दिल्ली।
3. बसु, डी.डी., (2015) भारत का संविधनः एक परिचय, लेकिस, नोकिस, गुरुग्राम, हरियाणा।
4. महाजन, गुरप्रीत (2001) आईडेंटिटिज एन्ड राइट्सः आसपेक्ट्स ऑफ लिबरल डेमोक्रेसी इन इंडिया, न्यू दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिर्वसिटी प्रेस।
5. सच्चर, राजेन्द्र (2004) ह्यूमन राइट्सः परसपेक्टिव एण्ड चौलेजेंज, न्यू दिल्ली, ग्यान पब्लिसिंग हाउस
6. धल, डॉ. संगीता (2008) भारत में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता एवं प्रतिनिधित्व का मुद्दाः तपन बिस्वाल (संपाः)ः मानवाधिकार, जेंडर, एवं पर्यावरण, वीवा बुक्स प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
7. किमलिका, विल, (1955) - मल्टीकल्चरल सिटीजनसिप, ए लिबरल थ्योरी ऑफ माईनोरिटी राइट्स, ऑक्सफोर्ड यूनिर्वसिटी प्रेस।
8. गाबा, ओम प्रकाश (2012) राजीतिक चिंतन की रूपरेखा, नोएडा, मयूर पेपर बैक्स।
9. पान्डेय, तेजस्कर, संगीता पांडेय (2012) भारत में सामाजिक समस्याऐं, नई-दिल्ली टाटा मैक्ग्रा हिल एजूकेशन प्रा. लि.।

विवाहिता व अविवाहिता छात्राध्यापकों के संवेगात्मक बुद्धि का अध्ययन

सुनील कुमार

शोधार्थी, शिक्षा संकाय, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर

डॉ० नरेन्द्र कुमार सिंह

शोध निर्देशक एवं प्राचार्य, शिक्षा संकाय, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर

संक्षिप्त साराश

शिक्षा के वास्तविक और व्यापक अर्थ में उसके उद्देश्य भी बहुत व्यापक और बहुआयमी है जो शारीरिक, मानसिक, सामाजिक विकास के साथ-साथ नैतिक, चारित्रक, व्यावसायिक तथा आध्यामिक विकास तक विस्तीर्म है। इस स्थिति में शिक्षा के सभी रुपों औपचारिक, अनौपचारिक तथा निरौपचारिक के द्वारा उसका प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास ही होना चाहिए। शिक्षा ही वस्तुतः किसी राष्ट्र की प्रगति का मानदण्ड है। कोई भी राष्ट्र अपने दक्ष मानवीय संसाधनों द्वारा समूह बनता है। शिक्षा व्यक्ति के सामाजिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है जो उसे अपने जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता करती है। शिक्षा मानव सभ्यता की सर्वाधिक मूल्यवान धरोहर है। समस्त विश्व को एक सूत्र में पिरोने तथा मनुष्य और मनुष्य के बीच सद्भाव की स्थापना में शिक्षा की बड़ी-बड़ी भूमिका है जिसे नकारा नहीं जा सकता है। किसी भी क्रिया की तरह शिक्षा भी तथा व्यवहार दोनों का संश्लेस है। वास्ताविक अनुभवों की प्रक्रिया में हमारे सम्मुख अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इनके समाधान का पहला पक्ष होता है इस पर विचार करना तथा दूसरा पक्ष है उपयुक्त सिद्धान्तों का निर्माण करना। शिक्षा के विभिन्न पक्षों का तादात्म्य जीवन के इन्हीं आधारभूत प्रश्नों के समाधान खोजने का प्रयत्न करता है।

मुख्य शब्दः- संवेगात्मक बुद्धि, मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, CR मूल्य इत्यादि।

प्रस्तावनाः- नयी शिक्षा नीति 2020 कहती है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल संज्ञानात्मक समझ न होकर चरित्र निर्माण और 21वीं सदी के गुप्तय का रोल से सुसज्जित करना है। वास्तव में ज्ञान एक छुपा हुआ खजाना है और शिक्षा व्यक्ति के प्रतिभा साथ इसे प्राप्त करने में मदद करती है।

शिक्षक वास्तव में बच्चों के भविष्य को आकार देते है। अतः हमारे राष्ट्र के भविष्य का निर्माण भी करते हैं। इस नैक योगदान के कारण ही भारत में शिक्षक समाज बहुत सम्मानित होता है, और प्राचीन विद्वा नही प्राचीन समाज में शिक्षक बनते थे। विद्यार्थियों को निर्धारित ज्ञान, कौशल और नैतिक मूल्य प्रदान करने के लिऐ समाज शिक्षक या गुरुओं को उनके जरुरत की सभी चीजें प्रदान करता था। अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता, महत्ती, पदास्थापन, सेवाशत्तों और शिक्षकों के अधिकारों की स्थिति वैसी नहीं है जैसी होनी चाहिये और इसके परिणामस्वरुप शिक्षकों की गुणवत्ता और उत्साह वांछित मानकों को प्राप्त नही कर पाता है शिक्षकों के लिये उच्चतर दर्जा उनके प्रति आदर और सम्मान के भाव को पुर्नजीवित करना होगा ताकि शिक्षण व्यवसाय में बेहतर लोगों को शामिल करने हेतु उन्हें प्ररित किया जा सके। हमारे छात्रों और हमारे राष्ट्र के लिये सर्वोत्तम सम्भव भविष्य सुनिश्चित करने के लिये शिक्षकों की प्रेरणा और सशक्तीकरण की आवश्यकता है।

शिक्षक और समुदाय के बीच सम्बन्ध बने और वह अपने समुदाय से जुड़ा रहे जिससे विद्यार्थियों को रोल मॉडल और शैक्षिक वातावरण मिल सके, इसे सुनिश्चित करने के लिये अत्यधिक शिक्षको के स्थानीय की हानिकारक व्यवस्था को रोकनी होगी। विषय के विशेषज्ञ शिक्षको को ज्यादा से ज्यादा अवसर प्रदान किया जाय। ऐसी स्थिति में शिक्षक का वैवाहिक जीवन भी प्रभावित होता है। जिसमें संवेगात्मक बुद्धि, समायोजन में सहायक होती है और मूल्य उसे संतुलित रहने में सहायक होते हैं। यही आधार प्रस्तुत अध्यापक हेतु शोधकर्त्ता को जिज्ञासित किये।

अध्ययन के औचित्यः- शिक्षा का क्षेत्र बहुत व्यापक है किन्तु शिक्षा के प्रमुख अंग नीव माने गये है-शिक्षक शिक्षार्थी तथा पाठ्यक्रम इनमें से किसी एक के न होने पर इस प्रक्रिया का सम्पन्न होना सम्भव नहीं है। अतः जीवन से सम्बन्धित आवश्यकताओं की प्राप्ति एवं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए शिक्षा की महती आवश्यकता है।

अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता समस्त शिक्षा व्यवस्था की रीढ़ है। अध्यापक जितने कुशल तथा सुयोग्य होगे, शिक्षा व्यवस्था भी उतनी ही उत्तम होगी। शिक्षा की व्यापक परिधि के अन्तर्गत शोधकर्त्ता का मूल विषय शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे छात्राध्यापकों से सम्बन्धित है जो बी0एड्0 पाठ्यक्रम का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे है। सभी अध्यापक जन्मजात कुशल नहीं होते अतः शिक्षण में दक्षता तथा पूर्णता के लिए प्रशिक्षण आवश्यक है। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात्

बड़े पैमाने पर कुशल और योग्य शिक्षकों की कमी को पूरा करने के लिए अध्यापक शिक्षा संस्थान स्थापित किए गये हैं। जहाँ भावी शिक्षकों का निर्माण किया जाता है।

स्वायत्त शिक्षा संस्था के रुप में अध्यापक शिक्षा का नियमन राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (National Council of Teacher Education) द्वारा किया जा रहा है। यह संस्था प्रारम्भ में राष्ट्रीय शैक्षिक विकास और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) के अधीन कार्य कर रही थी। किन्तु अब यह भारत सरकार का स्वायत्त निकाय है जिसकी स्थापना राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् अधिनियम (1993) के अन्तर्गत 17 अगस्त, 1995 में की गयी थी। इसका उत्तरदायित्व भारतीय शिक्षा प्रणाली के मानक, प्रक्रियाएँ एवं धाराओं की स्थापना और निरीक्षण करना है। विभिन्न विषयों के शिक्षण में विवाहित तथा अविवाहित छात्राध्यापकों की मनोवृत्ति में क्या अन्तर आता है, यह एक रोचक विषय रहा है। आमतौर पर यह माना जाता है कि विवाहोपरान्त व्यक्ति अधिक जिम्मेदार, व्यवहार कुशल तथा परिपक्व बनता है। इस दृष्टि से क्या विवाहित तथा अविवाहित अध्यापकों के शिक्षण व्यवहार में कोई स्पष्ट अन्तर परिलक्षित होता है? भारतीय परंपरा में विवाह को वर्णित सोलह संस्कारों में स्थान दिया गया है। जिसके पश्चात् व्यक्ति गृहस्थआश्रम में प्रविष्ट होता है तथा वह अपने घरेलू तथा नागरिक, सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन करने की ओर प्रवृत्त होता है। विभिन्न शिक्षण विषयों के सन्दर्भ में इस दृष्टि से उसमें कौन-कौन सी प्रमुख व्यवहारगत विशेषताएँ उत्पन्न होती है तथा उसके कक्षा-शिक्षण व्यवहार में अविवाहित अध्यापकों की तुलना में क्या सार्थक अन्तर उपस्थित है शोध के विषय के रुप में यह अध्यापन बहुत प्रासंगिक तथा समीयोज है।

साहित्यावलोकनः- सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण से अनुसंधानकर्त्ता को अपने क्षेत्र के सीमानिर्धारण करने में सहायता मिलती है।, उसे अन्य व्यक्तियों द्वारा किये गये कार्य से पूर्ण परिचय हो जाता है तथा वह अपने शोध के उद्देश्यों को पूर्णरुपेण स्पष्ट व्यक्त कर सकता है। शोधार्थी पहले से ही सम्पन्न शोध कार्यों को दोहराने से बच सकता है तथा अपने अनुसंधान की योजना बनाने के लिए आवश्यक अर्न्तदृष्टि भी मिलती है।

सम्बन्धित साहित्य के मुख्य स्रोतों में लेखक अपने कार्य को सीधे ही पुस्तकों शोध विषयक लेखों, शोध पत्रो, अपने अनुसंधानकार्य आदि के माध्यम से प्रतिवेदित करता है। प्रत्येक शोध की संरचना शोध को वह ढाचा होती है जिस पर समस्त अनुसंधान आधारित होता है। सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण को पूर्व मान्यता यह है कि हर अनुसंधान कुछ पूर्व धारणाओ तथा पूर्व शोधों आदि से सम्बन्धित होता है। अतः पूर्व अनुसंधानो के सर्वेक्षण से हमें भावी अनुसंधान में सहायता मिलती है।

प्रस्तुत शोध की समीक्षा शिक्षण के सन्दर्भ में सवेंगात्मक बुद्धि छात्रों के समायोजन तथा मूल्यों आदि विभिन्न पक्षों पर केन्द्रित है। इससे सम्बन्धित क्षेत्रों में विविध प्रकार के अनेकानेक अध्ययन हुए है। प्रस्तुत सर्वेक्षण इन्ही अध्ययनों का सारांश प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत अध्ययन के लिए शोधकर्त्ता ने अनेक स्रोतों से सूचना एकत्र की है। जिसके आधार पर प्रस्तुत सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा वर्णित है।

शर्मा व अन्य (2010): ने माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में मूल्य निर्णय क्षमता का अध्ययन में पाया कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में नैतिक व सामाजिक मूल्य निर्णय उच्च पायी गयी जबकि शैक्षिक राष्ट्रीय व आर्थिक मूल्य निर्णय क्षमता अपेक्षाकृत कम पायी गयी। बालकों व बालिकाओं में नैतिक मूल्य निर्णय क्षमता समान पायी गयी अर्थात् उनमें सार्थक अन्तर नही है, अतः शून्य परिकल्पना स्वीकार की गयी। बालिकाओं में सामाजिक मूल्य निर्णय क्षमता बालकों से अधिक पायी गयी अर्थात् सार्थक अन्तर है, अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकार की गयी। बालकों व बालिकाओं में शैक्षिक मूल्य निर्णय क्षमता समान पायी गयी अर्थात् सार्थक अन्तर नहीं हैं। अतः शून्य परिकल्पना स्वीकार की गयी। बालकों व बालिकाओं में राष्ट्रीय मूल्य निर्णय क्षमता समान पायी गयी अर्थात् उसमें सार्थक अन्तर नहीं है; अतः शून्य परिकल्पना स्वीकार की गयी। बालकों में आर्थिक मूल्य निर्णय क्षमता बालिकाओं की अपेक्षा अधिक पायी गयी अर्थात् बालिकाओं की अपेक्षा अधिक पायी गयी अर्थात् उनमें सार्थक अन्तर है; अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकार की गयी।

यादव, कमलेश (2010): ने अपने अध्ययन में विकलांग बच्चों के व्यक्तित्व-समायोजन में उनके माता-पिता एवं अभिभावकों की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका हैं। इसलिए अभिभावकों को अपने विकलांग बच्चों के व्यक्तित्व के चहुँमुखी विकास हेतु विशेष प्रयास करना चाहिए। इसके लिए इन बच्चों का संवेगात्मक विकास, शिक्षा, रोजगार एवं सामाजिक विकास की आवश्यकताओं को समझकर आवश्यक कौशलों का विकास करना अनिवार्य हैं। विकलांग बच्चों को शिक्षा एवं पुर्नवास के लिए बने कानूनों एवं अधिकारी की सफलता अभिभावकों की जागरूकता पर निर्भर करती हैं। अतः अभिभावकों का यह उत्तरदायित्व है कि अपने विकलांग बच्चे के आवश्यकताओं को समझें और उन्हें अपने व्यक्तित्व का विकास करने में उनकी सहायता करे ताकि वे कुशल एवं आत्मनिर्भर नागरिक की भाँति समायोजित जीवन व्यतीत करते हुए राष्ट्र को अपना अधिकतम योगदान दे सकें।

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण करने के पश्चात् उसे सुव्यवस्थित करने की आवश्यकता होती है। क्योंकि बिना सुव्यवस्थित किये उस साहित्य सर्वेक्षण का कोई महत्व नहीं होता है। और न ही उससे कोई लाभ प्राप्त होगा। अतः साहित्य को व्यवस्थित करना एक कला है। अतः हर सर्वेक्षण की एक स्पष्ट व्यवस्था होनी चाहिए। प्रत्येक सर्वेक्षण प्रकरण का ऐतिहासिक विकास देता है, एवं इसका हाल का स्तर एक साक्ष्य प्रस्तुत करते है तथा यह दिखलाते है कि किस प्रकार प्रस्तावित अध्ययन विचारणीय विषय है तथा किस प्रकार दूसरे पहलू को समझने में सहायता करेगा यद्यपि कोई भी विषय सभी दृष्टिकोण से सर्वोत्तम नहीं होता है। सर्वेक्षण हमेशा चयनात्मक, सुव्यवस्थित तथा समस्या से स्पष्ट रुप से सम्बन्धित होना चाहिए।

अतः सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण किसी अनुसंधानकर्त्ता की वास्तविक योजना तथा उसके बाद कार्यान्वयन का एक महत्वपूर्ण पूर्वाक्षेपित वस्तु है। सम्बन्धित साहित्य पूर्व के अनुसंधान के लेखों का सारांश प्रस्तुत करता है। प्रभावशाली अनुसंधान अतीत के ज्ञान पर निर्भर होता है। यह पुनरावृत्ति को समाप्त करता है। अध्ययनों के उदाहरणों द्वारा जो काफी सहमति दर्शाते हैं तथा विपरीत निष्कर्ष भी होते है। यह अनुसंधान हेतु एक पृष्ठिभूमि प्रदान करता है। व्यवस्थिति सर्वेक्षण वर्तमान ज्ञान को तेज करने और समझ को परिभाषित करने में सहायता करता है। यह क्षेत्र में अध्ययनों के विषय में सूचना प्राप्त करने में सहायता करता है। अनावश्यक आवृत्ति से रक्षा करता है। अनुसंधान को सफलतापूर्वक आगे बढ़ाने में मार्गदर्शन करता है।

गोलमैन (1995);

1. आत्म जागरुकता- निर्णयों को निर्देशित करने के लिये आंत की भावनाओं का उपयोग करते हुए किसी की भावनाओं को पढ़ने और उनके प्रभाव को पहचानने की क्षमता।
2. स्व प्रबन्धन- इसमें किसी की भावनाओं और आवेगों को नियंत्रित करना और बदलती परिस्थितियों के अनुकूल होना शामिल है।
3. सामाजिक जागरुकता- सामाजिक नेटवर्क को समझते हुये दूसरे की भावनाओं को समझने, समझाने और प्रतिक्रिया करने की क्षमता।
4. समय प्रबन्धन- समय का प्रबन्धन करते हुए, दुसरों को प्रेरित करने, प्रभावित करने और विकसित करने की क्षमता।

याटेस, जे0 एम0 (1999): ''ने ''द रिलेशनशिप बिटवीन इमोशनल इंटेलीजेन्स एण्ड हेल्थ हैबिट्स ऑफ हेल्थ एजूकेशनल स्टेडेण्ट्स'' पर अध्ययन किया। पुरुषों एवं महिलाओं के संवेगाात्मक बुद्धि और स्वास्थ्य आदतों के बीच सम्बन्ध को ज्ञात करने के लिए संवेगात्मक लब्धि सूची, संवेगात्मक बुद्धि सर्वे (इ0आई0पी0एस0) तथा स्वास्थ्य आदत सर्वे (एच0एच0एस0) का प्रयोग किया गया। परिणाम यह दर्शाता है कि स्वास्थ्य शिक्षा आयु में, स्वास्थ्य आदतों तथा संवेगात्मक बुद्धि में सम्बन्ध होता है।''

क्लेन्स डी0आर0 एण्ड वेयरमैन (2000): ''ने उसे छात्रों की संवेगात्मक बुद्धि तथा आन्तरिक व्यक्तिगत दक्षता के मूल्यांकन के लिए एक अध्ययन किया जिनका नामांकन 'आन्तरिक व्यक्तिगत व्यवहार द्वारा संवेगात्मक बुद्धि तथा आन्तरिक व्यक्तिगत दक्षता को बढ़ाना' नामक पाठ्यक्रम में था जो ट्वेण्टी जार्जिया स्टेट यूनिवर्सिटी के ''द साइकोलॉजी ऑफ इण्टरपर्सनल बिहैवियर'' में अण्डर ग्रेजुएट के लिए नामांकित थे। परीक्षण के लिए उसने बार-आन का ई0क्यू0-आई तथा आन्तरिक व्यक्तिगत दक्षता प्रश्नावली (आई0सी0क्यू0) का प्रयोग पाठ्यक्रम के शुरुवात और अन्त में किया। तुलना के लिए नियंत्रित समूह के 9 व्यक्तियों ने ई0क्यू0आई को तथा 6 व्यक्तियों ने आई0सी0क्यू0 को पूरा किया। परिणाम स्वरुप पाया गया कि इण्टरपर्सनल बिहैवियर कोर्स का संवेगात्मक बुद्धि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता जबकि प्रयोग पर आई0सी0क्यू0 स्कोर में पूर्व परीक्षण की तुलना में बाद के परीक्षण में सुधार हुआ।''

एस0आर0 हेनिंग (2001): ''ने ''द रिलेशनशिप बिटवीन सोसियल एण्ड इमोशनल इंटेलीजेंस इन चिल्ड्रेन'' पर अध्ययन किया। इस अध्ययन का उद्देश्य बच्चों में सामाजिक और संवेगात्मक बुद्धि के बीच सम्बन्ध का मापन करना था प्रयोज्यों की आयु 9-12 वर्ष तथा संख्या 59 थी। छात्रों ने सामाजिक दक्षता के मापन हेतु सोसियल स्किल्स रेटिंग सिस्टम्स स्टेडेन्ट्स (एस0एस0आर0एस0) तथा ई0क्यू0-आई0 का यूथ संस्करण को पूरा किया। अभिभावकों ने एस0एस0आर0एस0एस0 के अभिभावक संस्करण को पूरा किया परिणाम स्वरुप पाया गया कि-ई0आई0क्यू0 का यूथ संस्करण का एस0एस0आर0एस0 के स्टूडेन्ट संस्करण में उच्च सहसम्बन्ध (0.73) था और अभिभावक संस्करण के साथ सहसम्बन्ध (0.59) था।''

मेयर पी.डी. (2002): ''भावनात्मक बुद्धि की शोध आधारित अवधारणा की जांच करता है। इस अध्याय में चर्चा किये गये विषयों में निम्नलिखित शामिल है। मन की त्रयी, व्यक्तित्व के अन्य भाग, भावनात्मक लक्षण, संज्ञानात्मक लक्षण, सूचना के रुप में भावना, भावनात्मक धारणा, भावनात्मक एकीकरण, भावना को समझना, भावनाओं का प्रबन्धन, भावनात्मक बुद्धिमत्ता को क्षमता के रुप मापना, मल्टीफैक्टर इमोशनल इन्टेलीजेंस का विवरण, फलांकन, निष्कर्ष साथ ही यह निष्कर्ष निकाला गया कि अनुभूति और प्रभाव के क्षेत्र नें भावनात्मक बुद्धि के एक नये सिद्धान्त के लिये कुछ आधार प्रदान किये है।''

अध्ययन का उद्देश्यः- प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्त्ता द्वारा अध्ययन के उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि ''विवाहिता तथा अविवाहिता पुरुष तथा महिला छात्राध्यापकों की शिक्षण विषय के आधार पर संवेगात्मक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।''

शोध अध्ययन की परिकल्पनाः- उद्देश्य की पूर्ति हेतु शून्य परिकल्पना निर्मित की गई थी कि ''विवाहिता व अविवाहिता छात्राध्यापकों के संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।''

शोध विधिः- प्रस्तुत अध्ययन विवरणात्मक प्रकार का अध्ययन है। जिसमें वर्तमान से सम्बन्धित घटनाओं का विशलेषणात्मक विवरण होता है इसकी सर्वेक्षण विधि के तहत आंकड़ों का संकलन करते हुए निरीक्षण किया जाता है। जिसमें आंकड़ों की सहायता से वर्तमान घटनाओं पर प्रकाश डाला जाता है। सर्वेक्षण का इंगलिश रूपान्तर Survey दो शब्दों Sur+vey से मिलकर बना है। मूल रुप से, Sur (Sor) तथा अमतल (veeir) पर आधारित है, जबकि Sor का अर्थ over तथा veeir का अर्थ to सववा होता है। इस प्रकार Survey का सम्मिलित मूल अर्थ 'ऊपर से देखना' अवलोकन अथवा अन्वेषण होता है। शब्द कोष के अनुसार भी सर्वेक्षण का अर्थ प्रायः सरकारी आलोचनात्मक निरीक्षण होता है, जिसका उद्देश्य एक क्षेत्र की किसी एक स्थिति अथवा उसके प्रचलन के सम्बन्ध में यथार्थ सूचना प्रदान करना होता है, जैसे स्कूलों का सर्वेक्षण।

समष्टिः- प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि समस्त बी0एड्0 प्रशिक्षण संस्थानाओं के छात्राध्यापक थे। समष्टि की विशेषतायें निम्नलिखित है। समष्टि परिमित तथा अपरिमित दो प्रकार की होती है। जिसमें प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि परिमित प्रकार की है क्योंकि छात्राध्यापक की संख्या सीमित होती है। प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि समांगी प्रकार की है क्योंकि बी0एड्0 प्रशिक्षण संस्थानाओं के छात्राध्यापक का चयन की योग्यता का मानक एक ही होता है। किसी अध्ययन की वह सम्पूर्ण ईकाई समष्टि कहलाती है। जिस पर शोध कार्य आधारित होता है।

प्रतिदर्शः- प्रस्तुत अध्ययन के प्रतिदर्श का आकार 300 होगा। किसी बड़ी राशि में से चुनी हुई एक छाटी सी मात्रा को प्रतिदर्श या नमूना है। यह माना जाता है कि प्रतिदर्श के सांख्यिकीय गुण पूरी राशि के सांख्यिकीय गुणों का प्रतिनिधित्व करते है।

न्यादर्शः- शोधकर्त्ता द्वारा समय धन के अभाव के कारण आगमनात्मक प्रविधि अपनाते हुए समष्टि से एक छोटा समूह अध्ययन हेतु चयनित किया जाता है। जिसे न्यादर्श कहते है। न्यादर्श पूरी समष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। प्रस्तुत अध्ययन में गाजीपुर जनपद के यादृच्छिक न्यादर्श प्रविधि द्वारा कुल तीन सौ छात्राध्यापकों का चयन किया गया था जिनके वितरण का आधार क्षेत्र, लिंग, विषय तथा वित्तपोषण था। अनुसंधान में प्रायः प्रचलित विधि का प्रयोग सम्भव नही होता, क्योंकि इस विधि के द्वारा अध्ययन धन, समय व सुविधा के दृष्टिकोण से सापेक्षिकतः अत्याधिक खर्चीला व जटिल होता है। इसके विपरीत, व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से अप्रसचलिक विधि द्वारा अध्ययन पर्याप्त मात्रा में सुगम, सरल, अल्प-व्ययी तथा शुद्ध रहता है। अप्राचलिक विधि के अध्ययन का आधार प्रतिदर्श होता है।

प्रतिदर्श एक समष्टि का वह अंश होता है जिसमें अपनी समष्टि की समस्त विशेषताओं का स्पष्ट प्रतिलम्ब रहता है। पी0 वी0 यंग के शब्दों में एक प्रतिदर्श अपने समस्त समूह का एक लघु-चित्र होता है।

यदि समष्टि का स्वरुप सजातीय रहता है, तब प्रतिदर्श के चयन में विशेष कठिनाई नहीं होतीं, परन्तु जब समष्टि का स्वरुप विषम जातीय रहता है, तब प्रतिदर्श की इकाईयों के चयन के लिए प्रतिचयन प्रक्रिया का उपयोग करना पड़ता है।

तालिकाः न्यादर्श वितरण

क्र0सं0	*संस्थायें*	*छात्राध्यापक की संख्या*
1.	गुरु फूलचन्द्र महाविद्यालय सैदपुर गाजीपुर	40
2.	बी0एड्0 कालेज ककरही गाजीपुर	27
3.	समता महाविद्यालय सादात गाजीपुर	28
4.	कृष्ण सुदामा महाविद्यालय हुरुमुजपुर गाजीपुर	22
5.	पी00जी0 कालेज गाजीपुर	28
6.	मलिकपुरा कालेज गाजीपुर	26
7.	संत बुलादास कालेज गाजीपुर	34
8.	केदार फौजदार कालेज गाजीपुर	26
9.	गोपीनाथ महाविद्यालय देवकली गाजीपुर	39
10.	मॉ प्रेमा महाविद्यालय बासूचक गाजीपुर	30
	योग	300

तालिकाः वैवाहिक आधारित न्यादर्श वितरण

वर्ग	*संख्या*
वैवाहिक	150
अविवाहिक	150

तालिकाः न्यादर्श का समग्र वितरण

वैवाहिक-150						*अवैवाहिक-150*					
पुरुष			*महिला*			*पुरुष*			*महिला*		
विज्ञान वर्ग	*सामाजिक विषय*	*भाषा वर्ग*	*विज्ञान वर्ग*	*सामाजिक विषय*	*भाषा वर्ग*	*विज्ञान वर्ग*	*सामाजिक विषय*	*भाषा वर्ग*	*विज्ञान वर्ग*	*सामाजिक विषय*	*भाषा वर्ग*
25	25	25	25	25	25	25	25	25	25	25	25

योग- 300

शोध उपकरणः- प्रस्तुत अध्ययन में आंकड़ों के संकलन हेतु निम्नलिखित शोध उपकरण प्रयुक्त किये गये थे-

संवेगात्मक बुद्धि मापनीः- अंकुल हिंडे, संजोत पिइे तथा उपिन्दर धार द्वारा निर्मित संवेगिक बुद्धि मापनी नामक परीक्षण का प्रयोग किया गया है जो कि +2 स्तर के छात्रों की संवेगिक बुद्धि का मापन करती है। यह मापनी हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के संस्थानों के लिये बनायी गयी है।

उपकरण का निर्माणः- इस परीक्षण में कुल 34 पद है जो कि +2 स्तर व महाविद्यालय स्तर के विद्यार्थियों की विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित जानकारी के द्वारा सांवेगिक बुद्धि का मापन करती है। प्रारम्भ में इसमें 106 पद थे जिनको 50 विशेषज्ञों के समूह जो परास्नातक थे एवं अपने क्षेत्र में 10 वर्षों से अधिक अनुभव रखते हों, को दिया गया है। इसमें से चयनित पदों को 300 लोगों पर प्रशासन किया गया। इसके बाद अन्तिम दौर पर इसमें से 34 पदों का चयन किया गया। यह प्रश्नावली पांच पदो के रुप में है यथा-पमर्णतया सहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत, पर्णतया असहमत।

उपकरण की विश्वसनीयताः- इस अध्ययन में प्रयुक्त परीक्षण की विश्वसनीयता अर्द्ध विच्छेदन विधि के अनुसार 0.88 है।

उपकरण की वैधताः- उपकरण की वैधता के लिए पद-विश्लेषण किया गया। पदविश्लेषण के पश्चात् उपकरण की वैधता उच्च स्तर की पायी गयी जो कि 0.93 है। निर्णायकों एवं विशेषज्ञों के आधार पर पाया गया कि इस प्रश्नावली में चयनित पद संवेगात्मक बुद्धि सेप्रत्यक्ष रुप से सम्बन्धित है।

उपकरण का अंकनः- अंकन की विधि बहुत सरल है। पाँच बिन्दुओं की मापनी का अंकन करता है। सर्वप्रथम प्रयोज्यों द्वारा उत्तर दिये गये प्रश्नावली को ले लिया जाता है तत्पश्चात् उनकी अनुक्रिया के अनुसार पूर्ण सहमत पर 5 अंक, सहमत पर 4, अनिश्चित पर 3, असहमत पर 2, पूर्णअसहमत पर 1 अंक प्रदान किया जाता है। अन्त में इन अंकों का योग ही उत्तरदाता के सांवेगिक बुद्धि का प्राप्तांक होता है।

उद्देश्य से सम्बन्धित विश्लेषण तथा व्याख्याः- प्रस्तुत शोध में शोधकर्त्ता द्वारा उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि ''विवाहित तथा अविवाहित पुरुष तथा महिला छात्राध्यापकों का शिक्षण विषय के आधार पर संवेगात्मक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना'' इस उद्देश्य के अध्ययन हेतु कुल छः शून्य परिकल्पना बनायी गयी थी जिनका परीक्षण क्रमशः निम्नलिखित है।

परिकल्पनाः- प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य हेतु परीक्षण के लिये शून्य परिकल्पना बनायी गयी थी कि- ''विवाहित तथा अविवहित छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।'' इसके परीक्षण के लिये अधोलिखित विश्लेषण तालिका बनायी गयी-

तालिका 1: वैवाहिक आधारित संवेगात्मक बुद्धि सम्बन्धी सी0आर0 मूल्य विश्लेषण तालिका

समूह	*संख्या*	*मध्यमान*	*मानक विचलन*	*मानक त्रुटि*	*सी0आर0मूल्य*	*P*
विवाहित	150	45.43	10.89			N.S.
अविवाहित	150	44.18	9.18	1.35	0.93	.05

df (298) at .05 =k 1.96

उपरोक्त विश्लेषण तालिका से स्पष्ट है कि विवाहित छात्राध्यापकों को संवेगात्मक बुद्धि की मध्यमान 45.43 और मानक विचलन 10.89 है जबकि अविवाहित छात्राध्यापकों के मध्यमान 44.18 और मानक विचलन 9.18 है जिससे अभिकलित मानकत्रुटि 1.35 तथा सी0आर0 मूल्य 0.93 है। जो कि (298) के 0.05 सार्थकता स्तर पर 1.96 से कम है जिसके आधार पर बनायी गयी शून्य परिकल्पना ''विवाहित तथा अविवहित छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।'' स्वीकार हो जाती है और स्पष्ट होता है कि संवेगात्मक बुद्धि वैवाहिकता से प्रभावित नहीं होती है। प्रस्तुत अध्ययन क विरोधी परिणाम सिंह (2021) का अध्ययन है। इसके सम्भवतः कारण है कि यह जीवन की एक प्रथा है जिसके लिये हम सांवेगिक रुप से तैयार रहते है।

शोध निष्कर्षः- विश्लेषणोपरान्त प्रस्तुत अध्ययन से यह शोध निष्कर्ष प्राप्त किया गया कि- विवाहिता तथा अविवाहित छात्राध्यापकों के संवेगात्मक बुद्धि, समायोजन व मूल्यों में समानता पायी जाती है।

शैक्षिक निहितार्थः- प्रस्तुत अध्ययन भावी अध्यापकों को आधार मानकर किया गया हैं क्योंकि भारत को यदि हम स्त्री लिंग में भारत माता कहते है तो पुल्लिंग के रुप में जगत गुरु के नाम से भी जाना जाता है। अध्यापक का पेशा बड़े त्याग व कर्तव्य निष्ठता का होता है जिसके लिये आवश्यक हो जाता है कि शिक्षक-प्रशिक्षण विभाग विश्वविद्यालयों के सशक्त व समर्थ बनाये जाये जिससे भावी अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जाय तो उनमे भारतीय मूल्य (सामाजिक, धार्मिक, ज्ञान, पर्यावरणीय तथा एक दूसरे के प्रति लगाव और एकात्मकता भाव) स्थापित हो सकें। हमारा भावी अध्यापकों की आत्मा में भारतीयता भरी हो ताकि वे अपने भारतीय समाज को भली-भाँति समझ सके औंर पोषित करने वाले बने।

नई शिक्षा-नीति 2020 कहती है कि 'भारत का ज्ञान' में आधुनिक भारत और इसकी सफलताओं और चुनौतियों के प्रति प्राचीन भारत का ज्ञान और उसका योगदान शामिल होगा, और शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण आदि के सम्बन्ध में भारत की भविष्य की आंकाक्षाओं की स्पष्ट भावना शामिल होगी इन तत्वों को पूरे स्कूल पाठ्यक्रम में जहाँ भी प्रासंगिक हो यहाँ वैज्ञानिक तरीके से और एक सटीक रुप से शामिल किया जायेगा। विशेष रुप से भारतीय ज्ञान प्रणाली को आदिवासी ज्ञान एवं सीखने के स्वदेशी और पारम्परिक तरीकों से कवर किया जायेगा और गणित, खगोल विज्ञान, दर्शन, योग, वास्तुकला, चिकित्सा, कृषि अन्जीनियरिंग, भाषा विज्ञान साहित्य, खेल के साथ-साथ शासन, राजव्यवस्था संरक्षण आदि विषयों में शामिल किया जायेगा जनजातीय एथनो आषधीय परम्पराओं वन प्रबन्धन, पारम्परिक जैविक फसल की खेती, प्राकृतिक खेती आदि में विशिष्ट पाठ्यक्रम भी उपलब्ध कराये जायेगे। भारतीय ज्ञान प्रणालियों पर एक आकर्षक पाठ्यक्रम भी एक वैकल्पिक रुप में माध्यमिक विद्यालय में छात्रों के लिये उपलब्ध होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोलमैन (1995); ''व्हाट इट कैन मैटर मोर दैन आई.क्यू.? ए.आई.सी. एच. ई., इन्होंने संवेगात्मक बुद्धि के 04 मॉडल का जिक्र किया है।
2. याटेस, जे0 एम0 (1999); ''द रिलेशनशिप बिटवीन इमोशनल इंटेलीजेन्स एण्ड हेल्थ हैबिट्स ऑफ हेल्थ एजूकेशनल स्टेडेण्ट्स'' डिजर्टेशन ऐब्स्ट्रैक्ट इण्टरनेशनल, 60-90 ए. 3284.
3. क्लेन्स डी0आर0 एण्ड वेयरमैन (2000); ''एसेसिंग इमोशनल इंटलीजेन्स एण्ड इण्टरपर्सनल कम्पीटेंस इन स्टूडेन्ट'' पी0-एच0डी0, जार्जिया स्टेट यूनिवर्सिटी, अटलाण्टा, जार्जिया.
4. एस0आर0हेनिंग (2001); ''द रिलेशनशिप बिटवीन सोसियल एण्ड इमोशनल इंटेलीजेंस इन चिल्ड्रेन'' पी-एच0डी0 थीसिस, टेन्सी यूनिवर्सिटी.
5. मेयर पी.डी. (2002); ''भावना, बुद्धि और भावनात्मक बुद्धि जे.पी. फोर्गस (एड) में'' प्रभाव और सामाजिक अनुभूति की पुस्तिका पेज (410-431) लारेंस एर्लबौम एसोसियट्स पब्लिशर्स.
6. पी0 क्रिक (2003); ''इमोशनल इंटेलीजेन्स, सोसियल कम्पीटेन्स एण्ड सक्सेज इन हाईस्कूल स्टेडेन्ट्स'' पी-एच0डी0 थीसिस, वेस्टर्न केण्टयूकी यूनिवर्सिटी, बाउलिंग ग्रीन.
7. के0डी0 पार्कर (2004); ''इमोशनल इंटेलीजेंस, एण्ड ऐकेडमिक सक्सेसः एग्जेमाइनिंग व ट्रांजिशन फ्राम हाई स्कूल टू यूनिवर्सिटी'' रिसर्च पेपर, साइकोलॉजीकल एसोशिएशन, बैंकावार.
8. सी0 रेकर एण्ड जे0डी0ए0 पार्कर (2005); ''ने इमोशनल इंटेलीजेंस, मुड एण्ड प्राब्लम बिहैवियर अन चिल्ड्रेन एण्ड एडोलसेन्ट फेस्टर सेसन प्रजेण्टेड एट ए0पी0ए0 107वीं अनुएल कन्वेशन, बोस्ट, एम0ए0.
9. एम0 पी0 एलेन (2006); ''इन्वेस्टीगेटिंग इंटेलीजेन्स इन चिल्ड्रेनः एक्सप्लोरिंग इट्स रिलेशनशिप टू कागनिटिव इंटेलीजेन्स'' पी-एच0डी0 डिजर्टेशन एब्स्ट्रैक्ट्स, इण्टरनेशनल 60-09, 3254.
10. वी0 सी0 शनवाल (2007); ''ए स्टडी ऑफ कोरिलेट्स एण्ड नर-चुरेंस ऑफ ई0आई0 इन प्राइमरी स्कूल चिल्ड्रेन'' पी-एच0डी0 एजूकेशन, जामिया मिलिया इस्लामिया, न्यू देलही.

सन्त साहित्य की परम्परा और परिप्रेक्ष्य

सुमन शुक्ला

शोधार्थी, काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर भदोही (उ0प्र0)

भारत में संत साहित्य की परम्परा अत्यत प्राचीन और मूलत: काव्यात्मक रही है वैदिक काल से वर्तमान तक ऋचाओं, श्लोकों, पद्यों एवं गद्यों के रूप में साहित्य रचना होती आ रही है। हिंदी साहित्य के भक्ति काल को यदि कालक्रम की दृष्टि से देखा जाए तो हिंदी संत काव्य का प्रारम्भ निर्गुण काव्यधारा से होता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने नामदेव और कबीर द्वारा परिवर्तित भक्ति धारा को 'निर्गुण ज्ञानाश्रयी धारा' की संज्ञा प्रदान की है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने इसे सन्त काव्य-परम्परा जैसे विशेषण से अभिहिट किया है आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'निर्गुण भक्ति साहित्य' का नाम दिया है। निर्गुण काव्य धारा में संत काव्य का विशेष महत्व है।

भारत भूमि ने अनेक सन्तों को जन्म दिया, इनमें नामदेव, कबीर दास, नानक देव, सन्त ज्ञानेश्वर, तुकाराम, एकनाथ, रविदास, धर्मदास, दादू दयाल, सुंदर दास, मलूक दास, सिंगा, धन्ना, पीपा, रज्जब, सदना, जम्भदास, बेनी, सेना, गरीबदास, भीषम, बुल्ला साहब, मीराबाई, सहजोबाई, आदि प्रमुख है। इन्होंने जाति-पाति, छुआछूत, धार्मिक बाह्य आडंबर का विरोध कर समाज में समरसता लाने का प्रयास किया। मराठी सन्त परम्परा में नामदेव का स्थान महत्वपूर्ण माना जाता है। सन्त नामदेव ने मराठी भाषिक लेकर हिंदी में लेखन किया उनकी हिंदी रचनाओं में अन्य भाषाओं का मिश्रण भी दिखाई पड़ता है। सन्त नामदेव ने जीवन में सहजभाव और सहज भक्ति पर विशेष बल दिया है। इस दृष्टि से पूजा-पाठ, तीर्थ यात्रा आदि को व्यर्थता और पाखण्ड कहा हैं। उनका मानना है-'पाखण्ड भक्ति राम नहीं रिझै' अर्थात भगवान को पाना है तो श्रद्धा युक्त अंत: करण से नामस्मरण न कर तप, व्रत, उपवास करना, तीर्थ यात्रा करना, सोना दान करना, व्यर्थ है। मनुष्य का अंत:करण यदि काला है, तो गले में तुलसी की माला पहनने से क्या लाभ है। 'गलि पहिरे तुलसी की माला। अन्तरगति कोई लासा काला।' पत्थर के देवताओं को खुश करने के भ्रम में सजीव प्राणियों की बलि देकर पत्थरों और धातुओं की प्रतीकों को पूजा करना किस प्रकार त्याज्य है। इसे सन्त नामदेव ने विभिन्न प्रसंगों द्वारा अपनी वाणी से समझाने का प्रयास किया है।

सन्त काव्य धारा के कवियों में कबीर का स्थान महत्वपूर्ण है। यद्यपि कबीर से पहले जयदेव और नामदेव का नाम सन्त काव्य में प्रमुखता से लिया जाता है। किंतु हिंदी में उनकी रचनाएँ कम होने के कारण उत्तर भारत की सन्त परम्परा में उनका अधिक प्रभाव नहीं पड़ सका। भक्ति काल के आरम्भ में कबीर एक प्रभावशाली रचनाकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। कबीर को लंबी उम्र प्राप्त हुई थी वह लगभग 120 वर्षों तक जीवित रहे। कबीर एवं अन्य सन्तों की रचनाओं के दार्शनिक -सांस्कृतिक आधारों में उपनिषद, शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन, नाथ पंथ, इस्लाम धर्म, तथा सूफी दर्शन हैं। निर्गुण भक्ति का मूल तत्व है- निर्गुण-सगुण से परे अनादि, अनंत ,अनाम, अज्ञात, ब्रह्म का नाम जप मानसिक भक्ति, कर्मकाण्डो और आडम्बरों का विरोध तथा मानव मात्र के प्रति प्रेम । उनका चिंतन जाति वर्ण और वर्ग से ऊपर था। उन्होंने हृदय की पवित्रता पर बल दिया है।

संत कवियों में कबीर सबसे अलग और क्रांतिकारी तेवर के थे। कबीर के जन्मजात के विषय में अनेक किवदन्तियाँ और मत प्रचलित है। उन्होंने स्वयं जुलाहा बताया है-''जाति जुलाहा नाम कबीरा'' अक्षर ज्ञान के परम साधक कबीरदास सामान्य अक्षर ज्ञान से रहित थे। उन्होंने बड़े ही स्पष्ट शब्दों मे कहा है- 'मसि कागद छूयों नहीं, कलम गह्यों नहीं हाथ'। कबीर द्वारा रचित 63 ग्रंथों का उल्लेख मिलता है। कबीर के काव्य का आधार स्वानुभूति है। उन्होंने कहा है कि - ''मैं कहता हूँ आखिन देखी, तू कहता कागद कर लेखी''[1]। डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने कबीरदास को जन्म से विद्रोही प्रकृति कवि कहा है।

कबीर की भाषा और शैली बड़ी सहज और शक्तिशाली है। उन्होंने ज्ञान, भक्ति, योग, वैराग्य, हथयोग आदि विषयों को बड़े सुबोध रूप में व्यक्त किया है। कबीर तद युगीन सामाजिक वर्णनाओं और चुनौतियों का जिस दृढ़ता के साथ सामना करते हुए, अपने निर्दिष्ट पथ पर आगे बढ़ते हुए एक सर्वथा नवीन सामाजिकता का निर्माण कर रहे थे, वह उस समय के लिए एक बहुत बड़ी बात थी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर की इन प्रवृत्तियों को रेखांकित करते हुए लिखा है- ''जातिगत,कुलगत, धर्मगत, संस्कारगत, विश्वासगत, शास्त्रगत, सम्प्रदायगत, बहुतेरी विशेषताओं के जाल को छिन्न करके ही वह आसन तैयार किया जा सकता है जहां मनुष्य दूसरे से मनुष्य की हैसियत से मिले ।जब तक यह नहीं होता तब तक अशांति रहेगी, मारामारी रहेगी, हिंसा-प्रतिस्पर्धा रहेगी। कबीरदास ने इस महती साधना का बीज बोया था।''[2] कबीर ने किसी भी स्थिति में पुरानी पतनशील मान्यताओं के सम्मुख घुटने नहीं टेके और किसी तरह का समझौता नहीं किया।

संत कबीर समाज सुधारक के रूप में सामने आते हैं। कबीर ने समाज में व्याप्त जाति- प्रथा, छुआछूत एवं ऊँच-नीच की भावना वर्णाश्रम व्यवस्था को सामाजिक उन्नति के लिए बहुत बड़ा अभिशाप माना है। उन्होंने जाति व्यवस्था पर कड़ा प्रहार करते हुए कहा है कि जन्म आधार पर कोई ऊँचा नहीं होता बल्कि ऊँचा तो वह होता है जिसके कर्म अच्छे होते हैं-

ऊँचे कुल का जनमिया करनी ऊँच न होय,
सुबरन कलस सुरा भरा साधू निंदत सोय।[3]

कबीरदास आत्मा के गायक हैं, उन्होंने उस परम तत्व को वाणी का विषय बनाया है जो अगम अगोचर है ।वह ऐसा अरूप और असीम है, जिसे शब्दों की सीमा में नहीं बांधा जा सकता है। लक्षणा और व्यंजना द्वारा ध्वनित किया जा सकता है। भारत में प्रतीक-विधान अत्यंत प्राचीन है। कबीर का प्रतीक विधान उनकी गहन जीवनानुभूति तथा चिंतन मनन का प्रमाण है ।कबीर मूलत: आध्यात्मिक प्रेम के गायक हैं। इनकी कृतियों में प्रेम के तीन सोपान हैं- अनुराग ,वीर, और मिलन। प्रेम वर्णन में कबीर ने जिन प्रतीकों का चयन किया है, उसका क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। विरहिणी आत्मा की अभिलाषा संदेह, प्रतीक्षा, चिंता, उद्देश्य, प्रलाप के अत्यंत मार्मिक चित्र खिंचे हैं। प्रेम सम्बन्धी कविताएँ भाव सौंदर्य की दृष्टि से अप्रतिम है।

लौकिक प्रेम में विरह के प्राय: तीन कारण बताए गए है- पूर्वानुराग, मान और प्रवास। कबीर ने भी विरहिणी आत्मा के लिए प्रोषित पतिका नायिका का प्रतीक चुना है। जीव संसाररूपी पथ पर खड़ा होकर प्रत्येक साधक से पूछता रहता है कि कोई उसे प्रियतम राम का संदेश बता दे। प्रतीक्षा करते करते आँखों में अंधेरा छाने लगता है, राम को पुकारते पुकारते जिह्वा में छाले पड़ गए हैं।कबीर के काव्य सौष्ठव का चरमोत्कर्ष ऐसे स्थलों पर दिखाई पड़ता है जब अनेक भावों को एक साथ संश्लिष्ट रूप में उपस्थित करने के लिए प्रतीकों का चयन करते हैं।

पन्द्रहवीं शताब्दी भारतीय धर्म साधना और साहित्य के इतिहास का अत्यंत महत्वपूर्ण काल माना जाता है। डॉ० ग्रियर्सन सहसा उठे बादलों के बीच बिजली की चमक मानते है, तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल हताश और पराजित जाति के भक्ति जन्य उद्‌गार के रूप में देखते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि ये बादल उत्तर भारत के आकाश में शताब्दियों से एकत्र हो रहे थे, दक्षिण के भक्त आचार्यों के उत्तर में आने से भक्ति आंदोलन का अभ्युदय हुआ। इन परिस्थितियों में जब कबीर को देखा जाता है तो पता चलता है कि कबीर का संतमत और उनका काव्य सिद्धों, जैनियों नामपंथियों, वैष्णवों और वेदान्तियों के अनेक परम्पराओं का संश्लिष्ट रूप है।

कबीर ने इन तमाम परम्पराओं को समन्वित कर अपने संतमत को खड़ा किया। कबीर प्रखर प्रतिभा के धनी थे। अत: अपने प्रतीकात्मक गुरु रामानंद से प्राप्त रामभक्ति में ही समस्त परम्पराओं को समाहित कर दिया। कबीर के समय में एक वर्ग नाथों का था जो जातिगत भेदभाव को समाप्त करना चाहता था। अपनी और जाति की उपेक्षा कबीरदास अंत तक भूल न सके। अत: कबीर के मन में वर्गहीन समाज की स्थापना का स्वप्न था। इसके लिए उन्होंने हिंदू और इस्लाम दोनों ही समाजों के भेदभाव का खण्डन किया है। किंतु वह खण्डन आध्यात्मिकता से इतर नहीं है। परमात्मा की एक बूंद से ही सारी सृष्टि की रचना हुई है, फिर कौन ब्राह्मण और कौन शुद्र ब्राह्मणों को ललकारते हुए कहते हैं -

''जो तू बाभन बाभनी जाया।
तौ आन बाट होइ काहे न आया।''

इस प्रकार मुसलमानों को फटकारते हैं- ''जो तू तुरुक तुरुकिनी जाया तो भीतरि खतना क्यूँ न कराया।''[4]

कबीर ने सदैव वाह्यचारों का विरोध किया है। वेषधारी साधुओं को बार-बार केश मुंडवाने पर फटकारते हैं कि इससे अच्छा है कि मन को मुड़ाओ, जिसमें विषय वासनायें भरी हैं। कबीर की दृष्टि में तीर्थ करना, व्रत करना, माला फेरना, मूर्ति पूजा करना, रोजा करना, नमाज पढ़ना, वाह्यचार है। ईश्वर की प्राप्ति इस सब से नहीं होती। संसार रूपी सागर को पार करने के लिए राम नाम का स्मरण करते हुए भक्ति के बेड़े को बाँधने की बात करते हैं। कबीर की दृष्टि से धर्म कटुता नहीं सिखाता, प्रेम सिखाता है। व्यक्ति-व्यक्ति में भेद नहीं करता, सब मनुष्य में उस परमात्मा के ही दर्शन करता है। उनकी दृष्टि में सम अवस्था ही ज्ञान की, प्रेम की, भक्ति की, साधन की, धर्म की, परिणति है। यही समरसता आर्थिक पक्ष में दिखाई पड़ती है। कबीरदास जानते हैं कि निर्धन का समाज में आदर नहीं होता। मरने के बाद धनी और निर्धन सभी एक समान हो जाते हैं और उनके कटिवस्त्र तथा कटिसूत्र को भी तोड़कर निकाल लिया जाता है। अत: जीते जी धन की चिंता नहीं करनी चाहिए।

सन्त परम्परा में गुरु नानक का भी उच्च स्थान है। वे चाहते थे कि हिंदू-मुस्लिम प्रेम और भाईचारे की भावना से एक साथ मिल कर रहे। उन्होंने राम और रहीम की एकता स्थापित करते हुए बताया कि ईश्वर दो नहीं हो सकते। साथ ही देश के पतन का भी उन्होंने सम्यक अध्ययन किया था। उनके अनुसार कोई भी देश अपनी अच्छाइयों को खो देने पर पतित होता है। ईश्वर जिसे नीचे गिराना चाहता है, पहले उससे उसकी अच्छाइयाँ छीन लेता है। देश की तत्कालीन अवस्था के लिए गुरु नानक उन लोगों को दोषी ठहराते थे जिनकी चरित्रहीनता और अकर्मण्यता तथा ऐश परस्ती के कारण देश की दुर्दशा हुई थी। आज के संदर्भ में यही बात सत्य होती हुई प्रतीत होती है। समाज में ऐशो आराम का जीवन, फैशन परस्ती, अकर्मण्यता बढ़ रही है। नेताओं, समाजसेवियों, आध्यात्मिक गुरुओं का चरित्र पतित बन गया है जिससे देश की हालत बिगड़ रही है। गुरु नानक जी के संदेश आज भी असरकारक और आज के संदर्भों की कसौटी पर खरे हैं।

संत ज्ञानेश्वर को तत्कालीन ब्राह्मण समाज ने भ्रष्ट सन्यासी का बेटा कहकर अपमानित किया था, पर अपनी प्रतिभा से वे समाज में स्वीकृत हुए। उन्होंने संत नामदेव के साथ पूरे महाराष्ट्र का भ्रमण कर लोगों को ज्ञान-भक्ति से परिचित करवाया और समता, स्वभाव का उपदेश दिया, उनके साहित्य में पीड़ित जनों को अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने का स्पष्ट संकेत मिलता है। संत ज्ञानेश्वर का व्यतिव, क्रांतिकारी, दार्शनिकों, आत्मानुभवी योगियों धर्मात्मा संत और प्रतिभाशाली कवियों की भूमिका से पूरा हुआ है। साथ ही शिष्टाचार, करुणा, विनम्रता, क्षमा, दया, उदारता, समदृष्टि आदि गुणों से समृद्ध था। उनकी ज्ञानेश्वरी अमृतानुभव तथा अन्य स्फुट रचनाएँ प्रसिद्ध है। उन्होंने आध्यात्म ज्ञान की महत्ता स्थापित करते हुए सर्व साधारण मानव के आकलन योग्य भक्तिमार्ग का प्रतिपादन किया। ज्ञानेश्वरी में लगभग 9000 पद हैं। गुरु भक्ति, श्रोताओं की प्रार्थना, मराठी भाषा का अभिमान, गीता का स्तवन, श्री कृष्ण और अर्जुन का स्नेह-संवाद आदि विषयों से ज्ञानेश्वर मुग्ध हुए, इसलिए गीता की टिकाओं में ज्ञानेश्वरी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है।

संत तुकाराम सत्रहवीं सदी के संत साहित्यिक हैं। इनका स्वभाव संत कबीर की तरह ही था। समाज से ग्रसित कुरीतियों और रूढ़ियों के खिलाफ उन्होंने कड़ा प्रहार किया। उनका अभंग गाथा ग्रंथ विख्यात है। समाज का उद्धार, सदाचार की स्थापना, कर्मकांड का कड़ा विरोध, आदि इनकी रचनाओं की विशेषता है। संत तुकाराम जन कल्याण में दन्तचिन्त होना ही असली परमार्थिक सुख का मूल मानते थे। उनका मानना है कि व्यक्ति के सुख-दु:ख को सहसंवेद्य रहकर

उसके दुख निवारण करने के प्रयत्नों को ही परमेश्वर प्राप्ति कहते हैं, 'यत्न तो देव जाणवा'। उन्होंने मंत्र-तंत्र ,जादू-टोना, पर भी व्यंग किया है। वे कहते हैं-''अवधा तो शकुन, हृदयी देवाचे चरणा तुका म्हणे हरिच्या दाशा शुभकाल अवध्या दिशा''[5]। उन्होंने अपने परमार्थिक अनुभवों को मराठी भाषा में अभंग नामक छन्द में व्यक्त किया है। वेदान्त का गूढ़ दर्शन वे सामान्य जनों के लिए जन भाषा के माध्यम से प्रकट करते हैं, किंतु इसी कारण उन्हें अपने समकालीन लोगों के विरोध का सामना करना पड़ा।

अत: कहा जा सकता है कि संत साहित्य आज की अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होता है। इन संतो ने अपने काव्य के माध्यम से आदर्श समाज के स्वरूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उन्होंने जो मूल्य उपस्थित किया है वह मार्गदर्शक सिद्ध होते हैं। आज समाज में नैतिक मूल्यों का तेज गति से क्षरण हो रहा है। वैश्वीकरण ने मनुष्य, समाज, रिश्ते, संस्कृति, सबको प्रभावित किया है। ऐसे में संत साहित्य उस दीपक के समान है। जो अंधकार का नाश कर प्रकाश को प्रसारित करता है।

सन्दर्भ

(1) सिंह, डॉ0 माधुरी, सिंह, डॉ0 सरोज एवं सिंह, डॉ0 दयाशंकर- संपा0 भक्ति एवं रीति काव्य धारा, ज्ञानभारती प्रकाशन वाराणसी, संस्करण- 2016-17 पृष्ठ 57

(2) द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद- कबीर, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण-1990 पृष्ठ 193

(3) यादव, डॉ0 द्विजराम एवं सिंह, डॉ0 अजीत-संपा0 प्राचीन एवं मध्यकालीन हिंदी काव्य संग्रह, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ संस्करण-2003 पृष्ठ-122

(4) वही-पृष्ठ-27

(5) वैरागी, डॉ0 मोहन-संपा0- अक्षर वार्ता, वर्ष-16, अंक-9, जुलाई 2020 (लेख संत साहित्य की प्रासंगिकता) पृष्ठ-38

एकात्म मानववाद और मार्क्सवाद

अनिल कुमार

असि. प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, श्री बजरंग स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दादर आश्रम, सिकन्दरपुर, बलिया, उत्तर प्रदेश

एकात्म मानववाद

एकात्म मानववाद दर्शन के प्रणेता पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी है। यह दर्शन या विचारधारा पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी को महान मनीषियों के श्रेणी में ला दिया।

एकात्म मानववाद पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का विचार दर्शन है, जो केवल दार्शनिक ही नहीं अपितु आर्थिक भी है और जिसका केंद्र बिंदु मानव है। यह दर्शन मानव को समग्र अथवा एकात्म रूप में देखता है और जिसका उद्देश्य मानव जाति का शाश्वत सुख और कल्याण को बढ़ाना है। वास्तव में एकात्म मानववाद कोई नई विचारधारा नहीं है बल्कि हमारी सनातनी अर्थदर्शन या सनातनी अर्थव्यवस्था की जो विशेषताएं थी, उसी का युगानुकूल रूप है।

"एकात्म मानववाद ऐसा जीवन दर्शन या विचारधारा है जो मानव का विचार केवल 'आर्थिक मानव' के एकांगी नजरिये से नहीं करता है बल्कि जीवन के समग्र पहलुओं से करता है और ऐसे मानव के अन्य मानवो एवं मानवेतर संसार के साथ परस्पर पूरक एकात्म संबंधों को भी ध्यान में रखकर सुखी, समृद्ध, संपन्न और कृतार्थ जीवन की दिशा दर्शाता है।"

"एकात्म मानववाद जो दर्शन है, यह पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के आत्मिक चिंतन की अभिव्यक्ति है जिसकी जड़ें भारतीय चिंतन के भूत में है परंतु दृष्टि भविष्य पर केंद्रित है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी इस विचारधारा के अंतर्गत आधुनिक राजनीति, अर्थव्यवस्था और समाज रचना के लिए एक बहुआयामी भारतीय पृष्ठभूमि प्रस्तुत किए हैं और यही नहीं बल्कि इस विचारधारा को वर्तमान समय की चुनौतियां एवं समस्याओं के भारत के नजरिए से समाधान के रूप में भी प्रतिपादित किए है, जो पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों के ही विकल्प रूप में है।"

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का मानना था कि जब हमारा देश आजाद होगा तब हम किस नीति पर या किस विचारधारा के साथ आगे बढ़ेंगे? क्योंकि पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी यह मानते थे कि पूंजीवाद हो या साम्यवाद, दोनों ही हमारे देश के लिए चाहे वह आर्थिक विकास हो या समाजिक विकास हो, उपयुक्त नहीं है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का यह मानना था कि हमें ऐसी विचारधारा या दर्शन के साथ आगे बढ़ना चाहिए जो भारतीयता और भारतीय संस्कृति, प्रकृति के अनुरूप हो और एकात्म मानववाद दर्शन ऐसा ही दर्शन है।

एकात्म मानववाद दर्शन का प्रतिपादन पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी द्वारा 1965 में किया गया। इस विचारधारा का उद्‌भव 'अद्वैत वेदांत' के 'अद्वैतवादी दर्शन' से माना जाता है।

इस दर्शन के केंद्र में मानव कल्याण व उनका शाश्वत सुख निहित है। यह दर्शन व्यक्तिवाद का खंडन करता है और व्यक्ति एवं समाज के बीच एक सावयव संबंध की आवश्यकता पर बल देता है। इस दर्शन में मत भिन्नताओं को स्वीकार करते समय, जीवन के विभिन्न पहलुओं में अलगाव, अस्वीकृति तथा असहमति की अपेक्षा अन्तरनिर्भरता, साहचर्य तथा एकत्व पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। इसलिए यह दर्शन सभी के कल्याण हेतु कार्य करता है।

मार्क्सवाद

मार्क्सवाद विचारधारा के प्रतिपादक कार्ल मार्क्स है। मार्क्स के विचारों और निदेशों का नाम मार्क्सवाद है। "कार्ल मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा ही मार्क्सवादी विचारधारा कहीं जाती है। कार्ल मार्क्स एक वैज्ञानिक समाजवादी विचारक थे। सामाजिक राजनीतिक दर्शन में मार्क्सवाद, उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व द्वारा वर्ग-विहीन समाज की स्थापना के संकल्प की साम्यवादी विचारधारा है।"

कार्ल मार्क्स के आर्थिक सिद्धांत

कार्ल मार्क्स ने अपने आर्थिक विकास के सिद्धांत में मुख्यत: इतिहास के भौतिकवादी व्याख्या, अतिरेक मूल्य, पूंजी संचय और पूंजीवादी संकट पर अपने विचार दिए।

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या यह स्पष्ट करती है कि समस्त ऐतिहासिक घटनाएं समाज के भिन्न-भिन्न वर्गो तथा समूहों के बीच लगातार आर्थिक संघर्षों का परिणाम रहा है। इस संघर्ष का मुख्य कारण था 'उत्पादन की विधि' तथा 'उत्पादन के संबंधों' के बीच विरोध।

उत्पादन की विधि समाज में उत्पादन के विशिष्ट प्रबंध की ओर इशारा करती है जो जीवन के सभी सामाजिक ,राजनैतिक तथा धार्मिक ढंग को निर्धारित करती है और श्उत्पादन के संबंधश समाज के वर्ग ढांचे से संबंध रखता है।

कार्ल मार्क्स ने इतिहास के प्रत्येक घटना को आर्थिक आधार पर स्पष्ट किया। सामाजिक जीवन के विकास को इतिहास के भौतिकवादी विश्लेषण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। समाज में घटने वाली समस्त ऐतिहासिक घटनाएं हमारे समाज में रह रहे विभिन्न वर्गो एवं समूहों के बीच चल रहे नियमित आर्थिक संघर्षो का परिणाम होती है। इतिहास में सभी घटना संयोग से नहीं होता है बल्कि कुछ निश्चित नियमों के तहत होता है।

मार्क्स के अनुसार "उत्पादन की विधि वह मुख्य घटक है जो सामाजिक व्यवहार को निर्धारित करती है।" और षविकास की एक निश्चित अवस्था में समाज की भौतिक उत्पादक शक्तियां उत्पादन के विद्यमान संबंधों के साथ द्वंद का अनुभव करती है। परिवर्तन की इस प्रक्रिया में वर्ग-संघर्ष महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।"

मार्क्स ने समाज के उद्भव एवं विकास की व्याख्या के लिए 'द्वंदात्मक भौतिकवाद के दर्शन' को आधार बनाया। समाज में चार विभिन्न अवस्थाओं का क्रम देखा जाता है।

पहली अवस्था प्राथमिक समाजवाद की होती है। इसके बाद प्राचीन दास समाज की अवस्था आती है। प्राथमिक अवस्था में उत्पादन के साधनों पर समाज का स्वामित्व होता है। श्रम विभाजन विकसित नहीं होता है। श्रम के प्रतिफल का समुदाय के सभी सदस्यों के बीच समान रूप से बांट दिया जाता है।

प्राचीन दास समाज की अवस्था में एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति द्वारा शोषण किया जाता है। इस अवस्था में श्रम विभाजन को बल मिलता है तथा शहरीकरण होता है। व्यापार तथा वाणिज्य क्रियाएं बढ़ती है। धन को बहुत अधिक ब्याज कमाने के लिए ऊंची दर पर उधार दिया जाता था। उत्पादन के शक्तियों के बढ़ने से दास अवस्था सामंतवादी अवस्था के रूप में उभरकर सामने आती है जो मार्क्स के अनुसार तीसरी अवस्था है। इस अवस्था में उत्पादन का मुख्य साधन भूमि होता है। कृषि तथा दस्तकारी लघु स्तर पर विकसित होती है। कृषक दास को मालिक की भूमि को जोतनी पड़ती है और कभी-कभी अपने उत्पादन के एक भाग से भी हाथ धोना पड़ता था। मालिक और कृषक दास के बीच यह संघर्ष बिना रुके चलता है। सामंतवादी शक्तियां उत्पादन एवं व्यापार का विस्तार होने से अर्थव्यवस्था की उत्पादन शक्ति में वृद्धि हेतु अवरोध का अनुभव करती है। विद्यमान आर्थिक संगठन और सुधरी हुई उत्पादक शक्तियों के बीच द्वंद होता है और सामंतवाद का पतन शुरू हो जाता है और यहां से समाज में उत्पादन के पूंजीवादी तरीके विकसित होते हैं।

मार्क्स इसे चौथी अवस्था कहता है। इस अवस्था में मशीनीकरण बहुत तेजी से होता है। पूंजीपतियों द्वारा श्रमिकों के अतिरेक मूल्य को हथिया लिया जाता है और श्रमिकों का शोषण शुरू हो जाता है। पूंजीवाद के अधीन उत्पादन से संबंधित व्यवस्थाएं बदलती है। पूंजीपति एवं श्रमिकों के बीच लगातार वर्ग-संघर्ष होता है। अंतत: श्रमजीवी या सर्वहारा द्वारा पूंजीवाद का विनाश कर दिया जाता है और उद्योगों का प्रबंध अपने हाथ में ले लिया जाता है। और यहां से समाजवादी अवस्था शुरू हो जाती है।

अतिरेक मूल्य

कार्ल मार्क्स अपने अतिरेक मूल्य के सिद्धांत का प्रयोग पूंजीवाद के अंतर्गत वर्ग-संघर्ष के आर्थिक आधार के रूप में करता है। वर्ग-संघर्ष केवल कुछ पूंजीपतियों के हाथों में अतिरेक मूल्य के संचय का परिणाम होता है। मार्क्स कहता है कि पूंजीवाद दो महान प्रतिद्वंदियों में बटा होता है- श्रमिक, जो अपनी श्रम शक्ति को बेचता है और पूंजीपति, जो 'उत्पादन के साधनों' के स्वामी होते हैं। पूंजीपति श्रमिकों को कच्चा माल, मशीन आदि देता है और श्रमिक अपने मेहनत से वस्तुएं बनाता हैं। पूंजीपति निर्मित वस्तुओं को बेच देता है और यह पाता है कि जो मुद्रा की राशि उसे प्राप्त होता है, वह राशि खर्च की गई राशि से अधिक है। इस प्रकार प्राप्त राशि और खर्च की राशि का अंतर ही 'अतिरेक मूल्य' है।

मार्क्स कहता है कि यह अतिरेक मूल्य केवल श्रम शक्ति से ही उत्पन्न होता है। उदाहरण के तौर पर एक मजदूर रोज 10 घंटा काम करता है परंतु उसे अपने निर्वाह के लिए पर्याप्त वस्तुओं के उत्पादन में 6 घंटे का श्रम लगता है तो उसे 6 घंटे के श्रम के बराबर मजदूरी का भुगतान किया जाएगा और 4 घंटे के श्रम के मूल्य का अंतर शुद्ध लाभ के रूप में पूंजीपति के जेब में चला जाता है। इसी को मार्क्स 'श्रम का अतिरेक मूल्य' कहता है। इस अतिरिक्त श्रम को जो मजदूर करता है परंतु लाभ पूंजीपति के पास चला जाता है, मार्क्स इसे 'अतिरेक श्रम' कहता है।

पूंजी-संचय

मार्क्स के अनुसार 'अतिरेक श्रम' द्वारा ही पूंजीपति पूंजी-संचय का कार्य करता है। यह अतिरेक श्रम केवल पूंजीपतियों के लाभ को बढ़ाता है इसलिए पूंजीपतियों का मुख्य उद्देश्य 'अतिरेक मूल्य' को बढ़ाना होता है जिससे वह अपने लाभ को अधिक से अधिक बढ़ा सके और पूंजी का संचय कर सकें।

पूंजीपति अपने लाभ को बढ़ाने हेतु काम करने के घंटे को बढ़ा देती है, निर्वाह मजदूरी में कमी कर देती है या मशीनों का अधिक से अधिक प्रयोग करके अपने अतिरेक मूल्य को बढ़ाता है। पूंजीपति लोग जैसे-जैसे इन तरीकों को अपनाते है वैसे-वैसे उनका लाभ बढ़ता है और पूंजी का संचय भी बढ़ता चला जाता है। जिसके फलस्वरूप भारी उद्योगों में पूंजी का केंद्रीकरण हो जाता है। धीरे-धीरे पूंजीपतियों के बीच प्रतियोगिता शुरू हो जाती है और वस्तुएं सस्ती करने पर विवश हो जाते हैं जिससे उनका लाभ कम होना शुरू हो जाता है।

पूंजीवादी संकट

मार्क्स कहते हैं कि जब पूंजीपतियों का लाभ कम होना शुरू हो जाता है तब वे श्रमिकों का मजदूरी और घटा देते हैं, कार्यकारी दिनों को और लम्बा कर देते हैं अर्थात श्रमिकों के शोषण की कोटि बढ़ा देते हैं, फिर भी उनका लाभ गिरता ही चला जाता है। यहां से पूंजीवादी संकट प्रारंभ हो जाती है। मार्क्स कहते हैं कि इस समय बेरोजगारी बढ़ती है, मजदूरी और घट जाती है, ऋण की सुविधाएं समाप्त हो जाती है और छोटे-छोटे पूंजीपति तबाह हो जाते हैं। संकट

की इस घड़ी में शक्तिशाली पूंजीपति कमजोर पूंजीपतियों का अधिकार छीन लेते हैं और इसके साथ ही मजदूर वर्ग का क्रोध भी बढ़ता चला जाता है। फिर अंत में पूंजीवाद के विनाश का दिन आ जाता है।

श्रमजीवी वर्ग पूंजीपतियों के अधिकार को छीन लेते है। उत्पादन के साधनों पर उनका अधिकार हो जाता है और श्रमजीवी वर्ग का शासन स्थापित हो जाती है। गरीबी समाप्त हो जाएंगी, वर्ग भेद समाप्त हो जाएगा और पूंजीवाद के स्थान पर 'समाजवाद' आ जायेगा।

समाजवाद में प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार योगदान देगा और अपनी जरुरत के अनुसार ग्रहण करेगा। केंद्रीय योजना के आधार पर सम्पूर्ण उत्पादन तथा वितरण का नियंत्रण व नियमन सामाजिक लाभ के लिए होता है।

मार्क्सवाद और एकात्म मानववाद में तुलनात्मक अध्ययन

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के अनुसार अर्थोत्पादन का प्रमुख साध्य मानव का सुख है और मानवीय शक्ति उसका प्रमुख साधन। मानव का आर्थिक विकास नही अपितु सर्वांगीण विकास हमारी अर्थनीति और अर्थव्यवस्था का लक्ष्य होना चाहिए।

दीनदयाल जी मानव जीवन में अर्थ के अभाव को उचित नही मानते है। मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करना बहुत जरूरी है। भौतिक आवश्यकताओं और जीवन के सर्वांगीण विकास में बहुत घनिष्ठ संबंध होता है और मनुष्य के सर्वांगीण विकास ही नही अपितु उसके जीवन यापन के लिए भी न्यूनतम अर्थ की आवश्यकता होती है। अत: अर्थ का अभाव नही होना चाहिए। इसी प्रकार अर्थ का प्रभाव भी उचित नही है क्योंकि इसके अत्यधिक प्रभाव से धर्म का नाश होता है।

दीनदयाल जी एक ऐसी योग्य व्यवस्था के निर्माण की बात करते है जिसमे अर्थ का न तो अभाव हो और न ही प्रभाव। ऐसी व्यवस्था को भारतीय संस्कृति में श्अर्थायामश कहा गया है। देश की अर्थव्यवस्था के लिए श्अर्थायामश बहुत जरूरी है। अर्थायाम में अर्थ के उत्पादन, स्वामित्व, वितरण और उपभोग में संतुलन रहता है।

कार्ल मार्क्स के अनुसार अर्थव्यवस्था में पूंजीवाद का विनाश होगा और समाजवाद की स्थापना होगी जिसमे सभी लोगो का सुख एवं कल्याण बढ़ेगा। परन्तु दीनदयाल जी ऐसा नही मानते है बल्कि उनके अनुसार मानव के सर्वांगीण विकास हेतु पूंजीवाद और समाजवाद दोनों ही व्यर्थ है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी 'अतिरिक्त मूल्य के विचार' के अंतर्गत कहते हैं कि पूंजी निर्माण करने के लिए आवश्यक है कि संपूर्ण उत्पादन का उपयोग कर उसे समाप्त करने के स्थान पर, कुछ भाग आगामी उत्पादन के लिए रखा जाए। कार्ल मार्क्स जिस अतिरिक्त मूल्य की बात करता है वह मूल्य ही पूंजी का आधार है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में पूंजीपति इन 'अतिरिक्त मूल्यों' के आधार पर ही पूंजी का निर्माण करता है और समाजवादी अर्थव्यवस्था में यही काम सरकार करता है। दोनों ही अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन मूल्यों का वितरण मजदूरों में होता ही नहीं है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था हो या समाजवादी, दोनों में ही उत्पादन प्रणाली बड़े पैमाने की एवं केंद्रित होती है। यदि अर्थव्यवस्था विकेंद्रीकृत हो तो इस अतिरिक्त मूल्य के द्वारा हुई पूंजी निर्माण का लाभ मजदूरों को भी प्राप्त होता है।

पूंजीवाद और समाजवाद दोनों अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त मूल्यों का लाभ मजदूरों को कैसे नहीं मिला? और इसे कैसे दिलाया जाए?

इस संदर्भ में दीनदयाल जी कहते हैं कि मार्क्स के अनुसार "उत्पाद का मूल्य उसके उत्पादन में प्रयुक्त होने वाली श्रमशक्ति पर निर्भर करता है। पूंजीपति, जिसके हाथ में उत्पाद का स्वामित्व होता है, वह श्रमिकों के अतिरिक्त श्रम का उपयोग कर 'अतिरिक्त मूल्य' का निर्माण करता है और उत्पादन के साधन का स्वामित्व उसके हाथ में होने कारण अतिरिक्त मूल्य को अपनी जेब में भर लेता है। अर्थात उत्पादन-साधनों के स्वामित्व के कारण ही पूंजीपति अतिरिक्त मूल्य को डकार जाता है और इस प्रकार मजदूरों का शोषण करता है।"

इसलिए मार्क्स कहता है कि "उत्पादन के साधनों का ही राष्ट्रीयकरण किया जाए।"

राष्ट्रीयकरण के बाद उत्पादन-साधनों पर निजी स्वामित्व समाप्त हो जाएगा और उस पर शासन का स्वामित्व हो जाएगा किंतु इस व्यवस्था में भी पूंजीवादी व्यवस्था की भांति ही केंद्रीकृत उत्पादन-प्रणाली और उसके कारण बनने वाले उत्पादन-संबंध भी रहते ही हैं। परिणाम स्वरूप यहां भी श्रमिक 'अतिरेक मूल्यों' से वंचित ही रह जाता है।

इस संदर्भ में दीनदयाल जी कहते हैं कि "इसके लिए 'लघुयंत्राधिष्ठित विकेंद्रित अर्थव्यवस्था' ही मजदूरों को न्याय दिला सकती है और उनका यह मत अर्थशास्त्रीय सिद्धांतों पर खरा उतरा है।"

दोनों ही अर्थव्यवस्थाओं में श्रमिकों को उनके श्रम का पूर्ण पारिश्रमिक नहीं मिल पाता और उनका शोषण होता है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में अतिरेक मूल्यों का वितरण और व्यवस्था दोनों ही पूंजीपतियों के हाथ में होता है तो समाजवादी अर्थव्यवस्था में ये बातें सरकार के हाथ में आ जाती है।

इसलिए दीनदयाल जी कहते है कि "श्रमिकों के शोषण की दृष्टि से देखे तो यह दोनों अर्थव्यवस्था समान है। अतिरिक्त मूल्यों के समुचित विभाजन और उत्पादन में उनके सहभाग के लिए लघुयंत्राधिष्ठित विकेंद्रित अर्थव्यवस्था ही आवश्यक है।"

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी पूंजी-निर्माण के लिए मार्क्स की भांति अतिरेक मूल्य की बात नही करते है बल्कि वे श्संयमित उपभोगश की बात करते है। उत्पादन वृद्धि के लिए अधिक पूंजी चाहिए और उत्पादन एवं उपभोग के बीच के अंतर को बचत कहते है। यदि उपभोग में संयम न हो तो बचत नही होगी, पूंजी निर्माण नही होगी और न ही उत्पादन में वृद्धि होगी।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के अनुसार मजदूरों का शोषण इसलिए हो रहा है क्योंकि उत्पादन के साधनों पर उनका स्वामित्व नही है। यदि साधनों पर उनका स्वामित्व हो जाय तो अतिरिक्त मूल्य का समुचित भाग उनको प्राप्त होने लगेगा और यह विकेंद्रित अर्थव्यवस्था के द्वारा ही होगा।

इसलिए दीनदयाल जी कहते थे "हम पूंजीवाद और समाजवाद के चक्कर से मुक्त होकर मानववाद का विचार करेंगे। मानव जाति के सभी अंगों का विचार करते हुए आर्थिक क्षेत्र में उत्पादन, वितरण एवं उपभोग के साधनों का संयोजन एवं प्रबंध करना चाहिए। इसके लिए विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था ही आवश्यक है।"

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि देश के समुचित आर्थिक विकास के लिए और मानव के समग्र सुख व कल्याण के लिए मार्क्सवाद की अपेक्षा एकात्म मानववाद विचारधारा ही अधिक उपयुक्त और प्रासंगिक है।

सन्दर्भ

1. उपाध्याय, दीनदयाल (1958). भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा. लखनऊ: राष्ट्रधर्म प्रकाशन.
2. उपाध्याय, दीनदयाल (1960). राष्ट्रजीवन की समस्याएं. लखनऊ: राष्ट्रधर्म प्रकाशन.
3. उपाध्याय, दीनदयाल (1972). राष्ट्रचिंतन. लखनऊ: राष्ट्रधर्म प्रकाशन.
4. उपाध्याय, दीनदयाल (1979). राष्ट्रजीवन की दिशा. लखनऊ: लोकहित प्रकाशन.
5. उपाध्याय, दीनदयाल. एकात्म मानववाद. नई दिल्ली: भारतीय जनसंघ कार्यालय.
6. उपाध्याय, दीनदयाल (1991). एकात्म मानव दर्शन (दीनदयाल उपाध्याय, माधव सदाशिव गोलवलकर, दत्तोपंत ठेंगड़ी, तृतीय संस्करण). नई दिल्ली: सुरुचि प्रकाशन.
7. ठेंगड़ी, दत्तोपंत (1991). पंडित दीनदयाल उपाध्याय: व्यक्ति दर्शन खंड- 1: तत्व जिज्ञासा. नई दिल्ली: सुरुचि प्रकाशन.
8. कुलकर्णी, शरद अनन्त (2014). पंडित दीनदयाल उपाध्याय: विचार दर्शन खंड-4: एकात्म अर्थनीति. नई दिल्ली: सुरुचि प्रकाशन.
9. पाठक, विनोद चंद्र (2009). पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक चिन्तन. नई दिल्ली: प्रकाशक- आर. डी. पाण्डेय, सत्यम पब्लिशिंग हाऊस.
10. गुप्त, बजरंग लाल (2010). एकात्म दृष्टि- भारत का भविष्य. प्रयागराज: संपादक- डॉ. चन्द्र प्रकाश सिंह, अरुंधति वशिष्ठ अनुसंधान पीठ.
11. शर्मा, महेश चंद्र (1994). दीनदयाल उपाध्याय कर्तव्य एवं विचार. नई दिल्ली: वसुधा पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड.
12. शर्मा, महेश चंद्र (2019). क्रांतिकारी आर्थिक चिंतन. नई दिल्ली: संपादक- प्रभात झा, प्रभात प्रकाशन.
13. जोशी, मुरली मनोहर (1991). दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति और विचार. उत्तर प्रदेश संदेश, अंक- 9.
14. ठेंगड़ी, दत्तोपंत (1991). युगदृष्टा दीनदयाल. साधना और संकल्प (पंडित दीनदयाल उपाध्याय स्मृति ग्रंथ), निकष कानपुर: संपादक- डॉ लक्ष्मीकांत पांडेय, अशोक पांडेय आदि.
15. गोपाल, कृष्ण (2019). राष्ट्र का राजनीतिक प्रबोधन और एकात्म मानव दर्शन. पंडित दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति और व्यक्तित्व खण्ड - 1, प्रयागराज: संपादक- डॉ. जितेंद्र कुमार संजय और डॉ. इंद्र कुमार ठाकुर, साहित्य भंडार.
16. गुप्त, बजरंग लाल (2014). दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म अर्थ चिंतन. मीडिया-विमर्श.
17. गुप्त, बजरंग लाल (2019). भारतीय अर्थ चिंतन और पंडित दीनदयाल उपाध्याय. पंडित दीनदयाल उपाध्याय: व्यक्ति और व्यक्तित्व खण्ड- 1, प्रयागराज: संपादक- डॉ. जितेंद्र कुमार संजय और डॉ. इंद्र कुमार ठाकुर, साहित्य भंडार.
18. कुलकर्णी, शरद अनन्त (1986). पंडित दीनदयाल उपाध्याय: विचार दर्शन खंड- 4: एकात्म अर्थनीति. नई दिल्ली: सुरुचि प्रकाशन.
19. लाल, एस. के. और एस. एन. लाल (2019). भारतीय अर्थव्यवस्था- सर्वेक्षण तथा विश्लेषण. इलाहाबाद: शिवम् पब्लिशर्स.
20. झिंगन, एम.एल. (2012). विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन. दिल्ली: वृंदा पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड.

योगाभ्यास से सम्पूर्ण स्वस्थता के लिए यौगिक आहार का महत्व

राजेश रंजन

पीएच.डी. विद्वान, स्वास्थ्यवृत्ति और योग विभाग, आयुर्वेद संकाय, आईएमएस, बीएचयू, वाराणसी

परिचय

पतंजलि के अनुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। चित्तवृत्तिनिरोध:(यो०सु०-१/२)

अर्थात चित की चंचलता अथवा मन की चंचलता को रोकना और चित्त को स्थिर अवस्था में लाना ही योग है।

अन्न से ही मन बनता है जैसा अन्न खाया जाता है वैसा ही मन बन जाता है।

अत: मन में उत्पन्न चंचलता, वासना, दुश्चिंतन आदि भावनाओं को रोकने का एक मात्र हल यह है कि योगा अभ्यासी अपने आहार पर सबसे अधिक ध्यान दे।

विभिन्न ग्रंथों के अनुसार मन की शुद्धता में आहार का महत्व-

अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य य: स्थविष्टो।
धातुस्तपुरोषं भवति यो मध्यमस्तन्मासं
योणिष्टास्तन्मन: ।। १ ।। - छान्दोग्य ६। ५। १

अर्थात जो अन्न खाया जाता है वह तीन भागों में विभक्त हो जाता है। स्थूल अंश मल, मध्यम अंश रस, रक्त, माँस आदि और सूक्ष्म अंश मन बन जाता है।

अन्नमय हि सौम्ममन: -छान्दोग्य ६। ५। ४

अन्न की शुद्धता से मन की शुद्धता होती है।

यदन्नम् पुरुषो भवति तदन्ना स्तस्य देवता:। -बाल्मीक रामायण

मनुष्य जैसा अन्न खाता है, वैसे ही उसके देवता भी बनते हैं।

अयं यज्ञो वेदेयु प्रतिष्ठित:। वेदा वाचि प्रतिष्ठित: वाङ्
मनसि प्रतिष्ठिता। मन: प्राणे प्रतिष्ठितम्। प्राणोऽन्नेप्रतिष्ठित: स -गायत्री उपनिषद् ७

यह यज्ञ वेद पर निर्भर है। वेद वाक् पर निर्भर है। वाक् मन पर, मन प्राण पर, प्राण अन्न पर निर्भर है।

भुक्तं पीतं यदस्त्यत्र तद्रसादामबन्धनम्।
स्थूलदेहस्य लिंगस्य तेन जीवनधारणाम्। -शिव गीता

इस स्थूल देह से जो कुछ भोजन किया जाता,पिया जाता है उसी के कारण लिंग और स्थूल देह में सम्बन्ध उत्पन्न होता है, उसी से जीवन धारण होता है।

स योऽन्नं बह्वोत्युपास्तेऽन्नवतो वै ।
लोकान्यानवतोऽभिसिद्धयति यावदन्नस्य गत तत्रास्य
यथा कामचारो भवति याऽन्नं प्रह्मोत्युपास्ते। अस्ति
भगवोऽन्नांद्भूय इति। - छान्दोग्योपनिषद् ७ प्र० १। २

जो जन अन्न को महान् मानकर भगवान की उपासना करता है, खाता पीता हुआ उसको नहीं भूलता, वह अमृतभोजी अन्न वाले और पान वाले लोकों को सिद्ध कर लेता है।

आहार शुद्धया नृपते चित्त शुद्धिश्च जायते।
शुद्धे चित्ते प्रकाश: स्याद्धर्मस्य नृपसत्तम्। -देवी भागवत्

हे राजन ! आहार शुद्ध होने पर चित्त की शुद्धि होती है। इस निर्मल चित्त से ही धर्म का प्रकाश होता है। अपनी स्थिति का विश्लेषण करते हुए महर्षि तैत्तरीय कहते हैं मैंने यह रहस्य भली प्रकार जान लिया कि मैंने जैसा खाया वैसा ही बन गया। मेरी स्थिति अन्न पर ही आधारित रही है।

अन्न हि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वोषध मुच्यते।
जातान्यन्नेन वर्धन्ते। अद्यतेति च भूतानि। - तैत्तरीय

प्राणियों में अन्न की ही श्रेष्ठता है। इसलिये उसे सर्वतोमुखी औषधि कहते हैं। अन्न से जीव जन्मते और बढ़ते हैं। जीवधारी अन्न को खाते हैं पर वह अन्न जीवों को भी खा जाता है।

यादृशं अन्न मश्नाति सात्विक राजसन्तु वा।
तादृशं गुण मानन्नोति गुणैः कर्मगतिं तथा।

मनुष्य जैसा भी सत्वगुणी या तमोगुणी अन्न का सेवन करता है, वैसा ही उसे गुण प्राप्त होता है। अतएव सत्वादि गुणों के अनुसार ही कर्म तथा चेष्टा होती है।

दीपो भक्ष्यते ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते।
यदन्नं भक्षयेत् नित्य जायते तादृशी प्रजा।। - चाणक्य

दीपक अँधेरा खाता है। इसलिये काजल को जन्म देता है। मनुष्य जैसा अन्न खाता है, वैसा ही उसकी क्रिया एवं परम्परा उत्पन्न होती है।

आहार शुध्दौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृति लम्भे
सर्वग्रन्थिनां विप्रमोक्षस्तस्मै मृदित काषा पाप तमसस्पा
दर्शयति भगवान् सनत्कुमारः। - छान्दोग्य

जब आहार शुद्ध होता है, तब सत्व अर्थात् अन्तःकरण शुद्ध होता है। सत्व के शुद्ध होने पर ध्रुवास्मृति अर्थात् पूर्ण तत्व का निरन्तर स्थायी स्मरण रहता है। उससे सभी कषाय कल्मषों की कुसंस्कारी ग्रन्थियों का विनाश हो जाता है। इस प्रकार निष्पाप नारदजी को भगवान् सनत्कुमार ने अज्ञान को पार करने वाले परम तत्व का साक्षात्कार कराया।

आहार की मात्रा का ग्रंथों में उल्लेख

अन्नेन पूरयेदर्ध तोयेन तु तृतीयकम्।
उदरस्थ तृतीयाशं संरक्षेद वायुचारणे।। - घे० स० ५। १२

उदर के आधे भाग को अन्न से भरे, तीसरे भाग को जल से और चौथे को वायु संचार के लिए रिक्त रखे।

द्वौ भागौ पूरयेदन्नैस्तोयेनैकं प्रपूरयेत्।
वायोः संचारणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्।। - योग संध्या

उदर के दो भाग अन्न से पूर्ण करे और एक भाग को जल से पूर्ण करे और चौथे भाग को वायु के चलने के लिए शेष रखे।

आहार में ग्राह्य पदार्थों का ग्रंथों में वर्णन

योगाभ्यासियों का आहार अनेक स्वादों वाला नहीं होना चाहिए ,एक बार में एक ही पदार्थ व एक ही स्वाद लिया जा सके तो अति उत्तम है। योगी का आहार सुपाच्य ,पौष्टिक ,कब्जनाशक व सात्विक हो स इसी आधार पर ग्रंथों में योगियों के लिए खिचड़ी, दलिया, शाक, दही, घी आदि पदार्थों को ग्रहण करने का निर्देश दिया गया है –

कणानां भक्षणे युक्तः पिण्याकस्य च भो द्विजाः।
स्नेहानां वर्जने युक्तो योगी बलमवाप्नुयात्।।
भुञ्जानो यावकं रूक्षं दीर्घकालं द्विजोत्तमाः।
एकाहारी विशुद्धात्मा योगी बन्तमवाप्नुयात्।।
अखण्डमपि वा मा सततं मुनिसत्तमाः।
उपोष्य सम्यक्शुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात्।। - ब्रह्मपुराण

दलिया, सत्तू जी, खिचड़ी आदि रूखा घी रहित भोजन उपवास पूर्वक करता हुआ मनुष्य आत्मशुद्धि कर लेता है और आत्म बल प्राप्त करता है।

तेषांनाशायकर्त्तव्यं योगिनां तन्निबोधमे।
स्निग्धायवागूमत्युष्णां भुक्त्वा तत्रैवधारयेत्।।
वातगुल्म प्रशान्त्पथमुदावर्त्ते तथोदरे।
यवागूँवापिपवन वायुग्रन्थि प्रतिक्षिपेत्।।
नासतोदर्शनं योगेतस्मात्तत्परिवर्जय- मार्कण्डेय पुराण

घी समेत खिचड़ी खाया करे। यह वात, गुल्म, अपच, उदर रोग आदि रोगों को दूर करती है। योग साधक अपने आहार विहार को ठीक रखे निरर्थक, बातों में न उलझे।

आहार ग्रहण करते समय मनःस्थिति का वर्णन ग्रंथों में

भोजन प्रसन्न चित्त होकर किया जाये। उसे भगवान का प्रसाद मानकर खाया जायें। जो अनुपयोगी हो उसे खाने से पहले ही उठा दे। खाते समय नाक भौं न सकोड़े। ठुँस-ठूँस कर न खाये। जल्दबाजी न करें। कड़ी भूख लगे बिना न खाया जाये।

पूजये दशनं नित्यमपद्याच्चौत्तदकुत्सयन।

द्रष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देश्च सर्वशःस - मनु० २। ५४

भोजन को नित्य आदर की दृष्टि से देखें और अन्न की निन्दा न करते हुए प्रसन्नतापूर्वक भोजन करे तथा उसे देखकर प्रसन्न होवे और सर्वथा प्रशंसा करे।

निष्कर्ष

प्राचीन काल में योगाभ्यासी ऋषियों का भोजन परम सात्विक होता था। महर्षि कणाद अन्न के दाने बीन कर गुजारा करते थे। पिप्पलाद का आहार पीपल वृक्ष के फल थे अतः आहार की सात्विकता और व्यवस्था पर अधिकाधिक अंकुश रखना साधना की सफलता के लिए नितान्त आवश्यक समझना चाहिये।

आहार केवल स्वाद के लिए नहीं अपितु औषधि रूप में सेवन किया जाये। उसकी अन्तःशक्ति को ध्यान में रखा जाये। वह जीवन है, जीवन का आधार है। यह समझते हुए उसकी स्वादिष्टता को नहीं सात्विकता को ही महत्त्व दिया जाना चाहिये। योगाभ्यास के समय अविधिपूर्वक सेवन किया गया अभक्ष आहार उलटा प्राणी को ही खा जाता है। उसके लिए विपत्ति का कारण बनता है।

मिताहारं विनायस्तु योगारम्भं तु कारयेत्।

नानारोग भवन्त्यस्यस्यकिचिद् योगो न सिधयति। -घेरंड संहिता ५। १६

जो व्यक्ति मिताहार के बिना ही योगाभ्यास प्रारम्भ कर देता है, उसे अनेक रोग हो जाते हैं स योग की कुछ भी सिद्धि नहीं होती।इस तरह योग साधना की दृष्टि से आहार शुद्ध-सुपाच्य व सात्विक होना चाहिए। साथ ही इसे उचित मात्रा में ग्रहण किया जाए। अन्यथा अत्यधिक मात्रा में लिया गया सात्विक आहार भी आलस, निद्रा व तन्द्रा को ही न्यौता देता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1) सिंह प्रो० राम हर्ष, योग एवं योगिक चिकित्सा, चौखम्भा प्रकाशन
2) स्वतामाराम, हठप्रदिपिका, कैवल्य धाम
3) Swami Digambarji, Gharote M-L-, Gheranda Samhita - Kaivalya Dham
4) शर्मा श्री राम, आहार चिकित्सा, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, मथुरा
5) S Muktibodhananda HY Pradipika & Yoga publication Trust, Munger, Bihar, 1985
6) James Mallinson, Gheranda Samhita: the original Sanskrit and an English Translation by 2004
7) शर्मा श्री राम, गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियां भाग-२,युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, मथुरा

प्रारंभ काल की कहानी साहित्य मे महिला लेखिकाओं का योगदान

डॉ० प्रेमचंद चव्हाण

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, एम. एस. इरानी महाविद्यालय, कलबुरगी

हिंदी कहानी साहित्य को समृद्ध बनाने में पुरुष लेखकों की जितनी महत्वपूर्ण भूमिका रही है उतनी ही महत्वपूर्ण भूमिका महिला लेखिकाओं की भी है। संख्या की दृष्टि से भले कम मात्रा में कहानी लेखिका और उनके द्वारा लिखी गई कहानियां रही हो लेकिन गुणात्मक दृष्टि से में निश्चित ही महत्वपूर्ण रही है। हिंदी में कहानियां लिखने वाली कई महिलाएं ऐसे हैं जिन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभा द्वारा हिंदी कहानी साहित्य को समृद्ध किया बल्कि एक नई दिशा दी। प्रस्तुत शोध लेख में प्रारंभ काल की कहानी साहित्य मे महिला लेखिकाओं का योगदान पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

हिंदी की प्रारंभिक कहानी लेखिकाओं में श्रीमती बंगमहिला का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। हिंदी भाषी होते हुए भी आपने हिंदी की अनन्य अनुरागिनी थीं। आपकी रचनाएं श्सरस्वतीश, श्कन्या मनोरंजनश आदि समसामयिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं। कहा जाता है बंग महिला की दो मौलिक कहानियां है- 'दुलाई वाली' तथा श्भाई-बहनश। आपने कई कहानियों का अनुवाद भी किया है जैसे डालिया (रवींद्रनाथ ठाकुर), मुरला (नारायणदास सेन), मातृहीना (देवेंद्र कुमार सेन), संसार- सुख (हरिहर सेठ), कुंभ में छोटी बहू (मातृ देवी), अपूर्व प्रतिज्ञा पालन (सखा ओ साथी), दान प्रतिदिन (रविंद्रनाथ ठाकुर) तिल से ताड़ (देवेंद्र कुमार राय) आदि।

बंगमहिला की बहुचर्चित कहानी 'दुलाईवाली' में एक रोचक यात्रा के वर्णन द्वारा हास्य-व्यंग्य के उपकरण जुटाए गए हैं। कहानी में वंशीधर को बनारस से अपनी पत्नी को विदा कराकर इलाहाबाद लौटना था। उनके ममेरे भाई नवलकिशोर ने पुत्र द्वारा उन्हें सूचित किया कि वे भी अपने नव परिणीता पत्नी सहित उनके साथ यात्रा करेंगे। मित्र से परिहास करने हेतु नवलकिशोर श्दुलाईवालीश के रूप में उसी डिब्बे में उपस्थित रहे उनकी अनुपस्थिति में उनकी पत्नी तथा वंशीधर ने जिस तरह का अनुभव किया उसका भी आनंद उठाते रहे। इलाहाबाद स्टेशन पर जब 'दुलाईवाली' ने अपने मुंह से आवरण को हटाया तब संबंधित पात्र परिहास के इस स्वरूप को देखकर विस्मय तथा प्रसन्नता से भर उठे थे।

भाई बहन शीर्षक कहानी में देशभक्ति के भाव व्यक्त किए गए हैं साहब और उसकी बहन गंगा देवी पिता के साथ मेला देखने गए। वहां साहब ने पांच आने की एक गाड़ी ली और गंगा ने एक पैसे का मिट्टी का खिलौना लिया। घर लौटने पर साहब ने गंगा के खिलौने का उपहास किया किंतु उसके अंग्रेज सेना में समझाया कि गंगा देवी का खिलौना साधारण होने पर भी अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि साहब द्वारा लिए गए खिलौने के पैसे विदेश में गए हैं। साहब पर इस बात का इतना प्रभाव पड़ा कि उसने उसी दिन से विदेशी नाम त्यागकर अपने वास्तविक नाम 'बेणीमाधवशरण' को अपना लिया। बड़े होकर वकील के रूप में देश सेवा की और अपने रुपयों से स्वदेशी वस्तुओं का एक मातृ- भंडार खुलवाया। इस प्रकार लेखिका ने कथा को सोद्देश रखकर उसमें आदर्श विशेष की सफल रूप में स्थापना की है।

हिंदी की प्रारंभिक कहानी लेखिकाओं में श्श्रीमती यशोदा देवीश का नाम भी उल्लेखनीय है। आप इलाहाबाद के एक कन्या पाठशाला में मुख्य अध्यापिका थी और 'स्त्री धर्म' शिक्षक नामक मासिक पत्रिका का संपादन करती थीं। आपने बालोपयोगी तथा महिला उपयोगी विषयों पर अनेक शिक्षित कृतियों की रचना की है। जिनमें से कुछ के नाम इस प्रकार है आदर्श बालिका, नारी नीति शिक्षा, शिक्षा प्रति प्रेम, आदर्श हिंदू विधवा, हितोपदेश, गृहस्थ जीवन, गर्भ रक्षा विधान, शिशु रक्षा विधान, बड़ी बहन, सदाचारी और चित्तौड़ की चिता अथवा भारत का नारी इतिहास इन कृतियों में से कुछ में सामाजिक अथवा ऐतिहासिक चरित्रों का आदर्शात्मक अभिव्यक्ति प्रदान किया गया है। इनके माध्यम से देश भक्ति, संस्कार ,संस्कृति को अपनाने का संदेश भी दिया गया है।

यशोदा देवी जी ने ऐतिहासिक, पौराणिक अथवा सामाजिक नारी रत्नों की विस्तृत अथवा कल्पित चारित्रिक विशेषताओं को अपनी कहानियों में चित्रित करते हुए आदर्श प्रस्तुत किया है। नारी की पति परायणता वीरता संचालन की दक्षता ग्रह संचालन की कुशलता आदि आपके कहानियों के मूल विषय है।

'पतिव्रता धर्म्म महिमा' जैसे शीर्षकवाली कहानियों में कथा-नायिका के शोर्य, त्याग, पती सेवा, कर्तव्य परायणता आदि दिव्य गुणों का उल्लेख किया गया है। 'सती का प्रश्न' में द्रौपदी को जुए में हार जाने वाले युधिष्टर की स्पष्ट भर्त्सना की गई है। विमला और वीर पुत्र की कहानियों में लेखिका ने मुल्तान के राजकुमार सुरपाल तथा जैसलमेर के राजकुमार जयपाल की वीरता की सराहना की है। यशोदा जी की कहानियों में ऐतिहासिक, पौराणिक प्रसंगों को लेकर पति भक्ति की महिमा का वर्णन किया है। यशोदा देवी ने इतिवृत्तात्मक शैली का प्रयोग किया है। समकालीन लेखिकाओं में संख्या की दृष्टि से भी यशोदा जी की कहानियां सर्वाधिक है।

श्रीमती प्रियंवदा देवी की कहानियों का कोई संग्रह प्राप्त नहीं हुआ है। ताथापि हिंदी कथा साहित्य के प्रारंभ का विकास में आपका भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जैसे धर्मात्मा चाची और अभागा भतीजा, आनंदमयी रात्रि का स्वप्न, मेरे मन का एक दृश्य ,होली की रात, माता की आंतरिक इच्छा आदि। आपकी

कुछ कहानियां नवजीवन, भास्कर, स्त्री धर्म शिक्षक, स्वदेश बांधव तथा भ्रमर शीर्षक पत्रिकाओं में सन् 1915 से सन् 1923 तक की अवधि में प्रकाशित हुई थी।

'धर्मात्मा चाची और आभागा भतीजा' कहानी में दुर्भाग्य की कथा को चित्रित किया गया है। बाल्यावस्था में ही माता-पिता और चाची की मृत्यु हो जाने के कारण उसे और उसके भाई को प्रारंभ से ही संघर्षमय जीवन अपनाना पड़ता है। उनकी चाची ममतामयी थी जिसने उनकी शिक्षा विवाह आदि की ओर यथोचित ध्यान दिया। लेखिका ने चाची को धर्मपरायण व्यक्तित्व की व्यवहार कुशल नारी के रूप में चित्रित किया है। जिसने अपने जीवन काल में भतीजे का ध्यान रखा है। मृत्यु के समय भी उन्हें चार आदर्शवादी कहानियां सुनाकर उनमें निहित उपदेशों का जीवन पर्यंत पालन करने का अनुरोध किया।

श्रीमती शारदा कुमारी ने ऐतिहासिक धार्मिक एवं सामाजिक कहानियों के रचनाकर प्रारंभ कालीन कहानी साहित्य के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने महिला दर्पण की संपादन का कार्य भी किया है। उनकी कहानियां स्त्री धर्म शिक्षक, मर्यादा, कन्या सर्वस्व आदि तत्कालीन पत्रिकाओं में प्रायः प्रकाशित होती रहती थीं। उन्होंने 'नारी इतिहास' शीर्षक ऐतिहासिक कथा 'विहुला' शीर्षक धार्मिक कथा कतिपय सामाजिक कहानियों की रचना की है। जो गल्प विनोद में संग्रहित हैं। इस कृति में 'अपूर्व परिचय', 'मिलन' तथा 'उन्माद' शीर्षक से अनुदित कथाएं भी संकलित हैं। 'नारी इतिहास' तथा 'विहुला' का प्रकाशन सन् 1914 है जो मौलिक कहानियां हैं।

'नारी इतिहास' तथा 'विहुला' में दिव्य गुणों से विभूषित नायिकाओं की जीवन कथा के माध्यम से समकालीन नारी समाज के समक्ष अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया गया है। नारी इतिहास में जोधपुर की रानी के शौर्य, साहस तथा आत्मसम्मान का चित्रण है। 'विहूला' धार्मिक लोक गाथा के आधार पर लिखी हुई कहानी है। यह कहानी समस्त भोजपुरी प्रदेश में प्रचलित है। आपने अपनी कहानियों में नारी समाज की समस्याओं के चित्रण को प्राथमिकता दी है। आपकी एक और कहानी 'सुशीला' प्रेम की समस्या पर आधारित है जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि प्रेम का संबंध आत्मा से है शरीर से नहीं। प्रेम पात्र का शरीर नष्ट हो जाने पर भी आत्मा में उसके प्रति अनुराग बना रहता है और वही वास्तविक मिलन है। 'विधवा' कहानी में बाल विवाह के दुष्परिणाम, विधवा पर समाज के अत्याचार, पुरुष समाज की स्वार्थपरता, स्त्री के ममता पूर्ण हृदय और दृढ भक्ति चरित्र का चित्रण किया गया है। श्रीमती शारदा कुमारी प्रारंभिक कहानी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ लेखिका है आपकी कहानियों में आदर्शवादीता, रूढिवादी परंपरा का चित्रण हुआ है।

प्रारंभिक काल की अन्य कहानी लेखिकाओं में कुंती देवी कृत 'पार्वती' शीर्षक लघु आख्यायिका सोलह पृष्ठों में प्रकाशित हुई है। इस कहानी में एक राजा द्वारा जाट कन्या पार्वती से विवाह करने, कालांतर में उसके पतिव्रता की परीक्षा के लिए क्रमशः पुत्री एवं पुत्र के दूर भेज देने, लोक निंदा का भय दिखाकर पार्वती को भी उसके पिता के घर भेजने, पार्वती के विकार रहित रहने, राजा द्वारा उसे प्रेम सहित अपनाकर बच्चों को बुला लेने आदि घटनाओं का चित्रण किया गया है। श्रीमती जानकी देवी कृत 'घर बिगाड़ू बूड़िया' शीर्षक कहानी में एक ऐसी वृद्धा का रेखाचित्र प्रस्तुत किया गया है जो भेद बुद्धि का आश्रय लेकर पहले तो दो परिवारों की घरेलू सुख- शांति भंग करती हैं और फिर पत्नी को पति वशीकरण मंत्र देकर धन ऐंठती है।

श्रीमती सुशीला देवी की दो कहानियां है 'गुण की कथा' तथा 'सास बहू की कहानी' इनमें स्त्री सुधार की भावना से प्रेरित होकर उपदेशात्मकता पर बल दिया गया है। श्रीमती कृष्ण कला की 'कथा कहानी' एक उपदेशात्मक लघुकथा है। इसमें तीन पात्र हैं, कहानी में बहू को सास ससुर का आदर करने, अपनी व्यथा को ईश्वर से ही कहने और बच्चों के समक्ष सदैव सदा चरण करने का संदेश दिया गया है। श्रीमती बावली बहू ने आत्मकथन शैली में श्स्वामी का ह्रदयश शीर्षक कहानी की रचना की है। कहानी में कौशल्या के पति गौर वर्ण के मोह में उसका अपमान करते हैं जिससे उसका जीवन विषाक्त होता है अंत में वह आत्महत्या कर लेती हैं। श्रीमती मिश्र महिला द्वारा रचित 'वसीयतनामा' कहानी में नायिका प्रियंवदा अपने प्रेमी सुशील के प्रस्ताव को अस्वीकार कर आजन्म ब्रह्मचारिणी रहने का प्रण करती है। कालांतर में बहन की सुखी दांपत्य जीवन को देखकर वह अपना संकल्प बदलना चाहती है पर तब तक सुशील उसकी ओर से निराश होकर विवाह कर चुका था अंतः प्रियंवदा ने अपने मन संतोष के लिए अपनी समस्त संपत्ति की वसीयत सुशील के पुत्र के नाम करती है। तोरण देवी शुक्ला जी द्वारा रचित कृष्ण कला तथा उमा का त्याग दो कहानियां हे इनमें जाति सुधार की भावना तथा दहेज प्रथा के कारण अविवाहित रह जाने वाले युवती या वृद्ध अथवा अल्पायु वर पाने वाली कन्या कुब्ज बालाओं की समस्याओं का चित्रण हुआ है।

श्रीमती सुंदर रानी कृत 'परिवार' एक सामाजिक कहानी है। श्रीमती सुभद्रा देवी कि 'मियां साहिब' शीर्षक आख्यायिका में भूत प्रेतों के अस्तित्व का समर्थन करते हुए मियां जी को भूत के रूप में प्रस्तुत किया है जो एक नाई के माध्यम से अपने भाव व्यक्त करते हैं। श्रीमती संप्रिया देवी द्वारा लिखित 'एक अनपढ़ स्त्री की यात्रा' कहानी चौदह पृष्ठों की है। यह एक सामाजिक कहानी है। इसमें अशिक्षा की हानियों का चित्रण और स्त्री शिक्षा पर बल दिया गया है। श्रीमती विश्वेश्वरी देवी की कहानी भी इसी उद्देश्य को प्रस्तुत करता है। 'लक्ष्मी की जीवनी' इस कहानी में आपने शिक्षा के महत्व का प्रतिपादन किया है। श्रीमती देववती देवी तिवारी ने भी नारी शिक्षा के महत्व की चर्चा अपनी कहानी 'माता की अज्ञता' में किया है।

श्रीमती गुलाब देवी चतुर्वेदी की कहानी 'आदर्श सखी' चरित्र प्रधान कहानी है। इसमें सखी के प्रति कर्तव्य सजगता तथा जीवन घटना का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। श्रीमती इंद्र कला देवी कृत 'अभागी नारायणी' कहानी में पुरुषों की काम- दुर्बल आत्मा एवं स्त्रियों की सहनशीलता का वर्णन हुआ है। श्रीमती धनवती देवी ने 'उदारहृदया' शीर्षक कहानी में परोपकार वृत्ति का सत्य घटनाओं के आधार पर वर्णन किया है। श्रीमती गायत्री देवी जी ने अपनी कहानी 'सास नहीं जनरल डायर की मां' पारिवारिक कहानी में ऐसी सास की अत्याचारों का चित्रण किया है जिसके क्रूर व्यवहार के कारण उनकी पुत्रवधू की असमय मृत्यु हो जाती थी। पुत्रों के दूसरे विवाह किए जाते थे और पुनः वही क्रूरता का चक्र चलने लगता था। श्रीमती भगवती देवी जी दो कहानियों की रचना की है 'बड़े घर का बेटा' और 'अध्यापकों का उपदेश' कहानियों में समाज के यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए आदर्श पात्रों की सृष्टि की है। इस तरह प्रारंभिक काल के कहानी साहित्य की लेखिकाओं ने अपनी समसामयिक परिस्थितियों के साथ-साथ शिक्षा का प्रचार- प्रसार नारी शिक्षा का महत्व, सांप्रदायिक वैमनस्य, सामाजिक कुरीतियों, बाल मनोविज्ञान से संबंधित कहानियों को सृजन कर हिंदी कहानी साहित्य को समृद्ध बनाने का प्रयास किया है।

निष्कर्षत: कह सकते हैं कि प्रारंभिक युग की कहानी लेखिकाओं में बंगमहिला, शारदा कुमारी, प्रियंवदा देवी, कुंती देवी ,जानकी देवी जमुना देवी , शिव मोहिनी ,कृष्ण कला, सुशीला देवी, सुभद्रा देवी, गुलाब देवीचतुर्वेदी, गौरी देवी, गिरिजा देवी, मंजूलिका, धार्मिक तथा नीति परक लेखिकाओं मे सुबिरा, कृष्णा कुमारी, ललिता देवी, ऐतिहासिक तथा पौराणिक कहानियों में ज्वाला देवी, सत्यवती, जानकी देवी, कृष्णा देवी, विद्या देवी, मिश्र महिला, रमा देवी, प्रभुति महिला कहानीकारों का प्रमुख योगदान है।

आप सब ने कहानी साहित्य का सृजन कर अपनी प्रतिभा शक्ति का परिचय दिया है। अपने युग की प्रचलित कुप्रवृत्तियों, बाल विवाह आदि तथा उन पर प्रहार किया है। इनकी कहानियों के मूल उद्देश्य नारी कल्याण की प्रवृत्ति ही विद्यमान रही है।

संदर्भ ग्रंथ

1 हिंदी कथा साहित्य के विकास में महिलाओं का योग ,डॉ उर्मिला गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन

2 आधुनिक हिंदी कहानी में नारी की भूमिका, सुशीला मित्तल

छिन्नमस्ता : परंपरा और आधुनिकता के मध्य नारी के स्वत्व का संघर्ष

डॉ० रमेश बाबु. दर्शि

राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से सन 1997 ईस्वी में प्रकाशित उपन्यास 'छिन्नमस्ता' स्त्री के विशेष संदर्भ में उद्घाटित है । उपन्यास के शीर्षक पर डॉ गोपाल राय ने अपनी बात कुछ यूं रखी है । 'छिन्नमस्ता अर्थात जिस का मस्तक कटा हो , उपन्यास का यह नाम एक मिथक की ओर इंगित करता है - अपना ही कटा हुआ सिर अपने बाएं हाथ में लिए मुंह खोले और जीभ निकाले हुए अपने ही गले से निकली हुई रक्त धारा को चाटती हुई हाथ में खडक लिए मुंडे की माला धारण किए और दिगंबर एक देवी ।'[1]

छिन्नमस्ता उपन्यास प्रभा खेतान का बहुचर्चित उपन्यास है। इसमें नारी स्वभाव के दो प्रवृत्तियों को उजागर किया गया है। एक तरफ जहां नारी जीवन की विसंगतियों को प्रत्यक्ष ढंग से प्रस्तुत कर पुरुष वर्ग के खोखले वर्चस्व को उद्घाटित किया गया है, वहीं दूसरी ओर 'प्रिया' के रूप में एक नई, तेजतरोर विचारधारा व स्वावलंबी स्त्री की स्वच्छंदता को प्रस्तुत किया गया है। नारी केंद्रित इस उपन्यास में नारी व्यवहार के कई रूपों को दर्शाया गया है। मुख्य पात्र प्रिया है। परिवार में पिता जी श्री सांवरमल्ल जी कलकता के सुप्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित व्यापारी है। मारवाड़ी परिवार की कथा को लेखिका ने पिरोया है। प्रिया के छः भाई बहन हैं। बड़ी बहन सुमित्रा, सरला, विजय, अजय, छोटी बहन सरोज और सबसे छोटी प्रिया। प्रिया के भाई-बहन का रंग धवल है जबकि प्रिया सांवले रंग की है। मां का प्यार अन्य भाई बहनों पर तो बरसता है लेकिन प्रिया उससे वंचित रहती है। उसका पालन पोषण, देखरेख दाई मां करती है। मां कस्तूरी प्रिया को हेय दृष्टि से देखती है। बात बात पर बिगड़ पड़ना, आवश्यकता से अधिक पाबंदी लगाना, घर के कड़े नियम कानून, हिदायतें, साल सलीका यह सब प्रिया के ऊपर अधिक लागू होती है। जब माँ बेटी की उपेक्षा करती है तो लाजमी है कि अन्य भाई-बहन भी उसका उपहास करते हैं। परिणाम स्वरुप वह स्वभाव से दब्बू, सहमी और एक दायरे तक ही सीमित रह जाती है। माँ सदैव प्रिया से एक दूरी बनाए रखती है। पिता स्वभाव से सरल, गंभीर एवं आदर्श व्यक्ति है। उसके लिए बच्चों के प्रति प्रेम निष्पक्ष है। वह समानता का व्यवहार करते हैं। प्रिया से बहुत प्रेम करते हैं। प्रिया की संरक्षक उसकी दाई मां है। प्रिया के पिता की मृत्यु एक साजिश के जरिए होती है। उसकी मां दर्द से व्याकुल हो उठती है - 'नहीं वह मरे नहीं उन्हें मार डाला गया, मेरा घर उजाड़ने वालों तुम भी तड़प तड़प कर मरोगे।'[2] पिता की मृत्यु के उपरांत बड़े भैया घर के मालिक बन जाते हैं। विडंबना यह है कि मालिक होने पर भी वे पिता की तरह निष्पक्ष न्याय नहीं कर पाते। अपना दबदबा और प्रभाव पूरे घर में बनाए रखते हैं। सबसे अधिक अन्याय प्रिया के साथ होता है। प्रिया उसके कामुकता का शिकार बनती है। जब वह सिर्फ दस या ग्यारह वर्ष की होती है, तब से भैया उसे बाथरूम में डरा धमका कर ले जाते हैं और मनचाहा उसे रौंदते हैं। रात में भी कभी-कभी जब भाभी बीमार रहती तब भी वे हॉल में भाई बहनों के साथ सोते मध्य रात्रि में वे प्रिया की ओर बढ़ जाते, हाथ से उसका मुंह बंद कर, अपनी हवस मिटाते। दाई मां यह सब जानती और मुंह जबानी गालियां परोसती। दूसरी और प्रिया को समझाती कि वह यह सब बातें किसी से न कहे और प्रिया, मूक बधिर बन खामोश रह जाती। कहते हैं न कि पाप का घड़ा भरने पर फूठता ही है। प्रिया भी अन्याय सहते सहते जब परेशान हो गई तो एक दिन सुबह ही आंगन की बालकनी में जाकर खड़ी हो गई। भैया से बड़ी ही सहजता से कहती है कि वह बालकनी से कूदकर आत्महत्या कर लेगी। आखिर जब वह पिता का सौगंध भाई को देती है तब जाकर वह मुक्त हो पाती है। भाई के साथ प्रिया का यह संवाद उसके विद्रोही स्वरूप को पहली बार मुखरित करता है। यह सत्य है कि जब पाप का घड़ा भर जाता है, तो उसका फूटना निश्चित है। जब प्रिया बड़े भाई के हवसी और जानवर जैसे व्यवहार से तंग आ जाती है तो उसने अपना मार्ग स्वयं तलाश किया। माता का सुख उन्हें कभी नहीं मिला बेटी के रूप में उसका जन्म उन्हें अभिशाप युक्त लगा - 'मुझे कभी अम्मा की गोदी याद नहीं आती। न मालूम क्यों शुरू से ही अम्मा को मुझसे चिढ़ थी या फिर घोर निराशा की एक प्रतिक्रिया थी जिसको वह मुझ पर आरोपित कर रही थी।'[3] प्रिया की छोटी बहन का ब्याह हो गया। मां को प्रिया के विवाह की कोई चिंता न रही बस दाई माँ एकमात्र प्रिया की अभिभावक और संरक्षक थी। उन्हें घर में बहुत यातना और उपेक्षा भाव भी झेलना पड़ता था, परंतु वह बस इस आस पर थीं की प्रिया को दुल्हन के जोड़े में देखें, उसे खुशी खुशी विदा कर तब इस घर से विदा ले ले। प्रिया का बी. ए. में दाखिला होने पर वहाँ भी कॉलेज के प्रोफेसर के द्वारा उसे ठगा गया। कक्षा में प्रथम पंक्ति में बैठी प्रिया को देखते हैं केमिस्ट्री के प्रोफेसर उस पर लट्टू हो जाते है। प्रेम का छद्म दिखाकर प्रिया को सुनहरे स्वप्न दिखाते और उसके मांसल शरीर से अपने हवस की आग बुझाते। प्रिया ने अटूट प्रेम किया था, परंतु इतिहास पुनः दोहराया गया और पुरूष के छद्म और प्रपंच से एक बार फिर स्त्री का कोमल मन आहत हुआ। दाई मां भी प्रिया को छोड़ कर जा चुकी थीं।

उपन्यास का दूसरा मोड प्रिया के विवाह से आता है। वह अग्रवाल परिवार में इकलौती बहू बनकर जाती है। राज्य से ठाठ बाट, नौकर चाकर, कीमती आभूषण, महंगी साड़ियां, ब्रांडेड़ घड़ियाँ, पार्टिकल चयन प्रक्रिया के जीवन में एक स्वप्न की तरह घठित होता है। नरेंद्र के पिता प्रिया के बड़े भाई को विवाह के पूर्व ही आर्थिक सहयोग देते हैं ताकि बारातियों के सत्कार में कोई कमी न रह जाए। अब तो प्रिया के भाग्य को सोने की कुदाली समझा जाने लगा। बीतते समय के दौर में नरेंद्र के घर की सच्चाई से प्रिया अवगत होने लगी। घर का हुकूमत नरेंद्र करता था। नरेंद्र ने विदेश से पढ़ाई की थी। प्रभा खेतान ने कहीं-कहीं यह भी अपरोक्ष रूप से व्यक्त किया है कि नरेंद्र के संस्कार में पाश्चात्य सभ्यता का अंश शामिल हो गया है। उसके लिए पारिवारिक संबंध, रिश्ते नाते कोई

महत्व नहीं रखते। विवाह के बाद जब प्रिया घर में आई तो नई वधू के लिए निभाए जा रहे रस्म भी उसे पुरातन और व्यर्थ लगे। वह प्रिया को हाई सोसाइटी के अनुकूल हमेशा सजने सवरने के लिए कहता। प्रिया साहित्य और दर्शनशास्त्र की ज्ञाता उसे यह उच्च वर्ग की शान शौकत अधिक नहीं कर पाता है। नरेंद्र की माँ बेटे के एक इशारे पर बिछ जाती है। वह अपने पति से भी अधिक प्राथमिकता पुत्र को देती है। नरेंद्र को अपने धन पर बहुत अहंकार है। लेकिन इससे भी अधिक एक बात यह है कि वह मितव्ययी है। जरूरत की चीजों पर भी वह घर में अंकुश लगाता है। अपनी मां से एक - एक का हिसाब लेता है। घर के नौकर चाकर भी परेशान रहते हैं। उन्हें अपने पैसे भी पूरी तरह से नहीं मिलते। ऐसे में प्रिया उनकी सहायक बनती है, और नरेंद्र के प्रश्न पूछने पर उसका मुखर विरोध करते हुए नौकरों के पक्ष में अपनी बात रखती है। पत्नी के जिस्म से दिन-रात अपनी कामुकता बुझाने वाला नरेंद्र अब धीरे-धीरे पत्नी से उठ जाता है और आए दिन नई नई सेक्रेटरी बदल कर अपने प्यासे मन को तृप्त करता है। उसके इस बिगड़ैल और क्रूर स्वभाव के लिए एक कारण उसके पिता भी हैं। नरेंद्र के पिता की रखैल तिलोत्तमा है। उनकी एक अवैध पुत्री नीना है। तिलोत्तमा और नीना घर से थोड़ी दूर पर रहती हैं। प्रिया के ससुर अपने ही घर में अपराधी की भांति रहते हैं पुत्र उनसे नफरत करता है। पत्नी दुनिया भर के समक्ष तो देवी बनती है परंतु यदि पुत्र द्वारा पति की उपेक्षा या तिरस्कार किया जाता है तो वह प्रसन्न होती है। नरेंद्र के विवाह में जब उसके पिता तिलोत्तमा और नीना को भी आमंत्रित करने की मनसा व्यक्त करते हैं, तब नरेंद्र यह कहकर कि 'बारात में रंडी पतुरियों को आने की आवश्यकता नहीं है।'[4] उनकी इच्छाओं पर कुठाराघात करता है। विवाह के बाद ससुराल से पहली बार अपने घर के लिए विदा होते समय प्रिया नीना और तिलोत्तमा के पास जाती है, उसे अचानक अपने घर में पाकर मां-बेटी प्रसन्न हो जाती हैं। भावना में बह जाती हैं। प्रिया भी उनके साथ सहज रहती है, और संबंधों की ऊष्मा से अनुप्राणित होती है। वह तिलोत्तमा को छोटी माँ से संबोधित करती है। नीना भी प्रिया को भाभी का सम्मान देती है।

प्रभा खेतान ने 'नीना' को एक आधुनिक विचार वाली एवं संघर्षशील स्त्री के रूप में चित्रित किया है। नीना अवैध संतान हैं, अतः वह पिता से नफरत करती है। यद्यपि वह स्वयं को नाजायज संतान समझती है, फिर भी अधिकार की लड़ाई लड़ना चाहती है, क्योंकि समाज में हर स्त्री को लड़ने का अधिकार है। बस इसके लिए आवश्यकता है अपमान और प्रवंचना को याद कर, अपने पैरों पर खड़ी होकर समाज से टक्कर लेने की क्षमता अर्जित करें। इसी आत्मविश्वास और संघर्ष के चलते नीना पर्सनल मैनेजर की पोस्ट पर नियुक्त होती है। 'देखा भाभी पापा चाहते हैं कि मेरी शादी हो जाए, लेकिन मैं नहीं करूंगी। मैं पहले अपने पैरों पर खड़ी होउँगी।' 'तू एम. ए. तो कर ले।' 'नहीं कोई जरूरत नहीं मैं कल ही ग्रैंड होटल में इंटरव्यू देकर आई हूँ। मुझे लगता है, यह नौकरी मुझे मिल जाएगी।' 'नीना क्या पापा पसंद करेंगे ?' 'भाभी ! मुझे उनकी इच्छा अनिच्छा का ख्याल करना चाहिए ? भाभी मुझे पता है कि मैं एक नाजायज संतान हूँ। मम्मी कितना भी मांग मैं सिंदूर लगाए उस लाल रंग में थोड़ी कालिख धूलेगी हुई है। इसलिए तो मम्मी का सिंदूर चमकता नहीं।' 'नीना ! इतनी कट्टर कड़वाहट में क्यों घुट रही हो ? तुम्हारा ही नुकसान होता है न ?' 'नहीं, जिंदा रहने और अपनी लड़ाई स्वयं लड़ने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि हम अपमान और वंचना को भी याद रखें। मुझे आप यह सब चुप चुप रहो वाली बातें न सिखलाएं।'[5] उपर्युक्त संवाद में नीना की तेजतर्रार और आक्रोष पूर्ण उक्तियाँ स्त्री स्शाकितकरण को प्रस्तुत करती है। यही आक्रोश और कार्य करने की अतुल क्षमता, प्रभा खेतान ने प्रिया में भी दर्शाया है। प्रिया जब तिलोत्तमा और नीना के साथ हुए दुर्व्यवहार को देखती है तो उसका मन पसीझ जाता है। ससुर के साथ भी घर में जो एक पर परायापन का व्यवहार नरेंद्र और उनकी मां करती है उससे भी वह आहत होती है। स्त्री यदि परिवार व संबंधों को एक सूत्र में पिरो कर रखती है तो वह उसके विशाल हृदय का परिचायक होता है। प्रिया भरसक प्रयत्न करती है कि वह नीना और छोटी मां को भी किसी प्रकार परिवार में शामिल कर सके। उसके इस सात्विक विचार में अवरोधक नरेंद्र और उसकी मां है। नरेंद्र की माँ को सौतिया डाह की पीड़ा है और नरेंद्र को सामाजिक बंधनों का झूठा डर तथा उनके प्रति हेय दृष्टिकोण भी। वह प्रिया की छोटी मां के मात्र पिता की रखैल समझता है। अपने बेटे संजू के ऊपर उनकी परछाई भी नहीं पड़ने देना चाहता। परंतु प्रिया इसका विरोध करती है। 'सुनो प्रिया ! संजू अब कभी वहां नहीं जाएगा। नरेंद्र ने ऐलान किया। तब तुम भी सुन लो, मैं जाऊंगी और संजू केवल तुम्हारा बेटा ही नहीं मेरा भी हक है उस पर वह भी जाएगा। दया, ममता, इंसानियत कुछ भी नहीं है तुम लोगों में ? मैं पूछती हूँ, पापा किसके सहारे चलते फिरते नजर आते हैं ? कौन है, जो पापा का ख्याल रखता है ?'[6] पिता के साथ प्रिया का यह बतार्व एक स्त्री का दूसरी स्त्री के प्रति उसके बहनापा भाव को व्यक्त करता है जो निडर होकर एक असहाय स्त्री को न्याय दिलाने के लिए पति से भी भिड़ जाती है। नाट्य रूप से मीठी आडंबर के लिए जहां नरेंद्र की शान ओर शौकत उसे अमीरजादा बनाती है वही उसकी कुछ हरकतें व पाबंदियां उसके गरीबी को व्यक्त करते हैं। प्रिया को किताबों व पत्रिकाओं का शौक है, वह आए दिन पुस्तकें मंगवाती रहती है पुस्तकों के ऊपर उसका पैसा व्यय करना नरेंद्र को व्यर्थ लगता है। कई बार वह प्रिया को समझा भी चुका है कि वह पुस्तकालयों में सदस्यता ले ले, ताकि पैसे बचे रहे। आर्थिक रूप से स्वतंत्रता ना होने पर कभी-कभी प्रिया को क्षोभ भी होता है। अचानक नरेंद्र का दिमाग बदल जाने की वजह से वह प्रिया का व्यापार आरंभ करा देता है। हमारे समाज में व्यक्ति की सबसे बड़ी कमजोरी, दूसरों की संपन्नता व समृद्धि से होती है, जो उसे व्यथित कर देता है। यहां भी वही स्थित है। नरेंद्र पत्नी को व्यापार में शामिल तो कर लेता है, परंतु उसकी तरक्की से ईर्ष्या भी होने लगती है। प्रिया की उपलब्धि को नरेंद्र सहन नहीं कर पाता। उससे व्यंग्य रूप से कहता है - 'पैसा कमाना तुम्हारी हवस है प्रिया ! तुम नारसिसिष्ट हो। तुम्हारी महत्वाकांक्षाएँ दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है।'[7] नरेंद्र प्रिया के व्यापार में घाटा भी दिलाना चाहता है, उसके विरुद्ध प्रिया का कथन - 'देखो तुम फिर धमकी दे रहे हो धमकी नहीं, आई मीन इट...' तब तुम भी सुन लो, यदि मेरा व्यापार डूबा तो... हाँ, तो क्या? जरा सुनूँ तो सही ?' 'मैं इनकम टैक्स, सेल्स टैक्स, एक्साइज, तुम्हारे सारे बखेड़ा का खुले बाजार में भंडाफोड़ूंगी और देखती हूं कि, तुम कैसे बचते हो ?'[8] 'छिन्नमस्ता उपन्यास को प्रभा खेतान ने दो भागों में वर्णित किया है। प्रथम भाग में तो प्रिया के जीवन की यात्रानाओं का वर्णन है तो दूसरे भाग में प्रिया के विवादोंपरांत पति गृह में हुए संघर्ष और साहस का वर्णन है। प्रिया को व्यापार की अपार सफलता और व्यस्तता नरेंद्र के स्वाभिमान को आघात करती है। जब प्रिया उनके कथानानुसार कार्य नहीं करती तो उस पर व्यंग्य का प्रहार होता है।' 'जब देखो बिजनेस, कल कस्टमर आ रहे हैं तो आज सैंपल बनवाने में ही फैक्ट्री में रात के दस बज गए। फिर रात को साली फोन की घंटी बजती रहती है, घर न हुआ पागल खाना हो गया। तुम्हें रुपया चाहिए न। बोलो कितने रुपए चाहिए ? लाख, 10 लाख, करोड़।'[9] दृढ़ संकल्प और बुलंद हौसले असंभव कार्य को भी अंजाम देने में सक्षम होते हैं। पति जहां जहां रोड़े अटकाता है, व्यवसाय में अवरोधक बनता है वही प्रिया का उत्साह दुगुना होता है। और वह व्यापार में डूबती ही जाती है। कठिन परिश्रम दौड़ भाग, विदेशों का भ्रमण, घर परिवार की यात्रानाएं यह

सब बर्दाश्त करके वह चट्टान बन गई है। प्रभा खेतान ने यह स्पष्ट किया है कि हमारे विरोधी हम से लड़ेंगे, भिड़ेंगे, गिराएंगे, उपहास करेंगे, तोड़ने का प्रयत्न करेंगे परंतु अंतत: जीत हमारी ही होगी। प्रिया इसी का साक्ष्य है। उपन्यास में तिलोत्तमा अर्थात प्रिया की छोटी मां का संरक्षण और संबल भी प्रिया को मिलता है। जब पति के व्यवहार से उबकर वह घर छोड़कर चली जाती है, तब छोटी मां के ही घर में उसे शरण मिलता है। आर्थिक रूप से भी छोटी मां उसकी सहायता करती है। नरेंद्र के पिता के मृत्यु के बाद जब सारे अतिथि और रिश्तेदार अंतिम दर्शन के लिए एकत्रित होते हैं, उस समय भी नीना और तिलोत्तमा को उनसे दूर ही रखा जाता है। वह अंतिम दर्शन भी नहीं कर पाती। नरेंद्र का यह क्रूर व्यवहार प्रिया को गहरे तक भेद देता है। वह आजीवन उनके प्रति रक्षा का संकल्प लेती है। बचपन से ही प्रिया के जीवन में यातनाओं का दौर चला पड़ा है। उसके परिवार के भी सदस्यों द्वारा सताया जाता है। अपनी माँ द्वारा भाटा, पत्थर, बोकी, गधी, भंगन जैसी कई उपाधियों से विभूषित किया जाता है। हर समय, हर पल, हर मोड़पर घर में तथा बाहर सताई जाने वाली प्रिया के शारीरिक तथा मानसिक शोषण की कहानी उसके परिवार से ही शुरू होती है। बचपन में बड़े भैया की वासनाओं की शिकार रही प्रिया जीवन में प्रो. मुखर्जी द्वारा ठगी जाती है। पति नरेन्द्र द्वारा बार - बार आहत होती प्रिया के लिए प्रेम, विवाह जैसे शब्द घिसे पिटे लगते हैं।

भारतीय समाज में स्त्री के जिस संवेदनशील, सहिष्णु, त्याग व कर्मठता की छवि गढ़ी गई है, यही विशेषताएँ उसे विश्व भर में महानता के पद पर प्रतिष्ठित की है। पुरुष अपने क्रूर व्यवहार, दूर आचरण चारित्रिक दुर्बलता और प्रपंचना के लिए जग भर में प्रसिद्ध है। यदि स्त्री भी उसी के नक्शे कदम का अनुकरण करने लगे तो समाज में सद्भावना विलुप्त हो जाएगी। स्त्री की यही सदस्यता ही भारतीय परिवार की संस्कृति को सुरक्षित रखें हुई है। विडंबना यह है कि प्रभा जी ने प्रिया के माध्यम से जिस द्रोही स्त्री का चित्रण किया, उसमें उन्होंने उसे क्रूर भी बना दिया है जो भारतीय स्त्री की छवि के प्रतिकूल है। प्रिया, नीना और छोटी मां को न्याय दिलाने के लिए सर्वस्व त्याग कर देती है और विषम डगर में उनके साथ अडिग रहती है, यह उसके विवशता का परिचायक है। परंतु दूसरे ही पक्ष में जब उसका बेटा संजू अपने विवाह में उसे शामिल होने का अनुरोध करता है, तब प्रिया उसे नकार देती है। नरेंद्र से लड़ बढ़कर, उसके बातों का उल्लंघन कर संजू मां को बुलाने आता है। मां जिसका हृदय और दर्जा ईश्वर से ऊपर दिया गया है, वह अपने ही सुपुत्र के जीवन की सबसे बड़ी खुशी में भागीदारी होने के लिए कैसे मना कर सकती है? क्या प्रिया ने कलेजे पर पत्थर रखा है? दूसरा पक्ष यह भी है कि यदि प्रत्यक्ष रूप से शामिल ना होने पर बारात में कहीं दूर से या लताओं की ओर से बहु बेटे को आशीर्वाद दिलाते हुए प्रभा जी ने दिखाया होता तो शायद वह प्रिया के रूप में किसी भी स्त्री का दैवीय रूप होता, परंतु छोटी मां और नीना को ब्याह में न्योता न देने के कारण खुद भी शामिल न होना, बेटे की भावनाओं का हनन करना हुआ। मां का हृदय इतना कठोर नहीं हो सकता। व्यापार और परिवार में सामंजस्य स्थापित करके, एक सुखद तालमेल बैठाकर यदि लेखिका ने गुजरते हुए घर को बचा लिया होता तो वह शायद समाज के हित में रहता परंतु अकेले मे सब कुछ हार कर आर्थिक सफलता अर्जित हो भी गई तो ऐसी सफलता का क्या जो आशियाना ही छीन ले। स्त्री परिवार को जोड़ने का कार्य करती है। यदि कमियां नरेंद्र में है तो प्रिया भी पूर्ण स्वभाव की स्त्री नहीं है। मैं नहीं जानता कि सहमत कितने लोग होंगे परंतु साहित्य वही हितकारी होता है जो समाज को विकृतियों से बचा सके ना कि गलत राह का अन्वेषण करें। प्रस्तुत उपन्यास की समीक्षा में गोपाल राय ने लिखा कि 'यह आधुनिक नारी की त्रासदी और उसके संकल्प का एक प्रामाणिक दस्तावेज है। यह एक ऐसी स्त्री का संघर्ष कथा है जो एक रोड बंद समाज से टकराते और अपने को भावनात्मक स्तर पर लहूलुहान करते हुए अपने अस्तित्व को नए सिरे से परिभाषित करने की कोशिश कर रही है। इसकी पहचान बनती है प्रिया के चरित्र से जो अपने को सदियों से शोषित पीड़ित नारी की पंक्ति से अलग करने में समर्थ होती है। वह समाज और परंपरा के जड़ मूल्यों को चुनौती देती हुई अपनी अलग पहचान बनाती है पर कहीं भी असंतुलित नहीं होती। 'छिन्नमस्ता' का मिथक प्रिया जैसी संवेदनशील नारी के लिए बहुत सार्थक है, जो इस मन: स्थिति में ही अपनी लहूलुहान जिंदगी को दोबारा जीती है। वह अपना कटा सिर हाथ में लेकर, पुरुष समाज से संघर्ष कर रही है ।'[10]

निष्कर्ष

'छिन्नमस्ता' उपन्यास में नारी के संघर्ष और सफलता की कहानी है। इसमें स्त्री पात्र प्रिया को केंद्र में रखकर लिखा गया औरत के बदलते वजूद का दस्तावेज है। प्रिया के चरित्र से स्पष्ट हुआ है कि प्रभा खेतान नारी की यातना, उसके जीवन की विसंगतियों, विडंबनाओं पर सशक्त ढंग से विचारशील है तथा उनकी स्थिति को सुदृढ़ रखने का सुयत्न करती हैं।

संदर्भ

1. छिन्नमस्ता - गोपाल राय - साक्षात्कार अप्रैल-जून - 1998 - पृष्ठ संख्या - 7
2. छिन्नमस्ता - प्रभा खेतान - पृष्ठ संख्या - 37
3. प्रभा खेतान - छिन्नमस्ता - पृष्ठ संख्या - 55
4. छिन्नमस्ता - प्रभा खेतान - पृष्ठ संख्या - 110
5. छिन्नमस्ता - प्रभा खेतान - पृष्ठ संख्या - 145
6. छिन्नमस्ता- प्रभा खेतान- पृष्ठ संख्या-146
7. छिन्नमस्ता - प्रभा खेतान - पृष्ठ संख्या -148
8. छिन्नमस्ता - पृष्ठ संख्या - 176
9. छिन्नमस्ता - प्रभा खेतान- पृष्ठ संख्या- 184
10. हिंदी उपन्यास का इतिहास - गोपाल राय - पृष्ठ संख्या - 164

छत्तीसगढ़ राज्य ग्रामीण बैंक में गैर निष्पादित परिसंपति के कारण और प्रभाव का अध्ययन

नेहा कौशिक

पी.एच.डी. शोधार्थी, वाणिज्य विभाग, कलिंगा विश्वविद्यालय, नया रायपुर (छ.ग.)

डॉ० बायजू जॉन

वाणिज्य एवं प्रबंधन विभाग, कलिंगा विश्वविद्यालय, नया रायपुर (छ.ग.)

सारांश

एक समृद्ध अर्थव्यवस्था के लिए एक मजबूत बैंकिंग क्षेत्र महत्वपूर्ण है। आर्थिक आयोजन के वर्तमान युग में कृषि, उद्योग एवं व्यापार के विकास के लिए बैंक एवं बैंकिंग व्यवस्था एक अनिवार्य आवश्यकता मानी जाती है। परन्तु आर्थिक मंदी या कुछ ग्राहकों द्वारा जान बुझकर ऋण तथा ब्याज की राशि ना चुकाने कि वजह से बैंकों में गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों की स्थिति उत्पन्न होती है। भारतीय बैंकिंग प्रणाली में एनपीए की समस्या एक विकट समस्याओं में से एक हैं, जिसने संपूर्ण बैंकिंग प्रणाली को प्रभावित किया है। इस शोध अध्ययन में छत्तीसगढ़ राज्य ग्रामीण बैंक के वर्ष 2015-16 से 2019-20 में गैर निष्पादित परिसंपतियों (एनपीए) की स्थिति का अध्ययन किया गया हैं। साथ ही बैंकों में एनपीए उत्पन्न होने के कारण और इनके प्रभाव का भी अध्ययन किया गया है। अन्ततः इस एनपीए की समस्या को कम करने के उद्धेश्य से सुझाव प्रस्तुत किया गया हैं।

शब्द कुंजी- छत्तीसगढ़ राज्य ग्रामीण बैंक, बैंकिंग व्यवस्था, गैर-निष्पादित परिसंपत्तियाँ, कारण और प्रभाव

प्रस्तावना

बैंक - बैंक उस वित्तीय संस्था को कहते हैं जो जनता से धनराशि जमा करने तथा जनता को ऋण देने का काम करता है। लोग अपनी बचत राशि को सुरक्षा की दृष्टि से अथवा ब्याज कमाने के हेतु इन संस्थाओं में जमा करते और आवश्यकतानुसार समय-समय पर निकालते रहते हैं। बैंक इस प्रकार जमा से प्राप्त राशि को व्यापारियों एवं व्यवसायियों को ऋण देकर ब्याज कमाते हैं।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक - कृषि, व्यापार, वाणिज्य तथा ग्रामीण क्षेत्रों में अन्य उत्पादक गतिविधियों के लिए, विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसानों, खेतिहर मजदूरों, दस्तकारों और छोटे उद्यमियों के लिए और उनसे संबंधित मामलों के लिए ऋण और अन्य सुविधाओं के विकास के उद्देश्य से और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास की दृष्टि से नरसिम्हा समिति की सिफारिशों पर सितम्बर 1975 को प्रवर्तित अध्यादेश के प्रावधानों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम, 1976 के तहत 1975 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (आरआरबी) की स्थापना की गई। यह बैंक देश के लगभग सभी राज्यों पर ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग विकास के उद्धेश्य से खोला गया।

छत्तीसगढ़ राज्य ग्रामीण बैंक - 01/नवम्बर/2000 में छत्तीसगढ़ राज्य की स्थापना के समय नवगठित राज्य में पांच क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक कार्यरत थे। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की त्रिस्तरीय संरचना की गयी जिसके अर्न्तगत बैंक का प्रधान कार्यालय छत्तीसगढ़ राज्य की राज्यधानी रायपुर में स्थित है। प्रधान कार्यालय के अधीन 10 क्षेत्रीय कार्यालय हैं, जिनके अन्तर्गत 613 शाखायें कार्यरत है। जो छत्तीसगढ़ राज्य के सभी 28 जिलों में फैली है।

गैर-निष्पादित परिसंपत्तियां- जो संपत्तियां आय उत्पन्न नहीं करते हैं उन्हें गैर-निष्पादित परिसंपत्तियां कहा जाता है।

आरबीआई द्वारा जारी दिशा-निर्देशों के आधार पर ऋण और अग्रिम को निष्पादन और गैर-निष्पादक के रूप में वर्गीकृत किया गया है-

- कृषि अग्रिम के संबंध में:
    1. फसल के दौरान कम समय के लिए, जहां मूलधन या ब्याज की किश्त दो फसलों के मौसम के लिए अतिदेय हो और,
    2. लंबी अवधि की फसलों के लिए, जहां एक फसल के मौसम के लिए मूलधन या ब्याज अतिदेय रहता है।
- गैर कृषि अग्रिमों के संबंध में
    1. सावधि ऋण, ब्याज और मूलधन की किस्त के संबंध में 90 दिनों से अधिक की अवधि के लिए अतिदेय रहता है।

2. ओवरड्राफ्ट या नकद क्रेडिट अग्रिम के संबंध में, खाता ''अनियमित'' रहता है, अर्थात यदि बकाया शेष राशि 90 दिनों की अवधि के लिए लगातार सीमा या आहरण शक्ति से अधिक है, या यदि 90 दिनों के लिए लगातार कोई क्रेडिट नहीं है। बैलेंस शीट की तारीख या यदि क्रेडिट उसी अवधि के दौरान डेबिट किए गए ब्याज को कवर करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

अग्रिमों के प्रकार तथा एनपीए पर प्रावधान आरबीआई द्वारा निर्धारित सीमा दिशा-निर्देशों/निर्देशों के अनुसार किए जाएंगे

1. सभी अग्रिमों को चार श्रेणियों अर्थात् मानक आस्तियों, अवमानक आस्तियों, संदिग्ध आस्तियों और हानि आस्तियों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाएगा।

2. अग्रिम पर प्रावधान निम्नानुसार किया जाएगा:

1) मानक परिसंपत्तियों: जो परिसम्पत्ति बैंक को नियमित आय प्रदान करती है। मानक मूल्यांकन सामान्य प्रावधान निम्नलिखित दरों पर:

(अ) कृषि और एसएमई क्षेत्र को 0.25 प्रतिशत पर प्रत्यक्ष अग्रिम	0.25%
(ब) वाणिज्यिक अचल संपत्ति क्षेत्र	1.00%
(स) वाणिज्यिक अचल संपत्ति क्षेत्र (आवासी गृह क्षेत्र)	0.75%
(ङ) उपरोक्त अ, ब और स में शामिल नहीं किए गए अन्य सभी	0.40%

2) अवमानक आस्तियाएं

(अ) एक ऋण परिसंपत्ति जो 12 महीने से कम अवधि के लिए गैर-निष्पादित बनी हुई है, कुल बकाया पर 15 प्रतिशत का एक उप-मानक परिसंपत्ति सामान्य प्रावधान है।

(ब) जोखिम के लिए 10% का अतिरिक्त प्रावधान जो पहले से ही असुरक्षित हैं (अर्थात् जहां सुरक्षा का वसूली योग्य मूल्य पहले से ही 10घ से अधिक नहीं है)।

3) संदिग्ध संपत्ति: एक ऋण संपत्ति जो 12 महीने तक अवमानक परिसम्पत्ति के श्रेणी में रही है, वह संदिग्ध संपत्ति होगी:

सुरक्षित भाग	एक साल तक 25%
	एक से तीन साल तक 40%
	तीन साल से अधिक 100%
असुरक्षित भाग	100%

4) नुकसान की संपत्ति: एक ऋण संपत्ति जहां नुकसान की पहचान की गई है, लेकिन राशि को बट्टे खाते में नहीं डाला गया है, वह नुकसान संपत्ति होगी। ऐसे बकाया अग्रिमों पर 100 प्रतिशत प्रावधान किया जाता हैं।

साहित्य समीक्षा

- सुलगना दास और अभिजीत दत्ता ने नवंबर 2014 में ''भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के एनपीए पर एक अध्ययन'' पर एक शोध अध्ययन किया जिसमें उन्होंने सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के एनपीए के कारणों का विश्लेषण करने का प्रयास किया। उन्होंने प्राथमिकता और गैर-प्राथमिकता वाले क्षेत्र के अग्रणी के संदर्भ में भारत के विभिन्न राष्ट्रीयकृत बैंकों में एनपीए के महत्वपूर्ण अंतर पर भी जोर दिया।
- कौर के और सिंह बी (2011) ने सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के बैंकों की गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों (एक तुलनात्मक अध्ययन) पर अपने अध्ययन में अध्ययन किया कि एनपीए को बैंकों के प्रदर्शन और वित्तीय स्वास्थ्य का न्याय करने के लिए एक महत्वपूर्ण पैरामीटर माना जाता है। एनपीए का स्तर वित्तीय स्थिरता और बैंकिंग क्षेत्र के विकास के चालकों में से एक है।
- डीएस राठौर, डॉ. संगीता मालपानी, सुनीता शर्मा (2016) ने नॉन परफॉर्मिंग एसेट्स ऑफ इंडियन बैंकिंग सिस्टम एंड इट्स इम्पैक्ट ऑन इकोनॉमिक्स पर अध्ययन किया कि एनपीए की बढ़ी हुई घटनाएं न केवल बैंकों के प्रदर्शन को प्रभावित करती हैं बल्कि समग्र रूप से अर्थव्यवस्था को भी प्रभावित करती हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

1. छत्तीसगढ़ राज्य ग्रामीण बैंक की गैर निष्पादित आस्तियों की स्थिति का अध्ययन करना।
2. बैंकों पर गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों के प्रभाव का अध्ययन करना।
3. विभिन्न चौनलों के माध्यम से गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों की वसूली जानने के लिए।
4. भविष्य के एनपीए से बचने और बैंकों में मौजूदा एनपीए को प्रबंधित करने के लिए उचित सुझाव देना।

अध्ययन की सीमा

महत्वपूर्ण सीमाएँ इस प्रकार हैं

1. छत्तीसगढ़ राज्य ग्रामीण बैंक तक सीमित और वर्ष 2015-16 से 2019-20 तक गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों का अध्ययन।
2. डाटा - छत्तीसगढ़ राज्य ग्रामीण बैंक के वार्षिक रिपोर्ट से लिया गया है।

छत्तीसगढ़ राज्य ग्रामीण बैंकों के गैर निष्पादित आस्तियों की स्थिति

तालिका 1 - वर्ष 2015-16 से 2019-20 में छत्तीसगढ़ राज्य ग्रामीण बैंकों के कुल ऋण एवं अग्रिम (लाखों रुपये में) तथा सकल एनपीए (लाखों रुपये में) और शुद्ध एनपीए (लाखों रुपये में) की स्थिति को दर्शाया गया हैं।

वर्ष	*कुल ऋण एवं अग्रिम*	*सकल एनपीए*	*प्रतिशत*	*शुद्ध एनपीए*	*प्रतिशत*
2015-16	254651.41	22256.05	8.74%	12063.56	4.93%
2016-17	264325.25	30537.93	11.55%	19792.83	7.81%
2017-18	288498.33	44758.01	15.79%	25359.15	9.60%
2018-19	304684.62	41591.75	13.65%	19750.45	6.98%
2019-20	351094.83	19450.96	5.54%	7231.43	2.15%

तालिका 1 का अध्ययन

- भारतीय रिर्जव बैंक के अनुसार किसी बैंक का गैर निष्पादित परिसम्पत्ति यदि बैंक की कुल ऋण तथा अग्रिम का 5% या उससे कम हो तब सामान्य माना जाता हैं। वर्ष 2015-16 से 2018-19 तक छत्तीसगढ़ राज्य ग्रामीण बैंकों के सकल एनपीए एवं शुद्ध एनपीए का प्रतिशत बैंक की कुल ऋण तथा अग्रिम के 5% से अधिक देखा जा सकता है।
- आर.बी.आई के गर्वनर रघुराम राजन के द्वारा वर्ष 2016 के दौरान एनपीए मिटाओ कैम्पेंन दिनांक 01.09.2016 से 30.09.2016 एवं दिनांक 01.12.2016 से 28.02.2017 तक चलाया गया। आई.आर.ए.सी नियमों के सख्त अनुपालन से एनपीए राशि में अचानक बहुत वृद्धि हो गई।
- वर्ष 2019-20 में छत्तीसगढ़ शासन की ऋण माफी योजना की वजह से सकल एनपीए एवं शुद्ध एनपीए में बहुत बडी गिरावट आयी है।

बैंकों में गैर निष्पादित आस्तियों के कारण

इन समस्या को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है - बाहरी समस्या और आन्तरिक समस्या।

गैर निष्पादित परिसम्पत्ति के आंतरिक कारक

1. विशेष उद्देश्य के लिए उधार ली गई धनराशि का उपयोग उसी के लिए नहीं किया जाता है
2. दोषपूर्ण उधार प्रक्रिया: वाणिज्यिक बैंकों द्वारा उधार देने की प्रक्रिया में तीन सिद्धांतों का पालन किया जाता है अर्थात् सुरक्षा का सिद्धांत, तरलता का सिद्धांत, लाभप्रदता के सिद्धांत। बैंकर को इन सिद्धांतों के अनुरूप ही यह सुनिश्चित करने में अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए।
3. अनुपयुक्त प्रौद्योगिकी: अनुचित प्रौद्योगिकी और प्रबंधन सूचना प्रणाली के कारण, वास्तविक समय के आधार पर बाजार संचालित निर्णय नहीं लिए जा सकते हैं। इसलिए बैंकों की सभी शाखाओं को वर्तमान परिदृश्य के साथ अपग्रेड किया जाना चाहिए।
4. अनुचित एसडब्ल्यूओटी विश्लेषण: अनुपयुक्त ताकत, कमजोरी, अवसर और खतरे का विश्लेषण एनपीए में वृद्धि का एक और कारण है। इसलिए बैंक को वित्तपोषण करते समय परियोजना की लाभप्रदता, व्यवहार्यता, दीर्घकालिक स्वीकार्यता की जांच करनी चाहिए।
5. खराब क्रेडिट मूल्यांकन प्रणाली: खराब क्रेडिट मूल्यांकन के कारण बैंक उन लोगों को अग्रिम देता है जो इसे वापस चुकाने में सक्षम नहीं हैं। इससे बैंक का एनपीए बढ़ जाता है। इसलिए बैंक को उचित क्रेडिट मूल्यांकन प्रणाली बनाए रखनी चाहिए।
6. प्रबंधकीय कमियाँ: बैंकर को हमेशा बहुत सावधानी से उधारकर्ता का चयन करना चाहिए और अपने हितों की रक्षा के लिए मूर्त संपत्ति को सुरक्षा के रूप में लेना चाहिए। बैंकर को जोखिमों के विविधीकरण के सिद्धांत का पालन करना चाहिए जिसका अर्थ है कि बैंकर को केवल कुछ बड़ी फर्मों को या कुछ उद्योगों या कुछ शहरों में केंद्रित करने के लिए अग्रिम नहीं देना चाहिए।
7. नियमित अनुवर्ती कार्रवाई का अभाव: स्पॉट विजिट में अनियमितताएं भी एनपीए को बढ़ाती हैं, बैंक अधिकारियों के ग्राहक बिंदु पर नियमित रूप से न आने से ऋण पर ब्याज और मूलधन का संग्रह कम हो जाता है।
8. अपूर्ण और दोषपूर्ण दस्तावेज: उधारकर्ताओं द्वारा जमा किए गए दस्तावेजों पर अधिकारियों द्वारा पूरी तरह से सत्यापन किया जाना चाहिए।

गैर निष्पादित परिसम्पत्ति के बाहरी कारक

1. अप्रभावी रिकवरी ट्रिब्यूनल: सरकार के पास कई रिकवरी ट्रिब्यूनल हैं, जो ऋण और अग्रिम की वसूली के लिए काम करते हैं, उनके काम में लापरवाही और अप्रभावीता के कारण बैंक को गैर-वसूली का परिणाम भुगतना पड़ता है, जिससे उनकी लाभप्रदता और तरलता कम हो जाती है।
2. विलफुल डिफॉल्ट्स:- भारतीय सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक इन डिफॉल्ट्स से सबसे ज्यादा प्रभावित हैं। यह चुकौती दायित्व में चूक है। उदाहरण: किंगफिशर एयरलाइंस लिमिटेड उन विलफुल डिफॉल्टरों में से एक है। अन्य हैं बीटा, नेप्थॉल, विनसम डायमंड्स एंड ज्वैलरी लिमिटेड, रैंक इंडस्ट्रीज लिमिटेड, एक्सएल एनर्जी लिमिटेड आदि।
3. प्राकृतिक आपदाएं: यह माप कारक है, जो पीएसबी के एनपीए में खतरनाक वृद्धि पैदा कर रहा है। मूल रूप से हमारे किसान फसल के लिए वर्षा पर निर्भर हैं, वर्षा की अनियमितताओं के कारण किसान उत्पादन स्तर प्राप्त करने में असमर्थ हैं और इस प्रकार वे ऋण चुकाने में असमर्थ हैं। तो बैंकों को उन ऋणों का भुगतान करने के लिए बड़ी मात्रा में प्रावधान करना पड़ता है

4. औद्योगिक रुग्णता: अनुपयुक्त परियोजना संचालन, अप्रभावी प्रबंधन, पर्याप्त संसाधनों की कमी, उन्नत प्रौद्योगिकी की कमी, सरकारी नीतियों में दिन-प्रतिदिन परिवर्तन औद्योगिक रुग्णता उत्पन्न करते हैं इसलिए उन उद्योगों को वित्तपोषित करने वाले बैंक अपने ऋणों की कम वसूली के साथ समाप्त होते हैं, उनके लाभ और तरलता को कम करना।
5. मांग की कमी: भारत में उद्यमी अपने उत्पाद की मांग का अनुमान नहीं लगा सकते और उत्पादन शुरू कर देते हैं जो अंतत: उनके उत्पाद को ढेर कर देता है। इस प्रकार, वे इन गतिविधियों को संचालित करने के लिए उधार लिए गए धन को वापस करने में असमर्थ हैं। इसलिए बैंक गैर-वसूली वाले हिस्से को एनपीए के रूप में दर्ज करते हैं और इसके लिए प्रावधान करना पड़ता है।
6. जान बूझकर ऋण न चुकाने वालों की संख्या में बढ़ोत्तरी होना और ऐसे बकायेदारों के खिलाफ राजनीतिक दखल के कारण पर्याप्त कार्यवाही न हो पाना।

एनपीए के प्रभाव

1. लाभप्रदता: एनपीए लाभप्रदता पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं क्योंकि बैंक एक तरफ आय अर्जित करना बंद कर देते हैं और दूसरी ओर मानक परिसंपत्तियों की तुलना में उच्च प्रावधान को आकर्षित करते हैं। औसतन बैंक एनपीए पर लगभग 25% से 30% अतिरिक्त प्रावधान प्रदान कर रहे हैं। लेकिन हानि की अवस्था में यह 100% किया जाता है। जिसका बैंकों की लाभप्रदता पर सीधा असर पड़ता है।
2. संपत्ति (क्रेडिट) संकुचन: बढ़े हुए एनपीए ने धन के पुनर्चक्रण पर दबाव डाला और बैंकों की अधिक उधार देने की क्षमता को कम कर दिया और इस प्रकार ब्याज आय कम हो गई। यह मनी स्टॉक को अनुबंधित करता है जिससे आर्थिक मंदी हो सकती है।
3. देयता प्रबंधन: उच्च एनपीए के आलोक में, बैंक एक ओर जमाराशियों पर ब्याज दरों को कम करते हैं और एनआईएम को बनाए रखने के लिए अग्रिमों पर उच्च ब्याज दर लगाने की संभावना रखते हैं। यह सुचारू वित्तीय मध्यस्थता प्रक्रिया में बाधा बन सकता है और बैंकों के व्यवसाय के साथ-साथ आर्थिक विकास को भी बाधित कर सकता है।
4. पूंजी पर्याप्तता: बेसल नॉम III का लक्ष्य बैंकों को अधिक बड़े पूंजी आधार को बनाए रखने, पारदर्शिता बढ़ाने और तरलता में सुधार करने की आवश्यकता के द्वारा वित्तीय और आर्थिक तनाव से उत्पन्न होने वाले झटकों को अवशोषित करने की उनकी क्षमता में सुधार करके अधिक विवेकपूर्ण कार्य करने के लिए सहयोग करना है। एक बैंक की कुल पूंजी की गणना दोनों स्तरों को एक साथ जोड़कर की जाती है। बेसल III के तहत, न्यूनतम कुल पूंजी अनुपात 12.9% है, जिससे न्यूनतम टियर 1 पूंजी अनुपात इसकी कुल जोखिम-भारित संपत्ति (RWA) का 10.5% है, जबकि न्यूनतम टियर 2 पूंजी अनुपात RWA का 2% है।
5. शेयरधारकों का विश्वास: आम तौर पर, शेयरधारक उच्च लाभांश और बाजार पूंजीकरण के माध्यम से अपने निवेश के मूल्य को बढ़ाने में रुचि रखते हैं, जो तभी संभव है जब बैंक बेहतर व्यवसाय के माध्यम से महत्वपूर्ण लाभ पोस्ट करता है। बढ़े हुए एनपीए स्तर से बैंक व्यवसाय के साथ-साथ लाभप्रदता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है, जिससे शेयरधारकों को उनकी पूंजी पर बाजार प्रतिफल प्राप्त नहीं होता है और कभी-कभी यह उनके निवेश के मूल्य को कम कर सकता है।
6. जनता का विश्वास: उच्च स्तर के एनपीए के कारण बैंकिंग प्रणाली की विश्वसनीयता भी बहुत प्रभावित होती है क्योंकि यह बैंकिंग प्रणाली की सुदृढ़ता में आम जनता के विश्वास को हिला देती है। बढ़े हुए एनपीए से चलनिधि की समस्या उत्पन्न हो सकती है, जिसके कारण जमाकर्ताओं द्वारा बैंक पर विस्वास खत्म होने की संभावना है।

गैर निष्पादित परिसम्पत्ति को नियंत्रित करने का सुझाव

निम्नलिखित कुछ रणनीतियाँ हैं जिनके द्वारा बैंक गैर-निष्पादित आस्तियों को काफी हद तक कम करने का प्रयास कर रहे हैं:

1. वसूली शिविर: बैंक कर्मचारी संयुक्त रूप से दोनों पक्षों के लिए सुविधाजनक स्थान और समय पर किश्तों में चूक कर्ता उधारकर्ताओं से संपर्क करते हैं। ये छोटे ऋणों के लिए अधिक उपयुक्त हैं। कुछ परिस्थितियों में, बैंक शाखाओं के प्रबंधक प्रभारी कुछ शाखा अधिकारियों के साथ उधारकर्ताओं के प्रत्येक घर में जाते हैं और उनके द्वारा लिए गए ऋण के संबंध में देय किश्तों की वसूली करते हैं। वसूली शिविरों की तिथि का उल्लेख करते हुए उधारकर्ताओं को अग्रिम नोटिस दिए जाने से इस प्रकार का वसूली शिविर सफल होगा।
2. दावों की वरीयता: बैंकों को जमा बीमा और क्रेडिट गारंटी निगम जैसे डीआईसीजीसी, ईसीजीसी नामक निर्यात क्रेडिट गारंटी निगम, लघु उद्योगों, बीमा कंपनियों आदि के लिए क्रेडिट गारंटी फंड ट्रस्ट जैसे संगठनों से शीघ्र और उचित रूप से क्षतिपूर्ति का दावा करना चाहिए और सरकारी या अन्य व्यक्तिगत को आमंत्रित करना चाहिए जो ऋण बकाया की वसूली और गैर निष्पादित आस्तियों को कम करने की गारंटी देता है।
3. समझौता प्रस्ताव: बैंकों द्वारा समझौता मार्ग अपनाए जाते हैं, जहां उधारकर्ता कुछ वास्तविक कठिनाइयों का अनुभव करते हैं और जहां सामान्य वसूली संभव नहीं होती है। इसमें "one bird at hand is worth two in the bush" के सिद्धांत अर्थात् किसी के पास कुछ बेहतर पाने की कोशिश करके उसे खोने का जोखिम उठाने से बेहतर है कि किसी चीज को पकड़ कर रखा जाए। पर बैंकों की ओर से कुछ बलिदान शामिल हैं। उधार खाते के इतिहास, उपलब्ध सुरक्षा, उधारकर्ता या गारंटर की निवल संपत्ति, किए गए प्रस्ताव के समय मूल्य आदि को ध्यान में रखते हुए ऐसे प्रस्तावों पर विचार किया जा सकता है।
4. तकनीकी बट्टे खाते में डालना: आम तौर पर बैंक छोटे ऋणों को बट्टे खाते में डालने का निर्णय लेते हैं जो खराब हो गए हैं और उन खातों में किसी भी परिस्थिति में वसूली संभव नहीं है। इस तथ्य के कारण कि उधारकर्ता की मृत्यु हो गई, हो सकती हैं, या उसके पास किसी भी कीमत पर ऋण चुकाने का कोई साधन नहीं है और संपत्ति आदि के संबंध में भारी नुकसान हो सकता है। यह तकनीक सिर्फ ऐसे गैर-निष्पादित खातों के लिए प्रयोग किया जाना चाहिए।

5. एकमुश्त निपटान योजना: गैर निष्पादित आस्तियों की पूर्ण राशि को कम करने के लिए, भारत सरकार भारतीय रिजर्व बैंक के साथ पिछले कुछ वर्षों से समय-समय पर एकमुश्त निपटान योजनाओं की घोषणा कर रही है। जब कर्जदार जीवित होते हैं और जब कर्जदार किसान, छोटे उद्यमी आदि होते हैं और उन्हें खराब स्वास्थ्य और अपने व्यापारिक उपक्रमों में गिरावट जैसे विभिन्न कारणों से अपने बकाया का भुगतान करना बहुत मुश्किल होता है, हालांकि, उनके पास अपने कर्ज को चुकाने का झुकाव होता है। बैंक को, इस प्रकार की प्रथा उधारकर्ताओं और ऋण देने वाली संस्थाओं के लिए बहुत मददगार है।
6. वाद दाखिल करना: गैर निष्पादित आस्तियों की वसूली के अन्य सभी उपाय विफल होने पर वाद दायर करना अंतिम उपाय के रूप में लिया जाता है। बैंक कानून की अदालतों के हस्तक्षेप के साथ या उसके बिना वसूली की कार्यवाही शुरू कर सकते हैं। प्रक्रिया में तेजी लाने के लिए कार्यवाही के सभी चरणों में बैंकों को सतर्क और सक्रिय रहना चाहिए। यानी वाद पत्र तैयार करना, सम्मन की तामील, लिखित बयान, मुकदमे की सुनवाई, डिक्री की प्रति प्राप्त करना, अंतरिम राहत के लिए प्रार्थना करना, डिक्री का निष्पादन, संपत्ति की कुर्की, जरूरत पड़ने पर प्रतिवादियों की गिरफ्तारी आदि।
7. ऋण वसूली न्यायाधिकरण: भारतीय संसद द्वारा 1993 में ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम पारित किया गया था, जिसका उद्देश्य बैंकों और वित्तीय संस्थानों को उन मामलों में बकाया राशि की त्वरित वसूली की सुविधा प्रदान करना था, जहां ऋण राशि रु. 10 लाख या उससे अधिक हो। अपर्याप्त बुनियादी ढांचे और डीआरटी के पास वसूली कर्मियों की कमी के कारण इस अधिनियम के तहत परिकल्पित समय सीमा का पालन, वादों के निपटान में नहीं किया जा रहा है। बहरहाल, 2000 में डीआरटी अधिनियम और उसके बाद के संशोधन ने सामान्य कानूनी मंच पर एक बड़ा सुधार प्रदान किया है।
8. लोक अदालतें: यह लोक अदालत प्रतिभूतिकरण अधिनियम द्वारा मध्यस्थता से बैंक और उधारकर्ताओं के बीच आम सहमति पर ऋण बकाया के शीघ्र निपटान के लिए एक कानूनी मंच है।
9. प्रतिभूतिकरण और वित्तीय संपत्ति और सुरक्षा हित का प्रवर्तन-सरफेसी अधिनियम: 2002 का उद्देश्य बैंकों को सुरक्षित लेनदारों के रूप में न्यायालय या न्यायाधिकरण के हस्तक्षेप के बिना प्रतिभूतियों को कब्जे में लेने, प्रबंधित करने और बेचने के लिए सशक्त बनाना है। इसका उद्देश्य प्रतिभूतिकरण या पुनर्निर्माण कंपनी द्वारा परिसंपत्ति पुनर्निर्माण करना भी है। हालांकि, 1 लाख रुपये से कम शेष के साथ ऋण। असुरक्षित ऋण और कृषि भूमि के संपार्श्विक के खिलाफ ऋण को इस अधिनियम के दायरे से छूट दी गई है।
10. ई-सेवा में वृद्धि: बैंक में आधुनिकीकरण को स्विकार करने के साथ ही, ई-बैंकिंग सेवाओं को ग्रहकों को उपयोग करने के लिए जोर डालना चाहिए। इससे बैंक के एनपीए में कमी आएगी क्योंकि इन सेवाओं का उपयोग करने के लिए ग्राहक को न्यूनतम बैलेंस की राशि रखना अनिवार्य है। क्रेडिट कार्ड और डेबिट कार्ड के उपयोग पर भी बैंक द्वारा सीधे नियंत्रण किया जा सकता हैं, इससे बैंक को कम हानि होगी और वह आसानी से अपने ग्राहकों के नकद प्रवाह को भी कंट्रोल कर सकती है।

संदर्भगंथ्र सूची

- दास सुलगना और दत्ता अभिजीत, (नवंबर 2014), ''भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के एनपीए पर एक अध्ययन'' आईओएसआर जर्नल ऑफ बिजनेस एंड मैनेजमेंट आईएसएसएन: 2278-487ग्ए वॉल्यूम 16, अंक 11, पीपी-75-83।
- चटर्जी, सी. और मुखर्जी, जे. और दास, आर., ''गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों का प्रबंधन - एक वर्तमान परिदृश्य'', सिम्बायोसिस सेंटर फॉर मैनेजमेंट स्टडीज, पुणे वॉल्यूम का वार्षिक शोध जर्नल। 4, मार्च 2016 125। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंस एंड इंटरडिसिप्लिनरी रिसर्च, खंड 1 अंक 11, 2012।
- कौर, के और सिंह, बी, ''सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के बैंकों की गैर-निष्पादित संपत्तियां एक तुलनात्मक अध्ययन'', जर्नल ऑफ कॉमर्स, वॉल्यूम 57, नंबर 2, 2004 दक्षिण एशियाई जर्नल ऑफ मार्केटिंग एंड मैनेजमेंट रिसर्च, वॉल्यूम। 1, अंक 3, 2011।
- राठौर डीएस, डॉ. मालपानी संगीता, शर्मा सुनीता (2016) नॉन परफॉर्मिंग एसेट्स ऑफ इंडियन बैंकिंग सिस्टम एंड इट्स इम्पैक्ट ऑन इकोनॉमिक्स। आईओएसआर जर्नल ऑफ इकोनॉमिक्स एंड फाइनेंस (आईओएसआर-जेईएफ) ई-आईएसएसएन: 2321-5933, पी-आईएसएसएन: 2321- 5925. खंड 7, अंक 6 देखें। प्प्प् (नवंबर - दिसंबर 2016), पीपी 21-26 www-iosrjournals-org
- छत्तीसगढ़ राज्य ग्रामीण बैंक के वार्षिक रिपोर्ट 2015-16 से 2019-20।

मनरेगा पर कोरोना वायरस महामारी का प्रभाव

शिव कुमार शर्मा

शोधार्थी, राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान

डॉ० नीलम सारस्वत

सह-आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

सारांश

मौजूदा दौर में कोरोना वायरस के खतरे से पूरी दुनिया भयभीत है। इस महामारी के प्रकोप के कारण हर इन्सान अपने परिवार के साथ अपने घर में कैद होने को मजबूर हो गया है। सरकारों ने अत्यावश्यक सेवाओं को छोड़कर बाकि सब सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया और सभी को अपने घरों में रहने की हिदायत दे दी। यानी लॉकडाउन की स्थिति पैदा हो गई।

यह महामारी ऐसे समय में आई है, जब वित्तीय क्षेत्र पर दबाव के कारण पहले से ही भारतीय अर्थव्यवस्था सुस्ती की मार झेल रही थी। लॉकडाउन के कारण इस पर और अधिक दवाब बढ़ गया है।

कोरोना काल और लॉकडाउन के दौरान जब लोगों के सामने बेरोजगारी और भुखमरी की स्थिति है, ऐसे में मनरेगा योजना ग्रामीण क्षेत्रों में मजदूरों के लिए रोजी-रोटी का मुख्य विकल्प बन गई है। लॉकडाउन में जब कारोबार पूरी तरह से बंद हो गया तो प्रवासी मजदूर बड़ी संख्या में अपने मूल स्थानों की और वापस लौटने लगे। इन श्रमिकों को उनके ही गाँव में रोजगार प्रदान करने के लिए, अलग-अलग राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने मनरेगा को अपना आदर्श मॉडल बनाया है।

अब तक पूरे देश में कुल 175.56 करोड़ मानव कार्य दिवस सृजित हुए और मनरेगा योजना में कुल 48.61 हजार करोड़ रुपये खर्च किए गए। इसमें से 35.21 हजार करोड़ रुपये केवल मजदूरी भुगतान के रूप में बांटे गए।

मूल शब्दः कोविड, महामारी, लॉकडाउन, कारोबार, मनरेगा, रोजगार

परिचय

जब हमारे चारो और बेरोजगारी का वातावरण फैला हो तो ऐसे में अगर लोगों को अपने ही गांव में रोजगार मिल जाये इससे अच्छी बात क्या होगी? इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर भारत सरकार ने वर्ष 2005 में एक योजना बनायीं, जिसे राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार एक्ट-2005 (NREGA) के नाम से जाना गया। कुछ सालों बाद, 31 दिसंबर 2009 को इसका नाम बदल कर महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) कर दिया गया।

इस योजना के अनेक उद्देशों में से एक महत्वपूर्ण उद्देश्य था कि, की रोजगार के लिए ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को उनके अपने गांव में ही काम देकर उनके शहरी पलायन को रोका जा सके। ग्रामों से पलायन रोकने में यह योजना काफी हद तक मददगार सिद्ध हुई।

नरेगा योजना की शुरुआत 2,फरवरी,2006 को आंध्र प्रदेश राज्य के अनंतपुर जिले की बदलापल्ली पंचायत से की गई।

इस योजना में प्रत्येक वित्तीय वर्ष में किसी भी ग्रामीण परिवार के उन वयस्क सदस्यों को 100 दिन का रोजगार मिलता है जो प्रतिदिन 220 रुपये की सांविधिक न्यूनतम मजदूरी पर सार्वजनिक कार्यों में अकुशल मजदूरी करने के लिए तैयार हैं। 2010-11 वित्तीय वर्ष में इस योजना के लिए केंद्र सरकार का बजट 40,100 करोड़ रुपए था।

मनरेगा को ग्रामीण लोगों की क्रय शक्ति को बढ़ाने के मूल उद्देश्य से शुरू किया गया था। इस योजना में ग्रामीण भारत में रहने वाले सभी, कुशल और अकुशल कामगारों का समावेश था। मनरेगा मजदूरों में महिलाओं की संख्या करीब एक तिहाई है।

कोविड-19 महामारी के पहले चरण में महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना (मनरेगा) ने ग्रामीणों को बड़ा सहारा दिया। इस दौरान लोगो को बेरोजगारी से बचाने और उनके हाथ में पैसे पहुचाने के लिए सरकार ने भी बड़ी रकम खर्च की।

मौजूद आंकड़ों के अनुसार 2013-14 और 2019-20 के बीच इस योजना का फायदा उठाने वाले लोगों की संख्या 6.21 से लेकर 7.88 करोड़ लोगों तक रही है। लेकिन महामारी के कारण बढ़ी बेरोजगारी के चलते 3 करोड़ अतिरिक्त लोग, ग्रामीण क्षेत्रों में मनरेगा के तहत किये जा रहे कार्यों से जुड़े।

कोरोना महामारी

कोविड-19 एक प्रकार श्वसन सम्बन्धी संक्रामक रोग है, जो 2019 थ1 छ1 नोवेल कोरोनावायरस (सार्स-कोव -2) के कारण होता है। इस रोग का पता सबसे पहले 2019 को चीन के वुहान शहर में चला था। लेकिन तब तक ये पूरी दुनिया में फैल चुका था, जिसका परिणाम 2019-20 वुहान कोरोनावायरस महामारी के रूप में सामने आया। इसकें सामान्य लक्षणों में बुखार, खांसी और सांस लेने में तकलीफ होना शामिल हैं । कुछ मामलों में मांसपेशियों में दर्द, बलगम का बनना और गले में खराश भी देखने को मिला है। ज्यादातर मामलों में लक्षण हल्के ही होते हैं, और सिर्फ कुछ मामलों में ही ये बढ़ कर निमोनिया या कई अंगों के विफल होने तक पहुँचते हैं। जांच किए जा रहे मामलों में प्रति व्यक्ति मौतों का प्रतिशत 2.4% है, जिसमें व्यक्ति की उम्र और स्वास्थ अलग-अलग हैं।

इस प्रकोप को एक दर्जन से अधिक राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में महामारी घोषित कर दिया गया, जहां महामारी रोग अधिनियम, 1897 के प्रावधानों को लागू कर सभी शैक्षणिक और कई व्यापारिक संस्थानों को बंद कर दिया गया। साथ ही भारत ने सभी पर्यटक वीजा को भी निलंबित कर दिया है, क्योंकि अधिकांश पुष्ट मामले अन्य देशों से लौटे लोगों में पाये गए है। सरकार ने देश भर के 75 जिलों में लॉकडाउन जारी किया था, जहां 31 मार्च तक कोविड-19 मामलों की पुष्टि की गई थी। भारत में वर्तमान में एशिया में सबसे अधिक पुष्ट मामले हैं।

कोरोना महामारी के सामाजिक और आर्थिक प्रभाव

कोरोनावायरस के कारण पूरे देश में लॉकडाउन होने के कारण कई सरकारी व्यवसाय और उद्योग प्रभावित हुए हैं। घरेलू आपूर्ति और मांग प्रभावित होने के चलते आर्थिक वृद्धि दर प्रभावित हुई है। वहीं जोखिम बढ़ने से घरेलू निवेश में सुधार में भी देरी होने की संभावना दिख रही है। विश्व बैंक के अनुसार इस महामारी की वजह से भारत ही नहीं बल्कि समूचा दक्षिण एशिया गरीबी उन्मूलन से मिलें फायदे को गँवा सकता है। अंतरराष्ट्रीय श्रम संघ ने कहा है कि कोरोना वायरस सिर्फ एक वैश्विक स्वास्थ्य संकट नहीं रहा, बल्कि ये एक बड़ा लेबर मार्केट और आर्थिक संकट भी बन गया है जो लोगों को बड़े पैमाने पर प्रभावित करेगा। लॉकडाउन का सबसे ज्यादा असर अनौपचारिक क्षेत्र पर पड़ा है। भारतीय अर्थव्यवस्था का 50 प्रतिशत जीडीपी अनौपचारिक क्षेत्र से ही आता है। अब जबकि ये क्षेत्र लॉकडाउन के समय पूरी तरह से बंद थे जिससे उनकी कमाई ठप पड़ गई।

लॉकडाउन के दौरान अनुमानित 14 करोड़ लोगों ने रोजगार खो दिया जबकि कई अन्य लोगों के लिए वेतन में कटौती की गई थी। देश भर में 45% से अधिक परिवारों ने पिछले वर्ष की तुलना में आय में गिरावट स्वीकार की है। पहले 21 दिनों के संपूर्ण बंद के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था को हर दिन 32,000 करोड़ से अधिक की हानि होने की आशंका थी। पूर्ण लॉकडाउन के तहत भारत के +2.8 ट्रिलियन आर्थिक संरचना की एक चौथाई से भी कम वाणिज्यिक गतिविधियां जारी थी। अनौपचारिक क्षेत्रों में सबसे अधिक जोखिम दिहाड़ी मजदूरों को होता है। देश भर में ऐसे किसानों की संख्या बहुत बड़ी है जल्द खराब होने वाले फल-सब्जी उगाते हैं, उन्हें भी अनिश्चितता का सामना करना पड़ा।

कोरोना काल में मनरेगा का योगदान

कोरोना और इसके बचाव के लिए उठाये गए सरकारी कदमों ने लोगों को पूरी तरह तोड़ कर दिया है। किसी से उसके अपने छिन गए, तो किसी की खुद की जिंदगी खत्म हो गई। जो बच गए। उनके रोजगार नहीं रहे। ऐसे में मुश्किल समय में महात्मा गांधी नरेगा योजना ग्रामीण इलाकों में लोगों के लिए सबसे बड़ा सहारा साबित हो रही है।

कोरोना के प्रभाव से अर्थव्यवस्था भी बच पाई है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत के असंगठित क्षेत्र के लगभग 40 करोड़ से अधिक श्रमिक इस लॉकडाउन से प्रभावित हुए हैं। रिपोर्ट के अनुसार भारत भी नाइजीरिया और ब्राजील के साथ उन देशों में शामिल है, जो इस महामारी से उत्पन्न होने वाली चुनौतियों से निपटने के लिए पूरी तरह तैयार नहीं थे। ऐसे में इन देशों में बेरोजगारी और गरीबी के आंकड़ों में व्यापक वृद्धि होने की सम्भावना से है। ऐसे भी कई उदाहरण सामने आये हैं कि, लॉकडाउन के बाद उभरने वाली महामंदी के दौर को ध्यान में रखते हुए कई पश्चिमी देशों ने अपने यहाँ काम करने वाले भारतियों/एशियाई लोगों को नौकरी से हटाने के प्रयास शुरू कर दिए हैं। संयुक्त राष्ट्र ने भी हाल ही में कहा था कि दुनियाभर में ढाई करोड़ से अधिक नौकरियां जा सकती हैं।

सरकार ने महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (मनरेगा) के लिए 40,000 करोड़ रुपये का अतिरिक्त आवंटन किया है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध कराने में मदद मिलेगी तथा 300 करोड़ मानव कार्य दिवस पैदा किये जा सकेंगे। मानसून के दौरान घर लौट रहे प्रवासी मजदूरों को इसकी ज्यादा जरुरत पड़ेगी।

राजस्थान में मनरेगा से रोजगार

बीते वर्ष जब पूरी दुनिया में कोरोना लोगों की आजीविका लील रहा था, उस दौरान राजस्थान राज्य में मनरेगा ने प्रभावित लोगों को रोजगार देने के मामले में नए कीर्तिमान गढ़े।

राजस्थान में कोरोना बंदी के समय हुए महापलायन में 13 लाख से ज्यादा प्रवासी मजदूर अपने गाँव में वापस लौटे थे। जबकि मनरेगा के आंकड़ों में देखें तो बीते वर्ष की तुलना में वर्ष 2020 में 30 लाख अधिक रोजगार दिए गए।

योजना में नियोजित कुल श्रमिक परिवारों में से प्रत्येक परिवार को औसतन 60 दिन का रोजगार इस वित्तीय वर्ष में उपलब्ध कराया गया। यह भी बीते 4 वित्तीय वर्ष में सबसे अधिक है। वर्ष 2020 में कुल 75.15 लाख परिवार योजना में शामिल हुए।

वर्तमान में राज्य भर की 11346 पंचायतों में 4184011 मजदूर और 124007 मनरेगा कार्य चल रहे हैं।

राज्य के सभी जिलों में प्रपत्र-6 भराकर श्रमिकों के जॉब कार्ड जारी किये जा रहे हैं। सबसे अधिक भीलावाडा में 2.27 लाख और डूंगरपुर में 1.90 लाख श्रमिक काम कर रहे हैं। वर्तमान में दौसा जिले में 1258 कार्यों में 19948 श्रमिक कार्यरत हैं।

सारणी: वर्षवार रोजगार की स्थिति

वित्तीय वर्ष	*कुल मजदूरों को रोजगार*	*कुल मानव दिवस सृजित*
2019-20	90.52 लाख	32.8 करोड़
2018-19	75.37 लाख	29.4 करोड़
2017-18	65.31 लाख	23.9 करोड़

जयपुर जिले में जहां पिछले 11 साल में मनरेगा में दैनिक 80 हजार श्रमिक से ऊपर आंकड़ा नहीं पहुंच पाता था, लॉकडाउन में प्रवासी मजदूरों के वापस लौटने के बाद उनकी संख्या दोगुनी होकर 1.55 लाख हो गई। फिलहाल जिले में दो लाख जॉब कार्ड सक्रीय हैं। अभी जिले की 600 ग्राम पंचायतों में 2200 जगह मनरेगा के तहत विकास कार्य चल रहे है। मनरेगा के तहत 83 प्रतिशत काम व्यक्तिगत श्रेणी में किए जा रहे हैं।

कोरोना के साथ बीते वर्ष 2020 के मनरेगा आंकड़ों का प्रवासी मजदूरों की आवक के साथ विश्लेषण करें तो पता चलेगा की जिन जिलों में प्रवासी ज्यादा आये वहां मनरेगा मजदूरों की संख्या भी बढ़ी। जबकि इसके पहले के सालों में इन जिलों में श्रमिकों की संख्या में मामूली वृद्धि देखी गयी थी। उदयपुर, पली और जालोर जिलों के लिए यह विश्लेषण बिलकुल सटीक सिद्ध हुआ है। इससे माना जा सकता है की योजना ने रोजी रोटी के संकट में राजस्थान लौटे प्रवासियों को सर्वाधिक संबल दिया।

निष्कर्ष

हमारे देश की एक बड़ी आबादी आज भी ग्रामीण इलाकों में रहती हैं। लेकिन अनियमित कृषि और गरीबी के कारण आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोग शहर की ओर रोजगार की तलाश में पलायन करते हैं। मनरेगा योजना को प्रारंभ करके भारत सरकार ने पलायन को रोकने का प्रयास किया है। इस योजना के माध्यम से अब गांवों में भी कई जरूरतमंदों को रोजगार को प्राप्त हो रहा है। हाल ही में भारत सरकार ने देश के सभी राज्यों के मनरेगा मजदूरों के वेतन में बढ़ोतरी कर दी है, जिससे अब मजदूरों के हाथ में और ज्यादा पैसे आने लगे हैं।

आज मनरेगा दुनिया में सबसे बड़ी और सबसे महत्वाकांक्षी सामाजिक सुरक्षा और सार्वजनिक कार्य कार्यक्रम योजना के रूप में काम कर रही है।

कोरोना महामारी के दौरान लगे लॉकडाउन की वजह से जब लाखों प्रवासी श्रमिकों का शहरी रोजगार खत्म हो गया, तो ऐसे में मनरेगा लोगों के लिए संकटमोचन की भूमिका निभाई।

बिना मनरेगा के ग्रामीण भागों में छिपी बेरोजगारी और ज्यादा बढ़ जातीद्य हमें पता ही नहीं चलता कि कितने लोगों को काम मिला, कितने लोगों को नहींद्य साथ ही सामाजिक असमानता की स्थिति और भी ज्यादा त्रासदायक होती।

सन्दर्भ

- शर्मा, अभय. 'कैसे इस बुरे वक्त में हमारे गांव देश की अर्थव्यवस्था को डूबने से बचा रहे है' सत्याग्रह. अभिगमन तिथि 25 जुलाई 2020.
- राय, निधि (13 मार्च 2020). 'कोरोना वायरस से भारत की आर्थिक परेशानियाँ कितनी बढ़ीं?' बीबीसी हिन्दी. मूल से 4 जून 2020 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 25 जुलाई 2020.
- *Dutta, Puja (2014). Right to Work? Assessing India's Employment Guarantee Scheme in Bihar. World Bank. doi:10.1596/978-1-4648-0130-3. ISBN 978-1-4648-0130-3.*
- ASSOCHAM-Primus Partners Survey, (2020). Recommendations for a National Response to the Economic Impact of Covid-19.
- CARE ratings (2020). Survey on 'Impact of the Corona virus on the Indian Economy. 16th March 2020.
- Carlsson-Szlezak, Martin Reeves and Paul Swartz "What Corona virus means for the Global Economy", BCG Henderson Institute, https://hbr.org/2020/03/what-coronavirus-could-mean-for-the-global-economy
- Chaddha, N, A Das, S Gangopadhyay and N Mehta (2017), 'Reassessing the Impact of Demonetisation on Agriculture and Informal Sector', India Development Foundation (IDF), New Delhi, January.
- CII (2020). COVID-19 Impact on Industry and Economy, 24th March 2020.
- CRISIL (2020). The COVID-19 fall out quantifying first-cut impact of the pandemic. 19th March 2020.
- Dev, S, Mahendra (2020), "Addressing COVID-19 impacts on agriculture, food security, and livelihoods in India", IFPRI Blog, April 8.
- Dev and Sengupta (2020). Covid-19: Impact on the Indian Economy, Indira Gandhi Institute of Development Research, Mumbai. 1-42

वैश्विक संदर्भों में समाचारों का बदलता स्वरूप

डॉ० रेणु गुप्ता

8092, ए० टी० एस० एडवांटेज, अहिंसा खंड-I, इंदिरापुरम, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश - 201014

आदिकाल से ही मानव एक विचारवान प्राणी रहा है। इसलिए समाचार उसके लिए एक मूल आवश्यकता रही है। आज भी उसका स्थान भोजन, आवास और वस्त्र के बाद आता है। उत्सुकता के कारण मानव यह जानने की कोशिश हमेशा करता रहा है कि दूसरे लोग क्या कर रहे हैं या क्या सोच रहे हैं।

मूलत: समाचार क्या है?

1. समाचार कोई भी वह बात है जो सामान्य से परे है।
2. जो जनता पढ़ना या जानना चाहती है।

समाचार उत्पाद भी है और दृष्टिकोण भी। अन्य उत्पादों के समान ही समाचार भी संकलित, विकसित, सुसज्जित किया जाता है।

जनता को जगाने के लिए विश्व में अनेक क्रांतियां हुई। उन क्रांतियों ने समाज की चेतना को झकझोर दिया। लेकिन समाचार - पत्र के प्रकाशन के साथ ही इन सशस्त्र क्रांतियों का स्वरूप विचारों के साथ सम्बद्ध हो गया।

औद्योगिक क्रांति के आने के बाद समाचार - पत्रों द्वारा संचार शुरू हो गया था। आरंभ में समाचार-पत्रों की संख्या अधिक नहीं थी। बड़े-बड़े शहरों में एक या दो समाचार - पत्र होते थे, जो साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक होते थे।

प्रिंट मीडिया का सर्वाधिक महत्वपूर्ण और सशक्त माध्यम होने के कारण कम समय में ही समाचार-पत्रों में अपनी जगह बना ली थी। उस समय प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्रों में कलकत्ता गजट, बोम्बे हरोल्ड, मद्रास - कुरियन, बोम्बे - कुरियन आदि प्रमुख थे।

इन सभी समाचार - पत्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इनमें प्रतिस्पर्धा की भावना नहीं थी। ये सभी एक - दूसरे के साथ सहयोगिता की भावना अपनाते हुए आपने समाचार - पत्र को उत्कृष्ट बनाने में लगे रहते थे।

इस समय समाचार ख़ पत्रों में मौसम, विज्ञान, संसद, अपराध, खेल, रोजगार, उधोग, शुभ अवसरों के समाचार, मृत्यु के समाचार आदि समाचार के विषय होते थे।

समाचार - पत्र की एक बड़ी सीमा यह है कि उसमें प्रकाशित समाचारों को केवल वही लोग जान सकते थे जो पढ़े - लिखे हों। दूसरी बड़ी सीमा यह कि वो दूर-दराज के इलाकों या यातायात की सुगम व्यवस्था से रहित इलाकों में रहने वाले क्षेत्रों तक नहीं पहुंच पाते थे।

स्वतंत्रता से दो दशक पूर्व रेडियो का आगमन हुआ। रेडियो के आने से इन सभी समस्याओं का समाधान हो गया। फिर रेडियो पर समाचारों का प्रसारण भी दिन में कई बार होता था। जिससे एकदम ताजा समाचार प्राप्त होने की सुविधा भी मिली। हां, समाचार - पत्रों के समान विस्तार इससे प्राप्त नहीं होता था।

रेडियो के साथ ही इलैक्ट्रॉनिक मीडिया की शुरुआत भी हुई। वैसे तो रेडियो आजादी के लगभग दो दशक पूर्व आ ही चुका था किंतु समाचार माध्यम के रूप में पूर्णत: द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ही स्थापित हो पाया।

रेडियो में प्रसारित होने वाले समाचार मूलत: दो प्रकार के होते हैं --

1. समाचार बुलेटिन जिसमें अलग - अलग विषयों में बांटकर समाचार सुनाए जाते हैं जैसे - खेल समाचार, मौसम समाचार आदि।
2. समाचार - दर्शन जिसमें किसी भी घटना या खेल का आंखोंदेखा हाल घटनास्थल से रोचक रूप में सुनाया जाता है।

स्वतंत्र भारत में लोकतंत्र गणराज्य की स्थापना के बाद प्रगति और निर्माण, लोककल्याण और समाजवाद के एक नए युग का सूत्रपात हुआ। युग के समाचार की परिभाषा ही बदल गई। अब तक राजनीतिक नेताओं के वक्तव्य या उनकी गतिविधियां ही समाचारों का मुख्य विषय हुआ करती थीं। इनके स्थान पर समाचारों की तलाश अब और राष्ट्र- निर्माण की उपलब्धियों और लोक - सेवा के विभिन्न क्षेत्रों में की जाने लगी। जैसे महाविद्यालय कहां खुला, कहां सड़क का निर्माण हुआ, खाधान्नों तथा अन्य जीवनोपयोगी सामग्री के भाव घटे या बढ़े, भ्रष्टाचार कहां हुआ आदि। अब बड़े - बड़े महानगर मुंबई, कोलकत्ता दिल्ली ही के समाचार केंद्र में नहीं रहे, छोटे-छोटे गांवों, नगरों में भी चेतना का संचार हो गया। अब बी० बी० सी० आदि विदेशी समाचार भी रेडियो से प्रसारित होने लगे थे।

1959 में यूनेस्को की सहायता से भारत में टेलीविजन की शुरुआत हुई। 2 अक्टूबर, 1972 को मुंबई दूरदर्शन केंद्र की स्थापना की गई। टेलीविजन के आने के साथ ही समाचार अब पढ़ने और सुनने के अतिरिक्त देखने का विषय बन गए। जिसने समाचारों को और भी रोचक बना दिया। 70 का दशक टी० वी० के लिहाज से महत्वपूर्ण है।

प्रारंभ में टी० वी० पर समाचार दूरदर्शन चौनल के माध्यम से ही प्रसारित होते थे। जिन्हें दिन में कई बार टेलीकास्ट किया जाता था। धीरे-धीरे टी० वी० का प्रचलन बढ़ने लगा। 1993 - 94 तक आते-आते दूरदर्शन समाचार ही भारतीय दर्शक की समाचारों की भूख को शांत करते थे।

इधर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का निरंतर विकास हो रहा था। परिणामस्वरुप अब केवल डिश जैसे उपकरणों के माध्यम से इलैक्ट्रॉनिक मीडिया को एक नया आयाम मिला। इनके आने के बाद टी० वी० में कार्यक्रमों की संख्या दिनोंदिन बढ़ने लगी। इसी के साथ समाचारों का भी विस्तार हुआ। अब समाचारों का पूरा चौनल ही प्रारंभ हो गया।

सन् 2000 में ऐसा चौनल आया जो पूर्णत: समाचार चौनल था। जिसमें केवल समाचार ही समाचार प्रसारित होते थे। इस चौनल के आने के बाद तो समाचारों की पूरी शैली ही बदल गई। घटनास्थल से रिपोर्टिंग की जिस आक्रामक शैली का आविर्भाव हुआ उसने भारतीय दर्शक को चकित कर दिया। इसके बाद तो राष्ट्रीय समाचार चौनल टी० वी० के आकाश पर छाते चले गए। चौनल की संख्या के साथ-साथ समाचार चौनलों की समय सीमा भी बढ़ती चली गई। अब 24 × 7 समाचार प्रसारित होने लगे। ऐसे में अधिक से अधिक समाचारों की मांग भी बढ़ती गई। जिसने तूफान मचा दिया। समाचारों की होड़ मचने लगी, प्रतिस्पर्धा होने लगी। एक - दूसरे से आगे निकलने की होड़ में नए-नए हथकंडे अपनाए जाने लगे। समाचार अब व्यवसाय बनने लगा। उसके असली मायने जैसे दूर होने लगे। क्राइम शो, खुफिया कैमरे, स्टार स्कैंडल आदि से सम्बद्ध विषय मुख्य समाचार बनते चले गए। करवा - चौथ हो, गणेश - विसर्जन हो या मुंबई की बारिश सब मुख्य घटनाएं हो गई। अपराध की खबर को ग्लैमर और चटपटा बनाकर मनोरंजक शैली में प्रस्तुत किया जाने लगा।

अब सत्तापक्ष और अंतरराष्ट्रीय जगत से जुड़ी खबरों में कमी आई। मीडिया तीन नई दिशाओं की ओर आगे बढ़ा - स्पोर्ट्स, हेल्थ और टैक्नोलॉजी। पिछले दिनों चौनल राजनीतिक अपराध की खबरों की ओर मुड़े। चौनलों पर बड़ी तेजी से क्राइम शो शुरू हुए। हर मुद्दे पर चर्चा - परिचर्चा चली। परंतु धीरे-धीरे उनका रूप वीमत्स होता चला गया।

बीसवीं सदी के अंतिम दौर में, विश्व में सूचनाओं को किसी एक मार्ग की बजाय अनेक मार्गों से भेजने की सोच ने इंटरनेट को जन्म दिया। इंटरनेट ने संचार के क्षेत्र में अद्‌भुत क्रांति ला दी। इसने ब्राह्मण और क्षेत्रियता की सीमाओं को समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सूचना और प्रौद्योगिकी के युग में सूचनाओं का महत्व इतना अधिक बढ़ गया कि सूचनाओं के बिना अब जीवन की परिकल्पना भी नहीं कर सकते। सूचना की प्रासंगिकता और महत्व को समझकर ही सूचना को अधिकार के साथ जोड़कर लागू करना भी इसी तथ्य की ओर इशारा करता है। अब हमें सिर्फ सूचना ही नहीं चाहिए, तीव्रगति से भी चाहिए।

इस प्रकार ग्लोबलाइजेशन ने इंटरनेट के माध्यम से पूरे विश्व को एक बाजार के रूप में वैश्विक रूप प्रदान कर वैश्विक मुक्त अर्थव्यवस्था के सपनों को साकार करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

संचार के विभिन्न उपकरणों ने पूरी दुनिया का नक्शा ही बदल दिया। आप चाहे कहीं भी हो, किसी क्षेत्र, गांव, जिला, राज्य और किसी अन्य देश में ही क्यों न हो, हर वक्त समाचारों से जुड़े रहते हैं।

आज की तीव्र जीवन - शैली, समय की कमी, जल्दबाजी, पैसे की बचत आदि में ये सब बदलाव आज के युग की मांग बन गए हैं। यह परिवर्तन समाचारों के रूप, आकर में ही नहीं, भाषा में भी आया है। समाचारों की शिष्ट भाषा अब संक्षिप्त और साधारण रूप में आने लगी है।

समय के बदलाव के साथ समाचारों का रूप भी बदल चुका है। प्रत्येक जानकारी आज समाचार है। उसके कोई निश्चित बंधे क्षेत्र नहीं हैं। जो भी दर्शकों - पाठकों को खींच सके, वो समाचार है।

परिणामस्वरूप समाचारों पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। आज का मीडिया बाजार और पूंजी का पिच्छलग्गू बनकर रह गया है। इस कार्पोरेट मीडिया में करोड़ों का निवेश किया जाता है। इस भारी निवेश की वसूली करोड़ों के विज्ञापन, खबरों की खरीद-फरोख्त कर की जाती है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह खबरों के प्रबंधन का दौर है।

यही नहीं सबसे तेज की जल्दबाजी में पत्रकारिता बुनियादी उसूलों जैसे खबर से पहले कम-से-कम दो स्रोतों से उसकी सत्यता की पुष्टि करना और कई बार तो खबरें बिना पुष्टि के ही चलती हैं। इस तरह खबर और अफवाह के बीच का फर्क समाप्त हो जाता है।

निष्कर्षत: समाचारों के बदलाव के संपूर्ण रूप पर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि आज के बदलते दौर में टैक्नोलॉजी से लबालब भरे मीडिया ने हमें बहुत कुछ दिया। कभी महीनों में पहुंचने वाली खबरों के स्थान पर आज घर बैठे - बैठे ही हम सारे विश्व की खबरें पा लेते हैं। सारी दुनिया जैसे मुट्ठी में सिमट आई हो। यही नहीं समाचार दर्शक - पाठक के पास आज इतने विकल्प हैं कि वह अपने पसंदीदा समाचारों का चुनाव भी कर सकता है।

परंतु समाचारों की इस अंधी दौड़ में मीडिया आज भटक गया है। मनोरंजन और समाचार के बीच की दूरी जैसे समाप्त हो गई है। समाचारों में से विचारों को खत्म कर दिया गया है। सत्यता विश्वसनीय नहीं रही।

सच यह है कि न्यूज चौनल वही परोसते हैं जो दर्शक देखना चाहता है। शायद यही इसकी विवशता भी है। फिर भी सवाल उठता है कि क्या मीडिया की कोई जिम्मेदारी नहीं ?

समय के बदलते मूल्यों के साथ चलना मीडिया की नियति है। यह ठीक है, फिर भी उसे अपने कर्तव्य का पूर्ण निर्वाह करते हुए समाचार की विश्वसनीयता को बनाए रखने का निरंतर प्रयास करते रहना होगा।

छत्तीसगढ़ राज्य की महिलाओं को सशक्त बनाने में स्व-सहायता समूह की भूमिका - एक अध्ययन (बिलासपुर संभाग के सन्दर्भ में)

पूजा यादव

शोधार्थी, (वाणिज्य विभाग), डॉ. सी.वी. रामन विश्वविद्यालय, करगी रोड, कोटा, बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

डॉ० प्रभाकर पाण्डेय

शोध निदेशक (वाणिज्य विभाग), डॉ. सी.वी. रामन विश्वविद्यालय, करगी रोड, कोटा, बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

सारांश

यद्यपि समाज और राष्ट्र के विकास में पुरुष और महिलाओं का समान सामूहिक योगदान होता है, लेकिन पितृसत्तात्मक समाजों में लैंगिक विसंगतियां अभी भी समाज के लिए एक बड़ी चिंता और चुनौती हैं। पुरुष मानसिकता महिलाओं के प्रति भेदभाव पूर्ण है। महिलाएं पुरुषों की तुलना में अधिक गरीब हैं, जिसके कारण उन्हें बहुत सी सामाजिक-आर्थिक और सामाजिक बाधाओं का शिकार होना पड़ता है। देश के ग्रामीण और पिछड़े इलाकों में स्थिति और भी बुरी है, जिसे दृढ़ता से सुधारने की आवश्यकता है।

यदि साधारण तरीके से कहें तो महिलाओं के सशक्तिकरण का अर्थ है कि 'महिलाओं को अपनी जिंदगी का फैसला करने की पूरी आजादी देना या उनमें ऐसी क्षमताएं पैदा करना जिससे की वे समाज में सम्मानित स्थान पा सकें'।

कुछ समय पूर्व विश्व आर्थिक मंच की तरफ से ग्लोबल जेंडर इंडेक्स नामक एक आयोजन किया गया था जिसमे सभी राष्ट्रों की लैंगिग समानता को दर्शाया गया। और वहां भारत का स्थान 87वां था। जिससे ये साबित हो जाता है कि अभी भारतीय समाज महिला सशक्तिकरण के मामले में कितना पीछे है।

स्व-सहायता समूह (एसएचजी) महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए भारत जैसे विकासशील राष्ट्रों के लिए एक महत्वपूर्ण साधन हैं।

नये आर्थिक पर्यावरण के उद्‌भव, नई राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना, आधुनिक शिक्षा पद्धति और चिन्तन शैली के प्रसार आदि के फलस्वरूप भारत में महिला सशक्तिकरण का आरंभ हुआ।

महिलाओं के नवसाक्षर होने के बाद उनके सशक्तिकरण की दिशा में महिला स्व-सहायता समूहों के गठन को बढ़ावा दिया गया। साक्षरता अभियान के माध्यम से अब तक छत्तीसगढ़ राज्य में लगभग 2 लाख महिला व सहायता समूह विभिन्न जिलों में गठित किए जा चुके हैं।

प्रस्तुत शोधलेख में छत्तीसगढ़ के बिलासपुर संभाग में स्व-सहायता समूहों के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक सशक्तिकरण पर एक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। ग्रामीण और महिला विकास के अध्ययन और नीति निर्माण के लिए ऐसे शोध लेख बेहद उपयोगी होते हैं।

मूल शब्दः महिला, सशक्तिकरण, स्व-सहायता समूह

परिचय

भारत की समेत दुनिया भर में कुल आबादी की आधी संख्या महिलाओं की है। अति प्राचीन काल में साधारणतया नारियों का क्षेत्र सिर्फ घर की चार दीवारी तक ही सीमित था, परन्तु आज के इस आधुनिक युग में नारी जहां पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर सहयोग प्रदान कर रही है और वास्तव में देखा जाए तो कई क्षेत्रों में नारी पुरुषों से भी आगे है।

इसके बावजूद भी इस आधुनिक युग में हमारा समाज एक पुरुष प्रदान समाज है आज के युग में नारी चाहे कितने ही बड़े मुकाम पर पहुंच जाय वह नारी ही है। हमारा समाज कितना भी आधुनिक क्यों न हो जाए लोगों की मानसिकता आज भी वही रूढिग्वादियों में जकड़ी हुई है।

विश्व बैंक के अनुसार 1990 और 2019 के बीच भारत की श्रम भागीदारी में पुरूषों का प्रतिशत जहाँ 84% से 76% पर आ गया, वहीं महिलाओं का 30% से 21% पर आ गया था। 2004-05 में, यह बढ़कर 32% पर पहुँचा था। दक्षिण एशिया में भारतीय महिलाओं की श्रम-भागीदारी पाकिस्तान और अफगानिस्तान से भी कम है। भारत में अधिकांश श्रमिक महिलाएं अनौपचारिक क्षेत्र में काम करती हैं।

इन सब कारणों में सबसे ऊपर देश की सामाजिक और सांस्कृतिक बनावट है। महिलाओं का स्थान घर माना जाता है। उनके कामकाजी होने को घर की कमजोर आर्थिक स्थिति और उनके बिगड़े चरित्र से जोड़कर देखा जाता है।

स्व-सहायता समूह

स्व-सहायता समूह (स्वयं सहायता समूह) उन लोगों के अनौपचारिक संगठन हैं जो अपने रहन-सहन की स्थिति में सुधार करने के तरीके खोजने के लिए एक साथ इकट्ठे होते हैं। ये समूह आमतौर पर स्वशासित और सहकर्मी द्वारा नियंत्रित होते हैं और गरीबों, खासकर महिलाओं के बीच सामाजिक पूंजी के निर्माण में मदद करते हैं।

स्व-सहायता समूह के सदस्यों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि प्राय: एक जैसी होती है। सभी सदस्य एक बैंक में सामूहिक रूप से छोटी बचत करते हैं और लघु उद्योग या स्वरोजगार के लिए ऋण सुविधा प्राप्त करते हैं।

स्व-सहायता समूह, लोगों को गरीबी रेखा से ऊपर उठाने और स्वरोजगार को बढ़ावा देकर उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार करने का एक महत्वपूर्ण साधन है।

राष्ट्रीय-कृषि और ग्रामीण-विकास-बैंक ने स्व-सहायता समूहों को श्ग्रामीण गरीबों का एक ऐसे समरूप समूहश के रूप में परिभाषित किया है, जो अपनी आय से आसानी से बचत कर सकते हैं और पारस्परिक रूप से योगदान और आपात ऋण की जरूरतों के लिए सहमत हैं।

एसएचजी सूक्ष्म स्तर पर स्व-सहायता के लिए एक लघु स्वैच्छिक एजेंसी है, जो कमजोर वर्ग विशेषकर महिलाओं को उनकी सामाजिक रक्षा के लिए केंद्रित किया गया है।

स्व-सहायता समूहों की उत्पत्ति और विकास

एसएचजी की उत्पत्ति वर्ष 1975 में बांग्लादेश में चटगांव विश्वविद्यालय के मोहम्मद यूनुस द्वारा की गई थी। यह विशेष रूप से महिला सशक्तिकरण के द्वारा गरीबी उन्मूलन और ग्रामीण विकास से संबंधित कार्यक्रम है।

भारत में इस दिशा में पहली बार 1954 में गुजरात में पहल की गई जब अहमदाबाद के टेक्सटाइल लेबर एसोसिएशन (टीएलए) ने मिल श्रमिकों के घरों की महिलाओं को सिलाई, बुनाई कढ़ाई, टाइपसेटिंग और स्टेनोग्राफी आदि जैसे प्राथमिक कौशलों में प्रशिक्षित करने के लिए अपनी महिला विंग का गठन किया।

1972 में इसे एक अधिक व्यवस्थित संरचना दी गई जब स्व-रोजगार महिला संघ (सेवा) का गठन इला भट्ट के नेतृत्व में एक श्रमिक संघ के रूप में किया गया। उन्होंने फेरीवालों, विक्रेताओं, बुनकरों, कुम्हार, पापड़/अगरबत्ती निर्माताओं, शारीरिक श्रमिकों, सेवा प्रदाताओं और पशुपालकों, नमक मजदूरों, गोंद कलेक्टरों, रसोइयों और विक्रेताओं जैसे छोटे उत्पादकों जैसे घर आधारित ऑपरेटरों जैसे महिला श्रमिकों का आयोजन किया:

1980 के दशक में, कर्नाटक स्थित गैर-सरकारी संगठन 'मर्यादा (MYRADA)' ने स्थानीय रूप से गठित कई समूहों को बढ़ावा दिया, ताकि सदस्य सामूहिक रूप से ऋण ले सकें और इसका उपयोग उन गतिविधियों के लिए कर सकें जो उन्हें आर्थिक रूप से लाभप्रद रोजगार प्रदान कर सकते हैं।

आज देश के कुल बैंक से जुड़े स्वयं सहायता समूहों का लगभग 44% चार दक्षिणी राज्यों आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक और केरल में हैं।

छत्तीसगढ़ राज्य की महिलाएं और स्व-सहायता समूह

छत्तीसगढ़ में महिला सम्मान को उनके अधिकारों और स्वावलंबन से जोड़ने की रणनीति अपनाई गई है, जिसके लिए प्रदेश में कई महत्वपूर्ण योजनाएं चलाई जा रही है। यही वजह है कि लिंगानुपात में भी छत्तीसगढ़ देश के शीर्ष राज्यों में शामिल है। छत्तीसगढ़ में महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक निर्णयों एवं नेतृत्व के समान अवसर व सहभागिता प्रदान करने का प्रयास किया जा रहा है। प्रदेश सरकार सखी-वन स्टॉप सेंटर, बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ, नोनी सुरक्षा योजना, नवा बिहान योजना, सक्षम योजना, स्वावलंबन संबंधी योजनाएँ चला रही है।

आंगनबाड़ी केन्द्रों में बच्चों के लिए नाश्ता और गर्म पके हुए भोजन तैयार करने का काम भी महिला समूह की महिलाएं कर रही हैं।

छत्तीसगढ़ महिला कोष की ऋण योजना और सक्षम योजना भी राज्य की महिलाओं को सक्षम बनाने सफल रही है। महिला कोष के माध्यम से स्व-सहायता समूहों और जरूरतमंद महिलाओं को ऋण उपलब्ध करवाकर आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया जा रहा है. महिलाओं के कौशल विकास और आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए स्वालंबन और सक्षम योजनाएं चलाई जा रही हैं।

बिलासपुर में महिला स्व-सहायता समूह

बिलासपुर भारत के छत्तीसगढ़ राज्य का एक जिला है। इसका मुख्यालय बिलासपुर है जो राज्य की राजधानी नया रायपुर से 92 किलोमीटर उत्तर में स्थित है। बिलासपुर, राज्य का दूसरा सबसे प्रमुख एवं बड़ा शहर है।

बिलासपुर सुगंधित दूबराज चावल की किस्म के लिए प्रसिद्ध है। इसके अलावा यहाँ हथकरघा उद्योग से निर्मित कोसे की साड़ियाँ भी देशभर में विख्यात है।

2011 की जनसंख्या के अनुसार बिलासपुर की जनसंख्या 2,663,629 है जिसमे पुरुष 1,351,574 तथा महिलाएं 1,312,055 हैं। औसत साक्षरता 70.78% है। पुरुषो में 81.54% तथा महिलाओं में 59.71% साक्षर हैं।

बिलासपुर जिले के 4 ब्लाकों में 5,387 स्व-सहायता समूह काम कर रहे हैं। स्वयं सहायता समूहों की स्थापना के कारण अंतर्जातीय बाधाएं टूट रही हैं, क्योंकि महिलाएं अब जाति समूहों में बैठकों के लिए एक साथ बैठती हैं।

स्वयं सहायता समूहों ने महिलाओं को घरेलू स्तर से लेकर सामुदायिक स्तर तक मुद्दों को उठाने का अधिकार दिया है। समूह ने स्कूल में शिक्षकों की उपलब्धता, बुनियादी ढांचे और शिक्षा की गुणवत्ता जैसे मुद्दों को देखता है, जैसे कि समूह ने स्कूल निगरानी समिति (एसएमसी) का गठन किया है, जिस पर चर्चा और बहस करने के लिए एसएचजी एक महत्वपूर्ण स्थान बन गए हैं । एसएचजी सदस्यों ने शराब के दुष्प्रभावों के खिलाफ रैलियों का भी आयोजन किया, जहां उन्होंने एसएचजी क्लस्टर के तहत विभिन्न समूहों की महिलाओं को लामबंद किया है। विरोध और आंदोलन के माध्यम से एसएचजी सदस्य भ्रष्ट ठेकेदारों को भी बदलने में सफल हो रहे हैं।

इस इलाके में स्थानीय गैर सरकारी संगठनों के हस्तक्षेप के आगमन के साथ कई स्वयं सहायता समूहों का गठन किया गया है। स्वयं सहायता समूहों के गठन के माध्यम से इस समुदाय को आजीविका के विस्तारित अवसर के संदर्भ में लाभान्वित किया गया क्योंकि आजीविका संवर्धन के विभिन्न हस्तक्षेप/गतिविधियां हुई लेकिन यह कार्य केवल स्वयं सहायता समूहों के सदस्यों के साथ किया गया। महिलाओं को बागवानी, कृषि, मुर्गी पालन, रसोई बागवानी आदि पर प्रशिक्षित किया गया, इसके अलावा उन्हें खेती के लिए गैर कीटनाशक प्रबंधन का उपयोग करते हुए प्रशिक्षण पर हाथ मिला। इसलिए समग्र रूप से स्वयं सहायता समूहों में शामिल होने से आजीविका के अवसरों के नए अवसर खुल गए, जिनका उद्देश्य समुदाय के सदस्यों को खेती में बहुक्षेत्रीय गतिविधियों के माध्यम से दीर्घकाल में स्थिरता प्रदान करना था।

निष्कर्ष

सामाजिक सशक्तिकरण में, स्वास्थ्य देखभाल, परिवार नियोजन और स्वच्छता निर्णय, बाल शिक्षा में भागीदारी सबसे महत्वपूर्ण कारक है, जिसके बाद एसएच जी और सार्वजनिक, सामाजिक गतिशीलता और परिवार के घरेलू कार्यों में भागीदारी के भीतर बोलना है। जबकि, भोजन, कपड़े, और खर्च की व्यक्तिगत पसंद के लिए स्वतंत्रता, कम से कम सुधार हुआ है।

आर्थिक सशक्तिकरण से पता चलता है कि ऋण/ऋण सुविधा पहुंच सबसे महत्वपूर्ण कारक है जिसने महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण में योगदान दिया, जिसके बाद ऋण चुकौती क्षमता में सुधार, मासिक आय/बचत, जबकि पारिवारिक आर्थिक निर्णयों और संपत्ति के स्वामित्व में भागीदारी में सुधार की जरूरत है।

राजनीतिक सशक्तिकरण, निर्णय लेने और नेतृत्व ने संकेत दिया कि आत्मविश्वास के स्तर में सुधार में सबसे महत्वपूर्ण सुधार हुआ, इसके बाद आत्मसम्मान और आत्मसम्मान और परिवार में नेतृत्व की भूमिका है। इसका कारण यह है कि एसएचजी में शामिल होने के बाद महिलाओं को उनकी भूमिका, जिम्मेदारी और अधिकारों के बारे में अधिक जानकारी है।

नरवा, गरवा, घुरवा, बाड़ी योजना और गोधन न्याय योजना के तहत महिलाएं गौठानों में गोबर के दिए, गमले, जैविक खाद, कीटनाशक से लेकर आयुर्वेदिक औषधी भी तैयार कर रही हैं. महिला समूह गोधन न्याय योजना से जुड़कर गोबर से वर्मी खाद निर्माण, उद्यानिकी विभाग के सहयोग से गौठानों से जुड़ी स्व-सहायता समूहों द्वारा मधुमक्खी पालन (मैनपाट), गौठान में साग-सब्जी की खेती के साथ कड़कनाथ मुर्गापालन (कांकेर-चारामा-आंवरी गांव) भी कर रही हैं. इसके साथ ही नरवा-गरवा-घुरवा-बारी योजना के तहत सब्जी उत्पादन, मशरूम उत्पादन और विक्रय भी कर रही हैं

इसके अलावा, समग्र सशक्तिकरण के रूप में, महिलाओं को ज्यादातर आर्थिक रूप से सशक्त किया जाता है। परिणाम दर्शाते हैं कि एसएचजी से जुड़ने के बाद महिलाओं में महत्वपूर्ण सशक्तिकरण होता है।

सन्दर्भ

1. श्रीवास्तव रागिनि, आधुनिक समाज एवं महिलाएं इंदौर, 2011, पृ. 21,
2. जसटा हरिराम, आधुनिक भारत में शैक्षिक चिन्तन, दिल्ली 1992, पृ. 21
3. मेहता, बी.के, और दुबे, राकेश कुमार, शोध संप्रेषण बिलासपुर, 2004, पृ. 18,
4. सुरजन, ललित, संदर्भ छत्तीसगढ़, रायपुर, 2004, पृ. 114,

प्राचीन भारतीय आभूषणों का वैज्ञानिक महत्व

प्रो० प्रभात कुमार

प्रोफेसर, प्रा.भा.इ.सं. एवं पुरातत्त्व विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

सीमा देवी

शोधछात्रा, प्रा.भा.इ.सं. एवं पुरातत्त्व विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

सारांश

मानव ने अपने इतिहास के आरम्भ से ही कला को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। कला वास्तव में मानव के हृदय की संवेदनाओं का प्रदर्शित करने वाला माध्यम रहा है। कला का जितना सम्बन्ध सौन्दर्य से है उतना ही विज्ञान से भी है। इस उक्ति की अभिव्यक्ति हमें प्राचीन काल से चली आ रही भारतीय आभूषण परम्परा में भी देखने को मिलती है। आभूषणों का निर्माण निष्चय ही मानव ने सर्वप्रथम सौन्दर्यवृद्धि के लिए किया होगा। किन्तु कालान्तर में इन आभूषणों के द्वारा शरीर को मिलने वाले लाभों ने इनकी प्रासंगिकता को और अधिक बढ़ा दिया। विभिन्न साहित्यिक ग्रन्थों एवं मूर्तिकला के द्वारा हमें प्राचीन भारतीय आभूषणों का ज्ञान होता है। गुप्त काल तक आते-आते मूर्तिकला के मानक निर्धारित किये जाने लगे थे। जिसमें सौन्दर्यवृद्धि हेतु प्रयोग में लाये गये आभूषणों के भी विभिन्न रूप मिलते हैं। भारतीय वेशभूषा में आभूषणों की अधिक मात्रा में उपस्थिति अनायास ही नहीं है। प्रत्येक आभूषण के पीछे एक निष्चित उद्देश्य है। शरीर के विभिन्न अंगों में धारण किये जाने वाले आभूषणों का निश्चित रूप से शरीर को स्वास्थ्य लाभ भी मिलता है। प्रस्तुत शोध पत्र में प्राचीन भारतीय परम्परा में प्रचलित आभूषणों के सौन्दर्यात्मक महत्व के साथ-साथ उनके वैज्ञानिक महत्व पर भी प्रकाश डाला जायेगा।

मूलशब्द - प्राचीन भारत, आभूषण परम्परा, गुप्त कालीन, सौन्दर्य, वैज्ञानिक महत्व।

प्राचीन पुरातात्विक अवशेषों में आभूषणों के रूप में ताबीजों एवं गंडो का प्रयोग मानव समाधियों के साथ मिलता है। ताबीज एवं गंडे आज भी भारतीय समाज के प्रत्येक स्तर में विद्यमान हैं। निश्चित रूप से मानव ने इनका निर्माण अपने सुरक्षा कवच के रूप में किया था। शारीरिक सुरक्षा मानव की प्राथमिकता थी। यह कहा जा सकता है कि इसके पीछे किसी प्रकार का वैज्ञानिक दृष्टिकोण तो नहीं था परन्तु शरीर की सुरक्षा ने मनुष्य को आभूषणों के निर्माण का मार्ग प्रषस्त किया। कालान्तर में ये ताबीज विभिन्न प्रकार के आभूषणों का रूप धारण करने लगे। इनसे सुरक्षा के साथ-साथ सौन्दर्य एवं श्रृंगार का भाव भी जुड़ने लगा था। शरीर की सौन्दर्यवृद्धि का सबसे बड़ा साधन विभिन्न प्रकार की धातुओं, रत्नों एवं कीमती पत्थरों से बने आभूशण बने। ऐतिहासिक युग में विभिन्न प्रकार की धातुओं एवं रत्नों को ज्योतिष के साथ सम्बद्ध किया गया जिससे आभूषणों की संख्या एवं प्रकारों में और अधिक वृद्धि देखने को मिलती है। वर्तमान वैज्ञानिक शोधों ने भारतीय आभूषणों के स्वास्थ्य सम्बन्धी लाभों को सिद्ध करने का प्रयास किया है। इन पर चर्चा करने से पूर्व शरीर के विभिन्न प्राचीन भारतीय आभूषणों के सम्बन्ध में जानकारी देना आवश्यक है।

आभूषणों के सम्बन्ध में प्राचीनतम् साहित्यिक विवरण ऋग्वेद से प्राप्त होते हैं। जिसमें निश्क,[1] गले की माला[2], पैरों के आभूषणों[3] का वर्णन प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त मुकुट और कवचादि का विवरण भी इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है। आभूषणों का निर्माण करने करने वाले व्यक्तियों को हिरण्यकार अथवा स्वर्णकार की संज्ञा दी जाती थी। अथर्ववेद में सोने एवं चांदी से बनने वाले विभिन्न प्रकार के आभूषणों का उल्लेख मिलता है।[4] पौराणिक काल में स्त्रियों द्वारा कंकण, भुजबन्द, कैयूर, नूपुर आदि आभूषणों को भी धारण किया जाने लगा था। स्त्रियां हाथों में विभिन्न प्रकार के कड़ों का प्रयोग करती थीं। रामायण एवं महाभारत में भी विभिन्न प्रकार के आभूषणों का वर्णन किया गया है। जिनमें कण्ठसूत्र, कण्ठहार, कुण्डल, मुक्ताहार, मेखला, केयूर, अंगुलीयक, नूपुर आदि सम्मिलित हैं। पाणिनी द्वारा रचित अष्टाध्यायी में ग्रैवेयक, कर्णिका, ललाटिका, अंगुलीयक आदि का उल्लेख मिलता है।[5] मौर्य काल कला के दृष्टिकोण से एक समृद्धशाली समय था। इस काल की अनेक मृण्मूर्तियां एवं प्रस्तर प्रतिमाएं मिलती हैं। जिनके आधार पर इस काल के आभूषणों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। मौर्य कालीन मूर्तिशिल्प की परम्परा शुंग-सातवाहन काल में भी अनवरत जारी रही। इसके प्रमाण हमें भरहुत, सांची, अमरावती एवं बोधगया के विभिन्न स्मारकों पर देखने को मिलते हैं। इस काल की मूर्तिकला में समाज में प्रचलित विभिन्न प्रकार के डिजाइनों में बने आभूषण प्रदर्शित किये गये हैं। कुशाण काल में भी मूर्तिकला एवं आभूषणों का पर्याप्त विकास हुआ था। इस काल के ग्रन्थ भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में स्त्री एवं पुरुषों के विभिन्न आभूषणों का वर्णन दिया गया है। गुप्त कालीन समाज में भी स्त्री-पुरुष समान रूप से आभूषण-प्रेमी थे। महाकवि कालिदास के ग्रन्थों में इस काल के विभिन्न आभूषणों का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त आभूषणों का ज्ञान इस काल की मूर्तिकला एवं मुद्राओं से भी मिलता है। गुप्तकालीन राजाओं की मुद्राओं पर उन्हें विभिन्न प्रकार के वस्त्राभूषणों के साथ सुसज्जित दिखाया गया है। इस समय के शिरोभूषणों में जटामुकुट, मौलिमुकुट, शिरस्त्रक, उष्णीश, केशबन्ध, कुन्तल,

धम्मिल, चूड़, ललाटिका आदि सम्मिलित थे। कर्णाभूषणों के रूप में कर्णावली, कर्णापूर, कर्णिका, पत्र कुण्डल, मणिकुण्डल, रत्न-कुण्डल, सर्पकुण्डल आदि का प्रचलन था। कण्ठाभूषणों के रूप में हार, निष्क, ग्रैवेयक, मुक्तावली, एकावली आदि विशेष लोकप्रिय थे। हस्ताभूषणों में कंकण, वलय, केयूर, अंगद, चूड़ियों का विशेष स्थान था। वहीं कटि आभूषणों में कटिबन्ध, मेखला, कांचीदाम आदि का महत्व था। पादाभूषणों में मंजरी, मुंदरी, पादवलय, पादखटक आदि का विशेष प्रचलन था।[6] यद्यपि इनमें से अधिकांश आभूषणों का प्रयोग गुप्त कालीन मूर्तियों में देखने को मिलता है तथापि प्रतीत होता है कि कला में प्रदर्शित विभिन्न आभूषण वास्तव में जन-सामान्य के मध्य प्रचलन में रहे होंगे। विशेषकर स्त्रियों द्वारा धारण किये जाने वाले आभूषण अवश्य ही व्यवहार में लाये गये होंगे क्योंकि इस काल में भी स्त्रियों द्वारा आभूषण धारण करना सौभाग्य एवं समृद्धि का प्रतीक समझा जाता था। प्राचीन भारतीय कला एवं साहित्यिक विवरणों में नासिकाभूषणों का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। प्रतीत होता है कि इस काल में नासाभूषणों का प्रचलन नहीं था। मध्यकाल की मूर्तिकला एवं साहित्यिक विवरणों में हमें सर्वप्रथम नासिकाभूषणों के रूप में नथ एवं नासिकाफूल का विवरण देखने को मिलता है। परन्तु वर्तमान समय में यह आभूषण विभिन्न आकार-प्रकारों के साथ सम्पूर्ण भारत में देखने को मिलता है।

आभूषणों को धारण करने के पीछे परम्परागत एवं सौन्दर्यात्मक कारणों के साथ-साथ अनेक वैज्ञानिक कारण भी रहे हैं। साधारणत: दो धातुओं स्वर्ण एवं रजत से निर्मित आभूषणों का हमारे बीच प्रचलन अधिक है। स्वर्ण से निर्मित आभूषणों को कमर के ऊपरी हिस्सों में धारण किया जाता है जबकि रजत आभूषणों को सामान्यत: कमर के नीचे धारण करने का नियम है। इसका कारण यह है कि स्वर्ण ऊष्णता एवं रजत शीतलता का परिचायक है। इस प्रकार इन्हें धारण किये जाने से षरीर की ऊर्जा में संतुलन स्थापित होता है।[7] आभूषणों के द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों के निश्चित हिस्सों, तन्त्रों, नस-नाड़ियों आदि को एक्यूप्रेशर दिया जाता है, जिससे भांति-भांति के रोगों के उपचार में सहायता मिलती है अथवा सम्बन्धित अंग एवं तन्त्र सदा ही स्वस्थ रहते हैं। भारतीय परम्परा में आभूषण प्राय: ऐसे चिकित्सा साधन हैं जो बिना किसी अधिक परिश्रम या कष्ट के मानव को मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान करने में सहायक रहे हैं। इसी कारण ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी महिलाओं के द्वारा प्राचीन भारतीय परम्परागत आभूषणों को धारण किये हुए देखा जा सकता है, जबकि शहरी क्षेत्रों में महिलाओं द्वारा आभूषणों का प्रयोग केवल सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अवसर पर ही देखा जाता है।

महिलाओं द्वारा सिर पर धारण किया जाने वाला मांगटीका सिर की गर्मी को नियन्त्रित करता है तथा यह तनाव को दूर करने में भी मदद करता है। नाक में पहनी जाने वाली नथ से श्वास सम्बन्धी समस्याओं में लाभ मिलता है। कानों के आभूषण का प्रयोग केवल सौन्दर्य वृद्धि के लिए ही नहीं किया जाता है अपितु स्वास्थ्य लाभ के लिए भी कानों में कुण्डल आदि धारण किये जाते हैं क्योंकि कानों के आभूषण शरीर में एक्यूप्रेशर का कार्य करते हैं। साथ ही कानों को छिदवाकर उनमें कोई भी धातु धारण करने से हर्निया एवं हिस्टीरिया जैसे रोग-विकारों से बचा जा सकता है। स्त्रियों के गले में पहने जाने वाले आभूषणों का जैसे माला, हार, एकावली आदि का सम्बन्ध रक्तचाप नियन्त्रि करने से होता है तथा यह हृदय सम्बन्धी रोगों को भी नियंत्रित करने में मदद करता है।

महिलाओं के द्वारा हाथों में धारण किये जाने वाले आभूषणों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। हाथों में पहने जाने वाली चूड़ियां शरीर को स्वस्थ बनाती है तथा रक्तचाप को नियंत्रित करती हैं। चूड़ियों एवं कंगन के द्वारा निरन्तर त्वचा से घर्षण उत्पन्न किया जाता है। जिससे शरीर में ऊर्जा का निर्माण भी होता रहता है तथा घरेलू काम-काज में जुटी महिलाओं पर थकान का असर नहीं होने देता है। इसके साथ ही चूड़ियां तथा कंगन श्वास रोगों से बचाव में भी लाभकारी होती हैं। इसी प्रकार हाथों में धारण की जाने वाली अंगूठियां भी स्वास्थ्यप्रद होती हैं। रिंग फिंगर की नसों का सीधा सम्बन्ध हृदय से होता है इसी कारण इस अंगूठी में पहनना लाभदायक माना जाता है। इन्हें धारण करने से हृदयघात हाने का खतरा भी कम हो जाता है।[8] प्राचीन भारतीय मूर्तिकला में अंकित किये गये कंकण अर्थात् मोटे धातु के कड़े विशेष दर्शनीय हैं। वर्तमान समय में राजस्थान, हरियाणा, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, उत्तरप्रदेश आदि राज्यों में भी इस प्रकार के कड़ों को महिलाओं द्वारा धारण किये हुए देखा जा सकता है। विभिन्न स्थानों पर इन्हें अलग-अलग नामों से जाना जाता है। हरियाणा में इन्हें कड़ूल्ला कहा जाता है। इनके उपयोग से निमोनिया, दमा, टिटनेस, खांसी, स्मृतिक्षमता तथा दृष्टि से सम्बन्धित विकारों में लाभ मिलता है। इसके साथ ही इन्हें धारण करने से रक्तचाप, नकसीर, उदर सम्बन्धी समस्याओं में भी कमी आती है।[9] यही कारण है कि प्राचीन भारत में कड़े पहनने का प्रचलन स्त्री-पुरुष एवं बच्चों सभी में समान रूप से देखा जाता है।

कमर पर धारण किये जाने वाला सबसे लोकप्रिय आभूषण करधनी है जिसे शास्त्रों में मेखला का नाम दिया गया है। इसे जनसाधारण की भाषा में तंगडी भी कहा जाता है। यह चांदी या सोने में से किसी भी धातु का बना हो सकता है। चांदी मेखला से उदर के आस-पास के भागों में ठण्डक बनी रहती है। साथ ही कमर के दर्द आदि में भी इससे लाभ मिलता है। पैरों में धारण किये जाने वाले कड़े एवं पाजेब आदि भी स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। चांदी की पायलों का भारतीय समाज में विशेष महत्व है। यह शरीर से निकलने वाली ऊर्जा को संरक्षित रखने का कार्य करती है। साथ ही यह पैरों की हड्डियों को सबल बनाने का कार्य भी करती है। इनके द्वारा मोटापे को दूर रखने में सहायता मिलती है। वहीं पैरों की अंगुलियों में धारण की जाने वाली मुद्रिकाएं भी स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। इन्हें जनसाधारण की भाषा में बिछिया कहा जाता है। इन्हें धारण करने से पैरों की अंगुलियों की नसों पर दबाव पड़ता है जिनका सम्बन्ध मस्तिष्क एवं उदर के साथ होता है। इन्हें धारण करने से गर्भ धारण करने की क्षमता पुष्ट होती है तथा तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित विकारों में भी महिलाओं को लाभ मिलता है। यह आभूषण महिलाओं के हार्मोनल सिस्टम को भी स्वस्थ रखने में मदद करता है। इनके प्रयोग से थाइरॉइड को नियंत्रित रखा जा सकता है।[10]

शारीरिक रूप से लाभकारी होने के साथ-साथ आभूषणों का प्रभाव मनुष्य की मनोभावनाओं पर भी पड़ता है। मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी आभूषण अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। आभूषण महिलाओं में आत्मविश्वास की भावना का संचार करते हैं। साथ ही स्त्री-पुरुषों में प्रसन्नता के भावों की वृद्धि करने में भी आभूषणों का विशेष योगदान होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय आभूषणों का न केवल सौन्दर्यात्मक, परम्परागत एवं सांस्कृतिक महत्व था अपितु वे पूर्ण रूप से वैज्ञानिक विचारों से सम्बद्ध थे। मानव को निरोगी एवं दीर्घायु बनाने वाले विभिन्न कारकों में आभूशण भी सम्मिलित थे।

सन्दर्भ सूची

1. ऋग्वेद, 1/122/14
2. वही, 5/53/4
3. वही, 5/51/11
4. अथर्ववेद, 5/2/28
5. अश्टाध्यायी, 5/2/64
6. गुप्ता, एस. पी., एलिमेंट्स ऑफ इण्डियन आर्ट, डी. के. प्रिन्टवर्ल्ड प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2002, पृ0 125-129
7. www.divyachhattisgarh.com/182/गहनों-का-वैज्ञानिक-महत्व/
8. सैनी, सुमन एवं सिंह, डॉ0 सुशमा, हरियाणवी महिलाओं में पारंपरिक आभूशणों का बदलता प्रारूप, षोध लेख, International Journal of Research and Analytical Reviews (IJRAR), Volume 6, Issue 2, May 2019, पृ0 549
9. वही, पृ0 551
10. www.divyachhattisgarh.com/182/गहनों-का-वैज्ञानिक-महत्व/

हिंदी शोध-प्रबंधों की अभिव्यक्ति संबंधी चुनौतियाँ

डॉ० अनिल कुमार सिंह

पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज (सांध्य) दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

जीवन की चुनौतियों ने मनुष्य को सदैव चिंतनशील बनाये रखा और वह इनसे निपटने के लिए निरंतर शोध कार्य करता रहा। आरंभ में शोध का सरल अर्थ शुद्ध करना, दुरुस्त करना, छानबीन करना, जाँच आदि था। यह प्रवृत्ति जीवन के विविध क्षेत्रों में निरंतर जारी रही और इसका परिणाम यह हुआ कि नाट्य-शास्त्र, अर्थशास्त्र, काम-सूत्र, काव्य-प्रकाश जैसी महत्वपूर्ण रचनाओं का सृजन हुआ। फिर भी अखिल भारतीय स्तर पर साहित्यिक-शोध का इतिहास सिर्फ सौ साल से अधिक पुराना नहीं है और शोध-प्रक्रिया की कोई प्रामाणिक व्यवस्था नहीं थी। आज शोध के विविध क्षेत्रों में वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित शोध प्रविधि के विकास के कारण शोध के क्षेत्र बड़े स्तर पर कार्य किए जा रहे हैं। भारतीय विश्वविद्यालय के विविध विभागों के द्वारा शोध के अनेक द्वार सोपाधिक शोधार्थियों के लिए खोल दिए गए हैं। तकनीकी दृष्टि से सोपाधिक शोध ही वास्तविक शोध कहलाता है, क्योंकि इसमें शोधार्थी को काल आधारित एक निश्चित प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। जाहिर है इसकी एक वैधानिक प्रक्रिया होती है, जिसके तहत शोध-कार्य संपन्न होने पर मूल्यांकन-परीक्षण के लिए विशेषज्ञों के पास भेजा जाता है और स्वीकृति के बाद निर्धारित उपाधि प्रदान की जाती है। बाद में विश्वविद्यालय की स्वीकृति मिलने पर शोध-प्रबंधों को प्रकाशित भी किया जा सकता है। शोध की इस व्यवस्था आधारित जटिल प्रक्रिया में एक निश्चित अंतराल के बाद जो उत्पाद प्राप्त होता है वह शोध-प्रबंध कहलाता है। यह शोध-प्रबंध अपनी अर्थ-संरचना में दो महत्वपूर्ण पक्षों का द्योतक है- एक तो विषय के शोधन का और दूसरा शोधित विषय के प्रबंधन का। विषय का शोधन जहाँ शोधार्थी की प्रतिभा, परिश्रम और उसकी रुचि से निष्पन्न होता है, वहीं शोध की प्रबंधन के अंतर्गत शोधित सामग्री के व्यवस्थित, क्रमबद्ध और अन्वितिपूर्ण विवेचन के साथ प्रभावी संप्रेषण से अर्जित की जाती है।

भाषा और साहित्य से जुड़े शोध-प्रबंधों पर गौर किया जाए तो यह पता चलता है कि उपर्युक्त दोनों पक्षों का संतुलन ही किसी शोध-प्रबंध को संप्रेषणीय बनाता है और इस संप्रेषणीयता में ही शोध-प्रबंध का मूल उद्देश्य निहित होता है। लेकिन सरकारी ''संस्थानों के शोध जगत में विचारधाराओं का हल्लाबोल है, यहाँ साहित्य पर साहित्य के माध्यम से नहीं, बल्कि इतिहास, मनोविज्ञान, दर्शन, धर्म, तत्वशास्त्र और दबे हुए कामशास्त्र के माध्यम से शोध होते हैं। इस स्थिति का परिणाम यह होता है कि पाठक किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है और मानसिक शांति के लिए बाजारू साहित्य की शरण में जाता है।''[1] जाहिर है साहित्य को साहित्य की कसौटी पर कसकर ही कोई वांछित उद्देश्य प्राप्त किया जा सकता है।

यह स्वीकृत विचार है कि कठिन परिश्रम और उपयुक्त दिशा चयन के माध्यम से शोध के विविध क्षेत्रों का विस्तार होता है और समाज के विकास के लिए नए क्षितिज खुलते हैं। लेकिन पिछले दस-बीस वर्षों के शोध-प्रबंधों के स्वरुप और योगदान को देखकर भला कौन कहेगा कि भारतीय विश्वविद्यालयों ने सोपाधिक शोध के क्षेत्र में शिखरपार कर लिए हैं? एक तरफ जहाँ व्यावहारिक धरातल पर शोध की पूरी प्रक्रिया ही गैर जिम्मेदारपूर्ण होती जा रही है, वहीं दूसरी तरफ शोध-प्रबंधों की संप्रेशणीयता संदेह के दायरे में है। अत: शोध-प्रबंधों की अभिव्यक्ति से संबंधित प्रश्न जहाँ एक तरफ व्यस्थाजनित प्रतीत होता है, वहीं दूसरी तरफ वर्तमान शोधार्थियों के ढुलमुल रवैये और पढ़ने-लिखने के बुनियादी कौशल में गिरावट का सूचक भी है। भारतीय विश्वविद्यालयों के नीरस परिवेश को देखकर तो यही लगता है कि यह सिर्फ हिंदी साहित्य से जुड़ा मामला नहीं है, बल्कि सभी अनुशासनों में हालात बद से बद्तर होते जा रहे हैं। नतीजा यह है कि सरकारी अनुदान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बेहद उदासीन ढंग से संपन्न किए जा रहे शोध-कार्यों पर खर्च किया जा रहा है और बदले में बहुत मामूली और अमौलिक शोध-प्रबंधों का अंबार पुस्तकालयों में एकत्रित होता जा रहा है।

बहरहाल, मैं हिंदी साहित्य के शोध तक ही सीमित रहना चाहता हूँ। रचनाकारों और साहित्य की विविध विधाओं से सम्बद्ध होने के बावजूद साहित्यिक शोध-प्रबंध प्राय: शुष्क, नीरस माने जाते हैं और कई बार अबूझ पहेली की तरह होते हैं, जिनका आम लोगों तक पहुँच नगण्य होता है। आज के इस चुनौतीपूर्ण दौर में आम लोगों से उनके संबंधों पर बात करना मुझे बहुत समीचीन लगता है क्योंकि हर साल विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों से विपुल संख्या में हिंदी साहित्य से जुड़े शोध-प्रबंधों को निर्धारित उपाधि के लिए स्वीकार किया रहा है। ऐसे में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि आखिर इन शोध प्रबंधों की उपादेयता क्या है? इनका अध्येता कौन है? क्या पुस्तकालयों में पड़े-पड़े दीमकों का निबाला बनना ही इनका भविष्य है? दरअसल, ज्यादातर शोध प्रबंधों की संप्रेषणीयता इतनी अलक्षित या हास्यास्पद होती है कि विश्वविद्यालय से बाहर के पाठकों को छोड़ भी दें तो विश्वविद्यालयों या महाविद्यालयों के अध्ययन-अध्यापन में भी उनका कोई सार्थक उपयोग नहीं हो पाता है। हम अक्सर साहित्य के अन्य स्रोतों की स्तर हीनता पर सवाल खड़े करते हैं और उनके सरोकारों को आमजन से असंबद्ध बताकर उनकी काफी आलोचना करते हैं। पिछले दिनों हिंदी की लघु पत्रिकाओं पर इस तरह की कई बहसें हुई, जिनका सार संक्षेप यह था कि ज्यादातर पत्रिकाएँ रचनाकारों द्वारा निकाली जाती हैं और रचनाकार ही उसके पाठक भी होते हैं और उनकी प्रकाशित प्रतियाँ चार-पांच सौ से अधिक नहीं निकलती हैं। दूसरी तरफ कुछ आंकड़े हमें चौंकाते भी हैं कि ''हंस और नया ज्ञानोदय जैसी पत्रिकाएं आठ-दस हजार के करीब छपती हैं। आज के इस असाहित्यिक वातावरण में भी ये दोनों साहित्यिक पत्रिकाएं बराबर निकल रही हैं और सीना ठोककर खड़ी हैं।''[2] इन दोनों पत्रिकाओं के उदाहरण से एक बात तो स्पष्ट होती है कि इनके संपादकों ने इसके लिए पत्रिका के कलेवर में कुछ आवश्यक बदलाव कर यह उपलब्धि हासिल की है।

क्या साहित्य के शोधार्थियों को इनसे सबक नहीं लेना चाहिए? किसी शोध-प्रबंध के अभिव्यक्ति कौशल पर विचार करने का सबसे सरल तरीका है शोध विषय के अनुकूल उसकी भाषिक गुणवता की जाँच करना। शोध-प्रबंधों में अभिव्यक्ति कौशल को निर्धारित करने के लिए तीन पक्ष बहुत महत्वपूर्ण होते हैं-पहला शोधार्थी का भाषिक स्तर, दूसरा पाठक-वर्ग भाषाई संस्कार और तीसरा शोध-प्रबंध के वस्तु (पाठ) का स्वरूप। यद्यपि ये तीनों पक्ष आपस में एक-दूसरे से कई स्टारों पर संबद्ध हैं, किन्तु शोध-प्रबंधों की संप्रेषणीयता के मूल्यांकन लिए यहाँ इन्हें क्रमबद्ध प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

विद्या-ग्रहण के सन्दर्भ में यह स्वीकार किया जाता है कि पढ़ना और लिखना दो भिन्न किंतु आवश्यक कौशल हैं। इनमें से ''पढ़ना 'ग्राही' कौशल है और लिखना 'उत्पादी'-किन्तु दोनों ही प्रक्रियाओं में कई ऐसी समानताएं हैं जो इन्हें एक दूसरे के पूरक बनाती हैं, जैसे पढ़ना और लिखना दोनों ही सोद्देश्य होता है। पढ़ते समय पाठक अर्थ निर्मित करते चलता है, इसी प्रकार लिखते समय लिखनेवाला भी अर्थ का निर्माण करते चलता है। पढ़ते समय हम कई बार अपने अर्थ को संशोधित करते हैं, उसे दुबारा पढ़ते हैं, वैसे ही लिखते समय भी हम लिखे हुए को संशोधित करते चलते हैं।''[3] शोध-प्रबंध की रचना प्रक्रिया के अंतर्गत इन दोनों कौशलों से युक्त होकर शोधार्थी अपना कार्य संपन्न करता हैं। इस प्रक्रिया में एक बात साफ है कि अर्थ निर्धारण महत्वपूर्ण पक्ष है और किसी रचना की अर्थ संभावनाओं की खोज बराबर जारी रखनी चाहिए। एक अर्थ रचनाकार का होता है, दूसरा शोधार्थी का। फिर गौर से देखें तो शोधार्थी की दृष्टि से शोध प्रबंध का अभिव्यक्ति कौशल उसकी भाषिक समझ और संप्रेषण क्षमता का द्योतक है, जो उसके मानसिक गठन और बोध-स्तर से निर्धारित होता है। चूँकि ''चिंतन, भावन और उदभावन भाषा में ही जन्म लेते हैं और आकार ग्रहण करते हैं। भाषा के बिना न चिंतन संभव है, न भाषण, न लेखन।''[4] लेकिन व्यावहारिक स्तर पर शोध-प्रबंधों के लेखन में इस सिद्धांत का कितना अनुसरण किया जाता है, यह विचारणीय मुद्दा है। केवल प्रमाण-पत्र हासिल करने में जुटे शोधार्थी जल्दबाजी में शोध-विषय का चयन करते हैं और उतनी ही शीघ्रता से लेखन-कार्य भी संपन्न करते हैं। यह कहने में मुझे कोई गुरेज नहीं कि सबसे अगंभीर स्थिति शोध-प्रबंध लेखन में ही देखा जाता है। हाँ, इसके कुछ व्यावहारिक कारण जरूर हैं। देखा यह गया है कि सामान्यत: विषय निर्धारण से पहले शोधार्थी उस विषय पर या तो बहुत कम पढ़ते हैं या बिल्कुल नहीं पढ़ते। फिर शोध से संबद्ध विभागीय समिति द्वारा चयन कर लिए जाने के उपरांत लंबे समय तक आलसी रवैया अपनाते हैं। हाँ, वे जैसे-तैसे विषय से संबंधित पुस्तकों को एकत्रित करते जाते हैं। जब थोड़ी-बहुत सामग्री एकत्रित हो जाती है, तब उस पर शोध-निर्देशक एवं विभाग का शोध-प्रबंध लेखन संबंधी दबाव बनना शुरू हो जाता है। इसी दबाव भरे राहू काल में ज्यादातर शोध-प्रबंधों का लेखन कार्य संपन्न किया जाता है। सच कहा जाए तो पाठ की गुणवत्ता की दृष्टि से जो काम सबसे शांत और नीरव काल में संपन्न होना चाहिए, वह अक्सर सबसे कठिन और आक्रांत काल में पूरा किया जाता है। इस आक्रांतता के दबाव में लेखन की गाड़ी सूखी नदी के पाट पर हिचकोले खाती आगे बढ़ती है। शोधार्थी रेत के मोटे-कणों को मोती समझकर झोली में भरता चला जाता है। इन्हीं रेत कणों से उसकी प्रबंधात्मकता निर्मित होती है, जो पाठकों का वास्ता पड़ते ही भरभराकर गिर पड़ती है। कई बार इसे हम सरल भाषा में टीपना या साहित्यिक चोरी भी कहते हैं। यद्यपि सीमित अनुपात में दूसरे लेखकों के उद्धरणों को शोध में रखने की वैद्य पद्धति प्रचलित है, लेकिन बेबस चोर-मन माने तब ना। यहाँ तो मामला ही अलग है, जब भी शोधार्थी को अपने अभिकल्पित शोध विषय का कोई सिरा किसी प्रकाशित सामग्री से मिलता-जुलता प्रतीत होता है, तब वह चौकन्ना हो जाता है और अचेत या सचेत तरीके से उसकी कमोवेश नकल कर लेता है। कुछ शोध-प्रबंध जुगाड़ पद्धति से भी प्रकाशित किए जाते हैं, किन्तु उनकी सामान्य लोगों तक पहुँच न के बराबर होती है। इसके कई कारण हैं, जिनमें अभिव्यक्ति कौशल का मुद्दा सबसे प्रभावकारी है। वैसे तो आज साहित्य की ज्यादातर विधाएं जनता के बीच काफी उपेक्षित हैं और साहित्य लेखन से जुड़ा एक बड़ा वर्ग गला फाड़-फाड़ कर मौजूदा काल को साहित्य के लिए गहरे संकट का काल घोषित कर रहा है। रोलां बार्थ ने 1968 ई. में अपना चर्चित और विवादास्पद निबंध 'लेखक की मृत्यु' लिखकर लेखन की यांत्रिक प्रविधियों की बढ़ती सत्ता की ओर संकेत किया था। सिर्फ उपाधि प्राप्ति के लोभवश लिखे गए शोध प्रबंध इस दुश्चिंता को और गहराते प्रतीत होते हैं। वस्तुत: इस अभिव्यक्ति कौशल का आदि श्रोत शोध-प्रबंधों की लेखन-प्रक्रिया में ही निहित है, जिसका नियंता मूल रूप से शोधार्थी ही होता है। चूँकि साहित्य से जुड़े शोध के क्षेत्र में अग्रसर होनेवाला शोधार्थी साहित्य से किंचित गहरे अर्थों में जुड़ा होता है, इसलिए उसके शोध-प्रबंध को सर्जनात्मक साहित्य ही माना जाना चाहिए। ऐसी स्थिति में उसके सर्जनात्मक कर्म को समीक्षा के प्रचलित प्रतिमानों के सहारे परखना ज्यादा सही होगा। सामान्यत: साहित्य को उपयोगितावादी नजरिये से परखने वाले चिंतक साहित्य को समाज सापेक्ष घोषित करते हैं और साहित्य को न केवल समाज की मनोवृत्तियों को परिवर्तित करके उसे वांछित दिशा की ओर अग्रसित करने का सशक्त साधन मानते हैं, अपितु उसे सिद्धांत प्रचार का सर्वोत्तम माध्यम भी समझते हैं। दूसरी तरफ 'कला कला के लिए' मान्यता पर आधारित कलावादियों के अनुसार साहित्यकार लोकोत्तर प्राणी है और उसका साहित्य लोकातीत वस्तु, उसके आस्वादन से प्राप्त आनंद अलौकिक आस्वाद युक्त एवं समाज निरपेक्ष होता है। कला को अतिरिक्त महत्व दिए जाने के बावजूद इस आकलन में पाठक की विशिष्टता का सवाल ज्यादा महत्वपूर्ण बनकर उभरता है। ''रचना पाठक के लिए होती है, पर वह ठीक वैसी ही नहीं होती जैसा पाठक चाहता है, बल्कि वह बहुत कुछ वैसी होती है जैसा लेखक का विशिष्ट अनिभव-ज्ञान और उसका विवेक चाहता है।''[5] तुलनात्मक दशष्टि से रचना पाठक से अधिक स्वयं लेखक के करीब मानी जाती है। कोई भी लेखन एक सशक्त लेखन तभी साबित होता है, जब पाठक की रुचि का परिष्कार करता है और वह पाठक के अनुभव को समश्द्ध करती है, उसकी संवेदनाओं का विकास करता है। विश्वविद्यालय के शोधार्थियों को हिंदी के उन रचनाकारों से जरूर सीख लेनी चाहिए, जिन्होंने लेखन से पहले उन तमाम सरल और दुरूह ग्रंथों एवं लोक-श्रुतियों को पढ़ा-समझा फिर समय के अनुकूल जनहित को देखकर अपनी रचनाओं को प्रस्तुत किया। तुलसीदास को रामचरितमानस लिखने में शोधकर्ता की तरह ही काफी समय लगा था। उन्होंने इस ग्रंथ को सात कांडों में विभाजित किया और इस बात को स्वीकारा कि यह 'नानापुराण निगमागम सम्मत' है। अर्थात् उन्होंने लेखन से पूर्व भरपूर तैयारी की, फिर जन आकांक्षा के अनुरूप उसे अवधी बोली में लिखा। यही नहीं, उनके अन्य ग्रंथ भी अभिव्यक्ति कौशल की कसौटी पर बिल्कुल खरे उतरते हैं। वैसे भारत में साहित्य के साथ संगीत, नृत्य आदि कलाओं के संयोजन की एक सुदीर्घ परंपरा रही है। आजकल आधुनिक चिंतन में भी यह स्वीकार किया जा रहा कि ''कला की आँख से साहित्य और साहित्य की आँख से कला को देखना हमारे वर्तमान सांस्कृतिक युग की एक महती आवश्यकता है।''[6] यह और बात है कि अभिनय आदि अन्य क्षेत्रों की तरह कला के बाजारीकरण और वैश्वीकरण के दौर में जनोन्मुख साहित्य की मांग बेईमानी लगाती है, क्योंकि अब साहित्य भी बाजार में खड़ा है।

पाठक की दृष्टि से विचार करें तो पाठक का कार्य सिर्फ अर्थ को साधना या ''लिपि बद्ध भाषा को भेदना भर नहीं है बल्कि छपी सामग्री से कई स्तरों और उसके कई पहलुओं से अंतर्क्रिया करना भी है। पढ़ने की इस समग्र परिभाषा में बहुत से ऐसे कौशल और क्रियाएँ सम्मिलित हैं, जहाँ हर एक कौशल की सफलता और सार्थकता दूसरे कौशलों की उपस्थिति पर निर्भर करती है।''[7] लेकिन यहाँ पाठकों के भाषा कौशल को समझना बहुत जटिल कार्य है, क्योंकि जहाँ विश्वविद्यालय के पाठकों की भाषा समृद्ध होती है, वहीं आम पाठकों की कई कोटियाँ हैं। गौर से देखें तो शोध के विभिन्न अध्यायों को किश्तों में पढ़ने वाला पहला पाठक शोध-निर्देशक होता है और वह शोध की प्रबंध योजना से लेकर उन समस्त बिन्दुओं पर शोधार्थी के लिए 'बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दियो बताय' की भूमिका में होता है। लेकिन ''मूल्यात्मक विघटन के वर्तमान युग में पंजीकरण, शोध-प्रबंध लेखन, मौखिकी आयोजन और उपाधि वितरण तक की सभी प्रक्रियाएं आज संदिग्ध स्थिति में हैं। शोध प्रबंध ''प्रकाशन के बाद समग्रत: सार्वजनिक संपत्ति बन जाता है। अप्रकाशित रहने की अवस्था में भी अंतर्राष्ट्रीय या राष्ट्रीय स्तर पर पुस्तकालयों के बीच आदान-प्रदान की सुविधाओं के आधार पर सम्बद्ध विषय क्षेत्र के अन्य शोधार्थी प्रबंध का अध्ययन कर सकते हैं।''[8] किसी शोध-प्रबंध का सबसे बड़ा अध्येता विश्वविद्यालयों में मौजूद विद्यार्थी, शोधार्थी और शिक्षक समुदाय ही होता है। सामान्य जनता उसे कितना पढ़ती-समझती है यह एक अलग मामला है, क्योंकि सामान्य जनता में निरक्षर और दो जून की रोटी के लिए संघर्षशील लोग भी शामिल हैं जो अक्सर भीड़ मात्र समझी जाती है और ''अपनी दैनिक समस्याओं से त्रस्त है। जाहिर है इस प्रकार की जनता से साहित्य का कोई खास लेना देना नहीं है।''[9] अत: शोध-प्रबंधों के लेखन में अपने लक्षित पाठकों का अनुमान बहुत जरूरी है।

शोध-प्रबंध से जुड़ा तीसरा महत्वपूर्ण मुद्दा शोध-प्रबंध का विषय-वस्तु और उसका अभिव्यक्ति पक्ष है। विषय वस्तु की प्रस्तुति की पहले से प्रचलित पद्धतियों के अतिरिक्त आजकल किसी पाठ-सामग्री की अभिव्यक्ति पक्ष को उसकी अभिव्यक्ति कौशल की संभावनाओं के रूप में भी विश्लेषित किया जाता है। किसी पाठ की अभिव्यक्ति कौशल को प्रभावी बनाने वाले घटकों में लिपियों के आकार, पंक्तियों के बीच अंतराल, पृष्ठ-सज्जा, शब्दावली चयन, वाक्य-विन्यास, पाठ-संरचना-संबद्धता आदि को महत्वपूर्ण माना जाता है। आधुनिक बदलावों के साथ इन कारकों को नजरंदाज नहीं किया जा सकता, क्योंकि पुस्तक प्रकाशन के पुराने तरीकों के समानांतर अब पाठों का डिजिटल प्रकाशन (ई-पुस्तक) भी हो रहा है। अत: पाठ को प्रभावी बनाने के लिए जहाँ पुस्तक की साज-सज्जा में कई बदलाव किए जाते हैं, वहीं प्रस्तुतियों की कई नवीन पद्धतियों को अपनाने की भी आवश्यकता होती है। मसलन लिपियों के आकार-प्रकार और उनके नव विकसित सुंदर फाण्ट का चयन एवं पूरे पृष्ठ का प्रारूप आदि सब कुछ नवोन्मेषित होने पर पाठ सामग्री पाठकों में आकर्षण पैदा करता है। पांडित्य प्रदर्शन और जटिल शब्दज्ञान के मोह में पड़कर पाठ सामग्री में जबरन क्लिष्ट शब्दावली का प्रयोग पाठकों के लिए बाधक सिद्ध होता है। अत: चुने गए विषय के अनुरूप सहज ग्राह्य शब्दों का प्रयोग ही ठीक समझा जाता है। किसी पाठ सामग्री की रमणीय और सुघड़ संरचना अध्यायों और अनुच्छेदों के क्रमिक और सुव्यवस्थित संयोजन से प्राप्त होती है। शोध प्रबंध को लिखने से पहले ही शोधार्थी को विभिन्न अध्यायों की योजना तैयार कर लेनी चाहिए, ताकि पहली नजर में ही अध्यायों की व्यवस्था देखकर पाठक पूरी रचना का अंदाजा लगा सके। फिर हर अध्याय में अनुच्छेदों का विन्यास विषय के अनुरूप व्यवस्थित क्रम में करना चाहिए। पाठ सामग्री की सम्बद्धता जहाँ एक तरह विचारों के संगठन में निहित होती है, वहीं उसका संबंध भाषिक-संरचना से भी होता है। अत: विषय और भाषा की संतुलित प्रस्तुति पाठ-सामग्री को सम्बद्धता प्रदान करती है।

वैसे भी शोध-प्रबंधों के लेखन में सबसे अधिक चाव उद्धरणों की प्रस्तुति में देखी जाती है। उद्धरण का सामान्य अर्थ है किसी अन्य व्यक्ति के मत का अधिग्रहण। उद्धरण का अधिग्रहण अपने अभिमत को पुष्ट और प्रामाणिक करने के लिए किया जाता है। प्रबंध को सुपाठ्य बनाने के लिए उद्धरण को किसी उक्ति के साथ अविकल रूप में ग्रहण किया जाना जरुरी माना जाता है। चूँकि आजकल कंप्यूटर की सहायता से लेखन की पद्धति बेहद आसान और अपार संभावनाओं से युक्त है और इसमें दो राय नहीं कि आने वाले समय में शोध प्रबंध-लेखन और पठन अपेक्षाकृत अधिक सुविधाजनक हो जाएगा।

अंत में, मैं अपनी राय देना आवश्यक समझता हूँ कि हर साल हिंदी भाषा और साहित्य से जुड़े सैंकड़ों अगंभीर और बेमेल विषयों पर शोध प्रबंध लिखे जाते हैं और असंख्य मात्रा में शोध-पत्र प्रकाशित होते हैं। उनकी अभिव्यक्ति कौशल का मूल्यांकन मानवीय दृष्टि से किया जाना चाहिए ताकि परिवेश आधारित भर्त्सनाओं और आजीविका की सूखी मरुभूमि में पेट की ज्वाला से संतप्त उन नौजवानों को दोष दिया न दिया जाए बल्कि निर्मम और अकर्मण्य सत्ता प्रतिष्ठानों को भी कोसा जाए।

संदर्भ सूची

1. निर्मल वर्मा की कथा भाषा-शोधार्थी-सर्वेश कुमार सिंह, भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., वर्ष-2004, पृ.-2
2. साहित्यिक पत्रकारिता का परिदृश्य-अरुण त्रिपाठी, पृष्ठ-16
3. पढ़ने की समझ, राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, तृतीय संस्करण-2012, पृष्ठ-21
4. वही, पृष्ठ-22
5. रचना के सरोकार-विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-57
6. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, कला-निधि, वर्ष-1, अंक 1 काशी, पृष्ठ-18
7. पढ़ने की समझ, राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, तृतीय संस्करण-2012, पृष्ठ-9
8. शोध प्रविधि, मैथिली प्रसाद भारद्वाज, आधार प्रकाशन, पंचकुला, संस्करण-2005, पृष्ठ-18
9. रचना के सरोकार-विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-57

सरिस्का बाघ पुनर्वास कार्यक्रम एवं चुनौतियां- एक शोधपरक अध्ययन

मनोज कुमार शर्मा

शोधार्थी, भूगोल विभाग, राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, (RRBMU) अलवर, राजस्थान

डॉ० खेमचंद शर्मा

(शोध निर्देशक), एसोसिएट प्रोफेसर भूगोल विभाग, राजकीय कला महाविध्यालय, अलवर, राजस्थान

प्रस्तावना -बाघ भारत का राष्ट्रीय पशु है। यह विश्व में सीमित संरक्षित क्षेत्रों में ही पाया जाता है। बाघों की संख्या की दृष्टि से भारत विश्व में अग्रणी है। बाघों की संख्या का लगभग 70% भाग भारत में ही पाया जाता है। भारत मेँ बाघों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए टाइगर रिजर्व की स्थापना की गई। जिसका क्रियान्वयन बाघ संरक्षण प्राधिकरण के द्वारा होता है। यद्यपि बाघ संरक्षित क्षेत्रों में बाघों को संरक्षण प्रदान करना एक मुख्य कार्य है तथापि अवैध शिकार,मानव-बाघ संघर्ष, बाघ संरक्षित क्षेत्रों बसे हुए मानव अधिवास जनजागरूकता में कमी इत्यादि वे कारण है जिससे बाघों की संख्या पहले की तुलना में घटी है। इस क्रम में उदाहरणस्वरूप पन्ना टाइगर रिजर्व (मध्यप्रदेश) तथा सरिस्का टाइगर रिजर्व (राजस्थान) को रखा जा सकता है। सरिस्का बाघ परियोजना में वर्ष 2005 से पूर्व लगभग 30-35 बाघ पाए जाते थे,लेकिन 2005 में अवैध शिकार के चलते यहाँ बाघों का पूर्ण सफाया हो गया। सरिस्का बाघ परियोजना को बाघों की वजह से जो ख्याति प्राप्त थी। वह धूमिल हो गई। इस खोई हुई ख्याति को पुनः प्राप्त करने के लिए तथा बाघों से सरिस्का को पुनः आबाद करने के लिए केवल और केवल एक ही मार्ग शेष रह गया था और वह था- सरिस्का बाघ परियोजना में बाघों का पुनर्वास।

मूल शब्द (Keywords): STR-सरिस्का बाघ परियोजना, बाघ पुनर्वास।

परिचय

पुनर्वास वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत किसी संतति/ प्रजाति को संरक्षण प्रदान करने हेतु उस क्षेत्र में बसाया जाता है जिसमें वह पहले कभी स्वच्छंद विचरण करती थी सरिस्का बाघ परियोजना में बाघों के पुनर्वास हेतु सर्वप्रथम एक सुनियोजित कार्यक्रम बनाया गया। जिसमें भारत सरकार, राजस्थान सरकार, NTCA- राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण (NATIONAL TIGER CONSERVATION AUTHORITY OF INDIA), FSI-भारतीय वन सर्वेक्षण (FOREST SURVEY OF INDIA), WWF- विश्व वन्यजीव संस्थान (WORLD WILDLIFE FUND), GTP- वैश्विक बाघ निरीक्षण संस्था (GLOBAL TIGER PETROL) के सामूहिक प्रयास सम्मिलित हैं। बाघ पुनर्वास के लिए बाघों का आना रणथम्भौर बाघ परियोजना से तय किया गया। क्योंकि सरिस्का के अलावा राजस्थान में यही एकमात्र बाघ परियोजना थी, जहाँ बाघ विद्यमान थे तथा अन्य राज्य जहाँ बाघ विद्यमान थे, वे आसानी से बाघों के विस्थापन के लिए सहमत नहीं होते। दूसरा रणथम्भौर बाघ परियोजना में भी बाघों के विचरण के लिए कोर एरिया (CRITICAL TIGER HABITAT) कम पड़ रहा था, अतः रणथंभौर बाघ परियोजना से बाघों की टेरिटरी के बढ़ते हुए दबाव को कम करने के लिए रणथम्भौर बाघ परियोजना से सरिस्का बाघ परियोजना में बाघों का विस्थापन तय किया गया। इसकी सफल क्रियान्वित के लिए वैज्ञानिक तथा जंतुविशेषज्ञों का एक दल देहरादून से रणथंभौर भेजा जिसके निरीक्षण में विस्थापित किए जाने वाले बाघों को चिन्हित कर उनका स्वास्थ्य परीक्षण किया गया तथा उन्हें ट्रैंकुलाइज कर सरिस्का बाघ परियोजना में विस्थापित किया गया।

विश्व का ऐसा पहला बाघ पुनर्वास 28-06-2008 को सम्पन्न किया गया और इस कारण ही सरिस्का बाघ परियोजना एक बार पुनः विश्व परिदृश्य पर उभरा। इस विस्थापन के साथ ही बाघों को रेडियो कॉलर लगाना भी आरम्भ किया गया ताकि बाघों की हर दशा में मॉनीटरिंग और सुरक्षा की जा सके और उन्हें संभावित खतरे से बचाया जा सके।

बाघ पुनर्वास कार्यक्रम के समक्ष उत्पन्न चुनौतियां- यद्यपि सरिस्का बाघ परियोजना में बाघों का पुनर्वास सुचारू रूप से संचालित किया जा रहा है परन्तु अनेक ऐसी बाधाएं हैं जो इसके विकास मार्ग में आड़े आ रही है तथा इसकी गति को प्रभावित कर रही है।

1. बाघ परियोजना के कोर एरिया में बसी मानव बस्तियों का विस्थापित न होना तथा विस्थापन की ढीली प्रक्रिया- सरिस्का बाघ परियोजना में बाघों के विलोपन का एक प्रमुख कारण मानव बाघ-संघर्ष (HUMAN-TIGER CONFLICT) है। STR का कोर एरिया जो कि बाघों का स्वच्छंद विचरण क्षेत्र माना जाता है,के भीतर अनेक गांव विद्यमान है जिन्हें इस बाघ परियोजना से अन्यत्र विस्थापित किया जाना था लेकिन विस्थापन की प्रक्रिया

काफी सुस्त जान पड़ती है। इस बाघ परियोजना से कुल 29 गांवों को विस्थापित किया जाना था। जिनमें से केवल तीन गांवों को ही पूर्णत: विस्थापित किया जा सका है। जो निम्नानुसार है-

1. गुवाड़ा उमरी (अकबरपुर रेंज।)
2. गुवाड़ा रोटक्याला।
3. गुवाड़ा भगानी (टहला रेंज।)

जबकि शेष 26 गांवों को अभी विस्थापित किया जाना बाकी है।

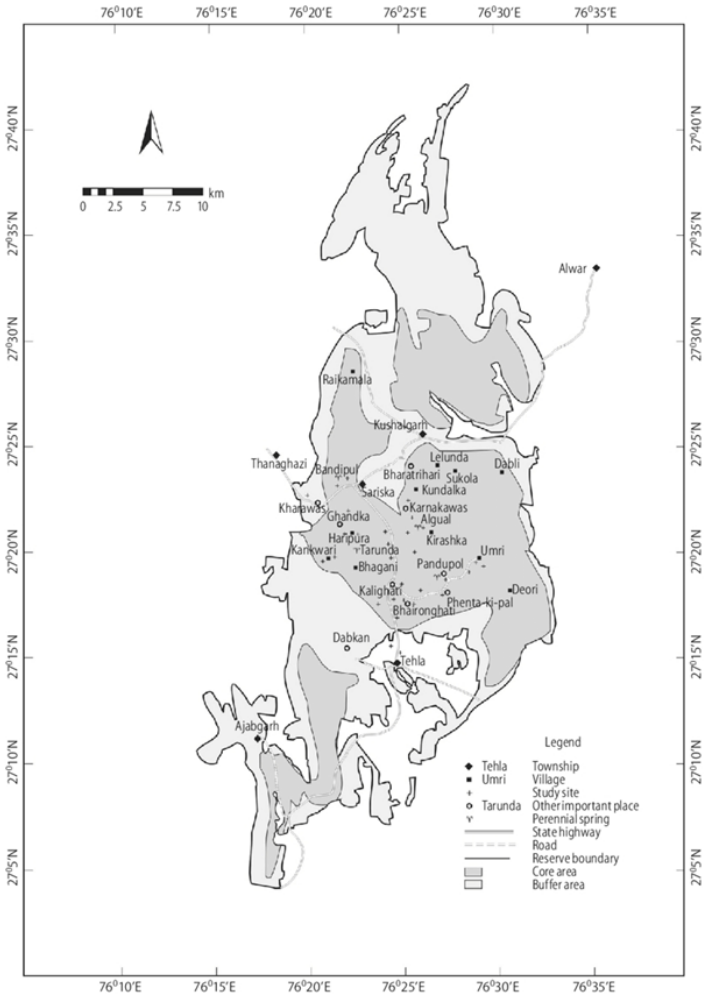

मानचित्र : STR के कोर एरिया (CRITICAL TIGER HABITAT) में मानव अधिवास

ऐसा नहीं है कि STR विस्थापन की दिशा में कार्य नहीं किया गया। बल्कि इसकी प्रक्रिया मंद रही है। कुछ विस्थापित परिवार मुआवजे की राशि के बाद भी पुन: यहाँ आकर बस गए। जबकि कुछ स्थानीय लोग केंद्रीय तथा राज्य सरकार द्वारा निर्धारित मुआवजे की राशि से संतुष्ट नहीं हैं। यद्यपि स्थानीय प्रशासन द्वारा विस्थापन की प्रक्रिया कार्य अधीन हैं तथा इस कार्य के सुचारू रूप से संचालन के लिए विस्थापन शाखा की अलग स्थापना की गई है। चाहे जो भी हो लेकिन यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि STR में बसे हुए गांवों का विस्थापन बाघों की प्रजाति के संरक्षण के लिए अत्यंत आवश्यक है।

2. अवैध शिकार – सरिस्का बाघ परियोजना में बाघों के लुप्त होने का मुख्य कारण शिकार ही रहा है। बाघों के पुनर्वास के पश्चात भी STR इस दंश को झेल रहा है । बाघ ST-1 का 14 नवम्बर 2010 विषाक्त द्वारा मर जानें (Died due to poisoning)के पीछे भी इस षड्यंत्र के होने से इंकार नहीं किया जा सकता। अवैध शिकार के चलते ही सरिस्का बाघ परियोजना, राजस्थान तथा पन्ना बाघ परियोजना, मध्य प्रदेश 2005 में बाघ विहीन हो गए थे। बाघों के इस अवैध शिकार के पीछे मुख्य कारण अंतर्राष्ट्रीय बाजार में इसके अंगों की अवैध रूप से मांग है। इन अंगों का उपयोग चीन में बनने वाली पारंपरिक दवा में किया जाता है।जिसे गुप्त रूप से सुदूर पूर्व तथा पश्चिमी देशों में बेचा जाता है।

3. चराई और मानवीय हस्तक्षेप-जिस प्रकार मानव अपने आवास एवं विकास हेतु स्वच्छ व शुद्ध वातावरण की आवश्यकता महसूस करता है। उसी प्रकार वन्य प्राणियों को भी मानवीय हस्तक्षेप से रहित वातावरण की महती आवश्यकता है, अंतर इतना सा है कि मनुष्य अपने अधिकारों के लिए कानूनी संघर्ष कर सकता है पर वन्य प्राणी नहीं। ।सरिस्का बाघ परियोजना में बाघों के पुनर्वास में एक बाधा यह भी है कि इसके आसपास के मानव अधिवासों द्वारा

अपने पशुओं की चराई के लिए इस पर निर्भर होना तथा अपनी दैनिक आवश्यकताओं यथा ईंधन चारा, घास हेतु वन क्षेत्र में हस्तक्षेप । इस कारण यदा कदा बाघ मानव संघर्ष की घटनाएं भी सामने आती है।

बाघ पुनर्वास कार्यक्रम की सफलता हेतु सुझाव - बाघ हमारे राष्ट्र की अकूत संपदा है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि भारतीय वनों में खाद्य शृंखला के अंतर्गत बाघ सर्वोच्च स्थान रखता है। इनकी संख्या में कमी सम्पूर्ण खाद्य श्रृंखला को प्रभावित करेगी, अत: वनों के महत्व को बनाए रखने एवं खाद्य शृंखला की समुचित व्यवस्था को संतुलित रखने के लिए बाघों की कमी वाले रिजर्व में बाघ पुनर्वास करना अत्यंत आवश्यक कार्य है। इसलिए ही इस दिशा में सरकार ने सकारात्मक एवं दूरगामी कदम उठाए हैं। सरिस्का बाघ परियोजना में बाघ पुनर्वास कार्यक्रम की सफलता हेतु निम्न सुझाव मुख्य है।

- STR के कोर एरिया में बसे हुए गांवों का अतिशीघ्र विस्थापन।
- अवैध शिकार पर प्रभावी नियंत्रण।
- अवैध चराई पर नियंत्रण।
- मानवीय हस्तक्षेप को यथासंभव कम करना।
- पुनर्वासित बाघों की प्रभावी मॉनीटरिंग।
- प्रशिक्षित स्टाफ की नियुक्ति।

S.N.	*Translocation date from RTR to STR*	*SEX of Tiger*	*Tiger ID*	*Note*
1	28-06-2008	Male	ST-1	Died due to poisoning on 14-11-2010
2	04-07-2008	Female	ST-2	
3	25-02-2009	Female	ST-3	
4	20-07-2010	Male	ST-4	Died due to fighting ST-4&ST-6 on 09-12-2018
5	28-07-2010	Female	ST-5	Died 2018
6	23-02-2011	Male	ST-6	
7	Born to ST-2, Aug 2012	Female	ST-7	
8	Born to ST-2, Aug 2012	Female	ST-8	
9	22-02-2013	Female	ST-9	
10	23-02-2013	Female	ST-10	
11	Born to ST-10, July 2014	Male	ST-11	Died on 19-03-2018
12	Born to ST-10, July 2014	Female	ST-12	
13	-Born to ST-2Aug 2014	Male	ST-13	
14	Born to ST-2Aug 2014	Female	ST-14	
15	Born to ST-9April 2016	Male	ST-15	
16	15-04-2019	Male	ST-16	Died on 08-06-2019
17	Born to ST-14, April 2018	Female	ST-17	
18	Born to ST-14, April 2018	Male	ST-18	
19	Born to ST-12, Sept 2018	Female	ST-19	
20	Born to ST-12, Sept 2018	Male	ST-20	
21	Born to ST-12, Sept 2018	Male	ST-21	
22	Born to ST-10, March 2020	Unidentified		
23	Born to ST-12, May 2020	Unidentified		
24	Born to ST-12, May 2020	Unidentified		
25	Born to ST-12, May 2020	Unidentified		

सारणी : पुनर्वासित बाघों की वैद्य स्थिति (Legal Status) – सारणीकरण शोधार्थी द्वारा।

उपर्युक्त सारणी से सरिस्का बाघ परियोजना में पुनर्वासित बाघों की वंशावली के अवलोकन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। कि पिछले एक दशक में यहाँ नौ (9) बाघों का पुनर्वास किया गया। जबकि वर्तमान में इनकी कुल संख्या 23 है, अर्थात यह कहा जा सकता है कि STR में पुनर्वासित बाघों ने यहाँ की परिस्थितियों के साथ अनुकूलन कर लिया है तथा उनकी वंश वृद्धि तृतीय पीढ़ी की ओर अग्रसर हुई है। STR के इस विशाल कोर एरिया में अभी और बाघों के पुनर्वास किए जाने की सम्भावनाएं विद्यमान हैं। यद्यपि यहाँ पुनर्वासित प्रथम बाघ के विषाक्त द्वारा मर जाने के पश्चात इस कार्यक्रम की सफलता पर एक बड़ा प्रश्न चिन्ह लग गया था लेकिन पिछले एक दशक में बाघों की संख्या में हुई अप्रत्याशित वृद्धि ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि सरिस्का बाघ परियोजना में पुनर्वास कार्यक्रम ने अपनी सफलता का पूरा मार्ग भले ही अभी तय न किया हो लेकिन यह पुनर्वास कार्यक्रम इस मार्ग पर सकारात्मक रूप से आगे बढ़ रहा है,चाहे उसकी प्रक्रिया धीमी हो।

निष्कर्ष – बाघों का पुनर्वास इस प्रजाति को बचाने हेतु भारत सरकार का एक राष्ट्रीय कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम की सफलता की जवाबदेही एवं उत्तरदायित्व केवल सरकारों तथा अधिकारियों की ही नहीं है, अपितु जनमानस का भी यह परम कर्तव्य हैं कि हम हमारे दायित्वों का निर्वहन करते हुए इस संतति के संरक्षण में अग्रणी भूमिका अदा करें। इस राष्ट्रीय धरोहर के पुनर्वास को सरिस्का बाघ परियोजना में सफल बनाने हेतु जन सहयोग की महत्ती अपेक्षा है। यह एक विचारणीय एवं ज्वलंत मुद्दा है और इस पर मंथन एवं क्रियान्वयन की अति आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- Government of Rajasthan (2004). Management Plan Sariska Tiger Project
- एम सी टोरी, 2011 "पुनर्वास का संरक्षण एवं संरक्षण नीतियों का सामाजिक परिणाम:-सरिस्का बाघ परियोजना के संदर्भ में एक अध्ययन।
- Shankar Nigam P. PK,Qureshi Q,Bhattacharjee S (2013) Monitoring of Reintroduced Tigers (Panthers tigris) in Sariska Tiger Reserve, Rajasthan, Technical Report -1 July 2008- March 2013. Wildlife Institute of India,Dehradun.PP 141
- Johan Singh, A.J.T K.Shankar and S. Mukherjee (1997). Saving Sariska Tiger Reserve. Cat New 27.3.
- जी शाहबुद्दीन, आर कुमार एवं एम श्रीवास्तव (2006)- "संरक्षित क्षेत्र में पुनर्वास की नीति प्रक्रिया :-सरिस्का बाघ परियोजना के संदर्भ मे"

अलवर शहर का ठोस अपशिष्ट प्रबंधन और उसके मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव

हिमांशी शर्मा

शोधार्थी (भूगोल विभाग), राजर्षि,
भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

डॉ० नरेन्द्र सिंह यादव

शोध निर्देशक, एसोसिएट प्रोफेसर (भूगोल विभाग),
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

सारांश

अपशिष्ट प्रबंधन का अर्थ है 'कचरे के संग्रह से लेकर निपटान के अंतिम चरण तक का प्रबंधन'। इस पूरी प्रक्रिया में कचरा प्रबंधन को सक्षम करने वाले कानूनों के दायरे में रहकर संग्रह, परिवहन, निपटान, रीसाइक्लिंग, निगरानी और विनियमन का कार्य किया जाता है।

ठोस कचरा प्रबंधन प्रणाली का प्रमुख उद्देश्य कूड़े-करकट से अधिकतम मात्रा में उपयोगी संसाधन प्राप्त करना और ऊर्जा का उत्पादन करना है, ताकि न्यूनतम मात्रा में अनुपयोगी पदार्थों को लैंडफिल क्षेत्र में फेंकना पड़े।

हाल के कुछ वर्षों में शहरी भारत में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन एक बड़ी चुनौती बनकर उभरा है। ठोस अपशिष्ट के अनुचित प्रबंधन तथा निपटान में भूक्षरण तथा खतरनाक गैसों के रिसाव से पर्यावरण और सार्वजानिक स्वास्थ्य के लिये गम्भीर खतरा उत्पन्न होता है। संविधान की 12वीं अनुसूची के अनुसार शहरों तथा कस्बों की साफ-सफाई का उत्तरदायित्व शहरी स्थानीय निकाय का होता है।

शहरी क्षेत्रों में उत्पन्न नगर निगम ठोस अपशिष्ट इसकी उचित हैंडलिंग और प्रबंधन के अभाव में एक गंभीर पर्यावरणीय समस्या पैदा कर रहा है। प्रस्तुत शोधलेख नगरपालिका ठोस अपशिष्ट प्रबंधन और उसके मानव एवं पर्यावरण पर प्रभाव के विश्लेषण पर आधारित है।

मूल शब्द : ठोस कचरा, प्रबंधन, सीवरेज एवं जल निकास, प्रदूषण, स्वास्थ्य

परिचय

शहरी ठोस अपशिष्ट ऐसा अपशिष्ट है, जिसमें मुख्य रूप से घरेलू कचरा और कभी-कभी वाणिज्यिक कूड़ा शामिल होता है। नगरपालिका इस कचरे को एक निर्धारित इलाके से एकत्रित करती है। वे अपशिष्ट या तो ठोस रूप में होते हैं या अर्ध-ठोस रूप में और आम तौर पर इसमें घातक औद्योगिक अपशिष्ट शामिल नहीं होता। 'अवशिष्ट कचरा' , घरेलू स्रोतों से बचा हुआ ऐसा कचरा है जिसमें ऐसी सामग्री शामिल है जिसे अलग नहीं किया गया है या पुनर्प्रसंस्करण के लिए नहीं भेजा गया है।

अपशिष्ट के प्रकार

नगरपालिका के ठोस अपशिष्ट पदार्थों में विविध प्रकार की सूखी और गीली सामग्री आती हैद्य खाद्य अपशिष्ट जैसे सब्जियाँ या बचा हुआ मांस, बचा हुआ खाना, अंडे के छिलके आदि होते हैं। इसे गीला कचरा कहा जाता है। इसके साथ ही इसमें कागज, प्लास्टिक, टेट्रापेक्स, प्लास्टिक के डिब्बे, अखबार, काँच की बोतलें, गत्ते के डिब्बे, एल्युमिनियम की पत्तियाँ, धातु की चीजें, लकड़ी के टुकड़े इत्यादि जैसा सूखा कचरा भी मिला होता है।

- प्राकृतिक तरीके से सड़नशील कचरा: भोजन और रसोई कचरे, हरित कचरा, कागज (पुनर्नवीनीकरण किया जा सकता है).
- पुनर्नवीनीकरण योग्य सामग्री: कागज, कांच, बोतल, डब्बे, धातु, कुछ खघस प्लास्टिक आदि.

- अक्रिय कचरा: निर्माण और विध्वंस कचरे, गंदगी, पत्थर, मलबा.
- मिश्रित अपशिष्ट: बेकार कपड़े, टेट्रा पैक, बेकार प्लास्टिक जैसे खिलौने.
- घरेलू खतरनाक अपशिष्ट ("घरेलू खतरनाक अपशिष्ट" के रूप में भी ज्ञात) और विषाक्त अपशिष्ट: दवाएं, ई-कचरा, पेंट, रसायन, प्रकाश बल्ब, फ्लोरोसेंट ट्यूब, स्प्रे कैन, उर्वरक और कीटनाशक कंटेनर, बैटरी, जूता पॉलिश।

ठोस कचरे के संग्रहण, परिवहन और निपटान के लिए प्रयुक्त हो रही मौजूदा प्रणालियों में बहुत सी समस्याओं आ रही हैं। यह समस्या भारत के शहरी क्षेत्रों में ज्यादा गम्भीर है। शहरी आबादी द्वारा रोज बड़ी मात्रा में ठोस कचरा उत्पन्न किया जा रहा है, जिसे शहरी निकाय तेजी से प्रबंधित करने में असमर्थ हैं।

पर्यावरण और स्वस्थ पर प्रभाव

ठोस कचरे की मात्रा में अप्रत्याशित वृद्धि के कारण शहरों के साथ ग्रामीण इलाकों में भी पर्यावरण क्षरण एवं जन स्वास्थ्य के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है। ठोस अपशिष्ट प्रदूषण मनुष्य सहित सभी सजीवों के जीवन को दुष्प्रभावित करता है और हमारी प्राकृतिक व सांस्कृतिक धरोहरों को क्षति पहुंचाता है। विशेषज्ञ मानते हैं कि प्रदूषण, मानव जाति के लालच और प्रिय क्रिया-कलापों का अप्रिय परिणाम है।

खुले में फेंके गए कूड़े से वायु, मृदा और जल प्रदूषण का खतरा पैदा होता है। ठोस अपशिष्ट, अकार्बनिक एवं कार्बनिक पदार्थों के साथ जैवविघटनीय यौगिक होते हैं। यह यौगिक मिट्टी के रासायनिक एवं भौतिक गुणों को बदल देते हैं जिससे वे खाद्य श्रृंखला में मिलकर मनुष्यों और जानवरों में गंभीर बीमारी उत्पन्न करते हैं।

ठोस कूड़ा सडकर दुर्गंध पैदा करता है तथा मिट्टी के छिद्रों में जमकर जल रिसाव बंद कर देता है। कूड़े में मिली भारी धातुयें, भूगर्भीय जल स्त्रोतों को विषैला बना देती हैं। इस तरह के प्रदूषित जल को पीने से लोगों में चर्म रोग, रक्तचाप, हृदय, गुर्दे, लीवर के रोगों सहित कैंसर जैसी तमाम गंभीर बीमारियां हो जाती हैं।

लैंडफिल साइट पर तो और बुरी स्थिति दिखाई देती है। यहाँ किया जाना वाला कूड़ादहन, वायु प्रदूषण बढाने में एक बड़ी भूमिका निभाता है। साथ ही अपशिष्ट प्रबंधन ने हजारों अनौपचारिक कूड़ा बीनने वालों को पैदा कर दिया है जो अपशिष्ट के संग्रहण, पृथक्करण (सॉर्टिग) और व्यापार द्वारा अपनी आजीविका अर्जित करते हैं। विभिन्न अनुमानों के अनुसार, रैगपिकर्स प्रति वर्ष नगर निगम का लगभग 14% बजट बचाते हैं।

अपशिष्ट प्रबंधन

अपशिष्ट प्रबंधन, परिवहन, संसाधन, पुनर्चक्रण या अपशिष्ट के काम में प्रयोग की जाने वाली सामग्री का संग्रह है। अपशिष्ट में उस सामग्री का समावेश होता है जो मानव गतिविधियों से बनती हैं और ये इसलिए किया जाता है ताकि मानव पर उस के स्वस्थ, पर्यावरण या सौंदर्यशास्त्र. पर इसका प्रभाव कम हो। अपशिष्ट प्रबंधन संसाधन निकालने के लिए भी होता है अपशिष्ट प्रबंधन में शामिल होते हैं। ठोस, तरल, गैस या रेडियोधर्मी पदार्थ प्रत्येक पदारथ के साथ, अलग अलग तरीकों और विशेषज्ञता का प्रयोग किया जाता है।

अपशिष्ट प्रबंधन का तरीका विकसित और विकासशील देशों, आवासीय और औद्योगिक निर्माताओं के लिए अलग-अलग होता है। महानगरीय क्षेत्रों में गैर-खतरनाक आवासीय और संस्थागत अपशिष्ट प्रबंधन की जिम्म्मेदारी स्थानीय अधिकारियों की होती है, जबकि वाणिज्यिक और औद्योगिक अपशिष्ट की जिम्मेदारी आमतौर पर कूड़ा उत्पन्न करने वाले की होती है।

ठोस कचरे की मात्रा तथा श्रेणीकरण के पश्चात् इसका विभिन्न चरणों में व्यवस्थापन किया जाता है। यह प्रयत्न किया जाता है, कि अधिकाधिक कचरा उसके उत्पन्न होने के स्त्रोत पर ही अलग कर एकत्र किया जाये ।

अलवर जिले में ठोस अपशिष्ट

अलवर नगर पालिका क्षेत्र में प्रतिदिन 130 टन कचरा इकठ्ठा होता है। यह कचरा शहर के बाहर पूर्व में पहाड़ी के तलहटी में गुलेटा ग्राम, तहसील रामगढ़ में ड़ाला जाता है। यहाँ सफाई कार्य हेतु ठेकेदार के कर्मचारियों सहित कुल 600 कर्मचारी लगे हुए है।

शहर के पुराने आबादी वाले 12 वार्डो में नगर परिषद के कर्मचारियों द्वारा दिन में एक बार सफाई की जाती है। शहर के अन्य 38 वार्डो में सफाई की व्यवस्था ठेकेदारों के जिम्मे है, जहाँ सप्ताह में दो से तीन बार सफाई होती है। मुख्य सड़कों की सफाई दिन में एक बार की जाती है।

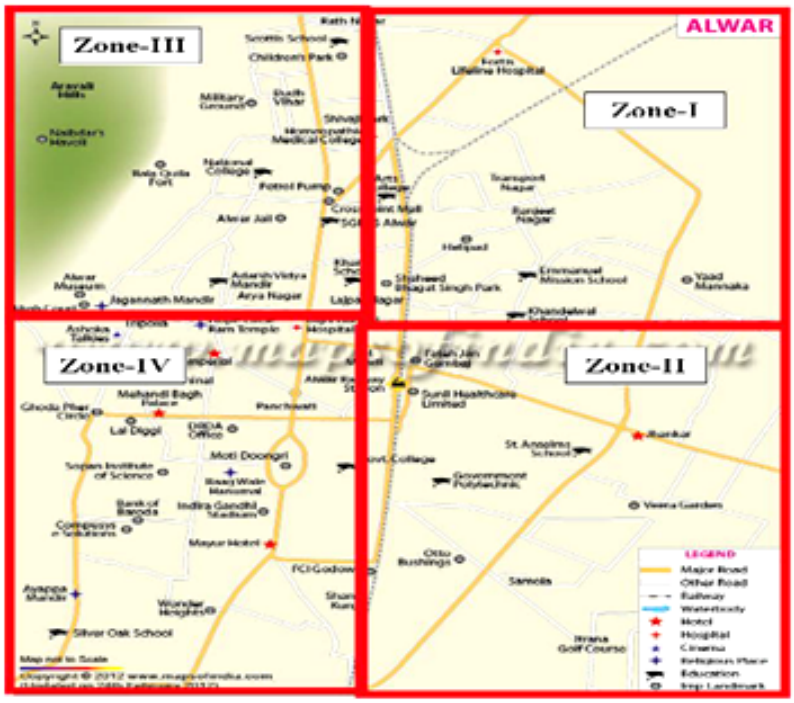

चित्रः अलवर शहर के जोनल एरिया

राज्य सरकार द्वारा, वैज्ञानिक पद्धति से कचरा निस्तारण हेतु पूर्व में दिल्ली रोड के दक्षिण में अग्यारा ग्राम के पास एक स्थल निश्चित किया गया है, जहाँ निर्माण कार्य चल रहा है। अस्पतालों के जैविक कचरे का निस्पादन, मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र के पूर्व में स्थित ग्राम घूनीनाथ में, होसबिन इन्सवेटर लिमिटेड कम्पनी द्वारा स्थापित संयत्र में किया जा रहा है। मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र का सामान्य ठोस अवशिष्ट पदार्थ, लेलैण्ड फैक्टी के पूर्व में रीकों द्वारा निर्धारित स्थल में किया जा रहा है। परन्तु यह स्थल वैज्ञानिक ढंग से विकसित नहीं किया गया है।

सारणीः अलवर शहर के कूड़े में मिश्रित वस्तुएं

क्र. संख्या	*कचरे में शामिल वस्तुएं*	*मिश्रण में मात्रा(%)*
1	प्लास्टिक	5.63
2	बचा खाद्य	36.73
3	कागज उत्पाद	9.82
4	लकड़ी	1.43
5	रबर	1.33
6	पत्तियां	5.70
7	कपडे	2.36
8	अन्य’	6.98
9	बेकार चीजें	12.63
10	अलग किया ठोस कूड़ा	17.39
	कुल	100.00

औद्योगिक क्षेत्र के नुकसानदायक कचरे को उदयपुर में स्थित संयंत्र में भेजा जाता है। बड़ी औद्योगिक इकाईयों ने अपने यहाँ उत्पन्न होने वाले द्रव अवषिष्ट पदार्थ के निष्पादन के लिए स्वयं के संयंत्र लगाये हैं, अन्य लघु एवं माध्यम औद्योगिक इकाईयों के कचरे के निष्पादन के लिए रीको द्वारा एक संयुक्त उपचार संयंत्र का बनाया जा रहा है।

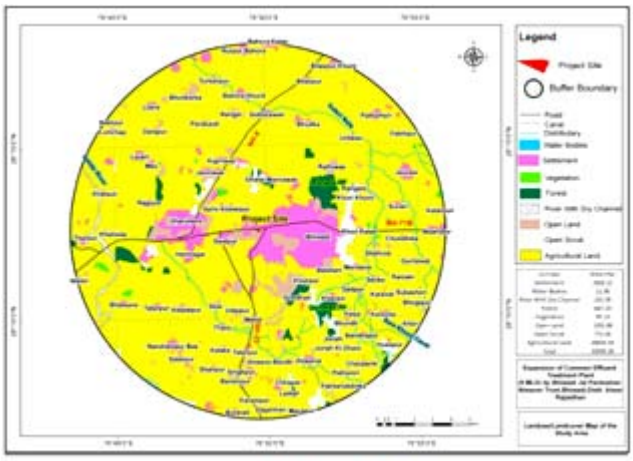

Figure : Landuse/ Landcover of 10 km radius

सीवरेज एवं जल निकास व्यवस्था

शहर के अधिकांश क्षेत्रों में अभी सीवरेज व्यवस्था उपलब्ध नहीं है। वर्तमान में सीवरेज योजना का कार्य, राजस्थान शहरी ढ़ाचा विकास संस्थान द्वारा किया जा रहा है। सम्पूर्ण शहर के लिए एक सीवरेज योजना स्वीकृत है, जिसके निस्तारण के लिए अग्यारा ग्राम के पास एक सीवरेज ट्रिटमेंट प्लांट का निर्माण किया जा रहा है। सीवरेज योजना के अन्तर्गत नगर विकास न्यास की योजनाएँ, आवासन मण्डल की आवासीय कॉलोनियाँ एवं विकसित शहरी क्षेत्र आदि सम्मिलित किये गये है।

ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की चुनौतियाँ

अधिकांश नगरपालिकाएँ बिना किसी विशेष उपचार के, ठोस अपशिष्ट को खुले डंप स्थलों पर एकत्रित करती हैं। अक्सर इस प्रकार के स्थलों से काफी बड़े पैमाने पर रोगों के जीवाणु पैदा होते हैं और आस-पास रहने वाले रोग भी इससे काफी प्रभावित होते हैं। इस प्रकार के स्थलों से जो दूषित रसायन भूजल में मिलता है वह आम लोगों के जन-जीवन को काफी नुकसान पहुँचाता है।

चित्र : MLD CETP

भारत में अपशिष्ट प्रबंधन क्षेत्र में मुख्यत: अनौपचारिक श्रमिक शामिल हैं, जिनमें अधिकांश लोग शहरी गरीब वर्ग से आते हैं। अनौपचारिक श्रमिक होने के कारण इन लोगों को किसी भी तरह की सरकारी सुरक्षा नहीं मिल पाती है।

लैंडफिल ने कई लोगों को नौकरियां दीं, लेकिन गांव को कई बीमारियां भी दी हैं। जिस कूड़े का कोई हिसाब-किताब नहीं मिलता, वह गलियों में पड़ा रहता है या कूड़ा फेंकने के स्थानों में डाल दिया जाता है। कूड़ा फेंकने के स्थान, भूमिगत जल और वायु के प्रदूषण के प्रमुख स्रोत हैं। कूड़े के इन ढेरों में आग लगने, इनकी स्थिरता और कूड़े से इन स्थानों की खूबसूरती खराब होने की भी समस्या उत्पन्न होती है।

निष्कर्ष

जनसंख्या वृद्धि, औद्योगिक क्रांति व उपभोक्तावादी प्रवृत्ति के परिणाम स्वरुप अपशिष्ट उत्पादन की मात्रा अत्यधिक बढ़ गई है। घरेलू, व्यवसायिक, शैक्षणिक, संस्थानिक व औद्योगिक गतिविधियों द्वारा उत्पन्न कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थ ठोस अपशिष्ट कहलाते हैं।

जनता में जागरूकता की कमी, सरकारी उपेक्षा, अदूरदर्शिता और शहरी नियोजन के अभाव ने भारत को कचरे से जाम नालियों, जल-निकायों, और नदियों को कूड़े के ढेर में बदल दिया है। पूरे भारत में लगभग 48 मान्यता प्राप्त लैंडफिल हैं, जिसने लगभग 5,000 एकड़ भूमि को कवर किया हुआ है। इस भूमि का मूल्य लगभग 100,000 करोड़ रुपये है। भारत में प्रति वर्ष लगभग 275 मिलियन टन अपशिष्ट उत्पन्न होता है। जिसमें से लगभग 20-25 प्रतिशत का ही उपचार किया जाता है और बाकि कचरे का अधिकांश हिस्सा अनुपचारित रहता है।

वर्तमान में तेजी से बढ़ते शहरीकरण तथा औद्योगिकीकरण के कारण शहरों व कस्बों में ठोस अपशिष्ट की समस्या बढ़ती जा रही है, जो मानव स्वास्थ्य तथा पर्यावरण दोनों के लिये ही चुनौती उत्पन्न कर रही है। इस चुनौती से निपटने के लिये आवश्यक है कि ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की ऐसी प्रणाली को अपनाया जाए जो बेहतर ठोस अपशिष्ट प्रबंधन में सहयोगी होने के साथ पर्यावरण के भी अनुकूल हो।

ठोस अपशिष्ट के खराब प्रबंधन से समस्याएं पैदा होती हैं, जो पारंपरिक पर्यावरणीय सीमाओं को पार करती हैं और विभिन्न तकनीकी समाधानों के वायु, जल और मिट्टी प्रदूषण में योगदान करती हैं।

विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि नवीनतम 'म्यूनिसिपल सॉलिड वेस्ट (मैनेजमेंट एंड हैंडलिंग) नियम- 2016' के अनुसार, ठोस कचरे के पृथक्करण, संग्रहण, परिवहन, उपचार और निपटान की दिशा में कदम उठाने के लिए सरकार के स्तर पर उचित निगरानी की तत्काल आवश्यकता है। अलवर शहर में 2.27 मेगावाट ऊर्जा के लिए अपशिष्ट की अच्छी क्षमता है। उत्पादित बिजली का उपयोग या तो राजस्व वसूली के लिए, अथवा शहर के स्थानीय निकाय प्रशासन द्वारा शहर में विद्युतीकरण के लिए किया जा सकता है।

सन्दर्भ

- अलवर का मास्टर प्लान 2013
- जिला कलेक्टर कार्यालय, अलवर
- सूचना जनसंपर्क विभाग, अलवर
- यांत्रिक जैविक उपचार Archived 2007-09-27 at archive-today वेल्श विधानसभा (2005) यांत्रिक जैविक उपचार, इन्वायरमेंट कंट्रीसाइड एंड प्लानिंग वेबसाइट, वेल्श विधानसभा
- "पर्यावरण और ऊर्जा अध्ययन संस्थान अंक संक्षिप्त". मूल से 17 जुलाई 2011 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 15 दिसंबर 2010.
- *"Why should I segregate my waste properly? EMS". www.em-solutions.co.uk.* अभिगमन तिथि 2021-07-17.
- *Arancon, Rick Arneil D.; Lin, Carol Sze Ki; Chan, King Ming; Kwan, Tsz Him; Luque, Rafael (2013). "Advances on waste valorization: new horizons for a more sustainable society". Energy Science & Engineering* (अंग्रेजी में). 1 (2): 53-71. आइ.एस.एस.एन. 2050-0505. डीओआइ:10.1002/ese3.9.
- *Guidelines for National Waste Management Strategies Moving from Challenges to Opportunities (PDF). United Nations Environmental Programme. 2013. ISBN 978-92-807-3333-4.*
- *Gandy, Matthew (1994). Recycling and the Politics of Urban Waste. Earthscan. ISBN 9781853831683.*

रामधारी सिंह दिनकर के साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० संचिता मिश्रा

अध्यक्षा हिन्दी विभाग, श्री बरखण्डी महाविद्यालय, शिवगढ़ रायबरेली

युगदृष्टा राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' जी बहुमुखी प्रतिमा के धनी एवं विचारों के कुषल अभिव्यक्ति कर रहा है। डॉ. ललिता अरोड़ा ने उनके व्यक्तित्व के बारे में लिखा है। "रामधारी सिंह दिनकर साहित्य समाज के ऐसे महान कवि हैं, जिनका गद्य पर विचार, कहानी, बाल साहित्य तथा अनेक प्रकार की गद्य रचनाओं के वे प्रणेता हैं।" उनके सम्पूर्ण साहित्य का अनुशीलन करने पर इस निष्कर्ष पर सहज रूप में पहुंचा जा सकता है कि उन्हें केवल कवि मानना और उनकी कविता के आधार पर मूल्यांकन करना अधूरा एवं एकांगी होगा। वे एक प्रतिभावान कवि तो हैं ही इसके साथ ही साथ समर्थ गद्यकार भी हैं। उन्होंने संस्मरण जीवनी यात्रा साहित्य, डायरी आदि गद्य की नवीन विधाओं का भी सषक्त प्रयोग किया है। इस प्रकार दिनकर जी के गद्य साहित्य में जितना वे विध्य एवं अनेकरूपता पद्य-साहित्य में उतनी विविधता और अनेकरूपता उपलब्ध नहीं होती।''

सन् 1924 से लेकर सन् 1974 तक यानी 50 वर्षों तक दिनकर जी एक प्रखर कवि साहित्यकार और चिन्तक के रूप में हिन्दी जगत में व्याप्त रहे और इस अवधि में उनकी कविता में कई मोड़ आये। दिनकर जी कवि पहले हैं और गद्यकार बाद में उनका गद्य काफी विविधपूर्ण है। आलोचना से लेकर यात्रा विवरण संस्मरण शब्दचित्र, बोधकथा, ललित निबंध, भाषण आदि कितने ही रूप हैं। दिनकर जी की गद्य कृतियों की संख्या 28 के आसपास है। 'रेती के फूल', 'मिट्टी की ओर', 'अर्धनारीश्वर' 'काव्य की भूमिका', 'वट पीपल, साहित्यमुखी आदि निबन्ध संग्रह है।

दिनकर जी के कृतित्व का सम्पूर्ण मूल्यांकन करते समय उनके बाल साहित्य का उल्लेख 'धूप-छाँह' इनके तीन बाल काव्य संग्रह हैं।

इस प्रकार दिनकर जी ने सन् 1928 से सन् 1974 तक यानी पाँच दशकों तक काव्य-साधना करते हुये। हिन्दी को कुल 62 कृतियाँ भेट की हैं। जिनमें गद्य एवं काव्य रचनायें सम्मिलित हैं। दिनकर जी की प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है

1. **रेणुका (सन् 1935 ई.):** 'रेणुका' कविवर रामधारी सिंह 'दिनकर' जी सन् 1929 से सन् 1935 ई. बीच लिखी गयी कुल 33 कविताओं का प्रतिनिधि संग्रह है। जिसका सन् 1935 ई. में हुआ था। 'रेणुका' के आरम्भ के चार पृष्ठों में मंगल आवाहन में सृष्टि के विराट गायक का गान किया गया है। संग्रह की शेष कवितायें तीन खण्डों में विभाजित की गयी हैं। पहला खण्ड 'व्योम कुजों की परीक्षा' का है। जिसमें इसके साक्ष्य 'ताण्डव', 'हिमालय', 'प्रेम का सौदा', 'कविता की पुकार', 'बोधिसत्व', 'मिथिला', 'पाटलिपुत्र की गंगा' से 'कस्मे देवाय' तथा 'बागी' शीर्षक की नौ कवितायें हैं। 'रेणुका' की कविताओं में कवि की दूसरी भावधारा शृंगार मूलक सौन्दर्य चेतना की या यथार्थपरक कला चेतना की है। इस भाव-धारा का एक तट प्रवृत्ति का और दूसरा नारी। 'कविता की पुकार', 'कवि कलातीर्थ निर्धारिणी', 'केवल मिथिला में शंख', क्षमा-संध्या और फूल प्रकृति से संबंधित रचनायें हैं। जिनमें कवि की कविता नालंदा और वैशाली के खण्डहरों से बाहर निकल कर वन फूलों की ओर आना चाहती है। 'रेणुका' की कुछ कविताओं में दिनकर जी ने धरती को छोड़कर परियों के देश में भी भ्रमण किया है। रेणुका में कवि की भाषा स्वच्छता और स्पष्टता का गुण लिये हुए हैं। उसमें सबल और स्वच्छ अभिव्यक्ति के प्रति सम्मान है। इसीलिये उनकी कविताओं में सर्वत्र ओज एवं प्रसाद का सम्मिश्रण है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि रेणुका की प्राय: समस्त रचनायें प्रगतिवादी एवं क्रांतिकारी भावना से युक्त है। इसमें भावों के अनुसार कवि का स्वाभाविक ओज सरल भाषा में व्यक्त हुआ है।
2. **हुंकार (सन् 1938 ई.):** 'हुंकार' आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय विचारधारा को व्यक्त करने वाली चेतना के विकास की महत्वपूर्ण कड़ी है। जिसका प्रकाषन सन् 1938 ई. में हुआ था। इस संग्रह में कुल 28 कवितायें संकल्पित है। 'हुंकार' में दिनकर जी एक उग्र क्रांतिकारी कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। हुंकार की प्रस्तावना को बढ़ने से यह चलता है कि कवि अतीत से सुनहले सपनों को छोड़कर वर्तमान के संघर्ष में भाग लेना चाहता है। इस संग्रह की अधिकांश कविताओं में राष्ट्रीयता देशप्रेम और क्रांति का स्वर है। क्रांतिकारों भावना से ओतप्रोत अलोकधन्वा अनलकिरीट दिनम्बर विषथगी फूलों के पूर्वजन्म, स्वर्गदहन चाह एक भीख प्रणीत और व्यक्ति सिपाही के त्यागमय जीवन का सभ्य वर्णन किया है। 'हुंकार' की कविताओं में कवि ने समाज मे रहकर समाज की विषम परिस्थितियों का चित्रण किया है।

इस प्रकार कवि दिनकर जी राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के युग में 'हुंकार' की रचना द्वारा क्रांति की शक्तिशाली पुकार को लेकर अवतरित हुये थे। यद्यपि कवि ने क्रांति की साधन के रूप में अपनाया है तदापि उनका साध्य तो लोकमंगल की भावना ही रहा है। 'हुंकार' में राष्ट्रीयता और क्रांतिकारिता से ओतप्रोत रचना है।

3. **रसवंती (सन् 1940 ई.):** 'रसवंती' ने दिनकर जी ने छायावादी विचारधाराओं का ही अनुकरण किया है। अन्य कवियों की ऐसी मान्यता है कि श्रसवंतीश् को जनता के समक्ष रखने में दिनकर को संकोच हुआ होगा। चक्रवाल की भूमिका में जैसा कि उन्होंने स्वयं ही लिखा है- ''संस्कारों से मैं कला के सामाजिक पक्ष का प्रेमी अवश्य बन गया था किन्तु मन मेरा भी चाहता था कि गुर्जन दुर्जन से दूर रहें और ऐसी ही कविताएं लिखू जिनमें कोमलता और कल्पना का उभार हो यही कारण था कि जिन दिनों श्हुकार की कविताएं लिखी जा रही थी उन्हीं दिनों 'रसवंती' और छन्दगीत की भी रचना कर रहा था और अब संयोग की बात है कि सन् 1939 में ही ये तीनों पुस्तकें और सुयष तो मुझे हुंकार से ही मिला किन्तु आत्मा मेरी अब भी 'रसवंती' में बसती है।'' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है 'रसवंती' के शृंगार चेतना विषयक कविताओं में मुख्यत: दिनकर जी की यौवन की रसिकता एवं सौन्दर्य भावना की अभिव्यंजना हुई है। 'रसवंती' 35 से 40 के बीच लिखी दिनकर की 32 कविताओं का संकलन है। रसवंती में संग्रही कविताओं में 'गीत', 'अगीत' 'प्रीति', ...की कोयल' ...धूम', 'रास की मुरली', 'पावसगीत', 'सावन की प्रतीक्षा' और 'शेषगान' शीर्षक कविताएं शृंगार रस से ओतप्रोत है। जिसमें कवि की कोमल भावनाओं की मधुर अभिव्यक्ति है। 'कवि' नामक कविता में कवि ने अपने जीवन की व्यक्तिगत भावों को लेकर की है। 'मानवतीत' कविता में वे कवि के व्यक्तित्व और गुणों की चर्चा करते हैं। 'रसवंती' में सरस भावों की रसधारा प्रवाहमान हुई है। भाषा सौष्ठव और अभिव्यंजना का सरस प्रवाह आदि से अतं तक पाठको मुग्ध बनाता है। इस कृति में शृंगार और करुणा का समिश्रण है। अलंकारों की दृष्टि से देखा जाये तो रसवंती में अनुप्रास, उपमा, और रूपक अलंकारों के साथ प्रसाद गुप्ता का प्रयोग किया है। 'रसवंती' की सम्पूर्ण कविताओं में कवि के शृंगारी भावना की अभिव्यक्ति में कवि को पूरी सफलता मिली है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता कि श्यथा नाम तथा गुण से परिपूर्ण रसवंती कवि के मधुर भावों से युक्त रचना है।

4. **द्वन्द्वगीत (सन् 1939):** 'द्वन्द्वगीत' दिनकर जी की रचनाओं में एक विशेष प्रवृत्ति की रचना है जिसका प्रकाषन सन् 1939 ई. में हुआ यह रूबाइयों का संग्रह है। कवि के अनुसार "इन वर्षो मेरे अध्ययन चेतना और अनुभूति का जो रूप रहा छन्दगीत के पद उसकी महीन खुशबू में बसे हुए हैं।'' ''द्वन्द्वगीत में मानव हृदय में उदभूत होने वाले अंतर्द्वद्वों का काव्यमय चित्रण है। इस कृति में मानव की द्वन्द्वात्मक स्थिति का सुन्दर चित्रण है। जीवन की नश्वता का चित्रण इसमें अनेक प्रकार से किया गया है। 'द्वन्द्वगीत' में कवि रहस्यवादी सा दिखाई देता है। इसमें आकार कवि दिनकर एक दृष्टा चिन्तक मनीषी के रूप में पाठकों के सम्मुख आते हैं। इस कृति में कवि के जीवन में आने वाले तथा लोकहित के मार्ग में आने वाले क्लेषों एवं दुखों का सानंद स्वागत करता है। इस प्रकार द्वन्द्वगीत दिनकर जी की समग्र चिन्तनधारा की पृष्ठभूमि है, कवि की भावनाएं सरल सुबोध भाषा में अभिव्यक्ति हुई है। लगता है कवि के भाव उपन्यास मुखरित होकर छंदों में गुंथे गए हैं। इस कृति में छंदों की एकता अवश्य है, इसके सभी पद 'तारक छद' में लिखे गये हैं। डॉ. हरदयाल ने द्वन्द्वगीत के विषय में उचित ही लिखा है-''द्वन्द्वगीत में कोई सुव्यवस्थित एवं गम्भीर जीवन दर्षन उभर कर सामने नहीं आता, और न ही अनुभूति का कोई सुशृंखलित रूप उभरता है।''

5. **सामधेनी (सन् 1947 ई.):** इस संग्रह का नाम 'सामधेनी' नाम सार्थक है। डॉ. विष्वनाथ ने सामधेनी के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुये लिखा है-"हमारे प्राचीन साहित्य में 'सामधेनी' वेद की ऋचाओं में कहा गया है। हमारे प्राचीन साहित्य में ऋचाओं को पढ़कर अग्नि प्रज्जवलित किया जाता था। दिनकर जी ने स्वाधीनता के यज्ञ में सम्मिलितल होने के लिए नवयुवकों का आवाहन करते हुए जो गीत लिखे हैं उनका भी नामकरण सामधेनी ठीक ही किया है। 'सामधेनी' एक प्रकार से युगवाणी है। इसमें युग की राजनीतिक परिस्थितियों का चित्र है, और विद्रोह एवं क्रांति का स्वर विशेष रूप से मुखरित हुआ है। 'सामधेनी' में दिनकर जी अन्तर्राष्ट्रीय चेतना को भी लेकर उपस्थित हुये हैं। परन्तु देश की स्वातंत्रय चेतना के प्रति भी वे सजग हैं। सामधेनी में राष्ट्रीय भावों की व्यंजना के साथ-साथ जनता के सुख दु:ख को हर्ष विवाद को भी अभिव्यक्ति मिली है। इस संग्रह में प्रथम दृष्टया 'अचेतन मृति अचेत शिला' मंगलाचरण रूप है, जिसमें कवि ने ईश्वर से प्रार्थना किया है। वह विराट शिल्पी अपने स्पर्श से अचेतन पदार्थो को भी चेतनावान बना देता है। मिट्टी को फूल और शिला को सजीव प्रतिमा इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'सामधेनी' की कविताओं में विविधता है, कहीं-कहीं अवसाद और वेदना को वाणी दी गयी है। कुछ तो कवितायें देश प्रेम एवं विदोह की व्यंजक है।

6. **बापू (सन् 1947 ई.):** 'बापू' दिनकरजी की छोटी सी काव्य कृति है। जिसका प्रकाषन 1947 ई. है। 'बापू' की रचना कुरुक्षेत्र के पश्चात् हुई। इस काव्य की रचना उस समय हुई जब महात्मा गांधी जी जीवित थे। बापू के प्रथम खण्ड में महात्मा गांधी का स्तवन किया गया है। किस प्रकार देश की स्वतंत्रता के लिए जनता ने और बापू ने अलग-अलग लड़ाइयाँ लड़ी थी। बापू के प्रथम खण्ड में 'महात्मा गांधी' का स्तवन लिखा गया है। वैसे इसके पूर्व भी दिनकर जी ने अपने एक निबेध महात्मा जी और मेरा सृजन में लिखा है-"गांधी जी के दर्शन मैंने बहुत पहले किए थे जब मेरी उम्र बारह साल थी, बापू शीर्षक कविता दिनकर जी की एक लम्बी कविता है। जिसमें कवि की इसी विस्मय मिश्रित श्रद्धा की अभिव्यक्ति है। काव्य के आरम्भ में कवि अंगारे भरे यौवन की वंदना करते हैं। परन्तु बापू तो उनसे भी अलौकिक एवं आध्यात्मिक है। कवि के काव्य में अंगारे भी लजाते हैं यथा "संसार पूजता उन्हें तिलक रोली फूलों के हारों से मैं उन्हें पूजता आया हूँ बापू। अब तक अंगारों से।इस प्रकार निष्कर्षत: बापू

कृति में दिनकर जी की बापू के कार्यो के प्रति आस्था और उनकी मृत्यु के शोक से उदभूत क्रंदन सुनाई देता हैं कृति की भाषा-षैली लक्षणा शक्ति से ऊपर है। उनकी भाषा ने संग्रह को मधुर और ग्राह्य बनाया है। ओज एवं गुण सम्पूर्ण काव्य में विद्यमान है।

7. **इतिहास के आंसू (सन् 1957 ई.):** 'इतिहास के आंसू' में दिनकर दिनकर जी इस प्रारम्भिक ऐतिहासिक कविताएं सग्रहीत है। इन कविताओं का रचनाकाल सन् 1932 से 1948 है। सन् 1935 के बाद की रचित ऐतिहासिक कविताओं में कवि केवल अतीत के गौरव की स्मृतिमात्र से संतुष्ट नहीं होता वरन उनसे प्रेरणा लेकर भारत माता की गुलामी की बेड़ी काटने की प्रेरणा भी देता है।

   इस प्रकार दिनकर जी की रचनाओं में हमें भारतीय अतीत के साथ कवि के रागात्मक संबंध का परिचय मिलता है। इसमें पाटलिपुत्र, मगध, मिथिला, वैशाली और राजस्थान आदि के अतीत की गौरव पूर्ण स्मृतियों को जगाकर कवि ने 'नवजागरण' की भावना को उदीप्त करने का प्रयास किया हैं इन रचनाओं के माध्यम से कवि में पुनरुत्थान की ज्योति जलाई है। निष्कर्षत: यही कहा जायेगा कि कवि भारत के अतीत पर आस्थावान है। उसके अन्दर 'जननी जन्मभूमिष्च गरीयसीश् का भाव जगा है। उसे अपनी जन्मभूमि पर गर्व है और उस गर्व के उस गौरव को पुन: लौटा लेने की उनमें जबरदस्त है।

8. **धूप और धुआँ (सन् 1951 ई.):** धूप और धुआं दिनकर की 31 कविताओं का छोटा सा संकलन है। इसमें कवि की 1947 से 1951 तक की रचनायें समाविष्ट है। 'धूप और धुआं' में उन दिनों की रचनायें हैं जब दिनकर जी राजकीय सेवा से पूर्णत: निवृत्त हो गये थे।

9. **दिल्ली (सन् 1954 ई.):** दिल्ली को लक्ष्य करके समय-समय पर बिरचित कविवर दिनकर जी की चार ओजस्वी कवितायें हैं। जिसका प्रकाशन सन् 1954 ई. में हुआ था इस संग्रह में नई दिल्ली के प्रति, दिल्ली ओर मास्कोय 'हक की पुकार' एवं भारत का रेशमी नगर आदि संग्रहित हैं।

राजस्थान में पर्यटन की नयी संभावनाएं और उनके भावी प्रभाव

डॉ० अंजू बाला

(शोध निर्देशिका), सह-आचार्य (अर्थशास्त्र विभाग), गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर(राज.)

सुशील कुमार मीणा

शोधार्थी (अर्थशास्त्र विभाग), गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर(राज.)

सारांश

राजस्थान की भौगोलिक, पारिस्थितिकीय, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विविधताओं के कारण इस राज्य की अर्थव्यवस्था में पर्यटन उद्योग का बड़ा महत्त्व है।

राजस्थान का मरुस्थल औद्योगिक संभावनाओं से भरपूर है। प्रदेश का शांत औद्योगिक वातावरण, अन्य राज्यों से संपर्क, भूमि की उपलब्धता के साथ कुशल सस्ते श्रम की आपूर्ति राज्य को आकर्षक बनाती है।

राज्य में सामान्य पर्यटन के साथ-साथ इको टूरिज्म को प्रोत्साहित कर न सिर्फ पर्यटन उद्योग को बढ़ाया जा सकता है बल्कि प्रदेशवासियों के लिए रोजगार के अनन्य अवसर भी प्राप्त किए जा सकते हैं। इसके साथ ही प्रदेश की जैव विविधता, वन और वन्य जीव संरक्षण में भी प्रदेशवासियों की सहभागिता को सुनिश्चित किया जा सकता है।

पिछले कुछ वर्षों में इको-टूरिज्म परिदृश्य में व्यापक बदलाव आने की वजह से नई संभावनाएं उत्पन्न हुई हैं। और इस क्षेत्र में किए गए सीमित कार्यों के उत्साहवर्धक परिणाम भी सामने आए हैं।

प्रदेश सरकार इस समय रोजगार संभावनाओं के सृजन पर कार्य कर रही है, ऐसे में कई अहम् नीतिगत प्रयास किये जा रहे। माना जा रहा है की इनमे नयी पर्यटन नीति, मील का पत्थर साबित होगी। प्रस्तुत शोध लेख राजस्थान में पर्यटन की नयी संभावनाओं और उनके प्रभाव पर एक अध्ययन हैं।

मूल शब्दः राजस्थान, पर्यटन, उत्पाद, रोजगार, संभावनाएं, प्रभाव, भविष्य

परिचय

पर्यटन उद्योग को दुनिया के सबसे पुराने उद्योगों में से एक माना जाता है। प्राचीन और मध्यकाल में इस उद्योग से जुडी गतिविधियाँ मुख्य रूप से शासकों या राष्ट्रों के राजाओं तक ही सीमित थीं। कुछ साहसी पुरुष भगवान की तलाश में या तीर्थयात्रा के उद्देश्यों से भी नए सुदूर स्थानों की यात्रा करते थे । आधुनिक पर्यटन की अवधारणा अपेक्षाकृत नई और अधिक परिष्कृत है। वर्तमान में इसे अवकाश और धुआं मुक्त उद्योग के रूप में परिभाषित किया गया है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास तथा परिवहन और संचार के क्षेत्र में हुए क्रांतिकारी बदलावों ने पूरी दुनिया में पर्यटन व्यापार के विकास में भारी योगदान दिया है। भारत में भी पर्यटन उद्योग का काफी तेजी से विकास हुआ है। भारत में एक प्रमुख वैश्विक पर्यटन स्थल बनने की अपार संभावनाएं हैं और भारतीय पर्यटन उद्योग इस क्षमता का पूरी ताकत से दोहन करने की कोशिश कर रहा है। राजस्थान जैसे राज्य में, देश का पर्यटन मॉडल राज्य बनने के लिए जरूरी सभी तत्व और संभावनाएं विद्यमान हैं।

पर्यटन एक बुनियादी ढांचा आधारित सेवा-उत्पाद है। यह उद्योग यात्रा, आवास, भोजन और मनोरंजन जैसे उत्पादों द्वारा पर्यटकों की शारीरिक और मानसिक जरूरतों की आपूर्ति करता है। पर्यटन उद्योग सारी दुनिया में एक महत्वपूर्ण उद्योग के रूप में विकसित हुआ है और शीर्ष तीन उद्योगों में शामिल है। दुनिया के कई देशों की अर्थव्यवस्था काफी हद तक पर्यटन उद्योग पर निर्भर है । पर्यटन के विकास से संचार, परिवहन, आवास जैसी बुनियादी और अन्य उपभोक्ता सेवाएं सीधे जुडी हुयी हैं। पर्यटन का विकास स्थानीय लोगों के जीवन स्तर में वृद्धि, स्थानीय हस्तशिल्प के विकास और यहां तक कि राष्ट्र की धनात्मक छवि बनाने का लाभ देता है।

सांस्कृतिक पर्यटन की संभावनाएं

संस्कृति हमेशा यात्रा का एक प्रमुख उद्देश्य रही है। सांस्कृतिक पर्यटन की मूल संकल्पना है कि हम सब अपनी विरासत और अपनी संस्कृति को पहचानें, उसे जानें और उसका संरक्षण करें। इस प्रकार सांस्कृतिक वैविध्य की सुन्दरता को बनाए रखते हुए हम आगंतुकों के साथ इसे साझा कर सकते हैं।

भविष्य में पश्चिमी राजस्थान को सांस्कृतिक पर्यटन के नए केंद्र के रूप में स्थापित करने की योजना है। इसके लिए जोधपुर, बाड़मेर, जैसलमेर और बीकानेर जिलों का नया पर्यटक सर्किट बनाया जाएगा। इससे इन जिलों की सांस्कृतिक धरोहर को देश-विदेश में एक नई पहचान मिलेगी। इस सर्किट के बनने से देशी-विदेशी पर्यटकों को यहां की सांस्कृतिक विरासत (इन्टेन्जिबल कल्चरल हैरिटेज) के नए अनुभव मिलेंगे। पश्चिमी राजस्थान में सांस्कृतिक पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए पर्यटन विभाग की ओर से यूनेस्को के सहयोग से नया पर्यटक सर्किट बनाया जाएगा। नया पर्यटन सर्किट बनने से पश्चिमी राजस्थान के जोधपुर, बाड़मेर, जैसलमेर और बीकानेर जिलों में लोगों का सशक्तिकरण और पर्यटन बाजार तक सीधी पहुंच हो सकेगी। कला, कलाकारों व गांवों का विकास कर करीब 1500 ग्रामीण क्षेत्र के कलाकारों को लाभान्वित किया जाएगा। इसके साथ ही इन क्षेत्रों में मौजूद सांस्कृतिक व हस्तकला का सरंक्षण और लोककलाओं को व्यापक प्रचार-प्रसार भी किया जाएगा।

वानिकी पर्यटन

वन हमेशा से इंसानों के लिए पर्यावरण लाभों के साथ जीवन के लिए जरुरी वन उपज का महत्त्वपूर्ण स्त्रोत रहे हैं।

जंगलों के साथ हमारा अटूट सम्बन्ध है। लेकिन औद्योगिक विकास के साथ जहाँ जंगल तेजी से घट रहे हैं, वहीँ वन और पर्यावरण के नजदीक जाने का आकर्षण लोगों में बढ़ रहा है।

आज पर्यटकों में एक बड़ी संख्या ग्रामीण और पर्यावरण पर्यटकों की है। राजस्थान में तीन टाइगर रिजर्व मुकंदरा हिल्स, रणथम्भौर एवं सरिस्का हैं और भरतपुर के समीप केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान है, जो सुदूर साइबेरिया से आने वाले सारसों सहित और बड़ी संख्या में स्थानीय प्रजाति के पक्षियों के संरक्षित-आवास के रूप में विकसित किया गया है।

1985 में यूनेस्को द्वारा केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान को विश्व धरोहर का दर्जा दिया गया था।

राजस्थान सरकार नई वन नीति तैयार कर रही है जो अगले 10 साल तक प्रभावी रहेगी। वन नीति में इको-टूरिज्म बढ़ाने व प्रदेश के 20 प्रतिशत भू-भाग पर वन लगाने का लक्ष्य तय किया जा रहा है।

ऐतिहासिक पर्यटन का भविष्य

राजा-महाराजाओं की भूमि राजस्थान, पर्यटन की दृष्टि से देश में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस मरुस्थलीय राज्य में जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर जैसे कई ऐतिहासिक शहर है, जहां अभी भी पुराने किले एवं अन्य ऐतिहासिक इमारतें हैं। राजस्थान के राजमहल, प्राचीन भारतीय भवन निर्माण कला को बड़ी खूबसूरती से दर्शाते हैं; इनमें जैसलमेर, जयपुर, जोधपुर, उदयपुर आदि के राजभवन उल्लेखनीय हैं। राजस्थान में दुर्गों की भी विस्तृत दर्शनीय श्रृंखला है। इनमें जयपुर का नाहरगढ़, सवाई माधोपुर का रणथम्भौर, जैसलमेर का सोनार दुर्ग, बीकानेर का जूनागढ़, भीलवाड़ा का माण्डलगढ़; चित्तौड़गढ़ आदि पर्यटकों को आकर्षित करते हैं।

राजस्थान के मन्दिर भी वास्तुशिल्प के अद्‌भुत नमूने हैं। जिनमे वाडौली मन्दिर, ओसियाँ का मन्दिर, अपूर्णा का मन्दिर, रणकपुर का जैन मन्दिर और आबू स्थित दिलवाड़ा के जैन मन्दिर आदि शामिल हैं।

राजस्थान सरकार जहाँ एक ओर पर्यटन को बढ़ावा देने के दावे कर रही है, वहीँ प्राचीन इमारतों के संरक्षण एवम उनकी देखभाल को लेकर उदासीन है। प्रदेश के अधिकतर जिलों के पर्यटन स्थलों की साज-संभल बाबुओं और सहायक कार्मिकों के भरोसे है।

पर्यटन विभाग द्वारा किये जा रहे प्रयास

राजस्थान टूरिज्म (आरटीडीसी), राजस्थान में पर्यटन के विकास हेतु उत्प्रेरक के रूप में कार्य करता है। यह राज्य में पर्यटन को बढाने में सहायक योजनाओं और परियोजना को क्रियान्वित करता है। पर्यटन विभाग के अंतर्गत कई रेस्तरां, कैफेटेरिया, होटल, मोटल, बार, नौकायन और परिवहन का प्रबंधन और संचालन होता है। समय-समय पर विभाग, पर्यटन के अनुभव को बढ़ाने के लिए पैकेज टूर, मेले, त्यौहार, मनोरंजन, खरीदारी और परिवहन सेवाओं का भी आयोजन करता रहता है।

भारत और विदेश में अपने मजबूत मार्केटिंग नेटवर्क के माध्यम से आरटीडीसी, घरेलू और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पर्यटन को बढ़ावा देने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

आरटीडीसी के पास पूरे देश में सुविधाजनक बुकिंग कार्यालय हैं, और यह दुनिया भर में एजेंटों के अपने व्यापक नेटवर्क के माध्यम से टूर पैकेज और होटल बुकिंग सुविधा प्रदान करता है।द्य

पर्यटन के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने के लिए राजस्थान सरकार के पर्यटन विभाग को दो राष्ट्रीय पर्यटन पुरस्कार भी मिल चुके हैं।

पर्यटन स्थलों का संरक्षण और उसके लाभ

पिछले कुछ दशकों में पर्यटन उद्योग का लगातार विकास हुआ है, और वर्तमान में मानवीय कार्यकलापों में इसने महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है। आज राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर पर्यटन उद्योग बहुत तीव्रता से विकसित हो रहा है और एक प्रमुख आर्थिक शक्ति के रूप में उभर रहा है। पर्यटन में इतनी शक्ति है कि यह देशों के भविष्य को परिवर्तित कर सकता है। आधुनिक पर्यटन काफी हद तक पर्यावरण आधारित है। हम कह सकते हैं कि पर्यटन में दो अन्योन्य क्रियाशील घटक सम्मिलित हैं- पर्यटक और पर्यावरण। पर्यटन एक ऐसा शब्द है जो कुछ विशिष्ट उद्देश्यों को लेकर लोकजन यात्रा और देश-विदेश के विभिन्न भागों के भ्रमण से जुड़े सभी प्रक्रमों एवं संबंधों को निरुपित करता है।

पर्यटन का उद्देश्य कितना भी सौम्य क्यों न हो, स्थानीय पर्यावरण पर उसका कुछ-न-कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता है। पर्यटक यदि कहीं जाकर प्राकृतिक सौंदर्य एवं वन्यजीवों के अवलोकन का आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं, तो सामान्यत: वहाँ जाकर रुकते भी हैं। पर्यटकों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कुछ मूलभूत सुविधाओं जैसे:- आवास, परिवहन सुगमता एवं सम्पूर्ण जरुरी सुविधाओं की आपूर्ति से सम्बंधित अवसंरचना की उचित व्यवस्था आवश्यक है। पर्यटकों के व्यवहार सहित ये सभी प्रक्रियाएँ पर्यावरण पर किसी-न-किसी प्रकार का दबाव अवश्य डालती हैं। अत: प्रयास यह होना चाहिए कि इस दबाव के स्तर को न्यूनतम रखा जा सके, ताकि पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी में अवांछित स्थायी परिवर्तन न होने पाए। इसलिए यह आवश्यक है कि हम पर्यटन एवं पर्यावरण के मध्य होने वाली क्रियाओं को ठीक से समझें और उनके अनुसार अपने क्रियाकलापों में परिवर्तन करें।

नए पर्यटन केंद्र और स्थानीय लोगों पर उसके प्रभाव

पर्यटन विकास के मामले में देश के चुनिन्दा राज्यों को छोड़कर अन्य की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। पिछले कई वर्षो में ये राज्य पर्यटन सर्किट समेत अनेक योजनाओं को आपसी तालमेल से लागू करने का प्रयास कर रहे हैं, पर यह योजनाएं पूरी तरह सफल नहीं हो पा रही हैं। पर्यटन के पुराने केंद्र ही राज्यों की आय का माध्यम बने हुए हैं, जबकि अपार संभावनाओं वाले पर्यटन स्थल आज भी पर्यटकों की जानकारी में नहीं हैं। ऐतिहासिक विरासत (हेरिटेज), वन्यजीव (वाइल्डलाइफ), रेगिस्तान, झील, किले, शाही रेलगाडियां जैसी तमाम विशेषताओं के बावजूद भी राजस्थान, पर्यटन के क्षेत्र में पिछड़ता जा रहा है। राजस्थान की सरकार पर्यटन को कमाई को बड़ा जरिया तो मानती हैं, लेकिन इस दिशा में वह अपने कुछ चुनिंदा पर्यटन स्थलों पर ही निर्भर हैं। ऐसे में नया और कुछ अलग देखने की चाह रखने वाले पर्यटकों का रुझान राजस्थान में घट रहा है।

समाधान

1. डूंगरपुर-बांसवाड़ा जैसे वागड़ अंचल के लिए नए पर्यटन सर्किट बनाए जाए।
2. आदिवासियों की कला संस्कृति को बढ़ावा देने पर भी जोर दिया जाए।
3. विश्व प्रसिद्घ गलियाकोट दरगाह और अरथूना के प्राचीन मंदिरों को विकसित किया जाए।
5. माही-कडाणा बांध के बैकवॉटर में पानी के मध्य स्थित टापुओं को विकसित कर ग्रामीण पर्यटन को बढ़ावा दिया जा सकता है।
6. अपनी अनूठे शिल्प्प, क्ल्लाइमेंट और सांस्कृतिक सम्पन्नता से शेखवाटी अंचल हमेशा से पर्यटकों के बीच आकर्षण का केन्द्र रहा है। इस कारण शेखावाटी में वर्ल्ड कल्चरल डेस्टिनेशन हब विकसित किया जा सकता है।

निष्कर्ष

वर्तमान में नयी पर्यटन नीति के लिए राजस्थान में हजारों करोड़ रुपए के नए निवेश के साथ लाखों की संख्या में नए रोजगार के अवसर विकसित करने पर ध्यान दिया जा रहा है।

राजस्थान के रेतीले धौरे, पहाड़ी इलाके, नदियां, जंगल, ऐतिहासिक धरोहर और मौसम में विविधता पर्यटकों को वर्षभर बांधने की क्षमता रखती है। इन्ही की बुनियाद पर नयी पर्यटन नीति, निवेश, उद्यमिता और राजस्व की संभावनाओं को टटोला गया है।

पर्यटन के क्षेत्र को तेजी से बढ़ावा देने के लिए, राज्य सरकार ने वर्ष 2001 में श्राजीव गांधी पर्यटन विकास मिशनश की शुरुआत की थी। इस मिशन ने राजस्थान में पर्यटन विकास के एक नए युग की शुरुआत की।

पर्यटन विकास के लिए एक नियोजित और केंद्रित दृष्टिकोण देने के लिए, राज्य ने 2001 में श्राजस्थान की पर्यटन नीतिश की भी घोषणा की।

यह नीति, निवेश को आकर्षित करने तथा घरेलू और विदेशी पर्यटकों की संख्या को बढ़ावा देने के लिए एक रोडमैप बन गई। इसके बाद होटल नीति 2006, राजस्थान पर्यटन इकाई नीति 2007 और बाद में राजस्थान पर्यटन इकाई नीति 2015 जैसी नीतियाँ भी बनायीं गयीं। इन नीतिगत पहलों ने राज्य में पर्यटकों के आगमन को वर्ष 2001 में 8.4 मिलियन से बढ़ाकर 2018 में 52 मिलियन करने में मदद की।

इतना होने के बावजूद, पर्यटन और पर्यटक स्थलों के विकास के लिए अभी और काफी कुछ किये जाने की जरुरत है। अभी भी पर्यटक स्थलों पर स्वच्छता, दक्ष मानव संसाधन (गाइड, एजेंट, पर्यटन सुरक्षा बल तथा हॉस्पिटैलिटी से जुड़े कार्मिकों) और बुनियादी सुविधायों की कमी है।

सन्दर्भ

1. राजस्थान का भूगोल, प्रोफेसर एच एस शर्मा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
2. राजस्थान की अर्थव्यवस्था, प्रोफेसर लक्ष्मी नारायण नाथूराम, कॉलेज बुक हॉउस, जयपुर
3. राजस्थान का भूगोल, डॉ. हरिमोहन सक्सेना, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
4. राजस्थान सुजस, त्रिमासिक पत्रिका, राजस्थान सरकार, जयपुर
5. राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास व विनियोग निगम लिमिटेड
6. सूचना एवं जन संचार प्रौद्योगिकी विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर
7. राजस्थान पर्यटन विकास निगम, जयपुर, राजस्थान
8. "राजस्थान टूरिज्म" राजस्थान टूरिज्म, 2018.
9. Chhipa, O. P. 2004. Environmental and Socio-economic Impact of International Tourism in Rajasthan: A Study of Pushkar Vally. Proceedings of RGA XXXII conference, pp.30-34
10. Sharma, A.K., Sharma, M. 2011. Geo-Heritage Resources of Jodhpur (Tourism Impact and Assessment), P, XXXIX conf., pp. 57-63

शिक्षा में स्वतंत्रता तथा अनुशासन का महत्त्व

अविनाश कुमार

शोध प्रज्ञ, शिक्षाशास्त्र विभाग, ल0ना0मि0वि0, दरभंगा

डॉ० प्रतिभा रानी सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, डॉ0 जेड0 एच0 टी0 टी0 कॉलेज, लहेरियासराय, दरभंगा

सार

शिक्षा जगत में स्वतंत्रता तथा अनुशासन की समस्या प्राचीन काल से ही शिक्षा-शास्त्रियों के सामने एक विवादग्रस्त समस्या बनी रहती है। कुछ लोग बालक को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करना चाहते हैं तो कुछ उसे कठोर अनुशासन के बन्धनों में जकड़ने का समर्थन करते हैं। अनियंत्रित स्वतंत्रता को प्राप्त करते ही बालक में आत्म-नियंत्रण तथा आत्म-अनुशासन आदि गुणों का लोप हो जाता है। इस प्रकार बालक को अनियंत्रित अथवा आवश्यकता से अधिक स्वतंत्रता देना अनुशासनहीनता को बढ़ावा देना है। इससे सामाजिक तथा नैतिक दोनों बातों की अवहेलना संभव है। अत: आज के जनतांत्रिक युग में अनियंत्रित स्वतंत्रता को किसी भी हालत में प्रोत्साहन नहीं किया जा सकता है। अनुशासन मुक्ति तथा प्रभाव के सिद्धान्तों पर आधारित होता है। ऐसे अनुशासन के अन्तर्गत दमन अथवा शिक्षक के वाह्य बल तथा भय को किसी प्रकार का कोई भी स्थान नहीं मिलता । शिक्षक से आशा की जाती है कि वह बालक तथा समाज दोनों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए बालक के साथ प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार करे। प्रस्तुत शोध आलेख में बालक के स्वतंत्रता तथा अनुशासन में समन्वय स्थापित करते हुए उनमें अनुशासनहीनता के कारण को दर्शाते हुए इसके सुझावों पर भी विमर्श किया गया है।

मुख्य-बिन्दु: स्वतंत्रता एवं अनुशासन; समन्वय; अनुशासनहीनता के कारण; सुझाव।

परिचय

बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास के लिए स्वतंत्रता परम आवश्यक है। इसके बिना बालक की व्यक्तिगत रूचियों, रूझानों, आवेगों तथा उसकी शारीरिक, मानसिक, नैतिक, काल्पनिक एवं सौन्दर्यात्मक शक्तियों का विकास नहीं हो सकता। प्राय: देखा गया है कि जब बालक को किसी नियंत्रित वातावरण में रखकर उसे किसी क्रिया को करने के लिए बाध्य किया जाता है तो वह क्रिया उसके लिए एक कठिन कार्य बन जाती है। वह उस क्रिया को बाह्य बल के भय से करता तो अवश्य है, परन्तु उसे उस क्रिया के करने में कोई प्रसन्नता नहीं होती है। इसके विपरीत यदि बालक को उसकी इच्छानुसार किसी क्रिया को करने की स्वतंत्रता दे दी जाय तो वह उस क्रिया को खेल समझकर प्रसन्नतापूर्वक करता रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि स्वतंत्र वातावरण में रहते हुए बालक प्रत्येक क्रिया को खेल समझकर प्रसन्नतापूर्वक करता है जिससे उसे स्वतंत्र चिंतन के अवसर मिलते हैं तथा उसमें पहलकदमी एवं निडरता आदि गुणों का विकास होता रहता है। यही कारण है कि रूसो वाह्य बल तथा बन्धन का घोर विरोध करते हुए बालक की पूर्ण स्वतंत्रता का नारा लगाया।[1]

बालक में अनुशासन

बालक के सर्वांगीण विकास के लिए जहां एक ओर स्वतंत्रता आवश्यक है वहां दूसरी ओर अनुशासन का महत्व भी कुछ कम नहीं है। यदि बालक को उसकी प्रकृति के अनुसार स्वतंत्रतापूर्वक विकसित होने के अवसर प्रदान किए जांए तो वह विकसित तो अवश्य होगा, परन्तु उसमें उन गुणों का विकास नहीं होगा जो सभ्य समाज के लिए आवश्यक हैं। ऐसा बालक अपनी स्वार्थ-सिद्धी के लिए सामाजिक आदर्शों की अवहेलना करता रहेगा जिससे सामाजिक जीवन अस्तव्यस्त हो जाएगा। ऐसा अनुशासनहीन बालक मानव न बनकर दानव बन जायेगा। आज के विकासशील युग में बालक को सच्चा मानव बनने के लिए उन आदतों तथा गुणों का विकास करना परम आवश्यक है जिसकी सभ्य समाज को आवश्यकता है। इस महान उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अनुशासन परम आवश्यक है। अनुशासन के द्वारा बालक की मूल-प्रवृत्यात्मक इच्छाओं, आवेगों का परिमार्जन करके ऐसी आदतों तथा गुणों का विकास किया जा सकता है जिससे उसका व्यवहार समाज द्वारा स्वीकृत मानदण्ड के अनुसार बन जाय। वास्तविकता यह है कि अनुशासन ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा बालक में आध्यात्मिक गुणों का विकास करके उसे इस योग्य बनाया जा सकता है कि वह सच्चरित्र एवं कर्मठ नागरिक के रूप में उच्च सामाजिक आदर्शों को प्राप्त करने के लिए अपने निजी स्वार्थों को त्याग दे। इससे हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि अनुशासन के द्वारा ही स्कूल में उन परिस्थितियों को उत्पन्न किया जा सकता है जिनमें रहते हुए बालक सुचारू रूप से विकसित होकर एक सच्चरित्र नागरिक बन सकता है। प्राचीन युग में तो अनुशासन का महत्व इतना अधिक था कि इसे शिक्षा-जगत में साधन नही अपितु साध्य ही मान लिया गया था।[2]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि बालक के विकास के लिए स्वतंत्रता तथा अनुशासन दोनों का विशेष महत्व है। ध्यान देने की बात है कि स्वतंत्रता तथा अनुशासन दोनों ही दो प्राचीन दार्शनिक सिद्धान्तों पर आधारित हैं। स्वतंत्रता प्रकृतिवाद पर आधारित है तथा अनुशासन आदर्शवाद पर । ऐसे ही स्वतंत्रता का संबंध वंशानक्रम से है तथा अनुशासन का वातावरण से । स्वतंत्रता बालक की वैयक्तिकता को प्रोत्साहित करती है तथा अनुशासन उसके व्यक्तित्व को ऊँचा उठाने पर बल देता है। स्वतंत्रता का समर्थन मनोविज्ञान करता है तथा अनुशासन का समाजशास्त्र। उक्त सभी बातें जिनपर स्वतंत्रता तथा अनुशासन दोनों आधारित है। सबकी अपनी-अपनी अलग-अलग विशेषताएं हैं। प्रकृविवाद तथा आदर्शवाद दोनों प्राचीन महत्वपूर्ण सिद्धान्त हैं। इन दोनों दर्शनों की शिक्षा में विशेष योगदान है। ऐसे ही वंशानुक्रम तथा वातावरण दोनों के महत्व से भी विमुख नहीं हुआ जा सकता है। व्यष्टिता तथा नागरिकता भी शिक्षा के दो महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं। इसी प्रकार मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र भी दो प्रमुख विज्ञान हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि स्वतंत्रता तथा अनुशासन दोनों जिन-जिन बातों पर आधारित है, उन सबका शिक्षा में महत्वपूर्ण योगदान है। इस दृष्टि से स्वतंत्रता तथा अनुशासन का वही संबंध है जो आत्मा और शरीर का है। बिना स्वतंत्रता के अनुशासन अपूर्ण और बिना अनुशासन के स्वतंत्रता निरर्थक है। दोनों में से किसी को किसी से अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता और न ही इनमें से किसी को किसी के अधीन ही किया जा सकता है। अब तो आवश्यकता इस बात की है कि स्वतंत्रता तथा अनुशासन दोनों में समन्वय स्थापित किया जाय। इसके लिए दोनों के संकुचित तथा व्यापक अर्थों एवं सिद्धान्तों को समझना आवश्यक है।[3]

स्वतंत्रता तथा अनुशासन में समन्वय

स्वतंत्रता तथा अनुशासन के महत्व, दोनों के संकुचित तथा व्यापक रूपों एवं प्रकारों पर प्रकाश डालने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि दोनों में जहां कुछ गुण है वहां अनेक दोष भी हैं। बालक को अनियंत्रित स्वतंत्रता प्रदान करने से वह इतना स्वच्छन्द हो सकता है कि उसमें अहं की भावना विकसित हो सकती है। परिणामस्वरूप वह अपनी स्वार्थ-सिद्धी के लिए समाजविरोधी कार्यों के करने में भी कोई संकोच नहीं करेगा। इससे समाज के अन्दर अव्यवस्था तथा अराजकता फैलने का भय है। ऐसे ही अनुशासन भी अपने चरम रूप में बालक की स्वतंत्रता का हनन करके उसके व्यवहार में अवांछनीय बल प्रयोग द्वारा एक ही विशेष परिवर्तन करना चाहता है।इससे बालक में आत्म-अनुशासन तथा पहलकदमी आदि गुण विकसित नहीं हो पाएंगे। परिणामस्वरूप उसे अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिए दूसरों का मुंह ताकना पडेग्गा । कुछ भी हो, स्वतंत्रता तथा अनुशासन दोनों के उग्र रूपों में इतना विरोध है कि इन दोनों के बीच समन्वय स्थापित करना असंभव सा दिखाई पड़ता है। परन्तु यदि स्वतंत्रता तथा अनुशासन दोनों के संकुचित रूपों को छोड़कर इनके व्यापक रूपों को स्वीकार कर लिया जाय तो इन दोनों के बीच समन्वय स्थापित करने के लिए एक मध्य रास्ता निकाला जा सकता है। इससे न तो बालक की स्वतंत्रता का बिल्कुल दमन हो जायेगा और ना ही वह पूर्ण रूप से स्वच्छन्द हो पायेगा। वह रास्ता है मुक्ति तथा प्रभाव के आधार पर बालक को स्वतंत्र रूप से अनुशासित होने के अवसर प्रदान करना जिससे बालक में आत्म-अनुशासन विकसित हो जाय। आत्म-अनुशासन के विकसित हो जाने से बालक अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन सोद्देश्य क्रियाओं में भाग लेता रहेगा जिनके द्वारा स्वयं उसका तथा समाज का कल्याण होता रहेगा।[4]

कक्षा में अनुशासनहीनता के कारण

कक्षा में अनुशासनहीनता के निम्नलिखित कारण हैं:

1. रूचि का अभाव - कक्षा में प्राय: बालकों को उनकी रूचि के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने के अवसर नहीं मिलते । इससे वे पढ़ाई में रूचि नहीं लेते जिससे अनुशासनहीनता कहा जाना स्वाभाविक ही है।
2. बुरी आदतों को बढ़ना- कुछ बालकों में अपने परिवार के सदस्यों तथा स्कूल एवं समाज में रहने वाले मित्रों के सम्पर्क में रहते हुए बुरी आदतें पड़ जाती हैं। इन बुरी आदतों के कारण कक्षा में अनुशासनहीनता हो जाती है।
3. अवांछनीय पाठ्यक्रम- प्रचलित पाठ्यक्रम में अनुशासन संबंधी विषयों का भाव है। बालकों को उनकी रूचियों के अनुसार पाठ्यक्रम नहीं मिलता। इस कारण वे पढ़ते - पढ़ते ऊब जाते हैं । अत: पाठ्यक्रम संबंधी दोष भी कुछ सीमा तक अनुशासनहीनता के लिए जिम्मेदार हैं।
4. कक्षा में अत्यधिक नियंत्रण- कुछ शिक्षक कक्षा में दण्ड तथा भय का प्रयोग करते हैं जिससे बालक एक ही आसन से चुपचाप बैठे रहे और शोन न करे। इससे बालक की स्वतंत्रता का हनन होता है और उसका मानसिक सन्तुलन भंग हो जाता है। परिणामस्वरूप जबतक शिक्षक कक्षा में रहता है उस समय तक उसके भय से अनुशासन बना रहता है। परन्तु जैसे ही वह कक्षा को छोड़ देता है वैसे ही अनुशासनहीनता की लहर फैल जाती है।
5. व्यक्तिगत विभिन्नता का ध्यान न देना- प्राय: सामूहिक शिक्षण पद्धति में बालकों की व्यक्तिगत विभिन्नता पर ध्यान नहीं दिया जाता। इससे वे अनेक प्रकार के शरारते करने लगते हैं।
6. अमनों वैज्ञानिक शिक्षण विधियां- अधिकतर शिक्षक कक्षा में पढ़ाते समय अमनों वैज्ञानिक शिक्षण विधियों का प्रयोग करते हैं। इससे बालकों को ज्ञान अर्जन में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। परिणामस्वरूप शिक्षक और बालकों के बीच तनाव बढ़ जाता है और वे नाना प्रकार की शैतानियां करने लगते हैं।
7. कक्षा में अत्यधिक बालकों का होना- आजकल प्रत्येक कक्षा में छात्रों की संख्या इतनी अधिक होती है कि शिक्षक प्रत्येक बालक के सम्पर्क में नहीं आ सकता। जब शिक्षक की प्रत्येक बालक पर दृष्टि ही नहीं होगी तो अनुशासनहीनता नहीं होगी तो क्यो होगा? कक्षा में अनुशासन बनाए रखने के लिए कोई निश्चित संख्या अवश्य होनी चाहिए।

8. कक्षा के बालकों में अत्यधिक प्रतियोगिता- प्राय: देखा जाता है कि शिक्षक बालकों में अधिक से अधिक अंक प्राप्त करने के लिए प्रतियोगिता की भावना जागृत कर देता है। इस प्रतियोगिता का परिणाम यह होता है कि कम अंक प्राप्त करनेवाले बालक तो हतोत्साहित हो जाते हैं और अधिक अंक प्राप्त करने वाले बालकों में अहं की भावना विकसित हो जाती है। जिन बालकों में अहं की भावना विकसित हो जाती है वे दूसरे बालकों को हानि पहुंचाने में नहीं हिचकिचाते हैं।
9. अच्छे शिक्षकों की कमी- वर्त्तमान युग में शिक्षकों की नियुक्ति करते समय सिफारिश को ध्यान में रखा जाता है। इससे सच्चरित्र, योग्य तथा उच्च आदर्शों वाले शिक्षकों के स्थान पर अयोग्य, अप्रशिक्षित एवं अनुभवहीन शिक्षकों को नियुक्त कर लिया जाता है। ऐसे शिक्षक अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं कर पाते जिससे चारों ओर अनुशासनहीनता फैलती रहती है।
10. शिक्षा के लिए सुविधा की कमी- अनुशासन के लिए कक्षा की दशाएं भी जिम्मेदार होती हैं। ये दशाएं हैं- स्कूल के कमरे, प्रत्येक कमरे का क्षेत्रफल, शुद्ध वायु, प्रकाश, धूप तथा आवश्यकतानुसार फर्नीचर। यदि इन बातों में से किसी प्रकार की कमी होगी तो अनुशासनहीनता अवश्य होगी।[5]

स्कूलों में अनुशासन रखने के सुझाव

स्कूलों में अनुशासन रखने के संबंध में डब्ल्यु0 पी0 शोरेन ने तीन प्रकार के अनुशासनों का उल्लेख किया है- 1. सृजनात्मक 2. प्रतिबन्धात्मक तथा 3. उपचारात्मक। यहां उक्त तीनों प्रकार के अनुशासनों को बनाए रखने के संबंध में आवश्यक सुझाव प्रस्तुत किया जा रहा है-

सृजनात्मक अनुशासन- इसका अर्थ यह है कि बालकों में ऐसी बातें कही जाय तथा उनसे ऐसे कार्य कराए जाएं जिनसे उनके अन्दर अनुशासन की भावना स्वयं ही विकसित हो जाएं। इस संबंध में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए-

1. बालकों को ''यह मत करो'' आदि निषेधात्मक आज्ञाएं नहीं देनी चाहिए।
2. बालकों के अन्दर अच्छी भावनाएं विकसित करनी चाहिए जिससे वे अधिकारों के साथ कर्त्तव्यों को भी समझा जाएं।
3. बालकों को सहगामी क्रियाओं में भाग लेने के अवसर प्रदान किए जाएं।
4. स्कूल के प्रत्येक कार्य में बालकों का सहयोग प्राप्त किया जाय।
5. बालकों के व्यक्तित्व का आदर करना चाहिए।
6. शिक्षकों को चाहिए कि वे बालकों की रूचियों तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रखें तथा उन्हें पूरा करें।
7. स्कूल के आदर्श तथा परम्पराएं सृजनात्मक अनुशासन के अनुसार होनी चाहिए।
8. शिक्षकों का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली हो कि बालकों में उत्साह की वृद्धि होती रहे।

प्रतिबन्धात्मक अनुशासन- इसका अर्थ उन प्रतिबन्धों से है जिनके लगाने से बालकों में अनुशासनहीनता की रोकथाम हो सके। इस संबंध में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए-

1. शिक्षक को कक्षा में सभी बालकों का नाम याद रहना चाहिए।
2. पाठ पढ़ाते समय शिक्षक को कक्षा के सभी बालको पर सतर्क दृष्टि रखनी चाहिए।
3. बालको के बैठने की व्यवस्था ठीक होनी चाहिए जिससे वे किसी असुविधा का अनुभव न करे।
4. जो बालक पाठ पढ़ने में ध्यान न दे रहा हो, उन्हें चेतावनी दे देनी चाहिए।
5. पाठ पढ़ाते समय रोचक विधि का प्रयोग करना चाहिए।
6. शिक्षक को बालकों में ऐसे भाव जागृत करने चाहिए जिससे वे यह अनुभव करने लगे कि शिक्षक को उनसे प्रेम तथा सहानुभूति है।
7. अध्यापन कार्य में रूकावट डालने वाले बालकों को मनोवैज्ञानिक ढंग से समझाना चाहिए जिससे अध्यापन कार्य सुचारू रूप से चलता रहे।
8. शिक्षक को किसी बालक की दूसरे बालक के सामने कड़ी आलोचना नहीं करना चाहिए और न ही उसे अधिक डांटना चाहिए।
9. सत्र के आरंभ में शिक्षक को दृढ़ता रखनी चाहिए। यदि वह कक्षा में प्रवेश करने वाले बालकों को आरंभ से ही ढील दे देगा, तो वे फिर बाद में उनकी परवाह नहीं करेंगे।
10. पाठ पढ़ाते समय शिक्षक को चाहिए कि वह इधर-उधर न घूमें अपितु एक ही स्थान पर खड़े होकर अपना कार्य करता रहे।
11. स्कूल का वातावरण स्वच्छ, सुन्दर तथा आकर्षक होना चाहिए।

उपचारात्मक अनुशासन- इसका अर्थ है बालक का उपचार करना अथवा सुधारना। बालक को सुधारने के लिए दो बातें आवश्यक हैं- 1.निदान, अर्थात् अनुशासनहीनता के कारण को जानना तथा 2.उपचार, अर्थात् कारणों को दूर करके सुधारना। बालकों के सुधारने के लिए निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए।

1. शिक्षक को चाहिए कि वह अपराधी बालकों को उस समय तक दूसरे बालकों से अलग रखे जबतक कि उसका उपचार न हो जाय।
2. अपराधी बालक को अपराध के विषय में पहले स्वयं विचार करने, तथा सभी बातें बताने का अवसर प्रदान करना चाहिए।
3. अपराधी बालक से उसके अपराध के संबंध में स्पष्ट रूप से बात करनी चाहिए। ऐसे बालक को अपराध के लिए क्षमा मांगने के लिए बाध्य नहीं करना चाहिएं।
4. अपराधी बालक को सोच-समझकर दण्ड देना चाहिए।

5. जब बालक को दण्ड दे दिया जाय तो उस अपराध के विषय में किसी प्रकार की कोई बात नहीं करनी चाहिए।
6. बालक के अपराध तथा उसके उपचार के विषय में कोई भी बात दूसरों के सामने नहीं करनी चाहिए।
7. यदि किसी कारणवश अपराधी-बालक का पता न लग पाए तो कक्षा के सभी बालकों से कह देना चाहिए कि भविष्य में ऐसा कार्य नहीं होना चाहिए।
8. एक बालक के अपराध का दण्ड कक्षा के सभी बालकों को नहीं देना चाहिए।
9. बालक को सुधारने के लिए माता-पिता अथवा संरक्षकों की सहायता लेनी चाहिए।
10. अपराधी-बालक को डराना तथा धमकाना उचित नहीं है।

निष्कर्ष

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि बालक के विकास के लिए स्वतंत्रता एवं अनुशासन आवश्यक है, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि उसको नियंत्रित रूप से छोड़ दिया जायं। स्वतंत्रता की भी सीमा होती है। बालक को स्वतंत्रता केवल इतनी ही मिलनी चाहिए कि वह उचित निर्देशन द्वारा अपने व्यक्तित्व का उचित दिशा में विकास करता रहे। अनुशासन ही बालक के व्यक्तित्व के विकास में काफी सहायक सिद्ध होता है। अनुशासन में रहकर ही बालक विकास की ऊँचाइयों पर चढ़ सकता है।

संदर्भ

1. सक्सेना, एन. आर. स्वरूप एवं कुमार संजय, 2013 'शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त', आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, पृ. 1291-92
2. वही, पृ. 1300-1302
3. स्किबा, रसेल, 2002 'द कलर ऑफ डिसिप्लीन: सोर्सेज ऑफ रेसियल एण्ड जेण्डर डिस्प्रोपोर्शनलिटी इन स्कूल पनिशमेंट,' द अरबन रिव्यू 34 नं. 4
4. कॉटन, 1990, 'स्कूल वाइड एण्ड क्लासरूम डिसीप्लीन', स्कूल इम्प्रूवमेंट रिसर्च सिरीज, नॉर्थवेस्ट रिजनल एजुकेशनल लेबोरेटरी, द अरबन रिव्यू 34 नं. 4
5. सक्सेना, एन. आर. स्वरूप एवं कुमार संजय, 2013, उपरोक्त पृ. 1304-1306

महाभारत मे पर्यावरण चेतना

डॉ० हिमांशु पण्डित

असिस्टैण्ट प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पर्यावरण का विषय सदैव से ही मानवीय चिन्तन का केन्द्र रहा है। यद्यपि आज अनेकों संस्थाएँ और आन्दोलन पर्यावरण संरक्षण के निमित्त होते रहते हैं किन्तु ''उपचार से उत्तम सावधानी'' को अपना आदर्श मानने वाले भारतीय समाज मे इस ओर सकारात्मक दृष्टिकोण तथा चेतना सदैव से ही विद्यमान रही है। इसी कारण हमें विभिन्न मनीषियों की रचनाओं मे पर्यावरण पर साभार लेखन सहज ही उपलब्ध हो जाता है। संभवत: प्रकृति और पर्यावरण के प्रति कृतज्ञता तथा संतति को सन्देश ज्ञापित करना इसका उद्देश्य रहा हो।

महाभारत की बात करें तो महर्षि वेद व्यास ने भी विभिन्न दृष्टांतों, संवादों तथा उपयोगों के द्वारा मानव-पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्धों को उजागर किया है। जारयुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज्ज योनियों की चर्चा करते हुए वृक्षों को उन्होने उद्भिज्ज योनी मे उत्पन्न हुआ कहा[1] तथा उनमें देवत्व का आरोपण ही कर दिया है।

आश्वमेधिक पर्व मे एक ब्राह्मण युगल का संवाद उल्लेखनीय है जहाँ ब्राह्मण समस्त विषय को वन रुपक के माध्यम से व्यक्त करते हुए वन की तुलना ब्रह्म से करता है और सम्पूर्ण जगत को ब्रह्म-वन कहता है।[2] वेदव्यास स्पष्ट रुप से संसार को मनीषी पुरुष वन की संज्ञा देते हैं।[3] परमब्रह्म मे स्थित ब्रह्मण्ड को विशाल बेंत के वृक्ष मे बताया गया है जिसकी शाखाएँ भोगस्थान तथा सुगन्ध शब्दादि विषय हैं। मूल अविद्या है जिसमे से भोगवासनामय नदियाँ बहती हैं।[4] भीष्म पर्व मे संसार को अश्वत्थ (पीपल) का वृक्ष कहा गया है।[5] महर्षि व्यास नि:सन्देह पर्यावरण के प्रति सजग थे। यही कारण है कि उन्होने आध्यात्मिक और दार्शनिक विषयों को समझाने के लिए वन और वृक्ष का अवलम्बन लिया है।

महाभारत मे इन्हीं रुपकों के माध्यम से राजा से लेकर जनसाधारण तक को उन्होने पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरुक किया है। धृतराष्ट्र को यह कहा गया है कि कौरव वन हैं तथा पाण्डुपुत्र उस वन मे रहने वाले सिंह। जैसे वन और सिंह के साहचर्य के समाप्त होने से प्रकृति नष्ट हो जाती है वैसे ही कौरवों-पाण्डवों के साहचर्य का समाप्त होना आपके लिए भी अहितकर होगा। क्योंकि सघन वन सिंहों की रक्षा करते हैं तो सिंहों से रक्षित वन नष्ट नही होता। महर्षि कहते हैं कि उचित तो यह है कि वन सिंहों की रक्षा करें और सिंह वनों की।[6] देखा जाए तो यह समस्या वर्तमान मे विकराल रुप धारण कर चुकि है। चूँकि सिंह सामान्य रुप से नदियों की ढलानों की ओर रहते हैं इस कारण खुर वाले बड़े पशु इस ओर स्वछन्दता से विचरण नही कर पाते जिसके कारण नदियों के किनारे खुंदने से बच जाते हैं। यदि सिंह न रहे तो नदियों के ये किनारे उन बड़े खुरों से इतनी बुरी प्रकार से खूंदे जाएंगें कि किनारों पर बड़ी-बड़ी नालियाँ बन जाएंगीं जिसके फलस्वरुप नदी का जल नया मार्ग बना लेगा और जिसका परिणाम मृदाक्षरण और वृक्षों के विनाश के रुप मे सामने आएगा।

शान्ति पर्व का कश्यप-पुरुरवा संवाद मे पुन: वन का रुपक मिलता है जहाँ ब्राह्मण को वृक्ष की संज्ञा देते हुए उसकी रक्षा का परामर्श दिया गया है। ऐसा होने पर वह भी वृक्ष की भाँति मधुर सुख की वर्षा करेगा।[7] अर्थात् वृक्ष की रक्षा की जानी चाहिए। महाभारत मे वृक्षों मे भी फलदार वृक्षों का बहुत महत्त्व बताया गया है। उन्हें सुवर्ण की वर्षा करने वाला कहा गया है जो कि उनके वाणिज्यिक महत्त्व को बताता है। विदुला कहती है कि पके हुए फल वाले वृक्ष के समान जिस पुरुष का आश्रय लेकर सब प्राणी जीविका चलाते हैं उसी का जीवन सार्थक है।[8] आदिपर्व की अनुक्रमणिका मे तो महर्षि भारत को ही वृक्ष कहते हैं जिसके पुष्प और फल धर्म तथा मोक्ष हैं।[9] उनके अनुसार फलदार वृक्ष दक्ष-कन्या अनला तथा कश्यप ऋषि की संतान हैं।[10] संभवत: किसी पृथ्विस्थ ऊर्जा अनला तथा कश्यप तत्व का मिलन उनका आशय हो। किन्तु जो भी हो फलदार वृक्षों महत्ता तो उन्होने सिद्ध की ही।

यह महत्त्वपूर्ण है कि महर्षि वनों को किसी के भी आधिपत्य से मुक्त मानते हैं। उनके अनुसार लोग वनो का आवश्यकतानुसार उनभोग तो कर सकते हैं किन्तु वन लावारिस नही हैं। राजा उनका रक्षक है। स्पष्ट है कि महर्षि राजा को पर्यावरण का संरक्षक कह रहे हैं। वर्तमान मे सरकारें इस दायित्व का निर्वहन् कर भी रही हैं।

महर्षि वृक्षों को सजीव मानते हैं। संभवत: यही कारण है कि स्कन्ध के अभिषेक के अवसर पर वृक्षादि भी आते हैं।[11] कुरुक्षेत्र युद्ध मे वनस्पतियाँ भी युद्ध देख रहीं थीं तथा वे भी धर्म के पक्ष मे थीं।[12] वनस्पतियों को सजीव मानना पर्यावरण संरक्षण के निमित्त सर्वोत्तम सिद्धांत है। क्योंकि सजीवों के प्रति मानव स्वाभाविक रुप से संवेदनशील होता है।

एक स्थान पर महर्षि भारद्वाज-भृगु संवाद की सहायता से वनस्पतियों को चेतन तथा सजीव सिद्ध करते हैं। भारद्वाज वनस्पतियों को श्रवण, दर्शन, घ्राण, स्पर्श आदि इन्द्रियों से युक्त न होने के कारण उन्हें भौतिकत्व से रहित कहते हैं।[13] तब भृगु उनमे पुष्पन, पल्लवन, दामिनी से उनके झरन, सूर्य की ओर पुष्प तथा लताओं के प्रचालन, ग्रीष्म एवं शीत से उनके मुरझा जाने के आधार पर उनमे इन्द्रियों के अस्तित्व को सिद्ध करते हुए उन्हें सजीव कहते हैं।[14] स्वयं कृष्ण कहते हैं कि वृक्षों मे मै अश्वत्थ हूँ।

अश्वत्थ: सर्ववृक्षाणाम्।

स्पष्ट है कि महर्षि आज से सहत्रों वर्ष पूर्व वह सिद्ध कर रहे थे जो आज के वैज्ञानिक पुनः सिद्ध करने का प्रयास कर रहे हैं। जड़ों द्वारा जल पीने का जो तर्क उन्होने दिया आज उसे जाईलम- फ्लोयम नाम से बताया जाता है। आज इस प्रकार के अनेक प्रयोग निरंतर हो रहे हैं जिनसे पौधों के द्वारा मानवीय गतिविधयों की प्रतिक्रिया का पता चलता है। उदाहरण के लिए कीटभक्षी पौधों का कीटों के प्रति चेतन रहना, कुल्हाड़ी को निकट पाकर भय के संकेत अथवा प्रेमातुर स्त्री से निकटता पर प्रसन्नता का संकेत पॉलीग्राफ यन्त्र पर देना इत्यादि। डॉ0 बसु ने मदिरा तथा संगीत का प्रभाव भी पौधों पर देखा।

महर्षि कृष्ण-युधिष्ठिर संवाद के द्वारा पीपल के वृक्ष को कृष्ण के समान ही पूज्य[15] बताते हैं और इसके काटने को वर्जित करते हैं।[16] यह सर्वविदित है कि पीपल का वृक्ष सर्वाधिक ऑक्सीजन प्रदाता वृक्ष है। जम्बू, कटक एवं चौत्य वृक्षों मे दुर्गा का निवास माना गया है।[17] कुल मिलाकर उन्होने सम्पूर्ण मानव जाति के अभ्युथान एवं पारलौकिक निःश्रेयय को सीधे पर्यावरण से जोड़ा। महाभारत मे अनेक स्थानों पर वन, वृक्षमय पर्वत तथा नदियों के उल्लेख मिलते हैं। जहाँ वनविहीन होकर पर्वतों का अस्तित्त्व मिटने लगता है ठीक उसी प्रकार वनयुक्त पर्वत प्राणियों का पोषण और पर्यावरण का रक्षण करते हैं। यह चिन्तन पर्यावरणिक रुप से बहुत ही प्रासंगिक है। पर्वतों पर निरंतर कम होती वृक्ष-श्रंखला के कारण वन्यजीवों पर तो संकट है ही साथ ही पर्वत स्वयं भी कमजोर होते जा रहे हैं। जिसके परिणामस्वरुप भूस्खलन की घटनाएँ निरन्तर बढ़ रही हैं। गढ़वाल मे तो यह आम बात हो गई है।

महर्षि व्यास वन और पर्यावरण के शत्रुओं की ओर भी संकेत करते हैं। झंझावात, विद्युत, हाथी, भूकम्प दावानल आदि को महर्षि वनों का प्राकृतिक शत्रु बताते हैं। ग्रीष्म ऋतु मे वृक्षों की आपसी रगड़ से अग्नि का प्रज्ज्वलन हो जाता है और वनों का विनाश होता है। वो कहते हैं कि घास-फूस मे लगी आग सबकुछ जला डालती है।[18] यह भी बताते हैं कि शिशिर ऋतु के समाप्त होते ही वनों मे दावानल का संचार हो जाता है[19] जिसका एक ही कार्य होता है वन को जला देना।[20] वो कहते हैं कि जैसे-जैसे अग्नि का प्रसार होता जाता है वृक्षों के समुदाय जलते जाते हैं।[21] दावानल की भयावहता[22] को बताते हुए कहते हैं कि इसमें न केवल कीट-पतंगे अपितु हाथी जैसा विशालकाय जीव भी संकट मे आ जाता है। ऐसे मे वों पशुओं के क्रंदन का भी उल्लेख करते हैं।[23] भूकम्प[24], मदोन्मत हाथी[25] को भी वनों का शत्रु कहते हैं। भीम की तुलना हाथी से करते हुए कहते हैं कि भीम चलते हैं तो वृक्षों को धराशायी कर देते हैं।[26]

इससे भी आगे बढ़कर महर्षि मानव समाज को वनों का प्रमुख शत्रु कहा है जिसने वन-पर्यावरण से भरपूर पोषण एवं संरक्षण पाकर भी लिप्सा मे आकर उसे निर्ममता से काटा। ''महावनमिवच्छिन्नभवत् तावकं बलम्'' बड़े-बड़े वनों को निर्ममता से काटे जाने का उदाहरण है। वनचर मनुष्यों के द्वारा वनों के भीतर लगाई जाने वाली आग और उसके द्वारा होने वाले विनाश को भी महाभारत मे चित्रित करते हैं।[27]

महाभारत मे वनों और वृक्षों के बिना तो पृथ्वी की कल्पना ही नही की गई है। पृथ्वी को सशैलवनकानना[28], सशैलवनपत्तनाम्[29], ससागरवनामुर्वी कहा गया है। वास्तव मे ''वृत्वा क्षां तिष्ठति'' अर्थात् पृथ्वी को ढ़ककर स्थित होने के कारण ही वृक्ष नाम पड़ा। महर्षि वृक्षों को मानव का प्राकृतिक आश्रय मानते हैं। वन पर्व मे एक समय भीम और द्रौपदी आँधी से बचने के लिए वृक्ष का आश्रय लिए दिखाई पड़ते हैं।[30] यहाँ तक कि किन्नर, नाग, गन्धर्व, राक्षस, ऋषि और देवता भी वृक्षों का आश्रय लेते हैं।[31]

अनुशासन पर्व मे देवराज इन्द्र तथा एक तोते के संवाद के माध्यम से महर्षि वृक्षों की उपयोगिता तथा प्राणि जगत पर उसके उपकार और इसके प्रत्युत्तर वृक्षों के प्रति कृतज्ञता को प्रकट करते हैं। एक वृक्ष के शक्तिहीन होकर आश्रय देने योग्य न रहने पर भी उस पर रहने वाला तोता उसको छोड़कर नही जाता। इन्द्र द्वारा कारण पूछे जाने पर तोता कहता है कि जिस वृक्ष पर उसने जन्म लिया, आश्रय पाया[32] उसके शक्तिहीन हो जाने पर उसे कैसे छोड़ दे।[33] प्रसन्न होकर इन्द्र वर मांगने के लिए कहते हैं तो वह तोता उस वृक्ष के पुनः हरा-भरा हो जाने का वर मांगता है।[34] इस कथा के माध्यम से महर्षि मानव जाति को भी वृक्षों के प्रति कृतज्ञ होने का संदेश देते हैं।

महर्षि वृक्षारोपण का भी संदेश महाभारत मे देते हुए कहते हैं कि वृक्षारोपण करने वाले मनुष्य की कीर्त्ति बनी रहती है तथा मृत्योपरांत परलोक मे उत्तम फलों की प्राप्ति होती है।[35] वृक्ष लगाने वाले को अपने पितृों तथा संतति का उद्धार करने वाला कहते हैं। अतः वृक्ष अवश्य लगाने चाहिए।[36]

स्पष्ट है कि महर्षि व्यास किसी कुशल पर्यावरणविद् की भाँति सन्देश देते हैं। विभिन्न नैतिक और धार्मिक तर्कों से वृक्षों की और वृक्षारोपण की महत्ता प्रतिपादित करते हैं। यहाँ तक कि वृक्षों के उपयोगिता से अधिक कटान किए जाने को भी मना करते हैं। भोजन के लिए द्रौपदी द्वारा लकड़ी लाए जाने को कहने पर भीम वहीं खड़े हरे वृक्ष को देखते हैं तो युधिष्ठिर उन्हें मना करते हैं और आश्रय प्रदाता वृक्ष को काटने से रोक देते हैं।[37] भीष्म युधिष्ठिर से कहते हैं कि जो भी ब्राह्मण को फल-फूलों से भरे वृक्षों का दान करता है वह अनायास ही रत्नों से परिपूर्ण धनसम्पदा तथा समृद्धशाली गृह प्राप्त करता है।[38]

इस प्रकार महाभारत ग्रन्थ पर्यावरणिक चेतना की दृष्टि से बड़ संवेदनशील दिखाई पड़ता है। महर्षि व्यास अपने दिव्य ज्ञान तथा अनुभव के द्वारा यत्र-तत्र वृक्षों के महत्त्व और उपयोगिता को रेखांकित करते हैं। वनस्पति आघात करने वाले को वो ब्रह्म-हत्या का दोषी कहते हैं।[39] निःसन्देह उनकी इक्षा यही है कि मानव समाज वृक्षों और पर्यावरण के प्रति कृतज्ञ बने तथा इनके प्रति अपने कर्त्तव्यों को समझे।

सन्दर्भ

1. आश्वमेधिक पर्व, 85/34, जरायुजाण्डजातानि स्वेदजान्युद्भिदानि च।
2. वही, 51/7, अव्यक्तादि विशेषान्तं सहस्थावरजंगमम्। सूर्यचन्द्रप्रभालोकं ग्रहनक्षत्र मण्डितम्।।
3. सौप्तिक पर्व, 7/5, यत्तु संसार गहनं वनमाहुर्मनीषिणः।।
4. वन पर्व, 86/28, तस्याथ मध्ये वेतसः पुण्यगन्धः सहत्रशाखे विपुलोविभाति। तस्य मूलात् सरितः प्रस्रवन्ति मधूदकप्रस्रवणाः सुपुण्याः।।
5. भीष्म पर्व, 39/1, ऊध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्। छंदासि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।
6. डद्योग पर्व, 29/54, वनं राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो, व्याघ्रास्ते वै संजय पाण्डुपुत्रा। सिंहाभिगुप्तं न वनं विनश्येत्, सिहों न नश्येत् वनाभिगुप्तः।। निर्वनो वध्यते व्याघ्रो निर्वाव्याघ्रं छिद्यते वनम्।।
7. शान्ति पर्व, 73/14, ब्रह्मवृक्षो रक्ष्यमाणो मधु हेम च वर्षति।

8. डद्योग पर्व, 133/43, यमाजीवन्ति पुरुषं सर्वभूतानि संजय। पक्वं द्रुममिवासाद्य तस्य जीवितमर्थवत्।।
9. आदिपर्व अनुक्रमणिका, 1/93, तस्य वृक्षस्य वक्ष्यामि शश्वत्पुष्पफलोदयम्। स्वादुमेध्यरसोपेतमच्क्छेद्यममरैरपि।।
10. आदि पर्व, 66/68, सप्तपिण्डफलान् वृक्षाननलापि व्यजायत्।।
11. शल्य पर्व, 45/16, वृक्षाश्चौषधिभिः सह।
12. कर्ण पर्व, 87/39,
13. शान्ति पर्व, 184/7,8, वृक्षाणां नोपलभ्यन्ते शरीरे पंचधातवः। न ऋण्वन्ति न पश्यन्ति न गन्धरसवेदिनः। न च स्पर्श विजानन्ति ते कथं पांचभौतिकाः।।
14. वही, 184/10, घनानामपि वृक्षाणामाकाशोस्ति न संशयः। तेषां पुष्पफलव्यक्तिर्नित्यं समुपपद्यते।।
15. अनुशासन पर्व, 126/5,
16. आश्वमेधिक पर्व, अध्याय 12, अहमश्वत्थरुपेण पालयामि जगतत्रयम्। तस्मात्प्रदक्षिणं कुर्यान्न छिन्द्यादेनमन्वहम्।।
17. भीष्म पर्व, 23/10, जम्बूकटकचौत्येषु नित्यं सन्निहितालये।।
18. उद्योग पर्व, 52/18, यथा कक्षं महानग्निः प्रदहेत् सर्वतश्चरन्।
19. वही, 74/10, धक्ष्यन्ते शिशिरापाये वनावीव हुताशनैः।
20. भीष्म पर्व, 108/40, कृष्णवर्त्मेव काननम्।
21. द्रोण पर्व, 3/17, येन येन प्रसरतो वायवग्नि सहितौ वने।
22. अनुशासन पर्व, 33/9, दावेष्वग्निशिखा इन।
23. द्रोण पर्व, 110/33,
24. वही, 174/23, क्षितिकम्पे यथा शैलः सवृक्षस्तृणगुल्मवान्।
25. वही, 137/29, भग्ना द्विपेनेव महाद्रुमाः।
26. आदि पर्व, 150/4, स रोषित इव क्रुद्धो वने भंजन् महाद्रुमान। त्रिप्रस्रुतमदः शुष्मी षष्टिवर्षी मंतगराट्।।
27. शल्य पर्व, 24/63,
28. आश्वमेधिक पर्व, 15/29,
29. आदि पर्व, 64/13,
30. वन पर्व, 143/14, कृष्णामादाय संगम्य तस्थावाश्रित्य पादपम्।
31. अनुशासन पर्व, 58/29, विन्नरोरक्षांसि देवगन्धर्वमानवाः। तथा ऋषिगणाश्चौव संश्रयन्ति महीरुहान्।।
32. वही, 5/22, अस्मिन्नहं द्रुमेजातः साधुमिश्च गुणैर्युतः। बालभावेन् संगुप्तः शत्रुमिश्च न धर्षितः।।
33. वही, 5/26,
34. वही, 5/30, ततः फलानि पत्राणि शाखाश्चापि मनोहराः। शुकस्य दृढ़भाक्तित्वाच्छ्रीमत्तां प्राप स द्रुमः।
35. वही, 58/24,
36. वही, 58/26,
37. विराट पर्व, 16/19, यस्त चार्द्रस्य वृक्षस्य शीतच्छायां समाश्रयेत। न तस्य पर्ण द्रुह्येत पूर्ववृत्तमनुस्मरन्।।
38. अनुशासन पर्व, 57/36,
39. वही, 127/3

महात्मा गाँधी की शिक्षा की अवधारणा: एक मूल्याकंन

डॉ० अवधेश कुमार

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी राजकीय महाविद्यालय, भदोही

भारतीय राजनीति में सक्रिय पदापर्ण के पश्चात महात्मा गाँधी ने विभिन्न विषयों पर अपने विचार प्रकट किये। उन्होंने भारत की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा प्रणाली को विकसित करने पर जोर दिया। महात्मा गाँधी का यह मानना था कि मनुष्य के व्यक्तिव के निर्माण के लिए शिक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने तत्समय प्रचलित शिक्षा प्रणाली में व्याप्त दोषों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हुये यह स्पष्ट किया कि शिक्षा प्रणाली में मूलभूत परिवर्तन की आवश्यकता है और इन परिवर्तनों को आत्मसात करके ही बेहतर भारत का निर्माण किया जा सकता है। उन्होंने शिक्षा के विभिन्न स्तरों - प्राथमिक तथा उच्च शिक्षा में विद्यमान दोषों का विश्लेषण करते हुये एक ऐसी शिक्षा प्रदान किये जाने की बात कही जिससे व्यक्ति स्वावलम्बी बन सके।

महात्मा गाँधी का मानना था कि भारत की जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग कृषि पर आश्रित है तथा कुछ हिस्सा उद्योगों में श्रम करके अपना जीवन-यापन करता है। अत: ऐसी स्थिति में भारत में केवल साहित्यिक शिक्षा प्रदान करके यहाँ के युवक तथा युवतियों को श्रम करने हेतु अयोग्य बनाया जाना उचित नहीं है।[1] उनका यह कहना था कि भारतीय परिवेश में यह महत्वपूर्ण है कि लोगों का अधिकांश समय अपनी आजीविका का प्रबन्ध करने में लग जाता है अत: यह उचित होगा कि बाल्यकाल से ही बच्चों को परिश्रम के लिए प्रेरित किया जाय। बालकों की शिक्षा इस प्रकार से होनी चाहिए कि वे परिश्रम का महत्व समझें तथा परिश्रम का तिरस्कार न करें। उन्होनें कहा कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली ऐसी है कि भारतीय स्कूलों के बच्चे शारीरिक श्रम को पसन्द नही करते हैं।

महात्मा गाँधी के अनुसार ''सा विद्या या विमुक्तये। विद्या वह है जो मुक्ति के योग्य बनाये बाकी सब अविद्या है''।[2] उनका मानना था कि ऐसी शिक्षा जो कि मन को स्वच्छ न करें, व्यक्ति को स्वावलम्बी न बनाये तथा मनुष्य को जीविकोपार्जन का साधन न उपलब्ध कराये, मनुष्य को परतन्त्रता से मुक्त होने तथा स्वतन्त्र होने की ताकत और उत्साह न उत्पन्न करें तो ऐसी शिक्षा में चाहे जितना ज्ञान भरा हो वह शिक्षा अधूरी है। महात्मा गाँधी का मानना था कि इन्द्रियों के बुद्धिपूर्वक उपयोग की शिक्षा देकर के बच्चों के भीतर उचित शिक्षा की भावना विकसित की जा सकती है किन्तु उन्होंने स्पष्ट किया कि बुद्धि के साथ आत्मा की जागृति भी आवश्यक है और इस तरह से मस्तिष्क और शरीर का विकास साथ साथ होना चाहिए बालकों के मस्तिष्क और सम्पूर्ण व्यक्तिव का विकास तभी हो पायेगा जब बच्चों को शारीरिक और आध्यत्मिक शिक्षा साथ साथ दी जायेगी।[3] इस प्रकार महात्मा गाँधी ने बालकों के चतुर्मुखी विकास हेतु उनकी शारीरिक तथा आध्यत्मिक शिक्षा पर जोर देने की बात कही।

महात्मा गाँधी ने स्पष्ट किया कि यदि भारत के भविष्य को उज्ज्वल बनाना है तो प्राथमिक शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। वर्तमान में जो शिक्षा प्रणाली प्रचलित है उसमें भारत के ग्रामीण क्षेत्रों के आवश्यकताओं को ध्यान में नहीं रखा गया है और यदि वृहद स्तर पर देखा जाये तो शहरी क्षेत्रों की आवश्कताओं को भी ध्यान में नही रखा गया है।[4] महात्मा गाँधी के अनुसार प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य दस्तकारी के द्वारा बच्चों का शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक विकास करना है। उनका मानना था कि प्राथमिक शिक्षा के द्वारा बालकों को स्वावलम्बी बनाने का प्रयास करना चाहिए तथा बच्चो को अपने हाथ से कोई न कोई उद्योग धन्धा करने के लिए प्रक्षिशित करना चाहिए जिससे कि शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात भारत में बेरोजगारी न रहे और लोग आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बन सके। बालकों को प्राथमिक शिक्षा प्रांतीय भाषा के माध्यम से प्रदान करनी चाहिए।[5]

महात्मा गाँधी ने भारत में शिक्षा व्यवस्था सम्बन्धी अपनी मान्यता प्रस्तुत करते हुए कहा कि प्राथमिक शिक्षा बालक एवं बालिकाओं की एक साथ होनी चाहिए। उन्होंने स्पष्ट किया कि इस समय छात्र-छात्राओं का अधिकतम समय शिक्षकों की देखरेख में शारीरिक काम में बीतने वाला होना चाहिए। शिक्षक को चाहिए कि वह छात्र-छात्राओं के भीतर की रूचि को पहचान कर उन्हें उनकी रूचि के अनुरूप कार्य सम्पन्न करने के लिए प्रेरित करें। छात्रों को हिन्दी तथा उर्दू की शिक्षा राष्ट्र भाषा के रूप में दी जानी चाहिए। प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत धार्मिक शिक्षा भी आवश्यक है किन्तु यह पुस्तक के माध्यम से नहीं अपितु शिक्षकों के आचरण तथा उनके शब्दों द्वारा दी जानी चाहिए।[6] बालकों तथा बालिकाओं को शिक्षित करने करने हेतु महात्मा गाँधी ने दक्षिण अफ्रीका में टॉल्स्टॉय आश्रमों की स्थापना की थी। महात्मा गाँधी का मानना था कि ह्रदय की शिक्षा अर्थात चरित्र के विकास को सबसे महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।7 साथ ही शारीरिक शिक्षा की आवश्यकता पर भी उन्होंने बल दिया।

महात्मा गाँधी के अनुसार शिक्षा प्रदान किये जाने का दूसरा काल नौ वर्ष से सोलह वर्ष के बीच का होता है। इस दौरान छात्र-छात्राओं को इतिहास, भूगोल, वनस्पति शास्त्र, खगोल विद्या, गणित, भूमिति तथा बीजगणित आदि का साधारण ज्ञान उपलब्ध कराया जाना चाहिए। महात्मा गाँधी का यह भी मानना था कि यदि इस अवधि में छात्रों के माता पिता के जीविका का साधन निश्चित हो गया हो अर्थात यदि उन्होंने कोई व्यवसाय अपना लिया हो और छात्र अपने माता पिता के परम्परागत व्यवसाय को जीविकोपर्जन हेतु अपनाना चाहते हो तो छात्रों को उस व्यवसाय का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए किन्तु यह बात छात्राओं के लिए नहीं है।[8]

छात्र-छात्राओं के शिक्षण का तीसरा काल सोलह से पच्चीस वर्ष का निर्धारित करते हुए महात्मा गाँधी ने कहा कि इस अवधि में युवक तथा युवतियों को उनकी इच्छा के अनुसार शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि भारत में शिक्षकों को बहुत ज्यादा उच्च वेतन तो नहीं दिया जा सकता किन्तु इतना वेतन अवश्य मिलना चाहिए जिससे कि शिक्षकों की जीविका सुचारू रूप से चल सके। स्त्री शिक्षा पर जोर देते हुए उन्होंने कहा कि स्त्रियों को भी पुरूषों के समान शिक्षा मिलना चाहिए यदि आवश्यकता हो तो उन्हें विशेष सुविधा भी मिलनी चाहिए। महात्मा गाँधी ने प्रौढ़ शिक्षा की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए कहा कि निरक्षर स्त्री - पुरूषों को शिक्षित करने के लिए भी व्यवस्था करनी चाहिए। उनको अक्षर ज्ञान की जानकारी के लिए भाषणों आदि के माध्यम से शिक्षा प्रदान किये जाने की सुविधा उपलब्ध करायी जानी चाहिए।[9]

महात्मा गाँधी का मानना था कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में बहुत सारे दोष है क्योंकि यह शिक्षा प्रणाली विदेशी संस्कृति पर आधारित है तथा इसमें भारतीय संस्कृति के तत्वों को पूरी तरह से अस्वीकृत कर दिया गया है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली ह्रदय तथा हाथ के आपसी तालमेल की संस्कृति की पूरी तरह से अनदेखी करते हुए केवल बुद्धि पर आधारित है। विदेशी माध्यम से भारत में वास्तविक शिक्षा असम्भव है।[10] विदेशी सरकार के द्वारा प्रदान की जाने वाली शिक्षा के दोषों को रेखांकित करते हुए महात्मा गाँधी ने कहा कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में भारतीय संस्कृति को असभ्य रूप में दर्शा कर प्रस्तुत किया जाता है और यदि मेरा बस चले तो मैं अधिकतर पाठ्य पुस्तको को नष्ट कर दूँ। दूसरी बात यह भी महत्वपूर्ण है कि भारत में अस्सी प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आधारित है तथा अन्य दस प्रतिशत उद्योग पर आधारित है। अतः वर्तमान शिक्षा प्रणाली से भारत का किसी प्रकार का भला नहीं हो सकता है। यदि शिक्षा प्रणाली में हस्त - कौशल के प्रशिक्षण को सम्मिलित कर लिया जाये तो भारत जैसे गरीब देश को दोहरा लाभ प्राप्त हो सकता है। इससे एक ओर तो जहाँ बालकों को अपना व्यवसाय करने में मदद मिलेगी वहीं दूसरी ओर उनको श्रम करने की प्रेरणा मिलेगी। विदेशी माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने के कारण भारत के बालकों के मस्तिष्क पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। विदेशी माध्यम से शिक्षा प्राप्त करके भारतीय अपनी ही मातृ - भूमि पर विदेशी मानसिकता से प्रभावित होकर रहते हैं। विदेशी भाषा ने भारतीय भाषाओं की उन्नति के मार्ग में बाधा उत्पन्न की है इसलिए मेरा मानना है कि विदेशी माध्यम से बालक तथा बालिकाओं को दी जाने वाली शिक्षा बन्द की जानी चाहिए। महात्मा गाँधी ने कहा कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार वाणिज्य तथा कूटनीति के लिये मैं अग्रेंजी भाषा का सम्मान करता हूँ तथा हममें से कुछ लोगों की इसकी जानकारी होना आवश्यक है क्योंकि इस भाषा के अन्तर्गत समृद्ध विचार तथा साहित्य उपलब्ध है किन्तु भारतीय परिप्रेक्ष्य में बालकों को शिक्षा देने हेतु भारत की भाषाऐं महत्वपूर्ण हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए महात्मा गाँधी ने स्पष्ट किया कि राष्ट्रीय शिक्षा की उन्नति तभी हो पायेगी जब वर्तमान राष्ट्रीय शालायें अपने महत्वपूर्ण योगदान को लोगों के समक्ष प्रकट करेगीं। उन्होंने कहा कि सरकारी शालाओं में इस प्रकार की शिक्षा नहीं दी जाती है जिससे कि युवक और युवतियाँ अपने पैरों पर खड़े हो सके और स्वावलम्बी बने सके किन्तु उसकी चकाचौंध के कारण विद्यार्थियों की आँखे सच्चाई को नहीं देख पा रही हैं। सरकारी शालाओं में दी जाने वाली शिक्षा, शिक्षार्थियों के अन्दर यह लालच पैदा करती है कि वे नौकरियाँ हासिल कर लेगें किन्तु बहुत कम ही विद्यार्थियों को नौकरियाँ मिल पाती है किन्तु राष्ट्रीय शिक्षा विद्यार्थियों के समक्ष ऐसा कोई लालच नहीं प्रस्तुत करती है। राष्ट्रीय शिक्षा युवकों को स्वावलम्बी बनाने के लिए के केन्द्रित है। राष्ट्रीय शिक्षा सभी को जीवोकोपर्जन का साधन उपलब्ध कराने के उद्देश्य से प्रेरित है। जैसे -जैसे लोग खादी और चरखे को अपनायेगें वैसे राष्ट्रीय शिक्षा का भी विस्तार होगा।[11]

महात्मा गाँधी ने शिक्षा के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए कहा कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति का चरित्र निर्माण होना चाहिए। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति के भीतर के साहस, शक्ति और सद्गुण का विकास किया जाना चाहिए। मैकाले की शिक्षा नीति की आलोचना करते हुए महात्मा गाँधी ने कहा कि करोड़ों भारतीयों को अग्रेंजी की शिक्षा देना उन्हें दास बनाना जैसा है। जो शिक्षा अग्रेजों ने स्वयं ठुकरा दिया है उसी को भारत में लागू किया गया है। उन्होंने कहा कि ऐसी परिस्थितियों में जब कि इंग्लैण्ड अपनी क्षेत्रीय भाषाओं को प्रोत्साहित कर रहा है, भारत में विदेशी भाषा थोपी जा रही है। अग्रेंजी शिक्षा को ग्रहण करके भारतीय अपने राष्ट्र को गुलाम बनाये हुए है।[12] 1924 ई. में पंजाब कौमी विद्यापीठ में दीक्षांत भाषण देते हुए महात्मा गाँधी ने कहा था कि मैने वर्तमान प्रचलित शिक्षा प्रणाली के चालीस वर्षो के परिणाम का अवलोकन करने के पश्चात यह पाया कि प्रचलित शिक्षा प्रणाली सही नहीं है। उन्होंने स्वीकार किया कि पहले वह अग्रेंजो की शिक्षा प्रणाली को पसंद करते थे और उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में कई लोगों को बैरिस्टर बनाने में सहायता भी की थी किन्तु समय के साथ उनका भम्र दूर हो गया और उन्होंने यह स्वीकार किया कि आने वाले समय का भविष्य उन देशों के हाथ में होगा जहाँ पर शारीरिक श्रम के महत्व को समझा जायेगा और उन्हें शिक्षा प्रणाली में अंगीकृत किया जायेगा।[13]

महात्मा गाँधी का मानना था कि उच्च शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा के अनुरूप होनी चाहिए। विश्वविद्यालयों को स्वयं अपनी सहायता करने के योग्य बनाया जाना चाहिए। राज्य केवल उन्हीं लोगो को शिक्षित करेगा जिनकी उसे आवश्यकता महसूस होगी। बाकी क्षेत्रों में शिक्षा हेतु व्यक्तिगत प्रयासों की आवश्यकता होगी। महात्मा गाँधी का मानना था कि क्षेत्रीय भाषा की स्थिति में सुधार लाने व उनकी महत्ता को बढ़ाने के लिए उस क्षेत्र के न्यायालयों की भाषा भी प्रान्तीय भाषा होनी चाहिए। प्रान्तीय विधायिका की कार्यवृत्ति भी क्षेत्रीय भाषाओं में होनी चाहिए। महात्मा गाँधी के अनुसार भाषा के सम्बन्ध में निर्णय शिक्षाविदो के द्वारा नहीं लेना चाहिए बाल्कि बालक एवं बालिकाओं के ऊपर छोड़ देना चाहिए कि उनको शिक्षा किस भाषा में दी जाय।[14] प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्र में यह निर्णय बालक एवं बालिकाओं के ऊपर ही छोड़ दिया गया है। यहाँ तक कि उनको कौन सा विषय पढ़ाया जाय यह भी उस राष्ट्र की आवश्यकता के आधार पर ही निर्धारित किया जा सकता है। महात्मा गाँधी ने यह भी स्पष्ट किया था कि भारत के स्वत्रन्त होने के पश्चात भाषा के माध्यम की समस्या का समाधान कर लिया जायेगा। उनका कहना था कि शिक्षाविदों के द्वारा पाठ्यक्रम तथा पाठय पुस्तके तैयार की जायेगी किन्तु शिक्षा के माध्यम से ठीक उसी तरह से राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति की जायेगी जैसे की वर्तमान समय में विदेशी शासको के द्वारा अपने आवश्यकताओं की पूर्ति की जा रही है।

महात्मा गाँधी ने कहा था कि मैं उच्च शिक्षा के विरूद्ध नही हूँ किन्तु मैं ऐसी उच्च शिक्षा का विरोध अवश्य करता हूँ जो कि वर्तमान समय में विदेशी शासकों के द्वारा भारत में प्रदान की जा रही है। उन्होने स्पष्ट किया था मेरी शिक्षा योजना के अन्तर्गत उच्च शिक्षा के पुस्तकालय, प्रयोगशालायें तथा शोधशालाएं होगी। हमें रयासन शात्रियों, अभियंताओं तथा अन्य विशेषज्ञों का एक समूह बनाना होगा और वही राष्ट्र के वास्तविक सेवक होगे तथा भारत की आवश्यकताओं

की पूर्ति कर सकेगें और ये सभी विदेशी भाषा नहीं बोलेंगे अपितु आम लोगों की भाषा बोलेगे उनके द्वारा प्राप्त किया गया ज्ञान सभी के लिए सुलभ होगा तथा यह वास्तविक रूप से यह नया कार्य होगा न कि पहले किए गये कार्यो की प्रतिलिपि।[15]

महात्मा गाँधी ने शिक्षको तथा विद्यार्थियों के विषय में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि शिक्षक को चाहिए स्वयं वह चरित्रवान हों तथा विद्यार्थियों के भीतर चरित्र का निर्माण करें। शिक्षक को विद्यार्थियों के ह्रदय में प्रवेश करने का प्रयास करना चाहिए जिससे कि शिक्षकों तथा विद्यार्थियो के बीच के सम्बन्ध मधुर हो। शिक्षक को सदैव अपनी योग्यता बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए तथा अपनी विषय से सम्बन्धित अद्यतन सूचनाओं को आत्मसात करके अपने आपको कक्षा में प्रस्तुत करना चाहिए। शिक्षकों को यह भी प्रयास करना चाहिए वह विद्यार्थियों के भीतर की क्षमता का पता लगाकर उसे सही दिशा प्रदान करें साथ ही उनकी समस्याओं का समाधान भी करना चाहिए।[16] महात्मा गाँधी ने विद्यार्थियों को खादी के उपयोग की सलाह देते हुए उनके भीतर राष्ट्रीयता की भावना का संचार करने का प्रयास किया। उन्होंने कहा कि विद्यार्थियों को खाली समय का उपयोग लोगों की सेवा करके करना चाहिए।

इस प्रकार महात्मा गाँधी ने औपनिवेशिक शासन के अन्तर्गत प्रचलित शिक्षा प्रणाली का विरोध करते हुए शिक्षा के सम्बन्ध में अपनी अवधारणा प्रस्तुत की। उन्होंने जहाँ एक ओर बुनियादी शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय शिक्षा का विकल्प प्रस्तुत करके भारत के अन्दर राष्ट्रवादी विचारधारा से परिपूर्ण शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात किया। राष्ट्रीय शिक्षा के माध्यम से उन्होंने भारत के लोगों को भारतीय परिवेश के अनुरूप स्वावलम्बी बनाने की बात कही। शारीरिक शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिलाते हुए उन्होंने शारीरिक श्रम की महत्ता को स्थापित करने का प्रयास किया। भारतीय आवश्यकताओं के अनुरूप धर्म की शिक्षा की बात करके उन्होंने भारत की साम्प्रदायिक एकता को स्थापित करने तथा व्यक्ति को नैतिक रूप से ऊँचा उठाने का प्रयास किया। स्त्री शिक्षा पर विशेष जोर देते हुए उन्होंने महिलाओं को समाज में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया।

संदर्भ

1. यंग इंडिया 1-09-1921, मो0 क0 गांधी, मेरे सपनों का भारत , (संग्राहक आर0 के0 प्रभु0) नवजीवन, प्रकाशन, अहमदाबाद, 2005, पृ0 196 में उद्धत।
2. मशरूवाला, कि0घ0, गांधी विचार दोहन, (अनुवादक काशिनाथ त्रिवेदी), नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1964, पृ0 161
3. हरिजन, 08-04-1937 गांधी, मो0 क0, पूर्वोक्त पृ0 196
4. वही पृ0 199
5. वही पृ0 200
6. मशरूवाला, कि0घ0, पूर्वोक्त पृ0 180-181
7. गाँधी, एम.के., सत्य के प्रयोग अथवा आत्म कथा, नवजीवन प्रकाशन अहमदाबाद, (पुर्नमुद्रण) 2007, पृ0 305-306
8. मशरूवाला, कि0घ0, पूर्वोक्त 181-182
9 वही पृ0 182-183
10. बोस, एन.के., सेलेक्शन्स फ्राम गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1948, पृ0 283
11. नवजीवन, 05-06-1927, कलेक्टेड वर्क्स आफ महात्मा गांधी, खण्ड 33, जनवरी: जून-1927, पृ0 467-468
12. गाँधी, मोहन दास करम चन्द, हिन्द स्वराज्य सर्व सेवा संघ प्रकाशन वाराणसी, 2013 पृ0 90-91
13. ट्रिब्यून, 09-12-1924, कलेक्टेड वर्क्स आफ महात्मा गांधी, खण्ड 25, अगस्त: जनवरी-1925 पृ0 431
14. हरिजन, 9-7-1938 पृ0 176, बोस, एन.के., पूर्वोक्त पृ0 296-297
15. वही
16. मशरूवाला, कि0घ0, पूर्वोक्त पृ0 176-177

उत्तराखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में हो रहे पयालन से महिलाओं के समाजिक एंव राजनीतिक जीवन पर प्रभाव का एक अध्ययन

डॉ० राकेश सिंह नेगी

सहायक प्रोफेसर राजनीति विज्ञान, हेमवती नदंन बहुगुणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर उत्तराखण्ड, भारत

परिचय

भारत के उत्तर में स्थित हिमालय विश्व की नवीन व सर्वोच्च पर्वत श्रृंखला है[1]।

पुराणों में वर्णन किया गया है कि मानसखण्ड एवं केदारखण्ड से मिलकर वर्तमान में उत्तराखण्ड (पूर्व में उत्तरांचल) राज्य बना है। ऋग्वेद में इस भूमि को स्वर्ग कहा गया है। ब्रह्मपुराण, शिवपुराण, विष्णुपुराण, वायुपुराण, अग्निपुराण आदि धर्मग्रन्थों में भी उत्तराखण्ड का व्यापक वर्णन मिलता है। इस क्षेत्र को पहले गढ़वाल व कुमायूँ नाम से नहीं जाना जाता था। बल्कि गढ़वाल क्षेत्र को केदारखण्ड तथा कुमायूँ क्षेत्र को मानसखण्ड के नाम से जाना जाता था। माना जाता है कि विष्णु भगवान सूर्य अवतार के रूप में तीन वर्षों तक कानदेव पर्वत की चोटी पर रहे जो कुमायूँ मण्डल में चम्पावत के समीप है, कालान्तर में यह चोटी कूर्मांचल कही गई।[2] कूर्मांचल से ही कुमायूँ शब्द की उत्पत्ति हुई। और गढ़वाल शब्द गढ़वाला अर्थात दुर्गों वाला क्षेत्र से बना है, क्योंकि यहाँ पर कई गढ़ व गढ़ियां थी जिनमें से कई आज भी विद्यमान है।[3] वस्तुतः भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा प्रशासनिक तीनों दृष्टियों से कुमायूँ एवं गढ़वाल इस क्षेत्र के लिए नये नाम हैं। यह गढ़वाल क्षेत्र तथा कुमायूँ क्षेत्र दो मण्डल मिलकर बना है उत्तराखण्ड भारतवर्ष का सत्ताइसवां राज्य है। यह राज्य अपनी सांस्कृतिक, अध्यात्मिक, भौतिक एवं अन्य अनेक विशिष्टताओं से युक्त है। वन सम्पदा, जल सम्पदा, धार्मिक स्थल, प्राकृतिक सौन्दर्य तथा प्राकृतिक आपदाओं के कारण, भू-वैज्ञानिकों, प्राणी एवं वनस्पति शास्त्रियों तथा सैलानियों आदि के लिए भी एक आकर्षण एवं चुनौती प्रस्तुत करता आया है। गढ़वाल मण्डल में सात जिले, देहरादून, टिहरी गढ़वाल, पौड़ी गढ़वाल, उत्तरकाशी, रुद्रप्रयाग, चमोली व हरिद्वार है तथा कुमायूं मण्डल में छः जिले नैनीताल, अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, बागेश्वर, चम्पावत एवं उधमसिंह नगर है। उत्राखण्ड पृथ्क राज्य का निमार्ण ही विकास व रोजगार के लिए हुआ था इस राज्य की भोगौलिक स्थिति में तेरह जिलों में से ग्यारह जिले पहाडी हैं व दो जिले मैदानी हैं।

भारत के उत्तर में स्थित हिमालय विश्व की नवीन व सर्वोच्च पर्वत श्रृंखला है,जो कि अतीत काल से ही भारतीयों की जिज्ञासा एवं प्रेरणा का स्रोत रहा है। अपने सौन्दर्य, रहस्यात्मक भव्यता और उच्चता से इस पर्वत श्रृंखला ने मानवीय कल्पनायें और उदात्त अनुभूतियों का संचार किया है। वेदों और पुराणों में भी यहां के हिमालय की समस्त गौरव गाथा का उलेख मिलता है।

शोध पत्र का उद्देश्य

1. उत्तराखण्ड राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति का अध्ययन करना।
2. उत्तराखण्ड राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में पलायन करने वालों का अध्ययन करना।
3. उत्तराखण्ड राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों की आर्थिक स्थिति के आधार पर महिलाओं की समाजिक व राजनीतिक स्थिति का अध्ययन करना।
4. उत्तराखण्ड राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों की जाति के आधार पर महिलाओं की समाजिक व राजनीतिक स्थिति का अध्ययन करना।
5. उत्तराखण्ड राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों की आवासीय स्थिति के आधार पर महिलाओं की समाजिक व राजनीतिक स्थिति का अध्ययन करना।

शोध पत्र में विधि

प्रस्तुत शोध पत्र सामाजिक अनुसन्धान की वैज्ञानिक पद्वति पर आधारित है। इस अध्ययन में एकत्रित आंकड़ों का विश्लेषण करने के लिए सामाजिक शोध की पारम्परिक वैज्ञानिक पद्वति एवं एस.पी.एस एस (Statistical Package of Social Sciences) दोनों ही विधियों का प्रयोग किया गया है। इस शोध पत्र के वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु योजनाबद्व ढंग से अध्ययन कार्य किया गया। यद्यपि उत्तराखण्ड में पलायन बहुत है, लेकिन महिलाओं की जागरुकता, सहभागिता, राजनीतिक व्यवहार आदि पर क्या इसका प्रभाव है। इन उद्देश्यों पर अब तक पर्याप्त कार्य नहीं किया गया है। यहां अध्ययन के उद्देश्यों को स्पष्ट करने के लिए साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से वास्तविक तथ्यों की प्राप्ति का प्रयास किया गया। अतः इस दृष्टि से प्रस्तुत शोध पत्र अपने आप में विशिष्ट महत्व रखता है एवं रोचक हो जाता है।

आज उत्तराखण्ड राज्य के लिए पलायन एक बहुत बडी समस्या बन चुकी हैं। पहाडी ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की अच्छी स्थिति ना होना, बेरोजगारी व यातायात अस्पताल आदि की अच्छी स्थिति ना होने के कारण अधिकाशं गांव के गांव खाली हो चुके हैं। यहां तक कि भाजपा सरकार में त्रिवेन्द्र मुख्यमंत्री काल में राज्य में पलायन आयोग तक का गठन कर दिया था। जब से उत्तराखंड राज्य अस्तित्व में आया है तब से निरंतर राज्य का पलायन बढता ही जा रहा है पलायन आयोग की रिपोर्ट के अनुसार प्रदेश के हजारों गांव पूरी तरह खाली हो चुके हैं वहीं 400 से अधिक गांव ऐसे हैं जहां 10 से भी कम नागरिक हैं इसलिए यह विषय अपने आप में चितंनीय है। पलायन आयोग की ओर से सौंपी गई रिपोर्ट के अनुसार अकेले अल्मोडा जिले में ही 70 हजार लोगों ने पलायन किया है राज्य की 646 पंचायतों के 16207 लोगों ने स्थाई रूप से अपना गांव छोड चुके हैं इसी रिपोर्ट में 73 फीसदी परिवारों की मासिक आय 5000 रूपये से कम बताई गई है। राज्य में पलायन एक बहुत बडी समस्या के रूप में देखकर 17 सितंबर 2017 को राज्य में पहला पलायन अयोग का गठन किया गया। जो कि यह शोध करेगा कि लोग पलायन क्यों कर रहे हैं। आज खाली पडे गांवों को भूतिया गांव कहे जाने लगा है पलायन करने वालों में सर्वाधिक युवा वर्ग हैं। पलायन आयोग के अध्यक्ष एस एस नगी का कहना है कि रोजगार के साधनों के अभाव में युवाओं के पलायन का मुख्य कारण है रोजगार के नाम पर पहाडों पर कुछ भी नहीं है जिसके कारण युवा रोजी रोटी की तलाश में बडे शहरों का रूख करने को विवश हो रहे हैं उत्तराखण्ड राज्य के पहाडी ग्रामीण क्षेत्र कई समस्याओं का सामना करते हैं। इन क्षेत्रों के निवासियों की समस्या दुर्गमता से लेकर स्वास्थ्य, शिक्षा और यहां तक कि भोजन और पानी जैसी बुनियादी सुविधाओं तक है। उनके उत्पादों आदि के लिए ऋण व संसाधनों व बाजार के लिए दुर्गमता जो इन पहाडी क्षेत्रों के मूल निवासियों के लिए कठिन जीवन और कामकाजी दशा प्रस्तुत करती है। उत्तराखण्ड राज्य पहाडी ग्रामीण क्षेत्रों का प्रतीक है। उत्तराखण्ड बने दो दशक हो चुके हैं बारी बारी से इस राज्य में दो राष्ट्रीय दलों की सरकार रही है। लेकिन दुर्भाग्यवश अभी तक कोई खाश नीति सरकार द्धारा नहीं बनाई गयी है। यहां ग्रामीण क्षेत्रों की अर्थब्यवस्था को मनीऑर्डर अर्थव्यवस्था के नाम से जाना जाता है। पलायन बढ रहा है। यह पलायन की प्रवृति कई रूपों मे देखी जा सकती है जैसे एक गांव से दूसरे गांव में, गांव से नगर, नगर से नगर, नगर से गांव। भारत में गांव से शहरों की ओर पलायन की प्रवृति अधिक है पूर्व राष्ट्रपति एंव मिसाइल मैन डॉ. अब्दुल कलाम ने कहा था कि शहरों को गांवों में ले जाकर ही ग्रामीण पलायन पर रोक लगाई जा सकती है आज इस वाक्य पर चिंतन मनन व कुछ करने की आवश्यकता है। यह पलायन न केवल उत्तराखण्ड के गांवो से है अपितु भारत के कई गांव कस्बों की आज समस्या बन गयी है। भारत के सन्दर्भ में कहा जाता था कि भारत गांवों का देश है वर्तमान में गांव के गांव षहरों में पलायन कर चुके हैं व दिन प्रतिदिन करते जा रहे हैं यह पलायन आज ना केवल हमारी सामाजिक समस्या है अपितु हमारी धरोहर, संस्कृति मूल्य व परम्परा को भी प्रभावित कर रही है व नगरों को भी प्रभावित कर रही है आज नागरिक समाज हो या सरकार पलायन के कारणों व निवारण पर नवीनता से सोचना होगा जो कि आने वाले समय में एक समस्या ना बनें।

यहां युवाओं के लिए कौन सी योजना हो सकती है जिससे युवाओं का पलायन रूकेगा इस पर भी कोई नीति नहीं है पहाड में पहाड जैसा जीवन जीने को यहां के लोग मजबूर हैं जहां एक ओर हम डिजिटल भारत की बात करते है। वहीं दूसरी और आये दिन गांव खलियान में किसी की तबियत खराब हो गयी तो कंधा में मिलों दूर उन्हे पैदल आना पडता है। लोकतंत्र में जनता का शासन जनता के लिए व जनता के द्वारा होता है लेकिन लोगों की समस्याएं समझने का प्रयास होना चाहिए। जिससे जनहित भी होगा और राष्ट्र हित भी होगा। आज यहां पुरूषों के पलायन के कारण महिलाओं का कार्यबोझ बढा है। मेरे शोध में यह देखा गया कि यहां कि महिलाएं 18-18 घंटे काम करती हैं जिससे उनकी सामाजिक व राजनीतिक जीवन पर इस कार्यबोझ का प्रभाव पडता है। उत्तराखण्ड राज्य सामरिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है यह राज्य दो चीन तथा नेपाल देशों की सीमा से लगा हुआ है यदि इन पहाडी गांवों का पलायन रूकेगा नही तो वो दिन दूर नहीं जब ये गांव खाली हो जायेगें जो राज्य व राष्ट्र हित के लिए अच्छा संकेत नहीं है। इसलिए भी पलायन का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। उत्तराखण्ड के गांवों से पलायन हर एक दिन बढता जा रहा है ग्रामीण क्षेत्र से षहरी क्षेत्र की और पलायन आज से नहीं जब से उत्तराखण्ड अलग राज्य बना आज 20 वर्षो के उपरान्त भी राज्य के ग्रामीण क्षेत्र के लोग दो जून की रोटी के लिए मैदानी क्षेत्रों में प्रवास कर रहे हैं। इस पर लेख तो काफी संख्या में उपलब्ध हैं लेकिन विस्तृरित शोध अभी तक बहुत कम हुआ है।

उत्तराखण्ड के पर्वतीय जनपदों से मूलभूत सुविधाओं के अभाव से लोग पलायन कर रहे हैं जनपद अल्मोडा में वर्ष 2001 से 2011 तक दस सालों में करीब 70 हजार परिवार के लोगों ने पहाड के गांवों से पलायन कर कई क्षेत्र अभी तक विकास की मुख्यधारा से बाहर हैं। खराब जीवन स्तर व आर्थिक स्थिति का ठीक ना होने के कारण यहां के पुरूष मैदानी क्षेत्रों में रोजगार हेतु गए धीरे धीरे परिवार को भी साथ ले गए आज पहाड के गांव खाली हो चुकें हैं। इस क्षेत्र की महिलाओं को इन क्षेत्रों से जुडी सभी समस्याओं का बोझ उठाने के बावजूद इन क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होती है। इन दो दशकों में यहां कि सरकार सिर्फ ग्रीष्मकालीन राजधानी गैरसैण को घोषित कर पायी है। मूलभूत आवश्यकताओं की कमी के कारण यहां के लोग पैतृक गांव से पलायन कर गए। यह पलायन आयोग की रिपोर्ट में कहा गया है। हमारे देश की ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत निरंतर घट रहा है जिसके पीछे मुख्य कारण गांवो से षहरों की ओर पलायन करना है। गांवों में बुनियादी विकास मूल आवश्यकता है। हर जगह शिक्षा की अलख जगानी होगी। 2011 के अनुसार हमारे देश की कुल जनसंख्या 121.02 करोड आंकलित की गई थी जिसमें 68.84 प्रतिशत जनसंख्या गांवों मे निवास करती है और 31.16 प्रतिशत जनसंख्या शहरों में निवास करती है। स्वतंत्र भारत की प्रथम जनगणना 1951 में ग्रामीण व शहरी आबादी का अनुपात 83 प्रतिषत एंव 17 प्रतिषत था। 50 वर्ष बाद 2001 की जनगणना में ग्रामीण एंव षहरी जनसंख्या का प्रतिशत 74 एंव 26 प्रतिशत हो गया। इन अध्ययन के आकडों के आधार पर यह स्पष्ट है कि भारतीय ग्रामीण लोंगों का षहरों की ओर पलायन तेजी से बढ रहा है। इस संदर्भ में जैसा कि महात्मा गांधी के सत्याग्रह के विभिन्न प्रकारों में एक हिजरत था इसका अर्थ अपने स्थायी व परम्परागत निवास स्थान को स्वेच्छा से छोडकर अन्य किसी इलाके में जाकर बस जाना। हिंदी के प्रसिद्ध कथाकार मुंशी प्रेमचन्द ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास गोदान में लगभग 85 वर्ष पूर्व गांव छोडकर शहर जाने की समस्या को उठाया था।

यहां प्राकृतिक संसाधनों की कोई कमी नहीं है, हिमालय में विभिन्न प्रजाति की बनस्पति, जडी बुटियां, शुद्व पर्यावरण, गंगा व इसकी सहायक धाराएं, धार्मिक व पर्यांटन समृद्वि का यह राज्य प्राणाधार है। हिमालय पूरे भारत के मौसम और पर्यावरण के मॉनीटर हैं। नीति निर्माण की दृष्टि से इसका व्यावहारिक महत्व अपेक्षित है। इन सब के आधार पर राज्य के पलायन को कम किया जा सकता है।

देश की सुरक्षा के दृष्टिकोण से यहां का पलायन रोकना और भी महत्वपूर्ण व प्रासंगिक हो जाता है कि यह सीमावर्ती राज्य है इसकी सीमाएं चीन व नेपाल से लगी हैं जो कि सामरिक दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण है चीन ने तीन बार याक व खच्चर पर सवार चीनी गश्त दलों को गढवाल के चमोली और कुमाऊं के धारचुला इलाके में देखा गया। ये दोनों ही आपदा प्रभावित क्षेत्र भी हैं। खासकर जब आंकडा पिछले दो दशकों में लाखों लोगों के पलायन का हो तो यह अध्ययन राष्ट्रीय हित तथा सामाजिक व सामरिक दृष्टि से भी बहुत महत्व रखता है। आखिरकार हिमालय और सेना के बाद की तीसरी सेना जो है वह हिमालयवासी हैं यदि यहां से यहीं के लोग शहरों में पलायन करेगें तो सामरिक दृष्टि से भी ठीक नहीं होगा। इसलिए इस विषय पर शोध कार्य करना अपने आप में बहुत समसामयिक व महत्वपूर्ण है उत्तराखण्ड के ऊपरी जिलों से हो रहे पलायन को रोकना बेहद जरूरी है खासकर पिथौरागढ, बागेश्वर, उत्तरकाशी, रूद्रप्रयाग, चमोली जैसे जिलों से पलायन के कारणों का अध्ययन कर राज्य के पलायन को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका सरकारों की भी होनी चाहिए इन जिलों व राज्य के लिए केन्द्र सरकार नीति को विशेषकर पलायन को रोकने के लिए उपाय व सुदूर गोवों के लिए रोजगार के क्या साधन होगें यातायात, बिजली, पानी, चिकित्सा व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा व आजीविका के नए विकल्प तलाषने व इस क्षेत्र की बुनियादी जरूरतों के लिए दीर्घकालिक व नीतिगत निर्णय जैसे सवालों पर राज्य सरकार व नागरिक समाज को मिलकर कार्य करना होगा उत्तराखण्ड में विकेन्द्रित स्तर पर शिक्षा, चिकित्सा, खेती, बागवानी, वन्य जीव, वनोपज, जैव तकनीकी, खाद्य प्रसंस्करण जैसी व फल फूल औषधि व जैविक खेती बागवानी पटिटयों के विकास की योजनाओं पर भी नीतियां बनानी होगी।

इस राज्य की अर्थव्यवस्था प्रमुख रूप से कृषि पर आधारित रही है। रोजगार एवं आजीविका की अपर्याप्तता के कारण यहां के पुरूषों के रोजगार की तलाश में मैदानी क्षेत्रों प्रवास कर जाने के कारण कृषि कार्य का बोझ मुख्यत: महिलाओं के कन्धों पर ही रहता है। हालांकि पिछले दो दशकों में यहाँ के लोगों की कृषि पर निर्भरता घटी है, व उनका सरकारी सेवा या व्यक्तिगत क्षेत्र में या छोटे-छोटे कुटीर उद्योगों की तरफ आकर्षण ज्यादा बढ़ा है, जिसके कारण पुरूषों के पलायन कर जाने से गढ़वाल में मनीआर्डर अर्थव्यवस्था पूरे जोर शोर से प्रभावी है। वस्तुत: जनसंख्या की बढ़ती दर के साथ रोजगार की उपलब्धता न बढ़ने से युवकों के शहरी क्षेत्रों में पलायन से मनीआर्डर अर्थव्यवस्था मजबूत होती जा रही है।

साक्षरता के दृष्टिकोण से देखें तो किसी भी क्षेत्र का सामाजिक विकास, आर्थिक प्रगति एवं राजनैतिक सक्रियता उस क्षेत्र के नागरिकों की शिक्षा एवं उसके स्तर पर निर्भर करती है, क्योंकि शिक्षा से ही व्यक्ति के व्यक्तिव का विकास होता है जैसा कि साल्टेन का मत है कि "शिक्षित व्यक्ति शीघ्रता व सरलता से किसी भी योजना का निर्माण और निर्णय ले सकता है।"[4] आमण्ड और वर्बा ने भी इसी तथ्य की ओर इंगित करते हुए कहा था कि "जो व्यक्ति जितना अधिक शिक्षित होगा उतना ही वह सरकार के कार्यों के प्रति सजग होगा, राजनीतिक व सामाजिक जानकारियाँ प्राप्त कर सकेगा उसमें राजनीतिक विषयों को प्रभावित करने की अधिक से अधिक योग्यता होगी। वह अपने सामाजिक पर्यावरण में विश्वास व्यक्त करेगा व अपनी भावनाओं को व्यक्त करेगा।"[5]

जबकि आज पलायन के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में जो सबसे अधिक कार्य करती हैं वह एक आम ग्रामीण परिवेश की महिला है। इन महिलाओं की स्थिति को जानने, समझने के लिए हमें उनके परिवेश की जानकारी होना अति आवश्यक है। इसके अन्तर्गत बहुत मुद्दों पर हम बात कर सकते हैं, जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार, जीवन महिला जन्मदर, परिवार में महिलाओं की स्थिति व उनके प्रति परिवार के अन्य सदस्यों की मानसिकता एवं राजनैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक, वैद्यानिक आदि अधिकारों के साथ-साथ पंचायतों में महिलाओं की भूमिका का भी अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है कि इतनी व्यस्तता होने के बावजूद भी वे अन्य सामाजिक, राजनीतिक कार्यो के लिए भी समय निकाल लेती हैं। भारत के परिप्रेक्ष्य में देखें तो विशेषकर कृषि क्षेत्र में ग्रामीण महिला अधिक संख्या में कार्यरत हैं चूंकि वे घर तथा बाहर दोनों जगह काम करती हैं लेकिन उनका कार्य श्रमिक सांख्यिकी रिपोर्ट में शामिल नहीं किया जाता तथा परिवार में भी उनके कार्यो की गणना नहीं की जाती है जो कि एक दुर्भाग्यपूर्ण बात है, चूंकि पुरूषवादी मानसिकता के शिकार लोग अक्सर यह तर्क देते हैं कि महिलाओं का कार्य घरेलू होता जो नगण्य है व आरामदायक होता है। इन सब बातों को पुरूष मानसिकता हो या अन्य सभी को त्याग करना होगा जिससे महिलाओं पर कोई भी मानसिक दबाव न रह सके। चूंकि हमारा राष्ट्र बहुत बड़ा है। यह कई प्रकार से विभक्त है। ग्रामीण-शहरी, अमीर-गरीब, शिक्षित-निरक्षर तथा विभिन्न जाति घर्म व सम्प्रदाय वाला देश में सभी साथ-साथ तो रहते हैं परन्तु आवश्यकता और उपलब्धता के बीच हमेशा ही एक बड़ा अंतर कायम रहता है। यद्यपि वर्तमान समय में महिलाओ के प्रति सोच समाज में उनके स्थान व उनके दर्जे के प्रति समाज में एक परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है। काफी बड़ी संख्या में महिलाएं घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर आर्थिक भूमिका भी निभा रही हैं व अपने परिवार का एक मजबूत आधार बनती जा रही हैं, लेकिन व्यवहारिक रूप से देखें तो आज भी कई स्थानों पर महिलाओं के कार्यक्षेत्र को परिवार के अन्दर तक ही सीमित रहने देने की प्रवृत्ति भी अधिकतर समुदायों में दृष्टिगोचर होती है। महिलाओं ने शिक्षा, राजनीति, व्यवसाय आदि सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का सुन्दर परिचय दिया है। उन्होंने अपनी बौद्धिकता एवं उच्च गुणों के कारण अपने परिवार को ऊँचाईयों के शिखर पर पहुँचा कर समाज व राष्ट्र निर्माण में योगदान दिया हे। तथा दूसरी ओर उन्हीं ने गांवो के उपेक्षित व अत्याचार भोग रहीं अपनी करोड़ों बहनों के भाग्य को महिला शक्ति की पहचान कराके जगया है। समाज की समस्यओं जैसे बाल-विवाह, दहेज प्रथा, प्रर्दा प्रथा, निरक्षरता, अंधविश्वास, असमानता, अस्पृष्यता, बेरोजगारी, जनसंख्या वृद्धि, भ्रष्टाचार आदि सामाजिक रूढ़ि तथा बंधन को तोड़ने के लिए सक्रियता के साथ भागीदारी की है। ग्रामीण समाज चूंकि कृषि प्रधान समाज होता है जिससे परिवार की आय में आधे से अधिक भाग

महिलाओं का रहता है, परन्तु उनके द्वारा किये गये कार्य को आर्थिक गतिविधि न मानकर सामान्य पारिवारिक दायित्व समझा जाता है, चौका-चूल्हे बर्तन और बच्चों के पालन के साथ-साथ ग्रामीण बालिकाएं होश सम्हालने के समय से ही पशुपालन, ईंधन लाने और खेत-खलियान में काम करने लगती है तथा जीवन पर्यन्त करती रहती हैं लेकिन दुर्भाग्यपूर्ण समस्त कार्यों को व्यवसाय के बजाय पारिवारिक कार्यों के रूप में मान्यता प्राप्त है। यह भी एक सोचनीय प्रश्न है कि काम धन्धों में सतत् सक्रिय रहने पर भी यहां की महिलाएं आर्थिक दृष्टि से पूर्णतः पराजित हैं।

ग्रामीण महिलाओं को राजनीतिक रूप से सक्रिय बनाने के लिए भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भी मौलिक अधिकारों एवं राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों में उल्लेख है। उत्तराखण्ड में आज 50 प्रतिशत स्थानीय स्वशासन में भाग लेने को आरक्षण दिया गया है। लेकिन दुर्भाग्यवश अभी भी शिक्षा व जागरूकता के अभाव में वें अपने राजनीतिक अधिकरों व इन संशोधनों के सम्बन्ध में जानकारी तक नहीं रखती हैं। जो इस बात को इंगित करता है कि विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाएं अभी अधिक सक्रिय व जागरूक नहीं हो पाई हैं। यदि व्यवहार में महिलाएं उन सभी कार्यक्रमों का लाभ ले पाती जो उनके लिए बनाए जाते हैं तो वे सभी क्षेत्रों में अपनी सक्रिय सहभागिता के साथ विकास के लक्ष्य को आसानी से प्राप्त कर सकती हैं। चूकि पुरूष पलायन के कारण कार्य के बोझ में पहाड की महिलाएं दबी होती हैं।

यद्यपि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि सिद्धान्त महिलाओं को पुरूषों के समान ही अधिकर प्राप्त हैं। तथा इन अधिकारों के कारण शासन, राजनतिक शिक्षा, विज्ञान, समाज कल्याण, उद्योग, व्यापार ट्रेड यूनियन आदि क्षेत्रों में महिलाएं महत्वपूर्ण और जिम्मेदार पदों पर आसीन हैं। वर्तमान समय में जनसंख्या के अनुपात में 50 प्रतिशत मतदान का हिस्सा होने के उपरान्त भी उन्हें आज तक निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में उनकी संख्या के अनुरूप प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हो सका है। अतः वर्तमान में ग्रामीण महिलाओं में राजनीतिक सक्रियता वर्तमान समय की एक नितान्त महत्वपूर्ण आवश्यकता है। चूंकि जब तक ग्रामीण व सुदूरवर्ती क्षेत्रों की महिलाएं भी राष्ट्रीय मुख्यधारा में सक्रिय रूप से नहीं जुड़ सकेंगी तब तक स्थितियों में वांछित परिवर्तन आना संभव नहीं होगा। अतः ऐसी महिलाओं की सक्रियता में वृद्धि करने के लिए और प्राविधान किए जाने की आवश्यकता है जो प्रावधान किए गए हैं उन्हें सुचारू व प्रभावशाली रूप से लागू करना भी उतना ही आवश्यक होगा।

यहां की महिलाएं आज पंचायतों में अच्छी भागीदारी कर रही हैं, वह पंचायती राज के माध्यम से स्यमं नियर्ण लेने की क्षमता का भी इनमें विकास हो रहा हैं। अब कुछ महिलाएं अपने आप निर्णय लेती हैं। महिलाओं में जो गुण भगवान ने प्रदान किया सहिष्णुता का उसे वह पंचायती राज में अपनाती हैं। यद्यपि लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का सजीव व साकार स्वरूप महिला चेतना, जागरूकता तथा स्थानीय संस्थाओं में आरक्षण हेतु महिलाओं के लिए पंचायती राज व्यवस्था के रूप में भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् से ही दृष्टिगोचर हुआ। लेकिन इसकी परिकल्पना को स्वतन्त्र भारत की ही उपज कहना सत्य प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि पंचायती राज की परिकल्पना एवं उसके माध्यम से ग्रामीण विकास की अवधारणा हमें वैदिककाल के पूर्व से भी दृष्टिगोचर होती है। जान.जे. क्लार्क के अनुसार किसी भी मानवीय संस्था को उस समय तक नहीं समझा जा सकता, जब तक कि उसके ऐतिहासिक संघों का अध्ययन न किया जाए। भविष्य की प्रगति की रेखाओं पर विचार करते समय अतीत के विकास के भण्डार को ध्यान में रखना होता है। 6 वस्तुतः भारत में स्थानीय स्वशासन के विकास का एक लम्बा इतिहास रहा है। मजूमदार का मानना है कि प्राचीन काल में छोटे-छोटे राज्य जन या जनपद कहलाते थे। प्रत्येक जनपद में अनेक 'विश' होते थे जिनका मुखिया "विशपति" कहलाता था। ग्राम सबसे छोटी इकाई थी, और प्रत्येक विश में अनेक ग्राम होते थे तथा इनका मुखिया ग्रामीण के नाम से जाना जाता था।[7]

वर्तमान में पंचायती राज व्यवस्था को सुदृढ़ एवं सशक्त बनाने के लिए तीनों स्तरों की (जिला, विकासखण्ड व ग्राम पंचायत) पंचायतों को व्यापक अधिकार और विपुल शक्तियां प्रदान की गयी हैं। इस नवीन व्यवस्था में महिलाओं को प्राथमिकता दी गई है। पंचायतों तथा नगर निकायों के चुनाव में विशेषकर ग्रामीण महिलाओं को निचले स्तर पर सत्ता में भागीदारी करते हुए पंचायतों तथा नगर निकायों में महिलाओं के लिए आज पचास प्रतिशत आरक्षण दिया गया है। अतः पंचायती राज में एक तिहाई महिला आरक्षण के फलस्वरूप पूरे देशभर में जमीनी स्तर की राजनीतिक मुख्यधारा में महिलाओं का एक निर्णायक संख्या में प्रवेश अब न्यायसंगत हो गया है। यह कदम महिलाओं के राजनीति में सक्रिय-भागीदारी को प्रोत्साहित करने का एक सार्थक प्रयास है। पंचायतों में महिलाओं के प्रतिनिधित्व के क्रमिक विकास को देखते हुए हम यह पाते हैं कि उनके प्रतिनिधित्व और उपस्थिति को ठीक वही वैचारिक धारणाएं एवं प्रतीकवाद प्रभावित कर रहा है, जो संविधान द्वारा प्रदान की गई राजनीतिक समानता की गारंटी के बावजूद शेष राजनीतिक स्तरों पर भी रहता आया है, लेकिन महिलाओं के लिए एक तिहाई प्रतिनिधत्व के निर्णायक आधार की गारंटी देकर उनकी भागीदारी को एक नई दिशा प्रदान करने का प्रयास इन व्यवसायों के द्वारा किया गया है। भारतीय संविधान में पुरुषों और महिलाओं को समान दर्जा और अधिकार दिये जाने के उपरान्त भी इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि विकास और सामाजिक स्तर की दृष्टि से महिलाएं अभी भी पुरुषों से काफी पीछे हैं। इसी अंतर को कम करने के लिए हर वर्ष आठ मार्च को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस भी मनाया जाता है। इस सिलसिले को व्यापक रूप देने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने वर्ष 2000 को विश्व महिला वर्ष घोषित किया था।[8] यद्यपि महिला चेतना के लिए चलाये गये संघर्षों के फलस्वरूप नया पंचायती राज संशोधन अधिनियम महत्त्वपूर्ण तो साबित हुआ है, परन्तु महिलाओं को आज भी कुत्सित मानसिकता से गुजरना पड़ता है। गांवों में आज भी अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, अशिक्षा, पिछड़ापन है। व पुरुष यह कभी सहन नहीं कर पाते हैं कि महिलाएं उन पर हुक्म चलायें या उनसे सवाल जवाब करें। हालांकि जब भी अवसर मिला है महिलाओं ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि वह परिवार, गांव, समाज तथा देश का नेतृत्व भी अच्छी तरह से कर सकती हैं। इसी सन्दर्भ में यदि पर्वतीय क्षेत्र की महिलाओं को देखा जाए तो हम पाते हैं, तो उनमें भी अत्यधिक जोश, शक्ति, ज्ञान व अनुभव है, जिसका उदाहरण यहां समय-समय पर हुए आन्दोलनों से मिलता है। जिसमें यहां की महिलाओं का सक्रिय योगदान रहा है। चिपको आन्दोलन, मद्यनिषेध आन्दोलन, खनन के विरुद्ध आन्दोलन व उत्तराखण्ड आन्दोलन आदि में महिलाओं की अग्रणी भूमिका को कोई भी नजर

अंदाज नहीं कर सकता है। वस्तुतः अपने गांव, शहर, जंगल, भूमि, संस्कृति व जलस्रोतों को संवारने व संरक्षित करने का श्रेय इन्ही पहाड़ की कर्मठ महिलाओं को जाता है।[9] अपनी व्यस्त दिनचर्या, अत्यधिक कार्यभार व मूलभूत सुविधाओं का अभाव व पहाडों से पलायन होने पर भी इन महिलाओं की सामाजिक, राजनीतिक मुद्दों में भागीदारी व संघर्ष उल्लेखनीय है। दुर्गम क्षेत्रों में रहने वाली ये महिलाएं पिछड़ी नहीं है। सभी रचनात्मक मुद्दों के प्रति इनकी रुचि, समझ व भागीदारी इसकी प्रतीक है। इसी समझ के प्राकृतिक गुण के कारण उत्तराखण्ड राज्य आन्दोलन में यहां की महिलाओं की अभूतपूर्व भागीदारी देखी गई है। इस राजनीतिक आन्दोलन में अराजनीतिक प्रकृति की महिलाओं ने किसी राजनीतिक लाभ के लिए भाग नहीं लिया, वरन् अपने बच्चों के भविष्य के निर्माण के लिए उनके द्वारा इसमें भागीदारी की गई। वस्तुतः बहुसंख्यक महिलाएं राज्य निर्माण के उपरान्त नेपथ्य में चली गई, क्योंकि परिस्थितियों से लाभ लेने की समझ व चालाकी के गुणों का पर्वतीय महिलाओं में नितान्त अभाव है। यद्यपि राज्य निर्माण के उपरान्त कुछ महिला संगठनों ने चुनावी राजनीति में भी अपनी रुचि दिखाई व योगदान देना चाहा परन्तु उनकी संख्या के अनुपात में उनको टिकट नहीं दिये गये। उत्तराखण्ड महिला मंच जैसी संस्थाएं महिलाओं की स्वतन्त्र सोच व स्वतन्त्र निर्णय के साथ राज्य की जनता के मुद्दों के प्रति महिलाओं में राजनैतिक जागरुकता पैदा करने का प्रयास कर रही हैं। चूंकि जो महिलाएं अपने राज्य की खुशहाली के मुद्दों को लेकर आन्दोलन में कूद पड़ी थीं उनको राज्य मिलने के बाद पिछे धकेल दिया गया इसलिए महिलाओं के मुद्दों को उठाने तथा उत्तराखण्ड के विकास को लेकर महिला मंच एवं अन्य महिलाओं के द्वारा अपनी राजनीतिक सक्रियता व जागरुकता का परिचय यहां पर समय समय पर दिया जाता रहा है।

73 वां संविधान संशोधन अधिनियम महिला सक्रियता की दिशा में एक अहम कदम है, क्योंकि अब तक जो ग्रामीण महिलाएं घर, पशुशाला और खेत खलियान तक सीमित थी। उन्हें इस संशोधन ने अभिशासन की एक कार्यकर्ता बना दिया है। लेकिन उत्तराखण्ड में भी महिलाएं राजनीतिक क्षेत्र में निचली पायदान पर खड़ी है व वही सीमाएं एवं बाध्यताएं उनकी राजनीतिक सक्रियता को प्रभावित करती है, जो कि भारत के अन्य भागों की महिलाओं की सक्रियता को सीमित करती है। लेकिन यहां के गांवों से पुरूषों के पलायन के कारण निम्ननिलिखत तालिकाओं के माध्यम से उत्तराखण्ड में महिलाओं की सामाजिक सक्रियता का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

उत्तराखण्ड की महिलाओं में सामाजिक सक्रियता को उनके परिवार की मासिक आय के आधार पर भी ज्ञात करने का प्रयास किया गया। प्राप्त आंकड़ों का सांख्यकीय विश्लेषण निम्न तालिकाओं में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 1 : पलायन के प्रभाव के कारण आर्थिक संरचना के आधार पर सामाजिक सक्रियता

मासिक आय	*संख्या*	*मध्यमान*	*मानक विचलन*	*एफ मान*	*पी मान*
0–7000 रुपए	274	31.46	13.62		
7001–14000	220	53.34	13.07	453.14	.000
14001 से अधिक	106	75.89	13.63		

तालिका संख्या 1 में प्रदर्शित आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि गढ़वाल मण्डल में ग्रामीण महिलाओं की पारिवारिक आर्थिक संरचना के आधार पर रुपया 0–7000 तक पारिवारिक मासिक आय वाली महिलाओं की सामाजिक सक्रियता का मध्यमान 31.46 प्रतिशत है तथा रुपया 7001–14000 तक पारिवारिक मासिक आय वाली महिलाओं का मध्यमान 53.34 प्रतिशत है। एवं रुपया 14001 से अधिक पारिवारिक मासिक आय वाली महिलाओं की सामाजिक सक्रियता का मध्यमान 75.89 प्रतिशत पाया गया। इससे स्पष्ट है कि गढ़वाल मण्डल की ग्रामीण महिलाओं की पारिवारिक मासिक आय बढ़ने के साथ–साथ उनकी सक्रियता में भी वृद्धि देखने में आयी है। इस तथ्य को P मान भी प्रमाणित कर रहा है। ($f = 453.14$ o $P = .000$)

अतः सांख्यकीय विश्लेषण की दृष्टि से पारिवारिक मासिक आय के आधार पर इन तीनों वर्गों की महिलाओं की सामाजिक सक्रियता के अन्तर का मान सार्थक है। उपरोक्त तालिकाओं के आंकड़ों के आधार पर कहा जा सकता है कि पारिवारिक आर्थिक संरचना का प्रभाव महिलाओं की सामाजिक सक्रियता पर पड़ता है, यहां अध्ययन के दौरान पाया कि कम पारिवारिक आय या निर्धन परिवार की महिलाओं का अधिकांश समय जीवकोपार्जन की चिन्ता व दो समय भरपेट भोजन जुटाने की मेहनत में ही व्यतीत हो जाता है। जिससे वे सामाजिक क्रिया–कलापों में भाग नहीं ले पाती हैं, जबकि अधिक पारिवारिक आय वाली महिलाओं को ऐसी चिन्तायें अधिक न होने के कारण सामाजिक कार्यों में उनका भाग लेना अधिक सरल हो जाता है। इसके अतिरिक्त अधिक मासिक आय वाले परिवारों में सूचना व ज्ञानवर्धन के आधुनिक संसाधनों जैसे– टी0वी0, समाचार पत्र, पत्रिकाओं की उपलब्धता, ईंधन व बिजली, पानी आदि की सुगमता से उपलब्धता के कारण ये महिलाएं न केवल आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होती है, वरन् आधुनिक संसाधनों के प्रयोग से समय की उपलब्धता भी इनकी सामाजिक सक्रियता में वृद्धि करने का एक कारण देखी गई। इसीलिए आर्थिक संरचना के आधार पर उच्च आय वर्ग में शामिल महिलाओं की सामाजिक जीवन में सक्रियता का स्तर अधिक देखा गया।

जाति संरचना एवं सामाजिक सक्रियता

सामाजिक जीवन में सक्रियता को प्रभावित करने में जाति व्यवस्था का प्रभाव भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वैसे भी भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में सदैव से जाति व्यवस्था का उल्लेखनीय प्रभाव रहा है। जाति व्यवस्था वस्तुतः भारतीय समाज की एक विशिष्टता रही है।[10] भारतीय सामाजिक व्यवस्था में ग्रामीण नेतृत्व प्रारम्भ से ही उच्च जातियों के पास रहा है ।[11] चूंकि प्राचीन काल से ही प्राथमिक स्वरूप के आधार पर सवर्ण हिन्दुओं के लघु समूह के द्वारा सम्पूर्ण ग्राम पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया जाता रहा।[12] अतः उच्च वर्गों के द्वारा सामाजिक व्यवस्था को संचालित करने की प्रक्रिया का प्रभाव

समस्त समाज पर पड़ता रहा है। महिलाएं भी इसका अपवाद नहीं है, क्योंकि वह भी उसी व्यवस्था का अंग हैं। यद्यपि ग्रामीण महिलाएं आज भी सामाजिक जीवन में अधिक सक्रिय भूमिका नही निभा पाती हैं, क्योंकि वह आज भी पुरुष प्रधान समाज द्वारा प्रदत्त बेड़ियाँ एवं बन्धनों में जकड़ी हुई हैं, परन्तु यदि इनकी विभिन्न क्षेत्रों में सक्रियता की बात की जाए तो पुरुषों के समान ही उच्च वर्गों की महिलाएं भी सामाजिक जीवन की प्रथम पंक्ति में खड़ी नजर आती हैं। जो कि निम्न तालिकाओं में स्पष्ट किया गया है।

तालिका संख्या 2: पलायन के प्रभाव से जाति संरचना के आधार पर सामाजिक सक्रियता

जाति	*संख्या*	*मध्यमान*	*मानक*	*विचलन*	*एफ मान*	*पी मान*
ब्राह्मण	158	54.35	16.16			
क्षत्रिय	304	56.35	16.53			
अनुसूचित जाति	83	21.91	8.05	211.42	.000	
अनुसूचित जनजाति	55	16.14	6.17			

उपरोक्त तालिका संख्या 2 में प्रदर्शित आंकड़ों के अवलोकन से स्पष्ट है कि गढ़वाल मण्डल में जाति संरचना के आधार पर ब्राह्मण महिलाओं की सामाजिक सक्रियता का मध्यमान 54.35 प्रतिशत तथा क्षत्रिय महिलाओं की संख्या 56.35 प्रतिशत एवं अनुसूचित जाति की महिलाओं का 21.91 प्रतिशत है व अनुसूचित जनजाति की महिलाओं का 16.14 प्रतिशत है। चूंकि उत्तराखण्ड में क्षत्रिय जाति की संख्या अधिक है। अत: विभिन्न जाति की उत्तरदाता महिलाओं में सामाजिक जीवन में क्षत्रिय महिलाएं सर्वाधिक सक्रिय पाई गई। तत्पश्चात् ब्राह्मण जाति की महिलाएं सामाजिक जीवन में सक्रिय पाई गई। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की सामाजिक सक्रियता सबसे कम पाई गई। इन सभी वर्गों की महिलाओं की सामाजिक जीवन में सक्रियता की पुष्टि P मान से भी होती है। (f = 211.42 o P = .000)

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि जाति का प्रभाव भी सामाजिक सक्रियता पर निश्चित रूप से पड़ता है। चूँकि अनुसूचित जनजाति व अनुसूचित जाति की महिलाएं आज भी हर क्षेत्र में ब्राह्मण एवं क्षत्रिय वर्ग की महिलाओं से पिछड़ी हुई है। इसके अतिरिक्त आर्थिक, शैक्षिक, रोजगार की अच्छी स्थिति न होना, गांवों से पलायन, संसाधनों की कमी, दीर्घकालीन दासता एवं उपेक्षा, संकुचित रुढ़िवादी दृष्टिकोण व मान्यताओं के कारण इनको आज भी सवर्णों जैसे सामाजिक अधिकार प्राप्त नहीं हो पाए हैं। वस्तुत: सुदूरवर्ती क्षेत्रों में अभी भी अनुसूचित जाति व जनजाति के पुरुषों में भी इसी प्रकार का पिछड़ापन देखने को मिला। विभिन्न सरकारी योजनाओं के होते हुए भी वह इसका पूर्ण लाभ लेने में असमर्थ रहे हैं। इन क्षेत्रों में पुरुषों में भी सक्रियता स्तर कम है। यह अपने आप में रोचक विषय है कि अनुसूचित जनजाति व अनुसूचित जाति के पुरूष वर्ग का यहां कम पलायन देखा गया।

आवासीय स्थिति एवं सामाजिक सक्रियता

आवासीय स्थिति का सामाजिक सक्रियता पर स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। शहरी क्षेत्रों में निवास करने वाली महिलाओं के पास न केवल आधुनिक संसाधनों की उपलब्धता अधिक होती है वरन शिक्षा के अधिक असवरों, रोजगार के साधनों आदि के कारण उनकी जागरुकता व सक्रियता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। शहरी महिलाएं अपने सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक परिवेश के प्रति अधिक सचेत देखी गई, दूसरी ओर ग्रामीण महिलाएं दिन भर काम के बोझ व समयाभाव के कारण सामाजिक जीवन में अधिक सक्रिय नहीं देखी गई। सड़क से निवास स्थान की दूरी भी इस अन्तर को बढ़ा देती है, क्योंकि जैसे-जैसे निवास स्थान की दूरी विशेषत: ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे साधनों की अनुपलब्धता बढ़ते जाने के कारण जागरुकता एवं सक्रियता का स्तर भी कम होता जाता है, इसको निम्न तालिकाओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

तालिका 3: ग्रामीण महिलाओं की सड़क से निवास स्थान की दूरी के आधार पर सामाजिक सक्रियता

सड़क से निवास स्थान की दूरी	*संख्या*	*मध्यमान*	*मानक विचलन*	*एफ मान*	*पी मान*
0-2 किमी	340	59.17	17.56		
2.1 से 4 किमी	156	38.45	12.65	262.43	.000
4.1 से अधिक किमी	104	22.02	11.92		

तालिका संख्या 3 में प्रदर्शित आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि सड़क से निवास स्थान की दूरी के आधार पर 0-2 किमी0 की दूरी पर निवास करने वाली महिलाओं की सामाजिक सक्रियता का मध्यमान 59.17 प्रतिशत तथा 2.1 से 4 किलोमीटर दूर पर निवास करने वाली महिलाओं की सामाजिक सक्रियता 38.45 प्रतिशत, एवं 4.1 से अधिक सुदूरवर्ती क्षेत्रों में रहने वाली महिलाओं की सामाजिक सक्रियता का मध्यमान 22.02 प्रतिशत है, अर्थात उक्त आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि जो महिलाएं सड़क के नजदीक निवास करती हैं, उनकी सक्रियता उन महिलाओं से जिनका निवास स्थान सड़क से दूर है, अधिक है। इस तथ्य की पुष्टि (f = 262.43 o P = .000) द्वारा भी होती है। अत: सांख्यकीय दृष्टि से इन सभी वर्गों की सामाजिक सक्रियता का मान सार्थक पाया गया।

उपरोक्त तालिकाओं के विश्लेषण से प्रतीत होता है कि जो गाँव सड़क से अत्यधिक दूरी पर स्थित हैं उनमें संसाधनों, यातायात, संचार, विद्युत, चिकित्सा, शिक्षा आदि की सुविधाओं की कमी के कारण लोगों ने उन स्थानों से अपना पलायन शहरी व गांव के छोटे बजारों की और किया है जो महिलाएं अभी इन गांवों में हैं उन्की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में सक्रियता उन महिलाओं से कम है जिनका निवास स्थान सड़क के समीप है। इस अध्ययन में पाया गया कि जैसे-जैसे निवास स्थल की दूरी सड़क से बढ़ती जाती है। सुविधाओं का अभाव भी बढ़ता जाता है। आधुनिक सुविधाओं व संचार के साधनों की अनुपस्थिति में यहाँ महिलाएं अन्य क्षेत्रों में हो रही गतिविधियों की जानकारी से लगभग वंचित रहते हैं, जिसके कारण सामाजिक कार्यों व अन्य क्षेत्रों में उनकी रुचि नहीं के बराबर होती है। ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में पलायन के कारण महिलाएं कार्यभार की अधिकता व सूचनाओं के लिए परिवार के पुरुषों पर अपनी निर्भरता के कारण महिलाओं के सामाजिक जीवन में सक्रिय भूमिका नहीं कम देखी गयी हैं। जिन लोगों की आर्थिक स्थिति अच्छी है वे अपने बच्चों को पढाने के लिए बाहर मैदानी क्षेत्रों में निकल गए हैं। सडक से दूर के ऐसे गाँवों में सामाजिक, राजनीतिक गोष्ठियों, सभा सम्मेलनों, स्वयंसेवी संस्थाओं आदि का भी अभाव देखने को मिला, जबकि सड़क के पास स्थित गांवों में ऐसे आयोजन काफी संख्या में आयोजित हो सकने के कारण महिलाओं को इस प्रकार के कार्यक्रमों में भाग लेने के अवसर मिलने के कारण उनकी सामाजिक सक्रियता काफी अधिक पाई गई। उत्तराखण्ड के गांवों से पयालन का यहां कि महिलाओं के समाजिक एंव राजनीतिक जीवन पर स्पष्ट प्रभाव देखने को मिला है।

समीक्षा एंव निष्कर्ष

भारतीय नारी अपनी प्रगति यात्रा के दौरान जहां एक ओर काफी सीमा तक जड़ताओं, रुढ़ियों, कुप्रथाओं और पाखण्डों से मुक्त हुई है, वहीं दूसरी ओर वह अभी भी अनेक समस्याओं से घिरी हुई हैं। जैसे स्त्री भ्रूण हत्या, उत्पीड़न, कुपोषण, मृत्युदर की अधिकता व जन्म दर में कमी, घरेलू हिंसा, दहेज प्रथा, हत्या, बालात्कार, अपराध, अशिक्षा, असुरक्षा आदि, परन्तु इन स्थितियों से निबटकर ही कुछ महिलाएं प्रगति पथ पर अपनी छाप छोड़ने में सफल रही हैं। महिलाओं की प्रगति व क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए यूनेस्को का यह मानना है कि इक्कीसवीं सदी महिलाओं की शताब्दी होगी। अखण्ड ज्योति दिसम्बर सन् 1997 ई. के अंक में भी यही संभावना व्यक्त की गई है कि ''यह सत्य है कि महिलाएं अब लम्बे अंधेरे के बाद जाग उठी हैं। उन्हें अपनी गरिमा का बोध हो रहा है कि वह किसी भी तरह पुरुष से कम नहीं नारी चेतना में जागृति की यह आंधी अब अपने गौरव पद से वंचित करने वाली सारी प्रतिकूलताओं व बाधाओं को उखाड़ फेंकेगी व अपने लक्ष्य को प्राप्त करके ही दम लेगी। इसके प्रगतिशील चरणों को अब कोई नहीं रोक सकता। इक्कीसवीं सदी को नारी सदी के रूप में उद्घोषित किया है। बेहतर होगा कि अपने पौरुष एवं श्रेष्ठता का दंभ वाला पुरुष अब चेत जाए व नारी शक्ति के सर्वांगीण उत्कर्ष में बाधक बनने की बजाय उसको हर तरफ से सहयोग दें।''[13] भारतीय संदर्भ में विकास व महिलाओं की उन्नति का आधार सुदूर गांवों, कस्बों, पहाड़ी क्षेत्रों व जनजातीय इलाकों की पिछड़ी हुई औरतों को बनाना होगा। भारत की आजादी के 67 वर्षों के बाद भी संविधान में वर्णित अवसर की समानता व अन्य अधिकारों के बावजूद भी हमारे समाज में महिलाओं का मूल्य एवं स्थान उस स्तर तक नहीं उठ पाया है। जितना कि उठना चाहिए था। आज महिलाएं पहले की तुलना में कुछ जाग्रत व सक्रिय तो हुई हैं, लेकिन उनका प्रतिशत बहुत कम है। क्योंकि शोधार्थी द्वारा अध्ययन के दौरान ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली बहुसंख्यक महिलाएं सक्रियता एवं जागरुकता की दृष्टि से पिछड़ी देखी गई इसके साथ ही साथ यह तथ्य भी दिखाई दिया कि आज भी बहुसंख्यक महिलाएं न तो विकास की मुख्यधारा से जुड़ पाई हैं और न ही प्रगति के पथ पर समान रूप से चल पाई हैं। उनको विकास की धारा से जोड़ना आज भी एक चुनौती है। जो महिलाएं एकल परिवार में निवास करती थी, वो सामाजिक सक्रियता की दृष्टि से संयुक्त परिवार की महिलाओं से अधिक सक्रिय पाई गई, क्योंकि घर में पारिवारिक सदस्यों के कम होने व हर समय उपस्थित न रहने पर घर एवं बाहर दोनों क्षेत्रों का कार्य सम्पन्न कराने का उत्तरदायित्व उन पर ही था, इसलिए सामाजिक कार्यों में भी उनकी सक्रियता अधिक हो जाती है। जिससे ऐसी महिलाओं में सामाजिक जागरुकता व सक्रियता का स्तर अन्य महिलाओं से अधिक होना स्वाभाविक ही है। आयु के आधार पर भी युवा वर्ग की महिलाओं में सामाजिक जागरुकता देखी गयी। वैसे तो बुजुर्गों यानि वृद्धों में भी अनुभव अधिक थे। इसी अन्तर के कारण आयु में बड़ों को समाज में अधिक प्रतिष्ठा और सम्मान मिलता है,[14] लेकिन सामाजिक क्रियाकलापों में उनकी सहभागिता कम थी। शिक्षा के आधार पर अध्ययन करने से स्पष्ट हुआ कि अधिक पढ़ी-लिखी महिलाएं सामाजिक परिवेश के प्रति अधिक सक्रिय थी। सामाजिक कार्यों में केवल उन महिलाओं की सक्रियता कम थी जो सरकारी सेवा में कार्यरत थीं तथा महिलाओं में शिक्षा का स्तर जैसे बढ़ा है सक्रियता का स्तर भी बढ़ता हुआ देखा गया। जिन महिलाओं की आर्थिक स्थिति अच्छी थी उनकी सक्रियता भी अधिक देखी गयी, क्योंकि वे विभिन्न संसाधनों के माध्यम से रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र-पत्रिकाओं आदि की सहज उपलब्धता के कारण वे अन्य महिलाओं की अपेक्षा सामाजिक जीवन में अधिक सक्रिय देखी गई। सड़क के नजदीकी गांवों में निवास करने वाली ग्रामीण महिलाओं की सक्रियता व जागरुकता का स्तर उन महिलाओं से अधिक पाया गया जो कि सुदूरवर्ती गांवों में निवास कर रही थी। अत: स्पष्ट है कि वे ही महिलाएं सामाजिक जीवन में अधिक सक्रिय हैं जिनकी शिक्षा का स्तर व आर्थिक स्थिति अच्छी है व सामाजिक क्रिया-कलापों में जुड़ी हुई हैं। चूंकि यहाँ की महिलाओं के द्वारा उत्तराखण्ड आन्दोलन में भी सक्रिय भागीदारी की गई थी, जो कि राजनीतिक समझ न होने पर भी उनकी सामाजिक सक्रियता व रुचि का प्रतीक समझी जा सकती है। आज उत्तराखण्ड में सबसे बडी समस्या पलायन की है वह इसलिए क्योंकि पहाडों में रोजगार के अधिक संसाधन नहीं हैं जिस कारण पुरूष वर्ग दो जून की रोटी के लिए घर से बाहर जाता है। परिवार की सम्पूर्ण जिम्मेदारी महिलाओं के कंधे पर आ जाती है जिस कारण यहां की महिलाओं में सक्रियता तो है लेकिन वे राजनीतिक व समाजिक क्षेत्र में उनका लाभ नहीं ले पाती हैं। लगभग पिछले बीस सालों का इतिहास देंखें तो उत्तराखण्ड राज्य का विकास जो होना चाहिए था वो नहीं हो पाया है। राज्य के मैदानी जिलों की अपेक्षा पहाडी जिले अभी भी विकास के केन्द्र से दूर हैं। राज्य में पिछले कुछ वर्षों में पलायन की गति बहुत तेजी से बढी है। कई गांवों में जनसंख्या एक अंक

में है।[15] इसलिए ग्रामीण महिलाओं के जीवन में समाजिक हो या राजनीतिक सक्रियता को भी यहां के ग्रामीण पलायन ने काफी प्रभावित किया है। जिस पर कार्य करना आज अति आवश्यक है। तभी गांव के महिलाओं का भी विकास हो सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. नवानी लोकेश - उत्तराखण्ड इयर बुक, विनसर पब्लिशिंग कम्पनी देहरादून, 2005, पृ0 195
2. नेगी आनन्द पाल सिंह - उत्तरांचल में उभरता महिला राजनीतिक अभिजन वर्ग,गढ़वाल के सन्दर्भ में एक अध्ययन, अप्रकाशित शोध ग्रन्थ, हे0न0ब0ग0 विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल
3. पुरोहित के.सी-हमारा उत्तराखण्ड का भूगोल श्रृंखला संख्या, प्रकाशन विनसर, पब्लिशिंग कम्पनी, पौड़ी गढ़वाल, 1997, पृ0 11
4. साल्टेन इस्टाल आर. - ह्यूमन रिलेशन इन एडमिनिस्ट्रेशन, मेग्रेहिल न्यूयार्क 1959, पृ0 388-90
5. आमण्ड जी.ए. व वर्बा सिडनी-द सिविक कल्चर प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन; 1963, पृ0 315-318
6. क्लार्क जान0जे0 - दि लोकल गर्वनमेन्ट ऑफ यूनाईटेड किगंडम, 1955, पृ0 30
7. श्रीवास्तव के0सी0 - प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2000, पृ0 66
8. वर्मा सवलिया बिहारी, सोनी एम0एल0 और गुप्ता संजीव - महिला जागृति और सशक्तिकरण, अधिकार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2005, पृ0 95
9. पंत हरिबल्लभ व दरमोड़ा अरविन्द - हिमालय में महिला विकास कार्यक्रम एक विवेचनात्मक अध्ययन, हिमालयन एक्सन रिसर्च सेन्टर; हार्क इन्द्रा नगर, देहरादून, 1996, पृ0 57-58
10. कंडोल्फ एल. आई. और द मार्डनिटी आफ ट्रेडिशनल पालिटिकल डेवलपमेन्ट इन रुडोल्फ एस.एच. इण्डिया, शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस, 1967, पृ0 34
11. रेड्डी जी.आर. सोशियल कम्पोजिशन ऑफ पंचायती राज: बैकग्रांउड ऑफ पॉलिटिकल एक्ज्यूक्यूटिव इन आन्ध्र प्रदेश, इकोनोमिक पॉलिटिकल वीकली, दिसम्बर 23, 1967, पृ0 2211-2214
12. श्रीनिवास एम.एन. सोशियल चेंज इन मॉडर्न इण्डिया, बर्कले यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, 1966, पृ0 9
13. शर्मा ओम प्रकाश समकालीन महिला लेखन, पूजा प्रकाशन एवं खामा पब्लिसर्स, दिल्ली, 2002, पृ0 135
14. लाल शिवकुमार द अरबन एलीट, थामसन प्रेस, दिल्ली, 1974, पृ0 29
15. http://nirdpr.org.in/nird_docs/srsc/srscrr261016-3.pdf

साहित्य समाज एवं होली का त्यौहार

डॉ० संजय कुमार सिंह

सहायक प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष हिन्दी, राजेन्द्र विश्वविद्यालय, ओडिशा

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि "साहित्य समाज का दर्पण है।" अच्छी भावनाओं के साथ समाज में समरसता बनाए रखने के लिए पारस्परिक मेल एवं मोहब्बत के आदान प्रदान के अवसर बनते रहने चाहिए। समाज में त्योहार ही ऐसे अवसर प्रदान करते आए हैं। पुनः त्योहारों में होली उमंगों की सौगात लिए आता है। साल भर की दुश्मनी को भी भूल कर गले लग जाने की रुत आ जाती है। हरिवंश राय बच्चन अपनी 'होली' कविता में लिखते हैं –

आजादी है जिसको चाहो आज उसे वर लो।
होली है तो आज अपरिचित से परिचय कर लो।।

वे आह्वान देते हैं कि आओ आज सब निकटतर से निकटतम हो जाते हैं। बच्चन जी आगे लिखते हैं शत्रु को भी अपनाने का समय यही तो है यथा;

जो हो गया बिराना उसको फिर अपना कर लो।
होली है आज शत्रु को बाहों में भर लो।।

होली के पालन से समाज में एकता , समता एवं सहृदयता दृढ़ होता है। मनुष्य से मनुष्य का संबंध स्वार्थ से ऊपर उठकर संस्कृति सम्पन्न होते हुए भविष्य को सुंदर बनाने का एक जीवंत प्रयत्न करता है। इसका कारण यह है कि हमारे सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन के साथ ये पर्व – त्योहार अति निविढ़ भाव से जुड़े होते हैं। हमारे देश में चार पर्व ऐसे हैं जिन्हें विशेष महत्व प्राप्त है यथा ख़ रक्षाबंधन , विजयादशमी , दीपावली एवं होली। इन चारों पर्वों के द्वारा परिवार एवं समाज में अंततः देश में एकता की भावना को बल मिलता है। इन चार पर्वों को क्रमशः ब्राह्मण , क्षत्रिय , वैश्य , शूद्र मुख्य रूप से पालन करते थे। परंतु समय के श्रोत में धीरे धीरे प्रवहमान होते होते आज इन चार पर्वों का हम सामाजिक सांस्कृतिक स्तर पर व्यक्ति व्यक्ति संबंध एवं राष्ट्रीय एकता के लिए बल प्रदान करने वाले महत्वपूर्ण त्योहार के रूप में स्वीकार करते हैं एवं ये पर्व पुरे भारत वर्ष ही नहीं वरन भारत वर्ष के बाहर भी भारतीयों के द्वारा मनाए जाते हैं। इन पर्वों में सर्वाधिक लोकप्रिय , आकर्षक , प्रेम – भाव सम्पन्त , आपसी वैमनस्य को दूर करने वाला पर्व है होली। दिन के समय मनाए जाने वाले त्योहारों में होली एवं रात को मनाई जाने वाली त्योहारों में दीपावली का विशेष सामाजिक महत्व है। ये दोनों ही त्योहार बुराई पर अच्छाई के जीत के उत्सव हैं। होली के अवसर पर एक समूह दूसरे समूह को 'होली है' कहकर प्रसन्नता प्रदर्शन करता है। यही एक त्योहार जिसमें सब एक रंग हो जाते हैं बड़े-छोटे ,धनी-गरीब हर प्रकार की खाई पट जाती है एवं व्यक्ति व्यक्ति से खुले मन से इस तरह मिलता है मानो अब कोई दूरी नहीं रही। भारत वर्ष में अनेक त्योहार पालन किए जाते हैं जिनमें होली का विशष स्थान है। नीरज गोस्वामी अपनी कविता , 'समझ् लेना की होली है' में लिखते हैं;

हमारी जिंदगी यूं तो है इक काँटों भरा जंगल
अगर लगने लगे मधुबन, समझ् लेना की होली है।

सर्वाधिक लोकप्रिय, आकर्षक, प्रेम – भाव सम्पन्त, आपसी वैमनस्य को दूर करने वाला पर्व है होली। इसमें लोग दूसरों के रंग में रंगना चाहते हैं। हरिवंशराय बच्चन लिखते हैं –

तुम अपने रंग में रंग लो तो होली है।
देखी मैंने बहुत दिनों तक
दुनियाँ की रंगीनी
किन्तु रही कोरी की कोरी
मेरी चादर झीनी,
तन के तार छूए बहुतों ने
मन का तार न भीगा
तुम अपने रंग में रंग लो तो होली है।

होली एक वसंत उत्सव है। यह सूखे एवं गीले रंगों से हिन्दू संप्रदाय में मनाया जाता है। यह पर्व समता की शिक्षा देता है। समाज से भेद-भाव मिटाता है। ऊँच- नीच, ज्ञानी-मूर्ख, धनी-गरीब इन समस्त कृत्रिम विभाजनों से ऊपर उठकर समाज के लोग इस पर्व में एक दूसरे के गले मिलते हैं। भाईचारा दृढ़ होता है। साहित्य का लक्ष्य भी तो यही है-'सहितस्य-भाव'। होली से समाज में समता, सहृदयता एवं एकता का भाव उत्पन्न होता है। अत: अन्य संप्रदाय के लोग भी हिंदुओं के इस पर्व में शामिल होते हैं एवं प्रसन्नता व्यक्त करते हुए मित्र भाव को पुष्ट करते हैं। होली फागुन पूर्णिमा के दिन मनाई जाती है।

इसके पहले पुरे गाँव की सफाई होती है। घर घर से लेकर गाँव भर की गंदगियों को एकत्र कर जला देते हैं। इसके साथ ही आपसी ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, कलह, भेदभाव आदि को भी जलाकर खाक कर देते हैं। होली के पूर्व संध्या पर होलिका दहन के समय उनका मन, हृदय एवं वचन पूर्ण रुपेण शुद्ध , कोमल, निर्मल एवं निर्विकार हो जाता है। गाँव की सफाई होती है एवं होली खेलते समय मन में प्रसन्नता का भाव होता है गाँव के बूढ़े जवान और बच्चे सभी एक दूसरे के गले मिलते हैं। एक दूसरे को रंग देते हैं एवं परस्पर आनंद का अनुभव करते हैं। कवि लछीराम ने फाग खेल का वर्णन, रंग खेल का वर्णन करते हुए लिखते हैं -

खेलत गिरधर फाग अति अनुराग भरे होरी के।
वृंदावन गोकुल गलियन में मोहन लगि गोरी के।
पिचकाई जु पलाश रंग बूका वंदन भर झोरी के।
अंग अंग भू भाव रंग सो ब्रजभामिन भोरि के।

X X X X

माई होरी खेलन जाइए जहां खेलत नन्द कुमार।
राग रंग अरु सुख सवाद बाजत मृदंग थों थों धूकार।
रंग भरे ओ रंगन से छिरकत पिचकारिन देत है मार।
कृष्ण जीवन लछीराम के प्रभु को मुखमडों अरु देउ गार।

पुराने वैर भावों, फूट, कलह और भेद भावों को भूल जाते हैं। इस प्रकार होली में हम एक नए आनंद उल्लास एवं उमंग का अनुभव करते हैं परंतु होली खेलते समय बहुत सावधान भी रहते हैं आगे ब्रजभाषा के प्रशिद्ध कवि आनंद घन लिखते हैं –

होली खेलिए सम्हार, सुनियो हो खिलार।
कौन ख्याल है भगि जैवो अहो आँखिन में गुलाल डार।
अति ही ढीठ कहा भयो-डोले, नैक यों काहू की ओर निहार।
आनंद घन अबकै न बचौगी बाबा की सौ देहों मार।

यह पर्व ऐसे समय में रखा गया है कि किसी काम में बाधा ना आए। होली का पर्व उस समय आता है जब पूस महीने के पतझड़ के बाद वृक्षों पर नए पत्ते सज गए होते हैं। ऋतुराज वसंत अपने स्वरूप को उजागर कर रहा होता है। किसान की फसल कटकर खलिहान में आ चुकी होती है। उसका सारा श्रम मूर्त रूप में उसके सामने होता है। वह संतुष्ट एवं प्रसन्न होता है। अपने परिश्रम को सफल होते देख कृषक नाच उठता है। जिस समय मनुष्य प्रसन्न रहता है उस समय उसके हृदय से कुप्रवृत्तियों का विनाश हो जाता है। वह सब से मिलता है। वह भेद मिटा देता है। उसके इस भावना के साथ प्रकृति भी मानव वृक्षों को नए पत्तों के साथ सजाकर वसंत के गर्म गर्म मादक स्पर्श से रोमांचित तथा प्रफुल्लित हो जाती है। पृथ्वी अपनी अंजुरी में कमल पुष्पों को लेकर ऋतुराज के स्वागत के लिए खड़ी हो जाती है। इस प्रकार बाहर एवं भीतर आनंद का पारावार उमड़ पड़ता है। और ऐसे समय में होली का पर्व अपने समस्त ऐश्वर्य के साथ धमकता है। किसान अपने भीतर से संतुष्टि एवं बाहर से परिपूर्ण होकर यह पर्व मनाता है।

यह त्योहार भारत के साथ-साथ नेपाल में भी मनाया जाता है। बांग्लादेश एवं पाकिस्तान के अल्पसंख्यक हिंदू भी होली मनाते हैं। इस तरह भारतीय मूल की जनता भी सुरीनाम, मलेशिया, गुयाना, दक्षिण अफ्रीका, त्रिनिदाद एवं टूबैगो, अमेरिका, मॉरीशस फिजी एवं विश्व के अन्य देशों में भी होली मनाई जाती है। आसाम में होली को 'फगवा', पश्चिम बंगाल एवं उड़ीसा में 'दोल जात्रा' कहते हैं। होली हिंदुओं के अनुसार फाल्गुन पूर्णिमा को मनाई जाती है। जबकि यह समय अंग्रेजी वर्ष मास के अनुसार मार्च के महीने में आता है।

ओडिशा में होली 'दोल जात्रा' के नाम से मनाई जाती है। दोल उत्सव के मुख्य आराध्य देवता राधा एवं कृष्ण हैं। उन्हें झूले में बैठाकर झूला झूला कर खेलाते हैं। झूले को ओड़िया में 'दोल' या 'दोली' कहते हैं इसीलिए इस उत्सव को 'दोल उत्सव' या 'दोल जात्रा' कहते हैं। यह उत्सव पूरी क्षेत्र में बेहद आडंबर के साथ मनाया जाता है। यह जात्रा पाँच दिनों तक चलती। श्री जगन्नाथ जी की चलंति प्रतिमा मदन मोहन एवं लक्ष्मी सुवेश में सुसज्जित हो दोल वेदी पर आते हैं। वहाँ सुसज्जित झूले अर्थात दोली में प्रभु विराजमान होते हैं एवं उत्सव आरंभ होता है। यह उत्सव 5 दिनों तक चलता है जो पुर्णिमा के दूसरे दिन समाप्त होता है।

ब्रज के संदर्भ में होली का एक विशेष महत्व है। उत्तर प्रदेश के मथुरा, वृंदावन, नंदगाँव एवं बरसाना की होली विशेष रूप से प्रसिद्ध है। होली के समय देश-विदेश से लोग इन स्थानों पर भ्रमण करने आते हैं। बरसाने की होली में युवतियाँ डंडा लेकर युवकों पर प्रहार करती है। युवक बाँस के बने ढाल से खुद को बचाते हैं। इसे बरसाने की लट्ठमार होली कहते हैं। बरसाना में राधा-रानी मंदिर के प्रांगण में यह होली खेली जाती है। लोग यहाँ श्री राधे श्री कृष्ण पुकारते हुए दिख जाते हैं। कवि महरचंद बरसाने की होली का वर्णन करते हुए लिखते हैं –

ग्वालिन बरसाने की खेलत आई मदन मोहन सो होरी।
नाचत गावत रंग बरसावत नंदराय जू की पोरी।
घेरि लिए हरि तारी दैकर, पिय सिर केसर गागर ढोरी।
महरचंद लखि रीसि मगन हैं चिरजीवो यह जोरी।

भगवान कृष्ण के जन्म स्थान मथुरा एवं वृंदावन में यह उत्सव विशेष पूजा अनेक रीति-रिवाजों के साथ मनाया जाता है। यह उत्सव यहाँ 18 दिनों तक चलता है।

कानपुर में यह उत्सव 7 दिनों तक चलता है। इसे होली मेला या गंगा मेला भी कहते हैं। इस गंगा मेला में गंगा जमुनी तहजीब देखने को मिलती है। इससे हिंदू मुस्लिम एकता को भी विशेष बल मिलता है।

संदर्भ

1. सूरदास - ब्रजेश्वर शर्मा
2. अष्टछाप निर्णय - प्रभुदयाल मीतल, मथुरा
3. बसंत होली की भावना - गोस्वामी हरिराय
4. होली की तान - डॉ. ब्रजबाला चतुर्वेदी
5. अष्टछापेतर पुस्तिमार्गीय कवि - डॉ. अक्षय कुमार गोस्वामी

साहित्य एवं मीडिया: वर्तमान समाज निर्माण के महत्वपूर्ण स्तम्भ- संस्कृत साहित्य के आलोक में

डॉ० तेज प्रकाश

असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय नौगढ़, चन्दौली, उ0प्र0, भारत

मानव कुछ निश्चित व्यवस्थाओं, मूल्यों, आदर्शो तथा जीवन निर्वाह की क्रियाओं से सम्पन्न समाज का अङ्गीभूत प्राणी है। समाज के माध्यम से मनुष्य आपस में अपने व्यवहारों, गुणों, विचारों, व्यवस्थाओं एवं क्रियाकलापों को आदान प्रदान करते हुए एक श्रेष्ठ जीवन जीने का प्रयास करता है। इसीलिए प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू ने कहा है 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है'। इस विषय पर आगे बढ़ने से पूर्व समाज के विषय में विचार करना आवश्यक है।

समाज- प्रसिद्ध समाजशास्त्री प्रोफेसर गिडिंग्स ने समाज को परिभाषित करते हुए कहा है कि 'समाज स्वयं एक संघ है यह एक संगठन है और व्यवहारों का योग है जिसमें सहयोग देने वाले व्यक्ति एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं'।

किसी भी देश, प्रदेश अथवा विभिन्न क्षेत्रों की व्यवस्थाओं के अनुसार समाज के विभिन्न रूप एवं प्रकार होते हैं। जिनका एक निश्चित दायरा होता है एवं उनसे बाहर निकलकर उस समाज के लोग दूसरे समाज से विचारों एवं संस्कृतियों को आत्मसात् करते हैं तथा एक बड़े समाज का निर्माण करते हैं। इस प्रकार से एक बड़ा समूह समाज के रूप में विद्यमान होकर आपसी तालमेल को स्थापित कर जीवन को सरल बनाने का प्रयास करता है।

समाज का निर्माण एक दीर्घावधि से प्रसृत मूल्यों, विचारों, संस्कृतियों एवं सभ्यताओं का परिणाम है। इन तत्वों के माध्यम से जिस प्रकार से कोई जल बहुत दिनों तक स्थिर रहते रहते जिस प्रकार पात्र, सीप आदि में तथा अन्य रूपों में कठोर हो जाता है उसी प्रकार प्रारम्भिक व्यवस्थायें दीर्घकालपर्यन्त समाज के नियम, साहित्य एवं व्यवस्था के रूप में स्थापित हो जाते हैं। एवं वही उस समाज को संचालित करने के लिए स्थायी नियम एवं संस्कृति के रूप में व्यवस्थित एवं विकसित हो जाते हैं।

समाजशास्त्री जे0एस0 मैकेबी ने अपनी पुस्तक समाज का दर्शन में लिखा है कि 'जिस प्रक्रिया से मानव प्रकृति के विविध तत्वों का समायोजन होता है और वह जिस परिणाम की ओर ले जाता है उसे सामान्यत: सभ्यता की परिभाषा के रूप में व्यक्त किया जाता है'।[1]

साहित्य-समाज के विकास में वहां के साहित्य का बहुमूल्य योगदान होता है। साहित्य के द्वारा ही समाज के वैचारिक पक्ष का विकास होता है एवं वही विकसित समाज की आधारशिला होती है। साहित्य के बिना मनुष्य पशु के समान होता है आचार्य भर्तृहरि ने साहित्य से रहित मनुष्य को पशु के समान बतलाया है-

साहित्यसंगीतकलाविहीन: साक्षात्पशुपुच्छ विषाणहीन:।
तृणं न खादन्नपि जीवमान: तद्भागधेय: परमं पशूनाम्।।[2]

अर्थात् साहित्य, संगीत एवं कला आदि से विहीन मनुष्य पशुतुल्य होता है। अत: साहित्य मानव के अस्तित्व का बोधन कराने वाला तत्व है। तथा साहित्य का सृजन केवल मानव द्वारा ही सम्भव है। साहित्य शब्द पर यदि हम विचार करें तो 'हितेन सह इति सहित: तस्य भाव: साहित्यम्' अर्थात् शब्दार्थयुगलस्वरूप हित अर्थात् समाज के कल्याण की भावना से सम्पन्न रचना साहित्य कहलाती है आचार्य जयशंकर प्रसाद ने 'साहित्य को आत्मा की अनुभूतियों की रहस्यमयी अभिव्यक्ति' स्वीकार किया है। साहित्य का अर्थ व्यापक रूप से ग्रहण न करते हुए सीमित विषयों के अन्तर्गत ही ग्रहण करना चाहिये क्योंकि हितकारी उपदेशों के साथ ललित्यपूर्ण एवं आनन्दप्रद विषयों को ही साहित्य की श्रेणी में मुख्यरूप से रखा जाता है जो कलात्मकता से परिपूर्ण होते हैं। साहित्य का सम्बन्ध शाश्वत मानवीय मूल्यों, आत्मीय चेतना एवं विवेक की जागृति अथवा उदय से होता है। साहित्य देशकाल से परे होकर सार्वकालिक होता है तथा नियमों परम्पराओं में बंधता नहीं है। इसी कारण से वह समाज की अच्छाईयों, बुराईयों, नैतिकताओं, अनैतिकताओं आदि सभी प्रकार के गुणों को प्रकाशित करता है यहां तक कि साहित्य सभ्यता के स्वरूप को प्रकट करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है। आचार्य रामचन्द्रशुक्ल ने साहित्य को 'जनता की संचित चित्तवृत्ति का प्रतिबिम्ब' बतलाया है। इसके माध्यम से साहित्यकार समाज में व्याप्त बुराईयों, कुरीतियों, विकृतियों, असमानताओं तथा अत्याचारों का चित्रण करके जनमानस को दिशा दिखलाने का कार्य करता है साथ ही साथ मानवीय भावों एवं विचारधारा को गतिशीलता प्रदान करता है। साहित्यकार द्वारा प्रकट किये गये विचार विशाल जनमानस को प्रभावित करते हैं जिससे आदर्श समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहण होता है।

भारतवर्ष प्राचीनकाल से ज्ञानविज्ञान एवं साहित्यसृजन के द्वारा विश्वगुरू के पद पर प्रतिष्ठित है। प्राचीनकाल से ही ऋग्वेद आदि, चारोवेद, पुराण, धर्मशास्त्र, काव्य, नाटक, गद्य, एवं विविध प्रकार के अन्य साहित्यिक ग्रन्थ मानव जीवन को आनन्दमय एवं जीवन के वास्तविक उद्देश्यों की ओर ले जाने के लिए विरचित किये गये हैं। ये साहित्यिक रचनायें अपने माध्यम से विशाल संस्कृति, विरासत एवं समाज के लिए आचरण तथा लोक व्यवहार की सामग्री को प्रदान करती चली आ रही हैं। प्रसिद्ध स्मृतिशास्त्र मनुस्मृति के अनुसार सम्पूर्ण वेद, वैदिक परम्परा, वेदानुमोदित व्यवहार सज्जनों के द्वारा किया जाने वाला आचरण

तथा आत्मसन्तोष को प्रदान करने वाले कार्य सभी धर्म कहलाते हैं एवं उनके आधार पर समाज के लोकव्यवहार का मार्ग प्रदर्शित होता है–

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीलं च तद्विदाम्।
आचारश्चौव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।।[3]

मानव समाज को कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान एवं उचित अनुचित व्यवहार की दिशा प्रदान करने का काम प्राचीन साहित्य ने भरपूर किया है। मनुस्मृति ने सत्य बोलने किन्तु अप्रिय सत्य न बोलने हेतु लोकव्यवहार को निम्न रूप से उपदेशित किया है–

सत्यं ब्रूयात् प्रियं बूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एषः धर्मः सनातनः।।[4]

अर्थात् सत्य बोलना चाहिये, प्रिय बोलना चाहिये, सत्य एवं अप्रिय नहीं बोलना चाहिये, इसी प्रकार प्रिय एवं झूठे वचन नहीं बोलना चाहिये यही सनातन धर्म है। जीवन के लोक व्यवहार का इतना सूक्ष्म वर्णन केवल भारत के प्राचीन शास्त्रों में ही दृष्टिगोचर होता है इसी प्रकार मनुष्य के दुर्लभ शरीर का सदुपयोग न करते हुए जो लोग उसका मूल्य नहीं समझते है उसके माध्यम से संघर्ष नहीं करते हैं तथा छोटे मोटे विषम परिस्थितियों के आने पर भी आत्महत्या जैसा कदम उठा लेते हैं उनके लिए ईशावास्योपनिषद नामक श्रेष्ठ उपनिषद में मृत्यु के पश्चात् अन्धकार से युक्त लोक की प्राप्ति होने की बात कही गयी है।

असूर्या नाम ते लोका अन्धेनतमसाऽऽवृताः।
ताँस्ते प्रेत्यभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।।[5]

इसी प्रकार मनुस्मृति में समाज को सन्देशित करते हुए कहा गया कि जिस कार्य को करने से कर्ता की अन्तरात्मा प्रसन्न हो उस कार्य को प्रयत्न पूर्वक करना चाहिये और उसके विपरीत जो कार्य हो उसे छोड़ देना चाहिए–

यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात् परितोषोऽन्तरात्मनः
तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत।[6]

साहित्य ने इस प्रकार से मानव जीवन को महनीयता प्रदान करने के लिए, उत्कर्ष, आदर्श, श्रेष्ठता प्रदान करने के लिए सर्वदा ही प्रयास किया है। जीवन के हरेक पक्षों पर विचार प्रस्तुत किया है जिससे वैचारिक दृष्टि, मूल्यों के संवर्धन की दृष्टि तथा जीवन दर्शन की अभ्यून्नति की दृष्टि से हमारा समाज एवं संस्कृति महानता को प्राप्त हो सके।

मीडिया

मीडिया का अर्थ सामान्य रूप से संचार के माध्यम एवं विविध संसाधन ग्रहण किया जाता है। अर्थात् वैसे संसाधन जिनके माध्यम से समाज में समाचार, विषयवस्तु एवं विचारों, भावनाओं को दृश्य, श्रव्य रूप में प्रदान किया जाता है। मीडिया के विभिन्न रूप समाचार पत्र, टेलीविजन, रेडियो, पत्रिकाएं, येलोपेजेस, सोशल मीडिया, आदि रूपों में दर्शित होते है। मीडिया के केन्द्र बिन्दु में संचार निहित है। 'संचार वह प्रक्रिया है जिसमें स्रोत एवं श्रोता के मध्य सूचना सम्प्रेषण होता है। इस प्रकार संचार विचारों के आदान प्रदान से सम्बद्ध है।[7]

संचार के माध्यम से मीडिया एवं समाज में अन्तःसम्बन्ध स्थापित होता है, जिससे मीडिया जनसंचार का सबसे बड़ा माध्यम बन गया है। मीडिया का वास्तविक कार्य है कि समाज के याथातथ्य को समाज के समक्ष प्रस्तुत करे जिससे सामाजिक कमियां, आवश्यकतायें, संभावनायें, विकास आदि पर समाज तक आवश्यक जानकारी पहुँच सके। ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी गरीब लोगों तक सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं का लाभ पहुँचाने के लिए रेडियों, टेलीविजन आदि का सहारा मीडिया के सदुपयोग की ओर इंगित करता है। मीडिया वर्तमान में मनोरंजन का भी बहुत बड़ा माध्यम बन गया है चाहे वह दूरदर्शन चौनलों के माध्यम से हो या सोशल मीडिया या प्रिन्ट मीडिया के माध्यम से, विभिन्न कार्यक्रमों, उपक्रमों, चलचित्रों, सोशल मीडिया द्वारा प्रसारित सामग्रियों को प्रदान कर समाज में मनोरंजन के एक व्यापक स्रोत के रूप में विद्यमान है। वर्तमान में मीडिया की अन्य विशेषता यह भी द्रष्टव्य है कि यह सर्वजन तक पहुँच बना चुका है तथा इसके द्वारा बहुत अल्प समय में ही सूचनायें व्यापकता को प्राप्त हो जाती हैं और एक अल्प समय में ही हजारों, लाखों लोगों तक सूचना का प्रसार हो जाता है। प्रसिद्ध संचार तकनीकी विशेषज्ञ डेनिस मैक्विल के अनुसार ''तेजी से बदलते वातावरण में मीडिया की महत्ता और बढ़ गयी है। सार्वभौमिक पहुँच और जन चरित्र ने इसे और भी महत्वपूर्ण बना दिया है। मीडिया की इन विशेषताओं ने समाज के राजनैतिक और सांस्कृतिक ढांचे को गहराई से प्रभावित किया है।''[8]

दिन-प्रतिदिन समाज में विद्यमान व्यक्तियों पर मीडिया का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक परिवर्तन में मीडिया अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हुए दिखाई पड़ता है। इस प्रकार से मीडिया समाज में सूचनाओं, विचारों, भावनाओं को विभिन्न प्रकार से प्रसारित कर व्यवहारों में भी परिवर्तन का माध्यम है।

वर्तमान साहित्य एवं मीडिया का समाज पर प्रभाव

वर्तमान समाज के निर्माण में साहित्य एवं मीडिया का बहुत अधिक असर दिखलायी पड़ता है। साहित्य जहां आदर्शता, शान्ति, आनन्द, मार्गदर्शन, उपदेश आदि की ओर ध्यान आकृष्ट करता है। वहीं मीडिया समाज में चल रहे व्यवस्थाओं, परम्पराओं, संस्कृतियों एवं आपसी सम्बन्धों की संरचनाओं को प्रस्तुत करता है। साहित्य एवं मीडिया वर्तमान समाज में इस प्रकार से घुल मिल गये हैं कि उनसे निकली हुई सूचनायें समाज को अत्यंत गहराई से प्रभावित करती हैं। जिससे अनपेक्षित चीजें भी समाज ग्रहण करने लगता है वह चाहे सामाजिक ज्ञान हो, अथवा सामाजिक नैतिक मूल्यों के रूप में विचारधारा का प्रवाह

हो। प्रसिद्ध संचार वैज्ञानिक डेराल्ड लासवेल ने इसीलिए इसी से सम्बन्धित मीडिया के चार मुख्य कार्य माने हैं- 1. सूचना संग्रह एवं प्रसार, 2. सूचना विश्लेषण, 3. सामाजिक ज्ञान तथा 4. मूल्यों का प्रेषण।[9]

अत: मीडिया के माध्यम से समाज सूचनाओं के साथ साथ सामाजिक सिद्धान्तों प्रतिमानों, मूल्यों को भी आत्मसात करते चला जाता है। साहित्य ने समाज को हमेशा संवारने का कार्य किया है विशेषकर यदि भारतीय परिपेक्ष्य में देखा जाय तो पुरातन काल से जीवन को उदात्त उन्नत एवं मूल्यों से सम्पन्न बनाने का काम साहित्य ने बखूबी किया है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, नीतिशतक, मनुस्मृति, चाणक्यनीति आदि सौ से भी अधिक ग्रन्थ समाज में सदाचार, धर्म, ज्ञान और मूल्यों की शिक्षा एवं सन्देश प्रदान करते द्रष्टव्य होते हैं।

आत्मन: प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत।[10]

परहित सरिस धर्म नहि भाई।।[11]

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा: मा गृध: कस्यस्विद्धनम्।।[12]

इस प्रकार के अनेकानेक सन्देश परोपकार, समाजसेवा आदि को जीवन में अपनाकर वास्तविक उत्थान की ओर प्रेरित करते हैं। अत: साहित्य समाज के निर्माण का प्राणतत्व होता है किन्तु समय के बदलते परिवेश के अनुसार साहित्य अपने मुख्य उद्देश्यों की ओर आगे कम बढ़ रहा है और बाजारवादी नीतियों के प्रभावस्वरूप स्तरहीनता की ओर अग्रसर होता जा रहा है। मूल्यों से युक्त साहित्यिक रचनायें कम होती जा रही हैं। साथ ही साथ उपभोक्तावादी समाज का प्रभाव पड़ने के कारण साहित्य का प्रभाव भी सीमित होता जा रहा है। यद्यपि समाज में गिरते मूल्यों के स्तर को स्थापित करने में साहित्य का बड़ा योगदान है।

इस प्रकार वर्तमान समाज पर मीडिया का प्रभाव बहुत अधिक है। मीडिया के कारण हमारे आचार, व्यवहार सिद्धान्तों, मूल्यों में आमूलचूल परिवर्तन आया है। बाजारवाद के प्रभाव के कारण मीडिया पूंजीवादी व्यवस्था का शिकार होती जा रही है धनसंग्रह उसका प्रधान उद्देश्य होता जा रहा है तथा आगे बढ़ने की होड़ में अपना उद्देश्य एवं लक्ष्य को मीडिया भूलता जा रहा है। इसके अन्दर से भाषाई संस्कार पूरी तरह से विकृत होते जा रहे हैं। टेलीविजन समाचारों के अन्दर नकारात्मक, एवं हिंसा की घटनाओं आदि वाले खबरों की प्रमुखता होती है इसके अतिरिक्त किन्हीं विशेष व्यक्तियों पार्टियों से प्रभावित खबरें समाज तक पहुँचायी जाती हैं जिससे समाज में कुंण्ठा, हिंसा आदि की भावना प्रबल होती जा रही है। इसी प्रकार चलचित्रों के माध्यम से काल्पनिक कहानी का निर्माण करके उसमें व्यवसायिता की ही प्रबलता के कारण गीतों, विषयवस्तु आदि में समाज की संस्कृति को नष्ट करने वाले तथा आधुनिकता के नाम पर पाश्चात्य परिधानों, भाव भंगिमाओं, अश्लीलता, क्रूरता आदि को प्रदर्शित करने की परम्परा समाज को मूल्यों एवं संस्कृति से रहित करती जा रही है। धारावाहिकों के माध्यम से काल्पनिक कहानियों में ईष्या, द्वेष, घृणा, छल भावनाओं का अधिकाधिक प्रयोग समाज को अनपेक्षित रूप से इन सभी भावों को सौंपते रहने का कार्य कर रहे हैं एवं समाज भी उसे शीघ्र ग्रहण कर लेने में समर्थ हो जा रहा है। इसी प्रकार दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले विज्ञापनों में अश्लीलता एवं मानकों की कोई सीमारेखा निर्धारित नहीं है। चाहे विज्ञापन किसी वस्तु के प्रचार के लिए हों लेकिन उसमें किस स्तर तक की अश्लीलता एवं स्त्री को भोग्य वस्तु के रूप में किस हद तक प्रयोग किया जाय इसके विषय में कोई निर्धारित मानक नहीं रखे गये हैं एवं इसका समाज में व्यापक असर दिखलायी पड़ता है एवं हमारा समाज विशेष रूप से युवा पीढी इस गिरते मीडिया के स्तर से बहुत अधिक प्रभावित हो रहे हैं। उनमें नैतिकता, मूल्यों के प्रति संवेदनशीलता, नारी के प्रति सम्मान, श्रद्धा आदि भावों का लोप होता जा रहा है जो कि भविष्य के लिए अत्यन्त घातक है।

इसी प्रकार मीडिया का एक पक्ष सोशल मीडिया वर्तमान समाज में सर्वाधिक रूप से प्रभावी संचार का माध्यम बन गया है। समाज के हरेक वर्ग, हरेक वय तक सोशल मीडिया की पहुँच हो चुकी है। सोशल मीडिया के ट्विटर, फेसबुक, वाट्सअप, इन्स्टाग्राम आदि समूहों पर एक सूचना लाखों लोगों तक कुछ ही समय में पहुँच जाती है। एक भी अच्छा संदेश किसी एक छोटे से गांव से निकलकर विश्व के किसी कोने में अल्प समय में ही पहुँच जाता है। ऐसे में समाज के निर्माण में सोशल मीडिया का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान हो गया है और इस प्रकार बदलते समाज की जरूरत के साथ साथ सोशल मीडिया डिजिटल क्रान्ति का केन्द्र बनकर उभरा है। यह एक ऐसा तन्त्र है जो समाज में लोगों को अपने विचारों का आदान प्रदान करने, आपस में जुड़ने, उनसे सलाह लेने, मार्गदर्शन लेने देने एवं एक साथ ज्यादा लोगों तक पहुँचने का विशिष्ट माध्यम है।

यह विस्तृत, अनौपचारिक, औपचारिक लेखन को विकसित करने, राजनीति, अर्थव्यवस्था, स्वास्थ्य आदि विषयों को प्रस्तुत करने का और समाज के लोगों को अपने विचारों को आदान प्रदान करने का एक बड़ा मंच प्रदान करता हैं। किन्तु सोशल मीडिया के नकारात्मक पक्ष की ओर जब हम ध्यान देते हैं तो लाभ उससे बहुत पीछे हो जाता है। सोशल मीडिया ने सामाजिक एवं पारिवारिक सम्बन्धों को बहुत प्रभावित किया है। कभी न मिले हुए एवं अपरिचित लोग अपने हो जाते हैं और परिवार तथा गहरे सम्बन्धों की भावनायें पीछ होती चली जा रही हैं। इसके द्वारा समाज को जोड़ने का कार्य तो हो रहा है लेकिन उससे अधिक भ्रामक जानकारियां अश्लील सामग्रियों का प्रयोग, हिंसा फैलाने वाले, धार्मिक उन्माद एवं भ्रमित करने वाले तथा मूल्यों को उपेक्षित करने वाले सामग्रियों की भरमार समाज को नैतिक रूप से स्तरहीन बनाने का काम कर रहे हैं। युग वर्ग इस सामाजिक पटल के नाम पर भ्रम में पड़कर अपने अमूल्य समय एवं अपनी उर्जा का दुरूपयोग करता जा रहा है एवं भविष्य तथा सांस्कृतिक मूल्यों से खिलवाड़ करने वाला कार्य करते हुए दिखलायी पड़ रहा है। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के नाम पर स्वच्छन्दता की ओर उन्मुख होकर होकर हमारा समाज कुछ भी सूचना प्रेषित कर देता है एवं एक बड़े तबके के लोग इन्टरनेट की सूचना को पूर्णत: सत्य मानकर उस पर विश्वास कर लेते हैं जिस कारण उग्रता, आक्रामकता, अफवाह, वैमनस्यता आदि का प्रसार समाज में व्यापक रूप से हो रहा है एवं आपसी भेदभाव बढ़ रहा है। कम आयु के युवा भी सोशल मीडिया पर आपत्तिजनक सामग्रियों को देखते, एक दूसरे को भेजते देखे जाते हैं जोकि एक स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए किसी प्रकार से स्वीकार्य नहीं है। इस प्रकार से मीडिया समाज के निर्माण में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाता तो है वह अपना प्रभाव छोड़कर समाज को अपने अभिव्यक्ति के द्वारा अपने अनुरूप ढालते चला जाता है और समाज में किस प्रकार बदलाव

होते चला जाता है पता ही नहीं चलता। समाज विज्ञानी एल0 डेक्सटर और डेविग मैनिंग ने इसकी पुष्टि निम्न शब्दों में की है- 'जनमाध्यमों का वर्तमान समाज पर गहरा प्रभाव है। इनके द्वारा समाज की मनोदशा, विचार, संस्कृति एवं जीवन दशायें नियन्त्रित व निर्देशित हो रही है जनसंचार द्वारा व्यक्तियों के सामाजीकरण की प्रक्रिया समाज में चलती रहती है।''[13]

अत: मीडिया ने समाज को बदलने में बड़ी भूमिका निभायी है। किन्तु भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर इसका बहुत गम्भीर एवं नुकसानदायक असर भी हुआ। भारत प्राचीनकाल से 'विश्वगुरू' और 'सोने की चिड़िया' कहा जाता रहा है अर्थात् यहां पुरातन समय से ही ज्ञान, विज्ञान, संस्कृति, सभ्यता, सम्पदा, अर्थव्यवस्था अत्यन्त समृद्ध रही है साथ ही साथ सनातन परम्परा की व्यवस्था में प्राकृतिक एवं सन्तुलित विकास, तद्नुकुल ही रहन-सहन, वेशभूषा एवं जीवन की व्यवस्था का निर्धारण किया गया है किन्तु मीडिया के काल्पनिक, स्वैच्छिक, अनियन्त्रित, अश्लीलतापूर्ण एवं अनुदात्त तत्वों का प्रसारण एवं प्रस्तुति ने समाज की दिशा में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के विपरीत व्यवस्था को जन्म दिया। भोगवाद की प्रवृत्ति समाज का अंग बन गयी। आदर्शता की परिभाषा पाश्चात्यीकरण के सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर बनायी जाने लगी। जिसके कारण समाज में आक्रामकता, अराजकता, संघर्ष, द्वेष, स्त्रियों को भोग्या के रूप में देखना आदि भावनायें प्रबल होती जा रही है जिससे समाज भारतीयता की महान परम्परा और आदर्श व्यवस्था को पीछे छोड़ता जा रहा है और नैतिक तथा सामाजिक मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। ऐसे में समाज को केन्द्र में रखकर उचित आदर्शो से संयुक्त साहित्य सृजन यदि किया जाय एवं मीडिया भी पुरातन मूल्यों, आदर्शो एवं आधुनिक ज्ञान, विज्ञान की नवीनता में सामञ्जस्य स्थापित कर तथा व्यक्ति हितैषी एवं बाजारवादी प्रवृत्ति को त्यागकर समाजहित के लिये यदि कार्य करे तो अवश्य ही समाज के लिए यह अत्यन्त लाभप्रद होगा तथा साहित्य तथा मीडिया की वास्तविक सार्थकता होगी तथा अन्धानुकरण से मुक्त वर्तमान में आदर्श समाज का निर्माण सम्भव हो सकेगा।

संदर्भ

1. मेकेबी, जे0एस0, समाज दर्शन की रूपरेखा, सन् 1962 ई0, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ सं0-53।
2. आ0 भर्तृहरि, नीतिशतकम्, सं0 1947, निर्णयसागर प्रकाशन मुबंई, श्लोक संख्या-12।
3. वर्मा रामचन्द्र, टीकाकार, मनुस्मृति, सन् 2005 ई0, विद्याविहार प्रकाशन दिल्ली, श्लोक संख्या-2.6।
4. वहीं, श्लोक संख्या-4.238।
5. ईशावास्योपनिषद, सं0 2016, गीता प्रेस गोरखपुर, श्लोक संख्या-3।
6. वर्मा रामचन्द्र, टीकाकार, मनुस्मृति, सन् 2005 ई0, विद्याविहार प्रकाशन, श्लोक संख्या-4/161।
7. Rogers E.M.S. shoemaker, communication of innovation, The freepress, new york 1971, P.23 A
8. Denis Mequil, Mass Communication Theory-an introduction sage publication, New Delhi, 1983, P-35 A
9. Kuppuswami, B, Communication and social Development in India, Sterling Publication Pvt. Ltd., New Delhi-1976, P-28
10. पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड , गीता प्रेस गोरखपुर, श्लोक संख्या-19/357-358 ।
11. श्रीरामचरितमानस, तुलसीदास, उत्तरकाण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर, दोहा-41, चौपाई -1।
12. ईशावास्योपनिषद, सन् 2016, गीता प्रेस गोरखपुर, श्लोक संख्या-1।
13. Dexter L, A. & Daving manning, white people society and mass communication, thee free press of glance, collier macnaillan Ltd. London, 1964, P-34

महिला अधिकार : नीतियां एवं वास्तविकता

रजनी

शोधार्थी, राजर्षि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

पृथ्वी पर नारी का अवतरण मानव जाति की जननी तथा दो पीढ़ियों को जोड़ने वाली एक कड़ी के रूप में होता है। पुरूषों के साथ सहयोग, सेवा, सहानुभूति त्याग और समर्पण की भावना रखने वाली नारी मानव समाज के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह सदियों से करती रही है। इसके बावजूद पित्रस्तात्मक समाज स्वयं की तुलना में नारी को निम्न दर्जा प्रदान करता है। शारीरिक भिन्नता यह नहीं स्थापित करती कि औरत गौण या यौनजनित सोपानीकरण में नीचे की सीढ़ी पर बैठी है। ये जैविक परिस्थितियाँ औरत को अधीनस्थ भूमिका स्वीकारने के लिए बाध्य नहीं कर सकतीं। स्पष्ट है नारी केवल नारी होने के कारण उपेक्षिता नहीं हो सकती। उसकी भी समाज में एक अति महत्वपूर्ण भूमिका हैं जिसको वो निरंतर निभाती चली आ रही है।

वैदिक काल से लेकर अब तक स्त्रीजीवन ने अनेक उतार-चढ़ाव का सामना किया है। वैदिक काल में पुरुष और स्त्री को समान रूप से स्वतंत्रता प्राप्त थी। ये कहना अनुचित न होगा की महिलायें आधुनिक समाज की तुलना में वैदिक काल में अपने आप को ज्यादा स्वतंत्रमहसूस करती होंगी । वैदिकोत्तर काल में नारी की स्वतंत्रता और अधिकारों पर पुरुषों ने वैधानिक अंकुश लगाकर स्त्री के पद और मर्यादा को लंबे समय के लिए तुच्छ बना दिया। घर के अंदर स्त्री और बाहर के नि:सीम जीवन में पुरुषों का वर्चस्व स्थापित हुआ। मनुस्मृति की कुटिल दृष्टि में नारी निकृष्टतम रूप में देखी गयी, समय के बदलते क्रम के साथ यद्यपि नारी शनैः शनै ही सही, अपनी स्थिति को मजबूत बनाती रही तथापि उनका कद पुरुषों के कद की बराबरी न कर सका।

सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में शताब्दियों से हीन समझी जाने वाली महिलाओं को अपने अधि कार के प्रति सजग किया। परिणामत: स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महिलाओं को पुरुषों के समकक्ष अधिकार प्रदान करते हुए उन्हें सामाजिक आर्थिक दृष्टि से उपर उठाने और सम्मान प्रदान करने की नीति अपनायी गयी। भारतीय संविधान ने उन्हें पुरुषों के बराबर ही नागरिकता प्रदान की। इसके बावजूद आज की स्थिति में असमानता ही प्रदर्शित हो रही है। स्त्री पुरुष की समानता के पक्षधर संयुक्त राष्ट्र के भूतपूर्व महासचिव बतरस घाली ने भी कहा था कि सम्पूर्ण विश्व में स्त्री पुरुष समानता का आंदोलन हमारे समय का महत्वपूर्ण आंदोलन है 1995 में बीजिंग में महिलाओं के चौथे विश्व सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र महासचिव बुतरस घाली का यह कथन इसी और संकेत करता है कि विश्व को महिला की दृष्टि से देखो महिला व पुरुष वर्तमान में असमान विश्व में रह रहे हैं। वर्ष 2005 तक 41 भारत रत्न पुरस्कारों में सिर्फ पाँच ह महिलाओं की झोली में जाना तथा 14 वीं लोकसभा के भंग होने के बावजूद फिर दो बार महिला विधेयक का अधुरा रहना इसी और संकेत करता है वास्तविकता में महिलाओ को वो दर्जा मिलना अभी शेष है । कागजी तौर पर बहुत से अधिकारों का विवेचन मिल जायेगा परन्तु अभी भी कथनी और करनी में बहुत अंतर है । लिंग भेद तथा असहनीय असमानताएँ विश्व के विकसित एवं अविकसित सभी देशों विद्यमान है। 1995 में एक भी राष्ट्र ऐसा नहीं है, जहाँ महिला एवं पुरुष पूर्ण समानता की स्थितियों का उपभोग करते हैं। विश्व के सभी हिस्सों में महिलाओं के प्रति भेदभाव के दृष्टिकोण, व्यवहार एवं प्रवृत्तियाँ जनजीवन में व्यापक स्तर पर प्रचलित हैं

स्वतंत्रता प्राप्ति से अब तक महिलाओं का सर्वांगीण विकास हुआ है। शिक्षा, रोजगार एवं व्यवसायों में महिलाओं का अनुपात बढ़ा है अर्थात् आज महिलाएँ आर्थिक, सामाजिक और बौद्धिक या मानसिक रूप से अधिक सक्षम स्वतंत्र एवं प्रगतिशील हैं। लेकिन महिलाओं की विकास की प्रक्रिया कदापि संतोषजनक नहीं है। अनेक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक कारणों से भारतीय महिलाओं की स्थिति कमजोर बनी हुई है तथा शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य एवं आर्थिक भागीदारी से सम्बन्धित संकेत में भी पुरुषों की तुलना में महिलाओं की स्थिति निम्नतर बनी हुई है।

ग्रामीण क्षेत्रों, पिछड़े इलाको में एवं समाज के कमजोर वर्गों में तो महिलाओं की स्थिति और भी गंभीर है। ष्औरतों के लिए सामाजिक सुरक्षा के मायने भी उसके निराश्रित या विकलांग होने तक सीमित है और अगर उसे 150 रू० प्रतिमाह की पेंशन भी मिलती है तो वह इसकी हकदार नहीं रह जातीद्य संसाधनो पर मालिकाना हक औरत का कभी नहीं होता। हमें ये अंतर राजनितिक पक्ष में देखने को भी मिलता है जेसे की यदि कोई महिला सरपंच, वार्ड अध्यक्ष या किसी ऐसे पद पर कार्यरत है तो वे मात्र प्रत्यक्ष रूप में असल कार्य उनके घर के पुरुष ही संभालते है। दुनिया के काम का 76.60 प्रतिशत वे ही संभालती हैं। यद्यपि भारतीय संविधान (73 वें एवं 74 वें संशोधन विधेयक) में महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार दिए गए है तथापि उनके साथ भेद-भाव होता चला आ रहा है, चाहे वह शिक्षा का क्षेत्र हो या फिर राजनीति का रोजगार की बात हो या फिर आर्थिक समानता की, परिवार से लेकर समाज तक भेद-भाव का सिलसिला जारी है।

एक सरकारी सर्वेक्षण के अनुसार देश में प्रतिवर्ष एक करोड़ कन्याएँ जन्म लेती है, जिसमें से लगभग 20 लाख को जन्म लेने से पहले मौत की नींद सुला दिया जाता है। इंडियन मेडिकल एशोसियेशन का मानना है कि देश में प्रतिवर्ष लगभग 50 लाख कन्या भ्रूण नष्ट किये जाते हैं। गौरतलब हैं कि कन्या भ्रूण हत्या रोकने के लिए सरकार चाहे जितनी सख्ती कर ले, पर कातिलों के पास हर मर्ज की दवा है। सरकार ने भले भ्रूण हत्या के लिंग परीक्षण पर पाबंदी का कड़ा कानून बनाया है, ताकि कन्या भ्रूण हत्या रोकी जा सके, लेकिन चालाक, हत्यारों ने इस कानून से बचने के कई रास्ते खोज निकाले है। पहले सोनोग्राफी करके डॉक्टर पता कर लेते है थे कि भ्रूण नर है या मादा। इस टेस्ट पर सरकार ने रोक लगाई तो अब जेनेटिक टेस्ट (आनुवांशिक जाँच) करा

कर लोग यह पता कर लेते हैं कि भ्रूण कन्या है अथवा पुत्र। हालांकि जेनेटिक टेस्ट भ्रूण में किस प्रकार की विकृति का उपयोग लिंग जाँचने के लिए धड़ल्ले से किया जा रहा है। 'मेल' या 'फीमेल' तो नहीं लिखते, लेकिन कन्या भ्रूण होने पर आनुवांशिकीय विकृति लिख देते हैं। यह संकेत है गर्भ में कन्या के होने का। इसके बाद कातिल गर्भ से उसकी हत्या करने मे पल भर भी नहीं गवाते। चंडीगढ़ जैसे अत्याधुनिक शहर में एक हजार पुरुषों के पीछे मात्र 773 महिलाएँ रह जाना सचमुच गंभीर चिंता का विषय हैं। इस असंतुलन को दूर करने के लिए आवश्यक है कि लिंग निर्धारण के लिए होने वाले हर प्रकार के परीक्षणों पर सरकार सख्ती से रोक लगाए शिशु कन्या के जन्म के बाद उसे मारकर कूड़े के ढेर पर फेंक देना बर्बर मानसिकता की निशानी है। इससे समाज को निजात दिलाना जरूरी है। ये बहुत ही विकृत मानसिकता है की समाज में औरत की इज्जत तभी होती है जब वो बेटा पैदा करे। हमारे समाज में अनगिनत श्रीमती आज भी मौजूद हैं, जो कन्या भ्रूण हत्या में विश्वास करती है क्योंकि वे मातृत्व की प्रथम सुख पुत्र में मानती है। औरत आज भी अपने परिवार और पति के आगे बहुत मजबूर हैं। हमें अपने मूल्यों का पुनरावलोकन करना होगा। नारी घर से निकालकर राजपथ की यात्रा कर रही है शासन प्रशासन की मुख्य धुरी रही है। राजनीति शिक्षा, शिलाकला, संस्कृति, व्यवसाय, वाणिज्य बैंक प्रबंधन अनुसंधन कारपोरेट जगत जैसी तमाम जगत पर और एवं जोखिम भरा दायित्व बखूबी निभा रही है। स्त्री शक्ति का वर्चस्त्र सर्वत्र दिखाई दे रहा है, लेकिन दूसरी और कन्या भ्रूण हत्याओं की बढ़ती संख्या और स्त्री पुरुष अनुपात में बढ़ता असंतुलन भारतीय स्त्री के लिए बेहद खतरनाक इशारा है।

भारत सरकार ने सन् 1994 में प्रसव पूर्व वैज्ञानिक तकनीक नियमन और दुरूपयोग से बचाव अधिनियम के तहत गर्भस्थ शिशु के लिंग परीक्षण पर प्रतिबंध लगा दिया था और इस कानून का संशोधित रूप पी.एन.डी.टी. (प्रोनेटल डिटरमीनेशन टेस्ट) 2002, 14 फरवरी 2006 को देशभर में लागू हो गया है। इस अधिनियम के उल्लंबन पर दोषी को पाँच साल की जेल और एक लाख रूपये के जुर्माने का प्रावधन है। फिर भी आज हमारे समाज के ईश्वर माने जाने वाले तथाकथित डाक्टर माँ बाप के दुख से आहत होकर मात्र डेढ़-दो हजार का चढ़ावा लेकर उन्हें कन्या भ्रूण से निजात दिला देते। कन्या भ्रूण हत्या के परिणाम स्वरूप जब लैंगिक अनुपात असमान होंगे तो स्थिति भयावह होगी।

वैश्वीकरण के इस युग में आज भी कन्या भ्रूण हत्या जारी है। भारत के संपन्न राज्यों में शुमार पंजाब और हरियाणा में स्थिति इतनी विकट हो गयी है कि शादी योग्य युवाओं के लिए लड़किया ही नहीं है। पिछले कुछ सालों में लगभग 4 करोड़ कन्या भ्रूण हत्या हुई है। आज भी अधिकांश लोग लड़कियों को बोझ मानते हैं। भारत एक पितृसत्तात्मक समाज है, शादी के बाद लड़कियों को पति की संपत्ति और लड़कों को बुढ़ापे का सहारा मानने की प्रवृत्ति है। कन्या भ्रूण हत्या के कारण गंभीर समस्या उत्पन्न हो सकती है। एक और जनसंख्या नियंत्रण का घोषित राष्ट्रीय कार्यक्रम और दूसरी और पुत्र जन्म की अनिवार्यता संबंधी पारंपरिक सामाजिक मूल्य लैंगिक समस्या को बढ़ावा दे रही है। दहेज के कारण यह समस्या और गहराती जा रही है। नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार प्रतिवर्ष 6000 महिलाएँ इसी कारण मारी जाती है। उत्तराधिकार संशोधन विधेयक 2005 के पारित होने से कन्या को मायके की सम्पति पर जीवन पर्यन्त अधिकार देती है तथापि वृद्धावस्था में माँ बाप का ख्याल उसे जहाँ का ताँ छाड़ देती हैं।

लिंग भेद की समस्या भारतीय समाज में गहरे रूप में व्याप्त है। एक स्त्री जो दिन रात अथक परिश्रम करती है एक लड़की जिसे घर में लड़कों की अपेक्षा निम्न स्तर का भोजन दिया जाता है. एक शिक्षित लड़की की काबिलियत को लड़कों की शिक्षा की अपेक्षा निम्न समझा जाता हैं। लिंगापराध अथवा पति के मृत्युपरांत स्त्री को जो करबर में बड़ा किया जाता है। यद्यपि बदलते हुए परिवेश में महिलाएं कार्य क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है विभिन्न सेवाओं में अपनी जिम्मेदार हैरता है। उनकी आत्मनिर्भरता बढ़ी है। लेकिन महिलाओं के अधिकार हनन एवं शोषण की प्रवृति में निरंतर बढ़ोत्तरी हुई है। कामकाजी महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न की घटनाएं असंगठित क्षेत्र में लैंगिक आधार पर श्रम व्यवस्था, शिक्षा के मंत्र में असमान अवसर आदि लिंग भेद से उत्पन्न विभिन्न तथ्यों की और उमारा ध्यान आकृष्ट करती है। लिंग भेद के कारण ही कामकाजी महिला यातनाओं का शिकार बनती है। नेशनल रिकार्ड ब्यूरो (एन० सी० आर० बी०), 2005 के अनुसार प्रत्येक तीन मिनट पर एक महिला की शिकार, प्रत्येक 15 मिनट पर एक महिला छेड़छाड़ की शिकार बनती है। 10 में से एक म घर के भीतर ही हिंसा की शिकार बनती है। यह कैसी विडम्बना है कि आज भी महिलाओं के सिर से लंबी दूरी से पानी ढ़ोने जैसे अनुत्पादक कार्यों को सम्पादित कराया जा रहा है।

भारत की जनगणना 2001 के अनुसार महिला श्रमिकों की संख्या देश के कुल महिलाओं का 25.6 प्रतिशत हैं। अधिकांश श्रमिक महिलाएँ ग्रामीण क्षेत्र की महिला श्रमिकों में से 87 प्रतिशत खेतिहर मजदूर है। शहरी क्षेत्र में 80 प्रतिशत श्रमिक महिलाएं घरेलू उद्योगों, छोटे छोटे व्यवसाय और नोकरी तथा भवन निर्माण जैसे, असंगठित क्षेत्रों में काम कर रही हैं। प्रमुख उद्योगों में कर्मचारियों की संख्या के विश्लेषण से पता चलता है कि अधिकतर महिलाएँ सामुदायिक सामाजिक और निजी सेवा क्षेत्र में कार्यरत हैं। बिजली, गैस, पानी इत्यादि क्षेत्रों में सबसे कम संख्या में महिलाओं को रोजगार मिला हुआ है। अंतराष्ट्रीय श्रम संगठन की महिला वैश्विक रोजगार रिपोर्ट के अनुसार समान काम के लिए अभी भी पुरुषों की तुलना में महिलाओं को वेतन कम मिलता है। विश्व के अरब रोजगारशुदा लोगों महिलाओं की संख्या पहले से अधिक है। बड़ी संख्या में महिलाएँ कम वेतन वाले कार्यों में लगी हुई हैं जैसे खेती। 70 प्रतिशत महिलाएं खेती के कार्य में संलग्न हैं। विश्व कार्य का 60 प्रतिशत कार्य महिलाएँ संपन्न करती हैं, किन्तु केवल एक प्रतिशत विश्व पर महिलाओं का स्वामित्व प्राप्त है और विश्वव्यापी आय में केवल 10 प्रतिशत की भागीदारी है। विश्व के 10 खरब गरीबों में 60 प्रतिशत महिलाएं हैं। तथापि आर्थिक रूप से कोई बहुत बड़ा सुधर महिलाओं की स्थिति में नहीं हुआ है। "सरकारी ऋणों के आवंटन में भी खासा लिंग भेद है। कृषि, बागवानी, ट्रैक्टर या इस तरह की ठोस जरूरतों को पूरा 100 प्रतिश पुरूषों के खाते में जाता है, औरतों का सहायता मिलती है आचार, बड़ी, पापड़ या सिलाई कढाई के काम के लिए सिर्फ मध्यप्रदेश में महिलाओं ने ऐसे 2700 लाख रूपये इकट्टे किये है पर एक भी उदाहरण ऐसा नहीं जहाँ उन्हें खेत का अधिकार या निर्माण कार्य का ठेका मिला।

हमारे देश में पुरुष एवं महिला कार्य सहभागिता में 26 प्रतिशत लैंगिक अंतर है। यह दर बिहार प्रांत में 29 प्रतिशत है। हमारे देश में पुरुष एवं महिला कार्य सहभागिता में 26 प्रतिशत लैंगिक अंतर है। असंगठित क्षेत्रों जैसे कालीन, बीड़ी, पापड़, जरी, ईट भट्टा, एम्ब्रॉयडर आदि कार्यों में महिला श्रमिकों का अत्यधिक आर्थिक, शारीरिक, मानसिक एवं यौन शोषण होता है। दि तीय राष्ट्रीय श्रम आयोग (2001) ने भी माना कि असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिला श्रमिकों का आर्थिक शोषण होता है। जिसमे उनको मनमाने ढंग से न केवल कच्ची साम्रगी के नियोजक व ठेकेदारों द्वारा कम आपूर्ति की जाती है बल्कि

मजदूरी भी कम दी जाती है, जिसके कारण पदाप मेहनत अंश राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था बहुत कम दृष्टिगत है। देश के करोड़ श्रमिकों में करोड़ (69 प्रतिशत) पुरूष एवं 12.4 करोड़ प्रतिशत) महिला श्रमिक है। मोटे तौर पर शक्ति संगठित असंगठित दो वर्गों विभाजित किया श्रमशक्ति का हिस्सा लगभग असंगठित एवं मात्र प्रतिशत संगठित कार्यरत असंगठित क्षेत्र 25.11 करोड़ एवं 11.89 करोड़ (32 प्रतिशत) महिला श्रमिक 12.4 करोड़ महिलाओं 85 प्रतिशत एवं 15 प्रतिशत शहरी कार्यरत है। क्षेत्रानुसार वितरण देखा संलग्न है।

महिला श्रमिकों की स्थिति सुधर लाने लिए श्रम मंत्रालय ने 'महिला श्रम प्रकोष्ठ' गठन किया जो महिला मजदूरों की के लिए काम करेगा। प्रसूति लाभ अधिनियम के अन्तर्गत एवं शर्तों में महिला का भेदभाव करने प्रावधान है। उक्त प्रकोष्ठ महिला श्रमिकों कल्याणार्थ अनुदान सहायता जिसमें उसमें माध्यम महिलाओं सामाजिक आर्थिक को गतिशील बनाया जायगा। कड़ी में समाज कल्याण मंत्रालय लिंग संबंधी समस्याओं पाटने एक जेंडर बजटिंग सेल के जरिए महिलाओं विशेष ध्यान होगा। यह तभी संभव जब महिलाएँ मानसिक से सबल होकर आत्मनिर्णय शक्ति हासिल लेंगी। इस संदर्भ डॉ० यशवंत परमार का यह कहना तर्कसंगत कि महिलाओं बढ़ते शिक्षा के और सरकार बनाये गए विभिन्न कानूनों के मद्देनजर महिलाओं अधिकारों संरक्षण की दिशा प्रभावी हुआ है, लेकिन असली लड़ाई एक महिला व्यक्तिगत महिलाओं की कुचेष्टा समाज होगी और ऐसे समय पीड़ित महिला आवाज उठानी अपने आप प्राप्त कर ही सके और साथ दूसरे लिए प्रेरणा का बन सके।

राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं को 73 वें संशोधन एवं जिला परिषदों 33 स्थान आरक्षित का प्रावधान किया 26 अक्टूबर 2006 घरेलू हिंसा, महिला आरक्षण अधिनियम पारित किया सैद्धान्तिक से महिलाओं को पुरुषों बराबर कानूनी अधिकार गए, व्यवहार अनेक प्रकार विसंगतियाँ व्याप्त आज देश के कुछ जिला महिलाओं की भागीदारी अवश्य निर्णय का अधिकार पुरुषों सुरक्षित संरक्षण विधेयक महिलाओं को कानूनी संरक्षण का अधिकार प्रदान गया। जिससे अन्तर और शोषण से मुक्त दिल्ली स्थित एक सामाजिक अनुसंधान केन्द्र द्वारा कराए गए अध्ययन अनुसार भारत करीब करोड़ महिलाओं को घरों में का सामना करना पड़ता और उनके मात्र 01 प्रतिशत अत्याचार खिलाफ रिपोर्ट करने लिए आगे आती है। इसका मूलभूत कारण शिक्षा का अभाव जिसके कारण वे अपने अधिकार कर्तव्य को समझ नहीं पाती समुचित शिक्षा का अभाव समस्या कारण बनती क्योंकि शिक्षा वर उपकरण जिससे महिला समाज अपनी सशक्त, उपयोगी भूमिका स्पष्ट "हमारे संविधान अवसरों की समानता की व्यवस्था है, वह लैंगिक विषमता पूर्णत: अस्वीकार करता है। आज बालविवाह रोज कानूनन प्रतिबंधित है। आवश्यकता है इन संवैधानिक प्रावधानों को कानूनी सुरक्षाओं के सम्मान की समाज को उन कुप्रथाओं के प्रति जागरूक करने की। इन्दु पाठक का यह कहना लैंगिक समस्या की वास्तविकता को उजागर करती है। वर्तमान में विश्व के लगभग सभी देशों में महिलाएँ पुरूषों की अपेक्षा असमान स्थितियों का सामना कर रहीं हैं। एक तरफ विश्व भर के 8000 वैज्ञानिक एकजूट होकर ब्रह्मण्ड की उत्पत्ति का रहस्य जानने के लिए वैज्ञानिक प्रयोग करने में व्यस्त हैं, वहीं मानव सभ्यता के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देने वाली सन्तति की जननी नारी उपेक्षित जीवन जीने के लिए विवश हैं। यह कैसा विरोधाभास है कि ज्ञान-विज्ञान के आधुनिक युग में भी नारी को एक व्यक्ति के रूप में पूर्ण व्यक्तित्व की स्वामिनी मानने में पुरुष वर्चस्ववादी समाज का पारंपरिक रूप आज भी पूर्ववत् है। हम चाहे जितना भी वैज्ञानिक प्रगति कर लें, ब्रह्माण्ड के एक-एक कण का रहस्य जान लें कि किन्तु जब तक मानव समाज में नर-नारी का महत्व समानता के धरातल पर नहीं उतर पाता है तब तक हमारी प्रगति अधूरी रहेगी।

सन्दर्भ

1. दि सेकेण्ड ओमेनश का हिन्दी रूपान्तर, स्त्रीउपेक्षिता, प्रभा खेतान, हिन्द पॉकेट बुक्स नई दिल्ली, 90-33
2. भारतीय महिला स्वातंत्र्योतर छवि की पहचान, विभा देवसर, आजकल प्रकाशन विभाग, कमरा नं० 120, सूचना भवन सी० जी० ओ० काम्पलेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली 110003 2007, 90-27
3. आर्थिक विकास में महिलाओं का योगदान प्रो० एस० एल० वैरवा, कुरुक्षेत्र सम्पादक कैलाश चन्द्र मीना, कमरा नं०655/661, ए विंग, गेट नं0 - 5, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली 110011 मार्च 2008, पृ० 18
4. समय, संडे नई दुनिया, यह भी कागज का दौर हैं, अनामिका, सम्पादक विष्णु नागर, एच० टी० मीडिया लि०, बी 2, सेक्टर 63, नोएडा, पृ०-10, 8 मार्च 2009
5. एक रिपोर्ट राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण, पैरा-1.7.3
6. इंडिया न्यूज सम्पादक सुधीर सक्सेना, 278 ग्राउंड फ्लोर, कैप्टेन गौड़ मार्ग, श्रीनिवासपुरी, नयी दिल्ली 110065, 30 अगस्त से 5 सितम्बर, पृ0 38
7. उपेक्षित जीवन और घटती नारी आबादी, इंदु पाठक, कुरुक्षेत्र, सम्पादक कैलाश चन्द्र मीना, कमरा नं० 655/661, ए विंगश, गेट नं0-5, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली-110011, पृ०-19 मार्च 2008
8. इंडिया न्यूज सुधीर सक्सेना, 278 ग्राउंड लोर, कैप्टेन गौड़ मार्ग, श्रीनिवासपुरी, नयी दिल्ली 11006530, 5 अगस्त से 5 सितम्बर, पृ038
9. नारों से नहीं बदलेगी स्थिति, जाहिरा आविदी, समाजशास्त्री, जामिया मिलिया इस्लामिया 'समय', प्रभात खबर प्रधान सम्पादक हरिवंश, न्यूटल पब्लिशिंग हाउस लिए, ओल्ड बाईपास रोड, कड़बाग पटना - 20, 8 मार्च 2009)
10. कितनी बदली आधी आबादी, मृदुला सिन्हा, श्समयश, प्रभात खबर, प्रधन सम्पादक हरिवंश, न्यूट्रल पब्लिशिंग हाउस लि0, ओल्ड बाईपास रोड, कंकड़बाग पटना -20, पृ0-08, 8 मार्च 2009
11. सरकारी ऋणों-यह भी कागज का दौर है, अनामिका, (समय, संडे नई दुनिया, सम्पादक विष्णु नागर, एच० टी० मीडिया लि0, बी- 2, सेक्टर 63, नोएडा, पृ0-10 8 मार्च-2009)
12. महिला अधिकार संरक्षण-हरेन्द्र राज गौतम, डा० यशवंत सिंह परमार, वागवानी एवं वानिकी विश्वद्यिालय, सोलन (हिमालच प्रदेश), कुरूक्षेत्र - सम्पादक कैलाश चन्द्र मीना, कमरा नं 655/661, 'ए विंग', गेट नं0- 5, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली -110011, मार्च 2008, मार्च, 2006
13. उपेक्षिज जीवन और घटती नारी आबादी, इंदु पाठक, कुरुक्षेत्र, कुरुक्षेत्र - सम्पादक कैलाश चन्द्र मीना, कमरा नं० 655/661, 'ए विंग', गेट नं0 5, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली-110011, मार्च 2008, पृ0-19, मार्च 2008

भारतीय अर्थव्यवस्था में शेयर बाजार का योगदान

फरखुंदा शरूर

शोधार्थी, एप्लाइड अर्थशास्त्र एवं वाणिज्य विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

सारांश

भारत एक कृषिप्रधान अर्थव्यवस्था है। भारत की लगभग 50% श्रमशक्ति, कृषि गतिविधियों में लगी है। विगत कुछ दशकों में सेवा क्षेत्र में हुई वृद्धि ने भी देश के विकास में अपना योगदान दिया है।

वर्तमान में भारतीय अर्थव्यवस्था, क्रय शक्ति क्षमता के आधार पर विश्व की तीसरी और मानक मूल्यों के आधार पर विश्व की दसवीं बडी अर्थव्यवस्था है। 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद भारत की गिनती विश्व की सबसे तेज विकसित होती बड़ी अर्थ-व्यवस्थाओं में होने लगी है।

शेयर मार्किट का तात्पर्य उस बाजार से है, जहां नियमित कम्पनीयों के अंशपत्र, ऋणपत्र, प्रतिभूति, बाण्ड्स आदि की खरीदी-बिक्री होती है। शेयर बाजार एक संघ, संगठन या व्यक्तियों की संस्था है जो नियमन व नियंत्रण के लिए स्थापित की गयी है।

शेयर की कीमतों में वृद्धि या गिरावट, एक अर्थव्यवस्था में उछाल या मंदी चक्र का संकेत करता है।

मूल शब्दः भारतीय अर्थव्यवस्था, क्रय शक्ति, शेयर बाजार

परिचय

शेयर बाजार एक ऐसा बाजार है जहाँ कंपनियों के शेयर खरीदे-बेचे जा सकते हैं। किसी भी दूसरे बाजार की तरह शेयर बाजार में भी खरीदने और बेचने वाले एक-दूसरे से मिलते हैं और मोल-भाव कर के सौदे पक्के करते हैं। पहले शेयरों की खरीद-बिक्री मौखिक बोलियों से होती थी और खरीदने-बेचने वाले मुंहजबानी ही सौदे किया करते थे। लेकिन अब यह सारा लेन-देन स्टॉक एक्सचेंज के नेटवर्क से जुड़े कंप्यूटरों के जरिये होता है।

एक प्रकार से देखें तो यहाँ पे शेयरों की नीलामी होती है। बेचनेवाला सबसे ऊंची बोली लगाने वाले को ये शेयर बेचता है और खरीदनेवाला सबसे कम कीमत पे बेचने वाले की तलाश करता है। शेयर मन्डी (बीएसई या एनएसई) इस तरह कि बोलियाँ लगाने के लिये जरूरी सभी सुविधाये उपलब्ध कराते है। कई प्रकार के नियम, कम्प्यूटर की मदत, शेयर ब्रोकर, इन्टरनेट मिलकर शेयर मार्किट का आधारभूत ढांचा तैयार करते हैं। वास्तव में शेयर बाजार एक आधुनिक सुविधाओं से युक्त सब्जी मंडी से ज्यादा कुछ भी नही है।

शेयरों के मूल्य में कमी और वृद्धि

शेयर के दामों में गिरावट आती है तो सेंसेक्स भी गिर जाता है।

शेयरों की कीमतों के गिरने-उठने का महत्वपूर्ण कारण होता है कंपनी का प्रदर्शन। अगर कंपनी ने बाजार में कोई नया, बड़ा, हिट प्रोजेक्ट लांच किया, तो कंपनी के शेयरों के दाम बढ़ जाते हैं। इसी प्रकार कंपनी अगर किसी मुश्किल से गुजर रही हो, तो इसके शेयर की कीमत कम हो जाती है।

शेयर बाजार का महत्व, कार्य और उद्देश्य

शेयर बाजार, कंपनियों को पैसा जुटाने के लिये मंच प्रदान करता है। यह कंपनियों के शेयरों की खुले बाजार में बेचने की अनुमति देता है। सार्वजनिक बाजार में कंपनियां अपने स्वामित्व के अंश बेचकर व्यापार विस्तार के लिए अतिरिक्त पूंजी जुटाने की कोशिश करती है। स्टॉक एक्सचेंज, निवेशकों को प्रतिभूतियों के व्यापार के लिये तरलता प्रदान करता है जिससे उन्हें तेजी से और आसानी से बेचा जा सके।

शेयर बाजार का महत्व कंपनियों और निवेशकों के लिये

कंपनियां, शेयर इसलिये जारी करतीं हैं ताकि वे अपने व्यवसाय को बढ़ने के लिये पूंजी जुटा सके। निवेशक, कंपनी के विकास और मुनाफे में भागीदार बनने और ऊंची कीमत में बेंच कर ज्यादा मुनाफा कमाने के लिए शेयर खरीदते हैं। शेयर बाजार, कंपनियों और निवेशकों के बीच मध्यस्थ का कार्य करता है। शेयर बाजार का महत्व कंपनियों और निवेशकों के लिये एक सा है।

शेयर बाजार तरलता प्रदान करता है

शेयर बाजार मे किसी कंपनी के शेयर सूचिबद्ध होने के बाद लगभग हमेशा उसके खरीददार और बेचने वाले उपलब्ध रहते हैं। शेयर बाजार में हमेशा शेयरों की उपलब्धता और पूंजी की तरलता बनी रहती है। इसी तरलता के कारण शेयर बाजार में निवेशकों के लिये निवेश करना और उससे लाभ उठाना आसान हो जाता है। अन्य संपत्तियों को बेचने में ऐसी तरलता नहीं मिलती।

शेयर बाजार अर्थव्यवस्था के मापक हैं

स्टॉक और अन्य संपत्तियों की कीमत, आर्थिक व्यवहार की की गतिशीलता का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह सामाजिक मनोदशा का संकेतक भी है। शेयर बाजार में हो रही वृद्धि अक्सर किसी भी देश की आर्थिक शक्ति और विकास का प्राथमिक संकेतक माना जाता है। लंबी अवधी तक लगातार वृद्धि दिखाते शेयर बाजार, देश में बढ़ती आर्थिक गतिविधियों का संकेत देते हैं। और गिरते बाजारों का मतलब यह हो सकता है कि, आर्थिक गतिविधियां सिकुड़ रहीं हैं।

नियंत्रण

शेयरों की घटती-बढ़ती कीमतें, घरेलू निवेश और खपत को भी प्रभावित करती हैं। इसलिए केंद्रीय बैंक जैसे कि आरबीआई, शेयर बाजार के व्यवहार और वित्तीय प्रणाली के कार्यों के सुचारू संचालन पर नजर रखते हैं। वास्तव में देश में वित्तीय स्थिरता पर नजर रखना ही आरबीआई का मुख्य काम है।

शेयर बाजार और आसान लेनदेन

स्टॉक एक्सचेंज, प्रत्येक लेनदेन के लिए क्लीयरिंग हाउस के रूप में भी कार्य करते हैं। जिसका अर्थ है कि वे शेयर, बेचने वाले से एकत्र करते हैं और खरीदने वाले को वितरित करते हैं, और शेयरों के विक्रेता को भुगतान की गारंटी देते हैं। यदि काउंटरपार्टी लेनदेन पर डिफॉल्ट हो जाये तो उस स्थिति में स्टॉक एक्सचेंज व्यक्तिगत खरीदार या विक्रेता के जोखिम को दूर करते है।

शेयर बाजार में निवेशकों की बढ़ती रुचि

बैंक और शेयर बाजार मिल कर किसी भी देश की वित्तीय प्रणाली को समृद्ध बनाने में अपना अपना योगदान देते हैं। आंकड़ों के अनुसार हाल के दशकों में अधिकतर देशों में घरेलू निवेश में शेयरों का हिस्सा तेजी से बढ़ा है। हमारे देश में भी बढ़ते शेयर बाजार इसी तरह के संकेत दे रहे हैं। हाल के वर्षों में युवाओं का रुझान ऐप्प और म्यूचुअल फंड की तरफ बढ़ा है। यह भी अप्रत्यक्ष रूप से शेयरों में निवेश का ही एक तरीका है।

शेयर बाजार का महत्व किसी भी देश की वित्तीय प्रणाली को सुचारू रूप से चलाने के लिये बहुत जरुरी हो गया है, जिसके बिना आर्थिक गतिविधियों को गति नहीं मिल पाती।

भारतीय शेयर मार्किट

कुछ साल पहले तक बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज मे सीधे खरीद और बिक्री होती थी। अब कम्प्यूटरों और इंटरनेट के माध्यम से कोई भी घर बैठे ऑनलाइन शेयर्स को खरीद-बेंच सकता है। सूचना क्रांति का ये एक उत्कृष्ट नमुना है कि जो काम पहले कुछ अमीर लोग ही कर सकते थे, वो अब एक आम आदमी भी कर सकता है।

शेयर बाजार को दो वर्गों में बांटा जाता है, पहला प्राइमरी मार्केट और दूसरा सेकेंडरी मार्केट।

प्राइमरी मार्केट में कंपनियां स्टॉक एक्सचेंज में पहली बार सूचीबद्ध होती है और अपने शेयर जारी करती हैं। कंपनियां आईपीओ (इनिशियल पब्लिक आफरिंग) के जरिए अपने शेयर पहली बार शेयर बाजार में लाती हैं, और बाजार से पूंजी जुटाने का प्रयास करती है।

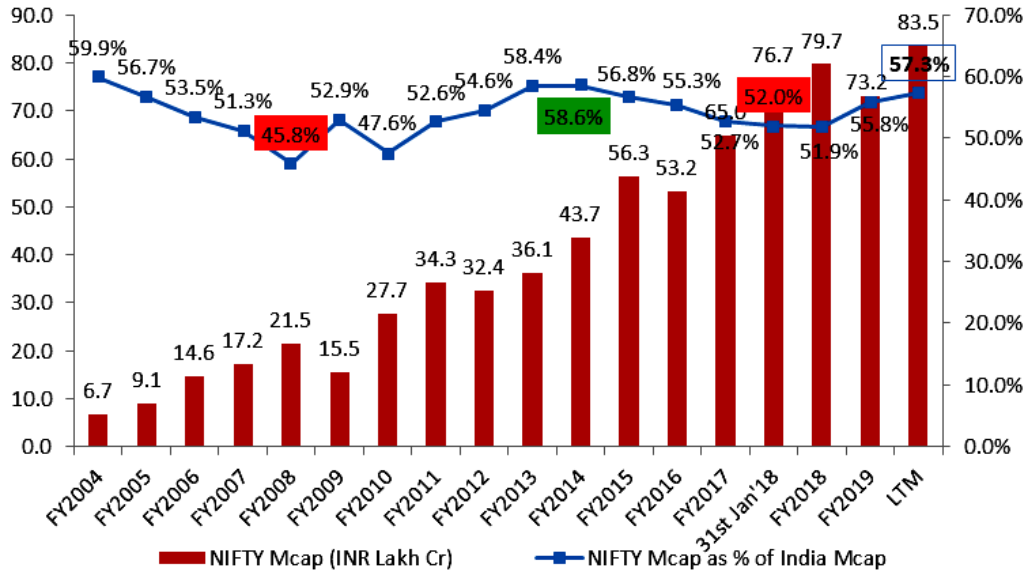

चित्र: Analysis of Indian Stock Market Performance

सेकेंडरी मार्केट को एक्सचेंज ट्रेडेड मार्केट भी कहते हैं। यह एक रेगुलर मार्केट है, जहां पर कंपनियों के शेयर्स की ट्रेडिंग रेगुलर बेसिस पर होती है। निवेशक, शेयर ब्रोकर के माध्यम से स्टॉक एक्सचेंज में अपने ट्रेडिंग ऑर्डर्स को पूरा करते हैं।

आजकल सभी शेयर डीमटीरिअलाइज्ड होते है। शेयरो के अलावा निवेशक म्यूचुअल फंड मे भी पैसा लगा सकते हैं।

शेयर की खरीद-बेंच करने वाले सामान्य व्यक्ति को किसी डीमैट सर्विस देने वाले बैंक मे अपना खाता खोलना पडता है। आजकल कई बैंक डीमैट खाता सर्विस देते है जिसकी सालाना फीस 500-800 रु तक होती है।

शेयर बाजार किसी भी विकसित देश की अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होते है। जिस तरह से किसी देश, गाँव या शहर के विकास के लिये सडके, रेल यातायात, बिजली, पानी सबसे जरूरी होते है, वैसे ही देश के उद्योगों के विकास के लिये शेयर बाजार जरूरी है। उद्योग धंधो को चलाने के लिये पूंजी की जरुरत होती है जो उन्हे शेयर बाजार से मिलती है। शेयर बाजार के माध्यम से हर व्यक्ति छोटे-बडेघ उद्योग मे अपनी हिस्सेदार बन सकता है। इस तरह की भागीदारी से उसे बड़े उद्योगों मे होने वाले मुनाफे मे अपने शेयर के मुताबिक लाभ मिलता है। एक अच्छा शेयर बाजार इस बात का ख्याल रखता है सभी निवेशकों को बराबर का मौका मिले।

बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज व नैशनल स्टॉक एक्सचेंज के अलावा देशभर मे 27 क्षेत्रीय स्टॉक एक्सचेंज है।

भारतीय अर्थव्यवस्था और शेयर बाजार

पिछले कुछ महीनों से वैश्विक और घरेलू दोनों कारणों से शेयर बाजार में श्बुल रनश यानी उछाल देखने को मिल रहा है।

भारत उभरते मार्किट में सबसे सुरक्षित और मुनाफे वाला बाजार है, इसलिए विदेशी संस्थागत निवेशक (एफआईआई) भारत में तेजी से निवेश कर रहे हैं।

निष्कर्ष

सेंसेक्स या संवेदी सूचकांक, भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग है। सेंसेक्स का सामान्य अर्थ है सेंसिटिव इंडेक्स या संवेदी सूचकांक। भारत में इसके अंतर्गत दो प्रमुख स्टॉक एक्सचेंज : मुंबई शेयर बाजार (बीएसीई) तथा एनएसई (नेशनल स्टॉक एक्सचेंज) आते हैं। बीएसई में 30 प्रमुख भारतीय कंपनियां शामिल हैं, जो भारतीय बाजार का रुख निश्चित करती हैं। आसान शब्दों में सेंसेक्स, भारत की बड़ी कंपनियों के शेयरों की कीमतों को आंकने के लिए बनाया गया एक सूचकांक है, जो बाजार में इन कंपनियों के शेयरों की बढ़ती-घटती कीमतों पर नजर रखता है।

शेयर बाजार किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का बैरोमीटर है। यह बाजार में आवश्यक पूंजी प्रवाह को बनाए रखता है। दूसरे शब्दों में बाजार तथा अर्थव्यवस्था की तरलता को बनाए रखने में शेयर बाजार का महत्वपूर्ण योगदान है.

वर्तमान में जरूरी है कि सेबी (स्टॉक एंड एक्सचेंज बोर्ड ऑफ इंडिया), शेयर बाजार की गतिविधियों पर ध्यान दे और संदिग्ध उतार-चढ़ावों की तरफ आंखें खुली रखते हुए, बाजार को अधिक स्वस्थ दिशा दे। घोटाले रोकने के लिए डीमैट और पैन की व्यवस्था को और कारगर बनाते हुए शेयर बाजार की प्रक्रिया को और सरल बनाया जाए ताकि ग्रामीण और छोटे निवेशक भी बाजार में प्रवेश कर सकें।

सन्दर्भ

- Hamilton, W. P. (1922). The Stock Market Baraometer. New York: John Wiley & Sons Inc (1998 reprint). ISBN 978-0-471-24764-7.
- Preda, Alex (2009). Framing Finance: The Boundaries of Markets and Modern Capitalism. University of Chicago Press. ISBN 978-0-226-67932-7.
- Dr.Priya Rawal (16 April 2015). Indian Stock Market and Investors Strategy. Dr.Priya Rawal. pp. 12–. ISBN 978-1-5053-5668-7.
- "All of the World's Stock Exchanges by Size". February 16, 2016. Retrieved September 29, 2016.
- Ivo Welch (2014). Corporate Finance (3rd ed.). ISBN 978-0-9840049-1-1.
- Serah Sudhin (September 2017). "The Journey of Nifty-Fifty" (PDF). International Journal of Academic Research and Development. 2 (5): 4.
- Khader Shaik (23 September 2014). Managing Derivatives Contracts: A Guide to Derivatives Market Structure, Contract Life Cycle, Operations, and Systems. Apress. p. 23. ISBN 978-1-4302-6275-6.

रामदरश मिश्र के कथा-साहित्य में आर्थिक चेतना

डॉ० विनोद शर्मा

सह-आचार्य, हिन्दी विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, रजस्थान

अनिता मीणा

शोधार्थी, हिन्दी विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

सारांश

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह समाज में रहकर अपनी उन्नति एवं विकास करना चाहता है परन्तु समाज में उसे वर्गीकृत करने के कई आधार है। जैसे धर्म के आधार पर, जाति के आधार पर, क्षेत्र के आधार पर एवं आय के आधार पर। इनमें आज सामाजिक विभाजन का आधुनिकतम आधार आय के आधार पर माना जाने लगा है। कथाकार रामदरश मिश्र ने अपने साहित्य में समाज के निर्धन, शोषित वर्ग के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट की है। उन्होंने इस वर्ग की असहाय, विवश परिस्थितियों का ऐसा मार्मिक चित्रण किया है, रामदरश मिश्र जी ने सभी आर्थिक समस्याओं से हमें अवगत करवाकर लोगों में आर्थिक चेतना जगाने हेतु आजमन को प्रेरित किया है। अर्थ मनुष्य जीवन का मूलाधार है इसलिए आर्थिक स्थिति को जाने बगैर ही आम आदमी का जीवन का अध्ययन अधूरा रह जाता है। गरीब किसान, दलित, बेरोजगार, ग्रामीण युवक आदि की मजबूरी का लाभ उठाते हुए सेठ, साहूकार या जमींदार उनका आर्थिक शोषण करते है। उपन्यास पानी के प्राचीर में मिश्र जी आमजन पर बढ़ती हुई दोहरी मार, एक तरफ प्रकृति का कहर तो दुसरी ओर सेठ-साहूकारों ओर माल गुजारी करने वाले लोगों के प्रति लेखक ने गहरा आक्रोश है। आर्थिक अभावों को स्पष्ट करती मिश्र जी की एक और कहानी है 'घर लौटने के बाद' इस कहानी में पैसा कितना महत्वपूर्ण होता है। 'चिट्ठियों के बीच' कहानी आर्थिक समस्या पर आधारित है। उपन्यास 'जल टूटता हुआ' में सेठ-साहूकार द्वारा गरीबों का आर्थिक शोषण करते है का पर्दाफाश किया है। उन्होनें आर्थिक क्षेत्र में विविध समस्याओं एवं परिस्थितियों को हमारे सामने रखकर इस ओर ध्यान देने एवं उसमें सकारात्मक परिवर्तन करने हेतु प्रेरित किया है। अर्थात् हममें आर्थिक चेतना जगाने में काफी सफल प्रतीक हुए है।

मुख्य शब्द: सामाजिक प्राणी, आर्थिक समस्याओं, गरीब, आर्थिक शोषण, बेरोजगार

प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह समाज में रहकर अपनी उन्नति एवं विकास करना चाहता है परन्तु समाज में उसे वर्गीकृत करने के कई आधार है। जैसे धर्म के आधार पर, जाति के आधार पर, क्षेत्र के आधार पर एवं आय के आधार पर। इनमें आज सामाजिक विभाजन का आधुनिकतम आधार आय के आधार पर माना जाने लगा है। वर्तमान समय अर्थ पर केन्द्रित है। हर समाज में कोई न कोई स्वार्थ की रोटी सेंकने में लिप्त है। वह अर्थ की ओर दौड़ रहा है। वह समाज के भले-बूरे के बारे में न सोचकर केवल और केवल धन को प्राप्त करने में अपने मानवीय मूल्यों व आदर्शों को भूलकर एक-दूसरे का शोषण, अन्याय ही नहीं कर रहा, अपितु अनैतिकता एवं अमानवीयता का परिचय देने में तनिक भी नहीं चूक रहा है।

कथाकार रामदरश मिश्र ने अपने साहित्य में समाज के निर्धन, शोषित वर्ग के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट की है। उन्होंने इस वर्ग की असहाय, विवश परिस्थितियों का ऐसा मार्मिक चित्रण किया है, कि उसे पढ़कर हमारा हृदय भी इस वर्ग के प्रति करूणा और सहानुभूति से द्रवित हो उठता है। रामदरश मिश्र जी ने सभी आर्थिक समस्याओं से हमें अवगत करवाकर लोगों में आर्थिक चेतना जगाने हेतु आजमन को प्रेरित किया है। वैसे इनके कथा साहित्य में उच्च, मध्य वर्ग का चित्रण अधिक नहीं मिलता, पर विशेष रूप से निम्न मध्य वर्ग के चित्र को उन्होंने बड़ी सच्चाई से उभारा। इस वर्ग का सच, लेखक का भोगा हुआ सच है। मिश्र जी का प्राय: सभी कथा साहित्य मूलत: निम्न मध्यम वर्ग की सत्य कथा है। इस वर्ग की विविध आर्थिक समस्याएँ उनका दु:ख-दर्द, उनकी बेबसी हर एक स्तर पर होता उनका अन्याय, शोषण आदि की ओर विभिन्न कहानियों एवं उपन्यासों के माध्यम से अपनी सम्पूर्णता के साथ मिश्र जी ने यथार्थ चित्रण किया है। इस सन्दर्भ में श्री गणेश प्रसाद पाण्डे के विचार जान लेना यहाँ परमआवश्यक है यथा- "कज (रामदरश मिश्र) अगुन कापड (मधुकर सिंह) तस्वीर, ट्रेन और आंधे (महेश्वर) जमीन का आखिरी टुकड़ा इब्राहीम बलबा (सुधा अरोड़ा) पिंजरा (मीता श्रीवास्तव) हो का (सुरेन्द्र) आदि कहानियाँ शोषण और उसकी यातना के विविध आयामों को स्पर्ष करती है।"[1] यह सब बताने के पीछे यही धारणा है कि रामदरश मिश्र जी ने निम्न वर्ग के आर्थिक परिदृश्य या परिस्थितियों को अपनी कहानियों के द्वारा आमजन तक पहुँचाने में सहरानीय एवं उच्च स्तरीय प्रयास किया है। उनका उच्चवर्ग एवं निम्नवर्ग के बीच संघर्ष के पीछे उनकी यही धारणा रही है, कि लोग आमजन के प्रति सहानुभूति का भाव रख सके, ताकि हमारे समाज में गरीबी एवं अमीरी की खाई को पाटा जा सकें। मिश्र जी ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में आर्थिक जीवन के अन्तर्गत, आम आदमी का जीवन, गरीबी की समस्या एवं बेरोजगारी। नारी का आर्थिक जीवन एवं प्रशासकीय भ्रष्टाचार से उत्पन्न आर्थिक विपन्नता के आधार पर विवेचन किया जायेगा जो निम्न है यथा

(1) आम आदमी का आर्थिक जीवनः- मनुष्य को अपना जीवन-यापन करने के लिए 'अर्थ' को साधन के रूप में इस्तेमाल करना पड़ता है। अर्थ मनुष्य जीवन का मूलाधार है इसलिए आर्थिक स्थिति को जाने बगैर ही आम आदमी का जीवन का अध्ययन अधूरा रह जाता है। अर्थ ही मानव जीवन को आगे बढ़ाने का सषक्त माध्यम है। उसके बिना जीवन जीना अधूरा प्रतीत होता है और इसी अर्थ की प्राप्ति में जो विविध समस्याएँ आती है उसी को मिश्र जी ने अपनी कहानियों एवं उपन्यासों में चित्रित किया है।

गरीब किसान, दलित, बेरोजगार, ग्रामीण युवक आदि की मजबूरी का लाभ उठाते हुए सेठ, साहूकार या जमींदार उनका आर्थिक शोषण करते है। उपन्यास 'पानी के प्राचीर' का नीरू, राय साहब के यहाँ नौकरी करता है। राय साहब उन दिनों सड़क बनवा रहे थे और नीरू की मजदूरों की निगरानी हेतु नियुक्ति की जाती है। नीरू देखता है 'मेठ' मजदूरों को भद्दी गालियां दे-देकर काम करवा लेता है। एक दिन मजदूर रोते हुए नीरू के पास आते हुए कहता है- "बाबू जी बात यह है कि यह जिसे काम पर लगाता है, उससे महीने में कुछ पैसे वसूल करता है। पैसे तो आज बाँट कर चले आते है, मगर यह मेठ कुछ बँधी-बँधाई रकम वसूल करता है, इस बार मेरी बेटी बीमार है। मैंने नहीं दिया तो काम पर नहीं आने दे रहा है।"[2] स्पष्ट है कि आम आदमी का किस तरह दोहरा शोषण किया जा रहा है। इसी ओर मिश्र जी ने हमारा ध्यान आकर्षित कर आमजन की आर्थिक षोषण की दोहरी मार का पर्दाफाश किया है।

इसी उपन्यास में मिश्र जी आमजन पर बढ़ती हुई दोहरी मार, एक तरफ प्रकृति का कहर तो दुसरी ओर सेठ-साहूकारों ओर माल गुजारी करने वाले लोगों के प्रति लेखक ने गहरा आक्रोश है। वही दूसरी ओर आमजन की आर्थिक विपन्नता उन्हें झकझोर रही है अर्थात् वह निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूति एवं दया का भाव इन पंक्तियों के माध्यम से पाठक वर्ग को आर्थिक चेतना जगाने में अपनी अहम भूमिका अदा कर रही है। उपन्यास के पात्र जालिम खाँ के कुकर्म को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है यथा- "हुजूर कुछ हुआ ही नहीं। बाढ़ से भदई बह जाती है और ओले-पाले से रब्बी मारी जाती है। जब खेत में कुछ होता ही नही तो माल गुजारी कहाँ से दे हजूर?" "मैं यह सब कुछ नहीं जानता। मैं तो लोगों के हाड से माल गुजारी वसूल करूँगा।"[3] आमजन की आर्थिक विवशता का यथार्थ चित्रण करने वाली ये पंक्तियाँ एक ओर नौकरषाही के खोखले आदर्शों एवं अन्याय के काले चेहरों को हमारे सामने चित्रित करती है। वही आमजन की गरीबी, भुखमरी एवं आर्थिक विपन्नता के नंगें यथार्थ को हमारे सामने चित्रित कर आमजन के प्रति सहानुभूति एवं नौकरशाही के दोहरे आर्थिक शोषण एवं अमानवीयता के यथार्थ का चित्रण करती है।

दिन-प्रतिदिन गहराते आर्थिक संकट ने शहरों और गाँवों में रहने वाले निम्न मध्यम वर्गीय जीवन को अत्यधिक तोड़ा है। आर्थिक तंगी में उपजी इन निम्नमध्य वर्गीय मजबूरियों को आधार बनाकर रामदरश जी ने कई कहानियाँ लिखी है। इन कहानियों में निम्न (आमजन) लोगों के अर्थाभाव के कारण राजनीतिज्ञों, पूँजीपतियों, जमींदारों और देश के अफसर षाही द्वारा तन-मन और धन का शोषण चित्रित किया है। शायद इसी कारण हमारे देश में उच्च वर्ग और सम्पन्न लोग अधिक सम्पन्न तथा मध्य निम्न वर्ग और गरीब लोग और भी अधिक गरीब होकर आर्थिक अभावों की पीड़ा से जूझ रहे है। इसी समस्या पर आधारित मिश्र जी की कहानियाँ है- चिट्ठियों के बीच, नौकरी, रोटी, दिनचर्या, घर लौटने के बाद, गीतू, प्रतीक्षा, टूटे हुए रास्ते, आरम्भ, हद से हद तक, अपने लिए, सवाल के सामने, एक मामूली आदमी आदि।

'चिट्ठियों के बीच' कहानी आर्थिक समस्या पर आधारित है। इसका नायक डॉ. देव शहर में नौकरी करता है साथ ही उसके अपने गाँव से चिट्ठी आती है उसमें पैसों की माँग की जाती है यथा- "आठ सौ रूपये माँगें गये है बैल खरीदने के लिए, माल गुजारी देनी है, कोआपरेटिव का कर्ज चुकाना है..... .....और बहुत से काम।"[4] यह कहानी डॉ. देव के आर्थिक-संघर्षों के बीच झूलता हैं उसके परिवार की आर्थिक जिम्मेदारी उठाने में वह सफल नहीं होता। इस बात का कर्तव्यबोध उसे व्यथित करता है।

'एक वह' कहानी का ताऊ भी शहर में चने-मुरमुरे, मूंगफली बेचकर जो पैसे मिलते है उससे जरूरतें पूरी करता है। मगर शहर के बनिए भी दिन-ब-दिन जरूरी चीजों के दाम बढ़ाकर आम आदमी की समस्याओं को और अधिक बढ़ाते है। यह कहानी बढ़ती महँगाई और एक मामूली मजदूरी करने वाले अपना गुजारा किस प्रकार करते है उनकी ओर इषारा करती है। ताऊ जब आठ आना का आधा किलो आटा दुकानदार के पास लेने के लिए रघुनाथ को भेजता है तो वह कहता है- "ताऊ अब आठ आना का आधा किलो आटा नहीं मिलेगा, अब तो बीस आना किला हो गया है। ताऊ कहते है- 'अरे अभी परसों ही तो मँगाया था और आज बीस आना किलो हो गया है! रामचन्दरजी, गरीब आदमी कई से जीएगें।"[5] आज महंगाई ने आसमान को छू रखा है। आमजन की भूख कैसे मिटेगी, यह चिन्ता आज की बड़ी भयंकर समस्या है। जाने कितने ही लोग आज के समय एक जून की रोटी के लिए दिन-रात मेहनत कर रहे है, परन्तु उनकी आवश्यकताएँ पूर्ण न हो पायी, कई न कई हमारी नेताओं की सरकार की हवाई वायदों पर प्रश्न चिह्न लगाती नजर आती है। आर्थिक समस्या का हल करने के लिए राजनेता और हमारे प्रशासन के पास भी कोई जवाब नहीं है, वह भी हँसी में टाल देते है। आज जनता को इस समस्या से रात-दिन जूझना पड रहा है। सरकार के नुमाइंदे या नेता एक दिन गरीबों के बीच फोटो खिचवाकर वा-बाहई लूटने में लगे हुए है। लेखक ने इस कहानी के माध्यम से आज की आर्थिक विशमता एवं महंगाई की मार की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। इस बात की चर्चा अवश्य होनी चाहिए। आमजन भूखा न रहे उसके तमाम इन्तजाम होने चाहिए। ऐसी लालसा की ओर लेखक ने हमारा ध्यान आकर्षित करने हेतु प्रयास किया है।

इसी प्रकार कहानी 'रोटी' आजमन की आर्थिक विपन्नता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है। इस कहानी में बेकारी की समस्या को बयान किया है। कथा प्रवक्ता कहता है- "बेकारी को बोझ लेकर कब से घूम रहा था। उसकी आत्मा उसे धिक्कारती रही है, कि पढ़ा-लिखा होकर भी तू कितनी अकारथ जिन्दगी जी रहा है। क्या मूल्य है तेरी विद्या का? क्या अर्थ है तेरे पिता और पति होने का? उसे लगता है कि उसके सारे अभावों का कारण है, उसका पढ़ा-लिखा होना....।"[6] सच है हम जैसे पढ़े-लिखे लोगों की यही तकलीफ होती है कि हमने केवल किताबी शिक्षा के अलावा कोई व्यवहारिक हुनर सीखा ही नहीं। और हमें शारीरिक कष्ट की आदत होती नहीं इसलिए हम अपनी विद्या की गठरी बेचने भी निकले तो कोई लाभ नहीं।

यह सब कथा प्रवक्ता के साथ भी होता है केवल आर्थिक तंगी की वजह से घर खर्च चलाने के लिए वह फैक्टरी में काम खोजता है। तो फैक्ट्री के मालिक ने कहा यथा- "कलम घिसने वाईल देह के लिए यह सब काम नहीं है मिस्टर! आपसे काम तो होता नहीं चाहे आठ घण्टे करे चाहे बारह घण्टें मैंने तो आप पर तरस खाकर आपकों काम पर लगाया था, नहीं तो क्या काम करने वालों की कमी है? आप से आधा काम भी नहीं हुआ।"[7] दरअसल शरीरिक

काम करने का अभ्यास न होने के कारण काम न हो सका। मगर बड़ी आसानी से एक स्नातक का शोषण कर लिया, भले ही वह खुद एक अंगूठा छाप हो, आज यह दुर्गति हर-एक आदमी या फैक्टिरयों में देखने को मिल जाती है। इसी बीच कथा प्रवक्ता ने दो कुत्तों की लड़ाई देखी उसमें जबर वाला विजयी रहा तब कथा प्रवक्ता के अन्दर चेतना जगी कि अपनी रोटी लेने के लिए मालिक के पास जाता हैं पढ़े-लिखे होने की वजह से हमें अपने ऊपर हो रहे अन्याय, अत्याचार का विरोध करना चाहिए। न कि उसे सहना चाहिए। यह प्रेरणा मिश्र जी ने कथा प्रवक्ता के माध्यम से आमजन में आर्थिक विवशता को कम करने और जहाँ अन्याय, शोषण हो रहा हो, उस जगह डटकर मुकाबला करने हेतु प्रेरित करती हैं। यही हमारे विद्या का असली मोल है। कहानी कहती है। यहाँ पर कथा प्रवक्ता का आर्थिक शोषण हो रहा था, तो वहीं उसका विरोध करता है और अपने हक की रोटी छीनता दिखाई देता है।

इसी प्रकार आर्थिक अभावों को स्पष्ट करती मिश्र जी की एक और कहानी है 'घर लौटने के बाद' इस कहानी में पैसा कितना महत्वपूर्ण होता है। वह जब इन्सान के पास होता है तो बाहर के लोग क्या घर वाले भी इज्जत और मान-सम्मान देते है। मगर वहीं जब पैसा चला जाता है, तो उस इन्सान की हालत धोबी के कुत्ते के समान होती है न घर का न घाट का। यही उक्ति उनके अभाव मय 'जीवन को इन पंक्तियों के माध्यम से पूरी सच्चाई के साथ वया करती है यथा दीनू भाई का अपना कोई नहीं है। छोटा भाई ऑफिस में कोई साहब है। उसका लड़का वकील है। दीनूभाई अब नहीं कमाते घर वापस आ गए है पचपन साल बाद! दीनूभाई ने कुछ जमा नहीं किया! जमा किया तो इस परिवार के खून में, किन्तु यह खून इन्हें नहीं पहचानता। उनके रूपयों से यह घर बना लेकिन उनके लिए पराया घर है। क्या सचमुच पैसा ही सारे सम्बन्धों का सूत्रधार है।"[8] सच है! आज हमारे रिश्ते-नाते केवल पैसों पर ही निर्भर है, जिसके पास पैसा है, उसके पास आज दुनिया की सारी सुविधाएँ है, परन्तु दुसरी ओर आजमन दीनूभाई अपने ही घर में तिरस्कार की भावना का शिकार होता है। यह कहानी आपसी रिश्तों-नातों में अर्थ के कारण आयी असंगितियों पर तीखा प्रहार करती है व हमें आर्थिक चेतना की ओर ध्यान देने की अपेक्षा करती है। भले ही पैसों की हमारे पास कमी हो परन्तु हमें मानवीयता को नहीं भूलना चाहिए। भले ही आज के जमाने में पैसा ही ईष्वर क्यों न हो ?

उपन्यास 'जल टूटता हुआ' में सेठ-साहूकार द्वारा गरीबों का आर्थिक शोषण करते है का पर्दाफाश किया है। किस प्रकार वर्चस्ववादी लोग मजबूरी का फायदा उठाते है। सतीश की माँ कहती है- "बीस भर चाँदी की हंसुली के लिए चौधरी ने सिर्फ पाँच रूपये दिये है, कैसा बेईमान है वह!" अमलेश जी अपनी पत्नी से कहते है- "बेईमान पहले तो चार ही रूपये दे रहा था, कहता था कि हंसुली सोलह भर है, बहुत तकरार हुई, तो किसी तरह पाँच रूपये निकाले। तौल में भी मारता है और भाव में भी।"[9] आजमन दोहरी मार की चपेट में आकर और गरीब बनता है, तो अमीर गरीबों का शोषण कर और अमीर बनता जा रहा है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सेठ, साहूकार और जमींदार द्वारा गरीब किसान, मजदूर, शिक्षित बेकार आदि जनों के शोषण के प्रति मिश्र जी ने उपन्यास एवं कहानियों के द्वारा उनके यथार्थ के आर्थिक जीवन के बारे में हमें रूबरू करवा कर आमजन के प्रति सहानुभूति रखने हेतु जागरूक किया है। भले ही आज जमींदारी, सामन्तवादी व्यवस्था ने दम तोड़ दिया है परन्तु आज गाँवों में उनकी जगह सेठ-साहूकार, सूदखोर नेता, सरपंचों ने जगह ले ली है। अब वे भी इन गरीबों के आर्थिक शोषण करने से बाज नहीं आ रहे है। वैसे आमजन के आर्थिक जीवन के बारे में उन लोगों में एक आश जगी की हम पढ़-लिखकर इस आर्थिक विशमता से लोहा ले सकते है, परन्तु हुआ उल्टा आज पढ़-लिखों की हालत मजदूरों एवं गरीबों से भी भयामह है। इन तमाम आर्थिक समस्याओं, परिस्थितियों की ओर ध्यान खींचकर मिश्र जी ने आमजन में आर्थिक चेतना जगाने हेतु पाठक वर्ग, नेता वर्ग, सरकार आदि से आशा की है कि इस गरीब-अमीर के अन्तर को जड़ से मिटाना होगा तभी हम अपना व देश का निर्माण कर सकते है।

शहरों की ओर पलायन और आमजन की पीड़ा

आज लोग रोजगार की तलाष में गाँव के अभावमय जीवन से पीड़ित, आर्थिक विशमता और अपने जीवन का गुजर-बसर हो सके इसलिए वे गाँव से षहरों की ओर अर्थ अर्जन हेतु जा रहे है परन्तु शहर की घुटन भरी जिन्दगी में जाकर वे ना-ना प्रकार के ठेकेदारों, कम्पनी मालिकों, मकान मालिकों, सेठ-साहूकारों, सूदखोरों के चगुंल में फँसकर अपनी जिन्दगी बर्बाद करते दिख रहे है। मिश्र जी ने षहरों की ओर पलायन करने वाले मजदूरों, नौकरी पेषा कर्मचारियों के साथ किस प्रकार भेदभाव होता है। उन्हें किस प्रकार आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है।

मिश्र जी ने आधुनिक युग में महानगरीय जीवन में आर्थिक शोषण पर दृष्टिपात करते हुए बड़े पैमाने पर नेता अधिकारियों पर तीखा व्यंग्य किया है। स्वार्थी, धन के कुबेरों की बढ़ती स्वार्थी प्रवृत्ति ने गरीब मजदूरों निम्नवर्गीय, मध्यमवर्गीय लोगों के आर्थिक परिवेश को बड़ी मात्रा में प्रभावित किया है। इसका यथार्थ चित्रण रामदरश मिश्र के उपन्यास-'दूसरा घर' में देखा जा सकता हैं। उपन्यास में गंगाराम शास्त्री की रूपलाल का स्कूल तोड़ने के लिए अपना स्कूल खोलते हैं। लेकिन अध्यापकों के तनख्वाह की कोई चर्चा नहीं करते। शास्त्री जी शंकर को कहते है यथा-"फिलहाल तो स्कूल चलाने की बात है, तो आमदनी फिलहाल उसमें सबका काम चलेगा। जब स्कूल चल निकलेगा तो सबकों स्टैडर्ड तनख्वाह मिलेगी।"[10] शास्त्री जी बहुत स्वार्थी है, वह अपने अर्थ अर्जन हेतु अध्यापकों को सही समय पर तनख्वाह नहीं देते है। आज कलयुग है मैंने कहते हुए सुना ही कि गंगाराम शास्त्री जैसे लोग फलते-फूलते है। पर हमारा मानना है कि आदमी जिन्दगी में कुछ भी परिश्रम से अपनी मेहनत से करता है, उसका फल मीठा होता है बजाय स्वार्थी, लोभी प्रवृत्ति वाले लोगों से क्योंकि स्वार्थी व्यक्ति एक न एक दिन अवश्य गरीबों की आत्मा का शिकार होता है।

'आरम्भ' कहानी में महानगर का विचित्र चित्र खींचा गया है। महानगर में आए दिन नई-नई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। आर्थिक तंगी के कारण महानगर में जीवन जीने की समस्या को यह कहानी बयान करती है। इस कहानी का नायक एक कॉलेज का प्रोफेसर है, मगर हर रोज उसे दूध के लिए लाइनें लगानी पड़ती है यथा-"ओह! कितनी ठंडक है, वह अपने रजाई में और जोर से लपेट लेता है। नहीं अभी क्या जल्दी है, चार बजे.....घण्टा भर खड़ा रहना पड़ेगा और वही धका पेल।"[11] क्या जीवन होता है महानगर का वहाँ आये दिन कोई न कोई बखेड़ा होता रहता है। जिधर देखों लाइनों में आमजन खड़े मिलते है। फिर वहाँ हर तरह के संघर्ष, जेब काटना एवं धक्का-मुक्के तो आम बात है। आज लोग भले ही षहरों की ओर अपनी पैसों की प्यास बुझाने, अपने पेट का भरण-पोषण करने जा रहे है। परन्तु उन्हें ना-ना प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है।

इसी प्रकार कहानी- 'सवाल के सामने' आर्थिक तंगी के कारण नारी की बलि दी जाती है। तथा नारी को सबसे पहले अपना हत्यारा बनाया जाता है। इसको प्रस्तुत करने वाली महत्त्वपूर्ण कहानी है। इस कहानी में गरीब निम्न वर्ग की औरत के पति का पूँजीपतियों द्वारा कत्ल कर दिया जाता है, क्योंकि उसने पूँजीपतियों को एक आमजन का खून करते देख लिया था यथा-"वकील साहब हम लोग बहुत गरीब है, लेकिन ईमानदार है। मेरा मरद इसी के यहाँ काम करता था। इस राक्षस ने एक मजदूर का खून कर दिया था।.....उस राक्षस ने धमकाया था कि तुम्हें देखूँगा।"[12] और एक दिन देखते ही देखते दो चार गुण्ड़ों के साथ मिलकर उसके पति और बेटे को मार दिया। महानगरीय परिवेश में जाने कितने ऐसे केसों को देखा जा सकता है। वर्चस्ववादी लोग उन मासूमों की जिन्दगी तक उजाड़ देते है। बस उन्हें तो केवल अपने धन कमाने की पड़ी है। यह कहानी उन आमजन के प्रति सहानुभूति प्रकट करती है। तो दूसरी ओर वर्चस्ववादी शक्तियों के काले कारनामों पर प्रश्न खड़ा करती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार से मिश्र जी ने कहानियों एवं उपन्यासों से यही पता चलता है कि आज अर्थ ही जीवन का मूल्य बन गया है। व्यक्ति का मूल्यांकन अर्थ के आधार पर किया जाने लगा। अर्थ के बिना व्यक्ति का जीवन दिशाहीन एवं व्यर्थ है। परिणामस्वरूप अर्थ के पीछे भागने वालों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। आज सत्ता, धन, दौलत, प्रतिष्ठा के पीछे लोग आँख बन्द किए दौड़ रहे है। इस कारण नैतिकता में गिरावट आती जा रही है।

कुछ भी रहा हो, देश के आजाद होने के बाद भारतीय परिवेश में शिक्षा व्यवस्था के क्रियान्वयन के कारण भले ही जमीदारों एवं सामन्ती व्यवस्था ने दम तोड़ दिया है परन्तु वर्तमान में अर्थ लिप्सा के बढ़ते प्रभाव के कारण हमारा देश अवष्य प्रभावित हो रहा है। मिश्र जी इन समस्याओं को तत्कालीन समय में ही भांप लिया। जो आज की एक विकट समस्या है। मिश्र जी निम्नवर्ग और वर्चस्ववादी वर्गो के बीच संघर्ष एवं गरीबों की अभावमय आर्थिक स्थिति का चित्रण कर हमें गरीबों के प्रति सहानुभूति एवं अमीरों के प्रति गहरा असन्तोष की भावना पैदा करने में उपन्यास एवं कहानी विधा में सक्षम रहे है। उन्होनें आर्थिक क्षेत्र में विविध समस्याओं एवं परिस्थितियों को हमारे सामने रखकर इस ओर ध्यान देने एवं उसमें सकारात्मक परिवर्तन करने हेतु प्रेरित किया है। अर्थात् हममें आर्थिक चेतना जगाने में काफी सफल प्रतीक हुए है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. रामदरश मिश्र की कहानियों में युग बोध-डॉ अमी दवे, सार्थ पब्लिकेशन आणंद गुजरात-2012, पृ. सं. 143
2. पानी के प्राचीर (उपन्यास)- रामदरष मिश्र, वाणी प्रकाशन दिल्ली-1961, पृ. सं. 175
3. पानी के प्राचीर (उपन्यास)- रामदरश मिश्र, वाणी प्रकाशन दिल्ली-1961, पृ. सं. 149
4. रामदरश रचनावली खण्ड-3-रामदरश मिश्र, स्मिता मिश्र, पृ. सं. 11
5. रामदरश मिश्र की संकलित कहानियाँ (एक वद्ध)-रामदरश मिश्र, वसंत कुंज प्रकाशन दिल्ली-2010, पृ. सं. 79
6. रामदरश मिश्र की संकलित कहानियाँ (रोटी)-रामदरश मिश्र, वसंत कुंज प्रकाशन दिल्ली-2010, पृ. सं. 188
7. रामदरश मिश्र की संकलित कहानियाँ (रोटी)-रामदरश मिश्र, वसंत कुंज प्रकाशन दिल्ली-2010, पृ. सं. 189
8. रामदरश मिश्र की कहानियों मं युगीन समस्याएँ-डॉ. आवचार दीपाली, समता प्रकाशन कानपुर-2016, पृ. सं. 286
9. रामदरश मिश्र के उपन्यासों में ग्रामीण एवं नगरीय जीवन- डॉ. बेवी कोलते, विद्या प्रकाशन कानपुर-2019, पृ. सं. 40
10. रामदरश मिश्र के उपन्यासों में ग्रामीण एवं नगरीय जीवन- डॉ. बेवी कोलते, विद्या प्रकाशन कानपुर-2019, पृ. सं.89
11. रामदरश मिश्र की कहानियों में युगीन समस्याएँ-डॉ. आवचार दीपाली, समता प्रकाशन कानपुर-2016, पृ. सं.221

महात्मा गाँधी के राष्ट्रवाद का केंद्रीय तत्व–स्वराज

डॉ० निधि रायज़ादा

एसो. प्रोफेसर, इतिहास विभाग, कु.मा.रा.म. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर

रंजय प्रसाद

शोध छात्र, इतिहास विभाग, कु.मा.रा.म. स्नातकोत्तर महाविद्यालय बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर

सारांश

भारत वर्ष के राजनीतिक परिवेश में धर्म एवं समाज सुधार तथा संवैधानिक मांगों तक सीमित भारतीय नवजागरण को साम्राज्यवाद विरोध की दिशा में मोड़ने का एक ऐतिहासिक कार्य तो अनेक राजनेताओं तथा समाज सुधारकों तथा बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती इत्यादि ने सम्पन्न कर दिया था, किन्तु इस साम्राज्यवाद–विरोधी स्वर का, राष्ट्रीय स्वराज्य की आकांक्षा का प्रसार देश के कोने-कोने में होना बाकी रह गया था और यह काम पूरा हुआ भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी के प्रवेश से। स्वराज्य की आकांक्षा या राष्ट्रीय स्वाधीनता की चेतना और उसके लिए संघर्षशीलता की भावना को बड़े से लेकर छोटे तक, शहरों से लेकर गांवों तक, मध्यम वर्ग से लेकर कृषक–मजदूर तक पहुंचाने का काम महात्मा गांधी ने किया और उसे अखिल भारतीय राष्ट्रीय जागरण के रूप में परिणत कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप विशाल एवं शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य को बोरिया बिस्तर समेटकर यहां से कूच करना पड़ा। महात्मा गांधी के नेतृत्व में चलने वाले दीर्घकालीन स्वाधीनता-संग्राम को व्यापक, जनोन्मुख एवं प्रभावशाली बनाने में उनके नेतृत्व की विशिष्टताओं को उजागर करना ही इस शोधपत्र का प्रयोजन है जिसके कारण भारतीय जनता ने उन्हें एक वकील या राजनीतिक कार्यकर्त्ता के रूप में नहीं बल्कि एक देशभक्त और राष्ट्रवादी के रूप में ही अधिक जाना पहचाना।

कूटशब्दः महात्मा गांधी, राष्ट्रवाद, स्वराज, हिंद स्वराज, आत्मानुशासन, स्वशासन

महात्मा गांधी के राष्ट्रवाद सम्बन्धी विचारों में स्वराज की अवधारणा अपना एक विशिष्ट महत्व रखती है। महात्मा गांधी के समस्त राष्ट्रीय विचारों तथा उनके द्वारा चलाये गये आंदोलनों का केन्द्र बिंदु स्वराज ही था। स्वराज पर महात्मा गांधी के मूल विचार उनकी प्रसिद्ध कृति "हिन्द स्वराज" में मिलते हैं। देखा जाए तो महात्मा गांधी का "हिन्द स्वराज" लिखने का उद्देश्य ही था, "स्वराज का अर्थ स्पष्ट करना," स्वशासन तथा आत्मशासन में अंतर स्पष्ट करना।

महात्मा गांधी की विचारधाारा में स्वराज एक प्रमुख एवं मौलिक अवधारणा है। हालांकि महात्मा गांधी के नाम के साथ अहिंसा को सबसे पहले जोड़ा जाता है, लेकिन इस कथन से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि अहिंसा स्वराज प्राप्ति का एक साधन है।[1] साध्य तो निश्चित रूप से स्वराज ही है। स्वराज संस्कृत शब्द 'स्व' और 'राज' से बना है। महात्मा गांधी के अनुसार "सच्चा स्वराज स्वनियंत्रण के रूप में प्राप्त किया जा सकता है। स्वराज का अर्थ दूसरों पर नहीं बल्कि अपने ऊपर ही अंकुश रखना है। जिसने अपनी इंद्रियों पर अधिकार कर लिया उसने सब कुछ प्राप्त कर लिया।[2] हिन्द स्वराज के गुजराती संस्करण में महात्मा गांधी ने स्वराज को स्वनियंत्रण तथा स्वशासन के रूप में परिभाषित किया है। यहां महात्मा गांधी स्वनियंत्रण तथा स्वशासन के अर्थों में अंतर स्पष्ट करते हैं। स्वराज को अगर स्वनियंत्रण के रूप में देखा जाये तो यह अपने ऊपर अपना शासन करना है अर्थात् हमारा मस्तिष्क हमारी इंद्रियों लालसाओं को नियंत्रित करे। स्वनियंत्रण अर्थ और काम को स्वीकार तो करता है लेकिन 'स्वशासन' के रूप में देखा जाये तो यह 'प्रजा' का राज है अर्थात् राष्ट्र का नियम है। महात्मा गांधी ने राष्ट्र के लिए 'प्रजा' शब्द का इस्तेमाल किया है। ऐसा राज्य 'सुराज्य' यानि अच्छा राज्य होगा। यह 'सुराज्य' तभी संभव है जब भारतीय स्वनियंत्रण के योग्य हो जायेंगे। इस तरह हिन्द स्वराज में महात्मा गांधी ने आत्मानुशासन के रूप में स्वराज के महत्व को पहचाना है।

एक प्रसिद्ध राजनीतिक चिंतक 'फ्रेड डेलमायर'[3] ने महात्मा गांधी चिंतन के इस वैशिष्ट्य को स्वीकार किया है कि लोकतंत्र की संभावना बिना आत्मानुशासन के संभव नहीं है। लोकतंत्र का अर्थ है–स्वशासन-जनता अपना शासन स्वतः करें। दूसरे शब्दों में जनता शासक भी है और शासित भी। इस संदर्भ में महात्मा गांधी की मान्यता थी शासक और शासित दोनों के लिए आत्मानुशासन अपेक्षित है।

महात्मा गांधी के मत में स्वराज लोक–सम्मति के अनुसार होने वाला भारत वर्ष का शासन है। लोक-सम्मति का निश्चय देश के बालिग लोगों की बड़ी से बड़ी तादाद के मत के जरिए हो, फिर वे चाहे स्त्रियां हों या पुरुष, इसी देश के हो या इस देश में आकर बस गये हों। वे लोग ऐसे हो जिन्होंने अपने शारीरिक श्रम के द्वारा राज्य की कुछ सेवा की हो और जिन्होंने मतदाताओं की सूची में अपना नाम लिखवा लिया हो। सच्चा स्वराज थोड़े लोगों के द्वारा सत्ता

प्राप्त कर लेने से नहीं, बल्कि जब सत्ता का दुरूपयोग होता हो तब लोगों के द्वारा उसका प्रतिकार करने की क्षमता प्राप्त करके हासिल किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, स्वराज जनता में इस बात का ज्ञान पैदा करके प्राप्त किया जा सकता है कि सत्ता पर कब्जा करने और उसका नियमन करने की क्षमता उसमें है।

वस्तुत: स्वराज के प्रति महात्मा गांधी की चिंता गांवों के सुधार की इच्छा में प्रतिबिंबित है। महात्मा गांधी ने यह विचार हैनरी मैन की पुस्तक "विलेज कम्यूनिटिज इन द ईस्ट एण्ड वेस्ट" से ग्रहण किया है। महातमा गांधी के अनुसार "स्वराज का कोई अर्थ नहीं अगर गांवों में रहने वाले भारतीयों की दशा में कोई सुधार नहीं होता। महात्मा गांधी का कहना था कि आधुनिक सभ्यता के कारण भारतीय किसानों का जीवन नरक बन गया है। जब तक गांव का उत्थान नहीं होगा, राष्ट्र का उत्थान भी संभव नहीं है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि शासन के स्तर पर 'स्वराज' सच्चे लोकतंत्र का पर्याय था। महात्मा गांधी के अनुसार स्वराज का विपरित रूप परराज या पराया शासन है, चाहे वह अंग्रेजों का हो या हिन्दुस्तानियों का। महात्मा गांधी ने स्वराज के अर्थ का विस्तार करते हुए यह तर्क दिया है कि स्वराज का अर्थ केवल राजनीतिक स्तर पर विदेशी शासन से स्वाधीनता प्राप्त करना नहीं है, इसमें सांस्कृतिक और नैतिक स्वाधीनता का विचार भी निहित है। यदि कोई समाज राजनीतिक दृष्टि से स्वाधीनता हो, परन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से पराधीनत हो, अर्थात् उसे अपनी गतिविधियों के निर्देशन के लिए दूसरों का मुंह ताकना पड़े तो वह स्वाधीन होते हुए भी स्वराज विहीन होगा। हिन्द स्वराज के अध्याय 4 में महात्मा गांधी ने इसी तथ्य को उल्लेखित किया है "हमें अंग्रेजी राज्य तो चाहिए परंतु अंग्रेजी शासन नहीं। आप बाघ का स्वभाव तो चाहते हैं लेकिन बाघ को नहीं।[4]

महात्मा गांधी यह मानते थे कि भारत की दास्ता मात्र राजनीतिक नहीं सांस्कृतिक भी है। पूरी पश्चिमी सभ्यता अंग्रेजी शासन के माध्यम से भारतीय मानस में रच-बस गयी। यहां तक कि गीता के आधार पर आतंकवादी हिसां के सहारे अंग्रेजी दासता से भारत को मुक्ति दिलाने वाले क्रांतिकारी भी पश्चिम की सांस्कृतिक दासता से मुक्त नहीं थे। उनके मन में स्वराज की ऐसी परिकल्पना नहीं थी जो पश्चिमी सांस्कृतिक मूल्यों से मुक्त हो। महात्मा गांधी उनकी इस मानसिक स्थिति से दुखी थे। हिन्द स्वराज लिखने का एक उद्देश्य यह भी था कि सांस्कृतिक दासता का निरूपण किया जायें और विकल्प के रूप में सांस्कृतिक स्वराज की रूपरेखा वर्णित की जायें। इसी उद्देश्य से महात्म्मा गांधी ने हिन्द स्वराज में आधुनिक सभ्यता की कड़ी आलोचना की।

महात्मा गांधी के अनुसार, "पाश्चात्य सभ्यता की सबसे बड़ी कमी थी–मानवीय संबंधों को विचारों के सांचे में ढालना।" इसके प्रतिक्रियास्वरूप महात्मा गांधी ने एक विकल्प रखा–प्रेम, करूणा और संवेदना के सांचे में विचारों को ढालना। सांस्कृतिक दासता कूपमंडूता नहीं है। महात्मा गांधी बार-बार कहते हैं कि मैं अपने घर के दरवाजे और खिड़कियां खुली रखता हूं ताकि हर प्रकार के विचार उसमें प्रवेश कर सकें किंतु मेरा पैर अपनी धरती पर जमा हुआ है। जिस धरती पर उनका पैर जमा हुआ था, वह अधिष्ठान है–सत्य, अहिंसा, प्रेम, करूणा और सहानुभूति के गुणों का। महात्मा गांधी की दृष्टि में भारतीय संस्कृति इन मूल्यों को निरंतर स्वीकार करती है और अपेक्षा है कि सांस्कृतिक स्वराज इनको रेखांकित करे न कि पश्चिम से आयातित वैचारिकी की श्रेष्ठता और उसका अहंकार।

संक्षेप में कहा जाये तो महात्मा गांधी का मानना था कि केवल अंग्रेजों को भारत से हटाने से स्वराज नहीं मिलेगा। हमें अपनी आत्मा को बचाना है। हमें सत्य, धर्म और नैतिकता के मार्ग पर चलना है, तभी हम स्वराज के निकट होंगे। इस प्रकार स्वराज के बारें में महात्मा गांधी की जो अवधाारणा थी वह अनेक सैद्धांतिक तत्वों पर आधारित है जो निम्न है[5]:

1. मानव की सांस्कृतिक प्रकृति की अवधारणा महात्मा गांधीय स्वराज का सैद्धंतिक आधार है। महात्मा गांधी की यह मान्यता थी कि मानव, अन्य प्राणियों की तुलना में सर्वाधिक भिन्न एवं श्रेष्ठ इस बात में है कि जिस सत्यरूपी परमात्मा ने उसे जन्म दिया, उसका अंश आत्मा के रूप में उसके हृदय में विराजमान हैं। मानव अपनी इस दैविक शक्ति के प्रति जागरूक होने के कारण इसका अनुसरण कर सकता है तथा अपने जीवन, समाज एवं राज्य को उज्जवल बना सकता है।
2. महात्मा गांधी मानव को विवकेशील एवं तार्किक प्राणी मानते हैं जिसके परिणामस्वरूप वह उपलब्ध विकल्पों में से श्रेष्ठतक विकल्प का चयन करने की क्षमता रखता है जो सामज एवं राज्य के लिए श्रेष्ठ है। महात्मा गांधी इस प्रक्रिया को एक ऐसी राजनीतिक प्रक्रिया मानते थे, जो उसकी स्वशासन की क्षमता पर आधारित है। चूंकि राज्य मनुष्यों का ही एक व्यापक समूह हैं, इसलिए जो गुण मनुष्य में है। वहीं राज्य में है और जैसे हर व्यक्ति में स्वशासन की क्षमता है वैसे ही प्रत्येक राज्य में स्वशासन की क्षमता है अत: उसे स्वशासन का अधिकार मिलना चाहिए। महात्मा गांधी के द्वारा प्रतिपादित स्वराज का सैद्धांतिक आधार यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करता है कि किसी भी राष्ट्र को विदेशी शासन के विरुद्ध स्वशासन की प्राप्ति के लिए संघर्ष क्यों करें।

महात्मा गांधी ने मानव की नैतिक प्रकृति में विश्वास रखने के कारण ही स्वराज प्राप्ति हेतु नैतिक मार्ग की ओर संकेत किया। महात्मा गांधी का मानना था कि एक सच्चे साध्य को प्राप्त करने के लिए साधन भी उच्च तथा नैतिक होने चाहिए। इसलिए स्वराज जैसे महान् साध्य को प्राप्त करने के लिए साधन निश्चित रूप से अहिंस, सत्य, सत्याग्रह, त्याग ही हो सकते हैं, हिंसा नहीं। महात्मा गांधी मानते हैं कि 'प्रेम बल' तथा 'दयाबल', 'शक्तिबल' से अधिक महान् है। अहिंसा का जन्म आत्मबल से होता है और हिंसा का जन्म 'शरीर बल' से। 'आत्मबल- के लिए कुछ विशेषताओं का होना आवश्यक है जैसे सत्यबल, प्रेमबल, तपबल, नीतिबल इत्यादि। आत्मा इन सभी गुणों का प्रयोग तभी कर पायेंगी जब हमारा मन और मस्तिष्क हमारी इंद्रिय लालसाओं को नियंत्रित कर सकें। इस प्रकार अहिंसा की नैतिक सफलता अंतत: स्वनियंत्रण पर ही निर्भर करती हैं।[6]

साध्य और साधनों की पवित्रता का महात्मा गांधी विचार इस बुनियादी विश्वास से प्रेरित था कि राजनीतिक स्वराज, नैतिक स्वराज का बाह्य रूप है और यह स्वराज हमें किसी बाह्यय शत्रु से नहीं वरन् आंतरिक शत्रु से लड़कर प्राप्त करना है। यह तभी संभव है जबकि हम अपनी दुष्प्रवृत्तियों का त्याग कर सद्प्रवृत्तित्तयों को ग्रहण करें। सचचा स्वराज एक आंतरिक अनुभव है जो आत्मा से ही महसूस किया जा सकता है। साथ ही, महात्मा गांधी का मानना था

कि यदि एक राष्ट्र राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र हो, परंतु आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अन्य पर निर्भर हो तो वह राष्ट्र सच्चे अर्थों में स्वतंत्र नहीं माना जा सकता। अत: महात्मा गांधी आर्थिक स्वतंत्रता को भी स्वराज की एक आवश्यक शर्त मानते थे। आर्थिक स्वतंत्रता मात्र उपभोग की स्वछंदता नहीं। वस्तुत: सर्वप्रथम यह शोषण से मुक्ति है और तत्पश्चात् अपनी नैसर्गिक क्षमताओं का अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति में प्रयोग है। ब्रिटिश शासन और भौतिकवादी सभ्यता के कारण भारत का नैतिक, भौतिक और आर्थिक क्षय हुआ, इसका विकल्प था–स्वावलंबन। अत: महात्मा गांधी ने इसके लिए स्वदेशी के माध्यम से देश को आत्मनिर्भर बनाने का प्रयत्न किया।

महात्मा गांधी की मान्यता थी कि न केवल आर्थिक क्षेत्र में स्वदेशी को अपनाने से स्वराज संभव है, अपितु शोषण मुक्त समाज की स्थापना करने के लिये सामाजिक न्याय भी अनिवार्य है। तत्कालीन भारत, ब्रिटिश आधिपत्य से पीड़ित था, साथ ही भारतीय समाज में अनेक बुराइयां–जाति-प्रथा, रूढ़िवादिता, सांप्रदायिकता, अज्ञानता, अस्पृश्यता–व्याप्त थीं जिन्हें दूर किये बिना महात्मा गांधी स्वराज को असंभव मानते थे। अंत: महात्मा गांधी ने मानव गरिमा एवं सामाजिक न्याय तथा स्वतंत्रता की पुन: स्थापना को गंभीर माना। महात्मा गांधी की मान्यता थी कि कोई आंदोलन तब तक सफलीभूत नहीं हो सकता जब तक उसे आम आदमी का सहयेाग प्राप्त न हो। अत: स्वराज आंदोलन को जन–आंदोलन बनाने के लिये उन्होंने सांप्रदायिक सद्भाव को राष्ट्रीय आंदोलन का आधार बनाया।

अत: स्पष्ट रूप में कहा जा सकता है कि महात्मा गांधी का स्वराज सिर्फ औपनिवेशिक स्वराज तथा राजनीतिक स्वराज तक सीमित नहीं था वरन् एक पूर्ण विचार था, जिसके अंतर्गत वे सर्वोदय के माध्यम से समस्त आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक व्यवस्था का रूपांतरण चाहते थे।[7] महात्मा गांधी के लिए 'स्वराज' रामराज्य का पर्याय है अर्थात् उच्च नैतिक शक्ति पर आधारित व्यक्ति की संप्रभुता।

संदर्भ सूची

1. रावत, ज्ञानेन्द्र, महामानव महात्मा गांधी : एक विमर्श, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पेज 19
2. कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, जिल्द 32, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2002, पेज 496
3. परेल, ए.जे. गांधी फ्रीडम एण्ड सेल्फ रूल, विस्तार पब्लिकेशन्स, नयी दिल्ली, 2000 पेज 103-108
4. परेल, ए.जे. वही पेज 51
5. डॉ. रामरतन एवं डॉ. शारदा, शोभिका 'महात्मा गांधी की राजनैतिक अवधारणाएं', कालिंगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1992, पेज 45-46
6. मनोज सिन्हा, गांधी अध्ययन, ओरियंट लांग्मेन, नई दिल्ली, 2008, पेज 77
7. ज्ञानेन्द रावत, महामानव महात्मा गांधी : एक विमर्श, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पेज 19

मध्यकालीन बोध का अर्थ

डॉ० कृष्ण प्रताप सिंह

असि० प्रो०, (हिन्दी), खरडीहा महाविद्यालय, खरडीहा गाजीपुर

मध्यकालीन बोध का अर्थ

मध्यकालीन बोध का कोशीय[1] अर्थ है- मध्यकाल से सम्बन्धित ज्ञान या जानकारी। वस्तुतः मध्यकाल का सामान्य अर्थ आधुनिक युग का पूर्ववर्ती एवं प्राचीन काल का परवर्ती समय है। परन्तु आजकल जब 'मध्यकाल' शब्द का प्रयोग किया जाता है, तब यह जान पड़ता है कि यह काल के अर्थ में उतना नहीं, जितना एक विशिष्ट प्रकार की मनोवृत्ति के अर्थ में प्रयुक्त होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की मान्यता है कि यह एक खास प्रकार की 'पतनोन्मुख और जबदी हुई मनोवृत्ति'[2] है। इस मनोवृत्ति को स्पष्ट करते हुए वह कहते हैं कि- "ऐसा माना जाता है कि मध्यकाल का मनुष्य धीरे-धीरे विशाल और असीम ज्ञान के प्रति जिज्ञासा का भाव छोड़ता जाता है तथा धार्मिक आचारों और स्वतः प्रमाण माने जाने वाले आप्त वाक्यों का अनुयायी होता जाता है। साधारणतः आप्त समझे जाने वाले ग्रन्थों की बाल की खाल निकालने वाली व्याख्याओं पर अपनी समस्त बुद्धि खर्च कर देता है।"[3] इस प्रकार की मनोवृत्तिपरक अर्थ स्वीकार करने वाले लोग ही अंग्रेजी में 'मिडिएवल', 'मिडिएवलिज्म' आदि शब्दों का व्यवहार करते है। कभी-कभी ऐसे शब्दों का व्यवहार अवहेलनापरक अर्थ में भी किया जाता है। 'मिडिएवल' (मध्ययुगीन) शब्द का प्रयोग अनादार भाव कुण्ठित मनोवृत्तिपरक अर्थ में होता है।

मध्यकालीन मनोवृत्ति को स्तब्ध या कुण्ठित मनोवृत्ति कहने का कारण यह है कि इस युग के भक्त कवि का आदर्श परलोक में मनुष्य को मुक्त करना था। इस लोक में, इसी मत्र्यजगत् को सुन्दर और शोभन बनाने के उद्देश्य से भक्ति-साहित्य की रचना नहीं हुई थी। भक्ति-साहित्य संसार के बाह्य रूप को यथास्थिति छोड़कर व्यक्ति-मानव के चित्त में परिवर्तन लाने पर अधिक जोर देता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "भक्ति-साहित्य अपने-आप में स्तब्ध और कुण्ठित साहित्य नहीं है, परन्तु परिवर्तन का लक्ष्य अदृष्ट होने के कारण यह पूर्ण मुक्त नहीं है।"[4]

कुण्ठित मनोवृत्ति का एक अर्थ यह भी होता है- जब साहित्यकार प्रतीक और रूढ़ि का विवेक खो देता है। वस्तुतः प्रत्येक शब्द, प्रत्येक मूर्ति, प्रत्येक रेखा और प्रत्येक चिह्न जब तक अपने पीछे के तत्त्व-चिंतन के साथ आते हैं, तो वे प्रतीक होते हैं। परन्तु जब उनके पीछे काम करने वाले तत्त्व-चिंतन भुला दिए जाते हैं तो वे रूढ़ हो जाते हैं। कहा जाता है कि मध्ययुगीन साहित्यकार भी प्रतीक को रूढ़ रूप में चिह्न या अनुकृति मानने लगता है और इस प्रकार वह कुण्ठित और स्तब्ध अर्थात् ह्रासोन्मुख प्रवृत्ति का शिकार हो जाता है।

प्रायः माना जाता है कि मध्ययुगीन साहित्यकार वह है जो तथाकथित मध्ययुग के कवियों और लेखकों का अनुकरण करके लिखा करता है। वैसे हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में अनुकरण करने की थोड़ी-बहुत चेष्टा तो मिल जाएगी, लेकिन हम उसे अनुकरण प्रधान साहित्य नहीं कह सकते। निःसन्देह इसमें नये काव्यरूपों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। यद्यपि इसमें यह भाव तो है कि पहले के लोगों की तुलना में नये लोग अल्प शक्ति के है और पुराने लोगों की कही बातों को विशिष्ट प्रमाण मानकर उनकी व्याख्या करना और संगति लगाना ही उनका काम है तथापि रचनात्मक क्षेत्र के बारे में यह कहना बहुत उचित जान नहीं पड़ता कि उसमें मात्र अनुकरण की प्रवृत्ति ही प्रधान है।

वस्तुतः गुप्तकाल भारतवर्ष में समृद्धि का काल था। उसे स्तब्ध मनोवृत्ति का काल नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक सृजनात्मक साहित्य का प्रश्न है, इस काल में काव्य, नाटक, कथा, आख्यायिका आदि विविध काव्यांगों का विकास चरमोत्कर्ष तक पहुँच गया था। इस काल के कवि अतीत के प्रति बहुत श्रद्धा-प्रवण थे। परन्तु उनमें आत्म-विश्वास भी उतनी ही प्रचुर मात्रा में विद्यमान था, जितनी प्राचीनता के प्रति श्रद्धा। आगे चलकर श्रद्धा की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती गयी और अंत में उसने आत्म-विश्वास को अभिभूत कर लिया। जहाँ से यह स्थिति पैदा हुई वहीं से हसोन्मुख काल या मध्ययुग का आरम्भ समझना चाहिए। इतिहासकारों ने आठवीं शताब्दी को भारतीय साहित्य के स्वर्णयुग की अंतिम सीमा माना है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सुझाव है कि- "यहीं से भारतीय साहित्य के स्वतंत्र चिंतन के वास्तविक ह्रास का काल माना जाय और इस काल का अंतिम सीमान्त अठारहवीं शताब्दी तक स्वीकार किया जाय। यहीं से भारतीय साहित्य का टीका-युग शुरू होता है। इसे ही आधुनिक पारिभाषिक शब्दावली में मध्ययुग या मध्यकाल कहा जाना चाहिए।"[5]

प्राचीन काल में भारतवर्ष में कृत (सत), त्रेता, द्वापर और कलि नाम के चार युगों की जो चर्चा मिलती है, उस पर महत्त्वपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "इन सबमें कृत का प्रयोग अच्छे अर्थ में और त्रेता, द्वापर और कलि का प्रयोग क्रमशः कम अच्छे और अधिक बुरे अर्थों में हुआ है। .....ऐसा विश्वास किया जाता है कि 'कृत' या 'सत्य' युग में धर्म की पूर्ण स्थिति थीं, त्रेता में तीन-चौथाई रह गयी और 'द्वापर' में आधी। कलिकाल में धर्म का प्रभाव और भी क्षीण हुआ और वह एक ही चरण पर खड़ा रह गया।"[6] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कलिकाल के जमकर बैठने के काल से ही मध्यकाल का आरम्भ मानते हैं। इससे लगता है कि धार्मिक मनोवृत्ति की प्रबलता या क्षीणता ही इस प्रकार के युग-विभाजन का आधार बनी है।

मध्यकालीन मनोवृत्ति को 'जबदी' मनोवृत्ति के रूप में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा अभिहित करने के संदर्भ में, आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी का मन्तव्य है कि- "राष्ट्र की जिस श्वास नलिका से निरवरोध और भास्वर चिंतन प्रवाह चलता है उसमें विकारग्रस्त देश और काल के प्रभावी दबाव से कभी-कभी अवरोध आ जाता है। फलत: वह नलिका जब्द हो जाती है- 'उन्मुक्तता' में कहीं-न-कहीं 'कुण्ठा' आ जाती है। इस स्थिति में या तो चेतना दब जाती है या अन्तर्मुखी हो जाती है। चेतना कभी ठण्डी पड़ सकती है, परन्तु ऊष्मा उसका स्वभाव है जो अवरोध के विरुद्ध विद्रोह कर उठती है और उसे उखाड़ फेंकती है- 'लोक' चेतना ऐसी ही होती है।"[7] अनेकता में एकता का साक्षात्कार आर्षदृष्टि है। आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी का कहना है- "मध्यकाल में हमारी यह आर्षदृष्टि अन्तर्मुख अवश्य हो गयी- पर गन्तव्य के प्रति आने वाले अवरोधों के प्रति जागरूक थी- भक्ति साहित्य में सुनायी पड़ने वाला 'खण्डन' का स्वर ऐसा ही है। इस खण्डन में वह ऊर्जा है जिसे न समाज दबा पाता है, न शासन और न जड़ताग्रस्त शास्त्र। कारण, दबने के पीछे मृत्यु का भय है और इन संतो या भक्तों- चाहे कबीर हो तेगबहादुर हों या सूर और तुलसी तथा हरिदास- को उसका भय है ही नहीं।"[8] वस्तुत: मध्यकाल में भक्ति अंगी है और सर्वथा स्वतंत्र है। आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी ने गांधी जी की स्वातंत्र्य की अवधारणा और श्री अरविन्द की स्वातंत्र्य की अवधारणा में अन्तर करते हुए कहा है- "अपेक्षाकृत गांधी का अवरोध भौतिक सत्ता थी- अरविन्द का अवरोध चेतना का पराङ्भाव था। पहला जन जागरण था, दूसरा चौत्य पुरूष का जागरण था। आत्मबल को दोनों महत्त्व देते थे। बात मध्यकाल की चल रही है, अत: उस काल को इस सर्जनात्मक विद्रोही प्रस्थान को क्या स्वातंत्र्य आन्दोलन (गांधी सम्मत) की भाँति भक्ति-आन्दोलन कहा जा सकता है?[9] त्रिपाठी जी का निष्कर्ष है-"आन्दोलन में बहिर्मुखता होती है। मध्यकाल का यह प्रस्थान अन्तर्मुखी था। तात्त्विक नहीं, औपचारिक कह लें, मैं तो भक्ति प्रस्थान ही कहूँगा।"[10] आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी भक्ति को मध्यकाल में सर्जनात्मक विद्रोही प्रस्थान के रूप में देखते हैं।

डॉ० शम्भुनाथ मध्यकालीन बोध के अर्थ में समझौता की प्रक्रिया का होना स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार- "यह समझौता निम्न वर्ण एवं द्विज वर्ण के ही बीच नहीं सम्पन्न होता है वरन् शिव एवं विष्णु के मध्य भी सम्पन्न होता है।"[11] वे मिथकों के आधार पर अपना यह मत स्पष्ट करते हैं। वस्तुत: मध्यकाल में सगुण भक्तों की धार्मिक आस्था का केन्द्र अवतारवाद की अवधारणा थी। मध्यकाल में यह अवधारणा विष्णु के साथ ही विकसित हुई; वैदिक देवताओं, ब्रम्हा अथवा शिव के साथ नहीं। कारण है कि वैदिक देवताओं की प्रासंगिकता उसी समय समाप्त हो गयी, जब मनुष्य ने एक भाषा समूह को भीतर से बदलकर दूसरे भाषा-समूह को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। वैदिक मिथक की प्रकृति-चेतना पुरानी पड़ गयी और उनका शास्त्र ढह गया। शिव सामान्य जन के आदिम यथार्थों के मिथक थे, वे स्वयं ही इतने भोलेनाथ और सहज थे कि लोक जीवन से सीधे जुड़े हुए थे, साथ ही एक बहुत बड़े शोषित दबाये गये हिस्से के भावनात्मक प्रतिनिधि थे। शिव अगर अवतार के बिना भी लोकास्था की सम्पन्न गहराई तक पहुँच सके, तो इसका कारण यह था कि वे निम्न वर्ग के शक्तिशाली मिथक थे, जिसे मध्यकालीनता की ऐतिहासिक प्रक्रिया में द्विजों को भी स्वीकार करना पड़ा। "यह ऐतिहासिक प्रक्रिया वाल्मीकि के 'आदिरामायण' से लेकर तुलसी के 'रामचरितमानस' तक, तथा परमभागवत गुप्त सम्राटों से लेकर उत्तर भारत के वैष्णव आचार्यों एवं कवियों और दरबारी कवियों तक जो सांस्कृतिक रूपान्तर किया है वह वैदिक साधना से पौराणिक पूजन में, पौराणिक पूजन से भक्ति में और भक्ति से लौकिक श्रृंगार में परिणत हुआ है।"[12]

शिव की तरह विष्णु भी यदि अवतारवाद के बिना सामान्य जन तक पहुँचना चाहते, तो इन्द्र की तरह बहुत पहले ही लोकास्था से मर चुके होते। अवतारवाद ने उन्हें जीवित रखा। वास्तव में अवतारवाद विष्णुधारा के मिथक का आधार है। इसका कारण यह है कि विष्णु जनता के बीच के मिथक नहीं थे, द्विजों की प्रभुता एवं उनमें शासन-शोषण प्रवृत्ति के विकास के कारण उन्हें शिव के समानान्तर शक्ति की स्थापना करनी थी, इसलिए विष्णु का मिथक विकसित हुआ। महाकाव्य तथा पौराणिक काल में सिर्फ विष्णु से काम नहीं चल सका, इसलिए उनके अवतारवाद की कल्पना की गयी, जिससे सांस्कृतिक उथल-पुथल, संघर्ष तथा द्विज वर्ण की शक्ति और सम्पन्नता से जुड़े यथार्थों का प्रतीकात्मक मिथक विकसित हुआ। नवीनतम अनुसंधानों से यह भी पता चलता है कि आर्यों से पहले द्रविड़ों में शिव दूसरे नाम एवं रूप से आराध्य थे। अत: वर्ण-संघर्ष का विकास है, जो शिव-विष्णु के संघर्ष के मिथक में अभिव्यक्त हुआ। ये मिथक भारतीय जीवन में बार-बार आये तथा मध्यकालीनतावाद के अन्तर्गत संघर्ष की जगह समझौता की प्रक्रिया को स्थापित किए।

डॉ० रमेश कुन्तल मेघ मध्यकालीन बोध के अर्थ के संदर्भ में अपना मन्तव्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं- "मध्यकालीन बोध से हमारा आशय उन 'आदर्शों' (आइडियल्स) तथा 'धारणाओ' (कॉन्सेप्ट्स) की स्वीकृति से है जो पौराणिक चेतना से विकसित होने बावजूद भी उनसे पृथक् तथा परवर्ती हैं और जो 'तत्कालीन' समाज में परिव्याप्त है।"[13] रमेश कुन्तल मेघ के इस मत में 'आदर्श' और 'धारणा' शब्द व्याख्या की अपेक्षा रखते हैं, जिसके लिए मध्यकाल से पूर्व की स्थिति पर संक्षेप में दृष्टिपात करना आवश्यक है।

भारतीय इतिहास में गुप्तकाल को 'स्वर्णकाल' माना जाता है। गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद मध्यकालीन संस्कृति की रचना में धीरे-धीरे लोक जीवन से ज्ञान और कर्म तिरोहित होते चले गये; कुलीन सामन्तों में अतिरंजित अभिमान और विलास बढ़ता चला गया; समाज और जीवन के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व और न्याय पाने का विश्वास उठता चला गया; वर्णों, सम्प्रदायों और वर्गों तथा स्वार्थों में संघर्ष तीव्रतर होते चले गये। भारत का सम्पर्क बाहरी दुनिया से टूटता गया और इस्लाम के आगमन ने पूरे सांस्कृतिक ढाँचे को लड़खड़ा सा दिया। ऐसे समाज में परिवार से बाहर बस एक ही तरह के संबंध की प्रधानता रही- स्वामी और सेवक के संबंध के अन्तर्गत कृषक, स्वामी का पूरा गुलाम तो नहीं होता था किन्तु स्वामी उसे थोड़ी सी भूमि दे देता था। उसकी अपनी निजी भूमि भी होती थी। वह अपने तथा स्वामी के हित में परिश्रम करता था। इस परिश्रम का उत्पादन धन के रूप में न होकर, वस्तु के रूप में होता था। अत: वह भूमिपति की कृपा, करूणा, दान, क्षमा आदि का भिखारी था। ऐसी अचल जड़ दशा में ज्ञान और कर्म के स्थान पर इच्छा को पूर्ण प्राथमिकता मिली। इच्छा राग-प्रधान होती है। ऐसे समाज और जीवन में पीढ़ी-दर-पीढ़ी कोई परिवर्तन नहीं आया। इसलिए सारा जन-जीवन घोर निराशा, रहस्यवाद, अधंविश्वास आदि में जकड़ा था। समाज चित्त इस दुनिया से जल्दी से जल्दी छुटकारा पाना चाहता था। अत: वह मोक्ष, कैवल्य, भवसागर-मुक्ति को ही प्रमुखता देता था- "जिसमें दो दृष्टिकोण प्रमुख थे: पहला था, इस पराजित जीवन और क्रूर समाज को मिथ्या मानकर अलौकिक जीवन तथा दिव्य लोक को सत्य मान लेना; तथा दूसरा था, इस जीवन तथा समाज को भोगने के लिए कुछ स्वच्छन्द, व्यक्तिगत और लिरिकल भावनाएँ तृप्त कर लेना। पहले

दृष्टिकोण ने अवतारवाद की परिव्याप्ति की और दूसरे ने भक्ति की। अतः भक्ति और अवतारवाद सम्पूर्ण संस्कृति के मध्यकालीनीकरण की दो धुरियाँ।"[14] 'भक्ति' और 'अवतारवाद' पौराणिक चेतना के अंग हैं और इन्हीं के आधार पर मध्यकालीन 'आदर्शों' तथा 'धारणाओं' का निर्माण हुआ है।

डॉ० रामचन्द्र तिवारी मध्यकालीन चेतना को इस प्रकार व्याख्यायित करते हैं- "आज जब हम मध्ययुगीन विशेषण का प्रयोग करते हैं तो हमारा तात्पर्य आधुनिक युग की वैज्ञानिक एंव बौद्धिक चेतना के प्रतिकूल एक विशेष प्रकार की जीवन-चेतना से होता है जो विश्वास-प्रधान, रूढ़िग्रस्त, आदर्शवादी, संकीर्ण, धर्मभीरू, प्रेरणारहित और स्थूल नैतिकता के आग्रह से पूर्ण रही है।"[15] यह दृष्टि आधुनिकता के संदर्भ से निर्मित हुई है।

यूरोपीय विद्वान मध्ययुग को 'अधंकार युग' की संज्ञा देते हैं, लेकिन राजाओं और राजपुरूषों का नाम ही इतिहास न समझा जाय तो भारतीय इतिहास के इस काल को 'अंधकार युग' नहीं कहा जा सकता। धर्म और दर्शन आदि के जो ग्रन्थ परवर्ती पन्द्रह सौ वर्षों के इतिहास को प्रभावित करते रहे हैं इसका बीजारोपण इसी काल में हुआ है। दर्शन और धर्म-साधना के क्षेत्र में अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों और सम्प्रदायों की स्थापना इसी काल में हुई। इस प्रकार परवर्ती भारतवर्ष को जो रूप प्राप्त हुआ वह अधिकांश में इसी काल की देन है।

मध्यकालीन बोध का अर्थ विविध विद्वानों द्वारा अपने-अपने ढंग से किया गया है। किसी ने उसे 'जबदी मनोवृत्ति' के रूप में व्याख्यायित किया तो किसी ने 'समझौतावादी मनोवृत्ति' के रूप में; किसी ने उसे 'पौराणिक चेतना' से विकसित भक्ति और अवतारवाद की धारणाओं एवं आदर्शो से सम्बद्ध किया तो किसी को मध्यकालीन चेतना में रूढ़िवादिता, धर्मभीरूता, संकीर्णता, पौराणिकता और प्रेरणाराहित्य नजर आया। इन सब अर्थों को दृष्टिपथ में रखते हुए ऐसा जान पड़ता है कि लोगों में मध्यकालीनता के प्रति एक प्रकार का अवहेलनापरक भाव है।

वैसे यूरोपीय विद्वान् मध्ययुग को 'अंधकार युग' कहते हैं, लेकिन भारतीय इतिहास के इस काल को अंधकार युग नहीं कहा जा सकता और न ही मध्यकालीन बोध को अवहेलनापरक अर्थ में स्वीकार करना चाहिए। एक तो, धर्म और दर्शन आदि के जो ग्रन्थ परवर्ती पन्द्रह सौ वर्षों के इतिहास को प्रभावित करते रहे उसका बीजारोपण इसी मध्यकाल के आरम्भ में हुआ। दर्शन और धर्म-साधना के क्षेत्र में अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों एवं सम्प्रदायों की स्थापना इसी काल में हुई। दूसरे, परवर्ती भारतवर्ष को जो रूप प्राप्त हुआ वह अधिकांश में इसी काल की देन है। यद्यपि इस काल में आगे चलकर भारतीय साहित्य में स्वतन्त्र चिंतन का अभाव मिलने लगता है, श्रद्धा और विवेक में उत्तरोत्तर श्रद्धा और आस्था को प्रधानता मिलने लगती है, रचनात्मक क्षेत्र में भी अनुकरण की प्रवृत्ति का समावेश उत्तरोत्तर बढ़ने लगता है तथापि इस युग के दार्शनिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अवदानों को भुलाया नहीं जा सकता।

फुटनोट

1. बृहत् हिन्दी कोश, सम्पा०- कालिका प्रसाद, पृ० - 868,825
2. ह०प्र०द्वि०ग्रं०, भाग-5,सम्पा०-डॉ० मुकुन्द द्विवेदी, पृ०-23
3. वही, पृ० - 23
4. ह०प्र०द्वि०ग्रं०, भाग-5,सम्पा०-डॉ० मुकुन्द द्विवेदी, पृ०-25
5. ह०प्र०द्वि०ग्रं०, भाग-5,सम्पा०-डॉ० मुकुन्द द्विवेदी, पृ०-27
6. ह०प्र०द्वि०ग्रं०, भाग-5,सम्पा०-डॉ० मुकुन्द द्विवेदी, पृ०-19
7. दैनिक जागरण सहस्त्राब्दि सप्तरंग, लेख- 'भक्ति के स्वर में डूबा कालखंड', ले०- आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी, पृ०-10
8. वही, पृ०-10
9. दैनिक जागरण सहस्त्राब्दि सप्तरंग, लेख- 'भक्ति के स्वर में डूबा कालखंड', ले०- आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी, पृ०-10
10. वही, पृ०-10
11. तुलसीदासः विचार और विवेचन, सम्पा०- प्रो० रघुनन्दन मिश्र, पृ०-224
12. तुलसीः आधुनिक वातायन से, ले०- डॉ० रमेश कुन्तल मेघ, पृ०-19
13. तुलसीः आधुनिक वातायन से, ले०- डॉ० रमेश कुन्तल मेघ, पृ०-19
14. तुलसीः आधुनिक वातायन से, ले०- डॉ० रमेश कुन्तल मेघ, पृ०-21
15. मध्ययुगीन काव्य-साधना, ले०- डॉ० रामचन्द्र तिवारी, पृ०-1

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'चन्ना' में चन्ना के जीवन संघर्ष की मार्मिक अभिव्यंजना

डॉ० गौकरण प्रसाद जायसवाल

शोध-निर्देशक, सहा. प्राध्यापक (हिन्दी), शास. नवीन महाविद्यालय, आमदी, जिला-धमतरी (छत्तीसगढ़)

रणजीत सिंह

शोध-छात्र, संत गुरूघासीदास शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुरूद, जिला-धमतरी (छत्तीसगढ़)

'चन्ना' कृष्णा सोबती का पहला किंतु सबसे बाद में प्रकाशित तीन सौ चौरासी पृष्ठों का एक लंबा उपन्यास है। कृष्णा सोबती के शब्दों में- ''मेरा यह पहला उपन्यास 'चन्ना' विभाजन के बाद लिखा गया। लेखक का पहला उपन्यास साधारणतया जरुरत से ज्यादा लम्बा होता है। यह भी था और लेटर हैड पर लिखा गया था। चन्ना लिखते हुए मैं अपने को सचमुच लेखक मानती थी। मुझमें कुछ ऐसा जज्बा था कि जैसे कोई ग्रंथ लिखा जा रहा हो।''[1] यह उपन्यास अंचल विशेष की भाषायी आत्मा, उसकी सत्ता, कलेवर, शिल्प, सौंदर्य, जमीन से जुड़ाव, उसकी खुशबू, संस्कृति के अस्तित्व की रक्षा की जिद के कारण बीसवीं शताब्दी के पाँचवे-छठे दशक के बजाय इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक के अंत (2019) में प्रकाशित होकर पाठकों को उपलब्ध हो पाई। यह कृष्णा सोबती की अपनी भाषायी धरोहर के प्रति सम्मान, समर्पण, उनका संरक्षण ही तो था, जिसने सात दशकों के बाद भी शाहनी को शाहपत्नी, मसीत को मस्जिद, पैड़ियों को सीढ़ियाँ, काका को लल्लू न होने दिया। आखिर होने देते भी क्यों ?

कृष्णा सोबती की कृति 'चन्ना' एवं उसकी नायिका चन्ना का संघर्ष संयोग कहें या इत्तफाक दोनों में बराबर संघर्ष विद्यमान है। एक में सात दशकों से लेखक की मृत्यु शैय्या तक का संघर्ष तो दूसरे में बचपन से जवानी तक दु:ख, विशाद, शोक के गहन अंधकार में हृदय की चीत्कार की भयंकर गर्जना और आँसुओं की घनघोर वर्षा अंतर्मन को कँपाती रही, आंदोलित करती रही। यह मर्मांतक एवं दुखात्मक दृश्य संवेदना एवं सांत्वना के धरातल पर चन्ना के जीवन-संघर्ष को सजीव एवं मार्मिकता के साथ प्रतिबिंबित करती है।

'चन्ना' उपन्यास के संदर्भ में माँ वह कल्पना है, वह शब्द-रत्न है, जिसमें सारा संसार समाहित है। माँ वह सूर्यपुंज है, जिसके प्रकाश में सारे रिश्ते- नाते ग्रह-नक्षत्र की भाँति अपनी धूरी पर परिक्रमा करते हुए जीवन-जगत रूपी ब्रह्माण्ड में अपने-अपने दायित्वों का निर्वहन करते हैं। माँ वह कोहिनूर है, जिसकी चमक के आगे संसार के सारे रत्नों की चमक फीकी है, जो अतुलनीय एवं अविस्मरणीय है। माँ इस जगत की सबसे उर्वरा है, जिसके गर्भ में प्रत्येक जीव का विकास होता है, उसका जन्म होता है। माँ और संतान एक-दूसरे के लिए सर्वस्व हैं। माँ के मधुर स्वर, उसकी अमृतधारा से रोते-बिलखते बच्चे के मुख पर मीठी मुस्कान फैल जाती है और संतान जिसकी किलकारी से सारा आंगन खिल उठता है, माँ के हजारों दु:ख कोसों दूर हो जाते हैं। माँ का आँचल संतान के लिए स्वर्ग है।

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'चन्ना' में ऐसे ही संतान है शाह एवं शाहनी की इकलौती पुत्री की पुत्री 'चन्ना', जो माँ और माँ शब्द दोनों से अपरिचित है, किंतु भूख से तिलमिलाते, माँ के दूध की अमृत धारा के इंतजार में है, जिसके लिए सारा जीवन ही इंतजार बन पड़ा है। एक दूधमुही बच्ची दु:ख- सुख, जीवन-मरण, माता-पिता सारे रिश्ते से अनजान एक सप्ताह की सुंदर बालिका चन्ना माँ की गोदी में मुस्कुरा रही है। ''मालकिन घर में देवी आयी है सौ-सौ मनौतियों के बाद यह दिन आया है, दोनों घरों के भाग जागे हैं, मालकिन।''[2] नाना-दादा दोनों घरों में खुशियों की लहर हर चेहरे पर एक अनोखी मुस्कान। शाहवंश की पहली धेवती तो दीवानवंश की भी पहली नातिन। उनकी खुशियाँ शायद खुदा को मंजूर नहीं था। ''लैम्प के प्रकाश में नवजात शिशु के तन का नया-नया रक्त चमक रहा था और माँ का रक्तहीन श्वेत चेहरा जैसे इसी रक्त से किसी का निर्वाण कर बेजान सा पड़ा था। पास पीढ़ी पर चाची महरी सिर ढाँपे चिंतित मुद्रा में बैठी थी। आज दिन तक तो बच्ची की तबियत बहुत खराब रही है। दुपहर को कुछ ठीक नहीं थी, पर साँझ होते-होते तबियत फिर संभली। शीला ने दवा ली और आँखें मूंदे निश्चल-सी शिथिल पड़ी रही। मालकिन सिरहाने बैठी सिर सहलाती रही। साथ वाले कमरे से बार-बार शाहजी आकर बेटी को देख जाते थे और डॉ. धनराज उन्हें ढाँढ़स बँधाते जा रहे थे।''[3]

माँ का नौ माह तक शनै:-शनै: अपने रक्त से शिशु का निर्माण कर खुद रक्तहीन होना माँ की समर्पण भावना को परिलक्षित करती है। माँ की तबियत एकाएक बिगड़ते जाना, डॉ. धनराज का ढाँढस बँधाना, अनहोनी की मनहूस कल्पना से शाहनी एवं शाहजी की हृदय की अधीरता, चाची महरी के कलेजे का धक-धक करना मानो एक नन्ही सी जान से उसके ममत्व रूपी संसार की अंतिम विदाई का पूर्वानुमान था। यह एक बच्ची के सिर से माँ का आँचल सदा के लिए ओझल हो जाने वाली हृदय-विदारक, मार्मिक दृश्य अकल्पनीय थी। मृत्यु-शैय्या पर लेटी माँ की आँख खुलते ही वात्सल्य एवं स्नेह से दूधमुँही बालिका को अंतिम बार देखना एक ओर माँ की कर्त्तव्य विमुखता की मार्मिक अभिव्यंजना उद्घाटित करती है, तो दूसरी ओर जीवन के अंतिम क्षणों में बेटी

को जी भर देख लेने की माँ के ममत्व को प्रतिबिंबित करती है। ''कुछ क्षण बाद बच्ची हिली और आँखें खोली एक बार सामने बिछौने पर पड़ी नन्ही बालिका की ओर देखा फिर चाची से क्षीण स्वर में पूछा- ''चाची बच्ची को दूध पिलाया ?''[4] मानो माँ एक नन्हीं बच्ची के लिए मृत्यु को हरा, जी लेना चाहती है, पर मौत इतना निश्ठुर है कि उन्हें बच्ची के सिर के साया की तनिक परवाह नहीं, शनैः-शनैः उसकी ओर बढ़ी आ रही है।

धाय माँ चाची महरी जो शीला की सब कुछ है और शीला जो चाची की सब कुछ है। चाची को कभी निःसंतान होने का ख्याल न आया, पर आज उनके लिए संतान-सुख के एक युग का अंत होने वाला है। पीड़ा रूपी बाण उनके अंतस को छलनी करने वाला जान पड़ता है। महरी चाची दिल में पत्थर रख शाहनी से कहती है- ''बच्ची जा रही है, लड़कपन छोड़ो गंगाजल लाओ, महरी चाची के हाथ में दिया देखा तो मालकिन का कलेजा फट गया। बच्ची का श्वांस ऊपर तो गया पर नीचे नहीं आ सका। चाची के हृदय से आर्त स्वर में वाणी फूटी- कहाँ चली गयी मेरी बच्ची?''[5] शीला की श्वांस उखड़ते ही मौत की काली परछाई से मानो शाहवंश के लिए सारा संसार रूक गया हो, स्तब्ध हो गया सा लगता है।

नन्ही बच्ची की ममता, मीठी मुस्कान ने भी माँ को मृत्यु शैय्या की चंगुल से नहीं बचा पाई। आज माँ रूपी ज्योति-पुंज सदा के लिए शून्य में विलीन हो गया। माँ की अमृत धारा से वंचित बच्ची की व्यथा आज बिन पानी की मछली की भाँति प्रतीत होता है। ''पास माँ की शैया पर नवजात बच्ची खामोश बेहोश पड़ी थी, नई जिंदगी की मीठी मूर्च्छना में मौत की निर्दयता और बेरहमी से बेखबर। धर्मपाल जब अपनी बच्ची और उसकी माँ से मिलने ससुराल पहुँचे तो माँ बच्ची से बिछुड़ चुकी थी।''[6] लोक में प्रचलित है कि बच्चा भगवान का रूप होता है, किंतु आज भगवान, भगवान से रूठ गया प्रतीत होता है।

सारा कुनबा शोक में स्तब्ध, दूधमुँही बच्ची को अब तक न पिता का साया, न मौसी माँ का आँचल। शाह और शाहनी की इकलौती चिराग जो कभी उनकी हवेली से दुल्हन बन डोली में चली थी, आज अर्थी में चली है। चारों तरफ शोक की लहर, शाह-शाहनी के हृदय में पहाड़ टूट पड़ा, तो चाची महरी के पैरों तले जमीन खिसक गई। जिस चनाब को शीला अल्ला-रक्खे के किश्ती से पार किया करती थी, जीवन की दरिया से ''आज वह बिना किश्ती के पार उतर गई।''[7] सप्ताह भर की दूधमुँही बच्ची चन्ना का अपनी डार से बिछुड़ने का यह पहला क्रम अत्यधिक शोकाकुल एवं व्याकुल करने वाला था।

शाहवंश को पुत्री की पुत्री देकर, पुत्री को ले जाना ईश्वर की रहस्यमयी माया दुःख एवं विशाद की गहरी खाई में धकेलने सा प्रतीत होता है, जहाँ से निकलने के लिए चन्ना ही एक उम्मीद की किरण लक्षित होती है। शाहनी जिन्होंने शीला को नौ माह अपने गर्भ में रखा, जिसकी मुस्कान से सारा शाहवंश चमक उठता था, आज उनकी स्मृतियाँ रह-रह कर उनके कलेजे को छलनी करता उनकी आँखों में पानी भर देता है। शाहनी अब जी कर भी अपनी बेटी के बिना नहीं जीना चाहती- ''बेटा अब जीना कोई जीना नहीं।''[8] एक स्त्री के अंतःकरण की हृदय-विदारक पीड़ा से अपनी संतान को सदा के लिए खो देने वाली स्त्री ही संपृक्त हो सकती है।

माँ के साये से वंचित पिता से अनजान, ननिहाल के ममत्व में पल रही चन्ना में शनैः-शनैः जिज्ञासा का प्रस्फुटन होता गया। आखिर पिता के अधिकार, प्रेम, सगी माँ न हो कर भी मौसी माँ का साया उसे स्यालकोट तक खींच लाती है। नन्ही चन्ना के लिए मौसी माँ श्यामा ही उनकी जन्म देने वाली माँ है। माँ के आँचल से विलग बच्ची के लिए पुनः माँ के आँचल का साया और निःसंतान माँ की गोदी में खिलती-मुस्कुराती बच्ची वर्शों बाद किसी सुखद अनुभव को प्रतिबिंबित करती है। सुखद पल आए ही थे कि अपनी मूल डार से बिछुड़ी चन्ना को प्यार, स्नेह, वात्सल्य की थपकी देने वाली माँ की माँ शाहनी भी इस दुनिया से रूखसत हो अपनी बेटी शीला से जा मिली। निश्चित ही मृत्यु का यह रहस्यमयी सिलसिला चन्ना के जीवन में गहराते भंयकर अंधकार का आभास कराता है। चाची महरी चन्ना को गले लगाकर रो-रो कर ऊँचे स्वर में बिलखते हुए बोली- ''ओ मेरी बेगम गाँवों की रानी उठ जरा आँखें तो खोल यह बिलखते बच्चे तेरे बिना कैसे रहेंगे ? लेकिन बेगम नहीं उठी। महरी की आवाज में अगणित आवाजें मिलीं- वही विलाप, रूदन।''[9]

माँ और नानी के आँचल से वंचित बालिका आज संवेदना, सांत्वना, मार्मिकता का स्रोत बनी हुई है, जिसके लिए आज स्नेह, ममता, वात्सल्य का जड़ सदा के लिए उखड़ा सा प्रतीत होता है, जिससे मानो जीवन की हरियाली धीरे-धीरे सुखी जा रही हो। स्वर्गवासी बेटी की अविस्मरणीय यादें हृदय में छाया गहरा दुःख आज बेटी की बेटी से भी न बाँध सकी- ''बच्ची मेरी अब नानी तुम्हारी कभी नहीं उठेंगी।''[10] चाची महरी की वेदना, चन्ना के जीवन के भावी संघर्श के प्रति असहनीय दर्द को प्रकट करती है। चारों ओर शोक की लहर हर एक आँखों में बहती अश्रुधारा मानो शिव की जटा से निकली गंगा की प्रलय धारा का रूप धारण कर लिया हो। मृत्यु-शोक ने चन्ना के व्याकुल हृदय पर ऐसा वज्रपात किया कि उसके होठों से न आह ! निकली और न ही आँखों से आँसू की एक बूँद मानो दुःख के वज्र ने उसकी आँखों से सारा पानी सोख लिया हो।

समय ने आँसुओं की प्रलय धारा थाम तो ली, परंतु हृदय में विद्यमान स्मृतियाँ मन को सदा द्रवित करती रही। समय की गति ने एक दिन बच्ची को ऐसा रूप, सौंदर्य, आकर्शण, यौवन, चंचलता, मुस्कान, रंग एवं खुशबू दिया कि पंचतत्व में विलीन शीला की यौवन याद हो आई। आज शाहवंश और दीवानवंश की इकलौती लाडली बड़ी होकर घर-परिवार से दूर लाहौर पढ़ने चली है। गाँव की मिट्टी उनकी खुशबू से सरोबार चन्ना अब शहर की चकाचौंध, यौवनावस्था के अकेलेपन का नया अनुभव, नई जिज्ञासा, व्यापक ज्ञान से सरोकार होने लगी। कॉलेज अवकाश में कभी ननिहाल में नाना, चाची महरी, सईदा बीबी तो कभी स्यालकोट में माता-पिता के आशीर्वाद, ममता, प्रेम, स्नेह से आँखें सजल हो उठती, तो कभी होठों पर एक नई मुस्कान चमक उठती। चन्ना की बढ़ती समझ, पनपता अधिकारपन मौसी माँ श्यामा को कभी विचलित कर देती, तो कभी सूने आँचल को बेटी का प्यार, उसकी मासूमियत सगी माँ के अधिकार का आभास करा देती। ''चन्ना ने नानी की ओर देखा आँखें बंद थी। वह क्या करे ? चुपचाप देखती रह गई। सईदा बीबी और महरी को चिन्ता हुई। बिना रोये तो लाड़ली जी को लगा लेगी। सईदा बीबी गीली आवाज में बोली, बच्ची कौन तुम्हें प्यार करेगा, कौन तुम्हें रूठने पर मनायेगा, मेरी बच्ची, मेरी बच्ची. .. चन्ना फिर भी रोई नहीं।''[11]

दुर्भाग्य चक्र के बढ़ते कालक्रम ने भयावह रूप धारण करते हुए आज पुनः एक बेटी को उसके पिता से पितृहीन कर दिया, तो पत्नी की माँग से सिंदूर, कलाई से चूड़ियों, माथे से बिंदी, होठों से लाली को सूना कर बेटी और माँ को अथाह दुःख की पीड़ा से बिलखने, तड़पने, रोने के लिए इस जीवन की उजड़ती बगिया में छोड़ दिया। मानो माँ के श्वेत वस्त्र में एक बेटी और पत्नी के जीवन के सारे रंग बेरंग हो गए। आखिर चन्ना के डार से बिछुड़ने के क्रम का अंत अभी दूर-दूर तक नजर नहीं आता। पिता की इकलौती संतान होकर भी चन्ना को पिता की मुखाग्नि का अधिकार न देना समाज की उस अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, अज्ञानता का प्रमाण है, जो सदियों से बेटी-बेटा में होते आए भेदभाव को प्रतिबिंबित करता है- ''लकड़ियों पर अब अर्थी रख दी गई तो न जाने

क्यों कई नजरें एक साथ चन्ना की ओर उठ गई थीं। आज वह लड़का होती तो पिता को आग दे सकती। कई दूर रिश्ते-नाते सलाह कर रहे हैं मृत को आज आग कौन दे ? जो आज देगा वही कभी श्यामा का अपना कहलाने का अधिकारी होगा और चन्ना उनकी एकमात्र संतान होकर भी अब चुपचाप पराई-सी खड़ी है। माँ को होश आया। मौसी ने कहा- बहू तुम्ही कह दो - नाम ले दो लड़के का।''[12]

अंतत: किसी चचेरे भाई के लड़के द्वारा धर्मपाल को मुखाग्नि देना चन्ना को अपनों से दूर खड़ा कर लड़का-लड़की के भेद को परिलक्षित कर ही देता है। पितृशोक से अधिक यह भेदभाव चन्ना के हृदय को व्यथित करने वाला था। चन्ना को अपना कहने वाला, हृदय से लगाने वाला, हर छोटी-बड़ी आवश्यकताओं को पूरा करने वाला पिता-पुत्री का प्रेम, स्नेह, ममता की स्मृतियाँ ही केवल रह गई हैं। ''श्यामा के हाथों की चूड़ियाँ उतर गई, सिर का सिंदूर पूँछ गया।''[13] सांत्वना, संवेदना, धीरज के स्वर के बीच घर के स्वामी की मृत्यु एक बेटी के दु:ख से अधिक पत्नी की व्यथा हृदय-विदारक एवं मार्मिक जान पड़ती है। ''रोना-धोना रिश्ते, दान-पुण्य के दिन बीत गए। धर्मपाल के न रहने पर भी धर्मपाल का घर नहीं बदला, लेकिन जो बदल गई थी वह थी श्यामा। श्यामा का अस्तित्व और उस अस्तित्व में उसका विधवा जीवन।''[14]

चन्ना जिसे बचपन से आज तक न माँ की ममता मिली, न नानी का भरपूर दुलार, मिला तो दु:ख-ही-दु:ख। दुर्भाग्य ऐसा कि पिता का अंतिम बार जीवित चेहरा भी देखना नसीब न हुआ। ''बेटी, किस्मत में नहीं था तुम्हारे दर्शन मेला, नहीं तो कोई न कोई सबब बन ही जाता।''[15] शायद चन्ना की भाग्यरेखा सुखहीन प्रतीत होता है।

माँ, नानी, पिता की मृत्यु के बाद बेटी के लिए माँ श्यामा और श्यामा के लिए बेटी चन्ना सहारा बनी। एक-दूजे के दु:ख से माँ-बेटी भली-भाँति अभिभूत हैं। चन्ना ही वह डोर है जिसके एक छोर पर शाहवंश और दूसरी छोर पर दीवानवंश बँधे हुए हैं। माँ-बेटी के सिर से पति व पिता का साया छिन जाना दोनों के अंतर्मन की गहरी अनुभूति को प्रकट करता है, जो स्मृतियाँ बन आँसू के रूप में निरंतर प्रवाहमान है। ''चन्ना माँ की गोदी में मुँह डालकर ऐसा रोई जैसे वह कभी नहीं रोई थी। बेटी का आलिंगन करके श्यामा इस तरह रोई जैसे वह उसकी जाई बेटी हो... अपनी बेटी।''16 एक पिता ही तो वह सूर्य था जिसके अस्त हो जाने के बाद भी उसकी स्मृतियों के चारों ओर ग्रह की भाँति माँ-बेटी परिक्रमा करती रहती हैं।

समय के साथ यौवनावस्था की रंगीन दुनिया में चन्ना के मुख पर मीठी मुस्कान स्पंदित होने लगती है। यौवन के झोंकों से रोम-रोम पुलकित होने लगता है। दिल में प्यार की बगिया से महक उठने लगती है, जिसकी खुशबू से सुरेश, बलवंत, गगन, कमल अनेक युवा आकर्शित होते हैं। किन्तु एक प्रेमी-प्रेमिका के मिलन की आकांक्षा अधूरी ही रहती है।

चन्ना के नाना शाह जो शाहवंश की शहंशाहत कायम किए हुए हैं, उनकी भी जड़ें घर के भेदियों ने खोदनी प्रारंभ कर दी- ''इस लड़की को जाने दो। इस बुढ़िया का सोये-सोये गला घोंट दूँगा कुछ दिन ठहर जा।''[17] ऐसा कुकृत्य विचार शाह के चचेरे भाई कृपाराम एवं उसके बेटे भागे द्वारा किया जाना शाहवंश की जड़ें खोदने का पहला कदम था, जो उनके अपनों के विश्वासघात को प्रकट करता है। इनकी कूटनीतियों ने एक दिन शाह के अधिकार, गर्व, रूतबा, स्वाभिमान की जड़ों को सदा के लिए धराशायी कर शाहवंश को मिटाने का प्रयास किया। उनकी संपत्ति जमीनों को औने-पौने दामों में या ठेके में बेचा जाना मानो शाहजी की शहंशाहत की नीलामी प्रतीत होता है। अंतत: शाहवंश को रोशन करने वाला मशाल आज कूटनीति की फूँक से बुझ जाती है। ''चौधरी ने कपड़ा उठाया, चन्ना देखने से पहले ही रो पड़ी, वही गोरा रंग, वही लंबी देह, शाहजी का हाथ पकड़ कर रो दी।''[18] किस्मत ने ऐसा खेल खेला कि चन्ना हर डार से बिछुड़ती गई। एक बच्ची अनाथ होकर भी अनेक बार अनाथ होती चली गई, जिसकी कल्पना से रूह काँप उठता है। चन्ना के दु:ख, स्मृतियों का आधिक्य उसके कोमल हृदय के मर्म को उद्घाटित करती है।

चन्ना का कमल के प्रति आकर्शण, प्रेम सुख की आकांक्षा, मिलन की उत्कंठा, प्रेम की भावभूमि पर दो कोमल हृदय का मिलन एक सुखद एवं नए अनुभव को परिलक्षित करता है। एक दिन शिमला की ऊँची चोटियों की ठंडी हवाओं में अंतर्मन की अधीरता, प्रेम का बढ़ता रंग, माँ श्यामा की मृत्यु से बेरंग एवं शब्दहीन हो जाता है। चन्ना की दुनिया से आज माँ के बाद एक और माँ सदा के लिए हिमालय की ऊँची चोटियों के मध्य गहरी खाई में रहस्यमयी प्रतीत होता है। वात्सल्य, ममत्व, स्नेह के अंतिम पुंज का भी अनाथ को अनाथ करके जाना अंतिम डार से बिछुड़ना चन्ना के दुर्भाग्य, हृदय के असीम दु:ख, व्याकुलता को प्रकट करता है। ''अब सोचने की शक्ति ही श्यामा में कहाँ शेष रह गई थी ? और फिर रात्रि के मौन प्रहरों में उनके और नर्स के हाथों श्यामा स्वयं अपने तन से दूर चली गई। नर्स के लिए ऐसी रात में नयापन कहाँ था और कमल तो स्वयं डॉक्टर है। चाची को अंतिम बार हाथ लगाकर देखा और मुँह ढँक दिया।''[19]

चन्ना के जीवन में जन-मानस की सांत्वना, संवेदना, मार्मिकता ही शेष रह गई है, जो उसके हृदय-स्थल के गहरे घाव को कुरेदती रहेगी। एक के बाद एक सभी डारों से बिछुड़ती चन्ना आज सूखी पत्ती की तरह अदृश्य हवा में संघर्श करती फड़फड़ा रही है। ''इन माँ के फूलों से क्या कुछ बिदा हो रहा है, पिता, बड़ी माँ, छोटी, माँ और वह परिवार जिसमें आज केवल चन्ना अकेली रह गई है। बिदा है माँ के फूलों को, जिन्होंने माँ को जोड़ रखा था, बिदा है माँ का ही नहीं चन्ना की भी, जिसके सिर पर अब माँ नहीं, भाई नहीं, बहन नहीं।''[20]

सचमुच चन्ना का सारा संसार आज ब्रह्माण्ड के अनंत में विलीन हो गया है, जो उनके हृदय में दु:खों का पहाड़ सा प्रतीत होता है। स्मृतियों के भंवर में चन्ना लगातार घूमते नजर आती हैं। मानो दु:ख, विशाद, क्लेश चन्ना का जीवन संघर्श बन गया है। चन्ना ही अब वह अंतिम चिराग है, जिसकी लौ किरण की उम्मीद शाह के नीलाम होते गर्व, अधिकार, स्वाभिमान, उनकी शहंशाहत को है। ''उस दिन आते ही वह हवेली में गई थी। कृपाराम देखकर भौंचक्के रह गये थे। चन्ना ने उनकी चारपाई पर बैठते हुए कहा- 'छोटे नाना अच्छे तो हो ?' जवाब में कृपाराम को बराबर खांसी ही आती रही थी। चन्ना ने बैठे-बैठे ही नाना के तख्तपोश पर नजर डाली थी चद्दर मटमैली पड़ी थी। तख्त पर चाँदनी नहीं थी, गावतकिये पर तेल का लेप हो चुका था। एक ओर जहाँ कभी शाहजी की चाँदी की दवात रखी रहती थी, पीतल की बदरंग दवात थी। आज शाहजी की कलम कहाँ थी ? चन्ना का मन हुआ कि रो दे, पर किसी तरह अपने को रोककर ऊपर चली गई।''[21] चन्ना एक ओर सबके छोड़ चले जाने के बाद एकाकीपन से संघर्श करती है तो दूसरी ओर नाना शाहवंश के हवेली, उनकी धरोहर एवं शहंशाहत को बचाने के लिए संघर्श करने को मजबूर है। चन्ना के हृदय में कमल के प्रति नि:स्वार्थ प्रेम निहित है, किंतु कमल किसी विदेशी जूलियन के प्रेम में बँधा है। कमल अपने जीवन को माँ के स्नेह तले चन्ना से विवाह कर समझौते की डोर से बाँध लेना चाहता है, परंतु चन्ना के

लिए ऐसे किसी भी समझौते को स्वीकार करना माँ के जीवन के इतिहास को दोहराने जैसा था, जो उन्हें किसी भी कीमत पर कतई स्वीकार्य नहीं था। ''कमल- 'चन्ना, मुझसे विवाह करोगी ?'... चन्ना मृदु कंठ से बोली- 'नहीं कमल।''[22]

कमल का चन्ना को अपलक देखते हुए विवाह प्रस्ताव लाना एवं चन्ना द्वारा उस प्रस्ताव को सहज ठुकरा देना, चन्ना के स्वाभिमान, बुद्धिमता, दूरगामी एवं अनुभवी सोच का परिचायक है। चन्ना को जीवन में माँ-बाप, नाना-नानी का भरपूर वात्सल्य एवं स्नेह न मिलना और न ही प्रेमी का निःस्वार्थ प्रेम मिलना उसके जीवन के दुःख-दर्द, विशाद एवं एकाकीपन को उद्घाटित करता है।

चन्ना के जीवन में वही गाँव, वही शहर, पहले जैसी ही हवा, सूरज किरणें, दरिया में लहराती किश्ती, परंतु पार ले जाने वाला नहीं। सब कुछ ताजा होकर भी आज अपनों की केवल यादें शेष रह गई है, जिसके सहारे एक निरीह, अनाथ, दुःखी व्यथित बच्ची का जीवन व्यतीत हो रहा है।

चन्ना जो गाँव की मिट्टी की सुगंध में पली-बढ़ी, जिसने बचपन से शाह के शहंशाहत देखी, आज उन्हें नीलाम होने से बचाने बेटों सी बेटी बनकर आई है। कृपाराम एवं भागे द्वारा शाह की पुश्तैनी एवं नामचीन जमीनों को बेच ऐय्याशी में लुटाना, जिसे चन्ना द्वारा संघर्श कर मूल्य देकर पुनः मुक्त कराना शाहवंश के अधिकार, गर्व, रूतबा, स्वाभिमान, आत्मसम्मान को कायम रखना निश्चित ही उसकी धेवती के रक्त में नाना शाह के शहंशाहत के बीज को प्रमाणित करता है। ''वह शाह की धेवती है शाह की, शाह नहीं तो आज शाह की नातिन तो है।''[23] चन्ना भले ही लड़की पैदा हुई, किंतु शाह के रक्त की रक्त बनकर लड़कों से एक कदम आगे रही। सारा संसार उजड़ जाने के बाद भी शाहवंश की जड़ों को उजड़ने न देकर उन्होंने साबित कर दिया कि लड़की लड़कों से कम नहीं होती।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि 'चन्ना' उपन्यास में चन्ना के जीवन में जन्म से लेकर आज तक दुर्भाग्य ने कभी साथ नहीं छोड़ा जड़ से जुड़कर भी वह हर डार से विलग होती गई। माँ, नानी, पिताजी, नाना, मौसी माँ अन्त में प्रेमी सभी ने चन्ना का साथ छोड़ दिया। उनके जीवन में दुःख, विशाद, बिछुड़न, तन्हाई, विदाई, शोक, व्याकुलता के बादल हमेशा छाये रहे। चन्ना को अपने जीवन में दुःख के सिवाय कुछ नहीं मिला। मिला तो सिर्फ करूणा, सांत्वना एवं संवेदनाएं जो मार्मिकता के धरातल पर स्मृतियों को ताजा कर नयनों को अश्रुधारा से भीगों जाती है। तथापि चन्ना अपनी जड़ों से उखड़ने के बाद भी दुःखी अर्न्तमन के साथ जीवन एवं जगत, जन्म एवं मृत्यु की गति को शास्वत स्वीकारते हुए जीवन में धैर्य एवं साहस बनाये रखती है। जीवन में सब कुछ लूट जाने के बाद अंततः कुछ है तो शाह की शहंशाहत जो आज भी उनकी धेवती चन्ना के रूप में उनकी विरासत की बुनियाद है, जो शाहवंश के दिल की धड़कन बनकर हमेशा धड़कती रहेगी। चन्ना का जीवन संघर्ष वास्तव में समाज में अपने आधार अपनी जड़ों एवं अपने परिवारों को सदैव के लिए खो देने वाले लोगों के लिए धैर्य, साहस, जीवन के प्रति उत्साह, जीजिविशा के रूप में प्रेरणा स्रोत बनी रहेंगी। अतः कह सकते हैं कि कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यास 'चन्ना' में चन्ना के जीवन संघर्ष को गहरी अनुभूति एवं मार्मिकता के साथ प्रस्तुत की है।

संदर्भ-सूची

1. सोबती, कृष्णा. चन्ना. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण, 2019, पृ. 5.
2. वही, पृ. 88.
3. वही, पृ. 91.
4. वही, पृ. 91.
5. वही, पृ. 93.
6. वही, पृ. 93.
7. वही, पृ. 95.
8. वही, पृ. 95.
9. वही, पृ. 144.
10. वही, पृ. 144.
11. वही, पृ. 144.
12. वही, पृ. 231.
13. वही, पृ. 232.
14. वही, पृ. 237.
15. वही, पृ. 237.
16. वही, पृ. 246.
17. वही, पृ. 258.
18. वही, पृ. 287.
19. वही, पृ. 344.
20. वही, पृ. 346.
21. वही, पृ. 380.
22. वही, पृ. 372.
23. वही, पृ. 384.

साहित्य एंव पत्रकारिता का अंतरसंबंध

अशोक मुरलीधर घोरपडे

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, अहमदनगर कॉलेज, अहमदनगर, महाराष्ट्र

मनुष्य में जिज्ञासा होती है इसकारण नए साधन निर्माण हो रहे हैं। विचार, कल्पना, विज्ञान आदि के प्रचार-प्रसार में भाषा का महत्वपूर्ण योगदान है। संप्रेषण में प्राचीन काल की अपेक्षा आधुनिक युग में परिवर्तन की गति अधिक पाई जाती है। यह गतिशीलता विज्ञान एवं तंत्रज्ञान के कारण बढ़ रही है। जानकारी का आदान-प्रदान संचार माध्यमों के निरंतर विकास से तत्काल हो रहा है। संचार माध्यमों में विविधता एवं नवीनता सतत निर्माण की जा रही है। मानव के पारिवारिक संवाद से वैश्विक संवाद में तेज गति से बदलाव आ रहे हैं। आज गली से दिल्ली ही नहीं बल्कि विश्व कहीं भी और कभी भी जानकारी तत्काल उपलब्ध हो रही है।मानव के लिए विभिन्न क्षेत्रों में हो रहे विकास के कारण भौतिक सुविधाएँ निरंतर बढ़ती जा रही है। संपर्क की दृष्टि से मानव नजदिक आ रहा है, नए-नए आविष्कारों से मानव जीवन आरामदायी बन रहा है। जबकि प्राचीन काल में एक खबर दूसरी जगह पहुँचाने के लिए दूत भेजने की व्यवस्था करनी पड़ती थी। बाद में डाक व्यवस्था का निर्माण हुआ। अब विविध प्रकार की खबरें विभिन्न माध्यमों के जरिए अलग.अलग ढंग से प्रसारित की जा रही हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं। समाचार पत्र.पत्रिकाएँ, डाक, तार, आकाशवाणी, दूरदर्शन, विविध चौनल्स, इंटरनेट आदि माध्यमों के विविध प्रयोग से संदेश, खबर, सूचनाएँ नित-नवीनता से प्रस्तृत हो रही है।

साहित्य शब्द का अर्थ है सहित या साथ होने का भाव। विभिन्न विद्वानों के अनुसार साहित्य की परिभाषाएँ निम्नत: है- आचार्य भामह ने काव्यालंकार ग्रंथ में लिखा है - ''शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।''[1] अर्थात काव्य का निर्माण शब्द और अर्थ मिलकर होता है। इसमें काव्य के अतिरिक्त अन्य ग्रंथों का भी समावेष हो जाता है। पंडितराज जगन्नाथ-(रसगंगाधर) ''रमणीयार्थप्रतिपादक: शब्द: काव्यम्।''[2] रमणीय अर्थ को अभिव्यक्त करनेवाला शब्द काव्य है। इसमें रमणीयता का तात्पर्य शब्द के साथ वाक्य तथा अर्थ से लिया जाए तो यह परिभाषा महत्वपूर्ण है। उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर कहा जा सकता है कि साहित्य में जीवन के यथार्थ एवं आदर्श की आलोचना है, जिसमें भाव, कल्पना, संगीत, भाषा आदि का परिष्कृत रूप विविध विधाओं में प्रस्तुत हो जाता है। साहित्य के अंतर्गत मानव अपनी भावनाएँ विविध विधाओं के माध्यम से अभिव्यक्त करता आया है, इसलिए अनेक भेद पाए जाते हैं। पद्य और गद्य के रूप में विभाजित करते हुए निम्नलिखित प्रकार संक्षेप में यहाँ देखे जा सकते हैं- प्राचीन काल भारत में पद्य में साहित्य निर्मिति हुई है। इस पद्य के निम्नांकित भेद पाए जाते हैं- महाकाव्य, खंडकाव्य, गीतिकाव्य आदि। हिंदी साहित्य में आधुनिक काल में गद्य साहित्य का विकास अधिक हुआ है। इस गद्य के विविध प्रकार पाए जाते हैं, जिनमें से प्रमुख भेद निम्नत: है, यथा- उपन्यास , कहानी-एकांकी,नाटक, निबंध आलोचना डायरी लेखन, रेखाचित्र- संस्मरण- जीवनी- आत्मकथा, रिपोर्ताज आदि।

पत्र यह एक माध्यम है, जो संदेश पहुँचान का कार्य करता है। इस पत्र का रूप विकसित हुआ। पत्रकारिता के लिए अंग्रेजी में 'जर्नलिज्म' शब्द प्रयोग होता है, यह जर्नलिज्म शब्द 'जर्नल' शब्द से बना हुआ है, जिसका अर्थ दैनिक भी है। 'जर्नल' में प्रत्येक दिन के क्रियाकलापों का कार्य तथा विवरण व्यक्त होता है। जर्नल शब्द की अपेक्षा जर्नलिज्म शब्द में व्यापक अर्थ बोध हो जाता है। पत्रकारिता के माध्यम से जनसामान्य तक सूचनाएँ पहुँचाई जाती है। इससे जनता को विभिन्न विषयों ज्ञान प्राप्त हो जाता है। डॉ. रमेश कुमार जैन -''प्रेस जनता की संसद हैं, जिसका अधिवेशन कभी भी समाप्त नहीं होता। एक वास्तविकता है कि जहाँ प्रेस जनता का जागरूक प्रहरी होता है वहाँ सरकार और जनता के मध्य एक विश्वसनीय संपर्क सूत्र की भूमिका निभाता है।''[3] नगेंद्र- ''पत्रकारिता का अभिप्राय है- समाचार.पत्रों, रेडियो, टैलीविजन आदि द्वारा प्रसारित करने के लिए समाचारों का संग्रह अथवा प्रेषण, उनका लेखन, संपादन या नियोजन।''[4] सी.जी.मूलर- ''पत्रकारिता एक व्यवसाय है जिसका सीधा संबंध सामाजिक ज्ञान से है। इस व्यवसाय के अन्तर्गत तथ्यों की प्राप्ति, ध्यानपूर्वक उसका मूल्यांकन तथा सम्यक् प्रस्तुति अनिवार्य है।''[5] पत्रकारिता के विविध परिभाषाओं के आधार पर कुछ लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। यथा-पत्रकारिता जनता एवं सरकार के बीच कार्य करती है। यह एक माध्यम है। इसके साधन शब्द, ध्वनि, चित्र आदि हैं। इसमें मुद्रित, श्रव्य, दृश्य सभी माध्यमों का समावेश होता है। समाज में विविध सूचनाओं का प्रचार निष्पक्षता से किया जाता है। पत्रकारिता में लोककल्याण, सेवा, मनोरंजन एवं व्यवसाय भी है। उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मुद्रित, श्रव्य, दृष्य-श्रव्य माध्यम से विविध सूचना जनता तक पहुँचाना पत्रकारिता है। पत्रकारिता एक कला है, जिसमें लोकहित प्रतिबिंबित होता है। पत्रकारिता में जनता के प्रति मार्गदर्शक एवं सेवा का भाव दिखाई देता है। उसमें आदर्श विचारों के साथ यथार्थ स्थिति की जानकारी भी दी जाती है। पत्रकारिता संचार का एक सशक्त माध्यम है, जो निरंतर गतिशील एवं विस्तारित होता जा रहा है।

पत्रकारिता एक अस्त्र है, जो समाज में परिवर्तन की दिशा देने का प्रयास करता है। इसमे अन्याय का विरोध करने के लिए जनमत तैयार करने की क्षमता पाई जाती है। इस संदर्भ में अकबर इलाहाबादी ने लिखा है-''खींचो न कमानों को न तलवार निकालो। जब तोप मुकबिल हो तो अखबार लिकालो।''[6] संचार साधनों में नवीनता से पत्रकारिता बहुआयामी बन गई है। आज पत्रकारिता के विभिन्न रूप सामने आ रहे हैं। विविध संचार साधनों के कारण पत्रकारिता का स्वरूप परिवर्तन का दौर चल रहा है। इसमें साहित्य और पत्रकारिता का क्षेत्र भी अधिक मात्रा में प्रभावित हुआ है। साहित्य और पत्रकारिता दोनों साथ-साथ चल रहे थे, किंतु बाद में पत्रकारिता का क्षेत्र विस्तारित होता गया। इसलिए साहित्य से पत्रकारिता की अलग पहचान बन गई। पत्रकारिता एक व्यापक रूप

लेकर सामने आ गया। साहित्य अपनी निरंतर गति से चल ही रहा है। आज साहित्य और पत्रकारिता में साम्य और वैषम्य स्पष्ट रूप से सामने आ रहे हैं। जिसे हम यहाँ समझने का प्रयास कर रहे हैं। 21 वीं शती में पत्रकारिता के स्वरूप में विस्तार हुआ है। आज इसमें जनसंचार के सभी माध्यम पत्रकारिता के कार्य को बढ़ाते हुए दिखाई दे रहे हैं। यथा- मुद्रित, श्रव्य, दृश्य माध्यमों में पत्रकारिता पल-बढ़ रही है। इसमें इंटरनेट एवं तकनीकी विकास हुआ। यह विकास सामान्य जनता तक पहुँचाने से एक क्रांति का वातावरण निर्माण हुआ है। सूचना पल भर में विश्व के किसी भी कोने तक प्रतिक्षण पहुँच रही है। दुनिया में प्रत्येक संकल्पना दूसरी संकल्पना से अलग-अलग पाई जाती है। इसी तरह साहित्य और पत्रकारिता में साम्य और वैषम्य दोनों दिखाई देते हैं।

साहित्य और पत्रकरिता दो स्वतंत्र विधा होते हुए भी उनमें कुछ मात्रा में साम्य भी दृष्टिगोचर हो जाता है। इसे विविध मद्दों के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है। साहित्य और पत्रकारिता का उद्देश्य जनकल्याण होता है। साथ ही दोनों में समाजहित का भाव होता है। दानों में लोककल्याण की भावना निहित होती है। समाज को सन्मार्ग दिखाने का कार्य साहित्य एवं पत्रकारिता में निहित होता है। साहित्य एवं पत्रकारिता दोनों सत्य के पक्षधर होते हैं। दानों विधाओं का उद्देश्य शोषण, दासता, अन्याय, अत्याचार को दूर करने का प्रयास रहता है। इन प्रश्नों, समस्याओं के प्रति समाज जाग्रति लाने का कार्य दानों विधाओं का लक्ष्य होता है। मानव एवं मानव से संबंधित सभी पहलुओं पर विचार विमर्श किया जाता है। इसमें मानव सेवा का लक्ष्य निहित होता है। समाज में सामुहिक हित के लिए साहित्य और पत्रकारिता ने जनमत तैयार करने के लिए अपना योगदान दिया है। यह कार्य सेवा के रूप में दोनों विधाओं में पाया जाता है। समाज सुधार, राष्ट्रविकास के प्रयास आज भी दोनों क्षेत्रों में हो रहे हैं। साहित्य और पत्रकारिता का संबंध मानवीय जीवन से होता है। मानव जीवन का संपूर्ण चित्रण साहित्य में पाया जाता है। समाज में घटित घटनाओं का प्रभाव दोनों विधाओं में पाया जाता है। इसी समाज से प्रेरित होकर साहित्यकार एवं पत्रकार अपनी लेखनी चलाते हैं। दोनों समाज के प्रति संवेदनशील होते हैं। दानों में मानव को विकसित करने का प्रयास रहता हैं। मानव जाति को उन्नत बनाने हेतु दोनों कार्यरत है। लेकिन इसमें मानव ही केंद्रबिंदु पाया जाता है।

साहित्य एवं पत्रकारिता के माध्यम से जीवन मूल्यों का समर्थन करने का प्रयास निहित होता है। काल के अनुसार जीवन मूल्यों को परिभाषित करने कार्य दोनों विधाओं में पाया जाता हैं। जीवन मूल्यों की रक्षा करनेवाला साहत्य ही आगे महत्व प्राप्त कर लेता है। पत्रकारिता में भी मूल्यों के बल पर की गई पत्रकारिता का विकास होता ही रहा है। वैश्विकरण के दौर में मानवीय मूल्य चरमरा रहे हैं, किंतु फिर भी इन मूल्यों के समर्थक भी समाज में दृष्टिगोचर होते हैं। इस तरह के लोगों के विचार समाज तक पहूँचाने का कार्य साहित्य और पत्रकारिता के माध्यम हो रहा है। आज समाज को मूल्यों की आवश्यकता महसूस हो रही हैं। इसलिए बच्चों को प्राथमिक कक्षाओं से ही मूल्यों की शिक्षा दी जा रही है। मानवी मूल्यों के अभाव में समाज की कल्पना एक भयानक सपना साबित हो सकता है। इसलिए इन मूल्यों की रक्षा हर युग में करना अनिवार्य है। इससे ही मानव एवं प्रकृति भी विकास संभव है। मानव मूल्यों के अभाव में समाज में नकारात्मक सोच बढ़कर गलत व्यवहार में मानव फँस सकता है। इसलिए मानव को निरंतर मूल्यों के आधार पर ही जीवन यापन करना आवश्यक है। साहित्य एवं पत्रकारिता दोनों विधाएँ समाज का दर्पण होती है, जिसमें समाज के अतीत, वर्तमान एवं भविष्य को अंकित किया जाता है। वे अपनी लेखनी से दुनिया के स्वरूप को चित्रित कर देते हैं। इस कारण दोनों में अटूट संबंध पाया जाता है। समाज के गुण-दोषों की अभिव्यक्ति साहित्य एवं पत्रकारिता में पाई जाती है। लेकिन इसतरह अभिव्यक्ति की पीछे गुणों को बढ़ाने एवं दोषों को हटाने की प्रेरणा होती है। साहित्य एवं पत्रकारिता के माध्यम से भाषा का विकास हो जाता है। इस संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते है-''जिस प्यारी हिंदी को देश ने अपनी विभूति समझा, जिसको जनता ने उत्कंठापूर्वक दौड़कर अपनाया, उसका दर्शन 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' में हुआ।''[7] मातृभाषा एवं राष्ट्रभाषा की महत्ता साहित्य एवं पत्रकारिता के दानों क्षेत्र में स्वीकार की गई हैं। आ.महावीरप्रसाद द्विवेदी साहित्य एवं पत्रकारिता के माध्यम से भाषा को परिमार्जित बनाने के सफल प्रयास किए हैं। भाषा के माध्यम से साहित्य और पत्रकारिता समाज तक पहूँचते हैं।

साहित्य और पत्रकारिता संबंधी श्री बालककृष्ण राव का कथन है- ''समसामयिक परिवेश से किसी-न-किसी रूप में प्रत्येक लेखक प्रेरणा ग्रहण करता है चाहे वह साहित्यकार हो या पत्रकार। दोनों ही लेखक है, दोनों ही सर्जनकार है, दोनों के कार्य किन्हीं ऐसे गुणों की अपेक्षा करते हैं जो दोनों के लिए अपरिहार्य है- अनाविल दृष्टि, चिंतन-लेखन में प्रेषणीयता की शक्ति। दोनों देश और काल के आयामों पर अपनी-अपनी विशिष्ट परंपराओं के अतिरिक्त उस संश्लिष्ट सांस्कृतिक परंपरा, उस सामाजिक चेतना प्रवाह से भी संबंध जिससे उन्हें अपनी बात औरों के प्रति निवेदित करने की प्रेरणा और शक्ति मिलती है। प्रत्येक पत्रकार अंशत: साहित्यकार भी है, प्रत्येक साहित्यकार अनिवार्यत: पत्रकार भी।'[8] बर्नाड शॉ का मत है कि ''कुशल पत्रकार साहित्यकार से भिन्न नहीं है। अगर साहित्य का काम विश्व को ठीक से देखना और परखना है तो पत्रकारिता का भी पहला कार्य यही है।''[9] इस प्रकार साहित्य और पत्रकारिता यह दोनों परस्परपूरक कला है। एक अच्छा साहित्यकार में पत्रकार के लक्षण होते हैं, तो एक अच्छे पत्रकार में साहित्यकार के लक्षण पाए जाते हैं। अनेक साहित्यकार पत्रकार बन जाते हैं, तो बहुत अच्छे पत्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी अपना नाम उँचे स्थान तक लेके गए हैं। इसलिए दोनों विधाएँ समाज विकास से संबंधित है।

साहित्य तथा पत्रकारिता में साम्य होते हुए भी कुछ वैषम्य भी प्राप्त हो जाते हैं। साहित्यकार अपने अंतर्गत एवं बाह्य जगत् के अनुभवों के चिंतन मनन को अपने किसी अन्य दबावों के अभाव में समयानुसार शब्दबद्ध करता है। साहित्यकार का 'मूड़' लेखन में महत्व रखता है। पत्रकार बाह्य जगत में घटित घटनाओं को देखकर या सुनकर जो अनुभव प्राप्त होता है, उसे संपादक, मालिक या सीमित समय के अनुसार अपने चिंतन को शब्दबद्ध करता है। पत्रकार का 'मूड़' लेखन में साहित्य लेखन की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण माना जा सकता है। साहित्यकार आम घटनाओं के तथ्यों से सूक्ष्म शाश्वत मूल्यों की खोज में अपनी रचना प्रस्तुत करने का प्रयास करता रहता है, जिसका प्रभाव सार्वकालिक सिद्ध हो जाता है। तो पत्रकार आम घटनाओं के तात्कलिक प्रभाव से स्थूल दृष्टि से वर्णन करने का प्रयास करता है, जिसका प्रभाव तात्कालीन युग में अधिक महत्वपूर्ण रहता है। इस संदर्भ में डॉ. कृष्णिबहारी मिश्र का मत द्रष्टव्य है-''भारतेंदु युग के साहित्य के विशिष्ट विवेचन के प्रसंग में प्राय: यह कहा जाता है कि अधिकांश पत्रकारिता का साहित्य है, जिस पर तात्कालीन प्रभाव प्रमुख है। इसलिए उसमें उन शाश्वत मूल्यों की कमी है जो साहित्य को युगसीमा से मुक्त करनेवाला और उसे युग-युग को आलोक देने की शक्ति से संपन्न करनेवाला अनिवार्य तत्व है।..... इसलिए वह युग विशेष का साहित्य होकर रह गया। युग-युग का साहित्य न हो सका।''[10] साहित्यकार तात्कालीन स्थितियों पर चिंतन, मनन एवं कल्पना का साथ लेकर रचना तैयार करता है, तो पत्रकार उसी स्थितियों का तात्कालिक महत्व को समझकर उसे समाचार या सूचना का रूप दे देता हैं।

साहित्य में संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति में कई बार कल्पना की अति पाई जाती है। किंतु पत्रकारिता में यथार्थ की बुनियाद पर कल्पना का अभाव अधिक रहता है। साहित्यकार एवं पत्रकार विविध समस्याओं-घटनाओं का चित्रण करते हैं। साहित्यकार के लेखन कार्य का संपादन लेखक ही करता है। साहित्य एवं पत्रकारिता दोनों माध्यम जीवन मूल्यों का समर्थन करते हैं। लेकिन इनके प्रस्तुति में भिन्नता दिखाई देती है। साहित्यकार विषय को अलंकारिक बनाकर जटिल बनाता है। साहित्य में अधिकतर प्राय: व्यंजना शब्द-शक्ति का प्रयोग अधिक रहता है। तो पत्रकार सरल भाषा के प्रयोग से आम जनता को समझने हेतु आसान बनाता है। पत्रकारिता में अधिकतर प्राय: अभिधा शब्द-शक्ति से जनता को जाग्रत करने का प्रयास रहता है। साहित्य में विरोधाभास को महत्ता दी जाती है, किंतु पत्रकारिता में विरोधाभास के लिए महत्ता नहीं पाई जाती। साहित्यकार किसी घटनाओं या समस्याओं में प्रश्नों को निर्माण करते हुए उत्तर की खोज पाठकों पर छोड़ देता है। और पत्रकार किसी घटनाओं या समस्याओं में जवाबों को खोजते हुए प्रश्नों के निर्माण की अपेक्षा पाठाकों से की जाती है।

साहित्य का प्रकाशन साहित्यकार के अनुसार होता है। लेखक अपना लेखन कार्य कभी भी अपने मर्जी से प्रकाशित कर सकता है। पत्रकारिता में लेखन कार्य संपादक एवं मालिक के अनुसार प्रकाशित होता है। शैलीस्तर पर भी साहित्य तथा पत्रकारिता में अंतर पाया जाता है। साहित्य में किसी घटनाओं के बारे में चिंतन-मनन एवं कल्पना के उपरांत विस्तार या संक्षिप्तता से लेखन किया जाता है। पत्रकारिता में शीघ्रता एक महत्वपूर्ण गुण माना जाता है। संक्षिप्तता यह भी पत्रकारिता में आवश्यक गुण है। आज लोगों को सबकुछ शॉर्टकट में या संक्षेप चाहिए। इसका कारण यह माना जाता है कि लोग अपने समय के प्रति सजग हुए है और उन्हें कम समय में अधिक चाहिए। साथ-ही-साथ सब हर खबर पहले जानना चाहते हैं। इसलिए गतिशीलता भी आ गई है। इंटरनेट एवं विज्ञान के विकास ने यह संभव बना दिया है। आजकल बहुत जानकारी क्षण में आपके पास पहूँच रही है। साहित्य भी ऑनलाइन प्रकाशित हो रहा है। अनेक पत्र-पत्रिकाएँ भी ऑनलाइन उपलब्ध हो रही है। अब भाषा संबंधी विचार करने पर पता चलता है कि साहित्यकार वही भाषा में लिखता है, जिस भाषा का ज्ञान उसे होता है। पत्रकारिता वही भाषा में लिखना पड़ता है, जिस भाषा में पत्र-पत्रिकाएँ निकलती है। भाषा का चुनाव साहित्य में लेखक पर निर्भर होता है। साहित्यकार अपने विधा के अनुसार या भावना के अनुरूप भाषा का चयन करता है। पत्रकारिता में भाषा के चुनाव के लिए संपादक या विषय के अनुसार प्रभाव पाया जाता है। हर एक पत्र या पत्रिकाएँ अपनी एक इमेज बनाए रखना चाहती है। इसकारण संपादक उसके भाषा पर संस्कार कर प्रकाशन के लिए भेजता है। साहित्यकार अपनी ही भाषा में लिखा हुआ प्रकाशन के लिए भेज देता है। पत्रकारिता में विविध व्यक्तिओं द्वार भाषा में विविध बदलाव करते हुए प्रकाशन के लिए दिया जाता है। साहित्य में भाषा संबंधी बदलाव लेखक का अपना अधिकार होता है। साहित्य और पत्रकारिता में विविध साम्य भले ही हो, किंतु वैषम्य भी पाए जाते हैं। इन्हीं कारण से साहित्य तथा पत्रकारिता में अंतर दिखाई पड़ता है। मनुष्य के भावनाओं से जुड़े होने के कारण अनेक बार इन दोनों में समानता दिखाई पड़ती है। परंतु दोनों में शैली एवं भाषा क चयन की दृष्टि से काफी अंतर आ जाता है। इसलिए दोनों स्वतंत्र रूप से विकसित हो रही है।

साहित्य अपनी निरंतर गति से बढ़ रहा है। मानव ने प्राचीन काल से साहित्य सृजन किया है। पत्रकारिता का आरंभ साहित्य के साथ देखा जाता है। किंतु बाद पत्रकारिता ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व निर्माण करने में सक्षम हो गई। साहित्य और पत्रकारिता का घनिष्ठ संबंध रहा है। साहित्यकार अपनी लेखनी पत्रकारिता के माध्यम से समाज तक पहूँचायी। अनेक साहित्यकार पत्रकारिता के क्षेत्र में आगे बढ़ गए। इसमें से अनेक साहित्यकार पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रसिद्ध हुए हैं। जैसे-भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, अज्ञेय, माखनलाल चतुर्वेदी आदि। पत्रकारिता से साहित्य का प्रचार अधिक गतिशील हुआ। इससे साहित्यकार अधिक पाठकों तक सहज रूप से पहूँच रहे हैं। आज तकनीक के युग में कोई भी आसान होता जा रहा है। कंम्प्यूटर एवं मोबाईल की दुनिया ने तो इंटरनेट की सुविधा के आधार पर पूरी दुनिया के लोगों को नजदिक लाकर खड़ा कर दिया है। इसमें अभिव्यक्ति के अनेक माध्यम निर्माण कर दिए। साहित्य और पत्रकारिता को पाठक तक पहूँचने के लिए इंटरनेट से अधिक गति प्राप्त हुई है। विविध लेखकों की विभिन्न रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा समाज तक पहूंचती हैं। पत्रकरिता के माध्यम से कम समय में अधिक लोगों के पास साहित्य सहजता एवं सरलता से पहूँच जाता है। साहित्य और पत्रकारिता में बहुत साम्य होते हुए भी वैषम्य भी पाए जाते हैं। इसतरह यह दोनों क्षेत्र मानवता के विकास राह विकसित करते हुए दिखाई देते हैं। साहित्य और पत्रकारिता का स्वरूप भले ही अलग-अलग दिखता हो परंतु दोनों का उद्देश्य जनकल्याण ही पाया जाता है। जब यह दोनों अपने मानवता के विकास की भावना से दूर जाएँगे तो उनका अस्तित्व भी प्रश्नांकित होकर रह जाएगा।

फुटनोट

1. काव्यशास्त्र- डॉ. भगीरथ मिश्र, सं. 2004, पृ.सं. 6
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य.सिद्धांत- डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त, सं. 2003, पृ.सं. 277
3. हिंदी पत्रकारिता: उद्‌भव और विकास, रचना भोला 'यामिनी', पृ.18
4. हिंदी पत्रकारिता: उद्‌भव और विकास, रचना भोला 'यामिनी', पृ.15
5. हिंदी पत्रकारिता कल, आज और कल- रसा मल्होत्रा, सं. 2005, पृ.सं.2
6. जनसंचार और हिंदी पत्रकारिता- डॉ. अर्जुन तिवारी, पृ.सं. 120
7. जनसंचार और हिंदी पत्रकारिता- अर्जुन तिवारी, सं.2004, पृ.139
8. जनसंचार और हिंदी पत्रकारिता- अर्जुन तिवारी, सं.2004, पृ.137
9. हिंदी पत्रकारिता की रूपरेखा- एन.सी.पंत, पृ.136
10. हिंदी पत्रकारिता की दिशाएँ- जोगेंद्र सिंह, पृ.27

अध्यापक एवं सूचना संचार एवं सूचना संचार प्रौद्योगिकी: बिलासपुर जिले के छात्राध्यापकों के संदर्भ में एक अध्ययन

विद्याभूषण शर्मा

पी.एच.डी शिक्षा शोधार्थी, श्री रावतपुरा सरकार, विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

डॉ० संजीत कुमार साहू

शोध निर्देशक, प्राध्यापक विभागाध्यक्ष, शिक्षाविभाग (श्री रावतपुरा सरकार, विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

पृष्ठभूमि - जीवन का हर क्षेत्र सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक सूचना प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रभाव से प्रभावित है। फलत: कौशल एवं ज्ञान की नवीनीकरण की प्रवृत्तियों का अभ्युदय हो रहा है। अत: इसे सूचना प्रौद्योगिकी युग की संज्ञा देना उचित होगा। सूचना प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रभाव से शिक्षा का क्षेत्र भी अछूता नहीं है, अत: अध्यापक को वर्तमान के साथ स्वयं को स्थापित करने हेतु सूचना संचार प्रौद्योगिकी के प्रति जागरूक होना आवश्यक है। एक कुशल शिक्षक के निर्माण में शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत प्रशिक्षार्थी भावी शिक्षक होते हैं, अत: इन प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षण के दौरान छात्राध्यापकों में विभिन्न प्रकार के कौशलों का विकास किया जाता है।

सूचना एवं संचार माध्यमों का उपयोगिता को देखते हुए नए आयाम के रूप में सूचना संचार प्रौद्योगिकी का प्रादुर्भाव हुआ जिसके महत्व को आज शिक्षा के क्षेत्र में भी स्वीकार किया जाने लगा है। आई.सी.टी. के महत्व को देखते हेतु कम्प्यूटर शिक्षा को विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों एवं अध्यापक शिक्षक पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है, क्योंकि कम्प्यूटर शिक्षा, रोजगारोन्मुख भी बन गई है। अत: शिक्षण संस्थाओं में कार्यरत शिक्षकों एवं शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत प्रशिक्षार्थियों के लिए भी कम्प्यूटर शिक्षा एक आवश्यक जरूरत के रूप में सामने आई है जिसके द्वारा शोध कार्य, शिक्षण सामग्री का निर्माण, शिक्षण विधियों का चुनाव संप्रेषण क्षमता एवं अपने ज्ञान का विस्तार करते हुए स्वयं के व्यक्तित्व को प्रभावशाली बना सकता है। अत: सूचना संचार प्रौद्योगिकी के प्रति छात्राध्यापकों की जागरूकता को जानने का प्रयास प्रस्तुत शोध पत्र द्वारा किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of The Study)

1. छात्राध्यापकों में आई.सी.टी. के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।
2. छात्राध्यापकों का आई.सी.टी. के परिपेक्ष्य में आधारभूत ज्ञान का अध्ययन करना।
3. छात्राध्यापकों द्वारा कक्षा-शिक्षण में आई.सी.टी. के उपयोग का अध्ययन करना।
4. आई.सी.टी. के उपयोग से छात्राध्यापकों में कौशलों में होने वाले विकास का अध्ययन करना।
5. कक्षा-शिक्षण में छात्राध्यापकों को आई.सी.टी. के उपयोग में आने वाली समस्याओं का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ (Hypothesis)

H_{o1}. छात्राध्यापकों में आई.सी.टी. के प्रति कोई जागरूकता नहीं होती है।

H_{o2}. छात्राध्यापकों में आई.सी.टी. के आधारभूत ज्ञान पर उनके लिंग का सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

H_{o3}. छात्राध्यापकों के आई.सी.टी. के आधारभूत ज्ञान पर उनके क्षेत्र का सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

H_{o4} . आई.सी.टी. के उपयोग से छात्राध्यापकों के तकनीकी कौशलों का विकास नहीं किया जा सकता है।

H_{o5} . कक्षा-शिक्षण में आई.सी.टी. जागरूकता एवं शिक्षक अभिवृत्ति के मध्य सार्थक सहसंबंध नहीं होता है।

शोध विधि

अध्ययन की प्रकृति के आधार पर प्रस्तुत शोध पत्र में वर्णात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श

बिलासपुर जिले के डॉ. सी. वी. रामन् शिक्षा महाविद्यालय,कोटा, जिला-बिलासपुर (छ.ग.) के बी.एड. एवं एम.एड. प्रशिक्षार्थियों को लिया गया है, जिनका विवरण निम्नानुसार है-

तालिका क्र. 1: न्यादर्श का लिंग एवं क्षेत्रवार वितरण

लिंग/क्षेत्र	*ग्रामीण*	*शहरी*	*कुल*
पुरूष	28	30	58
महिला	28	19	47
कुल	56	49	105

प्रयुक्त उपकरण

प्रदत्तों के संकलन हेतु सूचना संचार प्रौद्योगिकी जागरूकता मापनी एवं उपलब्धि परीक्षण का उपयोग किया गया।

सूचना संचार प्रौद्योगिकी मापनी

छात्राध्यापकों में आई.सी.टी. जागरूकता मापने हेतु उपयुक्त उपकरण उपलब्ध न होने के कारण अनुसंधानकर्त्ता के द्वारा स्वनिर्मित मापनी का उपयोग किया गया इस मापनी के 30 पद हैं, जो निम्नलिखित चार क्षेत्रों पर आधारित है:-

1. आई.सी.टी. जागरूकता
2. आई.सी.टी.आधारित शिक्षक अभिवृत्ति
3. कक्षा शिक्षण में आई.सी.टी. का उपयोग
4. आई.सी.टी.के उपयोग में संस्थान प्रबंधन से सहयोग

यह मापनी पंच बिन्दु आधारित अभिवृत्ति मापनी है।

उपलब्धि परीक्षण

उपलब्धि परीक्षण का निर्माण अनुसंधानकर्ता द्वारा किया गया है इसमें कुल पदों की संख्या 30 है जो व्यक्तित्व सिद्धान्त एवं अधिगम सिद्धान्त विषय पर आधारित है।

इन पदों को ब्लूम के वर्गीकरण के आधार पर ज्ञान, कौशल, अनुप्रयोग विश्लेषण संश्लेषण एवं मूल्यांकन शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया।

सांख्यिकी विश्लेषण

प्रदत्तों का विश्लेषण कर वितरण के प्रसमान्यता की जॉच की गई जिसका विवरण तालिका क्र. 2 में दिया गया है।

तालिका क्र. - 2

Mean	=	115.64	Median	=	115.26
Mode	=	115	SD	=	05.12
iQ	=	3.38	P90	=	122.03
P10	=	108.38	SK	=	0.125
Ku	=	0.25			

H_{01}- छात्राध्यापकों में आई.सी.टी.के प्रति जागरूकता नहीं होती है।

निष्कर्ष- परिकल्पना के परीक्षण हेतु स्वनिर्मित मापनी के प्रश्नों के औसत प्राप्तांक 90 एवं मापनी के प्रशासन द्वारा प्राप्त प्राप्तांकों के मध्यमान 115.64 प्राप्त हुआ जो मापनी के प्रश्नों के औसत प्राप्तांकों के मान से अधिक है। अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। अत: कहा जा सकता है कि छात्राध्यापकों में आई.सी.टी. के प्रति जागरूकता पायी गई।

H_{02}- छात्राध्यापकों में आई.सी.टी.के आधारभूत ज्ञान पर उनके लिंग का सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

निष्कर्ष - उपरोक्त परिकल्पना के परीक्षण हेतुआई.सी.टी. मापनी के प्रशासन से प्राप्त आंकड़ों को महिला छात्राध्यापकों एवं पुरूष छात्राध्यापकों में वर्गीकृत किया गया एवं आंकड़ों के आधार पर मध्यमान एवं प्रमाणिक विचलन की गणना की गई।

तालिका क्र. - 3: महिला एवं पुरूष छात्राध्यापकों की आई.सी.टी. के आधारभूत ज्ञान का अध्ययन

क्र.	*तुलनात्मक समूह*	*N*	*M*	*sd*	*t*	*df*	*Result*
1	महिला छात्राध्यापक	46	115.92	5.32	0.63	103	सार्थक नहीं
2	पुरूष छात्राध्यापक	59	115.29	4.84			

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि महिला छात्राध्यापक के प्राप्ताकों से प्राप्त मध्यामान = 115.92, प्रमाणिक विचलन = 5.32 है। पुरूषछात्राध्यापकों के प्राप्ताकों से प्राप्त मध्यमान = 115.29 व प्रमाणिक विचलन 4.84 है। जिनके सार्थकता के परीक्षण के लिए टी परीक्षण निकाला गया है जिसका मान गणना द्वारा 0.63 प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता की कोटि 103 के 0.05 स्तर के मान 1.98 से कम है। परिकल्पना स्वीकृत की गई। अत: छात्राध्यापकों में आई.सी.टी. के आधारभूत ज्ञान पर उनके लिंग का सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

H_{03}- छात्राध्यापकों में आई.सी.टी.के आधारभूत ज्ञान पर उनके क्षेत्र का सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

निष्कर्ष - परिकल्पना के परीक्षण हेतु आई.सी.टी. मापनी के प्रशासन से प्राप्त आंकड़ो को शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के आधार पर वर्गीकृत किया गया एवं आंकड़ों के आधार पर मध्यमान, प्रमाणिक विचलन की गणना की गई।

तालिका क्र. - 4: शहरी एवं ग्रामीण छात्राध्यापकों की आई.सी.टी. के आधारभूत ज्ञान का अध्ययन

क्र.	*तुलनात्मक समूह*	*N*	*M*	*sd*	*t*	*df*	*Result*
1	शहरी क्षेत्र	49	115.71	5.36	0.14	103	सार्थक नहीं
2	ग्रामीण क्षेत्र	56	115.57	4.72			

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि शहरी क्षेत्र के छात्राध्यापकों के प्राप्तांकों से प्राप्त मध्यमान = 115.71 व प्रमाणिक विचलन 5.36 है एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्राध्यापकों के प्राप्तांकों से प्राप्त मध्यमान 115.57 व प्रमाणिक विचलन 4.72 है। जिनके सार्थकता के जॉच के लिए जपरीक्षण किया गया। जिसका मान गणना के द्वारा 0.14 प्राप्त हुआ जो स्वतंत्रता की कोटि 103 के 0.05 स्तर के मान 1.98 से कम है। परिकल्पना स्वीकृत होती है। अत: छात्राध्यापकों में आई.सी.टी. के आधारभूत ज्ञान पर उनके क्षेत्र का सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

H^{04}. आई.सी.टी.के उपयोग से छात्राध्यापको के तकनीनी कौशलो का विकास नहीं किया जा सकता है।

निष्कर्ष:- उपरोक्त परिकल्पना के परीक्षण हेतु सूचना संचार प्रौद्योगिकी जागरूकता मापनी के तकनीकी कौशल के उपयोग से संबंधित क्षेत्र अर्थात् मापनी के ICT Awareness एवं ICT Based Classroom Teaching क्षेत्र के प्रश्नों को आधार माना गया है। जिसके अनुसार न्यूनतम प्राप्तांक 12 व अधिकतम प्राप्तांक 60 है। इनके मध्य औसत प्राप्तांक 36 है।

तालिका क्र. - 5

Mean = 46.8	Median = 46.8	Mode = 46.8
SD = 2.06	Q = 2.46	P_{90} = 50.45
P_{10} = 42.55	Ku = 0.311	

प्राप्ताकों से प्राप्त मध्यमान 46.8 है जो मापनी के क्षेत्र आधारित प्रश्नों औसत प्राप्तांक 36 से अधिक है अत: आई.सी.टी. के उपयोग से छात्राध्यापको में तकनीकी कौशलो का विकास किया जा सकता है।

H_{05}. कक्षा शिक्षण में आई.सी.टी.जागरूकता एवं शिक्षक अभिवृत्ति कें मध्य सार्थक सहसंबंध नही होता है।

निष्कर्ष - उपरोक्त परिकल्पना के परीक्षण हेतु आई.सी.टी. जागरूकता क्षेत्र के 6 प्रश्न एवं मापनी के शिक्षक अभिवृत्ति क्षेत्र से 13 प्रश्नों के प्रत्युत्तरों के आधार पर आई.सी.टी. जागरूकता एवं शिक्षक अभिवृत्ति के मध्य सह संबंध की गणना की गई गणना के द्वारा सह संबंध गुणांक 0.01 प्राप्त हुआ जो स्वतंत्रता की कोटि 103 के 0.05 स्तर के सारणीगत मान 0.178 से कम है अत: परिकल्पना स्वीकृत होती है। आई.सी.टी. जागरूकता एवं शिक्षक अभिवृत्ति के मध्य सह संबंध नहीं पाया गया। अत: छात्राध्यापकों द्वारा आधुनिक विधि से शिक्षण करने में रूचि पायी गयी।

शैक्षिक महत्व

आईसीटी शिक्षा के क्षेत्र में भी पूरी तरीके से अधिकार जमा चुकी है। ऐसे में शिक्षा के क्षेत्र में आईसीटी के महत्व को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। यहॉ शिक्षा के क्षेत्र में आईसीटी आधारित निम्नांकित महत्व है-

- औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनो स्वरूपों के शिक्षा में विकास एवं प्रभावी शिक्षक तैयार करने में नवीनतम सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है।
- सूचना संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षा को दूरस्थ अंचलों तक ले जाया जा सकता है।
- छात्राध्यापकों के आवश्यकतानुसार शिक्षण साम्रगी उपलब्ध कराने हेतु प्ब्का योगदान है।
- पाठ्यक्रम के निर्माण में।

- सृजनात्मकता का विकास।
- व्यक्तित्व का विकास।
- छात्राध्यापक के वास्तविक अनुभवों को विस्तार मिलेगा।
- छात्राध्यापक जब अपने शिक्षक अनुदेशक को प्रौद्योगिकी माध्यमों का प्रयोग करते हुए देखेगा तो वह स्वयं अपने शिक्षण में उनके प्रयोग की संभावनाओं की पहचान कर सकेगा।

उपसंहार

अत: छात्राध्यापकों में व्यक्तित्व निर्माण एवं आधुनिक युग के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने के लिए आईसीटी के प्रति उनका दृष्टिकोण सकारात्मक होना चाहिए एवं उनमें आईसीटी के प्रति जागरूकता का होना अत्यंत आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कपिल, एच.के. (2006):अनुसंधान विधियॉ. एच.पी. भार्गव बुक हाउस; आगरा. पृ. 70.71
2. पाण्डेय, के.पी. सूचना प्रौद्योगिकी के परिप्रेक्ष्य में अध्यापक शिक्षा की चुनौती भारतीय संदर्भ अन्वेषिका शिक्षक शिक्षा की भारतीय पत्रिका, vol 1(दिसम्बर 2004); 116.119.
3. Cawthera, A. 2001 ;Computers in Secondary School in Developing Contries : Costs and other issues.. Journal of Educational Planning and Administration, vol.XIX No-1.Jan.05.DFID Education Publication, Pp.50.
4. Kanade, H.M.1987; Trends in CIET'S Educational Television Programmes Over a Four –Year Period, 1982-86.CIGI project NCERT.
5. Ramanarao,B.V.2000; AN Aanlytical Study of Innovative Behaviour And Occupational Stress in Primary Grade Teachres of Bilaspur Division. Ph.D.Education,GGDU.Pp.173-174.

जिला बिलासपुर के माध्यमिक विद्यालयों के सामान्य एवं अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की आकांक्षा स्तर का अध्ययन

डॉ० विभा मिश्रा

पी.एच.डी. (शिक्षाशास्त्र) प्राचार्य, डी.पी. विप्र शिक्षा महाविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश

स्वतत्रंता के इतने दिनों पश्चात भी हमारे समाज में अनुसूचित जनजाति व सामान्य विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर में अन्तर है; जिसका कारण हमारी सामाजिक व आर्थिक स्थिति हैं। हमारे समाज में आज भी जातिगत भेद-भाव दिखाई देता हैं। यह मुख्यत: ग्रामीण क्षेत्रो में ज्यादा है; इसका मुख्य कारण इन क्षेघ्त्रो में शिक्षा का अभाव है। शिक्षको का दायित्व है कि वह इन क्षेत्रों में शिक्षा के द्वारा जातिगत भेद-भाव को दूर कर सभी को एक समान शिक्षित करे; जिससे अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों को भी समाज की मुख्य धारा से जोड़ा जा सके।

विद्यालय में भी उचित वातावरण एवं शिक्षक उपलब्ध कराकर विद्यार्थियों को सही मार्ग दर्शन कराया जा सकता है। विद्यालय में विभिन्न प्रकार के विद्यार्थी आते है जिनकी शैक्षिक आकांक्षा या आकांक्षाएं भिन्न-भिन्न होती है। शिक्षक को प्रत्येक विद्यार्थी को व्यक्तिगत भिन्नता का पता लगाकर उचित मार्गदर्शन प्रदान करे। विद्यालय में भिन्न जातियों के विद्यार्थी होते हैं जिनकी पारिवारिक स्थिति भी भिन्न-भिन्न होती है। उनकी शैक्षिक आकांक्षा का पता लगाकर उनकी दुर्बलताओं को दूर करने का प्रयास कर उनकी शैक्षिक आकांक्षा को प्रबल बनाया जा सकता है।

ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा में भिन्नता पाई जाती है जिसका प्रमुख कारण वहां का परिवेश होता है। ग्रामीण विद्यालय के विद्यार्थियों को भी शहरी विद्यालय के विद्यार्थियों के समान उचित वातावरण एवं सुख-सुविधाएं तथा प्रगति करने के लिए मार्गदर्शक शिक्षक उपलब्ध होने चाहिए जिससे दोनों विद्यालय के विद्यार्थियों में भिन्नता न पाई जाय।

विद्यार्थियों की आकांक्षाएं उनके पारिवारिक परिवेश पर भी निर्भर करती है। यदि बालक के अभिभावक शिक्षित एवं घर का माहौल शांति मय एवं पढ़ने का उचित वातावरण वाला हो बालक में उच्च आकांक्षाओं का विकास होगा। वह ज्यादा अच्छा सोचेगा और उसे पाने का प्रयास करेगा, क्योंकि उसका साथ उसके अभिभावक एवं शिक्षक दोनों देंगे परन्तु यदि बालक के अभिभावक अशिक्षित होते हैं तो बालक का पारिवारिक वातावरण भी ज्यादा अच्छा नहीं होगा जिससे वह सिर्फ अपने जीवन यापन के अच्छे मार्ग की ही आकांक्षा रखेगा जिससे वह ज्यादा आगे अग्रसित नहीं हो सकता इसलिए ऐसे विद्यार्थियों के अभिभावक से मिलकर बालक की उन्नति के लिए उन्हें प्रोत्साहन एवं उचित वातावरण प्रदान करने के लिए अनुरोध करना चाहिए जिससे बालक की शैक्षिक आकांक्षा उच्च हो। यह सब विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा के स्तर को जानकर किया जा सकता है।

1. प्रस्तावना

मनुष्य किसी भी राष्ट्र अथवा समाज का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। इस साधन के सर्वांगीण विकास से ही राष्ट्र उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकता है। इसके लिये आवश्यक है कि प्रत्येक मानव को यह सुविधा प्राप्त हो कि उसमें विकास करने की क्षमता है। संसार विभिन्नताओं से भरा हुआ है। प्रत्येक मनुष्य एक पृथक शीलगुण और कौशल को धारण किये हुए है जो कि समन्वित रूप से शेष अन्य लोगों से कहीं न कहीं अलग है जब इन शीलगुणों और कौशलों को उपयुक्त अवसर तथा वातावरण प्राप्त होता है तभी व्यक्ति का विकास उसकी क्षमता के अनुसार हो पाता है अन्यथा नहीं। इसके लिये शिक्षा प्राप्त करना अत्यावश्यक है। मनोवैज्ञानिक विकास एवं अनुसंधानों ने शिक्षा के स्वरूप को प्रभावित किया है। मनोविज्ञान ने व्यक्ति की आंतरिक शक्तियों और सामाजिक वातावरण को समझने में सहयोग दिया जिससे शिक्षा और मनोविज्ञान में बाह्य संबंध स्थापित हुआ।

आकांक्षा का अर्थ होता है वर्तमान स्तर से बढ़कर कुछ उद्देश्य को प्राप्त करने की अभिलाषा रखना। उच्च उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मनो-वैज्ञानिक रूप से आकांक्षा का होना जरूरी है। यह किसी व्यक्ति के वर्तमान स्तर से ऊपर उठने के लिए प्रेरित करता है। जो शिक्षा के द्वारा संभव है।

अध्यापक का कर्तव्य हो जाता है कि वह छात्रों में उनकी आकांक्षाओं के स्तर का निर्माण करे। शिक्षक का दायित्व है नए समाज की रचना करे। अत: यह आवश्यक हो जाता है कि नई पीढ़ी में इतना आत्म विश्वास भर दें कि देश, काल तथा परिस्थिति के अनुसार अपनी आकांक्षाओं के स्तर का निर्माण करे और देश तथा अपनी प्रगति की ओर अग्रसर हो।

मनुष्य अपने जीवन में अनेक प्रकार का ज्ञान व कौशल प्राप्त करता है, इस ज्ञान तथा कौशल में कितनी दक्षता व्यक्ति ने प्राप्त की है, इसका पता उस ज्ञान तथा कौशल के उपलब्धि परीक्षण से चलता है। विद्यालय की विभिन्न कक्षाओं में अनेक जाति वर्गों के छात्र शिक्षा ग्रहण करने के लिये आते हैं समान मानसिक योग्यताओं से सम्पन्न न होने के कारण वे समय की एक ही अवधि में विभिन्न विषयों और कुशलताओं में विभिन्न सीमाओं तक प्रगति करते हैं, उनकी इस प्रगति, उपलब्धि का मापन उपलब्धि परीक्षणों के द्वारा करने की व्यवस्था की जाती है।

मानव जीवन के विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। प्राचीनकाल से लेकर अब तक मानव सभ्यताओं को स्थानांतरण करने में और अच्छे नागरिक बनाने में शिक्षा की भूमिका अहम् रही है। समाज में व्यक्तिगत और सामुदायिक जीवन को शिक्षा प्रभावित करती है। यह मानव को खुशहाल एवं आनंदमय बनाती है। समाज की उन्नति एवं विकास इस बात पर निर्भर करता है कि बच्चों को किस तरह की शिक्षा का ज्ञान कराया जाता है।

शैक्षिक आकांक्षा किसी व्यक्ति की पढ़ाई में इच्छा है और इस इच्छा का मापन ही शैक्षिक आकांक्षा का स्तर कहलाता है। यह परीक्षण न केवल शैक्षिक आकांक्षाओं के स्तर का मापन करता है बल्कि आकांक्षाओं के प्रकार को प्रदर्शित करता है। यह परीक्षण उन विद्यार्थियों के परामर्श एवं निर्देशन के लिए उपयोगी है जो अपने लक्ष्य के निर्धारण एवं उसकी प्राप्ति के लिए क्रमबद्ध रूप से कार्य करते है।

आकांक्षा स्तर के निर्धारक तत्व

आकांक्षा स्तर के निर्धारक तत्व निम्नलिखित हैं:-

1. व्यक्ति के व्यक्तित्व प्रतिमान
2. व्यक्तिगत मूल्य
3. रूचियां
4. गत अनुभव
5. इच्छाएं
6. लिंग
7. सामाजिक आर्थिक स्तर
8. सामाजिक प्रत्याशाएं
9. समूह दबाव
10. सांस्कृतिक परंपराएं
11. सामाजिक मूल्य
12. सामाजिक पुरस्कार
13. स्पर्धा

समस्या की आवश्यकता एवं महत्व

बालकों में मानसिक तथा बौद्धिक आदि विभिन्नताएं दिखाई देती हैं। इन्हीं भिन्नताओं के कारण प्रत्येक बालक की आकांक्षाएं भिन्न भिन्न होती है। कुछ बालको की आकांक्षाएं अत्यधिक होती हैं वे कम समय में बहुत कुछ पाना चाहते हैं तथा कुछ बालकों की आकांक्षाएं सीमित होती हैं। बालकों की आकांक्षाएं उनकी जाति वर्ग के अनुसार भी भिन्न-भिन्न होती है। प्रस्तुत शोध द्वारा समाज में रहने वाले सामान्यएवं अनुसूचित जनजाति के बालकों की आकांक्षा का तुलनात्मक अध्ययन करने की आवश्यकता महसूस की गई।

समस्या का कथन

जिला बिलासपुर के माध्यमिक विद्यालयों के सामान्य एवं अनुसुचित जनजाति के विद्यार्थियों की आकांक्षा स्तर का अध्ययन।

संक्रियात्मक परिभाषायें

प्रस्तुत लघु शोंध में निम्न संक्रियात्मक शब्द आए हैं जिनकी परिभाषा निम्नानुसार है:-

माध्यमिक विद्यालय

वह विद्यालय जहॉ माध्यमिक स्तर की शिक्षा प्रदान की जाती है माध्यमिक विद्यालय कहलाते है।

सामान्य जाति

भारतीय संविधान के अनुसार वह वर्ग जो आरक्षित वर्ग मे नही आते है सामान्य जाति कहलाते है।

अनुसूचित जन जाति

''स्थानीय जनजातीय समूहो का एक ऐसा समुदाय जनजाति कहा जाता है जो एक सामान्य क्षेत्र मे निवास करता है तथा जिसकी एक सामान्य संस्कृति है''।

आकांक्षा स्तर

आकांक्षाएं तीव्रतम इच्छाएं है जिन्हे मनुष्य करने जा रहा है उसकी पूर्ति मे सहायक होती है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की आकांक्षा स्तर पर उनकी जाति के प्रभाव का अध्ययन करना।
2. माध्यमिक विद्यालय के सामान्य एवं अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की आकांक्षा स्तर पर उनकी क्षेत्र भेद के प्रभाव का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पना

1. माध्यमिक विद्यालयों के सामान्य एवं अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की आकांक्षा स्तर में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।
2. शहरी व ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों के सामान्य जाति के विद्यार्थियों की आकांक्षा स्तर में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

अध्ययन का परिसीमन

अध्ययन के लघु शोध क्षेत्र के लिए छत्तीसगढ़ राज्य के बिलासपुर जिले को चयनित किया गया है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए सर्वेक्षण शोध विधि का चयन किया गया है।

न्यादर्श चयन

प्रस्तुत शोध के लिए स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्श या न्यादर्शन विधि का चयन किया गया है।

प्रस्तुत शोध के लिए सम्पूर्ण जीव संख्या या समष्टि में से 1000 विद्यार्थियों को न्यादर्श के आकार के रूप में सम्मिलित किया गया है जिसमें सामान्य वर्ग के 500 विद्यार्थी तथा अनुसूचित जनजाति के 500 विद्यार्थियों को न्यादर्श के आकार के रूप में सम्मिलित किया गया है

चर

स्वतंत्र चर -माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थी

आश्रित चर:-शैक्षिक आकांक्षा

शोध उपकरण

प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए यासमीन घानी खॉन द्वारा निर्मित ''शैक्षिक आकांक्षा का स्तर परीक्षण'' उपकरण में लाया जा रहा है जो पूर्व मानकीकृत एवं वैध है।

प्रदतों का विश्लेषण

परिकल्पना-1 :- माध्यमिक विद्यालयों के सामान्य एवं अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की आकांक्षा स्तर में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

सारणी क्रमांक 4.1: माध्यमिक विद्यालयों के सामान्य एवं अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की आकांक्षा स्तरकासांख्यिकीय विवरण

क्र.	*समूह*	*विद्यार्थियों की संख्या*	*मध्य मान*	*मानक विचलन*	*df*	*टी का मान*	*परिणाम*
1	सामान्य विद्यार्थी	500	25.34	2.07	998	3.28	सार्थकं है।
2	अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थी	500	23.87	3.72			(0.01स्तर पर)

व्याख्या

उपर्युक्त गणना के आधार पर टी मूल्य का मान 3.28 एवं स्वतंत्रता की कोटि 998 प्राप्त हुई। स्वतंत्रता की कोटि 998 में सार्थकता स्तर 0.05 पर टी मूल्य का सारणीगत मान 1.97 एवं 0.01 स्तर पर 2.60 है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गणना किया गया टी मूल्य का मान सारणी के टी मूल्य से अधिक है जो यह दर्शाता है कि दोनों मध्यमानों के मध्य सार्थक अन्तर पाया जायेगा। अत: प्रथम परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है।

अत: यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि माध्यमिक विद्यालयों के सामान्य एवं अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की आकांक्षा स्तर में सार्थक अंतर पाया जायेगा।

परिकल्पना-2: शहरी व ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों के सामान्य जाति के विद्यार्थियों की आकांक्षा स्तर में सार्थक अंतर नहीं होगा।

सारणी क्रमांक 4.02: शहरी व ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों के सामान्य जाति के विद्यार्थियों की आकांक्षा स्तर का सांख्यिकीय विवरण

क्र.	*समूह*	*विद्यार्थियों की संख्या*	*मध्य मान*	*मानक विचलन*	*df*	*टी का मान*	*परिणाम*
1	शहरी विद्यार्थी	250	28.70	2.13	998	5.76	सार्थक है.
2	ग्रामीण विद्यार्थी	250	26.74	1.94			($p<0.01$)

सारणी क्र. 4.03 से ज्ञात होता है कि शहरी व ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों केसामान्य जाति के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर के प्राप्तांको का मध्यमान क्रमश: 28.70 व 26.74. है। सामान्य जाति के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का प्रमाणिक विचलन क्रमश: 2.13 तथा 1.94 है। गणना से प्राप्त ''टी'' का मान 5.76 है।

उपर्युक्त गणना के आधार पर टी मूल्य का मान 5.76 एवं स्वतंत्रता की कोटि 498 प्राप्त हुई। स्वतंत्रता की कोटि 498 में सार्थकता स्तर 0.05 पर टी मूल्य का सारणीगत मान 1.96 एवं 0.01 स्तर पर 2.59 है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गणना किया गया टी मूल्य का मान सारणी के टी मूल्य से कम है जो यह दर्शाता है कि दोनों मध्यमानों के मध्य सार्थक अन्तर पाया जायेगा। अत: परिकल्पना अस्वीकृत की जातीहै।

निष्कर्ष

''शहरी व ग्रामीण माध्यमिक विद्यालय के सामान्य जाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सार्थक अंतर पाया जायेगा।''

अनुसंघान के निष्कर्ष

शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में स्वंतत्रता प्राप्ति के इतनें दिनों पश्चात् भी जाति भेद भाव व्याप्त हैं। जिसका प्रभाव विद्यार्थीयों के आकांक्षा स्तर पर पड़ता हैं। शिक्षकों व समाज कों जातिगत भेद भाव से ऊपर उठ कर सभी छात्रों को समान शिक्षा देनी चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ-

- अग्रवाल, अग्रवाल, रेखा (1986). इफैक्ट ऑफ ज्यूडीसियल इंक्वायरी मॉड ऑल टीचिंग ऑन द डेवलपमेंट ऑफ स्टूडेंट वेल्यू, यूनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद, इलाहाबाद।
- अल्लेकर, ए.एस. (1958). प्राचीन भारत में शिक्षा,, नंदकिशोर एण्ड ब्रदर्स वाराणसी।
- कपिल: एच. के., अनुसंधान, विधियॉ,, एच.पी. भार्गव, बुक हाऊस, आगरा।
- कलमानी, एम (1991): ए स्टडी ऑफ द प्रॉब्लम आफॅ एडोलेसेंट एण्ड देयर वेल्यू सिस्टम 5थ सर्वे आफॅ एजूकेशन रिसर्च वॉल-2 न्यू देहली, एन.सी.ई.आर.टी. दिल्ली।
- गुप्ता नत्थूलाल, (1993). मूल्य परक शिक्षा, देहली विकास पब्लिकेशन, दिल्ली।
- गार्डिया, आलोक (2007): ए स्टडी ऑफ सम डिटरमिनर ऑफ डेमोक्रेटिक वेल्यू एमंग हायर सेकेण्डरी स्कूल बी.एच.यू, वाराणसी।
- गुप्ता, रंजन (1989): ए स्टडी आफ वेल्यू एण्ड मॉरल जजमेंट आफॅ एडोलसेंट आफॅ टू रिप्रेसेनटेटिव सेंटर आफॅ वैस्टर्न एण्ड ईस्टर्न 5थ सर्वे आफॅ एजूकेशन रिसर्च,, एन.सी.ई.आर.टी, न्यू देहली।
- घोष ए.जी (1987) डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ सोशल वेल्यू एमंग सर्टेन सेलेक्टेड स्टैण्डर्डस ऑफ यूथ एण्ड प्रिडिक्सन आफ गुड सिटिजनशिप विद द हेल्फ ऑफ द वैल्यू इन 9थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन न्यू देहली एनसी.ई.आर.टी, दिल्ली।
- चट्टोपाध्याय एवं दत्त (1956): भारतीय दर्शन, पटना पुस्तक भण्डार, पटना।

अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद (प्रतीकांतरण) : विश्लेष्णात्मक अध्ययन

डॉ० हरप्रीत कौर

सहायक प्राध्यापक, अनुवाद अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र, क्षेत्रीय केंद्र इलाहाबाद (प्रयागराज)

भूमिका : क्या हिंदी जनमानस में गहरे पैठ चुके रामराज्य, भीष्मप्रतिज्ञा, महाभारत या अश्वमेध का सीधा साधा शाब्दिक अनुवाद हो सकता है? वैसे ही जैसे पश्चिम में मेडोना को सौन्दर्य के रूप में, स्टालिन को निर्मम शासन के बतौर और हरकुलीज को शक्ति के प्रतीक के रूप में समझा जाता है। हिंदी के कई दार्शनिक शब्दों का अनुवाद अभी तक बिना समुचित व्याख्या किए नहीं हो पाया है। बिना अनुवाद के आज क्रिश्चियनिटी इतनी सर्वव्यापी नहीं हो पाती। बाईबिल एक ऐसा धार्मिक ग्रन्थ है जिसका विश्व की लगभग हर भाषा में अनुवाद उपलब्ध है। अकबर ने अरबी-फारसी में अनुवाद के लिए एक विभाग खोला जिसमें रामायण, महाभारत, गीता आदि के अनुवाद किये गए। भारत में पहली बार विलियम कैरी ने सत्रहवीं शताब्दी के अंत में बड़ी दुष्कर परिस्थितियों में बाईबिल का बांग्ला अनुवाद किया था। वह एक लंबी रोचक कहानी है। अनुवाद जैसे व्यवहारिक विषय पर सैधांतिकता में बँधकर बात करना थोड़ा मुश्किल काम है। फिर भी अकादमिक विषयों को अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से कई बिन्दुओं-उप-बिंदुओं में बांधकर शोध एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध कराया जाता है यही स्थिति अनुवाद के साथ भी है प्रस्तुत शोध आलेख में हम अनुवाद के इसी व्यवहारिक रूप पर चर्चा करते हुए आगे बढ़ेंगे। प्रस्तुत शोध आलेख के अंतर्गत अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद के फिल्म निर्माण संबंधी पक्ष पर चर्चा की जायेगी। दोनों विधाओं अनुवाद और मीडिया की अपनी अध्ययन दिशाएँ हैं। दोनों अध्ययन दिशाओं को समाहित करते हुए इस शोध आलेख में भारतीय सिनेमा में अंतरप्रतीकात्मक प्रयोगों को कुछ उदाहरणों द्वारा समझने का प्रयास करते हुए तुलनात्मक एवं विश्लेष्णात्मक दृष्टि अपनाने का प्रयास किया गया है।

शोध उद्देश्य

- अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद का अर्थ समझाना
- अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद को उदाहरणों सहित प्रस्तुत करना।

शोध उपकल्पना /आधारभूत प्रश्न

1. अंतर-प्रतीकात्मक अनुवाद क्या है?
2. भारतीय सिनेमा में अंतर-प्रतीकात्मक अनुवाद को कैसे देखा जा सकता है।
3. समानांतर सिनेमा का अंतर-प्रतीकात्मकता के साथ क्या संबंध है?
4. अंतरप्रतिकात्मक अनुवाद गुणवत्ता जांच(टूल्स)

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख में निम्नलिखित शोध प्रविधियां प्रयुक्त की गई हैं-

निदर्शन पद्धति, अंतर्वस्तु विश्लेषण, तुलनात्मक अध्ययन प्रविधि, विश्लेष्णात्मक प्रविधि। प्रस्तुत शोध में प्राथमिक आंकड़ों और संदर्भों का संग्रहण निदर्शन पद्धति द्वारा किया गया है।

शोध आलेख

'इंटरसेमियोटिक अनुवाद' शब्द का प्रयोग रोमन जोकोब्सन ने 1959 की शुरुआत में किया रोमन जोकोब्सन जब अनुवाद में भाषाई और सांस्कृतिक तत्वों को स्थानांतरित करने संबंधी अपनाई जा रही विधियों प्रविधियों की जांच कर रहे थे। उस समय जोकोब्सन Peircean semiotics (पर्स के सेमियोटिक्स) प्रतीक सिद्धांत से प्रभावित हुए और उन्होंने दावा किया कि मौखिक संकेत की व्याख्या करने के तीन तरीके हो सकते हैं;[1] 'इसका अनुवाद उसी भाषा के अन्य संकेतों में, किसी अन्य भाषा में, या किसी अन्य, प्रतीकों की अशाब्दिक संकेतों में किया जा सकता है'। उन्होंने उन्हें क्रमशः अंतर्भाषिक अनुवाद या पुनः शब्दांकन, अंतर्भाषी अनुवाद, और अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद या रूपांतरण कहा। चूंकि उनके लेख का केंद्रीय विषय कुछ और था, इसलिए उन्होंने

इंटरसेमीओटिक अनुवाद पर और अधिक ध्यान नहीं दिया, लेकिन यह (टर्म) शब्द उस आलेख में रहा.बल्कि अंतर-प्रतीकात्मकता (प्रतीकांतरण) कभी भी नया विषय नहीं रहा मनुष्य ने जीवन आरंभ से ही प्रतीकों की शाब्दिकता से सांकेतिकता की यात्रा अपनी सुविधानुसार की है। "यहाँ योकोब्सन को रोमन यकोब्सन के अनुसार प्रतीक व्यवस्था के आधार पर किसी भाषिक पाठ के अनुवाद के तीन रूप हो सकते हैं-

1. **अन्वयांतर-:** अनुवाद के इस रूप में एक भाषा की प्रतीक व्यवस्था के द्वारा उद्घाटित अर्थ का उसी भाषा की अन्य प्रतीक व्यवस्था के रूप में अंतरण किया जाता है। इसे अंत:भाषिक अनुवाद भी कहा जाता है। प्रेमचंद ने अपनी हिंदी कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' (माधुरी में प्रकाशित, 1924) उर्दू में 'शतरंज की बाजी' (जमाना में प्रकाशित, 1924) शीर्षक से अनुवाद किया था। उसमें उन्होंने केवल लिपि परिवर्तन ही नहीं किया था बल्कि शब्द के साथ-साथ वाक्य के चयन में भी परिवर्तन किया था। इससे रचना के वातावरण के घनत्व और संवेदना विवृति में अंतर हो गया था। इस प्रकार के अनुवाद को अन्वयांतर कहा जाता है।
2. **भाषांतरण-:** अनुवाद के इस रूप में एक भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा उद्घाटित अर्थ का दूसरी भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा अंतरण किया जाता है, इसे अंतर भाषिक अनुवाद कहा जाता है। रामधारी सिंह दिनकर द्वारा अंग्रेजी कविताओं का अनुवाद 'सीपी और शंख'इसका एक उदाहरण है।
3. **प्रतिकांतरण-:** इस रूप में मूल पाठ की प्रतीकात्मकता का अर्थ ग्रहण करके, गीत, उपन्यास का फिल्म के दृश्य बिम्बों द्वारा प्रतिकांतरण किया जाता है, इसे अंतर प्रतिकात्मक अनुवाद कहा जाता है। जैसे-शरतचंद का देवदास, प्रेमचंद का गोदान, फणीश्वरनाथ रेणु का तीसरी कसम, भीष्म साहनी के तमस, अमृता प्रीतम के पिंजर, विजय दान देथा की कहानी पहेली, आदि रचनाओं का अंतरण भाषेतर प्रतीक व्यवस्था द्वारा किया गया है। अर्थात भाषिक प्रतीक व्यवस्था को दृश्य प्रतीक व्यवस्था में बदलना जैसे किसी कहानी, कविता आदि को दृश्य में प्रस्तुत करना। शेक्सपियर के 'ओथोलो' नाटक पर निर्मित 'ओमकारा' फिल। सूरज का सातवाँ घोड़ा, गबन, पति पत्नी और वो, सारा आकाश, पेशावर एक्सप्रेस (वीर जारा), सेवासदन, गुनाहों का देवता, काशी का अस्सी (मोहल्ला अस्सी), त्रिया चरित्र (स्वामी) मारे गए गुलफाम उर्फ तीसरी कसम, उसने कहा था, यही सच है, टोबा टेक सिंह, आषाढ़ का एक दिन, सतह से उठता आदमी, दुविधा आदि फिल्में अंतर-प्रतीकात्मक अथवा प्रतिकांतरण का उदाहरण हैं।

सस्युर ने अपने अध्ययन में इस प्रतिकांतरण की प्रक्रिया को विस्तृत रूप से समझाने का प्रयास किया है। सस्यूर के भाषा-सिद्धांत की वैज्ञानिक उपलब्धि और परवर्ती चिंतन-परंपरा में उसकी स्वीकृति के पीछे एक महत्वपूर्ण कारण है कि उन्होंने सबसे पहले सही ढंग के कुछ आधारभूत प्रश्न उठाए उदाहरण के लिए उन्होंने यह पूछना चाहा कि उनकी अध्ययन-वस्तु एंव विश्लेषण-सामग्री (भाषा) की अपनी प्रकृति क्या है, इसके साथ ही उन्होंने अपनी अध्ययन प्रणाली को भी तर्कसंगत और वैज्ञानिक बनाने का प्रयत्न किया। भाषा को सस्यूर मानवीय व्यवहार के एक अन्यतम उदाहरण के रूप में देखते थे, वे मानव-व्यवहार के अन्य क्षेत्रों से काटकर उसे नहीं देखना चाहते थे। उनकी इस समग्र दृष्टि ने ही प्रतीक विज्ञान के क्षेत्र की कल्पना की" इसी प्रतीक विज्ञान ने अनुवाद के क्षेत्र में अध्ययन की कई दिशाएँ खोलीं।

सस्यूर के अनुसार-"भाषा प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके सहारे हम विचारों को व्यक्त करते हैं। इसी कारण इस व्यवस्था की तुलना लेखन पद्धति, गूंगे, बहरों द्वारा व्यवहृत (व्यवहार) वर्णमाला-व्यवस्था प्रतिकात्मक कर्मकांड विधान, शिष्टाचार के नियम, सैनिक संकेत चिन्हों आदि के साथ करना संभव है। वस्तुत: इन विभिन्न क्षेत्रों के बीच भाषा की अपनी व्यवस्था सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।"[2]

मनुष्य अपने सामाजिक कार्यकलापों को अपने भाषाई व्यवहार के द्वारा संपन्न करता है। मौखिक और सांकेतिक भाषा का आपस में गहरा जुड़ाव है अपने दैनिक जीवन में भी हम दोनों को एक साथ प्रयोग में लाते हैं। चित्रलिपि सुत्रलिपि के रूप में लिपि के प्रारंभिक विकास में इसके कई उदहारण मिलते हैं। हम अपनी ज्ञानेंद्रियों द्वारा ज्ञान अर्जित करते हैं। किसी वास्तु विशेष के बारे में जानकरी प्राप्त करते हैं। सूंघकर, देखकर, छूकर, चखकर, सुनकर हम क्रमश: नाकेंद्रियों, नेत्रेंद्रियों, स्पर्शइन्द्रियों, घ्राणेद्रियों का प्रयोग करते हैं। यहीं से ज्ञानार्जन के सारे रास्ते खुलते हैं। कभी कभी अपनी बात को कहने के लिए चित्र बनाना अथवा किसी कविता को चित्र के माध्यम से प्रस्तुत करना। किसी कहानी को फिल्म में परिवर्तित कर देना, ये सब अंतर-प्रतीकात्मकता के उदाहरण हैं। हमारे पास प्रतीक पहले से मौजूद है उसे दूसरे प्रतीक से स्थानांतरित कर दिया जाना प्रतीकांतरण है।

अंतर प्रतीकात्मक अनुवाद

अंतर प्रतीकात्मक अनुवाद में अनुवाद किसी भाषा की प्रतीक व्यवस्था से किसी अन्य भाषेतर प्रतीक व्यवस्था में अनुवाद किया जाता है। उदाहरण के लिए किसी कहानी को फिल्म के रूप में अंतरित करना वस्तुत: अंतर प्रतिकात्मक अनुवाद के अंतर्गत आता है। जैसे कि 'गोदान', 'गबन', 'साहब बीवी और गुलाम' आदि अनेक उपन्यासों को लेकर जो फिल्में बनी हैं वे अंतरप्रतिकात्मक अनुवाद के उदाहरण हैं। आजादी के बाद भारतीय रंगमंच पर शेक्सपीयर के जिन अनुदित नाटकों को जिस तरह खेला गया उस से भारतीय रंगमंच को एक नई दृष्टी मिली। विश्व विख्यात निर्देशकों ने जिनमें इब्राहिम अल्काजी, ब. ब कारंत, के नाम शामिल हैं, शेक्सपीयर के कई सारे नाटकों का भारतीय रूपांतरण हिंदी दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया। इनमें इ मिड नाईट ड्रीम, मर्चेंट ऑफ वेनिस, जुलियस सीजर, किंग लियर, मैकबेथ, रोमियो जूलियट इत्यादि हैं। यह भी प्रतीकांतरण के ही उदाहरण हैं।

इसी प्रकार किसी कविता का चित्रांकन भी अंतर-प्रतिकात्मक अनुवाद की कोटि में आता है। अनुवाद का यह प्रकार इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि कथ्य और अभिव्यक्ति के संबंधों पर आधारित प्रतीक की वास्तविक सत्ता उसकी प्रतीकात्मकता में होती है न कि उसके मात्र कथ्य या अभिव्यक्ति पक्ष में। अंतर-प्रतिकात्मक अनुवाद में मूलपाठ की प्रतीकात्मकता पर अपना ध्यान केंद्रित कर उसका अंतरण भाषेत्तर प्रतीक-व्यवस्था द्वारा किया जाता है।

शब्द-दृश्य संबंध :- भावों की अभिव्यक्ति के स्तर पर शब्द (मुद्रित भाषा) एक माध्यम है दृश्य सिनेमा अलग माध्यम है। किसी व्यक्ति के भाव एक माध्यम से दूसरे माध्यम द्वारा अनुवादित होकर अभिव्यक्ति का नया रास्ता खोलते हैं सिनेमाई भाषा के संप्रेषण को समझाने के लिए दृश्य-श्रव्य माध्यम पर ही आश्रित रहना पड़ता है। सिनेमाई भाषा ध्वनि +चित्र + नाटक तीनों के सहयोग का ही रूप है, इसलिए सिनेमा-कला विधा को दृश्य-श्रव्य के क्षेत्र की विकासशील कला माना जाता है। हिंदी समानान्तर सिनेमा में बहुत सी कहानियों पर फिल्में बनी हैं जो फार्मूला आधारित फिल्मों से भिन्न व्यक्ति, समाज के संघर्षों को प्रदर्शित करती हैं किसी भी फिल्म को समझने के लिए उसके निर्माण के विभिन्न पहलुओं को समझना जरूरी होता है कोई भी फिल्म कई छोटी कहानियों, पात्रों, परिवेश, भाषा, प्लॉट्स को लेकर चलती है यहाँ निर्देशक प्रतीकों, कहानियों पात्रों के माध्यम से दृश्य प्रतीकों को सृजित करता है। जब किसी फिल्म के अंतर-प्रतिकात्मक अध्ययन के बारे में विचार करते हैं तो हमें उन तमाम बिन्दुओं पर भी चर्चा करनी चाहिए जिन्हें किसी फिल्म निर्माण में आवश्यक अंग माना जाता है। केवल अनुवाद की सैधान्तिकी को फिल्म जैसे व्यवहारिक दर्शक केन्द्रित विषय पर नहीं लादा जा सकता इसलिए हम कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर चर्चा करेंगे जो फिल्म निर्माण में आवश्यक हैं। किसी कहानी अथवा उपन्यास आधारित फिल्म को तुलनात्मक दृष्टि से जाँचने -परखने के लिए तुलना करने के लिए दोनों विधाओं के आधारभूत बिन्दुं एक धरातल पर रखने होंगे तभी तुलना संभव है। किसी भी कहानी अथवा फिल्म में कुछ सामान बिंदु होते ही हैं तभी एक विधा को दूसरी विधा में बदलने का काम हो पाता है। जैसे फिल्म में स्टोरीलाईन कहानी में मुख्य कथा, गौण कथा आदि कहलाती है। पात्र दोनों में ही होते हैं बिना पात्रों के न कहानी संभव है ना फिल्म, प्लॉट्स और सवप्लॉट्स, ओपनिंग भी दोनों में होते हैं जिनके इर्द गिर्द कहानी घूमती है। क्लाईमेक्स और अंत दोनों में ही है। इसी आधार पर तुलनात्मक अध्ययन की पृष्ठभूमि निर्मित होती है। जिसे हम निम्न बिन्दुओं के आधार पर तुलना करते हुए समझ सकते हैं-

1. **स्टोरीलाईन :** फिल्म में स्टोरी के दो प्रकार लीनियर नॉन-लीनियर होते हैं।

जब कोई निर्देशक किसी कहानी पर फिल्म निर्माण करता है तो सबसे पहले उसे यह ध्यान रखना होता है कि इस निर्माण में सबसे अधिक ध्यान कहानी को उसी रूप में बचाए रखना है जैसी कि वह है। परन्तु बहुत बार यह असंभव हो जाता है। यहीं अंतर-प्रतीकात्मकता(प्रतिकांतरण) टूटने लगता है। कुछ सजग पाठक वही देखना चाहते हैं जो कि उन्होंने उपन्यास में पढ़ा था। और कुछ ने उपन्यास या कहानी मूल रूप में पढी नहीं तो वे नहीं जानते कि कहानी में क्या था उनके लिए फिल्म नई है और हो सकता है वे फिल्म के उस भाव,उस कहानी से आनन्द लेने में सफल भी हो जाएँ जो कि निर्देशक चाहता है। लेकिन यहाँ देखना होगा कि उपन्यासकार क्या चाहता था? मढी दा दीवा फिल्म को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करें तो गुरदियाल सिंह के उपन्यास 'मढी दा दीवा' उपन्यास में भूमिहीन दलितों के साथ हो रहे अन्याय और शोषण की गाथा के साथ-साथ संयुक्त परिवार से एकांकी परिवारों में बदल रहे समाज और परिवार विभाजन की त्रासदी की कहानी मुख्य कथा है इसी के साथ एक गौण कथा के रूप में असफल प्रेम संबंध की त्रासदी भी दिखाई गई है। गुरदियाल सिंह (लेखक) चाहते हैं कि उपन्यास में जिस भूमिहीन दलितों के साथ हो रहे अन्याय और शोषण की गाथा और संयुक्त परिवार से एकांकी परिवारों में बदल रहे समाज और परिवार विभाजन की त्रासदी की कहानी उन्होंने कही है पाठक उसे समझें और उस समय के समाज की स्थितियों परिस्थितियों का आकलन कर पाएं। उसके बाद गौण कथा के रूप में असफल प्रेम संबंध की त्रासदी है उस त्रासदी को भी पाठक समझे जो उपन्यास में एक प्रसंग के रूप में साथ-साथ चल रही है। लेकिन जब हम फिल्म देखते हैं 'मढी दा दीवा' में प्रेम की त्रासदी को मुख्य कथा के रूप में प्रस्तुत कर दिया गया है। जिससे उपन्यास के मूल भाव को क्षति पहुँची है। उपन्यासकार जो कहना चाहता है वह नहीं आ पाया निर्देशक जो दर्शाना चाहता है, वह आ गया है।

1. **प्लॉट्स और सवप्लॉट्स** (शुरुआत) ओपनिंग का अर्थ है फिल्म का परिचय कराना। अर्थात फिल्म की शुरुआत करना। फिल्म का कोई एक किरदार फिल्म में प्रवेश करता है और दर्शकों को अन्य किरदारों से परिचित कराता है। कई बार उपन्यास कहानी में सूत्रधार कहानी कहता हिया जबकि फिल्म में दृश्यों के साथ फिल्म की ओपनिंग होती है।
2. **कलोजर :** इस चरण में कहानी अपने अंत की तरफ बढ़ती है। जहां फिल्मकार अपनी कहानी को अंत की तरफ पहुंचाते हुए फिल्म को आगे बढ़ाता है यह कथानक तथा उसके किरदारों की परिणति का चरण होता है। इस क्लोजर में निर्देशक कहानीकार से कितना मार्गदर्शन लेता है यह भी सोचने का विषय है।
3. **संघर्ष :** किस पात्र के संघर्ष को उपन्यासकार,कहानीकार ने अपनी कहानी में प्रमुख माना है जिससे आगे की कहानी आकार ग्रहण करती है। फिल्मकार यहाँ प्लॉट्स सबप्लॉट्स में छूट नहीं ले सकता। जैसे पिंजर में अमृता प्रीतम ने पूरो के संघर्ष को दिखाया है। फिल्मकार ने भी फिल्म में पूरो के ही जीवन संघर्ष को विभिन्न संकेतो, प्रतीकों, डायालोग्स आदि के माध्यम से दर्शाया है। 'मढी दा दीवा में जगसीर का जीवन संघर्ष है। और भी बहुत से उदहारण हैं जैसे भीष्म साहनी के उपन्यास तमस पर निर्मित फिल्म, शिवमूर्ती की तिरिया चरित्र आदि में मुख्य पात्रों के संघर्ष को जैसा लेखक चाहता है वैसा दिखाने का प्रयास दिखाई देता है। कहानी में छूट सभी निर्देशक लेते दिखाई देते हैं।
4. **कारण-प्रभाव :** किसी घटना से किरदार का जीवन बदल जाता है उसे ही कारण और प्रभाव कहते हैं। जैसे मढी दा दीवा में जगसीर, पिंजर में पूरो, तिरिया चरित्र में विमली आदि का जीवन कहानी की प्रमुख घटना से बदलता दिखाई देता है।
5. **क्लाईमैक्स :** यह फिल्म के कथानक का वह भाग होता है जिससे दर्शकों की जिज्ञासा बढ़ जाती है । कहानी और फिल्म को अंतर प्रतिकात्मक दृष्टि से देखने पर फिल्म और कहानी में क्लाईमेक्स एक जैसा भी हो सकता है और भिन्न भी। कई बार फिल्म निर्मिती में क्लाइमेक्स कहानी को पीछे छोड़ देता है।

ऊपर जिन पांच बिन्दुओं को हमने प्रतीकांतरण अथवा अंतरप्रतिकात्मक अध्ययन का आधार बनाया उन्हीं बिन्दुओं के अंतर्गत इसे जांचने परखने और अपने इस अध्ययन को और अधिक पुख्ता बनाने के लिए हम दोहराव और निर्माण (क्रिएशन) के अंतर्गत यह समझने का प्रयास करेंगे कि जिस तरह लिखित अनुवाद

में अनुवादक कुछ तथ्यों, घटनाओं अथवा बिन्दुओं को दोहराने की छूट ले सकता है उसी प्रकार कहानी पर फिल्म निर्माण करने वाला निर्देशक भी यह छूट ले सकता है। नाटक को मंच पर खेलने के दौरान ऐसे कई उदाहरण हम देखते हैं जो लिखित रूप में एक बार है लेकिन दृश्य में वह निर्देशक की अपनी समझ अथवा उसके प्रस्तुतीकरण अथवा सौन्दर्य बोध पर निर्भर करता है कि वह उस दृश्य को एकाधिक बार मंच पर उपस्थित कर दे। जयशंकर प्रसाद के नाटकों के मंचन की यदि हम बात करें तो उनके यहाँ दृश्यों की इतनी जटिलता है कि कई दृश्यों को मंचीय ना मानते हुए निर्देशक उन्हें दर्शाने से बचते हैं जैसे युद्ध के दृश्यों को मंच पर दिखाना संभव नहीं है इसलिए उन्हें दिखाने के लिए वे घोड़ों की टापों की ध्वनि अथवा रोशनी को एक साथ प्रस्तुत करते हैं। जबकि मोहन राकेश के नाटक आधे अधूरे में सावित्री के चेहरे को बार-बार दिखा कर उसके भीतर की अनिश्चितता और असंतुष्टियों को प्रदर्शित करते हैं। इस तरह दोहराब करना अथवा दोहराव से बचना दोनों स्थितियां संभव हैं।

दोहराव (Repetition) :- फिल्म में एक ही दृश्य को बार-बार दिखाने को उसे repetition कहते हैं। जैसे भीष्म साहनी के उपन्यास पर बनी फिल्म तमस में नत्थू (ओमपुरी) का चेहरा बार-बार दिखाया जाना, कांग्रेस कार्यकर्ताओं को बार बार दिखाना। कभी-कभी ऐसा होता है कि कहानीकार अपनी कहानी में केवल एक या दो बार किसी दृश्य को लिखता है लेकिन फिल्मकार फिल्मांकन के दौरान उन्हें बार-बार प्रस्तुत करता है। इसके पीछे एक कारण तो यह हो सकता है कि दर्शक लगातार उस भाव में बना रहे। दूसरा वह उसी दृश्य को फिल्म के लिए अधिक प्रभावी और आवश्यक मानता है। या कई बार कहानीकार किसी बात को बार-बार लिखता है और फिल्मकार उसे केवल एक बार दर्शाता है तब भी इस स्थिति को देखा जाता है। कभी-कभी यह होता है कि इस दोहराव के कारण फिल्म कहानी से अधिक प्रभावी हो जाती है और कभी-कभी इसके उलट फिल्म कहानी को परदे पर उतारने में असफल हो जाती है।

2. निर्माण, निर्मित, सृजन (Creation) :- कभी ख़कभी कहानी के कुछ संवाद अथवा प्रसंग जो लंबे या कई बार अनावश्यक भी होते हैं उन्हें निर्देशक गीत के माध्यम से प्रदर्शित करता है गीत फिल्म में दर्शक वर्ग के लिए अधिक आकर्षण का केंद्र भी होते हैं क्योंकि कम समय में दर्शक कई दृश्यों को देखता है और गीत की ध्वनि दर्शक को अलग तरह से प्रभावित करती है। एक गीत में बहुत सारे दृश्यों तथा उनके अर्थ को दिखाया जा सकता है। जिसमें प्रतीक का अधिक से अधिक प्रयोग हो सकता है कहानी में गीत के लिए स्थान नहीं होता क्योंकि गीत केवल फिल्म दृश्य माध्यम में ही अधिक आकर्षक होते हैं। फिल्म में निर्देशक द्वारा गीत के दृश्य को creat जाता है। शिवमूर्ती की कहानी तिरिया चरित्र पर बनी फिल्म में जब विमली का गौना होता है तब फिल्म में गीत दिखाया गया है, विमली जब मेला देखने जाती है, तब भी निर्देशक ने गीत के माध्यम से कई दृश्य दिखाए हैं जो कि फिल्म में संवाद के माध्यम से दिखाना मुश्किल था क्योंकि ऐसा करने पर फिल्म के समय को और अधिक बढ़ाना पड़ता है। तमस में कुंएं में कूदकर जान देने के दृश्य को पूरा गीत के साथ प्रस्तुत किया गया है 'देह शिवा वर मोहे' के द्वारा स्त्रियों में ऊर्जा का संचार होता है और जब तक वे सभी कूद ना जाएँ तब तक गीत बजता रहता है। वे प्रसंग और संवाद ही गीत के माधम से प्रस्तुत किये जाते हैं जो मुख्य कथा में सहायक की भूमिका में होते हैं। लेकिन कुछ फिल्मों में यह भी देखा गया है कि कहानीकार अथवा उपन्यासकार ने जिन दृश्यों को अपनी कहानी का प्राण माना उन्हें निर्देशक ने गीत में बहुत हलके ढंग से प्रस्तुत कर दिया जिस से फिल्म उस संवेदना को अभिव्यक्त ना कर पाई जो कहानी में थी।

3. हटाना, विलोपन (deletion) :- कई बार किसी कहानी अथवा उपन्यास आधारित फिल्म में निर्देशक कुछ संवादों, घटनाओं, चरित्रों को फिल्म में नहीं दिखाता इसके कई कारण हो सकते हैं। सेंसरशिप एक बहुत बड़ा कारण है। फिल्म का दर्शक वर्ग पुस्तक अथवा उपन्यास के पाठक वर्ग से भिन्न वर्ग भी हो सकता है। जरूरी नहीं कि केवल उपन्यास और कहानी पढने वाले चुनिंदा लोग ही फिल्म भी देखें। फिल्म का दर्शक कोई अनपढ़ व्यक्ति भी हो सकता है। जीवन मूल्यों की टकराहट, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक कारण भी किसी कहानी के कुछ हिस्सों को हटाने का कारण बन सकते हैं कई बार कहानी के गाली गलौच को फिल्म में नहीं रखा जा सकता। जैसे मौहल्ला अस्सी को लंबे समय तक सेंसरशिप के चलते रिलीज नहीं किया गया। जबकि फिल्मकार ने बहुत काँट छांट करके उपन्यास में प्रयुक्त बहुत सी गालीगलौज से परहेज किया। ऐसे ही कुछ अन्य फिल्में जैसे तिरिया चरित्र में कुछ दृश्यों को निर्देशक ने सामाजिक निंदा के डर से नहीं दिखाया तिरिया चरित्र में जब विमली को पंचायत सजा सुनाने का एलान करती है विमली का पिता विमली के ससुराल आता है, परन्तु जब वह जानता है कि विमली को लोहे से दागने की सजा सुनाई जा चुकी है तब वह पंचों के पास नहीं आता वहीं से चला जाता है यदि फिल्मकार इस दृश्य को दर्शाता तो दर्शक वर्ग में विमला के प्रति उतनी संवेदना नहीं आ पाती जितनी निर्देशक चाहता है। इस दृश्य को ना रखने का एक कारण यह भी हो सकता है कि सामाजिक मान्यता "बेटी की अर्थी ससुराल से उठनी चाहिये" को निर्देशक परदे पर पर्दशित करना चाहता है। इस प्रकार फिल्मकार कुछ जोड़कर और कुछ घटाकर फिल्म निर्माण में कहानी के साथ छेड़छाड़ करने की छूट लेता है जो कि विधांतरण के लिए आवश्यक भी है लेकिन कई बार संप्रेषणीयता प्रभावित होती है।

निष्कर्ष : Roscommon की उक्ति है "your auther always will be the best advise Fall when he Falls and rise when he rises" अनुवाद एक भाषा से दूसरी भाषा में शाब्दिक अनुवाद करते समय Roscommon की इस उक्ति की सार्थकता भले ही कुछ हद तक हो लेकिन विधांतरण में यहाँ एक विधा से दूसरी विधा में पूरी प्रतीक व्यवस्था को बदलना है तब यह संभव नहीं है कि आपका लेखक जो कहता है वही हूबहू विधांतरित हो जाए। प्रतीकातरण और अंतर-प्रतीकात्मकता की स्थिति में भी ऐसा ही है। हालांकि इस तरह की सैधांतिकी इस विधा में अभी तक विकसित नहीं हो पाई है जिसके द्वारा हम इस प्रकार के अध्ययन कर पाएं फिर भी निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर हम किसी कहानी अथवा उपन्यास पर बनी फिल्म का अंतर-प्रतिकात्मक अध्ययन कर सकते हैं जिसमें कथानक के आधार पर, पात्रों के आधार पर, भाषेतर प्रतीकों के माध्यम से, फिल्म में संगीत के माध्यम से, परिवेश के आधार पर अंतरप्रतिकात्मक अध्ययन आदि किया जा सकता है प्रस्तुत शोध में हमने इन्हीं बिन्दुओं के अंतर्गत कुछ फिल्मों के उदाहरण देते हुए अध्ययन किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, (2005)। 'भाषा शिक्षण; दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
2. पालीवाल, रितारानी, (2004)। अनुवाद प्रक्रिया एंव परिदृश्य; नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
3. जादौन, राम गोपाल, अनुवाद विज्ञान, स्वरूप और समस्याएं
4. नगेन्द्र श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, भाषाशास्त्र के सूत्रधार; दिल्ली: मयूर पेपरबैक्स
5. सहगल, नगीन चंद, (1991). काव्यानुवाद; दिल्ली: टुडे आफसैट प्रेस।
6. रत्तू, कृष्ण कुमार. (2003), अनुवाद का नया चेहरा; जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी।
7. गिल, हरजीत सिंह, (1990), संकेतन और संकेत विज्ञान; हिंदी संस्थान: आगरा।
8. श्रीवास्तव, गोस्वामी, कृष्णकुमार। (1995)। 'अनुवाद सिद्वांत और समस्याएँ: दिल्ली: आलेख प्रकाशन।
9. सिंहल, सुरेश। (2003)। सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद: स्वरूप एंव परंपराएँ; नई दिल्ली: सार्थक प्रकाशन।
10. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ। (2004)। भाषा विज्ञान सैधांतिक चिंतन; दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन।

फुटनोट

डॉ. नगेन्द्र, भाषाशास्त्र के सूत्रधार, श्रीवास्तव, डॉ. रवीन्द्रनाथ,मयूर पेपरबैक्स, दिल्ली, पृ. 94

श्रीवास्तव, डॉ. रविंद्रनाथ, गोस्वामी, डॉ. कृष्णकुमार, अनुवाद : सिद्धांत और समस्याएँ आलेख प्रकाशक, दिल्ली, पृष्ट 108

चीनी यात्रियों के विवरण में भारत की कृषि व्यवस्था

डॉ० अजय कुमार सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर; प्रा० इतिहास, ठा० मातिवर सिंह पी०जी०, कालेज, जमालापुर, जौनपुर

प्राचीन काल में समाज का उत्कर्ष मानव के आर्थिक जीवन की सम्पन्नता, समुन्नति और सुख-सुविधा पर आधारित रहा है। मानव का भौतिक और लौकिक सुख उसके जीवन के आर्थिक विकास से प्रभावित होता रहा है। समयानुसार मनुश्य की आवश्यकताओं के अनुरूप आर्थिक कार्यक्रम परिवर्तित होते रहे हैं परन्तु आर्थिक जीवन का मूलाधार कृषि रही है। भारतीय शास्त्रकारों ने कृषि को 'वार्ता' के अन्तर्गत विवेचित किया है। आज भी लगभग 80 प्रतिशत लोग कृषि पर अवलम्बित हैं। समाज को पुष्ट बनाने में कृषि का महत्तवपूर्ण योगदान रहा है। इस महत्वपूर्ण विषय पर चीनी यात्रियों ने भी अपने यात्रा वृत्तांतों में संक्षिप्त परन्तु सारगर्भित वर्णन प्रस्तुत किया है जिससे गुप्त काल से हर्षकाल तक की तत्कालीन कृषि व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है जो उपयोगी ही नहीं अपितु महत्वपूर्ण भी है।

गुप्तयुग और उसके परवर्ती काल तक आकर कृषि अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच गई थी। उसका विस्तार काफी विस्तृत हो गया था। ह्वेनसांग ने अपने यात्रा विवरण में उल्लेख किया है कि यहाँ के जलवायु और भूमि का गुण स्थान के अनुसार अलग-अलग है और उपज भी उसी के अनुसार अलग-अलग है। फूल, पौधे, फल, वृक्ष और अनेक प्रकार के तथा विविध नामों वाले हैं- जैसे अमल, आम्ल, मधूक, भद्र, कापित्थ, आमला, विन्क, उदुम्बर, मोच, नारिकेल, पनस आदि। सब प्रकार के फलों की गणना करना अत्यन्त कठिन है। इसलिए उन फलों का नाम उल्लिखित है जो लोगों को अधिक प्रिय थे। छुहारा, अखरोट, लुकाट और परसिम्मन नहीं होते थे। नासपाती, बेर, शफतालू, सुब्बनी, अंगूर इत्यादि इस देष में कश्मीर से लाये गये और प्रत्येक स्थान पर उत्पन्न होते हैं। अनार और नारंगी भी सब जगह होती है। खेती करने वाले लोग भूमि की जुताई करते हैं और मौसम के अनुरूप् वृक्षारोपण करते हैं। मेहनत करने के उपरान्त कुछ क्षण विश्राम करते हैं। भूमि सम्बन्धी उपज में चावल और अन्यान्य अन्न बहुतायत से होते हैं। खाने योग्य जड़ी और पौधों में अदरख, सरसो, राई, खरबूज (तरबूज), कद्दू, हिअनटू आदि हैं, लहसुन और प्याज की खेती कम होती थी और इसका प्रयोग भी कम ही लोग करते थे। जो लोग इसका प्रयोग करते थे उन्हें लोग नगर के बाहर निकाल देते थे। सबसे उपयोगी दूध, मख्खन और मलाई था। कोमल शक्कर (गुड़ या राब), मिश्री, सरसों का तेल और अन्न से बने पदार्थ भोजन में काम आते थे।

फाहियान ने पॉचवें पर्व में उल्लेख किया है कि यहाँ गेहूँ के अतिरिक्त और अन्न नहीं होते हैं।[1] इस पर्वतमाला पर जितना ही आगे बढ़े वनस्पति, वृक्ष और फल सब विभिन्न प्रकार के मिलते गयेय केवल बॉस, विल्व और ईख ही हमारे देश के प्रमुख समान हैं।[2] वराहमिहिर ने तीन फसलों का उल्लेख किया है जिसमें गर्मी (रबी), पतझड़ (खरीफ) और साधारण समय मे होने वाली फसलें।[3] गेहूँ, धान, ज्वार, ईख, बाजरा, मटर, दाल, तिल, सरसों, अलसी, अदरख, सब्जी, कालीमिर्च आदि विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन होता था।[4] इत्सिंग ने लिखा है कि भारत में ईख, चावल और तरबूज प्रचुर मात्रा में मिलते हैं तथा अनेकानेक फल भी प्राप्त हैं।[5] यहाँ चावल की विभिन्न किस्में पैदा होती थीं। ह्वेनसांग ने लिखा है कि यहाँ एक विभिन्न प्रकार का चावल होता था, जो 60 दिन में तैयार हो जाता है।[6] अमरकोश में भी 60 दिन में तैयार होने वाले चावल का उल्लेख है।[7] आज भी साठ दिन में तैयार होने वाला चावल है जिसे साठी कहा जाता है। एक विशेष प्रकार के चावल जिसे 'केडगव' कहते हैं का भी उल्लेख मिलता है।[8] मगध में उत्पन्न होने वाला चावल सुगन्धित एवं स्वादिष्ट होने के साथ ही साथ चमकिले रंग को होता था। इसका नाम 'महाशालि' तथा 'सुगन्धिका' बताया जाता है।[9] बाजार में इसकी मांग अधिक थी परन्तु इसकी पैदावार बहुत कम होती थी। फलत: इसका विक्रय मूल्य अधिक था, जिसके कारण साधारण जनता इसका उपयोग नहीं कर पाती थी। इस प्रकार के चावल का प्रयोग अमीर लोग करते थे। हर्षचरित में भी इस तरह के चावल का उल्लेख है।[10] इत्सिंग ने भी भूमि पर उचित तरह से खेती करने की सलाह दी है। खेती योग्य भूमि एक के लिए नहीं बल्कि सभी के लिए है और बोआई तथा पौधें लगाना बौद्ध शिक्षा के विरूद्ध नहीं है अपितु संघ की अनुमति लेना आवश्यक होता है। संघ के अनुसार खेतों में फसलों का उत्पादन किया जाता था तथा उत्पादन का एक भाग मठ को दिया जाता था।[11] यहाँ के लोग आमलक पैदा करने में बहुत ध्यान देते हैं जो झुण्ड का झुण्ड पैदा होता है।[12] यह वृक्ष दो प्रकार का होता है। छोटी जाति वाले का फल कच्चेपन पर हरा और पकने पर पीला हो जाता है तथा बड़ी जाति वाले का फल सर्वदा हरा रहता है।

उचंडगना प्रदेश का उल्लेख करते हुए ह्वेनसांग ने लिखा है कि यहाँ अंगूर बहुत होता है, ईख कम है, सोना और लोहा भी निकलता है, परन्तु सबसे अधिक खेती सुगन्ध की जिसको यौगिक कहते हैं, होती है।[13] अमरकोश व रघुवंश में भी केसर की खेती का उल्लेख मिलता है।[14] गरम मसालों में काली मिर्च, ईलायची, लौंग आदि बोने का विवरण है।15 पांड्यदेश (केरल) के तटीय भागों में इनकी खेती अधिकता में होती थी। उस समय पनसफलन की बड़ी

कद्र भी और इसकी पैदावार भी अधिक होती थी। इसका फल बहुत बड़ा कद्दू के समान होता है। पकने पर इसका रंग कुछ पीलापन लिये लाल हो जाता है। तोड़ने पर इसके भीतर कबूतर के अण्डे के बराबर वीसो कोये निकलते हैं जिसको निचोड़ने से कुछ पीलापन लिये लाल रंग का रस निकलता है जो बड़ा स्वादिष्ट होता है। यह फल लटकने वाले फलों के समान वृक्ष की डालियों में लटका रहता है परन्तु कभी-कभी वृक्ष की जड़ में भी फलता है। जिस प्रकार चीन देश का फल 'फूलिंग' भूमि में उत्पन्न होता है।[16] शान्ति एवं सुव्यस्था का युग होने के कारण इस काल में कृषि का बहुमुखी प्रसार हुआ।[17]

सिंचाई के लिए लोग प्राय: वर्शा पर ही निर्भर रहते थे। वर्शा के अभाव में कृत्रिम साधनों की सिंचाई के लिए व्यवस्थ की जाती थी।[18] वराहमिहिर ने ज्योतिषी आधार पर नक्षत्रों की गणना करके वर्षा विषय में विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है।[19] झील, कुएँ, तड़ाग, कुल्या आदि का प्रयोग भी खेतों को सींचने के लिए किया जाता था। ह्वेनसांग ने उल्लेख किया है कि नदी नाले बहुतायत से हैं जिससे खेतों की सिंचाई का काम होता है।[20] सिंचाई के लिए बड़ी-बड़ी कृत्रिम झीलों का निर्माण किया जाता था। स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि सुराष्ट् के गिरनार के निकट सुदर्शन झील थी जिसके जल का उपयोग खेतों की सिंचाई के लिए किया जाता था। सिंचाई के लिए न सिर्फ बड़ी-बड़ी झीलों का निर्माण किया जाता था बल्कि उनके मरम्मत की भी व्यवस्था की जाती थी।

कृषकों से राजा भूमिकर लेता था। उपज का एक भाग राजभाग होता था जो समयानुसार परिवर्तित होता रहता था। बौधायन और वशिष्ठ के अनुसार उपज का छठां भाग राजा प्राप्त कर सकता था।[21] नारद और विष्णु के अनुसार उपज का छठां भाग प्राप्त करने का अधिकारी होता था।[22] मनु के अनुसार राजा छठां, आठवां और बारहवां भाग प्राप्त करता था। आवश्यकतानुसार वह चौथा भाग भी प्राप्त कर सकता था।[23] भूमि पर सम्राट और कृषकों का स्वामित्व होता था। जो लोग राजकीय भूमि पर कृषि करते थे उन्हें उपज का एक भाग राजा को कर के रूप में देना पड़ता था जो सामान्यतया छठां भाग होता था। इस संबंध में ह्वेनसांग लिखता है कि सब लोग भूमि खोदकर अपना भरण-पोषण करते हैं। राज्य के कृषक अपनी पैदावार का छठां भाग सहायता स्वरूप देते हैं।[24] फाहियान ने भी राजा की भूमि जोतने तथा उपज का अंश देने की बात स्वीकार की है।[25] हर्षकालीन ताम्रपत्रों में केवल तीन करों का उल्लेख मिलता है- भाग, हिरण्य तथा बलि। प्रथम ष्भागष् भूमिकर था। इत्सिंग ने भी उपज को 6 भागों मं बांटकर 1/6 भाग संघ को देने की बात कही है। गुप्तकाल से लेकर हर्षकाल तक राजस्व उपज का छठां भाग लिया जाता था। भूमिकर नगद और अन्न दोनों में दिया जा सकता था।

कृषि कार्य सम्पन्न करने के लिए परिश्रम करना पड़ता था। वेदों में भी खेतों में कार्य करने वाले श्रमजीवियों का उल्लेख किया गया है। श्रमजीवी कृषि सम्बन्धी और अन्न को साफ करने से सम्बन्धित कार्यों के सम्पादनार्थ रखे जाते थे। राज्य में भूमि के अधिकारी क्षत्रिय व ब्राह्मण होते थे जो कृषि कार्य सम्पन्न करने के लिए सेवक नियुक्त करते थे। श्रमिकों को वेतन धन और अन्न दोनों रूपों में मिलता था।[26] जिसे वे अपने तथा परिवार के पोषण में व्यय करते थे।

संदर्भ सुची

1. चीनी यात्री फाहियान का यात्रा विवरण, अनु0 जगमोहन वर्मा, पृ054
2. वही, पृ0 54-55
3. वृहत्संहिता, 5.21; 9.42; 10.18; 27.1
4. अमरकोश, 2.9; 3.9
5. ह्वेनसांग की भारत यात्रा, वील, पृ0 43-44
6. वही, पृ0 126
7. अमरकोश, 3.9
8. ह्वेनसांग की भारत यात्रा विवरण, अनु0 ठा0 प्रसाद शर्मा, पृ019
9. वही, पृ0 243
10. हर्षचरित, 31
11. इत्सिंग, अनु0 तकाकुसु, पृ0 61
12. ह्वेनसांग का यात्रा विवरण, अनु0 ठा0 प्रसाद शर्मा, पृ0 127
13. वही, पृ0 84
14. रघुवंश, 4.67, अमरकोश, 2.124
15. रघुवंष, 4.45-48, अमरकोश, 2.3.31, वाटर्स पृ0 193, 288
16. ह्वेनसांग का यात्रा विवरण, अनु0 ठा0 प्रसाद शर्मा, पृ0 338
17. मिश्र, जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 582
18. मेघदूत, 16
19. ह्वेनसांग का यात्रा विवरण, अनु0 ठा0 प्रसाद शर्मा, पृ0 18

20. मिश्र, जयशंकर, पूर्वोल्लिखित, पु0 583-584
21. व0ध0सू0, 1.42
22. नारद, 18.48, विष्णु, 3.22
23. मनु, 7.30 धान्यानामश्टमो भाग षष्ठो द्वादश एव वा।
24. वही, 10.118
    चतुर्थमाददानोपि क्षत्रियों भागमापदि।
    प्रज्ञा रक्षन्परं शक्त्या किल्विषात्प्रमुच।।
25. ह्वेनसांग का यात्रा विवरण, अनु0 ठा0 प्रसाद षर्मा पृ0 61
26. रघुवंष, XVII, 65
27. चीनी यात्री फाहियान का यात्रा विवरण, अनु0 जगमोहन वर्मा, पृ0 641
28. इत्सिंग, अनु0 तकाकुसु, पृ0 62

हरियाणा संस्कृति में कलात्मक हवेलियाँ तथा बैठकें

डॉ० कविता

दृश्यकला विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक हरियाणा

हवेली की ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः

हरियाणा प्रदेश को सदियों से उत्तर की ओर से आने वाले हमलावरों से सदियों तक जूझते रहना पड़ा। हिंदुस्तान पर शक, हुण, तुर्क, अफगान व मुगल हिंदूकुश पर्वत रोके दर्रों को पार करके पंजाब और हरियाणा को रौंदते हुए आगरा और मथुरा की ओर निकल जाते थे। पंजाब व हरियाणा के मैदानों में इन हमलावरों को रोकने के लिए हमेशा से जंग के मैदान बने रहते थे। ऐसे अनिश्चित और भय के वातावरण के लगातार बने रहने के बावजूद पंजाब व हरियाणा क्षेत्र में रहने वाली वीर जातियों ने न केवल हमलावरों से अपनी रक्षा के लिए शस्त्र उठाए वरन् कृषि और पशुपालन करते हुए गौरवमयी संस्कृति परंपराओं को भी जन्म दिया। जिनका संरक्षण हम आज तक कर रहे हैं।

कई 100 वर्षों के इस लंबे समय में हरियाणा में विदेशी हमलावरों के बस जाने से आपसी सांस्कृतियों का लेनदेन भी हुआ। जिसमें से एक पहलू है फारस व मध्य एशिया के देशों का वास्तुशिल्प और कला तथा इससे संबंधित अलंकरण पद्धतियाँ। कालांतर में हरियाणा वासियों ने इन्हें अपने जीवन में बड़े स्तर पर अपना लिया। जिसका प्रमाण हमारे गाँव और नगरों में आज भी वास्तु एवं कला धरोहरों के रूप में देखने को मिलता है। यहाँ वास्तुशिल्प में हिंदू है व इस्लामिक तत्व इस तरह से सम्मिलित हो गए हैं कि इन्हें मोटे तौर पर भारतीय जमीन से जुड़ा वास्तुशिल्प ही मान लिया गया है। वास्तु यहाँ हवेलियों व चौपालों के रूप में देखने को मिलता है। हरियाणा व राजस्थान में इस तरह की वास्तु कला हवेलियों के रूप में भरपूर मात्रा में देखी गई हैं।

हवेली की परिभाषा

हवेली शब्द फारसी भाषा से लिया गया है, जिसका मूल अर्थ - एक हवादार व खुला भवन होता है। हरियाणा में 'हवेली' को 'हेल्ली' के नाम से भी जाना जाता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि हवेली, परिवार के लिए एक ऐसा आवासीय केंद्र है जहाँ अनेक प्रकार की कलाएं एवं संस्कृति एक ही दायरे में फलती फूलती है।

हरियाणा की हवेलियाँ मध्यकाल से लेकर अब तक विभिन्न गतिविधियों, रीति-रिवाजों और सांस्कृतिक मूल्यों का मुख्य केंद्र रही हैं। विस्तृत होने के कारण हवेलियों का परिवेश ज्यादा संयुक्त परिवारों के रहने के लिए उपयुक्त माना जाता रहा है। हवेली में सैकडों सदस्य तक रह सकते हैं। हवेली का वातावरण अनेक तरह से सुखदायी रहता था। हवेलियों की संरचना की वजह से इसमें सुरक्षा का तत्व सर्वोपरि माना जाता है। क्योंकि ज्यादातर समय मर्द अपने कार्यों की वजह से घरों से बाहर ही रहते हैं। इसलिए स्त्रियों और बच्चों के अलावा धन-धान्य की सुरक्षा के लिए हवेलियों की संरचना उपयुक्त रही है। कहा भी गया है कि -

मर्द सुरक्षा हरियाणा के, हो सैं बीर कमेरी।
दूध बिलो दे, रोटी पो दे घर की बड़ी बडेरी।

हवेली निर्माण में कला और सामग्री

साधन संपन्न लोग ही पक्के मकान या हवेलियाँ बनाने के बारे में समर्थ थे। जाहिर है कि ये लोग अपने सामाजिक औकात को बरकरार रखने और आन-बान को बरकरार रखने के लिए निर्मित पक्के घर अथवा सिंहद्वार की रचना और द्वार तथा हवेली सज्जा पर ज्यादा साधनों का निवेश करते थे। घर अथवा बैठक का मुख्य द्वार अर्थात् सिंहद्वार ही पूरी इमारत का महत्वपूर्ण भाग होता है। पुराने समय के राजमिस्त्री व चिनाईगीर भी द्वार पर पूरा समय देकर अपने कौशिल का प्रदर्शन करते रहे हैं। प्राचीन समय से ही हरियाणा में निवास के लिए बनाए गए घर अथवा बैठक भवन को दरवाजा या नौहरा के नाम से जाना जाता है। सिंहद्वार की पक्की व सुंदर संरचना टिकाऊ भी होती है। जो दीर्घकाल तक देखने वालों को अपनी तरफ आकर्षित करती है। द्वार को अधिक भव्य व कलात्मक बनाने के पीछे एक ओर ध्येय था कि आने वाली पीढ़ियों को यह समरण रहे कि यह दरवाजा हमारे दादा-परदादा की आन-बान को दर्शाये।

इसकी रचना में पत्थर, चूना, लकड़ी, लोहा, तांबा, पीतल आदि का प्रयोग सामर्थ्यनुसार वे आवश्यकतानुसार किया जाता है। पक्की हुई ईटों को घड़ाई से कलात्मक आकार देकर भी द्वार सज्जा की रूपरेखा तैयार की जाती थी। इनकी चिनाई के लिए जो सामग्री तैयार होती थी, चूना निर्मित या 'लाइम-मार्टार' की बनी हवेलियाँ कहा जाता है। चूने से ही दीवारों पर पलस्तर किया जाता था। कलात्मक व सुदीर्घ जी रचना वाले द्वारों का प्रचलन बौद्ध गुफाओं एवं विहारों, हिंदू व जैन मंदिरों, मठों में खूब देखने को मिलता है। द्वार में चौखट व कपाट लगाने के लिए शीशम, सागवान, रहीड़ा व कैम और शाल्व जैसी दीर्घ जीवी व मजबूत लकड़ी का प्रयोग होता है, उक्त काष्ठ की सतह पर अतिसुंदर अलंकरण उकेरे गए हैं। चौखट व दहेली के आगे फर्श पर पत्थर का भारी-भरकम शिलापट लगाने की प्रथा है, जिसे 'दासा' कहा जाता है। इतना ही नहीं हवेलियों की संरचना में पीठिका व चौतरियाँ का भी विशेष स्थान रहता है। चौतरी बनाने के पीछे कारीगर की मंशा सिंहद्वार की संरचना में सौन्दर्यात्मक वृद्धि करने से है। इसके साथ ही घर की बड़ी-बड़ी चौतरियों पर बैठकर चारों तरफ का अवलोकन कर बाहरी हवा लेती रहती है। इसके साथ ही चौतरी को बनाते समय मुख्य द्वार में संतुलन का तत्व शुमार हो जाता है। अर्थात् चौतरी सौन्दर्य के साथ-साथ द्वार संरचना में भी मजबूती भी बढ़ती है। चौतरी बनाते समय पक्कीं इंटों से स्कूल आधार की रचना करने के बाद इसकी बाहरी सतह पर पत्थर की शिला चिपकाई जाती थी। इन शिलाओं पर हल्की खुदाई करके (Low Relief) में कलाकृतियों की रचना की जाती थी। इन अल्प उभार वाली आकृतियों में अलंकरण हेतु फूल-पत्ते, बेल-बूटे व पशु-पक्षियों का अंकन मिलता है।

कलात्मक चौतरियाँ

कलात्मक दरवाजें पर बना शिल्प

कहीं-कहीं चौतरी पर अल्प उत्कीर्ण रूप में बने हाथी, मकर, गौ-माता, शुभ प्रतीक ओम, स्वस्तिक, लताएं एवं पुष्प आकृतियों को भी उकेरा गया है। ऐसे शिलापट पर पहले से ही तैयार किए जाते थे। बाद में लगाए जाते हैं। इतना ही नहीं चौखट पर भी ओम या गणेश जी की आकृति को भी शुभ मानकर उत्कीर्ण किया जाता रहा है। मेहराब भी हवेली की संरचना में महत्वपूर्ण कलात्मक अंग है। मेहराबों की कल्पना स्तम्भों की स्थापना के बाद ही की जाती है। स्तम्भ के ऊपरी हिस्से पर मेहराबों की नींव रखी जाती है। एक स्तम्भ से लेकर दूसरे स्तम्भ तक मेहराब की संरचना, स्तंभों के बीच अंतराल काम माप यह दर्शाता है कि मेहराब की गोलाई का अनुपात क्या रहेगा। मेहाब छत के भार को सहन करती है और साथ में भवन को मजबूती प्रदान करती है। हवेली के भीतरी हिस्सों में महिला व बच्चों के लिए अनेक कक्ष बनाए जाते हैं। प्रत्येक कक्ष के सामने तीनों और एक घुमावदार बरामदा होता है जोकि चौक में खुलता है। इसके अतिरिक्त हवेलियों में भंडार कक्ष जहाँ अन्न का संग्रह किया जाता है। जल कुंभ का स्नानागार एवं शयनकक्ष भी बने होते हैं। प्रमुख भवन में एक विशाल मर्दाना कक्ष भी बनाया जाता है, जिसका दरवाजा बाहर की तरफ खुलता है। हांसी जनपद के अंतर्गत अलखपुरा में चौधरी छाजू राम लांबा की हवेली के परिसर का सिंह द्वार एक विशाल रचना है जिसे हम हरियाणा में पोली कहते हैं। इस हवेली की पोली में लगभग 20 कार्ड डालने की जगह है। सिंह द्वार के ऊपर एक विशाल एवं भव्य कक्ष का निर्माण किया है जिसमें परिवार के निजी मेहमान ठहराने की व्यवस्था की जाती थी। अलखपुरा में स्थित हवेली की संरचना छोटी और लाखोरी ईटों से की गई है। ईटों को चुनाव के इस्तेमाल से चिपका कर की गई थी। इस प्रकार स्थापत्य ने ट्रेडिंग के लिए एक आधार भी तैयार की जिस पर उन्होंने बलुआ पत्थर से तैयार सुंदर कलात्मक तत्व की रचना की।

किसी भी अभिकल्प की तैयारी के लिए प्रधान शिल्पी को कला के अलावा गणित बीजगणित वे ज्यामितीय का भी भरपूर ज्ञान होता था। हवेलियों में बनी डॉट बंद मेहराब पीटी गाँव के भीतर आलिंद खूबसूरत नक्काशी दाल चौखट कपड़ों पर बने फूल के अभिकल्प जुम्मे की से अर्थात पीतल की पत्ती से निर्मित फूल को पीतल के मैप में फंसाने से जो युक्ति बनी उसे गोल में कहा जाता है। कपड़ों में ठोक दिया गया। फुल को संभवत है ठप्पा विधि से बनाया जाता था।

मुख्य द्वार और और मुख्य अतिथियों के अलावा हवेली की दहलीज भीतरी चौक व्यक्तियों को चित्रों से अलंकृत करने का कार्य भी हरियाणा में एक परंपरा के तौर पर लंबे समय तक किया जाता रहा है। इन चित्रों के विषय अक्सर हिंदू ग्रंथों में वर्णित पौराणिक कथाएं ऐतिहासिक घटनाएं प्रकृति पशु एवं पक्षी लोगों की दिनचर्या उत्सव गाँव व समाज के जाने-माने व्यक्तियों के चित्र व अलंकरण शामिल हैं।

हवेली तथा चौपालों का सांस्कृतिक परिवेश तथा उपयोगिता

हरियाणा के गाँव की संस्कृति में काफी विविधताएं तथा साथ ही आदर्श रीति-रिवाज मिलते हैं। इन सामाजिक व्यवस्थाओं में पंच परमेश्वर की न्याय व्यवस्था शामिल है। न्याय व्यवस्थाओं के लिए यहाँ के गाँव देहात की आमजन द्वारा एक ऐसे स्थान की परिकल्पना हुई जहाँ पर सामूहिक प्रबुद्ध लोगों का समूह गाँव तथा आसपास के भाईचारे के गाँव की समस्याओं का निपटारा आपसी चिंतन से शांतिपूर्वक किया जा सके। मध्यकाल में यह व्यवस्था चौपालों के रूप में समृद्ध हुई। वहीं दूसरी ओर विशेषकर ऐसी हवेलियाँ, जिसमें पुरुषों का निवास था। उन हवेली में ठोले की पंचायतें भी होती रही हैं। गाँव के ज्यादातर लोगों के पास अपना कोई समारोह के उद्देश्य से पक्का व कलात्मक भवन नहीं होता था। यह समारोह ज्यादातर विवाह, बरात संबंधी होते थे। वैवाहिक समारोह हेतु गाँव की चौपाल को प्रयोग में लाया जाता है। कई जगहों पर हवेलियों में भी बरात का ठहराव किया जाता रहा है। हवेलियों का बारजा विशाल होता है। चौपाल में हवेली की उपयोगिता के आधार पर कुछ समानता रखती हैं। हवेली के भीतर और औरतें और बच्चों की दिनचर्या संपन्न होती थी। हवेलीयों के चौक में सभी लोग इकट्ठा होकर मेल-मिलाप से रहते हुए अपने सांस्कृतिक कार्य भी कर लिया करते थे। हवेली में जब नवविवाहिता आती थी तो हवेली के चौक ही खाटों (चारपाई) पर दुल्हन द्वारा सौगात के रूप में अपने साथ लाया गया सामान अर्थात 'दूस्सर' उपहारों का प्रदर्शन करती थी, जिसके अवलोकन के लिए गाँव की बडेरी स्त्रियाँ चौक में समूहों में आकर बैठ जाती थी। हवेली के चौक में ही सुबह शाम घर के मर्द भोजन ग्रहण करते थे। हवेली का चौक इस तरह पूरे परिवार के लिए एक सांस्कृतिक केंद्र की तरह काम करता था। सुख दुख को आपस में बांटना हो तो भी हवेली का चौक ही काम आता था। यहाँ की संस्कृति में औरतों के लिए चरखा व मर्दों के लिए हुक्का विशेष महत्व रखते हैं। 'हुका-पानी' चौपाल और हवेली का महत्वपूर्ण सांस्कृतिक तत्व है। इसके इर्द-गिर्द बैठकर गाँव के लोग अपने जीवन की समस्याएं सुलझाते हैं। हवेली में मर्दो के लिए अलग बैठक होती है। जहाँ इनका 'हुका पानी' चलता है व साथ ही गाँव के अन्य भाई-चारे के लोग भी इसका प्रयोग बेहिचक कर सकते हैं। अतिथि सत्कार गाँव के लोगों की सबसे बड़ी विशेषता रही है। प्राय: इस संबंध में ये लोग कहते भी हैं कि -

''आ बैठ पी पाणी।
तीन चीज मोल नहीं ल्याणी।।''

अतिथि को भोजन खिलाकर हरियाणा के लोग बड़े प्रसन्न होते हैं। हुक्का, बैठक ये सब आपसी भाई-चारे को बढ़ाती रही हैं। अगर कोई भी व्यक्ति सामाजिक नियम व कायदे के विरुद्ध जाता है तो चौपाल में हवेली में उसका 'हुक्का पानी' बंद करने की कहावत भी प्रचलित है। चौपाल की उपयोगिता हरियाणा के समाज में बहुआयामी है अर्थात् चौपाल भवन में पूरे समाज के कल्याण उसके हित व उस समाज के हित की योजना भी शामिल है। चौपाल की उपयोगिता जहाँ सामाजिक निर्णय के रूप में इकट्ठे हुए व्यक्तियों के रूप में शुरू हुई है। साथ ही इसकी उपयोगिता में गाँव का मान-सम्मान, कला कौशल भी चौपाल के तत्व के रूप में शामिल होते हैं। जब भी कोई अतिथि, आगंतुक या पर्यटक घूमने आता है तो उसका स्वागत भी चौपाल में किया जाता है।

निष्कर्ष

हरियाणा के गाँव में नगरों में हवेलियों का निर्माण अधिकतर संपन्न घरानो द्वारा करवाया गया। अधिकतर हवेलियाँ छोटी लाखोरी ईटों व बड़ी ईटों में चूना में बनी मिली है। इसके अलावा लकड़ी, लाखोरी, ईट, शिलापटों व लोहा, तांबा एवं पीतल जैसी धातुओं का प्रयोग हुआ है। हवेलियों में सजावट के लिए इस्तेमाल किए गए कलात्मक तत्व के रूप में उतकीर्ण, चड़ायी, घड़ाई, ढलाई एवं पिटाई विधि से धातु को अनेक अलंकृत आकारों में बदला गया है। अत: निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि हवेली नाम से जिस भवन के कलात्मक पहलुओं की परख कि वह Space में एक विशिष्ट चरित्र समेत मौजूद होती है। इसके अलावा एक भवन के रूप में हवेली के अंदर मौजूद Space को विभिन्न रचनात्मक रूपों में इस्तेमाल किया जाता है। वास्तुशिल्प एवं ललित कलाओं के माध्यम से हवेली के बाह्य व आंतरिक स्पेस का इस्तेमाल जितने कौशल से होगा उतने ही प्रभाव से इसमें निवास करने वाले व्यक्तियों के जीवन में आनंद व प्यार, प्रेम बढ़ता है। वास्तव में हवेली व्यक्तिगत संपत्ति होने के कारण जिन बुजुर्गों ने इनका निर्माण करवाया समाज में व परिवार में उन वंश घरों का नाम समृद्धिशाली व प्रभावशाली रहा। हवेली शब्द का विकास पर्शियन से है जो एक विशाल भवन को संकेत करता है। जहाँ परिवार धन-धान्य से निवास करता है। जिससे परिवार का रुतबा व मान सम्मान स्थापित होता है। वहीं दूसरी ओर हरियाणा में बनी चुना निर्मित चौपाल वास्तु न केवल एक साधारण भवन है बल्कि चौपाल के वास्तु में मानव प्रकृति तथा समाज की न्यायिक दर्शन का सामूहिक रूप शामिल है। चौपाल किसी का निजी भवन नहीं होती। बल्कि आमजन की जरूरतों को विशेष अवसरों पर पूरा करती है। सांझले रूप में बना चौपाल भवन मुख्य रूप से स्थानीय लोगों की न्यायिक प्रक्रिया तथा इनके सामूहिक कार्य हेतु जैसे ब्याह, शादी, बारात हेतु प्रयोग किया जाता है।

हवेली तथा चौपाल का कलात्मक प्रभाव

भित्ति-चित्र, प्रस्तर उकेरन, पत्थर-घडाई, काष्ठ शिल्प, धातु कर-कार्य, चूना पलस्तर-कर-कार्य, स्टुकों कार्य आदि हवेली और चौपाल के मुख्य कलात्मक माध्यम हैं। शिल्प कार्य ज्यादातर काष्ठ, धातु तथा स्टुकों में निर्मित होते हैं। भित्ति-चित्र ज्यादातर चूना पलस्तर टैम्परा विधि में निर्मित हुए हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गुलिया, डॉ. भूप सिंह, हरियाणा में हवेलियों के मुख द्वार तथा गवाक्ष सज्जा कलात्मक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, दृश्य कला विभाग, निष्पादन तथा दृश्य कला संकाय, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा), 2009
2. अग्रवाल ओ. पी. रश्मि पाठक, भित्ति चित्रों की जांच व सुरक्षा इंटेक, भारतीय संस्थान परिषद, लखनऊ एवं संदीप प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2263
3. समर्थ, माऊ, चित्रकला और समाज, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1958
4. यादव के. सी., हरियाणा का इतिहास (आदिकाल से 1000 ईसवी), भाग 1, मै. कैमलिन इंडिया लिमिटेड, 2/10 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002, 1982
5. जैन, शिखा, हवेली, ए लिविंग ट्रडिशन ऑफ राजस्थान, 2000
6. शुल्क, डॉ. द्विजेंद्रनाथ, भारतीय स्थापत्य (शास्त्रीय एवं कलात्मक अध्ययन), हिंदी समिति सूचना विभाग, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 2268
7. अग्रवाल, वासुदेव, भारतीय कला, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी, 1966
8. श्रीवास्तव, डॉ. प्रदीप, शेखावाटी के भित्ति चित्रों का सांस्कृतिक एवं कलात्मिक इतिहास, (1750-1950 A.D.) जयपुर पब्लिशिंग हाउस, चौड़ा रास्ता, जयपुर, 302003
9. कभी स्किनर एस्टेट का गाँव या अलखपुरा, जनसत्ता, चंडीगढ, 13 मई, 1995, रणबीर सिंह

साल्हावास हरियाणा के धार्मिक पौराणिक भित्ति चित्र

प्रो० मीनाक्षी हुड्डा

विभागाध्यक्ष, दृश्य कला विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा, भारत

मीनाक्षी

शोधार्थी, दृश्य कला विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा, भारत

शोध आलेख सार

कला मानवीय भाव की सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति है। इस पृथ्वी पर आदिमानव की उदयबेला का प्राचीन इतिहास कला के हाथों से ही लिखा गया है। प्रारम्भ से ही चित्रकला का उद्भव, विकास तथा उन्नति मनुष्य के विकास से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। मनुष्य की सजृन शक्ति कितनी प्राचीन है इसके ज्वलंत उदाहरण प्रागैतिहासिक शिला चित्रों में देखे जा सकते हैं मानव जब गुहावासी था, तभी से उसने अपने आस-पास की दीवारों पर चित्र उकेरने की कला का शुभारम्भ कर दिया था। शनैः-शनैः यह संबंध इतना गहराता गया कि मनुष्य अपनी सामाजिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों को भित्तियों पर चित्रित करने को लालायित हो उठा।

चित्रकला मानव मस्तिष्क की एक अद्भुत क्रिया है, जिसके द्वारा वह अपने अनुभवों को कला तत्वों एवं सौंदर्य सिद्धांतों के आधार पर अभिव्यक्ति प्रदान करता है। मनुष्य को परमात्मा की श्रेष्ठ रचना माना जाता है और मनुष्य अपने जीवन में भावों की अभिव्यक्ति आनंदानुभूति, सत्य की प्राप्ति, नैत्रीय सुख की प्राप्ति हेतु चित्रकला का निर्माण करता है। भित्ति चित्रकला भी मनुष्य की इसी आनंदानुभूति की देन है, जो भारत में प्रोगैतिहासिक काल से आरम्भ होकर जोगीमारा, अजंता, बाघ, बदामी आदि गुफाओं में समाहित है। भित्ति चित्रकला के उदाहरण आगे चलकर विभिन्न शैलियों के रूप में भी दिखते हैं जैसे-मुगल शैली, राजस्थानी, पहाड़ी तथा विभिन्न दक्षिण भारतीय मंदिरों में भी इस कला के दर्शन होते हैं। भारत की यही कला धीरे-धीरे प्राचीन गुफाओं से निकलकर विभिन्न प्रदेशों में फैल गई जिसके परिणाम स्वरुप यह हमें हरियाणा प्रदेश में भी दिखाई देती है।

मूलशब्द - कला, भित्तिचित्र कला, हरियाणा, साल्हावास, धार्मिक, पौराणिक चित्र।

परिचय

हरियाणा प्रदेश प्राचीनकाल से ही लोक कलाओं में काफी समृद्ध रहा है। हरियाणा के विभिन्न प्राचीन स्थलों की खुदाई और प्राप्त साहित्य के आधार पर कहा जा सकता है कि भित्तिचित्रों की परंपरा उत्तर वैदिक काल से प्रारम्भ होकर महाभारत काल तक निरंतर चलती रही। बाद में मौर्य, नाग, शक और गुप्त वंश के राजाओं के समय लगभग चार सौ साल तक कलाओं के लिए उत्कर्ष समय माना जाता है।[1] हमारे देश में संस्कृति को विशेष महत्व दिया जाता है, इसी कारण हमारे देश, हमारी संस्कृति में सभी त्योहारों को उत्सवों के तौर पर मनाया जाता है। इन त्योहारों पर महिलाओं द्वारा जो भी चित्र बनाए जाते हैं, वे सभी मांगलिक चित्र हमारी लोक-संस्कृति से प्रेरित होते हैं। हरियाणा में भित्ति चित्रों की एक अद्भुत शैली विद्यमान रही है। यहाँ पर जो भी भित्ति चित्रांकन कार्य हुआ है, उनके विषयों और शैली में विविधता है और उन चित्रों पर अन्य शैलियों का प्रभाव भी स्पष्ट देखा जा सकता है। जिनमें मुगल, राजस्थानी, पहाड़ी, कंपनी आदि शैलियाँ प्रमुख है।[2] यहाँ के भित्ति चित्रों को देखकर ज्ञात होता है कि ये चित्र जीवन के हर पहलू को दर्शाते हैं। इन भित्ति चित्रों को देखकर हम उस समय के लोगों की संस्कृति, रहन-सहन, परिधान, गहनों और दैनिक जीवन शैली से रूबरू होते हैं, इन चित्रों की विषय वस्तु यहाँ की कला एवं संस्कृति का जीता जागता उदाहरण है, यहाँ पर पौराणिक और सामाजिक जीवन से संबंधित बहुत सारे चित्र बने हैं। हरियाणा के भित्ति चित्रों में लोक जीवन और परंपराओं का ही चित्रण नहीं हुआ है, अपितु राजसी शान का भी चित्रण हुआ है।[3] हरियाणा की पुरानी हवेलियों और भावनों आदि में भित्ति चित्रों का भंडार है। ऐसा माना जाता है की भित्ति चित्रों का निर्माण ऐसे ही बिना सोचे समझे नहीं किया जा जाता था। किस भवन, मंदिर, चौपाल, हवेली में कौन सा चित्र बनाना है, उस पर काफी विचार किया जाता था, जैसे - मंदिरों में अधिकतर धार्मिक, पौराणिक, अलंकारिक चित्रण अधिक होता था और भवनों, हवेलियों, चौपाल पर धार्मिक चित्रण के साथ-साथ दैनिक जीवन से संबंधित चित्रण भी दिखाई देते हैं। कुछ सेठों द्वारा अपनी हवेलियों में भी पारिवारिक जीवन संबंधी चित्रों का निर्माण करवाया गया जो उनकी शान को दर्शाते थे, क्योंकि उस समय भित्ति चित्रांकन कार्य करवाना सबकी पहुँच में नहीं था। ऐसे ही बहुत सारे धार्मिक, पौराणिक भित्ति चित्र हमें साल्हावास गाँव में भी देखने को मिलते हैं, जो कि हरियाणा प्रदेश के झज्जर जिले के अंतर्गत आता है। यह गाँव झज्जर में जिला मुख्यालय के दक्षिण में 36 किलोमीटर (22 मील) की दूरी पर है।[4] यहाँ के लोगों का जीवन बहुत सादा है तथा सब आपस में मिलजुलकर प्रेम पूर्वक रहते हैं। इस गाँव में चित्रकला सर्वत्र फैली दिखाई देती है। इस गाँव की गलियों में जब घूमते हैं तो जगह-जगह घरों

और हवेलियों की बाहरी दीवारों पर चित्रित भित्ति चित्र हमें अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इस गाँव में भित्ति चित्रों का भण्डार है। शायद इसकी वजह साल्हावास गाँव की सीमा रेवाड़ी से लगना है।[5] लगभग 18वीं शताब्दी में भित्ति चित्रकला को रेवाड़ी के रावों (अहीर जाति का एक गोत्र) द्वारा प्रोत्साहन दिया गया था। रेवाड़ी जिला राजस्थान प्रदेश के नजदीक होने के कारण काफी कला समृद्ध जिला रहा है। साथ ही रेवाड़ी की कला पर राजस्थानी कला का बहुत कुछ प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।[6] इसी का असर आगे चलकर साल्हावास गाँव के भित्ति चित्रों पर दृष्टिगत होता है। यहाँ पर धार्मिक, पौराणिक एवं सामाजिक जीवन से संबंधित अनेकों भित्ति चित्र हैं, जिनके अंतर्गत विभिन्न देवी-देवताओं का चित्रण किया गया है। यहाँ के भित्ति चित्रों का निर्माण करते समय 'टेम्परा व फ्रेस्को' तकनीक का प्रयोग किया गया है।[7] चित्रकारों को यहाँ 'चितेरों' के नाम से भी संबोधित किया जाता था। अंत में हम कह सकते हैं कि साल्हावास गाँव भित्ति चित्रों का एक अद्‌भुत और विस्तृत भंडार है।

मौजूद धार्मिक पौराणिक भित्ति चित्र

1. गणेश भगवान

रूपमण्डन के अनुसार – गणेश भगवान को चतुर्भुज माना गया है, जिसके चारों हाथों में परशु, दंत, पद्म और मोदक होते हैं। इनका वाहन 'मूषक' को मानते हैं। गणेश भगवान को 'एकदंत' भी कहते हैं क्योंकि उनका दूसरा दांत स्वयं उनके हाथ में होता है। इन्हें 'गजानन' भी कहा गया है।[8]

साल्हावास गाँव के लाला नेतराम जी के घर की दीवार पर छज्जे के नीचे बने टोडे पर गणेश भगवान की बहुत सुंदर आकृति चित्रित हैं। इस चित्र में गणेश का मुख हाथी के मुख के समान लम्बोदर बनाया गया है तथा उन्हें स्वर्ण आभूषणों से सुसज्जित दिखाया गया है। मत्स्य पुराण के अनुसार गणेश भगवान को चार भुजाओं वाला, गजमुखी, लंबोदर, एकदंत और तीन नेत्रों वाला दिखाया जाता है। उनके दाएं हाथों में उनका दांत व कमल होते हैं और बाएं हाथों में मोदक व परशु दिखाया गया है। साथ में उनके वाहन मूषक और उनकी दोनों पत्नियों रिद्धि और सिद्धि को दिखाया जाता है।[9] इस चित्र में गणेश जी को चतुर्भुजी बनाया गया है। गणेश जी के बाएं नीचे वाले हाथ में पद्म व उपरी हाथ में दन्त चित्रित किया गया है। दाएं हाथ में लड्डू है तथा ऊपरी दाएं हाथ में परशु है। गणेश को आसन पर बैठा दिखाया गया है और चित्र में दोनों तरफ उनकी पत्नियाँ रिद्धि और सिद्धी को खड़े दिखाया गया है। चित्र में रिद्धि के हाथ में मोदक चित्रित किए गए हैं। जिन्हें गणेश जी अपनी सूंड से उठा रहे हैं। चित्र में गणेश भगवान के वाहन मूषक को भी उनके चरणों के पास चित्रित किया गया है। चित्र लयात्मकता लिए हुए हैं। चित्र में अंतराल, विभाजन क्षैतिज रूप में किया गया है तथा चित्र के अंतर्गत पीले और नीले रंग का अधिक प्रयोग किया गया है।

2. देवी सरस्वती

रूपमण्डन[10] के अनुसार देवी सरस्वती का एक हाथ वरद मुद्रा में तथा शेष तीनों हाथों में क्रमशः कमल, वीणा और पुस्तक धारण करने का उल्लेख मिलता है। यह कमलासन पर विराजती है तथा वीणा और पुस्तक को अपने हाथों में धारण करती है। इनका वाहन हंस है जो उनके पैरों के समीप ही रहता है।[11] सरस्वती जी का एक वाहन मोर भी होता है।[12]

यह चित्र साल्हावास के सुल्तान सिंह की हवेली में चित्रित है। इस चित्र में देवी सरस्वती एक आसन पर आरुढ़ हैं, उनके सिर पर मुकुट है। उनके हाथ, पैर और गला आभूषणों से सुसज्जित है। इस चित्र में देवी सरस्वती को चतुर्भुजी दिखाया है। चित्र में दाहिने ऊपरी हाथ में वीणा तथा नीचे का था वरद मुद्रा में है, बाएं उपरी हाथ में पुस्तक और नीचे के हाथ में बिजोरा प्रदर्शित है। देवी सरस्वती की साड़ी पीले रंग की है, जिस पर अलंकृत बॉर्डर भी है। चित्र के अग्रभाग में एक सुंदर मोर है, जिसकी चोंच में एक माला है। देवी सरस्वती का आसन श्वेत रंग का है। मोर की गर्दन में गहरे नीले रंग का व पंखों में हल्के नीले रंग का प्रयोग किया गया है। चित्रकार ने वीणा को बहुत ही कलात्मक ढंग से चित्रित किया है। चित्र की रंगत में चमक व ताजगी आज भी यथावत विद्यमान है।

3. कृष्ण भगवान

कृष्ण भगवान का यह चित्र नेतराम जी की हवेली में चित्रित है। इस चित्र में कृष्ण भगवान अपने बाएँ हाथ की अंगुली पर गौवर्धन को उठाया हुआ है और उन्होंने पीले रंग की धोती पहनी हुई चित्रित की गई है, सिर पर पीले रंग का मुकुट है और हाथों, पैरों और गले में आभूषण चित्रित किए गए हैं। कृष्ण जी के चार हाथ दिखाए गाए हैं। उनके एक हाथ में चक्र चित्रित है तथा बाएं कन्धे पर अंगोछा चित्रित किया गया है। चित्र में अंतराल विभाजन उत्तम है। साथ ही सरल व प्रवाही रेखाओं द्वारा लयात्मकता दिखाई गई है। यहाँ के सामाजिक जन-जीवन में कृष्ण भगवान विशेष स्थान रखते हैं। यहाँ के भित्ति चित्रों में कृष्ण लीलाओं का बहुत ही मनोहारी चित्रण किया गया है। इस चित्र में चित्रकार ने भावों की अभिव्यक्ति बहुत बारीकी से की है। चित्र में पर्वत के नीचे गाँव के अन्य लोगों व जानवरों का भी मनोहारी चित्रण इस चित्र को वास्तविकता प्रदान करता है।

4. ब्रह्मा जी

श्रीमद् भागवत[13] के अनुसार ब्रह्मा जी के वाहन हंस का विवरण विभिन्न कथाओं में मिलता है। प्राप्त विवरण के अनुसार वे श्री कृष्ण भगवान के जन्म के सुअवसर पर हंस पर आरूढ़ होकर आए थे। मयमत्म[14] में प्राप्त विवरण के अनुसार ब्रह्मा जी की चार भुजाएं व चार ही मुख होते हैं और सिर पर मुकुट सुसज्जित होता है।

यह चित्र साल्हावास में सुल्तान सिंह की हवेली में चित्रित है इस चित्र में ब्रह्मा जी को चार मुख वाला और चतुर्भुजी दिखाया गया था तथा वह हंस पर आरुढ़ हैं। ब्रह्मा जी के हाथों में जयमाला, दंड, पुस्तक और कमण्डल चित्रित है। इस चित्र में ब्रह्मा जी ने सुंदर मुकुट पहना हुआ है तथा उन्हें आभूषणों से सुसज्जित दिखाया है ।

5. राम भक्त हनुमान

यह चित्र लाला नेत राम जी की हवेली की बाहरी भित्ति पर छज्जे के नीचे टोड़े पर चित्रित है। इस चित्र में हनुमान जी को चित्रित किया गया है। हनुमान जी को ज्यादातर खड़ी मुद्रा में ही चित्रित किया गया है तथा कहीं-कहीं पर श्री राम जी के चरणों के पास बैठी मुद्रा में भी बनाया गया है। हरियाणा के लोगों के लिए हनुमान जी सदैव ही ताकत, वीरता, शौर्य और बाहुबल आदि के प्रतीक स्वरूप रहे हैं।[15] इसी कारण यहाँ हनुमान जी के चित्र अधिक मिलते हैं। प्रस्तुत चित्र में हनुमान जी को खड़ी अवस्था में दिखाया गया है। हनुमान जी के सिर पर मुकुट सुसज्जित है व उनके दाएं व बाएं हाथ में क्रमशः गदा व संजीवनी पर्वत को चित्रित किया गया है। इस भित्ति चित्र में हनुमान जी का बांया पैर हवा से उठा हुआ है तथा दायाँ पैर जमीन पर टिका हुआ है। ऐसा लग रहा है मानो वह उडने के लिए तैयार हों। चित्र में अंतराल विभाजन क्षैतिज रूप से हुआ है तथा गहरे लाल, पीले, हरे तथा नीले रंग का प्रयोग किया गया है। चित्र की रेखाएं लयात्मकता लिए हुए हैं तथा चित्रकार चित्र में गति तथा वेग को दर्शाने से पूर्ण रूप से सफल हुआ है।

निष्कर्ष

हरियाणा का गाँव साल्हावास अपनी कला एवं संस्कृति के लिए जाना जाता है। अधिकतर पुराने घरों, हवेलियों आदि के बाहर बंदर भित्ति चित्रों की भरमार है। यहाँ स्थित घर बहुत पुराने हैं व उनमें ताला लगा हुआ है, उनमें अब कोई नहीं रहता है लेकिन उन घरों की बाहरी दीवारों पर, दरवाजों के आस-पास तथा छज्जे के नीचे बने टोड़ो पर आज भी भित्ति चित्र दिखाई देते हैं। जिनके विषयों में विविधता है। यहाँ पर भी भित्ति चित्रांकन के लिए चुने से तैयार की गई दीवार का प्रयोग किया जाता था। यह चित्र लगभग 100 वर्ष पुराने हैं जो अब उचित देखभाल के अभाव को नष्ट होने के कगार पर है। इन चित्रों के रंग धुंधले पड़ चुके हैं तथा विभिन्न स्थानों पर यह चित्र खण्डित होने लगे हैं। अतः हमारी इस प्राचीन धरोहर को संरक्षण और उचित देखरेख की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. महिमा, हरियाणा: संस्कृति एवं कला, निर्मल पब्लिशिंग हाउस, कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी, कुरुक्षेत्र (हरियाणा), 2015, पृष्ठ संख्या 20
2. www.dainiktribuneonline.com लुप्त होते हरियाणा के भित्ति चित्र
3. डॉ देशवाल सन्तराम, हरियाणा, संस्कृति एवं कला, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2004, पृष्ठ संख्या 137
4. https://en.m.wikipedia.org/wiki/sahlawas
5. https://www.jatland.com>salhawas
6. यादव, के.सी., फोगाट, एस. आर., हरियाणा: ऐतिहासिक सिंहावलोकन, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, द्वितीय संस्करण: 2004, पृ. सं. 101
7. डॉ. वालिया, दीपिका, हरियाणवी संस्कृति के विविध परिदृश्य, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014, पृष्ठ 104
8. श्रीवास्तव बलराम (संपादक), रूपमण्डन, प्रकाशक - मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, पृष्ठ संख्या 77
9. डॉ. पाण्डेय, वी. के., प्राचीन भारतीय प्रतिभा एवं मूर्ति विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2010, पृष्ठ संख्या 172
10. श्रीवास्तव बलराम, रूपमण्डन, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1964 पृष्ठ संख्या 89
11. डॉ. यादव, जयवीर सिंह, मत्स्य पुराण में हिंदू देवी देवताओं का सामाजिक अध्ययन, नवराज प्रकाशन, भजनपुरा, दिल्ली - 110053, पृष्ठ संख्या 161
12. डॉ. खाँ, मोहम्मद इसराइल, संस्कृत-साहित्य में सरस्वती जी कतिपय झाँकियाँ, क्रीसेण्ट पब्लिशिंग हाउस, गाजियाबाद, पृष्ठ 76
13. डॉ. पाण्डेय, वी. के., प्राचीन भारतीय प्रतिभा एवं मूर्ति विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2010, पृष्ठ संख्या 25
14. डॉ. पाण्डेय, शैलजा, मयमतम्, द्वितीय भाग, चौखंबा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 583, 2-3
15. डॉ. यादव, अतुल, हरियाणा: ऐतिहासिक धरोहर, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला - 2007, 2011 पृष्ठ संख्या 55

छाड़न में स्त्री विषयक चिंतन का रुप

शशि सुधा कुमारी

शोधार्थी, हिंदी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

भारतीय समाज पितृसत्तात्मक समाज है। हजारों वर्षों से चली आ रही इस व्यवस्था में स्त्री की अधीनता सर्वविदित है। स्त्री की अधीनता उसकी नियति बन गई है। स्त्री चाहे किसी भी जाति अथवा वर्ण की हो उसे पुरुषों की अधीनता स्वीकार करनी ही पड़ती है। हमारे धर्मग्रंथ मनुस्मृति में भी कहा गया है –

''पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थाविरे पुत्राः न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।''

स्वतंत्रता के पूर्व से ही स्त्री की दशा में सुधर हेतु अनेक समाज सुधारकों ने प्रयास किया। उस सुधर का सकारात्मक प्रभाव भी पड़ा। कई कानून बने। विधवा आश्रम, अनाथ आश्रम, महिला आश्रम आदि कई संस्थाओं की स्थापना हुई। लेकिन जिस महान उद्देश्य को लेकर इन संस्थाओं की स्थापना हुई थी, वह पूरी न हो सकी।स्त्री को जो स्वतंत्रता मिलनी चाहिए वो नहीं मिल सकी।क्योंकि इन आश्रमों के प्रबंधन में वही लोग शामिल थे जिनके कारण स्त्री इन आश्रम की शरण में जाती है।

साहित्य के क्षेत्र में भी स्त्री चिंतन एक प्रमुख मुद्दा बना रहा। माना जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है तथा साहित्य के केन्द्र बिन्दु में है मानव। इसलिए मानव जाति की आधी आबादी अर्थात स्त्री का साहित्य से सम्बन्ध न हो, यह संभव नहीं। साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में उपन्यास विधा में स्त्री-जीवन का चिंतन विस्तारपूर्वक मिलता है। मैनेजर पाण्डे का कहना है –"उपन्यास ने अपने उदयकाल से हीं स्त्री की पराधीनता का बोध और स्वतंत्रता की आवश्यकता की ओर संकेत किया है।"

छाड़न उपन्यास श्री सुरेंद्र स्निग्ध कि प्रथम और एकमात्र उपन्यास है। यद्दपि स्निग्ध जी ने अधिकतर काव्य की रचना की है, किन्तु छाड़न उपन्यास के प्रकाशन के बाद उन्होंने यह साबित कर दिया कि उनके कवि मन के भीतर एक संवेदनशील कथाकार भी छिपा है। अपने एकमात्र और प्रथम उपन्यास में उन्होंने मानवीय संवेदना को बहुत ही सुहृदयता एवं दृढ़ता से उकेरा है। छाड़न उपन्यास कथा साहित्य के क्षेत्र में एक नया आयाम प्रस्तुत करने वाला उपन्यास है, जिसमे कोसी क्षेत्र की समाजशात्रीय चिंतन रेखा के साथ स्त्री विषयक चिंतन भी दृष्टिगत होता है।

छाड़न में स्त्री के शोषण के विविध रुपों के बीच से स्त्री का सशक्त रुप उभरा है। यहाँ संगठन शक्ति के परिपेक्ष्य में स्त्री शक्ति को मजबूती प्रदान किया गया है। छाड़नमें स्त्री जीवन के विविध पहलुओं को उजागर किया गया है। इस उपन्यास में केंद्रीय पात्रता भी स्त्री को ही प्राप्त है। क्योंकि स्त्री चरित्र की नेतृत्व प्रखरता स्निग्ध जी की अपनी विशेषताहै। छाड़नकी स्त्री पात्र प्रेमचंद्र की स्त्री पात्र से कहीं अधिक दृढ़ और आत्मविश्वासी है। स्निग्ध जी का स्त्री के प्रति दृष्टिकोण भिन्न है। वह स्त्री को 'अबला' अथवा 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' नहीं मानते है। वे मानते है, कि स्त्री की दुर्दशा अथवा परतंत्रता पर सिर्फ आंसू बहाने से काम नहीं चलेगा। स्त्रियों को संगठन की ताकत से जोड़कर उसे विचारधारा के स्तर पर मजबूत बनाना होगा, ताकि अपने ऊपर हुए किसी भी प्रकार के अत्याचार के खिलाफ वह संघर्ष कर सके। स्निग्ध जी एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था के पक्षधर रहे हैं, जो स्त्री को माया मोह, नहीं बल्कि साथी दोस्त मान कर चलते है। स्निग्ध जी रेणु जी की स्त्री के प्रति दृष्टिकोण सेभिन्न दृष्टिकोण रखते हैं। रेणु जी का स्त्री के प्रति दृष्टिकोण है कि – ''अबला नारी हर जगह अबला ही है..... एक असहाय औरत देवता के संरक्षण में भी सुख-चौन से नहीं सो सकती।'' किन्तु स्निग्ध जी का मानना है कि संगठन में वह शक्ति है जो अबला को भी सबला बना देती है।

स्निग्ध जी ने छाड़न में सुकनी के माध्यम से स्त्री ह्रदय की सम्पूर्ण आकांक्षा, वेदना और संघर्ष को एक साथ उजागर कर दिया है। उपन्यास के आरम्भ में सुकनी रूढ़िवादी समाज की एक अबला स्त्री है, किन्तु उपन्यास के अंत तक वह स्निग्ध जी की दृष्टि के अनुकूल मार्क्सवादी, जनवादी विचारधारा से लैस होकर सबला नारी के रुप में पाठकों के समक्ष उपस्थित हो जाती है। सुकनी के माध्यम से स्निग्ध जी ने स्त्री जीवन में बेमेल विवाह के दुष्परिणाम को भी बहुत कम शब्दों में उजागर कर दिया है। सुकनी का पिता कहा करता था – ''उपजे दे बेटी साठी धान / तोर बिहा करबौ सिंघेसर थान। किन्तु पिता की मृत्यु के बाद सुकनी की मीठी कल्पना अंतरिक्ष में कहीं खो गई। परंपरागत रूढ़िवादी समाज ने उसका विवाह वरुणा थान में एक बूढ़े से कर दिया। पंद्रह-बीस बरस की लड़की जो विवाह के रंगीन सपने देखा कराती थी, अपनी मर्जी से तो एक बूढ़े से विवाह करने के लिए तैयार नहीं हुई होगी? उसके समक्ष कोई विकल्प ही नहीं रहा होगा। संभव है सुकनी यह समझती थी कि सामंतवादी समाज में पितृहीन लड़की की सुरक्षा उसका पति अथवा पुत्र ही कर सकता है, अन्यथा वह किसी सामंत की वासना का शिकार बन सकती है। स्त्री-पुरुष के स्वाभाविक मिलान में उम्र का इतना बड़ा अंतर विवाह संस्कार का मजाक भी उड़ाता है। यह एक सामाजिक विद्रूपता है, जिसका परिणाम वैधव्य तय है। यह सुकनी के साथ भी हुआ। उसका पति उसी तरह आकाश में गुम हो गया जैसे उसका पिता। स्निग्ध जी ने अपने उपन्यास छाड़न में स्त्री के प्रति अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट कर दिया है। स्त्री कब तक पिता, पति अथवा

पुत्र के अधीन अपनी सुरक्षा सुनिश्चित कराती रहेगी? उन्होंने संगठन की शक्ति को स्त्री की सुरक्षा का कवच बना दिया। गोनर शर्मा की किसान सभा की ताकत से ही सुकनी न केवल अपनी खोई हुई जमीन पाती है बल्कि बुटना जैसे डकैत से भी अपनी रक्षा कर पाती है। सुकनी कहती है- "बादो भाई, किसान सभा गरीबों और मजदूरों का संगठन है। संगठन की ताकत बड़े से बड़े अन्याय की ताकत से अधिक होती है।"

स्निग्ध जी स्त्री मुक्ति के लिए वर्ग-संघर्ष की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते है। उनका मानना है कि सामंतवाद और पूंजीवाद दोनों शोषणमूलक व्यवस्था है। यदि हर वर्ग की स्त्री का उत्थान करना है तो सामंतवाद एवं पूंजीवाद को ध्वस्त कर साम्ध्यवादी व्यवस्था अपनाना होगा, क्योंकि साम्ध्यवादी व्यवस्था में ही स्त्री सहित सभी की आर्थिक पर निर्भरता समाप्त हो जाएगी और स्त्रियां शोषण से मुक्त हो सकेगी। भारत सरकार ने भी वर्ष 2001 में महिला सशक्तिकरण की नीति में सर्वाधिक बल महिलाओं के आर्थिक स्वाबलंबन पर ही दिया है।

छाड़न की रमपतिया जग्गन सिंह की हवस का शिकार होती है। वह समझ जाती है कि जग्गन सिंह जैसे भेड़िये से उसका पति उसकी सुरक्षा नहीं कर सकता है। स्त्री सम्बन्धी सामंती दृष्टिकोण को धता बताते हुए रमपतिया अपने पति को धिक्कारती है और कहती है- "तुम नामर्द हो, नामर्द। तुम अपने को बचा ही नहीं सकते हो तो हमको क्या बचाओगे।" यहाँ स्निग्ध जी पिता रक्षति कौमारे की अवधारणा को तोड़ते दिखते है। उनका दृष्टिकोण है कि स्त्री को अपनी रक्षा के लिए सर्वप्रथम स्वयं को मजबूत बनाना होगा। तभी तो रमपतिया अपने पिता से कहती है - "बापू, हम भी बंदूक चलना सीखेंगे। हम भी आपके साथ घुड़सवारी करेंगे। हम भी देखना चाहेंगे कि जमींदारों का आतंक हमारे आतंक के सामने कितना बौना है। "रमपतिया एक साल तक स्वयं को मजबूत बनाती है और अपने उत्पीड़न का बदला लेती है।

मध्यमवर्गीय स्त्रियों की मुक्ति का मुद्दा तो बहुत से उपन्यासों में उठाया गया है, किन्तु ग्रामीण क्षेत्र की निम्नवर्गीय स्त्री-मुक्ति का मुद्दा बहुत कम कथाकारों ने उठाया है। छाड़न उनमे से एक है। छाड़न में ग्रामीण क्षेत्र की निम्न वर्गीय स्त्री मुक्ति का मुद्दा प्रखरता से उठाया गया है। यहाँ स्त्री-मुक्ति का मुद्दा एक अंतर्धारा के रुप में विराजमान है। यहाँ स्त्री एक जाति नहीं, बल्कि व्यक्ति है और पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाली साथी/दोस्त है। स्निग्ध जी एक ऐसे कथाकार है जिन्होंने स्त्री समस्या को न केवल एक प्रधान मुद्दा के रुप में उभरा है, बल्कि उनकी समस्याओं के समाधान हेतु विकल्प भी प्रस्तुत किया है। स्निग्ध जी मानते है कि स्त्री शोषण के लिए मात्र पुरुष ही नहीं बल्कि महिलाएं स्वम् भी जिम्मेवार है। स्त्री सुरक्षा के लिए स्त्री को भी मानसिक और शारीरिक स्तर पर मजबूत बनना होगा। इसके लिए पुरुषों का सहयोग भी आवश्यक है। रमपतिया बिना अपने पिता से सहयोग लिए अपने उत्पीड़न का बदला नहीं ले सकती थी। सुकनी बिना गोनर शर्मा से सहयोग लिए अपना खेत नहीं पा सकती थी। इसलिए नारी मुक्ति के लिए आवश्यक है कि पुरुष और स्त्री दोनों संगठित होकर इसका मुकाबला करे। स्निग्ध जी ने संयुक्त मोर्चा और वर्ग-संघर्ष के द्वारा स्त्री-मुक्ति का समाधान प्रस्तुतकिया है। वे स्त्री-स्वतंत्रता के लिए एक स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था के पक्षधर है, जिसमे स्त्री-पुरुष को सिर्फ कानूनी तौर पर ही नहीं बल्कि सामाजिक तौर पर भी समानता का अधिकार हो।

निष्कर्षत: छाड़न में स्त्री-चिंतन का परिष्कृत रुप देखने को मिलता है। यहाँ स्त्रियाँ परंपरागत व्यवस्था से टकराती है और समाज के समक्ष प्रश्न खड़ा कर देती है। जो पुरुष स्त्री को धूल समझकर अपने पैरों तले रौंदना चाहता है, वही स्त्री धूल की आंधी बनकर उसके आँखों में पड़ती है और उसका सर्वनाश कर देती है। छाड़न की स्त्री पात्र पाठकों की सहज सहानुभूति भी प्राप्त करने में सफल होती है। छाड़न, सामंती व्यवस्था को ध्वस्त करने का प्रयास है और साम्यवादी व्यवस्था की परिकल्पना स्त्रियों के आर्थिक सशक्तिकरण का आधार बनकर उनकी शोषण मुक्ति का राह दिखती है। छाड़न में स्निग्ध जी ने स्त्री को वर्ग-संघर्ष के माध्यम से आत्मबल एवं प्रगति की नई दिशा देने का सराहनीय प्रयास किया है।

सन्दर्भ सूची

1. सुरेंद्र स्निग्ध : छाड़न
2. फणीश्वरनाथ रेणु : मैला आंचल
3. मैनेजर पाण्डे : आलोचना की सामाजिकता

प्रेमचंद की कहानियों के आलोक में मानवाधिकार

डॉ० सिन्धु सुमन

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, राजेन्द्र मिश्र महाविद्यालय, भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा, बिहार

सारांशिका

प्रेमचंद भविष्यद्रष्टा परिवर्तनकामी लेखक थे जिन्होंने अपनी रचनाओं में अपने समय के तिक्त यथार्थ को जगह दी। जिस मानवता की चिंता सबसे पहले होनी चाहिए उन्हें केन्द्र में रखा, उनकी चिंता कराहती मानवता की मुक्ति के लिए थी, सामाजिक संरचना में बदलाव के लिए थी, गरीबी और भूख से संत्रस्त आम आदमी के मूलभूत अधिकारों के लिए थी, श्रम के उचित सम्मान के लिए थी, मजदूरों के लिए थी; किसानों, पिछड़ों और स्त्रियों के लिए थी वर्ग और वर्ण में विभाजित भारतीय समाज की जीवन-स्थिति में बदलाव के लिए थी। इनमें से कौन-सा प्रश्न अधिक महत्व का है और कौन-सा कम महत्व का, इसे सिद्ध करने की जरूरत प्रेमचंद में नहीं थी, प्रेमचंद के आलोचकों में भले ही हो, तो हो। 21वीं शताबदी के इन वर्षों में, जब बेहतर दुनिया का सच अभी भी दूर है और ऐसे में वे एक उम्मीद की तरह हैं। 21वीं शताबदी के इन वर्षों में जब हम आजाद हैं, संविधान के अंतर्गत स्वतंत्रता और समानता की गारंटी है, विकास और आधुनिकता की अनेक घोषणाएँ हो चुकी हैं और हो रही हैं तब भी हमारी जड़ सोच, रूढ़िग्रस्त मानसकिता, क्षुद्रता, घृणा, हिंसा और कपट सतह पर सहसा दिखाई पड़ने लगते हैं, हर कदम पर मानवाधिकार का हनन हमें 'मनुर्भव:' के अंतिम उद्देश्य से च्युत कर देता है, विश्व रंगमंच से किए गए तमाम वादे झूठे साबित हो जाते हैं, इन तमाम परिस्थितियों में प्रेमचंद हमें एक अनिवार्य पाठ की तरह लगते हैं।

लिंग, वंश, धर्म, जाति, कुल, स्थान तथा रंग इत्यादि के आधार पर भेद किए बिना सभी मनुष्यों का समान रूप से अधिकार या अवसर प्रदान करना मानवाधिकार है। ये अधिकार मनुष्य के अस्तित्व के लिए आवश्यक व सभी व्यक्तियों में जन्म से निहित माने गए हैं।[1] इनका मुख्य लक्ष्य समाज में समानता, न्याय, भाईचारा तथा शोषण से मुक्ति है। व्यक्ति मानव अधिकार तथा मूल स्वतंत्रताओं का केन्द्रीय विषय है।[2] सभी मानवाधिकार सार्वजिनक, अविभाज्य, अंतर्निर्भर और अंतर्सबद्ध हैं।[3] संक्षेप में, ये मानवीय गरिमा की रक्षा से जुड़े हैं।[4] भारत में हजारों वर्षों से धर्म की व्यापक अवधारणा में ही मानवीय समाजिक व्यवस्था के रूप में, मानव अधिकारों पर विचार किया गया है। हमारी संस्कृति सार्वभौमिक सिद्धांत 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की प्रणेता रही है। ''एकैव मानुषी जाति''[5] में मानवीय समानता और मानव अधिकार का संपूर्ण दर्शन सामहित है। सर्व-धर्म-समभाव के अंतर्गत भारतीय चिंतकों ने मानवतावादी दर्शन का दीदार करवाया है।

मानव अधिकार के भावार्थ में आज और पहले की शब्दावली के अनुसार अवश्य अंतर है। वैधानिक रूप से भले ही आज इसे व्यापकता और संरक्षण मिली है पर पहले की तरह ही ''मूलभूत स्वतंत्रता के प्रति सम्मान ..... भाव'' ही इसके केन्द्र में आज भी मौजूद हैं।

भारत में मानवाधिकारों के प्रति चौतन्य कथाकारों में प्रेमचंद अग्रगण्य थे। वे अपनी कहानियों के माध्यम से हमेशा मानवीय गरिमा, अस्मिता, स्वतंत्रता और समानता की पक्षधरता और किसी भी तरह के शोषण का विरोध करते हैं। शोषण का शिकार भारतीय समाज, उसका गरीब किसान, मजदूर और उसका खून पीने को आतुर जमींदार, सूदखोर महाजन, मिल मालिक, स्वार्थी पत्रकार, सफेदपोश, राजनेता, धर्मध्वजी पंडित, पटवारी, पंच, दारोगा आदि ही समाज का वह मवाद है जो समाज के आधार और अन्नदाता किसान के रक्त को दूषित कर उसे पीड़ा से व्याकुल बनाये हुए हैं। प्रेमचंद की कहानियों में शोषित, पीड़ित, दलित मनुज के प्रति संवेदना ही सहस्रधा मुखरित होती है। मनुष्यता को उन्होंने अपना उसूल मान लिया है। उनकी हर रचना में मनुष्यता का पक्ष मिलता है जिसको गहन अर्थों में समझने की आवश्यकता है। प्रेमचंद के लिए मानवीयता आदर्श नहीं बल्कि अपेक्षित मूल्य हैं।[6]

प्रेमचंद साहित्य में स्वाधीनता की महागाथा की बात की जाती है, पर यह महागाथा किन लोगों की है, उनके अन्तर्निहित कैसी वर्ग और वर्ण व्यवस्था है, समाजिक मर्यादा और रोज-ब-रोज की रूढ़ परिपाटियों के बन्धनों के कारण स्त्रियों, दलितों, किसानों, खेत, मजदूरों, आम मेहनतकश तथा निम्न मध्यवर्ग के गरीब लोगों पर क्या बीतती है? मनुष्य अपनी मनुष्यता, अपना मौलिक अधिकार, अपनी अस्मिता क्यों खोता जा रहा है? एक औपनिवेशिक राजसत्ता के उत्पीड़न को बरकरार रखनेवाली व्यवस्था के स्तम्भों के अंतर्गत जमींदार-जागीदार, उनके कारिन्दे और अमले, सूदखोर महाजन और पुलिस प्रशासन की निरंकुशता के परिणामस्वरूप श्रमशील जनगण का श्रमफल हड़पनेवालों की काली करतूतें मानवीय गरिमा के साथ क्या सलूक कर रही हैं? प्रेमचंद की क्रमश: परिपक्व हो रही स्वाधीन चेतना (जो मनुष्यता के संदर्भ में थी) और नए भारत की परकिल्पना में संभाव्य यथार्थ का पूरा या आधा-अधूरा स्वरूप क्या है?[7] इन प्रश्नों को प्रेमचंद को कथा-साहित्य सम्बोधित करता है। जाहिर है इन प्रश्नों की गहरी समझ के बिना हम प्रेमचंद के यथार्थबोध और स्वप्नों से वर्तमान की चुनौतियों और वास्वतिकताओं के रिश्ते को नहीं समझ सकते।

जातिगत मिथ्याभिमान, औरतों की दु:स्थिति, विधवाओं की दुर्दशा, निरक्षरता, बाल-विवाह और दहेज के सवाल, धार्मिक मतान्धता और मानसिक संकीर्णता जैसी समाजिक बुराईयों तथा इसके पीछे एक अन्यायपूर्ण बाहरी हुकूमत की दी हुई गरीबी और भूख के साथ-साथ एक क्रूर समाज-व्यवस्था की कारगुजारी भी प्रेमचंद ने देखी थी। अत: इन सामाजिक बुराईयों को जड़ से मिटाने ओर उसे राष्ट्रीय स्वाधीनता तथा मुक्ति के संघर्ष का हिस्सा बनाने की कोशिश उन्होंने अपनी कहानियों के आलोक में की। उन्होंने मनुष्य को एक मनुष्य का दर्जा दिलाने, सामाजिक न्याय दिलाने की कोशिश की। वे कहानियों मे मनुष्य के जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं या अधिकारों से संबंधित प्रश्न उठाते हैं। एक कहानी में लोटा-भर पानी का सवाल, दूसरे में कुछ आलुओं का सवाल, तीसरी में शीतलहर से बचने के लिए जरा-सी गर्मी का सवाल। और गरीब आदमी इससे भी वंचित है। प्रेमचंद की करूणा और पीड़ा का जब इस नग्न यथार्थ से सामना होता है, तो गहरे परिताप और त्रास की रागिनी फूट पड़ती है।[8] प्राकृतिक रूप से मानवतावादी होने के कारण लेखक इन समस्याओं से कतराकर नहीं गुजर सकते थे। 'दूध का दाम', 'ठाकुर का कुआँ', 'पूस की रात', 'कफन', 'सद्गति' जैसी कहानियाँ यह प्रदर्शित करती हैं कि किस प्रकार मानवाधिकारों का अत्यन्त अशिष्ट रूप से हनन किया जाता है, समाज में रहकर लेखक ने उनका भाग्य सुधारने का प्रयत्न किया।[9] प्रेमचंद ने इसलिए अपने साहित्य में किसानों, मजदूरों, अछूतों, मुरझाए हुए होठों और कुम्हलाए हुए गालों को अपने साहित्य की केन्द्रवर्ती धुरी बनाया। सुंदरता की भ्रांति और संकीर्ण धारणा के कारण जिन साधारण लोगों को सौंदर्य-जगत् और कला की दुनिया से बाहर रखा जाता था, उन लोगों को प्रेमचंद ने, मानवीय आधारों पर कला और सौंदर्य की दुनिया का अनिवार्य हिस्सा बना दिया। उन्होंने उन झोंपड़ों और खण्डहरों को अपने साहित्य में प्रतिष्ठित किया जिन्हें मनुष्य की परिधि से बाहर समझा जाता था। प्रेमचंद ने जीवन-संग्राम में सौंदर्य का चरमोत्कर्ष देखा था।[10] तभी उन्होंने उन सामाजिक समस्याओं को उठाया, जो उस समय के समाज में गहरे रूप में व्याप्त होकर मनुष्यता को आघात पहुँचा रही थी। प्रेमचंद किसान, मजदूर, मध्यवर्ग, सामंतवर्ग, पूँजीपतिवर्ग और साम्राज्यवादी शासकों का चित्रण एक-दूसरे से अलग एकाकी रूप में नहीं करते। वे एक व्यापक सामाजिक, राजनीतिक प्रक्रिया और उसकी विचारधारात्मक परिणतियों के भीतर अंतर्वर्गीय संघर्षों और संबंधों का चित्रण करते हैं। प्रेमचंद ने यद्यपि मार्क्सवाद का विधिवत अध्ययन नहीं किया था, लेकिन वह वर्ग-संघर्ष के सिद्धांत को मानते थे। 'डामुल का कैदी' जैसी कहानियों के विश्लेषण के माध्यम से वर्ग-संघर्ष की झलक दिखाई गई है। मजदूरों की एकजुटता, एकता और प्रतिबद्धता के समक्ष व्यवस्था का झुकना मजदूरों की शक्ति में प्रेमचंद की आस्था का प्रतीक है। वे मानव को मानव के रूप में जानने के हिमायती थे। वे नहीं चाहते थे कि मानव की पहचान वर्ण-जाति, धन या बल से हो। जातीय विद्वेष, छुआछूत, ऊँच-नीच, वर्ग एवं वर्ण वैषम्य के जो चित्रण वे कहानियों द्वारा करते हैं, वह हमें अपने विवके चक्षु खोलने को विवश करती है और व्यवस्था के सुधार हेतु प्रेरित करता है। उन्होंने जिस अछूत समस्या पर कहानी में बात की है, दरअसल आज के समय में वही 'दलित विमर्श' में परिणत हो गया है। प्रेमचंद से अलग होकर दलित साहित्य की सार्थक परंपरा का विकास संभव नहीं। आदमीयत को सबसे बड़ा तकाजा मानने वाले प्रेमचंद ने साम्राज्यशाही और सामंतशाही की गहरी जकड़बंदी में तड़पती, घुटती और छटपटाती कोटि-कोटि यातनाग्रस्त मनुष्यता, जिसमें बाल मजदूर भी हैं, किसान भी, औरत भी है, दलित भी और न जाने कितने तबके; सबों की मुक्ति की आकांक्षा को उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से जुबान दी। युगों से पद-दलित, आहत, पीड़ित, नारी की मूक संवेदना को उन्होंने वाणी प्रदान की। पुरूष सत्तात्मक समाज में पुरूष होने के बावजूद नारी प्रवक्ता के रूप में प्रेमचंद स्त्रियों के प्रति हो रहे अन्याय की न केवल भर्त्सना करते हैं बल्कि नारी के समानाधिकार के लिए जो अकाट्य तर्क प्रस्तुत करते हैं, वह निस्संदेह सराहनीय है। 'नया विवाह', 'गिला', 'जीवन का शाप', 'वेश्या', 'दो कब्रें', 'नरक का मार्ग', 'एकट्रेस', 'एक आँच की कसर', 'तथ्य', 'सुभागी', 'गृहनीति', 'बालक' आदि कहानियों में स्त्री मुक्ति के स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ते हैं। कई कहानियों में तो ये अपने समय की सीमा तक को लाँघते नजर आते हैं।

प्रेमचंद के समय में बाल-श्रम की अवधारणा या स्वरूप वैसी नहीं थी, जैसा हम आज निर्धारित करते हैं। इसकी जड़े उतनी गहरी न थी इसलिए प्रेमचंद के यहाँ इस समस्या का वैसा वर्णन नहीं दिखता जैसा बाल-विवाह, विधवा-विवाह, दहेज-प्रथा, अनमेल विवाह, अछूत समस्या आदि का। फिर भी प्रेमचंद 1922 में प्रकाशित 'गुप्त-धन' और 1927 में प्रकाशित 'मंदिर' में बाल-श्रमिकों की स्थिति को, उनके श्रम को चित्रित करते हैं; व्यापकता में भले ही न सही पर संक्षिप्त झलक अवश्य ही देती हैं। इन सीमित कहानियों के माध्यम से भी प्रेमचंद बहुत कुछ कह जाते हैं। बाल-श्रम के मूल कारणों की खोज कर डालते हैं।

समानता और लोकतंत्र की विरोधी तानाशाही, व्यवस्था और उसके शोषण को दर्शाती हैं। जमींदार, साहूकार, महाजन ये सभी एक तानाशाह शासक की तरह, पूरी तरह निरंकुश और दायित्वहीन होकर किसानों, गरीबों और मजलूमों पर अत्याचार करते हैं, उनसे उनके जीने का मौलिक अधिकार तक छीन लिया जाता है। समाज के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शोषकों के प्रति प्रेमचंद के मन में गहरा विद्वेष है, जो गहन और गंभीर बनकर व्यंग्य में परिणत हो जाता है। अपनी कहानियों में इन सबसे उबरने के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संकेत और समाधान छोड़ जाते हैं। कई जगह वह अधोषित रूप से समाधान प्रदान करते नजर आते हैं, क्योंकि प्रेमचंद जब अपने गल्प को सत्य में रूपान्तरित कर रहे थे तब भारतीय समाज व्यवस्था में जो स्पंदन, चहल-पहल और उथल-पुथल हो रही थी, उसमें विद्रोह की चिनगारियाँ तो थीं, किन्तु क्रांतिकारी परिस्थितियाँ उत्पन्न नहीं हुई थीं; इसलिए उनके लिए क्रांति का ब्लूप्रिंट पेश करना संभव नहीं था। इसका यह कदापि अर्थ नहीं कि प्रेमचंद अपने को सिर्फ समस्याओं तक ही सीमित रखते हैं, इससे तो प्रेमचंद के साहित्य का बाह्य कलेवर तैयार होता है। दरअसल उनके साहित्य की अंर्तआत्मा तो वहाँ नजर आती है, जहाँ वे भारतीय लोकमन और लोकमत की जटिलताओं, विसंगतियों और अंतर्द्वद्वों को समग्रता में समझते हुए उसका चित्रण कर परिष्कार करने के लिए प्रयत्नशील नजर आते हैं।

प्रेमचंद की कहानियों के आलोक में मनुष्य और उसके महत्व को तथा उसके मूलभूत अधिकारों को उद्घाटित किया गया है। हर व्यक्ति की गरिमा की समान स्वीकृति व्यक्तियों के अधिकार एवं कर्त्तव्य दोनों का आधार है। प्रेमचंद आद्यंत एक सही मनुष्य हैं। हमारे समय के श्रेष्ठ कवि श्री केदारनाथ सिंह की एक कविता है 'पूस की रात' पुनश्च जिसकी कुछ पंक्तियाँ हैं -

पिछली रात की भयानक ठंड में
मुझे अचानक याद आया
वह छोटा-सा, अलाव, प्रेमचंद की कहानी
'पूस की रात' का
वह पूस के महीने की
वह लम्बी-अथक महाभारत जैसी रात
और जब सुबह हुई
तो गाँववालों ने देखा
कोहरे से निकलकर एक पतली-सी पगडंडी पर
युधिष्ठिर और उनका कुत्ता
दोनों हिमालय से वापस आ रहे हैं
बर्फ ने उन्हें गलाने से इनकार कर दिया था।

प्रेमचंद की हर कहानी एक छोटा-सा अलाव है, हमारे जीवन की पूस की रातों का। साथ ही प्रेमचंद की कथाएँ लम्बी-अथाह हैं महाभारत की तरह। इतना अधिक जीवन किसी दूसरे कथाकार में नहीं है। इतना अधिक सत्य और धर्म भी नहीं। धूप-वर्षा-बर्फ में भी जो बची रहेंगी वे हैं प्रेमचंद की कथाएँ।[11] प्रेमचंद के समय की तुलना में समय आज बदला है, किंतु 'दुखी' 'गंगी' और उसकी जैसी नियति वाले करोड़ों-करोड़ों साधारण जन, दलित, स्त्री आज के भारतीय समाज की भी सच्चाई है। मनुष्य और मनुष्य होने के नाते उनको मिले अधिकारों का हनन निरंतर जारी है। 'घीसू' और 'माधव' हम सबके भीतर है। 'होरी' और 'सूरदास' तथा 'निर्मला' और सलोनी काकी भी। कोई सदिच्छा, कोई रचनात्मक उपक्रम, कोई आदर्शवाद इस सच्चाई को नहीं बदल सकता। उसे बदल सकती है, आदमी की उस नई सोच से लैस क्रियाशीलता, जिंदगी भर के अपने अनुभवों के बीच से प्रेमचंद अंततः जिसे पा सके थे।[12] रंग-रोगन लगाकर समाज की इस इमारत को नहीं चमकाया जा सकता, थूनियाँ लगाकर उसे खड़ा नहीं रखा जा सकता, जरूरत है नई बुनियाद पर समाज की, मानवता की एक नयी इमारत खड़ा करने की; और आज नही तो कल यह इमारत जरूर खड़ी होगी। प्रेमचंद की कहानियाँ यही संदेश देती हैं।

प्रेमचंद की संवेदना सतही अखबारी संवेदना नहीं थी। उन्होंने कहानियों के ढांचे के रूप में सामयिक घटनाओं, सामयिक परिस्थितियों तथा सामयिक चरित्रों को अवश्य ग्रहण किया था, किन्तु उनका कलाकार मानव-मन को भी उसी प्रकार जानता था, जिस प्रकार अपने पात्रों के मन को। वे अपने युग में लड़े जा रहे युद्ध को, अन्याय के विरूद्ध लड़े जाने वाले शाश्वत युद्ध से अलग नहीं कर रहे थे ओर न ही उनमें अपने समकालीन ढाँचे को चीर कर, विद्रोह का आयान देने की क्षमता की कमी थी। प्रेमचंद समाज के सजग प्रहरी होने के नाते जागते रहो, जागते रहो की आवाज लगाते रहते हैं और सबको चाबुक लगाकर सचेत करने का प्रयास करते हैं कि उठो, जागो, इस समाज को बदल डालो। व्यक्ति, समाज, धर्म, जीवन, दर्शन, छुआ-छूत, नारी समस्या, परिवार, किसान और उसके जीवन से संबंधित समाज के सारे वर्ग, सारी शक्तियाँ, सारे संस्थान कहानी की सामाजिकता में स्थापित हुए हैं। आज भी दलित, पीड़ित और शोषित मानव होने के अधिकार से वंचित मानवता के लिए प्रेमचंद एक अनिवार्य प्रसंग हैं। मनुष्य और उसकी मनुष्यता ही सबसे प्रबल रूप में उनकी कहानियों की जान के रूप में व्याप्त है। सर्वत्र मानवाधिकार की अनुगूँज के रूप में ही वे सुनाई देती है। उनकी कहानियाँ घायल हो रही मनुष्यता और परतंत्रता की आर्त पुकार है। मानों वे चीख-चीख कर कह रही हों -

बहुत बँट चुके हैं
अब न बाँटों लोगों को
न बढ़ाओ आपसी रंजिश
न तराशो दिलों के जख्म
जरूरत है कि आज, हर कोई मानव बने
विषमता के अक्स को धरती से मिटाने के लिए

संदर्भ सूची

1. ''मानवाधिकार शिक्षण प्रतिष्ठान'', ''मानवाधिकार: एक परिचय'', नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2009, पृष्ठ-23
2. डॉ. एच.ओ. अग्रवाल, ''मानव अधिकार'', सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण: 2009, पृष्ठ-3
3. मानव अधिकार, स्त्रोत ग्रंथ, संकलन और संपादन अर्जुन देव, इंदिरा अर्जुन देव, सुप्ता दास: अनुवाद - आदित्य नारायण सिंह, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुशंधान और प्रशिक्षण परषिद्, दिल्ली 1998, पृष्ठ-199
4. All human rights derive from the dignity and worth inherent in the human person and that the human person is the central subject of human rights and fundamental freedoms.

- World Conference on Human Rights (वियना 1993)
"Human Rights are all those characteristics or attributes that are essential to life with dignity"

- जस्टिस जे.एस.वर्मा (राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष)
5. ऋग्वेद
6. ए. अरविंदाक्षन, 'प्रेमचंद के आयाम' राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, पहला संस्करण: 2006, भूमिका से उद्धृत।
7. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह और रेखा अवस्थी (संपादक), 'प्रेमचंद: विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवता', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण: 2006, भूमिका से उद्धृत।
8. भीष्म साहनी, 'कहानीकार प्रेमचंद', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-280
9. वित्तर बालिन, 'पीड़ित-दलित जनगण का चित्रण (लेख) 'प्रेमचंद-विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण: 2006, पृष्ठ-304
10. अनिता रानी, 'प्रेमचंद की कहानियों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण', प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण: 2007, पृष्ठ-89
11. अरूण कमल, 'सरोकारों का सम्वर्द्धन' (लेख), प्रेमचंद: विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता' में संकलित, पृष्ठ-397
12. शिवकुमार मिश्र, 'कहानीकार प्रेमचंद', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण: 2006, पृष्ठ-69-70

सांख्यशास्त्र शिक्षा और विश्व की रचना

डॉ० दिनेश कुमार

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

Abstract- क्षर-अक्षर सृष्टि का योग्य रीति से वर्णन करने वाले तीन शास्त्र हैं। पहला न्यायशास्त्र और दूसरा कापिल सांख्यशास्त्र। परन्तु इन दोनों शास्त्रों के सिद्धान्तों को अपूर्ण ठहराकर वेदान्तशास्त्र ने ब्रह्मस्वयप का निर्णय एक तीसरी ही रीति से किया है इस कारण वेदान्त प्रतिपादित उपपत्ति का विचार करने के पहले हमें न्याय और सांख्यशास्त्रों के सिद्धान्तों पर विचार करना चाहिए। बाद्रायणाचार्य के वेदान्तसूत्रों में इसी पद्धति से काम लिया गया है।

वेदान्त में सांख्यशास्त्र के बहुत से सिद्धान्त के बहुत से सिद्धान्त पाये जाते है, परन्तु स्मरण रहे कि सांख्य और वेदान्त के अन्तिम सिद्धान्त एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं। यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि वेदान्त ओर सांख्य के जो सिद्धान्त आपस में मिलते-जुलते हैं, उन्हे पहले किसने निकाला था-वेदन्तियों ने या सांख्यवादियों ने? परन्तु इस ग्रन्थ में इतने गहन विचार में प्रवेश करने की आवश्यकता नहीं। फिर भी इस प्रश्न का उत्तर तीन प्रकार से दिया जा सकता है। पहला यह कि शायद उपनिषद् (वेदान्त) और सांख्य दोनों की वृद्धि, दो सगे भाईयों के समान साथ-साथ हुई हो, और उपनिषदों में जो सिद्धान्त सांख्यों के मतों के समान दिखाई पड़ते हैं, उन्हें उपनिषत्कारों ने स्वतन्त्र रीति से खोज निकाला हो। दूसरा यह कि कदाचित् कुछ सिद्धान्त सांख्यशास्त्र से लेकर वेदान्तियों ने उन्हें वेदान्त के अनुकूल स्वरूप दे दिया हो। तीसरा यह कि प्राचीन वेदान्त के सिद्धान्तों में ही कपिलाचार्य ने अपने मत के अनुसार कुछ परिवर्तन और सुधार करके सांख्यशास्त्र की उत्पत्ति कर दी हो। इन तीनों में से तीसरी बात ही अधिक विश्वसनीय ज्ञात होती है; क्योंकि यद्यपि वेदान्त और सांख्य दोनों बहुत प्राचीन हैं, तथापि उनमें वेदान्त या उपनिषद् सांख्य से भी अधिक प्राचीन (श्रौत) है। अस्तु, यदि पहले हम न्याय और सांख्य के सिद्धान्तों को अच्छी तरह समझ लें, तो फिर वेदान्त के-विशेषत: गीता-प्रतिपादित वेदान्त के -तत्व जल्दी समझ में आ जायेंगे। इसलिए पहले हमें इस बात का विचार करना चाहिए कि इन दो स्मार्त शास्त्रों का, क्षर-अक्षर-सृष्टि की रचना के विषय में क्या मत है।

प्रस्तावना- कपिल के सांख्यशास्त्र का विचार करने के पहले यह कह देना उचित होगा कि 'सांख्य' शब्द के दो भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं। पहला अर्थ कपिलाचार्य द्वारा प्रतिपादित 'सांख्यशास्त्र' है। उसी का उल्लेख इस प्रकरण में तथा एक बार भगवद्गीता (गीता 18.13) में भी किया गया है। परन्तु इस विशिष्ट अर्थ के सिवा सब प्रकार के तत्वज्ञान को भी सामान्यत: 'सांख्य' ही कहने की परिपाठी है, और इसी 'सांख्य' शब्द में वेदान्तशास्त्र का भी समावेश होता है। 'सांख्यनिष्ठा' अथवा 'सांख्ययोग' शब्दों में 'सांख्य' का यही सामान्य अर्थ अभीष्ट है। इस निष्ठा के ज्ञानी पुरूषों को भी भगवद्गीता में जहाँ (गीता 2. 31;3.3;5.4,4; और 13.24) 'सांख्य' कहा है, वहाँ सांख्य का अर्थ केवल कापिल सांख्यमार्गी ही नहीं है, वरन् उसमें आत्म, अनात्म विचार से सब कर्मों का सन्यास करके ब्रह्मज्ञान में ही निमग्न रहने वाले वेदान्तियों का भी समावेश किया जाता है। शब्दशस्त्रज्ञों का कथन है कि 'सांख्य' शब्द 'संख्या' धातु से बना है। इसलिए इसका पहला अर्थ 'गिनने वाला' है, और कपिलशास्त्र के मूल तत्व इने-गिने 'पच्चीस' ही हैं। इसलिए उन्हें 'गिनने वाले के' अर्थों में यह विशिष्ट 'सांख्य' नाम पहले दिया गया अनन्तर 'सांख्य' शब्द का अर्थ बहुत व्यापक हो गया, और उसमें सब प्रकार के तत्व ज्ञान का समावेश होने लगा। यही कारण है कि जब पहले-पहले कापिल-भिक्षुओं को 'सांख्य' कहने को परिपाठी प्रचलित हो गयी, तब वेदान्ती सन्यासियों को भी यही नाम दिया जाने लगा होगा। कुछ भी हो, इस प्रकरण का हमने जान-बूझकर यह लम्बा-चौड़ा 'कापिल सांख्यशास्त्र' नाम इसलिए रखा है कि सांख्य शब्द के उक्त अर्थ भेद के कारण कुछ गड़बड़ी न हो। कापिलसांख्यशास्त्र में भी कणाद के न्यायशास्त्र के समान सूत्र है।

शान्तिपर्व (मभा. शां. 340.67) में एक जगह लिखा है कि सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सन सनत्सुजात, सनातन और कपिल-ये सातों ब्रह्मदेव के मानस पुत्र हैं और इन्हें जन्म से ही ज्ञान हो गया था। दूसरे स्थान (महा. शां. 218) में कपिल के शिष्य असुरि और उसके चेले पंचशिख ने जनक को सांख्यशास्त्र का जो उपदेश दिया था, उसका उल्लेख है। इस प्रकार शान्तिपर्व (मभा.शां. 301.108,101) में भीष्म ने कहा है कि सांख्यों ने सृष्टि-रचना इत्यादि के बारे में एक बार जो ज्ञान प्रचलित कर दिया है, वही 'पुराण, इतिहास' अर्थशास्त्र' आदि सबमें पाया जाता है।

कापिल सांख्यशास्त्र विचार- इस संसार में कोई भी नयी वस्तु उत्पन्न नहीं होती; क्योंकि शून्य से, अर्थात् जो पहले था ही नहीं उससे शून्य को छोड़ और कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए कि उत्पन्न वस्तु में, अर्थात् कार्य में जो गुण दिखाई पड़ते हैं, वे गुण जिससे यह वस्तु उत्पन्न हुई है, उसमें (अर्थात् कारण में) सूक्ष्म रीति से तो अवश्य होने ही चाहिए(सां. का. 1)। बौद्ध और काणाद यह मानते हैं कि पदार्थ का नाश होकर उससे दूसरा नया पदार्थ बनता है। उदाहरणार्थ, बीज का नाश होने के बाद उससे हो के बाद उसमें अंकुर और अंकुर का नाश होने के बाद उससे पेड़ होता है। परन्तु सांख्यशास्त्रियों और वेदान्तियों को यह मत पसन्द नहीं है। वे कहते हैं कि वृक्ष के बीज में जो 'द्रव्य' है, उनका नाश नहीं होता, किन्तु वे ही द्रव्य जमीन से और वायु से दूसरे द्रव्यों को खींच लिया करते हैं, और इसी कारण से बीज को अंकुर का नया स्वरूप या अवस्था प्राप्त हो जाती है।

सांख्य मतानुसार जब सत्कार्यवाद सिद्ध हो जाता है; तब यह मत आप-ही-आप गिर जाता है कि दृश्यसृष्टि की उत्पत्ति शून्य से, अर्थात् किसी पदार्थ के पहले न रहते हुई है; क्योंकि शून्य से, अर्थात् जो कुछ भी नही है, उससे जो ''अस्तित्व में है'' वह उत्पन्न नहीं हो सकता। इस बात से यह साफ-साफ सिद्ध होता है कि सृष्टि किसी - न - किसी पदार्थ से उत्पन्न हुई और इस समय सृष्टि में जो गुण हमें दिखाई पड़ते है, वे ही इसके मूल पदार्थ में भी होने चाहिए। अब यदि हम सृष्टि की ओर देखें, तो हमें वृक्ष, पुशु, मनुष्य, पत्थर, सोना, चाँदी, हीरा, जल, वायु इत्यादि अनेक पदार्थ दिखाई पड़ते हैं, और इन सबके और इन सबके रूप तथा गुण भी भिन्न-भिन्न हैं। सांख्यवादियों का सिद्धान्त है कि यह भिन्नता या नानत्व मूल में, अर्थात् मूल पदार्थ में नहीं है, किन्तु मूल में सब वस्तुओं का द्रव्य एक ही है। अर्वाचीन रसायनशास्त्रज्ञों ने भिन्न-भिन्न द्रव्यों का पृथक्करण करके पहले 62 मूल तत्व ढूँढ निकाले थे, परन्तु अब पश्चिमी विज्ञानवेत्ताओं ने भी यह निश्चय कर लिया है कि ये 62 मूल तत्व स्वतन्त्र या स्वयं सिद्ध नहीं हैं। किन्तु इन सबकी जड़ में कोई-न-कोई एक ही पदार्थ है, और उस पदार्थ से ही सूर्य, चंद्र, ताराकगण, पृथ्वी इत्यादि सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है। इसलिए अब उक्त सिद्धान्त का अधिक विवेचन आवश्यक नहीं है। जगत् के सब पदार्थों का जो यह मूल द्रव्य है, उसे ही सांख्यशास्त्र में 'प्रकृति' कहते हैं। प्रकृति का अर्थ 'मूलधर्म' है। इस प्रकृति से आगे जो पदार्थ बनते हैं, उन्हें 'विकृति', अर्थात् मूल द्रव्य के विकार कहते हैं।

सूक्ष्म और स्थूल पदार्थ- सांख्यवादियों का मत है जब हम 'सूक्ष्म' और 'स्थूल', 'व्यक्त' और 'अव्यक्त' शब्दों का अर्थ समझने लगे, तब कहना पड़ेगा कि सृष्टि के आरम्भ में प्रत्येक पदार्थ सूक्ष्म और अव्यक्त प्रकृति के रूप में रहता है। फिर वह (चाहे सूक्ष्म हो या स्थूल हो) व्यक्त, अर्थात् इन्द्रिय गोचर होता है, और जब प्रलयकाल में इस व्यक्ति स्वरूप का नाश होता है, तब फिर वह पदार्थ अव्यक्त प्रकृति में मिलकर अव्यक्त हो जाता है। गीता में भी यही मत दिखाई, पड़ता है (गीता 2.28 और 8.18)। सांख्यशास्त्र में इस अव्यक्त प्रकृति को ही 'अक्षर' भी कहते हैं, और प्रकृति से होने वाले सब पदार्थों को 'क्षर' कहते हैं। यहां 'क्षर' शब्द का अर्थ, सम्पूर्ण नाश नहीं है, अपितु सिर्फ व्यक्त स्वरूप का नाश ही आपेक्षित है। प्रकृति के और भी अनेक नाम हैं, जैसे-प्रधान गुणक्षेभिणी, बहुधानक, प्रसवधर्मिणी इत्यादि। सृष्टि के सब पदार्थों का मुख्य मूल होने के कारण उसे (प्रकृति का) प्रधान कहते हैं। तीनों गुणों की साम्यावस्था का भंग स्वयं आप ही करती है, इसलिए उसे गुण-क्षोभिणी कहते हैं। गुणत्रयी रूपी पदार्थ भेद के बीज प्रकृति में हैं, इसलिए उसे बहुधानक कहते हैं। और प्रकृति से ही सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं, इसलिए उसे प्रसवधर्मिणी भी कहते हैं। इस प्रकृति को ही वेदान्तशास्त्र में 'माया', अर्थात् मायावी दिखावा कहते हैं।

मन और बुद्धि- मन और बुद्धि भी प्रकृति के ही विकार हैं। इसलिए बुद्धि को जो ज्ञान होता है, वह भी प्रकृति के कार्य का ही फल है। यह ज्ञान तीन प्रकार का होता है,-जसे-सात्विक, राजस और तामस (गीता 18.20-22)। जब बुद्धि को सात्विक ज्ञान प्राप्त होता है, तब पुरूष को यह मालूम होने लगती है कि मैं प्रकृति से भिन्न हूँ। सत्व-रज-तमोगुण प्रकृति के ही धर्म हैं, पुरूष के नहीं पुरूष निर्गुण है, और त्रिगुणात्मक प्रकृति उसका दर्पण है। (मभा.शां. 204.8) जब यह दर्पण स्वच्छ और निर्मण हो जाता है, अर्थात् जब बुद्धि-जो प्रकृति का विकार है- सात्विक हो जाती है, तब इस निर्मल दर्पण में पुरूष को अपना सात्विक या सच्चा स्वरूप दिखाई देने लगता है, और उसे यह बोध हो जाता है कि मैं प्रकृति से भिन्न हूँ। उस समय यह प्रकृति लज्जित होकर उस पुरूष के सामने नाचना, खेलना या जाल फैलाना बंदकर देती है। जब यह अवस्था प्राप्त हो जाती है, तब पुरूष सब पाशों या जालों से मुक्त होकर अपने स्वाभाविक कैवल्यपद को पहुँच जाता है। 'कैवल्य' शब्द का अर्थ है केवलता, अकेलापन या प्रकृति के साथ संयोग न होना। पुरूष की इस नैसर्गिक या स्वाभाविक स्थिति को ही सांख्यशास्त्र में मोक्ष (मुक्ति या छुटकारा) कहते हैं।

प्रकृति और पुरूष- सांख्यशास्त्र के अनुसार 'पुरूष' निर्गुण, अकर्ता और उदासीन है। इसलिए तत्वदृष्टि से 'छोड़ना' या 'पकड़ना' क्रियाओं का कर्तापुरूष नहीं हो सकता (गीता 13.31,32)। इसलिए सांख्यवादी कहते हैं कि प्रकृति ही 'पुरूष' को छोड़ दिया करती है। अर्थात् वही 'पुरूष' से अपना छुटकारा या मुक्ति कर लेती है। क्योंकि कर्तव्य 'प्रकृति' का ही धर्म है। (सां. का. 62 और गीता 13.14) सारांश यह है कि मुक्ति नाम की ऐसी कोई निराली अवस्था नहीं है, जो 'पुरूष' को कहीं बाहर से प्राप्त हो जाती हो। अथवा यह कहिये कि वह 'पुरूष' की भूल और स्वभाविक स्थिति से कोई भिन्न स्थिति भी नहीं है। प्रकृति और पुरूष में वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा कि घास के बाहरी छिलके और अन्दर के गूदे में रहता है या जैसा पानी और उसमें रहने वाली मछली में। सामान्य पुरूष प्रकृति के गुणों से मोहित हो जाते हैं और यह स्वाभाविक भिन्नता पहचान नहीं सकते। इसी कारण से संसार-चक्र में फँसे रहते हैं। परन्तु जो इस भिन्नता को पहचान लेता है, वह मुक्त ही है। महाभारत (मभा.शां. 114.58;248.11 और 306-308) में लिखा है कि ऐसे ही पुरूष को 'ज्ञाता' या 'बुद्ध' और 'कृतकृत्य' कहते हैं। गीता के वचन 'एतद् बुद्ध्वा बुद्धिमान स्यात'' (गीता 15.20) में बुद्धिमान शब्द का भी यही अर्थ है। अध्यात्मशास्त्र की दृष्टि से मोक्ष् का सच्चा स्वरूप भी यही है।

पुरूष और प्रकृति का जब संयोग होता है, तब प्रकृति अपने गुणों का जाला उस पुरूष के सामने फैलाती है, और पुरूष उसका उपभोग करता रहता है। ऐसा होते-होते जिस पुरूष के चारों ओर की प्रकृति के खेल सात्विक हो जाते हैं, उस पुरूष के लिए ही (सब पुरूषों को नहीं) सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है, और उस पुरूष के लिए ही प्रकृति के सब खेल बंद हो जाते हैं एवं वह अपने मूल कैवल्यपद को पहुँच जाता है परन्तु यद्यपि उस पुरूष को मोख मिल गया, तो भी शेष सब पुरूषों को संसार में फँसे ही रहना पड़ता है। कदाचित् कोई यह समझे कि ज्यों ही पुरूष इस प्रकार कैवल्यपद को पहुँच जाता है, त्यों ही वह एकदम प्रकृति के जाले से छूट जाता होगा। परन्तु सांख्यमत के अनुसार यह समझ गलत है। देह और इन्द्रियरूपी प्रकृति के विचार उस मनुष्य की मृत्यु तक उसे नहीं छोड़ते। सांख्यवादी इसका यह कारण बताते हैं कि ''जिस प्रकार कुम्हार का पहिया - ऊपर का घड़ा बनकर निकाल लिया जाने पर भी - पुर्वसंस्कार के कारण कुछ देर तक घूमता ही रहता है, उसी प्रकार कैवल्यपद की प्राप्ति हो जाने पर भी इस मनुष्य का शरीर कुछ समय तक शेष रहता

है'' (सां. का. 67)। यथापि उस शरीर से कैवल्यपद पर आरूढ़ होने वाले पुरूष को कुछ भी अड़चन या सुख-दु:ख की बाधा नहीं होती। क्योंकि यह शरीर जड़ प्रकृति का विकार होने के कारण स्वयं जड़ ही है इसलिए इसे सुख-दु:ख दोनों समान ही हैं। 'प्रकृति' और 'पुरूष', दोनों पृथक-पृथक तत्व है और पुरूष का 'कैवल्य' ही त्रिगुणातीत अवस्था है।

विश्व की रचना और संहार- सांख्यमत के अनुसार प्रकृति ने इस जगत् या सृष्टि को असंख्य पुरूषों के लाभ के लिए ही निर्माण किया है। 'दासबोध' में श्रीसमर्थ रामदासस्वामी ने भी प्रकृति से सारे ब्रह्माण्ड के निर्माण होने का बहुत अच्छा वर्णन किया है। उसी वर्णन से ''विश्व की रचना और संहार'' शब्द इस प्रकरण में लिए गये हैं। इसी प्रकार भगवद्गीता के सातवें और आठवें अध्यायों में मुख्यत: इसी विषय का प्रतिपादन किया गया है। और ग्यारहवें अध्याय के आरम्भ में अर्जुन श्री श्रीकृष्ण से यह जो प्रार्थना की है कि ''भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तारशो मया'' (गीता 11.2)- भूतों की उत्पत्ति और प्रलय (जो आपने) विस्तारपूर्वक बताया, उसको मैंने सुना। अब मुझे अपना विश्वरूप प्रत्यक्ष दिखाकर कृतार्थ कीजिये-उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विश्व की रचना और संहार, क्षर-अक्षर-विचार का ही एक मुख्य भाग है।

भगवद्गीता के मतानुसार प्रकृति अपना संसार-शकट चलाने या सृष्टि का कार्य चलाने के लिए स्वतन्त्र नहीं है, अपितु उसे यह काम ईश्वर की अच्छा के अनुसार करना पड़ता है। सांख्यों का यह कथन है कि ज्यों ही पुरूष और प्रकृति का संयोग होता है, त्यों ही उसकी टकसाल जारी हो जाती है और जिस प्रकार बसंत ऋतु में वृक्षों में नये पत्ते दिखाई पड़ते हैं, और क्रमश: फूल और फल लगते हैं। (मभा. शां. 231.73; मनु 130), उसी प्रकार प्रकृति की मूल साम्यावस्था नष्ट हो जाती है, और उसके गुणों का विस्तार होने लगता है। इसके विरूद्ध वेदसंहिता, उपनिषद् और स्मृति ग्रन्थों में प्रकृति को मूल न मानकर परब्रह्म को मूल माना है, और परब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति होने के विषय में भिन्न-भिन्न वर्णन किये गये हैं- ''हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत्'' पहले हिरण्यगर्भ (ऋ. 10.121.1) और इस हिरण्यगर्भ से अथवा सत्य से सब सृष्टि उत्पन्न हुई (ऋ10.72,10.110) अथवा पहले पानी उत्पन्न हुई अथवा इन पानी में एक अण्डा उत्पन्न हुआ और उससे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ, ब्रह्मा से अथवा उस मूल अण्डे से ही सारा जगत् उत्पन्न हुआ (मनु. 1.8-13; छां. 3.11) अथवा वही ब्रह्मा (पुरूष) आधे हिस्से से स्त्री हो हो गया (बृ. 1.4,3; मनु 1.32) अथवा पानी उत्पन्न होने के पहले ही पुरूष था (कठ. 4. 6) अथवा परब्रह्मा से पहले तेज, पानी और पृथ्वी (अत्र ये ही तीन तत्व उत्पन्न हुए और पश्चात् उनके मिश्रण से सब पदार्थ बने)।

सूर्यमाला में पहले एक सूक्ष्म द्रव्य ही भरा हुआ था। उसकी मूल गति अथवा उष्णता का परिणाम घटता गया। तब उस द्रव्य का अधिकाधिक संकोच होने लगा और पृथ्वी समवेत सब ग्रह क्रमश: उत्पन्न हुए। अन्त में जो शेष अंश बचा, वही सूर्य है। पृथ्वी भी सूर्य के सदृश्या पहले एक उष्ण गोला थी। परन्तु ज्यों-ज्यों उष्णता कम होती गयी, त्यों-त्यों मूलद्रव्यों में से कुछ द्रव्य पतले और कुछ घने हो गये। इस प्रकार पृथ्वी के ऊपर की हवा और पानी तथा उसके नीचे का पृथ्वी का जड़ गोला, ये तीन पदार्थ बने, और इसके बाद इन तीनों के मिश्रण अथवा संयोग से सब संजीव तथा निर्जीव सृष्टि उत्पन्न हुई है। डार्विन प्रभृति पण्डितों ने तो यह प्रतिपादन किया है कि इसी तरह मनुष्य भी छोटे कीड़े से बढ़ते-बढ़ते अपनी वर्तमान अवस्था में आ पहुंचा है। परन्तु अब तक आधिभौतिकवादियों में और अध्यात्मवादियों में इस बात पर बहुत मतभेद है कि सारी सृष्टि के मूल में आत्मा-जैसे किसी भिन्न और स्वतन्त्र तत्व को मानना चाहिए या नहीं।

अवयक्त, सूक्ष्म और एक मूल रूप प्रकृति से ही क्रमश: (सूक्ष्म और स्थूल) विविध रूप व्यक्त सृष्टि निर्मित हुई है। परन्तु अब आधिभौतिक शास्त्रों के ज्ञान की खूब वृद्धि हो जाने के कारण सांख्यवादियों के ''सत्व, रज, तम'' इन तीन गुणों के बदले, आधुनिक सृष्टिशास्त्रज्ञों ने गति, उष्णता और आकर्षणशक्ति को प्रधानगुण मान रखा है। यह बात सच है कि ''सत्व, रज, तम'' गुणों की न्यूनाधिकता के परिणामों की अपेक्षा, उष्णता अथवा आकर्षणशक्ति की न्यूनधिकता की बात आधिभौतिकशास्त्र की दृष्टि से सरलतापूर्वक समझ में आ जाती है। तथापि गुणों के विकास अथवा गुणोत्कर्ष का जो यह तत्व है कि ''गुणा गुणेषु वर्तन्ते'' (गीता 3.28), वह दोनों ओर समान ही हैं। सांख्यशास्त्रज्ञ का कथन है कि जिस तरह मोड़दार पंखे को धीरे-धीरे खोलते हैं, उसी तरह सत्व, रज, तम की सामयावस्था में रहने वाली प्रकृति की तह जब धीरे-धीरे खोलते हैं, उसी तरह सत्व, रज, तम की साम्यावस्था में रहने वाली प्रकृति की तह जब धीरे-धीरे खुलने लगती है तब सब व्यक्ति सृष्टि निर्मित होती है, और इस कथन में और उत्क्रांतिवाद में वस्तुत: कुछ भेद नहीं है। तथापि, यह भेद तात्विक धर्मदृष्टि से ध्यान में रखने योग्य है।

सारांश- प्रकृति के विकासक्रम के विषय में सांख्यशास्त्रकारों का क्या कथन है। इस क्रम को ही गुणोत्कर्ष अथवा गुणपरिणामवाद कहते हैं। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि कोई काम आरम्भ करने के पहले मनुष्य उसे अपनी बुद्धि से निश्चित कर लेता है अथवा पहले वह काम करने की बुद्धि या इच्छा उसमें उत्पन्न हुआ करती है। उपनिषदों में भी इस प्रकार का वर्णन है कि आरम्भ में मूल परमात्मा को यह बुद्धि या इच्छा हुई कि हमें अनेक होना चाहिए-''बहु स्यां प्रजायेय'' और इसके बाद सृष्टि उत्पन्न हुई (छां 6.2.3; तै.2.6)। इसी न्याय के अनुसार अव्यक्त प्रकृति भी अपनी साम्यावस्था को भंग करके व्यक्त सृष्टि के निर्माण करने का निश्चय पहले का लिया करती है। निश्चय, अर्थात् व्यवसाय करना बुद्धि का लक्षण है। अतएव सांख्यों ने यह निश्चित किया है कि प्रकृति में 'व्यवसायात्मिक बुद्धि' का गुण पहले उत्पन्न हुआ करता है। सारांश यह है कि जिस प्रकार मनुष्य को पहले कुछ काम करने की इच्छा या बुद्धि हुआ करती है, उसी प्रकार प्रकृति को भी अपना विस्तार करने या पसारा पसारने की बृद्धि पहले हुआ करती है। परन्तु इन दोनों में बड़ा भारी अन्तर यह है कि मनुष्य प्राणी सचेतन होने के कारण, अर्थात् उसमें प्रकृति की बुद्धि के साथ सचेतन पुरूष का (आत्मा का) संयोग होने के कारण वह स्वयं अपनी व्यवसायत्मिका बुद्धि को जान सकता है, और प्रकृति स्वयं अचेतन या जड़ है, इसलिए उसको अपनी बुद्धि का कुछ ज्ञान नहीं रहता यह अन्तर पुरूष के संयोग से प्रकृति में उत्पन्न होने वाले चौतन्य के कारण हुआ करता हे, यह केवल जड़ या अचेतन प्रकृति का गुण नहीं है। अर्वाचीन आधिभौतिक सृष्टिशास्त्रज्ञ भी अब कहने लगे है कि इस बात को बिना माने कि मानवी इच्छा की बराबरी करने वाली, किन्तु अस्वयंवेद्य शक्ति जड़ पदार्थों में भी रहती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

तिलक, बाल गंगाधर, (2007) श्रीमद्भवदगीता, जयपुर अपोलो प्रकाशन।
त्रिशुलवाले, हरकेश कुमार (2010) ज्योतिषों वास्तु, नई दिल्ली: अन्सारी रोड, दरियागंज।
चतुर्वेदी, मुरलीधर (2007) सारावली, नई दिल्ली जैनेन्द्र प्रेस।
कौन्डिन्त्रयायन, शिवराज आचार्य (2008) मनुस्मृति, नई दिल्ली: चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस।
देवी, प्रज्ञा व देवी, मेघा (2008) गोपथ ब्राहमण भाण्यम्, देहली: चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान। झा, अच्युतानन्द (2011) वृहत्संहिता, वाराणसी: चोखम्बा विद्याभवन।
शर्मा, सुरेन्द्र शर्मा (2009) लीलावती, नई दिल्ली: चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस।
ओक्षा, गोपेश कुमार (2004) फल दीपिका, नई दिल्ली जैनेन्द्र प्रेस।
त्रिपाठी, रमाशंकर (2005) मृच्छकटिकम, नई दिल्ली: जैनेन्द्र प्रेस।
कल्पाण, हिर (2000) परलोक और पुनर्जन्मांक, गोरखपुर: गीता प्रेस।
कल्याण हरि (2001) संक्षिप्त महाभारत, गोरखपुर: गीता प्रेस।
मिश्र, जगदीश चन्द्र (2012) शुक्रनीति, वारावसी, चोखम्बा सुरभारती प्रकायन।

बिहार में क्रांतिकारी किसान संघर्ष

डॉ० सीमा पटेल

सह-आचार्य, इतिहास विभाग, स.व., पटेल महाविद्यालय भभुआ

मनोज कुमार यादव

शोध छात्र, इतिहास विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

यदि एक विराट क्रांतिकारी संभावना के बिखर जाने के फलस्वरूप भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन में सामाजिक जनवाद का फलने-फुलने का मौका मिल गया, तो इसमें भी संदेह नहीं कि सामाजिक जनवादियों को इस विजय की भारी कीमत चुकानी पड़ी। वे अन्तरवस्तु में सहज एक आंचलिक शक्ति बनकर रह गए और हिन्दी हृदयस्थल पर कभी अपनी छाप नहीं अंकित कर पाए। अब पड़ोसी राज्य बंगाल में लगातार नौ वर्षों तक सामाजिक जनवाद के परिपूर्ण विकसित मॉडल का कर्त्ताधर्ता बने रहकर भी यदि सी.पी.आई. बिहार में एकदम नहीं बढ़ पाई तो इससे भला और क्या नतीजा निकाला जाय?

परंतु नम्बूदिरीपाद एण्ड कं0 की दलील जरा सुनिए: भारत में बिहार सबसे पिछड़ा हुआ राज्य है, जो जातिवाद के कट्टर ध्रुवीकरण में जड़ा हुआ है। फिर यहाँ पूँजीवादी सुधारों का कोई उल्लेखनीय इतिहास नहीं रहा। हाँ, सचमुच ये तथ्य उतने ही निर्विवाद है, जितना निर्विवाद यह नियम कि जिस पड़ाव पर सामाजिक जनवाद अपनी यात्रा पुरी करता है, वही से क्रांतिकारी जनवाद अपनी यात्रा शुरू करता है। यही बिहार जैसा पिछड़ा राज्य आज क्रांतिकारी जनवाद की अग्रवर्ती चौकी साबित हुआ है। समाज के सबसे निचले स्तर के लोग आज किसान संघर्षों के झंझावत में खिच आए है। पिपरा हत्याकाण्ड हो या अरवल जनसंहार, खून की प्यासी नवसामतों की सेनाएं हो या गोली से बात करने वाले अर्ध-सैनिक दल, ''सम्पूर्ण क्रांति'' के पैरोकार हो या ''शाही'' विपक्ष के झंडाबरदार, कोई भी शक्ति बिहार के धधकते बैल-खलिहानो में मरघट की शांति नहीं कायम कर पाई, और न ही कोई शक्ति इतिहास के रंगाध से इन नवोदित अभिनेताओं को नेपथ्य में धकेल सकेगी।

लेकिन बिहार का किसान संघर्ष कथा सचमुच कोई नई राह खोज सकेगा? या फिर, अपने पूर्ववर्ती किसान संघर्षों की तरफ यह भी विनाश तक जा पहुंचेगा अथवा बीच राह में समझौता कर लेगा? तमाम सच्चे मार्क्सवादियों और क्रांतिकारी जनवाद के हमदर्दो के दिमाग में यही प्रश्न गूंज रहा है। यह शोध दरअसल इसी प्रश्न से निपटने की दिशा में हमारा पहला कदम है। मगर इससे पहले कि हम इस शोध की विषयवस्तु तक पहुंचे, आइए जरा भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन के टेढ़े-मेढ़े रास्ते पर एक नजर डालते हुए बिहार के किसान संघर्ष द्वारा अपनाए गए विशिष्ट गतिपथ की जाँच की जाए।

कृषि प्रधान पिछड़े देशो में कम्युनिस्ट पार्टियों की कार्यनीति के इस मंदी बुनियादी सवालों को हल करना पड़ता है: किसानों के साथ संबंध और पूँजीपति वर्ग के साथ संबंध। 1921 में लेनिन ने पुरब के कम्युनिस्टों को यह सलाह दी थी कि वे रूस की बोलोविक क्रांति की आम शिक्षा के आधार पर अपने-अपने देशो की रणनीतियां स्वयं तक करें। लेनिन ने यह स्पष्ट चेतावनी दी थी कि उन्हें अपनी समस्याओं का हल संभवत: किसी भी कम्युनिस्ट किताब में नहीं मिलेगा।

जब पी.सी. जोशी की लाइन परास्त हो गई तो तेलंगाना के उत्थान व पतन (1946-51) के संदर्भ में भारतीय कम्युनिस्ट आंदालन में स्पष्टत: पृथक तीन लाईने उभरकर आई। रणदिवे एण्ड कं0 की लाइन में चीनी क्रांति के महत्व को ठुकरा दिया गया, माओ पर दूसरा टीटो बनने का इल्जाम लगाकर भीषण आक्रमण किया गया तथा शहरों में मजदूर वर्ग के विद्रोहों को आधार बनाकर जनवादी और समाजवादी क्रांतियों को साथ-साथ सम्पन्न करने की पैरवी की गई। यद्यपि यह वाम दुस्साहसवादी लाइन चीनी क्रांति और माओ तपेतुइ के प्रति स्तालिन के प्रारम्भिक संदेहों को पूंजी बना कर टिकना चाहती थी, पर अन्तत: यह बुरी तरह पिट गई।

तेलंगाना के बहादुराना संघर्ष के निर्माण में आंध्र सेक्रेटारियट की लाइन काफी हद तक चीनी अनुभवो और माओ की शिक्षाओं पर निर्भर थी। यद्यपि आंध्र का पार्टी-नेतृत्व, आंध्र महासभा के साथ तालमेल कायम कर निजाम की सामंती निरंकुशता के खिलाफ आंदोलन चलाने में सफल रहा, पर नेहरू सरकार और उसकी फौजो का मुकाबला करने की जटिल समस्या को हल करने में उसे असफलता हाथ लगी। तत्कालिन परिस्थितियों में उनके लिए शायद इस मामले में सफलता प्राप्त करना संभव भी न था, और इसीलिए पार्टी के अंदर दो लाइनों के संघर्ष को उसके तर्कसंगत परिणाम तक नहीं पहुंचाया जा सका। बहरहाल कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में अबतक चले किसान संघर्षों के इतिहास में तेलंगाना एक गौरवमय अध्याय माना जाता है। यह पार्टी नेतृत्व के एक हिस्से द्वारा चीनी क्रांति के अनुभव से शिक्षा लेने का और भूमि क्रांति को धुरी मानकर भारत की जनवादी क्रांति के लिए एक व्यापक कार्यदिशा तैयार करने का पहला गंभीर प्रयास था।

जमींदारी उन्मूलन जैसे लुभावने सुधारो के जरिए आवश्यक तैयारी पूरी कर नेहरू सरकार संसदीय जनवाद की राह पर चल पड़ी तेलंगाना अब तक धक्के का शिकार हो चुका था। अत: वस्तुगत स्थिति ने इस बात की इजाजत दी थी कि अजय घोष और हागे द्वारा पेश की गई मध्यमार्गी लाइन हावी हो जाए। इस लाइन ने चीन और भगरस की परिस्थितियों के बीच अंतर को बहस का सबसे बड़ा मुद्दा बना लिया और पार्टी को संसदीय पथ पर ठेल दिया।

बीसवीं सदी के अंत के इन वर्षों में जहाँ एक तरफ हमारे देश का शासक वर्ग प्रौद्योगिकी और विज्ञान के क्षेत्रों में आधुनिकता और विकास के उच्चतम शिखरो पर पहुंचने का दावा कर रहा है, वही इस देश का ग्रामीण समाज व्यवस्था में आज भी मध्ययुगीन बर्बरता और शोषण-अत्याचार अग्रतर रूपों से विद्यमान हैं।

बिहार के गांवों में सदियों से चले आ रहे सामंती उत्पादन संबंध अब एक अनिवार्य बदलाव की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं। इस जद्दोजहद में खेत मजदूर गरीब, मध्यम किसान अपने संगठनों के बैनर तले सामंतो, ठेकेदारों और सरकारी संरक्षण में पलने वाले गिरोहो से जुझ रहे है तो प्रभुत्वशाली सामंतो का वर्ग यथास्थिति बनाए रखने के लिए पुलिस और अफसरशाही के सहयोग से संगठित हिंसा का सहारा ले रहा है। ग्रामीण अंचल में सक्रिय निजी सेनाएं भू-स्वामियों और अपराधी ठेकेदारी नेता गिरोहो की इसी संगठित हिंसा और जनविरोधी कार्यवाहियों को सरेअंजाम देने के लिये बनी है।

बिहार में इस तरह की सेनाएं सक्रिय है। इसमें भूमिसेना, ब्रह्मर्षि सेना, लोरिक सेना, कुंवर सेना और सर्चलाईट सेना आदि प्रमुख है। नक्सलियो की ''लाल सेना'' भी चर्चित है। आमतौर पर किसानों, मजदूरों के सभी खुले, कानूनी और भूमिगत संगठनों को ''लाल सेना'' की संज्ञा दे दी जाती है। कम से कम प्रशासन की नजर में लाल सेना का यही परिभाषा है।

भूमि सेना बिहार की चर्चित निजी सेनाओं में एक है। आमतौर पर यह दक्षिण मध्य बिहार के कुर्मी भूस्वामियों का जुल्मी संगठन है। इसका गठन नक्सलवादी उभार से लोहा लेने, खेत मजदूरों के आंदोलन को हथियार के बल पर दबाने, ग्रामीणां को डराने-धमकाने और जुझारू नेताओं की हत्या करने के उद्देश्य से किया गया। पटना, गया, नालंदा में यह विशेष रूप से सक्रिय है। बिहार में कुर्मी जाति जमीन और जायदाद के मामले में काफी समृद्ध और मानसिकता के स्तर पर दबंग मानी जाती है। सन् 1979 में पटना और गया के बड़े भूस्वामियों ने गाँवों में उभरते किसान संघर्षों को कुचलने के लिए एक हथियारबंद गिरोह बनाया। जिसका नाम तब किसान सुरक्षा समिति रखा गया। किसान सुरक्षा के नाम पर यह भू-स्वामियों की ओर से खेत मजदूरों पर आक्रमण करने के इरादे से बनाया गया। यही किसान सुरक्षा समिति ''बाद में भूमिसेना'' के रूप में जानी जाने लगी। सितंबर 1979 में इसने पुलिस का भरपुर संरक्षण पाकर पटना, गया और नालंदा के 111 गाँवों में आतंक मचाया और कई स्थानों पर निर्दोष हरिजनों और खेत मजदूरों को मौत के घाट उतारा। 'बेलछी कांड' के बाद तो इसकी बर्बरता की पूरे देश में चर्चा होने लगी।

पटना के पुनपुन क्षेत्र में ''भूमिसेना'' का सदर मुकाम खोला गया। क्षेत्र के कई सत्ताधारी नेताओं और कुछ तत्कालीन मंत्रियों ने इन भूस्वामी पुत्रों और युवा ठकेदार अपराधियों को उनके ''बहादुराना काम'' के लिये प्रोत्साहित भी किया। लाईसेंस और गैर लाईसेंस हथियारों के बल पर गिरोह ने हर हालत में जमींदारी संबंधी की रक्षा करने का प्रण किया। इसके साथ ही जुल्मो सितम का सिलसिला तेज हो गया। पिपरा जैसा बड़ा हत्या काण्ड इसी गिरोह का काला कारनामा था। बाद में इसी गिरोह ने पटना शहर में दिनदहाड़े पटना विश्वविद्यालय छात्रसंघ के तत्कालीन महासचिव प्रेमचंद सिन्हा को गोली मारकर हत्या कर दी। वे जन आंदोलनों के पक्षधर छात्र नेता थे। स्व0 सिन्हा के बड़े भाई को भी इसी गिरोह ने मार डाला। क्योंकि वे अपने छोटे भाई की हत्या के मामले में दर्ज मुकदमें में अपराधियों के खिलाफ पैरवी कर रहे थे। इन हत्यारो को बिहार के दो कांग्रेसी विद्यालयों और एक मंत्री का निरंतर संरक्षण मिलता रहा। कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों से इन विद्यालयों के हमेशा अच्छे संबंध रहे।

अपने आधार को व्यापक बनाने और अपराधी चरित्र को छुपाने के लिये, खासकर कुर्मी जाति के मझौले और धनी किसानों की समस्याओं पर भी भूमिसेना के लोग यदा-कदा कुछ प्रदर्शन भी करते रहे हैं। मगर सेना का मुख्य ईरादा कुर्मी जाति के लोगों की जातिय भावना का फायदा उठाना रहा है। इसे स्थानीय प्रशासन का खुला समर्थन मिलता रहा है। पटना जिले के जहसुना गांव में जिस तरह पुलिस कैम्प के ठीक सामने जो निर्दोष ग्रामीणों की दिन-दहाड़े हत्या की गई उसमें सेना और बिहार पुलिस के बीच गठजोड़ की सच्चाई जाहिर होती है। पुलिस सुरक्षा में ही इसने औरंगाबाद जिले के गोद में 6 लोगों की हत्या की। सन् 1984 तक के आंकेड़ों के अनुसार केवल पटना और नालंदा जिले में भूमिसेना ने 200 सशस्त्र हड़पों और हिंसक वारदातों में हिस्सा लिया। सन् 84 तक भूमिसेना -पुलिस गठजोड़ के हाथो 116 व्यक्तियों की हत्या हो चुकी थी। अब यह संख्या 219 तक पहुंच चुकी है। अखबारी रपटो के मुताबिक किसान मजदूर के हुजूम या उनके हथियारबंद दस्तो ने अब तक भूमिसेना के 80 सदस्यों का सफाया किया है। भूमिसेना पहले से कुी कमजोर पड़ गई है।

ब्रह्मर्षि सेना मध्य बिहार के भूमिहार भूस्वामियों, नेताओं, अपराधियों और ठेकेदारो को निजी सेना है। ब्रह्मर्षि सेना जहानाबाद, गया, नालंदा और पटना के ग्रामीण इलाकों में खासतौर पर सक्रिय है। खुफिया सुत्रों पर भरोसा किया जाय तो इस सेना के पास 550 से अधिक संगठित अपराधी कार्यकर्ता है। मगर इन्हें किसी ''सेना'' या दस्ते की तरह संगठित समझने की भूल नहीं की जानी चाहिये। इसका ढांचा काफी कुछ असंगठित स्वरूप लिये हुये हैं। बस काम के समय संगठित होने की प्रक्रिया दिखाई देती है। इसका कोई औपचारिक नेता या पदाधिकारी भी नहीं होता। एक गिरोह होने के नाते इसके पहलवान अपने ''आकाओ'' के आदेश पर काम करते है। इन ''आकाओं'' में मंत्री स्तर के भूमिहार भूस्वामी हितों के पोषक कुछ कांग्रेसी नेता भी है। एक निर्दलीय और कुछ कांग्रेसी विधायकों को भी सेना का संरक्षक और नेता माना जाता है। इन विधायकों पर कई बार हत्या और हत्या के प्रयास के गंभीर मुकदमें भी चले है। कुछ जेल में भी रह चुके है। कईयों पर 302 के तहत अभी भी मुकदमें चल रहे हैं।

ब्रह्मर्षि सेना का गठन भूमिसेना के बाद हुआ था। इसका कारण यह था कि किसान आंदोलन का भूमिहार भूस्वामी बहल इलाके के प्रवेश थोड़े दिनों बाद हुआ। इसके पूर्व कुर्मी भूस्वामी बहुत इलाके के आंदोलन अपनी जड़े जमा चुका था। जहानाबाद और गया के ग्रामीण क्षेत्रों में इस सेना ने बिहार प्रदेश किसान सभा और मजदूर किसान संग्राम समिति के दर्जनों कार्यकर्ताओं की हत्या की। सी.पी.आई. लिबरेशन और पार्टीयुनिटी के हथियारबंद दस्तों से मुठभेड़ में ब्रह्मर्षि सेना के कई प्रमुख नेता और कमांडर भी मारे जा चुके है।

बिहार के मुख्यमंत्री बिन्देश्वरी दूबे (सन् 1985 से फरवरी 88 तक) के कार्यकाल में ब्रह्मर्षि सेना का प्रभाव काफी बढ़ गया। इसकी हत्यारी हरकतो पर कोई रोक-टोक नहीं रही। सत्ता के राजनीतिक समीकरणों और जातीय जोड़-तोड़ को अनुकूल रखते हुए ब्रह्मर्षि सेना दुबे के काल में राज्य प्रशासन का औपचारिक अंक सा बन गई थी। मुख्यमंत्री निवास में भी इसके खास लोगों का भारी महत्व था। तब मध्य बिहार में आई.जी., डी.आई.जी., कमीश्नर- डी. एम. तक के स्थानान्तरण पदस्थापन ''सेना'' के सलाहकारो की सलाह पर होते थे।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. एन.एम.पी. श्रीवास्तव: बिहार का सच
2. डी.एन. धांगुरा, पौजेट, मूवमेंट इन इंडिया, 1983
3. रनजीत गुप्ता, रियोलुसनरी मूवमेंट इन बिहार
4. ए.आर. देसाई: पीजेंट स्ट्रगल इन इंडिया
5. पीपुल्स युनियन और डेमोक्रेटिक राईट्स की रिपोर्ट, सन् 1981
6. प्रसाद प्रधान एच: इन्स्टीच्यूशनल रिपोर्ट एण्ड एग्रीकल्चरल ग्रोथ
7. रजना कोठरी: ए पैटर्न ऑफ पालिटिकल विहेवियर

सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 का प्रभाव एवं चुनौतियां

Impact and Challenges of Right to Information Act 2005

डॉ० विक्रम सिंह

गैस्ट फैकल्टी, राजकीय महाविद्यालय, तलवाड़ी-थराली, चमोली, उत्तराखण्ड़

Abstract

विश्व भर में आधुनिक उदार लोकतांत्रिक शासन व्यवस्थाओं के अंतर्गत प्रत्येक नागरिक को यह जानने का अधिकार है कि सरकार/शासन-प्रशासन और सरकारी व गैर सरकारी लोक संस्थाएँ, उनके कल्याण व हितों के लिए किस प्रकार कार्य कर रही है, नागरिकों की समृद्धि ही लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था की ताकत है, प्रस्तुत शोध पत्र के अंतर्गत जानने के अधिकार के रूप में सूचना का अधिकार अधिनिय 2005 के विकास की ऐतिहासिक पृश्ठभूमि, अर्थ, महत्त्व एवं चुनौतियों को विश्लेषित किया गया।

Key words:- सूचना का अधिकार अधिनियम 2005, राजतंत्र, संसदीय लोकतंत्र, कानून, गोपनीयता, शासकीय, शासन-प्रशासन, नागरिकों, जनप्रतिनिधियों, पारदर्शिता, जवाबदेही, नौकरशाही, प्रभाव, चुनौतियां आदि।

दुनिया में राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्थाएं सदैव एक जैसी नहीं रहती हैं। समय के हिसाब से, जरूरत के मुताबिक सदैव परिवर्तन की संभावना बनी रहती है। आदिम समाज व्यवस्था और कबीलाई समाज के सरदारों ने कभी 'राजतंत्र' के बारे में नहीं सोचा होगा, राजाओं और नवाबों ने कभी संसदीय लोकतंत्र की कल्पना नहीं की होगी। वे अपनी सत्ता को ही स्थायी और सर्वश्रेष्ठ समझते थे, लेकिन कबीलाई सरदारों के दिन लदे और राजाओं, नवाबों का नामोनिशान ही मिट गया और अंत में लोकतांत्रिक षासन व्यवस्थाओं का विकास हुआ और साथ ही उदारवाद के आगमन से औद्योगिक क्रांति एवं नागरिक स्वतंत्रता की अवधारणा आई (राजगढ़िया एवं केजरीवाल, 2010: 17)। इन उदार लोकतांत्रिक शासन व्यवस्थाओं में नागरिकों को अधिकार प्राप्त तो हुए, लेकिन नागरिकों के हितों से सम्बन्धित नीतियों के शासकीय कार्यो में द्वितीय विश्वयुद्ध तक शासनतंत्र में 'गोपनीयता' व्यापत रही। विभिन्न दस्तावेजों में कैद सूचनाओं को गोपनीय अथवा वर्गीकृत करार देकर नागरिकों की पहुँच से सर्वथा दूर रखा जाता था। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के बावजूद राजनेताओं एवं अधिकारियों में स्वयं को 'शासक' या 'राजा' समझने की प्रवृति हावी रही।

लोकतंत्र में जिन लोगों को शासन-प्रशासन के संचालन का दायित्व सौंपा गया है, वे जनता के स्वामी नहीं, बल्कि जनता के सेवक हैं। "लोकतंत्र का मूलमंत्र ही 'जनता का जनता के लिए जनता द्वारा शासन' है। लिहाजा, ऐसा सच्चा लोकतंत्र तभी संभव हो सकता है, जब षासन-प्रषासन को देश और राज्य की जनता के प्रति अधिकाधिक जवाबदेह और उतरदायी बनाया जा सके (राजगढ़िया एवं केजरीवाल, 2010: 83)।" क्योंकि जब तक नागरिकों के पास शासन-प्रशासन की कार्यप्रणाली से जुड़ी तथ्यपरक, नवीनतम एवं प्राथमिक सूचनाएँ न हों, तब तक किसी ठोस एवं प्रभावी विचार-विमर्श की गुंजाइश नहीं बनती (राजगढ़िया एवं केजरीवाल, 2010: 35)। नागरिकों की सार्वजनिक व व्यक्तिगत हित से सम्बन्धित मामलों की सूचनाओं तक जितनी अधिक पहुँच होगी, उतना ही अधिक शासन-प्रशासन में लोगों के प्रति जवाबदेही एवं उत्तरदायित्व का बोध होगा। सूचनाओं पर जितने अधिक प्रतिबंध लगाये जायेंगे, नागरिकों में असहाय होने एवं मतभेद की भावनाएँ उतनी ही अधिक प्रबल होती जायेंगी। क्योंकि सूचनाओं के अभाव में लोग अपने अधिकारों का पर्याप्त प्रयोग नहीं कर पाते हैं(चौबे, 2012: 9), जबकि लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति को यह जानने का अधिकार होता है कि उसके द्वारा निर्वाचित जनप्रतिनिधियों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों के द्वारा सत्ता व शासकीय शक्तियों का प्रयोग उसके हित व कल्याण को ध्यान में रखते हुए हो रहा है या नहीं। नागरिकों की जागरूकता तथा समृद्धि ही लोकतंत्रीय शासन-शासन की सबसे बड़ी ताकत होती है।

विश्व के अनेक देशों में लोकतांत्रिक व्यवस्थाएं स्थापित हो जाने के बावजूद भी लम्बे अरसे तक नागरिकों को सार्वजनिक व व्यक्तिगत हित से जुड़ी सूचनाओं से वंचित रखा गया। स्वीडन, विश्व का पहला ऐसा देश है, जहाँ नागरिकों को सूचना की आजादी के लिए वर्ष 1776 में 'फ्रीडम ऑफ प्रेस एक्ट' पारित किया गया (रिजवी, 2008: 9), इसके पश्चात् भी लम्बे समय तक किसी भी देश ने अपने नागरिकों को सूचना की आजादी प्रदान करने के लिए कोई भी कानून नहीं बनाया, लेकिन सूचना का अधिकार की महत्ता को ध्यान में रखते हुए, संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 1946 में मान्यता दी थी साथ ही वर्ष 1948 में घोषणा की-"जानकारी प्राप्त करने की इच्छा रखना, उसे प्राप्त करना तथा किसी व्यक्ति द्वारा जानकारी एवं विचारों का प्रसार करना मनुष्य का मौलिक अधिकार है।" इसके बाद विश्व के अनेक देशों ने सूचना का अधिकार को, अपने यहाँ लागू करने की प्रक्रिया में तेजी दिखयी, फिनलैण्ड (1997), अमरीका (1966), फ्रांस (1978), आस्ट्रेलिया (1982), न्यूजीलैण्ड़ (1982), डेनमार्क (1985), इटली (1990), आयरलैण्ड़ (1998), इग्लैण्ड़ (2000), यूरोपियन संघ (2001), पाकिस्तान (2002), अरमैनिया (2003), जर्मनी (2005), आदि देशों ने लागू किया।

जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है, यहाँ आजादी के उपरान्त् लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के मॉडल को तो अपनाया गया, लेकिन जनप्रतिनिधियों एवं नौकरशाहों ने, ब्रिटिश कालीन 'गोपनियता कानून वर्ष 1923' से उपजी गुलाम मानसिकता का आश्रय लेते हुए, आम नागरिकों को सत्ता व शासन-प्रशासन की सार्वजनिक व व्यक्तिगत हित की नीतियों से जुड़ी वांछित सूचनाओं से लम्बे समय तक वंचित रखा, जबकि देश में जवाबदेही एवं पारदर्शी शासन व्यवस्था को कायम रखने के लिए सूचना का अधिकार जैसे कानून की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी।

भारत में नागरिकों को पहली बार सूचना का अधिकार के संबंध में दी गई राजनीतिक प्रतिबद्वता वर्ष 1977 के लोकसभा चुनाव के अवसर पर दी गई थी, जो लोगों के सूचना के दमन के प्रति आक्रोश का परिणाम था, जो कि वर्श 1975 से 1977 के बीच आपातकाल के दौरान प्रेस पर प्रतिबंध लगाकर व अधिकारों का दुरूपयोग कर किया गया था। जनता पार्टी ने वर्ष 1977 में अपने चुनाव घोषणा पत्र में पारदर्शी सरकार जनता को मिलेगी और यह घोषित किया कि "वह खुफिया सेवाओं और सरकारी अधिकारों का व्यक्तिगत या पक्षपातपूर्ण हितों के लिए दुरूपयोग नहीं करेगी" (भट्टाचार्य, 2011: 313) दिसम्बर 1989 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री वी0 पी0 सिंह ने 'ऑफिशियल सीक्रेएट्स एक्ट' में सुधार लाने एवं सरकारी कार्यो में पारदर्शिता लाने का प्रयास किया, लेकिन व्यवहार में सरकार के काम काज में उनकी तथा बाद की सरकारों द्वारा कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया।

'सूचना का अधिकार अधिनियम 2005' भारत में एक लम्बें संघर्ष तथा जन आन्दोलन का प्रतिफल है।' वर्ष 1994 में राजस्थान के सुदूर गाँवों के गरीब, मजदूरों, किसानों के नेतृत्व में 'हमारा पैसा हमारा हिसाब' आंदोलन के जरिए, इस आन्दोलन को देश में ख्याति दिलाने का श्रेय, इन लोगों को जाता है, यह जन आन्दोलन महानगरों के तथाकथित बुद्विजीवियों या देश के मध्यवर्ग ने शुरू नहीं किया (राजगढ़िया एवं केजरीवाल, 2010: 39), लेकिन राजस्थान से शुरू होता, यह जन आंदोलन अन्य राज्यों में भी फैलने लगा तथा व्यापक स्तर पर पूरे देश में सूचना का अधिकार कानून की माँग शुरू होने लगी, जिसका विभिन्न सामाजिक संगठनों के साथ ही आम जनता द्वारा व्यापक समर्थन किया गया। फलत: इस कानून के लिए शासन-प्रशासन स्तर पर भी कुछ प्रयास किए जाने लगे और कई राजनीतिक संगठनों, सचिवों, अधिकारियों द्वारा विभिन्न स्तरों पर वार्ताएं व विचार-विमर्श होता रहा।

इस सकारात्मक पहल के परिणामस्वरूप अनेक राज्यों द्वारा नागरिकों को सूचनाओं का अधिकार की गारंटी देने के लिए कानून का निर्माण किया गया, इनमें तमिलनाडु देश का प्रथम राज्य है, जिसने सूचना का अधिकार के विधेयक को वर्ष 1997 में पारित किया। तमिलनाडु के बाद गोवा (1997), कर्नाटक (2000), दिल्ली (2001), असम (2002), महाराष्ट्र (2002), मध्यप्रदेश (2003) तथा जम्मू व कश्मीर (2004) आदि राज्यों द्वारा कानून बनाया गया (चौबे, 2012: 93), इन राज्यों के बाद भारत में केन्द्रीय स्तर पर भी इस दिशा में पहल प्रारम्भ हुई। अंतत: इसे 11 मई 2005 को लोकसभा में तथा 12 मई 2005 को राज्य सभा में पारित किया गया, 12 जून 2005 को राष्ट्रपति ने इसे स्वीकृति प्रदान की, इस तरह 12 अक्टूवर 2005 से सूचना का अधिकार पूरे देष में जम्मू-कश्मीर को छोड़कर प्रभावी हो गया (राजगढ़िया एवं केजरीवाल, 2010: 32)।

सूचना का अधिकार अनिधिनियम 2005 क्या है?

सूचना अधिकार का अर्थ है, नागरिकों द्वारा किसी भी लोक प्राधिकारी (विभाग, संगठन आदि) के स्वामित्व में मौजूद उन सारी सूचनाओं को प्राप्त करने की शक्ति, जो उसके निजी जीवन से जुड़ी हो या जो लोक कल्याण की भावना से प्रेरित है। कोई भी नागरिक किसी भी निकाय (विभाग, सरकारी व गैर सरकारी संगठन आदि) से अपने काम की सूचना प्राप्त कर सकता है। सूचना का अधिकार अधिनियम 2005, की धारा 2 (ञ) के अन्तर्गत सूचना का अधिकार की परिभाशा देते हुए कहा गया है कि "सूचना का अधिकार" से इस अधिनियम के अधीन पहुँच योग्य सूचना का, जो किसी लोक प्राधिकारी द्वारा या उसके नियंत्रणाधीन धारित है, अधिकार अभिप्रेत है और जिसमें निम्नलिखित का अधिकार सम्मिलित है-

(i) कृति, दस्तावेजों, अभिलेखों का निरीक्षण;

(ii) दस्तावेजों या अभिलेखों के टिप्पण, उद्धरण या प्रमाणित प्रतिलिपि लेना;

(iii) सामग्री के प्रमाणित नमूने लेना;

(iv) डिस्केट, फ्लापी, टेप, वीडियों कैसेट के रूप में या किसी अन्य इलैक्ट्रानिक रीति में या प्रिंट आऊट के माध्यम सूचना को, जहां ऐसी सूचना किसी कम्प्यूटर या किसी अन्य युक्ति में भण्डारित है अभिप्राप्त करना (सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005: धारा 2 (ञ); इस अधिनियम की धारा 3 में कहा गया है कि 'इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, सभी नागरिकों को सूचना का अधिकार होगा'।

सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 का प्रभाव

सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 आम जनता के संघर्षो से बना एक ऐसा कानून है, जो भारतीयों को लोकतंत्र में मालिक होने का एहसास देता है, इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार उसे वह हर सूचना प्राप्त हो सकती है, जो लोकसभा तथा विधानसभा के चुनिंदा सदस्यों को प्राप्त होती थी, अब कोई भी जनप्रतिनिधि, अधिकारी व कर्मचारी यह नहीं कह सकता है कि तुम जानकारी लेने वाले कौन हो? यह इसी कानून की ताकत है कि 'हम भारत के लोग' (वी द पीपल ऑफ इण्डिया) की वास्तविक व्याख्या और अधिकारिता को आजादी के छह दशकों बाद व्यावहारिक मान्यता मिली, इस कानून ने विगत 16 वर्षो के अल्प समय में देश के अन्दर लोगों का विश्वास जीता है, इसके प्रभाव ने विभिन्न क्षेत्रों में बेलगाम नौकरशाही और लापरवाह विधायिका दोनों पर भ्रष्टाचार के कई मामलों को उजागर करके अकुंश लगाया है, इससे सत्ता के निर्णयों शासन-प्रशासन में पारर्शिता, जवाबदेही जैसे संस्कृति का विकास हुआ।

सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 का विभिन्न क्षेत्रों पर सख्त प्रभाव पड़ा है, जो निम्न प्रकार से हैं:-

1. आज नागरिक सत्ता की गोपन संस्कृति का भेदकर, इस कानून का ब्रह्मास्त्र पूरे तंत्र की परते उधेड़ रहा है। सत्ता व्यवस्था की संड़ाध बाहर आ रही है, राजनेताओं, नौकरशाहों और कर्मचारियों का गठबंधन इससे बेहद असहज महसूस कर रहा है (राय एवं मेघवंशी, 2010: 4)।

2. इस अधिनियम के बन जाने के बाद प्रत्येक विभाग के अधिकरियों तथा कर्मचारियों द्वारा सरकारी रिकार्ड के रख-रखाव में जवाबदेही एवं पारदर्शिता बढ़ी है।
3. सरकार/शासन के द्वारा वर्षो से चलाई जा रही, जन कल्याणकारी योजनाओं, मनरेगा, मिड डे मिल, स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों में भ्रष्टाचार के कई मामले उजागर हुये हैं।
4. इस कानून ने शासन-प्रशासन तंत्र को सुशासन की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित किया है, यह उन चन्द कानूनों में से एक है, जिसने आम नागरिकों को उसकी सत्ता और संप्रभुत्ता की ताकत का एहसास कराया है (दैनिक जागरण, 16 अक्टूबर 2011)।
5. सूचना का अधिकार ने भारतीय नागरिकों के दृष्टिकोण व भाषा बदल दी है। अब नागरिक किसी भी सरकारी विभाग में वर्शो से लंबित अपने जायज कामों के सम्बन्ध में सीधे सवाल पूछ सकते हैं। अधिकारियों से हिसाब माँग सकते हैं कि उनका काम क्यों नहीं हुआ? किस अधिकारी की लापरवाही से मेरा नुकसान हुआ, उस अधिकारी को क्या सजा मिलेगी (राजगढ़िया एवं केजरीवाल, 2010: 83)? आदि सवाल कर सकता है।
6. आज, यह कानून केवल भ्रष्टाचार से लड़ने में ही सहयोगी साबित नहीं हो रहा है, बल्कि वह सच्चाई को सामने लाने के लिये भी सबसे प्रभावी उपकरण बन गया है (राय एवं सिंह, 2010: 4)।
7. इस कानून के बनने के बाद ईमानदार अधिकारी खुश हैं, क्योंकि राजनीतिक दबाव के कारण पहले वे कहीं बार अपनी सही राय नहीं रख पाते थे, अब उनको मौका मिला है कि वे अपनी राय ईमानदारी से रख सकते हैं।
8. यह कानून शासन-प्रशासन की कार्यप्रणाली में खुलापन, पारदर्शिता और जवाबदेही युक्त व्यवस्था लाने वाला एक शक्तिशाली यंत्र है। यह नागरिकों को सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों से जानकारी हासिल करने और उनसे सवाल पूछने में हमें सक्षम बनाता है (राय एवं मेघवंशी, 2010: 4)।

सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 के समक्ष मुख्य चुनौतियां

यह कानून सत्ता के नीतिगत निर्णयों शासन-प्रशासन की कार्यप्रणालियों से जुड़ी अनेक अहम लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए बनाया गया था ताकि नागरिकों के प्रति जवाबदेही तय हो और व्यवस्थाओं में पारदर्शिता से भ्रष्टाचार में कमी आये, सुशासन की संस्कृति का विकास हो, लेकिन इस कानून को लागू होने से लेकर आज तक अनेक प्रकार की चुनोतियों का सामना करना पड़ रहा है, जिसके परिणामस्वरूप इस कानून का सक्रिय तथा निष्पक्ष रूप से क्रियान्वयन तथा पालन नहीं हो पा रहा है।

सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 के समक्ष मुख्य चुनौतियां निम्न प्रकार से हैं:-

1. सूचना के अधिकार को सबसे बड़ा खतरा केन्द्र सरकार से है, केन्द्र सरकार ने आरटीआई 2005 में वर्ष 2019 में संषोधन करके कुछ नये प्रावध ान जोड़े हैं, इस नए विधेयक के अनुसार पूर्व में केन्द्र व राज्य स्तर पर मुख्य सूचना आयुक्त और अन्य सूचना आयुक्तों का कार्यकाल 5 वर्ष का था, अब इनका कार्यकाल, वेतन, भत्ते तथा अन्य सेवा शर्तें भी केन्द्र सरकार द्वारा ही तय की जाएंगी।
2. सूचना का अधिकार के अस्तित्व में आने से सबसे बड़ा खतरा आरटीआई कार्यकत्ताओं को है। इन्हें कई तरीकों से उत्पीड़ित एवं प्रताडित किया जाता है।
3. इस अधिनियम को खतरा सूचना आयोगों से ही है, इसकी वजह है, सुनवाई में देरी के कारण मामलों की संख्या लगातर बढ़ती जा रही है, यदि यही स्थिति रही तो आम नागरिकों का इससे विश्वास घटेगा और फिर इस कानून की कोई उपयोगिता नहीं रह जायेगी।
4. सूचना आयोगों में सूचना आयुक्तों की नियुक्ति को लेकर कोई पारदर्शिता नहीं है। इनकी चयन प्रक्रिया दोषपूर्ण माना गया है। कई आलोचक कहते है कि सूचना आयोग वरिष्ठ नागरिकों के लिए एक रोजगार का एक साधन बनकर रह गया है।
5. देश की न्याय प्रक्रिया भी इसके लिये एक बड़ी चुनौती है। क्योंकि कई महत्वपूर्ण आदेशों पर स्टे हो जाता है, जिस तरह से अदालतें काम करती हैं, इससे एक मामले में पांच से दस साल तक का समय लग जाता हैं। यदि यही सिलसिला रहा तो शक्तिशाली लोग अपने खिलाफ गये निर्णयों पर स्टे लेते रहे तो इससे इस कानून पर खतरा स्वाभाविक है (राजगढ़िया एवं केजरीवाल, 2010: 36)?
6. इस अधिनियम की धारा 4 (ख) के अनुसार, प्रत्येक विभाग/संगठन को "इस अधिनियम के अधिनियमन के एक सौ बीस दिन के भीतर अपनी कार्य प्रणाली तथा अन्य प्राधिकरणों के 17 मामलों से जुड़ी जानकारी सार्वजनिक करानी थी, जो आज तक कई विभागों के द्वारा नहीं हो पाया।
7. इस कानून के समुचित कार्यान्वयन में राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव भी एक बड़ी बाधा है। सत्ता व शासन-प्रशासन की अधिकांश गडबडियों में राजनेताओं की भी हिस्सेदारी होती है, इससे कोई राजनीतिक दल नहीं चाहता कि जनता को इस अनियमितताओं की जानकारी मिले। यही कारण है कि इस अधिनियम के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने की दिशा में भी किसी दल ने कदम नहीं उठाये, जो इसके के लिए एक बड़ी चुनौती है।
8. इस कानून के प्रति नौकरशाही का उदासीन रवैया एक बडी समस्या बनी हुई है, वे आज भी 'शासकीय गोपनीय अधिनियम वर्ष 1923' के तहत हर सूचना को गोपनियता बनाये रखने की आदत बनी है। अब अधिकारियों के लिए यह कानून बेहद कष्टप्रद साबित हो रहा है (राजगढ़िया एवं केजरीवाल, 2010: 37)।
9. देश का अशिक्षित मेहनतकश सर्वहारा वर्ग, असंगठित क्षेत्र के श्रमिक, दलिल शोषित वर्ग के लोग आज भी इस स्थिति मे नहीं हैं कि उनके सूचना मांगने के आवेदन को स्वीकार न किए जाने या समय पर पूरी सूचना न मिलने की शिकायत उच्चाधिकारियों से करने के लिए डाक रजिस्ट्री का व्यय वहन करें अथवा मजदूरी का समय व अर्थ बर्वाद करें अथवा उसकी अपील ज्येष्ठ अधिकारियों को कर सके।
10. समाज के कई निजी हित साधकों, सामंतों स्वार्थी व शाक्तिशाली व्यक्तियों द्वारा गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन करने वालों को ढाल बनाकर उनके नाम से बगैर शुल्क के आवेदन लगवाये जाते है व अपने हितों को पूरा करने के लिए सरकारी कार्यो में रूकावट डालकर अधिकारियों को परेशान किया जाता है। इससे इस कानून का दूरूपयोग हो रहा है।

11. केन्द्र तथा राज्य सूचना आयोग आज भी बिना वित्तीय अधिकार तथा असंवैधानिक संस्था के रूप में कार्य कर रही है। इन्हें वित्तीय स्वायत्ता तथा चुनाव आयोग तथा कैग की तर्ज पर संवैधानिक संस्था के रूप में मान्यता दिए जाने की जरूरत है (हिन्दूस्तान, 15 अक्टूबर 2011)।
12. सूचना अधिकार कानून के पूरक कानूनों, जैसे-'व्हिसल ब्लोअर संरक्षण अधिनियम' का कुशल क्रियान्वयन नहीं हो पाया है।

निष्कर्ष (Conclusion)

यदि सूचना का अधिकार कानून को एक अधिकार के रूप में सही इस्तेमाल किया जाय, तो इससे नागरिको में विषेश रूप से गरीब और असहाय वर्ग का सशक्तिकरण होगा। क्योंकि इससे उनकी देश की सत्ता व शासन व्यवस्था में भागीदारी सुनिश्चित होगी, इसके लिए सिर्फ शासन-प्रशासन की तथ्यहीन तथा भावुकतापूर्ण आलोचना करने से कोई नतीजा हासिल नहीं होगा। बेहतर होगा कि सूचना का अधिकार का कारगर उपयोग करते हुए सत्ता एवं शासन-प्रशासन की दशा और दिशा में बदलाव लाया जाय। अतः इस कानून के प्रयोग के दायरे में प्रत्येक नागरिक को लाना है तो जरूरी है कि आम नागरिक को सही अर्थो में इस कानून से संबंधित समस्त पूर्ण तथा सही जानकारियां हो और इस दिषा में, मीडिया, टेलीविजन, रेडियों समाचारपत्रों के माध्यम से व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार किया जाय, जिससे समाज के प्रत्येक वर्ग लाभान्वित हो सके, तभी यह कानून जरूरत मंद लोगों को मसीहा बन सकता है तभी भारतीय लोकतंत्र में इस कानून की सार्थकता सिद्व होगी।

संदर्भ (References)

1. राजगढ़िया, विश्णु एवं केजरीवाल, अरविन्द, सूचना का अधिकार, राजकमल प्रकाषन, नई दिल्ली, 2010
2. चौबे, आर0 के0, सूचना अधिकार विधि, इलाहाबाद लॉ एजेन्सी पब्लिकेशन्स, 2012
3. रिजवी, आबिद, सूचना का अधिकार, तुलसी पब्लिकेशन्स, मेरठ, 2008
4. भट्टाचार्य, मोहित, सार्वजनिक प्रणाली प्रबंधन, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय सामाजिक विज्ञान विद्यापिठ, नई दिल्ली, 2011
5. अधिनियम, सूचना का अधिकार, 2005
6. राय, अरूण एवं भंवर मेघवंशी, अपनी मानसिकता और मंसूबा बदल ले सरकार, (लेख) हस्तक्षेप परिशिष्ट, राष्ट्रीय सहारा, नई दिल्ली, 22 अक्टूबर 2011
7. दैनिक जागरण, देहरादून, 16 अक्टूबर 2011
8. राय एवं सिंह, सूचना का अधिकार नई दिशा की ओर, (लेख), राष्ट्रीय सहारा, नई दिल्ली, 23 अक्टूबर 2010
9. हिन्दूस्तान, देहरादून, 15 अगस्त 2011

भारतीय मजदूर वर्ग का उद्‌भव एवं विकास : एक अध्ययन

राहुल पाण्डेय

शोधार्थी

डॉ० सीमा पटेल

शोध निर्देशिका, एसोसिएट प्रोफेसर, सह-आचार्य, इतिहास विभाग, स० व० पटेल महाविद्यालय, भभुआ

उन्नीसवीं सदी में प्लांटेशनों, कोयला खदानों, रेलवे और औद्योगिक कारखानों में वृद्धि के चलते आधुनिक मजदूर वर्ग का उदय हुआ। इसे आधुनिक मजदूर वर्ग इस अर्थ में कहा जा सकता है कि श्रम का अपेक्षाकृत आधुनिक संगठन पैदा हुआ और मजदूरों का अपेक्षाकृत खुला बाजार सामने आया। इस आम नियम के कुछ महत्वपूर्ण अपवाद भी थे। पूंजीवादी मालिकों के लिए काम करने वाले और अंतर्राष्ट्रीय बाजार में बिक्री हेतु वस्तुओं का उत्पादन करने वाले प्लांटेशन मजदूरों की नियुक्ति और काम के हालात मुक्त नहीं थे। असल में औपनिवेशिक भारत में ज्यादातर मजदूरों की भर्ती और काम के हालात उतने मुक्त नहीं थे जितने पूंजीवाद रूप से अधिक विकसित कुछ अन्य देशों में थे। मजदूर वर्ग के आंदोलन पर इन हालात का असर पड़ा, जैसे-जैसे वह आगामी वर्षों में आगे बढ़ा।[1] भारतीय उपमहाद्वीप में औपनिवेशिक पूंजीवादी युग के शुरुआती उद्यम प्लांटेशन और रेलवे थे। 1839 ई० में असम में चाय बागानों के लिए असम टी कंपनी नामक एक ब्रिटिश कंपनी की स्थापना हुई। 1840 ई० में दक्षिण भारत में काफी प्लांटेशन शुरु हुए। 1853 ई० में बंबई और ठाणें के बीच पहली लाइन द ग्रेट इंडियन पेनिंसुलर रेलवेज ने बिछाई। 1854 ई० में कलकत्ता और रानीगंज के बीच ईस्टर्न इंडियन रेलवे ने दूसरी लाइन शुरु की। 1857 ई० तक भारत में रेलवे लाइनों की लंबाई 288 मील हो गई थी। असली विस्तार 1857 ई० के विद्रोह के बाद हुआ जब अंग्रेज शासकों को इनके सैनिक महत्व का अनुभव हुआ। कोयले का उत्पादन 1775 ई० में ही शुरु हो गया था। 1843 ई० में द बंगाल कंपनी की स्थापना हुई। बहरहाल रेलवे की शुरुआत होने से ही इसके उत्पादन में असली बढ़ोत्तरी आई क्योंकि रेल के इंजन को चलाने के लिए कोयला जरूरी था। 19वीं सदी का अंत आते-आते इसका उत्पादन बढ़कर लगभग तीन मिलियन टन हो गया।

1854 ई० में पहली सूती मिल का निर्माण एक पारसी व्यवसायी ने किया और 1856 ई० में उसमें उत्पादन शुरु हुआ। मुंबई, अहमदाबाद, कानपुर, शोलापुर और नागपुर जैसे शहरों में सूती मिल उद्योग का तेजी से विकास हुआ। ज्यादातर इनके मालिक भारतीय थे। इसके विपरीत जूट मिलें लंबे समय तक विदेशी हाथों में बनी रहीं। कोलकाता में 1854 ई० में पहली जूट मिल एक स्काटलैंड निवासी उद्यमी ने शुरु की। आगामी पचास सालों में इसमें भी तेजी से विस्तार हुआ। यह मिल उद्योग 1870 ई० दशक के दौरान बड़े पैमाने पर मजबूत हुआ। जब विशाल संख्या में मजदूरों को इनमें काम दिया गया। 1890 ई० में कारखानों और खदानों में 3 लाख से अधिक मजदूर काम कर रहे थे।[2] 1914 ई० तक भारत में 264 सूती मिलें हो गई थीं जिनमें दो लाख साठ हजार मजदूर काम कर रहे थे, 60 जूट मिलें थीं, जिनमें दो लाख मजदूर थे, रेलवे में 6 लाख लोग काम कर रहे थे, प्लांटेशनों में सात लाख मजदूर थे और खदानों में डेढ़ लाख कामगार थे। शहरों की सीमाओं के भीतर या प्लांटेशनों के इर्द-गिर्द छोटे घेरों में अधिकाधिक मजदूर संकेद्रित होते जा रहे थे। 1921 ई० तक संगठित उद्योगों में 28 लाख से अधिक लोगों को रोजगार मिला हुआ था। इसके अलावा, शहरी इलाकों में असंगठित क्षेत्र में बड़ी संख्या में लोग काम कर रहे थे मसलन घरेलू नौकर या बाजार में अस्थायी काम करने वाले। आधुनिक मजदूर वर्ग हालांकि देहात के कृषि मजदूरों और सीमांत खेतिहरों से निर्मित था, फिर भी उसकी स्थिति बहुत अलग थी। ग्रामीण क्षेत्रों के मेहनतकश गरीबों और छोटे किसानों की विशाल बहुसंख्या के मुकाबले इसकी संख्या कम थी।[3] लेकिन इसका संकेंद्रण कुछ ऐस महत्वपूर्ण इलाकों में था, जहां से उदीयमान आधुनिक राजनीति को प्रभावित किया जा सकता था।

मजदूरों के काम करने और जीने की स्थितियां बहुत खराब थीं। काम के लंबे घंटे, कम वेतन, कार्यस्थल पर गंदगी, छोटे बच्चों से काम लेना, महिला मजदूरों के साथ भेदभाव, खस्ताहाल और अस्वच्छ रिहायश, भारी कर्ज, तथा दुर्घटना, बीमारी या बुढ़ापे के मामले में कोई गारंटी न होने के चलते मजदूरों की मृत्यु दर बहुत अधिक थी और इन्हीं वजहों से मालिकों को मुनाफा भी बहुत होता था। ज्यादातर जगहों पर मजदूरों को असहनीय स्थितियों में 12 से लेकर 16 घंटों तक काम करना पड़ता था। उन्हें शहरों में ऐसे घरों में रहना पड़ता था जिनेमें औसतन एक छोटे से कमरे में 5 लोग रहते थे। महिला मजदूरों को तो और भी कठिन स्थितियों में मिलों, प्लांटेशनों या कोयला खदानों में मेहनत करने के साथ ही असहनीय स्थितियों में घर पर भी खटना पड़ता था। प्लांटेशनों पर काम करने वाले मजदूरों के हालात खासकर बुरे थे क्योंकि वे सीमित इलाके में ही घिरे रहते थे और समझौते की अवधि तक काम करने के लिए कानूनन मजबूर थे। वे लगभग मालिकों के कैदी जैसे थे क्योंकि उनके काम के निरीक्षण और जबरन काम कराने के लिए मालिक लोग सरदार कहलाने वाले भर्ती करने वाले और अनुशासक एजेंटों तथा सुरक्षा कर्मियों को पालते थे।[4]

सरकार ने 1881 ई० और 1891 ई० में फैक्ट्री कानून पारित किए। बहरहाल ये कानून महज बच्चों और औरतों पर लागू होते थे। कामगारों की बहुसंख्यक बालिग पुरुष मजदूर इनके भीतर नहीं आते थे। औरतों तथा बच्चों के भी मामले में कानूनी सुरक्षा पर्याप्त नहीं थी। कानून के प्रावधानों को लागू करने वाला तंत्र और भी कमजोर था। बिना किसी दंड के भय के इनके प्रावधानों का उल्लंघन होता था। 1911 ई० के फैक्ट्री कानून में बालिग पुरुष के लिए एक दिन काम के घंटे 12 तक तय किए गए। 1922 ई० के संशोधित फैक्ट्री कानून में इसे घटाकर 11 घंटा किया गया।

मजदूरी के मामले में भी शुरुआती सालों में हालात अच्छे नहीं थे। औद्योगिक मजदूरी कुल मिलाकर खेती की मजदूरी से बहुत अधिक नहीं थी। अलग-अलग शहरों में मजदूरी अलग-अलग थी। मुंबई में मजदूरी सबसे अधिक थी, कलकत्ता, अहमदाबाद, नागपुर तथा अन्य शहरों में मजदूरी कम थी। प्लांटेशनों में तो मजदूरी और भी कम थी। बहरहाल मुंबई में भी 1918 ई० तक मजदूरी बस भरण पोषण लायक ही थी। 1918 से 1921 ई० के बीच अन्य शहरों की तरह ही मुंबई में भी मजदूरी में ठीक-ठाक बढ़ोत्तरी हुई। ऐसा मजदूरों के आंदोलनों तथा उनके बीच ट्रेड यूनियनों में सुधार हुआ। परन्तु छोटे और अन्य अल्प संगठित और असंगठित उद्योगों की तस्वीर इतनी अच्छी नहीं थी। इन जगहों पर मजदूरी काफी कम बनी रही और रोजगार की कोई सुरक्षा भी नहीं थी।[5]

आरंभिक दौर में कुछ समाज सुधारकों ने मजदूरों की स्थिति में सुधार के काम में रुचि ली। एक ब्राह्म समाज सुधारक शशिपद बनर्जी ने 1870 ई० में बंगाल में मजदूरों की स्थिति में सुधार हेतु काम करने के लिए वर्किंग्मेन्स क्लब नामक एक संगठन बनाया। मजदूरों में शिक्षा के प्रसार के लिए उन्होंने भारत श्रमजीवी नामक एक मासिक पत्रिका भी निकाली। मुंबई में मजदूरों के बीच तमाम गतिविधियों में एस.एस. लोखण्डे 1880 ई० से ही दीनबंधु नामक आंग्ल-मराठी साप्ताहिक पत्रिका निकाल रहे थे। उन्होंने 1890 ई० में बाम्बे मिलहैण्ड्स असोसिएशन की भी स्थापना की। बाम्बे के मजदूरों में सक्रिय कुछ अन्य महत्वपूर्ण संगठन थे-1909 ई० में गठित कामगार हितवर्धक सभा और 1911 ई० में स्थापित सोशल सर्विस लीग। बहरहाल ये संस्थाएँ मुख्य तौर पर कल्याणकारी कामों में रुचि लेती थीं तथा मजदूरों के बीच इनका कुछ खास आधार नहीं था। ज्यादातर उनका काम परोपकारी होता था, राजनीतिक नहीं। उनका प्रमुख उद्देश्य मजदूरों के काम के कठिन हालात में सुधार हेतु कानून बनाने के लिए औपनिवेशिक सरकार को प्रेरित करना था। जहाँ तक राष्ट्रवादियों का सवाल है तो वे उद्योगीकरण की विचारधारा से इतने मोहित थे कि मजदूरों की बुरी अवस्था में सुधार के लिए किसी भी कानूनी हस्तक्षेप को अनावश्यक मानते थे। शुरुआती राष्ट्रवादियों के किसी भी लेखन में मजदूर वर्ग की बुरी अवस्था को लेकर वैसी चिंता नजर नहीं आती जैसी किसानों के मामले में दिखाई पड़ती है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के आरम्भिक प्रस्तावों में भी औद्योगिक मजदूरों का उल्लेख नहीं मिलता। जब 1875 ई० में मुंबई में फैक्ट्री मजदूरों के हालात की जांच के लिए पहला फैक्ट्री आयोग नियुक्त हुआ तो राष्ट्रवादी अभिमत इस मुद्दे पर कानूनी हस्तक्षेप के पक्ष में नहीं था। यहाँ तक कि 1881 ई० में जब फैक्ट्री कानून पारित हुआ, जो वैसे भी काम की भयानक स्थितियों को दुरुस्त करने के मामले में बहुत कुछ नहीं कर सका, तो भी राष्ट्रवादी इसके विरोध में रहे। इस मुद्दे पर राष्ट्रवादी भावनाओं को साफ-साफ अभिव्यक्त करते हुए आनंद बाजार पत्रिका ने लिखा कि 'इस उभरते हुए उद्योग के खात्मे के मुकाबले हमारे कामगारों में थोड़ी ज्यादा मृत्यु दर अधिक अच्छी बात होगी' (शशिभूषण उपाध्याय, 2004 : 146 पर उद्धत। दादाभाई नौरोजी ने कहा कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को उन सवालों तक अपने आपको सीमित रखना चाहिए जिनमें समूचे देश की सीधी भागीदारी हो और सामाजिक सुधार तथा अन्य वर्गीय सवालों के हल का काम वर्गीय कांग्रेसों के लिए छोड़ देना चाहि। इस प्रकार 1905 ई० के पहले के राष्ट्रवादी नेतृत्व ने औपनिवेशिक सरकार की ओर से मजदूरों के हालात के बारे में किसी भी कानूनी उपाय का मजबूती से विरोध किया और कमोबेश उसके प्रति उदासीन रहा।[6] राष्ट्रवादियों के ऐसे रुख का एक प्रमुख कारण यह था कि भारतीय उद्योगों में काम के घंटे कम करने के पीछे ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग की चाल समझा जाता था जिसे भारतीय उद्योग अपना प्रतिद्वंद्वी मानते थे। इसीलिए राष्ट्रवादी अखबार भारतीय उद्योगों में काम के घंटे कम करने की किसी भी कोशिश की तीखी आलोचना करते थे। भारतीय राष्ट्रवादियों ने इस तथ्य की उपेक्षा की कि काम के बेहद लंबे घंटों का फायदा न तो भारतीय उद्योगों को मिलता था न मजदूरों को। जब कभी मजदूर काम के इतने लंबे घंटों के विरोध में आंदोलन करते थे तो राष्ट्रवादी लोग इसे मजदूरों की किसी वास्तविक तकलीफ की जगह बाहरी दखलंदाजी का नतीजा बताते थे। एक राष्ट्रवादी अखबार, कल्पतरु, ने राष्ट्रवादियों में मौजूद राय का मुजाहिरा कर दिया जब सितंबर 1905 ई० में उसने लिखा: 'हमें देश का निर्माण करना है और इससे कोई अंतर नहीं पड़ेगा अगर इस काम में सभी मजदूरों को बलिदेवी पर कुर्बानी देना पड़े' ।[7] राष्ट्रवादियों के ऐसे रुख को राष्ट्रवादियों के इस भय से प्रेरणा मिलती थी कि औपनिवेशिक सरकार के किसी भी हस्तक्षेप से उदीयमान भारतीय उद्योग नष्ट हो जाएगा क्योंकि अंग्रेज सरकार ब्रिटेन के कपड़ा उत्पादकों के हित में काम कर रही है। दूसरी ओर जब मजदूर औपनिवेशिक शासन के विरोध में आंदोलन करते थे तो राष्ट्रवादी खासकर उग्रपंथी धारा तत्काल उसका समर्थन करती थी। वे यूरोपीय और भारतीय स्वामित्व वाले उद्योगों में काम करने वाले मजदूरों की समस्याओं में साफ-साफ अंतर करते थे। उदाहरण के लिए राष्ट्रवादियों ने 1899 ई० में जी आई पी रेलवे के सिंगनल चलाने वालों की हड़ताल का तुरंत समर्थन किया और हड़तालियों के लिए चंदा जुटाने की अपील जनता से की। इसी तरह उन्होंने टकसाल के मजदूरों से सहानुभूति जताई जो बहुत देर तक काम करते थे और उनके काम के हालात बेहद खराब थे। उन्होंने डाक कर्मचारियों की हड़ताल का भी समर्थन किया और कुछ राष्ट्रवादियों ने मांग की कि इन मजदूरों के बीच यूनियन बनाई जाए।[8]

इस तरह मजदूरों की शिकायतों और विरोधों के प्रति शुरुआती राष्ट्रवादियों की प्रतिक्रिया स्पष्ट थी। अगर ये विरोध भारतीय उद्योगपतियों के विरुद्ध होते थे तो राष्ट्रवादी उनका समर्थन नहीं करते थे और चाहते थे कि मामला सरकारी हस्तक्षेप के बिना आपस में सुलझ जाए। लेकिन जब विरोध औपनिवेशिक सरकार का होता था तो कई राष्ट्रवादी मजदूरों का समर्थन करते थे। राष्ट्रवादी लोग स्वाधीनता के मकसद के लिए मजदूरों का समर्थन तो लेना चाहते थे लेकिन भारतीय पूंजीपतियों के तथाकथित हितों की कीमत पर नहीं। शुरुआती राष्ट्रवादी देश के लिए देशी पूंजीवाद का विकास स्पष्ट तौर पर चाहते थे और ऐसे किसी भी कदम का विरोध करते थे जिसे वे इस उद्देश्य का विरोधी समझते थे। बीसवीं सदी के आरम्भ में चरमपंथी किस्म के राष्ट्रवादियों ने मजदूरों को राष्ट्रीय स्वाधीनता की मांग का सहयोगी समझना शुरु किया। इसी वजह से स्वदेशी आंदोलन के दौरान राष्ट्रवादी खासकर बंगाल में मजदूरों की ओर झुके और खासकर विदेशी स्वामित्व वाली कंपनियों में मजदूरों की हड़तालों और विभिन्न विरोध प्रदर्शनों में शरीक हुए। सरकारी प्रेस, रेलवे और जूट उद्योग वे प्रमुख संस्थान थे जहां राष्ट्रवादियों ने मजदूरों के विरोधों का संगठन और समर्थन किया। समूह के बतौर मजदूरों को राजनीतिक मामलों और राष्ट्रवादी गोलबंदियों में शरीक करने की कोशिश हुई। 1905 ई० में बंग-भंग के विरोध प्रदर्शनों के पहले दिन ही मजदूरों ने हड़ताल की और जुलूसों में शामिल रहे। जी.एस.

आगरकर, बी.सी. पाल, सी.आर. दास और जी सुब्रमण्यम अय्यर जैसे राष्ट्रवादियों ने मजदूर समर्थक मजदूरों की आवाज उठाई। 1903 ई० में अय्यर ने अपनी मांगों की लड़ाई लड़ने के लिए मजदूरों द्वारा खुद के संगठन बनाने की जरूरत पर जोर दिया था। अश्विनी कुमार बनर्जी, एस. हालदार, प्रेमतोष बोस और अपूर्व कुमार घोष जैसे बंगाल के स्वदेशी नेता खासकर विदेशी स्वामित्व वाली कपंनियों में मजदूरों की कई हड़तालों और विरोध प्रदर्शनों में शामिल रहे। पंजाब में 1907 ई० में लाला लाजपत राय और अजीत सिंह सरकारी संस्थानों के मजदूरों की हड़तालों में सक्रिय रूप से लगे रहे। इसके चलते औपनिवेशिक सरकार ने उन्हें देश निकाल दिया। तमिलनाडु में सुब्रमण्यम सिवा और चिदंबरम पिल्लै जैसे राष्ट्रवादी नेताओं ने विदेशी सूती मिलों में हड़ताल कराई। राष्ट्रवादी आंदोलनों में भी मजदूरों को शामिल करने की कोशिश की गई। बंग-भंग के विरोध में होने वाली हड़तालों के दौरान मजदूरों की अनेक हड़तालें हुईं और जुलूसों में मजदूर भी शामिल रहे।[9] स्वदेशी आंदोलन के दौरान ट्रेड यूनियनें बनाने की भी कुछ आरम्भिक कोशिशें हुईं। मजदूरों के कुछ अस्थायी संगठन बने। लेकिन सुसंगति के अभाव में दीर्घकालीन संगठन विकसित न हो सके और स्वदेशी आंदोलन के उतार के बाद वे मजदूर यूनियनें गायब हो गईं जिनका निर्माण आंदोलन के उफान में हुआ था।

मजदूरों की राष्ट्रवादी भावना का सबसे बड़ा प्रदर्शन 1908 ई० में देखा गया जब तिलक के कारावास के विरोध में विशाल हड़ताल हुई और जुलूस निकले। जब तिलक ने खुदीराम बोस और अन्य क्रांतिकारियों के समर्थन में लेख लिखे तो उनकी अनुचित कैद का विरोध करते हुए सरकार के विरुद्ध सूती मिलों और अन्य उद्योगों के मजदूरों ने जुझारू प्रदर्शन किए। जब तिलक को छह साल का दंड सुनाया गया तो मिल मजदूरों ने प्रत्येक वर्ष के लिए एक दिन, इस तरह छह दिन काम बंद रखने और प्रदर्शन करने का फैसला किया। हड़ताल लगभग संपूर्ण रही तथा हजारों मजदूर सड़कों पर निकले। ऐसा इस तथ्य के बावजूद हुआ कि हड़ताल और जुलूस की तैयारी के लिए नेताओं का कोई स्पष्ट समूह नहीं था। 1908 ई० में मुंबई की ये घटनाएँ राष्ट्रवादियों और मजदूरों के बीच रिश्ते की जबर्दस्त ऊँचाई की गवाह है।

औपनिवेशिक काल में संगठित मजदूर वर्ग भारत की आबादी का बहुत छोटा हिस्सा था। फिर भी कुछ महत्वपूर्ण शहरों में इसके संकेंद्रण के चलते इनमें गहरा आपसी जुड़ाव था और इनका राजनीतिक प्रभाव भी था। शुरुआती दौर में राष्ट्रवादियों को मजदूरों के सवालों में बहुत दिलचस्पी नहीं थी। चूंकि वे विकास के देसी पूंजीवादी रास्ते के पक्षपाती थे इसलिए मिलों और कारखानों में काम के हालात संबंधी कानूनों का उन्होंने विरोध भी किया। बहरहाल बीसवीं सदी की शुरुआत में राष्ट्रवादियों के गरम दल ने मजदूरों का राजनीतिक महत्व समझा और राष्ट्रवाद के लक्ष्य के लिए उन्हें गोलबंद करना चाहा। गांधी द्वारा शुरु किए गए जन राष्ट्रवाद के दौर में राष्ट्रवादी गतिविधियों में मजदूरों की भागीदारी बढ़ गई। बहरहाल कांग्रेस की सामान्यीकृत और बहुवर्गीय दिशा तथा राजनीतिक परिदृश्य पर, मजदूर वर्ग के लिए सुसंगत लगाव वाले कम्युनिस्टों के आगमन के चलते कांग्रेस और मजदूर वर्ग के बीच लगाव सुसंगत नहीं रह गया। हालांकि मजदूर राष्ट्रवादी भावनाओं से प्रेरित थे लेकिन कांग्रेस अपने आंदोलनों में उन्हें अच्छी तरह से गोलबंद नहीं कर सकी क्योंकि भारतीय उद्योगपतियों के नाराज हो जाने के डर से वह मजदूरों के मूल सवालों को नहीं उठाती थी और उनके जुझारू संघर्षों का समर्थन नहीं करती थी। इसीलिए कांग्रेस और मजदूर वर्ग के बीच रिश्ता कमजोर बना रहा इस तथ्य के बावजूद कि कई कांग्रेसी व्यक्तिगत रूप से मजदूर आंदोलनों में लगे हुए थे।

संदर्भ

1. मजूमदार, आर.सी., "हिस्ट्री ऑव दि फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया", खंड-1, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 1984, पृ॰ 156
2. महमूद, सैयद, ए हिस्ट्री ऑव इंग्लिश एजुकेशन इन इंडिया, नई दिल्ली, 1895, पृ॰ 53
3. मार्टिन, मोंटीमरी, इस्टर्न इंडिया, खण्ड-II एवं खण्ड-III, पृ॰ 39
4. मित्रा, मनोशी, "अग्रेरियन सोशल स्ट्रक्चर कंटीन्यूटी एंड चेंज इन बिहार", मनोहर पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1985, पृ॰ 188
5. मिश्रा, बी॰बी॰, "दी इंडियन मिडिल क्लासेज, दियर ग्रोथ इन माडर्न टाईम्स" ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1961, पृ॰ 154
6. मुखर्जी, मृदुला, "औपनिवेशिक भारत में कृषक प्रतिरोध और कृषक चेतना, उपाश्रयवाद और उसके बाद का इतिहास", अंक-3, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली, 1994
7. राम, सेवक, "बिहार विटवीन टू वर्ल्ड वार", नई दिल्ली, 1985
8. राय, सत्या एम॰,"भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद", हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, 1990
9. रसूल, एम॰ए॰, "हिस्ट्री ऑव दि ऑल इंडिया किसान सभा", कलकत्ता, 1974

परास्नातक स्तर के नगरीय एंव ग्रामीण विद्यार्थियों के सामाजिक परिपक्वता का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति पर प्रभाव का अध्ययन

डॉ० प्रेमचन्द्र यादव

(शोध-निर्देशक), एसोसिएट प्रोफेसर, श्री गाँधी पी0जी0 कालेज, मालटारी, आजमगढ़

शिवाश्रेय यादव

(शोध-छात्र), शिक्षाशास्त्र (बी0एड्0), वीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल विश्वविद्यालय, जौनपुर

सारांश

परास्नातक स्तर के नगरीय एंव ग्रामीण विद्यार्थियों के सामाजिक परिपक्वता का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति पर प्रभाव का अध्ययन है। प्रस्तुत अध्ययन के लिए सर्वेक्षण विधि का चयन किया हैं। प्रस्तुत अध्ययन उत्तर प्रदेश राज्य के जौनपुर जनपद स्थित महाविद्यालयों के परास्नातक स्तर के विद्यार्थियों को शोध की जनसंख्या माना गया है। कुल 600 विद्यार्थियों को न्यादार्श के रूप में दैव-निदर्शन विधि से चयनित किया गया, जिसमें से ग्रामीण महाविद्यालयों के 300 विद्यार्थियों तथा नगरीय महाविद्यालयों के 300 विद्यार्थियों को चुना गया है। प्रस्तुत अनुसंधान में ''यादृच्छिक प्रतिचयन विधि'' द्वारा ''प्रतिचयन विधि'' न्यादर्श का चयन किया है। विभिन्न पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत विद्यार्थियों में सामाजिक परिपक्वता का मापन करने के लिए शोधकर्ता द्वारा सामाजिक परिपक्वता मापनी-डॉ० आर० पी० श्रीवास्तव द्वारा निर्मित सामाजिक परिपक्वता मापनी का सूची तथा परास्नातक स्तर की परीक्षा के प्राप्तांकों के प्रतिशत को यहाँ समंकों के रूप में प्रयुक्त किया गया है। आँकड़ों के विश्लेषण हेतु प्रसरण विधि (एनोवा) एवं टी-अनुपात सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष में नगरीय विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति पर सामाजिक परिपक्वता का प्रभाव नहीं पाया गया जबकि ग्रामीण विद्यार्थियों पर प्रभाव पाया गया।

की-वर्ड- नगरीय, ग्रामीण, परास्नातक, विद्यार्थी, सामाजिक परिपक्वता, शैक्षिक निष्पत्ति

भूमिका

परास्नातक स्तर एक शैक्षणिक पाठ्यक्रम है जिसे अध्ययन के एक विशेष क्षेत्र अथवा पेशेवर अभ्यास के क्षेत्र में अध्ययन करने वाले उन व्यक्तियों को दिया जाता है, जिन्होंने उसमें प्रवीणता या उच्च स्तरीय ज्ञान प्रदर्शित किया है। अध्ययन किये गए विषयों में परास्नातक स्तर के विद्यार्थियों के सैद्धांतिक और व्यावहारिक विषय का उन्नत ज्ञान होता है, साथ ही विश्लेषणात्मक, आलोचनात्मक मूल्यांकन और पेशेवर अनुप्रयोग में उच्च स्तरीय कौशल होता है जिससे कि जटिल समस्याओं को हल करने और यथातथ्य और स्वतंत्र रूप से विचार करने की क्षमता होती है।

जन्म के समय शिशु में सामाजिकता अधिकांशतरू शून्य होती है। जैसेदृजैसे उसका शारीरिक एवं मानसिक विकास होता है, वैसे-वैसे उसका सामाजिक विकास भी होने लगता है। वह अपने परिवार के सदस्यों, मित्रों तथा अन्य व्यक्तिओं के संपर्क में आने के फलस्वरूप वह सामाजिक परम्पराओं, मान्यताओं एवं रुढियों आदि के अनुरूप व्यवहार करना सीख जाता है तथा सामाजिक वातावरण में अपने आप को समायोजित करने का प्रयास करता है। समाजीकरण की इस प्रक्रिया से विद्यार्थीयों के व्यक्तित्व में विकास होता है तथा वह सामाजिक रूप से परिपक्व होने लगता है,जिससे कि वह सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप अपनी आवश्यकताओं व् रुचियों पर नियंत्रण करने लगता है तथा अन्य विद्याथियों के प्रति प्रभावपूर्ण ढंग से सामाजिक सम्बन्धों को स्थापित करने में सफल रहता है। सामाजिक परिपक्वता से विद्यार्थी विद्यालय में एक सहयोगी,उपयोगी एवं कुशल मित्र बनाने में सफल रहता है।

परास्नातक स्तर के विद्यार्थियों के इन पहले और अंतिम चरणों में, जैसे-जैसे जीवन का दायरा बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे विद्यार्थियों की शैक्षिक गुणवत्ता में भी बढ़ोत्तरी होती जाती है। चूंकि समय के साथ-साथ विकास की चुनौतियां भी अधिक जटिल हो जाती हैं, इसलिए विद्यार्थियों में अपेक्षाकृत अनिश्चितता की भावना अधिक विकसित होने लगती हैं, इसका मुख्य कारण यह है कि वे परिवार से अधिकांश समय दूर रहते हैं, इसलिए वे अपेक्षाकृत कम सुरक्षित महसूस करते हैं। ऐसी स्थिति में विद्यार्थियों में अक्सर सहकर्मी के प्रति विश्वास की भावना हेतु प्रदर्शन के लिए तैयार रहता है, ऐसी भावना कहीं न कहीं विद्यार्थी की विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक संज्ञानता भी हो सकती है, क्योंकि एक औपचारिक या अनौपचारिक संबंध का निर्धारण

सामाजिक संबंधों द्वारा निर्धारित होता है, यही कारण है इस अवस्था में सहकर्मी समूह इतने आकर्षक हो जाते हैं कि विद्यार्थी अपने हित और सपनों को उनके साथ बुनने एवं निभाने के लिए तैयार हो जाता है, जबकि उसका यह भ्रम एक समूह के रूप में सिर्फ यह आश्वासन देता है वह सही होगा लेकिन ऐसा होना या न होना उसके संबंधों पर निर्भर करता है।

हालांकि, सामान्यतया यह देखा गया है कि सामाजिक परिपक्वता की कमी या अधिकता विद्यार्थीयों में वाह्य कारकों के प्रभाव से उनके सामाजिक परिपक्वता को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए, कभी-कभी यह देखने को मिलता है कि विद्यार्थी साथियों के अनुचित प्रभाव के कारण ऐसा कार्य कर जाते हैं कि उनके द्वारा किया गये कार्य में अपरिपक्वता के लक्षण दिखाई देने लगते हैं जोकि अगर देखा जाय तो यह कार्य कहीं न कहीं विद्यार्थी के अनुभव को सीमित करके विकास को मन्द करता है, इसलिए मेरा मानना है कि माता-पिता को अपने बच्चों में सामाजिक परिपक्वता को प्रोत्साहित करने के लिए उनके द्वारा किये गए कार्य को भी ध्यान दें जिससे कि उनका सामाजिक परिपक्वता प्रबल हो सके।

परास्नातक स्तर की अवस्था विद्यार्थी के व्यक्तिव के विकास में असमंजस का समय होता है और विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के मध्य सम्बन्ध अंतर्वैक्तिक होता है। अतरू परास्नातक स्तर के बालकों को कई प्रकार की कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। विद्यार्थियों में परिपक्वता उनके व्यवहार एवं सामाजिक क्रियाओं के द्वारा उनमें प्रारंभिक अवस्था एवं उनके विद्यालय से प्रारम्भ होता है। एक विद्यार्थी के सामाजिक व्यवहार के विकास को शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक विकास से अलग करके नहीं देखा जा सकता है, सामाजिक परिपक्वता एवं शैक्षिक निष्पत्ति के मध्य एक सकारात्मक सम्बन्ध पाया जाता है अर्थात एक सामाजिक रूप से परिपक्व विद्यार्थी समाज में अपनी भूमिकाओं को ध्यान में रखते हुए अपनी शैक्षिक आवश्यकताओं को भी सुचारू रूप से संचालित कर सकता है।

अत: उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए अध्ययनकर्ता ने अपने विषय का चयन क्षेत्र के आधार पर परास्नातक स्तर के विद्यार्थियों की सामाजिक परिपक्वता का उनके शैक्षिक निष्पत्ति पर पड़ने वाले प्रभाव को देखने का प्रयास किया है।

उद्देश्य

1. परास्नातक स्तर के नगरीय विद्यार्थियों की सामाजिक परिपक्वता का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति पर प्रभाव का अध्ययन करना।
2. परास्नातक स्तर के ग्रामीण विद्यार्थियों की सामाजिक परिपक्वता का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति पर प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ

1. परास्नातक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक परिपक्वता वाले नगरीय विद्यार्थियों शैक्षिक निष्पत्ति में अन्तर है।
2. परास्नातक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक परिपक्वता वाले ग्रामीण विद्यार्थियों शैक्षिक निष्पत्ति में अन्तर है।

शोध-प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन के लिए सर्वेक्षण विधि का चयन किया हैं। प्रस्तुत अध्ययन उत्तर प्रदेश राज्य के जौनपुर जनपद स्थित महाविद्यालयों के परास्नातक स्तर के विद्यार्थियों को शोध की जनसंख्या माना गया है। कुल 600 विद्यार्थियों को न्यादार्श के रूप में दैव-निदर्शन विधि से चयनित किया गया, जिसमें से ग्रामीण महाविद्यालयों के 300 विद्यार्थियों तथा नगरीय महाविद्यालयों के 300 विद्यार्थियों को चुना गया है। प्रस्तुत अनुसंधान में ''यादृच्छिक प्रतिचयन विधि'' द्वारा ''प्रतिचयन विधि'' न्यादर्श का चयन किया है। विभिन्न पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत विद्यार्थियों में सामाजिक परिपक्वता का मापन करने के लिए शोधकर्ता द्वारा डॉ० आर० पी० श्रीवास्तव द्वारा निर्मित सामाजिक परिपक्वता मापनी का सूची तथा परास्नातक स्तर की परीक्षा के प्राप्तांकों के प्रतिशत को यहाँ समंकों के रूप में प्रयुक्त किया गया है। आँकड़ों के विश्लेषण हेतु प्रसरण विधि (एनोवा) एवं टी-अनुपात सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या

उद्देश्य-1 परास्नातक स्तर के नगरीय विद्यार्थियों के सामाजिक परिपक्वता का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति पर प्रभाव का अध्ययन-

H_{01} परास्नातक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक परिपक्वता वाले नगरीय विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका सं0 1: परास्नातक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक परिपक्वता वाले नगरीय विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति का एफ-अनुपात

श्रोत	*df*	*SS*	*MS*	*F*	*सार्थक/ असार्थक*
समूहों के मध्य	2	2930.20	1465.10	9.22*	सार्थक
समूहों के अन्दर	297	47174.15	158.84		
कुल	299	50104.35	1623.94		

बेहतर, औसत एवं निम्न सामाजिक परिपक्वता वाले परास्नातक के नगरीय विद्यार्थियों के शैक्षिक निष्पत्ति के मध्य एफ-अनुपात का मान 9.22 है जो . 05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है। अत: शून्य परिकल्पना ''परास्नातक स्तर के बेहतर, औसत एवं निम्न सामाजिक परिपक्वता वाले नगरीय विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति में कोई सार्थक अन्तर नही है'' तथा 0.05 स्तर पर अस्वीकृत की जाती है। परिणामत: परास्नातक स्तर के बेहतर, औसत एवं निम्न सामाजिक परिपक्वता वाले नगरीय विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति में असमानता है।

तलिका सं0-2: परास्नातक स्तर के बेहतर, औसत एवं निम्न सामाजिक परिपक्वता वाले नगरीय विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति में अन्तर को दर्शाते टी-परिणाम

क्र.सं.	चर	न्यादर्श (N)	मध्यमान (M)	σD	D	t-मान
1.	बेहतर	79	74.74	1.78	7.40	4.15*
	औसत	136	67.34			
2.	बेहतर	79	74.74	1.97	6.47	3.28*
	निम्न	85	68.27			
3.	औसत	136	67.34	1.74	0.93	0.53
	निम्न	85	68.27			

* .05 स्तर पर सार्थक

परास्नातक स्तर के बेहतर, औसत एवं निम्न सामाजिक परिपक्वता वाले नगरीय विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति का मध्यमान क्रमशः 74.74, 67.34 एवं 68.27 है। सार्थक युग्म तुलना के आधार पर परास्नातक स्तर के बेहतर सामाजिक परिपक्वता वाले नगरीय विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति औसत एवं निम्न सामाजिक परिपक्वता वाले नगरीय विद्यार्थियों की अपेक्षा बेहतर है जबकि औसत एवं निम्न सामाजिक परिपक्वता वाले नगरीय विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति में समानता है।

उद्देश्य-2 परास्नातक स्तर के ग्रामीण विद्यार्थियों के सामाजिक परिपक्वता का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति पर प्रभाव का अध्ययन-

H_{02} परास्नातक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक परिपक्वता वाले ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका सं0 3: परास्नातक स्तर के बेहतर, औसत एवं निम्न सामाजिक परिपक्वता वाले ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति का एफ-अनुपात

श्रोत	df	SS	MS	F	सार्थक/ असार्थक
समूहों के मध्य	2	1384.57	692.28	7.74*	सार्थक
समूहों के अन्दर	297	26570.49	89.46		
कुल	299	27955.06	781.75		

बेहतर, औसत एवं निम्न सामाजिक परिपक्वता वाले परास्नातक के ग्रामीण विद्यार्थियों के शैक्षिक निष्पत्ति के मध्य एफ-अनुपात का मान 7.74 है जो .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना ''परास्नातक स्तर के बेहतर, औसत एवं निम्न सामाजिक परिपक्वता वाले ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति में कोई सार्थक अन्तर नही है'' तथा .05 स्तर पर अस्वीकृत की जाती है। परिणामतः परास्नातक स्तर के बेहतर, औसत एवं निम्न सामाजिक परिपक्वता वाले ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति में असमानता है।

तलिका सं0-4: परास्नातक स्तर के बेहतर, औसत एवं निम्न सामाजिक परिपक्वता वाले ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति में अन्तर को दर्शाते टी-परिणाम

क्र.सं.	चर	न्यादर्श (N)	मध्यमान (M)	σD	D	t-मान
1.	बेहतर	89	68.93	1.30	5.11	3.93*
	औसत	131	63.83			
2.	बेहतर	89	68.93	1.46	2.86	1.96
	निम्न	80	66.08			
3.	औसत	131	63.83	1.34	2.25	1.68
	निम्न	80	66.08			

* .05 स्तर पर सार्थक

परास्नातक स्तर के बेहतर, औसत एवं निम्न सामाजिक परिपक्वता वाले ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति का मध्यमान क्रमशः 68.93, 63.83 एवं 66.08 है। सार्थक युग्म तुलना के आधार पर परास्नातक स्तर के बेहतर सामाजिक परिपक्वता वाले ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति औसत सामाजिक परिपक्वता वाले ग्रामीण विद्यार्थियों की अपेक्षा बेहतर है जबकि बेहतर एवं निम्न तथा औसत एवं निम्न सामाजिक परिपक्वता वाले ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति में समानता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये-

- उच्च, औसत एवं निम्न सामाजिक परिपक्वता वाले नगरीय विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति में समानता है अर्थात् नगरीय विद्यार्थियों के सामाजिक परिपक्वता का उनके शैक्षिक निष्पत्ति पर प्रभाव नहीं है।
- उच्च एवं औसत सामाजिक परिपक्वता वाले ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति निम्न सामाजिक परिपक्वता वाले ग्रामीण विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है अर्थात् ग्रामीण विद्यार्थियों के सामाजिक परिपक्वता का उनके शैक्षिक निष्पत्ति पर प्रभाव है।

नगरीय विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति पर सामाजिक परिपक्वता का प्रभाव नहीं पाया गया जबकि ग्रामीण विद्यार्थियों पर प्रभाव पाया गया। कुमार डी. और रितु (2013). ने गरीबी का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव नामक विषय पर अध्ययन किया। निष्कर्ष के रूप में पाया कि- गरीबी विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि एवं उनकी सफलता को प्रभावित करती है। निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर का उनके निम्न शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक सम्बन्ध पाया गया। आनंद ए. और भनोट एस. (2007). ने प्रस्तुत शोध कार्य से हमें यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के विद्यार्थियों की सामाजिक परिपक्वता एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर सामाजिक-व्यक्तिगत और आर्थिक कारकों का प्रभाव पड़ता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- आनंद ए. और भनोट एस. (2007). ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों की किशोरियों की सामाजिक परिपक्वता पर सामाजिक-व्यक्तिगत और आर्थिक कारकों का प्रभाव - एक तुलनात्मक अध्ययन। पेज. 41-44.
- छीवान आर.(1998)) सामाजिक-आर्थिक स्थिति और सामाजिक परिपक्वता। शिक्षा की प्रगति। LXXIII (5) 117-119।
- कुमार डी. और रितु (2013). वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की सामाजिक परिपक्वता उनके व्यक्तित्व के संबंध में ट्रांस एशियन रिसर्च जर्नल्स का प्रकाशन एजेएमआर एशियन जर्नल ऑफ मल्टीडायमेंशनल रिसर्च वॉल्यूम 2 अंक 8, अगस्त 2013, आईएसएसएन 2278-4853।
- रानी स्वरूपा जी. और प्रभा रत्न सी. (2008)) विभिन्न पेरेंटिंग शैलियों से संबंधित किशोरों का सामाजिक परिपक्वता स्तर। साइको-लिंगुआ 38 (2), 185-188, आगरा: साइको भाषाविज्ञान एसोसिएशन ऑफ इंडिया।
- राज, एम.(1996द्ध इनसाइक्लोपीडिया डिक्शनरी ऑफ साइकोलॉजी एंड एजुकेशन, नई दिल्ली: अनमोल प्रकाशन।
- शर्मा, बी. और शाह, जे.के. (2012). आवासीय स्कूली लड़कियों के बीच सामाजिक परिपक्वता, स्कूल समायोजन और शैक्षणिक उपलब्धि पर एक अध्ययन। जर्नल ऑफ एजुकेशन एंड प्रैक्टिस www-iiste-org ISSN 2222&1735 ISSN 2222&288X (ऑनलाइन) वॉल्यूम 3, नंबर 7, 2012.69

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की बालिकाओं की शैक्षिक समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन

शक्ति सिंह

सहायक प्रोफेसर, (बी0एड0 विभाग), मदन मोहन मालवीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भाटपार रानी, देवरिया, उ0प्र0

किसी भी समाज का लिंग के आधार पर अध्ययन किया जाये तो, ज्ञात होता है कि समाज स्त्री तथा पुरूष दो भागों में बाँटा हुआ है। स्त्री घर के समस्त कार्यो का सम्पादन करती है, जबकि पुरूष घर के बाहर के समस्त उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते है। इस प्रकार स्त्री तथा पुरूष मिलकर अपने परिवारिक दायित्व का निवर्हन करते हुये, परिवार की उन्नति के लिये कार्य करते रहते है। इस प्रकार समाज में स्त्रियों की अद्वितीय भूमिका है।

भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा की भिन्न-2 कालक्रमों में भिन्न-2 रही है। प्राचीनकालीन समाजिक व्यवस्था में स्त्रियों को पुरूषों के समान समस्त अधिकार प्राप्त थे। परन्तु उत्तर ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों पर कुछ प्रतिबन्ध लगाये गये। स्त्रियों पर बहुत सारे रीतिरिवाज एवं कुप्रथाओं को भी लागू किया गया। इन कुप्रथाओं में बाल विवाह, दहेज प्रथा, सती प्रथा इत्यादि थी। इनके फलस्वरूप समाज में महिलाओं की स्थिति निरन्तर गिरती चली गयी।

बौद्ध काल में स्त्रियों की दशा सुधार हेतु प्रयास अवश्य किये गये थे। परन्तु मध्यकाल में स्त्रियों की दशा में अत्याधिक गिरावट आयी। बाल विवाह जैसी कुप्रथा का प्रचलन चरम पर पहुँच गया था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन में भी स्त्रियों की दशा में कोई सुधार नहीं हुआ। परन्तु ईसाई मिशनरीज ने स्त्रियों की दशा सुधार हेतु अनेकों प्रयास किये गये। 19 वीं एवं 20 वीं शताब्दी के सामाजिक सांस्कृतिक पुनरूत्थान ने सामाजिक जागृति के फलस्वरूप सुधारों के युग को आरम्भ किया गया। महिला सशक्तिकरण एवं महिला कल्याण हेतु, तत्कालीन समाज सुधारकों ने प्र्याप्त ध्यान दिया। भारतीय महिलाओं के शैक्षिक स्तर के उन्नयन हेतु वुड घोषणा पत्र, हन्टर आयोग, सैडलर आयोग, राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन, राधाकृष्णन आयोग, मुदालियर आयोग, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, राष्ट्रीय महिला आयोग आदि ने महिला सशक्तीकरण हेतु प्रयास किये।

वर्तमान भारतीय समाज सामान्य वर्ग, अन्य पिछड़घ वर्ग, अनुसूचित जाति वर्ग, अनुसूचित जनजाति वर्ग, अल्पसंख्यक तथा आर्थिक रूप से गरीब सवर्णो में विभाजित है। अत: इन वर्गो में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग की महिलओं की दशा, अन्य वर्गो की तुलना अत्यन्त दयनीय है। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की महिला साक्षरता की दर अन्य वर्गो की तुलना अत्यन्त कम है। शिक्षा का यह स्तर इन समूहों की महिलाओं की उक्त दयनीय स्थिति हेतु जिम्मेदार है। अत: इन वर्गो की महिलाओं की समुचित उन्नति हेतु, इनकी शैक्षिक समस्याओं के स्तर को जानकर, इनका समाधान करना होगा। तभी इन वर्गो की महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन होगा। अत: अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की बालिकाओं की शैक्षिक समस्याओं को जानने का प्रयत्न किया गया है।

उद्देश्य-अनुसूचति जाति एवं अनुसूचित जनजाति के बालिकाओं की शैक्षिक समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना-अनुसूचित जाति एवं अनुसचित जनजाति वर्ग की बालिकाओं की शिक्षक एवं शिक्षण, सामाजिक एवं शैक्षिक वातावरण, शैक्षिक संगठन एवं प्रशासन, तथा सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक कारणों से सम्बन्धित अनेक शैक्षिक समस्यायें है।

परिसीमन-प्रस्तुत शोध अध्ययन म0प्र0 के सतना जिले के चित्रकूट परिक्षेत्र के शासकीय माध्यमिक विद्यालय अथवा जूनियर हाईस्कूलों तक सीमांकित है।

उपकरण-प्रस्तुत शोध अध्ययन में अनु0 जाति वं अनु0 जनजाति की बालिकाओं की शैक्षिक समस्याओं के अध्ययन हेतु डा0 बीना शाह एवं डॉ0 एस0 के0 लखेरा द्वारा मानकीकृत शैक्षिक समस्या प्रश्नावली मापनी का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या-सतना जिले के चित्रकूट परिक्षेत्र के शासकीय विद्यालय अथवा जूनियर हाईस्कूलों के अनु0 जाति एवं अनु0 जनजाति की बालिकाओं की कुल संख्या को जनसंख्या के रूप में सम्मिलित किया गया है।

न्यादर्ष-न्यादर्श के रूप में सतना जिले के चित्रकूट परिक्षेत्र से कुल 300 अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग की बालिकाओं का चयन किया गया है। प्रत्येक वर्ग 150 बालिकाओं का चयन किया गया है।

प्रयुक्त सॉख्यिकी-प्रस्तुत शोध अध्ययन की प्रकृति के अनुसार प्रदत्तों का विश्लेषण, प्रश्नावली की नियमावली में अंकित तालिकाओं एवं नियमानुसार करते हुए, प्राप्त परिणामों की व्याख्या की गयी है। अत: प्रस्तुत अध्ययन के प्रदत्तों का विश्लेषण निम्न प्रकार से किया गया है।

शैक्षिक समस्या के क्षेत्र	संख्या		मध्यमान		कुल भौक्षिक समस्याओं का जैड–प्राप्तांक		समस्या स्थिति		ग्रेड	
	SC छात्रा	ST छात्रा	SC छात्रा	ST छात्रा	SC छात्रा	ST छात्रा	SC छात्रा	ST छात्रा	SC छात्रा	ST छात्रा
शिक्षक और ि िक्षण	150	150	35.91	36.80			औसत स्तर से नीचे	औसत स्तर	D	C
सामाजिक एवं भौक्षिक वातावतरण	150	150	23.40	24.44			औसत स्तर	औसत स्तर	C	C
संगठन एवं प्र ाशसन	150	150	15.17	15.95			औसत स्तर से नीचे	औसत स्तर से नीचे	D	D
ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक	150	150	3.10	3.14			औसत स्तर से नीचे	औसत स्तर से नीचे	D	D
कुल समस्याओं का योग	150	150	77.58	80.34	+0.579	+0.720	उच्च स्तर	उच्च स्तर	C	C

सारिणी में चित्रकूट परिक्षेत्र के अनुसूचति जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग की बालिकाओं की शैक्षिक समस्याओं का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। ये शैक्षिक समस्यायें 4 विभिन्न क्षेत्रों में बॉटी गयी है।

सारिणी में उल्लेखित विभिन्न शैक्षिक समस्यओं के ऑकड़ो की व्याख्या हेतु उपकरण की नियमावली में, अंकित तालिका 2, 3 एवं 4 का प्रयोग किया गया है। तालिका 4 में दिये गये शिक्षक एवं शिक्षण के कारणों से सम्बन्धित शैक्षिक समस्याओं के मानक स्तर से ज्ञात होता है कि चित्रकूट परिक्षेत्र के अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग की बालिकाओं की शिक्षक एवं शिक्षण के कारणों से सम्बन्धित शैक्षिक समस्याओं का मध्यमान क्रमशः 35.91 व 36.80 है। अतः तालिका 4 के अनुसार उनके ग्रेड क्रमशः D व C है, जो क्रमशः औसत से नीचे एवं औसत स्तर की, शिक्षक के कारणों से सम्बन्धित शैक्षिक समस्याओं के स्तरों को प्रकट करते है।

तालिका 4 में दिये गये सामाजिक एवं शैक्षिक वातावरण के कारणों से सम्बन्धित शैक्षिक समस्याओं के मानक स्तर से ज्ञात होता है कि चित्रकूट परिक्षेत्र में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग की बालिकाओं की सामाजिक एवं शैक्षिक वातावरण के कारणों से सम्बन्धित शैक्षिक समस्याओं का मध्यमान क्रमशः 23.4 व 24.44 है। अतः तालिका 4 के अनुसार उनके ग्रेड C व C है, जो दोनों सामाजिक समूहों में औसत स्तर की, सामाजिक एवं शैक्षिक वातावरण के कारणों से सम्बन्धित शैक्षिक समस्याओं के स्तरों को प्रकट करती है।

तालिका 4 में दिये गये शैक्षिक संगठन एवं प्रशासन से स्म्बन्धित शैक्षिक समस्याओं के मानक स्तर से ज्ञात होता है कि चित्रकूट परिक्षेत्र के अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति वर्ग की बालिकाओं की शैक्षिक संगठन एवं प्रशासन के कारणों से सम्बन्धित शैक्षिक समस्याओं का मध्यमान क्रमशः 15.17 व 15.95 है। अतः तालिका 4 के अनुसार उनके ग्रेड क्रमशः D व D है, जो दोनों सामाजिक समूहों में औसत से नीचे स्तर की, शैक्षिक संगठन एवं प्रशासन के कारणों से सम्बन्धित समस्याओं के स्तरों को प्रकट करते है।

तालिका 4 में दिये गये सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक कारणों से सम्बन्धिक शैक्षिक समस्याओं के मानक स्तर से ज्ञात होता है कि चित्रकूट परिक्षेत्र के अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग की बालिकाओं की सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक कारणों से सम्बन्धित शैक्षिक समस्याओं का मध्यमान क्रमशः 3.10 व 3.14 है। अतः तालिका 4 के अनुसार उनके ग्रेड क्रमशः D व D है, जो दोनों सामाजिक समूहों में औसत से नीचे स्तर की, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक कारणों से सम्बन्धित शैक्षिक समस्याओं के स्तरों को प्रकट करते है।

इसके अलावा तालिका 2 एवं 3 में दिये गये कुल शैक्षिक समस्याओं के मानक स्तर से ज्ञात होता है कि चित्रकूट परिक्षेत्र के अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग की बालिकाओं के अंको का मध्यमान क्रमशः 77.58 व 80.34 एवं तालिका 2 के अनुसार जेड–प्राप्ताक के अंको का मध्यमान क्रमशः + 0. 579 व + 0.720 एवं तालिका 3 के अनुसार उनके ग्रेड क्रमशः C व C है, जो तालिका 3 के अनुसार दोनों सामाजिक समूहों में उच्च स्तर की शैक्षिक समस्याओं के स्तरों को प्रकट करते है। अतः चित्रकूट परिक्षेत्र के अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग की बालिकाओं की शैक्षिक समस्याओं में उच्च स्तर प्रकट होता है।

परिणाम

1. चित्रकूट परिक्षेत्र के अनुसूचित जाति वर्ग एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग की बालिकाओं की शिक्षक एवं शिक्षण के कारणों से सम्बन्धित शैक्षिक समस्यायें क्रमशः औसत से नीचे स्तर एवं औसत स्तर की है।

2. चित्रकूट परिक्षेत्र के अनुसूचित जाति वर्ग और अनुसूचित जनजाति वर्ग की बालिकाओं की सामाजिक व शैक्षिक वातावरण के कारणों से सम्बन्धित शैक्षिक समस्यायें औसत स्तर की है।
3. चित्रकूट परिक्षेत्र के अनुसूचित जाति वर्ग एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग के बालिकाओं की संगठन एवं प्रशासन के कारणों से सम्बन्धित शैक्षिक समस्यायें औसत से नीचे स्तर की है।
4. चित्रकूट परिक्षेत्र के अनुसूचित जाति वर्ग एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग के बालिकाओं की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक कारणों से सम्बन्धित शैक्षिक समस्यायें औसत से नीचे स्तर की है।
5. चित्रकूट परिक्षेत्र के अनुसूचित जाति वर्ग एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग के बालिकाओं की शैक्षिक समस्यायें उच्च स्तर की है।

सन्दर्भ

1. लाल, रमन बिहारी, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्यान्त रस्तोगी पब्लिकशान मेरठ, 2013-14 पृ0 599-609।
2. गुप्ता एवं गुप्ता एस0पी0 एवं अलका, भारतीय शिक्षा के समसामायिक प्रकरण, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद 2010, पृ0 233-248।
3. अनुसूचित जाति और जनजाति के बच्चों की समस्याऐं, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, पृ0 1-45।
4. गुप्ता, एस0पी0, शिक्षा का सफरनामा, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2010, पृ0 129-253।
5. गुप्ता एवं गुप्ता, एस0पी0 एवं अलका, भारतीय शिक्षा का ताना-बाना, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2012, पृ0 197-212।
6. गुप्ता एवं शर्मा, एम0एल0 एवं डी0डी0- समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2004, पृ0 326-339।
7. श्रीवास्तव, ए0पी0, समाजशास्त्र, रामप्रसाद एण्ड संस, 2012-2013 पृ0 202-221।
8. उप्रेती, डॉ हरिश्चन्द्र-भारतीय जनजातियाँः संरचना एवं विकास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी-2007, पृ0 11-351।
9. हसनेन, डॉ0 नदीम-जनजातीय भारत, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटस-2005, पृ0 21-314।

महर्षि पतंजली के योगसूत्र में वर्णित योग का स्वरूप एवं अवधारणा

डॉ० रेशमा सुलताना

असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, वैशाली महिला कॉलेज, वैशाली (बिहार)

मनुष्य का मन उन क्षमताओं के अतिरिक्त जो पांच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त होती हैं, प्रत्यक्ष ज्ञान सम्पादन की अन्यान्य क्षमताएं भी रखता है- यह हमें मनोविज्ञानशास्त्र के वेत्ता बताते हैं। दार्शनिक भी शनैः शनैः इस विचार को मानने लगे हैं कि हमारे अन्दर मस्तिष्क द्वारा नियंत्रित तर्क-वितर्क तथा स्मृति के अतिरिक्त भी अन्यान्य मानसिक शक्तियां विद्यमान हैं। भारत के प्राचीन विचारक, जिसे हम 'तत्वज्ञान-विषयक मनोविज्ञान' कह सकते हैं, उसके संबंध में पर्याप्त क्रियात्मक्रम ज्ञान रखते थे और 'अदभुत दृष्टि' तथा तत्समान अन्यान्य शक्तियों से भी बिलकुल परिचित थे। वे हमें बताते हैं कि हम बाह्य इन्द्रियों की सहायता के बिना भी देखने तथा जानने की शक्ति प्राप्त कर सकते हैं और उन प्रक्रियाओं की, जिनका उपभोग हम भौतिक इन्द्रियों तथा मस्तिष्क रूपी साधनों द्वारा करते हैं, अधीनता से सर्वथा उन्मुक्त हो सकते हैं। वे यह स्वीकार करते हैं कि साधारणतया जो जगत् हमें दृष्टिगोचर हो सकता है उससे अधिक विस्तृत जगत् का अस्तित्व है। जब किसी दिन हमारी दृष्टि उक्त जगत् को प्रत्यक्ष करने के लिए खुलेगी तो हमें पता लगेगा कि हमारे प्रत्यक्ष ज्ञान का क्षेत्र कितना अधिक विलक्षण एवं महान् है; किसी अंधे पुरुष को जब पहले-पहले दृष्टि प्राप्त होती है तो जैसा भासता है, ठीक वही दशा हमारी भी होगी। इस महत् दृष्टि तथा अन्तर्निहित शक्तियों की अभिव्यक्ति को प्राप्त करने के लिए विशेष विधान है। 'योग के नियमों का पालन करने से- जैसे ध्यान की शक्ति को उच्चता तक पहुंचाने, अपने ध्यान को शक्ति के आगध स्रोत के ऊपर टिका कर मन की चपलता का निग्रह करने से- व्यक्ति, जैसे व्यायाम करने वाला अपने शरीर को साध लेता है उसी प्रकार अपनी आत्मा को पूर्णरूप से साधने में समर्थ हो सकता है। योग की सहायता से हम चैतन्य से उच्चतर स्तर पर पहुंच सकते हैं, जिसका मार्ग मानसिक उपकरण में परिवर्तन के द्वारा प्रशस्त होता है, और इस प्रकार वह उन सीमाओं का अतिक्रमण कर सकता है जिन्हें मानवीय अनुभव को साधारण सीमाएं समझा जाता है। योग में हम हिन्दू-विचारधारा के उन आधारभूत भावों- यथा भौतिक जगत् की अपेक्षा आत्मिक जगत् की श्रेष्ठता, मौनसाधन तथा एकांतसेवन, ध्यान, समाधि और बाह्य अवस्थाओं के प्रति उदासीनता आदि- को स्पष्ट रूप में लक्ष्य कर सकते हैं। किन्तु जो उससे परिचित हैं वे यह स्वीकार करते हैं कि हमारी वर्तमान मनोवृत्ति को, जो वाह्य वस्तुओं के बोध से अत्यधिक आक्रान्त है और जो नीरस, कठोर परिश्रम, भौतिक लिप्सा और इन्द्रियजन्य उत्तेजना के कारण आत्मा के यथार्थ जीवन से सर्वथा विरक्त है, सुधारने के लिए इस साधना की नितांत आवश्यकता है। योग शब्द का प्रयोग नाना अर्थो में होता है। साधारण रूप में इसका तात्पर्य 'क्रियाविधि'[1] हो सकता हैं कभी-कभी इसका प्रयोग संयोजित करने के लिए होता है।[2] उपनिषदों तथा भगवद्गीता में आत्मा के विषय में कहा गया है कि वह अपनी सांसारिक और पापमय अवस्था में सर्वोपरि आत्मा से पृथक् तथा विरक्त रहती है। सब पापों तथा दुःख की जड़ यह पृथक्त्व, भेदभाव तथा विरक्ति ही है।[3] दुःख तथा पाप से छुटकारा पाने के लिए हमें आध्यात्मिक एकत्व, अर्थात् एक के अंदर दो की भावनास, अर्थात् योग को प्राप्त करना चाहिए। पतंजलिकृत योगदर्शन में योग का अर्थ एकत्व नहीं, बल्कि मात्र प्रयत्न है, अथवा, जैसा कि भोज का कहना है, पुरुष तथा प्रकृति के मध्य वियोग है। यह एक खोज है उसकी जिसे नावलिस ने 'हमारे अतीन्द्रिय अहम्' के नाम से पुकारा है, जो हमारे अस्तित्व का दैवीय तथा नित्य अंश है। इसका अर्थ प्रयत्न, कठोर परिश्रम भी होता है और इस प्रकार इसका प्रयोग इन्द्रियों तथा मन के निग्रह के अर्थ में होने लगा। यद्यपि कभी-कभी इसका समाधि के लक्ष्य के पर्यायवाची अर्थो में भी व्यवहार किया गया है, पर अधिकतर इसका प्रयोग उस तक पहुंचने के मार्ग के अर्थो में ही किया गया है।[4] ऐसे स्थल कम नहीं है जहां ईश्वर की सर्वोपरि शक्ति के लिए इसका प्रयोग यिका गया है। पतंजलि के अनुसार, मानवीय प्रकृति 'भौतिक तथा आत्मिक' के भिन्न-भिन्न तत्वों के नियंत्रण द्वारा पूर्णता-प्राप्ति के लिए किया गया विधिपूर्वक प्रयत्न ही योग है। भौतिक शरीर, सक्रिय इच्छाशक्ति और समझने की शक्ति रखनेवाले मन को नियंत्रण के अंदर लाना आवश्यक है। पतंजलि ने कुछ ऐसे अभ्यास पर बल दिया है जिनसे शारीरिक चंचलता की चिकित्सा हो सकती है तथा मलिनता दूर की जा सकती है।[5] जब इन अभ्यासों से हमें अधिक शक्ति, दीर्घकालीन युवावस्था और दीर्घजीवन प्राप्त हो जाए, तो इनका प्रयोग आध्यात्मिक मुक्ति के लिए करना उचित है। चित्त की शुद्धि तथा शांति के लिए अन्य विधियों का प्रयोग किया जाता है। पतंजलि का मुख्य लक्ष्य आध्यात्मिक सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं, बल्कि क्रियात्मक रूप में यह संकेत करना है कि संयमी जीवन द्वारा किसी प्रकार मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है।

प्राचीन समय से भारत में यह विचार चला आ रहा है कि हम साधना द्वारा ऐसी अनेक भौतिक और मानसिक सिद्धियां प्राप्त कर सकते हैं जो साधारण मनुष्यों में नहीं पाई जातीं और शारीरिक तथा मानसिक क्रियाओं के संयम से हमें दुःख से छुटकारा पाने में सहायता मिलती है। समाधि और सम्मोहक मूर्छा के महत्व के संबधं में अपरिपक्व विचार ऋग्वेद में पाये जाते हैं, जिसमें 'मुनि' शब्द भी आया है।[6] इसके अनुसार दिव्य प्राकश पर ध्यान लगाना भक्ति का

एक पवित्र कार्य है। अथर्ववेद में यह विचार कि कठोर साधना द्वारा अलौकिक शक्तियां प्राप्त की जा सकती है, बहुत आया है। उसके पश्चात् शीघ्र ही तपस्या का भाव उत्पन्न हुआ, जिससे निग्रह की एक नैतिक स्वरूप दिया जाने लगा। अपने मन को नित्य में केन्द्रित करने के लिए मनुष्य को समस्त सांसारिक सुखोपभोग का त्याग करना चाहिए।[7] उपनिषदों के अनुसार योगाभ्यास यथार्थसत्ता के सत्यज्ञान की चेतनापूर्ण आन्तरिक खोज है। ध्यान तथा एकाग्रता पर बल दिया गया है, क्योंकि आत्मा का विषय रूप में प्रत्यक्ष ज्ञान अन्यथा संभव नहीं है। उपनिषदों ने तप और ब्रह्मचर्य को महान् शक्ति के उत्पादक गुण बताया है। ऐसी उपनिषदें जिनमें सांख्य के सिद्धांत आते हैं, योग-संबंधी क्रियाओं का भी वर्णन करती हैं। कठ, श्वेताश्वतर और मैत्रायणी उपनिषदें धार्मिक सिद्धि के क्रियात्मक पक्ष का उल्लेख करती हैं, जो कि सांख्य के सैद्धान्तिक अन्वेषण से भिन्न हैं। 'योग' एक पारिभाषिक शब्द के रूप में कठ, तैत्तिरीय और मैत्रायणी उपनिषदों में आता है, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें वर्णित योग तथा पतंजलि का योग एक समान है। हो सकता है कि समाधि का विचार उपनिषदों के उस सिद्धांत से विकसित हुआ हो जो परमब्रह्म की प्राप्ति अथवा आनुभविक जीवन की वस्तुओं से मुक्ति की तुलना सुषुप्ति के साथ करता है। कठोपनिषद् में योग की उच्चतम अवस्था का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उसमें इन्द्रियों को मन तथा बुद्धि के साथ सर्वथा शांत भाव में लाया जाता है।[8] इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें कृत्रिम उपायों द्वारा ऐसी मूर्छितावस्था लाने का प्रयत्न किया। मैत्री उपनिषद् में छः प्रकार के योग का उल्लेख आता है और पतंजलि योगदर्शन के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग पाया जाता है। यह प्रकट है कि पतंजलि का योग आरंभिक उपनिषदों के काल में पूर्णता तक नहीं पहुंचा था, यद्यपि परवर्ती उपनिषदों में हमें इसकी क्रमिक उन्नति दिखाई देती है। बुद्ध ने योग का अभ्यास दोनों अर्थों में किया।[9] उन्होंने कठोर तपस्याएं भी कीं तथा उच्च श्रेणी का चिंतन भी यिका। ललितविस्तर ग्रथ के अनुसार, तपस्या की नानाविध विधियां बुद्ध के समय में प्रचलित थीं। बुद्ध के कुछेक गुरु, जैसे 'आलार, योगविद्या में निपुण थे। बौद्धसूत्र एकाग्रता की योग की विधियों से अभिज्ञ हैं। बौद्ध मत में प्रतिपादित ध्यान की चार अवस्थाएं साधारण रूप में शास्त्रीय योग की चेतनापूर्ण एकाग्रता की चार स्थितियों के साथ अनुकूलता रखती है।

बौद्धमत के अनुसार, श्रद्धा, शक्ति, विचार, एकाग्रता तथा बुद्धि के इन पांच गुणों के धारण कर लेने से योग के लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है और योग भी इस मत को स्वीकार करता है। बौद्ध मत की योगाचार शाखा बौद्ध सिद्धांत को योग के विवरणों के साथ स्पष्ट रूप में मिलाती है। परवर्ती बौद्ध ग्रंथ एक परिष्कृत योग पद्धति का आश्रय लेते हैं।[10] महाभारत में सांख्य और योग का उपयोग एक ही पूर्ण इकाई के दो पूरक अंशों के रूप में किया गया है और ये क्रमशः सिद्धान्त तथा व्यवहार अथवा दर्शन तथा धर्म के प्रतीक हैं। ऐसा कहा जाता है कि योगदर्शन ईश्वर को छब्बीसवें तत्व के रूप में स्वीकार करता है। इसके अतिरिक्त, मोक्ष, जिसे प्रारंभ में परब्रह्म के साथ तादात्म्य मात्र गया था, अब आत्मा का प्रकृति से पृथक्करण हो जाता है, जबकि परब्रह्म का वह सर्वतोग्राही स्वरूप नहीं रहा जिसमें से व्यक्तिरूप आत्माएं प्रादुर्भूत हुई, बल्कि वह ईश्वर अर्थात् सहायक हो गया। महाभारत में धारण, प्राणायाम का उल्लेख है। उक्त महाकाव्य के अनेक तपस्वियों ने चमत्कारी शक्तियों को प्राप्त करने के लिए योग-साधन का आश्रय लिया। महाभारत में इनका बार-बार उल्लखे हुआ है।[11] उपनिषद्, महाभारत-जिसमें भगवद्गीता भी शामिल हैं- जैनमत तथा बौद्धमत योग संबंधी क्रियाओं को स्वीकार करते हैं। योग-सिद्धांत को इतना पुरातन बताया जाता है, जितना कि ब्रह्मा है। पतंजलि के योग में, तपस्या तथा गहन चिंतन-विषय जो विचार उस समय अस्पष्ट तथा अनिश्चित रूप में विद्यमान थे उन सब का निचोड़ पाया जाता है। उन्होंने उस अस्पष्ट परंपरा को जो जीवन तथा अनुभव के दबाने से विकसित हुई, एक विधान का रूप दे दिया। पतंजलि का दर्शन जिस युग में प्रादुर्भाव हुआ, वह उसके चिन्हों को धारण किए हुए हैं। जहां एक ओर इसमें हमें अत्यंत परिष्कृत रहस्यवाद मिलता है, वहां उससे मिश्रित ऐसे अनेक मत भी मिलते हैं, जो कि उस काल में प्रचलित धार्मिक सम्प्रदायों में से निकले हैं।[12]

पतंजलि का योगसूत्र योग-सम्प्रदाय का प्राचीनतम पाठ्यक्रम है। इसके चार भाग हैं जिनमें पहले भाग में समाधि के स्वरूप तथा लक्ष्य का प्रतिपादन किया गया है। इसे 'समाधिपाद' कहते हैं। द्वितीय भाग 'साधनापाद' में लक्ष्य-प्राप्ति के साधनों की व्याख्या है। तीसरे में उन अलौकिक सिद्धियों का वर्णन है जो योग की क्रियाओं द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं।[13] यह 'विभूतिपाद' कहलाता है। और चौथे में मोक्ष का स्वरूप बताया गया है। यह 'कैवल्यपाद' है। याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार, योगदर्शन का आदि संस्थापक हिरण्यगर्भ था, और माधव निर्देश करता है कि 'इसके साथ पतंजलि के योगदर्शन का रचयिता होने में कोई विरोध यों नहीं होता क्योंकि स्वयं पतंजलि ने अपने ग्रंथ को 'अनुशासन' कहा है, जिसमें 'अनु' उपसर्ग का अर्थ ही बताता है कि पतंजलि का कथन एक प्रारंभिक रहस्योद्घाटन के पीछे आता है और यह उक्त दर्शन-पद्धति का अपने आप में प्रथम सूत्रीकरण नहीं है। वैय्याकरण (अर्थात् महाभाष्यकर्ता) पतंजलि का काल द्वितीय शताब्दी ई०पू० बताया गया है, यद्यपि उक्त वैय्याकरण पतंजलि और योगसूत्र के रचयिता पतंजलि दोनों एक ही व्यक्ति थे- यह अभी सिद्ध नहीं हो सका है। योगसूत्र पर व्यास का भाष्य (चौथी शताब्दी ई०) योग के सिद्धान्तों की सर्वमान्य व्याख्या है। वाचस्पति ने व्यास के भाष्य पर एक वृत्ति 'तत्ववैशारदी' (नौवीं शताब्दी) लिखी है। भोजकृत 'राजमार्तण्ड' एक अत्यधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। विज्ञानभिक्षु का 'योगवार्तिक', जो योगभाष्य पर एक प्रचलित टीका है, और 'योगसारसंग्रह'-ये दोनों पुस्तकें उपयोगी हैं। उक्त ग्रंथकर्ता कुछ विषयों पर वाचस्पति के विचारों की आलोचना करता है और योगदर्शन को उपनिषदों के दर्शन के समीप लाने का प्रयास करता है। प्रत्येक विचार-पद्धति योग की विधियों का उपयोग अपने हित के लिए करती है। कुछ परवर्ती उपनिषदें- यथा मैत्री, शाण्डिल्य, योगतत्व, ध्यानबिन्दु, हंस वराह और नादबिन्दु-योग के सिद्धांतों को बहुत महत्व देती है।[14] पतंजलि ने योग के विचारों को व्यवस्थित रूप दिया और उन्हें सांख्य की अत्वज्ञान-संधी पष्ठभूमि पर स्थित किया, जिसे उन्होंने परिवर्तन के साथ स्वीकार कर लिया।[15] प्रारंभिक ग्रंथों में योग के सिद्धांत सांख्य के विचारों के साथ ही मिलते हैं। योग ने पच्चीस तत्वों को स्वीकार कर लिया और उनके संबंध में विवाद की कोई आवश्यकता अनुभव नहीं की। विश्व की रचना नहीं हुई और यह नित्य है। इसमें परितर्वन अवश्य होते रहते हैं। अपनी तात्तिवक अवस्था में इसे प्रकृति के नाम से पुकारा जाता है, जिसका साहचर्य गुणों के साथ है और उस रूप में यह सदा वैसा ही है। जीवात्माएं असंख्य हैं। जो जीवित प्राणियों में जीवन फूंकती है और स्वभाव से निर्मल, नित्य और निर्विकार हैं। किन्तु विश्व के साथ संबंध होने से वे परोक्ष रूप में सुखों तथा दुःखों के अनुभव करनेवाली बनती हैं और अपने सांसारिक जीवन में नाना प्रकार की शरीराकृतियों को धारण करती हैं। प्रकृति के विकास के विषय में योग का मत है कि विकास की दो समानान्तर पद्धतियां हैं जो महत् से आरंभ

करती हैं और एक पक्ष में अहंकार, मन, पांच ज्ञानेन्द्रियों तथा पांच कर्मेन्द्रियों के रूप में विकसित होती हैं, तथा दूसरे पक्ष में, पांच सूक्ष्म तन्मात्राओं द्वारा पांच महाभूतों में विकसित होती हैं। व्यास के अनुसार, महाभूत पांच सारतत्वों से निकले हैं और ग्यारह इन्द्रियां अहंकार अथवा अस्मिता के साथ छः अवशेष कहाती हैं और उनकी उत्पत्ति महत् से हुई है। विज्ञानभिक्षु का विचार है कि व्यास ने केवल बुद्धि के परिवर्तनों को दो विभागों में वर्णित यिका है, किन्तु उनका तात्पर्य इस प्रकार का सुझाव देने से नहीं है कि महत् से तन्मात्राओं की उत्पत्ति अहंकार पर आश्रित नहीं है। सांख्य में, अहंकार सात्विक रूप में इन्द्रियों को जन्म देता है और तमोरूप में तन्मात्राओं को जन्म देता है और ये दो दोनों ही महत् में अवरूद्ध होता है। इस प्रकार सांख्य और योग का विकास विषयक यह भेद कुछ अधिक गंभीर नहीं है। हम देखते हैं कि योग सांख्य प्रतिपादित तीन आभ्यन्तर इन्द्रियों को 'चित्त्' नाम देता है। यह अहंकार और मन की बुद्धि से पृथक् नहीं समझता। इन्द्रियों को भी यह स्वरूप में भौतिक ही मानता है और इसलिए सूक्ष्म शरीर मानने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।

योगदर्शन अनुभव करता है कि हमारे शरीर का भी उतना ही महत्त्व है जितना कि मन का है। आसनों से मन की एकाग्रता में सहायता मिलती है। दौड़ते समय अथवा निद्रितावस्था में हम किसी वस्तु पर ध्यान स्थिर नहीं कर सकते। ध्यान में बैठने से पूर्व हमें अपने को सुविधाजनक स्थिति (आसन) में स्थित करना चाहिए। पतंजलि केवल यही कहते हैं कि आसन दृढ़, सुखा और सरल होना चाहिए। टीकाकारों ने भिन्न-भिन्न प्रकार के आसनों के विष्वरण पीछे से बहुत विस्तार से दिए हैं। जब भारतीय संस्कृति के एक आधुनिक समालोचक ने अपने पाठकों को विश्वास दिलाया कि भारतीय दार्शनिकों का विचार है कि आलथी-पालथी मार कर बैठना और नाभि में ध्यान लगाना विश्व की गहराई को समझने का सबसे उत्तम मार्ग है, तो उसके ध्यान में लगाना विश्व की गहराई को समझने का सबसे उत्तम मार्ग है, तो उसके ध्यान में योग के आसनों में से ही कोई एक रहा होगा।[16]

प्राणायाम पर पर्याप्त बल दिया गया है, यद्यपि पतंजलि ने इसे एक ऐच्छिक साधन के रूप में ही रखा है। मन की अविक्षुब्धता या तो धार्मिक कार्यों के सम्पादन से या प्राणायाम से प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार जिन व्यक्तियों को इसमें श्रद्धा है, उनके लिए छूट दी गई है। प्राणायाम का प्रयोग मन पर प्रभाव स्थित रखने के लिए होता है ऐसा माना गया है, और हठयोग में इसका महत्वपूर्ण भाग है। वहां इसकी अत्यंत प्रतिष्ठा इसलिए कि इसमें अलौकिक शक्तियों को उत्पन्न करने की अपूर्व क्षमता है। श्वास-प्रवास-संबंधी व्यायाम को आधुनिक समय में भी स्वास्थ्य के लिए बहुत उपकारी समझा जाता है। श्वास में एकसमानता कभी-कभी सम्मोहन की प्राप्ति का साधन बन जाती है। शरीर से दुर्गम पुरूष जब इस प्रकार के प्राणायाम का अभ्यास करने लगते हैं तो अत्यंत भय रहता है यही कारण है कि योगविद्या को इतना अधिक गुप्त रखा गया है।[17]

पतंजलि ने ईश्वर भक्ति को योग के सहायकों में अन्यतम माना है। ईश्वर केवल ध्यान का ही विषय नहीं, बल्कि बाधाओं को दूर करके लक्ष्य प्राप्ति में सहायता करनेवाला भी माना गया है। किन्तु ईश्वरवाद पतंजलि के सम्प्रदाय का अन्तरंग भाग नहीं है। पतंजलि के क्रियात्मक प्रयोजन एक शरीधारी ईश्वर से पूरे हो जाते हैं और वह ईश्वरवाद की कल्पनात्मक रूचियों से अधिक वास्ता नहीं रखता। व्यास ने एक ऐसा हेतु प्रस्तुत किया है जो हमें शास्त्रीय तात्त्विक हेतु का स्मरण कराता है। ईश्वर पूर्ण स्वभाव वाला (प्रकृष्टसत्व) है। ''उसकी प्रकृष्टता उसके तुल्य अथवा उससे उत्कृष्ट दूसरे किसी के न होने में है। प्रथम तो, कोई अन्य प्रकृष्टता इससे बढ़ नहीं सकती, क्योंकि जो कोई इससे अधिक प्रकृष्टता का दावा करेगा उसे उतनी प्रकृष्टता अपनी सिद्ध करनी होगी। इसलिए जिसमें कोई प्रकृष्टता की इस प्रकार की पराकाष्ठा पाई जायेगी वही ईश्वर है।'' फिर, उसे समान प्रकृष्टता भी किसी अन्य मे नहीं है। ''क्योंकि जब एक ही वस्तु की इच्छासमान श्रेणी के दो व्यक्ति करते हैं, जिनमें से एक तो कहे कि 'यह नई होनी चाहिए' और दूसरा कहे कि 'यह पुरानी होनी चाहिए' तो यदि एक की विजय होती है तो दूसरी को अपनी इच्छा में असफलता मिलती है और वह हीनतर हो जाता है और दो समान श्रेणी के व्यक्ति उसी इच्छित वस्तु को एक साथ प्राप्त भी नहीं कर सकते, क्योंकि इस प्रकार की प्राप्ति परस्पर-विरोधी होगी। इसलिए हमारा की प्राप्ति परस्पर-विरोधी होगी। इसलिए हमारा मत है कि सिज किसी में ऐसी प्रकृष्टता है जिसके न तो कोई बराबर है और न कोई उससे अधिक है, वही ईश्वर है।'' पतंजलि ईश्वर की सर्वज्ञता को निरंतरता के विधान द्वारा सिद्ध करते हैं, क्योंकि निरंतरता की ऊपर कहीं-न-कहीं सीमा आवश्यक है। जहां महत्व है और महत्तर है, वहां महत्तम भी अवश्य है।[18] जिस किसी में भी उत्कृष्टता की श्रणियां हैं, वह उच्चतम सीमा तक अवश्य पहुंच सकता है। सर्वज्ञता में उत्कृष्टता की श्रेणियां हैं। यह शनैः शनैः अनुपात में बढ़ते-बढ़ते उस सोपान तक पहुंचाती हैं जहां भौतिक सामग्री (तमोगुण), जिसने सारतत्त्व (सत्त्व) को ढ़कर हुआ है, दूर हो जाती है। और जब सर्वज्ञता का अंकुर अपनी पूर्णता की ऊँचाई पर पहुंच जाता है तो हम सर्वज्ञ ईश्वर को पाते हैं। ''उसमें सर्वज्ञता का अंकुर पूर्णता तक पहुंचा हुआ है।'' जड़ प्रकृति की उद्देश्यहीन प्रवृत्ति इस विश्व में, जहां मनुष्य अपने कर्मो के अनुसार कष्ट भोगते हैं, व्यवस्था तथासामंजस्य नहीं ला सकती। ईश्वर प्रकृति के विकास का मार्गदर्शक है। वह सदा इसलिए लिए तत्पर रहता है कि प्रकृति का विकास पुरुषों के विकास का मार्गदर्शक है। वह सदा इसके लिए तत्पर रहता है कि प्रकृति का विकास पुरुषों के प्रयोजनों को सिद्ध करने वाला हो। किन्तु ईश्वर जगत् का स्रष्टा नहीं है, क्योंकि ऐसे जगत् की सृष्टि जो दुःखों से भरपूर है, किसी ऐसी सत्ता के द्वारा नहीं हो सकती थी जो अनन्त करुणा का आगार हो। श्रुति ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने का यत्न करती है। किन्तु इसके द्वारा दियाग या प्रमाण चक्रक दोष से पूर्ण है, क्योंकि वेदों का प्रामाण्य स्वयं इस आधार पर है कि उन्हें ईश्वर ने बनाया है। ये प्रामाणिक कहे जाते हैं, क्योंकि उनकी शिक्षाएं तथ्यों के अनुकूल हैं। सांख्य वेदों की प्रामाणिकता को मानता तो है, किन्तु उसके औचित्य का समर्थन नहीं करता। योग ईश्वर को वेदों के प्रादुर्भाव का आदिस्रोत मानने में कुछ-न-कुछ प्रमाण उपस्थित करता है। ईश्वर के चिंतन से लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है। विज्ञानभिक्षु का कहना है - ''सब प्रकार के चैतन्य युक्त ध्यान में परमेश्वर का ध्यान सबसे ऊँचा है।''

सन्दर्भ

1. भारतीय दर्शन, खण्ड 1, पृ॰ 434-35.
2. भगवद्गीता, 3 : 3.
3. योगसूत्र, 1 : 11.

4. भगवद्गीता, 9 : 5. प्रमेयरत्नावलि, पृ॰ 14 भी देखिए.
5. छान्दोग्य उपनिषद्, 3:17, 4,
6. वृहदारण्यक, 1: 2, 6, 3 : 8, 10,
7. तैत्तिरीय, 1, 9, 1, 3 : 2, 1, 3 : 3, 1,
8. शतपथ ब्राह्मण
9. योगसूत्र, 1 : 17, भारतीय दर्शन, खंड 1, पृ॰ 346-347.
10. मंझिमनिकाय, 1 : 164.
11. हॉपकिंस कृत 'योग टैक्नीक इन दि ग्रेड एपिक' जर्नल ऑफ दि अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी, 22.
12. पुरुषकर्मादिनिमित्तो भूतसर्ग, कर्महितवो दोषा, प्रवृत्तिश्च स्वगुणविशिष्टाश्चेतना असदुत्पद्यत उत्पन्न निरूध्यत इति योगानाम्, न्यायभाष्य, 1:1, 29.
13. योगदर्शन पर लिखे अन्य ग्रंथों में, जैसा कि नागेश भट्ट, नारायण भिक्षु और महादेव के ग्रंथों में, अपनी पूर्वधारणाओं के अनुरूप, पतंजलि के विचारों को परिवर्तित किया गया है.
14. योगवार्तिक, 1:45.
15. वेदान्त में चित्त का प्रयोग बुद्धि के पर्यायवाची रूप में इसके परिवर्तनों के लिए हुआ है।
16. वाचस्पति उक्त तीन श्रवण, मनन और निदिध्यासन के मध्य जो अनुकूलता है उसका उल्लेख करता है.
17. योगभाष्य, 1:14.
18. योगसूत्र 1:7.

ग्रामीण दलित महिलाओं के सशक्तिकरण में कल्याणकारी योजनाओं का योगदान

रबिन्द्र कुमार

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सारांश :

महिलाएँ भारत की जनसंख्या के आधे भाग का गठन करती हैं, उन्हें लंबे समय तक सामाजिक रूप से बहिष्कृत और अपमानित किया गया। महिलाओं को विशेषकृत और अपमानित किया गया। महिलाओं को विशेषकर दलित महिलाओं को एक कमजोर जीवन जीने के लिए मजबूर किया जाता है, चाहे वह आर्थिक, शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य सभी क्षेत्र हों जो बुनियादी जरूरतों के अंतर्गत आते हैं। कमजोर महिलाओं का प्रभाव और हाशिएकरण लंबे समय से बेरोक टोक जारी है। स्वतंत्रता के बाद सरकार ने कमजोर, पिछड़ी एवं दलित महिलाओं की समस्याओं को देखते हुए सकारात्मक उपायों ने अनेक आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सशक्तिकरण के लिए लगातार नीतियां विकसित की है। हालांकि इन नीतियों से ऐसी महिलाओं में कुछ सकारात्मक बदलाव आए हैं लेकिन परिवर्तन की प्रक्रिया बहुत धीमी है। यह योजनाएँ शेष भारतीय समाज के बीच अन्तराल को कम करने के लिए अप्रयाप्त है। इस संदर्भ में, कागज पर शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, गरीबी तथा असमानता को सम्बोधन किया गया है, लेकिन इसे ठीक ढंग से लागू नहीं करने से वंचित महिलाएं इस प्रकार की योजनाओं से लाभान्वित नहीं हो सकी है। इसलिए सामाजिक भेदभाव को खत्म करने के लिए सर्वोत्तम उपायों और उपायों की योजना बनाने में विभिन्न नीतियों और परिप्रेक्ष को समझना है और जीवन के हर क्षेत्र में वंचित महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करना है। यह उन चुनौतियों की भी पहचान करता है जो समकालीन समय में उनके मुख्य मुक्ति और सशक्तिकरण का सामना करते हैं।

मुख्य शब्द : वंचित महिला, सशक्तिकरण, भेदभाव

परिचय :

कहा जाता है कि जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ नारियों की पूजा अथवा सम्मान नहीं होता वहाँ सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती है। इस बारे में आध्यात्मिक सिद्धान्त की दृष्टि से कुछ अलग सोच के साथ विवेचन किया जा सकता है, किन्तु सामाजिक परिप्रेक्ष्य में जब तक नारी को उसके कार्यों का श्रेय नहीं मिलेगा, जब तक महिलाओं को सामाजिक सुरक्षा प्रदान नहीं की जाती जब तक नारी शिक्षा का मार्ग अवरूद्ध रहेगा और जबतक नारी आर्थिक रूप से स्वावलम्बी नहीं होगी, तब तक कोई भी राष्ट्र या राज्य विकास के मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकता है।

भारत में सदा से ही समाज में महिला की भूमिका बहुविध रूप में पाई गई है। कहीं इसे देवी के रूप में पूज्या दिखाया गया तो कहीं देवदासी के रूप में भोग्या थी। यदि प्राचीन भारतीय समाज के देखा जाए तो महिला के स्वतंत्र रूप के कम ही उदाहरण मिलते हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी को 'वस्तु' के रूप में प्रदर्शित किया गया है। लेकिन प्राचीन संस्कृति में इसके विपरीत नारी को बराबरी को भी दर्जा दिया गया है। शिव ने अर्द्धनारीश्वर का भी स्वरूप ग्रहण किया तो राम ने परित्याग करने के बाद भी सर्वथा सीता के अस्तित्व का स्वीकार किया, यहाँ तक कि यज्ञ में पत्नी के स्थान पर सीता की स्वर्ण प्रतिमा का भी अपने बराबर रखा। मनु ने राज्य का परित्याग करते समय शतरूपा को अपने साथ रखा।

स्वतंत्रता के बाद महिला विशेषकर ग्रामीण दलित महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए अनेक कार्यक्रमों को आरंभ किया क्योंकि महिला कल्याणकारी योजनाओं का संबंध प्रत्यक्ष रूप से महिला सशक्तिकरण से जुड़ा हुआ है। महिला कल्याण योजनाओं की अवधारणा व्यापक है और उसे एक विस्तृत परिप्रेक्ष में देखा जा सकता है। इसे महिला के जन्म से लेकर उसके भोजन, शिक्षा, स्वास्थ्य, विवाह और आवास संबंधी विभिन्न सुविधाओं और गतिविधियों को शामिल कर देखा जा सकता है। भारत में आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि महिलाओं के सामने अनेक गंभीर चुनौतियां हैं, जिससे उनके विकास की गति बहुत अधिक धीमी है। आज भी भारत में 'बालिका बधू' का संख्या बहुत अधिक है। ताजा आंकड़े के अनुसार हमारे देष्ठा में प्रतिशत लड़कियों को 18 साल से पहले दुल्हन बनना पड़ता है। दूसरे शब्दों में 100 में से करीब लड़कियों का 18 वर्ज़ की आयु से पहले विवाह कर दिया जाता है। यही नहीं, 100 में से 9.1 लड़कियों की शादी 12 वर्ष की उम्र तक कर दी जाती है। नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वेक्षण-4 के अनुसार भारत बालिका बधुओं के साथ बालिकाओं का भी देश है। व्यस्क होने से पहले 100 में से 40 लड़कियाँ माँ बन जाती है। 0.6 लड़कियाँ तो 12 साल से पहले ही बच्चे जनना प्रारंभ कर देनी है। इसमें कोई संदेह नहीं किया जा सकता है कि यह स्थिति बहुत गंभीर है। डॉक्टरों के अनुसार लड़की का इस आयु में माँ बनना माँ और बच्चे के स्वास्थ्य के लिए बहुत अधिक

घातक है। इस आयु में लड़कियाँ अपने बच्चों की देख भाल ठीक ढंग से नहीं कर पाती है। इस आयु में महिलाओं के सशक्तिकरण की प्रक्रिया कठिन हो जाती है। वह शिक्षा प्राप्त करने से वंचित हो जाती है, जिससे वे आत्मनिर्भर नहीं हो पाती है। विकास कार्यक्रम: स्वतंत्रता के बाद देश में महिलाओं के विकास एवं सशक्तिकरण के लिए विभिन्न योजनाओं को प्रारंभ किया है, जिसे निम्न लिखित रूप में देखा जा सकता है-

(1) महिला शिक्षा हेतु सघन पाठ्यक्रम : केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा इस योजना को शुरू किया है, जिसका उद्देश्य उन महिलाओं की शिक्षित करना है जो विभिन्न सामाजिक तथा आर्थिक कारणों की वजह से अपनी औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ रही है। इस योजना के द्वारा महिलाओं को शिक्षा देने के साथ-साथ उन्हें रोजगार भी देना है। इस कार्यक्रम के तहत स्वैच्छिक संगठनों को प्राथमिक / माध्यमिक और उच्च स्कूली स्तर की परीक्षाओं के पाठ्यक्रम संचालित करने हेतु अनुदान प्रदान करने हेतु बजट में प्रावधान किया जाता है।

(2) कामकाजी महिलाओं हेतु छात्रावास की सुविधा - इस योजना के तहत केवल कामकाजी महिलाओं तथा स्कूल पश्चात व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का अध्ययन कर रही बालिका विद्यार्थियों हेतु सुरक्षित एवं वांक्षणीय व्यवस्था को सुनिश्चित करना है। यह योजना समाज कल्याण के क्षेत्र में कार्यरत गैर-सरकारी संगठनों, सार्वजनिक क्षेत्र की उपक्रमों तथा अन्य एजेंसियों और महिला विकास निगमों, स्थानीय निकायों विश्व विद्यालयों आदि के द्वारा संचालित किये जाते हैं।

(3) प्रशिक्षण तथा रोजगार कार्यक्रम को सहायता - दलित महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में प्रशिक्षण कार्यक्रम को आरम्भ किया है। इन क्षेत्रों में कृषि, पशुपालन, डेयरी कार्य, हथकरघा, हस्तशिल्प, खादी एवं ग्रामोद्योग, रेशमकीट पालन, सामाजिक वानिकी प्रमुख है।

(4) केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड - सामाजिक कल्याण बोर्ड देश में सामाजिक विकास के माहौल के सृजन हेतु सरकारी तथा स्वैच्छिक क्षेत्र के मध्य पारस्परिक सम्पर्क को बढ़ावा देता है। बोर्ड ने विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्र की दलित महिलाओं तथा बच्चों के कल्याण तथा विकास हेतु विभिन्न कार्यक्रम शुरू किए है। इनमें महिला विशेषकर दलित महिला तथा बालिकाओं के लिए सघन पाठ्यक्रम, जागरूकता सृजन कार्यक्रम, व्यावसायिक प्रशिक्षण, परिवार परामर्शदात्री सेवा केन्द्र, महिला मंडल तथा अल्प आवास गृहों की स्थापना करना शामिल है। इन योजनाओं को राज्य समाज कल्याण परामर्शदात्री बोर्ड के सहयोग से स्वैच्छिक संगठनों द्वारा कार्यान्वित किया जा रहा है।

(5) अल्प आवास गृह -इसमें उन महिलाओं तथा बालिकाओं की रक्षा तथा पुनर्वास व्यवस्था शामिल है जो पारिवारिक समस्याओं, मानसिक तनाव, समाज बहिष्कृत, शोषण अथवा अन्य कारणों से सामाजिक तथा नैतिक संकट का सामना कर रही है। इस योजना के अंतर्गत चिकित्सा देख भाल, शिक्षा, व्यावसायिक तथा मनोरंजन गतिविधियों जैसी सेवाओं और समायोजन संबंधी सामाजिक सुविधाओं को बढ़ावा देना है। इस योजना के द्वारा ग्रामीण दलित महिलाओं को अधिक सहायता दी जाती है।

(6) जागरूकता सृजन कार्यक्रम -इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं के मध्य अपनी समस्याओं का पता लगाने हेतु संगठित गतिविधियों की भावना को पैदा करना और मार्ग में आने वाली चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए कार्ययोजना तैयार करना है। इस योजना का कार्यान्वयन केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड के माध्यम से किया जाता है।

(7) राष्ट्रीय महिला आयोग - इस आयोग को महिलाओं के अधिकारों तथा उनके हितों के सुरक्षापायों के लिए अधिदेश प्राप्त है और महिलाओं से सम्बद्ध सभी केन्द्रीय तथा राज्य स्तर के कानूनों की समीक्षा भी आयोग द्वारा की जाती है। यह महिलाओं पर होने वाली घरेलू समस्याओं की सुनवाई करता है। यह एक सांविधिक निकाय है जिसका वित्तपोषण पूर्णत: केन्द्र सरकार द्वारा किया जाता है।

(8) राष्ट्रीय महिला कोश- यह कोश राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित सूक्ष्म ऋण संस्थान है, जिसकी स्थापना 1993 में की गई थी। यह देश की गरीब महिलाओं को अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए आय सृजन गतिविधियों को बढ़ावा देता है और गैर-सरकारी संगठनों तथा अन्य ऐजेंसियों के द्वारा अर्द्ध औचपारिक तरीके से ऋण सुविधाएँ प्रदान करता है। अब इसकी मूल राशि को बढ़ा दिया गया है।

(9) स्वयंसिद्धा - यह केन्द्र के महिला तथा बाल-विकास मंत्रालय की एक एकीकृत योजना है जो स्वंसहायता समूहों के निर्माण, जागरूकता सृजन, आर्थिक सशक्तिकरण और विभिन्न योजनाओं के अभिसरण के माध्यम से महिलाओं के सर्वोन्मुखी विकास पर जोर देती है। 11वीं पंचवर्षीय योजना में स्वंयसिद्धा चरण द्वितीय सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीय कार्यक्रम के बतौर चलाया गया। इसमें स्वशक्ति कार्यक्रम को भी शामिल किया गया है।

(10) स्वाधार योजना - वर्ष 2001-02 में प्रारंभ इस योजना में कठिन परिस्थितियों में रह रही महिलाओं की आवश्यकताओं के समाधान हेतु परियोजना आधारित दृष्टिकोण पर बल दिया गया है। इस योजना का उद्देश्य विधवाओं, तस्करी की शिकार महिलाओं, प्राकृतिक, आपदाओं, मानसिक तौर पर अस्वस्थ तथा अकिंचन महिलाओं का पूर्णतया पुनर्वास सुनिश्चित करना है। इस योजना के अंतर्गत महिलाओं को खाद्यान्न तथा आवास, परामर्शदात्री सेवाएँ, चिकित्सा सुविधाएँ तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करना है।

(11) जननी सुरक्षा योजना - वर्ष 2005 से प्रारंभ यह योजना पूर्णत: केन्द्र प्रायोजित योजना है। यह योजना गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों के महिलाओं के लिए है। इसका पहले नाम राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना था। यह राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन का घटक है। इसका उद्देश्य मातृ तथा शिशु मृत्यु दर में कमी लाना है। 19 वर्ष से अधिक आयु की महिलाओं के लिए यह योजना प्रभावी है।

(12) गोद भराई योजना - गर्भवती महिला की पूरी देश भाल एवं सुरक्षित प्रसव के लिए आंगन बाड़ी केन्द्र पर पंजीयन कराकर गोद भराई योजना का लाभ दिया जाता हैं माह में प्रति मंगलवार को गांव-शहर की आंगनबाड़ी में गर्भवती महिला की गोद भराई होती है और उसे उपहार मातृ शिशु रक्षा कार्ड, आयरन की गोलियां, पोषण स्वास्थ्य सलाह पर गर्भवती महिला के लिये चलाई जा रही योजनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

(13) समस्याग्रस्त महिलाओं की सहायता - कभी-कभी घरेलू सामाजिक या आर्थिक परिस्थिति के कारण महिलाएं संकट में आ जाती हैं और उन्हें तत्काल सहायता की जरूरत होती है। ऐसी महिलाओं के लिए राज्य सरकार स्वयं और स्वैच्छिक संस्थाओं के सहयोग से कुछ संस्थाएं चला रही है। सरकारी संस्थाओं में प्रमुख नारी निकेतन संस्थाएं हैं जो राज्य के कई जिलों में चलाई जा रही है। यहां कोई भी संकटग्रस्त या निराश्रित महिला आकर रह सकती है। जहां उसकी सुरक्षा, खान-पान, इलाज, प्रशिक्षण और पुनर्वास की नि:शुल्क व्यवस्था है। इन महिलाओं को प्रशिक्षण देकर आत्म निर्भर बनाया जाता है।

(14) महिला डेयरी परियोजना - इस योजना को महिला दुग्ध सहकारी समितियों का गठन, डेयरी व्यवसाय में महिला भागीदारी के लिए प्रोत्साहन, दुध संकलन-संसाधन और विपणन का प्रभावी संचालन तथा दूध उत्पादकों को उचित मूल्य के भुगतान के लिए पशुपालन विभाग द्वारा चलाया जा रहा है। इसका लाभ महिला सहकारी दूध समिति की ऐसी महिलाएं जो पशुपालन एवं डेरी व्यवसाय में रूचि रखती हो, ले सकती है। इस प्रकार की योजना देश के अन्य प्रान्तों के अतिरिक्त बिहार में भी चलाई जा रही है।

उपरोक्त योजनाएं महिला के विकास को ध्यान में रखकर चलाई जा रही है ताकि इससे असहाय कमजोर वर्ग की महिलाएं भी अपना विकास कर सके तथा पिछड़ी हुई अवस्था से उभर सके। तथा समाज में तेजी से बढ़ रहे अपराध, भ्रष्टाचार, आराजकता को रोकने के लिए इन महिलाओं की अहम भूमिका हो सकती है।

निष्कर्ष : प्राचीन काल से ही महिलाएं विभेदीकरण का सामना कर रही है। आर्थिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से स्वावलम्बन नहीं होने के कारण उनकी स्थिति निम्न रही है। वे उत्पीड़न और घरेलु हिंसा की शिकार रही है। स्वतंत्रता के बाद भी इनकी स्थिति में आशा के अनुरूप सुधार नहीं हो सका है। अभी भी वे अनेक समस्याओं से ग्रसित है। गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाली अधिकांश ग्रामीण महिलाएं ही है जो कि प्राय: अत्यधिक गरीबी की स्थिति में जीवन-यापन करती है। उन्हें कठोर घरेलू परिस्थितियों व सामाजिक भेदभाव का सामना करना पड़ता है। फलत: इस वर्ग में ग्रामीण महिलाओं की आवश्यकताओं की पूति एवं समस्याओं के निदान के लिए विशेष रूप से आर्थिक नीतियाँ तथा गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं तथा महिलाओं के लिए विशेष लक्ष्यों वाले महिला उन्मुख कार्यक्रमों को और अधिक कारगर ढंग से कार्यान्वित किया जा रहा है। निर्धन ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक व सामाजिक विकास के साथ-साथ समर्थन सेवाएं प्रदान करके संगठित करने का कदम उठाए जा रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. आलम, तफसीर (2008) पॉलिटिकल इम्पावरमेन्ट ऑफ ओमेन, इण्डियन इम्पावरमेन्ट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेडशन, नई दिल्ली
2. भारद्वाज, प्रेम आर. (2009) जेंडर डिस्क्रीमिनेशन : दि पॉलिटिक्स ऑफ ओमेन इम्पावरमेन्ट, नई दिल्ली
3. संगीता, एम. (2009) जेंडर सोशल स्ट्रक्चर एण्ड इम्पावरमेन्ट : स्टेटस रिपोर्ट। ऑफ ओमेन इन इण्डिया, रावत पब्लिकेशन जयपुर
4. दत्ता प्रभात (1998) ''मेजर इशु इन दि डेवलपमेंट डिबेट : लेसन्स इन इम्पारमेन्ट फ्राम इण्डिया'', कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली
5. गाँधी-अंजली (2006), ओमेन्स वर्क, हेल्थ एण्ड इम्पावरमेन्ट, आभार बुक्स, दिल्ली
6. गिरी, वी॰, मोहिनी (1998) इमेनिसिपेशन एण्ड इम्पावरमेन्ट ऑफ ओमेन, ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली
7. गोयल, अरुणा (2009), ओमेन इम्पावरमेन्ट : माइथ और रियलिटि, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली
8. जेठमलानी, रानी (1995), इम्पावरमेन्ट, लॉ एण्ड डौरी डेथ्स, हर्न आनन्द पब्लिकेशन, नई दिल्ली
9. ललिता, एन॰ (1997), रूरल ओमेन इम्पावरमेन्ट एण्ड डेवलपमेन्ट बैकिंग, कनिष्का प्रकाशन, नई दिल्ली
10. मल्होत्रा, एम॰ (2004), इम्पावरमेन्ट ऑफ ओमेन : ओमेन इन रूरल डेवलपमेन्ट, ईश बुक्स, नई दिल्ली

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य विद्यार्थियों के मानसिक योग्यता का तुलनात्मक अध्ययन

राकेश कुमार

शोधछात्र, शिक्षक शिक्षा विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), कोटवाँ-जमुनीपुर-दुबावल, इलाहाबाद

सारांश

शीर्षक ''माध्यमिक स्तर पर विद्यालय त्याज्यता का विद्यार्थियों के अभिभावक-सम्बन्ध पर प्रभाव का अध्ययन'' है। अध्ययन को देखते हुए वर्णनात्मक कार्योत्तर विधि को अध्ययन के लिये उर्पयुक्त विधि का प्रयोग किया गया है। जनसंख्या के रूप में उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद इलाहाबाद द्वारा संचालित प्रयागराज जनपद में स्थित माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत कक्षा 10 के समस्त विद्यार्थियों को माना गया है। माध्यमिक विद्यालयों से कुल 400 विद्यार्थियों (200 अध्ययनरत एवं 200 त्याज्य) एवं उनके अभिभावकों का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन विधि से किया गया है। प्रस्तुत परीक्षण का निर्माण प्रो0 मोहनचन्द्र जोशी द्वारा बुद्धि मापन के लिए किया गया गया था। शोधार्थी ने दो समूहो के मध्य तुलना करने के लिए टी टेस्ट का प्रयोग किया है। परिणाम विद्यालय त्याज विद्यार्थियों की मानसिक योग्यता अध्ययनरत् विद्यार्थियों की अपेक्षा कम पायी गयी।

की-वर्ड- अध्ययनरत् एवं त्याज्य विद्यार्थी, मानसिक योग्यता, तुलना

भूमिका

शिक्षा जीवन की बुनियाद है और बच्चे उस नींव पर बनने वाली इमारत। आज का बच्चे कल का राष्ट्र निर्माता है। "स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का वास होता है।" इस अभीष्ठ लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये विश्व स्तर पर आज इसमें सरकारी एवं गैर सरकारी कई संगठन कार्य कर रहे हैं। इसके बावजूद भी किसी राष्ट्र के लिए सबसे अधिक समस्या का विषय यह है कि अधिकांशत: बच्चे शिक्षा अवधि पूरी करने के पहले ही विद्यालय छोड़कर चले जाते है, जिसे विद्यालय त्याज्यता कहते है। कैम्ब्रिज ऐडवान्स लर्नर्स डिक्शनरी एवं ट्रीजर्स के अनुसार, एक विद्यार्थी जब अपनी कक्षा की पढ़ाई पूरी किये बिना ही विद्यालय जाना बन्द कर देता है, तो उसे त्याज्य बच्चे एवं यह प्रक्रिया त्याज्यता कहलाती है।" वीकीपीडिया इनसाइक्लोपीडिया के अनुसार, "त्याज्यता वह प्रक्रिया है, जिसमें बच्चे या तो किसी व्यावहारिक कारण या आवश्यकता या कार्य के कारण विद्यालय जाना बन्द कर दे।" जहाँ विश्व के लगभग कई राष्ट्र इस चुनौती से जूझ रहे हैं। वहाँ भारत के सामने भी विद्यालय त्याज्यता सम्बन्धी समस्या एक चुनौती है। भारत में विद्यालय त्याज्यता के कई कारण हैं- जैसे निर्धनता, बालश्रम, निर्जीव शैक्षिक पद्धति, शैक्षिक सुविधाओं का अभाव, बढ़ती हुई जनसंख्या एवं अभिभावकीय निरक्षरता आदि।

आरम्भ में बच्चे पहले सामाजिक सम्बन्ध घर में बनते हैं, इसलिए घर के लोगों का यह निर्धारित करने में महत्वपूर्ण योगदान होता है कि सामाजिक परिस्थितियों में बच्चे का रुख और व्यवहार क्या होगा। बच्चे भविष्य में जिन समूहों में प्रवेश करेगा, उनमें घुलने-मिलने की उत्सुकता और अपने को उनका स्वीकृत अंग समझने की भावना उसे परिवार से मिलनी चाहिए। यदि वह परिवार में स्वीकृत है तो यह भावना तब भी उसे अन्दर पैदा हो जाएगी जब वह किसी अन्य समूह में प्रवेश करेगा। जन्म लेने के बाद से ही प्राणी अनेक परिस्थितियों का सामना करता हुआ विकासोन्मुख समाज में आगे बढ़ता है। इस प्रक्रिया में वह अनुभव ग्रहण करता है, अनुभव ग्रहण करने की इस प्रक्रिया में उसकी शिक्षा निहित होती है। वास्तव में मनुष्य के जीवन में शिक्षा का वहीं स्थान होता है जो पेड़ पौधों के लिए कृषि का होता है। विद्याविहीन मनुष्य पशु के समान है। शिक्षा ही वह माध्यम है, जिसके द्वारा मनुष्य मनुष्यत्व को प्राप्त करता है। किसी विद्वान ने ठीक ही कहा है कि "जिस प्रकार पत्थर का एक टुकड़ा शिल्पकार का स्पर्श पाकर चमक उठता है, ठीक उसी प्रकार बालक का व्यक्तित्व भी शिक्षा का सानिध्य पाकर चमक उठता है।"

मानसिक विकास का तात्पर्य मानसिक शक्तियों में वृद्धि से है। इसके अन्तर्गत संवेदनशीलता, प्रत्यक्षीकरण, प्रत्यय निर्माण, अवलोकन, ध्यान, स्मृति, कल्पना, चिन्तन तर्क, निर्णय, बुद्धि, भाषा, अधिगम आदि शक्तियाँ आती हैं। जन्म के समय शिशु का मस्तिष्क अपरिपक्व होता है। उसकी आयु में वृद्धि होती है, के साथ ही उसके मस्तिष्क का विकास होता जाता है। परिपक्वता तथा अधिगम के फलस्वरूप बच्चे का मानसिक विकास होता है। मानसिक विकास अर्थात् समझने की शक्ति, स्मरण शक्ति, कल्पना करने की शक्ति, तर्क करने की शक्ति तथा बुद्धि आदि के विकास को शैक्षिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्वीकार किया जाता है। यद्यपि विकास की प्रक्रिया गर्भाधान के क्षण से प्रारम्भ हो जाती है तथा मृत्युपर्यन्त चलती है। जीन प्याजे (1970) के अनुसार, "जब 18 माह का एक बच्चा तीसरे वर्ष में पहुंचता है तो इस अवस्था को विकास का ज्ञानेन्द्रिय चरण कहते हैं। यह वह अवस्था है, जहां पर वस्तुओं को देखने, सोचने तथा समझने इत्यादि का प्रमाण खिलौनों व अन्य सरल उपकरणों के प्रयोग द्वारा समझने का प्रयास करता है।

माध्यमिक स्तर पर विद्यालय त्याज्यता का विद्यार्थियों की मानसिक योग्यता तथा उनके अभिभावक सम्बन्धों पर पड़ने वाले प्रभाव के अध्ययन को जानने की जिज्ञासा ने द्वारा किए गये सर्वेक्षणों में यह पता चला है कि अब तक केवल प्राथमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा पर विद्वानों व शोधार्थियों द्वारा शोध की

विषयवस्तु के रूप में महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किए गये, किन्तु अधिकांश शोधकर्ताओं द्वारा यह जानने का कमतर प्रयास किया गया। माध्यमिक स्तर पर शिक्षा ग्रहण करने के लिये बच्चे विद्यालय जाते हैं जिससे बच्चे का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास होता है। इसी विकास के फलस्वरूप बच्चे समाज में अपना स्थान स्थापित करते हैं। यदि बच्चे किसी कारणवश विद्यालय त्याग कर अन्य कार्यो में लग जाते हैं, तो उसके व्यक्तित्व के इन पहलुओं का विकास प्रभावित होता है। जिसके परिणामस्वरूप उस बच्चे का सामाजिक विकास, मानसिक विकास, संवेगात्मक विकास एवं स्वयं के व्यक्तित्व विकास पूर्ण नहीं हो पाता है। इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए इस शोध की संकल्पना की गई है।

शीर्षक

''माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य विद्यार्थियों के मानसिक योग्यता का तुलनात्मक अध्ययन''

उद्देश्य

1. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य छात्रों के मानसिक योग्यता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य छात्राओं के मानसिक योग्यता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य विद्यार्थियों के मानसिक योग्यता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना

1. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य छात्रों के मानसिक योग्यता में अन्तर होता है।
2. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य छात्राओं के मानसिक योग्यता में अन्तर होता है।
3. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य विद्यार्थियों के मानसिक योग्यता में अन्तर होता है।

शोध प्रविधि

अध्ययन को देखते हुए वर्णनात्मक कार्योत्तर विधि को अध्ययन के लिये उर्पयुक्त विधि का प्रयोग किया गया है। जनसंख्या के रूप में उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद इलाहाबाद द्वारा संचालित प्रयागराज जनपद में स्थित माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत कक्षा 10 के समस्त विद्यार्थियों को माना गया है। माध्यमिक विद्यालयों से कुल 400 विद्यार्थियों (200 अध्ययनरत एवं 200 त्याज्य) एवं उनके अभिभावकों का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन विधि से किया गया है। प्रस्तुत परीक्षण का निर्माण प्रो0 मोहनचन्द्र जोशी द्वारा बुद्धि मापन के लिए किया गया गया था। शोधार्थी ने दो समूहो के मध्य तुलना करने के लिए टी टेस्ट का प्रयोग किया है।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या

1. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्यता छात्रों की मानसिक योग्यता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

सारणी संख्या-1: माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य छात्रों की मानसिक योग्यता से सम्बन्धित मध्यमान, मानक विचलन एवं टी0 अनुपात

छात्र	*संख्या*	*मध्यमान*	*मा0 विचलन*	*मानक त्रुटि*	*टी मान*
अध्ययनरत	100	84.81	4.167	.417	13.665'
विद्यालय त्याज्य	100	76.44	4.489	.449	

*0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक

सारणी संख्या 1 के अवलोकन से यह ज्ञात है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य छात्रों की मानसिक योग्यता से सम्बन्धित टी.मान 13.665 है जो कि 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है जिससे शून्य परिकल्पना ''माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य छात्रों की मानसिक योग्यता में सार्थक अन्तर नहीं होता है।" अस्वीकृत हो जाती है और शोध परिकल्पना ''माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य छात्रों की मानसिक योग्यता में सार्थक अन्तर होता है", स्वीकृत हो जाती है अर्थात् यह कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य छात्रों की मानसिक योग्यता में सार्थक अन्तर होता है। पूर्व में हुए शोध जैसे मेज फारवंज (1990) आदि से प्रस्तुत परिणाम की पुष्टि होती है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य छात्रों की मानसिक योग्यता में सार्थक अन्तर होता है जबकि कुछ शोध जैसे रथ (1990) आदि प्रस्तुत परिणाम के विपरीत परिणाम की पुष्टि करते है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य छात्रों की मानसिक योग्यता में सार्थक अन्तर नहीं होता है।

सारणी संख्या 1 में मध्यमानों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि ''अध्ययनरत छात्रों की मानसिक योग्यता से सम्बन्धित मध्यमान 84.81 है तथा माध्यमिक स्तर के विद्यालय त्याज्य छात्रों की मानसिक योग्यता से सम्बन्धित मध्यमान 76.44 है, इससे यह स्पष्ट होता है कि अध्ययनरत छात्रों की मानसिक योग्यता विद्यालय त्याज्य छात्रों की मानसिक योग्यता से अपेक्षाकृत अधिक होती है। अत: अध्ययनरत छात्रों मे अपनी मानसिक योग्यता के प्रति अधिक जागरुकता विद्यालय त्याज्य छात्रों की अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है जिसके कई कारण हो सकते है जैसे अध्ययनरत ग्रामीण विद्यार्थियों का परिवेश, अध्ययन के प्रति रुचि, विद्यालय त्याज्य छात्राओं के परिवेश से होना।

2. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य छात्राओं की मानसिक योग्यता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

सारणी संख्या-2: माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य छात्राओं की मानसिक योग्यता से सम्बन्धित मध्यमान, मानक विचलन एवं टी0 अनुपात

छात्र	*संख्या*	*मध्यमान*	*मा0 विचलन*	*मानक त्रुटि*	*टी मान*
अध्ययनरत	100	78.87	3.558	.356	15.647'
विद्यालय त्याज्य	100	71.51	3.076	.308	

*0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक

सारणी संख्या 2 के अवलोकन से यह ज्ञात है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य छात्राओं की मानसिक योग्यता से सम्बन्धित टी. मान 15.647 है जो कि 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है जिससे शून्य परिकल्पना ''माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य छात्राओं की मानसिक योग्यता में सार्थक अन्तर नहीं होता है।" अस्वीकृत हो जाती है और शोध परिकल्पना ''माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य छात्राओं की मानसिक योग्यता में सार्थक अन्तर होता है", स्वीकृत हो जाती है अर्थात् यह कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य छात्राओं की मानसिक योग्यता में सार्थक अन्तर होता है।

सारणी संख्या 2 में मध्यमानों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि ''अध्ययनरत छात्राओं की मानसिक योग्यता से सम्बन्धित मध्यमान 78.87 है तथा माध्यमिक स्तर के विद्यालय त्याज्य छात्राओं की मानसिक योग्यता से सम्बन्धित मध्यमान 71.51 है, इससे यह स्पष्ट होता है कि अध्ययनरत छात्राओं की मानसिक योग्यता विद्यालय त्याज्य छात्राओं की मानसिक योग्यता से अपेक्षाकृत अधिक होती है। अत: अध्ययनरत छात्राओं मे अपनी मानसिक योग्यता के प्रति अधिक जागरुकता विद्यालय त्याज्य छात्राओं की अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है जिसके कई कारण हो सकते है जैसे अध्ययनरत ग्रामीण विद्यार्थियों का परिवेश, बौद्धिक परिपक्वता विद्यालय त्याज्य छात्राओं के परिवेश से होना।

3. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य विद्यार्थियों के मानसिक योग्यता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

सारणी संख्या-3: माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य विद्यार्थियों की मानसिक योग्यता से सम्बन्धित मध्यमान, मानक विचलन एवं टी0 अनुपात

छात्र	*संख्या*	*मध्यमान*	*मा0 विचलन*	*मानक त्रुटि*	*टी मान*
अध्ययनरत	200	81.84	4.879	.345	16.647'
विद्यालय त्याज्य	200	73.98	4.565	.323	

*0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक

सारणी संख्या 3 के अवलोकन से यह ज्ञात है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य विद्यार्थियों की मानसिक योग्यता से सम्बन्धित टी. मान 16.647 है जो कि 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है जिससे शून्य परिकल्पना ''माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य विद्यार्थियों की मानसिक योग्यता में सार्थक अन्तर नहीं होता है।" अस्वीकृत हो जाती है और शोध परिकल्पना ''माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य विद्यार्थियों की मानसिक योग्यता में सार्थक अन्तर होता है", स्वीकृत हो जाती है अर्थात् यह कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य विद्यार्थियों की मानसिक योग्यता में सार्थक अन्तर होता है।

सारणी संख्या 3 में मध्यमानों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि ''अध्ययनरत विद्यार्थियों की मानसिक योग्यता से सम्बन्धित मध्यमान 81.84 है तथा माध्यमिक स्तर के विद्यालय त्याज्य विद्यार्थियों की मानसिक योग्यता से सम्बन्धित मध्यमान 73.98 है, इससे यह स्पष्ट होता है कि अध्ययनरत विद्यार्थियों की मानसिक योग्यता विद्यालय त्याज्य विद्यार्थियों की मानसिक योग्यता से अपेक्षाकृत अधिक होती है। अत: अध्ययनरत विद्यार्थियों मे अपनी मानसिक योग्यता के प्रति अधिक जागरुकता विद्यालय त्याज्य विद्यार्थियों की अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है जिसके कई कारण हो सकते है जैसे अध्ययनरत ग्रामीण विद्यार्थियों का परिवेश, अध्ययन के प्रति रुचि, बौद्धिक परिपक्वता विद्यालय त्याज्य छात्राओं के परिवेश से होना।

निष्कर्ष

1. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य छात्रों की मानसिक योग्यता में सार्थक अन्तर होता है। अध्ययनरत छात्रों मे अपनी मानसिक योग्यता के प्रति अधिक जागरुकता विद्यालय त्याज्य छात्रों की अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है जिसके कई कारण हो सकते है।
2. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य छात्राओं की मानसिक योग्यता में सार्थक अन्तर होता है। अध्ययनरत छात्राओं की मानसिक योग्यता विद्यालय त्याज्य छात्राओं की मानसिक योग्यता से अपेक्षाकृत अधिक होती है।
3. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत एवं विद्यालय त्याज्य विद्यार्थियों की मानसिक योग्यता में सार्थक अन्तर होता है। अध्ययनरत विद्यार्थियों मे अपनी मानसिक योग्यता के प्रति अधिक जागरुकता विद्यालय त्याज्य विद्यार्थियों की अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है

उपरोक्त परिणामों से यह स्पष्ट होता है कि विद्यालय त्याज विद्यार्थियों की मानसिक योग्यता अध्ययनरत् विद्यार्थियों की अपेक्षा कम पायी गयी। पूर्व अध्ययनों में सिंह एवं सिंह (2018) ने अध्ययन में इंगित किया कि ''मानसिक स्वास्थ्य व्यक्ति के समग्र सन्तुलन का परिचायक है और इसे हमें व्यक्ति की ऐसी क्षमता

के रूप में देखते हैं जो उसके व्यक्तिगत, सामाजिक एवं सांस्कृतिक इच्छाओं एवं मानदण्डों को सन्तुलन स्थापित करता है। अध्ययन के निष्कर्ष में पाया कि माध्यमिक स्तर के बालकों एवं बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य की विमा भावनात्मक स्थिरता, समायोजन, स्वायतता, स्वधारणा तथा शैक्षिक उपलब्धि एक-दूसरे से भिन्न है।''

विद्यालय त्याज्य विद्यार्थियों की मानसिक योग्यता अध्ययनरत् विद्यार्थियों की अपेक्षा कम पाया जाने का कारण उनका शिक्षा में रुचि न होने के कारण हो सकता है तथा कुछ विद्यार्थियों में शिक्षा में रुचि होने के बावजूद भौगोलिक कारण, सामाजिक-आर्थिक कारण, पारिवारिक कारण, विद्यालय का दूर होना तथा वित्तीय अड़चन, रोजगार में लिप्त होना, उम्र से पहले विवाह होना, गलत व्यवहार, अपराध में लिप्त होना, माता-पिता का कम पढ़ा लिखा होना आदि कारणों के कारण उनका शिक्षा त्याज्य कर देते हैं एवं उनका शिक्षा से दूर होने के कारण उनकी मानसिक योग्यता में कमी आने लगती है जबकि अध्ययनरत् विद्यार्थियों की शिक्षा चलती रहती है एवं अपने शिक्षा के प्रति लगाव रखने के कारण वे मानसिक रूप से योग्य होते हैं। पूर्व अध्ययन में पालीवाल एवं पालीवाल (2018) ने अध्ययन के निष्कर्ष में इंगित किया कि वर्तमान में भौतिकवाद की तरफ अग्रसर होने वाले किशोर बालकों की कैरियर सम्बन्धी समस्याओं से उनमें तनाव पैदा हो रही है जिसका प्रभाव किशोर बालकों के व्यक्तित्व गुण जिसमें मार्गदर्शन, उचित विवेक पूर्ण साहित्य, आध्यात्म, संतोषधन, धैर्य व साहस आदि को प्रभावित करता है जिससे वे समायोजित न होकर असमायोजित हो रहे हैं तथा गलत रास्तों पर भटक रहे हैं। सिंह, (2017) ने अध्ययन के निष्कर्ष में इंगित किया कि ''शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की बुद्धि ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है। शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक सोच, रहन-सहन, शैक्षिक विचारधारा ग्रामीण क्षेत्र की अपेक्षा अधिक प्रबल होता है। ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों की बुद्धि पर पारिवारिक वातावरण, उनके रहन-सहन, आवासीय व्यवस्था, विद्यालय की दूरी आदि कारक प्रभावित करते हैं।'' अत: परिणामत: कहा जा सकता है कि विद्यालय त्याज्य विद्यार्थियों की मानसिक योग्यता अध्ययनरत् विद्यार्थियों की अपेक्षा कम होने लगती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अनुपम हजारा (2010). स्ट्यूट्स ऑफ ड्राप आउट इन इण्डिया, सोशल वेलफेयर बोर्ड, (सी द रेफरेन्स नं0 वन इन चौप्टर टू) न्यू देलही (अप्रैल)।
- अनुपम हजारा, (2010). ए स्टडी ऑफ ड्राप आउट रेट इन इण्डिया, सोशल वेलफेयर बोर्ड, नई दिल्ली।
- कौर, हरमिन्द्र एवं स्वामी, रजनीश कुमार (2017). युवाओं में मानसिक स्वास्थ्य एवं समायोजन की समस्या, पेरीफेक्स-इण्डियन जर्नल ऑफ रिसर्च, वॉ0 6, इश्शू-12, पृ0 358-259
- कुकरेती, बी0आर0 एण्ड सक्सेना, एम0 (2004). ड्राप-आउट प्राबलम्स एमंग स्टूडेन्ट्स एट स्कूल लेवेल, कुरुक्षेत्र, 52(11). 26-30.
- गुप्ता, निशा एवं प्रिया, बालेन्तिना (2017), रायबरेली जिले के शहरी/ग्रामीण अध्ययनरत् किशोरियों (14-17) की तार्किक योग्यता के विशेष सन्दर्भ में सामाजिक गृह विज्ञान अभिरुचि का अध्ययन, रिमार्किंग एन एनालाइजेशन, वॉ0 2, इश्शू-5, पृ0 12-15

भारतीय संस्कृति एवं संस्कार के मनोवैज्ञानिक पक्ष

मनीष कांत

सहायक प्राध्यापक, मनोविज्ञान विभाग, वि. सिं. ज. महाविद्यालय, राजनगर, मधुबनी

डॉ० कुमारी ज्योति

सहायक प्राध्यापिका, इतिहास विभाग, राम कृष्ण महाविद्यालय, मधुबनी

प्राचीन काल से विश्व की संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति की एक विशिष्ट एवं गरिमापूर्ण स्थान रही है। विभिन्न धर्मों एवं संस्कृतियों के लोग यहां एक मजबूत बंधन के साथ रहते हैं। सामान्यत: संस्कृति से तात्पर्य सामाजिक परिमार्जन एवं सामाजिक प्रशिक्षण से है जिसमें व्यक्ति विभिन्न विधियों, संस्कारों, मानवीय ज्ञान, विचार, मूल्य, कला, विश्वास आदि द्वारा समाज से अनुकूलन स्थापित करना सीखता है।

लिंडग्रेन (1973) के अनुसार- "संस्कृति मूल्यों, विश्वासों, मानकों, कौशालो तथा प्रतीकों से बना होता है जो एक समाज द्वारा विकसित होते हैं तथा उनके सदस्यों द्वारा प्रयोग किए जाते हैं।"

संस्कृति व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करती है तथा व्यक्ति भी संस्कृति को प्रभावित करता है। संस्कृति का व्यक्तित्व के ऊपर प्रभाव के कारण सामाजिक स्थिति एवं निरंतरता बनी रहती है तथा व्यक्ति का संस्कृति पर प्रभाव के कारण सामाजिक परिवर्तन होते हैं।

आइजेंक (1952) ने व्यक्तित्व को परिभाषित करते हुए कहा है कि "व्यक्तित्व व्यक्ति के चरित्र, चितप्रकृति, ज्ञान शक्ति तथा शरीरगठन का करीब-करीब एक स्थाई एवं टिकाऊ संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन का निर्धारण करता है।" अर्थात व्यक्तित्व में व्यक्ति के आंतरिक गुणों एवं बाह्य गुणों को सम्मिलित किया गया है।

व्यक्तित्व पर संस्कृति के प्रभाव को दिखलाने के लिए वैज्ञानिकों द्वारा कई अध्ययन भी किए गए हैं। जैसे- ऐडम्स तथा टुकर (1972) ने अपने अध्ययन में पाया कि जिस संस्कृति में बच्चों का पालन पोषण माता द्वारा नहीं होता है उस संस्कृति के बच्चों में संवेगीक स्थिरता की कमी पाई जाती है तथा उनमें बुरी आदतों का विकास तेजी से होता है।

एंथोनी (1974) के अध्ययन के अनुसार जिस संस्कृति में पारिवारिक कलह एवं झगड़े होते रहते हैं, उनके बच्चों की बुद्धि, सृजनात्मक क्षमता तथा संज्ञानात्मक शैली का विकास मंद हो जाता है।

संस्कृति व्यक्ति के व्यक्तित्व को काफी प्रभावित करती है। सनातन संस्कृति में आदर्श व्यक्तित्व के निर्माण के लिए जो नियम तय किए गए हैं उसे संस्कार कहां गया है। मानव जीवन में संस्कारों का महत्व वैदिक काल से चला आ रहा है। मानव जीवन को परिष्कृत करने के लिए हमारे ऋषि-मुनियों ने अनेक प्रयास किए हैं, उन्होंने जन्म के पूर्व से मृत्यु तक के जीवन को वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के साथ सफलतापूर्वक संबंधित किया है। संस्कारों से परिपूर्ण मानव जीवन हमारे भारतीय संस्कृति की बुनियाद है। संस्कार हमारे जीवन को सुसंस्कृत एवं सुंदर बनाते है।

संस्कारों से सम्पन्न मानव ही सुसंस्कृत, चरित्रवान, सदाचारी और प्रभुपरायण हो सकता है अन्यथा कुसंस्कार जन्य चारित्रिक पतन ही मनुष्य और समाज को विनाश की ओर ले जाता है। वही संस्कार युक्त होने पर सबका लौकिक और पारलौकिक उत्थान सहज सिद्ध हो जाता है।

आयुर्वेद के जनक आचार्य चरक कहते हैं कि-

'संस्कारोहि गुणान्तरा धानमुच्चते'

अर्थात- मनुष्य के दुर्गुणों को निकाल कर उसमें सद्गुण आरोपित करने की प्रक्रिया का नाम संस्कार है।

संस्कारों में अनेक आरम्भिक विचार, अनुष्ठान यथा शिशु के पालन पोषण की प्रक्रिया, पूजा पाठ, यज्ञ, मंत्रोच्चार, आदि भी समाविष्ट है, जिनका उद्देश्य केवल औपचारिक दैहिक संस्कार ही न होकर व्यक्ति के बौद्धिक एवं सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिष्कार, शुद्धि तथा पूर्णता भी है।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार ऐसे अनुष्ठान व्यक्ति के व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं को तो प्रभावित करते ही हैं उनके मानसिक पहलुओं को भी प्रभावित करते हैं।

फ्रायड के अनुसार- मन या मानसिक पहलू (ईड, ईगो, सुपर ईगो एवं चेतन, अवचेतन, अचेतन) से तात्पर्य व्यक्तित्व के उन कारकों से होता है, जिसे अंतरात्मा कहते हैं तथा जो हमारे व्यक्तित्व में संगठन पैदा करके हमारे व्यवहारों को वातावरण के साथ समायोजित करने में मदद करता है।

इस प्रकार, शिशु संस्कारों के माध्यम से माता-पिता, परिवार, समाज, विद्यालय एवं गुरुजनों के उपदेशों को ईगो में आत्मसात कर लेता है, जो बाद में सुपर ईगो का रूप ले लेता है। सुपर ईगो को नैतिक मूल्यों का संरक्षक माना गया है जो आदर्शवादी सिद्धांत द्वारा निर्देशित तथा नियंत्रित होता है। सुपर ईगो विकसित होकर एक तरफ ईड की कामुक, आक्रमक एवं अनैतिक इच्छाओं पर रोक लगाता है तथा दूसरी ओर ईगो को वास्तविक एवं यथार्थ लक्ष्य से हटाकर नैतिक मूल्यों की ओर ले जाता है। क्योंकि ईगो वास्तविकता के सिद्धांत पर कार्य करता है, यह इड एवं सुपर ईगो के बीच सामंजस्य बनाए रखने की कोशिश करता है। सुपर ईगो व्यक्ति के अनैतिक कार्यों पर नियंत्रण ईगो के माध्यम से करता है और जब ईगो सुपर ईगो के आदेशों का पालन नहीं कर पाता है तो व्यक्ति में दोष-भाव उत्पन्न हो जाता है। जिन व्यक्तियों में सुपर ईगो का विकास अधूरा होता है वह अनैतिक एवं घृणित कार्यों को प्रायः करते पाए जाते हैं।

एक सभ्य समाज के लिए संस्कार अति आवश्यक माने गए हैं प्राचीन समय में जिन लोगों का संस्कार न हुए हो उन्हें अच्छा नहीं माना जाता था। संस्कार हमारे धार्मिक एवं सामाजिक जीवन की पहचान होते हैं। यह हमें अपने राष्ट्र व समाज के अनुरूप चलना सिखाते हैं तथा हमारे जीवन को एक दिशा प्रदान करते हैं। आज वैश्विक महामारी कोरोंना के समय में पूरा विश्व भारतीय संस्कृति एवं संस्कारों की उपयोगिता को मानने के लिए विवश है।

सनातन संस्कृति में संस्कारों की संख्या को लेकर मतभेद है फिर भी प्रमुख रूप से सोलह संस्कारों को मान्यता दी गई है जोकि गर्भाधान से प्रारंभ होकर अंत्येष्टि तक जारी रहते हैं। इसके लिए समय-समय पर विभिन्न अनुष्ठानों का आयोजन किया जाता है जिसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव यह है कि उससे व्यक्ति में एक सकारात्मक ऊर्जा का प्रवाह होता है साथ ही सुपरईगो भी विकसित होती है। मन एवं मस्तिष्क प्रभावित होते हैं उनके विचारों एवं विश्वासों का स्वरूप दृढ़ होता है। संस्कार के रूप में उन्हें जो नए दायित्व एवं कर्तव्य सौंपी जाती है उनका वे ताउम्र पालन करते हैं चाहे परिस्थिति कितनी भी प्रतिकूल क्यों ना हो इसका एक अच्छा उदाहरण- मर्यादा पुरुषोत्तम राम, राजा हरिश्चंद्र एवं महात्मा गांधी के रूप में देखा जा सकता है।

वर्तमान में महर्षि वेदव्यास स्मृति शास्त्र के अनुसार भारतीय संस्कृति के सोलह संस्कार अधिक प्रचलित हैं। ये हैं -

गर्भाधानं पुंसवनं सीमंतो जातकर्म च। नामक्रियानिष्क्रमणेअन्नाशनं वपनक्रियाः।।

कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारंभक्रियाविधिः।

केशांत स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः।।

त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः। (व्यासस्मृति 1/13-15)

गर्भाधान संस्कार- यह जीवन का सबसे पहला संस्कार है इसके जरिए उत्तम आत्मा का गर्भ में प्रवेश के लिए ईश्वर से प्रार्थना की जाती है। गर्भाधान के संबंध में स्मृति संग्रह में लिखा है-

निषेकाद् बैजिकं चौनो गार्भिकं चापमृज्यते।

क्षेत्रसंस्कारसिद्धिश्च गर्भाधानफलं स्मृतम्।।

अर्थातः विधिपूर्वक संस्कार से युक्त गर्भाधान से अच्छी और सुयोग्य संतान उत्पन्न होती है। इस संस्कार से जीव के पूर्वजन्म के पापों का नाश होता है, दोष का मार्जन तथा क्षेत्र का संस्कार होता है। यही गर्भाधान-संस्कार का फल है।

मनोवैज्ञानिक पक्ष- कॉल युंग ने सामूहिक अचेतन एवं आदिरूप की बात की है जिसमें मानव जाति के हजारों वर्षों के पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही अनुभूतियां संचित होती हैं। जिसे व्यक्ति अपने पूर्वजों से प्राप्त करता है। यह अनुभूतियां निष्क्रिय नहीं होती हैं, बल्कि सक्रिय होकर व्यक्ति के चिंतन, संवेगो एवं व्यवहारों को प्रभावित करती है। संस्कारों में किए गए अनुष्ठानों के द्वारा उत्पन्न सकारात्मक ऊर्जा के माध्यम से अचेतन की इन अनुभूतियों में व्याप्त दोषों को दूर करने का प्रयास किया जाता है ताकि अच्छी एवं सुयोग्य संतान की उत्पत्ति हो सके।

मनोवैज्ञानिकों का यह भी मानना है कि व्यक्ति के विचार, मानसिक वृती, सोच यदि सकारात्मक होती है तो इसका प्रभाव भी व्यक्ति पर सकारात्मक ही पड़ता है। इसलिए अनुष्ठान द्वारा माता पिता एवं अन्य के सोच को सकारात्मक बनाए रखने की कोशिश की जाती है, ताकि गर्भ में आने वाली आत्मा उत्तम प्रकृति की हो।

पुंसवन संस्कार- यह संस्कार गर्भाधान के तीसरे महीने में किया जाता है। इस संस्कार में गर्भ की स्थिरता एवम् पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से यज्ञ किया जाता है। जिसमें परिवार के सदस्य, गुरुजन शिशु के स्वस्थ, सुंदर एवं गुणवान होने की कामना करते हैं।

मनोवैज्ञानिक पक्ष- पुंसवन संस्कार गर्भाधान के तीसरे महीने में इसलिए किया जाता है क्योंकि इस समय तक शिशु का आकार एवं संस्कार स्वरूप पकड़ने लगता है। इसकी पुष्टि चिकित्सा शास्त्र भी करता है। इस समय माता में तेजी से शारीरिक और हार्मोनल परिवर्तन होते हैं। जिससे उनके स्वभाव में भी परिवर्तन होता है उनमें अधिक बेचौनी, चिड़चिड़ापन तथा नकारात्मकता आ जाती है। जिससे गर्भस्थ शिशु के प्रभावित होने का खतरा होता है। इसी खतरे को कम करने के लिए यह अनुष्ठान किया जाता है जिससे एक उत्सव का माहौल उत्पन्न होता है अनेक लोग उपस्थित होते हैं, सकारात्मक ऊर्जा का प्रवाह बढता है। माता का आत्मबल मजबूत होता है। वे खुशी का अनुभव करती हैं, उनके विचार सकारात्मक हो जाते हैं, उनके मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाली सेरोटोनिन की मात्रा भी सामान्य हो जाती है, अन्य व्यक्तियों से प्राप्त सकारात्मक ऊर्जा का भी प्रभाव पड़ता हैं। जिससे उनकी मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य अच्छी होती है, जिसका गर्भस्थ शिशु पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि गर्भावस्था में मां जैसा सोचती है, जैसा विचार करती है बच्चे की सोच एवं व्यक्तित्व पर इसका गहरा असर पड़ता है। ब्रिटेन की यूनिवर्सिटी ऑफ लिवरपूल में नेगेटिव एवं पॉजिटिव विचारों को लेकर किये गए शोध के मुताबिक नकारात्मक विचारों के लगातार बने रहने से दिमागी सेहत को नुकसान पहुंच सकता है।

सीमन्तोन्नयन संस्कार- यह संस्कार गर्भाधान के चौथे, छठे या आठवें महीने में किया जाता है। इसके अंतर्गत यज्ञ में खिचड़ी एवं घी की आहुति दी जाती है और अनुष्ठान में उपस्थित स्वजनों से आशीर्वाद प्राप्त किया जाता है। इस समय माता की पीडा एवं उसके स्वभाव में अधिक परिवर्तन होते हैं ऐसे में उसे मानसिक रूप से तैयार करने की आवश्यकता होती है इसके लिए पति अपनी पत्नी के केश संवरता है ताकि उसे मानसिक शक्ति प्राप्त हो।

मनोवैज्ञानिक पक्ष- इस समय तक शिशु की मस्तिष्क विकसित हो रही होती है, सुनने की क्षमता, श्वसन प्रणाली तथा सभी ज्ञानेंद्रियां विकसित हो चुकी होती हैं। शिशु सीखने के काबिल हो जाता है, इसकी पुष्टि चिकित्सा शास्त्र भी करती है। गर्भ में सीखने का अच्छा उदाहरण हमारे धर्म शास्त्र में अभिमन्यु एवं प्रहलाद के रूप में देखने को मिलता है। इस संस्कार का मनोवैज्ञानिक उद्देश्य गर्भवती स्त्री को मानसिक बल प्रदान करते हुए सकारात्मक विचारों से पूर्ण रखना होता है ताकि गर्भस्थ शिशु का शारीरिक एवं मानसिक विकास सही ढंग से हो सके। शिशु के विकास के साथ माता के मन में भी नई नई इच्छाएं पैदा होती हैं, इन इच्छाओं की पूर्ति शिशु के मानसिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

जातकर्म संस्कार- यह संस्कार बच्चे के जन्म पर किया जाता है। इसमें बच्चे को स्नान कराना, मुख आदि साफ करना, मधु, घी एवं स्वर्ण चटाना, स्तनपान कराना आदि कार्य वैदिक मंत्रोचार के साथ की जाते हैं।

मनोवैज्ञानिक पक्ष- इसका वैज्ञानिक पक्ष यह है कि इससे बच्चे का संक्रमण से बचाव होता है। यदि गर्भ में बच्चे के मुख में किसी प्रकार का विषैला पदार्थ जैसे मल-मूत्र, रक्त आदि चला गया हो तो बच्चे को मधु, घी एवं स्वर्ण चटा कर उसके हानिकारक प्रभाव को नष्ट कर दिया जाता है। मंत्रोच्चार से एक सकारात्मक ऊर्जा का निर्माण होता है जिससे शिशु मेधावी एवं बलशाली हो सके।

नामकरण संस्कार- जन्म के 11वे या 101वे दिन नामकरण संस्कार किया जाता है। इसमें बच्चे को एक नाम गुरुजनों के द्वारा दिया जाता है, जोकि देवी देवताओं आदि के नाम हो सकते हैं।

मनोवैज्ञानिक पक्ष- मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि व्यक्ति के नाम का प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर गहराई से पड़ता है। उसके नाम से संबंधित गुण, स्वभाव एवं विचार आदि व्यक्ति में विकसित होते हैं, इसलिए नामों का चयन उपयुक्त ढंग से सोच समझ कर करना चाहिए।

निष्क्रमण संस्कार- यह संस्कार जन्म के चौथे महीने में किया जाता है। इसमें बच्चे को शुद्ध हवा एवं सूर्य के प्रकाश में बाहर निकाला जाता है। क्योंकि हमारा शरीर पृथ्वी, वायु, आकाश, जल एवं अग्नि पंच तत्वों से बना होता है। इसलिए शिशु को इनके साथ साक्षात्कार कराया जाता है तथा उसके उत्तम स्वास्थ्य की कामना की जाती है।

मनोवैज्ञानिक पक्ष- इस समय तक शिशु का शरीर बाहरी वातावरण को सहन करने योग्य हो जाती है। शिशु को खुली हवा में सूर्य के सामने लाने का उद्देश्य उसके शरीर में पनप रहे हानिकारक सूक्ष्म जीवों को समाप्त करना तथा फेफड़ों में शुद्ध वायु का संचार कराना होता है। इससे शीशु का बाहरी वातावरण से परिचय होता है और वह बाह्य वातावरण के साथ समायोजन को सीखता है। इससे समाजीकरण की प्रक्रिया में भी मदद मिलती है।

अन्नप्राशन संस्कार- यह संस्कार छह-सात महीने के उपरांत किया जाता है, जब बच्चे के दांत निकलने लगते हैं। इसमें बच्चे को सोने या चांदी के चम्मच से खीर चटाई जाती है। इस संस्कार के उपरांत बच्चे को अन्न खिलाने की शुरुआत हो जाती है।

मनोवैज्ञानिक पक्ष- इस समय तक शिशु का पाचन तंत्र अन्न पचाने में सक्षम हो जाता है। चांदी और सोना शरीर में उपस्थित विषाक्त पदार्थों को नष्ट करता है। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि हम जिस प्रकार का भोजन करते हैं हमारे विचार एवं व्यवहार भी उसी प्रकार के हो जाते है। शुद्ध, सात्विक एवं पौष्टिक भोजन से शरीर एवं मन स्वस्थ रहते हैं, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन या मस्तिष्क का निवास होता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जब पूरा विश्व कोरोना महामारी से ग्रसित है, शुद्ध एवं सात्विक भोजन की प्रामाणिकता स्वयं सिद्ध हो जाती है।

मुंडन संस्कार- यह संस्कार प्रथम वर्ष के अंत में, तीसरे, पांचवें या सातवें वर्ष में किया जाता है। इसमें वैदिक मंत्रोच्चार के बीच बालक का मुंडन किया जाता है। इससे शिशु के सिर की गंदगी, कीटाणु आदि दूर हो जाते हैं। इसका उद्देश्य बुद्धि, विद्या, बल, आयु और तेज की वृद्धि करना है।

मनोवैज्ञानिक पक्ष- इस समय तक शिशु का कोमल सिर कठोर हो जाता है जिससे मस्तिष्क सुरक्षित हो जाती है। मुंडन करवाने से सिर पर सूर्य की रोशनी पड़ती है जिससे विटामिन- डी मिलती है, सभी बंद रोम छिद्र खुल जाते हैं एवं सिर तथा मस्तिष्क में रक्त का प्रवाह बढ़ता है। सिर पर नए एवं घने मजबूत बाल आने लगते हैं, इससे मस्तिष्क की रक्षा होती है और इसका विकास सुचारू रूप से हो पाता है। वैदिक मंत्रोच्चार से सकारात्मक ऊर्जा में वृद्धि होती है जिससे शिशु की मानसिक प्रक्रिया, विचार, भावनाएं आदि सकारात्मक ढंग से बढ़ती है।

कर्णवेध संस्कार- यह संस्कार जन्म के बाद से लेकर 5 वर्ष की आयु के बीच किया जाता है। इसमें वैदिक मंत्रोच्चार के साथ बालक के कान को छेदा जाता है और उसमें आभूषण पहनाएं जाते हैं।

वैज्ञानिक पक्ष- वर्तमान समय में वैज्ञानिकों ने यह माना है कि यह एक एक्यूपंचर चिकित्सा है, जिससे कान की बीमारियों से बचाव होती है तथा श्रवण शक्ति में वृद्धि होती है। शिशु का बौद्धिक एवं शारीरिक विकास सुदृढ़ होता है।

विद्यारंभ संस्कार- जब बालक या बालिका का मस्तिष्क शिक्षा ग्रहण करने योग्य हो जाता है तब यह संस्कार किया जाता है। सामान्यत: 5 वर्ष की आयु इसके लिए उपयुक्त मानी गई है। इस संस्कार का अभिप्राय बालक को शिक्षा के प्रारंभिक स्तर से परिचित कराना है। प्राचीन काल में बच्चे को गुरुकुल में भेजने से पहले माता-पिता या गुरुजनों द्वारा उन्हें अक्षर बोध, पौराणिक कथाएं एवं श्लोकों का अभ्यास करा दिया जाता था ताकि गुरुकुल में उन्हें विशेष कठिनाई ना हो।

मनोवैज्ञानिक पक्ष- विद्यारंभ संस्कार द्वारा बच्चों को मानसिक रूप से शिक्षा ग्रहण हेतु तैयार किया जाता है, ताकि वे नए परिस्थिति में आसानी से अनुकूलन स्थापित कर पाए स

उपनयन संस्कार- यह संस्कार बच्चे के 6 से 8 वर्ष की आयु में किया जाता है इसमें यज्ञ एवं वैदिक मंत्रोच्चार के साथ बच्चे को एक पवित्र धागा जिसे जनेऊ कहा जाता है पहनाया जाता है। जनेऊ में तीन सूत्र होते हैं जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश के प्रतीक हैं। जनेऊ धारण करने के पश्चात बालक को गुरु के पास शिक्षा ग्रहण हेतु भेजा जाता है। इसके साथ बालक को कई तरह के वचन, नियमों एवं उत्तरदायित्व का पालन करना होता है जिसमें ब्रह्मचर्य भी एक है। उपनयन संस्कार के बाद बालक का दूसरा जन्म माना जाता है। गुरुकुल में भिक्षा द्वारा भोजन प्राप्त करने की परंपरा रही है।

मनोवैज्ञानिक पक्ष- उपनयन संस्कार के द्वारा बालक को मानसिक एवं संवेगात्मक रूप से तैयार किया जाता है ताकि वह अपने माता पिता तथा परिवार के लोगों से अलग रह कर शिक्षा ग्रहण करने में कठिनाई का कम से कम अनुभव करें। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार भिक्षा मांगने की परंपरा के कारण शिष्यों का अहंकार समाप्त हो जाता है। जनेऊ धारण करने से उनमें एक उत्तरदायित्व की भावना बनी रहती है, जनेऊ उन्हें गुरुकुल के नियमों एवं कानूनों को भूलने नहीं देता है तथा वे उन नियमों का आसानी से पालन कर पाते हैं। यदि वे अपने कर्तव्य मार्ग से विचलित होते हैं तो प्रतीकात्मक रूप में जनेऊ उन्हें अपने ब्रह्मचर्य व्रत पालन एवं संयमित जीवन जीने की प्रतिज्ञा को याद रखने में मदद करता है। जिससे गुरुकुल का अनुशासन बनाए रखने में मदद मिलती है। क्योंकि शिक्षा का मूल उद्देश्य ही ज्ञान, शुद्धता, शिष्टता, अनुशासन आदि का पालन करना होता है। इससे विद्यार्थी विचारवान, ग्रहणशील एवं मानसिक रूप से सशक्त होते हैं।

उपनयन संस्कार का एक उद्देश्य भी है की बालक गुरुकुल में प्रवेश से पहले पूरी तरह से संक्रमण मुक्त एवं शुद्ध हो जाए ताकि किसी प्रकार का कोई रोग उसके द्वारा गुरुकुल के अन्य विद्यार्थियों तक ना पहुंच पाए। वर्तमान समय में कोरोना के कारण किसी भी सार्वजनिक स्थान, विद्यालय, महाविद्यालय आदि में प्रवेश से पहले स्वयं को संक्रमण मुक्त करना अति आवश्यक प्रतीत होता है।

वेदारंभ संस्कार- यह संस्कार ज्ञान प्राप्ति के प्रारंभ के समय में की जाती है। इसमें बालक गुरुकुल या गुरु आश्रम में रहकर वेदों का अध्ययन, युद्ध कला, व्यवहारिक ज्ञान, राजनीतिक ज्ञान, सामाजिक व्यवहार एवं अन्य विशिष्ट ज्ञान ग्रहण करते है, ताकि बच्चे का सर्वांगीण विकास हो सके। ज्ञान प्राप्ति से बालक के बौद्धिक स्तर का विकास होता है। इसके लिए उन्हें गुरुकुल के नियमों, आचरण, ब्रह्मचर्य एवं संयमित जीवन जीने की प्रतिज्ञा लेनी होती है।

मनोवैज्ञानिक पक्ष- इस संस्कार के द्वारा बच्चे को मानसिक रूप से शिक्षा ग्रहण हेतु, अपने परिवार से दूर होने एवं नए उत्तरदायित्व का पालन करने के लिए तैयार किया जाता है।

केशांत संस्कार- जब तक बालक गुरु के सानिध्य में ज्ञान ग्रहण करता है, तब तक वह संयमित जीवन जीने एवं ब्रह्मचर्य व्रत का पालन भी करता है। इस दौरान वह बाल्यावस्था से किशोरावस्था में पहुंच जाता है उसकी दाढ़ी उग आती हैं। इन्हीं केशो का जब वैदिक मंत्रोच्चार एवं विधि विधान के साथ अंत होता है तो इसे केशांत संस्कार कहा जाता है। यह संस्कार शिक्षा पूर्ति के उपरांत गुरुकुल से विदा होते वक्त जब किशोर ब्रह्मचर्य अवस्था से गृहस्थ आश्रम में प्रवेश के लिए मानसिक एवं शारीरिक रूप से तैयार होता है तब की जाती है। उसके उपरांत किशोर को स्नातक की उपाधि दी जाती है।

मनोवैज्ञानिक पक्ष- इस संस्कार द्वारा किशोर को शुद्ध एवं संक्रमण मुक्त किया जाता है। इस समय किशोर में अनेक शारीरिक बदलाव हो रहे होते हैं या हो चुके होते हैं, नई ऊर्जा का संचार होता है। वह स्वयं को अधिक सक्षम समझता है, जिसे संस्कार के माध्यम से परिष्कृत, संयमित एवं सुसंस्कृत किया जाता है। ताकि वह अपने कर्तव्य पथ पर बना रहे। उसे मानसिक रूप से नए उत्तरदायित्व (गृहस्थ आश्रम) को संभालने के लिए भी सशक्त किया जाता है।

समावर्तन संस्कार- जब किशोर गुरुकुल में अपनी शिक्षा सफलतापूर्वक पूर्ण कर लेता है, उसे वेदों के अनुसार विज्ञान, संगीत, युद्ध शैली, चिकित्सा, अस्त्रों शास्त्रों का ज्ञान, राजनीति, धर्म, सामाजिक व्यवहार आदि का ज्ञान हो जाती है, तब आचार्य स्वयं शिष्यों का समावर्तन संस्कार करते हैं। वे अपने शिष्यों को दान, दया और मानव कल्याण संबंधी शिक्षा देकर ब्रह्मचर्य जीवन से गृहस्थ जीवन में प्रवेश के लिए आज्ञा प्रदान करते हैं। इस समय तक युवक लगभग 25 वर्ष का हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक पक्ष- इस संस्कार द्वारा किशोर को वास्तविक जीवन की चुनौतियों एवं कठिनाइयों से अनुकूलन स्थापित करने हेतु मानसिक रूप से सशक्त किया जाता है। वे अपने गुरु के समक्ष अपने विचार एवं दुविधाओ को प्रकट करता है एवं उसका उचित समाधान प्राप्त करता है। जिससे उसके मन में चल रहे संघर्षों का समापन होता है और वह मानसिक एवं शारीरिक रूप से नए जिम्मेदारीयों को ग्रहण करने के लिए तैयार हो जाता है।

विवाह संस्कार- यह संस्कार स्त्री एवं पुरुष दोनों के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार है। जिसमें अग्नि के फेरों के साथ दोनों आजीवन साथ रहकर धर्म एवं कर्तव्य पालन का संकल्प लेते हैं। वेदाध्ययन के बाद जब युवक में सामाजिक परंपरा को निर्वाह करने की क्षमता एवं परिपक्वता आ जाती है तो उसका विवाह संस्कार यज्ञ एवं मंत्रोच्चार के बीच उत्सव के रूप में पंचभूतों, स्वजनों एवं गुरुजनों को साक्षी बनाकर किया जाता है।

वैदिक काल से पूर्व हमारा समाज संगठित नहीं था उस समय अनैतिक यौनाचार की प्रवृत्ति थी। हमारे ऋषि-मुनियों ने इस प्रथा को समाप्त करने के लिए विवाह संस्कार की स्थापना की जो समाज को संगठित एवं नियमब्द्ध करने का प्रयास किया। इन्हीं प्रयासों का परिणाम है कि आज भारतीय समाज एक सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज माना जाता है।

मनोवैज्ञानिक पक्ष- भारतीय संस्कृति में विवाह संस्कार एक लंबी प्रक्रिया है जिसमें महीनों के पूजा पाठ, नियमों, परंपराओं, रीति-रिवाजों आदि का पालन करते हुए एक उत्सव पूर्ण एवं खुशनुमा माहौल में विवाह संस्कार को संपन्न कराया जाता है। जिसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव विवाह योग्य वर एवं वधू पर सकारात्मक होता है, उनकी ग्रहण शीलता बढ़ जाती है। वे मानसिक रूप से किसी भी तरह के परिवर्तन एवं उत्तरदायित्व को संभालने के लिए खुद को सक्षम बना लेते हैं। उनमें यह विश्वास दृढ़ होता है कि वे एक दूसरे के साथ सामंजस्य पूर्ण ढंग से जीवन निर्वाह कर सकते हैं। विवाह संस्कार में परिवार, गुरु जन, एवं समाज के लोगों को शामिल कर उनमें एक सामाजिक दायित्व का बोध कराया जाता है ताकि वे एक दूसरे के साथ आजीवन बने रहे।

इंडिया टुडे (20 नवंबर, 2018) में छपे समाचार के अनुसार-भारत में तलाक की दर दुनिया के सभी देशों में सबसे कम है। आंकड़े बताते हैं कि-

भारत में तलाक की दर 1% से भी कम है। 1000 विवाहों में से केवल 13 में तलाक हुआ। जो अमेरिका के 46% और रूस के 51% की तुलना में काफी कम है, जो ब्रेकअप में बदल जाते हैं। भारत में तलाक की दर पिछले दशक में और भी कम थी, जहाँ 1,000 विवाहों में से मात्र 7.40 विवाह को रद्द किया गया था।

बॉम्बे हाई कोर्ट (2012) ने भी पारिवारिक न्यायालय में दाखिल एक अपील के दौरान कहां है- प्रेम विवाह में तलाक की दर अपेक्षाकृत अधिक है। इससे भारतीय संस्कृति एवं संस्कार की प्रासंगिगता सिद्ध होती है।

अंत्येष्टि संस्कार- यह सोलह संस्कारों में अंतिम संस्कार है। अंत्येष्टि से तात्पर्य अंतिम यज्ञ से होता है, जिसे वैदिक मंत्रोच्चार के साथ संपन्न किया जाता है। मृतक को श्मशान ले जाया जाता है, जहां चिता पर रखकर उसे मुखाग्नि दी जाती है। मृतक की अस्थियों को पवित्र जल में प्रवाहित कर दिया जाता है तथा उसकी आत्मा की शांति के लिए ईश्वर से प्रार्थना की जाती है। मृतक का परिवार शोकाकुल होते हुए भी 12 से 15 दिनों का तक इससे संबंधित नियमों का पालन एवं अंत में भोज का आयोजन करते है।

मनोवैज्ञानिक पक्ष- मृत्यु एक दुखद घटना है जिससे संबंधित व्यक्ति के परिवार, प्रियजन, कुटुंब आदि काफी प्रभावित होते हैं। किसी व्यक्ति के मृत्यु से उसके निकट संबंधी को भावनात्मक, सामाजिक एवं आर्थिक हानि होती है। जिससे उन्हें मानसिक आघात लगता है। उनमें संवेगिक बदलाव, तनाव, चिंता आदि उत्पन्न हो जाते हैं, जो मानसिक रोग उत्पन्न करने के कारक हो सकते हैं। इससे बचने के उद्देश्य से ही कुछ नियमों का पालन करना होता है। लोगों द्वारा इन्हें सहायता एवं सांत्वना दी जाती है। अनेक विधि-विधानो में इन्हें शामिल किया जाता है ताकि इनका मन उस अपूर्व क्षति के चिंतन से बाहर आ सके, चेतन से मृत व्यक्ति की स्मृति समाप्त हो जाए और तनाव कम हो साथ ही सकारात्मक ऊर्जा का प्रवाह अधिक से अधिक हो। जिससे व्यक्ति सामान्य ढंग से जीवन यापन कर सके।

प्राचीन समय में मृत्यु के कारण स्पष्ट नहीं होते थे। संभावना यह बनती थी कि मृत्यु किसी बीमारी या संक्रमण के कारण ना हुई हो इसलिए कुछ समय तक समाज के लोग इनसे दूरी बनाए रखते थे। कुछ दिनों के बाद परिवार के लोग जब अपनी शुद्धि कर लेते थे। एक भोज का आयोजन कर समाज को आश्वस्त करते थे, कि अब हमारा परिवार पूरी तरह से सुरक्षित एवं संक्रमण मुक्त है और अब हम सभी प्रकार के सामाजिक कार्यों में भागीदारी निभाने के लिए तैयार है।

वर्तमान में वैश्विक महामारी कॉविड-19 से पूरा विश्व ग्रस्त है और अंत्येष्टि संस्कार की उपयोगिता को मानने के लिए विवश है जिसमें मृत व्यक्ति के शरीर को जलाए जाने की प्रथा है। मृत शरीर को जलाने से किसी भी प्रकार का कोई संक्रमण फैलने की आशंका समाप्त हो जाती है।

स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति में निहित यह संस्कार ना केवल हमारे जीवन मूल्यों, विश्वासों, परंपराओं, भावनाओं, विचारों, धार्मिक मान्यताओं, लोक आस्थाओं, शारीरिक स्वास्थ्य एवं मानसिक प्रक्रियाओं को गहरे तक प्रभावित करते हैं वरन इसके वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक आधार भी हैं। ये व्यक्ति को एक अंतर्दृष्टि प्रदान करती है, जिसका उद्देश्य आनंदमय होना होता है। भारतीय संस्कृति ष्सर्वजन हिताय सर्वजन सुखायष् तथा ष्वसुदेव कुटुंबकमष् के सिद्धांत पर कार्य करती है। अर्थात सभी के हित में सबो का सुख है तथा पूरा विश्व एक परिवार के समान है। भारतीय संस्कृति एवं धर्म विश्व शांति की बात करती है। इस प्रकार यह पृथ्वी पर व्याप्त सभी जीव-जंतु, पेड़-पौधे, पर्यावरण, आकाश, वायु, जल आदि के बीच संतुलन बनाए रखने का दर्शन है। जबकि पाश्चात्य संस्कृति का दर्शन हमारे बाहरी वेशभूषा, व्यवहार एवं शारीरिक सुखों पर आधारित होता है। विश्व भारतीय संस्कृति की वैज्ञानिकता को धीरे धीरे समझ रहा है इसलिए विश्व के अनेक शहरों में इस्कॉन जैसे मंदिर स्थापित किए जा रहे हैं तथा लोगों का झुकाव सनातन धर्म, संस्कृति एवं संस्कार की ओर बढ़ रही है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जब पूरा विश्व कोविड़-19 जैसी संक्रामक महामारी से संकटग्रस्त है, वहीं भारतीय संस्कृति में वैदिक काल से निरंतर चले आ रहे संस्कार अपनी महत्ता को बढ़ाते हुए लोक कल्याण की दृष्टि से पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण, सर्वग्राही एवं प्रासंगिक सिद्ध हो रहे हैं। आज पूरा विश्व नमस्ते की परंपरा एवं अंत्येष्टि की प्रक्रिया के पीछे छिपे वैज्ञानिकता को समझ चुका है।

संदर्भ सूची

Lindgren, H.C., (1973). An Introduction to Social Psychology, John Wiley and sons.

Eysenck, H. J. (1952). The scientific study of personality. London: Routledge & K. Paul.

Singh, A.K. (1999). Samaj Manovigyan. New Delhi: Motilal Banarsidass publisher.

Singh, A.K. (2002). Asamanya Manovigyan. New Delhi: Motilal Banarsidass publisher.

https://m.facebook.com/notes/लवी-भरद्वाज-सावरकर/16-संस्कार-क्या-आप-जानते-हैं-अपने-16-संस्कारों-को-

https://www.google.com/amp/s/drsandeepkr.wordpress.com

https://www.indiatoday.in/education-today/gk-current-affairs/story/india-has-the-lowest-divorce-rate-in-the-world-1392407-2018-11-20

बिलासपुर के झुग्गी बाहुल्य क्षेत्र में रहने वाले परिवारों के आर्थिक स्थिति का अध्ययन

कु० आरती तिर्की

शोधार्थी (समाजशास्त्र), डॉ. सी. वी. रामन् विश्वविद्यालय करगी रोड कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

डॉ० ऋचा यादव

विभागाध्यक्ष, सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र बिलासपुर शहर के झुग्गी झोपड़ी में रहने वाले परिवारों की आर्थिक स्थिति पर आधारित है। इस शोध में बिलासपुर शहर के उन परिवारों के रोजमर्रा की जीवन को व्यक्त किया गया है। जिसमें आय के प्रमुख साधानों को केन्द्रित किया गया है। आर्थिक स्थिति को बढ़ाने हेतु वह रोजी मजदूरी एवं छोटी रोजगार (फल, ठेला, सब्जी, पान ठेला आदि) पर निर्भर रहता है। चयनित क्षेत्र में रहने वाले स्त्रियाँ, पुरूषों एवं बच्चों के आय की स्थिति को दर्शाया गया है। इस अध्ययन में परिवार का मुखिया आय के अनेक साधनों की खोज करते है। जिससे उनकी आय की स्थिति में सुधार हो सके है।

प्रस्तावना

वर्तमान युग में गंदी बस्तियों की समस्या बनती जा रही है। जहाँ तक भारत जैसे विकासशील देश का प्रश्न है, झुग्गी बस्ती की समस्या यहाँ अत्यधिक गंभीर है। लोगों को बुरी आर्थिक दशा के कारण यह बढ़ती हुए जनसंख्या उन्नत तकनीकी और धीमी प्रगति से होने वाले औद्योगिकीकरण का ही परिणाम है। भारत में झुग्गी बस्तियों का उदय कब हुआ, इसका निश्चित समय नहीं बतलाया जा सकता है, लेकिन जैसे-जैसे समय बितता जा रहा है नई-नई झुग्गी बस्तियों का विस्तार हो रहा है। इस प्रकार गंदी बस्तियाँ प्राय: सभी बड़े नगरों में विकसित हुई है। बिलासपुर शहर में मगरपारा क्षेत्र झुग्गी बाहुल्य क्षेत्र के अंतर्गत आता है। यह क्षेत्र बिलासपुर के मध्य में स्थित है। इस क्षेत्र के अंतर्गत रहने वाले अधिकतर लोग ग्रामीण है जो अपनी रोजगार हेतु गांव से शहर में आकर रहते है। वर्तमान युग मशीनरीकरण का युग है। औद्योगिकीकरण के जितने भी आयाम है, सब मशीन पर निर्भर हैं। लेकिन इन मशीनों की कार्यक्षमता को बनाये रखने अथवा अनुकूल दशाओं के विकास के लिए मजदूरों का संतुलित एवं पौष्टिक आहार शरीर ढ़कने का पर्याप्त वस्त्र और प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षित रखने के लिए स्वास्थ्यकर आवास की उपलब्धि नितान्त आवश्यक है। लेकिन औद्योगिक प्रगति के बाद आज मजदूरों के आवास की व्यवस्था अच्छी नहीं है। उन्हें गंदी झुग्गी बस्तियों में ही रहना पड़ता है। अत: वर्तमान युग में गंदी बस्तियों की समस्या बढ़ती जा रही है। बिलासपुर शहर में मलिन बस्तियों की समस्या अत्यधिक गंभीर है। लोगों को निम्न आर्थिक दशा का कारण यह है कि जनसंख्या वृद्धि, रोजगार की कमी, अशिक्षा, कमजोर स्वास्थ्य, नशापान आदि है। परिवारों के आर्थिक स्थिति को मजबूत करने हेतु इन्हें जागरूक करना अति आवश्यक है।

बिलासपुर क्षेत्र के झुग्गी झोपड़ियों में रहने वाले लोगों को छोटा-बड़ा काम मिल जाता है पर रहने को घर नहीं मिलता। इसलिए इनको नगरों कीझुग्गी बस्तियों में शरण मिलती है। झुग्गी बस्तियाँ औद्योगिकता का फलन है जो कई सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं को जन्म देती हैं। यहां पर मूलभूत आवश्यकताएं जैसे-पानी, विद्युत, जल निकासी, स्वच्छ वातावरण, सड़कें आदि सुविधाओं को अभाव होता है। इस क्षेत्र में रहने वाले लोग प्रवासित जनसंख्या मुख्यत: प्रतिकूल तत्व जैसे-गरीबी, बेकारी, कम मजदूरी, छोटी तथा अनार्थिक जोत, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं की कमी आदि।

आर.के. डिकिन्सन के अनुसार

''स्लम'' नगर के उस भाग को कहते है जहां पर मकान रहने योग्य न हो और जहां का वातावरण नागरिकों के स्वास्थ्य एवं उनकी नैतिकता के लिए हानिकारक सिद्ध हो। यह वह घना बसा हुआ क्षेत्र है, जहां भूमि मूल्य गिरा हो, जहां निवासियों के आर्थिक स्तर निम्न हो, जहां अपराध, मृत्यु एवं बीमारियों का उच्च दर हो, वहां पर निवास करने वाले व्यक्ति अशिक्षित, निर्धन, अस्वस्थ्य और अधिकांश प्रवासी होते है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का चयन जिन उद्देश्यों को लेकर किया गया है वह इस प्रकार है-

- बिलासपुर के झुग्गी बस्तियों के परिवारों के मुख्य आय के साधनों का अध्ययन करना।
- बिलासपुर के झुग्गी बस्तियों के परिवारों की व्यय (खर्च) का अध्ययन करना।

प्रयुक्त विधि

प्रस्तुत शोध हेतु शोधकर्ता ने सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है। इस शोध में सर्वेक्षण के दौरान बिलासपुर शहर के परिवारों को लिया है। इस क्षेत्र के 50 परिवारों को न्यादर्श के रूप में लिया गया है। जिस पर शोधकर्ता अपने साक्षात्कार, अनुसूची के आधार पर इस क्षेत्र के परिवारों की आर्थिक स्थिति का आंकलन किया है। इस शोध के अंतर्गत उन परिवारों को लिया गया है जो झुग्गी बस्तियों में निवासरत् है। इस शोध का मूल आधार बिलासपुर झुग्गी क्षेत्र में निवासरत् परिवारों की आय की स्थिति को जानने हेतु किया जा रहा है।

बिलासपुर क्षेत्र के परिवारों की आर्थिक स्थिति

शोधकर्ता द्वारा अध्ययन से पाया कि इस क्षेत्र में रहने वाले अधिकतर लोग ग्रामीण अंचल से रोजगार हेतु आते हैं, जो अपनी रोजमर्रा की जीवन यापन करने हेतु मजदूरी करते है। इस क्षेत्र में परिवारों के सदस्यों की संख्या 5-10 है। जिसमें 2 या 5 सदस्य के माध्यम से आय का स्त्रोत है। इससे आय से जुड़ी आंकड़ों का मान निम्न है जो आर्थिक स्थिति को दर्शाता है -

तालिका क्रमांक 1: मगरपारा क्षेत्र के परिवारों की आय का स्त्रोत के आंकड़े

क्रमांक	*आय का स्त्रोत*	*संख्या*	*प्रतिशत*
1	दैनिक मजदूरी	13	26
2	स्वयं का रोजगार	22	44
3	अन्य कार्य	15	30

व्याख्या

प्राप्त आंकड़ों के आधारपर हमने पाया है कि, दैनिक मजदूरी करने वाले परिवारों की संख्या 26 प्रतिशत है। स्वयं का रोजगार जैसे पान ठेला, गुपचुप ठेला, सब्जी ठेला, फल ठेला आदि इस प्रकार के स्वरोजगार करने वाले परिवारों की संख्या 44 प्रतिशत है, तथा अन्य कार्य हेतु जैसे किसी के दुकान में स्थाई रूप से कार्य करना, घर में स्थाई रूप से कार्य करना, आदि ऐसे परिवारों की संख्या 30 प्रतिशत है। इस स्त्रोत से प्रत्येक परिवार की आय प्रतिमाह 5000 से 10000 हजार के बीच है। इससे हम कह सकते है कि झुग्गी झोपडिघ्यों में रहने वाले लोगों की आर्थिक स्थिति आज के महंगाई के अनुसार कम है।

तालिका क्रमांक 2: मगरपारा क्षेत्र के परिवारों की घरेलू समान एवं अन्य व्यय (खर्च) के आंकड़े

क्रमांक	*व्यय (खर्च) प्रतिमाह*	*संख्या*	*प्रतिशत*
1	3000.00-5000.00	7	14
2	5000.00-7000.00	17	34
3	7000.00-10000.00	26	52

व्याख्या

प्राप्त आंकड़ों के आधार पर हमने पाया है कि घरेलू उत्पाद एवं अन्य व्यय हेतु 3000.00 - 5000.00 के बीच खर्च करने वाले परिवारों की संख्या 14 प्रतिशत है। इसी प्रकार 5000.00-7000.00 के बीच खर्च करने वाले परिवारों की संख्या 34 प्रतिशत है, तथा सबसे ज्यादा घरेलू उत्पाद एवं अन्य व्यय हेतु 7000.00-10000.00 के बीच खर्च करने वाले परिवारों की संख्या 52 प्रतिशत है। इससे स्पष्ट होता है कि बिलासपुर झुग्गीयों में निवासरत् परिवारों की आर्थिक स्थिति आय से ज्यादा व्यय है। जिसका कारण अन्य व्यय जैसे शराब, नशीली दवा, गुटका आदि में अधिक मात्रा में व्यय होता है। इस क्षेत्र के अधिकतर लोग इसके आदि रहते है जिससे उन परिवारों की आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर हो जाती है।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: यह कहां जा सकता है कि अशिक्षा, स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता का अभाव एवं आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण झुग्गी बस्तियों में रहने वाली अधिकांश परिवार किसी न किसी प्रकार के रोग से ग्रसित है। इन बस्तियों में रहने वाले लोगों के नशा मुक्त करने हेतु शासन द्वारा योजनाओं को क्रमबद्ध पालन करना चाहिए। जिससे यहाँ के लोगों को स्वास्थ्य, शिक्षा एवं जागरूक होकर अपने कार्यो को सुचारू रूप से कराया जा सकता है। इस क्षेत्र को साफ-सुथरे एंव गंदे पानी के निकासी हेतु स्वच्छ नालियों का निर्माण करना चाहिए। स्वास्थ्य हेतु स्वास्थ्य उपकेन्द्रों की स्थापना एवं समय-समय पर स्वास्थ्य शिविरों का आयोजन किया जाना चाहिए। सामान्य बीमारियों के कारणों के प्रति लोगों को जागरूक किया जाना चाहिए, जिससे वे रोगग्रस्त होने से बच सकें।

संदर्भ सूची

- चौधरी, पदमसिंह, ''गांवों से शहरों की ओर पलायन'', कुरूक्षेत्र, पृष्ठ-8-9, 2012
- भौमिक, डॉ. अभिजीत (2010), ''भारतीय सामाजिक संरचना एवं समस्या'' हिन्दी बुक सेंटर, दिल्ली
- गुप्ता, एम.एल. (2010), ''समाजशास्त्र'' साहित्य भवन, आगरा
- जोशी, ओमप्रकाश (2008), ''भारत में सामाजिक परिवर्तन'' रिसत्र पब्लिकेशन, जयपुर
- इंटरनेट से प्राप्त जानकारियाँ
- पाण्डेय, एस.एस. (2008), ''समाजशास्त्र'' टी.एम.एच., प्रकाशन, नई दिल्ली
- समाचार पत्रिका नई दुनिया, दैनिक भास्कर की रिपोर्टस
- उपाध्याय रमेश, (1996), ''हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकार'' राधा पब्किेशन्स, नई दिल्ली

अध्यापक की जिजीविषा एवं अस्मिता की नीलामी का साक्ष्यः दीक्षान्त

डॉ० पूजा शर्मा

हिन्दी व्याख्याता, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू-180006

शोध सारांश

लेखिका 'सूर्यबाला' के उपन्यास 'दीक्षांत' में भारतीय विद्यापीठों तथा कालेजों में व्याप्त भ्रष्टाचार की पोल खोली गई है। कालेज में प्राध्यापकों के पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष, विद्यार्थियों की घातक राजनीति और अनुशासनहीनता के कारण एक आदर्शवादी एवं सर्वाधिक योग्य शिक्षक आत्महत्या के कगार तक किस तरह पहुँचता है, इसी सच्चाई को लेखिका ने उपन्यास में व्यक्त किया हैं।

बीज शब्द

जिजीविषा, अस्मिता की नीलामी, विसंगतियाँ, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, व्यवस्था से समझौता, नरमेध, अन्तर्द्वन्द्व।

'मेरे संधिपत्र', 'अग्निपंखी', 'सुबह के इन्तजार तक' और 'यामिनी-कथा' उपन्यासों के माध्यम से धूम मचाने वाली लेखिका सूर्यबाला के उपन्यास 'दीक्षांत' में भारतीय विद्यापीठों तथा कालेजों में व्याप्त भ्रष्टाचार की पोल खोली गई है। कालेज में प्राध्यापकों के पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष और विद्यार्थियों की घातक राजनीति और अनुशासनहीनता के कारण एक आदर्शवादी एवं सर्वाधिक योग्य शिक्षक आत्महत्या के कगार तक किस तरह पहुँचता है इसका कच्चा चिट्ठा लेखिका उपन्यास में खोलती है। उपन्यास में लेखिका लिखती हैं, "हर व्यक्ति समर्थ, ओजस्वी, तख्तापलट या अपने बूते पर हासिल करने की स्थिति में नहीं होता। कुछ बेहद शान्त, संकोची, सात्विक और विनयी होते हैं। आज के अतिभ्रष्ट माहौल में इनकी भौतिक उपलब्धि प्रायः शून्य होती है। शर्मा-सर की तरह।"[1] उपन्यास 'शर्मा-सर' के विनाश की हद तक पहुँची हुई हताशा, निराशा एवं असफल जीवन की करुण गाथा है।

उपन्यास 1992 में प्रकाशित हुआ। सूर्य बाला की यह औपन्यासिक कृति शिक्षा व्यवस्था से जुड़ी है। शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार का मार्मिक चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। डॉ. मदन मोहन तरुण के शब्दों में, 'शिक्षण संस्थाओं में शिक्षेतर शक्तियों के निरन्तर बढ़ते प्रभाव, अन्य व्यावसायिक संस्थानों जैसा ही मूल्यविरहित वातावरण, साधना, अध्यावसाय तथा उच्चादर्शों के कठिन मार्ग से जीवन का परिष्कार करते हुए एवं अनेक विषयों पर अधिकार के स्थान पर शीघ्र गति सफलता ही होड़ा-होड़ी में मूल्यों एवं ज्ञान साधना के प्रति समर्पित अध्यापकों का निरन्तर घटता प्रभाव, उनके भीतर गहराती निराशा एवं वातावरण में अपनी आवश्यकता की तीव्रानुभूति ही इस उपन्यास का मुख्य विषय है। दीक्षांत की मर्मस्पर्शी यातना-कथा स्वाधीन संग्राम के त्याग एवं कर्तव्यों के प्रति निष्काम समर्पण के मूल्य से प्रेरित एक ग्रामीण विद्यालय के आदर्शनिष्ठ अध्यापक शर्मा के माध्यम से कही गयी है।"[2] उपन्यास की कथावस्तु आज की शिक्षा व्यवस्था पर करारी चोट है।

'दीक्षान्त' उपन्यास विद्याभूषण शर्मा के माध्यम से एक अध्यापक की जिजीविषा एवं अस्मिता की नीलामी का जीवन्त साक्ष्य है। 'शर्मा सर' एक ऐसे अध्यापक हैं जो बड़े श्रम एवं अध्यवसाय से अर्जित ज्ञान और संस्कारों को नयी पीढ़ी को सौंपना चाहते थे लेकिन समाज के बदलते मूल्यों ने उनकी सभी आकांक्षाओं को मटियामेट कर दिया। आधुनिक भारत में समाज का नैतिक मानदण्ड शिथिल हो गया है। आज छल-प्रपंच, झूठ-फरेब, हिंसा-प्रतिहिंसा, घात-प्रतिघात का युग है। इस परिवेश से एक ईमानदार, निष्ठावान और सच्चे व्यक्ति का समझौता नहीं हो पाता और फलस्वरूप अनेक विसंगतियाँ उभर कर सामने आती हैं।

अन्य क्षेत्रों की तरह आज शिक्षा-संस्थान भी धूर्तता के अड्डे बने हुए हैं। विद्यार्थी और शिक्षक का जो सम्बन्ध युगों-युगों से चला आ रहा था, वह समाप्तप्राय हो चुका है तथा चारों ओर भ्रष्टाचार का बोल-बाला है। 'दीक्षान्त' जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है 'दीक्षा का अन्त'। आगे बढ़ने से पहले उस 'एकलव्य' का प्रसंग नहीं भुलाया जा सकता जिसने गुरू द्रोणाचार्य को अपना अंगूठा दीक्षा में दिया था यद्यपि इसके पीछे गुरू द्रोण की छल-भावना थी।

उपन्यास में शिक्षकों के तीन वर्ग हैं। पहले वर्ग में 'शर्मा सर' हैं जो ईमानदार व्यक्ति हैं और अपना सारा ज्ञान विद्यार्थियों में बांटना चाहते हैं परन्तु हर पग पर उन्हें लांछित किया जाता है। दूसरे वर्ग में कॉटन मिल के मैनेजर की पत्नी श्रीमती सब्बरवाल, रीना सूरी एवं निखिला दास हैं जिनके लिए अध्यापकी का यह पेशा 'एकेडेमिक' माहौल का जायजा लेने तथा लोगों को अपनी सम्पन्नता की चकाचौंध से आकर्षित करने एवं आत्मसुख प्राप्त करने का माध्यम है। तीसरा वर्ग 'गुप्ता सर' और 'राजदान' जैसे अध्यापकों का है जो अपने पद को सुरक्षित रखने हेतु भ्रष्टाचार से समझौता किए रहते हैं। 'राधिका देवी बिसारिया कॉलेज' में अध्यापक-पद पर नियुक्त विद्याभूषण शर्मा विद्यार्थियों के व्यवहार से क्षुब्ध हैं परन्तु उन्हें हर समय 'रंगा स्यार, ब्लू जैकाल' जैसी फबतियाँ सुननी पड़ती हैं। शर्मा ऐसी फबतियाँ सुनकर प्रिंसिपल से शिकायत करना चाहते हैं परन्तु कॉलेज की व्यवस्था के आगे स्वयं ही हार मान लेते हैं। उन्हें याद आती

है अपने सहयोगियों की जो उन्हें भीतर ही भीतर यह सोचकर चुप करवा देती – "पागलपन मत करो। देखा नहीं, यादव, बंसल और वह, बुक कीपिंग वाले सेन गुप्ता को ... क्लास में लाख शोर मचने और बेइज्जत होने पर भी सुपरवाइजर और प्रिंसिपल के सामने यही कहते हैं, "जी, कुछ नहीं, नो प्रॉबलम सर।"[3] ऊपर से चुप व्यक्ति अवचेतन में उखड़ी व्यग्र मन:स्थिति का सामना करता है। सांस्कृतिक मूल्यों में बदलाव इतनी तेजी से आया है जिसकी कल्पना असम्भव थी। शर्मा सर अपने विद्यार्थियों को देख एक-पर-एक युग पीछे मुड़ते हैं तो याद आता है अपना जमाना जब किसी छोटी-बड़ी त्रुटि पर शिक्षक टोकते तो हफ्तों, पखवारों तक वह उस पछतावे से बाहर न निकल पाते। इस एक वाक्य के प्रति वह हमेशा सतर्क रहते, "विद्याभूषण! तुमसे यह उम्मीद नहीं थी।"[4] एक समय था जब शिक्षक को ईश्वर से भी ऊंचा स्थान दिया जाता था। कबीरदास गुरू और गोबिन्द में से पहले गुरू के ही चरणों का स्पर्श करना चाहते हैं लेकिन आज अपरिपक्व बुद्धि वाले दिशाभ्रष्ट विद्यार्थी के लिए 'शिक्षक' का कोई महत्व नहीं। वास्तव में चन्द व्यक्तियों के चाहने से व्यवस्था बदलती नहीं। आज के इस परिवेश में वही व्यक्ति सुखमय जीवन व्यतीत कर सकता है जो विद्यार्थियों से समझौता किए रहे।

आज का युग 'ट्यूशन' का युग है इस परिवेश में माता-पिता भी शिक्षकों के साथ कैसा व्यावहार करते हैं इसका पता श्रीमती ठक्कर के प्रोफेसर शर्मा के साथ किए गए व्यवहार से चलता है। जब भी शर्मा जी ठक्कर के बेटों को ट्यूशन पढ़ाने जाते, उनका बेटा यह कहकर घर से निकल जाता, "अभी आता हूँ सर, बंटी है घर में तब तक उसे पढ़ाइए।"[5] यह सुनकर शर्मा जी को लगता, "जैसे कोई दसवीं का लड़का नहीं बल्कि किसी कंपनी का सीनियर इग्जीक्यूटिव अपने असिस्टेंट को आवश्यक निर्देश देता निकल गया हो।"[6] इसी तरह मिसेज ठक्कर हमेशा इसी जोड़ में लगी रहती कि, "दो बच्चों को एक स्थान पर पढ़ने में ट्यूशन शुल्क आखिर पूरा क्यों दिया जाये क्योंकि एक ही घर में दो-दो ट्यूशन का मतलब मास्टर के आने-जाने के समय और साइकिल चलाने की मेहनत में बचत होती है।"[7] इसी मानसिकता के कारण अक्सर वह ऐसे काम बता देतीं, "मास्टर जी, जरा लौटते हुए लक्ष्मी आयल मिल में ये थैला देते आइएगा।"[8] ऐसी उपेक्षा और अभद्र व्यवहार से शर्मा जी या फिर कोई भी ईमानदार व्यक्ति हताश हो जाता है परन्तु परिस्थिति-जन्य विवशता के सामने लाचार धैर्य और सहन-शक्ति के मलबे के नीचे दबने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं होता। घर की आर्थिक स्थिति के कारण ही शर्मा जैसे नेक व्यक्ति भी ट्यूशन देने पर विवश होते हैं। उनकी आर्थिक स्थिति कितनी दयनीय है इसका पता इस घटना से ही चलता है जिसमें शर्मा जी ठक्कर के घर मिली एक कप चाय का हिसाब लगाते हैं -"एक कप चाय रोज के हिसाब से महीने भर की चीनी, चाय और दूध ही जोड़ा जाए तो दस-पन्द्रह रुपये महीने की बचत और दस -पन्द्रह रुपये का मतलब है बांह पर मसके हुए ब्लाउज वाली कुंती के लिए एक नया ब्लाउज पीस, विनय के फटे स्कूल बैग की जगह एक नया सस्ता बैग या उनके कॉलेज ले जाने के टिफिन के लिए अल्यूमीनियम के डिब्बे की जगह नया स्टील का डिब्बा।"[9]

शिक्षण संस्थान आज घूसखोरी का अड्डा बन गए हैं। आवारा और बदमाश विद्यार्थी पैसे के बल पर पूरी व्यवस्था को अपने अधिकार में रखते हैं। शर्मा के कॉलेज में रतन बरुआ का राज है जो पिता की दौलत के बलबूते सोने की चौन पहन कमीज के बटन खुले रख अपनी औकात प्रकट करता है। सभी शिक्षक उसे 'नकल' करवाकर पास करवाते हैं। परन्तु मर्यादाप्रिय शर्मा जी जब उससे समझौता नहीं करते तो उन्हें पूरे कॉलेज में बदनाम किया जाता है। रतन बरुआ ने प्रोफेसर शर्मा का रास्ता रोककर अपने विषय में पास करने को कहा तो क्रोध से उबल पड़े शर्मा साहिब – "बकवास बन्द करो और दफा हो जाओ यहाँ से ... मेरे विषय में नम्बर घटाने-बढ़ाने या पास-फेल करने का अधिकार सिर्फ मेरा है... तुम प्रिंसिपल, वाइस प्रिंसिपल तक जाकर अपना सोर्स आजमा सकते हो... इस मुद्दे पर मैं झुकने वाला नहीं हूँ।"[10] ऐसे व्यक्तियों की आज के समाज में कोई कीमत नहीं। शर्मा को बदनाम किया जाता है। अपने ही विषय के विभागाध्यक्ष (जो स्वयं तृतीय श्रेणी में पास हैं) अपने से जूनियर पीएच.डी. और कर्मठ व्यक्ति को सहन नहीं कर पाते, इस मुद्दे को और अधिक उछालते हैं क्योंकि बरुआ को उन्होंने आश्वासन दिया था कि वह जुलाई में री-इग्जामिनेशन में उसे पास करवा देंगे किन्तु शर्मा सर के कारण ऐसा नहीं कर पाते। डॉ. रतन कुमार पांडेय के शब्दों में-"राधिका देवी बिसारिया कॉलेज' उत्तर भारत का कोई भी कॉलेज हो सकता है। इसमें अतिरंजना का जरा भी अंश नहीं है। जहां रतन बरुआ जैसे उद्दंड विद्यार्थी पलते हैं, जो सीधे-सीधे शिक्षकों पर समय-असमय कीचड़ उछालते हैं। शिक्षक राजनीति का हिस्सा बनकर दूसरे शिक्षक को क्लास में पढ़ाने से रोकने की कोशिश करते हैं। परीक्षा नकल के बल पर और पैसे की ताकत से पास करने का आत्मविश्वास रखते हैं।"[11]

व्यवस्था से समझौता ही एक मात्र साधन है आज के परिवेश से जूझने के लिए। कॉलेज में 'डिसूजा' जैसे अध्यापक भी ईमानदार हैं परन्तु हालात देखते हुए वह व्यवस्था से समझौता ही एकमात्र उपचार मानते हैं अपने को हताशारहित रखने के लिए। डिसूजा तनाव-ग्रस्त शर्मा को सचेत करता है। शर्मा के पूछने पर कि उसे कॉलेज में जगह-जगह बदनाम क्यों किया गया कि लड़कों ने उसे मारा है या फिर सबसे अच्छा पढ़ाने पर भी उसके विरुद्ध शिकायतें क्यों की गईं, डिसूजा आज की व्यवस्था से समझौता न करना ही व्यक्ति के तनाव का मूल कारण बताता है – "दोस्त, बरुआ-परिवार से विद्यालय को हजारों के डोनेशन और जाने कितनी ऊपरी सहायता मिलती है। फांस तो संस्थाओं के लिए हमारे-तुम्हारे जैसे निकम्मे जीव होते हैं, जिनसे उनका कोई स्वार्थ नहीं सधता, आजकल हर संस्था सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, पोल्ट्री-फार्म के नाम पर सोने के अंडे देने वाली मुर्गियों का एक खासा कलेक्शन करना चाहती है,बस...।"[12]

आज शिक्षा संस्थान राजनीति का प्रमुख क्षेत्र बन गए हैं। राजनीतिक छलछन्दों की धूल मनुष्य को अपने इर्द-गिर्द लपेटे रहती है। इस राजनीतिक दौर में 'मेरिट' और डिग्रियों' की जगह भाई-भतीजावाद का बोलबाला है। कॉलेज के चेयरमैन पर एम.एल.ए. का दबाव है कि उनके एम.ए. पास भांजे को कॉलेज में नियुक्त किया जाए इसलिए चेयरमैन प्रिंसिपल राजदान से मिस्टर शर्मा को निकाल एम.एल.ए. के भांजे को नियुक्त करने का आदेश देता है। राजदान जानता है कि ऐसा करना 'नरमेध' है परन्तु चाहते हुए भी राजदान को मिस्टर शर्मा से 'इस्तीफा' मांगना पड़ता है। ऐसी परिस्थितियों में व्यक्ति कितना विवश और अकेला हो जाता है कि उसे शर्मा सर की तरह भिखारियों की तरह गिड़गिड़ाना पड़ता है – "मैं अकेला नहीं सर, मेरी पत्नी, स्कूल जाते बच्चे, गांव में बूढ़ी माँ, मेरे साथ अशक्त, अबोध, मुझ पर पूरी तरह निर्भर, एक निर्धन परिवार है सर।"[13] लेखिका आज की भ्रष्ट व्यवस्था का चित्रण करते हुए शिक्षण केन्द्र को अपना आधार विषय बनाती है। नि:सन्देह आज शिक्षण संस्थाएँ भ्रष्टाचार का अड्डा बनी हुई हैं परन्तु कहीं भी लेखिका चेतना-जाग्रत नहीं कर पाई। शर्मा सर अकेला व्यक्ति है जो इस भ्रष्ट व्यवस्था से जूझते-जूझते अपनी नौकरी खो देता है। ईमानदार व्यक्ति नितान्त अकेला है और ऐसी विकट परिस्थितियों में उसके पास दो ही विकल्प हैं – या तो वह परिस्थितियों से जूझते समाज के सामने चुनौती के रूप में खड़ा हो या फिर कायर व्यक्ति की तरह आत्महत्या कर ले। शर्मा सर भी आत्महत्या ही अन्तिम परिणति मानते हैं। कभी नशा न करने वाला 'विद्याभूषण' नशे में धुत होकर एक विकट अन्तर्द्वन्द्व की ऊहापोह में बेगम-बुर्जी के पास नाले में छलांग लगा कर आत्महत्या का प्रयास करता है और बाद में अस्पताल में दम तोड़ देता है।

लेखिका दो युगों की बात करती है एक ओर तो विद्याभूषण जैसे विद्यार्थी थे जो शिक्षक का सम्मान करते थे, वहीं आज के युग में ऐसे विद्यार्थी हैं जो हड़ताल, तोड़-फोड़ ही शिक्षा का एकमात्र लक्ष्य मानते हैं। हर समय शर्मा सर का उपहास उड़ाने वाले विद्यार्थी उनकी मृत्युपरान्त अस्पताल में आकर प्रिंसिपल के विरुद्ध नारे लगाकर शर्मा सर के शव को फूलों से सम्मानित करना चाहते हैं। इस समय राजनाथ के ये शब्द मौजूदा व्यवस्था पर कितने सटीक बैठते हैं "नालायको! तुम सब उन्हीं में तो हो न जो निचली मंजिल से शर्मा को गुजरते देखकर 'चींटे' और 'केंचुए'... की फबतियाँ कसा करते थे ... तुम से कितनों ने आज के पहले तक अपनी गुरू-भक्ति का एक कतरा भी उन्हें अर्पित किया था? ... आज भी क्या तुम सब सिर्फ कॉलेज बन्द करवा देने के शगली मंसूबों को छोड़कर सचमुच सच्चे सम्मान और सहानुभूति से भरकर यहाँ आए हो या सिर्फ एक हुल्लड, एक उत्तेजना और तमाशबीनी के शौक से..."[14] आज की शिक्षा संस्थाओं की यथार्थ स्थिति का चित्रण लेखिका ने किया है परन्तु आदर्शवादी अध्यापक द्वारा आत्महत्या दिखलाकर क्या लेखिका आदर्शों की हत्या नहीं करती? उपन्यास की भूमिका में लेखिका लिखती हैं कि मिस्टर शर्मा आत्महत्या नहीं करते बल्कि उनका पांव फिसलने से वह नाले में गिर जाते हैं परन्तु ऐसा नहीं है। नाले में कूदने से पहले ही मिस्टर शर्मा ऐसे विचारों की कशमकश में हैं - "...कूद पड़घे हरहराती, हलकोरती लहरों में इस बुर्जी से...खत्म, सब कुछ खत्म...।"[15]

शर्मा 'सर' अध्यापक थे, चाहे 'टेम्परेरी' उस पर एकाध ट्यूशन भी देते थे परन्तु उनके घर की आर्थिक स्थिति इतनी चिन्तनीय है कि हर समय वह बच्चों की पढ़ाई और रोटी के खर्चे को लेकर चिन्तित रहते हैं। अन्त में तो उनकी आर्थिक स्थिति पाठक को वेदना से भर देती हैं जब शर्मा 'सर' का शव ले जाने के समय 'कफन' की आवाज कानों में पड़ते उनकी पत्नी कुंती पास खड़े व्यक्ति को बुलाती है और "कानों से दो पतली सोने की बालियाँ निकाल उसके हाथों में देकर जैसे निगाहों से पूछा हो - इतने में हो जायेगा क्या?"[16] ये पंक्तियाँ 'गोदान' की धनिया की याद दिलाती हैं जिसने सुतली बेचकर कमाए गए बीस आने पंडित की हथेली पर रख होरी का 'गोदान' करवाया था।

लेखिका अन्त में आशा की किरण संजोती है। जब निराश्रित कुंती अपने बच्चों को लेकर अपने गांव लौटने का निश्चय करती है तो उसके पति मिस्टर शर्मा के ही दो शिष्य विजयेन्द्र और शोशक कुंती को अपना पूरा सहयोग देते हैं। पूरी कहानी पाठक को ऐसी एक वेदनानुभूति से भर देती है। इन शिष्यों को देखकर लगता है कि मानवता आज भी जिन्दा है। इसी तरह अन्त में विजयेन्द्र के पिता गांव लौटती हुई कुंती को रोक कर आग्रह करते हैं, "आपसे सिर्फ यह कहना है कि आपके दोनों बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का भार आप मुझे सौंप सकेंगी?"[17]

एक क्षण के लिए आभास होता है कि विजयेन्द्र के पिता करुणावश ऐसी उदारता प्रकट कर रहे थे परन्तु वस्तु-स्थिति ऐसी नहीं थी। विजयेन्द्र के पिता शर्मा के पिता के शिष्य थे और उन्होंने ऐसा कार्य करने के पीछे अपनी इच्छा यूँ प्रकट की - "यह मेरे गुरू के पुत्र के परिवार के लिए मेरी छोटी सी गुरूदक्षिणा होगी।"[18] विजयेन्द्र के पिता की यह 'गुरूदक्षिणा' भारतीय संस्कृति को जीवित रखे है परन्तु खेद का विषय तो यह है कि आज की युवा पीढ़ी में ऐसी मानसिकता नहीं है। यही इस उपन्यास का वर्ण्य-विषय है। उपन्यास वर्तमान युग की भ्रष्ट प्रणाली को सजीवता के साथ उजागर करता है। लेखिका ने 'शर्मा सर' के माध्यम से एक ईमानदार निष्ठावान, विनम्र और सच्चे व्यक्ति की यातना-कथा अपने करुणतम अपितु विश्वसनीय रूप में उतारी है। उपन्यास आज की भ्रष्ट शिक्षा-पद्धति से घुटते शर्मा सर के माध्यम से हर आदर्श अध्यापक की पीड़ा को उद्घाटित करता है। उपन्यास यातना के विरुद्ध मानवीयता के नये उद्गम स्त्रोतों की ऐसी ही एक तलाश है और इससे एक अत्यन्त परिवर्तनवादी और क्रान्तिकारी दृष्टि बनती हुई दीखाई देती है।

संदर्भ

1. सूर्यबाला, दीक्षांत, पृ.9
2. उदृधृत, http//ir.unishivsji.ac.in
3. सूर्यबाला, दीक्षांत, पृ.15
4. वही, पृ.17
5. वही, पृ.32
6. वही, पृ.32
7. वही, पृ.34
8. वही, पृ.34
9. वही, पृ.35
10. वही, पृ.62
11. वही, फ्लैस कवर से
12. वही, पृ.67
13. वही, पृ.81
14. वही, पृ.95-96
15. वही, पृ.91
16. वही, पृ.108
17. वही, पृ.112
18. वही, पृ.112

भारत में पंचायती राज व 'ग्राम सभा' की भूमिका

बृजेन्द्र कुमार मिश्र

सहायक-प्राध्यायक, राजनीति शास्त्र, एस0आर0के0 (पी.जी.) कॉलेज फिरोजाबाद, उ0प्र0

शोध-सारांश

स्थानीय स्तर पर जनता की सत्ता में सहभागिता और अपना विकास व न्याय सुनिश्चित करने हेतु संविधान में स्थानीय स्वशासन के आदर्श को अपनाया गया। नियोजित विकास की प्रक्रिया में जनसहभागिता हेतु 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया तथा 1957 में बलवन्त राय मेहता कमेटी की संस्तुतियों के आधार पर त्रिस्तरीय पंचायती राज प्रणाली की शुरूआत हुयी। किन्तु 73वें संविधान संशोधन 1992, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की दिशा में मील का पत्थर साबित हुआ। संवैधानिक उपबन्धों के कारण पंचायती राज व्यवस्था में आशातीत परिवर्तन हुए; जन सहभागिता जनचेतना, व सामाजिक न्याय में वृद्धि हुयी। पंचायतें अधिक स्वायत्त व जवाबदेह हुयी। तथापि प्रतिनिधिक लोकतन्त्र की कमियों और प्रत्यक्ष लोकतन्त्र की भावना के अनुरूप ग्रामसभा की शक्तियों और अधिकारों में वृद्धि अपेक्षित है।

प्रमुख शब्द- लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण, सहभागी लोकतंत्र, प्रतिनिधित्यात्मक, ग्राम स्वराज्य।

लोकतांत्रिक शासन की अवधारणा इस तथ्य में निहित है कि शासन के सभी स्तरों पर जनता शासन के कार्यों व संचालन में सहयोग करें व सहभागी बने। ऐसी दशा तभी सम्भव है, जब लोगों को अपने ऊपर स्वयं शासन करने एवं अपने अनुकूल व्यवस्था संचालन का अवसर प्राप्त हो। इस दिशा में स्थानीय स्वशासन ही वह माध्यम हैं, जिसके द्वारा प्रतिनिधित्यात्मक लोकतन्त्र को सहभागी लोकतन्त्र का रूप दिया जा सकता है।

''जन साधारण का शासन के साथ सीधा सम्पर्क तथा उनकी नागरिक आवश्यकताओं की पूर्ति का आरम्भ स्थानीय स्तर से ही आरम्भ होता है। यह स्थानीय क्षेत्र चाहे शहर हो या गॉव। इसलिए इन स्तरों पर नागरिक सुविधाओं को पहुॅचाने, विकास कार्य सम्बन्धी निर्णय लेने, उन्हे लागू करने तथा इस स्तर पर लोगों की आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं को एकत्रित करने के लिए किसी न किसी रूप में संस्थायें बनायी जाती हैं। लोकतांत्रिक सिद्धान्तों की मांग है कि यह संस्थाये प्रतिनिधित्यात्मक और उत्तरदायी हो, इसलिए लोकतांत्रिक देशों में स्थानीय स्वशासन को महत्व दिया जाता है।''[1]

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण पर जोर एवं महात्मा गाँधी के ग्रामीण स्वतन्त्रता तथा स्थानीय स्वशासन के विचारों के कारण इसे संविधान की सातवीं अनुसूची में 'राज्य सूची' के अन्तर्गत रखा गया तथा संविधान के अनुच्छेद 40 में नीति निदेशक तत्वों में शामिल किया गया। इसी परिप्रेक्ष्य में और नियोजन में लोगों की सहभागिता को सुनिश्चित करने के लिए पंचायती राज संस्थाओं को सक्रिय बनाने के लिए लगातार प्रयास किये गये।

1952 में पंचवर्षीय योजनाओं की क्रियान्विति में जनता की सहभागिता को सुनिश्चित करने के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया किन्तु यह स्थानीय लोगों में सहभागिता की आवश्यक रूचि नही उत्पन्न कर सका। अत: स्थानीय शासन में सुधार हेतु 1956 में बलवन्त राय मेहता की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की गयी, जिसने त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की सिफारिश की। 1977 में अशोक मेहता की अध्यक्षता में गठित समिति ने पंचायती राज व्यवस्था में सुधार हेतु दो स्तरीय पंचायतों की सिफारिश की किन्तु पंचायती राज के सन्दर्भ में संवैधानिक प्रावधान न होने के कारण लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का सपना वास्तविक रूप से साकार न हो सका।

''जून 1986 में भारत सरकार ने प्रसिद्ध विधि वेत्ता एल0एम0 सिंघवी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया जिसे पंचायती राज व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए एक आधार-लेख तैयार करने के लिए कहाँ गया। इस समिति ने यह सिफारिश की कि पंचायती राज व्यवस्था को संविधान द्वारा मान्यता दी जानी चाहिए और इनके गठन, चुनाव कार्यक्षेत्र तथा शक्तियों आदि के विषय में संविधान में एक पृथक अध्याय जोड़ा जाए।''[2]

1989 में पी. के थुंगन समिति ने भी स्थानीय शासन की संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देने की संस्तुति की तथा समिति ने सिफारिश किया कि पंचायती राज व्यवस्था में एकरूपता स्थापित करने के लिए संघ सरकार द्वारा एक मॉडल पंचायती राज एक्ट पारित किया जाये।

उपर्युक्त विमर्श और सिफारिशों के परिणम स्वरूप 73वें संविधान संशोधन 1992 द्वारा पंचायती राज को संवैधानिक आधार प्रदान किया गया है इनके द्वारा संविधान में भाग 9 और 11वीं अनुसूची जोड़ी गयी है। इसमें अनुच्छेद 243 और अनुच्छेद 243 क से 243 ण तक के अनुच्छेद है।

जिसके परिणाम स्वरूप पंचायतों की शक्तियों में पर्याप्त वृद्धि हुयी है, किन्तु प्रतिनिधिक लोकतन्त्र की बुराइयों ने पंचायतों की कार्य पद्यति व संचालन पर प्रभाव छोड़ा है। इसलिए स्थानीय स्वशासन को लोकतांत्रिक मूल्यों व मानकों के अनुरूप बनाने के लिए ग्राम सभा की शक्तियों में वृद्धि की आवश्यकता है। ग्रामसभा की कार्यकारिणी ग्राम पंचायत को सभा के प्रति उत्तरदायी बनाया जाये, इसे एक संस्थात्मक स्वरूप दिया जायें।

''पंचायत के सभी स्थान पंचायत क्षेत्र के निर्वाचन क्षेत्र से चुने गये व्यक्तियों द्वारा भरे जायेगें। निर्वाचकों को ग्राम सभा संज्ञा दी गई है। एक पंचायत क्षेत्र में आने वाले गॉवों की निर्वाचन नामावली में दर्ज सभी लोग ''ग्राम सभा' के नाम से जाने जायेगें। इस प्रकार मूल स्पर्शी प्रतिनिधिक लोकतन्त्र की स्थापना होगी।''[3]

ग्राम सभा की शक्तियों के सन्दर्भ में संविधान के अनुच्छेद 243(क) में प्रावधान किया गया है कि ''ग्राम सभा ग्राम स्तर पर ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृत्यों का पालन कर सकेगी, जो कि राज्य के विधान मण्डल द्वारा, विधि द्वारा उपबन्धित किये जायें''[4]

इसका तात्पर्य है कि ग्राम सभा की शक्तियों व कार्यो का उल्लेख संविधान में नही किया है तथा इसके लिए राज्य विधान मण्डल को अधिकृत करता है। विभिन्न राज्यों में इस सन्दर्भ में भिन्न-भिन्न प्रावधान किये गये है।

उत्तर प्रदेश पंचायती राज एक्ट 1947 के अध्याय-3 में ग्राम सभा की बैठकों के विषय में प्रावधान किया गया है कि ''प्रत्येक ग्राम सभा की प्रतिवर्ष दो सामान्य बैठकें होगी। एक खरीफ की फसल कटने के तुरन्त बाद और दूसरी रबी की फसल कटने के तुरन्त बाद। जिनकी अध्यक्षता सम्बन्धित ग्राम पंचायत के प्रधान द्वारा की जायेगी।

प्रतिबन्ध यह है कि प्रधान नियत प्राधिकारी द्वारा लिखित रूप से मॉग किये जाने पर अथवा सदस्यों की संख्या रूप से मॉग किये जाने पर 1/5 की मॉग पर, ऐसी मॉग के दिनांक से 30 दिन के भीतर किसी भी समय असाधारण बैठक बुला सकता हैं। यदि प्रधान यथा पूर्वोक्त बैठक बुलाने से चूक करे तो नियत प्राधिकारी नियत की जाने वाली अवधि के भीतर ऐसी बैठक बुला सकता है ग्राम सभा की किसी बैठक की गणपूर्ति की संख्या सदस्यों की संख्या के 1/5 होगी।''[5]

ग्राम सभा की सामान्यतया वर्ष में दो बार बैठक होती हैं किन्तु ये बैठकें मात्र प्रतीकात्मक ही होती है। इनका संस्थात्मक स्वरूप विकसित नही हो पाया है। सभी ग्राम पंचायतों में बैठक हेतु पंचायत भवन व आधार भूत ढांचा उपलब्ध नही है।

उ0प्र0 पंचायती राज एक्ट 1947 में ग्राम सभा की शक्तियों और कार्यो का उल्लेख किया गया है कि ''ग्राम सभा निम्नलिखित मामलों पर विचार करेगी और ग्राम पंचायत को सिफारिश और सुझाव दे सकती है-

(क) ग्राम पंचायत के खातों का वार्षिक विवरण, पूर्ववर्ती वित्तीय वर्ष की प्रशासन की रिपोर्ट और अन्तिम लेखा परीक्षा टिप्पणी और उस पर दिये गये उत्तर, यदि कोई हो;

(ख) पूर्ववर्ती वर्ष से सम्बन्धित ग्राम पंचायत के विकास कार्यक्रमों और चालू वित्तीय वर्ष के दौरान लिए जाने के लिए के लिए प्रस्तावित विकास कार्यक्रम की रिपोर्ट;

(ग) ग्राम में समाज के सभी वर्गों के बीच एकता और समन्वय की अभिवृद्धि;

(घ) ग्राम के भीतर प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम ऐसे अन्य मामले जैसेनियत किये जायें;

(ड़) ऐसे अन्य मामले जैसे नियत किये जायें;

(4) ग्राम पंचायत ग्राम सभा के सिफारिशों और सुझाव पर सम्यक् विचार करेगी;

(5) ग्राम सभा निम्नलिखित कृत्यों का सम्पादन करेगी-

(क) सामुदायिक कण्याण कार्यक्रमों के लिए स्वैच्छिक श्रम और अंशदानजुटाना;

(ख) ग्राम से सम्बन्धित विकास योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए हित अधिकारी की पहचान क्रियान्वयन में सहायता पहुँचाना;

(ग) ग्राम से सम्बन्धित विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में सहायता पहुंचाना।'[6]

ग्राम सभा की पर्याप्त शक्तियाँ दिये जाने के बावजूद भी निरक्षरता, जगरूकता के अभाव के कारण, वास्तविक रूप से क्रियान्वयन करने में असमर्थ पाती है। इसके अतिरिक्त नौकरशाही का परम्परागत स्वरूप, अधिकारों के क्रियान्वयन में बाधा उत्पन्न करता है।

केरल, बिहार, राजस्थान आदि राज्यों के पंचायती राज एक्ट में यह प्रावधान है कि ग्राम पंचायत, ग्राम सभा के सिफारिशों और सुझावों पर सम्यक् विचार करेगी किन्तु ये सुझाव ग्राम पंचायत के लिए बाध्यकारी नही है। किन्तु केरल राज्य के पंचायती राज एक्ट में यह प्रावधान किया गया है कि ''किसी भी परिस्थिति में ग्राम सभा के निर्णयों को ग्राम पंचायत कार्यान्वयन करने में विफल रहती है तब अध्यक्ष ग्राम सभा के सम्मुख इसके कारणों का स्पष्टीकरण देना पडेघ्गा।''[7]

ग्राम पंचायत, अपना कार्य सही ढ़ग से कर रही है या नही, इस हेतु निगरानी समिति की भी व्यवस्था होनी चाहिए। इस सन्दर्भ में बिहार पंचायती राज एक्ट 2006 में कहा गया है कि ''ग्राम सभा कों, ग्राम पंचायत द्वारा उस ग्राम स्तर पर क्रियान्विति किये जा रहे सभी कार्यों, स्कीमों और अन्य कार्यकलापों की देखरेख के लिए निगरानी समितियाँ गठित करने का अधिकार है निगरानी समितियाँ एक या अधिक हो सकती है। इन निगरानी समितियों के सदस्य मुखिया उपमुखियाँ और ग्राम पंचायत के निर्वाचित सदस्यों को छोड़कर ग्राम सभा का कोई भी सदस्य हो सकता हैं।''[8]

प्रत्यक्ष लोकतन्त्र को बढ़ावा देने तथा आम जनता की सहभागिता को सुनिश्चित करने के लिए वार्ड सभा का भी प्रावधान कई राज्यों में किया गया है। राजस्थान के पंचायती राज अधिनियम के अध्याय-2 में वार्ड सभा का प्रावधान किया गया है। ''पंचायत के प्रत्येक वार्ड को धारा-12 के उपधारा-2 के प्रावधानों के अनुसार एक वार्ड सभा होगी जिसमें एक पंचायत सर्कल में वार्ड के सभी वयस्क व्यक्ति शामिल होगें।

प्रत्येक वर्ष वार्ड सभा की कम से कम दो बैठक होगी तथा वित्तीय वर्ष की प्रत्येक छमाही में एक बैठक होगी। बशर्ते वर्ष की प्रत्येक छमाही में एक बैठक होगी। बशर्ते कि वार्ड सभा के सदस्यों की कुल संख्या के दसवें से अधिक सदस्यों द्वारा लिखित रूप से मॉगे जाने पर या यदि पंचायत, पंचायत समिति, जिला परिषद् या राज्य सरकार द्वारा आवश्यक हो तो वार्ड सभा की बैठक आयोजित की जायेंगी।''[9]

ग्राम सभा की शक्तियों के सन्दर्भ में PESA ACT 1996 (Pan Chayats Extension to the scheduled) महत्वपूर्ण है। इस अधिनियम द्वारा संविधान के भाग-9 के पंचायतों से जुड़े प्रावधानों का जरूरी संशोधन और छूट के साथ पॉचवी अनुसूची के अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तारित करता है। इस अधिनियम के

अन्तर्गत ग्रामसभा को सबसे मूल इकाई माना गया है तथा ग्राम सभा को विशेष शक्तियॉ दी गयी है। पेसा के अन्तर्गत ग्राम सभाओं को विकासात्मक: भूमि अधिग्रहण से पहले परामर्श, भूमि अलगाव को रोकना सभी विकासात्मक परियोजनाओं की पूर्व स्वीकृति और आदिवासी उपयोजना पर नियन्त्रण', पारम्परिक कानूनों और रीति रिवाजों के अनुसार विवाद का समाधान प्राकृतिक संसाधनों का स्वामित्व और प्रबन्धन की शक्तियाँ दी गयी है।

अत: गैर अनुसूचित क्षेत्रों में ग्राम सभा को मजबूत बनाने के लिए पेसा एक्ट के प्रावधानों को पंचायती राज अधिनियम में शामिल करके लागू करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त ग्राम पंचायतें के उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करने के लिए ग्राम पंचायत के प्रधान को पद्च्युत करने का भी प्रावधान है उत्तर प्रदेश के पंचायती राज एक्ट में प्रावधान है कि ''ग्राम सभा ऐसी बैठक में जो इस प्रयोजन के लिए विशेष रूप से बुलाई जाये और जिसकी कम से कम 15 दिन की पूर्व सूचना दी जाये, ग्राम सभा के उपस्थिति और मतदान करने वाले सदस्य के दो तिहाई बहुतम से प्रधान को हटा सकती है।

(क) धारा-11 में किसी बात के होते हुए भी, उपधारा (1) के अधीन किसी बैठक के गणपूर्ति ग्राम सभा के एक तिहाई सदस्यों से होगी;

(ख) प्रधान को हटाने की बैठक उसके निर्वाचन के दो वर्ष के भीतर नही बुलाई जायेगी।''[10]

इस प्रकार इेस प्रतिनिधियों को वापस बुलाने के अधिकार या 'राइट टू रिकाल' की संज्ञा दी जा सकती है। किन्तु प्रक्रियागत जटिलताओं के कारण इस अधिकार का उपयोग बहुत न्यून रहा है। ग्राम प्रधान के पदच्युत करने के लिए दो वर्ष के पश्चात् ही प्रस्ताव लाया जा सकता है तथा दो तिहाई बहुमत का प्रावधान बहुत अधिक है। इसे संशोधन करके सामान्य बहुमत होनी चाहिए।

कोविड-19 के दौर मे 'केरल मॉडल सफल रहा है। केरल के पंचायती राज एक्ट में ग्राम सभा को सार्वजनिक स्वास्थ्य गातिविधियों विशेषकर महामारियों व परिवार कण्याण की सहायता करने की जिम्मेदारी दी गयी है। जिसके कारण केरल, कोरोना के प्रसार व मृत्युदर को नियंत्रित करने में सफल रहा है।

उत्तर प्रदेश में 'ग्राम सभा' की भूमिका को सशक्त करने के लिए आवश्यक है कि दूसरे राज्यों के पंचायती राज एक्ट के महत्वपूर्ण प्रावधानों को शामिल कर एक मजबूत संवैधानिक ढ़ाचा स्थापित किया जायें।

''पंचायती राज की सफलता केवल ग्रामीण स्तर पर स्थानीय स्वशासन की सक्रियता के लिए ही महत्वपूर्ण नही है अपितु यह देश में लोकतन्त्र के विकास के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रशिक्षण स्थल तथा राजनीतिक समाजीकरण के लिए उचित साधन के रूप में लगभग अनिवार्य है।''[11]

इस प्रकार निष्कर्षत: कह सकते है कि ग्राम सभा के शक्तियों में वृद्धि से निर्णय लेने की प्रक्रिया का विकेन्द्रीकरण होगा। जिससे अलगाव की भावना कम होगी। सरकारी योजनाओं व कार्यक्रमों का बेहतर तरीके से क्रियान्वयन किया जा सकेगा। जिससे तृणमूल स्तर तक लोकतन्त्र की पहुँच होगी और गॉधी जी के 'ग्राम स्वराज्य' की अवधारणा साकार हो सकेगी।

संदर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय शासन और राजनीति- ए0एस0 नारंग, गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण 2013, पृष्ठ-195
2. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था- एस0एम0सईद, भारत बुक सेन्टर लखनऊ, संस्करण- 2019, पृष्ठ-421।
3. भारत का संविधान एक परिचय- डी0डी0 बसु, Lexis Nexis प्रकाशन गुरूगॉव हरियाणा, संस्करण- 13, 2020 पृष्ठ 343।
4. भारत का संविधान - प्राक्कथन डॉव जय जय राम उपाध्यायए Central Law Agency इलाहाबाद संस्करण : 2019 पृष्ठ-122।
5. संयुक्त प्रान्त पंचायत राज अधिनियम, 1947 अध्याय-3, पृष्ठ-14
6. संयुक्त प्रान्त पंचायत राज अधिनियम, 1947 अध्याय-3, पृष्ठ-14
7. केरलपंचायतीराज एक्ट एण्ड रुल्स, अध्याय-2 ग्राम सभा, पृष्ठ-39
8. बिहार पंचायती राज एक्ट-2006, अध्याय-2, पृष्ठ-8
9. राजस्थान पंचायती राज एक्ट 1994एअध्याय-2, पृष्ठ-3
10. संयुक्त प्रान्त पंचायत राजअधिनियम 1947, अध्याय-3, पृष्ठ 33
11. भारतीय शासन राजनीति-ए.एस नारंग गीतांजलि पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण- 2013, पृष्ठ 205 व 206।

यौन स्वास्थ्य शिक्षा की आवश्यकता

डॉ० बृजेश कुमार पाण्डेय

एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, संत विनोबा पी०जी० कालेज, देवरिया, उ०प्र०

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा काम या सेक्स उसकी प्राकृतिक आवश्यकता है। यौन स्वास्थ्य शिक्षा एक शैक्षिक कार्यक्रम है, जिसका रूपरेखा मानव कामुकता को इसके जैविक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक-सांस्कृतिक एवं नैतिक आयामों को ध्यान में रखकर बनाई गयी है। यौन स्वास्थ्य शिक्षा मुख्य रूप से व्यक्ति, आत्मबोध, निजी सम्बन्धों, मानव कामुकता विकास, प्रजनन एवं यौन व्यवहार पर ध्यान केन्दित करता है। मानव कामुकता यौन शिक्षा का बुनियादी भाग है। इससे समग्र व्यक्तित्व बनता है, जिसमें मानव प्रजनन तंत्र और इसकी कार्यप्रणाली महिला या पुरुष होने के कारण मनुष्य का रवैया और समाज एवं विपरीत लिंग होने के सदस्यों के सम्बन्ध जैसी बातों का समावेश है। लैंगिकतता से जुड़े जैविक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक- सांस्कृतिक एवं नैतिक पहलू भी इसमें समाये रहते है, जिससे मनुष्य दूसरों का प्रजनन की प्राणी के रूप में आदर करना सीखता है और उनके व्यवहारों के विषय में महत्त्वपूर्ण निर्णय लेना सीखता है।

आज समस्त विश्व में यौन शिक्षा की बात हो रही है। वास्तव में यौन शिक्षा कोई नवीन कल्पना नहीं है। भारतीय संस्कृति में यौन-आनन्द को स्वाभाविक रूप से स्वीकार किया गया है। जीवन के चार पुरुषार्थों- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में काम को एक पुरुषार्थ के रूप में स्वीकार किया गया है। आचार्य वात्स्यायन का कामसूत्र तथा खजुराहो के मंदिरों में उत्कीर्ण रतिक्रीड़ा में लिप्त मुद्रायें सम्भवत: यौन शिक्षा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। वैदिक काल में धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा कामशास्त्र तीनों का अध्ययन जीवन में समन्वय करने के लिए किया जाता था। कामशास्त्र के अध्ययन से पुरुष और स्त्री के बीच मधुर सामान्जस्य स्थापित होता है तथा उसमें पवित्रता बनी रहती है। वस्तुत: संयमित ढंग से कामशास्त्र के अध्ययन का विधान वैदिककाल से ही था, जिसमें कामजनित पुरुषार्थ स्वीकार किया गया है। उस समय कामशास्त्र का उद्देश्य स्त्री-पुरुष की अनर्गल, अनियंत्रित पाशविक प्रवृत्तियों को नियंत्रित करके उन दिनों की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, लौकिक तथा पारलौकिक उन्नति में सहायता प्रदान करना है। वास्तव में भोजन की तरह यौन-सम्बन्धों के बिना भी जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। आधुनिक समय में फ्रायड ने दमित कामेच्छा के प्रभाव का मनोवैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण करके मनुष्य के व्यक्तित्व को समझने का प्रयास किया था।

आधुनिक सन्दर्भ में जब मानव समाज तीव्र गति से तरक्की करता जा रहा है, उसी के साथ ही पुरानी परम्परायें भी तोड़ता जा रहा है। आज सेक्स सम्बन्धों के सामाजिक बन्धनों पर एक प्रश्नचिन्ह सा लग गया है। जहाँ तक भारतीय समाज की बात है, यहाँ पति-पत्नी के अन्य व्यक्तियों से सेक्स सम्बन्ध को मान्यता प्राप्त नहीं है। ऐसे व्यक्तियों को सभ्य समाज की दृष्टि से नहीं देखता, फिर भी लोग सामाजिक मान्यताओं को तोड़ ही डालते हैं। सेक्स को पति-पत्नी के दाम्पत्य जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है, परन्तु भारतीय संस्कृति में पति-पत्नी के यौन के यौन-व्यवहार की भी मर्यादा होती है, पश्चिमी सभ्यता की तरह सारे काम आलिंगन, चुम्बन तथा अन्य-चेष्टाओं को सामाजिक मान्यता नहीं दी गई है। ऐसे माहौल से जब कभी अनैतिक सेक्स की छाया पड़ती है तो उसका पारिवारिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है, जिसके फलस्वरूप कभी-कभी किशोरावस्था के सदस्यों में मानसिक विकृतियाँ पैदा हो जाती है।

आज के इस वैश्वीकरण के समय में जब विश्व के देशों की दूरियाँ कम हो रही हैं तो एक देश की शिक्षा, संस्कृति और सामाजिक व्यवस्थायें दूसरे देशों तक पहुँच रही हैं। दूरसंचार के माध्यम से देश की संस्कृति की छाप दूसरे देश की संस्कृति पर पड़ रही है। आज विश्व के अधिकाश देश जनसंख्या वृद्धि के शिकंजे में जकड़े हुए है और तमाम खतरनाक बीमारियाँ भी बढ़ती जा रही हैं। इस सन्दर्भ में स्वस्थ और सुखी मानव के लिए तथा प्रजनन दर को नियंत्रित रखने के लिए सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए यौन शिक्षा की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। आज मनुष्य की दैहिक और मानसिक आवश्यकताओं में यौन-शिक्षा की आवश्यकता अधिक महसूस की जा रही है।

भारतीय समाज में यौन (सेक्स) एक ऐसा विषय है, जिस पर कभी भी खुलकर चर्चा नहीं की जाती है। इस विषय पर चर्चा करने वाले को बेशर्म, आवॉरा और असभ्य आदि अनेक शब्दों से नवाजा जाता है। समाज में सेक्स के बारे में जो जानकारियाँ उपलब्ध हैं, वह अवैज्ञानिक व अधकचरी है। साथ ही शारीरिक स्वास्थ्य के लिए खतरनाक भी है। अत: आवश्यकता इस बात की है कि यौन सम्बन्धी चुप्पी को तोड़ा जाय तथा समाज और विद्यालयों में यौन शिक्षा की चर्चा की जाय।

बहुत पहले युवक-युवतियों के विवाह बहुत ही कम आयु में हो जाया करती थी। कम आयु में हुई शादियाँ आरम्भ में हुई लैंगिंक इच्छाओं को पूरा कर देती थी। आज के समय में बेहतर स्वास्थ्य रक्षा तथा पोषण की वजह से विवाह की आयु अधिक हो गयी है। शादी के पूर्व युवक-युवतियों को अपनी शिक्षा पूरी करके अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ता है। इस बीच अविवाहित युवक-युवतियाँ अपनी कामेच्छाओं को पूरा करने के लिए परेशान रहते हैं और अनौपचारिक यौन सम्बन्ध बना लेते हैं, जो अनचाहे रोगों व यौन अपराधों में वृद्धि का कारण बनते हैं। इन सामाजिक, जैविक समस्याओं के समाधान के लिए यौन स्वास्थ्य शिक्षा की आवश्यकता है।

जैविक दृष्टि से यौन प्राणी की शारीरिक विशेषता है जो बताता है कि प्राणी पुरुष है कि स्त्री। उसके शरीर में प्रवाहित होने वाले हारमोन्स-एस्ट्रोजेन हैं या टेस्टोस्ट्रेन, उसमें शुक्राणु उत्पन्न करने की क्षमता है या अण्डाणु, उसमें जन्म देने और स्तनपान कराने की क्षमता है अथवा नहीं। उपरोक्त क्षमताओं के आधार पर हम प्राणी को स्त्री/पुरुष के रूप में पहचान करते हैं। यौन को हम प्राणी द्वारा किये गये आनन्द प्राप्ति की क्रियाओं के रूप में भी स्वीकार करते हैं। यौन स्वास्थ्य शिक्षा में मानव प्रजनन तंत्र का शरीर रचना विज्ञान अध्ययन का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। प्रजनन तंत्र को शरीर क्रिया विज्ञान का अर्थ ऐसी प्रक्रियाओं एवं तंत्र का अध्ययन है, जिससे प्रजनन तंत्र का प्रत्येक भाग अपना कार्य करता है। लड़के/लड़कियों के लिए अपने शरीर और इसकी कार्य प्रणाली को जानना बेहत महत्त्वपूर्ण है। यौन स्वास्थ्य शिक्षा के मुख्य पक्ष हैं शारीरिक पहलू, सामाजिक पहलू, लिंग सम्बन्धी भूमिकायें, जेंडर भूमिकायें तथा यौन संचरित रोग, जिनके विषय में विद्यार्थियों को जानकारी अवश्य होनी चाहिए।

मानव की प्रजनन व्यवस्था गर्भधारण और गर्भ निरोध, यौन मनोविज्ञान और प्रेम के वे घटक, जिनका सम्बन्ध यौन व्यवहार और यौन क्रिया से होता है, उसे यौन शिक्षा कहते हैं। यौन शिक्षा एक ऐसी शिक्षा है, जिससे बच्चे के स्वास्थ्य एवं विकास में अधिकाधिक बृद्धि हो और वह यौन विकारों से ग्रस्त न हो। शिक्षा का अर्थ लोगों को उन बातों की सीख देना नहीं है, जिन्हें वे न जानते हों, बल्कि वैसा आचरण करना सीखाना है, जिसके वे अभ्यस्त नहीं हैं। यौन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, जो बच्चों की उस आयु से शुरू हो जाती है, जब वे अपने व दूसरों के शरीर के प्रति सचेत हो जाते हैं। अतः स्वस्थ और सुखी जीवन के लिए यौन प्रक्रिया की सही जानकारी होना ही यौन-शिक्षा है। यौन शिक्षा, यौन विकृतियों से बचने एवं सेक्स के प्रति स्वस्थ अभिवृत्तियों का विकास करना है। यौन एक सहज, स्वाभाविक, संतुलित और प्राकृतिक प्रक्रिया है। इस विषय की जानकारी देने वाली शिक्षा ही यौन-शिक्षा है। कुछ लोगों की धारणा है कि यौन-शिक्षा सेक्स सम्बन्धी आवेगों और इच्छाओं से प्रेरित करती है, जिससे आगे चलकर यौन रोगों में बृद्धि होता है। कामशास्त्र के विशेषज्ञों (सेक्सोलाजिस्ट) का कहना है कि यौन शिक्षा बिल्कुल हानिकारक नहीं है या उससे काम सम्बन्धी इच्छाओं, आवेगों और जिज्ञासाओं को उत्तेजना मिलती है। इस बात के अनेक प्रमाण हैं कि यौन-शिक्षा सेक्स के प्रति एक स्वस्थ सोच, सेक्स के प्रति सामान्य दृष्टिकोण और यौन सम्बन्धों की सही समझ को विकसित करने में सहायक होती है। यौन शिक्षा समाज के तरुण-तरुणियों को अधिक ज्ञान और समझदारी देकर यौन आवेगों को सही दिशा प्रदान करने में सहायक होती है। जिन देशों में यौन-शिक्षा सही ढंग से दी जा रही है, वहाँ यौन रोगों की संख्या में काफी कमी आयी है। यौन-शिक्षा एक उपचारात्मक तरीका है जो व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से यौन समस्याओं से बचाव करता है।

यौन स्वास्थ्य शिक्षा का आधुनिक समाज में विशेष महत्त्व हैं जनसंचार माध्यम और अनुभव हमें काम (सेक्स) से जुड़ी बहुत सी गलत धारणाओं से उत्पन्न विविध समस्याओं के बारे में लगातार बताते रहते हैं। लगातार सेक्स के बारे में मीडिया काफी तड़क-भड़क और उत्तेजक ढंग से अपने स्वार्थ के लिए बेचता है। इसलिए काम भावन और इससे सम्बद्ध गतिविधियों (डेटिंग, मित्रता और विवाह) का चित्रण ऐसे किया जाता है, ताकि दर्शकों एवं पाठकों को आकर्षित किया जा सके। आधुनिक समाजों की मूल्य पद्धति में बदलाव आया है। मनुष्य पर परिवार और समाज की पकड़ ढीला होना और मनुष्य को स्वायत्तता और स्वतन्त्रता का मिलना है। काम (सेक्स) को विवाह बंधन से और प्रेम को परिवार से अलग कर दिया है। इसने सेक्स को जीवन के ऐकिक आयामों और दाम्पत्य जीवन से संतान उत्पत्ति के दायरे से भी अलग कर दिया है और गर्भपात, गर्भनिरोधक उपायों एवं स्वच्छन्द संभोगों को बढ़ावा देने की पृष्ठभूमि प्रदान की है। सामाजिक सम्प्रेषण के संचार माध्यमों, अश्लील साहित्य, इंटरनेट और कामुक टेलिफोन ने युवा लोगों को ऐसा भावुक आकर्षण दिया है कि अपमान दूर करने वाले तंत्रों के विषय को समझने के बजाय वे खुद की एक वस्तु समझने लगे हैं।

स्कूल में बच्चे और युवा सेक्स (कामभावना) की गलत तरीकों से प्रभावित है। वे अक्सर सेक्स कुप्रयोग (Sex-abouse) दुर्व्यवहार के जाल में फंसने वाला सबसे बड़ा वर्ग है। इसलिए कुछ देशों की लोक अधिकारिकी का मानना है कि स्कूल में यौन शिक्षा को मात्र साफ-सफाई सम्बन्धी जानकारी तक ही सीमित कर दिया जाता है। हमारे देश में यौन शिक्षा न केवल स्कूल एवं कालेज स्तरों पर नहीं पढ़ाया जाता, बल्कि चिकित्सीय संस्थानों की पाठ्यचर्या में भी इस विषय की अवहेलना की गयी है। अनौपचारिक यौन शिक्षा किसी भी समय शुरू की जा सकती है, विशेष रूप से उस समय जब बच्चे की जिज्ञासा उसे संकल्पनात्मक बातों को ग्रहण करने में सक्षम है। बच्चे की वृद्धि के साथ उस उम्र में अपेक्षित ज्ञान देना इस दिशा में सही कदम होगा। शिक्षाविद् पाठ्यचर्या में यौन स्वास्थ्य शिक्षा के सन्दर्भ में प्रासंगिक विषयवस्तु एवं उचित कार्यनीतियों को शामिल करने का सचेष्ट प्रयास काफी समय से कर रहे हैं। एन0सी0ई0आर0टी0 द्वारा प्रस्तुत राष्ट्रीय प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा पाठ्यचर्या के अनुसार पाठ्यचर्या योजनाकारों को इस आयाम की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, जिससे किशोर वर्ग में ''लिंग और विपरीत लिंग के सदस्यों के प्रति स्वस्थ रवैया'' विकसित करने का पर्याप्त प्रावधान हो।

यौन स्वास्थ्य शिक्षा का उद्देश्य है कि यौन स्वास्थ्य शिक्षा व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व विकास पर केन्द्रित होनी चाहिए। यौन स्वास्थ्य शिक्षा से मनुष्य की कामुकता का सम्पूर्ण विकास होनी चाहिए। शिक्षा में काम और कामुकता से जुड़े शारीरिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक पहलुओं का समावेश है। यौन स्वास्थ्य शिक्षा काम और कामुकता के बारे में तथ्यपरक, पूर्ण एवं सही सूचना देने पर लक्षित होनी चाहिए। यौन स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम का उद्देश्य शारीरिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक विकास के सन्दर्भ में जागरूकता एवं अन्तर्दृष्टि को व्यापक बनाना होना चाहिए। इससे युवा लोगों में बैठी मिथ्या धारणाओं एवं गलत जानकारी को दूर करने में सहायता मिलेगी। इससे किशोर वर्ग मानसिक धर्म, शुक्रीय उत्सर्जन, आवाजा का बदलना, स्तन वृद्धि जैसे यौवनारंभ के दौरान होने वाले जैविक परिवर्तनों का सामना करने के योग्य बनेंगे। यौन स्वास्थ्य शिक्षा का उद्देश्य लोगों को सम्बन्धों एवं व्यवहारों को समझने, इन्हें कायम रखने और इनकी रोकथाम करने में अपनी जिम्मेदारी समझने के योग्य बनाने पर लक्षित होनी चाहिए। यौन स्वास्थ्य शिक्षा से बच्चे विपरीत लिंग के व्यक्तियों के गुणों एवं क्षमताओं की सराहना करने के साथ-साथ लड़का/लड़की के रूप में खुद पर गर्व करने के योग्य बनते हैं। ऐसी शिक्षा से युवाओं को नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को विकसित करने का मौका मिलता है, जो आगे वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक सम्बन्धों में व्यक्ति के मार्गदर्शक का काम करती है। इससे मनुष्य को मानव विकास की समग्र जानकारी प्राप्त होती है और साथ ही साथ युवाओं में ऐसी भावना पनपती है कि लिंग जीवन का खूबसूरत, सकारात्मक और रचनात्मक हिस्सा है।

यौन स्वास्थ्य शिक्षा महत्त्वपूर्ण है, लेकिन इससे महत्त्वपूर्ण यह समझना है कि ऐसी शिक्षा बचपन से आरम्भ हो जाती है। यहाँ तक कि युवा वर्ग को यौवनारम्भ से पहले ही काम और कामुकता के बारे में अपने माता-पिता से खुलकर बात करने की जरूरत होती है। तब वे कामुकता को समझ चुके होते

हैं। ऐसा दिखता है कि यौन अभिविन्यास यौवनारम्भ की उपज है, लेकिन सही मायने में ये बाल्यावस्था में सुस्थापित यौन शिष्टाचार को प्रतिबिम्बित करते हैं और बड़े होने पर भी ये बातें बदलती नहीं हैं। यौन स्वास्थ्य शिक्षा देने की मूल जिम्मेदारी माता-पिता की होती है। तेजी से बदलती बाजार अर्थ व्यवस्था, प्रवसन बढ़ते शैक्षिक अवसर और विविध जनसंचार माध्यमों के प्रभाव ने जिम्मेदार व्यक्तियों द्वारा काम और कामुकता के मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित करने की अतिरिक्त अनिवार्यता को उत्पन्न किया है। यौन स्वास्थ्य शिक्षा को पाठ्यक्रम में शामिल करके उसके विविध पक्षों- शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और नैतिक पहलुओं पर विद्यालय में चर्चा करनी होगी। यौन शिक्षा का ज्ञान जनसंख्या बृद्धि पर नियंत्रण के लिए आवश्यक है। यौन स्वास्थ्य शिक्षा जीवन स्तर को उच्च बनाने तथा आर्थिक-सामाजिक विकास के लिए जरूरी है।

संदर्भ

1. आदित्य कुमार एवं अन्य: असामान्य मनोविज्ञान, आगरा मानसिक आरोग्यशाला, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
2. किशोरावस्था एवं पारिवारिक शिक्षा: जीवन कौशल आधारित शिक्षा और उद्देश्य-2, इ0गा0मु0वि0वि0 शिक्षा विद्यापीठ।
3. जी0 राव गुप्ता: जेण्डर सेक्सुआलिटी एण्ड ए0आर0वी0 एड्स, इण्टरनेशनल सेण्टर फार रिसर्च आन ओमेन।
4. एल0वी0 बाजपेयी: शिक्षा में नवाचार एवं तकनीकी, आलोक प्रकाशन, लखनऊ।
5. एस0एल0 त्रिपाठी: जनसंख्या शिक्षा, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
6. कोलमैन, जे0सी0: एवेनार्मल सायकालॉजी एण्ड माडर्न लाइफ, तारापोरेवाल एण्ड सन्स, बम्बई।
7. गुप्ता, एस0पी0:, भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

आधुनिक विचारकों के नारीवादी विचारों का एक अध्ययन

डॉ० वाय० एम० साळुंके

सहयोगी प्राध्यापक, के.आर. टी. आर्ट्स अँड कॉमर्स कॉलेज वणी, जि. नासिक, महाराष्ट्र

प्रारंभिक फ्रांसीसी समाजवाद के अग्रदूत सेंट साइमन ने बड़ी और छोटी दोनों तरह की कई किताबें लिखीं। इससे उनके समाजवाद के विचार स्पष्ट होते हैं। 'न्यू क्रिश्चियनिटी' उनकी प्रसिद्ध पुस्तक है। उन्होंने स्पष्ट किया कि समाज की आर्थिक स्थिति समाज के उत्थान के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है। उन्होंने फ्रांस के तत्कालीन राजा लुई अठारहवाँ को अपने समाज में सुधार करने के लिए एक योजना भेजी, अनुरोध किया कि इसे पूरा किया जाए। इससे पता चलता है कि उन्हें मौजूदा राज्य व्यवस्था पर कोई आपत्ति नहीं थी। वर्ष 1830 में उनके अनुयायियों ने एक पत्रिका प्रकाशित किया जिसमें सायमन के विचारों को समाज के सामने प्रस्तुत किया गया। यह विचार उस समय प्रचलित था कि संपत्ति को समाज में समान रूप से वितरित किया जाना चाहिए। साइमन के अनुसार, समाज के प्रत्येक व्यक्ति में प्राकृतिक असमानता होती है। इस असमानता के कारण ही मानव समाज अस्तित्व में आया है और सामाजिक व्यवस्था जीवित रही है। इसलिए समाज के प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता और श्रम के अनुसार भुगतान किया जाना चाहिए। साइमन पंथ आगे कहता है, 'कुछ लोग कई अधिकारों के साथ पैदा होते हैं। चूंकि सबसे महत्वपूर्ण चीज विरासत का अधिकार है, ऐसे लोगों को समाज में आनंद के सभी साधन मिलते हैं और अन्य लोग दुख में रहते हैं। भूमि, पूंजी और निजी संपत्ति को श्रमिकों के संयुक्त उद्यम को सौंप दिया जाना चाहिए और संस्थानों को इससे धन प्राप्त करना चाहिए। संगठन में सभी को इसके लिए योग्य होना चाहिए। साइमन ने निजी संपत्ति की प्रचलित पद्धति का अनुमोदन नहीं किया। क्योंकि यह कुछ लोगों को निष्क्रिय रहने और दूसरों के लिए काम करने का अपवित्र अधिकार देता है। दूसरा, समाज में व्यक्ति की स्थिति जन्म से निर्धारित होती है। महिलाओं को समाज में निम्न दर्जा नहीं दिया जाना चाहिए। उनकी सामाजिक स्थिति के साथ-साथ समाज में प्रचलित धन व्यवस्था में सुधार किया जाना चाहिए। ईसाई धर्म के अनुसार पुरुष को स्त्री से विवाह करना चाहिए। विवाह में स्त्री-पुरुष की स्थिति समान होनी चाहिए। पत्नी को उसके स्वाभाविक गुणों के अनुसार परिवार, राज्य और धर्म के क्षेत्र में पति की सहधर्मी होनी चाहिए। साइमन संप्रदाय विवाह की पवित्रता को आत्म-बलिदान और लालच, बुद्धि और अज्ञानता, युवावस्था और वयस्कता के अप्राकृतिक संयोजन के रूप में स्वीकार नहीं करता है।

समाज का मुख्य उद्देश्य धर्मार्थ के लिए उपयोगी कुछ का उत्पादन करना है। तो समाज में सभी उद्योगों का लक्ष्य ष्पारस्परिक सहायता से पृथ्वी से मानव निर्मित पदार्थ बनानाष् है। इस प्रकार साइमन ने समाज का ध्यान गरीबों की दुर्दशा की ओर खींचा। उन्होंने उपदेश दिया कि प्रचलित सरदारों और उपदेशकों को समाप्त कर दिया जाना चाहिए और उत्पादन के साधनों को साझा किया जाना चाहिए। इस कार्य के कारण समाज ने आत्मनिरीक्षण करना शुरू किया और समाजवाद का प्रसार हुआ। फूरियर ने साइमन के समाजवाद को और बढ़ाया। उनके अनुसार, मानव हृदय में सभी भावनाएँ और दृष्टिकोण स्वाभाविक रूप से अच्छे होते हैं। मनुष्य अनजाने में निर्णय लेता है कि उनमें से कुछ अच्छे हैं और कुछ बुरे हैं और उनमें से कुछ को बढ़ाने और उनमें से कुछ को नष्ट करने का प्रयास करते हैं। परिणामस्वरूप, मानव स्वभाव एकाकी और अपूर्ण हो गया और समाज में दुख फैल गया। इसलिए दुखों को मिटाने के लिए सभी मनुष्यों को बिना किसी मानवीय प्रवृत्ति को दबाए मनमाने ढंग से बढ़ने देना चाहिए। यह पूर्ण विकसित मनोवृत्ति हृदय में समरसता, शांति और प्रसन्नता का निर्माण करेगी।

फूरियर का विचार था कि समाज के पुनर्गठन के लिए समाज में फॅलॅग की स्थापना की जानी चाहिए। इसमें स्वैच्छिक लेकिन पारस्परिक रूप से सहायक लोगों की एक टीम होगी। फलांग में 400 परिवार या 1,800 लोग रहेंगे। 7 से 9 लोगों का एक छोटा समुदाय होना चाहिए। 24 से 32 समुदायों की एक टीम होनी चाहिए। ऐसी 8 से 9 टीमें होंगी। उनके रहने के लिए एक भव्य, सुंदर, अच्छी तरह से सुसज्जित फॅलॅग हाउस बनाया जाना चाहिए। इसमें हर कोई अपनी मर्जी से एक साथ या समूहों में रहेगा। प्रत्येक फलांग आर्थिक रूप से स्वायत्त होना चाहिए, फलांग को अपनी जमीन पर खेती या अन्य व्यवसाय करना चाहिए। इसमें आधुनिक वैज्ञानिक खोजों का उपयोग होना चाहिए। हर किसी को उसकी योग्यता और रुचि के अनुसार काम दिया जाना चाहिए। इस तरह व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक व्यवस्था का सुखद संयोग होगा। फलांग में उत्पादित होने वाले सामान या सामग्री के बारे में फूरियर का कहना है कि जिनका काम नियमित और विशेष काम है उन्हें अधिक हिस्सा दिया जाना चाहिए, और सुखद काम करने वालों को कम हिस्सा दिया जाना चाहिए। निजी संपत्ति फलांग में ही रहनी चाहिए। आवश्यकतानुसार ब्याज लें। महिलाओं और बच्चों को उनकी क्षमता के अनुसार नौकरी दी जानी चाहिए। ऐसी फैलाने वाली टीमें सभी देशों से बनाई जानी चाहिए। इस प्रकार फूरियर ने खेड़ेगांव या ग्राम संस्था के महत्व को बताया।

उदारवादी नारीवाद: सत्रहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक पश्चिमी दुनिया में कई परिवर्तन हुए। विज्ञान, जीव विज्ञान, भूगोल में प्रगति और नए उपकरणों और वैज्ञानिक नियमों की खोज के मामले में तर्क को परंपरा से अधिक महत्व मिला। समाज में आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन हुए। इस काल को विवेक का युग या जागरण का युग कहा जाता है। उसी समय, चर्च का पारंपरिक अधिकार हिल गया। राजा, राजनीतिक शक्ति और अधिकार में लोगों

के विश्वास को नागरिकों के व्यक्तिगत अधिकारों, तर्कसंगत सोच और सभी के लिए समान अवसर के विचार से बदल दिया गया था। अमेरिकी और फ्रांसीसी क्रांतियों के बाद औद्योगीकरण और शहरीकरण ने एक नए मध्यम वर्ग का निर्माण किया। इस वर्ग ने चर्च या पोप के अधिकार के बजाय राजनीति में गरीबों और आम लोगों की भागीदारी पर राजा के दैवीय अधिकार पर जोर दिया। संक्षेप में, यह परंपरा पर तर्कसंगत मूल्यों की विजय थी। मानवतावाद का महत्व बढ़ रहा था। यह उदारवाद व्यक्तिगत स्वतंत्रता के सिद्धांत पर आधारित था। लेकिन सच्चाई यह थी कि समानता और न्याय के मूल्य केवल पुरुषों पर लागू होते थे। निम्न वर्ग की महिलाएं, पुरुष और महिलाएं और गुलाम राष्ट्रों के नागरिक इससे वंचित थे। उन्हें पूर्ण नागरिक नहीं माना जाता था। महिलाओं को मताधिकार और कानून में समानता से बहुत दूर रखा गया था। यह स्थिति उदारवाद के ठीक विपरीत थी। महिलाओं को समान नहीं मानने में पुरानी दार्शनिक बैठक का हाथ था। महिलाओं को उनके प्राकृतिक संविधान के कारण राजनीति में भाग लेने की अनुमति नहीं थी। महिलाओं को कोमल, शर्मीली, आज्ञाकारी, भावुक माना जाता था और उनके विचार तर्कहीन थे। इसलिए उन्हें अपने बच्चों की परवरिश करनी चाहिए और उन्हें नागरिक बनाना चाहिए, लेकिन वे खुद नागरिक नहीं होने चाहिए।

जेरेमी बेंथम और जॉन स्टुअर्ट मिल महिलाओं के मताधिकार का समर्थन करने वाले पहले व्यक्ति थे। वह कहने वाले पहले व्यक्ति थे कि 'मानव जाति का यह आधा' पुरुषों के बराबर है। महिलाओं की प्रवृत्ति पर उनके विचार अलग थे। उन्होंने कई सामाजिक सुधार किए। बेंथम और मिल के प्रयासों से सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों में महिलाओं की भागीदारी के लिए सैद्धांतिक और व्यावहारिक आधार तैयार किया गया था। दरअसल, ये चीजें महिलाओं ने बीसवीं सदी में हासिल की थीं। मैरी बोल्स्टन क्राफ्ट (१७५९-१७१७) ने घर की चार दीवारी तक सीमित महिलाओं के बारे में भ्रांतियों को दूर करने का काम किया। महिलाओं के अधिकारों की अपनी पुस्तक विन्डिकेशन ऑफ द राइट्स में, उन्होंने महिलाओं के अधिकारों की पुरजोर वकालत की। उन्होंने बच्चों के लिए एक आदर्श शिक्षा के रूस के विचार का खंडन किया। रूसो के अनुसार, बच्चों को विचार करने की स्वतंत्रता और निर्णय लेने की क्षमता विकसित करने की आवश्यकता है। क्योंकि अगर उन्हें देश का नागरिक बनना है तो लड़कियों को अपने पति को खुश रखने के लिए आज्ञाकारी, सदाचारी और सदाचारी बनना सीखना होगा। मैरी बोल्स्टन क्राफ्ट के अनुसार, महिलाओं को राजनीतिक अधिकारों से वंचित करने के साथ-साथ सार्वजनिक जीवन में भागीदारी का कोई तार्किक आधार नहीं है। महिलाओं की उपेक्षा करने से हीनता की भावना पैदा होती है।

मैरी बोल्स्टन क्राफ्ट की तरह हैरियट टेलर मिल (1807-1858) और जॉन स्टुअर्ट मिल (1806 से 1873) दोनों का यह विचार था कि महिलाओं के तथाकथित गुण उस सामाजिक वातावरण से निर्मित होते हैं जिसमें वे पली-बढ़ी हैं। उनकी तथाकथित कमजोरी, शर्म और तर्कहीन प्रकृति का कारण उनकी शिक्षा की कमी, पसंद की स्वतंत्रता की कमी, पुरुषों पर उनकी निर्भरता और उनकी दोषपूर्ण सामाजिक स्थिति है। उन्होंने उस समय समाज के सामने एक उग्र प्रस्ताव रखा कि महिलाओं को अपने पति के शोषण से बचने के लिए कुछ आधार होना चाहिए। महिलाओं को स्वतंत्रता और समानता की प्रचलित धारणाओं में शामिल करने का विचार उन्नीसवीं सदी के मध्य में उभरा। उस समय महिला मताधिकार आंदोलन ने हिंसक रूप ले लिया था। दूसरी ओर, इंग्लैंड में मजदूर वर्ग के वोट देने के अधिकार के लिए एक आंदोलन चल रहा था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद, एक लोकतांत्रिक राज्य में महिलाओं को बहुत कम अधिकार प्राप्त थे। उदारवादी नारीवाद द्वारा सामने रखे गए विचारों और लक्ष्यों ने बाद के समय में उभरे नारीवाद के विश्लेषण का आधार बनाया। बाद के समय में महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए कई कदम उठाए गए। विशेष विद्यालयों की स्थापना, शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी, मजदूरी, काम करने की स्थिति, ट्रेड यूनियन, महिला मताधिकार संगठन सभी आगे बढ़े। बच्चों की देखभाल में माता-पिता की भागीदारी, मातृत्व की सुरक्षा, उपेक्षित महिलाओं के विशेष उपचार आदि के विचार सामने आए। इसमें आगे रोजगार में समानता और महिलाओं के लिए विशेष सुरक्षा शामिल थी। यह विचार सामने आया कि सामाजिक व्यवस्था में पुरुषों और महिलाओं के बीच की खाई को पाटने के लिए महिलाओं को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। लैंगिक समानता कानून, शैक्षिक उन्नति और सार्वजनिक सुधारों के माध्यम से प्राप्त होने की उम्मीद है।

यादृच्छिक नारीवाद पितृसत्तात्मक व्यवस्था का दृढ़ता से खंडन करता है, पितृसत्तात्मक व्यवस्था लिंगवाद को जन्म देती है और पुरुषों और महिलाओं दोनों को समान दर्जा देती है। विभिन्न संस्कृतियों में, पुरुषों को सकारात्मक, ऊर्जावान, आक्रामक, उद्देश्यपूर्ण, मजबूत गुण कहा जाता है। दूसरी ओर, महिलाओं को निष्क्रिय, भावुक, रहस्यमय, गैर जिम्मेदार, झगड़ालू, लकवाग्रस्त, जुनूनी और उत्पीड़ित माना जाता है। कट्टरपंथी नारीवाद का कहना है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा महिलाओं के गुणों का अवमूल्यन भी महिलाओं द्वारा स्वीकार किया गया है। कट्टरपंथी नारीवाद का उद्देश्य एक 'महिला संस्कृति' की स्थापना करना है जो मृत्यु के बजाय जीवन को महत्व देती है, पोषण करती है और इलाज करती है। महिलाओं के गुणों में भावनाओं की अभिव्यक्ति, नम्रता, दूसरों की भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता, प्रकृति से निकटता, कठोरता के बजाय लचीलापन आदि शामिल हैं। कट्टरपंथी नारीवाद के अनुसार महिलाओं को पुरुषों की नकल नहीं करनी चाहिए, उन्हें अपनी पारंपरिक संस्कृति के आधार पर नए मूल्यों का निर्माण करना चाहिए। कट्टरपंथी नारीवाद उन पहलुओं का विरोध करता है जो महिलाओं को पंगु बना देते हैं - स्वयंसेवा, आत्म-बलिदान। रान्डेल नारीवाद का तर्क है कि पितृसत्ता महिलाओं को यौन वस्तुओं के रूप में मानती है और उन पर जबरन मातृत्व थोपती है। बहुत सी चीजों को चुनने का अधिकार सिर्फ पुरुषों को है। महिला लेखक केट मिलेट, कैथलीन बेरी, रॉबिन मॉर्गन, कैथरीन मैककिनोन और एंड्रयू रिच सभी ने पोर्नोग्राफी और महिलाओं के अवमूल्यन का कड़ा विरोध किया। शार्लोट बंच ने कहा कि महिलाओं को विवाह की पितृसत्तात्मक संस्था को खारिज करके समलैंगिकता को स्वीकार करना चाहिए। वह सोचती है कि यह उसे पुरुष वर्चस्व से मुक्त कर देगा। दैनिक जीवन में संबंधों के पुनर्गठन के लिए महिलाओं को एक व्यापक विश्वदृष्टि को अपनाना चाहिए और एक नए संगठन का निर्माण करना चाहिए। पश्चिमी देश में कई संगठन हैं जिनमें महिला स्वास्थ्य केंद्र, महिला शिक्षा परियोजनाएं, पीड़िताएं शामिल हैं।

मार्क्सवादी/समाजवादी नारीवाद: समाजवादी नारीवाद पूंजीवाद और पितृसत्ता को मजबूत करने में विश्वास करता है। पुरुषों के वर्चस्व वाली पितृसत्तात्मक व्यवस्था पहले अस्तित्व में आती है और फिर पूंजीवाद को बढ़ावा देकर इसे मजबूत किया जाता है। प्राचीन काल में घर कृषि के साथ-साथ उत्पादन का स्थान था। इसमें घर के सभी सदस्य सामान बनाकर बाजार में बेचते थे। औद्योगिक पूँजीवाद के आगमन के साथ ही घर के बाहर कारखानों में माल का उत्पादन होने लगा। 1800 और 1900 के दशक में इंग्लैंड में प्रारंभिक औद्योगीकरण शुरू हुआ। उन दिनों, महिलाएं, पुरुष और बच्चे सभी कारखानों

में काम करने जाते थे। धीरे-धीरे उत्पादन के नए तरीके विकसित हुए और महिलाएं और बच्चे उत्पादन के तरीके से दूर हो गए। विचार आया कि महिलाओं को घर पर रहना चाहिए और अपने पति और बच्चों की देखभाल करनी चाहिए और पुरुषों को पैसा कमाना चाहिए। घर से बाहर काम करने वाली महिलाएं अंशकालिक और कम वेतन वाली थीं। एक धारणा है कि पुरुष वास्तविक धन कमाते हैं और महिलाओं की आय पूरक है। मार्क्स के अनुसार, श्रम शक्ति प्रजनन द्वारा मजदूरी अर्जित करती है। इस मजदूरी का उपयोग श्रम बाजार से भोजन और अन्य जरूरतों को पूरा करने के लिए किया जाता है। समाजवादी नारीवाद का कहना है कि श्रम शक्ति का पुनरुत्पादन जोरों पर है। एक कार्यकर्ता बाहर तभी काम कर सकता है जब उसकी पत्नी घर और घर के अन्य कामों में भोजन तैयार करे जिसमें बच्चों और बुजुर्गों की परवरिश भी शामिल है। घरेलू श्रम अधिक महत्वपूर्ण है। ऐसा इसलिए है क्योंकि घर पर उत्पन्न श्रम शक्ति का संबंध दिन-प्रतिदिन के साथ-साथ पीढ़ीगत स्तर से भी है। समाजवादी नारीवाद का मानना है कि विवाह परजीवीवाद का एक रूप है। विवाहित महिलाओं में संतान के जन्म और उनके पालन-पोषण से असंतोष देखा जाता है। क्योंकि कई मामलों में उन्हें निर्णय लेने की स्वतंत्रता नहीं होती है। घर से बाहर काम करने वाली महिलाओं को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

फ्रांसो-मैरी चार्ल्स फुरीए के विचार प्रसिद्ध समाजवादी विचारक फूरिए ने महिलाओं के लिए परिवर्तन का एक युग बनाया। नारी मुक्ति को सामाजिक प्रगति माना गया। सामूहिक आधार पर बच्चों की देखभाल के लिए नियम बनाए गए। शुरुआत में समाजवाद की तरह, फुरीए व्यक्तिवादी प्रतिस्पर्धा समाज के बजाय सहकारी समाज के पक्ष में अपनी राय दर्ज करते हैं। फ्यूरी के अनुसार, सरकारी उत्पादन अधिक कुशल होना चाहिए। इससे सभी को खुशी मिलेगी। इससे सभी में समान कार्य पाने की भावनात्मक शक्ति बढ़ेगी। फुरीए का मानना था कि भावनात्मक कानून सभी समाजों में प्रेरणा और एकता का स्रोत होगा। दोस्ती, महत्वाकांक्षा, प्यार और पालन-पोषण के विचार एक भावनात्मक संबंध बनाते हैं, दूसरे व्यक्ति की सहायता के लिए समाज में एक आदर्श समुदाय का निर्माण करते हैं और समाज में एकता का निर्माण करते हैं। प्रतिस्पर्धी समाज में व्यक्ति मजबूरी में रहता है। इसलिए उसकी भावनाओं का विकास नहीं होता है। एक आदर्श समाज में विपरीत स्थिति बनी रहती है। हर कोई इसमें अच्छा है। प्रत्येक व्यक्ति के कार्य पूर्ण होंगे, लोक कार्य लोकतान्त्रिक सिद्धांतों के अनुरूप होंगे। इसे नियमित प्रशासनिक कार्य माना जाएगा। व्यक्ति प्रेम से एक-दूसरे की सेवा करके लोगों के कल्याण के लिए कार्य करेंगे। फ्यूरी ने छोटे परिवार को सम्मानित किया। हर जगह प्रेम की भावना पैदा करनी चाहिए। श्रम विभाजन स्वैच्छिक और सामूहिक शिक्षा होगा, सामुदायिक जीवन सुख-समृद्धि से भरा रहेगा। फ्यूरी का मत था कि महिलाओं की शिक्षा के माध्यम से एक बेहतर संस्कारी पीढ़ी का निर्माण करना आवश्यक है। नारीवाद के बाद से, महिलाओं को मानसिक और बौद्धिक दोनों क्षमताओं में पुरुषों के बराबर होना चाहिए। महिलाओं को प्रशासन में भाग लेने का अधिकार होना चाहिए। फ्यूरी के अनुसार, जब तक समाज में आर्थिक समानता नहीं होगी, समाज का विकास नहीं होगा। पैसे की तुलना काम से करनी चाहिए। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अमीरों के अधिकारों के बिना कोई वर्ग संघर्ष नहीं होगा। फूरियर के विचारों से प्रेरित होकर, संयुक्त राज्य अमेरिका में श्रम सिद्धांत को पवित्र माना जाता था। मानव शरीर आत्मा की शक्ति से नियंत्रित होता है। इच्छाशक्ति से शारीरिक रोग दूर होते हैं। ओवेन और उपयोगितावादी की तरह, फूरिए की राय थी कि बुरी प्रवृत्तियां मानव प्रकृति का उपहार नहीं थीं बल्कि सामाजिक प्रवृत्ति द्वारा बनाई गई थीं। फ्यूरी का मत था कि समाज को नारीवाद की बजाय बुरी प्रवृत्तियों से मुक्त किया जाना चाहिए। फूरिए ने कल्पनाशील विचारों को खारिज कर दिया और तर्क दिया कि अपनी निजी संपत्ति को खत्म करके हर जगह एक सरकारी समुदाय बनाना आवश्यक था। इस प्रकार फ्रांसो मैरी चार्ल्स फूरिए ने महिलाओं और परिवार पर अपने विचार व्यक्त किए।

जब तक स्त्री संसार के एक छोटे से घेरे में बंधी थी, तब तक उसका काम उसके प्राकृतिक गुणों पर आधारित था। महिलाओं की शिक्षा का अतीत में बहुत विरोध हुआ था क्योंकि उन्हें विशेष शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। विचार-संस्कृति जिनका पुरुष अभ्यास नहीं कर सकते थे, सभी चीजों को महिलाओं पर बाध्यकारी बना दिया गया था। हालांकि, ऐसे लोगों को समय के साथ अंत में झुकना होगा। वर्तमान के प्रभाव ने महिलाओं के जीवन के क्षेत्र का भी विस्तार किया है। इसलिए, उन्हें आत्मरक्षा और आत्म-सम्मान के लिए बुद्धि और ज्ञान की आवश्यकता महसूस हुई। इसलिए स्त्री शिक्षा की समस्याएँ शीघ्र ही दूर हो गईं, शिक्षा स्त्रियों का श्रंगार बन गई। निरक्षरता को शर्मनाक माना जाने लगा। इसलिए, विवाह बाजार में, पहले की तरह, उसका गृहकार्य कौशल महत्वपूर्ण नहीं हुआ और उसका मूल्य उसके ज्ञान पर आधारित होने लगा। घर से ही वह समाज के बारे में सोचने लगी। जैसे ही पूर्व पार्थिव रूप को सूर्य की किरणों ने स्पर्श किया, वह मुक्त हो गया और स्त्री की तरह उसकी महिमा और वैभव भी शुरू हो गया। हालांकि अतीत के दमनकारी बंधन पूरी तरह से नहीं टूटे हैं, वे झरझरा हो गए हैं। यही वजह है कि आज महिलाएं हर जगह आगे बढ़ रही हैं। वह उस रूप में जानती थी कि उसे नए युग की जिम्मेदारी स्वीकार करनी है।

संदर्भ

१ देशपांडे वेशाली, स्त्रीवाद आणि महिला उपन्यासकार, विकास प्रकाशन, कानपूर,२००७.

२ शर्मा पी.डी., महिला सशक्तीकरण और नारीवाद, रावत पब्लिकेशन, जयपूर,२०१७.

३ पांडे अशोक, मार्क्सवादके मुलभूत सिद्धांत, राजपाल सन्स, दिल्ली, २०२१.

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में नि:शस्त्रीकरण एवं अहिंसा की उपादेयता

लक्ष्मी राठौड़

(शोधार्थी) अहिंसा एवं शांति विभाग, जैन विश्व भारती (मान्य) विश्वविद्यालय, लाडनूँ (नागौर)

सारांशिका

शस्त्र निर्माण की होड के युग में नि:शस्त्रीकरण की बात एक आश्चर्य है विगत चार दशको में पुरे विश्व का ध्यान अस्त्र-शस्त्रों में उलझा हुआ रहा। विश्व की सम्पति का एक बड़ा भाग अस्त्र निर्माण में खर्च हो रहा है। आज कुछ राष्ट्र इस रेखा पर पहुँच गये है कि वे जब चाहे तब मानव जाति का प्रलय कर सकते है। पौराणिक साहित्य में कहा जाता है - विश्व प्रलय का देवता है क्या प्रलय मानव जाति की नियति है? यदि वह नियति है तो उसे कौन टाल सकेगा? जो काम विश्व को करना था, उसका दायित्व मनुष्य इस पृथ्वी पर रहने वाली मानव जाति का संहार करना चाहता है? इस प्रश्न का उत्तर उजली दुपहरी में खोजना होगा।

इसलिए इस प्रकार की विनाश लीला से बचने के लिए जनता को अहिंसात्मक साधनों का प्रशिक्षण मिलना चाहिए ताकि अनायस उद्घाटित होने वाले युद्धों को रोका जा सके।

मुख्य शब्द: नि:शस्त्रीकरण, परिसीमन, शस्त्रास्त्र विभीषिका, संकल्पजा, अविरति।

प्रस्तावना: शस्त्र निर्माण की अन्धी दौड में आज सारा विष्व लगा हुआ है। पाकिस्तान जैसा राष्ट्र भी चोरी छिपे आणविक कार्यक्रम को बढा रहा है। सम्भवत: द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान हीरोशिमा और नागासाकी पर अणुबम गिरने से हुए महाविनाश की प्रतिक्रिया - स्वरुप शस्त्र परिसीमन का विचार अद्भूत हुआ। विश्व शांति की आवश्यकता के लिए एवं मानव जाति की प्रगति के लिए वर्तमान समय में में नि:शस्त्रीकरण की अत्याधिक आवष्यकता बढ गई है। विश्वयुद्ध में जहॉ भंयकर विनाश हुआ था उसके परिणामस्वरुप राजनेताओं और बुद्विजीवियों दोनो को यह विश्वास हो गया था कि स्थायी शांति के लिए शस्त्रास्त्रों मे कटौति सुनिश्चित करना नितांत आवश्यक हो गया था। अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने कहा था कि "शस्त्रास्त्रा राज्यों को युद्व के लिए प्रेरित करते है और युद्व मानव जाति हेतु विनाषक सिद्व होता है" इसलिए उनकी इच्छा थी कि संसार को भविष्य की पीढियों के लिए सुरक्षित बनाया जाये और ऐसा अंतराष्ट्रीय संगठन और नि:शस्त्रीकरण द्वारा ही संभव है। शस्त्रास्त्रों में कमी या कटौति करने का प्रस्ताव सर्वप्रथम अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने 1918 में अपने प्रसिद्व 14 सूत्रों के द्वारा किया था। विल्सन के 14 सूत्री प्रस्तावों मे चौथा सूत्र था कि "सभी राष्ट्रीय शस्त्रास्त्रों की उस स्तर की कटौति कि जायेगी जहॉ तक वे आंतरिक सुरक्षा के लिए पर्याप्त होगें" इस घोषणा का मूल दर्षन यह था की शस्त्रास्त्रा युद्वों का कारण होते है। अत: नि:शस्त्रीकरण द्वारा ही भविष्य में सशस्त्र संघर्षों की अषंका कम हो जायेगी।

राष्ट्र संघ की प्रसंविदा के शस्त्रास्त्रों की कटौती के लिए राष्ट्रों की प्रतिबद्वता का उल्लेख किया गया है।

इस अनुच्छेद में यह प्रावदान किया गया है कि राष्टसंघ के सदस्य यह मानते है कि शांति बनाये रखने के लिए राष्ट्र शस्त्रास्त्रों उच्च स्तर कि कटौति करने के प्रष्चात राष्टसंघ कि परिषद कि अनुमति के बिना अपने शस्त्रास्त्रों में वृद्वि नहीं करेंगे।

हिंसा का प्रयोग एक हथियार के रुप में

हिंसा के द्वारा लक्ष्य की पूर्ति की जा सकती है। इस धारणा के आधार पर उसे समस्या का समाधान माना गया। आज प्रत्येक क्षेत्र में समस्या के समाधान के लिए हिंसा का एक हथियार के रुप में प्रयोग किया जा रहा है। इस अस्त्र का उपयोग केवल राजनीति और उद्योग के क्षेत्र में ही नही, विश्व की पवित्र भूति में भी किया जा रहा है। सरकार और जनता दोनो गाली की भाषा में विश्वास करते है। शास्त्र की अपेक्षा शस्त्र अधिक शक्तिशाली बन गया। शस्त्र के इस एकाधिकार ओर प्रभुत्व के खतरे गंभीर होते जा रहे है। उसकी गंभीरता का अनुभव उन लोगों ने अधिक किया है, जिनका हिंसा से निकट का संबंध रहा। जिसका ताजा उदाहरण अफगानिस्तान में तालिबन का उदम है। इसे अनुभूति का सत्य या भोगा हुआ सत्य कहना अधिक संगत होगा।

शस्त्र का निर्माण मस्तिष्क में

युद्व का मूल है - शस्त्रीकरण शस्त्र का निर्माण न हो, इस व्रत को गृहस्थ की आचार संहिता में स्थान दिया। भगवान महावीर ने बताया - शस्त्र का निर्माण मस्तिष्क में होता है। लौह आदि से बनने वाले शस्त्र निर्जीव शस्त्र है। पहले सजीव शस्त्र का निर्माण होता है और वह हमारे मस्तिष्क में होता है। फिर निर्जीव

शस्त्र निर्माण होता है। भगवान महावीर ने उस सजीव शस्त्र का निर्माण न करने का मार्गदर्शन सजीव और निर्जीव दोनों प्रकार के शस्त्र निर्मित नही होते है, उस स्थिति में युद्व वर्जना की बात सहज ही फलित हो जाती है।

हिंसा का बीज प्रत्येक प्राणी में

आज के वैज्ञानिक हिंसा के मूल की खोज में लगे हुए है। मनोवैज्ञानिक संघर्ष को मौलिक मनोवृति मानते है। आनुंवाशिकी वैज्ञानिक हिंसा का मूल जीन में खोल रहे है किन्तु युद्व का इनसे सीधा संबंध नहीं है। हिंसा युद्व के रुप में फलित होगी, उसके लिए केवल कर्म का उत्तरदायित्व अनेक धारको का है - कर्म, मनुष्य का तंत्रिका तंत्रिय विकास, साम्राज्यवादी मनोवृति आदि।

अस्तित्व का संकट

अणुअस्त्रों की होड ने मनुष्य जाति के अस्तित्व को संकट में डाल दिया। अब दो ही विकल्प सामने है - या तो इस दौड़ की समाप्ति या मानव जाति की समाप्ति। दूसरा विकल्प कितना भयावह हैं और कितना खतरनाक हैं उसके कल्पना करते ही मानवीय बुद्वि विभ्रान्त हो जाती है। आखिर यह होड किसलिए है? क्या इस होड में अपने आप को कोई सुरक्षित रख पाएगा? यदि नही रख पाएगा तो यह मानव जाति के विनाष का संकल्प क्या कोरी मूर्खता नही है? महावीर का वह उद्घोष सामने आ रहा है "मंदा मोहेण पाउडा"। मंदमति मनुष्यों की आंखों पर मोह का पर्दा गहरा हो रहा है। इस मूच्र्छा को तोडने की दिषा में कदम उठे और नि:शस्त्रीकरण के लिए एक शक्तिशाली जन-अभियान का सूत्रपात हो।

अहिंसा की प्रथम आचार - संहिता

परमाणु अस्त्रों की विभीषिका से सभी चिन्तनशीला व्यक्ति चिन्तित है पर जिस देष के पास परमाणु अस्त्रों का विशाल भण्डार है, उसका नेता परमाणु अस्त्रों की समाप्ति की बात करता है। वह बहुत अर्थवान् और मूल्यवान है। इससे सहज ही यह निष्कर्ष उतर आता है कि हिंसा का प्रखरता अहिंसा के लिए रास्ता बनाती है। भगवान महावीर ने ढाई हजार वर्ष पहले नि:शस्त्रीकरण की बत कही थी। उनकी वाणी का एक महत्वपूर्ण संकलन है - आचारांग। उसका प्रथम अध्ययन है - शस्त्र - परिज्ञा। उसे आज की भाषा में नि:शस्त्रीकरण कहा जा सकता है। भगवान महावीर ने शस्त्र निर्माण के लिए क्रियाशील भाव का तथा उस अविरति या आकांक्षा को माना है। जो शस्त्रों के निर्माण की मूलभूत प्रेरणा है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा उ उद्घोषित स्वर - युद्व पहले मनुष्य के मस्तिष्क में लडा जाता है, फिर समरांगण में।

मूल है भावनात्मक शस्त्र

प्रस्तर युग से अणु युग तक जितने अस्त्र - शस्त्रों का निर्माण हुआ है, उनक पृष्ठभूमि में उतने ही भाव निर्मित हुए है। अणुबम का भाव पहले विकसित हुआ फिर अणुबम का निर्माण हुआ। भावात्मक शस्त्र नि:शस्त्रीकरण संभव नही हो सकता। इसलिए आवष्यकता है भावधारा के परिवर्तन की, परिष्कार की।

अहिंसा के आधार स्तंभ

अभय और मित्रता दोनो अहिंसा के आधार स्तंभ है। भगवान महावीर की अहिंसा दृष्टि में जीवन और मरण महत्वपूर्ण तत्व नही है। उससे भी अधिक महत्वपूर्ण तत्व है - जीवन में अभय और मैत्री का विकास। आज पूरे संसार को अभयदान की जरुरत है। राजा संजय काल्पनिक भय से भयभीत होकर मुनि के सामने गया। मुनि ने कहा मैं तुम्हे अभयदान देता हुॅ। तुम भी सबको अभयदान दो। आज विश्व प्रतिक्षा कर रहा है इस स्वर के पुन:श्रवण की।

अहिंसा समाज रचना का आधार

महावीर ने गृहस्थ की अहिंसा का एक स्वरुप निर्धारित किया था। हिंसा को तीन भागो में विभक्त किया - आरभजा, विरोधजा, हिंसा अपनी सुरक्षा के लिए की जाने वाली हिंसा है। संकल्पना हिंसा आक्रामक मनोवृति से होने वाली हिंसा है। महावीर ने संकल्पना हिंसा को त्यागने की प्रेरणा दी। उसके मतानुसार यदि आक्रमण के बिना विरोधना हिंसा अथवा सुरक्षा के लिए कि जाने वाली हिंसा का प्रसंग ही नहीं आता। यदि आदमी आरंभजा हिंसा के साथ कहा जा सकता। हिंसा हिंसा है। आरंभजा हिंसा भी अहिंसा नहीं है किन्तु उस हिंसा के आधार पर व्यक्ति का समाज को हिंसक नहीं कहा जाता। अहिंसक समाज रचना का एक आधार यहीं है कि उसमें आक्रामणकारी प्रवृतियां नही होगी, युद्व नहीं होगा।

निष्कर्ष

अहिंसा को सामाजिक जीवन के आधार बनाने तथा अहिंसक विश्व का निर्माण करने का संकल्प हम सबको लेना है। क्योकिं महावीर बुद्व और गांधी के देश में यह संकल्प व्यक्त किया जा सकता है। यह हर कोई जनता है कि अणुयुद्व के बाद हर और जीत को देखने वाला भी कोई नहीं बचेगा। इस प्रलय की कल्पना से हर आदमी भयभीत है इसलिए सम्पूर्ण विष्व में अहिंसा के पालन करने पर बल दिया जाना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- मुनि सुखलाल, त्रिपाठी आनन्द प्रकाश, अहिंसा और अणुव्रत, जैन विश्व भारती लाडनूॅ पंचम संस्करण
- आचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा के अछूते पहलु, जैन विश्व भारती लाडनूॅ पंचम संस्करण 2005

- आचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा तत्व दर्शन आदर्श साहित्य संघ 210, दीनदयाल उपाध्याय मर्ग नई दिल्ली संस्करण 2001
- आचार्य तुलसी, आचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा और अणुव्रत, जैन विश्व भारती लाडनूँ तीसरा संस्करण 1997
- आचार्य तुलसी, आचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा और अणुव्रत, सिंद्धान्त और प्रयोग, जैन विश्व भारती लाडनूँ तीसरा संस्करण 1997
- आचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा तत्व दर्शन आदर्श साहित्य संघ 210, दीनदयाल उपाध्याय मर्ग नई दिल्ली संस्करण 2001
- डॉ. सुरेन्द्र कुमार त्यागी, भारतीय दर्शनों में अहिंसा तत्व का तार्किक एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी 28 शॉपिंग सेन्टर, करमापुर नई दिल्ली संस्करण 1999।
- आचार्य महाप्रज्ञ, अमूर्त चितंन, जैन विश्व भारती लाडनूँ तीसरा संस्करण 2001
- आचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा के अछूते पहलु, जैन विश्व भारती लाडनूँ पंचम संस्करण 2005
- समणी प्रज्ञा निर्वाण, अहिंसा शिक्षण प्रशिक्षण जैन विष्व भारती लाडनूँ संस्करण 2007
- ग्रेग रिचर्ड बी, अहिंसा की शक्ति, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन 1951।

माध्यमिक विद्यालयों में शैक्षिक गुणवत्ता एवं संसाधनों की उपलब्धता में शाला प्रबंधन एवं विकास समिति (एसएमडीसी) की भागीदारी

डॉ० संजीत कुमार साहू

(शोध निर्देशक) प्राध्यापक विभागाध्यक्ष, शिक्षाविभाग (श्री रावतपुरा सरकार, विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

कृष्ण कुमार चन्द्रा

(पी.एच.डी शिक्षा शोधार्थी), श्री रावतपुरा सरकार, विष्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

प्रस्तावना

''माध्यमिक शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा को जोड़ने वाली एक महत्वपूर्ण कड़ी है। यह कहना उचित प्रतीत होगा कि माध्यमिक शिक्षा दोनों के मध्य रीढ़ की हड्डी के समान है और स्वास्थ्य की दृष्टि से रीढ़ की मजबूती आवश्यक है।" माध्यमिक शिक्षा की महती आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए सन् 1953 में भारत सरकार के द्वारा स्थापित मुदालियर आयोग, सन् 1964-66 में कोठारी आयोग, सन् 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं 1992 में संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने माध्यमिक शिक्षा के संबंध में सारगर्भित सुझाव दिए हैं। सर्व शिक्षा अभियान की अभूतपूर्व सफलता व प्राथमिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण के परिणामस्वरुप, उच्च प्राथमिक परीक्षा (कक्षा 8वीं) उत्तीर्ण होने के बाद 14-16 वर्ष आयु समूह के सभी विद्यार्थियों के लिए माध्यमिक विद्यालयों में प्रवेश की सुविधा, गुणवत्ता युक्त शिक्षा एवं समानता पर आधारित शिक्षा उपलब्ध कराने व माध्यमिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण एवं शैक्षिक गुणवत्ता हेतु सन् 2009-10 से राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान प्रारंभ किया गया है।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के प्रारंभ में 9 वीं एवं 10 वीं में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की कुल दर्ज संख्या, इसी आयु समूह की तत्कालीन जनसंख्या 9.69 करोड़ की तुलना में 52.26 प्रतिशत थी, जिसे 11वीं पंचवर्षीय योजना 2012 तक 75 प्रतिशत जीईआर (ग्रास इनरोलमेंट रेसियो) तथा 12 वीं पंचवर्षीय योजना 2017 तक 100 प्रतिशत जीईआर सुनिश्चित करने के साथ-साथ माध्यमिक विद्यालयों के शैक्षिक गुणवत्ता में सुधार करते हुए वर्ष 2020 तक माध्यमिक स्तर की शिक्षा में 100 प्रतिशत ठहराव (रिटेंशन) प्राप्त करने का लक्ष्य है[1]। एक समुदाय उपयुक्त निकाय एवं समिति के माध्यम से विद्यालय प्रबंधन कार्यक्रमों में सम्मिलित होगा। उसके अनुसार सामुदायिक भागीदारी विद्यालय एवं समुदाय को और करीब लाएगी जिससे शिक्षा की गुणवत्ता को बेहतर करने में सहायता मिलेगी तथा विद्यार्थियों का विद्यालय त्याग एवं अनियमित रूप से विद्यालय आने में कमी आयेगी।

1992 में एनपीई में संशोधन हुआ तथा उसमें शिक्षा की योजना एवं प्रबंधन में सामुदायिक भागीदारी पर जोर दिया गया। 73 वें एवं 74 वें संविधान संशोधन अधिनियम से पंचायती राज अधिनियम-1992 व्यवस्थापित हुए एवं निर्धारित किया गया कि आगे से आने वाली शिक्षा नीति का केन्द्र जनतांत्रिक रूप से चुने गए निकायों, जिला स्तर, उपजिला स्तर एवं पंचायत स्तर होंगे। पंचायत स्तरीय सभी निकायों जिनमें महिलाओं, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अल्पसंख्यक, अभिभावक, शिक्षाविद् एवं अन्य उचित संस्थाओं का योग्य प्रतिनिधित्व हो, वे शिक्षण कार्यक्रमों के उन्नयन योजना के निर्माण एवं उनको लागू करने के लिए जिम्मेदार होंगे। शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2010 के खंड 21 (1) एवं 21 (2) के अनुसार सभी सरकारी विद्यालय एवं सरकारी अनुदान प्राप्त विद्यालयों में विद्यालय प्रबंधन समिति का गठन करना अनिवार्य है। विद्यालय प्रबंधन समिति में निर्वाचित अभिभावक, स्थानीय निर्वाचित प्रतिनिधि, शिक्षक, स्थानीय शिक्षाविद् सदस्य होंगे। शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2010 कहता है कि छात्रों की गुणवत्ता एवं अनिवार्य शिक्षा मुहैया कराना अभिभावकों एवं विद्यालय प्रबंधन समिति का कर्तव्य है[2]।

माध्यमिक शिक्षा का लोकव्यापीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से माध्यमिक विद्यालयों तक विद्यार्थियों की पहुँच, गुणवत्ता युक्त शिक्षा, संसाधनों की उपयोगिता एवं समानता पर आधारित शिक्षा हेतु विद्यालय का विकास एवं उन्नति में समुदाय की सहभागिता सुनिश्चित करने हेतु राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान द्वारा उन्नयित एवं पूर्व में संचालित शासकीय माध्यमिक विद्यालयों में शाला प्रबंधन एवं विकास समिति का गठन किया गया है।

शिक्षा में शाला प्रबंधन एवं विकास समिति की भागीदारी

रिऑरगेनिजेशन ऑफ सेकेण्डरी स्कूल रिपोर्टके अनुसार ''शिक्षा का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति के ज्ञान, रूचियों, आदर्शों, आदतों तथा शक्तियों का विकास करना है, जिसके द्वारा उसे अपना उचित स्थान प्राप्त हो सके तथा वह इस स्थान का सदुपयोग कर स्वयं तथा समाज को उच्च एवं पवित्र उद्देश्यों की ओर ले जाए[3]।

माध्यमिक विद्यालयों में शाला प्रबंधन एवं विकास समिति का गठन किया गया है। वर्तमान में विद्यालयों में विद्यार्थियों के नामांकन, ठहराव, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एवं संसाधनों के सदुपयोग का बेहतरपरिणाम परिलक्षित हो रहे हैं, तथापि इनमें गतिशीलता बढ़ाने, आत्मनिर्भरता बढ़ाने की आवश्यकता है, अत: शाला प्रबंधन एवं विकास समितियों की नितांत आवश्यकता है।

उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण केन्द्र विद्यालय है जहाँ बच्चों के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित किया जाता है। परिवार और पड़ोस के बाद विद्यालय ही वह स्थान है जहाँ बच्चे शिक्षा के साथ-साथ पाठ्यसहगामी क्रियाओं के लिए अपना बहुमूल्य समय प्रदान करते हैं। चूँकि समुदाय अपने बच्चों की आदतों, रूचियों, क्षमताओं को भली-भाँति समझता है और समाज की आवश्यकताओं की भी समझ रखता है अत: समुदाय की सहभागिता को सुनिश्चित करने हेतु शाला प्रबंधन एवं विकास समितिकी महती आवश्यकता है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम और एसएमडीसी की भागीदारी

नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिनियम, 2010 के अनुसार बच्चों के शैक्षिक अधिकार में भी इन तथ्यों का समावेश किया गया है कि बच्चों की शिक्षा में माता-पिता की भागीदारी की नितांत आवश्यकता है। इस अधिनियम में स्कूल प्रबंधन समिति की आवश्यकता पर बल दिया गया है जिसके अंतर्गत् पंचायती राज संस्थाओं के स्थानीय प्रतिनिधि और अध्यापकों को अभिन्न अंग बनाया जाएगा। अधिनियम स्पष्ट रूप से शाला प्रबंधन समितिकी कार्यात्मक भूमिका को स्पष्ट करता है तथा इन बच्चों की शिक्षा स्कूल स्तर पर देने के लिए इसे जवाबदेह बनाता है।(भारत सरकार, 2009, पृ.7)[4]।

इस प्रकार बच्चों की शिक्षा एवं उनकी चहुँमुखी विकास के लिए विद्यालय, समुदाय का एक अनिवार्य अंग बन गया है और विद्यालयों में विद्यार्थियों के प्रवेश, ठहराव, शैक्षिक उपलब्धि पर सकारात्मक परिणाम हेतु शाला प्रबंधन एवं विकास समिति की भागीदारी को सुनिश्चित करना आवश्यक है।

शैक्षिक गुणवत्ता

शैक्षिक गुणवत्ता से आशय विद्यालय स्तर पर विभिन्न क्षेत्रों में अंतर्निहित मानक जिससे बच्चों में आत्म-विश्वास, आत्म-निर्भरता, सौंदर्यबोध, आदि दक्षता एवं मूल्यों का विकास होता है।अध्ययन-अध्यापन की समुचित वातावरण के परिणामस्वरूप उत्कृष्ट शैक्षिक उपलब्धि की प्राप्ति ही शैक्षिक गुणवत्ता है। शैक्षिक गुणवत्ता के क्षेत्रों व संसाधनों में निम्नांकित बातों को सम्मिलित कर सकते हैं-

भौतिक संसाधन का क्षेत्र

विद्यालय भवन, मानवीय संसाधन, स्वच्छता एवं सौंदर्यीकरण संसाधन, शैक्षिक उपकरण, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, कम्प्यूटर कक्ष, पृथक-पृथक प्रसाधन कक्ष, स्वच्छ पेयजल व बर्तन, आधुनिक कक्षा-कक्ष, ब्लेक बोर्ड, फर्नीचर, दरी, खेल का मैदान, सांस्कृतिक मंच आदि।

सामाजिक क्षेत्र

समितियों का गठन एवं बैठक, विद्यार्थियों की उपस्थिति, शाला त्यागी एवं अप्रवेशी बच्चोंको स्कूल तक लाना, विद्यार्थियों के प्रति सामुदायिक दायित्व, विद्यालय में संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करना आदि।

संज्ञानात्मक क्षेत्र

विद्यालयीन चारित्र्य, कक्षा में औसत उपस्थिति, गृहकार्य, कक्षागत सहभागिता, स्वाध्याय की प्रवृत्ति, विषय के प्रति रूचि, पाठ्येत्तर गतिविधियाँ, शारीरिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व पर्यावरणीय वातावरण आदि। पाठ्यक्रम एवं विषयवस्तु की समझ, अधिगम प्रक्रिया योजना, प्रशिक्षण उन्मुखीकरण का अनुप्रयोग, मूल्यांकन, स्वमूल्यांकन, पालक की जागरूकता आदि।

संगठनात्मक क्षेत्र

शिक्षकों का स्व उन्मुखीकरण, प्राचार्यों का स्व उन्मुखीकरण, विद्यालयों के प्रति सदस्यों का दृष्टिकोण, विद्यालय में कार्य विभाजन, विद्यालय प्रबंधन, अभिलेख संधारण, वित्तीय प्रबंधन, निरीक्षण, शिक्षक-पालक सहसंबंध उन्मुखीकरण कार्यक्रम आदि।

संसाधनों की उपलब्धता

विद्यालयों की शैक्षिक गुणवत्ता में सुधार एवं विकास हेतु संसाधनों की उपलब्धता बहुत ही आवश्यक है। अब तक के हुए सर्वेक्षणों से ज्ञात हो चुका है कि जिन विद्यालयों में संसाधनों की पर्याप्त उपलब्धता है वहाँ की शैक्षिक उपलब्धि उन विद्यालयों की अपेक्षा उत्कृष्ट पायी गई है जहाँ संसाधनों की उपलब्धता कम है।

विद्यालयों में मुख्य रूप से निम्नांकित दो प्रकार के संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है-

- मानवीय संसाधन
- भौतिक संसाधन

शाला प्रबंधन एवं विकास समिति (एसएमडीसी)

विद्यालयों में स्थानीय शासन की भागीदारी को सुनिश्चित करने हेतु पालकों एवं शिक्षकों की एक समिति का गठन किया गया है जिसे शाला प्रबंधन एवं विकास समिति कहते हैं।

आवश्यकता

सामुदायिकभागीदारी, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक प्रचलित वाक्य न केवल शिक्षा के क्षेत्रों मेंबल्कि अन्य क्षेत्रों जैसे स्वास्थ्य और जल प्रबंधन जैसे क्षेत्रों पर भी बल देता है। (दत्ता तथा विर्गो, 1998, रामचनद्रन, 2001, शेखर, 2003, स्विफट मोरगन, 2006)।

शिक्षा के स्तर में उत्तरोत्तर सुधार के प्रयास शासन एवं प्रशासन स्तर पर किए जा रहे हैं, तथापि मात्र शासन-प्रशासन के भरोसे ही भारत जैसे विशाल देश में जहां सातवें अखिल भारतीय शिक्षा सर्वे के अनुसार कुल 10,30,996 मान्यता प्राप्त प्राथमिक विद्यालय, माध्यमिक विद्यालय व उच्चतर माध्यमिक विद्यालय हैं। इनका निरीक्षण एवं व्यवस्था का सुचारू रूप से संचालन असंभव है ऐसे में पंचायती राज अधिनियम के द्वारा शक्ति प्राप्त स्थानीय शासन को विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया के तहत् विद्यालयों के संचालन, निरीक्षण एवं विकास को सुनिश्चित की जाने वाली प्रक्रिया में भागीदारी निभाना आवश्यक है।

शाला प्रबंधन एवं विकास समिति का गठन

राज्य के समस्त शासकीय हाई एवं हायर सेकेण्डरी स्कूलों में शाला प्रबंधन एवं विकास समिति (एसएमडीसी)का गठन निम्नानुसार किया जाता है:-

1.	विद्यालय के कार्यक्षेत्र के जनप्रतिनिधि एवं गणमान्य नागरिकों में से प्रभारी मंत्री द्वारा मनोनीत व्यक्ति	-	अध्यक्ष
2.	संस्था का प्राचार्य	-	सचिव
3.	संबंधित ग्राम पंचायत का सरपंच/पार्षद	-	सदस्य
4.	सामाजिक विज्ञान, विज्ञान, गणित विषय से संबंधित एक-एक शिक्षक	-	सदस्य
5.	एक पुरूष तथा एक महिला पालक सदस्य	-	सदस्य
6.	जिले के प्रभारी मंत्री द्वारा मनोनीत स्थानीय जनप्रतिनिधियों एवं गणमान्य नागरिकों में से 04 व्यक्ति जिसमें कम से कम एक सदस्य महिला एवं एक सदस्य अ.जा. अथवा अ.ज.जा. से हो।	-	सदस्य
7.	प्रभारी मंत्री द्वारा मनोनीत एक अल्पसंख्यक सदस्य	-	सदस्य
8.	स्थानीय सांसद एवं विधायक अथवा एक-एक प्रतिनिधि	-	सदस्य
9.	स्थानीय निकाय के शिक्षा समिति का एक प्रतिनिधि	-	सदस्य
10.	विज्ञान मानविकी, कला एवं संस्कृति विषयों के एक-एक विषय विशेषज्ञ	-	सदस्य
11.	जिला शिक्षा अधिकारी द्वारा नामांकित अधिकारी	-	सदस्य
12.	ऑडिट एवं एकाउन्ट के एक प्रतिनिधि	-	सदस्य

उप समितियाँ

1. स्कूल भवन उपसमिति 2. अकादमिक उपसमिति

स्कूल भवन उपसमिति

गठन:-मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली के मापदण्डों के अनुसार शाला भवन उपसमिति का गठन निम्नानुसार किया जाता है-

1.	प्राचार्य	-	अध्यक्ष
2.	पंचायत अथवा नगरीय स्थानीय निकाय का एक सदस्य	-	सदस्य
3.	पालकों में से एक सदस्य	-	सदस्य
4.	सिविल वर्क का विशेषज्ञ- सिविल इंजीनियर/परामर्शदाता	-	सदस्य
5.	ऑडिट एवं एकाउण्ट विभाग का एक सदस्य	-	सदस्य

उत्तरदायित्व:-यह उपसमिति शाला भवन योजना, प्राक्कलन, प्रबंधन, मॉनिटरिंग, सुपरविजन, रिपोर्टिंग, लेखा संधारण, शाला प्रबंधन समिति/पंचायत/नगरीय स्थानीय निकाय के समक्ष भवन निर्माण, रेनोवेशन, मरम्मत एवं रख-रखाव तथा अन्य सिविल से संबंधित लेखा प्रस्तुतीकरणआदि कार्यों के लिए उत्तरदायी होती है।

अकादमिक उपसमिति

गठन:-माध्यमिक विद्यालयों में अकादमिक उपसमिति का गठन निम्नानुसार किया जाता है-

1.	उप प्राचार्य/वरिष्ठ शिक्षक	-	अध्यक्ष
2.	विज्ञान/गणित/मानविकी/कला/क्राफ्ट/संस्कृति/खेलकूद आदि का एक-एक विशेषज्ञ	-	सदस्य
3.	प्राचार्य द्वारा नामांकित एक छात्र (ऐच्छिक)	-	सदस्य

उत्तरदायित्व: अकादमिक उपसमिति सभी प्रकार के अकादमिक गतिविधियों जिनमें योजना, प्रबंधन, मॉनिटरिंग, सुपरविजन, रिपोर्टिंग, डाटा संग्रहण, आदि सम्मिलित है के लिए उत्तरदायी होती है। अकादमिक समिति शैक्षिक क्वालिटी सुधार, समानता, सामाजिक-आर्थिक, लिंगभेद तथा नि:शक्तता की बाधायें दूर करना, शिक्षक-छात्र उपस्थिति, प्रशिक्षण के लिए शिक्षकों को अनुशंसित करना, गाईडेन्स एवं काउंसिलिंग, छात्र उपलब्धियाँ, पाठ्येत्तर क्रियाकलापों तथा छात्र एवं शिक्षकों के अकादमिक तथा व्यक्तित्व विकास आदि कार्यों के लिए उत्तरदायी होती है।

शाला प्रबंधन एवं विकास समिति के दायित्व

शाला प्रबंधन एवं विकास समिति विद्यालय के विकास में निम्नानुसार दायित्व निभाते हैं-

अकादमिक

विद्यालय के आस-पास यह सुनिश्चित करना की कोई भी 14 से 18 उम्र समूह के बच्चे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से वंचित न हों, इसके लिए निम्नांकित बातें ध्यान रखने योग्य है-

- 14 से 18 उम्र समूह के बच्चों को शाला में प्रवेश के लिए प्रेरित करना। विद्यालय में जाति, लिंग एवं नि:शक्तता के कारण प्रवेश से वंचित न हों।
- पालकों में जागरूकता उत्पन्न करने के लिए पालकों-शिक्षकों की नियमित बैठकें आयोजित करना।
- शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हेतु योजना बनाना तथा क्रियान्वयन को सुनिश्चित करना।
- विद्यालय के समस्त कार्यों में प्राचार्य को सहयोग प्रदान करना।
- शिक्षकों को अध्ययन-अध्यापन के लिए प्रेरित करना।

मॉनिटरिंग

- विद्यालयों में आरएमएसएयोजना अंतर्गत संचालित सभी योजनाओं की मॉनिटरिंग करना तथा एसएमडीसीकी बैठकों में समीक्षा करना।
- विद्यालय में विद्यार्थियों तथा शिक्षकों की उपस्थिति की निगरानी करना।

वित्तीय

- विद्यालयों में आरएमएसएयोजना अंतर्गत विभिन्न मदों के अंतर्गत क्रय की जाने वाली सामग्रियों को प्राथमिकता के आधार पर अनुमोदन करना।
- राशि आहरण एवं व्यय की जानकारी लेखापंजी में दर्ज कराना तथा वित्तीय प्रबंधन पर निगरानी रखना।
- समस्त आय-व्यय का वार्षिक लेखा रखना तथा उसका सार्वजनिक प्रदर्शन करना।

वर्तमान विद्यालयीन परिवेश एवं सुधार के संभावित क्षेत्र

सामान्यत: राज्य के अनेक विद्यालयों में आधारभूत संरचना, संज्ञानात्मक तथा संगठनात्मक क्षेत्र में विकास हुआ है। शिक्षक, पालक एवं समुदाय के सहयोग से विद्यार्थियों में सर्वांगीण विकास का प्रयास किया जा रहा है और इसमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हो रही है।

इसमें सुधार के संभावित क्षेत्र कुछ इस प्रकार हैं-

1. शाला भवन	2. अहाता
3. खेल का मैदान	4. शौचालय/मूत्रालय
5. शुद्ध पेयजल	6. शाला अप्रवेशी तथा शाला त्यागी विद्यार्थी
7. विद्यार्थियों की उपस्थिति	8. कैरियर निर्माण
9. बैठक में सदस्यों की उपस्थिति	10. शैक्षिक गुणवत्ता
11. पुस्तकालय	12. प्रयोगशाला
13. वृक्षारोपण	14. विद्यार्थी अनुशासन
15. पाठ्येत्तर क्रियाकलाप	16. साहित्यिक व सांस्कृतिक गतिविधि

शाला प्रबंधन एवं विकास समिति की कार्य एवं भूमिका

विद्यालयों में एसएमडीसी द्वारा किये जाने कार्य व भूमिका निम्नानुसार है:-

शाला सुधार योजना निर्माण में एसएमडीसीकी भूमिका: एसएमडीसीको शाला में परिलक्षित होने वाली समस्याओं का चिन्हांकन करने एवं निराकरण करने हेतु शाला सुधार योजनाका निर्माण करना आवश्यक है जिससे लिपिबद्ध कार्ययोजना के अनुरूप निश्चित समयसीमा में उपलब्ध संसाधनों के आधार पर चिन्हांकित समस्याओं को प्राथमिकता के अनुक्रम में सर्वसम्मति से कार्य करने का उद्देश्य पूर्ण हो सके।

शैक्षिक गुणवत्ता के विकास में एसएमडीसीकी भूमिका: एसएमडीसीके पास व्यापक सोच एवं अनुभव होता है, जो गुणवत्ता सुधार में मुख्य भूमिकानिभा सकता है। किसी भी विद्यालय के सर्वांगीण विकास में एसएमडीसीमार्गदर्शक, परामर्श, सुविधादाता, योजना निर्माता, व्यवस्थापक, निगरानीकर्ता तथा नियंत्रक के रूप में सक्रिय भूमिका अदा कर सकता है, कुछ निम्नानुसार हैं-

- योजना निर्माण क्रियान्वयन एवं मॉनीटरिंग
- विद्यालय प्रशासन एवं प्रबंधन
- समन्वय एवं सहभागिता

शोध का उद्देश्य

प्रस्तावित समस्या कथन में निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये जायेंगे-

1. माध्यमिक विद्यालयों में शाला प्रबंधन एवं विकास समिति की भागीदारी का अध्ययन करना।
2. माध्यमिक विद्यालयों में शाला प्रबंधन एवं विकास समिति की भागीदारी के परिणामस्वरूप शैक्षिक गुणवत्ता का अध्ययन करना।
3. माध्यमिक विद्यालयों में शाला प्रबंधन एवं विकास समिति की भागीदारी के परिणामस्वरूप संसाधनों की उपलब्धता का अध्ययन करना।
4. माध्यमिक विद्यालयों में शाला प्रबंधन एवं विकास समिति की भागीदारी के परिणामस्वरूप विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि, नामांकन एवं ठहराव का अध्ययन करना।
5. शाला प्रबंधन एवं विकास समिति द्वारा किये गए कार्यों की जानकारी मिल सकेगी।

इस क्षेत्र में पहले से किये गये शोध

प्रस्तुत समस्या ''माध्यमिक विद्यालयों में शैक्षिक गुणवत्ता एवं संसाधनों की उपलब्धता में शाला प्रबंधन एवं विकास समिति ;एसएमडीसीद्धकी भागीदारी'' शाला प्रबंधन एवं विकास समिति से संबंधित विषय एवं उसकी प्रभावशीलता पर अनेक शोध कार्य हुए हैं, जो निम्नानुसार हैं:-

1. वशिष्ठ, अनुराधा (2010); ने अपने अध्ययन ''ए स्टडी ऑफ द इफेक्ट ऑफ पैरेंटल इन्व्हालमेंट ऑन द एकेडेमिक एचिव्हमेंट ऑफ एडोलसेंट स्टुडेंट्स विद रिस्पेक्ट ऑफ देयर सेल्फ-स्टीम'' में- (1) शहरी एवं ग्रामीण किशोर विद्यार्थियों के अध्ययन पर उनके अभिभावकों की सहभागिता में सार्थक अंतर पाया। (2) शहरी एवं ग्रामीण किशोर विद्यार्थियों के अध्ययन एवं शैक्षिक उपलब्धि पर उनके अभिभावकों की सहभागिता में सार्थक अंतर पाया।
2. नागेश्वर, रजनीश कुमार (2011); ने अपने शोध कार्य ''सामुदायिक सहभागिता के संदर्भ में शाला के गुणात्मक विकास का अध्ययन'' में-सामुदायिक सहभागिता युक्त शाला में विद्यार्थियों की उपस्थिति एवं शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि पाई।
3. भार्गव, तृप्ति (2012); ने अपने अध्ययन ''दिल्ली के शहरी एवं ग्रामीण सीनियर सेकेण्डरी विद्यार्थियों पर उनके पालकों के प्रोत्साहन एवं शैक्षिक उपलब्धि में संबंध'' में पाया कि-नगरीय किशोर छात्रों में ग्रामीण किशोर छात्रों की अपेक्षा पालकों का प्रोत्साहन अधिक पाया गया। ग्रामीण छात्रों की अपेक्षा नगरीय छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि अधिक पायी गयी। पालकों के प्रोत्साहन एवं छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक संबंध होता है।
4. यादव, डॉ. उर्मिला (2012); ने अपने शोध कार्य ''विद्यार्थियों के आत्म प्रत्यय पर अभिभावक प्रोत्साहन के प्रभाव का अध्ययन'' में पाया कि- (1) उच्च अभिभावक प्रोत्साहन वाले छात्र/छात्राओं के आत्म प्रत्यय, निम्न अभिभावक प्रोत्साहन वालेछात्र/छात्राओं से अधिक पाये गए। (2) अभिभावक प्रोत्साहन के फलस्वरूप शहरी क्षेत्र के छात्र/छात्राओं के आत्म प्रत्यय के मध्यमान ग्रामीण क्षेत्र के छात्र/छात्राओं की अपेक्षा कुछ अधिक रहे।
5. राजरानी एंड रंजना अरोरा(2004), ने अपने शोध ''पार्टीसिपेशन इन इलेमेंट्री एजुकेशन'' में पाया कि-शिक्षा के उद्देश्य तक पहुँचने के लिए सामूहिक सहभागिता एक निर्णायक तत्व के रूप में न केवल राष्ट्रीय स्तर पर वरन् अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्य हो चुका है। विशेषकर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 लागू होने के बाद सामूहिक सहभागिता का अर्थ, अवधारणा, प्रकृति और क्षेत्र में समय के साथ बहुत सारे परिवर्तन हुए हैं। प्राथमिक शिक्षा की योजना और प्रबंधन में समुदाय अब एक सहभागी के रूप में वास्तव में एक उपभोक्ता की तरह है।

नोट किये गये कार्य के क्षेत्र में प्रस्तावित कार्य का योगदान

प्रस्तावित कार्य का योगदान निम्नानुसार हो सकता है-

1. माध्यमिक विद्यालयों की शैक्षिक गुणवत्ता का अध्ययन हो सकेगा।

2. माध्यमिक विद्यालयों में संसाधनों की उपलब्धता संबंधी जानकारी मिल सकेगी।
3. माध्यमिक विद्यालयों में शाला प्रबंधन एवं विकास समिति की भागीदारी संबंधी उपयोगिता को समझ सकेंगे।
4. माध्यमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि, नामांकन, एवं ठहराव काअध्ययन कर योजना बनाने में सहायता मिलेगी।

प्रस्तावित अनुसंधान प्रविधि

परिकल्पना

H_{o1}. शहरी एवं ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों के शाला प्रबंधन एवं विकास समिति की भागीदारी में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

H_{o2}. शहरी एवं ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों के नामांकन में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

H_{o3}. शहरी एवं ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों के ठहराव में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

H_{o4}. शहरी एवं ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों में शाला प्रबंधन एवं विकास समिति की भागीदारी द्वाराशैक्षिक गुणवत्ता में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

H_{o5}. शहरी एवं ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों में शाला प्रबंधन एवं विकास समिति की भागीदारी द्वाराशैक्षिक उपलब्धि में सहसंबंध पाया जाएगा।

H_{o6}. शहरी एवं ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों में शाला प्रबंधन एवं विकास समिति की भागीदारी द्वारा संसाधनों की उपलब्धता में सहसंबंध पाया जाएगा।

H_{o7}. शहरी एवं ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों के शाला प्रबंधन एवं विकास समिति के सचिवों की केस स्टडी में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

अनुसंधान विधि

प्रस्तुत शोध प्रबंध कार्य में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया जायेगा।

न्यादर्श

प्रस्तुत शोध में शोधार्थी द्वारा कोरबा जिले के कुल 179 माध्यमिक विद्यालयों के 3759 सदस्यों में से 33 शहरी माध्यमिक विद्यालयों के 693 एवं 146 ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों के 3066 एसएमडीसी सदस्योंमें से क्षेत्रीय समानता (मैपिंग) के आधार पर 15 शहरी एवं 15 ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यालयों में से क्रमशः 200-200 सदस्यों का चयन संभाव्य न्यादर्श विधि के अंतर्गत अनियमित न्यादर्श चयन में लाटरी विधि से किया जाएगा।

इन्हीं विद्यालयों के सत्र 2015-16 से 2019-20 तक पाँच वर्षों का कक्षा दसवीं बोर्ड परीक्षाफल प्राप्त किया जाएगा। सत्र 2018-19 में कक्षा दसवीं में कुल 16534 छात्र पंजीकृत थे।

शोध उपकरण-निम्नांकित शोध उपकरण प्रयोग में लाए जायेंगे-

1. स्वनिर्मित प्रश्नावली: प्रस्तुत अध्ययन में तथ्यों के संकलन हेतु शोधकर्ता द्वारा शोध उपकरण के रूप में स्वनिर्मित प्रश्नावली (मापनी) का निर्माण किया जाएगा। स्वनिर्मित प्रश्नावली के निर्माण हेतु निर्धारित सोपानों का अनुसरण कर विद्यालय में संसाधनों के विकास, प्रवेश, ठहराव, अनुशासन पर आधारित प्रश्नावली बनाया जाएगा।
2. शैक्षिक उपलब्धि का मापन: माध्यमिक विद्यालयों में शैक्षिक उपलब्धि के परीक्षण हेतु पाँच सत्र 2015-16 से 2019-2020 में कक्षा 10वीं के वार्षिक परीक्षा परीक्षाफल को लिया जाएगा। इसमें सत्रानुसार उत्तीर्ण विद्यार्थियों की संख्या को लिया जाएगा तथा कुल छात्र संख्या के आधार पर प्रतिशत निकाला जाएगा।
3. केस स्टडी: शाला प्रबंधन एवं विकास समिति के सचिवों द्वारा 30 प्रश्न केस स्टडी के पूछे जायेंगे।

सांख्यिकी विधियों का चयन

प्रस्तुत शोध में परिकल्पना के परीक्षण हेतु सहसंबंध, टी-टेस्ट, काई वर्ग का प्रयोग किया जायेगा।

आपेक्षित निष्कर्ष

प्रस्तावित शोध के निम्नांकित निष्कर्ष प्राप्त हो सकते हैं-

1. शहरी एवं ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों में शाला प्रबंधन एवं विकास समिति की भागीदारी का पता लग सकेगा।
2. शहरी एवं ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों की शैक्षिक गुणवत्ता का ज्ञान होगा।
3. शहरी एवं ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों में संसाधनों की उपलब्धता की जानकारी होगी।
4. शहरी एवं ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि, नामांकन, एवं ठहराव का ज्ञान होगा।
5. शहरी एवं ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों में शाला प्रबंधन एवं विकास समिति की भागीदारी एवं संसाधनों की उपलब्धता में परस्पर संबंध का पता लग सकेगा।
6. शहरी एवं ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों में शाला प्रबंधन एवं विकास समिति कीभागीदारी एवं शैक्षिक उपलब्धि में परस्पर संबंध का पता लग सकेगा।

7. शहरी एवं ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों में शाला प्रबंधन एवं विकास समिति की भागीदारी एवं नामांकन, उपस्थिति एवं ठहराव में परस्पर संबंध का पता लग सकेगा।

संदर्भग्रंथ

1. अग्रवाल, जे.सी. एवं जायसवाल, विजय (2013)- शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबंधन, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा (उ.प्र.)।
2. पाण्डेय, डॉ.रामशकल (2011)- उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल पब्लिकेशंस आगरा (उ.प्र.), पेज 4.।
3. सक्सेना, एन.आर.स्वरूप एवं संजय कुमार (2013)- शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धाँत, आर.लाल.बुक डिपो, मेरठ (उ.प्र.), पेज 12,39,46,61.
4. लेखा-प्रशिक्षण पुस्तिका (2009-10)- राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान, राजीव गांधी शिक्षा मिशन, छ.ग. रायपुर।
5. मार्गदर्शिका (2006)- सर्व शिक्षा अभियान, राज्य परियोजना कार्यालय, राजीव गांधी शिक्षा मिशन, छ.ग. रायपुर।
6. परिप्रेक्ष्य, शैक्षिक योजना एवं प्रशासन का सामाजिक आर्थिक संदर्भ (अप्रैल अगस्त 1999)- अंक 1-2, अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली।

फुटनोट

1. प्रशिक्षण संदर्शिका सह पठन सामग्री, रा.मा.शि.मि., छ.ग., रायपुर, वर्ष 2014-15 पृ. 5 एवं 6
2. पाठक, दीपेन्द्र कुमार- ''समुदाय की नजर में विद्यालय प्रबंधन समिति की अवधारणा'' परिप्रेक्ष्य, वर्ष 21, अंक 2, अगस्त 2014, पृ. 55 एवं 56
3. सक्सेना, एन.आर.स्वरूप- शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय स्वरूप, आर.लाल.बुक डिपो, मेरठ, पृ. 1
4. राव, बसंत श्रीनिवास- प्राथमिक शिक्षा में अभिभावक-अध्यापक संघ के सदस्यों की भागीदारी (जनजातीय क्षेत्रों का केश अध्ययन), परिप्रेक्ष्य, वर्ष 20, अंक 1, अप्रैल 2013, पृ. 2 व 3

पलायन करने वाले श्रमिक परिवारों के बच्चों की प्राथमिक शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन (बलौदाबाजार जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ० संजीत कुमार साहू

(शोध निर्देशक) विभागाध्यक्ष, शिक्षाविभाग (श्री रावतपुरा सरकार, विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

ईश्वर प्रसाद यदु

(पी.एच.डी शिक्षा शोधार्थी) श्री रावतपुरा सरकार, विष्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

प्रस्तावना

पलायन या प्रवास एक सार्वभौमिक तथ्य है। दुनिया के प्रत्येक समाज में किन्हीं न किन्हीं कारणों से प्रवास की प्रवृत्ति आवश्यक रूप से देखा जा सकता है। प्रवास के कारण भी अनेक हो सकते हैं, कभी प्रवास का कारण धार्मिक यात्रा या तीर्थाटन होता है तो कभी उच्च षिक्षा, रोजगार युद्ध, अकाल व महामारी जनसंख्या के बड़े पलायन का कारण बनती है। कारण के अनुरूप ही हमें इसका प्रभाव भी समाज में सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों ही रूपों में देखने को मिलता रहा है। जहाँ सकारात्मक प्रवास के प्रभाव भी सकारात्मक होते है, वहीं विपत्ति एवं आपदा में किये जाने वाले प्रवास का नकारात्मक प्रभाव भी समाज पर पड़ता है। भारत में प्रवास की प्रकृति को अभी तक मूल रूप से प्राकृतिक आपदा, गरीबी और भूखमरी से जोड़कर देखा जाता रहा है। इसका कारण भी वाजिब है, क्योंकि भारत की जनगणना 2001 के अनुसार देष की कुल आबादी का 26 प्रतिषत भाग गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन करता है और प्रवास का संबंध इस बड़े भाग से रहा है। भारत में जनगणना 2011 के आंकड़ों के अनुसार देश की कुल जनसंख्या 121.02 करोड़ आंकलित की गयी है जिसमें 68.84 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है, जबकि 31.16 प्रतिषत की आबादी शहरों में निवास करती है। स्वतंत्र भारत के प्रथम जनगणना 1951 में गांवों और शहरों की आबादी का अनुपात 83 प्रतिशत एवं 17 प्रतिषत था। आजाद भारत के छः दशक बाद 2011 की जनगणना में गांवों और शहरों की जनसंख्या का प्रतिशत 70 एवं 30 प्रतिशत थी। इन आंकडों से स्पष्ट होता है, कि भारत में गांव के व्यक्तियों का शहरों की ओर पलायन बढ़ रहा है।

भारत में प्रवास का जो स्वरूप देखने को मिलता है, वह ग्राम में नगर उत्प्रवास मुख्य है, अर्थात् लोग विभिन्न कारणों से गाँव से षहर की ओर प्रवास करते हैं। ऐसी स्थिति में इसका सर्वाधिक प्रभाव भी ग्रामीण समुदाय में ही देखा जा सकता है, यदि हम इसके प्रभाव की व्यापकता पर विचार करते हैं तो इससे बच्चे और वृद्ध ही सबसे ज्यादा प्रभावित होते हैं, यही कारण है कि अध्ययन हेतु वृद्धजनों का चुनाव किया है। एक ओर जहॉ पूरा विश्व भारत को 21वीं सदी के महाशक्ति के रूप में देख रहा है, जिसका कारण भारत में कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत दुनिया में सर्वाधिक होना है। वही दूसरी ओर इसका कटु पक्ष आज से 20 साल बाद इस रूप में देखने को मिल सकता है, कि दुनिया के सर्वाधिक वृद्ध भारत में ही होगें। तब वृद्धों की समस्या और उसका समाधान एक चिंतनीय विषय बन चुका होगा, ऐसी स्थिति में प्रवास पर आधारित अध्ययन के माध्यम से हम न केवल वर्तमान में वृद्धजनों के प्रवास से जुडें समस्याओं से अवगत हो पायेगें वरन् भविष्य में इन समस्याओं के समाधान के दिशा में किये जा सकने वाले संभावित प्रयासों को भी ढूढ़ सकते है। यही कारण है कि मैंने अध्ययन हेतु इस विषय का चुनाव किया है।

पलायन और बच्चों की शिक्षा में धनात्मक संबंध होता है अर्थात् पलायन के दर में वृद्धि से निरक्षता में भी वृद्धि होती है, क्योंकि सामान्यतौर पर पलायन नंवबर से मार्च माह के बीच किया जाता है और इस अवधि में बच्चे स्कूल में पढ़ रहे होते हैं और पलायन करने पर उनकी पढ़ाई बीच में ही छूट जाती है और ये मजदूर जिन महानगरों या छोटे नगरों में प्रवास करते हैं, वहां यह संभव नहीं हो पाता कि ये बच्चों को दाखिला दिला सकें, क्योंकि इन बच्चों की षिक्षा का प्रबंध कोई भी विद्यालय द्वारा नहीं किया जा सकता है, परिणामतः बच्चे केवल छोटे बच्चों की रखवाली और खाना बनाने के कार्य में संलग्न रह जाते हैं और यहीं से निरक्षरता की शुरूआत होती है। यह सिलसिला लगातार कुछ वर्षों (5-10) तक चलने के बाद स्वाभाविक रूप से बाल श्रमिक के रूप में बदलकर बंद हो जाती है। वह बच्चा फिर दुबारा स्कूल जाने के विषय में सोच भी नहीं पाता है, इन्ही बातों को ध्यान में रखते हुए अध्ययन हेतु इस विषय का चुनाव किया गया है।

अत: स्पष्ट है, कि छत्तीसगढ़वासियों का सम्पूर्ण जीवन आधार कृषि है,कृषि का स्वरूप भी अनुपजाऊ एवं एक फसलीय है,वही ग्रामीण क्षेत्रों की बढ़ती जनसंख्या एवं आवष्यकताओं की वृद्धि ने ग्रामीण क्षेत्रों से श्रम पलायन की प्रवृत्ति में निरंतर वृद्धि की है, जिसके परिणामस्वरूप स्थानीय श्रम की अनुपलब्धता ने स्थानीय विकास को प्रभावित किया है इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए इस विषय पर शोध कार्य प्रस्तुत किया गया है, ताकि छत्तीसगढ़ से श्रम पलायन का यहॉ की अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जा सके। प्रस्तुत शोध प्रबंध "पलायन करने वाले श्रमिक परिवारों के बच्चों की प्राथमिक षिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन" (बलौदाबाजार जिले के विषेष संदर्भ में) षोधकर्ता द्वारा इस समस्या के समाधान के लिए अध्ययन किया गया,जिसके द्वारा पलायन करने वाले श्रमिक परिवारों के बच्चों की प्राथमिक षिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन की वास्तविक स्थिति की प्राप्ति होगी।

2.1. पलायन का अर्थ

पलायन शब्द का प्रयोग प्रवास के संदर्भ में ही किया जाता है क्योंकि पलायन शब्द की कोई पृथक व्याख्या उल्लेखित नहीं मिलती है। वास्तव में पलायन भागने की प्रवृत्ति की ओर इशारा करता है। जब कोई व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों से विमुख होता है तो इसे ही पलायनवादी प्रवृत्ति कहा जाता है। छत्तीसगढ़ राज्य के श्रमिकों के प्रवास को पलायन की प्रवृत्ति से जोड़कर देखा जाता रहा है क्योंकि यहां के लघु व सीमांत कृषक तथा भूमिहीन मजदूर मूलनिवास के आस-पास रोजगार की संभावनाओं को तलाशने के स्थान पर सीधे ही देष व राज्य के बड़े नगरों की ओर रोजगार की तलाष में पलायन करते है। चूंकि विगत कई वर्षों से पलायन की प्रवृत्ति इन्हें आदतन पलायनकर्ता बना चुकी है परिणामत: चाहे परिस्थितियां सामान्य हो, अच्छी बारिश हो, रोजगार उपलब्ध हो तो भी ये राज्य या राज्य के बाहर प्रवास करते है और इसी प्रवृत्ति को पलायन कहा जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में पलायन से संबंधित सभी अवधारणाओं की व्याख्या प्रवास की सैद्धातिक व्याख्या एवं अवधारणाओं को ध्यान में रखकर किया गया हैं।

03. वर्तमान अध्ययन/शोध का उद्देष्य:

शोधकर्ता द्वारा ली गई षोध समस्या के अध्ययन हेतु निम्नलिखित उद्देष्यों का निर्माण किया गया है -

1. बलौदाबाजार जिले के पलायन करने वाले श्रमिक परिवारो के श्रमिको की संख्या तथा पलायन करने के कारणो को जानना।
2. बलौदाबाजार जिले में प्राथमिक शाला के छात्रों की संख्या ज्ञात करना तथा छात्रों के विद्यालाय छोड़ने के कारणो को पता लगाना।
3. पलायन किये गये मजदुरो का वर्तमान स्थिति को जानना तथा उनके बच्चे की प्राथमिक शैक्षिक स्थिति को पता करना।
4. पलायन करने वाले श्रमिक परिवारो के घरो से बच्चो की षैक्षिक स्थिति का पता लगाना।
5. श्रम पलायन करने वाले श्रमिक परिवारो के बच्चो की प्राथमिक षाला को छोड़के कारण व प्राथमिक शालाओं द्वारा इस विषय पर किये गये कार्यो का पता लगाना।

04. इस क्षेत्र मे पहले से किए गये अध्ययन

प्रस्तुत शोध समस्या "पलायन करने वाले श्रमिक परिवारों के बच्चों की प्राथमिक शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन" (बलौदाबाजार जिले के विशेष संदर्भ में) के अतंर्गत अधिकांष षोध कार्य विभिन्न राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय शोध सम्मेलनों में प्रस्तुत किए गये शोध पत्र के रूप में ही देखने को मिलता है। इन शोध साहित्यों के अध्ययन के पश्चात् शोधार्थी द्वारा अपने शोध विषय को अधिक सार्थक बनाने का प्रयास किया गया है, ताकि शोध के परिणाम सत्य एवं वास्तविकता के अधिक निकट हो। शोधार्थी द्वारा जिन षोध साहित्यों की सहायता ली गई है, उनका विवरण निम्नानुसार है -

भारत में पलायन करने वाले श्रमिक परिवारों से संबंधित षोध अध्ययन: अली सैयद (2007) का अध्ययन हैदराबाद के मुस्लिम समुदाय के युवा सदस्यों के प्रवास पर आधारित रहा है। अध्ययन इस बात पर प्रकाष डालता है कि सूचना प्रौद्योगिकी तथा कम्प्यूटर के क्षेत्र में बढ़ती रोजगार के संभावनाओं के कारण आज युवा पीढ़ी अमेरिका, सऊदी अरब जैसे देशों में बड़ी संख्या में प्रवास कर रहे हैं। उनके प्रवास किये जाने के फलस्वरूप उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति सांस्कृतिक मान्यताओं तथा सामाजिक संबंधों पर क्या प्रभाव पड़ता है। अध्ययन से ज्ञात तथ्य यह बताता है कि युवा सदस्यों के पश्चिमी देशों में प्रवास के फलस्वरूप परिवार के सामाजिक आर्थिक स्थिति बेहतर होती है पर इससे सामाजिक सांस्कृतिक मान्यतायें प्रभावित होती है।

एक एलन एण्ड अदर (2008) इस बात पर आधारित था कि किस प्रकार प्रवास का युवा महिलाओं के मनोवैज्ञानिक प्रकृति, सामाजिक-आर्थिक स्थिति तथा भविष्य पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ता है। अध्ययन दक्षिणी फिनलैण्ड पर आधारित था। अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि प्रवास ग्रामीण युवाओं की सामाजिक-आर्थिक बेरोजगारी स्वास्थ्य की स्थिति पर गहरा प्रभाव डालता है।

गौतम टीकाराम (2008) का अध्ययन नेपाल में परिवार के युवा सदस्य का प्रवास का वृद्धजनों पर पड़ने वाले प्रभाव से रहा है, जिसमें अध्ययन का निष्कर्ष यह स्पष्ट करता है कि प्रवास के फलस्वरूप 80 प्रतिशत से अधिक वृद्धजन स्वयं को अकेला मददविहीन और भयभीत महसुस करते हैं। इस प्रकार की परेषानियाँ उन्हें अपने सामाजिक परिवेश और समुदाय से सामजस्य स्थापित करने में बाधा पहुँचाती हैं। परिणामत: परिवार का युवा सदस्य का प्रवास उनके लिए अभिशाप से कम नहीं होता है।

क्राय, केलविन (2009) यह अध्ययन स्वीडन में परिवार के युवा सदस्य के प्रवास का परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, लिंग संरचना पर पड़ने वाले प्रभाव पर आधारित है। अध्ययन यह दर्शाता है कि युवा सदस्यों के प्रवास से घर की स्थिति तो मजबूत होती है पर वृद्ध सदस्यों को अकेलेपन का सामना करना पड़ता है।

कोनेल जॉन और अन्य (2010) का अध्ययन थाईलैंड के ग्रामीण क्षेत्रों से युवा सदस्यों के प्रवास का परिवार के वृद्ध सदस्यों पर पड़ने वाले प्रभाव से संबंधित है। अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षो से यह स्पष्ट है कि नगरों में प्रवास किये जाने के फलस्वरूप मोबाइल फोन पारिवारिक संबंधों को बनाये रखने में

महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके साथ ही प्रवास के फलस्वरूप घरेलु जरूरत की वस्तुओं की पूर्ति भी हो जाती है लेकिन छोटे परिवारों से युवा सदस्यों के प्रवास के फलस्वरूप परिवार के वृद्ध सदस्यों को सामाजिक, आर्थिक एवं स्वास्थ्यगत समस्याओं से जुझना पड़ता है। खासकर अधिक उम्र के वृद्ध सदस्यों को थाईलैंड के अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में यह एक प्रमुख समस्या के रूप में देखी गयी है।

जिमर, जैकरी (2013) का अध्ययन युवा प्रवासियों द्वारा अपने माता-पिता को दिये जाने वाले सहायता पर आधारित है। अध्ययन यह दर्शाता है कि अंतर्राष्ट्रीय प्रवास की स्थिति में युवा सदस्य अपने माता-पिता को अधिक आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं जबकि देश के भीतर प्रवास करने पर कम मदद कर पाते हैं।

भारतीय नगरों में अप्रवास के संदर्भ में लाल (1961) ने नगरों में अप्रवास प्रतिरूप का अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त अहमद (1961) ने बिहार में जनसंख्या प्रवास के क्षेत्रीय प्रतिरूप का अध्ययन, बोस (1967) का भारत के जनसंख्या प्रवास के प्रवाह का अध्ययन, प्रवास प्रतिरूप के संदर्भ में जसबीर सिंह (1969) का वर्ष 1951-61 के मध्य हिसार जिले में जनसंख्या प्रवास एवं ग्रामीण जनसंख्या प्रवास की प्रवृत्ति तथा एम्स (1965) का भारत में नगरीकरण के संदर्भ में ग्रामीण नगरीय प्रवास विशेष महत्व के रहें।

बैनर्जी (1986) का भारत में जाति के अध्ययन के अंतर्गत ग्रामीण से नगरीय प्रवास एवं वैवाहिक प्रवास का अध्ययन दिल्ली एवं उसके निकटवर्ती क्षेत्रों के संदर्भ में, थामस एवं मेहता (1984) का ग्रामीण-नगरीय प्रवास, चिब (1985) का किन्नौर जिले में जनसंख्या प्रवास प्रतिरूप, प्रेमी (1985) का भारत के बड़े नगरों में प्रवासी महिलाओं की श्रमषक्ति, इंदल सिंह राठौर एवं प्रेमी (1986) का उत्तर प्रदेश का ग्रामीण उत्प्रवास का प्रादेशिक अध्ययन उल्लेखनीय रहें।

शर्मा (1989) ने श्रमिकों के पलायन संबंधी अपने अध्ययनों में अविभाजित मध्यप्रदेश में पलायन की समस्या एवं इसके कारण तथा पलायनकर्ता श्रमिकों द्वारा अपनाए जाने वाले परिवहन के साधनों तथा श्रमिकों द्वारा पलायन पश्चात् किए जाने वाले कार्यों का विश्लेषण किया है। प्रवास से संबंधित 1990 के बाद में व्यक्तिगत सर्वेक्षण पर आधारित अध्ययन अधिक हुए। अध्ययनों में गुप्ता (1992) का नगरीय विकास प्रक्रिया में अप्रवासी के योगदान, गुप्ता एवं शर्मा (1984) का मध्य प्रदेश में अप्रवास मध्यप्रदेश में अंतर जिला पुरूष उत्प्रवास (1996) एवं छत्तीसगढ़ से अल्पकालिक ग्रामीण उत्प्रवास (1997), सिंह एवं हारून सज्जाद (1997) का अलीगढ़ जिलें में ग्रामीण भूमिहीन मजदूरों का प्रवास महत्वपूर्ण अध्ययन रहे।

शर्मा एवं गुप्ता (1997) ने छत्तीसगढ़ में श्रमिक प्रव्रजन से संबंधित अध्ययन में यह पाया कि अन्तर जिला एवं राज्य के बाहर होने वाले प्रवास के पीछे आर्थिक समस्याओं को तथा राज्य सरकार द्वारा पर्याप्त एवं गंभीर प्रयासों के अभाव को प्रव्रजन का एक प्रमुख उत्तरदायी तत्व माना है।

सेन (2001) ने श्रमिकों के पलायन संबंधी शोध अध्ययन में इस तथ्य को स्पष्ट किया है, कि छत्तीसगढ़ के मजदूरों का सामूहिक रूप से पलायन करने का इतिहास काफी पुराना है, लगभग एक सदी पुराना जो 19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में आए अकालों तथा बंगाल नागपुर रेल्वे के बिलासपुर आसन लेन के 1891 में स्थापित रेल लाइन से प्रारंभ होती हैं।

विदेशों में श्रम पलायन से संबंधित षोध अध्ययन

बुलसरा (1965) ने कलकत्ता में पलायनकर्ता श्रमिकों के अध्ययन में यह पाया कि 82 प्रतिशत पलायनकर्ता अकुशल श्रमिक थे।

बेल्हम (1971) एवं लक्समेह (1974) ने पलायन एवं आयु संबंधी अपने महत्वपूर्ण अध्ययनों में इन्होंने यह मत प्रस्तुत किया है कि पलायनकर्त्ताओं की आयु 15-34 वर्ष के मध्य होती है।

धेसी एवं गुंबर (1982) ने पलायन संबंधी अपने अध्ययनों में यह विचार व्यक्त किया है कि पलायनकर्त्ताओं के परिवार का आकार बड़ा होता है।

प्रवास के सिद्धांत पर सर्वप्रथम अध्ययन रेवेन्सटीन (1889) के द्वारा किया गया है, जिसे उन्होंने प्रवास का नियम कहा है। इसी क्रम में पेंटरसन (1955), ट्रेवर (1961),सहोता (1968),जोब्स पेट्रिक एटआल (1992),वेन्क एवं हारडेस्टी (1993) आदि ने अपने अध्ययन में गैर आर्थिक कारकों को ग्रामों से षहरों की ओर पलायन में एक प्रेरक कारक माना है।

हबरफील्ड (1999) ने श्रमिकों के पलायन संबंधी अपने अध्ययनों में कृषि से होने वाली कम आय और विषम भौगोलिक संरचना को पलायन का मुख्य कारण माना है।

05. नोट किए गये कार्य के क्षेत्र में प्रस्तावित कार्य का योगदान

1. पलायन करने वाले श्रमिक परिवारो की जानकारी बलौदाबाजार जिले के शासकीय एवं अशासकीय कार्यालय एवं विद्यालय प्राप्त कर पायेंगे।
2. पलायन करने वाले श्रमिक परिवारो की संख्या एवं उनके बच्चो की संख्या विद्यालय जान पायेंगे।
3. प्राथमिक विद्यालय पलायन करने वालो छात्रों और पलायन नही करने वालो छात्रों मे अंतर कर पायेंगे।
4. पलायन करने से बच्चो की शैक्षणिक स्तर पर पड़ने वाले प्रभाव को षिक्षक समीक्षा कर पायेंगे।
5. पलायन करने वाले बच्चो के शैक्षिक उपलब्धियों का पता लगाकर शिक्षण व शिक्षा के स्तर का उचित आकलन हो पायेगा और बेहतर के लिए कार्य योजन बनाई जा सकेगी।
6. प्राथमिक स्तर के सभी शिक्षको को पलायन करने वाले बच्चो की प्राथमिक शिक्षा हेतु विभिन्न नवाचार शिक्षण कौशल विकास व क्षमता विकास हेतु प्रषिक्षण दिया जा सकेगा।

06. अनुसंधान प्रविधियां

अ. परिकल्पना

प्रस्तुत शोध प्रबंध में शोधकर्ता अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए निम्नलिखित परिकल्पनाओं का निर्माण किया है -

1. बलौदाबाजार जिले में श्रम पलायन करने वाले श्रमिको की संख्या पूर्व के अपेक्षा कम पलायन किये।
2. बलौदाबाजार जिले के प्राथमिक षालाओं में पलायन करने वाले श्रमिको की संख्या कम है।
3. पलायन करने वाले श्रमिको के बच्चो प्राथमिक स्तर अध्ययन पर कोई प्रभाव नही पड़ा।
4. पलायन करने वाले श्रमिको के बच्चो के प्राथमिक षिक्षा के लिए प्राथमिक षाला द्वारा कोई प्रभावात्मक कोई नही किया जाता।

ब. अनुसंधान विधिः- प्रस्तुत शोध प्रबंध के अध्ययन हेतु शोध विधि के रूप में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि (Descriptive Survey Method) का उपयोग किया जाएगा।

स. न्यायदर्शः- प्रस्तुत शोध अध्ययन में द्वितीयक समंकों के साथ-साथ प्राथमिक समंको का उपयोग मुख्य रूप से किया गया है। प्राथमिक समंकों के लिये सोद्देश्य न्यादर्श पद्धति के द्वारा पलायन करने वाले श्रमिक परिवारों के बच्चों की प्राथमिक शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव प्रतिदर्ष के रूप में किया जाएगा।

द. उपकरणः- प्रस्तुत शोध प्रबंध में प्रदत्तों के संकलन के लिये स्वनिर्मित साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया जाएगा। प्रस्तुत शोध प्रबंध में साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण स्वयं शोधकर्ता द्वारा किया जाएगा। प्रस्तुत शोध प्रबंध में शोधकर्ता द्वारा स्वनिर्मित उपकरण साक्षात्कार - अनुसूची का प्रयोग किया जाएगा।

इ. सांख्यिकीय प्रविधियांः- सांख्यिकीय विष्लेषण अनुसंधान का मूल आधार है। अनुसंधान प्रक्रिया में चयनित प्रतिदर्शो के द्वारा प्रदत्तों का संकलन किया गया और सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया। प्रस्तुत शोध प्रबंध के अध्ययन में प्रतिशत विधि का प्रयोग समीक्षात्मक अध्ययन के लिए किया गया। "पलायन करने वाले श्रमिक परिवारों के बच्चों की प्राथमिक षिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन "(बलौदाबाजार जिले के विषेष संदर्भ में) करने के लिए स्वनिर्मित साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण किया जाएगा,जिसमें अधिकतर (हां/नहीं) वस्तुनिष्ठ प्रश्न हैं। इसके लिए संकलित प्रदत्तों को सारणीकृत किया गया और प्रदत्तों द्वारा प्राप्त आंकड़ों का योग कर प्रतिशत निकाला जाएगा।

07. आपेक्षित निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध प्रबंध में प्रस्तावित कार्य का अपेक्षित नतीजा निम्नलिखित है -

1. पलायन करने वाले श्रमिक परिवारों की आर्थिक स्थिति निम्न हो सकती है।
2. पलायन करने वाले श्रमिक परिवारों की सामाजिक स्थिति निम्न हो सकती है।
3. पलायन करने वाले श्रमिक परिवारों में पलायन करने की प्रवृत्ति हो सकती है।
4. पलायन करने वाले श्रमिक परिवारों की शैक्षिक स्थिति निम्न हो सकती है।
5. पलायन करने वाले श्रमिक परिवारों के बच्चों की प्राथमिक शिक्षा पर प्रभाव पड़ता है।

08. संदर्भ ग्रंथ

- अग्रवाल, एल.एस, (1996). "भारतीय कृषि का अर्थतंत्र", राजस्थान हिन्दी ग्रंथ आकादमी, जयपुर, 16-18.
- कपिल,एच.के. (1992-93). "अनुसंधान विधियाँ", एच.पी.भार्गव बुक हाउस, आगरा, सप्तम संस्करण, 38-40, 71-75.
- पाण्डेय, रामशकल (1987). "शिक्षा दर्शन", विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, तेईसवां संस्करण. 25-30.
- बंसल, एस. सी. (2003). ''अधिवास एवं जनसंख्या भूगोल'', रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ, 130-145.
- बघेल, डी.एस. (2007). "भारत में ग्रामीण समाज", कैलाष पुस्तक सदन, भोपाल, 410-416.
- भटनागर, आर.पी.एवं भटनागर, मीनाक्षी (2005). "शिक्षा अनुसंधान", मेरठ, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, द्वितीय संस्करण, 223-233.
- यादव, विनोद (2008). "छत्तीसगढ़ के दुर्ग जिले में ग्रामीण क्षेत्रों से श्रम पलायन की समस्या एक आर्थिक विश्लेषण", अप्रकाषित शोध प्रबंध, पं. रविशंकर शुक्ल, वि.वि. रायपुर, 13-18.
- राय, पारसनाथ एवं भटनागर (1973). "अनुसंधान परिचय", अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा, 62-90.

साठोत्तरी हिन्दी कहानियों में चित्रित सामाजिक समस्याएँ

कंचन लता गंगवार

शोधार्थी (हिन्दी), जुहारी देवी गर्ल्स पी0जी0 कॉलेज, कानपुर (उ0प्र0)

डॉ० रानी अग्रवाल

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स पी0जी0 कॉलेज, कानपुर (उ0प्र0)

सारांश

नयी कहानी के बाद हिन्दी कहानी जगत में अनेक आन्दोलन उभरकर सामने आये जिनमें प्रमुख हैं - अकहानी, सचेतन कहानी, सहज कहानी, समान्तर कहानी, जनवादी कहानी और सक्रिय कहानी आदि। इन कहानी आन्दोलनों के समवेत रुप को साठोत्तरी कहानी के नाम से जाना जाता है। इन कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से हिन्दी कहानी को एक नया आयाम दिया और एक नवीन शिल्प विधान के साथ समकालीन तथ्यों को यथार्थ रुप में चित्रित किया। आधुनिक युग में नगरीकरण और अति भौतिकता के कारण संबंधों में अजनबीपन और परायेपन की समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। इस अलगावबोध से ऊहापोह की स्थिति उत्पन्न हुई है। भाग-दौड़ की जिन्दगी के परिणामस्वरुप सभी रिश्ते अर्थहीन होते जा रहे है और रिश्तों में अर्थ की प्रधानता हो गई। ऐसे ही विभिन्न समसामयिक मुद्दों को साठोत्तरकालीन हिन्दी कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से चित्रित किया है।

कूट शब्द - साठोत्तरी कहानी, नवीन शिल्प, यथार्थ चित्रण, अलगावबोध, नई भावभूमि।

महानगरीय चकाचौंध को देखकर कभी-कभी व्यक्ति के भीतर असंतोष उत्पन्न होता है तो कभी भौतिक सुविधायें व समृद्वि उसे भयभीत करती है। नगरों की तड़क-भड़क से प्रभावित युवा पीढ़ी के मन में जीवन को अपने दृष्टिकोण से जीने की प्रबल इच्छा होती है और व्यक्ति स्वत: इसकी ओर खिंचा चला जाता है। वर्तमान स्थिति यह है कि आज हर कोई नगरों की भीड़ में समाहित होकर उसका हिस्सा बनने को आतुर है। नगरों में रहने वाले व्यक्तियों की जीवनशैली भिन्न होती है। यहां सभी वर्गो के लोग अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार जीवन यापन करते है। अधिक सफलता प्राप्त करने के पश्चात व्यक्ति के दृष्टिकोण एवं सोच में भी परिवर्तन सुनिश्चित है। आज के इस भौतिकवादी युग में प्रत्येक वर्ग अपनी जिन्दगी को शान-शौकत से जीने की इच्छा रखता है लेकिन दिन पर दिन मंहगाई की मार ने व्यक्ति को बेहाल कर दिया है। इस मंहगाई में नौकरी पेशाव्यक्ति दिन-रात जी तोड़कर मेहनत करता है ताकि अपनी संतान को अच्छी शिक्षा दे सके और उसका भविष्य उज्जवल बना सके। अपने इस उत्तरदायित्व के कारण वह अपनी संतान को पर्याप्त समय भी नहीं दे पाता है।

परिस्थितियाँ यह हैं कि इस भाग-दौड़ की जिन्दगी के परिणामस्वरुप सभी रिश्ते अर्थहीन होते जा रहे हैं, रिश्तों में अर्थ की प्रधानता हो गई है। ऐसे ही विभिन्न समसामयिक मुद्दों को साठोत्तर कालीन हिन्दी कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से चित्रित किया है। आधुनिक युग में नगरीकरण और अति भौतिकता के कारण संबंधों में अजनबीपन और परोयपन की समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। इस अलगाव बोध से ऊहापोह की स्थिति उत्पन्न हुई है। इस अलगाव बोध के संबंध में डॉ बैद्यनाथ जी का कथन उल्लेखनीय है, "अलगाव जीवन के भीतर और बाहर व्यक्ति के भौतिक और मानसिक जीवन की एक ऐसी स्थिति एवं विचार है जिसकी सतत टकराहट में ही व्यक्ति, जीवन को कभी ढोता प्रतीत होता है तो कभी जीता प्रतीत होता है।''[1]

डॉ. कमलेश्वर के अनुसार आधुनिक पूंजीवादी युग में तो यह अलगाव बोध अपने प्रखर रुप में दिखाई पड़ता है उनके अनुसार: '' इस घुटन और वैक्यूम में एक पीढ़ी जी रही है, दूसरी बड़ी हो रही है और तीसरी जन्म ले रही है।''[2]

नियति के अकेलेपन की यातना तथा उसके कारण अजीब सी छटपटाहट को निर्मल वर्मा ने अपनी कहानी ''परिंदे'' में बखूबी दर्शाया है। कहानी की नायिका लतिका चाहकर भी अकेलेपन की यातना से मुक्त नहीं हो पाती। अकेलेपन की इस दुरावस्था को निर्मल वर्मा ने अपनी एक और कहानी ''अंधेरे'' में दर्शाया है, जिसमें एक बच्ची इस समस्या से ग्रस्त है। ''एक दिन का मेहमान'' कहानी में निर्मल जी ने पति पत्नी के मध्य अलगाव एवं अजनबीपन को चित्रित किया है। अजनबीपन और अकेलेपन को लेकर लिखी गई अन्य कहानियों में मन्नू भण्डारी की कहानी ''बन्द दराजों का साथ'' की नायिका मंजरी और गिरिराजकिशोर की ''रिश्ता''कहानी में मां और पुत्र, दीप्ति खंडेलवाल की कहानी ''सन्धिपत्र'' में सीमा और रोहित, राजेन्द्र यादव की ''बिरादरी बाहर'' आदि कहानियों के माध्यम से आधुनिक अलगावबोध और अजनबीपन की तीव्र अनुभुति व्यक्त की गयी है। नगरीय चकाचौंध ने व्यक्ति को किस हद तक प्रभावित किया इसका सफल चित्रण साठोत्तरी हिन्दी कहानीकारों ने अपनी कहानियों में किया है आज के शिक्षित युवा, युवतियां जब अपने से छोटेव्यक्ति को शान-शौकत की जिन्दगी गुजारते हुए देखते है तो उनके मन में हीन भावना उत्पन्न होने लगती है और इस समस्या से यदि सबसे अधिक प्रभावित हुआ

है तो वह है मध्यवर्गीय शिक्षित युवा वर्ग। मन्नू भण्डारी ने अपनी कहानी ''अनचाही गहराइयां'' में इसी दर्द को उकेरा है। कहानी में शिवनाथ इसी छोटेपन को उजागर करता है। नगरों में रहने वाले व्यक्तियों के इसी छोटेपन को चित्रा मुद्गल ने अपनी कहानी ''लिफाफा'' में, अभिमन्यु अनत ने ''बर्फ की आत्मा'' कहानी में, शानी ने अपनी कहानी ''बिरादरी'' तथा ब्रजकिशोर जी ने ''रेहन रखा पौरूष'' कहानी में चित्रित किया है। संयुक्त परिवारों का विघटन तथा परिवार में वृद्धों की अपेक्षा आज एक ज्वलंत विषय है। अत: साठोत्तरी कहानियों में इन समस्याओं की भी अभिव्यक्ति हुई है। परिवार में वृद्धों की उपेक्षा को नमिता सिंह ने अपनी कहानी ''टूट जाने के बाद'' में दिखाया है। इस कहानी में एक ऐसे वृद्ध व्यक्ति की व्यथा-कथा है जो रिटायरमेन्ट के नजदीक पहुँचकर अपनी आदतों में परिवर्तन प्रारम्भ कर देता है। अपनी चारपाई को कमरे से निकलवाकर बरामदे में डलवा लेता है और उदासीनता की हालत में अपनी बड़ी बेटी के अन्तर्जातीय विवाह के प्रस्ताव को मानने के लिए विवश हो जाता है और वह अन्दर से बुरी तरह टूट जाता है। इस टूटन से एक अजीब सा खोखलापन और असंतुष्टि का भाव उन्हें घेर लेता है। उनका अकेलापन इन पंक्तियों में देखा जा सकता है यथा:- ''अब एक बार कटकर जुड़ना नहीं चाहेगें वह कहीं पर चौड़े हरहराते मैदान में एक अकेला ठूंठ - सा अनुभव करते हैं वह खुद को जिसके आसपास और कुछ नहीं उगा हो। एक अजीब अनुभूति है। इस अकेलेपन में भी - एक रिसता हुआ आनन्द सा है। सोचते हैं उनका क्या है, गंगा किनारे भी एक झोपड़ी बनाकर रह लेगें वह अकेले -सबसे दूर - अलग।''(3)

इसी तरह निर्मल वर्मा जी ने अपनी कहानी ''बीच बहस'' के माध्यम से संयुक्त परिवार में वृद्धों की उपेक्षा को दिखाया है। इस कहानी में परिवार के सदस्य बूढ़े पिता की बीमारी से संत्रस्त है। माँ और बेटा चाहते है कि किसी तरह पिता से छुटकारा मिलें दूसरीतरफ पिता भी अपनों के इस रवैये से बहुत परेशान है। अपनी पत्नी और बच्चों को छोड़कर आया हुआ बेटा यह सोचता है कि उसके बच्चें अपने पिता के जाने की उसी तरह प्रतीक्षा कर रहे होगें जैसे वह अपने पिता के जाने की प्रतीक्षा कर रहा है।

साठोत्तरी कहानीकारों ने जहां एक तरफ अपनी कहानियों के माध्यम से वृद्धों की समस्याओं को चित्रित किया तो दूसरी तरफ यह भी दिखाया गया है कि आज परिवार में एक सदस्य दूसरे सदस्य के व्यवहार से भी परेशान है। सदस्यों की इस पीड़ा को साठोत्तरी कहानीकारों ने अभिव्यक्ति दी है। इस प्रकार की कहानियों में मणिका मोहिनी की कहानी ''मायकल'' ध्यातव्य है जिसमें बेटी अपने शराबी पिता से परेशान है। कहानीकार शानी की कहानी ''गुलमोहर का पेड़'' में साहिरा का भाई इसरार बेकार और गैर जिम्मेदार व्यक्ति है जिसकी वजह से साहिरा परेशान रहती है। आजकलपरिवार में इस तरह का वातावरण होना आम बात हो गई है। आज का युवा अपने परंपरागत मूल्यों को भूलता जा रहा है। उसे किसी भी तरह की रूढ़ परंपराओं और पारिवारिक बंधंन में बंधना स्वीकार्य नहीं है इसका सफल चित्रण रमेशवक्षी की कहानी ''मातम'' में देखने को मिलता है। कहानी के पति-पत्नी को चाचा के मौत के मातम में जाने की अनुमति है, लेकिन वे चाचा के मातम में न जाकर शहर की सैर करके घर लौट आते हैं। टूटते दाम्पत्य संबंधों का सफल चित्रण मेहरूनिन्सा परवेज की कहानी ''बीच का दरवाजा'' में देखने को मिलता है। नगरीय जीवन संबंधों के खोखलेपन को साठोत्तरी कहानीकारों ने विविध रुपों में चित्रित किया है, उदाहरणस्वरुप कतिपय कहानियाँ ली जा सकती हैं यथा-ममता कालियाकी ''अपत्नी'' कहानी में प्रेम संबंधों के मजबूरन निर्वाह को दर्शाया गया है। मंजुल भगत की कहानी ''दूत'' में पति-पत्नी के वैवाहिक जीवन एवं संबंधों में आये बदलाव को देखा जा सकता है, वहीं मन्नू भण्डारी ने अपनी कहानी ''तीसरा आदमी' के माध्यम से आधुनिक दाम्पत्य संबंधों में आये तनाव का चित्रण किया है। कई बार तनाव का मुख्य कारण संशय भी होता है जिसकी सफल अभिव्यक्ति इस कहानी में हुई है। कहानी में सतीश और शकुन के बीच संशय से उत्पन्न मानसिक व शारीरिक दूरी दिखाई देती है -''संशय और द्वन्द से ग्रस्त, शकुन के दु:ख से दु:खी और एक अनजान आशंका से ग्रस्त सतीश एक ही बात महसूस करता है कि शकुन उससे दूर होती जा रही है - उसके शरीर से भी।''(4)

मणिका मोहिनी की कहानी ''दिलेर'' में फिल्मी दुनिया की सच्चाई को तथा नारी शोषण को दर्शाया गया है। मृदुला गर्ग ने अपनी कहानी ''रुकावट'' में उन्मुक्त यौन संबंधों को चित्रित किया है। मृदुला गर्ग की एक और कहानी है ''अवकाश'' जिसमें उन्होंने एक ऐसी विवाहिता स्त्री का चित्रण किया है जिसके परपुरुष से सम्बन्ध है जिससे पति-पत्नी में तनाव उत्पन्न हो जाता है जिसकी परिणति 'तलाक' के रुप में सामने आती है। कहानी में पत्नी पति से कहती है कि -''महेश मैंने तुम्हें प्यार किया है, अभी भी करती हूँ, इसलिये दो वर्षो से अपने को रोकती रही हूँ, अपने से लड़ती रही हूँ, प्यार किया नहीं जाता हो जाता है। यह मुझे खींचे लिये जा रहा है, मुझे माफ करो, मुझे तलाक चाहिये।''(5)

स्वतंत्रता के बाद स्त्री की स्थितिमें सुधार आया वह पहले की भांति पति की दासी न रहकर अपने अधिकार के प्रति जागरुक हुई। परंपरागत मूल्यों के अनुसार पत्नी का पति ही उसका देवता था और उसके आश्रयमें ही उसकी मुक्ति थी लेकिन नवीन मूल्यों की स्थापना ने पुरातन मूल्यों को प्रतिस्थापित कर दिया आज की नारी परित्यक्ता लाचार या कमजोर नहीं है। आज की नारी शिक्षित हो गई है तथा अपने निर्णय स्वयंलेने में पूर्णयता सक्षमहै। आज स्त्रियाँ आत्मनिर्भर होकर कार्यालय आदि संस्थानों में कार्य करने को स्वतंत्र है फलस्वरूप संबंधों से भी अप्रत्याशित परिवर्तन हो गए है। कई स्थानों पर आज भी नारी शोषण होता है। सठोत्तरी कहानीकारों ने अपनी कहानियों में इन्ही परिवर्तनों को अभिव्यक्ति दी है।

अत: साठोत्तरी कहानियों में वर्तमान संबंधों में आये बदलावों तथा उनके जीवन के कई अनुछुये पहलुओं को उजागरकिया है, जिसकी सफल अभिव्यक्ति नमिता सिंह की कहानी "जंगलगाथा'' तथा सूर्यबाला की "गृहप्रवेश'' में हुई है। कमलेश्वर की कहानी "खोई हुई दिशाएं'' नगरीय जीवन का यथार्थ चित्रण करती है। कहानी में एक ऐसे व्यक्ति का आत्मचिंतन है, जो अपनी पहचान गुम हो जाने की आशंका से पीड़ित है। गाँवों, कस्बों या शहरों से महानगरों में आये लोगों के साथ अक्सर ऐसा होता है - ''और तभी चन्दर को लगा कि एक अरसा हो गया एक जमाना गुजर गया। वह खुद अपने से ही नहीं मिल पाया।''(6)

नगरों में रहने वाले व्यक्तियों की सोच में भी परिवर्तन आया है, जिसे मनहर चौहान की कहानी ''बीस सुबहों के बाद'' में दिखाया गया है। आज हर तरफ लूटपाट, अपहरण, बलात्कार, आंतकवाद, भाई-भतीजावाद की समस्याएं पनप रही हैं जिसकी वजह से आम आदमी त्रस्त जिन्दगी जीने को विवश है, गांवों की अपेक्षा नगरों में इन समस्याओं का भयावह रुप सामने आया है। अत: साठोत्तरी हिन्दी कहानीकारों ने भी अपनी कहानियों में इन समसामायिक घटनाओं को अभिव्यक्ति दी है। शानी ने अपनी कहानी ''जहाँपनाह जंगल'' में नगरीय मानसिकता को बखूबी चित्रित किया है और यह बताने का प्रयास किया है कि

महानगरों में एक ही बिल्डिंग में रहने वाले लोग एक दूसरे से पूर्णत: परिचित नहीं है। लूटपाट, बलात्कार और हत्या जैसी वारदातों में एक-दूसरे की मदद करना तो दूर सब कुछ जानते हुए भी अनभिज्ञ बने रहते हैं। इस कहानी में महानगरीयजीवन शैली की पोल खोली गई है। एक रात जब बगल वाले फ्लैट से कई चीखें और दर्दनाक आवार्जे आइं पर कोई बाहर नहीं आया और जब लूट-पाट करने वाले चले गये तब धीरे-धीरेलोग अपने-अपनेफ्लैट से बाहर निकल कर आये और कहने लगे भई क्या हो गया है। वस्तुत: इस कहानी के माध्यम से शानी जी ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि महानगरों में रहने वाले लोग किस हद तक स्वार्थी, असंवेदनशील हो गए हैं और उनके इस व्यवहार से उनकी सोच प्रक्रिया का पता चलता है। जब शहरों में सांप्रदायिक दंगों की घटनाएँ होती हैं तो नगर निवासियों को काफी भय और तनाव का सामना करना पड़ता है जिसकी सफल अभिव्यक्ति तेजिंन्दर की ''मेरा अपना चेहरा'' भीष्म साहनी की ''झुटपुटा'' आदि कहानियों में हुई है। आज राजनीति में अवसरवादिता का समावेश हो गया है। नेता चरित्रहीन, भ्रष्टाचारी, अवसरवादी तथा स्वार्थी हो गए हैं और आम जनता के दु:ख दर्द से उनका कोई सरोकार नहीं रह गया है। नेताओं के इस व्यवहार से आम जनता का उन पर से विश्वास टूटता जा रहा है। राजनीति क्षेत्र की इसी सच्चाई को साठोत्तरी कहानीकारों ने भी अपनी कहानियों के माध्यम से उजागर किया है। ''गोविन्द मिश्र की कहानियों का मुख्य स्वर राजनीतिक है। उनकी अधिकतर कहानियों में राजनीतिक स्थितियों और संदर्भो का खुलासा मिलेगा। कहीं-कहीं वे राजनीतिक स्थितियों पर टीका-टिप्पणी भी करते हैं पर उनकी कहानियों में किसी किस्म का राजनीतिक रवैया नहीं है। राजनीतिक क्षेत्र में किसी पहलू या समस्या या किसी विचारधारा से प्रतिबद्ध होने के अर्थ में उनकी कहानियाँ नहीं हैं। राजनीतिक सन्दर्भो को वे अपनी कहानियों में उठाते जरूर हैं पर उनकी सोच का दायरा आत्मगत और स्थितिगत है, उनमें स्थितियों के चित्रण की प्रवृत्ति तो है पर उनके प्रति आलोचनात्मक रवैया लगभग गायब है। 'लेखन' के प्रति प्रतिबद्धता 'और' प्रामाणिकताओं के मुहावरों की आड़ में इसे छुपाया नहीं जा सका है। इन कहानियों में राजनीति बतौर एक धन्धे और मानव-विरोधी भ्रष्ट-व्यवस्था के रुप में चित्रित की गई है।''[7]

इस सम्बन्ध में गोविन्द मिश्र की ''गोबर गनेश'', ''जनतंत्र'' कहानियाँ ली जा सकती हैं नेताओं के ओछेपन को मन्नू भण्ड़ारी की कहानी ''मैं हार गई'' में भी दिखाया गया है तथा गिरिराज किशोर की कहानी ''पेपर वेट'' भी आज की भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्य करती है। छठे दशक के अन्त तक की कहानियों में मूल्यहीनता और टूटते बिखरते मूल्यों वाले स्वरों को प्रमुख रुप से चित्रित किया गया है। खासकर छठें दशक में नवीन मूल्यों की स्थापना हुई और सातवें दशक की कहानियाँ तो विघटित मूल्यों का चित्रण करने में काफी आगे रही हैं। इन कहानियों में यह दिखाया गया है कि आधुनिकता ने नगरीय जीवन में परंपरागत मूल्यों का विघटन कर दिया है। आज की भाग-दौड़ की जिन्दगी में व्यक्ति संबंधों को भूलता जा रहा है। आत्मीयता का स्थान औपचारिकता ने ले लिया है। स्वार्थ धोखाधड़ी और छलकपट की वजह से व्यक्ति का एक-दूसरे पर से विश्वास समाप्त होने लगा है। धन के मोह में सभी रिश्ते आज अर्थहीन हो गये हैं और इस धन के मद में आज निजी रिश्तों में दरार पड़ गई है। भाई-बहन, पति-पत्नी, माता-पिता जैसे संबंध आज बेईमानी लगने लगे हैं। धन को महत्व देने के कारण आज रिश्ते बोझ बन गये हैं। नगरीय व्यक्तियों के संबंध तहस-नहस होने का एक कारण धन का अभाव तथा उससे उत्पन्न बेबसी और लाचारी भी है। नगरों में रहने वाले आर्थिक संपन्न व्यक्ति ही प्रतिष्ठित समझे जाने लगे हैं। आज का व्यक्ति निरन्तर नये-नये षड़यंत्रों के बीच जीवन जीने के लिये विवश है। इस कारण व्यक्ति का मानसिक संतुलन भी अस्त-व्यस्त रहने लगा है। अत: आधुनिक जीवन में अपनेपन का एहसास बड़ी तीव्र गति से धूमिल होता जा रहा है। वर्तमान तथा कथित सभ्य, फैशनपरस्त तथा नगरों में फैलती हुयी क्रूरता को उजागर करने वाली कमलेश्वर की एक कहानी है ''दिल्ली में एक मौत'' यथा:- ''लाल होठों में सफेद चमकते दांत दिखाने वाली स्त्रियों का तो क्या कहना। सबके रुमाल निकल जाते हैं, नाक सुरसुराने लगती है और वापस लौटते समय फिर सब खिलखिलाहटों में खो जाता है।''[8]

स्पष्ट रुप से कहा जा सकता है, कि साठोत्तरी हिन्दी कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से समसामायिक समस्याओं को बड़ी बारीकी से चित्रित किया है। इन कहानीकारों ने कहानियों में महानगरों के जीवन पहलुओं को उजागर करने के अलावा आधुनिकता बोध को पूर्ण यथार्थता व सजीवता से पेश किया है। अपने कहानी संसार में इन कहानीकारों ने महानगरीय जीवन का यर्थाथ पूरी तटस्थता के साथ उकेरा है। यही इन कहानियों की उपादेयता है। इस प्रकार हिन्दी की कहानी विधा का विकास निरंतर गतिमान है और भविष्य में भी इस विधा की अजस्त्र धारा प्रवाहित होती रहेगी। "अस्तु नये कहानीकारों ने नये संदर्भो की खोज एवं नये संबंधों का आधार बनाने का प्रयत्न यर्थाथ रुप में प्रस्तुत कर नवीन दिशा निर्देश किया है। अत: हिन्दी कहानी निरन्तर विकास की ओर अग्रसर है और इसका भविष्य उज्जवल है।''[9]

सन्दर्भ

1. अलगाव: दर्शन और साहित्य - डॉ वैद्यनाथ, पृ0 173
2. नई कहानी की भूमिका -सं0 1978, कमलेश्वर, पृ0 133
3. खुले आकाश के नीचे (टूट जाने के बाद)-सं0 1978, नमिता सिंह, पृ0 36
4. यही सच है - (तीसरा आदमी), द्वितीय सं0 2017, मन्नू भण्डारी, पृ0 33
5. टुकड़ा टुकड़ा आदमी - (अवकाश), सं0 1995, मृदुला गर्ग, पृ0 40-41
6. खोई हुई दिशाएं -द्वितीय सं0 1982, कमलेश्वर पृ0 45
7. बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध: हिन्दी कहानी-प्रथम सं0 1996, डॉ नगेन्द मोहन,पृ0 62-63
8. कथान्तर, दिल्ली में एक मौत-सं0 2013, कमलेश्वर, पृ0 141
9. बीसवीं शती की हिन्दी कहानी का समाज - मनोवैज्ञानिक अध्ययन, प्रथम सं0 1992 डॉ महेशचन्द्र दिवाकर, पृ0 308

भारत का राजनीतिक आधुनिकीकरण और बाधाएँ

डॉ० राजेश कुमार

सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, सतीश चन्द्र कॉलेज, बलिया, उ०प्र०

संप्रति यह प्रश्न उठाना स्वाभाविक है कि दुनियाँ के सबसे बड़े लोकतंत्र भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण की गति इतनी धीमी क्यों रहीं है? संविधान लागू होंने के सात दशक के बाद भी हम राजनीतिक आधुनिकीकरण के आदर्शों को पूरी तरह आत्मसाथ क्यों नही कर सके? इन जैसे सभी प्रश्नों का बहुत स्पष्ट और निश्चित उत्तर देना कठिन है, क्यों कि भारत ही नहीं पूरी दुनिया में सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन एक जटिल और लंबी प्रक्रिया है और इसके पीछे कभी-कभी ऐसे कारक भी अपनी भूमिका निभाते हैं, जिनकी व्याख्या इतनी आसान नहीं होती हैं। इसके बावजूद भी कुछ उल्लेखनीय तत्व हैं जो भारत के आधुनिकीकरण में बाधक सिद्ध हो रहे हैं।

राजनीतिक आधुनिकीकरण का अर्थ राजनीतिक समस्याओं को विवेक तथा तर्क-वितर्क द्वारा समझना है। दूसरे शब्दों में आधुनिकीकरण समाज के बहुमुखी विकास तथा परिवर्तन का नाम है। यह नवीन ज्ञान और विवेक के द्वारा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का आधुनिकीकरण है।

राजनीतिक आधुनिकीकरण और आधुनिकीकरण का शिक्षा के साथ गहरा संबंध है। शिक्षा आधुनिकीकृत होने की पूर्व और अनिवार्य शर्त के रूप में भूमिका निभाती हैं। शिक्षा के द्वारा नागरिकों में बौद्धिक, तार्किक और नैतिक गुणों का विकास होता हैं। ज्ञान के द्वारा ही नागरिक विकल्पों के चयन की स्वतंत्रता का उपभोग कर पाते हैं, जिससे ज्ञान-विज्ञान, अनुसंधान और सामाजिक न्याय को बढ़ावा मिलता हैं। शिक्षा ही वह माध्यम हैं जो कार्यान्वयन की क्षमता और नवीन ज्ञान के विकास को अर्थ और बल प्रदान करती हैं। स्वतंत्रता के बाद, सात दशक बीत जाने के बाद भी, भारत में, 2011 की जनगणना के अनुसार केवल 74% जनसंख्या ही साक्षर हो सकीं हैं जिनमें महिला साक्षारता की दर 65.5% ही हैं। निरक्षरता और अप्रयाप्त स्तरीय शिक्षा अनेकों प्रकार से आधुनिकीकरण में बाधा हैं- मताधिकर के महत्व को न समझना और मतदान न करना, योग्य उम्मीद्वार को चिन्हित न कर पाना, मनी और मसल पावर के प्रभाव में आ जाना; योग्यता के वजाय धार्मिक ,जातीय और क्षेत्रीय आधार पर वोट देना; राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति उदासीन होना; अपने कर्तव्यों और अधिकारों के प्रति उदासीन होना इत्यादि।

इसी क्रम में धर्माधता, जातिवाद और संकीर्ण निष्ठाएँ भी भारतीय आधुनिकीकरण के मार्ग में बाधा हैं। परम्परागत भारतीय सभ्यता और संस्कृति में मानव जीवन के लगभग सभी पक्ष या तो धर्म से प्रभावित थे या तो धर्म के अधीन थे, किन्तु आधुनिकीकृत राज्यों का उद्देश्य धर्मनिरपेक्ष सामाजिक और राजनीतिक जीवन की स्थापना करना हैं। इसीलिए भारतीय संविधान में समानता का अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया हैं और धर्म को राजनीति से पृथक करने का प्रावधान भी किया गया हैं, लेकिन व्यावहारिक रूप में धार्मिक पूर्वाग्रह जनता के मस्तिष्क से पूरी तरह मिटा नही हैं। संप्रति भी सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में धर्म के आधार पर भेदभाव किया जाता हैं। संकीर्ण राजनीतिक हितो की पूर्ति के लिए भारतीय राजनीतिक दल धर्माधता को वढ़ावा देते हैं। निर्वाचन के वर्षों में धार्मिक उन्माद चरम पर होते हैं क्योंकि पार्टीया धर्म के आधार पर टिकट देती हैं; धार्मिक आधार पर वोट करने की अपील करती हैं; चुनाव घोषणापत्रों में धार्मिक तुष्टीकरण का पूरा प्रयास किया जाता हैं; मंत्रिमंडल और अधिकारियों की नियुक्ति में भी धार्मिक तत्व महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। नेतृत्व वर्ग धर्म और जाति को सत्ता तक पहुचने का एक साधन मात्र समझता हैं। नि:सन्देह धर्माधता धर्मनिरपेक्ष भारतीय राजनीतिक संस्कृति के मार्ग में एक बाधा हैं।

सांप्रदायिकता और धर्माधता के साथ ही जातिवाद ने भी भारतीय राजनीतिक अधुनिकीकरण को अनेकों प्रकार से प्रभावित किया है और कर रहा है। भारतीय राजनीतिक दलों के संगठन की संरचना में जातिवाद स्पष्ट रूप से दिखाई देता हैं। इसलिए जब पार्टी सत्ता में आती हैं तो सरकार का संगठन भी जातिवाद से आच्छादित हो जाता है और अंतत: नेतागण प्रशासनिक संगठन को भी जातीवादी बना देते हैं। जब शासन और प्रशासन में जातिवादी मूल्य भरें हो तो आम जनता तक शासन के कल्याणकारी कार्यक्रमों का निष्पक्षता के साथ पहुचाना संभव नहीं हैं। जातिवाद के कारण कुछ जातियों का शासन और प्रशासन में पहुच अनुपात से बहुत ज्वादा हो गया हैं जो समाज में जातीय हिंसा और नव ब्राह्मणवाद (यानि श्रेष्ठता की भावना) को बढ़ावा दे रहा हैं। राजनीतिक आधुनिकता के लिए आवश्यक हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को जाति के आधार पर नही बल्कि योग्यता के आधार पर शासन, प्रशासन और समाज में स्थान मिले। जन्म और जाति के आधार पर पद, सुविधाओं और संसाधनों का आवंटन परंपरावादी समाज कि विशेषता हैं न कि आधुनिक। आधुनिक समाज में इन सभी का वितरण योग्यता, कानून और निष्पक्षता के आधार पर किया जाता हैं।

क्षेत्रवाद की भावना और आधुनिकता परस्पर विरोधी तत्व हैं। क्षेत्रवाद की भावना ने राजनीतिक आधुनिकता को अवरुद्ध किया है। संकीर्ण निष्ठा और क्षेत्रवाद परंपरागत समाज की विशेषता हैं क्योंकि परंपरावादी समाज में व्यक्ति अपने जातीय तथा राजनीतिक हितों को विशेष महत्व देता है और राष्ट्रीय हितो में उसकी अधिक रुचि नही होती हैं। आधुनिकीकरण का विशेष उद्देश्य हितो की इस संकीर्णता के स्थान पर राष्ट्रीय हितों को प्रधानता दिलाना हैं। भारत में इस उद्देश्य को पूरा करने में बढ़ते हुये क्षेत्रवाद की भावना भी बाधक रही हैं। भारत में स्वतंत्रता के बाद क्षेत्रीय हितों को बल देने वाले अनेक राजनीतिक दलों की स्थापना हुई और भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया गया। 1953 में, आंध्र प्रदेश भाषा के आधार पर गठित भारत का पहला राज्य था।

कई बार राजनीतिक दलों ने राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा कर क्षेत्रीय हितों की पूर्ति के लिए केंद्र सरकार पर दबाव बनाया और राष्ट्रीय हितों को नकारात्मक रूप मे प्रभावित किया।

भारतीय राजनीतिक दल भी भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण की गति को धीमा करने के लिए उत्तरदायी हैं। भारत में दक्षिणपंथी राजनीतिक दलों ने धर्मांधता को बढ़ावा दिया हैं और सांप्रदायिक राजनीति को जन्म दिया हैं। जातीयता और धर्मांधता के आधार पर सत्ता प्राप्त करने का सदैव प्रयास किया हैं। देश के बटवारे के बाद सांप्रदायिकता को बल मिला और मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा, रामराज्य परिषद और जन संघ जैसे दक्षिणपंथी दलों ने परंपरावादी राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था की पुनर्स्थापना के लक्ष्य को न अपनाया और हिन्दू-मुसलमानों के बीच भेदभाव को बढ़वा दिया। इन्होने धर्म के नाम पर आम जनता की धार्मिक भावनाओं को भड़काया और अपने संकीर्ण राजनीतिक स्वार्थ को पूरा करने के प्रति प्रतिवद्ध रहें। इन्होंने जाति और धर्म को राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के साधन के रूप मे अपनाया। सामान्यत: राजनीतिक दलों को आधुनिकीकरण को बढ़ावा देने वाला माना जाता हैं, लेकिन भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण में कुछ दलों ने नकारात्मक भूमिका निभाया हैं।

यदि भारतीय नेतृत्व परंपरावादी राजनीतिक मूल्यों से प्रभावित नही होता तो आम जनता में आधुनिक राजनीतिक मूल्यों को आसानी से भरा जा सकता था। भारत में लोकतान्त्रिक शासन की स्थापना और शासन के विकेन्द्रीयकरण के परिणाम स्वरूप राजनीति के विभिन्न स्तरों का निर्माण हुआ और ग्राम स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक जो राजनीतिक संस्थाए स्थापित हुई, उनके संगठन का आधार निर्वाचन पद्धति को अपनाया गया। भारत में शासन के विभिन्न स्तरों के निर्माण के फलस्वरूप प्रत्येक स्तर पर जिस राजनीतिक नेतृत्व का विकास हुआ, वह अपने विचारों, विश्वासों और मूल्यों की दृष्टि से पूर्णतया आधुनिक न था। माइरन बीनर के अनुसार स्वतंतता के बाद भारत मे दो प्रकार की राजनीतिक संस्कृतियों का उदय हुआ। प्रथम, विशिष्ट वर्ग की राजनीतिक संस्कृति और द्वितीय, सर्व साधारण की राजनीतिक संस्कृति । ग्राम स्तर से राज्य विधानमंडलों तक जिस राजनीतिक नेतृत्व का विकास हुआ, उसमे धार्मिकता, जातिवाद, स्थानीय हितों को प्राथमिकता देने की भावना, संकीर्ण निष्ठा, न्यून शिक्षा तथा परंपरावादी दृष्टिकोण की प्रधानता रहीं, जबकि राष्ट्रीय स्तर के नेतृत्व अधिक शिक्षित कम परंपरावादी और राष्ट्रीय हितों के संदर्भ में विचार करने वाले हैं, लेकिन वास्तविकता यह हैं कि भारत में हर स्तर के राजनीतिक नेतृत्व वर्ग में धार्मिकता, जातिवाद, क्षेत्रवाद, संकीर्णता आदि तत्व विद्यमान रहे हैं और नेताओं में परंपरावादी तत्वों के विद्यमान होने के कारण आधुनिकता की गति का धीमा होना स्वाभाविक हैं।भारत में राजनीतिक दल चुनाव घोषणा पत्रों में सुनियोजित,नीतिगत और दूरदर्शी कार्यक्रमों पर बल देने के स्थान पर सस्ती लोकप्रियता की राजनीति पर बल दे देते आ रहे हैं।लेकिन संप्रति राजनीतिक दलों में यह मनोवृत्ति और गहरी हुई हैं।

भारत के राजनीतिक आधुनिकीकरण में बढ़ती हुई जनसंख्या अनेकों प्रकार की चुनौतियाँ पैदा की हैं। जनसंख्या का बड़ा आकार और उसका मानव संसाधन के रूप में परिवर्तन के बीच गहरा संबंध होता हैं। किसी देश मे जनसंख्या कि अधिकता अपने आप में समस्या नहीं होती। यह समस्या के रूप में उस समय बदल जाती हैं, जब उसे शासक वर्ग ज्ञान-विज्ञान और शिक्षा के द्वारा बेहतर मानव संसाधन के रूप में नहीं बदल पाता हैं। उल्लेखनीय है कि चीन जैसे कुछ देश अपनी जनसंख्या को काफी हद तक मानव संसाधन के रूप में बदलने में सफलता प्राप्त किए हैं। लेकिन भारत में संप्रति बढ़ती जनसंख्या एक बड़ी बाधा सिद्ध हो रही हैं। इसीलिए भारत में जनसंख्या नियंत्रण कानून की समय-समय पर मांग उठती रहीं हैं और संप्रति भी परिचर्चा का विषय है।

भारत में बढ़ती जनसंख्या के कारण कुपोषण जैसी अमानवीय चुनौतिया इक्कीसवीं शताब्दी और उत्तर आधुनिक युग में भी चुनौती के रूप में हैं। जनसंख्या अधिकता के कारण सरकार के प्रयास प्रभावी परिणाम नही दे पा रहें हैं। भारत जैसे कल्याणकारी राज्य में कुपोषण जैसी समस्या स्वास्थ्य और शिक्षा विभाग के प्रयासो को कुंद कर दे रही हैं। अस्वस्थ और अशिक्षित लोगों को सरकारी और निजी कोई भी क्षेत्र रोजगार नही देना चाहता हैं। भारत में बढ़ती बेरोजगारी के कारण नक्सलवाद, उग्रवाद, किसान आंदोलन, विद्यार्थी आंदोलन, मजदूर आंदोलन इत्यादि को सड़कों पर देखा जा सकता हैं। इसी क्रम में जनसंख्या की अधिकता के कारण आर्थिक विकास की गति धीमी हो जाती हैं। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के दौर में आर्थिक पिछड़ापन सम्पूर्ण पिछड़ेपन की ओर ले जा रहा है। संप्रति भारत में अशिक्षित और प्रतिकात्मक रूप से शिक्षित जनसंख्या सापेक्षिक वंचना महसूस कर रहीं हैं। उन्हे लगता है कि देश के अधिकतम संसाधनों पर न्यूनतम लोगों का कब्जा हैं। इससे सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक तनाव पैदा होता हैं जो कि किसी भी देश के राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास के मार्ग में बाधा पैदा करता है। संप्रति भारत में किसान आंदोलन,मजदूर आंदोलन और वंचित समाज के द्वारा राजनीतिक भागीदारी के लिए किए जाने वाले आंदोलन को इसी क्रम में देखा जा सकता हैं। भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण के लिए यह आवश्यक है कि जनसंख्या का अधिकतम भाग सुशिक्षित हो ताकि मानव गरिमा, राजनीति के अपराधीकरण, अपराध के राजनीतिकरण, समानता, न्याय, अधिकार और सामाजिक न्याय को सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रूप में समझ सकें। भारत में तकनीकी शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान नही दिया गया,जिसके कारण जनसंख्या का एक बड़ा भाग सूचना और संचार प्राद्योगिकी के युग में अपने आप को तकनीकी रूप में अशिक्षित महसूस करता हैं और शासन, प्रशासन और समाज को अपना पूरा योगदान नही दे पाता और समय-समय पर साइबर अपराध का शिकार हो जाता है।

संप्रति तकनीकी शिक्षा के कम प्रसार के कारण भारत के राजनीतिक आधुनिकीकरण के मार्ग में कुछ बाधाएँ आ रही हैं- इलेक्ट्रोनिक वोटिंग मशीन की विश्वसनीयता को ले कर न केवल आम मतदाता बल्कि राजनीतिक दलों के मन में भी कई आशंकाए हैं।

किसी भी देश के राजनीतिक आधुनिकीकरण के लिए लोकतन्त्र, निष्पक्ष चुनाव आयोग और प्रबुद्ध वर्ग,विचार अभिव्यति और मीडिया की स्वतंत्रता अति आवश्यक हैं। भारत में संप्रति चुनाव आयोग की निष्पक्षता पर कई राजनीतिक दल और मतदाता प्रश्न खड़ा कर चुके हैं। प्रबुद्ध वर्ग और मीडिया की स्वतंत्रता और निष्पक्षता पर भी आम जनता और दलों के द्वारा प्रश्न खड़े किए जा रहे हैं। हलाकि स्वतंत्रता के बाद एक लंबे समय तक चुनाव आयोग, मीडिया और प्रबुद्ध वर्ग ने भारतीय लोकतन्त्र और राष्ट्र के निर्माण में रचनात्मक भूमिका निभा कर भारत के राजनीतिक आधुनिकीकरण को अर्थ और बल प्रदान किया था।

उग्र राष्ट्रवाद, धर्मांधता और सरकारों का संविधान के प्रति प्रतिवद्धता में कमी ने भी भारत के राजनीतिक आधुनिकीकरण के मार्ग मे बढ़ाएँ पैदा की हैं। इसी क्रम में नागरिकों और राजनीतिक दलों में सिद्धान्तहीनता और विचारधाराहीनता ने भी भारत के राजनीतिक आधुनिकीकरण की गति को धीमा किया हैं।

इसने दल बदल, राजनीतिक हिंसा, अपराधियों के राजनीतिकरण, मनी और मसल पावार को बढ़ावा दिया हैं और इससे सदनों में स्वस्थ राजनीतिक परिचर्चा में गिरावट आयी हैं।

दुनियाँ के सबसे बड़े लोकतंत्र भारत में, उपर्युक्त कारणों से राजनीतिक आधुनिकीकरण की दशा और दिशा नकारात्मक रूप से प्रभावित हुई हैं और अभी भी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की दिशा में बहुत कुछ किया जाना शेष है। आज भी भारतीय समाज में परंपरावाद और आधुनिकता के तत्वों को आसानी से चिन्हित किया जा सकता हैं। ऐसा उम्मीद और विश्वास किया जाता है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण के मार्ग में आने वाली बढ़ाओं का बाधा बन कर भारतीय समाज और सरकारें राजनीतिक आधुनिकीकरण की गति को और तेज करेंगी।

संदर्भ

1. सिनाई, आई०ऑर०, दि चौलेंज ऑफ मार्डनाइजेशन, चट्टों ऐंड विंड्स, लंदन, 1964 पृ०18-19
2. स्मिथ, डब्ल्यू०सी०, मार्डनाइजेशन ऑफ ए ट्रेडिशनल सोसायटी, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बंबई, 1965, पृ० 20-23
3. श्रीनिवास, एम०एन०, सोसल चेंज इन माडर्न इंडिया, एलाइड पब्लिशर्स, 1966, पृ0 50-56
4. कोठारी, रजनी, पॉलिटिक्स इन इंडिया, ओरिएंट एंड लॉंगमैन लि०, 1970, पृ०-92
5. मित्रा, के, सुब्रत, पॉलिटिक्स इन इंडिया: स्ट्रक्चर, प्रोसेस एंड पॉलिसी, रूटलेज, 2017
6. खान, रशीदउद्दीन, एन०सी०ई०आर०टी०, दिल्ली, 1998
7. हसन, जोया, जेंडर, रिलीजन एंड डेमोक्रेटिक पॉलिटिक्स इन इंडिया, थर्ड वर्ल्ड क्वाटरली 31(6), 939-954,2010

शिवतत्त्व की अवधारणा और कामायनी

गायत्री कुमारी

शोधार्थी, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

काशी मोक्ष की नगरी मानी जाती है। दुनिया भर के पर्यटक यहां सदियों से आते रहे हैं। इस नगर की अपनी सांस्कृतिक विरासत रहा है। घार्मिक मान्यताओं के अलावे वेदांत और शास्त्रार्थ की परंपरा भी बहुत पुरानी है। रामानंद जैसे महान संत के कई महान शिष्यों ने इस नगर को अलग महत्त्व प्रदान किया। शंकराचार्य और कबीर जैसे संतों की तार्किकता एक अलग किस्म की बौद्धिकता को जन्म दिया। साहित्य को समृद्ध करने में इस नगर का विशिष्ट योगदान रहा है। जयशंकर प्रसाद काशी के निवासी थे और वह नगरी इस वेदांत दर्शन का गढ़ है, जो जगनमिथ्या सिद्धांत से भारत को सर्वाधिक रूप से प्रभावित किए हुए है। कामायनी में काश्मीरी शैव दर्शन के स्वतंत्र्यमूलक अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा की है। प्रसाद जी का जन्म 30 जनवरी 1889 ई० को भगवान विश्वनाथ की नगरी काशी में हुआ था। 14 जनवरी 1937 को प्रसाद जी ने इस धराधाम को छोड़ कर चल बसे। ये छायावादी कवि है। 1995 में रचित कामायनी जैसे कालजयी महाकाव्य प्रसाद जी की अंतिम कवि हैं।

कामायनी के दो पक्ष है एक साहित्यिक और दूसरा दार्शनिक। दार्शनिक पक्ष काश्मीरी दर्शन पर आधारित है। कामायनी की कथा जल प्लावन से शुरू होती है। भारतीय इतिहास में जल प्लावन की एक ऐसी ही प्राचीन घटना है, जिसमें देवों से विलक्षण मनु को मानतों की एक अलग संस्कृति प्रतिष्ठित करने का अवसर दिया। वह इतिहास ही है। शतपथ ब्राह्मण के आठवें अध्याय में : मनवे वै प्रात: आदि से इस घटना का उल्लेख मिलता है। देवताओं के उच्छृंखल स्वभाव, निर्वाध आत्मतुष्टि में अंतिम अध्याय लगा और मानवीय भाव अर्थात् मनु और श्रद्धा का समन्वय हुआ। इससे प्राणियों को एक नया युग मिला। चिंता सर्ग से लेकर 'आनन्द' सर्ग तक यात्रा करता हुआ यह काव्य हिमगिरी की एक चेतनता से समरस होने वाले मनु के जीवन का इतिहास है। एक समय था जब देवताओं का विनाश हुआ उनमें से केवल मनु ही जीवित रह गए। 'चिन्ता' सर्ग के आरंभ में मनु हिमालयकी ऊँची चोटी पर बैठे है और उनके चारों ओर जल की जल है। विनाश के इस दृश्य को देखकर मनु चिंतित दिखाई देते हैं। मनु का हृदय विषादघ्रस्त है। अंतिम सर्ग आनंद में श्रद्धा और मनु कैलास मानसरोवर की और ऊपर ही ऊपर चले जा रहे हैं। वहाँ पर इड़ा और मनु कुमार भी उनसे आ मिलते हैं उनके साथ धर्म का प्रतिनिधि (नन्दी) वृषभ था। श्रद्धा कुछ नहीं बोलती है पर मनु मुस्कुराकर बोले, देखो यहां कोई पराया नहीं है। हम सभी ब्रह्ममय है। इसी समय श्रद्धा के मुख पर स्मृति की रेखाएँ दौड़ गई, जिससे समस्त प्रकृति प्रफुल्लित हो गई। अद्वैतवादी दार्शनिक विचारधारा का विकास कश्मीर में हुआ। शैवागम के इस अद्वैतवादी दर्शन के साहित्य के लगभग सभी रचयिता कश्मीर के निवासी है। इसलिए कश्मीर से बाहर इसे कश्मीरी शैव-दर्शन के नाम से जाना जाता है। मध्वाचार्य ने अपने 'सर्वदर्शनसंग्रह में शैवदर्शन शीर्षक अलग प्रतिभिज्ञा - दर्शन' के नाम से दर्शन का परिचय दिया है। प्रतिभिज्ञा दर्शन नाम रखने का कारण यह है कि इस दर्शन का विकास प्रतिभिज्ञा सिद्धांत के आधार पर हुआ है। इस दर्शन के स्थानीय ग्रन्थ का नाम ईश्वर प्रतिभिज्ञा है, इस कारण से भी इसे इस नाम से मध्वाचार्य ने निर्दिष्ट किया है। प्रतिभिज्ञा सिद्धांत यह है कि बौद्ध अज्ञानकी निवृति होने पर ज्यों ही गुरु के वचन आदि से मितप्रमाता को यह प्रतिभिज्ञा हो जाता है कि मैं शिवहूँत्योंही उसे उसी समय आत्म स्वरूप शिवत्व का साक्षात्कार हो जाता है। इसलिए भारतीय दर्शन-शास्त्र में मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रतिभिज्ञान दर्शन का नवीनता एवं विशिष्टता के कारण शेव दर्शनों के अन्तर्गत प्रतिभिज्ञा दर्शन के नाम से हुआ कश्मीरी शैवदर्शन के साहित्य में इसे त्रिकमत कहा गया क्योंकि शिवशासन में सिद्धांतन्त्र, नामक तंत्र तथा मालिनीतंत्र इन तीनों तन्त्रों को सर्वाधिक प्रधानता दी गई है। येही तन्त्र-त्रय इस दर्शन के मुख्य आधारभूत आगम ग्रंथ है, जिसके सहारे त्रिकदर्शन का विकास हुआ दूसरे रूपों में इस दर्शन के मुख्य आधारभूत आगम ग्रंथ है, जिसके सहारे त्रिकदर्शन का विकास हुआ है। दूसरे रूपों में इस दर्शन के तीन पक्षों अर्थात् भेद, भेदाभेद और अभेद की अपने अभेदवाद के प्रकाश में व्याख्या करता है। इस मत में पर, आपर, और परापर रूप तीन त्रिक माने गए हैं। 'कामायनी' महाकाव्य की दार्शनिकता के केन्द्र में शिव और शैवागम है। उन्होंने दर्शन में ही समरसता का प्रचार और अनंदवादकी प्रतिष्ठा की है। तैत्तिरीय उपनिषद कहताहै -

आनन्दो ब्रह्मतिव्यजानात ।
आनन्दाद्धयेवखल्विमानिभूतानि जायते।
आनन्देजातानीजीवन्ति।
आनन्दप्रयान्त्य मिसविशन्तीप्ति।[1].

अर्थात् आनन्द में ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, आनन्द में जीवित रहते हैं और प्रयाण करते समय आनन्द में ही समा जाते हैं। प्रसाद जी की मान्यता है कि जीव की उच्चतर स्थिति आनंद है, जो कैलाश की यात्रा शिवलोक में व्याप्त है। उन्होंने आनंद मार्ग के बाधक तत्वों, साथ ही साधक तत्वों का काव्यात्मक विवेचन करते हुए अन्त में प्रकट शिव के विराट अद्भूत ऐश्वर्यशाली रूप के दर्शन करायें है जहाँ शिव नटराज रूप में तांडव करते दिव्यता का आभास देते हैं। नटराज शिव का तांडव नृत्य प्रसंग शिव - कथा से अनिवार्य रूप सें शेवमत में शिव प्रकृति की सृष्टि विनाश के लिए सतत् तांडव करते रहते हैं शिव वस्तुत: अपने रौद्र तांडव के लिए प्रसिद्ध है परन्तु वे आनंद के लिए भी तांडव करते हैं।

कवि जयशंकर प्रसाद का उद्देश्य शिव तांडव की आनन्द मयी रूप का दर्शन कराना ही है जिसका अधिकारी हर मानव है। 'कामायनी' प्रसंग में श्रद्धा सारस्वतनगर से निकाल कर, मनु की खोज में हिमालय के इस निर्जन स्थान में पहुँच जाती है जहाँ मनु तपस्यारत हैं। श्रद्धा के साथ मन भावन वार्तालाप के उपरान्त मनु के हृदय में श्रद्धा के प्रति सच्चा अनुराग उत्पन्न हो जाता है तभी उन्हें शिव के उद्‌भुत तांडव नृत्य के दर्शन होते हैं। कवि ने संकेत के इतर भी प्रकट रूप में तांडव का जो वर्णन किया है वह अद्‌भुत रस का सुन्दर उदाहरण है।

आनन्दपूर्णताण्डव सुन्दर,
झरते थे उज्जवल श्रम सीकर
बनते तारा, हिमकर दिनकर,
अड़ रहे धूलि कण से भूधर
संहार सृजन से युगल पाद
गतिशील, अनाहत हुआ नाद।[2]

ज्ञानीजीवों के लिए शिव और उसके स्वातंत्र्य स्फुरण अर्थात विश्व में कोई भेद ही नहीं रह जाता। प्रसाद जी के शब्दों में यह सब (स्वातंत्रय स्फुरण) विश्व उसी की लीला है और वही सब में समाया हुआ है –

लीला उसी की जग में सब में वही समाया।[3]

विश्व को शिक्षा स्वरूप समझने के कारण ज्ञानी जन भी इस विश्व – लीला में अद्‌भुत विमर्श से अनुरक्त ही होते हैं। शिव (चिति) की इस आनन्द लीला में अनुरक्त सभी होते है, अन्तर सिर्फ मलिन (द्वेतमूलक)और निर्मल (अद्वेतमूलक) दृष्टि का है। विश्व को यहाँ चिति की आनंद लीला बताकर श्रद्धा दुखों के डर से केवल विशक्तिमूलक तप में ही जीवन सत्य ढूँढ़ने वाले मनु को अद्वैत विमर्श की निर्मल दृष्टि से इस (विश्व लीला) में अनुरक्त करना चाहती है।

विश्व चिति की आनन्द क्रीड़ा का रूप यह है, जो प्राणी चिति के इस विश्वरूपी खेल को खेल ही समझकर इसमें अनुरक्त होता है, वह सारी भव – बेधनों से मुक्त होकर इस लोक जीवन में ही आनंद उपलब्ध कर सकता है। श्रद्धा ने मनु से यह कहा है कि 'हे मनु- विश्वचिति का स्वातंत्र्य खेल है अत: इसे निरंतर खेल ही समझते हुए लोकजीवन का आनंद अनुभव करना चाहिए। मनु के निम्नांकित कथन से हमे श्रद्धा के द्वारा मनु को दिया उपदेश शैवदर्शन से संबंधी कथन से मिलता है-

तुमने हँस हँस मुझे सिखाया
विश्व खेल है खेल चलो। [4]

सागर और नदी के उदाहरण से समझाते हुए इस सामरस्य को काश्मीरी शैवदर्शन के आगम ग्रंथों में कहा गया है कि जैसे एक नदी सागर में मिलकर समरसता को प्राप्त होती है और फिर उसकी भिन्नता नहीं रहती (अर्थात् नदी का जल और सागर का जल एक हो जाता है) उसी प्रकार आत्म प्रतिभिज्ञा से जीव शिव के साथ एक्य को प्राप्त होकर पूर्णत: अद्वेत रूप शिव हो जाता है । पूर्ण स्वरूप इसीऐक्य अवस्था को सामरस्य कहते हैं । शैवाचार्य अभिनवगुप्त ने अपने ग्रंथ परमार्थसार में सामरस्य का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहते है कि जिस प्रकार जल – जल में और दूध-दूध में मिलकर एक हो जाता है वैसे ही मितात्मा (जीव) परमात्मा में मिलकर दोनों पूर्ण एकरूप हो जाते हैं । अत: यहाँ समान रसों का एक होना ही सामरस्य कहलाता है। दार्शनिकों ने कश्मीरी शैव दर्शनों में भगवान शिव को सदैव समरस कहाहै-

समरसता है सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की।[5]

सबके जड़ में जो स्थित समरसता है उसे हृदयगम् करना चाहिए । इस को अलग-अलग रूपों में कामायनी में दर्शाया गया है। श्रद्धा मनु को सलाह देती है कि व्यक्ति की सीमा का यही विस्तार है-

औरो को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओं,
अपने को विस्तृत कर लो
सबको सुखी बनाओ।[6]

सभी जगह आत्मा की रूपता की समरसता का उपर्युक्त बोध ही स्वातम पूर्णता की वह आनन्दानुभूति है, जिसे जीवनमुक्ति कहते हैं।

शिव विश्वात्मक क्रीड़ा के वैविध्य रूप में स्थित है। जीवन के सभी नोक-झोक उसी क्रीडाशील शिव के स्वातंत्र्य रूप की है। इस क्रीड़ामयी नोक-झोंक से आनंदपूर्ण नृत्य से, वह सुख दुख का अवभासन कराता है। उसके बाद स्वकल्पित सुख दुख से धूप छाँह का मधुमय खेल खेलता है। नटराज शिव को भी अपनी सुखमयी कल्पना के साथ-साथ दुखद कल्पना से भी आनन्द की प्राप्ति होती है। परम शिव नत की भाँति नाना प्रकार के जीव भूमियों में क्रीड़ा अभिनय करते हुए स्थित है।

शिवाद्वेत दर्शन के मान्यता के अनुसार इड़ासर्ग में प्रसाद जी ने जगत् को मिथ्या कहने वाले शंकर को स्पष्ट रूप से विरोध करतेहुए जीवात्मा मनु से कहा गया–

'कल्याण भूमि' यह लोक यही श्रद्धा रहस्य जानेन प्रजा
अतिचारि मिथ्या मान इसे परलोक वचनासे भर जा।[7]

परलोक साधना मैं सुख-प्राप्ति की आशा से इस सत्य जगत को मिथ्या मानकर अटके रहना निश्चय ही आत्मा-वचना के अतिरिक्त और कुछ नही। जगत् को सत्य मानते हुए, इस प्रकार काश्मीरी शैव दर्शन और उससे अनुप्राणित कामायनी का प्रति पाद्यद्वेत न होकर अद्वेत ही है, क्योंकि जगत् शिव से भिन्न न होकर उसका ही स्वरूप - स्फुरण है।

संदर्भ- ग्रंथ-सूची

1. 'ईशादि नौउपनिषद्', गोरखपुर : गीताप्रेस, पचीसवाँ पुनर्मुद्रण संस्करण, 2061, पृ. 387.
2. प्रसाद, जयशंकर, 'कामायनी', इलाहाबाद : ज्ञानभारती प्रकाशन, संस्करण, 2009, पृ०-128
3. प्रसाद, जयशंकर, 'कानन कुसुम' (मंदिर कविता), पंचम संस्करण
4. प्रसाद, यशंकर, 'कामायनी, इलाहाबाद : ज्ञान भारती प्रकाशन, संस्करण 2009, पृठ - 112
5. प्रसाद, जयशंकर, कामायनी, दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्स, काश्मीरी गेत, संस्करण 2011, पृ० - 75
6. वहीं, पृठ - 63.
7. वहीं, पृ०-78.

राजसमन्द जिले के आर्थिक विकास में धार्मिक पर्यटन की भूमिका

Role of Religious Tourism in Economic Development of Rajsamand District

अजय सिंह मानावत

पीएच.डी. शोधार्थी, भूगोल विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

प्रो० आई०एम० कायमखानी

शोध निर्देशक, भूगोल विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

सार-संक्षेप (Abstract)

प्रस्तुत शोध अध्ययन का मुख्य उद्देश्य राजसमन्द जिले के आर्थिक विकास में धार्मिक पर्यटन की भूमिका का अध्ययन करना है। इसके लिए राजसमन्द जिले के तीन चयनित धार्मिक पर्यटन स्थलों के 100 उत्तरदाताओं का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा न्यादर्श के रूप में किया गया। इस न्यादर्श से दत्त संकलन स्वनिर्मित साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से किया गया। शोध परिणामों में पाया गया कि राजसमन्द जिले के आर्थिक विकास में धार्मिक पर्यटन की सकारात्मक भूमिका है। चूँकि, यहाँ आने वाले पर्यटकों में घरेलू पर्यटकों की संख्या ज्यादा है। अतः यह कहा जा सकता है कि राजसमन्द जिले के आर्थिक विकास में घरेलू पर्यटन की भूमिका विदेशी पर्यटन की तुलना में अधिक सकारात्मक है।

मुख्य शब्दः राजसमन्द जिला, आर्थिक विकास, धार्मिक पर्यटन, भूमिका

प्रस्तावना (Introduction)

राजस्थान भारत में पर्यटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण राज्य है। राजस्थान में स्थापत्य कला, भौतिक स्वरूप, ऐतिहासिक घटनाओं का अधिक गौरवमयी इतिहास रहा है। अतः राज्य में पर्यटन की प्रचुर सम्भावनाएँ विद्यमान है। राजस्थान में अन्य उद्योगों की भाँति पर्यटन भी एक महत्वपूर्ण उद्योग के रूप में विकसित हो चूका है। राजस्थान भारत के तीन प्रमुख पर्यटक राज्य (जम्मू-कश्मीर, गोवा व राजस्थान) के अन्तर्गत सम्मिलित है। राजस्थान सरकार को सर्वाधिक आय पर्यटन से ही होती है। राजस्थान में पर्यटन के विभिन्न स्वरूप यथा-ऐतिहासिक पर्यटन, धार्मिक् पर्यटन, सांस्कृतिक पर्यटन, प्राकृतिक पर्यटन स्थल, शैक्षणिक पर्यटन स्थल आदि पर्यटन स्वरूपों का विशेष महत्व है।

राजस्थान राज्य के लगभग सभी जिले पर्यटन के विभिन्न स्वरूपों से सम्बन्धित है। राजस्थान के प्रमुख पर्यटन नगरों में जयपुर, जोधपुर, जैसलमेर, उदयपुर, बीकानेर, अजमेर, कोटा आदि का विशेष महत्व है। इन नगरों में पर्यटन के विभिन्न स्वरूप देखने को मिलते हैं। राजस्थान में घरेलू व विदेशी दोनों प्रकार के पर्यटक यहाँ घूमने आते है।

विश्व पर्यटन में भारतीयों की भागीदारी 3.8 प्रतिशत है, जबकि विश्व पर्यटकों में से मात्र 0.38 प्रतिशत पर्यटक प्रतिवर्ष भारत आते हैं। भारत में आने वाले कुल विदेशी पर्यटकों में से 20 से 21 प्रतिशत पर्यटक प्रतिवर्ष राजस्थान आते हैं। पर्यटन उद्योग से प्रदेश में लगभग 2.74 लाख लोगों को रोजगार प्राप्त होता है।

राजस्थान में पर्यटन के विभिन्न स्वरूपों में से ऐतिहासिक व धार्मिक पर्यटन के आधार पर राजसमन्द जिले का विशेष महत्व है। राजसमन्द जिले में ऐतिहासिक व धार्मिक पर्यटन का एक आधारभूत समन्वय देखने को मिलता है। यहाँ धार्मिक पर्यटन विशेष महत्त्व रखता है, क्योंकि वैष्णव सम्प्रदाय के सभी प्रमुख मंदिर जैसे- श्रीनाथ जी(नाथद्वारा), श्री द्वारकाधीश जी (कांकरोली) तथा श्री चारभुजा जी (गढ़बोर) यहाँ पर स्थित हैं। प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में यहाँ घरेलू तथा विदेशी पर्यटक घूमने आते हैं।

स्पष्ट है कि राजसमन्द जिले में धार्मिक पर्यटन की बहुतायत तथा इससे होने वाले आर्थिक हितों को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से राजसमन्द जिले के आर्थिक विकास में धार्मिक पर्यटन की भूमिका का अध्ययन किया गया है।

समस्या का औचित्य (Justification of Problem)

प्रस्तुत शोध में राजसमन्द जिले में पर्यटन के सन्दर्भ में यहाँ पर देशी व विदेशी पर्यटकों की आने की स्थिति, धार्मिक पर्यटन स्थलों पर परिवहन एवं आधारभूत सुविधाओं का विकास, पर्यटन से स्थानीय लोगों की प्रति व्यक्ति आय, जीवन स्तर, रोजगार, संस्कृति पर पड़ने वाले प्रभावों की समीक्षा की गई है। इस समीक्षा के आधार पर पर्यटन विभाग तथा प्रशासन धार्मिक पर्यटन से जुड़ी समस्याओं का अध्ययन कर यहाँ की समस्याओं का निराकरण कर पाऐंगे। इस प्रकार प्रस्तुत शोध अध्ययन पूर्णत: औचित्यपूर्ण है।

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत शोध हेतु निम्नलिखित उद्देष्य निर्धारित किये गये हैं-

1. राजसमन्द जिले के धार्मिक पर्यटन स्थलों के आर्थिक विकास के स्तर का पता लगाना।
2. राजसमन्द जिले के आर्थिक विकास में धार्मिक पर्यटन की भूमिका का पता लगाना।
3. राजसमन्द जिले के आर्थिक विकास में धार्मिक पर्यटन की भूमिका के भौगोलिक निहितार्थों का पता लगाना।

शोध पद्धति (Research Methodology)

प्रस्तुत शोधकार्यमें राजसमन्द जिले के तीन चयनित धार्मिक पर्यटन स्थलों-श्रीनाथ जी(नाथद्वारा), श्री द्वारकाधीशजी (कांकरोली) तथा श्री चारभुजा जी (गढ़बोर) केउत्तरदाताओं से सर्वेक्षण विधि के अन्तर्गत एक स्वनिर्मित साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से प्राथमिक आंकड़ों का संकलन किया गया। इन उत्तरदाताओं का न्यादर्शन यादृच्छिक प्रतिचयन विधि के द्वारा निम्न प्रकारसे किया गया-

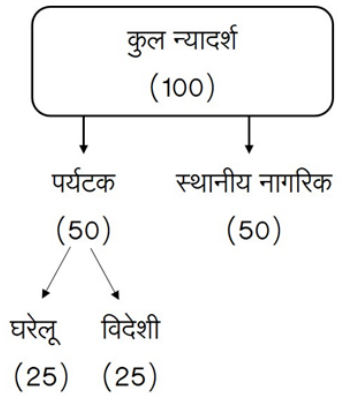

दत्त विश्लेषण (Data Analysis)

- **राजसमन्द जिले के धार्मिक पर्यटन स्थलों के आर्थिक विकासका स्तरवार विश्लेषण**

सारणी संख्या 1: धार्मिक पर्यटन स्थलों के आर्थिक विकास का स्तर

क्षेत्र	कथन संख्या	कट पॉइंट मध्यमान	संगणित मध्यमान	अंतर	मानक विचलन	स्तर
आर्थिक विकास	9	$9 \times 3 = 27$	32.88	5.88	4.38	उच्च

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि आर्थिक विकास के सन्दर्भ में राजसमन्द जिले के धार्मिक पर्यटन स्थलों के उत्तरदाताओं से प्राप्त आंकड़ों का संगणित मध्यमान 32.88 प्राप्त हुआ जो कि इस क्षेत्र के मध्य बिंदु मध्यमान 27 से अधिक है। साथ ही 5.88 अंकों का यह तुलनात्मक आधिक्य इस क्षेत्र के मानक विचलन 4.38 से अधिक पाये जाने के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजसमन्द जिले के धार्मिक पर्यटन स्थलों का आर्थिक विकास उच्च स्तर का हुआ है।

राजसमन्द जिले के आर्थिक विकास में धार्मिक पर्यटन की भूमिका का विश्लेषण

आर्थिक विकास एक ऐसा संप्रत्यय है जिसे कई संख्यात्मक मापदंडों के माध्यम से मापा जा सकता है। अत: राजसमन्द जिले के आर्थिक विकास में पर्यटन की भूमिका के विश्लेषण हेतु प्रतिवर्ष आने वाले पर्यटकों के संख्यात्मक आंकड़े शोध की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं, यथा-

सारणी संख्या 2: राजसमन्द जिले में पर्यटकों का आगमन (वर्ष 2010 से 2020 तक)

वर्ष	पर्यटकों की संख्या			गत वर्ष की तुलना में परिवर्तन % में		
	घरेलू	विदेशी	कुल	घरेलू	विदेशी	कुल
2010	567485	3487	570972	-	-	-
2011	624802	3459	628261	10.10%	-0.80%	10.03%
2012	616095	3225	619320	-1.39%	-6.76%	-1.42%
2013	638751	3948	642699	3.68%	22.42%	3.77%
2014	702801	4156	706957	10.03%	5.27%	10.00%
2015	637722	3647	641369	-9.26%	-12.25%	-9.28%
2016	678006	4012	682018	6.32%	10.01%	6.34%
2017	713431	4489	717920	5.22%	11.89%	5.26%
2018	776194	5204	781398	8.80%	15.93%	8.84%
2019	797501	5489	802990	2.75%	5.48%	2.76%
2020	128650	1125	129775	-83.87%	-79.50%	-83.84%

स्रोत-प्रगति प्रतिवेदन, परिशिष्ट-IV, पर्यटन विभाग, राजस्थान

प्रस्तुत सारणी से स्पष्ट है कि राजसमन्द जिले में वर्ष 2010 से घरेलू तथा विदेशी पर्यटकों की संख्या वर्ष 2012, 2015 तथा 2020 को छोड़कर निरंतर बढ़ी है। वर्ष 2020 में कोविड-19 महामारी के कारण घरेलू तथा विदेशी पर्यटकों की संख्या में बड़ी गिरावट देखने को मिली है। इस प्रकार आर्थिक विकास के बारे में राजसमन्द जिले के विभिन्न पर्यटन स्थलों के उत्तरदाताओं से प्राप्त आंकड़ों के साथ घरेलू एवं विदेशी पर्यटकों के संख्यात्मक आंकड़ों तथा स्वयं के अवलोकन से प्राप्त तथ्यों का सह-सम्बन्धात्मक विषयवस्तु विश्लेषण कर शोधार्थी द्वारा राजसमन्द जिले के आर्थिक विकास में धार्मिक पर्यटन की भूमिका का विश्लेषण किया गया है, यथा-

- प्रस्तुत सारणी के अनुसार पर्यटकों की बढ़ती संख्या आर्थिक विकास में वृद्धि का सूचक मानी जा सकती है। सर्वविदित है कि जितने ज्यादा पर्यटक आएंगे, पर्यटन स्थलों पर व्यावसायिक गतिविधियाँ भी उतनी ही अधिक होंगी। इससे न केवल सामान्य लोगों के लिए रोजगार के अवसर बढ़ते हैं वरन् सरकार के राजस्व में भी वृद्धि होती है, जिससे आर्थिक विकास में तेजी आती है।
- प्रस्तुत सारणी में उल्लेखित पर्यटकों के संख्यात्मक आंकड़ों से यह भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि राजसमन्द जिले में विदेशी पर्यटकों की तुलना में घरेलू पर्यटक कहीं अधिक आते हैं। अतः स्वाभाविक रूप से यह माना जा सकता है कि यहाँ पर्यटन के कारण व्यावसायिक गतिविधियों, रोजगार तथा राजस्व में होने वाली वृद्धि में भी विदेशी पर्यटन की तुलना में घरेलू पर्यटन का योगदान अधिक है।
- उत्तरदाताओं से प्राप्त प्राथमिक आंकड़ों से भी यह स्पष्ट होता है कि राजसमन्द जिले में जिस प्रकार से लोगों के जीवन स्तर, आय, व्यापारिक गतिविधियों, सामान की उपलब्धता तथा रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई है, उसका एक बड़ा कारण पर्यटन ही है। क्योंकि इन उत्तरदाताओं में पर्यटक तथा इससे जुड़े स्थानीय लोग ही सम्मिलित किये गये थे।
- उत्तरदाताओं से प्राप्त प्राथमिक आंकड़ों से भी यह स्पष्ट होता है कि राजसमन्द जिले के धार्मिक पर्यटन स्थलों पर कई आधारभूत सुविधाओं जैसे- यातायात, पार्किंग, बैंकिंग सेवा इत्यादि में वृद्धि हुई है। स्वयं शोधार्थी ने भी सर्वेक्षण के दौरान अपने अवलोकन के माध्यम से इन तथ्यों की पुष्टि की तथा पाया कि वास्तव में इन स्थलों के आर्थिक विकास में पर्यटन की एक बड़ी भूमिका है।

निष्कर्ष (Conclusion)

राजसमन्द जिले के आर्थिक विकास में धार्मिक पर्यटन की सकारात्मक भूमिका है। चूँकि, यहाँ आने वाले पर्यटकों में घरेलू पर्यटकों की संख्या ज्यादा है। अतः यह कहा जा सकता है कि राजसमन्द जिले के आर्थिक विकास में घरेलू पर्यटन की भूमिका विदेशी पर्यटन की तुलना में अधिक सकारात्मक है।

भौगोलिक निहितार्थ (Geographical Implications)

प्रस्तुत अध्ययन से जो निष्कर्ष सामने आये हैं, उनमें कई भौगोलिक निहितार्थ छिपे हुए हैं, यथा-

1. प्रस्तुत शोध का सबसे महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह आया है कि राजसमन्द जिले के आर्थिक विकास में धार्मिक पर्यटन की सकारात्मक भूमिका पाई गई है। जिले के अधिकांश धार्मिक पर्यटन स्थल, विशेषकर श्रीनाथ जी मंदिर, नाथद्वारा वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बन्धित है, जिसकी पड़ौसी राज्य गुजरात

में बहुलता है।राजसमन्द जिले की गुजरात से, यही भौगोलिक समीपता यहाँ गुजराती पर्यटकों को विभिन्न धार्मिक स्थलों के पर्यटन हेतु प्रोत्साहित करती है। ध्यातव्य है कि राजसमन्द जिले के धार्मिक पर्यटन स्थलों पर आने वाले पर्यटकों में सबसे बड़ा अनुपात गुजराती पर्यटकों का है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि, राजसमन्द जिले की भौगोलिक अवस्थिति गुजरात के वैष्णव धर्मावलम्बियों के लिए पहुँच तथा आस्था दोनों दृष्टिकोण से अनुकूल है।

2. राजसमन्द जिले के धार्मिक पर्यटन स्थलों के तीव्र आर्थिक विकास का एक बड़ा कारण इनका छोटे कस्बों में स्थित होना है। नाथद्वारा, कांकरोली तथा गढ़बोर जैसे छोटे कस्बों अथवा शहरों का आर्थिक नियोजन बड़े शहरों की अपेक्षा अधिक सरल रहता है। यही कारण है कि अपने छोटे क्षेत्रफल के चलते इन धार्मिक पर्यटन स्थलों का विकास द्रुत गति से हुआ है।
3. राजसमन्द जिले के धार्मिक पर्यटन स्थलों की भौगोलिक अवस्थिति कुछ इस प्रकार है कि इनके आस-पास ऐतिहासिक एवं प्राकृतिक पर्यटन के स्थल भी सहजता से उपलब्ध हो जाते हैं। उदाहरण के लिए नाथद्वारा में श्रीनाथ जी के मंदिर के समीप लाल-बाग एवं हल्दीघाटी, कांकरोली में द्वारकाधीश जी के मंदिर के समीप विश्वप्रसिद्ध राजसमन्द झील एवं वहीं गढ़बोर में चारभूजा मंदिर से कुछ दूरी पर कुंभलगढ़ अभ्यारण्य स्थित है। जिले के धार्मिक पर्यटन स्थलों की यही भौगोलिक विशेषता इन्हें पर्यटकों की संख्या तथा राजस्व दोनों दृष्टि से विशिष्ट बनाती है।
4. पड़ौसी जिलों उदयपुर तथा पाली की तुलना में राजसमन्द जिले के धार्मिक पर्यटन स्थलों का तीव्र आर्थिक विकास होने का एक बड़ा कारण इनकीभू-आकृतिक संरचना भी है।जहाँ एक ओर उदयपुर तथा पाली के धार्मिक पर्यटन स्थल दुर्गम रास्तों एवं पहाडिघ्यों पर स्थित है, वहीं राजसमन्द जिले के धार्मिक पर्यटन स्थल बनास नदी के बेसिन से बने मैदानी क्षेत्रों में स्थित हैं जहाँ पहुँचना पर्यटकों के लिए कहीं अधिक सुगम है। दूसरी ओर प्रशासन के लिए भी इन मैदानी पर्यटन स्थलों में आधारभूत विकास के कार्य करवाना कहीं अधिक सरल है।

संदर्भ (References)

- Anand M. M. (1976) 'Tourism Today : An Indian Perspective'
- Badan, B.S. and Bhatt, Harish (2007). Tourism Planning and development; Commonwealth publishers, New Delhi.
- Batra, K. L. (1989). Problems and Prospects of Tourism: Printwell Publishers, Jaipur.
- Bhandari Prakash, "Tourism Remains Key Industries, Rajasthan 'Rajasthan Patrika'.
- Census of India (2001) - Districts Census Handbook, Chittorgarh, Directorate of Census operation, Jaipur.
- Kumar Nirmal (1996) "Tourism and Economic Development' APH Corporation, New Delhi.
- Mishra, Sharma R. P., Acharya S.S. and Ram (1981) 'World tourism'.
- National Tourism Policy (2002) Department of Tourism, ministry of tourism and Cultural, Govt. of India, New Delhi.
- Pragati Prativedam (2007 & 08) Department of Tourism, Govt. of Rajasthan (Jaipur).
- Sharma K. K. (1991) 'Tourism in India: Centre-State Administration'.
- Singh, Tej Vir (1975), Tourism and Tourism Industry; New Heights, New Delhi.
- Sinha, P.C. (1998). Tourism Planning, Anmol Publication Private Limited, New Delhi.

छत्तीसगढ़ के शासकीय व अशासकीय डी.एल.एड. प्रशिक्षण संस्थाओं का 'सम्पूर्ण गुणवत्ता मूल्यांकन': इन्टर्नशीप के क्रियान्वयन और उसमें अनुभूत समस्याओ के विशेष संदर्भ में

सत्यप्रकाश यादव

शोधार्थी, पं. सुंदरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय, छत्तीसगढ़, बिलासपुर

डॉ० प्रकृति जेम्स

सहायक प्राध्यापक (शिक्षा विभाग) पं. सुंदरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय, छत्तीसगढ़, बिलासपुर

शोध सारांश

शिक्षण जैसे उत्तम कार्य में शिक्षक की भूमिका केन्द्रीय हो गई है। वर्तमान समय में शिक्षक से हमारी अपेक्षाएँ बढ़ गयी है, आज उसे जहां स्वयं विद्यार्थी, समाज, शाला, व्यवसाय इत्यादि के प्रति समर्पित होना है, वहीं विषय-विशेषज्ञ, चिंतक के रूप में भी अपने को साबित करना है। वास्तव में अध्यापक ही संस्था द्वारा प्रदत्त शैक्षिक वातावरण के निर्माण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता हैं। शिक्षको के प्रशिक्षण मे इन्टर्नशिप कार्यक्रम की भूमिका महत्वपूर्ण है।प्रस्तुत शोध निष्कर्षो के प्रकाश में राज्य की शासकीय एवं अशासकीय डी.एल.एड. प्रशिक्षण संस्थाओं केइन्टर्नशीप के क्रियान्वयन और उसमें अनुभूत समस्याओ के निराकरण के उन्नयन में दिशा-निर्देशन प्राप्त होगा और शिक्षको को उनके उद्देश्यों को प्राप्त करने योग्य बनाया जा सकेगा।

इक्कीसवीं शताब्दी का भारत तेजी से विकास की ओर अग्रसर है। उसको इस विकास-पथ पर आगे बढ़ाने हेतु एक कुशल मानव संसाधन के रूप में योग्य नागरिकों की आवश्यकता है। उनके इस आवश्यकता की पूर्ति देश की अच्छी शिक्षा-व्यवस्था तथा उन्नत शिक्षक-शिक्षा के माध्यम से पूरी की जा सकती है, जिससे राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की सभी चुनौतियों का सामना करना संभव हो सकेगा। शिक्षा की दृष्टि से ''प्रारंभिक शिक्षा का लोकव्यापीकरण'', ''गुणवत्तापूर्ण सभी के लिए शिक्षा'', आदि राष्ट्रीय स्तर के प्रमुख लक्ष्य रहें हैं। इसी क्रम में 6 से 14 वर्ष की आयुसमूह के बच्चों को अनिवार्य व नि:शुल्क शिक्षा देना, आज उनका मौलिक अधिकार बन गया है, साथ ही यह लक्ष्य देश का संवैधानिक उत्तरदायित्व भी हो गया है। व्यवहारिक रूप से देश के शैक्षिक समस्याओं की जांच करने वाले प्रत्येक शिक्षा आयोग ने अध्यापकों की दशा की ओर विशिष्ट ध्यान दिया है। माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने भी कहा है कि हम इस बात से पूरी तरह सहमत है कि आमूलचूल शैक्षिक पुनर्गठन में अध्यापक सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक है।शिक्षा आयोग (1964-66) के अनुसार शिक्षा की विशिष्टता तथा गुण को प्रभावित करने वाले एवं राष्ट्रीय विकास में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले सभी विभिन्न घटकों में नि:संदेह रूप से शिक्षकों की योग्यता एवं उनके गुण सर्वाधिक प्रभावकारी है। अत: हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं, इन अपेक्षाओं को पूरा करने हेतु एक कुशल शिक्षक तैयार करना होगा और यह तभी संभव है जब देश में शिक्षक को उत्तम प्रशिक्षण प्रदान किया जाय।

छत्तीसगढ़ में शासकीय एवं अशासकीय डी.एल.एड. प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थिति

छत्तीसगढ़ राज्य 1 नवम्बर 2000 को अस्तित्व में आया। वर्तमान में एस.सी.ई.आर.टी. रायपुर, छत्तीसगढ, 2018 के आकड़ों के अनुसार 27 जिलों में कुल 21 शासकीय एवं 68 अशासकीय डी.एल.एड. प्रशिक्षण संस्थाएँ संचालित हो रही हैं जिनमें दो वर्षीय डिप्लोमा इन एलिमेंट्री एजुकेशन का पाठ्यक्रम संचालित कर प्रारंभिक शालाओं हेतु प्रशिक्षित शिक्षक तैयार करने का दायित्व दिया गया है।

सम्पूर्ण गुणवत्ता मूल्यांकन

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद अधिसूचना नई दिल्ली 28 नवंबर 2014 जिसका प्रकाशन भारत राजपत्र (भाग-3 खण्ड चार) के पृष्ठ 13 परिशिष्ट-2 में अंकित प्रारंभिक अध्यापक शिक्षा में डिप्लोमा (डी.एल.एड.) प्राप्त कराने वाले प्रारंभिक अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में डिप्लोमा पाठ्यचर्चा के मानदंड और

मानकों में दिए गये विभिन्न मुद्दों यथा इण्टर्नशिप को गुणवत्ता सूचकांक मानकर (iQuality Indicators) शासकीय एवं अशासकीय डी.एल.एड. प्रशिक्षण संस्थाएं का सम्पूर्ण गुणवत्ता का मापन किया गया है। प्रस्तुत शोध में सम्पूर्ण गुणवत्ता मापन/मूल्यांकन का यही अभिप्राय है।

अध्ययन का औचित्य

आज के युग मे क्षमतावान शिक्षकों की महती आवश्यकता है विशेषकर प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के विषय में यह अत्यंत आवश्यक हो गया है, क्योंकि वर्तमान में पूरे शिक्षा जगत का ध्यान प्रारंभिक शिक्षकों की ओर आकृष्ट हो रहा है। लोकप्रिय दैनिक समाचार पत्र दैनिक भास्कर बिलासपुर गुरूवार 9 नवंबर, 2017 के पृष्ठ 18 पर मुद्रित समाचार के अनुसार "शिक्षा के अधिकार कानून के तहत मार्च 2019 के पहले सभी अप्रशिक्षित शिक्षकों को डी.एल.एड. यानी डिप्लोमा इन इलिमेण्ट्री एजुकेशन का दो साल का कोर्स करना होगा। केन्द्र सरकार ने चाहे वह निजी हो, या फिर शासकीय या अर्द्धशासकीय या अनुदान प्राप्त, सभी स्कूलों के अप्रशिक्षित शिक्षकों के लिए डी.एल.एड. पाठ्यक्रम को अनिवार्य कर दिया गया है। कोर्स न करने पर शिक्षक अध्यापनकार्य से वंचित हो जायेंगे और उनके सामने रोजी-रोटी का प्रश्न खड़ा हो जायेगा। "इस समाचार के अनुसार डाईट एवं डी.एल.एड. प्रशिक्षण संस्थाओं का महत्व प्रारंभिक शिक्षा जगत में अचानक बढ़ गया है। इसलिए डी.एल.एड. प्रशिक्षण संस्थाओं ने प्रशिक्षण एवं प्रशिक्षार्थियों की अभिवृत्ति को सकारात्मक बना दिये है। ऐसे सभी वे उम्मीदवार जो इस स्तर के शिक्षक बनना चाहते हैं, वे सुविधा संपन्न प्रशिक्षण संस्थाओं से प्रशिक्षण लेकर अध्यापक बनने की पात्रता पा लेना चाहते हैं। डी.एल.एड. पाठयक्रम के प्रारंभ में प्रशिक्षार्थियों की अभिवृत्ति, प्रशिक्षण पूरा करने पर प्राप्त अभिवृत्ति में परिवर्तन आना, प्रशिक्षण के प्रति अत्यंत सकारात्मक अभिवृत्ति के विकास का संकेत देता है और सुविधा सम्पन्न प्रशिक्षण संस्थाओं की आवश्यकता निरुपित करता है। प्रस्तुत शोध अध्ययन की आवश्यकता व सार्थकता उपरोक्त गद्यांशों के प्रकाश में रेखांकित होती है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. शासकीय एवं अशासकीय डी.एल.एड. प्रशिक्षण संस्थाओं में इन्टर्नशीप के क्रियान्वयन और उसमें अनुभूत समस्याओं की तुलना करना।

अध्ययन की परिकल्पना

H1 शासकीय एवं अशासकीय डी.एल.एड. प्रशिक्षण संस्थाओं में इन्टर्नशिप एवं उनके क्रियान्वयन संबंधी समस्याओं में अंतर होता है।

शोध प्रकल्प

प्रस्तुत अध्ययन एक वर्णात्मक अध्ययन है जिसमें सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया गया है।

शोध न्यादर्श

छत्तीसगढ़ के 27 जिलों में 21 शासकीय डी.एल.एड. एवं 68 अशासकीय डी.एल.एड. प्रशिक्षण संस्थाएँ वर्तमान में संचालित हैं, अध्ययन हेतु 09 शासकीय एवं 09 अशासकीय संस्थाओं को उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया द्वारा चुना गया है, जिसके तहत जिस जिले में शासकीय डी.एल.एड प्रशिक्षण संस्थाएँ हैं उन्हींजिलों की अशासकीय प्रशिक्षण संस्थाएँ न्यादर्श में शामिल है, तथा प्रत्येक प्रशिक्षण संस्थाओं से प्रथम वर्ष से 25 एवं द्वितीय वर्ष से 25 प्रशिक्षार्थी, 07 शिक्षक-प्रशिक्षक एवं 01 प्राचार्य अथवा विभागाध्यक्ष को प्रश्नावली भरने हेतु चयन किया गया।

शोध चरांक

प्रस्तुत अध्ययन में चर एवं उनके स्तर निम्नानुसार है -

स्वतंत्र चर -

(i) डाईट/डी.एल.एड. प्रशिक्षण संस्थाओं हेतु राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् नई दिल्ली द्वारा निर्धारित कार्यक्रम एवं मानक के अनुपालन के स्तर ।

(ii) संस्थाओं के प्रकार-शासकीय एवं अशासकीय

आश्रित चर -डी.एल.एड. प्रशिक्षण संस्थाओं में सम्पूर्ण गुणवत्ता मूल्यांकन इस अध्ययन के आश्रित चर है।

अध्ययन में प्रयुक्त शोध उपकरण

शैक्षिक गुणवत्ता मापनी प्रश्नावली-शैक्षिक गुणवत्ता मापनी प्रश्नावली का निर्माण शोध-निर्देशक एवं विषय विशेषज्ञों द्वारा दिए गए सुझावों एवं मानकीकृत दिशानिर्देशों के आधार पर शोधकर्ता द्वारा स्वयं किया गया है।

परिकल्पनाओं का परीक्षण एवं व्याख्या -

H1 शासकीय एवं अशासकीय डी.एल.एड. प्रशिक्षण संस्थाओं में इन्टर्नशिप एवं उनके क्रियान्वयन संबंधी समस्याओं में अंतर होता है।

उपरोक्त परीकल्पना के परीक्षण हेतु ष्जष् की गणना निम्नांकित सारणी के अनुसार प्राप्त हुई है

इन्टर्नशिप क्रियान्वयन पर प्रशिक्षार्थी एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के मत संबंधी परीक्षण परिणाम

चरांक	*संस्थाएं*	*N*	*M*	*SD*	*"t"*	*व्याख्या*
इन्टर्नशिप क्रियान्वयन संबंधी समस्या	शासकीय डी.एल.एड. संस्थाएं	487	24.30	2.58	1.376*	P>.05
	अशासकीय डी.एल.एड. संस्थाएं	513	24.01	3.87		

*Not significant

निष्कर्ष

उपरोक्त सारणी दर्शाती है कि .05 प्रतिशत सार्थकता स्तर पर सांख्यिकीय रूप से "t" का मान सार्थक नहीं है अतएव शोध परिकल्पना H_1 अस्वीकृत होती है। प्राप्त परिणाम इस ओर संकेत करता है कि शासकीय एवं अशासकीय डी.एल.एड. प्रशिक्षण संस्थाओं में इन्टर्नशिप एवं उनके क्रियान्वयन संबंधी समस्याओं में अंतर नहीं होता है।

विवेचना -इन्टर्नशिप कार्यक्रम के क्रियान्वयन में शासकीय एवं अशासकीय डी.एल.एड. प्रशिक्षण संस्थाओं को समस्याओं का सामना नही करना पड़ता है, कारण स्पष्ट है, पाठ्यक्रम मे इन्टर्नशिप के क्रियान्वयन संबधी स्पष्ट दिशा निर्देश प्राप्त हैं डाईट्स के अंतर्गत अनेक शासकीय एवं अशासकीय शालायें शामिल होती है। इन्हीं शालाओं में डाईट्स में प्रशिक्षणरत प्रशिक्षार्थियों को इन्टर्नशिप हेतु भेजा जाता है, यह संस्थायें डाईट्स के प्रशिक्षार्थियों को पूरी तरह से सहायता प्रदान करती हैं साथ ही उन्हें शिक्षण के साथ-साथ शाला एवं आसपास के सामाजिक कार्यों से जुड़ने का अवसर प्रदान करती है। इसी तरह ज्यादातर अशासकीय प्रशिक्षण संस्थाओं के पास स्वयं की शालायें है। अत: वे अपने संस्था में अध्ययनरत प्रशिक्षार्थियों को इन्टर्नशिप हेतु वहां भेज कर उन्हें विभिन्न गतिविधियों को संचालित करना सीखाने में सफल होते है। कुछ अशासकीय संस्थाओं के पास शालायें नहीं होती है अत: उन्हें अन्य शालाओं से स्वीकृति लेकर प्रशिक्षार्थियों को प्रशिक्षण हेतु भेजना होता है, यहॉ यह सम्भव है कि शालाओं की स्वीकृति न मिलने पर संस्थाओं व प्रशिक्षार्थियों को कुछ परेशानियों का सामना करना पड़ता है। कुछ ऐसी भी शालाएं है, जहां प्रशिक्षार्थियों को सीखने में सहयोग प्रदान नहीं किया जाता है, किंतु इनकी संख्या अत्यंत कम है अत: इन्टर्नशिप के क्रियान्वयन में शासकीय एवं अशासकीय संस्थाओं में अंतर नही पाया जाना उचित जान पड़ता है।

निष्कर्ष-राज्य के शासकीय एवं अशासकीय डी.एल.एड. प्रशिक्षण संस्थाओं को अधिक उद्देश्यपूर्ण एवं मानक के अनुकूल बनाने की दृष्टि से उनकी सुविधाओं, विशेषताओं एवं कमजोरियों को उजागर करने संबंधी अध्ययन की विशेष महत्ता है। इससे शिक्षाविदों और शिक्षा अधिकारियों व शासन को अपनी योजना एवं नीति सृदृढ़ करने में सहायता मिलेगी, साथ ही राज्य में संचालित अन्य सभी शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं की सुविधाओं को अधुनातन बनाने में सहायता मिलेगी। राज्य में शासकीय एवं अशासकीय डी.एल.एड. संस्थाओं में कार्यरत शिक्षकों हेतु (सेवापूर्व, सेवाकालीन तथा अल्पकालीन) प्रशिक्षण आयोजित कर राज्य में कुशल शिक्षक तैयार करने में सहायता प्राप्त होगी। प्रोफेसर सत्यभूषण (2004) के विचारों के अनुकूल राज्य की डाईट्स के संबंध में व्यक्तिगत नीतियों, निकाय के कर्मचारियों के क्षमता-विकास, प्रशासकीय एवं वित्तीय अधिकारों के विकेन्द्रीकरण, प्रशिक्षण संस्थाओं में परस्पर संवाद के अवसर तथा डाईट्स में नवाचारी कार्यक्रमों के आयोजन में सहायता मिलेगी। प्रस्तुत शोध निष्कर्षो के प्रकाश में राज्य की शासकीय एवं अशासकीय डी.एल.एड. प्रशिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रम एवं क्रियाकलापों के उन्नयन में दिशा-निर्देशन प्राप्त होगा और उन्हें उनके उद्देश्यों को प्राप्त करने योग्य बनाया जा सकेगा।

सन्दर्भ सूची

चन्द्रशेखर, के. (2000): एन इवेल्यूवेटिव स्टडी ऑफ प्राइमरी स्कूल टीचर्स एजुकेशन प्रोग्राम इन आन्ध्र प्रदेश, पी-एच.डी. थिसिस-एजुकेशन, श्री वेंकेटेश्वरा विश्वविद्यालय, तिरूपति.

चन्द्रशेखर, के. (2017): ''टीचर एजुकेशन्स परसेप्सन्स ऑफ डाईट्स फेसिलिटीज एण्ड दियर रिलेसन्स टू सर्टेन पर्सनल एण्ड डिमोग्राफिक वैरियेबल्स'' पर्सपेक्टिव्स इन एजुकेशन,बड़ौदा, वाल्यूम 23(2), पृष्ठ 92-104.

दैनिक समाचार पत्र, दैनिक भास्कर, बिलासपुर, गुरूवार 9 नवंबर, 2017 पृष्ठ 18.

दास,आर.सी.एवं जंगीरा, एन.के. (2004): 'ए ट्रेण्ड रिपोर्ट, टीचर एजुकेशन',थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन,एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली,पृष्ठ: 782-789.

डेलर्स, जे. एवं अन्य;1998): ''क्वालिटी टीचर्स, लर्निंग: दी ट्रेजर विदिन' रिपोर्ट टु यूनेस्को ऑफ दी इण्टरनेशनल कमीशन ऑन एजुकेशन फार दी ट्वेन्टी फर्स्ट सेन्चुरी, पेरिस, यूनेस्को,: कोटेड बाई इन दी इण्डियन्स जर्नल फॉर टीचर एजुकेशन, एन.सी.टी.ई., नई दिल्ली, वाल्यूम 1;1): 146..

दीपा, कृष्णा एवं सरोज, आनन्द ;2006): गुणवत्तापरक प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षणजिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थाओं की भूमिकाएअन्वेषिका 3(2):75-80.

मुखोपाध्याय, मारमर ;2009): शिक्षा में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन, डायमण्ड पॉकेट बुक (प्रा.) लि., नई दिल्ली

किसान आन्दोलन में राहुल सांकृत्यायन की सक्रिय भूमिका

संजय कुमार सिंह

शोध विद्यार्थी, इतिहास विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

1921 ई0 में स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेते हुए राहुल जी ने सक्रिय राजनीति में प्रवेश किया। 1921 से 1925 ई0 के बीच राहुल जी ने दो वर्षों तक बक्सर और हजारीबाग जेलों में रहे। 1930 ई0 में राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह के संगठनकर्त्ता की हैसियत से सारण जिले में काम किया और कांग्रेस के पदाधिकारी भी बने। 1937 ई0 में अंग्रेजी शासन के मातहत बिहार में कांग्रेस मंत्रिमंडल बना तो राहुल जी ने जमीन्दारी के खिलाफ किसान संघर्ष के संगठन में अपने को झोंक दिया। सिवान जिले के अम्बारी गाँव में किसान संघर्ष का नेतृत्व करते हुए 1938 ई0 में राहुल जी का सर फोड़ा गया और हथकड़ियाँ लगाकर उन्हें जेल भेजा गया। उस सत्याग्रह के जरिए राहुल जी ने देश के शहरी बुद्धिजीवी समाज को झकझोड़ कर बहुतेरे लेखकों एवं कवियों को अंग्रेज विरोधी और जमीन्दार विरोधी किसान संघर्षों में सक्रिय रूप से उन्मुख किया। 1939 ई0 में जब द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारंभ हुआ तो राहुल जी को कई वर्षों तक हजारीबाग और देउली जेलों में नजरबंद किया गया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि राहुल जी ने चाहे जितना विश्व या देश-भ्रमण किया हो, किन्तु उनकी राजनीतिक और सार्वजनिक कर्मभूमि मुख्यतः बिहार ही रहा।[1]

भारत में 1934 में कांग्रेस-सोशलिस्ट पार्टी के निर्माण के बाद राजनीतिक ध्रुवीकरण की जो प्रक्रिया शुरू हुई, उसमें राहुल जी सोशलिस्ट विचारधारा वालों, खासकर कम्युनिस्टों के ज्यादा नजदीक हुए। 1937 के चुनाव में अपना योगदान तो किया ही, साथ ही साथ बिहार की लोक भाषाओं में रचित चुनाव प्रचार-गीतों को इकट्ठा भी किया। इस अवधि में वे किसान समस्या के नजदीक आये तथा भू-राजस्व की जमीन्दारी प्रथा द्वारा किसानों पर किये जा रहे जुल्म, अत्याचार आदि को काफी नजदीक से देखा। खासकर 1937 में कांग्रेस मंत्रिमंडल के निर्माण के बाद भी किसानों की दशा में कोई सुधार न होने पर उनकी कांग्रेस के प्रति रही-सही आस्था भी डोलने लगी थी।

1937 में राहुलजी ने सोवियत रूस की यात्रा की। इस यात्रा के क्रम में वे वैचारिक रूप से मार्क्सवादी बन गये और कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति लगाव गहरा हो गया।[2]

किसान-मजदूर क्रांति की सफलता के लिए उन्हें अब पूर्णतः सक्रिय राजनीति में रहना ही उचित लगा और वे बिहार के सारण जिला में महाराजगंज, अतरसन, एकमा, बरेजा, माँझी आदि में घूमकर वहां की राजनीतिक व्यवस्था के सम्बन्ध में अध्ययन किया एवं डालमियानगर के मजदूरों की व्यवस्था का अध्ययन किया।[3] उसी साल बिहार प्रान्तीय किसान सम्मेलन ओइनी (दरंभगा) में हुआ। पंडित कार्यानन्द शर्मा सभापति थे। उसमें राहुल जी ने भाग लिया।

हरिनगर चीनी मिल की हड़ताल उसी साल हुई। उस समय कांग्रेस का मंत्रिमंडल था, लेकिन राहुल जी ने अनुभव किया कि यह सब कांग्रेस सरकार के राज्य में हो रहा था। 1939 के जनवरी में वे अमवारी पहुंचे। वहां के किसानों की दशा पर छपरा आकर उन्होंने कलक्टर से बातें की। उन दिनों मुंगेर और गया जिले में किसानों का जमीन्दारों के साथ संघर्ष चल रहा था। वे बड़हिया टाल में पं0 कार्यानन्द शर्मा के साथ गये। उसके बाद रेवड़ा में, जाकर भाषण दिया एवं किसानों का संगठन किया।[4]

20 फरवरी को वे छपरा गये तो मालूम हुआ कि अमवारी में उनके नाम पर 144 धारा लागू की गयी है। राहुल जी ने निश्चय तो किया था हथुआ राज के खिलाफ सत्याग्रह चलाने का, लेकिन 144 धारा ने फिर अमवारी खींच लिया। नागार्जुन जी और जलील चकवी के साथ वहां पहुंचे। जमीन्दार ने कुचलवाने के लिए हाथी तैनात किये थे। ग्यारह किसानों के साथ राहुल जी ने ऊख काटी। सिर पर लाटी पड़ी। ''साधु के सिर से खून गिरा'' गिरफ्तार हो गये।

ब्रिटिश शासनकाल में साम्राज्यवादी उत्पीड़न का दंश वे सहते आये थे, मगर कांग्रेस मंत्रिमंडल के निर्माण के बाद भी किसी इच्छित सुधार का न किया जाना एक ऐसी पीड़ा थी, जो उन्हें बराबर खाये जा रही थी। मगर इसका एक फल यह हुआ कि कांग्रेस और उसके द्वारा की जानेवाली पूंजीवादी राजनीति से उनका मोहभंग सदा- सर्वदा के लिए हो गया। 1935 के बाद के काल में विश्व समाजवादी आन्दोलन में फासीवाद के खिलाफ संयुक्त मोर्चा की जो परिकल्पना रखी गयी थी, उससे समस्त भारतीय राजनीति प्रभावित हो रही थी और 1936 के कांग्रेस महाधिवेशन में फासीवाद के खिलाफ संघर्ष का दिया गया नारा कांग्रेस के भीतर भी वर्ग-शक्तियों के ध्रुवीकरण की प्रक्रिया को तेज कर रही थी। जिसका प्रकटीकरण कांग्रेस के त्रिपुरी और फैजपुर महाधिवेशनों तथा उसके बाद की घटनाओं में हुआ था। इन सबका परिणाम था कि राहुल जी ने 1939 में जब बिहार में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई तो उस स्थापना बैठक में वे कम्युनिस्ट के रूप में शामिल हुए।

इसके पूर्व ही जेल में उन्होंने तुम्हारी क्षय लिखकर पूंजीवादी समाज में वर्तमान शोषण, आर्थिक विषमता, जाति-पांति, पूंजीवादी सदाचार आदि पर तीखा प्रहार किया तथा समाजवादी समाज की उत्कृष्टता को प्रमाणित किया। जेल उनके लिए एक ऐसा अध्ययन कक्ष बन गया था, जहां उन्होंने कई मौलिक रचनाओं को आकार प्रदान किया।

अब वे किसान सभा में एक जाने-माने नेता थे और 1940 में प्रांतीय किसान सभा के सभापति निर्वाचित किये गये। किसान समस्या के प्रति उनका दृष्टिकोण वर्गीय था। जमीन्दारी प्रथा तथा कृषि अर्थ-व्यवस्था में व्याप्त शोषण के खिलाफ उनका संघर्ष हमेशा चलता रहा। साम्यवादी कृषि की, जिसमें सामुहिक खेती कृषि उत्पादन का एक प्रमुख तरीका रहती है, हिमायत भारत में शुरू-शुरू में उन्होंने ही किया। 1940 के बाद के वर्षों में लगातार जेल में रहते हुए राहुल जी ने कई महत्वपूर्ण पुस्तकों की रचना की, जिनमें दर्शन-दिग्दर्शन, विश्व की रूपरेखा, मानस समाज एवं वैज्ञानिक भौतिकवाद की रचना की। 1940 से 1942 तक के जेल-जीवन में, जिसमें देवली कैम्प जेल भी शामिल है, उन्होंने कई बार भूख-हड़तालें कर कैदियों की मांगों को बुलंद किया।

राहुल जी का कार्य-क्षेत्र मुख्यत: बिहार रहा और बिहार के किसान आन्दोलन के साथ राहुल जी लगातार संबद्ध रहे। संभवत: बिहार में ही उन्होंने किसान आन्दोलन करने का निर्णय इसलिए लिया था कि बिहार की कृषि-व्यवस्था का स्वरूप कई मायने में भारत के अन्य प्रान्तों से भिन्न था। मजदूरों का उत्पीड़न तथा शोषण ज्यादा था। अगर बिहार की कृषि-सम्बन्धों की तुलना बंगाल से की जाय तो यह अन्तर स्पष्ट नजर आयेगा। बंगाल में अंग्रेजी शासनकाल में उत्पन्न आर्थिक व्यवस्था में व्यापार, उद्योग तथा अन्य रोजगार का जो विकास हुआ, उससे एक नये वर्ग, जो व्यापारी, पूंजीपति आदि का उदय हुआ। हालांकि पूर्व ब्रिटिशकालीन उद्योग-धंधे वहां भी चौपट हुए। मगर उनकी जगह इस नये उदीयमान पूंजीपति वर्ग ने ले लिया। इस कारण कृषि पर अतिरिक्त आबादी का उतना भार बंगाल में नहीं आया, जितना बिहार में। क्योंकि बिहार में बंगाल जैसी प्रक्रिया ने स्वरूप लिया ही नहीं। बंगाल में इस प्रक्रिया का नतीजा हुआ कि कृषि में अवसेन्टी लैण्डलोर्डिज्म आया। बंगाल के जमीन्दार कृषि से अलग अन्य कार्यों में भी संलग्न हुए थे, मगर बिहार में इस प्रक्रिया का उदय ही नहीं हुआ। जमीन्दार पूर्णत: खेती पर ही निर्भर रहे और अपने अन्य खर्चों के लिये किसानों को तरह-तरह से आर्थिक तथा गैर-आर्थिक रूपों में शोषण करने लगे। नजराना एवं राजस्व में वृद्धि कर किसानों से जबर्दस्ती रकम वसूलना, वस्तु के रूप में तरह-तरह की चीजें वसूलना आदि इसका स्वरुप था। इस कारण किसानों का शोषण अपनी चरम सीमा को भी पार कर गया। इस कारण उन्होंने कृषि क्षेत्र में बिहार में आन्दोलन की ज्यादा संभावना और जरूरत दोनों ही देखा

बिहार प्रान्तीय किसान सम्मेलन ओइनी (दरंभगा) में हुआ। वे भी वहाँ गये। श्री कार्यानन्द शर्मा सभापति थे। असहयोग के जमाने से वे दोनों एक दूसरे को जानते थे। कार्यानन्दजी ने बड़ी गरीबी से पढ़ा था। वे कॉलेज में पढ़ रहे थे, उसी वक्त स्वतंत्रता आन्दोलन ने जोर पकड़ा, और वे कॉलेज की पढ़ाई छोड़कर रणक्षेत्र में कूद पड़े। वह 18 वर्षों से बराबर उसी लगन से काम करते रहे। स्वराज का अर्थ वह गरीबी और अपमान का दूर होना समझते थे, धीरे-धीरे उनके तुजुर्बों ने बतला दिया कि निराकार स्वराज से काम नहीं चलेगा, किसानों की साकार तकलीफों को दूर करना पड़ेगा।

वह किसानों की कई लड़ाइयाँ लड़ चुके थे। 30 हजार किसानों ने अपने वीर सभापति के भाषण को बड़ी श्रद्धा और उत्साह के साथ सुना। वह अपना व्याख्यान छपरा की भाषा (भोजपुरी) में दिया। यद्यपि यहाँ के किसानों की भाषा मैथिली है, लेकिन वह हिन्दी की अपेक्षा मल्लिका को ज्यादा समझते हैं। ओइनी से पूसा 6 मील दूर है। 4 दिसम्बर को कई साथियों के साथ वे वहाँ के कृषि फार्म को देखने गये। भूकंप के बाद यहाँ की बहुत सी संस्थाएँ दिल्ली चली गई, लेकिन उन्होंने जो कुछ देखा, उससे यही मालूम हुआ कि यहाँ के सारे साइंस-संबंधी अनुसंधान किसानों के लिए नहीं, बल्कि कागजों पर छाप-छाप कर सरकार की वाहबाही लेने के लिए हैं।

उस वक्त हरिनगर (चम्पारण) की चीनी मिलों में हड़ताल जारी थी। वे वहाँ पहुँचे। उस समय हरिनगर मिल कांग्रेसी पूंजीपति की मिल थी, किन्तु वहाँ के हड़ताल को देखने से मालूम हुआ कि देश की आजादी के लिए लड़ने वाले ये लोग किसानों को पीस डालने के लिए किसी से कम नहीं हैं। मिल-मालिक और बड़े नौकर मजदूरों को दास से बढ़कर नहीं समझते थे। जरा-जरा सी बात के लिए जुर्माना कर देना, नौकरी से निकाल देना मामूली बात थी। ऊपर से मजदूरी भी बहुत कम थी। शायद दुनिया के किसी मुल्क में पूँजीपति इतना ज्यादा नफा नहीं कमाते थे। हिन्दुस्तान की चीनी मिलों ने तीन-तीन चार-चार वर्षों के भीतर इतना नफा कमाया कि कारखाने में लगी सारी पूँजी नफे से निकल आई। यह पूँजीवादी प्रथा में भी रोजगार नहीं, सीधी लूट है।[5]

जिन मजदूरों के पसीने की कमाई से पूँजीपति इतना नफा कमाते हैं, उनकी ओर उनका कुछ भी ध्यान नहीं जाता। हरिनगर मिल के मजदूरों की बहुत सी शिकायतें थी, जब 6 महीना बंद रहने के बाद पेरने का मौसम नजदीक आया और मिल की मशीन और पुर्जे साफ किये जाने लगे, उस वक्त मिलवालों ने खूब नादिरशाही की। 7 अक्टूबर, 1938 को 300 मजदूरों में 20 को छोड़कर बाकी सबने हड़ताल कर दी। उनकी माँगें थी-(1) मजूरी में 25 सैकड़ा वृद्धि। यानी, साढ़े तीन आने की जगह छ: आना रोजाना मजूरी हो; (2) मजूरों के घरों में चिराग और सफाई का इन्तजाम किया जाय; (3) विवाहित मजूदरों के लिए जनाना क्वार्टर मिले; (4) मिल मालिक मजदूर सभा को स्वीकार करें; (5) किसी मजदूरों को बहाल-बरखास्त करना हो तो उसे अपने मन से न करें, बल्कि फैसला करने का अधिकार मजदूरों और मालिकों की एक सम्मिलित सभा को हो। हड़ताल 20 अक्टूबर तक जारी रही। मिलवालों के लिए यह बड़े नुकसान की चीज थी, क्योंकि यदि मशीन साफ होकर लग नहीं जाती, तो ऊख पेरने का काम कैसे होता ? 18 से 20 तारीख तक मिल के भीतर ही जिला कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक होती रही-मिल में बैठक होने के लिए कोई आश्चर्य करने की जरूरत नहीं, आखिर मिल-मालिक भी तो कांग्रेसी थे। कार्यकारिणी ने मजदूरों को आश्वासन दिया, और मजदूरों ने सप्ताह भर के लिए हड़ताल स्थगित कर दिया। पेरने का मौसम आ गया, और मिल में 1200 मजदूर काम करने लगे। मजदूरों ने कांग्रेसी नेताओं को चिट्ठी और तार दिये, परन्तु कोई जबाब नहीं आया। 15 दिन इंतजार करने के बाद 5 नवम्बर को फिर हड़ताल करने के लिए मजदूरों ने नोटिस दे दिया। उसी दिन जिला के बड़े कांग्रेसी नेता आये, उन्होंने मजदूरों को धमकी दीं कि यदि हड़ताल किया, तो सबको बाहर निकाल दिया जायेगा और नये मजदूर रखे जायेंगे। 9 नवम्बर को मजदूरों ने फिर हड़ताल शुरू कर दी। 14 नवम्बर को नेता ने आकर फैसला सुनाया

कि मजदूरी साढ़े तीन आने की जगह चार आना मिलेगी। बाकी किसी बात पर विचार नहीं किया गया। लेकिन मजदूर इतने से संतुष्ट कैसे हो सकते थे ! हड़ताल जारी रही। मजदूरों ने धरना देना शुरू किया। पुलिस पकड़ नहीं रही थी, इनपर कांग्रेसी नेताओं ने उन्हें हिजड़ा कहा और धमकी दी। पुलिस ने लोगों को गिरफ्तार करना शुरू किया। मिल के सिपाही और पुलिस- घुड़सवार मजदूरों को खूब मारते-पीटते, उनके ऊपर घोड़े दौड़ाते, ठंढा पानी डालते। जनार्दन प्रसाद को तो इतना पीटा था कि दस दिन तक वह बोल न सका। 22 दिसम्बर तक 168 मजदूर जेल में भेजे जा चुके थे। सब डिविजनल मजिस्ट्रेट ने कई लड़कों के हाथों पर बेंत लगवाये।

उन्हें यह सब सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ। यह सब कांग्रेसी सरकारें के राज्य में उस जनता पर हो रहा था, जिसने कांग्रेस को इतना बड़ा किया ! क्या वह कांग्रेसी मंत्रिमंडल से यही आशा रखती थी ? सबसे बड़ी बात तो यह थी कि अभी हमारा देश अंग्रेजो का गुलाम था। क्या काँग्रेस वाले नहीं जानते थे कि जिस गरीब जनता के ऊपर इतना अत्याचार किया जा रहा है, उसी के बल पर उसे विदेशियों से लड़ना है। उन्हें कांग्रेसी नेताओं से कभी ऐसी आशा नहीं थी।[6]

पहली जनवरी (1939) को सबेरे नागार्जुन जी के साथ वे पटना पहुँचे और दूसरे दिन छपरा के लिए रवाना हो गये। जिला के किसान-कार्यकर्त्ता आये हुए थे, वहाँ किसानों की परिस्थिति जानने का उन्हें मौका मिला। अमवारी के किसानों ने बतलाया कि वे इधर-उधर बहुत दौड़ धूप किये, कांग्रेसी नेताओं के पास भी गये, मगर कोई नहीं सुना।'' 5 जनवरी को वे सीवान में रेल से उतरकर अमवारी पहुँचे। मालूम हुआ, सचमुच बहुत से किसानों को खेत से निकाल दिया गया है। झगड़ा हरी-बेगारी से शुरू हुआ। सतयुग से व्यवस्था चली आई थी, कि किसान अपने हल-बैल से मालिक के खेत को पहले जोत-बो दे, फिर वह उसे अपने खेत में ले जा सकता थे। मामला यहाँ से शुरू हुआ कि रामधनी महतो अपना खेत जोत रहे थे, जमीन्दार (मु0 बाबू) ने कहा-हल हमारे खेत में ले चलो। बाबू ने तीन लाठी मारी। पुलिस ने भी रैय्यत के खिलाफ ही रिपोर्ट दी। दूसरे किसानों को यह बात बुरी लगी। पुलिस की रिपोर्ट पढ़ कर मजिस्ट्रेट ने किसानों के ऊपर दफा 144 लगा दिया। सारा मामला एकतरफा था, यह सब कांग्रेसी मंत्रियों के राज में हो रहा था। वे अगले दिन (6 जनवरी) पास के गाँव जयजोरी की ओर चले। अमवारी प्राइमरी स्कूल के लड़कों ने उन्हें खूब गालियाँ दीं। उनके अध्यापक जमीन्दार के यहाँ नौकरी भी करते थे, इसलिए नमकहलाली दिखलानी ही चाहिए थी। रात को वे जयजोरी में रहे। यहाँ के किसानों पर भी जमीन्दार का वर्षों तक जुल्म होता था। खेत में चाहे एक अच्छत पैदा न हो, लेकिन मालगुजारी जुर्माना सब मालिक के पास पहुँचना चाहिए।

किसान कितने दिनों तक मालगुजारी कर्जा लेकर देते ? जब देने में असमर्थ हुए तो जमीन्दार ने खेत नीलाम करवा लिया। खेत को छोड़कर किसान कैसे जी सकते थे ! अन्त में उन्होंने निश्चय किया, कि चाहे कुछ भी हो, हम अपने खेत को नहीं छोड़ेंगे। जमीन्दार ने सब कुछ कर के देख लिया, लेकिन गाँव के एक दो को छोड़कर सारे ही किसान एकराय थे। जमीन्दार उनका कुछ नहीं बिगाड़ सका। वर्षों तक लड़ते रहने के कारण, ऐसा लगा कि जयजोरी के किसानों में जान है-मोहर भगत और कई दूसरे किसान सिर्फ अपना स्वार्थ नहीं देखते थे।

दूसरे दिन (7 जनवरी) वे सीवान के लिए रवाना हुए। थोड़ी ही दूर जाने पर सुल्तानपुर गाँव मिला। यहाँ हिन्दू मुसलमान दोनों ही धर्मों के किसान थे। उन्होंने एक मुसलमान किसान से बातचीत शुरू की-''तुम्हारे गाँव में कितने खेत और कितने घर असामी है।''

किसान-''5 सौ बीघा (300 एकड़ से कुछ ऊपर) खेत और पाँच सौ परिवार है-हिन्दू मुसलमान दोनों।''

उन्होंने पूछा-''तुम्हारे मालिक कौन हैं।''

किसान-''हमारे मालिक डाक्टर म0 साहब हैं।''

''तब तो तुम्हारा अहोभाग्य है। कांग्रेस के इतने बड़े नेता तुम्हारे मालिक हैं।''

किसान-'अहोभाग्य ! सारे रैयत परेशान-परेशान हैं। एक किस्त मालगुजारी जो बाकी रह जाय, तो मारकर खाल उधेड़ लेते हैं। हरी-बेगारी, जुर्माना के मारे नाक में दम है। मालिक के 75 बीघे की बकाश्त (अपनी खेती) है, और उसका सारा जोतना-बोना हम लोगों को अपने हल-बैल से करना पड़ता है।''[7]

यह थे कांग्रेसी सरकार के एक मंत्री और शायद दूसरे मंत्रियों से काफी अच्छे।

31 जनवरी को वे छितौली पहुँचे। वहाँ के जमीन्दार अशर्फी साहु से मिले। उन्होंने कहा कि मैंने किसी असामी को खेत नहीं दिया है, मैं अपना खेत आप जोतता हूँ। अशर्फी साहू धर्मात्मा समझे जाते थे, उन्होंने एक मन्दिर बनाकर संस्कृत पाठशाला भी खोल रखी थी। पूजा- पाठ, व्रत-उपवास में भी आगे रहते थे, लेकिन वह बोल रहे थे सरासर झूठ। 489 बीघा खेत के लिए वहाँ उनके पास हल-बैल कहाँ थे ? जब अशर्फी साहु ने एक निलहे साहब से यह जमीन और कोठी खरीदी, उस वक्त कितने ही असामी खेतों को जोता करते थे। उनसे साहु ने खेत निकाल लिया। गाँव को असामियों को जोतने के लिए देने पर निकालना मुश्किल होता, इसलिए 14 घर असामियों को दूसरे गाँव से बुलाकर बसाया। पैमायश (सर्वे) में इन असामियों के नाम दर्ज हो गये, फिर उन्हें इस्तीफा देने के लिए मजबूर किया। बेचारे गरीब किसान लखपती जमीन्दार से कैसे लड़ते ? पुलिस उनकी बात करती थी। अदालत की आँख में धूल झोंकने के लिए वह पानी की तरह रुपये को खर्च कर सकते थे। खैर, अब तक वह किसानों को मनमाना मालगुजारी पर खेत जोतने को देते थे, लेकिन अब वह इसके लिए भी तैयार नहीं थे। उसी दिन वे छपरा पहुँचे। अगले दिन कलक्टर से मिले। उनसे उन्होंने किसानों के कष्ट बताया। कलक्टर ने कहा कि हम तो कानून के बन्दे है, यदि किसानों के लिए कुछ करना है, तो कांग्रेस सरकार को करना चाहिए, फिर भी अमवारी के बारे में जानने की कोशिश करुँगा।[8]

17 जनवरी को राहुल जी पटना में थे। मैं चाहते थे कि पंचायती खेती को सरकार प्रोत्साहन दे, जिनमें नये ढंग की खेती को देखकर दूसरे किसान भी इसे अपनाएँ। डाक्टर महमूद से पहले भी उन्हें बातचीत हुई थी। पार्लामेन्ट्री सेक्रेटरी बाबू शारङ्गधर से बातचीत हुई थी। फिर उनके परामर्शानुसार कृषि-विभाग के डाइरेक्टर मिस्टर सेठी के पास वे पहुँचे। उन्होंने पहले इस तरह बात शुरू की मानो विशेषज्ञों के लिए जो काम है, उसमें साधारण आदमी को हाथ डालने का हक नहीं। वे कह रहे थे कि हजार-दो-हजार एकड़ वाले किसान इकट्ठा करें, तो वे अपना ज्ञान और साधन खर्च करेंगे। राहुल जी ने कहा-''तब तो न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी, आपको सौ- पचास एकड़ वाले पंचायती खेतिहरों को मदद देनी चाहिए, उनकी सफलता देखकर दूसरे भी अनुकरण करेंगे। खैर, डाइरेक्टर ने हाँ-हाँ किया और खर्च की योजना बना देने के लिए कहा। उन्होंने कुआँ, रहट और कुछ और चीजों के लिए रुपये का हिसाब दे दिया।

उस वक्त मुंगेर और गया जिला में किसानों का जमीन्दारों के साथ संघर्ष चल रहा था। कांग्रेस मंत्रिमंडल के कायम होने पर जमीन्दारों को डर हो गया था कि जिन खेतों को उन्होंने जबर्दस्ती किसानों से छीन लिया है; और जिन्हें अब भी किसान ही जोत रहे हैं, उन पर किसानों का अब हक हो जायगा, क्योंकि कांग्रेसी सरकार उनकी धाँधली चलने नहीं देगी। इसीलिए सारे बिहार में वर्षों से किसानों के जोत में रहते खेतों को जमीन्दारों ने निकालना शुरू किया। किसान विरोध करते थे और अपने खेतों को छोड़ना नहीं चाहते थे, वहीं संघर्ष का कारण था। श्री कार्यानन्दजी से उन्होंने बढ़ैया टाल के किसानों की दुर्दशा सुन ली थी, और वे उसे खुद देखना चाहते थे।

फुटनोट

1. राहुल जी, ले0 कृष्णचन्द्र चौधरी, पृष्ठ 3.
2. महापंडित राहुल सांकृत्यायन, खेलचन्द्र आनन्द, पृ0 3, राहुल जी, सम्पादक कृष्णचन्द्र चौधरी।
3. किसान संघर्ष और मैं, 'मेरी जीवन यात्रा' में छपे अंश का सम्पादित भाग, जो राहुल जी की पुस्तक में हैं, पृ0 32.
4. वही-पृ0 34.
5. वही-पृ0 35.
6. वही-पृ0 35.
7. वही-पृ0 36.
8. वही-पृ0 37.

चक्षु बाधित विद्यार्थियों की अपेक्षाएं: समावेशी शिक्षा के संदर्भ में

डॉ० यतीन कुमार चौबीसा

सहायक आचार्य (शिक्षा-सामाजिक विज्ञान शिक्षण) विद्या भवन गांधी शिक्षा अध्ययन संस्थान, रामगिरी, बड़गांव, उदयपुर, राजस्थान

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य चक्षु बाधित विद्यार्थियों की समाज एवं शैक्षिक अपेक्षाओ का पता लगाना था।इसके अंतर्गत न्यादर्श के रूप में उदयपुर (राजस्थान) शहर के राजकीय प्रज्ञा चक्षु उच्च माध्यमिक अंध विद्यालय व विद्या भवन कला संस्थान में अध्ययनरत 8 विद्यार्थी व 2 प्रशिक्षकों सहित कुल 10 व्यक्तियों को सम्मिलित किया गया। अध्ययन में चक्षु बाधित विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के साक्षात्कार से प्राप्त प्रदतो के आधार पर पता चलता है कि समाज के अधिकांश लोग चक्षु बाधित विद्यार्थियों के प्रति दयाभाव का नजरिया रखते हैं ना कि सम्मान व सहयोग का। विद्यार्थियों का मानना है कि समाज यदि सहयोग, सम्मान व सकारात्मक भाव से व्यवहार करें तो उनकी समस्त योग्यताओं को संवर्धित किया जा सकता है। शिक्षण संस्थाओं द्वारा चक्षु बाधित विद्यार्थियों के लिए ब्रेल लिपि संबंधी शिक्षण अधिगम सामग्री,उपकरणों आदि की व्यवस्था करना लाभदायक सिद्ध हो सकेगी। मनोरंजन गतिविधियों में उनके साथ सामान्य विद्यार्थियों की भागीदारी,संगीत, क्राफ्ट जैसे मानवीकी विषयों में शिक्षकों का निर्देशन व संवेदनशीलता, शिक्षक व मित्रों का उन्हें सिखाने में अतिरिक्त समय देना, सहयोग करना, संस्थान में चक्षु बाधित शिक्षकों की वार्ताओं को आयोजित करवाना, चिकित्सकीय परामर्श प्रदान करना, संस्थान में होने वाली सह शैक्षिक गतिविधियों में उनकी योग्यताओं को दिखाने के अधिक अवसर प्रदान करवा कर उनके आत्मविश्वास को बढ़ाया जा सकता है।

मुख्य शब्द: समावेशी शिक्षा, चक्षु बाधित विद्यार्थी व अपेक्षाएं।

प्रस्तावना

संवेदना ज्ञान की प्रथम सीढ़ी है।संवेदना के माध्यम से ही व्यक्ति नवीन ज्ञान की प्राप्ति करता है। ईश्वर ने मनुष्य को संवेदना की अनुभूति कराने हेतु पांच इंद्रियों से विभूषित किया है लेकिन यदि उसकी कोई एक इंद्रिय कार्य नहीं करती है तो उसे बहुत कष्ट होता है। जैसे-'चक्षु' यह मानव की अमूल्य निधि है। इस निधि की सहायता से ही बालक अपने घर की पाठशाला से औपचारिक शिक्षा के स्थान (विद्यालय) पर प्रेक्षण के माध्यम से अधिगम करता है लेकिन इसके दोषपूर्ण होने पर व्यक्ति स्वयं को अपूर्ण महसूस करता है।

विश्व के बारे में संपूर्ण जानकारियां मनुष्य इंद्रियों द्वारा ही प्राप्त करता है। अधिकतर सूचनाएं दृष्टि द्वारा मस्तिष्क में पहुंचती है। अत: दृष्टि की छोटी सी अक्षमता भी अत्यंत प्रभाव डालती है। दृष्टि संबंधी दोष बालक के मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक, शैक्षिक तथा व्यावसायिक क्षेत्रों पर प्रभाव डालता है। समाज के सामान्य लोग दृष्टिबाधित बच्चों को हीन भावना से देखते हैं और उन्हें सामाजिक गतिविधियों के अंदर हाशिए की श्रेणी में रखते हैं। समाज के प्रत्येक व्यक्ति विशेष तौर से शिक्षक वर्ग को विशेष आवश्यकता वाले बालकों के साथ संवेदनशील रहते हुए उनके सर्वांगीण विकास का प्रयत्न करना चाहिए। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भी सामाजिक न्याय व समता जैसी विशेषता प्रत्येक शारीरिक रूप से बाधित बालकों को भी समाज की मुख्यधारा से जोड़ते हुए सशक्त बनाने पर बल देती है। कुछ दशक पूर्व से लेकर वर्तमान समय में हाशियाकरण की स्थिति से हटते हुए समाज की मुख्यधारा से जोड़ने के संदर्भ में भारतीय शिक्षा दर्शन में एक नवीन व सकारात्मक शैक्षिक व्यवस्था का प्रचलन हुआ है जो कि समावेशी शिक्षा के नाम से जानी जाती है।

यूनेस्को के अनुसार समावेशी शिक्षा का तात्पर्य उस शिक्षा से है जो यह विश्वास करती है कि सभी बच्चे सीख सकते हैं और सभी बच्चों की अलग-अलग प्रकार की विशेष योग्यता होती है।

सामान्य अर्थ में समावेशी शिक्षा के अंतर्गत विशेष विद्यालय या कक्षा को स्वीकार नहीं किया जाता। कुछ अशक्त बच्चों को सामान्य बच्चों से अलग करना अब मान्य नहीं है। दिव्यांग बच्चों को भी सामान्य बच्चों की तरह ही शैक्षिक गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार है। दिव्यांगता असंतुलन की वह स्थिति है जो व्यक्ति विशेष के व्यवहार को प्रभावित कर उसे सामान्य व्यक्ति से भिन्न दिखलाती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के प्रस्ताव के अंतर्गत भी दिव्यांग बच्चों की शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते हुए स्पष्ट किया गया है कि दिव्यांगों की शिक्षा का उद्देश्य शारीरिक एवं मानसिक रूप से पूर्ण स्वस्थ बच्चों के समतुल्य शैक्षिक विकास करना है। जिससे उनमें उत्साह और विश्वास के साथ जीने की क्षमता उत्पन्न हो सके। इसके लिए जहां तक संभव हो सभी को सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा दी जाए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत ऐसे लक्ष्यों को लेकर बात है जिससे भारत देश के किसी भी बच्चे के सीखने और आगे बढ़ने के अवसरों में उसकी जन्म या पृष्ठभूमि से संबंधित परिस्थितियां बाधक न बन पाए। इसके अंतर्गत विशेष आवश्यकता वाले बच्चों सीडब्ल्यूएसएन या दिव्यांग बच्चों को किसी भी अन्य बच्चे के समान गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर प्रदान करने के लिए सक्षम तंत्र बनाने के महत्व को भी बल दीया गया है।

दिव्यांगता के कई प्रकार होते हैं जिसमें चक्षु, श्रवण, वाक व वीरूपिता संबंधी प्रमुख हैं। इसी के अंतर्गत चक्षु हीनता वह दिव्यांगता हे जिसके स्वरूप को बड़ी सरलता से पहचाना जा सकता है। शैक्षिक दृष्टिकोण से चक्षु हीनता वह दृष्टि विकार है जिसके परिणाम स्वरूप दृश्य सामग्री के प्रयोग से एक सीमा तक शिक्षण संभव नहीं हो पाता है। दृष्टि हीनता के अंतर्गत पूर्ण रूप से दृष्टिहीन बालक व आंशिक दृष्टिहीन बालक को समाहित किया जाता है। पूर्ण व आंशिक रूप से चक्षु बाधित विद्यार्थियों की विद्यालय में समायोजन संबंधी किस प्रकार की प्रमुख समस्याएं रहती है। क्या ये वास्तव में समाज और शिक्षण संस्थाओं से किसी प्रकार की अपेक्षा रूपी आवश्यकता को अपने विकास में सहायक समझते हैं? इन्हीं सभी प्रश्न व जिज्ञासाओं को समझने और जानने के लिए इस अध्ययन कार्य को करने का प्रयास किया गया है।

साहित्यावलोकन

वॉल्टिक गोरका (2016) ने अंधे और आंशिक रूप से दृष्टिहीन लोगों में जीवन की गुणवत्ता में हानि के प्रकार-अवधि तथा मनोसामाजिक पुनर्वास की भागीदारी में संबंध विषय पर अध्ययन किया। इसमें वयस्कों पर समाजशास्त्रीय स्वास्थ्य प्रश्नावली का प्रयोग किया गया। अध्ययन से पता चलता है कि अंधे और आंशिक दृष्टि वाले लोगों के जीवन के भीतर गुणवत्ता है। साथ ही यह भी दिखाया है कि हानी की अवधि व प्रकार के साथ ही मनो सामाजिक पुनर्वास में भागीदारी व्यक्ति के जीवन की गुणवत्ता के महत्वपूर्ण संकेतक हैं। जहूर जरनाब (2019) ने अपना अध्ययन कार्य दृष्टिबाधित लड़की के जीवन के अनुभव और उसकी क्षमता की धारणा का मुकाबला करने के तंत्र की जांच करने संबंधी विषय पर किया है। इस उद्देश्य के लिए एक 19 वर्षीय कॉलेज छात्रा का साक्षात्कार लिया गया। निष्कर्ष से पता चलता है कि दृष्टिबाधित लड़की का उपलब्धियों पर अधिक ध्यान केंद्रित है लेकिन साथ ही वह अपनी विकलांगता से व्यतीत हो जाती है। इस वजह से ऐसा लगता है कि उसने हीन भावना की एक प्रेरित भावना विकसित की है। हालांकि वह आत्मनिर्भरता के साथ अपनी विकलांगता के माध्यम से बनी रहती है और सामान्य रूप से जीवन की व्यापक धारणा भी लेती है। प्रस्तुत अध्ययन नेत्रहीनों को पालन पोषण और सेवाओं के आवश्यक प्रावधान की गतिशीलता में उपयोगी अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। पांडे आर के (2018) ने अपना अध्ययन विशेष और एकीकृत स्कूलों में भाग लेने वाले दृष्टिबाधित छात्रों के समायोजन को समझने पर किया है। यह अध्ययन उत्तर प्रदेश के वाराणसी शहर के चयनित विशेष और एकीकृत स्कूलों में भाग लेने वाले 14 से 16 वर्ष की आयु के साथ दृष्टिबाधित छात्रों के ऊपर किया गया। इसमें सर्वेक्षण विधि का प्रयोग करते हुए विशेष व एकीकृत व्यवस्था मैं गृह क्षेत्र, विद्यालय क्षेत्र तथा व्यक्तिगत क्षेत्र में उनके समायोजन की जानकारी प्राप्त करने के लिए किया गया है। इसमें स्वनिर्मित व मानकीकृत समायोजन पैमाने का उपयोग परीक्षण हेतु किया गया। निष्कर्ष से पता चलता है कि दृष्टिबाधित छात्रों के घर, स्कूल और व्यक्तिगत क्षेत्र में विशेष और एकीकृत व्यवस्था के समायोजन में महत्वपूर्ण अंतर था। दत्ता जनाब व राज कंवर सुरेश (2015) ने असम के दृष्टिबाधित स्कूली बच्चों के समायोजन और शैक्षणिक उपलब्धि पर अपना अध्ययन कार्य किया। न्यादर्श को सरल यादृच्छिक तकनीक का उपयोग करके लिया गया। निचले और ऊपरी असम के छह दृष्टिबाधित स्कूलों में कक्षा 6 से 10 तक के 12 से 16 वर्ष की आयु में पढ़ रहे 400 दृष्टिबाधित बच्चों 200 लड़कों और 200 लड़कियों के नमूनों को सम्मिलित किया गया था। वर्णनात्मक सर्वेक्षण पद्धति का उपयोग करके डेटा संग्रह किया गया। इसमें ए के पी सिन्हा और आर पी सिंह द्वारा मानकीकृत समायोजन सूची तथा स्कूल रिकॉर्ड से अकादमिक उपलब्धियों का पता लगाया गया। निष्कर्ष से पता चलता है कि दृष्टिबाधित लड़के और लड़कियों का समायोजन समग्र समायोजन पर समान पाया गया। इससे यह भी पता चला कि दृष्टिबाधित बच्चों के बीच समायोजन और शैक्षणिक उपलब्धि के बीच कोई संबंध नहीं था।

संबंधित साहित्य का अध्ययन करने से पता चलता है कि चक्षु बाधित विद्यार्थियों से जुड़े हुए मनोसामाजिक पुनर्वास, अपनी क्षमताओं की प्रति धारणा, जीवन अनुभव, विद्यार्थियों के समायोजन व शैक्षणिक उपलब्धियों आदि जैसे क्षेत्रों पर कार्य हुआ है लेकिन वास्तविक तौर पर समाज व शैक्षिक संस्थागत स्तरों पर उनकी किस प्रकार की अपेक्षाएं होती है इस संदर्भ में कोई कार्य हुआ हो ऐसा प्रतीत नहीं होता है। अत: इस शोध अंतराल के माध्यम से शोधकर्ता को प्रस्तुत अध्ययन कार्य को करने की दिशा प्राप्त हुई है।

उद्देश्य

1 चक्षु बाधित विद्यार्थियों की समाज एवं शैक्षणिक संस्थाओं से अपेक्षाओं का पता लगाना।

शोध प्रारूप

प्रस्तुत शोध कार्य में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। चक्षु बाधित विद्यार्थियों की समस्याओं व उसकी शिक्षण संस्थाओं से संभावित अपेक्षाओं को जानने हेतु उदयपुर (राजस्थान) शहर के राजकीय प्रज्ञा चक्षु उच्च माध्यमिक अंध विद्यालय, अंबामाता व विद्या भवन कला संस्थान के कुल 8 विद्यार्थी व 2 शिक्षकों के साक्षात्कार एवं अवलोकन के माध्यम से अपेक्षाओं को जाना गया। आकस्मिक न्यादर्श के रूप में सर्वेक्षण व साक्षात्कार के दौरान आसानी से उपलब्ध विद्यार्थी व शिक्षकों को सम्मिलित किया गया।

क्रम संख्या	*शैक्षणिक संस्थान*	*संख्या*		*योग*
		विद्यार्थी	*शिक्षक*	
1	विद्या भवन कला संस्थान	1	0	1
2	राजकीय प्रज्ञा चक्षु उच्च माध्यमिक अंध विद्यालय	7	2	9
	योग	8	2	10

विश्लेषण व निष्कर्ष

इसके अंतर्गत चक्षु बाधित विद्यार्थियों की समाज व शैक्षणिक संस्थाओं से अपेक्षाओं को जानने के लिए साक्षात्कार लिया गया। साक्षात्कार व अवलोकन से प्राप्त प्रदतो के आधार पर निम्नलिखित अपेक्षाओं व सुझावों को जाना गया जोकि निम्नलिखित हैं:-

(अ) शैक्षणिक संस्थाओं संबंधी अपेक्षाएं:-

1. शिक्षण संस्थाओं के पुस्तकालय में ब्रेल लिपि लेखन हेतु शिक्षण अधिगम पाठ्य सामग्री उपलब्ध कराई जानी चाहिए। जैसे:- ब्रेल सलेट, कागज, कलम, ब्रेल पुस्तकें आदि।
2. संस्थाओं में बोलती पुस्तकालय के अंतर्गत रिकॉर्डिंग सामग्री, सीडी, कैसेट उपलब्ध हो जिससे उनकी सहायता से विषय वस्तु को रिकॉर्ड करके याद करने में मदद मिल सके।
3. शिक्षकों व उनके मित्रों द्वारा विषय संबंधी ज्ञान पर चर्चा करते हुए अतिरिक्त महत्वपूर्ण समय दिया जाए जिससे वे ब्रेल लिपि में महत्वपूर्ण तथ्यों को लिख सकें।
4. प्रौद्योगिकी केयुग में नवीन दिव्यनयन उपकरण भी उपलब्ध कराए जाएं जिससे उन्हें पुस्तकों को समझने में मदद मिल सके।
5. पाठ्यक्रम से संबंधित ब्रेल लिपि में मुद्रित पुस्तकों के यथासंभव सेट पुस्तकालय में उपलब्ध कराए जाने चाहिए।
6. संस्थान के प्रौद्योगिकी विभाग में डैजी प्लेयर जैसे उपकरण उपलब्ध कराए जाएं जिससे महत्वपूर्ण जानकारी एवं संप्रत्यय को कट पेस्ट करते हुए आसानी से सुना जा सके व रिकॉर्ड किया जा सके।
7. इन विद्यार्थियों के साथ अधिक से अधिक समय में बोलकर विषय वस्तु को साझा किया जाए जिससे वे सुनकर प्राप्त ज्ञान को अधिक स्थाई कर सकें।
8. सामान्य शिक्षकों को भी चक्षु बाधित बालकों को पढ़ाने के विभिन्न तरीकों, प्रशिक्षण व सामान्य जानकारियों से राजकीय व निजी संगठनों द्वारा आयोजित किए जाने वाले अभिविन्यास कार्यक्रमों में भाग लेकर अवगत कराया जाना चाहिए जिससे वे उनकी अपेक्षाओं, समस्याओं व आवश्यकताओं को समझ सके।
9. संस्थानों में प्रशिक्षित चक्षु बाधित शिक्षकों व प्रशिक्षकों की वार्ताओं का भी आयोजन कराया जाए जिससे विद्यार्थियों को वार्ताकार के अनुभवों का लाभ मिल सके।
10. शिक्षक को समावेशी शिक्षा के विभिन्न आयामों की विस्तृत समझ होनी चाहिए जिससे वे चक्षु बाधित विद्यार्थियों को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने में मदद कर सकें।
11. जिले या संभाग स्तर पर कम से कम एक व्यावसायिक शिक्षा सहित उच्च शिक्षा संबंधी महाविद्यालय की व्यवस्था की जानी चाहिए। जिससे उन्हें शिक्षा के अन्य क्षेत्रों में आसानी से सफलता मिल सके।

(ब) सामाजिक क्षेत्र संबंधी अपेक्षाएं:-

1. समाज के व्यक्तियों को इनके साथ दयाभाव से मदद न करते हुए बल्कि समाज की मुख्यधारा का हिस्सा समझते हुए करनी चाहिए। सकारात्मक रूप में सहयोग व सम्मान की दृष्टि से व्यवहार करना चाहिए।
2. मनोरंजन के क्षेत्र में सामान्य विद्यार्थियों को इनके साथ समायोजित होते हुए क्रिकेट, शतरंज, रस्साकशी, कबड्डी एवं ताश जैसे खेलों को खेलना चाहिए जिससे इनमें भी उमंग व आत्मविश्वास का संचार हो सके।
3. संस्थाओं में संगीत व क्राफ्ट के शिक्षकों द्वारा इस तरह के विद्यार्थियों को इन विषयों के प्रति रुचि के साथ कार्य करने हेतु प्रेरित किया जाना चाहिए। जैसे:- हारमोनियम, ढोलक, तबला आदि बजाना तथा बैग, कैनिंग, पायदान बनाना। जिससे उनमें स्वावलंबन की भावना विकसित हो सके।
4. शिक्षक संवेदनशील हो तथा वह यह प्रेरित करने वाला हो कि चक्षु बाधित विद्यार्थी भी सामान्य बालक की तरह अपनी योग्यताओं के बल पर दूसरों को मदद कर सकने में सक्षम हो।
5. शिक्षक व साथियों द्वारा भी संस्थान में होने वाली सांस्कृतिक व साहित्यिक गतिविधियों में उनकी योग्यताओं को दिख लाने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।
6. संस्था का वातावरण भय मुक्त होना चाहिए जिससे कि उन्हें किसी दुर्घटना के घटित होने का अंदेशा ना होवे।
7. समय-समय पर नेत्र रोग विशेषज्ञों के चिकित्सकीय परामर्श कार्यक्रम भी आयोजित कराए जाने चाहिए।

शैक्षिक निहितार्थ

अध्ययन के निष्कर्षों से पता चलता है कि चक्षु बाधित विद्यार्थियों को शिक्षण संस्थाओं में आधुनिक उपयोगी अधिगम सामग्री व उपकरणों को उपलब्ध करवाया जाना चाहिए जिससे समावेशी शिक्षा के आधार पर वे अपनी शैक्षणिक उपलब्धि को उत्कृष्टता की ओर ले जा सके। इन विद्यार्थियों को अधिकांशत मानवीकी आधारित विषयों में पारंगत कर जीवन में स्वावलंबी बनने का अवसर प्रदान किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध कार्य विशेष आवश्यकता वाले अन्य विद्यार्थियों की भी अपेक्षाओ व आवश्यकता को समझने मैं एक सहायक के रूप में सिद्ध हो सकता है।

समाहार

दिव्यांगता कोई अभिशाप नहीं है और ना ही, चक्षु बाधित विद्यार्थी दया के पात्र हैं। ईश्वर प्रदत्त गुणों के आधार पर ये बालक कुछ विशिष्ट प्रतिभा के साथ संसार में आते हैं और इनके ऊपर यह कहावत चरितार्थ होती है कि "जब ईश्वर एक दरवाजा बंद करता है तो दूसरा खोल देता है"हम सभी जानते हैं कि दिव्यांग व्यक्तियों की भी अपनी कुछ विशेषताएं होती है और वे समाज के लिए उपयोगी सिद्ध होते हैं। आवश्यकता केवल इस बात की है कि उन्हें उचित प्रशिक्षण व निर्देशन प्रदान करते हुए निखारा जाए जिससे वे किसी सामाजिक कार्य, नौकरी व व्यवसाय से जुड़ते हुए समाज की मुख्यधारा में रहकर अपना योगदान दे सकें।

संदर्भ सूची

नारंग एम के, (2017) समावेशी शिक्षा, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन।

सिंह मदन, (2008) समावेशी शिक्षा, मेरठ, आर लाल बुक डिपो।

शर्मा आर ए (1985) शिक्षा अनुसंधान, मेरठ, सूर्या पब्लिकेशन।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, (2020) मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।

वलिटिक गोरखा व सरली जी आर टी, (2016) क्वालिटी ऑफ लाइफ इन ब्लाइंड एंड पार्शियली साइटेड पीपल, डिपार्टमेंट ऑफ साइकोलॉजी,फैकल्टी ऑफ ह्यूमैनिटी एंड सोशल साइंसेज, यूनिवर्सिटी इन ओसीजेक, कलोरेंजा, क्रोएशिया।

जहूर जनाब, (2018)एक्सपीरियंस ऑफ विजुअली चौलेंज्ड स्टूडेंट्स क्वालिटेटिव स्टडी, द इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंडियन साइकोलॉजी, ISSN:2348-5396(e),ISSN:2349-3429(p),vol-7, अक्टूबर- दिसंबर 2019.

पांडे आर के, (2018) कंपैरेटिव स्टडी ऑफ एडजस्टमेंट ऑफ विजुअली इंपेयर्ड स्टूडेंट, यूनिवर्सल जर्नल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च, 6(11): 2562-2571, 2018.

दत्ता जे, राज कंवर सुरेश व सोनी जै सी, (2015). एडजेस्टमेंट एंड एकेडमिक अचीवमेंट ऑफ विजुअली हैंडिकैप्ड स्कूल चिल्ड्रन इन असम, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइंस एंड रिसर्च, (आई जे एस आर), ऑनलाइन: 2319-7064,vol-4,issue-4, अप्रैल 2015.

Webliography

www.researchgate.net
www.ijip.in
www.hrpub.org
www.ijsr.net
www.inclusiveeducation.ca/about/what-is-ie/
www.nfb.org/images/nfb/publications

वर्तमान शिक्षा में ई-संसाधनों की उपयोगिता एवं आवश्यकता

श्रद्धा श्रीवास

पीएचडी शोधार्थी, कलिंगा विश्वविधालय, रायपुर

प्रत्येक देश अपनी सामाजिक सांस्कृतिक अस्मिता को अभिव्यक्ति देने व पनपाने के लिए और साथ ही समय को चुनौतियों का सामना करने के लिए अपनी विशिष्ट शिक्षा प्रणाली विकसित करता है। राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में 'सबके लिए शिक्षा' हमारे भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास की बुनियादी आवश्यकता है। आज का युग विविधताओं, चुनौतियों व नवीन सम्भावनाओं का है। नये.नये क्षेत्र खुल रहे हैं, रोजगार के नित नए अवसर सामने आ रहे हैं, ऐसी स्थिति में समाज के औपचारिक शिक्षालय उन सामाजिक उत्तरदायित्वों को जिनके अंर्तगत उन्हें न केवल नव ज्ञान का सृजन करना था, संरक्षण करना था वरन् नई पीढी को हस्तांतरित भी करना था। आज वे अपने उत्तरदायित्व के निर्वाह में अपने को अक्षम मानने लगे हैं व भविष्य के प्रति चिन्तित भी हैं। यदि हम चाहते हैं कि शिक्षा वर्तमान समाज के अनुकूल हो तो आवश्यक है कि नए तकनीकी ज्ञान, सम्प्रेषण की नई युक्तियों एवं नई तकनीकी के नए उपकरणों का सहारा लेकर न केवल उपलब्ध ज्ञान राशि के महत्वपूर्ण अंगों को संजोया जाए वरन् अतीत की प्रचलित, प्रमाणित तकनीकी ज्ञान को अपनाकर उसे स्थिति अनुरूप परिवर्तित कर प्रयोग किया जाए। चूँकि कल की शिक्षा पद्धति से आज की आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो सकती अत: शिक्षा एवं कौशल का क्षेत्र नवीन एवं तकनीकी की आवश्यकता महसूस करता है। यही कारण है कि समय के साथ धीरे-धीरे शिक्षा के पाठ्यक्रमों, शिक्षण-विधियों, शिक्षा तकनीकी, कक्षा कक्ष प्रबन्ध एवं विशिष्टीकरण में निरन्तर परिवर्तन हो रहे हैं, साथ ही अध्यापकों की भूमिका में भी परिवर्तन हो रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का उपयोग जोर-शोर से होने लगा है। आज हम इसका उपयोग अपने कक्षा शिक्षण, दूरवर्ती एवं ऑन लाइन शिक्षा तथा अन्य सभी प्रकार के औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षण अधिगम में भली भाँति कर रहे हैं तथा नयी पीढ़ी को वर्तमान में व भविष्य में अपने कार्यों के उचित सम्पादन हेतु सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का प्रयोग करने का वांछित ज्ञान एवं कौशल प्रदान कर रहे हैं। सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी शिक्षकों को अपने शिक्षण दायित्वों को निभाने हेतु विभिन्न प्रकार से सहायता कर सकती है। शिक्षक-प्रशिक्षण विषय अध्यापक शिक्षा से सम्बंधित है, शिक्षक-प्रशिक्षण विषय के विद्यार्थी भावी शिक्षक होते हैं। शिक्षक किसी भी शैक्षिक व्यवस्था की धुरी होते हैं। उत्तम शिक्षकों के निर्माण हेतु शिक्षक-प्रशिक्षण का बहुत महत्व है, जिसमें शिक्षक अपने व्यावसायिक उत्तरदायित्व व कर्त्तव्यों को सक्षमता व प्रभावी ढंग से निभाने के लिए तैयार होते हैं। वर्तमान में शिक्षण को एक सतत् प्रक्रिया माना जाता है, इस दृष्टि से अध्यापक शिक्षा के दो रुप 1. सेवापूर्व अध्यापक शिक्षा 2. सेवाकालीन अध्यापक शिक्षा होते है।

प्रथम प्रकार की शिक्षा व्यवसाय में प्रवेश करने से पूर्व दी जाती है और द्वितीय प्रकार की शिक्षा व्यवसाय में प्रवेश करने के बाद चलती रहती है। सेवापूर्वकालीन शिक्षक शिक्षा के भी दो स्तर हैं बी.एड, एवं एम.एड.। बी.एड. के द्वारा माध्यमिक स्तर के शिक्षकों को तथा एम.एड. के द्वारा अध्यापक शिक्षक को तैयार किया जाता है, इसलिए शिक्षक-प्रशिक्षण के इन पाठ्यकमों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षक शिक्षा पर जोर देते हुए शिक्षा आयोग (1964-66) ने कहा कि विज्ञान व तकनीकी पर आधारित इस संसार में शिक्षा ही वह उपक्रम है जो व्यक्तियों की सम्पन्नता, सुरक्षा व समृद्धि के स्तर को ऊँचा उठा सकती है। शिक्षा की गुणात्मक गुणवत्ता को बढाने के लिए एक उच्च स्तरीय कार्यक्रम की आवश्यकता है जो शिक्षक को व्यावसायिक शिक्षा प्रदान कर सके। आज के परिवर्तित तकनीकी युग में विद्यार्थी शिक्षकों को वैज्ञानिक विधियों तथा उपकरणों यथा कम्प्यूटर, इन्टरनेट, एल.सी.डी. ऑन लाइन/ऑफ लाइन, एनीमेटेड फिल्मस प्रोजेक्टर्स आदि के लिए प्रशिक्षित करना एक मुख्य कार्य होना चाहिए। शिक्षण प्रशिक्षण के क्षेत्र में नए विचार एवं नई तकनीक जन्म ले रहे हैं। अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में तकनीक की विधाओं व उपकरणों के बढ़ते प्रयोग से सभी परिचित हैं। विद्यार्थी शिक्षकों को इन उपकरणों के उपयोग से आधुनिक कक्षा कक्ष प्रबन्ध एवं तकनीकी के क्षेत्र से परिचित होना आवश्यक है। मंगल एस.के. (2013) के अनुसार- 'सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी से अभिप्राय उपकरणों तथा अनुप्रयोग आधार से युक्त एक ऐसी तकनीकी से है जो सूचना के संग्रहण, भण्डारण पुन: प्रस्तुतीकरण, उपयोग, स्थानान्तरण, संश्लेषण एवं विश्लेषण, आत्मसातीकरण आदि के विश्वसनीय एवं यथार्थ सम्पादन में सहायक सिद्ध होते हुए उपयोगकर्त्ता को अपना ज्ञानवर्धन करने तथा उसके संम्प्रेषण और उसके द्वारा अपनी निर्णय और समस्या समाधान योग्यता में वृद्धि करने में सहायक सिद्ध होती हैं। शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में सूचना प्रौद्योगिकी एक व्यापक अवधारणा है, जिसमें कम्प्यूटर हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर और इन्टरनेट के माध्यम से सूचना प्रक्रिया और उसके प्रबन्ध संबंधी सभी पहलुओं को सम्मिलित किया जाता है। विभिन्न सूचना प्रणालियों का डिजाइन तैयार करने, उन्हें विकसित करने तथा उनके संचालन या प्रबंध का काम सूचना प्रौद्योगिकी के सहयोग से सम्पन्न किया जाता है। सूचना प्रौद्योगिकी व संचार.साधनों ने शिक्षा के साथ.साथ विविध क्षेत्रो में असीम संभावनाओं को जागृत किया है। शिक्षा के दार्शनिक,

सामाजिक, तथा मनोवैज्ञानिक विषय से सम्बंधित अनेक वेबसाइट्स के माध्यम से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाया जा सकता है। विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर कम्प्यूटर आधारित सम्भावनाएं चिन्हित की जा सकती है। बी.एड. के शैक्षिक प्रबंध एवं विद्यालय संगठन और शैक्षिक तकनीकी एवं कक्षा कक्ष प्रबंध अनिवार्य विषयों में कम्प्यूटर तथा प्रोजेक्टर की सहायता से विषय वस्तु के प्रस्तुतीकरण को प्रभावी बनाया जा सकता है। जैसे-विभिन्न प्रकार के समय विभाग चक्रों को दिखाना, दल शिक्षण की प्रक्रिया दिखाना। कम्प्यूटर शिक्षा एवं शैक्षिक उपयोग विषय के अन्तर्गत कम्प्यूटर के सैद्धांतिक ज्ञान देने के साथ ही प्रायोगिक कार्य के दौरान कम्प्यूटर का उपयोग करना सिखाया जा सकता है तथा विभिन्न कार्यो की सारणी आदि बनाना सिखाया जा सकता है, जैसे रिपोर्ट कार्ड बनाना। बी.एड. प्रायोगिक कार्य में सूक्ष्म शिक्षण के दौरान विडियो रिकार्डिंग के माध्यम से विद्यार्थियों को उनकी त्रुटियों को दिखाकर पुन:शिक्षण चक्र में सुधार कर सूक्ष्म शिक्षण को प्रभावी बनाया जा सकता है। अभ्यास शिक्षण के दौरान विभिन्न विषयों से सम्बंधित कम्प्यूटर आधारित प्रस्तुतीकरण कर शिक्षण को समृद्ध बनाया जा सकता है। शिक्षा में व्यावसायिक विकास से सम्बंधित विषयों हेतु पाठ्यचर्या प्रारुप में विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर कम्प्यूटर तथा विभिन्न प्रोजेक्टर्स आधारित प्रस्तुतीकरण हेतु संभावनाओं का उल्लेख किया जा सकता है। पावर पॉइन्ट द्वारा प्रस्तुतीकरण कर अध्यापक शिक्षक इन विषयों के अध्ययन अध्यापन को अधिक सहज व रुचिकर बना सकते हैं। अनुसंधान के कार्यो से सम्बंधित विषयों हेतु पाठ्यचर्या प्रारूप में विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर कम्प्यूटर तथा विभिन प्रोजेक्टर्स आधारित प्रस्तुतीकरण हेतु सम्भावनाओं का उल्लेख किया जा सकता है। शोध में प्रदत्तों का विश्लेषण करने में कम्प्यूटर द्वारा एक्सल एवं एस.पी.एस.एस. सॉफ्टवेयर द्वारा टी-टेस्ट, काई-वर्ग परीक्षण आदि का प्रयोग किया जा सकता है। वास्तव में शिक्षा प्रणाली में शिक्षक अत्यन्त महत्वपूर्ण आधार होते हैं इसलिए यह आवश्यक है कि शिक्षक डॉक्टर, इंजीनियर आदि के समान कुशलता तथा तकनीकी कौशल से कार्य को अधिक प्रभावी बनाएं। इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो रहा है कि ई-संसाधन शिक्षा प्रणाली को प्रभावी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते है। आज का युग सूचना एवं प्रौद्योगिकी का युग है। मानव जीवन के हर क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी ने क्रान्ति ला दी है। वर्तमान युग में हम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तकनीकी का प्रयोग करते हैं। इससे हमारा जीवन न केवल सहज व सरल हो जाता है वरन् इससे समय की भी बचत होती है। समाज में तकनीकी विस्तार के प्रभाव को आज सर्वत्र अनुभव किया जा रहा है। 21वीं सदी के आगमन के साथ ही सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के कारण दुनिया को एक वैश्विक ग्राम की संज्ञा दी जाती है। इसी वजह से बदलते परिप्रेक्ष्यों में छोटे, बड़े, आधुनिक विकसित एवं विकासशील राष्ट्र सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के लिए परियोजनाओं एवं व्यूह रचना निर्माण में तत्परता से संलग्न है। इसका उद्देश्य यह निश्चित करना है कि किस प्रकार व्यापार और शिक्षा के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से मानव को एक बेहतर ओर उत्कृष्ट जीवन उपलब्ध कराया जाये। शिक्षण में निष्क्रियता व नीरसता को दूर करने के लिए खेल-खेल में अध्यापन कराने हेतु ई-संसाधन के सहयोग से बच्चों को शिक्षा देना आवश्यक हो गया है। कुछ विषय जिनके अध्ययन में विद्यार्थी कठिनाई अनुभव करते हैं उन्हें ई-संसाधन द्वारा पढाया जाए तो विषयों के प्रति विद्यार्थी की रूचि बढाई जा सकती है।सूचना प्रौद्योगिकी आज हमारे विद्यालयघ्रूपी शैक्षिक आधार तंत्र को प्रभावित कर रही है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्रौद्योगिकी आधारित शिक्षा पर बल दिया है। आधुनिक प्रौद्योगिकी ने शिक्षा के स्वरूप को बदल दिया है, इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का उपयोग कर सूचनाओं का एकत्रीकरण, संश्लेषण तथा सम्प्रेषण किया जाने लगा है। इन साधनों का उपयोग करके शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाया जा रहा है। विद्यालयों में निरन्तर ई-संसाधनों का उपयोग बढता जा रहा है, ब्लैक बोर्ड के स्थान पर स्मार्ट क्लास, स्मार्ट बसें, के माध्यम से शिक्षण करवाया जा रहा है। कम्प्यूटर, ई-मेल, डिजिटल विडियो इत्यादि प्रौद्योगिकी के संसाधनों के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में एक नवीन क्रांति का सूत्रपात हुआ है। शिक्षक का तकनीकी ज्ञान महत्वपूर्ण होता है, किन्तु अलग से नहीं, जब तक की यह नहीं समझा जाए कि तकनीकी का अनुप्रयोग एक शिक्षक की भूमिका में क्या मदद कर सकता है। शिक्षक-प्रशिक्षण में तकनीकी ज्ञान के मुख्यत: तीन भाग - 1. विषयवस्तु 2. शिक्षक-प्रशिक्षण 3. तकनीकी होते हैं।

विषयवस्तु से तात्पर्य पढ़ाई जा सकने वाली विषय सामग्री से है। तकनीक से तात्पर्य यथा श्यामपट्ट, पुस्तके, कम्प्यूटर, इन्टरनेट, डिजिष्टल विडियो, प्रोजेक्टर आदि से है। शिक्षक-प्रशिक्षण से तात्पर्य शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सम्मिलित अभ्यास प्रक्रिया, रणनीति, विधियों से है, साथ ही उसमें अधिगम के उद्देश्यों को ध्यान में रखा जा सकता है। सही रूप में इन तीनों तत्वों के साथ ही तकनीकी को समझा जा सकता है।

सूचना प्रौद्यौगिकी आज हमारे विद्यालय के शैक्षिक आधार तंत्र को प्रभावित कर रही है। शिक्षा के क्षेत्र में अब शिक्षा प्रौद्योगिकी का प्रयोग हो रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्रौद्योगिकी आधारित शिक्षा पर बल दिया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के दस्तावेज भाग में शिक्षा की विषय वस्तु और प्रक्रिया को नया मोड़ देना संभव स्तंभ के अंतर्गत 8.10 से 8.13 तक संचार माध्यम और शैक्षिक तकनीकी के बारे में विस्तार से कहा गया है। आधुनिक संचार प्रौद्योगिकी के विभिन्न आयामों पर दृष्टि डालें तो कम्प्यूटर आज के समय में एक ऐसी नवीन शिक्षा प्रौद्योगिकी का साधन है जिसने शिक्षा के स्वरुप को बदल दिया है। आज के युग में शिक्षित की परिभाषा 'कम्प्यूटर के ज्ञान से मानी जाती है।' कम्प्यूटर द्वारा शिक्षा प्रक्रिया को गति एवं गुणवत्ता प्राप्त हुई है। इसके उपयोग ने आज यह संभव कर दिया कि विद्यार्थी अपनी इच्छित सूचनाएँ तथा ज्ञान को स्वत: ही अपने ढंग से प्राप्त कर सकें। अत: उनके सामने अब ज्ञान के भण्डार के नए स्रोत खुल गए हैं और उसका स्वरूप विद्यार्थी केन्द्रित होता जा रहा है। वर्तमान में प्ब्ज् के प्रसारण तकनीकी एवं टेलिफोन के स्थान पर कम्प्यूटर एवं इन्टरनेट का उपयोग अधिक होने लगा है। अभी के कुछ वर्षो में कम्प्यूटर एवं इन्टरनेट के उपयोग से शिक्षा की प्रभावशीलता में वृद्धि हुई है। शिक्षण संस्थानों में विभिन्न कार्यो के लिए ई-संसाधनों का उपयोग किया जाने लगा है। ई-संसाधनों द्वारा शिक्षण प्रक्रिया को गति एव गुणवत्ता प्राप्त हुई हैं। शिक्षा के क्षेत्र में इसका प्रयोग वास्तविक शिक्षण कार्यों के अतिरिक्त शिक्षा के और अन्य सभी क्रियाकलापों के उचित व्यवस्थापन एवं प्रबन्धन हेतु भी जोर-शोर से किया जा रहा है। सूचनाओं के तीव्र सम्प्रेषण के कारण शैक्षिक तथा सामाजिक परिदृश्य में बदलाव सम्भव हुए हैं। इस प्रकार सूचना तकनीकी के साथ सम्प्रेषण तकनीकी का उद्भव हुआ। आज सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के लम्बे सफर के बाद हम उस मुकाम पर पहुँच गए हैं जहाँ सम्पूर्ण विश्व एक वैश्विक

ग्राम में परिवर्तित हो गया है, दूरियाँ समीपता में परिवर्तित हो गई हैं और आधुनिक संचार साधनों ने मानवीय समाज में महत्वपूर्ण स्थान ले लिया है। वर्तमान में सूचना के अभाव में कोई भी कार्य संभव नहीं है। जीवन के विविध क्षेत्रों में सभी व्यक्तियों को सूचना व संचार साधनों की आवश्यकता महसूस होती है, उनके कार्य, निर्णय व नियोजन को सूचनाओं पर निर्भर रहना पड़ता है। इन सभी सूचनाओं से हमें सूचना प्रौद्यौगिकी अवगत कराती है। आज इस बात की प्रबल आवश्यकता है कि सूचनाओं का आदान प्रदान तीव्र गति से कम से कम समय में विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक किया जाए। जैसे कि डाटा बेस पर मैगजीन आर्टिकल, प्रैक्टिस टेस्ट, शब्दकोष, बिजनेस एवं फाइनेंशियल जानकारी उपलब्ध हो जाती है, विविध सर्च ईजन्स के माध्यम से विविध प्रकार की सम्पूर्ण जानकारी उपलब्ध हो जाती है। वेब पर सार्वजनिक रूप से उपलब्ध जानकारी की राशि लगातार बढ़ रही है। इंटरनेट व्यापक कवरेज के साथ जानकारी का सबसे बड़ा स्त्रोत है वैश्विक संचार एवं सूचना के आदान प्रदान के लिए यह सबसे शक्तिशाली उपकरण है। शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में सूचना प्रौद्योगिकी एक व्यापक अवधारणा है, जिसमें कम्प्यूटर हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर और इन्टरनेट के माध्यम से सूचना प्रक्रिया और उसके प्रबन्ध सम्बन्धी सभी पहलुओं को सम्मिलित किया जाता है। विभिन्न सूचना प्रणालियों का डिजाइन तैयार करने, उन्हें विकसित करने तथा उनके संचालन या प्रबंध का काम सूचना प्रौद्योगिकी के सहयोग से सम्पन्न किया जाता है। सूचना प्रौद्योगिकी व संचार साधनों ने शिक्षा के साथ-साथ विविध क्षेत्रो में असीम संभावनाओं को जागृत किया है। कम्प्यूटर तथा इन्टरनेट से संम्बंधित ई-संसाधनों की परिभाषाएं नीचे दी गई है, परन्तु पहले यह जानना आवश्यक है कि ई-संसाधन एवं उनके प्रकार क्या हैं? ई-संसाधनों के प्रकार-वर्तमान में ई-संसाधनों का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। ई-संसाधनों से अभिप्राय है कम्प्यूटर एवं उससे संबंधित अन्य उपकरणों एवं तकनीक जैसे इंटरनेट, मोबाइल, प्रोजेक्टर, कैमरा आदि के माध्यम से उपलब्ध संसाधन जो सॉफ्टवेयर प्रोग्राम अथवा डिजिटल विषय वस्तु के रूप में उपलब्ध हो। यहाँ कुछ प्रचलित ई-संसाधनों के प्रकार का उल्लेख किया गया है। ई-संसाधनों के प्रकार- ई-चेट मेसेन्जर, माइक्रोसॉफ्ट, ऑफिस, वाट्सऐप, स्काईपे, फेसबुक, विडियो कान्फ्रेंसिंग, ई-ट्रांसलेटर, ई-बुक्स, सर्च इंजिन, की-बोर्ड, विकीपीडिया, ई-संसाधन, इन्टरनेट, ई-मेल है।

इन्टरनेट एक नेटवर्क है, यह विश्वभर के शैक्षणिक, औद्योगिक, सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं और व्यक्तियों को आपस में जोडता है। इसके द्वारा विश्व के किसी भी कोने में होने वाली गतिविधियों की जानकारी आवश्यक ब्यौरों के साथ पलभर में उपलब्ध हो जाती हैं।

- ई-मेल आज के समय में पत्रों एवं अन्य सूचनाओं को भेजने का सबसे तेज माध्यम है।
- ई-चेट मेसेन्जर जिसे इन्सटेंट मैसेन्जर भी कहते हैं। जिसमें मेसेज जल्दी से भेजा सकता है।
- ई-ट्रांसलेटर इन्टरनेट पर बहुत से उपलब्ध हैं, जो टेक्स्ट और वेबपेज को विभिन्न देशी-विदेशी भाषाओं जैसे- मलयालम, मराठी आदि में परिवर्तित करने में सहायक होते हैं।
- ई-बुक्स मुद्रित पुस्तकों का इलैक्ट्रोनिक संस्करण जो इन्टरनेट के माध्यम से देखा जा सकता है। ये पुस्तकें कागज की बजाय डिजिटल संचिका के रूप में होती है।
- विकीपीडिया एक मुफ्त, वेव पर आधारित बहुभाषी विश्वकोष है, यह यथा सम्भव निष्पक्ष दृष्टिकोण सूचना प्रसारित करता है।
- सर्च इंजिन एक तरह का सॉफ्टवेयर है जिसे वर्ल्ड वाईड वेब पर जानकारी को ढूँढने के लिए तैयार किया गया है। आज बहुत से सर्च इंजिन है, जैसे गूगल, बिंग जिनकी सहायता से हम इन्टरनेट पर वांछित जानकारी को ढूँढ सकते हैं।
- वाट्सऐप स्मार्ट फोन पर चलने वाली एक प्रसिद्ध इंस्टेंट मैसेजिंग सेवा है।
- टेक्स्ट संदेश अलावा इसकी सहायता से आडियो, विडियों, फोटो तथा अपनी स्थिति भी भेजी जा सकती है। विद्यार्थी इसका उपयोग अपने शैक्षिक उद्देश्यों के लिए करें तो यह एक उपयोगी ई-संसाधन है।
- माइक्रोसॉफ्ट ऑफिस एक ऐसा पैकेज है जिसके द्वारा ऑफिस के सभी कार्य किए जा सकते हैं जैसे पत्र का प्रारूप तैयार करना, गणना, रेखाचित्र, प्रस्तुतीकरण, डाटाबेस प्रबंधन एवं ई-मेल आदि। इसके अन्तर्गत मुख्यत: चार प्रोग्राम होते हैं- वर्ड,एक्सेल, एक्सेस एवं पावर प्वाइंट।
- स्काईप को उपयोग से कक्षा कक्ष शिक्षण को प्रभावी बनाया जा सकता है।
- विडियो क्रांफ्रेसिंग के जरिए आप एक्सपर्ट से बात कर सकते हैं। अपने अनुभवों को बांट सकते हैं।
- फेसबुक इन्टरनेट पर स्थित एक निशुल्क सामाजिक नेटवर्किंग सेवा है जिसके माध्यम से इसका उपयोग करने वाले विद्यालय, कार्य स्थल या क्षेत्र के अनुसार गठित किए हुए नेटवर्कों में शामिल हो सकते है और आपस में विचारों का आदान प्रदान कर सकते हैं।
- विडियो कॉन्फ्रेंसिंग आधुनिक संचार तकनीक है जिसके माध्यम से दो या इससे अधिक स्थानों से एक साथ ऑडियो-विडियो के माध्यम से कई लोग जुड़ सकते हैं, इसे विडियो टेलिकॉन्फ्रेंसिंग भी कहते हैं।

इसलिए आज के परिवर्तित तकनीकी युग में विद्यार्थी शिक्षकों को वैज्ञानिक विधियों तथा उपकरणों यथा कम्प्यूटर, इन्टरनेट, ऑन लाइन/ऑफ लाइन सॉफ्टवेयर, एनीमेटेड फिल्मस प्रोजेक्टर्स आदि के लिए प्रशिक्षित करना एक मुख्य कार्य होना चाहिए। विद्यार्थी शिक्षकों को आधुनिक संचार साधनों व माध्यमों के उपयोग में दक्ष होना अनिवार्य है, ताकि वे विद्यार्थियों को भी प्रशिक्षित कर सकें।

सन्दर्भग्रन्थ

1. अर्चना एवं वंदना (2008), 'शिक्षक प्रशिक्षण में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका' नई शिक्षा, बनी पार्क, जयपुर, अंक 7, फरवरी 2008.

2. चंदेल, एन.पी.एस., निजा वेश (2008), 'विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा इन्टरनेट के प्रति उत्प्रेरणात्मक भाव' 'एजूट्रेक्स', नीलकमल पब्लिकेशन्स, हैदराबाद, फरवरी 2008.
3. कम्प्यूटर न्यूज, (2009), ''इंटरनेट का 40 वर्षों का सफर'' साप्ताहिक पत्रिका, लखनऊ 21 से 27 दिसम्बर 2009.
4. गुप्ता, महेश कुमार (2005), ''कम्प्यूटिंग अनुप्रयोग'', मंगलदीप पब्लिकशन, जयपुर।
5. ललिनी, पी.सुधाकर (2004), "अध्यापक शिक्षाऔर आई.सी.टी." 'एजूट्रेक्स,नीलकमल पब्लिकेशन्स, हैदराबाद, मार्च 2003
6. आलोक, टी.डी.एस.: इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, 2009, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि., नई दिल्ली.
7. आर्य, पी.के.,: इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, 2006, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली.
8. ओझा, डी.डी. एवं सत्यप्रकाश: दूरसंचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी, 2007, ज्ञान गंगा, दिल्ली.
9. कुमार, सुरेश: इंटरनेट पत्रकारिता, 2004, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली.
10. दयाल, डॉ. मनोज: मीडिया शोध, 2010, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकू ला.
11. देव, हर्ष: उत्तर आधुनिक मीडिया तकनीक, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.
12. पचौरी, सुधीश: साइबर स्पेश और मीडिया, 2003, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली.
13. बंसल, राम: कंप्यूटर सूचना प्रणाली विकास, 2009, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.
14. भानावत, संजीव: इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, 2005, जनसंचार केंद्र, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर.
15. शुक्ल, रवीन्द्र: सूचना प्रौद्योगिकी और समाचार पत्र, 2005, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

वैदिक साहित्य में प्रकृति का स्वरूप

कविता रानी

सहायक प्राध्यापिका (संस्कृत), श्री कपिल मुनि राजकीय महिला महाविद्यालय, कलायत, कैथल
एवं शोधछात्रा, गुरु जम्भेश्वर धार्मिक अध्ययन संस्थान, गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं तकनीकी विश्वविद्यालय, हिसार

संस्कृत वाङ्मय विश्व की अमूल्य निधि है। जिसमें विविध प्रकार का ज्ञान-विज्ञान स्थित है। इस अमूल्य निधि की प्रासंगिकता वर्तमान समय में भी उतनी ही है, जितनी की प्राचीनकाल में थी, अपितु और अधिक दृष्टिगत होती है। संस्कृत वाङ्मय में 'प्रकृति' शब्द कों अनेक अर्थो में दृष्टिगत किया जा सकता है। जिसका प्रयोग प्रायः माया, कारण, प्रजा और स्वभाव के अर्थ में देखा जाता है। पाश्चात्य विद्वानों ने प्रकृति या 'नेचर' शब्द का प्रयोग स्वरूप अर्थ में भी किया है।

प्र उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से क्तिन् प्रत्यय करने पर प्रकृति शब्द का निर्माण होता है, जिसके आधार पर अर्थ होगा कि 'प्रकर्षेण सृष्ट्यादिकं करोतीति प्रकृतिः' अर्थात् सृष्टि के करने में जो प्रकृष्ट हो। वह प्रकृति कहलाती है।

इस प्रकार प्रकृति के संरक्षण में पर्यावरण का विशेष योगदान है। जहॉ-जहॉ प्रकृति शब्द का प्रयोग होगा वहॉ-वहॉ स्वतः ही पर्यावरण शब्द आ जायेगा।

पर्यावरण शब्द 'परि' और 'आङ्' उपसर्ग पूर्वक 'वृत्त आच्छादने' धातु से ल्युट् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है।

'परि' का अर्थ है चारों ओर से, 'आङ्' का अर्थ है मर्यादा अथवा अभिविधि या सब प्रकार से, सब ओर से तथा 'वृत्त' धातु का अर्थ है वरण करना। इस प्रकार पूर्ण शब्द पर्यावरण का अर्थ होगा कि जो चारों ओर से आच्छादित करता है, आच्छादित किया जाता है। 'परित आव्रियन्ते आच्छान्द्यन्ते जलादीनि पंचतत्त्वानि सामाजिक-नैतिक-विचाराः वा यस्मिन् तत् पर्यावरणम्' अर्थात् जिसमें चारों ओर से आकाश, जल, वायु आदि पंचतत्त्व अथवा सामाजिक, नैतिक आदि विषयों से सम्बन्धित विचार आवृत्त रहते हैं उसे पर्यावरण कहतें हैं। हमारे शरीर की सृष्टि पंचमहाभूतों के संतुलन से हुई है। इसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि भी इन्हीं से हुई है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश मिलकर पंचमहाभूत है। जो इस प्रकृति में व्याप्त है।

'प्रकृति' से तात्पर्य हमारे चारों ओर के पर्यावरण से है। पर्यावरण का सीधा अर्थ है-'प्राकृतिक वातावरण'। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इसके प्रमुख तत्त्व हैं। ये पॉचों ही मिलकर या पृथक् रूप से हमारे पर्यावरण का निर्माण करते हैं। इसीलिए वेदों में इन पॉचों तत्त्वों को देवता के रूप में प्रतिष्ठापित करके इनकी महिमा का वर्णन अनेक सूक्तों व मन्त्रों में किया गया है, जिनसे सुस्पष्ट होता है कि पर्यावरण के इन घटक तत्त्वों पंचमहाभूतों का मानव-कल्याण के लिए कितना महत्त्व है। वेदों में प्राणियों और प्रकृति के मध्य अटूट सम्बन्ध को बहुत महत्त्व दिया गया है।

ऋग्वेद में पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश का विस्तृत विवेचनात्मक विश्लेषण किया गया है और इस बात पर बल दिया गया है कि इस भू-मण्डल पर जीवन को, चाहे वह जरायुज, अण्डज, उद्भिज अथवा स्वेदज किसी भी प्रकार का क्यों न हो उन्हें इन्हीं पंचमहाभूतों से बल मिलता है।

सांख्य के अनंसार संसार की रचना प्रकृति से हुई है। अर्थात् संसार की रचना करने वाली मूलभूत प्रकृति ही है जो किसी भी तत्त्व की कार्य अर्थात् विकृति नही है। अपितु वह समस्त संसार की कारण अर्थात् अविकृति ही है।[1] जिससे समस्त पदार्थ उत्पन्न होते हैं।

जब हम विश्व के मूल कारण की खोज करते हैं तो ज्ञात होता है कि विश्व में दो प्रकार की वस्तुएं हैं। स्थूल पदार्थ और सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थ। स्थूल पदार्थ से तात्पर्य मिट्टी, पानी, वायु से है और सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थो का तात्पर्य इन्द्रिय, मन और अहंकार आदि से है। विश्व का मूल कारण वही हो सकता है जो इन दोनों प्रकार के पदार्थो को आधार दे सकें। अतः प्रकृति ही वह मूलकारण है जिससे ये दोनों प्रकार के पदार्थ उत्पन्न हो सकतें है। किंतु वर्तमान प्रसंग में प्रकृति से तात्पर्य भौतिक वातावरण से है। यथार्थता में पर्यावरण पृथ्वी पर वह परिवृत्त है जो मानव को चारों ओर से घेरे हुए है। जिसे चतुर्दिक की संज्ञा से भी अभिहित किया जा सकता है। आदि मानव के चतुर्दिक का एक भाग होने के कारण प्राकृतिक या मानवीय वातावरण में कोई अन्तर नहीं किया गया है। इस प्रकार पर्यावरण के शब्द जाल में मनुष्य तथा बाहर के समस्त तत्त्व वस्तुओं, स्थितियों तथा दशाओं को सम्मिलित करते हैं। जिनका प्रभाव मनुष्य के समस्त विकास पर सतत् पड़ता है। वातावरण का शब्दार्थ पारिस्थितिक कारकों का योग अर्थात् जीवन की परिस्थितियों के समग्र तथ्य हैं।

भारतीय दर्शन में प्रकृति का स्वरूप वर्तमान प्रसंग से भिन्न है। दर्शन के अनुसार प्रकृति एक तत्त्व का नाम है। जिसके विषय में विशद् विचार किया गया है सांख्य दर्शन में पुरुष की भांति ही प्रकृति एक महत्वपूर्ण तत्त्व है। जहॉ कारण के लिए प्रकृति और कार्य के लिए विकृति शब्द का प्रयोग हुआ है। इसलिए सांख्याचार्य ईश्वर कृष्ण ने सृष्टि की आदि कारण भूता प्रकृति के लिए मूल प्रकृति तथा अविकृति शब्द का प्रयोग किया है।

सांख्य दर्शन में इसी प्रकृति तत्त्व से शेष 23 तत्त्वों की उत्पत्ति मानी गयी है आचार्य वाचस्पति मिश्र इसको सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों की साम्यावस्था बतलाते है। साम्यावस्था में प्रकृति में सरूपपरिणाम सतत् रूप से चलता रहता है। प्रकृति इस समय भी निरन्तर सक्रिय होती है किन्तु इस समय सत्त्व, रजस् और तमस् गुण अपने-अपने भीतर ही क्रियाशील रहते हैं। यह अवस्था तब बदलती है जब पुरुष की सन्निधि के कारण गुणक्षोभ होता है। इससे

सर्वप्रथम रजस् गुण गतिशील होता है और तदुपरान्त तीनों गुण एक-दूसरे के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं।[2] यही विरूपपरिणाम है जो सृष्टि के लिए उत्तरदायी है। इसी के कारण विश्व की सभी वस्तुओं का निर्माण होता है और उनकी प्रवृत्ति भी उनमें विद्यमान गुणों के अनुपात से निर्धारित होती है।[3]

दार्शनिक परम्परा से भिन्न वर्तमान समय में प्रकृति अभिप्राय पर्यावरण से है। जो हमारे चारों ओर फैला हुआ है। चतुर्दिक व्याप्त यह वातावरण प्राकृतिक दशाओं का मिला-जुला रूप है, जो धरातल तत्त्व भूगोल, भूगर्भ, जलवायु, अग्नि, तथा व्योम अर्थात् आकाश से निर्मित है। इन सभी लक्षणों का प्रभाव मानव की समस्त गतिविधियों पर ही नहीं अपितु पशु-पक्षी, पेड़-पौधों पर भी परिलक्षित होता है। इस प्रकार ये सभी प्रकृति प्रदत्त शक्तियॉ प्राकृतिक वातावरण या पर्यावरण का निर्माण करती है।

सभी प्राणी प्रकृति के पर्यावरण में रहते हुए भी अपना जीवन यापन करते हैं। उक्त प्राकृतिक पर्यावरण सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक परिवेश का निर्माण करता है। अत: विभिन्न क्षेत्रों में मानव समूह विभिन्न क्रियाओं द्वारा अपनी अलग संस्कृति व समाज का निर्माण करता है। इसीलिए पृथिवी सूक्त में कहा गया है कि 'माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:'[4] अर्थात् भूमि मेरी माता है और मैं इसका पुत्र।

प्रकृति एक व्यापक स्वरूप को धारण किये हुए है। पृथिवी पर पाए जाने वाले वृक्ष, नदी, तालाब, सरोवर, पशु-पक्षी, पवन, मेघ आदि चर-अचर, जड़-चेतन सभी प्रकृति के ऐसे अंग व उपांग हैं जो सभी प्राणियों के पोषक एवं रक्षक है।

अथर्ववेदीय पृथिवी सूक्त में पर्यावरण के प्रमुख घटक तत्त्व पृथ्वी की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जिस मातृभूमि पर समुद्र, अनेक नदियॉ, झरने, झील, ताल-तलैया आदि हैं, जिस पर अन्न आदि नाना प्रकार की कृषि होती है, जिस पर यह जीता-जागता, चलता-फिरता संसार अन्न-जल ग्रहण कर तृप्त होता है और प्राण धारण करता है वह भूमि हमें समस्त ऐश्वर्य प्रदान करें।[5]

ऋग्वेद के वातसूक्त में वायु से दीर्घ जीवन की प्रार्थना करते हुए उसे हृदय के लिए परम औषधि, कल्याणकारी तथा आनन्ददायक माना गया है।[6] वायु की भॉति ही जल भी प्राणियों के प्राण धारण के लिए अत्यावश्यक है। जल मल नाशक, शरीर शोधक तथा बलवर्धक भी है। वेद ने इसे औषधि तुल्य तथा रोगों का नाश करने वाला बताया है।[7] वेद में गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्रि, असिम्न्या, मरूद्वृदा, वितस्ता आदि नामों को भरतखण्ड की प्रसिद्ध नदियों के अर्थ में लिया गया है।[8] इन नदियों को आचार्य यास्क ने इस प्रकार से व्यक्त किया है कि 'गंगा-गमनात् अर्थात् गमनशील नदी को गंगा।[9] अन्य नदी में मिलने वाली (युमिश्रणे) होने से नदी को यमुना कहा जाता है। प्रचुर जल वाली नदी सरस्वती, क्षिप्र गति से चलने वाली नदी को शुतुद्रि तथा विविध प्रकार से गति करने वाली नदी को विपाशा कहा जाता है। बाद में इन्हीं नदीयों को गंगा, यमुना, सतलुज, व्यास आदि विशिष्ट नदियों को दे दिये गये।

संसार को सुरक्षित रखने के लिए प्रकृति एवं मानव के बीच संतुलन आवश्यक है। प्राकृतिक व्यवस्था ही पर्यावरण है। पर्यावरण की शुद्धता जीवनदायिनी शक्ति है। पर्यावरण के शुद्ध होने पर रोगी स्वस्थ हो जाते हैं और अशुद्ध होने पर स्वस्थ प्राणी भी रोगी हो जाते हैं। क्योंकि ऋग्वेद में प्रार्थना की गई है कि 'हे स्वास्थ्यप्रद वायु, आप हमारे लिए स्वास्थ्य प्रदान करने वाली औषधियों को लाए। जो रोग हैं, उन्हें दूर करो। सत्य ही आप रोगनाशक औषधि के समान है, इसलिए आप दिव्य गुणों वाले देवों के इष्ट कहलाने के सर्वथा योग्य है'।[10] मनुष्य प्राकृतिक पर्यावरण से ही पोषित एवं पालित है। मानव-जीवन के विकास के सभी गुण प्रकृति में पहले ही विद्यमान है। पर्यावरण की शुद्धता के लिए प्रकृति के साथ मिल कर चलना अनिवार्य है।

अथर्ववेद के पृथिवी-सूक्त में पर्यावरण के प्रमुख घटक तत्त्व पृथ्वी की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जिस मातृभूमि पर समुद्र, अनेक नद, नदियॉ, झरने, झील, ताल आदि हैं, जिस पर अन्न आदि नाना प्रकार की खेती होती है, जिस पर यह जीता-जागता, चलता-फिरता संसार अन्न-जल ग्रहण कर तृप्त होता है और प्राण धारण करता है वह भूमि हमें समस्त ऐश्वर्य प्रदान करें।[11] ऋग्वेद में वायु को जल का मित्र, सबसे पहले उत्पन्न हुआ और सत्य नियमों का नियमित रूप से पालन करने वाला बतलाया गया है।[12] संसार के समस्त जीवों के लिए प्राणवायु की नितान्त आवश्यकता है। वायु के बिना जीवन सम्भव ही नहीं है, इसलिए हमारे वैदिक ऋषियों ने हवन आदि के द्वारा वायु की शुद्धता बनाये रखने की अनेक मन्त्रों में प्रार्थना की है। इसी प्रकार वेदों में जल के पर्यावरण सम्बन्धी महत्त्व को भी विस्तार से प्रतिपादित किया गया है। जल ही जगत् की प्रतिष्ठा है।[13] क्योंकि जल के बिना जीवन असंभव है, जल सभी औषधियों वाला है।[14]

वेदों में मानव तथा नदी की पारस्परिकता का वर्णन करते हुए नदी को सम्पूर्ण चराचर जगत् की माता के पद पर प्रतिष्ठित किया गया है।[15] मातृरूपा नदियों के प्रति यह श्रद्धाभाव जल संसाधनों को शुद्ध रखने का सर्वोत्तम प्रभावी उपाय प्रतीत होता है।

वैदिक ऋषियों ने प्राकृतिक शक्तियों को दिव्य एवं उपास्य माना है। आचार्य यास्क ने देव शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया है यथा-'देवो दानाद्वा दिपनाद्वा द्योतनाद्वा'[16] इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो दान दें, प्रकाशित हो या प्रकाशित करें वे देवता हैं। प्रकृति मानव को अन्न, जल, वायु, प्रकाश, ऊर्जा, आवास, आवरण आदि सभी कुछ प्रदान करती है, अत: प्रकृति का देवत्व सर्वथा सार्थक है। वैदिक मंत्रों में इन्द्र, अग्नि, वरुण, सूर्य, मरुत, वात, पर्जन्य, सरित, अपस्, पृथ्वी आदि देवताओं की स्तुति करके सहायता एवं सम्पन्नता की कामना की गई है। वेदों में प्रकृति की अनुकूलता हेतु प्रार्थना करके उसके वास्तविक महत्त्व को प्रकट किया गया है, क्योंकि प्राकृतिक शक्तियों के प्रतिकूल होने पर मानव-जीवन एवं उसकी सुख-स्मृद्धि असम्भव है। वेदों में समस्त वनस्पति जगत् में किसी न किसी देवता का वास मानकर उनके दिव्य-गुणों को भी प्रकट किया गया है। अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त के मन्त्रों में कहा गया है कि इस पृथिवी पर पवित्र जल की धारा है, प्राणदायिनी औषधियॉ हैं, वन हैं, पर्वत हैं, सागर हैं।[17] साथ ही पृथिवी सूक्त में पर्यावरण की समस्या और उसके समाधान की ओर भी स्पष्ट संकेत किया गया है। जिसमें कहा गया है कि जमीन पर खेती करने से उसको हम कमजोर करते हैं और उसके अन्दर के तत्त्वों का उपयोग करते हैं जिनकी पूर्ति यदि न हो तो एक ऐसा असन्तुलन उत्पन्न होगा जो प्राणि-मात्र के लिए हानिकारक होगा।

वस्तुत: प्राकृतिक तत्त्वों की अपरिहार्य महिमा का निरुपण वेदों की प्रकृति उपासना को सारवान् बनाता है। वैदिक बहुदेववाद विभिन्न प्राकृतिक तत्त्वों के सापेक्षिक महत्त्व के पर्यावरणीय तथ्य का प्रकारान्तर से प्रतिपादन करता है।

मानव के समान पशु-पक्षी भी ईश्वरीय कृति हैं। ये सभी पर्यावरण के सन्तुलन को बनाये रखने में महत्त्वपूर्ण हैं। यही कारण है कि भू-लोक एवं दिव्य लोक के वन्य पशु, मृग तथा पक्षियों की हिंसा से विरत रहने की भावना भी वेदों में अभिव्यक्त हुई है।[18]

वैदिक काल में मानव प्रकृति के साथ तालमेल रखते हुए अपना जीवनयापन करते थे। प्रातःकाल सभी लोग ऊर्जा के असीमित स्त्रोत सूर्य देवता के प्रति नमस्कार, अर्घ आदि विविध रीतियों से सम्मान और कुतज्ञता व्यक्त करते थे। सूर्य देवता भूमण्डल का जीवनदाता है, क्योंकि सूर्य की शक्ति और प्रकाश के बिना हमारी पृथ्वी पर किसी भी प्रकार के वन और वनस्पतियों की उत्पत्ति किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है। अतः मानव-जीवन की सुख-स्मृद्धि एवं सृष्टि की स्थिति के लिए हमारे मन्त्रदृष्टा ऋषियों ने विविध मन्त्रों के द्वारा सूर्य देवता की स्तुति की है। ऋग्वेद के सूर्य-सूक्त में कहा गया है कि सूर्य मनुष्यों के सभी कृत्यों को देखते हैं।[19] वही संसार को स्थिर रखने वाले एवं जगत् के रक्षक हैं।[20] उसके बिना इस संसार की कल्पना भी नही की जा सकती है। सूर्य स्थावर तथा जंगम जगत् की आत्मा है।[21] हमारे वैदिक ऋषियों ने प्रकृति के शान्त और एकान्त वातावरण में जीवन की सफलता और लोक कल्याण के लिए साधना की थी। वे विविध यज्ञादि द्वारा प्राकृतिक वातावरण को शुद्ध करने में तत्पर रहते थे। वन-अन्नादि से परिपूर्ण रहने पर ही मानव-जीवन सुख, स्वास्थ्य, स्मुद्धि अर्जित कर सकता है।

अतः प्रकृति का प्रभाव व्यक्ति की शारीरिक संरचना, स्वास्थ्य और मन पर पड़ता है। पर्यावरण के प्राकृतिक साधन के स्वच्छ व निर्मल होने पर शरीर और मन भी स्वस्थ और निर्मल होते हैं, क्योंकि प्रत्येक जीवन अनुवांशिकीय तथा पर्यावरण का संयुक्त प्रतिफल होता है।

फुटननोट

1 प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारतस्माद् गणश्च षोडशकः।
2 तस्मादपि षोडशकात् पंचभ्यः पंच भूतानि।। सांख्यकारिका 22
3 त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि। सांख्य कारिका 11
4 सौक्ष्म्यात्तदनुपलब्धिर्नाभावात् कार्यतस्तदुपलब्धेः।
5 महदादि तच्च कार्यं प्रकृतिसरूपं विरूपं च।। सांख्यकारिका 8
6 अथर्ववेद 12.1.12
7 यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यान्नं कृष्टयः सम्बभूवुः।
8 यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु।। अथर्ववेद 12.1.3
9 वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे। प्राण आयुंषि तारिषत्। ऋग्वेद 10.186
10 ऋग्वेद 10.137.6
11 ऋग्वेद 10.75.5
12 निरुक्त 9.25
13 आवात वायु भेषजं विवात वाहि यदपः।
14 त्वं हि विश्वभेषणो देवानां दूत ईयसे।। ऋ0 10.137.3
15 यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः सम्बभूवुः।
16 यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु।। अथर्ववेद, पृथ्वी 3
17 अपां सखा प्रथमजा ऋतावा क्व स्विज्जातः कुतः आ बभूव। ऋग्वेद 10.168
18 आपो वा सर्वस्य जगतः प्रतिष्ठाः। शतपथ0 ब्रा0 6.8.2.2
19 आपश्च विश्वभेषजीः। ऋग्वेद 1.23.20
20 यूयं हि ष्ठा भिषजौ मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः। ऋ0 6.50.7
21 निरुक्त 2.14
22 यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो नाना वीर्या औषधीर्या बिभर्ति।
23 गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु।। अथर्ववेद 12.1
24 पार्थिवाः दिव्याः पशवः आरण्या उत ये मृगाः।
25 शकुन्तान् पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुंचत्वंहसः।। अथर्ववेद 11.6.8
26 पश्चन् जन्मानि सूर्य । ऋक0 1.125
27 'विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा' ऋक0 1.125
28 चित्रं देवानामुदगादनीकं, चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
29 आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं, सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।। ऋ0 1.125.1

संसदीय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी: एक समीक्षात्मक अध्ययन

मीनू कुमारी

शोध छात्रा, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

स्वतंत्रता प्राप्ति के 65 वर्षों के बाद भी भारतीय महिलाओं को अपेक्षित राजनीतिक लाभ नहीं मिल पाया है। राजनीतिक, शैक्षणिक एवं प्रशासनिक क्षेत्रों में महिलाएं अभी तक उस मुकाम पर नहीं पहुँच पाई है, जहां तक उनको आजादी के बाद बीते समय में पहुँचाना चाहिए था। इसका अर्थ यह नहीं है कि महिलाएं एकदम ही उपेक्षित है। पुरूष प्रधान समाज में उनको सहयोग मिला लेकिन इससे अधिक सहयोग मिलने की आशा की जा सकती थी। हमारे संविधान में महिलाओं को हरेक क्षेत्र में प्रगति और विकास के लिए समान अवसर देने का प्रावधान है। यदि समाज के सभी वर्ग सहयोगात्मक दृष्टिकोण अपनाएँ तो इसमें कोई शक नहीं कि महिलाएं हरेक क्षेत्र में पुरूषों के समान प्रगति कर सकती है और देश के विकास में बराबर की भागीदारी बन सकती है। संविधान में महिलाओं के विकास के लिए दिये गए प्रावधानों के बावजूद संवैधानिक लक्ष्य और जमीनी सच्चाई में बहुत अंतर है।

1947 में ब्रिटिश हुकूमत से आजादी मिलने के तत्पश्चात् पहली बार 1951-1952 में भारत में आम चुनाव हुए। यह चुनाव सिर्फ इसलिए बेहद अहम नहीं था कि यह ऐतिहासिक चुनाव था, स्वतंत्र भारत का पहला चुनाव था बल्कि इसलिए भी अहम् था कि सारी दुनिया की निगाह इस पर टिकी हुई थी। सबके मन में यह सवाल था कि यह देश नया-नया आजाद हुआ है। भारत क्या लोकतंत्र की इतनी बड़ी कवायद को सफलतापूर्वक अंजाम दे पाएगा। लोकसभा के साथ-साथ राज्यों की विधानसभाओं के भी चुनाव होने थे। मुख्य चुनाव आयुक्त सुकुमार सेन के कुशल नेतृत्व में जब चुनाव सफलतापूर्वक सम्पन्न हुए तो सारी दुनिया हैरान रह गई। पहला लोकसभा, आम चुनाव 25 अक्टूबर 1951 से 21 फरवरी 1952 तक करीब 4 महीनों में और 68 चरणों में सम्पन्न हुआ। उस समय लोकसभा में कुल सीटों की संख्या 489 थी तथा बहुमत के लिए 245 सीटें लाना आवश्यक है।

पहले लोकसभा के आम चुनाव में करीब 1874 उम्मीदवार चुनाव लड़ने के लिए उतरे थे जिनमें से 1831 पुरूष एवं 43 महिलाएं थी। इनमें से जहां 1831 पुरूष उम्मीदवार में 467 पुरूष चुनाव जीतकर आए तथा 43 महिलाओं में से 22 महिला उम्मीदवार जीत कर लोकसभा में पहुंची। मतदाता के लिए न्यूनतम उम्र 21 वर्ष रखी गयी थी। कुल 36 करोड़ आबादी में करीब 17.3 करोड़ मतदाता थे।

प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू की अगुआई में कांग्रेस ने इन चुनावों में एकतरफा जीत हासिल की। फूलपुर लोकसभा सीट से जवाहर लाल नेहरू ने विशाल अंतर से जीत हासिल की। साधारण बहुमत के लिये 245 सीटों की जरूरत थी, लेकिन कांग्रेस ने कुल 489 सीटों में 364 पर जीत कर अपना परचम लहराया। दूसरे नम्बर पर सी.पी.आई. रही जिसके खाते में 16 सीटें आई। 12 सीटों के साथ सोशलिस्ट पार्टी तीसरे स्थान पर रही।

पहली से लेकर पन्द्रहवीं लोकसभा में महिला सदस्यों का प्रतिनिधित्व एवं भागीदारी

लोकसभा	वर्ष	सीटों की कुल संख्या	महिला उम्मीदवारों की संख्या	निर्वाचित महिलाओं की संख्या	कुल का प्रतिशत
पहली	1952	489	43	22	4.4
दूसरी	1957	508	45	27	5.4
तीसरी	1962	503	66	34	6.7
चौथी	1967	523	67	31	5.9
पांचवी	1971	521	86	22	4.2
छठी	1977	544	70	19	3.4
सातवीं	1980	544	143	19	3.4
आठवीं	1984	544	162	44	8.1
नौवीं	1989	529	198	28	5.29
दसवीं	1991	534	326	36	7.07
ग्यारहवीं	1996	540	599	39	7.36
बारहवीं	1998	543	274	43	8.07
तेरहवीं	1999	543	284	49	8.83
चौदवहीं	2004	543	355	45	8.27
पन्द्रहवीं	2009	543	556	59	10.6

स्त्रोत: संसदीय सूचना पत्रिका- ग्यारहवीं लोकसभा के सदस्य, एक सामाजिक-आर्थिक अध्ययन, लोकसभा सचिवालय, दिल्ली, पृ. 450.

ये आँकड़े यह साबित करते है कि राजनीति में महिलाएँ पुरूषों से काफी पीछे है। यह विडम्बना ही है कि जिस देश में महिला मतदाताओं की तादाद तो कुल आबादी की लगभग आधी हो, लेकिन लोकसभा में उनका दस प्रतिशत प्रतिनिधित्व भी न हो। महिलाओं के राजनीति में पिछड़ने का कारण ही है कि विभिन्न पार्टियां उम्मीदवार बनाने में उनके साथ भेदभाव करती है। एक तरफ लोकसभा में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण देने पर जमकर बहस होती है, तरह-तरह के वायदे किए जाते हैं, पर जब टिकट देने की बात आती है तो जैसे सभी दल भूल से जाते है।

1952 से 2009 के चुनाव में अब तक महिला उम्मीदवारों की संख्या 43 से बढ़कर 556 तक पहुंची है। अधिकतर महिला उम्मीदवार किसी राजनीतिक शख्स की पत्नी, बेटी या परिवार की अन्य महिला सदस्य होती है। कांग्रेस पार्टी ने अपने संगठन में पदाधिकारी स्तर पर महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण देने पर फैसला किया परंतु 453 सीटों पर 50 महिलाओं को ही टिकट दिए थे। इसमें से 14 महिलाएं चुनाव जीती। भारतीय जनता पार्टी ने तो केवल 7. 5 प्रतिशत महिलाओं को ही टिकट दिया। 339 में से केवल 25 महिलाओं को टिकट दिए थे और सबसे ज्यादा महिलाएं भारतीय जनता पार्टी से ही जीतकर आई। माकपा ने 73 सीटों में से 5 और भाकपा ने 56 सीटों में 4 महिलाओं को टिकट दिया था। 2009 में केरल से केवल एक महिला जीतकर लोकसभा में आई थी। सपा से तीन, तेलगूदेशम पार्टी की तीन, तृणमूल कांग्रेस से दो और राजद, शिवसेना और नेशनल क्रांन्फेस पार्टी की एक-एक महिला चुनाव जीती। तमिलनाडु से अन्नदामुद्रक की डॉ. वी. सरोजा दूसरी बार जीतकर लोकसभा पहुंची। पश्चिम बंगाल के पंसकुडा से सातवीं बार गीता मुखर्जी, मध्य प्रदेश के इंदौर से पांचवी बार सुमित्रा महाजन चुनाव जीती। अपने दमखम पर चुनाव जीतकर आने वाली मेनका गाँधी ऐसी महिलाएं है, जो इस बात को गलत साबित करती है कि महिलाएं राजनीति में आकर कुछ नहीं कर पाती है। जेंडर डेवलपमेंट के टर्म में 162 देशों में भारत का स्थान 115वां है। अगर ऐसा होता तो ये बार-बार जीतकर संसद में नहीं पहुंचती।

11वें लोकसभा में पिछले बार के 36के मुकाबले 39 महिलाएं चुनी गई। 1998 में सोनिया गाँधी कांग्रेस की अध्यक्ष के रूप में चुनी गई। अप्रैल 1999 में जयललिता और मायावती भाजपा सरकार के पतन का कारण बनी। ये महिलाएं राजनीतिक निर्णायक के रूप में सामने आई। 13वीं लोकसभा की महिला सदस्यों में भारतीय जनता पार्टी की सुषमा स्वराज, उमा भारती, वसुंधरा राजे सिंधियां, स्वर्गीय विजया राजे सिंधियां, तृणमूल कांग्रेस की ममता बनर्जी, बहुजन समाज पार्टी की मायावती इत्यादि चुनी गई। 15वीं लोकसभा में भी भारतीय राजनीति में महिलाओं का स्थान पहले की ही तरह है। महिलाओं की कम राजनीतिक भागदारी का एक प्रमुख कारण यह भी है कि राजनैतिक दल पुरूषों के मुकाबले महिला उम्मीदवारों के जीत के प्रति आशंकित रहते है। राजनैतिक दलों के अनुसार महिलाएं एक अच्छी मतदाता है लेकिन एक अच्छी उम्मीदवार नहीं है। आजकल की राजनीतिक परिस्थिति में अपराधीकरण, काले धन और शक्ति-प्रदर्शन के द्वारा राजनैतिक दलों का चुनाव जीतना लक्ष्य बनता जा रहा है। इन्हीं सब कारणों से महिलाएँ राजनीति से दूर होती जा रही है। बहुत कम ही महिलाओं को अपना राजनीतिक जीवन को चलाने के लिए परिवार का समर्थन मिलता है। आंकड़े और रिपोर्ट बताते है कि महिलाएं अपने पति से ही सहमत रहती है। इसका मुख्य कारण है कि वे राजनीति के बारे में कुछ नहीं जानती है और इतनी संकोची स्वभाव की होती है कि जनता दल और भारतीय जनता पार्टी के बीच अंतर भी नहीं बता पाती है।

अभी के राजनतिक परिवेश में महिलाओं की भागीदारी बहुत कठिन है। महिला के बारे में कहा जाता है कि महिलाएं कभी भी राजनीति को गंभीरता से नहीं लेती है। लेकिन सोनिया गांधी, जयललिता, मायावती, वसुंधरा राजे सिधियां, उमा भारती, राबड़ी देवी, शिला दीक्षित और ममता बनर्जी आम महिलाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करती है। युनेस्को द्वारा हाल ही में दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों में कराए गए सर्वेक्षण से पता चलता है कि चुनाव लड़ने और मताधिकार जैसे राजनीतिक भागीदारी से महिलाएँ दूर है।

राजनीतिक प्रक्रिया में मतदाताओं के रूप में महिलाओं की भागीदारी का मूल्यांकन एक सकारात्मक सुझाव प्रस्तुत करता। 1952 से उपलब्ध आंकड़े तालिका के द्वारा प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

आम चुनावों में महिलाओं की भागीदारी का प्रतिशत

आम चुनाव	वर्ष	पुरूष	महिला	कुल	पुरूष और महिला भागीदारी के बीच अन्तर
पहला	1952	55	38	46.5	17
दूसरा	1957	56	39	47.5	17
तीसरा	1962	62	46.6	55	15.4
चौथा	1967	66.7	55.5	61.3	11.2
पाँचवाँ	1971	60.9	49.1	55.3	11.8
छठा	1977	66.6	54.9	60.5	11.7
सातवाँ	1980	62.2	51.2	56.9	11.0
आठवाँ	1984	68.4	59.2	64.0	9.2
नौवाँ	1989	66.1	56.9	62.0	9.2
दसवाँ	1991	61.6	51.4	61.0	10.2
ग्यारहवाँ	1996	62.1	53.4	57.9	8.7
बारहवाँ	1998	62.1	53.4	57.9	8.7
तेरहवां	1999	64.0	55.6	60.4	8.4
चौदहवां	2004	62.15	53.64	58.07	8.5
पंन्द्रहवां	2009	66.45	56.32	61.35	10.13

स्त्रोत: महिला सशक्तीकरण एवं राष्ट्रीय महिला आयोग'', गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2015, पृ. 98-99.

महिला और पुरूषों द्वारा दिए गए मतों में हमेशा 8 प्रतिशत से 17 प्रतिशत का अंतर रहा है। चुनावों में बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, झारखंड, उड़ीसा और राजस्थान जैसे राज्यों की महिलाएँ मताधिकार का प्रयोग कम करती है।

2009 के लोकसभा में 71.69 करोड़ मतदाताओं ने भाग लिया जिनमें 34.22 करोड़ महिलाएँ थी। आजादी के वक्त ही पुरूषों के साथ महिलाओं को मताधिकार मिल गया था। स्वतंत्रता के आंदोलन में महिलाओं के योगदान एवं मताधिकार ने महिलाओं के महत्व की ओर इशारा किया था। लेकिन 1952 में पहली लोकसभा में 22 महिला सांसद का आँकड़ा इस सदी के आखिरी चुनाव में 59 तक ही पहुँच सका। 22 से 59 तक पहुँचने में 63 साल लग गए। लोकसभा में सबसे ज्यादा महिलाएँ 2009 में पहुँची थी। जब इनकी कुल संख्या 59 यानी 10.6 प्रतिशत थी।

स्वतंत्रता के पश्चात् से लेकर अभी तक राज्य सभा में महिलाओं की भागीदारी 10 प्रतिशत से अधिक नहीं रही है। इस प्रकार राज्य सभा में भी महिलाओं का प्रतिनिधि कम रहा है। इसे हम तालिका द्वारा महिलाओं की भागीदारी राज्य सभा में स्पष्ट कर रहे है:-

राज्यसभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व/भागीदारी

राज्यसभा में महिला प्रतिनिधित्व 1962 में 10 प्रतिशत से कुछ ऊपर से शुरू हुआ लेकिन 1980 को छोड़कर (11.89 प्रतिशत) बाद के वर्षो के दौरान यह घटता रहा और 1996 में घटकर 7.76 हो गया। यद्यपि यह 2002 में थोड़ा बढ़कर 8.5 प्रतिशत हो गया। नब्बे के दशक में महिलाओं का प्रतिनिधित्व, अन्य बातों के साथ-साथ राजनीतिक दलों में लोकप्रिय चुनावी प्रतिस्पधाओं में सफल न रहने वाले लोगों को जो प्राय: पुरूष होते हैं, खपाने की संरक्षणक प्रथाओं के कारण घटता गया है। पहले के वर्षो में अधिक महिलाओं को दी गई सुविधा अधिक पुरूषों को हस्तानान्तरित हो गई जिससे राज्य सभा में महिला सदस्यों की संख्या घट गई। समीक्षात्मक रूप से यह देखा गया है कि राज्यसभा की सदस्यता को राजनीतिक दलों में एक विशेष सुरक्षित स्थान के रूप में समझा जाता है जिसमें वे अपनी पंसद के ऐसे महत्वपूर्ण उम्मीदवारों को लाना चाहते है जो लोकसभा के लोकप्रिय चुनावी प्रतिस्पर्धाओं में सफल न हो सकें।

दुर्भाग्यवश राज्यों की विधानसभाओं में भी महिलाओं का प्रतिनिधित्व अपेक्षाकृत कम रहा है। पिछले 60 वर्ष से इस स्थिति में कोई खास बदलाव नहीं आया। राज्य की विधानसभाओं में महिला सदस्यों की संख्या 4 प्रतिशत के करीब ही रही।

अन्य पदों पर महिलाओं की भागीदारी नगण्य रही है। अभी तक एक मात्र महिला राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल जो 2007-2012, एक महिला प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी और एकमात्र महिला लोकसभा अध्यक्ष मीरा कुमार जैसी महिला को प्रतिनिधित्व करने का शुभ अवसर मिला है। इसी प्रकार प्रथम महिला मुख्यमंत्री सुचिता कृपलानी जो उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री के रूप में 1963 से 1967 तक कार्य की। इसी प्रकार प्रथम महिला राज्यपाल सरोजिनी नायडू जो उत्तरप्रदेश की राज्यपाल पद को सुशोभित की थी जिनका कार्यकाल 1947-1949 ईसवीं के बीच रहा। मंत्रियों की संख्या केन्द्रीय स्तर पर बढ़ी है किंतु एक दो से अधिक कैबिनेट मंत्री नहीं बनी। इसे हम तालिका द्वारा स्पष्ट कर रहे है।

केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् में महिलाओं का प्रतिनिधित्व/भागीदारी

वर्ष	मंत्रियों की संख्या			महिला मंत्रियों की संख्या		
वर्ष	कैबिनेट मंत्री	राज्यमंत्री	उपमंत्री	कैबिनेट मंत्री	राज्यमंत्री	उपमंत्री
04.02.1985	15	25	0	1	3	0
31.08.1990	17	17	5	0	1	1
31.08.1995	12	37	3	1	4	1
05.08.1996	18	21	0	0	1	0
10.06.1997	20	24	0	0	5	0
19.03.1998	21	21	0	1	3	0
01.03.2000	28	44	1	3	3	0
11.11.2011	33	37	7	2	4	2

पूर्वोद्धृत: कुमारी वंदना, पृ. 66.

पहली बार 2009 को लोकसभा में 59 महिलाएँ चुनकर संसद भवन में पहुँची थी। केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् में महिलाओं को स्थान भी दिया गया परंतु ये आँकड़े संतोषजनक नहीं है। चुनाव में पैसे की भूमिका को नजरअंदाज भी नहीं किया जा सकता। यह एक गौरतलब तथ्य है कि महिलाएं आर्थिक रूप से कमजोर है।

राजनीति के अपराधीकरण के कारण महिलाओं पर अत्याचार की घटनाओं में भयानक वृद्धि हुई है। अखिल भारतीय जनवादी महिला समिति की राष्ट्रीय महासचिव सुश्री वृंदा करांत ने एक पत्रकार सम्मेलन में बिहार की महिलाओं पर बढ़ते अत्याचार, पंचायत चुनाव तथा बिहार में महिला आयोग के गठन संबंधी मुद्दों पर चर्चा करते हुए इन सभी बातों के लिए मुख्य रूप से राजनीतिक जोड़-तोड़ की नीति को उत्तरदायी कारण बताया। राज्यों की महिलाएँ स्वयं के सुरक्षित महसूस करती है।

महिला आरक्षण बिल 81वें संविधान संशोधन के तहत प्रस्तावित किया गया, उसका 1996 तथा 1998 में पुरूष सांसदों द्वारा विरोध करने से यह स्पष्ट हो गया है कि भारतीय पुरूष राजनीति में अपना वर्चस्व नहीं छोड़ना चाहते है। यह भी साफ हो गया है कि महिलाओं के अधिकार की बातें सिर्फ कोरी बातें हैं, वे तो संसद में महिलाओं के लिए लगभग 180 सीट को खोने नहीं देखना चाहते।

महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण की मांग जब उठी तब राजनीति गर्माती रहती है, लेकिन वास्तविकता यही है कि 63 सालों बाद भी भारतीय संसद में पुरूषों का ही वर्चस्व बना हुआ है। हाल यह है कि अब तक 15 बार गठित हुई लोकसभा में महिलाओं की भागीदारी का आंकड़ा दस फीसदी के उपर नहीं पहुंच पाया है। लोकसभा में 2009 में महिलाएँ सबसे ज्यादा पहुँची थी जब इनकी संख्या 59 यानि 10.6 फीसदी रही है।

यह कहना गलत न होगा कि एक तरफ जहाँ लोकसभा में पुरूषों का वर्चस्व तोड़ना चुनौती है तो आम महिलाओं के लिए संसद की दरवाजा (दहलीज) पर पहुँचना भी एक दिपास्वप्न है।

महिलाओं के मताधिकार को तो स्वीकार कर लिया गया है कि लेकिन निर्णय, क्षमता, नियम को बनाने में तथा राजनीतिक दल में उनका स्थान नहीं बढ़ा है। 1990 के दशक में पूरी दुनिया में प्रजातंत्र तेजी से उभर कर सामने आया तो भी महिलाओं का औसतन 11.6 प्रतिशत विश्व की विद्यायिका में भागीदार है। भारत में महिलाओं की स्वतंत्र राजनैतिक है हैसियत-नगण्य है। यहाँ पति के राजनीतिक से रियाटर या मौत के बाद उसकी पत्नी को राजनीति में आने की परम्परा है। सोनिया गाँधी, वसुंधरा राजे, श्रीमती राबड़ी देवी इत्यादि इसके ताजा उदाहरण है।

भारत में पहली बार महिला राष्ट्रपति बनी है। यह एक अच्छा माहौल बन रहा है। वस्तुतः आज हर तबके की महिला चाहे वह उच्च, मध्यम वर्ग की हो या निम्न वर्ग की हो अपनी पहचान बनाना चाहती है। नारी सदियों से पुरूष प्रधान समाज में शोषित हो रही है। उनके जेहन में यह बैठा दिया गया था कि वह पुरूषों के मुकाबले हीन है। परंतु आज वह अच्छी तरह जान गई है कि उन्हें इस स्थिति से उबरना है तो शिक्षित होना आवश्यक है। सभी समस्या का समाधान शीघ्र ही हो जायेगा तथा उन्हें आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक स्वतंत्रता स्वतः प्राप्त हो जायेगी और समाज में मान-सम्मान भी मिल जायेगा।

सामाजिक नजरिये की उत्पति सामाजिक परिवेश के अनुरूप हुआ करती है। महिलाओं के सामाजिक स्थिति को विभिन्न पहलुओं से जोड़कर जैसे वैवाहिक स्थिति, परिवार, जाति, धर्म, आर्थिक, राजनैतिक जीवन उनका पुरूष प्रबंधकों के साथ संबंध इत्यादि पर महिलाओं को एक पलड़े पर बिठाकर तौलने का प्रयास किया गया है। तो यही पाया गया है कि आज की जागरूक महिलायें अपने इर्द-गिर्द के माहौल के प्रति बहुत सर्तक है।

अतः आज के महिलाओं को समाज में अपनी एक सम्मानजनक स्थिति स्वयं बनानी पड़ेगी क्योंकि आत्मविश्वास दृढ़ हो तो चुनौती भरा कार्य भी आसान लगने लगता है। इसी पर राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान गाँधीजी ने महिलाओं को संबोधित करते हुए बोले थे ''अधिकार माँगने से नहीं मिलता है, उसे लड़कर प्राप्त करना होता है।'' इसके लिए उन्होंने गीता का उदाहरण प्रस्तुत किया। गीता में कृष्ण अर्जुन से कहाः- हे अर्जुन अधिकार प्राप्त करने के लिए तुम्हें गान्डी उठाना ही पड़ेगा क्योंकि स्वेच्छा से कौरव तुम्हें पाँच गाँव भी नहीं देंगे। आज के समय में भी गाँधीजी की बात व्यवाहारिक एवं प्रेरणादायक है। महिलाओं को अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए सहस संघर्ष करना ही होगा तभी पितृसतात्मकता समाज अथवा पुरूष समाज उनका अधिकार दे सकता है, नहीं तो कदापि नहीं। यह तो केवल दिवास्वप्न बनकर रह जायेगा क्योंकि 63 वर्षों में तो महिलाओं का समुचित स्थान न तो लोकसभा, न तो राज्यसभा और न तो राज्यों के विधानसभा में मिल पाया है।

संदर्भ ग्रंथ

1. कुमारी वंदनाः सामाजिक न्याय एवं महिला सशक्तीकरण, जानकी प्रकाशन, पटना, 2013.
2. देवेन्द्र कुमार शरणः ''नारी सशक्तीकरण का इतिहास'', क्लासिकल पब्लिशिंक कम्पनी, नई दिल्ली, 2012.
3. मुकुट बिहारी वर्मा, ''स्त्री समस्या'' अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, 2018.
4. गोपा जोशी; ''भारत में स्त्री असमानता'' हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2015
5. मृदुला सिन्हा, ''महिला-विकासः अवलोकन और आकलन प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2015
6. नीलम, ''महिला सशक्तीकरण एवं राष्ट्रीय महिला आयोग, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2015.
7. सुमेधा पाठक, ''स्त्री शिक्षा'' अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, 2012.
8. राधा कुमार ''स्त्री संघर्ष का इतिहास'' वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2011
9. विजय कुमार; बिहार के विकास में महिलाओं की भूमिकाः बिहार राज्य अभिलेखागार, पटना, 2012.
10. साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता; नारीवादी राजनीतिः संघर्ष एवं मुद्देः हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2001
11. संसदीय सूचना पत्रिका, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली।

आधुनिकता की दौर में बिहार विभाजन के पश्चात् महिला शिक्षा का विकासः एक ऐतिहासिक अध्ययन

शोभा कुमारी

शोध छात्रा, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

देश की आजादी प्राप्त होने के तत्पश्चात् महिला शिक्षा पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया था। आजादी के समय महिलाओं का साक्षरता दर मात्र 2.4 प्रतिशत था। पिछड़े राज्यों की महिलाओं की शैक्षणिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति भी अच्छी नहीं थी। वे आर्थिक दृष्टि से काफी कमजोर थी। अपना अधिकांश समय दो जून की रोटी उपलब्ध करने में ही व्यतीत कर देती थी। ऐसी स्थिति में शिक्षा की परिकल्पना कैसी की जा सकती है। बिहार जैसे पिछड़े राज्यों के लिए एक कोढ़ के समान थी। भारत सरकार भी बिहार एवं अन्य पिछड़े राज्यों के लिए विशेष जनकल्याणकारी योजना एवं विशेष पैकेज की व्यवस्था भी नहीं की थी। प्रथम एवं द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा की उपेक्षा की गई थी तथा उच्च शिक्षा पर विशेष जोर दिया गया था। अधिकांश आबादी गांवों में निवास करती है जहाँ उन्हें प्राईमरी शिक्षा की सख्त आवश्यकता होती है। इस बात का आभास सरकार को तृतीय पंचवर्षीय योजना के पहले हो गया था जिसके कारण तृतीय पंचवर्षीय योजना में विशेषकर प्राथमिक शिक्षा पर विशेष जोर दिया गया ताकि सभी लोग प्राईमरी शिक्षा हासिल कर सकें। इस दौर में बिहार सभी आधारभूत संरचना में सबसे पीछे हो गया है। एक तो ऐसे ही बिहार पिछड़ा हुआ राज्य था, उसपर एक आघात 2000 में बिहार को विभाजन करके पूरा कर दिया। यह विभाजन बिहार के विकास के लिए एक श्राप बन गया है।

सन् 2000 ईसवीं में बिहार विभाजन के तत्पश्चात् बिहार राज्य की अर्थव्यवस्था पूर्णतः कृषि एवं कृषि पर आधारित उद्योगों पर निर्भर रह गई है। इसमें पहले भी बिहार को एक कृषि प्रधान राज्य के रूप में ही गितनी की जाती थी। झारखण्ड क्षेत्र में खनिज संपदा एवं वनोपज की प्रचूर मात्रा के कारण सन् 2000 से पहले बिहार को राष्ट्रीय परिदृश्य में एक अलग स्थान अवश्य प्राप्त था। तथापित 2000 से पहले भी ''बीमारू राज्यों'' में बिहार का स्थान शीर्ष पर था और 2000 के बाद भी यह शीर्ष पर ही है।

सर्वविदित है कि आधारभूत संरचनाओं के निर्माण से पिछड़े समाजों की सामाजिक संरचना सुदृढ़ होती है। अच्छे स्वास्थ्य, अच्छी शिक्षा, बिजली, सड़के, पीने का पानी इत्यादि किसी भी नागरिक के बेहतर जीवन तथा बेहतर चिंतन के लिए जरूरी है। बेहतर जीवन जीने वाले लोग अपने और राज्य के विकास के लिए बेहतर तरीके से सोच सकता है। आधारभूत संरचना के अभाव में विकास के किसी भी मॉडल की गति देना असंभव सा हो जाता है। आधारभूत संरचना के अलावा राज्य के औद्योगिक विकास में सबसे बड़ी बाधा यहाँ की बिगड़ती कानून-व्यवस्था है। खंडित बिहार के प्रथम मुख्यमंत्री से ही स्थायी, दृढ़ निश्चयी एवं वैज्ञानिक एवं सार्थक राजनीतिक नेतृत्व के अभाव में यहाँ की कानून-व्यवस्था सबसे अधिक प्रभावित हुई। इसका प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि एक तरफ बाहरी पूंजी निवेश बाधित हुई तो दूसरी ओर राज्य की श्रम-शक्ति का पलायन लगातार बढ़ता ही रहा। फलतः बिहारी श्रम शक्ति का लाभ अन्य राज्यों को मिलता रहा, जबकि संसाधनों के अभाव में बिहारी स्वयं अपने शक्ति के लाभों से वंचित रहा। कमजोर कानून-व्यवस्था का प्रभाव सरकारी तंत्र पर भी पड़ा। सरकारी तंत्र स्वयं कुशल नेतृत्व के अभाव में भ्रष्टाचार अकुशलता तथा अकर्मन्यता से ग्रस्त रहा। समय-समय पर कुछ राजनेताओं द्वारा ''सामाजिक न्याय'' का नारा बुलंद किया जाता रहा। लेकिन ऐसे राजनेता द्वारा गुन्नार मिर्डल के उस कथन को नजरअंदाज कर दिया गया, जिसमें उन्होंने आर्थिक एवं राजनैतिक प्रगति के बिना सामाजिक न्याय को एक गंभीर बेइमानी करार दिया था।

भौगोलिक विशेषता के रूप में मैदानी क्षेत्र, फलतः कृषि आधारित अर्थव्यवस्था और दूसरी ओर विशाल जनसंख्या के कारण बिहार की आर्थिक दशा प्रारंभ से ही पिछड़ी रही है। उस पर सन् 2000 में बिहार का विभाजित किया जाना पिछड़े बिहार के लिए ''कोढ़ में खाज'' जैसा ही रहा। इसी का परिणाम था कि सन् 1993-94 के स्थिर मूल्यों पर बिहार का औसत वार्षिक विकास दर जहाँ 10.92 वहीं सन् 2001 के बाद यह लगभग 4-5 के दायरे में सिमट चुका है।

दूसरी ओर कुछ ऐसे आंकड़े भी प्राप्त होते है, जिनसे बिहार को आगे बढ़ने का भ्रम उत्पन्न होता है। जैसा बिहार आर्थिक सर्वेक्षण के हालिया रिपोर्ट के अनुसार, बिहार में गरीबी की दर 1998 के 62.2 फीसदी से घटकर 1999-2000 में 42 फीसदी तक पहुंची है जबकि 2001 के भारतीय जनगणना रिपोर्ट के अनुसार, राष्ट्रीय औसत 26.10 प्रतिशत है। सिर्फ छतीसगढ़ ही ऐसा राज्य है, जहाँ गरीबी दर बिहार से अधिक 46 प्रतिशत है। इसी प्रकार वर्ष 2003-04 में प्रति व्यक्ति आय का राष्ट्रीय औसत जहाँ 21,142 रूपये था, वहीं बिहार में यह केवल 5780 रूपये ही था। इस मामले में बिहार सबसे निचले स्थान पर है।

इसी प्रकार सन् 2006-2007 में केन्द्रीय सरकार द्वारा मानवीय विकास रिपोर्ट के अनुसार भी बिहार सबसे नीचले पायदान पर है। पिछले दो दशकों में बिहार का मानवीय विकास सूचकांक राष्ट्रीय औसत से भी लगभग 20 प्रतिशत निचे था। इसका सबसे मुख्य कारण यहाँ शिक्षा की दयनीय दशा है। 21वीं

सदी के दहलीज पर खड़े बिहार की कुल साक्षरता दर मात्र 47.0 फिसदी ही है जिसमें पुरूष साक्षरता 59.68 फीसदी तथा महिला साक्षरता 33.12 फीसदी है।

सर्वविदित है कि महिला ही नहीं अपितु किसी भी कमजोर वर्ग के सशक्तीकरण हेतु शिक्षा एक अतिमहत्वपूर्ण आयाम होती है। बगैर उचित शिक्षा के कोई व्यक्ति इस आधुनिक प्रौद्योगिक विश्व में अपनी स्थिति को ऊँचा नहीं उठा सकता है। लेकिन महिला शिक्षा में निम्न स्तर पर होना ही बिहार का एक पहलू मात्र नहीं है बल्कि 33 प्रतिशत का आंकड़ा इस दयनीय दशा की हकीकत भी बयां करती है। इसका सबसे बुरा प्रभाव यह होता है कि न केवल तत्काल पारिवारिक संरचना में स्त्रियाँ अशक्त होती है, बल्कि परिवार में जन्म ले चुकी बालिकाओं के सशक्तिकरण के संभावना क्षीण हो जाती है। दकियानूसी सोच के कारण न तो उनके उचित शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था की जाएगी और न ही उनके सामाजिक सहभागिता के मार्ग प्रशस्त होंगे। फलतः बालिकाओं के आर्थिक सशक्तिकरण की संभावना ही खत्म हो जाती है।

2001 के जनगणना के अनुसार 54 प्रतिशत महिलाएं ही साक्षर थी जबकि पुरूषों का प्रतिशत 76 था और राष्ट्रीय औसत 65.38 प्रतिशत था। 2011 में यह आंकड़ा 65.46 प्रतिशत हो गया। गांवों में यह आंकड़ा और भी नीचे है। आज भी 6 से 11 साल की उम्र की हर 10 में से दो लड़कियों का नाम स्कूल में नहीं लिखा जाता है। बीच में ही पढ़ाई छोड़ देने वाली भी अधिकतर बालिकाएं ही होती है। एक अनुमान के अनुसार पढ़ाई बीच में छोड़नेवाली छात्राओं की संख्या छात्रों की दूनी होती है। और ये बालिकाएं गांव की, आदिवासी, दलित, सामाजिक परिवारिक परिवेश से या झुग्गी बस्तियों की होती है। बालिकाओं की शिक्षा में बाधाएं भी अनेक है। मसलन गरीब परिवारों में छोटी उम्र से ही बच्चियों को माँ का घर के काम में हाथ बटाना होता है। गरीब परिवारों में मां काम पर जाती है तो बेटी घर एवं छोटे भाई बहिनों को संभालती है। ऐसे में स्कूल कैसे जाए। बंधुआ मजदूरी, बाल मजदूरी, स्कूल में उचित वातावरण का न होना, जाति व्यवस्था, बाल विवाह प्रभा भी भूमिहीन किसानों, दलित, आदिवासी तथा अन्य कमजोर तबकों की बच्चियों की शिक्षा पाने के रास्ते में रोड़ा रही है। संयुक्त राष्ट्र के अनुमानों के अनुसार पूरे विश्व में भारत में सबसे अधिक बाल मजदूरों की जनसंख्या है। यहां पर 5 करोड़ से भी अधिक बाल मजदूर है। उदारीकरण के इस युग में मुक्त बाजार व्यवस्था के फैलने के साथ-साथ, छोटे, मझोले तथा कुटीर उद्योगों के विदेशी पूंजी के आगमन के साथ बंद हो जाने के कारण गरीबी एवं बेरोजगारी बढने के साथ-साथ बाल मजदूरों की संख्या में इजाफा होना लाजमी है। बाल मजदूरी को कानूनी रूप से अवैध करार दे दिया गया है। पर इससे बाल मजदूरों की संख्या में कमी आने के संकेत नहीं मिले है।

स्वतंत्रता के पश्चात् बिहार की प्रारंभिक शिक्षा में तीव्र गति से वृद्धि हुई लेकिन 1980 और 1990 के दौरान इस वृद्धि काफी धीमी रही। वर्ष 2001-2002 में राज्य में सर्वशिक्षा अभियान के लांच होने के पहले पांच सालों में प्रारंभिक शिक्षा में वृद्धि की गति धीमी रही लेकिन 2006 में सता परिवर्तन के बाद प्रारंभिक शिक्षा तीव्र रूप से गतिशील हो गई। वर्ष 2001-2002 से 2003-2004 दौरान प्रारंभिक शिक्षा पर 1688.9 करोड़ रूपये व्यय किये जा रहे थे। 2007-2008 से 2009-2010 में बढ़कर 3961.4 करोड़ रूपये हो गयी। इसी क्रम में कई नये प्राथमिक स्कूल खोले गये और प्राथमिक स्कूल को प्रारंभिक स्कूल में उत्क्रमित कर दिया गया। लिहाजा स्कूलों की संख्या में इजाफा हुआ। वर्ष 2005-06 में जहाँ बिहार में प्रारंभिक विद्यालयों की संख्या 53778 थी वर्ष 2008-09 में वह बढ़कर 100552 हो गयी इतना ही नहीं वर्ष 2006-10 के दौरान 2,15,145 प्रारंभिक शिक्षकों के नियोजन के पश्चात् राज्य में छात्र-शिक्षक अनुपात 58:1 हो गया जिसे आगामी वर्षों में घटकर 40:1 हो जाने की संभावना है।

शिक्षकों की पर्याप्त नियुक्ति के बाद प्रारंभिक स्कूलों में 6-14 वर्ष के बच्चों का सकल नामांकन दर में भी अप्रत्याशित वृद्धि हुई। 2005-06 में बिहार के प्रारंभिक स्कूलों का सकल नामांकन दर 92.1 था जो 2008-09 में बढ़कर 95.9 हो गया। वहीं उच्च प्राथमिक वर्गों में सकल नामांकन 30.0 (2005-06) से बढ़कर 92.7 (2008-09) हो गयी। साथ ही वर्ष 2011 में विद्यालय से बच्चों का प्रतिशत घटकर 3.5 प्रतिशत हो गया।

प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनिकरण के लिए राज्य सरकार ने कई योजनाएं चलाई है। विद्यालय से बाहर 6-14 आयु के बच्चों को मुख्य धारा से जोड़ने के लिए ''संकल्प'' अभियान शुरू किया गया। लिहाजा विद्यालय से बाहर वाले बच्चों की संख्या 2006 में 25 लाख थी वह घटकर 2010-11 में 7.70 लाख हो गयी। अल्पसंख्यक मुस्लिम बच्चों के लिए खोले गये 293 तालिमी मरकश केन्द्रों में कुल 49720 बच्चों का नामांकन कराया गया वहीं महादलित समुदाय के बच्चों के लिए खोले गये। 10869 उत्थान केन्द्रों में कुल 271725 बच्चों का नामांकन कराया गया।

वर्ष 2001 में भारत की साक्षरता दर 65.4 प्रतिशत थी जो 2011 में बढ़कर 74.0 प्रतिशत हो गई। इसी प्रकार बिहार की साक्षरता दर 47 प्रतिशत 2001 में थी जो 2011 में बढ़कर 63.82 प्रतिशत हो गई। बिहार की कुल जनसंख्या 2011 में 54,390,254 थी जिसमें पुरूषों की कुल जनसंख्या 32,711,975 और महिलाओं की कुल जनसंख्या 21,678,279 थी। इसमें पुरूषों की साक्षरता दर 2011 के अनुसार 73.39 प्रतिशत तथा महिलाओं की साक्षरता दर 53.3 प्रतिशत है। जबकि राष्ट्रीय साक्षरता दर किसी अंचल के सामाजिक विकास का अकेला सर्वाधिक सूचक है। साक्षरता संबंधी सूचक के मामले में रोहतास 75.59 प्रतिशत के साथ राष्ट्रीय औसत से उपर है जबकि पूर्णिया सर्वाधिक कम साक्षरता दर 52.49 प्रतिशत वाला जिला है। मुंगेर 65.53 प्रतिशत, रोहतास 64.95 प्रतिशत एवं पटना 63.72 प्रतिशत महिला साक्षरता वाला जिला है जो राष्ट्रीय औसत 65.9 के करीब है। सबसे कम महिला साक्षरता वाला जिला सहरसा 42.73 प्रतिशत, मधेपूरा 42.75 प्रतिशत एवं पूर्णिया 43.19 प्रतिशत वाला जिला है। बिहार में 2001-2011 में उच्चतम वृद्धि क्रमशः 16.82 प्रतिशत और 20.21 प्रतिशत दर्ज की गई। बिहार की महिला साक्षरता दर और महिला साक्षरता के राष्ट्रीय औसत के बीच 12.6 प्रतिशत का अन्तर है। मुंगेर बिहार का सर्वाधिक महिला साक्षरता आबादी (65.53 प्रतिशत) वाला जिला बन गया है और सबसे कम महिला साक्षरता आबादी वाला जिला सहरसा (43.73 प्रतिशत) एवं मधेपुरा (42.75 प्रतिशत) वाला जिला बन गया है। उसी प्रकार रोहतास (82.78 प्रतिशत) एवं गोपालगंज (82.77 प्रतिशत) वाला सर्वाधिक पुरूष साक्षरता वाला जिला बन गया।

यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बिहार में महिलाओं का शिक्षा की समुचित व्यवस्था किये जाने के लिए प्रयासों का काफी अच्छा असर दृष्टिगोचर हो रहा है। आजादी के बाद सरकार को प्राथमिक शिक्षा पर ध्यान देने के बजाय उच्च शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया। प्राथमिक शिक्षा किसी भी व्यक्ति,

परिवार, समाज एवं राष्ट्र का आधास्तम्भ होता है। यह मकान का पिलर की तरह भूमिका निभाता है। जिस मकान की नींव मजबूत होगी उसके उपर बिल्डिंग भी उतना ही मजबूत होगा। इस बात को शिक्षाविदों, कानूनविदों, योजनाकारों, नेताओं, समाजशास्त्रियों एवं बुद्धिजीवियों ने भी नजरअंदाज किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि आर्थिक दृष्टि से कमजोर राज्य में शिक्षा का समुचित विकास नहीं हो पाया। जिसका जिता-जागता उदाहरण बिहार जैसे राज्य है जो आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है किंतु प्राकृतिक संपदा से सम्पन्न राज्य केन्द्र सरकार द्वारा भी बिहार पिछड़े राज्यों के लिए कोई विशेष व्यवस्ज्ञथा नहीं की गयी जैसे जम्मू और कश्मीर के लिए की गयी है।

आर्थिक विपन्नता के साथ ही साथ जाति एवं धर्म का वर्चस्व आजादी के तत्पश्चात से हावी होती रही है जिस कारण राज्य का समुचित विकास जैसे शिक्षा, पानी, बिजली, सड़क, उद्योग, धंधे, कृषि एवं पशुपालन का नहीं हो पाया। आज भी अधिकांश जनता को दो जून की रोटी के जुगाड़ में ही समय व्यतीत हो जाता है। ऐसी स्थिति में अपने बच्चे को शिक्षा दे पाना उनके लिए सम्भव नहीं है। अशिक्षा के अभाव में अधिक बच्चा पैदा कर देते है तथा यह बच्चे इनके कामों में हाथ बंटाते है। कृषि एवं पशुपालन में इनके बच्चे अक्सर हाथ बंटाते रहते है जिससे इनको दो जून की रोटी मिल पाता है। ऐसी स्थिति में ये अपनी लड़कियों को शिक्षा कैसे दे सकते है। 2011 के जनगणना रिपोर्ट इस इस बात को बयां करती है कि सुपौल, सहरसा, कटिहार, मधेपुरा में महिला शिक्षा क्या स्थिति है?

आज शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर बालिकाओं का नामांकन काफी बढ़ा है। इसके लिए नीतीश सरकार के द्वारा उठाये गए सकारात्मक कदम जिम्मेवार है। जैसे साईकिल योजना, पोशाक योजना, शौचालय, पेयजल आदि की सुविधाएं स्कूल में प्रदान की गयी। सामान्य शिक्षा के साथ उच्च स्तर पर व्यवसायिक तकनीकि और प्रबंधन आदि सभी प्रकार शिक्षण संस्थानों में अब न केवल उनकी संख्या निरंतन रूप से बढ़ रही है, बल्कि तुलनात्मक रूप से वे अधिक गुणवता भी हासिल कर अपनी प्रतिभा भी बढ़-चढ़ कर प्रदर्शित कर पाने में सफल रही है। इस कारण आज कई उच्च पदों पर आसीन होकर महिलाएं प्रभावी भूमिका निभा रही है।

अत: आजादी के 64 वर्ष बितने के बावजूद भी बिहार की महिलाओं में शिक्षा का समुचित विकास संतोषजनक दृष्टिगोचर नहीं हो पा रहा है। इन वर्षों में शिक्षा के विकास, प्रचार और प्रसार पर अरबो-खरबों की व्यय की गयी। अपार धनराशि, शिक्षकों की फौज, सम्पूर्ण राज्य में शैक्षिक प्रबंधतंत्र का फैलाव, सरकारी घोषणा लेकिन अभी तक असली मकसद प्राप्त नहीं हो पाया है। इस आधी-अधूरी सफलता को पूरी सफलता में परिवर्तित करने हेतु और इस दिशा में हमें पूरी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और प्रशासनिक प्रतिबद्धता के निरंतर अथक प्रयास करने होंगे तभी हम महिला शिक्षा के उच्च मानक को मूर्त रूप प्रदान करन में सफल होंगे। इससे ही महिला साक्षरता का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है तथा महिला सशक्त होकर समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देकर महिला सशक्तीकरण की सपना को साकार कर सकती हैं।

संदर्भ-सूची

1. गोपा जोशी, ''भारत में स्त्री असमानता'', हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2015.
2. कामेश्वर नयन शर्मा, ''बिहार में स्त्री शिक्षा और शैक्षणिक संस्थायें, पटना, 1962.
3. रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर, ''बिहार थ्रू दी एजेज'', ओरिएन्ट लॉगमैन प्राईवेट लिमिटेड, कलकता, 1959.
4. कपूर चन्द्र जैन, ''भारतीय शिक्षा का इतिहास'', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1961.
5. सुमेधा पाठक, ''स्त्री शिक्षा'', अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, 2012
6. वीरेन्द्र पाण्डेय, ''भारत में शिक्षा एवं शैक्षिक प्रणाली का विकासा'', बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2013
7. संदीप भाटिया, ''बालिका शिक्षा'', पुस्तक प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 2016
8. मनीष कुमार, ''शिक्षा जन-जन तक'' कुरूक्षेत्र, सितम्बर, 2005
9. गुन्नार मिर्डल, एशियन ड्रामा, 1960
10. इंडिया टुडे, वर्ष 2007.
11. जे. सी. अग्रवाल, द प्रोगेस ऑफ एडुकेशन इन फ्री इण्डिया, न्यू दिल्ली, 1973.
12. अंजली प्रसाद, ''ग्रोथ ऑफ फिमेल एजुकेशन इन मॉडल बिहार, जानकी प्रकाशन, पटना, 2007.

किसान आन्दोलन में कार्यरत संगठन : बिहार के संदर्भ में

रितेश कुमार

यूजीसी-नेट (जून 2020), इतिहास

औपनिवेशिक शासन ने भारतीय किसानों पर सर्वाधिक कहर ढाया। साम्राज्यवादी आर्थिक नीतियों, भूराजस्व की नई प्रणाली एवं उपनिवेशवादी प्रशासनिक व न्यायिक व्यवस्था ने किसानों की कमर तोड़ दी। फिर दस्तकारी उद्योगों के तवाह हो जाने से इन उद्योगों में लगे लोग भी खेती की ओर लौटने को मजबूर हुए, जिससे कृषि भूमि पर दवाब बढ़ गया और इस तरह कृषि के पूरे के पूरे ढ़ाचे में बदलाव आने लगा। जमींदारों ने किसानों पर अत्याचार करना शुरू किया, उनसे बेगार ली जाने लगी और मनमाने ढंग से अवैध लगान वसूली का एक दुश्चक्र चल पड़ा। सरकार द्वारा लगान की दरें बेतहाशा बढ़ा दिये जाने से रैय्यतवारी इलाकों में भी यही हाल हुआ। परिणामस्वरूप किसान धीरे-धीरे महाजनों के चंगुल में फंसते गये और इस तरह उनकी जमीनें, फसलें और पशु उनके हाथ से निकलकर जमींदारों, व्यापारियों, महाजनों और धनी किसानों के हाथ में पहुँचते गये। जमीन के मालिक छोटे किसानों की हैसियत महज काश्तकारों, बटाइदारों और खेतिहर मजदूरों की ही रह गई। किसानों ने इस दमन को चुपचाप नहीं सह लिया, उनहोंने कई स्थानों पर छुटपुट विद्रोह किये जिन्हें निर्दयतापूर्वक कुचल दिया गया।[1] उनकी एक भीषण प्रतिक्रिया 1857 के महान विद्रोह के समय में देखने में आई जब लाखों किसानों ने देशी राज्यों क साथ दिया।

संगठित किसान आन्दोलन वीसवीं सदी के प्रारम्भ में होने लगे थे। यद्यपि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना 1885 में हो चूकी थी, किन्तु इसने भी किसानों की समस्याओं पर कोई ध्यान नहीं दिया। सर्वप्रथम गोपाल कृष्ण गोखले ने अकाल के प्रकोप और ऋण से आकंठ डूबे किसानों की समस्याओं की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट किया। रूसी क्रांति के बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं का कृषि सम्बन्धी समस्याओं की ओर सरकार का ध्यान गया और कृषकों की दयनीय स्थिति एवं शोषण के प्रति गहरी चिन्ता व्यक्त की। वस्तुतः वींसवीं सदी में किसानों के असन्तोष को आन्दोलन की शक्ल देने में महत्वपूर्ण भूमिका स्वतंत्रता संघर्ष की ही रही और किसान आन्दोलन ने भी राष्ट्रीय स्वाधीनता सघर्ष को काफी प्रभावित किया।[2] निश्चित तौर पर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में किसानों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। ब्रिटिश साम्रज्यवादी शोषणकारी नीति का खामियाजा सबसे अधिक किसानों को ही चुकाना पड़ा था। शुरू से ही अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी एवं ब्रिटिश राज के अधिकारियों ने भारत के किसानों से अधिक राजस्व उगाहना अपना अधिकार माना। जमींदारों और गुमाश्तों ने किसानों का खून चूसने में कोई कोर -कसर बाकी नहीं रखी। बागान मालिकों ने इस तरह की परिस्थितियाँ पैदा कर दी जिनमें किसी भी रैयत के लिए जीना मुश्किल हो गया। शुरू से ही किसानों ने अपने शोषण एवं उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठायी लेकिन उन्हें तत्काल दबा दिया गया। कारण स्पष्ट था किसानों के बीच एकता का अभाव था। साथ ही उनका अपना कोई संगठन नहीं था।[3] किसान आन्दोलन के इतिहास में बिहार की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। यहां के किसानों ने हमेशा अपने ऊपर हो रहे जोर-जुलम का प्रतिकार किया। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में बड़े पैमाने पर बंगाल से निलहे बागान मालिकों ने बिहार में आकर शरण ली और यहां के किसानों को अपने शोषण का शिकार बनाया।[4] उनके खिलाफ किसानों ने सबसे पहले 1866-67 ई॰ में पंडोल नामक स्थान पर विद्रोह किया। 1883-84 ई॰ में किसानों ने दरभंगा राज के खिलाफ आन्दोलन किया। इसके उपरान्त जो उनके विद्रोहों का तांता लग गया। लेकिन ये सारे विद्रोह असंगठित थे। इसलिए तुरन्त ही इसे दबा दिया गया।

1916-17 में चम्पारण में अंग्रेजी नील कोठी वालों के खिलाफ किसानों का असंतोष पहली बार व्यापक और विस्फोटक बना। महात्मा गांधी के नेतृत्व में चम्पारण निलहों के खिलाफ सत्याग्रह किया गया और लम्बे समय से चले आ रहे तीन कठिया पद्धति का अन्त किया गया। यह चम्पारण सत्याग्रह किसान आन्दोलन और राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के इतिहास में एक नींव स्तम्भ बन गया। कांग्रेस ने भी 1917 के बाद कृषकों की समस्याओं की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए कृषक संघों की स्थापना को प्रोत्साहित किया। नागरिक अवज्ञा आन्दोलन के बाद किसानेां के स्वतंत्र संगठनों के निर्माण की प्रक्रिया में तेजी आई। किसान आन्दोलन के आगे बड़े हिस्सों और उग्र राष्ट्रवादियों में यह धारणा घर करती जा रही थी कि कांग्रेस का नेतृत्व पूंजीपतियों और बड़े-बड़े भूस्वामियों के स्वार्थों के प्रति अत्यधिक जागरूक था। उनका ख्याल था कि किसानों के हित की रक्षा के लिए उनके स्वतंत्र वर्ग संगठनों और नेतृत्व की आवश्यकता है। उनकी यह भी मान्यता थी कि जब किसान अपने वर्ग की मांगों के साथ स्वराज्य के राष्ट्रीय संघर्ष में भाग लेंगे तभी यह संघर्ष सफल हो सकेगा। कांग्रेस, सोशलिस्ट पार्टी (समाजवादी कांग्रेस), कम्युनिस्ट पार्टी और जवाहरलाल नेहरू जैसे वापमंथी राष्ट्रवादियों ने देश में किसान-संगठनों की आवश्यकता पर जोर दिया।[5] 1914-18 के विश्वयुद्ध के बाद और खासतौर से विश्वव्यापी आर्थिक संकट के अन्तिम दशक के बाद से किसानों का असन्तोष अभूतपूर्व तेजी से बढ़ा और इसका स्वरूप दिनोंदिन क्रांतिकारी हुआ। विश्वव्यापी आर्थिक संकट ने कृषि अर्थव्यवस्था पर जबरदस्त आघात किया। भारत के सभी हिस्सों में किसानों ने लगान बढ़ाने, कर्जदारों को गुलाम बनाने, जबरन जमीनें छीनने की कार्रवाई के विरूद्ध आन्दोलन किये। कुर्क जमीनों की नीलामी का वहिष्कार करने और सूदखोर महाजनों के खिलाफ आपस में एकता स्थापित करने के लिए उन्होंने स्वतः स्फूर्त ढंग से ग्राम समितियाँ बनाई।[6] आर्थिक संकट से उत्पन्न तवाही ने भी बहुत हद तक किसानों को संगठित होने एवं अपनी रक्षा के लिए प्रेरित किया जैसा रजनीपाम दत्त के शब्दों में कहा

जा सकता है। गांवों, कस्बों में किसान संगठन बनने लगे तथा परस्पर मिलकर जिला एवं प्रान्तीय संगठनों का आविर्भाव हुआ। इन संगठनों के आविर्भाव के साथ इन असंगठित विद्रोहों की तुलना में 20वीं सदी के बिहार में किसानों का संगठित आन्दोलन आरम्भ हुआ। एक तरफ, जहां 1917 के महत्मा गाँधी के चम्पारण के किसान सत्याग्रह ने साम्राज्यवाद विरोध के एक साथ कई सिद्धान्त स्थापित किये। एक यह राष्ट्रीय आन्दोलन मंच कांग्रेस का पहला किसान संघर्ष था। किसानों का यह सत्याग्रह किसी किसान संगठन के माध्यम से ना चलकर राष्ट्रीय आन्दोलन के मंच से चला। नील की कोठियाँ, कारखाने और तिनकठिया कानून तीनों गोरों के थे।[7] इसलिए 1917 का किसान सत्याग्रह भारत के सबसे बड़े सामंत साम्राज्यवाद के विरूद्ध था। चम्पारण सत्याग्रह ने वर्गीय सवाल को राष्ट्रीय सवाल में तथा राष्ट्रीय सवाल को वर्गीय सवाल में तब्दील कर दिया। राष्ट्रीय आन्दोलन के मंच कांग्रेस को किसानों ने जन आन्दोलन के मंच में बदल दिया।[8]

इस तरह एक तरफ, गांधी ने 1917 ई॰ में नीलहे साहबों के खिलाफ सत्याग्रह की शुरूआत की वहीं दरभंगा रियासत में 1920 में स्वामी विद्यानन्द के नेतृत्व में जमींदार-विरोधी व्यापक किसान आन्दोलन फूट पड़ा। राष्ट्रीय आन्दोलन के 1920 के दशक के उफान के दौर में किसानों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया, लेकिन जब किसानों का आन्दोलन जमींदारों से टकराने लगा तब कांग्रेस ने साफ तौर पर उनके नेतृत्व से इन्कार कर दिया। इस तरह कांग्रेस ने अपने जमींदार परस्त चेहरे को उजागर कर दिया, किसानों ने भी आन्दोलन की गांधवादी रणनीति का चौखट तोड़ दिया और 1921 ई॰ में जब गांधी ने किसानों से केवल कर न देने का आह्वान किया तो किसानों ने उसे लगानवंदी तक विस्तृत करर दिया, चम्पारण, पूर्णिया, फारविसगंज आदि इलाकों में किसानों ने पुलिस स्टेशन पर हमले किये, फसल लूट ली और अंग्रेजी सत्ता को सीधे चुनौती दी। एकाएक चौरा-चौरी की घटना की आड़ में गाँधी ने उस वक्त असहयोग आन्दोलन वापस लेने की घोषणा कर दी जब बिहार में कई ग्रास रूट किसान नेता जेलों में बन्द थे।

उन परिस्थितियों में राहुल सांकृत्यायन ने 1922 में 'प्रोविंशियल किसान सभा'[9] का गठन करके किसान आन्दोलन को नया वेग देने की कोशिश की, तो दूसरी ओर 1922-23 में मुंगेर में एक 'किसान सभा' की स्थापना शाह मुहम्मद जुबैर एवं श्रीकृष्ण सिंह के द्वारा की गयी। जिसके अध्यक्ष प्रमुख कांग्रेसी नेता शाह मुहम्मद जुबेर उपाध्यक्ष श्री कृष्ण सिंह तथा सचिव नन्द किशोर सिह और सुधेश्वरी चौधरी बने थे। इस तरह के कोशिश तो जरूर हुए, लेकिन, 1922-28 के दौर में मधुबनी और गया के इलाकों में कुछेक जमींदार विरोधी आन्दोलन के वावजूद इस दिशा में कुछ खास सफलता हासिल नहीं हो सकी, राहुल सांकृत्यायन ने इसकी समीक्षा करते हुए लिखा 'किये गये प्रयास अपरिपक्व थे।'[10]

स्वामी सहजानन्द सरस्वती द्वारा पटना क्षेत्र के किसानों को राहत के लिए किये गये संघर्षों ने राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्य नेताओं का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया। यही कारण था कि 'बिहार काश्तकारी कानून' में किसान के हित के खिलाफ संशोधन लाने की बात जब बिहार सरकार कर रही थी तब राम दयालू सिंह, श्री कृष्ण सिंह, यमुना कार्यी आदि नेताओं ने स्वामी सहजानन्द को प्रान्तीय स्तर पर किसान सभा संगठित करने के लिए तैयार किया। 5 नवम्बर 1929 में सोनपुर मेले में प्रथम बिहार प्रान्तीय किसान सम्मेलन हुआ। इसी सम्मेलन में बिहार प्रान्तीय किसान सभा की बजाप्ता स्थापना की गयी।[11] मेले में किसान सभा के उद्देश्यों एवं कार्यक्रमों पर स्वामी सहजानन्द की अध्यक्षता में भाषण हुआ। किसान सभा के सभापति स्वामी सहजानन्द हुए। श्री कृष्ण सिंह को जेनरल सेक्रेटरी, यमुना कार्यी, गुरु सहाय लाल, कैलाश बिहारी लाल को डिविजनल सेक्रेटरी चुना गया। इसके सदस्यों में बिहार के सभी प्रमुख कांग्रेसी नेताओं का नाम दिया गया एवं उनसे स्वीकृति ली गयी। ब्रजकिशोर प्रसाद के अतिरिक्त सबने स्वीकृति दी।[12] कुछ लोगों को बाद में शामिल किया गया। 1929 ई॰ में बिहार प्रदेश किसान सभा का गठन होते ही महत्वपूर्ण घटना यह हुई कि सरकार ने पट्टेदारी कानून में संशोधन का प्रस्ताव वापस ले लिया, किसानों ने इसे एक महत्वपूर्ण जीत समझा और उनका मनोबल अपनी बुलन्दी पर पहुंच गया। सम्मेलन में फसल लगान की दानाबंदी प्रणाली के खिलाफ प्रस्तावों को भी बहस के लिए पेश किया गया।

किसान सभा के अनगिनत स्थानीय नेताओं में यमुना कार्यी, यदुनन्दन शर्मा, कार्यानन्द शर्मा, शीलभद्र याजी शामिल थे। आने वाले दिनों में नागार्जुन जैसे बुद्धिजीवी और जयप्रकाश नारायण, रामवृक्ष वेनीपुरी, गंगाशरण सिंह, अवधेश्वर प्रसाद सिंह और रामनन्दन मिश्र जैसे सोशलिस्ट नेता भी शामिल हुए। सहजानन्द सरस्वती के साथ जुड़कर राहुल सांकृत्यायन ने भी कई किसान आन्दोलनों का नेतृत्व किया।

इन्हीं दिनों पटना में कार्यकारिणी की एक बैठक हुई। जिसमें तय हुआ कि राजनीतिक मामलों में किसान सभा कांग्रेस के विरूद्ध नहीं जायेगी। लाहौर कांग्रेस 1929 में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। स्वामी सहजानन्द सरस्वती उसमें सम्मिलित हुए एवं लौटकर 26 जनवरी 1930 के पूर्ण स्वतंत्रता दिवस की तैयारी में जुट गये। किसान सभा का काम तत्काल स्थगित कर दिया गया।

'बिहार प्रान्तीय किसान सभा' के संगठनकर्ताओं का प्रारंभिक उद्देश्य किसान आन्दोलन को इस रूप में संचालित करना था जिससे जमींदार और काश्तकार में संघर्ष नहीं बढ़े तथा कांग्रेस को लेजिस्लेटिव कौंसिल का चुनाव जीतने में मदद मिले। स्वतंत्र स्वामी सहजानन्द भी जिस समय बिहटा के आस-पास किसानों के बीच घूम रहे थे उसी समय तक वह पक्के कांग्रेसी थे। अब तक वह जमींदारों और किसानों के परस्पर विरोधी अधिकारों और हितों के सामंजस्य में विश्वास करते थे। इस प्रकार मूलत: इसका उद्देश्य सुधारवादी था, जुझारू रूप इसके बाद उभरा था।

15 दिसम्बर, 1929 को प्रान्तीय किसान कौंसिल ने किसान सभा का संविधान स्वीकृत किया। संविधान के अनुसार सभा का उद्देश्य किसानों की खामियों और शिकायतें को संगठित बल पर अहिंसात्मक तरीके से दूर करना था।[13] जनवरी 1930 में किसान सभा की एक विशेष बैठक में इस संशोधन का विरोध किया गया और स्वराज्य पार्टी ने भी कौंसिल में इसी आधार पर उक्त संशोधन का विरोध किया। अन्तत: सरकार ने इस प्रबल विरोध की संभावना को देखते हुए यह बिल वापस ले लिया। इस प्रकार बिहार प्रान्तीय किसान सभा की प्रारंभ में ही महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई। सभा की स्थापना का तत्कालीन उद्देश्य पूरा हुआ।

इस प्रकार, बिहार के किसान संगठनों ने न केवल किसानों की समस्याओं की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट किया बल्कि भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन को भी गति प्रदान की।

संदर्भ

1. ए॰ आर॰ देसाई; पीजेन्ट स्ट्रगल इन इंडिया, बम्बई, 1979, पृ॰ 66-72
2. पी॰ एल॰ गौतम; आधुनिक भारत (1757-1964), राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1998, पृ॰ 660
3. ए॰ आर॰ देसाई; भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ॰ 153
4. रजनीपाम दत्त; आज का भारत, दिल्ली, 1977, पृ॰ 291
5. रामाज्ञा शाशिधर; ''किसान आन्दोलन का नया दस्तावेज'', अभिनव कदम, वर्ष-16, अंक 26, दिसम्बर 2011, मई 2012, पृ॰ 485
6. कुमार परवेज; ''किसान सभा आन्दोलन और स्वामी सहजानन्द सरस्वती की वैचारिकता'', अभिनव कदम, वर्ष- 16, अंक-26, दिसम्बर 2011-मई 2012, पृ॰ 304
7. स्वामी सहजानन्द सरस्वती; मेरा जीवन संघर्ष, पटना, 1952, पृ॰ 136
8. त्रिवेणी शर्मा सुधाकर; युग पुरुष स्वामी सहजानन्द सरस्वती की जीवन झांकी, स्वामी सहजानन्द सरस्वती स्मृति ग्रंथ, प्रथम भाग, पृ॰ 4
9. सोनपुर मेला किसान सभा मीटिंग, गवर्नमेन्ट ऑफ बिहार और उड़िसा पॉलिटिकल डिपार्टमेंट (स्पेशल सेक्सन), फाइल नं॰ 281/1929 और स्वामी सहजानन्द सरस्वती, पूर्वोक्त, पृ॰ 334-349
10. के॰ के॰ दत्त; फ्रीडम मूवमेंट इन बिहार, (तीन खण्डों में) पटना, 1957, खण्ड-प्प्ए पृ॰ 235
11. स्वामी सहजान्द सरस्वती; किसान सभा के संस्मरण, बिहटा, पटना, 1946, पृ॰

भारत में महिलाओं की स्थितिः एक बदलता स्वरूप

डॉ० पूर्णिमा कुमारी

(एम.ए., पीएच.डी.), इतिहास विभाग, बी.आर.ए. विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

भारत में महिलाओं की स्थिति ने पिछली कुछ सदियों में कई बड़े बदलावों का सामना किया है। प्राचीन काल में पुरुषों के साथ बराबरी की स्थिति से लेकर मध्ययुगीन काल के निम्न स्तरीय जीवन और साथ ही कई सुधारकों द्वारा समान अधिकारों को बढ़ावा दिए जाने तक, भारत में महिलाओं का इतिहास काफी गतिशील रहा है। आधुनिक भारत में महिलाएं राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, लोक सभा अध्यक्ष, प्रतिपक्ष की नेता आदि जैसे शीर्ष पदों पर आसीन हुई हैं।

प्राचीन भारत में महिलाओं की स्थिति

विद्वानों का मानना है कि प्राचीन भारत में महिलाओं को जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों के साथ बराबरी का दर्जा हासिल था। हालांकि कुछ अन्य विद्वानों का नजरिया इसके विपरीत है। पतंजलि और कात्यायन जैसे प्राचीन भारतीय व्याकरणविदों का कहना है कि प्रारम्भिक वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा दी जाती थी। ऋग्वेदिक ऋचाएं यह बताती हैं कि महिलाओं की शादी एक परिपक्व उम्र में होती थी और संभवतः उन्हें अपना पति चुनने की भी आजादी थी। ऋग्वेद और उपनिषद जैसे ग्रंथ कई महिला साध्वियों और संतों के बारे में बताते हैं जिनमें गार्गी और मैत्रेयी के नाम उल्लेखनीय हैं।

अध्ययनों के अनुसार प्रारंभिक वैदिक काल में महिलाओं को बराबरी का दर्जा और अधिकार मिलता था। हालांकि बाद में (लगभग 500 ईसा पूर्व में) स्मृतियों (विशेषकर मनुस्मृति) के साथ महिलाओं की स्थिति में गिरावट आनी शुरु हो गयी और बाबर एवं मुगल साम्राज्य के इस्लामी आक्रमण के साथ और इसके बाद ईसाइयत ने महिलाओं की आजादी और अधिकारों को सीमित कर दिया।

हालांकि जैन धर्म जैसे सुधारवादी आंदोलनों में महिलाओं को धार्मिक अनुष्ठानों में शामिल होने की अनुमति दी गयी है, भारत में महिलाओं को कमोबेश दासता और बंदिशों का ही सामना करना पड़ा है। माना जाता है कि बाल विवाह की प्रथा छठी शताब्दी के आसपास शुरु हुई थी।

मध्ययुगीन काल में महिलाओं की स्थिति

समाज में भारतीय महिलाओं की स्थिति में मध्ययुगीन काल के दौरान और अधिक गिरावट आयी। जब भारत के कुछ समुदायों में सती प्रथा, बाल विवाह और विधवा पुनर्विवाह पर रोक, सामाजिक जिंदगी का एक हिस्सा बन गयी थी। भारतीय उपमहाद्वीप में मुसलमानों की जीत ने परदा प्रथा को भारतीय समाज में ला दिया। राजस्थान के राजपूतों में जौहर की प्रथा थी। भारत के कुछ हिस्सों में देवदासियां या मंदिर की महिलाओं को यौन शोषण का शिकार होना पड़ा था। बहुविवाह की प्रथा हिन्दू क्षत्रिय शासकों में व्यापक रूप से प्रचलित थी। कई मुस्लिम परिवारों में महिलाओं को जनाना क्षेत्रों तक ही सीमित रखा गया था। इन परिस्थितियों के बावजूद भी कुछ महिलाओं ने राजनीति, साहित्य, शिक्षा और धर्म के क्षेत्रों में सफलता हासिल की। रजिया सुल्तान दिल्ली पर शासन करने वाली एकमात्र महिला सम्राज्ञी बनीं। गोंड की महारानी दुर्गावती ने 1564 में मुगल सम्राट अकबर के सेनापति आसफ खान से लड़कर अपनी जान गंवाने से पहले पंद्रह वर्षों तक शासन किया था। चांद बीबी ने 1590 के दशक में अकबर की शक्तिशाली मुगल सेना के खिलाफ अहमदनगर की रक्षा की। जहांगीर की पत्नी नूरजहाँ ने राजशाही शक्ति का प्रभावशाली ढंग से इस्तेमाल किया और मुगल राजगद्दी के पीछे वास्तविक शक्ति के रूप में पहचान हासिल की। मुगल राजकुमारी जहाँआरा और जेबुन्निसा सुप्रसिद्ध कवियित्रियाँ थीं और उन्होंने सत्तारूढ़ प्रशासन को भी प्रभावित किया। शिवाजी की माँ जीजाबाई को एक योद्धा और एक प्रशासक के रूप में उनकी क्षमता के कारण क्वीन रीजेंट के रूप में पदस्थापित किया गया था। दक्षिण भारत में कई महिलाओं ने गाँवों, शहरों और जिलों पर शासन किया और सामाजिक एवं धार्मिक संस्थानों की शुरुआत की। भक्ति आंदोलन ने महिलाओं की बेहतर स्थिति को वापस हासिल करने की कोशिश की और प्रभुत्व के स्वरूपों पर सवाल उठाया। एक महिला संत-कवयित्री मीराबाई भक्ति आंदोलन के सबसे महत्वपूर्ण चेहरों में से एक थीं। इस अवधि की कुछ अन्य संत-कवयित्रियों में अक्का महादेवी, रामी जानाबाई और लाल देव शामिल हैं। हिंदुत्व के अंदर महानुभाव, वरकरी और कई अन्य जैसे भक्ति संप्रदाय, हिंदू समुदाय में पुरुषों और महिलाओं के बीच सामाजिक न्याय और समानता की खुले तौर पर वकालत करने वाले प्रमुख आंदोलन थे। भक्ति आंदोलन के कुछ ही समय बाद सिक्खों के पहले गुरु, गुरु नानक ने भी पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता के संदेश को प्रचारित किया। उन्होंने महिलाओं को धार्मिक संस्थानों का नेतृत्व करने; सामूहिक प्रार्थना के रूप में गाये जाने वाले वाले कीर्तन या भजन को गाने और इनकी अगुआई करने; धार्मिक प्रबंधन समितियों के सदस्य बनने; युद्ध के मैदान में सेना का नेतृत्व करने; विवाह में बराबरी का हक और अमृत (दीक्षा) में समानता की अनुमति देने की वकालत की। अन्य सिख गुरुओं ने भी महिलाओं के प्रति भेदभाव के खिलाफ उपदेश दिए।

समाज में प्रचलित कुछ ऐतिहासिक प्रथाएं

कुछ समुदायों में सती, जौहर और देवदासी जैसी परंपराओं पर प्रतिबंध लगा दिया गया था और आधुनिक भारत में ये काफी हद तक समाप्त हो चुकी हैं। हालांकि इन प्रथाओं के कुछ मामले भारत के ग्रामीण इलाकों में आज भी देखे जाते हैं। कुछ समुदायों में भारतीय महिलाओं द्वारा परदा प्रथा को आज भी जीवित रखा गया है और विशेषकर भारत के वर्तमान कानून के तहत एक गैरकानूनी कृत्य होने के बावजूद बाल विवाह की प्रथा आज भी प्रचलित है।

अंग्रेजी शासन काल में महिलाओं की स्थिति

यूरोपीय विद्वानों ने 19वीं सदी में यह महसूस किया था कि हिंदू महिलाएं "स्वाभाविक रूप से मासूम" और अन्य महिलाओं से "अधिक सच्चरित्र" होती हैं। अंग्रेजी शासन के दौरान राम मोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले, आदि जैसे कई सुधारकों ने महिलाओं के उत्थान के लिये लड़ाइयाँ लड़ीं. हालांकि इस सूची से यह पता चलता है कि राज युग में अंग्रेजों का कोई भी सकारात्मक योगदान नहीं था, यह पूरी तरह से सही नहीं है क्योंकि मिशनरियों की पत्नियाँ जैसे कि मार्था मौल्ट नी मीड और उनकी बेटी एलिजा काल्डवेल नी मौल्ट को दक्षिण भारत में लडकियों की शिक्षा और प्रशिक्षण के लिये आज भी याद किया जाता है ख्र यह एक ऐसा प्रयास था जिसकी शुरुआत में स्थानीय स्तर पर रुकावटों का सामना करना पड़ा क्योंकि इसे परंपरा के रूप में अपनाया गया था। 1829 में गवर्नर-जनरल विलियम केवेंडिश-बेंटिक के तहत राजा राम मोहन राय के प्रयास सती प्रथा के उन्मूलन का कारण बने। विधवाओं की स्थिति को सुधारने में ईश्वर चंद्र विद्यासागर के संघर्ष का परिणाम विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1956 के रूप में सामने आया। कई महिला सुधारकों जैसे कि पंडिता रमाबाई ने भी महिला सशक्तीकरण के उद्देश्य को हासिल करने में मदद की।

कर्नाटक में कित्तूर रियासत की रानी, कित्तूर चेन्नम्मा ने समाप्ति के सिद्धांत (डाक्ट्रिन ऑफ लैप्स) की प्रतिक्रिया में अंग्रेजों के खिलाफ सशस्त्र विद्रोह का नेतृत्व किया। तटीय कर्नाटक की महारानी अब्बक्का रानी ने 16वीं सदी में हमलावर यूरोपीय सेनाओं, उल्लेखनीय रूप से पुर्तगाली सेना के खिलाफ सुरक्षा का नेतृत्व किया। झाँसी की महारानी रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों के खिलाफ 1857 के भारतीय विद्रोह का झंडा बुलंद किया। आज उन्हें सर्वत्र एक राष्ट्रीय नायिका के रूप में माना जाता है। अवध की सह-शासिका बेगम हजरत महल एक अन्य शासिका थी जिसने 1857 के विद्रोह का नेतृत्व किया था। उन्होंने अंग्रेजों के साथ सौदेबाजी से इनकार कर दिया और बाद में नेपाल चली गयीं। भोपाल की बेगमें भी इस अवधि की कुछ उल्लेखनीय महिला शासिकाओं में शामिल थीं। उन्होंने परदा प्रथा को नहीं अपनाया और मार्शल आर्ट का प्रशिक्षण भी लिया।चंद्रमुखी बसु, कादंबिनी गांगुली और आनंदी गोपाल जोशी कुछ शुरुआती भारतीय महिलाओं में शामिल थीं जिन्होंने शैक्षणिक डिग्रियाँ हासिल कीं। 1917 में महिलाओं के पहले प्रतिनिधिमंडल ने महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों की माँग के लिये विदेश सचिव से मुलाकात की जिसे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का समर्थन हासिल था। 1927 में अखिल भारतीय महिला शिक्षा सम्मेलन का आयोजन पुणे में किया गया था। 1929 में मोहम्मद अली जिन्ना के प्रयासों से बाल विवाह निषेध अधिनियम को पारित किया गया जिसके अनुसार एक लड़की के लिये शादी की न्यूनतम उम्र चौदह वर्ष निर्धारित की गयी थी। हालांकि महात्मा गाँधी ने स्वयं तेरह वर्ष की उम्र में शादी की, बाद में उन्होंने लोगों से बाल विवाहों का बहिष्कार करने का आह्वान किया और युवाओं से बाल विधवाओं के साथ शादी करने की अपील की। भारत की आजादी के संघर्ष में महिलाओं ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। जैसे- भिकाजी कामा, डॉड्ढ एनी बेसेंट, प्रीतिलता वाडेकर, विजयलक्ष्मी पंडित, राजकुमारी अमृत कौर, अरुना आसफ अली, सुचेता कृपलानी और कस्तूरबा गाँधी कुछ प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानियों में शामिल हैं। अन्य उल्लेखनीय नाम हैं मुथुलक्ष्मी रेड्डी, दुर्गाबाई देशमुख आदि। सुभाष चंद्र बोस की इंडियन नेशनल आर्मी की झाँसी की रानी रेजीमेंट कैप्टेन लक्ष्मी सहगल सहित पूरी तरह से महिलाओं की सेना थी। एक कवियित्री और स्वतंत्रता सेनानी सरोजिनी नायडू भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्ष बनने वाली पहली भारतीय महिला और भारत के किसी राज्य की पहली महिला राज्यपाल थीं।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि भारत में महिलाओं की स्थिति ने पिछली कुछ सदियों में कई बड़े बदलावों का सामना किया है। प्राचीन काल में पुरुषों के साथ बराबरी की स्थिति से लेकर मध्ययुगीन काल के निम्न स्तरीय जीवन और साथ ही कई सुधारकों द्वारा समान अधिकारों को बढ़ावा दिए जाने तक, भारत में महिलाओं का इतिहास काफी गतिशील रहा है। आधुनिक भारत में महिलाएं राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, लोक सभा अध्यक्ष, प्रतिपक्ष की नेता आदि जैसे शीर्ष पदों पर आसीन हुई हैं।

महिलाओं की स्थिति में लगातार सुधार हो रही है। महिलाएं शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ रही है। सामाजिक क्षेत्र में उनकी स्थिति मजबूत हो रही है। राजनीतिक क्षेत्र में उनकी सहभागिता बढ़ रही हैद्य आर्थिक एवं बौद्धिक क्षेत्र में महिलाएं ऊंचे मुकाम हासिल कर रही है। महिलाओं के इस लगातार वृद्धि प्रगति को देखते हुए हम कह सकते हैं कि महिलाएं आगे बढ़ रही है लेकिन उनकी रास्तों में कुछ बाधाएं भी हैं। देश के सामने कुछ चिंताएं हैं जो महिलाओं की स्थिति को कमजोर भी कर रही है।

अत: उनकी स्थिति को और बेहतर बनाने के लिए सुझाव के तौर पर हम कह सकते हैं कि-

पुरुष प्रधान समाज में कार्य का समुचित विभाजन किया जाए तथा उसमें महिलाओं को सकरात्मक सहभागिता सुनिश्चित की जाए ताकि अपने अंदर शक्ति को पहचान और समझ सके।

महिलाओं के संपूर्ण प्रगति तभी संभव है जब इस दिशा में सार्थक व महत्वपूर्ण प्रयास किए जाएं और योजनाओं को निष्ठा पूर्ण ढंग से क्रियान्वित किया जाए।

सन्दर्भ सूची

1. खुराना एवं चौहान: भारतीय इतिहास में महिलाएं, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. बीएल ग्रोवर यशपाल अलका मेहता: आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन मूल्यांकन, एस चंद एंड कंपनी लिमिटेड नई दिल्ली।
3. आर सी अग्रवाल: भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन, एस चंद एंड कंपनी लिमिटेड।
4. डॉ एस सी राय चौधरी: आधुनिक भारत का सामाजिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक इतिहास, सुरजीत पब्लिकेशंस।
5. ए.आर. देसाई: भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, मैकमिलन।
6. Google Wikipedia

माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण की आवश्यकता, वर्तमान स्थिति एवं समस्याएँ

डॉ० डी०पी० मिश्रा

एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा-संकाय, के0एन0आई0पी0एस0एस0, सुलतानपुर (उ0प्र0)

वर्तमान में शिक्षा पूरी तरह से व्यावसायिक हो गई है। इसके कारण अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हो रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा को सस्ता, सुलभ और सुनियोजित बनाया जाए, तभी बाजार बन चुकी शिक्षा के महती उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकेगा।

प्राचीन काल की अर्थव्यवस्था मुख्यत: कृषि और बाहुबल पर आधारित थी। शिक्षा का क्षेत्र केवल कुछ ही विशेषाधिकार प्राप्त लोगों तक सीमित था और वह भी मात्र उनके मन, मस्तिष्क् और आत्मा को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित करने के लिए था। पश्चिमी देशों में औद्योगीकरण के फलस्वरूप लोगों के जीवन में कोई प्रकार के परिवर्तन हुए। दुहरी अर्थव्यवस्था (कृषि एवं उद्योग) अस्तित्व में आयी। वस्तुओं के उत्पादन एवंआय के स्रोत के रूप में मशीनों का प्रयोग किया जाने लगा इसके एक नई जीवन शैली विकसित हुई, जो कल-कारखानों पर आधारित थी। इस नई स्थिति में औद्योगिक एवं आर्थिक विकास आपस में जुड़ गये और श्रम का महत्व बढ़ा इन दोनों के बीच शिक्षा और प्रशिक्षण को भी स्थान मिला। ऐसी परिस्थिति में शिक्षा के क्षेत्र में व्यावसायिक शिक्षा के प्रसार की आवश्यकता महसूस हुई और उसका महत्व समय के साथ क्रमश: बढ़ता गया।

भारत सहित सभी विकासशील देशों में अब तक प्राय: सामान्य शिक्षा पर ही विशेष बल दिया जाता रहा है। वर्तमान समय में भी अधिकांश लोग सामान्य शिक्षा के क्षेत्र में पारम्परिक विषयों का ही अध्याय कर रहे है। जिसका परिणाम यह दिखायी पड़ रहा है कि सामान्य शिक्षा प्राप्त वर्ग हताश केसागर में गोते खा रहा है। उसे कहीं नौकरी नहीं मिल पा रही है। रोजगार की दौड़ में शिक्षित नौजवान वर्ग मारा-मारा फिर रहा है। शिक्षा प्राप्त व्यक्ति को जहाँ अपने लिए और समाज के लिए उपोगी सिद्ध होना चाहिए था, वहीं वह समाज पर बोझ बना हुआ है। इस दुरवस्था का मुख्य कारण यह है कि रोजगार के पर्याप्त अवसरें की व्यवस्था किये बिना ही शैक्षिक सुविधाओं का अनियोजित फैलाव बढ़ता चला जा रहा है। यदि सामान्य शिक्षा की इस अन्धी दौड़े पर रोक नहीं लगाई गई बेरोजगार नौजवानों के लिए रोजगार के पर्याप्त अवसर नहीं जुटाये गये तो हमारे समाज में तनाव एवं संघर्ष की स्थिति विकराल रूप धारण कर सकती है। इन सबसे बचने का एक ही उपाय है वह यह है कि अर्थव्यवस्था का क्रमश: उदारीकरण किया जाये, जिससे लोगों में प्रतियोगिता की भावना बढ़े और उसकी दक्षता तथा गुणवत्ता में सुधार हो। इस भावी परिदृश्य में व्यवसायिक शिक्षा पर सबसे अधिक बल देने की आवश्यकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (व्स्) ने अपनी रिपोर्ट में इस बात की पुष्टि की कि आने वाले 10 सालों में विश्व में करीब 500 अरब रोजगार की सम्भावना पैदा करने की जरूरत पड़ेगी, जिसमें भारत में भी रोजगार के नये अवसर तलाशने होंगे, क्योंकि तथाकथित आधुनिक शिक्षा से पास हो रहे छात्रों की बेरोजगार पौध को यदि सही रोजगार न मिल तो स्थिति भयावह हो सकती है। निजी क्षेत्रों की बढ़ती सुक्रियता और विदेशी कंपनियों की आमद ने शहरों में नये रोजगार उपलब्ध कराए हैं, मगर जिस कौशल और ज्ञान की इन्हें जरूरत होती है यह सिर्फ पब्लिक स्कूलों व शहरी स्कूलों में पढ़े लोग ही जानते है। इस प्रकार (गाँव, और कस्बों का ज्ञान यहाँ अधूरा रहता है। ऐसे में व्यवसायिक शिक्षा की महती आवश्यकता प्रतीत हों रही है।

व्यवसायिक शिक्षा व्यक्ति को किसी कार्य या व्यवसाय से सम्बन्धित प्राविधिक प्रशिक्षण प्रदान करती है ताकि वह उस व्यवसाय के द्वारा अपनी जीविका का उपार्जन कर सकें। यूनेस्को के अनुसार व्यवसायीकरण की परिभाषा इस प्रकार है ''एक ऐसा सर्वसमावेशी शब्द जिसमें शिक्षा प्रक्रिया के सामान्य शिक्षा सहित वे सभी पहलू समाहित हैं जो प्रौद्योगिकी और तत्सम्बन्धी सभी विज्ञान विषयों के से जुड़े हुये हैं। आर्थिक एवं सामाजिक जीवन के विधि क्षेत्रों के व्यवसायों से सम्बन्धित ज्ञान व्यवहारगत कौशलों की अर्जन अभिवृत्तियाँ और समझ भी व्यवसायीकरण प्रक्रिया के अंग है।''

बुनियादी शिक्षा, शिल्पशिक्षा, कार्यशिला, समाज-उपयोगी उत्पादक कार्य, शिक्षा का व्यवसायीकरण कार्य अनुभव कार्य-संसार जैसी प्रचालित कई अवधारणायें मोटे तौर एक ही केन्द्रीय भाव की ओर इंगित करती है और वह है शिक्षा को उत्पादकता से जोड़ा जाय।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है ''व्यक्ति चाहे पुस्तकें पढ़-पढ़ कर पण्डित बन गया हो, किन्तु उसकी शिक्षा तब तक अधूरा मानी जायेगी जब तक वह अपने हाथ से किसी अच्छे प्रयोजन के लिए उसका उपयोग न करें।'' गाँधी जी ने भी अपने हाथ और मस्तिष्क के एक साथ प्रयोग पर बल दिया था। अ बवह समय आ गया है जब हम माध्यमिक शिक्षा को ऐसी वास्तविक सीमातक शिक्षा बना दें कि अधिकतर छात्र नियमित शिक्षा को वहाँ विराम देकर जीवन-यापन के कर्म क्षेत्र में उतर सकें।

शिक्षा के व्यवसायीकरण गुण

(1) शिक्षा का उत्पादन कार्य से सम्बन्ध। (2) लोगों को आजीविका के लिए तैयार करना। (3) रोजगार परक। (4) बौद्धिक क्षितिज का विस्तार। (5) श्रम का महत्व। (6) देश के भौतिक संसाधनों का अधिकतम उपयोग।

व्यावसायिक शिक्षा देश का सन्तुलित विकास करने, गरीबी हटाने, पिछड़ेपन को दूर करने, जन साधारण के जीवन स्तर को सुधारने, आधुनिकता प्रदान करने, राष्ट्रीय सुरक्षा को सुरक्षित करने, विदेशी ऋणो से मुक्ति पाने जैसे उद्देश्यों की पूर्ति में सहायता होने सम्बन्धी तथ्य को स्वीकारते हुये स्वंतत्रता प्राप्ति के बाद से ही इसके विकास और स्तर मे अभिवृद्धि करने के लिए अनेक कदम उठाये गये हैं।

जहाँ भारत में सन् 1901-1902 में व्यवसायिक कालेजों की संख्या 46 तथा 1921-22 के बीच कालेजों की संख्या 64 थी, वहीं वर्तमान समय में सभी प्रकार के व्यवसायिक शिक्षण संस्थाओं की संख्या देश भर में कुल 2610 है। वर्तमान समय में व्यवसायिक शिक्षा निम्न प्रकार की शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से दिया जा रहा है।

(1) पालीटेकनीक संस्थाएँ। (2) औद्योगिक प्रशिक्षण संस्था। विशिष्ट संस्थान, विशिष्ट विद्यालय तथा स्कूल, जैसे तकनीकी संस्थाए, कला और शिल्प विद्यालय, कृषि, वानिकी विद्यालय नर्सिंग स्कूल, वाणिज्यिक प्रशिक्षण विद्यालय, आदि।

(1) विद्यालयी व्यवस्था में +2 स्तर वाली व्यवसायिक शिक्षा विद्यालयी शिक्षा के बाहर व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रमों के संचालन और विभिन्न औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं को सौंपा हुआ हैं। इन संस्थाओं में प्रशिक्षण की अवधि एक साल से लेकर तीन साल तक ही है तथा प्रवेश के लिए प्रत्येक व्यवसाय की प्रकृति के अनुसार उम्मीदवारों का शैक्षिक स्तर आठवीं कक्षा पास से लेकर बारहवीं कक्षा पास तक निर्धारित किया गया है। इंजीनियरी से सम्बन्धित 42 व्यवसायों में और गैर इंजीनियरी 22 व्यवसायों में प्रशिक्षण करने की व्यवस्था पालीटेकनीक संस्थाओं में उपलब्ध है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में माध्यमिक स्तर पर व्यवसायिक शिक्ष देने को उच्च प्राथमिकता दी गयी है। व्यवसायिक धारा में +2 स्तर पर सन् 1995 तक 10 छात्रों को और सन् 2000 तक 25 प्रतिशत छात्रों को ले आने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण की एक केन्द्र-प्रायोजित योजना फरवरी 1988 में शुरू की गयी। इस योजना में कर्मशालाओं के निर्माण के लिए, उपकरणों की खरीद के लिए, जिला स्तरीय व्यवसायिक सर्वेक्षण के लिए, पाठ्यचर्या/शिक्षण-सामाग्री/पाठ्य-पुस्तक निर्माण/विकास सम्बन्धी कार्यशालाओं के आयोजन के लिए शत-प्रतिशत (100 प्रतिशत) वित्तीय अनुदान की तथा कच्चा माल खरीदने, छात्रों को क्षेत्र-निरीक्षण के लिए ले जाने, शिक्षुता प्रशिक्षण के लिए वृत्ति देने और सभी स्तरों के कर्मचारियों को वेतन चुकाने के लिए 50 प्रतिशत अनुदान की व्यवस्था रखी गयी है।

पूरे देश में विभिन्न प्रकार के 6280 स्कूलों में 18055 व्यवसायिक अनुभाग चल रहे हैं जिसमें सन् 1995 तक उच्चतर माध्यमिक स्तर पर लगभग 1 लाख 2 हजार छात्र व्यवसायिक शिक्षा प्राप्त कर चुके है। इस योजना के अधीन इस समय लगभग 150 पाठ्यक्रम चलाए जा रहे है। पाठ्यक्रमों का चयन स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया गया है।

भारत में शिक्षा के व्यवसायीकरण के लिए सलन् 1993 में भोपाल में भोपाल में एक महत्वपूर्ण संगठन स्थापित किया गया, जिसका नाम है केन्द्रीय व्यवसायिक शिक्षा संस्था। यह संस्थान राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT) के घटक के रूप में व्यवसायिक कार्यक्रमों के लिए सहयोग प्रदान कर रहा है।

सर्वप्रथम भारत की केन्द्र सरकार व्यावसायिक शिक्षा से सम्बन्धित नीतियों की निर्धारण करती है और फिर राज्य सरकारों के शिक्षा मंत्रियों और सम्बन्धित राज्य शिक्षा बोर्डो के माध्यम से उन नीतियों तथा सिफारिशों का क्रियान्वयन होता है। इन नीतियों पर निर्धारण करने के लिए अखिल भारतीय व्यवसायिक शिक्षा परिष दनामक संस्था द्वारा जो एक सांविधिक निका है, की व्यवसायिक शिक्षा निदेशालय स्थापित है जो विशिष्ट संस्थाओं की व्यवसायिक शिक्षा के बारे में जिम्मेदार हैं, जबकि सामान्य माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था के तहत चलने वाली व्यवसायिक शिक्षा की जिम्मेदारी अलग-अलग राज्यों के माध्यमिक शिक्षा निदेशालयों की है।

अधिकांश पाठ्यक्रम अप्रासंगिक हो गये हैं व्यवसायिक शिक्षा के दौरान जिन कौशलों का विकास किया जाता है, वे कौशल आधुनिक श्रम बाजार की आवश्यकताओं से मेल नहीं खाते।

(1) रोजगार के अवसरों में कमी है। (2) हस्तकार्य के प्रति अनुचित दृष्टिकोण। (3) सामाजिक स्वीकार्यता की कमी नजर आती है।

औद्योगिक विकास के नये उभरते क्षेत्रों पर पूरी तरह ध्यान दिया जा रहा है। स्कूलों में व्यवसायिक शिक्षा का पाठ्य अपर्याप्त है उसके लिये पुराने, घिसे-पिटे उपकरणों को ही उपयोग में लाया जा रहा है।

निष्कर्ष:

यह कहा जा सकता है कि सरकार के सम्मिलित प्रयत्नों के बावजूद माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण समस्याग्रस्त बना हुआ है। भविष्य में व्यवसायिक शिक्षा का कार्यक्रम अधिक उपयोग और सुनियोजित बनाने के लिए शिक्षा जगत में सरकारी दायरे में समस्या के मुद्दे उठते रहने चाहिए ताकि उनका कोई सही हल निकल सके और व्यवसायिक शिक्षा का पथ प्रशस्त हो सके।

संदर्भ

1. सारस्वत, मालती (2000): भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएँ कैलाश प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद।
2. पाठक, पी0डी0 (2006): भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
3. गर्ग, वी0पी0 (दिसम्बर-2007): भारतीय शिक्षा पद्धति कुछ मुद्दे'' इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
4. शुभ किरण (30 सितम्बर-2007): ''मौजूदा शिक्षा व्यवस्था कितनी सही,'' विचार सारांश, फोर्थ डाइमेंशन मीडिया प्रा0लि0, जनकपुरी, नई दिल्ली।
5. अग्रवाल, उमेश चन्द्र (17 दिसम्बर-2007), '''भारतीय आधुनिक शिक्षा के बदलते आयाम'', कुरूक्षेत्र, प्रकाशन, विभाग राम कृष्णपुरम, नई दिल्ली।
6. बंधु, विनोद (17 दिसम्बर-2017): ''शिक्षा की 22 प्रणाली, फिर भी अशिक्षा'' आउटलुक, साप्ताहिक, सफदरजत नई दिल्ली।
7. पाण्डेय, विष्णुकांत (2 नवम्बर-2007): ''जो काम आये वही देना होगी शिक्षा'' हिन्दुस्तान जागरण, लखनऊ।
8. गुप्ता विशेष (16 फरवरी-2008): ''शिक्षा व्यवस्था का आईना'' हिन्दी दैनिक जागरण, लखनऊ।

गोरखपंथ की राजनीतिक विचारधारा

प्रमोद

शोधार्थी, इतिहास विभाग, डी0बी0एस0 कैम्पस कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड

डॉ० रीतेश साह

असिस्टेंट डायरेक्टर यू.जी.सी./एच.आर.डी.सी., कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड

भारत के ऐतिहासिक संस्कृति एवं धर्म दर्शन के क्षेत्र में गोरखपंथ को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जाता है। इनकों वैदिक समाज का अभिन्न अंग स्वीकार किया जाता है, जिनके मठ मंदिर न केवल भारत वरन विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित है तथा वर्तमान समाज को एक नवीन मार्ग का सन्देश देते है। नाथ पंथ के जितनें भी धार्मिक स्थान प्राप्त होते है, उनमें अधिकतर स्थानों पर श्रीगोरखनाथ की प्राण प्रतिष्ठा की गई है। गोरखनाथ द्वारा प्रणीत विचारो को लोककल्याण के लिए जनसामान्य में प्रसारित करने के उद्देश्य से नाथपंथ के अनेक साधको के द्वारा राजनीतिक मंच का आश्रय लिया गया। राजनीति उनके लिए लक्ष्य नही वरन् साधन मात्र है। अन्तिम उद्देश्य लोक कल्याण की भावना है। नाथपंथियों के द्वारा राजनीति को धर्म से आच्छादित करने का कार्य किया।

गोरखपुर में स्थित गोरखनाथ मंदिर नाथ पंथ का सर्वोच्च केंद्र माना जाता है। न केवल आध्यात्म के क्षेत्र में वरन राजनीतिक क्षेत्र में भी इसकी अपूर्व प्रतिष्ठा रही है। नाथपंथ की परम्परा के अनुसार गोरखनाथ मंदिर का महंत गुरु गोरखनाथ के प्रतिनिधि के रुप में कार्य करता है। इस मठ के महंत नाथपंथी योगियों के सर्वोच्च धार्मिक नेता के रुप में कार्य करते है। इस पीठ के पीठीधीश्वरों को व्यापक स्तर पर लोक स्वीकृति प्राप्त रही है। इस मठ के प्रथम महन्त वरदनाथ जी थे।[1] जिनके बाद बाबा अमरनाथ, परमेश्वरनाथ, बुद्धनाथ, रामचन्द्रनाथ, पीरनाथ, अजबनाथ, तथा पियरनाथ का नाम प्रमुख है। सन 1758 से 1786 तक इस पीठ के महन्त बालानाथ जी रहे। उनकों अलौकिक सिद्ध सम्पन्न योगी माना जाता था। इसके पश्चात माननाथ जी, संतोषनाथ जी, मेहरनाथ जी, गोपालनाथ जी, बलभद्रनाथ जी तथा दिलवरनाथ जी का नाम सम्मान के साथ लिया जाता है। इस क्रम से सुन्दरनाथ जी महन्त बनें। इस दौरान इस मंदिर का दायित्व योगिराज गम्भीरनाथ के पास था। जो कि अपने समय के महान् सिद्ध पुरुष माने जाते थे। इसके पश्चात सुन्दरनाथ जी तथा ब्रह्मनन्द जी गोरखपीठ के महन्त बनें।[2] इस गोरक्षापीठ के महन्त अध्यात्म, धर्म तथा योग के साथ साथ राष्ट्रवाद के मुद्दे पर काफी मुखर रहा करते है। इस पीठ ने सदैव देश की राजनीति को एक नवीन दिशा देने का कार्य किया है। गोरक्षापीठ के महन्तों का मानना है कि धर्म के बिना राजनीति, आत्मा के बिना शरीर के समान होती है। इसलिए राजनीति का जनोन्मुख होने के लिए उसका धर्मोन्मुख होना अत्यन्त आवश्यक है। इसी प्रकार के विचार महात्मा गाँधी ने धर्म एवं राजनीति के सम्बन्धों को लेकर दिया था।

राजनीतिक सक्रियता को लेकर गोरखपीठ के महन्तों की अपनी एक निश्चित रुपरेखा रही है। गोरखपीठ की मान्यता है कि राजनीति को सकारात्मक दिशा देने के लिए आवश्यक है कि राजनीति में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया जाए। वर्तमान में राजनीतिक रुप से इस पीठ की सशक्तता एक लम्बें समय से चल रही प्रक्रिया का ही परिणाम माना जा सकता है। भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के समय से लेकर वर्तमान में राम मंदिर आन्दोलन में भाग लेने तक इस पीठ का अपना एक निश्चित इतिहास रहा है। राम मंदिर आन्दोलन को हिन्दु नवजागारण का प्रतीक बनाने, समाज में व्याप्त छुआछूत मिटाने तथा विकास सबका – तुष्टिकरण किसी का नही जैसे संकल्प को पूरा करने के लिए इस पीठ के पीठाधीश्वरों ने हिन्दू महासभा एवं भारतीय जनता पार्टी के माध्यम से राजनीति में प्रत्यक्ष रुप से भाग लेने का कार्य किया।3 गोरक्षपीठ गोरखनाथ की इस विचार को पूरी तरह से समाहित करके कार्य करता है कि उतपति हिंदू जरणां जोगी अकल परि मुसलमानी अर्थात हम सभी हिंदू है, आन्तरिक जागरण के कारण सिद्ध जोगी तथा अक्ल से मुसलमान है।

स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान गोरक्षपीठ ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1930 के दशक में गोरखपीठ के महन्तों ने राजनीति में अपने विचारों के आधार पर प्रवेश किया। गोरखपीठ के तीन पीठाधीश्वरों ने भारत में जन्म लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति को हिन्दू के रुप में मान्यता प्रदान की। इसी आधार पर मुसलमानों को भी संगठित करने पर जोर दिया। इसके माध्यम से उन्होनें हिन्दुत्व को एक विचारधारा के रुप में स्थापित करने का प्रयास किया। जिस प्रकार गुरु गोरखनाथ ने विभिन्न संप्रदायों को मिलाकर एक स्वरुप प्रदान करने का कार्य किया। उसी प्रकार हिन्दुत्व के आधार पर भारत में स्थित प्रत्येक व्यक्ति को संगठित करने का प्रयास करता है। अपने इस विचारों को क्रियान्वित करने के लिए ही गोरक्षपीठों ने राजनीति में भाग लेना प्रारम्भ किया। इसका चरमोत्कर्ष वर्तमान समय में दिखाई देता है, जबकि गोरखपीठ के पीठाधीश्वर योगी आदित्यनाथ उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री के रुप में कार्य कर रहे है।[4] नाथ पंथों की सोच यह रही है कि हिन्दुत्व की राजनीति से ही राष्ट्र के प्राचीन गौरव को पुनः पाया जा सकता है। इस प्रकार इस पीठ के महन्तो की राजनीति किसी धर्म अथवा संप्रदाय विशेष के विरुद्ध कभी भी नही रही है। उनका राजनीतिक दृष्टिकोण सदैव से सांस्कृतिक एकता एवं राष्ट्रवाद से ओत प्रोत रही है। नाथ पंथ का द्वार सदैव से ही हिन्दु, मुस्लिम, बौद्ध जैन, निर्गुण, सगुण सभी के लिए समान रुप से खुला रहा है। जिस प्रकार हिन्दू जोगियों के द्वारा गेरूआँ वस्त्र धारण करते है, उसी प्रकार मुसलमान योगियो के द्वारा भी भगवा वस्त्र धारण करते है। जिस प्रकार गुरु गोरखनाथ के जोग में सभी पंथ एवं संप्रदाय के लोगो का स्वागत

किया जाता है, उसी प्रकार गोरखपीठ के हिन्दुत्व में सभी को समाहित किया जाता है। योगी आदित्यनाथ से पूर्व इस पीठ के महन्तों के द्वारा सांसद के रुप में हिन्दुत्व को विकसित करने की जो परम्परा प्रारम्भ की गई, उसी परम्परा को आगे बढ़ाने का कार्य योगी जी के द्वारा किया गया। गोरखपीठ का मानना है कि बिना राजसत्ता के राष्ट्र एवं समाज में गुणात्मक परिवर्तन लाना संभव नही है।[5] इस कारण राजसत्ता से पलायन करने के स्थान पर उसकों साधने की जरुरत है। उत्तर प्रदेश के वर्तमान मुख्यमंत्री के कुशल प्रशासन की झलक प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है। यह मात्र योगी आदित्यनाथ की नही वरन गोरखपीठ की महत्ता को प्रदर्शित करता है।

महन्त दिग्विजयनाथ का जन्म राजस्थान के सिसोदिया वंश में हुआ था। इस वंश के बप्पा रावल, राणा संग्राम सिंह तथा महाराणा प्रताप ने इतिहास को एक नवीन दिशा देने का कार्य किया था। ऐसे वीरो के वंशावली में दिग्विजयनाथ का जन्म 1894 में वैशाख पूर्णिमा को हुआ था। इनके बचपन का नाम राणा नान्हू सिंह मिलता है। बचपन में ही इनके माता पिता की मृत्यु हो गई थी। जिसके बाद इनके चाचा ने इनकी सम्पति पर अधिकार करने के उद्देश्य से इनकों उदयपुर के एक नाथपंथ योगी फूलनाथ को दे दिया। यद्यपि फूलनाथ को यह जानकारी नही दी गई कि वह उनका पुत्र नही वरन भतीजा है, जिससे वह मुक्त होना चाहते है। फूलनाथ गोरखपीठ के तत्कालीन महन्त बलभद्रनाथ के शिष्य थे। फूलनाथ पाँच वर्ष के इस बालक को गोरखपुर लेकर आए। जहाँ पर इसकों योगिराज गंभीरनाथ का आशीर्वाद प्राप्त हुआ।[6] उनकी देखरेख में उनका लालन पालन हुआ। योगिराज गंभीरनाथ के चरणों में बैठकर उन्होने हिन्दू संस्कृति के मूल तत्वों को अपने जीवन में उतारना प्रारम्भ किया। बाद में दिग्विजयनाथ गोरखपीठ के पीठाधीश्वर बने तो उन्होनें नाथपंथ को हिन्दुत्व एवं राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख करने का प्रयास किया।

गोरखनाथ मंदिर के पीठाधीश्वर बनने से पूर्व दिग्विजयनाथ जी महात्मा गाँधी से प्रभावित होकर राष्ट्रीय आन्दोलन में एक कार्यकर्ता के रुप में प्रवेश किया। 1920 में जब महात्मा गाँधी गोरखपुर आए तो उस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए दिग्विजयनाथ ने वालेंटियर कोर का गठन किया तथा गाँधी जी द्वारा बताए गए रास्ते पर चलना प्रारम्भ किया। महात्मा गाँधी द्वारा प्रारम्भ किए गए असहयोग आन्दोलन के समय दिग्विजयनाथ ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के क्षेत्र को एक नवीन दिशा प्रदान करने का कार्य किया। इन्होने इस दौरान अपना कालेज छोड़ दिया। असहयोग आन्दोलन के दौरान चौरी चौरा की घटना को एक युगान्तकारी अध्याय माना जाता है। जिसके सर्जकों में दिग्विजयनाथ जी का भी नाम था। इस घटना के बाद नौकरशाही आतंकित हो गई। चौरी चौरा काण्ड़ के अभियुक्तों में इनका नाम भी जुडा हुआ था। इस घटना क अभियुक्त के रुप में इनको कारावास में डाल दिया गया, जहॉ पर उनकों बहुत सी यातनाएँ दी गई।[7] यद्यपि गवाहों द्वारा शिनाख्त न किए जाने के कारण उनकों मुक्त कर दिया गया। महाराणा प्रताप का वंशज होने के कारण उनमें राष्ट्रभक्ति कूट कूट कर भरी हुई थी। अंग्रेजो की गुलामी से भारत को स्वतंत्रत कराने के लिए सक्रिय रुप से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में सम्मलित हुए। कांग्रेस की विभिन्न नीतियों से असन्तुष्ट होकर उससे अलग हो गए।

1931 के पश्चात उनकी राजनीति पूर्ण रुप से कांग्रेस के विरोध में हो गई। इसके पश्चात वह हिन्दु महासभा में शामिल हो गए। 1935 में महंत दिग्विजयनाथ गोरक्षपीठ के पीठाधीश्वर बनें। गोरखनाथ मंदिर के पास एक मुस्लिम मुहल्ले में हो रही गोकुशी के विरोध में इन्होनें 1937 में सत्याग्रह किया। इस प्रकार गोरखपीठ के महन्त होने के साथ साथ वह हिन्दू महासभा के नेता के रुप में भी अपनी राजनीतिक यात्रा पर निकल पड़ें। 1939 में उनके द्वारा अखिल भारतवर्षीय अवधूत भेष बारह पंथी योगी महासभा की स्थापना की। इस प्रकार उन्होनें भारत के विभिन्न मंदिरों मठों एवं योगियो को एक जुट करने का प्रयास किया। दिग्विजयनाथ आजीवन इस योगी महासभा के अध्यक्ष रहे। वर्तमान समय में इसके अध्यक्ष योगी आदित्यनाथ है। 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन के समय वह बहुत ही सक्रिय रहे। 1944 में अखिल भारतीय हिन्दू महासभा का आयोजन गोरखपुर में किया गया। इस मंच से मुस्लिम लीग के द्विराष्ट सिद्वान्त का विरोध किया गया।[8] 1946 में भारत विभाजन का विरोध हिन्दू महासभा के द्वारा किया गया तथा एक अखण्ड़ भारत की संकल्पना प्रस्तुत किया गया। 1946 के चुनावो में हिस्सा लेने के लिए इन्होनें अपना नामंकन कराया, परन्तु किन्ही कारणों से वह रद्द हो गया। परन्तु इसे गोरखपीठ के किसी मंहत द्वारा राजनीतिक चुनावी यात्रा का प्रारम्भ माना जाता है। महात्मा गाँधी की हत्या के पश्चात सरकार ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ तथा हिन्दू महासभा के नेताओं को नजरबन्द करने का कार्य किया। इस दौरान दिग्विजयनाथ को नजरबन्द कर दिया गया तथा गोरखपीठ की सभी सम्पत्तियों को जब्त कर लिया। बाद में न्यायलय के द्वारा उनकों दोषमुक्त कर दिया गया।

1948 के बाद दिग्विजयनाथ एक राजनेता के समान व्यवहार करने लगे तथा तत्कालीन सरकार की सार्वजनिक रुप से आलोचना करने लगे। नेहरु लियाकत पैक्ट, शेख अब्दुल्ला द्वारा कश्मीर के अलग राज्य की मांग तथा हिन्दी चीनी भाई के नारे का विरोध किया गया। गोरक्षा आन्दोलन को उन्होनें सम्पूर्ण भारत में प्रसारित करने का कार्य किया। अयोध्या में श्रीराम जन्मभूमि तथा वाराणसी में काशी विश्वनाथ मंदिर के उद्वार आन्दोलन में इन्होने महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1967 में महन्त दिग्विजयनाथ गोरखपुर संसदीय क्षेत्र हिन्दू महासभा के टिकट पर चुनाव लडे और विजयी हुए। इस प्रकार पहली बार गोरखपीठ का कोई महन्त संसद में पहुँचा था।[9] संसद के अन्दर वह हिन्दू महासभा के एकमात्र प्रतिनिधि के तौर पर रहे। इस दौरान विभिन्न जनकल्याणकारी कार्यो के लिए उन्होनें सरकार पर दबाव डालने का कार्य किया। संसद में इनके रुप में अध्यात्म एवं राजनीति का अद्भुत मेल देखने को मिला। महंत दिग्विजयनाथ में हिन्दू राष्ट्रवाद को लेकर इतना अधिक आग्रह मिलता है कि उससे तनिक भी विचलन वह बर्दाश्त नही कर पाते थे। हिन्दू महासभा की राजनीति को वह हिंदू राष्ट्रवाद की राजनीति तथा जनसंघ की राजनीति को वह हिन्दुत्व से विचलन की राजनीति मानते थे। दिग्विजयनाथ जी चुनाव में भी केवल उन्ही व्यक्तियों से वोट मॉगते थे, जिनकी आस्था हिन्दुत्व एवं हिन्दु संस्कृति में हो। उनका कहना था कि उनकों हार पसन्द है, पर हिन्दुत्व में आस्था और विश्वास न रखने वालों का वोट पसंद नही है।[10] यद्यपि सांसद के रुप में उनका राजनीतिक जीवन बहुत ही संक्षिप्त रहा। 1969 में वह ब्रह्मलीन हो गए। उसके बाद उनके शिष्य महन्त अवैद्यनाथ गोरक्षपीठ के पीठाधीश्वर तथा उनके राजनीतिक उत्तराधिकारी बने।

महंत दिग्विजयनाथ ने अयोध्या में श्रीरामजन्मभूमि के उद्धार कार्य में सहयोग प्रदान किया। गोरक्षा आन्दोलन को इनके द्वारा देशव्यापी प्रचार किया गया। इसके अतिरिक्त 1955 में काशी विश्वनाथ मंदिर उद्वार आन्दोलन में महंत से अपना सहयोग प्रदान किया और उसे एक दिशा प्रदान करने का कार्य किया। जब तत्कालीन सरकार के द्वारा हिदू कोड बिल लाया गया तो उसके विरोध में अनेक जनसभाओं का आयोजन किया गया और उसे हिन्दू समाज पर हमला

बताया गया। हरिद्वार मे अखिल भारतीय षट्दर्शन साधु सम्मेलन के अध्यक्ष पद से उन्होनें हिन्दू कोड बिल, हिन्दू विवाह और तलाक अधिनियम तथा हिन्दू संपत्ति उत्तराधिकार अधिनियम का विरोध किया। हिन्दू महासभा ने 1960 में महंत दिग्विजयनाथ को अपना अध्यक्ष निर्वाचित किया तथा उन्हें हिन्दू जाति के राष्ट्रपति के रुप में संबोधित किया।[11] 1961 में जब अखिल भारतीय स्तर पर मुसलमानों को संगठित करने के लिए एक विशाल सभा का आयोजन किया गया, तब महंत जी के द्वारा इसका विरोध किया। इसके विरोध में अक्टूबर 1961 में अखिल भारतीय हिन्दू महासभा का आयोजन उनके द्वारा किया गया, जिसकी अध्यक्षता कलकत्ता उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश डॉ0 चिंतामणि देशमुख के द्वारा किया गया।

महन्त दिग्विजयनाथ की आध्यात्मिक एवं राजनीतिक विरासत को आगे बढ़ाने का कार्य महन्त अवैद्यनाथ के द्वारा किया गया। महन्त अवैद्यनाथ का जन्म पौड़ी गढ़वाल के काण्डी गांव में हुआ था। इनके बचपन का नाम कृपाल सिंह विष्ट मिलता है। बचपन में ही इनके माता पिता तथा दादी की मृत्यु हो जाने के कारण उनका मन संन्यास की तरफ उन्मुख हो गया। उन्होनें गृहत्याग दिया तथा मानसरोवर की यात्रा पर चले गए। सन्यासी बनने के पश्चात उन्होने अपनी सारी सम्पत्ति अपने चाचाओं में बाँट दिया। गृहत्याग के पश्चात उनकी भेंट निवृत्तिनाथ जी से हुई, जिनके साथ रहकर उन्होने योगसाधना की। तत्कालीन गोरखपीठ के महन्त दिग्विजयनाथ से जब इनकी मुलाकात हुई, तो उन्होने इनकों अपना उत्तराधिकारी एवं शिष्य बनाने की इच्छा प्रकट की परन्तु इसके लिए वह तैयार नही हुए। बाद में कृपाल सिंह विष्ट ने शांतिनाथ के सानिध्य में नाथ संप्रदाय से सम्बन्धित समस्त ग्रंथों का अध्ययन किया। शांतिनाथ के आग्रह पर वह गोरखपुर आए तथा दिग्विजयनाथ से विधिवत शिष्यत्व ग्रहण किया।[13] सन 1962 में उत्तर प्रदेश के मानीराम विधानसभा से विधायक चुने गए। अपने गुरु दिग्विजयनाथ के ब्रह्मलीन होने के पश्चात वह गोरखपुर से सांसद चुने गए। 1980 में मीनाक्षीपुरम में बड़ी संख्या में हिन्दुओं के सामूहिक धर्मान्तरण के कारण वह व्यथित हो गए तथा राजनीति से सन्यास लेने तथा तथा हिन्दु धर्म के जातिवाद को समाप्त करने का संकल्प लिया। उन्होनें काशी के डोम राजा सुजीत चौधरी के घर यहा भोजन करके समरसतावादी तथा सहभोजों के आयोजन का प्रारम्भ किया।[14] राम मंदिर शिलान्यास के समय पहली ईट भी उन्होनें एक हरिजन से रखवाया। इससे जनमानस में यह सन्देश जा सके कि राम सभी के है।

1989 में जब तत्कालीन सरकार के द्वारा रामजन्म भूमि का ताला खुलवाया गया, तब जनमानस के दबाव में उन्होनें फिर से सक्रिय राजनीति में प्रवेश किया। राम जन्म भूमि आन्दोलन को नवीन दिशा देने वालों में रामचन्द्र परमहंस, महन्त अवैद्यनाथ तथा अशोक सिंहल की भूमिका को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। 1989 में अवेद्यनाथ ने श्रीराम जन्मभूमि पर भव्य मंदिर निर्माण के मुद्दे पर चुनाव लड़ा तथा विजय प्राप्त किया। अशोक सिंहल के शब्दों में यदि महन्त अवेद्यनाथ न होते तो श्रीरामजन्म भूमि आन्दोलन इतना विराट स्वरुप ग्रहण न कर पाता।[15] 1991 के मध्यावधि चुनाव तथा 1996 के चुनावों में अवेद्यनाथ जी को विजय प्राप्त हुई। महन्त अवेद्यनाथ जी सन् 1971, 1990 तथा 1991 में भारत सरकार के गृहमंत्रालय की परामर्शदात्री समिति के सदस्य रहे। महन्त अवेद्यनाथ हिन्दू महासभा के प्रत्याशी के रुप में 1962, 1967, 1969, 1974 तथा 1977 में पाँच बार विधानसभा के सदस्य रहे। 1969, 1989, 1991 तथा 1996 में वह गोरखपुर से सांसद चुने गए। राजनीति में वह सदैव अपराजेय रहे। महन्त अवेद्यनाथ की भूमिका को सन्दर्भित करते हुए लिखा है कि पूज्य अवेद्यनाथ जी ने गोरखपीठ का दायित्व सभालनें के बाद दिग्विजयनाथ जी के पदचिह्नों पर चलतें हुए कठिन से कठिन कार्यों का निर्वाहन किया। जब श्रीरामजन्म भूमि के ऊपर संकट आया तथा सम्पत्ति का विषय बनाकर श्रद्धा एवं आस्था स्थल को न्यायालय में उलझा दिया गया तो मुक्ति यज्ञ समिति के अध्यक्ष के रुप में उन्होनें इस आन्दोलन का नेतृत्व किया। इस दौरान महन्त अवेद्यनाथ जी ने गोरखपुर से लखनऊ तक की पदयात्रा का नेतृत्व किया, जिसके कारण यह आन्दोलन लगातार विकसित होता गया।[16] उनके नेतृत्व में जन्मभूमि का आन्दोलन विराट् रुप धारण कर सका। 1989 में कुंभ के शिलापूजन के माध्यम से भारत का सबसे व्यापक आन्दोलन खड़ा हुआ।

गोरखपीठ के पीठाधीश्वर के रुप में महंत अवैद्यनाथ सदैव स्वयं को हिन्दू महासभा का ही प्रतिनिधि स्वीकार करते थे। हिन्दू महासभा के एक नेता के रुप में उनका मानना था कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की राजनीतिक पार्टी जनसंघ मुस्लिम तुष्टीकरण का ही कांग्रेसी रुप है। महन्त अवैद्यनाथ के पश्चात गोरखनाथ पीठ की परम्परा तथा उसके राजनीतिक विरासत को आगे बढ़ाने का कार्य योगी आदित्यनाथ के द्वारा किया गया। पहली बार किसी मठ के के रुप में योगी आदित्यनाथ उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री बने।[17] योगी आदित्यनाथ के चुनावी शपथपत्र में पिता के स्थान पर महन्त अवेद्यनाथ का नाम अंकित है। नाथपंथ की परम्परा में गुरु को जैविक पिता से अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जाता है।

गोरखनाथ के जनकल्याणकारी विचारों का कार्यरुप में परिणित करने का कार्य वर्तमान समय में भी जारी है। गोरखनाथ मंदिर के पूर्व महन्तों की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए गोरखनाथ पीठ के वर्तमान पीठाधीश्वर महन्त योगी आदित्यनाथ लगातार कार्य कर रहे है। एक सांसद के रुप में योगी आदित्यनाथ ने जनता दर्शन का कार्यक्रम प्रारम्भ किया।[18] गोरखपुर क्षेत्र के लोगो की विभिन्न प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए गोरखनाथ मंदिर में चलने वाला यह कार्यक्रम एक महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हो रहा है। वर्तमान में न केवल गोरखपुर वरन् सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश के लोग अपनी समस्याओं के समाधान के लिए यहॉ पर उपस्थित होने लगे है।

उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री बनने से पूर्व योगी आदित्यनाथ गोरखपीठाधीश्वर के रुप में जनता की समस्याओं को मठ परिसर में ही सुनते थे। तत्काल उन समस्याओं को निपटानें का प्रयास करते। आखिरी समाधान होने तक सड़क से लेकर संसद तक आम जनता की आवाज को उठाने का कार्य करते। अपनी इस परम्परा को मुख्यमंत्री बनने के बाद भी योगी आदित्यनाथ के द्वारा लगातार जारी रखा गया। अब वह जहॉ भी होते उस स्थान पर जनता की समस्यओं को निपटानें का प्रयास करते है। राजनीतिक रुप से सशक्तता के बाद भी वह स्वयं को पहले एक योगी के रुप में ही मानतें है। उनका मत है कि राजनीति में जनता ही शासक होती है। "पिंड ही ब्रह्मंड है," गोरखनाथ जी का यह नाद वर्तमान में भी गुंजायमान है। उनकी शिष्य परम्परा का एक योगी उसी अनहद नाद को सुनाता हुआ आगे बढ़ रहा है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

(1) राघव, रांगेय, गोरखनाथ और उनका युग, आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली, 2017

(2) उपाध्याय, बलदेव, विश्वभारती पत्रिका, आषाढ़, विक्रम संवत, 1999

(3) देव, संदीप, राज - योगी, गोरखनाथ से आदित्यनाथ तक, ब्लूमसब्यूरी, नई दिल्ली, 2017
(4) कुकरेती, विष्णुदत्त, नाथपंथ गढ़वाल के परिप्रेक्ष्य, श्री गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश, 2019
(5) बनर्जी, अक्षय कुमार, नाथयोग, गोरखपुर मंदिर, गोरखपुर,
(6) महायोगी गोरखनाथ, योगवाणी, नाथसिद्धचरित विशेषांक, जनवरी 1984 से संकलित, राष्ट्रीयता के अनन्य साधक महंत अवेद्यनाथ, तृतीय खंड, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
(7) गोरक्षपीठाधीश्वर महंत दिग्विजयनाथ जी महाराज द्वारा हिंदू महासभा के 46 वें वार्षिक अधिवेशन ग्वालियर में 23 अप्रैल 1961 को दिए गए अध्यक्षीय भाषण का अंश
(8) ब्रिंग्ज, जार्ज वास्टन, गोरखनाथ एंड कनफटा योगीज, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, संवत 1973
(9) सिंह, डा0 भगवती प्रताप, महंत दिग्विजयनाथ स्मृति ग्रंथ, गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर, संवत 2929
(10) गोरखबानी विशेषांक (योगवाणी), जनवरी 1982, गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर
(11) श्रीवास्तव, रामलाल, गोरख विशेषांक (योगवाणी), जनवरी 1977, गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर
(12) महायोगी गुरु गोरखनाथ एवं उनकी तपस्थली, गोरखपुर मंदिर (स0), गोरखपुर, 2014
(13) कौशिक, डॉ0 कुंवर बहादुर, गुरु गोरखनाथ की सामाजिक उत्क्रांति, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
(14) मिश्र, आद्या प्रसाद, राष्ट्रीयता के अनन्य साधक महंत अवेद्यनाथ, प्रथम खंड, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
(15) महंत अवेद्यनाथ, नाथयोग के परिप्रेक्ष्य में निष्काम कर्मयोग, प्रथम खंड, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
(16) त्रिपाठी, डॉ0 चन्द्रमौलि, राष्ट्रीयता के अनन्य साधक: महंत अवेद्यनाथ, तृतीय खंड, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
(17) बंधोपाध्याय, अक्षयकुमार, आदर्श योगी: श्री श्री योगिराज गंभीराज चरितामृत, दिग्विजयनाथ ट्रस्ट, गोरक्षनाथ मंदिर, गोरखपुर, संवत 2017
(18) नेशन वांट्स नो, अर्णव गोस्वामी विद सी0एम0 योगी आदित्यनाथ, साक्षात्कार, 28 जून, 2017, रिपब्लिक टीवी।

कृष्णभक्ति में युगलोपासना और रामभक्ति में रसिकोपासनाः संक्षिप्त तुलनात्मक विवेचना

डॉ० मनोज कुमार पाण्डेय

एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी), कालीचरण पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ

राधा-कृष्ण की युगलोपासना को उत्तर भारत में प्रचारित-प्रसारित करने का श्रेय मुख्यरूप से निम्बार्काचार्य को है। माधुर्यभावपरक यह भक्ति-भावना जहाँ 'निम्बार्काचार्य के सम्प्रदाय' में प्रारम्भ हुई, वहीं 'वल्लभाचार्य', 'स्वामी हरिदास' और 'चौतन्य महाप्रभु' के सम्प्रदायों से होती हुई 'हितहरिवंश' के 'राधावल्लभ सम्प्रदाय' में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची।

निम्बार्क सम्प्रदायी राधा-कृष्ण को पति-पत्नी मानते है। जहाँ 'नान्यागतिः कृष्णपदारविन्दात' उनका सम्प्रदाय सूत्र हैं, वहीं वे श्रीकृष्ण की शक्तियों में राधाजी को प्रधान शक्ति मानते हुए उन्हें श्रीकृष्ण की स्वकीया पट्ट-महिषी मानते है- 'अत्रवृन्दावननाथस्य कृष्णस्य वामांग स्थित्या श्री राधायास्तत्पट्टमहिषीत्वं सूच्यते।'[1] इतना ही नहीं वे यह भी मानते है कि राधाकृष्ण का यह दाम्पत्यपरक सम्बन्ध दिव्य, अलौकिक नित्य और वर्णनातीत है।[2]

'हिन्दी साहित्यकोश' के अनुसार- ''निम्बार्क ही प्रथम वैष्णव है, जिन्होंने कृष्ण और राधा को सर्वप्रथम विशेष महत्त्व दिया। सहस्त्रों सखियों से घिरी हुई राधा और उसके वल्लभ कृष्ण निम्बार्क के आराध्यदेव है। दोनो की लीला ही सृष्टि का रहस्य है। ..... रामानुज के पूर्व भक्ति का अर्थ परमेश्वर के प्रति अनन्य प्रेम ही था। रामानुज ने इस अर्थ में औपनिषदिक उपासना (सतत् अर्चन और चिन्तन) को मिला दिया। निम्बार्क ने इसको अमान्य समझकर भक्ति का मूल अर्थ ही ग्रहण किया। रामानुज ने ऐश्वर्य-प्रधान भक्ति की शिक्षा दी। उनके मत में ईश्वर की भक्ति इसलिए होती है कि ईश्वर उदात्त, अतुलनीय, महान् से महान् और अनन्त है और इन गुणों के कारण उसके प्रति आकर्षण शृद्धा और भक्ति होती है। निम्बार्क ने इस ऐश्वर्य प्रधान भक्ति के स्थान पर माधुर्य-प्रधान भक्ति की शिक्षा दी। भगवान के ऐश्वर्य से उसकी ओर आकृष्ट होना धर्म साधना का आरम्भ-मात्र है। सच्ची साधना तो उसके प्रेम तथा जीवन्त साहचर्य में बँधना है, उसकी मधुरिमा का आस्वादन करना है और उसे मधुर रूप में देखना है। जीव और ईश्वर के सम्बन्ध में माधुर्य भाव का पुट देना निम्बार्क का ही काम था।''[3]

हिन्दी साहित्य में हरिव्यासदेव श्रीभट्ट, रूपरसिक, वृन्दावनदेवजी, गोविन्ददेवजी, नागरीदासजी, शीतलादासजी, विहारीलाल केशवदास, घनानन्द, रसिकगोविन्द, रसखान आदि निम्बार्क मतानुयायी कवि हुए, जिन्होंने अपने साहित्य-सृजन से राधा-कृष्ण की मधुरमयी लीलाओं का गुणगान किया और अपने मत को प्रतिष्ठित किया। सुरति-विहार, नित्य विहार लीला, नित्य संयोग में नित्य वियोग की उद्भावना, सखीभाव आदि प्रकरणों को अपने काव्य का विषय भावानुसार बनाया। इस सम्प्रदाय की काव्य सम्पदा की गुणवत्ता को देखते हुए ही पं0 बलदेव उपाध्याय ने कहा है- ''निम्बार्क कवियों में भी अष्टछाप से टक्कर लेने वाले अनेक कवि विद्यमान है।''[4]

वल्लभाचार्य ने अपने 'पुष्टिमार्ग' में श्रीकृष्ण के संग स्वामिनी श्री राधाजी की आराधना को आवश्यक बताया। उनके अनुसार श्रीकृष्ण शक्तिमान् है और राधाजी शक्तिरूपिणी, ये दोनो पृथक तत्त्व नहीं हैं, इन दोनों के परस्पर अलग नहीं किया जा सकता। इनका संयोग वैसे ही स्वाभाविक है, जैसे पृथ्वी और गंध का संयोग, तेज और प्रकाश का परस्पर संयोग। वल्लभाचार्य ने अपने 'पुरुषोत्तमनामसहस्त्र स्तोत्र' में 'राधाविशेषसम्भोगप्राप्तदोषनिवारकः' के रूप में श्रीकृष्ण का स्मरण किया है, वहीं उन्होंने 'कृष्णाष्टक' में श्रीकृष्ण को 'श्रीराधिकारमण', 'राधावरप्रियवरेण्य' और 'राधिकावल्लभ', 'राधा-संयुक्त' आदि विशेषणों के साथ याद किया है। उनके अनुसार अपनी विलास की इच्छा के निमित्त श्रीकृष्ण जिस सृष्टि का निर्माण करते है वह उनकी शक्ति राधाजी द्वारा ही निर्मित होती है और इस सृष्टि में अपने भक्तों को आनन्द देने के लिए शक्तिमान् श्रीकृष्ण जो लीला करते हैं उसमें उनकी शक्ति स्वरूपा श्रीराधाजी सहचरी होती है। बल्लभसम्प्रदाय को प्रतिष्ठित करने वाले वल्लभाचार्य जी के पुत्र गोस्वामी बिट्ठलनाथ के अनुसार- ''निभृत निकुंज में निवास करने वाली तथा अपनी 'कनक सुगौर-स्निग्ध-मेघौघनीलच्छवि' से अखिल वृन्दावन को उद्भासित करने वाले नील-पति-नव-मृदुल-दुकूलधारी राधा- कृष्ण ही वल्लभीय मधुरोपासना के उपास्य है।''[5] इन्ही गोस्वामी बिट्ठलनाथ ने 'अष्टछाप' की स्थापना की जिसके आठ भक्त कवियों ने अपने साहित्य-कर्म से वल्लभ सम्प्रदाय के प्रचार प्रसार में अप्रतिम योग दिया। इन अष्टकवि रत्नों में 'सूरदास', 'नन्ददास' सरीखे प्रसिद्ध भक्त कवि हैं, जिन्होंने अपने समय में कृष्णभक्ति के मधुरभाव को जन-जन में प्रचारित प्रसारित किया, जो आज भी कृष्णभक्तों के लिए आकर्षण का केन्द्र है। वल्लभसम्प्रदाय में राधा-कृष्ण के दाम्पत्य-माधुर्य की अपेक्षा वात्सल्यभावपरक माधुर्य को अधिक महत्त्व दिया गया। वैसे दाम्पत्यभावपरक माधुर्य में यहाँ संयोग और वियोग दोनों पक्ष देखे जा सकते है फिर भी यहाँ वियोग-पक्ष में उद्धव और गोपियों के बीच निर्गुण और सगुण ब्रह्म की उपासना को लेकर हुए संवाद को अधिक महत्त्व दिया गया है, इस संदर्भ में गोपियों का वाग्वैदग्ध्य स्पृहणीय हैं। इस संवाद से युक्त सूरदास कृत 'सूरसागर' का 'भ्रमरगीत' प्रसंग वल्लभ सम्प्रदाय की अनमोल निधि है। संयोग-पक्ष के वर्णनों में जहाँ राधाकृष्ण के प्रथम दर्शन से लेकर मधुर-मिलन तक की चर्चा है, वहीं रासक्रीड़ा, दानलीला, जल-बिहार, नोंक-झोंक, झूलन-होली, कुंज-विहार आदि के वर्णन बड़े मनोहर और आनन्दप्रद बन पड़े है। वियोग-पक्ष में पूर्वराग, मान, प्रवास आदि सभी विरह की दशाऐं बड़े मर्मस्पर्शी रूप में उभरकर सामने आती हैं। किन्तु माधुर्य के दर्शन प्रत्येक स्थल पर होते है क्योंकि वल्लभाचार्य के इष्ट राधा-कृष्ण के अंग-प्रत्यंग में माधुर्य का वास है।[6]

अपने गौड़ीय सम्प्रदाय में चौतन्य महाप्रभु ने श्रीकृष्ण के प्रति राजमयी भक्ति पर बल दिया। इस मत में कृष्ण तत्त्व की प्रधानता है- श्रीकृष्ण स्वयं भगवान्, पूर्ण-ज्ञान, पूर्णानन्द, परमेश्वर और परमतत्त्व है।[7] श्रीराधा श्रीकृष्ण की घनीभूत चरमावस्था का प्रतीक हैं।[8] नाना भावरस बिखेरने वाली श्रीकृष्ण की अन्य प्रेमिकाओं का प्रादुर्भाव राधाजू से ही हुआ है। राधाजी ही श्रीकृष्ण की स्वरूप-शक्ति है। श्रीकृष्ण की सभी आकांक्षाएं एवं कामनाएं श्री राधिकाजी में ही चरितार्थ होती है। श्रीकृष्ण यदि विश्व-मोहन है तो राधारानी श्रीकृष्ण को मोहित करने वाली है। अत: राधाजी परमपूज्य है और श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं। राधा-कृष्ण के युगल-स्वरूप के बिना लीलारस का आनन्द नहीं उठाया जा सकता। श्रीकृष्ण को सर्वतोभावेन प्रसन्न रखना ही राधाजी का एकमात्र लक्ष्य है।

राधा-कृष्ण की मधुराभक्ति का पोषक एक अन्य प्रसिद्ध सम्प्रदाय स्वामी हरिदास द्वारा प्रवर्तित 'हरिदासी सम्प्रदाय' है। इस सम्प्रदाय को 'सखी सम्प्रदाय' और 'टट्टी सम्प्रदाय' के नाम से भी जाना जाता है। दार्शनिक मत-मतान्तरों से परे यह सम्प्रदाय राधा-कृष्ण को अभिन्न मानते हुए उनकी युगलोपासना पर दृढ़ है।[9] यहाँ 'तत्सुख-सुखीभाव' से राधा-कृष्ण के युगलस्वरूप की उपासना होती है और इसी भाव को मन में धारण किये भक्त अपने इष्ट की ललित-लीलाओं का अवलोकन कर मधुर-रस का आस्वादन करता है। इस सम्प्रदाय के भक्त सखी-भाव को हृदय में धारण किये निरन्तर श्री बाँके बिहारी जी की रसमयी प्रेमानुगा भक्ति को अनुसरण ये करते हुए सतत् सेवालीन रहते हैं। इस मत के भक्तों ने युगल सरकार श्रीराधाकृष्ण की रूपमाधुरी, उनके नित्य-विहार, उनकी मधुर प्रेम लीलाओं का वर्णन, इष्ट के प्रति अपनी अतृप्त प्रेम-पिपासा का वर्णन, आदि विषयों को अपने साहित्य-सृजन का प्रमुख आधार बनाया।

स्वामी हरिदास, नागरीदास, बिहारिनदेव, भगवत रसिक, विट्ठल विपुलदेव आदि इस सम्प्रदाय के सर्जक भक्त कवि हुए, जिन्होंने अपने साहित्य-सृजन से सम्प्रदाय की साहित्यनिधि को सम्पन्न बनाया। इस संदर्भ में वृन्दावन में विहार करते राधा-कृष्ण की रूप माधुरी पर स्वयं को न्यौछावर करते नागरीदास का एक पद देखा जा सकता है-

राग रंग अति सुख बाढ्ध्यो अति सोभा सिंधु अपार।
विपुल प्रेम अनुराग नवल दोउ करत आहार विहार।।
श्रीवृन्दाविपिन विनोद करत नित छिन छिन प्रति सुखरासि।
काम केलि माधुर्य प्रेम पर बलि बलि नागरीदासि।।[10]

इस प्रकार माधुर्यभाव की भक्ति अलग-अलग सम्प्रदायों में न्यूनाधिक मत-मतान्तरों के साथ-साथ विकसित होती रही। इस भक्ति को प्रौढ़ता प्रदान की 'राधावल्लभ सम्प्रदाय' के प्रवर्तक हितहरिवंश जी ने। भगवान् श्रीकृष्ण की मुरली का अवतार माने जाने वाले हितहरिवंश जी ने अपने 'राधावल्लभ सम्प्रदाय' में राधाजी को अपना सर्वस्व मानते हुए और श्रीकृष्ण को राधावल्लभ जानते हुए राधा-कृष्ण की युगलोपासना का विधान किया और तत्सुखसुखी भाव से राधाकृष्ण की सेवा का संकल्प लिया तथा अपने इष्ट से पलभर के बिछोह को भी असह्य बनाते हुए चकई और सारस की प्रेम भावना का अनुकरण किया। उन्होंने नित्य संयोग में नित्य वियोग की अनुभूति को अपने सम्प्रदाय का प्रमुख नियम बनाया। राधावल्लभ लाल जी के स्वरूप के वामभाग में 'गादी' की स्थापना की जिसे श्री राधाजी का पद एवं गौरव प्रदान किया है। हितजी ने प्रेम को अपने सम्प्रदाय का प्रमुख आधार बताया है। (सम्प्रदाय में इस प्रेम को 'हित' नाम से सम्बोधित किया गया है। यह प्रेम संयोग-वियोगपरक सांसारिक प्रेम से सर्वथा भिन्न है, शाश्वत-परात्पर और सर्वव्याप्त है- ''यात्किंचिद् सृष्टौ सर्वहितं मयं बिन्दु:।'' यह प्रेम ही जीव को आराध्य की ओर उन्मुख करता है और इसका पूर्ण परिपाक राधा-कृष्ण से प्रेम में होता है।)

हितहरिवंशजी ने पूर्व प्रचलित सम्प्रदायों और उनके दार्शनिक मत-मतान्तरों से अपने सम्प्रदाय को दूर रखा। विशुद्ध प्रेम और भगवद्-सेवा पर आधारित अपने सम्प्रदाय में उन्होंने जो बिन्दु निर्धारित किये उनमें से कुछ इस प्रकार है- राधाजी की प्रधानता, राधा-कृष्ण के स्वरूप में अविच्छिन्नता का आग्रह, राधा-कृष्ण की मधुर छवि के प्रति आसक्ति का भाव इष्ट के प्रति अनन्यता का भाव, राधा-कृष्ण के रास में निमग्न रहने की वृत्ति सहचरी भाव की सेवा का प्राधान्य नित्य-संयोग में नित्य वियोग की अनुभूति चकई-सारस के प्रेम का आदर्श वृन्दावन के प्रति अनुराग भाव, सम्प्रदाय की चर्चा सुपात्रों के मध्य ही करने पर बल, सदैव अपने इष्ट को सुख पहुँचाने का प्रयास इत्यादि। हितजी ने अपने सम्प्रदाय में दीक्षित रसिकों के लिए इन नियमों के प्रति कटिबद्ध रहने का आह्वान किया। 'हरिराम व्यास जी' तो इस बात का जयघोष करते है-

रसिक अनन्य हमारी जाति।
कुलदेवी राधा, बरसानो खैरौ, ब्रजवासिन सौ पाँति।
गोत गोपाल, जनेऊ माला, सिखा सिखंड, हरिमन्दिर भाल।
हरिगुन नाम वेद धुनि सुनियत, गूँज पखावज, कुरू करताल।
X X X
सेवा विधि निषेध जड़ संगति वृत्ति सदा वृन्दावन वास।
वंसी रिषि जजमान कल्पतरु, व्यास न देत असीस सराप।।[11]

इस सम्प्रदाय के साहित्यकारों ने कृष्णभक्ति साहित्य के साहित्य कोश के संवर्द्धन में अविस्मरणीय भूमिका निभाई। हितहरिवंशजी स्वयं अच्छे कवि थे उनके अतिरिक्त श्रीदामोदरदास (सेवक जी) श्रीहरिराम व्यास, श्री चतुर्भुजदास, श्री ध्रुवदास, श्री नेही नागरीदास, श्री कल्याण पुजारी, श्री अनन्य अली, श्री रसिकदास, श्री वृन्दावनदास (चाचाजी) आदि ने अपने साहित्य-सृजन से इस सम्प्रदाय की काव्यनिधि में उल्लेखनीय वृद्धि की।

हिन्दी साहित्य में रामभक्ति में रसिकोपासना के प्रतिष्ठाता 'अग्रदास जी' है। किन्तु रसिकोपासना की यह परम्परा बहुत पहले से चली आ रही थी। इस संदर्भ में डॉ0 भगवती प्रसाद सिंह का कथन उल्लेख्य है- ''राम की मधुर लीलाएं कब से कवियों तथा साधकों के हृदय में शृंगारी भक्ति की प्रेरक बनीं, निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। हो सकता है, इस प्रकार की कोई उपासना पहले से ही चली आ रही हो और शृंगारी रामकाव्यों के प्रणेता उनसे प्रभावित हो, रामचरित में शृंगारिकता का पुट देते रहे हो। किन्तु आलवार सन्तों से पहले, ऐतिहासिक काल में, अब तक माधुर्यभाव से साधना में प्रवृत्त होने वाली किसी

रामभक्त का पता नहीं चला है।''[12] रसिको का श्रेष्ठ ग्रंथ 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' नम्मालवार (शठकोप) को राम का आदि पार्षद[13] बताते हुए राम की रसिकोपासना का सूत्रधार स्वीकार करता है। वैष्णवाचार्यो में रामानुजाचार्य के शिष्य पाराशर भट्ट, लोकाचार्य, वरवरमुनि, माधुर्यभाव के समर्थक थे। स्वयं स्वामी रामानन्दजी ने माधुर्यमयी 'दशधा भक्ति' का प्रचलन किया। भक्तमाल के रचयिता नाभादास ने अपने ग्रंथों 'भक्तमाल' और 'अष्टयाम' में रामानन्दजी के शिष्य-प्रशिष्यों को दशधा भक्ति का आगर[14] बताया है और इन्हीं नाभादास ने 'भक्तमाल' में चौतन्य महाप्रभु के 'दशधा रस आक्रान्त' कहा है तथा 'अष्टयाम' में अग्रदास को दसधा सम्पत्ति[15] बताया है-

रामकृपा को रूप बन्दौ श्री गुरू अग्रपद।
जिनको सुजस अनूप, दसधा सम्पति धनद जिमि।।

रामानन्दजी के शिष्यों में प्रमुख 'अनन्तानन्दजी' भी माधुर्यभाव के पोषक आचार्य थे। रसिक परम्परा में इन्हें सीताजी का कृपापात्र और रासरसभोक्ता माना जाता है। इन्हें चारुशीला सखी[16] का अवतार भी माना जाता है। अनन्तानंद जी के शिष्य 'कृष्णदास पयहारी' अपने अलौकिक चमत्कारों के कारण और अग्रदासजी के गुरू होने के कारण रसिको में परमादरणीय है। इन्होंने गलता में अपनी गद्दी स्थापित की। 'कील्हदास' और 'अग्रदास' इनके दो प्रमुख शिष्य थे। जिनमें कील्हदास बड़े थे अत: उन्होंने 'गलता की गद्दी' सम्हाली और अग्रदासजी ने 'रैवासा' में अपना स्थान स्थापित किया। इन्हीं अग्रदासजी ने रामभक्ति की मधुरोपासना से सम्बन्धित बिखरे सारे सूत्रों को एकत्र किया और विधिवत रामभक्ति में रसिकोपासना को प्रतिष्ठित किया। अग्रदासजी रामानन्दजी की शिष्य परम्परा में आते है इस दृष्टि से रामानन्दजी को भी रसिक भक्त बड़ा सम्मान और आदर देते है। रामानंद जी की शिष्य परम्परा में आज सबसे बड़ा परिवार कृष्णदास पयहारी जी का है।

अग्रदास जी ने 'ध्यान मंजरी' में रसिक भक्ति से सम्बन्धित इधर-उधर बिखरे सभी सूत्रों को एकत्रित कर एक व्यावहारिक रूप दिया। उन्होंने इस बात की घोषणा की कि रामरसामृत का आस्वादन कर लेने पर ज्ञान, योग और तप आदि अन्य साधन छाँछ की तरह नीरस और सारहीन लगने लगते है- किन्तु इस दिव्य रस का अनुभव रसिकभावना का अनुसरण करने पर ही किया जा सकता है-

अमल अमृत रसधार रसिकजन यहि रस पागे।
तेहि को नीरस ज्ञान योग तप छोई लागे।।[17]
यह दंपति वर ध्यान रसिकजन नितप्रति ध्यावैं।
रसिक बिना यह ध्यान और सपनेहुँ नहि पावैं।।[18]

रामभक्ति की इस माधुर्यमयी धारा को विभिन्न संज्ञाओं से विभूषित किया गया जिनमें- जानकी सम्प्रदाय[19], रहस्य सम्प्रदाय[20], रसिक सम्प्रदाय[21], जानकी वल्लभी सम्प्रदाय[22], और सिया सम्प्रदाय[23] आदि प्रमुख है। इन संज्ञाओं में सबसे अधिक ख्याति 'रसिक सम्प्रदाय' नाम को मिली। अग्रदास जी द्वारा प्रवर्तित इस रसिक-सम्प्रदाय के मधुरोपासक भक्तों को 'रसिक' संज्ञा दी गयी। 'रसिक' भक्तों के सन्दर्भ में अग्रदास जी ने स्पष्ट किया कि 'अहर्निश राम की रसमयी मधुर लीलाओं का ध्यान करने वाले ही रसिक है।''[24] श्रीराम की अन्तरंग सेवा भी रसिको के लिए उन्होंने अनिवार्य बताई है।[25] बालअली जी ने तो भगवान् के सगुण रूप के प्रेमी मात्र को 'रसिक' माना है।[26] 'रसिक' शब्द का साहित्य में प्रयोग सामान्यत: 'रसमर्मज्ञ' अथवा 'भावुक' के अर्थ में होता है। 'नेह प्रकाश' की टीका में जानकी रसिक शरण जी ने इसकी व्याख्या कुछ इस प्रकार की है-

वेत्ता भोग्यस्य, भोक्तुवा, समर्थ: शील इत्यपि।
पुण्यश्लोकोनुरागी च, रसिकोऽसौ प्रकीर्तित:।।[27]

श्री अवध में रामभक्ति में रसिकोपासना के प्रारम्भ का श्रेय रामप्रसाद 'बिन्दुकाचार्यजी' को जाता है। उन्होंने सर्वप्रथम 'बड़ा स्थान' पर अपनी गद्दी स्थापित करके इस भावना को प्रचारित प्रसारित किया। तत्पश्चात् श्रीअवध के ही अन्य रसिकाचार्यो, महात्मा रामचरणदास, युगलानन्यशरणजी महाराज, रामवल्लभाशरण जी महाराज कामदेन्द्रमणि, शीलमणि, रूपकलाजी, रामसखेजी, शीलनिधि आदि ने अपने-अपने स्थान स्थापित करते हुए रसिक भक्ति का व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार करते हुए इसे प्रतिष्ठित किया, जो आज रसिक भक्तों के हृदय की चिन्तामणि बनीं जगमगा रही है। रसिक सम्प्रदाय से सम्बन्धित विभिन्न स्थान आज अयोध्यानगरी का गौरव बढ़ा रहे हैं। इनमें पं0 रामप्रसाद बिन्दुकाचार्य द्वारा स्थापित 'बड़ा स्थान' महात्मा युगलानन्यशरणजी 'हेमलता' का स्थान 'लक्ष्मणकिला', महात्मा रामवल्लभाशरण जी का गोलाघाट स्थित 'सदगुरुशरण' नामक स्थान रामदास तपसी द्वारा स्थापित 'तपसी छावनी', गोमतीदास द्वारा प्रतिष्ठित हनुमन्निवास 'श्रीसीतारामशरण भगवान प्रसाद 'रूपकला' जी का स्थान 'रूपकलाकुंज', रामपूजाशरण 'दिव्यकला' जी का स्थान 'दिव्यकलाकुंज', शीलमणि जी द्वारा स्थापित 'दारबार लाल साहेब', कामदेन्द्रमणिजी का स्थान 'साकेत राजमहल', महात्मा अवधशरण जी का स्थान 'रामसखे की बगिया', शीलनिधि जी द्वारा स्थापित 'श्रावण कुंज', पं0 रामवल्लभशरण 'प्रेमानिधि' जी का जानकीघाट स्थित स्थान रामहर्षणदास द्वारा प्रतिष्ठित 'सिद्धि सदन' नामक स्थान आज देश में दूर-दूर तक विख्यात हैं।

रामभक्ति के इन रसिकाचार्यो ने अपने-अपने स्थानों से जहाँ रसिक भावना की भक्ति का प्रचार-प्रसार किया वहीं अपने साहित्य-कर्म से अपने सम्प्रदाय की साहित्यिक निधि का संवर्धन किया जिसके फलस्वरूप आज रामभक्तिशाखा में रसिक भावना की भक्ति का साहित्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। जिसकी अपनी अलग गरिमा और प्रतिष्ठा है। हिन्दी साहित्य में भक्ति भावना से सम्बन्धित साहित्यिक सम्पत्ति का एक बड़ा भाग आज राम रसिक भक्तों के साहित्य

का है इससे इनकार नही किया जा सकता। केवल अधिकारी भक्तों के मध्य सम्प्रदायगत मान्यताओं विशिष्टताओ आदि की चर्चा की प्रतिबद्धता के कारण रसिक भावना का साहित्य प्रकाश में कम आ सका है किन्तु अब इस धारा के साहित्य को उजागर करने, उसको साहित्यिक समाज के समक्ष लाने के प्रयासों में तेजी आई है जिससे धीरे-धीरे रसिको का साहित्य हमारे समक्ष आ रहा है। इस दिशा में महामहोपाध्याय पं0 गोपीनाथ कविराज, पं0 बलदेव उपाध्याय, डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक, डॉ0 भगवती प्रसाद सिंह, डॉ0 भुवनेश्वर मिश्र 'माधव', डॉ0 दीनदयालगुप्त आदि की अविस्मरणीय भूमिका प्रशंसनीय है।

अत: इसमें कोई सन्देह नही है कि दोनों सम्प्रदायों की अपनी-अपनी मान्यतायें, विशिष्टताएं, प्रतिबद्धताएं है फिर भी दोनों में भावनागत, भावगत साम्य है इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

संदर्भ सूची-

1. हरिव्यास देवाचार्य कृत 'सिद्धान्त-कुसुमांजलि', पृ0 22
2. नित्यमेव हि दाम्पत्यं श्रीराधाकृष्णयोर्यत:।
   पाणिग्रहण सम्बन्धो पर्य्यते न च वर्ण्यते।।
   रसत्वं रसिकत्वं च श्री युग्मे सुप्रतिष्ठितम्।
   दाम्पत्यं च तयोर्नित्यं तथात्वे कारणं यत:।।
   -युग्मतत्त्व समीक्षा: ले0 भागीरथ झा मैथिल, दशम मयूख, पृ0 252
3. हिन्दी साहित्य कोश, पृ0-350
4. भागवत सम्प्रदाय- पं0 बलदेव उपाध्याय, पृ0 332
5. द्रुतकनक सुगौर स्निग्ध मेघौघनीलच्छविमिरखिल वृन्दारण्यमुद्भासयन्तौ।
   मृदुल नवदुकूले नीलपीते दधानौ स्मर निभृत निकुंज राधिका कृष्णचन्द्रौ।।
   -निकुंज विलास (हस्तलिखित) गो0 विट्ठलनाथकृत
6. अधरम् मधुरम् वदनम् मधुरम्,
   नयनम् मधुरम् हसितम् मधुरम्।
   हृदयम् मधुरम् गमनम् मधुरम्
   मधुराधिपतेरखिलम् मधुरम्।।
   -वृहत्स्तोत्रसरित्सागर (परिवृढाष्टक)- वल्लभाचार्य- पृ0 60
7. स्वयं भगवान् कृष्ण, कृष्ण परतत्त्व।
   पूर्ण ज्ञान पूर्णानन्द परम महत्त्व।।
   -चौतन्य चरितामृत, आदि लीला 2: 5
8. ह्लादिनीर सार प्रेम, प्रेम सार भाव। भावेर परमकाष्ठा नाम महाभाव।।
   'महाभाव'- स्वरूपा श्री राधा-ठाकुराणी। सर्वगुण खानि कृष्णकान्त शिरोमणि।।
   -चौतन्य चरितामृत- कृष्ण कविराज, आदिलीला, 4: 68-69
9. ''नहि विशिष्टाद्वैतहरि नहि हरि द्वैताद्वैत,
   बँधे नहि मतवाद में ईश्वर इच्छा द्वैत।।' - भगवत रसिक
10. नागरीदास की वाणी (हस्तलिखित)- नागरीदास
11. व्यासवाणी (पूर्वार्द्ध)- हरिरामव्यास, पृ0 75, पद 121
12. रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय- डॉ0 भगवती प्रसाद सिंह, पृ0 76
13. रसिक प्रकाश भक्तमाल- पृ0 12
14. औरौ शिष्य प्रशिष्य एक ते एक उजागर
    विश्व मंगल आधार, सर्वानंद दसधा के आगर।।
    -भक्तमाल (रूपकला टीका), पृ0 288
15. रामकृपा को रूप बन्दौ श्री गुरू अग्रपद।
    जिनको सुजस अनूप, दसधा सम्पति धनद जिमि।।
    -खोज रिपोर्ट (1909-12) भाग 2, पृ0 1066
16. रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृ0 12
17. ध्यान मंजरी- अग्रदास, पृ0 24
18. ध्यान मंजरी- अग्रदास, पृ0 22

19. श्री जानकी सम्प्रदाय रामरासमनन्यताम।
ऋते केऽपि न यास्यन्ति वांछितं फलमेव च।।
रामनवरत्नसारसंग्रह, पृ0 49 (सदाशिवसंहिता से उद्धृत)
20. विमला विमल विहार में, रहति सदा लवलीन।
रहस-संप्रदा लाल की, प्रगटति चाह नवीन।।
भावना पचीसी (कृपानिवास), पृ0 9
21. तेई मंगल रूप जाको जस बरनन करौ।
परम्परा सु अनूप, रसिक संप्रदा रतिकथा।।
रसिक प्रकाश भक्तमाल (युगलप्रिया, पृ0 2)
22. रसिक जानकी वल्लभी प्रबल काल कीजो अबल।
श्यामदास गुरु कृपा लहि, शिष्य उजागिर भे प्रबल।।
वही पृ0 102
23. भयेउ अहहि आचार्य जे, सिय सु संप्रदा माहिं।
सखिनि के सु अवतार सब, नारि पुरुष जग माहिं।।
वृहद उपासना रहस्य (प्रेमलता), पृ0 104
24. यह दंपति वर ध्यान रसिक जन नित प्रति ध्यावै।
रसिक बिना यह ध्यान और सपनेहुँ नहि पावै।।
ध्यानमंजरी (अग्रदास), पृ0 22
25. अंतरंगाश्रितायेव, इमं रसमनुत्तमम्।
प्रकाशितमग्रदेवेन रघुनाथकथामृतम्।।
- अष्टयाम (अग्रदास), पृ0 68
26. तिनको रसिक लेहु जिय जानि।
जिन लइ सगुन रूप रति मानि।।
-सिद्धान्त तत्त्वदीपिका-बालअलीजी -पत्र 33
27. टीका नेह प्रकाश, जानकीरसिक शरणजी - पत्र 34

भारत में प्राथमिक शिक्षा की चुनैतियाँ

डॉ० लाजो पाण्डेय

विभागाध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा-संकाय, आर० आर० पी०जी० कॉलेज, अमेठी (उ०प्र०)

शोध सारांश

शिक्षा का अधिकार अधिनियम के तहत सभी के लिए शिक्षा को सुलभ बनाने की सरकार द्वारा प्रतिबद्धता की गयी है। ताकि शिक्षा के द्वारा लोगों के जीवन और आजीविका को बेहतर बनाने के लिए स्थितियाँ बनायी जा सके। भारत के गरीब गांवों या एक गरीब भीड-भाड वाले शहरी क्षेत्र में टहलने मात्र से ही शिक्षा की स्थिति व रोजगार की तालाश के बीच के व्यापार बंद की कठोर सच्चाई का आसनी से पता चल जाएगा। भारत की साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत है जो कि भारत में एक बड़ी आबादी के निरक्षर होने का ज्ञान कराती है। भारत में शिक्षा व्यवस्था पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। भारत में गुणवत्तापरक शिक्षा के साथ-साथ कौशल विकास पर भी उचित ध्यान देकर शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त विभिन्न चुनौतियों का समाधान किया जा सकता है। यह पत्र राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय के 75 वें सर्वेक्षण के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा की विभिन्न चुनौतियों पर दृष्टि डालती है।

मुख्य शब्द:- राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (75 वाँ दौर) शिक्षा का अधिकार बाल श्रम, अवरोधन को समस्या साक्षरता दर।

परिचय:- किसी भी राष्ट्र की उन्नति में वहाँ के नागरिकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षित नागरिक राष्ट्र के लिए एक पूँजी के समान होता है जिसके बल पर कोई राष्ट्र निरन्तर विकास के पायदान पर आगे बढ़ता रहता है। इस पक्ष में स्वामी विवेकानन्द जी का कथन सर्वाधिक सार्थक प्रतीत होता है कि ''किसी भी राष्ट्र के विकास की गति उसके नागरिकों के बीच शिक्षा के प्रसार से होता है।'' सामान्यत: विकास का अभिप्राय आर्थिक तक्की से है मगर समय के साथ ही साथ विकास के प्रति दृष्टिकोणो में भी बदलाव आता रहता है उसका केन्द्र सदैव परिवर्तनशील दिखायी देता है। उदाहरण के लिए सर्वप्रथम आर्थिक विकास फिर हरित विकास और वर्तमान में सत्त विकास की अवधारणा को बल मिला है।

भारत के मानव संसाधन विकास मंत्रालय वर्तमान में शिक्षा मंत्रालय का महत्वपूर्ण उद्देश्य समानता और उत्कृष्टता के साथ अपने मानव संसाधन की क्षमता को विकसित करना है। 1976के संवैधानिक संशोधन के तहत शिक्षा को समवर्ती सूची में रखा गया जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा की व्यवस्था जिम्मेदारी केन्द्र व राज्य सरकार को साझा करना पड़ा। केन्द्र सरकार ने शिक्षा के राष्ट्रीय एवं एकीकृत चरित्र में सुधार एवं राष्ट्र के सभी नागरिकों तक शिक्षा की पहुँच का विस्तार करने की एक महान जिम्मेदारी स्वीकर की। शिक्षा के सभी स्तरों पर गुणवत्ता एवं मानकों पर जोर देना, देश में वैज्ञानिक, व्यवसायिक और तकनीकी प्रशिक्षित पेशेवर युवाओं की संख्या में वृद्धि करना एवं सभी के लिए शिक्षा प्रदान करने के लिए मंत्रालय को निर्देशित किया गया है।

प्राथमिक शिक्षा में सार्वभौमिक पहूँच, गुणवत्तापरक शिक्षा धारण की प्रगति, वंचित समूहों के बच्चों की शिक्षा पर विशेष जोर देना और वयस्क शिक्षा कार्यक्रम को जन आन्दोलन बनाना शिक्षा मंत्रालय का उद्देश्य है। इसके साथ-साथ बुनियादी ढांचे और सुविधाओं में निवेश करके अकादमिक सुधारों को बढ़ावा देना और प्रशासन और संस्थागत पुर्नगठन में सुधार करके गुणवत्तापरक उच्च शिक्षा तकह पहुँच के अधिक अवसर प्रदान करना मंत्रालय के महत्वपूर्ण क्रियाकलापों का हिस्सा है।

भारत में 2009 में बच्चों को निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की सोच के साथ शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 परित किया गया। इसी के तहत भारत के संविधान का अनुच्छेद 21 'अ' लागू किया गया। इसके तहत यह उम्मीद की गयी की स्कूल छोडने वाले बच्चों, शिक्षा की गुणवत्ता और प्रशिक्षित शिक्षको की उपलब्धता के मुद्दे लघु से मध्यम अवधि (मूनस्कों 2015) में उचित रूप से संशोधित किया जाएगा। अधिनियम 6-14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों का मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए सरकार को बाध्य करता है। परन्तु कठोर वास्तविकता यह कि 2015 में भारत में 264 मिलियिन व्यस्कों में न्यूनतम साक्षरता कौशल की कमी है और जिसमें 67 प्रतिशत महिलाए है। प्राथ्मिक विद्यालय की आयु के कम से कम 17.7 मिलियन बच्चें यूनेस्को के अनुमान (यू0 आई0 एस, स्कूल से बाहर के बच्चों का एटलस 2016) के अनुसार स्कूलों में नहीं है।

भारत की 1.2 अरब से अधिक आबादी में से 65 प्रतिशत के लगभग जनसंख्या (विश्व विकास संकेतक, 2014) 15 से 64 प्रतिशत के आयु वर्ग में से है जिन्हे कार्यशील आयु जनसंख्या माना जाता है अतैव यह कहा जाता है कि भारत युवाओं का देश है। यह अनुमान लगाया गया है कि भारत अगले 30 वर्षो में निरक्षरता अनुपात में तेज गिरावट देखेगा, जो भारत के लिए एक प्रमुख जनसांख्यिकी लाभांश का गठन करेगा, यही बड़ी आबादी अमूल्य मानव संसाधन हो सकती है यदि इसे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में योगदान देने के लिए उचित कौशलों से लैस कर दिया जा सके।

यह एक सर्वविदित सत्य है कि प्रत्येक नागरिक को शिक्षित करके ही एक मजबूत राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है। यही करण है कि विश्व के सभी देश शैक्षिक बुनियादी ढाचे के निर्माण और कामकाज पर पर्याप्त रूप से खर्च करते है। लेकिन अवसरों का लाभ उठाने के लिए शिक्षा के अधिकार की घोषणा के बावजूद, व्यक्तियों को भी पाठ्यकम शुल्क परीक्षा शुल्क, पुस्तकों एवं स्टेशनरी के रूप में खर्च करना पड़ता है (एन0एस0एसओं 71 अनुसूचित जनजाति, 2015)। जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा तक पहुँच एव भागीदारों मे असमानता दृष्टिगत होती है।

उद्देश्यः- इस पत्र का मुख्य उद्देश्य भारत में प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित महत्वपूर्ण मुद्दों के विषय में चर्चा करना है। इन सभी मुद्दों पर चर्चा 2018 में राष्ट्रीय सांख्यिकी सर्वेक्षण के 75 वें दौर की रिपोर्ट के आधार पर किया गया है।

प्रदत्त एवं विधिः- यह पत्र में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (एन0 एस0 एस0 ओ0) द्वारा अपने 75 वे के दौर के शिक्षा से संबन्धित सामाजिक उपभोग पर सर्वेक्षण के आकडों का प्रयोग किया गया हैं, यह देश में शिक्षा के विभिन्न प्रस्तुत संकेतको उदाहरणार्थ साझरता दर, उपस्थिति अनुपात, छात्रों का नामांकन दर, विद्यालयों की स्थिति, शिक्षा के उद्देश्य के लिए गये व्यय आदि। यह एक अखिल घरेलू सर्वेक्षण है जो जुलाई 2017 - जून 2018 के दौरान आयोजित किया गया था। एन0 एस0 एस0 ओ0 ने देश में शिक्षा के संबंध में 3 से 35 वर्ष की आयु के व्यक्तिों के जानकारी एकत्र की थी, ग्रामीण भारत के कुल 64519 गावों का सर्वेक्षण किया गया और 6188 शहरी ब्लाकों का सर्वेक्षण किया गया था, सर्वेक्षण 6450 गामीण एवं 49238 नगरीय परिवारों पर किया गया था, यह सर्वेक्षण आयु लिंग आय आदि तथ्यों पर ध्यान रखकर किया गया।

इसके अतिरिक्त शिक्षा की वार्षिक स्थिति रिपोर्ट 2018, ग्राम एवं रोजगार मंत्रालय सर्वेक्षण 2015, यू0 डी0 आई0 एस0इ0 पल्स रिर्पोट 2019-20 का प्रयोग किया गया है।

आँकडें और चर्चा

(1) भारत में साक्षरता की वर्तमान स्थितिः- भारत की वर्तमान साक्षरता पर राष्ट्रीय सांख्यिकी सर्वेक्षण के 75 वे दौर (2018) की रिपोर्ट के अनुसार 77.7 प्रतिशत है, जिसमें शहरी क्षेत्र में साक्षरता दर 87.7 प्रतिशत वहीं ग्रामीण क्षेत्र में साक्षरता दर 73.5 प्रतिशत है। इस रिपोर्ट के अनुसार केरल राज्य की साक्षरता दर सबसे अधिक है, वहीं आन्ध्र प्रदेश की साक्षरता दर सबसे कम है। वहीं इस रिपोर्ट के अनुसार उत्तर प्रदेश की साक्षरता दर 73.0 प्रतिशत है, वहीं शहरी साक्षरता दर 81.2 प्रतिशत है, व ग्रामीण साक्षरता दर 70.8 प्रतिशत है। उपरोक्त रिपोर्ट देखनें के बाद यह परिलक्षित होता है शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में साक्षरता दर में काफी अन्तर दिखायी दे रहा है, वहीं महिला एवं पुरूष साक्षरता दर में भी काफी अन्तर दिखायी दे रहा है। जिससे यह स्वष्ट होता है कि भारत में साक्षरता दर को सुधारने के लिएअभी और प्रयास करने की आवश्यकता है विशेष तौर पर ग्रामीण क्षेत्र में महिला। साक्षरता के विषय में भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है जिससे महिला एवं पुरूष साक्षरता के मध्य जो खाई पलिक्षित हो रही है उसे पाटा जा सके।

(2) निकटतम प्राथमिक, उच्च प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय तक की दूरीः- ग्रामीण क्षेत्रों में 92.7 प्रतिशत परिवार एवं नगरीय क्षेत्रों में 87.2 प्रतिशत परिवारों ने घर से 1 कि0मी0 की सीमा के अन्दर प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता दर्ज की गयी है।

एन0 एस0 एस0 की रिपोर्ट के अनुसार करीब 68 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों एवं 80 प्रतिशत नगरीय परिवारों ने अपने घर से 1 किमी0 की सीमा के अन्दर उच्च प्राथमिक विद्यालय तथा 38 प्रतिशत ग्रामीण एवं 70 प्रतिशत नगरीय परिवारों ने 1 किमी0 की दूरी में ही माध्यमिक विद्यालयों की उपलब्धता दर्ज कराया है, जो की एक सुधारात्मक पहल है।

(3) अवरोधन की समस्याः- भारत में शिक्षा की सबसे प्रमुख समस्या शिक्षा का एक चरण पूरा करने से पहले पढ़ाई छोड़ देना या बंद कर देना। विभिन्न सर्वेक्षण के माध्यम से यह पता चलता है कि भारत में विफलताओं और छोड़ने वालों का प्रतिशत बहुत अधिक है। कक्षाओं में भीड-भाड,ढहते बुनियादी ढाचें, शिक्षण सहायता की कमी, सुस्त शिक्षण विधियाँ खराब विद्यार्थियों की उपलब्धियाँ मे सभी कारण विद्यार्थियों को स्कूल छोड़ने के लिए प्रेरित करना है। माता-पिता भी अपने बच्चों को स्कूल भेजने में कोई उत्साह नहीं दिखाते है, (दरेज और सेन 2006)

विद्यालय को छोड़ने के विषय में कई कारणों में मुख्य एवं सामान्य कारण गरीब एवं ग्रामीण परिवारों में अल्प आय के कारण बच्चे कम उम्र में ही आय के इंतजाम में लग जाते है और अन्य बच्चे अल्प आय के कारण अपनी शिक्षा को जारी रख पाने की बुनियादी जरूरतों की पूर्ति नहीं कर पाते है एवं उनकी पढ़ाई छूट जाती है। भारत में यह समस्या अत्यधिक है और इस विषय में विशेष ध्यान देने की जरूरत है तथा बच्चों की शिक्षा व्यवस्था निःशुल्क होने के साथ ही साथ उससे जुड़ी सभी जरूरतों को भी पूरी करने की आवश्यकता है ताकि अल्प आय या पैसों की कमी भारत में किसी भी बच्चें की शिक्षा की राह में बाधा न उत्पन्न कर सके।

राष्ट्रीय साख्यिकी सर्वेक्षण के तहत अवरोधन का मुख्य कारण बच्चों एवं उनके परिवारों का शिक्षा में कोई रूचि न होना, आर्थिक हालात, घरेलू कार्यो में व्यस्त, आर्थिक कार्यो में व्यस्त, विद्यालयों का घर से दूर होना, विद्यालयों का समय सारणी उपयुक्त न होना, पढ़ाई के लिए उपयोग की जाने वाली भाषा का परिवारिक या जानकारी न होना, शिक्षकों की संख्या उपयुक्त न होना, शिक्षकों का प्रशिक्षित न होना संस्थान का रास्ता/मार्ग सुरक्षित न होना तथा अन्य कारणों में समाज में शिक्षा का कोई प्रसार न होना, शिक्षा में उचित प्रदर्शन न कर पाना, विद्यालयों का वातावरण मैत्रीपूर्ण न होना, प्रतियोगी परिक्षाओंकी तैयारी करना, अपनी रूचिपूर्ण शिक्षा पूरी का लेना इत्यादि। बलिकाओं की शिक्षा का अबरोधन का मुख्य कारण महिला शिक्षकों का विद्यालयों में न होना, विद्यालयों में बलिका शौचालय का अनउपलब्धता और विवाह हो जाना है।

उपरोक्त समस्याओं से निपटने के लिए शिक्षा का अधिकार कानून की घोषण की गई जो राज्य एवं अभिभावकों के 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों को शिक्षा व्यवस्था के लिए बाध्य करनी है।

भारत में 80 प्रतिशत कामकाजी बच्चे ग्रामीण क्षेत्रों में रहते है और उनमें से चार में से तीन कृषि या घरेलू उद्योगों में कार्य करते है। जिनमें में ज्यादातर घर आधारित उद्योग है और कामकाजी बच्चों के आकडों में दर्ज नहीं किये जा सकते है, पाँच राज्यों विहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में भारत की कुल बाल श्रम आबादी का आधे से अधिक हिस्सा है। भारत में बाल श्रम का सबसे बड़ा केन्द्र उत्तर प्रदेश है जो भारत के बाल श्रमिकों का लगभग 20 प्रतिशत है। (बच्चों को बचाओं 2016)

(4) शिक्षा की गुणवत्ताः- विशेषकर ग्रामीणों क्षेत्रों में शिक्षा में गुणवत्ता की स्थिति का आकलन करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है, यद्यपि विद्यालयों में नामांकन की स्थिति में सुधार परिलक्षित होता है परन्तु विद्यालयों में शिक्षा की गुणवत्ता एक बहुत ही बड़ा प्रश्नचिन्ह बनकर खड़ा हो जाता

है। सरकार के विभिन्न प्रयासों के बाद भी शिक्षा की वार्षिक स्थिति रिपोर्ट 2018 के अनुसार कक्षा 8 वीं के केवल 72.8 प्रतिशत बच्चे ही कक्षा 2 की स्तर का पाठ पढ़ सके वहीं कक्षा 8 के 43.9 प्रतिशत बच्चे ही भाग जैसी गणितीय संक्रिया को करने में सफल हो सके। जिससे यह दृष्टिगत होता है की शिक्षा की गुणवत्ता की स्थिति विद्यालयों में अच्छी नहीं है।

(5) उपस्थिति अनुपात:- एन0 एस0 एस0 की रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में पुरूषों एवं महिलाओं दोनों ही के लिए सकल उपस्थिति अनुपात (जी0 ए0 आर0) करीब 100 प्रतिशत था। जी0 ए0 आर0 स्तर उच्च प्राथमिक स्तर पर महिला एवं पुरूष का क्रमश: 94.1 प्रतिशत एवं 94.7 प्रतिशत तथा माध्यमिक स्तर पर यह क्रमश: 85.1 प्रतिशत तय 87.4 प्रतिशत था, उपरोक्त के अनुसार प्राथमिक स्तर से उच्च प्राथमिक स्तर एवं माध्यमिक स्तर पर जाने पर छात्रों की उपस्थिति के अनुपात में कमी दिखायी देती है जो कि आगे की कक्षाओं में और भी कम उपस्थिति छात्रों द्वारा दर्ज की जाती है जो की एक समस्या बनकर सामने खड़ी हो जाती है।

तालिका 1 शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए सकल उपस्थिति अनुपात प्रतिशत

शिक्षा का स्तर	*ग्रामीण*		*नगरीय*	
	पुरूष	*महिला*	*पुरूष*	*महिला*
प्राथमिक	100	100	100	100
उच्च प्राथमिक	94.8	94.2	94.3	93.8
माध्यमिक	85.2	82.3	93.8	93.7

तालिका 2 शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए कुल उपस्थिति अनुपात प्रतिशत

शिक्षा का स्तर	*ग्रामीण*		*नगरीय*	
	पुरूष	*महिला*	*पुरूष*	*महिला*
प्राथमिक	86.6	84.8	87.7	86.2
उच्च प्राथमिक	72.15	70.7	73.5	75.0
माध्यमिक	56.6	55.2	61.5	63.7

निष्कर्ष:- 2018 में आयोजित एन0 एस0 एस0 75 वें दौर के रिपोर्ट से यह परिलक्षित होता है कि भारत की साक्षरता दरमें तो सुधार हुआ है परन्तु साथ ही साथ यह लोगों में आजीविका स्तर में सुधार के लिए आवश्यक कौशल की शिक्षा का प्रतिनिधित्व नहीं करती है।

विद्यालयों में नामांकन दर तो बढ़ा है तो साथ ही साथ अवरोधन व कम उपस्थिति की समस्या भी बढ़ी है, छात्र विद्यालयों में नामांकन तो करा लेते है परन्तु यह देखा गया है कि वे या तो विद्यालय पूर्णत छोड़ देते है या वे विद्यालयों में कम ही उपस्थित होते है। वे विद्यालय के अतिरिक्त अन्य आर्थिक गतिविधियों में लिप्त हो जाते है, सरकार की प्रतिबद्धता एवं प्रयासों के बावजूद निम्न आर्थिक वर्ग के छात्र एवं छात्राएं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से बंचित दिखायी दे रहे है।

विद्यालयों की परम्परागत शिक्षा छात्रों का विद्यालयों से मोहभंग कर रही है तथा वे विभिन्न आर्थिक कार्यो में संलग्न हो रहे है। आज आवश्यकता यह हक कि विद्यालयों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के साथ ही साथ शिक्षा का संख्यात्मक मूल्यांकन के स्थान पर गुणात्मक मापन किया जाए तथा छात्रों में विभिन्न कौशलों का विकास किया जाय ताकि वह इन कौशलों के माध्यम से अपनी आजीविका चला सके ताकि लोगों का (विशेषकर निम्न वर्ग) शिक्षा के प्रति अनुराग बढ़ सके तथा वे स्वयं अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति जागरूक हो सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- ASER (2018), Annual status of Education Report, 2014.
- Bhau, Priyanka and Jasbir Singh (2017) some challenges in Indian Base Education : "Need for a New Look" Bangladesh Education Journal volume 16, Number 1, June 2017.
- Desai, S.B. (2010), Human Development in India, New Delhi ; Oxford Univesity Press.
- Dreze, J and Sen, A. (2006). India : Development and participation, New Delhi: Oxferd University Press.
- India Today (2015).,." Unequal Access of Education Leads to child Labou in India. " India today, 29th September 2015, http:// indiatoday, intoday in / calendar / 29-09-2015/ online. Html.
- Mahore, R.Y. (2001) " Human recourse and economic development. "In Ruddar Datt (Ed.), Human Development and Economic development, New Delhi : Deep and Deep Publications Pvt. Ltd.
- Ministry of Labour and Employment (2015), "Working children in India". Ministry of Labour and Employment, Government of India.
- NSSO (2018) "75th Round, " National sample Survey office, Ministry of statistics and Programme Implementation, Government of India.
- Puri V.K. and Mishra, S.K. (2016) Indian Economy, New Delhi, Himalaya Pubishing house Pvt. Ltd.
- UDISE+ (2019-20) " Unified District Information system for Education Plus Department of School Education and Literacy, ministry of Education, Government of India.

12वीं कक्षा के कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के मध्य पर्यावरणीय नैतिकता स्तर का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० संजय कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, मेरठ कालेज मेरठ (उ0प्र0)

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध में पर्यावरण के एक क्षेत्र-पर्यावरणीय नैतिकता को लिया गया है। इस शोध के द्वारा उत्तर प्रदेश के मेरठ नगर के 12वीं कक्षाओं के विद्यार्थियों में पर्यावरणीय नैतिकता का वर्तमान स्तर क्या हैं? उनमें पर्यावरण के प्रति असंवेदनशीलता की वजह क्या है? इसका पता चला। साथ ही, उनमें पर्यावरण के प्रति कौन-सा दृष्टिकोण (पर्यावरण केन्द्रित या मानव केन्द्रित) अधिक निहित है? इसका भी पता चला।

प्रस्तावना:- वेदों में कहा गया है प्रकृति के पाँच तत्व- जल, अग्नि, वायु तथा आकाश पर्यावरण के अभिन्न अंग हैं। बालस्मृति में शुद्ध जल, स्वच्छ निर्मल वायु, खुले नीलाकाश में पंख-पखेरू फैलाये पक्षियों का उड़ता पंक्तिबद्ध दल, पृथ्वी पर हरे-भरे जंगलों में निर्भीक विचरते पशुओं को निहारना यह सब आनंददायक था। वर्तमान इसका विपरीत लगता है। बालस्मृति का प्रत्येक दृश्य अब विलुप्त प्राय: लगता है।

वर्तमान में पर्यावरण की प्रकृति दु:ख का स्रोत बनी हुई प्रतीत होती है। अब पृथ्वी की धूल, सूर्य से मिलने वाला प्रकाश और वातावरण की वायु मनुश्य पर प्रतिकूल असर डालते हैं। मनुष्य ने ये प्रतिकूल परिस्थितियां स्वयं उत्पन्न की हैं। व्यक्तिक-युग के चलते, मानव में अपने लिए आरामदायक जीवन जीने की लालसा बढ़ती ही जा रही है और इस कारण से उसमें प्रकृति का अधिकाधिक दोहन करने की प्रवृत्ति प्रबल होती जा रही है। मनुष्य में अपने लिए आरामदायक जीवन जीने की लोलुपता, प्रकृति के अधिकाधिक दोहन करने की प्रवृत्ति का कारण बन गयी है। उसकी यही लोलुपता प्रदूषण, अम्लीय वर्षा, ओजोन-पर्त नि:शेषीकरण आदि का कारण बनी। ये सभी ज्ञात-अज्ञात पर्यावरणीय समस्याएं वैश्विक स्तर पर चिंता का कारण बनी हुई हैं। विश्व भर के वैज्ञानिक, शिक्षाविद्, समाजसुधारक व राजनीतिज्ञ पर्यावरणीय समस्याओं का कारण एकमतरूप से मानवजनित क्रियाकलापों को मानते हैं। इस विद्वानों के इस विचार ने पर्यावरण के एक नए अध्ययन-क्षेत्र को जन्म दिया, जिसको नाम दिया गया 'पर्यावरणीय-नैतिकता'।

शोध की आवश्यकता, औचित्य, महत्व एवं समस्या कथन- किसी भी देश का भविष्य उसके युवा नागरिकों पर निर्भर होता है। यदि हम देश के पर्यावरण का भविष्य संरक्षित एवं सुरक्षित रखना चाहते हैं तो देश के युवाओं में पर्यावरणीय जागरूकता तथा पर्यावरणीय नैतिकता का होना अति आवश्यक होता है। पूर्व में हुए पर्यावरणीय शोध साहित्य की पुर्नसमीक्षा करने पर पता चलता है कि देश के युवाओं में पर्यावरणीय जागरूकता तो है। फिर प्रश्न उठता है कि उनके व्यवहार में यह जागरूकता परिलक्षित क्यों नहीं होती है? क्यों नहीं हमारे युवा विद्यार्थियों में पर्यावरण के प्रति स्नेह तथा संरक्षण का भाव दिखायी देता है? क्या उनमें पर्यावरणीय जागरूकता मात्र एक पुस्तकीय ज्ञान के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं? क्या इसका कारण हमारे युवा विद्यार्थियों में पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर कम है? इन प्रश्नों का सार्थक उत्तर शोध द्वारा ही पता चल सकता है। इसीलिए शोधार्थी ने पर्यावरण के एक अध्ययन-क्षेत्र 'पर्यावरण नैतिकता' को चुना है। अत: शोध का शीर्षक ''12वीं कक्षा के कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के मध्य पर्यावरणीय नैतिकता स्तर का तुलनात्मक अध्ययन'' है।

चरों की परिभाषा:- प्रस्तुत शोध में प्रयुक्त चरों की परिभाषायें इस प्रकार हैं-

1) पर्यावरणीय नैतिकता: विकिपीडिया के अनुसार, ''पर्यावरणीय नैतिकता, पर्यावरणीय दर्शन का वह खण्ड है जो नीतिशास्त्र की पारम्परिक सीमाओं को मानव के दायरे से बढ़ाकर अन्य जीव-जन्तुओं को शामिल करता है। इसका प्रभाव अन्य विषयों जैसे भूगोल और पारिस्थितिकी, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और कानून इत्यादि विषय पर भी पड़ता है।''

   टायलर (1989) के अनुसार, ''पर्यावरणीय नैतिकता मानव तथा प्राकृतिक पर्यावरण के बीच नैतिक सम्बन्धों को बनाये रखने से सम्बन्धित है।''
2) कक्षा:-वेबस्टर शब्दकोश के अनुसार, ''एक समान विषयों के अध्ययन करने के लिए एकत्रित हुआ एक समूह कक्षा कहलाता है।''
3) विद्यार्थी:-वह व्यक्ति जो अध्ययन करने के लिए विद्यालय में नामांकित हुआ है, उसे विद्यार्थी कहते हैं। इसे लिंग के आधार पर छात्र या छात्रा कहा गया है।
4) विज्ञान वर्ग:-कक्षा 12 के वे समस्त विद्यार्थी जो भौतिक विज्ञान, गणित, रसायन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, जन्तु विज्ञान आदि विषयों में अध्ययनरत है, विज्ञान वर्ग के विद्यार्थी कहलाते है।
5) कला वर्ग:- कक्षा 12 के समस्त विद्यार्थी जो कला वर्ग के विषयों नागरिक शास्त्र, भूगोल, हिन्दी, अंग्रेजी भाषा आदि कलावर्ग के विषयों का अध्ययन करते है, कला वर्ग के विद्यार्थी कहलाते है।

शोध के उद्देश्य:- प्रस्तुत शोध निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया गया:-शोध का मुख्य उद्देश्य 12वीं कक्षा के कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों में पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर को ज्ञात करना एवं उनकी तुलना करना है।

मुख्य उद्देश्य की पूर्ति हेतु निम्न सहायक उद्देश्य हैं-

1) 12वीं कक्षा के कलावर्ग के छात्रों में पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर का अध्ययन करना।

2) 12वीं कक्षा के विज्ञानवर्ग के छात्रों में पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर का अध्ययन करना।

3) 12वीं कक्षा के कलावर्ग के छात्राओं में पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर का अध्ययन करना।

4) 12वीं कक्षा के विज्ञानवर्ग के छात्राओं में पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर का अध्ययन करना।

5) 12वीं कक्षा के कला व विज्ञानवर्ग की छात्राओं में पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।

6) 12वीं कक्षा के कलावर्ग एवं विज्ञानवर्ग के छात्रों में पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।

प्रस्तुत शोध के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निम्नलिखित शून्य परिकल्पनायें निर्मित की गयीं हैं।

मुख्य परिकल्पना:- H_o12वीं कक्षा के कला एवं विज्ञानवर्ग के विद्यार्थियों में पर्यावरण नैतिकता के वर्तमान स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

उप-परिकल्पना

H_{o1}12वीं कक्षा के कलावर्ग एवं विज्ञानवर्ग के छात्रों में पर्यावरण नैतिकताा के वर्तमान स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

H_{o2}12वीं कक्षा के कलावर्ग एवं विज्ञानवर्ग के छात्राओं में पर्यावरण नैतिकताा के वर्तमान स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

H_{o3}12वीं कक्षा के कलावर्ग के छात्र और छात्राओं में पर्यावरण नैतिकताा के वर्तमान स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

H_{o4}12वीं कक्षा के विज्ञानवर्ग के छात्र और छात्राओं में पर्यावरण नैतिकताा के वर्तमान स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध की परिसीमा:- प्रस्तुत शोध को निम्न प्रकार परिसीमित किया गया है- उ0प्र0 के जिला मेरठ के क्षेत्र में स्थित सी.बी.एस.ई. से सम्बद्धता प्राप्त अंग्रेजी माध्यम के सीनियर सेकेण्डरी स्कूलों में 12वीं कक्षा के कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों तक सीमित है। केवल पर्यावरणीय नैतिकता स्तर नामक चर तक ही सीमित है।200 विद्यार्थियों का यादृच्छिक चयन विधि द्वारा चयन किया गया है।मेरठ नगर के विद्यालयों तक ही सीमित है।

सुश्री प्रेरणा मानध्यान (मई 2013)ने शीर्षक''उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के बीच पर्यावरणीय नैतिकता का एक अध्ययन'' नामक शोध इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया -

(1) पर्यावरणीय नैतिकता पर विभिन्न संकायों का प्रभाव जानना। (2) बालक-बालिकाओं में पर्यावरणीय नैतिकता का अध्ययन करना। (3) पर्यावरणीय नैतिकता पर विभिन्न संकायों के बालक-बालिकाओं के प्रभाव का अध्ययन करना। जिसका निष्कर्ष कला संकाय के विद्यार्थियों में वाणिज्य संकाय के विद्यार्थियों की अपेक्षा पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर कम पाया गया। विज्ञान संकाय के विद्यार्थियों में पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर सर्वाधिक पाया गया। अत: कला संकाय तथा वाणिज्य संकाय के विद्यार्थियों में पर्यावरणीय नैतिकता और अधिक विकसित होना चाहिए तथा विज्ञान संकाय के विद्यार्थियों में पर्यावरण मूल्यों के प्रति और अधिक संवेदनशील होना होगा।बालक-बालिकाओं में पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर बराबर पाया गया। इस बराबरी को बनाये रखना होगा।

दीक्षा दवे (2012) ने शीर्षक ''उदयपुर एवं गौतमबुद्धनगर शहर के विद्यार्थियों के पर्यावरण जागरूकता तथा पर्यावरण व्यवहार पर पर्यावरणीय अध्ययन का प्रभाव'' पर एक शोध किया। जिसके उद्देश्य-(1) उदयपुर के विभिन्न विषयों के विद्यार्थियों के बीच पर्यावरणीय जागरूकता तथा पर्यावरण के प्रति व्यवहार पर पर्यावरण अध्ययन के प्रभाव की तुलना। (2) उदयपुर के पुरूष एवं महिला विद्यार्थियों के बीच पर्यावरणीय जागरूकता तथा पर्यावरण के प्रति व्यवहार पर पर्यावरण अध्ययन के प्रभाव की तुलना। (3) गौतमबुद्धनगर के पुरूष एवं महिला विद्यार्थियों के बीच पर्यावरणीय जागरूकता तथा पर्यावरण के प्रति व्यवहार पर पर्यावरण अध्ययन के प्रभाव की तुलना। जिसके निष्कर्ष-शोध से निष्कर्ष निकलता है कि पुरूष एवं महिला विद्यार्थियों दोनों का ही पर्यावरण जागरूकता तथा पर्यावरण के प्रति व्यवहार का स्तर आशानुकूल नहीं रहा। पर्यावरण अध्ययन से सभी पुरूष एवं महिला विद्यार्थियों पर पर्यावरणीय मामलों के प्रति जागरूकता एवं प्रवृत्ति पर अनुकूल प्रभाव पड़ता हैं। अत: पर्यावरण शिक्षा के पाठ्यक्रम को विद्यालय में और अधिक स्थान मिलना चाहिए।

बालचंद्रन सुमति (2011)ने शीर्षक ''ग्रेटर मुंबई के माध्यमिक और उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के बीच पर्यावरण के प्रति जागरूकता और पर्यावरणीय नैतिकता का एक अध्ययन'' है। जिसका उद्देश्य माध्यमिक और उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के बीच पर्यावरण के प्रति जागरूकता और पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर जानना था। इसका निष्कर्ष विद्यार्थियों का पर्यावरणीय जागरूकता स्तर उन्नत था, लेकिन पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर असंतोषजनक पाया गया। प्रस्तुत शोध हेतु प्रदत्तों का संकलन मानकीय सर्वेक्षण द्वारा किया गया।

प्रस्तुत शोध की जनसंख्या का निर्धारण उ0प्र0 के जिला मेरठ में स्थित सी.बी.एस.ई. से संबद्धता प्राप्त सीनियर सेकेण्डरी स्कूल में इंग्लिश माध्यम में पढ़ने वाले सभी विद्यार्थी करते हैं।

जनसंख्या में से न्यादर्श के चयन के लिए प्रायिकता न्यादर्शन (Probability Sampling) पद्धति का प्रयोग किया।

प्रस्तुत शोधकार्य के लिए 200 विद्यार्थियों का चयन सम्भावना प्रतिदर्शन के गुच्छित प्रतिदर्शन (Cluster Sampling) द्वारा किया गया है। शोधार्थी ने एक स्तरीय एवं द्विस्तरीय गुच्छित प्रतिदर्शन द्वारा न्यादर्श जनसंख्या का चयन निम्नलिखित चरण में पूर्ण किया- (1) सरल यादृच्छिक प्रतिदर्शन (सिक्का उछालना) द्वारा मेरठ नगर में स्थित सी.बी.एस.ई. द्वारा मान्यता प्राप्त इंग्लिश मीडियम हायर सेकेण्डरी स्कूल का चयन किया। (2) चयनित स्कूलों में से 12वीं कक्षा के कला वर्ग और विज्ञान वर्ग के दो समूह (गुच्छ) को पूर्णत: चुना। (3) कलावर्ग और विज्ञानवर्ग दो समूहों के कुल 200 विद्यार्थियों जिसमें 50 छात्र व 50 छात्राऐं कलावर्ग तथा 50 छात्र व 50 छात्राऐंविज्ञानवर्ग के समूहों को सरल यादृच्छिक प्रतिदर्शन (सिक्का उछालना) द्वारा चुना।प्रतिदर्शन द्वारा शोधार्थी ने अपने सीमित संसाधनों में रहते हुए न्यादर्श का चयन सुगमतापूर्वक किया।

उपकरण:-प्रस्तुत शोध के लिए डॉ. (श्रीमती) हसीन ताज, व्याख्याता, शिक्षा विभाग, बैंगलोरयूनिवर्सिटी, बैंगलोर द्वारा निर्मित प्रश्नावली Environment Ethics Scale (EES) प्रयुक्त किया गया।

प्रदत्त विश्लेषण:- शोधार्थी ने प्रस्तुत शोध के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु आँकड़ों के विश्लेषण एवं व्याख्या हेतु समुचित साँख्यिकी प्रविधियों मध्यमान (M), मानक विचलन (M) व टी-परीक्षण(t)का प्रयोग किया।

1) शोध का प्रथम उद्देश्य, 12वीं कक्षा के कलावर्ग के छात्रों में पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर का अध्ययन। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रदत्तों का विश्लेषण किया ज्ञात हुआ कि कलावर्ग के 84% छात्रों का पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर उच्च श्रेणी का है। मात्र 8% छात्रों का पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर औसत से ऊपर रहा। 8% छात्रों का पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर औसत रहा। तालिका 1 में 12वीं कक्षा के कक्षावर्ग के छात्रों में पर्यावरणीय नैतिकता का वर्तमान स्तर किस श्रेणी का है, दर्शाया गया है। तालिका 1 का आरेखीये विवरण ग्राफ संलग्न है।

2) शोध का द्वितीय उद्देश्य, 12वीं कक्षा के विज्ञानवर्ग के छात्रों में पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर का अध्ययन है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रदत्तों का विश्लेषण किया ज्ञात हुआ कि-विज्ञानवर्ग के 92% छात्रों का पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर उच्च श्रेणी का है। मात्र 8% छात्रों का पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर औसत से ऊपर रहा।

प्रथम उप-परिकल्पना H_{01}12वीं कक्षा के कलावर्ग एवं विज्ञानवर्ग के छात्रों में पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। परिकल्पना के परीक्षण के लिए विश्लेषण तालिका निम्न प्रकार है-

क्रम संख्या	समूह	प्रतिदर्श N	मध्यमान M	मानक विचलन (o)	टी-मान (t)	सार्थकता स्तर	निष्कर्ष
1	कलावर्ग छात्र	50	104.3	16.4989	2.62	.05 1.98	सार्थक अंतर है
2	विज्ञानवर्ग छात्र	50	111.98	12.5201			

(df= 98)

व्याख्या:- तालिका से यह स्पष्ट होता है कि कलावर्ग के छात्रों का पर्यावरणीय नैतिकता स्तर के प्राप्तांकों का मध्यमान तथा मानक चिलन क्रमश: 104.3 तथा 16.4989 जबकि विज्ञानवर्ग के विद्यार्थियों का मध्यमान तथा मानक विचलन क्रमश: 111.98 तथा 12.5201 प्राप्त हुआ। जिनसे अभिकलित टी-मूल्य 2.62 प्राप्त हुआ जो कि स्वतंत्रता अंश 98 के .05 सार्थकता स्तर पर 1.98 से अधिक है। अत:शून्य उप-परिकल्पना H_{01}12वीं कक्षा के कलावर्ग एवं विज्ञानवर्ग के छात्रों में पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, निरस्त होती है। इसलिए मध्यमानों का अंतर अधिक सार्थक है। समूहों का अंतर वास्तविक है।

निष्कर्ष है कि विज्ञानवर्ग के छात्रों का पर्यावरणीय नैतिकता का वर्तमान स्तर का मध्यमान कलावर्ग के छात्रों के मध्यमान से अधिक है। इसके कारण कलावर्ग के छात्रों में मानव केन्द्रित दृष्टिकोण की बहुलता है। जो उन्हें अपने सुख में कमी के भय की वजह से निर्णय लेने में द्वन्द पैदा करता है और स्वार्थपूर्ण निर्णय लेते हैं।

3) शोध का तृतीय उद्देश्य, '12वीं कक्षा की कलावर्ग की छात्राओं में पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर का अध्ययन' है। अध्ययन से ज्ञात हुआ है-कलावर्ग की 90% छात्राओं का पर्यावरणीय नैतिकता स्तर उच्च श्रेणी का रहा; 8% छात्राओं का पर्यावरणीय नैतिकता स्तर औसत से ऊपर पाया गया। 2% छात्राओं का पर्यावरणीय नैतिकता स्तर औसत से नीचे रहा।

4) शोध का चतुर्थ उद्देश्य, 12वीं कक्षा की विज्ञानवर्ग की छात्राओं में पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर का अध्ययन है। अध्ययन से ज्ञात हुआ है-विज्ञानवर्ग की 92% छात्राओं का पर्यावरणीय नैतिकता स्तर उच्च श्रेणी का रहा; 8% छात्राओं का पर्यावरणीय नैतिकता स्तर औसत से ऊपर पाया गया।

H_{02}12वीं कक्षा के कलावर्ग एवं विज्ञानवर्ग की छात्राओं में पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। परिकल्पना के परीक्षण के लिए विश्लेषण तालिका निम्न है-

क्रम संख्या	समूह	प्रतिदर्श N	मध्यमान M	मानक विचलन (o)	टी-मान (t)	सार्थकता स्तर	निष्कर्ष
1	कलावर्ग छात्राऐं	50	106.46	16.4989	1.36	.05 1.98	कोई सार्थक अंतर है
2	विज्ञानवर्ग छात्राऐं	50	110.8	15.2211			

(df= 98)

व्याख्या:-तालिका से यह स्पष्ट होता है कि कलावर्ग की छात्राओं के पर्यावरणीय नैतिकता स्तर के प्राप्तांकों का मध्यमान तथा मानक विचलन क्रमश: 106.46 तथा 16.4989 पर्यावरणीय स्तर का था। जबकि विज्ञानवर्ग की छात्राओं का मध्यमान तथा मानक विचलन क्रमश: 110.8 तथा 15.2211 पर्यावरणीय नैतिकता स्तर का था। जिनसे अभिकलित टी-मूल्य 1.36 प्राप्त हुआ जो कि स्वतंत्रता अंश 98 के .05 सार्थकता स्तर पर 1.98 से कम है। अत: शून्य परिकल्पना H_{01}12वीं कक्षा के कलावर्ग एवं विज्ञानवर्ग के छात्रों में पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, स्वीकार होती है। इसलिए मध्यमानों का अंतर सार्थक नहीं है। प्राप्त अंतर न्यादर्श की त्रुटि के कारण हो सकता है।

निष्कर्ष प्राप्त होता है कि विज्ञान वर्ग की छात्राओं का पर्यावरणीय नैतिकता का वर्तमान स्तर कलावर्ग की छात्राओं से अधिक है। इसकी वजह कलावर्ग की छात्राओं में मानव केन्द्रित दृष्टिकोण की बहुलता है। जो उन्हें अपने सुख में कमी के भय की वजह से निर्णय लेने में द्वन्द पैदा करता है और स्वार्थपूर्ण निर्णय लेती हैं।

H_{03}12वीं कक्षा के कलावर्ग के छात्र और छात्राओं के पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। परिकल्पना के परीक्षण के लिए विश्लेषण निम्न है-

क्रम संख्या	समूह	प्रतिदर्श N	मध्यमान M	मानक विचलन (O")	टी–मान (t)	सार्थकता स्तर	निष्कर्ष
1	छात्र	50	104.3	16.4989	0.68	.05 1.98	कोई सार्थक अंतर नहीं है
2	छात्राएं	50	106.46	15.2211			

(df= 98)

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि कलावर्ग के छात्रों के पर्यावरणीय नैतिकता स्तर के प्राप्तांकों का मध्यमान तथा मानक विचलन क्रमश: 104.3 तथा 16.4989 का था। जबकि कलावर्ग की छात्राओं का मध्यमान तथा मानक विचलन क्रमश: 106.46 तथा 15.2211 पर्यावरणीय नैतिकता स्तर का था। जिनसे अभिकलित टी-मूल्य 0.68 प्राप्त हुआ जो कि स्वतंत्रता अंश 98 के .05 सार्थकता स्तर पर 1.98 से कम है। इसलिए मध्यमानों का अंतर अधिक सार्थक नहीं है। जो अंतर है वह न्यादर्श की वजह से है। अत: शून्य परिकल्पना H_{03}12वीं कक्षा के कलावर्ग के छात्र और छात्राओं में पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, निरस्त होती है।

निष्कर्ष है कि 12वीं कक्षा के कलावर्ग के दोनों समूहों (छात्र एवं छात्राओं) का पर्यावरणीय नैतिकता का वर्तमान स्तर समान-सा है।

H_{04}12वीं कक्षा के विज्ञानवर्ग के छात्र और छात्राओं में पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। परिकल्पना के परीक्षण के लिए विश्लेषण निम्न है-

क्रम संख्या	समूह	प्रतिदर्श N	मध्यमान M	मानक विचलन (O")	टी–मान (t)	सार्थकता स्तर	निष्कर्ष
1	छात्र	50	104.3	16.4989	0.68	.05 1.98	कोई सार्थक अंतर नहीं है
2	छात्राएं	50	106.46	15.2211			

(df= 98)

व्याख्या:- उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि विज्ञानवर्ग के छात्रों के पर्यावरणीय नैतिकता स्तर के प्राप्तांकों का मध्यमान तथा मानक विचलन क्रमश: 111.98 तथा 12.5201 का था। जबकि विज्ञानवर्ग की छात्राओं का मध्यमान तथा मानक विचलन क्रमश: 110.8 तथा 13.9766 पर्यावरणीय नैतिकता स्तर का था। जिनसे अभिकलित टी-मूल्य 0.445 प्राप्त हुआ जो कि स्वतंत्रता अंश 98 के .05 सार्थकता स्तर पर 1.98 से कम है। इसलिए मध्यमानों का अंतर सार्थक नहीं है। जो अंतर है वह न्यादर्श की वजह से है।

अत: शून्य परिकल्पना H^{03}12वीं कक्षा के विज्ञानवर्ग के छात्र और छात्राओं में पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, निरस्त होती है।

$H_0$12वीं कक्षा के कलावर्ग एवं विज्ञानवर्ग के विद्यार्थियों में पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। परिकल्पना के परीक्षण के लिए विश्लेषण तालिका प्रस्तुत की गयी है-

क्रम संख्या	समूह	प्रतिदर्श N	मध्यमान M	मानक विचलन (O")	टी–मान (t)	सार्थकता स्तर	निष्कर्ष
1	कलावर्ग विद्यार्थी	100	105.38	13.2145	2.06	.05 1.97	सार्थक अंतर है
2	विज्ञानवर्ग विद्यार्थी	100	111.39	15.8297			

(df= 98)

व्याख्या:- तालिका से यह स्पष्ट होता है कि कलावर्ग के विद्यार्थियों के पर्यावरणीय नैतिकता स्तर के प्राप्तांकों का मध्यमान तथा मानक विचलन क्रमश: 105.38 तथा 13.2145 जबकि विज्ञानवर्ग के विद्यार्थियों का मध्यमान तथा मानक विचलन क्रमश: 111.39 तथा 15.8297 पर्यावरणीय नैतिकता स्तर प्राप्त हुआ था। जिनसे अभिकलित टी-मूल्य 2.06 प्राप्त हुआ जो कि स्वतंत्रता अंश 198 के.05 सार्थकता स्तर पर 1.97 से अधिक है। अत: शून्य परिकल्पना $H_0$12वीं कक्षा के कला एवं विज्ञानवर्ग के विद्यार्थियों में पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, निरस्त होती है। इसलिए मध्यमानों का अंतर अधिक सार्थक है। समूहों का अंतर वास्तविक है।

निष्कर्ष है कि विज्ञानवर्ग के विद्यार्थियों का पर्यावरणीय नैतिकता का वर्तमान स्तर कलावर्ग के विद्यार्थियों से अधिक है। इसका कारण कलावर्ग के विद्यार्थियों में मानवकेन्द्रित दृष्टिकोण की बहुलता है। जो उन्हें अपने सुख में कमी के भय की वजह से निर्णय लेने में द्वन्द्व पैदा करता है और वो स्वार्थपूर्ण निर्णय लेते हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव:- प्रस्तुत शोध में प्राप्त आँकड़ों के विश्लेशण के उपरान्त निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए-

1) कलावर्ग के 84% छात्रों का पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर उच्च श्रेणी का है। मात्र 8% छात्रों का पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर औसत से ऊपर रहा और 8% छात्रों का पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर औसत रहा।

2) विज्ञानवर्ग के 92% छात्रों का पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर उच्च श्रेणी का है। मात्र 8% छात्रों का पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर औसत से ऊपर रहा।

3) कलावर्ग की 90% छात्राओं का पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर उच्च श्रेणी का रहा; 6% छात्राओं का पर्यावरणीय नैतिकता स्तर औसत से ऊपर पाया गया। 2% छात्रों का पर्यावरणीय नैतिकता स्तर औसत से नीचे रहा।

4) विज्ञानवर्ग की 92% छात्राओं का पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर उच्च श्रेणी का रहा; 8% छात्राओं का पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर औसत से ऊपर पाया गया।

5) कलावर्ग की 90% छात्राओं की पर्यावरणीय नैतिकता उच्च स्तर की और 8% छात्राओं की पर्यावरणीय नैतिकता औसत से ऊपर है, 2% छात्राओं की पर्यावरणीय नैतिकता औसत स्तर रही। जबकि कलावर्ग के 84% छात्रों की पर्यावरणीय नैतिकता उच्च स्तर की, 8% छात्रों की पर्यावरणीय नैतिकता औसत से ऊपर तथा 8% छात्रों की पर्यावरणीय नैतिकता औसत स्तर की रही।

6) विज्ञानवर्ग के 92% छात्रों का पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर उच्च श्रेणी का है। मात्र 8% छात्रों का पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर औसत से ऊपर रहा। जबकि विज्ञानवर्ग की 92% छात्राओं का पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर उच्च श्रेणी का रहा; 8% छात्राओं का पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर औसत से ऊपर पाया गया।

   इस प्रकार, विज्ञानवर्ग के छात्र और छात्राओं के पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर एक समान प्राप्त जो कि सराहना योग्य है।

7) कलावर्ग की 88% विद्यार्थियों के पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर उच्च श्रेणी का, 8% औसत से ऊपर, 3% औसत तथा 1% औसत से नीचे रहा। जबकि विज्ञानवर्ग के 92% विद्यार्थियों के पर्यावरणीय नैतिकता का स्तर उच्च श्रेणी का, 8% औसत से ऊपर पाया गया। इस प्रकार, विज्ञानवर्ग के विद्यार्थियों का पर्यावरणीय नैतिकता स्तर कलावर्ग के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक और सराहनीय है। इस प्रकार, उपर्युक्त 7 सहायक उद्देश्यों की सहायता से मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति की गयी।

शून्य परिकल्पना से निष्कर्ष $H_0$12 वीं कक्षा के कला एवं विज्ञानवर्ग के विद्यार्थियों में पर्यावरणीय नैतिकता के वर्तमान स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, निरस्त होती है।

निष्कर्ष है कि विज्ञानवर्ग के विद्यार्थियों का पर्यावरणीय नैतिकता का वर्तमान स्तर कलावर्ग के विद्यार्थियों से अधिक है। इसकी वजह कलावर्ग के विद्यार्थियों में मानवकेन्द्रित दृष्टिकोण की बहुलता है। जो उन्हें अपने सुख में कमी के भय की वजह से निर्णय लेने में द्वन्द्व पैदा करता है और वो स्वार्थपूर्ण निर्णय लेते हैं।

अधिकांश छात्र-छात्राओं का पर्यावरणीय नैतिकता का वर्तमान स्तर संतोषजनक रहा, उसमें कोई खास अंतर नहीं है। तथापि, उनके व्यवहार में पर्यावरणीय नैतिकता पूर्णत: परिलक्षित नहीं होती है। शोधार्थी ने जब विद्यार्थियों से इस विषय पर बात की तो पता चला कि परिस्थिति अनुसार उसकी निर्णय लेने की क्षमता प्रभावित होती है। अधिकांश विद्यार्थियों ने कहा कि अकेले होने पर वे सकारात्मक निर्णय लेते हैं, परन्तु सहपाठियों के साथ होने पर उनके निर्णय लेने की क्षमता द्वन्द्वात्मक हो जाती है।

मानवकेन्द्रित-दृष्टिकोण, स्वयं के सुख में कमी होने के भय को उत्पन्न करता है और द्वन्द्वात्मक बनाता है। यही द्वन्द्वात्मक स्थिति निर्णय लेने में अक्षमता उत्पन्न करती है। प्रस्तुत शोध द्वारा यह ज्ञात हुआ कि कुछ विद्यार्थी मानवकेन्द्रित-दृष्टिकोण के कारणवश द्वन्द्वात्मक हुए हैं और कुछ ने इस दृष्टिकोण वश उस निर्णय को लिया जो उनके लिए सुखकारी था। प्रतिदर्श द्वारा प्राप्त इन निष्कर्श केआधार पर यह कहते हैं कि दैनिक जीवन में भी मानव में निहित मानवकेन्द्रित-दृष्टिकोण, उसे प्रकृति के दाहन करने से उत्पन्न परिणामों को समझने में अक्षम करता है और उसमें लोलुपता पैदा करता है, जो पर्यावरण के लिए हानिकारक है।

पाठ्यक्रम सम्बन्धित सुझाव है कि पर्यावरण-शिक्षा के पाठ्यक्रम में ऐसे पाठ हों जिनसे उन प्रथाओं के प्रति जागरूकता विकसित हो जो पर्यावरण के लिए नुकसानदेह हैं। प्रकृति के दोहन करने से उत्पन्न परिणामों को समझने, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और भविश्य की पीढिघ्यों के लिए पृथ्वी की रक्षा करने के लिए हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक उत्तरदायित्व को समझने की आवश्यकता को इंगित करता हो। शिक्षा के सीनियर सेकेंडरी स्तर पर पाठ्यक्रम में, पर्यावरण सम्बन्धित कार्यशाला का समावेश हो। कार्यशाला के माध्यम से युवाओं में पर्यावरण के प्रति रूचि एवं चेतना जाग्रत की जा सकती है। पर्यावरण संरक्षण संस्कृति का विकास किया जा सकता है। जिससे वो अपनी प्राकृतिक सम्पदा के दोहन के प्रति विवेकशील बने और अपव्यय को रोक सकें। साथ ही, उनमें यह भी समझ पैदा हो कि जब मानव और प्रकृति परस्पर जुड़ते हैं तो मानव के लिए नैतिक रूप से यह आवश्यक हो जाता है कि प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखने के लिए उसका आदर करें, उसका संरक्षण और सुरक्षा करें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- Chawala, L. (2009). Education for Strategic Environment Behaviour. Environment Education Res., 13.137.452.
- Gupta, Dr. S.P. and Gupta, Dr. Alka (2008). Statistical Methods in Behavioural Sciences Sharda Pustak Bhavan, Allahabad.
- http://www.brandbharat.com/english/up/districts
- http://cie.du.ac.in/scholors/med_abst2013_01.pdf
- http://nkrc.niscair.res.in
- http://www.ncert.nic.in/publication/journals/pdf_files/indian_education_abstracts/july_2008_IEA.pdf
- http://shodhganga.inflibnet.ac.in
- http://shodhganga.inflibnet.ac.in/handls/10603/12279
- http://shodhganga.inflibnet.ac.in/handls/10603/178408
- http://www.eurojournals.com/ajsr.htm
- http://hdl.handle.net/10603/72423
- http://www.indianjournals.com/ijor.aspx
- http://techwelkin.com/tools/english-to-hindi-typing-online-tool-unicode-converter/
- Indian Journal of Environmental Eduation, Vol. 12, p. 12 – 20, ISSN: 0975 – 9425.
- Indian Journal of Environmental Eduation, Vol. 12, p. 5 – 11, ISSN: 0975 – 9425.
- http://en.wikipedia.org/wiki/environmental_Ethics.
- http://www.youtube.com/watch?v=S-nHYzK-BVg
- International Journal of Multidisciplinary Research, Vol. 1, Issue 7, p. 90 – 101, ISSN: 2231 – 5780.
- Kaushik, Anubha & Kaushik, C.P. (2010), Environmental and International Publishing House, Meerut
- Khan, Dr. J.A. (2009). Research Methodology, APH Publication, New Delhi.
- Mangal, Dr. S.K. (2007). Research Methodology, APH Publications, New Delhi
- Rao, C.N. (1992). Fifth All India Educational Survey Vol. II, Education Department, N.C.E.R.T., New Delhi
- Sharma, Dr. S.V.S. (2008), Environmental Studies: Rastogi Publication, Meerut.
- Singh, Dr. Y.K. and Bajpai , Dr. R.B. (2007), Data Presentation, APH Publications, Daryaganj, New Delhi
- Srivastav K.K. (2008). Environmental Eduation: Principles,
- Concepts, and Management, Kanishka Publication, Darayaganaj, New Delhi

भारत के किसान आन्दोलन की समीक्षा

डॉ० नलिनी लता सचान

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, डी. ए-वी. कालेज, कानपुर

सार संक्षेप

भारत मुख्य रूप से एक कृषि प्रधान देश ही है। जनसंख्या का लगभग 68 प्रतिशत भाग कृषि पर निर्भर है। भारत के पर्व, तीज त्योहार, सब कृषि व किसानी से ही जुड़े हैं। कृषि व किसानी भारत की आत्मा है। गंगा यमुना के दोआब एवं सप्तसैंधव को मिलाकर बनने वाले क्षेत्रों में एवं कृष्णा, गोदावरी, कावेरी, पेन्नार नदियों की उपजाऊ पृष्ठ प्रदेश ने भारत में राजनीतिक जीवन को व्यवस्थित किया।' लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व में गंगा यमुना दोआब एवं बिहार में लोहे के प्रचुर प्रयोग के कारण अधिशेष उत्पादन होने लगा था। उत्तरवैदिक काल के जनपद अब महाजनपदों में परिवर्तित हो गए। बौद्ध ग्रंथ अंगुत्तरनिकाय एवं जैन ग्रंथ भगवती सूत्रों में 16 महाजनपदों का उल्लेख मिलता है।'[1] कृषि पर इतना निर्भर प्राचीन काल से रहे देश में कृषि की अवस्था एवं उस पर निर्भर जनसंख्या की दशा सदैव चिंता उत्पन्न करती है। किसान बहुआयामी रूप से सदैव देता ही रहा है। किसानों की दशा प्राचीन काल में उतनी खराब नहीं थी परन्तु ब्रिटिश काल में किसानों की अवस्था दयनीय होती गई। स्वतंत्रता के पश्चात भी एक लोकतांत्रिक देश में जिसमें सरकार जनता के समर्थन पर बनती व गिरती है किसानों की दशा बहुत अच्छी नहीं है। संविधान एक समाजवादी समाज वाले देश की बात करता है। सरकारों की नीतियाँ उद्योगों को अधिक प्रश्रय देने की रही है। स्वतंत्रता के साथ भी महालवोनिस माडल पर औद्योगीकरण को बढ़ावा दिया गया, कृषि को वह स्थान नहीं मिला जो कि मिलना चाहिये था। विभिन्न क्रान्तियाँ जिनमें हरित, नीली, पीली, सफेद इत्यादि हैं, वे भी किसानों की अवस्था में कोई सारभूत बदलाव न ला सकीं। किसानों की आत्महत्या की दरें व आंकड़े बताते हैं कि किसानों की अवस्था क्या है।' 10208 किसानों ने वर्ष 2019 में आत्महत्या की जो कि वर्ष 2018 मे 10357 से कम है।.....आत्महत्या दर अत्यंत तनावपूर्ण है। कृषि क्षेत्र में 7.4 प्रतिशत देश में होने वाली कुल आत्महत्याओं में से होता है जिसका परिणाम 5957 किसानों एवं 4324 कृषि श्रमिकों की आत्महत्या के रूप में सामने आता है। एनसीआरबी ने यह अपनी एक रिपोर्ट में कहा है जो कि नवीनतम आँकड़ों पर आधारित है।[2] 'गृह मंत्रालय ने कन्फर्म किया है कि राष्ट्रीय अपराध संग्रह ब्यूरो के आकस्मिक मृत्यु एवं आत्महत्या के भारत में आँकड़े शुक्रवार को निर्गत किये गए इसमें 11379 किसानों की मृत्यु भारत में आत्महत्या से हुयी। इसका अनुवाद होता है कि 948 आत्महत्याएँ प्रतिमाह या 31 आत्महत्याएँ प्रतिदिन हुईं। महाराष्ट्र सर्वाधिक किसानों की आत्महत्याओं की संख्या के मामले में सबसे अधिक है जो कि वर्ष 2016 में 3661 थी।'[3] 'वर्ष 2016 के आँकड़ों के साथ 333407 किसान वर्ष 1995 से भारत में आत्महत्या कर चुके हैं।'[4]

की-वर्ड:- दोआब, समाजवादी, मृत्युदर, संविधान, किसान आन्दोलन, हरित क्रान्ति, महालनोबिस माडल, शेतकारी, एनसीआरबी, स्वतन्त्रता आन्दोलन, उपनिवेश।

भारत में किसान अपने ऊपर होने वाले शोषण एवं अत्याचारों पर अत्यन्त सहनशील रहा है उसकी प्रतिक्रिया देर व सहनशक्ति की सीमा को लांघ जाने के बाद ही होती रही है। प्राचीन व मध्य काल में भी किसानों की दशा कोई स्वर्णयुग जैसी नहीं रही परन्तु उनका शोषण भी इतना तीव्र व्यवस्थित व सतत न रहा जो कि अपनी बात आन्दोलन या विद्रोह के रूप में सामने लाते। परन्तु पूरे औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश शासन ने पूरे योजनाबद्ध रूप से क्रमबद्ध व व्यवस्थित शोषण किया। ब्रिटिश शासन का उद्देश्य कहीं से भी भारत व भारतवासियों का हित चिंतन नहीं था उनके स्पष्ट व्यापारिक व थोड़े से सामरिक उद्देश्य थे। ब्रिटेन के हित में ही भारत का राज्य संचालित हो रहा था। भारत में ब्रिटिश उपनिवेश कोई शटलर कालोनिज्म भी नहीं था कि ब्रिटेन के नागरिक यहाँ बसते। अत: एक व्यवस्थित योजनाबद्ध शोषण ने भारतीय किसानों की कमर तोड़ दी। भारत में किसान अपने शोषण का तात्कालिक दृष्टव्य कारण साहूकारों एवं जमींदारों को मानते थे। परन्तु वे ब्रिटिश व्यवस्था से उत्पन्न किये गये कारिंदे मात्र थे। अंग्रेजी शासन ने वह व्यवस्था पैदा की जिसमें जमींदार एवं साहूकार आवश्यक भाग हो गए।

इस दिशा में पहला किसान आन्दोलन नील आन्दोलन था यह आन्दोलन 1859-1860 में हुआ। यद्यपि 1857 के विद्रोह को भी किसानों के बढ़ते असंतोष का कारण माना जा सकता है। 'वास्तव में ये सिपाही सैनिक वर्दी में किसान थे जो अब तक गांव की मिट्टी से जुड़े थे। एक सैनिक अधिकारी ने डलहौजी को सम्भावित खतरे के बारे में चेतावनी दे दी थी हमारी सेना देश के किसानों के बीच से बनी है। किसान के कुछ अधिकार हैं। यदि उन अधिकारों का हनन हुआ तो हम ज्यादा दिनों तक सेना पर भरोसा नहीं कर सकेंगे।'[5] 'वास्तव में उस समय अवधि में शायद ही कोई ऐसा परिवार रहा हो जिसका कोई सदस्य सेना में न रहा हो। केवल अवध के ही 75000 सैनिक सेना में थे कोई भी घटना इन्हें तत्काल प्रभावित करती थी नए भू-राजस्व कानून ने सैनिकों को बहुत प्रभावित किया इसके खिलाफ केवल सैनिकों की ओर से 15000 अर्जियाँ दायर की गई।'[6] बंगाल से ही ब्रिटिश औपनिवेशिक राज्य प्रारम्भ हुआ था। प्राथमिक किसान विद्रोह व आन्दोलन भी बंगाल में ही हुए। नील आन्दोलन के बाद होने वाला पावना विद्रोह जो कि 1873 से 76 तक रहा भी बंगाल में ही हुआ। दक्षिण भारत में भी 1875 में ढक्कन का उपद्रव हुआ। केरल के मालाबार का मोपला विद्रोह इसी क्रम में रहा जोकि 1836 से अनवरत थोड़े-थोड़े

अन्तराल पर होता रहा। 1921 में जाकर यह समाप्त हुआ। किसानों ने व्यवस्थित रूप से एक संगठन के माध्यम से 1918 में उत्तर प्रदेश किसान सभा का गठन कर अपने आन्दोलन को संयुक्त प्रान्त में चलाया। इसी क्रम में 1920 में अवध किसान सभा का भी गठन किया गया अवध क्षेत्र में ही एक आन्दोलन भी हुआ जोकि समाज में पिछड़ी जातियों द्वारा चलाया गया। बारदोली बिजौलियां तेभागा तेलंगाना का किसान आंदोलन इसी क्रम में अनवर होते रहे।' 1936 ई0 में अखिल भारतीय किसान संगठन बना जिसे अखिल भारतीय किसान सभा नाम दिया गया पहला अखिल भारतीय किसान सम्मेलन 11 अप्रैल 1936 में लखनऊ में हुआ। स्वामी सहजानंद सरस्वती इसके अध्यक्ष एवं प्रोफेसर एन0जी0 रंगा महासचिव चुने गए। इस सम्मेलन में जवाहरलाल नेहरू ने भी भाग लिया और भाषण दिया। इस अधिवेशन में 1 सितम्बर 1936ई0 को किसान दिवस के रुप मे मनाने का निर्णय लिया गया।'[7]

वास्तव में भारत में कृषि व किसानों की दयनीय अवस्था का प्रारम्भ औपनिवेशिक शासन काल से ही प्रारम्भ हो गया था। 'कृषि में औपनिवेशिक राज की दिलचस्पी लगान वसूल करने तक ही रही और उसके निकास के बदले में बहुत कम खर्च किया गया। उसी प्रकार भूस्वामियों एवं महाजनों ने निजी स्वामित्व या अधिकार वाली भूमि पर कोई उत्पादक निवेश करने के बजाय काश्तकारों, बटाईदारों से निष्ठुरतापूर्वक लगान एवं सूद वसूल करने के अतिरिक्त कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं रही।'[8]

ऐसा नहीं है कि सरकार ने स्वतंत्रता के पश्चात किसानों की समस्याओं की ओर ध्यान नहीं दिया अनवरत प्रयास किये जाते रहे। जिनमें जमींदारी उन्मूलन, सीलिंग लागू करना, सहकारी समितियों की स्थापना, कृषि को सब्सिडी, न्यूनतम समर्थन मूल्य, कृषि उपकरणों पर सहायता जैसे अनगिनत कदम उठाए गए। 'निष्कर्ष में कह सकते हैं कि सरकार की विभिन्न नीतियों एवं कार्यक्रमों का परिणाम विचारणीय है विशेषकर उत्पादन के क्षेत्र में। लेकिन उसी समय यह खुला सत्य है कि विकास के फल ग्रामीण भारत के गरीब भागों तक छनकर नहीं पहुँचे।.....इस प्रकार स्थिति चिन्ताजनक होती जा रही है और समय की माँग है कि अपनी इच्छित परिणाम प्राप्त करने की असफलता को नकारा न जाए, वरन पुनः विचार एवं पुनः संरचित की जाए अपनी प्राथमिकतायें अन्यथा बहुत देर हो जाएगी अवश्यम्भावी सामाजिक एवं राजनीतिक विभीषिका को टालना।'[9]

यदि किसानों की आत्महत्या के आँकड़ों को देखा जाए जो कि अधिकृत रूप से एनसीआरबी ने जारी किए हैं तो स्थिति भयावह लगती है। एक कृषि प्रधान लोकतान्त्रिक देश में सरकारों को समर्थन की जरूरत होती है। जनता का अधिकांश भाग किसान ही है। उसकी यह दयनीय दशा अनेक प्रश्न खड़ा करती है। भारत में किसानों को कितनी जमीन उनके अधिकार में है, के आधार पर चार वर्गों में बांटा जाता है सीमान्त, लघु, मध्यम एवं बड़े किसान। वे किसान जिनके अधिकार में 1 हेक्टेयर से कम जमीन है सीमान्त कहे जाते हैं, जिनके पास 1 हेक्टेयर या उससे अधिक परन्तु 2 हेक्टेयर से कम भूमि है वो लघु कहे जाते हैं, जिन किसानों के पास 2 या 2 हेक्टेयर से अधिक किंतु 10 हेक्टेयर से कम भूमि है वे माध्यम किसान कहे जाते हैं जिन किसानों के पास 10 हेक्टेयर से अधिक भूमि है वो बड़े किसान कहे जाते हैं । '44.5% और 27.9% आत्महत्या पीड़ित किसान क्रमशः छोटे और सीमान्त थे वे कुल किसान आत्महत्याओं का 72.4% थे।'[10] आँकड़ों से स्पष्ट है कि किसानों की आत्महत्या में तीन चौथाई हिस्सा छोटे और सीमान्त किसानों का ही है। एनसीआरबी ने 2014 के आँकड़ों के आधार पर बताया कि 'आत्महत्या पीड़ितों में बहुमत 30 वर्ष एवं ऊपर तथा 60 वर्ष से नीचे के बीच आने वाले आयु समूहों का है जो 66.7% है कुल किसान आत्महत्याओं का वर्ष 2014 के दौरान। कुल 59 किसानों (18 वर्ष से नीचे) ने वर्ष 2014 के दौरान आत्महत्या की 10.2% किसान जिन्होंने आत्महत्या की वो सीनियर सिटीजन रहे (60 वर्ष से अधिक उम्र)।'[11] अर्थात छोटे एवं सीमान्त किसान तथा वो लोग जो परिवार की जिम्मेदारी उठाते हैं उनकी आत्महत्या दर सर्वाधिक रही है। एन0सी0आर0बी0 ने पहली बार 2016 में विस्तृत रिपोर्ट किसान आत्महत्या पर प्रकाशित की थी उसमें कारणों को भी बताया गया था क्यों किसान आत्महत्या करते हैं। 'बैंकों का कर्ज, और पारिवारिक समस्याएं आत्महत्या के मुख्य कारण है जो कि 21.5% और 20.5% क्रमशः पुरुष किसानों की संख्या को बताते हैं जिन्होंने आत्महत्या की। वहीं महिला किसानों में खेती संबंधी मुद्दे, पारिवारिक समस्याएँ, विवाह सम्बन्धी मुद्दे, बैंकों का कर्ज, आत्महत्या के मुख्य कारण रहे हैं जो कि क्रमशः 21.4%, 20.6%, 12.3%, और 10.8% वर्ष 2014 में रहे।'[12]

स्वतन्त्र भारत में किसान अपनी इन्हीं समस्याओं को लेकर आन्दोलन ग्रस्त भी होते रहे उनके पीछे विचारधारात्मक उपकरण आ जाता है तो वो माओवादी गतिविधियों में प्रकट हो जाता है। इस क्रम में पहला प्रस्फुटन पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग में 1967 में हुआ स्थान नक्सलवाड़ी रहा। अतः इस तरह के हिंसक आन्दोलन जो भारतीय राजसत्ता को अपना शत्रु समझते हैं उनको उखाड़ फेंकना चाहते हैं उनके स्थान पर जनवादी सरकार स्थापित करना चाहते हैं, नक्सलवादी आन्दोलन कहे जाते हैं। ये आन्दोलन समाज के गरीब किसानों के आन्दोलन हैं इनका बेस गरीब किसान, पिछड़ी दलित आदिवासी समुदाय की जातियाँ हैं। वस्तुतः नक्सलवादी आन्दोलन भी किसान आन्दोलन ही है जो कि सम्पूर्ण व्यवस्था को नष्ट करके नई व्यवस्था स्थापित करना चाहती है उनका भारत की लोकतांत्रिक संवैधानिक व्यवस्था पर कोई विश्वास नहीं है वे यह भी नहीं मानते कि संविधान में उपलब्ध प्रक्रिया को अपनाकर व्यवस्था परिवर्तन किया जा सकता है। वे विद्यमान भारत की सरकार को पूँजीवादी उपकरण मात्र मानते हैं। अतः संवैधानिक सरकार को उखाड़ कर उसके स्थान पर अपनी जनवादी सरकार स्थापित करना चाहते हैं। नक्सलवाड़ी आन्दोलन तो कुचल दिया गया परन्तु भारत के बहुत बड़े हिस्से में नक्सलवादी गतिविधियां सक्रिय हैं। एक रेड ट्राईएंगिल है जो कि उत्तरी बिहार, छत्तीसगढ़, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, महाराष्ट्र, कर्नाटक, उड़ीसा तक फैला है। इस पूरे क्षेत्र में गरीबी आदिवासियों की समस्याएं एवं जाति व्यवस्था से उत्पन्न समस्याओं का ढेर है। नक्सलवादी उन समस्याओं का अपने हित में उपयोग करते है। गरीब भोली भाली ग्रामीण जनता को बरगला कर अपने हित साधन में प्रयोग करते हैं। यद्यपि नक्सलवादी आन्दोलन भी किसान आन्दोलन ही है परन्तु समर्थन नहीं किया जा सकता क्योंकि न तो ये संवैधानिक साधनों को मानते हैं न ही लोकतांत्रिक प्रक्रिया को। ये हिंसा पर विश्वास करते हैं जिसका लोकतन्त्र में कोई स्थान नहीं है।

स्वतन्त्र भारत में किसान आन्दोलन में पहला आन्दोलन तेलंगाना का रहा वो भी नक्सलवादी आन्दोलन की ही तरह हिंसात्मक प्रकृति का था परन्तु उसके पीछे कोई विचारधारात्मक रणनीति कार्रवाई योजना या भविष्य का स्वप्न नहीं था। 1951 में भारतीय सेना ने इसे कुचल दिया इससे उपजे कुछ नेता बाद में नक्सलवादी आन्दोलन से जुड़ गए।

भारत में बड़े या धनी किसानों के भी किसान संगठन बने जैसे उत्तर प्रदेश में टिकैत के नेतृत्व में भारतीय किसान यूनियन जिसका प्रभाव क्षेत्र पंजाब, हरियाणा व उत्तर प्रदेश विशेषकर पश्चिमी उत्तर प्रदेश रहा है। महाराष्ट्र का शेतकारी संगठन जो कि मुख्यतया बड़े किसानों का संगठन है शरद जोशी इसके

नेता रहे हैं। कर्नाटक में कर्नाटक राज्य रैथ संघ जो नंदन्जप्पा स्वामी के नेतृत्व में बना। तमिलनाडु में विवसयीगल संगम व गुजरात में खाद्युत समाज। इनसे सब बड़े किसान जुड़े हैं सरकार की योजनाओं एवं नीतियों से सर्वाधिक लाभ पाने। संसाधनों से संपन्न तक व बड़े स्तर पर उत्पादन साधनों का प्रयोग करने वाले। ये कृषि श्रमिकों की सहायता से उत्पादन करते हैं बड़ी जोतों के स्वामी हैं अपने अधिकारों के प्रति जागरुक हैं। नक्सलवादी आन्दोलन जो अपना तात्कालिक निशाना ग्रामीण परिवेश में उपस्थित धनी लोगों व सरकारी कर्मचारियों को बनाते हैं ये अपनी कार्यवाही योजना सरकार की नीतियों को ध्यान में रखकर बनाते हैं। इनका उद्देश्य सरकार को हटाना नहीं या उखाड़ फेंकना नहीं वरन दबाव समूह की तरह सरकार से ऐसी नीतियाँ एवं कार्यक्रम बनवाना होता है जिससे उनको अधिकतम लाभ हो सके। ये अपनी उपज का न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़वाने, सरकारी सब्सिडी जो कि बिजली उपकरणों या अन्य लागतों पर प्राप्त होती है, उनको बढ़वाने पर ध्यान देते हैं। कृषि में लागत पर सरकारी सहायता में वृद्धि व कृषि निर्गत अर्थात उपज पर अधिकतम मूल्य प्राप्त करना ही इनका उद्देश्य है।' महाराष्ट्र के अपवाद के साथ उन आन्दोलनों ने छोटे उत्पादकों की समस्याएं नहीं उठाई बल्कि टिकैत ने भूमि आदि सीमन कानून न्यूनतम वेतन अधिनियम को निरस्त किये जाने की माँग उठाई है।'[13] इन संगठनों के तरीके दबाव समूहों के तरीकों से मेल खाते हैं। ये सार्वजनिक सम्पत्ति को नुक्सान, रैली, रास्ता रोको जैसे कार्य करते हैं। राजनीतिक प्रक्रिया में सीधी भागीदारी नहीं करते जो दबाव समूह का मुख्य लक्षण भी होता है। अर्थात गैर राजनीतिक होते हैं। इतने सम्पन्न किसानों का संगठन होने के बाद किसानों की दशा सुधारने में कोई सारभूत योगदान नहीं दे पाए हैं। इसके कारणों को खोजें तो यही मिलेगा कि गरीब किसानों के पास संसाधन नहीं हैं और उनको भ्रमित करके नक्सलवादी गतिविधियों की ओर भी ले जाया जाता है वहीं बड़े किसानों का संगठन अपनी माँगों में छोटे किसानों की समस्याओं को समाहित नहीं करता। छोटे किसान संसाधनहीन होने से कमजोर हैं वहीं बड़े किसान संख्याहीन होने से। लोकतांत्रिक देश में संख्या ही महत्त्व रखती है। दोनों को परस्पर एक-दूसरे को साथ रखना होगा। दूसरे किसान आन्दोलन अपनी माँगों को लेकर एकमत भी नहीं है। कुछ किसान गेहूं के न्यूनतम समर्थन मूल्य की चिन्ता करते हैं, कुछ गन्ने की। कुछ सब्सिडी की, कुछ अन्य की। एक मत एक संगठन एक आवाज का अभाव किसानों की समस्याओं पर ठोस नीति व कार्यक्रम बनने में बाधा है। छोटे, लघु व सीमान्त किसानों के हित बड़े व मध्यम किसानों से अलग भी हैं।

सितम्बर 2020 में संसद ने तीन कृषि कानून पास किये। तीनों कानूनों को लेकर किसान संगठन आन्दोलनरत हो गए। यह आन्दोलन रिसर्च पेपर लिखे जाने तक जारी है। किसानों की माँग है कि ये तीनों कानून वापस लिए जाएँ इस हेतु किसानों के संगठनों ने एक संयुक्त किसान मोर्चा बनाया है। इस संयुक्त किसान मोर्चे में सम्मिलित हैं अखिल भारतीय किसान संघर्ष समायोजन समिति, भारतीय किसान यूनियन, अखिल भारतीय किसान सभा, जय किसान आन्दोलन, लोक संघर्ष मोर्चा, अखिल भारतीय किसान खेत मजदूर संगठन, नेशनल एलायंस ऑफ पीपल्स मूवमेंट इत्यादि। इनको विभिन्न राजनीतिक दलों का समर्थन भी प्राप्त है जिसमें शिरोमणि अकाली दल, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, आम आदमी पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया, शिवसेना, कम्युनिस्ट पार्टी आफ इंडिया मार्क्सिस्ट, राष्ट्रीय लोकतांत्रिक पार्टी, तृणमूल कांग्रेस। 'इसमें हरियाणा पुलिस के अनुसार 40000 किसान 21 मार्च 2021 को शामिल हैं। जिसमें 18-19 1000 आन्दोलनकारी सिंधू बॉर्डर पर एवं 20-22 1000 आन्दोलन टिकरी बॉर्डर पर हैं।'[14] किसान संगठनों ने सरकार के द्वारा बनाये गये तीनों कानूनों को निरस्त करने की माँग की है, कानूनों को निरस्त करने से कम पर समझौता करने को तैयार नहीं है। जनवरी 2021 तक ग्यारह राउंड की वार्ता हो चुकी है जो कि किसी परिणाम तक न पहुँची। छः राज्यों केरल, पंजाब, छत्तीसगढ़, राजस्थान, दिल्ली, पश्चिम बंगाल ने संसद के द्वारा पास विधेयक के विरुद्ध अपने-अपने राज्यों में विधेयक पास किए हैं। यह किसी किसान आन्दोलन को पहली बार मिला राजनीतिक समर्थन है। भारत में इतना समर्थन पहले किसी भी किसान आंदोलन को नहीं मिला। परन्तु हम जानते हैं कि संसद द्वारा पास विधेयक ही अभिभावी होते हैं यदि राज्य विधानसभा भी उसी विषय पर विधेयक पास कर देती है तो। अर्थात राज्यों के द्वारा पास विधेयक का कोई विधिक महत्त्व नहीं है बस राजनैतिक महत्त्व है। भारत सरकार यह दावा करती है कि इस आन्दोलन से कुछ किसान संगठन पीछे हो गए हैं। सरकार ने आन्दोलनरत किसान संगठनों को न्यूनतम समर्थन मूल्य की गारंटी भी दी है। परन्तु इतना कहा जा सकता है कि अब तक का सबसे सफल किसान आन्दोलन राजनैतिक रूप से रहा है। यह आंदोलन यद्यपि पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश में ही अपना प्रभाव एवं समर्थन क्षेत्र रखता है परन्तु अखिल भारतीय स्तर पर राजनीतिक समर्थन प्राप्त करने में सफल रहा। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जहाँ लोकतांत्रिक शासन है किसान आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप भी कृषि दिशा व दशा में कोई सारभूत सुधार न हुआ है। किसान अभी भी लागत हेतु पूँजी, तकनीक, संसाधनों, बीज, खाद के लिए सरकार के सहयोग पर निर्भर हैं। किसानों में प्रच्छन्न बेरोजगारी व मौसमी बेरोजगारी आमतौर पर पाई जाती है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था उनको वैकल्पिक रोजगार व मौके उपलब्ध कराने में असमर्थ रही है। सरकार जो कि लोक कल्याणकारी राज्य के सिद्धांत पर भी चलती है जनता के एक बड़े वर्ग को अपने हालात पर छोड़ भी नहीं सकती न छोड़ते ही हैं। परन्तु लोकतन्त्र का संचालन चुनावों से होता है। राजनीतिक दल ही वह माध्यम है जो लोकतंत्र की डोर की तरह काम करके उसका संचालन करते हैं। यह बात समस्त राजनीतिक दलों को पता है कि आजादी के बाद से आज तक किसानों ने किसान के नाम पर वोट शायद ही कभी दिया हो। किसानों में भी जाति है, धर्म है। भारत में चुनाव व्यवहार को निर्धारित करने में जाति एवं धर्म अधिक महत्त्वपूर्ण कारक बन जाते हैं, पेशे की तुलना में। भारत में मतदान व्यवहार को निर्धारित करने में जाति एवं धर्म अधिक महत्त्वपूर्ण कारक बन जाते हैं पहचान के भी और मतदान के भी। किसान की किसान होने की पहचान कहीं न कहीं उसकी जातिगत व धार्मिक पहचान के पीछे छुप जाती है यह बात समस्त राजनीतिक दलों को भी पता है। अतः सीधी, त्वरित व कृषि व किसानों की समस्याओं की जड़ों पर चोट शायद ही कभी होती हो। दूसरे किसान संगठनों की परस्पर हितों की एकता में भी समानता नहीं है। गरीब अर्थात सीमान्त और लघु किसानों की समस्याओं एवं आवश्यकताओं का स्वरूप मध्यम व बड़े किसान उससे अलग है। यद्यपि ये विरोधी नहीं है परन्तु परस्पर साम्य भी नहीं है। हितों का साम्य न होना इनको एक मंच पर लाने में बाधा उत्पन्न करता है जिससे स्वयं किसान आन्दोलन ही कमजोर होता है। किसानों की आत्महत्या की समस्याओं को देखने पर बैंकिंग व्यवहार में भी परिवर्तन किये जाने की आवश्यकता है। बैंक से कर्ज लेते समय समस्त बातें किसान और बैंक के मध्य गोपनीय होती है। जब किसान कर्ज का भुगतान नहीं करता तो बैंक किसानों की सामाजिक रूप से व्यवहार करके नोटिस, डुग्गी पीटना जैसे कार्य करता है। जिससे सामाजिक प्रतिष्ठा को सीधी चोट पहुँचती है और सामाजिक उलाहना व उपेक्षा, तिरस्कार भी मिलता है। इसके साथ कृषि बीमा जैसी सुविधाओं की जानकारी का अभाव, बीमाकर्ता कम्पनियों का प्रोएक्टिव दृष्टिकोण न होना जैसी समस्याएँ

किसानों को फसल बीमा जैसी सुविधाओं का लाभ लेने से रोकती हैं। कृषि व किसान बाजारी पूँजी के निवेश से दूर भी है। इसके अपने रिश्क है। उन संवेदनशील व नाजुक बिंदुओं पर विचार करके सरकार को एक किसानों के हितों को संरक्षित करने की पूर्व सुविधा वाला कानूनी ढाँचा बनाना चाहिये तब जाकर बड़ी पूँजी के निवेश की अनुमति दी जानी चाहिए।

संदर्भ सूची

1. पाण्डे एस0के0, प्राचीन भारत, प्रयाग एकेडमी, इलाहाबाद, 2007, पृ0 190
2. इकोनामिक टाइम्स, सितंबर 1, 2000
3. द वायर, नवंबर 9, 2019
4. वही।
5. चन्द्र विपिन, मुखर्जी मृदुला, मुखर्जी आदित्य, पनिकर क0न0, महाजन सुचेता, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2001, पृ0 4
6. वही, पृ0 5
7. पाण्डे एस0के0, आधुनिक भारत, प्रयाग एकेडमी, इलाहाबाद, 2007, पृ0 223
8. चन्द्र विपिन, मुखर्जी मृदुला, मुखर्जी आदित्य, पनिकर क0न0, महाजन सुचेता, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2001, पृ0 424
9. सिंह महेन्द्र प्रसाद, राय हिमांशु, जनानादा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ0 322
11. वही।
12. वही।
13. https://egyankosh.ac.in
14. en.m.wikipedia.org

भारतीय राजनीति में जाति की प्रासंगिकता

डॉ० पुष्कर पाण्डेय

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, डी. ए-वी. कालेज, कानपुर

शोध सारांश

चतुर्वण मया सृस्टम् गुणकर्मविभागश:। भगवान श्री कृष्ण गीता में अर्जुन से कहते हैं कि चारों वर्णों की रचना मैने गुण एवं कर्म के आधार पर की है। सनातन भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित था। वर्ण व्यवस्था का विवेचन भारतीय वाङ्मय अनवरत वह विशद् रूप से करते हैं। प्राचीन यूनान में भी प्लेटो गुणों के आधार पर समाज को तीन वर्गों में बांटता है। प्लेटो कहता है कि मानव आत्मा में तीन गुण ही मुख्य हैं- प्रथम ज्ञान, द्वितीय साहस, तृतीय क्षुधा। ज्ञान जिसमें प्रबल है उसकी बुद्धि प्रबल होगी, साहस जिसमें प्रबल है वह निडर व उत्साही होगा, क्षुधा जिसमें प्रबल है वह भोग विलास से युक्त होगा उसमें वासना प्रबल होगी इसी आधार पर वह समाज को तीन वर्गों प्रथम दार्शनिक जिनमें बुद्धि प्रबल है, द्वितीय सैनिक जिनमें साहस प्रबल है तृतीय उत्पादक जिनमें क्षुधा प्रबल है, में बांटता है। इस समाज की वर्ग व्यवस्था में जो कि नागरिकों को ही प्राप्त है एक चौथा वर्ग है दास वर्ग। सम्पूर्णता में देखें तो प्राचीन यूनान में भी चार वर्ग दार्शनिक, सैनिक, उत्पादक एवं दास विद्यमान थे। भारत में भी चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र विद्यमान रहे हैं। ब्राह्मण ज्ञान तत्त्व, क्षत्रिय साहस तत्त्व, वैश्य उत्पादन तत्त्व व शूद्र सेवा तत्त्व की प्रधानता रखते हैं। यूनान में भी ऐसा ही विभाजन था। वहाँ भी शासन सत्ता में भागीदारी दार्शनिक व सैनिक वर्ग को ही प्राप्त थी। भारत में भी शासन सत्ता में भागीदारी द्विजों को ही प्राप्त थी।

वर्ण व्यवस्था समय के साथ जाति व्यवस्था में बदल गई। वैदिक संस्कृति में वर्ण व्यवस्था है। ऋग्वेद का दसवाँ मण्डल जो कि सबसे बाद में जोड़ा गया में पुरुष सूक्त है:-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहु राजन्य कृत:।
उरुतदस्यय द्वैश्य: पादभ्याम् शूद्रो अजायत्।।

पुरुष सूक्त में ही यह कहा गया है कि 'विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजा से राजन्य, जंघा से वैश्य और पैर से शूद्र की उत्पत्ति हुई है। वर्ण व्यवस्था में वर्ण का दो अर्थ है पहला वरण करना या चुनना दूसरा रंग।'[1] वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था कठोर न थी। व्यक्ति स्वतंत्र था अपने वर्ण को चुनने को। उसके गुण व कर्म ही वर्ण में उस व्यक्ति के रहने का आधार बनते थे। 'ऋग्वेद के नौवें मण्डल में एक व्यक्ति कहता है कि मैं कवि हूँ, मेरा पिता वैद्य है, मेरी माँ आटा पीसने वाली है, इस तरह अलग अलग कार्य करते हुए भी हम लोग साथ-साथ रहते हैं। वशिष्ट ब्राह्मण थे उनकी माता उर्वशी अप्सरा थी एवं पिता मित्रवरु क्षत्रिय थे। वैदिक काल में कर्म के आधार पर वर्ण विभाजन दिखाई देता है जन्म के आधार पर नहीं।'[2] वर्ण के दूसरे अर्थ रंग के आधार का प्रारम्भ आर्यों का अनार्यों से संघर्ष हुआ। आर्य गौरवर्णीय थे और अनार्य श्याम। आर्यों ने अनार्यों को अनायास: मृदुवाक देवपीयु अदेवयु अयज्जवन अकर्मन अवृत जैसी संज्ञाओं से संबोधित किया है। वैदिक काल एवं उत्तरवैदिक काल तक वर्ण व्यवस्था ही विद्यमान रही। यद्यपि वह उत्तरवैदिक काल में शूद्रों का उपनयन संस्कार बंद कर दिया गया था। सूत्रकाल आते-आते वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था में बदल गई। 'जाति शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख यास्क ने अपने ग्रन्थ निरुक्त में कृष्ण जाति के रूप में किया है। तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से वर्ण के लिए जाति शब्द का प्रयोग होने लगा।'[3] तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से वर्ण व्यवस्था लुप्त हो गई जाति व्यवस्था प्रचलन में आ गई। समकालीन राजनीति तक यह प्रभावी भूमिका में विभिन्न आयामों के साथ विद्यमान है।

की-वर्ड:- वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, भारत का संविधान, सकारात्मक कार्यवाही, सामाजिक न्याय, आरक्षण, राजनीतिक दल।

24 अगस्त 2021 को दस राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि बिहार के मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार के नेतृत्व में प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी से मुलाकात करते हैं। उनकी माँग जातीय जनगणना कराने को लेकर थी। ध्यातव्य है कि पिछली जातीय जनगणना 1931 में हुई थी तब ब्रिटिश राज था। 'एक मजबूत बहस है कि औपनिवेशिक जनगणना जातीय एवं धार्मिक समूहों का निर्माण एवं उनको थोपने के बारे में थी न कि वास्तविक रूप से उनकी गणना के बारे में थी। वर्गों का निर्माण स्वयं में एक राजनीतिक कार्य है। भारतीय राजनीति एवं शासन संरचना में जाति घर कर गई है जो कि मजबूत हुई है मुख्य एकमात्र पहचान कारक के रूप में एक भारतीय के लिए स्वतंत्रता के पश्चात। जैसे-जैसे समाज का लोकतंत्रीकरण गहराता है प्रश्न उठाए जा रहे हैं दलितों, आदिवासी समुदायों एवं बड़ी जनसंख्या के लिए जो कि संविधान में सामाजिक एवं शैक्षणिक पिछड़े वर्गों के रूप में है-की प्रस्थिति के बारे में।[4]

रुडोल्फ एवं रुडोल्फ, रजनी कोठारी एवं अन्य कुछ भारतीय राजनीति के अध्येता मानते हैं कि 'क्योंकि कोई पूर्ण विकसित हित समूह दबाव समूह और अन्य सहयोगात्मक एजेंसी भारत जैसे परम्परागत अल्प विकसित समाज में नहीं हैं परम्परागत जाति संरचना अपने जातीय समूहों के माध्यम से लोगों को लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भागीदारी करने में लाने में अत्यन्त महती भूमिका निभाए हैं।'[5]

स्वतंत्र भारत का संविधान सबको राजनैतिक कानूनी सामाजिक समानता की विधिक गारंटी देता है। इस बात को लेकर भी संवेदनशील संविधान है कि समाज में कुछ वर्ग पीछे रह गए हैं जाति व्यवस्था एवं अन्य कारणों से; अत: उनके लिए सकारात्मक कार्यवाही जैसे आरक्षण का भी प्रावधान करता है।

संविधान का अनुच्छेद 15 धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव का प्रतिषेध करता है तो इसी अनुच्छेद का भाग 4 कहता है कि- 'इस अनुच्छेद की कोई या अनुच्छेद 29 के खंड 2 की कोई बात राज्य को सामाजिक शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।'[6]

इन वर्गों की शिक्षा के लिए भी अनुच्छेद 15(5) में सकारात्मक कार्यवाही करने की शक्ति राज्य को दी गई है। संविधान का अनुच्छेद 16(4) एवं 16(4क) पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग एवं अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के पक्ष में जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की सेवाओं में पर्याप्त नहीं है के लिए आरक्षण की व्यवस्था करता है। संविधान के अनुच्छेद 330 एवं 332 क्रमशः लोकसभा एवं विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए सीटों के आरक्षण की व्यवस्था करते हैं।

वस्तुतः भारत में लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की स्थापना भारत का संविधान करता है। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था राजनीतिक दलों एवं दबाव समूह की परम्परागत संरचनाओं से पाश्चात्य दुनिया में संचालित होती रही है। भारत में राजनीतिक दल तो बन गए परन्तु दबाव समूहों की संरचनाएं उतनी विकसित, परिमार्जित व परिष्कृत न हो पाई जितनी पाश्चात्य दुनिया में है, यह अंतराल भी भारत में जाति ही भरती है। दूसरी बात लोकतांत्रिक शासन अपने अनुप्रयोग में व्यापक जन भागीदारी की अपेक्षा करता है। राजनीतिक दल इस जन भागीदारी के उपकरण हैं। राजनीतिक दल सत्ता संघर्ष में जाति क्षेत्र धर्म भाषा इत्यादि का प्रयोग सामाजिक लामबंदी के लिए करते हैं। भारत में जाति सामाजिक व शैक्षणिक रूप से अगड़े या पिछड़े या दलित होने का आधार हो सकता है परन्तु राजनैतिक रूप से जाति सदैव लामबंदी का माध्यम रही है। राजनैतिक दल अपने वोट बैंक में वोटरों की संख्या बढ़ाने को सहज व सरल तथा परम्परागत रूप में उपलब्ध जाति की व्यवस्था का उपयोग करते हैं। इसके लिए दलों को किसी नवीन प्रयास की भी आवश्यकता नहीं पड़ती अतिरिक्त श्रम भी नहीं करना पड़ता। उपलब्ध विकल्प का प्रयोग कर लेना उनके लिए सहज भी हो जाता है इसीलिए सामाजिक रूप से जाति व्यवस्था, आर्थिक चोटों, नगरीकरण, औद्योगीकरण के कारण भले ही कमजोर हुई हो परन्तु राजनीतिक रूप से जाति व्यवस्था ने स्वयं को मजबूत ही किया है, जाति राजनीतिक दलों के हाथों में आकर नए स्वरूप में भी उभर रही है। जाति व्यवस्था में उपजातियों का स्थान महत्त्व पा रहा है। जातियों का परस्पर सत्ता संघर्ष भी पूरे देश में एक सा नहीं है। उप जातियों को वृहद जाति पहचान देकर अपनी संख्या को बड़ा बताकर जातीय नेता अधिक लाभों की अपेक्षा राजनीतिक व्यवस्था से करने लगे हैं। क्योंकि जाति भारतीय राजनीति का प्रयुक्त एवं अनुभव सिद्ध वह तत्त्व है जो अपनी राजनैतिक सफलता को समय के साथ सिद्ध कर चुका है। जातियों की परस्पर प्रतिद्वंद्विता का स्वरूप भी पूरे देश में एक सा नहीं है। जिन जातियों का वर्चस्व स्वतंत्रता के पश्चात राजनीतिक व्यवस्था पर था वह टूट रहा है। नया स्वरूप जातीय दृष्टि से राजनीतिक प्रभुत्व का उभर रहा है। भारत की राजनीति की मर्मस्थली उत्तर प्रदेश एवं बिहार में तो तथाकथित अगड़ी जातियाँ जो कभी राजनीतिक सत्ता का नेतृत्व करती थीं अब सहयोगात्मक भूमिका में हैं। बिहार में यह राजनैतिक संघर्ष पिछड़ी जातियों के बीच है अगड़ी एवं दलित जातियाँ सहयोगात्मक भूमिका में रही हैं। उत्तर प्रदेश में संघर्ष पिछड़ी एवं दलित जातियों के मध्य है अगड़ी जातियों की भूमिका किसी दल विशेष को सत्ता में लाने या हटाने तक सीमित है। स्वयं सत्ता संचालन की भूमिका नहीं रही है यदि आपवादिक रूप से ऐसा होता है तो भी उसके अन्य कारण समयावधि विशेष में प्रभावशाली होने से ऐसा होना प्रतीत करते हैं।

भारत में जाति ने अपने को सतत परिवर्तनशील किया है। इस सन्दर्भ में पहले परिवर्तन पर दृष्टि पड़ी एम0एन0 श्रीनिवास की जिसमें उन्होंने संस्कृतिकरण का नया शब्द गढ़ा। 'जाति विशेषकर सामाजिक सोपान पर नीचे खड़ी जातियाँ अपने को महत्त्वपूर्ण एवं गौरवशाली दिखाने के लिए अपने से ऊपर की जातियों (यह आवश्यक नहीं कि द्विज ही) का जाति अलंकरण (टाइटल) अपने नाम के आगे लगाने लगती हैं। अपने से ऊपर की जातियों की सामाजिक एवं अन्य लोक व्यवहार परम्पराओं और रीति-रिवाजों को मानने लगती हैं'।[8] एम0एन0 श्रीनिवास डॉमिनेंट कास्ट की भी बात करते हैं। अपनी पुस्तक 'रिमेम्बर्ड विलेज' में जो कि प्राचीन मैसूर, वर्तमान में कर्नाटक का एक गांव है रामापुरा में किये गये अध्ययन का परिणाम है, में बताया कि 'प्रभुत्त्वशाली जाति किसी क्षेत्र विशेष में कोई भी हो सकती है। यह आवश्यक नहीं कि वह ब्राह्मण या क्षत्रिय ही हो। प्रभुत्त्वशाली जातियों के मध्य भी सत्ता संघर्ष होता है। यह प्रभुत्त्वशाली जातियाँ ऊपर की या मध्य की या मध्य व नीचे की हो सकती हैं।'[9] जैसे कर्नाटक में ही, कम्मा और रेड्डी दो प्रभुत्त्वशाली जातियाँ हैं इन्हीं दोनों के मध्य सत्ता का संघर्ष होता है। यह दोनों जातियाँ जाति सोपान के मध्य स्तर की जातियाँ हैं। वैसे ही बिहार में भी काछी और यादव मध्य स्तरीय जातियाँ हैं, के बीच सत्ता संघर्ष होता है। भारतीय राजनीति में जाति को समझने में एम0एन0 श्रीनिवास के संस्कृतिकरण एवं डॉमिनेंट कास्ट की अवधारणा अवधारणात्मक स्तर पर मील का पत्थर रही। इसने आगे कि विचार संरचना को सैद्धांतिक आधार पर व्याख्यायित करने में अतिशय सहयोग किया। 'समय के साथ जैसा कि क्रिस्टोफर जैफरेलॉट ने कहा है वर्ग ने भारत में जाति सम्बन्धों को परिवर्तित करना प्रारम्भ कर दिया है। इस प्रकार वर्ग एवं जाति भारतीय समाज में साथ-साथ सह-अस्तित्त्व से रहने लगी है। भारत में जाति इस प्रकार धीमे से परिवर्तित की जाने लगी है वर्ग में प्रस्थिति का जोड़ (शुद्ध एवं अशुद्ध होने का सामाजिक स्टिगमा) आरक्षण ने दलितों में कुछ जातियों को राजस्व प्राप्ति के शर्त पर पिछड़ी एवं अगड़ी जातियों के बराबर लाकर खड़ा कर दिया है। इस प्रकार आरक्षण के कारण जाति समूहों के अन्दर लोगों ने अपना पेशा छोड़ना प्रारम्भ कर दिया है जिससे सामाजिक, आर्थिक विभिन्नीकरण उनके अपने जातीय समूहों में पैदा हो रहे हैं।'[10] 'जाति एवं वर्ग के बीच का सम्बन्ध जटिल एवं परस्पर काटने वाला (मायरन वीनर) एक-दूसरे पर चढ़ जाने की पहचान रखने वाला है इसीलिए प्रस्थिति के लिए संघर्ष और समानता के लिए खोज चल रही है। इस प्रकार जाति अत्यधिक प्रभावशाली सामाजिक पहचान का रूप है। वर्ग की तुलना में इसीलिए सामाजिक व्यवस्था असमानतापूर्ण बनी हुई है।[11]

भारत में जाति एवं वर्ग का आमेलन उस तरह से नहीं हो सकता जैसा कि कृषक समाजों के औद्योगीकरण से पश्चिमी दुनिया में हुआ। वर्ग एक अलग पहचान एवं व्याख्या का उपकरण रहा है वर्ग शब्द वर्गीय विभेद एवं वर्गीय चेतना जैसे शब्दों की मार्क्सवादी व्याख्या एवं वैचारिक संरचनाओं की अपेक्षा करती है। वर्ग शब्द स्वयं में मार्क्सवादी व्याख्या संरचना में समावेशित हो जाता है। यह सही है कि भारत में राजनैतिक व आरक्षण जैसे कारणों से जाति सोपान में नीचे विद्यमान जातियों ने आर्थिक उन्नति की है। उन्होंने आर्थिक वर्ग के ऊपरी हिस्सों में स्थान भी बनाया है। ग्रामीण आर्थिक संरचना में भी वे ऊपर आर्थिक रूप से उठे हैं। उनको सापेक्षिक रूप से ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं नगरीय आर्थिक जीवन में उच्च वर्ग कहा जा सकता है। परन्तु उनकी संख्या इतनी कम है कि वे वर्ग की श्रेणी में या अलग वर्गीय पहचान की श्रेणी में नहीं आते हैं। दूसरे भारत में रोटी और बेटी का सम्बन्ध जाति का आधारिक कारण व परिणाम रहे हैं। ग्रामीण परिवेश में दलितों या अन्यों के निचले सोपान से ऊपर उठ जाने पर रोटी के सम्बन्ध संकोच पूर्ण होते हैं परन्तु बेटी अर्थात वैवाहिक सम्बन्ध

नगण्य ही हैं। वर्गगत समानता होने पर यह सम्बन्ध सहज व व्यापक उपलब्ध व प्रमाण दिखाई देने वाले होनी चाहिए जो कि हैं नहीं। अर्थात ग्रामीण भारत में मुख्य रूप से जातियों के वर्गीय उत्कृष्टता प्राप्त होने पर भी जातीय पहचान के लुप्त होने का कोई प्रमाण नहीं है। शहरी भारत में भी रोटी के सम्बन्ध तो संकोचहीन है परन्तु बेटी अर्थात वैवाहिक सम्बन्ध संकोचशील हैं। इस समय तक इस संदर्भ में सिद्धांत निर्माण का प्रयास अभी शीघ्रता होगी। वस्तुतः भारत में जाति की जड़ें इतनी गहरी है कि इतनी शीघ्रता से उनके वर्गीय ढाँचे में परिवर्तित होने की संभावना नहीं है। नगरीकरण की पूर्ण स्थिति एवं जनसंख्या के एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिभ्रमण (माइग्रेशन) के पश्चात ही जिसमें पूर्व की जातीय पहचान का लोप या विस्मरण या खोज मुश्किल हो तभी यह संभव हो सकता है। शहरों की ओर आने वाला श्रम खोजी समूह अपने साथ जातीय पहचान भी लाता है। नातेदारी या पहचान जो शहरों में पहले से विद्यमान रहती है आगमन करने वाले समूह या व्यक्ति को अपने से जोड़कर जाति को कमजोर होने नहीं देती।

भारत में 'जाति नेतृत्व भर्ती की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। यह उच्च जातीय चेतना से युक्त राज्यों जैसे हरियाणा, बिहार, यूपी, तमिलनाडु तथा आंध्रप्रदेश के लिए विशेष रूप से सत्य है। हरियाणा में नेतृत्व आता है या तो जाटों से या विश्नोई से या ब्राह्मण से। आंध्रप्रदेश में रेड्डी कम्मा और बलमा राज्य को नेतृत्व (नेता) देते हैं।'[12]

राजनीतिक दलों के आधार के रूप में भी जाति विद्यमान है।' जाति का तत्त्व एक सहयुक्त है भारतीय दलीय व्यवस्था का, कुछ राजनीतिक दलों में सीधा जातीय आधार है वहीं कुछ दूसरों का अप्रत्यक्ष रूप से विशेष जाति समूह पर निर्भर रहना होता है। विशेष रूप से क्षेत्रीय राजनीतिक दल प्रमुखतया जातीय तत्त्व से प्रभावित होते हैं। डी0एम0के0 और ए0आई0डी0एम0के0 गैर-ब्राह्मण राजनीतिक दल हैं ब्राह्मण विरोधी दल होने की अपेक्षा तमिलनाडु में अकाली दल समुदाय विशेष की बात करने वाला दल है लेकिन उस पर जाट और गैर जाट के तत्त्व का प्रभाव है।'[13]

जाति ही वह तत्त्व है जो यह निर्धारित करता है कि किस विधानसभा या लोकसभा से किस व्यक्ति को कोई विशेष राजनीतिक दल टिकट देगा। जाति प्रत्याशियों के चयन से लेकर मतदाता के मतदान व्यवहार को निर्धारित करने वाला तत्त्व है। एन0डी0 पाल्मर ने कहा भी है कि जाति संबंधी विचार को बहुत महत्त्व दिया जाता है प्रत्याशियों के चयन एवं चुनाव प्रचार के दौरान मतदाताओं से अपील करने में। 'जाति बांटने वाली एवं जोड़ने वाली दोनों शक्तियों के रूप में भारतीय राजनीति में काम करती है। यह वह आधार देती है जिस पर बहुत से हित समूह उभरते हैं जो कि दूसरे प्रत्येक समूह से सत्ता के संघर्ष में प्रतिस्पर्धा करते हैं। उसी समय यह अस्वस्थ सत्ता संघर्ष को जन्म देती है और एक विघटनकारी शक्ति के रूप में काम करती है।'[14]

वास्तव में सूत्रकाल से ही अर्थात तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से ही जाति भारतीय समाज का सबसे शक्तिशाली तत्त्व रही है। भारत के संविधान ने एक आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना की है। यह कहा जाता है कि एक परम्परागत समाज में एक आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था स्थापित है। जाति एक परम्परागत समाज की विशेषता है जहाँ व्यक्ति की प्रस्थिति उसके जन्म से ही निर्धारित हो जाती है न कि उसके कर्म से। यह लोकतांत्रिक समाज अर्थात जहाँ सामाजिक समानता हो के विरुद्ध भी है। परन्तु जाति भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था की सच्चाई है। यह कहा जा सकता है कि जाति भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का मुख्य निर्धारक तत्त्व है। यह प्राचीन काल से लेकर अद्यतन बना हुआ है। लोकतांत्रिक प्रक्रिया ने इसको कमजोर करने के स्थान पर शक्तिशाली ही बनाया है। यदि प्राचीन काल में द्विजों के पास सत्ता थी जो कि उनकी जाति से निर्धारित होती थी कि कौन द्विज है कौन नहीं तो वर्तमान समय में भी कौन सत्ता में आएगा कौन नहीं यह निर्धारण जाति से ही होता है। लोकतन्त्र ने इतना अवश्य किया है कि प्रत्येक मतदाता के मत का मूल्य समान कर दिया है इससे जातीय संख्या का महत्त्व बढ़ गया है। आज भी जाति ही निर्धारित कर रही कि कौन सत्ता में होगा, कौन नहीं बस अब उस पर तथाकथित अगड़ी जातियों का एकाधिकार नहीं रहा है। अब दलित व अन्य पिछड़ी जातियाँ भी सत्ता में भागीदार व नेतृत्व करता हैं। ये सब होने के बाद भी जाति स्थिर है सत्ता बदल रही है। कौन आएगा, कौन सत्ताशीन होगा यह जाति ही तय कर रही। जाति प्रासंगिक थी और आज भी भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का सर्वप्रथम निर्धारक तत्त्व है।

संदर्भ सूची

1. पाण्डे एस0के0, प्रयाग एकेडमी इलाहाबाद, 2007 पृ0 118-119
2. वही, पृ0 119
3. वही, पृ0 424
4. द हिन्दू, एडीटोरियल 25 अगस्त 2021
5. सिंह महेंन्द्र प्रसाद और हिमांशु राय, जनानादा प्रकाशन (पी0 और डी0) नई दिल्ली, 1998 पृ0 568
6. उपाध्याय डा0 जय जय राम, सेंट्रल ला एजेंसी, इलाहाबाद, 2014 पृ0 6
7. वही, पृ0 6-7
8. श्रीनिवास एम0एन0, सोशल चेंज इन माडर्न इण्डिया, ओरिएंट ब्लैक्सवान इंडिया, 1995, चौ0 5
9. श्रीनिवास एम0एन0, द रिमेंम्बर्ड विलेज, 1978, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस आक्सफोर्ड, आईएसबीएन-0783746830
10. साहेली सामाद्दार, रोल आफ कास्ट इन इंडियन पालिटिक्स, 5 जुलाई 2021, timesofindia.indiatimes.com
11. वही
12. www.iilsindia.com
    रोल आफ कास्ट इन इंडियन पालिटिक्स.
13. वही
14. वही

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के आत्मप्रत्यय एवं शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन

शेर सिंह

शोध छात्र, शिक्षा विभाग, मेरठ कालेज, मेरठ

प्रस्तावना- शिक्षा से मनुष्य के अन्तः चक्षु खुल जाते हैं। उसे आत्मिक तथा अलौकिक प्रकाश मिलता है। शिक्षा से सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास होता है। किसी भी राष्ट्र या समाज में जो उन्नति परिलक्षित होती है, वह उस राष्ट्र अथवा समाज की शिक्षा का प्रतिफल है। शिक्षा द्वारा ज्ञान में वृद्धि होती है, जो पारस्परिक सम्बन्धों के निर्धारण तथा व्यक्ति के विकास में सहायक है।

शिक्षा के क्षेत्र में असमानतायें पाई जाना एक सामान्य सी बात है। विशेषकर विकासशील देशों में सुविधाओं का असमान वितरण देखने में आता है। यह शिक्षा सुविधायें न केवल गुणवत्ता के मत से असमान है बल्कि शिक्षा की पहुंच के हिसाब से भी असमानता पाई जाती है। आमतौर पर यह पाया जाता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की सुविधायें शहरी क्षेत्रों की तुलना में कम है यही कारण है कि ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का प्रचार भी कम ही हो पाता है।

शिक्षा व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली साधन है। यही कारण है कि प्रत्येक समाज अपने नागरिकों के समुचित विकासके लिए शिक्षा प्रक्रिया का उपयोग करके उनमें ज्ञान, कौशल, अवबोध, अभिवृत्तियां, मूल्य एवं आत्म प्रत्यय आदि का समावेश करने का प्रयास करता है जिससे उसके नागरिक अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन सफलतापूर्वक कर सकें। इसके साथ-साथ शिक्षा समाज को एकीकृत एवं संगठित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। शिक्षा समाज को विघटित करने वाले विभिन्न कारकों तथा ईर्ष्या, वैमनस्य, पक्षपात, निहित स्वार्थ, अंधविश्वास, धर्मान्धता, रूढिध्वादिता आदि का खंडन करके समाज को एकीकृत एवं संगठित करने में भी मदद करती है।

सामाजिक न्याय तथा समानता की दृष्टि से यह आवश्यक है कि वंचित एवं सम्पन्न वर्गों के बीच खाई को शीघ्रातिशीघ्र कम कर दिया जाये। शिक्षा इस कार्य में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। सामाजिक न्याय तथा समानता की दृष्टि से भी यह अत्यन्त आवश्यक है कि शैक्षिक अवसरों की उपलब्धता एवं उसके वास्तविक उपभोग में दृष्टिगोचर होने वाली असमानता को दूर करके सभी क्षेत्रों (ग्रामीण एवं शहरी) के छात्रों को शिक्षा प्राप्ति के समान अवसर उपलब्ध कराये जायें।

आजादी के बाद भारतीय शिक्षा और खासकर विद्यालय स्तर की शिक्षा की दुखद स्थिति के एहसास के कारण शिक्षा में सुधार लाना और इस पर अधिक ध्यान देना केन्द्र और राज्य सरकारों का एक प्रमुख सरोकार रहा है। अनेक आयोगों तथा समितियों ने शैक्षिक पुर्नरचना की समस्याओं की समीक्षा की और प्रणाली को नवजीवन देने के लिए राष्ट्रीय नीतियाँ तैयार की गई। लेकित हम एक संतोषजनक विद्यालय शिक्षा प्रणाली से अभी भी कोसों दूर है। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) और माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) की सिफारिशों को लागू करने के लिए अनेक कदम उठाये गये। तीसरी पंचवर्षीय योजना के अंतिम वर्षों में शैक्षिक पुर्नरचना के और भी जोरदार प्रयास शुरू करने के लिए शिक्षा आयोग (1964-66) का गठन किया गया। कोठारी आयोग ने 1951-66 के दौरान हुई प्रगति की समीक्षा की तथा पूरी प्रणाली में सुधार की आवश्यकता स्पष्ट करते हुए अपनी सिफारिशें पेश की। इन बहुचर्चित सिफारिशों और प्रयासों पर एक आम सहमति विकसित होने के बाद 1968 में एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति स्वीकार की गई।

इस नीति के स्वीकार किये जाने के साथ देशभर में और सभी स्तरों पर शैक्षिक सुविधाओं के प्रसार का युग शुरू हुआ। देश की 90 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण जनता को 1 किलोमीटर के दायरे के अंदर विद्यालय सुविधायें प्रदान की गई। पूरे देश में कुछ साझे मानदण्ड लागू किये गये। बालक को जो वातावरण उपलब्ध होता है, उसका प्रभाव उसके आत्मप्रत्यय एवं शैक्षिक उपलब्धि आदि पर पड़ता है।

इस शोध के माध्यम से यह जानकारी प्राप्त की जा सकती है, कि वह कैसा वातावरण है, जिसमें रहकर बालक का सम्पूर्ण विकास हो सकता है। इसके द्वारा यह ज्ञान भी प्राप्त हो सकता है कि ग्रामीण एवं शहरी वातावरण में वे कौन-कौन से पक्ष हैं, जो इन दोनों में अन्तर पैदा करते हैं। माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् शिक्षकों के लिए भी यह अध्ययन अति उपादेय सिद्ध होगा, क्योंकि सभी वर्तमान विद्यालय, उ0प्र0 माध्यमिक शिक्षा परिषद एवं समाज, अध्यापक से केवल यह आशा करते हैं कि बालक को न केवल सूचनात्मक ज्ञान दें, बल्कि उसका यह भी दायित्व होता है कि वह बालक की व्यक्तित्व विभिन्नताओं की पहचान कर उसकी अन्तर्निहित मानसिक व सामाजिक योग्यताओं का विकास करें।

समस्या का कथन-''माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के आत्मप्रत्यय एवं शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन।''

शोध अध्ययन में प्रयुक्त प्रत्ययों का विवरण

माध्यमिक स्तर- प्रस्तुत शोध में प्रयुक्त माध्यमिक स्तर से तात्पर्य अराजकीय सहायता प्राप्त विद्यालयों के 10वीं कक्षा से है।

ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थी- प्रस्तुत शोध में ग्रामीण विद्यार्थियों से तात्पर्य उन विद्यार्थियों से है जो ग्रामीण क्षेत्र में स्थित अराजकीय सहायता प्राप्त विद्यालयों में अध्ययनरत् हैं। शहरी विद्यार्थियों से तात्पर्य उन विद्यार्थियों से है जो शहरी क्षेत्र में स्थित अराजकीय सहायता प्राप्त विद्यालयों में अध्ययनरत् है।

आत्मप्रत्यय- जीवन के विभिन्न स्वरूपों का वैज्ञानिक अवलोकन, बाह्य या वस्तुनिष्ठ संदर्भों तक सीमित है। मनुष्यों के साथ, उसके आत्म अवलोकन व आत्म निरीक्षण की क्षमता के कारण, विभिन्न रूप में, एक अन्य प्रकार का अवलोकन भी संभव है जिसमें व्यक्ति की 'आत्म विषयक' अवधारणा का विश्लेषण कर, उसका अवलोकन या निरीक्षण किया जाता है।

वास्तव में व्यक्ति का 'आत्म' या 'स्व' कोई स्थिर अवधारणा नहीं है। आत्म सदैव परिवर्तनशील है, साथ ही इसमें कुछ आधारभूत स्थायित्व भी आ जाता है जिससे 'आत्म' का मूल रूप बना रहता है। 'आत्म' सदैव व्यक्ति के अनुभवों से प्रभावित होता रहता है तथा इन्हीं अनुभवों के आधार पर 'आत्म' के विकास की दिशा निर्धारित होती है।

आत्म प्रत्यय के विषय में एण्डरसन ने कुछ विशेषताओं का उल्लेख किया है जो संक्षेप में इस प्रकार है-

1. प्रत्येक व्यक्ति अपनी एक प्रतिमा या अपने विषय में एक प्रत्यय रखता है जो कि उसके दूसरों के प्रत्यक्षीकरण से नितान्त अलग होता है।
2. आत्म प्रत्यय को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- व्यक्ति की अपनी भौतिक प्रतिमा तथा मनोवैज्ञानिक प्रतिमा।
3. मनोवैज्ञानिक प्रतिमा प्रारम्भिक जीवन में ही बालक के परिवेशात्मक अनुभवों के परिणास्वरूप निर्मित हो जाती है।
4. आत्म प्रत्यय के विकास में जीवन के प्रारम्भिक वर्ष सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते हैं।
5. आत्म प्रत्यय की संरचना ही व्यक्ति के प्रतिदिन एवं प्रतिरक्षण के व्यवहारों को निर्धारित करती है।

बहुत से शिक्षाविदों और वैज्ञानिकों ने व्यवहार प्राप्ति की अवधारणा का इकाइयों में वर्णन करने का प्रयास किया है, जिसको व्यक्ति स्वयं के विषय में तथा आस-पास की दुनिया में विकसित करता है। व्यवहारवादियों के दृष्टिकोण से व्यवहार एक जटिल मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का उत्पाद है, जो कि वर्णित तथा अवर्णित स्रोतों के द्वारा उत्पन्न होता है। व्यक्ति व्यवहार के पुनर्वहन के द्वारा आत्म परिचय या आत्मप्रत्यय को प्राप्त करता है। मनोवैज्ञानिकों की यह धारणा है कि व्यक्ति स्वयं अपना अवलोकन कर सकता है, अर्थात् स्वयं से वार्ता कर सकता है। इस स्वयं के अवलोकन करने की प्रक्रिया में आत्मचिन्तन को एक प्रमुख अंग माना जाता है।

शैक्षिक उपलब्धि- शिक्षा एक सोद्देश्य प्रक्रिया है। शिक्षा प्रक्रिया के द्वारा छात्रों में कुछ पूर्व निर्धारित संशोधन करने का प्रयास किया जाता है। शिक्षा प्रक्रिया में संलग्न व्यक्ति विभिन्न स्तरों के छात्रों के लिए शिक्षण उद्देश्य निर्धारित करते हैं तथा इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षण अधिगम क्रियाओं का आयोजन करते हैं। शैक्षिक उपलब्धि से तात्पर्य इन शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति से है। छात्रों ने शैक्षिक उद्देश्यों को किस सीमा तक प्राप्त किया है, यही उनकी शैक्षिक उपलब्धि को बताता है।

शैक्षिक उपलब्धि से अभिप्राय छात्रों द्वारा अर्जित ज्ञान, बोध, कौशल, अनुप्रयोग आदि योग्यताओं की मात्रा से है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के द्वारा छात्रगण अपनी विभिन्न बौद्धिक योग्यताओं का विकास करते हैं। छात्रों ने किस सीमा तक अपनी बौद्धिक योग्यताओं का विकास किया है, यही उनकी उपलब्धि का सूचक है।

शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक उपलब्धि का प्रत्यय शोध करने वाले विद्यार्थियों के लिए सबसे अधिक रूचि व जिज्ञासा का विषय रहा है। अधिकतर विद्यार्थियों ने छात्रों के व्यक्तिगत गुणों तथा गुणात्मक योग्यताओं का शैक्षिक उपलब्धि से क्या सम्बन्ध है, इस विषय पर अधिक कार्य किया है।

शैक्षिक उपलब्धि शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है- शैक्षिक तथा उपलब्धि अर्थात् विद्यालय से सम्बन्धित शैक्षिक अनुभवों के परिणामस्वरूप विद्यार्थियों में होने वाले व्यवहार परिवर्तन को ही शैक्षिक उपलब्धि कहा जाता है। सुपर (1967) के शब्दों में- ''शैक्षिक उपलब्धि से तात्पर्य है कि विद्यार्थी ने शिक्षण के उपरान्त क्या और कितना सीखा तथा वह कोई कार्य कितनी भली-भांति कर लेता है।'' फ्रीमैन (1965) के विचारों में- ''एक विषय विशेष या पाठ्यक्रम के विभिन्न विष्यों मे छात्र के ज्ञान, समझ एवं कौशलों की उपलब्धि ही शैक्षिक उपलब्धि है।'' स्नेक (1972) ने शैक्षिक उपलब्धि को निम्न प्रकार परिभाषित किया है-

- किसी उद्देश्य की सफलतापूर्वक प्राप्ति ही शैक्षिक उपलब्धि है।
- किसी कार्य में सफलता का अंश प्राप्त करना उदाहरणार्थ किसी परीक्षण को हल करना उपलब्धि है।
- किसी बौद्धिक अथवा भौतिक कार्य का परिणाम जैसा कि व्यक्ति के द्वारा परिभाषित किया जाता है।

उपरोक्त परिभाषाओं को हृदयंगम करते हुए शैक्षिक उपलब्धि को- विद्यालय में अध्ययन किये जाने वाले विषयों में सफलता प्राप्ति एवं सम्बन्धित विषय में ज्ञान तथा कौशल को विकसित करने के परिप्रेक्ष्य में हैं। अत: शैक्षिक सम्प्राप्ति या उपलब्धि उसे कहा जा सकता है, जिसका मूल्यांकन किसी मान्य पाठ्यक्रम के उपरान्त किया जाता है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य- प्रस्तुत शोध अध्ययन के निम्न उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है-

1. ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के आत्मप्रत्यय का अध्ययन करना।
2. ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करना।

3. ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के आत्मप्रत्यय की तुलना करना।
4. ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि की तुलना करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनायें- प्रस्तुत शोध अध्ययन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु निम्नलिखित परिकल्पनाओं का निर्धारण किया गया है।

1. ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के आत्मप्रत्यय में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्त नहीं है।

शोध अध्ययन की परिसीमायें

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन में केवल पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मेरठ मण्डल के विद्यार्थियों को लिया गया है।
2. प्रस्तुत शोध अध्ययन में केवल अराजकीय सहायता प्राप्त विद्यालयों को लिया गया है।
3. प्रस्तुत शोध अध्ययन में केवल दसवीं कक्षा के विद्यार्थियों को लिया गया है।
4. प्रस्तुत शोध अध्ययन में केवल कला वर्ग के विद्यार्थियों को लिया गया है।
5. प्रस्तुत शोध अध्ययन में केवल आत्मप्रत्यय एवं शैक्षिक उपलब्धि को ही अध्ययन हेतु लिया गया है।

शोध अध्ययन का महत्व

बालक का व्यक्तित्व प्राकृतिक तथा वातावरणीय गुणों का उत्पाद होता है। प्राणी का जन्मजात स्वभाव होता है कि वह वातावरण में होने वाली पारस्परिक क्रियाओं का निरीक्षण करता है तथा उन्हीं व्यवहारों को ग्रहण करने की कोशिश करता है। परिवार का स्थान इनमें सर्वप्रमुख है मुख्यत: वह परिवार के सदस्यों के व्यवहारों से अधिक सीखता है। बालक को जो पारिवारिक वातावरण उपलब्ध होता है, उसका प्रभाव उसके आत्मप्रत्यय एवं शैक्षिक उपलब्धि आदि पर पड़ता है। अधिकांशत: बालकों में यह देखा गया है कि उनकी योग्यताएं स्वतन्त्र पारिवारिक वातावरण पर निर्भर करती है तथा बालकों में अच्छी आदतों का विकास स्वस्थ पारिवारिक वातावरण पर ही निर्भर होता है। किसी भी बालक का अधिकांश समय अपने परिवार के सदस्यों के मध्य व्यतीत होता है, इसी कारण उनके बीच होने वाली पारस्परिक क्रियाओं एवं व्यवहारों का स्पष्ट प्रभाव उनके मूल्यों, व्यक्तित्व गुण आदि पर परिलक्षित होता है।

अत: इस शोध के माध्यम से यह जानकारी प्राप्त की जा सकती है कि वह कैसा वातावरण है, जिसमें रहकर बालक का अधिकतम विकास हो सकता है। इस शोध अध्ययन के द्वारा यह ज्ञान भी प्राप्त हो सकता है कि ग्रामीण व शहरी वातावरण में वे कौन-कौन से पक्ष हैं जो इन दोनों में अन्तर पैदा करते हैं। प्रत्येक माता-पिता का मुख्य उद्देश्य होता है, अपने बच्चों का सर्वांगीण विकास करना। अत: माता-पिता भी इस शोध के परिणामों से लाभ उठाकर, अपने बच्चों को हीन भावना, नकारात्मक अभिवृत्ति, कम शैक्षिक उपलब्धि आदि समस्याओं को स्वस्थ पारिवारिक वातावरण उपलब्ध कराकर दूर कर सकते हैं।

माध्यमिक स्तर पर अध्यापनरत शिक्षकों के लिए भी यह अध्ययन अति उपादेय सिद्ध होगा, क्योंकि सभी वर्तमान महाविद्यालयों, उ0प्र0 माध्यमिक शिक्षा परिषद तथा समाज, अध्यापक से केवल यही आशा करते हैं कि वह बालक को केवल सूचनात्मक ज्ञान न दें, बल्कि उसका यह भी दायित्व होता है कि वह बालक की व्यक्तिगत विभिन्नताओं को पहचान कर उसकी अन्तर्निहित मानसिक व सामाजिक योग्यताओं का विकास करें।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्माण तथा अध्यापक सेवा नियमावली के निर्माण में यह शोध एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। प्रधानाचार्य भी इस शोध के परिणामों से लाभ उठा सकते हैं तथा इसका निर्धारण कर सकते हैं, कि अपने अधीनस्थ अध्यापकों को क्या-क्या सुविधा दी जाए जिससे कि वह अपने बच्चों का सम्पूर्ण विकास कर सकें।

प्रस्तुत अध्ययन में अनुसन्धानकर्ता ने अध्ययन के उद्देश्य और साधनों की प्रकृति को दृष्टिगत रखते हुये अनुसन्धान के वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि (नॉर्मेटिव सर्वे मैथर्ड ऑफ रिसर्च) का प्रयोग किया है।

करलिंगर ने सर्वेक्षण अनुसन्धान विधि को इस प्रकार परिभाषित किया है। ''सर्वेक्षण अनुसन्धान सामाजिक, वैज्ञानिक अन्वेषण की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत व्यापक तथा कम आकार वाली जनसंख्याओं का अध्ययन उनमें से चयन किये गये प्रतिदर्श के आधार पर इस आशय से किया जाता है ताकि उनमें व्याप्त सामाजिक तथा वैज्ञानिक चरों के घटनाक्रमों, वितरणों तथा पारस्परिक अर्न्तसम्बन्धों का ज्ञान उपलब्ध हो सके।'' वह समस्त समूह जिसमें से न्यादर्श का चयन किया जाता है, जनसंख्या कहलाता है। शोध अध्ययन में जनसंख्या से तात्पर्य सम्पूर्ण इकाईयों के निरीक्षण से होता है। इसमें से उपयुक्त विधि द्वारा इकाईयों का चयन करके न्यादर्श तैयार किया जाता है। समष्टि के सबसे छोटे भाग अथवा अंग को इकाई कहते हैं। अत: समष्टि इन इकाईयों अथवा व्यक्तियों का सामूहित रूप होती है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में 10वीं कक्षा के मेरठ मण्डल के ग्रामीण व शहरी विद्यार्थियों को जनसंख्या के रूप में लिया गया है।

प्रतिनिधि न्यादर्श वह न्यादर्श होता है, जिसमें समष्टि की सभी विशेषताओं, उसके सभी गुणों तथा सभी लक्षणों का न्यूनाधिक मात्रा में समावेश हो, जो समष्टि का प्रतिरूप अथवा उसकी प्रतिकृति हो। यदि न्यादर्श का चयन समसम्भाविक विधि से किया जाता है तो उसमें अभिनति का कोई स्थान नहीं रहता वह समष्टि का प्रतिनिधित्व करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। समसम्भाविक न्यादर्श की यह विशेषता होती है कि उसके आधार पर समष्टि के सांख्यकीय मान का पूर्वानुमान अधिक सही-सही किया जा सकता है। उसमें त्रुटि की संभावना कम होती है तथा जो त्रुटि होती है उसका भी अनुमान लगाया जा सकता है।

न्यादर्श चयन की प्रक्रिया- चयन प्रक्रिया में सामान्यत: निम्नलिखित पदक्रम रहता है-

1. समष्टि का निर्धारण एवं उसकी व्याख्या करना।
2. न्यादर्श इकाईयों की परिभाषा करना।
3. न्यादर्श संरचना अथवा सूची तैयार करना।
4. न्यादर्श आकार निर्धारित करना।
5. न्यादर्श प्रतिचयन की विधि का निर्धारण करना।
6. न्यादर्श इकाईयों का चयन करना।

न्यादर्श चयन की विधि- न्यादर्श के चयन की अनेक विधियाँ हैं। प्रस्तुत शोध में शोधार्थी ने न्यादर्श चयन में यादृच्छिकी न्यादर्श चयन विधि को अपनाया है जो संभाविता प्रतिचयन विधि का ही एक प्रकार है।

यादृच्छिकी प्रतिचयन- यादृच्छिकी प्रतिचयन संभाविता विधि का ही एक प्रकार है। संभाविता प्रतिचयन विधियों में यही सर्वप्रमुख है।

एक विधि एक ऐसी प्रक्रिया पर आधारित है जिसके अन्तर्गत न केवल प्रत्येक इकाई के न्यादर्श में सम्मिलित होने की समान संभावना ही निश्चित होती है बल्कि समान आकार वाले इकाईयों के सभी सम्भव समूहों के न्यादर्श के रूप में चुने जाने की संभावना भी समान होती है। इस तकनीक के अन्तर्गत न्यादर्श चयन की निम्न प्रमुख विधियां होती है-

1. लाटरी विधि अथवा ड्रम चक्र विधि अथवा कागज की पर्चियां बनाकर
2. समसम्भाविक संख्या तालिका तथा
3. क्रमबद्ध प्रतिचयन
4. सिक्का उछालकर
5. पास उछालकर आदि

यादृच्छिकी न्यादर्श- इस पद्धति द्वारा न्यादर्श चुनते समय सबसे पहले जनसंख्या की इकाईयों की सूची बना लेते हैं। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर शोधकर्ता ने विभिन्न प्रकार के विद्यालयों को शोध अध्ययन हेतु चुना है तथा प्रत्येक इकाई को समान मात्रा में महत्व देते हुए आवश्यक इकाईयों को बिना किसी पक्षपात के उद्देश्यानुसार चुना है तथा यह चुनी हुई इकाईयां (विद्यालय) सम्पूर्ण जाति का प्रतिनिधित्व करती है। इस विधि द्वारा न्यादर्श चयन करते समय सभी विद्यालयों (ग्रामीण एवं शहरी अराजकीय विद्यालय) इकाईयों को शोधकर्ता ने चयन करते समय समान ध्यान दिया है क्योंकि यादृच्छिकी न्यादर्श चयन में सभी इकाईयों को समान महत्व दिया जाता है। शोधकर्ता द्वारा न्यादर्श चयन करते समय यादृच्छिकी न्यादर्श चयन की सभी बातों को ध्यान में रखा गया है तथा उन नियमों का पालन भी किया गया है जिनका न्यादर्श चयन करते समय पालन किया जाता है।

विश्लेषण एवं अर्थापन- पूर्व के अध्यायों में प्रस्तावना, प्रयुक्त चरों का प्रत्यात्मक बोध, उद्देश्य, सम्बन्धित शोध साहित्य का अध्ययन तथा अध्ययन के प्रारूप और आंकड़े एकत्रित करने की विधियों का वर्णन किया गया है, इसमें प्राप्त निष्कर्षों का विश्लेषण तथा उनकी व्याख्या की गयी है। इस अर्थापन तथा विश्लेषण की प्रक्रिया में प्राप्त आंकड़ों को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है, जिससे समस्या के सम्बन्ध में वांछित परिणामों को प्राप्त किया जा सके।

ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के आत्मप्रत्यय की विभिन्न विमाओं का अध्ययन-

परिकल्पना नं0 1- ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों में आत्मप्रत्यय में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के आत्मप्रत्यय की विभिन्न विमाओं की तुलना करने के लिए अध्ययन किये आंकड़ों के मध्यमान, मानक विचलन तथा टी-मूल्य की गणना की गई है, जिनका सारांश निम्न तालिकाओं में प्रदर्शित किया गया है।

ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के मध्य आत्मप्रत्यय की शैक्षिक 'उपलब्धि' पर अन्तर की सार्थकता

आत्मप्रत्यय की विमा	ग्रामीण विद्यार्थी (n=300)		शहरी विद्यार्थी (n=300)		टी-मूल्य
	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान	मानक विचलन	
उपलब्धि	32.15	4.77	37.90	9.15	9.651*

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के मध्य आत्मप्रत्यय की विमा उपलब्धि पर प्राप्त टी-मूल्य (9.651) है, जो df (300+300-2) अर्थात् 598 पर दोनों स्तर .05 एवं .01 पर तालिका मूल्य से अधिक है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना नं0 1 अस्वीकृत हुई। इसका तात्पर्य यह है कि आत्मप्रत्यय की विमा उपलब्धि पर ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के मध्य सार्थकता के दोनों ही स्तर .05 एवं .01 पर सार्थक अन्तर है। तत्पश्चात् आत्मप्रत्यय की इस विमा पर प्राप्त मध्यमानों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि शहरी विद्यार्थियों का प्राप्त मध्यमान (37.90) ग्रामीण विद्यार्थियों के मध्यमान (32.15) से अधिक है। इससे स्पष्ट होता है कि शहरी विद्यार्थियों की उपलब्धि विद्यार्थियों की तुलना में अधिक है।

शोध परिणाम- शोध परिणाम एक महत्वपूर्ण आधार है, शोध परिणामों के आधार पर एक शोध समस्या का अध्ययन करके उद्देश्य की प्राप्ति की जाती है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या के पश्चात् जो अध्ययन के परिणाम प्राप्त हुए हैं उन परिणामों का क्रमबद्ध प्रस्तुतीकरण निम्नलिखित है-

ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के आत्मप्रत्यय की विभिन्न विमाओं के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर प्राप्त परिणाम- आंकड़ों के मध्यमान, मानक विचलन तथा टी-मूल्य की गणना की गई। इनके आधार पर जो परिणाम प्राप्त हुए वह निम्नलिखित हैं-

- ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों (छात्र एवं छात्राओं) के मध्य आत्मप्रत्यय की शैक्षिक 'उपलब्धि' पर प्राप्त टी-मूल्य से निष्कर्ष निकलता है कि ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के मध्य आत्मप्रत्यय की शैक्षिक 'उपलब्धि' पर सार्थकता के दोनों स्तर .05 एवं .01 पर सार्थक अन्तर है। इसका तात्पर्य यह है कि ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों में आत्मप्रत्यय की शैक्षिक 'उपलब्धि' समान रूप से प्रभावी नहीं है।
- ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के आत्मप्रत्यय की शैक्षिक 'उपलब्धि' के मध्यमानों का अध्ययन करने पर स्पष्ट हुआ कि ग्रामीण विद्यार्थियों की तुलना में शहरी विद्यार्थियों की उपलब्धि अधिक है।
- ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के मध्य आत्मप्रत्यय की विमा 'आत्मविश्वास' पर प्राप्त टी-मूल्य से निष्कर्ष निकलता है कि ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के मध्य आत्मप्रत्यय की विमा 'आत्मविश्वास' पर सार्थकता के दोनों स्तर .05 एवं .01 पर सार्थक अन्तर नहीं है। इसका अर्थ यह है कि ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों में आत्मप्रत्यय की विमा 'आत्मविश्वास' समान रूप से प्रभावी है।
- ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के मध्य आत्मप्रत्यय की विमा 'कार्य उपेक्षा' पर प्राप्त टी-मूल्य से निष्कर्ष निकलता है कि ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के मध्य आत्मप्रत्यय की विमा 'कार्य उपेक्षा' पर सार्थकता के दोनों स्तर .05 एवं .01 पर सार्थक अन्तर नहीं है। इसका अर्थ यह है कि ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों में आत्मप्रत्यय की विमा 'कार्य उपेक्षा' समान रूप से प्रभावी नहीं है।
- ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के मध्य आत्मप्रत्यय की विमा 'कार्य उपेक्षा' के मध्यमानों का अध्ययन करने पर स्पष्ट हुआ कि ग्रामीण विद्यार्थियों की अपेक्षा शहरी विद्यार्थियों में वे कारण अधिक सक्रिय है जो कि 'कार्य उपेक्षा' की प्रवृत्ति के लिए उत्तरदायी है।
- ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के मध्य आत्मप्रत्यय की विमा 'हीन भावना की अनुभूति' पर प्राप्त टी-मूल्य से निष्कर्ष निकलता है कि ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के मध्य आत्मप्रत्यय की विमा 'हीन भावना की अनुभूति' पर सार्थकता के दोनों स्तर .05 एवं .01 पर सार्थक अन्तर है। इसका अर्थ यह है कि ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों में आत्मप्रत्यय की विमा 'हीन भावना की अनुभूति' समान रूप से प्रभावी नहीं है।
- ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के आत्मप्रत्यय की विमा 'हीन भावना की अनुभूति' के मध्यमानों का अध्ययन करने पर स्पष्ट हुआ कि शहरी विद्यार्थियों की अपेक्षा ग्रामीण विद्यार्थियों में हीन भावना की अधिक अनुभूति पायी गयी।
- ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के मध्य आत्मप्रत्यय की विमा 'भावात्मक स्थायित्व' पर प्राप्त टी-मूल्य से निष्कर्ष निकलता है कि ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के मध्य आत्मप्रत्यय की विमा 'भावात्मक स्थायित्व' पर सार्थकता के दोनों स्तर .05 एवं .01 पर सार्थक अन्तर नहीं है। इसका अर्थ यह है कि ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों में 'भावात्मक स्थायित्व' लगभग एक समान है।

शोध निष्कर्षों के शैक्षिक अनुप्रयोग- असमानता इस संसार का सत्य है, वर्तमान में भारत ही क्या समस्त विश्व के शिक्षाविद्, समाज सुधारक जोर-जोर से आवाज उठाकर असमानता का विरोध और समानता की बात कर रहे हैं, क्योंकि सबको समान सुविधायें उपलब्ध न होने के कारण शिक्षा की गुणवत्ता तथा बालको का व्यक्तित्व प्रभावित हो रहा है।

अत: प्रस्तुत शोध के निष्कर्षों को प्रस्तुत करने से शोधार्थी का तात्पर्य यह है कि यदि हमें ''सबके लिए शिक्षा'' व ''ऊँच-नीच'' के भेदभाव को मिटाने का संकल्प पूर्ण करना चाहते हैं, तो सरकार को सभी क्षेत्रों में समान सुविधायें उपलब्ध करानी होगी। जिससे की इन सुविधाओं का लाभ उठाकर प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित विद्यार्थी अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित कर सके एवं समान रूप् से उन्नत कर अपने परिवार, समाज व राष्ट्र को गौरवान्वित कर सकें।

इस प्रकार वर्तमान शोध के परिणाम कई प्रकार समीचीन प्रतीत होते हैं, प्रस्तुत शोध निष्कर्षों का उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में किया जा सकता है। यह निम्न प्रकार से स्पष्ट है-

- अभिभावकों के लिए उपयोग।
- निर्देशन की दृष्टि से उपयोग।
- प्रशासकों व समाज सुधारकों के लिए उपयोग।
- शोध की दृष्टि से उपयोग।
- भविष्यवाणी के लिए उपयोग।

निर्देशन के लिए उपयोग- प्रत्येक बच्चे की कुछ न कुछ समस्यायें अवश्य होती हैं। कुछ समस्याओं की प्रकृति तो इस प्रकार की होती है जिनको नियन्त्रित किया जा सकता है, परन्तु कुछ ऐसी होती है जिनके कारण बालक के विकास पर विपरीत प्रभाव परिलक्षित होने लगता है। ऐसे समय में एक निर्देशक या परामर्शदाता की आवश्यकता महसूस होती है। अगर यह सहायता उचित प्रकार से न प्राप्त हो तो उसके भयंकर परिणाम सामने आते हैं। अत: इस अध्ययन के निष्कर्षों का लाभ उठाते हुए परामर्शदाता विद्यार्थियों के द्वारा प्रकट की जाने वाली सामंजस्य तथा सीखने सम्बन्धी समस्याओं का समाधान सफलतापूर्वक कर सकते हैं।

शोध की दृष्टि से उपयोग- समाज के सांस्कृतिक विकास का गुप्त रहस्य अनुसंधान में निहित है। अनुसंधान नये तथ्यों की खोज के द्वारा अज्ञानरूपी अंधकार को दूर कर देता है व उससे प्राप्त तथ्य हमें कार्य करने की श्रेष्ठतम् विधाओं तथा उत्तमतर परिणाम प्रदान करते हैं। ग्रामीण व शहरी विद्यार्थियों के लिए जितने अनुसंधान होने चाहिए थे, उतनी संख्या में नहीं हुए। अत: यह शोध निश्चित रूपेण शिक्षा जगत में विद्वतजनों का गहन अध्ययन हेतु ध्यान आकर्षित करेगा।

भविष्यवाणी के लिए उपयोग- शोधकर्ता को अपने प्रयोजन की वर्तमान स्थिति का ही अध्ययन करके संतुष्ट नहीं हो जाना पड़ता है, उन्हें प्रयोजनों के सम्बन्ध में उपयुक्त भविष्यवाणी भी करनी पड़ती है। जिसके आधार पर प्रयोज्य अपने जीवन की भावी योजनायें बनाते हैं।

- यह शोध आत्मप्रत्यय की निश्चित विमाओं के संदर्भ में किया गया है, जबकि आत्मप्रत्यय की अन्य विमाओं को लेकर भी शोध कार्य किया जा सकता है।
- इसी प्रकार इस शोध कार्य में मात्र 10 मूल्यों को ही सम्मिलित किया गया है जबकि अन्य मूल्यों को लेकर भी एक शोध कार्य किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अस्थाना, विपिन, 1977; ''मनोविज्ञान शोध विधियाँ'', प्रकाशक: विनोद पुस्तक मन्दिर, कार्यालय: रांगेय राघव, आगरा-2.
2. अली, जब्बाद, 1996; स्टडी ऑफ सेल्फ-कान्सेप्ट, बॉडी इमेज, एडजस्टमेन्ट एण्ड परफार्मेन्स ऑफ हॉकी प्लेयर्स। पी-एच.डी. फिजिकल एजूकेशन, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, इण्डियन एजूकेशन। एब्स्ट्रैक्ट, इशू 4, जनवरी 1998, पृ0 40.
3. अवनिजा, के.के., 1995; ए स्टडी ऑफ सर्टेन कोरिलेट्स ऑफ सेल्फ कान्सेप्ट एमंग स्टूडेन्ट्स ऑफ नवोदय विद्यालयाज। पी-एच.डी. एजूकेशन, मैसूर यूनिवर्सिटी गाइड: डा. एन.एन. प्रहलाद, इण्डियन एजूकेशन एब्सट्रैक्ट, वाल्यूम-1, जनवरी 2001, पृ0 14.
4. http://www.brandbharat.com/english/up/districts
5. http://cie.du.ac.in/scholors/med_abst2013_01.pdf
6. http://nkrc.niscair.res.in
7. http://www.ncert.nic.in/publication/journals/pdf_files/indian_education_abstracts/july_20 08_ IEA.pdf
8. http://shodhganga.inflibnet.ac.in
9. http://shodhganga.inflibnet.ac.in/handls/10603/12279
10. http://shodhganga.inflibnet.ac.in/handls/10603/178408
11. http://www.eurojournals.com/ajsr.htm
12. http://hdl.handle.net/10603/72423
13. http://www.indianjournals.com/ijor.aspx
14. http://techwelkin.com/tools/english-to-hindi-typing-online-tool-unicode-converter/
15. उपाध्याय, एस0के0 एण्ड विक्रान्त, 2004, ए स्टडी ऑफ इमोशनल स्अेबलिटी एण्ड एकेडमिक एचीवमेन्ट ऑफ ब्वायज एण्ड गर्ल्स एट सेकेण्डरी लेविल, इण्डियन जर्नल ऑफ एजूकेशनल रिसर्च, वॉल्यूम-23, नं0 2, जुलाई-दिसम्बर 2004.
16. कोचर, एस0के0, सेकेण्डरी स्कूल एडमिनिस्ट्रेशन.
17. कपिल, एच0के0; ''अनुसंधान विधियाँ'' हर प्रसाद भार्गव, 41230 कचहरी घाट, आगरा-4, 1984, पेज 194.
18. कॉल, लोकेश, 1984;''मैथडोलोजी ऑफ एजूकेशन रिसर्च'', विकास पब्लिशिंग हाउस, प्राईवेट लि0.
19. कौर परविन्दर एण्ड बावा, एस0के0; 1995, इंटेलीजेन्स एण्ड द कोरिलेट ऑड एकेडमिक अचीवमेन्ट। इण्डियन एजूकेशनल एब्सट्रैक्ट, इश्यु 4, जनवरी 1998, पृ0 91.
20. गिल्फोर्ड, जे0पी0 फण्डामेन्टल स्टेटिस्टिक इन साइक्लॉजी एण्ड एजूकेशनल, मेग्राहिल, 1950.
21. गुड, सी0वी0, स्केट्स डी0, ''मैथर्डस ऑफ रिसर्च'' न्यूयार्क एपलटैन कन्टरी क्राट्स.
22. खातून, जे0, 1988; पर्सनलिटी पैटर्न्स ऑफ हाई एण्ड लो एकेडमिक अचीवर्स (साइकोलोजिकल स्टडी ऑफ एडोलिसेन्ट्स ऑफ रूहेलखण्ड रीजन (उत्तर प्रदेश)। पी-एच0डी. साइको रूहेलखण्ड यूनिवर्सिटी, फिफ्थ सर्वे ऑफ एजूकेशनल रिसर्च, 1988-1993, पृ0 896.
23. कृष्णन एस0 सान्थन, 1993; रिलेशनशिप बिटवीन सेल्फ कान्सेप्ट एण्ड एकेडमिक अचीवमेन्ट ऑफ कॉलेज स्टूडेन्ट्स, इण्डियन एजूकेशनल एब्सट्रैक्ट, इश्यु 4, जनवरी 1998, पृ0 30.
24. जोशी, एम0सी0, 1968; सामान्य मानसिक योग्यता परीक्षण (ए टेस्ट ऑफ जनरल मेन्टल एबिलिटी) वाराणसी, रूपा साइकोलोजिकल सेन्टर.
25. डा0 माथुर, एस0एस0, ''शिक्षा मनोविज्ञान'', प्रकाशक: विनोद पुस्तक मन्दिर, कार्यालय: रांगेय राघव मार्ग, आगरा-2, मुद्रण: कैलाश प्रिंटिंग प्रेस।

प्राचीन भारत ऐतिहासिक स्त्रोत के रूप में सिक्कों का महत्व

पिंकी कुमारी

शोधार्थी, इतिहास, डॉ0सी0वी0 रमण विश्वविद्यालय, वैशाली (बिहार)

संकेत शब्दः स्मारक, स्त्रोत, सिक्का, पुरातात्विक साक्ष्य, उत्खनन, अभिलेख

संक्षेपण

प्राचीन भारतीय इतिहास के स्त्रोत के रूप में सिक्कों का अपना विशेष महत्व है। इनमें न केवल हमें राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक, प्रशासनिक, धार्मिक इत्यादि जानकारी मिलती हैं, अपितु कुछ काल तो ऐसे भी हैं जिनके बारे में जानने के साक्ष्य केवल सिक्के ही है। वैसे तो यह माना जाता है कि सिक्कों से केवल पूर्व विदित तथ्यों की प्रमाणिकता ही मिलती है, परन्तु प्राचीन भारतीय इतिहास में ऐसा नहीं है, क्योंकि प्राचीन भारतीय इतिहास के कई काल ऐसे है जिन्हें पहले अंधकारमयी युग कहा जाता था, परन्तु अब सिक्कों इत्यादि की सहायता से हमें उन कालों के इतिहास का भी ज्ञान होता है। भारत के विशेषकर उत्तरपश्चिमी भारत में, अनेक भागों पर द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व से हिन्दु यूनानी शासकों का राज्य रहा है। अन्य साक्ष्यों से हमे 3-4 राजाओं का ही नाम मिलता है, परन्तु सिक्कों के मिलने से हमें 40 के लगभग राजाओं, रानियों, राजकुमारों इत्यादि से होने का पता चलता है, जिन्होंने एक के बाद एक या एक ही समय में अलग-अलग क्षेत्रों पर राज्य किया।

प्रस्तावना

इतिहासकार एक वैज्ञानिक की भांति उपलब्ध सामग्री की समीक्षा करके अतीत का सही चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। उसके लिए साहित्यिक साधन, पुरातात्विक साधन और विदेशियों के वर्णन सभी का महत्व है। इतिहासकार प्राचीन भारतीय इतिहाकस को तीन भागों में बांटते है। वह काल जिसके लिए कोई लिखित साधन उपलब्ध नहीं है, जिसमें मानव का जीवन अपेक्षाकृत पूर्णतया सभ्य नहीं था, ''प्रागैतिहासिक काल'' कहलाता है। इतिहासकार उस काल की ऐतिहासिक काल की संज्ञा देते हैं जिसके लिए लिखित साधन उपलब्ध है और जिसमें मानव सभ्य बन गया था। प्राचीन भारत के इतिहास में एक ऐसा भी समय था जिसके लिए लेखन कला के प्रमाण तो हैं किन्तु या तो वे अपुष्ट है या फिर उनकी गूढ़ लिखित का अर्थ निकालना कठिन है। इस काल को भारतीय इतिहासकार आद्य इतिहास कहते है। हड़प्पा की संस्कृति और वैदिककालीन संस्कृति की गणना 'आद्य इतिहास' इस आधार पर हड़प्पा संस्कृति से पूर्व का इतिहास 'प्रागितिहास' और लगभग ईसा पूर्व 600 के बाद का इतिहास 'इतिहास' कहलाता है। इसका कारण यह है कि भारत में प्राचीनतम लिखित सामग्री अशोक के अभिलेख है, जिनका समय ईसा से पूर्व तीसरी शताब्दी है और इस भाषा के विकास में भी लगभग 300 वर्ष लगे होंगे। इसके अतिरिक्त गौतम बुद्ध और महावीर की ऐतिहासिकता में भी कोई संदेह नहीं है।

पुरातात्विक सामग्री में सिक्कों का स्थान भी कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। भारत के प्राचीनतम सिक्कों पर अनेक प्रकार के चिह्न उत्कीर्ण है। उनपर किसी प्रकार के लेख नहीं है। ये सिक्के 'आहत सिक्के' कहलाते है। इन सिक्कों को राजाओं के अतिरिक्त संभवतः व्यापारियों, व्यापारिक श्रेणियों और नगर-निगमों ने शुरू किया था। इनसे इतिहासकारों को विशेष सहायता हनीं मिली है, किन्तु जब उत्तर-पश्चिमी भारत पर बैक्ट्रिया के हिन्द-यूनानी शासकों ने अधिकार कर लिया और सिक्का-लेखों वाले अपने सिक्के चलाए तो भारतीय शासक भी सिक्का-लेख वाले सिक्के चलाने लगे। इन सिक्कों पर सिक्का-लेख के अतिरिक्त बहुधा सिक्के को चालू करने वाले शासक की आकृति भी होती थी।

उत्पत्ति एवं विकास

प्राचीन कला अवशेषों की अमूल्य निधि संजोय भारत की कलात्मक दृष्टि अत्यन्त विस्तृत रही है। भारतीय कला अवशेषों में मूर्ति कला, स्थापत्य कला, चित्रकला के साथ-साथ प्राचीन गुहा चित्र शवों के साथ दफनायें गये पात्र मिट्टी के बर्तन, पत्थर काँसे की मूर्तियाँ और मृण्यमूर्तियाँ, मुद्राओं और टिकरों पर की गयी चित्रकारी आदि सम्मिलित होते हैं। इन प्राचीन अवशेषों में हड़प्पा एवं मोहनजादड़ो के नगर विन्यास की विस्तृत एवं समृद्ध योजना भी महत्वपूर्ण है। हड़प्पा के टीलों का ज्ञान 1878 ई0 में कनिंघम के द्वारा छपवायी गई कुछ मोहरों के माध्यम से हुआ।

भारतीय कला क्षेघ्त्र के इन प्राचीन अवशेषों में से विभिन्न स्थानों से प्राप्त प्रचलित मुद्राओं का भी महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय संस्कृति की विश्वस्त गरिमा इन्ही मुद्राओं की देन है। सिक्के हमें, इतिहास और संस्कृति को ठीक से समझने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। सिक्के निर्जीव होते हुए भी हमारे सामने अतीत को दिखाते हैं। वे मूक नहीं होते वे बोलते हैं। वह अपने समय की सभ्यता, संस्कृति और कला की जानकारी देते हैं। सिक्के हमारे ज्ञान भण्डार में

वृद्धि करते हैं। प्राचीनतम काल में विनिमय की प्रक्रिया वस्तुओं के माध्यम से पूर्ण होती थी। आदिम अवस्था को पार करके जब मनुष्य ने सामाजिक जीवन में पदार्पण किया तब से यह प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। समय के साथ विकसित होती हुई यह प्रक्रिया सिक्कों के रूप में प्रयोग की जाने लगी। भारत में सिक्कों का प्रचलन प्राचीन काल से रहा है। सिक्कों के माध्यम से अनेक राजाओं, राजवंशों, निगमों एवं वर्णिक समुदायों के विषय में जानकारी प्राप्त होती रही है। सिक्कों का महत्व क्रय-विक्रय, राज्य-विस्तार, अर्थव्यवस्था के सुधार के लिए किया जाता था तथा उन पर अंकित चिन्हों, प्रतीकों, पशुओं, प्राकृतिक वस्तुओं, वाहनों, देवी-देवताओं, अलंकरणों आदि से भी अनेक विषयों का परिज्ञान होता है। वैदिक काल को इतिहासकार 1500 से 800 ई0 पू0 के बीच में रखते हैं, परन्तु कुछ अन्य विद्वानों के मत से इनका काल और भी पहले हो सकता है। वैदिक साहित्य मे ही अनुमानित निश्चित आकार के और निश्चित वजन के धातु के टुकड़ों को ब्राह्मणों को दान में देने के लिये बनाया जाता था, लेकिन ये सिक्के नही थे।

वैदिक साहित्य मे कुछ अन्य शब्द सिक्कों के लिये प्रयोग किये गये है जैसे- निश्क, शतमान, स्वर्ण, हिरण्यपिण्ड आदि। जिससे विनिमय पर आधारित निर्वाह अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। चूँकि इनके परीक्षण मे अधिक समय लगता था इसलिए आगे चलकर विद्वानों ने स्वर्ण या रजत पट्टियों को समान भार में काटकर उनका मानक मूल्य निर्धारित कर दिया। भारत में सबसे प्राचीन सिक्कों का नाम ''पुराण'' या ''धरण'' मिलता है। इन्हें ही पंचमार्क या आहत सिक्का कहते हैं। बाद में इन सिक्कों को कार्शापण नाम दिया गया। कार्शापण का संक्षिप्त नाम ''पण'' भी है। प्राचीन धारणा है कि कार्शापण तौल का नाम था जो बाद में सिक्के के लिए प्रयोग किया जाने लगा। ''मासक'' से छोटे सिक्के का बोध होता है। अत: भारत में पंचमार्क सिक्कों के अलग-अलग नाम प्राप्त होते हैं। इन सिक्कों पर लेख तथा तिथि का अभाव है। जिसके कारण इन सिक्कों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना एक जटिल समस्या है। उन पर अंकित चिह ्नों के माध्यम से ही कुछ जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

206 ईसा पूर्व से लेकर 300 ईस्वी तक के भारतीय इतिहास का ज्ञान हमें मुख्य रूप से मुद्राओं की सहायता से ही प्राप्त हो पाता है। इसके पूर्व के सिक्कों पर लेख नहीं मिलता और उन पर जो चिह्न बने हैं उसका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं है। ये सिक्के आहत सिक्के पंच मार्क सिक्के कहलाते हैं। धातु के टुकड़ों पर ठप्प मारकर बनाई गई बुद्धकालीन आहत मुद्राओं पर पेड़, मछली, सांड, हाथी, अर्धचन्द्र आदि वस्तुओं की आकृतियां होती थी। बाद के सिक्कों पर राजाओं और देवताओं के नाम तथा तिथियाँ भी उल्लेखित हैं। इस प्रकार की मुद्राओं के आधार पर अनेक राजवंशों के इतिहास का पुनर्निर्माण संभव हो सका है, विशेषकर उन हिन्द-यूनानी शासकों के इतिहास का जो उत्तरी अफगानिस्तान से भारत पहुंचे थे और ईसा पूर्व द्वितीय से प्रथम शताब्दी ईसापूर्व तक यहां शासन किये। मुद्राओं का उपयोग दान-दक्षिणा, क्रय-विक्रय तथा वेतन-मजदूरी के भुगतान में होता है। शासकों की अनुमति से व्यापारिक संघ (श्रेणियों) ने भी अपने सिक्के चलाये थे। सर्वाधिक मात्रा में मुद्राएं मौर्योत्तर काल में मिली है जो सीसा, पोटीन, तांबा, कांसे, चांदी तथा सोने की हैं। कुशाण शासकों द्वारा जारी स्वर्ण सिक्कों में जहां सर्वाधिक शुद्धता थी, वहीं गुप्त शासकों ने सबसे अधिक मात्रा में स्वर्ण सिक्के जारी किये। मुद्राओं से तत्कालीन आर्थिक दशा तथा संबंधित राजाओं की साम्राज्य सीमा का भी ज्ञान हो जाता है। कनिश्क के सिक्कों से उसका बौद्ध धर्म का अनुयायी होना प्रमाणित होता है। समुद्रगुप्त के कुछ सिक्कों पर यूप (यज्ञ स्तम्भ) बना है जबकि कुछ अन्य सिक्कों पर अश्वमेध पराक्रम: शब्द उत्कीर्ण हैं, साथ ही उसे वीणा बजाते हुए भी दिखाया गया है। इण्डो-यूनानी तथा इण्डो-सीथियन शासकों के इतिहास के मुख्य स्त्रोत सिक्के ही हैं। सातवान राजा शातकर्णी की एक मुद्रा पर जलपोत अंकित होने से उसके द्वारा समुद्र विजय का अनुमान लगाया गया है। चन्द्रगुप्त द्वितीय की व्याघ्र शैली की चांदी की मुद्राओं में उसके द्वारा पश्चिम भारत के शकों पर विजय सूचित होती है।

गुप्त काल के बारे में तो हमें बहुत से साहित्यिक एवं अन्य साक्ष्य मिलते हैं, परन्तु इस राजवंश के भी कई ऐसे शासक है, जिनका पता हमें केवल उनके सिक्कों द्वारा ही लगता है, जैसे समुदाय से पूर्व उसके बड़े भाई ने कुछ वर्षों तक राज्य किये जिनका नाम किसी गुप्त अभिलेख में नहीं है तथा न ही कोई अन्य साक्ष्य उस पर प्रकाश डालता है। काव नामक राजा के राज्य के बारे में पता हमें उसके चक्रध्वज प्रकार के सिक्कों से लगता है जिस पर काव नाम लिखा है। इसी प्रकार राम गुप्त की ऐतिहासिक के प्रमाण भी में उसके चलाये गये सिक्कों से ही मिलते हैं। यदि यह सिक्के न होते हो देवी चन्द्रगुप्त में वर्णित गुप्त राजा रामगुप्त उसका शकों से हारना चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा शक नरेश का वध इत्यादि महज कोरी कल्पनाएं ही रह जाती।

राजवंशों के अतिरिक्त भारत में बहुत से गुणराज्य भी थे, जिनमें यौधेय, कुणिन्द, औदुम्बर, शिबी, माया, काढ़, क्षुद्रक इत्यादि भी थी। इनमें से अधिकतक गणों का ज्ञान हमें उनके सिक्कों से ही होता है तथा इन्हीं से हमें उनके साम्राज्य क्षेत्र इत्यादि का भी पता चलता है उनकी शासन पद्दति का ज्ञान धार्मिक आस्थाएं इत्यादि पर भी सिक्कों पर बने चिन्हों तथा तस्वीरों से पता चलता है।

स्मारक

सिक्कों तथा अभिलेखों के अतिरिक्त और भी अन्य पुरातन चीजें है जिससे उस काम की सामाजिक आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का पता चलता है। इनमें हम पुराने भवनों, भवनाशेषों, मूर्तियों, मृदभांडों इत्यादि को रख सकते है। इन से हमें कला तथा वस्तुकला का इतिहास जानने में सहायता मिलती है, चाहे राजनीतिक दृष्टि से इनका महत्व अधिक नहीं हो, परन्तु अन्य बहुत से पहलुओं पर इन से प्रकाश पड़ता है। प्राचीन भारत के इतिहास से संबंधित स्मारकों के हम दो भागों में बांट सकते हैं पहला देशी तथा अन्य देशों के स्मारक।

हड़प्ता तथा मोहनजोदड़ों के उत्खननों से बहुत से बड़े-बड़े भवनों एवं स्मारकों के अवशेष मिल जैसे स्नानागार, अन्नागार, सभागार इत्यादि इनसे हमें उस काल की धार्मिक-आर्थिक, सामाजिक एवं प्रशासनिक स्थिति की जानकारी प्राप्त होती है।

निष्कर्ष

पुरातत्व विषयक वस्तुओं से इतिहास लिखने में पर्याप्त सहायता मिलती है। इन वस्तुओं में उत्कीर्ण लेखों के बाद इतिहास में बहुत से युग ऐसे है जिनके विषय मे जानकारी केवल सिक्कों के माध्यम से ही हो पाती है। राजनैतिक इतिहास तत्कालीन कला, साहित्य और धार्मिक अभिरूचि का भी ज्ञान सिक्कों के माध्यम से ही ज्ञात होती है। भारत के प्राचीन सिक्कों से यह ज्ञात होता है कि यहाँ गणतन्त्रतात्मक प्रणाली थी और उन्होंने अपने-अपने गणों के सिक्के

चलाये थे। यूनानी राजाओं के बारे में जानकारी भी उनके द्वारा जारी किये गये सिक्कों से ही प्राप्त होती है क्योंकि भारतीय साहित्य में केवल मिलिन्द नामक विदेषी साहित्य का उल्लेख है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय सिक्के एक ऐतिहासिक परिचय, अम्रतेश्वर झा आई0आई0आर0एन0एस0 पब्लिकेशन, नासिक, पृष्ठ सं0-7
2. भारतीय सिक्कों का इतिहास, अजीत रायजादा, शारदा पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली, 1993 पृष्ठ सं0-12
3. प्राचीन सिक्के, राम प्रकाश ओझा, पोस्ट ऑफिस, महानगर, लखनऊ, 1978 पृष्ठ सं0-10
4. वही, पृष्ठ सं0-12
5. प्राचीन भारतीय मुद्रा शास्त्रीय इतिहास में देशी एवं विदेशी तत्व, अनूप कुमार, कला प्रकाशन,2009, पृष्ठ सं0-18
6. वही, पृष्ठ सं0-14-15
7. प्राचीन सिक्कों का इतिहास, अजीत रायजादा, शारदा पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली, 1993 पृष्ठ सं0-15

प्राचीन भारत में मौर्य साम्राज्य का महत्व - एक अध्ययन

मोहित कुमार दुबे

शोधार्थी, इतिहास, महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

संकेत शब्दः मौर्य साम्राज्य,

संक्षेपण

परिचय

मौर्य राजवंश (322-175 ई0पू0) प्राचीन भारत का एक शक्तिशाली एवं महान राजवंश क्षत्रिय वंश था। इसने 137 वर्ष भारत में राज्य किया। इसकी स्थापना का श्रेय चन्द्रगुप्त मौर्य और उसके मंत्री कौटिल्य को दिया जाता है, जिन्होंने नंद वंश के सम्राट घनानन्द को पराजित किया। मौर्य साम्राज्य के विस्तार एवं उसे शक्तिशाली बनाने का श्रेय सम्राट अशोक को जाता है। मौर्य साम्राज्य पूर्व में मगध राज्य में गंगा नदी के मैदानों (वर्तमान में बिहार एवं बंगाल) से शुरू हुआ। इसकी राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) थी। चन्द्रगुप्त मौर्य ने 322 ई0पू0 में इस साम्राज्य की स्थापना की और तेजी से पश्चिम की तरफ अपना साम्राज्य का विकास किया। उसने कई छोटे-छोटे क्षेत्रीय राज्यों के आपसी मतभेदों का फायदा उठाया जो सिकन्दर के आक्रमण के बाद पैदा हो गये थे। 316 ई0पू0 तक मौर्य वंश ने पूरे उत्तरी पश्चिमी भारत पर अधिकार कर लिया था। चक्रवर्ती सम्राट अशोक के राज्य में मौर्य वंश का वृहद स्तर पर विस्तार हुआ। सम्राट अशोक के कारण ही मौर्य साम्राज्य सबसे महान एवं शक्तिशाली बनकर विश्वभर में प्रसिद्ध हुआ।

325 ई0पू0 में उत्तर पश्चिमी भारत (आज के पाकिस्तान का लगभग सम्पूर्ण क्षेत्र) सिकन्दर के क्षत्रपों का शासन था। जब सिकन्दर पंजाब पर आक्रमण कर रहा था तो एक ब्राह्मण जिसका नाम चाणक्य था (जिसे कौटिल्य नाम से भी जाना गया तथा वास्तविक नाम विश्णुगुप्त था) मगध को साम्राज्य विस्तार के लिए प्रोत्साहित करने आया। उस समय मगध बहुत शक्तिशाली था और उसके पड़ोसी राज्यों की आंखों का काँटा बन गया था, पर तत्कालीन मगध सम्राट घनानन्द ने उसको ठुकरा दिया। उसने कहा कि ''तुम एक पंडित हो और अपनी चोटी का ही ध्यान रखो, युद्ध करना राजा का काम है तुम पंडित हो सिर्फ पंडिताई करो''। तभी से चाणक्य ने प्रतिज्ञा लिया की धनानन्द को सबक सिखा के रहेगा।

मौर्य प्राचीन क्षत्रिय कबीले के हिस्से रहे है। ब्राह्मण साहित्य, विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षस व जस्टिन इत्यादि यूनानी स्त्रोतों के अनुसार मौर्य क्षत्रिय थे, मौर्य के उत्पत्ति के विषय पर इतिहासिकारों के एक मत नहीं है, कुछ विद्वानों का यह भी मानना है कि चन्द्रगुप्त मौर्य की उत्पत्ति उनकी माता मुरा से मिली है मुरा शब्द का संशोधित शब्द मौर्य है, वे ऐसे कबीले थे जो मोरों का पालन करते थे, परन्तु यह भी सटीक नहीं बैठता। भारतीय इतिहास में यह पहली बार हुआ कि माता के नाम से पुत्र का वंश चला हो। मौर्य एक शक्तिशाली वंश था, वह उनके पिता से विरासत में मिली थी, पुत्र का नाम पिता से ही जुड़ा होता है। उनकी उत्पत्ति वृशल वंश से हुई थी, लेकिन इसका कोई प्रमाण इतिहास में उपलब्ध नहीं है, यह केवल तर्क है, क्योंकि इतिहास में किसी ने भी अपने वंश का नाम माता के नाम से नहीं रखा, तो कुछ इतिहासकारों का यह सिर्फ अनुमान है। चन्द्रगुप्त उसी गण प्रमुख का पुत्र था जो कि चन्द्रगुप्त के बाल अवस्था में ही योद्धा के रूप में मारा गया। चन्द्रगुप्त में राजा बनने के स्वाभाविक गुण थे, इसी योग्यता को देखते हुए चाणक्य ने उसे अपना शिष्य बना लिया एवं एक सबल राष्ट्र की नींव की डाली जो कि आज तक पूरे विश्व के लिए एक आदर्श है।

छठी सदी ई0पू0 तक भारत में धार्मिक सम्प्रदायों का प्रचलन था। ये सभी धर्म किसी न किसी रूप से वैदिक प्रथा से जुड़े हुए थे। छठी सदी ई0पू0 से कोई 62 सम्प्रदायों के अस्तित्व का पता चला है जिसमें बौद्ध तथा जैन सम्प्रदायों का उदय कालान्त में अन्य की उपेक्षा अधिक हुआ। मौर्यों के आते-आते बौद्ध तथा जैन सम्प्रदायों का विकास हो चुका था। उधर दक्षिण में शैव तथा वैष्णव सम्प्रदाय भी विकसित हो रहे थे। चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपना राजसिंहासन त्यागकर जैन धर्म अपना लिया था। ऐसा कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त ने अपने गुरू जैनमुनि भद्रबाहु के साथ कर्नाटक के श्रवणबेलगोला में सन्यासियों के रूप में रहने लगा था। इसके बाद के शिलालेखों में भी ऐसा पाया जाता है कि चन्द्रगुप्त ने उसी स्थान पर एक सच्चे निष्ठावान जैन की तरह आमरण उपवास करके अपना जीवन त्याग दिया था। वहां पास में ही चन्द्रगिरी नाम की पहाड़ी है जिसका नामकरण शायद चन्द्रगुप्त के नाम पर ही किया गया था।

मौर्यकाल के सामाजिक दशा

मौर्य काल का सामाजिक जीवन कौटिल्य के अनुसार वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित था। कौटिल्य ने वर्णाश्रम व्यवस्था के महत्व को स्पष्ट करते हुए इसकी रक्षा को राजा के कर्त्तव्य से जोड़ा, इन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शुद्र के कार्यों को अलग-अलग निर्धारित किया। कौटिल्य ने शूद्रों को भी आर्य

कहा। उसके अनुसार शूद्र का कार्य शिल्प, व्यापार, कृषि तथा पशुपालन भी हो सकता है। इन्हें दास बनाये जाने पर प्रतिबंध था। मौर्य काल में शिक्षक, यज्ञ सम्पन्न कराने वाले पुरोहित एवं वेद का पाठ करने वाले पुरोहितों को ''ब्रह्मदेवद्य'द्य' नामक भूमि दान में दी जाती थी।

मौर्य काल तक आते-आते वर्णाश्रम व्यवस्था को एक निश्चित आधार प्राप्त हो चुका था। वर्ण कठोर होकर जाति के रूप में बदल गये जिसका आधार जन्म था। यूनानी लेखकों के विवरण से जाति-व्यवस्था के अत्यन्त जटिल होने की सूचना मिलती है। मेगस्थनीज ने भारतीय समाज में सात वर्गों का उल्लेख किया है - 1. दार्शनिक, 2. कृषक, 3. योद्धा, 4. पशुपालक, 5. कारीगर, 6. निरीक्षक और 7. मंत्री।

मौर्यकालीन समाज में स्त्रियों की दशा

स्मृतिकाल की तुलना में मौर्य काल में स्त्रियो की दषा बेहतर थी। उन्हें पुनर्विवाह व नियोग करने की अनुमति थी, फिर स्त्रियों की स्थिति को ज्यादा उन्नत नहीं कहा जा सकता। उन्हें घर से बाहर जाने की स्वतंत्रता नहीं थी। संभात घर की स्त्रियां प्राय: घर के अंदर ही रहती थी। अर्थषास्त्र में उन्हें ''अनिष्कासिनी'' कहा गया है। इस समय सती प्रथा का कोई पमाण नहीं मिलता है, किन्तु यूनानी लेखकों ने उत्तर पश्चिम में मृत सैनिकों के साथ उनकी स्त्रियों के सती होने का उल्लेख किया है। मौर्य काल में गणिकाओं या वेश्याओं का भी उल्लेख मिलता है। स्वतंत्र रूप से वेश्यावृत्ति करने वाली स्त्रियां रूपाजीवा कहलाती थी। बहुत से गणिकाएं गुप्तचर विभाग में कार्य करती थी। गणिकाओं के कार्यों का निरीक्षण गणिकाध्यक्ष करता था। समाज में विधवा विवाह का प्रचलन था। जो विधवाएं विवाह नहीं करती थी तथा स्वतंत्र रूप से अपना जीवन व्यतीत करती थी। ऐसी विधवाओं को ''छंदवासिनी'' कहा जाता था।

शिक्षा एवं मनोरंजन

मौर्य काल में षिक्षा वर्णाश्रम धर्म के अनुसार दी जाती थी। धर्म, व्याकरण, अर्थ तथा राजनीति (व्रत) शिक्षा के अनिवार्य अंग थे। तक्षशिला, उज्जैन तथा वाराणसी शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। इस काल में गायन, वादन तथा नृत्य मनोरजन के प्रमुख साधन थे। इसके अतिरिक्त जुआ, शराब व शिकार करना भी मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। अर्थशास्त्र में प्रेक्षागृहों (रंगशालाओं) का भी वर्णन मिलता है। इन रंगशालाओं में भाग लेने वाले पुरूषों के रंगोपजीवी तथा स्त्रियों को रंगोपजीविनी कहा जाता था। प्रवहण एक प्रकार का सामूहिक समारोह था, जिसमें भोज्य पदार्थों की अधिकता होती थी।

मौर्यकाल के धार्मिक दशा

मौर्य काल में अनेक धर्म एवं सम्प्रदाय प्रचलित थे। इस काल के सम्राटों की धार्मिक विषयों में सहिष्णुता की नीति से विभिन्न मतों एवं सम्प्रदायों के विका सुअवसर प्राप्त हुआ। इस समय मे मुख्य धर्म एवं सम्प्रदाय वैदिक, बौद्ध, जैन, आजीवक आदि थी।

मौर्यकाल के आर्थिक दशा

मौर्य युग में कृषि अधिकांश जनता के जीवन का आधार थी। भूमि राजा तथा कृषक दोनों के अधिकार में होती थी। कृषक युद्ध तथा अन्य राजकीय कर्त्तव्यों से मुक्त रहने के कारण अपना सारा समय खेतों में ही लगाते थे। लोहे के उपकरणों के भारी मात्रा में प्रयोग के कारण उत्पादन बहुत अधिक बढ़ गया। इस काल में ही मूंठदार कुल्हाड़ियों, फॉल, हँसिये आदि का कृषि कार्यों के लिए बड़े पैमाने पर प्रयोग प्रारम्भ हुआ। राज्य की ओर से कृषि को प्रोत्साहन मिलता था। युद्ध के समय में भी सैनिकों को खेतों को हानि नही पहुंचाने का आदेश रहता था। कृषि को क्षति पहुंचाने वाले कीड़े-मकोड़े तथा पशु-पक्षियों को नष्ट करने के लिए राज्य की ओर से गोपालक और शिकारी नियुक्त किये गये थे। अधिकाधिक बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाया गया। भूमि बड़ी उर्वरा थी तथा प्रतिवर्ष दो फसलें आसानी से उगाई जा सकती थी। देश अकाल एवं अभाव से मुक्त था। गेहूँ, जौ, चना, चावल, ईख, तिल, सरसों, मसूर, शाक आदि प्रमुख फसलें उगाई जाती थी। सिंचाई की उत्तम व्यवस्था थी। मेगास्थनीज ने लिखा है कि भूमि का अधिकांश भाग सिंचित था। कुछ पदाधिकारी नदियों का प्रबंध रखते थे ताकि उनसे पानी ठीक से नहरों द्वारा खेतों को पहुंचाया जा सके। अर्थशास्त्र से पता चलता है कि सिंचाई की चार विधियाँ हाथ द्वारा, कंधों पर पानी ले जाकर, मशीन द्वारा तथा नदियों, तालाबों आदि से पानी निकाल कर थी। सिंचाई की सुविधा के लिए चन्द्रगुप्त मौर्य ने सुराष्ट्र झील का निर्माण करवाया था। रूद्रदामन के जूनागढ़ लेख से पता चलता है कि इस झील के निर्माण का कार्य चन्द्रगुप्त के राज्यपाल पुष्यगुप्त वैश्य ने प्रारम्भ करवाया था तथा अशोक के राज्यपाल तुशास्प ने इसे पूरा करवाया था।

पशुओं में गाय-बैल, भेड़-बकरी, भैंस, गधे, ऊँट, सुअर, कुत्ते आदि प्रमुख रूप से पाले जाते थे। राज्य की ओर से चारागाहों की भी व्यवस्था थी। अर्थशास्त्र से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त के समय में पशुधन विकास के लिए एक विशेष विभाग था जो पशुओं के भरण-पोषण एवं उनकी चिकित्सा आदि की उचित व्यवस्था रखता था।

मौर्य युग में व्यापार-व्यवसाय की उन्नति हुई। मौर्य सम्राटों ने सड़कों के निर्माण तथा एकात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना करके भारतीय उपमहाद्वीप में व्यापार को प्रोत्साहन दिया। आंतरिक तथा वाह्य दोनों ही व्यापार प्रगति पर थे। इस समय भारत का वाह्य व्यापार सीरिया, मिस्त्र तथा अन्य पष्चिमी देशों के साथ होता था। यह व्यापार पश्चिमी भारत में भृगुकच्छ तथा पूर्वी भारत में ताम्रलिप्ति के बंदरगाहों द्वारा किया जाता था। ''बारबैरिकम'' नामक बंदरगाह सिन्धु के मुहाने पर स्थित था।

मौर्यकालीन व्यापार

मौर्य काल में व्यापार स्थल एवं जल दोनों ही मार्गों से होता था। संस्थाध्यक्ष नामक अधिकारी व्यापारिक गतिविधियों पर नजर रखता था। मौर्यकाल में व्यापारियों के संगठन को ''सम्भूत-समुत्थान'' और ''सांव्यवहारिक'' कहा जाता था। व्यापारियों के नेता को ''सार्थवाह'' कहते थे।

मौर्यों के समय में चार प्रमुख व्यापारिक मार्ग थे जो पाटलिपुत्र से पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण दिशा में जाते थे। इनमें सबसे प्रमुख मार्ग पाटलिपुत्र से पुरूषपुर था जो तामलुक जाता था। यह सबसे बड़ा व्यापारिक मार्ग था, इसे उत्तरापथ कहा जाता था। दूसरा महत्वपूर्ण मार्ग ''हैमवत पथ'' था, जो हिमालय की तरफ जाता था। दक्षिण की ओर लिए एक मार्ग प्रतिष्ठान तक जाता था। पश्चिमी तट पर एक मार्ग भड़ौचल एवं काठियावाड़ होते हुए लंका तक जाता था।

आन्तरिक व्यापार नदियों के मार्ग से भी प्रयोग होता था। छोटी नदियसों में क्षुद्रका नाव तथा बड़ी नदियों मे महानाव चलती थी। आन्तरिक व्यापार के मुख्य केन्द्र के रूप में तक्षषिला, काशी, पाटलिपुत्र, कौशाम्बी, उज्जैन, जावा, सुमात्रा आदि प्रसिद्ध थे। दक्षिण में ताम्रपर्णि, पाण्डयों एवं केरल मुक्ता, मणि, हीरे, सोना, शंख आदि के लिए प्रसिद्ध थे। इस समय का सबसे प्रमुख बंदरगाह पश्चिमी तट पर भड़ौच तथा भृगुकच्छ था। यह प्राचीन भारत का सबसे बड़ा बंदरगाह था। पश्चिमी तट पर सोपारा एक अन्य महत्वपूर्ण बंदरगाह था। पूर्वी तट का सबसे प्रमुख बंदरगाह था। पूर्वी तट का सबसे प्रमुख बंदरगाह ताम्रलिप्ति था। भारत और मिस्त्र के बीच मौर्य काल में होने वाले व्यापार को और अधिक बढ़ाने के लिए टॉलमी ने लाल सागर पर बरनिस नामक बंदरगाह की स्थापना की थी। इस काल में भारत का व्यापार मुख्यतः पश्चिमी एशिया, मिस्त्र, चीन व श्रीलंका से होता था। चीन से रेशम, ताम्रपर्णी से मोती, नेपाल से चमड़ा, सीरिया से मदिरा एवं पश्चिमी एशिया से घोड़ों का आयात होता था। भारत में मिस्त्र को हाथी दांत, कछुए, सीपियां, मोती, रंग, नील और बहुमूल्य लकड़ी निर्यात होती थी। मौर्य युगीन अर्थव्यवस्था के संबंध में ध्यान रखने योग् बात यह है कि उतरी काली पालिश के मृदभाण्डों की जिस संस्कृति का प्रादुर्भाव महात्मा बुद्ध के काल में हुआ था, वह मौर्य काल में अपनी चरम सीमा पर थी।

निष्कर्ष

भारत में सर्वप्रथम मौर्य वंश के शासनकाल में ही राष्ट्रीय राजनीतिक एकता स्थापित हुई थी। मौर्य प्रशासन में सत्ता का सुदृढ़ केन्द्रीकरण था, परन्तु राजा निरंकुश नहीं होता था। मौर्य काल में गणतंत्र का ह्रास हुआ और राजतंत्रात्मक व्यवस्था सुदृढ़ हुई। कौटिल्य ने राज्य सप्तांक सिद्धान्त निर्दिष्ट किया था, जिनके आधार पर मौर्य प्रशासन और उसकी गृह तथा विदेश नीति संचालित होती थी - राजा, अमात्य जनपद, दुर्ग, कोश, सेना और मित्र। इतने बड़े साम्राज्य की स्थापना का एक परिणाम ये हुआ कि पूरे साम्राज्य में आर्थिक एकीकरण हुआ। किसानों को स्थानीय रूप से कोई कर नहीं देना पड़ता था, हालांकि इसके बदल उन्हें कड़ाई से पर वाजिब मात्रा में कर केन्द्रीय अधिकारियों को देना पड़ता था। उस समय की मुद्रा पण थी। अर्थशास्त्र में इन पणों के वेतनमानों का भी उल्लेख मिलता है। न्यूनतम वेतन 60 पण होता था, जबकि अधिकतम वेतन 48000 पण था।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- गिरनार का 12वां शिलालेख - ''अशोक के धर्म लेखा'' से पृ0-31, भारत का प्राचीन इतिहास
- गिरनार का पष्ठ शिलालेख ''अशोक के धर्म लेखा'' से पृ0-28, भारत का प्राचीन इतिहास
- पी0एल0 गौतम - प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, 2018
- ओम प्रकाश यादव एवं प्रशान्त गौरव - प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, राजकमल प्रकाशन, 2016
- सत्यकेतु विद्यालंकार - मौर्य साम्राज्य का इतिहास, 2014
- दिलीप कुमार लाल - बृहतर भारत का निर्माता ''चन्द्रगुप्त मौर्य'', 2014
- आचार्य चाणक्य - कौटिल्य अर्थशास्त्र, राजपाल एण्ड संस प्रकाशक, 2015
- धीरेन्द्र नारायण झा एवं कृष्ण मोहन श्रीमाली - प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, 2016
- डी0एन0 झा - प्राचीन भारत का इतिहास (विविध आयाम)

'देशांतर' काव्य संग्रह में निहित कविताओं के विविध रूप

श्रुति सुधा आर्या

अतिथि प्रवक्ता, विधि विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

शोध आलेख सार

देशांतर काव्य संग्रह की कविताएँ विभिन्न देशों की सीमाओं को लांघ कर मानवीयता की सांझी जमीन पर एक साथ खड़े होने की पुरजोर कोशिश है। इन कविताओं के माध्यम से मैंने उन मूलभूत संवेदनाओं को जानने का प्रयास किया है जो विभिन्न देशों में रहकर रचना कर रहे प्रवासी भारतीयों को एक समान धरातल पर लाकर खड़ा करती है। साथ ही भारत में रह रहे लोगों को प्रवासी भारतीयों की मानसिक यंत्रनाओं, व्यथाओं, पीड़ाओं तथा भावनाओं से रूबरू करवाती हैं।

मूल शब्द - प्रवासी, भारतीय, देश, मनुष्य, प्यार, संवेदना, छटपटाहट, यथार्थ, मिट्टी, संस्कृति।

भूमिका

वैसे तो राष्ट्रीयता सीमाओं से बंधा शब्द है लेकिन जब बात मानवीय संवेदनाओं की हो तो वे किसी चौहद्दी की मोहताज नहीं होतीं। यद्यपि मानवीय संवेदनाएं जब कागज या कैनवस पर उतरती हैं तो बहुत हद तक अपने परिवेश से प्रभावित होती हैं किंतु फिर भी मनुष्य का हँसना, रोना, तड़पना, बेचौन होना, क्रोधित होना तथा व्यथित होना जैसी क्रियाएं पूरे विश्व पटल पर सामान्य हैं। विश्व की हर बड़ी से बड़ी तथा छोटी से छोटी हस्ती भी अपने में इन मानवीय प्रवृत्तियों को सहेजे हुए है। यही मानवीय प्रवृत्तियाँ संवेदनाओं के रूप में जब कविता का रूप धारण करती हैं तो देशकाल की सीमाओं को दरकिनार कर प्रत्येक मनुष्य के लिए पढ़ने व सुनने के योग्य बन जाती हैं। कभी-कभी तो कोई रचना इतनी महत्वपूर्ण होती है कि वह कालजयी कृति कहलाने लगती है। इस विषय में विशेषत: जब हम प्रवासी साहित्य की बात करते हैं तो यह जानना आवश्यक हो जाता है कि प्रवासी साहित्य वह साहित्य है जो उन भारतीयों के द्वारा रचा जाता है जो किसी संघर्ष, जिजीविषा, आत्मोन्नति अथवा किसी अन्य कारण से विदेशों में जाकर बस गए। वैसे भी नब्बे के दशक में पनपे एक रुवीय बाजारवाद की प्रक्रिया ने आज पूरी दुनिया को विश्वग्राम की जो परिकल्पना दी है उसके चलते भारत जैसे तीसरी दुनिया के लोगों का विदेश गमन आश्चर्यचकित नहीं करता किंतु विदेशी भूमि में अपनों की याद से सराबोर मन तथा अपने देश की मिट्टी की सोंधी खुशबू से सुवासित हृदय से वे कवि जब कलम उठाते हैं तो एक सहृदय पाठक में भी थोड़ी बेचौनी भर जाते हैं।

एक पाठक के तौर पर जब इस काव्य का अध्ययन किया जाता है तो कई महत्वपूर्ण बिंदु हाथ आते हैं। यथा- जो एक बात अलग-अलग राष्ट्रों में रहकर कविता कर रहे प्रवासी भारतीयों में समान रूप से दिखाई पड़ती है वह है 'अपने वतन को शिद्दत से याद करना'। हम चाहे अमेरिका से डॉ0 आस्था नवल, वेद प्रकाश वटुक, शशि पाधा को देखें या आस्ट्रेलिया के 'अब्बास रजा अल्वी, प्रेम माथुर 'फकीर ', डॉ भावना कुँअर तथा रेखा राजवंशी को पढ़ें या 'खाड़ी' से कृष्ण बिहारी या कि 'ब्रिटेन' से उषा राजे सक्सेना, डॉ0 निखिल कौशिक तथा प्राण शर्मा को ही क्यों न पढ़ लें प्रत्येक कवि के काव्य का अपना एक अलग अंदाज है लेकिन देश तथा मातृभूमि की याद, तड़प, बेचौनी व छटपटाहट हर सीमा, हर सरहद को पाटकर बड़ी गहराई से पाठक के भीतर एक टीस छोड़ देती है लेकिन यहीं थोड़ा ठहर कर जब पाठक इन कविताओं के भीतर उतरता है तो एक और पहलू हमारे समक्ष उजागर होता है जो पुन: इन कवियों को एक समान धरातल पर खड़ा करता है और वह यह है कि इनमें से कोई भी कवि पुन: भारत आकर बसने की इच्छा प्रकट नहीं करता। क्या इसके पीछे इनकी सुविधाभोगी मानसिकता जिम्मेदार है अथवा कोई ऐसे दायित्व जिनको त्याग कर अपनी जमीन पर स्थाई रूप से लौटना संभव ही नहीं हो सकता? ब्रिटेन से 'उषा वर्मा' कितना सही चित्रित कर रही हैं कि -

पीछे देखना संभव कहाँ/जिस तर्क का सहारा/लेकर हम आगे बढ़े थे/उसे खा गई बाजार की साख/वक्त का पहिया क्यों नहीं रुका/हम धीरे-धीरे बनते गए रोबोट/अच्छा, यह तो बताओ,/कौन छीन ले गया/हमारी संवेदनाओं को/हमारे प्यार को जो तुम्हारे प्रति समर्पित था? बिना बताए धीरे-धीरे, छूट गया वह अतीत/एक चमकती लकीर के पीछे भागा,/भागा तो, पर मिला एकाकीपन/कांपते पारे - सा मन का सूनापन/विकल्पों का विस्तार/बचा एकरस जीवन[1] सब कुछ पा जाने के बाद बचा हुआ एकरस जीवन इन कवियों को व्याकुल कर डालता है। यही व्याकुलता उन्हें देश लौटने के निर्णय के पायदान पर ला कर खड़ा कर देती है लेकिन यहाँ भी दिमागी कश्मकश का अंत कहाँ? यथा-

क्या करें पीछे लौट जाएँ
आस्थाओं के कुहरे में सजाने को अपनी अर्थियाँ

जहाँ आग हो, ऊष्मा न हो?

फिर पीछे देखना संभव कहाँ?[2]

सच ही है कि समय व स्थान की दूरी एक विशिष्ट समाज तथा परिवेश में व्यक्ति स्थिति को बदलेगी ही बदलेगी। जैसे-जैसे उस पर समय की परतें चढ़ती जाएंगी वैसे- वैसे ही उस विशिष्ट समाज में रहने वाले जनमानस के स्मृति पटल में वह यादें धूमिल पड़ती ही जाएंगी।

फिर भी चाहे यह कवि देश में वापस आकर बसना नहीं चाहते तब भी स्वदेश की मिट्टी की सौंधी खुशबू उनके भीतर इस कदर बसी हुई है कि वह अपनी मृत्यु अपने वतन की जमीन में ही चाहते हैं। यथा-

अब बसने नए नगर आया/सब रिश्ते- नाते छोड़ आया/लगता है उड़ने की चाहत में/अपना सब कुछ खो आया पर गिरुँ उसी ही आँगन में...[3]

इतना ही नहीं बल्कि पहली व दूसरी दुनिया के भौतिक रंग भी अपनी चकाचौंध से इन कवियों की आत्मा को बांध नहीं पाए हैं। बेशक वह अपनी जीवनशैली को पाश्चात्य संस्कृति के अनुरूप डाल चुके हैं किंतु इसके बावजूद अमेरिका जैसे देश में भी सुधा ओम ढींगरा यही कह रही हैं कि -

परदेस के आकाश पर/देसी माँजे से सनी/आकांक्षाओं से सजी/ऊंची उड़ती मेरी पतंग/दो संस्कृतियों के टकराव में/कई बार कटते- कटते बची शायद देसी मांजे में दम था।[4]

इन कविताओं का अध्ययन करते हुए एक अन्य महत्वपूर्ण प्रस्थान बिंदु भी हमें दिखाई पड़ता है और वह है इनके भीतर का रूहानियत। इन्हें पढ़ कर पाठक को बड़ा आश्चर्य होता है कि भारत जैसे विकासशील देश को छोड़ कर जब यह कवि विकसित देश की नागरिकता पा लेते हैं तथा वहीं पर अपना आशियाना बना लेते हैं तब आत्मा- परमात्मा, कर्मों का सिद्धांत तथा मध्यकालीन संत कवियों की तरह निर्गुण ब्रह्म की चर्चा को कविता का विषय क्यों बना लेते हैं? ऐसे में पाठक उस सवाल के जवाब के भी बहुत करीब पहुंच जाता है जब हिंदी कविता की आलोचना को यह कहकर कटघरे में खड़ा कर दिया जाता है कि प्रवासी साहित्य को हिंदी साहित्य से अलग करके क्यों देखा जाता है? जबकि यहीं इसी स्थान पर हमें भारतीय हिंदी कविता तथा प्रवासी हिंदी कविता की विभाजक रेखा स्पष्ट दिखाई पड़ती है कि प्रवासी कविता जहाँ गद्दों और बिछौनों की खूबसूरत कविता है वहीं भारतीय हिंदी कविता खुरदरे यथार्थ की कविता है। एक यथार्थ जो समय के साथ करवट बदलता है किंतु यह बदलाव कवि को निराश नहीं करता क्योंकि उसका मन व मस्तिष्क दोनों ही समय के साथ बदल रहे हैं। जबकि प्रवासी कवि जब छुट्टी मनाने स्वदेश लौटते हैं तो यहाँ समय और समाज में हुए परिवर्तन को देख कर उनकी कविता में निराशा छा जाती है। पाठक हैरान है कि जब एक व्यक्ति के तौर पर यह कवि समयानुरूप विकसित देशों के साथ अपनी गति मिलाकर चल रहे हैं तो भारत जैसे विकासशील देश के समय व समाज में होते परिवर्तनों को देखकर यह व्यथित क्यों हो जाते हैं? कारण स्पष्ट है कि यह कवि मस्तिष्क से तो परिवर्तित हो जाते हैं किंतु हृदय पक्ष से भावुक होकर बीते समय में ही ठहर जाते हैं। जबकि संसार तो परिवर्तनशील है। वह तो हर रूप में बदलेगा ही। गति के बिना तो पानी भी दुर्गंध देने लगता है और उसमें भी काई जम जाती है। फिर परिवर्तन में सहजता क्यों नहीं? मैं समझती हूँ कि इसका एक प्रमुख कारण मानव हृदय की संवेदनशीलता है जो भौतिक स्तर पर मनुष्य को आगे बढ़ाकर भी किसी- किसी मोड़ पर ठहरा हुआ ही छोड़ देती है। सुधा ओम ढींगरा जी की भाषा में ही पुनः कहूँ तो 'शायद देसी मांजे में दम था' यह आत्मा परमात्मा तथा अपने वतन की याद शायद एक मुख्य कारण है इन कवियों के शाश्वत प्रेम तथा मानवीयता का। जैसे ब्रिटेन से डॉ0 कृष्ण कन्हैया कहते हैं कि

मानवीयता शब्दकोश में लिखा/ऐसा शब्द है/जिसका जिक्र समाज के मुखपृष्ठ पर ही नहीं/किताब के हर पन्ने पर हो/तो बेहतर है[5]

यह मनुष्यता अपने पूरे दायित्व के साथ तथा सकारात्मक सोच के साथ इन कवियों में दिखाई पड़ती है। यह दायित्व हमें कला के माध्यम से, कलम के माध्यम से तथा इतिहास में हस्तक्षेप एवं सभ्यता पर कटाक्ष के माध्यम से दिखाई पड़ता है। जैसे अमेरिका से अमरेंद्र कुमार कह रहे हैं कि-

रोको न उन्हें जो जीवन पथ पर आगे बढ़े जगाओ जिनकी चेतना अब तक सुप्त है[6]

पूरी सकारात्मक ऊर्जा के साथ इला प्रसाद की पंक्तियों को भी देखा जा सकता है कि -

अंधेरे और उदासी की बात करना/मुझे अच्छा नहीं लगता ...

इसलिए यात्रा में हूँ/अंधेरे में उजाला भरने

और पराजय को जय में बदलने के लिए

चल रही हूँ लगातार[7]

इसके अतिरिक्त 'अमेरिका' से ही मंजु मिश्रा, अनुराग शर्मा, शशि पाधा, 'ऑस्ट्रेलिया' से अब्बास रजा अलवी, रेखा राजवंशी, 'खाड़ी' से दिगंबर नसवा, 'जापान' से डॉ0 सुरेश ऋतुपर्ण, 'ब्रिटेन' से दीपक मशाल, प्राण शर्मा, डैफोडिल, शैल अग्रवाल तथा डॉ0 सत्येंद्र श्रीवास्तव इत्यादि के काव्य में भी सकारात्मक ऊर्जा को महसूस किया जा सकता है। सकारात्मक ऊर्जा से भरपूर इन कवियों की एक खासियत यह भी है कि इनमें मनुष्य केंद्रित कर्मठता से भरपूर ऊर्जा है।

यहाँ हर कवि, कर्म को महत्व देता हुआ दिखाई पड़ता है। कर्म भी ऐसा जो समय से बंधा हुआ हो। वास्तव में यह कवि समय के महत्व को बखूबी पहचानते हैं किंतु इस पहचान में कहीं भी श्रेष्ठता दंभ या कि अहम का भाव दिखाई नहीं पड़ता बल्कि संवेदनाओं का विस्तार जरूर दिखाई पड़ता है। यह संवेदनाएं मनुष्य मात्र से आरंभ होकर संपूर्ण सृष्टि में आकार पा जाती हैं। ऐसा आकार जिसे प्रेम की संज्ञा दी जा सकती है और प्रेम भी दैहिक न होकर

आत्मिक। यह प्रेम मुक्तावस्था का प्रेम है। यह अपने और पराये के भेद को मिटाकर मानवीयता के धरातल पर टिका हुआ प्रेम है। इसीलिए इनकी कलम से यह निकला है कि-

'प्यार के रंग से बढ़कर कोई रंग गहरा नहीं होता' 'या कि' अब जंग रहे बस प्रेम भरे/मर मिटते अरमानों में/तथा - मेरी तस्वीर मुझ पर हंसने लगी/बोली, अपने और दूसरे, कागजी पहचान से नहीं बनते मन के मानने से बनते हैं

यहीं इसी स्थान पर मुझे आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी की कविता को परिभाषित करती हुई पंक्तियों का स्मरण हो रहा है कि ''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार से हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं।''[8] देशांतर के इस समग्र काव्य में यही मुक्ति की साधना दिखाई पड़ती है। यह मुक्ति पाठक को सारी धरती और आसमान की सीमाओं को पाटकर समग्रता के धरातल पर ले जाकर खड़ा कर देती है। यहीं पर ही 'वसुधैव कुटुंबकम्' की एक साकार आकृति दिखाई देने लगती है। यथा-

सुन दोस्त, उधर देख-/गुदगुदी वातानुकूलित गाडिघ्यां/क्यों दिखती है थकी, उकताई सी/धीरे-धीरे सरकती ऊँघती सी... और उनमें बैठे लोग/बेजार, थके, मायूस कुछ खीजे से, कुछ रीते से सुन दोस्त, बजा सीटी/बुला उन्हें, कर इशारा आ बैठें हिलमिल/दरख्तों के साए में खिलखिलाएँ कुछ पल/खुले आसमान के नीचे सारा जहाँ हमारा[9]

इसी मुक्ति की साधना का एक अन्य अंदाज

एक ही तत्व जड़- चेतन में/एक ही तत्व धरा- गगन में/एक ही तत्व शीत-उष्ण में/एक ही तत्व जीवन- मरण में/इसी तत्व की हम करते पहचान/यही मनुजता यही सर्व- धर्म- सार एक ही ज्योति के अंश हम/एक ही ज्योति का करते प्रसार।[10]

इसी मुक्ति की साधना के वशीभूत होकर यह कवि मानवीय प्रेम और संवेदनाओं को बनाए रखने का प्रयास कर रहे हैं। इनके इस विचार के रास्ते में अगर कोई बाधा है तो वह है बाजार। इसीलिए अलग-अलग देशों की जमीन पर बैठे हो कर भी यह कवि एक स्वर में पूंजीवाद, बाजारवाद तथा प्रकृति के दोहन से अत्यंत चिंतित दिखाई पड़ते हैं। यद्यपि उनकी कविताओं में धर्म और संप्रदाय के आधार पर की जा रही हिंसाएं भी चिंता बनकर उभरती हैं किंतु फिर भी इन कविताओं के केंद्र में समस्या के रूप में बाजार ही उभर कर आता है। वैसे तो बाजार र ने विस्थापन की समस्या को बड़ी ही तेजी से बढ़ाया है किंतु विस्थापन इन कवियों की केंद्रीय समस्या के आसपास कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता। इसका कारण यह भी हो सकता है कि यह कवि स्वयं अपनी जमीन से कोसों दूर बैठे हुए हैं लेकिन यहाँ यह ध्यान देना जरूरी है कि इनका विदेश गमन इनका अपना चुनाव है। एक तरह से देखा जाए तो यह इनके पंखों की खूबसूरत उड़ान है। जबकि किसी को विस्थापित किया जाना या किसी पूरे गाँव को उसकी जगह से उजाड़ दिया जाना के पीछे का दर्द एक विस्थापित ही जान और समझ सकता है। वह पीड़ा शब्दों के दायरे से बाहर की अव्यक्त पीड़ा बन जाती है लेकिन हाँ, बाजार को इन कवियों ने संवेदनाओं पर होते आघात के रूप में बेहद मार्मिकता के साथ दर्शाया है। ब्रिटेन से वंदना मुकेश कहते हैं कि-

बचपन अब रहा नहीं बचपन वह बन गया उपभोक्ता और आसुरी संस्कृति का संवाहक संसार संहारक

किंतु ब्रिटेन से ही उषा राजे सक्सेना के काव्य में बाजार के संदर्भ में ही एक विरोधाभास दिखाई पड़ता है -

जब वे कहते हैं कि हम फिर/बटेंगे और बिकेंगे/उन्हीं के बाजारों में/अपनी खुदगर्जी और/मूर्खताओं के प्रमाण बन और फिर खरीद ले जाएंगे हमारे उभरते नवजवानों और बुद्धिजीवियों/को/हम खुली आंखों से विश्व कल्याण का/स्वप्न देखते रहेंगे/वह अपना भविष्य बनाते रहेंगे।

सवाल उठता है कि यहाँ खुदगर्ज और मूर्ख कहकर किसे कटघरे में खड़ा किए जाने का प्रयास किया जा रहा है? दूसरे यह कि जब पूंजीवादी व्यवस्था है हमारी प्रतिभाओं को ऊंचे पदों व उनके वेतन पर अपने देश के हित में ले जाती है तो स्वयं सुविधाभोगी मानसिकता के चलते वहाँ बस जाने वाले युवा इसका विरोध करने की स्थिति में नहीं रह पाते। यह सत्य है कि भारत सदैव विश्व कल्याण का स्वप्न देखता रहा है और यह भी सत्य है कि हमने सदैव 'वसुधैव कुटुंबकम्' की ही परिकल्पना की है किंतु इस परिकल्पना का आधार समाजवादी आधार था। इस परिकल्पना में कभी भी अमीरी और गरीबी के मध्य चेहरा दिखाई नहीं थी यहाँ की मिट्टी में सदैव अनेकानेक संस्कृतियों का अद्भुत समन्वय दिखाई पड़ता है। प्रसाद जी ने ऐसे ही नहीं कहा कि -

अरुण यह मधुमय देश हमारा

जहाँ पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा[11]

उपसंहार

यहाँ यह भी एक कड़वा सत्य है कि भारतीय युवा अपनी मातृभूमि का ऋण चुकाने के स्थान पर अपनी प्रतिभा का प्रयोग दूसरे राष्ट्रों की सेवा में कर रहे हैं। यहाँ एक सत्य और भी है कि भारत जैसे विकासशील देश अपने युवाओं को वह अवसर भी नहीं दे पा रहे जिसके वह वास्तव में हकदार हैं। परिस्थिति जो भी हो पर जिस देश के अन्न- जल ने इन प्रतिभाओं को निखारा है और जिस देश की मिट्टी की सोंधी खुशबू में उन्होंने पहली सांस ली, पहली किलकारी भरी उसकी सेवा अभी बाकी है शायद इसीलिए ही इस संग्रह की कविताएं अपने भीतर मुख्यत: स्वदेश की याद में तड़प को ही संजोए हुए हैं।

संदर्भ

1. देशांतर, उषा वर्मा, ब्रिटेन, सं० उषा राजे सक्सेना, पृ0 192, 193, हिन्दी अकादमी, दिल्ली।
2. वहीं, पृ0 193
3. सुधा ओम ढींगरा, अमेरिका, पृ0 96
4. वही
5. डॉ० कृष्ण कन्हैया, ब्रिटेन, पृ0 203
6. अमरेंद्र सिंह, अमेरिका, पृ0 48
7. इला सिंह, अमेरिका, पृ0 55
8. चिंतामणि, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ0 93, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 2001
9. वंदना मुकेश, ब्रिटेन, पृ0 264
10. अमरेंद्र कुमार, अमेरिका, पृ0 40
11. जयशंकर प्रसाद, कविता कोश, www.kavitakosh.org/parsad

गोदान और मैला आँचल का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० प्रीति राय

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

उत्तरः- भारतीय उपन्यास की अपनी खास स्वायत्त पहचान निर्धारित करने में जिन उपन्यास लेखकों की कृतियों से विशेष प्रेरणा मिली है, उनमें प्रेमचंद और रेणुजी अन्यतम हैं। भारतीय उपन्यास की भारतीयता को ठीक-ठीक परिभाषित करने के लिए जो प्रमुख स्थापनाएं की गयी हैं, उनमें 'गोदान' और मेला आँचल' प्रमुख हैं। 'गोदान' और 'मैला आँचल' दोनों हमारे देश के तीसरे दशक से लेकर पांचवे दशक तक की सांस्कृतिक आलोचना है। सामाजिक यथार्थ की आँच से तपे ये दोनों उपन्यास स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्रयोत्तर भारत के समाज, धर्म, राजनीति, अर्थ और परंपरा की समालोचना प्रस्तुत करते हैं। अगर आप भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाषा, भाव, रहन-सहन, आशा आकांक्षा, दुख-सुख को जानना चाहते हैं तो प्रेमचन्द से उत्तम परिचायक कहीं नहीं मिल सकता।' यही बात बिना किसी लाग-लपेट के हम स्वाधीन भारत के स्वानुभूति संपन्न 'रेणु' के बारे में भी कह सकते हैं।

'मेला आँचल' और 'गोदान' का कथ्य एक भारतीय अंचल के नग्न यथार्थ से जुड़ा हुआ है। यह यथार्थ समसामायिक और एक देशीय भी है तथा शाश्वत और भूमंडलीय भी। गरीबी और गुलामी, अशिक्षा और अन्धविश्वास, शोषण और दमन, महामारी और अकाल, जातिवाद और नस्लवाद जैसी चीजें मानव इतिहास में कोई नयी नहीं है और भविष्य में भी न रहेंगी, यह बहुत निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता। इन्हें समाप्त करने के प्रत्यत्न भी होते रहे हैं, पर सफलता अब तक नहीं मिल सकी है। इस संबंध में साहित्य की भूमिका यह होती है कि वह इस यथार्थ के प्रति चेतना की लौ जगाये रखे, ताकि अनुकूल समय आने पर स्थिति में बदलाव भी हो सके। उपन्यास इस काम को जितने प्रभावी ढ़ंग से कर सकता है उतना अन्य साहित्यिक विधा नहीं कर सकती है। हिन्दी में प्रेमचंद ने इस यथार्थ के अनेक पहलुओं को अपने उपन्यास 'गोदान' के द्वारा उजागर किया है। इसी परंपरा में फणीश्वर नाथ रेणु भी आते हैं, जिन्होंने अपने प्रथम उपन्यास 'मैला आंचल' में इस यथार्थ को एक नये अवलोकन बिन्दु और नयी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया। वस्तुतः दोनों उपन्यास वर्णन नहीं, भोगा हुआ यथार्थ प्रस्तुत करते हैं। गोदान की मुख्य चिंता दैन्य, गरीबी और शोषित किसानों के प्रति है, लेकिन 'मैला आंचल' की मुख्य चिंता किसानों के साथ-साथ राजनीतिक भ्रष्टाचार से सने भारत की भी है धार्मिक पाखंड में फंसे भोल-भाले लोगों की भी है, जनजातियों की उपेक्षा की भी है, कहने का तात्पर्य यह है कि 'गोदान' और 'मैला आंचल' के बीच जो बीस वर्ष के अंतराल में भारत में परिवर्तन की आंधी आती है वह सब भी 'मैला आँचल' में है। दोनों उपन्यासों में राजा, वर्ग और जमींदारों की दो मुंही राजनीति दिखाई पड़ती है। गोदान में रायसाहब 'रामलीला' के अवसर पर एक तरफ तो होरी से अपनी बदहाली का रोना रोते है और जमींदारी छोड़ने की बात करते हैं, वहीं दूसरी तरफ खेतिहर मजदूरों के विद्रोह की बात सुनकर उनके दमन को तत्पर हो जाते है। इसी तरह जेल जाकर वह एक तरफ राजनेताओं से संपर्क कायम करते हैं और दूसरी तरफ किसानों में अपनी देशभक्ति की मिसाल कायम करते हैं। इसी प्रकार 'मैला आंचल' में दुलारचन्द कापरा जैसे देशद्रोही भी कांग्रेस के सिंहासन पर विराजमान हो जाते हैं। गोदान में किसानों के शगुन और बेगार सुरा और सुन्दरियों पर न्योछावर कर दिये जाते हैं। इसमें जमींदार, पूंजीपति, संपादक, बुद्धिजीवियों का गठबंधन दिखाया गया है जो सिर्फ दिखावे का मुखौटा प्रयोग मे लाते हैं। आदर्शवादी मुखौटे लगाये यही दो मुंहे चरित्र बीस वर्ष बाद रेणु की शस्य श्यामल धरती को गंदा करते है। यही वे चरित्र हैं, जो रेणु के यहां राजनीति का झंडा उठाये देशभक्तों का नेतृत्व कर रहे हैं। इस प्रकार दोनों उपन्यास में राजनीति एक सी दिखती है। 'मैला आंचल' में इसे अधिक गिरा हुआ दिखाया गया है जो समय के साथ भ्रष्ट राजनीति में वृद्धि को प्रस्तुत करता है।

डॉ. गोपाल राय ने अपनी 'फणीश्वर नाथ रेणु और मैला आंचल नामक पुस्तक में बताया है- 'गोदान' की तरह 'मैला आंचल' में भी खेती से किसानों का अविच्छिन्न भावनात्मक संबंध दिखाया गया है।' मैला आंचल का कथाकार बताता है कि 'लेकिन खम्हार का मोह यह नहीं टूट सकता। मुरूकवा उगते ही खम्हार जग जाता है। सुई की तरह गड़ने वाली माघ के भोर की ठंडी हवा का कोई असर देह पर नहीं होता। मैला आंचल का खम्हार, 'गोदान' के खलिहान से तनिक भी भिन्न नहीं है। 'गोदान' के किसी भी अपने गाढ़े पसीने की कमाई से अन्न उपजाते हैं। पर वह उनके घरों में खुशी की लहर पैदा करने के लिए नहीं पहुंचता। सारी उपज खलिहान से ही महाजनों और बड़े किसानों की बखारों में, साल भर लिए हुए कर्ज का नया सिलसिला शुरू हो जाता है। यह ब्रिटिश शासन में भूमिहीन किसानों के जीवन का कड़ुवा सच था, जो आजादी मिलने तक बिना किसी बदलाव के विद्यमान था। रेणु ने इस सच का चित्रण प्रेमचंद की तरह ही अनुभव की विश्वसनीयता और संवेदना की गहराई के साथ किया है। यथा 'साल भर की कमाई का लेखा-जोखा खम्हार में ही होता है। दो महिने की कटनी, एक महीना मड़नी फिर साल भर की खटनी। दबनी-मड़नी करके जमा करो, साल भर के खाये हुए कर्ज का हिसाब चुकाओ। यदि रह जाओ तो सादा कागज पर अंगूठे की रोप लगाओ। सफाई करनी है तो बैल-गाय रखो या हलवा, चरवाहा, दो। फिर कर्ज खाओ। खम्हार का चक्र चलता रहता है। खम्हार में बैलों के झुंड से दबनी, मड़नी होती है। बैलो के मुंह में जाली का 'जाव' लगा दिया जाता है। गरीब और बेजमीन लोगों की हालत में खम्हार के बैलों जैसी है। मुंह में जाली का 'जाव'।

दोनों उपन्यासों में गांवों की गरीबी का मार्मिक चित्रण किया गया है। कोई रोग हो जाने पर ग्रामीणों के लिए दवा का प्रबन्ध करना मुश्किल हो जाता है। दो बूंद आईड्रॉप के लिए पैसे न जुटा पाने के कारण लोग सदा के लिए अंधे हो जाते हैं। अनेक ग्रामीण, कालाजार, मलेरिया आदि रोगों के शिकार हैं।

बच्चे रोग के सही निदान और दवा के अभाव में देखते-देखते आंख मूंद लेते हैं और इसका इलजाम किसी डायन पर मढ़ दिया जाता है। अक्सर यह डायन गांव की कोई गरीब, असहाय, बांझ या विधवा औरत होती है। 'मैला आँचल' में डायन संबंधी अन्धविश्वास और उसके अमानवीय पहलू का बड़ा मार्मिक और रोमांचकारी अंकन हुआ है। गांव वालों ने पारवती की मां को डायन घोषित कर रखा है। वह ग्रामीणों द्वारा सामाजिक बहिष्कार और अत्याचार की शिकार है। कालाजार के फैसले पर उसका दायित्व डायनों पर मढ़ दिया जाता है। अन्ततः डायन होने की अपराध में पार्वती की मां की हत्या भी कर दी जाती है।

दोनों उपन्यासों के गांव में अंधविश्वास अनेक रूप में फैला हुआ है। अशिक्षा और मानसिक पिछड़ापन अन्धविश्वासों के प्रसार में सहायता करते हैं। 'मेरीगंज' अंधविश्वास में ही जीता है। किसी को सांप काट लेता है, तो वह प्रेतनी की करतूत होती है। इसी प्रकार कमला नदी के संबंध में ग्रामीण मानस ने अनेक प्रकार के मिथकों की रचना कर ली है। गांव में जब मलेरिया अस्पताल खुलने को होता है तो रूढिघ्वादी और अनपढ़ ब्राह्मण समाज प्रचार करता है कि विलायती दवा में गाय का खून मिला रहता है, विलायती डाक्टर सूई भोंककर जहर दे देते हैं, जिससे रोगी सदा के लिए कमजोर हो जाता है। गोदान में भी धनिया नजर से बचने के लिए गाय के गले में काला कपड़ा बांधती है। होरी भी कहता है। ब्राह्मण का धन है, सर फोड़कर निकलेगा।' परन्तु रेणुजी ने अपने उपन्यास में कालीचरण और डा. प्रशान्त के माध्यम से अंधविश्वास की खिल्ली उड़ायी हैं। ऐसा गोदान में देखने को कम ही मिलता है वह भी होली के प्रसंग में।

जनजातीय विद्रोह द्वारा रेणू ने वह भी कह डाला जो प्रेमचन्द नहीं कह पाये। यद्यपि संथाल कोल-मंडा आदि जनजातीय विद्रोह तथा अवध का किसान विद्रोह प्रेमचन्द के युग में हो चुके थे लेकिन गोदान में इसका वर्णन नहीं है। परन्तु रेणु ने इनकी उभरती शक्ति को पहचाना और इनका विद्रोह दिखाकर यही प्रकट किया कि अब बहुत दिनों तक किसान और जनजातियों को जमीन से बेदखल नहीं किया जा सकता है।

दोनों उपन्यासों में 'नारी' की भूमिका अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत की गयी है। गोदान में लाख मार खाने के बाद भी होरी के प्रति धनिया का लगााव यही दिखाता है कि भारत में नारियां पति को परमेश्वर समझती हैं। गोविन्दी का लाख प्रताड़ना के बाद भी अपने पति के पैरों की धूल सिर-आंखों पर लगाना यही दर्शाता है, कि तीसरे दशक में नारी पति की सेविका मात्र ही है। मालती के रूप में नारी का आधुनिक रूप प्रेमचंद जी प्रस्तुत करते हैं। लेकिन प्रेमचंद मालती को तितली कह कर नारी के आदर्श रूप को ही तरजीह देते है, रेणु के यहां नारी का यह पारंपरिक लगाव नहीं दिखता। कमली-प्रशांत के बीच प्रेम संबंध, ममता का प्रशांत से भावनात्मक लगाव यही दर्शाता है कि प्रेम गांव में भी हो सकता है। लेकिन दोनों उपन्यास में नारियों पर अत्याचार समान रूप से दिखा गया है। मैला आंचल की लक्ष्मी या गोदान की सिलिया, झुनियां दोनों पर अत्याचार यथार्थ है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि 'गोदान' स्वतंत्रता पूर्व और मैला आंचल स्वतंत्रता प्राप्ति के समक्ष भारतीय जीवन के ग्रामीण पक्ष का बहुत ही विश्वसनीय और सजीव अंकन किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोदान, प्रेमचन्द, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. मैला आँचल, फणीश्वर नाथ रेणु, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. फणीश्वर नाथ रेणुः कथा का नया स्वर, भारत यायावर, अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. हिन्दी का गद्य साहित्य, डॉ0 रामचन्द्र तिवारी विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
5. प्रेमचन्द और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. रचना दृष्टि की प्रासंगिकता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

हिंदी कथा साहित्य में आदिवासी अस्मिता विशेषकर डॉ॰ रमणिका गुप्ता का कथा

समीर कुमार

नेट-जेआरएफ, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश

प्राचीनकाल से ही आदिवासी वनों और पहाड़ों में रह रहे हैं। जीविकोपार्जन के लिए ये वनों पर ही निर्भर रहते हैं। इनकी प्रमुख समस्या जल, जंगल, जमीन से जुड़ी हुई है। विकास के नाम पर विस्थापित करके इन्हें वनों से खदेड़ा जा रहा है। इन सारी समस्याओं का चित्रण आदिवासी साहित्य में हो रहा है।

समय के सासथ आदिवासी कथा लेखन आगे बढ़ रहा है। आदिवासी लेखक, कहानी, उपन्यास, व्यंग्य, नाटक आदि विधाओं में लिख रहा है। लेखक अपनी रचनाओं में देश की समस्याओ को उजागर कर रहे हैं। आदिवासी जीवन से जुड़े उपन्यासों व कहानियों का उद्देश्य इस गतिमान समय में जीते हुए आदिवासियों के समग्र पहलुओं को उद्घाटित करना है।

परिचय

रमणिका गुप्ता, मैत्रेयी पुष्पा, महाश्वेता देवी, वीणा सिन्हा, संजीव, पुन्नी सिंह, मधु कांकरिया, राकेश कुमार सिंह, एम. वीरप्पा मोयिलि, संजीव बख्शी आदि के उपन्यासों व कहानियों में आदिवासियों को चित्रित किया गया है। इस अध्याय में इन सभी लेखकों के कथा साहित्य पर प्रकाश डाला गया है।

'सीता-मौसी' एक उपन्यास न होकर दो अलग-अलग उपन्यास है, 'सीता' और 'मौसी'। ये उपन्यास आदिवासी अंचल के हैं, जो धीरे-धीरे विकसित होकर एक नए औद्योगिक परिवेश में बदल रहे हैं तथा जहां आदिवासी संस्कृति खत्म होता जा रही है। आदिवासी सस्कृति बहुसख्यक हिन्दू समाज की विकृतियों का शिकार होती जा रही है। आदिवासी समाज मजबूरी में मजदूर बनने को विवश है। इनकी जमीनों और जंगलों को सरकार तथा बाहरी लोगों ने हड़पना शुरू कर दिया। आदिवासी महिला को बाहरी लोग केवल वासना-पूर्ति की वस्तु समझते हैं।

आदिवासी स्त्रियां अपनी अस्मिता को बचाने के लिए जूझ रही है। सीता-मौसी उपन्यास की नायिकाएं सीता और मौसी भी इनमें से एक है। सीता एक आदिवासी महिला है, जो कोयला खदानों में कोयला ढोने का काम करती है। आदिवासी समाज में महिलाओं को अपना जीवन साथी चुनने व छोड़ने की आजादी होती है। सीता के पति की मृत्यु के बाद सीता यूनियन के मुंशी यासीन मियां जो कि एक मुसलमान था, आदिवासी रीति-रिवास से विवाह कर लेती है। यासीन सीता से बहुत प्रेम करता था लेकिन धीरे-धीरे उसका प्रेम समाप्त हो गया और वह उसकी जाति की एक लड़की से विवाह कर लेता है। सीता यह सब सोचती हुई कहती है कि ''उन सबके लिए औरत का आधार तब तक मायने नहीं रखता था। सच तो था कि पुरुष-दम्भ ही सता की त्रासदी का कारण था पर इस सत्य को स्वीकारने की बजाय, सब दूसरे कारण ही ढूंढ़ने में लगे थे। इस मायने में औरत का महत्व, उस अनुपातत: अधिक मुक्त समाज में भी नहीं था। इस समाज में भी औरत को छोड़ देना, रख लेना मामूली बात है, लेकिन वहां औरत को मर्द छोड़ने की छूट है।''[1] इन सबके बावजूद भी सीता टूटती नहीं है, बल्कि व अपने समाज के लिए कार्य करती है। किसान से कामगार बन चुकी सीता किसानो का नेतृत्व करने लगी है।

विश्लेषण

आदिवासी महिलाओं को सभी तरह से शोषण किया जाता है। इनका सबसे ज्यादा शोषण गैर-आदिवासियों द्वारा ही होता है। सीता भी उसी शोषण का शिकार होती है।

सीता यूनियन की बैठक में भाग लेने लगी है तथा मजदूरों के हकों के लिए संघर्ष करती है। राजनीति के क्षेत्र में भी वह अपनी पकड़ बना रही है तथा जागरूक हो चुकी है। वह इतनी भोली-भाली है कि राजनीति के क्षेत्र में हो रही चापलूसियों का उसे कोई पता नहीं है। इन सबके बाद भी वह राम की सीता को परास्त करके एक नई सीता बन गई है, जो अपनी अस्मिता के लिए स्वयं लड़ना सीख गई है। ''त्याग और तपस्या की प्रतीक सीता जब रामायण के युग से निकलकर आज के संघर्षो में भूख से जूझती हुई जवान होती है तो वह सर्वहारा वर्ग के लिए आधुनिक रावणों से लड़ती है। आज की सीता जूझी है हर रिश्ते से, उमर के हर मोड़ पर। उसने मौत से छीना है जिन्दगी को। सीता अब अपने से बाहर खड़ी सीताओं के लिए लड़ने लगी है। सीता अब एक कतार है, एकशृंखला है, एक पांत है। पांत-जो चुप थी आज तक, बोलने लगी है। पांत जो जड़ थी सदियों से, अब फुंकारने लगी है। आज की सीता अपने बदलाव की बाढ़ में गली-सड़ी मानसिकता को बहाए ले जा रही है, समुद्र के गर्त में दफनाने के लिए। वह इंतजार में है कि कल जो सूरज निकले, जो हवा बहे, वह उस जैसी सीताओं के हिस्से में भी आए जिससे वे वंचित रही है, सभ्यता के आने के बाद से। सीता ऐसी लपट है जो मनुष्यकता के लिए

उजाले बांटती है और दानवता को जलाकर राख करने में समर्थ है।''[2] सीता गांव न लौटकर खदानों में ही मजदूरों की आवाज बनकर, स्त्री अस्मिता की पहचान बनकर, किसानों और उनकी हक की लड़ाई लड़ने के लिए संघर्षरत है।

कोयला-खदानों में काम करने वाली महिलाओं को मुंशी ठेकेदार रखैल के रूप में रख लेते थे और उनका यौन शोषण व आर्थिक शोषण करते थे। सीता के साथ भी कुछ ऐसा ही होता है।

हालांकि सीता और यासीन का पाहन ने विधिवत् ब्याह कराया था पर समाज ने उसे 'रखनी' संज्ञा ही दी थी। 'रखनी' दूसरी औरत होती है और 'घरनी' ब्याहता। इसमें एक और परम्परा भी प्रचलित है, जो एक मायने में बहुत अच्छी है। दूसरा मरद करने पर औरत अपने पहले मरद से हुए, जो बच्चे साथ में लाती है, उनका पालन-पोषण करने का जिम्मा दूसरे मरद को लेना पड़ता है। यहां औरतें ही कमाई करके घर चलाती हैं, मरद की कमाई सहायक कमाई होती है। मरद अधिकांश तौर पर महुआ, ताड़ी, हंड़िया का काम करता है या लकड़ी काटता, चीरता-फाड़ता है, नहीं तो खेत में हल नादता है। यह की छत वही बनाता है पर बाकी सभी काम औरतें ही करती हैं। महुआ चुनने, चुआमे, बेचने और हंड़िया तक का काम भी औरते करती हैं। लकड़ी काटना, बेचना, घर बनाना, लीपना-पोतना, पशु पालना तो जैसे जन्म से ही इन औरतों के खाते में दर्ज हो जाता है। ऐसी औरतें जो मरद के मरने के बाद दूसरा ब्याह करती है, उन्हें भी लोग 'घरनी' कहते हैं। 'घरनी' यानी पत्नी के बराबर का दर्जा। पर समाज की मर्जी के विपरीत बिना ब्याह किए जाकर किसी मरद के यहां अपनी इच्दा से रह जाने या बैठ जाने वाली औरत अथवा जबरन अगवा करके लालच देकर लाई गई औरते, जिसका घर में कोई दखल नहीं। ऐसी औरतें प्राय: अलग घर में रखी जाती है। सीता को समाज ने भी इसी रूप में माना। यह अलग बात है कि सीता ने कभी समाज को मान्यता ही नहीं दी इसलिए उसने अपने-आपको कभी हीन नहीं माना। इसी कारण यासीन उसके घर पर धड़ल्ले से बिना झिझक रहने लगा था पूरे हक के साथी। वह उसके घर पर कब्जा जमाकर टिक गया था।[3]

'मौसी' उपन्यास में 'मौसी' एक ऐसी नायिका के रूप में उभरकर आई है जो पुरुष भरे समाज में अपने आपको सुरक्षित नहीं पाती है। मौसी अपने विवाह का सपने पाले हुए हैं लेकिन बदकिस्मती से उसका विवाह नहीं हो पाता है। वह अपनी भाभी के बेटे मोहना को गोद ले लेती है तथा उसका पालन पोषण करती है। लेकिन वही मोहना बड़ा होकर उसके साथ मारपीट करता है तथा उसे छोड़कर चला जाता है।

मौसी को तीन अलग-अलग व्यक्तियों से प्रेम होता है सलीम, भगवान बाबू तथा माधो। लेकिन तीनों ही किसी ना किसी वजह से उसका साथ छोड़कर चले जाते हैं। इन सबके चलते मौसी संघर्ष करना सीख गई है। किसी पुरुष के हाथ की कठपुतली बनने के अलावा व स्वयं अपनी मेहनत से जिन्दा रहना चाहती है। वह स्त्री अस्मिता की एक नई पहचान बना चुकी है। मौसी अपनी स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए गांव छोड़कर शहर में खटने के लिए आ गई। बहुत से पुरुषों के द्वारा धोखा खाने के बाद मौसी ने अब अकेले रहना स्वीकार कर लिया था।

'मौसी' उपन्यास में आदिवासी समाज का चित्रण भी बखूबी किया गया है। इसमें आदिवासियों की विशेषताएं बताई गई है। मजदूर वर्ग की जिजीविषा का चित्रण किया गया है-

ऐसे भी मजदूर वर्ग खासकर आदिवासी लोग 'कल' की योजना बनाने के आदी नहीं होते। वे प्रकृति और उसकी बनाई योजना पर निर्भर करते हैं। प्रकृति की ही नाई उन्हें अपनी मेहनत पर भी पूरा विश्वास रहता है। इनकी खेती, महुआ-सखुआ फूलेगा-फलेगा-टपकेगा। समय पर बरखा आएगी-धान रोपेंगे या छींटेंगे। कटनी-निकौनी करेंगे। घर धान से भरेगा और बाड़ी-लौकी, कद्दु और निनुआ या भिंडी से। गाय, बकरी बियोयगी। दूध और मांस मिलेगा। प्रकृति की तरह ही सब नियमबद्ध सा चलता हैं उनका जीवन भी केवल आज पर निर्भर करता है-कल पर नहीं। वे नहीं सोचते कल सूरज उगेगा या नहीं, आज वर्षा हुई है-चलो, हल जोतेंगे। इस वर्ष वर्षा नही हुई-अकाल पड़ा है-भूखे मरना है या देश छोड़कर परदेश में काम की खोज में जाना है, सवाल उठता है तो फैसला ले लिया जाता है- 'चलो परदेश चलेंगे-सखुआ के फूल या बीज बीन लेंगे पर जिन्दा जरूर रहेंगे'। दिनचर्या में खलल पड़ जाए तो भी उन्हें स्वीकार्य है। खलल तो रोज ही पड़ता है।

निष्कर्ष

प्रकृति भी तो अपनी चाल-ढाल कभी-कभी बदल ही देती है। सो ऐसे खलल को स्वीकार करना उनकी आदत है। कल काम नहीं मिलेगा तो भूखे-उपासे लौट जाएंगे पर भीख नहीं मांगेंगे! जंगल से जड़े उखाड़ कर खाएंगे-मर भी जाएंगे-जैसे जंगल में गाछ करता है और खेत में ओले पड़ने पर 'खड़ी' फसल। बादलों के लिए आकाश अगोरेंगेख्रख्र जैसे जानवर और पंछी अगोरता है-पपीहा और मोर अगोरता है। बादल बरसेगा तो ये भी चहकेंगे, फुदकेंगे-जैसे चिड़िया चहकती है, फुदकती हैं। पर कल क्या होगा वे यह नहीं सोचते।

'सीता-मौसी' उपन्यास की दोनों महिलाएं समाज में अपनी एक नई पहचान बनाती है तथा पुरुषवादी समाज में जिन्दी रहने के लिए संघर्ष करती है।

संदर्भ

1. राकेश कुमार सिंह, जो इतिहास में नहीं है, (2005), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
2. महाश्वेता देवी, चोट्टि मुण्डा और उसका तीर (2008), राधा कृष्ण पेपरबैक्स, नई दिल्ली
3. मैत्रेयी पुष्पा, अल्मा कबूतरी (2011), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
4. मधु कांकरिया, खुले गगन के लाल सितारे (2011), किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली
5. संजीव बख्शी, भूलन कांदा (2012) अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, उ. प्र.
6. एम. वीरप्पा मोयिली, कोट्टा (2010) राधाकृष्ण पेपरबैक्स, नई दिल्ली

हिन्दी साहित्य के संदर्भ में शोध और शिक्षण

विरेन्द्र साहु

पी.एच.डी. शोधार्थी, रावतपुरा विश्वविधालय, रायपुर , छ.ग.

डॉ० सविता वर्मा

हिन्दी विभागाध्यक्ष, रावतपुरा विश्वविधालय, रायपुर , छ.ग.

प्रस्तुत आलेख हिन्दी साहित्य से संदर्भित शिक्षण और शोध के परस्पर संबंध पर प्रकाश डालता है। सीखने-सिखाने और अनुसंधान करने की क्रियाओं में आंतरिक तल पर अन्विति होती है तथा गहरी शोध- दृष्टि से निकला अध्यापन ही बोधगम्य व पारदर्शी होता है। मनुष्य मात्रा में निहित आत्मविस्तार की जन्मजात प्रवृत्तिशोध व शिक्षण का मुख्य/प्रेरक आधार है। कोई भी शोध ज्ञान-सृजन का अनुष्ठान होता है, इसलिए उसका मूलभूत अभिलक्षण है- उसकी नवीनता अपूर्वता या मौलिकता,जो प्रक्रिया से अधिक परिणिति निष्कर्ष में झलकनी चाहिए। पर, शर्त यही है कि वह व्यापक लोकहित या सामाजिक प्रगति की दिशा में हो। इसी लिहाज से, यहाँ समय की परिवर्तनशीलता के सापेक्ष शिक्षण के पाठ्यक्रम, प्रविधि आदि में सतत् नवीनीकरण की आवश्यकता बतलायी गयी है। लेखक की राय में उत्कृष्ट शोधकर्ता किसी प्रसंग में यथा संभव उपलब्ध तथ्यों का तटस्थ विश्लेषण करने वाले न्यायधीश के रूप में होता है, न कि अपने रुचि के पक्ष में दलील भर देने वाले वकील के रूप में। फिर, समाज में भेदभाव के इतने स्तर हो पाना भी बड़ी समस्या है। इस संदर्भ में, यह आलेख देश में शिक्षण व शोध की दयनीय दशा पर विचार करते हुए उसके नाना कारणों की तरफ संकेत भी करता है। साथ ही, इसमें यह भी बताया जा रहा है कि समाज का बड़ा वर्ग जब तक भूख, भय तथा नाना तरह के अभावों से ग्रस्त है, तब तक शोध व शिक्षण की बेहतर स्थितियाँ संभव नहीं।

प्रस्तुत आलेख शिक्षण और शोध के परस्पर संबंध पर प्रकाश डालते हुए, उसे साहित्य से संदर्भित करता है। सीखने-सिखाने और अनुसंधान करने की क्रियाओं में आंतरिक तल पर होती है तथा गहरी शोध- दृष्टि से निकला अध्यापन ही बोधगम्य व पारदर्शी होता है। मनुष्य मात्रा में निहित आत्मविस्तार की जन्मजात प्रवृत्ति शोध व शिक्षण का मुख्य आधार है। कोई भी शोध ज्ञान-सृजन का अनुष्ठान होताहै, इसलिए उसका मूलभूत अभिलक्षण है- उसकी नवीनता अपूर्वता या मौलिकता,जो प्रक्रिया से अधिक परिणिति निष्कर्ष में झलकनी चाहिए। पर, शर्त यही है कि वह व्यापक लोकहित या सामाजिक प्रगति की दिशा में हो। इसी लिहाज से, यहाँ समयकी परिवर्तनशीलता के सापेक्ष शिक्षण के पाठ्यक्रम, प्रविधि आदि में सतत् नवीनीकरण की आवश्यकता बतलायी गयी है। लेखक की राय में उत्कृष्ट शोधकर्ता किसी प्रसंग में यथा संभव उपलब्ध तथ्यों का तटस्थ विश्लेषण करने वाले न्यायधीश के रूप में होता है, नकि अपने रुचि के पक्ष में दलील भर देने वाले वकील के रूप में। फिर, समाज में भेदभाव के इतने स्तर हो पाना भी बड़ी समस्या है। इस संदर्भ में, यह आलेख देश में शिक्षण व शोध की दयनीय दशा पर विचार करते हुए उसके नाना कारणों की तरफ संकेत भी करता है। साथ ही, इसमें यह भी बताया जा रहा है कि समाज का बड़ा वर्ग जब तक भूख, भय तथा नाना तरह के अभावों से ग्रस्त है, तब तक शोध व शिक्षण की बेहतर स्थितियाँ संभव नहीं।

शोध और साहित्य

'शोध' के लिए प्रचलित शब्द 'रिसर्च' (Research) है, यानी 'अनुसंधान'। 'अनु' उपसर्ग 'पश्चात' के अर्थ में है। 'संधान' के व्युत्पत्तिलभ्य अर्थों में जोड़ना, मिलाना, मिश्रण, कसना, निदेशन आदि हैं। शब्दकोशों में 'अनुसंधान' शब्द के विविध अर्थ प्राप्त हैं-पृच्छा, गवेषणा, गहन निरीक्षण या परीक्षण, जाँच, उद्देश्य, योजना, क्रमबद्ध करना, उपयुक्त संयोग आदि। शोध और शिक्षण साहित्य के संदर्भ में इन संदर्भों में कहा जा सकता है कि ज्ञान प्रक्रिया द्वारा उपलब्ध स्रोतों के सम्यक् प्रयोग,संयोग, निरीक्षण-परीक्षण के बाद 'सत्य' को उद्घाटित करना ही 'अनुसंधान' है, 'रि-सर्च'है। सत्य पैदा नहीं किया जाता, वह तो स्वयंभू है और सदा विद्यमान रहता है। जरूरत है उसे उद्घाटित करने की-उस पर पड़े बाधक आवरणोंया सुनहले जालों को हटाने की, उनका अनावरण (Discover) करने की। इसके लिए ज्ञान स्रोतों की रचना की जाती है, जिनके जरिये 'सत्य' का आविष्कार संभव होता है। 'गुरुत्वाकर्षण' का सत्य ब्रह्माण्ड में अनादि काल से विद्यमान था,उसे किसी भास्कराचार्य या न्यूटन ने पैदा नही।किया था। हाँ, उनका खासकर न्यूटन का महान्योगदान यह है कि उन्होंने अपने सृजित ज्ञान स्रोतसे उस सत्य पर से पर्दा हटाकर, उसे दुनिया केसामने लाए। यह प्रक्रिया ही 'अनुसंधान' है। 'अनु' व 'रि' का भी मतलबहै। त्म=फिर से और मंतबी=खोजना। सत्यपुनः-पुनः खोजने की चीज है, क्योंकि खोजाहुआ सत्य भी खो जाता है। 'अनु' का अर्थ है 'पीछे', जो संगत है-हम सत्य की उपलब्धि उसके पीछे चल कर अनुसरण करके ही करपाते हैं। स्पष्ट है कि 'सत्य' साध्य है, जिसका साधन है 'ज्ञान'। 'सत्य' का निर्माण नहीं होता, बल्कि ज्ञान निर्मित किया जाता है। शोध कार्य ज्ञानके सृजन का ही अनुष्ठान है। व्यापक अर्थ में हमारे सभी विद्यालय, चाहे प्राथमिक हों या उच्चस्तरीय ज्ञान की ही सृजनशालाएँ हैं। शोध कार्य का लक्ष्यीभूत है-सत्य की उपलब्धि। 'सत्य' एक होकर भी माध्यम के भेद से अलग-अलग छवियों या मात्राओं में प्रकटहोता रहता है, जिस

प्रकार प्रकाश एक होकर भी शीशे के रंग के अंतर से अलग रंग का दिखता है। इसी तरह, अलग-अलग ज्ञानानुशासन (Discipline) या विध का सत्य अलग-अलग दिखता है, जबकि उनमें मूलभूत एकता होती है।

विज्ञान का सत्य हो, इतिहास का सत्य हो या कला व साहित्य का सत्य-सब एक ही 'सत्य' के माध्यम-भेद से जन्मीं अलग-अलग छवियाँ हैं। ये छवियाँ आभासी सत्य हैं, जिनमें देश-काल-पात्र/अनुभवकर्ता आदि के भेद से परिवर्तन होता रहताहै- जबकि उनमें निहित मूलभूत सत्य अपरिवर्त्तीया सनातन है। अलग-अलग विषयों में अन्तर्भूत एक ही सत्य क्या है? वह शायद यह है कि हमारा विश्व एक है, हम सब एक हैं तथा हम आपस में और विश्व के साथ परस्पर-सम्बद्धता के बल पर अस्तित्ववान् हैं। चाहे किसी विषय/परिस्थिति/समस्या से अपनी विचार यात्रा शुरू करें, तमाम विचारों के बाद अंत में इसी सत्य का बोध हमें होता है। यह बोध हमें अन्ततः व्यापक दृष्टि से सम्पन्न, अधिक मानवीय और अपने व विश्व के पारस्परिक अस्तित्व के प्रति आस्थावान व जागरूक बनाता है। अत एव, कहा जा सकता है कि शोध कार्य का परम प्रयोजन आत्मशोध याआत्म-परिष्कार होता है, जिसके लिए किसी भी विषय / शीर्षक को माध्यम बनाया जा सकता है अथवा किसी भी क्षेत्र से अपना प्रस्थान- बिंदुचुना जा सकता है। परंतु, माध्यम-रूप में हमउसी वस्तु / विषय का चयन करते हैं, जो हमारे निकट हो, थोड़ा बहुत परिचित या हमारे संस्कार / रुचि में हो और इसी कारण हमारी जिज्ञासा का कारण या आलम्बन बना हो। वैसे तो अति-परिचित चीजों की हम उपेक्षा ही करते हैं,उनके प्रति अनवधान रहते हैं, उन पर हमारी गहरी दृष्टि प्रायः नहीं जाती। परंतु, यह भी सत्य है कि वे ही कभी-कभी हमें गहन जिज्ञासा में डाल देती हैं। जैसे पेड़ से सेब के गिरने की अति परिचित घटना ने न्यूटन को तथा नाखून के बढ़ने की सर्व सामान्य घटना ने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को गहरी सोच में डाल दिया। एक के परिणाम स्वरूप ब्रह्माण्ड-व्यापी आकर्षण-बल का जटिल गणित प्रत्यक्ष हुआ, तथा दूसरे के परिणामस्वरूप मानव इतिहास/संस्कृति के मार्मिक विश्लेषण द्वारा अभूतपूर्व मानवतावादी निष्कर्ष निकल कर सामने आए। 'ज्ञान' अपना प्रयोजन आप होता है और वह प्रयोजन 'स्वान्तः सुख' से जुड़ता है। सामान्यतः उसे 'निष्प्रयोजन आनंद' कहते हैं। फिर भी कहना होगा कि निष्प्रयोजन या आनंद मात्रा की समझी जाने वाली वस्तु भी अन्ततः लोकोन्मुखी होती है-लोकोपकार करके सार्थक होती है। इस संदर्भ में शोध-कार्य की सार्थकता तद्-विषयक ज्ञान-क्षितिज का विस्तार करने और अब तक अछूते रहे सत्य को उजागर करने में है। 'शोध' के द्वारा उपलब्ध सत्य चाहे वह आभासितसत्य ही हो, का स्वभाव होता है कि वह 'एक' से 'अनेक' में फैले, यानी आत्मविस्तार उसका मूलभूत लक्षण या विशेषता है। मनुष्य-मात्र 'आत्म' का विस्तार करने में सदा संलग्न रहा है- अपनी किसी तरह की अनुभूति या अपने द्वारा अनुभूत सत्य को लोगों तक फैलाना ही उसका गुणधर्म है। यदि हम मनन करने से मनुष्य हैं, तो 'अनुभूत' को व्यक्त करने से व्यक्ति। फिर, मनन व अभिव्यक्ति के अधिकारी तोसभी मानव प्राणी हैं, सभी थोड़ा-बहुत यह करते भी हैं। पर, जिस ऊँचे अर्थमें मनन अभिव्यक्ति शोध, रचना शीलता, भाषण, शिक्षण आदि की बात की जा रही है, उसमें अब तक लोकतन्त्र नहीं आ पाया है। अर्थात् लिंग, नस्ल, क्षेत्र, भाषा आदि से जुड़े स्तरीकरणों के परिणाम स्वरूप अधिकतर जनता 'मनुष्य' एवं व्यक्ति बनने की सुविधा से अबतक वंचित रही है, बल्कि वंचित करके रखी गयी है। यह सब से बड़ा सांस्कृतिक संकट है, जिसका सब से ज्यादा खामियाजा स्त्री समुदाय को भुगतना पड़ा है। इस क्षेत्र में लोकतन्त्र की प्रतिष्ठा अहममुद्दा है। स्वतंत्रता, समता और बन्धुता/भगिनीवाद के मूल्यों की प्रतिष्ठा के बाद ही ऐतिहासिक विकास की असंगतियों और उसके संस्कारों से हम सब मुक्त होकर सच्चे अर्थों में और बराबर मात्रा में 'मनुष्य' और 'व्यक्ति' बन सकते हैं। तभी हम सब बराबर मात्रा व गुणवत्ता में शिक्षा प्राप्त कर सकते है और इसके द्वारा शोध कार्य के सच्चे अधिकारी भी हो सकते हैं। शोध की पात्रता हेतु यहतो हुई प्रासंगिक बात। मूलभूत या सदा स्थायी पात्रता तो यह है कि शोधार्थी को अपने चयनित विषय का वकील नहीं, बल्कि न्यायधीश होना चाहिए। किसी व्यक्ति में न्याय-बुद्धि तभी आसकती है, जब वह लोभ, मोह और क्रोध से यथा संभव मुक्त हो। किसी विषय का न्यायपूर्ण निष्पादन करने के लिए गहन अध्यवसाय के साथ एकनिष्ठ समर्पण तो जरूरीहै ही ऊपर से निष्पादक का उक्त दोषों से मुक्तहोना भी जरूरी है। जीवन की विविध वासनाओं की नील-छबीली डोरियों से खिंचे चले जा रहे शोध और शिक्षण साहित्य के संदर्भ में व्यक्ति में शोध कार्य की पात्रता क्रमशः न्यून होती जाती है। उसे तो उस गुण से अनवरत संवलित होना चाहिए, जिसे कुछ लोग 'बौद्धिक ब्रह्मचर्य' कहते हैं। शोध कार्य के दौरान अपने विषय से सम्बद्ध साधनों या बिखरी सामग्रियों का एकत्रीकरण, फिर उनका आवश्यकतानुसार ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक या अन्यान्य तरह से विश्लेषण किया जाता है। इन सबसे कार्य का परिणाम या निष्कर्ष प्राप्त होता है। निष्कर्ष में 'अनुक्त', 'उक्त' और 'दुरुक्त' का प्रकथन-परीक्षण व परिष्कार निहित होता है अनुक्त=जो कहा नहीं गया, यानी अब तक कहने से बाकी रह गया है, उक्त = जो कहा गयाहै दुरुक्त = जो कहा तो गया, पर दोषपूर्ण/गलत कहा गया है। इसी से ज्ञान का नवीनीकरण होता है। इससे सत्य नये रूप में प्रकट होता है। हर नया रूप मूल सत्य का एक-एक चेहरा होता है, परंतु युग व देश के अनुसार सत्य के नये-नये चेहरे उद्घाटित होते रहना मानवता व उसकी प्रज्ञा के उन्नयन के लिए जरूरी है। इस तरह स्पष्ट है कि नवीनता ही किसी शोध कार्य की असली पहचान है-मौलिकता ही उसकी वास्तविक गुणवत्ता है। नवीनता या मौलिकता का यह गुण विषय चयन से लेकर शोध-प्रविधि में भी होना चाहिए, पर सबसे बढ़कर होना चाहिए निष्कर्ष में। यानी, प्रस्थान बिंदु से बढ़कर परिणति में मौलिकता/नवीनता अपेक्षित होती है। पर, मौलिकता/नवीनता का अर्थ प्रचलित या पूर्वप्राप्त मतों से असहमति या विद्रोह भर नहीं है, बल्कि विद्रोह या असहमति का स्वरूप क्या है और वह सामाजिक प्रगति या इंसान की विजय यात्रा में, उसे पहले से बेहतरबनाने, सुखी करने में कितना योगदान कर सकती है-इसी बात में निहित होती है मौलिकता। जिसप्रकार आधुनिकता का अर्थ किसी काल-खण्ड विशेष में अवस्थिति से बढ़कर, सोच और जीवन-प्रणाली के सेक्यूलर दृष्टिसे संयोग में निहित है, उसी प्रकार मौलिकता का असली अर्थ है-लोकहितकारी नवीन चेतना।

साहित्य की यदि बात की जाए, तो शोध के समानान्तर एक और शब्द प्रचलित है-समीक्षा। शोध और समीक्षा-इन दो शब्दों का अब तक जो प्रयोग-व्यवहार रहा है, वह दोनों को एकान्तिक रूप से भिन्न करार देता है। उसके अनुसार, शोधका मतलब है खोज-अज्ञात, अनुपलब्धता वस्तु, तथ्य या निष्कर्ष की उपलब्धिता और समीक्षा का तात्पर्य है। किसी ज्ञात या सुप्रसिद्ध वस्तु/कृति के बारे में व्यवस्थित/एकाग्र रूप में की गयी वैचारिक टिप्पणी। यानी, शोध से प्राप्त तथ्य या निष्कर्ष परम्परागत ज्ञान के लिए अभिनवव अपूर्व होते हैं, जबकि किसी वस्तु या कृति की समीक्षा समाज के सामने उसे देखने-समझने की एक नयी दृष्टि रखती है। इस तरह शोध अधिकाधिक वस्तुनिष्ठ होता है, जब कि समीक्षा अधिकाधिक व्यक्तिनिष्ठ/आत्मपरक। समीक्षा इसी कारण साहित्य के समीप जा बैठती है और साहित्य-लेखन की तरह समीक्षा की भी अनेक शैलियाँ हो जाती हैं। स्पष्टता के लिए यह विभाजन तो ठीक है, पर इसी को अतिरंजित

रूप देते चले जाएँ और इस परिभाषा के अनुसार शोधकार्य को अधिक-से-अधिक आविष्कार मूलक व वस्तुनिष्ठ भारतीय आधुनिक शिक्षा बनाने का आग्रह करते जाएँ, तो साहित्य जैसे क्षेत्र में शोध के विषयों का अकाल होने लगेगा अथवा जो कुछ शोध के नाम पर होगा, वह तथ्य-संग्रह भरा होगा। यदि बात हिन्दी-साहित्य की करें, तो उसके पाठ्यक्रम में शुद्ध साहित्य, कविता-कहानी-उपन्यास-नाटक-निबन्ध आदिके साथ साहित्य का इतिहास, साहित्य शास्त्र काव्य शास्त्र और भाषाशास्त्र / व्याकरण भी उसके सहायक अंग के तौर पर सम्मिलित रहते हैं। इनमें से भाषाशास्त्र/व्याकरण या काव्य शास्त्र में और बहुत हद तक साहित्येतिहास में ऐसे काम हो सकते हैं, जो तथ्यपरक या वस्तुनिष्ठ हों, पर साहित्य में ऐसा शोधकार्य भला क्या होगा? वहाँ भी समकालीन साहित्य या जीवित कृतिकार परशोधकार्य तो और भी अनुपयुक्त होगा। कारण, नये या इस ज्ञात विषय में अनुसंधान कैसा? तथ्यान्वेषण कैसा? यह भी समझा जाता है कि समकालीन विषय अपने स्वरूप में विकासशील एवं अस्थिर होते हैं। जब शोधकार्य का आधा रही अस्थिर हो तो निष्कर्ष कितना स्थिर होगा? पर, यहाँ यह बात समझ लेने की है कि किसी अनुसंधान का उद्देश्य स्थिर या अन्तिम निष्कर्ष अथवा अन्तिम सत्य की प्राप्ति नहीं होता। अन्तिम सत्य जैसी कोई चीज यदि होती भी है, तो वह हमारे व्यावहारिक जीवन की वस्तु नहीं है। हमारा सत्य उतना ही होता है, जितने तक हमारी पहुँच हो या जो हमारे लिए किसी तरह प्रयोजनीय हो। ज्ञान तो परिवर्तनशील है ही, सत्य के स्वरूप में भी उसके सापेक्ष परिवर्तन होता रहता है। बात विज्ञान की भी करें, तो भी यही सच है। फिर, साहित्य तो साहित्य है। इसका सत्य तो और अधिक सापेक्ष है-हजार आँखों के लिए हजार रूप में प्रतीयमान। इसलिए अनुसंधन से प्राप्तहर निष्कर्ष अभी चाहे कितना भी अन्तिम यास्थिर प्रतीत होता हो, पर वह आगे के शोधकार्य का साधन या उससे प्राप्त होने वाले निष्कर्ष की पिछली सीढ़ी भर बनता है। साहित्यिक शोध में यदि किसी हद तक तथ्यान्वेषण संभव या जरूरी भी हो, तो वह साध्य नहीं, साधन ही होता है। शुद्ध साहित्य में शोधकार्य अनुसंधान-परकनहीं, समीक्षामूलक ही हो सकता है, भले किसी हद तक तथ्यान्वेषण को भी वहाँ साधनरूप में स्वीकारा गया हो। तब, शोधकार्य की मौलिकता या नवीनता का यहाँ मतलब किसी विषय को समझने हेतु नवीन दृष्टि के साधन से हो जाता है। उसके फलस्वरूप प्रस्तुत विषय परनयी रोशनी पड़ती है या उसे देखने-समझने की एक नयी पद्धति का उद्घाटन होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी या जायसी विषयक अपने प्रबन्धों के जरिये उन में निहित कई ऐसी विशिष्टताओं को लोकगोचर किया, जिन पर पहले किसी की निगाह नहीं गयी थी। उससे न केवल तुलसी या जायसी विषयक हमारा बोध विकसित हुआ, बल्कि साहित्य को परखने के लिए कुछ नयी कसौटियाँ भी हमारे हाथ लगीं। फिर, प्रो. विजयदेव नारायण साही ने जायसी को समझने की सर्वथा नयी दृष्टि दी 'जायसी' प्रबन्ध द्वारा। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर जैसे व्यक्ति और रचनाकार की निर्मिति के रहस्य का साधन ऐतिहासिक-समाजशास्त्रीय धरातल पर करते हुए, कवियों की मूर्धन्य पंक्ति में उन्हें प्रतिष्ठित किया। आज कबीर और तुलसी विषयक वैचारिकी में दलित और स्त्री दृष्टि अपने दमदार हस्तक्षेप कर कई अभूतपूर्व निष्कर्ष सामने ला सके। शोध और शिक्षण साहित्य के संदर्भ में रही हैं। ये सभी कार्य मौलिकता या नवीनता में किसी से क्या कम हैं कि इन्हें शोधकार्य न माना जाए? ऊपर जिस शोध-प्रक्रिया का संकेत है, जिसके द्वारा अनुक्त के कथन, उक्त के परीक्षण और दुरुक्त के परिष्कार की बात कही गयी है, वह तमाम अनुशासनों के अन्तर्गत होने वाले शोधकार्यों को समाहित करनेका प्रयास है। अब तक हुए शोधकार्यों चाहे वे सांस्थानिक या उपाधि से जुड़े हों अथवा व्यक्तिगत या उपाधि-निरपेक्ष हो पर नजर डालते हैं तो सामान्यत: दो प्रकार के प्रबन्ध दिखलाई पड़ते हैं-शोधमूलक, समीक्षामूलक। इनका विभाजन प्रधानता के आधारपर है, अन्यथा एक की विशेषता दूसरे में समाविष्ट हो जाना बिल्कुल स्वाभाविक है। शोध क उदाहरण स्वरूप 'रामकथा: उत्पत्ति और विकास', हिंदी-सर्वनामों का विकास', हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग', 'प्रसाद के नाटकों काशास्त्रीय अध्ययन', हिंदी-साहित्य में अलंकार', हिंदी-उपन्यासों में नारी-चित्राण', 'आदिकाल', 'मध्यकालीन हिंदी कवियित्रियाँ', 'देवनागरी लिपिका ऐतिहासिक तथा भाषा वैज्ञानिक अध्ययन', हिंदी साहित्य में काव्य के स्वरूप का विकास', 'काव्य दोषों का उद्भव और विकास', 'खड़ीबोली की व्याकरण-रचना के क्रमिक विकासका अध्ययन' जैसे हजारों नाम हैं, जिन्हें हम सुविधानुसार शोधमूलक या समीक्षामूलक घोषित कर सकते हैं। परंतु, विशुद्ध साहित्य पर शोधकार्य वही उत्कृष्ट होगा, जो अनुसंधान व समीक्षा की सम्मिलन-भूमि पर हुआ हो। उसी में नवीनता और लोकहितकारी चेतना भी रहेगी।

शोध और शिक्षण अर्न्तसंबंध

'शोध' और 'शिक्षण' का गहरा और पारस्परिक संबंध है। शोध से शिक्षण पैदा होता है और शिक्षण से शोध। 'शिक्षण' सिखाने का भी नामहै और सीखने का भी। सीखना और सिखलाना दो अलग-अलग क्रियाएँ नहीं हैं-चेतना की एक ही घटना के दोबाह्य रूप भर हैं। इसलिए, जो लोग यह कहते हैं कि मैं अमुक चीज समझ तो रहा हूँ, पर समझा नहीं पा रहा हूँ वे गलत कहते हैं। यदि वे किसी तथ्य को समझाने में असमर्थ सिद्ध हो रहे हैं, तो असली बात यह है कि वेवह तथ्य समझ ही नहीं पाये हैं। मतलब, उनकी समझ में ही कोई गाँठ रह गयी है। पारदर्शी समझ के अभाव में ही वे दूसरों को समझाते पढ़ाते समय क्लिष्ट अभिव्यक्तियों से ग्रस्त होते दिखते हैं। अन्यथा, मनोविज्ञान का सत्य यही है कि जिसकी की समझ जितनी ही गहरी होती जाएगी, उसकी अभिव्यक्ति उतनी ही सहज होती जाएगी, पानी जितनी ही गहराई से निकलता है, उतना ही निर्मल होता है। शब्दों के आडम्बर अकसर अज्ञान या अल्पज्ञान को छुपाने के साधन बनते दिखे हैं। शोधक की दृष्टि से अनुप्राणित अध्यापन ही सच्चा अध्यापन है। अन्यथा, वह विद्यार्थियों को पोषित, पीसे हुए को ही फिर से पीस कर तैयार सामग्री परोसते जाना होगा। वैसी शिक्षा जड़ता की शिकार होती है। वह समाज की प्रगतिया उसकी चेतना के उन्नयन में कोई योगदान तो नहीं करती, बल्कि उसे नकारात्मकता या बासीपन की सड़ाँध से भरती भी जाती है। स्कुल से विश्वविद्यालय तक कई ऐसे शिक्षक अकसरमिल जाते हैं, जो अपने विद्यार्थी जीवन में तैयार किये गये किसी नोट्स अथवा बाबा आदम-युगीन किसी पोथे से विद्यार्थियों को लिखवा-लिखवाकर अपने अध्यापकीय दायित्व पूरे करने के भ्रममें जीते हैं। इसी संदर्भ में बात आती है सिलेबस के निरंतर नवीनीकरण या अद्यतन, अप-टु-डेट करने की। विद्या-प्राप्ति के चार चरण हैं-आगम, स्वाध्याय, प्रवचन और व्यवहार। इनमें 'आगम' और 'स्वाध्याय' शोध एवं सीखने की क्रिया से जुड़ते हैं, 'प्रवचन' सिखलाने से जुड़ता है और 'व्यवहार' तोशोध, सीखने व सिखलाने-तीनों की अंतिम परिणति है। उपर्युक्त बातों के आलोक में, यदि अपने देश की शिक्षा संस्थाओं में हो रहे शोध कार्यों परविचार करते हैं तो हमें बेहद निराश होना पड़ता है, क्योंकि यह क्षेत्र अंधकार-उन्मुख किसी ढलान पर प्रतीत होता है। वैसे सुखद अपवादों की भी कमी नहीं है, परंतु आम हाल यही है। यह हालत कमोबेश सारे विषयों में है, पर यहाँ भी प्रधानता मानविकी और समाज विज्ञान जैसे अनुशासनों की है। शोध कार्य आज ज्ञान क्षितिज के विस्तार के लिए न होकर, नौकरी पाने या प्रोन्नति सुनिश्चित करने के लिए उपाधि बनाने की हड़बड़ी में बदल चुका है। सारस्वत

साधन का धैर्यशाली शास्त्रीय संगीत आज ऐसी ही उपाधि-रूपी व्याधि से ग्रस्त होकर, अधीर पॉप म्यूजिघ्क में बदल चुका है। किसी उपाधि-मूलक शोधकार्य के चार स्तम्भ होते हैं-शोधकर्ता, शोध-निदेशक, शोध-परिषद् और शोध-परीक्षक। आज इनके चयन/गठन में घोर अनियमितता व अपात्रता की भरमार है। आज चारों बड़े पैमाने पर अपने ज्ञानपरक उद्देश्य से विचलित, फलतः अपने स्वरूप में भ्रष्ट हो रहे हैं। इनके पतन की दिशाओं की चर्चा करना, उनके विविध चित्र दिखलाना या उनके कारणों की थाह लेना एक स्वतंत्र आलेखका ही नहीं, एक अलग शोध कार्य का भी विषय होगा। इस स्थिति में जो कुछ आशा बची हुई है, वह संस्थानों से अलग रहकर किये जा रहे स्वतंत्र या उपाधि-निरपेक्ष शोध कार्यों पर ही उन्हीं से कुछ नया व लोकहितकारी सत्य निकलकर आने की उम्मीद है। शोध तो ऊँची चीज हुई।हमारे देश के कई राज्यों के विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों में शिक्षा का आधारभूत ढाँचा भी कायम नहीं रह गया है और जो कुछ है, वह काफी स्तरहीन है। केंद्रीय विश्वविद्यालयों काभी हाल बहुत उत्साहजनक नहीं दिखलाई पड़ता। ऐसी परिस्थिति में हमारे शिक्षालय ज्ञान के सृजन में कितनी भूमिका निभा पाते होंगे-सहज अनुमान लगाया जा सकता है। यही कारण है कि संसार के शिक्षण-संस्थानों की सूची में भारत का कोई संस्थान फिलहाल नहीं दिखता। वैसे तो इस स्थिति के जिम्मेदार कारणों की लंबी सूची हो सकती है। उनमें से शिक्षालयों में राजनीति का अनुचित हस्तक्षेप, शिक्षकों व पदाधिकारियों की पक्षपात पूर्ण/घूसखोर नियुक्ति-प्रक्रिया, शैक्षिक परिसरों का अन्यान्यकार्यों हेतु दुरुपयोग तथा सिलेबस-कक्षा-परीक्षाव मूल्यांकन में बढ़ती अनियमितता और उनकागिरता स्तर शिक्षा के निरंतर पतन के कुछ प्रभावीकारण हैं। इसके साथ, हर अध्ययन या सफलता की कसौटी धन या सुख-साधनों की उपलब्धि को मान लेने का सामाजिक महारोग भी कम बड़ा शोध और शिक्षण साहित्य के संदर्भ में कारण नहीं है। एक आकलन-अनुमान से हिंदी में 1934 ई. से लेकर अबतक बीस हजार से अधिक प्रबंधों को शोधोपाधि मिल चुकी हैपर यह सवाल मुँह बाये खड़ा है कि क्या ये सबके सब शोध कहलाने के अधिकारी हैं? क्या इन सबसे तद्-तद् विषय कोनया उत्कर्ष मिला है, उस पर कुछ नवीन प्रकाश पड़ा है? इनमें से आधे भी इस कसौटी पर खरे उतर जाएँ, तो भी एक सन्तोष का विषय होगा। जो घिनौनी स्थिति है, उसे देखते यह भी समझाजा सकता है कि उनमें से कई तथा कथित प्रबन्ध कट-पेस्ट के सिवा कुछ भी नहीं हैं।

साहित्य में शिक्षण और शोध चुनौतियाँ

साहित्य के शिक्षण व शोध की अवस्था के और भी असंतोषजनक होने के कुछ कारण साहित्य के स्वरूप से भी जुड़े हैं। शुद्ध उपयोगिता वादी तराजू पर 'साहित्य' को तौलने की प्रवृत्ति में पड़ापाठक या अनुसंधित्सु सहसा संदेहग्रस्त हो उठताहै। वह सोचता है कि साहित्य या भाषा का अध्ययन किसलिए? यदि उससे कोई नौकरी जुड़ी हो, तब तो ठीक है, परंतु उसके बिना पढ़ना उसे प्रयोजनहीन ही लगने लगता है। उसे सूक्ष्म प्रयोजन; ज्ञान-सुख, सौन्दर्य-बोध, मानवीय संवेदना का विस्तार आदि सहसा इसलिए नहीं दिख पाते, क्योंकि दैहिक जरूरतों की पूर्ति का काई मुकम्मल आश्वासन साहित्य का अध्ययन उसे नहीं दे पाता। बात भी ठीक है। जब पेट में चूहे कुद रहे हों, तो कोई ज्ञान जहाँ निरर्थक लग सकता है, वहाँ साहित्य जैसी चीज; जो प्रयोजनातीत, यानी स्थूल प्रयोजनों से ऊपर की वस्तु है, वहद्ध केसे समझमें आएगी? 'भूखा-पेट' व्यक्ति खाली दिमाग का होता है, वह वुफछ भी नहीं समझ सकता, तो साहित्य जैसी सुवुफमार-संवेदनशील वस्तु खाक समझ पाएगा? उसे तो चाँद में भी रोटी दिखाई देती है, तो खाक आस्वादन कर पाएगा साहित्यका? जब यही नहीं होगा तब साहित्य के माध्यम से बेहतर जीवन रचना का अगला चरण कहाँ से पूरा हो सकेगा? इसी से साहित्य या किसी कला या विद्या के अध्ययन-अध्यापन या आस्वादन का माहौल बनाना तब तक पूर्णतः सम्भव नहीं होगा,जब तक हमारा पेट भूखा है, हमारी देह भूखी है; क्योंकि इनके भूखे रहने से मन भूखा रहताहै, जो हमारी प्रधन ग्राहणेंद्रिय है। यानी, स्थूलप्रयोजनों की संतृप्ति के बिना सूक्ष्मतर प्रयोजनों में जाना कतई सम्भव नहीं।इसलिए, जो देश/समाज भूख, गरीबी या भय में ही उलझा हो, वहाँ ज्ञान सृजन या शिक्षण व शोध की स्थिति कतई बेहतर नहीं होगी। ध्यातव्य है कि यहाँ बात 'जरूरत' की पूर्ति की हो रही है, 'लालच' की पूर्ति की नहीं। स्पष्ट होना चाहिए कि शिक्षा की सर्वांगीण सुदृढ़ स्थिति ही शोध की उन्नति का सबसे प्राथमिक आधार है, इसलिए देश में स्तरीय शोधकार्य का माहौल बनाना है, तो हर स्तर की शिक्षा के आधारभूत ढाँचे को सशक्त, भ्रष्टाचार मुक्त और लोकतान्त्रिक आदर्शों के अनुरूप उसे हर स्तर /समूह तक व्यापक बनाना होगा। इसे सम्भव और पूरी तरह कारगर बनाने के लिए, सबसे पहले बिना भेदभाव किए, हर किसी के भौतिक जीवन की समस्याओं का निराकरण और हर किसी के लिए इंसानों के अनुरूप जीने की सुविध सुनिश्चित करानी होगी। कारण, भौतिक स्तर पर मुक्ति ही वैचारिक या आत्मिक मुक्ति की पूर्वशर्त है।

संदर्भ

- संस्कृत-हिन्दी-कोश' (वामन शिवराम आप्टे). प्रकाशक-मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, संस्करण-1997,
- 'ईशावास्योपनिषद्' के शब्दों में ''हिरण्मयेन पात्रोण सत्यस्यापिहितं मुखम्''-अर्थात् सत्य का मुख सुनहले पात्रासे ढका हुआ है.
- ''आकृष्टि-शक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या...'' सिद्धान्तशिरोमणि' भास्कराचार्य
- यानी भूमि में आकर्षण-शक्ति है, जिससे आकाश में स्थित भारवान पिण्डों को वह अपनी ओर खींचलेती है.
- अतिपरिचयात् अवज्ञा=अति-परिचित चीशों को हम अक्सर महत्त्व नहीं देते, यानी 'घर की मुर्गी दाल बराबर'.'नाखून क्यों बढ़ते हैं?'. शीर्षक हजारी प्रसाद द्विवेदी का निबन्ध।
- परशुराम चतुर्वेदी हिदी में उपाधि-निरपेक्ष शोधकार्य हिदी-अनुशीलन-शोध विशेषांक/जुलाई-दिसम्बर,1962
- 'एकोहम् बहुस्यां प्रजायेय..' ;-तैत्तिरीयोपनिषद्, 2-6 यानी. 'मैं एक हूँ, अनेक बनकर प्रकट होऊँ'-ब्रह्मकी इस इच्छा का परिणाम है जगत्।
- ''उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्रा प्रवर्तते. तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुर्वार्तिकज्ञाः मनीषिणः।।''-'वार्तिक' (-कात्यायन)।
- पृष्टपोषण पिसे हुए को फिर से पीसना, यानी बासी ज्ञान ही फिर से परोसने का भूतकालिक विशेषण है।

महिला मुद्दे और नागरिक समाज

डॉ० उमा कान्त यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर, श्री बजरंग पी० जी० कालेज, दादर आश्रम, सिकन्दरपुर, बलिया।

महिला संबंधी आंदोलनों ने न सिर्फ भारत बल्कि संपूर्ण विश्व समुदाय का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। देश की तकरीबन आधी आबादी से संबंधित इन आंदोलनों ने समाज/राज्य के सभी अंगों को उद्वेलित किया है। वर्तमान राज्य के लोककल्याणकारी स्वरूप की वजह से निश्चित रूप से राज्य का कार्य क्षेत्र विस्तृत हुआ है, जिससे सरकार के कार्य क्षेत्र में भी वृद्धि हुई है, ऐसे में नागरिक समाज एवं उसके घटकों की भूमिका स्वत: प्रासंगिक हो जाती है। नागरिक समाज के मुख्य घटक के रूप में स्वयंसेवी संस्थाओं और गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका में भी महत्वपूर्ण बदलाव आया है, उनका स्वरूप अधिक रचनात्मक और समावेशी हुआ है। भारत में इनका जाल-सा बिछा हुआ है। यह समाज के पिछड़े व वंचित वर्गो के सामाजिक-आर्थिक विकास हेतु प्रतिबद्ध दिखते हैं और इस क्षेत्र में आधुनिक तकनीकों तथा लोकतांत्रिक विचारों के प्रचार-प्रसार संबधी महत्वपूर्ण कार्यो का सम्पादन कर रहें है। सुशासन प्रक्रिया के संदर्भ में ये सरकार के समावेशी विकास संबधी कार्यक्रमों का बखूबी संपादन कर रहे हैं। वर्तमान में सरकार भी आधुनिक व जटिल होती जा रही सामाजिक संरचना में वर्ग विशेष की सामाजिक-आर्थिक विकास में नागरिक समाज की बढ़ती हुई भूमिका को स्वीकार कर रही है।

महिला सशक्तिकरण एवं नारी मानवाधिकार के संरक्षण एवं संवर्द्धन की दिशा में भी विभिन्न छण्ळण्व्एआज सक्रिय भूमिका अदा कर रहे है। विशेषकर पिछले दो दशकों में महिलाओं के शोषण एवं उत्पीड़न के विरूद्ध तथा उनके मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु इस क्षेत्र ने अपनी प्रासंगिकता को सिद्ध किया है। विभिन्न अवसरों पर लिंगानुपात का निम्न स्तर, भ्रूण हत्या, बलात्कार, घरेलू हिंसा, कार्यस्थल एवं घरों पर यौन-उत्पीड़न तथा महिलाओं एवं युवतियों की हत्या आदि की बढ़ती हुई घटनाएं महिला मानवाधिकार हनन की खुली कहानी कहते है। ऐसे परिदृश्य में निचले व स्थानीय स्तर से लेकर राज्य व राष्ट्रीय स्तर तक स्वयंसेवी संगठन व नागरिक समाज ने सामाजिक-आर्थिक विकास, मानवाधिकार संरक्षण एवं संवर्द्धन का महत्वपूर्ण दायित्व निभाने की जिम्मेंदारी स्वीकार की है तथा वे विकास कार्यक्रमों में सरकार के साथ भरपूर सहयोग कर रहे है। इस संदर्भ में भारत विकास संघ, अखिल भारतीय महिला सेवा समिति, अखिल भारतीय महिला सांस्कृतिक संगठन, जनवादी महिला समिति, आदि गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका एवं उनके क्रियाकलाओं को देखा जा सकता है। जिन्होंने महिलाओं के बीच शिक्षा के प्रचार-प्रसार एवं मानवाधिकार के प्रति व्यापक जन-जागरूकता के लिए कार्य किया। यह संगठन स्वतंत्र रूप से तथा विभिन्न अन्य स्थानीय महिला संगठनों के सहयोग से विभिन्न शैक्षणिक सेमिनारों एवं परिचर्चा के माध्यम से नारियों के बीच व्यापक जागरूकता के कार्यक्रमों का आयोजन करते हैं। और इसके माध्यम से महिलाओं को स्वावलम्बी बनाने हेतु उनके बीच व्यवसायिक व तकनीकि शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार सृजन, आय वृद्धि के प्रयासों द्वारा महिलाओं को समाज में प्रतिष्ठा, सम्मान व उचित दर्जा दिलाने हेतु प्रतिबद्ध दिखते है।

इन तमाम प्रयासों, कानूनी व संवैधनिक प्रावधानों तथा स्थानीय निकायों में आरक्षण के बावजूद भी महिलाओं का उतना विकास नहीं हो पाया है जितना आजादी के बाद पिछले 70 वर्षों में अपेक्षित था। विभिन्न नागरिक समाज के दावों व प्रयासों के बावजूद महिलाओं के बीच विशेषकर ग्रामीण, आदिवासी व दलित महिलाओं में, आज भी नागरिक स्वतंत्रता और लोकतांत्रिक अधिकारों के प्रति व्यापक स्तर पर अनभिज्ञता है।

नागरिक समाज इस दिशा में सकारात्मक भूमिका निभाने में निरन्तर प्रयासरत तो दिखते हैं, किन्तु सशक्त राज्य मानवाधिकार आयोग और विशेषीकृत मानवाधिकार अदालतों के अभाव में वे प्रभावी भूमिका का निर्वहन करने में असमर्थ है, साथ ही उनकी अपनी भी कुछ सीमाए है। नागरिक समाज संगठन क्षेत्र के प्रति सरकार की उदासीनता, आर्थिक संसाधनों की कमी, महिलाओं का खुलकर सामने न आना, गैर-सरकारी संगठन और सरकारी संगठनों के बीच सामंजस्य का अभाव आदि अनेक ऐसे कारक है जो इनकी सकारात्मक और प्रभावी भूमिका के आडेघ आते है।

भारत में सामजिक सुधार आन्दोलनों ने महिला मुद्दों से सम्बन्धित आन्दोलनों के विकास में सराहनीय योगदान दिया है। महिलाओं ने राष्ट्रीय आन्दोलन के सभी चरणों गाँधीवादी, समाजवादी, साम्यवादी और क्रान्तिकारी आन्दोलनों में क्रमिक सक्रिय योगदान दिया। महिलाएं व्यापार संगठन, किसान एवं मजदूर आन्दोलनों में भी सक्रिय रही 1926 में स्थापित अखिल भारतीय महिला सम्मेलन का भी विशेष योगदान रहा। आजादी के बाद से सरकारी प्रयत्नों के अलावा नागरिक समाज ने भी महिला मानवाधिकारों के संरक्षण एवं संवर्द्धन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। 1954 में कम्युनिस्ट विचारधारा से प्रभावित महिलाओं ने अखिल भारतीय संम्मेलन से बाहर निकलकर अलग संगठन भारतीय राष्ट्रीय महिला फेडरेशन बनाया। हालाकि यह केवल एक पार्टी की अनुषंगी इकाई बनकर रह गया।

महाराष्ट्र के शहादा आदिवासी क्षेत्र में 1972 में अकाल-राहत तथा जमीन के लिए आन्दोलन आरम्भ हुआ इसमें भील आदिवासी महिलाओं नें सक्रिय भूमिका निभाई। कालान्तर में इसने शराब विरोधी आन्दोलन का रूप ले लिया, जिसमें महिलाओं की सक्रियता उल्लेखनीय रही।

1972 में ही अहमदाबाद (गुजरात) में इला भट्ट के नेतृत्व में सेवा (S.E.W.A. सेल्फ एम्प्लाएड वीमेंस आर्गनाइजेशन) नामक संगठन की स्थापना हुई। यह अपने आप में एक अलग किस्म का संगठन था जिसने महिला मुद्दों की जोरदार ढंग से पैरवी की। उक्त के अतिरिक्त निम्नलिखित नागरिक संगठनों की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही है।

- 1977- छत्तीसगढ़ के आदिवासी इलाके में महिलाओं की छत्तीसगढ़ श्रमिक संघ में सक्रियता
- 1984- भोपाल में महिला उद्योग संगठन के द्वारा भोपाल गैस त्रासदी (1984) के शिकार व्यक्तियों को न्याय दिलाने के सघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका।
- 1974- हैदराबाद में उस्मानिया यूनिवर्सिटी का प्रगतिशील महिला संगठन
- 1975- पुणे में पुरोगामी स्त्री संगठन
- 1975- मुम्बई में स्त्री मुक्ति संगठन
- 1981- ऑल इण्डिया डेमोक्रेटिक वीमेंस एसोसिएशन

नागरिक समाज की सामान्य समस्याऐं:- अनेकों विधिक, दाण्डिक व्यवस्थाओं एवं सामाजिक प्रावधानों के बाद भी देश में महिलाओं की स्थिति दयनीय एवं चिंताजनक बनी हुई है। महिलाओं के प्रति हिंसा और दुर्व्यवहार की घटनाएं बढ़ रही हैं, कम नहीं हो रही हैं। हालांकि महिला मुद्दों के प्रति नागरिक संगठन सजग और संवेदनशील तो हैं और निरन्तर इस दिशा में प्रयत्नशील भी है, फिर भी उन्हें वह सफलता नहीं मिल पा रही हैं, जो मिलनी चाहिए। वैसे महिलाओं को साक्षर बनाने, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने, जरूरतमंद महिलाओं को विभिन्न प्रकार की सहायता उपलब्ध कराने एवं उन्हें न्याय दिलाने, जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाकर समाज की मुख्य धारा से जोड़ने जैसे महत्वपूर्ण कार्यों में नागरिक समाज की महती भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सकता है। परन्तु उक्त महत्वपूर्ण भूमिका के मार्ग में अनेको मुश्किलें भी हैं। जो नागरिक समाज को स्वतंत्र एवं सक्रिय भूमिका निभाने में बाधाएं उत्पन्न कर रही हैं। सर्वप्रथम नागरिक समाज की इस संदर्भ में दो तरफा मुश्किलों का समाना करना पड़ रहा है। एक तरफ वे महिला मुद्दों को लेकर राज्य सरकार से तो दूसरी तरफ उन्हें पुरूष-प्रधान पितृसत्तामक सामाजिक संरचना से भी संघर्ष करना पड़ता है। महिला संबन्धी मुद्दों के संबंध में परम्पराएं आज भी आधुनिकता पर भारी पड़ती हैं। विवाह, सम्पत्ति विभाजन, तकनीकि शिक्षा व गतिशीलता आदि के सन्दर्भ में इसे देखा जा सकता है।

दूसरे, हमारे समाज की सामाजिक संरचना ऐसी है कि महिलाओं में भी दोहरी मानसिकता देखी जा सकती है। एक तरफ वे महिलाएं हैं जो अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं और पुरूषों के साथ कंन्धे से कन्धा मिलाकर चल रही हैं। दूसरी तरफ वे महिलाऐं है जो आज भी रूढिघ्वादी परम्पराओं को महत्व देती हैं, घर की चारदीवारी में खुद को सुरक्षित महसूस करती हैं तथा पति परमेश्वर के सभी आदेशों के पालन को उचित मानती हैं। ऐसी ही महिलाएं प्रताड़ना, घरेलू हिंसा तथा शोषण से पीडिघ्त होने पर भी मुंह नहीं खोलना चाहती और किसी भी अन्याय के विरूद्ध आवाज नहीं उठा पाती हैं। ऐसी मानसिकता के कारण भी महिला अधिकारों से जुडेघ नागरिक समाज संगठनों को अनेक मुश्किलों का सामना करना पड़ता है।

तीसरे महिला साक्षरता आज भी पुरूषों की अपेक्षा कम है, उसमें भी गुणवत्तापूर्ण और तकनीकि शिक्षा का प्रतिशत बहुत ही कम है। उचित शिक्षा और जागरूकता के अभाव में तथा रूढिघ्वादी सामाजिक प्रतिबन्धों की वजह से भी महिलाएं नागरिक समाज संगठनों से सहयोग नहीं करती हैं जिससे इन संगठनों की इस क्षेत्र में सक्रिय भूमिका सीमित हो जाती है।

चौथे पिछले दशकों में देश में नागरिक संगठनों की संख्या में अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी हुई है। समाज के एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में समाज व राज्य ने इनके विकास को स्वीकार भी किया है, क्योंकि लोककल्याणकारी राज्य के रूप में सरकार का कार्य-भार इतना विस्तृत हो गया है कि नागरिक संगठनों से सकारात्मक भूमिका की अपेक्षा की जाने लगी है। किन्तु गत वर्षों में कई संगठनों ने अपने प्राथमिक उद्देश्यों को छोड़कर सरकार से धन प्राप्ति को ही एकमात्र लक्ष्य बना लिया है। इसलिए पिछले कुछ वर्षों में इस क्षेत्र में नागरिक संगठनों की छवि खराब हुई है और नागरिक संगठनों के प्रति लोगों के विश्वास में भारी कमी आयी है।

महत्वपूर्ण सुझाव- नागरिक संगठनों की उपर्युक्त कमियों के बावजूद महिलाओं से जुडेघ मामलों के कार्य क्षेत्र में इन संगठनों की भूमिका को बिल्कुल नकारा नहीं जा सकता है। इस संदर्भ में महिलाओं एवं परिवारों के बीच व्यापक आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक जागरूकता पैदा करने में, उन्हें साक्षर बनाकर तकनीकि एवं व्यवसायिक रूप से सक्षम कर उन्हें आत्मनिर्भर बनाने में, महिलाओं के साथ अमानवीय व्यवहार के विरूद्ध आवाज उठाकर एवं महिला शोषण, अत्याचार घरेलू हिंसा का विरोध करने वाले संगठनों में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने में, महिलाओं के बीच राष्ट्रीय आदर्शों - स्वतंत्रता, समानता, धर्मनिरपेक्षता, मूल अधिकार, सामाजिक न्याय जैसे लोकतांत्रिक आदर्शों के प्रति जागरूकता पैदा करने में तथा इस क्षेत्र में महिला शक्ति को उभारने और उन्हें संगठित कर एक सशक्त आंदोलन का रूप प्रदान करने में नागरिक संगठनों ने अपनी सक्रिय तथा प्रभावकारी भूमिका निभायी है। भविष्य में भी इन संगठनों से और अधिक सकारात्मक भूमिका निर्वहन की अपेक्षा की जा रही है। आने वाले दिनों में महिला सम्बन्धी मुद्दों के सन्दर्भ में नागरिक समाज की प्रभावकारी भूमिका के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते है:-

1. लोकतांत्रिक उभार एवं सुशासन के समय में राज्य सरकार को भी नागरिक समाज की भूमिका को महत्व देना होगा। समाज के आवश्यक घटक के रूप में नागरिक समाज को भी उचित स्थान प्रदान करना चाहिए तथा विकास कार्यक्रमों व परियोजनाओं में इन्हें भी भागीदार बनाना चाहिए। सरकार भी महिला अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्द्धन के कार्य में लगे नागरिक संगठनों के प्रति उदासीनता का त्याग करते हुए इस क्षेत्र में इनकी भूमिका को स्वीकार कर उन्हें जरूरी सहायता एवं संसाधन उपलब्ध कराने चाहिए जिससे वह निर्बाध रूप से अपना कार्य कर सके।
2. महिला अधिकारों के संन्दर्भ में नागरिक समाज की सार्थक भूमिका के लिए यह आवश्यक है कि जिन मुद्दों के लिये ये संगठन प्रयासरत हैं उनमें महिलाओं की केन्द्रीय भूमिका हो, वे आगे आये, अपने अधिकारों के प्रति सजग व जागरूक हों तथा इन संस्थाओं द्वारा चलाये जा रहे महिला मुद्दो से संबिन्धत आन्दोलनों में सहयोगी की भूमिका अदा करें।
3. नागरिक समाज की प्रभावकारी भूमिका के लिये यह जरूरी है कि सरकारी व गैर सरकारी उपक्रमों के बीच उचित सामंजस्य हो। यह तभी संभव है जब सरकारी संस्थाएं गैर सरकारी संगठनों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण एवं सकारात्मक रवैया अपनाए।
4. महिला अधिकारों के सन्दर्भ में नागरिक समाज की प्रभावशाली भूमिका निर्वहन के लिए नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ. अमत्र्य सेन के विचार महत्वपूर्ण साबित हो सकते है। उन्होंने कल्याणकारी अर्थशास्त्र के अर्न्तगत आर्थिक विकास को मानवीय विकास के साथ संलग्न कर दिया और आमजन के

अधिकारों को सार्वभौमिक बनाये जाने पर बल दिया है। इसी सन्दर्भ में डॉ.सेन ने महिलाओं एवं बच्चों के शिक्षा, स्वास्थ्य एवं पौष्टिक आहार पर विशेष जोर दिया। स्वास्थ्य सुविधा, पौष्टिक आहार एवं शिक्षा को उन्होंने महिलाओं की क्षमता - निर्माण से जोड़ कर देखा। उनका तर्क है कि जब तक स्त्री और पुरूषों के अन्तर्गत क्षमता निर्माण का कार्य नहीं किया जायेगा तब तक वास्तव में राष्ट्रीय विकास का उचित मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। यदि इस क्षेत्र में नागरिक समाज को अपनी भूमिका को चरितार्थ करना है तो उन्हें महिलाओं के बीच स्वास्थ्य, शिक्षा तथा पौष्टिक आहार की उपलब्धता के लिए कार्य करना होगा।

5. नागरिक समाज सम्पूर्ण मानव समाज का ही एक हिस्सा है। नागरिक समाज के संगठन महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक उत्थान में तभी कारगर भूमिका निभा सकते हैं जब समाज, मीडिया एवं पुलिस इन संगठनों के सन्दर्भ में सहायक एवं सकारात्मक रूप से अपनाये।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि यदि महिला मुद्दों के संन्दर्भ में नागरिक समाज को प्रभावशाली व सार्थक भूमिका निभानी है तो यह आवश्यक है कि राज्य इन संस्थाओं के प्रति अपनी उदासीनता का त्याग करे, सरकार द्वारा इन्हें आवश्यक सहायता एवं संसाधन उपलब्ध कराये, सामान्य व पुलिस प्रशासन इनके साथ सहयोग करे, राज्य व स्थानीय प्रशासन इनके कार्यों व गतिविधियों में सहयोग करें, महिलाए भी घर से बाहर आकर इनके प्रयासों के प्रति सहयोगात्मक रूख अपनाएं, इन संगठनों की विभिन्न गतिविधियों एवं कार्यक्रमों में सक्रिय भागीदारी करें, साथ ही न सिर्फ राजनीतिक सत्ता एवं प्रशासन बल्कि नागरिक संगठन भी अपने निजी स्वार्थ से ऊपर उठकर सही अर्थों में महिलाओं के उत्थान एवं अधिकारों के संरक्षण तथा संबर्द्धन के लिए कार्य करें तभी नागरिक समाज की भूमिका का औचित्य सार्थक हो सकेगा।

सन्दर्भ सूची

- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग- वार्षिक रिपोर्ट (2005), नई दिल्ली
- आहुजा, राम (1993) भारतीय सामाजिक व्यवस्था, जयपुर, रावत पब्लिकेशन
- चटर्जी, मोहिनी (2005), नारीवाद एवं लिंग समानता, जयपुर, आविष्कार पब्लिशिंग
- देसाई, ए0.आर. (सम्पादन-1986), भारत में लोकतात्रिक अधिकारों का हनन
- दिवान, पी0(1994),महिला और विधिक संरक्षण
- शाह, घनश्याम(1990) भारत में सामाजिक आन्दोलन नई दिल्ली

कुशीनगर बौद्ध स्थल का सांस्कृतिक अध्ययन

मनीष कुमार

शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

कुशीनगर बौद्धों का एक महत्वपूर्ण पवित्र तीर्थ स्थल है। तथागत ने पैंतालीस वर्ष तक भिक्खुसंघ के साथ उत्तर में हिमालय की तलहटी से लेकर दक्षिण में विन्धय पर्वत तक, पूर्व में कजंगला निगम[1] के मुखेलुवन[2] से लेकर पश्चिम में कुरू प्रदेश की राजधानी थुल्लकोट्ठित तक भ्रमण करके सब प्राणियों के हित-सुख के कल्याणकर धर्म का उपदेश देते हूए यही महापरिनिर्वाण को प्राप्त किया था।[3] कुशीनगर का वर्णन बौद्ध साहित्य में भी मिलता है। इसमें कुशीनगर के साथ कुशीनारा,[4] कुशीनगरी[5] तथा कुशीग्राम जैसे अनेक नामों का वर्णन मिलता है।[6] बुद्ध-पूर्व युग में इस स्थल को कुशावती के नाम से प्रसिद्ध था। यह राजधानी पूर्व से पश्चिम 156 किलोमीटर लम्बी तथा उत्तर से दक्षिण 91 किलोमीटर चौड़ी थी।[7] इसमें सात प्राकार, चार तोरण तथा खजूर वृक्षों के सात निकुंज थे।[8] यह स्थल हिरण्यवती नदी के पश्चिमी तट के नजदीक एक प्रमुख स्थलमार्ग पर स्थित था।[9]

कुशीनगर के नजदीक ही उपवत्तन नामक शालवन था जिसके एक भाग को मल्लों ने प्रमोद उद्यान को परिणत कर दिया था। यह हिरण्यवती के दूसरे तट पर स्थित था।[10] इस उपवत्तन शालवन में ही तथागत ने अंतिम निवास किया था। तथा यहीं युगल साल वृक्षों के नीचे उनका महापरिनिर्वाण हुआ था। उपवत्तन शालवन को कनिंघम ने वर्तमान कसया के 'माथा कुवँर कोट' से समीकृत किया है।[11]

बौद्ध ग्रन्थों में कुशीनगर तथा अन्य प्रमुख बौद्ध स्थलों के बीच की दूरी उद्धरित है, जो इस बौद्ध स्थल की स्थिति निश्चित करने में सहायक है। कुशीनगर से पावा की दूरी लगभग 9.6 किलोमीटर थी।[12] तथागत ने अंतिम यात्रा में इसी रास्ते से ककुक्षा नदी को पार किया था।[13] राजगृह से इस बौद्ध स्थल की दूरी 325 किलोमीटर[14] तथा सागल(स्यालकोट) से 130 किलोमीटर थी।[15] कुशीनगर बहुत समृद्धिशाली स्थल था। तथागत ने स्वयं इसकी प्रशंसा की है। बुद्धघोष ने उन विशिष्ट कारणों को वर्णन किया है, जिनसे प्रेरित होकर तथागत ने कुशीनगर को परिनिर्वाणार्थ चुना था-

(i) 'महासुदस्सन' सुतांत का उपदेश वहीं किया गया था।

(ii) सुभद्र की प्रवज्या वहीं संभव थी।

(iii) अस्थि विभाजन की समस्या हल करने वाला व्यक्ति वहाँ उपस्थित था।[16]

ध्यातव्य है कि तथागत ने कुशीनगर में ही परिनिर्वाण प्राप्त किया था। वहाँ के मल्लों ने तथागत के अंतिम संस्कार का समुचित प्रबंध किया था। 6 दिनों तक वे लोग उनके निष्प्राण शरीर का नृत्य, गीत, वाद्य तथा गंध पुष्पादि से सत्कार करते रहें। सातवें दिन वे उसे मुकुट बंधन चौत्य ले गये।[17] शालवन से चलकर वे बौद्ध स्थल के उत्तर द्वार से प्रविष्ट हुए तथा पूर्व द्वार से निकलकर चौत्य स्थान पर पहुँचे। वहीं पर चक्रवर्ती राजोचित विधान के अनुसार दाह-संस्कार किया गया।[18] मुकुट बंधन चौत्य को वर्तमान रामाभार तालाब के पश्चिमी तट पर स्थित एक विशाल स्तूप के खंडहर से समीकृत किया जा सकता है, जो माथा कुँवर के कोट से लगभग 1.6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है।[19]

दाह संस्कार के बाद अस्थि-विभाजन को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया। इस अवसर पर उपस्थित लोगों में वैशाली के लिच्छवि, कपिलवस्तु के शाक्य, अल्लकप के बुली, राजग्राम के कोलिय, पावा के मल्ल, मगधराज अजातशत्रु और वेठ-द्वीप(विष्णुद्वीप) के ब्राह्मण मुख्य थे।[20] कुशीनगर के मल्लों ने विभाजन का विरोध किया। प्रतिद्वंद्वी राज्यों की सेनाओं ने उनके स्थल को घेर लिया। युद्ध प्राय: निश्चित था... लेकिन बाह्मण द्रोण के आने से अस्थि अवशेषों का आठ भागों में विभाजन संभव हुआ।[21] विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि अस्थि अवशेषों को अपनी राजधानियों में ले गए तथा वहाँ नवनिर्मित स्तूपों में उन्हें स्थापित किया गया। साँची के तोरण पर उत्कीर्ण चित्र इस घटना के ज्वलंत उदाहरण है।[22] इसके अलावा तोरण के मध्य भाग में नीचे की ओर स्थल के परिखा और प्राकार का भी अंकन मिलता है। प्राकार के भीतर स्थल के कुछ विशिष्ट भवन भी दृष्टिगोचर होते है।[23]

चीनी यात्रियों का वर्णन

फाहियान- चीनी यात्री फाहियान 399-414 ई0 के मध्य कुशीनगर आया था। उसने कुशीनगर को पिप्पलिवन के अंगार स्तूप के पूर्व में 156 किलोमीटर तथा वैशाली से 156 किलोमीटर की दूरी पर स्थित बतलाया।[24] उसने सम्पूर्ण जनपद को निर्जन तथा उजाड़ पाया था। फाहियान ने स्थल के उत्तर निरंजना नदी के तट पर शालवन में दो वृक्षों के मध्य तथागत के परिनिर्वाण प्राप्त करने के स्थान का वर्णन किया है।[25] शालवन के विहार में उस समय भी कुछ भिक्षु निवास करते थे। फाहियान के अनुसार परिनिर्वाण स्तूप के अलावा वहाँ चार अन्य स्तूप थे जो क्रमश: निम्न चार स्थानों पर बने थे-

(i) जहाँ सुभद्र ने अर्हतत्व को प्राप्त किया था।[26]

(ii) जहाँ वज्रपाणि यक्ष की गदा गिरी थी।

(iii) जहाँ मल्लों ने बुद्ध के निष्प्राण शरीर का सप्ताह पर्यत पूजन किया था।

(iv) जहाँ तथागत के अस्थि अवशेषों को विभाजित किया गया था।

व्हेनसाँग- व्हेनसाँग कुशीनगर सातवीं शताब्दी में जब आया तो उस समय इस स्थान की स्थिति अच्छी नहीं थी। यह स्थल 5 किलोमीटर की परिधि में फैला मात्र खंडहर सदृश्य रह गया था।[27] यहाँ की जनसंख्या बहुत कम थी। स्थल के उत्तर पश्चिम चुड़ के निवास-स्थान पर अशोक द्वारा बनवाया गया एक स्तूप था।[28]

बौद्ध स्थल के उत्तर-पश्चिम 1.5-2 किलोमीटर की दूरी पर स्थित अजिजवती नदी के पश्चिमी तट पर व्हेनसाँग ने शालवन का वर्णन किया है।[29] इस सालवन में विभिन्न घटनाओं के स्मारक-स्वरूप कई स्तूप बने हुए थे। वहाँ पर ईटों से बना एक बड़ा चौत्य था, जिसमें एक मूर्ति रखी थी। इसमें बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त और उत्तर की ओर सिर किए हुए लेटी अवस्था में दिखाए गए थे। इस चौत्य के नजदीक अशोक निर्मित 200 फुट ऊँचा एक भग्न स्तूप था। स्तूप के सामने मौर्यकालीन प्रस्तर-स्तम्भ था, जिस पर परिनिर्वाण का वृतांत उत्कीर्ण था।[30] स्थल के उत्तर हिरण्यवती(अजितवती) नदी के दूसरे तट से 300 पग दूर एक स्थल पर तथागत के दाह-संस्कार का वर्णन है।[31] इस स्थल पर भी एक स्तूप था जिसकी मिट्टी पवित्र मानी जाती थी।

इत्सिग- एक अन्य चीनी यात्री इत्सिग सातवीं शताब्दी के अन्त में कुशीनगर आया था। कुशीनगर की स्थिति उसके समय में अच्छी थी। संभवत: वह महाराज हर्ष का सुफल संरक्षण था। इत्सिग ने उल्लेख किया है कि शालवन और मुकुट बंधन(पन्-द-न) प्रसिद्ध चौत्य थे, जहाँ शरद और बसंत ऋतु में दूर-दूर से श्रद्धालु आया करते थे। उस समय विहार में रहने वाले भिक्षुओं की संख्या सौ थी। वहाँ के भिक्षुओं के पास पर्याप्त साधन थे। अत: यात्रियों के स्वागत-सत्कार में कोई कठिनाई नहीं होती थी। एक दिन अचानक वहाँ 500 भिक्षुओं का समूह (जत्था) आ पहुँचा जिनका स्थानीय विहार में भोजन आदि से स्वागत-सत्कार किया गया। इत्सिग के समय की गणना के लिए प्रयुक्त एक ऐसे विशिष्ट विधान का वर्णन किया है जिसका इन विहारों में प्रयोग किया जाता था।[32]

उत्खनन- सर्वप्रथम कसिया के अवशेषों को प्रकाश में लाने का श्रेय बुकानन[33] तथा लिस्टन को है।[34] कुशीनगर को कसिया से समीकृत करते हुए भी ये विद्वान् इस स्थल के ऐतिहासिक महत्व से अवगत न थे। एच0एच0 विल्सन ने 1854 ई0 में कसिया को कुशीनगर से समीकृत किया।[35] लेकिन कुशीनगर की ओर इतिहास प्रेमियों का ध्यान कनिंघम द्वारा 1860-61 ई0 में इस क्षेत्र का उत्खनन के बाद ही पता चला। कनिंघम ने उत्खनन के परिणामों के आधार पर आधुनिक 'कसिया' को कुशीनगर से समीकृत किया।[36] उत्खनन के दौरान कनिंघम ने यहॉ माथा कुँवर का कोट तथा रामाभार नामक दो बड़े और कुछ अन्य छोटे टीले मात्र अवशिष्ट थे। यह समस्त भू-भाग वनाच्छादित तथा दुर्गम्य था। निकटवर्ती गाँवों के निवासी इन टीलों की ईटें निकाला करते थे, जिससे प्राचीन स्मारकों का दुरूप्रयोग हो रहा था। मुकुट बंधन चौत्य के ऊपर रामाभार भवानी की मठिया तथा एक अन्य स्तूप के ऊपर किसी नट की समाधि बन चुकी थी।[37]

कनिंघम के बाद उनके सहायक अधिकारी कार्लाइल ने 1857 से 1877 ई0 तक कसिया में महत्वपूर्ण सर्वेक्षण किया तथा कई टीलों का उत्खनन करवाया। कसिया के सुप्रसिद्ध परिनिर्माण प्रतिमा मंदिर तथा निकटतम स्तूप के अनुसंधान का श्रेय कार्लाइल को ही प्राप्त है।[38] प्रांतीय सरकार की ओर विंसेट स्मिथ ने सन् 1896 में कसिया का सर्वेक्षण किया।[39]

कुशीनगर के पुरावशेष- कुशीनगर के बौद्ध स्मारक मुख्यत: दो स्थानों पर केंद्रित है। शालवन, जहाँ तथागत को परिनिर्वाण प्राप्त हुआ था तथा मुकुट बंधन चौत्य, जहाँ उनका दाह-संस्कार हुआ था। परिनिर्वाण स्थल को अब 'माथा कुँवर का कोट' कहा जाता है, जबकि मुकुट बंधन चौत्य का प्रतिनिधित्व आधुनिक रामाभार का टीला करता है। 'माथा कुँवर का कोट' के गर्भ में परिनिर्वाण मंदिर तथा मुख्य स्तूप छिपे हुए थे। ये दोनों स्तूप कुशीनगर के सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्मारक थे।

मुख्य स्तूप- सर्वप्रथम कार्लाइल ने 1879 ई0 में इस स्तूप का उत्खनन किया था। उस समय यह बहुत ही जीर्ण-शीर्ण दशा में था। इस स्तूप के शिखर और खंड भाग पूर्णत: नष्ट हो चुके थे।[40] व्हेनसाँग ने इस स्तूप की ऊँचाई 200 फुट बताया है लेकिन कार्लाइल ने शिखर सहित इसकी ऊँचाई 150 फुट बताया है। कार्लाइल के अनुसार इस स्तूप के नीचे अनेक प्राचीन ध्वंसावशेष दबे हुए थे।

हीरानन्द शास्त्री के निर्देशन में सन् 1910 ई0 में इस स्तूप का पुन: उत्खनन कार्य आरंभ हुआ। ऊपर के गुबंद को हटाने पर गोलाकार भित्ति में सबसे ऊपर कुछ नक्काशीदार ईटें और जयगुप्त राजा के नाम का एक ताँबे का सिक्का मिला। ऐसा प्रतीत होता कि इन नक्काशीदार ईटों को अन्य प्राचीन स्मारकों से लिया गया था।[41] उत्खनन करने पर 14 फुट (2.74 मीटर) नीचे ईटों का एक वृत्ताकार कक्ष मिला।[42] इसकी ऊँचाई एवं व्यास 0.64 मीटर (2 फुट 1 इंच) था। इसके अन्दर ताम्रपत्र द्वारा बंद एक ताम्रघट रखा था। इसके अन्दर बालू, लकड़ी के कोयले, कीमती पत्थर, कौड़ियाँ तथा दो ताम्र नलियाँ प्राप्त हुई है।

इस स्तूप के 10.36 मीटर नीचे उत्खनन करने पर 2.82 मीटर ऊँचे एक छोटे स्तूप का अवशेष मिला। इसके पश्चिमी पार्श्व में प्रथम शताब्दी की निर्मित तथागत की एक ध्यानावस्थित मृणमूर्ति स्थापित की गयी थी।[43] स्तूप के अन्दर एक मिट्टी के पात्र में कुछ जला हुआ कोयला रखा था। संभवत: यह कोयला किसी भिक्षु की चिता का था जो इस पात्र में रख दिया गया था। यह स्तूप अच्छी दशा में था, अत: हीरानन्द शास्त्री ने इस स्तूप को मुख्य स्तूप से बहुत पूर्व का माना है।[44]

परिनिर्वाण मंदिर- सर्वप्रथम कार्लाइल ने 1876 ई0 में इस मंदिर तथा परिनिर्वाण प्रतिमा को खोज निकाला था। यह मंदिर मुख्य स्तूप के पश्चिम में स्थित था। कार्लाइल को ऊँची दीवाले तो मिली लेकिन छत के अवशेष नहीं प्राप्त हुए थे। इसमें केवल गर्भगृह तथा उसके आगे एक प्रवेश कक्ष था। इस गर्भगृह के उत्खनन के दौरान कार्लाइल को एक ऊँचे सिंहासन पर बुद्ध की 20 फुट (6.1 मीटर) लम्बी परिनिर्वाण की प्रतिमा प्राप्त हुई थी। बुद्ध की प्रतिमा चित्तीदार बलुआ पत्थर की है। इसमें तथागत को पश्चिम की तरफ मुख करके लेटे हुए तथा उनका सिर उत्तराभिमुख है, दाहिना हाथ सिर के नीचे तथा बायाँ हाथ जंघे पर स्थित है। पैर एक-दूसरे के ऊपर है।[45] इस प्रतिमा को ईटों के बने एक सिंहासन पर स्थापित किया गया था। यह सिंहासन 24 फुट लम्बा और

5 फुट 6 इंच चौड़ा था। सिंहासन के ऊपर पत्थर की पट्टियाँ जड़ी हुई उसके अग्रभार में तीन शोक संतप्त मूर्तियाँ है।[46] प्रतिमा के नीचे पाँचवी शताब्दी का लेख उत्कीर्ण है।[47] इस लेख से स्पष्ट होता है कि परिनिर्वाण मूर्ति का प्रतिष्ठापक हरिबल नामक व्यक्ति था।[48] तथा इसका शिल्पी मथुरा का दिन्न था। कार्लाइल के अनुसार अन्वेषित इस परिनिर्वाण मंदिर का निर्माण 11वीं-12वीं शताब्दी में हुआ होगा, जबकि कुशीनगर अवनति की ओर अग्रसर था। कार्लाइल ने इस प्रतिमा की मरम्मत तथा मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया।[49] आधुनिक समय में इसका कई बार जीर्णोद्धार होता रहा।[50]

मंदिर के चारों तरह विहार बने हुए थे। जिन्हें अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से कई वर्गो में विभाजित करके इन विहारो और स्तूपों का उत्खनन कार्य किया गया है जो पश्चिमी वर्ग, दक्षिणी वर्ग, पूर्वी भाग तथा उत्तरी वर्ग में है।

माथा कुँवर का मंदिर - परिनिर्वाण मंदिर से दक्षिण-पश्चिम दिशा में कुछ दूर चलने पर माथा कुँवर का मंदिर मिलता है। इसका उत्खनन कार्लाइल ने किया था तथा यही पर तथागत को महापरिनिर्वाण प्राप्त किया था। इसके खंडहरों को आजकल माथा कुँवर कोट मंदिर के नाम जानते है।[51] इस मंदिर में भूमि स्पर्श मुद्रा में तथागत की 3.05 मीटर ऊँची विशाल मूर्ति स्थापित थी। जो गया के काले पत्थर से निर्मित थी। इस मूर्ति की पादपीठिका पर 11वीं शताब्दी का एक लेख है जिससे पता चलता है कि इस मूर्ति और मंदिर की रचना 11वीं-12वीं शताब्दी किसी कलचुरि नरेश के समय में हुई होगी।[52] जनरल कनिंघम ने 1861 ई0 में इस मूर्ति को पाया था। जो बाद में कार्लाइल ने 1876 ई0 में इस मंदिर की खुदाई करवाई। पुनः 1911 में उत्खनन से इसका प्राचीन सिंहासन भी प्राप्त हुई। इस मूर्ति की मरम्मत कराने के बाद उसे पुनः पुराने स्थान पर स्थापित कर दिया गया तथा 1927 ई0 में स्थान पर वर्तमान मंदिर का निर्माण किया गया।

उत्खनन से तथागत के जीवन की घटनाओं से संबद्ध 10वीं-11वीं शताब्दी की मिट्टी की मुहरें प्राप्त हुई है। कार्लाइल को इसी समय का एक शिलापट्ट भी प्राप्त हुआ था[53] जिससे इसके कलचुरि वंश के किसी स्थानीय शासक (संभवतः भीमत द्वितीय) द्वारा बनवाए जाने की पुष्टि होती है। आधुनिक युग में माथा कुँवर नाम से एक नये मंदिर का निर्माण हुआ। इस समय अन्य प्राचीन अवशेषों के अलावा यह मंदिर और स्तूप ही कुशीनगर के मुख्य दर्शनीय स्थल है। तथागत की 1956 ई0 में 2500 वीं जयंती के अवसर कार्लाइल द्वारा निर्मित परिनिर्वाण मंदिर को तोड़कर विस्तृत एवं भव्य नये मंदिर का निर्माण किया गया।

रामाभार का टीला- कुशीनगर-देवरिया मार्ग पर माथा कुँवर मंदिर से 1.61 किलोमीटर की दूरी पर रामाभार नाम से प्रसिद्ध एक टीला है। टीले के पास रामाभार झील व तालाब भी स्थित है। संभवतः इस टीले का नामकरण उक्त झील के नाम पर ही किया गया हो। इस स्थान पर मल्लों की अभिषेक शाला थी तथा वहीं पर तथागत का अंतिम संस्कार किया गया था। अतः इसे उस समय 'मुकुट बंधन चौत्य' के नाम से जाना जाता था।[54]

कनिंघम के प्रथम सर्वेक्षण के दौरान रामाभार 'भवानी की मठिया' बन चुकी थी। समस्त भूभाग वनाच्छादित तथा दुर्गम्य था। निकटवर्ती गाँववासियों के द्वारा इन टीलों की ईटें निकाल लिए जाने के कारण यह मात्र खंडहर के रूप में अवशिष्ट था। प्रथम बार इसका उत्खनन एक राज्य कर्मचारी ने कराई थी।[55] हीरानन्द शास्त्री की अध्यक्षता में उत्खनन का द्वितीय चरण 1910 ई0 में प्रारंभ हुआ जिससे इसके वास्तविक स्वरूप का पता चलता है। 115 फुट व्यास में इसकी नींव थी तथा ऊपर 112 फुट व्यास का स्तूप बना था।[56] शास्त्री जी को 1.52 मीटर नीचे उत्खनन से ईंटों की एक दीवाल का पता चला। लेकिन इस भवन की तिथि के विषय में कुछ कह पाना संभव नहीं हैं।

शास्त्री जी को टीले के पूर्वी भाग में खुदाई से एक बड़े स्तूप का अवशेष प्राप्त हुआ था। खुदाई से मिली मौर्यकालीन ईटें इस स्तूप की प्राचीनता की परिचायक है। स्मरणीय है कि यह स्तूप भी कई बार बनाया गया। स्तूप के अवशिष्ट भाग से पता चलता है कि मुकुट बंधन-स्तूप शालवन के परिनिर्वाण स्तूप से अधिक विस्तृत था। इस स्तूप के चारों ओर अन्य छोटे स्तूप, मंदिर और विहारों के अवशेष प्राप्त हुए हैं।

मुख्य स्पूत की भाँति यह चौत्य भी अपनी पवित्रता के लिए प्रसिद्व था। संभवतः इसीलिए इस चौत्य के चारों ओर सहायक स्मारक बने हुए थे।

कुशीनगर से प्राप्त वस्तुएँ- कुशीनगर के खण्डहरों से मिली बड़ी मात्रा में पत्थर, मिट्टी तथा धातु की मूर्तियँ, सिक्के, मुहरें, विभिन्न प्रकार के पात्र, चित्रित प्रस्तर खंड, काष्ठ स्तंभ, नक्काशीदार ईटें आदि प्राचीन कुशीनगर के महत्व के परिचायक है। यहाँ से मिली मूर्तियों में अधिकांश मिट्टी और पाषाण की बनी हुई है। विभिन्न मूर्तियों में तथागत और बोधिसत्व की प्रतिमाएँ प्रमुख है।

धातु और पाषाण के कुछ पात्र तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ भी प्राप्त हुई है। परिनिर्वाण स्तूप से स्वर्ण, रजत और ताम्र नलिकाएँ भी प्राप्त हुई है, जिसमें धातु खंड रखे गये थे। प्राप्त धातु पात्रों में लोटा, चम्मच, घंटा, धूपदान इत्यादि मुख्य रूप से वर्णन किया गया है। एक चम्मच 2.15 सेंटीमीटर लम्बा प्राप्त हुआ है।[57] एक लोहे की कुल्हाड़ी भी प्राप्त हुई है। पत्थर की बनी वस्तुओं में चक्की और तश्तरी मुख्य रूप से है। मिट्टी की बनी हुई वस्तुओं की संख्या सबसे अधिक है। इनमें विभिन्न प्रकार के बर्तन (मनुष्य तथा पशु आकृतियों से चित्रित), दीपक, मिट्टी की गोलियाँ और मकराकृति वाला धूपदान उद्धरित है।[58] कुशीनगर से 995 मिट्टी की मुहरें भी प्राप्त हुई है। इनमें 314 अखंडित और 681 खंडित है। महापरिनिर्वाण और मुकुट बंधन विहारों की प्रारंभिक मुद्राओं पर भिन्न-भिन्न लेख और चित्र उत्कीर्ण है। इन मुहरों में 250 मुहरें 720 ई0 की तथा 540 मुहरे 900 ई0 की हैं। इसके अलावा एक मुहर जिस तथागत को दो साल वृक्षों के नीचे परिनिर्वाणावस्था में प्रदर्शित किया गया हैं, 400 ई0 की है।[59] इन विहारों से मिली परवर्ती मुहरें जिन पर धर्मचक्र तथा हिरण के चिन्ह अलंकृत है; सारनाथ से मिली मुहरों से समानता लिए हुए है। एक अन्य मुहर पर 'आर्याष्ट वृद्धे' नामक लेख उत्कीर्ण है। संभवतः यह उन आठ स्तूपों की तरफ संकेत करता है जिनमें तथागत के अस्थि अवशेष समाधिस्थ किए गये थे।[60]

कुशीनगर के अवशेषों में बहुत कम सिक्के अपलब्ध हुए है। यहाँ से मिली अन्य वस्तुओं में कीमती पत्थर(मूँगा, मोती, माणिक, पन्ना) के मनके, कौडिघ्याँ और हाथी-दाँत की मुहरें भी है परन्तु इनकी संख्या बहुत कम है। इस स्थल के लम्बे इतिहास तथा महत्व को देखते हुए यहाँ से मिली पुरातात्विक सामग्री बहुत कम है। संभवतः इसका मुख्य कारण यह है कि कुशीनगर के बौद्ध अवशेष किसी दुर्घटना के कारण आकस्मिक विनाश को नहीं प्राप्त हुए, लेकिन उनका धीरे-धीरे विनाश हुआ। इस प्रक्रिया में यहाँ जो भी महत्वपूर्ण पुरावस्तुएँ रही वे अन्य लोगों द्वारा पहले ही हटा ली गई तथा कालांतर में यहाँ के अवशेष वनों से आच्छादित हो गए।[61]

संदर्भ सूची

1 डॉ0 भिक्खु, तिपिटकाचार्य धर्मरक्षित, कुशीनगर का इतिहास, 2013, पृ013 पर उद्धरित पाद टिप्पणी 1 दृष्टव्य है।

2 मज्झिम निकाय 2/3/17

3 दिल्ली के आस-पास का कोई तत्कालीन प्रसिद्ध नगर और राजधानी दृष्टव्य- मज्झिम निकाय 2/3/32

4 (i) दीघनिकाय, भाग- 2, पृ0 109,
(ii) दीपवंस, भाग-3, पृ0 32

5 दिव्यावदान, पृ0 152, 153, 194

6 वही, पृ0 108

7 (अयं कुशीनारा कुशावती नाम राजधानी अहोसि....) दृष्टव्य, दीघनिकाय, (हिन्दी अनुवाद, राहुल सांस्कृत्यायन एवं जगदीश कश्यप, महाबोधि सभा, सारनाथ) (वाराणसी, 1935 ई0), भाग-2, पृ0 146-152

8 दीघ निकाय, भाग- 2, पृ0 170-171

9 (प) इस नदी को अधिकांश विद्वानों ने छोटी गंडक से समीकृत किया है; दृष्टव्य, कनिंघम, ऐश्येंट ज्योग्राफी ऑफ इंडिया, पृ0 364
(ii) भिक्षु धर्मरक्षित के मतानुसार कसिया के समीप बहने वाली कुसमीनारा तथा हिरवा की नारी उसी के अवशेष है। दृष्टव्य, भिक्षु धर्मरहित, कुशीनगर का इतिहास, पृ0 32

10 (i) सारत्थप्पकासिनी, जिल्द- 1, पृ0 222,
(ii) उपाध्याय, भरत सिंह, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, प्रथम संस्करण, पृ0 320

11 (i) आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, वार्षिक रिपोर्ट, 1861-62, पृ0 77-38,
(ii) ऐंश्येंट ज्योग्राफी ऑफ इंडिया, पृ0 364

12 सुमंगल विलासिनी, भाग-2, पृ0 573
(पावानगरतो तोणि गावुतानि कुसीनारा नगर)

13 उपाध्याय, भरत सिंह, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, (प्रथम संस्करण), पृ0 318

14 'कुसीनारातों याव राजगहं पंचसीवति योजनानि'
सुमंगल विलासिनी, भाग- 2, पृ0 609

15 'एकाहेनेव योजनसतिकं मग्गं खेपेत्व..... सावलनगरं पाविसि'
जातक, खंड 5, पृ0 290 (फाउसबाल संस्करण)

16 सुमंगलविलासिनी, भाग-2, पृ0 573

17 डॉ0 सिंह, अशोक कुमार, उत्तर प्रदेश के प्राचीनतम् नगर, 2011, पृ0 94 पर उद्धरित पाद टिप्पणी 31 दृष्टव्य है।

18 व्हेनसाँग ने भ्रमवश दाह-चौत्य को नगर से उत्तर की ओर बताया है। दाह-संस्कार की विधि स्वयं बुद्ध ने आनन्द को बताई थी। वही विधान आनंद ने मल्लों को बताया। दृष्टव्य, दीघनिकाय, भाग-2

19 उपाध्याय, भरत सिंह, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल (प्रथम संस्करण), पृ0 321

20 उद्धरित है उत्खनन से वेठ द्वीप विहार की एक मुहर मिली है जिस पर लेख 'श्री विष्णु द्वीप विहार भिक्षु-संघस्य' अंकित है। दृष्टव्य, आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, वार्षिक रिपोर्ट, 1906-07, पृ0 61

21 (i) मललसेकर, जी0पी0, डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापर नेम्स (पालि टेक्ट्स सोसाइटी 1974, पुनर्मुद्रित), भाग- 1, पृ0 654
(ii) दीघनिकाय, भाग-दो, पृ0 150

22 मार्शल, ए गाइड टू साँची, पृ0 53-54 और प्लेट सं0- 4

23 राय, उदयनारायण, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, पृ0 362

24 गाइल्स, ट्रेवेल्स् ऑफ फाहियान, पृ0 41

25 ह्वेनसाँग द्वारा वर्णित यह हिरण्यवती नदी ही थी जो नगर के दक्षिण में बहती थी। दृष्टव्य, लेग्गे, जेम्स, दि ट्रेवेल्स ऑफ फाहियान(दिल्ली, 1972), पृ0 70, पाद टिप्पणी।

26 यह बनारस का एक ब्राह्मण था जो बुद्ध से शिक्षा ग्रहण करने के लिए यहाँ आया हुआ था। दृष्टव्य, दीघनिकाय, भाग दो, पृ0 144

27 वाटर्स, आन युवान च्वॉग्स ट्रेवेल्स इन इंडिया, भाग- 2, पृ0 134

28 इस चुंड को दीघनिकाय में पावा का निवासी बतलाया गया है। फाहियान ने भी इस स्तूप का उल्लेख नही किया है। दृष्टव्य, दीघनिकाय, भाग-2, पृ0 135-136

29 डॉ0 सिंह, अशोक कुमार, उत्तर प्रदेश के प्राचीनतम् नगर, 2011, पृ0 95 पर उद्धरित पाद टिप्पणी 45 दृष्टव्य है।

30 दीघ निकाय, भाग-2, पृ0 28

31 बील, सेमुअल, बुद्धिस्ट रिकाड्र्स आफ दि वेस्टर्न वर्ल्ड, भाग-3 (कलकत्ता, 1958), पृ0 287।
दीघ निकाय के अनुसार यह स्थान नगर से पूर्व में था। भाग-2, पृ0 141

32 तकाकुसू, जे0, ए रेकार्ड आफ दि बुद्धिस्ट रिलिजन(लंदन, आक्सफोर्ड, 1896) पृ0 29-30, 38-39 और 145
33 ईस्टर्न इंडिया, भाग- 2, पृ0 357
34 जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ् बंगाल, 1837, पृ0 357
35 जर्नल ऑफ् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, 1856, पृ0 246, यहाँ इसका नाम 'कुसिया' दिया गया है।
36 आर्कियोलाजिकल् सर्वे ऑफ् इंडिया रिपोर्ट्स, अंक 1, पृ0 76-85
37 दत्त, नलिनाथ और बाजपेयी, कृष्णदत्त, डेवलपमेंट ऑफ बुद्धिज्म इन उत्तर प्रदेश (पब्लिकेशन ब्यूरो, लखनऊ, 1956), प्रथम संस्करण, पृ0 357
38 (i) आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया (वार्षिक रिपोर्ट), अंक 18, (कलकत्ता, 1883), पृ0 62 और आगे,
(ii) वही, अंक 22 (कलकत्ता, 1885), पृ0 16 और आगे।
39 जर्नल ऑफ् दि रायल एशियाटिक सोसायटी, 1902, पृ0 139
40 डॉ0 सिंह, अशोक कुमार, उत्तर प्रदेश के प्राचीनतम् नगर, 2011, पृ0 96 पर उद्धरित पाद टिप्पणी 59 दृष्टव्य है।
41 आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इंडिया (वार्षिक रिपोर्ट), 1910-11, पृ0 64
42 मित्रा, देवला, बुद्धिस्ट मानुमेंट्स, (कलकत्ता, 1971), पृ0 70
43 वही,
44 आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, वार्षिक रिपोर्ट, 1910-11, पृ0 64-65
45 (i) कार्लाइल को यह मूर्ति 1877 ई0 में खुदाई करते समय ऊपरी सतह से 10 फुट नीचे मिली थी। उसी समय यह मूर्ति कई खंड़ो में विभक्त थी। इस मूर्ति की पहले भी मरम्मत की गई थी। दृष्टव्य आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया रिपोर्ट्स, भाग 18, पृ0 57-58 और भाग 22, पृ0 17
(ii) ऐसा लगता है कि इस प्रकार की प्रतिमाओं का कुशीनगर में प्राधान्य था ओर इनकी पूजा की जाती थी। परिनिर्वाण से संबधित अन्य छोटी प्रतिमाएँ भी मिली हैं। इसी प्रकार की एक विशाल प्रतिमा अजंता की गुफा न0 26 में भी उपलब्ध हैं। दृष्टव्य, दत्त, नलिनाक्ष एवं बाजपेयी, कृष्णदत्त, डेबलपमेंट ऑफ बुद्धिज्म इन उत्तर प्रदेश, पृ0 360 (पाद टिप्पणी)।
46 डॉ0 सिंह, अशोक कुमार, उत्तर प्रदेश के प्राचीनतम् नगर, 2011, पृ0 96 पर उद्धरित पाद टिप्पणी 68 दृष्टव्य है।
47 देयधर्म्मोयं महावीर स्वामिनो हरबलस्य।
प्रतिमा चेयं घटित दिन्नेन माथुरेण।।
दृष्टव्य, आर्कियोलाजिकल् सर्वे ऑफ् इंडिया एनुअल रिपोर्ट्स, 1906-07, पृ0 49
48 डॉ0 सिंह, अशोक कुमार, उत्तर प्रदेश के प्राचीनतम् नगर, 2011, पृ0 96 पर उद्धरित पाद टिप्पणी 70 दृष्टव्य है।
49 वही, पाद टिप्पणी 73 दृष्टाव्य है।
50 वही, पाद टिप्पणी 74 दृष्टव्य है।
51 कनिघम, ए0, दि ऐंश्येंट ज्योग्राफी ऑफ् इंडिया (इंडोलाजिकल बुक हाउस, वाराणसी, 1963) पृ0 364
52 मित्रा,देवला, बुद्धिस्ट मानुमेंटस, पृ0 71
53 उद्धरित, अभिलेख, मिराशी,बी0वी0, इंस्क्रिप्शंस ऑफ दि चेदि कलचुरि एरा, प्लेट दो, कार्पस् इंस्क्रिप्सनम् इंडिकेरम, भाग4 (ऊटकसंड,1955), पृ0 375 और आगे।
54 (i) दीघ निकाय, भाग 2 पृ0 141, 161;
(ii) चीनी यात्री व्हेनसाँग ने भी इसका उल्लेख किया है। दृष्टव्य, बील, सेमुअल, बुद्विस्ट रेकाड्र्स ऑफ दि वेस्टर्न वर्ल्ड, भाग-3 पृ0 287
55 आर्कियोलाजिकल् सर्वे ऑफ इंडिया रिपोर्ट्स, भाग 18, पृ0 75
56 मित्रा, देवला, बुद्विस्ट मानुमेंट्स (कलकत्ता, 1971 ई0), पृ0 71
57 आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, वार्षिक रिपोर्ट, 1906-07, पृ0 55
58 दत्त, नलिनाक्ष एवं बाजपेयी, कृष्णदत्त, डेवलपमेंट् ऑफ बृद्धिज्म इन उत्तर प्रदेश (लखनऊ, 1956), पृ0 364
59 आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, वार्षिक रिपोर्ट, 1906-07, पृ0 58
60 (i) वही, पृ0 90
(ii) मित्रा, देवला, बृद्विस्ट् मानुमेंट्स, पाद टिप्पणी, पृ0 69
61 (i) आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, (वार्षिक रिपोर्ट), 1904-05, पृ0 45
(ii) वही, 1910-11, पृ0 68-69

गुप्तकालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति का समालोचनात्मक अध्ययन

प्रभात कुमार यादव

शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

किसी भी समाज अथवा संस्कृति की अवस्था का सही आकलन उस समाज में स्त्रियों की स्थिति का आकलन करके ज्ञात किया जा सकता है। विशेष रूप से पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्रियों की स्थिति सदैव एक सी नहीं रही है भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। स्त्रियों की दशा में युग के अनुरूप परिवर्तन होता रहा है। भारतीय विचारकों ने स्त्रियों के प्रति आदर ही व्यक्त किया है तथा इन्हें 'देवी' और 'श्री' का प्रतीक माना है-

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्त्रताफला क्रिया:।।

स्त्री को पुरुष की 'अर्द्धांगिनी' के रूप में स्थान दिया गया है जिसके बिना किसी भी कर्त्तव्य की पूर्ति नहीं की जा सकती। जहाँ उनका अनादर होता है वहाँ समस्त कार्य असफल हो जाते हैं।

गुप्तकालीन साहित्यिक ग्रन्थों एवं कला प्रतिमानों में नारी का आदर्शमय चित्रण प्राप्त होता है, परन्तु व्यवहारिक रूप में उनकी स्थिति पहले की अपेक्षा दयनीय हो गई थी। गुप्तकालीन साहित्य में नारी की मर्यादा और सम्मान का वर्णन है। महाभारत में पत्नी के बिना जीवन शून्य माना गया है। इसमें स्त्री को समस्त रोगों और दु:खों का निदान माना गया है। रघुवंश में स्त्री को सखी, सचिव तथा 'प्रिय शिष्या' कहा गया है। स्वप्नवासवदत्तम् में उदयन वासवदत्ता को 'प्रिये' तथा 'प्रिय शिष्ये' कहता है। पत्नी पुरुष की सहधर्मिणी मानी जाती थी।

गुप्तकाल से पहले भारत में स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी। वैदिक काल में वह विदुषी तथा योद्धा होने के साथ-साथ कुशल गृहिणी के रूप में भी सम्मानित थी। रामायण, महाभारत काल में यद्यपि समाज में वह सम्मानजनक स्थिति में थी और उसे शिक्षा, सम्पत्ति आदि विभिन्न सामाजिक अधिकार प्राप्त थे, तथापि वैदिक काल की तुलना में उसकी स्थिति में गिरावट आयी थी। बौद्ध, जैन काल में यद्यपि स्त्रियों को प्रव्रज्या ग्रहण करने, पति चुनने आदि की स्वतंत्रता थी परन्तु न ही तो उन्हें सम्पत्ति में कोई विशेष अधिकार प्राप्त था और न ही उनकी शिक्षा-दीक्षा का विशेष ध्यान दिया जाता था और इस तरह समाज में इनकी स्थिति द्वितीय श्रेणी की थी। स्वयं भगवान् बुद्ध ने पहले संघ में इनके प्रवेश का विरोध किया परन्तु बाद में बौद्ध धर्म के शीघ्र पतन की चेतावनी देते हुए इन्हें स्वीकार कर लिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि छठी शताब्दी ई0पू0 में स्त्रियों की समाज में सम्मानजनक स्थिति थी और वे नृत्य, संगीत आदि की शिक्षा ग्रहण करती थीं। स्त्रियाँ भी सदाचार एवं धर्माचरण के प्रति प्रवृत्त थीं, जिससे स्त्रियाँ सैनिक कार्य भी करती थीं। परवर्ती काल में स्त्रियों की स्थिति में उतार-चढ़ाव देखने को मिलता है।

गुप्तकाल में स्त्रियों की सामाजिक मर्यादा को लेकर कुछ ऐसे विचार विकसित हुए जो बाद की शताब्दियों में उसकी विशेषता बन गए। अल्पायु में विवाह, सती प्रथा और सामाजिक कुरीतियों ने स्त्रियों के सामाजिक दायरे को पूर्ण रूपेण विकसित न होने दिया और आगे चलकर यही उनकी सामाजिक स्तर को गिराता चला गया। जन्म से मृत्यु तक वह पुरुष के नियंत्रण में रखने के लिए निर्देशित की गयी यद्यपि ये बन्धन उसकी पवित्रता और सुरक्षा के लिए थे। हर्षचरित में बाण ने लिखा है कि पिता के लिए कन्या एक समस्या है। धार्मिक, आर्थिक और वैयक्तिक सभी स्थितियों में स्त्रियों पर प्रतिबन्ध लगाये गये, उन्हें ऐसी सम्पत्ति कहा गया है, जो किसी को भी दी जा सकती थी। उनकी निरन्तर अधीनता पर विशेष बल दिया गया। निजी सम्पत्ति के विचारों पर आधारित पितृ प्रधान, वर्ग विभाजित समाज में यह स्वाभाविक था कि स्त्री को पुरुष के अधीन रखा जाये। गुप्तकालीन साहित्यिक कृतियों से भी स्त्रियों की दशा पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। पुरुष प्रधान समाज में पुत्री की अपेक्षा पुत्र का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण था।[1] पुत्रियों को जन्म देने वाली नारी को हेय दृष्टि से देखा जाता था।[2]

अविवाहित लड़कियाँ अपने अभिभावक के संरक्षण में रहती थीं।[3] किन्तु कन्या के साम्पत्तिक अधिकारों में वृद्धि हुई थी। पिता की मृत्यु पश्चात् उसके भाइयों द्वारा अपने हिस्से में से चतुर्थांश खर्च कर विवाह करने का नियम तो काफी पहले से बन चुका था।[4] याज्ञवल्क्य ने भी इसका समर्थन किया है।[5] बृहस्पति के अनुसार पुत्रहीन व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसकी सम्पत्ति उसकी पत्नी को मिलेगी और पानी के न रहने पर पुत्री को।[6] परन्तु नारद ने पुत्र के अभाव में पत्नी के स्थान पर पुत्री को रखा है।[7] विष्णु के अनुसार अविवाहिता पुत्री का हिस्सा माता तथा पुत्र के हिस्से के बराबर होना चाहिए।[8]

वैदिक युग में सामान्यत: युवावस्था प्राप्त करने पर ही लड़कियों का विवाह किया जाता था।[9] किन्तु वेदोत्तरकाल में विवाह योग्य आयु को कम करने की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो गई थी। सर्वप्रथम धर्मसूत्रकारों ने निर्देश दिया कि जहाँ तक सम्भव हो, कन्या का विवाह उसके रजस्वला होने के पूर्व कर देना चाहिए।[10] अल्तेकर के अनुसार लड़कियों के अल्पायु में विवाह करने की प्रथा तीसरी शताब्दी ई0पू0 सम्भवत: प्रचलन में नहीं थी।[11] मनु के अनुसार 30 एवं 24 वर्ष का पुत्र क्रमश: 12 तथा 8 वर्ष की कन्या के साथ विवाह कर सकता है।[12] अनुशासनपर्व में वर एवं कन्या के विवाह की उम्र क्रमश: 30 एवं 10 तथा 21 एवं 7 बताई गई है।[13] बृहस्पति ने भी इसका समर्थन किया है।[14]

इस सन्दर्भ में वात्स्यायन का मत सर्वाधिक उपयुक्त लगता है। उनके अनुसार कन्या की आयु वर से कम से कम 3 वर्ष कम होनी चाहिए।[15] प्राचीन भारतीय विचारकों ने हिन्दू संस्कारों के अन्तर्गत विवाह को महत्त्वपूर्ण संस्कार स्वीकार किया है। जिसमें पुरुष के साथ स्त्री को भी पर्याप्त महत्त्व दिया गया। इसका सर्वप्रमुख उद्देश्य सन्तान उत्पन्न कर वंश परम्परा को आगे बढ़ाना माना गया है।[16] कात्यायन के अनुसार विवाह विषयक विवादों को राजा को व्यक्तिगत रुचि लेकर शीघ्र सुलझाना चाहिए।[17]

गुप्तकाल में विवाह के गौरव व सम्मान को महत्त्व देते हुए सूत्र ग्रन्थों, स्मृतियों तथा पुराणों में विस्तार पूर्वक इसके स्वरूप व प्रकारों का वर्णन किया गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रों द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति होती है और यह सब पत्नी द्वारा ही सम्भव है।[18] गुप्तकालीन कन्याओं का विवाह सुयोग्य वर के मिलने पर ही होता था। इसका एक उद्धरण हमें अभिज्ञानशाकुन्तलम् में मिलता है, जिसमें दुष्यन्त कहते हैं कि क्या शकुन्तला आजन्म हिरणियों के साथ खेलती रहेगी, तब शकुन्तला की सखी उत्तर देती है कि योग्य वर मिल जाने पर पिता इसका विवाह कर देंगे।[19] मनु का भी मानना है कि अयोग्य वर के साथ कन्या का विवाह नहीं करना चाहिए।[20]

गुप्तकाल में विवाह की आयु बहुत कम कर दी गयी थी। बाल विवाह का चलन काफी हो गया था। स्मृतिकारों के अनुसार पिता को अपनी पुत्री रजस्वला होने से पूर्व ही दान कर देना चाहिए। स्मृतिकारों ने आठ प्रकार के विवाहों को मान्यता प्रदान की है जो ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्रजापत्य, आसुर, गन्धर्व, राक्षस और पैशाच हैं।[21] किन्तु प्रथम चार प्रकार के विवाहों को ही उत्तम माना गया है।[22]

गुप्तकालीन समाज में बहुविवाह का भी काफी प्रचलन था। याज्ञवल्क्य ने ब्राह्मण को तीन, क्षत्रिय को दो और वैश्य को एक पत्नी रखने का निर्देश दिया है।[23] विष्णु,[24] बृहस्पति[25] तथा नारद[26] आदि स्मृतिकारों ने ब्राह्मण को चार, क्षत्रियों को तीन, वैश्य को दो और शूद्र को एक पत्नी रखने का अधिकार दिया है। गुप्तकालीन प्राप्त अभिलेखों में महादेवी, परमदेवी, रानी, भट्टारिका विभिन्न उपाधियाँ एक से अधिक रानियों की उपस्थिति प्रकट करती हैं। मालविकाग्निमित्रम् में अग्निमित्र की दो रानियों का उल्लेख है।[27] गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की दो पत्नियाँ थीं- कुबेरनागा और ध्रुवदेवी।[28]

गुप्तयुगीन समाज में पुनर्विवाह का चलन था।[29] पुनर्विवाह के सम्बन्ध में स्मृतिकार यह भी विचार रखते हैं कि बाल-विधवा का ही पुनर्विवाह हो सकता है। यदि कोई स्त्री पति के रहते दूसरा विवाह करना चाहे तो यह निषेध था। सिद्धान्तत: वयस्क स्त्री यदि विधवा हो तो उसे पुनर्विवाह नहीं करना चाहिए। परन्तु व्यवहारत: विधवा विवाह के अनेक प्रमाण मिलते हैं। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने ही अपनी विधवा भाभी से विवाह किया था।

गुप्तकाल में आदर्श पत्नी की कल्पना की गयी है। पत्नी के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए वाराहमिहिर ने लिखा है कि मनुष्य धर्म, अर्थ, काम एवं सन्तान के लिए अपनी पत्नी पर आश्रित होता है।[30] कालिदास ने गृहिणी का पद स्त्री के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण तथा आदरणीय माना है[31] और पत्नी को घरेलू मामलों में सही मतदात्री, सखी तथा ललित कलाओं में शिष्या कहा है।[32]

कालिदास की साहित्यिक रचनाओं में पति-पत्नी की एकरूपता,[33] पति की उदारता,[34] पति-पत्नी प्रेम,[35] पत्नी की महत्ता,[36] पति-पत्नी सम्बन्ध[37] तथा विवाह के पश्चात् कन्या का पति के घर में रहना[38] श्रेष्ठ बताया गया है। पतिव्रता स्त्रियाँ[39] तथा पत्नी के यश से स्वर्ग की प्राप्ति[40] तथा धार्मिक अवसरों पर पत्नियों की भूमिका[41] का सम्पूर्ण विवरण दिया गया है। राजा अज को कालिदास ने पत्नी भक्त के रूप में दर्शाया है।[42] पत्नी की अनुपस्थिति में धार्मिक यज्ञ नहीं किया जा सकता था। इसीलिए राम ने अश्वमेघ यज्ञ सम्पन्न करते समय सीता की अनुपस्थिति में उनकी स्वर्ण प्रतिमा को उनके प्रतीक के रूप में अपने समीप रख लिया था।[43] समुद्रगुप्त के एरण प्रस्तर स्तम्भलेख में उसकी प्रधान महिषी दत्तदेवी को गुणवती, सहयोगिनी एवं पति परायण पत्नी बताया गया है।[44] भानुगुप्त के 510 ई0 के एरण अभिलेख में गोपराज की पत्नी को पति में अनुरक्ति तथा भक्ति रखने वाली कहा गया है।[45] बृहस्पति ने पत्नी को अर्धांगिनी माना है।[46] पत्नी की स्वतंत्र स्थिति होने का अधिकांश लेखकों ने विरोध किया है। सर्वप्रथम धर्मसूत्रकारों ने कहा है कि कौमार्यावस्था में पिता कन्या की रक्षा करता है; युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र। वह किसी भी अवस्था में स्वतंत्र रहने योग्य नहीं है।[47] पति के प्रतिकूल जाने वाली स्त्री के साथ न केवल दुर्व्यवहार किया जाता था अपितु उसे शारीरिक दण्ड भी दिया जाता था।

वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों में माता की रक्षा करना धर्म बताया गया है।[48] मत्स्यपुराण में यह विचार दिया गया है कि माता का परित्याग सर्वथा अनुचित है।[49] कुमारसम्भवम्[50] तथा मालविकाग्निमित्रम्[51] में वीर की माता होना सम्मान की बात कही गयी है। कौटिल्य[52] और मनु[53] ने माता को केवल स्त्रीधन का ही उत्तराधिकारी माना है। परन्तु बृहस्पति ने माता को दायभाग में प्रथम स्थान पर रखा है। विवेच्यकाल में कई धर्मशास्त्रकारों के अनुसार माता का हिस्सा उसके पुत्रों के हिस्से के बराबर होना चाहिए।[54]

गुप्तयुगीन विधवा स्त्रियों को दो भागों में बाँटा जा सकता है- प्रथम वैधव्य जीवन व्यतीत करने वाली और द्वितीय दूसरा विवाह करने वाली स्त्री।[55] पुनर्विवाह करने वाली स्त्रियों को अर्थशास्त्र में पौनर्भव[56] एवं पुनर्भू[57] कहा गया है। धर्मसूत्रों, स्मृतियों तथा अन्य ग्रन्थों में भी पुनर्भू (दूसरा विवाह करने वाली) के विषय में विवरण मिलते हैं। बौधायन[58] तथा वशिष्ठ[59] ने विशेष परिस्थितियों में विधवा के पुनर्विवाह के लिए अनुमति प्रदान की है। पति की मृत्यु पश्चात् विधवा

विवाह अच्छा नहीं समझा जाता था, आपस्तम्ब ने इसकी निन्दा की है।[60] याज्ञवल्क्य तथा नारद का मानना है कि कन्या का विवाह एक बार ही होता है।[61] कालिदास का विचार है कि दशरथ की मृत्यु के पश्चात् उसकी रानी की दशा वैसी ही सोचनीय हो गयी थी जैसे वृक्ष के कट जाने पर लताओं की होती है।[62] विधवा विवाह के ऐतिहासिक उदाहरण के रूप में ध्रुवदेवी का नाम उल्लेखनीय है, जिसने अपने देवर चन्द्रगुप्त से विवाह किया था।

गुप्तकालीन समाज में स्त्रियाँ यद्यपि स्वतंत्र जीवन व्यतीत करती थीं, फिर भी उनकी कुछ गतिविधियाँ बन्धनयुक्त थीं। स्त्रियाँ स्वतंत्रतापूर्वक बिना पर्दा किए घूम फिर सकती थीं परन्तु अजनबी व्यक्तियों से अनर्थक वार्तालाप करने का अधिकार उन्हें प्राप्त नहीं था।[63] विवाहिता स्त्रियाँ केवल बड़ों के समक्ष अवगुंठन का प्रयोग करती थीं। पाणिनी की अष्टाध्यायी के एक सूत्र में 'असूर्यपश्या' का उल्लेख मिलता है, जिससे यह ध्वनित होता है कि राजपरिवार की कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी थीं जो सूर्य के दर्शन नहीं कर पाती थीं।[64] अविवाहित कन्याओं, विधवाओं एवं पति की अनुपस्थिति में पत्नियों पर कुछ बन्धन थे। ऐसी स्त्रियाँ अकेले बाहर नहीं निकलती थीं।[65] पति के साथ पत्नियाँ कहीं भी आ-जा सकती थीं।

गुप्तकालीन समाज में व्याप्त बाल-विवाह जैसी सामाजिक कुरीति का सर्वाधिक दुष्परिणाम यह हुआ कि शिक्षा के स्तर पर स्त्रियाँ पिछड़ने लगीं। लेकिन गायन, लेखन, वादन, नाट्यशास्त्र, ललितकलाओं तथा अन्य कला विधाओं का अध्ययन कराया जाता था। कुमारसम्भव से ज्ञात होता हैं कि स्त्रियाँ लेखन कार्य के लिए भोजपत्रों का प्रयोग करती थीं।[66] विक्रमोर्वशीयम् में वर्णन है कि आर्या सत्यवती शिक्षा देने का कार्य करती थी।[67] सामान्यतः स्त्रियाँ सीमित स्तर तक ही शिक्षा प्राप्त कर पाती थीं, उच्च स्त्री शिक्षा का अभाव हो चला था।

गुप्तकाल में स्मृतिकारों द्वारा विधवाओं के नियमों का उल्लेख यह प्रमाणित करता है कि विधवाएँ जीवित रहती थीं। विष्णुस्मृति में तो स्पष्ट है कि कोई भी स्त्री शरीर जलाकर पति की आत्मा से नहीं मिल सकती है।[68] हालांकि इससे यह संकेत भी मिलता है कि कुछ स्त्रियाँ सती होती थीं। मृच्छकटिकम् नाटक में यद्यपि चारुदत्त की पत्नी का आत्मदाह वर्णित है एवं 510 ई0 के एरण अभिलेख से भी यह ज्ञात होता है कि हूण युद्ध में गोपराज की मृत्यु होने पर उसकी पत्नी सती हो गयी थी।[69] परन्तु सतीप्रथा के यह दृश्य आवेशात्मक ही प्रतीत होते हैं। प्राचीनकाल से चली आ रही नियोग प्रथा को इस युग में हतोत्साहित किया गया। बृहस्पति ने नैतिक पतन के कारण इस प्रथा को वर्जित बताया है।[70]

गुप्तकालीन समाज में वेश्यावृत्ति का प्रचलन भी बढ़ष् चुका था। वात्स्यायन के कामसूत्र के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति के समय से ही वेश्याएँ पुरुषों के संसर्ग से इन्द्रिय सुख तथा वृत्ति प्राप्त करती रही हैं।[71] प्रत्येक महत्त्वपूर्ण उत्सवों जैसे- पुत्रजन्म,[72] विवाह,[73] उद्यानयात्रा[74] एवं गोष्ठी आदि में नृत्य-संगीत के लिए उन्हें अधिकांशतः आमंत्रित किया जाता था। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि वेश्याओं तथा गणिकाओं को मन्दिर में पूजा करने की भी अनुमति थी और वे देवदासियों के रूप में देवालयों से सम्बद्ध थीं।[75]

इस प्रकार गुप्तयुगीन समाज में स्त्रियों की स्थिति से जुड़े लगभग समस्त पहलूओं पर विचार करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इस युग में पूर्ववर्ती युगों की भाँति भौतिक अथवा सांसारिक जीवन में नारी को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था परन्तु इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि अब धीरे-धीरे नारी पर पुरुष का नियंत्रण बढ़ता जा रहा था। उन्हें साम्पत्तिक अधिकार अवश्य प्रदान किए गए थे परन्तु उसके लिए उन्हें अपनी अस्मिता, स्वतंत्रता और स्वाभिमान के साथ समझौता करना पड़ता था। इस काल से ही धीरे-धीरे स्त्रियों को पुरुष की सम्पत्ति एवं भोग की वस्तु के रूप में देखा जाने लगा। अतः स्त्रियों के प्रति समाज का व्यवहार धीरे-धीरे संकीर्ण होता जा रहा था।

सन्दर्भ सूची

1. अल्तेकर, ए0एस0, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, पोजीशन ऑफ वीमेन, पृ0 3
2. बृहत्संहिता, 52/70, विवाहपटल, 34, 69, याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/73
3. बौधायन, 2/2/3/4, मनुस्मृति, 9/3, याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/85, नारद स्मृति, 13/30-31
4. मनुस्मृति, 9/118
5. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/124
6. बृहस्पति, 25/55
7. नारद स्मृति, 13/50
8. मातरः पुत्रभागानुसारेण भागापहारिण्यः। अनूढाश्च दुहितरः।, विष्णु, 18/34-35
9. अल्तेकर, ए0एस0, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, पोजीशन ऑफ वीमेन, पृ0 49-51, हिन्दू सभ्यता, पृ0 91
10. प्रदानं प्रागृतोः।, गौतम, 18/21
11. पोजीशन ऑफ वीमेन, पृ0 56
12. मनुस्मृति, 9/94
13. अनुशासन पर्व, 44/14
14. शकुन्तला राव शास्त्री, वीमेन इन सेक्रेड लॉज, पृ0 113
15. कामसूत्र, 3/1/2

16. रघुवंश, 11/7 एवं 25
17. कात्यायन, श्लोक 150-51
18. लोकानन्त्यं.....सुरक्षिता:।, याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.78
19. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4.13.1
20. प्रजनार्थ.....कश्चन।, मनुस्मृति, 9.26
21. वही, 3.21
22. राय, उदयनारायण, गुप्त सम्राट् और उनका काल, पृ0 343
23. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.57
24. विष्णुस्मृति, 24, 1-4
25. सेक्रेड बुक ऑफ दी ईस्ट, जिल्द-33, पृ0 374
26. नारदस्मृति, 12.4-6
27. मालविकाग्निमित्रम्, अंक 3
28. मिश्रा, ममता, गुप्तकालीन समाज व्यवस्था, पृ0 90
29. नारद स्मृति, 18.28
30. वृहत्संहिता, 73.14
31. कुमारसम्भवम्, 7/85
32. गृहिणी सचिव: सखी मिथ: प्रियशिष्य: ललितेकलाविधौ।, रघुवंश, 8/67
33. रघुवंश, 1.1; कुमारसम्भवम्, 1.50
34. वही, 1.31; 14.37
35. वही, 3.24; वही, 8.19
36. वही, 8.49
37. वही, 14.85-86, 15.61
38. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 5.17
39. रघुवंश, 9.16; मेघदूत, 2.36
40. वही, 14.14
41. कुमारसम्भवम्, 6.13; 8.51
42. रघुवंश,8.72 एवं 86
43. वही, 14.87; 15.61
44. कामिणी कुलवधु: वृतिनी निविष्टा, से0इं0, पृ0 261
45. वही, पृ0 336
46. बृहस्पति, 25/14
47. बौधायन, 2/2/3/4; वशिष्ठ, 2/3/50, 52
48. वायुपुराण, 69.107; ब्रह्माण्ड पुराण, 3.7.67
49. मत्स्यपुराण, 227.150
50. कुमारसम्भवम्, 7.87
51. मालविकाग्निमित्रम्, 5.16
52. अर्थशास्त्र, 59, पृ0 152-53, 160-61
53. मनुस्मृति, 9/194-200
54. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/123; नारद, 13/12; विष्णु, 18/34
55. ऋग्वेद, 10.18.8
56. अर्थशास्त्र, 3.60.12
57. वही, 9.5.28
58. पुनभूतर्या पौनर्भव।, अथर्ववेद, 3/60/12

59. बौधायन, 4/10/108
60. आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, 2.6.13.3-4
61. याज्ञवल्क्य स्मृति, 17.5; नारद, 12.28
62. रघुवंश, 14.1
63. अपरार्क की टीका, याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.83
64. अष्टाध्यायी, 3.2.26
65. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.84
66. कुमारसम्भवम्, 5.7
67. विक्रमोवर्शीयम्, अंक 5, पृ0 230
68. विष्णु स्मृति, 20.36
69. गुप्ता, पी0एल0, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, एरण अभिलेख, पंक्ति 5-7, पृ0 20
70. बृहस्पति स्मृति, 25.16, 27.20
71. वेश्यानां पुरुषाधिगमें रतिवृत्तिश्च संगीत।, कामसूत्र, 6/1/1
72. रघुवंश, 3/19, 16/12 एवं 17/69, कुमारसम्भवम्, 6/43, मेघदूत, 8/35
73. भगवतपुराण, 10/71/16
74. उभय, पृ0 139
75. पदम्प्रामृतक, पृ0 35, मेघदूत, 1/34-35

भारतीय समाज में जातिगत संघर्ष

प्रियंका दीक्षित

असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, श्री टीकाराम कन्या महाविद्यालय, अलीगढ़

प्राचीन काल में जाति सामाजिक स्तरीकरण के एक जटिल रूप में पूर्ण प्रभुत्व के साथ विद्यमान थी। यद्यपि एक बन्द व्यवस्था में जाति ने व्यवसायिक गतिशीलता को स्वीकार किया और कुछ विशेष परिस्थितियों में प्रस्थिति गतिशीलता को भी। समकालीन समय में जाति में तीव्रता से परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे है। परन्तु ये परिवर्तन जाति के मूल तत्वों से सम्बन्धित न होकर उसके प्रकार्यात्मक पक्ष से सम्बन्धित है। जाति व्यवस्था के सम्बन्ध में दो सम्प्रदाय अपने विचार व्यक्त करते है। पहले सम्प्रदाय के अनुसार जाति एक स्थिर व्यवस्था है जो स्वयं को पुर्नबलन देती है तथा दूसरे सम्प्रदाय का मानना है कि जाति परिवर्तन के दौर से गुजर रही है और वर्ग के विकास के मार्ग को प्रशस्त्र कर रही है।

जाति व्यवस्था पर ये दृष्टिकोण पूर्ण रूप से सत्य नहीं है। वर्तमान समय में जाति व्यवस्था अपनी स्पष्ट उपस्थिति के बावजूद अपने मूल तत्वों को यथास्थिति बनाये रखते हुए अपने प्रकार्यात्मक पक्ष के सम्बन्ध में परिवर्तनों को स्वीकार रही है। यह अपने लचीले स्वभाव के कारण ही परिवर्तित सामाजिक परिस्थिति के अनुसार वर्तमान में नये प्रकार्यो से स्वयं को सम्बन्धित कर रही है।

अत: जाति भारतीय समाज में लोगों के जीवन में ऐसा व्यापक तत्व है जो स्वयं नवीन परिस्थितियों के साथ अनुकूलन एवं सामन्जस्य कर रही है। भारतीय समाज में वृहद स्तर पर धर्मान्तरण की घटनाएं घटित हुई है किन्तु धर्मान्तरित लोग अभी भी अपनी जाति की पहचान से सम्बन्धित हैं। वर्तमान में भी ग्राम पंचायत से संसद के आम चुनावों में जाति के स्पष्ट प्रभाव को देखा जा सकता है।

जाति व्यवस्था की उत्पत्ति के साथ ही, जाति संघर्ष जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक अपरिहार्य प्रघटना रहा है। इसका कारण सामाजिक असमानता के मूल में है। सामाजिक संस्तरण में जातियों को उपलब्धि के आधार पर नहीं बल्कि जन्म के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। जिसके परिणामस्वरूप उच्च जाति, निम्न जाति और अस्पृश्य जाति श्रेणी में अपना स्थान प्राप्त करते है। कालान्तर में उच्च एवं निम्न जातियों के मध्य सामाजिक दूरी में वृद्धि हुई और जिसने सामाजिक भेदभाव का मार्ग प्रशस्त किया। संस्तरण में शीर्ष पर स्थित जातियों ने निम्न एवं अस्पृश्य जातियों पर विशेषाधिकारों शक्ति तथा प्रभुत्व का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। ऐसी परिस्थिति में निम्न जाति भेदभाव शोषण एवं अपमान का ग्रास बन रही थी। ये भारतीय समाज का वह दौर जब अस्पृश्यता एक गम्भीर समस्या बन चुकी थी। इसके परिणाम स्वरूप जातियों के मध्य तनाव, हिंसा एवं रक्तपात प्रारम्भ हो गया। जाति व्यवस्था ने व्यापक स्तर पर अर्थ व्यवस्था एवं आर्थिक विकास को प्रभावित किया। इसके अतिरिक्त पिछडे एवं अनुसूचित जाति के लोगों का भी नुकसान किया।

भारतीय समाज औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण और पश्चिमीकरण की प्रक्रिया से गुजर रहा था। इसी दौर में दमित लोगों में अपने अधिकारों एवं विशेषाधिकारों के प्रति चेतना जाग्रत हुई। स्वतंन्त्रता प्राप्ति के पश्चात सामाजिक आंदोलनों ने उनकी अभिव्यक्ति को मुखर किया। राजनीतिक जागरूकता एवं आधुनिक शिक्षा ने सीमा पर स्थित इन निम्न समूहो में नवजागरण का कार्य किया।

जाति भारतीय समाज की अनूठी एवं परम्परागत सामाजिक संस्था है। यह एक अंतर्विवाही इकाई है जिसकी सदस्यता जन्म पर आधारित है। सामाजिक संस्तरण में किसी भी व्यक्ति की स्थिति जन्म द्वारा ही निश्चित होती है। जाति वैवाहिक सम्बन्धों की स्थिति में अपने सदस्यों पर प्रतिबन्ध लगाती है। इसके सदस्य एक सामान्य पारम्परिक व्यवसाय का अनुसरण करते है। जाति के सदस्य एक सामान्य उत्पत्ति से स्वयं को सम्बन्धित करके एक सजातीय समुदाय का निर्माण करते है। एफ. जी. बेली ने कठोरता, शुद्धता, प्रदूषण और श्रेणी के आधार पर भारत में जाति व्यवस्था का विश्लेषण किया। योगेन्द्र सिंह ने दो मुददों पर आधारित संरचनात्मक जाति की अवधारणा को स्पष्ट किया- 1. क्या जाति को संरचनात्मक घटना के रूप में भारतीय माना गया है। 2. एक सांस्कृतिक वास्तविकता के रूप में, भारतीय परम्परा से सम्बन्धित है या भारतीय सीमाओं को पार करती है। इन दो सिद्धान्तों पर वे चार प्रकार के जाति सिद्धान्तों को स्पष्ट करते हैं - 1. सांस्कृतिक सार्वभौमिक 2. सांस्कृतिक विशेष 3. संरचनात्मक सार्वभौमिक 4. संरचनात्मक विशेष। इस प्रकार स्पष्ट है कि आनुंवाशिक व्यवसाय, अर्न्तविवाही और परम्परागत प्रकृति जाति व्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं। पवित्रता तथा अपवित्रता (शुद्धता एवं प्रदूषण) की अवधारणा तथा कर्मकाण्डीयता जाति व्यवस्था का अभिन्न अंग है।

समकालीन समय में नवीन प्रवृत्तियों के कारण शुद्धता और प्रदूषण सम्बन्धी अवधारणाएं धीरे-2 लुप्त हो रही है किन्तु इससे सम्बन्धित विचार एवं व्यवहार अस्पृश्यता विरोधी कानून द्वारा परिवर्तन के आधीन है। सामाजिक स्तरीकरण एक ऐसा संवेदनशील विषय है जो समाज में उच्चता और लोगों की श्रेणी को प्रदर्शित करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सामाजिक श्रेणी निर्धारक तथा एक आयामी है, बल्कि यथार्थता में ये बहुआयामी और बहुकारकवादी है। जाति वर्ग, प्रजाति, नृजातीयता आदि निश्चित रूप से सामाजिक असमानता के विधिक रूप है। जाति लोगों की वस्तुओं तथा व्यवसायों की कर्मकाण्डीय शुद्धता एवं प्रदूषण पर आधारित सामाजिक स्तरीकरण की मात्र एक व्याख्या नहीं हैं। आर्थिक एवं शक्ति का आयाम भी जाति व्यवस्था के केन्द्र में है।

संस्तरण और शक्ति जाति के प्रभुत्वशील तत्व है। विगत वर्षो में राजनीतिक क्षेत्र में जाति संस्तरण के अभिकथन से पहचान की विजय तक अग्रसर हुयी है। जाति प्रतियोगिता के लिए एक मंच का गठन करती है। जाति आधारित समूहों का निर्माण सुरक्षा के उदेश्य से या सामाजिक कारणों की वजह से होता है। ऐसे समूह किसी सकारात्मक नेतृत्व के साथ शक्तिशाली समूह को निर्मित करते हैं। अधिकांशत: दंगो के दौरान ये देखा जाता है कि मिथ्या अफवाहों को फैलाने से ऐसे जातीय समूह तीव्रता से औपचारिक या अनौपचारिक रूप से निर्मित्त होते है। ऐसे समूह अपने नेता के प्रभावशाली सम्प्रेषण तथा वक्तव्य से अत्यन्त प्रभावित होते है। ऐसे समूह अपने समूह के सदस्यों को पसंद तथा अन्य से स्वयं को सर्वोच्च समझते हैं। जातीय समूह अपनी जातीय समूह की पहचान, अस्मिता तथा सुरक्षा के लिए बाहरी लोगों पर आक्रामक भी हो जाते है। यद्यपि जातीय समूह सुदृढ़ता को प्रोत्साहित तथा सांस्कृतिक विरासत के आधार पर अपने सदस्यों में आत्म विश्वास उत्पन्न कर सकता है परन्तु ये विभाजन को भी प्रोत्साहित करता है जिससे जातीय संघर्ष का मार्ग प्रशस्त होता है। सन्दर्भ समूह जातीय समूह के सदस्यों के लिए एक कट्टरपंथी के समान है जो जातिवाद को प्रोत्साहित करते है।

जातीय समूहों ने हिंसा का भी आश्रय लिया है और कुछ सीमा तक अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में भी सफल हुए है। समूह हिंसा को दबाने के लिए अत्यधिक बल का प्रयोग किया जाता है। खुले समाजों में सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था की प्रतिक्रिया ऐसे संगठित समूहों की हिंसा हेतु एक निर्धारक का कार्य करती है। समाज में निरन्तर हिंसा राष्ट्र की अखण्डता को नष्ट करती है। अत: जातीय समूहों की हिंसा को शीघ्रता एवं तीव्रता से समाप्त करने की आवश्यकता है।

जाति संघर्ष सामान्यत प्रतिद्वन्दी जातिय समूह के प्रति लड़ाई संघर्ष तथा टकराव से सम्बन्धित है। एक ऐसा संघर्ष जिसमें एक जातीय समूह का उदेश्य अपने प्रतिद्वंदियों के प्रभाव को कम करना या उन्हें समाप्त करना है। संघर्ष ऐच्छिक नहीं है अपितु यह लक्ष्य प्राप्ति हेतु एक क्रिया को सन्दर्भित करता है। सत्ता और प्राधिकार प्रभुता से सम्बन्धित है। अत: दमित लोगों के द्वारा प्रभुजातियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की प्रवृत्ति के परिणाम स्वरूप विद्रोह एवं क्रान्ति की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है। ऐसी परिस्थितियों में जातीय संघर्ष अपरिहार्य प्रघटना बन जाता है।

निराशा, निर्धनता एवं भावात्मक रिक्तता हिंसा को प्रेरित करती है। हिंसा हेतु विभेदक अवसर, हिंसक संस्कृति सामाजिक अलगाव और संकट भी उत्तरदायी है। अव्यवस्थित व्यवस्था, भेदभावपूर्ण प्रथा, पूर्वाग्रह, कुन्ठा तथा अन्याय समाज में हिंसा के लिए अनुकूल परिस्थितियों को उत्पन्न करते है। आधुनिक समाज में नैतिक प्रतिमानों को क्रियान्वित करने वाली प्रमुख संस्थाओं परिवार, विद्यालय तथा धर्म का नियंत्रण शिथिल हो रहा है। वर्तमान जटिल समाज में विभिन्न समूहों द्वारा अर्थ एंव प्रस्थिति को अत्यधिक महत्व देने के फलस्वरूप विभिन्न समूहों द्वारा सामाजिक मानदण्डों का उल्लंघन किया जा रहा है। जिससे अपरिहार्य संघर्ष उत्पन्न होते है। समूह के मानदण्ड विश्वास और मूल्यों के अतिरिक्त अन्य विभिन्न उपसंस्कृति है जो समाज के अन्य वर्गो द्वारा स्वीकृत नहीं है।

अतीत में कठोर परिश्रम ही सफलता का आधार था जिसे वर्तमान में शैक्षिक और व्यवसायिक पृष्ठभूमि के साथ प्रतिस्थापित किया गया है। जो लोग महानगरों में पलायन करते है वे मलिन बस्ती तथा उपसंस्कृति को जन्म देने देते है और अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार हेतु असमर्थ होते है। निम्न शैक्षिक और व्यवसायिक कुशलता के कारण उनकी निम्न सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति जातिगत पूर्वाग्रहों और भेदभाव की निमित्त बनती है।

इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि संघर्ष तथा हिंसा एक स्वस्थ समाज का अपरिहार्य भाग है। दुर्खीम ने अपने एनामी के सिद्धान्त को स्पष्ट किया जो ऐसी परिस्थितियों को सन्दर्भित करती है जिसमें नियमों से आच्छादित व्यवहार अन्य की क्रियाओं को न तो आशान्वित करने में स्पष्ट है और न ही निश्चित परिस्थितियों में उनकी क्रियाओं के लिए सही मार्गदर्शन देती है। सामाजिक संरचना में उन व्यक्तियों पर दबाव बनाया जाता है जिनका व्यवहार सामाजिक मानदण्डों के विपरीत हैं। राबर्ट के मर्टन ने स्पष्ट किया कि सभी समाजों में व्यक्ति के व्यवहार को उचित दिशा देने के सांस्कृतिक लक्ष्य होते है तथा उन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु समाज द्वारा मान्यता प्राप्त साधन होते है। आधुनिक समाज में लोगों का मुख्य उदेश्य सम्पत्ति एवं प्रस्थिति प्राप्त करना है परन्तु शिक्षा तथा अवसरों की कमी के कारण प्रत्येक व्यक्ति इन्हें अर्जित नहीं कर सकता है। ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति लक्ष्यों को दरकिनार करके पलायनवादी बन सकता है या वह साधनों को अनदेखा करके अपराधी बन सकता है। इसक अतिरिक्त लक्ष्यों एवं साधनों दोनों को अस्वीकार करके नये लक्ष्यों तथा साधनों की स्थापना करें और विद्रोही होकर क्रान्तिकारी क्रियाओं में संलग्न हो जायें।

बहुजातीय एवं धार्मिक विकासशील समाजों में ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न होती है। इस प्रकार लक्ष्य प्राप्ति हेतु उपयुक्त साधनों पर बल न देकर सफलता को प्राथमिकता दी जाती है। धन और सम्पत्ति के लिए इस प्रकार का अनुचित दबाव समाज के लिए खतरे की घण्टी है। बिना अवसर प्रदान किये सफलता हेतु अनुचित दबाव अवैध हिंसक और आपराधिक व्यवहार को प्रोत्साहित करता है। अपराधियों के समूहों का निर्माण होता हे जो इस तरह के व्यवहार और मुख्य प्रणालियों को स्वीकार करते है। अल्बर्ट कुहन ने अपराध तथा प्रस्थिति हताशा की अवधारणा दी। उन्होंने स्पष्ट किया कि एक कामकाजी वर्ग के माहौल में, प्रदर्शन का मूल्यांकन करने के लिए मध्यम वर्ग के मानक तनाव की स्थिति को जन्म देते हैं।

मध्यम वर्ग मानकों को अस्वीकार करके मध्यम वर्गीय मूल्यों के विपरीत एक उपसंस्कृति का विकास करते हैं तथा त्वरित लाभ के लिए नकारात्मक व्यवहार का आश्रय लेते है। ऐसी तनावपूर्ण स्थिति अत्यधिक तथा तीव्र हिंसा को प्रोत्साहित करती है। उपेक्षित लक्ष्यों और अवसरों के मध्य असमानता का परिणाम असंतोष होता है तब व्यक्ति स्वयं को दोषी मानता है या फिर समाज को मानकर आपराधिक तथा हिंसक कार्यो की ओर अग्रसर होता है।

स्थितिजन्य कारक भी संघर्ष के लिए उत्तरदायी है। अनुचित साधनों की उपलब्धता, पीड़ितो की उपस्थिति एवं प्रस्थिति और उनकी नेतृत्व क्षमता आदि कई प्रासंगिक कारक है जिनकी संघर्ष में अहम भूमिका होती है।

जार्ज सिमेल ने संघर्ष को स्पष्ट करते हुए कहा कि संघर्ष समूह चेतना को मजबूत करके तथा अन्य समूहों से अलगाव की जागरूकता उत्पन्न करके समूहों के बीच सीमा निर्धारित करता है। समूहों के बीच पारस्परिक विरोध सामाजिक विभाजन और स्तरीकरण की व्यवस्था को संरक्षित रखता है। ये पारस्परिक

प्रतिकर्षण व्यवस्था के भीतर समूहों की पहचान को बनाये रखता है। साथ ही सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने में सहायता भी करता है। भारतीय जातियों के बीच संघर्ष विभिन्न जातीय समूहों की विशिष्टता बनाये रखने के साथ सामाजिक संरचना की स्थिरता को भी सुनिश्चित करता है। कोजर संघर्ष में शत्रुता की अभिव्यक्ति के कुछ सकारात्मक प्रकार्यो का वर्णन करते है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति तनाव की परिस्थिति में संबधों को बनाये रखती है और समूह विघटन को रोकती है। संघर्ष हवा को साफ करता है और शत्रुतापूर्ण विघटन की मुक्त व्यवहार अभिव्यक्ति की अनुमति देता है। इसे संघर्ष के 'सुरक्षा बाल्व सिद्धान्त' के रूम में माना जा सकता है, इसके अनुसार संघर्ष शत्रुता के लिए एक के रूप में कार्य करता है ताकि विरोधियों के बीच संबधो को बनाये रखा जा सकें।

इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि जाति ऐसी प्रघटना है जिनका अस्तित्वमान आज भी है। नवीन प्रवृत्तियों के आगमन से जाति की संरचना में परिवर्तन घटित हुए परन्तु उसकी मूल संरचना में परिवर्तन नहीं आया है। जाति के साथ जातीय समूहों के बीच तनाव तथा संघर्ष भी उससे सम्बन्धित रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. आहूजा, राम, 1997. ''सोशल प्रॉब्लमस इन इण्डिया'. रावत पब्लिकेशन: जयपुर।
2. आसादी, एम, एवं एस. राजेन्द्रन, 2000. 'चेन्जिग शेप ऑफ कास्ट कान्फलिक्ट'. इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली. 1610-1612।
3. दुर्खीम. इ. , 1897 'सुसाइड. रूटलेज एण्ड केगलपॉल: फ्रांस।
4. कुहन, ए. के., 1955, 'डेलीक्यून्ट ब्याज: द कल्चर ऑफ गैग'.।
5. मर्टन, आर. के. 1958. ' सोशल थ्योरी एण्ड सोशल स्ट्रक्चर: गिलिनको: द फ्री प्रेस।
6. मिश्रा, आर.बी, 1989. ' कास्ट एण्ड कास्ट कानफिलक्ट इन रूरल इण्डिया, कामनवेल्थ पब्लिसर: न्यू दिल्ली।

साहित्य का समकालीन विमर्श और किन्नर समाज

प्रो० माला मिश्र

दिल्ली विश्वविद्यालय

आज कल भारतीय समाज में और साहित्य में किन्नरों की समस्या एक सामाजिक समस्या के रूप में उभरकर सामने आ रहा है। अपना हक वह मांग रहा है। राजनीति में और चुनाव में भाग लेने का अधिकार उन्हें मिल रहा है। समाज में जीते जी उन लोगों को बहुत सी यातनाएं सहनी पड़ती हैं। भारतीय समाज एवं साहित्य में तृतीय लिंगी विमर्श किन्नर समाज के बारे में न केवल जानकारी देती है बल्कि उनके उत्थान की दिशा में महत्वपूर्ण विमर्श सुझाती है। वर्तमान समय के दो उपन्यासों में किन्नरों की त्रासदी का खुल्लम खुल्ला चित्रण पाए जाते हैं।

किन्नर रूप में जन्म लेने में एक बच्चे का कोई कसूर नहीं हैं। वह भी इश्वर की सृष्टि है। हम यही करते आये है कि एक अल्प विकसित या विकलांग बच्चे की सेवा ख़सुश्रूषा उसकी चिकित्सकीय सुविधाएं ,पढाई, लिखाई इत्यादि का भरपूर ध्यान रखते हैं। और वहीँ किन्नर बच्चा जो जन्म लेते ही उसे पल भर, रात दिन अपमानित होना पड़ता हैं। यह भी नहीं समाज उसे स्वयं से अलग कर देते हैं, अपने ही परिवार से विस्थापित हो जाने को मजबूर कर देते हैं। विस्थापन का दंश सबसे अधिक कष्टकारी होता है। किन्नर बच्चा सबसे पहली उपेक्षा और सबसे पहला विस्थापन अपने ही घर परिवार से पाता है। किन्नरों के लिए किस शब्द का प्रयोग करना चाहिए, इस पर बहस चल रही है। कुछ लोग इसकेलिए 'किन्नर' शब्द का प्रयोग करते है। कुछ तो 'उभयलिंगी' ,कुछ लोग 'त्रितीय लिंगी' जैसे शब्दों का प्रयोग करते है। क्योंकि किन्नर शब्द से गाली जैसा प्रतीत होते हैं। उन लोगों को सम्मान दिलाने के वास्ते ही इन्हीं शब्दों का प्रयोग करते हैं। साहित्यकार अधिकतर 'त्रितीयलिंगी' कहना उचित समझता है। कुछ बुद्धिजीवी लेखकों ने इन किन्नरों को हाशिये से ऊपर उठाकर समाज में जगह दिलाने केलिए किन्नर शब्दों का प्रयोग किया है। लिकिन कुछ लोगों को किन्नर शब्द दिए जाने पर आपत्ति महसूस होते हैं।

सभी सृष्टि के निर्माता इश्वर है। मनुष्यों में नर, नारी और उभयलिंगी भी उसी की रचना है। मनुष्यों में उभयलिंगी यानी किन्नरों को हाशिए में रखते चले आ रहे हैं। उन्हें सामाजिक मान्यता, आदर, सम्मान तो दूर। 'किन्नर' शब्द एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए गाली के रूप में इस्तेमाल करते चले आ रहे हैं, जो सुननेवालों के ह्रदय को भेद डालता है। किन्नरों की चार शाखाएं हैं- बुचारा, नीलिमा, मनसा और हँसा। बुचरा जन्मजात किन्नर होता है। नीलिमा स्वयं बने किन्नर है। मनसा स्वेच्छा से शामिल तथा हंसा शारीरिक कमी के कारण बने किन्नरों हैं।

हिंदी साहित्य में वास्तव में किन्नर विमर्श की शुरुवात नीरजा माधव जी के उपन्यास 'यमदीप' से माने जा सकते है। २००९ में इसके प्रकाशन से इस ओर लोगों की दृष्टि पड़ गया। फिर भी उन पर अधिक रचनाएं नहीं निकला। बाद में २०११ में प्रदीप सौरभ जी ने 'तीसरी ताली' उपन्यास के माध्यम से इन लोगों के जीवन के तहों की खुलकर अभिव्यक्ति किया। इन दोनों उपन्यासों में किन्नरों के जीवन का रूबरू चित्रण प्राप्त होते हैं।

'यमदीप' उपन्यास का कथानक किन्नर नाजबीबी के इर्द गिर्द खूमता हैद्य वह इस उपन्यास की नायिका है। जब से उनका जन्म हुआ तब से लेकर घरवाले परेशान है। क्योंकि बच्चा किन्नर है। फिर भी मां उनसे बहुत प्यार करती है। वह पढाई में तेज थी। लेकिन आठवीं कक्षा में पढते वक्त कुदरत की करिश्मा के कारण आगे वह पढ न पाई। क्योंकि उस समय उसमें स्त्रीयोजित शरीरांग के साथ दाड़ी, मूंछ भी आ गए। वह दिल से टूट गई। समाज उन्हें देखकर हंसने लगे। समाज के भय से तंग आकर मां-बाप हमेशा सोच रहे थे कि इसे क्या करें ? फिर उन्हें स्वयं इस बात का नतीजा हो गया कि यहाँ पडा रहने से कोई फायदा नहीं ,सिर्फ प्रताड़ना के सिवाय कुछ नहीं मिलेगा। इसी विचार से वह किन्नरों की दुनिया में किन्नरों की बस्ती में चली गई। पहले उनका नाम नंदरानी थी किन्नरों की बस्ती में आ जाने के बाद उनका नाम नाज बीबी रख दिया गया।

किन्नरों की दुनिया में बुजुर्ग व्यक्ति उनके गुरु होते है। इस उपन्यास में उनके गुरु का नाम महताब गुरु है। किन्नर लोग नाच गाकर जो कुछ कमाता है, इसका एक हिस्सा गुरु को देते थे। शहर में किसी की शादी हो या बच्चे के जन्म हो शगुन उतारने केलिए किन्नरों का आना एक रिवाज है। साधारण लोग उनसे दूर रहना ही पसंद करते हैं। एक बार नाज बीबी और उनके साथियों ने मिलकर एक पागल औरत की मदद की। जब उस औरत प्रसव पीड़ा में तड़प रही थी तब आस पास के साधारण लोग उनकी सहायता करने में हिचकते थे। उस समय ये किन्नरों ही उनकी प्रसूति में सहायता दी। प्रसूति के बाद वह पागल औरत मर जाती है। उस नन्हे बच्चे को अपनाने में वहां के लोग तैयार नहीं हुए। यह देखकर किन्नरों कहते हैं – "अरे हम किन्नरों है, किन्नरों.... .इन्सान है क्या मुँह फेर लें"। बच्चे को वहां छोड़ आने का मन न होने के कारण ये किन्नरों उसे साथ लेकर अपनी बस्ती की ओर चल पड़े।

इस उपन्यास के माध्यम से यह बताना चाहती है कि साधारण लोग कितने संवेदन शून्य है इसके बगैर ये किन्नरों सबों से हमदर्दी रखने वाले है। वे ममता के सुख से भी वंचित है। फिर भी एक पागल औरत की बच्ची को पाल पोसकर बड़ा कर देता है। ऐसी बच्ची को साथ रखना कानूनी तौर पर जुल्म है। अगर यह बात पुलिस जान गया तो खतरा हो जाएगा। पुलिस उन्हें जीने नहीं देंगे। हर किन्नर एक गिरिया रखते हैं। यानी कि किसी मर्द के साथ रहती है। इस दुनिया में सभी को जीने का अधिकार है सिवाय किन्नरों को। क्योंकि वे समाज से तिरस्कृत है। उन्हें समाज कोसता है। उनपर हँसी उठाती है। जब नाज बीबी उस बच्ची की भर्ती कराने केलिए स्कूल जाती है तो उन्हें देखकर अध्यापिकाएं और छात्रों कानाफूसी कर रहे थे। तब नाज बीबी उनसे बिनती करती है कि– "जब हम धंधे पर नहीं होते, बहनजी, तो इस तरह का मजाक हमारे सीने में गाली की तरह लगता है। हम आसमान से तो नहीं टपकते हैं न? आप

ही की तरह किसी माँ की कोख से जन्मे हैं। हाड-मांस का शरीर लिए। हमें तो अपने आप दु:ख होता है इस जीवन पर। आप लोग भी दुखी कर देते हो"।

एक बार किन्नर अपने परिवार से नाता तोड़ गया तो दुबारा अपने घर में जाने केलिए मनाही था। घर से भाग जाने के बाद नंदरानी को कभी कभी माँ बाप की याद आती है। लेकिन घर नहीं जा सकती। क्योंकि उनका घर जाना भय्या भाभी को पसंद नहीं है। फिर भी वह घर में फोण करती थी। कभी कभार पापा से बात होती थी। माँ की मृत्यु होते समय नाज घर आई तो भाभी ने उसे वहां से भगा दिया। वह सीधे श्मशानघाट पहुँच गई। उसका वहां आना भय्या को पसंद नहीं आया। क्योंकि रिश्तेदारों के बीच कानाफूसी का अवर हो जाएगा। यह भी नहीं पूरे परिवार की बेईज्जती हो जाने का भय था। जब नाज बीबी श्मशान घाट पहुंची तब चिता जल रही थी। वह अपने पिता से लिपटकर रोने लगी। भय्या ने उसे ऐसे भगाया कि दुबारा रिश्ते के नाम लेकर यहाँ मत आने का सलाह भी दिया। यह सुनकर पिता कहता है कि – "भगवान् ने इस के साथ अत्याचार किया है, तू तो न कर"। पर नंदरानी रोती विलपति यह कहती हुई वहां से चली जाती है कि– "मैं कभी तुम्हारी जिंदगी में दखल नहीं दूँगी, भय्या। बस, अब पापा ही बचे है, उसको संभालकर रखना"।

अपने घर से पराया हो जाना कितना दु:ख दायक है यह उनके इस वक्तव्य से व्यक्त होती है। किन्नरों रूप में जन्म लेने में उनका क्या कुसूर है? विधाता ने उसे ऐसा बनाया। लेकिन समाज उससे कोसों दूर रहना चाहता है। बराबरी का हिस्सा उन्हें देने में हिचकते हैं।

2011 में प्रतीप सौरभ कृत 'तीसरी ताली' इस मायने में कुछ आगे है कि एक पत्रकार की निर्भीकता तीसरे लिंग में पैदा हुए लोगों के जीवन के बारीकियों को खोलकर दिखाने का सफल प्रयत्न है। किन्नर हमेशा जिस्म के धन्धे अपनाने तैयार नहीं होते। कभी कभार भूख और गरीबी के चक्कर में आकर कुछ तो इस धंधे को अपनाने मजबूर हो जाते हैं। यह भी नहीं शिक्षा की कमी, अन्य व्यवसाय में जुड़ने का सीमित अवसर, आर्थिक तंगी व परिवार का भावनात्मक लगाव न होना ही अधिकांश किन्नरों को यौन कर्म की ओर ले जाता है। इस के बगैर लोग यह सोचते हैं कि सारे किन्नरों यौन कर्मी है , जो गलत है। इस उपन्यास में यह दिखाया गया है कि शान, शौकत, और पैसा कमाने के वास्ते बहुत से किन्नर कॉल गर्ल सेंटर में काम करती है। कॉल गर्ल सेंटरों के मालकिन देशी विदेशी संबंध रखते हैं इस कारण वहाँ काम करनेवालों को अच्छा रकम मिलता था। लेकिन कुछ खानदानी किन्नरों जो है वे अपने इज्जत को बरकरार रखकर जीना चाहती है।

हर एक किन्नरों की जीवन कथा अत्यंत हृदयकारी है। विनीत ,गौतम साहब का बेटा था। लेकिन बढ़ते-बढ़ते उनमें स्त्री जन्य सभी गुण आ गए। घर में सभी की अवहेलना से तंग आकर वह घर से भाग निकली। कहीं भटकती रही। भूख के कारण वेश्यावृत्ति करने मजबूर हो गया। वेश्यावृत्ति करते बीच पुलिस ने उन्हें पकड़कर ले चला। उनकी कथा सुनकर एक हवालदार ने उसे अपने घर में पनाह दिया। फिर उसे एक ब्यूटी पार्लर में भर्ती कराई। आगे वह मशहूर ब्यूटीशन बन गए। देश विदेश में उनका ब्यूटी पार्लर खोला गया।

एक किन्नर जो फिल्मी डांसर है उसके बारे में भी बताया गया है। उनका नाम है सुप्रिया कपूर। किन्नर है यह राज छिपाकर सिनेमा में वह आइटम डांस करती थी। उसकी मांग बढ रही थी। किन्नरों की जिन्दगी पर आयोजित लाइव शो में उसने खुलासा किया कि वह किन्नर है। इससे सिनेमा जगत में हलचल मच गई। कुछ निदेशकों ने उसे अपने फिल्म से निकाल दिया गया। एक पत्रिका के इंटरव्यू में उसने ऐसा कहा कि- "अब मैं थोड़े दिन हिजडी की तरह बिकूँगी। मैं कैसी हूँ ? क्यों हूँ ? कितनी पीड़ा सहती हूँ ? इन सवालों से किसी को सरोकार नहीं है। किसी को इस बात से कोई सरोकार नहीं है कि मेरे जन्म के बाद मेरी माँ ने मुझे देखकर आत्महत्या कर ली। बाद में बड़ी बहन सिर्फ इसी बात केलिए ससुराल से निकाल दी गयी कि उसकी बहन हिजड़ी है। मेरे पिता किस तरह तिल तिलकर मरे, इस बात से किसी को कोई लेना देना नहीं है। मीडिया को तो बेचने से मतलब है। चाहे वह औरत हो या फिर हिजड़ी। जब तक बिकूँगी तब तक आप बेचेंगे"।

किन्नर ताली बजाकर नाच-गाना करनेवाला है। इस प्रकार करने के पीछे का इतिहास यह है कि– भगवान् राम रावण को मारकर अयोध्या लौटे, तो वहां भारी जश्न हुआ। रात भर नाच गाना चला। काफी रात बीतने के बाद भगवान राम ने कहा कि अब सभी नर नारी अपने घरों को जाएँ। भगवान् राम ने यह आदेश नर नारियों को दिया था। जो नर या नारी नहीं थे, वे वहीँ रह गए। उन्हें जब यह बात पता चला, तो उन्होंने तीसरी योनि के उन लोगों को नाचने गाने का वरदान दे दिया। बस तभी से ये लोग नाच गा रहे है"। किन्नरों समूह के बहुत सारे मेले होते है। उसमें एक था कुवागम मेला। कुठनदवार मंदिर में ही यह मेला चल रहे हैं। इस के बारे में भी उपन्यास में वर्णन है। इस मेले में तीसरी योनि के इन लोगों को वहां एक दिन केलिए सुहागन बन्ने का मौका मिलता है। इस तरह उनकी सुहागन बनने की मुराद भी पूरी हो जाती है। फिर मंगलसूत्र तोड़ने का रस्म है। पुजारी ही मंगलसूत्र काटते है। इससे सुहागिन विलाप करती है। फिर मांग के सिन्दूर साफ करके चूड़ियाँ तोड़कर विधवा बन जाती है। सरकार भी किन्नरों की उन्नति केलिए कुछ नहीं करते थे। लेकिन इसमें यह भी बताया गया कि किन्नरों दो तीन जगहों में चुनाव में भाग लेकर नेता बन गए। फिर भी लोग उन्हें स्वीकार करने में हिचकते हैं। कभी कभी उन्हें कीड़े मकौड़े की तरह भगाया जाता है। इन सभी परिदृश्य से तंग आकर किन्नरों कहते हैं कि –"किन्नरों कोई हिंसक जानवर नहीं हैं, जो गाँव में रहेंगे तो लोगों को मारकर खा जायेंगे। उन्हें भी भगवान ने ही बनाया है"।

किन्नरों के दाहसंस्कार भी विभिन्न किस्म का है। किसी की मृत्यु हो गई तो बाकी किन्नरों आंसू नहीं बहायेगा। क्योंकि उनके विचारों में उन्हें मुक्ति मिल गई। मरनेवाली हिन्दू हो या मुस्लिम उसे दफनाने केलिए बब्रिस्तान ले चलता है। शवयात्रा अर्ध रात्री के बाद ही शुरू होती है। किन्नरों के शव को रात में डंडों से मारते, उसपर चप्पल जूते बरसाते और सड़क पर खींचते हुए श्मशानघाट ले जाते है। इस तरह शव को श्मशान में ले जाने के पीछे मान्यता यह है कि मरनेवाला दुबारा तीसरी योनि में जन्म नहीं लेगा। किन्नरों शवयात्रा में शामिल नहीं होते। क्योंकि वे अपने को औरत समझते हैं। हिन्दू रीति रिवाज के मुताबिक औरतें श्मशान नहीं जाती।

किन्नरों के जीवन का रूबरू चित्र इन दोनों उपन्यासों से प्राप्त होते हैं। इस प्रकार पश्वीकृतों में सबसे अधिक यातनाएं किन्नरों को ही झेलनी पड़ती है। जबरन किन्नर बनाए जानेवालों पर भी इस उपन्यास में जिक्र है। किन्नरों को जिस्म बेचने केलिए उक्सानेवाले कॉल सेंटरों पर भी विचार किया गया है।

सन्दर्भ सूची

- यमदीप – नीरजा माधव – सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली –२००९ –पृष्ठ सं १२
- वही– पृष्ठ सं ५०
- वही– पृष्ठ सं ११४
- वही– पृष्ठ सं ११४
- तीसरी ताली – प्रतीप सौरभ – वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली –२०११ – पृष्ठ सं १७८
- वही पृष्ठ सं १६५
- वही पृष्ठ सं ९४
- भारतीय साहित्य एवं समाज में तृतीय लिंगी विमर्श– अमन प्रकाशन, कानपुर, पृ.सं ५

विकलांग कल्याण एवं समाजिक हस्तक्षेप

डॉ० विद्यापति गौतम

निदेशक, दाऊ दयाल महिला पीजी कॉलेज, आगरा, फिरोजाबाद

यह सारा विश्व विराट् परमात्मा का रूप है। इसमें चार प्रकार के जीव वास करते हैं। अंडज, जारज, स्वेदज और उद्भिज। सभी जीवों की समान अनिवार्यता को लेकर ईश्वर ने इस संसार का सृजन किया है। उनमें मनुष्य को सर्वोपरि बनाया। सृजन तथा संहार का कार्य भगवान ने अपने हाथ में लेकर पालन (अर्थात सेवा तथा सदुपयोग) का दायित्व मनुष्य के हाथ में दिया है। शक्ति, सामर्थ्य, योग्यता प्रदान की है।[1]

विविधता तथा अनेकता में एकता इस सृष्टि का सौन्दर्य है। इस सौन्दर्य को सुदृढ़ रखने के लिए मनुष्य ने समाज की परिकल्पना की है। सामाजिक नियमानुसार इस संसार में उपलब्ध समस्त वस्तु, पदार्थ, किसी के व्यक्तिगत नहीं हो सकते किन्तु कोई भी व्यक्ति बिना किसी दूसरे के सहयोग के जीवन जी सकता है, न कुछ व्यवहार ही कर सकता है।

मेरी दृष्टि में मनुष्य ही नहीं इस सृष्टि के लगभग समस्त जीव किसी न किसी अंश में विकलांगता ही होते हैं। आमतौर पर हम भले ही शरीर की विकलांगता को ही विकलांगता की श्रेणी में मानते हैं, किन्तु स्थूल दृष्टि से न दिखायी पड़ने वाली मनुष्य की विकलांगता जो शरीर के अतिरिक्त मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक आदि भिन्न रूपों में जन-जन को अपनी गिरफ्त मे लिये हुए हैं, उसे हम नजरअंदाज नहीं कर सकते। शारीरिक रूप से बलवान व्यक्ति को बौद्धिक बल की आवश्यकता रहती है, तथा बौद्धिक बलवान को शारीरिक बल की। तभी तो राजा अथवा नेता अपनी सुरक्षा हेतु शारीरिक बलवान व्यक्ति का सहयोग लेते हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा है, अपूर्ण है, विकल है, विकलांग है या यूं कहें कि बल, निर्बलों, धन निर्धनों की धरोहर है। उसके लिए यह दायित्व है कि वह अपना विनियोजन जिसकी धरोहर है उसमें ही लगाये। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो सामाजिक न्याय की दृष्टि से दोषी है। किन्तु स्वार्थ तथा अभिमानवश मनुष्य अपने दायित्व का निर्वहन न कर उसे अपने व्यक्तिगत संतुष्टि में लगा देता है। फलस्वरूप उसकी सामर्थ्य उत्तरोत्तर घटती चली जाती है। अत: मनुष्य अपने भावी जीवन को सुखमय, आनन्दमय बनाने की इच्छा रखता हो तथा सुंदर समाज के निर्माण का संकल्प रखता हो तो उसे अपने आपको विकलांग की सेवा में निरभिमानपूर्वक लगाना चाहिये। उसकी सेवा ठीक उसी प्रकार होनी चाहिये, जैसे एक माँ अपने असमर्थ बालक की सेवा कर प्रसन्न होती है।

खेद की बात है कि आज समाज में भोगवाद की संस्कृति में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। स्वार्थ और अभिमान की अन्धी दौड़ में मनुष्य अपने-पराये का भाव नहीं रख रहा है। उत्तम-से-उत्तम वस्तुओं की उपेक्षा की जा रही है। फलस्वरूप, अनाथ बच्चे, वृद्ध माता-पिता, निराश्रित महिलाएं गरीबों की संख्या बढ़ रही है। फलस्वरूप गरीब, धनवान, बलवान, निर्बल, योग्य-अयोग्य के बीच की बड़ी गहरी खाई उत्पन्न हो रही है तथा एक वर्ग दूसरे वर्ग को शोषित करने का महान पाप तथा दु:साहस कर रहा है। समाज की व्यवस्था चरमरा रही है। किसी के भीतर सेवा की भावना पनप नहीं रही है। युद्ध तथा गृहयुद्ध की संभावनाएं बढ़ रही है।

आज मानवता दानवता के पंजे में फंसी कराह रही है। सर्वगुणों से सम्पन्न मानव की कौन कहे अंगुलिगण्य गुणों से युक्त मानवों का भी उत्तरोतर अभाव होता जा रहा है।

अत: समाज सेवी कार्यकर्ताओं पर विशेष दायित्व आ गया है कि वे सभी तरह के विकलांगों की सेवा हेतु संस्थाओं का निर्माण करायें और अपने तथा दूसरों के जीवन को सुखमय, आनन्दमय बनायें। स्वतंत्रता के बाद (1947 ई०) से ही भारत सरकार एवं राज्य सरकारों ने समाज के विविध वर्गों विशेषकर वंचित एवं उपेक्षित वर्गों के कल्याण के लिए भरसक प्रयास किया है। लेकिन ये प्रयास अपेक्षित रूप में फलीभूत नहीं हुए। फलत: सभी पंचवर्षीय योजनाओं में सहयोगी विकास, जनकेन्द्रित विकास, लोकाभिमुखी विकास और समावेशी विकास की अवधारणाओं को समाहित कर इसके अनुरूप नीतियों एवं कार्यक्रमों का नियोजन किया गया है। समाज और उसके प्रयासों को सम्मान और स्वीकृति दी गई है। समाज में कार्य करने वाली संस्थाओं को सहायता देने और उनका सहयोग लेने की प्रक्रियाएं प्रारंभ हुई हैं। स्वतंत्रता के बाद के छ: दशकों का अनुभव यह बताता है कि समाज कार्य में सक्रिय संस्थाओं का कार्य अ-सरकारी परन्तु असरकारी है। समाज की प्रस्थिति में परिवर्तन के लिए अपनी प्रतिबद्धताओं, समर्पण और निपुणताओं के कारण स्वयंसेवी संस्थाओं तथा उनके कार्यकत्ताओं को पहचान, प्रतिष्ठा और प्रोत्साहन मिलता रहा है। परिणामस्वरूप स्वयंसेवी संस्थाओं की पहुँच और प्रभाव भी बढ़ता गया है। समाज की आवश्यकता के हर क्षेत्र और विषय में प्रयासरत स्वयंसेवी संस्थाओं की संख्या भी बढ़ी है।

पीड़ित मानवता के कल्याण हेतु शासकीय एवं अशासकीय दोनों स्तर पर कार्य किया जाता है। सरकार के द्वारा जहाँ लोक कल्याण की संवैधानिक प्रतिबद्धता के कारण विधि, नीतियों का निर्माण, योजनाओं-कार्यक्रमों का नियोजन और क्रियान्वयन किया जाता है, वहीं दूसरी तरफ गैरसरकारी संस्थायें अपनी सामाजिक प्रतिबद्धताओं और दायित्वबोध के कारण समाज के वंचित-उपेक्षित वर्गों के लिए सेवा-कार्य करती हैं। सरकार एवं गैर सरकारी संस्थायें अपने कार्यों

को अधिक प्रभावपूर्ण, व्यापक और सार्थक बनाने के लिए व्यावसायिक समाज कार्य की पद्धतियों तथा निपुण समाज कार्य व्यवसायिकों का उपयोग करती हैं। दक्ष समाज कार्य व्यवसायी (प्राफेशनल्स) समाज कार्य की निपुणताओं के आधार पर कार्यक्रमों का नियोजन-संयोजन-क्रियान्वयन करता है।

अध्ययन के क्रम में यह स्थापित हुआ है कि विकलांगजनों के कल्याण हेतु समाज कार्य पद्धतियों के माध्यम से प्रभावी हस्तक्षेप की पर्याप्त संभावनायें हैं। समाज कार्य की स्थापित पद्धतियों-वैयक्तिक सेवा कार्य, समूह सेवा कार्य, सामुदायिक सेवा कार्य और सामाजिक क्रिया के द्वारा विकलांगजनों के कल्याण, क्षमता वृद्धि और प्रभावशाली पुनर्वास का कार्य किया जाएगा।

वैयक्तिक सेवा कार्य

समाज कार्य की वैयक्तिक सेवा कार्यपद्धति के माध्यम से सम्बन्धित विकलांग व्यक्ति की अक्षमताओं का आकलन कर उनकी आवश्यकताओं का निर्धारण किया जाएगा। आवश्यकताओं के अनुरूप उनको सेवाएं-सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएंगी। शारीरिक आवश्यकताओं के लिए आवश्यक चिकित्सक सुविधा उपलब्ध कराया जाएगा। शिक्षा की आवश्यकता के लिए विशेष-शिक्षा के केन्द्र से जोड़ा जाएगा। रोजगार की आवश्यकता की पूर्ति के लिए आवश्यक प्रशिक्षण उपलब्ध कराकर रोजगार योग्य बनाया जाएगा। पुनर्वास की आवश्यकता की पूर्ति के लिए समायोजन परक परिस्थियों का अध्ययन-विश्लेषण कर परिजन और विकलांग जन के मध्य अनुकूल समायोजन को प्रोत्साहित किया जाएगा।

समूह सेवा कार्य

समाज कार्य की समूह सेवा पद्धति के माध्यम से विकलांगजनों की परस्पर आवश्यकताओं, सामूहिक समस्याओं और उनके समाधान का अध्ययन-विश्लेषण सर्वप्रथम किया जाएगा। तदुपरान्त आवश्यक कार्यक्रम का नियोजन तथा क्रियान्वयन किया जाएगा। कानूनी प्रावधानों का लाभ लेने योग्य बनाने हेतु विकलांगजनों को सामूहिक रूप से जागरूक बनाने के लिए शिविर लगाया जाएगा। इसके साथ हीं विकलांगजनों के परिजनों-अभिभावकों, शिक्षकों और समाज कार्यकर्ताओं के लिए भी सामूहिक उन्मूखीकरण कार्यक्रम चलाया जाएगा।

सामुदायिक सेवा कार्य

व्यावसायिक समाज कार्य की 'सामुदायिक सेवा कार्य' पद्धति का उपयोग कर विकलांगजनों के लिए समाज में संवेदनशील, सहयोगपूर्ण और अनूकुल वातावरण का निर्माण किया जाएगा। विकलांगजनों के पड़ोसियों, सहकर्मियों, नीति-नियन्ताओं, कार्यक्रम क्रियान्वयन अभिकरणों के कार्मिकों और समाज कार्यकर्ताओं को विकलांगता के विविध आयामों, विकलांगजनों की समस्याओं-आवश्यकताओ के प्रति संवेदनशील बनाने हेतु कार्यशाला, संगोष्ठी और शिविर का आयोजन किया जाएगा।

सामाजिक क्रिया[2]

समाज कार्य की इस पद्धति का उपयोग कर विकलांगजनों के लिए संचालित नीतियों, योजनाओं और कार्यक्रमों का लाभ विकलांगजनों के लिए सुनिश्चित किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत सभी हितग्रहियों के अवरोधों का समाधान किया जाता है। विशेषकर विधिक प्रावधानों के अन्तर्गत निर्धारित कानूनी लाभ को विकलांगजनों के लिए सुनिश्चित किया जा सकता है।

समाज कार्य हस्तक्षेप के संभावित क्षेत्र

विकलांगजनों के कल्याणार्थ समाज कार्य हस्तक्षेप की व्यापक संभावनायें है। सन् 2011 ई० की राष्ट्रीय जनगणना के अनुसार देश में विभिन्न प्रकार के विकलांगजनों की जनसंख्या लगभग ढाई-तीन करोड़ है। सभी प्रकार के नि:शक्तजनों की आवश्यकतायें भी भिन्न-भिन्न हैं। इसलिए विकलांगजनों के लिए समाज कार्य हस्तक्षेप का क्षेत्र भी भिन्नतापूर्ण है। विकलांगजनों के कल्याण हेतु निम्नलिखित क्षेत्रों में सुनियोजित कार्य योजना के साथ हस्तक्षेप किया जा सकता है-

(क) जागरूकता निर्माण हेतु प्रयास

(ख) क्षमता वृद्धि हेतु प्रयास

(ग) सेवाओं सुविधाओं को सुनिश्चित करने हेतु सहजीकरण

(घ) पक्षपोषण या पैरवी (Advocasy)

(ड.) पुनर्वास

(च) शोधकार्य

(छ) लाइजनिंग एवं नेटवर्किंग

विस्तारपूर्वक समाज कार्य हस्तक्षेप के इन क्षेत्रों की पहचान अध्ययन के क्रम में निम्नवत् की गई है-

(क) जागरूकता निर्माण हेतु प्रयास

विकलांगजनों के कल्याण के लिए उन्हें जागरूक-शिक्षित बनाना अत्यन्त आवश्यक है। जागरूकता के द्वारा विकलांगजन भी अपनी समस्याओं के समाधान को जान-पहचान सकेंगे। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में उत्तरदाता सभी विकलांगजन शिक्षा प्राप्त हैं। जागरूक व्यक्ति ही अपनी समस्याओं के समाधान हेतु प्रयास करता है। अतएव विकलांगजनों में उनके हितार्थ निर्मित नीतियों-योजनाओं-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता का निर्माण करना महत्पपूर्ण है। शोध अध्ययन

में यह तथ्य परिलक्षित हुआ है कि पर्याप्त जागरूकता के अभाव में विकलांगजन योजनाओं-कार्यक्रमों का समुचित लाभ नही प्राप्त कर सके हैं। जागरूकता के अभाव में विकलांगजनों को बहुविध शोषण और भ्रष्टाचार का शिकार होना पड़ता है। विकलांगजनों हेतु समाज कार्य हस्तक्षेप के रूप में जागरूकता शिविर को पंचायत एवं संकुल स्तर पर लगाने की आवश्यकता शोध अध्ययन के क्रम में दृष्टिगोचर हुई है।

(ख) क्षमता वृद्धि हेतु प्रयास

प्रशिक्षणः विकलांगजनों को दक्ष और विभिन्न प्रकार की निपुणताओं में पारंगत बनाने के लिए प्रशिक्षण कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विशेष शिक्षण के लिए शिक्षकों का प्रशिक्षण, विकलांगों के पुनर्वास हेतु पुनर्वास कार्यत्ताओं का प्रशिक्षण, उनकी पैरवी या पक्षपोषण (Advocasy) हेतु समाज कार्यकत्ताओं का प्रशिक्षण, उनको मार्गदर्शन एवं परामर्श सेवायें देने वाले का कार्यकत्तओं का प्रशिक्षण आदि में समाज कार्य हस्तक्षेप की अत्याधिक संभावना है। समाज कार्य की समूह कार्य पद्धति का उपयोग कर विकलांगजनों की आवश्यकताओं का आंकलन कर तथा उचित प्रशिक्षण देकर उन्हें उपयोगी और यथासंभव आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। इसके साथ ही प्रशिक्षण के द्वारा विकलांगजनों के पुनर्वास को भी सार्थक और प्रभाव पूर्ण बनाया जा सकता है।

विकलांगजनों के साथ-साथ विकलांगजनों हेतु कार्यरत समाज कार्यकर्ताओं, शिक्षकों, सरकारी एवं गैरसरकारी कार्यकर्ताओं को भी उचित प्रशिक्षण देकर उन्हें सामाजिक दायित्वबोध से ओत-प्रोत, संवेदनशील और प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है, जिससे विकलांगजनों के कल्याण कार्य में वे अधिक सक्रिय और प्रभावोत्पादक बन सकें।

(ग) सेवाओं-सुविधाओं को सुनिश्चित करने हेतु सहजीकरण (Facilitation)

अध्ययन के क्रम में यह महत्वपूर्ण तथ्य दृष्टिगोचर हुआ है कि विकलांगजन विभिन्न शासकीय एवं अशासकीय सेवाओं-सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं, क्योंकि उन्हें प्राप्त करने योग्य स्थिति में आने के लिए सहज स्थिति देने का उपयुक्त तंत्र का अभाव है। समाज कार्य हस्तक्षेप के द्वारा सहजीकरण (Facilitation) की व्यवस्था या तंत्र बनाकर प्रावधानित सेवाओं-सुविधाओं को विकलांगजनों हेतु सुनिश्चित करने की संभावना तथा आवश्यकता है। पंचायत एवं ब्लॉक स्तर पर विकलांगजनों का प्रमाण-पत्र बनवाने, पेंशन का आवेदन कराने, बैंक सुविधाओं से जोड़ने और अन्य योजनाओं का लाभ दिलाने का कार्य कर विकलांगजनों को सहज रूप में लाभार्थी बनाया जा सकता है।

(घ) पक्षपोषण या पैरवी (Advocasy)[3]

शोध अध्ययन के क्रम में यह तथ्य भी दृष्टिगोचर हुआ है कि विकलांगजन अपने हितों की पैरवी स्वयं कर पाने में प्रभावी और सहज नहीं है। क्योंकि पैरवी का कार्य विविधतापूर्ण और श्रमसाध्य है। विकलांगजनों को जीवन और समाज में आने वाली समस्याओं-चुनौतियों से उबारने के लिए यह आवश्यक है कि तीनमुखी पैरवी- (अ) नीतिगत पैरवी (Policy Advocasy), (ब) लोक पैरवी (Public Advocasy) तथा (स) मीडिया पैरवी (Media Advocasy) का उपयोग समाज कार्य उपकरण के रूप में किया जाय।

(अ) ***नीतिगत पैरवी***- विकलांगजनों के अनूकुल नीतियों के निर्माण के लिए आवश्यक है कि नीति निर्माताओं के बीच विकलांगजनों की पैरवी या पक्षपोषण (Advocasy) हो। समाज कार्य का अनुभव यह सिद्ध करता है कि लक्ष्य को प्राप्त करने में जमीनी संघर्ष की तुलना में नीतिगत परिवर्तन लाना अपेक्षाकृत कम समय एवं श्रमसाध्य है। नीतिगत परिवर्तन के द्वारा कम समय में नीतियों के लाभ को अधिकाधिक लाभार्थियों तक पहुँचाया जा सकता है। इसलिए नीतिगत पैरवी को परिवर्तन के एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप मान्यता मिल चुकी है।

(ब) ***लोक पैरवी*** **(Public Advocasy)**- विकलांगजनों के अनुकूल सामाजिक परिवेश बनाने के लिए लोगों के बीच विकलांगजनों की परिस्थिति, उनकी आवश्यकता तथा उपलब्ध सुविधाओं के बीच के अन्तर (Gap) को बताना और विकलांगजनों के हितवर्द्धन हेतु लोगों का समर्थन प्राप्त करना आवश्यक है। क्योंकि विकलांगजन समाज में छिटपुट स्थिति में हैं अर्थात् किसी स्थान विशेष पर वे बहुतायत में नहीं है, जिससे वे जनमत का निर्माण या जन दबाव नहीं बना पाते हैं। इसलिए लोगों के बीच विकलांगजनों के हितों की पैरवी करने हेतु संगोष्ठी तथा परिसंवाद का आयोजन जरूरी है।

(स) ***मीडिया पैरवी*** **(Advocasy)**- विकलांगजनों के प्रति लोकमानस तथा प्रशासन, सरकार, विधायिका एवं न्यायपालिका को संवेदनशील बनाने हेतु मीडिया (प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक, सोशल मीडिया आदि) के माध्यम से एडओकेसी का काम कर समाज कार्य द्वारा प्रभावी हस्तक्षेप किया जा सकता है। मीडिया आज एक सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा किसी भी विषय पर जनसामान्य एवं सरकार का ध्यान त्वरित रूप से खिंचा जा सकता है।[4] इसके द्वारा जहाँ जनसामान्य एवं विकलांगजनों में जागरूकता तथा संवेदनशीलता उत्पन्न की जा सकती है तो दूसरी तरफ विकलांगजनों के कल्याणार्थ आवश्यक नीतियों के निर्माण, नीतियों में संशोधन, कार्यक्रमों के प्रभावी क्रियान्वयन तथा उसके दुरूपयोग के प्रति सरकार का ध्यान आकर्षित किया जा सकता है।

(ङ) पुनर्वास (Rehavilitation)

विकलांगों की दशा को इस अवस्था तक पहुंचाने में अभिभावकों एवं गैर सरकारी संगठनों की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण रही है। विकलांगों हेतु उपलब्ध उल्लेखों के आधार पर हम पाते हैं कि पहले विकलांगों की दशा अत्यन्त शोचनीय थी तथा इसकी जड़ें, अंधविश्वासों से घिरी थी। परन्तु समयानुसार इनकी योग्यता को पहचाना गया तथा इनके लिए शिक्षण, प्रशिक्षण एवं पुनर्वास की बात सोची गयी। इनके पुनर्वास प्रक्रिया में सबसे अधिक शिक्षा के लिए बल दिया जाता रहा है जबकि उस समय शिक्षा अनौपचारिक एवं अवैज्ञानिक ढंग से दी जाती रही है। विकलांगता से सम्बंधित पुनर्वास सेवाएं एवं विशिष्ट शिक्षा का क्रमवार ऐतिहासिक प्रगति देखने पर यह और अच्छी तरह से स्पश्ट हो जाता है।[5]

पुनर्वास के उपाय

पुनर्वसन - पुनर्वास अर्थात क्या? शब्दकोश में यदि इसका अर्थ ढूँढ़ने जाएँ तो ''जैसी पूर्व स्थिति थी, उस तक पहुंच जाना'' अर्थात् पुनर्वसन। विकलांगता से पूर्व परिवार व समाज में उसका जो स्थान होना था, उसकी पुनः प्राप्ति करा देना- उसकी खोई हुई कार्यक्षमता, उसका खोया हुआ स्वावलम्बन,

खो गया आत्मविश्वास, खोया हुआ स्वाभिमान कहीं खो गयी जीवन के प्रति आशा भरी उमंग और विशेशकर उसकी खो गयी सामाजिक एकात्मता इन सबकी पुनः प्राप्ति ही 'पुनर्वसन' शब्द को सार्थक बनाती है।

पुनर्वसन, पुनर्वास व सामाजिक एकात्मता सहभागी प्रक्रियाएं हैं। पुनर्वसन का अंतिम उद्दिष्ट अथवा पुनर्वसन का अंतिम परिणाम सामाजिक एकात्मता ही है। विकलांग व्यक्ति का समाज में अपना योग्य स्थान ले सकना अपनी सामाजिक जिम्मेदारियाँ निभा सकना, समाज का एक अभिन्न अंग बन जाना ही सामाजिक एकात्मता है और यही पुनर्वसन संबंधी प्रक्रियाओं की अपेक्षा है। जैसे-जैसे व्यक्ति का पुनर्वसन होता चला जाता है वैसे ही वैसे धीरे-धीरे उस व्यक्ति में सामाजिक एकात्मता आने लगती है अर्थात वह समाज का अभिन्न अंग बनने लगता है और सामाजिक एकात्मता उसकी पुनर्वसन प्रक्रिया में गति लाती है।

(च) शोधकार्य (Reserch)

विकलांगजनों संबंधित शोधकार्य अत्यंत महत्वपूर्ण एवं आवश्यक हैं। परन्तु शोधकार्य अत्यंत दुरूह होता है। शोध अध्ययन के क्रम में यह बात समझ आई है कि विकलांगता विषयक शोध विकलांगजनों के लिए अत्यंत कष्टकर है। इसलिए व्यावहारिक दृष्टिकोण से यही उचित है कि सकलांगजन ही विकलांगता के विविध आयामों एवं विकलांगजनों के विविध पक्षों के विषय में शोध कार्य करें। शोधार्थी को अपने शोध अध्ययन के क्रम में अनेक विश्वविद्यालयों, सरकारी संस्थानों, गैरसरकारी संस्थानों में जाने का अवसर प्राप्त हुआ है। इस क्रम में यह दृष्टिगोचर हुआ है कि विकलांगों के शिक्षण-प्रशिक्षण संबंधित साहित्य एवं उनकी विशेष शिक्षा के क्षेत्र में तो अनेक शोध अध्ययन हुए है, परन्तु विकलांगता का सम्यक् और संपूर्ण अध्ययन का अभाव है। इसलिए आवश्यक है विकलांगजनों के विविध पक्षों के विषय में शोध अध्ययन का काम समाज कार्य हस्तक्षेप के द्वारा करने की दिशा में प्रयास किया जाय।

(छ) लाइजेनिंग एवं नेटवर्किंग[6]

विकलांगजनों के हित से जुड़े सभी पक्षों- विकलांगजन, सरकारी तंत्र, गैरसरकारी संस्थाओं, दाता संस्थाओं, कॉर्पोरेट घरानों, मीडिया एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं को आपस में आवश्यकता अनुसार जोड़ने हेतु उनकी परस्पर नेटवर्किंग एवं लाइजेनिंग जरूरी है। इस दिशा में समाज कार्य हस्तक्षेप की पर्याप्त संभावनायें है, जिनके द्वारा विकलांग कल्याण कार्य को प्रभावी एवं सार्थक बनाया जा सकता है। सभी हितबद्ध समूहों में परस्पर समन्वय के अभाव में विकलांग कल्याण का काम प्रभावी रूप से नहीं हो पाता है। समाज कार्य की विभिन्न पद्धतियों और निपुणताओं के माध्यम से इस समस्या का समाधान संभव है।

सन्दर्भ साहित्य सूची

1. निःशक्त चेतना, विशेषांक (2006), अखिल भारतीय विकलांग चेतना परिषद्, विलासपुर (छत्तीसगढ), पृष्ठ-128.
2. सोशल एक्शन एन इण्डियन पैनोरमा, सम्पादक जॉन सैमुअल, वाणी नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ-57.
3. एडवोकेसी मार्गदर्शिका, उपवन लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ-35.
4. मीडिया एडवोकेसी मार्गदर्शिका, सहभागी शिक्षण केन्द्र लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ-18, 20.
5. कुरूक्षेत्र मासिक पत्रिका, दिसम्बर 1999, पृष्ठ-13.
6. नेटवर्किंग एवं लाइजेनिंग मार्गदर्शिका, समर्थन भोपाल द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ-11.

डीडी न्यूज पर प्राइम टाइम में संसदीय कार्यवाही के प्रसारण से जुडी खबरों की वरीयता का अध्ययन

ओम प्रकाश यादव

शोधार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल

शोध सार

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्रिक देश है जहां संसद को लोकतंत्र के मंदिर माना जाता है। संसदीय कार्यवाही से जनमान को जोड़ने में मीडिया की अहम भूमिका है। जनतांत्रिक तरीके से चुने द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि संसद में किस तरह बोलते है जनता की नजर में उनकी क्या इमेज बनती है। ये सभी मीडिया के द्वारा ही दिखाया जाता है। संसद और मीडिया एक दूसरे के पूरक है जो जनता के बीच एक कडी का काम करते है। संसदीय लोकतांत्रिक परंपराओं को जनता तक पहुंचाने का मीडिया माध्यम बनता है जिससे जनता संसद से जुडती है। संसदीय कार्यवाही के प्रसारण में वैसे तो सभी मीडिया माध्यमों की अपनी अपनी भूमिक है लेकिन जन प्रसाकर होने के नाते डीडी न्यूज की भूमिका अहम है। डीडी न्यज पर वैसे तो ससंद से जुड़ी खबरों को हर बुलेटिन में स्थान मिलता है लेकिन प्राइम टाइम में कितनी खबरें किस तरह से प्रसारित होती है, समय व महत्तव के आधार पर कितना महत्व मिलता है ये जनना जूरी हो जाता है। इन सभी मसलों के मद्देनजर ये जरूरी हो जाता है कि डीडी न्यूज पर प्राइम टाइम में प्रसारित होने वाले समाचारों में संसदीय खबरों की वरीयता का अध्ययन किया जाए । इसी शोध को ध्यान में रखकर उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यह शोध अध्ययन किया गया है।

भूमिका

विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और प्रेस को लोकतंत्र के चार स्तंभों में शामिल किया गया है। लोकतंत्र के मजबूत संत्भ समझे जाने वाले इन चारों स्तंभों का एक दूसरे से घनिष्ठ संबध होना जरूरी है। प्रेस की भूमिका भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी अन्य स्तंभों की।

संसदीय कार्यवाही का टेलीविजन पर प्रसारण पहली बार 20 दिसम्बर 1989 को किया गया था जब दोनों सदनों की संयुक्त बैठक को राष्ट्रपति ने संबोधित किया था। तत्पश्चात राष्ट्रपति के अभिभाषण का रेडियो / दूरदर्शन पर सीधा प्रसारण शुरु हुआ। हालांकि आरंभ में यह पूरी तरह तदर्थ व्यवस्था के आधार पर किया जाता था।

लोक सभा के प्रश्नों पर 2 दिसम्बर 1991 को पहली बार टेलीफिल्म बनाई गई थी जो अगले दिन सुबह 7.15 से 8.15 तक प्रसारित की जाती थी। राज्य सभा के प्रश्नों के समय की टेलीफिल्म सर्वप्रथम 9 दिसम्बर 1991 को बनायी गयी थी। इसका प्रसारण अगली सुबह 7.15 से 8.15 तक किया जाता था।

प्रारंभिक चरण के रूप में दूरदर्शन पर प्रश्नों के समय के प्रसारण के प्रति लोगों की प्रतिक्रिया से प्रोत्साहित होकर लोक सभा की सामान्य प्रयोजन समिति ने न केवल इसे जारी रखने का निर्णय लिया बल्कि कार्यवाहियों के प्रसारण को और अधिक विस्त्रित करने का निर्णय भी लिया। तद्नुसार राष्ट्रपति के अभिभाषण के अतिरिक्त जिसका प्रसारण 24 फरवरी 1992 को किया गया था, 25 फरवरी 1992 और 29 फरवरी 1992 को क्रमशः रेल बजट और सामान्य बजट का सीधा प्रसारण भी पहली बार किया गया।

दूरदर्शन के राष्ट्रीय नेटवर्क पर राज्य सभा के प्रश्नकाल का देशभर में सीधा प्रसारण 7 दिसम्बर 1994 को शुरु किया गया। अगले सप्ताह लोक सभा के प्रश्नकाल का सीधा प्रसारण राष्ट्रीय नेटवर्क पर किया गया था।

14 दिसम्बर 2004 को राज्य सभा के सभापति भैरों सिंह शेखावत और लोकसभा अध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी द्वारा क्रमशः डीडी-राज्यसभा व डीडी-लोकसभा नामक दूरदर्शन के दो विशेष उपग्रह चौनल शुरु किए गए। जिससे दोनों सदनों की कार्यवाही का सीधा प्रसारण पूरे देश में शुरु हुआ। 26 जुलाई 2006 को डीडी लोकसभा को लोकसभा टीवी में बदल दिया गया था जो हिंदी और अंग्रेजी में 24 घंटे प्रसारित होने वाला टीवी चौनल बन गया। जिसका स्वामित्व और संचालन पूरी तरह से लोकसभा के पास रहा, जो लोकसभा की कार्यवाही का सीधा प्रसारण करता रहा है। जब लोकसभा की कार्यवाही नहीं चल रही होती है तब विभिन्न सांस्कृतिक और शैक्षिक कार्यक्रम और पैनल चर्चा दिखाई जाती है।

26 अगस्त 2011 में संसद में उच्च सदन की कार्यवाही के प्रसारण को दिखाने के लिए राज्यसभा टीवी को लॉन्च किया गया। इस पर राज्य सभा के लाइव प्रसारण के अलावा कई राजनीतिक, सरकारी और अन्य कार्यक्रमों को दिखाया जाने लगा।

लोकसभा और राज्यसभा टीवी चौनल के भारी भरकम खर्चे को देखते हुए सरकार ने साल 2019 में दोनों चौनलों के विलय को लेकर एक समिति का गठन किया था। राज्य सभा के सभापति एम वैंकेया नायडू और लोक सभा अध्यक्ष ओम बिरला ने पैनल का गठन किया था। इसी पैनल की सिफारिश पर दोनों चौनलों का विलय करने पर सहमति बनी। राज्य सभा सचिवालय ने 01 मार्च 2021 को आधिकारिक रूप से इसकी घोषणा कर दी थी। अब नया चौलन संसद टीवी के नाम से शुरु हुआ है। दोनों टीवी चौनलों के विलय के साथ शीर्ष स्तर पर अधिकारियों में भी बदलाव किया गया है। संसद टीवी का मुख्य कार्यकारी अधिकारी 1986 बैच के आईएएस अधिकारी सेवानिवृत्त रवि कपूर को नियुक्त किया गया है।

डीडी न्यज पर संसदीय प्रसारण से जुडे कवरेज की अगर बात करें तो भारत के इस लोक प्रसारक चौनल ने शुरुआत से ही संसदीय कार्यवाही के प्रसारण का करवरेज किया है। उपाध्यय देवेन्द्र ने अपनी पुस्तक "भारतीय संसद और मीडिया" में संसदीय कार्यवाही के प्रसारण की महत्ता पर और मीडिया विषय पर अपने विचार रखते हुए कहा कि संसद और प्रेस के बीच निकट का संबंध है। संसदीय लोकतंत्र में संचार माध्यमों की भूमिका महत्वपूर्ण है। क्योंकि प्रेस जहां सूचना तंत्र का प्रमुख अंग है वहीं यह जनमत तैयार करने वाला महत्वूर्ण कारक भी है। दूरदर्शन पर प्रसारित पहला हिन्दी भाषा में सवाल भी हरकिशोर सिंह ने पूछा, जवाब में कलपनाथ राय ने हिन्दी में ही जवाबी प्रहार करके हुए सवाल की अप्रासंगिता के बारे में एक शेर सुना दिया। भारत में इस प्रकार के अध्ययन और मुख्य तौर पर मीडिया एवं संसदीय प्रसारण से संबधित अध्ययन काफी कम हुए है। ऐसा शोध के लिए एकत्रित साहित्य समीक्षा के दौरान सामने आया। इसलिए उपरोक्त विषय पर शोध अध्ययन करना प्रासंगिक व सही प्रतीत होता है।

शोध कार्य का उद्देश्य

डीडी न्यूज पर प्राइम टाइम में संसदीय कार्यवाही के प्रसारण से जुडी खबरों की वरीयता का अध्ययन।

शोध के लिए डीडी न्यूज के चयन का आधार

इस अध्ययन के लिए डीडी न्यूज चौनल को अध्ययन को संसदीय कार्यवाही की कवरेज के शोध के लिए रखा गया। शोध कार्य के अध्ययन के लिए सोमवार से शुक्रवार डीडी न्यूज पर प्रसारित प्राइम टाइम के 2 घंटे के बुलेटिन (न्यूज नाइट हिंदी और न्यूज नाइट अंग्रेजी) को चुना गया। अध्ययन में शनिवार और रविवार के 8 से 9 बजे के 1 घंटे के हिंदी व अंग्रेजी समाचारों के बुलेटिन को चुना गया। संसदीय प्रसारण से सम्बन्धित अध्ययन की पडताल करने पर ये साने आया कि इस विषय पर व्यापक तौर पर शोध नहीं हुए हैं ऐसा शोध के लिए की गयी साहित्यिक समीक्षा के बाद पता चला। इसलिए उपरोक्त समस्या का अध्ययन करना प्रासंगिक जलगा कि इस पर शोध किया जाए।

शोध प्रविधि

शोध प्रविधि के रूप में अंतर्वस्तु विश्लेषण का चयन किया गया है। शोध प्रविधि के रूप में उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि का चयन किया गया। शोध अध्ययन के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए डीडी न्यूज का उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि के माध्यम से चयन किया गया। जहां तक संसदीय कार्यवाही के प्रसारण का प्रश्न है तो अध्ययन में संसद के बजट सत्र को चुना गया है। इसकी मुख्य वजह ये है कि राष्ट्रीय स्तर पर यह एक जन मानस के लिए ज्यादा रुचिकर व लोकहित से जुडा मसला है। अध्ययन में संसद के बजट सत्र के दो चरणों का अध्ययन किया गया। जिसमें बजट सत्र के शुरु के 15 दिन और बजट सत्र के दूसरे चरण से अन्तिम 15 दिनों की रिकॉर्डिंग का अध्ययन किया गया।

तथ्यों की विवेचना

अध्ययन में डीडी न्यूज पर संसदीय कार्यवाही से जड़ी खबरों को प्रसारण के दौरान मिलने वाले महत्व का बुलेटिन में चली संसदीय खबरों की संख्या और समय के साथ प्रस्तुति को ध्यान मे रखकर अध्ययन किया गया। शोध कार्य के लिए संसद के बजट सत्र 29 जनवरी, 2018 से 12 फरवरी, 2018 एवं 5 मार्च 2018 से 20 मार्च 2018 तक के समय का अध्ययन किया गया। अध्ययन के लिए सोमवार से शुक्रवार डीडी न्यूज पर प्रसारित प्राइम टाइम के 2 घंटे के बुलेटिन (न्यूज नाइट हिंदी और न्यूज नाइट अंग्रेजी) को चुना गया। अध्ययन में शनिवार और रविवार के 8 से 9 बजे के 1 घंटे के हिंदी व अंग्रेजी समाचारों के बुलेटिन को चुना गया। समाचारों की विवेचना के दौरान निम्न प्रकार के परिणाम सामने आए।

निष्कर्ष

तथ्यों की विवेचना

डीडी न्यूज पर प्रसारित संसदीय कार्यवाही के समाचारों के अंतर्वस्तु विश्लेषण का निम्न आधार पर प्रस्तुतिकरण किया गया है। अध्ययन हेतु संसदीय कार्यवाही के प्रसारण के दौरान प्रतुस्ति का अध्ययन को शामिल किया गया है जो अध्ययन के उद्देश्यों की व्याख्या करता है। अर्थात चयनित मापदंड अध्ययन के उद्देश्यों के आधार पर निर्धारित किए गए है।

इस अध्ययन में अंतर्वस्तु विश्लेषण के लिए संसद के बजट सत्र को चुना गया है। संसद का बजट सत्र (15 वीं लोकसभा का 13 वां सत्र और राज्यसभा का 228 वां सत्र) गुरुवार, 21 फरवरी, 2013 से प्रारम्भ हुआ। और सरकारी कार्य के आवश्यकता के आधीन रहते हुए यह सत्र 8 मई, 2013 बुधवार को समाप्त हुआ। इस अवधि के दौरान दोनो सदन शुक्रवार, 22 मार्च, 2013 को मध्यवकाश को संशोधित हुए और सोमवार 22 अप्रैल, 2013 को पुन एकत्र हुए। इस दौरान विभागीय संसदीय स्थाई समितियां विभिन्न मंत्रालयों, विभिन्न विभागों से संबधित अनुदानो की मांगों की जांच सदन में प्रस्तुत की गई। सत्र

के दौरान मुख्य रुप से राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर 2013-14 के रेल तथा समान्य बजट से संबधित वित्तीय कार्य और झारखंड के संबध में वित्तीय कार्य हुए। सत्र के दौरान अनिवार्य विधायी और गैर विधायी कार्य भी निपटाए गए।

डीडी न्यूज पर संसदीय कार्यवाही से जूडी खबरों की वरीयता का अध्ययन

डीडी न्यूज चौनल पर प्रसारित संसदीय कार्यवाही के अध्ययन के लिए दिनभर के 24 घंटे के कुल बुलेटिनों में प्राइम टाइम रात्रि 08 से 10 बजे के बीच प्रसारित होने वाले समाचारों में संसदीय कार्यवाही सें जुडी खबरों को मिले कवरेज का अध्ययन किया गया है। अध्ययन में सोमवार से शुक्रवार रात्रि प्राइम टाइम 08 बजे से 09 बजे न्यूज नाइट (हिन्दी) के 1 घंटे और रात्रि 09 से 10 बजे न्यूज नाइट (अंग्रेजी) के 1 घंटे के बुलेटिन में प्रसारित देश - दुनियां की कुल खबरों में संसद से जुडी खबरों के प्रसारण के स्वरूप, कार्यवाही की प्रस्तुति, और महत्तव को वरीयता आधार पर अध्ययन किया गया है। अध्ययन में शनिवार और रविवार को प्रसारित होने वाले रात्रि 08 बजे से 8.30 बजे तक हिन्दी समाचारों और रात्रि 8.30 से 09 बजे तक प्रसारित अंग्रेजी समाचारों के बुलेटिनों का अद्ययन किया गया।

निष्कर्ष एवं सामान्यीकरण

डीडी न्यूज पर संसदीय कार्यवाही की खबरों की वरीयता का अध्ययन

डीडी न्यूज पर संसदीय कार्यवाही की प्रस्तुति के अध्ययन के दौरान संसद के बजट सत्र के शुरू के 15 दिन एवं सत्र के अन्तिम 15 दिन (29 जनवरी, 2018 से 12 फरवरी, 2018 एवं 5 मार्च 2018 से 20 मार्च 2018) तक के तथ्यों की विवचना का निष्कर्ष निम्न प्रकार रहा।

29 जनवरी, 2018 से 12 फरवरी, 2018 एवं 5 मार्च 2018 से 20 मार्च 2018

समाचारों के प्रसारण का विवरण - सारिणी

दिनांक	समय (मि)	स्लाट का नाम	बुलेटिन अवधि (मि)	सम्पूर्ण स्टोरी (सं)	संसद समाचार विवरण																अन्य विवरण		
					संसद समाचार		राजनैतिक समाचार		विकासात्मक समाचार		बिजनेस समाचार		खेल समाचार		मनोरंजन समाचार		अपराध समाचार		अंतर्राष्ट्रीय समाचार		चर्चा	संसदीय खबरों के अलावा समाचार		विज्ञापन/ प्रो/मो.
					कुल स्टोरी (सं)	समय (मि)	कुल स्टोरी (सं)	समय (मि)	कुल स्टोरी (सं)	समय (मि)	कुल स्टोरी (सं)	समय (मि)	कुल स्टोरी (सं)	समय	कुल स्टोरी (सं)	समय (मि)	कुल स्टोरी (सं)	समय (मि)	कुल स्टोरी (सं)	समय (मि)	समय (मि)	कुल स्टोरी (सं)	समय (मि)	समय (मि)
29 जनवरी, 2018 से 12 फरवरी, 2018			26 घंटे	513	206	377	94	181	50	90.3	26	39.3			06	08	16	40	12	24	454	312	461	261
5 मार्च 2018 से 20 मार्च 2018			26घंटे	577	146	266	60	121.3	08	15.30	02	04	04	07	02	02	36	64.6	34	66.2	455	433	553	271
योग (एक-माह)			**52घंटे**	**1090**	**352**	**643**	**154**	**302.3**	**58**	**105.6**	**28**	**43.3**	**04**	**07**	**08**	**10**	**52**	**104.6**	**46**	**90.2**	**909**	**745**	**1014**	**532**

निष्कर्ष एवं सामान्यीकरण

29 जनवरी, 2018 से 12 फरवरी, 2018 एवं 5 मार्च 2018 से 20 मार्च 2018

इस दौरान कुल 1090 स्टोरी प्रसारित की गयी, जिनमें संसदीय समाचारों से जुडी 352 स्टोरी प्रसारित की गयी, जिनका समय 643 मिनट पाया गया। इन स्टोरी में राजनैतिक स्टोरी की संख्या 154 पाई गई, जिनका समय 302.3 मिनट रहा। विकासात्मक स्टोरी 58 पाई गई, जिनका समय 105.6 मिनट रहा। बिजनेस से जुडी 28 स्टोरी पाई गई, जिनका समय 43.3 मिनट रहा। खेल से जुडी 04 स्टोरी पाई गई, जिनका समय 07 मिनट रहा। मनोरंजन से जुडी 08 स्टोरी पाई गई, जिनका समय 10 मिनट रहा। अपराध से जुडी 52 स्टोरी पाई गई, जिनका समय 104.6 मिनट रहा। अंतर्राष्ट्रीय समाचारों से जुडी 46 स्टोरी पाई गई, जिनका समय 90.2 मिनट रहा। इस दौरान ज्वलंत मुद्दों पर चर्चा के लिए 909 मिनट का समय पाया गया। संसदीय खबरों के अलावा 745 स्टोरी प्रसारित की गई, जिनका समय 1014 मिनट रहा। विज्ञापन ब्रेक, प्रोमो, मोटांज व अन्य के लिए समय 532 मिनट रहा।

निष्कर्ष एवं सामान्यीकरण

29 जनवरी, 2018 से 12 फरवरी, 2018 एवं 5 मार्च 2018 से 20 मार्च 2018

संसदीय कार्यवाही को डीडी न्यूज पर प्रसारण से जुड़े अध्ययन के दौरान संसद के बजट सत्र के एक महिने (29 जनवरी, 2018 से 12 फरवरी, 2018 एवं 5 मार्च 2018 से 20 मार्च 2018) के दौरान तथ्यों की विवेचना का निष्कर्ष निम्न प्रकार रहा–

इस दौरान एक महिने के कुल बुलेटिनों में 3120 मिनट का समय पाया गया। जिनका औसत प्रतिदिन के हिसाब से 104 मिनट रहा। इस दौरान सम्पूर्ण स्टोरी 1098 पाई गई, जिनका औसत 36.6 रहा। इस दौरान संसदीय खबरों से जुङी कुल स्टोरी का एक महिने का औसत प्रतिशत 30.33 पाया गया, जिनका समय 19.45 प्रतिशत रहा जो संसदीय खबरों की प्रचुरता को दर्शाता है। संसदीय खबरों में राजनैतिक खबरों का औसत 13.71 प्रतिशत पाया गया, जिनका समय 09.91 प्रतिशत रहा। विकासात्मक खबरों के लिए 05.46 प्रतिशत औसत पाया गया जिनका समय 03.34 प्रतिशत रहा। बिजनेस की स्टोरी का औसत 02.19 प्रतिशत पाया गया, जिनके लिए औसत समय 01.25 प्रतिशत रहा। खेल समाचार स्टोरी से जुङी स्टोरी का औसत 0.36 प्रतिशत पाया गया, जिनका औसत समय 0.19 प्रतिशत रहा। मनोरंजन से जुङी स्टोरी का औसत 0.68 प्रतिशत पाया गया, जिनका समय 0.277 प्रतिशत रहा। अपराध से जुङी स्टोरी का औसत 05.23 प्रतिशत पाया गया। जिनका औसत समय 03.88 प्रतिशत रहा। अंतर्राष्ट्रीय खबरों से जुङी स्टोरी का औसत 04.43 प्रतिशत पाया गया, जिनका औसत समय 03.02 प्रतिशत रहा। ज्वलंत मुद्दों के लिए चर्चा का औसत समय 66.33 प्रतिशत पाया गया। संसदीय खबरों के अलावा स्टोरी का औसत 34.69 प्रतिशत पाया गया, जिनका औसत समय 25.35 प्रतिशत रहा। विज्ञापन ब्रेक, प्रोमो, मोटांज व अन्य के लिए औसत समय 17.21 प्रतिशत पाया गया।

सारांश

उपयुक्त विवेचना एवं तथ्यों के अवलोकन के पश्चात यह निष्कर्ष उभर कर सामने आया कि भारत जैसे विशाल लोकतंत्रिक देश में राजनीति से जुडी खबरों व चर्चा सबसे महत्वपूर्ण अभिरूचि का बिन्दु रही हैं, यही वजह रही कि डीडी न्यूज पर प्रसारित कुल समाचारों में संसदीय कार्यवाही से जुडी खबरों को प्रसारण में वरीयता मिली है। अध्ययन में पाया गया कि स्टोरी की संख्या एवम् कवरेज में मिले कुल समय के आधार पर संसदीय खबरों को गैर संसदीय खबरों की तुलना में काफी समय मिला है, जिससे इस बात की पुष्टि होती है कि संसदीय राजानीति जनमानस की रूचि का महत्वपूर्ण विषय रहा है। भारत का लोक प्रसारक होने के नाते डीडी न्यूज ने जनमानस की अभिरूचि को ध्यान में रखते हुए संसदीय कार्यवाही से जुडी खबरों को अपने प्रसारण में हमेशा तवज्जो दी है।

शोध के परिणामों में डीडी न्यूज के समाचारों के प्रसारण के स्वरूप में सुबह 6 बजे से लेकर अगले दिन 5.30 बजे तक के करीब हर समाचार बुलेटिन में संसदीय खबरों का प्रमुखता मिली। इसके अलावा समाचार आधारित कार्यक्रमों, समसामियक विषयों या ज्वलंत मुद्दों पर आधारित चर्चा या अन्य विशेष अवसर पर संसद में घटित होने वाले हर मुद्दे पर डीडी न्यूज की कवरेज बडी ही निष्पक्ष व पक्षपात रहित प्रसारित की गयी जो चौनल की लोकहित से जुडी नीति का राष्ट्र और समाज के प्रति जिम्मेदारी पूर्ण अहसास कराती है।

डीडी न्यूज पर पर संसदीय कार्यवाही के प्रस्तुतिकरण के दौरान समाचारों के वरीयता क्रम में भी हर बुलेटिन में खबर की जनरूचि के अनुसार संसदीय खबरों को प्राथमिकता मिली, जिनमें राजनैतिक समाचारों और विकासात्मक समाचारों से जुडी खबरों को प्रसारण क्रम में वरीयता दी गयी। इनके बाद बिजनेस समाचारों, खेल समाचारों, अपराध समाचारों और अंतर्राष्ट्रीय समाचारों से जुडी खबरों का स्थान रहा। अध्ययन के निष्कर्ष इस बात की पुष्टि करते है कि डीडी न्यूज चौनल पर एक महिने के दौरान प्राइम टाइम (न्यूज नाइट हिन्दी एवम् न्यूज नाइट अंग्रेजी –सोम से शुक्रवार– दो घंटे) तथा समाचार हिन्दी एवम् अंग्रेजी शनिवार–रविवार –एक घंटा) में कुल 1090 स्टोरी प्रसारित की गयी, जिनमें हर बुलेटिन में वरीयता के साथ पहले संसदीय समाचारों से जुङी स्टोरी को अवसर मिला, जिनकी संख्या 352 पायी गयी और प्रसारण समय 643 मिनट पाया गया। संसदीय समाचारों में राजनैतिक स्टोरी की को प्रस्तुतिकरण के दौरान वरीयताक्रम में प्रसारण महत्व मिला जिनकी संख्या 154 पाई गई और प्रसारण समय 302.3 मिनट रहा। उनके बाद विकासात्मक स्टोरी को वरीयता मिली जिनकी संख्या 58 पाई गई, और प्रसारण समय 105.6 मिनट रहा। उनके बाद बिजनेस समाचार, खेल समाचार, मनोरंजन समाचार, अपराध और अंतर्राष्ट्रीय समाचारों के अलावा अन्य खबरों को प्रस्तुतिकरण में स्थान मिला।

डीडी न्यूज पर बजट सत्र के चुनिंदा एक माह के संसदीय कवरेज के अध्ययन के दौरान निषेक्रषों में यह पाया गया कि संसदीय कार्यवाही से जुडे समाचारों को डीडी न्यूज पर प्रातमिकता के साथ हर समाचार बुलेटिन में प्रसारण के दौरान खबर की महत्ता के अनुसार समय दिया जाता है। चौनल पर प्रसारित हर बुलेटिन में सम्पूर्ण स्टोरी में संसदीय खबरों को महत्व दिया गया। संसदीय समाचारों में राजनैतिक खबरों के बाद और उसके बाद विकासात्मक खबरों को प्रसारण में प्राथमिकता दी गयी। उसके बाद बिजनेस समचारों, खेल समाचारो, मनोरंजनात्मक समाचारों, आपराधिक समाचारों, और अंतर्राष्ट्रीय समाचारों को महत्व दिया गया। चौनल पर संसदीय खबरों की प्रचुरता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि महिने भर में प्रसारित सम्पूर्ण स्टोरी में संसदीय समाचारों के प्रतिदिन का औसत 30.33 प्रतिशत रहा और इन खबरों के लिए उपलब्ध समय का औसत प्रतिशत 19.45 प्रतिशत रहा। जबकि संसदीय खबरों के अलावा स्टोरी का महिने भर का औसत प्रतिदिन का 34.69 प्रतिशत पाया गया, जिनका औसत प्रसारण समय 25.35 प्रतिशत रहा, जो डीडी न्यूज के बुलेटिनों में प्रसारित कुल स्टोरी की तुलना में संसदीय कार्यवाही के प्रसारण से जुड़ी खबरों की महत्ता को न केवल रेखांकित करता है बल्कि गैर संसदीय खबरों पर प्राइम टाइम में अपनी महत्ता के जरिए दर्शकों की अभिरूचि को भी दर्शाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

पुस्तक

विश्वनाथन-, टीके, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली। पेज- 1312

मल्होत्रा, गुरदीप चंद; (सं) भारतीय संसद के पचास वर्ष, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली।

उपाध्याय, देवन्द्र; भारतीय संसद और मीडिया, भारतीय पुस्तक परिषद, नई दिल्ली।

हरदेनिया, लज्जाशंकर; संसदीय रिपोर्टिंग स्वरुप एवं संभावनाए ,मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।

भारद्वाज, आर. सी.; टेलीकास्टिंग ऑफ पार्लियामेंटरी प्रोसिडिंग (सांतवां संस्करण) लोकसभा सचिवालय प्रकाशन, संसद भवन, नई दिल्ली। पेज-30

गोस्वामी-, दिनेश, प्रेस, संसद तथा सांसद कुछ विचार (आठवीं लोक सभा) (1985), नई दिल्ली। पेज-36

सक्सेना, गोपाल; टेलीविजन इन इंडिया (चौन्ज एन्ड चौलेंज) विकास पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली।

कश्यप, सुभाष; हमारी संसद, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।

जर्नल

पार्लियामेंट एन्ड डेमोक्रेसी इन 21 सेंचुरी (पालियामेंट रिपोर्ट बाई द इन्टर पार्लियांमेंट्री यूनियन) यूनाइटेड नेशन हेड क्वार्टर, न्यू यार्क

द जनरल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फोरमेशन (त्रैमासिक) लोकसभा सचिवालय प्रकाशन, नई दिल्ली।

डाइजेस्ट ऑफ लेजिस्लेटिव एन्ड कॉस्टीट्यूशनल केसेज (त्रैमासिक) लोकसभा सचिवालय प्रकाशन, नई दिल्ली।

पत्रिका

विश्वनाथन, टीके; संसदीय पत्रिका, (त्रैमासिक), लोकसभा सचिवालय प्रकाशन, नई दिल्ली।

संसदीय प्रलेखन, (संसद ग्रंथालय तथा संदर्भ शोध, प्रलेखन और सूचना सेवा) लोकसभा सचिवालय प्रकाशन,नई दिल्ली।

भारतीय संसदीय ग्रुप का सूचना पत्र, लोकसभा सचिवालय प्रकाशन, नई दिल्ली

बौद्ध वांग्मय में पर्यावरण चिंतनः थेरगाथा के विशेष संदर्भ में

डॉ० उमेश सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, कालिकाधाम पी.जी कॉलेज, सेवापुरी, वाराणसी

बौद्ध धर्म में पर्यावरण चिंतन का विस्तार व्यापक है। जहां प्रकृति के समस्त तत्वों का घनीभूत विवेचन मिलता है। बौद्ध वांग्मय में प्रकृति एवं पर्यावरण के प्रति कल्याणकारी दृष्टि का प्रतिपादन है। बुद्ध ने अपने उपदेशों में अहिंसा पर विशेष बल दिया है। जिसका क्षेत्र इतना विस्तृत है कि इसमें संपूर्ण मानव जाति, पशु पक्षी, वनस्पतियों के साथ समस्त प्राकृतिक घटक भी सम्मिलित हो जाते हैं। करणीमेत सुत[1] में बुद्ध कहते हैं कि छोटे बड़े, दीर्घ या महान, मध्यम या ह्रस्व, अणु के समान छोटे, दृष्ट अथवा अदृष्ट, दूरस्थ या निकटस्थ, उत्पन्न या अनुत्पन्न, सभी प्राणी सुख पूर्वक रहें एवं दूसरे की वंचना ना करें.., मनुष्य सभी प्राणियों के प्रति उसी करुणा और दया का भाव रखें जैसे एक माता अपने एकमात्र पुत्र के लिए कल्याण की भावना रखती है। करणीमेत सुत से ज्ञात होता है कि प्रकृति के समस्त घटक चाहे वह वृक्ष हों या छोटे बड़े पादप, पुष्प, लता, जलचर नभचर, कीट आदि हो इन सब के प्रति भगवान बुद्ध की दृष्टि पुत्र के समान थी। महात्मा बुद्ध के अनुसार वृक्षों में भी जीवन होता है जो व्यक्ति पेड़ पौधों को काटते हैं वह मूर्ख की श्रेणी में रखे जाते हैं या कहें वह मूर्ख होते हैं।[2] महात्मा बुद्ध के समय ताड़ के वृक्षों को काटकर चरण पादुका बनाई जाती थी। भगवान बुद्ध ने इसे मना करते हुए दूषित कार्य बताकर रोकने का प्रयास किया क्योंकि वृक्षों के काटने से भी जीव हिंसा होती है।[3] भगवान बुद्ध वृक्ष आदि वनस्पतियों में मानव के समान ही जीवन मानते थे।[4] वस्तुतः व्यावहारिक दृष्टि से चिंतन किया जाए तो अहिंसा और अपरिग्रह के द्वारा ही पर्यावरण की रक्षा सरलता से की जा सकती है।

भगवान बुद्ध की व्यापक दृष्टि से चराचर जगत का कोई भी जीव ओझल नहीं हुआ। समस्त चराचर जगत उनके आंखों के सामने था। वन क्षेत्रों से भ्रमण के दौरान उन्हें उन समस्त वनस्पतियों, लताओं, पुष्पों एवं जड़ी बूटियों का ज्ञान हुआ जो औषधीय महत्व के थे। भैषज्य गुरु के रूप में उनकी ख्याति प्रकृति के प्रति उनके आत्मसातीकरण की प्रवृत्ति का परिचायक है। प्रकृति के विशाल उपहार वन में बिखरी अनेकानेक औषधि गुण वाले वनस्पतियों का ज्ञान प्राप्त कर रोगी व्यक्तियों हेतु उसे उपलब्ध कराना भगवान बुद्ध की महाकारुणिक भावना का परिचायक है। बौद्ध ग्रंथ महावग्ग[5] में बुद्ध ऊर्जा के प्रमुख स्रोत अन्नादि भोजन को समस्त प्राणियों के जीवन का आधार बताते हुए कहते हैं कि प्रकृति द्वारा प्रदान किए गए अन्नादि भोजन सामग्री का दुरुपयोग कभी नहीं करना चाहिए। प्रकृति के विभिन्न घटकों के साथ बुद्ध का दीर्घ साहचर्य था। साल वृक्ष से भरे हुए लुंबिनी नामक स्थान में उनका जन्म, शाक्य गणराज्य की राजधानी कपिलवस्तु में जामुन के वृक्ष के नीचे ध्यान लगाना, बोधगया में निरंजना नदी के किनारे पीपल के वृक्ष के नीचे बोधिप्राप्ति, प्राचीन काशी में स्थित सारनाथ के मृग वन में प्रथम धर्म उपदेश जो बौद्ध जगत में धर्मचक्रप्रवर्तन के नाम से प्रसिद्ध है का प्रवचन, एवं कुशीनगर में सालवन के प्रांगण में महापरिनिर्वाण की प्राप्ति तथा वर्षावास6 के समय बांस, आम आदि वृक्षों के मध्य बने आश्रय स्थलों में रहना प्रकृति से उनके जुड़ाव का परिचायक है।

भगवान बुद्ध की देशना अहिंसा एवं करुणा के उस भाव से भरी है जिसमें केवल मानव ही नहीं समस्त चराचर जगत सम्मिलित है।[7] महात्मा बुद्ध की यही पर्यावरण विषयक चेतना बौद्ध साहित्य में बहुतायत से मुखरित हुई है। बौद्ध भिक्षुओं ने अपने दिन प्रतिदिन की आध्यात्मिक साधना या कार्यों में प्रकृति का ही सहारा लिया है। जिसका उदाहरण बौद्ध ग्रंथ थेरगाथा में स्वाभाविक रूप से प्राप्त होता है। थेरगाथा में जंगल, पर्वतों की मनोहारी छटाएं, वर्षा, शरद, वसंत आदि ऋतुओं का जितना मनभावन एवं संश्लिष्ट चित्रण मिलता है वह बौद्ध साहित्य में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। प्रकृति पर्यावरण के विविध संघटकों का सूक्ष्म अति सूक्ष्म उल्लेख थेरगाथा की विशेषता है। संभवत इसी से प्रभावित होकर विंटरनित्ज[8] ने थेरगाथा के प्राकृतिक वर्णनों को भारतीय गीतिकाव्य का सच्चा रत्न कहा है। जिससे स्पष्ट होता है कि बौद्ध भिक्षुओं की जीवन चर्या प्रकृति के सानिध्य में ही चलती थी।

बुद्ध के समय भिक्षुओं का जीवन प्रकृति से गहराई से सम्बद्ध था। गिरि गह्वर, नदियों के तट, वन प्रदेश, पुआल पुंज से छाई हुई कुटी या बिना छाई हुई कुटी में ध्यानमग्न भिक्षुओं को वर्षा, शरद, ग्रीष्म आदि ऋतुओं के परिवर्तन का तथा पृथ्वी एवं आकाश के विविध रंगों और रूपों के परिवर्तन का साक्षात अनुभव होता था। प्रकृति के विविध रूपों की प्रतिक्रिया भिक्षु के चित्त पर कैसे होती है वह क्या प्रभाव डालती है इसका नाना रूप थेरगाथा में जगह जगह निर्दिष्ट है[9]। घनघोर बारिश अथवा वर्षा के मध्य स्थविर सुभूति अपने अनुभव को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि मेरी कुटिया भली-भांति सुरक्षित रूप से छाई हुई है। वायु के अंदर ना आने से यह मेरे लिए सुख कर है। अतः हे मेघ देवता, तुम्हारी जितनी इच्छा हो, वर्षा करो। मेरा चित्त भी सर्वथा संयत एवं सभी विकारों से मुक्त है इसीलिए मैं प्रयत्न पूर्वक साधना में रत हूं। अतः आप इच्छा अनुसार वर्षा कर सकते हैं।[10] गिरिजानंद स्थविर कहते हैं कि रिमझिम रिमझिम की मधुर ध्वनि के साथ वर्षा हो रही है। मेरी कुटिया भली-भांति आच्छादित है। वायुरहित होने के कारण यह मेरे लिए सुखद भी है। उसमें मैं शांतिपूर्वक शांतचित्त, राग द्वेष एवं मोह से रहित होकर साधना में तत्पर हूं। ऐसे समय में यह में, हे मेघ, तुम जितना चाहते हो उतना बरस लो।[11] यह दोनों उदाहरण प्राकृतिक सौंदर्य का प्रत्यक्ष दर्शन कराते हैं।

मूसलाधार वर्षा में सौंदर्य का दर्शन कर भिक्षु कुल्य स्थविर कहते हैं कि मुझे पांच अंगों वाले वाद्य में वैसी रुचि नहीं होती जैसी एकाग्र चित्त होकर धर्म के समीचीन सुख चिंतन में होती है।[12] वस्तुतः समाधि सुख भिक्षु के लिए सर्वोत्तम सुख है और यह प्राकृतिक सौंदर्य ही उस भिक्षु के लिए ध्यान का उत्प्रेरक या उद्दीपक बनता है। वर्षा का भयंकर रूप भिक्षु संबुल कात्यायन एवं स्थविर न्यग्रोध हेतु मधुर गीत के समान है। थेरगाथा में वर्णित है कि भिक्षु सम्बुल कात्यायन किसी भयंकर गुफा में एकाकी ध्यानस्त बैठा है। वहां मेघ मूसलधार वर्षा कर रहे हों, आकाश में बिजली की कड़कड़ाहट हों, ऐसे में भिक्षु को भय कहां, क्योंकि निर्भय रहना उसका स्वभाव बन चुका है, यही उसकी धर्मता है। अतः उसको ना भय है ना कोई स्तब्धता और ना कोई रोमांच ही होता है। सम्बुल कात्यायन कहता है कि भयंकर वर्षा हो रही है। मेघ भयंकर गर्जन कर रहे हैं, परंतु मैं इस स्थिति में भी भयानक गुफा में बैठा हुआ एकांत साधना कर रहा हूं।[13] वर्षा कालीन सौंदर्य के बीच ध्यानमग्न भिक्षु चूड़क स्थविर कहते हैं कि वन प्रांतर में सुंदर नीले गर्दन वाले मोरों की ध्वनि तथा उनकी अपनी बोली में परस्पर संवाद भिक्षु को ध्यान में तत्पर होने का निमंत्रण देते हैं। वर्षाजल की शीतल मंद सुगंध वायु में मयूर भिक्षुओं की समाधि साधना हेतु प्रेरित करते हैं।[14] साधना की अवस्था में प्रकृति भी उल्लास और उत्साह से युक्त हो तो भिक्षुओं की प्रसन्नता का क्या कहना, तब उसका भी मन स्वच्छ, निर्मल और निर्विकार होकर अतिशय पवित्र, कुशल, उत्तम, अच्युत निर्वाण पद की प्राप्ति हेतु उत्साहित होता है।[15] एक प्रकार से प्रकृति का मनभावन रूप भिक्षु को समाधि अथवा तपस्या हेतु प्रेरणा प्रदान कर उसके मन को प्रकृति के समान निश्चल एवं पवित्र बनाता हुआ प्रतीत होता है। इसी कारण बौद्ध भिक्षुओं ने प्रकृति को अपनी साधना की प्राप्ति में उद्दीपक माना है।

ये सभी उदाहरण स्पष्ट करते हैं कि वर्षा जनित कोलाहल पूर्ण सौंदर्य की आनुभूतिक क्षमता निवृत्तिमार्गी भिक्षुओं में है। वस्तुतः प्रकृति का सानिध्य या कहें विविधतापूर्ण प्राकृतिक सौंदर्य ही भिक्षु के ध्यान के लिए उत्प्रेरक का कार्य करता है। इसलिए ध्यान हेतु आग्रही भिक्षुओं में प्रकृति के विविध या प्रलयंकारी रूपों के प्रति किसी प्रकार का कोई क्रोध अथवा क्षोभ का भाव पैदा नहीं होता है। सर्पक स्थविर वर्षा काल में किसी नदी के किनारे प्राकृतिक सौंदर्य से मोहित होकर एकांत समाधि में आसनस्थ हो जाना ही आवश्यक मानते हैं। वे आपदाकारी एवं प्रलयंकारी बाढ़ के समय में भी कहते हैं कि आज इन पर्वतों एवं नदियों से दूर रहने का समय नहीं है।[16] इन उदाहरणों से प्रकृति के सभी रूपों के प्रति पूर्ण श्रद्धा का भाव प्रकट होता है ऐसा उदाहरण विश्व के साहित्य में अन्यत्र कहीं नहीं है। प्रकृति पर्यावरण के क्रोड़ में ध्यान मग्न होने की साधना कितनी आनंद देने वाली होती है इसका ज्ञान केवल अनुभवी बौद्ध साधक को ही होता है।

नवक निपात में स्थविर भूत कहते हैं कि जब आकाश में निरंतर मेघों की गर्जना हो रही हो और उनसे निरंतर घनघोर वर्षा हो रही हो, तब भिक्षु किसी पर्वत की गुफा में समाधिनिष्ठ रहता है तो, उस साधना से बढ़कर, अन्य कोई आसक्तिस्थान नहीं है। वे आगे कहते हैं कि जब मध्यरात्रि में मेघों के घोर गर्जन के साथ किसी एकांत वन में प्रबल वर्षा हो रही हो तथा दूसरी ओर तीव्र वेग से बहती हुई नदी के तट पर बैठे सिंहों की गर्जना हो रही हो, तो ऐसे समय में पर्वत की गुफा में बैठा कोई भिक्षु ध्यानाभ्यासरत रहता है तो इस साधना से बढ़कर, अन्य कोई आसक्ति स्थान नहीं है।[17] ऐसा ही समाधिजन्य परमसुख किसी विशाल वन में या कहीं महावन में या पर्वत के सर्वोच्च शिखर पर बैठे हुए ध्यानमग्न भिक्षु को भी प्राप्त होता है। इसी का उदाहरण एकविहारी स्थविर अपने जीवन अनुभव में देता है। वह कहता है कि अब मैं बुद्ध द्वारा प्रशंसित इस वन में अकेला ही प्रवेश करूंगा, क्योंकि संयतेंद्रिय भिक्षु द्वारा वन में एकाकी विचरण करना सुखमय होता है। मैं योगियों के लिए आह्लादकारक, रमणीय, मतगजों के आवास स्थल इस वन में अकेला ही प्रवेश करूंगा। मैं किसी शीतल गिरिकंदरा के समीप स्नान कर इस फूले फले शीतवन में एकाकी ही चंक्रमण करूंगा। मैं किसी अन्य सहायक के बिना एकाकी ही इस रमणीय महावन में कब विचरण करूंगा.।[18] एक दूसरा भिक्षु जिसका नाम तालपुट स्थविर मिलता है ऐसा ही भाव प्रकट करता है कि मैं पर्वतों की गुफाओं में एकाकी अद्वितीय रहता हुआ साधना करने में कब समर्थ होऊंगा। वह इच्छा व्यक्त करता है कि मैं किसी वन में कब इस मृत्यु एवं रोग के गृहरूप वृद्धत्व से पीड़ित देह को अनित्य मानता हुआ निर्भय एवं एकाकी रहता हुआ साधना कर पाऊंगा। मेरा वह समय कब आएगा जब मैं ऋषियों द्वारा सेवित मार्ग पर चलता हुआ वर्षा ऋतु में मेघों के जल से चीवरों सहित भीगता हुआ वन में विचरण करूंगा। कब मैं पर्वतों की गुफा में बैठा हुआ मयूरों के कंठ से शब्द की प्रतिध्वनि सुनकर निर्वाण प्राप्ति हेतु शीघ्रता से चिंतन कर पाऊंगा।[19] समस्त भिक्षुओं के ये उदगार प्रकृति के मध्य निर्वाण प्राप्त करने की उनकी भावना का प्रत्यक्षीकरण है। वे इस प्राकृतिक परिवेश में डूब जाना चाहते हैं। प्रकृति की ध्वनियां उसकी विविध क्रियाएं प्रतिक्रियाएं उनके निर्वाण की प्राप्ति में सहायक सिद्ध होती हैं। महाकाश्यप स्थविर[20] को भी पर्वतों की गुफाओं में बैठकर एकांत साधना करना बहुत प्रिय था। वे कहते हैं कि मुझे ऐसे पर्वत, जहां स्थान स्थान पर करेरी वृक्ष खड़े हों, जहां स्थान स्थान पर हाथियों की चिंघाड़ सुनाई दे रही हो, साधना हेतु बहुत अनुकूल प्रतीत होते हैं।

बौद्ध भिक्षुओं ने अपनी समाधि अथवा साधना अभ्यास में ऋतुओं का भी प्रयोग अथवा पूर्ण उपयोग किया है। ऐसा थेरगाथा से ज्ञात होता है। चाहे शीत ऋतु हो या हेमंत ऋतु की रात हो, बसंत ऋतु हो या ग्रीष्म ऋतु भिक्षु प्रकृति प्रदत विविध साधनों या उपायों के माध्यम से अपने शरीर को स्वस्थ रखते हुए साधना की ओर रत रहता था। मोघराज स्थविर[21] शीत से रक्षा का उपाय बताते हुए कहते हैं कि धान का पुआल बिछाकर तथा ओढ़कर इस ऋतु में शीतल वायु से अपनी रक्षा कर लूंगा और साधना में रत रहूंगा। वहीं कालुउदायी स्थविर[22] बसंत ऋतु की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि भंते इस समय ना अधिक शीत का प्रकोप है और न ही उष्णता का। अतः यह ऋतु अब यात्रा करने योग्य बन गई है।

बौद्ध भिक्षुओं ने अपनी आध्यात्मिक साधना अथवा अष्टांगिक मार्गों की प्राप्ति हेतु रात्रि के समय को ही अधिक श्रेयस्कर माना है। भगवान बुद्ध ने भी अपने उपदेशों में रात्रि के मध्य जागृत होकर साधना संपादित करने का स्पष्ट आदेश दिया है। स्वाभाविक है कि रात्रि में वातावरण की शांति के कारण समाधिजन्य अवस्था की प्राप्ति हेतु पूरा अवकाश प्राप्त होता है। इसी कारण भिक्षुओं ने रात्रि में साधना पर अधिक महत्व दिया। सोणपोटिरिय स्थविर[23] का कथन रात्रि साधना के महत्व पर व्यापक रूप से प्रकाश डालता है कि यह नक्षत्रों अर्थात तारा समूह से जगमगाती चांदनी रात्रि सो कर व्यर्थ गंवाने के लिए नहीं अपितु बुद्धिमान साधकों द्वारा धर्म की साधना में ही बितानी चाहिए। भिक्षुओं के इन अनुभवों से स्पष्ट होता है कि बौद्ध चिंतन मनन अथवा धर्म की साधना के अभ्यास में प्रकृति के विविध रूप जैसे पादप, वृक्ष, पुष्प, लता, वल्लरी, नदी, जीव-जंतु, कीट, मेघ, वर्षा, बाढ़, मेघगर्जन आदि प्रेरक एवं सहायक ही है। जिससे स्पष्ट होता है कि बौद्ध भिक्षु स्वयं को उसी विराट प्रकृति का एक भाग या अंश स्वीकार करता है। थेरगाथा के विविध वर्णनों से स्पष्ट होता

है कि बौद्ध धर्म चिंतन में प्रकृति को संपूर्णता के साथ आत्मसात कर लिया गया था। बुद्ध एवं भिक्षु भिक्षुणी प्राकृतिक व्यवस्था में रहते हुए उसी में निर्वाण प्राप्ति की ओर अग्रसर रहने का अभ्यास करते थे तथा वे पर्यावरणीय घटकों के सानिध्य में ध्यानजन्यसुख की अनुभूति का स्पर्श महसूस करते थे। थेरगाथा में समाधि में सहायक पर्यावरण अथवा प्रकृति के विविध अंगों का उल्लेख साधना हेतु प्रेरक अथवा सहायक अंग के रूप में किया गया है यहां पर घनघोर वर्षा, कोकिल की आवाज, नदियों की कलकल ध्वनि, सिंहों की गर्जना, हाथियों की चिंघाड़, मेघ की गर्जना, कठोर धर्म साधना की पृष्ठभूमि के लिए ही उपयोग में लाई गई है। प्रकृति के विविध रूप समाधि की अवस्था को प्राप्त करने के लिए किसी भी प्रकार से बाधक सिद्ध नहीं होते हैं बल्कि वह भिक्षु भिक्षुणीयों की निर्वाण प्राप्ति में येन- केन- प्रकारेण सहायक ही होते हैं। यह जहां एक और चित्त की अशांतता को नष्ट कर उसे एकाग्रता की ओर अग्रसारित करते हैं वहीं दूसरी ओर साधकों के अशांत मन को शांत करते हैं।

संदर्भ सूची

1. राहुलराज, बौद्ध पर्यावरण एवं सामाजिक जीवन, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 37
2. वही, पृष्ठ 36
3. वही, पृष्ठ 36
4. वही, पृष्ठ 36
5. वही, पृष्ठ 41
6. वही, पृष्ठ 38
7. ओम प्रकाश, प्रस्तावना, बौध्द्ध पर्यावरण एवं सामाजिक जीवन, 2005, पृष्ठ 9
8. विंटरनित्ज, इंडियन लिटरेचर , जिल्द, 2, पृष्ठ 106
9. शास्त्री, द्वारिका दास, थेरगाथापालि, बौद्ध भारती प्रकाशन, वाराणसी, 2008, भूमिका, पृष्ठ 28
10. वही, पृष्ठ 4
11. वही, पृष्ठ 82-83

12 वही, पृष्ठ 94

13 वही, पृष्ठ 10, 55

14 वही, पृष्ठ 60

15 वही, भूमिका, पृष्ठ 29

16 वही, पृष्ठ 78-79

17 वही, पृष्ठ 115-116

18 वही, पृष्ठ 118-119

19 वही, पृष्ठ 201-202

20 वही, पृष्ठ 116-117

21 वही, पृष्ठ 51

22 वही, पृष्ठ 117

23 वही, भूमिका, पृष्ठ 36

वशिष्ठ अनूप की गजलों में स्त्री विमर्श

आरती देवी

एम.फिल., शोधार्थी, हिंदी विभाग, जम्मू विश्विविद्यालय, जम्मू

गजलकार वशिष्ठ अनूप का जन्म गोरखपुर जिले के बड़हलगंज ब्लॉक के सहडौली गांव में हुआ। अब तक इनके पांच गजल संग्रह प्रकाशित हुए हैं – बंजारे नयन (2000), रोशनी खतरे में है (2006), रोशनी की कोंपलें (2010), मशालें फिर जलाने का समय है (2013) तथा तेरी आंखें बहुत बोलती हैं (2014)। इन गजल संग्रहों में गजलकार ने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि कई विषयों को गजल के माध्यम से अभिव्यक्ति किया है। वह एक प्रगतिशील रचनाकार हैं। अपनी रचनओं में न केवल समाज में व्याप्त असामाजिक तत्वों को चित्रित किया है बल्कि उनका प्रतिरोध कर अंधकार से लडते हुए आशा की डोर थाम कर पाठक के मन में उर्जा, उम्मीद और विश्वास उत्पन्न करने का प्रयास किया ह।

अनूप जी ने नारी के परम्परागत रूप के साथ-साथ नवीन रूप को भी अपने गजलों में स्थान दिया है। वह नारी को लाचार और अबला रूप में प्रस्तुत करने के बजाय उसे अपनी रक्षक स्वयं बनने के लिए प्रेरित करते हैं। मानव सभ्यता के निर्माण में स्त्री और पुरुष दोनों का योगदान है परन्तु पुरुष केंद्रित संरचना उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास में बाधक रही है। बाल्यावस्था से ही उसकी भूमिकाएं, कर्त्तव्य तथा सीमाओं को निर्धारित कर दिया जाता है। उसे रूढ़िवादी संरचना के सांचे मे ढालने की प्रक्रिया बचपन में ही शुरू हो जाती है और किशोरावस्था तक आते आते यह एक सामान्य रूप धारण कर लेती है। स्त्री के सुखों की कल्पना को अच्छी बेटी, पत्नी, बहू, माँ आदि में बांध दिया जाता है और मानव रूप में उस की स्वतंत्रता पर बंदिश का ठप्पा लग जाता है। रचनाकार ने एक और जहाँ स्त्री के महत्व को स्वीकारा करते हुए समाज के विद्रूप चेहरे को भी चित्रित किया है जोकि नारी के प्रति आज भी पक्षपाती दृश्टि रखता है। 'लड़की पराया धन है' दैनिक जीवन का एक ऐसा मुहावरा है जिस के कारण लड़की के माता-पिता उसके पैदा होते ही उसे संतान प्रेम के भाव से विमुख कर देते है। वर्तमान समय में नारी हर क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है परन्तु इसे नारी मुक्ति का दौर नहीं कहा जा सकता है। वह शोषण मुक्त नहीं हो पाई है लेकिन उस के मन के भीतर आसमान छूने का बीज अंकुरित जरूर हुआ है।

आधुनिक समाज अपने आप को सभ्य मानता है परन्तु समाज के आईने में स्त्री की आँखों में बेबसी तथा लाचारी नजर आती है:

''गाँव से दिल्ली तलक दु:शासनों का तार है,
आज हर बेटी यहाँ लगती बहुत लाचार है।''[1]

महिला की सुरक्षा का मुद्दा आज भी सवाल बना हुआ है। विश्व का कोई भी कोना उसके लिए सुरक्षित नहीं है। आजाद होने पर भी वह अदृश्य बेड़ियों से बंधी है। इतिहास के पन्नों को पलट कर देखें तो अतीत में भी स्त्री के शोषण के किस्से मिल जाएंगे:

''लेती है मजे सारी सभा चीर हरण के,
हर रोज कोई द्रौपदी लगती है दाँव पर।''[2]

द्रौपदी का चीरहरण महाभारत तक सीमित नहीं है। बल्कि आज के युग में भी नारी के चीर हरण के किस्से आम हैं। आए दिन स्त्री के अपहरण की खबरें आती हैं। हमारा समाज इस स्तर तक गिर गया है कि देवी रूप में जिस स्त्री की पूजा करता है, जिसे शक्ति का प्रतीक मानता है, उसी का अपहरण भी करता है। मानव मन के भीतर छिपी घिनौनी प्रवृति का रावण आज भी असंख्य स्त्रियों का अपरहण कर रहा है:

''गरीबों की बहू और बेटियों को,
अभी गुण्डे उठा ले जा रहे हैं
नहीं है अंत अब भी मुश्किलों का
मसाइल कल पर टाले जा रहे हैं।''[3]

स्त्री का अपहरण करना साधारण सी बात हो गई है क्योंकि मर्यादाहीन लोग आज भी उसे भोग-विलास की नजर से देखते है।

स्त्री के जीवन की दयनीय स्थिति को इस प्रकार अनूप जी बयाँ करते हैं:

''दीये जलाती और दीये-सी जलती है,
रोज़ सँवरती रोज बिखरती है।
एक जनम में कई जिन्दगी जी लेती,
एक जनम में कितनी मौतें मरती है।

कदम कदम पर डाँट-डपट-दुत्कारें हैं,
बिना वजह की बात-बात पर डरती है।
दुख का कौन पहाड़ छिपा उनके पिछे
उसकी आँखें झरने जैसी झरती हैं।''[4]

नारी का जीवन दीये की भांति है जो खुद जलकर दूसरे को रोशनी देती है। उसके जीवन की विडम्बना यह है कि उसकी वजह से सबका जीवन प्रकाशमय तो है परन्तु स्वयं वह अंधेरे में जी रही है। वह प्रेम की मूर्ति तो है परन्तु उसका जीवन ही प्रेम से वंचित है। उसके भीतर के अथाह दुख को समझने वाला कोई नहीं है। उसका जीवन हर किरदार में संघर्ष और अत्याचार के गोते खा रहा है। जीवन के प्रत्येक कदम पर उसे बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

अग्निपरीक्षा का विकल्प केवल स्त्री के भाग्य में आता है। अग्नि परीक्षा के भंवर में फंसी नारी का चित्रण वशिष्ठ जी इस प्रकार व्यक्त करते हैं:

''कहीं तलाक कहीं अग्नि परीक्षाएँ हैं,
आज भी इन्द्र है, गौतम हैं, अहिल्याएँ हैं।
प्यार की राह में दुष्यंत जिन्हें छोड़ गये,
भटकती फिर रहीं बन-बन शकुन्तलाएं हैं।''[5]

अपनी दैहिक पवित्रता को साबित करने के लिए स्त्री को कई बार अग्निपरीक्षा देनी पड़ती है।

स्त्री के जीवन में त्याग, बलिदान आदि शब्दों द्वारा उसकी स्वतंत्रता और अधिकार पर पाबंदी लगायी जाती है। घर चलाने का जिम्मा महिलाओं का ही माना जाता है। घर की जिम्मेदारी और बच्चों के पालन-पोषण की जिम्मेदारी में वह स्वयं पिसती जा रही है। स्त्री प्रत्येक युग में समाज के उत्थान का हिस्सा रही है। पुरुष अपनी सफलता के लिए स्त्री को भागीदार तो मानता है परन्तु उसके महत्व को नेपथ्य में रखता है। जिस कारण उसे कमजोर समझा जाता है। समाज आँखें मूंदकर उसकी भूमिका को शून्य नहीं मान सकता। नारी-जीवन की प्रत्येक भूमिका के संघर्ष की गाथा को अनूप जी इस प्रकार व्यक्त करते हैं:

''सिर पे बोझा, पीठ पर बच्चे को बाँधे जा रही है,
जिन्दगी की जंग से वह हर घड़ी टकरा रही है।
भूख, रोटी, भात, बच्चे, मर्द है दुनिया यही,
है कोई मंजिल नहीं, पर जा रही है आ रही है।
भूख से बेहाल बच्चा है जमी पर लोटता,
वह उसे चंदा दिखाकर देर से बहला रही है।
शाम को फुर्सत मिली तो गुंथ रही आटे-सी खुद,
भूख उसको खा रही है, भूख को वह खा रही है।''[6]

भारतीय नारी के जीवन की वास्तविक छवि यह है कि उस का जीवन दूसरों के कल्याण के लिए बना है। चौतरफा संघर्ष करते हुए भी वह हर रिश्ते को संवारती है उस के जीवन की त्रासदी यह है कि उसे मनुष्य माना ही नहीं गया। सबकी अन्नपूर्णा होते हुए भी कई बार उसके नसीब में अन्न नहीं होता। वह सबके पोषण को लेकर सचेत तो है परन्तु खुद के लिए उसके पास वक्त ही नहीं है।

बदलते दौर में स्त्री भी अपने अधिकारों के प्रति जागरुक हो रही है। वह मर्यादा के नाम पर फैलाए भ्रमजाल से निकलने का प्रयास कर रही है। स्त्री मन के प्रतिरोध को लेखक ने खूबसूरती से गजल द्वारा बताया है:

''बन्द होठों की कभी बेबसी नहीं समझा,
हमारी जिंदगी को जिंदगी नहीं समझा।
कभी देवी कभी परी कभी दासी समझा,
कभी किसी ने हमें आदमी नहीं समझा।
जली हैं रोज अँधेरों में दीप की लौ-सी,
मगर किसी ने हमें रोशनी नहीं समझा।
कभी माया कभी बन्धन कभी अधम माना,
कभी किसी ने हमें चाँदनी नहीं समझा।
उठो कि आग दिलों की जले मशालों में
तीर की चोट शिकारी कभी नहीं समझा।''[7]

नारी को देवी, पत्नी, दासी आदि रूपों के अन्तर्गत उसके लिए भिन्न कायदे-कानून बनाए गए हैं परन्तु एक मनुष्य के रूप में उसे स्वीकार नहीं किया गया। अब वह रूढ़िवादी समाज द्वारा बनाए गए झूठे कर्त्तव्यों के जाल का विरोध कर रही है। अब वह चूल्हे में जलती लकड़ी को हवा नहीं दे रही बल्कि

वक्त आने पर उसे मशल बनाकर अपना रास्ता भी खोज रही है। नारी अब चिड़िया बनकर पिंजरे में कैद होकर शोभनीय वस्तु बनकर नहीं रहना चाहती बल्कि आज वह पिंजरे के समेत अपनी उड़ान भरकर पिंजरे तथा आसमान की सीमाओं को तोड़ रही है। वह 'स्व' की शक्ति से परिचित हो चुकी है।

नारी सशक्तिकरण के दौर में नारी को स्वयं आगे बढ़कर लड़ना और अपने अस्तित्व की रक्षा करनी होगी। लेखक नारी को लाचारी से बाहर निकाल कर स्वयं की रक्षक बनने के लिए प्रेरित करते हैं:

''जरूरी हैं कि द्रौपदियाँ स्वयं बाँधे कमर क्योंकि,
दुशासन छोड़ दे तो कृष्ण पट ले भाग जायेंगे।''[8]

यह जरूरी है कि नारी रक्षक के इंतजार को छोड़कर अब स्वयं के अस्तित्व की रक्षक बने। नारी उत्थान के नाम पर कई बार सवर्ग द्वारा ही उसका शोषण होता है। स्त्री को अब पुरुष के शोषण से मुक्ति के साथ-साथ अपने ही वर्ग से भी संघर्ष करना पड़ रहा है:

''यह जो अब महिला समाज की मुखिया है,
ये भी कल शामिल थीं बहू जलाने में।''[9]

गजलकार ऐसी स्त्री का विरोध करते हैं जो नारी होकर नारी का शोषण करती है। जरूरी है कि वह अपने वर्ग के उत्थान का प्रयत्न करे न कि पतन का कारण बने।

हमारे देश में आमतौर पर स्त्री को जन्म से पहले कोख में ही अपने जीवन के लिए संघर्ष करना पड़ता है। माँ की कोख भी उसके लिए सुरक्षित नहीं है। भ्रूणहत्या के मामले आए दिन सुनने को मिलते हैं जो कि समाज पर एक कलंक है। जनसंख्या को नियंत्रण में करने के लिए ''हम दो हमारे दो'' का नारा दिया गया परन्तु उस का खामियाजा नारी को ही भुगतना पड़ा। पुत्र की अभिलाषा हेतु भ्रूण परीक्षण का सहारा लिया गया तथा कन्या होने पर भ्रूण हत्या करवा दी जाती है। छोटे तथा सुखी परिवार के लिए पुत्र एक अनिवार्य अंग बन गया। अनूप जी लिखते हैं :

''बच्चियाँ लड़कियाँ औरतें,
काँच की खिड़कियाँ औरतें।
कोख से ही सजा मिल रही।
की हैं क्या गलतियाँ औरतें,
इक हवालात सी जिन्दगी,
गालियाँ झिड़कियाँ औरतें।''[10]

प्रगति की ऊँचाई छूने वाले देश में बेटी के आने का जश्न नहीं बल्कि नई तकनीकों द्वारा कोख में ही खत्म करने का रास्ता ढूँढा जाता है। अगर लड़की जन्म ले भी ले तो उसका संपूर्ण जीवन काँटों की सेज बन जाता है:

''कुछ अजन्मों की हत्या हुई गर्भ में,
जन्म के बाद कोई जलाई गई।
तुम पुकारो उसे चाहे जिस नाम से,
हर जमाने में औरत सताई गई।''[11]

अतीत से लेकर वर्तमान युग के सफर तक नारी का जीवन शोषण की अनगिनत कहानियों से भरा पड़ा है। विकृत मानसिकता वाले पुरुषों के कारण वह आज भी शोषण का शिकार हो रही है।

बेटियों की बढ़ती उम्र माता-पिता की खुशी छीन लेती है माता-पिता की इस चिंता का जिक्र गजलकार इस प्रकार करते हैं:

''बेटियाँ बढ़तीं तो माँ-बाप खुश नहीं होते,
पाँव फूलों के झिझकते हैं अब जवानी से।''[12]

बेटियों को घर की खुशी का अनिवार्य अंग मानते हुए अनूप जी बेटियों की अहमियत पर लिखते हैं:

''घर के आँगन में ज्यों किलकारियाँ जरूरी हैं,
उसी तरह घरों में बेटियां जरूरी हैं।
कहीं वीरान न हो जाए धरा फूलों से,
ये खिलखिलाती हुई लड़कियाँ जरूरी हैं।''[13]

प्रकृति ने नारी को सृजन की शक्ति प्रदान की है। वह जीवन की सृजनकर्ता है। उसकी भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। अत: सृष्टि के निर्माण में उसकी अहमियत भी पुरुष के बराबर है।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं वशिष्ठ अनूप जी ने गजलों के माध्यम से स्त्री-मन की पीड़ा तथा स्त्री जीवन की विभिन्न समस्याओं को बारीकी से उकेरते हुए समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

संदर्भ ग्रन्थ

1 वशिष्ठ अनूप, तेरी आंखें बहुत बोलती हैं, पृ.27
2 वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कोंपलें, पृ.103
3 वशिष्ठ अनूप, तेरी आंखें बहुत बोलती हैं, पृ.38
4 वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कोंपलें, पृ.92
5 वशिष्ठ अनूप, बंजारे नयन, पृ.11
6 वशिष्ठ अनूप, तेरी आंखें बहुत बोलती हैं, पृ.33
7 वशिष्ठ अनूप, बंजारे नयन, पृ.12
8 वशिष्ठ अनूप, बंजारे नयन, पृ.5
9 वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कोंपलें, पृ.104
10 वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृ.46
11 वशिष्ठ अनूप, तेरी आंखें बहुत बोलती हैं, पृ.66
12 वशिष्ठ अनूप, तेरी आंखें बहुत बोलती हैं, पृ.41
13 वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, पृ.16

उत्तर प्रदेश में नगरीकरण: प्रवृत्ति, प्रतिरूप एवं नीतिगत मुद्दे

अभिषेक यादव

शोध छात्र, आर.एस.एम.पी.जी. कॉलेज, धामपुर, बिजनौर, (रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली)

सार

वैश्वीकरण की परिघटना ने ना केवल विकसित देशों की शहरी प्रवृत्ति व प्रतिरूप को प्रभावित किया है, बल्कि इसका व्यापक प्रभाव विकासशील देशों पर भी पड़ा है। भारत जैसे विकासशील देशों में वैश्वीकरण ने आर्थिक विकास की गतिविधियों को काफी तेज किया है जिसके परिणामस्वरुप शहरीकरण की प्रक्रिया में तेजी आयी है। उत्तर प्रदेश, भारत का सर्वाधिक जनसंख्या वाला राज्य है जहाँ लगभग 4.45 करोड़ लोग शहरी क्षेत्रों में रहते है। हालांकि, अन्य राज्यों के मुकाबले उत्तर प्रदेश में शहरीकरण की प्रक्रिया धीमी है, फिर भी इससे जुड़ी समस्याओं का स्वरुप लगभग सभी जगह समान है। प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य उत्तर प्रदेश में नगरीकरण की प्रवृत्ति को ऐतिहासिक और समकालीन परिप्रेक्ष्य में दर्शाना तथा उनसे जुड़ी नीतियों का परिक्षणं, उनके कार्यान्वयन का पता लगाना है।

संकेत शब्द: शहरीकरण, शहरी विकास, अस्थायी परिवर्तन, नीतिगत ढांचा, उत्तर प्रदेश

1. परिचय: वैश्वीकरण ने विश्व की अर्थव्यवस्था को तीव्रता प्रदान की है जिसके कारण वैश्विक उत्पाद, पूँजी आदि के संचरण में भी तेजी आयी है। अर्थव्यवस्था में आयी इस तीव्रता ने नगरीकरण की प्रक्रिया को भी बढ़ाया है। नगरीकरण एक अवधारणा है जो विकास की प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है। औद्योगीकरण और नगरीकरण दोनों अविभाज्य हैं क्योंकि, जैसे जैसे उद्योग में बढ़ोतरी होती है वैसे वैसे नगरीकरण की प्रक्रिया भी तेज होती जाती है। नगरीकरण को एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है, खासकर इक्कीसवीं सदी की, जिसने पूरी दुनिया की जनसांख्यिकी विशेषताओं को प्रभावित किया है।[1]

शहरीकरण और आर्थिक विकास के बीच एक घनिष्ठ संबंध पाया जाता है, और इसका उदाहरण विकसित और विकासशील देशों में आसानी से देखा जा सकता है। बढ़ते आर्थिक क्रियाओं, ज्ञान का विकास आदि के कारण ये शहर एक गुरुत्वाकर्षण केंद्र की तरह काम करते है- ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की तरफ जनसंख्या के खिचाव में है, इस खिचाव के परिणामस्वरुप नगरीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई है। शहरीकरण को एक परिमित प्रक्रिया के रूप में भी परिभाषित किया जाता है जिसके माध्यम से एक राष्ट्र कृषि समाज से औद्योगिक समाज की ओर अग्रसर होता है।[2]

सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में, शहरीकरण की प्रक्रिया को कई विद्वानों द्वारा उल्लेखित किया गया है, क्योंकि यह कई विषयों के लिए प्रासंगिक है, उदाहरण के लिए समाजशास्त्री-पारंपरिक सामाजिक संस्कृति, संस्थानों और मूल्यों को बदलने की प्रक्रिया के रूप में शहरीकरण की प्रक्रिया का निरीक्षण करते हैं।[3]

अर्थशास्त्री आर्थिक वृद्धि और विकास की एक प्रक्रिया के रूप में शहरीकरण का विश्लेषण करते हैं जो आर्थिक और औद्योगिक समाज के विस्तार के लिए आवश्यक श्रम शक्ति प्रदान करता है।''[4]

कुछ विद्वानों ने शहरीकरण की प्रक्रिया को जनसांख्यिकी परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया है यानी शहरीकरण कुल आबादी में शहरी आबादी के अनुपात में समय की अवधि में वृद्धि है।[5]

भूगोलविदों ने शहरीकरण की प्रक्रिया को ग्रामीण इलाकों से शहर और कस्बों में आबादी के स्थानांतरण के रूप में समझाया और इस तरह, यह ग्रामीण-शहरी प्रवास की प्रक्रिया से दृढता से जुड़ा हुआ है।[6]

3. अध्ययन संरचना विधि एवं आंकड़ों का स्रोत: अध्ययन हेतु विवरणात्मक विधि का प्रयोग किया गया है जिसके लिए भारत सरकार की जनगणना रिपोर्ट को आधार बनाया गया है। विभिन्न जनगणना प्रतिवेदनों से प्राप्त आकड़ों को ऐतिहासिक एवं सामयिक परिप्रेक्ष्य में देखने व समझने का प्रयास किया गया है। आंकड़ों के प्रस्तुतीकरण हेतु बार चित्र व रेखा चित्र का प्रयोग किया गया है। इसके अलावा उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा समय समय पर नगरीकरण के सन्दर्भ में विभिन्न मीडिया रिपोर्ट में प्रकाशित सूचनाओं को भी अध्ययन में संकलित किया गया है।

4. अध्ययन उद्देश्य:

- अध्ययन का उद्देश्य उत्तर प्रदेश में नगरीकरण की प्रक्रिया का ऐतिहासिक सन्दर्भ में अवलोकन करना।
- नगरीकरण से सम्बंधित उत्तर प्रदेश सरकार की नीतियों का उल्लेख करना।

5. उत्तर प्रदेश में शहरीकरण की प्रवृत्ति का अवलोकन: उत्तर प्रदेश में शहरीकरण की प्रक्रिया सदी की शुरुआत से ही बहुत धीमी रही है। वर्ष 1901 में, उत्तर प्रदेश में भारत की कुल शहरी आबादी का 21 प्रतिशत जनसंख्या का संकेन्द्रण था, जिसमें उत्तरोत्तर गिरावट की प्रक्रिया देखि जा सकती है। 1991 में उत्तर प्रदेश में कुल जनसंख्या में नगरीय जनसंख्या का अनुपात 12.97 प्रतिशत था जो 2001 व 2011 में घटकर क्रमशः 12.11 प्रतिशत तथा 11. 80 प्रतिशत रह गयी। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो स्पष्ट होता है की 1911–1921 नगरीकरण के परिप्रेक्ष्य में उत्तर प्रदेश में तीव्र गिरावट का दशक था, जिसका तात्कालिक कारण देश में बड़े पैमाने पर प्लेग का फैलाव था।[7] उत्तर प्रदेश में नगरीकरण की प्रक्रिया को तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है।

5.1 1901–1951 के बीच का चरण: 1901–1911 के बीच विनाशकारी प्लेग प्रचलित था। इसके कारण शहरी आबादी का प्रतिशत 11.10 प्रतियात से घटकर 10.6 प्रतिशत हो गया। 1911–1921 के दौरान इन्फ्लूएंजा प्रकोप ग्रामीण–शहरी प्रवास का कारण बना, जिसके परिणामस्वरूप वर्ग–1 और वर्ग–2 शहरों की संख्या में वृद्धि हुई , जिसके परिणामस्वरूप नगरीय जनसंख्या भी बढ़ी। इस समय अवधी के दौरान शहरी आबादी में मामूली वृद्धि दर्ज की गयी। नगीकरण का प्रतिशत 1911 (10.19) से बढ़ कर 1921 तक 10.58 प्रतिशत हो गया। 1921–1931 के दौरान सैन्य और औधोगिक विकास के लिए ब्रिटिश लोगों द्वारा नए शहरों की पहचान राज्य में ''प्रभावी शहरीकरण'' को बढ़ावा दिया।[8]

तालिका–1: उत्तर प्रदेश: नगरीकरण रूपरेखा 1901–1951

वर्ष	जनसंख्या (करोड़)	दशकीय वृद्धि (प्रतिशत)	शहरी जनसंख्या (करोड़)	दशकीय वृद्धि (प्रतिशत)	शहरीकरण का स्तर (प्रतिशत)
1901	4-86	-	0.54	-	11.09
1911	4.82	(-) 0.97	0.49	(-) 8.98	10.19
1921	4.67	(-) 3.08	0.49	0.61	10.58
1931	4.98	6.66	0.56	12.81	11.19
1941	5.65	13.57	0.70	26.00	12.41
1951	6.03	6.61	0.86	22.93	13.60

स्रोत: विभिन्न जनगणना रिपोटों से संकलित

इस दौरान नगरीकरण में एक फीसदी से ज्यादा की बढ़ोत्तरी दर्ज की गयी। 1931–1941 अवधि के दौरान–वर्ग–1 शहरों की संख्या में 71.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 1931–1941 अवधि को उत्तर प्रदेश के शहरीकरण के इतिहास में महत्वपूर्ण मोड़ माना जाता है। इस अवधि में शहरी आबादी का प्रतिशत 11.19 प्रतिशत से बढ़कर 12.41 प्रतिशत हो गया। 1941–1951, भारत के विभाजन के बाद, 1941 1951 समय अवधी के दौरान पूरे उत्तर प्रदेश के बड़े शहरों में ग्रामीण क्षेत्रों से प्रवास के परिणामस्वरूप शहरी आबादी में सामान्य वृद्धि दर्ज की गई। उत्तर प्रदेश में शहरी आबादी 12.4 प्रतिशत से बढ़कर 13.6 प्रतिशत हो गई।(पूर्वोक्त)

5.2 1951–2001 के बीच का चरण: 1951–61 में शहरी स्थानों के पुनर्वितरण और कस्यों के पतन के कारण भारत में शहरों की संख्या में कमी आई और साथ ही उत्तर प्रदेश में शहरी आबादी का प्रतिशत 13.6 से घटकर 12.85 प्रतिशत रह गया। 1961–1971 में एनसीआर क्षेत्रों यानी गाजियाबाद के नए औद्योगिक क्षेत्रों में प्रवास के कारण और वर्ग 1 समूह के शहरों में शहरीकरण का प्रतिशत बढा।

तालिका 2: उत्तर प्रदेश: नगरीकरण रूपरेखा 1951–2001

वर्ष	जनसंख्या (करोड़)	दशकीय वृद्धि (प्रतिशत)	शहरी जनसंख्या (करोड़)	दशकीय वृद्धि (प्रतिशत)	शहरीकरण का स्तर (प्रतिशत)
1951	6.03	6.61	0.86	22.93	13.60
1961	7.38	22.37	0.95	9.90	12.85
1971	8.83	19.78	1.24	30.68	14.02
1981	11.09	25.49	1.99	60.54	17.94
1911	13.21	19.12	2.60	36.63	19.67
2011	16.62	25.85	3.45	26.82	20.78

स्रोत: विभिन्न जनगणना रिपोर्टों से संकलित

1971–1981 हरित क्रांति के समावेश के कारण कृषि उत्पादकता में जबरदस्त वृद्धि हुई और मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, मेरठ, गाजियाबाद, बरेली, अलीगढ़ जैसे जिलों में कृषि समृद्धि एक अधिक एकीकृत आर्थिक विकास सुनिश्चित कर रही थी जिसमें कृषि और गैर–कृषि क्षेत्र प्रगति कर रहे थे। आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप शहरी आबादी में वृद्धि 13.90 प्रतिशत से बढ़कर 17.83 प्रतिशत हो गई। 1981–1991 में , राज्य के आठ अन्य शहरों को वर्ग–1 समूह

में शामिल किया गया जिससे कुल शहरों की संख्या 30 हो गयी। इसी समय शहरी आबादी का प्रतिशत 17.94 प्रतिशत से बढ़कर 1967 प्रतिशत हो गया। 1981 के 705 शहरों की तुलना में वर्ष 1991 के दौरान 48 नए शहरी क्षेत्र जुड़े और संख्या बढ़ कर 753 हो गयी। वर्ष 2001 तक उत्तर प्रदेश में कुल शहरी जनसँख्या का अनुपात 19.67 प्रतिशत (1991) से बढ़कर 20.78 प्रतिशत (2001) हो गया था।

5.32001 के बाद का चरण: 2001-2011 वर्ग-1 श्रेणी में 10 नए शहरों को शामिल किया गया तथा वर्ग-4 श्रेणी के लगभग 39 शहरों में यूपी में शहरीकरण की गति में वृद्धि दर्ज की गई। 2001 में शहरी आबादी का प्रतिशत 20.78 प्रतिशत से बढ़कर 2011 में 22.28 प्रतिशत हो गया।

तालिका-3: उत्तर प्रदेश: नगरीकरण रूपरेखा 2001-2011

वर्ष	जनसंख्या (करोड़)	दशकीय वृद्धि (प्रतिशत)	शहरी जनसंख्या (करोड़)	दशकीय वृद्धि (प्रतिशत)	शहरीकरण का स्तर (प्रतिशत)
2001	16.62	25.85	3.45	26.82	20.78
2011	19.98	20.23	4.45	28.75	22.28

2011 की जनगणना के अनुसार, उत्तर प्रदेश में कुल 914 शहर हैं, जिनमें 648 वैधानिक शहर (कुल शहरी आबादी का लगभग 92 प्रतिशत शामिल है) और 267 जनगणना नगर (Censis Town) (कुल शहरी आबादी का लगभग आठ प्रतिशत) शामिल हैं। तालिका में देखें। इसमें 630 नगरपालिका शहर, पांच औधोगिक कस्बा (कुल शहरी आबादी का 0.21 प्रतिशत या साविधिक कस्बों द्वारा निहित जनसंख्या का 0.23 प्रतिशत हिस्सा) और 13 शहर छावनी बोर्ड द्वारा प्रशासित हैं। नगरपालिका कस्बों की संख्या 2011 से बढ़कर 707 (नवंबर 2020 तक) हो गई है क्योंकि विभिन्न प्रकार की कई नई नगरपालिकाएं बनाई गई हैं। नई नगर पालिकाओं के गठन के लिए प्रस्ताव पर राज्य सरकार बिचार कर रही हैं। प्रशासनिक रूप राज्य इन जनगणना शहरों में रहने वाली लगभग आठ प्रतिशत शहरी आबादी नगरपालिका कानूनों के दायरे से बाहर है और अभी भी ग्रामीण कानूनों द्वारा शासित है।[9]

तालिका- 4: उत्तर प्रदेश में नगरों की संख्या

वर्ष	वैधानिक नगर		जनगणना		योग	
	संख्या	विचलन (प्रतिशत)	संख्या	विचलन (प्रतिशत)	संख्या	विचलन (प्रतिशत)
1991	710	–	43	–	743	–
2001	638	(–) 10.14	66	53.49	704	(–)5.25
2011	648	1.57	267	304.55	915	29.97

स्रोत: भारत की जनगणना, उत्तर प्रदेश की नगर निर्देशिका; जनसंख्या सांख्यिकी 1991, 2001 और 2011

6. उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा नगरीकरण के सन्दर्भ में अपनायी गई विभिन्न नीतियां: भारत सरकार ने सभी के लिए आवास हेतु एक नई योजना की शुरुआत की है जिसे प्रधानमंत्री आवास योजना के रूप में जाना जाता है। इस योजना के अनुसार, सरकार सब्सिडी तथा अन्य अन्य लाभों के माध्यम से भारत में शहरी गरीबों को किफायती दर पर आवास की सुविधा प्रदान कर रही है। उत्तर प्रदेश आरंभिक उन नौ राज्यों में से एक है जिसे इस योजना हेतु चिन्हित किया गया है। हालांकि, उत्तर प्रदेश सरकार पहले से ही आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग (ईडब्ल्यूएस) निम्न आय वर्ग (एलआईजी) और मध्यम आय वर्ग (एमआईजी) से संबंधित लोगों को किफायती दर पर नगरों में आवास की सुविधा प्रदान कर रही है जिसका मुख्य उद्देश्य बेहतर व टिकाऊ शहरी व्यवस्था को जन्म देना है।[10]

राज्य शहरी विकास एजेंसी (एमयूडीए उत्तर प्रदेश) ने पहले ही राज्य भर में हजारों आवास इकाइयों के निर्माण को मंजूरी दे दी है। इन इकाईयों का निर्माण प्रधानमंत्री आवास योजना उत्तर प्रदेश के एक भाग के रूप में लाभार्थी नेतृत्व निर्माण योजना (बीएलसी) के तहत किया जाएगा। कुछ आंकड़ों को सूचीबद्ध करने के लिए, इलाहाबाद शहर में बीएलसी योजना के तहत 6,000 से अधिक आवास परियोजनाएं स्वीकृत की गई है। इसी तरह-पवित्र शहर वाराणसी में, 8,000 से अधिक परियोजनाओं को मंजूरी दी गई है।[11]

इसी तरह, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा एक नयी योजना मुख्यमंत्री आवास योजना के नाम से शुरू की गयी है, जिसका उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों के लिए किफायती दरों पर शहरों में आवास उपलब्ध कराना है। इसके अलावा, केंद्र और राज्य सरकार लाभार्थियों को वित्तीय सहायता प्रदान करेगी। अफोर्डेबल रेंटल हाउसिंग योजना (ARIIS) में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, विधवाओं, कामकाजी महिलाओं और अल्पसंख्यक समुदाय से सम्बंधित लोगों को वरीयता दी जाएगी। शहरी प्रवासियों गरीबों के लिए किराये के आवास परिसरों के निर्माण, संचालन और रखरखाव के लिए निजी सार्वजनिक संस्थानों की भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए प्रधानमंत्री आवास योजना (शहरी) के तहत एआरएचसी योजना लागू की जाएगी।12

7. निष्कर्ष: उत्तर प्रदेश आबादी के हिसाब से भारत का सबसे बड़ा राज्य है। जहाँ पर संख्या के दृश्टिकोण से बड़ी आबादी नगरों में निवास करती है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो उत्तर प्रदेश में नगरीकरण एक सतत चलने वाली प्रक्रिया रही है, जिसमें समय-समय पर ह्रास भी देखा गया है। लगभग एक शताब्दी के अंतराल में नगरीय जनसंख्या में लगभग दोगुनी बृद्धि हुई है। शहरी जनसँख्या में दशकीय बृद्धि सबसे अधिक वर्ष 1981 में दर्ज की गयी।

1971–1981 का दशकीय वर्ष के दौरान कुल जनसंख्या में शहरी जनसंख्या के अनुपात में सर्वाधिक वृद्धि अंकित की गयी। नगरीकरण के चढ़ते अनुपात के कारण राज्य में नगरों की संख्या में भी बढ़ोत्तरी हुई है। बढ़ते शहरीकरण को व्यस्थित रूप प्रदान करने के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने केंद्र सरकार के साथ-साथ, स्वयं के स्तर पर भी नीतियों को लागू किया है एवं उनके क्रियान्यवयन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

सन्दर्भ सूची

1. Maheshwari , S.R. 2006. Local Government in India . Agra : Lakshmi Narain Agarwal
2. Harris . N. (1990) " Urbanisation , Economic Development and Policy in Developing Countries " . Working Paper 19. London : Development Planning Unit University of London ,
3. Hoselitz , B. F. (1962) " The Role of Urbanisation in Economic Developmetit : Some International Comparison " . in Roy I. (ed .) . India's Urban Future , Bombay : Oxford University Press .
4. McGee , T. G. (1969) " The southeast Asian City , Praeger Publications . New York
5. Planning Commission (2012) . Press Information Bureau Government of India , New Delhi .
6. Redfield , R. (1930) Tepoztlan , a Mexican Village : A Study of Folk Life , Chicago " , University of Chicago Press .
7. Srinivas , M N. (1972) " Social Change in Modem India " . Orient Longman Publication , New Delhi ,
8. Census of India , Town Directory , Uttar Pradesh . 2001 and 2011 .
9. Uttar Pradesh (India) : Dismic . Cines and Towns Population Statistics 1991 , 2001 and 2011. Accessed on 14-9-2020
10. http://mohua.gov.in/pdf5c80e222Sal24Handbook%20of%20Urban%20Statistics % 202019.pdt ? utin source = nl landingpage & utm medium = web & utm campaign = timestop10 da ily newsletter
11. http : // awas up.nic.in
12. http://mohua.gov.in/upload/uploadfiles/files:Uttar%20Pradesh Pray new % 20 (1) pdf

प्राचीन भारतीय मोहरों में देवी लक्ष्मी का स्वरूप

डॉ० पवन कुमार सिंह

सहा० आचार्य, प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग, एम०जे०पी० रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय परिसर, बरेली

प्राचीन भारतीय इतिहास को जानने के प्रामाणिक साक्ष्यों में मोहरों का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत के इतिहास में कितने काल ऐसे हैं जिनका सम्पूर्ण ज्ञान तत्कालीन मोहरों से मिलता है। इन्हीं मोहरों के आधर पर हमें तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक स्थिति का बोध भी प्राप्त होता है। प्राचीन भारतीय इतिहास के विभिन्न कालखण्डों में जो विभिन्न प्रकार के मोहरें प्राप्त होते हैं, उनमें हमें विभिन्न देवी-देवताओं के विभिन्न स्वरूपों का भी ज्ञान प्राप्त होता है। लक्ष्मी एवं उसके विविध स्वरूपों का अंकन इन्हीं मोहरों में बहुतायत में प्राप्त होता है जो उनकी दैवीय पराकाष्ठा को परिलक्षित करता है। ऐसा ज्ञात होता है कि ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी तक आते-आते लक्ष्मी सुख-सम्पदा एवं सौभाग्य प्रदात्री देवी के रूप में आमजनमानस में प्रतिष्ठित हो चुकी थी तथा इनको राजा के ऐश्वर्य का प्रतीक भी माना जाने लगा था। राजा अपने मोहरों पर इनकी मूर्ति इस कारण भी अंकित कराता था जिससे उसकी राज्यलक्ष्मी उसके राज्यकोष में सुरक्षित रहे, क्योंकि आम जनविश्वास के अनुसार लक्ष्मी स्वभाव से चंचला थी। अतः तत्कालीन शासको ने अपनी वैभव एवं पराकाष्ठा को दर्शाने हेतु अपने मोहरों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जो उनकी महत्ता को प्रदर्शित करता है।

सिक्कों के अलावा मोहरों पर भी लक्ष्मी की मूर्ति विशद् रूप से हमें देखने को मिलती है। मोहरों पर लक्ष्मी की सर्वप्रथम मूर्ति जो सिन्धु घाटी की सभ्यता के पश्चात प्राप्त होती है, वह है बसाढ़ से प्राप्त एक मोहर की कुषाण कालीन मूर्ति।[1] इस मूर्ति में लक्ष्मी दायाँ हाथ उठाये हुए हैं और बायें में कमलनाल पकड़े हुए हैं तथा सामने की ओर मुँह करके खड़ी हैं। दक्षिण कर से मुद्रा गिर रही है, कान में कुण्डल तथा गले का तौक स्पष्ट दिखाई देते हैं। पैर के नीचे लेख है जो स्पष्ट न होने के के कारण पढ़ा नहीं जा सका है, कदाचित् यह लेख खरोष्ठी में अंकित है। इसी प्रकार की एक मोहर पुरक्षजभस्य है।[2] इसमें भी लक्ष्मी मुद्राएँ अपने दक्षिण कर से गिरा रही हैं। एक और मोहर पर भी लक्ष्मी की खड़ी मूर्ति अंकित है जिसमें बायें हाथ में नाल सहित कमल का पुष्प है[3], यह भी बसाढ़ से प्राप्त हुई है। बसाढ़ से एक और लक्ष्मी की मूर्ति मोहर पर अंकित है जिसमें लक्ष्मी देवी को एक नाव पर खड़ा दिखाया गया है, इस नाव में दोनों ओर दो-दो खम्भे दिखाई देते हैं, जो कदाचित मस्तूल के प्रतीक हैं, बीच में एक पावेदार चौकी है, उस पर देवी एक हाथ में कमल लिए हुए और दूसरा हाथ कटि पर रखे हुए खड़ी हैं। ये नीचे के अंग में धेती पहने हुए हैं। बायीं ओर एक शंख हैं, उसके पश्चात कदाचित् गरूड़ हैं[4], तथा दूसरी ओर कुछ भी अंकित नहीं है। गुप्तकाल के पहले से ही भारतीयों की यह धरणा थी कि 'व्यापारे वसते लक्ष्मी' और उस काल में तथा उसके पूर्व से भी भारतीय व्यापारी दूर-दूर तक समुद्री यात्रा करते थे, जिसके प्रमाण मिल चुके हैं।[5] शायद इसी कारण लक्ष्मी को नाव पर समुद्र मार्ग से लाने की कल्पना कुछ अद्भुत नहीं रही होगी।[6] इसी के पास इसी गहराई से एक मोहर हस्तिदेव की प्राप्त हुई है, जिस पर लिखा हुआ लेख कुषाणकालीन है।[7] यह मोहर लक्ष्मी वाली मोहर को भी कुषाणकालीन होने का संकेत करती है, परन्तु कुछ विद्वान इसे गुप्तकालीन मानते हैं।

गजलक्ष्मी की मूर्ति से अंकित मोहरें गुप्तकाल के स्तरों से कई स्थलों से खुदाई में प्राप्त हुई हैं। मुजफ्फरपुर के बसाढ़ वैशाली से इस प्रकार की सौ से ऊपर मोहरें प्राप्त हुई हैं वसाढ़ की एक मोहर पर लक्ष्मी की खड़ी मूर्ति प्राप्त हुई है, यहाँ गज का अंकन नहीं मिलता है।[8] ये सामने मुख किये हुए कमलों के बीच खड़ी हैं, इनका बायाँ हाथ कमर पर है और दाहिना हाथ दान की मुद्रा में है। इनमें से एक प्रकार की मोहरों पर लक्ष्मी को पेड़ों के बीच खड़ा दियाया गया है। इनके दोनों ओर दो हाथी इन्हें घटों से स्नान करा रहे हैं तथा इनके दोनों ओर दो खड़े यक्ष घट में से मुद्रा गिराते हुए दिखाये गये हैं, लक्ष्मी समभाव में खड़ी हैं, इनके बायें हाथ में नाल सहित कमल का फूल है, कानों में कुण्डल, गले में एकावली, कमर में करधनी तथा पैरों के कड़े स्पष्ट दिखाई देते हैं। कन्धे पर उत्तरीय है जो हाथों पर से होता हुआ नीचे लटक रहा है, शरीर के अधोभाग में धोती है, ऊपर के अंग में चोली दिखायी देती है। लक्ष्मी के पैर के नीचे एक रेखा खिंची हुई है जिसके नीचे 'कुमारामात्याधिकरणस्य' लिखा हुआ है।[9] इसी प्रकार की एक और मोहर पर 'कुमारामात्याधिकरणस्य' के साथ 'श्रेष्ठी सार्थवाह कुलिक निगम' अंकित है।[10] दूसरे प्रकार की मोहरों पर केवल गजलक्ष्मी की मूर्ति बनी है, उसमें यक्ष नहीं दिखाये गये हैं। इसमें लक्ष्मी के दोनों ओर कमल के फूल और कलियाँ बनी हुई हैं। लक्ष्मी का बायाँ हाथ कमर पर है और उसी में नाल सहित कमल है, इसके नीचे 'युवराजपादीय कुमारामात्याधिकरणस्य' लिखा हुआ है।[11] इसी प्रकार की एक और मोहर पर 'श्री परमभट्टारकपादीय कुमारामात्माधिकरणस्य' अंकित है।[12] एक दूसरी प्रकार की मोहरों में खड़ी गजलक्ष्मी की मूर्ति के साथ बैठे हुए यक्ष दिखाये गये हैं। इसमें लक्ष्मी का बायाँ हाथ उठा हुआ है और उसमें छः पंखुडिघ्यों वाला कमल है। दक्षिण कर दान की मुद्रा में है, मस्तक पर मुकुट, कानों में कुण्डल, कटि में करधनी तथा नीचे पहिने धोती स्पष्ट दिखायी देती है। ऊपर के वस्त्रों का पता नहीं लग रहा है, इसमें गज स्पष्ट रूप से कमल के फूलों पर खड़े दिखाये गये हैं। यक्षों के समक्ष चौकी पर पात्र रखे हैं जिनमें से गोल सिक्के नीचे गिर रहे हैं, नीचे 'श्री युवराज भट्टारक पादीय कुमारमात्याधिकरणस्य' लेख अंकित है।[13] इसमें यक्षों का बायाँ हाथ उठा हुआ दक्षिण जंघे पर स्थित है, आधे पल्थी लगाये हुए हैं, इनका एक पैर उठा हुआ है तथा मस्तक पर जटाजूट है। एक ओर गजलक्ष्मी अंकित मोहर पर 'श्रीरणभांडागार अधिकरणस्य' लेख अंकित है।[14] इसमें यक्ष खड़े हैं और एक हाथ में पात्र को पकड़कर दूसरे से मुद्रायें गिरा रहे हैं। दूसरी ओर इसी प्रकार यक्षों सहित लक्ष्मी की मूर्ति एक और मोहर पर अंकित है, इसमें लक्ष्मी का दोनों हाथ नीचे की ओर है तथा बायें हाथ में कमल का फूल है। यक्ष पीछे की ओर झुके हुए खड़े हैं। इनका एक पैर आगे

और एक पीछे हैं। इस मोहर पर 'तीरभुक्तौविनयस्थितिस्थाप (का) विकर्ण (स्य) लेख अंकित है।[15] इसी प्रकार एक दूसरी मोहर भी यहीं से प्राप्त हुई है जिस पर लक्ष्मी के हाथ में आठ पंखुड़ियों वाला कमल है, इस पर 'तीरभुत्तथ उपरिकाधिकरणस्य' लिखा है। एक और मोहर पर लक्ष्मी की मूर्ति मिलती है, जिसमें 'युवराजपादीय कुमारामात्याधिकरणस्य' लिखा है। इसमें लक्ष्मी के दक्षिण कर में कमल है और वे एक चौकी पर स्थित हैं। इनके दोनों ओर के हाथी दिखायी नहीं देते हैं, यक्ष घट से रूपये गिराते हुए दिखायी देते हैं।[16]

श्री स्पूनर महोदय को उत्खनन में बसाढ़ से एक गजलक्ष्मी अंकित मोहर प्राप्त हुई थी जिसमें लक्ष्मी समपाद भाव में सामने मुख करके एक चौकी पर खड़ी दिखायी गयी हैं। अपने बायें हाथ में ये पुष्प सहित एक कमल-नाल पकड़े हैं परन्तु इनके दाहिने हाथ में कुछ नहीं है। दो गज इन्हें स्नान करा रहे हैं। इनके मस्तक पर ललाटिका है, कानों में कुण्डल, गले में हार, बाहु पर केयूर तथा कटि में करधनी है। ऊपर के अंग में उत्तरीय तथा नीचे के अंग में धोती है। इनके बाई ओर शंख[17] नहीं है। यह कल्पवृक्ष ज्ञात होता है और दाहिनी ओर पूर्ण घट है तथा नीचे 'वैशाली-नामकुण्डे कुमारामात्याधिकरण (स्य) अंकित है।[18]

इलाहाबाद के भीटा से जिसका प्राचीन नाम विच्छी या विच्छीग्राम था, सर जॉन मार्शल को कई मोहरें ऐसी प्राप्त हुई हैं जिन पर गजलक्ष्मी की मूर्ति अंकित है, इनमें एक मोहर जो गजलक्ष्मी स्वरूप में है, अपना मस्तक दाहिनी ओर झुकाये हुए, दाहिना पैर आगे और बायां पीछे किये हुए खड़ी हैं। कमल के फूल और कलियाँ इनके दोनों ओर बने हैं। हाथी कमल पर स्थित इन्हें स्नान कराते हुए दिखाये गये हैं। इनका बायां हाथ एक पक्षी के मस्तक पर है तथा दक्षिण कर उठा हुआ अभय मुद्रा में है, कानों में कर्णाभरण, गले में स्तनमित्रहार, बाहु में केयूर, कटि में मेखला एवं पैरों के नूपुर स्पष्ट दिखाई देते हैं। इसी प्रकार उत्तरीय तथा दोनों पैरों से लिपटी हुई धोती भी बड़ी सुन्दरता से अंकित की गयी है, इनकी बाई ओर गरूड़ भी अंकित है। नीचे की पंत्ति में 'महाश्वपति-महादण्डनायक-विष्णुरक्षित पदानुगृहीत कुमारामात्याधिकरणस्य' लेख अंकित है।[19] भीटा से प्राप्त एक दूसरी मोहर पर भी गजलक्ष्मी की मूर्ति अंकित है, इसमें देवी कमल के फूल पर समपदभाव में खड़ी हैं। इनके दक्षिण कर में कमल और बायें कर से ये मुद्राएँ गिरा रही हैं, इनके दोनों ओर दो यक्ष हाथ जोड़े उकड़ू कमल पर बैठे हैं, गज गोल घड़े से लक्ष्मी देवी को स्नान करा रहे हैं। इस मोहर पर भी गजलक्ष्मी की मूर्ति कुछ बसाढ़ की उन मोहरों पर की लक्ष्मी से मिलती हुई प्राप्त हुई हैं। जिनमें यक्ष इनके दोनों ओर दिखाये गये हैं। अन्तर केवल इतना है कि यहाँ यक्ष कमल पर उकड़ू बैठे हैं और लक्ष्मी देवी भी कमल पर स्थित हैं। बसाढ़ की मोहरों पर यक्ष कमल पर स्थित नहीं दिखाये गये हैं। लक्ष्मी पूर्ववत वस्त्राभूषणों से सुशोभित हैं। नीचे की पंत्ति में 'कुमारामात्याधिकरणस्य' लेख अंकित है। ऐसा ज्ञात होता है कि इस मूर्ति को किसी मन्दिर में स्थित दिखाया गया है।[20] एक और मूर्ति पर गजलक्ष्मी अंकित है परन्तु उसमें यक्ष नहीं दिखाये गये हैं, लक्ष्मी कमल पर सामने मुख करके खड़ी है और कमल उसी स्थल से निकलते हुए दिखाया गया है। इनके दोनों हाथ कोहनी पर से उठे हुए हैं। दक्षिण कर में शंख तथा बायें में गरूड़ दिखायी देता है। इनके मस्तक पर मुकुट और कानों में कुण्डल स्पष्ट दिखायी देते हैं। नीचे का वस्त्र घुटनों तक ही दिखाया गया है तथा नीचे 'सामाहर्सविशयाधिकरणस्य' लेख अंकित है।[21]

तेरसे नामक स्थल से, जो महाराष्ट्र का एक नगर था, एक गुप्तकालीन मोहर प्राप्त हुई है जिस पर गजलक्ष्मी की खड़ी मूर्ति दिखायी देती है।[22] अहिच्छत्रा से भी एक ऐसी मोहर प्राप्त हुई है जिस पर गजलक्ष्मी की मूर्ति अंकित है। यहाँ इनके दोनों हाथ नीचे की ओर दिखाये गये हैं, बायें हाथ में कमल का पुष्प है और दाहिने हाथ से मुद्राएँ गिराते हुए प्रदर्शित हैं, इनके दोनों ओर दो हाथी इन्हें अभिषेक कर रहे हैं, दोनों ओर दो यक्ष टेढ़े खड़े हैं जैसे ये हमें वसाढ़ की एक मोहर पर दिखायी देते हैं[23], इन दोनों में अन्तर केवल इतना है कि यहाँ ये दोनों हाथ मस्तक के ऊपर ले जाकर नमस्कार कर रहे हैं और वहाँ ये घट का संरक्षण कर रहे हैं। लक्ष्मी जिस कमल पर स्थित हैं उसके भी दोनों ओर कमल बने हैं, देवी का वस्त्राभूषण पूर्ववत् ही दिखाया गया है। इसी प्रकार एक गजलक्ष्मी की अंकित मोहर नालन्दा से प्राप्त हुई है।[24] इस पर दो गज, जो कमल पुष्पों पर दिखाये गये हैं, उनके हाथ मनुष्यों जैसे प्रतीत होते हैं। लक्ष्मी के दोनों ओर दो घट हैं, बायें हाथ से देवी एक कमल के पुष्प की नाल पकड़े हैं और इनका दाहिना हाथ घट के ऊपर दिखाया गया है। देवी के मस्तक के चारों ओर प्रभामण्डल है, गले में तौक तथा मस्तक के ऊपर एक जूड़ा दिखाई देता है। कटि में इनके करधनी की आभास मिलता है परन्तु और वस्त्राभूषण स्पष्ट नहीं होता है। नीचे लिखे लेख से यह मोहर उत्तर गुप्तकाल की प्रतीत होती है, इसी के आस पास के काल की एक मोहर पूर्वी बंगाल की रियासत टिपरा से प्राप्त हुई है।[25] यह मोहर एक ताम्रपत्र के साथ लगी थी तथा लेख 'कुमारामात्याधिकरणस्य' अंकित है। इसकी लिपि तथा बसाढ़ से प्राप्त मोहरों की लिपि में अन्तर दिखायी देता है। इसमें लक्ष्मी कमल पर खड़ी हैं, इनके हाथ में विल्वफल है, दाहिना हाथ दान मुद्रा में है, दोनों ओर कमल के फूल और कमल की कलियाँ हैं, मस्तक पर मुकुट, कानों में कुण्डल, गले में चूहादन्ती हार, मणि बन्धों पर वलय तथा कटि में करधनी है, दोनों ओर दो उपासक मुकुट, कुण्डल और हँसुली पहिने बैठे हैं, इनके हाथों में पात्र है जिसमें से कुछ मुद्रायें स्वयम् बाहर निकल रही हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि कुषाण काल से ही लक्ष्मी की पूजा राज्यलक्ष्मी के रूप में होने लगी थी। मोहरों पर लक्ष्मी का सर्वप्रथम जो स्वरूप हमें प्राप्त होता है वह पद्महस्ता स्वरूप में है। लक्ष्मी बायें हाथ में कमल नाल पकड़े हुए तथा दायें हाथ से मुद्रा गिराते हुए दिखायी गयी हैं। वसाढ़ से प्राप्त लक्ष्मी अंकित मोहर पर लक्ष्मी को नाव पर खड़ा दिखाया गया है। इनके बायीं ओर शंख और गरूड़ का भी अंकन हुआ है जो कि एक नयी विशेषता को दर्शाता है। शंख एवं गरूड़ का लक्ष्मी से सम्बन्ध साहित्यिक साक्ष्यों से भी स्पष्ट होता है। गुप्तकाल के पहले से ही भारतीयों की यह धरणा थी कि व्यापार से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, अत: भारतीय व्यापारी दूर-दूर तक समुद्री यात्रा किया करते थे जिसका प्रमाण भी मिल चुका है, शायद इसी कारण लक्ष्मी को नाव पर समुद्र मार्ग से लाने की कल्पना कुछ अद्भुत नही रही होगी, इसी कारण लक्ष्मी को नाव पर खड़ा प्रदर्शित करने का उद्देश्य व्यापार से धन की प्राप्ति रही होगी। गुप्तकाल के विभिन्नस्थलों से जो मोहरें प्राप्त होती है वह गजलक्ष्मी स्वरूप में प्रदर्शित है, परन्तु यहाँ यक्षों द्वारा घट में से मुद्रा गिराते हुए दिखाया गया है, शायद लक्ष्मी का यक्षों से सम्बन्ध प्रदर्शित करने हेतु ऐसा किया गया हो। भीटा से प्राप्त एक मोहर पर गजलक्ष्मी की मूर्ति अंकित है इसमें इनके बायें हाथ को एक पक्षी के मस्तक पर रखा हुआ दिखाया गया है जोकि इसके पूर्व कहीं अन्यत्र नहीं प्राप्त होता है। भीटा से प्राप्त एक अन्य मोहर पर दो यक्ष हाथ जोड़े हुए उकड़ू कमल पर बैठे अंकित हैं। बसाढ़ एवं भीटा से प्राप्त मोहरों में अन्तर यह है कि यहाँ यक्ष कमल पर उकड़ू बैठे हैं और लक्ष्मी देवी भी कमल पर स्थित है परन्तु बसाढ़ की मोहरों पर यक्ष कमल पर स्थित नहीं दिखाये गये हैं। अहिच्छत्र से प्राप्त एक मोहर पर यक्षों को हाथ मस्तक के

ऊपर ले जाकर नमस्कार करते हुए दिखाया गया है जबकि वसाढ़ से प्राप्त मोहर पर जो यक्ष प्रदर्शित हैं वे घट का संरक्षण करते हुए दिखलाये गये हैं। गुप्तोत्तर कालीन मोहरों में भी लक्ष्मी को गजलक्ष्मी स्वरूप में प्रदर्शित किया गया है। बंगाल की रियासत टिपरा से एक ऐसी मोहर प्राप्त हुई है जिसमें लक्ष्मी के हाथों में विल्बफल प्रदर्शित है, इस प्रकार का उल्लेख अन्यत्र किसी भी मोहर पर दिखायी नहीं देता है। लक्ष्मी का विल्वफल से सम्बन्ध पुराणों से भी ज्ञात होता है। इस मोहर में एक और विशेषता दिखायी देता है जिसमें से कुछ मुद्राएँ स्वयम् बाहर निकलती हुई दिखायी गयी है तथा देवी वस्त्राभूषणों से पूर्ण सुसज्जित है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ सिक्कों में लक्ष्मी को सर्वप्रथम गजलक्ष्मी स्वरूप में दिखाया गया है वही मोहरों में सर्वप्रथम लक्ष्मी का पद्महस्ता स्वरूप दिखलायी पड़ता है। गुप्तकालीन सिक्कों में गजलक्ष्मी स्वरूप नहीं प्राप्त होता है जबकि गुप्तकालीन मोहरों में गजलक्ष्मी स्वरूप बहुतायत में प्राप्त होता है। सिक्कों में लक्ष्मी के चतुर्भुजी स्वरूप का अंकन बार-बार देखने में आता है परन्तु मोहरों पर इस तरह का अंकन नहीं दिखायी देता है। यक्षों, गरूड, शंख तथा विल्वफल से लक्ष्मी का सम्बन्ध मोहरो पर प्रदर्शित किया गया है जबकि सिक्कों में दिखायी नहीं देता है। अतः कहा जा सकता है कि सिक्कों एवं मोहरों में लक्ष्मी के स्वरूप में अन्तर दिखायी देता है परन्तु लक्ष्मी धन प्रदात्री देवी के रूप में प्रतिष्ठित थी तथा वैभव एवं पराकाष्ठा की प्रतीक थी, इसीलिए विभिन्न कालखण्डों में विभिन्न स्थलों से प्राप्त सिक्कों एवं मोहरों पर इनका अंकन बहुतायत में हमें प्राप्त होता है। शासकों द्वारा लक्ष्मी देवी का अंकन अपनी पराकाष्ठा एवं वैभव को दर्शाने हेतु किया गया था, क्योंकि लक्ष्मी वैभव एवं पराकाष्ठा की प्रदात्री देवी के रूप में आमजनमानस में पूज्यनीय थी।

संदर्भ सूची

1. स्पूनर, डी0वी0, एक्सकेवेशन्स एट बसाढ़, ए0एस0आई0आर0 1913-14, प्लेट 47, संख्या 312
2. वही, प्लेट 49, संख्या 603
3. वही, प्लेट 50, संख्या 779
4. राय, गोविन्दचन्द्र, प्राचीन भारत में लक्ष्मी प्रतिमा, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय विद्यामन्दिर प्रेस, वाराणसी, 1964, पृष्ठ 84
5. वही, पृष्ठ 84
6. वही, पृष्ठ 84
7. वही, पृष्ठ 84
8. टी0 ब्लाच, एक्सकेवेशन्स एट बसाढ़, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिर्पोट, 1903, 4, प्लेट 42, संख्या 56
9. वही, पृष्ठ 107
10. वही, पृष्ठ 107
11. वही, प्लेट 40, संख्या 10
12. वही, पृष्ठ 108
13. वही, पृष्ठ 107, प्लेट 40, संख्या 11
14. वही, प्लेट 40, संख्या 7
15. वही, प्लेट 40, संख्या 13
16. वही, प्लेट 40, संख्या 4
17. स्पूनर, डी0वी0, उपर्युक्त, पृष्ठ 134, संख्या 200
18. वही, प्लेट 47, संख्या 200
19. मार्शल, जॉन, एक्सकेवेशन्स एट भीटा, ए0एस0आई0आर0, 1912-13, पृष्ठ 52, प्लेट 10, संख्या 32
20. वही, प्लेट 19, संख्या 35
21. वही, पृष्ठ 54, प्लेट 19, संख्या 42
22. वही, प्लेट 19, संख्या 13
23. हैण्डबुक टू दि सेन्टेनरी एक्जिविशन, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, दिसम्बर 1961, प्लेट 14, संख्या 9
24. वही, प्लेट 14, संख्या 2
25. टी0 ब्लाच, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1903, 4, पृष्ठ 121, चित्र 19

मृदुला सिन्हा के साहित्य में स्त्री-विमर्श

निर्मल सैनी

शोधार्थी, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, धारवाड, कर्नाटक

डॉ० शकीला बेगम मुस्तफा

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, धारवाड, कर्नाटक

सारांश

स्त्री के प्रश्न हाशिए के नहीं बल्कि जीवन के केंद्रीय प्रश्न हैं। किंतु हिंदी साहित्य की मुख्यधारा जिसे वर्चस्वशाली पुरुष लेखन भी कहा जा सकता है, में स्त्री प्रश्नों अथवा स्त्री मुद्दों की लगातार उपेक्षा की जाती रही है। इसका अर्थ यह नहीं है कि स्त्री अथवा स्त्री प्रश्न सिरे से गायब हैं बल्कि यह है कि स्त्री की उपस्थिति या तो यौन वस्तु (Sexual object) के रूप में है या यदि वह संघर्ष भी कर रही हैं तो उसका संघर्ष बहुत हद तक पितृसत्तात्मक मनोसंरचना अख्तियार किए होता है संघर्ष करने वाली स्त्री की निर्मिति ही पितृसत्तात्मक होती है। साहित्य की पितृसत्तात्मक परंपरा में लगातार स्त्री प्रश्नों का ह्रास होता क्यों दिख रहा है? क्या स्त्री विमर्श को देह केंद्रित विमर्श के समकक्ष रखकर स्त्री-विमर्श चलाने के दायित्वों का निर्वाह किया जा सकता है? यदि साहित्य का कोई सामाजिक दायित्व है तो हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श के नाम पर स्त्री देह को बेचने व स्त्री को सेक्सुअल आब्जेक्ट अथवा मार्केट के उत्पाद के रूप में तब्दील कर दिए जाने की जो पूँजीवादी पितृसत्तात्मक बाजारवादी रणनीति काम कर रही है उस मानसिकता से यह मुक्त क्यों नहीं है? उसको पहचान कर उसके सक्रिय प्रतिरोध से ही वास्तविक स्त्री विमर्श संभव है। क्यों सत्तर के दशक में नवसामाजिक आंदोलन के रूप में समतामूलक समाज निर्माण के स्वप्न को लेकर उभरे स्त्रीवादी आंदोलनों की चेतना एवं उनके मुद्दों को जाने-अनजाने नजरअंदाज करने का प्रयास किया जा रहा है? मृदुला सिन्हा का कथा-साहित्य इन सब समस्याओं के सर चढ़कर हमला करता है। सामाजिक परिवर्तन हेतु क्रांति करता है। सवाल ही नहीं उठाता बल्कि उनका समाधान भी पेश करता है।

विमर्श का अर्थ एवं परिभाषा

हिन्दी में 'विमर्श' शब्द अंग्रेजी 'डिस्कोर्स' का पर्याय है और 'डिस्कोर्स' लैटिन शब्द 'डिसकोर्सेज', जिसका अर्थ है बहस, संवाद, वार्तालाप और विचारों का आदान-प्रदान। हिन्दी शब्दकोशों के आधार पर विमर्श का अर्थ समालोचना, परामर्श, परीक्षण, किसी बात पर सोच-विचार, चिन्तन-मनन से है। जब दो या दो से अधिक लोग मिलकर किसी विषय पर सोच विचार या बहस करते हैं तो चिंतन की यह प्रक्रिया 'विमर्श' बन जाती है। प्रश्नोत्तर करते हुए वाद-विवाद करते हैं, इसके प्रयोग से जहां विषय में स्पष्टता आती है वहां रचना प्रवाह भी अखंडित रहता है।[1]

आचार्य रामचंद्र वर्मा द्वारा लिखित 'शब्दार्थ-विचार-कोश' के आधार पर विमर्श का अर्थ "किसी बात या विषय में किसी निर्णय या निश्चय पर पहुंचने से पहले हम कुछ लोगों के साथ बैठकर उसके सब अंगों या पक्षों का ऊंच-नीच व हानि-लाभ देखते हैं, तब हमारा यह कार्य 'विमर्श' कहलाता है। हालांकि, 'विचार' हम स्वयं या अकेले भी कर सकते हैं परंतु 'विमर्श' में किसी दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों की अपेक्षा भी होती है। आपस में मिलजुल कर और अच्छी तरह से सोच-समझकर की जाने वाली चर्चा ही मुख्यत: विमर्श कहलाती है।[2]

इसी आधार पर कहना चाहूंगी कि 'विमर्श' किसी विषय पर विभिन्न विद्वानों या लोगों की लोगों द्वारा जो अलग-अलग विषयों के ज्ञानी हैं, के तर्क-वितर्क करने पर उस विषय के पक्ष-विपक्ष में जो सार्थक विचार प्रस्तुत किए जाते हैं, जिससे वह विषय व्यक्तिगत न होकर सार्वजनिक एवं बहुआयामी बन जाता है, चिन्तन और मनन की यह प्रक्रिया ही 'विमर्श' कहलाती है।

डॉ. नामवर सिंह ने 'विमर्श' को हिन्दी में मिशेल फूको के 'डिस्कोर्स' का अनुवाद माना है। फूको 'विमर्श' को 'डिस्कोर्स' कहते हैं।

'विमर्श' का अभिप्राय: किसी एक वस्तु के बारे में लोगों के बातचीत करने के तरीके या सोचने की पद्धति से है, यह तरीके मिलजुलकर लोगों की सामान्य धारणा को बनाते हैं।[3]

उपरोक्त शब्दकोशों के आधार पर साधारण शब्दों में कह सकते हैं कि दो व्यक्तियों के बीच संवाद या बहस या सार्वजनिक चर्चा 'विमर्श' है, परंतु आधुनिक शब्दावली के प्रचलन के कारण इसका प्रयोग परिवर्तित अर्थ में किया जाने लगा है। यहां विमर्श का अर्थ अभिव्यक्ति के उन तत्वों एवं पहलुओं की संरचना से है जो अपने कुल जोड़ से भी परे जाकर कोई खास अर्थ देने की क्षमता रखते हैं। एक निश्चित सामाजिक संदर्भ में भाषा के द्वारा किसी एक विषय के इर्द-गिर्द होती बहस द्वारा व्याख्या व मान्यताओं के निर्माण की प्रक्रिया 'विमर्श' है।

साहित्य में महिला लेखन के रूप में उपलब्ध विभिन्न कहानियों, कविताओं तथा आत्मकथाओं में स्त्री की दैहिक पीड़ा से परे जाकर उसकी वर्गीय, जातीय एवं लैंगिक पीड़ा का वास्तविक स्वरूप प्रतिबिंबित क्यों नहीं हो पा रहा है? स्त्री साहित्य के सवालों के मूल्यांकन के संदर्भ में भी हिंदी आलोचना में गैर-अकादमिक एवं उपेक्षापूर्ण रवैया क्यों मौजूद है। साठ के दशक में पुरुष वर्चस्ववाद की सामाजिक सत्ता और संस्कृति के विरुद्ध उठ खड़े हुए स्त्रियों के प्रबल आंदोलन को स्त्रीवादी आंदोलन का नाम दिया गया। वस्तुत: स्त्रीवादी आंदोलन एक राजनीतिक आंदोलन है जो स्त्री की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एंव दैहिक स्वतंत्रता का पक्षधर है। स्त्री मुक्ति अकेले स्त्री की मुक्ति का प्रश्न नहीं है बल्कि यह संपूर्ण मानवता की मुक्ति की अनिवार्य शर्त है। दरअसल यह अस्मिता की लड़ाई है। इतिहास ने यह साबित भी किया है कि आधी आबादी की शिरकत के बगैर क्रांतियाँ सफल नहीं हो सकतीं।

भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में अपनी जातीय अस्मिता की पहचान और जनता के अधिकारों के माँग के साथ-साथ स्त्री मुक्ति का स्वप्न भी देखा जा रहा था। नव स्वतंत्र भारतीय राष्ट्र ने महिला आंदोलनों को यह विश्वास भी दिलाया था कि बड़े उद्देश्यों की प्राप्ति के पश्चात स्त्री-पुरुष संबंध, लैंगिक श्रम विभाजन, आर्थिक हिंसा जैसे मुद्दे स्वत: ही हल हो जाएँगे परंतु स्वतंत्रता के इतने वर्षो के बाद भी स्त्री-मूलक प्रश्न ज्यों के त्यों बने हुए हैं। औरत पर आर्थिक, सामाजिक यौन उत्पीड़न अपेक्षतया अधिक गहरे, व्यापक, निरंकुश और संगठित रूप से कायम है। स्त्री आंदोलनों को इन समस्त चुनौतियों से लड़कर ही अपनी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करना होगा। निश्चित रूप से इसका स्वरूप अन्य मुक्तिकामी आंदोलनों से किसी रूप में भिन्न नहीं है जो वर्गीय, जातीय, नस्लीय आधार पर समाज हो रही हिंसा एवं असमानता के प्रति संघर्षरत है तथा एक समतामूलक समाज निर्माण हेतु प्रतिबद्ध हैं। स्त्रीवादी आंदोलनों की शैक्षणिक रणनीति के रूप में स्त्री अध्ययन एक अकादमिक अभिप्रयास है जो मानवता एवं जेंडर संवेदनशील समाज में विश्वास करता है। यह समाज के प्रत्येक तबके के अनुभवों को केंद्र में रखकर ज्ञान के प्रति नया दृष्टिकोण विकसित करने के लिए प्रतिबद्ध है जो सत्तामूलक ज्ञान की रूढ़ सीमाओं को तोड़कर ज्ञान को उसके वृहद् रूप में प्रस्तुत करता है। विशेष तौर पर स्त्री विषयक मुद्दों के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक पक्षों पर अपनी राय रखते हुए जेंडर समानता आधारित समाज के निर्माण की और अग्रसर है। अंतरविषयक अध्ययन होने के कारण यह अन्य विषयों के साथ ज्ञानात्मक संबंध भी कायम करता है। स्त्री प्रश्नों के प्रति अकादमिक जगत में स्पेस बनाने के लिए भी स्त्रीवाद को पढ़ाया जाना अति आवश्यक है। जरूरी नहीं कि उच्च शिक्षा संस्थानों में स्त्रीवाद पढ़ने के बाद लोग स्त्रीवादी बनें ही परंतु यह संभव हो सकेगा कि ज्ञान के नए क्षितिज के रूप में वह उसके बारे में समझ रखते हों।

आमतौर पर स्त्री विमर्श के अकादमिक होने के उपरांत यह आरोप लगते रहे हैं कि इसके कारण आंदोलनों का संस्थानीकरण हुआ है एवं लोग स्त्री मुद्दों को टेक्स्ट के रूप में पढ़ने लगे हैं। बहुत हद तक यह सही भी है परंतु धीरे धीरे ही सही स्त्री अध्ययन परंपरागत ज्ञान की दुनिया में अपने लिए स्थान बना पाने में सफल हो रहा है। इसे शैक्षिक संस्थाओं के उदारवादी चेहरे के रूप में भी देखा जा सकता है। या यूँ कहें कि यह ब्राह्मणवादी पितृसत्तात्मक ज्ञान व्यवस्था की मजबूरी भी है कि वह इस किस्म ने विमर्शों को तरजीह दे।

स्त्री का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ एवं पर्याय

स्त्री विमर्श पर दृष्टि डालने से पूर्व स्त्री क्या है? और उसे भिन्न-भिन्न कालखण्ड में कवियों, लेखकों, विद्वानों ने क्या-क्या संज्ञा दी है? इस पर दृष्टि डालना समीचीन होगा, जिसमें भारतीय ही नहीं पाश्चात्य विद्वानों के मत भी दिए जाएंगे। स्त्री केवल एक शब्द के सुनते ही उसकी संपूर्ण छवि हमारी आंखों के सामने मूर्त रूप में प्रकट हो जाती है। स्त्री के माता, पत्नी, बहन, बेटी इत्यादि सभी रूप सम्मानीय हैं और इसे गौरवशाली स्थान प्रदान किया गया है, जिसकी वेदों में व्याख्या की गई है। जिस प्रकार प्रत्येक शब्द की अपनी अलग सत्ता, अपना अलग इतिहास और महत्व होता है, उसी प्रकार स्त्री जैसे छोटे से शब्द से ही उसका रूप और महत्व ध्वनित हो जाता है। विभिन्न शब्दकोशों के आधार पर स्त्री का वर्णन इस प्रकार से है-

1. व्यवहारिक हिन्दी कोश: इसमें स्त्री के लिए 'स्त्री' 'औरत' इन दो शब्दों का प्रयोग किया गया है।4
2. "वृहत हिन्दी कोष" इसमें स्त्री के लिए यह अर्थ मौजूद हैं- स्त्री, औरत, हरिस, दो धने की रस्सी या तस्मा, नाली, एक पक्षी।5
3. "ज्ञान शब्दकोश"रू के आधार पर स्त्री के लिए स्त्री, हरिस में जूआ, दो धने की रस्सी या तस्मा, नाली, नाड़ी, औरत इत्यादि यह सभी अर्थ पर्याप्त हैं।6

स्त्री की परिभाषा

अगर स्त्री शब्द को देखा जाए तो इसका प्रयोग सर्वप्रथम ऋग्वेद में प्राप्त होता है जिसका अर्थ है - "याज्ञिक" पत्नी।7 याज्ञवल्क्यम स्मृति में लिखा है "रक्ष्यते" कन्या, पिता, पितां, पति: पुलास्तु वार्धके[5] अर्थात स्त्री की बचपन में पिता रक्षा करेगा, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र। इस प्रकार वह पराश्रित ही बनी रहेगी। प्रसिद्द फ्रेंच लेखिका "सिमोन द बोउवार" ने स्त्री की स्थिति को परिभाषित करते हुए अपनी पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा है कि 'स्त्री को स्त्री' बना रहना सिखाया गया है।

कबीर ग्रंथावली के अनुसार: -

'कबीर कामिनी सुंदर सर्पिणी, जो छेड़े तेहि खाय।
जो गुरुचरण न राचिया, तिनके निकट न जाय।[8]

महादेवी वर्मा के मतानुसार- ''स्त्री केवल मांस पिंड की संज्ञा नहीं है। आदिम काल से आज तक विकास-पथ पर पुरुष का साथ देकर, उसकी यात्रा को सरल बनाकर उसके अभिशापों को स्वयं झेलकर और अपने वरदानों से जीवन में अक्षय शक्ति भरकर, मानवी ने जिस व्यक्तिगत चेतना और हृदय का विकास किया है, उसी का पर्याय स्त्री है।''[9]

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार- ''स्त्री का व्यक्तित्व विचित्र है। वह दयालुता की मूर्ति है, कठोरता की प्रतिमा है। विश्वास की जननी है और विश्वास की ग्रंथि है तथा सरलता सी सरल और पहेली सी असरल है।''[10]

उपरोक्त उचित पंक्तियों द्वारा जहां स्त्री को स्पष्ट किया गया है, वहीं पर स्त्री का विषय जब विमर्श से जोड़कर देखा जाता है तो स्त्री विमर्श की प्रकृति अपना अस्तित्व जो हमारे सामने रखती है उस पर दृष्टि डालना अनिवार्य हो जाता है।

स्त्री की प्रकृति

स्त्री की प्रकृति स्त्री विमर्श किसी एक विचार पर आधारित न होकर, उसमें अनेक विचार समाहित है। इसका स्वरूप अत्याधिक व्यापक है। यह विभिन्न विचारों को सामने रखता है। स्त्री विमर्श के संदर्भ में समाज में गलत दृष्टिकोण दिखाई देते हैं सामान्यत: यही सोचा एवं समझा जाता है कि स्त्री विमर्श को पुरुष से अलग करने के लिए स्त्री का पुरुषों पर वर्चस्व स्थापित करने के लिए छेड़ा गया एक आंदोलन है। वास्तव में स्त्री मुक्ति आंदोलन पुरुष के विरोध में आंदोलन न होकर एक शोषण व हिंसा की प्रवृत्ति के विरोध की लड़ाई है। परंपरा से स्त्री का जो रूप प्रस्तुत किया जा रहा है, क्या वह सही है? तलाश एवं खोज करना स्त्रीवाद का मूल केंद्र बिंदु है। स्त्री की पुरातन प्रस्तुति के हेतु उसकी मानसिकता और वैचारिकता में कोई परिवर्तन नहीं रहा है। यह अवस्था उसे मात्र एक साधन और वस्तु के रूप में प्रस्तुत करती आ रही है। स्त्री को मनुष्य रूप में प्रस्तुत करना स्त्री विमर्श का उद्देश्य रहा है।

महादेवी वर्मा जी कहती हैं:- "प्रथाओं, परंपराओं और मान्यताओं से संघर्ष ही आज की स्त्री की सामाजिक क्रांति है। कुंठित व्यक्ति क्रांति नहीं कर सकते। इन्हें नवीन जीवन मूल्यों से जोड़कर देखना होगा, तभी स्त्री कुंठा से मुक्त हो सकेगी।"[11]

महादेवी वर्मा के लिए "औरत बल की दृढ़ता एवं संघर्षशीला है जिसका धैर्य जड़ धरती की भांति है। इसलिए स्त्री जब किसी साधना को अपना स्वभाव और किसी सत्य को अपनी आत्मा बना लेती है, तब पुरुष उसके लिए नए महत्व का विषय रह जाता है, न भय का कारण। इस सत्य को मान लेना पुरुष के लिए संभव नहीं हो पाया।"[12]

मृदुला सिन्हा की दृष्टि से आधुनिक भारतीय स्त्री

प्राचीन समय से लेकर वर्तमान समय तक महिलाओं के रहन-सहन, जीवन जीने के तरीके, लोक-व्यवहार, शिक्षा-दीक्षा आदि में अंतर देखा जा सकता है और यह अंतर संभवत: सही नहीं है, क्योंकि समय के साथ सब बदलते हैं, परिवर्तन ही संसार का नियम है किन्तु समय के साथ-साथ अपने आप को बदलने से पहले हमें यह अच्छी तरह सोच समझ लेना चाहिए कि यह बदलाव हमारे एवं हमारे परिवार, समाज के लिए कहा तक उपयोगी सिद्ध होगा। श्रीमती मृदुला सिन्हा जी ने अपने विभिन्न पुस्तकों, लेखों, उपन्यासों के द्वारा पाठकों को यह समझाने का प्रयास करती रही कि ''बेटियां विशेष हैं।'' वह पुरुषों के बराबर नहीं है। वे कहती है कि ''बेटा-बेटी को मात्र बराबर नहीं बेटी को विशेष मानकर शिक्षा, संस्कार, सुरक्षा सुविधाएं मुहैया कराने की जरूरत है। तभी परिवार एवं समाज में मात्र बराबर नहीं विशेष प्रकार के विकास के अवसर पाकर वह अपनी जिम्मेदारियों के प्रति भी विशेष सतर्क होंगी।'' आशय स्पष्ट है कि लेखिका आधुनिक स्त्री को ''विशेष'' शब्द से संबोधित करती हैं। आधुनिक भारतीय स्त्री प्रत्येक संदर्भ में इस समाज मे विशेष है, वह अपने महत्व को जब तक नहीं समझेगी, तब तक हमारे समाज का कल्याण होने वाला नहीं है। अपनी पुस्तक 'मात्र देह नहीं है औरत' में वह लिखती है कि -''एक बार सामाजिक सम्मेलन में मैंने महिलाओं द्वारा नारा लगाते हुए सुना कि-हम भारत की स्त्री हैं, फूल नहीं चिंगारी हैं।"[13] वे लिखती है मैं 1980 में राजनीतिक दल के महिला संगठन से जुड़ी तब मैंने इस नारे पर विचार किया कि नारे में बोलती महिलाओं द्वारा स्पष्ट था, कि वे चिनगारी हैं। आशय स्पष्ट है कि अब महिलाएं फूल बनकर रहना नहीं चाहती, बल्कि वह अब विरोध करना सीख गई है। किन्तु उनका यह विरोध क्या सार्थक है? इस विरोध के द्वारा क्या वह अपनी आधुनिक पहचाना बना सकती हैं? महिलाएं अगर विरोध पर आ जाए तो, उनका इस स्वरूप का क्या होगा जिस स्वरूप में वह दुर्गा, सरस्वती, सीता, सावित्री या माता के रूप में पूजी जाती है। संभवत: वह चिनगारी नहीं बल्कि फूल है क्योंकि यह फूल रुप ही उन्हें पुरुष से श्रेष्ठ बनाता है। किन्तु इसके विपरीत वह अपने फूल स्वरूप की रक्षा करने के लिए चिनगारी बन सकती हैं किन्तु थोड़े समय के लिए। फिर उन्होंने इसमें (नारें) बदलाव किया और एक नया स्वरूप इस नारें का समाने आया। ''हम भारत की स्त्री हैं, फूल और चिनगारी है।"[14]

जीवन के किसी भी क्षेत्र में अतिशयता वर्जित है कहा भी गया है कि-''अति सर्वत्र वर्जयते'' कहना न होगा कि लगभग दो सौ सालो के इतिहास को जब हम उठाकर देखते हैं तो उसमें भी स्त्रियों के साथ अति हुई है। मृदुला जी कहती है कि ''स्त्री के विकास की दृष्टि से समाज के लिए मुगलकाल और उसके बाद भी अंधकार युग रहा और महिलाएं असूर्यपश्या कहलाने लगी, जो सूर्य ही नहीं देख पाती थी।''[15] किन्तु समय बदला, परिस्थिति बदली और समाज की सोच बदली 21वीं सदी तक आते-आते महिलाओं को वह सब कुछ प्राप्त हुआ जिसकी वह हकदार थी, बेटियों को लेकर माता-पिता की सोच भी बदलने लगी अब बेटियों के जन्मोत्सव पर भी बधाई के गीत गाये जाते हैं उन्हें भी समाज में उच्च शिक्षा के लिए घर से बाहर भेजा जाने लगा। आधुनिक काल में माता-पिता अपने बेटियों को भी विदेश भेजने लगे ताकि वह वहां जाकर अपने संस्कार, संस्कृति एवं नैतिक मूल्यों के द्वारा अपना तथा भारतवर्ष का नाम रोशन कर सकें। वहां के लोगों को अपने भारत की मिट्टी से अवगत करा सकें और गर्व से कह सकें कि हम भारत की स्त्रियां हैं।

आधुनिक स्त्रियों की पहचान इसमें है कि वह अपने द्वारा प्राप्त संस्कृति एवं सभ्यता का आदर्श प्रस्तुत करे, न कि पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता को अपनाएं। आज महिलाएं आधुनिक बनने के चक्कर में अपने आप का प्रदर्शन कर रही हैं, टी0वी0 एवं विभिन्न प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं में यह भरा पड़ा है, जिसमें वह अपने अंग-प्रत्यंग को दिखाने के लिए लालायित होती देखी जा सकती हैं। मृदुला जी ऐसी नारियों को देखकर दु:खी होती हैं एवं कहती हैं कि -''सुबह-सुबह समाचार-पत्र के पृष्ठों पर अर्द्धनग्न महिलाओं की तस्वीरें देखकर मन में सवाल उठता है कि आखिर इन्हें ऐसी तस्वीरे छापने की आवश्यकता क्यों पड़ गई? टी0वी0 के अधिकांश चौनलों पर अर्द्धनग्न और अब पूर्ण नग्न युवतियों की तस्वीरें देखकर टी0वी0 देखना बन्द करना पड़ता है। अब स्थिति यह हो गई है कि परिवार के साथ बैठकर टी0वी0 नहीं देखा जा सकता। समाचार-पत्र और पत्रिकाओं को ड्रांइग-रुम के सेन्ट्रल टेबल पर नहीं

रखा जा सकता।"[16] क्या यही हमारा आदर्श है, यही हम भारतीय स्त्रियां हैं जिनकी तुलना सीता, सति, सावित्री से की जाती है, इस आधुनिकता के विकास के दौर में हम अपना सर्वस्व नाश करते चले जा रहे हैं। हम अपने अंगों को दिखाकर समाज में क्या हासिल करना चाहते हैं। हमें यह समझना चाहिए कि हमारी अस्मिता अपने शरीर को दिखाने से नहीं बल्कि उन्हें ढ़ककर इज्जत से संभालने की है। ग्रामीण महिलाओं को अक्सर यह कहते हुए सुना जाता है कि-''दरवाजे पर कैसे जाती मरद लोग बैठे थे! मेरी साड़ी इतनी फटी थी कि इज्जत भी नहीं ढकी जा सकती है।'' हमें आधुनिक बनना है सोच से, विचारों से, अपने मूल्यों से न अंगों का प्रदर्शन करके।

हम जानते हैं कि आधुनिक स्त्रियां प्रत्येक स्थानों में पुरुष के समान बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेती हुई दिख रही है, किन्तु आवश्यक नहीं है कि पहनावे में, रहन सहन में वह बराबरी करें, यह उचित नहीं है क्योंकि वह विशेष है पुरुष के समान नहीं। आज माता-पिता का यह कर्तव्य है कि वह अपनी बेटियों को इस योग्य बनाए कि वह अपने नैतिक कर्तव्यों का निर्वहन कर सकें। वह यह बता सकें कि हम भारत की बेटी हैं। हममें समता, समानता, सहनशीलता की कमी नहीं, जरुरत पड़ने पर हम लक्ष्मी भी बन सकते हैं एवं काली का स्वरूप भी धारण कर सकते हैं। स्त्रियों को यह नहीं भूलना चाहिए कि ''जननी का जनमने, जनमी को जीने, जीवन देते रहना का, सम समता-सम्मान चाहिए, स्त्री को पहचान चाहिए।'' उन्हें यह याद होना चाहिए, कि वह मां है, मातृत्व सुख से बड़ा इस संसार में दूसरा कोई सुख नहीं है। स्त्रियों को किसी भी दबाव में आकर कन्या भ्रूण हत्या में भागीदार नहीं होना चाहिए और उन्होंने यदि एक बच्चे को जन्म दे भी दिया तो उसे (बच्चे को बेटा/बेटी) मातृत्व स्नेह एवं मातृत्व दूध से वंचित कर देती है। हमें यह समझना चाहिए कि यही विशेष ब्रह्म के समान है। क्योंकि ब्रम्हा भी जनते हैं और स्त्रियां भी जननी हैं। इसलिए वर्तमान परिवेश में स्त्रियों को यह ध्यान रहना चाहिए कि इस सृष्टि के विस्तार में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। वर्तमान परिवेश विसंगतियों का परिवेश रहा है यहां नाना प्रकार के लोग हैं किन्तु सबकी दृष्टि स्त्रियों पर ही आकर थम सी जाती है। स्त्रियों के कई स्वरूप हैं कहीं बेटी के रूप में, कहीं पत्नी के रूप में कहीं मां के स्वरूप में कहीं वह सेविका है तो कहीं घर चलाने वाली एक कुशल गृहिणी भी, कही घर एवं दफ्तर दोनों को संभालती हुई एक विरांगना, तो कहीं आकाश तक इसने अपने पैर पसारे हैं। चहुंदिक् इन्हें मान-सम्मान की ही प्राप्ति हुई है। अत: इन भारतीय आधुनिक स्त्रियों को यह समझना चाहिए कि वह विशेष हैं, उनका सम्मान अंग-प्रदर्शन या पुरुषों के समतुल्य पहनावे में ना होकर उनके नैतिक मूल्यों, संस्कार-संस्कृति, परिवेश, वैचारिक सोच एवं मानसिक आजादी में है।

मृदुला सिन्हा के उपन्यासों में स्त्री की स्थिति

मृदुला सिन्हा भारतीय जीवन शैली की अनुगामिनी व्याख्याकार एवं प्रतिष्ठापक है इसका प्रमुख कारण यह है कि वे स्वयं स्त्री हैं। वे भारतीय स्त्री चरित्र का प्रतिनिधित्व करती हैं। स्त्री अस्मिता केवल स्वयं को प्रतिष्ठित या स्थापित करने में व्यक्त नहीं होती वरन सम्पूर्ण परिवार, समाज और उसके संबंधों के निर्वाह में व्यक्त होती हैं जिसे मृदुला जी ने अपनी उपन्यास यात्रा में बखूबी से चित्रित किया है। वे अपने उपन्यास साहित्य में घर परिवार की स्थापना और समृद्धि में स्त्री को बड़ा महत्व देती है। उनका स्त्री विषयक चिंतन भारतीय चिंतन पर आधारित है। मृदुला जी स्त्री को पुरूष के समान बनाने की बजाय मातृत्व से मंडित करती हैं। उनके विचारानुसार स्त्री को पुरूष के समान बनने की जगह स्त्रीत्व से पूर्ण बनने की जरूरत है। स्त्री कभी पुरूष के समान हो ही नहीं सकती। वह तो पुरूष से भी श्रेष्ठ है क्योंकि वह त्याग व सेवा की प्रतिमूर्ति के साथ-साथ दातृ हैं।

'घरवास' उपन्यास में कालिया के गृह प्रवेश की कामना पूर्ण करने के लिए उसके पति विलोचना ने यातनाएं सहते हुए अपने सच्चे अनुराग को प्रकट किया है। कालिया के संघर्षपूर्ण जीवन में उसके घरवास की कामना पूरी नहीं हो सकी परन्तु वह एक ममतामयी मां, त्याग व समर्पण की प्रतिमूर्ति तथा पतिव्रता स्त्री के सभी गुणों का समावेश लिए हुए हैं। विलोचना ने पुछा, ''पैसे कहां से लाई?'' कालिया ने जवाब दिया, ''तुम्हारे लाये रुपयों में से पांच रूपये अलग रख दिए थे। छठ व्रत तो करना ही था न ! एक दिन भूखे रहकर भी। पंजाब में तुम थे तो मनौती मानी थी- तुम राजी-खुशी लौट आओगे तो इस बार मैं भी छठ व्रत करूंगी। सो कर रही हूं।''[17]

इस उपन्यास में ठाकुर साहब ने अत्याचारों को सहते हुए उनकी पत्नी व मां लाजपरी के पारिवारिक जीवन के कड़े संघर्ष को उजागर किया है। ठाकुर अपनी पत्नी को पिटते हुए कहता है-''जा-जा, कल ही नैहर चली जा। दरिद्दर की औलाद! मुझे भी सिखाने चली है। बड़े-बड़े गए तो गजऊ आए। पिऊंगा शराब, जाऊंगा वेश्या के यहां। चार-चार रखैल रखूंगा। तुम क्या कर लोगी? तुम्हारे बाप की कमाई लुटाता हूं क्या? उससे तो एक मोटर साईकिल भी न दी गई। अपनी कमाई अपनी दरिद्दर की बेटी मुझे सीख सीखा रही है।''[18]

मृदुला जी का उपन्यास ''ज्यों मेहंदी को रंग'' निशक्तता की पीड़ा का जीवन्त दस्तावेज हैं। इस उपन्यास में नवविवाहित शालिनी को उसके ससुराल में भरपूर प्यार और स्नेह मिलता है। वह पति और सास के आंखों की पुतली है। उसी सास उसके पायलों में संगीत के आरोह-अवरोह को महसूस करती हैं। जिन्दगी के खुबसुरत पहिये को किसी की नजर लग जाती है और शालिनी नौकाविहार के दौरान पैर कटने से विकलांग हो जाती हैं। व्यक्ति का शारीरिक रूप से विकलांग होना उतना पीड़ादायक नहीं हैं जितना मानसिक उपेक्षा व चोटों से आयी पिकलांगता पीड़ा देती हैं। शालिनी का यह कथन उसके मानसिक मजबूती को उद्घाटित करता है ज बवह अपने पति राजेश से कहती हैं- ''क्या हुआ जो हमारे दो पैर कटे, दो तो हैं'' परन्तु तुरन्त ही उसकी कल्पना उसकी मजबूती सब असंवेदनशीलता की भेंट चढ़ जाता है जब प्राणों की तरह प्रेम करने वाली उसकी सास कहती हैं -''बहु मेरे बेटे का क्या होगा? पूरी जिंदगी पड़ी हैं उसकी।'' यह कहना भी शालिनी को इस उपेक्षा अपंगता और अपूर्णता का एहसास कराता है जहां से व्यक्ति मानसिक तौर पर स्वयं की निशक्तता को स्वीकार कर लेता है। क्या रिश्ता या संबंध सिर्फ शारीरिक सौंदर्य से होता है। क्या रिश्तों में हृदय का लगाव इतना कमजोर हो गया है कि हम एक दुर्घटना मात्र से अपनो की रक्षा करने लगेंगे। शालिनी के घायलवस्था में ही लोग राजेश की दूसरी शादी की योजना बनाने लगते हैं। पैरों को हार कर भी हार न मानने वाली शालिनी अपनों की योजना से कांप जाती है- ''राजेश की मां बेटे को समझाओं। अभी वह नासमझ हैं दुनियादारी समझता नहीं। पूरी जिन्दगी पड़ी है उसकी। गांव की किसी गरीब लड़की से शादी कर दो उसकी। जो उसे भी संभालेगी और खटिया पर पड़ी अपाहिज सौत को भी।'' शालिनी को परिवार के सभी सदस्यों के मनोभावों को समझने में देर नहीं लगती हैं। वह स्वयं राजेश की दूसरी शादी के लिए तैयार हो जाती है। ''स्त्री चाहे मां के रूप में हो अथवा पत्नी के या फिर बेटी के, उसे पुरूष को समझते देर नहीं लगती।''[19]

मृदुला जी ने अपने आत्मकथात्मक उपन्यास ''सीता पुनि बोली'' में सीता के माध्यम से स्त्री की आत्मिक शक्ति के साथ मातृत्व की प्रतिष्ठा की हैं राम के वनवास मिलने पर अपने संकल्प की दृढ़ता को प्रस्तुत करते हुए कहती हैं ''आप जब तापस वेश धारण करेंगे तो क्या मैं रानी वेश सजूंगी। मैं भी तापस वेश में वन जाऊंगी।'' इस उपन्यास में सीता अबला नहीं है। उसमें आत्मगौरव दर्शाता है इससे भारतीय स्त्री की आचरणशीलता और पतिव्रता धर्म को सीता के शक्ति सम्पन्न रूप के साथ संजोया गया है।

इस उपन्यास में मृदुला जी की बेटी को दो परिवारों की लाज रखने वाली बताया है ससुराल व मायके की पहचान ही बेटी से होती है। सीता के स्वयंवर के उपरांत राजा जनक उसको जनकपुरी की सीमा तक छोड़ने जाते हैं और अपनी बेटी का सिर चुमकर बोलते हैं -''जाओ बेटी, अपने घर जाओ। दोनों कुल की लाज रखना। हर परिस्थिति में तुम्हे राम का साथ देना है। तुमसे राम और राम से तुम जानी जाओगी। ससुराल, परिवार के सदस्यों और प्रजाजनों के हृदय पर राज करना। ननद-देवर सबकी साम्राज्ञी बनना।''[20]

गर्भवती सीता, जहां पति द्वारा परित्यक्ता होकर वाल्मीकि आश्रम में अपने लवकुश जुडवां पुत्रों को जन्म देकर ऐसी शिक्षा और संस्कार देती हैं कि वे दोनों अयोध्या के यशस्वी राजा बन सके, किन्तु आत्मविश्वासी व स्वाभिमानी यह स्त्री राम के प्रगाढ़ अनुभव विनय पर भी उनके साथ महारानी बनकर पुनः अयोध्या का राज भोगने के लिए तैयार नहीं होती।

सार

मृदुला सिन्हा का कथा-साहित्य स्त्री-विमर्श पर अपनी पूर्ण भूमिका निभाता है। मृदुला सिन्हा ने अपने साहित्य में स्त्री-विमर्श के सर्व पहलुओं उसकी पारिवारिक-सामाजिक-सांसारिक पृष्ठभूमि को इंगित किया है। समाज में व्याप्त यथार्थ जब साहित्य में ना दिखता हो, तो यह साहित्यिक धोखाधड़ी है। इसे साहित्यिक माध्यम से प्रस्तुत करना नितांत अनिवार्य है। मृदुला सिन्हा का कथा-साहित्य सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ को पूर्णतः अभिव्यक्त करता है। मृदुला सिन्हा ने सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप अपने साहित्यिक सृजन में पीडिघ्त-शोषित-वंचित स्त्री को प्रस्तुत किया है ताकि समाज, राष्ट्र यथार्थ से परिचित हो सुयोग्य परिवर्तन को अनुग्रहण कर सके। साहित्यकार की यही मूलभूत भागीदारी समाज को परिवर्तन के लिए विवश कर देती है। मृदुला सिन्हा का यह साहित्यिक सृजन स्त्री-विमर्श को प्रस्तुत करने के साथ-साथ समस्या-समाधान से भी अवगत कराता है।

संदर्भ

1. पवार, (डॉ.) शोभा निम्बालकरः "हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श", नई दिल्ली, मानसी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2009 पृ० 3
2. तिवारी, (डॉ.) भोलानाथः "व्यवहारिक हिन्दी कोष", नई दिल्लीः नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण, 1974 पृ० 175
3. पवार, (डॉ.) शोभा निम्बालकरः "हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श", नई दिल्लीः मानसी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2009 पृ० 3
4. तिवारी, (डॉ) भोलानाथः "व्यवहारिक हिन्दी कोष", नई दिल्लीः नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण, 1974, पृ० 175
5. प्रसाद, कलिकाः "वृहद् हिन्दी कोष", बनारसः ज्ञानमंडल लिमिटेड, प्रथम संस्करण, संवत् 2009, पृ० 605
6. श्रीवास्तव, मुकन्दीलालः "ज्ञान शब्द कोष", बनारसः ज्ञानमंडल लिमिटेड, प्रथम संस्करण, अर्धपूर्णिमा, 2011, पृ० 403
7. ऋग्वेदरू 7.7.3
8. कबीरः "कबीर ग्रन्थावली", नई दिल्लीः हिन्दी बुक सेन्टर, द्वितीय संस्करणः 1998, पृ० 43
9. वर्मा, महादेवी; श्रृंखला की कडिघ्याँ, इलाहाबाद, लोक भारती प्रकाशन, 2008
10. तिवारी, डॉ. भोलानाथ; "हिन्दी काव्य में स्त्री", मथुराः जवाहर पुस्तकालय, 1974, पृ0 266
11. वर्मा, महादेवीः 'मेरे प्रिय निबंध', (जीने की कला), नई दिल्लीः नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम सं. 1981, पृ० 234
12. वर्मा, महादेवीः 'मेरे प्रिय निबंध', (जीने की कला), नई दिल्लीः नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम सं. 1981, पृ० 234
13. सिन्हा, मृदुला, मात्र देह नहीं है औरत, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ0 100
14. सिन्हा, मृदुला, अविकसित पुरूष नहीं है औरत, यश प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ0 126
15. वही, पृ0 127
16. वही, पृ0 126
17. सिन्हा, मृदुला, घरवास, ज्ञान गंगा प्रकाशक, दिल्ली, 2016, पृ0 93
18. वही, पृ0 101
19. सिन्हा, मृदुला, ज्योंहैं मेहंदी को रंग, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ0 53
20. सिन्हा, मृदुला, सीता पुनि बोली, विद्याविहार प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ0 58-59

राष्ट्रीय चेतना के उन्नायक कविः मैथिलीशरण गुप्त

डॉ० सुषमा गौडियाल

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली

जिस मातृभूमि पर हमारा जन्म हुआ है, उसके प्रति हमारा प्रेम स्वाभाविक है है, अतएव उसे स्वर्ग से भी श्रेष्ठ कहा गया है- 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'। हिन्दी साहित्य के आदिकाल में राष्ट्रीय भावों का उन्मेष यत्किंचित रूप में मिल जाता है। पृथ्वीराज रासो, हमीर रासो, आल्हाखण्ड आदि कृतियों में राष्ट्रप्रेम के उत्स प्रवाहित होते प्रतीत होते हैं। वीरगाथा काल के बाद रीतिकाल में तत्कालीन कवियों में से भूषण गोरेलाल एवम् सूदन ने राष्ट्रीय चेतना पर अपनी लेखनी चलाई। आधुनिक युग में आकर सर्वप्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने राष्ट्रीय भावों से ओतप्रोत अपनी ओजमयी रचनाएं प्रस्तुत कीं। भारतेन्दु के अतिरिक्त पं. रामचरित उपाध्याय ने अपनी कृति 'राष्ट्रभारतीय के माध्यम से राष्ट्रीयता का सर्वाधिक प्रचार प्रसार किया। इसी प्रकार छायावादी कवियों जैसे प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा ने भारत के स्वर्णिम अतीत के गौरव का गुणगान करके जन-जन के हृदय में देश भक्ति, स्वदेशाभिमान, तथा राष्ट्र प्रेम जाग्रत करने का प्रयत्न किया। इनके अतिरिक्त माखन लाला चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, श्यामनारायण पाण्डेय, सोहनलाल द्विवेदी आदि ने भी अपनी रचनाओं के द्वारा राष्ट्र प्रेम का संचार किया। रामधारी सिंह दिनकर के सम्पूर्ण काव्य से तो राष्ट्र प्रेम की अविरल धारा प्रवाहित होती प्रतीत होती है, परन्तु इस दिशा में सबसे अधिक सराहनीय कार्य मैथिलीशरण गुप्त जी ने किया, जिन्हें सम्पूर्ण देश 'राष्ट्रकवि' के नाम से जानता है। गुप्त जी ने सर्वप्रथम 1912 ई0 में 'भारत भारती' लिखकर देशवासियों का ध्यान उनकी वर्तमान दुर्दशा की ओर आकृष्ट किया और अतीत की गौरव मयी झांकी प्रस्तुत करके उन्हें पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त होने के लिए प्रोत्साहित किया-

हम कौन थे क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी।
आओ बिचारे आज मिलकर, ये समस्याएं सभी।
यद्यपि हमें इतिहास अपना, प्राप्त पूरा है नहीं
हम कौन थे, इस ज्ञान को, फिर भी अधूरा है नहीं।[1]

सम्पूर्ण संसार में भारत वर्ष की श्रेष्ठता का वर्णन करते हुए वे कहते हैं-

"भू-लोक का गौरव प्रकृति का पुण्य लीला स्थल जहाँ।
कैसा मनाहर गिरि हिमालय, और गंगाजल जहाँ।
सम्पूर्ण देश्श्रों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है।
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन ? भरत वर्ष है।[2]

भारत भारती के पश्चात् उन्होंने 'बैतालिक' के जागरण गीतों द्वारा भारत'वासियों को प्रगति की ओर उन्मुख किया तथा भारतीय संस्कृति का पाश्चात्य संस्कृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने का संदेश दिया। 'किसान' नामक काव्य के द्वारा उन्होंने किसानों की दयनीय दशा पर क्षोभ प्रकट किया और उनके दु:ख एवं दारिद्रय को उत्पन्न करने वाली शोषण पद्धति को तत्काल समाप्त करने की प्रेरणा प्रदान की। इसके उपरान्त उन्होंने अनघ काव्य द्वारा सत्याग्रह को प्रोत्साहन देते हुए राष्ट्र सेवा एवम् राष्ट्र रक्षा के साथ-साथ स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए आत्मोसर्ग करने की भावना का प्रचार किया।

'स्वदेश संगीत' के द्वारा आपने परतन्त्रता की घोर निद्रा में प्रसुप्त भारत वासियों को जनवजागरण का सन्देश दिया। इसी कविता में भारतीय ध्वज का यशोगान करते हुए वे कहते हैं-

"पूज्य पुनीत मातृ मन्दिर का, झण्डा क्या झुक सकता है ?
क्या मिथ्या भय देख सामाने, सत्याग्रह रुक सकता है ?
घहरै दिग दिगन्त में अपनी, विजय दुन्दभी घहरै।
भारत का झण्डा फहरै।।"

'हिन्दू' काव्य की रचना करके उन्होंने राष्ट्रव्यापी सामाजिक जड़ता, वैयक्तिक निश्चेष्टता, धार्मिक असहिष्णुता, जातिगत अनुदारता आदि को उतार फेंकने की प्रेरणा प्रदान की। 'शक्ति' काव्य द्वारा आपने 'संघे शक्ति कलियुगे' का मूलमन्त्र जन-जीवन में व्यापक करने का स्तुत्य प्रयास किया।

'वन वैभव' कविता के द्वारा उन्होंने भारत में व्याप्त हिन्दू मुस्लिम एकता की समस्या का पौराणिक आधिार पर समाधान प्रस्तुतकिया और साम्प्रदायिक संघर्ष को दूर कराके दोनों को एक होकर शत्रुओं से मुकावला करने हेतु प्रोत्साहित किया-

"हिन्दू मुसलमान सब भाई, नित नवीन जय गान उदार।
वैष्णव बौद्ध, जैन, आदिक हम, उस पर हिंसा करें कि प्यास।।

गुप्त जी यह जानते थे कि भारतीय समाज में धर्म,जाति मत सम्प्रदाय, प्रान्तीयता, भाषा आदि के आधार पर अनेक भेद दिखाई देते हैं, जिससे निरन्तर सामाजिक विषमता की बृद्धि हो रही है। इस कारण हमारी एकता और अखण्डता सामाजिक विषमता की बृद्धि हो रही है इस कारण हमारी एकता और अखण्डता नष्ट होती जा रही है। राष्ट्रीय एकता का संदेश देते हुए वे कहते हैं-

"अनुदारता-दर्शक हमारे, दूर सब अविवेक हों,
जितने अधिक हों तन भले हैं, मन हमारे एक हों।
आचार में कुछ भेद हों, पर प्रेम हो व्यवहार में,
देखें हमें फिर कौन सुख, मिलता नहीं संसार में।।[3]

'बक संहार' की रचना द्वारा अन्याय को न सहने और न्याय के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी। तत्पश्चात् उन्होंने 'गुरुकुल' का सृजन करके सिक्खों के बलिदान पूर्ण आख्यानों द्वारा भारत देश को सैनिक शक्ति, राज्य शक्ति अथ्वा शारीरिक शक्ति की अपेक्षा आत्मिक शक्ति एवम् मानसिक बल की श्रेष्ठता का मूलमन्त्र दिया। 'नहुष' काव्य की रचना करके कवि ने समूचे राष्ट्र को नहुष की भांति अपनी उन्नति के शिखर पर पहुँचने के लिए सतत् प्रयत्न करने की सलाह दी। तदनन्तर 'अर्जन और विसर्जन' लिखकर राष्ट्र को शिक्षा दी कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए बड़े से बड़ा त्याग एवं बलिदान सदउैव श्लाघ्य एवं श्रेयस्कर होता है। इसके प्रश्चात् उन्होंने 'काबा और कर्बला' के द्वारा पुनः हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना को सुदृढ़ करने का भरसक प्रयत्न किया। 'जयभारत' की रचना करके महाभारत के आख्यानों को नवीन दृष्टिकोण प्रदान करते हुए भारत के अतीत का गौरव-गान किया और मानवता के आदर्श को अपनाने को प्रेरित किया और कवि ने 'राजा-प्रजा' की रचना करके शासक और प्रजा के कर्त्तव्यों का उल्लेख किया और बताया कि यदि चाहें तो दोनों अपने पुरुषार्थ से सुखी जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

इस प्रकार राष्ट्रीय काव्यधारा के क्रमिक विकास का अध्ययन करने पर स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि हिन्दी के अन्य सभी कवियों की अपेक्षा मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं में सर्वाधिक राष्ट्रीय चेतना एवं राष्ट्रीय जागरण की भावना विद्यमान है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी यह स्वीकार किया है कि गुप्त जी की रचनाओं में ''सत्याग्रह, अंहिसा, मनुष्यत्ववाद, विश्व प्रेम, किसानों और श्रमजीवियों के प्रति सम्मान- सबकी झलक हम पाते हैं।" आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने भी स्पष्ट घोषणा की है- "राष्ट्रीयता गुप्त जी का उद्देश्य के माध्यम से राष्ट्रीयता के उद्दीप्त भावों को जन-जन के हृदय में भरने का स्तुत्य प्रयत्न किया, देश वासियों को अपने गौरवमय अतीत से अवगत कराया। उनकी वर्तमान दुरव्यवस्था के कारुणिक चित्र प्रस्तुत किये और उन्हें पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त होने के लिए प्रोत्याहित किया। इन्हीं राष्ट्रीयता के पोषक विचारों के कारण 1936 ई0 में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने 'राष्ट्रकवि' की सर्वोच्च उपाधि से विभूषित किया। इस ऐतिहासिक सम्मान के लिए काशी में अत्यन्त भव्य समारोह का आयोजन किया गया, जिसमें महात्मा गांधी ने घोषणा की कि- "वे राष्ट्र के कवि हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार राष्ट्र के बनाने से मैं महात्मा बन गया। के बनाने से मैं महात्मा बन गया।" महात्मा गांधी ने गुप्त जी को 'राष्ट्रकवि' की स्थायी पदवी से विभूषित करके मानो उनके ऊपर और भी अधिक राष्ट्रीय काव्य के निर्माण का गुरुतर दायित्व सौंप दिया और गुप्त जी ने भी जीवन पर्यन्त उस उत्तर दायित्व को निभाने का संकल्प करके अपने लेखनी से राष्ट्रीय काव्यधारा का अविरल स्रोत प्रवाहित किया। डॉ. उमाकान्त ने ठीक ही लिखा है- "भारतीय संस्कृति के प्रवक्ता के साथ-साथ मैथिलीशरण जी प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि भी हैं- उनकी प्रायः सभी रचनाएँ राष्ट्रीयता से ओतप्रोत हैं।"

अतएव मैथिलीशरण गुप्त जी ने हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना की सुसुप्त ज्वाला को पूर्णरूपेण प्रदीप्त करके हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय काव्यधारा में मूर्धन्य स्थान प्राप्त किया। वास्तव में राष्ट्रीय चेतना विहीन मनुष्य पाषाण तुल्य होता है-

"जो भरा नहीं भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय वह पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।"[4]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारती भारती, पृ 45
2. भारती भारती, पृ 76
3. भारती भारती, पृ 142
4. भारती भारती, पृ 1123

भारत में पंचायती राज का इतिहास (स्वतंत्रता से 73वें संविधान संशोधन तक)

डॉ० नरेन्द्र प्रताप गुप्ता

एसो. प्रो. राजनीति विज्ञान, न.सि.प.सि राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मगरहा, मिरजापुर, उ.प्र.

सार – पंचायती राज की अवधारणा को लेकर संविधान सभा में काफी मतभेद थे संविधान में इसे अनुच्छेद 40 में रखा गया था किन्तु विभिन्न कारणों से यह व्यवहारिक धरातल पर अपनी प्रभावी भूमिका अदा करने में सफल नहीं हो पा रहा था। इसके सफल क्रियान्वयन में सबसे बड़ी बाधा इस बारे में बाध्यकारी संवैधानिक प्रावधानों का न होना था। अंतत: 73वें संवैधानिक संशोधन ने पंचायती राज को ठोस संवैधानिक आधार दिया।

कीवर्ड्स – पंचायती राज, 73वाँ संवैधानिक संशोधन, स्वतंत्र भारत

भारत एक विशाल लोकतांत्रिक एवं ग्राम-प्रधान देश है। इसका महत्व भारतीय सभ्यता के स्थायित्व और निरन्तरता में निहित है। इस स्थायित्व और निरन्तरता का कारण उसकी सामूहिक ग्राम्य संरचना थी। इन गांवों को प्राचीन भारत में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था, जिसका प्रमुख कारण उस संगठित एकता को माना जा सकता है जो पंचायतों के माध्यम से स्थापित की गयी थी। भारत वर्तमान समय में भी एक ग्राम-प्रधान देश है। इसकी अधिकांश जनसंख्या गांव में ही रहती है। गाँवों और ग्रामीण जनों की प्रगति तथा विकास पर ही भारत का सामाजिक एवं आर्थिक विकास निर्भर है। जब हम विकास की बात करते हैं तो उसमें अधिक जोर इस बात पर दिया जाता है कि समाज-व्यवस्था ऐसी बनाई जाए जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और समाज के सर्वांगीण विकास के लिए उपयुक्त सामाजिक-आर्थिक वातावरण तैयार किया जाए। इसके लिए ऐसी संस्थाएं स्थापित की जाए जो न केवल लोकतांत्रिक हों, बल्कि जनता के समीप भी हों। विकास की उपर्युक्त अवधारणा तथा भारत की ग्रामीण पृष्ठभूमि को दृष्टिगत रखते हुए मौजूदा पंचायती राज व्यवस्था सबसे उपयुक्त व्यवस्था कही जा सकती है। स्वतंत्रता के पश्चात पंचायती राज के विकासक्रम को निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है।

स्वतंत्र भारत में पंचायती राज: 1947 में देश के स्वतंत्र होने के पश्चात 26 जनवरी 1950 को भारत में नया संविधान प्रवर्तित हुआ। इस संविधान के अन्तर्गत स्थानीय स्वायत्त शासन को राज्य सूची का विषय घोषित किया गया। संविधान में अब तक महत्त्वपूर्ण रही नगरीय संस्थाओं के स्थान पर ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं को अधिक महत्व प्रदान किया गया।[1] संविधान के अनुच्छेद 40 में कहा गया कि राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा और उनको ऐसी शक्तियां और अधिकार प्रदान करेगा उन्हें शासन की इकाईयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो, किन्तु, पंचायतों को संविधान में सम्मिलित करने को लेकर संविधान निर्माताओं के मध्य काफी गंभीर मतभेद थे। एक तरफ जहां महात्मा गांधी पंचायती राज को भारतीय लोकतंत्र का केन्द्रीय स्तम्भ बनाना चाहते थे, वहीं डा० आम्बेडकर इसके विरोधी थे। उन्होंने 4 नवंबर 1948 को प्रस्तुत मसौदा संविधान में पंचायतों को शामिल नहीं किया था। अम्बेडकर ने तर्क दिया कि "गांवों का भारत के इतिहास में कोई योगदान नहीं हैं,..... गांव क्या है? वे स्थानीयता का कूप हैं" अज्ञान, संकीर्णता और सांप्रदायिकता की गुफा है।" जवाहर लाल नेहरू का रूख भी गांवों के प्रति मित्रतापूर्ण नहीं था। उन्होंने भी गांधी जी से कहा था कि गांव बौद्धिक व सांस्कृतिक रूप से पिछड़ा है और इस तरह के वातावरण में संकुचित दिमाग के लोग संभवत: असत्य व अहिसंक होते हैं।[2]

डॉ0 अम्बेडकर के इस तर्क पर संविधान सभा में भारी विवाद हुआ और लगभग सभी ने उनका विरोध किया और 22 नवम्बर 1948 को श्री संथनम द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव के आधार पर इसे अनुच्छेद 40 में रखा गया।[3]

1952 में गांवों के सघन विकास के लिए शुरू किया गया सामुदायिक विकास कार्यक्रम जन सामान्य की भागीदारी के बिना बहुत प्रभावी नहीं हुआ। इस दिशा में अध्ययन के लिए बलवन्त राय मेहता समिति-1957 गठित की गयी। जिसने विकास कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की सिफारिश की। 1. ग्राम पंचायत 2. पंचायत समिति 3. जिला परिषद। समिति ने यह भी कहा कि इन्हें कानूनी दर्जा मिले तथा इनके अधिकार व कर्तव्य स्पष्ट हों, सरकारी नियंत्रण से मुक्त हो तथा वित्तिय साधन प्राप्त हों। इन संस्थाओं द्वारा जिन कार्यों के संपादन की सिफारिश समिति ने की थी वे है-कृषि, पशुपालन ,सहकारिता, लघु सिंचाई कार्य, ग्रामोद्योग, प्राथमिक शिक्षा, स्थानीय संचार, सफाई, स्वास्थ्य व चिकित्सा तथा स्थानीय सुविधाएं।

गठन के बारे में समिति ने सुझाया कि ग्राम पंचायत स्तर पर चुने हुए सदस्यों में दो महिलाएं, एक सदस्य अनु० जाति व एक अनु० जनजाति का हो। ग्राम पंचायत का चुनाव ग्राम सभा द्वारा किया जाना चाहिए,मध्य स्तर पर सदस्यों का चुनाव ग्राम पंचायतें प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से करें। पंचायत समितियों के प्रधानों के अलावा सांसद व राज्य विधान सभा के सदस्य भी जिला परिषद के सदस्य होंगे। जिला परिषद पंचायत समितियों व सरकार के बीच कड़ी का काम करें।[4]

2 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के नागौर में पंचायती राज का शुभारामभ हुआ। सन् 1968 तक देश में 362 जिला परिषदें 4527 पंचायत समितियां तथा 2,17,300 ग्राम पंचायतें गठित हो चुकी थीं। उस समय देश के कुल 5,79,000 गांवों का 96 प्रतिशत भाग पंचायती राज संस्थाओं के अधीन था। औसतन 48 ग्राम पंचायतों पर एक पंचायत समिति तथा 600 ग्राम पंचायतों पर एक जिला परिषद कार्यरत थी।[5]

जिस उत्साह के साथ नयी पंचायतीराज व्यवस्था की शुरुआत की गई, परिणाम उतने उत्साह जनक नहीं रहे। इसके पीछे अनेक कारण थे-एक मुख्य कारण था, राज्य के उन राजनयिकों द्वारा तोड़फोड़, जो शक्तियों को जिला स्तर या उसके नीचे हस्तांतरित किये जाने के प्रति उत्साही नहीं थे। वे सशंकित थे कि वास्तविक शक्तियों वाली पंचायतीराज संस्थाएं उनकी सत्ता व प्रभाव पर खतरा पैदा करेंगी। सत्तर के दशक में जब इंदिरा गांधी एक तरक्कीयाफ्ता जामा पहन रही थीं और भूमि सुधार लागू करना चाहती थीं,यह तर्क दिया गया कि पंचायती राज संस्थाएं आवेष्टित नहीं की जा सकती हैं क्योंकि उन पर उच्च जाति व भूमि सम्पन्न घटकों का प्रभुत्व है।

साठ के दशक में ही हरित क्रांति का आगमन भी देखा गया जिसने केन्द्रीकृत योजना को आवश्यक बना दिया और जो विकेन्द्रीकरण संबंधी उन प्रतिमानों के विरोध में आयीं जिन पर पंचायती राज संस्थाएं आधारित थीं। चूंकि देश के अनेक भागों में ग्रामीण क्षेत्र अब भी सामंती, भूमिसम्पन्न अधिकार संरक्षण में ही थे, हरित क्रांति को प्रवेश देने हेतु सरकार-समर्थित निवेश उनके द्वारा एकाधिकार में लाये जा सकते थे।

केन्द्र सरकार ने इन्दिरा सरकार के अनेक कार्यक्रमों को लागू करने के लिए अपनी ही प्रशासनिक कार्यप्रणाली को जन्म दिया जैसे कि अर्थिक न्याय पर अभिलक्षित लघु किसान विकास अभिकरण, सूखा संभावित क्षेत्र योजना, एकीकृत ग्रामीण विकास योजना एवं राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना। संसाधन अभाव, समन्वय अभाव, जिला विकास कर्मचारीगण पर निर्भरता, प्रभावी प्राधिकरण के प्रत्यायोजन का अभाव, उच्च जातियों व समाज के ज्यादा खुशहाल वर्गों द्वारा प्रभुत्व ने विकेन्द्रीकरण व विकास की संस्थाओं के रूप में पंचायतीराज संस्थाओं को निष्पभावी व उद्देश्यहीन प्रदर्शित किया। सत्तर के दशक के मध्य तक केन्द्र के साथ-साथ राज्यों में भी सरकारें पंचायती राज संस्थाओं के प्रति उदासीन हो गयी थी। इन संस्थाओं के चुनाव नहीं कराये जा रहे थे और अधिकतर स्थानों पर प्रतिनिधि परिषदें या तो भंग कर दी गयी थीं या फिर स्थगित।[6]

पंचायती राज को असफल होने से बचाने के लिए 1977 में गठित अशोक मेहता कमेटी ने अपने रिपोर्ट में पंचायती राज संस्थाओं को विफल नहीं माना बल्कि यह टिप्पणी की कि-"इन संस्थाओं ने भारत में राजनीतिक दृष्टि से लोकतंत्र के बीज बोये हैं और लोगों को जागरूक बनाया है। सामाजिक दृष्टि से गांवों में एक नया नेतृत्व उभरा है तथा सामाजिक परिवर्तन एवं सुधारों की मांग होने लगी है। साथ ही सदियों से शोषित-दलित वर्गों में नयी आशा का संचरण हुआ है .....। समिति ने 132 सिफारिशें की थी। उन्होंने अनुसूचित जाति व जनजाति को उनकी जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व देने की बात की।[7] सरकार की अस्थिरिता के कारण इस रिपोर्ट पर कोई कार्यवाही नहीं हो सकी।

अनेक समितियां, गोष्ठी, कार्यशालाएं आदि आयोजित किए गये। इसके पश्चात 1989 में पंचायती राज से सम्बन्धित 64वाँ संशोधन विधेयक प्रस्तुत हुआ जो कि राज्य सभा से पारित न हो सका। इस विधेयक में अनुसूचित जाति, जनजाति व महिलाओं से सम्बन्धित प्रावधान किये गये थे। अन्त में लंबे उतार-चढ़ाव के बाद 73 वां संविधान संशोधन विधेयक 1993 में लागू हुआ। प्रथम बार इसे संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ तथा पंचायती राज पर से अनिश्चितता के बादल छंट गए।

73 वें संवैधानिक संशोधन के पश्चात पंचायती राज की स्थिति: 73 वें संविधान संशोधन के माध्यम से पंचायती राज व्यवस्था का जो स्वरूप निर्धारित किया गया उसे नए पंचायती राज के रूप में पूरे देश में प्रसारित-प्रचारित किया गया। यह संविधान संशोधन भारतीय इतिहास में एक क्रांतिकारी घटना के रूप में चिन्हित किया गया है। इसके पूर्व पंचायतों का उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 40 में था जो कि सिर्फ नीति निर्देशक वाक्य थे और राज्य सरकारों के लिए सिर्फ सलाह के विषय थे। इस सम्बन्ध में उनके लिए बाध्यता नहीं थी। 73 वें संविधान संशोधन ने संविधान में भाग 9 जोड़कर उसमें अनुच्छेद 243 को समाविष्ट कर राज्य सरकारों को पंचायती राज व्यवस्था लागू करने के लिए बाध्य कर दिया है। इसी के साथ उसके स्वरूप और विस्तार को भी स्पष्ट किया गया है। इस संशोधन के प्रमुख बिन्दु इस प्रकार हैं

1. पूरे देश में ढांचागत एकरूपता लाने के लिए त्रिस्तरीय-गांव,मध्यम (ब्लाक) 20 लाख से अधिक जनसंख्या वाले राज्य में, तथा जिला पंचायत व्यवस्था लागू की गई।
2. कार्यकाल पांच वर्ष का होगा। कार्यकाल समाप्ति के बाद 6 माह के भीतर चुनाव अनिवार्य होगा। वैसे तो समय से पहले विघटन नहीं किया जा सकता। यदि किसी विशेष परिस्थिति में ऐसा आवश्यक हो जाता है तो 6 माह के भीतर चुनाव अनिवार्य होगा। इससे पूर्व यह अनिवार्यता नहीं थी। परिणाम स्वरूप 20-20 वर्ष तक पंचायतों के चुनाव नहीं हुए।
3. सभी स्तरों पर पंचायत के सदस्यों का चुनाव जनता द्वारा निर्वाचन से होगा। जनसंख्या के आधार पर समान अनुपात के अनुसार निर्वाचन क्षेत्र घोषित हागा ।
4. सभी स्तरों पर अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए उस क्षेत्र में उसकी जनसंख्या के अनुपात में सीट आरक्षित होगी।
5. महिलाओं के लिए भी सभी स्तरों की पंचायतों में कुल सीटों का एक तिहाई भाग आरक्षित होगा। यह व्यवस्था प्रधान,प्रमुख,अध्यक्ष के पद हेतु भी होगी।
6. पिछड़े वर्गों के आरक्षण का मुद्दा राज्य सरकारों के ऊपर छोड़ा गया है।
7. संशोधनों की समुचित व्यवस्था हेतु वित्त आयोग का गठन तथा आडिट की समुचित व्यवस्था ।
8. नियमित तथा निष्पक्ष चुनाव हेतु राज्य चुनाव आयोग का गठन ।

9. ग्यारहवीं अनुसूची के माध्यम से विकास के 29 विभागों के कार्य पंचायतों के सुपुर्द किये गये ।
10. सभी स्तर की पंचायतों के चुनाव में भाग लेने हेतु प्रत्याशियों की एक निश्चित आयु सीमा-21 वर्ष का निर्धारण।
11. ग्राम स्तर पर ग्राम सभा का गठन अनिवार्य होगा। ग्राम से संबंधित मतदाता सूची में पंजीकृत व्यक्तियों से मिलकर यह निकाय गठित होगा। इस बात का निर्देश है कि राज्य के विधान मण्डल द्वारा कानून बनाकर ग्राम सभाओं को अधिकार प्रदान किये जायेंगे।[8]

इस प्रकार 73 वें संविधान संशोधन के माध्यम से कुछ इस तरह का प्रावधान किया गया जिससे पंचायती राज व्यवस्था को एक निश्चित एवं अधिकार सम्पन्न स्वायत्त शासन की संस्था के रूप में विकसित किया जा सके। आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय इस व्यवस्था का प्रमुख उद्देश्य निश्चित किया गया।

नये पंचायती राज की संरचना एवं अधिकार व कर्तव्य: पंचायती राज के क्षेत्र में हमारा अतीत तो शानदार रहा ही है। आधुनिक काल में भी हमारे यहां एक प्रभावी पंचायती राज व्यवस्था अस्तित्व में है। 73 वें संविधान संशोधन ने इस दिशा में मील के पत्थर का काम किया है, क्योंकि इसने पंचायतों को संवैधानिक दर्जा दिया तथा एक स्पष्ट सांगठनिक ढांचा तैयार करने में सहायता दी।

संघीय स्तर पर स्वतंत्रता के पश्चात सन् 1956 में एक पृथक सामुदायिक विकास मंत्रालय गठित होने पर ग्रामीण विकास एवं कालान्तर में (सन् 1959 से) पंचायती राज के कार्य इस मंत्रालय के अधीन हो गए। कुछ समय बाद इसे सामुदायिक विकास एवं सहकारिता मंत्रालय नाम दे दिया गया। साठ के दशक में इसे खाद्य, कृषि, सामुदायिक विकास और सहकारिता मंत्रालय के रूप में पुनर्गठित किया गया तथा पंचायती राज इसकी एक शाखा बनी रही। सत्तर के दशक में पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास से सम्बन्धित कार्य कृषि एवं सिंचाई मंत्रालय से सम्बद्ध कर दिए गए थे तथा अस्सी के दशक में ग्रामीण विकास एवं निर्धनता उन्मूलन मंत्रालय इस कार्य को सम्पादित करने लगा। नब्बे के दशक में ग्रामीण विकास मंत्रालय में पंचायती राज के कार्य एक शाखा निर्वाहित करती रही। सन् 2004 में संप्रग सरकार ने सर्वप्रथम 27 मई 2004 को पृथक से पंचायतीराज मंत्रालय की स्थापना की।[9]

संगठन: पंचायती राज मंत्रालय का राजनीतिक नेतृत्व पंचायती राज मंत्री द्वारा किया जाता है। मंत्री की सहायतार्थ एक सचिव कार्यरत होता है। सचिव के अधीन दो अतिरिक्त सचिव तथा एक वित्तिय सलाहकार सहित लगभग दो दर्जन अधिकारी एवं पचास अन्य कार्मिक पदस्थापित हैं।

कार्य- 1. पंचायती राज तथा पंचायती राज संस्थाओं से सम्बन्धित नीति, कानून एवं कार्यक्रमों का निर्माण तथा क्रियान्वयन करना।

2. पंचायती राज सशक्तिकरण हेतु राज्यों से समन्वय करना।
3. संविधान की भावना के अनुरूप पंचायतों को कार्य, कोष तथा कार्मिक हस्तान्तरित कराने में मार्गदर्शन देना।
4. गोलमेज सम्मेलनों में पारित प्रस्तावों का क्रियान्वयन सुनिश्चित कराना।
5. राष्ट्रीय पंचायत पोर्टल को अद्यतन कराना।
6. राष्ट्रीय स्तर पर श्रेष्ठ कार्य करने वाली पंचायती राज संस्थाओं को पुरस्कृत कराना।
7. जिला आयोजन समितियों को प्रभावी तथा सशक्त बनाने में सहयोग एवं मार्गदर्शन प्रदान करना।
8. पंचायत विकास और प्रशिक्षण योजना के माध्यम से पंचायती राज जनप्रतिनिधियों एवं लोक सेवकों की क्षमता वृद्धि कराना।
9. पंचायतों में ईशासन, क्रियात्मक अनुसन्धान योजना, ग्रामीण व्यापार केन्द्रों तथा रतनजोत विकास योजना (जैव इंधन बढ़ावा) इत्यादि का क्रियान्वयन सुनिश्चित कराना।[10]

73 वें संवैधानिक संशोधन द्वारा ग्यारहवीं अनुसूची में पंचायतों को संवैधानिक दर्जा प्रदान करने हेतु बुनियादी विकास के 29 विषयों का दायित्व सौंपा गया है। इन दायित्वों के निर्वहन में पंचायतों का सबसे महत्वपूर्ण पहलू अनु० जाति, जनजाति, पिछड़ा वर्ग एवं सामान्य वर्ग की महिलाओं को सत्ता में भागीदार बनाकर महिला सशक्तिकरण का प्रयास किया जा रहा है। पंचायती प्रयासों एवं सरकार के माध्यम से समस्त ग्रामीण क्षेत्रों को सम्पर्क मार्गों से जोड़ा जा रहा है। उपेक्षित और पिछड़ा क्षेत्र माने जाने वाला भारतीय ग्रामीण समाज जिसके काम का विकल्प केवल पलायन माना जाता था उसी ग्रामीण समाज के लिए वर्तमान में ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया है। आज बहुराष्ट्रीय कम्पनियां पंचायतों के प्रयासों से अनुकूल बनती जा रही है और आधारभूत संरचना के कारण ग्रामीण क्षेत्रों का रुख कर रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के बुनियादी ढांचे में आमूल-चूल परिवर्तन करने के लिए भारत निर्माण की योजना जिसके छ: क्षेत्र-ग्रामीण विद्युतीकरण, जल-आपूर्ति, सड़कें, आवास, संचार और सिंचाई का दायित्व भी ग्राम पंचायतों की सक्रियता पर ही निर्भर करेगा।

नि:सन्देह आज पंचायती राज व्यवस्था ग्रामीण विकास की नई तस्वीर प्रस्तुत कर रहा है। पंचायती राज ढांचे में स्थायित्व लाने और विकास का प्रतिमान बनाने की दिशा में जहां यह मील का पत्थर साबित हो रहा है वहीं इसके संचालन से कुछ समस्याएं भी उभर रही है। ग्रामीण समाज में दलगत राजनीति ने वैमनस्य को बढ़ाया दिया है। जातिगत मुद्दे महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्र भी अब भ्रष्टाचार एवं पक्षपात का गढ़ बनता जा रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि लोग पंचायत को केवल पांच वर्ष के लिए अपने आय के साधन के रूप में देखते हैं। ऐसे मामले भी संज्ञान में आये हैं जिनमें इंदिरा आवास, शौचालय निर्माण, जाति प्रमाणपत्र आदि योजनाओं में सुविधा शुल्क की मांग की जाती हैं।

इन उपरोक्त खामियों के बावजूद निष्कर्ष रुप में 73 वें संवैधानिक संशोधन के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। संशोधन ने पंचायती राज की दिशा मे व्याप्त अनिश्चितता को समाप्त किया ग्रामीण विकास को एक नयी दिशा और गति प्रदान किया। पंचायतों के चुनाव ने समाज में राजनीतिक चेतना उत्पन्न

की है और राजनीतिक भागीदारी में वृद्धि भी हुई है। पंचायतों को और अधिकार देने की आवश्यकता है जिससे सही मायनों में ग्राम स्वराज की कल्पना अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर सकेगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, अशोक, भारत में स्थानीय प्रशासन, आर० बी० एस० पब्लिशर्स, चौड़ा रास्ता, जयपुर, 2005, पृ0 सं0 24
2. महीपाल, पंचायती राज चुनौतियां एवं संभावनाएं, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2008, पृ0 सं0 12
3. वही
4. भारत सरकार, सामुदायिक प्रकल्पों और राष्ट्रीय विस्तार सेवा के अध्ययन के लिए दल की रिपोर्ट (अध्यक्ष बलवन्त राय मेहता) 1957
5. कटारिया, सुरेन्द्र, पंचायती राज संस्थाएं, अतीत, वर्तमान और भविष्य, उपरोक्त, पृ0 सं0 15
6. भारत लोकतंत्र एवं विकास-ईकाई-12 ,एम0 पी0 एस0-2003 इ0 गा0 रा0 मुं0 विश्वविद्यालय,नई दिल्ली,पृ0 सं0 156-157
7. भारत सरकार, पंचायती राज संस्थाओं पर समिति की रिपोर्ट (अध्यक्ष अशोक मेहता) कृषि तथा सिंचाई मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, नई दिल्ली, 1978
8. सरकार एस0 और मुनीर जे0 जे0, भारत का संविधान-संक्षिप्त टिप्पणियों सहित, आलिया लॉ एजेन्सी, 2005, पृ0 सं0 121-127
9. कटारिया, सुरेन्द्र, पंचायती राज संस्थाएं अतीत, वर्तमान और भविष्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर 2007. पृ0 सं0 74
10. उपरोक्त, पृ०सं0 78-80

झारा जनजाति के व्यवसायिक रूचि पर उनके सामाजिक-आर्थिक एवं शैक्षिक स्थिति के प्रभाव का अध्ययन

तेजराम नायक

पी.एच.डी शिक्षा शोधार्थी, श्री रावतपुरा सरकार, विष्वविद्यालय, रायपुर

डॉ० राकेश कुमार डेविड

(शोध निर्देशक), शिक्षाविभाग (श्री रावतपुरा सरकार, विष्वविद्यालय, रायपुर

प्रस्तावना

भारत विविधताओं का देश है, भारत की अनेंक विविधताओं में से एक विविधता है जाति विविधता, जनजातिय लोग भारत के हर क्षेत्र में पाए जातें हैं, जनजाति आज विकास के चरमोत्कर्ष युग में भी आदिम अवस्था में जीवन व्यतीत करते हैं। ये बाह्य कारकों से प्रभावित हुए हैं, परंतु इनकी जीवन एवं रूढ़, सांस्कृतिक परंपराओं ने इन्हें बाह्य लोंगों के सम्मिश्रण से पृथक रखा है, इन्हें हम वनवासी, कबीली आबादी, या जनजाति के नाम से संबोधित करते है, उपरोक्त शब्दों का विवेचनात्मक अर्थ ऐसा मानव समूह है जो सामाजिक, सांस्कृतिक शैक्षिक एवं आर्थिक विकास की दृष्टिकोण से पिछड़े हुए है। भारतीय संविधान मे अनुसूचित जनजाति कहा गया है। प्रस्तुत शोध छत्तीसगढ़ में निवास करने वाली झारा समुदाय से संबंधित है।

झारा समुदाय भारत देश के अनेंक राज्यों छत्तीसगढ़, ओड़िसा, झारखंड, एवं अन्य राज्यों मे पाये जाते हैं, ये घुमंतू जनजाति होते हैं, अपने कला के नाम से जाने जाना वाला यह सामुदाय अपने कार्यो के आभाव में अनेक स्थानों में भ्रमण कर अपने कलात्मक कार्य करतें है, एवं अनेक स्थान ऐसे हैं जहाँ पर रोजगार एवं व्यवसाय के संभावनाओं के कारण निवासरत है।

झारा सामुदाय अपने कला कृति के लिए विश्व प्रसिद्ध है, इनके द्वारा मुख्य रूप से मूर्ति कला का कार्य किया जाता है। झारा सामुदाय के लोग अपने कार्य में महानायक है जिनके कारण अनेक झारा शिल्पकारों को राष्ट्रपति पुरूष्कार से सम्मानित किया जा चुका है, इनके द्वारा की जाने वाली शिल्प कला को ढ़ोकरा कला के नाम से जाना जाता है। ये कृतियाँ प्राचीन काल के मोम उच्छिष्ट (Lost- Wax Process) प्रणाली के आधार पर बनातें है।

छत्तीसगढ़ के अन्य सामुदाय की तरह झारा सामुदाय में भी जनजातिय परंपराऐं विद्यमान है। झारा सामुदाय प्रमुख रूप से चन्द्रहासिनी, नाथलदाई, बुढ़ी माई, काली माई, सिसरिंगा पाठ, खप्परधारी, घंटेश्वरी, आदि प्रमुख देवी देवता है जिनकी पूजा विधिवत करतें हैं। शिल्प कार्य मे होने के कारण विश्वकर्मा को अपना आराध्य देव के रूप में रखते है। करमा पूजा भी इनका प्रमुख पूजा है। इनके द्वारा इस समय वृक्षों की भी पूजा की जाती है। इनका मानना है कि इन्हे अपने शिल्प कार्य विरासत में मिला है और इसे हम बनाये रखेंगें। इस जनजाति के लोगों में कम उम्र मे विवाह, जंगली में जानवरों का शिकार करना, कछुआ, मछली पकड़ना आदि परंपराएँ आज भी विद्यमान है।

मनोवैज्ञानिक समाजिक परिवर्तन या संक्रमण देखने को मिलता है, दास (2005) के अध्ययन से पता चलता है कि भुजिया जनजाति संक्रमण के दौर से गुजर रही है।

जनजातियों मे सांस्कृतिक प्रतिमानों में हुए पाण्डेय, (2002) अध्ययनों में यह पता चलता है कि आज के आधुनिक युग में विभिन्न प्रकार के जनजातियों की संस्कृति मे परिवर्तन हो रहा हैं। पत्राचार एवं जनसंचार के माध्यम आज जनजातियों को एक नई दिशा की ओर ले जा रही है। शासन द्वारा विभिन्न प्रकार के योजनाओं से लाभान्वित भी किए जा रहे है । अतः वर्तमान समय में जनजातियों के उपर अध्ययन आवश्यक हो गया है, जिससे उनका संपूर्ण विकास किया जा सके।

व्यवसायिक रूचि

प्रस्तुत शोध में व्यवसायिक रूचि से आशय झारा समुदाय द्वारा किए जाने वाला व्यवसाय मूर्ति कला (ढोकरा कला) से है। जो इनकी अपनी पहचान है। राठौड़ (2010) ने ''अनुसूचित जनजातियों मे सामाजिक और व्यवसायिक गतिशीलता'' प्रस्तुत शोधकार्य में अनुसूचित जनजाति में व्यावसायिक गतिशीलता

(राजस्थान में कोटा जिले के लाउपुरा तालुका के मीणा जनजाति के विशेष संदर्भ में) से संबंधित है। देश की स्वतंत्रता 6 दशकों के लंबें अंतराल के बावजूद सरकारी एवं स्वयं सेवी संस्थाएँ निरंतर प्रयासरत है। राज्य में अनुसूचित जनजातियों का समुचित एवं आशानुरूप विकास नही हुआ है। इनका व्यवसाय पहले से ही प्रकृति पर निर्भर रहा है, जो इनकी अपनी एक सांस्कृतिक पहचान है।

सामाजिक-आर्थिक स्थिति

जीवन की आकांक्षाओं में शिक्षा, परिवार की चिंता और भविष्य की चिंता अच्छे स्वास्थ्य की आशा के साथ-साथ अन्य सामाजिक अपेक्षांएँ भी शामिल है। सारा, एवं क्रॉकेट, (2010) ने उल्लेख किया है कि किशोरावस्था खोज की अवधि होती है। ऐरिक्सन, (1968) के अनुसार भविष्य की योजना बनाने मे आकांक्षा का महत्वपूर्ण भूमिका होता है। कैनटोर, (1990) ने बताया कि संक्रमण के दौर में किशोर अपने इच्छाओं पर और अधिक ध्यान केन्द्रित करते है, जैसे कि वे अपने भविष्य के लिए सामान्य घटनाओं की आशा कर सकते हैं, और भविष्य के लिए आकांक्षाओं और लक्ष्य निर्देषित करतें हैं।

2.2.3 शैक्षिक स्थिति

मिश्रा, (2001) साक्षरता के लिए स्कुल और गॉव की दूरी महत्वपूर्ण कारक है, लोगों मे पढ़ने की अभिवृत्ति को बढ़ती जा रही है, साक्षरता बढ़ने के साथ - साथ अनपढ़ लोंगों की संख्या मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। पवार, चौधरी, एवं यादव, (1991) के अनुसार जनजातियों मे पढ़ने की अभिवृत्ति है, और उनको यह भी ज्ञात है कि निरक्षरता उनके स्वंयं का शोषण का प्रमुख कारण है। सेन, (1982) ने बताया कि एक ओर जहॉ जनजातिय परिवारों में बच्चों को शिक्षा के लिए कोई प्रोत्साहन नही मिल पाता दूसरी ओर वे स्वयं को वे सामान्य जाति के छात्रों के समक्ष हीन महसूस करते है।

2. अध्ययन का उद्देष्य:

1. झारा जनजाति के व्यवसायिक रूचि का अध्ययन करना।
2. झारा जनजाति के शैक्षिक स्थिति का अध्ययन करना।
3. झारा जनजाति के सामाजिक -आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।
4. झारा जनजाति के सामाजिक -आर्थिक स्थिति का उनके व्यवसायिक रूचि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
5. .झारा जनजाति के शैक्षिक स्थिति का उनके व्यवसायिक रूचि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
6. झारा जनजाति के शैक्षिक स्थिति का उनके समाजिक - आर्थिक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

3. इस क्षेत्र में पहले से किये गये षोध

राय, (2016) ''उत्तर प्रदेश की जनजातियॉ, गहन अध्ययन'' में जनजातिय सामुदायों के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ संक्षेप में सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया है। माना जाता है कि जनजातियॉ देश के आदिवासी है, और ये भी लंबे समय तक उत्तर प्रदेश में बसे हुए है। इस राज्य में हर जनजाति पूर्व में राज्यों से संबंधित है, वे सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक विरासत के मालिक है, लेकिन वे अब अपनी सांस्कृतिक, राजनितिक और सामाजिक पहचान के लिए संघर्ष कर रहें है, उन्होने अपनी पहचान और गर्व को खो दिया है। उनका सांस्कृतिक और सामाजिक पहलू अलग है लेकिन उनकी आर्थिक स्थिति एक ही है वे गरीबी में रहते है, वन उत्पाद, कृषि और गैर नियमित कार्यो पर निर्भर करते है।

शर्मा (2015) ने ''दो भारतीय जनजाति (खासी और नागा) के व्यक्तित्व के स्वरूप पर संस्कृति का प्रभाव'' पर उपलब्धि, आक्रमण, प्रभुत्व, लिग, संघर्ष, उदासी, दुश्चिंता, बुद्धिमता का तुलनात्मक अध्ययन किया। जिसमें कुछ क्षेत्र में एक दुसरे से अत्यंत भिन्नता पायी गई एवं कुछ व्यक्तित्व कारकों में दोनो जनजातियों में पर्याप्त अंतर पाया गया।

ब्राम्हाणे (2014) ''अनुसूचित जनजातियों के बालक एवं बालिकाओं के व्यक्तित्व विकास पर सर्व शिक्षा अभियान का प्रभाव एक विश्लेषणात्मक अध्ययन'' इस अध्ययन में यह पाया कि अनुसूचित जनजाति के जो बालक एवं बालिकाऐं सर्व शिक्षा अभियान से जुड़े है उससे संबंधित योजनाओं का लाभ ले रहे है उनके व्यक्तित्व में काफी परिवर्तन आ रहा है एवं सर्व शिक्षा अभियान की योजनाओं का लाभ उठाकर शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ते जा रहे है सर्व शिक्षा अभियान के माध्यम से उन्हे कई सुविधाऐं भी मिल रही है जिनका उपयोग कर आर्थिक मदद प्राप्त कर शिक्षा ग्रहण करने हेतु प्रेरित हो रहें है। इनके विपरित ऐसे अनुसूचित जनजाति के बालक एवं बालिकाऐं जो कई कारणों से सर्व शिक्षा अभियान से वंचित हो रहे है।

सिंह (2011) ''चित्रकूट मण्डल के अनूसूचित जनजाति का शैक्षिक सर्वेक्षण'' प्रस्तुत शोध प्रबंध में बॉदा और चित्रकूट के जनपद के माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत अनुसूचित जनजाति के छात्रों के सर्वेक्षण के विभिन्न क्षेत्रों पारिवारिक, सामाजिक, संवेगात्मक, स्वास्थ्य एवं संपूर्णक्षेत्र का अध्ययन है। अध्ययन की पूर्ति के लिए शून्य परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया था। अध्ययन के परीक्षण के लिए बेल सर्वेक्षण अनुसूची का प्रयोग करके परिकल्पनाओं का परिक्षण किया गया। शून्य परिकल्पनाओं के लिए 500 न्यादर्श का चयन कर उनके संबंधित आकड़ों को एकत्रित किया गया।

चरों का उत्तर दाताओं की व्यावसायिक आवश्यकताओं में कोई सार्थक अंतर का उल्लेख नही है। व्यावसायिक विकास हेतु संगोष्ठियों, सहयोगियों से चर्चाऐं, कार्यशालाऐं एवं सेमीनार प्रविधियों को अधिक से अधिक पसंद किया गया। सांख्यिकी विश्लेषण से भी यह निष्कर्ष निकलता है कि इस स्तर पर कार्यरत व्यक्ति अपने व्यावसायिक विकास के प्रति सजग है।

झा (1987) ने अपने अध्ययन ''बस्तर की जनजातियों की शिक्षा स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन '' (सन् 1948 से 1987) इन्होने अपने अध्ययन में प्रश्नावली पद्धति के अंतर्गत नमूने के तौर पर कक्षा छठवीं से ग्यारहवीं तक के 100 विद्यार्थियों (80 बालक तथा 20 बालिकाओं) से जो प्रश्न पूछे गए

उनके उत्तरों की समीक्षा प्रतिशत पर की गई है। इसमें बताया कि व्यापारियों, ठेकेदारों, प्रशासनिक कर्मचारियों, अधिकारियों, पर्यटकों, अनुसंधानकर्ताओं, फिल्म निर्माताओं तथा जिज्ञासु विदेशी आगन्तुकों के दल जनजातियों के संपर्क में आते है। जनजातियों पर इनका प्रभाव पड़ते रहा है। जनजातियॉ इस प्रभाव से चाहे अनचाहे प्रगतिशील होती जा रही है, साथ ही शिक्षा के प्रति अधिकाधिक उन्मुख होती जा रही है। शिक्षा के लाभों को समझने की ओर अब जनजातियों का झुकाव धीरे-धीरे ही सही अब बढ़ने लगा है, शासन द्वारा बड़ी संख्या में शिक्षण संस्थओं की स्थापना का भी शिक्षा के विकास में अच्छा प्रभाव पड़ा है। बस्तर में जनजातीय शिक्षा का भविष्य उज्जवल है। वहीं श्रीवास्तव (1968) ने जनजातियों में शिक्षा के प्रति उदासीनता के लिए उनकी आर्थिक स्वीकृति को जिम्मेंवार ठहराया।

रथ व सरकार (1960) ने कटक शहर के तीन उच्च और तीन पिछड़ी जातियों का अध्ययन किया और पाया कि सभी जातियों के अधिकांश सदस्य समाज में सबके लिए समान सामाजिक आर्थिक सुविधाऐं होना ठीक समझते है, और इस संदर्भ में जातिवाद का विरोध करते थे। इसके पश्चात रथ व सरकार (1960) ने अर्न्तजातियों में मानसिक स्तर का भी अध्ययन किया और पाया कि इन जातियों के मानसिक स्तर में सार्थक अंतर था। इनकी अभिरूचियों में भी अंतर पाया गया । उच्च जाति की अवधारणा पिछड़ी जाति की अवधारणा से सार्थक रूप से अधिक पायी गई।

4. नोट किये गये कार्य के क्षेत्र में प्रस्तावित कार्य का योगदान

1. इस शोध के द्वारा झारासमुदाय के व्यवसायिक रूचि का पता चलेगा।
2. इस शोध के द्वारा झारासमुदाय के सामाजिक-आर्थिक एवं शैक्षिक स्थिति का ज्ञान होगा।
3. झारा समुदाय के वास्तवीक स्थिति का पता उनके स्वयं को, सरकार एवं प्रशासन चलेगा।
4. इनकी वास्तवीक स्थिति का पता चलने से स्वयं एवं शासन स्तर पर उनकी समस्याओं का समाधान हो सकेगा।
5. झारा समुदाय के विषय पर शोध होने से अन्य समुदाय के भॉती ये समुदाय भी समाज के सामने उभर कर आयेगी।

5. प्रस्तावित अनुसंधान प्रविधि

अ. अध्ययन का परिकल्पनायें:

1. झारा जनजाति के पुरूष एवं महिलाओं के व्यवसायिक रूचि में कोई सार्थक अंतर नही पाया जायेगा।
2. झारा जनजाति के पुरूष एवं महिलाओं के शैक्षिक स्थिति में कोई सार्थक अंतर नही पाया जायेगा।
3. झारा जनजाति के पुरूष एवं महिलाओं के सामाजिक -आर्थिक स्थिति में कोई सार्थक अंतर नही पाया जायेगा।
4. झारा जनजाति के सामाजिक -आर्थिक स्थिति का महिलाओं एवं पुरूषों के व्यवसायिक रूचि पर पड़ने वाले प्रभाव में कोई सार्थक अंतर नही पाया जायेगा।
5. झारा जनजाति के शैक्षिक स्थिति का महिलाओं एवं पुरूषों के व्यवसायिक रूचि पर पड़ने वाले प्रभाव में कोई सार्थक अंतर नही पाया जायेगा।
6. झारा जनजाति के शैक्षिक स्थिति का महिलाओं के समाजिक-आर्थिक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव में कोई सार्थक अंतर नही पाया जायेगा।

ब. अनुसंधान विधि

प्रस्तावित शोध द्वारा झारा जनजाति के व्यवसायिक रूचि पर उनके सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक स्थिति का पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन कर वस्तुस्थिति जानने का प्रयास किया जाएगा। शोध विधि हेतु सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया जाएगा।

स. न्यादर्श

प्रस्तावित शोध में न्यादर्श के रूप मे शोध कार्य हेतु छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिले में स्थित ग्राम एकताल, विष्णुपाली, जटियापाली, कान्दुरपाली, बैगीनडीह, गोरखा, गोराघाटी, दमदस, दमदमा, सुलसुलिया, दादरपाली, के झारा समुदाय के कुल 2145 जनसंख्या में से 300 पुरूष एवं 300 महिलाओं को यादृच्छिक विधि से चयन किया जाएगा।

द. उपकरण

प्रस्तावित शोध कार्य हेतु लिए जाने वाले संप्रत्ययों का प्रदत्तों के संकलन के लिए-

1. व्यवसायिक रूचि के मापन के लिए
2. सामाजिक-आर्थिक स्थिति को मापने के लिए
3. शैक्षिक स्थिति के लिए

उक्त तीनों के लिए स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया जाएगा।

इ. सांख्यिकी विधियों का चयन

प्रस्तावित शोध कार्य में आवश्यकतानुसार शोध विधियों के अंतर्गत माध्य, माध्यिका, सहसंबंध, टी. टेस्ट, काई टेस्ट का प्रयोग किया जायेगा। प्रदत्तों के संकलन के लिए प्रयोज्य यादृच्छिक विधि से लिए जाऐंगें।

प्रस्तुत शोध कार्य में निम्न लिखित सांख्यिकीय गणना का उपयोग किया जायेगा -

1. मध्यमान
2. मानक विचलन
3. टी परीक्षण
4. क्रांतिक अनुपात

8. संदर्भ ग्रंथ

अलेक्जेंडर, के.सी., प्रसाद, आर.आर. एवं जागीरदार, एम.पी. (1991) ''ट्रायबलरिहाब्लीशन एण्ड डेवलपमेंट '', जयपुर, रावत पब्लिकेशन, 44,57.

अम्बस्ट, एन.के., (1993) ''स्टेटस आफ ट्रायबल वोमेन इन इंडिया'' सोशल चेन्जस्, 23(4), 60-65

भौमिक, पी.के. (2005) ''ट्राईबल एण्ड सस्टनेबल डेवलपमेंट'' नई दिल्ली, कल्पाज पब्लिकेशन

भट्टाचार्य, सौरिश (2011), ''चित्रकोला इन्टरनेशनल मैक्जीन ऑन आर्ट एण्ड डिजाईन, 01(02), अगस्त 2011, 10-13,

चटर्जी, सुभरजीत (2015), ''द एनसिएन्ट क्राफ्ट ऑफ ढोकरा: ए केस स्टडी एट बीकना एण्ड दरियापुर इन वेस्ट बेन्गॉल'' इन्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ इन्टरडिसिप्लीनरी एण्ड मल्टीडिसिसप्लीनरी स्टडी, 01(04), मई 2015, 19-23,

दास, गुप्तेश्वर (2005). छत्तीसगढ़ के भुंजीया जनजाति मे सामाजिक परिवर्तन -एक अध्ययन, अप्रकाशित शोध, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

प्रभासक कथामे चित्रित समाज

पुष्पम ज्योति

शोध छात्रा (मैथिली), ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

आय मिथिला-भूमिक स्थिति बहुत चिन्ता-जनक अछि। युवा प्रदेशमे अछि वा जा रहल अछि। जाहि कारणे धिया-पूताक संख्या दिन-प्रतिदिन मिथिलाक भूमिपर कम भए रहल अछि। खेती-पथारी अब टेरल सन् स्थितिमे अछि। आब बटाईपर खेत लागब कठिन भऽ गेल अछि। जेहन स्थिति अछि, ओहीमे एक दिन एहन होयत जहिया खेती-काज समाप्त जकाँ भऽ जाय, कारण आय जे किछु लोग खेतमे काज कऽ रहलै ओ बूढ़ भऽ जाइत वा मरि जाइत। संगहि एहि संचार-युगमे लोक-लोकक बीच संवाद-हीनता बढ़ि गेल अछि। एखन संग-संग रहनिहार संख्या घटि रहल अछि। आब बेसी अवासीय मित्र भऽ रहलाह अछि। सम्बन्धक निकटता, समाजिक जुड़ाओ घटि रहल अछि। लोक अपनामे लागल अछि। स्नेह-प्रेम शब्दकोषक, शब्द भेल जा रहल अछि। मानवीय अनुराग क्षरित भऽ रहल अछि।

एहन सन स्थितिमे मन पड़ैत छथि प्रभास कुमार चौधरी आ हुनक कथा। हुनक कथा आ हुनक अनुराग, हुनक कथाक मानवीय संवेदना ओ समाजिक सौहार्द।

प्रभास जीक 2 जनवरी 1941केँ दरभंगा जिलाक पिण्डारूच्छ गाममे जन्म भेल छनि। पहिल कथा 1957मे 'प्रतीक्षा' नामसँ प्रकाशित भेल अछि। तकर बाद ई कथाकार कथा संसारमे रमि गेलाह। पाँचटा उपन्यास आ लगभग 135 टा कथा लिखलनि।

प्रभासक बाल-जीवन गाममे बीतल किन्तु हिनक कथाकार गाम कहियो ने छोड़ल। ओना ई अपन पोथी प्रभासक कथाकेँ नगर/उपनगर/महानगर आदि वर्गमे रखने छथि किन्तु ओहि पोथीक सभ कथामे गामक लोक ओ ओकर सन्दर्भ भेटत। जकर मुख्य कारण इहो अछि जे मिथिलामे एहन कोनो नगर नहि अछि जाहिमे नगर-जीवन सम्पूर्ण दशा होइ। जेना ओहि खाना (नगर/उपगर/महानगर) मे राखल कथामे 'एकटा दुखान्त चलचित्रकेँ' लेल जाय। सुजाता मैट्रिक फेल भलमानुस गामक नीक पॉजिक व रसँ वियाहे करब नहि गछैत छैक आ कथा फेरि देल जाइत छैक। आ ई सम्पर्ण मैथिल समाजमे बात पसरि गेलैक जे फल्लाँ गामक एकटा छौड़घि सिद्धान्त फेरि देलैक। एहि तरहे शहरमे रहितो ओ कथाक घटाक चर्चा गामक सदृष्य अछि। एहि रूपे हिनक कथा सभमे अपन गाम भेटत। भेटत अपन लोक जाहिमे कोनो सम्बन्ध बहुत उभारि कँ आयल अछि। बेर-बेर ओएह गाम आओत जाहिमे कानो नावसँ वा हेलि कँ टपल जा सकैत छल। नावक अभावमे आ पानिक अथाह स्थितिमे घूमिके पूलपर दएके गेल सकैत अछि। एहन पोखरि भेटत जाहिमे केचुली छाड़ल अछि। जमीन्दार कुलक लोक टोल भेटताह आ भेटताह श्रमिक वर्ग। भिन्न-भिन्न टोल भेटत, जाहिमे मलाह आ दुसाध जातिक लोक भेटत। ओहिमे बहुतो एक नाम आ एक सम्बन्धक कोनो व्यक्ति ओ ओहि बीच एकटा एहन लोक जे ओहि बीच गामक हालचालक संग रहत स्वयं जुड़ल वा अवलोकन कोना घटना संग कथाक रचनामे सहायक होयत। एहन कथाकारक कथामे गाम ओ समाजिक चिन्ता उभरिके आयब स्वभाविक अछि।

प्रभासजीक चर्चित कथा 'पिता' अछि। ओहि कथामे स्पष्ट कहैत छथि जे जखन ओ सोलह बरखक छलाह तखने गामसँ चल गेलाह, किन्तु हुनक पिता अर्थात् दादा हुनका अपन पत्रसँ गामसँ जोड़ने रहलथिन। किन्तु, प्रश्न उठैत अछि जे ओ स्वयं जुड़य सेहो रहय चाहैत छलाह तँ ने जुड़ल रहलाह? आजुक पुत्र फोनपर गाम-घरक सुनता ततेक हुनकामे रूचि रहि गेल छनि वा हुनका ओ सुनबाक फुर्सति छनि ? वा कोनो पिताकेँ अपन सन्तानकेँ गामकेँ जोड़ने रहबाक आवश्यकता बुझाइ छनि। आजुक स्थितिमे मिथिलासँ बाहर रहैत लोक मैथिल रहि सकय आ पुत्र वा पुत्री अपन धरतीक अनुराग बचा सकय, ताहि लेल आब बहुत आवश्यकता लगैत अछि 'पिता' कथाक 'दादाक'क। आ एहन स्थितिमे पिताक महत्व एहि आइ प्रासंगिक भऽ गेल अछि।

प्रभासक कोनो कथा होअए ओही कथामे भेटत जे स्वराजक बात समाजक आशा अकांक्षापर कोना पानि पड़ि गेलैक, कोना लोक पतनक स्थिति दिस खसल जा रहल छल, मनुक्खकेँ मनुक्खक प्रति जुड़ावो कोना घटि रहल अछि, संगहि कथा ओही सभ स्थितिसँ बचबाक लेल सचेत करैत अछि। अपन लोक आ भूमिक प्रति हिनक कथामे जे अनुराग अछि से सभ बात मानवीय सम्बन्धके कवच प्रदान करैत अछि। जकर खगता आय एकैसम शताब्दीक दोसर दशक्मे सबसँ अधिक अछि। हिनक एकटा कथा 'एकालाप'। एहिक कथा प्रसंग एकटा पत्रसँ अछि। पत्र अछि, किन्तु ओही पत्रक आखर अस्पष्ट अछि। कथा नायक पत्र पढ़बाक प्रचारमे ओझरायल रहैत छथि। तखने हुनक दृष्टि पिताक फोटोपर पड़ैत छनि। मन पड़ैत छथिन पिता आ पिता संग हुनक संघर्ष ओ राग-अनुराग आ ओहि संग मौन पड़ैत छथिन सीबी पीसी आओ इहो बूझि जाइत छथि जे ई दकचल सन अक्षर हुनके सीबी पीसीक छिअनि आ जे आखर पहिने पढ़ल नहि होइत छलनि आ आत्मीयताक बोधमे सभटा पढ़ा जाइत छनि। ई बात मानवीय सम्बन्धक प्रबलताकेँ रेखांकित करैत कहैत छथि जे लोक ओना जे किछु देखैत अछि, ओकर देखबामे फर्क होइत छैक जखन ओ ओहिसँ संवेदित होइत अछि। हिनक 'बाबी' कथापर ध्यान देल जाए। कथा-नायक द्विरागमनक बाद जाहि कचोटक संग 'बाबीके' मन पड़ैत अछि। ओ ओहि संग कएक टा बात कहैत अछि। जहिआ गाममे कृषि संस्कृतिमे संयुक्त परिवार छल, बच्चा अपन बाबी लग बेसी काल रहैत छल। ओ बच्चा बाबी संग रहैत, बाबीक अनुरागमे खिस्सा-पिहानी सुनैत, अपन समाजक नीक-बेजाय बुझैत ओहि समाजक संस्कृतिसँ भिज्ञ भए जाइत छल। एकटा स्नेहशील मनुक्ख भऽ जाइत छल। आइ इक्कसम शताब्दीक दोसर दशकमे बुझल जा सकैत अछि जे शहर मे लोक ओकर बच्चा अपने भूमि आ समाजक बात नहि बुझैत अछि। ओ 'बाबी' कोनो बच्चाकें मनुक्खे नहि एकटा जिम्मेदार सुझ-बूझ रखनिहार नागरिक बनेबामे कतेक सहायक

होइत छल आइ भिन्न-भिन्न समाजक-संरचनाक कतेको बातकेँ रेखांकित कऽ कचोटक संग बुझल जा सकैत अछि। संगहि उक्त कथा बहुत मधुर रूपें बाबी-पौत्रक जुड़ाओल संग वर्तमानमे संवेदनाकेँ सक्षम ओ विश्वसनीय अभिव्यक्त देबामे सेहो पूरक अछि।

कथाक प्रभासक लेखकीयमे प्रभास जी कहैत छथि-''सुग्गाक दाम सुग्गाक बोल सुनलेपर लगैत छैक। कथामे दमखम रहैत छैक, तोहा मनबा कऽ रहैत छैक। ओकरा कोनो झालि बजौनिहारक काज नहि पड़ैत छैक। वक्तव्य सोंगर पर कथा ठाढ़ नहि भऽ सकैत छैक।''[1]

प्रभासक कोनो कथा हो, चाहे जाहि विषय-वस्तुपर लेखल गेल हो, ओहिमे अपन माटि आ अपन लोकक प्रति प्रेमक जेना प्रेरित कएल गेल अछि, ओ अनुपम अछि। हिनक कथा कहैत अछि जे बिना प्रेमक ने कोनो संघर्ष भऽ सकैत अछि, ओ ने सत्यक आलोक भेटि सकैत अछि। मैथिली कथा साहित्यमे प्रेम-कथा बड़ थाड़ लिखल गेल। स्वतंत्रतापूर्वक कथाकार कथामे जेना मनमोहन झाक कथामे, योगानन्द झा वा किरण जीक मधुरमनिमे जे प्रेम आएल अछि, जे लिखल गेल अछि, ओ अल्प अछि, कारण मैथिलीकथा ओही कालक समाजिक सम्स्यापर अपनाके बेसि केन्द्रित कएलक। प्रेमतँ ओना बहुत व्यापक अर्थक शब्द अछि। मुदा हमर तात्पर्य अछि जे स्त्री ओ पुरूषक बीच जे भाव एक-दोसरके जोड़य। ललितक कथा स्त्रीक योन-शोषणपर कठोर प्रहार कएलक अछि। मुदा स्त्री-पुरूषक मधुर प्रेमके नहि देखा सकल। हुनक 'मुक्ति' कथामे बीसो बाबूक लेल पत्नीसँ बेसी अर्थक चिन्ता छनि। किन्तु हुनक पत्नीक अर्थ तृप्ति नहि दऽ पबैत छनि। देहीक भुखक दवाबमे धर्मशालाक दरबान संग भागि जाइत छथि। प्रभासजीक 'सुभद्रा-हरण' कथामे किसुनमाक बेटी सुभद्राक पाछु गामक छौड़ा सभ बेहाल, मुदा मजाल कि जे ओ केओ ओकर स्पर्ष कऽ सकए। दू टा विआह भेले, परंच दूनू ठाम ओकर देहक शोषण। विवश भ ऽ अपन जन्मभूमिककेँ अन्तिम प्राण कहि सिल्लीगुरी विदा होइत अछि। सुभद्राक कथनसँ ओकर मानसिकता व्यक्त होइत छैक- ''आन किछुओ करतैक, सहि हम, मुदा अप्पन लोकजखन गारी दै हय, बदनाम करै हय, तँ सहले ने जाइ हाय।''[2]

प्रभासक कथामे भूमि-संघर्ष नहि अछि, हिनक कथामे श्रमिक वर्ग एहि लेल संघर्ष नहि करैत अछि, जे जमीन जोते से जमीनक असली मालिक थिक। अपितु ओ सभ अपन अस्तीत्वक रक्षा लेल संघर्ष करैत अछि। ओ सभ अपन सामाजिक सम्मान ओ अनुराग लेल साकांक्ष अछि। तँ ओ कोनो तरहे शोषण ओ एकजुट भऽ विरेध करैत अछि।

'बाढ़ि कथामे' दलित वर्गक समक्ष देखि कथा ई अनुभव करैत अछि जे ''आब एकरा सबके डुबा नहि सकेते। कोनो मगरमच्छ एकरा सभके गीरि नहि सकतै।''[3]

हिनक स्वयंक कथाक विकास शोषकसँ शोषणक मुक्तिक हेतु संघर्षक विकास स्पष्ट अछि। हिनक कथा कहैत अछि जे बजन्ता कहिओ ने बाजल ओ बजन्ताक पोत।'बजैय। एहि तरहेँ संषर्षक विकासक क्रमम हिनक कथामे 'टुस्साआ बांझी' एकटा दुराचारक कथा आगूमे ठाढ़ एकटा पछिला लोक रक्षक आ बजन्ताक पोता आदि कथाके पढ़ल गुनल जा सकैत अछि।

शोषणसँ बचबाक लेल हिनक कथा विद्रोहकें जरूरी मानितो हिनक कथाक मूल स्वर थिक मानवीय सम्बन्ध जुड़ाओ। इ समाजक प्रत्येक व्यक्ति हेतु समाजिक सद्भाव ओ मानवीय मूल्यक रक्षाक पक्षधर छलाह। स्त्री हो वा पुरूष, शोषक हो वा शोषित सभ एकजुट भऽ समाजिक धरातलपर ठाढ़ भऽ विकासक पथपर बढ़य एहि लेल हिनक कथा पहल करैत अछि।

सन्दर्भ

1. कथा प्रभास- प्रभास कुमार चौधरी लेखकीयसँ, प्रकाशक- मैथिली अकादमी, पटना, प्रकाशन वर्ष - 1988
2. ओएह पृष्ठ संख्या - 24
3. ओएह पृष्ठ संख्या - 270

भारतीय अर्थव्यवस्था और मौद्रिक नीति

डॉ० अनिल कुमार मंडल

प्रधानाचार्य, राम कृष्ण महाविद्यालय, मधुबनी
(अंगीभूत ईकाई- ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर, दरभंगा, बिहार)

सारांश

जिस नीति के अनुसार किसी देश का मुद्रा प्राधिकारी (आरबीई), मुद्रा की आपूर्ति का नियमन करता है, उसे मौद्रिक नीति कहते हैं। मौद्रिक नीति का उद्देश्य राज्य का आर्थिक विकास एवं आर्थिक स्थायित्व सुनिश्चित करना होता है। मौद्रिक नीति के रूप में या तो अधिक तेजी से अर्थव्यवस्था में पैसे की कुल आपूर्ति बढ़ जाती है और या कम होती है। उद्योग विस्तारवादी नीति में, ब्याज दरों को कम करके आसान ऋण प्रदान कर व्यवसायों को लुभाया और टैक्स के साथ बेरोजगारी से निपटने का प्रयास होता है। मुद्रा की आपूर्ति कम करनेवाली संकुचनकारी नीति के आधारपर, परिसंपत्ति मूल्यों की गिरावट से बचने के लिए मुद्रास्फीति को धीमा किया जाता है।

2019 में आयी कोरोना वायरस महामारी ने, दुनियाभर में जीवन के साथ सारी व्यवस्था को प्रभावित किया है। इस महामारी ने वैश्विक स्तर पर मांग-आपूर्ति चक्र पर नकारात्मक प्रभाव डाला, जिससे वैश्विक अर्थव्यवस्था पर व्यापक रूप से ऋणात्मक प्रभाव दृष्टिगत हुए। इसी क्रम में भारतीय अर्थव्यवस्था पर और भी व्यापक प्रभाव दिखाई दिए। लॉकडाउन से समस्त गतिविधियों पर प्रतिबन्ध लगा, जिससे व्यापार बंदी की स्थिति पैदा हो गई। काफी उद्योग-धंधे बंद भी हुए, जिससे अर्थव्यवस्था में 'जीवन और आजीविका' का नैतिक द्वन्द हमारे सामने खड़ा हो गया।

प्रस्तुत लेख भारतीय अर्थव्यवस्था में मौद्रिक नीति और व्यापार नीति के संबंधों और आर्थिक विकास में उनकी भूमिका की विवेचना करता है।

मूल शब्दः मौद्रिक नीति, आय, वास्तविक विनिमय दर, वास्तविक ब्याज दर, धन आपूर्ति, खुलापन

परिचय

भारत की अर्थव्यवस्था विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। 1991 के उदारीकरण और आर्थिक सुधारों के बाद भारत में बहुत तेज आर्थिक प्रगति हुई, जिससे भारत विश्व की शीर्ष आर्थिक शक्तियों में शामिल हो गया है।

सभी अर्थव्यवस्थायें, राजकोषीय नीति या मौद्रिक नीति के हिसाब से चलती हैं। सरकारी निर्माण परियोजनाओं, ज्यादा टैक्स लगाने और आर्थिक जीवन में अन्य हस्तक्षेपों के जरिये माँग और रोजगार बढ़ाने के पक्षधर; राजकोषीय नीतियों के विवेकसम्मत इस्तेमाल को आर्थिक वृद्धि की चालक शक्ति मानते हैं। घाटे की अर्थव्यवस्था का यह विचार मुख्यतः कींसियन अर्थशास्त्र की देन है। कींसियन अर्थशास्त्र का बोलबाला होने से पहले, मौद्रिक नीति के जरिये आर्थिक प्रबंधन करने का चलन था। साठ के दशक में पश्चिमी अर्थव्यवस्थाएँ, एक बार फिर मौद्रिक नीति को मुख्य उपकरण बनाने की तरफ झुकीं। मौद्रिक नीति के समर्थकों का मानना है कि, टैक्स कम लगाने चाहिए और मौद्रिक नीति को सरकार के विवेक के भरोसे छोड़ने के बजाय कुछ निश्चित नियम-कानूनों के तहत चलाया जाना चाहिए। केवल इसी तरह से अर्थव्यवस्था का बेहतर प्रबंधन हो सकता है और राजकोषीय घाटे को नियंत्रण में रखा जा सकता है। अर्थशास्त्र की भाषा में इस विचार को मौद्रिकवाद या मोनेटरिजम की संज्ञा दी जाती है।

मौद्रिक नीति का संचालन

मौद्रिक नीति का संचालन मुख्यतः अर्थव्यवस्था के केंद्र, भारत के रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है। रिजर्व बैंक अपनी पूर्व निर्धारित व्यापक आर्थिक नीतियों के तहत, सरकार के कहने पर और कभी-कभी सरकार से स्वतंत्र निर्णय लेता है। शुरू में मौद्रिक नीति, केवल ब्याज दरों में परिवर्तन और खुले बाजार के कामकाज के आधार पर ही चलती थी। बाद में मुद्रा बाजार का अनुभव और अन्य मौद्रिक उपकरणों के विकास के बाद मौद्रिक नीति का संचालन लगातार परिष्कृत होता चला गया। अमेरिका में गवर्नरों के फेडरल रिजर्व बोर्ड ने 1913 से ही आरक्षित मुद्रा की आवश्यकताओं और अर्थव्यवस्था में सकल मुद्रा की वृद्धि का जिम्मा सँभाल रखा है। बैंक ऑफ इंग्लैण्ड ने 1951 के बाद से मौद्रिक नीति के संबंध में कई तरह के प्रयोग किये हैं, जिनमें उपभोक्ताओं को दिये जाने वाले ऋण के नियम निर्धारित करना, अर्थव्यवस्था में तरलता (नकदी की मात्रा) को समग्र रूप से देखना और मौद्रिक आधार को नियंत्रित करना शामिल है।

मौद्रिक नीति के लक्ष्य

मौद्रिक नीति, निर्धारित लक्ष्यों के हिसाब से चलती है। जैसे कि; कितनी मुद्रास्फीति होनी चाहिए, ब्याज दरों का कौन सा स्तर उचित होगा, बेरोजगारी घटाने का समष्टिगत उद्देश्य कैसे पूरा किया जाए, सकल घरेलू उत्पाद कैसे बढ़ाया जाए, अर्थव्यवस्था की दीर्घकाल तक कैसे स्थिर रखा जाए, वित्तीय क्षेत्र की स्थिरता के उपाय कैसे किये जाएँ, उत्पादन और दामों की स्थिरता कैसे कायम रखी जाए, आदि। मौद्रिकवाद के पैरोकार चाहते हैं कि, सरकारी खर्च्च में कटौती की जाए और अर्थव्यवस्था पर लगे हुए नियंत्रण हटाये जाएँ। साथ ही ऐसे नियम बनाये जाने चाहिए कि सरकार न तो उधार ले सके और न ही बाजार में मुद्रा की आपूर्ति बढ़ा सके। इन अर्थशास्त्रियों को लगता है कि, मौद्रिक नीति के संचालन में सरकार और राजनेताओं को कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। लेकिन, ऐसा होना व्यावहारिक रूप से सम्भव नहीं होता। मोनेटरी पॉलिसी कमेटी के सदस्यों की नियुक्तियों के जरिये, सरकार इस नीति को प्रभावित करती रहती है। सरकार नीतिगत उद्देश्यों में तब्दीली करके और समष्टिगत नीतियों को अपने हिसाब से बदल कर, स्वतंत्र मौद्रिक नीति के आग्रह को पनपने नहीं देती।

राजकोषीय नीति और सरकारी ऋण

राजकोषीय नीति का मतलब है; सरकार अपने खज्जाने से क्या खर्च्च करना चाहती है और किस तरह के टैक्स लगा कर राजस्व हासिल करने की इच्छुक है। इसी नीति के साथ सरकार की ऋण नीति भी जुड़ी होती है, जिसमे पर्याप्त राजस्व न प्राप्त होने की दशा में कर्ज लेने के विकल्प खुले रखे जाते हैं। राजकोषीय नीति के आधार पर तय किया जाता है कि, राष्ट्रीय आमदनी का कितना प्रतिशत कराधान से उगाहा जाना चाहिए। इसी के साथ यह सवाल भी जुड़ा रहता है कि, कम टैक्स लगा कर उद्यमशीलता को बढ़ावा दिया जाए या ज्यादा टैक्स लगा कर लोकोपकारी परियोजनाएँ चलायी जाएँ जिससे आमदनी का समतामूलक पुनर्वितरण किया जा सके। राजकोषीय नीति का दूसरा सरोकार यह होता है कि, टैक्स लगाये जाएँ तो किस प्रकार के। प्रत्यक्ष कर (जैसे आय कर) लगाये जाएँ या फिर बिक्री, माल और मूल्यवर्धन जैसे अप्रत्यक्ष कर लगाए जाएँ। अप्रत्यक्ष करों का प्रभाव सभी लोगों की आमदनी पर पड़ता है। वह राजकोषीय नीति तटस्थ समझी जाती है; जिसके कारण एक समूह के उपभोग, दूसरे की अपेक्षा प्रभावित नहीं होता।

राजकोषीय नीति परिस्थितियों के अनुसार, युद्ध और शांति के समय अलग होती है। युद्ध के समय सेना पर होने वाले खर्च की भरपाई के लिए अतिरिक्त टैक्स लगाने के बजाय ऋण लेकर काम चलाया जा सकता है। दूसरी तरफ अगर सरकार के ऊपर काफी कर्ज है तो; शांतिकाल में लोकहित की योजनाएँ चलाने के लिए राजस्व का इंतजाम करने के बजाय, वह कर्ज उतारने में धन खर्च्च करती दिखेगी। राजकोषीय नीति के जरिये बुद्धिमान सरकारें, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को स्थिर करने की भूमिका निभा सकती हैं। मसलन, अगर मंदी का दौर चल रहा है तो सरकार कम टैक्स लगाने और अधिक खर्च्चे करने का फैसला ले सकती है। तेजी के दौर में ज्यादा टैक्स लगाये जा सकते हैं और खर्च्चा कम करके सरकारी खजाने की हालत सुधारी जा सकती है।

राजकोषीय संघवाद इसी नीति का अंग है। इसके तहत राष्ट्रीय, प्रादेशिक और शहर के स्तर पर अलग-अलग कराधान और व्यय संबंधी नीतियाँ अपनायी जाती हैं।

निष्कर्ष

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए जो नियम बनाये जाते हैं, उन्हें मौद्रिक नीति कहा जाता है। मुद्रा आपूर्ति की नीति मौद्रिक नीति है।

भारत में मौद्रिक प्राधिकरण के रूप में भारत का रिजर्व बैंक (RBI), मौद्रिक पालिसी कमिटी (MPC) द्वारा तैयार मौद्रिक नीतियों को संचालित करता है और मुद्रा आपूर्ति व ब्याज दर आदि को नियंत्रित करता है। मौद्रिक नियमों के माध्यम से देश की अर्थव्यवस्था में मुद्राप्रवाह को नियंत्रित किया जाता है। इन्ही नियमों के माध्यम से अर्थव्यवस्था की सम्पूर्ण बैंकिंग प्रणाली को नियंत्रित किया जाता है।

सरल भाषा में समझें तो; मुद्रा और ऋण की आपूर्ति, लागत और उपयोग का नियंत्रण और कम तथा स्थिर मुद्रास्फीति के साथ विकास को बढ़ावा देने के लिए मौद्रिक नीतियाँ तैयार की जाती हैं।

इन्हीं आर्थिक नीतियों के आधार पर सरकार मुद्रास्फीति, खपत, विकास और तरलता जैसे व्यापक आर्थिक उद्देश्य पूरा करती है।

1969 से पहले निजी बैंकों की प्राथमिकताएँ, देश की जरूरतों के अनुरूप नहीं थीं। कृषि, लघु उद्योग और निर्यात के लिये ऋण मिलने में बहुत कठिनाई होती थी। ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकों की शाखाएँ नहीं खुलती थीं। ऐसे में पहले 1969 में 14 बैंकों तथा उसके बाद 1980 में छह और बैंकों का राष्ट्रीयकरण होने के बाद परिस्थितियाँ बदलीं। इसके बाद देश की प्राथमिकताओं के हिसाब से बैंकिंग व्यवस्था संचालित होनी शुरू हुई। इसी के साथ रिजर्व बैंक की जिम्मेदारियों में इजाफा हुआ और बदलती परिस्थितियों के साथ, इसकी भूमिका भी तेजी से बदली। आर्थिक उदारीकरण के बाद तो रिजर्व बैंक, देश की अर्थव्यवस्था के मद्देनजर मुख्य भूमिका में आ गया। नियमित अंतराल पर मौद्रिक नीति की समीक्षा करना इसका एक महत्त्वपूर्ण काम है।

वर्तमान में रिजर्व बैंक ने रेपो रेट में जो बदलाव किया है, उसका प्रमुख कारण पिछले छह महीने से सकल खुदरा मुद्रास्फीति की दर का 4% से अधिक रहना है। इस समय घरेलू आर्थिक गतिविधियों में सुधार आया है। उत्पादन तथा मांग के बीच जो फासला था, वह भी लगभग समाप्त हो गया है। निवेश गतिविधियों में भी स्थिति बेहतर हुई है। दिवाला और ऋण-शोधन अक्षमता कानून के तहत अर्थव्यवस्था के निराशाजनक क्षेत्रों का समाधान होने से, नयी गतिविधियों को अधिक बढ़ावा मिलेगा। लेकिन यह भी स्पष्ट है कि मुद्रास्फीति को लेकर रिजर्व बैंक सतर्क रहेगा।

भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए बीता वर्ष चुनौतियों से भरा रहा है, कोरोना वायरस की दूसरी लहर के बाद फिर से व्यापार और आर्थिक संकुचन की चुनौतियाँ हमारे सामने खड़ी हैं।

सन्दर्भ

- ए. पीकॉक और जी.के. शॉ (1971), द इकॉनॉमिक थियरी ऑफ फिश्कल पॉलिसी, जॉर्ज एलेन और अनविन, लंदन.
- पी. बोफिंगर (2001), मोनेटरी पॉलिसी : गोल्स, इंस्टीट्यूशंस, स्ट्रैटजीज ऐंड इंस्ट्रूमेंट्स, ऑक्सफर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफर्ड.
- एम. ब्लॉग वगैरह (1995), द क्वांटिटी थियरी ऑफ मनी फ्रॉम लॉक टू कींस ऐंड फ्रीडमैन, एडवर्ड एलगर, एल्डरशॉट.
- मिल्टन फ्रीडमैन (1968), 'रोल ऑफ मोनेटरी पॉलिसी', अमेरिकन इकॉनॉमिक रिव्यू, 58.
- हेने, पी. टी. बोटके, पी. जे., प्रिकितको, डी. एल.(2002): द इकोनोमिक वे ऑफ थिंकिंग (10 वां संस्करण). प्रेंटिस हॉल.
- भारत के प्रकरण में, संयुक्त उद्यम (जे.वी) और पूर्णतया स्वामित्व सहायक कंपनियों (डब्लू.ओ.एस) अंतर्राष्ट्रीयकरण के दो मान्यता प्राप्त माध्यम रहे हैं।
- दिव्या चौधरी, प्रियंका तोमर और पल्लवी जोशी , "भारतीय प्रत्यक्ष बाहरी विदेशी निवेश का विखंडन: ऐतिहासिक एवं पारंपरिक रुझान", ऑक्सफैम डिस्कशन पेपर, मार्च 2018,
- औद्योगिक नीति और संवर्धन विभाग (डी.आई.पी.पी), वाणिज्य मंत्रालय, "एफ.डी.आई पर त्रैमासिक फैक्टशीट: अप्रैल 2000 से लेकर मार्च 2018 तक" http://dipp.nic.in/sites/default/files/FDI_FactSheet_29June2018.pdf

उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र के धार्मिक स्थलों का ऐतिहासिक अध्ययनः रामनगर के विशेष सन्दर्भ में

कु० सीमा

शोधार्थी, इतिहास विभाग, एम0बी0 राजकीय स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ० नीरज रुवाली

डी0लिट्, शोध निर्देशक, इतिहास विभाग, एम0बी0 राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

शोध सारांश

प्रत्येक क्षेत्र का कोई न कोई इतिहास अवश्य होता है अर्थात् प्रत्येक क्षेत्र अपनी भौगोलिक संस्कृति के साथ-साथ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के लिए भी प्रसिद्ध होता है। इसी प्रकार कुमाऊँ का रामनगर क्षेत्र की भी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक दृष्टिकोण से विशेष महत्व रहा है।

प्रस्तुत शोध पत्र ''कुमाऊँ के रामनगर क्षेत्र के धार्मिक स्थलः एक ऐतिहासिक अध्ययन'' देवभूमि उत्तराखण्ड के कूर्मांचल की सबसे प्राचीन बस्ती ढिकूली के पास थी, जहाँ की सामग्री से वर्तमान रामनगर क्षेत्र बसा है। रामनगर क्षेत्र को शोध पत्र का केन्द्र बिन्दु बनाते हुये कार्य शुभारम्भ किया गया है। शोध पत्र में रामनगर क्षेत्र के अनेक मन्दिर एवं मूर्तियाँ तथा राजवंशों से सम्बन्धित जानकारियाँ (प्रकृति एवं पृथ्वी) के गर्त में छुपी हुई हैं। यह जिज्ञासा एवं खोज (शोध) का विषय है। लेकिन इस क्षेत्र के ऐतिहासिक व धार्मिक महत्व पर समग्र अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास पहली बार प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से किया गया है। जिसमें रामनगर क्षेत्र का भौगोलिक व्याख्या एवं सन्तुलित अध्ययन करके अन्त में निष्कर्ष एवं सुझाव तक पहुँचने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तावना

हिमालय आदिकाल से ही मानव जिज्ञासा का प्रमुख आकर्षण का केन्द्र रहा है। भारतीय परम्परा में इसे देवी-देवताओं, यक्ष, गन्धर्वों, किन्नरों, विद्याधरों आदि का आवास और ऋषि मुनियों की तपोस्थली कहा गया है। यह भूमि राजा भरत की जन्म स्थली भी रही है। 'स्कन्द पुराण' के अनुसार भगवान विष्णु ने चम्पावत के निकट काली नदी में कच्छप रूप धारण किया था, जिसके कारण इस क्षेत्र का नाम, कुर्माचल पड़ा था। पुराणों में वर्णित उत्तराखण्ड अपने पौराणिक नाम के लिए प्रसिद्ध है। इसके दो प्रमुख खण्ड हैं। केदार खण्ड तथा मानस खण्ड। केदार खण्ड गढ़वाल हिमालय तथा दूसरा मानसखण्ड कुमायूँ हिमालय के नाम से विख्यात है। इस सम्पूर्ण प्रान्त को प्रायः देवभूमि के नाम से भी जाना जाता है। क्योंकि यहाँ भारत के चार धाम, बद्रीनाथ और केदारनाथ, जो क्रमशः विष्णु एवं शिव को समर्पित हैं तथा गंगोत्री (गंगा का उद्गम) और यमुनोत्री (यमुना का उद्गम) धाम अवस्थित है। इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध कैलाश पर्वत और मानसरोवर पवित्र स्थल की अवस्थिति मानसखण्ड में भारत, नेपाल तथा चीन की संलग्न सीमा पर है।[1]

यूँ तो हिमालय की सभी श्रृंखलायें पूज्य हैं परन्तु इनमें मध्य हिमालय कुमाऊँ अंचल विशेष महत्वपूर्ण है। कुमाऊँ के लोकधर्म का फलक अत्यन्त विस्तृत है। क्षेत्री देवी-देवताओं, मेले, त्यौहार, लोकनृत्य आदि किसी न किसी रूप में धर्म की भावना से जुड़े हैं। प्रत्येक पर्वत शिखर पर किसी न किसी देवी-देवताओं के मन्दिर अवश्य मिलते हैं। कुमाऊँ के लोग प्रत्येक पतिर, प्रत्येक कन्दरा व नदी इत्यादि में किसी न किसी देवता का अधिष्ठान मानता आया है। कुमाऊँ शैवों एवं शाक्तों की भूमि रही है। यहां के शिव तथा देवी मन्दिर को नाम प्रायः श्वर जैसे जागेश्वर तथा नाथ बागनाथ (श्वर-नाथ) पर अन्त होते हैं।[2]

कुमाऊँ में स्थित मन्दिरों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया है। पौराणिक देवी-देवताओं के मन्दिर जैसे- शिव, शक्ति, सूर्य आदि के मन्दिर, स्थानीय देवी-देवताओं के मन्दिर जैसे-गोलू देवता, सैम, हरु, ऐड़ी, कलबिष्ट, गंगनाथ आदि ग्राम देवी-देवताओं के मन्दिर में प्रायः गांव के ही किसी भूत (प्रेत योनि) में भटक रहे पुरुष की पूजा की जाती है। कुमाऊँ अंचल में लगभग 650 से अधिक देवी-देवताओं के मन्दिर स्थित हैं।[3]

उद्देश्य

ऐतिहासिक व धार्मिक दृष्टि से रामनगर क्षेत्र अपनी भौगोलिक परिस्थिति के कारण एक महत्वपूर्ण स्थल रहा है। कुमाऊँ के पर्वतीय क्षेत्र एवं उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों के मध्य एक महत्वपूर्ण सेतु के रूप में रामनगर की विशेष भूमिका रही है जिसका महत्व आज भी देखा जा सकता है। रामनगर क्षेत्र की ऐतिहासिक एवं प्राचीनता के विषय में इतिहासकार बद्रीदत्त पाण्डे, ई0टी0 एटकिन्सन, राहुल सांकृत्यायन, आर0 एस0 टोलिया, यमुना दत्त पाण्डे द्वारा प्रकाश डाला गया है। लेकिन इस क्षेत्र के धार्मिक महत्व पर समग्र अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास पहली बार शोध पत्र के माध्यम से किया जा रहा है।

प्रस्तुत विषय पर शोध पत्र प्रकाशित करने का मेरा लक्ष्य कुमाऊँ क्षेत्र में बसे रामनगर की धार्मिक स्थलों के महत्व के विषय में समग्र रूप से संकलित जानकारी विस्तृत रूप से प्रस्तुत करना है। रामनगर क्षेत्र के विभिन्न धार्मिक स्थलों के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना शोध पत्र का उद्देश्य है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्रत्येक क्षेत्र का कोई न कोई इतिहास अवश्य होता है। अर्थात् प्रत्येक क्षेत्र अपनी भौगोलिक, सांस्कृतिक के साथ-साथ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के लिए प्रसिद्ध होता है। इसी प्रकार कुमाऊँ का रामनगर क्षेत्र अस्तित्व में था। रामनगर के सीतावनी नामक स्थान के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है कि कोसी नदी के निकट अशोक वृक्षों के बीच एक वन है यहीं पर सप्तऋषि तथा वृत राजा ने तपस्या की थी। विश्वामित्र के कहने पर भगवान श्री राम, लक्ष्मण एवं सीता जी यहाँ आये थे। इस वन को देखकर सीताजी मोहित हो गई थीं। उन्होंने राम जी से कहा हमको बैशाख के महीने में इस वन में आकर रहना चाहिए। वे बैशाख के महीने यहाँ रहने के बाद वापस अयोध्या चले गये। तब से यह स्थल सीतावनी के नाम से प्रसिद्ध हो गया।[4]

सीतावनी के दर्शन के बाद रामनगर शहर से हल्द्वानी जाने वाले राजमार्ग पर अंजनी ग्राम नामक स्थान है। इस क्षेत्र के तत्कालीन स्थानीय जनमानस की धारणा है कि वर्तमान हनुमान धाम जिस स्थान पर स्थित है, कोसी नदी के तटीय भाग पर श्री हनुमान जी ने हजारों साल पहले तपस्या की थी। वर्तमान में उसी तपस्या स्थल पर एक भव्य हनुमान धाम का निर्माण ''श्री हनुमान ट्रस्ट .....'' रामनगर द्वारा किया गया है। यह धाम विश्व का प्रथम एवं उत्तराखण्ड के पांचवे धाम के रूप में प्रतिष्ठित है। इस मन्दिर की कल्पना आध्यात्मिक एवं योगगुरु आचार्य श्री विजय जी ने की थी। आचार्य श्री विजय जी ने संकल्प लिया था कि एक ऐसा धाम का निर्माण हो जो मानव कल्याण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सके। श्री विजय जी का यह संकल्प वर्तमान में साकार रूप लिया है। जिसमें विशेष योगदान राजीव अग्रवाल (वर्तमान मन्दिर के सचिव) दिनेश अग्रवाल, सतनाम जी द्वारा मन्दिर निर्माण हेतु भूमिदान किया गया है। सन् 2011 में इस भव्य मन्दिर का निर्माण किया गया।

हनुमान धाम के दर्शन के बाद रामनगर शहर से रानीखेत जाने वाले राजमार्ग पर मुनि कौशिक के प्रयासों से अवतरित होकर प्रवाहित होने वाली कोसी नदी के तटीय भाग में स्थित ढिकुली गर्जिया नामक स्थान का लगभग तीन हजार वर्षों का अपना इतिहास रहा है। प्रख्यात कत्यूरी राजवंश, चंदवंश, गोरखा एवं अंग्रेजों ने यहाँ की पवित्र भूमि का सुख भोगा है। राहुल सांकृत्यायन ने कत्यूरियों का शासन सन् 850 से सन् 1060 ई0 तक मानते हैं। इतिहासकार बद्रीदत्त पाण्डे सन् 700 ईसवी लगभग 2-3 हजार वर्ष तक मानते हैं। कत्यूरी और चन्दवंशीय राजा जाड़ों में धूप सेकने ढिकूली आया करते थे। सन् 1790 में गोरखा शासन काल में गोरखाओं ने कत्यूरी, चन्द राजाओं की जाड़ों की राजधानी ढिकूली को अपने अधीन कर लिया। इस क्षेत्र में कत्यूरी और चन्द कालीन राजाओं से सम्बन्धित अनेक मन्दिर एवं मूर्तियाँ प्रकृति एवं पृथ्वी के गर्भ में छुपी हुई हैं जो मानव जिज्ञासा एवं (खोज) शोध के विषय हैं।[6]

यह भू-भाग 1940 से पूर्व उपेक्षित अवस्था में था। तत्कालीन जनमानस की धारणा है कि वर्तमान गर्जिया मन्दिर जिस टीले पर स्थित है। यह कोसी नदी की बाढ़ में कहीं ऊपरी क्षेत्र (संभवत: कोश्या) भीतर का भाबर के ..... देवी मन्दिर से टूटकर बहता हुआ आ रहा था। उस समय वर्तमान टीले की समतल भूमि में भैरव देवता विद्यमान थे। उन्होंने उपटा देवी को टीले सहित बहता हुआ देखकर कहा-थिरो बैणा थि रौ अर्थात् ''ठहरो बहन ठहरो'' यहाँ मेरे पास निवास करो तभी से गर्जिया देवी उस स्थान पर निवास कर रही हैं। सन् 1950 में श्री 108 महादेव गिरी जी नागबाबा एक महान देवी उपासक थे। उन्हें अनेक सिद्धियाँ प्राप्त थीं। वे भ्रमण के दौरान राजस्थान व गुजरात गये। लौटते समय अपने साथ भैरव, गणेश और तीन देवियों की मूर्तियाँ लाये। स्थानीय जनता ने ढोल नगाड़ों से मूर्तियों का रामनगर शहर से गर्जिया तक तीन चार सौ साधुओं को गर्जिया में फलाहार कराया गया। विशाल भण्डारे के साथ गर्जिया के वर्तमान टीले पर पुरानी मूर्तियों के साथ नई मूर्तियों की प्राण प्रतिष्ठापूर्वक स्थापना की गई। कहा जाता है देवी का वाहन सिंह टीले के पास भयानक गर्जना किया करता था। इसलिए नाग बाबा और बाबा पाठक जी द्वारा इस शक्ति स्थल का नाम गर्जिया देवी रखा गया।

गर्जिया मन्दिर से रामनगर शहर की ओर बढ़ने पर प्राचीन बस्ती ढिकूली नामक स्थान पर साल वृक्षों के मध्य घिरा हुआ अत्यन्त प्राचीन शिव मन्दिर है। मन्दिर में प्राचीन मूर्तियाँ हैं। मन्दिर के पास पानी के स्रोत भी हैं जो भगवान शंकर की उपस्थिति का आभास कराता है। इस मन्दिर के सम्बन्ध में लिखित प्रमाण भी उपलब्ध हैं। कुमाऊँ के इतिहासकार बद्रीदत्त पाण्डे द्वारा लिखित ''कुमाऊँ का इतिहास'' में वर्णित है। यह वही विराटनगर है जहाँ कौरवों से छिपने के लिए पाण्डव एक साल गुप्त वनवास में रहे थे। इसी दौरान उन्होंने ढिकूली बस्ती के पीछे पहाड़ी पर भगवान शिव का मन्दिर बनवाया। प्रतिवर्ष इस स्थल पर शिवरात्री के अवसर पर शिव मन्दिर में हजारों भक्त दर्शनार्थ पहुँचते हैं।[7]

रामनगर शहर के निकट कोसी नदी में एक बैराज बना हुआ है। बैराज से पूर्व की ओर बढ़ने पर गुलर, बांस, साल, शीशम के वृक्षों के बीच गुलर सिद्ध एवं माता बाल सुन्दरी के मन्दिर स्थित हैं। इस मन्दिर के सम्बन्ध में कहा जाता है कि गुलर के वृक्षों के बीच अनेक ऋषि-मुनियों द्वारा सिद्धियाँ प्राप्त की थी। इसलिए इसका नाम गुलर सिद्ध पड़ा होगा। कहा जाता है कि महाभारत काल में अज्ञातवास के दौरान इस स्थल पर पाण्डवों ने पूजा अर्चना हेतु हवन कुण्ड बनवाये होंगे। आज भी पहाड़ी पर प्राचीन हवन कुण्ड विद्यमान हैं। प्रतिवर्ष इस स्थल पर लगभग एक किलोमीटर की चढ़ाई चढ़कर शिवरात्री एवं होली के दिन इस स्थल पर हजारों भक्त दर्शनार्थ पहुँचते हैं। माता बाला सुन्दरी में बीते समय में हवनादि के आयोजन हुये थे।[8]

कोसी बैराज के ऊपरी ओर स्थित टेंडा नामक गांव के पास एक प्राचीन मन्दिर स्थित है। कोसी बैराज के ठीक सामने ऊपरी तरफ भरतपुरी गांव के अन्तिम छोर में सहस्त्रधारा एवं शिव मन्दिर विद्यमान हैं। कोसी नदी के निकट सन् 1993 में भयंकर बाढ़ के बाद स्थानीय जन श्री भण्डारी बाबाजी ने उत्तराभिमुख शिव गुफा की खोज की थी। गुफा के ऊपर की छत अत्यन्त प्राचीन है। उत्तराखण्ड के देव विषयक साहित्य में उत्तराभिमुख गुफा का अत्यन्त महत्व बताया गया है। गुफा में अत्यन्त प्राचीन श्रृंग एवं मूर्तियाँ हैं जो काले पत्थर की एवं अत्यन्त भारी पायी गई हैं। प्रसिद्ध पुरातत्व विद्वान डॉ0 यशोधर मठपाल ने उन्हें कत्यूरी कालीन माना है।[9]

निष्कर्ष एवं सुझाव

रामनगर वैभवशाली क्षेत्र व सनातन धर्म का पथ प्रदर्शक है। इस क्षेत्र में सब धर्म को समान महत्व दिया गया है। वैसे तो संसार के हर कण में ईश्वर विद्यमान हैं लेकिन शास्त्रों व विद्वानों द्वारा इस क्षेत्र को विशेष श्रेणी में रखा गया है। क्योंकि यहाँ ईश्वर ने स्वयं अवतार लेकर यहाँ की भूमि को पवित्र किया है। इस क्षेत्र का प्राचीन से ही काफी महत्व रहा है। यहाँ वैदिक देवी-देवताओं के मन्दिर है। जो यहाँ के सौर सम्प्रदाय की परम्परा के सुन्दर उदाहरण हैं। मुख्यत: यह शैव एवं शाक्तों की भूमि रही है।[10]

रामनगर ऐतिहासिक व धार्मिक दृष्टि से अनेक महत्वपूर्ण एवं धार्मिक दर्शनीय स्थल मौजूद हैं। परन्तु अधिकांश धार्मिक स्थलों के लिए आवागमन के अच्छे ठहरने एवं भोजन हेतु अच्छे होटल, धर्मशालाओं का अभाव होने के कारण लोगों को आकर्षित नहीं होने से धार्मिक स्थली का आर्थिक विकास में भी योगदान नहीं हो पा रहा है। भौगोलिक परिस्थितियों के कारण इस क्षेत्र में धार्मिक दृष्टि से महतवपूर्ण स्थान है। किन्तु अभी तक दूरस्थ स्थित धार्मिक स्थलों पर सुविधायें व्यापक स्तर पर उपलब्ध न होने के कारण ऐतिहासिक धरोहर धीरे-धीरे पतन की ओर अग्रसित होते जा रहे हैं। जिस कारण आज अधिकांश लोग दूसरे क्षेत्र पर जाते हैं। रामनगर क्षेत्र में रामायणकालीन, महाभारतकालीन, कत्यूरी, चन्दकालीन अनेक ऐतिहासिक मन्दिर, शिलायें, ताम्रपत्र विद्यमान हैं जो जिज्ञासा एवं शोध का विषय हैं। इन सभी धार्मिक स्थलों का पुनर्निर्माण के लिए सरकार द्वारा संरक्षण एवं सहायता की अत्यन्त आवश्यकता है तभी वे प्रगति कर सकते हैं। जैसे जिन स्थानों पर मन्दिर स्थापित हैं, उन स्थानों पर जाने के लिए सड़क, रेल और हवाई मार्ग की व्यवस्था की जानी चाहिए। उन स्थानों के आस-पास स्वच्छ पेयजल, चौबीस घण्टे बिजली, संचार, होटल, धर्मशालायें आदि की व्यवस्था होनी चाहिए।[11]

मन्दिरों में स्थानीय लोगों की भागीदारी भी अनिवार्य रूप में होनी चाहिए। मन्दिरों के लिए प्रबन्ध समितियाँ का गठन किया जाना चाहिए। प्रत्येक मन्दिर की प्रबन्ध समिति उस मन्दिर के रख-रखाव अनुरक्षण तथा सौन्दर्यीकरण कार्य के साथ ही संसाधनों के जुटाव उनका सुदपयोग एवं आवंटन पर निर्णय लेने में सक्षम होनी चाहिए।[12]

सन्दर्भ सूची

1. उत्तराखण्ड का सतत विकास परिदृश्य: एक भौगोलिक विश्लेषण: तेज बहादुर सिंह, पृ0सं0-1।
2. मध्य हिमालय का लोक धर्म: डॉ0 निवेदिता, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, पृ0सं0-1।
3. माँ भगवती गर्जिया देवी महात्म्य, डॉ0 गिरीश पन्त, महाकालिका प्रकाशन, रामनगर, नैनीताल, पृ0सं0-11।
4. कुमाऊँ का इतिहास, बद्रीदत्त पाण्डे, श्याम प्रकाशन, अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा, पृ0सं0-171।
5. दैनिक समाचार, अमर उजाला, पृ0सं0-5।
6. कुमाऊँ का इतिहास, बद्रीदत्त पाण्डे, श्याम प्रकाशन, अल्मोड़ा बुक डिपो प्रकाशन, अल्मोड़ा, पृ0सं0-185।
7. माँ भगवती गर्जिया देवी महात्म्य, डॉ0 गिरीश पन्त, महाकालिका प्रकाशन, रामनगर, नैनीताल, पृ0सं0-23।
8. उत्तराखण्ड का समग्र राजनैतिक इतिहास, डॉ0 अजय रावत, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, पृ0सं0-280।
9. प्राकृतिक सौन्दर्य का धनी रामनगर, जितेन्द्र पपनै, पृ0सं0-50।
10. माँ भगवती गर्जिया देवी महात्म्य, डॉ0 गिरीश पन्त, महाकालिका, प्रकाशन, रामनगर, नैनीताल, पृ0सं0-21।
11. उत्तराखण्ड के धार्मिक एवं सांस्कृतिक पर्यटन स्थल, डॉ0 जोध सिंह नेगी, विनसर पब्लिशिंग, देहरादून, पृ0सं0-110।
12. मध्य हिमालय का लोकधर्म, डॉ0 निवेदिता, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, पृ0सं0-161।

अनुसूचित जातियों में सामाजिक समावेशन की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन

राजेश कुमार

शोध छात्र, सामाजिक बहिष्करण एवं समावेशी नीति अध्ययन केंद्र, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सार

सरकार द्वारा देश के गरीब, पिछड़े एवं वंचित समूहों की निर्योग्यताओं को समाप्त करते हुए उनके सशक्तिकरण एवं विकास हेतु निरंतर प्रयास किये जा रहें हैं जिसमें मुख्य रूप से विकास के विभिन्न मापदंडों पर उन्हें सामान्य श्रेणी के समकक्ष लाने पर भी विशेष जोर दिया जाता रहा ह। ऐसे में यह देखना प्रासंगिक होगा कि अनुसूचित जाति के भीतर ही विभिन्न जातियां अथवा लोग सशक्तिकरण एवं विकास के विभिन्न मापदंडों पर एक समान स्थिति तक पहुँच पाए हैं या नहीं ? अध्ययन के सोद्देश्य तुलनात्मक स्तर पर अध्ययन के लिए अनुसूचित जाति की चार जातियों - चमार, मुसहर, धोबी और खटिक जाति में सामाजिक, शैक्षिक, आवासीय, आय एवं रोजगार की स्थिति पर ध्यान केन्द्रित किया गया है।

कुंजी शब्द

अनुसूचित जाति, सामाजिक समावेशन, आय, रोजगार, शिक्षा, सूचना तकनीकी।

परिचय

देश में अत्यधिक सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़ी हुई स्थिति के आधार पर कुछ जातीय समुदायों को अनुसूचित जाति की सूची में शामिल करते हुए उनके संरक्षण, विकास एवं सशक्तिकरण के दीर्घकालीन प्रयास निरंतर रूप से किये जाते रहें हैं। परिणामस्वरूप इनके जीवन के विविध पक्षों में काफी सकारात्मक बदलाव हुए हैं लेकिन बदलाव की इस प्रक्रिया में अब भी बहुत सी जातियां अथवा उनके लोग असमान रूप से पिछड़े हुए नजर आते हैं तथा विविध प्रकार के अभावों से ग्रस्त एवं बहिष्कृत हैं। भारत में समावेशी विकास के लिए विकास सम्बन्धी असमानताओं का कम होना आवश्यक है क्योंकि लोगों में आय, रोजगार, शिक्षा और अधिकारों की असमानता का सामाजिक भेदभाव और पिछड़ेपन से गहरा सम्बन्ध हैं, चाहे यह अनुसूचित जाति में हो या फिर गैर अनुसूचित जाति मेंद्य हालाँकि समावेशी विकास की प्रक्रिया में सरकार द्वारा यह प्रयास निरंतर रूप से जारी है कि समाज के अत्यधिक वंचित एवं पिछड़े हुए समूहों के जीवन में बहिष्करण की पहचान कर उसके दुष्प्रभावों को समाप्त किया जाय तथा उन्हें इस योग्य बनाया जाय कि वे विकास के अन्य क्षेत्रों में अपनी सहभागिता सुनिश्चित कर सकें और अन्य समूहों के समकक्ष आ सकें। इस दिशा में दसवीं पंचवर्षीय योजना में योजनाओं की मूल्यांकन प्रक्रिया, ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में समावेशी विकास, बारहवीं पंचवर्षीय योजना में तीव्र एवं धारणीय विकास की नीतियों से प्रेरित योजनाओं के क्रियान्वयन पर विशेष जोर दिया गयाद्य वंचित समूहों में व्याप्त बहिष्करण की बहुआयामिता को देखते हुए नीति आयोग (राष्ट्रिय भारत परिवर्तन संस्थान) में सहकारी संघवाद, थिंक टैंक और ज्ञान एवं नवोन्मेष, योजनओं का अनुवीक्षण एवं सतत मूल्यांकन आदि विशेष नियोजित प्रयास किये गएँ हैं। इसके अलावा डिजिटल इंडिया, कौशल विकास योजना, आदि आधुनिक नीतियों द्वारा लक्षित समूहों तक तकनीकी संसाधनों का प्रयोग करते हुए डी. बी. टी. आदि की गति को तीव्रता प्रदान की जा रही है। लेकिन वंचित समूहों में अवसरों का लाभ लेने की असमान सामर्थ्य और सामाजिक बहिष्करण की बहुआयामी प्रकृति समावेशी नीतियों के व्यापक प्रभावों में कमी लाती हैद्य इस पृष्ठभूमि में इस अध्ययन का उद्देश्य इस बात की जांच-पड़ताल करना हैं कि भिन्न-भिन्न सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों, अवसरों का लाभ उठाने की असमान सामर्थ्यता अथवा असामर्थ्यता तथा सामाजिक ख़ आर्थिक स्तर पर भिन्नता लिए हुए इन समूहों पर समावेशी नीतियों का प्रभाव समान रूप से पड़ रहा है, या नहीं ? देश में कुछ जातीय समुदायों को उनकी लगभग एक समान सी पिछड़ी हुई सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक पृष्ठभूमि को देखते हुए उनके विकास एवं सशक्तिकरण के संवैधानिक एवं नियोजित प्रयास किये जाते रहें हैं जिसके परिणामस्वरूप जहाँ कुछ जातियां तथा उनके लोग जीवन के विविध क्षेत्रों में आगे बढ़ गयें है तो दूसरी तरफ कुछ लोग जीवन की मूलभूत सुविधाओं से अब भी वंचित है तथा उन्हें पूरा करने की चुनौतियों से दिन ख़ प्रतिदिन जूझते रहते हैं। समावेशी विकास के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक न्याय और समानता की पृष्ठभूमि पर यह आवश्यक है कि अनुसूचित जातियों में सामाजिक समावेशन की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय। यद्यपि इसके परिणाम आरक्षण सम्बन्धी बहसों को बल प्रदान कर सकते हैं लेकिन सामाजिक न्याय की दृष्टि से यह आवश्यक है।

अनुसूचित जाति

अनुसूचित जाति से तात्पर्य परम्परागत रूप से सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए उन सभी जातीय श्रेणी अथवा समूह से है जिन्हें इनकी पिछड़ी हुई दशाओं के आधार पर सन 1935 में भारत सरकार अधिनियम के तहत अनुसूचित जाति के रूप में अधिसूचित किया गया तथा उनके विकास और सशक्तिकरण की कुछ विशेष योजनाओं एवं नीतियों द्वारा इनके सामाजिक समावेशन के विशेष प्रबंध किये गये। 1931 की जनगणना में पहली बार सामाजिक रूप से वंचित जातियों को व्यवस्थित रूप से दलित वर्गों के रूप में वर्गीकृत किया गया।[1] जो की ऐतिहासिक रूप से उन उपेक्षाओं और वंचनाओं का परिणाम रहे है जिसे उन्होंने भूतकालीन बहिष्करण[2] के कारण प्राप्त किया। भारतीय समाज में इन्हें कई प्रकार के शब्दों जैसे - अस्पृश्य, अछूत, हरिजन, चांडाल, भंगी आदि भिन्न -भिन्न नामों से संबोधित किया जाता रहा है। दलित शब्द से उन तमाम जातियों अथवा लोगों के समूहों का बोध होता है जो समाज में अथवा जीवन के विविध पक्षों में विविध प्रकार की वंचनाओं एवं अभावों से ग्रस्त हैं तथा प्रगतिशील अवसरों से वंचित, शोषित और गरीब हैं।[3] डॉ० अम्बेडकर ने दलित होने का तात्पर्य उन सामाजिक परिस्थितियों से लगाया है जो उनके जीवन में शोषण, दमन और हाशियेकरण को दर्शाती है। डॉ० अम्बेडकर ने दलित शब्द का प्रयोग अन्य कई सन्दर्भों में किया है जैसे - संप्रभुता संपन्न राज्य की बात करते हुए उन्होंनें साम्राज्यवादी संरचना में दमित वर्ग का प्रयोग किया। उच्च जाति के हिन्दू विरोधियों को संबोधित करने में बहिष्कृत, राजनीतिक क्षेत्र में अनुसूचित जाति तथा सामाजिक निर्वाचन के क्षेत्र में पद्दलित (हिन्दू व्यवस्था के कदमों तले रौंदे हुए जनसमूह) शब्द का प्रयोग किया।[4] दलित शब्द से संदर्भित यह सभी अर्थ 1935 के पूर्व तक ही प्रचलन में रहें क्योंकि 1931 की जनगणना के आधार पर तथा 1932 में तत्कालीन बंगाल की प्रान्तीय सरकार द्वारा भारतीय मताधिकार समिति के सम्मुख 'अनुसूचित जातियाँ' नामावली प्रस्तावित किये जाने के बाद[5] से 'भारत सरकार अधिनियम 1935' में इन्हें अनुसूचित जाति के रूप में अधिसूचित कर लिया गया।[6] भारतीय संविधान के अनुच्छेद 366 (24) में अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग ऐसी जातियों या समूहों के लिए किया गया है जो अत्यधिक सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक रूप से पिछड़े हुए हैं तथा अस्पृश्यता की परम्परागत प्रथा का परिणाम हैं जिन्हें परिभाषित करते हुए कहा गया है कि - "ऐसी जातियां, मूलवंश या जनजातियां अथवा जातियों, मूलवंशों या जनजातियों के भाग अभिप्रेत है, जिन्हें संविधान के प्रयोजन के लिए अनुच्छेद 341 के अधीन अनुसूचित जातियाँ समझा जाता है।"[7] 2011 की जनगणना के अनुसार देश में अनुसूचित जाति की कुल आबादी 16.6 प्रतिशत[8] (166,635,700) है।[9] उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जातियों की आबादी 41357608 (20.70 %) है[10] तथा कुल 66 जातीयां निवास करती हैं।

सामाजिक समावेशन

सामाजिक समावेशन से तात्पर्य नियोजित विकास की ऐसी प्रक्रिया से है जिसके द्वारा समाज के किन्हीं पिछड़े हुए समूहों का सशक्तिकरण इस प्रकार से करने का प्रयास किया जाता है कि वह जीवन के विविध क्षेत्र (सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक आदि) में आगे बढ़ सके तथा अन्य विकसित लोगों के समकक्ष आ सकें। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सरकार द्वारा गरीबी उन्मूलन, भूखमरी को पूर्णतया समाप्त करना, बेहतर स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की व्यवस्था, लैंगिक असमानता को समाप्त करना, स्वच्छ जल और स्वच्छता, सस्ती और स्वच्छ उर्जा, सम्मानित कार्य और आर्थिक विकास, उद्योग, नवाचार और बुनियादी ढांचें का विकास एवं असमानताओं में कमीं आदि संकेतकों पर निरंतर कार्य किये जा रहें हैं।[11] लेकिन अभी इस दिशा में संरचनात्मक एवं व्यवस्थात्मक स्तर पर और भी अधिक व्यवस्थित प्रयास किये जाने की जरुरत नजर आती है क्योंकि विकास सम्बन्धी विविध आयामों से जुड़े अध्ययनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि समावेशी विकास की गति एवं विस्तार संतोषजनक नहीं हैं। सुरजीत देब बताते हैं कि आय, रोजगार, स्वास्थ्य और शिक्षा के स्तर पर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की पहुँच गैर अनुसूचित जाति एवं जन जातियों की तुलना में काफी निम्न है तथा इन क्षेत्रों में इन्हें भेदभाव का सामना करना पड़ता है।[12] ओसामा मंजर (2017) बताते हैं कि सुविधाओं का लाभ वंचित तबकों तक समुचित रूप से पहुँच सके इस दिशा में निरंतर प्रयास जारी हैं लेकिन अनेकों असमर्थताओं और सामाजिक भेद- भाव के कारण वे इन सेवाओं से वंचित हैं और विविध प्रकार के पिछड़ेपन से ग्रसित हैं।[13] गोपाल गुरु बताते हैं की दलितों की हीनता न केवल उन्हें जीवन के विविध पक्षों में आगे बढ़ने से रोकती है बल्कि उत्पीड़क वर्ग को इनका शोषण करने का अवसर भी प्रदान करती है जिसके कारण ये असहाय और गुलामी का जीवन व्यतीत करते हैं और इनके जीवन में बहिष्करण का अत्यधिक स्थायीकरण होता है।[14] सामाजिक समावेशन का उद्देश्य समाज के वंचीत समूहों का सशक्तिकरण करना है लेकिन सामाजिक ख्र आर्थिक सशक्तिकरण से भी आगे पी. जी. जोगदंड सशक्तिकरण का अर्थ एक ऐसी मनोदशा से लगते हैं जो उनके आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता और स्वयं के अधिकारों के लिए लड़ने के लिए प्रेरित करती है। जिसमें इनके विकास एवं सशक्तिकरण की नीतियों की अहम भूमिका होती है, लेकिन अब भी सामाजिक समावेशन की प्रक्रिया में बहुत सी जातियां एवं लोग असमान रूप से वंचित हैं।[15]

उपरोक्त सभी अध्ययन अनुसूचित जातियों के सामाजिक समावेशन की स्थिति और उससे जुड़े अवरोधों के विविध आयामों को उजागर करते हैं साथ ही अध्ययन की एक ऐसी पृष्ठभूमि भी तैयार करते हैं जिसमें अनुसूचित जातियों में सामाजिक समावेशन की स्थिति का जातिवार अध्ययन किया जा सकता है। अत: प्रस्तुत शोध पत्र में अनुसूचित जातियों में सामाजिक समावेशन की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन द्वारा समावेशी नीतियों की गति और विस्तार को समझने का प्रयास किया गया है।

अधययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र में यह जानने का प्रयास किया गया है कि सामाजिक समावेशन के मापदंड पर अनुसूचित जाति की चमार, मुसहर, धोबी और खटिक जाति की तुलनात्मक स्थिति क्या है ? अध्ययन हेतु सामाजिक समावेशन के चार प्रमुख आयामों - सामाजिक, शैक्षिक, आवासीय, आय एवं रोजगार की स्थिति के आधार पर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र एवं निदर्शन का चुनाव

प्रस्तुत शोध प्रपत्र उत्तर प्रदेश राज्य के आजमगढ़ जनपद की मेहनगर तहसील के अतर्गत ग्राम बीरभानपुर में निवास करने वाली चमार, मुसहर, धोबी और खटिक जाति पर आधारित है। अध्ययन हेतु ग्राम बीरभानपुर का चयन मेहनगर तहसील में सर्वाधिक अनुसूचित जाति के आबादी वाले 14 गाँवों में से दैव निदर्शन की लाटरी विधि द्वारा किया गया है। ग्राम बीरभानपुर में अनुसूचित जाति की कुल आबादी 1471 है।[16] जिसमें प्रत्येक जाति के परिवारों की संख्या क्रमशः 120, 20, 9 व 85 है, अर्थात कुल 234 परिवार।[17] 234 परिवारों में से लगभग 50 प्रतिशत परिवार, अर्थात 168 परिवारों का चयन निदर्शन के रूप में किया गया है तथा समग्र की तरह ही प्रत्येक जाति के कुल परिवारों में से 50 प्रतिशत परिवारों का चुनाव निदर्शन के रूप में किया गया है। निदर्शन के चुनाव हेतु स्तरीकृत अथवा वर्गीकृत निदर्शन के तहत सर्वप्रथम जाति को आधार मानते हुए प्रत्येक जाति को वर्गीकृत रूप से सूचीबद्ध किया गया और इस सूची में से दैव निदर्शन प्रणाली के नियमित अंकन प्रणाली के तहत प्रत्येक जाति में से निदर्शन का चुनाव कर लिया गया। चुकी अध्ययन की इकाई व्यक्ति है इसलिए परिवार के मुखिया अथवा परिवार में निर्णायक भूमिका निभाने वाले व्यक्ति का चुनाव सूचनादाता के रूप में किया गया है।

तालिका : 1 अध्ययन क्षेत्र ग्राम बीरभानपुर में निवास करने वाली अनुसूचित जाति, कुल परिवार, कुल परिवार का 50 प्रतिशत तथा निदर्शन लिए गए परिवारों की संख्या –

क्र.सं.	जाति	कुल परिवार	कुल परिवार का 50 प्रतिशत	निदर्शन लिए गए परिवारों की संख्या
1	चमार	220	110	110
2	मुसहर	20	10	10
3	धोबी	9	4.5	5
4	खटिक	85	42.5	43
	योग	**234**	**168**	**168**

स्रोत- प्राथमिक (सर्वेक्षण पद्धति द्वारा प्राप्त तथ्यों के आधार पर)

शोध पद्धति

सामाजिक समावेशन की स्थिति के अध्ययन हेतु तुलनात्मक अनुसंधान प्राविधि का प्रयोग किया गया है। चूँकि यह अध्ययन अनुसूचित जातियों के सामाजिक समावेशन की स्थिति का वर्णन करता है इसलिए शोध की प्रकृति एवं उद्देश्य के आधार पर वर्णानात्मक शोध प्राविधि को प्रयोग में लिया गया है। अध्ययन की समस्या अथवा उद्देश्य के आधार तथ्यों का संकलन प्राथमिक स्रोत के अंतर्गत साक्षात्कार अनुसूची तथा असहभागी अवलोकन पद्धति द्वारा किया गया है। द्वितीयक स्रोत के अंतर्गत विभिन्न पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, जनगणना रिपोर्टों, इंटरनेट तथा सरकारी रिकार्डों का उपयोग किया गया है। सूचनादाताओं से प्राप्त सूचना के आधार पर तथ्यों का तलिकाकरण एवं विश्लेषण किया गया है। अनुसूचित जातियों में सामाजिक समावेशन की स्थिति से संदर्भित सूचनाओं का तालिकाबद्ध विवरण इस प्रकार है –

तालिका : 2 – क्या आपको अन्य जाति के लोग आदर सूचक शब्द से संबोधित करते है ?

उत्तर	(1) चमार	(2) मुसहर	(3) धोबी	(4) खटिक	योग
हाँ	107 (97.27%)	7 (70%)	5 (100%)	43 (100%)	162
नहीं	–	3 (30%)	–	–	3
कभी– कभी आवश्यकता पड़ने पर	3 (2.73%)	–	–	–	3
योग	**110**	**10**	**5**	**43**	**168**

स्रोत – प्राथमिक

तालिका संख्या 2 से स्पष्ट है कि सभी जातियों में कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं में से चमार जाति के 97.27 प्रतिशत, मुसहर जाति के 70 प्रतिशत तथा धोबी एवं खटिक जाति के कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि अन्य जाति के लोग उनके संबोधन में आदरसूचक शब्द का प्रयोग करते हैं, जबकि चमार जाति के 2.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि कभी ख़ कभी आवश्यकता पड़ने पर ही उन्हें आदरसूचक शब्द से संबोधित किया जाता है, वहीं मुसहर जाति के कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं में से 30 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि अन्य जातियों द्वारा उन्हें आदर से संबोधित नहीं किया जाता हैं।

तालिका : 3 - क्या आपको किसी भी तरह के छुआछूत या किसी अन्य तरह के भेद- भाव का सामना करना पड़ता है ?

उत्तर	(1) चमार	(2) मुसहर	(3) धोबी	(4) खटिक	योग
हाँ, खान – पान सम्बन्धी	4 (3.64%)	10 (100%)	_	13 (30.23)	27
नहीं	106 (96.36%)	_	5 (100%)	30 (69.77%)	141
योग	**110**	**10**	**5**	**43**	**168**

स्रोत - प्राथमिक

तालिका संख्या 3 से स्पष्ट है कि सभी जातियों में कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं में से चमार जाति के 3.64 प्रतिशत, मुसहर जाति के 10 प्रतिशत तथा खटिक जाति के 30.23 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उनके साथ आज भी खान- पान सम्बन्धी भेद- भाव किया जाता है। इसका कारण चमार, मुसहर और खटिक जातियों का परम्परागत रूप से अत्यधिक अस्वच्छ माने जाने वाले पेशे से सम्बन्ध होना माना जा सकता है, जबकि धोबी जाति के कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उनके साथ किसी भी तरह का भेद ख़ भाव नहीं किया जाता है।

तालिका: 4 - शैक्षिक स्थिति से सम्बंधित विवरण

शैक्षिक योग्यता	(1) चमार	(2) मुसहर	(3) धोबी	(4) खटिक	योग
निरक्षर	42 (38.18%)	7 (70%)	1 (20%)	35 (81.39%)	85
साक्षर	6 (5.45%)	_	_	_	6
प्राइमरी	9 (8.18%)	_	_	8 (18.61%)	17
मिडिल	8 (7.27%)	_	1 (20%)	_	9
माध्यमिक	16 (14.55%)	_	_	_	16
मैट्रिक उर्तीण	11 (10%)	_	1 (20%)	_	12
इंटर	8 (7.27%)	3 (30%)	2 (40%)	_	13
स्नातक	7 (6.36%)	_	_	_	7
स्नातकोत्तर	2 (1.82%)	_	_	_	2
अन्य	1 (0.91%)	_	_	_	1
योग	**110**	**10**	**5**	**43**	**168**

स्रोत - प्राथमिक

तालिका संख्या 4 से स्पष्ट है कि सभी जातियों के कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं में से चमार जाति के 38.18 प्रतिशत, मुसहर जाति के कुल 70 प्रतिशत, धोबी जाति के 20 प्रतिशत तथा खटिक जाति के 81.39 प्रतिशत उत्तरदाता निरक्षर हैद्य चमार जाति के 5.45 प्रतिशत उत्तरदाता साक्षर है, जबकि प्राइमरी स्तर पर चमार जाति के 8.18 प्रतिशत उत्तरदाता और खटिक जाति के 18.61 प्रतिशत उत्तरदाता शिक्षित है। मिडिल स्तर पर चमार जाति के 7.27 प्रतिशत

तथा धोबी जाति के 20 प्रतिशत उत्तरदाता शिक्षित हैं। माध्यमिक स्तर पर सभी जातियों में केवल चमार जाति के 14.55 प्रतिशत उत्तरदाता शिक्षित हैं। इंटरमीडिएट स्तर पर चमार जाति के 7.27 प्रतिशत, मुसहर जाति के 30 प्रतिशत तथा धोबी जाति के 40 प्रतिशत उत्तरदाता शिक्षित हैं। स्नातक, स्नातकोत्तर एवं अन्य स्तरों पर चमार जाति के क्रमशः 6.36, 1.82 तथा 0.91 प्रतिशत उत्तरदाता शिक्षित हैं, जबकि अन्य जातियों का प्रतिशत शून्य हैं।

तालिका : 5 - क्या आप लड़का लड़की दोनों को एक समान शिक्षा देना चाहते हैं ?

उत्तर	(1) चमार	(2) मुसहर	(3) धोबी	(4) खटिक	योग
हाँ	105 (95.45%)	4 (40%)	3 (60%)	43 (100%)	155
नहीं	–	–	–	–	–
अन्य	5 (4.55%)	6 (60%)	2 (40%)	–	13
योग	**110**	**10**	**5**	**43**	**168**

स्रोत खप्राथमिक

अन्य (प्राप्त उत्तर) - (1) लड़की नहीं हैं। (2) लडके को ही नहीं पढ़ा पा रहें हैं, लड़की को कहाँ से पढ़ाएंगे (3)निरुत्तर

तालिका संख्या 5 से स्पष्ट है कि कि सभी जातियों के कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं में से चमार जाति के 95.45 प्रतिशत, मुसहर जाति के 40 प्रतिशत, धोबी जाति के 60 प्रतिशत और खटिक जाति के कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाता लड़का- लड़की दोनों को समान शिक्षा देना चाहतें हैं, जबकि चमार के 4. 55 प्रतिशत, मुसहर जाति के 60 प्रतिशत तथा धोबी जाति के 40 प्रतिशत उत्तरदाता अन्य मत रखते हैं।

तालिका : 6 - क्या आपको या आपके परिवार में किसी को कम्प्यूटर की जानकारी है ?

उत्तर	(1) चमार	(2) मुसहर	(3) धोबी	(4) खटिक	योग
हाँ	4 (3.64%)	–	–	7 (16.28%)	11
नहीं	106 (96.36%)	10 (100%)	5 (100%)	36 (83.72%)	157
योग	**110**	**10**	**5**	**43**	**168**

स्रोत - प्राथमिक

तालिका संख्या 6 से स्पष्ट है सभी जातियों के कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं में से केवल चमार जाति के 3.64 प्रतिशत और खटिक जाति के 16.28 प्रतिशत उत्तरदाता एवं उनके परिवार के लोगों को कम्प्यूटर की जानकारी हैं, जबकि चमार जाति के 96.36 प्रतिशत, मुसहर जाति के कुल 100 प्रतिशत, धोबी जाति के कुल 100 प्रतिशत और खटिक जाति के 83.72 प्रतिशत उत्तरदाता एवं उनके परिवार में किसी को भी कंप्यूटर की जानकारी नहीं हैं।

तालिका : 7 आवासीय स्थिति का तुलनात्मक विवरण

आवास का स्वरुप	(1) चमार	(2) मुसहर	(3) धोबी	(4) खटिक	योग
पक्का	27 (24.55%)	–	3 (60%)	12 (27.91%)	42
कच्चा (खपरैल)	54 (49.09%)	–	1 (20%)	15 (34.88%)	70
मंडई	16 (14.55%)	10 (100%)	1 (20%)	16 (37.21%)	43
कच्चा और पक्का दोनों ही	7 (6.36%)	–	–	–	7
अन्य	6 (5.45%)	–	–	–	6
योग	**110**	**10**	**5**	**43**	**168**

स्रोत - प्राथमिक

प्राप्त उत्तर (अन्य) ख 1. पक्की दिवार पर सीमेंट की चद्दर

तालिका संख्या 7 से स्पष्ट है सभी जातियों के कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं में से चमार जाति के 24.55 प्रतिशत, धोबी जाति के 60 प्रतिशत और खटिक जाति के 27.91प्रतिशत उत्तरदाताओं का परिवार पक्के घरों में निवास करता हैं। चमार जाति के 49.09 प्रतिशत, धोबी जाति के 20 प्रतिशत और खटिक जाति के 34.88 प्रतिशत उत्तरदाताओं का परिवार कच्चे (खपरैल) घरों में निवास करता है। चमार जाति के 16 प्रतिशत, मुसहर जाति के कुल 100 प्रतिशत, धोबी जाति के 20 प्रतिशत और खटिक जाति के 3.21 प्रतिशत उत्तरदाताओं का परिवार मंडई में निवास करता है। चमार जाति के कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं में केवल 6.36 प्रतिशत उत्तरदाताओं का परिवार कच्चा और पक्का दोनों ही (मिश्रित) प्रकार के घरों में निवास करता है। जबकि चमार जाति के 5.45 प्रतिशत उत्तरदाताओं का परिवार अन्य प्रकार के घरों में निवास करता है।

तालिका : 8- रोजगार की प्रकृति

उत्तर	(1) चमार	(2) मुसहर	(3) धोबी	(4) खटिक	योग
स्थायी	8 (7.27%)	–	1 (20%)	–	19
अस्थायी	102 (92.73%)	10 (100%)	4 (80%)	43 (100%)	149
योग	**110**	**10**	**5**	**43**	**168**

स्रोत ख्रप्राथमिक

तालिका संख्या 8 से स्पष्ट है कि सभी जातियों के कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं में से केवल चमार जाति के 7.27 प्रतिशत और धोबी जाति के 20 प्रतिशत उत्तरदाता ही स्थायी प्रकृति के रोजगार में संलग्न हैं, जबकि चमार जाति के 92.73 प्रतिशत, खटिक जाति के 80 प्रतिशत तथा मुसहर एवं खटिक जाति के कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाता अस्थायी प्रकृति के रोजगार में संलग्न हैं।

तालिका : 9- रोजगार का प्रकार

रोजगार का प्रकार	(1) चमार	(2) मुसहर	(3) धोबी	(4) खटिक	योग
सरकारी नौकरी	2 (1.82%)	–	1 (20%)	–	3
अर्द्ध - सरकारी नौकरी	1 (0.91%)	–	–	–	1
निजी क्षेत्र में नौकरी	4 (3.64%)	–	1 (20%)	–	5
परम्परागत पेशा	1 (0.91%)	–	1 (20%)	–	2
कृषि	5 (4.55%)	–	1 (20%)	–	6
मजदूर	58 (52.72%)	9 (90%)	1 (20%)	36 (83.72%)	104
गृहणी	21 (19.09%)	–	–	–	21
अन्य	18 (16.36%)	1 (10%)	–	7 (16.28%)	26
योग	**110**	**10**	**5**	**43**	**168**

स्रोत - प्राथमिक

तालिका संख्या 9 से स्पष्ट है कि सभी जातियों के कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं में से चमार जाति के 1.82 प्रतिशत तथा धोबी जाति के 20 प्रतिशत उत्तरदाता सरकारी नौकरी में संलग्न हैं, जबकि केवल चमार जाति के 0.90 प्रतिशत उत्तरदाता ही अर्द्ध – सरकारी नौकरी में संलग्न हैंद्य रोजगार के नीजी क्षेत्र चमार जाति के 3.64 प्रतिशत तथा धोबी जाति के 20 प्रतिशत उत्तरदाता संलग्न हैं। अपने परम्परागत पेशा में चमार जाति के 0.90 प्रतिशत तथा धोबी जाति के 20 प्रतिशत उत्तरदाता संलग्न हैं। कृषि क्षेत्र में चमार जाति के 4.55 और धोबी जाति के 20 प्रतिशत उत्तरदाता संलग्न हैं। सभी जातियों के कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं में से चमार जाति के 52.72 प्रतिशत, मुसहर जाति के सर्वाधिक 90 प्रतिशत, धोबी जाति के 20 प्रतिशत और खटिक जाति के 83.72 प्रतिशत उत्तरदाता मजदूरी करते हैं। चमार जाति के 19.09 प्रतिशत उत्तरदाता गृहणी हैं, जबकि चमार जाति के 16.36 प्रतिशत, मुसहर जाति के 10 प्रतिशत तथा खटिक जाति के 16.28 प्रतिशत उत्तरदाता रोजगार के अन्य क्षेत्रों में संलग्न हैं।

तालिका : 10 आय का विवरण

आय	(1) चमार	(2) मुसहर	(3) धोबी	(4) खटिक	योग
0 - 2000	4 (3.64%)	4 (40%)	2 (40%)	22 (51.16%)	32
2001 - 5000	4 (3.64%)	4 (40%)	1 (20%)	10 (23.25%)	19
5001 - 10000	52 (47.27%)	2 (20%)	1 (20%)	11 (25.58%)	66
10001 - 15000	12 (10.91%)	–	1 (20%)	–	13
15001 -20000	1 (0.91%)	–	–	–	1
20001 – 25000	1 (0.91%)	–	–	–	1
25001 – 30000	2 (1.82%)	–	–	–	2
30001 -35000	–	–	–	–	–
35001 – 40000	1 (0.91%)	–	–	–	1
50001 से ऊपर	1 (0.91%)	–	–	–	1
अन्य	32 (29.09%)	–	–	–	32
	110	**10**	**5**	**43**	**168**

स्रोत – प्राथमिक

अन्य (प्राप्त उत्तर) – (1) निश्चित नहीं हैं

तालिका संख्या 10 से स्पष्ट है कि सभी जातियों के कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं में से चमार जाति के 3.64 प्रतिशत, मुसहर जाति के 40 प्रतिशत, धोबी जाति के 40 प्रतिशत और खटिक जाति के 51.16 प्रतिशत उत्तरदाताओं उत्तरदाताओं की आय 2000 के बीच है। चमार जाति के 3.64 प्रतिशत, मुसहर जाति के 40 प्रतिशत, धोबी जाति के 20 प्रतिशत और खटिक जाति के 23.25 प्रतिशत उत्तरदाताओं उत्तरदाताओं की आय 2001– 5000 के बीच हैद्य चमार जाति के 47.27 प्रतिशत, मुसहर जाति के 20 प्रतिशत, धोबी जाति के 20 प्रतिशत और खटिक जाति के 25.58 प्रतिशत उत्तरदाताओं उत्तरदाताओं की आय 5001– 10000 के बीच हैद्य चमार जाति के 10.91 प्रतिशत और धोबी जाति के 20 प्रतिशत उत्तरदाताओं की आय 10001 – 15000 के बीच है। चमार जाति के कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं में से 0.90 प्रतिशत उत्तरदाताओं की आय 15001 – 20000 के बीच, 0.90 प्रतिशत उत्तरदाताओं की आय 20001– 25000 के बीच, 1.81 प्रतिशत उत्तरदाताओं की आय 25001–30000 के बीच, 0.90 प्रतिशत उत्तरदाताओं की आय 35001– 40000 के बीच, 0.90 प्रतिशत उत्तरदाताओं की आय 50001 से ऊपर तथा 29.09 प्रतिशत उत्तरदाताओं की आय अन्य है।

तालिका :11 - क्या आपके पास कृषि योग्य भूमि है ?

उत्तर	(1) चमार	(2) मुसहर	(3) धोबी	(4) खटिक	योग
हाँ	94 (85.45%)	_	4 (80%)	8 (18.61%)	106
नहीं	16 (1.45%)	10 (100%)	1 (20%)	35 (81.39%)	62
योग	**110**	**10**	**5**	**43**	**168**

स्रोत - प्राथमिक

तालिका संख्या 11 से स्पष्ट है कि सभी जातियों के कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं में से चमार जाति के 85.45 प्रतिशत, धोबी जाति के 80 प्रतिशत और खटिक जाति के 18.61 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास कृषि योग्य भूमि है, जबकि चमार जाति के 1.45 प्रतिशत, मुसहर जाति के सर्वाधिक कुल 100 प्रतिशत, धोबी जाति के 20 प्रतिशत और खटिक जाति के 81.39 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास कृषि योग्य भूमि नहीं है।

तालिका : 12 क्या आपको प्रतिदिन काम मिल जाता है ?

उत्तर	(1) चमार	(2) मुसहर	(3) धोबी	(4) खटिक	योग
हाँ	8 (7.28%)	1 (10%)	3 (60%)	5 (11.63%)	17
नहीं	85 (77.27%)	9 (90%)	1 (20%)	38 (88.37%)	133
अन्य	17 (15.45%)	_	1 (20%)	_	18
योग	**110**	**10**	5	**43**	**168**

स्रोत - प्राथमिक

तालिका संख्या 12 से स्पष्ट है कि सभी जातियों के कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं में से चमार जाति के 7.27 प्रतिशत, मुसहर जाति के 10 प्रतिशत, धोबी जाति के 60 प्रतिशत और खटिक जाति के 11.63 प्रतिशत उत्तरदाताओं को प्रतिदिन काम मिल जाता है। सभी जातियों के कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं में से चमार जाति के 77.27 प्रतिशत, मुसहर जाति के 90 प्रतिशत, धोबी जाति के 20 प्रतिशत और खटिक जाति के 88.37 प्रतिशत उत्तरदाताओं को प्रतिदिन काम नहीं मिलता है, जबकि इस सम्बन्ध में चमार जाति के15.45 प्रतिशत और धोबी जाति के 20 प्रतिशत के उत्तर अन्य हैं।

तालिका : 13 - क्या आपको मिलने वाले पारिश्रमिक से आपके परिवार का जीविकोपार्जन आसानी से हो जाता है ?

उत्तर	(1) चमार	(2) मुसहर	(3) धोबी	(4) खटिक	योग
हाँ	7 (6.36%)	_	1 (20%)	_	8
नहीं	62 (56.36%)	10 (100%)	4 (80%)	43 (100%)	119
निरुत्तर	41 (37.27%)	_	_	_	41
योग	**110**	**10**	5	**43**	**168**

स्रोत - प्राथमिक

तालिका संख्या 13 से स्पष्ट है कि सभी जातियों के कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं में से चमार जाति के 6.36 प्रतिशत तथा धोबी जाति के 20 प्रतिशत उत्तरदाताओं का जीविकोपार्जन उनकों मिलने वाले पारिश्रमिक से आसानी से हो जाता है,जबकि चमार जाति के 56.36 प्रतिशत, मुसहर जाति के कुल 100

प्रतिशत, धोबी जाति के 80 प्रतिशत तथा खटिक जाति के कुल 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं का जीविकोपार्जन उनकों मिलने वाले पारिश्रमिक से आसानी से नहीं हो पाता हैद्य इस सम्बन्ध में चमार जाति के 37.27 प्रतिशत उत्तरदाता निरुत्तर हैं।

निष्कर्ष

प्राप्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि अध्ययन हेतु चयनित सभी चार जातियों में सामाजिक समावेशन के प्रभावों की गति और विस्तार समान नहीं हैं सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं जीविकोपार्जन के स्तर पर इनमें काफी असमानता मौजूद है। यदि क्रमिक रूप से अवलोकन करें तो यह पाएंगे कि असमानता के क्रम में मुसहर और खटिक जाति के लोग अन्य जातियों की अपेक्षा अत्यधिक पिछड़े हुए नजर आते हैं। सामाजिक स्तर पर यह देखा जा सकता है कि समाज में अनुसूचित जातियों के साथ होने वाले व्यवहार संबंधों में परिवर्तन हुआ है लेकिन आज भी इन्हें जाति व्यवस्था के परम्परागत व्यवहार प्रतिमानों एवं मनोभावों से प्रेरित अपमानजनक स्थितियों का सामना करना पड़ता हैद्य जिसमें मुसहर जाति के लोगों का प्रतिशत अधिक है जबकि चमार जाति के लोगों को इस स्थिति का सामना कभी ख्रकभी करना पड़ता है। असमान रूप से हो रहे ये सामाजिक परिवर्तन अनुसूचित जातियों की शैक्षिक और आर्थिक आत्मनिर्भरता का परिणाम है। लेकिन किसी भी परिवर्तन का प्रभाव किसी भी क्षेत्र पर समान रूप से नहीं पड़ता। लेकिन जब हम प्रगतिशील परिवर्तन हेतु इसे एक नियोजित प्रयास के अंतर्गत देखने का प्रयास करते हैं तो यह समझना जरुरी हो जाता है कि एक समान दृष्टिकोण से किये जा रहें प्रयासों के प्रभाव लक्षित समूहों और लोगों पर समान रूप से पड़ रहे हैं या नहीं। प्राप्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि सामाजिक समावेशन के मानदंडों पर अनुसूचित जाति की जातियों का समावेशन स्तर समान नहीं है अथवा समावेशी नीतियों का प्रभाव समान नहीं है। लिहाजा सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक आदि स्तरों पर इनमें असमानता व्याप्त है। हालाँकि सामाजिक, आर्थिक, शिक्षा एवं जीविकोपार्जन से सम्बंधित समस्याएं इन सभी जातियों में लगभग समान प्रकृति वाली नजर आती हैं, लेकिन समावेशन के सकारात्मक एवं नकारात्मक परिणामों के स्तर पर मुसहर और खटिक जाति के लोग अत्यधिक पिछड़े हुए नजर आते हैं। इसमें भी मुसहर जाति के लोग न केवल अत्यधिक पिछड़े हुए हैं बल्कि अवसरों से ज्यादा वंचित और बहिष्कृत हैंद्य सामाजिक समूहों के अत्यधिक सामाजिक समावेशन के लिए यह आवश्यक है कि समावेशी नीतियों के क्रियान्वयन में वर्गीकृत नीति की प्रकिया को अपनाया जाय। जिससे न केवल सामूहिक स्तर पर बल्कि वर्ग, जाति एवं व्यक्तिक स्तर पर समावेशी विकास के परिणामों का मूल्यांकन संभव हो सकेगा बल्कि बहिष्करण की बहुआयामिता को बारीकी से समझने में मदद भी मिल सकेगी। अत: बहिष्करण की बहुआयामिता तथा उसके दुष्प्रभावों एवं परिणामों को देखते हुए समस्या के अवलोकन सम्बन्धी परिप्रेक्ष्य, विकास योजनओं अथवा सुविधाओं एवं कार्यप्रणाली से सम्बंधित सूचनाओं की लक्षित समूहों तक व्यापक पहुंच तथा निगरानी एवं मूल्यांकन के स्तर पर और भी अधिक बारीकी से काम किये जाने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ सूची

1. अनुसूचित जातियाँ ,वार्षिक रिपोर्ट (2013-14) सामाजिक न्याय और अधिकारिता विभाग,भारत सरकार, पृ.स.31
2. Thorat,sukhdev(2011)Dalit in india,sage & Rawat Publications,New Delhi,p.2
3. पाण्डेय, राकेश (2006) आधुनिक भारत में दलित चेतना ,किशोर विद्या निकेतन, वाराणसी, पृ.24
4. चौधरी, उमाशंकर (2008) हाशिये की वैचारिकी, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ.191
5. Thorat,Sukhdev(2011) Dalit in India,Rawat & Sage Publications,NewDelhi,p.1
6. अनुसूचित जातियाँ, वार्षिक रिपोर्ट(2013-14) सामाजिक न्याय और अधिकारिता विभाग, भारत सरकार, पृ.31
7. अनुसूचित जातियाँ, वार्षिक रिपोर्ट (2013-14) सामाजिक न्याय और अधिकारिता विभाग, भारत सरकार, पृ. 3132
8. http://censusindia.gov.in/Tables_Published/ASeries/ASeries_links/t_00_005.aspx (Accessed 19 january 2020)
9. https://censusindia.gov.in/Tables_Published/A-Series/A-Series_links/t_00_005.aspx
10. http://socialjustice.nic.in/UserView/index?mid=76663
11. रिपोर्ट, वार्षिक (2018-19) नीतिआयोग, भारत सरकार , https://niti.gov.in/sites/default/files/2019-11/ANNUAL-REPORT-NITI- AAYOG- HINDI-2019.pdf, pp.37-38
12. देब, सुरजीत (2018) राज्यों में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सामाजिक समावेशन की पड़ताल, सामाजिक विमर्श, http://studysites.sagepub.in/repository/binaries/PDFs/smv/toc/07.pdf. पृ. 204
13. मंजर, ओसामा (2017) 'जो वंचित थे, वो डिजिटल इंडिया में भी वहीं रह गये', हिन्दुस्तान समाचार पत्र, 27 मई 2017, पृ.14
14. गुरु, गोपाल (2002) अवमानना के आयाम / हीनता की मनोग्रंथि, अभय कुमार (सम्पा.) आधुनिकता के आईने में दलित, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,पृ.88 -113
15. जोगदंड, पी.जी. (2010) आरक्षण नीति एवं दलितों का सशक्तिकरण, एस.एम.माइकल (सम्पा) आधुनिक भारत में दलित, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ.291
16. https://www.census2011.co.in/data/subdistrict/970-mehnagar-azamgarh-uttar-pradesh.html
17. शोधकर्ता द्वारा सर्वेक्षण विधि से ज्ञात किया गया है।

सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता की समस्या: एक समाजशास्त्रीय विवेचना

आलोक कुमार श्रीवास्तव

सहायक प्रोफेसर समाजशास्त्र, किशोरी रमण स्नातकोत्तर महाविद्यालय मथुरा (उ.प्र)

वस्तुनिष्ठता किसी भी प्रकार के शोध की गुणवत्ता की एक अनिवार्य कसौटी है। अति संक्षेप में वस्तुनिष्ठता का तात्पर्य तथ्य आधारित, मूल्य निरपेक्ष एवं पूर्वाग्रह रहित अध्ययन से है। प्राकृतिक विज्ञानो से संबंधित शोधों में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति करना तुलनात्मक रूप से सरल है, इसका प्रमुख कारण है प्राकृतिक विज्ञान में अध्ययन किए जाने वाले विषयवस्तु की प्रकृति। उल्लेखनीय है की प्राकृतिक विज्ञान में अध्ययन किए जाने वाले मुद्दों को मात्रात्मक रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है, उसका निरीक्षण व परीक्षण मात्र बाहरी अवलोकन द्वारा संभव है तथा साथ ही साथ इन मुद्दों से संबंधित संकेतको का निर्माण भी बड़ी आसानी से किया जा सकता है। वही दूसरी ओर जब बात सामाजिक विज्ञानों की जाती है तो गुणवत्ता का यह तथाकथित अनिवार्य पहलू (वस्तुनिष्ठता) एक समस्यात्मक स्वरूप ग्रहण कर लेता है।

सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता की समस्या का तार्किक विश्लेषण करने से पूर्व यह आवश्यक है की विभिन्न विद्वानों द्वारा सामाजिक शोध में वस्तुनिष्ठता को प्राप्त करने की दिशा में किए गए उनके प्रयासों को रेखांकित किया जाए। अगस्त कोंत ने "प्रत्यक्षवाद" की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए यह बताया प्राकृतिक घटना एवं सामाजिक घटना दोनों में ही कुछ नियम को देखा जा सकता है, प्रत्येक घटना के पीछे कोई न कोई कारण है जिसकी व्याख्या प्रत्यक्ष अवलोकन पर आधारित विश्लेषण द्वारा की जानी चाहिए। प्राकृतिक विश्व एवं सामाजिक विश्व दोनों में ही व्यवहार का नियंत्रण समान सिद्धांत द्वारा होता है, यही कारण है कि मानव समाज के अध्ययन के लिए भी प्राकृतिक विज्ञान में प्रयुक्त पद्धतिशास्त्र को अपनाया जाना चाहिए। मानव एवं पदार्थ दोनों ही प्राकृतिक विश्व के भाग हैं। जिस प्रकार पदार्थ वाह्य उद्दीपनों के प्रति प्रतिक्रिया देता है, ठीक उसी प्रकार मानव भी अपनी प्रतिक्रिया देता है। इसलिए स्पष्ट है कि सामाजिक व प्राकृतिक व्यवहार का निर्धारण तथा उसकी व्याख्या कार्य - कारण संबंधों के आधार पर की जा सकती है।

अगस्त कोंत द्वारा प्रतिपादित प्रत्यक्षवादी पद्धति को ना केवल ईमाइल दुर्खीम ने विस्तार दिया बल्कि इसे शोध पद्धतिशास्त्र के केंद्रीय पक्ष के रूप में स्थापित भी किया। इसी क्रम में उन्होंने "सामाजिक तथ्य" की अवधारणा को निरूपित किया। उल्लेखनीय है कि 'वाह्यता' तथा 'बाध्यता' सामाजिक तथ्य के दो प्रमुख अनिवार्य तत्व है। दुर्खीम का मुख्य तर्क यह है कि सामाजिक वास्तविकता व्यक्ति के बाहर है, अत: इसका वस्तुनिष्ठ अध्ययन संभव है। सामाजिक वास्तविकता की व्याख्या व्यक्तिगत अथवा मनोवैज्ञानिक आधार पर नहीं की जानी चाहिए। सामाजिक तथ्यों के वस्तुनिष्ठ अध्ययन के लिए दुर्खीम ने एक सूत्र वाक्य दिया "सामाजिक तथ्य को वस्तुओं की तरह देखो"। इसका तात्पर्य है कि सामाजिक तथ्यों का अध्ययन आनुभविक होना चाहिए न की दर्शनशास्त्रीय अथवा मनोवैज्ञानिक। दुर्खीम का मानना है कि विचारों को तो दर्शन शास्त्रीय आधार पर जाना जा सकता है परंतु वस्तुओं को विशुद्ध मानसिक क्रिया द्वारा नहीं समझा जा सकता, उन्हें समझने के लिए बुद्धि से अलग आंकड़ों की आवश्यकता होती। दुर्खीम रेखांकित करते हैं कि मनुष्य वस्तुओं के संबंध में विचार बनाए बिना (जिससे हम अपने व्यवहार का नियंत्रण करते है), वस्तुओं के बीच नहीं रह सकता। लेकिन चुकी ये विचार जिसका यह प्रतिनिधित्व करते हैं की तुलना में हमसे नजदीकी रूप से जुड़े हैं तथा हमारी मानसिक पकड़ में हैं, हम स्वाभाविक रूप से इसे ही वास्तविक मान लेते हैं। वस्तुओं के अवलोकन, व्याख्या तथा उसकी तुलना के स्थान पर हम लोग अपने विचारों, उसके संयोजन तथा उसके विश्लेषण पर आश्रित हो जाते हैं। इसी समस्या के परिप्रेक्ष्य में दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं की तरह देखने का सुझाव दिया है।

निष्कर्ष रूप में यदि कहे तो प्रत्यक्षवादी ज्ञान मीमांसा ही मात्रात्मक/परिमाणात्मक शोध का आधार है तथा वस्तुनिष्ठ अध्ययन जिसका मूल उद्देश्य है। समाजशास्त्र में वृहद /समष्टि समाजशास्त्रीय सिद्धांत का आधार वस्तुत: प्रत्यक्षवादी पद्धति ही है, जिसका तर्क है कि सामाजिक वास्तविकता का वस्तुनिष्ठ अध्ययन संभव है क्योंकि सामाजिक वास्तविकता की प्रकृति वस्तुनिष्ठ है।

उपरोक्त के अतिरिक्त सांख्यिकी के प्रयोग के द्वारा गुणात्मक प्रकृति की सामाजिक घटनाओं को मात्रात्मक रूप में अभिव्यक्त करने का दावा प्रस्तुत किया जाता है। सामाजिक वास्तविकता से संबंधित पक्षों के मापन हेतु कुछ स्केल भी विकसित किए गए हैं उदाहरण के लिए बोगार्डस का सामाजिक दूरी पैमाना, लिकर्ट पैमाना एवं जे. एल.मोरेनो का 'समाजमिती' आदि। इसके अतिरिक्त विभिन्न चरो के संबंध को दर्शाने हेतु कार्ल पियरसन सहसंबंध गुणांक। वर्तमान में SPSS (STATISTICAL PACKAGE IN SOCIAL SCIENCES) भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है।

स्पष्ट है कि सामाजिक शोध में वस्तुनिष्ठता लाने हेतु काफी प्रयास किया गया परंतु प्रश्न यह है कि क्या वास्तव में सामाजिक वास्तविकता का वस्तुनिष्ठ अध्ययन संभव है? इस प्रश्न का आधार यह है कि सामाजिक वास्तविकता की प्रकृति विषयनिष्ठ है, अत: एक विषयनिष्ठ पक्ष का वस्तुनिष्ठ अध्ययन कैसे संभव हो पाएगा।

सामाजिक शोध में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति करने में कई प्रकार की चुनौतियां हैं, इनका व्यवस्थित विश्लेषण बिंदुवार ही संभव है। अति संक्षेप में सामाजिक शोध में वस्तुनिष्ठ अध्ययन के समक्ष कुछ प्रमुख चुनौतियां निम्नलिखित हैं:

(1) प्राकृतिक विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान की विषय वस्तु में नितांत भिन्नता है। एक ओर जहां प्राकृतिक विज्ञानों की विषय वस्तु मूलत: पदार्थ है वहीं दूसरी ओर सामाजिक विज्ञानों की विषय वस्तु मानव समाज है। प्राकृतिक विज्ञानों के अनुसंधान में घटनाओं को मात्र बाहरी ढंग से प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा विश्लेषित किया जा सकता है। पदार्थ की चुंकि अपनी कोई चेतना नहीं होती , अत: बाहरी उद्दीपन के प्रति इसके व्यवहार के आधार पर बहुत सरल तरीके से विश्लेषण किया जा सकता है। उदाहरण के लिए भौतिक विज्ञान में यह बता पाना बड़ा आसान है की एक निश्चित द्रव्यमान की वस्तु पर कितना बल कार्य करेगा (बल= द्रव्यमानञ्त्वरण)। चुकी सामाजिक विज्ञानों की विषय वस्तु मानव समाज है, जो चेतनायुक्त है, वह केवल बाहरी उद्दीपन के प्रति मात्र प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता जिस ढंग से पदार्थ करते हैं, मनुष्य अर्थ के संदर्भ में देखता है, अनुभव करता है और निर्वचन करता है। दूसरे शब्दों में सामाजिक वास्तविकता के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाता है। अर्थ का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता, इसे कभी भी कर्ता से अलग करके नहीं देखा जा सकता।

इसके अतिरिक्त मानव व्यवहार के विषय में कुछ सटीक व्याख्या कर पाना बहुत कठिन है क्योंकि मानव व्यवहार में एक निश्चित प्रतिमान को ढूंढ पाना बहुत कठिन है, यद्यपि कुछ विद्वानों जैसे राबर्ट किंग मर्टन ने 'सामाजिक क्रिया सिद्धांतश एवं 'प्रतिमान चरश से संबंधित अपने विश्लेषण के द्वारा मानव व्यवहार में प्रतिमान को ढूंढने का प्रयास किया था परंतु मानव व्यवहार के बहुत सारे आयाम ऐसे हैं जिनमें प्रतिमान को ढूंढ पाना बहुत कठिन है।

(2) प्राकृतिक विज्ञानों के शोध में चरो को मात्रात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया जा सकता है एवं इस आधार पर कुछ संकेतकों का विकास भी किया जा सकता है, उदाहरण के लिए किसी पदार्थ का मापन विभिन्न आधारों जैसे तापमान, द्रव्यमान, आयतन एवं घनत्व आदि पर किया जा सकता है इसी प्रकार रसायन विज्ञान में लिटमस टेस्ट से अम्लीयता अथवा क्षारीयता की जांच की जा सकती है। मनुष्य के शरीर की सामान्य तापमान एवं ज्वर की स्थिति में क्या तापमान होगा, इसके लिए भी संकेतांक हैं।

सामाजिक अनुसंधान में चरो के संकेतांक को विकसित करने में कई प्रकार की समस्याएं हैं, इस संबंध में सबसे प्रमुख समस्या तो यह है कि किसी भी चर की सभी विशेषताओं का रेखांकन कर पाना अत्यंत कठिन है। उदाहरण के लिए वैश्विक स्तर पर यद्यपि प्रसन्नता सूचकांक को विकसित किया गया है परंतु अब भी यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है की प्रसन्नता को निर्धारित करने वाले कारकों की सटीक पहचान कर पाना अभी भी कठिन है, उससे भी कठिन है उन कारकों से संबंधित संकेतांको का विकास । सामाजिक संकेतकों के विकास संबंधी समस्या के अतिरिक्त एक अन्य बिंदु है जिसके संबंध में रामकृष्ण मुखर्जी के विचार अत्यंत प्रासंगिक हैं,वे लिखते है एक सामाजिक संकेतक का निर्माण सहसंबंध मैट्रिक्स के द्वारा हो सकता है लेकिन इस मैट्रिक्स की उपयोगिता क्या होगी?ये संबंध भले ही सांख्यिकी रूप से महत्वपूर्ण है, परंतु क्या ये संबंधित शोध के प्रमुख सामाजिक क्षेत्रों का निर्वचन करते हैं अथवा इसके केवल एक तिहाई का। इसका कारण यह है कि सामाजिक शोध में सहसंबंध गुणांक सामान्यत: 0.7 से नीचे ही रहता है अधिकांश मामलों में तो यह 0.5 रहता है।

(3) सामाजिक घटनाओं की गुणात्मक प्रकृति एवं साथ ही साथ इसका गत्यात्मक पहलू सामाजिक शोध में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति में समस्या उत्पन्न करते हैं। सामाजिक वास्तविकता विषयनिष्ठ होती है क्योंकि सामाजिक वास्तविकता की रचना में चेतना की भूमिका सर्वोपरि होती है, यही कारण है कि प्रघटनाशास्त्र का यह मानना है कि सामाजिक वास्तविकता को कभी भी प्रत्यक्ष तरीके से अवलोकन के आधार पर विश्लेषित नहीं किया जा सकता, इसे जानने का एकमात्र आधार है मनुष्य की चेतना। इस संबंध में अल्फ्रेड शूट्ज एवं पीटर बरजर और थॉमस लकमैन का उल्लेख किया जा सकता है।

(4) सामाजिक शोध में वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने की दिशा में एक अन्य प्रमुख समस्या यह उत्पन्न होती है की किसी भी प्रकार की सामाजिक वास्तविकता के किसी भी पक्ष के अध्ययन में तथ्यों का मूल्यों से पृथक्करण संभव नहीं हो पाता। प्रत्येक शोधकर्ता का एक सामाजिक परिवेश होता है, जो उसके विचारों को एक निश्चित आकार देता है। लिंग, धर्म, प्रस्थिति,वर्ग,जाति,नृजातीयता, पारिवारिक पृष्ठभूमि, क्षेत्र एवं शैक्षणिक स्थिति इत्यादि कुछ ऐसे महत्वपूर्ण सामाजिक निर्धारक हैं जो एक शोधकर्ता के शोध को मूल्य उन्मुख बना देते , ऐसी स्थिति में शोध वस्तुनिष्ठ होने के स्थान पर विषयनिष्ठ हो जाता है। वहीं दूसरी ओर ऐसा भी संभव है की अध्ययन किए जाने वाले समूह अथवा समुदाय द्वारा शोधकर्ता प्रभावित हो जाए और उसका शोध तथ्यात्मक होने के स्थान पर मूल्यात्मक हो जाए।

(5) विश्वसनीयता (तमसपंइपसपजल) तथा वैधता (अंसपकपजल) ऐसे दो महत्वपूर्ण मापदंड है जिनका प्रयोग तथ्य संकलन के संदर्भ में किया जाता है। उल्लेखनीय है कि विश्वसनीयता का तात्पर्य उस स्थिति से है जब किसी प्रयोग को बार-बार करने पर भी परिणाम हमेशा एक जैसा प्राप्त हो, वहीं दूसरी ओर वैधता का तात्पर्य उस स्थिति से है जिसमें एकत्रित किए गए आंकड़ों में सुसंगतता(बवउचंजपइपसपजल) हो, दूसरे शब्दों में जो आंकड़े एकत्रित किए गए हैं वह अध्ययन किए जाने वाले समूह से संबंधित हो। विश्वसनीयता और वैधता दोनों ही एक गुणवत्ता युक्त शोध की आधारशिला है, परंतु दोनों में संतुलन होना आवश्यक है, क्योंकि अक्सर ऐसा होता है की अध्ययन को वस्तुनिष्ठ बनाने के लिए विश्वसनीयता पर अधिक जोर दिया जाता है, जिसके फलस्वरूप कई बार अध्ययन मैं वैधता नहीं रह जाती। यदि सूक्ष्म विश्लेषण किया जाए तो हम पाते हैं कि वैधता एक ऐसा गुण है जो संदर्भगत अध्ययन की मांग करता है, यही संदर्भगत आयाम अध्ययन मे विषयनिष्ठता ले आता है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि आंकड़ों में विश्वसनीयता लाने के लिए संरचित प्रश्नावली का उपयोग किया जाता है जबकि आंकड़ों में वैधता लाने के लिए असंरचित तथा मुक्त प्रश्नावली का प्रयोग किया जाता है।

(6) अवधारणाओं की निश्चितता, वस्तुनिष्ठ अध्ययन की एक अनिवार्य शर्त है। प्राकृतिक विज्ञान में तो निश्चित मानक अवधारणाएं विकसित की जा चुकी हैं, परंतु सामाजिक विज्ञानों में अभी भी मानक अवधारणाओं का अभाव है जिसके फलस्वरूप वस्तुनिष्ठ अध्ययन में कई प्रकार की समस्याएं

उत्पन्न हो जाती हैं। उदाहरण के लिए विवाह की अवधारणा को लिया जा सकता है परंपरागत रूप में विवाह के अंतर्गत दो विषम लिंगियो के मध्य के संबंध अत्यंत महत्वपूर्ण थे, परंतु वर्तमान में समलैंगिक संबंधों के कारण विवाह की परंपरागत परिभाषा पर पुनर्विचार करने की स्थिति आ गई है। स्पष्ट है कि समाज विज्ञानों में प्रयुक्त अवधारणाएं कोई स्थिर अवधारणाएं नहीं है क्योंकि समाज परिवर्तनशील है, फल स्वरूप इनमें प्रयुक्त अवधारणाएं भी गत्यात्मकता की मांग करती है।

(7) शोध में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति करने का सर्व प्रमुख आधार वैज्ञानिक पद्धति है उल्लेखनीय है कि विज्ञान कार्य करने का सर्वोत्तम ढंग ढूंढने का प्रयास करता है। सामाजिक वास्तविकता की विश्लेषण की उत्तर आधुनिकतावादी परिप्रेक्ष्य द्वारा इसी बात की आलोचना की गई है। उत्तर आधुनिक परिप्रेक्ष्य का यह तर्क है कि कार्य करने का कोई भी एक सर्वोत्तम ढंग नहीं होता, अति संक्षेप में उत्तर आधुनिक परिप्रेक्ष्य एक कारकीय व्याख्या के स्थान पर बहुकारकीय व्याख्या पर बल देता है। वर्तमान में अंतर अनुशासनात्मक शोध की बढ़ती हुई मांग इस विचार को और प्रासंगिक बना देती है।

(8) सामाजिक शोध में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति में एक अन्य सर्वप्रमुख समस्या यह है कि इसमें शोध हेतु जो भी आंकड़े एकत्रित किए जाते हैं वह समग्र का अपेक्षित प्रतिनिधित्व नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में सामाजिक वास्तविकता का समग्र विश्लेषण नहीं हो पाता, इससे केवल आंशिक सत्य का ही पता चल पाता है। यह सर्वथा संभव है कि ऐसा करने में जो पक्ष छूट गया हो वह शोध के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हो।

(9) प्रयोगशाला एवं नियंत्रित अध्ययन न केवल एक दूसरे के पूरक है बल्कि वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने के लिए यह अनिवार्य भी हैं। प्राकृतिक विज्ञान में तो प्रयोगशाला एवं नियंत्रित अध्ययन एक सामान्य बात है, परंतु जहां तक सामाजिक विज्ञान का प्रश्न है, यहां इसका नितांत अभाव सा दिखता है। ऐसी स्थिति में सामाजिक वास्तविकता के अध्ययन में एक शोधकर्ता किस प्रकार से प्रयोग कर पाएगा, यह एक विचारणीय प्रश्न है। प्रयोगशाला एवं नियंत्रित अध्ययन के अभाव में शोध में विश्वसनीयता ला पाना लगभग असंभव सा है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि समाज विज्ञानों से संबंधित अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता प्राप्त करना, प्राकृतिक विज्ञान की तुलना में कठिन है। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि हमें वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति से विमुख हो जाना चाहिए। यदि हम ऐसा करते हैं तो निश्चित रूप से हमारा शोध एक शोध ना होकर मात्र एक अनुमान ही रह जाएगा। वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि एक शोधकर्ता पूर्वाग्रह और विषयनिष्ठता के विभिन्न स्रोतों के प्रति चौतन्य रहे। अध्ययन में व्यक्तिगत प्रभाव को दूर करने का सबसे सशक्त माध्यम यह है कि न केवल विभिन्न सिद्धांतों को शामिल किया जाए बल्कि इसका मूल्यांकन भी किया ।मानक पदों और अवधारणाओं के प्रयोग, परिमाणात्मक पद्धति के प्रयोग, परीक्षणात्मक पद्धति के प्रयोग तथा मानक पैमानों के प्रयोग के द्वारा निश्चित रूप से कुछ हद तक वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति संभव है। यद्यपि सामाजिक वास्तविकता की प्रकृति विषयनिष्ठ है परंतु इसके अध्ययन में वस्तुनिष्ठता रखने का प्रयास निश्चित रूप से एक समाज वैज्ञानिक को करना चाहिए तभी जाकर समाज विज्ञानों में भी प्राकृतिक विज्ञानो की भांति कुछ मानक शोध किए जा सकेंगे।

संदर्भ सूची:

(1) Durkheim, Emile (1982): "The Rules of Sociological Method" translated by W.D Halls
(2) Ghosh, B. N (1986) : "A Dictionary of Research Method"
(3) Giddens, Anthony (2009): "Sociology"
(4) Goode ,W.J. and Hatt, P.K.(1987) : "Methods in Social Research"
(5) Haralambose , M and Heald,R.M (1980) : "Sociology: Themes and Perspective"
(6) Mukherjee, Ram Krishna (1975): " Social Indicators"
(7) Ritzer, George (2011) : "Sociological theory"
(8) Weber ,Max (1949): "Methodology of the Social sciences" translated by Edward A Shils and Finch
(9) Young, P.V (1986) : "Scientific Social Surveys and Research"

औपनिवेशिक काल में कम्पनी द्वारा किए गये भू-राजस्व सम्बन्धित कार्यो का मूल्यांकन

शरद यादव

शोध छात्र, पाश्चात्य इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

सार

इस शोध पत्र के अर्न्तगत हम अंग्रेजो (कम्पनी) द्वारा भारत में अपनायी गयी भू-राजस्व सम्बन्धित कार्यो के मूल्यांकन का अध्ययन करेगें। कम्पनी को भारत में शासन हेतु पैसे की आवश्यकता थी जो पहले इंग्लैण्ड से आता था अगर अब कम्पनी ने इन भू-राजस्व प्रणालियों को लागू कर अपने पैसे की समस्या का समाधान भारत में ही कर लिया। इसी के अर्न्तगत कम्पनी ने भारत में कुछ भू-राजस्व प्रणालियाँ लागू की जिसमें लगान की दर समान नहीं थी। कम्पनी को अधिक से अधिक लाभ कमाना था। यह प्रणालियों के माध्यम से भारतीय कृषकों को खूब लूटा गया, उन पर मनमाना लगान वसूल किया गया, जिसके कारण समाज में गरीबी भुखमरी, और अकाल जैसी स्थितियाँ पैदा हो गयी, दासप्रथा पनपी राजस्वी संग्रह अत्याचार के बल पर वसूला जाता था नियम बहुत कड़े थे, इन सबने भारतीय ग्रामीण समाज में बड़े परिवर्तन ला दिये इसने किसानों की कमर तोड दी, साथ-साथ भारतीय कृषि के क्षय के लिए भी जिम्मेदार रही, इन सबके बीच कम्पनी को एक वफादार वर्ग के रूप में जमीदारों का एक वर्ग मिला। यह प्रणालियाँ कम्पनी के लिए बहुत फायदेमंद साबित हुई मगर भारतीयों के लिए बहुत दुखदायी शोषणकारी रही। विलियम हण्टर ने भारतीय समाज (जनता) की गरीबी और बर्बादी के लिए अंग्रेजी शासन की नीति को ही पूर्णत: जिम्मेदार बताया।

प्राचीन काल से ही भारत एक कृषि समृद्ध सम्पन्न देश रहा है। भारत की जनसंख्या का एक विशाल हिस्सा प्राचीन काल से ही कृषि पर निर्भर रहा है। प्राचीन काल में राजा को उत्पादन के तहत 1/6 से 1/12 के बीच भू-राजस्व प्राप्त होता था। कृषि पर सामूहिक अधिकार होता था धीरे-धीरे जैसे-जैसे भारत में आक्रान्ताओं का आक्रमण हुआ उसके साथ ही यहॉ की लगान व्यवस्था में निरन्तर परिवर्तन देखने को मिलने लगा।

मध्यकालीन भारत के इतिहास को भू-राजस्व पद्धति में कई बदलाव देखने को मिलते है साथ-साथ कुछ नई पद्धतियो का प्रयोग भी किया जाने लगा। गल्ला वख्शी, मसाहत नस्क आदि पद्धतियों का प्रयोग मध्यकालीन भारत में किया गया।

मुगलों ने अपने शासन के क्षेत्रों में कही पर समान तो कही अलग-अलग पद्धतियों का प्रयोग किया मुगलों ने लगान दर भी कही 1/6-1/12 तो कही 1/3 थी मगर अधिकांशता 1/3 ही लिया जाता था। कभी-कभी यह 1/2 तक भी वसूला गया।

भारत में अंग्रेजों का आगमन एक व्यापारी वर्ग के रूप में हुआ और बस उनका उद्देश्य रियायतें या अधिक से अधिक व्यापार को बढ़ाना और अधिक लाभ कमाना था जिसके लिए उन्होंने हर संभव प्रयास कर अग्रेजी कोठी, कारखाना आदि स्थापित करना शुरू किया।

धीरे-धीरे उनके उद्देश्य बदलने लगे और जो उनका मूल था। उससे हट कर उन्होंने यहाँ लूट खसोट शुरू कर दी। कम्पनी को यहाँ शासन हेतु पैसा की जरूरत भी थी। और उसे अपने व्यापार हेतु इंग्लैण्ड से पैसा लाना होता था मगर जैसे ही बंगाल विजय के साथ इनकी यह समस्या का मानो निदान हो गया क्योकि अब उसे इंग्लैण्ड से धन लाने की जरूरत नही थी क्योकि अब इसे निजामत और दीवानी के अधिकार मिल गये। जिससे अब उसे धन सम्बन्धित समस्याओं का निदान भारत से ही होने लगा।

उस समय भातर की सबसे बड़ी समस्या लगान व्यवस्था थी और यह ही शासन का आधार थी। अब अंग्रेजों के समक्ष सबसे बड़ी समस्या लगान व्यवस्था की थी।

अंग्रेजों से पूर्व भारत में भू-राजस्व की जो पद्धति अपनाई जाती थी अब उस से इतर अंग्रेजों को एक नई भू-राजस्व पद्धति की जरूरत थी और उस समय भू-राजस्व पद्धति की जरूरत थी और उस समय भू-राजस्व की समस्या सबसे ज्यादा चरम पर बंगाल में थी।

अंग्रेजों द्वारा कई पद्धति अपनाई गई जिसमें पहली वारेन होस्टिंग्स के द्वारा अपनाई गई ठेके पर जमीन देने की पद्धति थी इसके समय में भी परिवर्तन किया गया परन्तु यह सफल न हो सकी और इसे बाद में बंद करना पड़ा। इसके बाद तीन अन्य व्यवस्थायें भू-राजस्व प्रणाली के तहत अपनाई गयी। 1765 में बंगाल में स्थायी बन्दोबस्त/जमीदारी प्रथा अपनाई गई इसमें जान शोर, चार्ल्स ग्रंट, लार्ड कार्नवालिस शामिल थे।

इस व्यवस्था में जमीदारों के साथ 10 वर्षीय समझौता किया गया बाद में इसे स्थायी कर दिया गया। इस व्यवस्था के तहत बंगाल, बिहार उडीसा, उत्तर प्रदेश के बनारस कर्नाटक के उत्तरी भागों में लागू किया गया। 19 प्रतिशत भूमि इस व्यवस्था के तहत ली गई।

इस व्यवस्था को करते वक्त कम्पनी ने सोचा की उसे एक निश्चित आय प्राप्त होगी और उसे कृषकों से कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क की आवश्यकता नही होगी इसके साथ ही अगर किसी भी तरह की (प्राकृतिक या मानवीय) आपदा के समय उन्हे पूरी आय मिलेगी अर्थात उन्हे किसी दशा में कोई नुकसान नही झेलना पड़ेगा और जमींदार वर्ग के रूप में एक वफादार वर्ग उन्हे भविष्य के लिए मिलेगा जो जरूरत पड़ने पर उनका साथ देगा।

इस व्यवस्था के तहत अग्रेजों को एक निश्चित आय प्राप्त होने तो लगी मगर उनकी यह आय निश्चित थी यानि उनका हिस्सा नही बढ़ा। दूसरी ओर जमीदारों ने किसानों से इतना अधिक वसूली कर वसूल कर उन्हे बुरी दशा में लाकर खडा कर दिया कि उनके पास खाने एवं अगले वर्ष बोने तक को अनाज नही बचता था किसान भूखो मरने लगें वह उधार ऋण के इस जाल में फंस कर बर्बाद हो गये।

बंगाल के कृषकों को कर के रूप में भूमि के किराये की 90प्रतिशत अदायगी ने बर्बाद कर दिया स्थायी बन्दोबस्त के लागू होने के 30 वर्ष बाद विशप हेयर ने लिखा कि किसान अपने प्रतिद्वन्दी जमीदारों की मुकदमेंबाजी द्वारा हुए उत्पीडन से बर्बाद हो गये तथा उन्हे जबरदस्ती उनके खेतों से बेदखल किया जाने लगा यदि वे अग्रिम भुगतान या रूपया नही देगें। ताकि उनसे 6 माह में दो या तीन बार धन वसूल किया जा सके इस प्रकार कार्नवालिस का मत बन्दोबस्त बहुत ही नुकसान देह रहा।

जमीदारों ने इतना अधिक वसूली की और ठाठ बाट से रहने लगे वही कम्पनी की आय में कोई वृद्धि नही हुई और वही किसान तो पूर्णत: बर्बाद हो गये यह व्यवस्था अन्तत: किसी के लिए भी अधिक फलदायी साबित न हो सकी स्थायी बन्दोबस्त ने किसानों की मानो कमर तोड दी यह व्यवस्था काफी दुख दायी रही और आगे चलकर इसे कम्पनी द्वारा समाप्त कर दिया गया।

इस व्यवस्था के तहत कम्पनी को कोई अधिक मुनाफा नही मिल सका बस इसके तहत कम्पनी को एक निश्चित आय एवं बार बार लगान निर्धारित करने से छुटकारा मिला इसके अलावा यह व्यवस्था कम्पनी के लिए अधिक लाभकारी नही रही दूसरी ओर यह भारतीय कृषि एवं कृषकों के हालात को खराब करने में बहुत महत्वपूर्ण रही जिसके चलते कोई भी वर्ग बिना प्रभावित हुए बच न सका। इस क्रम में कम्पनी द्वारा एक और नई व्यवस्था के नाम से जाना जाता है इस व्यवस्था के तहत मद्रास, बम्बई एवं असम के कुछ भागों में लागू किया गया।

इस व्यवस्था के तहत इस बार रैयतों से सीधा बन्दोबस्त किया अब भूमि पर मालिकाना अधिकार दिये गये अर्थात् किसानों को भूमि का स्वामी बनाया गया। भूमि की माप तौल व उससे उत्पादित फसल का आकलन कम्पनी के कर्मचारियों की देख रेख में किया गया भूमि पर नगद कर लगाया गया बिना यह जाने कि भूमि से होने वाला उत्पादन फैला है। कर की मात्रा फसल के 4/5 या 5/6 भाग के बराबर थी यह व्यवस्था 51 प्रतिशत भूमि पर लागू की गई। इस व्यवस्था के तहत सरकार बिचौलियों (जमीदारों) को समाप्त करना जो कि अधिक वसूली से अच्छी स्थिति में पहुॅच गये ये अब सरकार इस अतिरिक्त वसूली को स्वयं पाना चाहती थी।

सरकार द्वारा भूमि पट्टे पर स्थानीय जमीदारों व यूरोपीय प्रशासनिक अधिकारियों को दे दी। सरकार के साथ साथ अनभिज्ञ व नये कर संग्रह कर्ता ने राजस्व के रूप में अधिक धन देने वाले किसानों पर अनेक प्रकार के अत्याचार किए यह व्यवस्था 1764 में असफल हुई जब कर्नाटक में स्थानीय शासकों के अन्तर्गत कृषि का विकास हुआ और समृद्धि में बढ़ोत्तरी हुई और बहुत सी चीजों का व्यापार भी किया जाता था।

1798 में कर की मात्रा इतनी अधिक थी कि पर्याप्त भूमि होने के बावजूद भी किसान अपने लिए कुछ भी नही बचा पाते थे। 1853 में टकर ने यह निष्कर्ष निकाला कि राजस्व व्यवस्था के मौजूदा स्वरूप ने देश में गरीबी फैलाई किसान अपनी परेशानी के समय के लिए कुछ भी नही बचा पाते थे। उन्ही अकाल व अन्य किसी प्राकृतिक आपदा के कोई भी सुरक्षा या सहायता नही प्रदान की जाती थी।

इस व्यवस्था की कमियों में मुख्यत: ऋण चुकाने झूठ बोल कर ठगने व छल कपट का सहारा लेने जैसे तरीके असीमित थे। जबकि मद्रास के संगहकर्ता ने किसानों पर विश्वास कर उन्हे फायदे दिये थे। अत्याचार व लूट घसोट का शासन दिन प्रतिदिन बढता गया। राजस्व उगाही के लिए खुल कर अत्याचार किए गये।

राजस्व संग्रह से भय व अत्याचार के द्वारा कृषकों का उत्पीडन किया गया। 1853 में भारतीय आयोग ने रिपोर्ट दी कि राज्य के राजस्व संग्रह में अत्याचार अधिक है तथा पीडित लोगों को काई राहत नही दी जाती है 1836 से 1870 के बीच अंग्रेजों ने भू-राजस्व को निचोडना प्रारम्भ कर दिया और भू-राजस्व में 32 प्रतिशत की वृद्धि कर कुल भू-राजस्व को 2032000 पौण्ड प्रति वर्ष तक बढाकर जनता को गरीबी में ढकेल दिया।

गरीबी, परेशानी, अकाल, भुखमरी आदि राजस्व व्यवस्था की ही देन थी जिन्होने देश को पूरी तरह से बर्बादी के कगार पर पहुॅचा दिया यह व्यवस्था बद से बदलर होती चली गयी।

मगर अंग्रेजी शासन फिर भी अधिक से अधिक कर वसूलना रहा और मगर अंग्रेजी शासन फिर भी अधिक से अधिक कर वसूलना रहा और अंग्रेज न्यायालय में इस भयावह परिस्थिति में भी कोई हस्तक्षेप नही किया ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत बम्बई और दक्कन में गरीबी व अत्याचार स्थिर रहे।

बिलियम हण्टर ने भारतीय जनता की गरीबी और बर्बादी के लिए अंग्रेजी शासन की नीति को ही पूर्णत: जिम्मेदार बताया। दक्कन के कृषको को राहत न मिल पाने में वास्तविक कारण सरकार द्वारा कृषकों के पास उनके परिवार के भरण पोषण के लिए वर्ष भर में आवश्यक अनाज की मात्रा को भी न शेष बचने देना था। इस व्यवस्था को भारत के अनुकुल माना गया था मगर वास्तविकता बिलकुल अलग थी।

यह व्यवस्था व्यवहारिक रूप से जमीदारी प्रथा से कम हानिकारक नही थी। इस व्यवस्था ने कृषकों के मूल आस्तित्व को चोट पहुचायी उन्हे दरिद्रता के कगार पर ला खडा कर दिया उनकी हालत बद से बदतर कर दी गयी इस व्यवस्था ने ग्रामीण समाज की सामूहिक स्वामित्व की अवधारणा को समाप्त किया तथा जमीदारी का स्थान स्वयं ब्रिटिश ने ले लिया सरकार ने अधिक लगान वसूली हेतु अधिक से अधिक राजस्व निर्धारण किया इस व्यवस्था के तहत

किसानो पर लगातार लटकी रहती थी अगर वह समय से लगान की अदायगी नहीं करते अन्यथा उन्हे भूमि से बेदखल कर दिया जाता था। ऐये बहुत किसान होते थे समय से लगान नहीं अदा कर पाते थे । तो उन्हे जमीन से बेदखल किया गया और फिर उनके पास करने को कुछ न बचा। अधिकांश क्षत्रों में लगान की दर बहुत अधिक थी। जिसके कारण किसान चुका पाने में असमर्थ हो जाते थे ।

प्राकृतिक आपदा या अन्य कोई कठिनाई आने पर किसान लगान अदा नहीं कर पाता था इस समय में भी लगान माफी नहीं थी जिसके कारण किसान लगान नहीं भर पाता था। और उसे अपनी भूमि से हाथ धोना पड़ता था।

अंतत: यह प्रणाली किसानो की दृष्टि से बहुत ही कष्टदायी साबित हुई इसने किसानों को और दरिद्र कर दिया यह भी स्थाई बन्दोबस्त व्यवस्था की भांति बहुत असफल एवं कष्टदायी सिद्ध हुई जिसे कम्पनी को तो फायदे दिये मगर भारतीय किसानो को तोड़ दिया जो कृषि व्यवस्था के क्षय के लिए जिम्मेदार भी रही।

1822 लार्ड होस्टिंगस द्वारा एक नई भू-राजस्व व्यवस्था की शुरूआत की गई यह व्यवस्था उत्तरी भारत के क्षेत्रों में अपना एक तरीका स्वार्थ हेतु लागू किया गया जिसे महाल वाड़ी व्यवस्था के नाम से जाना जाता है। इसके तहत 30 प्रतिशत तक भूमि का हिस्सा लिया गया और अब यह व्यवस्था एक पूरे गांव का महाल में जमीदारों के साथ की गई। जो सामूहिक रूप से पूरे गांव या महाल के प्रमुख होने का दावा करते थे।

महाल प्रमुख को अधिकार दिए लगान अदायगी, वेदखली की इस व्यवस्था के तहत राजस्व किराये को 95 प्रतिशत तक बढ़या गया जिसमें 17 प्रतिशत जमीदारों के लिए तय किया गया।

1822-1833 में संग्रह की जाने वाली कर की मात्रा वास्तविक मात्रा 80 प्रतिशत से ज्यादा थी जब अकाल तथा दरिद्रता की स्थिति आ गई तो यह कर लिया जो कि बीमारी के समान थी जिसने कृषि सम्बन्धी सम्पन्नता को शीध्रता से समाप्त करना प्रारम्भ कर दिया। इसने मुखिया को बहुत मजबूत बना दिया और किसानों की बेदखली कर दी। इस व्यवस्था ने सरकार एवं किसानों के सम्बन्ध को बिलकुल (प्रत्यक्ष) समाप्त कर दिया अब सीधा सम्पर्क सरकार एवं मुखिया के बीच रह गया। अन्तत: कम्पनी का उददेश्य अधिक से अधिक कर वसूलना था।

इस व्यवस्था के तहत किसानों की स्थिति और बर्बाद हो गई। भारतीय भू-राजस्व व्यवस्था ने भारतिय कृषि को पूर्णत: बर्बाद कर दिया। 1817 से 1837 के दौरान लार्ड विलियम बैटिंक ने पूरानी व्यवस्था लागू किया। भारतीय राज्यों के राजस्व या भूमि कर को बढ़ा दिया 1792 के बीच तीनों प्रान्त बम्बई, बंगाल व मद्रास में भूमि कर 300 प्रतिशत तक बढ़ा दिये। जनता से उत्पीडिष्त थी। इन कारणों के परिणाम स्वरूप दास प्रथा अपनी जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारियों के राजस्व संग्रह में अत्याचार अधिक है तथा पीडिष्त लोगो को कोई राहत नहीं दी जानी है। (1853 में भारतीय आयोग रिपोर्ट दी)

बंगाल विजय के बाद अपनाये भूमि-व्यस्था में होने वाले क्रांतिकारी परिवर्तन बहुत धीमे थे इस दिशा में पहला कदम भूमि-राजस्व आकलन के तरीके तथा अधिक व कानूनी धारणा को बदलना था तत्पश्चात उसके ऊपर दूसरी धारणा लगाना था। पहले शासक का हिस्सा वार्षिक उत्पाद था। जो कि पैदावार के हिसाब से बदलाव रहता था जिसे कृषको ने शासक के ऊपर छोड़ दिया गया था। अब शासन को दी जाने वाली नगद रकम को अंग्रेजो ने भारत में पहले से अलग जमीदारी-व्यवस्था को प्रारम्भ किया इस बदलाव के द्वारा अंग्रजो ने भूमि पर कब्जा करने की सोची। अंग्रजो ने भारत में उपनिवेशवादी व्यवस्था के चारित्रिक गुणो को लाकर भारत में पूर्ण रूप से लगाया ताकि भारतीयों को उनकी भूमि से अलग किया जा सके । यद्यपि यह तरीका बहुत ही कठिन था और इसमें कानूनी या आधा शताब्दी के बाद सभी व्यवस्थाओं, व्यापार अधिकारों व भू-सम्बन्धी कार्यों पर एवं जंगल राज की तरह स्थापित हो जाता। भूमि के मालिक होने के बावजूद भी कृषक किरायेदार बन जाते थे और साथ कृषक की पीड़ा भी सहते थे। साथ साथ कृषक की भूमि कर्ज अदायगी न कर पाने की स्थिति में बंधक बना ली जाती थी। कृषकों की भूमि से उत्तराधिकारी हटाकर नए सूधार कर भूमि की पैदावार को बढ़ाने के प्रयास किये । पिछली आधी शताब्दी में भूमिहीन मजदूर तथा दरिद्र किसानों का नया वर्ग निर्मित हो गया जो कि कृषको की आबादी का 1/3 से 1/2 भाग तक था।

भूमि बन्दोबस्त में सुधार के लिए ब्रिट्रिश जमीदारों को लगाना अंग्रजों की पहले की भूमि निपटारे के प्रयास का सुधार हुआ रूपा था ।

सबसे पहले अपनायी गई भू-राजस्व व्यवस्था इजारेदारी भी असफल ही रही इसका उद्देश्य भी अधिक से अधिक आय प्राप्ति ही था जिसके तहत भूमि पर ठेके की व्यवस्था अपनायी गई जो सबसे अधिक बोली लगाना उसे भूमि ठेके पर दी जाती थी। किन्तु इस व्यवस्था से कम्पनी को अधिक लाभ पाप्त न हो सका क्योकि इस व्यवस्था की वसूली में अस्थिरता आ गई इस लिए इसे 1777 में परिवर्तित कर 5 वर्ष से एक वर्ष की अवधि में ला दिया मगर यह भी असफल रही क्योकि भू-राजस्व दर प्रति वर्ष परिवर्तित होने लगी जिससे कम्पनी को अनिश्चितता होती थी अगलें वर्ष कितना बदल जायेगा, इस व्यवस्था द्वारा नय नये व्यक्ति को भूमि ठेके पर मिलती थी और वो किसानो से अधिक से अधिक भू-राजस्व वसूल करते थे। चूंकि इसमें इजारेदारी का भूमि पर अस्थायी स्वामित्व था इसलिए भूमि सुधारो में उन्हे कोई रूचि नहीं लेते थे ।

इनका मुख्य उद्देश्य अधिक से वसूली था इस कारण किसानों का बहुत उत्पीड़न हुआ ये इजारेदार वसूली की पूरी रकम भी कम्पनी को नहीं देते थे इस व्यवस्था के कारण किसानों पर अत्यधिक बोझ पडा तथा वे कंगाल होने लगे यह व्यवस्था काफी दोषपूर्ण रही फिर भी कम्पनी की आय में इससे वृद्धि हुई। कम्पनी का भारतीय कृषि में परिवर्तन करना बस अपने आर्थिक हितो की पूर्ति करना था। जिससे वह अपने षासन को चला सके।

निष्कर्ष- कम्पनी द्वारा भारतीय क्षेत्रो में समय समय पर अपनायी गई नई-नई भू-राजस्व पद्धतियों का मूल उददेश्य अपने आर्थिक हितो को पूरा करना। एवं अपने शासन को लम्बे समय तक बनाये रखना था।

उनका उद्देश्य भारतीयों को सभ्य या आर्थिक रूप से मजबूत बनाना नहीं था और ना ही वह यहाँ कोई भला करने आये थे उनका उद्देश्य व्यापार और समय के साथ अपने विचारो को बदल यहाँ अपनी पकड़ को मजबूत बनाने और अधिक से अधिक आय प्राप्त करने हेतु किया जिसका सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा था लगान व्यवस्था जो कि प्राचीन काल से ही शासक वर्ग के लिए आय का साधन रहा है इसी के द्वारा कम्पनी अपने को आर्थिक रूप से मजबूत कर पाती और यहाँ अधिक समय तक टिक पाती। इसके तहत ही अंग्रेज अपने विचारो को अपने आर्थिक खर्चो के लिए इंग्लैण्ड से धन लाते अब यही से

प्राप्त करने लगे। बंगाल विजय के उपरान्त उनका यह सपना भी पूर्ण हो गया और अब भू-राजस्व के रूप में उन्हे निरन्तर आय को एक स्त्रोत मिल गया जिसमें उन्होने नई-नई भू-राजस्व व्यवस्था को अपना भारतीय कृषको को दरिद्रता में ढ़केल दिया और भारतीय कृषि को बर्बाद कर दिया।

सन्दर्भ सूची:

1. बर्नियर मेमोरिस एण्ड डेवेल्स खण्ड - 1 पृ0 270
2. मुखर्जी आर0 लैण्ड प्राब्लम्स आफ इन्डिया 1933 पृ0 16
3. विश्य हेबर मेमोरीस एण्ड करस पाण्डेय 1830 खण्ड-11 पृ0 418
4. विग्स जॉन दि प्रसेन्ट टैक्स इन इन्डिया पृ0 177, 178,784,189
5. हेबर मेमोरीस एण्ड डेवेल्स पृ0 208
6. दत्त, आर.सी पृ0 74,75
7. स्पेशल कमीशन रिपोर्ट 13 अप्रैल 1808 पृ0 389. 393 एस कोटेड बाई ग्राहम डी0 सैण्डरसन उपरोक्त पृ0 113.
8. चौयलिन, विलियम कमिश्नर ऑफ देकन, 1823 पृ0 333, 404
9. दत्त रमेश दि इकोनामिक हिस्ट्री इण्डिया ल0 1932
10. रिजोर्ट वाई सदर बोर्ड ऑफ रेवेन्यू एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ नार्थ वेस्ट प्राविस्ट 1852- 53 (आगरा 1854) पैरा 14 1

हिन्दी की समकालीन लम्बी कहानियां और उनका अर्थ सम्प्रेषण

रोली यादव

शोधार्थी, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रो० देवेन्द्र नाथ सिंह

शोध निर्देशक एवं पूर्व आचार्य, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

शोध सारांश

हिन्दी की समकालीन लम्बी कहानियों का अर्थ कथानक के बाहर अपने समय और उसके सन्दर्भों से जुड़कर ही खुलता जाता है। इस अर्थ में हिन्दी की समकालीन लम्बी कहानियों में पाठ की अनन्त सम्भावना प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। उत्तर आधुनिक विचारकों ने साहित्य की इन्हीं विशेषताओं के कारण 'पाठ' को ज्यादा महत्वपूर्ण माना है।

कीवर्ड- अर्थ प्रक्षेपण, समकालीनता, उत्तर आधुनिकता, पाठ, विमर्श।

अपनी विकास यात्रा के वर्तमान दौर तक आते-आते आज कहानी बाहर और भीतर से बहुत ज्यादा बदल चुका है। वैसे तो प्रेमचन्द ने अपने जीवन के अन्तिम काल में ही घोषणा कर दी थी कि हमें ऐसे साहित्य की जरूरत नहीं जो हमारा मनोरंजन करे, बल्कि हमें जगाने वाले, बेचौन करने वाले साहित्य की आज जरूरत है। ऐसे में जब हम आज के कथा साहित्य का अध्ययन करते हैं तो अक्सर पाते हैं कि मामूली से लगने वाले कथानक के इर्द-गिर्द जीवन के मार्मिक या समाज की बनावट से सम्बन्धित गहरे प्रश्नों से अनुस्यूत है आज की कहानी। और यह एकदम से आकस्मिक नहीं है। प्रेमचन्द के तत्काल बाद ही जब भुवनेश्वर ने 'भेड़िए' कहानी लिखी तो निश्चित तौर पर वह आने वाले समय की सबसे प्रामाणिक कहानी थी। आज के समय में मनुष्य जिन क्रूर स्थितियों-परिस्थितियों का सामना करता हुआ निरन्तर अकेला होता जाता है यह उसी की पहली कहानी है। डॉ0 शुकदेव सिंह की टिप्पणी-''यह कहानी 'भेडिघ्ए' एक संज्ञा के नामिक रूपान्तरण की कहानी है। किस तरह जिन्दगी की निर्मम स्थितियां, जीने की कोशिश, और मौत का हादसा एक अच्छे खासे जवान पट्ठे को बूढ़े, बदहवास, खूंखार इन्सान में बदल देते हैं। किस तरह एक इफ्तखार खारू बना जाता है। इफ्तखार का 'खारू' के रूप में बदल जाने की नियति में एक लम्बा रेगिस्तान है।''[1] भेड़िए कहानी अपने समय से लगभग आधी शताब्दी आगे की कहानी है।

कहानी किस्सागो शैली में लिखी गयी है। आज जैसे उदय प्रकाश की कहानियों पर आरोप लगता है कि ये विदेशी प्रभाव की कहानी है। यही आरोप भुवनेश्वर की इस कहानी पर भी लगा था, लेकिन बात इतनी आसान नहीं है। इन कहानियों का महत्व कथानक की जमीन और सीधे-सादे यथार्थ पर नहीं है। इस तरह इन कहानियों को देखना या पढ़ना निहायत सरलीकरण होगा। भेड़ियों के झुण्ड से बचने की कोशिश में 'खारू' का अपने बाप के निर्देश पर एक-एक कर नटनियों को भेड़ियों के झुण्ड में फेंकते जाना, फिर बैल को भेड़ियों के हवाले कर देना और अन्त में अपने बाप को। यह आज के समय के यथार्थ को यथार्थवाद की प्रचलित और परम्परित अर्थों से भिन्न रास्ता अपनाते हुये उसे अभिव्यक्त करते जाना है। ज्ञानरंजन की कहानी 'पिता' काशीनाथ सिंह की कहानी 'अपना रास्ता लो बाबा, या रेहन पर रग्घू जैसी इधर लिखी गयी ढेरों लम्बी कहानियों का उत्स है। अभी थोडेघ दिन पहले की ही बात है। जब सोवियत रूस का विघटन नहीं हुआ था तब मनुष्यों की दुनिया, रिश्तों की दुनिया में ऐसा खौफनाक और अनुर्वरक रेगिस्तान नहीं था।'' जब हमसे अनेक लोग सपना देख रहे थे कि 'दूसरी दुनिया मुमकिन है', कुछ दूसरे लोग भी थे जो सपने देख रहे थे। और ये उनके सपने हैं। और हामरी दहशत, जो आज खौफनाक हद तक सच्चाई में तब्दील होने का है। पूंजीवाद की गैर जरूरी जंगों और इसके ताकतवर लालच ने धरती को खतरे में डाल दिया है और लोगों को दर-बदर कर दिया है।''[2]

उदय प्रकाश की कहानी 'तिरिछ' या 'और अन्त में प्रार्थना' इसी भाव संवेदना की काहनी है। 'तिरिछ' कहानी में कथानक महत्वपूर्ण नहीं है। इसलिये भी महत्वपूर्ण नहीं है कि यह कथानक केन्द्रित कहानी ही नहीं है। भय से भरे सपने के क्रमशः सच होने की कहानी है। इस कहानी को पढ़ते हुये जरूरी नहीं कि हम इसके अर्थ को उसके कथानक में खोजते रहें। जो कहानी के कथानक से बाहर हमारे रोजमर्रा के जीवन में तिल-तिल कर फैलता जा रहा है, उसी यथार्थ की कहानी है तिरिछ। यही कारण है कि ढेर सारे लोग-मास्टर नन्दलाल, बैंक के चपरासियों, चौकीदारों, पान की दुकान लगाने वाले बुन्नू, थाने के एस.एच.ओ. राघवेन्द्र प्रताप सिंह आदि-आदि द्वारा टुकड़े-टुकड़े में दी गयी सूचनाओं से कथानक आगे बढ़ता जाता है। एक घटना का इतने सारे लोगों

द्वारा अलग-अलग पाठ और उसके भीतर से कहानी के सत्य, उसकी मार्मिकता का ओझल होते जाना ही इसका मूल मंतव्य है जैसा कि लेखक कहता है-''उनके साथ जो कुछ हो रहा है, वह वास्तविकता नहीं है। एक सपना है। पिताजी को ये सारी घटनाएं ऊल-जलूल-ऊटपटांग और बेमतबल लगी होंगी। वे इस सब पर अविश्वास करने लगे होंगे।.....वे तो गांव से शहर आये ही नहीं हैं, उन्हें किसी तिरिछ ने नहीं काटा है। बल्कि तिरिछ तो होता ही नहीं है.....वे उत्सुकता और बेचैनी से यह इन्तजार करते रहे हों कि जैसे ही वह किसी लड़के के सिर से टकरायेगा, उसका माथा नष्ट होगा और एक झटके में इस दु:स्वप्न के टुकड़े-टुकड़े बिखर जायेंगे और चारों ओर से वास्तविक संसार की बेतहासा रोशनी अन्दर आने लगेगी।''[3]

स्वप्न में यथार्थ और यथार्थ में स्वप्न की यह जो आवाजाही इस कहानी के शिल्प विन्यास में हैं, यूं ही नहीं है बल्कि अपने समय से भी ज्यादा गतिमान और भयावह हो चुका है। यही आज के उत्तर आधुनिक समय का क्रूरतम समय का यथार्थ है। किसानों की आत्महत्या पर शिवमूर्ति की लम्बी कहानी 'आखिरी छलांग' में भी इस यथार्थ और उसे अभिव्यक्त करने की कला, स्वप्नकथा के माध्यम से ही सम्भव हो पाती है। गांव का किसान जो सदियों से नितान्त स्थानीय जिन्दगी जीता चला आ रहा है, जिसकी जरूरतें, जिसकी भाषा, जिसकी संवेदना आदि सब कुछ निहायत ही स्थानीय और देशज रहा है वह देश के अलग-अलग प्रान्तों में कैसे एक ही रूप में प्रतिविंबित हो रहा है। किसानों की समस्या, उनकी आत्महत्याओं पर लिखी गयी यह एक बेहतरीन कहानी है। बेहद मार्मिक लेकिन 'तिरिया-चरित्तर' या 'तर्पण' वाले यथार्थ के दौर में शिवमूर्ति की इस कहानी को आलोचकों द्वारा वह महत्व नहीं मिला। किसी अन्य सन्दर्भ में नामवर सिंह ने लिखा है-''स्त्री विमर्श आरक्षण आदि मुद्दों के शोरगुल में इस सवाल के दब जाने की आशंका अधिक है। आज के शासनतन्त्र की दृष्टि में भी खेती और किसानों से जुड़े हुये सवाल हाशिए पर हैं। इसलिये कथाकारों का बड़ा हिस्सा इस ओर से उदासीन है।''[4]

इस बीच हिन्दी की समकालीन लम्बी कहानियों के केन्द्र में शहरी मध्यवर्ग, जो समय की गति में बहते हुये अपने को कहीं किसी ठोस जमीन से न जोड़ पाने के कारण रातों-रात उपभोक्ता वर्ग में तब्दील हो गया, उसी की कहानी है। इस महत्वपूर्ण सच्चाई के बावजूद सृंजय, महेश कटारे, चन्द्रमोहन प्रधान, शिवमूर्ति, चन्द्रकिशोर जायसवाल जैसे कथाकारों ने उत्तर आधुनिकता के दौर में उसके प्रभावों दुष्प्रभावों को पकड़ते हुये गांवों की भी कहानियां लिखी हैं। इस दृष्टि से मैं मनोज कुमार पाण्डेय की एक बेहद महत्वपूर्ण काहनी 'पानी' का जिक्र जरूर करना चाहती हूं। इस अध्याय में जब मैं कहानियों के अर्थ सम्प्रेषण को अपने विचार का विषय बना रही हूं तब इस कहानी का महत्व मुझे बहुत दूर जाता दिख रहा है। देखा जाये तो ऊपर-ऊपर यह कहानी पर्यावरण की समस्या पर लिखी गयी कहानी प्रतीत हो रही है लेकिन इसे महज पर्यावरण की कहानी के रूप में पढ़ना इसके भीतर के वास्तविक मर्म से बहुत दूर रह जाने की एक अतिसीमित कोशिश होगी। यह गांवों के सामाजिक और सांस्कृतिक रूपान्तरण की कहानी है जैसे फणीश्वर नाथ रेणु का उपन्यास 'जुलूस' है। 'जुलूस' उपन्यास में जो तालेवर गोढ़ी का चरित्र है वैसा ही इस कहानी में आज जो बदलाव दिख रहा है उसका बहुत बड़ा कारण है गांव की परती जमीन पर फैले चरगाहों और तालाबों का खत्म हो जाना। गांवों के सामुदायिक जीवन की रीढ़ थे तालाब। गांव की संस्कृति के अलावा उसका भौतिक जीवन भी इन पर टिका रहता था। तालाब बाढ़ और अकाल दोनों से बचाते थे।

लेखक के शब्दों में-''तालाब भींटा और इसके बीच का मैदान किसी एक का नहीं था, समूचे गांव का था। बल्कि गांव के बाहर के लोगों का भी था। गर्मियों में लोग आते-जाते वहां किसी पेड़ की छाया में सुस्ता लेते। वहीं से बरसात में सबसे पहले मेढकों की आवाज आती। शादी ब्याह में वही तालाब पूजा जाता। औरतें वहीं तक बेटियों को विदा करने आतीं और असीसतीं कि इसी तालाब की तरह जीवन सुख से लबालब भरा हो।''[5]

मातबर भगन सिंह पैसे के बल पर तालाब को खत्म करते हैं और फिर प्राकृतिक संसाधन पर अपना आधिपत्य स्थापित करके पैसा कमाते हैं। इस बीच गांव की जो सामाजिक बनावट और बुनावट होती है, जातिगत और वर्गगत जितने भी अन्तर्विरोध होते हैं जब इस कहानी में खुलते जाते हैं। लेकिन यह कहानी सिर्फ जातियों के विभाजन और शोषण मात्र की कहानी नहीं है। जो इस कहानी से बाहर नर्मदा बचाओं आन्दोलन में शामिल हैं, जो जंगलों में नक्सलवादी कहकर मारे जा रहे हैं उन सबकी कहानी बन जाती है। एक तरह से कहा जाये तो मामूली सी दिखने वाली यह कहानी पूंजीवादी शोषण और मानव विरोधी विकास और सभ्यता की कहानी बन जाती है। जैसा कि आलोचक संजीव कुमार लिखते हैं-''विभीषिकाओं के दौरान, जब जीने के संसाधन कम से कमतर होते जाते हैं। समाज के बहुरूपिया शक्ति सम्बन्ध उन संसाधनों की छीन-झपट में और भी सक्रिय, निर्णायक भूमिका निभाने लगते हैं। यह सजगता अगर कहानी में सिर्फ छत पर बसे बचे हुये लोगों के सन्दर्भ में नहीं, बल्कि पूरी कहानी में-नहीं है तो इसे कहानीकार की दृष्टि का 'ब्लाइंड स्पाट' ही कहना चाहिये।''[6]

इसी क्रम में सृंजय की कहानी 'कामरेड का कोट' और उदय प्रकाश की कहानी 'और अन्त में प्रार्थना' का जिक्र जरूर करना चाहूंगी। ये दोनों कहानियां अपनी बनावट और बुनावट में भिन्न कथा भूमि की कहानियां हैं। दोनों के किरदार 'कमलाकांत उपाध्याय' और 'डॉक्टर वाकणकर' एक दूसरे से पूर्णत: विरोधी विचारधारा के किरदार हैं। कमलाकांत उपाध्याय जहां कम्यूनिस्ट पार्टी की वामपंथी विचारधारा के समर्पित कार्यकर्ता हैं वहीं 'और अन्त में प्रार्थना' के डॉक्टर वाकणकर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की दक्षिणपंथी विचारधारा के प्रति आस्थावान और समर्पित कार्यकर्ता हैं। दोनों चरित्रों के मन में अपनी विचारधारा को लेकर यह गहरा आश्वासन है कि एक दिन जब उनकी विचारधारा एक राजनीतिक शक्ति बनकर सत्ता के केन्द्र में उपस्थित होगी तो जनता सुखी, सम्पन्न और खुशहाल होगी। डॉक्टर वाकणकर जिस राजनीतिक विचारधाराओं के प्रति समर्पित हैं वही एक दिन सत्ता में प्रतिष्ठित होती है। जाहिर है, इस बड़ी उम्मीद के पूरा होने के बाद वाकणकर की खुशी का कोई ठिकाना नहीं रह जाता। इन दोनों कहानियों में ढेर सारे 'डिटेल्स' हैं, मैं उस डिटेल्स के चक्कर में यहां नहीं पड़ूंगी सिर्फ सत्ता के सत्य का उद्घाटन में इन दोनों कहानियों की समानता का जिक्र भर करूंगी। पहले 'कामरेड का कोट' कहानी का एक उद्धरण-''कामरेड सेक्रेटरी! आपकी नजर में मजदूरों की हत्या जरूरी मुद्दा नहीं है। आखिर यह मीटिंग किस लिये बुलायी गयी है..... इधर मेरे कुछ और साथियों के अपहरण की योजना बनायी जा रही है। फिर भी आज लोगों को यह जरूरी मुद्दा नहीं लगता।''[7]

कहानी में कमलाकांत उपाध्याय जिस राजनीतिक पार्टी के कार्यकर्ता हैं उसमें 'रक्तध्वज' उनके नेता हैं। सत्ता का तात्पर्य राजनीतिक सत्ता मात्र से न लेते हुये मैं संस्थानों की सत्ता को भी एक महत्वपूर्ण कारक मानती हूं। कमलाकांत और रक्तध्वज के भीतर जो अन्तर्विरोध दिखायी देता है उसे मैं एक छोटे कार्यकर्ता और उसकी पार्टी के शीर्ष को एक अलग सत्ता के अन्तर्विरोध के रूप में रखते हुये अपनी बात को स्पष्ट करना चाहती हूं। जाहिर है अपनी ही पार्टी के सत्तासीन होने पर वाकणकर की जो हत्या सत्ता के द्वारा की जाती है लगभग उसी स्थिति में कमलाकांत उपाध्याय भी पहुंचते प्रतीत होते हैं। इन दोनों कहानियों

से यह अर्थ निकलता है कि सत्ता की अपनी गति होती है। वह येन-केन-प्रकारेन अपने को बनाये रखना चाहती है अपने ही समर्पित कार्यकर्ताओं की बलि देकर भी। और भी आगे उस विचारधारा की भी बलि देकर जिसका सहारा लेकर वह सत्ता में प्रतिष्ठित होती है। इस दृष्टि से 'कामरेड का कोट' तथा 'और अन्त में प्रार्थना' सम्मिलित रूप से सत्ता के चरित्र को 'एक्सपोज' करती हुयी लगभग एक ही समय, एक ही कालखण्ड में थोड़ा आगे-पीछे लिखी गयी कहानियां हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी की समकालीन लम्बी कहानियां अपने कथानक से इतर दूर तक जाकर आधुनिक जीवन सन्दर्भों के नाना रूपों को खोलते, उजागर करते अपना अर्थ सम्प्रेषण करती हैं।

सन्दर्भ सूची

1. दूधनाथ सिंह-भुवनेश्वर समग्र, पृष्ठ-41, राजकमल प्रकाशन-2012, प्रथम संस्करण
2. अरून्धति राय-आजादी, पृष्ठ-82, राजकमल प्रकाशन-2020, प्रथम संस्करण
3. उदय प्रकाश-तिरिछ, पृष्ठ-42-43, वाणी प्रकाशन-2010
4. नामवर सिंह-साहित्य की पहचान, पृष्ठ-220, राजकमल प्रकाशन-2015
5. मनोज कुमार पाण्डेय-पानी, हिन्दी समय डॉट कॉम
6. संजीव कुमार, हिन्दी कहानी की इक्कीसवीं सदी, पृष्ठ-60, राजकमल प्रकाशन-2019
7. सृंजय-कामरेड का कोट, पृष्ठ-129, राधा कृष्ण प्रकाशन-1993

न्यायिक दृष्टिकोण का मानव-केन्द्रिकतावाद से पारिस्थितिकी-केन्द्रिकतावाद की ओर संचलनः एक विश्लेषण

शिव सरन

शोध-छात्र, विधि संकाय, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

शोध सारांश

प्रकृति में अद्भुत संतुलन और सामंजस्य है और ''पर्यावरण की सकलता एवं एकता'' पारिस्थितिकी का सर्वप्रमुख नियम है। जिसका मूल्यांकन भारतीय मनीषियों ने हजारों वर्ष पूर्व किया था। प्रकृति और जीव के अन्तर्सम्बन्धों को जन-जन तक बोध कराने के लिए विविध प्रतीकों के रूप में इन्हें धर्म, सामाजिक नियम और आचरण में समाहित कर दिया था। यह विश्व समस्त प्राणियों सहित पृथ्वी का है। कोई प्राणी किसी अन्य से उच्चकोटि का नहीं है। मानव प्राणी प्रकृति से ऊपर नहीं हैं। किसी एक प्रजाति को दूसरी प्रजातियों के अधिकारों और विशेषाधिकारों पर हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। लेकिन आधुनिकता के आवेश में पुरानी परम्परा औरा आचरण को नकार दिया गया, क्योंकि प्रकृति पर विजय की अभिलाषा में भौतिक सुख जीवन का आधार बन गया है। इससे प्रकृति और जीव के सम्बन्ध बिगडने लगे और बाध्य होकर सोचना पडा कि ऐसा क्यों धटित हो रहा है ? इसी तथ्य की पृष्ठीाूमि में पारिस्थितिकी तत्रं के संरक्षण की आवश्यकता महसूस की गई। तथा संसद ने संवैधानिक संशोधन करते हुए संविधान में पारिस्थितिकीय संरक्षण हेतु प्रावधान किये तथा न्यायपालिका ने पारिस्थितिकीय संरक्षणात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए कई महत्वपूर्ण आदेश, निर्देश व निर्णय दिये हैं। इस शोध पत्र का उद्देश्य पारिस्थितिकीय संरक्षण सम्बन्धी संवैधानिक प्रावधानों के आलोक मे न्यायिक दृष्टिकोण का विश्लेषण करना है।

मुख्य शब्दः मानव-केन्द्रिकतावाद, पारिस्थितिकी-केन्द्रीकतावाद, पारिस्थितिक तंत्र, सतत् विकास आदि।

हम्बोलट के अनुसार ''प्रकृति जड पदार्थ नहीं है, प्रकृति एक पवित्र देन तथा पृथ्वी का आधारभूत बल है। प्राकृतिक विज्ञानों का लक्ष्य विविधता में एकता की खोज करना है। इसका लक्ष्य उस परम् शक्ति की खोज है जिसमें सभी तत्व एवं शक्तियाँ एक इकाई के रूप में प्रकट होतें हैं।'' यह भी चेतावनी दिया कि ''पृथ्वी की उत्पत्ति का नियम मनुष्य नहीं बनाता, प्रकृति के अपने अलग नियम होते हैं, जिसका ज्ञान मानव कल्याण के लिए आवश्यक है।'' ई0पी0 ओडम के अनुसार जैविक तथा अजैविक संघटक एक-दूसरे से न केवल अन्तर्सम्बन्धित होते हैं अपितु ये दोनों संघटक एक निश्चित तंत्र की भाँति क्रमबद्ध रूप में कार्यशील होते है। तथा स्वस्थ जैविक विकास के लिये संतुलित पारिस्थितिक-तंत्र आवश्यक है। लेकिन वैज्ञानिक उपलब्धियों और तकनीकी विकास जनित भौतिक सुख की दौड में यह अवधारणा बनने लगी कि मनुष्य प्रकृति का स्वामी है। वह अपनी इच्छानुसार आचरण करने के लिए स्वतन्त्र है। इसका कुपरिणाम अब विविध रूपों में प्रकट होने लगा है। फलतः जीवों के लिए उपस्थित खतरों के कारण उनकी भौतिक-जैविक परिस्थितियों को जानना आवश्यक है।

पारिस्थितिकीय संरक्षण हेतु वैश्विक प्रयासः सन् 1972 में पारिस्थितिकीय संरक्षण प्रादुर्भाव स्टाक होम कान्फ्रेन्स से हुआ जिसका नाम ही था- इन्टरनेशनल कान्फ्रेन्स ऑन ह्यूमन इनवायरमेंट। इसका केन्द्र बिन्दु था, "वर्तमान एवं भावी पीढिघ्यों हेतु मानव पर्यावरण का बचाव एवं सुधार।" सिद्धान्त 2 में स्पष्ट किया गया कि-"वायु, जल, भूमि, पेड़ पौधों, जीव जन्तु सहित पृथ्वी प्राकृतिक संसाधन और विशिष्टतः प्राकृतिक परिस्थैतिकी प्रणाली के नमूने यथोचित सावधानीपूर्ण योजना अथवा प्रबन्धन के माध्यम से वर्तमान और भावी पीढिघ्यों के लाभार्थ सुरक्षित किये जाने चाहिए।" इस मानव केन्द्रित पर्यावरणीय विधिशास्त्र को प्रायः सभी चार दशकों के कान्फ्रेन्सों ने मजबूती प्रदान की। ब्रण्ट लैण्ड कमीशन रिपोर्ट 1987 पोषणीय विकास की बात की जिसका अर्थ था, "ऐसा निकाय जो वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति भावी पीढ़ी द्वारा उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की दक्षता को बिना नजर अन्दाज किये हो," पृथ्वी शिखर सम्मेलन (रियो कान्फ्रेन्स) के सिद्धान्त 1 में स्पष्ट घोषणा की गयी कि "धारणीय विकास का सम्बन्ध का केन्द्र बिन्दु मानव प्राणी हैं उन्हें प्रकृति के समन्वय में स्वस्थ एवं सृजनात्मक जीवन का हक है," इसी मानव केन्द्रिकता की पुनर्पुष्टि रियो डिक्लेरेसन ऑन सस्टेनेबल डेवलपमेण्ट, 2012 में की गयी। सिद्धान्त 6 में प्रतिपादित किया गया कि, " हम स्वीकार करते हैं कि लोग धारणीय विकास का केन्द्र बिन्दु हैं और इस सम्बन्ध में हम एक ऐसे संसार हेतु प्रयास करते हैं जो उचित, साम्यिक और सर्वग्रहणी हो और धारणीय एवं सर्वग्राह्य आर्थिक वृद्धि सामाजिक विकास और पर्यावरणीय संरक्षण हेतु और तदनुसार सभी के लाभार्थ हम एक साथ कार्य करने को तैयार हैं।"

अपरंच सिद्धान्त यह प्रदर्शित करता है कि मानवों को वन जिस सीमा तक इन्स्ट्रुमेण्टल शैक्षिक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक, मनोरंजनार्थ और सौन्दर्यानुभूति हेतु महत्व रखते हैं उस सीमा तक पर्यावरण के प्रति मानव का दायित्व है। इस दृष्टिकोण में पर्यावरण संरक्षण केवल मानव कल्याण संरक्षण आवश्यकता की सीमा और परिणाम स्वरूप अपेक्षित है।"

इस तरह विचारण से पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय विधि का विकास तीन चरणों1 में हुआ-

01. पर्यावरण संरक्षण के लिए मानव स्वहित कारण: इस चरण में यह मान्यता पनपी कि प्रकृति का परिरक्षण सम्पूर्ण मानव जाति के सामान्य हित में है।

02. मानव की वर्तमान आवश्यकताओं के परे अन्तर्राष्ट्रीय संधियों द्वारा भावी पीढ़ी को मानव आवश्यकताओं की पूर्ति साधन की अपेक्षा की गयी। यह बदलाव शुद्ध मानव केन्द्रिकतावाद के लक्षणों से आगे की तरफ अग्रसर हुआ। कतिपय दस्तावेजों में धारणीयता एवं धारणीय विकास का समावेश हुआ।

03. स्वयं प्रकृति के अधिकारों की दृढ़ोक्ति: यह बहुद्देश्यीय दस्तावेज की खोज के रूप में प्रकृति के स्वयं के अभ्यान्तरिक मूल्य का द्योतक है। यह पारिस्थैतिकी केन्द्रित है। इसमें पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं और पशुओं के अधिकारों को मान्यता दी गयी है।

पारिस्थितिकीय संरक्षण एवं संविधान: स्टाकहोम घोषणा 1972 से प्रेरित होकर सन् 1976 में संविधान के बयालीसवें संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान में पारिस्थितिकी संरक्षण हेतु प्रावधान किये गये हैं -

(क) जोड़ा गये अनुच्छेद 51-क (छ) के अनुसार ''भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उनका संवर्द्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दया भाव रखे''।

(ख) जोड़ा गये अनुच्छेद 48-क के अनुसार ''राज्य देश के पर्यावरण की संरक्षा तथा उसमें सुधार करने का और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।

(ग) मूलअधिकार एवं पारिस्थितिकीय संरक्षण रू 1970 के दशक से मानव पर्यावरण संरक्षण की हवा चली उसमे पर्यावरण संरक्षण का केन्द्र बिन्दु मानव रहा। न्यायालयों के दृष्टिकोण में पर्यावरण संरक्षण का बिन्दु मुख्यत: मानव ही रहा है। और अनुच्छेद 14, 19 और 21 में प्रदत मूलाधिकारों का निर्वचन पर्यावरण के आलोक में कर न्यायालय ने इसे विस्तार दिया

(1) समता का अधिकार एवं पारिस्थितिकीय संरक्षण: संविधान के अनुच्छेद 14 में उपबन्ध किया गया है कि ''राज्य भारत राज्य क्षेत्र अन्तर्गत किसी व्यक्ति को विधि को समक्ष समता और विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा''। अनु0 14 में अन्तर्निहित समता के अधि कार के अन्तर्गत मनमाने और निरंकुश कार्यवाहियों का निषेध है। बंगलौर मेडिकल ट्रस्ट बनाम बी0एस0 मुडप्पा[2] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने लोक उद्यान और खुले स्थान की नगरी विकास में भूमिका को स्पष्ट करते हुए कहा कि ''पर्यावरण, मनोरंजन हेतु खुले स्थान और शुद्ध वायु, बच्चों के लिए खेल मैदान, आवासियों हेतु चलने का विस्तृत रास्ता और अन्य सुविधाएँ अथवा सहूलियतें लोक अभिप्राय एवं प्रमुख हितों की विषयवस्तु हैं जिनका ध्यान विकास योजनाओं में रखा जाना चाहिए।

(2) भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और पारिस्थितिकी: भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पारिस्थितिकीय समस्याओं को उजागर करने तथा उनके समाधान में सहायक रही हैं। प्रेस के माध्यम से पर्यावरण एवं उससे सम्बन्धित खतरों के बारे में जानकारी दी जा रही है। केरल शास्त्रसाहित्य परिषद (KSSP) नामक एक गैर सरकारी संगठन नें ''साइलेन्ट वैली प्रोजेक्ट'' को बन्द करने के लिए मजबूर कर दिया।

(3) व्यापार की स्वतंत्रता और पारिस्थितिकी: संविधान के अनुच्छेद 19(1)(g) में सभी नागरिकों को वृत्ति, उपजीविका, व्यापार और कारोबार की स्वतत्रंता प्रदान की गयी है। इस स्वतंत्रता पर अनु0 19(6) के अन्तर्गत सामान्य लोकहित में युक्ति संगत निर्बन्धन लगाये जा सकते हैं। न्यायालयों ने पारिस्थितिकीय संरक्षण के आधार पर सामान्य जनहित में लगाये गये निर्बन्धकों को युक्तियुक्त निर्बन्धन माना है। कुछ मामलों[3] में कारोबार को बन्द करने का आदेश भी दिया गया है।

(4) संतुलित पारिस्थितिकी का अधिकार: न्यायालयों ने जीवन की सृजनात्मक व्याख्या के माध्यम से स्वस्थ एवं स्वच्छ पर्यावरण का अधिकार अनु0 21 मे समाहित किया है। इस दिशा में प्रथम संकेत आर0एल0एण्ड ई0 केन्द्र देहरादून बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[4] के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिया गया। जिसमे न्यायालय ने -(क). पर्यावरण और पारिस्थैतिकीय संतुलन की कीमत पर किसी तरह का व्यवसाय करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। (ख). जहाँ विकास और पर्यावरण तथा पारिस्थैतिकीय के बीच संघर्ष हो वहाँ दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित किया जाना चाहिए, जैसे विधिक सिद्धान्तों का प्रतिपादित किये ।

न्यायिक दृष्टिकोण: पर्यावरणीय न्याय केवल तभी प्राप्त हो सकता है जब हम मानवकेन्द्रित सिद्धान्त से पारिस्थैतिकीकेन्द्रित सिद्धान्त की तरफ प्रवाहित हों[5]। धारणीय विकास, प्रदूषक भुगतान करे और अन्त:पीढ़ी साम्या जैसे हमारे बहुत से सिद्धान्तों की जड़ें मानवकेन्द्रित सिद्धान्तों में हैं। मानव-केन्द्रिकवाद सदैव मानव हित केन्द्रित है अर्थात मानव अग्रता रखता है और मानव की गैर मानव उसके लिए लाभ के आधार हैं। पारिस्थैतिक-केन्द्रिकतावाद प्रकृति केन्द्रित है जहाँ मानव प्रकृति के हिस्से हैं और गैर मानव आभ्यन्तरिक महत्व रखते हैं। दूसरे शब्दों मे मानव हितस्वत: प्राथमिकता नहीं प्राप्त करता है और मानव, मानव हित से स्वतन्त्र होकर गैर मानवों के प्रति दायित्व रखते हैं । इस प्रकार पारिस्थैतिकी केन्द्रिकतावाद जीवन केन्द्रित है, प्रकृति-केन्द्रित है जहाँ प्रकृति में मानव और गैर मानव दोनो सम्मिलित हैं ।

2010 के दशक में उच्चतम न्यायालय ने दो प्रमुख माध्यमों से पारिस्थैतिकी केन्द्रित को दृढ़ोक्ति किया है- प्रथम संकटापन्न प्रजातियों के संरक्षण सम्बन्धी नवीनतम अधिकार-कर्तव्य निरूपण एवं द्वितीय पशु अधिकारों की दृढ़ोक्ति।

(1) संकटापन्न प्रजातियों का संरक्षण-पेड़ पौधे एवं वन्य-पशु-टी0 यन0 गोदावर्मन थीरूमूल पाद बनाम भारत संघ6 के मामले में वन्य भैंसा की दुर्लभ प्रजाति संरक्षण का मुद्दा उठा। केन्द्र द्वारा चालू वन्य जीवन आवास्य एकीकृत विकास स्कीम 2009 के छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा सम्यक रूप से लागू न किए जाने से उदान्ति वन्य जीव अभयारण्य में रहने वाली भैसों की दुर्लभ प्रजाति के निर्मुल होने की आशंका हो गयी थी। वन्य भैसों को वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम 1972 की अनुसूची में आइटम 41 की तहत संकटापन्न प्रजाति घोषित किया गया था। उच्चतम न्यायालय ने उक्त अधि

नियम की धारा 8,9,11 और 12 संविधान के अनु0 14, 21, 51.।(g) एवं सातवें परिशिष्ट की सूची II के आइटम 17.। और 17-A के आलोक में संकटापन्न प्रजातियों एवं मानव संघर्ष, मानव निर्मित विधि में मानव पक्षपात की आशंका, वन्य जीवों को कम महत्व देना आदि मानव केन्द्रित दृष्टि को छोड ष्कर पारिस्थैतिकीकेन्द्रित दृष्टिकोण अपनाने पर जोर दिया। उच्चतम न्यायालय कहा कि ज्यादा विकास गति विधियों के कारण वन एवं वन्य जीवों के जीवन की निजता में ज्यादा हस्ताक्षेप होता है। उन्होंने स्पष्ट किया कि लोगों का विकास सदैव स्वागत योग्य है पर यह विकास पारिस्थैतिकी प्रणाली पर नकारात्मक प्रभाव की कीमत पर नहीं होना चाहिए। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि राष्ट्रीय वन्य जीवन ऐक्शन प्लान, 2000-2012 तथा केन्द्र द्वारा संचालित इनटेगरेटैड डेवल्पमेण्ट ऑफ वाइल्ड लाइफ हैबिटेट्स, 2009 पारिस्थैतिकी केन्द्रित सिद्धान्त पर केन्द्रित हैं। फण्ड की कमी का बहाना बनाकर अभयारण्य प्रबन्धन में ढील स्वीकार्य नहीं होगी। उच्चतम न्यायालय ने आदेश दिया कि तीन महीने के भीतर एशियाई वन्य भैंसा के संरक्षण हेतु प्रभावकारी कदम उठाये जाने चाहिए।

टी0 एन0 गोदावर्मन थीरूमूलपाद बनाम भारत संघ[7] इस मामले में मुख्य विचारणीय मुद्दा यह उठा कि क्या चन्दन लकड़ी और रेड सैण्डर्स जिन्हें संकटापन्न प्रजाति माना गया है उन्हें वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 की धारा 2 (27) के अर्थ में विनिर्दिष्ट पौधा घोषित कर अधिनियम के परिशिष्ट VI में सम्मिलित किया जाना चाहिए? अपने तथा न्या0 सी0 के0 प्रसाद की ओर से खण्डपीठ का निर्णय सुनाते हुए न्या0 के0 एस0 पी0 राधाकृष्णनन ने केन्द्र सरकार को निर्देश दिया कि लाल चन्दन लकड़ी को वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 की धारा 2 (27) के अर्थ में विनिर्दिष्ट पौधा मानते हुए उसको VI परिशिष्ट में सम्मिलित किया जाय। जिसके पीछे युक्तिपरकता अद्यतन पर्यावरणीय नैतिक दर्शन में आये बदलाव में माना गया जिसमें माध्यम महत्व की जगह आभ्यन्तरिक मूल्य पर अर्थात् केन्द्रितदृष्टिकोण की जगह पारिस्थैतिककेन्द्रित दृष्टिकोण अपनाया गया है।

(2) पशु अधिकारों की दृढ़ोक्ति: भारत में विश्व स्तर मानवकेन्द्रित से पारस्थैतिकी-केन्द्रित और पर्यावरण की जगह प्रकृति की प्रगति का आभास पहले से था। मानव-स्वतन्त्र भावों को स्वीकार कर पशु पक्षियों के अधिकारों को स्वीकार किया गया। वन्य-जीव संरक्षण अधिनियम, 1972 और पशुओं के प्रति क्रूरता निवारण अधिनियम, 1960 इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। इसके साथ ही सन् 1976 में संविधान 42 बेंसंशोधन अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 51.A मूलकर्तव्य के रूप में जोड़ा गया जिसके उपखण्ड (g) में स्पष्ट किया गया है कि नागरिकों का यह कर्तव्य होगा कि वे, "वनों, झीलों, नदियों और वन्य जीव सहित नैसर्गिक पर्यावरण का संरक्षण एवं अभिवृद्धि करें और जीवित प्राणियों हेतु दयाभाव रखें 51-A(g), भारतीय उच्च एवं उच्चतम न्यायालय ने अग्रणी एवं क्रान्तिकारी रूप में प्रभावोत्पादक रूख अपना कर मानव-केन्द्रितदृष्टिकोण से आगे बढ़कर पारिस्थितिकीकेन्द्रित दृष्टिकोण अपना कर पशु अधिकार की दृढ़ोक्ति की है। न्या0 के0 एस0 पी0 राधाकृष्णन ने पशु अधिकार दृढ़ोक्ति में प्रमुख भूमिका अदा की है।संकटापन्न पशु प्रजाति संरक्षण, सकर्स, पशु क्रूरता निवारण एवं जल्ली काट बैलगाड़ी दौड़ निवारण के माध्यम से पशु आहार की व्याख्या की जाती है।

सर्कस-पशु प्रशिक्षण-न्या0 कुरूप ने एन0 आर0 नायर बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया,[8] के मामले मे सरकार द्वारा पशुओं के प्रति क्रूरता निवारण अधिनियम, 1960 की धारा 22 के अन्तर्गत जारी अधिसूचना कि कोई व्यक्ति बन्दरों, चीतों, तेंदुओं और शेरों को प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन नहीं करेगा, को वैध करार देते हुए अत्यन्त नवीन दृष्टिकोण अपना कर अधिकार की दृष्टि से मनुष्य एवं पशुओं के बीच अन्तर समाप्त करने का प्रयास किया। तथा कहा कि यद्यपि कि पशु मानव प्राणी नहीं है, फिर भी वे ऐसे प्राणी हैं जो क्रूरता और यातना बिना सम्मानजनक अस्तित्व एवं सहृदय बर्ताव के हकदार हैं। कतिपय मामलों में वे मनुष्यों से बेहतर आचरण करते है। वे शिकार, खाने के लिए करते हैं और खाते हैं, जीवित रहने हेतु और खाने हेतु जीवित नहीं रहते जैसा कि हम लोगों में से कुछ लोग करते हैं[9]।पशुओं में भी बोधगम्य आचरण होता है। बहुत विश्वास करते हैं कि मानव और पशु समान महत्व के हैं। तथा इसलिए यह हमारा केवल मूलकर्तव्य नहीं है कि हम अपने पशु साथियों के साथ दयाभाव रखें बल्कि उनके अधिकारों की पहचान एवं संरक्षण का भी कर्तव्य है[10]।

बैलगाड़ी दौड़ प्रतियोगिता निषेध- टी0 एन0 गोदावर्मन थीरूमूलपाद बनाम भारत संघ[11] के मामलेमें न्या0 के0 एस0 पी0 राधाकृष्णन ने मिनिस्ट्री ऑफ इन्वायर्मेण्ट एवं फारेस्ट के द्वारा 17-11-2011 की अधिसूचना जिसके द्वारा वृषभों प्रदर्शन, प्रशिक्षण को निषिद्ध किया गया था, वैध घोषित करते हुए अदाकार के रूप में हुए पशुअधिकार पर विस्तृत एवं नवीनतम दृष्टिकोण व्यक्त किया। तमिलनाडु में जल्ली काट्ट समारो हमें सदियों से वृषभों की गाड़ीदौड़ प्रतियोगिता होती थी। विद्वान न्यायाधीश ने अपने स्वयं तथा न्या0 पी0 सी0 घोष हेतु निर्णय सुनाते हुए बैलगाड़ी दौड़ को पशुओं के प्रति क्रूरता निवारण अधिनियम की धारा 3 और 11 का उल्लघन घोषित किया। यह दौड़ वृषभों को दर्द, वेदना एवं दुश्चिन्ता का शिकार बना कर मात्र मानव आनन्द हेतु आयोजित होती थी।

अधिकार के ताने-बाने में अनु0 21 का विस्तार का पशु-जीवन को भी उसमें सम्मिलित माना गया। विद्वान् न्यायाधीश ने स्पष्ट किया कि प्रत्येक प्रजाति का जीवन एवं सुरक्षा अधिकार है। यह मात्र मानव आवश्यकता हेतु वंचित किया जा सकता है। अनुच्छेद 21 में संविधान द्वारा मानवों के अधिकारों को सुरक्षित करते हुए जीवन संरक्षण का अधिकार दिया गया है। जीवन शब्द की विस्तृत व्याख्या की गई है। और सभी तत्व जो पर्यावरण बनाते है। जिसमें पशु जीवन सहित सभी तरह के जीवन सम्मिलित हैं। पर्यावरण के साथ छेड़छाड़ अनुच्छेद 21 की विषय-वस्तु से नियंत्रित है क्योकि मानव जीवन को ये सभी सफल बनाते है। जहाँ तक पशुओं का तात्पर्य है जीवन का तात्पर्य मानव प्राणियों हेतु माध्यम के मात्र उत्तरजीवी अथवा जीवन से कुछ ज्यादा है और वह है सम्मान एवं गरिमा की अभ्यान्तरिक उच्च गुणवत्ता के साथ जीवन जीना। इस तरह प्रत्येक प्रजाति का जीने का पैदाइशी एवं सहज अधिकार है। पशुओं को कष्ट देकर आनन्द लेने वाले समारोह मानव प्रजाति अहंवाद का द्योतक है जिसके फलस्वरूप मनुष्य अपनी दूसरी प्रजातियों की दुर्भावना वश अपने को उनसे ऊँचा मानकर उन्हें यातना देने से बाज नहीं आता।

संविधान के अनुच्छेद 51-A(g) के अन्तर्गत नागरिकों के जीवित प्राणियों के दयाभाव की अपेक्षा, पशुओं के प्रति क्रूरता निवारण अधिनियम की धारा 3 में दिए गए कर्तव्य परिप्रेक्ष्य में न्यायालय राधाकृष्णन ने स्पष्ट किया कि 1 धारा 3 और 11 में पशुओं का प्रत्याभूत अधिकार मात्र सांविधिक अधिकार है। पशुओं की गरिमा एवं सम्मान को कतिपय देशों की तरह सुनिश्चित करने हेतु इस बात की आवश्यकता है कि इस सांविधिक अधिकार को सांविधानिक अधिकार का स्थान दिया जाए[12] और पशुओं के प्रति क्रूरता निवारण अधिनियम के अन्तर्गत और अधिक कठोर दाण्डिक प्रावधान बनाए जाएँ।

निष्कर्ष: भारतीय उच्चतम न्यायलय ने 2000 के दशक तक (2010तक) अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धतानुसार धारणीय विकास को अपनाया है। परन्तु विशेषबल मानव हित साधन पर रहा है। अस्तु शुद्ध वायु, शुद्ध जल, जीव-जन्तुओं, भू-जल प्रदूषण मुक्त पर्यावरण, शोर मुक्त पर्यावरण, सभी तरह के मूलाधिकारों का समावेश संविधान के अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत वर्णित 'जीवन' की उदार व्याख्या कर किया है। परन्तु सबका केन्द्र बिन्दु मानव हित रहा है।

लेकिन उच्चतम न्यायलय ने 2000 के दशक के बाद (2010 के बाद) मानवकेन्द्रित सिद्धान्त से पारिस्थितिकीकेन्द्रित सिद्धान्त की तरफ प्रवाहित होती दिखती हैं। धारणीय विकास, प्रदूषक भुगतान करे और अन्त:पीढ़ी साम्या जैसे हमारे बहुत से सिद्धान्तों की जड़ें मानव केन्द्रित सिद्धान्तों में हैं। मानव-केन्द्रिकवाद सदैव मानवहित केन्द्रित है अर्थात मानव अग्रता रखता है और मानव की गैर मानव उसके लिए लाभ के आधार हैं। पारिस्थितिक-केन्द्रिकतावाद प्रकृति केन्द्रित है जहाँ मानव प्रकृति के हिस्से हैं और गैर मानव आभ्यन्तरिक महत्व रखते हैं। इस प्रकार पारिस्थितिकी केन्द्रिकतावाद जीवन केन्द्रित है, प्रकृति-केन्द्रित है जहाँ प्रकृति में मानव और गैर मानव दोनो सम्मिलित हैं। इस मिथक का कि मानव व जीव-जन्तु मे मध्य कोई अन्तर्सम्बन्ध नहीं होता है, का त्याग किया जाना चाहिए क्योंकि यह प्रमाणित हो चुका है कि मानव, जीव-जन्तु, व वन्य जीव के मध्य अर्न्तसम्बन्ध होता है। अत: इन दोनो में बीच समन्वय कायम रखना मानव कर्तव्य हैं। और मानव जाति को अपनी ज्ञान के अभिमान को त्यागकर प्रकृति के नियमो के अनुकुल अचरण करना चाहिये। यदि ऐसा नही किया गया तो वह दिन दूर नही जब हम मानव का विनाश होते देखेगें ।

सन्दर्भ सूची

- अनिरूद्ध प्रसाद, पर्यावरण एवं पर्यावरणीय संरक्षण विधि की रूपरेखा (इलाहाबाद: सेण्ट्रल लॉ पब्लिकेशन 2018)
- डॉ0 सी.पी. सिंह: पर्यावरण विधि, 2013 (इलाहाबाद: सेण्ट्रल लॉ पब्लिकेशन)
- डॉ0वी.के.श्रीवास्तव तथा डॉ0वी.पी.राव, पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी (गोरखपुर: वसुन्धरा प्रकाशन 2012)
- प्रो0 पी. डी. शर्मा: पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण (पादप भूगोल सहित), तृतीय संस्करण-2019-2020 (रस्तोगी पब्लिकेशन्स, 'गंगोत्री' शिवाजी रोड, मेरठ-250002)

वाद सूची

1. एनीमल वेल्फेयर बोर्ड ऑफ इण्डिया बनाम ए0 नागराज, (2014) 7 सु0 को0 केसेज 547 पृष्ठ 591
2. (1991) 3 सु0 को0 केसेज 54.
3. रुरल लिटिगेशन एण्ड इन्टाइटिलमेण्ट केन्द्र देहरादून बनाम उ0प्र0 राज्य (2012) 4 सु0को0के0 362
4. ए0 आई0 आर0(1988) सु0 को0 केसेज 2187
5. टी0 एन0 गोदावर्मन थीरूमूलपाद बनाम भारतसंघ (2012) 4 सु0को0के0 362
6. (2012) 3 सु0 को0 केसेज 279.
7. (2012) 4सु0 को0 केसेज362.
8. ए0 आई0 आर0 2000 केरल 340.
9. तत्रैव, पेज नं0 353.
10. ए0 आई0 आर0 2000 केरल 340, पेज सं0 353.
11. (2012) 3 सु0 को0 के0 277
12. कर्तव्य अधिरोपण आज्ञापक है।

एम०एड० व एम०ए० शिक्षाशास्त्र के नेट/जे०आर०एफ० विद्यार्थियों की शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन

रवितोश कुमार सिंह

शोधार्थी, हंडिया पी0जी0 कालेज हंडिया, प्रयागराज, उ0प्र0

डॉ० (श्रीमती) रेखा शुक्ला

शोध निर्देशक एवं एसोसिएट प्रोफेसर, हंडिया पी0जी0 कालेज हंडिया, प्रयागराज, उ0प्र0

संक्षिप्त सारांश

आज हम यह नहीं कह सकते हैं कि विषय सामग्री का पर्याप्त ज्ञान रखने वाला व्यक्ति विषयवस्तु को उचित प्रकार से पढ़ा लेगा। शिक्षण की प्रक्रिया में निपुणता प्राप्त करने, बालक के नानापक्षीय विकास व उसे प्रभावित करने वाले कारकों का कार्यपरक ज्ञान प्राप्त करने, सीखने की प्रक्रिया व उसके निर्धारक तत्वों को समझने, अनुशासन सीमित करने के उपायों व बाल-विकास पर उसके प्रभाव को समझने, शिक्षण के दार्शनिक, समाजशास्त्रीय व मनोवैज्ञानिक आधारों को जानने, विभिन्न शिक्षण विधियों/प्रतिमानों का अभ्यास करने, मूल्यांकनकर्त्ता की भूमिका ढंग से निभाने में समर्थ होने, विद्यार्थियों व शिक्षण कार्य के प्रति उचित अभिवृत्तियों व उपयुक्त कार्य-मूल्यों को विकसित करने, विभिन्न आयु वर्ग के बच्चों की विकासात्मक और अन्य आवश्यकताएँ समझने आदि के लिए शैक्षिक अनुभव आवश्यक है। आवश्यक ज्ञान देने व शिक्षण की कला में प्रवीणता के विकास के लिए शिक्षण अभिक्षमता भी जरूरी है, शिक्षक की कार्य कुशलता काफी सीमा तक उसकी शिक्षण अभिक्षमता पर निर्भर करती है अन्यथा वे अपने शिक्षण कर्तव्यों का सफलतापूर्वक निर्वाह नहीं कर पाते। जो एम0एड0 उपाधि के बाद नेट/जे0आर0एफ0 उपाधि प्राप्त किये हैं अथवा एम0ए0 (शिक्षाशास्त्र) की उपाधि प्राप्त किये हैं उनकी शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति तथा शिक्षण अभिक्षमता क्या है?

मुख्य शब्द:- शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति, मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, CR मूल्य इत्यादि।

प्रस्तावना:- शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक का कार्य निष्पादन सर्वाधिक महत्व का निवेश है। शिक्षा से सम्बन्धित प्रत्येक योजना का सफल क्रियान्वयन शिक्षकों के वैयक्तिक व्यवहार, शिक्षण-अधिगम प्रक्रियाओं व कार्य निष्ठा पर निर्भर करता है। अपने विद्यार्थियों के कल्याण के लिए पूर्णत: प्रतिबद्ध, परिश्रमी व सृजनशील शिक्षकों ने शिक्षा प्रणाली में व्याप्त असंतोष व नगण्य लाभों के बावजूद अपने व्यावसायिक दायित्वों को समर्पण भाव से निभाया है। दुर्भाग्यवश श्रेष्ठ ग्रंथों, पुस्तकों एवं शोध कार्यों के बावजूद शिक्षकों को उदासीनता तथा निअस्तरीय गुणवत्ता के कारण शिक्षा का सर्वाधिक अहित भी हुआ है। शिक्षकों से बड़ी आशाएँ लगायी जाती हैं परन्तु आज अन्तिम विकल्प के रूप में युवक व युवतियाँ शिक्षण व्यवसाय चुनती हैं। ऐसी दशा में काफी संख्या में ऐसे व्यक्ति शिक्षक बन जाते हैं जिनमें न तो शिक्षण अभिक्षमता होती है और न ही अभिव्यक्ति। अनुपयुक्त शिक्षकों के कारण हमारा शिक्षा तंत्र पंगु हो गया है तथा हमारे शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम शिक्षकों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, शारीरिक दक्षता, प्रभावी वक्तृता, पहलशक्ति, प्रत्ययात्मक स्पष्टता, लेखन क्षमता, बौद्धिक योग्यता, जिज्ञासा, ज्ञानार्जन के प्रति प्रेमम, निरंतर शिक्षण प्रवीणता सुधारने की अभिप्रेरणा, शैक्षिक सहायक सामग्री का निर्माण करने की इच्छा व कुशलता, मानवीय मूल्यों आदि का विकास करने में असफल रहते हैं। भावी व वर्तमान शिक्षकों की गुणवत्ता में अभिवृद्धि के लिए उपयुक्त अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों का संगठन व संचालन अत्यावश्यक है।

1882 के हण्टर आयोग ने शिक्षण सिद्धान्त व प्रायोगिक शिक्षण की परीक्षा लेने व माध्यमिक स्कूलों के स्थायीकरण के लिए इस परीक्षा में उत्तीर्ण होना जरूरी करने, स्नातक शिक्षकों के लिए स्नातक से कम स्तर की शिक्षा प्राप्त शिक्षकों की अपेक्षा प्रशिक्षण अवधि को कम रखना व शिक्षक प्रशिक्षण को व्यवस्थित करने का सुझाव दिया। लार्ड कर्जन ने मार्च 1904 के अपने सरकारी प्रस्ताव में ये सुझाव दिये कि शिक्षण प्रशिक्षण संस्थाओं की वृद्धि करना, प्रशिक्षण स्तर को ऊँचा उठाना, भारतीय शिक्षा सेवा के लिए योग्य प्रशिक्षण व्यक्तियों का चयन, स्नातकों के लिए एक वर्षीय उपाधि/डिप्लोमा देने वाला प्रशिक्षण कार्यक्रम, प्रशिक्षण के दौरान शिक्षण कला के सिद्धान्तों के अधिगम तथा शिक्षण कौशलों के विकास पर बल, स्नातक से कम योग्यता वाले प्रशिक्षणार्थियों के लिए दो वर्षीय घनीभूत पाठ्यक्रम शुरू करना जिसमें अध्यापन विषयों का पूर्ण ज्ञान कराया जाय व शिक्षण कौशल विकसित किये जाय, सैद्धान्तिक पक्ष को व्यावहारिक शिक्षण से सम्बन्धित करना, प्रत्येक प्रशिक्षण महाविद्यालय से एक विद्यालय को सम्बद्ध करना, प्रशिक्षित अध्यापकों को समय-समय पर

प्रशिक्षण महाविद्यालय बुलाना, अन्य महाविद्यालयों की तरह प्रशिक्षण महाविद्यालयों में भी साज-सज्जा व उपकरणों की व्यवस्था करना, यह देखना कि प्रशिक्षित शिक्षक विद्यालयों में भी विधि पूर्वक न कि यंत्रवत, काम करें।

1947 तक दो वर्षीय पाठ्यक्रम चलाने वाले दीक्षा विद्यालय 1 व 2 वर्ष तक प्रशिक्षण देने वाले माध्यमिक विद्यालय तथा एक वर्षीय पाठ्यक्रम वाले प्रशिक्षण महाविद्यालय प्रचलित थे जो क्रमशः मिडिल, हाईस्कूल/इण्टरमीडिएट तथा स्नातक परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने वालों के लिए थे। 1947 में केन्द्रीय शिक्षा संस्थान दिल्ली व 1948 में विश्वभारती में विनय भवन स्थापित हुए। राजकीय प्रशिक्षण महाविद्यालय का नाम सेन्ट्रल पेडागॉजिकल इन्स्टीट्यूट (CPI) इलाहाबाद रखा गया।

अध्ययन का औचित्यः- भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के बाद जब ईसाई मिशनरियों ने शिक्षण कार्य शुरू किया तब शिक्षक प्रशिक्षण को आवश्यकता महसूस की गयी। सर्वप्रथम केरी मार्शमेन तथा वार्ड ने 1793 में श्रीरामपुर (बंगाल) में शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय की स्थापना की। 1819 में कलकत्ता स्कूल सोसायटी ने देशी स्कूलों के प्राथमिक शिक्षकों को अपनी संस्था में प्रशिक्षण देने का काम शुरू किया। सर्वप्रथम 1823 में एलफिन्सटन ने देशी भाषाओं में एक या दो ऐसी पुस्तकें प्रकाशित करने का सुझाव दिया था जिनमें विद्यालयों को व्यवस्थित करने के नियम बताये गये हैं। 1824 में बम्बई की नेटिव स्कूल सोसायटी की एक समिति ने तथा स्कूल बुक सोसायटी, मद्रास ने अध्यापकों की शिक्षा की आवश्यकता महसूस की। 1826 में सरकार ने मद्रास में प्रथम शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय की स्थापना की। 1831 में एडम ने अंग्रेजी विद्यालयों के देशी भाषा विभाग को प्रशिक्षण विभाग बनाने तथा प्रत्येक शिक्षक के लिए चार वर्ष की अवधि में प्रति तीन माह के लिए ऐसे विद्यालयों में अध्ययन करने का सुझाव दिया। 1847 में बम्बई में तथा 1849 में कलकत्ता में भी प्रशिक्षण विद्यालय खोले गये। कलकत्ता के शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय के साथ एक आदर्श विद्यालय भी संलग्न था। 1851 में पूना महाविद्यालय में शिक्षक प्रशिक्षण विभाग खोला गया। 1852 में आगरा में शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय की स्थापना की गई।

साहित्यावलोकनः- सम्बन्धित साहित्य से तात्पर्य अनुसंधान से सम्बन्धी उन सभी प्रकार की पुस्तकों, ज्ञान कोषों, का पत्रिकाओं, प्रकशित तथा अप्रकाशित शोध प्रबन्धों एवं अभिलेखों से है, जिसके अध्ययन से अनुसंधानकर्त्ता को अपनी समस्या के चयन, परिकल्पनाओं के निर्माण, अध्ययन की रूपरेखा तैयार करने एवं कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती हे।

सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन के बिना अनुसंधानकर्त्ता का कार्य अधूरा है। अतः किसी भी शोधकर्त्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह जिस क्षेत्र से सम्बन्धित शोध कार्य कर रहा है, उस क्षेत्र से सम्बन्धित अब तक हुए सम्बन्धित साहित्य का पुनरावलोकन करें।

सम्बन्धित साहित्य सर्वेक्षण के कार्यः- सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण के कार्य मुख्य रूप से निम्नलिखित हैः-

1. अनुसंधान कार्य के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि प्रदान करता है। प्रदान करता है। प्रत्येकप्रत्यय और धारणा को स्पष्ट करता है।
2. इसके द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि समस्या क्षेत्र में अनुसंधान स्थिति क्या है? इसके ज्ञान द्वारा अपने अध्ययकी योजना बनाना सरल हो जाता है।
3. सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण अनुसंधान के लिए अपनाई जाने वली विधि, प्रयोग में लाये जाये वाले उपकरण तथा आंकडों के विश्लेषण के लिए प्रयोग में आने वाली उपयुक्त विधियों को स्पष्अ करता है।
4. यह इस बात का भी आभास देता है कि किया गया अनुसंधान कार्य किस सीमा तक सफल हो सकेगा और प्राप्तनिष्कर्षो की उपयोगिता क्या होगी।

सम्बन्धित साहित्य सर्वेक्षण के उद्देश्यः- सम्बन्धित शोध साहित्य को उद्देश्यों के दृष्टिकोण को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. तुलनात्मक आंकडों को प्राप्त करने व उनके विश्लेषण में सहायक होता है।
2. सम्बन्धित साहित्य की दूरी प्रक्रिया की योजना तैयार करने का लक्ष्य।
3. तथ्य संकलन करने तथा विश्लेषण की प्रक्रिया को स्पष्ट करने का लक्षण।
4. विफलताओं के विरूद्ध सुरक्षात्मक उपाय निश्चित करने का साधन।
5. समस्याओं के समाधान हेतु अनुसंधान की समुचित विधि का सुझाव देता है।

मदनाकर, आर.आर. (2014)ने "शिक्षक प्रशिक्षकों में संवेगात्मक बुद्धि और डाईअ के प्रशिक्षण कार्यक्रमों के प्रति अभिवृत्ति" शीर्षक पर कर्नाटक विश्वविद्यालय, धाखाड़ से प्रयोजनात्मक शोधकार्य किया और निष्कर्ष में बताया कि डाईट के प्रशिक्षण कार्यक्रमों और संवेगात्मक बुद्धि के मध्य सकारात्मक सहसम्बन्ध पाया गया। शिक्षक प्रशिक्षकों में सूक्ष्म शिक्षण, पाठ शिक्षण, खण्ड शिक्षण, अवलोकन, प्रदर्शन पाठ आदि के बारे में सकारात्मक अभिवृत्ति पाई गई।

शर्मा, दर्शना (2016) ने "प्राथमिक अध्यापकों की समावेशी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति" शीर्षक पर जम्मु विश्वविद्यालय से प्रयोजनात्मक शोधकार्य किया और निष्कर्ष में बताया कि निशक्त विद्यार्थियों के लिए नियमित कक्षा में समावेशी शिक्षा के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति रखते है। अध्यापकों की अभिवृत्ति को बच्चों की पृष्ठभूमि, प्रकृति और निशक्तता का प्रकार, विस्तृत कक्षा का आकार, कार्य दबाव, सामान्य विद्यार्थियों का बहिष्कार और व्यावसायिक प्रशिक्षण इत्यादि प्रभावित करते है।

सिंह कुलबिन्द्र (2018) ने "शारीरिक शिक्षा की महिला अध्यापको में अपने व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति" शीर्षक पर सीएमजे विश्वविद्यालय शिलाँग से शोध पत्र प्रस्तुत किया और शोध क निष्कर्ष में पाया कि शारीरिक शिक्षा की महिला अध्यापिकाएँ समाज में व्यवसाय के प्रति सम्मान एवं स्वाभिमान का आनन्द नही लेती है। और व्यवहार अध्यापिकाएँ इस व्यवसाय की व्यादा तामझाम मानती है। समान में व्यवसाय के सम्मान में कभी का कारण अध्यापकों की गुणवत्ता है, ज्यादातर शारीरिक शिक्षा की अध्यापिकओं ने अपने क्षेत्र में कोई उपलब्धि नही पाई।

सम्बन्धित चरों पर विदेशों में हुए शोधो का पुनारावलोकनः- बाक्सट्रर और एन्थोनी, जी.(1993) ने, अधिगम के सैद्धान्तिक ज्ञान के प्रति शिक्षण प्रतिभागियों की अभिवृत्ति में सुधार हेतु शोध कार्य किया और निष्कर्ष में बताया कि जिन अध्यापकों का थ्योरी ओरिएन्टेड नोमेनोटिव मॉल और ओरिएन्टेड पुनर्वलन के साथ प्रेक्टिस आरिएन्टेड कॉन्टेक्ट की थ्योरी दी गई थी उनकी सैद्धान्तिक ज्ञान के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति जिसकों ये मॉडल नहीं दिया गया था उनकी तुलना में उच्च पाई गई।

अध्ययन के उद्देश्यः- प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ळा द्वारा अध्ययन के उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि ''एम0एड0 व एम0ए0 शिक्षाशास्त्र के नेट/जे0आर0एफ0 विद्यार्थियों की शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।''

शोध अध्ययन की परिकल्पनाः- उद्देश्य की पूर्ति हेतु शून्य परिकल्पना निर्मित की गई थी कि-''एम0एड0 व एम0ए0 शिक्षाशास्त्र के नेट/जे0आर0एफ0 विद्यार्थियों की शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं है।''

शोध विधि- प्रस्तुत अनुसंधान में वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है जिसके अन्तर्गत सभी M.Ed. तथा M.A. (शिक्षाशास्त्र) के विद्यार्थियों पर सर्वेक्षण किया गया तथा तीन उपकरणों की सहायता से आंकड़े प्राप्त किए गए।

न्यादर्श- न्यादर्श जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करने वाला एक छोटा समूह होता है जिसमें जनसंख्या की लगभग सभी विशेषताएँ शामिल होती है।

प्रस्तावित शोध में न्यादर्श (Sampling) के चुनाव हेतु साधारण यादृच्छिकृत न्यादर्श (Sample Random Sampling) विधि का प्रयोग किया गया है-

साधारण यादृच्छिकी न्यादर्शन (Sample Random Sampling)- साधारण यादृच्छिक न्यादर्शन, संभावित प्रतिदर्शन (Probability Sampling) का एक प्रमुख प्रकार है। यह वैसे प्रतिदर्शन को कहा जाता है जिसमें जीवसंख्या (Population) के प्रत्येक सदस्य को प्रतिदर्श (Sample) में सम्मिलित किये जाने की संभावना बराबर-बराबर होती है तथा साथ ही साथ किसी सदस्य का चयन (Selection) दूसरे सदस्यों के चयन पर आधारित न होकर स्वतंत्र (Independent) होता है।

प्रस्तुत अनुसंधान के अन्तर्गत यादृच्छिक प्रतिदर्शन का प्रयोग करते हुए वीर ब0 सि0 पू0 विश्वविद्यालय जौनपुर, डॉ0 राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद तथा काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी के अन्तर्गत आने वाले एम0एड0 कॉलेजों के 100 डण्म्कण् तथा 100 M.A. शिक्षाशास्त्र के उन विद्यार्थियों को चुना गया है। जिन्होंने NET/JRF उत्तीर्ण किया है।

जनसंख्या (समष्टि)- किसी अनुसंधान की जनसंख्या से अभिप्राय उस शोध के अनुसंधान क्षेत्र में आने वाली सभी अनुसंधान इकाइयों के योग से होता है। प्रस्तत अनुसंधान की जनसंख्या के अन्तर्गत वीर ब0 सि0 पू0 विश्वविद्यालय जौनपुर, डॉ0 राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद तथा काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी के अन्तर्गत आने वाले सभी एम0एड0 कॉलेजों में अध्ययनरत उन विद्यार्थियों से है जिन्होंने छम्ज्थ्त्थ् परीक्षा उत्तीर्ण कर ली।

शोध उपकरण- अनुसंधान की समस्या के निश्चय एवं परिकल्पना निर्माण के पश्चात् अनुसंधानकर्ता के समक्ष यह समस्या आती है कि वह अपनी परिकल्पना के परीक्षण के लिए आँकड़ों का संग्रह किस विधि से करें तथा किन उपकरणों के द्वारा करें? इस अवस्था में यह वर्तमान उपलब्ध उपकरणों का विश्लेषण करने के पश्चात् वह ज्ञात करने का प्रयास करता है कि कौन सा उपकरण हमारे कार्य में साधक होगा और तभी उसे चुन लेता है। यदि उपलब्ध उपकरण उसकी आवश्यकता को पूर्ण नहीं कर पाते तो वह उनमें सुधार कर लेता है। यदि उपलब्ध उपकरण हो तो नवीन उपकरण बनाने में समय नष्ट नहीं करना चाहिए। चूँकि उपलब्ध उपकरण लगभ प्रामाणिक होते हैं और इन उपकरणों को प्रशासित करके हम सटीक एवं सही-सही आँकड़ों को प्राप्त करने में सक्षम होते हैं।

वास्तव में अनुसंधान समस्या से प्रारम्भ होता है तथा परिकल्पना की प्रकृति के अनुरूप उपकरणों का निश्चय होता है। ऐसा नहीं है कि किसी विशेष उपकरण का ही प्रभुत्व हो और जो भी समस्या समक्ष हो, उसमें उसी का प्रयोग करें।

शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति मापनी- एम0एड0 व एम0ए0 (शिक्षाशास्त्र) के नेट/जे0आर0एफ0 विद्यार्थियों की शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति ज्ञात करने के लिए शोधकर्ता ने स्वनिर्मित टीचर एटीट्यूड इन्वेन्टरी (T.A.I.) का प्रयोग किया है। इस अनुसूची में कुल 40 कथनों का समावेश किया गया है जो शिक्षक की विभिन्न पहलुओं जैसे- शिक्षण व्यवसाय, कक्षा-शिक्षण, छात्र केन्द्रित व्यवहार, शैक्षिक प्रक्रिया, छात्रगण, अध्यापकगण इत्यादि की विशेषताओं का मापन करती है। इन 40 कथनों में से 18 कथन धनात्मक (1, 4, 6, 9, 10, 12, 15, 16, 17, 20, 22, 31, 32, 34, 36, 37, 39 एवं 40) जिनमें 22 कथन ऋणात्मक श्रेणी के हैं-(2, 3, 5, 7, 8, 11, 13, 14, 18, 19, 21, 23, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 33, 35, एवं 38 इन कथनों के द्वारा शिक्षकों के शिक्षण व शिक्षण प्रक्रिया के सम्बन्ध में व्यक्तिगत विचार क्या हैं को जानने का प्रयास किया गया है-

अंकन प्रक्रिया- इस मापनी में व्यक्ति को पाँच बिन्दुओं के आधार पर अपने उत्तर देना है जो निम्नवत् प्रकार है-

संभावित उत्तर	पूर्णतः सहमत	सहमत	तटस्थ	असहमत	पूर्णतः असहमत
धनात्मक कथन	5	4	3	2	1
ऋणात्मक कथन	1	2	3	4	5

शोध में प्रयुक्त सांख्यिकीय प्रविधियाँ- शोध समस्या से सम्बन्धित संकलित प्रदत्तों के सारणीयन करने के उपरान्त उनसे उचित परिणाम प्राप्त करने के लिए उपयुक्त सांख्यिकी प्रविधियों का प्रयोग किया गया है। चूँकि प्रस्तुत शोध में दो चर है। अतः दोनों समूहों के प्राप्तांकों का मध्यमान (Mean), मानक विचलन (Standard Deviation) व काई वर्ग परीक्षण (Chi Square Test) का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त दो चरों में सहसम्बन्ध ज्ञात करने के लिए पदक्रम सहसम्बन्ध गुणांक (Rank Order Corelation) का प्रयोग किया गया है-

परिकल्पना संख्या 1-एम.एड. व एम.ए. शिक्षाशास्त्र के नेट/ जे.आर.एफ. विद्यार्थियों की शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नही हैं।

तालिका संख्या-1: चर-अभिवृत्ति

प्रतिदर्श या समूह	समूह का आकार (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D)	0 0 मानक त्रुटि	C.R. का मान	सार्थकता	
						0.05 सार्थकता स्तर पर	0.01 सर्थकता स्तर पर
एम०एड० विधार्थी	**100**	119.76	2.25	0.32	2.16	सार्थक अन्तर है।	सार्थक अन्तर नहीं है।
एम०ए० (शिक्षाशास्त्र) विद्यार्थी	100	120.45	2.24				

व्याख्या:- प्रस्तुत शोध की परिकल्पना संख्या-1 के अन्तर्गत एम.एड. व एम.ए. शिक्षाशास्त्र के नेट/जे.आर.एफ. विद्यार्थियों की शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति में सर्थकता लगाने का प्रयास किया गया। जिसके लिए दोनों समूहों का मध्यकाल ज्ञात किया गया जो क्रमश: 119.76 व 120.45 प्राप्त हुआ। इसी प्रकार दोनों समूहों को मानक विचलन ात किया गया जो कि क्रमश: 2.25 व 2.24 प्राप्त हुआ। दोनों मध्यकानोंकी मानक त्रुटि (00) 0.32 प्राप्त हुई। दानों मध्यकानों के बीच सर्थकता ज्ञान करने के लिए क्रंतिक निस्पत्ति (C.R.) की गणना की गई जो कि 2.16 प्राप्त हुई। C.R. का यह मान सार्थकता स्तर 0.05 के मान 1.96 से अधिक व सार्थकता स्तर 0.01 के मान 2.50 से कम है। अत: निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि दोनों समूहों के मध्यमानों में 0.05 सार्थकता स्तर पर अन्तर सार्थक है जबकि 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक तौर नहीं है अत: यह परिकल्पना 0.05 सार्थकता स्तर पर असत्य जबकि 0.01 सर्थकता स्तर पर सत्य सिद्ध होती है।

शोध निष्कर्ष:- विश्लेषणोपरान्त प्रस्तुत अध्ययन से यह शोध निष्कर्ष प्राप्त किया गया कि- प्रस्तुत शोध की परिकल्पना के अन्तर्गत शोधकर्ता ने एम0एड0 व एम0ए0 (शिक्षाशास्त्र) के नेट/जे0आर0एफ0 विद्यार्थियों की शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर का पता लगाया है। सांख्यिकीय विधियों से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर 0.05 सार्थकता स्तर पर दोनों समूहों के मध्यमानों में अन्तर प्राप्त हुआ परन्तु 0.01 सार्थकता स्तर पर दोनों समूहों के मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं है। 0.05 सार्थकता स्तर पर प्राप्त अन्तर संयोगवश भी हो सकता है। शोधकर्ता का मानना है कि एम0एड0 व एम0ए0 (शिक्षाशास्त्र) के नेट/जे0आर0एफ0 विद्यार्थियों की शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर हो सकता है क्योंकि एम0एड0 पाठ्यक्रम एक प्रकार से शिक्षक प्रशिक्षण से सम्बन्धित है जिसमें शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाने के लिए शिक्षकों में विशेष योग्यता के विकास पर बल दिया जाता है। जबकि एम0ए0 (शिक्षाशास्त्र) पाठ्यक्रम शिक्षाशास्त्र की विषयवस्तु तक सीमित होता है। एक ओर जहाँ एम0एड0 के नेट/जे0आर0एफ0 विद्यार्थी शिक्षक प्रशिक्षण योग्यता में दक्ष एवं निपुण होते हैं वहीं दूसरी ओर एम0ए0 (शिक्षाशास्त्र) के नेट/जे0आर0एफ0 के विद्यार्थी शिक्षाशास्त्र विषय को पढ़ने एवं पढ़ाने में निपुण होते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त बातों को दृष्टिगत रखते हुए वह कहा जा सकता है कि कुछ स्तरों पर एम0एड0 एवं एम0ए0 (शिक्षाशास्त्र) के नेट/जे0आर0एम0 विद्यार्थियों की शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर पाया गया तथा निष्कर्षत: शोधकर्ता की उपर्युक्त परिकल्पना की सत्यता आंशिक रूप से सत्य सिद्ध होती है।

अध्ययन की शैक्षिक उपयोगिता- एम0एड0 तथा एम0ए0 शिक्षाशास्त्र में दो अलग विषय है जिनमें से एम0एड0 व्यवसायिक शिक्षा का हिस्सा होने के कारण सैद्धान्तिक तथा प्रायोगिक दोनों प्रकार से विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिक्षमता, शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति तथा शिक्षा विषय के सम्बन्ध में अद्यतन ज्ञान का संवर्धन करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसलिए एम0एड0 के विद्यालयों में उपयुक्त पाठ्यक्रम शिक्षण विधियों तथा प्रशिक्षित अध्यापकों को सम्मिलित करने की आवश्यकता है (चूँकि M.Ed. तथा M.A. के विद्यार्थियों की शिक्षण अभिक्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया)।

सन्दर्भ सूची

- अग्रवाल, वाई0 पी0: रिसर्चेच इन इमर्जिग फील्ड्स ऑफ एजूकेशन: कान्सेप्ट्स, ट्रेन्ड्स एण्ड प्रास्पैक्ट्स, नई दिल्ली: स्टर्लिग, पब्लिशर्स, 1988.
- उसमान और ओलिम (2004); "प्राथमिक विद्यालयों के सेवारत एवं सेवापूर्व अध्यापकों में शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति" पर एक शोध पत्र आनलाईन उपलब्ध है।
- कामत, ए0 आर0 व देशमुख, ए0 जी0: वेस्टेज इन कालेज एजुकेशन। पूना: गोखले इंस्टीट्यूट ऑफ पालिटिक्स एण्ड इकोनॉमिक्स, एशिया पब्लिशिंग हाउस,1963।
- चोपड़ा राकेश (एडीटर); ''एकेडमिक डिक्शनरी ऑफ एजूकेशन'' देलही ईशा बुक्स, 2005, पृष्ठ-24
- टुकमैन मीजरिंग एजूकेशन आउटकम्स, 1975, पृष्ठ-475, उद्धृत.
- डॉ0 ए0के0 सिंह ; ''शिक्षा मनोविज्ञान'' पटना भारती भवन (पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स) 2007, पृष्ठ-486.
- डॉ0 ए0के0 सिंह ; ''शिक्षा मनोविज्ञान'' पटना भारती भवन (पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स) 2007, पृष्ठ-486.
- डॉ0 आत्मानन्द मिश्र ; ''शिक्षा कोश'' कानपुर: 1977, पृष्ठ-8.

विद्यार्थियों के सांवेगिक परिपक्वता तथा राजनैतिक दक्षता में सम्बन्ध का अध्ययन

अतुल कुमार सिंह

शोधार्थी, शिब्ली नेशनल कालेज, आजमगढ़

डॉ० आसिफ कमाल

शोध निर्देशक एवं एसोसिएट प्रोफेसर, शिब्ली नेशनल कालेज, आजमगढ़

संक्षिप्त सारांश

वर्तमान में उच्च शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों के ऊपर अपने परिवार, समाज तथा राष्ट्र को अन्य जिम्मेदारी होगी। देश की प्रतिष्ठा, विकास, एकता, रक्षा एवं संप्रभुता बनाये रखने का दायित्व भी उन्हीं को निभाना है, राष्ट्र को विकास के कार्य पर निरंतर अग्रसर रखने की महत्वपूर्ण भूमिका भी इन्हीं छात्रों की होगी, किन्तु वर्तमान समय में भारत की नहीं समकालीन विश्वभर के छात्रों का अधिकांश भाग अनुशासनहीनता, क्षेत्रवाद तथा सम्प्रदायिकता के उन्माद जैसी संकीर्ण भावनाओं से ग्रसित है। उनमें नैतिक मूल्यों का निरंतर हरण हो रहा है। और वे स्वार्थ, छल, कपट तथा विकृत राजनीतिक विचारधारा की ओर उन्मुख होते हुए प्रतीत हो रहे है। छात्र एकता जिन्दाबाद का नारा लगाते हुए विद्यार्थियों के विशाल समूह सड़कों पर प्रदर्शन करते दिखाई पड़ते है। कहीं हिन्दी के विरोध में उत्तेजित छात्र बसें फूँकते है तो कहीं उर्दू या अंग्रेजी के विरोध में सार्वजनिक सम्पत्ति को तोड़ते है। कहीं आराजक समर्थक तो कहीं आराजक विरोधी छात्रों के समूह नैतिकता और मानव मूल्यों को भुलाकर मरने मारने पर उतारू हो जाते है। वर्तमान समय का विद्यार्थी विश्वविद्यालय या महाविद्यालय का सर्वश्रेष्ठ छात्र होने की आपेक्षा अमुक दल का अध्यक्ष, मंत्री लिखे जाने या कहे जाने पर अधिक गौरव महसूस करता है।

मुख्य शब्द:- सांवेगिक परिपक्वता, मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, ब्ट् मूल्य इत्यादि।

प्रस्तावना:- भारत के स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से ही विश्वविद्यालय व उच्च शिक्षा का उद्देश्य रहा है - छात्र-छात्राओं में नेतृत्व क्षमता का विकास करना। इसके लिए उनमें राजनीतिक समझ को विकसित करके जनतन्त्र के मूल को जानने की शक्ति का विकास करना। नेतृत्व में प्रवीणता महाविद्यालयों की शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया पर निर्भर करता है। अधिगम वातावरण व संस्थाओं में अन्य पाठ्यसहगामी क्रियाओं का सही व संतुलित आयोजन विद्यार्थियों में राजनैतिक दक्षता को प्रभावी बनाने का कार्य करते है इस के लिए छात्रों का सांवेगिक रूप से परिपक्व होना भी आवश्यक है। विद्यार्थी महाविद्यालय व विश्वविद्यालय स्तर पर विधि क्रियाकलाप में भाग लेता है उसी में एक है- राजनीतिक क्रियाकलाप। उच्च शिक्षा का मूल उद्देश्य है छात्रों के मानसिक, शारीरिक, चारित्रिक, बोद्धिक एवं माध्यमिक विकास करना। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय समाज संस्कृति, रहन-सहन और राजनैतिक विचार धाराओं में अनेकों परिवर्तन हुए है। जनमानस के जीवनस्तर, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक विचारों और आर्थिक जटिलताओं के कारण बहुत से नये समीकरण बने है।

इस समय हमारा देश व समाज निरतंर बड़े परिवर्तन से गुजर रहा है। पुरातन छूटता जा रहा है और अनेक विषमताओं को पार करता हुआ नूतन उपर उठने की प्रक्रिया में है। इन परिस्थितियों में व्यक्ति को यह निर्णय लेने में कठिनाई हो रही है कि पुरातन एवं नूतन के मध्य कौन-सा मार्ग अपनाया जाय जिससे समाज व देश की समस्यायें सुलझ सकें और देश उन्नति की ओर अग्रसर हो सकें। इन कठिनाइयों का हल एक सही दिशा में शिक्षित कर्तव्यनिष्ठ और अनुशासित छात्रों द्वारा ही सम्भव है। जो देश की आवश्यकता को समझ सके तथा विकास के प्रत्येक क्षेत्र को विकसित पथ पर निरंतर अग्रसित करने के लिए आगे आ सकें।

अध्ययन के औचित्य:- किसी कार्य को करने का सबसे प्राथमिक कारण होता है-औचित्य कोई भी कार्य बिना किसी आवश्यक के समपादित नही किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध में शोधकर्त्ता ने महाविद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सांवेगिक परिपक्वता के अध्ययन का प्रयास किया है। प्राय: यह माना जाता है कि महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में अध्ययन करने वाले लगभग सभी विद्यार्थी सांवेगिक रूप से परिपक्व होते है उनमें सर्वांगिक गुण जैसे-क्रोध, डर, हर्ष, दु:ख, अनुराग, उत्सुकता, जलन इत्यादि पर नियंत्रण रखने की बुद्धि आ जाती है। वे अब सीख जाते है कि संवेगों पर नियंत्रण रखकर ही वे अपना सर्वांगीण विकास कर सकते है। सांवेगिक रूप से परिपक्वता के उपरांत ही वे अपनी शैक्षिक उपलब्धि के बढ़ा सकते है तथा समाज व राष्ट्र के लिए सकारात्मक कार्यो को अंजाम दे सकते है। सांवेगिक परिपक्वता के साथ वे महाविद्यालयों में रचनात्मक कार्यो व संस्थान के विकास एवं प्रगति में योगदान दे सकते है। सांवेगिक रूप से परिपक्व होने पर वे महाविद्यालय के शिक्षकों, प्रिसिपल, अपने साथियों एवं अन्य कर्मचारियों के साथ सहयोग एवं

समायोजन की भावना रखते हुए शिक्षा ग्रहण कर सकते है। संवगों पर नियंत्रण करने के लिए तथा उसे सही समय पर प्रस्तुत करने की क्षमता संवेगात्मक बुद्धि द्वारा की जाती है। संवेगात्मक बुद्धि वह दक्षता है, जिसके द्वारा कोई व्यक्ति अपने तथा दूसरों के संवेगाो को समझता है, उन्हे प्रेरित करता है और अपने तथा दूसरे के संवेंगो का प्रभावी ढंग से प्रबंधन करता है। संवेगों पर प्रभावशाली नियंत्रण की दक्षता परिपक्वता के कारण आती है। सांवेगिक रूप से परिपक्व मानव अपने आत्मविश्वास, स्वयं सुरक्षा की भावना एवं आत्म सम्मान के द्वारा व केवल अपने संवेगों पर नियंत्रण करने में पूर्णत: सक्षम होता है अपितु इस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न होने पर अथवा किसी दूसरे व्यक्तियों को भी निर्देशित करने के लिए पूर्ण रूप से योग्य होती है।

सभी संवेगात्मक दशाओं का सामाजिक महत्व होता हैं, आयु बढ़ने के साथ बालक की सामाजिक समायोजन की माँग बढ़ने लगती है। तथा उनमें पर्याप्तमात्रा में सामाजिक परिपक्वता आ जाती है। सामाजिक परिपक्वता के कारण वह बिना पक्षपात के अन्य के साथ अच्छा सामायोजन बनाने में सक्षम होता है। जब कोई भी व्यक्ति अपने जीवन एवं परिस्थितियों को अपने नियंत्रण में रखनें का प्रयास किया जाता है तब वह मानता, सुख-दुख, मोह, भय, क्रोध, घृणा, ईर्ष्या आदि से प्रभावित नहीं होता। वही व्यक्ति संवेगात्मक रूप से बुद्धिमान कहलाता है।

साहित्यावलोकन:- वर्तमान मानव के जीवन में साहित्य प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से अपना परिणामदायक महत्व रखते हैं, ऐसी स्थिति में अनुसंधान कार्य में साहित्यों के अभाव की कल्पना करना भी भयानक अनुभूति होती है अर्थात् अनुसंधान में साहित्यों के अध्ययन के महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है।

1. यह पुनरावृत्ति से बचाव करता है।
2. यह अनुसन्धान में विधि के निर्धारण में सहयोगी है।
3. यह अनुसन्धानकर्ता का समय, पैसा व परिश्रम बचाता है।
4. यह अनुसन्धानकर्ता में सूझ पैदा करता है।
5. यह समस्या का समाधान करने तथा उसका सीमांकन करने में सहायक होता है।
6. अनुसंधानकर्ता को सावधान रखता है तथा गलतियों से बचाता है।
7. शोध प्रबन्ध में एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में भूमिका निभाता है।
8. शोध साहित्य का अवलोकन करने से अनुसन्धानकर्ता के विचारों, परिकल्पनाओं व परिसीमाओं के निर्माण में तार्किकता आ जाती है।
9. अनुसंधानकर्त्ता पूर्व में प्राप्त तथ्यों से अवगत हो जाता है।

सन्दर्भ साहित्य का जितना अधिक ज्ञान प्राप्त किया जाये उतना ही विषय समझने में सहायता मिलती है। पूर्व शोध साहित्य के आधार पर ही शोधकर्त्ता अपने शोध का विषय, क्षेत्र, सीमा व विधि का निर्माण करता है। पूर्व में हुए अध्ययनों के आधार पर उसे भावी शोध में परिणाम ज्ञात करने में भी सहायता मिलती है। जहाँ शोधकर्त्ता के लिए नवीन मार्ग, नवीन दिशा की खोज का महत्व है वहीं उसे इस मार्ग पर विकास पाने व सफलता प्राप्त करने के लिए पूर्व में हुए शोध साहित्य का ज्ञान होना भी अत्यन्त आवश्यक है। सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण के बिना यह ज्ञात नहीं हो सकता कि किसी विषय में कौन सा समस्या अनुसंधान के लिए शेष है।

सिन्धु (2001) ने विद्यालयी शारीरिक-शिक्षा शिक्षकों की व्यावसायिक कुशलता का अन्य चरों के साथ संवेगात्मक परिपक्वता के सम्बन्ध का अध्ययन किया और पाया कि बुद्धि आत्मबोध तथा वातावरणीय सुविधाओं का शारीरिक शिक्षा शिक्षकों की संवेगात्मक परिपक्वता में योगदान नहीं है।

सक्सेना (2005) ने अपने अध्ययन में पाया कि कला वर्ग के विद्यार्थी, विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अपेक्षा संवेगात्मक तथा मानसिक रूप से कम परिपक्व थे तथा छात्रायें-छात्रों की अपेक्षा संवेगात्मक तथा मानसिक रूप से कम परिपक्व थी।

अख्तर (2010) ने अपने अध्ययन में पाया कि छात्रों की तुलना में छात्राओं की संवेगात्मक परिपक्वता उच्च पायी गयी और उनकी शैक्षिक उपलब्धि भी छात्रों से अधिक पायी गई।

नीतू (2012) ने अपने अध्ययन में पाया कि ग्रामीण छात्रों में शहरी छात्रों की अपेक्षा, संवेगात्मक परिपक्वता अधिक थी किन्तु छात्राओं के सम्बन्ध में संवेगात्मक परिपक्वता में कोई अन्तर नहीं पाया गया।

सिंह (2021) ने अपने अध्ययन में पाया कि सांवेगिक परिपक्व तथा अपरिपक्व विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति में समानता थी।

अध्ययन का उद्देश्य:- प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ळा द्वारा अध्ययन के उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि ''विद्यार्थियों के सांवेगिक परिपक्वता तथा राजनैतिक दक्षता में सम्बन्ध का अध्ययन करना।''

शोध अध्ययन की परिकल्पना:- उद्देश्य की पूर्ति हेतु शून्य परिकल्पना निर्मित की गई थी कि ''विद्यार्थियों के सांवेगिक परिपक्वता तथा राजनैतिक दक्षता में सार्थक सह सम्बन्ध नही है।''

शोध विधि- यद्यपि शैक्षिक शोध को वर्गीत करना एक कठिन कार्य है क्योंकि भिन्न-भिन्न पाठ्यपुस्तकों में कई वर्गीकरण अलग-अलग ढंग से प्रस्तावित किये गये हैं। फिर भी बेस्ट एवं काहन ;ठमेज - ज्ञीद 1992द्ध द्वारा प्रस्तावित वर्गीकरण को सबसे उत्तम माना जा सकता है और इसे वर्गीकरण की एक कसौटी मानते हुए शैक्षिक शोध को निम्नांकित तीन प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है। प्रस्तुत अध्ययन विवरणात्मक प्रकार का शोध अध्ययन है जिसका वर्णन निम्नलिखित है-

1. ऐतिहासिक शोध
2. विवरणात्मक शोध

3. प्रयोगात्मक शोध

समष्टि- शोध में समष्टि शब्द का अर्थ भिन्न होता है। समष्टि या जनसंख्या का तात्पर्य सम्पूर्ण इकाइयों के निरीक्षण से होता है इसमें कुछ इकाइयों का चयन करके न्यादर्श बनाया जाता है। न्यादर्श की इकाइयों के निरीक्षण तथा मापन से जनसंख्या की विशेषताओं के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जाता है।

प्रस्तुत शोध में शोधकर्त्ता द्वारा जौनपुर जनपद के वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से अध्ययनरत् स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं को समष्टि अथवा जनसंख्या के रुप में परिभाषित किया गया है।

न्यादर्श- समष्टि के अंश को न्यादर्श माना गया है, एक अंश के आधार पर सम्पूर्ण तथ्य के विषय में ज्ञान दिया जाता है जिसे न्यादर्श की प्रक्रिया कहते हैं।

सामाजिक विज्ञानों में सभी व्यक्तियों से सूचनाएँ एकत्रित करना सम्भव नहीं हो पाता है जिससे शोध अध्ययन को सार्थक कर लिया जाता है जिसे न्यादर्श कहते हैं।

शोधकर्ता द्वारा प्रस्तुत शोध में जौनपुर जनपद में स्थित शहरी एवं ग्रामीण विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में स्नातक-स्तर के 600 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में सम्मिलित किया गया है।

न्यादशर्ज:- न्यादर्श चयन करने की विधि को न्यादर्शज कहते है जो सम्भाव्यता के आधार पर यादृच्छि प्रविधि द्वारा लाटरी रीति से चयनित की गयी थी।

सम्भाव्यता न्यादर्शन- जब जनसंख्या की किसी इकाई को न्यादर्श में सम्मिलित करने के लिए उसका चयन संयोग पर निर्भर करे तो उस चयन विधि को सम्भाव्यता न्यादर्शन कहते हैं। चयन संयोग पर तब निर्भर करता है जब किसी भी इकाई को न्यादर्शन में सम्मिलित करना या न करना मानव-निर्णय पर निर्भर न हो। सम्भाव्यता न्यादर्शन में कोई भी व्यक्ति किसी विशिष्ट इकाई को अपनी इच्छानुसार न्यादर्श में नहीं रख सकता है। इस न्यादर्श प्रक्रिया के किसी न किसी स्तर पर चयन संयोगवश होता है।

शोध उपकरण:- प्रस्तुत अध्ययन में आंकड़ों के संकलन हेतु शोध उपकरण प्रयुक्त किया गये थे-

सांवेगिक परिपक्वता मापनी- यह मापनी महाविद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता जाँचने के लिए तैयार की गई है। मापनी में निजी और अधिगम-कार्य से संबोधित जीवन के विभिन्न पहलुओं से मनोवृत्तियों, संवेगों, उपकरणों का विवरण करते हुए कुछ मध्य दिये गये है। यह अध्ययन केवल शोध कार्य के लिए है और इससे प्रतिवादी की निजी व्यावहारिक जिन्दगी पर कोई प्रभाव नही पड़ेगा।

यह इस मापनी संवेगात्मक परिपक्वता के विभिन्न पहलुओं का विवरण देने का अवसर प्रदान करती है। इसके लिए आपको यह बताना है कि इस नकारात्मक मापनी का हर कथन किस हद तक आपके लिये सच है। इस मापनी में कुल 22 कथन नकारात्मक है। (1, 3, 4, 7, 9, 12, 14, 16, 20, 26, 27, 30, 31, 32, 33, 35, 37, 38, 39, 46, 47, 49) तथा इस मापनी में 28 कथन सकारात्मक है (2, 5, 8, 10, 11, 13, 15, 17, 18, 19, 21, 22, 23, 24, 25, 28, 29, 34, 36, 40, 41, 42, 43, 44, 45, 48, 50)

मापनी में प्रत्येक कथन के लिए दिये गये उत्तरों का अंकत निम्नवत् किया जायेगा-

संभावित उत्तर	मेरे लिए हमेशा सच	मेरे लिए प्रायः सच	मेरे लिए कभी–2 सच	मेरे लिए कुछ बार सच	मेरे लिए कभी सच नहीं
धनात्मक कथन	5	4	3	2	1
ऋणात्मक कथन	1	2	3	4	5

विश्वसनीयता- विषय की परीक्षा पुर्नपरीक्षा विधि से विश्वसनीय गुणांक 0.72 प्राप्त हुई।

वैधता- विषयवस्तु वैधता गुणांक 0.81 प्राप्त हुई।

मानक- प्रतिशतांक प्रयोग किया गया है।

परिकल्पना:- विद्यार्थियों के सांवेगिक परिपक्वता तथा राजनैतिक दक्षता में सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

शोधकर्ता द्वारा शोध की परिकल्पना में महाविद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के सांवेगिक परिपक्वता तथा राजनैतिक दक्षता में सार्थक सहसम्बन्ध ज्ञात किया गया। शोधकर्ता ने दोनों चरों में सहसम्बन्ध ज्ञात करने के लिए कार्ल पियर्सन (Karl Pearson) द्वारा प्रतिपादित गुणनफल-आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणांक का प्रयोग किया गया इस विधि में दोनों चरों पर विभिन्न विद्यार्थियों के प्राप्तांकों के सापेक्ष जेड़ प्राप्तांकों (Z-Scores) की गुणाओं का आघूर्ण अर्थात् गुणनफल आघूर्ण (r) ज्ञात किया गया। त का मान 0.12 प्राप्त हुआ। जो सहसम्बन्ध गुणांक की शाब्दिक व्याख्या के अध्ययन में यह पाया गया कि दोनों चरों के मध्य अत्यन्त निम्न धनात्मक सहसम्बन्ध है।

शोध निष्कर्ष:- विश्लेषणोपरान्त प्रस्तुत अध्ययन से यह शोध निष्कर्ष प्राप्त किया गया कि- विद्यार्थियों के सांवेगिक परिपक्वता तथा राजनीतिक दक्षता में सार्थक सह सम्बन्ध नही है का परीक्षराण किया गया है इस परिकल्पना के परीक्षण के लिए गुणनफल आपूर्ण सह सम्बन्ध गुणांक (r) का प्रयोग किया गया। सांख्यिकीय गणना करने के उपरांत गुणनफल आपूर्ण सह सम्बन्ध गुणांक (r) का मान 0.12 प्राप्त हुआ जो सह सम्बन्ध गुणांक की शाब्दिक व्याख्या के अध्ययन में पाया गया कि दोनों चरों अर्थात् विद्यार्थियों की सावेंगिक परिकल्पना व राजनैतिक दक्षता क मध्य अत्यन्त निम्न धनात्मक सह सम्बन्ध है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि महाविद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सांवेगिक परिपक्वता के विकसित होने पर कुछ न कुछ प्रभाव उनकी राजनैतिक दक्षता पर पड़ता है। इस परिकल्पना के निष्कर्ष द्वारा यह जानकारी प्राप्त होती है कि विद्यार्थियों की राजनैतिक दक्षता पर उनकें संवेगों का प्रभाव बहुत निम्न होता है। दूसरे शहरों में कहा जा सकता है कि इन क्षेत्रों चरों की विशेषताएँ अलग-अलग होती है जो विद्यार्थियों के मानसिक व सामाजिक विकास को कुछ विशेष आधार पर ही प्रभावित कर पाती हैं। शोधकर्ता का मानना है कि विद्यार्थियों के विभिन्न संवेगों के परिपक्व होने की दशा में उनमें राजनीतिक दक्षता इत्यादि गुणों का विकास होना स्वाभाविक है परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि विद्यार्थियों की सांवेगिक परिपक्वता में वृद्धि होने पर उनकी राजनैतिक दक्षता में भी वृद्धि हो सकेगी जैसा कि इस परिकल्पना के परीक्षणोपरांत प्राप्त निष्कर्ष द्वारा जानकारी प्राप्त होती है।

अध्ययन की शैक्षिक उपयोगिता- किसी भी शोध कार्य की उपयोगिता तभी सार्थक होती है जब उसके निष्कर्षों से समाज एवं देश को लाभ मिल सके। प्रस्तुत शोध कार्य भी शोधकर्ता द्वारा इसी निमित्त किया गया। एक मौलिक कार्य है जिसकी उपयोगिता थी- शिक्षा, समाज तथा राष्ट्र के चहुँमुखी विकास में सिद्ध हो सकेगी। शोधकर्ता का मानना है कि वर्तमान समय में महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय अपने छात्रों के अन्दर विभिन्न मनोवैज्ञानिक गुण, नेतृत्व क्षमता इत्यादि का समावेश करने का भरपूर प्रयास कर रहे हैं जिसके द्वारा उनके अधिगम में वृद्धि हो रही है तथा उनकी शैक्षिक उपलब्धि में भी सुविधा हो रहा है। विद्वानों का मानना है कि जिस प्रकार प्राथमिक शिक्षा छात्रों के सर्वांगीण विकास की नींव होती है उसी प्रकार उच्च शिक्षा विद्यार्थियों के नैतिक, सामाजिक, राष्ट्रीय विकास के साथ-साथ उनके समाज व राष्ट्र के चहुँमुखी विकास को भी प्रभावित करती है।

किसी भी राष्ट्र का विकास, प्रतिष्ठा, एकता, सम्प्रभुता बनाये रखने में उच्च शिक्षा का सही मायने में अनुप्रयोग आवश्यक है। समाज के समुचित उन्नयन व विकास के लिए उच्च शिक्षा की दशा व दिशा को सकारात्मक होना आवश्यक है। वर्तमान समय में प्रायः यह देखा जा रहा है कि महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थी राजनीति में तो रूचि ले रहे हैं व उनमें राजनीतिक दक्षता का भी समावेश हो रहा है परन्तु राजनीतिक दक्षता के साथ-साथ उनमें अनुशासहीनता की भावना का भी समावेश हो रहा है। आये दिन वे शैक्षणिक परिसर में नारेबाजी कर रहे हैं तो कहीं शिक्षकों से उलझ रहे हैं तो कहीं अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं से मारपीट कर रहे हैं। यह अत्यन्त खेदजनक स्थिति है जिसका उनके तथा अन्य छात्र-छात्राओं के अधिगम व्यवहार पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है इसके अतिरिक्त परिसर का वातावरण भी बिगड़ रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. अस्थाना एवं अग्रवाल: ''मनोविज्ञान और शिक्षा'' आगरा, विनोद प्रकाशन.
2. गुप्ता, एस0पी0 : ''आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन'' इलाहाबाद शारदा पुस्तक भवन, 2005.
3. चन्द्र, बिपिन : ''आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता'' प्रथम संस्करण, नई दिल्ली,1996.
4. चौबे, सरयू प्रसाद: ''तुलनात्मक शिक्षा आगरा'' विनोद पुस्तक मंदिर 1999.
5. चौहान, एस0 एस0: ''शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में नवाचार'' नोएडा, विकास पब्लिशिग हाउस, 2007.
6. परीक्षापयोगी सरीज: ''अतिरिक्तांक प्रतियोगिता दर्पणहिन्दी मासिक'' राष्ट्रीय आगरा उपकार प्रकाशन, 2002.
7. पाठक, पी0डी0, त्यागी : ''शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त'' आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर 1995.
8. पाठक, एस0पी0 एवं शर्मा एस0 डी0: ''भारतीय शिक्षा की तत्कालीन समस्यायें'' रस्तोगी एण्ड कम्पनी, मेरठ
9. बुच, एम0 वी0 : ''तृतीय सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन 1987'' एन0सी0ई0आर0टी0, नई दिल्ली,
10. बुच, एम0 वी0 : ''चतुर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन 1991'' एन0सी0ई0आर0टी0, नई दिल्ली
11. बसु, दुर्गादास : ''भारत का संविधान'' एक परिचय, आठवां संस्करण, वाधवा नागपुर, 2002.
12. मिश्रा, बी0के0 एवं मोहन्ती: ''ट्रेण्ड्स एण्ड इरयूस एन इण्डियन ऐजूकेशन'' मेरठ, लायल, बुक डिपो आर0 के0 मेरठ, लायल, बुक डिपो 2002.
13. मिश्रा, डी0 सी0 : ''शिक्षाशास्त्र भाग एक तथा दो'' कानपुर, अनुसंधान प्रकाशन.
14. मंगल, एस0 के0: ''शिक्षण एवं अधिगम का मनोविज्ञान'' लुधियाना, टण्डन पब्लिकेशन्स, 2002.
15. सारस्वत, मालती : ''शिक्षा मनोविज्ञान की रुपरेखा'' इलाहाबाद आलोक प्रकाशन, 2007.
16. सिंह अरुण कुमार: ''मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ'' पटना, मोतीलाल बनारसीदास, 2002.
17. त्रिवेदी, आर0 एन0 एवं शुक्ला, डी0पी0: ''रिसर्च मैथ्डोलॉजी'' जयपुर कॉलेज, बुक डिपो.

Websites :
http://www.eric.ed.gov
http://shodhganga.inflibnet.ac.in
http://www.nuepa.org
http://www.educationindia.net

भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में समाज, साहित्य और संस्कृति

डॉ० अनिल कुमार सिंह

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, एस. बी. स्नातकोत्तर महविद्यालय शहापुर, जी. ठाणे (महाराष्ट्र)

वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण, ग्लोबलाइजेशन, उदारीकरण और जागतिकरण ने एक तरह से हमारे समाज, संस्कृति और भाषा को झकझोर दिया है। हमारे सामने न केवल कई प्रश्न खड़े किए अपितु हमारी जीवन शैली और कार्य प्रणाली को भी प्रभावित कर दिया है। समाज, संस्कृति और भाषा इस तरह एक दूसरे से जुड़ें है कि उन्हे समझे बिना आगे के संदर्भ को समझना कठिन है। "वैश्वीकरण बीसवीं सदी के अंतिम दशक में आरंभ होने वाली वह प्रक्रिया है, जो वित्तीय-पूंजी निवेश तथा उत्पादन और बाजार के आधार पर राष्ट्रीय सीमा से परे विश्व भर में निरंतर विकसित होती रही है लेकिन यह प्रक्रिया सिर्फ आर्थिक मामलों तक ही सीमित नहीं है,बल्कि इससे संपूर्ण सामाजिक सांस्कृतिक जीवन प्रभावित हुआ है। इतिहास और विचारधारा के अंत की घोषणा की जाने लगी है। राष्ट्रीयता और राष्ट्रप्रेम को हाशिए पर धकेल कर सब कुछ ग्लोबल बना दिया गया है। टेलीविजन ने एक ऐसे ही आभासी संसार की रचना की है,जिसमें स्थान गत दूरियां तो कम हो गई हैं, लेकिन आपसी मेल-जोल नितांत कम होता गया है।इसी क्रम में पण्य नहीं था,उसे भी बाजार की वस्तु बनाकर एक ऐसी सुसंस्कृत शुरू कर दी गयी है,जिसका सारा ध्यान लाभ कमाने पर केंद्रित है।"[1]

वैश्वीकरण के चलते आज सहयोग कि सीमाएं पुरोगामी होती जा रही है। वैश्वीकरण की अवधारणा मूल रूप से व्यापार और वाणिज्य की है। आज विश्व व्यवस्था के रूप में संपूर्ण विश्व में वैश्वीकरण की लहर ही हमें पढ़ने,सुनने और देखने को मिल रही है। कहने का तात्पर्य है कि हम बाजारीकरण के बीच में घिरते जा रहे हैं। आज चारों ओर हमें यदि कुछ प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष दिख रहा है तो वह है, वैश्वीकरण का दायरा,उसका बढ़ता हस्तक्षेप और उसकी मोहनी। भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे प्राचीन संस्कृति है आज संपूर्ण विश्व में भारत ही एक ऐसा देश है,जहां एक से अधिक धार्मिक,सांस्कृतिक विभिन्न धर्मों के लोग अपने खान-पान अपनी भाषा और रीति-रिवाज के अलग होते हुए भी एक साथ रहते हैं। वैश्विक परिदृश्य के चलते प्रगति का लहलहाता रूप तो दृष्टिगत हो रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी के बढ़ते हस्तक्षेप से देश के हर क्षेत्र में मानों एक क्रांति आ गई है। भले ही वह समाज साहित्य और मीडिया की ही क्यों न हो?आज के दौर में घटनाक्रम इतना तेजी से बदल रहा है कि बाजार मानव जीवन का नियामक बनने लगा है। नित नूतन वैज्ञानिक आविष्कारों सूचना तंत्र और तकनीकी का ही परिणाम है कि बरसों तय होने वाली दूरियों को कम से कम समय में तबदील कर दिया है। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप ही हमारे परंपरागत मूल्यों और संस्कृति में तेजी से परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। वैश्वीकरण ने बाजार ही नहीं अपितु समाज को भी धीरे-धीरे अपने चकाचौंध में खींच लिया है। इससे प्रभावित व्यक्ति जो भी चाहता है उसे हर कीमत पर पाने के लिए लालायित रहता है।

साहित्य एक तरह से जीवन और जगत का पुन:सृजन ही है।यह बात और है कि नितनूतन तकनीक साहित्य से तेज अवश्य है पर सामाजिक बदलाव साहित्य के जरिये ही संभव है। हमे यह भी नहीं भूलना चाहिए कि समाज,संस्कृति और भाषा सब का आधार अध्यात्म ही है। साहित्य चाहे विश्व के किसी भी देश या भाषा का क्यों न हो उससे प्रभावित हुए बिना व्यक्ति रह नहीं सकता। युग और वर्तमान समय के बदलते हुए चेहरे की पकड़ व साहित्यकारों के लेखनी ने आज विश्व स्तर पर स्त्री सशक्तिकरण की आवाज को भी बुलंद किया है। विश्व की प्रत्येक क्रांति के पीछे साहित्य प्रेरणा रही है। साहित्यकार ही सदैव परिस्थितियों से मुठभेड़ करता चलता है। मनुष्य भले ही मिट जाए पर साहित्य में मनुष्य की परंपरा निर्बाध गति से चलती रहती है भले ही युग बदल जाए समय बदल जाए लेकिन मनुष्य और साहित्य की यह परंपरा कदापि नहीं बदलेगी। साहित्य के जरिए ही मनुष्य अपने वैचारिक द्वंद और सामाजिक सत्य को विविध विधाओं के माध्यम से उद्घाटित करता है और करता रहेगा। वैश्विक स्तर पर समय-समय पर होने वाले अत्याचारों के खिलाफ एक देश ने ही नहीं अपितु संपूर्ण राष्ट्र ने हर तरह से संघर्ष किया। मानवी एकता और संस्कृति को रूपायित करते हुए छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत ने जैसा कि लिखा है ख्र

"हो शांत जाती विद्वेष,वर्गगत रक्त समर,
हो शांत युगों के प्रेत,मुक्त मानव अंतर,
संस्कृत हो सब जन,स्नेही हों सहृदय सुंदर,
संयुक्त कर्म पर विश्व हो सकता निर्भर।"

अनेकता में एकता का नारा बुलंद करने वाले भारत का सांस्कृतिक संबंध में बेजोड़ है। वैश्विक स्तर पर भी भारतीय संस्कृति अपनी आभा फैलाए हुए हैं। भारतीय संस्कृति के महत्व को रेखांकित करते हुए डॉ. मुकेश प्रसाद ने लिखा है "भारत एक प्राचीन संस्कृति वाला देश है क्योंकि भारतीय संस्कृति के मौलिक सिद्धांत आज भी वही है,जो प्राचीन काल में थे। इसने संसार की प्राय: सभी संस्कृतियों का उत्थान एवं पतन देखा है। अन्य संस्कृतियों का जो भी

प्रभाव इस पर पड़ा है उससे यह और भी समृद्ध हुई है।आध्यात्मिक मूल्यों एवं अनुकूलन शीलता व सहिष्णुता के कारण यह आज भी राजनीतिक आधार पर न होकर सांस्कृतिक आधार पर होती रही है तथा राजनीतिक सांस्कृतिक लौकिक व आध्यात्मिक पक्षों में निरंतर अंत:क्रिया के कारण ही इसकी निरंतरता बनी रही है। राजनीतिक संस्कृति का एक अभिन्न अंग है यह राजनीतिक व्यवस्था के प्रति व्यक्तियों के विश्वासों,मनोवृत्तियों मूल्यों एवं व्यवहार का योग है अन्य शब्दों में राजनीतिक व्यवस्था एवं राजनीति से संबंधित व्यक्तियों के दृष्टिकोण और विश्वासों एवं भावनाओं के मिश्रित रूप को ही राजनीतिक संस्कृति कहा जा सकता है।"2

सामाजिक विषमता और अन्याय से न केवल जीवन रस ग्रहण करती है बल्कि हर तरह से पोषित भी करती रहती है प्रेमचंद जी ने इसीलिए साहित्य को राजनीति के आगे चलने वाली मशाल कहा है। कदाचित वर्तमान परिदृश्य में प्रेमचंद को अपनी बात में काफी संशोधन करना पड़ता। साहित्य जहां संगठन का माध्यम है। वही कभी-कभी लगता है राजनीति समाज संगठन का एक घटक है। साहित्य और राजनीति का अटूट संबंध परिलक्षित होता है वही साहित्य ज्यादा प्रभावी और अंत तक बना रहता है। इसके केंद्र में स्थाई भाव रहता है वही भाव साहित्य के माध्यम से उदात पक्ष को उद्घाटित करते हैं। साहित्य और राजनीति के समकालीन परिदृश्य को रेखांकित करते हुए अजय तिवारी ने ठीक ही लिखा है- "साहित्य भी ऐसा कोई पवित्र क्षेत्र नहीं जहां कलुषित और शुद्धता का स्पर्श ना हो तात्कालिक और सामाजिक परिस्थितियां और कला को भी प्रभावित करती है जो साहित्य इन प्रभाव और दबाव को झेल कर उसका अतिक्रमण करता है। वह स्थाई और अनंत होता है जो साहित्य उन प्रभाव और दबावों से किनारा कर लेता है वह चमक दिखाकर भूल जाता है स्थाई भाव वाला रीतिकाल राजनीति के दरबारों के बीच उस पर आश्रित रहकर लिखा गया है जिन संतो को सीकरी से काम नहीं था,उनके साहित्य भी ज्यादा मूल्यवान है।

आधुनिक युग के कई लेखक कवि राजनीति के दायरे में धस रहे हैं। उस दबाव को रचना से परे रखने पर उन्होंने निर्जीव कृतियां दी मोहभंग की स्थिति आने पर उन्हें मगध की विचार शून्यता का भात होता था। उनका कौन सा साहित्य महत्वपूर्ण है कौन सा नहीं यह विदित है। गालिब सबसे बड़ा उदाहरण है।वह हर स्थिति का सामना करते हैं तात्कालिक वस्तुस्थिति को झुठलाना या दरकिनार करना उनका कवि स्वभाव नहीं है-

"दुनिया में हूं, दुनिया का तलबगार नहीं हूं
बाजार से गुजरा हूं खरीदार नहीं हूं।"3

आज हम देखते हैं कि पूंजीवाद और उत्तर आधुनिकतावाद एक ही सिक्के के दो पहलू के रूप से नजर आ रहे हैं। राजनीति,संस्कृति और बाजार के इस त्रिकोण में उत्तरोत्तर अपने को समाहित करता चला जा रहा है।वर्तमान सामाजिक स्थितियों में पूंजीवादी व्यवस्था ने दिन पर दिन व्यक्ति को मुंह तथा स्वतंत्र कर दिया है। नए संचार माध्यमों ने बाजार को बढ़ावा देने हेतु नई संस्कृति भी निर्मित करता जा रहा है। यह विज्ञापन चाहे फैशन,तेल,क्रीम,फूड और देह आधी का ही क्यों ना हो? धड़ल्ले से हो रहे विज्ञापनों ने मनुष्य की सोच को न जाने कहां से कहां पहुंचा दिया है। नए-नए उद्योग और बाजार ने न केवल संस्कृति की परिभाषा को अपितु उसके विविध आकार लेते स्वरूप को बदल दिया है।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है उसकी गति दिशा और ढंग भले भिन्न हो और उसके प्रभाव से चाहकर भी कोई बच नहीं सकता। भारत ही नहीं संपूर्ण विश्व में निजीकरण,उदारीकरण के नाम पर नई पूंजीवादी व्यवस्था ने लोगों की सोच और दृष्टिकोण को भी परिवर्तित कर दिया है। भूमंडलीकरण एवं पूंजीवाद के विस्तार से यह स्पष्ट झलक रहा है कि समाज का हर वर्ग इससे प्रभावित हो रहा है या प्रभाव अनुकूल और विपरीत दोनों ही है। आज हम जिस दौर से गुजर रहे हैं,जी रहे हैं उसके फायदे भी हैं और खतरे भी वैश्वीकरण के दौर में पूरा विश्व एक परिवार में तब्दील होने की दिशा में अग्रसर है। इस स्थिति में हिंदी भाषा के प्रति हमारा अनुराग ही वैश्विक मंच पर हिंदी की उभरती हुई भूमिका को सबसे बड़ी भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करेगा संचार माध्यमों की अनंत संभावना आज देश की सीमाएं लांग चुकी है। आज हम सब के सामने जो भी चुनौतियां सामने आ रही है उससे अधिकतर उपभोक्तावादी संस्कृति का हस्तक्षेप है। बहुराष्ट्रीय कंपनियां अप्रत्यक्ष रूप से कब्जा बनाए रखने के लिए हर तरह से प्रयत्नशील है। यही स्थिति रही तो भविष्य में और भी ज्यादा चुनौतियों का सामना करने के लिए हमें तत्पर रहना होगा।

वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण के दौर में हिंदी की महत्ता अपने आप उजागीर हो जाएगी प्रेमचंद,प्रसाद निराला,यशपाल आदि के द्वारा प्रयुक्त हो रहे हिंदी का स्वरुप वह नहीं है जो हमें संचार माध्यमों में दृष्टिगोचर होता है। वैश्वीकरण के दौर में राजनीतिज्ञ ही है। उद्योगपति भी भली-भांति भिज्ञ हो गए हैं कि हिंदी के बगैर अब उनकी दाल गलने वाली नहीं है।वे चाहकर भी बहुत कुछ नहीं कर सकते कहीं न कहीं उन्हें हिंदी को ही अपनाना होगा। बहुराष्ट्रीय कंपनियां भी इससे परिचित हो चुकी है कि भारत ही विश्व में एक ऐसा देश है। जहां हिंदी बोलने वालों की संख्या सर्वाधिक है। भारतीय बाजारों पर यदि हमें कब्जा जमाना है तो उसके लिए हमें हिंदी को अपनाना होगा। हिंदी को वैश्विक स्तर पर अपनाए जाने में ही भलाई है। वरना भारतीय बाजार में टिक पाना कठिन है। गिरमिटिया बनकर कर जाने वाले प्रवासी भारतीय,मॉरीशस,सूरीनाम जैसे देशों में जाते समय भारतीय संस्कृति और भाषा को भी अपने साथ ले गए। यही उनके सुख-दुख की भी आशा थी।सचमुच में विश्व स्तर पर हिंदी को पहुंचाने में प्रवासियों का बहुत बड़ा योगदान है जिसे हमें अनदेखा नहीं करना चाहिए।

आज जातीय परंपरा और संस्कृति के महत्व को रेखांकित करते हुए कहां गया है- "आज धर्म,दर्शन राजनीति,समाज व्यवस्था शंका के दायरे में आ गए हैं तथा अर्थ का परीक्षण करते संदेह और विद्रोह लेखक के अस्त्र बन गए हैं,जबकि भारतीय दर्शन और चिंतन शक्तियों को जिज्ञासा के माध्यम से खोजता रहा है। यहां का सामाजिक जीवन और उस से निर्मित हुई संस्कृति का चरित्र मुख्यत: समन्वयात्मक समाज पोशी रहा है।अत: एवं उस को प्रतिबिंबित करने वाले साहित्य की भी मुख्य प्रवृत्ति समन्वय समावेशी की रही।यहां की संस्कृति,समाज और साहित्य में समन्वयात्मक प्रवृत्तियों की प्रधानता रही है,जबकि पश्चिम परंपरा में उसका अभाव रहा है किंतु वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय इतिहास संस्कृति,साहित्य सब को देखने समझने की दृष्टि का पश्चिमी करण करना शुरू किया और हम अपनी जातीय परंपरा संस्कृति साहित्य इतिहास बोध की स्वदेशी चिंतन परंपरा से उखड़ते गए।"4

वैश्वीकरण के दौर में सभ्यता और संस्कृति का वर्चस्व दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है। परिणाम स्वरूप हम आर्थिक सरहद को पार करते जा रहे हैं पर हमारा साहित्य समाज और संस्कृति वैश्वीकरण के प्रभाव से जिस दौर से गुजर रहा है। वह निश्चय ही विचारणीय और चिंतनीय है। कई बार हमें ऐसा भी लगता है कि संचार माध्यमों ने वैश्विक स्तर पर हमें जितना नजदीक कर दिया है। आज एक साथ रहते हुए भी आंतरिक रूप से एक-दूसरे से काफी दूर होते जा रहे हैं। आज हम जिस समाज में हम जी रहे हैं, मानों उसी सामाजिक दायरे से कटते भी जा रहे हैं। हमें यह भी प्रयास करना होगा कि साहित्य,समाज और संस्कृति के जरिए हम सब में आपसी भाईचारा बनाए रहे।

विश्व में भारत का पंचम सदैव अपनी आभा फैलती रहे। इसके साथ-साथ हमें सतर्क भी रहने की जरूरत है क्योंकि वैश्वीकरण के जरिए अंग्रेजी का मनमोहक और लुभावना जाल दिन पर दिन फैलता ही जा रहा है,जो हमारी संस्कृति और भाषा के लिए कहीं भस्मासुर ना बन जाए। आज बाजार के जरिए जो भाषा आ रही है उस पर विचार करने की जरूरत है। हम सब को मिलकर अपनी भारतीय भाषाओं के प्रति आदर स्वाभिमान और समर्पण का भाव बनाए रखना होगा साथ ही साथ विश्व मंच पर हिंदी भाषा के रूप में हिंदी को प्रतिष्ठित करने हेतु इच्छा शक्ति और दृढ़ संकल्प भी करना होगा।

संदर्भ

1. भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य मे सा.स. और भाषा- सं डॉ. सतीश पांडेय पृष्ठ -68
2. वाद-संवाद सं. डॉ. राम रत्न प्रसाद अंक-9 जनवरी-मार्च, 2016 पृष्ठ -63
3. नया ज्ञानोदय, सं. रवीद्र कालिया,अंक-86 अप्रैल 2010. पृष्ठ 63
4. भूमंडलीकरण-डॉ. शशि भूषण कुमार, पृष्ठ -52

कामकाजी एवं घरेलू महिलाओं का समय प्रबंधन के महत्व का अध्ययन

डॉ० प्रतिभा पाल

असिस्टेंट प्रोफेसर (गृहविज्ञान), गांधी शताब्दी स्मारक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोयला, आजमगढ़, उ०प्र०

विश्व के सभी प्राणियों में मानव का जीवन सर्वश्रेष्ठ है सभी जीव-जन्तु के लिए समय के चक्र का पहिया एक समान ही चलता है। किन्तु मानवीय जीवन में समय बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करता है। समय के सदुपयोग से मानव अपने जीवन में विकास और समृद्धि प्राप्त करता है। समय की सीमा में बंधकर मानव अपने दैनिक, मानसिक एवं व्यवसायिक कार्यों की पूर्ति करता है।

''समय अमूल्य खजाना है जिसे रुपए देकर न तो खरीदा जा सकता है और न ही घटाया और बढ़ाया जा सकता है। सभी के पास एक दिन में 24 घंटे का ही एक समान समय उपलब्ध होता है।

गृहविज्ञान विषय में इस विषय में समय प्रबंधन हेतु शिक्षा प्रदान की जाती है जो छात्राओं को भावी जीवन में सहायक होती है।

ब्रोडार्सके अनुसार ''1 वर्ष से कम आयु के बालकों के प्रतिदिन देखभाल के लिए औसतन 5 घंटे 5 मिनट का समय व्यतीत होता है।''

परिवार समाज की प्रथम इकाई है जिसमें महिलाएं गृहकार्य में मुख्य भूमिका का निर्वाह करती है। प्राय: घर की साफ-सफाई सजावट पारिवारिक सदस्यों की देखभाल, वस्त्रों की साफ-सफाई, भोजन में पोषण का ध्यान देना, वृद्ध-बुजुर्गों की सेवा एवं देखभाल करना, समस्त धार्मिक कार्यों की तैयारियों पूर्ण करने संबंधित कार्य शिक्षा संबंधित कार्य आर्थिक उत्तरदायित्व के साथ-साथ स्वास्थ्य एवं आकस्मिक कार्यों का उत्तरदायित्व घरेलू महिलाओं पर होता है यह उत्तरदायित्व और बढ़ जाती है जब वह महिला किसी व्यवसाय नौकरी या निजी क्षेत्रों में कामकाजी है।

इस स्थिति में घरेलू कार्यों के अतिरिक्त महिलाओं पर अपने कार्यों का भार भी पड़ता है इस स्थिति में कामकाजी महिलाओं के लिए समय प्रबंधन आवश्यक हो जाता है।

अत: न्यूनतम समय में अधिकतम कार्यों की गुणवत्ता पूर्वक संपन्न करना ताकि व्यक्तिगत एवं पारिवारिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके एवं उचित समय प्रबंधन को दर्शाता है।

अध्ययन की आवश्यकता

महिलाएं परिवार की धुरी होती है। परिवार का अधिकतम घरेलू कार्यों का उत्तरदायित्व स्वयं निर्वाह करती है। इस स्थिति में समय प्रबंधन की आवश्यकता पड़ती है। पारिवारिक जीवन में समय प्रबंध की आवश्यकता और अधिक हो जाती है जब महिला कामकाजी होती है उन्हें घरेलू कार्यों के अतिरिक्त अपना व्यवसायिक तथा नौकरी आदि की जिम्मेदारी वहन करनी पड़ती है।

अत: समय प्रबंधन के लिए समस्याओं और समय प्रबंध की जानकारी हेतु कामकाजी एवं घरेलू महिलाओं का समय प्रबंध की समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन के शीर्षक को शोध अध्ययन हेतु चयनित किया गया।

शोध के उद्देश्य

घरेलू महिलाओं एवं कामकाजी महिलाओं को दैनिक समय प्रबंध ज्ञात करना।

समय पर प्रबंध के लिए होने वाली समस्याओं की जानकारी ज्ञात करना।

परिकल्पना

घरेलू महिलाओं को कामकाजी महिलाओं के अपेक्षा समय पर प्रबंध की कोई समस्याएं नहीं है।

शोध का क्षेत्र

लखनऊ शहर की गीतापल्ली वार्ड के आजादनगर क्षेत्र की 30 घरेलू महिलाओं एवं 30 कामकाजी महिलाओं को चयनित किया गया।

शोध विधि

यह शोध सर्वेक्षण विधि पर आधारित है।

शोध उपकरण

शोध विधि में प्रश्नावली एवं साक्षात्कार शोध उपकरण को प्रयुक्त किया है।

इस प्रश्नावली एवं साक्षात्कार के प्रश्नों के माध्यम से आंकड़ों को एकत्र किया गया। घरेलू महिलाओं एवं कामकाजी महिलाओं के समान प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किए गए तथा साक्षात्कार सूची से उत्तर प्राप्त किए गए जिनके आधार पर आंकडोघ को एकत्र करके सारणी तैयार किया गया।

प्रयुक्त सांख्यिकी विधि

प्रस्तुत शोध में प्रतिशत एवं सांख्यिकी विधि का प्रयोग किया गया है।

$$\text{प्रतिशत} = \frac{\text{प्रतिशत निश्चित वर्ग के चरों}}{\text{चरों का कुल योग}} \times 100$$

$$\text{माध्य} = \frac{\text{आंकडों की संख्या}}{\text{आंकडो का योग}}$$

परिणाम एवं विवेचना

शोध में 30 घरेलू एवं 30 कामकाजी महिलाओं का चयन किया गया था जिनमें से कामकाजी महिलाएं सरकारी और अर्द्ध गैर सरकारी कार्यालयों में कार्यरत है। आंकड़ों के आधार पर निम्नांकित परिणाम प्राप्त हुए।

कामकाजी महिलाओं में 50 प्रतिशत महिलाएं व्यक्तिगत (प्राइवेट) कार्यालयों 40 प्रतिशत महिलाएं सरकारी जबकि अन्य 10 प्रतिशत महिलाएं अर्द्धसरकारी कार्यालयों में कार्यरत है साथ ही घरेलू महिलाएं 100 प्रतिशत कही भी कार्यरत नही है।

32 प्रतिशत कामकाजी महिलाएं पारिवारिक सदस्यों के सहयोग से घरेलू कार्य करती हैं। 48 प्रतिशत कामकाजी महिलाएं घरेलू कार्यों में अन्य किसी का सहयोग प्राप्त करती है। 20 प्रतिशत कामकाजी महिलाएं घरेलू कार्यों को स्वयं करके अपने कार्यों पर जाती है। जबकि 78 प्रतिशत घरेलू महिलाएं अपने घरेलू कार्य स्वयं करती हैं और 10 प्रतिशत महिलाएं पारिवारिक सदस्यों का सहयोग लेती है अन्य 12 प्रतिशत महिलाएं अतिरिक्त सहयोग लेती हैं। 48 प्रतिशत महिलाएं घरेलू कार्य हेतु अतिरिक्त मदद लेती है जिसका भुगतान किया जाता है। जबकि इस प्रकार का सहयोग 12 प्रतिशत घरेलू महिलाओं को ही मिलता है।

76 प्रतिशत कामकाजी महिलाएं अगले दिन के कार्यों के लिए समय सारणी का प्रयोग करती है जबकि 24 प्रतिशत कामकाजी महिलाएं समय सारणी का प्रयोग नहीं करती है। जबकि 32 प्रतिशत महिलाएं अगले दिन के लिए समय प्रबंध के लिए समय सारणी के अनुरूप कार्य करती हैं।

98 प्रतिशत कामकाजी महिलाएं एक समान दैनिक दिनचर्या को करती हैं जबकि मात्र 68 प्रतिशत घरेलू महिलाएं ही दैनिक दिनचर्या को रखती हैं।

कामकाजी महिलाओं को साप्ताहिक कार्यो में कपड़ों की धुलाई, घर के लिए सप्ताह में बाजार से सामान लाना, बच्चों के साथ मनोरंजन आदि में व्यतीत होता है, जबकि घरेलू महिलाओं के लिए साप्ताहिक कार्यों में आचार, पापड़, बनाना विशिष्ट भोज्य पदार्थों को बनाना एवं घरेलू बड़े कार्यो को करने में व्यतीत होता है।

68 प्रतिशत घरेलू महिलाएं कार्यो के आधार पर घरेलू कार्य करती है।

78 प्रतिशत कामकाजी महिलाएं मानती हैं कि बच्चों के लिए समय नहीं मिलता है जबकि 22 प्रतिशत कामकाजी महिलाएं बच्चों के लिए समय निकाल लेती हैं। इसके विपरीत 100 प्रतिशत घरेलू महिलाओं के पास बच्चों की देखभाल का समय होता है।

82 प्रतिशत कामकाजी महिलाएं परिवार के लिए निर्णायक की भूमिका रखते हैं जबकि 18 प्रतिशत महिलाएं परिवार का निर्णय स्वीकार करती हैं। घरेलू महिलाओं में 58 प्रतिशत महिलाओं परिवार के निर्णय को स्वीकार करती है जबकि 42 प्रतिशत महिलाएं परिवार को निर्देशित करती हैं।

100 प्रतिशत कामकाजी महिलाएं आधुनिक उपकरणों (वाशिंग मशीन मिक्सी) की सहायता से भारी कार्यों को हल्के के कार्यों में परिवर्तित करती हैं। जबकि 84 प्रतिशत घरेलू महिलाएं आधुनिक उपकरणों का प्रयोग करती हैं। 16 प्रतिशत घरेलू महिलाओं के घरों पर वाशिंग मशीन नहीं पाई गई।

84 प्रतिशत कामकाजी महिलाओं को दिन में आराम करके समय नहीं निकल पाता है। 16 प्रतिशत कामकाजी महिलाओं को दिन में आराम का समय मिल जाता है। तथा 92 प्रतिशत घरेलू महिलाओं को दिन में आराम करने का समय मिलता है जबकि 8 प्रतिशत घरेलू महिलाओं को आराम करने का समय नहीं मिल पाता है।

100 प्रतिशत कामकाजी महिलाओं को अधिकतम समय कार्यालयों में बीतता है। घरेलू महिलाओं का अधिकतर समय भोजन पकाने एवं साफ-सफाई में बीतता है।

निष्कर्ष

शोध के द्वारा ज्ञात होता है कि कामकाजी महिलाएं अधिक समय प्रबंध का आयोजन करती हैं। जिससे उनके घरेलू एवं कार्यालय कार्यों में समायोजन हो जाता है और वह अधिक क्रियाशील एवं विकसित होती है जबकि घरेलू महिलाओं का अधिकतम समय परिवार एवं घरेलू कार्यों में बीतता और समय के साथ दिनचर्या एक सी हो जाती है। कामकाजी महिलाएं घरेलू महिलाओं की अपेक्षा अधिक सरलता एवं सुगमता से समय प्रबंध कर लेती हैं।

सुझाव

1. समय प्रबंध की जानकारी को बढ़ावा दिया जाना चाहिए ।
2. घरेलू महिलाओं को समय प्रबंध के लिए विशेष रूप से जागरूक करना चाहिए ताकि वह अपने लिए भी समय निकाल सकें।
3. समय प्रबंध के विभिन्न साधन एवं महत्त्व का प्रचार प्रसार करना चाहिए।

भारत में लघु एवम सूक्ष्म वित्तीय सेवाओं का विकास

नंदिता राय

मास्टर ऑफ मैनेजमेंट स्टडीज, मुंबई विश्वविद्यालय

सारांश

लघु वित्त या माइक्रोफाइनेंस पूरी दुनिया में एक गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के रूप में उभर रहा है। सूक्ष्म वित्त का वैश्विक आंदोलन गरीब लोगों को माइक्रो फाइनेंस प्रदान करने वाले संगठनों की बढ़ती संख्या में परिलक्षित होता है। माइक्रोफाइनेंस का मूल्य और एक उपकरण के रूप में गरीब लोगों की मदद करने की उसकी क्षमता उसकी उपलब्धि के पर्याप्त प्रमाण हैं। माइक्रो फाइनेंस कार्यक्रम, स्वरोजगार सृजन योजना शुरू करके अति गरीब लोगों को छोटे ऋण देते हैं जो राजस्व अर्जित करने में मदद करता है। माइक्रोफाइनेंस कार्यक्रम ऋण के साथ प्रशिक्षण के अवसर देता है।

माइक्रोफाइनेंस, ग्रामीण-ऋण-वितरण प्रणाली का सस्ता और प्रभावी साधन है, जो अधिक कानूनी और प्रक्रियात्मक ढांचे के बिना बैंकों के साथ स्वयं-

सहायता समूहों (एसएचजी) और संयुक्त देयता समूह (जेएलजी) के माध्यम से संस्थागत ऋण की समय पर उपलब्धता सुनिश्चित करता है। किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास के प्राथमिक उद्देश्यों में रोजगार के अवसर पैदा करना और आबादी की आय के स्तर को बढ़ाकर गरीबी को खत्म करना है। प्रस्तुत लेख भारत में लघु वित्त कार्यक्रम के विकास का विश्लेषण करता है।

मूल शब्दः सूक्ष्म ऋण, माइक्रो क्रेडिट, माइक्रोफाइनेंस संस्थान, माइक्रोफाइनेंस प्रोग्राम, गरीबी, ग्रामीण, स्वयं सहायता समूह (SHG)

परिचय

सूक्ष्म वित्त (माइक्रोक्रेडिट) का आशय बहुत गरीब लोगों को उनके छोटे व्यवसाय या किसी अन्य उपयोगी काम के लिए छोटा ऋण उपलब्ध करवाना है। गरीबों की औपचारिक वित्तीय संस्थानों तक आसानी से पहुँच नहीं हो पाती जिससे उनकी विविध वित्तीय उत्पादों की आवश्यकता पूरी नहीं हो पाती होती है, इसलिए सूक्ष्म वित्त के अंतर्गत काफी सुविधाएँ (क्रेडिट, सेविंग्स, बीमा आदि) शामिल की गई हैं।

देश की अर्थव्यवस्था और समाज की वित्तीय स्थिति को बेहतर बनाने के लिए कई तरह की योजनायें बनायीं जाती हैं। इसके बाद भी देश की अधिकांश ग्रामीण जनता को इनका फायदा नहीं मिल पाता। ऐसे में गरीबों की मदद के लिए सूक्ष्म वित्त (माइक्रोफाइनेंस) जैसी संकल्पना सामने आई है।

इस सेक्टर की खास बात यह है कि मंदी के दौरान भी इस पर कोई खास असर नहीं पड़ा। सूक्ष्म वित्त के माध्यम से न सिर्फ गरीब जनता की मदद होती है बल्कि रोजगार के अवसर भी पैदा होते हैं।

माइक्रोफाइनेंस की संकल्पना समाज के उपेक्षित वर्ग तक मुद्रा की पहुँच से की जाती है जिनकी ऋण के उचित सोर्स तक कोई पहुंच नहीं है। माइक्रोफाइनेंस, उद्यमियों को कार्यशील पूंजी का ऋण प्रदान करता है, जिसके माध्यम से वे अपना खुद का व्यवसाय शुरू कर सकते हैं। माइक्रो फाइनेंस न सिर्फ लघु उद्यमी तैयार करने में सहायक है बल्कि रोजगार के अवसर भी पैदा करता है। माइक्रोक्रेडिट की अवधारणा और माइक्रो फाइनेंस का इस्तेमाल ज्यादातर आपसी लेनदेन के लिए किया जाता है।

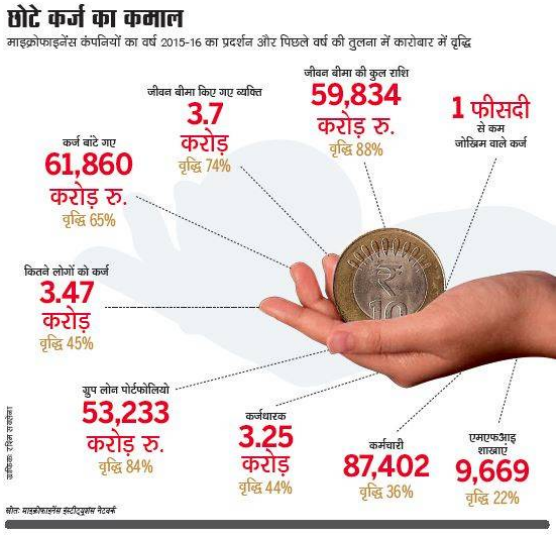

माइक्रोफाइनेंस उत्पाद, गरीबी की समस्या को कम कर महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण के साथ उनके समग्र विकास को ध्यान में रखते हुए तैयार किये जाते हैं। एक स्वयम सहायता समूह की सदस्यता, महिलाओं के जीवन में बड़े बदलाव लाती है।

Table- 1 Microfinance Expansion

States	Operational MFIs (2017)	Branches 2017	Gross Loan Portfolio (Cr.)	Clients (Lakh)	Loan Amount Rs. Crores
Assam	9	130	402	2.9	149
Bihar	18	691	3373	20.9	1241
Chhattisgarh	16	311	875	5.9	272
Delhi	5	14	70	0.3	74
Gujarat	12	225	517	3.7	159
Haryana	11	162	570	3.8	142
Jharkhand	13	245	932	6.1	314
Karnataka	12	1020	5475	26.1	2223
Kerala	7	247	1680	7.0	528
Maharashtra	25	802	3442	19.4	1075
Madhya Pradesh	20	856	2688	18.9	884
Odisha	14	565	3458	20.4	1347
Punjab	8	128	688	4.5	175
Rajasthan	14	211	774	4.7	271
Tamil Nadu	10	754	3375	19.3	939
Uttarakhand	10	78	286	2.1	70
Uttar Pradesh	16	1024	3494	24.4	903
West Bengal	13	621	2582	15.5	1005

Source: Inclusive Finance India Report, 2018

माइक्रोफाइनेंस की मुख्य विशेषताएं:-

- अधिकांश उधार लेने वाले लोग निम्न आय वर्ग के होते हैं
- ऋण की राशी छोटी होती है - सूक्ष्म ऋण
- ऋण भुगतान की अवधि कम
- ऋण के बदले कोई चीज बंधक नहीं रखनी पड़ती
- पुनर्भुगतान की ज्यादा किश्तें
- ऋण को आम तौर पर रोजगार और उत्पादन कार्यों के लिए

माइक्रोफाइनेंस के लाभ

विश्व बैंक के हालिया अनुसंधान के अनुसार, भारत में दुनिया के लगभग एक तिहाई गरीब बसते हैं। हालांकि भारत में कई गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम सक्रिय हैं; माइक्रोफाइनेंस, वित्तीय समावेशन में एक बड़ा योगदान अदा करता है। पिछले कुछ दशकों में इसने गरीबी उन्मूलन में उल्लेखनीय मदद की है। रिपोर्ट बताती है कि जिन लोगों ने लघु वित्त लिया है, वे अपनी आय और जीवन स्तर को बढ़ाने में सक्षम हो पाए हैं।

भारत की लगभग एक चौथाई आबादी तक अभी भी बैंक और वित्तीय सुविधाओं से दूर है। गरीब को भी अपनी जरूरतें जैसे खपत, परिसंपत्तियों के निर्माण और संकट से बचाव के लिए वित्तीय सेवाओं की जरूरत होती है। माइक्रोफाइनेंस संस्थान, बैंकों के लिए एक पूरक के रूप में कार्य करते हैं और कुछ अर्थों में ये एक बेहतर विकल्प भी देते हैं। ये संस्थान न केवल लघु ऋण का प्रस्ताव देते हैं, अपितु बचत, बीमा, प्रेषण जैसी अन्य वित्तीय सुविधाएं तथा व्यक्तिगत परामर्श, प्रशिक्षण तथा अपने व्यवसाय को खुद से तथा एक सुविधाजनक तरीके से शुरू करने जैसी गैर वित्तीय सेवायें प्रदान करते हैं।

नयी तकनीकें

हाल के वर्षों में माइक्रो-फाइनेंस, विभिन्न तकनीकि विकास और प्रयोगों का विषय रहा है। लोकप्रिय मोबाइल बैंकिंग उद्योग का लाभ, अब माइक्रो-फाइनेंस कंपनियां धन भेजने और प्राप्त करने के लिए कर रही हैं। ऋण पद्धतियों में भी विविधता आई है और ग्रामीण बैंकों का सहायक समूह ऋणों का मूल मॉडल, स्थानीय वास्तविकताओं के ज्यादा अनुकूल हुआ है। वर्तमान में माइक्रो-इंश्योरेंस और माइक्रो-सेविंग्स जैसे उत्पादों की लोकप्रियता बढ़ी है।

भविष्य

सूक्ष्म वित्त के भविष्य का पूर्वानुमान करना मुश्किल हैप् लेकिन कई अनुमानों से पता चलता है कि, 50 करोड़ से 150 करोड़ लोगों की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के लिए अभी भी उनतक वित्तीय सेवायें पहुंचाए जाने की जरूरत है। इसके अतिरिक्त, 250 करोड़ युवा लोग अगले दस से बीस वर्षों के भीतर वयस्क हो जाएंगे, जिन्हें पारंपरिक अर्थव्यवस्था में खपाना मुश्किल होगा। फिर आने वाले सालों में, वैश्विक अर्थव्यवस्था में स्वचालित मशीनों का उपयोग बढेगा। जिससे लोगों को रोजगार के अन्य विकल्प ढूंडने पड़ेंगे, जिसमे सूक्ष्म वित्त की भूमिका महत्वपूर्ण बने रहने की संभावना है।

भारत में माइक्रोफाइनेंस संस्थायें

भारतीय रिजर्व बैंक उन कंपनियों को माइक्रोफाइनेंस संस्था मानता है जो कि कंपनी एक्ट 1956 के अंतर्गत रजिस्टर्ड है और जिनकी कुल संपत्ति 5 करोड़ से कम है।

माइक्रोफाइनेंस कंपनियां कम आय वाले ग्राहकों को स्वयं सहायता समूहों (SHG) के माध्यम से ऋण उपलब्ध कराती हैं, ताकि वे स्व-रोजगार कर आत्मनिर्भर हो सकें। ये संस्थाएं घरेलु क्षेत्रों से छोटी-छोटी बचतों को जमा करके बड़े निवेश कर्ताओं को भी ऋण की आपूर्ति करतीं हैं प् जिससे देश में बचत क्रियाओं को बढ़ावा मिलता है और देश में निवेश का माहौल पैदा होता है।

माइक्रोफाइनेंस क्षेत्र की पिछले कुछ दशकों में तेजी से वृद्धि हुई है। नोबेल पुरस्कार विजेता मुहम्मद यूनुस को 1976 में ग्रामीण बैंक, बांग्लादेश की स्थापना के साथ आधुनिक एमएफआई की नींव रखने का श्रेय जाता है। आज यह एक जीवंत उद्योग के रूप में विकसित हुआ है जो व्यापार प्रतिमानों के कई रूपों को दर्शाता है। भारत में माइक्रोफाइनेंस संस्थाएं (एमएफआई) गैर सरकारी संगठनों (समाज या ट्रस्टों के रूप में पंजीकृत), धारा 25 कंपनियों और गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों (एनबीएफसी) के रूप में मौजूद हैं। वाणिज्यिक बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (आरआरबी), सहकारी समितियाँ और अन्य बड़े ऋणदाता, एमएफआई के लिए पुनर्वित्त सुविधा प्रदान करने में सहायता करते हैं।

भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक या सिडबी (Small Industries Development Bank of India)

भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (सिडबी) की स्थापना 2 अप्रैल 1990 को संसद के एक अधिनियम के तहत, सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम (एमएसएमई) क्षेत्र के संवर्द्धन, वित्तपोषण और विकास के लिए एवं साथ ही इसी तरह की गतिविधियों में संलग्न संस्थाओं के कार्यों का समन्वय करने हेतु प्रमुख वित्तीय संस्था के रूप में की गई।

सिडबी के व्यवसाय का केंद्रित कार्यक्षेत्र एमएसएमई है, जो भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण स्तंभ रहा है। इस क्षेत्र ने वित्तवर्ष 2014-15 में देश के कुल योजित सकल मूल्य (जीवीए) में 33% तक का योगदान दिया है। साथ ही, इस क्षेत्र के 5.1 करोड़ उद्यम 11.7 करोड़ भारतीयों को रोजगार प्रदान करते हैं। वर्षों से, सिडबी पारिस्थितिकीय संपदा का संरक्षण करते हुए, एमएसएमई क्षेत्र के दीर्घकालीन विकास के लिए कार्य कर रहा है। सिडबी के प्रयास आर्थिक संपदा के सृजन के रूप में फलीभूत हुए हैं, और यह समतामूलक समाज के निर्माण के लिए उसका वितरण कर रहा है। इन प्रयासों में अभिनव क्रेडिट प्लस मॉडल शामिल है, जिसमें ऋण के साथ-साथ एमएसएमई को परामर्श और प्रतिपालक की सुविधा उपलब्ध कराई जाती है। सिडबी के कुछ अन्य क्रांतिकारी अभिनव प्रयासों में भारत में अल्प वित्त संस्थाओं के नेतृत्व में संचालित अल्पवित्त (माइक्रो फाइनेंस) अभियान, जिसके तहत 100 से अधिक अल्पवित्त संस्थाओं को पोषित एवं विकसित कर सुदृढ़ बनाया गया है और फलस्वरूप लघु वित्त बैंकों का निर्माण सुकर हुआ, एमएसएमई क्षेत्र के लिए ऊर्जा-दक्ष और दीर्घकालीन वित्तपोषण की संस्कृति का आरंभ और उद्यम पूँजी, जोखिम पूँजी, प्रतिलोम (रिवर्स) फैक्टरिंग और अन्य नवीन सुविधाओं की शुरूआत शामिल हैं, जिन्हें बाद में देश की विभिन्न सार्वजनिक और निजी संस्थाओं ने अपनाया है।

माइक्रो फाइनेंस की ब्याज दर और अवैध वसूली

ये संस्थान ऋण लेने वाले को ऋण आसान शर्तों पर उपलब्ध करा देते हैं। ज्यादातर मामलों में ऋण लेने वाले को सुविधानुसार पुनः भुगतान की सुविधा प्राप्त होती हैं। लेकिन इन सबकी ज्यादा कीमत चुकानी पड़ती है। इन संस्थानों द्वारा वसूली गई ब्याज दर वाणिज्यिक बैंकों की तुलना में काफी अधिक होती है तथा ये व्यापक रूप से 10 से 30 % तक की दर से ऋण देते हैं और ऋण वापस पाने के लिए जबरन वसूली जैसे गैरकानूनी कार्य भी करते हैं।

माइक्रो फाइनेंस प्रणाली

भारत में माइक्रोफाइनेंस को दो प्रणाली के माध्यम से संचालित किया जाता है:

1. स्वयं सहायता समूह - बैंक लिंकेज कार्यक्रम (SBLP)
2. माइक्रो फाइनेंस संस्थान(MFIs)

स्वयं सहायता समूह-बैंक लिंकेज कार्यक्रमः- यह बैंक के नेतृत्व वाली माइक्रोफाइनेंस प्रणाली है जिसे 1992 में NABARD द्वारा शुरू किया गया। स्वयं सहायता समूह (SHG) मॉडल के तहत सदस्यों को, आमतौर पर गाँव में महिलाओं को 10-15 का समूह बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। SHG के सदस्य समूह में समय-समय में अपनी बचत का योगदान देते रहते हैं और इस बचत के योगदान से समूह के सदस्यों को लघु ऋण दिए जाते हैं।

बाद की अवधि में इन स्वयं सहायता समूहों को आम तौर पर आय-सृजन के प्रयोजन के लिए बैंक ऋण उपलब्ध कराए जाते हैं। समूह के सदस्य समूह में नई बचत एकत्रित करने, सदस्यों से पिछले ऋण की वसूली करने, तथा नए ऋण के वितरण के लिए समय-समय पर मिलते रहते हैं।

एमएफआई पर विवाद और निपटान

पिछले पांच सालों में डथ्ै ने काफी तरक्की की है। आंध्र प्रदेश के कुछ जिलों में इन संस्थानों में कर्ज उगाही को लेकर की गयी कार्यवाही के कारण सरकार को मजबूरन इन संस्थानों के लिए भी कुछ रेगुलेटरी नियम बनाने पड़े हैं। इसी क्रम में RBI ने इन संस्थानों की निगरानी के लिए जिसे मालेगाम समिति गठित की है।

इस समिति का उद्देश्य प्राथमिक ग्राहकों की शिकायतें, जिसमें बलपूर्वक उगाही का कार्य, अत्याधिक ब्याज दरें, जैसे मुद्दों को सुनना था। मालेगाम समिति ने जनवरी 2011 में उनकी सिफारिशें सरकार को सौंप दी थी।

निष्कर्ष

पिछले दशकों में सूक्ष्म वित्त (माइक्रोक्रेडिट) कार्यक्रमों का देश में गरीबी उन्मूलन और सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टि से लोगों को सशक्त बनाने में बड़ा योगदान रहा है। स्व:सहायता समूह (एसएचजी) की सदस्यता से महिलाओं का जीवन में उल्लेखनीय परिवर्तन आया है। माइक्रोक्रेडिट योजना ने महिलाओं को बचत और स्वरोजगार के लिए प्रोत्साहित किया है। माइक्रोक्रेडिट सुविधा का उपयोग करके वे अपनी जरुरत के मुताबिक लघु ऋण, बिना किसी जमानत का भुगतान किए बिना प्राप्त कर सकती हैं। सूक्ष्म-ऋण (माइक्रोक्रेडिट) का मुख्य लाभ गरीबों को साहूकारों के चंगुल से बचाने के लिए हुआ है। लोगों की हैसियत माप उनके आर्थिक स्तर द्वारा आँका जाता है। माइक्रोफाइनेंस अतिरिक्त कमाई के अवसर प्रदान करता है और रहन-सहन की स्थिति को सुधारता है।

माइक्रोफाइनेंस का उद्यमिता के साथ जोड़, स्वरोजगार के साथ दूसरों को रोजगार प्रदान कर गरीबी को कम करता है और देश के विकास में सहयोग देता है। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में इसका लाभ अधिक दिखता है, जहां आय के सीमित अवसर होते हैं।

नीति निर्माताओं, गैर सरकारी संगठनों, एजेंसियों को भी गरीबों की आजीविका से संबंधित गतिविधियों के लिए प्रभावी रणनीतिक कार्य योजना बनाने की जरुरत है।

प्रस्तुत लेख भारत में माइक्रो-क्रेडिट कार्यक्रम के मूल और विकास की समीक्षा करता है। भारत में नेशनल बैंक फॉर एग्रीकल्चर एंड रूरल डेवलपमेंट (नाबार्ड) ने 1992 में स्वयं सहायता समूह बैंक लिंकेज कार्यक्रम का पायलट चरण शुरू किया था। नीति-निर्माताओं द्वारा मौद्रिक नीति के वितरणात्मक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए, स्वसहायता समूहों (एसएचजी) को प्रभावी साधन के रूप में मान्यता दी गई है। एसएचजी-बैंक लिंकेज कार्यक्रम दुनिया के सबसे बड़े माइक्रो-क्रेडिट कार्यक्रम के रूप में उभरा है।

इस कार्यक्रम के माध्यम से लगभग 167 मिलियन परिवारों और 10,79,091 स्वयं सहायता समूहों को बैंक ऋण प्रदान किए गए। रोजगार सृजन गतिविधियों के लिए स्वयं सहायता समूहों को कुल 8.67 बिलियन अमरीकी डॉलर की राशि दी गई। गैर-सरकारी संगठन, स्व-सहायता समूहों को संगठित, सशक्त और स्थिर कर उन्हें बैंकों के साथ जोड़कर, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वित्तीय सेवाएं प्रदान कराने वाले प्रभावी प्रतिनिधि के रूप में उभरे हैं।

आज बड़े बैंकों के लिए, बड़े कर्जदार भले ही मुसीबत बन गए हों, लेकिन माइक्रोफाइनेंस कंपनियों ने छोटे कर्ज के लेन-देन में तेजी से तरक्की की है।

सन्दर्भ

- Jayshree Vyas in Karmarkar (2008)
- Mayoux (2006); Mohanty (1995); Elliott (2008); Chakrabothy (2006);
- Karmarkar (2006); Ahmad (2009). Rais Ahmad conducted a vast study spanning into several years and 3 parts.
- In a study conducted by Kaur and Gandhi (2006), they explore the issue of women empowerment in Jalandhar, Punjab.
- Dwijesh Awasthy. (n.d.). SELF HELP GROUP – BANK LINKAGE PROGRAMME.
- India Ratings and Research. (2015). Microfinance: Strong Comeback.
- Microfinance Institution Networks. (2015). Annual Report of Microfinance Institution Network. Gurgaon.

आत्मनिर्भर भारत और गांधी (कोविड-19 के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ० हिमांशु यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान विभाग, एस.पी.एम. डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

वर्ष 2019 में चीन से शुरू हुआ कोरोना वायरस का विस्तार आज पूरी दुनिया में है। वर्ष 2019 में शुरू होने वाली इस महामारी को विश्व स्वास्थ संगठन ने 'कोविड-19' नाम दिया तथा इसके बढ़ते संक्रमण के कारण इसे वैश्विक महामारी घोषित की गई। आज मानव समुदाय के समक्ष ऐसा संकट उपस्थित हुआ है, जिसकी वैज्ञानिकों को न तो कोई आशंका थी और न ही उससे निपटने की कोई तैयारी। आज विश्व के सभी देशों की आधुनिकता हेतु अंधी दौड़ की गति पर कोरोना वायरस ने रोक लगा दी है। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि कोरोना वायरस का तेजी से प्रसार ऐसी ही गतिविधियों का परिणाम है। कोरोना वायरस मानव समुदाय के सामने उसके भविष्य को लेकर कई प्रश्न खड़े कर दिए हैं, जिस पर मानव समाज को गहनता से विचार विमर्श करना होगा। आज मानव के इस अहंकार को गहरा धक्का लगा है कि उसने प्रकृति के रहस्यों को समझने और नियंत्रण करने की क्षमता प्राप्त कर ली है।

पूरे विश्व की मानवता की उपलब्धियां आज कोविड-19 के समक्ष बौनी साबित हो रही हैं। इसका दुष्परिणाम बहुआयामी है, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखे तो मानव अपने को बहुत ही लाचार और असुरक्षित महसूस कर रहा है। सामाजिक दृष्टि से व्यक्ति अलगाव की स्थिति में है, राज्य व्यवस्थाएं संघर्षरत एवं विवश दिखाई पड़ रही हैं, अर्थव्यवस्था तबाही की कगार पर खड़ी है। लाखों लोग सैकड़ों मील पैदल चलने को विवश दिखाई पड़े, बच्चे, गर्भवती स्त्रियों को अमानवीय स्थितियों का सामना करना पड़ा। कोरोना वायरस का यह प्रभाव केवल जान की कीमत तक सीमित नहीं है बल्कि इससे आर्थिक संकट के साथ कई उद्योग-धंधों और रोजगार का अस्तित्व भी फिलहाल खत्म होता दिखाई दे रहा है। नतीजतन काम करने वाले मजदूर, कर्मचारी, अधिकारी सभी एकाएक बेरोजगार हो गए हैं। ऐसे में आर्थिक तंगी ने सब को हिला कर रख दिया है। सरकारी नौकरी में रह रहे लोगों का भी यही हाल है कि किसी तरह उनका गुजारा हो रहा है। आलम यह है कि कुछ लोग अपना पेट पालने के लिए सब्जी, फल आदि विक्रेता भी बन गए हैं। माना जाता है कि देश में करीब 30 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही है दो महीने से अधिक के लॉकडाउन से उनकी हालत और भी खराब हो गई है। कोविड-19 महामारी ने आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी मानव जीवन को प्रभावित किया है, जिससे अभी तक दुनिया वापस पटरी पर नहीं आ पाई है। ऐसे में प्रधानमंत्री श्री मोदी ने इस कोरोना वायरस रूपी महामारी को 'अवसर' के रूप में देखते हुए 'आत्मनिर्भर भारत' बनने का आह्वाहन किया। इसके बाद उन्होंने स्थानीय उत्पादन, स्थानी मार्केट और स्थानीय सप्लाई चौन को मजबूत बनाने की बात की। दरअसल उन्होंने भारतीयों को आत्मनिर्भर होने और स्वावलम्बी होने का संदेश दिया। दूसरे शब्दों में कहें तो एक तरह से उन्होंने 'गांधी के ग्राम स्वराज' की ओर लौटने की बात कही।

इतिहास साक्षी है कि संघर्ष जितना बड़ा होता है विजय भी उतनी ही बड़ी होती है। जिस तरह गांधी के समय में 'सफाई अभियान' में गांधी की सफलता के कारण एक आंदोलन का रूप ले लिया और अन्ततः सफाई के महत्व को स्वीकारा गया। वर्तमान में स्वच्छ भारत अभियान के तहत गांधी के साख में वृद्धि होती दिखाई दे रही है। उसी प्रकार पूरी उम्मीद है कि यह आत्मानिर्भर भारत अभियान लोगो को पूरी तरह आंदोलित करेगा और नव-पुनर्जागरण लाएगा। इससे ज्ञात होता है कि कोरोना वायरस के पहले और बाद की दुनिया एक जैसी नहीं होगी। काफी हद तक बदलाव हो चुका होगा, इसके अंतर्गत कुछ विद्वानों का मत है कि 21वीं सदी एशिया की होगी और इस सदी में 'आत्मनिर्भर भारत अभियान' के तहत भारत सशक्त और पूरी शक्ति-संपन्नता के साथ खड़ा होगा। आज वैश्वीकरण के दौर में हम आत्मनिर्भरता की बात करते हैं तो स्वभावतः ही गांधी के विचार प्रासंगिक हो उठते हैं क्योंकि देखा जाए तो यह उसी तरह है जैसे गांधी के समय में भारत या फिर पुनर्जागरण जागरण महाननायकों द्वारा भारतीय संस्कृति में निहित उत्कृष्ट तत्वों का उद्घाटन कर भारत में आत्मगौरव की भावना जगाया गया था। गांधी ने स्वयं उन मूल्यों को आत्मसात् करते हुए सत्य के साथ प्रयोग के अन्तर्गत सारे आदर्शों को जिया है। उन्होंने सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, अपरिग्रह की बात की थी, जिसकी आज पूरे विश्व में जरूरत है क्योंकि राष्ट्रों के मध्य संघर्ष बढ़ रहे हैं अतएव अहिंसा की आवश्यकता है। स्थानीय स्तर पर लोग परेशान हैं जहाँ ग्राम स्वराज की जरूरत है। गांधी ने शुरू से ही गांव को आत्मनिर्भर बनाने की बात की थी तो वहीं आज 'आत्मनिर्भरता', भारत की जरूरत है। समूचे भारत में नव-पुनर्जागरण की आवश्यकता है।

वैश्वीकरण से ग्राम स्वराज की कल्पना

वैश्वीकरण विश्व एकीकरण की एक प्रक्रिया है। एकीकृत विश्व में लोग, वस्तु एवं सेवाओं से लेकर विचार एवं नवाचार तक का आदान प्रदान करते हैं। यह एक सतत प्रक्रिया है जिसमें दुनिया के सभी देश एक दूसरे से आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक रूप से अंतर-संबद्ध होते हैं। इस प्रक्रिया में वैश्विक

स्तर पर सुगम संचार होता है। वैश्वीकरण के कारण समूचा विश्व एक वैश्विक ग्राम में तब्दील हो चुका है जिसके कारण पूरे विश्व का एक दूसरे पर निर्भरता भी बढ़ी है। मौजूदा कोरोना वायरस संकट के सामने सवाल ये है कि क्या वायरस से उपजे संकट ने वैश्वीकरण को पीछे धकेल दिया है? क्या हम वैश्वीकरण से वापस 'स्थानीय अर्थव्यवस्था' अथवा 'स्थानीयता' की ओर लौट रहे हैं? क्या मौजूदा महामारी वैश्वीकरण का ही नतीजा है? इत्यादि ऐसे प्रश्न हैं जो वैश्वीकरण के समक्ष लगातार उपस्थित होते रहे हैं। आज पूरी दुनिया बुनियादी सुविधाओं, वस्तुओं और आवश्यक चिकित्सा उपकरणों की खरीद के लिए संघर्ष कर रही है। इतना ही नहीं आज देशों के बीच वस्तुओं, सेवाओं की आवाजाही सामान्य रूप से बहाल तक नहीं है। तकरीबन सभी देश घरेलू आर्थिक मोर्चे पर बेरोजगारी, सकल घरेलू उत्पाद के नीचे जाने, मांग की कमी, मांग एवं पूर्ति श्रृंखला का टूटने, ग्लोबल सप्लाई चौन और ग्लोबल इकॉनामी से संबंधित व्यवस्था के अवरुद्ध होने जैसी समस्याओं से जूझ रहे हैं। इसके साथ ही कच्चे माल के लिए अभी भी चीन पर निर्भरता बनी हुई है लेकिन इस संकट ने सबको एक सबक प्रदान किया है कि आत्म-अस्तित्व के लिए हर देश के पास बुनियादी सुविधाएं अथवा आधारभूत संरचनात्मक विकास नितान्त आवश्यक है।

गांधी के समय से ही वैश्विक स्तर पर औद्योगीकरण का रूप विकसित हो चुका था। उस समय जो विकसित देश हैं उनके द्वारा गांधी को आध्यात्मिक व्यक्ति से ज्यादा नहीं समझा जाता था। उन्होंने स्थानीय स्तर पर आत्मनिर्भरता और स्वाबलंबन पर जोर दिया लेकिन स्वतंत्रता के बाद आधुनिक भारत के नाम पर विदेशी मशीनों को लाकर बड़े-बड़े कल कारखाने स्थापित किए गए। नतीजतन धीरे-धीरे लघु एवं कुटीर उद्योग कमजोर होते गए, सार्वजनिक क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयां उपेक्षित होती गई तथा जिससे वैश्वीकरण की प्रक्रिया में निरंतर तेजी आई है। किंतु आज मौजूदा संकट के समय दुनिया भर में स्थानीय उत्पादों की महत्ता बढ़ गई है। देखा जाए तो वैश्विक समाज के निर्माण ने न सिर्फ राजनीतिक एवं सांस्कृतिक उपनिवेशवाद से बल्कि औद्योगिकरण के साथ आर्थिक सहयोग एवं विदेशी निवेश के नाम पर एक नव-उपनिवेशवादी संस्कृति को जन्म दिया है। इसके साथ साथ विश्व को पर्यावरणीय समस्या व प्राकृतिक आपदा से भी रूबरू होना पड़ रहा है। जिससे समय के साथ सिद्ध होते हुए दिखाई दे रहा है कि ऐसे में आवश्यक है कि एक बार फिर से गांधी जी के राह पर चल कर हम अपनी अर्थव्यवस्था को जीवन शक्ति प्रदान करें। हमारी वन संपदा, प्राकृतिक संसाधन, पीढ़ियों से चले आ रहे हुनर, देशीपन की इच्छा, और स्थानीयता की जरूरत आदि घर-घर की खपत आधार बनेगी। हमारी छुपी संभावनाएं उभर कर सामने आएंगी और विकेंद्रीकरण के सपनों के बीच बाजार के आंकड़ों का ग्राफ भी ऊंचा उठ सकेगा।

विगत एक दशक में जिन्होंने इस मध्यम-निम्न वर्ग व निम्न वर्ग को असफल होते नहीं देखा है उन लोगों को आज तालाबंदी के दौर में फंसे मजबूर मजदूरों विशेषत: प्रवासी मजदूरों की व्यथा को देखना चाहिए जो कि स्थानीय स्तर पर रोजगार उपलबध्ता को आवश्यक बनाती है। ग्राम स्वराज के संदर्भ में देखें तो गांधी शुरू से ही गांव को आत्मनिर्भर बनाने की बात करते हैं। विकास के मॉडल में उन्होंने ग्राम आधारित मॉडल को स्थान दिया लेकिन हमनें नगर केंद्रित औद्योगिक मॉडल को ज्यादा महत्व दिया गया। गांधी के लिए उनका आदर्श राज्य राम-राज्य और उप-आदर्श राज्य ग्राम स्वराज था। गांव सत्ता के केंद्र होंगे, सत्ता का प्रवाह नीचे से ऊपर की ओर जाए लेकिन हमने पश्चिमी सभ्यता को अपनाते हुए 'टॉप टू बॉटम' अर्थात् ऊपर से नीचे के मॉडल को अपनाया। ग्राम आधारित विकास में गांधी का मूल 'आर्थिक विचार है', गांधी के अनुसार सरकार का सख्त केंद्रीकरण नहीं होना चाहिए, उसे ग्राम स्वराज में बांट देना चाहिए, जिसमें हर जगह हर इलाके की अपनी जिम्मेदारी होगी, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, पानी, सुरक्षा आदि पर प्रत्येक गांव की खुद ही जिम्मेदारी होगी, जिससे ग्राम पंचायत हर ग्रामवासियों की सुविधा के लिए आधारभूत सुविधाएं उत्पन्न कर सकेगा। इसलिए गांधी पंचायती राज के भी प्रबल हिमायती थे। उन्होंने पंचायती राज तीन भागों में बांटा था, यथा-

1. ग्राम पंचायत
2. मंडल पंचायत उसके ऊपर
3. जिला पंचायत

गांधी जी का यह भी मानना था कि मेरे सपनों का स्वराज गरीब का स्वराज है। कोविड-19 महामारी के कुप्रभाव से लड़ने की बात ही नहीं बल्कि भविष्य के भारत का पुनर्निर्माण की बात हो तो यह विचार गांधी के ग्राम स्वराज की अवधारणा से मेल खाता है तथा आत्मनिर्भर भारत गांधी की वैचारिक परंपरा का हिस्सा रहा है। उनका मानना था कि हर गांव अपनी जरूरत को पूरा करने में समर्थ हों तभी ग्राम स्वराज स्थापित हो सकता है। इस संकट की घड़ी में गांव की तरक्की के लिए कुटीर उद्योग, हस्तशिल्प उद्योग, चरखा, खादी उद्योग आदि को बढ़ावा देने की बात की जा रही है। वैश्वीकरण के दौर में उपजे संकट के बाद ग्राम स्वराज की तर्ज पर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को विकसित करने के प्रबल उपाय भी किए जा रहे हैं।

आत्मनिर्भरता: आत्म-केंद्रित वैश्वीकरण से मानव-केंद्रित वैश्वीकरण

वैसे देखा जाए तो आत्मनिर्भर भारत गांधी की वैचारिक परंपरा का हिस्सा रहा है। जीवन के हर पड़ाव पर गांधी आत्मनिर्भरता के महत्व को समझते रहे। गांधी जी ने निजी स्तर पर आत्मनिर्भर बनाने के लिए कुटीर उद्योगों हेतु देशवासियों से निरंतर अपील की। उन्होंने जरूरतमंदों के प्रति मदद की बात नहीं की बल्कि जरूरतमंदों को कुशल बनाने की बात कही जिससे वह अपनी मदद खुद कर सकें। ऐसे में आत्मनिर्भरता के अर्थ कई रूपों में दिखाई पड़ता है। प्रश्न यह उठता है कि क्या आत्म-केंद्रित समाज और आत्ममुग्ध सरकार आत्मनिर्भरता के सपनों को सच कर सकती हैं, इसका सार्वजनिक उत्तर शायद नहीं में ही होगा। आत्म-सम्मोहित नीतियों, कानून, योजनाओं और घोषणाएं जो अब तक करोड़ों विपन्न लोगों हेतु मील का पत्थर तक साबित नहीं हो सकी है। गरीबी रेखा से नीचे और ऊपर खड़े तबकों में गहराता फासला अब तक गढे गए मार्गों की असफलता को खुद बयां कर रहे हैं।

गांधी आत्मनिर्भरता या आर्थिक स्वायत्तता को राजनीतिक स्वाधीनता की कुंजी कहते थे। उनका मानना था कि भारत के निर्माण में निर्माताओं के सामने दो रास्ते हैं, प्रथम अधिकाधिक उत्पादन और द्वितीय अधिकाधिक लोगों द्वारा उत्पादन। प्रश्न यह उठता है कि आज हम किस प्रकार की आत्मनिर्भरता की बात कर रहे हैं। पहला मार्ग एक नई आर्थिक गुलामी की ओर ले जाता है जबकि दूसरा मार्ग आत्मनिर्भर भारत के रास्ते पर। पिछले दशक से अकुशल देशवासियों को कुशल बनाने की जो कौशल विकास मुहिम चल रही है वह चलते चलते इस मुकाम पर आ गई है कि देश में कुशल श्रम बल की फौज खड़ी हो गई है। आज बेरोजगारी की पहाड़ जैसी समस्या से हम रूबरू हैं। यानी अब हमें गांधीवाद के अध्याय को ढूंढने की जरूरत है जो समावेशी विकास को सुनिश्चित करता हो क्योंकि आज की वैश्विक मंदी के समय हम अपने गांव तक तो जरूरत के न्यूनतम सामान नहीं पहुंचा पा रहे हैं। आज यह सोचने की जरूरत है कि गांधी के समय अंतिम व्यक्ति कहां रहता था और आज उस अंतिम व्यक्ति की हालत क्या है? उसकी स्थिति में कुछ सुधार हुआ भी या नहीं? व्यक्ति के स्तर पर हो या देश के स्तर पर अगर आज सबसे बड़े सुधार की जरूरत है तो वह आत्मनिर्भरता के क्षेत्र में अपनी स्थिति सुधारने की है। इसके साथ ही यह समझना भी आवश्यक है कि आत्मनिर्भरता हम देश की चाहते हैं या उन करोड़ों विपन्न किसानों, मजदूरों कि जो इस भारतीय लोकतंत्र के आधारशिला हैं।

वर्तमान वैश्वीकरण के युग में आत्मनिर्भरता की परिभाषा में भी बदलाव आया है। आत्मनिर्भर भारत आत्म-केंद्रित भारत से अलग है, आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में वैश्वीकरण को अलग नहीं किया जा सकता। ऐसे में यह समझने की जरूरत है कि सरकार ने अपने आत्मनिर्भर अभियान को जमीनी स्तर पर लागू करने के लिए क्या रणनीति बनाई है।

अर्थ-केंद्रित वैश्वीकरण का अर्थ है विश्व के बाजारों से इतना जुड़ा होना कि 'एक' सब बाजार में नजर आए। इसमें सभी देश अपने अपने आर्थिक हित पूरा करना चाहते हों, दूसरे देशों की सहायता से अपनी अर्थव्यवस्था को मजबूत करें। लेकिन अब मौजूदा संकट को देखते हुए प्रधानमंत्री ने मानव-केंद्रित वैश्वीकरण की बात कही जिसमें आर्थिक गतिविधियों के साथ-साथ मानव कल्याण पर भी ध्यान दिया जाए। इस तरह यह संकल्प कल्याणकारी अर्थशास्त्र के सिद्धांत पर आधारित होगा। वर्तमान संकट अर्थात् कोविड-19 महामारी ने मानव जीवन को प्रभावित किया है व्यक्ति के साथ-साथ राज्य, गैर-राज्य एवं राज्येत्तर संस्थाएं बेबस नजर आई हैं, जिससे सभी भलीभांति परिचित हैं। ऐसे में आज 'लागत लाभ सिद्धांत' पर आधारित अर्थ-केंद्रित वैश्वीकरण की जगह मानव-केंद्रित वैश्वीकरण ज्यादा प्रासंगिक है जहाँ मानव-केंद्रित वैश्वीकरण का तात्पर्य है व्यक्ति के हितों एवं उसकी विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ उत्पादों की मानव जीवन में अनिवार्य उपभोग सम्बन्धी उपादेयता को प्रतिपादित एवं सुनिश्चित किया जए। इसका उद्देश्य है मानव कल्याण, इसके अंतर्गत किस प्रकार से मानव जीवन स्तर को ऊंचा उठाया जाए, मानव स्वास्थ सम्बन्धी सुविधाओं को और अच्छा किया जाए आदि पर बल देना है। इसी को प्रधानमंत्री जी ने आत्मनिर्भर भारत का नाम दिया जो कि हमें आत्म-केंद्रित वैश्वीकरण से मानव-केंद्रित वैश्वीकरण की ओर ले जाती है।

आत्मनिर्भर भारत का मतलब है दुनिया से जुड़े रहते हुए आर्थिक विकास के साथ लोगों के जीवन की गुणवत्ता को और बेहतर बनाना। आत्मनिर्भर भारत की शुरुआत 'डिमाण्ड सप्लाई चौन' को सुधारने के लिए की गई है, जिससे अर्थव्यवस्था को गति प्रदान किया जा सकें। भारतीय अर्थव्यवस्था में इतनी संभावना है कि यदि संसाधनों का ठीक से दोहन करें तो इस सप्लाई चौन के माध्यम से 'ग्लोबल डिमाण्ड सप्लाई चौन' में भी अपनी प्रभावशाली जगह बना सकते हैं। इसलिए प्रधानमंत्री जी ने 'ग्लोबल डिमाण्ड सप्लाई चौन' के स्थान पर 'वोकल फार लोकल' शब्द का चयन किया अर्थात् भारतीय अर्थव्यवस्था में जिन वस्तुओं का उत्पादन होता है उसका मात्र स्थानीय स्तर पर प्रयोग के बजाय उसके उत्त्पादन की मात्रा इतनी अधिक सुनिश्चित किया जाए कि वह वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान बना सके तथा अपनी मांग सुनिश्चित कर सकें। ऐसे में समझने की जरूरत है कि विश्व व्यवस्था में भारतीय अर्थव्यवस्था की भूमिका और समृद्ध होगी जो न केवल रोजगार सृजन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं बल्कि सामरिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

मौजूदा संकट के समय यह दिखाई दे रहा है कि वैश्विक स्तर पर निजी कंपनियां चीन में निवेश नहीं करना चाहती, इसका परिणाम यह है कि वैश्विक सप्लाई चौन बाधित होगी साथ ही भारत के लिए अवसर भी उत्पन्न होगा। दूसरे शब्दों में कहें तो भारतीय अर्थव्यवस्था के सामने यह अवसर उत्पन्न होगा कि वैश्विक स्तर की उन कंपनियों को भारत की ओर आकर्षित कर विश्व आर्थिक प्रतिस्पर्धा के साथ-साथ समकालीन विश्व व्यवस्था के पटल पर स्वयं को अधिक से अधिक समृद्ध कर सके। इसके साथ साथ भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए कुछ अन्य कदम वांछनीय है, यथा-

1. भारत की कंपनियों को इतना प्रमोट किया जाए, इतना लोकप्रिय बनाया जाए कि उनके उत्पादन भारतीय बाजार के साथ-साथ वैश्विक बाजार में अपनी जगह बना सकें।
2. वोकल फार लोकल के आधार पर घरेलू उत्पादन को वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला से जोड़ना होगा तथा जिसे आत्मनिर्भर भारत के मुख्य उद्देश्य के रूप में देखा जाना चाहिए।

इस तरह देखे तो आत्मनिर्भर भारत अभियान के साथ-साथ मानव-केंद्रित अर्थव्यवस्था एवं मानव-केंद्रित वैश्वीकरण की अवधारणा की बात कर समाजवादी, जनकल्याणकारी अवधारणा पर बल दिया जा रहा है।

आत्मनिर्भर भारत अभियान के लिए लाया गया आर्थिक पैकेज चार स्तंभों पर खड़ा होगा- लैंड, लेबर, लॉ, और लिक्विडिटी। इसके साथ ही इस अभियान के पांच प्रमुख आधार भी है, जो हैं-अर्थव्यवस्था, अवसंरचना, तकनीकी, प्रौद्योगिकी, गतिशील जननांकिकी तथा मांग।

गांधी की प्रासंगिकता

कोरोना वायरस महामारी के दौर में स्थानीयता आधारित अर्थव्यवस्था ने गांधीवाद की प्रासंगिकता को और बढ़ा दिया है। देखा जाए तो गांधीवादी तकनीकि अर्थात् सत्याग्रह और अहिंसा का सफल प्रयोग, दक्षिण अफ्रीका में नेल्सन मंडेला द्वारा रंगभेद की समाप्ति हेतु आन्दोलन तथा अमेरिका में मार्टिन लूथर किंग

जूनियर द्वारा अश्वेतों के अधिकार के लिए किया गया आन्दोलन आदि आधुनिक विश्व को महात्मा गांधी की देन है, जिसकी परिणति के रूप में हमनें अमेरिका के 44वें राष्ट्रपति के रूप में बराक ओबामा का चुने जाते देखा है। वर्तमान में भी अमेरिका में श्वेत-अश्वेत नक्सलवाद का मुद्दा प्रासंगिक बना हुआ है यही कारण है कि सौंदर्य प्रसाधन का एक वर्षों पुराना ब्रांड 'फेयर एंड लवली' ने अपने उत्पाद के नाम से 'फेयर' शब्द हटाने का फैसला किया है। गांधी ने अपनी आत्मकथा के छठे भाग (गांधी के 11 सिद्धांतों में छठा सिद्धांत) में अपरिग्रह के सन्दर्भ में कहा है कि 'व्यक्ति को वह चीज नहीं लेनी चाहिए, या उसका संचय नहीं करना चाहिए जिसकी उसे वास्तव में आवश्यकता न हो। अनावश्यक भोजन सामग्री, कपड़े या फर्नीचर जमा करना इस सिद्धांत का उल्लंघन है। उदाहरण के लिए यदि व्यक्ति कुर्सी के बिना काम चला सकता है तो उसे कुर्सी नहीं रखनी चाहिए। इस सिद्धांत के पालन में व्यक्ति अपने जीवन को आगे से आगे सरल बनाता जाता है। यही अपरिग्रह है।' यह सिद्धांत वस्तुतः गांधी के पांचवें सिद्धांत, अस्तेय, की तरह है। आज मौजूदा कोरोना वायरस के समय में अपरिग्रह का सिद्धांत सर्वाधिक प्रासंगिक है। गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में कुछ ऐसे पहलुओं को उद्घाटित किया था जिनमें वैश्विक महामारी कोविड-19 का सामना कर रहे लोगों एवं राजनीतिक व प्रशासनिक नेतृत्व को समझने की आवश्यकता है। दक्षिण अफ्रीका के डरबन में जब प्लेग का डर था उस समय दक्षिण अफ्रीका के समुद्री बंदरगाह पर यात्रियों के आगमन की अनुमति नहीं थी क्योंकि दक्षिण अफ्रीका में प्लेग फैला हुआ था। अतः गांधी जी को भी कुछ दिनों के लिए क्वारंटाइन किया गया क्योंकि इस पर डॉक्टर का मानना था कि कीटाणु 23 दिनों तक जीवित रहता है। इसलिए आदेश दिया गया कि 23 दिनों तक सभी नाविकों को और यात्रियों को क्वारण्टाइन किया जाए। इस उपरोक्त प्रकरण से हम समझ सकते हैं कि किसी भी महामारी, जिसके संक्रमण का भय हो, फैलने से रोकने के लिए नियमों का कठोरता से पालन एवं संपूर्ण डॉक्टरी जांच नितान्त आवश्यक है। कोविड-19 महामारी पर नियंत्रण हेतु भारतीय नेतृत्व ने गांधी की आत्मकथा में उद्घाटित इस प्रकरण को गंभीरता से लिया है। इसके अतिरिक्त भारतीयों पर आरोप था कि वे अपने घर की सफाई नहीं करते, गंदे रहते हैं तो वहीं डरबन में जब प्लेग का डर था तो गांधी ने घूम-घूम कर सफाई अभियान चलाया जो कि आज के दौर में 'स्वच्छ भारत अभियान' के रूप में अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए हैं किंतु गांधी की सहभागिता किसी प्रदर्शन की वस्तु नहीं थी।

इस तरह दक्षिण अफ्रीका के दो उदाहरण कोविड-19 महामारी के मुकाबले के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। एक अन्य उदाहरण महामारी फैलने का हैं, गांधी जी ने अपने सहयोगियों के साथ बीमारों की सेवा की। अंततः स्वयं दूसरों के कम से कम संपर्क में आने 'स्वयं नियम' का कठोरता से पालन कर रहे थे। आज के संदर्भ में जिसे हम 'फिजिकल अथवा सोशल डिस्टेंसिंग' कह रहे हैं जो कि गांधीवाद की प्रासंगिकता को दर्शाता है।

गांधीवादी दृष्टिकोण की व्यापकता को समझते हुए हम देखते हैं कि वैश्विक महामारी के प्रसार को रोकने के लिए सहायक स्वदेशी, स्वच्छता और सर्वोदय, बहिष्कार, ग्राम स्वराज, आत्मनिर्भरता की अवधारणा आज पूर्णरूपेण प्रासंगिक बनी हुई है। गांधी जी पहले ऐसे भारतीय थे जिन्होंने वर्ष 1909 में हिंद स्वराज पुस्तक में मशीनीकरण के भयावह रूप को रेखांकित करते हुए स्वदेशी की महानता को बताया था। गांधी ने अपनी आत्मकथा के आठवें भाग में स्वदेशी को समझाते हुए कहा है कि 'व्यक्ति सर्वशक्तिमान या सभी कार्य स्वयं करने में समर्थ नहीं है। इसलिए वह पहले अपने पड़ोसी की सेवा कर विश्व की सर्वोत्तम सेवा कर सकता है। यही स्वदेशी है, जिसके तहत व्यक्ति दूर की तुलना में अपने निकट के लोगों की सेवा को प्राथमिकता देता है। स्वदेशी का पालन विश्व में एक व्यवस्था कायम करता है, इसका उल्लंघन करने से अव्यवस्था पैदा होती है। स्वदेशी में व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए कोई स्थान नहीं है। यह परिवार के लिए स्वयं का, गांव के लिए परिवार का, देश के लिए गांव का और मानवता के लिए देश के बलिदान का दायित्व सुनिश्चित करता है। यही स्वदेशी है।'

स्वदेशी आंदोलन और आत्मनिर्भरता एक ही सिक्के के दो पहलू थे जो आज की दुनिया में भी सार्थकता बनाए हुए हैं। स्वदेशी भारत की स्वतंत्रता की कुंजी थी और गांधी के रचनात्मक कार्यक्रमों में चरखे ने इसका प्रतिनिधित्व किया था किंतु औद्योगिकरण ने धीरे-धीरे कुटीर उद्योग, खादी उद्योग, चरखा, हस्तशिल्प उद्योग आदि को समाप्त कर दिया। आज कोरोना वायरस के समय आत्मनिर्भर भारत के रूप में इन सब को बढ़ावा देने हेतु प्रयास किया जा रहा है। विदेशी सामानों खासकर चाइनीज एप्लीकेशन, वस्तु आदि का बहिष्कार कर स्वदेशी पर बल दिया जा रहा है। दूसरे शब्दों में कहें तो भारत एवं भारतवासी को आत्मनिर्भर बनाने हेतु स्वदेशी अपनाने हेतु प्रेरित किया जा रहा है।

इसके साथ ही भारत में अपरिग्रह को मनुष्य को प्रकृति के बीच की संवेदनशीलता की कड़ी को बनाए रखने का आधार प्रस्तुत करती है। गांधीजी ने अपरिग्रह को समझा व सराहा और दूसरों को समझाने का प्रयत्न भी किया। कोरोना संक्रमण ने भारत सहित समूचे विश्व के सामने यह स्पष्ट कर दिया कि विश्व को अपरिग्रह का अर्थ और मंतव्य समझना एवं उसका अनुपालन मौके पर उसका भौतिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक उत्तरदायित्व है। ऐसे में भारत को एक बार 'मानव और मानव' तथा 'मानव व प्रकृति' के मध्य संबंधों का एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करना है जिसकी आज सारे विश्व में अपरिहार्यता बन गई है। ऐसे में भारत को अपनी जिम्मेदारी निभानी चाहिए और कोरोना वायरस से उबरने में विश्व समुदाय हेतु मार्ग प्रशस्त करना चाहिए।

कोविड-19 के कारण उत्पन्न इस संकट काल में महात्मा गांधी की भूमिका उस रोल मॉडल का निर्माण करती है जिससे बहुत कुछ सीखा जा सकता है, पर क्या 'नेतृत्व' जनता के बीच में समस्त सावधानियां बरते हुए उस साहस, निर्भीकता, उत्तरदायित्व एवं कर्तव्यनिष्ठा का प्रदर्शन कर सकता है जो गांधी ने दक्षिण अफ्रीका एवं भारत में किया। सत्य के साथ प्रयोग अथवा 'गांधी की आत्मकथा' पुस्तक इस दौर में राजनेताओं को पढ़ने की जरूरत है क्योंकि जनता को कैसे साथ लेकर महामारी का मुकाबला करना है यह पुस्तक इस हेतु एक दस्तावेज है तथा एक बेहतर विकल्प भी उपलब्ध कराती है।

वर्तमान में आत्मनिर्भर भारत का विचार वही है जो गांधी का था। भारत का आधुनिकीकरण हो लेकिन पश्चिम पर निर्भरता नहीं। 'स्वदेशी', स्थानीयकरण और वैश्वीकरण के बीच भारत का पुल है। इस महामारी को पर्यावरण क्षरण, स्वच्छता की कमी तथा उपभोक्तावादी जीवन शैली जैसे कारकों का परिणाम माना जा सकता है। गांधीवादी दृष्टिकोण में सर्वथा पर्यावरण संरक्षण, स्वच्छता, जरूरत के अनुसार ही उपभोग के साथ-साथ आत्मनिर्भर तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर बल दिया है। इस संकटकाल में गांधी के विचारों की महत्ता एक बार फिर स्थापित होती है। इस संदर्भ में गांधी जी का कथन महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है कि 'धरती पर उपलब्ध संसाधन मानव जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पर्याप्त हैं किंतु उनकी इच्छाओं हेतु नहीं।' इस महामारी ने एक अवसर प्रदान किया है कि हमें अपनी खाद्य श्रृंखला में बदलाव करते हुए तथा अपनी स्थानीय उत्पादन श्रृंखला में बदलाव करते हुए एवं गांधी के सिद्धांतों

पर चलते हुए विश्व अर्थव्यवस्था में एक अलग पहचान बनाने हैं। 21वीं सदी भारत की सदी बनाने का हमारा दायित्व आत्मनिर्भर भारत के प्रण से ही पूरा किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भार्गव, नरेश: वैश्वीकरण: समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य, रावत बुक, जयपुर, 2014
2. जी0 पी0 एस0 पैनल ऑफ एक्सपर्ट: वैश्वीकरण तथा पर्यावरण, गुलीबाबा पब्लिशिंग हाउस, 2012
3. दाधीच, नरेश: समसामयिक राजनीतिक सिद्धांत, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2015
4. चारी, शेषाद्री: मोदी का आत्मनिर्भर भारत का विचार वही है जो गांधी का था, 15 मई 2020
5. झा, प्रशांत: गांधी ने भी किया था क्वारंटाइन नियमों का पालन, 19 मार्च 2020, पत्रिका
6. गांधी, मोहनदास करमचंद: हिंद स्वराज, सेनेटरी एडिशन, राजपाल पब्लिकेशन, 2013
7. गुप्ता, सत्यदेव: द पॉलीटिकल इकोनामी आफ ग्लोबलाइजेशन, बोस्टन जेड बुक्स, 1997
8. शर्मा, जयनारायण: सत्याग्रह: गांधीज अप्रोच टू कनफ्लिक्ट्स रिजोल्यूशन, न्यू दिल्ली, कॉन्सेप्ट, 2008
9. गांधी, एम0 के0: ऑटोबायोग्राफी आर द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंट विथ ट्रुथ, अहमदाबाद, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस
10. जनसत्ता
11. राष्ट्रीय सहारा
12. www.mkgandhi&sarvoday-org
13. www-gandhismriri-nic-in

नवभारतः गांधी दर्शन एवं स्वदेशी

डॉ० रूपम मिश्रा

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, जगत तारन गर्ल्स डिग्री कॉलेज, प्रयागराज

प्रस्तावना

आज किसी से भी यह छुपा नहीं है कि समूची मानव सभ्यता एक बड़े संकट एवं उथल-पुथल के दौर से गुजर रही है। उसके समक्ष अपने अस्तित्व का सबसे बड़ा संकट खड़ा है, साथ ही आर्थिक गतिविधियों की स्थिति अपने नाजुक दौर में है। आज हमारी आंखों के सामने समूची मानव जाति का अस्तित्व अधर में दिखाई दे रहा है। ऐसे में हमें गांधी तथा गांधीवादी दर्शन से प्रेरणा लेने की आवश्यकता है। आज हमें वैज्ञानिक क्रांति, बहुराष्ट्रीय कंपनियों से जुड़ाव के साथ-साथ स्थानीयता के भाव को बनाए रखने की जरूरत है। आधुनिक विश्व 'वैश्वीकरण' व 'बाजारीकरण' का है, आज सब कुछ अन्तर्राष्ट्रीय बाजार से जुड़ चुका है, उत्पादन की बढ़ती मात्रा के साथ 'बाजार एवं उत्पादन प्रक्रिया' अन्तिम मनुष्य तक पहुंच चुकी है, ऐसे में गांधीवादी दर्शन अधिक प्रासंगिक हो उठता है।

भारत ने जहॉ एक तरफ सन् 2019 में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की 150वीं जयंती मनाया है तो वहीं दूसरी तरफ सन् 2022 में 'स्वतंत्रता' की 75वीं वर्षगांठ मनाने जा रहा है। ये दोनों ही अवसर हमें गर्व की अनुभूति कराने वाले तथा एक 'नए भारत' के सृजन की प्रेरणा देने वाले हैं। एक तरफ जहां गांधीवादी दर्शन से हमें गांधी के मूल्यों पर चलने एवं उसे आत्मसात् करने की सीख मिलती है तो वहीं स्वदेशी व खादी अपनाने के साथ-साथ आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा भी मिलती है। दूसरी तरफ हमारे अन्दर 'नवभारत' के निर्माण की उच्चाकांक्षा का सृजन भी होता है। एक ऐसे भारत के निर्माण की हमें प्रेरणा मिलती है जो आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो, समकालीन विश्व व्यवस्था के लिए मार्गदर्शक हो, हमें नवाचार व उन्नति हेतु प्रेरित व प्रोत्साहित करता हो तथा विभिन्न सामाजिक जटिलताओं व विविध समस्याओं के मध्य एक 'समतामूलक समाज' की स्थापना करता हो। साथ ही सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व पर्यावरणीय समावेशन के साथ-साथ समावेशी विकास का मार्ग प्रशस्त करता हो।

नवभारत की संकल्पना

प्रधानमंत्री जी ने नवभारत के जिस स्वरूप का उल्लेख किया है उसमें भ्रष्टाचार मुक्त भारत, स्वच्छ भारत-स्वस्थ भारत, गरीबी व बेरोजगारी मुक्त भारत, बेघरी से मुक्त भारत, सांप्रदायिकता व जातिवाद से मुक्त भारत, आत्मनिर्भर और स्वावलम्बी भारत की रूपरेखा खींची गई है। प्रधानमंत्री द्वारा उल्लिखित 'आत्मनिर्भर भारत' में महात्मा गांधी, डॉ0 भीमराव अम्बेडकर, श्यामा प्रसाद मुखर्जी व पं0 दीनदयाल उपाध्याय के विजन नजर आते हैं। जैसा कि पं0 दीनदयाल उपाध्याय ने कहा है 'स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे दृष्टिकोण में अंतर आया है, अब हम प्रत्येक प्रश्न को आर्थिक दृष्टिकोण से देखते हैं, हमारी परम्परा और संस्कृति हमें यह बताती है कि मनुष्य केवल भौतिक आवश्यकताओं का पिंड मात्र नहीं है बल्कि वह एक आध्यात्मिक मानव भी है, अतएव देश और काल की विभिन्न परिस्थितियों के कारण भी हमारे विकास का मार्ग पाश्चात्य जगत से अलग प्रकार का होना चाहिए' तो वहीं दूसरी तरफ महात्मा गांधी जी ने स्वदेशी, अस्तेय, अपरिग्रह व स्वच्छता जैसे गंभीर मुद्दों पर बल दिया। 'गांधीवादी दर्शन' की संकल्पना आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना कि गांधी के जीवन काल में थी। इस लेख के अंतर्गत महात्मा गांधी के स्वदेशी दर्शन व खादी से जुड़े विचारों एवं नवभारत में उसकी प्रासंगिकता तथा निकट भविष्य की संभावनाओं पर चर्चा करेंगे।

नवभारत एक ऐसे भारत के निर्माण की संकल्पना है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति स्वयं में विशिष्ट प्रकार की योग्यता युक्त अनुभव करता हो, जैसा कि गांधी जी ने स्वतंत्रता आंदोलन के समय किया था। प्रत्येक व्यक्ति स्वदेशी का अनुपालन करता हो जिसमें स्वदेशी न केवल वस्त्रों का बल्कि स्वदेशी बोलचाल, भाषा, संस्कृति व आचरण का भी हो। उनका मानना था कि लोग खादी पहन कर अपने स्वदेशी धर्म की इतिश्री मान लेते हैं किन्तु खादी हमारे स्वदेशी धर्म की प्रथम पायदान है उसकी इतिश्री अथवा आखिरी सीमा नहीं। सदियों पुरानी भारतीय संस्कृति अर्थात् 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' व 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की स्वस्थ परम्परा, धर्मनिरपेक्ष, लोक कल्याण व लोकतांत्रिक मूल्य तथा सामाजिक न्याय स्थापित करने की भावना आदि के स्वस्थ आचरण द्वारा ही महात्मा गांधी के 'सपनों के भारत' के साथ-साथ वर्तमान प्रधानमंत्री के नवभारत की संकल्पना को सार्थक सिद्ध कर सकते हैं। आने वाले कुछ वर्षों तक अगर हम 'पहचान की राजनीति' तथा 'वर्चस्व की राजनीति' से आगे बढ़कर उक्त मूल्यों से युक्त आचरण करें तो नवभारत के निर्माण में हमारा अद्वितीय योगदान होगा। निःसन्देह प्रधानमंत्री जी द्वारा इस दिशा में कई ठोस कदम उठाए गए हैं व कई महत्वपूर्ण योजनाओं की पहल की गयी है फिर भी नवभारत के निर्माण में प्रत्येक भारतवासी की भूमिका एवं उत्तरदायित्व महत्वपूर्ण है।

महात्मा गांधी एवं स्वदेशी

25 मई सन् 1915 को महात्मा गांधी जी ने 'कोचराव' में सत्याग्रह आश्रम' की स्थापना की, जिसे बाद में साबरमती स्थानांतरित कर दिया गया। गांधी जी ने आश्रम की स्थापना के समय समाज सेवा का महाव्रत लिया जिससे लोक कल्याण के संकल्प को सिद्ध किया जा सके। इस हेतु गांधी जी ने 11 महाव्रतों (एकादश व्रत) के पालन की बात कही, जिससे आश्रम के सदस्य स्वयं को देश सेवा एवं विश्व कल्याण के योग्य बनाने में अनवरत प्रयास कर सकें। गांधी जी के एकादश व्रत थे,- (1) सत्य, (2) अहिंसा, (3) ब्रह्मचर्य, (4) अस्वाद, (5) अस्तेय, (6) अपरिग्रह, (7) शरीर श्रम, (8) स्वदेशी, (9) निर्भीकता, (10) अस्पृश्यता निवारण एवं (11) सहनशीलता। जहॉ तक महात्मा गांधी के एकादश व्रत में आठवें व्रत अथवा स्वदेशी का प्रश्न है तो इस संदर्भ में गांधीजी का मानना था कि 'मनुष्य सभी कार्यों को स्वयं करने में सक्षम नहीं है, इसलिए उसे सर्वप्रथम् अपने पड़ोसी की सेवा करनी चाहिए तथा अपने आसपास के लोगों को प्राथमिकता देते हुए उनकी सेवा एवं सहायता करनी चाहिए, यही स्वदेशी है, इसी के माध्यम से व्यक्ति विश्व की सेवा कर सकता है, विश्व कल्याण में अपना योगदान दे सकता है।' जहां तक संभव हो मनुष्य को स्थानीय वस्तुओं से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिए, स्वदेशी का यह मार्ग हमें त्याग एवं बलिदान का मार्ग दिखाता है। ''पॉवर्टी एंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया- Poverty and Un-British Rule in India'' (दादा भाई नौरोजी) तथा ''द इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया अण्डर अर्ली ब्रिटिश रूल- The Economic History of India Under Early British Rule'' (आर0 सी0 दत्त) में भारतीय अर्थव्यवस्था की खस्ता हालात तथा अंग्रेजों की शोषणकारी नीति की जो रूपरेखा प्रस्तुत की गई थी उसने स्वदेशी की भावना का आधार निर्मित किया तथा आगे चलकर महात्मा गांधी जी के नेतृत्व में स्वदेशी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का प्रमुख आधार बना, जिसमें उन्होंने चरखे को विशेष महत्व दिया था। सन् 1920 में स्वदेशी आन्दोलन में खादी को राष्ट्रवाद के प्रतीक के रूप में इस्तेमाल करना शुरू किया गया जो आगे चलकर भारत में 'आजादी की पोशाक' तथा 'भारत की आत्मनिर्भरता' का शाश्वत प्रतीक बन गया। साथ ही यह अंग्रेज तथा अंग्रेजी पहनावे के विरोध का भी प्रतीक बन गया।

गांधीजी का मानना था कि स्वदेशी व खादी ही ऐसे माध्यम हैं जिनके द्वारा न केवल भारतीय अर्थव्यवस्था का पुनरुद्धार किया जा सकता है बल्कि भारतीय सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक ताने-बाने को एक सूत्र में पिरोया भी जा सकता है तथा इसकं माध्यम से भारतीयों को रोजगार भी वापस मिल सकता है। उन्होंने कहा था मेरा पक्का विश्वास है कि हाथ की कताई व हाथ की बुनाई के पुनर्जीवन से भारत के आर्थिक व नैतिक पुनरूद्धार में बड़ी मदद मिलेगी तथा हर गांव को अपना ही बुनकर फिर से मिल जाएगा। सन् 1934 में खादी के महत्व को रेखांकित करते हुए गांधी जी ने कहा कि 'खादी ग्राम सौर प्रणाली का सूर्य है' जिसके सन्दर्भ में गांधी जी की स्पष्ट धारणा रही है कि यदि सभी भारतीय खादी वस्त्र अथवा पोशाक पहने, सभी का जीवन खादी रूपी सूर्य के इर्द-गिर्द पुष्पित व पल्लवित हो तो भारत में अमीरी और गरीबी का भेदभाव मिट सकता है। नि:सन्देह गांधी का यह मार्ग हमें 'ग्राम स्वराज' तक ले जाता है। गांधी जी ने कहा था 'भारत की आत्मा गांवों में बसती है' जिसके कारण उन्होंने गांव के विकास को प्रमुखता दी और स्थानीयता के महत्व को समझाते हुए स्वराज, पंचायती राज, ग्रामोंद्योग और महिलाओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जिससे एक सशक्त, स्वावलंबी एवं आत्मनिर्भर भारत का मार्ग प्रशस्त हो सके। आगे चलकर इसी उद्देश्य के साथ सन् 1956 में 'खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग' (केवीआईसी) की स्थापना की गई। इसके साथ-साथ 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के तहत 'स्वायत्त पंचायती राज व्यवस्था' की स्थापना की गयी जिसके माध्यम से गांधी के ग्राम स्वराज की संकल्पना को साकार करने के साथ-साथ 'खादी, ग्रामोद्योग और कुटीर उद्योग' को संविधान की 11वीं अनुसूची की 'नवीं प्रविष्टि' में सम्मिलित करते हुए खादी की महत्ता व उसकी प्रासंगिकता को स्वीकार किया गया है।

वर्तमान प्रधानमंत्री द्वारा नवभारत की संकल्पना के साथ-साथ स्वदेशी पर बल दिया गया, प्रधानमंत्री जी द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को कम से कम एक खादी वस्त्र पहनने का आह्वाहन किया गया, जिससे भारतीय हथकरघा उद्योग को पुनर्जीवित करने के साथ-साथ गांधी दर्शन एवं गांधी जी के सपनों को साकार किया जा सके। प्रधानमंत्री जी ने लोगों से अपील करते हुए कहा कि 'जब आप खादी खरीदते हैं तो किसी एक गरीब परिवार के घर में समृद्धि का दिया जलाते हैं।' इसके अतिरिक्त प्रधानमंत्री जी ने राष्ट्रीय हथकरघा निवेश दिवस के अपने सम्बोधन में हथकरघे के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा था 'हथकरघे में प्रमुख रूप से कपास, रेशम, जूट जैसे प्राकृतिक रेशे इस्तेमाल होते हैं अत: हम सब्जियों के रंगों तथा अन्य जैविक उत्पादों का प्रयोग कर इसे और भी पर्यावरण हितैषी बना सकते हैं।' इस हेतु भारत सरकार द्वारा अनेक कदम भी उठाए गए हैं जिनमें भारत सरकार ने खादी एवं ग्रामोद्योग क्षेत्र में निवेश को बढ़ावा देने हेतु 850 करोड़ के निवेश के साथ-साथ 800 स्वस्फूर्ति क्लस्टर की स्थापना की बात की है, साथ ही 4 लाख बुनकरों को लाभान्वित करने का लक्ष्य रखा गया है। इसके साथ साथ हथकरघा क्लस्टर हेतु सहायता राशि के रूप में देय राशि ध्60 लाख से बढ़ाकर ध्2 करोड़ कर दी गई है। साथ ही राष्ट्रीय कौशल विकास मिशन के तहत सन् 2022 तक देश के 40 करोड़ युवाओं को प्रशिक्षित करने का लक्ष्य भी रखा गया है जो कि खादी एवं ग्रामोद्योग की दिशा में भारत सरकार की एक बड़ी पहल मानी जा सकती है, जिससे न केवल उद्योगों से जुड़े मजदूरों को लाभ होगा बल्कि भारत में रोजगार के अवसर भी बढ़ेंगे तथा किसानों की आय में भी वृद्धि हो सकेगी। विदित है कि गांधी जी कौशल विकास की जरूरत की बात बहुत पहले ही कर रहे थे। अपने पत्र 'हरिजन सेवक' के 15 मार्च 1935 के अंक में उन्होंने कहा था 'मेरी राय में तो इस देश में जहां लाखों आदमी भूखों मरते हैं, बुद्धिपूर्वक किया जाने वाला श्रम ही सच्ची प्राथमिक या प्रौढ़शिक्षा है। अक्षर ज्ञान हाथ की शिक्षा के बाद आना चाहिए। हाथ से काम करने की क्षमता, हस्त कौशल ही तो वह चीज है जो मनुष्य को पशु से अलग कर सकती है। लिखना पढ़ना जाने बिना मनुष्य का संपूर्ण विकास हो नहीं सकता, ऐसा मानना एक वहम ही है।'

भारत सरकार ने कोविड 19 महामारी के समय लॉकडउन के दौर में समझदारी का परिचय देते हुए आत्मनिर्भर और स्वावलम्बी बनने हेतु स्वदेशी का नारा दिया। ऐसे में हो सकता है कि गांधी की राह पर फिर से चलकर हम अपनी अर्थव्यवस्था को जीवन-शक्ति प्रदान कर सकें। किन्तु भारत वैश्वीकरण के दौर में स्वदेशी की राह पर कैसे चलेगा? ऐसे में यह समझना जरूरी है। भारत सरकार ने आत्मनिर्भर अभियान को जमीनी स्तर पर लागू करने हेतु व्यापक रणनीति बनाई है। वर्तमान वित्तमंत्री निर्मला सीतारमन ने 20 लाख करोड़ के आर्थिक पैकेज की घोषणा की। आर्थिक पैकेज से देश के उद्योग, कारोबार क्षेत्र को जो लाभ मिलेगा उससे रोजगार के मौके बढ़ेंगे। आज के समय में एक मुद्दा यह भी है कि लाभ अंतिम व्यक्ति तक पहुँचे किंतु वह अंतिम व्यक्ति गांधी

के समय में कहां रहता था और आज अंतिम व्यक्ति की हालत क्या है? उनके मध्य बड़ा अंतराल है। अत: हमें तय करना होगा कि आत्मनिर्भरता देश की होनी चाहिए या व्यक्ति की अथवा फिर दोनों की। जो मार्ग 'हिंद स्वराज' के माध्यम से दिखाया गया आज लगभग 100 वर्ष से अधिक समय बाद हिंदुस्तान उसे नहीं प्राप्त कर सका है। भारत में बहुसंख्यक (मजदूरों और किसानों) के आत्मनिर्भरता का आधार संसाधनों और अवसरों का समान वितरण में निहित है जो कि गांधी-दर्शन और आचरण से ही संभव है। ऐसे में नवभारत के निर्माण में गांधी की स्वदेशी की संकल्पना तथा गांधी-दर्शन एवं खादी की महत्ता स्वमेव उभर कर सामने आती है।

खादी के समक्ष चुनौतियां

आधुनिक समय में खादी बाजार व खादी उत्पाद को निम्नलिखित चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है:-

1. ब्रांडिंग की कमी,
2. बाजार की कमी,
3. बड़ी कंपनियों से प्रतिस्पर्धा,
4. पर्याप्त संख्या में रोजगार की कमी,
5. कम पारिश्रमिक तथा कम आय,
6. खादी के लिए कच्चे माल की समस्या तथा
7. खादी उद्योग में निवेश की कमी आदि।

उपरोक्त चुनौतियों पर भारत सरकार द्वारा व्यापक स्तर पर ध्यान देने की आवश्यकता है, इसके साथ-साथ हम भारतीयों का भी यह दायित्व है कि गांधी के सपनों को साकार करने तथा भारत को आत्मनिर्भर बनाने में अपनी भूमिका को स्वीकार करते हुए आगे बढ़ें।

गांधी जी ने स्वदेशी के साथ-साथ अपने जीवन मूल्य में स्वच्छता पर अत्यधिक बल दिया था तथा उसे स्वाधीनता से अधिक मूल्यवान बताया था। उनका मानना था कि स्वाधीनता के लिए कुछ दिन इंतजार किया जा सकता है किंतु स्वच्छता के लिए नहीं। इसके लिए उन्होंने 'स्वच्छाग्रह' पर विशेष बल दिया। यद्यपि गांधी जी पाश्चात्यीकरण के प्रबल विरोधी थे किन्तु वे पश्चात्य के देशों में सफाई के स्तर से इतना प्रभावित थे कि उन्होंने पश्चात्य से सफाई के सन्दर्भ में सीख लेने की वकालत करते हुए पश्चात्य से 'सफाई का विज्ञान' सीखने की बात की। स्वतंत्र भारत में सफाई से जुड़े कई अभियान चलाए गए। वर्तमान राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन की सरकार द्वारा स्वच्छ भारत मिशन, स्वच्छ संकल्प से स्वच्छ सिद्धि, स्वच्छता ही सेवा, दरवाजा बंद अभियान आदि जैसे अभियान चलाये गये, जिसे व्यापक जन समर्थन भी प्राप्त हुआ है। भारत सरकार के प्रयत्न, स्वच्छता में जनता की भागीदारी तथा स्वच्छ भारत अभियान की भूमिका की ओर संकेत करते हुए राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद जी ने स्वच्छ भारत मिशन की सबसे बड़ी विशेषता बताते हुए कहा है कि यह प्रत्येक भारतीय का अभियान बन गया है जिससे हमारे समाज में एक नई जागरूकता पैदा हुई।

आज कोविड-19 महामारी के वैश्विक प्रभाव एवं चीन के साथ बिगड़ते रिश्ते ने गांधी के ग्राम स्वराज तथा आत्मनिर्भर भारत के सपने को अधिक प्रासंगिक बना दिया है। आज वैश्वीकरण के दौर में पूर्ण आत्मनिर्भरता कदाचित् मुमकिन नहीं है क्योंकि विश्व अर्थव्यवस्था पर निर्भरता इतनी बढ़ चुकी है कि उससे वापस नहीं आया जा सकता। किन्तु यह सम्भव है कि स्थानीय वस्तुओं के उपभोग को बढ़ावा देकर तथा स्वदेशी चीजों के उपभोग के माध्यम से वैश्विक निर्भरता को कम अवश्य किया जा सकता है, जैसा कि हमारे प्रधानमंत्री जी ने 'वोकल फॉर लोकल' तथा 'स्थानीय ब्रांड' के उपभोग का आह्वाहन किया जिससे न केवल घरेलू सप्लाई चौन को नया जीवन मिलेगा बल्कि भारतीय अर्थव्यवस्था अधिक आत्मनिर्भर और अधिक सुदृढ़ बन सकेगी। इस संदर्भ में हमें यह भी समझना जरूरी है कि भारत से चीन को कुल 50 अरब डालर का अतिरेक प्राप्त होता है जो कि उसके कुल व्यापार अतिरेक का 11.6 प्रतिशत है जबकि अमेरिका का चीन से व्यापार घाटा चीनी के समस्त व्यापार अतिरेक का 83 प्रतिशत है अर्थात् भारत एवं अमेरिका का सम्मिलित प्रयास समस्त चीनी अतिरेक को समाप्त कर सकता है, साथ ही यह कदम भारत की आत्मनिर्भरता का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। विदित है कि भारत के कुल अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का 10 प्रतिशत से अधिक की हिस्सेदारी अकेले चीन की है। वर्ष 2018-19 के आंकड़े के अनुसार भारत द्वारा किए जाने वाले कुल आयात एवं निर्यात में चीन का हिस्सा क्रमश: 14 प्रतिशत व 5 प्रतिशत है। इसके विपरीत चीन के कुल आयात व निर्यात में भारत की हिस्सेदारी क्रमश: 0.9 प्रतिशत व 3 प्रतिशत रही है। संक्षेप में कहें तो आर्थिक गतिविधियों में भारत की चीन पर निर्भरता अधिक है। ऐसे में चीनी बाजार व चीनी वस्तुओं का आज अचानक बहिष्कार कदाचित् भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए हितकर न होगा और न ही यह भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास का समुचित विकल्प हो सकता है।

संभावनाएं

वर्तमान परिस्थितियों में यदि खादी की भूमिका पर नजर डालें तो यह स्पष्ट होता है कि आज बढ़ते पश्चिमी अंधानुकरण की पुरजोर कोशिश और आधुनिक दिखने की सोच में खादी व स्वदेशी दर्शन गुम हो गया है। भारत आज परिधानों के मामले में काफी हद तक विदेशी कंपनियों पर निर्भर है। फिर भी यह कहना उचित नहीं होगा कि खादी का वजूद भारत में खत्म हो गया है। खादी का भले ही आज 'स्वदेशी आंदोलन के दौर' जैसा महत्व नहीं है लेकिन फिर भी भारत के साथ-साथ विदेशों में भी खादी ने निरन्तर अपनी प्रासंगिकता का परिचय दिया है। प्रधानमंत्री जी ने अपने संबोधन में कोरोना महामारी के दौर को 'अवसर' के रूप में लेने की बात कही। एक ऐसे अवसर के रूप में जिसमें नैतिकता, कर्तव्यनिष्ठा एवं उत्तरदायित्व का बोध हो, जिसमें स्थानीयता व देशीपन की भावना निहित हो। उपरोक्त परिस्थितियों में इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि निकट भविष्य में भारत के समक्ष स्वदेशी, आत्मनिर्भर व नवभारत के निर्माण की प्रबल संभावनाएं हैं किंतु इस हेतु भारत द्वारा विभिन्न कदम उठाए जाने आवश्यक है:-

1. भारत को अपनी संस्कृति 'वसुधैव कुटुंबकम' व 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के साथ-साथ लोक कल्याण, लोकतांत्रिक मूल्य, संवैधानिक एवं मानवीय मूल्यों के पदचिन्हों पर आगे बढ़ना होगा।
2. ग्रामोद्योग, हथकरघा उद्योग आदि स्वदेशी चीजों के साथ-साथ मनरेगा एवं स्वयं सहायता समूह पर अधिक बल देना होगा। इसके अतिरिक्त मेड इन इंडिया, स्टार्टअप आदि जैसी योजनाओं को अधिक समावेशी सुगम एवं प्रभावशाली बनाना होगा।
8. खादी से जुड़ी समस्याओं, यथा- ब्रांडिंग की कमी, बाजार की कमी, खादी के लिए कच्चे माल की समस्या तथा खादी उद्योग में निवेश की कमी आदि जैसी समस्याओं का यथाशीघ्र समाधान करना होगा।
3. औद्योगीकरण की प्रक्रिया को बड़े शहरों से बाहर अन्य छोटे शहरों-कस्बों व गावों तक ले जाना होगा, जिससे मजदूरों के प्रवासन से बचा जा सके तथा श्रम की पर्याप्त उपलब्धता भी सुनिश्चित हो सके एवं साथ ही समावेशी विकास की एक विस्तृत रूपरेखा तय किया जा सके।
4. आत्मनिर्भरता, जिसके अंतर्गत पांच स्तंभ, यथा- अर्थव्यवस्था (Economy), अवसंरचना (Infrastructure), तकनीकी (Technology), गतिशील (वाइब्रेंट) जननांकिकी, (Vibrant Demography), तथा मांग (डिमांड) (Demand) को मजबूत बनाना होगा।
5. देश में अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने हेतु विनिर्माण क्षेत्रों में तथा ग्रामीण मोर्चे को और अधिक सुदृढ़ करना होगा, स्वदेशी व खादी को बढावा देना होगा जिससे न केवल रोजगार का सृजन हो बल्कि पूंजी प्रवाह एवं पूर्ति-मांग श्रृंखला को मजबूत बनाया जा सके तथा ग्लोबल ट्रेड व ग्लोबल सप्लाई चौन के समानान्तर 'लोकल ट्रेड सिस्टम व ग्लोबल सप्लाई चौन' विकसित किया जाना चाहिए।
6. चीन के बहिष्कार तथा चीनी सामानों के बहिष्कार के पूर्व स्वयं को इतना सक्षम बनाना होगा कि चीन पर हमारी निर्भरता समाप्त हो सके क्योंकि वर्तमान ग्लोबल ट्रेड व ग्लोबल सप्लाई चौन के दौर में तात्कालिक व भावनात्मक बहिष्कार न तो विकास का आधार बन सकता है न ही उसका विकल्प।

निष्कर्ष

प्रधानमन्त्री जी का मानना है कि नवभारत की जब भी हम बात करते हैं, तो सबका साथ सबका विकास उसके मूल में है। केन्द्र सरकारकी अनेक योजनाओं को जनता भी अपनी जिम्मेदारी समझ कर आगे बढ़ा रही है। सरकार, सरोकार व सहकार ये भावना देश में मजबूत हुई है। वर्तमान में महामारी से उपजे सामाजिक आर्थिक संकट से निपटने के लिए स्वदेशी एक प्रमुख आधार बन सकती है क्योंकि अमेरिका द्वारा भारतीयों के लिए रास्ता बंद किए जाने से भारतीय जनशक्ति को स्वदेशी का आधार दिया जाना उचित होगा, जिससे हमारी जनशक्ति स्वयं के देश के विकास में अपनी भूमिका का निर्वहन कर सके। बहरहाल वर्तमान में उपजी संकटकालीन परिस्थितियों में स्वदेशी का महत्व सिद्ध करते हुए हमें नवभारत के निर्माण पर विचार करना चाहिए। संकटपूर्ण परिस्थितियों में प्रधानमंत्री मोदी के आत्मनिर्भर भारत अभियान में स्वदेशी का कितना भाव है इस पर स्पष्ट रुप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता फिर भी यदि हम देखें तो अंततः यही निष्कर्ष पाते हैं कि नवभारत के निर्माण का मार्ग स्वदेशी व गांधीवादी दर्शन से होकर जाता है, ऐसे में वर्तमान समय में स्वदेशी की प्रासंगिकता और महत्व स्वमेव ही बढ़ जाता है। आज देश हित में भी आवश्यक हो गया है कि गांधीजी के स्वदेशी दर्शन को भारतीय आत्मनिर्भरता और स्वावलंबन का आधार बनाया जाए।

स्वदेशी का किसी भी देश को संपन्न बनाने में एक विशेष योगदान होता है इस भाव के प्रति हमारा समर्पण एक ओर हमें आत्मनिर्भर बनाता है वहीं दूसरी ओर अन्य देशों पर हमारी निर्भरता को कम करता है। आज हमने अपने बाजारों को दूसरे देशों के हवाले कर रखा है जिससे उन देशों का आधार मजबूत होता जा रहे हैं और हमारा देश आर्थिक रूप से खोखला होकर अन्य देशों पर अपनी निर्भरता के नए मुकाम हासिल कर रहे हैं। ऐसे में वर्तमान परिस्थितियों में स्वदेशी की भूमिका और प्रासंगिकता बखूबी महसूस की जा सकती है। संक्षेप में कहें तो महात्मा गांधी अपने विभिन्न विचारों के सन्दर्भ में सार्वभौमिक व सार्वकालिक हैं, जिनके विचारों की प्रासंगिकता कभी कम नहीं हो सकती उनके विचार परिवर्तित समस्याओं के सांदर्भिक समाधान हेतु भी समीचीन होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सक्सेना, विनय कुमारः खादीः आधुनिक भारत के निर्माण की ताकत, योजना, अंक 10, अक्टूबर 2016.
2. ग्रामोदय संकल्प, भारत सरकार, अक्टूबर 2018-जनवरी 2019 अंक 2, अंक 5.
3. सिंह, स्वदेशः नए भारत में सामाजिक न्याय, योजना, अंक 10, अक्टूबर 2017.
4. सक्सेना, ऋषभ कृष्णः खादी में रोजगार की संभावनाएं, कुरुक्षेत्र, अंक 12, अक्टूबर 2015.
5. राजपूत, जगमोहन सिंहः गांधी को समझने का समय, जनसत्ता, 2 अक्टूबर 2019.
6. गांधी, मोहनदास करमचंदः हिंद स्वराज, सेनेटरी एडिशन, राजपाल पब्लिकेशन, 2013.
7. गांधी, एम0 के0ः ऑटोबायोग्राफी ऑफ द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेन्ट विथ ट्रुथ, अहमदाबाद, नवजीवन पब्लिकेशन हाउस।

गाँधी की स्वच्छता और स्वच्छ भारत अभियान

शैलजा आनंद श्रीवास्तव

शोधछात्रा, शिक्षाशास्त्र विभाग, साईं नाथ विश्वविद्यालय, रांची, झारखण्ड

प्रस्तावना

महात्मा गांधी ने सत्य, अहिंसा, एवं सत्याग्रह के साथ-साथ स्वच्छता की मशाल भी भारत में जला रखी थी। उनका कहना था कि स्वतंत्रता के लिए कुछ समय तक इंतजार किया जा सकता है लेकिन स्वच्छता के लिए ऐसा करना संभव नहीं है। गांधी जी से प्रेरणा लेते हुए भारत सरकार ने देश में स्वच्छता के प्रति जागरूकता लाने के लिए 'स्वच्छ भारत अभियान' की शुरुआत कर हमें यह प्रेरणा दी कि हम व्यक्तिगत स्तर पर अपनी साफ सफाई का हमेशा ध्यान रखते हैं तो क्या यह हमारी जिम्मेदारी नहीं बनती कि हम अपने देश को भी साफ रखें। महात्मा गांधी जी ने स्वच्छ भारत का सपना देखा था उसे पूर्ण करने का दायित्व भारत के हर नागरिक का है। इस संदर्भ में देखा जाए तो भारत को स्वतंत्र हुए सात दशक बीत गए लेकिन अभी हम लोग स्वच्छता के उस स्तर को नहीं प्राप्त कर सके जिसका सपना गांधी जी ने देखा था। गांधी जी के सपने को पूरा करने हेतु प्रधानमंत्री जी ने सन् 2014 में स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर लाल किले की प्राचीर से स्वच्छ भारत की अलख जगाई साथ ही राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की 150वीं जयंती (2 अक्टूबर सन् 2019) को खुले में शौच से मुक्त भारत का लक्ष्य रखा। प्रधानमंत्री जी के इस मिशन का ही परिणाम है कि आज सिक्किम, हिमाचल प्रदेश, केरल, हरियाणा जैसे राज्य खुले में शौच से मुक्त अर्थात् ओ0डी0एफ0 राज्य बन गए जो कि भारत जैसे विशाल देश के प्रधानमंत्री के महत्वाकांक्षी अभियान की सार्थकता को दर्शाती है। वैश्विक स्तर पर देखें तो लगभग सभी देशों ने इस दिशा में कदम उठाए हैं और कई देशों ने अपने सराहनीय प्रयासों से सफलता भी प्राप्त की है। स्वच्छता के इतने व्यापक महत्व के कारण ही संयुक्त राष्ट्र संघ ने अंतरराष्ट्रीय स्वच्छता वर्ष के साथ सन 2008 में वैश्विक विकास के एजेंडा की शुरुआत की जिसमें स्वच्छता को विशेष महत्व दिया गया। इस क्रम में सन् 2010 में सुरक्षित जल एवं स्वच्छता को मानव अधिकार के रूप में मान्यता देने तथा सन् 2013 में संयुक्त राष्ट्र के उप-महासचिव द्वारा खुले में शौच को समाप्त करने का आह्वाहन किया गया। स्वच्छता के सुरक्षित प्रबंधन के साथ ही अपशिष्ट जल उपचार एवं पुनः उपयोग आदि को सतत विकास लक्ष्यों के तहत केंद्रीय स्थान दिया गया। इतना ही नहीं स्वच्छ महोत्सव सन् 2019 के कार्यक्रम में भारतीय राष्ट्रपति ने कहा था कि हमें स्वच्छता के व्यापक अर्थ को अपनाते हुए आगे बढ़ना होगा उदाहरण के लिए स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराना भी स्वच्छता के दायरे में आता है।

स्वच्छता पर महात्मा गांधी के विचार

महात्मा गांधी का मानना था कि राजनीतिक स्वतंत्रता से ज्यादा जरूरी स्वच्छता है और जो व्यक्ति स्वच्छ नहीं है वह स्वस्थ नहीं रह सकता और जो स्वस्थ नहीं रहेगा वह भारत देश के निर्माण में सहयोग नहीं कर सकता। बेहतर साफ-सफाई से ही भारत के गांव को आदर्श गांव जैसा बनाया जा सकता है। इस सन्दर्भ में गांधीजी का मानना था कि शौचालय को अपने ड्राइंग रूम की तरह साफ रखना जरूरी है। उन्होंने यहां तक बताया था कि साफ-सफाई के द्वारा ही हम अपनी सभ्यता को जिंदा रख सकते हैं। गांधीजी का मानना था कि अपने आंतरिक मन के अंदर कोई चीज सबसे पहले सीखने वाली है तो वह है स्वच्छता और उन्होंने कहा भी था कि मैं किसी को गंदे पैर के साथ अपने मन से नहीं गुजरने दूंगा। गांधी जी ने एक बार कहा था कि हिंदुस्तानियों पर अक्सर यह आरोप लगाया जाता रहा है कि उनकी आदतें बहुत ही बेहूदा होती हैं और वह अपने घर तथा आस-पड़ोस को साफ सुथरा नहीं रखते हैं। मैंने महसूस किया है कि मैं जनता को सफाई के प्रति उनके कर्तव्यों को इतनी आसानी से नहीं गिना पा रहा था जितना आसानी से उनको उनके अधिकारों के बारे में बता रहा था। उनका मानना था कि भारत में विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त शौचालय की कमी के लिए उतने ही प्रयास किए जाने चाहिए जितने स्वराज्य प्राप्ति के लिए हो रहे हैं। उन्होंने कहा था मैं एक हिंदू के तौर पर बोल रहा हूं क्या हमारे पवित्र मंदिर की गलियों का इतना गंदा रहना सही है, आसपास बने मकानों की वजह से यह गलियां तंग और यातनाप्रद हैं अगर हमारे मंदिर तक खुलेपन व स्वच्छता की मिसाल नहीं रख सकते हैं तो हमारा स्वशासन क्या हो सकता है। इसके साथ ही उन्होंने 31 दिसंबर 1924 के एक नागरिक समारोह में कहा था कि पश्चिम से हम एक चीज सीख सकते हैं और सीखना भी चाहिए वह है 'सफाई का विज्ञान'। उन्होंने पहले दक्षिण अफ्रीका और भारत में स्वराज के लिए संघर्ष करते हुए और कचरे के प्रबंधन के लिए अपना संघर्ष जारी रखा। गांधी जी दक्षिण अफ्रीका के अपने प्रवासन के समय जब वहां प्लेग महामारी फैली तो उन्होंने न केवल सफाई अभियान शुरू किया बल्कि मरीजों की सेवा भी की। इस तरह हम कह सकते हैं कि सफाई और स्वच्छता गांधीवादी जिंदगी गुजारने का एक अभिन्न अंग है। उन्होंने शारीरिक कल्याण और एक स्वस्थ वातावरण के लिए सफाई को एक महत्वपूर्ण अंग माना था हालांकि गांधी जी ने स्वच्छता को छोड़कर बाकी कई पश्चिमी रीति-रिवाजों का मजाक उड़ाया लेकिन अपने गुजारे गए वक्त (पश्चिमी देशों में) के बाद उन लोगों के स्वच्छता के स्तर से काफी प्रभावित हुए और भारत में भी स्वच्छता

के उस स्तर को प्राप्त करने को उत्सुक हुए। भारतीयों की गंदी आदतों की ओर इशारा करते हुए गांधी जी ने शौचालय में सफाई रखने पर बल दिया और लिखा मुझे एक बिंदु पर अपना बचाव करना होगा जिसका नाम है शौचालय सुविधाएं। हमारी कई बीमारियों की वजह हमारे शौचालयों की स्थिति और हमारी किसी भी जगह पर मल मूत्र करने की बुरी आदत है। गांधी हिंदूवादी रूढ़िवादिता को स्वीकार नहीं करते थे और इसका सबसे पहला जिक्र उनकी आत्मकथा 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' में मिलता है जहां पर वे अपनी माता से पूछते हैं कि उन्हें किसी अछूत को छूने से क्यों रोका जाता है। गांधी जी ने सफाई को छुआछूत के साथ जोड़ने के विचार का खंडन किया। गांधी जी को यह बात बहुत ही अनुचित लगी कि सफाई के काम को समाज में बहुत ही बुरी नजर से देखा जाता है। उन्होंने भारतीयों में सफाई और स्वच्छता से जुड़ी शिक्षा की जरूरत पर जोर देते हुए कहा कि सफाई कार्य भारत में एक विशेष कार्य होना चाहिए। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि हर कोई खुद में ही एक सफाई कर्मी होना चाहिए। इसके साथ-साथ गांधी जी ने सफाई के संदर्भ में पंचायतों की भूमिका पर भी व्यापक जोर दिया था, उनका मानना था कि गांव में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति की प्रारंभिक शिक्षा, प्रत्येक परिवार तक चरखे की पहुंच, सफाई एवं स्वच्छता के लिए पंचायतें उत्तरदाई होनी चाहिए। देखा जाए तो 1948 में ही गांधी जी का देहावसान हो गया लेकिन अपने सफाई, स्वच्छता, सत्याग्रह आदि विचारों के द्वारा लिखित, भावनात्मक और व्यावहारिक रूप से आज भी वह जनमानस के रक्त में जिंदा है और पूरा भारत उनके सपने को साकार करने में लगा है।

स्वच्छ भारत अभियान

विश्व की द्वितीय सर्वाधिक आबादी वाले देश, भारत की 68.84 प्रतिशत जनसंख्या (जनगणना 2011) गांव में निवास करती है। सन् 2011 की जनगणना के आंकड़ों की ही बात करें तो भारत की ग्रामीण आबादी का दो-तिहाई से अधिक जनसंख्या शौचालय की सुविधाओं से वंचित थी। दूसरे शब्दों में कहें तो भारत की ग्रामीण जनसंख्या के मात्र 32.7 प्रतिशत आबादी शौचालय सुविधा से युक्त थी जो कि ग्रामीण क्षेत्रों में बीमारी एवं घातक संक्रमण हेतु प्रमुख उत्तरदाई कारक है। खुले में शौच की स्थिति में महिलाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करनी भी एक बड़ी चुनौती रही है। खराब स्वच्छता सुविधाओं एवं प्रदूषित भूमिगत जल एवं कचरा निस्तारण के उचित प्रबंधन के अभाव के फलस्वरुप कुपोषण, लंबाई में वृद्धि का ना होने जैसी बीमारी तथा कभी-कभी महामारी जैसी घातक स्थिति उत्पन्न हो जाती हैं। एक आंकड़े के अनुसार भारत में लगभग 40 प्रतिशत बच्चों के शारीरिक व मानसिक विकास अवरुद्ध होने में गंदगी प्रमुख कारक रही है। साथ ही स्वच्छता के अभाव के चलते भारत सहित विभिन्न देशों को व्यापक स्तर पर मौद्रिक हानि का भी सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा स्वच्छ भारत अभियान की घोषणा एक सराहनीय, क्रांतिकारी एवं एक अनूठी पहल रही। शुरुआती दौर में स्वच्छता मात्र एक विचारधारा थी लेकिन 2 अक्टूबर 2014 (गांधी जी के 145 वें जन्म दिवस) को प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा इसको स्वच्छ भारत अभियान के रूप में शुरू करने के बाद इसे एक 'राष्ट्रीय जन आंदोलन' का रूप दे दिया गया। इसके अंतर्गत 4041 सांविधिक नगरों के सड़क, पैदल मार्ग और अन्य कई स्थलों को शामिल किया गया। इस मिशन के तहत 2 अक्टूबर 2019 (गांधी के 150 वें जन्मदिवस) तक भारत को पूर्ण रूप से स्वच्छ बनाने की बात कही गई थी। भारत सरकार के शहरी विकास तथा पेयजल और स्वच्छता मंत्रालय द्वारा इस अभियान को ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में लागू किया गया है। यह केवल सरकार ही नहीं बल्कि जनता की भी जिम्मेदारी और भागीदारी हैं जैसा कि प्रधानमंत्री जी ने कहा कि यह मिशन राष्ट्रहित से प्रेरित एवं राजनीति से परे हैं। इस तरह आज हम गांधी जी के विचारों के और करीब आ गए हैं किन्तु यह मिशन बिना किसी रूकावट के निरंतर चलता रहे इसके लिए लोगों में इसकी जिम्मेदारी का अहसास होना बेहद आवश्यक है। व्यापक अर्थों में देखा जाए तो यह भारत की सामाजिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए ही है जो हर तरफ स्वच्छता लाने से शुरू किया जा सकता है। स्वच्छ भारत अभियान के अन्तर्गत निम्नलिखित आवश्यकताओं एवं जिम्मेदारियों को समझा जा सकता है:-

- यह आवश्यक है कि भारत के हर घर में शौचालय हो साथ ही खुले में शौच करने की लोगों की मानसिकता को भी समाप्त किया जाए। इस हेतु भारत सरकार द्वारा दरवाजा बंद अभियान भी चलाया गया।
- नगर निगम के कचरे का पुनर्चक्रण और दोबारा इस्तेमाल, सुरक्षित समाधान, वैज्ञानिक तरीके से कचरा प्रबंधन व्यवस्था को लागू करना।
- स्वयं के स्वास्थ्य के प्रति भारत के लोगों की मानसिकता और स्वभाव में परिवर्तन लाना और साफ-सफाई की प्रक्रियाओं का पालन करना।
- इसमें काम करने वाले लोगों को स्थानीय स्तर पर कचरे के निष्पादन का नियंत्रण करना तथा उसकी बेहतर रूपरेखा तैयार करने के लिए सहायता करना।
- संपूर्ण भारत में साफ सफाई की सुविधा को व्यापक स्तर पर ले जाने के लिए निजी क्षेत्रों की हिस्सेदारी को बढाना ।
- ग्रामीण क्षेत्र में जीवन की गुणवत्ता तथा दैनिक जीवन स्तर में सुधार लाना
- स्वास्थ्य शिक्षा के माध्यम से समुदायों और पंचायती राज संस्थाओं को निरंतर साफ-सफाई के प्रति जागरूक करना।

इस प्रकार कहें तो सिर्फ नियम बना देने या कोई आंदोलन से समस्या का निराकरण नहीं होगा जब तक कि लोग उसके प्रति अपनी जिम्मेदारी को ना समझें और व्यवहार में उसे अपना ना लें।

स्वच्छ भारत मिशन, भारत के हर नागरिक के गौरव से जुड़ा हुआ मिशन है जैसा कि भारत के राष्ट्रपति जी ने स्वच्छ भारत (सन 2019) महोत्सव के दौरान कहा था 'स्वच्छ भारत मिशन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह केवल एक सरकारी अभियान ही नहीं बल्कि प्रत्येक भारतीय का अभियान बन गया है, संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित सतत विकास लक्ष्यों को 2030 तक प्राप्त किया जाना था परंतु भारत उससे 11 साल पहले अर्थात् सन् 2019 तक ही स्वच्छता से जुड़े लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए तैयार है जिसके लिए देश का प्रत्येक नागरिक प्रशंसा का पात्र हैं।'

स्वच्छता हेतु भारत सरकार की अन्य पहल

स्वच्छ भारत अभियान के अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा स्वच्छता पर कई पहल की गई, जिसमें दरवाजा बंद अभियान, स्वच्छाथॉन 1.0, स्वच्छता ही सेवा, स्वच्छ संकल्प से स्वच्छ सिद्धि, उषा अभियान (कर्नाटक सरकार) आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त स्वच्छ भारत अभियान के लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु भारत सरकार द्वारा वर्ष 2014 में स्वच्छ भारत कोष की स्थापना भी की गई।

यह अभियान पेयजल एवं स्वच्छता मंत्रालय द्वारा सितंबर 2017 में चलाया गया, जिसमें स्वच्छता सफाई आदि से जुड़े मुद्दों पर लोगों की राय जानने तथा समाधान हेतु एक बेहतर रूपरेखा प्रस्तुत करने की अपेक्षा की गई। जिससे एक दीर्घकालिक योजना का निर्माण किया जा सके, जिसके अंतर्गत छह श्रेणियों में कुल 3 हजार से अधिक प्रविष्टियां (अंतर्राष्ट्रीय प्रविष्टियों) सहित प्राप्त हुई वे छह श्रेणियां निम्नलिखित हैं:

1. शौचालयों के प्रयोग पर नजर रखना
2. व्यवहार में परिवर्तन आरंभ करना
3. दुर्गम क्षेत्रों में शौचालय की तकनीकी
4. स्कूलों में शौचालय के रखरखाव तथा परिचालन के लिए कारगर समाधान
5. मासिक धर्म से संबंधित कचरे के सुरक्षित निस्तारण के लिए तकनीकी समाधान
6. विस्टा को शीघ्र समाप्त करने के लिए समाधान। आदि।

राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविन्द द्वारा कानपुर जनपद, उत्तर प्रदेश के ईश्वरीगंज गांव से 15 सितंबर 2017 को 'स्वच्छता ही सेवा अभियान' का शुभारंभ किया। अभियान के अंतर्गत स्वस्थ एवं स्वच्छ भारत के निर्माण का संकल्प लिया गया। इसके साथ-साथ अभियान के अंतर्गत अस्पताल एवं मूर्तियों की सफाई, बस स्टॉप और रेलवे स्टेशन की सफाई तथा पार्क एवं तालाब की सफाई के साथ-साथ अन्य सार्वजनिक स्थलों की सफाई एवं स्वच्छता सुनिश्चित करने हेतु आवाहन किया गया। स्वच्छता ही सेवा अभियान को राष्ट्रीय आंदोलन एवं जन-जन का आंदोलन एवं उनके उत्तरदायित्व के साथ-साथ बहुपक्षीय हितों से जुड़ाव की बात करते हुए महामहिम राष्ट्रपति जी ने कहा था 'भारत स्वच्छता और आरोग्य के लिए लड़ाई लड़ रहा है।' इसके साथ भारतीय जनमानस को इस अभियान से जुड़ने हेतु राष्ट्रपति जी ने आवाहन किया।

स्वच्छता ही सेवा के साथ 'स्वच्छ संकल्प से स्वच्छ सिद्धि' अभियान भी चलाया गया। विदित है कि यह आंदोलन स्वच्छता ही सेवा अभियान की भांति राष्ट्रीय स्वरूप वाला अभियान रहा। स्वच्छ संकल्प से स्वच्छ सिद्धी अभियान के अंतर्गत सन 2017 में 16 अगस्त से 8 सितंबर के मध्य निबंध, लघु फिल्म और पेंटिंग से जुड़ी राष्ट्रीय प्रतियोगिताएं आयोजित की गयीं। प्रतियोगिता के अंतर्गत तीनों वर्गों में अलग-अलग शीर्षक सुनिश्चित किया गये थे, जो निम्नलिखित हैं:

- फिल्म 'स्वच्छ भारत बनने में मेरा योगदान'
- निबंध 'मैं स्वच्छता के लिए क्या करूंगा/करूंगी'
- पेंटिंग 'मेरे सपनों का स्वच्छ भारत'

भारत सरकार को आशा के अनुरूप लगभग 2.9 करोड़ प्रपत्र प्राप्त हुए, जो यह सिद्ध करता है कि स्वच्छता को लेकर न केवल भारत सरकार व राज्य सरकारें सजग हैं बल्कि आम जनमानस के साथ-साथ स्कूली बच्चे अर्थात् भारत की नई पीढ़ी भी स्वच्छता के प्रति उतना ही सचेत है। स्वच्छ संकल्प से स्वच्छ सिद्धि अभियान से जुड़ी प्रतियोगिता में सम्मिलित प्रतिभागियों में से चुने गए प्रतिभागियों को गांधी जयंती, 2 अक्टूबर सन् 2017 के अवसर पर पुरस्कार भी प्रदान किए गए।

इसके अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा गंगा नदी की सफाई एवं स्वच्छता हेतु 'गंगा एक्शन प्लान' एवं 'नमामि गंगे अभियान' भी चलाया गया। कर्नाटक सरकार द्वारा सफाई से जुड़े एक अन्य अभियान 'उषा अभियान' चलाया गया जो विशेषतया स्कूली लड़कियों की सुरक्षा से जुड़े प्रश्नों से संबंधित रहा।

देखा जाए तो स्वच्छ भारत अभियान के साथ-साथ उसके अनुषांगिक अभियान कहीं ना कहीं गांधी जी के सपनों को ही आगे बढ़ाने का काम करते हैं और गांधी जी ने जिस भारत के निर्माण का स्वप्न देखा था उसे पूरा करने में एक बेहतर विकल्प प्रदान करते हैं। जैसा कि गांधीजी के स्वच्छता के प्रति विचार था कि हमें हमेशा स्वच्छता के साथ रहना चाहिए तभी हम पूर्णरूप से शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रह सकें। हमें शौचालयों की साफ सफाई पर विशेष ध्यान देकर देश को खुले में शौच मुक्त करने का प्रयास करना चाहिए, हमें नदियों की सफाई रखनी चाहिए। बाह्य स्वच्छता के साथ-साथ अन्तर्मन की स्वच्छता पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए। आज स्वच्छ भारत अभियान में भी कमोबेश इन्हीं बातों पर जोर दिया गया है जिसके परिणाम भी मिलने शुरू हो गए हैं। जैसा कि गांधीजी का मानना था कि हर व्यक्ति को अपनी गंदगी स्वयं साफ करने चाहिए तो वहीं दूसरी ओर स्वच्छ भारत अभियान के तहत प्रधानमंत्री जी ने लोगों से प्रतिवर्ष 100 घंटे श्रमदान के लिए प्रेरित किया। इसके अन्तर्गत 'एक कदम स्वच्छता की ओर' जैसे मन्त्र के तहत एक ऐसा रचनात्मक और सहयोगात्मक मंच प्रदान किया गया है जिसके तहत कोई भी व्यक्ति सरकारी संस्था या निजी संगठन द्वारा प्रोत्साहित अभियान में भाग ले सकता है, जिससे वह अपने निजी दैनिक कार्यों में से कुछ घंटे निकाल कर भारत में स्वच्छता संबंधी कार्यों में अपना योगदान दे सकते हैं। इसी तरह स्वच्छ भारत अभियान में राष्ट्रीय स्तर पर न केवल सरकारी पहल को सुनिश्चित करता है बल्कि जनमानस को भी इस अभियान से जुड़ने हेतु प्रेरणा प्रदान करता है। इस तरह से प्रत्येक नागरिक अपनी जिम्मेदारी समझते हुए अपना योगदान देगा तो गांधी के सपनों का भारत ज्यादा स्वच्छ भारत अब अधिक दूर नहीं हैं।

निष्कर्ष

भारत सरकार ने स्वच्छ भारत अभियान को महात्मा गांधी से जोड़कर कहीं न कहीं इस आंदोलन को एक व्यापक रुप दिया है और लोगों का भरोसा भी प्रदान किया है। भारतीय नागरिकों के जीवन में सफाई और स्वच्छता का महत्व समझाने के लिए गांधी जी द्वारा किए गए प्रयास वाकई काबिले तारीफ हैं। इसकी प्रतिक्रिया के अन्तर्गत प्रत्येक भारतीय की यह जिम्मेदारी बनती है कि पर्यावरण संरक्षण और स्वच्छ भारत का सपना पूरा करने में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लें। इस आन्दोलन को और व्यापक रूप देते हुए राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद ने स्वच्छ महोत्सव कार्यक्रम, 6 सितंबर 2019 में कहा था कि स्वच्छ भारत मिशन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह केवल एक सरकारी अभियान नहीं है बल्कि प्रत्येक भारतीय का अभियान बन गया। सभी ने अपनी जिम्मेदारी समझते हुए स्वच्छता से जुड़े कार्य किए हैं। इसके साथ-साथ उन्होंने स्वच्छता को व्यापक अर्थ में अपनाने पर जोर दिया तथा भारत सरकार के 'जल जीवन मिशन' हेतु स्वच्छता को आवश्यक शर्त बताया। व्यक्तिगत स्तर की स्वच्छता शारीरिक स्तर व दैनिक कार्य से लेकर व्यापक स्तर की स्वच्छता, स्वच्छ पर्यावरण सुरक्षा व स्वच्छ नदियां, जल आदि पूर्ण स्वस्थ मानव जीवन के लिए अति आवश्यक हैं जैसा कि कहा गया है 'स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है' और हम स्वस्थ तभी रह सकते हैं जब हम स्वच्छ रहें। इसी संकल्पना के साथ जीना होगा कि स्वच्छता ही सेवा है।

सारभूतरूप में कहें तो स्वच्छता का हमारे जीवन में बहुत महत्व है और हम सब स्वच्छता ही सेवा जैसी भावना को अंगीकार कर अपने देश भारत को स्वच्छ बनाने का प्रयास कर सकते हैं। इस संदर्भ में देखे गए अपने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी के सपनों के भारत की संकल्पना के साथ-साथ सतत विकास लक्ष्यों को साकार करने हेतु भारत सरकार के संकल्प को परिपूर्ण कर सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- रेनी विल्फ्रेड: स्वच्छता के परिदृश्य में बदलाव और जन आंदोलन का निर्माण, कुरूक्षेत्र, अंक 12, अक्टूबर 2017
- सुदर्शन आयंगर: गांधीजी और स्वच्छता, कुरूक्षेत्र, अंक 12, अक्टूबर 2017
- नरेंद्र सिंह तोमर: स्वच्छ गांव स्वस्थ गांव, कुरूक्षेत्र, अंक 1, नवंबर 2018
- डॉ0 आलोक मिश्रा: मानसिक स्वास्थ्य चुनौतियां और भारतीय स्वास्थ्य दर्शन, कुरूक्षेत्र, अंक 1, नवंबर 2018
- नरेंद्र सिंह तोमर: स्वच्छ भारत मिशन: व्यवहार परिवर्तन से सामाजिक परिवर्तन तक, कुरूक्षेत्र, अंक 12, अक्टूबर 2016
- इंदिरा खुराना: ग्रामीण क्षेत्रों में ठोस और तरल अपशिष्ट प्रबंधन, कुरूक्षेत्र, अंक 12, अक्टूबर 2016
- परमेश्वरन अय्यर: साकार होगा स्वच्छ भारत का सपना, योजना, अंक 10, अक्टूबर 2017
- अरुण जेटली: स्वच्छता में निवेश का अर्थशास्त्र, कुरूक्षेत्र, अंक 12, अक्टूबर 2017
- स्वच्छता की यात्रा: नवभारत टाइम्स, 03 अक्टूवर, 2019
- दनिया मेरे आगे: स्वच्छता के सामने, जनसत्ता, 23 नवम्बर, 2019

भारतीय अभिलेखों में जैन सम्प्रदाय

डॉ० अजीत कुमार राव

असिस्टेण्ट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, हर्ष विद्या मन्दिर पी. जी कॉलेज, रायसी, हरिद्वार

सारांश

छठी शताब्दी ई.पू. के गंगा मैदान का क्षेत्र न केवल ऐतिहासिक बल्कि सांस्कृतिक एवं धार्मिक-दार्शनिक रूप से वैचारिक चिन्तन का युग था। दार्शनिक चिन्तन में होने वाले परिवर्तनों ने वैदिक परम्पराओं के सम्मुख चुनौती उत्पन्न कर दी थी। इन धार्मिक एवं दार्शनिक चिन्तन में जैन धर्म सबसे प्राचीन एवं प्रमुख श्रमण सम्प्रदाय था। 600 ई. पू. की धार्मिक उथल-पुथल के समय श्रमण मार्ग का दर्शन स्थापित करने में महावीर स्वामी का सर्वाधिक योगदान था। उनके उपदेशों और शिक्षा का समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा, इस बात के प्रमाण न केवल जैन साहित्य अपितु प्राचीन भारतीय अभिलेखों और कला के अवशेषों से भी प्राप्त होते हैं। महावीर स्वामी द्वारा प्रवर्तित धर्म-प्रणाली और विचारधारा भारत में बौद्ध धर्म की तुलना में कहीं अधिक चिरस्थायी सिद्ध हुई और भारत के सांस्कृतिक जीवन में उनका सार्थक योगदान दिखाई पड़ता है। उनका दर्शन सामाजिक जीवन के विघटन या उससे विरक्ति का प्रेरक नहीं बना। इस तथ्य का प्रमाण भारतीय अभिलेखों में उल्लेखित जैन धार्मिक त्योहार, पर्व-उत्सव आदि की परम्परा एवं मन्दिर, तीर्थ और धर्म-केन्द्रों के अवशेषों से स्पष्ट होती है।

मूल शब्द - जैन, तीर्थंकर, अभिलेख, इतिहास।

परिचय

ईसा पूर्व छठी शताब्दी उत्तर भारत में सामाजिक तथा आर्थिक तौर पर नगरीकरण, शिल्प समुदाय के विस्तार व्यवसाय और वाणिज्य में तीव्र विकास, तात्कालिक धर्म एवं दार्शनिक चिन्तन में होने वाले परिवर्तनों से घनिष्ठ सम्बन्ध था। परम्परागत रूढ़िवादिता एवं नगरों में उभरते नये वर्गों की महत्त्वकांक्षाओं में होने वाले कटुता ने इस प्रक्रिया को और तेज कर दिया। वैदिक आर्य नितान्त प्रवृत्तिमार्गी थे वे सदैव धन एवं ऐश्वर्य की कामना करते थे।[1] इस विचारधारा के प्रति रोष का आभास समाज के एक प्रबुद्ध वर्ग में ऋग्वेद काल से ही देखने को मिलता है जिसकी अभिव्यक्ति एकेश्वरवादी धारणा में देखी जा सकती है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में प्रचलित विभिन्न सम्प्रदायों में आगे चलकर केवल जैन एवं बौद्ध सम्प्रदाय ही प्रसिद्ध हुए।

जैन साहित्य के अनुसार इस सम्प्रदाय में चौबीस तीर्थंकर हुए हैं। इनमें प्रथम ऋषभदेव थे किंतु इस सम्प्रदाय में सबसे अधिक तीर्थंकर जो प्रसिद्ध हुए वे थे 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ तथा 24 वें तीर्थंकर महावीर स्वामी। पार्श्वनाथ तथा महावीर स्वामी को छोड़कर सभी तीर्थंकरों की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। महावीर स्वामी जैन सम्प्रदाय के संस्थापक तो नहीं थे बल्कि वे इस सम्प्रदाय के अंतिम तथा सबसे प्रसिद्ध तीर्थंकर थे। उन्होंने इस सम्प्रदाय को अपेक्षित सुधार करके इसका व्यापक प्रचार-प्रसार भी किया।

अभिलेखों में जैन सम्प्रदाय

ईसा पूर्व छठी शताब्दी से महावीर स्वामी ने जैन मत का प्रचार किया। जिसकी अभ्युत्तति कालान्तर में होती रही है। यहां तक कि अशोक के लेखों में जैन सम्प्रदाय के लिए निग्रन्थ शब्द का प्रयोग किया गया है। यदि हम प्राचीन भारत के कलिंग प्रदेश (उडीसा) में जैन मत के प्रचार में मुख्य भूमिका दृष्टि से देखें तो इसका श्रेय वहां के नरेश खारवेल को जाता है। जिसका प्रमाण उदयगिरी (भुवनेश्वर के पास) के लेखों से ज्ञात होता है।

खारवेल के हाथी गुम्फा लेख भी जैन शिलालेखों की भांति अर्हतों और सिद्धों की उपासना से प्रारम्भ होता है। खारवेल की हाथी गुम्फा अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि खारवेल ने अपने शासन काल के बारहवें वर्ष में नन्द राजा द्वारा कलिंग ले जायी गयी जिन की मूर्ति को साथ लेकर कलिंग वापस लौटा।[2] कलिंग राजा खारवेल ने अपने शासनकाल के 13वें वर्ष में विचरण करके आने वाले श्रमण, ज्ञानियों, तपस्वी ऋषियों के संघों के लिए व अर्हतों के लिए पामार नामक स्थान के समीप वैदूर्यमणि से युक्त स्तम्भों का निर्माण किया।[3] अतः उपरोक्त प्रस्तुत अभिलेखीय साक्ष्य से इंगित होता है कि कलिंग नरेश खारवेल जैन धर्म का एक बहुत बड़ा अनुयायी था और इसके सम्पूर्ण साम्राज्य में प्रचलित थी।

इसी प्रकार खारवेल की मुख्य रानी का मंचपुरी गुफा अभिलेख से विदित होता है कि खारवेल के समान ही उनकी मुख्य रानी जैन धर्म की एक महान उपासिका थी। अभिलेख में उत्कीर्ण है कि राजा ललाक की पुत्री, हस्ति सिंह के प्रपौत्र की दुहिता और चक्रवर्ती कलिंग राज्य के स्वामी श्री खारवेल की प्रधान रानी ने कलिंग देश के जैन भिक्षुक के निवासार्थ एक दारेगृह का निर्माण करवाया।[4] प्रस्तुत अभिलेख से यह भी विदित होता है कि जैन धर्म का प्रचार-प्रसार कलिंग देश के समय मंचपुरी में भी था जहां पर यह उत्कीर्ण अभिलेख प्राप्त हुआ है। खारवेल के अभिलेख के समान इस अभिलेख का प्रारम्भ 'अर्हतो' से होता है।

उत्तर भारत के मथुरा से शक शासक शोडास का एक अभिलेख मिला है। इस अभिलेख का प्रारम्भ 'अर्हतों' वर्धमान महावीर को नमस्कार से होता है। इस अभिलेख में स्वामी महाक्षत्रप शोडास के संवत्सर 72वें हेमन्त ऋतु के द्वितीय मास के 9वें दिन पर हारीत के पुत्र पालस जैन भिक्षु शिष्या एवं कौरसी गौत्र में उत्पन्न होने वाली अपनी स्त्री अमोहनी तथा अपने पुत्रों, पालघोश, प्रौष्ठघोष और घनघोष के साथ अर्हत वर्धमान की पूजा के निमित्त आयागपट्ट नाम के पूजा शिला प्रकार का निर्माण किया।[5] अत: पूर्णरूपेण यह स्पष्ट हो जाता है कि शोडास के शासनकाल में बहुत से आयागपट्ट और जैन मूर्तियों के उपासकों ने अपने दान से बनावाया।

ईसवी सन् के प्रारम्भ से जैन प्रतिमा के आधार शिला पर (बौद्ध प्रतिमाओं की भांति) लेख उत्कीर्ण मिलते हैं। लखनऊ के संग्रहालय में ऐसी अनेक तीर्थंकर की मूर्तियां सुरक्षित हैं जिनके प्रस्तर पर कनिष्क के 71वें या 84 वें वर्ष के लेख उत्कीर्ण हैं। गुप्त युग में इस तरह की प्रतिमाओं का अभाव न था जिनके आधारशिला पर लेख उत्कीर्ण हैं। स्कन्द गुप्त के शासन में भद्र नामक व्यक्ति द्वारा आदिकर्तृन प्रतिमा के साथ एक स्तम्भ का वर्णन कहौम (गोरखपुर, उत्तरप्रदेश) के एक लेख में है-

'श्रेयोऽर्च भूतभूतयैपार्य नियमवतामर्हतामदिकर्तृन'

पहाड़पुर ताम्रपत्र में जैन विहार में तीर्थंकर की पूजा निमित्त भूमिदान का विवरण है जिसकी आय गधधूपदीपनैवेद्य के लिए व्यय की जाती थी-

'विहारे भगवतो अर्हता गंध धूप सुभन दीपार्शर्चभ। (पहाड़पुर ताम्रपत्र)

पूर्वमध्य युग में राजपूताना के विस्तृत क्षेत्र में भी जैन मत का पर्याप्त प्रचार-प्रसार था। जिसका परिज्ञान अनेक प्रशस्तियों के अध्ययन से हो जाता है। जालौर से एक लेख प्राप्त हुआ है जिसमें पार्श्वनाथ के 'ध्वज उत्सव' के लिए दान का वर्णन है।[6]

'श्री पार्श्वनाथ देवे तोरणादीनां प्रतिश्ठाकायो कृते: ध्वजारोपण प्रतिश्ठायां कृतायां'

इसी प्रकार मारवाड़ के राजदेव का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है जिसमें महावीर मंदिर तथा विहार के निमित्त दान देने का विवरण मिलता है-

'श्री महावीर चौत्ये साधु तपोधन निष्ठाये।'

राजपूताना क्षेत्र से प्राप्त लेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि राजपूताना में महावीर पार्श्वनाथ तथा शांतिनाथ की पूजा प्रचलित थी।

चंदेल राज्य के खजुराहो नगर में लेख तथा प्रतिमाओं के अध्ययन से जैन मत के प्रचार-प्रसार का ज्ञान होता है। प्रतिमाओं के आधारशिला पर खुदा लेख यह प्रमाणित करता है कि राजाओं के अतिरिक्त साधारण जनता भी जैनमत में विश्वास रखती थी।[7] राजस्थान में जैन सूरिओं और साधुओं के सतत प्रयास के फलस्वरूप जैन धर्म का अत्यधिक प्रचार-प्रसार हुआ और जैन धर्मानुयायियों की संस्था में वृद्धि हुई। राजस्थान में श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों का प्रचलन था। बयाना से प्राप्त वि.सं. 100 के एक लेख में जैन श्वेताम्बर सूरी माहेश्वर का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार राजस्थान के चित्तौड़ से प्राप्त वि.सं. 1207 के एक अभिलेख मं दिगम्बर सम्प्रदाय के प्रमुख जयकीर्ति के शिष्य रामकीर्ति का उल्लेख मिलता है। यह तथ्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि राजस्थान के नरेश और पदाधिकारी प्रमुखतया हिन्दू थे फिर भी उन्होंने जैन धर्म के प्रति परम्परागत सहिष्णु भाव और उदार दृष्टिकोण अपनाकर इसकी प्रचार-प्रसार तथा उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस काल में अनेक गच्छों की स्थापना हुई और इस क्षेत्र के अनेक प्रमुख नगरादि जैन धर्म के महत्वपूर्ण केन्द्र बने। वर्षावास के अवसर पर इन केन्द्रों में सभाओं और गोविष्ठियों का आयोजन होने लगा। इससे शिक्षा साहित्य की अभिवृद्धि और धर्म प्रचार हुआ। जैन विद्वान हरिभद्रसूरी के प्रयासों से चित्तौड़ जैन धर्म के मुख्य केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। उनके प्रवचनों से लोग अत्यधिक प्रभावित हुए। हरिभद्रसूरी ने अनेकांतजपपताका, धर्म बिन्दू प्रभृति ग्रन्थों की रचना कर जैन सिद्धांतों को लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया। इसके उपरान्त वि.सं. 835 में उद्योतन सूरि ने 'कुवलयमाला' और सिद्धहर्षि सूरी ने वि. सं. 932 में 'उपमितिभवप्रपंच' कथा की रचना की।

प्रतिहार प्रशासन कालान्तर्गत जैन धर्म की प्रगति हुई। स्वयं प्रतिहार शासकों ने जैन धर्म को प्रश्रय प्रदान किया। प्रथम नागभट्ट का जैन साधु यक्षदेव से प्रगाढ़ सम्बन्ध थे। वत्सराज के शासनकाल में अनेक जैन उपदेशकों द्वारा जैन धर्म की प्रगति के लिए काम किया। उसी समय ओसियां (जोधपुर संभाग) में महावीर स्वामी मंदिर निर्मित हुआ।[8] द्वितीय नागभट्ट के काल में बप्पभट्टी अत्यधिक प्रभावशाली जैन सूरी थे। उनको जैन साहित्य में नागभट्ट द्वितीय के मित्र और अध्यापिका गुरु के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। इस समय जैन 'प्रसादों का बहुत निर्माण हुआ। मिहिरभोज के शासन काल में बप्पभट्टी के विष्णु नन्नसूरि और गोविन्दसूरी का इस क्षेत्र में विशेष सम्मान था।[9]

जैनाचार्यों से प्रभावित होकर चाहमान शासकों ने भी इस सम्प्रदाय को समुचित संरक्षण प्रदान किया। पृथ्वीराज प्रथम ने रणथम्भौर के एक जैन मंदिर को स्वर्ण छत्र अर्पित किया था। उसके पुत्र अजयराज ने अजमेर के पार्श्वनाथ मंदिर को स्वर्ण कलश अर्पित करने की घोषणा की थी। उसने श्वेताम्बर मुनि धर्मघोश और दिगम्बर मुनि के बीच हुई धर्म चर्चा में निर्णायक पद ग्रहण किया। अजयराज के पुत्र अर्णोराज ने धर्मघोष सूरि को अपनी राजसभा में सम्मान दिया और जिनदत्त सूरि को अजमेर में जैन मंदिर का निर्माण करवाने की अनुमति प्रदान की।[10]

चतुर्थ विग्रहराज ने जैनों के आग्रह पर एकादशी को जीव हत्या निषेध सम्बन्धी राजाज्ञा प्रसारित की थी। बिजोलिया अभिलेख वि.सं. 1226 के अनुसार द्वितीय पृथ्वीराज ने बिजोलिया में पार्श्वनाथ मंदिर की व्यवस्था हेतु मोराझरी गांव दान दिया था।

नाडोल शाखा के चाहमानों ने भी जैन धर्म के प्रति उदार नीति का अनुसरण किया। जिससे मारवाड़ संभाग में जैन धर्म की लोप्रियता बढ़ी। अश्वराज चाहमान ने जैन धर्म को स्वीकार करके इसके प्रसार के लिए प्रयत्न किये। उसने मास की कुछ विशेष तिथियों को जीव हत्या निषेध सम्बन्धी आदेश प्रसारित किया।[11] सेवाड़ी से प्राप्त वि.सं. 1167 के अभिलेख से विदित होता है कि अश्वराज ने चार गांवों के प्रत्येक रहट्ट से एक हारक जौ जैन मंदिर के निमित्त देने की व्यवस्था की थी। नादुलाई से प्राप्त वि.सं. 1189 के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि रायपाल के पुत्रद्वय (रुद्रपाल और अमृतपाल) ने जैन मंदिर के निमित्त दो पल्लिका तेल दान की व्यवस्था की थी। उसके काल के कुछ अन्य अभिलेखों में जैन तीर्थंकर नेमिनाथ और महावीर के मंदिरों को दिये दान का उल्लेख है।

कुमारपाल चालुक्य के सामन्त महाराज आल्हणदेव ने जैन धर्म प्रचार को प्रोत्साहित किया था। उसने प्रत्येक माह की अष्टमी, एकादशी को अपने प्रदेश में जीव हिंसा निषेध की आज्ञा प्रसारित की थी। वि.सं. 1228 में एक लेख से ज्ञात होता है कि उसने शडेरकगच्द के जैन मंदिर को 'नड्डूलतलपद शुल्कमण्डपिका' से प्रतिमाह पांच द्रम्भ दिये जाने का आदेश दिया था। आल्हणदेव के पुत्र केल्हणदेव ने भी जैन धर्म की उन्नति में योगदान दिया था। एक अन्य अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसके द्वारा भगवान शांतिनाथ के उत्सव के लिए दान दिये जाने पर प्रकाश पड़ता है।

जालौर शाखा के चाहमानों के शासनकाल में भी जैन धर्म की प्रगति हुई। उसकी राजधानी जालौर के वि.सं. 1239 के अभिलेख के अनुसार श्रीमाल के श्रेष्ठि यशोवीर ने एक मण्डप का निर्माण करवाया था। यहीं के एक अन्य अभिलेख से ज्ञात होता है कि पार्श्वनाथ के एक मंदिर जो कि कुमारपाल चालुक्य द्वारा निर्मित करवाया गया था उसका पुनर्निर्माण वि.सं. 1242 में करवाया था।[12]

परमार शासकों द्वारा भी जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में योगदान किया गया था। वि.सं. 1026 के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि परमार कृष्णराज के समय सिरोही क्षेत्र के एक ग्राम में जैन मंदिर का निर्माण कराया था।

इसी प्रकार हस्तिकुण्डी के राष्ट्रकूटों के शासनकाल में मारवाड़ क्षेत्र में जैन धर्म अत्यन्त उन्नत व्यवस्था में था। हस्तिकुण्डी से प्राप्त वि.सं. 973 के अभिलेख से ज्ञात होता है कि विदग्ध ने एक जैन मंदिर का निर्माण करवाया था। कामयक, बयाना, त्रिभुनगिरी तथा मेवाड़ के गुहिलों ने भी जैन धर्म को प्रश्रय दिया था। भर्तृपट्ट ने गुहिल विहार का निर्माण करवाया था और आदिनाथ की मूर्ति स्थापित करवाई थी।[13]

चालुक्यों ने भी जैन धर्म को समुचित संरक्षण प्रदान किया था। राजस्थान का एक विस्तृत भाग चालुक्यों के अधीन था। जयसिंह सिद्धराज यद्यपि शैव मतानुयायी था तथापि उसने जैन धर्मावलम्बियों का विशेष सम्मान किया। उसके काल में वि.सं. 1182 में दिगम्बर मुनि कुमुदचन्द्र और श्वेताम्बर मुनि देवासूरि के बीच धर्मगोष्ठी का आयोजन हुआ था। जिसमें श्रद्धालु जन सुदूर क्षेत्रों से आकर एकत्र हुए थ।[14] जयसिंह का उत्तराधिकारी कुमारपाल प्रसिद्ध जैन आचार्य हेमचन्द्रसूरि के प्रभाव में जैन धर्म का अत्यन्त उत्साही अनुयायी बन गया था।[15] उसने जैन धर्म के प्रचार के लिए अनेक कदम उठाये। उसने अपने राज्य में जीव हत्या निषिद्ध घोषित कर दी थी। 'द्वयाश्रयमहाकाव्य' से ज्ञात होता है कि पाली क्षेत्र में ब्राह्मणों को यज्ञ में धान की आहूति से संतुष्ट होना पड़ता था और साधुओं के लिए आजिन प्राप्त करना कठिन हो गया था क्योंकि उसने जैन धर्म के लिए भण्डारों की स्थापना की गयी थी तथा जैन प्रसादों का निर्माण भी करवाया।

हमारे अध्ययनकालीन अभिलेखों में विभिन्न गच्छों का उल्लेख हुआ है। इसे जैन धर्म की लोकप्रियता का द्योतक माना जा सकता है। आबू से प्रारम्भ हुए बडगच्छ का उल्लेख वि.सं. 1143 और वि. सं. 1215 के अभिलेखों से हुआ है। बडगच्छ का प्रभाव सिरोही और मारवाड़ क्षेत्र में भी था। राजस्थान के अभिलेखों में सारध-पूर्णमीया उपकेश, नागपुरिय, कामयक, पिप्पेल आदि गच्छों का उल्लेख है।[16]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि गुहिल, प्रतिहार, चाहमान, परमार, राष्ट्रकूट तथा चालुक्य शासनान्तर्गत भारत के प्रत्येक क्षेत्र में जैन धर्म की पर्याप्त लोकप्रियता थी। राजपूत शासक हिन्दू धर्मावलम्बी होते हुए भी जैन धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाकर इस सम्प्रदाय को प्रोत्साहित करते थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद, 10/74/3
2. पाण्डे, आर. बी., ऐतिहासिक और सामाजिक अभिलेख, पृ. 45
3. सरकार, डी. सी., सेलेक्टेड इंस्क्रिप्शंस, भाग-1, पृ. 209
4. जायसवाल, के.पी., हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, लाहौर, 1934
5. सरकार, डी.सी, सेलेक्टेड इंस्क्रिप्शंस भाग-1, पृ. 119
6. कोनो, स्टैन, एपिग्राफिक इण्डिका भाग-11; आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, 1920-30
7. शास्त्री, हीरानन्द, एपिग्राफिक इण्डिका, भाग-20, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, 1920-30
8. एनुअल रिपोर्ट ऑफ द आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, 1908-09, पृ. 108
9. जैन, के.सी., जैनिज्म इन राजस्थान, शोलापुर, 1963, पृ. 19
10. शर्मा, दशरथ, अर्ली चौहान डायनेस्ट्रीज, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1975
11. जैन, के. सी., जैनिज्म इन राजस्थान, शोलापुर, 1963, पृ. 20
12. प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑफ दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, वेस्टर्न सर्किल, 1908-09, पृ. 55
13. शर्मा, दशरथ, राजस्थान थ्रू द एजिज बीकानेर, 1966
14. जैन, के.सी., जैनिज्म इन राजस्थान, शोलापुर, 1963, पृ. 24
15. वही
16. वही

स्वतंत्रता-पूर्व तथा स्वतंत्रोत्तर भारत में कृषक आन्दोलन

मन मोहन सिंह

शोधार्थी, इतिहास विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

डॉ० रीतेश शाह

सहायक प्रोफेसर, यूजीसी-मानव संसाधन विकास केन्द्र, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

सार

इस शोधपत्र के अन्तर्गत स्वतंत्रता-पूर्व एवं स्वतंत्रोत्तर भारत में संचालित कृषक आन्दोलनों का अध्ययन किया जाएगा। स्वतंत्रता से पूर्व कृषक आन्दोलनों का मूल कारण ब्रिटिश शासन द्वारा कृषकों से अधिकाधिक भू राजस्व अगाही थी, भले ही बंदोबस्त व्यवस्था कोई (जमीदारी, रैय्यतवाड़ी एवं महालवाड़ी रही हो। भूराजस्व वसूलने का कार्य भी निर्ममतापूर्वक किया जाता था, जिसकी परिणति कृषक आन्दोलन के रूप में होती थी। स्वतंत्रोत्तर भारत में राज्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप के कारण केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा कृषि कल्याण के लिए अनेक योजनाएँ संचालित की गई, इसके बावजूद कृषक कृषि छोड़कर श्रमिक बनने एवं आत्महत्या करने को विवश है, तो इसके पीछे कृषि योजनाओं की कृषकों तक समुचित पहुँच न होना है जिसके परिप्रेक्ष्य में कृषक आन्दोलनों को देखा जा सकता है जो कृषि एवं कृषक कल्याण के मुद्दों को सरकार एवं प्रशासन के समक्ष रखते हैं ताकि कृषक हितकारी नीतियाँ निर्मित की जा सके।

किसान 'अन्नदाता कहा जाता है परन्तु विडम्बना यह है कि स्वयं अन्नदाता को न केवल कई बार भूखे पेट सोने को बाध्य होना पड़ता है अपितु आत्महत्या करने तक विवश होना पड़ता है। किसानों की दुर्दशा के लिए प्राकृतिक कारणों (बाढ़, सूखा, ओलावृष्टि आदि) के अलावा मानवीय कारण (सरकार, जमीदार, साहूकार आदि) जिम्मेदार हुआ करते हैं। प्राकृतिक आपदाओं के समय सरकार का कर्तव्य होता है कि वो कृषकों को यथासंभव सहायता उपलब्ध कराए, परन्तु जब सरकार व प्रशासन-तंत्र सहायता के स्थान पर किसानों का शोषण करने पर आमादा हो तो कृषकों का विद्रोही रूप अख्तियार करना स्वाभाविक प्रतीत होता है।

ध्यातव्य है कि किसानों की समस्याएँ केवल ब्रिटिश शासन में ही नहीं थी, अपितु समस्याएँ प्राचीनकाल से लेकर 21 वी शताब्दी तक बनी हुई हैं। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जितना कृषकों का उत्पीड़न ब्रिटिशकाल में हुआ उतना अब नहीं है। चूँकि भारत सरकार 'लोक कल्याणकारी राज्य' की अवधारणा पर कार्यरत है अत: कृषकों के हित के लिए निरन्तर कार्य किये जा रहे हैं। फिर भी आज अगर देश के विभिन्न भागों में कृषक आन्दोलन हो रहे हैं तो कहीं न कहीं किसानों की समस्याओं की उपस्थिति से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता।

स्वतंत्रता-पूर्व कृषक आन्दोलनों में सर्वप्रथम नाम 'संथाल विद्रोह' (1855-1856 ई0) का आता है जो कि हजारीबाग, मिदनापुर, वीरभूमि आदि क्षेत्रों से संबंधित था। स्थायी बंदोबस्त व्यवस्था के कारण यहाँ के मूल जनजाति कृषकों को अपनी पैतृक भूमि छोड़नी पड़ी एवं राजमहल क्षेत्र में जाकर बसना पड़ा। इस क्षेत्र के जंगल को साफकर जब इन्होंने भूमि को कृषि योग्य बनाया, पुन: जमीदारों ने इस भूमि पर अपना दावा कर दिया। अंतत: शोषण से त्रस्त होकर सिद्धू व कान्हू के नेतृत्व में विद्रोह आरंभ हुआ, परिणामस्वरूप सरकार को संथाल परगने बनाने पड़े।

संथाल विद्रोह के बाद की सर्वप्रथम घटना '1857 क्रांति' है। यद्यपि इसे प्रारम्भ करने का श्रेय निस्संदेह सैनिकों को है परन्तु सैनिको का संबंध समसामयिक परिवेश की तरह औपनिवेशिक काल में भी कृषक परिवार से (विशेषकर अवध क्षेत्र) था।

स्वतंत्रता-पूर्व कृषकों का प्रथम संगठित विद्रोह 'नील आन्दोलन' (1859-1860 ई0) था जो कि पावना एवं नादिया जिले (पं0 बंगाल) से संबंधित था जिसमें दिगम्बर विश्वास एवं विष्णु विश्वास ने प्रभावशाली नेतृत्व प्रदान किया। यूरोपीय बाजारों की माँग के कारण नील उत्पादक जबरन कृषकों से नील की अलाभकारी खेती करवाते थे जिसका किसानों ने बल विरोध किया। इस विद्रोह को 'हिन्दू पैट्रियाट' एवं 'नील दर्पण' जैसे समाचार पत्रों ने व्यापक समर्थन दिया।

सरकार द्वारा नियुक्त नील आयोग ने ये सिफारिश की कि नील उत्पादन के पीछे पूरा शोषणतंत्र कार्य कर रहा है। नील आयोग की सिफारिश के बाद सरकार ने अधिसूचना जारी की कि किसानों को नील की खेती हेतु बाध्य नहीं किया जाएगा।

नील आन्दोलन के बाद कृषक आन्दोलनों में 'पावना विद्रोह' (1873) का उल्लेख किया जा सकता है जो कि युसुफजाही परगने (पावना जिला) से संबंधित था जिसमें ईशान चंद राय व शंभूपाल प्रमुख नेता थे। यहाँ भूस्वामियों ने अधिकाधिक लगान वसूल करने का प्रयास किया। कृषकों ने संगठित होकर किसान संघ की स्थापना की। संघ ने लगान देने से मना कर दिया व जमीदारों के खिलाफ मुकदमें किए। पावना विद्रोह को जहाँ 'इण्डियन एसोसिएशन'

जैसे संगठनों ने समर्थन किया वहीं 'ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन' ने विद्रोह को हिन्दू भूस्वामियों के खिलाफ मुस्लिम किसानों के आन्दोलन के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया।

पावना विद्रोह के बाद 'दक्कन विद्रोह' (1875 ई0) का उल्लेख अनिवार्य है जिसका तात्कालिक कारण साहूकार कल्लूराम द्वारा बाबा साहिब के घर पर कब्जा प्राप्त करने का आदेश था। इस आदेश के बाद पूना क्षेत्र अशांत हो गया और घबराकर सरकार को 1879 कृषक राहत अधिनियम पारित करना पड़ा।

दक्कन विद्रोह के बाद छिटपुट कृषक आन्दोलन होते रहे परन्तु 20 वी शताब्दी का प्रथम सशक्त किसान आन्दोलन 'चंपारण (1917 ई0) सत्याग्रह' था जिसके तहत कृषकों से उनकी भूमि के 3/20 हिस्से पर नील की खेती अनिवार्य रूप से करवाई जाती थी। महात्मा गांधी ने इस प्रथा के खिलाफ सत्याग्रह किया जिसमें उनका साथ राजेन्द्र प्रसाद, नरहरि पारिख, जे0बी0 कृपलानी आदि गणमान्य व्यक्तियों ने दिया, परिणामस्वरूप नील आयोग गठित हुआ और बागान मालिक अवैध वसूली का 25% वापस करने को राजी हुए।

चम्पारण सत्याग्रह के विद्रोह 'खेडा कृषक आन्दोलन' (1918 ई0) का उल्लेख जरूरी है जिसका कारण अकाल के बावजूद भूराजस्व वसूली को सरकार द्वारा माफ न किया जाना था। इसमें वल्लभ भाई पटेल व इन्दुलाल याज्ञनिक का प्रमुख योगदान था जिनके नेतृत्व के परिणामस्वरूप सरकार ने आदेश दिया कि समर्थ किसानों से ही लगान वसूला जाए।

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान वस्तुओं की बेतहाशा कीमतें बढ़ने एवं 'होमरूल लीग' के कार्यक्रमों से किसानों में सांगठनिक भावना दिखने लगी थी। इसी परिपेप्क्ष्य में गौरीशंकर इन्द्रनारायण द्विवेदी व मदन मोहन मालवीय द्वारा 'उत्तर प्रदेश किसान सभा' (1918 ई0) की स्थापना हुई।

उ0प्र0 किसान सभा के अलावा प्रतापगढ़ में नाई-धोबी बंद (जमीदारों- तालुकादारों का सामाजिक बहिष्कार) आन्दोलन चलाया गया। इसी परिप्रेक्ष्य में अवध किसान सभा (1920) का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें बाबा रामचन्द्र का प्रमुख योगदान था। अवध किसान सभा द्वारा व्यापक स्तर पर किसानों को संगठित किया गया। परिणामस्वरूप सरकार को 'अवध मालगुजारी रेट संशोधन अधिनियम' पारित किया गया। 1921 ई0 के अन्त में उ0प्र0 के हरदोई, बहराइच व सीतापुर में 'एका आन्दोलन' प्रारम्भ हुआ जिसका कारण लगान की उच्च दरें एवं बेगार था। इस आन्दोलन का नेतृत्व मदारीपासी ने किया, परन्तु यह आन्दोलन हिंसक था अत: राष्ट्रीय आन्दोलन ने इसे अपना समर्थन नहीं दिया और ये आन्दोलन सरकार द्वारा सख्ती से कुचल दिया गया।

जिस समय उ0प्र0 में एका आन्दोलन चल रहा था उसी समय केरल में मालाबार तट पर अगस्त 1921 में अवध जैसे कारणो से प्रेरित होकर स्थानीय मोपला किसानों ने जबरदस्त विद्रोह किया। मोपला मालाबार तट के मुस्लिम किसान थे जिन्होंने हिन्दू जमींदारों के विरूद्ध लगान की उच्च दरों, नजराना, बेगार आदि क कारण विद्रोह किया। मोपला आन्दोलन के एका आन्दोलन की तरह हिंसक होने के कारण सरकार द्वारा निर्ममता से दमित किया गया।

मोपला विद्रोह के बाद किसान आन्दोलनों में बारदोली आन्दोलन (1928 ई0) का नाम आता है। ये सूरत के बारदोली तालुके में प्रारम्भ हुआ जिसमें वल्लभभाई पटेल ने प्रमुखता से नेतृत्व प्रदान किया। इस आन्दोलन का कारण लगान में लगभग 30% वृद्धि करना था। आन्दोलन के प्रबलतम रूप धारण करने के परिणामस्वरूप सरकार द्वारा लगान की बढोतरी को 30% से घटाकर 6.03% कर दिया।

1920 के दशक से ही उ0प्र0, बंगाल, आंध्र प्रदेश में किसान सभाओं का गठन शुरू हो गया था परन्तु एक अखिल भारतीय किसान संगठन की अभी तक स्थापना नहीं हो पाई थी। ये काम एन0जी0 रंगा व अन्य किसान नेताओं के प्रयासों से 1936 में 'अखिल भारतीय किसान कांग्रेस' के रूप में हुआ जिसका नाम बदलकर 'अखिल भारतीय किसान सभा' किया गया। स्वामी सहजानंद इसके अध्यक्ष तथा रंगा को महासचिव बनाया गया। इस संगठन का लक्ष्य कृषकों की आर्थिक शोषण से रक्षा करना था।

किसानों, आदिवासियों को जमीदारों व साहूकारों के विरूद्ध जागरूक करने व संगठित करने में 'वर्ली आन्दोलन' (1945 ई0) का उल्लेखनीय योगदान है जो थाणे जिले के आसपास प्रारम्भ हुआ जिसे गोदावरी पारूलेकर जैसे साम्यवादियों ने नेतृत्व प्रदान किया।

आजादी के आसपास के कृषक आन्दोलनो में बंगाल का 'तेभागा आन्दोलन' (1946 ई0) का प्रमुख स्थान है जिसे कम्पाराम व भुवन सिंह ने नेतृत्व प्रदान किया। इसका कारण जोतदारों द्वारा बटाईदारों को 2/3 हिस्सा न दिया जाना था। इस आन्दोलन का अवसान 1949 में 'बर्गदार अधिनियम' पारित होने के बाद हुआ।

तेभागा के बाद आन्ध्र क्षेत्र में हुए तेलांगना आन्दोलन का नाम भी उल्लेखनीय है। ये भारत का सबसे बड़ा गुरिल्ला कृषक विद्रोह था। किसानों ने 'संघम' में संगठित होकर 'देशमुखों' (स्थानीय जमीदार) पर हमला बोलना शुरू कर दिया। ये आन्दोलन 1950 तक चलता रहा जब तक कि सरकार ने 'हैदराबाद काश्तकारी अधिनियम' न पारित कर दिया।

तेलांगना के बाद स्वतंत्रोत्तर किसान आन्दोलनों में पटियाला के 'मुजारा आन्दोलन' का उल्लेख करना अपरिहार्य है जिसका कारण 'विस्वेदार ' (स्थानीय भूस्वामी) द्वारा जमीन पर जबरन अधिकार स्थापित करना था। इसका समापन 'पेप्सू स्थायी काश्तकार एक्ट 1953' के द्वारा हुआ।

स्वतंत्रता के बाद कुछ कृषक आन्दोलन ऐसे भी हुए जिनकी अधिक जानकारी नहीं मिलती जैसे म0प्र0 का खारवाड संघर्ष (1957 ई0), महाराष्ट्र का धुलिया (1967 ई0), भील आन्दोलन, आदि।

आजादी के बाद के कृषक आन्दोलनों के वर्णन क्रम में उस आन्दोलन का विवरण देना प्रासंगिक होगा जो शुरू तो हुआ था कृषक समस्याओं या भूमि संबंधी समस्या को लेकर परन्तु शीघ्र ही इसने राष्ट्र के अस्तित्व पर चोट करनी शुरू कर दी। इसे 'नक्सलवादी कृषक आन्दोलन' के नाम से जाना जाता है। ये परिवर्तित स्वरूप में आज भी जारी है। नक्सलवादी आन्दोलन के समान आन्ध्र क्षेत्र में 'श्री कालुम विद्रोह' भी आदिवासियों को भारतीय राज्य से संघर्ष में झोंककर अपने को किसानों व आदिवासियों का हितैषी कहलाता रहा था जबकि इसने अधिकांश ध्यान 'वर्ग शत्रुओं' को समाप्त करने पर लगाया। परिणामस्वरूप पुलिस को इनके विरूद्ध अभियान छेड़ना पड़ा और जुलाई 1970 को वी0 सत्यनाराण व कैलासम के मारे जाने पर ये आन्दोलन समाप्त हो गया।

कृषक आन्दोलनों में 1979 में श्री येगडी व भाऊ साहब भास्कुटे द्वारा संचालित ''भारतीय किसान संघ'' का नाम भी उल्लेखनीय है। इन्होंने 2007 में सौराष्ट्र में कपास मूल्यों को लेकर व्यापक धरने दिये। तमिलनाडु क्षेत्र के किसान संगठनों में 'विवसईगल संगम' प्रमुख है जिसकी स्थापना नारायण स्वामी नायडू ने की। ये संगठन विद्युत आपूर्ति एवं दरों आदि के संबंध में आन्दोलन करता है। महाराष्ट्र के शरद जोशी द्वारा स्थापित 'शेतकारी संगठन' सर्वप्रमुख है। इन्होंने नासिक मे रेल रोको आन्दोलन चलाया, इसके परिणामस्वरूप सरकार ने प्याज व ईख के मूल्य में बढोतरी की। इसके अलावा समकालीन किसान संगठनों में 'स्वाभिमानी शेतकारी संगठन' व 'भारतीय किसान यूनियन' का उल्लेख निवार्य है। भारतीय किसान यूनियन की स्थापना 1986 में हुई तथा चौ0 महेन्द्र सिंह टिकैत 1987 शामली बिजली घर घेराव से लेकर 2011(मृत्युपर्यन्त) तक निरंतर कृषक आन्दोलन करते रहे। चौ0 महेन्द्र सिंह टिकैत के आन्दोलनों का ही प्रभाव था सरकारें स्वयं उनके गाँव सिसौली आकर किसानों के लिए लाभकारी घोषणाएं करती थी। भाकियू का अभियान अब भी जारी है।

निष्कर्ष

किसान आन्दोलनों के ऐतिहासिक विवेचन पर गंभीरतापूर्वक विवेचन करने पर ये स्पष्ट होता है कि आन्दोलन 19 वी शताब्दी से लेकर 21 वी शताब्दी तक कुछ-कुछ परिवर्तित स्वरूप में निरंतर जारी है। यदि आजादी से पहले की बात की जाए तो यह समझने में कोई परेशानी नहीं होगी कि ब्रिटिश सरकार साम्राज्यवादी सरकार थी जिसका मूल लक्ष्य था देश को अधिकाधिक सम्पन्न बनाना और इसके लिए उस समय सर्वप्रमुख स्त्रोत भूराजस्व था। अंग्रेजी सरकार ने भूराजस्व अधिकाधिक एकत्रित करने के लिए भूस्वामित्व व्यवस्था, वसूली (स्थायी बंदोबस्त, रैय्यतवाड़ी एवं महालवाड़ी) में परिवर्तन किया तथा अधिकतम भूराजस्व प्राप्त करने का प्रयास किया जिसके परिणामस्वरूप व्यापक कृषक विद्रोह हुए। परन्तु आजादी के बाद भी यदि निरंतर कृषक आन्दोलन हो रहे हैं तो इसके लिए केन्द्र व राज्य सरकारों को मिलकर ऐसी नीतियाँ बनानी होगी ताकि 'अन्नदाता कहलाने वाला किसान उस स्थिति में आ सके कि स्वयं भी भूखा न रहे और अन्य आबादी के लिए भी अन्न उपजाता रहे।

सन्दर्भ सूची:

1 ग्रोवर, बी0एल0, ष्आधुनिक भारत का इतिहासष्, एस0 चन्द्र एण्ड कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ 350-351
2 चन्द्र, विपिन, ष्भारत का स्वतंत्रता संघर्षष्, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली 2006 पृष्ठ 22
3 सरकार, सुमित, ''आधुनिक भारत'' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 69
4 सिंह, इंजी0 प्रेमलाल, ''भारतीय किसानों के अग्रदूत'', आविष्कार प्रकाशन, दिल्ली, 2008 पृष्ठ 44
5 अहीर, राजीव:, ष्आधुनिक भारत का इतिहासष्, स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 2016 पृष्ठ 515-516
6 मुखर्जी, मृदुला ''आजादी के बाद का भारत'', हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली 2008 पृष्ठ 596
7 पाण्डेय, एस0 के0, ''आधुनिक भारत'' प्रयाग एकेडमी पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 2014, पृष्ठ 217
8 साक्षात्कार श्री नरेश टिकैत, राष्ट्रीय अध्यक्ष, भारतीय किसान यूनियन, 22 अक्टूबर 2015
9. http://en.wikipedia.org/Bhartiyakisansangh
10. http://en.wikipedia.org/short.anantraojoshi

महिला लेखन एवं दलित लेखन का औचित्य

डॉ० कंचन यादव

एसोशिएट प्रोफेसर, श्यामा प्रसाद मुखर्जी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फाफामऊ, प्रयागराज

हिन्दी प्रदेश में दलित राजनीति के उभार के लगभग साथ-साथ साहित्य में भी दलित चेतना की अभिव्यक्तियाँ दिखाई देने लगी थीं। आरम्भ में इस दलित सक्रियता को लेकर एक तरह की खलबली भी मची किन्तु अब हिन्दी में दलित साहित्य एक निर्भ्रान्त सच्चाई बन चुका है। पिछले दो दशकों में सक्रिय हिन्दी में दलित लेखकों की एक पूरी पीढ़ी तैयार हो चुकी है। ओम प्रकाश बाल्मीकि, मोहनदास नैमिषराय, कंलव भारती, डॉ. धर्मवीर, डॉ. पी.एन. सिंह, श्योराज सिंह 'बेचौन', रमणिका गुप्ता, जय प्रकाश कर्दम जैसे लेखकों का बहुविध कृतित्व हमराए सामने है। 'दलित लेखन' पर आरम्भ में उसकी गुणवत्ता तथा कलात्मक उत्कृष्टता को लेकर सवाल उठाये जाते रहे। कहा यह भी कहा गया कि यह महज भावनाओं का विस्फोट है। कुछ लोगों ने इसे साहित्य में राजनीति के हस्तक्षेप की तरह देखने की कोशिश की तो कुछ लोगों ने किन्तु परन्तु के साथ स्वीकार भी किया। बहरहाल अब इसमें सन्देह नहीं कि दलित साहित्य भारतीय समाज के दबे-कुचले और बहुसंख्यक वर्ग को कलात्मक और संवेदनक्षम अभिव्यक्ति का मंच प्रदान करने में सफल हुआ है। यह भी सच है कि हिन्दी में दलित साहित्य आन्दोलन के सामने तय करने के लिए एक लम्बा रास्ता भी पड़ा है।

हिन्दी में दलित साहित्य आन्दोलन का स्वरूप अभी तक कमोवेश अनुभूति मूलक रहा है। किसी भी साहित्य आन्दोलन के लिए आवश्यक है कि वह अनुभूतिपरकता को वैचारिक स्वरूप दे। कहना न होगा कि दलित चिन्तकों का ध्यान इस ओर है। दलित कथाकार ओमप्रकाश बाल्मीकि की हाल में प्रकाशित पुस्तक 'दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र' इसका प्रमाण है। मलयालम के प्रसिद्ध कवि के. सच्चिदानन्द दलित साहित्य को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के रूप में देखने का प्रस्ताव करते हैं और इस तथ्य को रेखांकित करते हैं कि दलित साहित्य से जुड़े रचनाकार पारम्परिक साहित्य और उसके मानदण्ड को नकारते हैं तथा वे अपने जीवन के अनुभव के माध्यम से दलित साहित्य का नया सौन्दर्यशास्त्र नयी भाषा गढ़ना चाहते हैं। दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र का निरूपण करने वाले ओम प्रकाश वाल्मीकि स्वीकार करते हैं कि सौन्दर्य के लिए सामाजिक यथार्थ एक विशिष्ट घटक है। कल्पना और आदर्श की नींव पर खड़ा साहित्य किसी भी समाज के लिए प्रासंगिक नहीं हो सकती है। साहित्य के लिए वैचारिकता प्रतिबद्धता और वर्तमान की दारूण विसंगतियां ही उसे प्रासंगिक बनाती हैं।

दलित साहित्य आन्दोलन तथा दलित राजनीति के भटकाओं विपथनों की भी आलोचनात्मक पड़ताल, हिन्दी में दलित चेतना की व्यापकता एवं गहराई का प्रमाण है। किन्तु दलित चेतना मात्र दलित तक ही सीमित नहीं। छोटे किसान, खेतिहार, मिल मजदूर तथा आदिवासी एवं सम्पूर्ण नारी समाज भी इसके दायरे में आते हैं। मौजूदा दलित साहित्य विमर्श सामाजिक प्रश्न पर केन्द्रित है, जबकि आर्थिक प्रश्नों की दिशा में भी आगे बढ़ने की दरकार है। 'स्त्री-प्रश्न' दलित साहित्य में विमर्श का एक अहं मुद्दा बनता है। हालांकि दलित सौन्दर्य शास्त्र में स्त्री को दलितों में दलित माना जा रहा है। दलित लेखक एवं चिन्तक 'लैंगिक भेद' के प्रति आपत्ति दर्ज कर रहे हैं, लेकिन पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर उनकी खामोशी गौरतलब है। स्त्री विरोधी दृष्टि तथा कथित सवर्ण पुरुषों में ही नहीं बल्कि दलित पुरुषों में भी सक्रिय रहती है। स्त्री की दासता को बढ़ावा देने वाली पितृसत्ता की अहम संरचनाओं, इकाइयों एवं मूल्यों के प्रति भी दलित सौन्दर्य शास्त्र जवाब देह है। वस्तुतः स्त्री एवं दलित साहित्य के सौन्दर्य शास्त्र की सबसे बड़ी शक्ति और भविष्य यही है, जैसा कि कथाकार राजेन्द्र यादव लिखते हैं 'भाषा एवं प्रान्त के पार जाकर सह अनुभूति का दावा कर सकते हैं।' यह विशेषता ही 'महिला लेखन' और 'दलित लेखन' को भी देश व्यापी स्वीकृति प्रदान करती है।

यह सही है कि महिला लेखन का मूल आधार जहां 'नारी मुक्ति' की संकल्पना है, वहीं दलित लेखन का मूल आधार दलित मुक्ति की अवधारणा है। किन्तु 'नारी मुक्ति और 'दलित मुक्ति' के प्रश्न या संप्रत्यय अलग-अलग होकर भी कई मायनों में एक दूसरे से जुड़े एवं गुथे हुए हैं। वस्तुतः भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्री और दलित दोनों एक ही नाव के यात्री हैं, दोनों की गुलामी की शुरुआत मूलरूप से ब्राह्मणवादी-वर्ण व्यवस्था की देन है। दोनों ही पुरोहितवाद का दंश, तिरसकार और प्रताड़ना झेलने को आज भी बाध्य हैं। दोनों ही वर्ण और वर्ग की पितृसत्तात्मक निर्मितियों के शिकार किसी न किसी रूप मे होते हैं। राजेन्द्र यादव लिखते हैं– 'मेरा मानना है कि समाज में और परिणामतः साहित्य में स्त्री और दलित ही वह मुख्य शक्तियाँ हैं जो अब तक की चली आती सारी व्यवस्था को बदलेंगी क्योंकि ये ही हैं, जिन्हें मनुवादी समाज ने सबसे अधिक कुचला और पशु-स्थिति में जीने को मजबूर किया है। जिन्दगी भर इनके खुद किए की नहीं पूर्व जन्म के कर्मों के अपराधों की सजा मिलती है। इनके पापों का ही फल है कि वे 'स्त्री' या 'शूद्र' के रूप में जन्म लेते हैं। न इनके पास सत्त है, न अपनी कहने को संपत्ति, न स्वाधीनता, न सम्मान-सब कुछ पुरुषों और स्वामियों का दिया हुआ है। अन्याय पर आधारित वर्णों एवं वर्गों में बंटे समाज में जहां स्वामी और दास के सिवा कोई दूसरा मानवीय संबंध नजर नहीं आता, जो स्त्रियों और शूद्रों को कभी अपनी जबान, सम्मान और पहचान नहीं देता।

स्त्री और दलित दोनों ही 'सर्वहारा' हैं किन्तु दोनों ही वर्ग शोषण के अलावा वर्ण शोषण एवं पुरुष अहंकार से पीडिघ्त एवं प्रताडिघ्त होते हैं। सामाजिक व्यवस्था में सवर्णों एवं पुरुषों की वैचारिक वर्चस्वता के कारण स्त्रियों एवं दलितों को अपमान तिरष्कार, बहिष्कार, जातीय सूचक अपशब्द, मारपीट,

गाली-गलौच, यौन शोषण और अश्लील जुमले आदि अनेक प्रकार की ज्यादतियां झेलनी पड़ती हैं, जो चेतना में लम्बे समय तक जीवित रहकर गहरा प्रभाव डालती हैं। दोनों ही सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक शोषण के शिकार होते हैं जबकि 'सर्वहारा' केवल आर्थिक शोषण तक ही सीमित है। 'सर्वहारा' की चेतना एवं आत्मा का सृजन तथा विकास आर्थिक एवं राजनैतिक सत्ता की वंचना से विकसित एवं पल्लवित होती है वह सामाजिक एवं धार्मिक रूप से वंचित नहीं होता उसे दलितों एवं स्त्रियों की भांति सामाजिक प्रताड़ना, अपमान, तिरष्कार, बहिष्कार एवं निष्कासन नहीं अनुभव करना पड़ता। इसके विपरीत स्त्रियों एवं दलितों की चेतना एवं आत्म सृजन एवं विकास में सामाजिक वंचना, आर्थिक विपन्नता एवं राजनैतिक सत्ताविहीनता के कारक जिम्मेदार होते हैं। अर्थात् जहां सर्वहारा की चेतना एवं आत्मा के विकास में मात्र आर्थिक वंचना एवं राजनैतिक सत्ता विहीनता भूमिका अदा करते हैं, वहीं दलित एवं स्त्री की चेतना एवं आत्मा के विकास में सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक तीनों क्षेत्रों में वंचनायें अपना योगदान करती हैं। अगर दलित या स्त्री आर्थिक एवं राजनैतिक सत्ता प्राप्त भी कर लें फिर भी उनकी सामाजिक स्थिति नहीं बदलती। लेकिन 'सर्वहारा' के साथ ऐसा नहीं होता। राजेन्द्र यादव लिखते हैं– 'साहित्य में स्त्रियों और दलितों का साथ आना एक साझी क्रांति का प्रारंभ है क्योंकि दोनों ही सही अर्थों में सर्वहारा हैं। इनकी वास्तविक मुक्ति भी सर्वहारा-क्रांति के दर्शन से उदित होगी। स्त्री की मुक्ति पुरुष को पुरुष-कुंठा या उसके तानाशाही अधिकारों से मुक्त करेगी और दलित-चेतना श्रम की दासता, अपमान और अन्याय से, उत्पादन से जुड़े इस मूलगामी परिवर्तन से यह उन्मोचित ऊर्जा ऊपर की सारी सामाजिक व्यवस्था को लोकतांत्रिक बनाएगी।'

हमारा भारतीय समाज चार प्रमुख हिस्सों में बंटा हुआ है– आदिवासी समाज, उच्चवर्ग, मध्यवर्ग, और निम्नवर्ग। आदिवासी समाज में वर्गों का निर्माण नहीं है वहां न तो 'सेक्स की वर्जना' है, न ही तलाक, एवं पुनर्विवाह की समस्या है। इसलिए स्त्रियों से संबंधित अपराध भी प्रायः न के बराबर है। निम्न वर्ग में भी आदिवासी समाज की भांति श्रम की महिमा है। किन्तु यहाँ यौन शुचिता की मांग तो है पर उस पर बहुत जोर नहीं है। यहां भी दूसरा घर कर लेना (पुनर्विवाह) आसान है। पति की मृत्यु के बाद 'देवर' या अन्य से विवाह हो जाता है। तीसरा वर्ग उच्च वर्ग है। उच्च वर्ग की स्त्री भौतिक रूप से समृद्ध और आत्मतुष्ट है। उसकी सारी नैतिकता और सिद्धान्त उसके अपने हिसाब से चलते हैं। यहां यौन शुचिता की मांग है किन्तु अक्सर इसे नजरअंदाज किया जाता है। तलाक, पुनर्विवाह, सेक्स आदि के बंधन ढीले हैं। उच्चवर्ग की स्त्री को अघोषित आजादी प्राप्त है। चौथा वर्ग-मध्यवर्ग सफेद पोश लोगों की वह जमात है, जिसकी सारी ताकत अपनी इज्जत को बचाने के लिए होती है। दिखावापन इस वर्ग की खासियत है और समाज में सबसे कम आजादी इसी वर्ग की स्त्रियों को है। इस वर्ग में स्त्री की सबसे बड़ी खूबी यौनशुचिता मानी जाती है। मध्यवर्गीय स्त्री की सारी प्रतिभा, सारे गुण और खूबियां एक तरफ और यौनशुचिता एवं वर्जना दूसरी तरफ। विवाह, दहेज, तलाक, पुनर्विवाह आदि सारी समस्यायें मुख्यतः इसी वर्ग की हैं। इस बौद्धिक स्त्री की देह और मन का यौन और श्रम दोनों ही स्तरों पर शोषण होता है। पढ़ी-लिखी मध्यवर्गीय स्त्रियां आसानी से पुरुष सत्ता के सामने आत्मा समर्पण करने से इन्कार करती रही हैं। लेकिन सच तो यह भी है कि स्त्री उच्च वर्ग की हो या निम्न वर्ग की दलित हो या सवर्ण, हिन्दू हो या अल्पसंख्यक सभी मार-पीट, गाली-गलौच, यौन शोषण-बलात्कार और अश्लील जुमले समान रूप से झेलती हैं।

वस्तुतः स्त्री समस्या और दलित समस्या भी विश्व के उन लोगों से जुड़ी हुई हैं, जिनके साथ जातीय आधार पर या रंग भेद के कारण भेद-भाव किया जाता है। पर हमारे यहां 'वर्ण' एवं जाति को जिस तरह से धर्म और संस्कृति से जोड़ दिया गया है, वैसा कहीं नहीं है। दक्षिणी अफ्रीका की रंगभेद की समस्या उपनिवेशवादियों द्वारा पैदा किया गया था किन्तु भारतीय स्त्री एवं दलित की समस्या को यहां के ही लोगों ने पैदा किया था। वहां काले-गोरे का सवाल सिर्फ रंग के आधार पर था, जो औपनिवेशिक शासन से मुक्ति के बाद समाप्त हो चली है किन्तु हमारे यहां वर्ण व्यवस्था की समस्या और पुरोहितवाद भी आज जस-की-तस कायम है। दलित लेखक एवं आलोचक डॉ. तुलसीराम एक साक्षात्कार में स्वीकार करते हैं कि भारत में जाति के आधार पर दलितों पर जितना अत्याचार स्वदेशी शासन में हुआ, उतना किसी विदेशी शासन के अन्तर्गत नहीं हुआ।

आलोचक शिवकुमार मिश्र लिखते हैं– 'भारत की सामाजिक संरचना में सबसे अधिक शोषित स्त्री और दलित ही रहे हैं और हैं। धर्म और धर्मशास्त्र की आड़ लेकर पुरुष सत्तात्मक समाज में व्यवस्था और उसके प्रभुओं ने इनके लिए अलग-अलग तरह के नरक रचे हैं। वर्णदंश से उपजे नरक को सदियो-सहस्त्रादियोंम से अपने हिस्से की यातना के रूप में दलित भोग रहे हैं और पुरुष दंभ के नरक को अपनी नियति मानते हुए और उसकी भट्टी में सनातन काल से दहक और धुंधुवा रही है। धर्म और धर्म शास्त्रों के इनके लिए अपने कठोर विधि निषेध हैं। इस सामाजिक संरचना के समानांतर उसी सोच में निर्धारित और अनुकूलित हमारी जो साहित्यिक परंपरा है, महान रचनाकारों तक की रचनाओं में स्त्री और दलित अपनी उसी सामाजिक हैसियत के साथ हैं जो व्यवस्था ने उनके लिए तय की है। आधुनिक काल के पहले तक इस साहित्यिक परंपरा में अपवाद रूप में ही कभी कभार (मध्यकाल में कबीर और मीरा दलित और स्त्री, रचनाकारों के रूप में दिखाई पड़ते हैं। आधुनिककाल में पहली बार दलित और स्त्री दोनों के हाथ में कलम की आई और समय के बीतरने के साथ-साथ उस कलम पर उनकी पकड़ मजबूत होती गई। आधुनिक रचना का इतिहास साक्षी है कि इस कलम से पहली बार औरत ने अपने हाथों, अपनी भाषा में, अपने को लिखा है, अपने इतिहास को, अपने वर्तमान को, और अपने आकांक्षित भविष्य को भी, उनके पूरे त्रास, पूरे संघर्ष और पूरी संभावनाओं में। उसे अब तक अन्यों ने लिखा था, अब वह अपने को खुद परिभाषित कर रही है। यही सच आधुनिक काल में दलितों का भी है। वे भी सदियों बाद अब अपने को अपने हाथों से, अपनी भाषा में खुद लिख रहे हैं। अपने वजूद को परिभाषित कर रहे हैं। अपने अब तक के नरक वास का साक्ष्य दे रहे हैं।'

मोटे तौर पर पितृसत्तात्मक समाज व्यवसस्था के शिकार स्त्री और दलित दोनों हैं। किन्तु जहां दलित चेतना का संघर्ष ब्राह्मणवादी व्यवस्था के खिलाफ है, वहीं नारी चेतना का संघर्ष पितृक-वर्चस्व के खिलाफ। फिर भी यह भी सच है कि एक का संघर्ष को काटता हो, न काटता हो पर एक दूसरे की स्वतंत्रता का मार्ग अवश्य प्रशस्त करता है। ब्राह्मणवाद दरअसल एक व्यवस्था है जिसके सामाजिक, राजनैतिक और वैचारिक पक्ष हैं। वर्णाश्रम, पुनर्जन्म, कर्मफल और यत्र इन चार खम्भों पर खड़ी ब्राह्मणवादी व्यवस्था-वस्तुतः 'पुरोहितवाद' है। दलित चेतना का मूल संघर्ष इसी पुरोहितवाद के खिलाफ लड़ना है। भारतीय समाज परम्परागत रूप से वर्णों एवं अनेक जातियों में विभाजित रहा है, और है। वैदिक साहित्य में पहले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीन ही वर्णों का जिक्र मिलता है। आगे चलकर समाज का वह तबका अस्तित्व में आया, जिसे अस्पृश्य माना गया, हिन्दी में इसी तबके को अछूत कहा गया और संविधान में अनुसूचित जाति कहा गया। इस अस्पृश्य समुदाय को वर्ण-व्यवस्था में जगह नहीं दी गयी। इसीलिए कहीं-कहीं इसे पंचम वर्ण कहा गया है। सवर्णो में भी ऊपर नीचे

का भेदभाव है और उनके बीच ऊपर वाले ने अपने को द्विज मानकर श्रेष्ठता कायम कराने की कोशिश की। आलोचक खागेन्द्र ठाकुर के अनुसार यह सब भेदभाव, ऊपर-नीचे का सीढ़ीनुमा विभेध सामन्तवादी आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए किया गया था। इसी के लिए श्रम को जन्म से जोड़कर उस व्यवस्था को स्थायी बनाने की कोशिश की गयी। वर्ण व्यवस्था के टूटने पर जाति व्यवस्था का उदय हुआ। और अस्पृश्यों के बीच भी अनेक जातियां बन गयीं, उनमें भी सीढ़ीनुमा भेद-भाव है। लेकिन यह सच है कि भारतीय समाज में सबसे अधिक अन्याय और अत्याचार के शिकार अछूत ही होते रहे हैं। उसके बाद ऐतिहासिक रूप से शूद्र इस कोटि में आते हैं।

वस्तुतः ऋग्वेद के बाद पुरोहितवादियों ने वर्ण व्यवस्था के तहत अपनी जनता को 'द्विज संस्कृति' और 'शूद्र संस्कृति' के रूप में विभाजित कर दिया। डॉ. भवदेव पाण्डेय लिखते हैं कि भारतीय समाज में ब्राह्मण और शूद्र का द्वन्द्व वस्तुतः संस्कृति और प्रति संस्कृति का द्वन्द्व है जो कामोवेश आज भी कायम है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को जोड़कर बनाई गई 'द्विज-संस्कृति' और समाज से श्रम करने वाले निर्धन वर्ग को घटाकर बनाई गई 'शूद्र-संस्कृति'। द्विज संस्कृति की प्रवक्ता हुई देव भाषा और शूद्र संस्कृति की म्लेच्छ भाषा। वेदों द्वारा शूद्रों को शिक्षा और संपत्ति से वंचित रखने का जो धार्मिक पाठ किया गया वह आज भी पढ़ाया जा रहा है। आज भी शूद्रों (स्त्री भी) के लिए धार्मिक यज्ञ, गायत्री, शिखा, गोत्र, देवता और महत् संस्कारों के द्वार नहीं खुले हैं। 'स्त्री रत्नं कुलादपि' लिखदपि' लिखकर उनकी स्त्रियों के यौन शोषण को तो वैधता दी गई परन्तु उनको 'मुख संस्कृति' के पास फटकने तक नहीं दिया। वैदिक काल में जो भी आर्य थे, वे विश यानी प्रजा थे परन्तु यह साम्यवास्था ब्राह्मण ग्रन्थों के रचनाकाल में भंग हो गई। कृषि-श्रमिकों और दस्तकारों को शूद्र संस्कृति में विभाजित कर दिया। इसी 'ब्राह्मण-काल' में शूद्रों ने अपनी सम्मिलित शक्ति के साथ प्रति सांस्कृति द्वन्द्व भी शुरू किया। इनके साथ व्रात्यों और अनार्यों का एक वर्ग आ मिला और इन्होंने ब्राह्मण-मूलक यज्ञ-संस्कृति का व्यापक विरोध किया। परन्तु द्वन्द्व में शूद्रों को इसलिए पराजित होना पड़ा क्योंकि इनके पास ब्राह्मणों के मुकाबिले भाषा के हथियार बहुत ही कम थे। शूद्रों के लिए प्रयुक्त ज्यादातर शाब्द (अपमान जनक) ब्राह्मण ग्रन्थों के रचनाकाल में निर्मित किए गये थे। इन्हीं शब्दों के आधार पर 'मनु स्मृति' में कहा गया कि जहां शूद्रों का शासन हो, जहां पाषंडों की बस्ती हो और जहां ये अंत्यज-जातियां अपनी निजी संस्कृति बनाकर रह रही हों, वहां ब्राह्मणों को नहीं जाना चाहिए। ब्राह्मण ग्रंथों के रचनाकाल में ही शूद्रों में भी प्रति सांस्कृतिक चेतना का उदय होने लगा था। ब्राह्मणों को डर था कि वे कहीं संख्या बल पर द्विज संस्कृति के विनाशक न बन जायें। शुनः शेष आख्यान के आधार पर ज्ञात होता है कि वशिष्ठ (ब्राह्मण-संस्कृति) का जबरदस्त विरोध किया था। विश्वामित्र (क्षत्रिय) और उनके पचास शिष्यों ने। ब्राह्मणों को डर सताने लगा कि कहीं पूरा देश शूद्र संस्कृति की चपेट में न आ जाय। इसलिए ऋग्वेद में चस्पा किया– 'ब्राह्मणोऽस्य मुख मासीद् बाहु राजन्यः कृतः। उरूत दस्य यद् वैश्यः पदोभ्याम् शूद्रो अजायत।' यह ब्राह्मणों की भाषिक संस्कृति थी जिसके तहत शूद्रों को पदच्युत करके उन्हें सांस्कृतिक मानवाधिकारों से वंचित रखने का कौशल दिखलाया गया। शूद्रों को शिक्षा और संपत्ति से वंचित रखने का धार्मिक पाठ आज भी पढ़ाया जा रहा है।

आठवीं सदी ईसा पूर्व से लेकर उन्नीसवीं सदी तक लिखे जाते हिन्दू धर्म ग्रन्थों का मूल उद्देश्य समाज को व्यवस्थित करना बताया गया है, पर इन धर्म ग्रन्थों में स्त्री, दलित, पिछड़े और आदिवासी समाज के लिए अमानुषिक नियम बनाए गए। शूद्र और दास दो अलग-अलग वर्ग नहीं बल्कि एक ही हैं। शूद्रों-स्त्रियों को जन्म जन्मांतर दास बनाए रखने के लिए एक ओर शासन के दण्ड की व्यवस्था हुई और दूसरी ओर उन्हें हर तरह की शिक्षा और ज्ञान राशि से अलग रखा गया। मुद्रा राक्षस लिखते हैं– जहाँ भी अमानुषिक और निन्दनीय विधान किए गए हैं वहां वह स्त्री और शूद्र दोनों के लिए किए गए हैं। जीतकर दास बने गए समाज की स्त्रियों को जीता गया। स्त्रियां ज्यादातर लूटी गई होती थीं इसलिए जगह-जगह यह बात दुहराई गई कि स्त्री को स्वतंत्रता नहीं देनी चाहिए। इसीलिए स्त्री को धर्म सूत्रों में बचपन में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था होने में पर पुत्र के आश्रय और अधीनता में रखने की हिदायतें हैं। शूद्र और स्त्री को गवाही देने के अधिकार में भी एक समान धर्म सूत्रों ने वंचित किया है। धर्म सूत्रों ने दोनों को संस्कार, शिक्षा और यज्ञ के अधिकार से तो वंचित किया ही है, तीर्थ यात्रा और देवताओं की आराधना तक से कई जगह वंचित किया है। यह अत्रि की व्यवस्था थी कि स्त्री और शूद्र छः काम नहीं कर सकते– जप, तप, प्रव्रजया, तीर्थ यात्रा, मंत्र साधना, और देवाराधना। स्त्री के लिए पति सेवा और शूद्र के लिए ब्राह्मण-क्षत्रिय (पुरोहित-राजा) सेवा ही एक मात्र धर्मचर्या मानी गई है। धर्म ग्रन्थ और संहितायें, स्त्री और शूद्र दोनों को हर बुराई की जड़ मानते हैं तथा दोनों की उत्पत्ति झूट से हुई– बताते हैं?

ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने समूची आबादी का आधा हिस्सा-स्त्री समाज को शूद्र मानकर हर सांस्कृतिक-वैचारिक गतिविधि से काटकर उसे अलग रखने का षडयंत्र रचा है। धर्म सूत्रों और गृह्य सूत्रों से लेकर 'मनु स्मृति' तक में स्त्री के प्रति घृणा का वातावरण ही नहीं बनाया गया बल्कि उसकी स्वतंत्रता को कुचला भी गया है। स्त्री को 'खेत' कहा गया है और उसके 'स्वामी' को यह अधिकार दिया गया है कि वह स्वयं आलसी हो, शराबी हो, पागल हो, रोगी हो, जब कभी चाहे अपनी स्त्री का 'जेवर' छीन कर निष्कासित कर सकता है? मुद्रा राक्षस लिखते हैं, मनु स्मृति के अनुसार स्त्री यज्ञ, व्रत, उपवास से वंचित है वह केवल पति की सेवा से वह स्वर्ग पाती है? पति के मर जाने पर वह पर पुरुष का नाम भी न ले? घर में भी स्त्री अपनी इच्छा से कोई काम न करे? वह चूंकि विवाह में कन्यादान के रूप में दी जाती है इसलिए पति के स्वामित्व में रहती है। पति लुच्चा, कामी, अशिक्षित, गुणहीन भी हो तो पत्नी को चाहिए उसकी देवता की तरह उपासना करे? विचित्र बात है कि सवर्ण स्त्री भी अपने संस्कारों के लिए धर्मतंत्र की तरह नहीं देख सकती। उसका संस्कार भी पति के हाथों में होता है। उसका भी लोक-परलोक पति की सैवा में ही सुधरता है। धर्मशास्त्र का ही आदेश है कि जमींदार की पत्नी भी दुराचारी पति के लिए रोती कलपती है और पतिव्रता बनी रहती है। बालिका-विवाह को प्रश्रय देने वाला तथा पुरुष कामुकता को बढ़ावा देने वाला यह विधान भी और तलब और कि 'तीस साल का पुरुष बारह साल की मनोहारिणी कन्या से विवाह करे और चौबीस वर्ष वाला आठ साल वाली से विवाह शीघ्र न करने से धर्म पीडिघ्त होता है? पतियों को निर्देश है कि वे अपनी स्त्रियों को रात दिन अपने अनुशासन में रखें। विषय वासना के लिए उत्सुक स्त्री पर कालू रखें। कुमारी की रक्षा पिता करें, युवावस्था में पति हिफाजल करे और वृद्धावस्था में बेटा। स्त्री को स्वतंत्रता नहीं मिलनी चाहिए? स्त्रियां न तो रूप का विचार करती हैं न उम्र का। सुरूप कुरूप कैसा भी पुरुष हो उसे भोगती हैं? बच्चा पैदा करना, बच्चे पालना, हर दिन खाना पकाना यह स्त्री की जिम्मेदारी है? ऋग्वेद में भी स्त्री के लिए यही कर्म निर्धारित है। वेदों से लेकर मनुस्मृति तक स्त्री को 'खेत' कहा गया है?

स्वतंत्रता और समानता यदि मनुष्य की मूल चेतना का अंग है, तो परम्परा और आधुनिकता के द्वन्द्व से टकराई भारतीय स्त्री और दलित भी अपने-अपने नरकवास का साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए—स्वयं को परिभाषित करते हुए अपना-अपना घोषणा पत्र भी तैयार कर रहे हैं। पत्नी, माता, बहन, बेटी केवल सम्बन्धों के नाम हैं। जो पुरुष के संरक्षण में रहती है गूंगी गुडिघ्या की तरह। बहुत से बहुत ममत्व बिखेरती है, आज्ञा मानती है, विदा होती है, वंश चलाती है। इन संबंधों में बंधी स्त्री न देवी हो पाती है न वेश्या होना चाहती है। समकालीन महिला कथा-लेखन की पहचान-मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं—'इतिहास साक्षी है कि पौराणिक युग की पंच कन्याएं अहिल्या, सीता, तारा, मंदोदरी और द्रौपदी विवेकशील स्त्रियां थीं, लेकिन वे अपने पातिव्रत्य और दैहिक पवित्रता के लिए ही जानी-पहचानी गयीं। उनके स्वामियों ने उनके विचार को, राय को, धारणाओं को कभी महत्त्वपूर्ण नहीं माना, बल्कि आस-पास के पुरुषों की मूर्खता पर उन्हें बलिदान करते रहे। यही इतिहास हमारी छातियों पर भी लदा है, इलीलिए परिवार की इज्जत-आबरू के बराबर वाले पलड़े में हमारी चारित्रिक शुचिता नापी-जोखी जाती है, साथ ही हमें विचार शून्या बुद्धि हीना मानकर हर कुशलता को नजरअंदाज करने का अनवरत सिलसिला चल रहा है। हमारा सुंदरतम पक्ष है, अपने घरों के लिए प्यार और हमारा कुरूपतम पक्ष है दुस्साहसिकता ण्ण्ण्ण्ण् इस देश की परंपरा में सावित्रियों ने सत्यवानों को बचाया है, नहीं बचाई किसी राम ने कोई सीता। ...हमारी शाश्वत नैसर्गिक इच्छाओं के दमन की, मरण की घोषणा शास्त्र-पुराण भले ही करते रहें, हमारी रची इबारतों में ऐसा मनहूस आख्यान नहीं होगा। हजारों साल से दबे-कुचले दलितों ने माथा उठाकर बात करना सीख लिया, हमारी आँखें घूंघट में कब तक झुकी रहेंगी? कहना न होगा समकालीन महिला लेखन में चित्रित अधिकांश नारी पात्र नैतिक आजादी में दावेदारी करने लगे हैं, कि प्रजातंत्र को लोकतंत्र के रूप में देखना सीख गये हैं।

संदर्भ

- ओटीमाय ठाकुर, स्त्री समाज, वाराणसी, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, 1949:
- सी.एम. अग्रवाल, डाइमेंशन ऑफ इंडियन वूमनहुड
- ए.एस. अल्तेकर, दी पोजिशन ऑफ वूमन इन हिन्दु सिविलाईजेशन, बनारस, मोतीलाल बनारसीदास, 1956
- एस.दास, पुर्द, दी स्टेट्स ऑफ इंडियन् वूमन, नई दिल्ली, ऐस ऐस पब्लिकेशन्स 1979
- महिला विकास संघ, वूमन एण्ड डवलमेंट प्लानिंग: केस स्टडी एट नवहाटा ब्लाक, नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा0लि0 1988
- विजय, एलीट वूमन इन इंडियन पॉलिटिक्स, नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा0लि0, 1979
- एलाइन शोल्टर, वूमन्स लिब्रेशन एंड लिटरेचर, न्यूयार्क, हारकोर्ट ब्रांच जोवानोविच, 1971
- आशारानी बोहरा, भारतीय नारी: अस्मिता और अधिकार, नयी दिल्ली, नेशलन पब्लिशिंग हाउस, 1986

- विजय, एलीट वूमन इन इंडियन पॉलिटिक्स, नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा0लि0, 1979
- एलाइन शोल्टर, वूमन्स लिब्रेशन एंड लिटरेचर, न्यूयार्क, हारकोर्ट ब्रांच जोवानोविच, 1971
- आशारानी बोहरा, भारतीय नारी: अस्मिता और अधिकार, नयी दिल्ली, नेशलन पब्लिशिंग हाउस, 1986

हिन्दी समाचारपत्रों की भाषा : समकालीन विश्लेषण

राकेश कुमार दुबे

पत्रकारिता एवं जनसंचार, उड़ीसा केंद्रीय विश्वविद्यालय

समाचार पत्रों को राष्ट्र का चतुर्थ स्तंभ माना गया है। अखबारों की संबंधित भाषा के विकास या विकार में अहम भूमिका होती है। अखबार भाषा के उत्थान या पतन उत्थान में खाद का काम करते हैं। अखबारों की पहुंच जन-जन तक होती है। अखब्बार ही जनमानस में भाषा के प्रति विशेष धारणा वितरित करते हैं। अखबारों में भाषा के भावी स्वरूप की जड़े होती है। भाषा के विकास और विनाश में समाचार पत्रों की भूमिका प्रमुख होती है, क्योंकि जनता का सर्वाधिक और सीधा संपर्क इनसे होता है। सामान्यत: मनुष्य की प्रकृति अनुकरण करने की होती है। समाचार पत्रों में हम जैसा सुनते हैं, पढ़ते हैं और देखते हैं वैसा ही लिखते हैं, उच्चारण करते हैं और भाषिक प्रयोग करते हैं। यदि सामान्यजन को भाषा का सही और मानक रूप सुनने और पढ़ने को मिलेगा तो जनता की भाषा में भी सुधार आता जाएगा। यदि समाचार-पत्र का सही और शुद्धता से प्रयोग करेंगे तो पाठकों की भाषा विकृत नहीं होगी। लोग भाषा का प्रयोग ध्यानपूर्वक करेंगे और भाषा के साथ उनका अटूट रिश्ता बना रहेगा। इसके विपरीत यदि समाचार-पत्र भाषा का अशुद्ध प्रयोग करेंगे, अनावश्यक शब्दों का प्रयोग करेंगे, तो वह भाषा को बोझिल ही बनाएंगे और यह बोझिलपन भाषा के संप्रेषण में बाधक बनता है।

पत्रकारिता किसी जागरुक समाज का महत्वपूर्ण घटक है। पत्रकारिता को लोकतांत्रिक ढांचे का चतुर्थ स्तंभ कहा गया है। पत्रकारिता के महत्व को स्पष्ट करते हुए डॉक्टर कृष्ण बिहारी मिश्र लिखते हैं - "पत्रकारिता आधुनिकता की एक विशिष्ट उपलब्धि है" । कह सकते है की पत्रकारिता हमारे समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा है। जन संचार में निहित जन्म की सूचना और ज्ञान की आशा-आकांक्षा संतुष्ट करने का यदि कोई सर्व सुलभ माध्यम है तो वह है 'पत्रकारिता' । पत्रकारिता को आज मुख्यत: दो भागों में बांटा गया है - प्रिंट मीडिया एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया। यद्यपि आज इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का प्रचार और वर्चस्व बड़ा है तथापि प्रिंट मीडिया अर्थात समाचार पत्र पत्रिकाए पत्रकारिता का बहुप्रचलित चेहरा है। जन जन तक उपलब्धता के गुण के कारण विभिन्न चुनौतियों के बाद भी समाचार पत्रों ने जनता के बीच अपनी पहुंच बनाए रखी है। समाचार पत्रों के महत्व को लक्षित करते हुए डॉक्टर रमेश कुमार जैन लिखते हैं - " लोकतंत्र में समाचार पत्रों का महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि जनता को देश-विदेश की गतिविधियों से परिचित कराने के लिए वही एकमात्र साधन है जनमत और जन्मदृष्टिकोण को प्रकट करने का भी वह सर्वोत्कृष्ट श्रोत इस वक्तव्य को वर्तमान परिदृश्य में कुछ संशोधन के साथ इस प्रकार कर सकता है कि आज भी समाचार पत्र एकमात्र तो नहीं बहुप्रचलित एवं जन सुलभ साधन अवश्य है।

पत्रकारिता और भाषा का परस्पर प्रकार संबंध है। यदि पत्र-पत्रिकाएं सामाजिक संप्रेषण का माध्यम है तो भाषा उस माध्यम का प्राणतत्व। भाषा के अभाव में संप्रेषण संभव नहीं है। हिंदी पत्रकारिता औरहिंदी भाषा एक और समानता भी दृष्टिगत होती है । वह है अस्तित्व के संकट के प्रश्न की। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भूमंडलीयकरण की जो आंधी आई उसने हिंदी भाषा के अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया। अंग्रेजी के बढ़ते वर्चस्व ने यह आशंका उत्पन्न कर दी कि हिंदी भाषा अपना विस्तृत क्षेत्र संरक्षित नहीं कर सकेगी। हिंदी भाषा की प्रयुक्ति का क्षेत्र होने के कारण हिंदी भाषा और साहित्य के साथ हिंदी पत्रकारिता का अस्तित्व भी प्रश्न के दायरे में था। किंतु सुखद तथ्य यह है कि तमाम चुनौतियों का सामना करते हुए आज हिंदी भाषा और हिंदी पत्रकारिता मजबूती से अपने पैर जमाये खड़ी है। हिंदी पत्रकारिता के संदर्भ में अरविंद मोहन लिखते हैं ख्र "अपने यहां पिछले 25 वर्षों में एक और बड़ा बदलाव हुआ है - अंग्रेजी हिंदी या देशी भाषाओं की पत्रकारिता का समीकरण बदला है शासन की भाषा होने का लाभ अंग्रेजी को अभी है लेकिन प्रिंट मीडिया में और धीरे-धीरे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में भी अंग्रेजी का वर्चस्व टूटा है। हिंदी पत्र पत्रिकाओं की प्रसार संख्या पहुंच और पूंजी सभी में अपूर्व वृद्धि हुई है।

समाचारों की इस सामाजिक अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है अत: इस संदर्भ में विचारणीय प्रश्न यह है कि समाचार पत्रों की भाषा कैसी होनी चाहिए ? इस प्रश्न के उत्तर में यह तथ्य सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि समाचार पत्रों की भाषा भाषा की विशेषता प्रोक्ति होती है। अभिव्यक्ति के अलग-अलग स्वरूपों के लिए भाषा का स्वरूप अलग अलग ही होता है। कथा साहित्य की भाषा अलग होती है कार्यालयों की भाषा अलग उसी प्रकार समाचार पत्रों की भाषा भी अलग होती है । साहित्यिक भाषा में जहां तत्सम शब्दों का बाहुल्य होता है वही कार्यालयीन भाषा में परिभाषिक शब्दों की अधिकता होती है। इसी प्रकार इन दोनों से विलग समाचार पत्रों की भाषा में साधारण बोलचाल की शब्दावली प्रयुक्त की जाती। समाचार पत्रों की भाषा को भाषा की अन्य प्र युक्तियों से अलग करती है। समाचार पत्रों की भाषा कैसी होनी चाहिए इस संबंध में अनेक विचारकों ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। डॉ. माणिक मृगेश इस संबंध में लिखते हैं ख्र "समाचार पत्रों की भाषा बोलचाल की और रपटीली होनी चाहिए।" इसी प्रकार हम रमेश कुमार वर्णवाल समाचार पत्रों की भाषा पर विचार करते हुए उसे साहित्यिक कार्यालय एवं अंतवैयक्तिक संचार से भिन्न न मानते हैं हुए व्यापक जन के अनुरूप होने की वकालत करते हैं।

समाचार पत्रों की भाषा के स्वरुप को निर्धारित करते हुए डॉक्टर अजय कुमार सिंह ने उसमें सम्प्रेषणीयता का गुण आवश्यक माना है वह लिखते हैं- "समाचार लिखते समय संप्रेषण की अनिवार्य शर्त को ध्यान में रखकर लिखना पड़ता है। सभी को बात समझ में आ जाए, इस प्रयास के साथ तैयार किए गए वाक्यों में जितनी सरलता एवं सहजता निहित होगी उतनी ही संप्रेषणीयता समाचार में आएगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि समाचार पत्रों की भाषा अपना विशिष्ट स्वरूप रखती है, जिसमें सामान्यीकरण के गुण की महती आवश्यकता है। समाचार पत्रों की भाषा आवश्यकतानुरुप अपनी विभिन्न प्रयुक्तियाँ निर्मित

करती हैं। समाचार-पत्र, पत्रिकाओं के भी अपने भेद-प्रभेद हैं जिनका प्रभाव भाषा पर पड़ता है। यथा दैनिक-समाचार पत्र और साप्ताहिक-समाचार पत्र की भाषा प्रयुक्ति एक नहीं हो सकती। क्योंकि दैनिक समाचार पत्रों में समाचार छपने के कुछ घंटे पहले के या अधिक से अधिक एक दिन पुराने होते हैं। अत: व्यक्ति भाषा की मानकता अथवा शुद्धि पर अधिक ध्यान नहीं दे पाता। जबकि साप्ताहिकी समाचार पत्रों के संपादक एवं संवाददाता के पास सोचने समझने एवं मसौदा तैयार करने का अपेक्षाकृत समय रहता है। इसी कारण साप्ताहिक की पत्रों की भाषा दैनिक पत्रों की भाषा की अपेक्षा अधिक परिष्कृत होती है।

इस विभाजन के अतिरिक्त समाचार पत्रों की भाषा को प्रभावित करने वाला एक अन्य प्रमुख तत्व है भाषा प्रयोग का विषय, अर्थात समाचार पत्र में विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत विभिन्न विषयों के समाचार प्रकाशित होते है । इन विविध विषयों के लिए अलग-अलग अभिव्यक्तियों की आवश्यकता होती है। यथा - संपादकीय की भाषा अलग होती है तो बाजार भाव की अलग, राजनीति की अलग, तो खेलकूद की अलग, विज्ञापनों की अलग । साथ ही समाचार पत्रों पर क्षेत्र विशेष की स्थानीय भाषा का भी प्रभाव पड़ता है। संप्रेषणीयता यदि समाचार पत्रों की भाषा का लक्ष्य है तो सरलता उसका आवश्यक गुण।

हिंदी समाचार पत्रों का इतिहास लगभग 189 वर्ष पुराना है। इस दौरान हिंदी में अपना रूप समय-समय पर आवश्यकता अनुरूप परिवर्तित किया है। इस क्रम में भारतेंदु एवं द्विवेदी जी जैसे पुरोधाओं में हिंदी भाषा की शुद्धता को जहां आदर्श माना, वही प्रभाष जोशी जैसे पत्रकार भी हुए जिन्होंने व्याकरण की कठोर जकड़न से हिंदी भाषा को आजाद करा जनसुलभ बनाने पर जोर दिया। हिंदी का स्वरूप निरंतर अवश्य बदला पर प्रयोग के साथ और ज्ञान के अभाव में वह दूषित नहीं हुई थी, किंतु यदि हम आज के समाचार पत्रों की भाषा पर दृष्टि डालें तो पाएंगे की बाजार के दबाव और संपादकों एवं संवाददाताओं की अनदेखी के कारण उसका स्वरूप भ्रष्ट हुआ है । आवश्यकता की मांग के अनुरूप मिलने वाली छूट के नाम पर होने के कगार पर पहुंच रही है।

समाचार पत्रों की भाषा कैसी होनी चाहिए, यह बात हुई आदर्श की। अब बात करें व्यवहार की कि आज समाचार पत्रों में प्रयुक्त भाषा का स्वरूप वास्तव कैसा है ? क्या भाषा कि प्रयुक्ति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह कर रही है ? इसका विवेचन हम समाचार पत्रों के शीर्षक में कर सकते हैं। आज हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है जो की आवश्यकता के अनुसार कई बार उचित भी होता है। समाचार पत्रों की भाषा के लिए आम जन में प्रचलित भाषा का प्रयोग ही अपेक्षित होता है जैसे 'टूर्नामेंट' के लिए हिंदी में 'प्रतियोगिता' शब्द पर उपयोग उपलब्ध है तथापि प्रचलन में टी 20 टूर्नामेंट ही है अत: यहाँ टूर्नामेंट का प्रयोग बहुत खटकता नहीं। इसी प्रकारयदि हम देखें कि प्री-पेड मीटर प्रयोग परिभाषिक होता है। शब्द के रुप में प्रयुक्त होता है। अत: दोनों ही जगह हिंदी और अंग्रेजी का मिश्रित प्रयोग स्वीकार्य है। इसी प्रकार कहीं-कहीं हम संस्कृत निष्ठ हिंदी शब्दावली और अरबी और फारसी की शब्दावली का मिश्रित प्रयोग देखतें हैं।

किंतु इसके विपरीत अनावश्यक रूप से भाषा के संकर प्रयोग जनता के समक्ष अच्छे उदाहरण नहीं कहे जा सकते। अपने आरंभिक काल में पत्रकारिता को एक मिशन की तरह समझा जाता था, तथा इसका उद्देश्य केवल सूचना प्रदान करना नहीं वरन जनता को शिक्षित करना भी था। आज पत्रकारिता के उद्देश्य समय की मांग के अनुरूप परिवर्तित अवश्य हुए हैं, किंतु मूल उद्देश्यों की अनदेखी कर पत्रकारिता का हितसाधन नहीं होता है। अत: भाषा के प्रयोगों के प्रति सजगता आवश्यक है। यही कारण है कि हिंदी समाचार-पत्रों में अंग्रेजी के शब्दों के आवश्यक प्रयोग को उचित नहीं ठहराया जा सकता।

वास्तव में जिस भाषा में सोचा गया है, उसी भाषा में लिख भी दिया जाता है। जहां जिस क्रम में जो शब्द दिमाग में आया वही अंकित कर दिया गया। जबकि भाषा के प्रयोग में एक सर्वमान्य तथ्य यह है कि बोलने और लिखने की भाषा में अंतर होता है। होना भी चाहिए। निस्संदेह समाचार पत्रों की भाषा साहित्य की टकसाली भाषा नहीं हो सकती। सरलता उसकी पहली शर्त है तथापि यह अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए कि समाचार पत्र जनता को केवल सूचनाएं उपलब्ध करवाने का माध्यम नहीं है, वरन जनसामान्य को शिक्षित एवं संस्कारित करने का महान उत्तरदायित्व भी उनके कंधों पर है। मर्यादित भाषा के प्रयोग कि उनसे अपेक्षा की जाती है।

कई बार ह्य स्थान की दुहाई देकर हम हिंदी के प्रचलित शब्दों की जगह भी अंग्रेजी के शब्दों का ही प्रयोग करेंगे तो निस्संदेह हम हिंदी का अपकार ही कर रहे हैं। हिंदी के विरोधी जिन तथ्यों की आड़ लेकर हिंदी को प्रचलन से बाहर करना चाहते हैं यदि हिंदीजीवी भी उन्हीं की दुहाई देने लगे तो यह हिंदी के लिए घातक है। विज्ञापन समाचार-पत्रों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है । हिंदी समाचार पत्रों की भाषा की ही भाँति हिंदी में छपने वाले विज्ञापनों की भाषा का हाल भी बुरा है । आम तौर पर अंग्रेजी विज्ञापन का हिंदी अनुवाद होता है। यद्यपि अंग्रेजी शब्दों के स्थान पर उनके स्थानापन्न के रूप में हिंदी शब्द का प्रयोग किए जा सकते हैं। तथापि प्रचलन के आधार पर उक्त प्रयोगों को सर्वथा अनुचित नहीं ठहराया जा सकता।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर पर हम कह सकते हैं कि हिंदी समाचार-पत्र हिंदी भाषी जनता के जीवन का अभिन्न अंग है । वे जनमन की पहचान कर उसे प्रभावित करने में समर्थ है। इस कारण एक महत्त्व उत्तरदायित्व समाचार पत्रों के साथ जुड़ जाता है। हिंदी समाचार पत्रों के संदर्भ में बात करें तो जनभाषा में सही सूचना प्रदान करने के साथ-साथ हिंदी भाषा को लोकप्रिय बनाने और भाषा को सही रूप का संरक्षण करने की जिम्मेदारी भी हिंदी समाचार पत्रों की है। जिस के लिए समाचार पत्रों को भाषा प्रयोक्ति पर ध्यान देना होगा। साथ अंग्रेजी के अतिक्रमण से बचने के लिए हमें हिंदी की शब्द संपदा को अधिक समृद्ध बनाने की ओर भी ध्यान देना होगा । केवल शब्द निर्माण ही पर्याप्त नहीं उनका आमजन में प्रचलन भी आवश्यक है । अंग्रेजी के बराबर खड़े रहने के लिए हिंदी में शब्दावली निर्माण हुआ है और निरंतर हो रहा है किंतु दुखद यह है कि प्रयोग और प्रचलन के अभाव में शब्द भंडार उतना समृद्ध नहीं हो सका है । जन-जन तक पहुंच होने के कारण हिंदी समाचार पत्र इस कार्य में सहायक हो तभी हम हिंदी भाषा के प्रति अपनी भूमिका के साथ न्याय कर सकते हैं । पूर्व में भी पत्रकारिता ने यह कार्य सफलतापूर्वक संपादित किया है। भारतेंदु और महावीर द्विवेदी जैसे नाम और उनके कार्य इसके ज्वलंत उदाहरण है। आज आवश्यकता है ऐसे ही समर्पित पत्रकारों की, जो हिंदी भाषा को उसका प्रदेय दिलाने की सहायता करें । निस्संदेह हमें भाषा के विकास का मार्ग खुला रखना होगा जिसमें भाषा आपने स्वाभाविक रूप में प्रवहमान रह सके किंतु स्वतंत्रता के नाम पर अज्ञान और आलस्य को प्रशिक्षण देने से बचना होगा । हिंदी भाषा में स्वभाव तक शब्दों को स्वीकार करने की प्रवृत्ति है, अत: अन्य भाषाओं के शब्दों के समाहार से वह स्वयं को समृद्ध

करती ही चलेगी । आवश्यकता है उसकी अपनी मूल संवेदना और प्रकृति के संरक्षण की । आशा ही नहीं ऐसा विश्वास है कि हिंदी ने जैसे आज तक अपने को मजबूती से संभाले रही है, आगे भी उसके लिए कोई खतरा नहीं ।

सन्दर्भ-सूची

- जगदीश्वर चतुर्वेदी, माध्यम साम्राज्यवाद, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली
- जगदीश्वर चतुर्वेदी, टेलीविजन संस्कृति और राजनीति, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली
- जोड, सी. ई. एम., इंटरोंडकशन टु मॉडर्न पोलिटिकल थ्योरी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मुंबई
- भारतीय विज्ञापन में नैतिकता- मधु अग्रवाल, राज कमल प्रकाशन , नई दिल्ली, 2000
- आऊटलुक साप्ताहिक ख़ 16 अक्तूबर 2006
- भूमंडलीय ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र ख़ प्रभा खेतान, राज कमल प्रकाशन , नई दिल्ली 1990
- कुमुद शर्मा, विज्ञापन की दुनिया- नटराज प्रकाशन, 2006 शिलर, हरबर्ट आई.,(अनु.) राम कवींद्र सिंह, संचार माध्यम और सांस्कृतिक वर्चस्व, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली,
- जगदीश्वर चतुर्वेदी, मिडिया समग्र, अनामिका प्रकाशन , नई दिल्ली
- धूलिया, सुभाष, सूचना क्रान्ति कि राजनीति और विचारधारा, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली
- हरमन, एडवर्ड एस और मैकचेस्नी, रोवर्ट डब्ल्यू, (अनु.), चंद्रभूषण, भूमंडलीय जनमाध्यम निगम पूजींवाद के नए प्रचारक, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली

अब्दुल कलाम का भारत विकास दर्शन : एक विश्लेषण

कुमारी प्रिती भारती

शोधार्थी, इतिहास विभाग, बी॰ एन॰ मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा

अब्दुल कलाम भारत को एक विकसित राष्ट्र के रूप में प्रवर्तित करने के लिए प्रतिबद्ध थे। इस संबंध में उन्होंने कहा कि हमारे पास प्राकृतिक संसाधन हैं, लेकिन हम उनका लाभ नहीं उठाते। इसका विभिन्न कारण खराब नेतृत्व, मूल्य-संवर्धन का अभाव इत्यादि हो सकते हैं। एक कहावत है कि एक भेड़ के नेतृत्व में शेरों की सेना, एक शेर के नेतृत्व में भेड़ों की सेना से युद्ध हार जाएगी। अभी सबसे अधिक आवश्यकता स्वप्नद्रष्टा तथा योग्य नेतृत्व की है, जो अज्ञानता के अंधकार को दूर कर सके।

विकास का एक अन्य प्रेरक है, साक्षरता। एक अशिक्षित देश कभी भी प्रगति नहीं कर सकता है। हमें 'महान् भारत' नहीं बल्कि 'साक्षर भारत' का सपना देखना चाहिए।

मेरा यह भी मानना है कि हममें वैश्विक अर्थव्यवस्था में अपने उत्पादों को बेचने की आक्रामक प्रवृत्ति का अभाव है। हम इसके बजाय 'अमेरिका में निर्मित' से प्रभावित हैं। हमें भारतीय उत्पादों को प्रोत्साहित करना चाहिए और उनका प्रभावपूर्ण तरीके से विपणन करना चाहिए।

हमें अपनी जैव-विविधाता को भी पहचानना चाहिए और उन्हें पेटेन्ट कराना चाहिए। साथ ही हमें बढ़ती जनसंख्या के संकट पर भी एक निगाह रखनी चाहिए, क्योंकि मात्र में वृद्धि गुणवत्ता में कमी को प्रेरित करेगी। इसके लिए मैं चीनी सरकार द्वारा उठाए गए सख्त कदमों का सुझाव दूँगा।

भारत जैसा लोकतांत्रिक देश किसी भी विकसित देश को पछाड़ सकता है, यदि एक बार उसके लोग साथ-साथ चलें। विकास अकेले दम पर नहीं हो सकता। वह देश के लोगों, विकास का नेतृत्व करनेवाले लोगों तथा युवाओं की सक्रिय भागीदारी के द्वारा संभव होगा।[1]

डॉ॰ कलाम के विचारानुसार एक विकसित देश वह है जिसके पास आर्थिक संपन्नता तथा राष्ट्रीय सुरक्षा पर व्यापक रूप से ध्यान देने तथा इन उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिए समन्वित रणनीतियाँ, प्रौद्योगिकियाँ तथा मिशन विकसित करने की योग्यता और क्षमता हो। अतः भारतीय संदर्भ में, आर्थिक विकास तथा राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए प्रौद्योगिकी ही प्रेरक शक्ति हो सकती है।

उपर्युक्त वास्तविकता को समझते हुए राष्ट्रीय विशेषज्ञों की दो भिन्न धाराओं- टेक्नालॉजी इन्फॉरमेशन फोरकास्टिंग असेसमेंट काउंसिल (टी.आई.एफ.ए.सी.) जो विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विभाग के अंतर्गत एक स्वायत्त संगठन है और डिपार्टमेंट ऑफ डिफेंस रिसर्च एंड डेवलपमेंट (रक्षा अनुसंधान तथा विकास विभाग)- द्वारा दो दस्तावेज तैयार किए गए हैं। ये हैं 17 खंडों में 'टेक्नोलॉजी विजन 2020' तथा 'इंटीग्रेटेड स्ट्रेटजीज, टेक्नोलॉजी एंड मिशंस फॉर कॉम्प्रिहेंसिव नेशनल सिक्योरिटी' (विस्तृत राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए समन्वित रणनीतियाँ, प्रौद्योगिकियाँ तथा मिशन)। इन दोनों दस्तावेजों में व्यापक रूप से आर्थिक विकास के पहलुओं पर चर्चा की गई है और प्रौद्योगिकी को संयोजक तत्व माना गया है। इन दोनों दस्तावेजों के मिश्रण से इंडिया मिलेनियम मिशंस (भारत सहस्त्राब्दि मिशन) की उत्पत्ति हुई है, जो वर्ष 2020 तक एक शक्तिशाली तथा विकसित भारत बनाने के लिए एक उत्तम रूपरेखा तथा नक्शा प्रदान करता है। कलाम के विकास दर्शन का उपरोक्त क्रियाकलापों पर अमिट छाप है।

कलाम के अनुसार समन्वित प्रयास के द्वारा ही भारत को एक विकसित राष्ट्र के रूप में परिणत किया जा सकता है। समन्वित प्रयास के लिए भारत की केंद्रीय क्षमता पर आधारित पाँच क्षेत्रों को पहचाना गया है। इन केंद्रीय क्षेत्रें में विकास का अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों पर भी प्रभाव पड़ता है। विकास हेतु चयनित पाँच क्षेत्र निम्नलिखित हैं -

(क) कृषि तथा कृषि-खाद्य प्रसंस्करण : भारत के पास विशाल उर्वर भूमि है और विश्व में अनाज के उत्पादन में हम दूसरे स्थान तथा फल के उत्पादन में पहले स्थान पर हैं, लेकिन उत्पादकता के संदर्भ में हम पैंतालिसवें स्थान पर हैं। हमें उच्च पोषण तथा गुणवत्तावाले खाद्यान्न उपजाने की आवश्यकता है ताकि इस क्षेत्र में दूसरी हरित क्रांति लाकर निर्यात को प्रोत्साहन मिल सके। हमें नवीन खाद्य प्रसंस्करण प्रौद्योगिकियों के इस्तेमाल द्वारा कृषि उत्पादों में मूल्य-संवर्धन करना चाहिए। कृषि तथा कृषि-खाद्य संसाधन ग्रामीण लोगों के जीवन में खुशहाली ला सकता है और आर्थिक विकास की रफ्तार को तेज कर सकता है।

(ख) शिक्षा तथा स्वास्थ्य : एक विकसित राष्ट्र के नागरिकों का जीवन स्तर उच्च होना चाहिए जिसके लिए बेहतर शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएँ एक पूर्वापेक्षा है। ज्ञान से संपन्न मस्तिष्क उत्पन्न करने के लिए शिक्षा महत्वपूर्ण है, ताकि नए विचार पल्लवित हो सके। दुर्भाग्यवश हमारी शिक्षा प्रणाली ऐसा नहीं करती। उसमें एक प्रकार की सीखने की प्रक्रिया होनी चाहिए, न कि पढ़ने की या पुनरूत्पादन प्रक्रिया। ग्रामीण क्षेत्रें में सभी बच्चों को शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। टेली-शिक्षा लाभदायक हो सकती है।

शिक्षा तथा स्वास्थ्य दोनों अंतर्संबद्ध हैं। स्वस्थ जीवन तथा जनसंख्या नियंत्रण में मदद करते हैं जिससे सामाजिक सुरक्षा प्राप्त होती है। जैव-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास द्वारा स्वास्थ्य क्षेत्र में काफी सुधार हो सकता है। भारत के पास औषधीय जड़ी-बूटियों की संपदा है और जैव-प्रौद्योगिकीविदों को इन संसाधानों को मानव जाति के लिए उपयोगी बनाने के लिए इनका लाभ उठाना चाहिए। भारत में एड्स और कैंसर के लिए टीके विकसित किया जाना चाहिए।

(ग) आधारभूत सुविधाएँ : सड़कों तथा बिजली द्वारा सभी ग्रामीण क्षेत्रों की कनेक्टिविटी आवश्यक है। भारत को एक बौद्धिक महाशक्ति में बदलने के लिए ज्ञान आधारित ग्रामीण विकास एक अनिवार्य आवश्यकता है। उच्च ग्रामीण चौतरफा कनेक्टिविटी ग्रामीण इलाकों तक शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आर्थिक गतिशीलता को पहुँचाने की न्यूनतम अनिवार्यता है। ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाएँ उपलब्ध कराना (पी.यू.आर.ए.) का कार्यक्रम बड़े पैमाने पर मदद दे सकता है जो ग्रामीण क्षेत्रें में जीवन-स्तर सुधारने तथा शहरी संकुलन हटाने के लिए विशेष सुझाव देता है।

'पुरा' द्वारा भौतिक कनेक्टिविटी उपलब्ध कराने के लिए रिंग रोड, रेल कनेक्टिविटी, सार्वजनिक आधारभूत तंत्र का निर्माण है ताकि लोगों तथा माल का परिवहन संभव हो, स्कूलों तथा स्वास्थ्य केंद्रों की पहुँच में सुधार हो एवं विद्युत, जल तथा संचार नेटवर्क के वितरण में निवेश में कमी हो सके।

'पुरा' में इलेक्ट्रॉनिक कनेक्टिविटी की भी आवश्यकता है। ग्रामीण समूह में सिस्टम ओरिएंटेड एप्रोच के लिए कृषकों तथा ग्रामीणों के लिए टेलीशिक्षा, ग्रामीण इंटरनेट कियॉस्क, सार्वजनिक टेलीफोन प्रणाली, टेलीमेडिसिन, ई-मार्केट, ई-शासन, ई-कॉमर्स आदि की आवश्यकता होगी। इस प्रकार, सूचना प्रौद्योगिकी में क्रांति अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के साथ देश के मूलभूत स्तर पर आवश्यक सामाजिक बदलाव लाएगी। यह ग्रामीणों को बाह्य बाजारों के इस्तेमाल के लिए सामूहिक रूप से कॉल सेंटर, बिजनेस प्रोसेसिंग आउटसोर्सिंग, सॉफ्टवेयर डेवलपमेंट सेंटर आदि स्थापित करने का अवसर भी प्रदान करता है।

बौद्धिक कनेक्टिविटी अर्थात् शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यावसायिक प्रशिक्षण, फसल, जल तथा वन प्रबंधन के लिए उपग्रहों का इस्तेमाल, पर्यावरण सुरक्षा तथा सहकारी उत्पाद विपणन में कनेक्टिविटी के साथ ग्रामीण क्षेत्र को रूपांतरित कर देगी। इलेक्ट्रॉनिक कनेक्टिविटी तथा बौद्धिक कनेक्टिविटी का सम्मिश्रण साक्षरता आंदोलन, टेली शिक्षा, स्वास्थ्य देख-रेख तथा संसाधन प्रबंधान को प्रेरित करेगा।

इसके बाद यह देखा जाएगा कि भौतिक, इलेक्ट्रॉनिक तथा बौद्धिक कनेक्टिविटी का त्रय लघु उद्योगों, कृषि तथा खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों, गोदामों, माइक्रोपावर प्लांटों, नवीकरण योग्य ऊर्जा तथा ग्रामीण बाजारों के माध्यम से आर्थिक कनेक्टिविटी को सामने लाए। यह अधिाक रोजगार अवसर, महिला सशक्तिकरण, शहरी विस्तार, अधिक क्रय शक्ति तथा बेहतर जीवन-स्तर उपलब्ध कराएगा। गाँव न केवल अपना जीवन-स्तर सुधरेंगे बल्कि ग्रामीण सौंदर्य तथा पर्यावरण को भी सुरक्षित रखेंगे। इसके अलावा, कनेक्टिविटी ग्रामीण क्षेत्रों को विश्व के किसी भी भाग से नजदीक ले आती है।

(घ) रणनीतिक व सामरिक क्षेत्र : भारत ने वैमानिकी तथा अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी में काफी प्रगति की है, फिर भी स्वतंत्रता के बाद यह पाँचवें स्थान पर है। हमें उपग्रहों के लिए सौर ऊर्जा प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए तथा हाईपरप्लेनों का प्रयोग करते हुए उन उपग्रहों से अपनी बिजली की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए। परमाणु ऊर्जा को रक्षा उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया जाना चाहिए।

(ड़) सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी : इस क्षेत्र को अन्य सभी क्षेत्रें को सूचना तथा कनेक्टिविटी प्रदान करनी चाहिए। सिलिकॉन युग समाप्त हो चुका है। भारत को नेनोप्रौद्योगिकी पर ध्यान देना चाहिए और इस क्षेत्र में नई खोजें करनी चाहिए। सभी ग्रामीण क्षेत्रें के लिए इलेक्ट्रॉनिक कनेक्टिविटी स्थापित की जानी चाहिए और उच्च बैंडविड्थ उपलब्ध कराना चाहिए। सूचना प्रौद्योगिकी हमारी मुख्य क्षमतों में एक है और हमें बड़े पैमाने पर विकसित करना चाहिए।[2]

उपरोक्त मिशंस के संदर्भ में डॉ॰ कलाम का कहना है कि दायित्व चुनौतीपूर्ण हैं, परंतु एक अरब जनसंख्या वाले एक दृढ़ संकल्प देश के लिए साकार योग्य हैं। हमें इस तथ्य का संज्ञान लेना होगा कि विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र होने के बावजूद भारत स्वतंत्रता के पाँच दशकों बाद भी एक विकासशील देश ही है। इस स्थिति में बदलाव जरूरी है और भारत को एक विकसित देश बनाना है।

विकास के लिए दृढ़ निश्चय और एकनिष्ठ समर्पण की आवश्यकता है। हमें यह याद रखना चाहिए कि भारत को विदेशी शासन से आजाद कराने में हमारे पूर्वजों ने बहुत से बलिदान दिए हैं, कठिनाइयों और दु:खों का सामना किया है, ताकि हम स्वतंत्र भारत में रह सकें और अपना मस्तक ऊँचा रख सकें। हमें एक पल के लिए रूककर सोचना चाहिए कि हम अपनी भावी पीढ़ी द्वारा किस प्रकार स्मरण किया जाना चाहेंगे। हमें तभी याद किया जाएगा जब हम अपनी युवा पीढ़ी को आर्थिक संपन्नता तथा हमारी सभ्यतागत विरासत से उत्पन्न एक सक्रिय, समृद्ध तथा सुरक्षित भारत उन्हें देंगे।[3]

डॉ॰ कलाम के मतानुसार एक देश केवल कुछ लोगों के महान् होने से महान् नहीं होता, बल्कि इसलिए महान् होता है कि उस देश में हर कोई महान् होता है। युवाओं को शिक्षा में श्रेष्ठता प्राप्त करनी चाहिए और उन्हें नैतिक मूल्यों तथा समाज कल्याण की भावना के साथ अच्छा मनुष्य बनना चाहिए। युवाओं के समन्वित तथा केंद्रित प्रयास भारत को एक 'विकसित देश' बनाने की चुनौती को पूरा कर सकते हैं। डॉ॰ कलाम को विश्वास है कि भारत के बच्चे तथा युवा विकसित होकर न केवल विभिन्न क्षेत्रें में प्रोफेशनल बनेंगी बल्कि रचनात्मक उद्यमी बनकर दूसरों को रोजगार के अवसर भी उपलब्ध करायेंगे। नेता नए उत्तम संगठन के निर्माता होते हैं। रचनात्मक नेताओं का अनुपात जितना ऊँचा होगा, 'विकसित भारत' के स्वप्न की सफलता की संभावना उतनी ही अधिक होगी।[4]

यथार्थ में बदलता स्वप्न :

डॉ॰ कलाम का विचार है कि भारत को पहले छह विकसित देशों में शामिल होने के लिए उसे आर्थिक तथा व्यावसायिक रूप से शक्तिशाली होना होगा। सकल घरेलू उत्पाद को 10 प्रतिशत से अधिाक करना होगा, गरीबी और बेराजगारी का साया करना होगा।

पांच बड़े मिशन, जिनकी विस्तार से चर्चा की गई है, यानी कृषि तथा खाद्य प्रसंस्करण, शिक्षा तथा स्वास्थ्य, सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी, विद्युत सहित आधारभूत तंत्र तथा रणनीतिक क्षेत्र से संबंधित मिशनों को युद्ध स्तर पर आरंभ करना होगा। इसके अतिरिक्त विकास के लिए नदियों की नेटवर्किंग,

पी॰यू॰आर॰ए॰ तथा ग्रामीण जीवन की समृद्धि और पर्यटन अन्य आवश्यक लक्ष्य क्षेत्र हैं। भारत के पास इन क्षेत्रें में प्राकृतिक संसाधन तथा उत्तम मानव संसाधन की मजबूत क्षमता है।

इन मिशनों में अंतर्संबंधों के नेटवर्क समझने और अनुसंधान व विकास संस्थानों, शैक्षिक संस्थानों तथा उद्योगों के बीच मजबूत भागीदारी के द्वारा इनका लाभ उठाने की आवश्यकता है। ये भागीदारियाँ उच्च उत्पादकता तथा विकास को प्रेरित करेंगी और वह बदले में श्रेष्ठ प्रौद्योगिकी उत्पादों के निर्यात तथा अर्थ उत्पत्ति को प्रेरित करेंगे।

यह स्वप्न वास्तव में एक चुनौती है और हम इस पर तभी विजय प्राप्त कर सकते हैं जब हम, एक अरब लोग, अन्य सभी साधारण मुद्दों को भूलकर एक देश के रूप में सामने आकर हाथ मिलाएँ। सरकार अकेले इस चुनौती का सामना नहीं कर सकती, सभी क्षेत्रों से संबंध रखने वाले हम भारतीयों को इस स्वप्न को मिशनों में बदलने की समन्वित प्रक्रिया में भारत को देशों के समूह में सही स्थान के साथ एक समृद्ध, खुशहाल शांतिपूर्ण तथा सुरक्षित देश बनाने में मदद करनी होगी।

संदर्भ

1. अब्दुल कलाम, ए॰ पी॰ जे॰ तथा पिल्लै, ए॰ शिवताणु (2013) *मेरे सपनों का भारत* , नई दिल्ली : प्रभात पेपरबैक्स में राहुल दत्ता राय, ऐरो- इंजीनियरिंग का छात्र का वक्तव्य उद्धृत, पृ॰ 181
2. पूर्वोक्त, पृ॰ 37-38, 186-170, 182-183
3. अब्दुल कलाम, ए॰ पी॰ जे॰ तथा सुंदर राजन, वाई (2012) *भारत 2020 : नव निर्माण की रूपरेखा*, हरिमोहन शर्मा अनूदित, *इंडिया 2020 : ए विजन फॉर द न्यू मिलेनियम* का हिन्दी अनुवाद, नई दिल्ली : राजपाल एंड सन्स, पृ॰ 262-263
4. अब्दुल कलाम, ए॰ पी॰ जे॰ तथा सुंदर राजन, वाई (2012) *महाशक्ति भारत*, सचिन सिंहल अनूदित, *मिशन इंडिया* का हिन्दी अनुवाद, नई दिल्ली : प्रभात पेपर बैक्स, पृ॰ 13-27.

बिहार के किसान आंदोलन में राष्ट्रीय कांग्रेस का योगदान

डॉ॰ सतेन्द्र प्रसाद यादव

एसोशिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, वाई॰ एन॰ कॉलेज, दिघवारा (सारण)

ब्रिटिश साम्राज्यवादी शोषणकारी नीति का खामियाजा सबसे अधिक किसानों को ही चुकाना पड़ा था। शुरू से ही अंग्रेजी इस्ट इण्डिया कंपनी एवं ब्रिटिश राज्य के अधिकारियों ने भारत के किसानों से अधिक राजस्व वसूलना अपना अधिकार मानता रहा। जमींदारों और उनके गुमास्तों ने भी किसानों का खून चुसने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी। वहीं बागान मालिकों ने इस तरह की पस्थितियां पैदा कर दी जिससे किसी भी रैयत के लिए शांतिपूर्ण जीवन जीना मुश्किल हो गया।[1] इस तरह अंग्रेजों द्वारा भारतीय कृषि व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन किये जाने से देश के कृषि जगत में हलचल पैदा हो गई तथा भारतीय कृषक निर्धनता की बेड़ियों में जकड़ गये। परिणामस्वरूप 18वीं एवं 19वीं शताब्दी में कृषकों की अशांति, विरोधों तथा प्रतिरोधों में प्रकट हुई। जिसका मुख्य उद्देश्य सामन्तशाही बन्धनों को तोड़ना अथवा ढीला करना था। उन्होंने भूमिभार 'कर' बढ़ाने, बेदखली तथा साहूकारों की ब्याजखोरी के विरूद्ध विरोध प्रकट करना शुरू कर दिया। उनकी माँगों में मौरूसी अथवा दाखिल का अधिकार और भारक के रूप में अन्न के स्थान पर धन का निश्चित करना था। वर्ग जागृति की अनुपस्थिति में, अथवा कृषकों के सुव्यवस्थित संगठन न होने के कारण कृषकों के विद्रोहों ने राजनीतिक रूप धारण नहीं किया, परन्तु 20वीं शताब्दी में वर्ग जागृति आयी तथा किसान सभाओं की स्थापना हुई।[2] लेकिन बिहार के इतिहास में किसान संघर्षों को केवल बीसवीं शताब्दी की परिघटना नहीं माना जा सकता। खुद उन्नीसवीं सदी का बिहार ही अनेक बहादुराना किसान संघर्षों का साक्षी रहा है, जैसे बिहार का पहाड़िया विद्रोह (1778) के साथ ही आदिवासी किसान जनता ने कई बार बगावत का झंडा ऊंचा किया। छोटानागपुर के तमार में 1785-1795 में आदिवासियों ने विद्रोह करना शुरू कर दिया।[3] इसके बाद चुआर आन्दोलन (1797-1800) के दौरान किसानों का विद्रोह हुआ। इसके बाद मुंडा आदिवासियों ने 1820-1832 में संघर्ष किया। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में बड़े पैमाने पर बंगाल से नीलहे बागान मालिकों ने बिहार में जाकर शरण ली और यहां के किसानों को अपने शोषण का शिकार बनाया। उसके खिलाफ किसानों ने सबसे पहले 1866-67 ई॰ में मधुबनी के पंडौल नामक स्थान में विद्रोह किया। 1883-84 ई॰ में किसानों ने दरभंगा राज के खिलाफ आन्दोलन किया। 1885-86 में संथालों ने भी बगावत किया। पुन: 1888-1901 का मुंडा विद्रोह आदि सर्वाधिक उल्लेखनीय किसान विद्रोह के रूप में जाने जाते हैं। इसके उपरान्त तो उनके विद्रोहों का तांता लग गया। फिर भी ये सब किसी राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य और आधुनिक विचारों से दूर खुद स्थानीय किसान नेताओं की रहनुमाई पर निर्भर किसान विद्रोहों की अलग-अलग घटनाएं हैं। इसके विपरीत बाहर से किया गया हस्तक्षेप वर्त्तमान शताब्दी के किसान संघर्षों की विशेषता रही है, और यह विशेषता ठीक 1917 के चम्पारण सत्याग्रह के दिनों से ही परिलक्षित होती है जब गांधीजी ने पहली बार किसानों के बीच अपना प्रयोग शुरू किया।[4]

चम्पारण में निलहों के द्वारा किसानों पर तरह-तरह के अत्याचार किये जाते थे। किसी किसान में इतनी हिम्मत नहीं थी कि वे नील की खेती करने से इन्कार कर दें। यदि कोई हिम्मत करते तो उस पर हजार तरह के जुल्म किये जाते। उनके घर और खेत लूट लिए जाते। खेत मवेशियों से चरा दिये जाते, जुर्माना वसूल किया जाता। इस डर के मारे प्राय: सभी रैयत तीनकठिया मानकर बीघा पीछे तीन कट्ठा नील बो दिया करते। जब नील तैयार हो जाता तो उसे काटकर कोठी पर पहुँचा देना पड़ता था। इसके लिए रैयतों को कुछ खास नहीं मिलता। पुलिस एवं कचहरी निलहों की ही मदद करते थे। तंग आकर किसानों ने अनेक बार बगावत की, लेकिन उनके सभी आन्दोलन दबा दिये गये। 1907-08 ई॰ में निलहों के अत्याचारों के खिलाफ किसानों ने एक गुप्त संगठन कायम किया। 'बिहारी' के सम्पादक महेश नारायण ने सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। बिहार प्रान्तीय सम्मेलन में भी समय-समय पर निलहों के अत्याचारों की भर्त्सना की गयी। 10 अप्रैल 1914 को ब्रज किशोर प्रसाद ने बिहार प्रान्तीय सम्मेलन में अध्यक्षीय पद से भाषण देते हुए चम्पारण के किसानों पर हो रहे अत्याचारों को समाप्त करने पर बल दिया। 1916 ई॰ के कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में ब्रजकिशोर प्रसाद चम्पारण के एक मध्यवर्गीय किसान राजकुमार शुक्ल के साथ महात्मा गाँधी से भेट कर उन्हें सारी बातों से अवगत कराया। तदनुसार महात्मा गाँधी 10 अप्रैल, 1917 ई॰ को पटना पहुँचे। 15 अप्रैल को वे मोतिहारी पहुँचे। स्थानीय प्रशासन ने उनके आगमन पर रोक लगा दी और गाँधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया। अदालत में उन्होंने अपना अपराध स्वीकार किया लेकिन इस बात पर जोर दिया कि उन्होंने ऐसा दमन का प्रतिकार करने के लिए किया है। अंतत: प्रशासन को झुकना पड़ा। बिहार के उपराज्यपाल एडवर्ड अलबर्ट गेट ने एक जाँच समिति बनायी जिसके एक सदस्य गाँधीजी भी थे। इस समिति की अनुशंसा पर ही दमनकारी तीनकठिया व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया। रैयत को इसके अलावा और भी सुविधाएँ प्राप्त हुई। देखते-ही-देखते गाँधीजी पूरे भारत के मानस पटल पर छा गये। भारत में उनके सत्याग्रह एवं अहिंसा के अमोध अस्त्र का पहला सफल परीक्षण हुआ था।[5] आन्दोलन को व्यापक जन समर्थन मिला, क्योंकि जिले की पूरी आबादी किसी न किसी कारण से निलहे साहबों के खिलाफ थी। खेतिहर मजदूर असंतुष्ट थे, क्योंकि उन्हें प्रचलित दरों पर मजदूरी नहीं मिलती थी, ऊपर से उन्हें बेगार के लिए मजबूर किया जाता था। पट्टेदार लोग भी तिनकठिया प्रथा मानने की मजबूरी, नील की कीमत बेहद कम होने, गाड़ी-सट्टी के अलाभकारी होने और अबवाव तथा दस्तुरी जैसे उगाही, इत्यादि की वजह से निलहों के खिलाफ थे और इसके अलावे वे निलहे साहबों से उनके गुमाश्तों द्वारा तंग किये जाने के वजह

से भी विक्षुब्ध थे। मोचियों की हालत इसलिए दयनीय थी कि खाल बटोरने के उनके अधिकार को निलहों ने छीन लिया था। छोटे दुकानदार इसलिए दु:खी थे कि उनकी खरीद-बिक्री का दायरा सीमित कर दिया गया था और उन पर गैरकानूनी कर लाद दिये गये थे। सूदखोर व व्यापारी भी अपने व्यवसाय के विस्तार में बगान मालिकों को बाधा समझते थे, क्योंकि नील की खेती के साथ नगद भुगतान प्रणाली जुड़ी होने के कारण खेती से सीधे तौर पर सम्बन्धित नहीं थे इसलिए वे बागान मालिकों के विरूद्ध किसी प्रत्यक्ष झगड़े में नहीं फंसे, लेकिन चूँकि वे इस संभावना से भलीभाँति वाकिफ थे कि बागान मालिकों के चले जाने पर स्वयं उनकी शक्ति और मुनाफे में बेहतर इजाफा होगा, आज उन्होंने इस आन्दोलन को जारी रखने के वास्ते तमाम किस्म की भौतिक सहायता प्रदान की। निश्चित तौर पर हम कह सकते हैं कि चम्पारण सत्याग्रह के आरम्भ से ही धनी किसानों, जमींदारों ने शामिल होकर आन्दोलन की व्यापकता को सीमित कर दिया। जब गाँधीजी ने इसकी जाँच में जमींदारों और किसानों के बीच के आर्थिक सम्बन्धों को गहराई से छानबीन की कोशिश की तो स्थानीय राजनीतिज्ञों ने इसे रोक दिया क्योंकि वे जमींदार वर्ग को अपने विरोध में खड़ा करना नहीं चाहते थे। गाँधीजी का यह विचार था कि ऐसा कोई आन्दोलन जो देश के विभिन्न वर्गों के बीच हो वर्ग-विरोध पैदा कर स्वतंत्रता आन्दोलन को कमजोर बनायेगा। अत: किसान आन्दोलन को राष्ट्रवाद का स्वरूप देकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष को तेज किया जा सकता है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए गाँधीजी ने 'चम्पारण अग्रेरियन इन्क्वायरी कमिटी' की रपट को एक छोटे से पारे में समेट दिया था। इससे मुख्यत: तीनकठिया पद्धति की खेती से नील की कीमत वृद्धि से सिर्फ धनी किसानों को लाभ पहुँचता था न कि गरीब मजदूरों को। इस प्रकार गाँधीजी का कृषक मजदूरों से सम्पर्क सतही रह गया और किसानों के प्रति उनका रवैया था तो राजनीतिज्ञ या फिर करूणमय ही रह गया।[6]

चम्पारण सत्याग्रह के बारे में प्रोफेसर धनागरे ने ठीक ही लिखा है कि चम्पारण की घटनाओं ने भविष्य में गाँधीवादी किसान आन्दोलन के आकार को स्पष्ट कर दिया था। उनके अनुसार गाँधीवादी किसान आन्दोलन, की प्रमुख विशेषताएँ निम्न थी :-

1. कृषि सम्बन्धी सामाजिक संरचना में कोई बुनियादी परिवर्तन की बात न करके सतही समस्याओं को उठाना।
2. अधिकारियों से समझौते के साथ आन्दोलन की वापसी।
3. सम्पन्न किसानों का समर्थन।
4. किसानों के बीच पैदा हो रही क्रांतिकारी भावनाओं को समाप्त करने के लिए कुछ रचनात्मक कार्यक्रमों के कार्यान्वयन की कोशिश।[7]

अगर 'बिहार प्रदेश कांग्रेस सभा' के आन्दोलन के पूर्व के किसान आन्दोलन की समीक्षा की जाए तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बिहार के अधिकांश कांग्रेसी नेता पक्के गाँधीवादी थे। गाँधीवादी तरीके अपनाने के कारण इनका कार्य काश्तकारों के दु:खों की जाँच के लिए आयोग बैठाने, जमींदारों को किसानों के साथ अच्छा व्यवहार करने की सलाह देने तथा किसानों को बराबर संयत रहने की आज्ञा देने के आगे जाने की कल्पना ही नहीं कर सकते थे। इसका कारण यह भी माना जाता है कि कांग्रेस के अधिकांश नेता ऊँची जाति के तथा छोटे जमींदार या अच्छे किसान परिवार के थे।[8]

सहजानन्द के विचारों का क्रम-विकास बिहार के किसान-संघर्ष की बदलती धारा और किसान सभा के क्रांतिकारीकरण की प्रक्रिया की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत करता है। उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले के रहने वाले स्वामी सहजानन्द सरस्वती उर्फ नवरंग राय ने बिहार को अपना कर्मभूमि बना लिया था। शुरू में वे महात्मा गांधी के व्यक्तित्व एवं उनके कार्यक्रमों से अभिभूत हुए लेकिन धीरे-धीरे गांधीवादी कार्यक्रमों एवं उनके क्रियान्वयन के प्रति उनमें उदासीनता का भाव पैदा होने लगा। उन्होंने महसूस किया कि कांग्रेस के उपर पूंजीवादी बुर्जुआ नेतृत्व हावी है। उससे किसानों एवं मजदूरों के हित साधन की कामना नहीं की जा सकती थी। अस्तु कांग्रेस में रहकर उन्होंने किसानेां की समस्याओं पर विशेष ध्यान देना शुरू किया।

लेकिन सहजानंद प्रारंभ में भूमिहार महासभा में शामिल हुए थे और इसके पीछे उनका लक्ष्य था ब्राह्मण का दर्जा पाने के लिए भूमिहारों के दावों को मजबूत करना। लेकिन वे इतने से ही संतुष्ट न थे और जल्द ही वे भूमिहार जाति की युवा पीढ़ी को बड़े पैमाने पर असहयोग आन्दोलन में भाग लेने को उत्प्रेरित करने लगे। 1925-26 के आते-आते महासभा दो गुटों में विभाजित हो गयी 'नरम पंथ' और 'गरम पंथ'। 'नरम पंथ' गुट का नेतृत्व सर गणेश दत्त के हाथों था, जो एक बड़े जमींदार और अंग्रेजों के जी हुजूरिये थे, और 'गरमपंथ' गुट के नेता सहजानन्द थे। शीघ्र ही पटना के निकट बिहटा में स्थित सहजानन्द का आश्रम बिहार के किसान आन्दोलन का केन्द्र बिन्दु बन गया जो न केवल भूमिहारों को, बल्कि अन्य जातियों के पट्टेदारों को भी आकर्षित कर रहा था। यह महसूस करते हुए कि सहजानन्द अपना रास्ता धीरे-धीरे बदल रहे हैं, धनी, भूमिहार भूस्वामियों ने उन्हें चन्दा देना बन्द कर दिया। लेकिन इससे सहजानन्द के मन में यही संदेह पुष्ट हुआ कि- ''जातीय सभाएँ तथा जाति धर्म के नाम पर दिये दान के जरिये धनिक लोग इन सभाओं को अपने हाथ का खिलौना बनाकर रखते हैं और अपनी जमींदारी, अपना व्यापार और अपना प्रभुत्व दृढ़ कर लेते हैं, न कि परलोक या उपकार के लिए कुछ भी करते हैं।''[9]

यह एक रोचक तथ्य है कि किसान सभा के निर्माण के समय उनका उद्देश्य किसान संघर्ष को प्रोत्साहित करना नहीं, बल्कि ग्रामीण इलाकों में फैल रहे तनाव की रोकथाम करना था। बाद में सहजानन्द ने खुद भी स्वीकार किया था कि ''किसान सभा बनाने के पीछे मेरा उद्देश्य केवल प्रचार और आन्दोलन के जरिये किसानों का दु:ख दूर करना था और इसके जरिये किसानों और जमींदारों के बीच झगड़े खत्म कर देना था। क्योंकि ये झगड़े भड़क सकते थे और इनसे आजादी की लड़ाई में सभी लोगों की एकता टूटेगी। इसलिए किसान सभा का संगठन बनाते समय मैं पूरा समझौतावादी था।''

1929 ई॰ में बिहार प्रदेश किसान सभा की स्थापना होते ही एक महत्वपूर्ण घटना यह हुई कि पट्टेदारी कानून में संशोधन का प्रस्ताव वापस ले लिया गया। किसानों ने इसे एक महत्वपूर्ण जीत समझा और इससे उनका मनोबल बुलंदी पर पहुँच गया और तब शुरू हुआ उथल-पुथल भरी राजनीतिक व आर्थिक घटनाओं का सिलसिला। सविनय अवज्ञा आन्दोलन, महामंदी और प्रान्तीय स्वायत्ता। किसान सभा इन लहरों पर सवार होकर लगातार मजबूत होती चली गई। राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की इन घटनाओं ने अनुकूल वातावरण जरूर मुहैया किया था, लेकिन बुनियादी तौर पर सभा ने अपनी ताकत अन्दर से ही; यानी उस अनेक संघर्षों से प्राप्त की थी, जिनमें बिहार के किसानों का उसने नेतृत्व किया था। यह कहना सही होगा कि किसान सभा एक संगठन से कहीं ज्यादा

एक आन्दोलन थी। किसान सभा द्वारा संचालित महत्वपूर्ण संघर्ष थे- 1933 में पट्टेदारी विधेयक के खिलाफ आन्दोलन, 1933 और पुनः 1938 में गया जिले का खेरा संघर्ष, 1936-38 के दौरान बड़हिया टाल, देबरा, मझियावाँ और अमवारी में वकाश्त आन्दोलन, 1938-39 में बिहटा के डालमिया चीनी मिल के विरूद्ध मजदूरों-किसानों की संयुक्त कार्रवाई आदि। शाहाबाद, सारण, दरभंगा, पटना, चम्पारण और भागलपुर जिले में भी जमकर संघर्ष हुए थे। इन तमाम संघर्षों में सबसे प्रसिद्ध बड़हिया टाल का बकाश्त आन्दोलन था जो न केवल कई वर्षों तक जारी रहा, बल्कि इसमें पट्टेदारी को एक महान जीत हासिल हुई थी। इन आन्दोलनों ने बिहार में कम्युनिस्ट पार्टी की एक मजबूत आधारशिला रखी।

जन-संघर्षों को आधार बनाकर जन-राजनीति के चरणों में प्रवेश करने से लेकर विभाजन के साथ स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक अंग्रेजों को परेशान करने वाला एक महत्वपूर्ण प्रश्न था-खेतिहर वर्गों की समस्याओं, विशेषकर लगान न देने के सवाल पर कांग्रेस का रुख क्या होगा? आधिकारिक दस्तावेजों से इस बात पर चिन्ता जाहिर की गयी है, क्योंकि स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान कांग्रेस की जन-शक्ति का मुख्य आधार खेतिहर वर्ग ही था। राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी और किसान समूहों की एक दूसरे के प्रति दशष्टिकोणों के विश्लेषण के लिए हमें कांग्रेस की नीति की ओर जाना पड़ेगा। कांग्रेस की नीति भी पहले से मौजूद किसान संगठनों को अनुशासन के नाम पर कांग्रेस में मिला लेना था। राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर अनुदार और प्रतिक्रियावादी तत्व संगठन में अपना दबदबा बनाये रखने के लिए ऐसी ही दलील देते थे। वे किसानों और मजदूरों पर अनुशासन तोड़ने का आरोप लगाते थे मानो अनुशासन सिर्फ किसानों और मजदूरों के लिए ही बनाये गये हैं। कांग्रेस के भीतर और बाहर अपना पांव मजबूती से जमाये हुए निहित स्वार्थों को चुनौती देने वाले लोगों के खिलाफ अनुशासन एक कारगर हथियार था।

1920 के दशक में अंग्रेजों को लेकर कांग्रेस की रीति-नीति बहुत साफ नहीं थी। लेकिन भूस्वामियों के सम्बन्ध में बारदोली प्रस्तावों (1922) से स्थिति स्पष्ट थी। सत्तासीन ब्रिटिश राज के खिलाफ संघर्ष करने के परिप्रेक्ष्य में इस तरह के आन्दोलन को एक ऐतिहासिक अनिवार्यता के रूप में मान्यता दी जा सकती है, लेकिन सवाल यह है कि क्या यह इतना सीधा और सरल था। क्या इस तरह की नीति साम्राज्यवाद के विरूद्ध लड़ने मात्र के लिए थी? क्या यह सच नही है कि यह नीति कांग्रेस के भीतर प्रभुत्वशाली सामाजिक गुटों के प्रभाव का परिणाम नहीं थी, अर्थात वे गुट जो कांग्रेस के केवल देश प्रेम के ही चलते न थे अपितु वहां रहते हुए वे अपने वर्ग हितों की रक्षा भी कर रहे थे। किसानों के प्रति कांग्रेस की नीति प्रतिक्रियावादी भूस्वामियों और पूंजीपतियों के गुट जो कांग्रेस से किसी भी तरह जुड़े भी नहीं थे, महत्वपूर्ण मौकों पर प्रभावित करते रहते थे।[10] एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि किस सीमा तक भू-स्वामी साम्राज्यवाद-विरोध में भारतीय जनता के बहु-वर्गीय मोर्चे के संघटक अंग थे? यह कहना किसी भी तरह कोई ढील-ढाल सामान्यीकरण नहीं होगा कि ताल्लुकदारी अथवा जमींदारी वाले क्षेत्रों में ब्रिटिश राज अपने किसी अन्य ढांचे की तुलना में स्थानीय भूस्वामियों के माध्यम से ज्यादा जाना जाता था। साम्राज्यवाद की भाषा में ये भूस्वामी 'अमन चैन के झंडावरदार 'वफादार सेवक' तथा 'विघटनकरी तत्वों के खिलाफ कवच' थे। ब्रिटिश सत्ता को मजबूती प्रदान करने में उनकी अहम् भूमिका थी। छतरी के नवाब के शब्दों में ''जमींदारों की सबसे बड़ी सेवा थी ग्रामीण क्षेत्रों में अमन-चैन कायम रखना।''

किसान सभा के इतिहास को देखने से ऐसा लगता है कि स्वामी सहजानन्द का आन्दोलन न केवल बिहार के देवली, बड़हिया, गया, पटना, समस्तीपुर, हाजीपुर, डुमरॉव आदि में सीमित था बल्कि देश के हर राज्य में इसकी शाखा खुल गयी थी। इनकी लड़ाई ब्रिटिश साम्राज्यवाद, जमींदारों, महाजनों, सूदखोरों और बड़े भूस्वामी के खिलाफ थी, चाहें पंजाब हो, नार्थ-वेस्ट फ्रन्टीयर प्रोविन्स हो, आन्ध्र प्रदेश हो, महाराष्ट्र हो, गुजरात हो। जब स्वामीजी को लगा कि मध्यवर्गी किसान खेत-मजदूर का शोषण करते हैं तो उनका झुकाव खेत मजदूर की तरफ हो गया। खेत मजदूर के बारे में उनका कहना था कि पहले वे किसान थे और जब उनकी जमीन हड़प ली गयी तो वे खुद मजदूर हो गये। इसलिए उन्होंने 'खेत मजदूर' शब्द का प्रयोग शुरू कर दिया।

सन्दर्भ :

1. विनोद मिश्र ; 'आधुनिक इतिहास में बिहार के किसान'', अभिनव कदम-26, वर्ष-16, अंक-26, दिसम्बर 2011-मई 2012, पृ॰ 67
2. विनोद मिश्र ; 'आधुनिक इतिहास में बिहार के किसान'', अभिनव कदम-26, वर्ष-16, अंक-26, दिसम्बर 2011-मई 2012, मऊ, उत्तर प्रदेश, पृ॰ 421
3. गवर्नमेंट ऑफ बिहार एण्ड उड़ीसा, पुलिस एब्सट्रेक्ट, बिहार स्पेशल ब्रांच, 1920
4. डी॰एन॰ धनागारे ; अग्रेरियन मूवमेंट एण्ड गाँधीयन पॉलिटिक्स, आगरा, 1975, पृ 29-30
5. बिहार एवं उड़ीसा सरकार पाक्षिक रपट, 1 जनवरी, 1920
6. स्टीफन हेनिंघम ; पीजेन्ट मूवमेंट इन कोलोनियन इंडिया, नार्थ बिहार, 1917-1942, दिल्ली, 1990, पृ॰ 197
7. धर्मवीर कुमार ; ''मिथिला में किसान चेतना के विकास में प्रबुद्ध व्यक्तियों की भूमिका (1920-1950)'', अभिलेख बिहार, बिहार राज्य अभिलेखागार बिहार, पटना, 2012, पृ॰ 160

8ण. अवधेश प्रधान ; स्वामी सहजानन्द और किसान आन्दोलन, संवेद, दिल्ली, नवम्बर, 2009, पृ॰ 7

9. अवधेश प्रसाद (सं॰); स्वामी सहजानन्द सरस्वती लिखित पुस्तक- किसान क्या करे?, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्रा॰ लि॰, दिल्ली, 1992
10. के॰के॰ दत्ता; फ्रीडम मूवमेंट इन बिहार, वाल्यूम-2, (1924-41), बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1957

प्रेमचन्द्र का हंस पत्रिका में अवदान एवं उपादेयता

मुन्ना लाल पाल

शोध छात्र, हिन्दी विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ0प्र0

शोधसार

प्रेमचन्द हंस पत्रिका के सृजनकर्ता, संपादक, विचारक एवं सामाजिक पराकाष्ठा के मूल्यांकनकर्ता थे। उन्होंने इस पत्रिका के माध्यम से पत्रकारिता के क्षेत्र में एक अनुपम स्थान पाया और उनके संपादकीय लेखों में जातिवाद, समाजवाद, मार्क्सवाद और शोषणवाद पर आधारित है। अधिकतर उनके लेखों में उपनिवेशिका काल की सामाजिक परिवारिक शैक्षणिक मनोवैज्ञानिक एक कुशल, दक्ष, संपादक थे। उनके विचारों में संपादकीय कार्य कैसे शुरूआत किये जाए और उस समय की समस्याओं को समाज के अनुरूप हंस पत्रिका के माध्यम से आमजन तक भेजा जाय जिससे लोग पत्रकारिता के महत्व को जाने और उसको समाज के समक्ष व्यक्त करें। पत्रकारिता का सम्बन्ध आम आदमी की जीवन शैली एवं दिनचर्या से है, प्रेमचन्द के द्वारा बहुत से पत्रकारिता से सम्बन्धित लेखों को पारम्परिक रूप से आगे बढ़ाया जाता है। नई पीढ़ी के लिए दिशा बोधक और न्याबोधक जिससे मनुष्य पत्रकारिता के मूल्य को पहचने और सत्य एवं यथार्थ से जुड़े।

मुख्य बिन्दु- जातिवाद, समाजवाद, मार्क्सवाद, शोषणवाद, पारिवारिक, शैक्षणिक, मनोवैज्ञानिक, कुशल, दक्ष, संपादक, अनुरूप, दिनचर्या, पारम्परिक, दिशाबोधक, न्यायबोधक।

प्रेमचन्द हंस के संपादक थे इन्होंने 1930 में अपना संपादकीय कार्य प्रारम्भ कर पत्रकारिता के क्षेत्र में एक उत्कृष्ट स्थान पाया। उनके संपादकीय लेख जातिवाद, समाजवाद, क्षेत्रवाद, मार्क्सवाद और शोषणवाद पर आधारित हैं। प्रेमचन्द का विवेक बहुत प्रखर था तथा उन्होंने अपने साधना के माध्यम से समाज को साहित्यिक दिशा देकर ख्याति अर्जित की। प्रेमचन्द में यह विवेक बहुत प्रखर था। अपनी साधना से अर्जित प्रतिभा प्रकाश द्वारा वे मनुष्य की समग्र मुक्ति के लिये नाना विधाओं-सरणियों से चेष्टा करते रहे। विभिन्न पत्रिकाओं में राजनीति, समाजनीति, नारी-समस्या शिक्षा आदि विषयों पर लिखी गयी प्रेमचन्द की सम्पादकीय टिप्पणियाँ उनकी पुष्ट मानवीय संवेदना और जातीय चिन्ता का ही संकेत देती है। इस चिन्ता के चलते उन्हें कठोर परिश्रम करना पड़ता था।

पूर्वाग्रहमुक्त होकर प्रेमचन्द की पत्रकारिता की आदर्श आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी, आचार्य शिवपूजन सहाय निराला बहुत करीब दिखलाई पड़ता है। सरस्वती, माधुरी, प्रताप, मतवाला, हंस के संपादकीय आदर्श लगभग एक ही हैं। इसी परम्परा को स्वतन्त्रता के पश्चात् पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, पं. विष्णु राव पराड़कर, पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, आचार्य शिवपूजन सहाय और उग्र जी ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया जो समाज के अनुसार थी।

डॉ. रामविलास शर्मा, श्री भैरव प्रसाद गुपत, श्री पतराय और डॉ. धर्मवीर भारती सम्पादक के रूप में बहुत कुछ प्रेमचन्द की तरह विरोधी विचारों और भिन्न रूचि की रचनाओं को उदारतापूर्वक अपनी पत्रिकाओं में प्रकाशित करते रहे। हिमालय, प्रतीक, नयी धारा, अवन्तिका, कल्पना, कहानी कृति, आलोचना, समालोक और माध्यम में वही उदार दृष्टि दिखाई पड़ती है। नवलेखन के सन्दर्भ में प्रतीक, कल्पना, कहानी और कृति की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। पत्रकारिता और विचार-क्षेत्र में वर्गीय संकीर्णता और अस्पृश्यता की साम्प्रदायिक भावना का प्रवेश तब हुआ जब इस क्षेत्र में राजनीति का विजातीय हस्तक्षेप तीव्र हुआ और सम्प्रदाय, निष्पक्षता, प्रगतिशीलता तथा नैतिकता की आवाज अनावश्यक रूप में तेज हुई, ठीक वैसे ही जैसे- नाना प्रकार के समाजवादी नारे जैसे-जैसे बुलन्द होते गए, प्रदेशवाद, जातिवाद, गोत्रवाद और अन्ततः घिनौने किस्म के व्यक्तिवाद को बढ़ावा मिलता गया। आदमी की संघर्ष-शक्ति दुर्बल पड़ती गई और समूह चेतना व्यक्ति-गुहा में सिमट गयी।

संपादक होने के नाते प्रेमचन्द स्वतंत्रता-संग्राम में अपनी मासिक पत्रिका 'माधुरी' का उपयोग करना चाहते थे परंतु यह पत्रिका विष्णु नारायण भार्गव की थी और प्रेमचंद को इस क्षेत्र में इतनी आजादी न थी। इसीलिए उनकी इच्दा थी कि वे स्वयं एक पत्र निकाले। परिणामतः पत्रिका की योजना बनी। कविवर जयशंकर प्रसाद ने प्रोत्साहन दिया और प्रेमचन्द को इस पत्र का नाम 'हंस' रखने का सुझाव दिया। कुछ महीनों बाद श्रीराम शर्मा को एक पत्र में वे लिखते हैं 'यह शहरी जीवन, जहाँ मुझे फँसकर बैठना पड़ रहा है, मानसिक तथा भावात्मकता के विकास के लिए घातक है। मेरी बड़ी से बड़ी आकांक्षा है देहात में बैठकर शांतिमय जीवन बिताऊँ। आप जानते हैं, मैं स्वयं देहाती हूँ और मैंने अपनी कृतियों के माध्यम से अपने देहाती भाईयों के ऋण को उतारने का प्रयत्न किया है। 'हंस' के निकालने का यही उद्देश्य रहा है, देहात में रहना, कुछ साहित्य सेवा, सम्पादन कार्य और देहातियों में मिलजुलकर बैठना।'

इस प्रकार अक्टूबर 1935 में 'हंस' नये रूप में जनता के समक्ष सम्पादक के रूप में प्रेमचंद और कन्हैया लाल मुंशी आये। इन दिनों 'गोदान' पूर्ण होने को था। यह उपन्यास उन्होंने सन् 1932 ई. से लिखना प्रारम्भ किया था। मई 1936 ई. में यह छप कर तैयार हो गया। इतना सब करने पर हंस की दशा सुधर न सकी। भारतीय परिषद ने 'हंस' को ले तो लिया किन्तु घाटे का बोझा प्रेमचंद पर ही रहा। अतः अब भी उन्हें हंस से चार-पाँच सौ रूपये के आस-पास

हानि उठानी पड़ी थी। 4 जुलाई 1936 को भारतीय साहित्य परिषद की कार्यकारी मण्डल का पहला अधिवेशन हुआ, जिसमें अन्य कई शर्तों के साथ एक यह प्रस्ताव भी पास हुआ कि 'हंस' का सम्पादन वर्धा से किया जाये जहाँ कि परिषद का प्रधान कार्यालय है और काका साहब कालेकर को सम्पादन का भार सौंपा जाय तथा इसका प्रकाशन सस्ता साहित्य मण्डल दिल्ली से प्रकाशित हुआ।

मैंने उसके सम्पादन से इस्तीफा दे दिया है। मैं इधर एक महीने से बीमार हूँ। अच्छा हो गया तो यहाँ से एक नया पत्र प्रगति लेखक संघ की विचारधारा के अनुसार निकालूँगा। मुझे आशा है इस नई योजना में आपकी मदद पर भरोसा कर सकूँगा। इधर उनका स्वास्थ्य दिन-ब-दिन बिगड़ता जा रहा था। 25 जून के बाद उन्हें नींद आना ही बन्द हो गई। 25 जुलाई को शौच के साथ खूनी वमन हुई तथा फिर मूर्छा आ गई। अगले दिन रात को दर्द उठा अतः इलाज कराने के लिए वे लखनऊ गये। वहाँ अधिक समय न रूके फिर से बनारस लौट आये।

प्रेमचंद ने 'हंस' नामक पत्रिका में उन विचारों को समाज के समक्ष प्रोत्साहित किया जिसमें जीवन की संवेदनाएँ तथा भिन्न-भिन्न प्रयोजन और गुणवत्ता है, जो प्रेमचन्द की पत्रकारिता को अन्य साहित्यकारों की अपेक्षा उसे श्रेष्ठता की श्रेणी में रखा गया है। प्रेमचन्द अतीत से लेकर वर्तमान तक एक प्रासंगिक पत्रकार, कहानीकार एवं उपन्यासकार के रूप में माने जाते हैं।

आर्थिक निश्चितता, पूरी स्वाधीनता और इत्मीनान के साथ साहित्य रचना की स्पृहा से प्रेमचन्द ने प्रेस खोला था। पत्रकार बनने की साध पुरानी थी। मगर प्रेस खोलकर प्रेमचंद ने अनजाने में असंख्य समस्याओं को जन्म दिया था। आर्थिक निश्चिन्तता की परिकल्पना आर्थिक तंगी का कारण बन गयी थी। अपने आत्मीय जैनेन्द्र कुमार को 14 फरवरी 1934 को बड़े उदास मन से प्रेमचन्द ने लिखा था, ''सारी विपत्ति की जड़ तो यह प्रेस है। न जाने किस बुरी साइत में उसकी बुनियाद पड़ी थी। 10 हजार रूपये, 11 साल की मेहनत और परेशानियाँ अकारथ गयीं। इसी प्रेस के पीछे कितने मित्रों से बुरा बना, कितनों से वायदा खिलाफी की, कितना बहुमूल्य समय जो लिखने-पढ़ने में कटता, बेकार प्रूफ देखने में कटा। मेरी जिन्दगी की यह सबसे बड़ी गलती है।''

प्रेम की पत्रकारिता में समाज के कई प्रयोजन थे जिसमें स्वतंत्रा के पूर्व का समय उपनिवेशवाद और विभिन्न साहित्यिक पत्रों की पक्षधरता एवं प्रयोजनशीलता थी। अंग्रेजों द्वारा जो समाज का शोषण किया था उसको भी अपनी पत्रकारिता के माध्यम से मानव मूल्यों से जोड़ा है।

प्रेमचन्द की एक और आकांक्षा थी जिसका संकेत श्रीराम शर्मा को लिखे अपने पत्र में दिया है, ''मेरी बड़ी से बड़ी आकांक्षा है- देहात में बैठकर शान्तिमय जीवन बिताऊँ। आप जानते हैं मैं स्वयं देहाती हूँ और मैंने अपनी कृतियों के माध्यम से अपने देहाती भाइयों के ऋण को उतारने का प्रयत्न किया है। 'हंस' के निकालने का यही उद्देश्य रहा- देहात में रहना, कुछ साहित्य-सेवा सम्पादन कार्य और देहातियों से मिल-जुलकर बैठाना। मगर प्रेमचन्द की यह साध पूरी न हो सकी। प्रेस की तरह 'हंस' भी घाटे का सौदा सिद्ध हुआ। घाटा झेलते प्रेमचन्द 'हंस' को जिलाये जा रहे थे।

'हंस' और 'हंस' जैसी दूसरी साहित्यिक राजनीतिक-पत्रिकायें भी व्यक्ति या दो-चार लोगों के सामूहिक प्रयत्न से ही प्रकाशित हुई थी, जिनसे साहित्य-समृद्धि में अपेक्षित सहयोग मिला था और समाज को अपने समय को समझने वाली रोशनी का साक्षात्कार हुआ था, किन्तु युगलकिशोर शुक्ल से लेकर प्रेमचन्द में से किसी ने वैसा गर्वोक्ति नहीं प्रकट की जैसी लघु पत्रिका के नये पुस्तककर्ताओं में दिखाई पड़ती है। लघु पत्रिका के जिन लक्षणों और आदर्श आकांक्षा की उच्च स्वर में घोषणा की जाती है, उस दृष्टि से विचार करने पर 'हंस', 'मतवाला', 'प्रतीक' और इस जाति की अनेक दूसरी पत्रिकायें क्या व्यावसायिक पत्रकारिता की श्रेणी में रखी जाने योग्य हैं।

'हंस' में प्रेमचन्द ने पं. नन्द दुलारे वाजपेयी जैसे उस समय अपने कट्टर विचार-विरोधी का ऐसा निबन्ध छापा था जो प्रेमचन्द की प्रगतिशील परम्परा के तथाकथित उत्तराधिकारियों को आज निराश कर सकता है। एक नहीं, अनेक विरोधियों की रचनाओं को विरोधी संस्कार की रचनाओ को प्रेमचन्द के उदारतापूर्वक अपनी पत्रिका में जगह दी, नये लोगों को प्रस्तुत किया, आगे बढ़ाया उनकी दृष्टि प्रतिभा पर थी, व्यक्ति पर नहीं। दलबाजी से वे सर्वथा मुक्त थे। प्रेमचन्द के साहित्यिक मित्रों का एक विशेष वर्ग था, जिनसे वे पारिवारिक और साहित्यिक दुःख-सुख की बात करते थे, किन्तु अपने मित्रों को प्रेमचन्द ने न तो अनावश्यक साहित्यिक तरजीह दी और न अपने किसी साहित्यिक या गैर साहित्यिक स्वार्थ के लिए इस्तेमाल किया।

'हंस की प्रथम सम्पादकीय टिप्पणी में महात्मा गांधी को देश का कर्णधार मानते हुए प्रेमचन्द ने 'हंस' के प्रकाशन उद्देश्य का संकेत दिया है, ''स्वाधीनता केवल मन की वृत्ति है। इस वृत्ति का जागना ही स्वाधीन हो जाना है। अब तक इस विचार ने जन्म ही न लिया था। हमारी चेतना इतनी मन्द, शिथिल ओर निर्जीव हो गयी थी कि उसमें ऐसी कल्पना का आविर्भाव ही न हो सकता था, पर भारत के कर्णधार महात्मा गाँधी ने इस विचार की सृष्टि कर दी थी कि इस संग्राम में भी हम विजयी होंगे।

मानव मुक्ति के अपने वैचारिक अभियान को प्रेमचन्द किसी मूल्य पर स्थगित करना नहीं चाहते थे। प्रतिकूल परिस्थितियों यदाकदा उन्हें विचलित करती थी, किन्तु प्रत्यूह-वाहिनी के सामने अपना आत्मबल समर्पित करना उन्हें मंजूर नहीं था। राष्ट्र के बड़े स्वार्थ को ध्यान में रखकर उन्होंने 'हंस' को भारतीय साहित्य परिषद का मुख्य पत्र बनाया था। कन्हैयालाल मणिकलाल मुन्शी के साथ प्रेमचन्द अवैतनिक सम्पादक के रूप में उसे सम्पादित करते थे। प्रादेशिक भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्य का हिन्दी में अनुवाद छपना राष्ट्रीय एकता की भूमिका रचना का कृति आयोजन था। किन्तु नाना प्रकार की व्यावहारिक कठिनाइयों के चलते अन्ततः भारतीय साहित्य परिषद ने 'हंस' को बन्द करने का निर्णय लिया तो प्रेमचन्द ने उन्मथित चित्त से, अपनी मृत्यु-शय्या पर पड़े-पड़े अपनी पत्नी शिवरानी देवी से कहा था।

प्रेमचन्द की पत्रकारिता में लोकनायकत्व है, उनकी कथा शिल्पी एवं सम्पादकीय विचारधारा अन्य साहित्यकारों से अलग है। प्रेमचन्द की पत्रकारिता में पारदर्शिता संवेदनाएँ जो समाज के लिये एक प्रेरणा स्त्रोत हैं। 'हंस' ने जो वैचारिक-साहित्यिक भूमिका प्रस्तुत की वह पत्रकारिता सम्बन्धी प्रेमचन्द के ऐतिहासिक अवदान का प्रमाण है। 'हंस' के विशेषांक स्वत्व, सचेत प्रेमचन्द की जातीय संस्कृति के प्रति रूझान, साहित्यिकों की महत्ता की सही समझ, अग्रज

पीढ़ी की महत्वाकांक्षा के प्रति उदार विवेक तथा उनकी पृष्ट परिवेश संशक्ति का संकेत देता है। अपने समय की राजनीति, अर्थनीति और समाजनीति की नब्ज के अचूक पारखी प्रेमचन्द ने 'हंस' के सम्पादकीय पृष्ठ पर साहित्येतर विषयों को उपजीव्य बनाकर तेज टिप्पणियाँ जरूर लिखी, किन्तु अपनी साहित्यिक पत्रिका को सीमित अर्थ में कभी राजनीतिक प्रयोजन का साधन नहीं बनाया। 'हंस' के विशेषांक साहित्य-संस्कृति से इतर विषय को लेकर नहीं निकाला।

महान कथा-शिल्पी प्रेमचन्द ने अपने समय के प्रति सचेत थे, किन्तु ऊँचे से ऊँचे राजनीतिक या दूसरे किसी भी प्रकार के सिद्धान्त का अनुकरण और उस विजातीय प्रभाव का अपनी रचना में आरोपण उन्हें पराजय की पीड़ा से भी अधिक पीड़क लगता था। अपनी राजनीतिक टिप्पणियों में वे अपने समय के सबसे प्रभावशाली राजनेता महात्मागांधी के लोक-मंगल मूलक कार्य व्यापार का साम्राज्यशाही के प्रति गांधी जी की युयुत्सु-चेतना का और उनके नेतृत्व में चलने वाले राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य-संग्राम का समर्थन करते दिखायी पड़ते हैं। 'हंस' पत्रिका में प्रेमचन्द ने अपनी लेखनी के माध्यम से समाज के यथार्थ को बताया जिसमें स्वतन्त्र चिंतन स्वतन्त्र दृष्टि एवं स्वतन्त्र दर्शन था। वे एक सृष्टा थे जिन्होंने समाज का बड़ी सूक्ष्मता से अवलोकन किया और उपनिवेशवाद के बाद दौरान समाज के हर वर्ग के व्यक्ति को सशक्त बनाया।

नि:सन्देह प्रेमचन्द जिस स्तर के कथा-शिल्पी थे उसी स्तर के पत्रकार थे। किन्तु साहित्य उनका धर्म था, पत्रकारिता आपदा धर्म। पत्रकारिता सम्बन्धी उनके अवदान का मूल्यांकन करते हुए इस तथ्य को भुला दिया जाता है कि सामान्य सीमित अर्थ में प्रेमचन्द पत्रकार नहीं थे। सीमित अर्थ में प्रेमचन्द पत्रकार नहीं थे।

प्रेमचन्द वास्तव मे पत्रकार न होकर समाज प्रर्वतक एवं कहानीकार अधिक थे जिसमें उनका मौलिक चिन्तन था आधुनिक काल के महान साहित्यकार प्रेमचन्द अपने मौलिक विचारों और भावों के प्रकाशन के लिये यदि विचारवान पत्रकार और संपादक न बने होते तो उनको कल्पनाएँ मनोरंजन का मेला जुटाती चुक जाती। कहना न होगा कि प्रेमचन्द की पत्रकारिता सम्बन्धी महत्ता से अभिभूत होकर दी गयी यह स्थापना युद्ध भावुकता मूलक उक्ति है। प्रेमचन्द के अवदान के मूल्यांकन में ऐसी भावुकता बाधक है ठीक वैसे ही जैसे किसान-मजदूर और अवहेलित समाज के प्रति प्रेमचन्द की उच्छल संवेदना को देखकर उन्हें मार्क्सवादी सिद्ध करने की हठ उनकी वास्तविक तस्वीर को समझने में बाधक है। चिन्तन के क्षेत्र में भावुकता और हठ का नहीं, सहज औदार्य और प्रखर विवेक का महत्व होता है। पत्रकार और विचारक प्रेमचंद में उसी स्तर का औदार्य और विवेक था जिस स्तर की कथा शिल्पी प्रेमचन्द में प्रतिभा शक्ति और संवेदना थी।

संदर्भ सूची

1. मिश्र कृष्ण बिहारी- पत्रकारिता और प्रश्न, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2004, पृ.76
2. पाटील डॉ. अपर्ण- प्रेमचंद के उपन्यासों में चित्रित नारी के विविध रूप, शैलजा प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2011, पृ.204
3. पाटील डॉ. अपर्ण- प्रेमचंद के उपन्यासों में चित्रित नारी के विविध रूप, शैलजा प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2011, पृ.23
4. शर्मा राम विलास- महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2012, पृ.50
5. शर्मा जगदीश- पत्रकारिता प्रशिक्षण, हरीश विश्वविद्यालय प्रकाशन, नवीन संस्करण, पृ.100

निराला का छायावादोत्तर काव्य

डॉ० अरूण कुमार यादव

असि० प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कालीचरण पी0 जी0 कालेज, लखनऊ

निराला जी की कविता मूलत: छायावादी है। वे छायावाद के स्तम्भ कवि हैं तथा महाकवि स्वीकृत किये गये हैं। इसके बावजूद उनकी रचनाओं में उत्तरवर्ती कविता-वादों की झलक मिलती है। हिन्दी आलोचकों, समीक्षकों ने निराला जी की की कविताओं में प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता एवं नवगीत आदि के दर्शन किये अर्थात इनके काव्य का प्रभाव छायावादी होते हुए भी छायावादोत्तर काव्य पर भी स्पष्ट दिखाई देता है। निराला जैसे कवियों को वाद की सीमाओं में बाँधना कठिन कार्य है। आरम्भ में ये छायावादी थे किन्तु इनकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति इन्हें छायावाद की सीमा से बाहर खींच लाई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे आलोचकों ने निराला काव्य में स्वच्छन्दतावाद को देखा है। इनके काव्य में प्रगतिवाद व प्रयोगवाद की भी झलक मिलती है।

निराला जी के काव्य में छायावादोत्तर प्रवृत्तियाँ पहले से ही विद्यमान थी। निराला का व्यक्तित्व एवं कृतित्व हिन्दी साहित्य में प्रारम्भ से ही बहुवस्तुस्पर्शिनी है, जिसका मूल कारण इनकी स्वच्छन्दता रही है। निराला जी ने अपनी रचनाओं में विविध प्रयोग किये हैं। निराला छायावाद के उन कवियों में है जो छायावाद से शुरू करके उसी में चुक नही गये, नवजारगण की उन्नत प्रेरणाओं और उसके अंतर्विरोधों से जूझते-टकराते उसी तक सीमित नही रहे, छायावाद से आगे वे स्वन्छन्दतावाद की प्रशस्त जमीन पर पहुँचे। निराला द्वारा छायावाद का अतिक्रमण इस नाते नया प्रयाण है कि छायावाद से भिन्न जमीन पर आकर उन्होंने नये प्रवर्तन किये, नये रास्ते तलाशे, अपने लिये भी और आने वाली पीढिघ्यों के लिये भी। नवजागरण से आगे वे राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन से जुड़े। छायावाद से आगे प्रगति और प्रयोग की लम्बी राहें भी निराला जी ने तय की और इन राहों पर चलते हुए नये कीर्तिमान कायम किये। इनकी परवर्ती रचनाएं प्रगति-साधना, प्रयोग-साधना की फलश्रुति है। निराला जी की कविता अपने समय की कविता तो है ही साथ ही साथ वह आगामी समयों की कविता भी है एकदम समकालीन चेतना से आखें मिलाती हुई। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने सत्य ही उन्हें 'शताब्दी का कवि' और उनकी कविता को 'शताब्दी की कविता' कहा है। परम्परा और आधुनिक प्रगति और प्रयोग, लोक और शास्त्र सबका समाहार उसमें है। उनकी कविता आगामी संभावनाओं की भी कविता है।

निराला के कवि व्यक्तित्व के विकास को मूलत: छायावाद के विकास से जोड़कर देखा जाता है। निराला की कठिन जीवन और काव्य साधना की फलश्रुति यह हुई कि जैसे- जैसे समय बीतता गया अर्थात छायावादोत्तर काल में ये और प्रासंगिक होते गये। मुक्तिबोध, शमषेर आदि सभी ने अपना काव्य गुरू निराला को कहा। निराला की रचनात्मकता प्रगतिशील, प्रयोगवादी कवियों के लिये आधार स्तंम्भ रही है। अतीतोन्मुखता और भविष्योन्मुखता का सामंजस्य निराला की रचनाओं में मिलता है। जिसका स्पष्ट प्रभाव छायावादोत्तर काव्य में दृष्टव्य होता है। निराला जी ने समय से लिया और समय को खूब दिया है। प्रयोगवादियों ने छायावाद से मुक्ति की घोषणा की पर उस कविता के संस्कारों से मुक्त नही हुए। मात्र बौद्धिक स्वीकृति से संस्कार मुक्ति नही हो जाती। संस्कार मुक्ति आत्म संघर्ष चाहती है। निराला में आत्म संघर्ष था इसलिये उन्होंने उत्तरार्द्ध की कविता में अपने ही पूर्व संस्कारो को छोड़ दिया। यथार्थ की खुरदुरी जमीन में आ गये और 'कुकुरमुत्ता' लिखा। यह निराला के रचनात्मक व्यक्तित्व की गत्यात्मकता थी कि आगे के कवि उनसे रीझते-सीखते रहे। 'कुकुरमुत्ता', 'अर्णिमा', 'बेला', 'नये पत्ते', की कविताएँ प्रगतिशील कवियों की पूर्वज कविताएँ बन सकी। भाव और भाषा का युगीन चयन इसी रास्ते चला और कविता का क्षेत्र व्यापक हुआ।

पूत के लक्षण पालने में दिखाई देने लगे है। निराला अपनी प्रतिभा और प्रभाव के कारण अतीत , वर्तमान और आगत के संगम रचनाकार माने गये है। निराला मूलत: छायावादी काव्य के प्रकाश स्तम्भ है उन्होंने छायावादी तत्वों के आधार पर अपनी कविता में मूल्यों के निर्धारण के साथ-साथ मानवीय विकास के उद्देश्यों से वाचक दिखाई देने वाली रूढिघ्यों के प्रति विद्रोह जाहिर करते हुए एक भूमि काव्य रूप प्रस्तुत किया तथा पुरानी दूषित परम्पराओं की निरर्थकता को उकेरा। पाष्चात्य सभ्यता के प्रभाव में पनपने वाली कोरी संस्कृति पर भी पैनी दृष्टि डाली। इनके विरोध में हुँकार भरी और लिखा- 'तुम करो ब्याह, तोड़ता नियम/ मैं सामाजिक योग के प्रथम/लग्न के , पढ़ूँगा स्वयं मंत्र" जैसे उदात्त चिंतन को क्रांतिपूर्ण स्थान देकर निराला अपने समय और कविता में हर कालों को समेटने वाले तथा आगे की दिशा-राह तय करने वाले कवि बन गये। "निराला की मान्यता रही है कि भौतिक विकास के लिए हम जिस सभ्यता को आयतित करने की होड़ में हैं , वह किसी वस्तुवादी सभ्यता है जो जड़वादी सोच का ही परिणाम देगी । इससे मानवीय चेतना अवरूद्ध होने लगेगी। स्वार्थ का ही टकराव होगा। मानवीय नैतिक मूल्यों का विकास नहीं होगा- इसलिए निराला जी ने इन्हें दृढ़ सामाजिक आधार देने के लिए अपनी कविता में लिखा है भाव शुद्ध साहित्य कला कौशल प्रबुद्ध।"[1]

उनके अनुसार बिना संघर्ष के न तो चेतना विकसित होती और न ही संवेदना। 'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास' जैसी कविताओं में नवउत्थान युग की प्रवृत्तियाँ पूर्णरूपेण निराला के छायावादी काव्य में देखी जा सकती हैं।

निराला के छायावादोत्तर काव्य-चेतना से अनुप्राणित काव्यान्दोलनों एवं उनके काव्य में अभिव्यक्त स्वरूप का विहंगम पर्यालोचन करते हुये उसकी मूल संवेदना का विश्लेषण निम्नवत है:

कुकुरमुत्ता: 'कुकुरमुत्ता' का प्रकाशन सन् 1942 ई0 में हुआ। निराला की यह रचना बहुत प्रसिद्ध हुई थी। इस रचना में गुलाब और कुकुरमुत्ता की बातचीत है। ये दोनों प्रतीक के रूप में वर्णित है गुलाब पूंजीवादी संस्कृति और कुकुरमुत्ता श्रमिक और मजदूर वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। निराला जी इस कविता में जहाँ पूंजीवादी संस्कृति पर प्रहार करते है वहीं सर्वहारा वर्ग को लेकर अत्यधिक प्रचारवादी प्रवृत्ति पर भी उनका तीखा आपेक्ष है।

'कुकुरमुत्ता' कविता के प्रथम भाग में नबाब से कुकुरमुत्ता की बातचीत का वर्णन है तथा द्वितीय भाग में साम्यवादी सिद्धांतों पर घातक प्रहार किया गया है। इस काव्य में प्रगतिवादी मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई है। निराला का कुकुरमुत्ता अत्यन्त प्रगल्भ रूप में समाज के सन्मुख उपस्थित होता है। नन्दकिशोर नवल के शब्दों में "कुकुरमुत्ता उनकी ऐसी कविता है। जिसमें व्यंग की धार दोहरी है। उसमें एक तरफ पूंजीवादी वर्ग पर व्यंग करते हैं और दूसरी तरफ संकीर्णतावादी प्रगतिशील दृष्टि पर।"[2] यथा:

"कुकुरमुत्ते की कहानी
सुनी जब बहार से
नब्बाब के मुंह आया पानी।"[3]

कुकुरमुत्ता के कबाब की बात सुनकर नबाब के मुह में पानी आ गया उसने कुकुरमुत्ता की चाह व्यक्त की -

"गुस्सा आया कांपने लगे नब्बाब
बोले चल गुलाब जहाँ थे उगा
सबके साथ हम भी चाहते हैं, अब कुकुरमुत्ता।"[4]

इस प्रकार निराला की कुकुरमुत्ता एक संशक्त प्रतीकात्मक और प्रगतिवादी रचना है।

अणिमा: निराला जी का सातवां काव्य संग्रह 'अणिमा' सन् 1943 ई0 में प्रकाशित हुआ। अणिमा के गीतों में प्राय: कवि हृदय का एंकाकी उद्‌गार है। इस रचना के कुछ गीतों में मानवतावादी, रहस्यवादी, राष्ट्रवादी स्वर सुनाई पड़ते है संत रविदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, विजयलक्ष्मी, पण्डित, महादेवी वर्मा, भगवान बुद्ध आदि पर प्रशस्तिपरक कवितायें भी है। अणिमा के गीतो को मुख्यतया निम्न रूपों में विभक्त किया जा सकता है-

1 अवसादपरक गीत
2 भक्तिपरक गीत
3 प्रशस्तिपरक गीत
4 राष्ट्रवादी गीत
5 रहस्यवादी गीत
6 मानवतावादी गीत

निराला की यह रचना अत्यन्त प्रभावपूर्ण कही जा सकती है।

इन कविताओं में अवसाद, प्रशस्ति, राष्ट्र बोध, रहस्य बोध एवं मानवतावादी चेतना का मंजुल सुनायी पड़ता है।

"तुम चले ही गये प्रियतम
हृदय में प्रिय छवि नही ली व्यर्थ ऋतु के दृश्य दर्शन
व्यर्थ यह रचना रसीली ।"[5]

चूँकि यहाँ दाना हैं। एक चित्र अवलोकनीय है:

"अम्मा है बप्पा रहे
झापड़ है और गोलगप्पा है
नौजवान मामा है और बुड्ढा नाना है
चूँकि यहाँ दाना है"[6]

श्रीमती महादेवी वर्मा के प्रति प्रषस्ति की झांकी इस प्रकार दर्शायी गयी है:

"दिए व्यंग के उत्तर रचनाओं से रचकर
विदुषी रही विदूषक के समक्ष तुम तत्पर

हिन्दी के विषाल मन्दिर की वीणा-प्राणी
स्फूर्ति-चेतना-रचना की प्रतिमा कल्याणी।"7

'यह है बाजार' शीर्षक रचना में व्याही क्या जाने बैठाली का प्यार का भाव बोध अभिव्यक्त हुआ है-

"दुखिया बोला मन में ठहर अरी सास की
मास खिलाता हूँ मैं तुझे अभी रास की
चोरी है याद मुझे बात कौन घास की
बैठाली क्या जाने व्याही का प्यार।"[8]

निष्कर्षत: 'अणिमा' रचनान्तर्गत निराला का वैयक्तिक भावभिव्यक्ति प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त हुआ है।

बेला: निराला द्वारा विरचित रचना बेला 1943 ई0 में प्रकाशित हुई यह संग्रह निराला काव्य की विविध प्रवृत्तियों का द्योतक कहा जा सकता है।

निराला जी की 'बेला' के संबंध में अपना दृष्टिकोण इस प्रकार रखा है कि "बेला मेरे नये गीतों का संग्रह है। प्राय: सभी तरह के नये गीत इसमें है। भाषा सरल तथा मुहावरेदार है। गद्य करने की आवश्यकता नहीं। देशभक्ति के गीत भी हैं। सबसे बढ़कर नयी बात यह है अलग-अलग बहारों की गजलें भी है ..... प्राय: सभी दृष्टियों से फायदा पहुँचाने का विचार रखा है।"[9] इस काव्य सग्रह में कवि निराला ने उर्दू गजल की शैली में कवितायें लिखकर एक नया प्रयोग किया है। इसलिये इस काव्य संग्रह में जितना भाव वैविध्य है उतनी ही भाषा वैविध्य भी है। बेला में कुल 95 कवितायें है।

अपरा: साहित्यकार संसद द्वारा अपरा काव्य संग्रह का प्रकाशन सन् 1946 ई0 में किया गया है। इस संकलन में निराला जी के प्रकाषित अप्रकाशित कविताओं का संचय है। उनकी सुप्रसिद्ध गीत पंक्तियाँ जागो फिर एक बार, सरोज स्मृति, राम की शक्ति पूजा, बादल राग का स्वर इस काव्य संग्रह में गुंजित होता है। अपरा का प्रारम्भ भारती वंदना से है। विभिन्न कालों में लिखी गयी कविताओं को अपरा में संग्रहित किया गया है। यही कारण है कि अपरा में उनके काव्य प्रवृत्तियों का पूंजीभूत रूप संगुम्फित है। अपरा को भी हम विविध भावों का काव्य संग्रह निरूपित कर सकते है। इन कविताओं में वैयक्तिक आत्मकथात्मक प्रसंगो के साथ आध्यात्मिक जीवनादर्शो का विवेचन सफलतापूर्वक किया गया है।

नये पत्ते: नये पत्ते निराला जी की यथार्थवादी रचना है इसका प्रकाशन सन् 1946 ई0 में किया गया। इस संकलन में जीवन का यथार्थ उसके मूल रूप में उपस्थित हुआ है नये पत्ते की कविताओं में थोड़ो के पेट में बहुतों को आना पड़ा, राजे ने अपनी रखवाली की, दगा की, गरम पकौड़ी, चर्खा चला, तारे गिनते रहे, कुत्ता भोंकने लगा, झींगुर डटकर बोला, रानी और कानी, देवी सरस्वती, युगावतार परमहंसं श्री राम कृष्ण देव के प्रति, छलांग मारता चल गया, डिप्टी साहेब आये, वर्षा, मंहगू मँहगा रहा, खून की होली जो खेली, कैलाश में शरत् आदि संग्रहित है।

नये पत्ते लघु काव्य संग्रह की कविताओं में निराला जी ने सामाजिक व्यंग्य विनोद और हास्य योजना की है । अनगढ़, भदेश, विकृत रूपों का भी विवेचन नये पत्ते काव्य संग्रह की मौलिकता का सबूत देता हुआ प्रसिद्धि प्राप्त किया है। नये पत्ते काव्य संग्रह का परिवेश निराला के आत्म कथात्मक, मनावैज्ञानिक विचारों का मानक कहा जा सकता है।

अर्चना: अर्चना जो 1950 ई0 में प्रकाशित हुई, इसमें कवि की आध्यात्मिक एवं आत्मपरक रचनायें दिखलायी देती हैं। निराला की भक्ति परकता इस काव्य संग्रह में मुखरित हुई है। वे भगवान से बार-बार भवसागर पार करने की विनती करते है। 'अर्चना' की कविताओं का हम निम्न रूपों में विभाजित कर सकते हैं:

1 भक्तिपरक कवितायें
2 प्रकृतिपरक कवितायें
3 श्रृंगारपरक कवितायें
4 प्रयोगशील कवितायें
5 आत्मपरक कवितायें

'अर्चना' के गीतो में निराला की अधिकांश मनोवृत्तियाँ आध्यात्मिक रूप से प्रतिफलित हुई हैं जिन्हे भक्तिपरक कविताओं की श्रेणी में रखा गया है। प्रकृतिपरक कविताओं में मानवीय भावों के भी दर्शन होते है- घन आये घनश्याम न आये, 'गंगे गवना न कर' आदि गीतों में लोक परम्परा की संगीत धारा प्रवाहित है। श्रृंगारपरक निराला के गीतों की प्राणवत्ता कही जानी चाहिये। इस प्रकार 'अर्चना' काव्य में पूर्ववर्ती कृतियों की तरह उनका आत्मबोध प्रकट हुआ है। अर्चना की भूमिका में कवि का कथन है कि "अर्चना का अन्तरंग विषय यौवन से अतिक्रान्त कवि के परलोक से सम्बन्ध है इसलिये यहाँ सम्मति का फल निष्काम में ही होगा अर्चना के विषय में प्राचीन परम्परा से इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि -

भाव कुभाव अनख आलस हूँ
राम जपत मंगल दिसि दस हूँ।"[10]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अर्चना, रचना संसार में कवि ने अपने मनोवृत्तियों को भक्ति की अवसादमय मान्यताओं से परिवेष्ठित किया हैं जिसमें श्रृंगार, अध्यात्म, भक्ति सभी दृष्टियों से लाभ पहुँचाने का विचार रखा गया है। 1950 से 1961 की रचनायें अर्चना में संकलित है।

कुल मिलाकर यह कहना समीचीन लगता है कि पौरूष के कवि निराला अर्चना काव्य में प्रभु षरण की आकांक्षा व्यक्त करते हैं। अर्चना की कविताओं में भक्ति की तन्मयता दिखायी पड़ती है। निराला की यह भक्ति आत्ममुक्ति की अपेक्षा लोकमुक्ति की ओर उन्मुख प्रतीत होती है।

आराधना: आराधना का प्रकाशन काल सन् 1953 ई0 है । इस रचना की कविताओं में मूल स्वर भक्ति परक ही है । आराधना के विषय में सुश्री महादेवी का कथन सत्य और मार्मिक है। वे लिखती हैं कि "जीवन में जो कुछ सत्य, सुन्दर और मंगलमय है वही निराला का आराध्य रहा है। आराधना भी इसी जीवन व्यापी अर्चन की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। अविश्वास के इस अन्धकार युग में आराधना के स्वर दीपक राग की भांति संगीत और आलोक की समन्वित सृष्टि करने में समर्थ है ऐसा मेरा विश्वास है।"11 आराधना की भक्ति की भाव-भूमि अर्चना की अपेक्षा अत्यधिक उत्कृष्ट है। इसकी कविताओं में कम शब्दों में अधिक भावपूर्ण विचारों को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यथा -

"हसो मेरे नयन
बसो मेरे नयन
हरो मेरे नयन
भरो मेरे नयन
चलो मेरे शरण
पलो मेरे शयन।"[12]

एक गीत में कवि ने आज के विश्व में व्याप्त असंगति की ओर संकेत किया है-

"ऊँट बैल का साथ हुआ है
कुत्ता पकड़े हुये जुआ है
यह संसार सभी बदला है
फिर भी नीर वही गदला है।"[13]

प्रकृति के सुन्दर चित्र भी देखते बनता है -

"वन उपवन खिल आयी कलियां
रवि छवि दर्शन की आवलियां
मारूत ने स्वेत अधर चूमे
मद से लद कर भौरें झूमे।"[14]

आराधना की प्रथम कविता में कवि ने सरस्वती का स्तवन किया है । अन्य कविताओं में भक्ति, प्रकृति, श्रंगार भोग, आस्वाद तथा मनोभूमि को प्रतिफलित किया है । इस दृष्टि से निराला का रचना संसार समृद्ध है।

गीत गुंज: गीत गुंज का भी प्रकाषन आराधना के काल 1953 ई0 में हुआ था। गीत गुंज की कविताओं में भक्ति गीतों का मंजुल प्रवाह बना रहा है इसके गीत संगीत की धारा लेकर उपस्थित है गीत गुंज की रचनायें सन् 1953 से 1956 तक की है कुछ रचनायें पुरानी भी है। इसके गीतों में हिन्दी के गीत शैली का नया संस्कार परिलक्षित होता है। कवि अपने मृत्यु के संबंध में कुछ गीत लिखे है जिसमें उन्होंने चिन्तन के सत्य दृष्टिकोण को सांसारिकों के समक्ष प्रस्तुत किया है -

"मधुर मधुर मृत्यु मधुर
सकल जन्म कम्पित उर।"[15]

प्रकृति के विषय में कवि का बदला भाव इस प्रकार वर्णित है -

लदे बाग आमों के पर से
धानों के खेतों पर बरसे
युवती निकली अपने घर से पुरवाई के झोंक खाये।"[16]

गीत गुंज में कवि की आत्म वेदना और आत्मोच्छ्वास छलकते है। इसमें सौन्दर्य और ऊर्जस्विता का प्रभाव स्पष्ट है। इसके साथ ही इस रचना में प्रकृति, भोग, मृत्यु और जीवन की मधुर आपाधापी है। प्राय: निराला ने भक्ति पदों के माध्यम से अपने अन्तिम क्षणों मे प्रभु का स्मरण स्वभावगत वृत्तियों के अनुकूल अभिव्यक्त किया। राम, कृष्ण, शक्ति, सरस्वती के उपासक के रूप मे वे दिखायी पड़ते है। अब निराला का नारी सौन्दर्य रूप अपनी उत्कृष्टता और प्रभावपूर्णता

के साथ व्यक्त नही होता। जीवन के यथार्थ से दर्शित होकर उनकी मनोभूमि बदली हुई प्रतीत होती है अब ऐसा लगता है कि गीत गुंज तक आते-आते निराला के मधुरगीत मृत्यु के पोषक हो गये है। यह रचना कवि की भाव-साधना के शीर्ष बिन्दु तक पहुँचकर उनके अन्तर्मन को स्पर्श करती है।

सांध्य काकली: महाप्राण निराला की यह अन्तिम काव्य कृति है। सांध्य काकली का प्रकाशन जनवरी सन् 1969 ई0 में हुआ। सांध्य काकली के प्रकाशक श्री नारायण चतुर्वेदी ने इस रचना का प्रकाशन निराला जी के मृत्योपरान्त 6 वर्ष पश्चात् किया। नयी रचनाओं के अतिरिक्त चतुर्वेदी जी ने गीत गुंज की कविताओं को भी इस संग्रह में सम्मिलित किया। कवि के समग्र कृतित्व की प्रभान्विति 'साध्य काकली' में विद्यमान है। इस रचना में पूर्ण शिल्पगत प्रौढ़ता है। वास्तव में निराला जी की महान लेखनी का स्पर्श पाकर सांध्य काकली के यह गीत सहज सजीव सुन्दर होने के साथ ही साथ नवभंगिमा से अनुप्राणित हैं। इन गीतों की सबसे बड़ी विशेषता सहजता और कलात्मकता का समन्वय कहा जा सकता है। निराला की संवेदना अपनी विविधता के साथ फलवती हुई है। डॉ० बुद्धसेन निहार के अनुसार "सांध्य काकली में एक महान कवि ढलते सूर्य की भांति अस्ताचल को चला जाता है और हिन्दी काव्याकाश में सदा के लिये अपना महान बिम्ब छोड़ जाता है।"[17] सांध्य काकली में कवि की स्वस्थ मनोवृत्ति का प्रमाण हमें मिलता है। कवि अपने जीवन का सिंहावलोकन करता हुआ अपनी अजेयता और महाप्राणता को प्रमाणित करता है। कवि निराला अपने जीवन की उपलब्धियों पर भी विचार मग्न लगते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सांध्य काकली की रचनाओं में आत्मपरकता अधिक है यथा-

"यह जी न भरा तुमसे मेरा
फिर फिर तृष्णा ने आ घेरा।"[18]

सांध्य काकली का कवि सम्प्रति मृत्यु की नीली रेखा को अपने समीप आते देख रहा है -

"चढ़ी थी जो आंख मेरी
बज रही थी जहाँ भेरी
वहां सिकुड़न पड़ चुकी है।
मृत्यु की है रेखा नीली"[19]

इस काव्य संग्रह की रचनाओं में विश्व मानवतावादी दृष्टिकोण के दर्शन होते हैं -

"बांध दो बांध तटिनी के तट
तरू-तरू पर गाओं छाया नट
वंशी फिर वही बजाये गति
जन जन की बढ़े जान की रति।"[20]

सांध्य काकली का वृद्ध कवि परमात्मा को अपना सर्वस्व स्वीकार करता है-

"तुम्हारे काम तुम्हारे नाम
तुम्हारे लिये सही संग्राम
तुम्ही जीवन की घाटी पर
विजय की तरणी खेते हो
तुम्हीं अपनी पाटी भर कर लिखाते हो लिख लेते हो
तुम्हीं जीवन में पूर्ण विराम।"[21]

प्रकृति श्याम घन प्रतीकात्मक बन गया है। बादल निराला के काव्य में उनके प्राण रस हो गये है। कवि के जीवन दर्शन की झांकी अवलोकनीय है -

"बरसो मेरे आंगन बादल
जल जल से भर दो रस उत्पल
करो विकम्पित अवली का उर
भरो आम पल्लव ने नव सुर
रंगो अधर तरूणि के आतुर
सींचों युवक जनों के हृद तल
नई शक्ति अनुरक्ति जगा दो
विकृत भाव की भक्ति भाग दो।"[22]

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि निराला जी की काव्य प्रतिभा बहुमुखी थी, साहित्य का कोई क्षेत्र उसने अछूता नहीं रहा है। उनकी उर्वर प्रतिभा ने सर्वत्र अपना चमत्कार दिखाया है उनकी काव्य रचनाओं में वैयक्तिकता, अहम्, सामाजिक सृजन, अन्ध मान्यताओं से संघर्ष, क्रान्ति, स्वच्छन्दवादी प्रवृत्ति, कवि प्रतिष्ठा और गौरवगाथा का वैभव सहज ही प्राप्त, देखा जा सकता है इनके गीतों में संगीतात्मकता का अप्रतिम स्वर सुनायी पड़ता है। सचमुच निराला जी कविताओं में विविध गुण सन्निहित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 आजकल पत्रिका, फरवरी अंक - 2013, पृ0-12
2 निराला रचनावली , भाग दो , नन्द किशोर , नवल , पृ0- 15
3 वही , पृ0 - 61
4 वही , पृ0 - 62
5 वही , पृ0 - 113
6 वही , पृ0 - 114
7 वही , पृ0 - 93
8 वही , पृ0 - 92
9 निराला काव्य का अध्ययन, भगीरथ मिश्र पृ0 37
10 वही, पृ0 - 38
11 निराला रचनावली, भाग दो , नन्द किशोर, नवल , पृ0- 507
12 आराधना , निराला पृ0 40
13 वही, पृ0 - 72
14 वही, पृ0 - 63
15 गीत गुंज, निराला पृ0 - 53
16 वही, पृ0 - 32
17 विश्वकवि निराला ,डॉ0 बुद्धसेन निहार , पृ0.- 125
18 निराला रचनावली, भाग दो, नन्द किशोर, नवल, पृ0-471
19 वही, पृ0 - 476
20 वही, पृ0 - 486
21 वही, पृ0 - 480
22 वही, पृ0 - 475

भारतीय ग्रामीण समाज में सशक्त होती महिलाएं: एक दृष्टि

सुहासिनी सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, समाज शास्त्र विभाग, महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बस्ती

सारांश

महिला सशक्तिकरण से हमारा तात्पर्य शिक्षा और स्वतंत्रता को समाहित करते हुए सामाजिक सेवाओं के समान अवसर प्रदान करना, राजनैतिक और आर्थिक नीति निर्धारण में भागीदारी, समान कार्य के लिए समान वेतन, कानून के तहत सुरक्षा देने का अधिकार आदि प्रदान करने से है। आज जरूरत इस बात की है कि महिलाओं में आत्मशक्ति के बारे में चेतना जागृत की जाए, जिससे न केवल महिलाओं का कल्याण होगा बल्कि वे सामाजिक विकास की प्रवर्तक भी बन सकेंगी। एक सशक्त महिला न केवल स्वयं अपने लिए बल्कि समाज के समग्र विकास के लिए भी उपयोगी व महत्वपूर्ण साबित होगी। भारत में स्वतंत्रता के बाद से महिला कल्याण के लिए एवं 90 के दशक के बाद से महिला सशक्तिकरण हेतु सरकारी व गैर-सरकारी स्तर पर निरंतर प्रयास किए जाते रहे हैं। ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य स्थिति, आर्थिक सहभागिता, निर्णय क्षमता, कानूनी ज्ञान आदि के संदर्भ में पुरुषों की तुलना में कमजोर स्थिति को देखते हुए ग्रामीण क्षेत्रों में 'महिला सशक्तिकरण' जैसे कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं को सहभागिता प्रदान कर उन्हें राजनीतिक शक्ति संरचना में स्थान देने का जो प्रयास किया गया है, वह बेहद सफल साबित हो रहा है।

आज निर्णय लेने की प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने की जरूरत है। इसके लिए पुरुषों की रूढिग्रात सोच में बदलाव लाना होगा। परम्परा से भारतीय गांव सामाजिक गतिशीलता और आर्थिक उत्पादन का केन्द्र थे। इक्कीसवीं सदी में वह रूपांतरण की प्रक्रिया से दो-चार हो रहे हैं। शहरीकरण की यह प्रक्रिया अचानक पूरी नहीं हो जाएगी। उसका भी एक लम्बा दौर चलेगा। यह संधिकाल लम्बा चलेगा और इसमें कई तरह की पेचीदगियां सामने आएंगी। इस दौर में पुरानी गतिविधियों को नया रूप देने और तकनीकी बदलाव के अलावा सामाजिक वर्गों की भूमिका भी बदलेगी। सामाजिक वर्ग के रूप में इस कार्य में स्त्री की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है। खासतौर से किशोरियां और युवा स्त्रियां भारत के आधुनिकीकरण और सामाजिक रूपांतरण में सबसे बड़ी भूमिका निभाने वाली हैं बशर्ते हम उसके लिए तैयार हो। अभी कुछ समय पूर्व केंद्रीय महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने राष्ट्रीय महिला नीति का प्रारूप जारी किया है। इसका उद्देश्य महिलाओं को सामाजिक-आर्थिक रूप से सशक्त बनाना है। स्त्रियों को लेकर बुनियादी अवधारणाओं में बदलाव लाए बगैर काम चलेगा नहीं, पर यह बदलाव सरकार के किए से नहीं आएगा, लेकिन सरकार की इसमें भूमिका अवश्य है। अब केवल स्त्रियों के कल्याण की बात करने का वक्त नहीं बचा। अब उनकी भागीदारी और अधिकारों की बात होनी चाहिए। भारत सरकार ने सन् 2001 को महिला सशक्तीकरण वर्ष के रूप में घोषित किया था। उसी साल 'राष्ट्रीय महिला अधिकारिता नीति' लागू हुई थी। अब इस नीति को नया मोड़ देने का समय आया है। इसमें युवा वर्ग की महिलाओं की भूमिका को खासतौर से रेखांकित करने की जरूरत है। पिछले पन्द्रह साल में दुनिया बहुत बदली है। बीसवीं सदी के अंतिम वर्षों में भारत के तकनीकी-आर्थिक रूपांतरण के समानांतर जो सबसे बड़ी परिघटना गुजरी है वह है लड़कियों की जीवन में बढ़ती भागीदारी। भागीदारी के साथ-साथ लड़कियों के जीवन के जोखिम भी बढ़े हैं। खासतौर से दिल्ली में निर्भया कांड के बाद से स्त्रियों की सुरक्षा का सवाल उभर कर आया है। अपने घरों से निकल कर काम करने या पढ़ने के लिए बाहर जाने वाली स्त्रियों की सुरक्षा का सवाल मुंह बाएं खड़ा है। जब हम ग्रामीण महिलाओं की बात करते हैं तब हमें ध्यान रखना होगा कि उनके सशक्तीकरण की राह भी आगे पढ़ने, आगे बढ़ने और राष्ट्रीय विकास में योगदान की दिशा में शहरी लड़कियों से भी ज्यादा मुश्किल है। उसके लिए घर से निकलना ही मुश्किल है, भले ही उसके घर वाले उसे पढ़ाना चाहें। बावजूद कठिनाइयों से भारतीय लड़कियों के हौंसलों में कमी नहीं है। वे भी घर से बाहर निकल कर रास्ते खोजने निकल पड़ी हैं। एक नेशनल सैंपल सर्वे के मुताबिक देश में 15-32 आयु वर्ग के लगभग 74 फीसदी युवा पलायन करते हैं। पलायन के लिए बताए गए कई कारणों में से प्रमुख रोजगार, शिक्षा और शादी है। शुरुआती वर्षों में यह पलायन ज्यादातर लड़कों का था, पर अब लड़कियां भी शहरों का रूख कर रही हैं। और वे भी शादी के बंधन में जल्द नहीं बंधना चाहती हैं।

सामाजिक जीवन में महिलाओं की भूमिका पुरुषों से ज्यादा बड़ी है। देश का राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विकास स्त्रियों के विकास पर निर्भर करता है। जब एक महिला सामाजिक और आर्थिक रूप से सशक्त होती है तो न केवल उसका परिवार, गांव बल्कि देश भी मजबूती पाता है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की 83.3 करोड़ आबादी गांवों में रहती है। इनमें लगभग 40.51 करोड़ महिलाएं हैं। इनमें एक तिहाई युवा महिलाएं हैं। अवसरों की कमी, कौशल न होने और अक्सर पैसे की कमी से इनकी उत्पादन क्षमता का पूरा लाभ देश को नहीं मिल पाता है। स्त्रियों के सशक्तीकरण के मोटे तौर पर संकेतक उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक-पारिवारिक स्थिति और रोजगार से जुड़े हैं। भारत में इस वक्त किशोरों और युवाओं की दुनिया की सबसे बड़ी आबादी निवास करती है। सामान्यतः हम 13 से 19 वर्ष के व्यक्ति को किशोर और 16 से 24 वर्ष को युवा में शामिल करते हैं। यह परिभाषा कुछ आगे-पीछे हो सकती है। भारत में इस समय उपरोक्त आयु वर्ग में 21 करोड़ से ज्यादा किशोर और लगभग इतनी ही युवा आबादी है। इस आबादी में आधी

के आसपास स्त्रियां हैं। और इन स्त्रियों में 60फीसदी ग्रामीण है, जिसमें तेजी से बदलाव आ रहा है। युवावस्था से ज्यादा महत्वपूर्ण किशोरावस्था होती है, जो युवावस्था की बुनियाद है। उम्र का यह संधिकाल होता है, जब सब कुछ बदलता है। बच्चा एक सामान्य नागरिक बनने की दिशा में होती है, उसका शारीरिक बदलाव इसी दौरान होता (खासतौर से लड़कियों का) है। उसका व्यावसायिक जीवन इसी दौर में तय होता है। नागरिक के रूप में अपनी जिम्मेदारियों का एहसास भी उसे इसी दौरान होता है। स्त्रियों के सशक्तीकरण के लिहाज से यह उम्र ज्यादा महत्वपूर्ण है, क्योंकि नए ज्ञान से लैस लड़कियां अपने परिवार के दृष्टिकोण को बदलने में क्रांतिकारी भूमिका निभा सकती हैं। इसलिए ग्रामीण युवा बालिकाओं का सशक्तीकरण एक प्रकार से सामाजिक बदलाव का सबसे प्रभावशाली औजार साबित हो सकता है। पर लिंगानुपात बताता है कि हमारा समाज लड़कियों की उपयोगिता से बेखबर है। लैंगिक अनुपात से समाज में स्त्रियों की दशा का पता लगता है।

सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में कुल लैंगिक अनुपात 1000 पुरुषों में 943 स्त्रियों का है। ग्रामीण अनुपात 949 का और शहरी अनुपात 923 का है। देश के अलग-अलग इलाकों में यह अलग-अलग है, पर सबसे खराब स्थिति हरियाणा की है जहां नवीनतम आंकड़ों के अनुसर छह साल से कम की उम्र के बच्चों का लैंगिक अनुपात 843 का है। पंजाब में 846, जम्मू-कश्मीर में 862, राजस्थान में 888 और उत्तर प्रदेश में 902 है। लैंगिक अनुपात बताता है कि समाज स्त्रियों को किस रूप में देखता है। भारत में 0-6 साल वर्ग में 1000 लड़कों के बीच लिंग अनुपात में लड़कियों की संख्या में गिरावट की प्रवृत्ति 1961 से लगातार देखी जा रही है। वर्ष 1991 में 945 संख्या के 2001 में 927 पहुंचने और 2011 में इस संख्या के 918 पहुंचने पर इसे खतरे की घंटी मानते हुए सरकार ने इसे सुधारने की कोशिशें शुरू की हैं। लिंग अनुपात में गिरावट सीधे तौर पर जन्म से पूर्व लिंग की पहचान करने वाली तकनीक के दुरुपयोग की ओर इशारा करती है।

बहरहाल हाल में सरकार ने 'बेटी बचाओ, 2 बेटी पढ़ाओ' योजना की शुरुआत की और जिसे खराब लिंगानुपात वाले 100 जिलों में प्रारंभ किया गया। सामान्यत: जिन सूचकांकों पर ध्यान देना चाहिए उनमें से कुछ इस प्रकार हैं- विवाह के समय की औसत आयु, बच्चे को जन्म देते समय माताओं की मृत्यु, बच्चों के जन्म के बीच की अवधि, परिवार के सदस्यों की संख्या, स्त्रियों के खिलाफ अपराध, साक्षरता दर, श्रमिकों में स्त्रियों की संख्या और बाल लैंगिक अनुपात। स्त्रियों के स्वास्थ्य का जिक्र किए बगैर उनके सशक्तीकरण की बात करना उचित नहीं होगा। देश की लगभग 12 करोड़ युवा स्त्रियां यदि सही समय पर उत्पादक कार्यों में लग सकें तो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में भारी बदलाव लाया जा सकता है। इन ग्रामीण महिलाओं को शारीरिक, शैक्षिक, सामाजिक व आर्थिक रूप से सशक्त बनाने की जरूरत है। सामान्यत: जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था का विकास होता है, स्त्रियां मेहनत के छोटे कामकाज जैसे खेती और ऐसे ही दूसरे कामों से हटती जाती हैं। पर जैसे-जैसे शिक्षा का प्रसार होता है और अर्थव्यवस्थाओं में गति आती है, कामकाजी तबके में महिलाओं की हिस्सेदारी बढ़ती जाती है।वर्तमान में भारतीय अर्थव्यवस्था गति पकड़ रही है। घर से बाहर निकलकर काम पर जाना महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारक हैं। जो महिलाएं काम करती हैं उनका विवाह जल्दबाजी में नहीं होता, बच्चे फौरन नहीं होते और उनके बच्चे अपेक्षाकृत बेहतर शिक्षा पाते हैं और सामाजिक-सांस्कृतिक विकास के लिहाज से तमाम सकारात्मक गतिविधियां होती हैं। इस प्रकार के अध्ययन सामने आए हैं, जो बताते हैं कि महात्मा गांधी ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना में काम पाने के बाद महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है। हालांकि स्त्रियों के साथ आज भी कामकाज में पूरी तरह समानता का व्यवहार नहीं हो पाता है, उन्हें पुरुषों से कम वेतन मिलता है और उनकी पारिवारिक भूमिका ज्यादा बड़ी होने के बावजूद कार्यस्थल पर विपरीत स्थितियों में काम करना पड़ता है। यदि उन्हें उपयुक्त रोजगार मिले तो वैश्विक अर्थव्यवस्था में सुधार हो सकता है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का अनुमान है कि दुनिया में आज भी स्त्रियों की 48 फीसदी उत्पादक क्षमता का इस्तेमाल नहीं हो पा रहा है। महिलाओं का रोजगार में शामिल होना उनके सशक्तीकरण के लिए जरूरी है, साथ ही अर्थव्यवस्था के विकास में भी उसकी भूमिका है।

भारतीय स्त्रियों में काम करने की ललक है और वह बढ़ ही रही है। राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे (राउंड 68) के अनुसार 31 प्रतिशत स्त्रियां जिनका ज्यादातर समय घरेलू कामकाज में व्यतीत होता है, अब बाहर निकल कर काम करना चाहती हैं। पढ़ी-लिखी ग्रामीण स्त्रियों का यह प्रतिशत और भी अधिक यानी 50 फीसदी से ज्यादा है। काम करने की इच्छुक हर प्रकार की स्त्रियों को जोड़ा जाए तो देश में 78 फीसदी स्त्रियों की कामकाज में हिस्सेदारी हो सकती है। इसका दूसरा पहलू यह है कि स्त्रियां ज्यादातर घर के आसपास काम चाहती हैं। बहुत सी स्त्रियां इसलिए काम नहीं करतीं, क्योंकि घर या गांव के पास काम नहीं मिलता। इसके साथ अवसरों की बात भी है। सन् 1987 में 'ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड' शुरू होने के बाद शिक्षकों का कोटा तय होने से महिलाओं के लिए अध्यापन का क्षेत्र खेती के बाद दूसरे नम्बर पर आ गया है। गांवों की पढ़ी-लिखी लड़कियों के लिए एक दरवाजा खुला। इधर कौशल भारत, मेक इन इंडिया, महिलाओं के लिए शिक्षा और कुछ नौकरियों में कोटा या प्राथमिकता देने की प्रवृत्ति ने युवा महिलाओं की भूमिका को बढ़ाया है। महिलाओं के रोजगार में सबसे बड़ी बाधा है प्रवास। यानी दूसरे गांव, शहर या देश में जाकर काम करना आसान नहीं है। प्रवास मुश्किल है और हमारी सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियां पुरुषों के मुकाबले स्त्रियों के प्रवास के प्रतिकूल है। सामान्यत: राजनीति में स्त्रियों की भूमिका बहुत सीमित है। यह दुनियाभर की प्रवृत्ति है, पर भारतीय राजनीति में स्त्रियों की भूमिका और भी कम है। सामान्यत: संसद और विधानसभाओं में महिला सदस्यों की संख्या 10 फीसदी से ऊपर नहीं जाती। पर पंचायती राज ने एक रास्ता खोला है। 24 अप्रैल, 1993 को भारत में संविधान के 73वें संशोधन के आधार पर पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा हासिल कराया गया। यह फैसला ग्राम स्वराज के स्वप्न को वास्तविकता में बदलने की दिशा में एक कदम था, पर उतना ही महत्वपूर्ण महिलाओं की भागीदारी के विचार से था। इसमें महिलाओं के लिए एक तिहाई सीटों के आरक्षण की व्यवस्था थी। यह कदम क्रांतिकारी साबित हुआ। हालांकि इस कदम की शुरू में आलोचना की गई। आज भी तमाम महिला पदाधिकारियों के नाम से उनके पति, पिता या पुत्र काम कर रहे हैं, पर ऐसी महिलाओं की कमी नहीं है, जिन्होंने सफलता और कुशलता के साथ अपने काम को अंजाम दिया है।

पंचायती राज के कारण गांवों में महिलाओं की भूमिका में युगांतरकारी बदलाव आया है। अब इस आरक्षण को बढ़ाकर 50 प्रतिशत किया जा रहा है। हालांकि कुछ राज्यों में 50 फीसदी आरक्षण शुरू हो चुका है, पर हाल में केन्द्र सरकार के पंचायती राज मंत्री ने कहा कि संविधान में संशोधन के बाद इसे पूरे देश में लागू कर दिया जाएगा। सरकार ने नई महिला नीति का जो दस्तावेज जारी किया है उसका एक लक्ष्य महिलाओं का राजनीतिक सशक्तीकरण करना भी है ताकि उनके लिए ऐसा सामाजिक-आर्थिक वातावरण तैयार हो, जिसमें वे अपने मूल अधिकारों को प्राप्त कर सकें। इस अधिकार को हासिल करने

में युवा महिलाओं की भूमिका ज्यादा बड़ी है। कुछ राज्यों ने पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव लड़ने के लिए शैक्षिक योग्यता को भी अनिवार्य बनाया है। हालांकि इसका विरोध भी हुआ है, पर इससे युवा स्त्रियों के लिए अवसर बढ़ेंगे। नई महिला नीति का दस्तावेज भी राजनीति, प्रशासन, लोकसेवा और कॉरपोरेट क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने की बात कहता है। युवा स्त्रियों के सशक्तीकरण की बात तब तक अधूरी है जब तक लड़कियों को लेकर सामाजिक दृष्टिकोण की बात नहीं की जाए। केवल लड़कियों की भूमिका बदलने का सवाल नहीं है, बल्कि उनके प्रति सामाजिक नजरिया भी बदलना चाहिए। उनकी सुरक्षा इसी नजरिए से तय होगी। असुरक्षित और भयभीत बालिका से हम बहुत ज्यादा की उम्मीद नहीं कर सकते। सुरक्षा का वातावरण बनाने की जिम्मेदारी पूरे समाज की है। यह काम सामाजिक शिक्षण से पूरा हो सकता है। हम परम्परा से 'यत्र नार्यस्तु पूज्यते' जैसी बात कहते जरूर हैं, पर व्यावहारिक रूप से इसे लागू नहीं कर पाते हैं। जो लिंगानुपात देश के कई इलाकों में है, वह इस सामाजिक दृष्टिकोण पर मोहर लगाता है। कहना मुश्किल है कि 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' का नारा हमारे दिलो-दिमाग में बैठा है या नहीं। पर हम व्यवहार रूप में इसे लागू कर सकें तो कहानी बदलते देर नहीं लगेगी। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि भारतीय ग्रामीण समाज में महिलाएं तीव्र गति के साथ सशक्त होती जा रही हैं जो कि एक शुभ संकेत है।

संदर्भ-

1. ग्रामीण समाजशास्त्र, वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा, प्रकाशक - पंचशील प्रकाशन जयपुर, प्रथम संस्करण-1999, पृ0 295-296
2. भारतीय समाज की संरचना, श्रीमती हेमलता श्रीवास्तव, प्रकाशक साहित्य भण्डार 50, चाहचन्द, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1989
3. ग्रामीण-नगरीय समाजशास्त्र, राम गणेश यादव, प्रकाशक - ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड 1/24 आसफ अली रोड, नई दिल्ली 110002, प्रथम - संस्करण 2014
4. ग्रामीण समाजशास्त्र, डॉ0 एम0एम0 लवानिया, शशी के. जैन, प्रकाशक- रिसर्च पब्लिकेशन, 89 त्रिपोलिया बाजार, जयपुर, संस्करण 1987
5. भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, एम0एल0 गुप्ता, डॉ0 डी0डी0 शर्मा, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, संस्करण 2002
6. पंचायती राज से बेहतर हुआ ग्रामीण प्रशासन, सुरेंद्र बहादुर सिंह, कुरुक्षेत्र, अगस्त, 2011
7. पंचायती राज और महिला सशक्तिकरण, आनन्द सिंह कोडान बिमल एवं नरेन्द्र सिंह, कुरुक्षेत्र, जून, 2010

वर्तमान समय में अनुवाद की उपादेयता

डॉ० मुदस्सिर अहमद भट्ट

श्रीनगर, कश्मीर

अनुवाद आधुनिक युग की मांग की उपज हैं। संसार में ज्ञान असीम है और उस असीम ज्ञान को अर्जित करने के लिए जीवन सीमित है। यह भी सत्य है कि संसार का समग्र ज्ञान- विज्ञान किसी एक भाषा में समाहित नहीं हैं। वह तो सैंकड़ों भाषों में फैला हुआ है। यह कहना भी असंगत नहीं होगा कि समय, श्रम, धन एवं प्रतिभा की सीमाओं के कारण मनुष्य को संसार की सभी भाषाओं को सीखना असंभव है। अत: वह संसार की समग्र भाषाओं में स्थित ज्ञान- विज्ञान तक कैसे पहुंचे ? अनुवाद का महत्व इसी प्रश्न के उत्तर में निहित है। एक पहलू यह भी है कि मानव जीवन के अभाव की पूर्ति एवं जिज्ञासाओं की प्राप्ति के प्रयास के रूप में अनुवाद का जन्म हुआ।

अनुवाद भाषाओं के बीच सम्प्रेषण की वह प्रक्रिया है जिसके लिए अंग्रेजी में 'ट्रांसलेशन', फ्रेंच में 'ट्रडूकशन', अरबी में 'तर्जुमा' आदि शब्दों का प्रयोग होता हैं। जे.सी. केटफोर्ड के अनुसार- "अनुवाद स्रोत-भाषा की पाठ-सामग्री को लक्ष्य भाषा के समानार्थी पाठ में प्रतिस्थापित करने की प्रक्रिया है।"[1] डॉ. रितारानी पालीवाल के अनुसार- "स्रोत-भाषा में व्यक्त प्रतीक व्यवस्था को लक्ष्य भाषा की सहज प्रतीक व्यवस्था में रूपांतरित करने का कार्य अनुवाद है।"[2]

अनुवाद की उपादेयता का प्रतिपादन करते हुए रामचंद्र वर्मा लिखते हैं- "आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य का आरम्भ ही वस्तुत: अनुवादों से हुआ था। ऐसा होना प्राय: अनिवार्य भी था और अनेक अंशों में उपयोगी तथा आवश्यक भी। आजकल किसी नई भाषा को अपने पैरों पर खड़ा होने के समय दूसरी भाषाओं का सहारा लेना ही पड़ता है और स्वतंत्र साहित्य की रचना का युग प्राय: अनुवाद युग के बाद ही आता है। पहले दूसरी भाषाओं के अच्छे- अच्छे अनुवाद प्रस्तुत होते है। उन अनुवादों की साहयता से पाठकों का ज्ञान बढ़ता और उनकी आँखें खुलती है...[3]" भारतीय साहित्य का इतिहास विश्व भर में सर्वाधिक प्राचीन, प्रौढ़ और कालमय हैं। साहित्यिक आदान- प्रदान तथा राष्ट्रीय चेतना को विकास के लिए भी अनुवाद एक सशक्त उपादान है। आदान- प्रदान की प्रक्रिया जीवन के सभी क्षेत्रों में निरंतर होती है। इस प्रक्रिया से ही मनुष्य सुसंस्कृत, सुबुद्ध एवं समृद्ध हो सकता है। भाषा के क्षेत्र में भी इस प्रक्रिया का महत्व कम नहीं है। इसी प्रवाह में भाषा की समृद्धि होती है। शब्द सम्पदा की अभिवृद्धि के साथ उसकी अभिव्यंजना क्षमता भी पुष्ट होती है। इस संदर्भ में रामचंद्र वर्मा 'अच्छी हिंदी' नामक पुस्तक में लिखते है- "जब भाषा पूर्ण रूप से पुष्ट तथा साहित्य परम उन्नत हो जाती है, तब भी अनुवादों की आवश्यकता बनी ही रहती है। अन्यान्य भाषाओं में जो अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थ प्रकाशितं होते है, उनके अनुवाद भी लोगों को अपनी भाषा में प्रकाशित करने ही पड़ते हैं। यदि ऐसा न हो तो एक भाषा के पाठक दूसरी भाषाओं के अच्छे- अच्छे ग्रंथों और उनमें प्रतिपादित विचारों तथा सिद्धांतों के ज्ञान से वंचित ही रह जाएं। उस अवस्था में पहुँचने पर भाषा साहित्यों में परस्पर होड़ सी होने लगती है...।"[4]

स्वयं को दूसरों के सामने प्रकट करना तथा दूसरों के बारे में कुछ तो जानने की जिज्ञासा रखना मनुष्य का स्थायी भाव होता है जिसके लिए उसे भाषा की आवश्यकता होती है। परन्तु स्थिति यह है कि दुनिया के सभी देश की भाषाएँ भिन्न- भिन्न मिलती है, जिससे संपर्क बनाये रखना कठिन होता है। अत: अनुवाद के माध्यम से ही संपर्क किया जा सकता है। वही दूसरी और अनुवाद ज्ञानात्मक तथा विज्ञानार्जन का मुख्य साधन है। सभी प्रकार की, देश-विदेश की ज्ञानात्मक सामग्री हमें अनुवाद के कारण ही उपलब्ध हो सकती है।

अनुवाद के माध्यम से ही हिंदी में ऐसी अनेक शक्तियों का जन्म हुआ जिनका पहले कभी अस्तित्व नहीं था। नवीन साहित्य रूपों का सृजन भी अनुवाद के कारण हो सका है। उनके जीवन बिम्ब विधानों ने हिंदी के कवियों तथा लेखकों की रचनाएँ समृद्ध होने में मदद हुई है। शब्द भंडार और अभिव्यंजना शक्ति की वृद्धि अनुवादित ग्रंथों से अनुप्राणित हुई। कतिपय संस्कृत, अरबी, फारसी अंग्रेजी बंगला, उर्दू, मराठी आदि भाषाओं के शब्दों, वाक्यांशों, मुहावरों, कहावतों के नए प्रयोग हिंदी में प्रविष्ट हुए। इस प्रक्रिया से हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं भी संपन्न हुई हैं। इस प्रकार अनुवाद भाषा समृद्धि का साधन है। अनुवाद से स्रोत भाषा की विशेषताएं, उसकी अभिव्यंजना, शब्द शक्तियां, कहावतें, मुहावरें तथा शैली का भी बोध होता है। इस संदर्भ में डॉ. पी. जयरामन का कथन है- "भाषा तथा उसके साहित्य की प्रवृतियों से परचित होने का एकमात्र साधन अनुवाद है"।[5] भाषिक समृद्धि के साथ- साथ अनुवाद से साहित्यिक समृद्धि भी होती है। आज अनुवाद के कारण ही मराठी, कन्नड़, तमिल, तेलगु, मलयालम, बंगला तथा गुजराती जैसी अनेक भारतीय भाषों का साहित्य हिंदी में उपलब्ध है।

अध्ययन तथा अनुसंधान २०वीं शताब्दी के ज्ञानात्मक क्षेत्र की चरम उपलब्धियां हैं। अब संसार की अनेक भाषाओं के अध्ययन एवं अनुसंधान का लाभ एक दूसरे को हो रहा है। प्रत्येक देश एक दूसरे के ज्ञानात्मक तथा विज्ञानात्मक अध्ययन से और शोधकार्य से लाभान्वित हो रहा है। इसके साथ ही साहित्यिक, सामजिक और वैज्ञानिक आदि सामग्री के तुलनात्मक अध्ययन का एक नया आयाम खुल गया है। यह अनुवाद का ही चमत्कार है कि अंतर्राष्ट्रीय साहित्य का अध्ययन और अध्यापन भारतीय भाषाओँ में संभव हुआ है। इसके कारण ही हम टॉलस्टॉय के उपन्यासों और शेक्सपियर के नाटकों से परिचित हुए है।

अनुवाद के माध्यम से कामू, सात्र और बैकेट से लेकर पाब्लो नेरुदा तक की रचनाओं से भारतीय पाठक लाभान्वित हैं। अनुवाद ने न केवल पाठकीय रूचि को अंतर्राष्ट्रीय आस्वाद प्रदान है बल्कि अध्ययन और अनुसंधान को नई दिशाएं भी दी हैं।

राष्ट्रीय एकता वर्तमान कल की अनिवार्य आवश्यकता है। भारत जैसे बहु- प्रांतीय राष्ट्र में अनेक भाषा भाषी बसे होने के कारण उनमें अनेकरूपता मिलना स्वाभाविक ही है। जाति, धर्म, वर्ग, व्यवसाय, भाषा तथा प्रदेश आदि भिन्न- भिन्न होते हुए भी राष्ट्रीय एकता को अनुवाद के द्वारा ही स्थापित किया जा सकता है। एक प्रदेश के समाज, साहित्य एवं संस्कृति आदि को दूसरे प्रदेश के लोग अनुवाद के जरिए ही समझ सकते है। अनुवाद ही उन्हें एक दूसरे के करीब ला सकता है। अत: अनुवाद राष्ट्रीय एकता के संरक्षण एवं संवर्द्धन का एक महत्वपूर्ण साधन हैं।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने अनुवाद की महत्ता को स्पष्ट करते हुए हिंदी साहित्यकारों को उत्तमोत्तम ग्रंथों का अनुवाद हिंदी में करने के लिए अनुप्राणिक किया था। 'सरस्वती' पत्रिका में उनके विचार इस प्रकार हैं- "जैसे अंग्रेजों ने ग्रीक और लैटिन भाषा की सहायता से अंग्रेजी की उन्नति की और उन भाषाओं के उत्तमोत्तम ग्रंथों का अनुवाद करके अपने साहित्य की शोभा बधाई, वैसे ही हमको भी करना चाहिए"।[6] द्विवेदी जी के कथन से एक विचार स्पष्ट है कि अनुवाद एक ऐसा सशक्त उपादान है जिसके माध्यम से नई विधाओं के पथ प्रशस्त हो जाते हैं और विद्यमान विधाओं को पोषण मिलता है। अनुवाद की यह उपादेयता विशेष स्मरणीय है।

सारांशत: कहा जा सकता है कि अनुवाद की उपादेयता बहुमुखी है। अनुवाद वर्तमान काल की अनिवार्य आवश्यकता है। भारतीय एवं अंतर्राष्ट्रीय साहित्य के अध्ययन- अध्यापन में भी अनुवाद की उपादेयता असंदिग्ध है।

संदर्भ ग्रन्थ एवं सहायक ग्रन्थ

1 डॉ. आदिनाथ सोनटक्के, अनुवाद सिद्धांत एवं प्रयोग, पृ. 19

2 डॉ. रीतारानी पालीवाल, अनुवाद प्रक्रिया, पृ. 14

3 अच्छी हिंदी- रामचंद्र वर्मा, 'अनुवाद की भूलें' पृ. 234

4 वही, पृ. 234

5 डॉ. पी. जयरामन - भाषा - त्रैमासिक, पृ. 14

6 'सरस्वती' पत्रिका भाग-४ (हिंदी भाषा और उसका साहित्य- ले. महावीर प्रसाद द्विवेदी, (पृ. 19) सं. फरवरी-मार्च, 1903)

7 अनुवाद प्रक्रिया, डॉ. रीतारानी पालीवाल, १९८२

8 अनुवाद कला सिद्धांत और प्रयोग, डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया, १९९१

स्वर्ग-विराग में चित्रित राजनीतिक भ्रष्टाचार

सब्जार अहमद बट्टू

कश्मीर विश्विद्यालय, श्रीनगर

राजनीति शब्द दो शब्दों के मिश्रण से बना है 'राज' तथा 'नीति'. 'राज' का शाब्दिक अर्थ शासन होता है तथा किसी उचित समय पर, उचित स्थान पे कोई उचित कार्य करना 'नीति' कहलाता है. नीति एक प्रकार की विशेष प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी जनसमूह पर शासन किया जाता है तथा उन्हें कुछ नियमों के अधीन चलना पड़ता है अन्यथा इन नियमों का उलंगन करने से उन्हें दण्ड प्राप्ति को समर्पित होना पड़ता है। जहाँ तक स्वर्ग-विराग की बात है तो इसके भीतर 'राजनीति' के सभी गुण पर्याप्त है जैसे उचित समय, उचित स्थान परन्तु अंतिम लक्षण उचित कार्य को संधिग्द दृष्टि से देखने पर मजबूर करती है तथा इस बात को विचारणीय बनाता है कि क्या यहाँ की राजनीति में उचित कार्य होता भी है या नहीं? कारण यहाँ की परिस्थितियां, युवाओं का अंधकारमय भविष्य, घाटी में बढती बेरोजगारी आदि। स्वर्ग- विराग सं २०१६ में प्रकाशित कश्मीर घाटी के खानागुंड त्राल प्रान्त में जन्मे मुदस्सिर अहमद भट्ट द्वारा लिखा गया उनका प्रथम काव्यसंग्रह है. उनका जन्म १९८७ में हुआ और यह समय कश्मीर घाटी में विशेष रूप से राजनीतिक उथल-पुथल का दशक माना जाता है. चाहे वो घाटी से हिन्दुओं का पलायन हो या फिर आतंकी घतिविधियों की बढोतरी जिसके कारण कश्मीर में यहाँ की खूबसूरती, यहाँ की संस्क्रति, यहाँ के सामान्य जीवन के स्थान पर एक असीमित डर का प्रवेश हुआ जो आज तक चल रहा है। इन सब परिस्थितियों का स्पष्ट प्रभाव मुदस्सिर अहमद के जीवन तथा उनकी लेखनी पर भी दिखाई देता है। उन्होंने इन्ही परिस्थितियों को, यहाँ पर हो रहे अत्याचार को, सामान्य जन की पीढ़ा को, राजनीतिक असफलता को अपनी कृति में स्थान दिया है. प्रेम, संस्क्रति के साथ-साथ यहाँ की राजनीति की नाकामी को इस रचना का आधार बनाया गया है। एक ओर जहाँ लोग अपनी बात या यूँ कहे कि यथार्थ को अभिव्यक्ति प्रदान करने में संकोच करते है तो वही इस नव-लेखक ने किसी भी सत्ताधारी के दभाव को नकार कर स्वतंत्रतापूर्ण अपनी लेखनी की है। 'स्वर्ग की पीढ़ा' कविता में वह किसी भी राजनीतिक नेताओं के डर को नकार कर लिखते है,

"लिख रहा हूँ
स्वर्ग की पीढ़ा
बिना किसी डर
किसी सत्ता
के दबाव के बिना,
डरता नहीं
आशिक मिजाज नेता से!"

वह किसी भी एक दल का नाम न लेकर प्राय: सभी राजीतिक दलों को शोषण का प्रतीक मानकर चलते है.वह सभी दलों का विरोध करते हुए उनके पार्टी चिनो का भी बहिष्कार करते है जो केवल वोट प्राप्ति के चिन मात्र बनकर रह गए हैं.आलोच्य लेखक का मानना है कि वह चुनाव के लिए किसी भी चिन का सहारा नहीं लेते. वह स्वतन्त्र है और स्वतंत्रतापूर्ण होकर अपनी लेखनी को अपनी इच्छानुसार एक दिशा प्रदान कर रहे है. 'स्वर्ग की पीड़ा' कविता में वह लिखते हैं –

"मैं कमल नहीं दिखाता
नहीं दिखाता कलम-दवात
और ना ही झाड़ू दिखाता हूँ
मेरा नहीं है
कोई चुनावी निशान"

लेखक का मानना है कि यह राजनीतिक दल केवल लोगों की हत्या कर अपनी स्वार्थपूर्ति करते रहते है.वह जन सामान्य की पीड़ा में भी अपना लाभ खोजते रहते हैं. उन्होंने केवल और केवल अपनी तिजोरियों को बरने का किया हैं. राजनीति के इस दुर्व्यवहार पर लिखते हुए कश्मीर घाटी में चल रही अशांति तथा वहाँ पर हो रही पत्थरबाजी को भी लेखक इन्ही राजनेताओं का एक हत्याकांड मानते हैं.

"थक गए सत्ताधारी
लाशों को गिनते-गिनते

पैंसों को समेटते-समेटते
परेशान हुए
कही खेल न मैली हो
संगबाजी के खेल में!"

इस प्रान्त में लोगो की उपेक्षा तंत्र को अधिक महत्व दिया जाता है। राजनीति का सर्वप्रथम कार्य जहाँ लोगो की पीड़ा को हर कर एक स्वस्थ राज्य की स्थापना करना होता है वही इन सब चीजों को भूल कर यहाँ की राजनीति कई प्रकार की अमानवीय वस्तुओं को जन्म देती रही है। इस राजनीति ने लोगो को संत्रास से ग्रस्त कर दिया है। इन सब चीजों का स्वयं साक्षात्कार करने के कारण ही आलोच्य लेखक इन राजनेताओं को दलाल की उपाधी देते है। उनके अनुसार यह नेता मात्र लोगो की भावनाओं की दलाली करते हुए अपनी तिजोरियों को बरते रहे है। यह नेता अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए किसी भी हद तक गिर सकते है।

"राजा स्वच्छंद होकर
भय, आतंक, संत्रास
और महामारी से
दलबंदी को
प्रोत्साहित करते है।"

कश्मीर की राजनीतिक- व्यवस्था को देखते हुए लेखक के मन में दिन-प्रतिदिन आक्रोश बढता जा रहा है। वस्तुत: देखा जाए तो ये केवल आलोच्य लेखक की मन:स्थिति नहीं बल्कि सम्पूर्ण कश्मीर घाटी की युवा पीढ़ी की मन: स्थिति है। यहाँ मनुष्य निर्दोष होते हुए भी सत्ता की बलि चड़ता है तथा राजनीतिक अनुशासन हीनता के कारण यहाँ जंगल राज सा प्रतीत होता है। जिसमे कोई भी नियम लागू नहीं होता और जहाँ उच्च-वर्ग के प्राणी निम्नवर्ग का शोषण करते है। यह सत्ताधारी निर्दोष, असहाय कश्मीरियों को मारने से भी नहीं चूकते।

"हाँ यह जानता हूँ
निर्दोष हूँ
उस कश्मीरी की तरह
जिसे अक्सर
मरवा दिया जाता है
जंगल में
जंगल राज में
सत्ता देखते हुए."

इस काव्यसंग्रह की रचना कश्मीर घाटी की राजनीति को देखकर, यहाँ के सामान्य जन की दयनीय स्थिति को महसूस कर की गई है. कवि अपनी लेखनी के माध्यम से समस्त विश्व के पाठकों को इस बात से आवगत कराना चाहते है कि प्रकार एक भ्रष्ट राजनीति के चुंगल में फंस कर एक आम आदमी को कष्ट उठाने पड़ते हैं। वह ऐसे नेताओं से बचने को भी कहते हैं जो अपने स्वार्थ हेतु जनता का रक्त चूसने के लिए तत्पर रहते हैं और इसकी पूर्ती के लिए वह यथासंभव प्रयास भी करते हैं। कई बार ऐसे नेति कई महान पुरुषों का भेस बदलकर अपनी कूट नीति को अंजाम देते हुए यहाँ की जनता को लूटने में लगा हुआ है। यह सारे नेता सामान्य जन का प्रतिनिधित्व करने के बजाय उनकी भावनाओं का विक्रेता बनकर सामने आता है. 'स्वर्ग-विराग' की इन पन्क्तियों को देखिये-

"यहाँ नेता है व्यापारी
रहम-ओ-करम पर जन सारी
गाँधी भेस में तुछ्कारी
चले जाओ ए दीवानों।"

कश्मीर घाटी में आम आदमी केवल कष्ट, अनेक प्रकार की मानसिक तथा शारीरिक यातनाओं में ही बंट रहा है और राजनीति इस सब की परवाह न कर नग्न रूप में अपनी चरम सीमा को छू रही है। वह केवल और केवल अपने लाभ के लिए सत्ता में बैठे हैं. प्राय: सभी राजीतिक-दल अपनी- अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए यहाँ की जनता को लूट रही है और प्राचीन काल से ही उनकी भावनाओं तथा आकाक्षाओं की हत्या का यह सिलसिला चला आ रहा है। जम्मू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में एक शोधार्थी नरेश कुमार 'स्वर्ग-विराग का वस्तुगत मूल्यांकन' नामक अपने शोध-पत्र में लिखते हैं-"पिछले पच्चीस- तीस बरसों से कश्मीर में बारूदी हवाएँ चल रही है और इन हवाओं में सियासत ही फली-फूली है, आम आदमी तो बस चिथड़े-चिथड़े हुआ जा रहा है।" यह सर्वमान्य तथ्य है की कश्मीर अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण पूरे विश्व में स्वर्ग के नाम से जाना जाता है। कई कवियों तथा अन्य साहित्यकारों ने यहाँ की प्राकृतिक विशेषताओं पर ही अपना ध्यान केन्द्रित कर अपनी लेखनी चलाई है और इसमें उन्हें यश-प्राप्ति भी हुई है परन्तु इन सब पारंपरिक कवियों से तटस्थ होकर आलोच्य लेखक ने यहाँ की सुन्दरता, मृत्क में जान डालने वाली शीतल और पावन वायु का चयन न करके यहाँ के विषम तथा दयनीय

पन्नों को उलट कर निर्भीक होकर शासन तथा शासक दोनों पर अपना आक्रोश दिखाकर एक लिखित आक्रमण किया है। स्वर्ग-विराग को पढ़कर आलोच्य कवी की मन:स्थिति और राजनीतिक-व्यवस्था, अनुशासनहीनता के भीषम परिणामों की ओर भी सचेत किया है. 'दिल एक दरिया' कविता की इन पंक्तियों में कुछ ऐसी ही सम्भावना की सूचना मिलती है –

"यहाँ एक
जवालामुखी भी होता है
ताल में
जो मंद-मंद कदमो
अपना पथ खोजता है
बाहर निकलने को
उस शोषण को
समाप्त करने जो
बड़ी मछलियों
मगरमच्छ द्वारा
किया जाता है।"

अत: स्वर्ग-विराग कविता संग्रह का अध्ययन करने के पश्चात हम हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि हमारे भारत देश विशेषकर कश्मीर प्रांत में राजनीति ने किस प्रकार लोगों के हृदय को चोटिल कर दिया है, जिसके कारण वह अभ किसी भी राजनीतिक दल पर विशवास नहीं जुटा पाते। जहाँ तक आलोच्य लेखक की बात है तो उन्होंने न केवल उत्कृष्ट शब्दावली का प्रवोग कर अपनी लेखन-प्रतिभा का प्रमाण प्रस्तुत किया है बल्कि उन्होंने तो समोच्य राजनैतिक व्यवस्था को ही कटघरे में खड़ा कर दिया है।

सन्दर्भ-

1. मुदस्सिर अहमद भट्ट, स्वर्ग-विराग, पृ.19
2. वही, पृ.19
3. वही, कश्मीर बंद, पृ.16
4. वही, मशाल, पृ.31
5. वही, पृ.32
6. वाही, जानता हूँ, पृ.26
7. वही, स्वर्ग-विराग, पृ.42
8. नरेश कुमार, 'स्वर्ग-विराग' का वस्तुगत मूल्यांकन, पृ.
9. मुदस्सिर अहमद भट्ट, दिल एक दरिया, पृ. 88

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में आर्थिक विपन्नता के विभिन्न पक्ष

डॉ० अमृता सिंह

श्रीनगर, कश्मीर

विदेशी शासनकाल में यद्यपि भारत व्यापार का केंद्र था किन्तु भारतीय अर्थ-व्यवस्था में निश्चित रूप से आए परिवर्तन के कारण भारत को अधिक लाभ नहीं मिला; क्योंकि विदेशी सरकार यहाँ का कच्चा माल विदेशों में ले जाकर वहाँ का बना सस्ता माल यहाँ के बाजारों में बेचती थी, परिणामस्वरूप भारतीय अर्थ-व्यवसाय को हानि पहुंची तथा आर्थिक स्थिति बद से बदतर होती चली गई। इस सन्दर्भ में डॉ. विद्याधर महाजन लिखते हैं "भारत से हाथी के दांत का सामान, मोठी, वैदूर्य, काली मिर्च, लौंग, कई प्रकार के मसाले, सुगन्धियाँ, रेशमी और सूती कपड़े बहुत मात्रा में रोम भेजे जाते थे।"[1]

स्वतंत्रता पश्चात् वर्ग-वैषम्य के कारण समाज उच्च, मध्य तथा निम्न वर्ग में बंट गया। उच्च वर्ग के अंतर्गत जमींदार, पूंजीपति, महाजन, राजनेता, व्यापारी तथा उच्च सरकारी कर्मचारी आते हैं, इनमें से कई लोगों ने श्रमिकों, किसानों तथा मजदूरों का शोषण करना शुरू किया तथा अधिक से अधिक धन एकत्र करने में जुट गए; परिणामस्वरूप उच्चवर्ग और अधिक उच्च तथा निम्न वर्ग और निम्न होता चला गया। भारतीय अर्थ-व्यवस्था पूँजीवाद से प्रभावित हुई जिससे नौकरशाही, रिश्वतखोरी, महंगाई को बल मिला। यथा "किसी भी देश या समाज के निर्माण एवं विकास में अर्थ की सदैव महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अर्थ के द्वारा ही व्यक्ति या समाज के सर्वत्र क्रिया-कलाप संचालित होते हैं। किसी देश या राष्ट्र की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों से कहीं अधिक प्रभावशाली उसकी आर्थिक परिस्थितियाँ होती हैं, जिनकी प्रतिकूल स्थिति में देश का नव-निर्माण, पुनर्निर्माण असंभव हो जाता है।"[2] अत: आर्थिक विषमता से ग्रस्त कोई भी समाज विकसित एवं उन्नत नहीं हो सकता। इसी आर्थिक विपन्नता से पीड़ित-शोषित श्रमिकों की अत्यन्त दयनीय दशा को विभिन्न साहित्यकारों ने अपने साहित्य में चित्रित किया है जिनमें अमृतलाल नागर का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

नागर जी मार्क्सवादी साम्यवाद से प्रभावित हैं, अत: उनके उपन्यासों में सहज ही आर्थिक समानता तथा भेद-भाव रहित समाज की चेतना लक्षित होती है। नागर जी अपने प्रथम उपन्यास भूख की भूमिका में लिखते हैं "सन् 43 के बंग दुर्भिक्ष में मनुष्य की चरम दयनीयता और परम दानवता के दृश्य मैंने कलकत्ते में अपनी आँखों से देखे थे। सियालदह स्टेशन के प्लेटफोर्म, कलकत्ते की सड़कों के फुटपाथ ऐसी वीभत्स करुणा से भरे थे कि देख-देखकर आठों पहर जी उमड़ता था... द्वितीय महायुद्ध में गला फंसाए हुए तत्कालीन ब्रिटिश सरकार और निहित स्वार्थों भरे अफसर-व्यापारियों के षड्यंत्र के कारण ही हजारों लोग भूखों तड़प-तड़पकर मर गए, सैंकड़ों गृहिणियां वेश्याएं बनाई जाने के लिए और सैंकड़ों बच्चे गुलामों की तरह दो मुट्ठी चावल के मोल बिक गए।"[3] बंगाल में पड़े महाकाल की इस दयनीय स्तिथि में भी पूंजीपतियों तथा साहुकारों ने अपनी स्वार्थी प्रवृति के चलते न जाने कितने मजदूरों, स्त्रियों तथा बच्चों पर अत्याचार किया। उनके द्वारा किए शोषण तथा अत्याचार का मार्मिक चित्रण नागर जी ने भूख उपन्यास में किया है जिसमें शोषित वर्ग की पीड़ा व विवशता को प्रस्तुत कथन द्वारा अनुभव किया जा सकता है - "एक दलाल, एक मोनाई, गाँव भर का अनाज खा जाता है, गाँव भर के कपड़े पहन लेता है। हमारी खुराक, हमारे तन ढकने के कपड़े, अपनी तिजोरियों में नोटों के बंडल, सोने, चाँदी और हीरे जवाहिरात की तोड़ों की शक्ल में हिफाजत से रखे हैं। उनकी हिफाजत के लिए भोजपुरियें लठैते हैं, बंदूकें हैं, पुलिस हैं, कानून हैं।"[4]

आलोच्य उपन्यास का पात्र दयाल जमींदार अपनी शराब के लिए चिन्तित है तो प्रजा अन्न के एक दाने के लिए। वह अस्सी रुपये प्रति बोतल तक खर्च करने के लिए तैयार हो जाता है और जनता दाने-दाने को मोहताज है। ऐसी स्तिथि पर नागरजी कटाक्ष करते हुए कहते हैं - "दयाल जमींदार को शराब की एक बूंद तड़पा रही थी और दयाल की प्रजा को चावल की एक कनी।"[5]

वहीं नाच्यौ बहुत गोपाल उपन्यास में आर्थिक विपन्नता के कारण जूठन और बासी खाना खाने को विवश मेहतरों की दयनीय दशा का चित्रण मज्जू नामक पात्र के इस कथन से होता है "घर-घर मांगी हुई शाम की जूठन से ही सवेरे का कलेवा और लौट आने के बाद का पानी-पिलाव होता है। अरे बसन्तू के यहाँ तो भौजी के ये हाल हैं कि तीन-तीन, चार-चार दिन की बासी पिरौठियाँ पानी में तर करके खायी जाती हैं। ऊपर से नमक की डली चाटने लगते हैं।"[6] यह सामाजिक विडम्बना है कि जहाँ दाने-दाने के लिए तरस रहा एक वर्ग जूठन तक खाने को विवश है वहीं दूसरी ओर सम्पन्न वर्ग जाने-अनजाने इसका अनादर कर देता है।

लेखक ने बूँद और समुद्र उपन्यास में उस पूंजीपति वर्ग का चित्रण किया है, जो जमींदार और महाजन के रूप में किसानों का विभिन्न प्रकार से शोषण कर रहे हैं। निम्नवर्गीय महिपाल अपने जमींदार मामा तथा उनके कारिंदों द्वारा किसानों तथा मजदूरों पर किए जाने वाले अत्याचार का स्मरण कर अत्यंत दुखी हो जाता है। "किसानों को बेंतों से मारना, उन्हें दरख्तों पर उल्टे लटकाकर धूनी देना, मनमानी बेगार कराना और उन्हें भूखों मारना, घर लूटना, बहु-बेटियों की इज्जत आए दिन लूटना, अमानुषिक अत्याचार वह आए दिन देखा करता था।"[7] व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के प्रति इस अमानवीयता को नागर जी ने अत्यंत मर्मस्पर्शी ढंग से व्यक्त किया है।

अमृत और विष उपन्यास में पूंजीपतियों तथा सरकारी अधिकारियों के गठजोड़ का ऐसा चित्रण हुआ है, जिसने भ्रष्टाचार को समाज के एक अभिन्न अंग के रूप में प्रस्तुत किया है। इस दूषित परिवेश में न्याय व्यवस्था भी अपनी अंतिम साँसे गिनती नजर आती है। आलोच्य उपन्यास में चित्रित कांग्रेसाध्यक्ष महोदय का अरविंद शंकर से कहना "अरविंदजी, कानून चाक पर चढ़ी मिट्टी है, पैसेवाला उसे जैसा रूप देना चाहेगा, दे लेगा, और आप कुछ न कर पायेंगे।"[8] वहीं बूँद और समुद्र उपन्यास के महिपाल पूंजीपतियों के सम्पर्क में होते हुए भी उनसे घृणा करते हैं क्योंकि वह निम्नवर्ग के शोषण तथा आर्थिक संकटों से त्रस्त तथा कुंठित व्यक्तियों के हितैषी हैं। वह कहते हैं "आज तो समाज का शासन ही बेईमानों तथा लुटेरों के हाथ में है। लोकजीवन की मान्यताएँ वहीं हैं, जो वे चलाते हैं। ...जो इस धाँधलेबाजी को समाज की सौभाग्य चमक बनाकर अपना खोटा सिक्का चला रहे हैं, वे ये भूल जाते हैं कि करोड़ों बीमार भूखे और नंगे उनके पीछे 'मरता क्या न करता' वाली स्पिरट लेकर पागल जोश के साथ बढ़े चले आ रहे है।"[9] आलोच्य उपन्यासों के माध्यम से लेखक ने एक ओर नैतिक मूल्यों,कानून,न्याय व्यवस्था को कुछ न समझने तथा अर्थ के चलते परिवर्तित होती सामाजिक मानसिकता को सशक्त रूप से दर्शाया है, तो दूसरी ओर मानवीय संवेदना का भी यथोचित चित्रण प्रस्तुत किया है।

अंग्रेजी शासनकाल से पूर्व भारत की अर्थ व्यवस्था सुदृढ़ थी। बेरोजगारी की भी इतनी विकट समस्या नहीं थी क्योंकि कृषि-प्रधान देश होने के साथ-साथ लघु-व्यवसाय में भारतीय जनता कार्यरत थी, परन्तु अंग्रेजी सरकार की नीतियों ने यहाँ के व्यवसाय को ऐसी हानि पहुँचाई जिससे बेरोजगारी में वृद्धि हुई। स्वतंत्रता पश्चात् यद्यपि स्वाधीन सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत इस समस्या की ओर अधिक ध्यान दिया परन्तु परिवर्तित होते समय के साथ यह समस्या ओर बढ़ती चली गई और वर्तमान में तो इसने विकराल रूप धारण कर लिया है। बेरोजगारी के कारण ही युवा-वर्ग अपराध तथा दुष्कर्म की ओर उन्मुख होता जा रहा है। इस विकराल समस्या का वर्णन लेखक ने अमृत और विष उपन्यास में किया है। जीविका-निर्वाह हेतु कोई काम-काज न होने के कारण लच्छू कुंठित हो सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह कर पथभ्रष्ट हो अपराध जगत में प्रवेश करता है। यथा "उनके सामने कुंठित नौजवान भारत बैठा था, जो बेकार है, दरिद्रता से नफरत करता है। उन्नतिशील जीवन चाहता है और न मिलने पर दुत्कारे जाने पर अपने कुंठित आत्म-सम्मान के लिए, जीवन-सुरक्षा के लिए कितना अविवेकी, क्षुद्र और अंध स्वार्थी हो जाता है। ये अभी अपराधी नहीं, विकृत विद्रोह भर है।"[10] इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि युवाओं के पथभ्रष्ट होने के पीछे एक कारण बेरोजगारी भी है।

भूख उपन्यास का पात्र पांचू, एक आदर्श व्यक्ति है जो बेरोजगारी तथा आर्थिक अभाव की स्थिति में भी अत्यंत संयम से काम लेता है। भूख से विचलित हो उसका यह अनुभव करना कि "क्या मैं मर रहा हूँ ? लेकिन मरूंगा किस तरह ? गणेश की भूख के साथ-साथ उसका इतना पुराना मलेरिया भी तो था। मैं तो खाली भूखा ही हूँ- और मां-वां सब लोग भी बस भूखे ही हैं। फिर चार दिन की भूख भी कोई भूख है ? हिन्दू का घर, हमारे यहाँ चातुर्मास का उपवास होता है।"[11] नकारात्मक स्थिति में भी उसकी सकारात्मक मानसिक स्थिति को उजागर करता है। वहीं मोनाई नामक पात्र का कथन "सारा रोजगार-व्यापार चौपट हो गया है।"[12] विवश और हारे हुए व्यक्ति को दर्शाता है।

बूँद और समुद्र उपन्यास का महिपाल, गाँधीवादी होते हुए भी साम्यवादी व्यवस्था से प्रभावित है। वास्तव में बेरोजगारी की समस्या ने महिपाल को इतना व्याकुल कर दिया है कि वह विवश हो कहता है "मैं कम्युनिस्ट नहीं हूँ, पर आप विश्वास मानिए जब मैं सुनता हूँ कि रूस में बेकारी नहीं है, हर आदमी रोटी और काम पाता है। तो मेरा भी जी चाहता है कि हिन्दुस्तान में कम्युनिज्म आ जाय।"[13] उक्त कथन द्वारा अमृतलाल नागर ने महिपाल के माध्यम से बेरोजगारी से त्रस्त व्यक्ति की कुंठित भावनाओं को उजागर किया है।

बिखरे तिनके उपन्यास के बिल्लू नामक पात्र के मित्र का यह कहना "माँ-बाप, दो ब्याहने लायक बहनें, उनके लिए रोटी कमाना ही मेरे लिए सच्ची देश सेवा है।"[14] व दूसरे मित्र का कथन कि "हाँ यार, मेरे साथ भी यही समस्या है। पिता लकवे से पीड़ित। बड़े भाई फिल्मी हीरो की धुन में ही दो बरस पहले ही अपनी पत्नी और बच्चों को छोड़कर बंबई गए, जो जीरो बनकर वहीं लटके हैं।"[15] आर्थिक रूप से विपन्न ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख करता है जो पारिवारिक उत्तरदायित्वों को निभाने से लेश मात्र भी नहीं घबराते। यह कहना असंगत न होगा कि समाज में मूल्यों के प्रति आस्था कम तथा आर्थिक स्वार्थों की पूर्ति की भाग-दौड़ अधिक देखी जा रही है।

नागर जी ने आर्थिक शोषण व असमानता से उत्पन्न बेरोजगारी के सशक्त चित्रण के साथ-साथ रोजगार में समानता तथा सम्मान मिलने से संतुष्ट व्यक्तियों के प्रसंग भी बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किए हैं। इसका सशक्त उदाहरण है अमृत और विष उपन्यास के हाजी नबीबख्श जैसे व्यक्ति जिनके यहाँ मजदूर को हिस्सेदार माना जाता है। यथा- "हाजी के यहाँ हड़तालें नहीं होती। मजदूर इज्जतदार आदमी माना जाता है, उसकी सुख-सुविधाओं का प्रबंध है।"[16]

बिखरे तिनके उपन्यास में युवा पीढ़ी अर्थ वैषम्य के प्रति सजग है। यही कारण है कि वह समाजवाद के समर्थक होने के अतिरिक्त राजनीति में सक्रिय है परन्तु पूंजीपति तथा राजनीतिक नेता उनका लाभ उठाते हैं। देश-सेवा की भावना से ओतप्रोत युवा-वर्ग जब वास्तविकता से परिचित होता है तो कुंठित हो उठता है। सत्तार का यह कथन "धनी अपने बेटों को समाजवादी नेता बनाने को भी एक बिजनेस इन्वेस्टमेंट समझते हैं। यानी उनका बेटा नेता और मिनिस्टर बने और गरीब लोग साले उल्लू के पट्ठे ही बने रहें। जैसे थे वैसे ही रहें। ... तुम्हारा समाजवाद जब तक पूंजीपतियों की कठपुतली बनकर नाचता रहेगा तब तक हमें अपनी रोटी-सालन का जुगाड़ करने के लिए ऐसे ही सिसक-सिसक कर जीना होगा।"[17] वर्तमान सामाजिक स्थिति के प्रति हताशा, खिन्नता को दर्शाता है।

डॉ. हेमराज कौशिक के अनुसार- "नागर जी का उपन्यास-साहित्य आर्थिक संचेतना प्रसूत साहित्य है। उनके उपन्यास साहित्य में आर्थिक मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है।"[18] वर्तमान समय में धन ही व्यक्ति के लिए सर्वोपरि है और उसके अभाव में वह जिस प्रकार जीवन-यापन करता है, उसकी सशक्त अभिव्यक्ति नागर जी के उपन्यासों में हुई है। उन्होंने अपने उपन्यासों में मानव सम्रद्धि के विभिन्न आयामों का मूल्यांकन करते हुए उनके आर्थिक वर्चस्व तथा विपन्नता के कारणों का उदघाटन किया है। वह बूंद और समुद्र उपन्यास में लिखते हैं "प्रारंभ से पूंजीपतियों और शासक वर्ग ने मिलकर यह कभी न खत्म होने वाला षड्यंत्र रचा है जिससे छोटे हमेशा छोटे बने रहेंगे। यह वैभव कभी इनके हाथों में न लगेगा। उन्हें हमेशा रईसों की जूठन से अपना पेट भरना पड़ेगा।"[19] भूख उपन्यास में आर्थिक विसंगतियों से ग्रस्त यूनियन बोर्ड के सेक्रेटरी मिस्टर दास का अपनी असहायता व्यक्त करते हुए कहना "हम भी क्या

करें ? जब तक चारों तरफ लूट देखते है तो हमारी तबीयत भी ललचा उठती है। रिश्वत में सांझा बंटाने के गरज से हमसे बड़े अफसर हमें दबाते हैं। उनके लिए हमें लूट-खसोट करनी पड़ती है। आजकल दिल्ली से माल आ रहा है। ये व्यापारी लोग थैलियाँ लेकर हमारे पास आते हैं। फिर बताइये हम क्या करें। हम कोई ऋषि-मुनी तो है नहीं मास्टर बाबू।"[20] सामर्थ्य वर्ग के समक्ष उनकी विवशता को बखूबी दर्शाता है।

बूँद और समुद्र उपन्यास का पात्र महिपाल भी आर्थिक संकटों को झेल रहा है। महिपाल एक आदर्श व्यक्ति है जिसका जीवन आजीविका की समस्या को सुलझाते-सुलझाते ही कट जाता है। आर्थिक अभावों के उठा-पठक के अनुभवों के आधार पर उसका कहना "अगर पैसा होता तो बड़े से बड़ा पाप भी दुनिया में नजरअंदाज कर दिया जाता है। कम से कम मेरे मुँह पर कोई बदनामी करने का साहस न करता। इस पैसे ने मुझे बहुत हराया है, कहीं का भी नहीं रखा।"[21] धन के जोर पर सत्य को असत्य और असत्य को सत्य सिद्ध करने की ओर इंगित करता है। वास्तव में महिपाल एक आदर्श समाज की संरचना चाहता है। इसी कारण वह देश की आर्थिक विषमता तथा अमानवीय सामाजिक व्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए कहता है "देश में गरीबी, भूखमरी और बेरोजगारी है, सेठ गरीबों का खून चूसते हैं और समाजवाद के नाम पर गरीबों का शोषण करते हैं।"[22]

वहीं बिखरे तिनके उपन्यास के बिल्लू चौहान नामक पात्र के अनुसार "देश सेवा अब कुछ रईसों की वैचारिक हॉबी बनती जा रही है। गरीबों का मिशनरी उत्साह चौपट होता जा रहा है। आदर्शों के शहीद भी बने तो किस लिए, अपने ही समाजवादी साथियों की धनशक्ति से मार खाने के लिए।"[23] आलोच्य उपन्यास प्रगतिशील युवा-पीढ़ी की कहानी है, जो भ्रष्ट पूंजीपति तथा भ्रष्ट राजनेताओं द्वारा उत्पन्न की गई सामाजिक असमानता को मिटाने के लिए संघर्षरत है। इस संघर्षमयी यात्रा में एक स्थान पर कहा गया है- "ये लोग पूंजीपति समाजवादी हैं। इनके लिए पूँजी पहले और समाज बाद में। यदि हमें कुछ करना ही है तो इनका शोषण करने वाली व्यवस्था को बदलना होगा।"[24]

अत: यह कहना असंगत न होगा कि इस प्रकार का आचरण आज समाज की सामान्य प्रवृति बन चुकी है, जो ऐसे समाज के निर्माण को बढ़ावा दे रही है जिसमें नैतिकता तथा मानवीयता जैसे गुण लेश मात्र नहीं है और इसने कारण हमारा समाज इन गुणों से दूर होता जा रहा है । निष्कर्ष: कहा जा सकता है कि अमृतलाल नागर ने समाज को सूक्ष्म नजरिए से देखा और परखा है। उन्होंने समाज में पनप रही आर्थिक विषमता के चलते उत्पन्न आर्थिक शोषण, असमानता, बेरोजगारी आदि विभिन्न समस्याओं का यथार्थ अंकन अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से सफलतापूर्ण प्रस्तुत किया है तथा पाठक वर्ग को आगे बढ़कर इस व्यवस्था को परिवर्तित करने हेतु प्रेरित भी किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. महाजन, विद्याधर. प्राचीन भारत का इतिहास, पृ. 763
2. शुक्ल, (डॉ.) बैजनाथ प्रसाद, भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग-चेतना, पृ. 107
3. नागर, अमृतलाल. भूख, पृ. 5,6
4. वही, पृ. 64
5. वही, पृ. 86
6. नागर, अमृतलाल. नाच्यौ बहुत गोपाल, पृ. 205
7. ---. बूंद और समुद्र, पृ. 120
8. ---. अमृत और विष, पृ. 13
9. ---. बूंद और समुद्र, पृ. 105
10. ---. अमृत और विष, पृ. 633
11. ---. भूख, पृ. 15
12. नागर, अमृतलाल. भूख , पृ. 143
13. ---. बूंद और समुद्र, पृ. 73
14. ---. बिखरे तिनके, पृ. 105
15. वही, पृ. 105
16. नागर, अमृतलाल. अमृत और विष, पृ. 590
17. ---. बिखरे तिनके, पृ. 106
18. कौशिक, (डॉ.) हेमराज. अमृतलाल नागर के उपन्यास, पृ. 192
19. नागर, अमृतलाल. बूंद और समुद्र, पृ. 365
20. ---. भूख, पृ. 145
21. ---. बूंद और समुद्र, पृ. 218
22. वही, पृ. 580
23. नागर, अमृतलाल. बिखरे तिनके, पृ. 106
24. वही, पृ. 77

पंचास्तिकाय समयसार : एक दार्शनिक अध्ययन

डॉ० पूजा राठी

एस. वी. कॉलेज, अलीगढ (उ.प्र.)

सारांश

जैनागम में पंचास्तिकाय बहुत प्रसिद्ध है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल, ये छः द्रव्य स्वीकार किये गये हैं। इनमें काल द्रव्य परमाणु मात्र प्रमाणवाला होनेसे कायवान् नहीं है। शेष पाँच द्रव्य अधिक प्रमाणवाले होनेके कारण कायवान् हैं। वे पाँच ही अस्तिकाय कहे जाते हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द रचित 'पंचास्तिकायसंग्रह' नामक ग्रंथ शौरसेनी प्राकृत भाषा का अनुपम ग्रंथ है। इसकी रचना आज से लगभग २००० वर्ष पूर्व हुई थी। इसमें जिनेन्द्र के शासन का संक्षिप्त वर्णन है। स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य ने पंचास्तिकाय संग्रह नामक ग्रंथ को 'सर्वज्ञ महामुनि के मुख से कहे गये पदार्थों का प्रतिपादक, चतुर्गति नाशक एवं निर्वाण का कारण' कहा है।

मूल शब्द : पंचास्तिकाय, ग्रंथ, आचार्य कुन्दकुन्द, भारतीय दर्शन

परिचय

कुन्दकुन्द के पंचास्तिकाय का भारतीय दर्शन के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह ग्रंथ जैन दर्शन का अन्य दर्शनों से पृथक् एवं विशिष्ट स्थान और आधार प्रस्तुत करता है। पंचास्तिकाय जैन सिद्धान्त एवं जैन अध्यात्म का प्राथमिक परिचय प्रस्तुत करने वाला आधारभूत ग्रंथ है। यह जिनागम का प्रवेश द्वार और वह कुंजी है जिसमें जिन सिद्धान्त एवं जिन अध्यात्म के रहस्य खुल जाते हैं। 173 गाथाओं वाले इस ग्रंथ का मूल प्राकृत नाम 'पंचत्थिय संगह' (अर्थात् पंचास्तिकाय संग्रह) है। पूरा पंचास्तिकाय संग्रह दार्शनिक भावार्थ से परिपूर्ण है, जिसमें गाथाबद्ध सूत्रों के रूप में जैन दर्शन के लगभग समस्त विषयों के बारे में कहा गया है। संक्षेप में और नपेख्तुले शब्दों में बात को कहना पंचस्तिकायसंग्रह की विशेषता है।

पंचास्तिकायसंग्रह की एक-एक गाथा दार्शनिक दृष्टि से संपन्न है। इसमें पंचास्तिकाय व्यवस्था एवं षड्द्रव्यात्मक लोक व्यवस्था अथवा जगत् के स्वरूप का वर्णन आत्म-प्ररूपणा, नवपदार्थ-निरूपण, कर्म मीमांसा, मोक्ष, सप्तभंगी, ज्ञान मीमांसा, सत्ता आदि अनेक विषयों का चिंतन, कुन्दकुन्द की दर्शन जगत् को एक कीमती देन है।

पंचास्तिकाय की विषय वस्तु को स्पष्ट करने में आचार्य कुन्दकुन्द ने अनेकान्त का वर्णन न करके भी अनेकान्त दृष्टि का परिचय दिया है। शास्त्र के कथन की नयात्मक पद्धति यदि हमें सीखना हो तो पंचास्तिकाय ग्रंथ से सीखी जी सकती है। आगम दृष्टि एवं अध्यात्म दृष्टि के प्रस्तुतीकरण एवं स्पष्टीकरण में इस ग्रंथ में सामान्य विशेषात्मक कथन शैली देखने को मिलती है।

पंचास्तिकाय की दार्शनिक महत्ता के कारण ही इसकी अनेक भाषाओं में टीकायें रची गयीं। आचार्य नेमीचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्ती का द्रव्यसंग्रह पूर्णतया पंचास्तिकाय पर ही आधारित है। इसी तरह उमास्वामी के तत्त्वार्थसूत्र पर भी पंचास्तिकाय का प्रभाव परिलक्षित होता है। ए. चक्रवर्ती ने अंग्रेजी में (पंचास्तिकायसार) तथा पी. ई. पेमोलिनी द्वारा फ्रेंच भाषा में पंचास्तिकाय का संपादन किया। इनके अतिरिक्त एक टीका भी रची गयी।

पंचास्तिकाय विश्व का स्वरूप

पंचास्तिकाय की गाथा ३-५ में आचार्य कुन्दकुन्द ने पंच अस्तिकायों को ही लोकरूप अथवा विश्वरूप निरूपित किया है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, एवं आकाश से तीन लोक की रचना होती है। ये ही लोक के कारणभूत है।

पाँच अस्तिकायों द्वारा संसार की रचना का सिद्धान्त दार्शनिक जगत में क्रान्ति पैदा करने वाला सिद्धान्त है। गाथा २२ में पाँच अस्तिकायों को लोक का कारण कहा गया है। उन्हें अकृत्रिम (अमया) तथा सत्तावान अथवा अस्तित्वमयी बताया गया। इस तरह यहाँ जगत् के ईश्वर कर्तृत्व की मान्यता असिद्ध होती है।

''समवाओ पंचण्हं समउत्ति जिणुत्तमेह मेंहि महि पण्णत्तं।
सो चेव हवदि लोओ तत्तो अमिओ अलोओ खं।।
जे होंति अत्थिकाया णिप्पण्णं जेंहि तइलुक्कं।
जीवा पुग्गल काया आयासं अत्यिकाइया सेसा।
अमया अत्थित्तमया कारणभूदा हि लोगस्स।।''

यहाँ यह स्पष्ट कर दिया गया है कि लोक को किसी ने बनाया नहीं है, वह स्वनिर्मित है। पंचास्तिकाय ही लोक का कारण है। जहाँ इन अस्तिकायों का अस्तित्व नहीं है वह अलोक (अलोकाकाश) है।

पंच-अस्तिकाय का वर्णन

पंचास्तिकाय संग्रह में पाँच अस्तिकायों के अस्तित्व एवं कायत्व का वर्णन किया गया है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यत्व अथवा गुण पर्यायत्व के कारण अस्तित्व तथा अणुमहंत अर्थात् बहुप्रदेशत्व के कारण कायत्व सिद्ध किया गया है। अस्तिकाय में अस्तित्व एवं कायत्व दोनों का समावेश है। अस्तित्व को सत्ता अथवा सत् भी कहते हैं। यही सत् द्रव्य का भी लक्षण है। ये अस्तिकाय अपने अस्तित्व अर्थात् सत्ता में सदा नियत तथा अभिन्न रूप हैं। पंचास्तिकाय की यह व्याख्या दर्शन-जगत् में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। जैन दर्शन के इतिहास में भी पंचास्तिकाय के सिद्धान्त को मान्यता देने वाला यह पहला ग्रंथ है। जिसका अनुसरण बाद के अन्य आचार्यों ने भी किया।

पंचास्तिकाय में सत्ता की व्याख्या

पंचास्तिकाय में सत्ता की विस्तार से व्याख्या की गयी है। सत्ता, अस्तित्व रूप है। द्रव्य भी तथा द्रव्य का लक्षण भी है। वह सत्ता सर्व पदार्थों में स्थित, सविश्वरूप (अनेक रूप), अनन्त पर्याय सहित, भग-उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक, प्रतिपक्ष सहित तथा एक है। समस्त पदार्थों में रहने वाली वह सत्ता, सामान्य सत्ता अथवा महासत्ता है। समान अस्तित्व वाली महासत्ता या सामान्य सत्ता की दृष्टि से कुन्दकुन्द एकवादी है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक होने से यह सत्ता त्रिलक्षणात्मक है तथा गुण-पर्याय सहित होने से सत्ता द्विलक्षणात्मक है। अनन्त पर्यायों सहित अथवा गुण-पर्यायों सहित होने से सत्ता अनेक रूप भी है जिसे अवान्तर सत्ता कहा जाता है। पृथक् पदार्थ, पृथव गुण, तथा पृथक् पर्यायों का अस्तित्व बनाने वाली अवान्तर सत्ता भी है। इस प्रकार पंचास्तिकाय में सत्ता की प्रथम बार दार्शनिक परिभाषा दी गयी।

द्रव्य भाव और द्रव्य विवेचन

इस सत्ता के कारण ही द्रव्य रहता है। अर्थात् सत्ता ही द्रव्य कहलाती है। पंचास्तिकाय परिवर्तन चिन्ह रूप काल के साथ मिलकर द्रव्य भाव (व्यवहार) को प्राप्त होते हैं। ये सभी छः द्रव्य कहे जाते हैं।

द्रव्य सत् है अर्थात् सत्ता लक्षण से युक्त है, गुण पर्यायों के आश्रय है तथा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-संयुक्त है। द्रव्य के इन्हीं लक्षणों को आचार्य उमास्वामी ने तत्वार्थसूत्र में उल्लेखित किया है। छहों द्रव्य एक क्षेत्र में रहते हुए, एक दूसरे में प्रवेश करते हुए, एक दूसरे को अवकाश (स्थान) देते, एक दूसरे से मिलते हुए भी एकमयी नहीं होते न अपने स्वभाव को छोड़ते।

द्रव्य को न तो बनाया जा सकता है, न ही उसका विनाश होता है। वह अस्तित्व के स्वभाव वाला है। पर्याय ही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप परिणमन करती है। द्रव्य की गुणों तथा पर्यायों के साथ अभिन्नता होती है।

यहाँ पर नयी, आगमिक दृष्टि से द्रव्य की व्याख्या तथा दर्शन के क्षेत्र में जगत अथवा वस्तु को सर्वथा नित्य या सर्वथा परिणामी (अनित्य) मान्यता वालों में नयात्मक दृष्टि से समन्वित कर द्रव्य का परिणामी नित्य स्वरूपात्मक कथन किया गया है। द्रव्य दृष्टि से वस्तु नित्य है, उसका उत्पाद-विनाश नहीं है। जबकि पर्यार्याथिक नय की अपेक्षा द्रव्य उत्पाद व्यय-ध्रौव्य स्वभाव रूप है। यह जैन दर्शन की अनेकान्तवादी व्याख्या है। द्रव्य का विविक्षा भेद से सप्तभंगी होना भी स्वीकार किया गया है।

जीवद्रव्यास्तिकाय एवं जीव पदार्थ का वर्णन

पंचास्तिकाय में जीवद्रव्यास्तिकाय का वर्णन आगमख्रप्रधान शास्त्रीय दृष्टि से किया गया है, तथा जीव पदार्थ का निरूपण आत्मख्रप्रधान अध्यात्मिक दृष्टिकोण से किया गया है। जीव द्रव्यास्तिकाय अथवा जीव पदार्थ के विवेचन में दर्शन के आगम दृष्टिकोण एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण का संगम किया गया है। पंचास्तिकाय की गाथा २७ से ७३ तक जीव द्रव्य का नय विविक्षा से वर्णन किया गया है। संसारी जीव जीवत्व, चेतना गुणवाला, उपयोगमयी, प्रभु, कर्ता, भोत्ता, देह-परिणाम वाला, अमूर्त तथा कर्म संयुक्त है। वहीँ सिद्ध जीव (मुक्त जीव) कर्ममल से विमुक्त, सर्वज्ञ, ऊर्ध्वगति स्वभाववाला होने के कारण लोक के अंतिम भाग (लोकग्र) में पहुँचता है, और वहाँ अनन्त, अतीन्द्रिय सुख को प्राप्त करता है। जीव की संसारी एवं मुक्त, दोनों अवस्थाओं का वर्णन निश्चय एवं व्यवहार नय से किया गया है।

जीव द्रव्य के भेदों को भी विभिन्न अपेक्षाओं से गिनाया गया है। जीव द्रव्य एक उपयोग रूप दो भेदवाला, त्रिविध चेतना रूप तीन भेद वाला, चतुर्गति गमन रूप चार भेद वाला, पाँच लक्षण वाला (पाँच भाव वाला), छः दशाओं में गमन करने वाला, सप्त भंग पूर्वक सद्भावना आठ सिद्धों के गुण (कर्माश्रय के आधार से) वाला, नौ पदार्थों के भेद से नौ प्रकार का एवं दश स्थानों के भेद से १० प्रकार वाला कहा गया है। आध्यात्मिक दृष्टि से रत्नत्रय रूप मोक्ष मार्ग का कथन करते हुए नव पदार्थों का सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान एवं समभाव (चारित्र) ही मोक्षमार्ग कहा। उपयोग लक्षणवाला एवं चेतनास्वभावी जीव पदार्थ दो प्रकार का कहा गया है -१. संसार (देह-सहित) तथा २. सिद्ध (देह-रहित)।

देह-सहित संसारी जीव षट्निकाय अर्थात् छः प्रकार के काय वाला (पृथ्वी कायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, एकेन्द्रिय जीव एवं त्रस कायिक) कहा गया तथा सिद्ध जीव देह-मुक्त। जीव पदार्थ का निश्चय एवं व्यवहारनय की दृष्टि से वर्णन पंचास्तिकाय की आगम दर्शन एवं अध्यात्म दर्शन को एक महत्त्वपूर्ण देन है। इन्द्रियां एवं छः प्रकार के काय (शरीर) व्यवहार से जीव है लेकिन उनमें रहने वाला ज्ञान एवं चेतना ही असली से जीव है। षट् जीव निकाय की धारणा का वर्तमान जीव विज्ञान को भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण जीव एवं आत्मा का विस्तृत वर्णन किया गया है।

इस जगत में सभी जीव सुख चाहते हैं तथा दुख दूर करना चाहते हैं। इसके लिए वे प्रतिक्षण प्रयासरत रहते हैं। लेकिन वास्तविक सुख क्या है ? जीव कौन है, आत्म तत्त्व कौन है? मैं कौन हूँ? इसके सम्यक् और यथार्थ ज्ञान एवं श्रद्धा पूर्वक उस 'मैं' तत्त्व में स्थिरता से ही वास्तविक अतीन्द्रिय सुख की उपलब्धि होती है। इसी अतीन्द्रिय सुख रूप शुद्धात्म तत्त्व की उपलब्धि हेतु ही जीव द्रव्यास्तिकाय एवं जीव पदार्थ निरूपण किया गया है।

त्रिविध चेतना का विवेचन

जीव के वेदन स्वरूप वाली चेतना की इतनी महत्त्वपूर्ण व्याख्या किसी और दार्शनिक ग्रंथ में देखने को नहीं मिलती। जो चेतना, मात्र ज्ञान का ही अनुभव करती है वह ज्ञान चेतना शुद्ध चेतना है। इसके स्वामी अरहंत-सिद्ध होते हैं। मात्र कर्मफल का ही वेदन करने वाली कर्मफल चेतना अशुद्ध चेतना है, जिसके स्वामी स्थावर जीव होते हैं। इष्ट-अनिष्ट विकल्प रूप कर्म का अनुभव करने वाली कर्म चेतना (अशुद्ध चेतना) है, जिसके स्वामी त्रस जीव है। अतः त्रिविध चेतना की व्याख्या कुन्दकुन्द की मौलिक अभिव्यक्ति है।

पुद्गलास्तिकाय द्रव्य एवं अजीव पदार्थ

पंचास्तिकाय में पुद्गलास्तिकाय द्रव्य का अद्वितीय वर्णन प्रस्तुत किया गया है। स्कन्ध, स्कन्धदेश, स्कन्धप्रदेश एवं परमाणु के रूप में पुद्गल के चार भेद हैं। पूरन या गलन स्वभाव वाले पुद्गल कहलाते हैं। पुद्गल के छः भेद कर उनसे ही त्रैलोक्य की रचना का उल्लेख किया गया है। पुद्गल द्रव्य का विस्तार बताते हुए कहा गया है कि, पाँचों इन्द्रियों, शरीर, मन, कर्म तथा अन्य मूर्त पदार्थ पुद्गल हैं। शब्द भी पुद्गल है, जो पुद्गल स्कन्धों के परस्पर संघर्ष से उत्पन्न होता है। पुद्गल का सबसे छोटा अंश, अविभाज्य अंश परमाणु होता है। पुद्गल अस्तिकाय, पुद्गल द्रव्य की अवधारणा दर्शन में एक नया चिंतन प्रस्तुत करती है। पुद्गल रस, गंध, वर्ण, स्पर्श वाला है, अचेतन है, मूर्त है। अचेतन होने से वह अजीव पदार्थ भी है।

धर्मास्तिकाय एवं अधर्मास्तिकाय

धर्मास्तिकाय एवं अधर्मास्तिकाय क्रमशः स्वगतिक्रिया से युक्त जीव एवं पुद्गलों के लिए गति में तथा स्वयं स्थिति से युक्त जीव एवं पुद्गलों के लिए स्थिति में कारण होते हैं। ये दोनों ही अस्तिकाय रस, वर्ण, गन्ध, शब्द, स्पर्श रहित है, अतः अमूर्त एवं समस्त लोक में व्याप्त है। असंख्यात प्रदेशी, अखण्ड प्रदेशी एवं विस्तृत, संख्या अपेक्षा एक है। लोक एवं अलोक में भेद इन दोनों अस्तिकायों के कारण ही है। यदि इनके अस्तित्व को नहीं माना जाता है तो जीव एवं पुद्गल की निरंकुश गति तथा स्थिति परिणाम को रोका नहीं जा सकता। धर्मास्तिकाय एवं अधर्मास्तिकाय द्रव्य की अवधारणा भी दार्शनिक क्षेत्र में विशिष्ट स्थान रखती है।

आकाशास्तिकाय एवं द्रव्य

अन्य सभी द्रव्यों को अवकाश (स्थान) देने वाला आकाश है। आकाश, लोक एवं अलोक दोनों ही स्थानों पर व्याप्त है। काल, काल द्रव्य है। वह अस्तित्ववान है, लेकिन कायवान नहीं है। कालांश अणु अविभाज्य है इसलिए काल एक प्रदेशी है। संख्या अपेक्षा अनन्त है। निश्चयकाल वर्ण, गंध, स्पर्श, तथा रस से रहित, अगुरुलघु अमूर्त तथा वर्तमना लक्षण वाला है। जबकि व्यवहार काल समय, निमेष, कला, घड़ी, दिन-रात, मास, ऋतु, अयन और वर्ष से जाना जाता है। काल द्रव्य के अस्तित्व को पुद्गल द्रव्य के परिणमन से पहचाना जाता है।

दुखों से मुक्त होना तथा रागद्वेष छोड़ना ही इस पंचास्तिकाय रूप अवबोध का उद्देश्य है।

जीव या पुद्गल के संयोग और नव पदार्थ

जीव के अतिरिक्त अन्य सभी द्रव्य अजीव हैं, चेतनता रहित हैं, उन्हें सुख-दुख या हित अहित का ज्ञान नहीं है। जबकि जीव अरस, अरूप, अगंध, अव्यक्त, अशब्द, अनिर्दिष्ट संस्थान, चेतना गुण वाला तथा इन्द्रियों द्वारा अग्राह्या है।

जीव या पुद्गल के संयोग परिणाम से शेष सात पदार्थ उत्पन्न होते हैं। पंचास्तिकाय में सातों पदार्थों का द्रव्य तथा भव रूप से विवेचन किया गया है। द्रव्य पुण्य पाप, पुद्गल कर्म है तथा भाव पुण्य पाप, जीव के शुभाशुभ परिणाम है। प्रशस्त राग, अनुकंपा तथा चित्त की अकलुषता से पुण्यास्रव तथा विषयलोलुपता, प्रमादचर्या, परपीड़ा, चित्त की कलुषता, संज्ञा, आर्तरौद्र ध्यान, दुष्ट-भाव वाली धर्मक्रिया, इन्द्रियासक्ति, कृष्णादि तीन लेश्या पापास्रव के कारण हैं। इन्द्रिय कषाय तथा संज्ञा पर विजय प्राप्त करने वाले के, समभाव वाले के. शुभाशुभ कर्मास्रव नहीं होता। योग के निरोधपूर्वक तप एवं ध्यान से निर्जरा होती है। मोक्ष एवं मोक्षमार्ग का कथन भी द्रव्य एवं भाव के दृष्टि से तथा निश्चय एवं व्यवहार नय की दृष्टि से किया है। मोह-राग-द्वेष का पूर्णतया अभाव होने से कर्म का अभाव होता है। कर्म का अभाव होने से सर्वज्ञता, सर्वदर्शित, अव्याबाध, इन्द्रियातीत अनंत सुख तथा जीवनमुक्ति रूप भाव मोक्ष होता है, जो द्रव्य मोक्ष का हेतु है।

यहीं पर स्वचरित्र एवं परचरित्र की व्याख्या की गयी जो पंचास्तिकाय की अनुपम व्याख्या है। किन्तु द्रव्य में शुभाशुभ राग करने वाला परचरित्र है तथा जो सर्वसंसर्ग से मुक्त होकर आत्म स्वभाव में अनन्यमयता से स्थिर है, वह स्वचरित्र है।

अनेकान्त एवं नयात्मक दृष्टिकोण

पंचास्तिकाय में आचार्य कुन्दकुन्द ने अनेकान्त का वर्णन न करके भी अनेकान्त दृष्टि का परिचय दिया है। द्रव्यियाथिक-पर्यायाथिक एवं निश्चय व्यवहार की संधिपूर्वक अनेकान्तमयी वस्तु स्वरूप का निरूपण किया गया है। मोक्षमार्ग का कथन, निश्चय और व्यवहार दोनों दृष्टियों से किया गया है। अस्तिकायों के स्वरूप की प्रतीति, बारह अंग चौदह पूर्व का ज्ञान तथा तपश्चरण में प्रवृत्ति व्यवहार मोक्षमार्ग है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र से समाहित आत्मा जहाँ आत्मा के सिवाय अन्य किंचित् मात्र भी नहीं करता, मात्र अनन्य आत्मामय है, वही निश्चय मोक्षमार्ग है। यह अध्यात्म दर्शन की विवेचना है। आगम दर्शन में द्रव्य की नित्यानित्यात्मकता, सत्-असत् का द्रव्यियाथिक-पर्यायाथिक दृष्टि से विवेचन है। पंचास्तिकाय में अनेकान्त की मिसाल यह है कि, असत् का जन्म तथा सत का विनाश नहीं होता-यह सनातन सत्य रूप एकान्त भी कुन्दकुन्द को स्वीकार्य नहीं है। वे कहते है कि मनुष्य मरकर देव हो जाता है। यहाँ सत् रूप पर्याय

का नाश हुआ तथा असत् देव पर्याय का उत्पाद हुआ। मनुष्य पर्याय में मनुष्य सत्रूप ही है तथा देव पर्याय असतरूप ही है, क्योंकि एक ही काल में दो पर्यायों का सद्भाव नहीं हो सकता। इस प्रकार पर्यार्याथिक नय की अपेक्षा से सत् का विनाश तथा असत् की उत्पत्ति होती है तथा सत् का विनाश तथा असत् की उत्पत्ति नहीं होती, यह कथन द्रर्व्यियाथिक नय की अपेक्षा से है।

पंचास्तिकाय ज्ञानमीमांसा

यद्यपि ''आचार्य कुन्दकुन्द' ने अपने ग्रंथों में स्वतन्त्र भाव से प्रमाण की चर्चा नहीं की, न ही उमास्वामी की तरह शब्दशः पाँच ज्ञानों को प्रमाण की संज्ञा दी है। फिर भी ज्ञान का जो प्रासंगिक वर्णन है उसमें दार्शनिक मौलिकता की मात्रा अधिक है। आचार्य कुन्दकुन्द ने पंचास्तिकाय में मतिज्ञान को अभिनिबोधक ज्ञान तथा कुअवधि को विभंग ज्ञान कहा है। पाँच प्रकार के ज्ञान के अतिरिक्त तीन कुज्ञान बताये हैं। अभेदनय से आत्मा एवं ज्ञान गुण में अभिन्नता है, एकत्व है, अन्यत है। दोनों में प्रदेश-भेद नहीं है। लेकिन भेदनय में अनेक ज्ञान (आठ भेद) के पर्याय भेदों से अनेक हैं। ज्ञान व ज्ञानी में एकता है नाम, संख्या, संस्थान एवं विषयों से भेद किया जाता है। भेद, व्यवहार से भी किया जाता है। निश्चय से ज्ञान एवं ज्ञानी में संयोग संबंध नहीं अपितु तन्मय भाव है। जीव और ज्ञान का संबंध अपृथक् सिद्ध (गुण-गुणी का प्रदेश भेद रहित समवाय संबंध) है।

कर्म प्रकृतियां और कर्म मीमांसा

कर्म प्रकृतियों की चर्चा करते हुए पंचास्तिकाय की गाथा ५५ में कहा गया है कि नारक, तिर्यंच, मनुष्य तथा देव ये नाम कर्म की प्रकृतियाँ, सत् का विनाश एवं असत् भाव का उत्पाद करती हैं। यहाँ कुन्दकुन्द पूर्णतः अनेकान्तात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं।

जीव अपने भावों का कर्ता है। लोक में ठसाठस भरे हुए पुद्गल स्कंधों में जीव के रागादि भावों का निमित्त पाकर, कार्माणवर्गणा रूप पुद्गल स्कन्ध स्वयं ही कर्मभाव को प्राप्त होते और जीव एवं कर्मरूप पुद्गल स्कन्धों का एक क्षेत्रावगाह संबंध परस्पर सघन कर्म बंध तैयार करते हैं। कर्म बंध की चार अवस्थाएँ हैं-प्रकृति बंध, स्थिति बंध, अनुभाग बंध एवं प्रदेश बंध। जब कर्म अपने उदयकाल में झड़ने लगते हैं, तब जीव में सुख-दुख का वेदन होता है। इसी निमित्त नैमित्तिक संबंध की वजह से कर्म सुख-दुःखरूप फल देते हैं, और जीव उन्हें भोगते हैं। इस प्रकार यह जीव अपने ही शुभाशुभ कर्मों से मोह के द्वारा आच्छन्न होकर, कर्ता-भोक्ता होता हुआ सान्त एवं अनन्त संसार में परिभ्रमण करता रहता है। जो जीव मोह का उपशम होने से अथवा क्षीण होने से जिनेन्द्र द्वारा दिखाए मोक्षमार्ग को प्राप्त हुआ है वह धीर शुद्ध ज्ञानाचारवान जीव सिद्ध पद को प्राप्त करता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं की पंचास्तिकाय अति संक्षेप में समस्त वस्तु का प्रतिपादक होने पर भी अति विस्तृत जिनेन्द्र प्रवचन का सार है। ग्रंथ की रचना भक्तिवश की गयी है, ताकि जगत के सभी प्राणी सुखी हो सके तथा सुख दूर कर सके।

पंचास्तिकाय के अध्ययन के बिना जैन दर्शन का ज्ञान कठिन है। पंचास्तिकाय की शैली अनुभवजन्य और आगम पर आधारित भी है। यह ग्रन्थ यथार्थवादी होते ही भी अलौकिक सत्य का उद्घाटन करता है। एकान्तवादी दार्शनिक, विचारधारा में समन्वय एवं सामन्जस्य बिठाकर अनेकान्तात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। पंचास्तिकाय संग्रह में जगत, आत्मा एवं जीवन संबंधी अनेक अवस्थाओं पर एक साथ अनुपम, मौलिक चिंतन प्रस्तुत किया गया है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। इस ग्रंथ में अध्यात्म एवं आगम सिद्धान्त की सम्मिलित सरिता प्रवाहित हुई है।

सन्दर्भ

- आचार्य कुन्दकुन्द एवं उनके पंच परमागम, डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर, १९८८ प्रथमावृत्ति, पृ. ३१।
- पंचास्तिकाय, मूल. ग. २ १०३ .
- आचार्य कुन्दकुन्द एवं उनके पंच परमागम पृ. ७५ प्राच्य भारतीय ज्ञान विज्ञान के महामेरू आचार्य कुन्दकुन्द डॉ. राजाराम जैन, डॉ. विद्यावती जैन, प्राच्य भारती प्रकाशन, १९८९ पृ. २१
- पंचास्तिकाय दीपिका, व्याख्याकारख्पं. सुमेरूचंद दिवाकर, भगवान शांतिनाथ जैन ट्रस्ट (सिवनी), १९८६, भूमिका पृ. ५.
- पंचास्तिकाय संग्रह गा. १०३, १७३
- कुन्दकुन्द भारती, सं. पन्नालाल साहित्याचार्य, श्रुत भण्डार एवं ग्रंथ प्रकाशन समिति, फल्टन, १९७०, प्रस्तावना पृ. ६
- आचार्य अमृतचंद्र व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, डॉ. उत्तम चंद जैन, पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, १९८८, पृ. ३२५, ३२६
- आचार्य कुन्दकुन्दः व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल, श्री महावीर ग्रंथ अकादमी, जयपुर, १९९० पृ. ३३
- पंचास्तिकाय गा. ३
- जैन, विजय कुमार (२०१२), आचार्य कुन्दकुन्द समयसार, Vikalp Printers, आई.एस.बी.एन. 978-81-903639-3-8, मूल से 6 अगस्त 2016 को पुरालेखित, अभिगमन तिथि 20 सितंबर 2015 |year= / |date= mismatch में तिथि प्राचल का मान जाँचें (मदद)
- जुगलकिशोर मुख्तार : जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश, १ भाग;
- दलसुख मालवणियां : न्यायावतार वार्तिक वृत्ति की भूमिका;
- ए. एन. उपाध्ये : प्रवचनसार की भूमिका।

हिन्दी सूफी काव्य में प्रतीक विधान

डॉ० रंजय कुमार सिंह

Examination Controller, Dakshin Bharat Hindi Prachar Sabha, Chennai

फारसी कवियों से प्रेरित होकर मध्यकालीन हिन्दी सूफी कवियों ने अपनी आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति हेतु अपने प्रेमाख्यानों में प्राय: नायिकाओं को ईश्वरीय ज्योति रूप में चित्रित किया है। उनका दैहिक सौन्दर्य परम सौन्दर्य का प्रतीक है। दाउद कृत 'चान्दायन' में 'चन्दा', कुतुबन कृत मृगावती में 'मृगावती', जायसी कृत पद्मावती में 'पदमावती' मंझन कृत मधुमालती में 'मधुमालती', उसमान कृत चित्रावती में 'चित्रावली', गौवासी कृत शैफुलमलूक व बद्दीउज्जमाल में 'वद्दीउज्जमाल', मुकीमी के चंदर बदन और महियार में 'चंदरवदन' आदि के माध्यम से ईश्वरीय सौन्दर्य का प्रतिपादन किया गया है। हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानों में नायिकाओं के नख-शिख सौन्दर्य के चित्रण की जो परम्परा रही है उसके पीछे ईश्वरीय सौन्दर्य के चित्रण का ही उद्देश्य निहित है इसीलिए प्राय: पाठक को माधुर्य के स्थान पर भयंकरता के दर्शन होते हैं।

लट जो लटकि गाल पर परै,जस रे पदुम नागिन रस करै।'' [1]

सौन्दर्य की यह भयंकरता चंदायन, पद्मावत, मधुमालती आदि सभी प्रेमाख्यानों में चित्रित की गई है। भयंकरता के साथ-साथ उनके सौन्दर्य में अलौकिकता के भी चित्रण मिलते हैं। 'चंदायन' में चंदा के ललाट को देखकर देवतागण विमुग्ध हो जाते हैं तथा लोक और कुटुम्ब छोड़कर उसकी सेवा करने लगते हैं।[2] दाउद ने तो चंदा के ललाट को द्वितीय का चांद मान लिया है। वे कहते हैं कि चंदा का ललाट मानो कोई खरा सोना कसौटी पर कस गया हो। उसके मुख पर पसीने की बूंदे चन्द्रमा में नक्षत्रगण के समान दिखाई पड़ती है।[3]

हिन्दी के सूफी कवियों ने अपनी नायिकाओं के माध्यम से ईश्वरीय ज्योति के सौन्दर्य को चित्रित करने का प्रयास किया है। कुतुबन की मृगावती अत्यन्त सुन्दर है इसी प्रकार जायसी ने पद्मावती, मंझन ने मधुमालती आदि कवियों ने दैवी सौन्दर्य को हृदयंगम करने का प्रयास किया है। शेखनबी कृत 'ज्ञानदीप' में ईश्वरीय सौन्दर्य का प्रतीक ज्ञानदीपक है।

इसी तरह जायसी ने भी पद्मावती के नख-शिखों का वर्णन करते समय पद्मावती के ललाट को दूज कर चांद कहा-

'कहौ लिलाट दुइजि कइ जोती। दुइ जहिं जोति कहाँ जग ओती।[4]

सौन्दर्य के इन चित्रणों में अतिश्योक्ति के रूप में जो अलौकिकता प्रतिभासित होती है उसके पीछे कवि का मुख्य उद्देश्य नायिका में ईश्वरीय सौन्दर्य का प्रतिस्थापन करना है। जायसी ने पद्मावती के रूप के सम्बन्ध में एक स्थान पर विशद वर्णन किया है। मानसरोवर कहता है- ''मैंने जो चाहा प्राप्त कर लिया। रूप की परम मेरे पास आ गयी । उसके पांव को स्पर्ष कर मैं निर्मल हुआ और उसके रूप का दर्षन करके मुझे रूप प्राप्त हो गया। उसके शरीर से मलय को वास आ गयी है। मुझे अब शीतलता प्राप्त हो गयी तथा मेरी तपन बुझ गयी । न जाने वह कौन है जिसके द्वारा यह तपन लाया गया है। इससे मेरी पुण्य दषा उदित हो गयी और पाप नष्ट हो गया।''

कहा मानसर चहा सो पाई। पारस रूप इहाँ लगि आई।।
भा निरमल तेन्ह पायन परसे।पावा रूप रूप के दरसे।।
मले समीर बास तन आई। भा सीतल गै तपनि बुझाई।।
न जनौ कौनु पौन ले आवा। पुन्नि दसा भै पाप गंवावा।।[5]

पद्मावती में आलौकिक सौन्दर्य की झलक दिखाई पड़ती है। वह केवल साधारण नारी नहीं, बल्कि उस परम ज्योति का सौन्दर्य है। जिसके रूप दर्शन से परमरूप परमात्मा का सौन्दर्य मानसरोवर को प्राप्त है उसके नेत्रों को देख वह कमल बन गया। उसके शरीर के दर्शन से नीर निर्मल हो गया जिसने उसे हसते देखा वह हंस बन गये और दांतों की ज्योति से हीरा नग बन गये।[6] इन वस्तुओं ने दर्पण के समान पद्मावती के अंगों का प्रतिबिम्ब ग्रहण किया है।

मधुमालती को परब्रह्म का प्रतीक माना जाय, तो प्राकृत मानव के समान ये भाव विषय के अनुरूप नहीं प्रतीत होते, किन्तु कुशल कवि कथा को रोचक बनाने के उद्देश्य से भौतिक धरातल का स्पर्श करते हुए कथा प्रवाह को गतिमान करता है। कवि लेखनी ने स्थान-स्थान पर आध्यात्मिक तथा भौतिकता में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करता है।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में मधुमालती के नखशिख वर्णन में मनोहर मधुमालती का सौन्दर्य और शृंगार देखकर बार-बार मूच्छित हो जाता है। इसका कारण यह है कि जिस प्रकार चमगादड़ सूर्यप्रकाश को नहीं सहन करता और चौंधियाकर गिर जाता है उसी मनोहर प्राकृत चक्षु से परम सौन्दर्य को देखकर चौंधिया गया, फलत: अचेत हो गया। परमात्मा दर्शन तो दिव्य दृष्टि से होता है।[7]

मधुमालती की मांग को विश्वव्यापकत्व स्वरूप प्रदान कर कवि ने उसकी मांग में उत्प्रेक्षा के सहारे ब्रह्म की उद्भावना की है। इसी प्रकार उसकी केश सज्जा वर्णन में भी विश्वात्मवाद की झलक मिलती है।[8] मधुमालती का नखशिख वर्णन पूर्णरूपेण पद्मावती के नखशिख वर्णन से साम्य रखता है। समासोक्ति के आश्रय से कवि ने नखशिख में मधुमालती के ब्रह्मत्व का अनेक स्थलों पर स्पष्ट संकेत किया है।[9]

हुज्विरी का कहना है कि जब मनुष्य के हृदय में परमात्मा अपनी विभूति को प्रकट करता है, तब उसका जलाल (ऐश्वर्य) ही प्रधान रहता है और उसमें भय का संचार होता है, लेकिन जब परमात्मा का जमरह (सौन्दर्य) प्रधान हो जाता है। तब वह (मनुष्य) अपनत्व का अनुभव करता है जिनमें भय का संचार होता है, वे कष्ट पाते हैं और जो अपनत्व का अनुभव करते हैं, उन्हें आनन्द प्राप्त होता है।.....परमात्मा का भक्त उसके अनुग्रह को देखकर उससे प्रेम किये बिना नहीं रह सकता और जब प्रेम करने लगता है तब वह उस (परमात्मा) के साथ अंतरंग हो जाता है, क्योंकि प्रियतम के भय में पार्थक्य है और अन्तरंगता में एकत्व है।[10]

सूफीमत तथा दर्शन में परमात्मा के सौन्दर्य का महत्त्व रहा है। सूफियों का मन भ्रमर के समान परमात्मा के सौन्दर्य रूपी पुष्प पर सदैव आकर्षित हुआ है। लौकिक प्रणय कथा के माध्यम से सूफियों के अलौकिक के प्रति प्रणय को मानव हृदय में जाग्रत किया। प्रेम के माध्यम से सूफियों ने यह व्यक्त करने का प्रयास किया कि अपूर्ण और सान्त के सौन्दर्य के प्रति प्रेम यदि इतना मोहक है तो अनन्त और पूर्ण के परम सौन्दर्य के प्रति प्रेम कितना रमणीय और व्यापक होगा।

सूफियों ने स्थान-स्थान पर चन्द्र-सूर्य के प्रतीक का आश्रय अपने काव्य में लिया है। उनकी वर्णन शैली तथा प्रतीक विधान अधिकांशत: नाथ तथा शाक्त योगियों की प्रणाली से सामंजस्य रखता है अत: इस तथ्य को अस्वीकारा नहीं जा सकता कि देश-काल के प्रभाव से सूफीमत अछूता नहीं रहा। तत्कालीन छोटे-बड़े धार्मिक सम्प्रदायों का पर्याप्त प्रभाव सूफी साधना पर पड़ा। भानु का चन्द्र का रस पीना नाथ पंथी साधना की अपनी विशेषता है। गोरक्ष संहिता में कहा गया है-

नाभिमूले वसते सूर्यस्तालु च चन्द्रमा
अमृत ग्रासते सूर्यस्ततो मृत्युवसो नरा:।[11]

तन्त्र लोक में भी यही तथ्य वर्णित है-

यथा योनिष्य लिंगष्च संयोगात् स्रवतेऽमृतम्।
तथामृताग्निसंयोगाद् द्रवतास्ते न संषयम्।।[12]

इससे परिलक्षित होता है कि सूफी साधक आशिक और माशूक को सूर्य और चन्द्र के प्रतीक रूप में मानते हैं और हठयोग या शाक्त साधना के आधार पर दोनों के मिलन का आकर्षण तथा रसात्मक वर्णन कर हकीक के दर्शन करते हैं।

इन्द्रावती का काजल लगाकर दर्पण में अपने सौन्दर्य को देखना और उस पर मुग्ध होना, साथ ही अपने सौन्दर्योपासक का अभाव खटकना एक हदीस पर आधारित है। तनज्जुल के सिद्धान्त के अनुसार अपनी अन्तिम (तृतीय) अवस्था वाहिदीयत में परमात्मा स्वयं अपने रूप पर मुग्ध हो गया। स्वभावत: सौन्दर्य प्रेम चाहता है। जब परमात्मा को प्रेमी का अभाव खटका तो उसने सृष्टि रचना की। विवेच्य स्थल पर परमात्मा या परमसत्ता की प्रतीक इन्द्रावती के मन में प्रेमी के अभाव का क्षोभ किसी योग्य प्रेमी के प्रति उसके आकर्षण का ही द्योतक है। 'चेता' नामक मालिन भी अपना विशिष्ट स्थान रखती है। चेता का आशय हो सकता है चेतना (ज्ञान) प्रदायिनी। सूफी साधना में आरिफ (ज्ञान) का विशेष महत्त्व होता है। मारिफ से ही आरिफ का परमसत्ता में एकत्व सम्भव होता है। चेता नामक मालिन अपने स्वभाव के अनुकूल दोनों के एकत्व की भूमिका का निर्वाह कर रही है। प्रण मोती का भी अपना विशिष्ट अर्थ है। प्रण मोती निश्चयात्मक वृत्ति है, जिसकी पूर्णता की ही साध्य को अपेक्षा है। प्राय: प्रत्येक सूफी काव्य में साध्य का साधक को प्रथम दर्शन पूर्ण रूप से नहीं होता है, साध्य के वदन पर उसके केश की एक लट पड़ी रहती है, मेरे विचार से कवि की भुक्ति का अभिप्राय यह है कि साधक साध्य के पूर्ण ज्योतिर्मय स्वरूप को अपनी भौतिक दृष्टि से अवलोकन करने में अक्षम है। गीता में वर्णित दिव्य चक्षु के माध्यम से ही साधक साध्य का पूर्ण दर्शन न हो सकता है। दिव्य चक्षु साधक को साध्य की कृपा से प्राप्त होती है, जब तक साधना की पूर्णता को साधक नहीं प्राप्त होता। तात्पर्य यह कि जब तक कल्प पूर्णत: स्वच्छ नहीं हो जाता, परमात्मा के परम ज्योतिर्मय स्वरूप को देखने की क्षमता साधक में नहीं रहती। यही कारण है कि राजकुंवर इन्द्रावती के प्रथम दर्शन में उसके मुखमण्डल के तेज की बर्दास्त न कर पाने के कारण अचेत हो गया। यही साधक की भावाविष्टास्था है।[13]

जायसी ने कहरनामा में व्याह के रूपक द्वारा आत्मा और परमात्मा के मिलन की बात कही है। भारतीय साधकों की तरह उन्होंने जीवात्मा को दुल्हन और परमात्मा को दुल्हा माना है। झांझ-मृदंग बज रहे हैं कहार नृत्य कर रहे हैं। गीत गाये जा रहे हैं। दुल्हा व्याहने को तैयार है और दुल्हन भीतर ही भीतर डर रही है कि बॉह पकड़कर प्रिय जब पूछेंगे तो मैं क्या उत्तर दूंगी ? उसे गीत, नृत्य कुछ अच्छा नहीं लगता। ससुराल में क्या कैसे होगा इसकी चिता उसे बनी हुई है। कवि उसे समझाता है कि नैहर में जिसने गुण सीख लिये हैं, ससुराल में उसे ही सुख मिलता है।[14]

रत्नसेन का निवास-स्थान चित्तौड़गढ़ है जो शरीर का प्रतीक है और स्वयं रत्नसेन शरीरबद्ध जीवात्मा (जायसी के अनुसार मन) का प्रतीक है। गढ़ के 'नवपौरी बॉकी नवखड़ा', शरीर के नवद्वार है। गढ़ का पहरा देने वाले 'पांच कोतवार' शरीर के पंचवायु है। 'दसवां दुवारा' पर बनजे वाला 'राजघरियारा' साधक की अन्तर्मुखी साधना में 'ब्रह्मरंध्र' का अनहद नाद है। हीरामन सूआ, जो पद्मिनी को जानता है, ऐसे गुरु का प्रतीक है जिसे तत्त्व, दर्शन हो चुका है। सुए से पद्मिनी का परिचय प्राप्त करके रत्नसेन का विह्वल होना गुरु-उपदेश से जिज्ञासु को तत्त्व की लगन पैदा होना है। राजा का पद्मिनी की खोज में घर-बार छोड़कर निकल पड़ना एवं रास्ते की बीहड़ यात्रा, समुद्र और तूफान आदि का सामना करना साधक का परमार्थ प्राप्ति के मार्ग के पड़ने वाली विघ्नबाधाओं तथा कष्टों को झेलना है। अन्त में राजा को पद्मावती की प्राप्ति साधक की तत्त्व -प्राप्ति है। नागमती की तरफ से सन्देश लाने वाली 'पांखी' एक मनोवृत्ति है, जो साधक को संसार की याद दिलाती है। नागमती कवि के शब्दों में 'दुनिया धंधा' संसारी माया है। राजा के घर लौट आने पर पद्मिनी और नागमती का विवाद साधक में परमार्थ और सांसारिक वृत्ति के मध्य संघर्ष है। राजा द्वारा संसारी वृत्तियों का योग और भोग का परस्पर सन्तुलन-'समरसता' है। इस आनन्द समन्वय के निष्कंटक साम्राज्य में विघ्नबाधा डालने के लिए दुर्जीव राघव चेतन शैतान के प्रतीक में कांटे बोने आता है, जो माया का प्रतीक है। देवपाल का चोला पहनकर माया दूसरे रूप में आती है। इस प्रकार सभी विविध रूपिणी मायायें उस विराट् साम्राज्य को वीरान बनाने का प्रयत्न करती है। कभी-कभी

तो ये अपने प्रयत्नों में सफल हुई सी दृष्टिगत होती है, किन्तु गोरा और बादल के रूप में साधक की बलवती सद्वृत्तियाँ उन्हें पीछे धकेल देती है।

वास्तव में वह 'ज्योति' सर्वथा मायातीत ठहरी। माया का कोई भी रूप उसे छू तक नही सकता। वह तो रतनसेन जीवात्मा को लेकर एक हो गई और शाश्वत काल तक एक ही रहेगी। व्यष्टि-चेतना का समष्टि-चेतना के साथ एकात्म्य ही इस प्रेमकथा का व्यंजना-वृत्ति बोध्य आध्यात्मिक पक्ष है, जो प्रत्येक मानव पर लागू हो सकता है।[15]

फटुटनोट

1 कुतुबन कृत मृगावती-सं0 डॉ0 माता प्रसाद गुप्त, छन्द-5, पृ0 41
2 देखि लिलाट विमोहे देवा। लोक कुटुंब तजि कीतहिं सेवा।-दाउद कृत चंदायन, सं0 माताप्रसाद गुप्त, छन्द-66, पृ0 64
3 दाउद, चंदायन, सं0 माताप्रसाद - छन्द-66, पृ0 64
4 जायसी ग्रन्थावती - पद्मावत-छन्द-103, फा0-21
5 जायसी, पद्मावत, छन्द-65
6 नैन जो देखे कंवल भए, निरमल नीर सरीर।
हंसत जो देखे हंन भए, दसन जोति नग हीर।। पद्मावत, छन्द-65
7 न तु मां शक्पसे द्रष्टुमनेनैव स्व चक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम।।- गीता, 11/8
8 मधुमालती, पृ0 79
9 वही, पृ0 78
10 सूफीमत साधना और साहित्य, राम पूजन तिवारी, पृ0 312-13
11 गोरक्ष संहिता
12 तन्त्र लोक, 4: 3
13 सूफी-काव्य का दार्शनिक विवेचन-भालचन्द्र तिवारी, पृ0 178
14 हुरुक झाँझ भल बाजत, आवै, औ सब कहरा नाचौ रे।।
चढ़ि के दुलह बिआहन आवै, दुलहिन तेहि रंग रॉचौ रे।।
रहस-कोड महरी मिलि गावै, औ सब कहहिं बिआहू रे।।-कहरनामा, 10: 2 से 4
गीत नाच कुछ मनहि न भावै, औ इति संका आइन्हि रे।
कंत बाँह धरि पूछिहि बतियाँ, काह कहब तेहि ठाइन्हरे।।-1016,7
कहै महंमद सोइ सुहागिनि, जो ऐसे पिय रावै रे।
नैहर केरिं होई गुनवन्ती, सो ससुरै सुख पावै रे।। वही, 10:12, 142
15 हिन्दी काव्य में अन्योक्ति, भालचन्द्र तिवारी, पृ0 196-97

बाल श्रमिकों के कार्य की परिस्थितियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन (मुरादाबाद व जे० पी० नगर के विशेष संदर्भ में)

डॉ० वीरेन्द्र सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग, हिन्दू कॉलेज, मुरादाबाद

सारांश

अधिकांश बाल श्रमिक, माता-पिता/दूसरों की प्रेरणा से ही बाल श्रम की दुनिया में प्रवेश करते हैं। इनकी आर्थिक पृष्ठभूमि कमजोर होने के कारण मजबूरन ये कम वेतन पर एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में कार्य करने को तैयार रहते हैं। उनके कार्य स्थल पर बुनियादी सुविधाओं का भी अभाव है अर्थात कार्यस्थल पर न तो पर्याप्त रोशनी, वायु संचार, स्वच्छ पेयजल व शौचालय की सुविधा है, और न ही नियोक्ता की ओर से आवश्यकता पड़ने पर चिकित्सा की सुविधा है। इसके बावजूद भी वे रात्रि में भी जोखिमपूर्ण, प्रदूषित व असुरक्षित वातावरण के साथ-साथ नियोक्ता के उपेक्षापूर्ण व असहयोगात्मक व्यवहार के अन्तर्गत कार्य करने को मजबूर हैं, जो सभ्य समाज के लिए एक चुनौती है।

प्रस्तावना

कार्य की परिस्थितियाँ न केवल श्रमिकों की कार्यक्षमता को प्रभावित करती हैं, वरन, श्रमिकों की गतिशीलता, औद्योगिक सम्बन्ध इत्यादि को भी प्रभावित करती है। श्रमिक की कार्यक्षमता, उसके स्वास्थ्य एवं कार्य करने की इच्छा पर निर्भर करती है। वांछित कार्य की दशाओं के अभाव में श्रमिक बेचैनी अनुभव करता है। प्रो0 मिश्रा एवं पाण्डेय के अनुसार- "बाल श्रमिकों की आपूर्ति और पारिवारिक आय में विपरीत आनुपातिक सम्बन्ध होता है।"[1] इन्हीं के अनुसार लगभग 97% बाल श्रमिक (कालीन उद्योग मिर्जापुर अध्ययन) अपने परिवार के जीवन निर्वाह हेतु पारिवारिक आय के पूरक के रूप में कार्य करते हैं, क्योंकि उनके पास बुनियादी न्यूनतम जरूरतों को पूरा करने के पर्याप्त संसाधन नहीं हैं। कॉच उद्योग फिरोजाबाद में चूष्ड़ी उद्योगों के मालिकों का मानना है कि यदि बच्चों को चूड़ी उद्योगों में काम पर न रखा जाये तो उत्पादन एक चौथाई कम हो जायेगा। "बच्चों के बिना कॉच उद्योग नहीं चल सकता। विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी वे व्यस्कों से ज्यादा गति से काम करते हैं।" नीरा बुर्रा के अनुसार - "बच्चे अधिक डिग्री वाली भट्टियों में कार्य करते हैं व अधिकाशत: बच्चों को पीस रेट पर भुगतान किया जाता है, निर्माण प्रक्रिया के दौरान चूडिघ्याँ टूटने पर उनकी मजदूरी काट ली जाती है।"[2] नीरा बुर्रा के ही अनुसार "कॉच उद्योग में काम करना बच्चों में पुश्तैनी पेशा है, वे भट्टियों की अत्यधिक गर्मी सहने के लिए अपने आपको अभ्यस्थ एवं अनुकूल बना लेते हैं।"[3] श्रम विभाग उपरोक्त आधारों को सही ठहराता है। हकीज भाई नमूने वाले ने कहा है कि "अशिक्षित मॉ-बाप ही कार्य की विपरीत परिस्थितियों में भी बच्चों को कम उम्र में काम पर भेजते हैं। यह एक दुष्चक्र है। अशिक्षित व्यक्ति के लिए परिवार कल्याण का महत्व समझना नामुमकिन है।"[4] इसी प्रकार एक अध्ययन के अनुसार "ताला उद्योग अलीगढ़ में कुल मजदूरों में से लगभग 10% बाल श्रमिक खतरनाक उत्पादन प्रक्रिया के बावजूद पारिवारिक पेशा/मजबूरीवश ताला उद्योग में कार्य करते हैं।"[5] यहाँ बाल मजदूरों की स्थिति बहुत दयनीय है। थोड़ी सी लापरवाही व थकावट से दुर्घटनायें हो जाती हैं। टी0पी0 भट्टाचार्य के अनुसार "अधिकांश श्रमिकों के अशिक्षित या कम पढ़ा-लिखा होने के कारण खुर्जा के बर्तन वाले उद्योगों में कम मजदूरी दी जाती है। कम उम्र में मजदूरी पर काम शुरू करने से, बड़े होने पर वे मालिकों का विरोध नहीं कर पाते और उनके अन्दर संघर्ष की क्षमता खत्म हो जाती है।"[8] बच्चे व महिलायें शिवकाशी की रीढ़ हैं, ज्यादा कमाने के चक्कर में पूरा परिवार कारोबार में जुटा रहता है, न बच्चों की उम्र की सीमा है और न बुजुर्गो की। आर0नायर के अनुसार "शिवकाशी माचिश उद्योग (तमिलनाडू) में कुल बाल श्रमिकों में 80: से अधिक, 14 वर्ष से कम उम्र की बालिकायें काम करती हैं तथा उन्हें पीस रेट पर काम दिया जाता है।"[9] यहाँ बच्चों को प्रतिकूल परिस्थितियों (प्रदूषित वायु, पर्याप्त रोशनी का अभाव, पेयजल व शौचालय की पर्याप्त व्यवस्था न होना) में कार्य करना पड़ता है। तमिलनाडू सरकार व यूनिसेफ की रिपोर्ट के अनुसार कुल श्रम शक्ति का 90% एवं बाल मजदूरी का 80% तक महिलायें व बालिकायें हैं। अधिकांश बालिकाऐं माँ-बहन के काम में हाथ बटाने के उद्देश्य से काम करती हैं और धीरे-धीरे स्वतन्त्र रूप से कमाने लगती हैं।

अध्ययन उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का प्रमुख उद्देश्य बाल श्रमिकों के कार्य करने की परिस्थितियों का अध्ययन करना है।

अध्ययन विधि एवं प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख हेतु निदर्शन विधि का प्रयोग किया गया है जिसके माध्यम से कुल 400 बाल श्रमिकों (200 मुरादाबाद नगर व 200 जे0पी0 नगर) का चयन किया गया है। शोध लेख का समग्र 14 वर्ष के कम आयु के बाल श्रमिक हैं। प्राथमिक आंकड़ो के संकलन हेतु साक्षात्कार-अनुसूची का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र

प्रस्तुत आलेख का अध्ययन क्षेत्र मुरादाबाद व जे0पी0 नगर है जो पश्चिमी उत्तर प्रदेश में स्थित है। मुरादाबाद पीतल की कलात्मक वस्तुओं के लिए विश्व प्रसिद्ध है एवं जे0पी0 नगर में बीड़ी बनाने, रंगाई-छपाई का कार्य वृहत्त पैमाने पर होता है। इसके अतिरिक्त दोनों नगरों में ढाबों, दुकान एवं घरेलू कार्य में बहुतायत में बाल श्रमिक कार्य करते हैं।

प्रस्तुत शोध आलेख में बाल श्रमिकों के कार्य की परिस्थितियों के विश्लेषण हेतु कुछ महत्वपूर्ण आयामों को आधार बनाया गया है, जो निम्नवत हैं -

कार्य की अभिप्रेरणा

अभिप्रेरणा एक ऐसी आन्तिरक शक्ति है, जो व्यक्ति को कोई विशेष कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। अभिप्रेरणा व्यक्ति की क्रियाओं को संचालित, नियन्त्रित और रूपान्तरित करती है तथा उसे व्यवहार की एक दिशा प्रदान करती है। बाल श्रमिकों को कार्य करने की प्रेरणा कहाँ से प्राप्त हुई, के सन्दर्भ में प्राप्त तथ्यों को तालिका-1 में दर्शाया गया है -

तालिका - 1: बाल श्रमिक एवं अभिप्रेरणा

(कोष्ठक में आंकड़े प्रतिशत दर्शाते हैं)

कार्य क्षेत्र	बाल श्रमिकों के अभिप्रेरक					योग
	स्वयं	माता–पिता / अभिभावक	मित्र	पड़ोसी	संबंधी	
मुरादाबाद	38 (19)	92 (46)	42 (21)	16 (8)	12 (6)	200 (100)
जे0पी0 नगर	44 (22)	84 (42)	30 (15)	24 (12)	18 (9)	200 (100)
योग	82 (20.5)	176 (44)	72 (18)	40 (10)	30 (7.5)	400 (100)

तालिका-1 से स्पष्ट है कि कुल बाल श्रमिकों में से 79.5% बाल श्रमिक दूसरों से प्रेरित होकर बालश्रम की दुनिया में प्रवेश करते हैं, ऐसे बाल श्रमिकों में मुरादाबाद में 81% तथा जे0पी0 नगर के 78% बाल श्रमिक हैं। अत: कहा जा सकता है कि अधिकांश बाल श्रमिक दूसरों द्वारा प्रेरित होकर ही बाल श्रम की दुनिया में प्रवेश करते हैं।

बाल श्रमिकों की आयु

सरकार ने 14 वर्ष तक के बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की है। इसके बावजूद एक बड़ी संख्या उन बच्चों की है, जो पाठ्शालाओं की जगह कार्यशालाओं में पहुँच जाते हैं। बाल श्रमिकों की आयु से संबंधित प्राप्त तथ्यों का विवरण तालिका-2 में दर्शाया गया है -

तालिका - 2: आयु वर्ग के अनुसार बाल श्रमिकों का कार्य क्षेत्र

(कोष्ठक में आंकड़े प्रतिशत दर्शाते हैं)

आयु वर्ग (वर्ष में)	कार्य स्थल										योग	
	ढाबा / जलपान गृह		दुकान		घरेलू कार्य		बीड़ी उद्योग		पीतल उद्योग	रंगाई व छपाई		
	मुरादाबाद	जे0पी0 नगर	मुरादाबाद	जे0पी0 नगर	मुरादाबाद	जे0पी0 नगर	मुरादाबाद	जे0पी0 नगर	मुरादाबाद	जे0पी0 नगर	मुरादाबाद	जे0पी0 नगर
6 – 8	3 (30)	4 (25)	1 (10)	3 (18.8)	6 (60)	9 (56.2)	-	-	-	-	10 (100)	16 (100)
8 – 10	7 (19.4)	25 (54.4)	14 (38.9)	8 (17.4)	15 (41.7)	7 (15.2)	-	3 (6.5)	-	3 (6.5)	36 (100)	46 (100)
10 – 12	33 (51.6)	15 (22.7)	4 (6.2)	8 (12.1)	4 (6.2)	5 (7.6)	14 (21.9)	20 (30.3)	9 (14.1)	18 (27.3)	64 (100)	66 (100)
12 – 14	31 (34.4)	14 (19.4)	13 (14.5)	11 (15.3)	1 (1.1)	3 (4.2)	12 (13.3)	23 (31.9)	33 (36.7)	21 (29.2)	90 (100)	72 (100)
योग	74 (37)	58 (29)	32 (16)	30 (15)	26 (13)	24 (12)	26 (13)	46 (23)	42 (21)	42 (21)	200 (100)	200 (100)

तालिका-2 के अनुसार कहा जा सकता है कि बाल श्रमिकों को कार्य स्थल आयु वर्ग से भी प्रभावित होता है। जहाँ घरेलू कार्य, दुकान एवं जलपान गृह/ढाबा में कम आयु के बाल श्रमिक कार्यरत हैं, वहीं पीतल, बीड़ी उद्योग एवं रंगाई-छपाई में तुलनात्मक रूप से अधिक आयु के बाल श्रमिक कार्यरत हैं।

बाल श्रमिकों का लिंग

लिंग भी व्यक्ति की क्रियाशीलता को प्रभावित करता है। प्रत्येक समाज में लिंग पर आधारित भेदभाव किसी न किसी रूप में अवश्य दृष्टिगोचर होता है। अध्ययन में देखा गया है कि बाल श्रमिक के रूप में लड़कियाँ भी कम संलग्न नहीं हैं। चयनित बाल श्रमिकों के लिंग से संबंधित तथ्यों का विवरण निम्नवत है -

तालिका - 3: बाल श्रमिकों का लिंगवार विवरण

(कोष्ठक में आंकड़े प्रतिशत दर्शाते हैं)

कार्य क्षेत्र	लिंगवार विवरण		योग
	बालक	बालिका	
मुरादाबाद	142 (71)	58 (29)	200 (100)
जे0पी0 नगर	166 (83)	34 (17)	200 (100)
योग	308 (77)	92 (23)	400 (200)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि लड़कियों की तुलना में लड़कों की संख्या बाल श्रमिक के रूप में अधिक है। दोनों नगरों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि जे0पी0 नगर की अपेक्षा मुरादाबाद में बाल श्रमिक के रूप में लड़कियों की संख्या अधिक है।

बाल श्रमिकों का शैक्षिक स्तर

शिक्षा विकास की कुंजी है। भारतीय समाज आज भी अशिक्षा से ग्रसित है। बाल श्रमिकों की आपूर्ति व शैक्षिक स्तर में गहरा सम्बन्ध है। यही कारण है कि बाल श्रम की समस्या भी यहाँ गम्भीर बनी हुई है। बाल श्रमिकों के शैक्षिक स्तर से संबंधित तथ्यो का विवरण निम्नवत है -

तालिका - 4: बाल श्रमिकों का शैक्षिक स्तर

(कोष्ठक में आंकड़े प्रतिशत दर्शाते हैं)

कार्य क्षेत्र	शैक्षिक स्तर				योग
	निरक्षर	अनौपचारिक साक्षर	प्राथमिक	माध्यमिक	
मुरादाबाद	70 (35)	62 (31)	50 (25)	18 (9)	200 (100)
जे0पी0 नगर	80 (40)	70 (35)	38 (19)	12 (6)	200 (100)
योग	150 (37.5)	132 (33)	88 (22)	30 (7.5)	400 (100)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट कि अधिकांश बाल श्रमिक निरक्षर एवं अनौपचारिक साक्षर हैं। ऐसे बाल श्रमिकों की संख्या मुरादाबाद की अपेक्षा जे0पी0 नगर में अधिक है।

बाल श्रमिकों के कार्य का समय

बाल श्रमिकों के सम्बन्ध में यह निषेध है कि बालकों से रात्रि में कार्य न लिया जाए। लेकिन अपने स्वार्थ में स्वार्थी उत्पादक एवं मजबूर बालक दोनों इसकी अनदेखी करते हैं। चयनित बाल श्रमिकों से इस संदर्भ में निम्न तथ्य प्राप्त हुए -

तालिका - 5: बाल श्रमिकों के कार्य का समय

(कोष्ठक में आंकड़े प्रतिशत दर्शाते हैं)

कार्य क्षेत्र	कार्य का समय				योग
	दिन	रात	दिन – रात	अनिश्चित	
मुरादाबाद	46 (23)	54 (27)	78 (39)	22 (11)	200 (100)
जे0पी0 नगर	64 (32)	38 (19)	66 (33)	32 (16)	200 (100)
योग	110 (27.5)	92 (23)	144 (36)	54 (13.5)	400 (100)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि रात्रि में कार्य कराना या करना कानूनन अपराध होने के बावजूद 72.5: बाल श्रमिकों से रात्रि में कार्य कराया जाता है या वे कार्य करने को मजबूर हैं, जो कि न्यायोचित नहीं है। मुरादाबाद की तुलना में जे0पी0 नगर में ऐसे बाल श्रमिकों का प्रतिशत अधिक है।

कार्यावधि

मानव की कार्य करने की क्षमता सीमित है और बालक के संदर्भ में यह सीमाएं और भी अधिक जरूरी हैं। अधिक समय तक कार्य करने पर उनका शारीरिक व मानसिक विकास अवरूद्ध हो जाता है। चयनित बाल श्रमिकों से कार्यावधि से संबंधित प्राप्त तथ्यों का विवरण निम्नवत हैं –

तालिका – 6: बाल श्रमिकों की कार्यावधि

(कोष्ठक में आंकड़े प्रतिशत दर्शाते हैं)

कार्य क्षेत्र	कार्यावधि (घंटे/प्रतिदिन)						योग
	– 6	6 – 8	8 – 10	10 – 12	12 – 14	अनिश्चित	
मुरादाबाद	8 (4)	34 (17)	72 (36)	44 (22)	22 (11)	20 (10)	200 (100)
जे0पी0 नगर	14 (7)	40 (20)	82 (41)	28 (14)	14 (7)	22 (11)	200 (100)
योग	22 (5.5)	74 (18.5)	154 (38.5)	72 (18)	36 (9)	42 (10.5)	400 (100)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि कुल बाल श्रमिकों में से 94.5: बाल श्रमिक 6 घण्टे या इससे अधिक घण्टे प्रतिदिन कार्य करते हैं। इसमें वे बच्चे भी शामिल हैं, जिनकी कार्यावधि अनिश्चित है। ऐसे बाल श्रमिक तुलनात्मक रूप से मुरादाबाद में जे0पी0 नगर की अपेक्षा अधिक हैं। जबकि अधिनियम 1986 के भाग-3 में बच्चों के लिए काम के 6 घण्टे निर्धारित किए गए हैं, जिसमें 3 घण्टे काम के बाद आधे घण्टे का अनिवार्य विश्राम भी शामिल है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बाल श्रम के लिए निर्धारित 6 घंटे से अधिक काम न लेने की बात बेमानी है।

बाल श्रमिकों का मासिक वेतन

बाल श्रमिकों की पारिवारिक आर्थिक पृष्ठभूमि कमजोर होने के कारण वे मजबूरन कम वेतन पर भी कार्य करने को तैयार हो जाते हैं। मासिक वेतन के संदर्भ में बाल श्रमिकों से जो तथ्य प्राप्त हुए, वे निम्नवत है –

तालिका – 7: बाल श्रमिकों का मासिक वेतन

(कोष्ठक में आंकड़े प्रतिशत दर्शाते हैं)

कार्य क्षेत्र	मासिक वेतन (सैकड़ा रूपए में)					योग
	5 – 10	10 – 15	15 – 20	20 – 25	25 –	
मुरादाबाद	79 (39.5)	69 (34.5)	32 (16)	14 (7)	6 (3)	200 (100)
जे0पी0 नगर	88 (44)	82 (41)	20 (10)	8 (4)	2 (1)	200 (100)
योग	167 (41.75)	151 (37.75)	52 (13)	22 (5.5)	8 (2)	400 (100)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि लगभग 80% बाल श्रमिकों को पंद्रह सौ रूपये से कम मासिक वेतन पर कार्य करना पड़ता है। तुलनात्मक रूप से जे0पी0 नगर के बाल श्रमिकों की अपेक्षा मुरादाबाद के बाल श्रमिकों का मासिक वेतन थोड़ा अधिक कहा जा सकता है, लेकिन इसे भी पर्याप्त नहीं माना जा सकता।

कार्य की प्रकृति

प्रत्येक कार्य की प्रकृति एक समान न होकर जोखिमपूर्ण, कठिन व सामान्य हो सकती है। नियोजक अपने लाभ एवं बालक अपनी मजबूरी व अज्ञानता के कारण निषिद्ध कार्यों में भी कार्यरत हैं। बाल श्रमिकों द्वारा कार्य की प्रकृति के संदर्भ में निम्न तथ्य प्राप्त हुए –

तालिका – 8: बाल श्रमिकों के कार्य की प्रकृति

(कोष्ठक में आंकड़े प्रतिशत दर्शाते हैं)

कार्य क्षेत्र	कार्य की प्रकृति			योग
	जोखिमपूर्ण	कठिन	सामान्य/आसान	
मुरादाबाद	74 (37)	78 (39)	48 (24)	200 (100)
जे0पी0 नगर	52 (26)	92 (46)	56 (28)	200 (100)
योग	126 (31.5)	170 (42.5)	104 (26)	400 (100)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि कानूनी प्रावधानों के बावजूद लगभग एक तिहाई बाल श्रमिक जोखिमपूर्ण कार्य करते हैं। ऐसे बाल श्रमिक मुरादाबाद में जे0पी0 नगर की तुलना में अधिक पाए गए। इस सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि मुरादाबाद के बाल श्रमिक जे0पी0 नगर की तुलना में या तो दक्ष कारीगर बनना चाहते हैं या उनकी आर्थिक दशा तुलनात्मक रूप से अधिक दयनीय है।

बाल श्रमिकों के कार्यस्थल पर सुविधाएं

कार्य करने के लिए बच्चों के कार्यस्थल पर बुनियादी सुविधाओं का होना आवश्यक है, किन्तु सर्वेक्षण के दौरान देखा गया कि बच्चों को प्रतिकूल परिस्थितियों में कार्य करना पड़ता है। इस सन्दर्भ में प्राप्त तथ्यों का विवरण तालिका-9 में दर्शाया गया है-

तालिका - 9: बाल श्रमिकों के कार्यस्थल पर सुविधाएं

(कोष्ठक में आंकड़े प्रतिशत दर्शाते हैं)

कार्य क्षेत्र	वायु संचार की स्थिति			रोशनी की सुविधा				पेयजल की सुविधा				भौचालय सुविधा			चिकित्सीय सुविधा		
	सामान्य	खराब	योग	अच्छी	सामान्य	खराब	योग	स्वच्छ	सामान्य	अस्वच्छ	योग	हाँ	नहीं	योग	हाँ	नहीं	योग
मुरादाबाद	24 (12)	176 (88)	200 (100)	36 (18)	92 (46)	72 (36)	200 (100)	27 (13.5)	96 (48)	77 (38.5)	200 (100)	154 (77)	46 (23)	200 (100)	34 (17)	166 (83)	200 (100)
जे0पी0 नगर	18 (9)	182 (91)	200 (100)	26 (13)	80 (40)	94 (47)	200 (100)	18 (9)	112 (56)	70 (35)	200 (100)	138 (69)	62 (31)	200 (100)	24 (12)	176 (88)	200 (100)
योग	42 (10.5)	358 (89.5)	400 (100)	62 15.5)	172 (43)	166 (41.5)	400 (100)	45 (11.25)	208 (52)	147 (36.75)	400 (100)	292 (73)	108 (27)	400 (100)	58 (14.5)	342 (85.5)	400 (100)

तलिका-9 से स्पष्ट है कि अधिकांशत: बाल श्रमिकों के कार्य स्थल पर न तो वायु संचार की पर्याप्त व्यवस्था है और न ही पर्याप्त रोशनी की व्यवस्था है, जिससे बाल श्रमिकों में दृष्टिरोग के साथ-साथ सिरदर्द बना रहता है। बाल श्रमिकों के कार्यस्थल पर स्वच्छ पेयजल की सुविधा भी कम ही बाल श्रमिकों को मिल पाती है। दोनों नगरों में बाल श्रमिकों के कार्यस्थल पर लगभग तीन-चौथाई बाल श्रमिकों को शौचालय की सुविधा भी उपलब्ध नहीं है और आवश्यकता पड़ने पर नियोक्ता की ओर से पर्याप्त चिकित्सा की सुविधा भी उपलब्ध नहीं है। इसके बावजूद भी बाल श्रमिक कार्य करने को मजबूर हैं। इस प्रकार वे विभिन्न बीमारियों यथा दमा, टी0बी0 इत्यादि से ग्रसित रहते हैं। इस प्रकार दोनों नगरों में बाल श्रमिकों के कार्यस्थल पर सुविधाओं को असन्तोषजनक ही कहा जा सकता है।

नियोक्ता का व्यवहार

नियोक्ता का व्यवहार भी बाल श्रमिक की कार्यक्षमता को प्रभावित करता है। सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार से संतोष एवं मानसिक खुशी होती है और वह उत्साहपूर्ण कार्य करता है, जबकि उपेक्षापूर्ण व्यवहार से बाल श्रमिक दुखी होकर झगड़ालू प्रवृत्ति का हो जाता है। इस संदर्भ में बाल श्रमिकों से प्राप्त तथ्यों का विवरण निम्नलिखित है -

तालिका - 10: बाल श्रमिकों के साथ नियोक्ता का व्यवहार

(कोष्ठक में आंकड़े प्रतिशत दर्शाते हैं)

कार्य क्षेत्र	नियोक्ता के व्यवहार की प्रकृति			योग
	सहानुभूतिपूर्ण	सामान्य	उपेक्षापूर्ण	
मुरादाबाद	22 (11)	92 (46)	86 (43)	200 (100)
जे0पी0 नगर	12 (6)	66 (33)	122 (61)	200 (100)
योग	34 (8.5)	158 (39.5)	208 (52)	400 (100)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि आधे से अधिक बाल श्रमिक नियोक्ता के उपेक्षापूर्ण व्यवहार के बावजूद भी कार्य करते हैं। हो सकता है कि उनकी आर्थिक दशा उन्हें कार्य करने को मजबूर करती हो। ऐसे बाल श्रमिकों का प्रतिशत मुरादाबाद की अपेक्षा जे0पी0 नगर में अधिक है।

निष्कर्ष

बाल श्रमिकों के कार्य की परिस्थितियों से प्राप्त सभी तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि अधिकांश बाल श्रमिक दूसरों की प्रेरणा से बाल श्रम की दुनिया में प्रवेश करते हैं। अधिकतर बाल श्रमिकों के कार्य स्थल पर वायुसंचार, रोशनी, पेयजल व शौचालय की सुविधा भी पर्याप्त नहीं है और न ही

नियोक्ता की ओर से चिकित्सा की सुविधा उपलब्ध है। इसके बावजूद भी वे रात्रि में जोखिमपूर्ण, असुरक्षित व प्रदूषित वातावरण के साथ-साथ नियोक्ता के उपेक्षापूर्ण व असहयोगात्मक व्यवहार के अंतर्गत कार्य करने को मजबूर हैं, तो फिर कैसे कहा जा सकता है कि फूल जैसे कोमल बच्चों के कार्य करने की परिस्थितियाँ अनुकूल हैं। ये बालक मजबूर होकर अपने एवं देश के भविष्य को भी अंधकार की ओर ले जा रहे हैं। अतः कहा जा सकता है कि देश का भविष्य कहे जाने वाले बाल श्रमिक विपरीत परिस्थितियों में कार्य करने को मजबूर हैं, जो मानवता एवं सभ्य समाज के लिए कलंक एवं चुनौती हैं। जहाँ तक दोनों नगरों की तुलनात्मक परिस्थिति का प्रश्न है, तो निश्चित रूप से मुरादाबाद के बाल श्रमिकों की स्थिति जे0पी0 नगर के बाल श्रमिकों से अच्छी है। चाहे इसका कारण आर्थिक संपन्नता हो या नगरीकरण। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दोनों नगरों में कार्य की परिस्थितियाँ बाल श्रमिकों के लिए प्रतिकूल हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जी0पी0 मिश्रा एवं पी0एन0 पाण्डेयः सप्लाई ऑफ चाईल्ड लेबरः एन इनवेस्टीगेशन, लेबर एण्ड डेवलपमेंट, वाल्यूम-1, जुलाई - दिसम्बर 1995।
2. नीरा बुर्राः बॉर्न टू वर्क, चाइल्ड लेबर इन इण्डिया, ऑक्सफोर्ड यूनि0 प्रेस 1997, पृ0सं0 43।
3. नीरा बुर्राः पूर्वोक्त।
4. नीरा बुर्राः पूर्वोक्त, पृ0सं0 179।
5. सेंटर फॉर रिसर्च इन रूरल एण्ड इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट, पृ0सं0 28।
6. मिश्र, ओ0पी0ः चर्चा, चिन्ता और चिन्तन, साहित्य रचनालय कानपुर पृ0सं0 137-39।
7. सिंह वीरेन्द्र, बालश्रम के सामाजिक-आर्थिक, आयामों का विश्लेषणात्मक अध्ययन (मुरादाबाद व जे0पी0 नगर के विशेष संदर्भ में) अप्रकाशित शोधग्रन्थ, एम0जे0पी0रू0वि0वि0 बरेली, 2003, पृ0सं0 139-165 ।
8. टी0पी0 भट्टाचार्यः स्टेट्स रिपोर्ट ऑन सेरामिक इंडस्ट्री एट खुर्जा, यू0पी0 (सेंट्रल ग्लास एण्ड सैरामिक रिसर्च इंस्टीट्यूट, कलकत्ता) 1982
9. आर0 नायरः "एजुकेशन, व्हाई डू मोर गर्ल्स ड्राप्सआउट?", कुरूक्षेत्र (1 - 15 मई) 1983, पृ0सं0 15

बिहार राज्य के ग्रामीण, सामाजिक एवं आर्थिक विकास में सूचना तकनीकी की भूमिका

डॉ० रूबी सिन्हा

बी.ए. एवं एम. ए. (गोल्ड मेडलिस्ट) पटना विश्वविद्यालय, एलएल. बी., पटना विश्वविद्यालय, पटना
पीजीडीटी (दयालबाग डीम्ड यूनिवर्सिटी)

सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, गर्दनीबाग, पटना, बिहार,

ग्रामीण एवं सामाजिक विकास में तकनीकि की भूमिका अहम होती है। जानकार एवं प्रबुद्ध समाज सूचनाओं के आदान-प्रदान का सही वातावरण एवं विकास प्रक्रिया को लंबे समय तक चलने वाला बनाने के साथ ही विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति की प्रक्रिया को तेज कर सकने में सक्षम हैं। सूचनाओं के आदान-प्रदान के इस क्रम में आवश्यक सूचनाओं एवं ज्ञान तक पहुँच बनाना ही नागरिक सशक्तिकरण की कुंजी है। वित्तीय निवेश के संदर्भ का लेकर बात करें तो ग्रामीण विकास के क्षेत्र में जानकारियों और सूचनाओं का व्यापक रूप से विस्तार हो रहा है। बिहार राज्य में ग्रामीण विकास के कार्यों के संवर्धन में संलग्न संस्थाओं और संगठनों को अपने कार्यों में विशेषज्ञता एवं विशद् अनुभव प्राप्त हुए हैं। जनसमूह तक उचित समय पर सही एवं पर्याप्त सूचना पहुँचाना हमेशा से चुनौतीपूर्ण रहा है और इसके कई कारण हैं जिनमें विभिन्न स्त्रोतों से सूचना हासिल करना और उस सूचना की सत्यता सिद्ध होना प्रमुख है। बिहार में अधिकांश जनसंख्या (10,38,04,637) ग्रामीण क्षेत्र है जहाँ तक आशयपूर्ण सूचना और जानकारी उपलब्ध करवाने के लिए एक उपयुक्त सूचना और जानकारी उपलब्ध करवाने के लिए एक उपयुक्त सूचना प्रबंधन प्रणाली अथवा प्रणालियों और उपकरणों की मिली-जुली व्यवस्था का अपना महत्व है।

सूचना प्रबंधन किसी निर्धारित डोमेन/संस्था/संगठन में समेकित जानकारियों/सूचनाओं को विस्तृत करने की प्रक्रिया है। पारंपरिक रूप से इसमें चार प्रक्रियाएँ शामिल हैं अर्थात् सूचनाओं का सृजन, सूचनाओं का संकलन और उनकी पुनः प्राप्ति, सूचनाओं का स्थानांतरण एवं सूचनाओं का उपयोग। सूचनाओं के सृजन का अर्थ ऐसी नई सूचनाओं को समाहित करना है जिनका प्रयोग ऐसी समस्याओं का समाधान करना अथवा ऐसे निर्णय लेने में हो सकता है जो इनके न होने पर संभव नहीं थे। सूचनाओं का संकलन वह प्रक्रिया है जिसमें सूचनाओं को ऐसे स्थान पर सुरक्षित किया जाता है जहाँ से उन्हें आवश्यकता पड़ने पर निकाला जा सके। सूचनाओं की पुनः प्राप्ति संकलित सूचना की आसानी से उपलब्धता के लिए है। सूचना स्थानांतरण की प्रक्रिया की आवश्यकता उस नवीनतम जानकारी को लक्षित जनसमूह तक नियमित समयावधि में पहुंचाने के लिए होती है (अर्थात नई योजनाएं, नीतियां, प्रौद्योगिकियाँ इत्यादि) जो अभी तक केवल संगठनों/संस्थानों के पास ही थीं। सूचना प्रयोग की आवश्यकता लक्षित समाज को प्राप्त जानकारी की सहायता लेकर समस्याओं के समाधान में दी गई जानकारी से लाभ उठाने में होती है। अध्ययन का उद्देश्य ग्रामीण लोगों के जीवन में सुधार लाने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी ग्रामीण क्षेत्रों में सूचनाओं की उपलब्धता और पहुँच बढ़ाने और सामाजिक सम्बन्धों को बनाने तथा बदलने में काफी मदद कर सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य जनकल्याणकारी योजनाओं को प्रभावी रूप से लागू करने में सरकार संचार प्रौद्योगिकीय उपयोग कर रही है। प्रस्तुत लेख में इन्हीं परिप्रेक्ष्यों को बताने का प्रयास किया गया है।

पिछले कई वर्षों के प्रयास के दौरान तेजी से हुए प्रौद्योगिकी विकास ने अब सूचना प्रबंधन प्रक्रिया को और अधिक परस्पर विमर्शी एवं जनकेंद्रित बना दिया है। अब ग्रामीण क्षेत्रों में भी इन्टरननेट और मोबाइल की उपलब्धता ने वहां भी सूचनाओं के प्रवाह की प्रक्रिया में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया है। सूचना एवं संप्रषण प्रौद्योगिकी (आईसीटी) में नई पहलों जैसे–बेवपोर्टल, सोशल, मीडिया, विशेषज्ञ व्यवस्था, ई-शिक्षण, मोबाइल एप, इंटरनेट ऑफ थिंग्स, डिजिटल वीडियोज, सामुदायिक रेडियो आदि ने तकनीकी आदान-प्रदान की ओर आर्थिक सक्षम एवं समयबद्ध बना दिया है।

सूचना प्रौद्योगिकी सक्षमित सेवाएं भारत के लिए विकास का महत्वपूर्ण उत्प्रेरक बन गई है। भारत ने वैश्विक सोर्सिंग के मामले में अपनी नेतृत्वकारी स्थिति बरकरार रखी है और 2013 में कुल वैश्विक सोर्सिंग बाजार में इसका 55 प्रतिशत हिस्सा था। यह बड़े पैमाने पर रोजगार सृजन भी कर रहा है। वर्ष 2013-14 में इसने 1.66 लाख लोगों को अतिरिक्त रोजगार दिया जिनमें से 30% महिलाएँ थी। लेकिन यह तेज विकास पहले कुछ राज्यों तक ही सीमित था और बिहार कुल मिलाकर इससे अलग-थलग था। हाल के वर्षों में सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र का राज्य में काफी तेजी से विकास हो रहा है। वर्ष 2014-15 में इस क्षेत्र के लिए कुल अनुमोदित योजना परिव्यय 199 करोड़ रु. है और इसके बाद से संशोधित करके इसे 361 करोड़ रु. कर दिया गया है। ई-गवर्नेंस कार्यक्रम के तहत बिहार में अनेक पहल किए गए। ग्रामीण सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी समाधान के तहत, ग्रामीण डाकघरों को अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी (जीपीआरएस, वैन, ब्रॉडबैंड, सीडीएमए, वाई-फाई और लैन जैसे संचार चैनल) और संबंधित उपकरण (प्रिंटर, बायोमेट्रिक्स और स्कैनर) उपलब्ध कराए जाएंगे। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में खुदरा सेवाओं, बैंकिंग सेवाओं और बीमा सेवाओं के सुगम और तीव्र संचालन में मदद मिलेगी। इससे सुदूर क्षेत्रों में सेवा की गुणवत्ता में सुधार में भी नागरिकों को भुगतान करने में आसानी होगी।

जानकारी के आदान-प्रदान हेतु एक प्रभावी उपकरण सामूहिक कदम उठाने के लिए ग्रामीण विकास प्रक्रिया में बहुपक्षीय हिस्सेदारों-लोक उपक्रमों, निजी क्षेत्र तथा अलाभकारी पक्षों के बीच निरंतर विचार-विमर्श की आवश्यकता होती है। इन सेवाओं से अनुरोध किया गया कि वे व्यावहारिक बनें और अधिक से अधिक परस्पर संपर्क बढ़ाएं। सोशल मीडिया इस संबंध में अत्यधिक प्रभावशाली साधन सिद्ध हो सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में कम से कम समय में विशेषकर युवाओं तक अपनी बात कारगर ढंग से पहुंचाने के लिए सोशल मीडिया वर्तमान समय में सर्वोत्तम साधन है क्योंकि अब मोबाइल फोन बढ़ते जा रहे हैं और डाटा भेजने पर लगने वाला शुल्क कम हो गया है। सभी सोशल नेटवर्किंग साइट्स फेसबुक, लिंकडीन, मैसेंजर एप (वाट्स एप), ब्लॉग (ब्लॉगर, वर्ड प्रेस), माईक्रो ब्लाग्स (ट्वीटर), वीडिया शेयरिंग टूल्स (यूट्यूब), पॉडकास्ट्स, विकीज तथा और भी बहुत-सी साइट्स शामिल है। इनको उपयोग करने वालों की व्यापक संख्या होने के कारण अपनी बात पहुँचाने का सर्वाधिक सहयोगपूर्ण माध्यम है। इससे डाटा, सूचनाओं और जानकारियों को तेजी से और आसानी से बहुत ही कम खर्चे में एक-दूसरे तक पहुंचाया जा सकता है और परस्पर सहयोग एवं मांग-आधारित सूचनाओं की शीघ्र आपूर्ति की जा सकती है। अधिकतर सोशल मीडिया प्लेटफार्म नि:शुल्क उपलब्ध है। इनका स्थायितत्व सदस्यों की सूचनाओं को भेजने की क्षमता और उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि कर सकने तथा उद्देश्यपूर्ण ऑनलाइन कार्य कर सकनेपर निर्भर करता है।

भारतीय टेलीफोन नियामक प्राधिकरण के अनुमानों के आधार पर 31 अगस्त, 2018 तक भारत में मोबाइल उपयोगकर्ताओं की संख्या 116.7 करोड़ थी, जो कुल जनसंख्या की 91 प्रतिशत था। इसमें ग्रामीण जनसंख्या लगभग 51.9 करोड़ है। मोबाइल उपकरण आसानी से कहीं भी ले जाए जा सकते हैं और इनमें अपनी बात कहने, लिखे हुए को संग्रहित कर सकने, कहीं भी कभी भी सूचना प्राप्त करके उसे दूसरों तक पहुँचा सकने की सुविधा मिलती है। इसके अतिरिक्त नई तकनीकियों के आने से मोबाइल की उपयोगिता अब केवल बात कर लेने भर से कहीं अधिक अन्य उपयोगों जैसे संदेश भेजना, इंटरनेट-आधारित डाटा सेवाएं और ऐप्स के लिए हो चुकी है। इसी से लोग आपस में और अधिक जुड़े हैं और जानकारियों में बढ़ोत्तरी हुई है। आधुनिक परिवेश में मोबाइल पर ही कई प्रकार की सेवाएँ उपलब्ध हैं। जैसे-

ग्रामीण विकास संबधी : दिशा (डीआईएसएचए), ग्राम संवाद, आवास, एप। पीएमएवाई-जी, मिशन अन्त्योदय एप, माई एसएचजी एप।

कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र : इफ्को किसान संचार लिमिटेड, फिशर फ्रेंड, एम किसान, रायटर्स मार्किट, लाईट, एम कृषि, किसान कॉल सेंटर, अन्नपूर्णा कृषि प्रसार सेवा, एइर्अएनएएसम।

बैंकिंग : भीम, एप, फोनपे, पेटीएम, फ्री चार्ज, एयरटेल मनी, आइडिया मनी।

स्वास्थ्य : एम स्वास्थ्य, मदर इंडियन ब्लड डोनर्स बल्ड इंडिया, ई-ममता, ई-औषिण, संजीवनी, 1 एमजी एप, एमटिक्का, मोबाइल-आधारित सेवाओं की आवश्यकता को संज्ञान में लेते हुए देश में मोबाइल गवर्नेस को मुख्य धारा में लाने के उद्देश्य से इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने 'मोबाइल सेवा' नवाचार प्रारंभ किया। इसके माधयम से देशवासियों को मोबाइल पर ही सभी लोकसेवाएं उपलब्ध कराने के लिए सकरार के सभी विभागों और एजेंसियों को एक समेकित प्लेटफार्म मुहैया कराया गया है। पंचायती राज संस्थाओं के क्षमता निर्माण के लिए आईसीटी को अपनाना अक्टूबर 2018 तक भारत में 2,62,547 पंचायती राज संस्थाएं कार्यरत हैं। इसमें 2,55,576 ग्राम पंचायतें, 6354 प्रखंड पंचायतें एवं 617 जिला पंचायतें शामिल हैं। तीन स्तरों पर निर्वाचित प्रतिनिधियों की बहुत बड़ी संख्या पंचायती राज प्रबंधन की दीर्घकालिक पुरानी समस्याओं को और जटिल बनाती है। यह संख्या इस समय 31 लाख है। जिसमें 14.39 लाख महिला प्रतिनिधि शामिल हें। हर निर्वाच चक्र के बाद यह संख्या और अधिक अस्तव्यस्तता लाती है जिसे प्रशासन प्रबंधन/क्षमता ओर उसके बारे में बहुत ही कम जानकारी होती है। पीआरआईज के कामकाज का प्रबंधन करने के लिए लगभग 30 लाख विभागीय कर्मचारी इन निर्वाचित प्रतिनिधियों की सहायता करते हें। मात्र 05 वर्षों के लिए इन प्रतिनिधियों की सहायता करते हैं। मात्र 05 वर्ष के लिए इन प्रतिनिधियों का आना और फिर प्रत्येक 05 वर्ष बाद उनके स्थान पर नए लागों का निर्वाचित होकर आने की संभावना बनी ही रहती है।

राष्ट्रीय ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज संस्थान (एनआईआरडी एण्ड पीरआर),हैदराबाद ने इस समस्या का समाधान करने के उद्देश्य से सूचना एवं संवाद प्रौद्योगिकी (आईसीटी) को अपनाया है ताकि 60 लाख निर्वाचित प्रतिनिधियों और पीआरआईज सेसंबद्ध कर्मियों तक सर्वश्रेष्ठ ढंग से पहुंचा जा सके।

वर्तमान समय में भारत में 816 सामुदायिक रेडियों केन्द्र चल रहे हैं। जिसमें से 40 ग्रामीण क्षेत्रों में है। वर्ष 2008 से तेलंगाना में डेक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी द्वारा शुरू किया गया 'संगम रेडियो' ऐसा पहला स्वयं सेवा संस्था द्वारा शुरू किया गया 'संगम रेडियो' ऐसा पहला स्वयंसेवी संस्था द्वारा संचालित सामुदायिक रेडियो है जिसे पिछले 10 वर्षों से दलित महिलाएँ सफलतापूर्वक चला रही हैं। अधिकतर ग्रामीण सामुदायिक रेडियो केन्द्र सामुदायिक विकास से जुड़ी समस्याओं पर जागरूकता बढ़ाने और आवश्यक जानकारी देने का कार्य करते हैं। ये संस्कृति, ग्रामीण विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, कृषि और स्थानीय शासन जैसे विषयों में ध्यान देते हैं।

ज्ञान प्रबंध प्रक्रिया के लिए विश्वस्त सूचनाओं, जानकारियों और सेवाओं से लैस डिजिटल प्रौद्योगिकियों के प्रयोग ने अभी तक दुर्गम और दुरूह समझे जाने वाले ग्रामीण क्षेत्रों में जबर्दस्त बदलाव कर दिए हैं। वेबपोर्टलों, मोबाइल फोन, सोशल मीडिया और विशेषज्ञ प्रणाली से युक्त आधुनिक आइसीटी उपकरणों ने जानकारी के आदान-प्रदान को 'प्रक्रिया केन्द्रित' बने रहने के स्थान पर 'लोककेन्द्रित' बना दिया हैं मोबाइल और इंटरनेट ने सूचनाओं, जानकारियों और सेवाओं तक पहुंच के ेत्र में ग्रामीण भारत में महत्वपूर्ण और स्थायी बदलाव कर दिए हैं। इसके साथ ही अब यह जरूरी हो जाता है कि ग्रामीण समुदायों के लिए किसी भी तरह का सूचना प्रबंधन एवं सेवा वितरण मोड्यूल बनाते समय इस बात पर प्रमुखता से ध्यान देना होगा कि ऐसा उस क्षेत्र के लिए स्थानीय भाषा में विश्वस्त एवं अधिकृत जानकारी का प्रयोग करके ही किया जाए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारत में ग्रामीण विकास और पंचायती राज से संबद्ध कर्मियों और निर्वाचित प्रतिनधियों तक पहुंचना और उन्हें प्रशिक्षित करने के लिए डिजिटल प्रौद्योगिकी का प्रयोग ही एकमात्र साधन है। भारत सरकार का डिजिटल भारत (इंडिया) कार्यक्रम ग्राम-स्तर पर डिजिटल अवसंरचना की स्थापना करके, ग्रामीण समुदायों में डिजिटल जागरूकता लाकर और डिजिटल सेवाओं का पिटारा (बास्केट) उपलब्ध करवा कर निश्चित रूप से ग्रामीण विकास की प्रक्रिया को और अधिक गतिमान बना रहा है।

संदर्भ सूची

1. Mara Miele, Vaughan Higgins, Hide Brokhang, Monica Truninger 2017, Transforming The Rural Global Processes and Local Futures, Emerald Publication, USA.
2. S.L. Doshi, P.C. Jain, 1999, Rural Sociology, Rawat Publications, Jaipur
3. Ajay Kumar, 2018 Digital India, Prabhat Prakashan, New Delhi.
4. Kartan Singh, 1999, Rural Development : Principles, Policies and Management, Sage Publications, New Delhi.
5. A. R. Desai, 2009, Indian Rural Sociology, Rawat Publication, Jaipur
6. Arpan Kumar Kar, Suchi Sinha, M.P. Gupta, 2018, Digital India Reflections and practice, Vitasta Publications, New Delhi.
7. Indian Panchayat Knowledge Portal, Website:https//www.panchayat.gov. in
8. Digital India Portal, website : wwwdigicalindia.gov.in
9. Rural Development Ministry of India : website:https//rural.nic.in

राष्ट्रवाद के संदर्भ में अरविन्दो घोष के विचार

डॉ० निधि सिद्धार्थ

एसोसिएट प्रोफेसर, भारतीय प्राचीन इतिहास विभाग, ए0पी0 सेन मेमोरियल गर्ल्स डिग्री कालेज, लखनऊ

भारतीय राष्ट्र के निर्माताओं में उच्च स्थान यदि किसी का है तो वह है श्री अरविन्दो घोष का ही है क्योंकि उन्होंने ही सर्वप्रथम विस्मृत हो चुकी भारतीय दार्शनिकता एवं अध्यात्मिकता को पुनः जागृत करने का सफल प्रयास किया। अंग्रेजों की दमनात्मक नीति को परास्त करने का आत्मबल भारतीयों को उन्होंने दिया। उन्होंने 1907-09 में भारत के लिए पूर्व स्वराज्य का आदर्श प्रस्तुत किया था। पूर्ण स्वराज्य का नारा उन्होंने ऐसे समय में दिया था जिस समय कोई उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था। यह उनके साहसपूर्ण और विलक्षण दूरदर्शिता को इंगित करता है। वे भारतीय राष्ट्र को ईश्वर की अभिव्यक्ति मानते थे और पश्चिम की श्रेष्ठता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। राजनीतिक चिन्तन की दृष्टि से अरविन्दो का योगदान राजनीति के आध्यात्मीकरण से जुड़ा हुआ है। अरविन्दो की राजनीति एक योगी की राजनीति थी और उनके राजनीतिक चिन्तन का सुदृढ़ आधार उनके गहरे आध्यात्मिक विश्वासों में निहित था। अरविन्दो को इस बात का अहसास हो गया था कि आध्यात्मिक शक्ति और योग साधना द्वारा एक ऐसे आध्यात्मिक वातावरण का निर्माण सम्भव है जिसके द्वारा भारत अपने अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो सकता है।

अंग्रेजों के अत्याचारों से भारतीय जनता जिस पीड़ा से कराह रही थी अरविन्दो चाहते थे कि सर्वप्रथम उस पीड़ा को आध्यात्म दर्शन द्वारा शान्त कर योग साधना द्वारा उसे आन्तरिक और बाह्य रूप से सशक्त बनाया जाए। तत्पश्चात् वह दासता की बेड़ियों को काटने में सफल हो पाएगा। अतएव उनके राजनीतिक चिन्तन का सुदृढ़ आधार उनके गहरे आध्यात्मिक विश्वासों में निहित था। उनके लिए भारत की स्वाधीनता का अर्थ कोरी राजनीतिक स्वाधीनता नहीं थी बल्कि यह थी कि भारत मानव जाति के उत्थान हेतु आध्यात्मिक नेतृत्व प्राप्त करे जैसा कि वह प्राचीन भारत में करता आया था। उनका ध्येय पराधीन भारत को स्वाधीन भारत में परिवर्तित करना मात्र नहीं था अपितु वे भारत को विश्व पटल के शिखर पर ले जाना चाहते थे। उनका मत था कि एक पराधीन भारत विश्व को आध्यात्मिकता का संदेश तथा मानव जाति का पथ-प्रदर्शक बनने में सहायक नहीं है। अतएव उसे स्वाधीन होकर आध्यात्मिकता के प्रसार के उच्च लक्ष्य की को बढ़ना चाहिए। उनका विचार था कि भारत स्वतंत्र होकर ही संसार के आध्यात्मिक पुनरुद्धार में पूर्णरूपेण योगदान दे सकता है। वे भारत की स्वाधीनता के प्रबल पक्षधर थे। इससे कम राजनीतिक लक्ष्य को भारत की महानता के विपरीत मानते थे।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उन्हें "भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का मसीहा" कहा था। उनका मानना था कि अरविन्द के माध्यम से भारत की वाणी समस्त विश्व में सुनी जायेगी। अरविन्दो की सबसे महत्वपूर्ण देन यह थी कि उन्होंने अपने देशवासियों के समक्ष पूर्ण स्वाधीनता का आदर्श प्रस्तुत किया था। उनका दूसरा महत्वपूर्ण कार्य यह था कि उन्होंने राष्ट्रवाद को एक महान धार्मिक भावना बना दिया और उसे आध्यात्मिक बनाकर उन्होंने उसे एक उच्च स्तर प्रदान कर दिया। उन्होंने घोषणा की थी कि भारत की सबसे बड़ी आवश्यकता अपनी खोई हुयी आध्यात्मिक थाती को पुनः प्राप्त करना है।

उन्होंने कहा था कि यदि भारत की उठना है और अपने 'स्व' को प्राप्त करना है तो उसे अपनी अन्तर्निहित आध्यात्मिकता को सचेत करना होगा। उन्होंने स्वाधीनता आन्दोलन को एक जन-आन्दोलन बनाकर उसे वास्तव में राष्ट्रीय बना दिया। श्री अरविन्द, तिलक, लाजपतराय तथा विपिन चन्द्रपाल के राजनीतिक मंच पर आगमन के पूर्व कांग्रेस शिक्षित मध्यम वर्ग तक ही सीमित थी और और जन साधारण का उसमें कोई स्थान नहीं था। यह उनके अथक प्रयास का ही प्रतिफल था कि जन-साधारण में विस्मृत हो चुकी प्राचीन भारत के गौरव को उन्होंने पुनः जागृत किया और उसे झकझोर कर उठाने का प्रयास किया। जनता में यह विश्वास जगाया कि अगर वो चाह लें तो दासता की बेड़ियों को वह चुटकी में टुकड़े-टुकड़े कर सकती है। जरूरत है तो सिर्फ अपने अन्दर छिपी हुई शक्ति को पहचानने की, एकजुट होकर स्वाधीनता के लिए प्रयासरत होने की।

जन-साधारण में स्वाधीनता का मंत्र फूंकने वाले अरविन्दो ही थे। उन्हें स्वाधीन भारत चाहिए था फिर चाहे उसके लिए हिंसा का मार्ग ही क्यों न अपनाना पड़े। वे राष्ट्र की स्वतंत्रता को सर्वोपरि मानते थे। वे इसके लिए गीता के क्षात्र-धर्म का अनुसरण ही उचित मानते थे। वे साधुवृत्ति एवं नैतिकता पर राजनीति को आधारित करना कायरता का चिन्ह मानते थे। वे श्रीकृष्ण के संदेश को पूर्णतः स्वीकार करते थे और आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रीय शत्रुओं का संहार करना धर्म युद्ध मानते थे।

सशस्त्र विद्रोह एवं असहयोग को वे सर्वाधिक उपर्युक्त राजनीतिक पद्धति मानते थे। अरविन्दो ने देशवासियों को कांग्रेस के नरम नेतृत्व को स्वीकार करके निष्क्रिय प्रतिरोध की पद्धति का अनुसरण करने का आमंत्रण दिया। उन्होंने संगठित निष्क्रिय प्रतिरोध को स्वाधीनता प्राप्ति के लिए सर्वश्रेष्ठ बताते हुए निम्न बातें सम्मिलित कीं-विदेशी माल का बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं को अपना कर उनका प्रसार किया जाए, जनता द्वारा सरकार को कोई सहयोग प्राप्त न हो, राष्ट्रीय शिक्षण संस्थानों की स्थापना की जाए और उसमें राष्ट्रीय शिक्षा का प्रसार हो, सरकारी अदालतों तथा न्यायालयों का बहिष्कार किया जाए, उन

लोगों का बहिष्कार कराना जो इस निष्क्रिय प्रतिरोध में सम्मिलित न हो। स्पष्ट है कि इन क्रांतिकारी विचारों पर संगठित अमल हुआ होता तो हमें आजादी अरविन्दो जी के समय में ही मिल गई होती।

अंग्रेजों ने भारतीय लोगों का जो यूरोपीयकरण किया था उससे उन्हें भारतीयता तुच्छ लगने लगी थी और वे अपने ही देश को पराधीनता की बेड़ियों में बांधने वाले उपकरण साबित हो रहे थे। जैसा कि कहा गया है कि यदि कुल्हाड़ी में लकड़ी का दस्ता न होता तो लकड़ी के कटने का रास्ता न होता अर्थात् ऐसे भारतीय जो पूरी तरह से यूरोपीयकृत हो चुके थे उनके बहिस्कार की अति आवश्यकता थी और उन्हें यह एहसास कराया था कि वे ही हैं तो भारत को स्वाधीन कराने में बाधक हैं। अरविन्दो ऐसे ही लोगों का बहिष्कार करने का आह्वान कर रहे थे तो दूसरी तरफ वे स्वदेशी को सर्वोत्तम घोषित कर भारतीयता पर गौरवान्वित होना अनुभूत कराना चाहते थे। वे भारतीयता के अस्तित्व को बचाना चाहे रहे थे और इस राह में स्वदेशी का प्रचार उनके क्रांतिकारी कार्यक्रमों का अभिन्न अंग बन गया था।

अपनी एक सुप्रसिद्ध रचना 'कर्मयोगी का आदर्श' (The Ideal of Karmyogi) में उन्होंने लिखा है कि, "यदि तुम्हारे मन में यूरोपीय विचार भरे हुए हैं अथवा तुम जीवन को भौतिकवादी दृष्टिकोण से देखते हो, तो तुम इन आदर्शों (प्रभु का कार्य करना, जगत का कार्य करना) को नहीं अपना सकते और इनका पालन तो तुम कर ही नहीं सकते। भौतिक रूप से तुम कुछ नहीं हो आध्यात्मिक रूप से तुम सबकुछ हो। अपना सर्वस्व बलिदान कर दो। सबसे पहले भारतीय बन जाओ। अपने पूर्वजों की थाती को पुनः प्राप्त करो। आर्य विचार, आर्य अनुशासन, आर्य चरित्र, आर्य जीवन को पुनः प्राप्त करो। वेदान्त, गीता तथा योग को पुनः प्राप्त करो। इसके अनुसार जीवन व्यतीत करो, तुम महान, सशक्त, सबल, अज्ञेय तथा भयरहित हो जाओगे।"

श्री अरविन्दो ने एक उत्कृष्ट और उच्चतर राष्ट्रवाद का संदेश दिया। उनकी आकांक्षा यह थी कि भारत अपने आध्यात्मिक अतीत के प्रति सजग हो जाए और वह यूरोप का अंधानुकरण करने के बजाए स्वयं अपनी राष्ट्रीय आत्मा को अभिव्यक्त करे। उन्होंने यूरोप को अपना आदर्श कभी नहीं बनाया। श्री अरविन्दो के शब्दों में, "भारत में उन्नीसवीं शताब्दी अन्धानुकरण, आत्मविस्मरण तथा कृत्रिमता की थी। इसका उद्देश्य था भारत में यूरोपीयकरण की पुनरावृत्ति करना। इसने गीता की उस महान उद्घोषणा को भुला दिया था जिसमें कहा गया था कि भली-भांति धर्म का पालन करने की अपेक्षा स्वधर्म का पालन बुरे ढंग से करना भी अधिक अच्छा है। स्वधर्म पालन हेतु मृत्यु भी श्रेयस्कर है किन्तु परधर्म का पालन करना भयावह है।"

इन कथनो से स्पष्ट है कि वे भारतीयों को अंग्रेजों द्वारा थोपी गई औपनिवेशिक नीतियों को उखाड़ फेंकने और स्वत्व पर विश्वास दृढ़ करने के लिए प्रेरित कर रहे थे। उन्हें औपनिवेशिक तंत्र बनकर रहना स्वीकार नहीं था, वे तो 'पूर्ण-स्वराज्य' की बात करते थें यही कारण है कि वे कांग्रेस के विचारों को स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। उनका मानना था कि कांग्रेस सच्ची निष्ठा के साथ अपने लक्ष्य की ओर आगे नहीं बढ़ रही थी अपितु वह अंग्रेजों का एक उपकरण मात्र बनकर रह गयी थी जो उसकी दासता को स्वीकार करती है।

उन्होंने कांग्रेस की कटु आलोचना करते हुए कहा था कि, "हमारा वास्तविक शत्रु विदेशी शासन नहीं अपितु हमारी अपनी घोर दुर्बलता, हमारी कायरता, हमारी स्वार्थपरता, हमारा मिथ्याचार और हमारी अन्धी भावुकता है।" उन्होंने कहा कि कांग्रेसियों को अंग्रेजों द्वारा अपनी मेज से फेंके हुए टुकड़ों के पीछे नहीं दौड़ना चाहिए वरन् अपने अन्दर राष्ट्रीय आत्म सम्मान की भावना विकसित करनी चाहिए। जनसामान्य को उद्दीप्त किया जाना चाहिए क्योंकि वे राष्ट्रीय स्वाधीनता के नाम पर ही उद्वेलित किए जा सकते हैं न कि सिर्फ विधान परिषदों के विस्तारण के नाम पर। सच्चे अर्थ में भारतीय जन-मानस को स्वाधीनता प्राप्त करने की प्रगाढ़ उत्कंठा यदि किसी ने जागृत की थी तो वे श्री अरविन्दो ही थे। उन्होंने जन-जन को अपनी लेखनी और अपने वक्तव्यों से उद्वेलित किया ताकि वे सजग एवं सज्ज होकर स्वतन्त्रता को प्राप्त के लिए तत्पर हो जाएं। उनके आह्वान ने भारतीयों में नई आशा की किरण का बीजारोपण किया और उसे अपनी शक्ति का एहसास कराया।

श्री अरविन्दो इस बात से अवगत थे कि यदि सम्पूर्ण भारत-वासी आजादी की मशाल लेकर चल निकलेगा तो दुनिया की कोई भी ताकत उसे अपने लक्ष्य को प्राप्त करने से रोक नहीं पाएगी। 'असहयोग आन्दोलन' और 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के समय जो जन-सैलाब उमड़ा उसकी नींव श्री अरविन्दो ने ही डाली थी। वे ही थे जिन्होंने इस चिंगारी को स्वरूप प्रदान किया था। पूर्ण-स्वराज की प्राप्ति के लिए उन्होंने हिंसा के मार्ग को भी उचित ठहराया था। उनका मत था कि भारत का उत्थान योग के द्वारा ही हो सकता है तथापि वे राष्ट्रीय स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए आवश्यकता पड़ने पर हिंसात्मक उपायों के प्रयोग के भी विरोधी नहीं थे। श्री अरविन्दो ने गीता पर अपने भाष्य (Essay on the Gita) में इस बात पर बल दिया है कि, "नैतिक दृष्टि से, सामयिक दृष्टि से, आध्यात्मिक दृष्टि से मानव जाति विश्व-शांति के लिए कभी भी तैयार नहीं थी। अपने विकास में प्रकृति का सन्तुलन ऐसी किसी व्यवस्था को स्वीकार नहीं कर सकता। जब तक मानव...प्रकृति के जीवन का अतिक्रमण करके, आत्मा के रूप में और आत्मा में जीवन व्यतीत करना नहीं सीख लेता, तब तक युद्ध मानव प्रकृति का एक अपरिहार्य अंग रहेगा।" वे ही उग्रवादी विचारक थे।

भारत को स्वाधीन कराने के संघर्ष में उन्हें उदारवादियों की प्रार्थना एवं याचिका की नीति पसन्द नहीं थे। वे भारत की स्वाधीनता के प्रबल पक्षधर थे। उनके अनुसार प्रत्येक राष्ट्र को स्वाधीन रहने का...है और इसको प्राप्त करने के लिए किसी भी मार्ग को अपनाया जा सकता है फिर चाहे वो हिंसा का ही मार्ग क्यों न हो। श्री अरविन्दो ने दासता की बेड़ियों में जकड़ी तिरस्कृत भारत माँ को स्वाधीन करने की मांग की। उन्होंने कहा था कि माँ को बेड़ियों से मुक्त करने के लिए हर सम्भव उपाय करना बेटों का कर्त्तव्य है।

उन्होंने आगे ओजपूर्ण कहा था कि, "हे भारतवासियों! केवल भारत की आध्यात्मिकता, भारत की साधना, तपस्या, ज्ञान और शक्ति ही हमें स्वाधीन तथा महान बना सकती है।" उनके राष्ट्रवाद की अवधारणा संकीर्ण न होकर अपितु सम्पूर्ण संसार के एकीकरण हेतु थी। उन्होंने राष्ट्रवाद को अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के धरातल पर परिभाषित किया था जो उनकी दूरदर्शिता का प्रमाण प्रस्तुत करता है। उनका राष्ट्रवाद केवल हिन्दू राष्ट्रवाद नहीं था अपितु वे 'विश्व-राज्य' की

स्थापना करना चाहते थे। उस 'विश्व-राज्य' का स्वरूप ऐसा होगा जिसमें स्वतंत्र राष्ट्रों का ऐसा संघा होगा जिसके अन्तर्गत हर प्रकार की पराधीनता, बल पर आधारित असमानता तथा दासता का विलोप हो जाएगा। यहाँ तक कि वे भारत के अल्पसंख्यकों का समुचित समर्थन प्राप्त करने के लिए सदैव लालायित रहे।

डॉ0 करण सिंह ने उचित ही कहा है कि, "उनकी मान्यता उन्हें संकीर्ण राष्ट्रवाद की श्रेणी में न रखकर राष्ट्रवाद के नवीन व्याख्याकार एवं परमोदार राष्ट्रवादी विचारक के रूप में प्रस्तुत करती है।" वस्तुतः वे एक ऐसे संसार का सपना देख रहे थे जो पराधीनता, दासता, असमानता से मुक्त हो और सभी राष्ट्र खुशहाली की ओर उन्मुख होकर, प्रेम की भावना से प्रेरित होकर मिल-जुल कर अपना पथ प्रशस्त करें। इस प्रकार उन्होंने स्वतन्त्र राष्ट्र के निर्माण हेतु एक नवीन राष्ट्रवाद को जन्म दिया। उन्होंने विभिन्न धर्मों, जातियों और वर्गों में विभाजित भारत की ताकत को एकजुट करने के लिए एक नवीन राष्ट्रवादी विचारधारा को आत्मा प्रदान की जिसके तले सभी भारतीय एकजुट होने लगे। उनका विचार था कि राष्ट्रवाद से बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं हो सकता। सबसे पहले हम भारतीय हैं। भारतीयता ही सबसे बड़ा धर्म है।

आज उनके विचार अधिक प्रासंगिक दिखाई पड़ते हैं क्योंकि आज के भारत को फिर उनके जैसे व्यक्तित्व की आवश्यकता है जो अपनी वैमनस्यता को दूर कर पुनः राष्ट्रवादी धर्म का परचम लहरा सके। पुनः विश्व को एकता के डोर से बांधने का सपना साकार कर सके। आज हमारा विश्व परमाणु हथियारों से ढेर पर बैठकर विश्व-शांति की बात करता है तो दूसरी तरफ आतंकवादियों का जाल फैला हुआ है जो हर प्रकार से विश्व की शांति का हनन करने पर उतारू है। श्री अरविन्दो की राष्ट्रवादी विचारधारा विश्व में आपसी सामंजस्य स्थापित करने वाली रही है जो विश्व को शांति और विकास के पथ पर ले जाने में सक्षम थी। श्री अरविन्दो भारत के ही नहीं विश्व के महान विभूति थे जिन्होंने राष्ट्रवाद के एक नए स्वरूप से विश्व को परिचय कराया था, वे ही थे जिन्होंने भारतीयों को स्वाधीन की राह पर लाकर खड़ा कर दिया था। वे एक महान कवि, एक महान दार्शनिक, एक महान विचारक, एक महान ऋषि तथा एक महान देश-भक्त थे। दिलीप कुमार राय ने उन्हें 'भारत का महानतम् जीवित योगी' कहा।

रोमेन रोला ने श्री अरविन्दो को 'भारतीय दार्शनिकों का सम्राट' एवं 'एशिया तथा यूरोप की प्रतिभा का समन्वय' कहकर पुकारा है। उनका संदेश केवल भारत के लिए ही नहीं था अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए था। आज मानव जाति को उनके संदेश की सबसे अधिक आवश्यकता है। स्ट्रेन्डफोर्ड विश्वविद्यालय के डॉ0 फ्रेड्रिक स्पीजलबर्ग ने उन्हें 'हमारे युग का अवतार' कह कर पुकारा और उन्हें इस 'वसुन्धरा का पथ-प्रदर्शक तारा' बताया क्योंकि उन्होंने जो राह दिखलाई थी वह न उसने पहले और न बाद में किसी ने दिखाई। ऐसे भारत के महान सपूत को कोटि-कोटि नमन।

संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ0 बी0एल0 कड़िया, भारतीय राजनीतिक विज्ञान।
2. स्वर्णमाला दास, श्री अरविन्दोः अ मार्डन पोलीटिकल थिंकर।
3. ज्योति प्रसाद सूद, भारतीय राजनीतिक विचारक।
   एस0एन. प्रसाद, सरोज जैन।
4. करण सिंह, प्रोफेट ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म।

'हंस' के सम्पादकीय लेखों में 'स्त्री मुक्ति' का प्रश्न

ममता यादव

शोधार्थी, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, डा०श०मि०रा०पु० विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ० यशवन्त वीरोदय

असिस्टेण्ट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग), डा०श०मि०रा०पु० विश्वविद्यालय, लखनऊ

शोध सारांश

प्राचीन काल से अब तक स्त्री का शारीरिक, मानसिक, नैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक शोषण होता रहा है। राम राज्य में सीता को अग्नि परीक्षा देनी पड़ी, उसके बावजूद उन्हें ऐसे समय में घर से निकाल दिया गया, जब उन्हें आश्रय की बेहद आवश्यकता थी। इसी तरह महाभारत में धर्मराज युधिष्ठर द्वारा द्रौपदी को चीरहरण हेतु दूसरे के हवाले कर दिया गया, बिना उनकी अनुमति के उन्हें सम्पत्ति की तरह जुएँ के दाँव पर लगा दिया गया। भारतीय समाज मे हमेशा स्त्री को भोग की वस्तु के रूप में देखा गया, उसे जब जैसे चाहा पुरूष ने वस्तु की तरह उपभोग किया। मध्यकाल में स्त्री के शोषण, प्रताड़ना हेतु समाज में सतीप्रथा, बाल विवाह, बहुविवाह जैसी कुरीतियों का बुरा प्रकोप जारी रहा और स्त्री अनवरत पुरूष के मनोरंजन का साधन बनती गयी। स्त्रियों और दलितों की गुलामी को हमेशा-हमेशा के लिए स्थापित कर उसको सेवा ही उसकी नियति है, का आभास और विश्वास दिलाने हेतु धर्मग्रंथों, स्मृतियों को रचा गया। प्रत्येक समय में परिस्थितियाँ भले ही अलग रहीं हों, लेकिन स्त्री-दलित शोषण अनवरत जारी रहा है। वर्तमान समय में भी गरीबी, दहेज, शोषण, बलात्कार, बेरोजगारी जैसी समस्याओं का शिकार स्त्री को बनाया जा रहा है, अर्थात् स्त्री मध्यकालीन सामन्ती मूल्यों, पितृसत्ता, बाजारीकरण के प्रभाव से उत्पन्न विसंगतियों के साथ ही घर-बाहर की अनेक समस्याओं से संघर्षरत् है। प्रेमचन्द्र द्वारा प्रकाशित हंस पत्रिका का जन्म स्त्री दलित समस्या, सामाजिक असमानता, अन्याय, शोषण और सत्ता की अनीतियों के विरूद्ध हुआ था, जिसका पुर्नप्रकाशन राजेन्द्र यादव ने किया। इस पत्रिका का सम्बन्ध उत्तर आधुनिक समय की प्रगतिशीलता से रहा है। इस दौर की प्रगतिशीलता का गहरा सम्बन्ध अस्मिता मूलक विमर्शों से रहा है। उसी अस्मिता मूलक विमर्श की एक शाखा स्त्री विमर्श है जिसके माध्यम से स्त्री अपनी अस्मिता, अधिकार और सम्मान को लेकर अपनी आवाज दमदारी से उठा रही है। आज स्त्रियों की आवाज को अनसुना करना असम्भव है। इस समय अस्मितामूलक विमर्शों में सबसे ऊँची आवाज स्त्रियों की है और यह स्त्री सारी दुनिया का केन्द्रीय विमर्श है। आज की स्त्री, समाज में स्वतन्त्रता, समानता और न्याय को हासिल करने हेतु अब तक चली आती व्यवस्था को अवश्य बदलेंगी।

Keyword- विमर्श, अस्मितामूलक, स्वतन्त्रता, समानता, पितृसत्ता, बाजारीकरण।

राजेन्द्र यादव स्त्री विमर्श या स्त्री मुक्ति को देह मुक्ति से जोड़ते हैं, वह लिखतें हैं कि "पुरूष की अपेक्षा स्त्री अपनी देह में ज्यादा कैद है। वह अपने शरीर से ऊपर उठना या उसे भूलना भी चाहे तो न प्रकृति उसे ऐसा करने देगी, न समाज। उसका सारा सामाजिक मूल्यांकन सबसे पहले उसके शरीर का मूल्यांकन है। गुण तो बाद में आते हैं। वह एक ऐसी 'दृश्यवस्तु' है, जिसे अपनी सार्थकता पुरूष की निगाह से सुन्दर और उपयोगी लगने में ही पानी है।"[1]

हिन्दी साहित्य की परम्परा में हंस पत्रिका ने सदैव स्त्री को उसके अधिकारों, पुरूष प्रधान समाज में उसकी स्वतन्त्रता, समानता और सम्मान को दिलाने हेतु कड़ी आवाज उठायी है। राजेन्द्र जी देश में रोने-सिसकने के रीति-रिवाजों को खत्म करना चाहते थे, जिससे माएँ, बहनें, बेटियाँ, पत्नियाँ, प्रेमिकाएँ अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व से पहचानी जाएँ, न कि पिता, पति और बेटे के नाम से। वह लिखते है कि-"विडम्बना है कि नारी को अगर स्वतन्त्र होना है तो वेश्या बनने के सिवा कोई रास्ता नहीं है, तभी वह जी सकेगी, वर्ना उसकी लगाम पिता, पति, पुत्र के ही हाथ में है। न उसका अपना कोई व्यक्तित्व है न नाम। आज भी बहुसंख्यक औरतें अपने इन्हीं सम्बन्धों से जानी जातीं हैं।"[2] राजेन्द्र जी की यह एक विचारोत्तेजक टिप्पणी है, जिसमें स्त्री मुक्ति के सवालों पर हिन्दी लेखकों ने विरोध जताया है। राजेन्द्र जी स्त्री को पूर्ण रूप से मुक्त देखना चाहते हैं, इसीलिए वह विरोध या प्रतिरोध के हद तक जाते दिखाई देते हैं, क्योंकि जिस लेखक या साहित्यकार का समाज से जितना गहरा सरोकार होगा, प्रतिरोध ही उतना ही गहरा होगा। राजेन्द्र जी सामाजिक सरोकारों से गहरे ताल्लुक रखते हैं, वह ऐसी दुनिया चाहते हैं, जहाँ समता और न्याय हो। स्त्री मुक्ति से सम्बन्धित उनके कथन एवं टिप्पणियाँ उल्लेखनीय हैं। वह मानते हैं कि भारतीय समाज में स्त्री को उन अपराधों की सजा मिली जिसके लिये वह कतई जिम्मेदार नही हैं, वह लिखते हैं-"....औरत की स्थिति तो और भी नाजुक इसलिए है कि उसे अपने जीवन के हर क्षेत्र और हर स्थिति में उन्ही अपराधों की सजा पानी है, जिसकी जिम्मेदार वह कतई नही हैं। जिस तरह औरत होकर अगले

हर क्षेत्र में भेदभाव की जिन्दगी नही चुनी थी, उसी तरह उसने अपने काले-गोरे या सुन्दर-असुन्दर होने का चुनाव भी नही किया था। विवाह से पहले गर्भ-धारण कर लेना भी शायद उसका चुनाव नही था, न उसका यह है कि विवाह के बाद भी वह गर्भ न धारण करे और बांझ कहलाये।"[3]

आगे वह निर्दोष स्त्री की इसी स्थिति पर प्रश्न उठाते हुए कहते हैं कि "उसके बेटा हो या बेटी, क्या वह यह खुद तय कर सकती है? या उसका पति नपुंसक या नकारा हो, यह उसकी आकांक्षा पर है? पति या परिवार का कोई और सदस्य कहीं किसी बीमारी, दुर्घटना या हादसे में मर जाए, इसके लिए वह क्यों जिम्मेदार है? चार आदमी शुद्ध शारीरिक जबरदस्ती से उसके साथ बलात्कार कर डालें तो वह दण्डनीय, अस्वीकार्य, अस्पृश्य और अभागी है? मगर नहीं; उसे इन सारे अपराधों की सजा मिलेगी यानि सामाजिक अपमान, व्यक्तिगत प्रताड़ना या मौत की सजा भोगनी होगी।"[4]

"भारतीय समाज में न नारी का अपना कोई व्यक्तित्व रहा है, न जाति। वह ऐसा 'रत्न' है, जिसे कहीं से भी उठाया जा सकता है और जिसके पास है उसी की सम्पत्ति है। वे व्यक्ति नहीं, 'चीज' है, जिन्हें लूटा, छीना और नष्ट किया जा सकता है, खरीदा और बेचा जा सकता है। सारा इतिहास इन उदाहरणों से भरा है कि किस आक्रमण में कितने हाथी-घोड़े, हीरे-जवाहरात और औरतें लूटी गयीं। जिस सामन्त या सम्राट के पास जितने अधिक दास और औरतें थी, वह उतना ही बड़ा चक्रवर्ती माना गया। सन् 1947 के देश विभाजन में कितनी औरतें छीन ली गईं या लौटा दी गईं, यह बहुत पुराना इतिहास नहीं है।"[5]

भारतीय समाज में स्त्री की गति ऐसी है कि उसे बात-बात पर सजा देने के लिए चुन लिया जाता है अर्थात् परिवार, पिता और पति की रंजिशों का बदला उसके घर की स्त्री से लिया जाता है। इस तरह की घटनाएँ दिन प्रतिदिन समाचार पत्रों में देखने को मिलती हैं। बकौल राजेन्द्र जी-"आज भी जब दुश्मन को नीचा दिखाना या सबक सिखाना हो तो उसकी बहन-बेटियाँ ही उठाई या भ्रष्ट की जातीं हैं। दलितों का दम्भ तोड़ने के लिए उनकी औरतों पर बलात्कार तेा सबसे अचूक नुस्खा है।"[6]

राजेन्द्र जी का संघर्ष और लड़ाई उन सभी तरह के हथकण्डों, षडयन्त्रों साजिशों के खिलाफ है जो आज भी स्त्री को विक्रय या हस्तान्तरण की सामग्री समझतें हैं। इक्कीसवीं सदी में पहुँच रहा हमारा देश इस तरह की घटनाओं से अछूता नहीं है। गरीबी हो, बलात्कार हो, दहेज प्रथा हो, चोरी हो, हत्या हो, पुरूष व्यवस्था में अपने हर दुर्भाग्य की जिम्मेदार स्त्री ही है। राजेन्द्र जी को लगता है कि स्त्री मुक्ति की लड़ाई को सामन्ती-संस्कारों से नही लड़ा जा सकता है, क्योंकि सामन्ती संस्कारों ने समाज में-"स्त्री को सिर्फ तीन नाम दिएं हैं: पत्नी, रखैल और वेश्या। इसके अलावा वह किसी चौथे सम्बन्ध को स्वीकार ही नही करता है। जब औरत को वह संरक्षण यानि रोटी, कपड़ा और मकान देने के साथ अपना नाम देकर सामाजिक स्वीकृति देता है तो कहता है पत्नी, लेकिन जब संरक्षण देकर अपना नाम नही देता तो वह 'रखैल' है। जहाँ वह न सरंक्षण देता है न सामाजिक स्वीकृति तो वह वेश्या होती है, क्योंकि संरक्षण के लिए उसे बहुतों पर निर्भर करना पड़ता है, नतीजे में सामाजिक सम्मान का प्रश्न ही नही उठता। लोहिया ने कृष्ण और द्रौपदी के बीच के मैत्री-सम्बन्ध को आदर्श, बराबरी का सम्बन्ध बताया जरूर है, लेकिन आगे वह कहीं दिखाई नहीं देता।"[7]

राजेन्द्र जी ने स्त्री मुक्ति हेतु वेदों पुराणों शास्त्रों और परम्पराओं की गहन जाँच पडताल करते हुए उसकी आवश्यकता पर प्रश्नचिन्ह लगाया है। वह लिखतें है कि "हमें ऐसी परम्पराओं, शास्त्रों, दर्शनग्रन्थों और आध्यात्मिक भव्यताओं की बिल्कुल जरूरत नही है, जो किसी रूप में औरत को सती कर देने की वकालत करते हो-जो औरत को एक प्राणी, एक व्यक्ति, एक स्वतन्त्र इकाई नही, उपयोग की ऐसी वस्तु मानते हैं, जिसकी आदमी के बाद कोई जरूरत नहीं है-कपड़ों और कुर्सी की तरह औरत की हर इच्छा को बचपन से निरन्तर कुचलने-घोटने वाला वह समाज जो न उसे जन्म का चुनाव करने देता है, न शिक्षा का न उसे साथी चुनने देता है, न जीवन-पद्धति।"[8]

उक्त विचार राजेन्द्र जी ने 90 के दशक में सती कर दी गयी रूपकुंवर के सन्दर्भ में कहे थे, जो समाज में होने वाली किसी भी तरह की स्त्री हत्या, आत्महत्या, शोषण और अन्याय से भी जुड़ते है और उनको चिन्हित करने तथा समाज की दिशा बदलने हेतु प्रेरित करते हैं।

राजेन्द्र जी स्त्री हत्या, आत्महत्या, बलात्कार, शोषण, सामाजिक रूढ़ियों और असमानताओं पर बात करते हुए एवरेस्ट विजय करने वाली कम उम्र संतोष के हवाले से उसकी पीड़ा, कष्ट को सम्पूर्ण स्त्री समाज से जोड़ते हुए उसकी दशा का यथार्थ अपने शब्दों में व्यक्त करते हैं-"एवरेस्ट पर विजय पाना आसान है, लेकिन सामाजिक रूढ़ियों और असमानता के संस्कारों से पार पाना सम्भव नही है, क्योंकि एवरेस्ट शिखर पर एक बार में चढ़घ जा सकता है, गैर बराबरी की खन्दकों से तो हर रोज गुजरना होता है, अगर किसी दिन यह सुनाई पड़े कि हिन्दू समाज में औरत होने के अपराध में संतोष ने आत्महत्या कर ली या उसे जला दिया गया, तो किसी को कोई आश्चर्य नही होगा.....समाज मे ंतो होता ही रहता है, बल्कि साहसी होने का 'सम्मान' ही उसे अपने समाज से काट देगा।"[9]

राजेन्द्र जी, नैना साहनी को मारकर तन्दूर में जला देने, एवं राजस्थान की रूपकुँवर को सती किये जाने, और समाज नेत्री महिला सुषमा सिंह को मारकर लाश के टुकड़ों को मगरमच्छ को खिलाने की घटनाओं से बहुत गहरे तक आहत होते है। वह इसकी तहकीकात करते हुए लिखते हैं कि-"सतयुग हो या त्रेता, जलना तो नैना साहनी को है ही। यहाँ वह सामाजिक गतिविधियों में भाग लेतीं थीं, महत्वाकांक्षी थी, अनेक लोगों से सम्पर्क थे। कुछ शायद 'घनिष्ठ' भी थे और सार्वजनिक पहचान ने उसे दुस्साहसी बना दिया था। उसकी हत्या तो होनी ही थी।"[10]

राजेन्द्र जी इस घटना को लेकर हो रहे मीडिया के हो हल्ले को देखते हैं। वह प्रश्न करते हैं कि रूपकुवँर की घटना का "अहसास आपको नही छुएगा क्योंकि संस्कृत के श्लोको और धार्मिक अनुष्ठान के रूप में सम्पन्न हुआ? अगर रूपकुँवर की हत्या अमानवीय नही थी तो नैना साहनी की हत्या क्यों अमानवीय है? सिर्फ इसलिए कि यहाँ 'सती' शब्द जुड़ा है और उसे विश्व के महानतम धर्म का समर्थन प्राप्त है?"[11] इन प्रश्नों के साथ आगे वह इसी लेख में समाज के समक्ष अपनी बात रखते हुए इन हत्याओं के पीछे की साजिशों पर विचार करने हेतु कुछ कारण गिनाते है:-"नैना और सुषमा दोनों ही राजनीति में सक्रिय व सियासतों वाली व्यक्तित्ववान महिलाएँ थी....हो सकता है, और ऊँचे या आगे जाना चाहती हों-जो पतियों को रास नही आ रहा था। हो सकता

है, सार्वजनिक छवि वाले इन पतियों के कुछ ऐसे रहस्यों की गवाह या हिस्सेदार भी रहीं हो, जिन्हे खोल देने की धमकियाँ भी इन्होने दे डाली हो, शुद्ध ब्लैकमेलिंग। सामाजिक जीवन में कुछ लोगों से अन्तरंग मेलजोल भी हो सकता है, पतियों को अचानक आपत्तिजनक लगने लगा हो।"[12]

राजेन्द्र जी ने पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री मुक्ति हेतु उन्ही जगहों को चुना जहाँ से स्त्री कैद की गयी, पराधीन बनायी गयी है, वह दलितों और स्त्रियों की नियति लगभग एक जैसी स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि स्त्रियों को प्राय: शास्त्र से और दलितों को शस्त्रों से कुचला गया है, दोनों की जगह में अन्तर सिर्फ यह है कि स्त्री घर के भीतर रहती है और दलित घर के बाहर, किन्तु दोनों का कार्य केवल समर्पण और सेवा है। दलितों के बाहरी समाजिक संघर्ष की अपेक्षा स्त्रियों की यातना पीड़ा अधिक है क्योंकि वह पूरी तरह से घर के भीतर कैद है। दलित एवं स्त्री की मुक्ति की राहें प्राय: एक ही है। इसलिए मिलकर साथ में संघर्ष करने से ही मंजिल आसान होगी।-"ट्रेन एक ही है जिसमें दलित भी बैठें हैं और स्त्री-पटरियों की दिशाएँ नहीं बदली गई तो गंतव्य भी एक है।"[13]

"स्त्री व्यक्तित्व को जिस एक मात्र जगह पर सबसे अधिक कुचला तोड़ा और समाप्त किया गया है, वह है सेक्स! स्त्री को मर्यादा या नियन्त्रण में रखने की जितनी भी तरकीबें हैं, वे सब सेक्स को लेकर ही है। बचपन से ही उसकी इस प्रवृत्ति को समाप्त करने के तरीके ईजाद किए जाते रहें हैं। मुस्लिम समाज में खतने जैसे विधान भी हैं।"[14] राजेन्द्र जी कहते है, पुरूष समाज में यह धारणा प्राय: पायी जाती है कि स्त्री को मारना-पीटना अनुशासन में रखना, घर से निकालना, हत्या कर देना जैसे विशेष अधिकार समाज को प्राप्त है। वह हर प्रकार से स्त्री की स्वायत्तता और स्वतन्त्रता का मैनेजर बना बैठा है। उसने स्त्री के लिए स्वायत्ता और स्वतन्त्रता का कोई मतलब नही समझा। तमाम तरह के दमन झेलती स्त्री आज अपने हक और स्वाधीनता की लड़ाई खुद लड़ रही है, अब वह उपेक्षिता और वंचिता बन जीवन नही जीना चाहती बल्कि वह वर्चस्व विहीन समाज की कल्पना को साकार करना चाहती है। "पिछली शताब्दी में स्त्री ने पुरूषों के बराबर हक माँगा था और आज मिले हुए अधिकारो के सबलीकरण का सवाल है।"[15] इसके लिए प्रभा खेतान लिखतीं है कि-"व्यक्ति स्त्री नही बल्कि स्त्री समूह की जरूरत है। ऐसा नहीं है कि हम स्त्रियाँ कोई पुरूष विहीन समाज चाह रहीं हैं। हम किसी व्यक्ति, पुरूष के खिलाफ नही बल्कि इस पुरूष सत्ता के खिलाफ है।"[16]

आज की स्त्री का संघर्ष, प्रतिरोध और लड़ाई जिस पुरूष सत्ता या पितृसत्ता के खिलाफ है उसने धर्म और विज्ञान को अपना आधार बनाया हुआ है। प्रभा जी लिखतीं हैं-"पितृ-सत्ता अपने को मजबूत बनाने के लिए पहले धर्म का सहारा लेती थी, आज विज्ञान का सहारा लेती है। विज्ञान की मदद से हजारों लाखों की संख्या में लड़कियों की भ्रूण हत्याएँ हो रहीं हैं। कहीं भूल से भी वह पैदा हो ही गई तो कुपोषण की शिकार हो मरे किसी तरह।...विज्ञान भी स्वीकारता है कि स्त्री के गर्भ की संतान किस पुरूष की देन है, इसका निर्धारण करना कठिन है। पुरूष जिसके हाथों शक्ति, सत्ता और सम्पत्ति रही है, उसने कभी नहीं चाहा कि उसकी मृत्यु के बाद यह सब कुछ किसी अन्य पुरूष की संतान को मिले।"[17]

प्रभा खेतान का स्त्री मुक्ति को लेकर यह प्रश्न कितना सही लगता है कि-"स्त्री को महज स्त्री होने के कारण जिस दलन को झेलना पड़ता है, वहाँ मुक्ति कैसे मिले?"[18]

क्योंकि हमारा समाज स्त्री को दोयम दर्जे का नागरिक मानते हुए उसके साथ अन्तर्विरोधी चरित्र में मौजूद रहता है, बढ़ते अर्थ या पूंजी के प्रभाव से वह स्त्री को मुक्त करना तो चाहता है, किन्तु सामन्ती मूल्यों में बाँधकर, कथन दृष्टव्य है-

हमारे समाज का भयानक अंतर्विरोध है। स्त्री स्वतन्त्र होकर सामाजिक, राजनैतिक या अन्य क्षेत्रों में अपने-आप को स्थापित भी करे, लेकिन नैतिकता के क्षेत्र में हजारों साल पहले के महलों और पर्दों में कैद रहने वाले सामन्ती चरित्र और शील की मूर्ति भी बनी रहे। वह स्वयं या दूसरा कोई उसकी इज्जत से खिलवाड़ न करे।"[19]

इस तरह स्त्री मन में एक असमंजस बरकरार रहता है कि "अपनी असली लड़ाई तो नही भूल रहे हैं, असली संघर्ष तो स्त्री मुक्ति का है, इन अधूरे समझौतों से काम नही चलने का...संस्कृति में आमूल परिवर्तन लाना होगा और नारी-विरोधी संस्कृति को खत्म करना होगा। स्त्री समस्याओं को समझने के लिए यह जरूरी हो जाएगा कि हम अपनी जातीय स्मृतियों को दूर-दूर तक टटोलें।"[20] स्त्री मुक्ति के लिए बाहरी दुनिया का सम्पर्क जरूरी है, प्रभा जी कहतीं हैं-"किसी माध्यम से नही, बल्कि हम स्त्रियाँ सीधे बाहरी दुनिया से सम्पर्क स्थापित करें, ताकि मुक्ति के सिद्धान्तों के ऊपर पितृसत्ता का नियन्त्रण कम हो सके। जहाँ पुरूष समूची मानवता का प्रतिनिधि है, वहाँ औरत केवल औरत है।"[21]

फलस्वरूप आज भी स्त्री खुलकर समाज के सम्मुख नही कह पा रही है कि वह क्या चाहती है। सार्वजनिक मंचों पर अलग व्यवस्था की मांग और मुक्ति का दावा घर में पति के सम्मुख शर्तहीन समर्पण कहीं उसे भीतर से तोड़कर रख देता है। प्रभा जी कहती हैं-"स्त्री मनुष्य है और एक जीवित मनुष्य है। व्यवस्था को उसे सम्पूर्णता में ही देखना होगा इसी व्यवस्था में भोक्ता ही नही, वह कर्ता भी है। हम यदि उसको पहचानने का दावा करे तो उसे उसकी सम्पूर्णता में टोटेलिटी में उसे पहचानना होगा। आज वह खण्डित जीवन जी रही है। सिर्फ बच्चे पैदा करने से ही वह सम्पूर्ण नही हो जाती । हम जिस यथार्थ का चित्रण करते है, वह उसके खण्डित जीवन का यथार्थ है।"[22]

ज्ञान और आर्थिक आत्मनिर्भरता ही स्वाधीनता की कुंजी है। अतएव स्त्री समाज की अंतिम ईकाई के शिक्षित और आत्मनिर्भर बनने तक यह जंग जारी रहना आवश्यक है। आज की स्त्री के जागरूगता तक के सफर में हंस सम्पादकीय लेखों, आलेखों वैचारिक बहसों तथा इसमें छपने वाली कहानियों की भूमिका अति महत्वपूर्ण हैं। प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, मन्नू भण्डारी, मृदुला गर्ग, कृष्णा सांवती, ममता कालिया, जया जादवानी, मुक्ता, क्षमा शर्मा, सारा राय, तसलीमा नसरीन, ऊषा किरन खान, किरन सिंह, सरयू शर्मा, अलका पाठक जैसी नवोदित एवं स्थापित स्त्री रचनाकारों की रचनाएँ एवं लेख हंस के माध्यम से स्त्री-विमर्श के विविध आयाम प्रस्तुत करते है। अन्त में स्त्री मुक्ति पर रमणिका जी का कथन महत्वपूर्ण है-"सही अर्थों में मनुष्य की मुक्ति की अवधारणा

के परिपेक्ष्य में स्त्री मुक्ति का अर्थ-अपनी देह पर स्त्री का अधिकार, स्वास्थ्य सुविधा, आर्थिक स्वावलंबन, वैचारिक विकास, शिक्षा, आत्म निर्णय, ईमानदारी, बहादुरी, साहस, शौर्य आदि से लैस व्यक्तित्व का उभरना और स्त्री व्यक्तित्व का भौगोलिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक स्तर की समानता की हदों तक पहुँचना और नागरिकता के कर्तव्यों से लैस होना।" अर्थात् स्त्री मुक्ति की अवधारणाएँ समय भिन्न स्थानों, समाज में बदलती रही है। कभी देह पर अधिकार तो कभी अंधविश्वासों रूढ़ियों परम्पराओं, अशिक्षा तो कभी लैंगिक भेदभाव तो कभी भूख, बेरोजगारी, पुरूष-हिंसा। इन सभी मुद्दों का समाधान सत्ता को प्राप्त करने, आर्थिक रूप से आत्म निर्भर होने और व्यवस्था परिवर्तन से ही सम्भव है।

सन्दर्भ सूची:

1. राजेन्द्र यादव-रचनावली भाग-13 राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-पृ0 सं0-377
2. राजेन्द्र यादव-'गुलामी का आनन्द और स्वतन्त्रता के खतरे' 'काँटे की बात' भाग-3 बागी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0-145
3. राजेन्द्र यादव- 'आदमी की निगाह में औरत' राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, लेख-'हम सबके माथे पर दाग' पुष्ठ सं0-34
4. वही पृ0सं0-34
5. हंस स्त्री अंक, सम्पादकीय-मेरी तेरी उसकी बात जनवरी 1991, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ सं0-5
6. वही पृष्ठ सं0-5
7. राजेन्द्र यादव ' काँटे की बात' भाग-3, बागी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली पृष्ठ सं0-145
8. वही पृष्ठ सं0-124
9. राजेन्द्र यादव 'आदमी की निगाह में औरत' राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली लेख-'हम सबके माथे पर दाग' पृ0 सं0-64
10. वही पृ0सं0-41
11. वही पृ0 सं0-41, 42
12. वही पृ0 सं0-42
13. हंस सम्पादकीय जुलाई 1993
14. वही पृ0 सं0-20
15. राजेन्द्र यादव ' आदमी की निगाह में औरत' राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ0 सं0-18
16. वही पृष्ठ सं0-19
17. राजेन्द्र यादव, अर्चना वर्मा ' औरत: उत्तर कथा' राजकमल प्रकाशन, दिल्ली संस्करण पहला 2002, पृ0 सं0-144
18. वही पृ0 सं0-148
19. राजेन्द्र यादव 'काँटे की बात' भाग-6 स्थगित यात्राएँ, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, हंस सम्पादकीय सितम्बर 1995 पृ0 सं0-97
20. राजेन्द्र यादव, अर्चना वर्मा 'औरत: उत्तर कथा' राजकमल प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2002, पृ0 सं0-149
21. वही पृ0 सं0-149
22. वही पृ0 सं0-150

इस्लाम एवं कुमाऊँनी संस्कृति के मध्य समन्वय एवं इनके प्रभाव

मो० नाजिम

शोधार्थी, इतिहास, एम०बी०रा०स्ना० महाविद्यालय हल्द्वानी (नैनीताल)

डॉ० सेराज मोहम्मद

(शोधनिर्देशक), प्रोफेसर एवं विभाग प्रभारी-इतिहास, एम०बी०रा०स्ना० महाविद्यालय हल्द्वानी (नैनीताल)

भारत की प्राचीन संस्कृति का इतिहास अत्यन्त गौरवशाली रहा है। संस्कृति का आशय केवल कुछ धार्मिक विश्वासों एवं नैतिक नियमों से नहीं होता है। एक विशेष समाज की संस्कृति का विकास समय के बहुत लम्बी अवधि में होता है। भारतीय समाज एवं संस्कृति को विदेशी शक्तियों द्वारा काफी प्रभावित किया गया है। आर्यो, शकों, कुषाणों, हूणों, यवनों, अरबों, तुर्क, अफगानों, मुगलों एवं अंग्रेजों ने भारतीय समाज एवं संस्कृति को अलग-अलग रूपों में प्रभावित किया है।[1] भारतीय संस्कृति एकता में अनेकता एवं प्राचीन परम्पराओं में नवीन प्रभावों के समन्वय का इतिहास है। विश्व की दो महान संस्कृतियों हिन्दू एवं मुस्लिम का सम्पर्क तथा समन्वय एक अदभुत घटना रही है। यह सत्य है कि जब दो विभिन्न संस्कृतियाँ एक दूसरे के सम्पर्क में आती है तो वह एक दूसरे के समाज और संस्कृति को काफी हद तक प्रभावित किया करती है जिससे एक मिश्रित संस्कृति का विकास होता है। इस्लाम संस्कृति ने भारत के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक संस्कृति को काफी प्रभावित किया।

मुस्लिम समुदाय ने भारत के हर क्षेत्र में अपने धर्म एवं संस्कृति का प्रचार किया। इस कड़ी में भारत का राज्य उत्तराखण्ड का कुमाऊँ मण्डल भी अछुता ना रहा। मध्यकाल में दिल्ली क सुल्तानों व कुमाऊँ के राजाओं के आपसी सम्बन्ध के कारण कुमाऊँ के कुछ क्षेत्रों में मुस्लिम लोग प्रवेश कर गये और कुमाऊँ को ही उन्होंने अपना निवास स्थान बना लिया। जब मुस्लिम संस्कृति इस क्षेत्र में आयी तो इस नई संस्कृति ने भी कुमाऊँनी संस्कृति को भी काफी हद तक प्रभावित किया जिसके फलस्वरूप कुमाऊँ संस्कृति के मध्य एक मिश्रित संस्कृति की स्थापना हुई और दोनों संस्कृतियों में धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक समन्वय का विकास हुआ।

मुगलों और कुमाऊँ-गढ़वाल राजाओं के दो सौ वर्षो के दीर्घकालीन सम्बन्धों के राजनीतिक परिणाम उतने व्यापक एवं स्थायी सिद्व नही हुए जितने की सांस्कृतिक परिणाम हुए। किन्तु मुस्लिम संस्कृति एवं मुगलकालीन रीति-रिवाज, गढ़वाल की राजधानी श्री नगर एवं कुमाऊँ की राजधानी 'आलमनगर' (अल्मोड़ा) तक अवश्य पहुँचे।[2] मुगल साम्राज्य के विद्रोहियों ने यहाँ शरण लेकर इस क्षेत्र को मुस्लिम संस्कृति के रीति-रिवाज से आवगत कराया। कुमाऊँ के राजाओं के रहन-सहन एवं वेश-भूषा में तो मुगलों की मुस्लिम परम्पराओं का समावेश हुआ ही साथ ही इन पहाड़ी राजाओं ने मुस्लिम शासन की अनेक विशेषताओं को भी अपना लिया। सामान्यत: जनसाधारण मुस्लिम लोगों का आगमन के बाद यही बस जाने एवं मुस्लिम पक्की बस्तियों की स्थापना के बाद कुमाऊँ आँचल में हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों को एक-दूसरे के निकट आने का अवसर पहले से ज्यादा प्राप्त हुआ। परिणामस्वरूप इन दोनो संस्कृतियों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया पहले की अपेक्षा तीव्र एवं व्यापक होती चली गई। कुमाऊँ क्षेत्र की प्रशासन व्यवस्था समाज, धर्म, भाषा एवं साहित्य व ललित कलाओं के क्षेत्र में हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियो के आदान-प्रदान व समन्वय के अनेक परिणाम निकले। यहाँ पर हम कुमाऊँ क्षेत्रों में हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों के आदान-प्रदान एवं सांस्कृतिक समन्वय का विवरण खोजगे।

इस्लाम एवं कुमाऊँनी संस्कृतियों के मध्य समन्वय:-

1. कुमाऊँनी खान-पान मे समन्वय:- कुमाऊँनी संस्कृति के लोग अपने रसोईघरों की पवित्रता पर विशेष ध्यान रखते है और वे स्वच्छ बर्तनों का प्रयोग करते है। कुमाऊँ में राजा बाजबहादुरचन्द्र के शाहजहाँ के दरबार से लौटने के पश्चात् साथ लाये गये। मुसलमानों द्वारा अल्मोड़ा में बस्तियाँ बसने से मुस्लिम प्रभाव कुमाऊँ संस्कृति पर पड़ा। कुमाऊँनी राजपरिवारों में भी मुस्लिम व्यंजनों का प्रचलन आरम्भ हुआ। कुमाऊँ में राजा बाजबहादुरचन्द ने अनेक मैदानी खानसामों, हलवाइयों आदि को राजमहल के भोजनालय के लिए नियुक्त किया।[3] कुमाऊँ के आस-पास के क्षेत्रो में हिन्दू लोग साग, सब्जी, दालें, गेहूँ की रोटियाँ व चावल का प्रयोग करते थे। मुसलमान अपने भोजन में गेहूँ तथा जौ की बनी हुई चपातियों का सेवन किया करते थे। मुसलमान विभिन्न पशु एवं पक्षियों के माँस को विभिन्न प्रकार से पकाते थे।

मुसलमानों का भोजन पुलाव, कवाब, कोफ्ता आदि मुस्लिम व्यंजनों को मुसलमानों से ग्रहण किया गया एवं धीरे-धीरे यह पुलाव, कोफ्ता व कवाब माँसाहारी प्रवृति से अलग होता गया एवं पुलाव का नया रूप 'बिरयानी' ने ले लिया। मुसलमानों के भोजन बिरयानी ने हिन्दुओं के सम्पर्क में आकर माँसाहारी श्रेणी को त्यागते हुए मटर बिरयानी व अन्य शाकाहारी बिरयानी के रूप में कोफ्ता एवं कवाब ने भी हिन्दू-संस्कृति में आकर मासाँहारी प्रवृत्ति को त्यागते हुए लौकी एवं मूली का कोफ्ता आदि अन्य शाकाहारी श्रेणी का रूप ले लिया। हिन्दुओ ने विशेषकर उच्च वर्ग के लोगों ने मुस्लिम खान-पान पद्वति को बिना किसी हिचकिचाहट के साथ अपना लिया। कुमाऊँनी समाज व संस्कृति में भी कुछ मुस्लिम खान-पान को भी जगह दी गई। सामान्यत: पान व जर्दा खाने की परम्परा मुसलमानों में शुरू से रही है। जिसे पर्वतीय जनता ने भी स्वीकार किया है। खान-पान मे मुस्लिम जनजीवन पर स्थानीयता का प्रभाव पड़ा है। स्थानीय भोजन चटकानी, गहत, भटिया, भात आदि पहाड़ी भोजनन एवं चावंलो का प्रयोग मुस्लिम परिवारों द्वारा किया जाता है।

2. वेश-भूषा में समन्वय:- मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव कुमाऊँ की वेश-भूषा पर भी पड़ा। कुमाऊँ के राजपरिवारों के सदस्यों की वेश-भूषा पर मुस्लिम संस्कृति का समावेश काफी हद तक देखने को मिलता है। पहाड़ी राजाओं एवं जनता ने मुगलकालीन जैसी वेश-भूषा धारण करना आरम्भ कर दिया। जैसे लम्बे-अंगरखे, जामे और पगड़ियाँ। मुस्लिम संस्कृति के फलस्वरूप ही कुमाऊँनी संस्कृति में ढीले पैजामे, कोट, तंग शेरवानी, चूड़ीदार पैजामों की परम्पाये भी कुमाऊँनी क्षेत्र में मुस्लिम संस्कृति की ही देन है। जब कुमाऊँनी संस्कृति में इस्लामी संस्कृति का समावेश हुआ तो यहाँ की हिन्दू स्त्रियों ने भी मुस्लिम स्त्रियों से वेश-भूषा में कुछ ना कुछ सीखा। पहाड़ी क्षेत्र की मुस्लिम संस्कृति में भी पर्दा करने की प्रथा देखी जाती है। परन्तु मुस्लिम स्त्रियों में बुर्का पहनने की प्रथा समाप्त होती जा रही है।

पर्वतीय मुस्लिम निवासी स्थानीय संस्कृति में इतने घुलमिल गये कि वेश-भूषा के आधार पर दोनों संस्कृतियों को पहचान पाना अत्यन्त जटिल कार्य है। हिन्दू परिवारों में चूड़ीदार पैजामा पहनने एवं टोपी लगाने की परम्परा मुसलमानों के द्वारा पहुँची एवं तंग चूड़ीदार पैजामा व शेरवानी पहनने की परम्परा हिन्दुओं में रही है।

3. दरबारी परम्पराओं में इस्लामी प्रभाव:- कुमाऊँ की दरबारी परम्पराओं में भी इस्लामी संस्कृति का समन्वय देखने को मिलता है। पर्वतीय राजाओं ने मुस्लिम शासकों द्वारा प्रदत्त उपाधियों को भी सहसम्मान अपनाया। मुस्लिम शासकों की भाँति कुमाऊँ के राजाओं ने अपने रनिवासों में बड़ी सख्या मे स्त्रियो को रखा। कुछ गणिकाओं के मिलने का उल्लेख भी मिलता है। जो कि तुर्कन या जमनी कहलाती थी।[4] प्राचीनकाल की अपेक्षा मध्यकाल में इस पर्वतीय राज्य के राजपरिवारों मे नाच-रंग एवं भोग-विलास के प्रति मोह में अभूतपूर्व वृद्धि दिखाई देती है। मुस्लिम संस्कृति की भाँति राजपरिवारो के सेवक-सेविकाओ को भी मुस्लिम शासको के सेवको की भाँति ख्वास-ख्वासिन कहा जाने लगा।

4. कुमाऊँनी एवं इस्लामिक ललित कला शैलियों का समन्वय:- भारतीय स्थापत्य कला की प्राचीन शैलियों को तुर्क एवं मुगलों के आक्रमणों ने प्रभावित किया एवं मुगलकाल तक आते-आते भारतीय स्थापत्य कला की मुस्लिम शैली जिसमें ईरानी स्थापत्य कला की शैली समाहित थी, भारत में फैल गयी।[5] कुमाऊँ के पर्वतीय क्षेत्र में हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों के समन्वय के फलस्वरूप ललित कलाओं के क्षेत्र मे विशेष उल्लेखनीय सम्बन्ध स्थापित हुआ। विशेषकर चित्रकला एवं भवन निर्माण कला के क्षेत्र में। पहाड़ी चित्रकला में जहाँ भी भवन चित्रण नजर आता है, वहाँ गुम्बद, मेहराबे, शिखाकार चापें कंगरे उसकी विशेषता बन गई।

कुमाऊँ की वर्तमान मस्जिदों, ईदगाहों, दरगाहों जो कि कुमाऊँ के तराई-भाबर क्षेत्र में बनी हुई है, में मुस्लिम स्थापत्य शैली के अधिकांश नमूने देखने को मिलते है। ज्यादातर मस्जिदों में मीनार, गुम्बद एवं दीवारों पर अरबी एवं उर्दू की इस्लामिक आयाते (श्लोख) खुदी हुई है। परन्तु कुमाऊँ क्षेत्र की यह मस्जिदे लगभग 19वीं एवं 20वीं शताब्दी के आस-पास निर्माणधीन रही है। कुमाऊँ मण्डल के अधिकांश क्षेत्रों मे विशेषकर पहाड़ी क्षेत्रों में मस्जिदों एवं ईदगाहों मे मीनारे तो बनाई गई परन्तु इनमें गुम्बद का अभाव देखा गया है। परन्तु कुमाऊँ के किसी स्थान पर 17वीं एवं 18वीं शताब्दी के पूर्व किसी भी ऐसी इमारत व भवन का पता नहीं चलता है जिसमें तत्कालीन भारतीय इमारतों की तरह तड़क-भड़क या सगंमरमर का उपयोग किया गया है।

5. धार्मिक मान्यताओं का आदान-प्रदान:- कुमाऊँ के पहाड़ी एवं तराई-भाबर के क्षेत्रों में विभिन्न सूफियों ने अपनी खानकाह स्थापित की जो दरगाह के रूप में वर्तमान समय में पूज्नीय है। बहुत से स्थानों पर सूफियों एवं पीरों की कबरें दरगाह के रूप में आज भी है। जिन्हें हिन्दू-मुस्लिम समुदाय के लोग श्रद्धा से मानते है। कुमाऊँ में बाले मियां सरवर पीर, एवं मट्ढान शाह आदि को विशेष सम्मान प्राप्त है। इसके अतिरिक्त लोहाघाट एवं रानीखेत में 'कालू सैय्यद बाबा' का भी विशेष महत्व है। कुमाऊँ के तराई-भाबर क्षेत्र किच्छा, हल्द्वानी, काठगोदाम, रामनगर, कालाढूँगी, लालकुआँ आदि स्थानों पर अनेक मजारे एवं दरगाहें स्थापित है। कुमाऊँ में इनके मजारों एवं दरगाहों पर मेलों एवं ऊर्सों का आयोजन होता है, जिनमें हिन्दू एवं मुसलमान समान रूप से भाग लेते है।

6. दोनों संस्कृतियों में सामाजिक समन्वय:- कुमाऊँ में रहने वाले मुस्लिम समाज के लोगों ने पहाड़ी रहन-सहन अपना लिया। वे भी अपने लिए पहाड़ी ढंग के मकान बनवाने लगे। पहाड़ी क्षेत्रों में लम्बे समय से रहते हुऐ, मुस्लिम समाज ने कुमाऊँनी भाषा भी सीखी और आज मुस्लिम लोग भी आसानी से पहाड़ी एवं कुमाऊँनी भाषा बोलते है यद्यपि वह कालान्तर में उर्दू एवं फारसी के शुद्व उच्चारण से तो दूर हो गये, परन्तु पहाड़ी भाषाओं के ज्ञान, उच्चारण एवं धारा प्रवाह में वे किसी से पीछे नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में बसने वाले मुसलमानो ने भी हिन्दू-भाईयों की देखा-देखी अनेक स्थानीय सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं को अपना लिया। हिन्दुओं के अन्धविश्वासों तथा रूढ़ियों से भी मुस्लिम समाज काफी प्रभावित हुआ। हिन्दुओं के नजर लगने से उतारा उतारने की प्रथा भी मुस्लिम समाज ने अपना ली। हिन्दुओं के समान मुस्लिम लोग भी शगुन में विश्वास करने लगे। हिन्दू-समुदाय की भाँति मुस्लिम समाज में भी ऊँच-नीच की प्रथा प्रचलित हो गई एवं मुस्लिम समाज की अनेक जाति जैसे-जुलाहा, कुजड़े, तेली, बुनकर आदि एक दूसरे के साथ ऊँच-नीच का भेदभाव करने लगे। हिन्दुओं से प्रभावित होकर मुस्लिम समाज के लोगों ने एक पत्नी रखने की परम्परा को अपने जीवन में अपनाया।

मुसलमानों में सामान्यत: भोजन करते वक्त (समय) दस्तरख्वान बिछाने की परम्परा शुरू से रही है। परन्तु जब मुस्लिम लोग इन पहाड़ी क्षेत्रों में बसे तो यह मुस्लिम परिवार अपनी पुरानी परम्परा को भूल गये और अब वह टेबल पर खाना-खाने लगे। परन्तु अभी भी कुछ मुस्लिम परिवारों में दस्तरख्वान बिछाने की परम्परा बहुत कम देखने को मिलती है। कुमाऊँ क्षेत्र में मुसलमानों द्वारा गाँव में वही भोजन, दाले एवं सब्जियाँ ग्रहण की जाती है जो सामान्यत: इन पर्वतीय ग्रामीण जनता द्वारा ग्रहण की जाती है। पान एवं जर्दा खाने की परम्परा मुसलमानों में शुरू से रही है। इनकी इस परम्परा को कुमाऊँनी जनता ने भी स्वीकार किया है। मुस्लिम समाज में खान-पान के बर्तनो में रकाबी, प्याले, टोटोदार लौटा, ग्लास आदि बर्तनों का प्रयोग होता है। किन्तु कुमाऊँ के ग्रामीण क्षेत्रों में मुस्लिम लोगों की रसाईघरो में खान-पान के वही बर्तन देखने में मिलते है, जो इस क्षेत्र की जनता द्वारा उपयोग किये जाते है। मुस्लिम संस्कृति में जनाजें (मृतक शरीर) को दफनाने एवं हिन्दू-संस्कृति में मृतक शरीर को अग्नि में समर्पित करने की प्रथा है। हिन्दुओं का एक वर्ष के अन्तर्गत श्राद संस्कार भी होता है। मुसलमानों में 'सोएम' एव 'चेहल्लुय' संस्कार का भी महत्व है जो क्रमश: मरने वाले के तीसरे एवं चालीसवें दिन मनाया जाता है।[6]

7. कुमाऊँ में हिन्दू-मुस्लिम समन्वय द्वारा मनाये जाने वाले उत्सव एवं त्यौहार:- कुमाऊँ में जब दोनो संस्कृतियो का आपसी मेल-जोल का प्रभाव कुमाऊँ क्षेत्र में मनाये जाने वाले मेलो मे भी समन्वय देखने को मिलता है। कुमाऊँ मे बिना जात-पात के हिन्दू एवं मुस्लिम जाति के लोग एक दूसरे के त्यौहारों एवं उत्सवों में सहयोग देते है। ऐसे त्यौहारों में हम जनपद नैनीताल का होली का त्यौहार ले सकते है। नैनीताल में हिन्दू-मुस्लिम समन्वय वाली होली का आयोजन काफी समय से होता है। नैनीताल में इस त्यौहार को हिन्दू-मुस्लिम दोनों मिलजुलकर मनाते है और दोनों की संस्कृतियों के लोग समाज को आपसी भाई-चारे का संदेश देते है। वहाँ के लोगों का मानना है कि समाज को भाई-चारे एवं आपसी समन्वय बनाने का इससे अच्छा अवसर और प्राप्त नहीं हो सकता है। इसी वजह से आज युवा वर्ग भी अपनी परम्पराओं से जुड़ रहा है और समाज को एक संदेश भी दे रहा है, कि महजब नहीं सिखाता आपस में बेर रखना।

इसके अतिक्ति अगर हम कुमाऊँ के जनपद अल्मोड़ा के दशहरा, मोहर्रम, होली आदि। ऐसे सांस्कृतिक त्यौहार है जिससे दोनों संस्कृतियों के पारस्परिक सम्बंधो का पता चलता है। कुमाऊँ के पर्वतीय क्षेत्र में मुख्य रूप से अल्मोड़ा, रानीखेत, पिथौरागढ़, नैनीताल में ताजिया (मोहर्रम) बनाने की परम्परा काफी पुरानी देखी गई है। यह पर्व भी हिन्दू-मस्लिम समन्वय एवं आपसी सहयोग व भाई-चारे का प्रतीक रहा है। कुमाऊँ के अधिकांश क्षेत्रों में हिन्दू-मुस्लिम साथ-साथ उसी तरह मोहर्रम को मनाते है। कई स्थानों पर ताजिये के जुलूस के लोगो को हिन्दुओं द्वारा शर्बत एवं चाय भी पिलाई जाती है जो कि सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है। अल्मोड़ा के दशहरा हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक एकता का उदाहरण भी है, जिसमें तैयार किये जाने वाले पुतलों के निर्माण में मुस्लिम कलाकार उसी उत्साह एवं लगन से भाग लेते है, जैसे कि हिन्दू कलाकार।

अल्मोड़ा में मुसलमान और हिन्दू राजा बाजबहादुरचन्द के समय से एक साथ रहते आ रहे है, परन्तु आज तक कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न नही हुई जिससे दोनों संस्कृतियों के सम्बंधों में खटास आयी हो। इसके अतिरिक्त मुसलमानों का शबे-बारात त्यौहार हिन्दुओं के शिवरात्रि की नकल है। इसमें शिवरात्रि की तरह ही धूमधाम देखी जाती है।

अत: संक्षेप में कह सकते है कि कुमाऊँनी संस्कृति ने मुस्लिम संस्कृति को एवं मुस्लिम संस्कृति ने कुमाऊँनी संस्कृति को गहरे रूप से प्रभावित किया और एक दूसरे के प्रभाव को ग्रहण भी किया। जिससे इन दोनों संस्कृतियों में आपसी समन्वय बढ़ा। कुमाऊँ क्षेत्र के जन जीवन पर इस्लाम का प्रभाव अनेक क्षेत्रों में दृष्टि गोचर होता है। वहीं पर यहाँ के मुस्लिम समुदाय पर कुमाऊँनी संस्कृति का अत्यधिक प्रभाव है। उनका जीवन-यापन, खान-पान इत्यादि कुमाऊँनी संस्कृति के अनुरूप हो गया है। वस्तु: यहाँ के विशेष कर पहाड़ी क्षेत्र के मुसलमान कुमाऊँनी संस्कृति का एक हिस्सा बने। भारतीय संस्कृति की भाँति कुमाऊँनी संस्कृति भी सर्वग्रही और उद्‌गम रही है। इसने किसी अन्य संस्कृति से टकराव के बजाए आपसी समन्वय और सहनशीलता का परिचय दिया। इसने इस्लामिक संस्कृति के प्रभावों को सहर्ष स्वीकार किया। सूक्ष्म अध्ययन से ज्ञात होता है कि कुमाऊँ संस्कृति ने भी इस्लाम को गहरे रूप में प्रभावित किया। पहाड़ी क्षेत्रों में बसे मुसलमानों के जीवन के हर क्षेत्र में प्रभाव परिलक्षित होता है। यह कहना सत्य ही होगा कि पहाड़ी क्षेत्र के इस्लाम के अनुयायी कुमाऊँनी संस्कृति के रंग और ढंग में पूरी तरह समाहित हो चुके है और वे इस संस्कृति का एक हिस्सा बन गये है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. हुसैन, आबिद-भारत की राष्ट्रीय संस्कृति-सं0-1987, नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट इंण्डिया
2. डॉ0 जैदी, रेहाना-मध्य हिमालय के पर्वतीय राज्य एवं मुगल शासक-सं0-1995 वाणी प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली
3. डॉ0 जैदी, रेहाना-पूर्वोक्त
4. डबराल, उत्तराखण्ड का इतिहास-भाग-4
5. श्री वास्तव, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति
6. अहमद लईक, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति-सं0-2009 प्रकाशक शारदा पुस्तक भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स इलाहाबाद

भारत अफगानिस्तान संबंधों में पाकिस्तान की भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० राहुल कुमार

सहायक प्रोफेसर, रक्षा अध्ययन विभाग, एस०एस०वी० कॉलिज, हापुड (उ०प्र०)

भारत और अफगानिस्तान के बीच ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत पर आधारित मजबूत संबंध हैं। अफगानिस्तान और भारत के लोगों के बीच संबंध सिंधु घाटी सभ्यता के समय से ही रहे हैं। अफगानिस्तान की बहुलवादी संस्कृति और समृद्धि भारत के साथ बढ़ते संबंधों के साथ फली-फूली है। 9/11 की आतंकी घटना के बाद अमेरिकी नीति नाटो सेनाओं द्वारा अफगानिस्तान में स्थापित सरकारों से भारत के संबंध बहुत ही अच्छे रहे हैं। भारत और अफगानिस्तान राष्ट्रपति हामिद करजई शासन के बाद घनिष्ठ सहयोगी के रूप में उभरे हैं। उन्होंने अफगानिस्तान को बुनियादी ढाँचे के विकास, क्षमता निर्माण को संस्थागत बनाने, विकास परियोजनाओं, खाद्य आपूर्ति में सहायता, प्रशिक्षण प्रदान करने में मदद की है। छात्रवृत्ति पर अफगानिस्तान के छात्र भारत में शिक्षा भी ग्रहण करते हैं। सभी पड़ोसी राष्ट्रों के साथ-साथ पाकिस्तान के भी अफगानिस्तान में स्वार्थ निहित हैं और अपने हितों की रक्षा और क्षेत्र में शांति बनाए रखना प्रमुख उद्देश्य है।

भारत भौगोलिक दृष्टि से दुनिया का सातवां सबसे बड़ा देश है, दुनिया में दूसरी सबसे बड़ी जनसंख्या वाली एवं लोकप्रिय सरकार है। भारत पश्चिम की ओर पाकिस्तान से अपनी सीमा साझा करता है, भूटान, चीन और नेपाल को ऊपरी पूर्व की ओर, बांग्लादेश और म्यांमार से पूर्व की ओर साझा करता है। इसके अलावा दक्षिण में हिंद महासागर, दक्षिण-पश्चिम में अरब सागर और दक्षिण-पूर्व में बंगाल की खाड़ी क्षेत्र इसी तरह मिलते हैं। हिंद महासागर क्षेत्र में श्रीलंका और मालदीव भी हैं। भारत के अंडमान और निकोबार द्वीप समूह थाईलैंड और इंडोनेशिया के साथ उसकी आबादी, आकार, मौद्रिक सुधार, नवीन प्रगति और सैन्य क्षमताओं के संबंध में एक समुद्री सीमा प्रदान करते हैं। भारतीय विदेश नीति के निर्धारकों के भीतर परिवर्तन ने दुनिया के बारे में उसकी दृष्टि को बदल दिया है। शीत युद्ध के बाद की अवधि से अब तक भारत ने वित्तीय विकास, मानव सुरक्षा, परमाणु क्षमता व अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों में काफी प्रगति की है। आज, उसकी बाहरी रणनीति का मुख्य जोर प्रबंधित मौदिक विकास, जीवन शक्ति और समुद्री सुरक्षा, नवाचार और उन्नति तक पहुँच, आंतरिक और बाहरी सुरक्षा की आवश्यकता है। विश्वव्यापी अनुरोध पर वर्तमान सुधार और आंदोलनों का प्रस्ताव है कि राष्ट्र के बाहरी वातावरण को उसके परिवर्तन और उन्नति के लिए सहायक बनाने के लिए काम करने की आवश्यकता है।

अफगानिस्तान लगातार महाशक्तियों के क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय आधिपत्य का शिकार रहा है। मध्य एशियाई राष्ट्रों तक पहुँच बनाने के लिए इसका बहुत महत्व है। भारत भी अफगानिस्तान में अपना प्रभाव बढ़ाने की कोशिश में सफल रहा है ताकि मध्य एशियाई राष्ट्रों तक पहुँच को आगे बढ़ा सके जो पाकिस्तान के लिए बहुत पेरशानी का सबब है क्योंकि अफगानिस्तान में भारत का बढ़ता प्रभाव पाकिस्तान केलिए रणनीतिक नुकसान है। वर्तमान सुरक्षा दुविधा ने इस क्षेत्र में भारत और पाकिस्तान के बीच अविश्वास को बढ़ा दिया है। भारत और पाकिस्तान दोनों ही अफगान सरकार के साथ अच्छे संबंध बनाना चाहते हैं। पाकिस्तान और अफगानिस्तान के संबंधों में कई उतार-चढ़ाव देखें जाते हैं। भारत, पाकिस्तान का कट्टर शत्रु है और पाकिस्तान, अफगानिस्तान में भारत के बढ़ते प्रभाव को बर्दाश्त नहीं कर सकता है।

2005 में, भारत ने दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ (सार्क) में अफगानिस्तान की सदस्यता का प्रस्ताव रखा व भारत के प्रयासों से 03 अप्रैल 2007 को अफगानिस्तान सार्क का आठवां सदस्य राष्ट्र बना। अफगानिस्तान में भारत द्वारा किये गए विकास कार्यों से भारत और अफगानिस्तान के बीच संबंध निश्चित रूप से इसके पड़ोसी देशों को प्रभावित करते हैं। पाकिस्तान भी इन संबंधों से प्रभावित होता है क्योंकि यह भौगोलिक सीमाओं के आधार पर एक केंद्रीय देश पाकिस्तान, अफगानिस्तान और भारत के बीच है। अफगानिस्तान और भारत की परस्पर संबद्धता शांति और संघर्ष के संदर्भ में इस क्षेत्र के भविष्य को आकार देती है।

सन् 2001 में जब अफगानिस्तान में तालिबान सरकार का पतन हुआ। तब भारत सरकार द्वारा अफगानिस्तान के पुनर्निमाण में सहयोग की शुरूआत कर संबंधो की एक नई दिशा देने का प्रयास किया गया। काबुल के बाद मजार-ए-शरीफ, हेरात, कंधार और जलालाबाद में भी अपने वाणिज्यिक दूतावास खोले। सन् 2011 में भयंकर सूखे से जूझ रहे अफगानिस्तान को ढाई लाख टन गेंहू भारत द्वारा दिया गया। हेरात में सलमा बांध भारत की मदद से बना जिसकी लागत लगभग 30 करोड़ डॉलर (करीब 2400 करोड़ रूपये) है। 2016 में अस्तित्व में आए इस बांध को भारत-अफगानिस्तान मैत्री बांध का नाम दिया गया है।

पाकिस्तान द्वारा कई अलग-अलग आंतकवादी समूहों और आतंकवादी समूहों को प्रशिक्षित और वित्तपोषित किया जाता रहा है। भारत ने अंतर्राष्ट्रीय समुदाय को हमेशा ही खुले मंच पर कहा है कि वे इन गतिविधियों को गंभीरता से नष्ट करने और नियंत्रित करने के लिए इस्लामाबाद पर दबाव डालें। संयुक्त राज्य

अमेरिका की खुफिया रिपोर्टों से पता चला है कि तालिबान, पाकिस्तान और अफगानिस्तान के सीमावर्ती इलाकों में फिर से एकजुट हो अपनी ताकत इकट्ठा कर फिर से काबुल पर काबिज होने की तैयारी में है। भारत 1980 के दशक में सोवियत समर्थित लोकतांत्रिक गणराज्य अफगानिस्तान को मान्यता देने वाला एकमात्र दक्षिण एशियाई देश था, हालांकि 1990 के दशक के अफगान गृहयुद्ध और तालिबान सरकार के दौरान संबंध कटु हो गए थे। तालिबान शासन को केवल पाकिस्तान, सऊदी अरब और संयुक्त अरब अमीरात (यूएई) द्वारा मान्यता दी गई थी। तालिबान द्वारा बामियान बुद्ध के स्मारकों को नष्ट करने से भारत में आक्रोश फैल गया। 1999 में अपहृत इंडियन एयरलाइंस की फ्लाइट 814 अफगानिस्तान के कंधार में उतरी और रुकी और तालिबान पर उनका समर्थन करने का संदेह था, इन घटनाक्रमों के बाद भारत तालिबान विरोधी उत्तरी गठबंधन के प्रमुख समर्थकों में से एक बन गया। भारत ने तालिबान को उखाड़ फेकने में सहायता की और अफगानिस्तान का मानवीय और पुनर्निर्माण सहायता का सबसे बड़ा क्षेत्रीय प्रदाता बन गया। अफगानिस्तान में दोनों राष्ट्रों भारत के पुनर्निर्माण प्रयासों के तहत भारतीय विभिन्न निर्माण परियोजनाओं में काम कर रहे हैं।

भारत और पाकिस्तान परस्पर एक-दूसरे के प्रतिस्पर्धी हैं और अफगानिस्तान नीति भी इसकी एक मुख्य वजहों में से हैं। अफगानिस्तान में दोनों राष्ट्रों के अलग-अलग राजनीतिक और सुरक्षा हित हैं। पाकिस्तान को अफगानिस्तान में भारत की भागीदारी के बारे में चिंता है, जिससे पाकिस्तान और भारत के बीच संघर्ष मजबूत होता है। भारत और अफगानिस्तान के बीच संबंध दिन-ब-दिन मजबूत हुए हैं और पाकिस्तान ने इन मजबूत होते संबंधो से बड़ी चिंता जताई है और दूसरी तरफ ईरान ने भी अफगानिस्तान के साथ अपने संबंधों को बढ़ाया है, यह भी पाकिस्तान के लिए अस्वीकार्य है। अपने हितों को हासिल करने और तालिबान शासन को समाप्त करने के संबंध में अफगानिस्तान के प्रति भारत की विदेश नीति के कई आलोचक हैं। नई दिल्ली को लगता है कि, अगर पाकिस्तान अफगानिस्तान में हस्तक्षेप करेगा तो यह उसके क्षेत्र और हितों के लिए हानिकारक होगा अब कश्मीर मुद्दा, सर क्रीक मुद्दा और सियाचित मुद्दा भारत और पाकिस्तान के बीच संघर्ष के कारण हैं, इसके अलावा, अन्य कुछ मुद्दे भी क्षेत्रीय वर्चस्व, आर्थिक दौड़, हथियारों की दौड़ जैसे संघर्षों को बढ़ाने का एक बड़ा कारण है।

भारत और अफगानिस्तान ने अक्टूबर 2011 में सामरिक समझौते पर हस्ताक्षर किए और इस संबंध में पाकिस्तान ने अपनी चिंताओं को इस रूप में दर्शाया कि यह समझौता पाकिस्तान के लिए उपयोग नहीं है और भविष्य में इस क्षेत्र पर इसका गलत परिणाम पड़ सकता है। पाकिस्तान के बजाय संयुक्त राज्य अमेरिका के करीबी सहयोगी का दर्जा हासिल करने के लिए भारत ने अफगानिस्तान में अपनी स्थिति बनाए रखने के लिए प्रयास किए हैं। पाकिस्तान भी यह मानने को तैयार नहीं हुआ कि भारत का मकसद सिर्फ अफगानिस्तान के विकास में मदद करना है। भारत, अफगानिस्तान में पाकिस्तानी प्रभाव को कम करता है व विभिन्न क्षेत्रों में स्वदेशी अफगान क्षमता के पुनर्निर्माण में सहायता करता है। दिसंबर 2015 में, भारत ने तालिबान विद्रोह का मुकाबला करने के लिए द्विपक्षीय रणनीतिक साझेदारी के हिस्से के रूप में भविष्य में अफगानिस्तान को तीन एमआई-25 लड़ाकू हेलीकॉप्टर दान किए।

भारत के लिए अफगानिस्तान का महत्व यह है कि अफगानिस्तान पाकिस्तान के साथ एक लम्बी सीमा साझा करता है और भारत ने पाकिस्तान के खिलाफ अपनी नीति केंद्रित की है। भारत यह भी जानता है कि अगर वह लगातार अफगानिस्तान का समर्थन करता है तो अफगानिस्तान का इस्तेमाल पाकिस्तान के खिलाफ छद्म युद्ध के लिए किया जा सकेगा। इतिहास से पता चलता है कि अफगानिस्तान का क्षेत्र शुरू से ही स्थिर नहीं है और वहाँ हमेशा युद्ध और अराजकता होती रहती है। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ने तालिबान जैसे आतंकवादी समूहों को अपने राजनीतिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए बढ़ावा देने में पाकिस्तान की भूमिका को रेखांकित किया है। अफगान सरकार को गिराने के प्रयास और अफगानिस्तान में तालिबान को मजबूत करने के इरादे के लिए अंतर्राष्ट्रीय मीडिया ने पाकिस्तान की आलोचना की है।

पाकिस्तान की पहली प्राथमिकता अफगानिस्तान में भारत के प्रभाव को रोकना है। अफगानिस्तान से अमेरिकी फौज के हटने के बाद पाकिस्तान अफगानिस्तान में भारत के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए कई प्रयास कर रहा है। पाकिस्तान अफगानिस्तान के क्षेत्रों का उपयोग करना चाहता है क्योंकि अतीत में पाकिस्तान ने भारत के खिलाफ अपने हितों के लिए विभिन्न लाभ भी लिए हैं। अफगानिस्तान में तालिबान की सरकार के पतन से पहले, पाकिस्तान की नीति अफगानिस्तान के साथ दीर्घकालिक संबंध स्थापित करने की थी, पाकिस्तान अफगानिस्तान के शरणार्थियों को वापस भेजना चाहता था, इसके माध्यम से पाकिस्तान मध्य एशियाई राज्यों और उनके तेल और प्राकृतिक संसाधनों तक पहुँच के रूप में उनके साथ भी संबंध बनाने का इरादा रखता है। 9/11 के बाद पाकिस्तान तालिबान के खिलाफ लड़ने और अमेरिका का करीबी सहयोगी बनने के लिए अमेरिका की मदद के लिए आगे आया। पाकिस्तान ने तालिबान और हक्कानी समूह के साथ बातचीत के जरिए अपनी जमीन पर शांति लाने के प्रयास किए। हक्कानी नेटवर्क और तालिबान के बीच सुलह की दिशा में उनके प्रयासों से पता चलता है कि पाकिस्तान अफगानिस्तान में इन दो समूहों को एक साथ जोड़ना चाहता है।

भारत जानता है कि अफगानिस्तान में स्थिति काफी खराब हो सकती है। अमेरिकी फौज की वापसी के फैसले और पाकिस्तान के समर्थन से मजबूत होते तालिबान की वजह से अफगानिस्तान में स्थिति अत्यधिक खराब होने की आशंका है। फरवरी 2020 में हस्ताक्षरित समझौते में कहा गया है कि अमेरिका और उसके नाटो सहयोगी 14 महीनों में सभी सैनिकों को वापस ले लेंगे यदि तालिबान अपने वादों को बरकरार रखता है, जिसमें अलकायदा या अन्य आतंकवादियों को अपने नियंत्रित क्षेत्रों में काम करने की अनुमति नहीं देना और अंत राष्ट्रीय शांति वार्ता के साथ आगे बढ़ना शामिल है। हालांकि तालिबान, एक कट्टर इस्लामी संगठन ने ऐतिहासिक समझौते के हिस्से के रूप में अंतर्राष्ट्रीय बलों पर हमलों को रोक दिया, लेकिन इसने अफगान सरकार से लड़ना जारी रखकर काबुल पर काबिज होने की हिम्मत दिखा दी है। अफगानिस्तान में इस्लामिक स्टेट की मौजूदगी का भारत के लिए प्रत्यक्ष सुरक्षा निहितार्थ है। इसलिए, विकास के रूप में अफगानिस्तान में भारत की सुरक्षा पर सीधा प्रभाव पड़ेगा, वर्तमान और भविष्य की मांग है कि भारत सरकार को एक भविष्य नीति तैयार करनी चाहिए और अफगानिस्तान में अवसर को रोकने के लिए इसे रणनीतिक रूप से निष्पादित करना चाहिए।

अफगानिस्तान के साथ भारत के संबंध बहुस्तरीय हैं; जिस पर भारत अफगानिस्तान के भीतर स्थिरता चाहता है। बहुत से अफगान लोगों का मानना है कि पाकिस्तान तालिबान और हक्कानी नेटवर्क की कार्रवाइयों का समर्थन कर रहा है और इस तरह अफगानिस्तान में इन समूहों द्वारा की जाने वाली किसी भी हिंसा के लिए पाकिस्तानी अधिकारियों को दोषी ठहराते हैं। अमेरिका के अफगानिस्तान से हटने के साथ भारत को अपनी उपस्थिति बनाए रखने के तरीके खोजने होंगे। अफगानिस्तान में एक महत्वपूर्ण हितधारक होने के बावजूद, भारत प्रमुख क्षेत्रीय खिलाड़ियों को शामिल करने वाली बातचीत में खुद को तेजी से हाशिए पर पाता है। भारत के विकासात्मक दृष्टिकोण ने अफगान लोगों के बीच अपार सद्भावना अर्जित की है। हालांकि, ''सॉफ्ट पावर'' रणनीति की सीमाएँ हैं। भारत में घरेलू सहमति है कि बूट-ऑन-ग्राउण्ड कोई विकल्प नहीं है। इस प्रकार भारत निरंतर नरम-शक्ति या अपनी कठोर शक्ति को आक्रामक रूप से आगे बढ़ाने के बीच दुविधा में है।

अफगानिस्तान शांति प्रक्रिया वैश्विक एकजुटता के लिए एक दुर्लभ अवसर है और एक आतंक-आधारित शासन की राख से एक शिशु लोकतंत्र को उठाने की दुनिया की क्षमता का प्रदर्शन करने के लिए है। हालांकि, इसके लिए अमीर देशों से उनकी क्षमता के अनुसार पर्याप्त वित्तीय प्रतिबद्धताओं की आवश्यकता होगी। साथ ही, अफगानिस्तान के नेतृत्व वाली, अफगान नियंत्रित और स्वामित्व वाली शांति प्रक्रिया के बीच सभी हितधारकों के साथ जुड़ने की आवश्यकता है। भारत को शांति प्रक्रिया में भारत को शामिल करने और अफगान पुनर्विकास प्रयासों में योगदान देने में तालिबान द्वारा की गई प्रगति का प्रतिदान करना अच्छा होगा। जैसा कि आशंका है कि भविष्य में यदि तालिबान काबुल पर काबिज होने में सफल हो जाता है तो भारत के लिए अफगानिस्तान में अपने हितों की सुरक्षा का प्रश्न उठ खड़ा होगा क्योंकि पूर्व के अनुभव भारत के तालिबान के साथ बेहद खराब रहे हैं और पाकिस्तान भी इस बात का लाभ लेकर कश्मीर में हम पर दबाव बनाने की कोशिश करेगा। भारत का अफगानिस्तान में निवेश भी काफी अच्छा खासा हैं और भारत ने वहाँ ओर की परियोजनाओं को चालू किया हुआ है, उनसे भी भारत को हाथ खींचना पड़ सकता है। भारत को उन परिस्थितियों का विश्लेषण बहुत ही महीन दृष्टि से करने की आवश्यकता होगी ताकि पाकिस्तान को कोई भी अवसर हम ना दे सकें।

संदर्भ सूची

1. आनंद, वी0 एवं पमीदी जी0जी0 (2010), द स्टेट ऑफ पाकिस्तान टूडे, वर्ल्ड फोकस, 5351
2. चन्द्रा, वी0 (2010), इण्डिया इन द अफगान मेज: सर्च फॉर आप्शनस, आई0डी0एस0ए0, 201
3. चौधरी, आर (2011), बैलेशिंग यू0एस0 इन्टरेस्टस इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, रोम, द इण्टरनेशनल इंस्पेक्टर।
4. बुखारी, एस0 (2013), इण्डिया, पाकिस्तान एण्ड द अफगान एण्डगेम, द फ्राइडे टाइम्स।
5. जोशी एस0 (2014), इण्डियाज रोल इन चेनजिंग अफगानिस्तार, द वाशिंगटन क्वाटीली।
6. पन्त, एच0वी0 (2011), न्यू फेज इन इण्डिया अफगान टाईज, चण्डीगढ: द ट्रिब्यून।
7. तिवारी, डी0एस0 (2015), न्यू रिजाईम एन अफगानिस्तान एण्ड इण्डियाज पॉलिसी ऑप्शन्स आई0सी0डब्लू0ए0।
8. गांगुली, एस0 (2011), कन्फलिक्ट अनएण्डिंग: इण्डिया-पाकिस्तान टेंशनस सिनस्, 1947, न्यूयार्क टाइम्स।
9. डीसूजा एस0एम0 (2001), सिक्यूरिंग इण्डियाज इन्टरेस्ट इन अफगानिस्तान चेन्नई, द हिन्दू।
10. चौधरी आर0 व शिन्दे एस0 (2021), डिलींग विद तालीबान: इण्डियाज स्ट्राटेजी इन अफगानिस्तान आफटर यू0एस0 विदड्राल।

ऑनलाइन विद्यालयी शिक्षा में समावेशी और गुणवतापूर्ण शिक्षा का मुद्दा

रोहताश कुमार

शोध छात्र, लोक प्रशासन विभाग, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

सक्षिप्तिकरण (Abstract)

कोविड-19 वैश्विक महामारी शिक्षा जगत के लिए नवीन चुनौतियां लेकर आई है। प्रथमदृष्टया ऐसा लगा कि परंपरागत शिक्षा प्रणाली पूर्णत: ठप्प हो जाएगी। शिक्षा व्यवस्था के लिए यह एक गंभीर चुनौति थी। शिक्षा प्रशासन एवं शिक्षण संस्थानों ने लम्बे समय तक प्रभाव दिखाने वाली इस महामारी के दौर में शिक्षा की लौ प्रज्वलित रखने के लिए ई-लर्निंग के विभिन्न माध्यमों से विद्यार्थियों तक पहुँचने की कौशिश की। लेकिन हमारे देश की 26 प्रतिशत आबादी गरीब रेखा से नीचे (Bellow Poverty Line -BPl) जीवन यापन करती है। ऐसे तबके से आने वाले विद्यार्थियों के लिए ऑनलाईन शिक्षा एक सपने जैसा है। इस दौर में समावेशी और गुणवतापरक शिक्षा सभी को न्याय संगत ढंग से सुलभ करवाने की पैरवी करने वाली विश्व बिरादारी में ऑनलाईन शिक्षा के मार्ग में आने वाली चुनौतियों, ताकत एवं कमजोरियों तथा समाधान को लेकर व्यापक चर्चा है। ऑनलाईन शिक्षा के पक्षधर लोग जो तर्क पेश कर रहें है, उनमें समावेशन और गुणवता शिक्षा का विषय आश्चर्यजनक रुप से नदारद है। ऑनलाईन शिक्षा फेस-टू-फेस रीति से दी जाने वाली परम्परागत प्रणाली की शिक्षा का स्थान ले पाएगी यह देखना काफी रोचक होगा।

1. **परिचय (Introduction)** कोरोना वायरस से फैलने वाली कोविड-19 वैश्विक महामारी ने वैश्विक अर्थव्यवयस्था को बुरी तरह से प्रभावित किया है। शिक्षा क्षेत्र भी इस महामारी के कुप्रभावों से अछूता नहीं रहा। विद्यालयी शिक्षा ग्रहण कर रहे विद्यार्थियों के लिए यह समय काफी मुश्किल भरा रहा है। वर्ष 2030 तक सभी को न्याय संगत ढंग से समावेशी और गुणवता शिक्षा के लक्ष्य के आलोक में देखें तो लम्बे समय तक चलने वाला आपदा काल एक बड़ा अवरोध बनकर उभरा। ऐसे समय में विद्यार्थियों को बड़े नुकसान से बचाने के लिए ऑनलाईन शिक्षा का विकल्प सामने आया। इसके साथ ही एक और प्रश्न उभरा जो समावेशी और गुणवता शिक्षा संबंधी चिन्ताओं को और बढ़ा देता है। गरीब और पिछड़े तबकों तथा लड़कियों की शिक्षा के लिए प्रबंध करना एक बड़ी चुनौति बनकर उभरा। इस दृष्टि से लोक कल्याणकारी होने का दावा करने वाली सरकारों की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण हो जाती है। यह लेख सभी संबंधित पक्षों की भूमिका के साथ समावेशी और गुणवतापरक विद्यालयी शिक्षा में ऑन लाइन शिक्षा के गुण दोष और सुझाव प्रस्तुत करता है।
2. अध्ययन का महत्व (Significance of the Study) यह अध्ययन ऑनलाइन शिक्षा में शिक्षा गुणवता और समावेशन जैसी विशेषताओं की जांच-परख करता है। अध्ययन इस पहलू की पड़ताल करने की कौशिश करता है कि ऑनलाइन शिक्षा के प्रति विद्यार्थियों का क्या दृष्टिकोण है। यह अध्ययन विद्यालयी शिक्षा ग्रहण कर रहे शासकीय विद्यालयों के छात्रों के बीच किया गया है। अध्ययन शिक्षण संस्थानों और सरकार द्वारा विद्यार्थियों के ज्ञान एवं कौशल में वृद्वि के लिए किये गए डिजिटल तकनीक के प्रंबधन पर दृष्टिपात करता है।
3. प्रविधि (Methodology) यह अध्ययन प्राथमिक आंकड़ो पर आधारित है। आंकड़े विद्यालयी शिक्षा प्राप्त कर रहे विद्यार्थियों तथा शिक्षकों से हरियाणा राज्य के फतेहाबाद जिला से गुगल फॉर्म के माध्ययम से सर्वेक्षण द्वारा एकत्रित किए गए हैं। ऑकडें 150 विद्यार्थियों और 100 शिक्षकों से स्तरीकृत प्रतिचयन विधि से प्राप्त किए गए हैं। यह सर्वेक्षण मई 2021 में किया गया है।
4. विश्लेषण (Analysis)

4.1 शिक्षक प्रतिक्रियादाताओं (Respondents) की प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण:-

4.1.1 ई-लर्निंग में परेशानियां आती है:-

श्रेणी	प्रतिक्रियादाता	प्रतिशत
अक्सर	54	54
कभी-कभी	39	39
कभी नहीं	07	07
कुल	100	100

54 प्रतिशत शिक्षक मानते है कि ई-लर्निगं में पर्यात संसाधन की उपलब्धता, नेटवर्क आदि के कारण अक्सर समस्यांए आती है। 39 प्रतिशत शिक्षकों को कभी-कभार समास्याओं का सामना करना पड़ा तो 7 प्रतिशत शिक्षकों को कोई परेशानी नहीं हुई।

4.1.2 ऑनलाइन शिक्षा के लिए विद्यार्थियों के पास संसाधान उपलब्धता:-

श्रेणी	प्रतिक्रियादाता	प्रतिशत
पर्याप्त	47	47
अपेक्षाकृत कम	26	26
अपर्याप्त	27	27
कुल	100	100

47 प्रतिशत शिक्षक मानते है कि उनके विद्यार्थियों के पास ऑनलाईन शिक्षा के लिए पर्याप्त संसाधान जैसे इंटरनेट कनेक्शन, कम्प्यूटर/लैपटॉप/मोबाइल, नेटवर्क आदि उपलब्ध हैं। 26 प्रतिशत संसाधनों की उपलब्धता अपेक्षाकृत कम मानते हैं और 27 प्रतिशत संसाधनों के नाकाफी या अपर्याप्त होने का तर्क रखते हैं।

4.1.3 विद्यार्थियों से उचित प्रतिक्रिया:-

श्रेणी	प्रतिक्रियादाता	प्रतिशत
हां	51	51
नहीं	29	29
शायद	20	20
कुल	100	100

51 प्रतिशत शिक्षकों को विद्यार्थियों ने समय पर उचित और सकारात्मक प्रतिक्रिया दी है। 29 प्रतिशत शिक्षक मानते हैं कि बच्चों से उचित प्रतिक्रिया नहीं मिलती है। 20 प्रतिशत शिक्षकों को नियमित उचित प्रतिक्रिया नहीं मिली।

4.1.4 ऑनलाइन शिक्षा ज्यादा कारगर या परम्परागत शिक्षा:-

श्रेणी	प्रतिक्रियादाता	प्रतिशत
ऑनलाइन	08	08
परम्परागत	87	87
दोनों	05	05
कुल	100	100

87 प्रतिशत शिक्षक परम्परागत शिक्षा प्रणाली, जिसमें कैम्पस कक्षाओं में फेस-टू-फेस रीति से शिक्षण कार्य होता है, को अधिक कारगर मानते है। 08 प्रतिशत शिक्षक ऑनलाइन शिक्षा तथा 05 प्रतिशत शिक्षक दोनों प्रकार के शिक्षण को कारगर मानते हैं।

4.1.5 ऑनलाइन शिक्षा से समावेशन:-

श्रेणी	प्रतिक्रियादाता	प्रतिशत
पूर्णत: सहमत	09	09
सहमत	12	12
असहमत	48	48
पूर्णत: असहमत	31	31
कुल	100	100

वर्तमान में शिक्षा में समावेशन एक महत्वपूर्ण विषय है। 31 प्रतिशत शिक्षक इस बात से पूर्णत: असहमत हैं कि ऑनलाइन शिक्षा समावेशी प्रकृति की है, 48 प्रतिशत इससे असहमति भी रखते है है। 09 प्रतिशत शिक्ष कइस विचार से पूर्णत: सहमत हैं और 12 प्रतिशत शिक्षक सहमत है।

4.1.6 ऑनलाइन शिक्षा का शिक्षा गुणवता पर प्रभाव:-

श्रेणी	प्रतिक्रियादाता	प्रतिशत
सकारात्मक	13	13
नकारात्मक	77	77
कह नहीं सकते	10	10
कुल	100	100

77 प्रतिशत शिक्षक मानते है कि ई-लर्निगं से शिक्षा गुणवता पर नकारात्मक अर्थात विपरीत असर पड़ा है 13 प्रतिशत शिक्षक ऑनलाइन को गुणवता के लिए सकारात्मक मानते है तो 10 प्रतिशत शिक्षक अभी यह निष्कर्ष नहीं निकाल पाये कि ई-लर्निगं शिक्षा गुणवता पर कैसा प्रभाव डालेगी अर्थात वे अनिश्चय की स्थिति में है।

4.2 विद्यार्थी प्रतिक्रियादाताओं (Respondents) की प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण:-

4.2.1 ई-लर्निगं के प्रति ईच्छा:-

श्रेणी	प्रतिक्रियादाता	प्रतिशत
हां	102	68
नहीं	15	10
शायद	33	22
कुल	150	100

68 प्रतिशत विद्यार्थी ई-लर्निगं से सीखने की ईच्छा रखते हैं जबकि 10 प्रतिशत बच्चे ई-लर्निगं माध्यम से शिक्षा को लेकर बिलकुल ईच्छित नहीं है। 22 प्रतिशत विद्यार्थी ऑनलाइन शिक्षा को लेकर असमंजस की स्थिति में है।

4.2.1 ई-लर्निंग के तकनीकी मुद्दे:-ऑनलाइन शिक्षा के लिए इंटरनेट सुविधा की उपलब्धता के साथ अवसंरचानात्मक ढांचे की आवश्यकता होती है। आज भी हमारे देश में ई-लर्निंग के संबध में कई तकनीकी समस्याएं है।

श्रेणी	प्रतिक्रियादाता	प्रतिशत
हॉ	125	83.33
नहीं	07	04.67
कह नही सकते/शायद	18	12
कुल	150	100

83.33 प्रतिशत बच्चे मानते है कि तकनीकी विषय से ऑनलाइन शिक्षा प्रभावित होती है 4.67 प्रतिशत विद्यार्थी तकनीक को अवरोधक नहीं मानते जबकि 12 प्रतिशत इस मुद्दे पर निश्चित नहीं कर पा रहे हैं।

4.2.3 सीखने के माहौल के लिए प्राथमिकता:- ऑनलाइन शिक्षा के लिए विद्यार्थी की ईच्छा महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह महत्वपूर्ण है कि विद्यार्थी ऑनलाइन पद्धति से पढ़ना चाहता है या परम्परागत कैम्पस कक्षाओं द्वारा।

श्रेणी	प्रतिक्रियादाता	प्रतिशत
ऑनलाईन	11	07.33
परम्परागत	118	85.34
उपरोक्त दोनों	11	07.33
कुल	150	100

85.34 प्रतिशत विद्यार्थी परम्परागत शिक्षण को पंसद करते है तथा 7.33 प्रतिशत बच्चे ऑनलाइन शिक्षण को पसंद करते है, जबकि 7.33 प्रतिशत विद्यार्थी दोनों ही माध्यमों शिक्षा की ईच्छा रखते है।

4.2.4 ई-लर्निगं के लिए डिवाइस का प्रयोग:- ऑनलाइन शिक्षा पद्यति में अनेक प्रकार के डिवाइस प्रयोग में लाये जाते हैं यथा लैपटॉप, मोबाईल, डैक्सटाप आदि:-

श्रेणी	प्रतिक्रियादाता	प्रतिशत
लैपटॉप	12	08
मोबाईल फोन	113	75.34
डेस्कटॉप	03	02
लेपटॉप और मोबाईल	08	05.33
लैपटॉप और डेस्कटाप	06	04
मोबाईल फोन और डेस्कटॉप	08	05.33
अन्य	00	00
कुल	150	100

ऑनलाईन शिक्षा के लिए सर्वाधिक 75.34 प्रतिशत बच्चे मोबाईल फोन, 08 प्रतिशत लैपटॉप, 5.33 प्रतिशत लैपटाप और मोबाईल, 5.33 प्रतिशत मोबाईल और डेस्कटाप तथा 04 प्रतिशत बच्चे लैपटाप और डेस्कटाप का प्रयोग करते है। इससे स्पष्ट है कि बच्चें का बड़ा वर्ग मोबाईल फोन से अपनी शिक्षा को जारी रखे हुए है।

4.2.5 ऑनलाईन शिक्षा के लिए एप्लिकेशन टूल्सः- ऑनलाईन शिक्षा के लिए विद्यार्थियों को विभिन्न एप्लिकेशन टूल्स का प्रयोग करना होता है। वह अपने तकनीकी ज्ञान और उपलब्ध सुलभ सेवाओं के आधार पर इनका चयन करता है।

श्रेणी	प्रतिक्रियादाता	प्रतिशत
जूम/गुगल मीट/बेबैक्स मीट	12	08
गुगल क्लास रुम	03	02
यू-ट्यूब	06	04
वाट्स एप्प	115	76.67
अन्य (मेल, कैम्पसडीन आदि)	14	9.33
कुल	150	100

76.67 प्रतिशत विद्यार्थी वाट्स एप्प ग्रुप्स के द्वारा ऑनलाइन शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। 08 प्रतिशत बच्चे गुगलमीट, वैबेक्स मीट, जूम आदि पर शिक्षकों से लाइव सम्पर्क में रहे हैं। 04 प्रतिशत विद्यार्थी पढ़ाई के लिए यू-ट्यूब तथा 9.33 प्रतिशत बच्चे अन्य एप्लिकेशन टूल्स जैसे ई-मेल, कैम्पस-डीन, फीचर फोन पर संदेश आदि से ऑनलाइन शिक्षा से जुडे हैं।

5. अध्ययन के उद्देश्यः-

(i) ऑनलाइन शिक्षा की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करना और यह देखना कि शिक्षा की यह पद्यति कितनी कारगर है।

(ii) ऑन लाइन विद्यालयी शिक्षा में समावेशन की गुणवता की जांच करना।

(iii) ऑनलाइन शिक्षा के प्रति विद्यार्थियों की रुचि और उत्साह को जानना।

6. ऑनलाइन शिक्षा के लाभः-

(i) आपदा के समय, जब परम्परागत शिक्षण नहीं हो सकता, शिक्षा को सुचारु रखने में सक्षम है।

(ii) शिक्षा का यह तरीका समय लचीला है। विद्यार्थी अथवा अधिगमकर्ता अपनी सुविधा अनुसार समय का चुनाव कर सीख सकता है।

(iii) दिव्यांग जंनों और महिलाओं के लिए लाभकारी है, वे घर पर रहकर शिक्षा ग्रहण कर सकते है।

(iv) सुदूरवर्ती इलाकों में भी ऑनलाइन शिक्षा द्वारा पढ़ाया जा सकता है।

(v) विभिन्न एप्लिकेशन टूल्स द्वारा असंख्य कोर्स और विशाल पाठ्य सामग्री (content) की उपलब्धता।

7. ऑनलाइन शिक्षा की कमजोरियांः-

(i) बड़ी संख्या में सीखने वालों को तकनीकी समस्याएं आती है। सीखने वाले व्यक्ति के डिजीटल साक्षरता का स्तर और आत्मविश्वास की कभी सीखने में बड़े अवरोध पैदा करते है।

(ii) गरीब और पिछड़े परिवरों को इंटरनेट, कनेक्शन, लैपटॉप, डैस्कटॉप, नवीन तकनीक युक्त मोबाईल आदि पर व्यय करना पड़ता है, जिनमें वे समर्थ नहीं है।

(iii) शिक्षा की यह पद्यति गुणवता, समावेशन सामाजिकता और सॉझेदारी जैसे गुणों को समाप्त कर रही है।

(iv) लगातार ऑनलाइन शिक्षण से जुघ्डे रहने से ऑखों की परेशानी बढ़ना, चिड़चिड़ापन फिजिकल फिटनेस जैसी शारीरिक परेशानियां आती है।

(v) इंटरनेट स्पीड, नेटवर्क की निर्बाधता, इंटरनेट पर पाबंदी आदि अनेक समस्यांए आती है।

8. सुझावः-

(i) उच्च स्पीड इंटरनेट जुड़ाव के लिए कार्य किया जाना चाहिए और निर्बाध इंटरनेट सेवा को और पुख्ता किया जाना चाहिए।

(ii) शिक्षण संस्थनों के पुस्तकालयों में टैब आदि की उपलब्धता बढ़ानी चाहिए। ये टैब पुस्तकों की भांति विद्यार्थियों को जारी (पेनम) किए जा सकते है।

(iii) ऑनलाइन शिक्षण के लिए आधारभूत ढांचा विकसित किया जान चाहिए।

(iv) शिक्षण संस्थानों में विभिन्न डिवाइस और शिक्षण-अध्ययन संबंधी एप्लिकेशन टूल्स के बारे में प्रशिक्षण यानि डिजिटल साक्षरता पर ध्यान देना चाहिए।

(V) शिक्षण संस्थानों द्वारा विद्यार्थियों के अच्छे ऑनलाइन आचरण के लिए मोनिटंरिग की वयवस्था होनी चाहिए।

निष्कर्षः- वर्तमान दौर की वैश्विक महामारी के समय ऑनलाइन शिक्षा एक सामान्य व्यवस्था है। आपदा काल में बच्चों की शिक्षा न्यूनाधिक मात्रा में जारी रखी जा सके, इसके लिए ऑनलाइन शिक्षा ने एक विकल्प उपलब्ध करवाया तथा बड़ी संख्या में विद्यार्थियों ने शिक्षा को जारी रखने का प्रयास किया। ऑनलाइन शिक्षा के मार्ग में बहुत सारी बांधाए है तथा समावेशन और गुणवता इसके मूल में नहीं है। यह केवल आपदाकाल में शिक्षा की ज्योति बुझने न पाए इसके लिए मानव का संघर्ष था। इस संघर्ष में हम कामयाब भी रहे। इन सबके बावजूद ऑनलाइन शिक्षा परम्परागत कैम्पस शिक्षण का विकल्प नहीं हो सकती। समावेशन और गुणवता के अतिरिक्त परम्परागत शिक्षा की अनगिनत विशेषताओं तथा ऑनलाइन शिक्षा के शारीरिक, आर्थिक और काफी हद तक सामाजिक हानियों के कारण लम्बे समय तक भविष्य में ऑनलाइन शिक्षा परम्परागत शिक्षा का विकल्प बनाना तो दूर, परम्परागत शिक्षा से कड़ी प्रतिस्पर्ध भी नही कर पाएगी। ऑनलाइन शिक्षा कुछ हद तक सहायक की भूमिका अवश्य निभा सकती है।

10. संदर्भः-

1. शर्मा, अनिरुद्ध (2020), "ऑनलाइन पढाई सिर्फ प्रयोग था" दैनिक भास्कर, हिसार,
2. धवन, शिवांगी (2020), "ऑनलाइन लर्निंगः ए पेनासिया इन दी कोविड-19 क्राईसिंस", जर्नल ऑफ एज्युकेशन टेक्नोलोजी
3. राधा, आर0 (2020), "ई-लर्निगं ड्यूरिंग लॉकडाउन ऑफ कोविड-19 पेन्डेमिकः ए ग्लोबल प्रेस्पेक्टिव", इन्टरनेशल जर्नल ऑफ कन्ट्रोल एण्ड ऑटोमेशन
4. जेना,पर्वत कुमार, (2020), "ऑनलाइल लर्निंग ड्यूरिंग लॉकडाउन पीरियड फॉर कोविड-19 इन इंडिया", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसीप्लीनरी एज्युकेशनल रीसर्च
5. भास्कर सर्वे (2021), "93 प्रतिशत पैरेंट्स बोले-ऑनलाइन शिक्षा बेहतर नही", दैनिक भास्कर, हिसार

स्वधर्म और स्वदेशी: गाँधीवादी विमर्श

डॉ० ज्ञानप्रकाश उपाध्याय

दर्शन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश (Abstract)

प्रस्तुत शोध प्रपत्र में गाँधीजी कृत स्वधर्म की व्याख्या राष्ट्रीय आन्दोलन के सापेक्ष के रूप में की गयी है। उन्होंने स्वधर्म को स्वदेशी अर्थव्यवस्था, भाषा, संस्कृति, स्वराज, सुशासन, सर्वोदय एवं रामराज्य के रूप में प्रस्तुत किया है। इन अवधारणाओं में परस्पर तार्किक सम्बन्ध दिखाने का प्रयास प्रस्तुत शोध-प्रपत्र में किया गया है। गाँधीजी की विशेषता उनकी मौलिकता में निहित है। वे गीता के स्वधर्म सिद्धान्त से प्रभावित थे। स्वदेशी संस्कृति को बिना अपनाये विदेशी मानसिकता की गुलामी से मुक्ति नहीं मिल सकती है। स्वदेशी अपनाने का लक्ष्य विदेशी से घृणा करना नहीं है, बल्कि यह हमारे लिए नैतिक प्रश्न है। गाँधीजी के द्वारा की गयी स्वधर्म की व्याख्या उनकी समग्रतावादी दृष्टि की द्योतक है।

कुंजी शब्द (Key Words) - (1) स्वधर्म (2) अहिंसा (3) स्वदेशी (4) परधर्म (5) ट्रस्टीशिप (6) निर्धनता का दर्शनशास्त्र (7) आत्मसंयम (8) अपरिग्रह (9) सर्वोदय

उद्देश्य

1. आज के वैश्विक परिवेश में गाँधीजी के स्वधर्म एवं स्वदेशी सम्बन्धी विचारों का पुनरावलोकन करना।
2. स्वदेशी स्वराज-सर्वोदय-सुशासन एवं रामराज में अन्तर्निहित तार्किक सम्बन्ध का निरूपण करना।

प्रस्तुत शोध प्रपत्र का उद्देश्य गांधी के जीवन-दर्शन पर आधारित गीता के स्वधर्म का निरूपण करना है। गांधी जी के व्यक्तित्व की एक प्रमुख विशेषता उनकी मौलिकता है। वे अपने सिद्धान्तों का जीवन में प्रयोग करते थे। गाँधी जी अनासक्ति योग की भूमिका में यह स्पष्ट करते हैं कि गीता हमारे लिए तत्व ज्ञान का एक अध्यात्मिक ग्रन्थ है। गीता का प्रयोजन अध्यात्मिक ज्ञान और अनासक्ति योग को स्थापित करना है। उनके लिए गीता एक धार्मिक ग्रन्थ है। गीता के द्वारा प्रतिपादित धर्म की अवधारणा हमारे लौकिक जीवन के मार्ग दर्शन के लिए है। वास्तव में जिस धर्म को व्यवहार में प्रयुक्त न किया जा सके वह धर्म काल्पनिक है। गीता ने परमार्थ और व्यवहार के बीच में, ऐसी सीमा रेखा निर्धारित नहीं किया है जिसके अन्तर्गत दोनों में सामंजस्य न हो सके। स्वधर्म का सिद्धान्त अनासक्ति योग पर आधारित है। अनासक्ति के बिना न तो अहिंसा संभव है और न स्वधर्म का पालन संभव है। इसीलिए कहा गया है 'अहिंसा परमो धर्म:'। इससे सिद्ध होता है कि अनासक्ति योग के अन्तर्गत अहिंसा और स्वधर्म सहजभाव से अन्तर्भूत हो जाते हैं।

इस सन्दर्भ में गाँधीजी ने गीता के ''स्वधर्मे निधनम श्रेय: परधर्मो भयावह:'' की एक मौलिक व्याख्या किया है, जो गीता के अन्य भाष्यकारों के मतों से भिन्न है।[1]

गाँधीजी ने स्वधर्म की व्याख्या उस समय की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के सापेक्ष रूप में किया। उनके अनुसार इस कथन का अर्थ है- 'यदि स्वदेशी का पालन करते हुए मृत्यु भी हो जाए तो श्रेष्ठ है।' यदि किसी देश के लोग आर्थिक स्वावलम्बन से वंचित है तो उनके लिए स्वराज्य और लोकतन्त्र की संकल्पना निरर्थक है।

गांधीजी के आर्थिक चिंतन पर गीता का गहन प्रभाव है। शोषण और विदेशी अर्थव्यवस्था सत्य के साक्षात्कार में बाधक है। अत: गांधीजी ऐसी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था को स्थापित करना चाहते थे, जो स्वदेशी और स्वावलम्बन पर आधारित हो। यही कारण है कि वे हिन्दस्वराज में उपनिवेशवादी और आधुनिक मशीनीकरण पर आधारित पश्चिमी सभ्यता की आलोचना करते हैं। वे उसके विकल्प के रूप में स्वदेशी भाषा, संस्कृति और सभ्यता, स्वराज और स्वावलम्बन की आवश्यकता पर बल देते हैं।

गांधीजी अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र की एकता पर बल देते हैं। 'सबसे सस्ते बाजार में खरीदो और सबसे मंहगें दर पर बेचो', यह नीति अनैतिक और अमानवीय है। अत: माँग और पूर्ति के सिद्धान्त को हम किसी विज्ञान का आधार नहीं बना सकते हैं।[2]

गीता में भोगवादी, भौतिकवादी और उपयोगितावादी संस्कृति को आसुरी सम्पद् कहा गया है। हम भोगविलास में जितना अधिक लीन होते हैं, उतना ही अधिक आत्मनियन्त्रण खो बैठते हैं। कोई व्यक्ति अधिक धनी होने से आवश्यक नहीं है कि अधिक सुखी हो। इसी प्रकार गरीब होने से आवश्यक नहीं कि दु:खी हो। मनुष्य का वास्तविक सुख आत्म संतोष में निहित है। गांधीजी उन आवश्यकताओं की पूर्ति के पक्षधर हैं जो संयमित जीवन के लिए आवश्यक है।[3] भोग में भी त्याग का भाव होना चाहिए। विदेशी (पाश्चात्य) सभ्यता पर आधारित अतिशय भोग भयानक और मृत्यु के समान है-'परधर्मो भयावह:'[4] अत: गांधीजी भोगवादी, भौतिकवादी और सुखवादी पाश्चात्य सभ्यता की आलोचना करते हैं।

यहाँ पर एक प्रश्न यह उठता है कि क्या लोगों को साधु-संन्यासियों जैसा जीवन व्यतीत करना चाहिए। कुछ विचारकों ने गांधीजी की आलोचना करते हुए उनके 'अपरिग्रह सिद्धान्त' को निर्धनता का दर्शनशास्त्र (Poverty of Philosophy) कहा है। कुछ आलोचकों ने इसे आधी धोती की सभ्यता कहा है। समाजवादी विचारकों ने गांधीवादी अर्थव्यवस्था की आलोचना करते हुए इसे धनिक वर्ग एवं सेठ-साहूकारों के लिए सुरक्षा कवच कहा है। गांधीवादी अर्थव्यवस्था के फलस्वरूप धनी और गरीब के बीच की खांई बढ़ती जाएगी और जनता गरीब होती जाएगी।[5]

समाजवादियों के द्वारा की गयी गांधीवादी अर्थव्यवस्था की आलोचना कुछ पूर्वाग्रहों पर आधारित है। वास्तव में समाजवाद एकाधिकारवाद में बदल जाता है। समाजवादी राज्य व्यवस्था का उपयोग करके बलपूर्वक आर्थिक समानता लाने का प्रयास करते हैं। इसके विपरीत गाँधी अपरिग्रह के नैतिक सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। इसके विकल्प के रूप में वे ट्रस्टीशिप सिद्धान्त (न्यास सिद्धान्त) का सहारा लेते हैं। वे हृदय परिवर्तन और मनुष्य के विचारों का परिमार्जन करके अहिंसात्मक पद्धति से बदलाव लाने के पक्ष में हैं। उनका प्रमुख लक्ष्य प्रेम और अहिंसा के द्वारा स्वयं को कष्ट देकर भी दूसरों का दिल जीतना रहा है। वे समाजवादियों के विपरीत साध्य और साधन दोनों के पवित्रता पर बल देते हैं। गाँधीजी समाजवादियों के एकाधिकारवाद और राज्य के द्वारा संचालित पूँजीवाद दोनों को अस्वीकार करते हैं। उन्होंने 'न्यास सिद्धान्त' को पूँजीवाद और समाजवाद के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया जो अपरिग्रह के दर्शन पर आधारित है।

गीता के स्वधर्म सिद्धान्त को गांधीजी ने स्वदेशी का मूल आधार माना है। स्वदेशी वर्तमान युग का महाव्रत है। स्वदेशी का पालन न करके विदेशी संस्कृति, वस्तुओं इत्यादि का पालन करना स्वराज्य के लिए बाधक है। स्वधर्म के पालन से परधर्मी को अथवा विदेशी को कभी हानि नहीं पहुंच सकती है। यह उल्लेखनीय है कि स्वदेशी के पालन का अर्थ विदेशी वस्तुओं से द्वेष अथवा घृणा करना नहीं है।[6]

गाँधी के अनुसार 'स्वदेशी' का पालन लोककल्याणकारी परमार्थ है। स्वदेशी को पूर्ण रूप से प्राप्त करना 'स्व' और 'पर' के भेद को मिटा देता है। हमें स्वदेशी वस्तुओं, स्वदेशी भाषा, स्वदेशी संस्कृति इत्यादि का पालन करते हुए परदेशी वस्तुओं और धर्मों के प्रति घृणा और द्वेष नहीं रखना चाहिए। वे कहते हैं-'मैं यह नहीं चाहता हूँ कि मेरा घर सभी ओर से दिवारों से घिरा हो, मेरी खिड़कियां बन्द हों। मैं चाहता हूँ कि सभी भूमियों की संस्कृतियाँ मेरे घर से बहा करें, किन्तु मैं किसी के द्वारा उखाड़ दिया जाऊँ, इससे इनकार करता हूँ।''[7] इससे स्पष्ट है कि गांधीजी का स्वदेशी और स्वधर्म सर्वधर्मसमभाव और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के दर्शन पर आधारित है। हमारे मन में सभी संस्कृतियों और विचारों के प्रति सम्मान का भाव होना चाहिए। किन्तु इसके साथ-साथ हमें अपनी सांस्कृतिक विरासत और अस्मिता को भी सुरक्षित रखना होगा।[8] अतः परदेशी की चकाचौंध से मोहित होकर हमें कभी भी स्वदेशी का परित्याग नहीं करना चाहिए।

गांधी का स्वराज्य एक प्रकार से मन का स्वराज अर्थात् आत्मसंयम है। गांधीजी ने पतनशील, भोगवादी, भौतिकवादी और शोषण पर आधारित पश्चिमी (विदेशी) सभ्यता के विकल्प के रूप में स्वदेशी संस्कृति, स्वराज्य पर आधारित राज्य व्यवस्था, सुशासन एवं रामराज्य को प्रस्तुत किया है। गांधीजी का हिन्दस्वराज्य द्वेष के स्थान पर प्रेम, हिंसा के स्थान पर अहिंसा, पशुबल (बाहुबल) के स्थान पर आत्मबल, भोग के स्थान पर त्याग और परदेशी के स्थान पर स्वदेशी अपनाने पर बल देती है। इससे स्पष्ट है कि गांधीजी के स्वदेशी और स्वराज के मूल में गीता का स्वधर्म सिद्धान्त है। वस्तुतः गांधीजी की प्रमुख विशेषता उनकी मौलिकता में निहित है। गांधीजी के द्वारा शास्त्रों की मौलिक व्याख्या से अनेक समालोचक और विचारक सहमत नहीं थे। उनके लिए महाभारत और रामायण ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं, बल्कि धार्मिक ग्रन्थ हैं। गीता के पाण्डव और कौरव क्रमशः अच्छाई और बुराई के प्रतीक हैं। महाभारत में पाण्डवों एवं कौरवों का युद्ध मनुष्य के दैनिक जीवन में नित्य होने वाला जीवन-संघर्ष है। यह दैवीय एवं आसुरी प्रवृत्तियों के बीच का संघर्ष है। गाँधी ने गीता के 'स्वधर्म' एवं 'धर्म' के स्वरूप की व्याख्या अपने जीवन-दर्शन के अनुरूप स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान 'स्वदेशी' के रूप में किया। बिना स्वदेशी के यथार्थ स्वरूप को अपनाये हुए 'स्वराज' नहीं मिल सकता है। गांधीजी के लिए स्वराज आत्मानुशासन है। इसके लिए भारतवासियों को गुलामी की मानसिकता से मुक्त हो करके स्वावलम्बी होना पड़ेगा। उनकी यह दृढ़ आस्था थी कि भारत गांवों में बसता है। जब तक ग्रामीण अर्थव्यवस्था स्वावलम्बी, स्वायत्त एवं विदेशी गुलामी की मानसिकता से मुक्त नहीं होगी, तब तक सच्चा स्वराज नहीं प्राप्त हो सकता है। स्वदेशी को अपनाना ही स्वराज, स्वायत्त शासन, सुशासन, सर्वोदय और रामराज्य का मार्ग है। अतः उनके लिए स्वदेशी ही स्वधर्म है। इसी प्रकार गांधीजी ने जीवन में अपरिग्रह के सिद्धान्त का महत्वपूर्ण स्थान है। हमें केवल उन्हीं वस्तुओं का संग्रह करना चाहिए जितनी की हमारे जीवन के लिए आवश्यक है। किसी मनुष्य के लिए अपरिग्रही होना तभी सम्भव है जब वह अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को नियन्त्रित करे। इसके लिए गांधीजी ने स्वैच्छिक गरीबी और ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। धनी लोगों को धन का उपयोग राष्ट्र-निर्माण और लोकहित में करना चाहिए।

एम0एन0 राय ने गांधीजी के अपरिग्रह सिद्धान्त की आलोचना करते हुए इसे दरिद्रता का दर्शन कहा है। उल्लेखनीय है कि एम0एन0 राय साम्यवादी और नवमानववादी के रूप में प्रसिद्ध हुए। वे गांधीजी के विपरीत मार्क्सवाद की वैज्ञानिक पद्धति से प्रभावित थे, किन्तु वे मार्क्सवाद के द्वन्द्ववादी दृष्टि और हिंसात्मक क्रान्ति से सहमत नहीं थे। वस्तुतः राय साहब के द्वारा गाँधी के अपरिग्रह सिद्धान्त को दरिद्रता का दर्शन अथवा आधी धोती की सभ्यता कहना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता है। गांधी के 'स्वैच्छिक गरीबी' और 'न्यास सिद्धान्त' का निहितार्थ लोगों को दरिद्र बनाना नहीं, बल्कि जनहित में अपनी आवश्यकताआं को कम करना है। यह सिद्धान्त भोग की सीमा का निर्धारण करके सामाजिक विषमता और गरीबी को दूर करना है। स्वदेशी के लिए अपनी कामनाओं और आवश्यकताओं पर नियन्त्रण रखना चाहिए। उल्लेखनीय है कि गांधीजी के अपरिग्रह दर्शन से प्रभावित होकर प्रो0 जे0के0 मेहता9 ने 'आवश्यकता-विहीनता' के आर्थिक दर्शन का प्रतिपादन किया। इस दृष्टि से यह कहा गया है कि सभी जरूरतों को हमेशा के लिए संतुष्ट करना आवश्यक नहीं है। किसी चीज की उपयोगिता कष्ट (पीड़ा) को दूर करने में निहित है। किन्तु पीड़ा या दुःख से वास्तविक मुक्ति आवश्यकताओं की पूर्ति से नहीं, बल्कि उन्हें कम करने में एवं उन पर नियन्त्रण करने में है। इसके लिए अपरिग्रह और आत्मसंयम आवश्यक है।[10]

उल्लेखनीय है कि गांधीजी से प्रभावित मेहता का अर्थशास्त्र गीता से प्रभावित है। गांधीजी अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र में एकता स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। इससे स्पष्ट है कि गांधीजी के लिए स्वदेशी की अवधारणा सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। अतः स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान उन्होंने स्वदेशी को ही स्वधर्म के रूप में स्वीकार किया, जिसकी प्रेरणा उन्हें गीता से मिली।

गांधीजी औपचारिक दृष्टि से दर्शनशास्त्री भले ही नहीं थे, परन्तु विभिन्न धर्मों और शास्त्रों के विषय में उनकी अपनी दृष्टि हुआ करती थी। वे विभिन्न धर्मग्रन्थों को ईश्वर की रचना नहीं मानते थे। ये शास्त्र अनेक ऋषियों एवं पैगम्बरों के द्वारा प्रणीत हुए और उनमें अनेक प्रक्षिप्त बातें भी सम्मिलित हुई। धर्मग्रन्थों और धर्मशास्त्रों में सम्बन्धित मतों के मूल सिद्धान्तों का उपोग उस युग की आवश्यकताओं और मांग को पूरा करने के लिए किए गए। वे कहा करते थे कोई नियम अथवा सिद्धान्त न तो स्थिर होता है और न सर्वदेशिक एवं न ही सर्वकालिक होता है। उस सिद्धान्त की उपयोगिता और प्रयोग व्यक्ति के विवेक पर निर्भर होता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न सिद्धान्तों की उपयोगिता देश-काल एवं परिस्थितियों के सापेक्ष रूप में उनमें निहित सत्य के प्रयोग पर निर्भर होती है। एक सीमा के बाद शास्त्र मदद नहीं करते बल्कि अनुभव सहायक होता है।[11] अतः प्रत्येक विचारक को अपनी बुद्धि तथा विवेक के द्वारा युग के अनुरूप शास्त्रों की व्याख्या करके नवीन ज्ञान का सृजन करना चाहिए।

इस दृष्टि से प्रत्येक विचारक अपने भूतकालीन ज्ञान का संरक्षक है और दूसरी ओर भविष्य के ज्ञान का स्रष्टा और प्रणेता है। अपनी इसी दृष्टि का प्रयोग गांधीजी ने गीता के निहितार्थ को समझने में किया।[12] इस क्रम में गांधीजी ने गीता के स्वधर्म सिद्धान्त की व्याख्या स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय उत्पन्न परिस्थितियों के आलोक में किया। इसी दृष्टि से उन्होंने अपने युग की परिस्थितियों के सापेक्ष रूप में स्वदेशी और स्वराज के आदर्श को प्राप्त करने को अपना स्वधर्म माना। दूसरे शब्दों में स्वराज के लक्ष्य को प्राप्त करता और उसके लिए स्वदेशी को अपनाना ही स्वधर्म है। गाँधीजी ने स्वदेशी नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं दार्शनिक सभी पक्षों को राजनीतिक क्रियाविधि से जोड़ने का सफल प्रयास किया। उन्होंने स्वदेशी के समर्थन में एक राष्ट्रीय आन्दोलन खड़ा कर दिया। इसके फलस्वरूप विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया गया। देशवासियों ने गाँधीजी के इस सन्देश का पालन किया और विदेशी वस्त्रों की होली जलायी गयी।[13] इसका निहितार्थ यह है कि देश की प्रगति में बाधक विदेशी वस्तुओं को अपनाना भयानक और हिंसा है। इससे अन्याय, शोषण और भारतीय अस्मिता को गम्भीर हानि पहुँचती है।

वस्तुतः गाँधी के लिए स्वदेशी के बिना स्वराज सम्भव नहीं है। इस प्रकार स्वदेशी और स्वराज में घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारतीय परिस्थितियों और आवश्यकताओं के आलोक में गांधीजी ने स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग को ही स्वधर्म कहा है।[14] क्योंकि लोकसंग्रह अथवा लोकहित में स्वदेशी को अपनाना ही स्वधर्म है। गांधीजी के द्वारा स्वदेशी वस्तुओं को प्रोत्साहित करना तथा शारीरिक श्रम के रूप में चरखे का प्रयोग, उनके आर्थिक एवं राजनैतिक दर्शन को ही व्यक्त करते हैं। स्वेदशी और आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था, अपनी सांस्कृतिक अस्मिता, अपना शासन स्वयं करना और आत्मानुशासित जीवन शैली ही स्वराज की ओर ले जाती है। यदि स्वराज साध्य तो स्वदेशी उसकी प्राप्ति का साधन है। स्वराज के आते ही सुराज अर्थात् सुशासन आएगा। इससे स्पष्ट है कि स्वराज और सुराज का मार्ग स्वदेशी की ओर ले जाता है। स्वदेशी स्वराज का प्रथम सोपान है। स्वराज के बाद की अवस्था सुराज, सर्वोदय और रामराज्य है। अतः गांधीजी के द्वारा की गयी स्वधर्म की व्याख्या उनकी समग्रतावादी दृष्टि का परिणाम है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणी

1. संगमलाल पाण्डेय, गांधी का दर्शन, दर्शनपीठ, इलाहाबाद (1985), पृ0 93-96
2. जॉन रस्किन, अनटु दिस लास्ट, पृ0 2-15
3. हरिशंकर उपाध्याय, गांधीवाद के मूलस्वर, ऋषिकुल प्रकाशन (2020), पृ0 68
4. श्रीमद्भगवद्गीता-3/35
   श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठतात।
   स्वधर्मे निधनं श्रेय परधर्मो भयावहः।।
5. महादेव प्रसाद, महात्मा गांधी का समाज दर्शन (अनुवादक) विष्णुकान्तशास्त्री, हरियाणा साहित्य अकादमी (1989), पृ0 154-160
6. गाँधी, धर्मनीति, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली (1951), पृ0 171
7. आर0पी0 मिश्रा (सम्पादक), अनासक्तिदर्शन, भाग-5, अंक-५, इण्टरनेशनल सेन्टर फार गाँधीयन इस्टडीज एण्ड पीस रिसर्च, गांधी स्मृति और दर्शन, राजघाट, नई दिल्ली, पृ0 97-166
8. गांधीवाद के मूल स्वर, पृ0 14
9. जे0के0 मेहता, एडवांस इकोनामिक थियोरी, में देखिये अध्याय-आवश्यकताविहिन का दर्शन।
10. वही
11. गाँधी, मेरे समकालीन, सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली (1951), पृ0 51
12. संगमलाल पाण्डेय, गाँधी का दर्शन, में देखिये-बुनियादी ज्ञानमीमांसा, पृ0 51
13. वही, पृ0 95
14. परधर्मो भयावहः का निहितार्थ यह है कि विदेशी वस्तुएं भले ही सस्ती, चमक एवं आकर्षण से युक्त हों, परन्तु उन्हें स्वदेशी वस्तुओं की कीमत पर स्वीकार करना लोकहित में नहीं है क्योंकि उसका परिणाम देश (समाज) के लिए घातक एवं विनाशकारी होगा।

अज्ञेय की सामाजिक चेतना

डॉ० सुमन देवी

पुत्री-श्री इकबाल सिंह, पटाला चौक, जींद, हरियाणा

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इस कारण उसके प्रत्येक कार्यकलाप समाज पर ही आश्रित होते हैं। कवि सामान्य मानव की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होता है वह अपने आस-पास के सामाजिक परिवेश में जो कुछ देखता है उससे उद्वेलित होकर वह भावनाओं के लोक में विचरण करने लगता है। इन्हीं भावनाओं को अपने काव्य के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करता है। ऐसी स्थिति में समाज का यथार्थ रूप उसकी वाणी से प्रस्फुटित हो उठती है।

अज्ञेय भी अपने रचना संसार में अपनी अनुभूतियों को समाज से दूर में रख सके। उनकी मान्यता है कि लेखक अथवा साहित्यकार एक ऐसा प्रबुद्ध व्यक्ति होता है जो अपने समकालीन परिवेश को अपनी रचनाओं के माध्यम से स्वर प्रदान करता है। ''कवि ने स्वयं स्वीकार किया है कि यदि वह उनके लिए नहीं लिखता, जो उसकी संवेदना में डूब सकते, तो उसके लिखने का क्या औचित्य है?''[1] अज्ञेय अपने और समाज के प्रति उत्तरदायित्व को स्वीकार करते हैं इसी कारण इनके काव्य में निस्तर सामाजिक चेतना के दर्शन होते है।

अज्ञेय ने अपने काव्य मानव को बहुत महत्त्व दिया है। ''मानव समाज के आधार नैतिक मूल्यों का पुनः परीक्षण और एक नए लौकिक आधार पर उनकी स्थापना।'' रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विश्वमानवतावाद से प्रभावित एवं प्रेरित होकर गांधी जी ने सर्वोदय एवं अहिंसावाद का प्रचार किया था। अज्ञेय ने भी अपने काव्य के माध्यम से सामाजिक सद्भाव की स्थापना करते हुए विश्व - बन्धुत्व का इस प्रकार संदेश दिया है-

बंधु है नदियां
प्रकृति भी बेधु है
और क्या जाने कदाचित्
बंधु मानव।''[2]

'तू-मैं कविता में भी कवि ने समाज के आदर्शवादी स्वरूप की कल्पना करते हुए कहा है-

''तू सुर लोकों के द्वार खोल नित नए
राहों पर नन्दन वन कुसुभाता जा
मैं बार-बार हट करके यह अनप्य मानव-लाक वरूँ।''[3]

अज्ञेय समाज में व्याप्त वर्ग-भेद से अत्यन्त संतस्त है समाज में शोषक - वर्ग का व्यवहार वर्ग- संघर्ष को जन्म देता है। एक सामान्य सामाजिक का जीवन कटुता से परिपूर्ण हो गया है। किसान खेती करता है पर अन्न पर उसका अधिकार नहीं है-

हरे भरे है खेत
मगर खलिहान नहीं
बहुत महतो का मानः
मगर दो मुट्ठी धान नहीं।''[4]

बांगर और खादर' कविता में भी कवि ने इसी सामाजिक विषमता को उजागर किया है जहाँ व्यक्तिगत सम्पति का भाव समाज के उच्च वर्ग की सुविधा सम्पन्न बनाता चला जा रहा है और निम्न वर्ग निरन्तर पिस ही रहा है। अज्ञेय काव्य के माध्यम से किसी अलौकिक काल्पनिक लोक में जीने के स्थान पर समाज के यभार्थ जीवन से जूझने में विश्वास रखते हैं। अज्ञेय ने केवल राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी सामाजिक चेतना को जागृत करना चाहते हैं। 'हिरोशिमा' और 'लौटे हुए यात्री का वक्तव्य' रचनाएं कवि की सामाजिक भावना का परिचय देती है।-:

छायाएँ मानव तन की
दिशाहीन / सब और पड़ी...
कालसूर्य के ज्यों आरे टूटकर
बिखर गये हों/दशों दिशा में /''[5]

अज्ञेय आज के युग में नैतिक मूल्यों की समस्या को ओर भी विकट मानते हैं। हमारे प्राचीन शास्त्रीय ईश्वर-संभूत धार्मिकता क्षीण होती जा रहीं है। सामाजिक जन-जीवन में आस्तिकता स्थान पर नास्तिकता के स्थान पर नास्तिकता का समावेश होता जा रहा है।

अज्ञेय के काव्य में सामाजिक चेतना का परिणाम विद्रोह तथा विरोध के रूप में दृष्टिगोचर होता है।

अज्ञेय के विचार में ' समष्टि के प्रति अपने बृहत् उत्तर- दायित्व का निर्वाह करना प्रत्येक प्राणी का मानवोचित कर्तव्य है। इसी कारण न कहते है -

''जिसने पर दिया अपना है दान
उसने अपने को अपने साथ सबको
अपनी सर्वमयता को निबाहा है।''

अज्ञेय ने एक 'विशद अभिप्रायश् से प्रत्येक व्यक्ति को संपृक्त होने का उपदेश दिया है जिसे वे अखिल मानव- जाति में परिव्याप्त मानते हैं।

अज्ञेय की कविता 'नया कवि- आत्मोपदेश' से ज्ञात होता है कि मानो कवि ने समाजवादी दर्शन को पूर्णतय आत्मसात कर लिया है कवि अपनी कविता के द्वारा सामाजिक चेतना जागृत करना चाहता है। कवि ने आत्मनेपद में कहा है-''मैं व्यक्ति का अपने प्रति उत्तरदायित्व मानता हूँ, समाज के प्रति भी। यह कोई नई बाद नहीं। पर मैं अपने प्रति-उत्तर दायित्व को प्राथमिक मानता हूँ और समाज के प्रति उत्तरदायित्व को उसी से उत्पन्न।''

अज्ञेय ने स्वस्थ समाज की स्थापना के लिए अहँ के त्याग तथा अपनी मिट्टी से जुड़ने की बात भी कही है।

अज्ञेय ने अपने काव्य के माध्यम से मानवतावाद तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना से युक्त सामाजिक चेतना को उजागर करने का सकल प्रयास किया है

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अज्ञेय और सर्जना के क्षण: डॉ. वेद प्रकाश जुनेजा पृ. सं0 111,
2. 'बंधु है नदियां, डॉ. वेद प्रकाश जुनेजा पृ. सं0 12
3. 'बांगर और खादर'
4. 'हिरोशिमा', अज्ञेय, पृ0 25
5. लौटे हुए यात्री का वक्तव्य'
6. अज्ञेय के उपन्यासों की भाषा: डॉ० विजय कुमार पाण्डे साहित्य रत्नालभ 37/50 गिलिस बाजार, कानपुर
7. अज्ञेय एक मूल्यांकन: संपादक मणिका मोहिनी वैचारिकी संकलन -161 शिवानी अपार्टमेंटस - 63 दिल्ली -110092

आधुनिकता और मुक्तिबोध का काव्य

डॉ० कामना पण्ड्या

एसोसिएट प्रोफेसर, किशारी रमण (स्ना.) महाविद्यालय, मथुरा (उ०प्र०)

आधुनिकता अपने अनेकार्थक रूप में बहुचर्चित भी रही है और विवादास्पद भी। प्रचलित अर्थों में नूतन विचाराधारा या नयी सभ्यता आधुनिकता कहलाती है। कोई परंपरा से हटकर चलने को आधुनिकता मानता है तो कोई परिस्थिति से सामंजस्य बैठाने को आधुनिकता कहता है। वर्तमान स्थिति या विचारों को तर्क की कसौटी पर कस कर स्वीकार करने को भी आधुनिकता माना जाता है तो जीवन को उन्नत बनाना भी आधुनिकता माना गया। प्रायः फैशन परस्ती, पाश्चात्य जगत् एवं सिने-संस्कृति की अनुकृति, को आधुनिकता कहा जाता है। वस्तुतः आधुनिकता, पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण या फैशन परस्ती नहीं है। आधुनिकता फैशन से कहीं अधिक सूक्ष्म और गहरी चीज है। यह एक दृष्टिक्रम है, एक बोध प्रक्रिया है, एक संस्कार प्रवाह है।[1]

बृहत् हिन्दी कोश में आधुनिकता का अर्थ इस प्रकार दिया गया है। 'आधुनिकता' 'आधुनिक' होने का भाव, एक ऐसा दृष्टिकोण जो मनुष्य की नियति को पूर्व परंपरा से संवेद्य न मानकर, नये युग की स्थितियों के अनुसार परिभाषित करें।'[2]

''आधुनिकता इसलिए कोई रूढ़ि नहीं है, वह एक ऐतिहासिक परिधि है, जो एक युग के मानसिक धरातल को कुछ नई उपलब्धियों के अनुसार काटती-छाँटती है अथवा उसमें नए सन्दर्भ जोड़ती है और पुरानों को या ऐसों को जो सतत् गतिशील नहीं रह पाते, अपने से पृथक भी करती है।[3]

''आधुनिकता का अर्थ मेरे निकट पुरातन को गाली देना नहीं है वरन्-सारग्राहिणी तत्व दृष्टि के साथ विगत सांस्कृतिक समृद्धि को आत्मसात करते हुए मानव की वर्तमान नियति एवं उसके भावी विकास के प्रति अपने दायित्व का विशिष्ट एवं सक्रिय अनुभव करना है।''[4]

कह सकते हैं कि आधुनिकता एक विचार पद्धति है, जो यथार्थ समय के साथ गतिशील होती है। आधुनिकता एक विवेकशील दृष्टिकोण है, जिसमें अबौद्धिक धारणाओं, मिथ्या मान्यताओं व कुंठित चिंतन का कोई स्थान नहीं। व्यावहारिकता, यथार्थता, मानव-प्रगति में आस्था, रूढ़ियों का परित्याग, प्रयोगधर्मिता व दृष्टिकोण की वैज्ञानिकता ही इसके गुण हैं। संक्षेप में आधुनिकता ऐसी दृष्टि है जिसके पास अपने विचार, अपना चिंतन, अपनी बुद्धि है, किन्तु इसका प्रयोग वह युगीन संदर्भों से प्रभावित होकर ही करती है।

नवजागरण की समानता, एकता, धर्म निरपेक्षता और वैज्ञानिक बुद्धि की प्रतिष्ठा जैसी आधुनिक विचाराधाराओं को आगे बढ़ाने का दायित्व बुद्धिजीवियों पर था, लेकिन बुद्धिजीवी वर्ग अन्तर्मुखी एवं निष्क्रिय हो चला था। यह निष्क्रियता परिस्थितिगत एवं आत्मगत थी, परिणामतः प्रतिगामी शक्तियाँ सक्रिय हो उठीं और सांप्रदायिकता, जातिवाद, कट्टरता जैसे सामंती मूल्यों के साथ-साथ विकृत पूँजीवादी मूल्य भी भारत की जमीन पर प्रतिष्ठित होने लगे। मुक्तिबोध के समय तक आते-आते हालात बिगड़ चुके थे। बुद्धिजीवी वर्ग समझौता परस्त हो चला था, ऐसे में मुक्तिबोध ने संघर्षशील आधुनिकता की आवाज उठाते हुये कहा ''आधुनिक भाव-बोध क्या है? मैं अपनी खुद की जिंदगी और दोस्तों के तजुर्बे से बता सकता हूँ कि अन्याय के खिलाफ आवाज बुलंद करना आधुनिक भाव-बोध के अन्तर्गत है। आधुनिक भाव-बोध के सम्बन्ध में यह भी है कि मानवता के भविष्य-निर्माण के सम्बन्ध में हम और भी दत्तचित्त हों तथा हम वर्तमान परिस्थिति को सुधारें, नैतिक ह्रास को थामें, उत्पीड़ित मनुष्य के साथ एकात्म होकर उसकी मुक्ति की उपाय-योजना करें।''[5]

मुक्तिबोध की आधुनिकता चेतना बुद्धिवाद से जुड़ी है। वे तमाम संकीर्णताओं से परे जाकर चीजों को विवेक की कसौटी पर कसने के बाद स्वीकार करते हैं। उस युग में सामंती मूल्य, सांप्रदायिकता, कट्टरता, जातिवाद जैसे तत्व आकर राष्ट्र की अखंडता को खंडित कर रहे थे। ऐसे में मुक्तिबोध की आधुनिकता ने राष्ट्रीय जागरण का बीड़ा उठाया। यह भी उनकी आधुनिकता का एक पहलू है विजय मोहन सिंह ने उनके लिये कहा है "प्रायः वे प्रश्न जो समकालीनता द्वारा अनुत्तरित या उत्तरित भी समझ कर छोड़ दिए जाते हैं और जिन्हें फिर से उठाने का जोखिम कोई नहीं उठता-मुक्तिबोध 'अभिव्यक्ति' के सारे खतरे उठाकर उन्हीं प्रश्नों के निकट हमें फिर से ले जाते हैं।"[6]

मुक्तिबोध के लिये कविता जीवन के जटिलतम विचारों एवं संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम थी। कविता और जीवन को एक-दूसरे से निकट लाने के लिए जिस दृष्टिकोण की आवश्यकता थी वह उन्हें 'मार्क्सवाद' में मिला। मार्क्सवादी दृष्टिकोण ने केवल जन-जीवन की यथार्थजन्य अनुभूति के निकट या बल्कि वह एक ''वैज्ञानिक मूर्त्त और तेजस्वी दृष्टिकोण' था। मुक्तिबोध की जन-चेतना मार्क्सवादी दृष्टिकोण के समस्त पहलुओं में अपने में समाहित किये हुये हैं। मार्क्सवादी विचारधारा के अनुरूप मुक्तिबोध ने अपने काव्य में समाजवाद के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। समाजवाद की स्थापना से समाज के जीवन स्तर में उन्नति और सर्वतोमुखी प्रगति होती है। वर्ग-भेद से मुक्त, शोषण से मुक्त, पूँजीवादी पशुनीति का नाश तथा आम जन के लिए कल्याणकारी समाजवादी समाज की स्थापना की ललक उनके काव्य में जगह-जगह विद्यमान है।

''स्वार्थान्ध-सभ्यता के गहरे काजली चिन्ह!
मिट गए, हुआ वह दीप्त रूप कोमल प्रसन्न!!!
खिल उठे सुविकसित मानव के। मधु संवेदित व्यक्तित्व कोष।''[7]

पूँजीपति शोषितों पर अपना अधिकार समझते हैं। कवि शोषितों से अपना द्वंद्व समझने; संघर्ष करके स्थिति बदले और क्रांति का पथ अपनाने की कहता है-

''अपना वह मूल द्वन्द्व पहचानो
द्वन्द्वशील तथ्यों को तत्वों को जान लो
तीव्र करो द्वन्द्व को/अग्रगति सत्यों की विजयों का करो रास्ता साफ
जीवन-स्थिति बदल दो।''[8]

पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजी समाज के गिने-चुने लोगों के पास होती है। समाज की अपेक्षा व्यक्ति प्रधान हो जाता है। श्रम खरीदा जाता है और मुनाफा एकमात्र लक्ष्य होता है। ऐसे शोषक लोग समाज के आम लोगों को सभी ओर, सभी प्रकार से शोषण करते हैं। मुक्तिबोध जीवन-मूल्यों के कवि हैं। वे शोषित आमजन के प्रति गहरी सहानुभूति रखते हैं और शोषण करने वाली पूँजीवादी व्यवस्था का घोर विरोध करते हैं। कवि पूँजीवादी व्यवस्था से, उसकी शोषण नीति से तथा व्यवस्था से घृणा करता है। पूँजीवादी व्यवस्था के पूरी तरह नाश से ही मानव-मुक्ति संभव है-

''छोड़ो हाय, केवल घृणा और दुर्गन्ध
तेरी रेशमी वह शब्द संस्कृति अन्ध
देती क्रोध मुझको, खूब जलता क्रोध
तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध
तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।''[9]

पूँजीवादी व्यवस्था में सर्वहारा वर्ग दबता चला जाता है और अपनी संघर्ष क्षमता खोता जाता है। इस भयानक और मानवीय सभ्यताएँ दम तोड़ती नजर आती है मानवीय संवेदनाएँ खत्म हो जाती हैं।

'चंबल की घाटी' कविता में कवि ने वर्ग-संघर्ष चित्रित करते हुये इससे मुक्ति के लिए (शोषण जीवी व्यवस्था) सर्वहारा वर्ग को 'सामूहिक संघर्ष' करने के लिये प्रेरित किया है।

अपने ही दर्रों के / लुटेरे इलाकों में जोरदार
आज जो गिरोह है / पीड़ित जनों को
जनसाधारण को उनकी ही टोह है
पूर्ण विनाश अस्तित्व का चरम विकास है
इसीलिए ओ दृषद् आत्मन्। कट जाओ, टूट जाओ
टूटने से जो विस्फोट शब्द होगा। गूँजेगा जग भर।''[10]

मुक्तिबोध परंपरावादी कवि नहीं है। उनके काव्य के संदर्भ नये युग के विज्ञान और तकनीक के सामाजिक प्रभाव एवं नवजागरण के संस्कारों के पहलुओं से समन्वित मुक्तिबोध का रचनात्मक दृष्टिकोण विज्ञान युगीन संस्कृति के चिन्तन की दार्शनिक शैली में नयी सभ्यता के व्यवहार की स्वीकृति है। कविता को विश्वसनीयता देने के लिए तर्क शैली का भी प्रयोग किया गया है। मुक्तिबोध अपने समकालीनों में अकेले ऐसे कवि थे जिन्होंने काव्य में प्रयुक्त बिंब-प्रतीकों और उपमाओं को गणित, विज्ञान, भूगोल, खगोलशास्त्र से चुनकर अपनी काव्य स्थितियों को वैज्ञानिक नियमों के संदर्भ में जोड़कर प्रस्तुत किया है-

मैं स्याह चन्द्र का फ्यूज बल्ब/जल्दी निकाल
पावन प्रकाश का प्राण बल्ब/वह लगा सकूँ
जो बल्ब तुम्हीं ने श्रमपूर्वक तैयार किया है
विक्षुब्ध जिंदगी की अपनी प्रयोगशाला में।''[11]

मुक्तिबोध ईश्वरीय सत्ता में विश्वास नहीं करते। अध्यात्म के नाम पर चल रहा दिखावा, ढोंगीपन एवं आडम्बर पर मुक्तिबोध ने करारा व्यंग्य किया है। मुक्तिबोध मानव से बड़ी कोई शक्ति नहीं मानते अत: उसे अपने प्रश्नों का उत्तर उसे स्वयं खोजना होगा। मुक्तिबोध के अनुसार जब ईश्वर का अस्तित्व ही स्पष्ट नहीं है तथा ईश्वर पर विश्वास करने का क्या लाभ? ईश्वर की खोज करने वालों पर वह व्यंग्य करते हैं-

''मात्र अनस्तित्व इतना बड़ा अस्तित्व
ऐसे घुप्प अंधेरे का ऐसा तेज उजाला
वेछोर सिफर के अंधेरे में बिला बत्ती/सफर भी खूब है।[12]

मनुष्य का सबसे बड़ा सहारा उसका विवेक है जो जीवनानुभव से पैदा होता है। विवेक मुक्तिबोध के लिए आधुनिकता की कसौटी है। मुक्तिबोध के साहित्य में कमल इसी विवेक प्रेरित ज्ञान का प्रतीक है। इसीलिए 'एक अरूप शून्य के प्रति' कविता में मुक्तिबोध कमल पाने का बाद ईश्वरी जरूरत नहीं मानते।

''जिन्दगी के दलदल-कीचड़ में धँसकर
वक्ष तक पानी में फँसकर/मैं वह कमल तोड़ लाया हूँ
...मुझे तेरी बिल्कुल जरूरत नहीं है।''[13]

मुक्तिबोध आधुनिकता के नाम पर इतिहास और परंपरा के विरोध की प्रवृत्ति के खिलाफ है। वे न सिर्फ इतिहासबोध को स्वीकार करते हैं अपितु परंपरा की नई व्याख्या भी करते हैं। इतिहास बोध इतिहास में से सकारात्मक विकासशील मूल्यों को चुनने में हमारी मदद करता है। वे पूर्वजों से प्राप्त हर संस्कार या मूल्य को परंपरा नहीं मानते, उनके अनुसार वे मूल्य जो हमें सतत् विकासमान करते हैं, वे ही परंपरा के अंग है। मुक्तिबोध के लिये परंपरा इतिहास से चुने हुए सकारात्मक मूल्यों का दूसरा नाम है। उनके अनुसार परंपरा की खोज करनी पड़ती है-

''तीव्र करो द्वन्द्व को/अग्रगति सत्यों की विजयों का रास्ता साफ करो
.../अतीत से भविष्य तक वहनशील/खोजो परंपरा।''[14]

मुक्तिबोध किसी समस्या से भागने की अपेक्षा उसके लिए नया रास्ता खोजने में विश्वास रखते थे। नई दिशाओं की खोज आत्मबल से ही की जा सकती है। 'अपने अंदर सुख टटोलने की अपेक्षा जब मानवी-मन बाहर भटकता फिरता है, तब सिवा भाग्यवाद औरे निराशावाद और दूसरा वाद उसे आश्रय नहीं दे सकता। आशावाद का दूसरा नाम है आत्मबल।[15] पूँजीवादी मूल्यों के इस विकृत दौर में आत्मसंतुष्टि और कर्म पर विश्वास ही ऐसे साधन थे जो आधुनिक बुद्धिजीवी के ढीले चरित्र को दृढ़ बना सकते थे।

मानव और मानव-मूल्यों की पूर्ण व्यंजना मुक्तिबोध के काव्य में व्यापकता से व्यक्त हुई है। मानव-मूल्यों से भरा समाज, मानव के प्रति अगाध आस्था, सबको समान देखने वाली दृष्टि और सत्य-विवेक से संपन्न मानव मुक्तिबोध के काव्य के विषय हैं। उनके काव्य में मानवता का पक्ष सशक्त रूप में उभरा है। वे मानवता के प्रबल समर्थक और मानव में अविचल आस्था रखते हैं। वे मानवता विरोधी शक्तियों को समाप्त करने के लिये सामूहिक शक्ति में विश्वास करते हैं।

''दुनिया की कष्टमयी/मानवता एक हुई देखकर
साम्राज्यवादियों के साँप और सँपोले/
जिंदगी के बागों में सरसराने लगे और/क्षितिज से उठा शोर
साम्राज्यवादियों की चट्टानी पाँतों को तोड़ते/
आसुओं के धागों से/कष्टों के नातों से/
छाती में धधकती हुई अग्नि के रिश्ते से स्नेह में बँधा आर एक हुआ/
मानव जब[16]

अपने समसामयिक संदर्भो में मुक्तिबोध एक ऐसे आधुनिक रचनाकार हैं जो सदैव युग के आघातों से संघर्ष करते हुए प्रत्येक जन-मानव को उसके सही वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में मानवोचित रूप में खुशहाल और संतुष्ट देखना चाहते हैं। वे घटना-प्रधान रचनाओं द्वारा समसामयिक संदर्भों को तो यथार्थ स्तर पर उद्घाटित करते ही हैं, साथ ही कथ्य को अर्थगम्य बनाने के लिये कविता का प्रत्येक प्रसंग किसी न किसी सामाजिक सत्य को उद्घाटित करता है। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है', 'ब्रह्मराक्षस', 'एक स्वप्नकथा', 'मेरे लोग', 'अंधेरे में', कविताएँ इसके उदाहरण है। आज की सांस्कृतिक भव्यता के भीतर छिपे विद्रूप का अन्वेषण, ऊपरी चमक-दमक के भीतर ढके रोग का अनुसंधान करना मुक्तिबोध के काव्य का लक्ष्य है। शमशेर के शब्दों में मुक्तिबोध युग के उस चेहरे की तलाश करते हैं जो आज के इतिहास के मलबे के नीचे दब गया है, मगर मर नहीं गया है। बहुत नीचे की तहों से भी वह कहते हैं-कोशिश करो, कोशिश करो जीने की, जमीन में गड़कर भी।[17]

मुक्तिबोध को युगीन साहित्य में प्रचलित सौंदर्य की परिभाषा स्वीकार्य नहीं थी। उनकी सौंदर्य चेतना अपने समसामयिकों से अलग थी। उन्होंने अपने साहित्य के जरिए नये सौंदर्यबोध की प्रतिष्ठा का प्रयास किया। मुक्तिबोध की इस भूमिका के विषय में परमानंद श्रीवास्तव कहते हैं-'कोमलता और लालित्य के इकहरेपन के नाम पर सौंदर्य की जो सीमाएँ बनी हुई हैं उन्हें मुक्तिबोध की कविता विचलित करती हैं और बेगैल, सख्त, अनगढ़ के ढंग पर आविष्कृत करती है।''[18] यह सौंदर्यबोध साहित्य को समाज से जोड़ने वाला सौंदर्यबोध है। इसे आधुनिक सौंदर्यबोध भी कह सकते हैं। वे जनसाधारण से जुड़ी सौंदर्यानुभूति का प्रसार देखना चाहते थे।

साराशंत: कह सकते हैं कि मुक्तिबोध सही अर्थों में आधुनिक कवि थे। उनकी आधुनिकता किसी विचार या वाद विशेष से बद्ध या उसका प्रतिफलन नहीं थी। वरन उनकी आधुनिकता विवेकसम्मत एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सम्पन्न है। परिवेश के प्रति सजगता, संवेदनशील बौद्धिकता, अनुसंधानात्मक दृष्टि,

परंपरा एवं इतिहास के प्रति नयी दृष्टि, विश्वबंधुत्ववादी उदार मन और लोक-हित की चिंता, मानव के प्रत्येक सुख-दुःख में हिस्सेदारी और उसके सतत्-विकास के लिए अनथक प्रतिबद्धता उनकी आधुनिकता को नया और उनके समकालीनों में उन्हें विशिष्ट बनाती है। उनकी कविता इतिहास की प्रवाहमय धारा के साथ प्रवाहित होती है, जो विश्वशास्त्री है, जनचरित्री है, जिसमें भविष्य की छाया झिलमिलाती है। वह कहीं खत्म नहीं होती-

''नहीं होती/कहीं भी खतम कविता नहीं होती
कि वह आवेग त्वरित काल यात्री है
परम स्वाधीन है वह विश्व-शास्त्री है
गहन-गम्भीर छाया आगमिष्यत की/
लिए वह जन-चरित्री है।''[19]

संदर्भ संकेत

1. कुबेरनाथ राय, आधुनिकता: नयी और पुरानी, ज्ञानोदय 4, अप्रैल 1967, पृ. 30
2. कालिया प्रसाद-बृहत् हिंदी कोश-पृ. 126
3. लक्ष्मीकांत वर्मा-नयी कविता के प्रतिमान-पृ. 258
4. डॉ. जगदीश गुप्त, नयी कविता, अंक-7, पृ. 64
5. मुक्तिबोध रचनावली-भाग-5, पृ. 197
6. विजय मोहन सिंह-आज की कहानी, सन् 2002, पृ. 26
7. मुक्तिबोध रचनावली-खण्ड-1, पृ. 341
8. मुक्तिबोध रचनावली-खण्ड-2, पृ. 215
9. मुक्तिबोध रचनावली-खण्ड-1, पृ. 117
10. मुक्तिबोध-चाँद का मुँह टेढ़ा है-पृ. 243
11. मुक्तिबोध-चाँद का मुँह टेढ़ा है-पृ. 96
12. मुक्तिबोध रचनावली - खण्ड-2, पृ. 189
13. मुक्तिबोध रचनावली, संपादक-नेमिचंद जैन, भाग-2, पृ. 190-191
14. मुक्तिबोध रचनावली, संपादक-नेमिचंद जैन, भाग-2, पृ. 216
15. मुक्तिबोध रचनावली, संपादक-नेमिचंद जैन, भाग-4, पृ. 173
16. मुक्तिबोध रचनावली-खण्ड- 2, पृ. 73
17. मुक्तिबोध-चाँद का मुँह टेढ़ा है-भूमिका- पृ. 23
18. 'बीहड़ जंगलों में कविता'-पूर्वग्रह-परमानंद श्रीवास्तव, जुलाई-अक्टूबर सन् 1988, पृ. 44
19. मुक्तिबोध रचनावली-खण्ड-2, पृ. 126

आर्य समाज की प्रासंगिकता (उत्तराखण्ड के विशेष सन्दर्भ में)

मुकेश चन्द्र

(नेट जे0 आर0 एफ0, इतिहास), स0 भ0 सिं0 रा0 स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रुद्रपुर (उत्तराखण्ड)

सारांश

आधुनिक भारत में नवजागरण की ज्योति सर्वप्रथम धार्मिक आन्दोलनों के रूप में प्रकट हुई, इन धार्मिक आन्दोलनों में आर्य समाज का प्रमुख स्थान था। आर्य समाज के प्रभाव से ही सर्वप्रथम भारत को अपनी शोचनीय स्थिति का ज्ञान हुआ, अपने गौरवमयी अतीत का ज्ञान हुआ तथा अन्धविश्वास और रूढ़िवाद के स्थान पर तर्क को प्रधानता दी जाने लगी। आर्य समाज ने हिन्दू धर्म के मूल तत्वों वेद, ईश्वर और कर्मवाद आदि को सुरक्षित रखते हुए प्रचलित कुरीतियों एवं बुराइयों को दूर कर, हिन्दू जाति को सबल व भारतीय राष्ट्र को उन्नत एवं श्रेष्ठ बनाया। आर्य समाज द्वारा उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र में राष्ट्रीय शिक्षण परम्परा, स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन, समाज सुधार कार्यक्रम, दलितोद्धार आदि को प्रोत्साहित किया गया जिससे जनमानस में एक नवीन जागृति का प्रादुर्भाव हुआ।

की वर्डस-आर्य समाज, अस्पृश्यता, शुद्धिकरण, डोला-पालकी, अंधविश्वास, नायक जाति

आर्य समाज की प्रासंगिकता (उत्तराखण्ड के विशेष सन्दर्भ में) (शोध-पत्र)

आर्य समाज कोई नया धर्म नहीं, यह हिन्दू धर्म का ही एक अंग है। सनातनधर्मी लोग मूर्ति-पूजा, श्राद्ध, बलिदान तथा कर्मकाण्ड पर विश्वास करते हैं, किन्तु आर्य समाजी इन परम्पराओं पर विश्वास नहीं करते है। वह साकार ईश्वर की उपासना पद्धति को ठीक नहीं समझते तथा निराकार ईश्वर की उपासना पर बल देते हैं। आर्य समाज के उपासक वैदिक धर्म को श्रेष्ठ मानते है तथा पौराणिक धर्म की अवहेलना करते है। मार्टिन लूथर ने जैसे यूरोप में पोप धर्म के विरुद्ध घोर आन्दोलन कर प्रोटेस्टेण्ट मार्ग को स्थापित किया, ऐसे ही दयानन्द सरस्वती ने भारत में झूठे सनातन धर्म की पोल खोलकर सच्चे वैदिक धर्म को स्थापित किया।[1]

19वीं शताब्दी मे प्राचीन हिन्दू धर्म में नवजीवन का संचार करने और हिन्दू जाति की सामाजिक दशा में सुधार करने के लिए अनेक आंदोलनों का सूत्रपात हुआ, उनमें आर्यसमाज का महत्व सर्वोपरि है। आर्य समाज की स्थापना महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा 1875 ई0 में बम्बई (मुम्बई) में की गई। आर्यसमाज कोई नया सम्प्रदाय नहीं है, यह एक ऐसा संगठन है जिसके सुनिश्चित उद्देश्य तथा सुनिर्धारित नियम है, विश्व के सभी मनुष्यों का उपकार करना इस समाज का प्रमुख कर्तव्य है। आर्य समाज की स्थापना का स्पष्ट उद्देश्य था कि सम्पूर्ण संसार का उपकार किया जाए और संसार के उपकार के लिए आवश्यक है कि सभी मनुष्यों की आत्मिक व सामाजिक उन्नति की जाए। प्रत्येक मनुष्य को अपनी उन्नति के साथ-साथ समाज की उन्नति के लिए भी प्रयत्न करना चाहिए। मनुष्य के वैयक्तिक एवं सामूहिक कल्याण का यह कार्य ऐसे व्यक्तियों द्वारा ही सम्पन्न किया जा सकता है जो सत्य विद्यादि गुणयुक्त धर्मात्मा तथा परोपकारी हो तथा ऐसे ही लोगों को स्वामीजी ने आर्य माना है।[2]

आर्य समाज एवं उत्तराखण्ड

उत्तराखण्ड में गढ़वाल मंडल में सर्वप्रथम आर्यसमाज की स्थापना 1879 ई. में देहरादून में की गयी भी फिर यही पर 'स्त्री आर्यसमाज' की स्थापना भी हुई। देहरादून के उप-नगर कोटद्वार, दुगड्डा, चांदपुर आदि प्रमुख नगरों में इसकी स्थापना की गयी। कुमाऊँ मंडल में भी काशीपुर में 1881 ई0 में, नैनीताल में 1892 ई0, हल्द्वानी में 13 नंवबर 1898 ई0, रामनगर में 1904 ई0, अल्मोड़ा में 1916 ई0, रानीखेत में 1932 ई0 में आर्य समाज की स्थापना की गयी। सन् 1958 ई. में माता वेदवती फगवाड़ी की अध्यक्षता में हल्द्वानी में 'महिला आर्य समाज' की स्थापना की गयी तथा इसी वर्ष इसकी शाखा के रूप में काशीपुर में भी इसकी स्थापना की गई।[3]

स्वामी जी ने भारतीय जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष को अपने सामने रखा था, जिसके लिए उत्तराखण्ड में अपार संभावनाए थी क्योंकि यहां का पर्वतीय समाज अपनी अशिक्षा, अज्ञानता के कारण अनेक प्रकार के अंधविश्वासो के चक्र में फंसा हुआ था। अपनी निर्धनता, सामाजिक विसंगतियों उच्च वर्ग के निहित स्वार्थो से बुरी तरह शोशित एवं पीड़ित था। छूआछूत और अस्पृश्यता अपने चरम रूप में परिणत हो रही थी। समाज का वर्ग-विशेष जड़ पदार्थो के साथ अपनी कन्याओं का काल्पनिक विवाह करके उन्हे शरीर विक्रय के व्यवसाय में धकेल रहा था, अनाथों तथा विधवाओं की दुर्दशा हो रही थी। देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पशुओं की बलि दी जा रही थी। धर्म के नाम पर आत्मघात, देवार्चन के नाम पर कन्याओं का देवार्पण, बाल-विवाह,

कन्या शुल्क लेकर अनमेल विवाह, दास-दासियों के रूप में स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकाओं का विक्रय, वेश्यावृत्ति, बहुपति प्रथा (गढ़वाल में) किया जा रहा था मुसलमानों तथा ईसाई धर्म प्रचारकों द्वारा निर्धन लोगों को बहला-फुसलाकर धर्म परिवर्तन कराना एक आम बात थी। लोग तंत्र मंत्र व अंधविश्वासों से ग्रसित थे। गढ़वाल में डोला पालकी प्रथा के अंतर्गत अनुसूचित जातियों को उनके अधिकारों से भी वंचित किया जा रहा था। आर्यसमाज ने इन सभी विकृतियों व कुप्रथाओं को दूर करने के लिए बीड़ा उठाया और अपनी संस्था और प्रचारकों के माध्यम से इसे सम्पन्न कराने में जुट गए।[4]

उत्तराखण्ड में आर्यसमाज द्वारा समाज-सुधार के क्षेत्र में किए गए कार्यो में उल्लेखनीय कार्य है-नायक जाति में प्रचलित अविवाहित कन्याओं को रूपाजीवा के व्यवसाय में प्रवृत्त करने की घृणित प्रथा का समापन। नायक जाति की अव्यस्क लड़कियों के द्वारा वेश्यावृति की कुप्रथा थी, आर्य समाज द्वारा इसके विरुद्ध एक जनआंदोलन आरम्भ किया गया।5 इस कार्य में कुमाऊँ मण्डल में इसका उन्मूलन उठाने वालो में अग्रणी थे- श्री नारायण स्वामी रामप्रसाद मुख्त्यार, ठाकुर उदयसिंह नायक तथा गढ़वाल मंडल में समाज सुधार के कार्यो को आगे बढ़ाने में प्रमुख थे-श्री धर्मेन्द्रनाथ आर्य, जयानन्द भारती एवं श्री महेन्द्र प्रताप शास्त्री आदि। इनमें जहां एक ओर कर्मठ आर्यसमाजी कार्यकर्ताओं, समाज सुधार के लिए सम्पूर्ण रूप से समर्पित श्री नारायण स्वामी जैसे सन्यासियों, 'प्रयाग सेवा समिति' तथा 'भारत सेवकमंडल' जैसी आर्य समाजी संस्थाओं के सहयोग से इस जाति के लोगों में जागृति लाने का प्रयत्न किया।[6]

राय बहादुर ठाकुर सिंह जैसे प्रबुद्ध विधायकों द्वारा सन् 1921 ई. में उत्तर प्रदेश की प्रान्तीय काउँन्सिल में इस रूपाजीवा प्रथा को प्रतिबंधित करने हेतु एक बिल पेश किया गया। जिसे अन्य अनेक समाज सुधारकों के सहयोग से 1929 ई. में 'नायक-बालिका-रक्षा-कानून' के नाम से पारित किया गया। इस कार्य में उत्तर प्रदेश की आर्य प्रतिनिधि सभा ने भी सहयोग दिया। कानून पास को जाने के पश्चात इस सभा के प्रयास से नायक बलिकाओं को वेश्यालयों से निकालकर उन्हे उचित संरक्षण देने तथा शिक्षण-पोषण करने के लिए श्रीमती विजयालक्ष्मी पण्डित के संरक्षण में मेरठ में 'दुर्गाभवन' के नाम से एक संस्था की स्थापना की गयी। जहां पर वेश्यालयों से निकाल कर लायी गई बालिकाओं के लिए सरकार की ओर से संरक्षण तथा भरण-पोषण की व्यवस्था की गयी। इसके अतिरिक्त इस जाति की जो युवतियां कोठों का आश्रय ले चुकी थी किन्तु वहॉ के अनैतिक व्यवसाय से मुक्त होना चाह रही थी उन्हे गृहस्थ जीवन में स्थान दिलाने के लिए ऐसे समाज सुधारक युवकों को तैयार किया गया जो उनसे विवाह करके नारी जाति के उद्धार के इस कार्य को करने के लिए तत्पर थे।7

आर्य समाज द्वारा किया गया एक अन्य महान कार्य था-अछूतोद्धार। यहां पर अछूतों की स्थिति बड़ी दयनीय थी, छूआछूत के कारण उनकी स्थिति पशुओं से बद्तर हो गयी थी। हिन्दू धर्मावलम्बी होते हुए भी उनके साथ सौतेला सा व्यवहार किया जा रहा था। जिससे वे सामाजिक सम्मान पाने हेतु अपना धर्म परिवर्तन कर रहे थे। उन्हे भू-स्वामित्व का अधिकार नहीं था और मन्दिरों में भी जाने में उनकी पाबंदी थी। गढ़वाल में 'डोला-पालकी' की प्रथा के अन्तर्गत उन्हे विवाह आदि के अवसर पर सवर्णो के आवासीय क्षेत्रो तथा देवस्थलों के निकट से डोला या पालकी में अपने वर-वधू को ले जाने का अधिकार नहीं था। उनकी सुन्दर स्त्रियों को या तो विधर्मी अपना लेते थे या वे शहरो में देह-व्यापार करने वाले नारी समाज का अंग बन जाती थी, इन्हें न शिक्षा का अधिकार था न सेना में भर्ती होने का आर्य समाज ने इनके साथ किए जा रहे अमानवीय कार्यों को दूर करने का बीड़ा उठया। कुमाऊं में खुशीराम आर्य तथा गढ़वाल में जयानन्द भारती जैसे कर्मठ कार्यकर्त्ताओं के सहयोग से यहा पर अछूतोद्धार तथा शुद्धिकरण का कार्यक्रम चलाया।[8]

सन् 1913 ई. में पंजाब के आर्यसमाजी लाला लाजपत राय जी कुमाऊं में आये और नैनीताल जनपद के सुनकिया नामक गांव में जाकर लोहे की खदानों में काम करने वाले 600 आगरियों का शुद्धिकरण करके उन्हें यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकारी बनाया और उन्हे ईसाई बनने से रोका। 1934 ई0 में अन्य राष्ट्रीय नेताओं- श्री हृदयनाथ कुँजरू तथा लाला जमनालाल बजाज ने कुमाऊँ की यात्रा की लोगों को अनुसूचित जातियों के लिए मंदिरो को खुलवाने तथा अस्पृश्यता निवारण के लिए कानून पारित करवाने की प्रेरणा दी, जिसमें यहां के स्थानीय नेताओं श्री हरगोविन्द पंत, गोविन्द बल्लभ पन्त, श्री बद्रीदत्त पाण्डे आदि ने सहयोग किया। इनके प्रयत्नों से अनुसूचित जातियों की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार हुआ। स्थान-स्थान पर आर्यसमाज मंदिरो में अनुसूचित जातियों का शुद्धिकरण करके उन्हे यज्ञोपवीत धारण करने तथा वेद-मंत्रो का उच्चारण करके हवन-यज्ञ करने का अधिकार प्रदान किया। इस प्रकार विधर्मियों की ओर आकृष्ट हुए अनुसूचित जातियों के व्यक्तियों को हिन्दुओं की मुख्य धारा से मिलाया। इतना ही नहीं जो लोग उपेक्षा तथा उत्पीड़न के कारण दूसरे धर्मो को ग्रहण कर चुके थे उन्हें भी शुद्धिकरण की प्रक्रिया से पुन: हिन्दू धर्म में वापस लाया गया। सभी हिन्दुओं को बिना किसी वर्णभेद के वेदाध्ययन, यज्ञोपवीत धारण, गायत्री मंत्र का जाप करने का अधिकारी माना गया।[9]

डोला-पालकी प्रथा की समाप्ति के लिए आन्दोलन किया गया तथा इस सामाजिक प्रतिबन्ध को कानूनी तौर पर समाप्त करने के लिए प्रयत्न किया गया। अनुसूचित जातियों को भू-स्वामित्व तथा सेना में भर्ती होने का अधिकार प्रदान किया गया। इस प्रकार देखा जा सकता है कि आर्य समाज के उत्साही कार्यकर्ताओं ने उत्तराखण्ड की पर्वतीय भूमि से कई कुरीतियों को समाप्त किया तथा कई कानून बनाकर उन पर प्रतिबंध लगवा दिया।[10]

निष्कर्ष: सदियों की गहरी निद्रा के पश्चात उन्नीसवीं सदी के मध्यान्तर में धार्मिक व सामाजिक सुधारों के जिन आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ उसमें महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य समाज का प्रमुख स्थान है। आज भी हम आर्य समाज के संस्थापक को एक महान चिंतक के रूप में स्मरण करते हैं। उत्तराखण्ड में हिन्दू धर्म में व्याप्त सामाजिक कुरूतियों के निवारण, पाखण्ड का खण्डन व दलितोद्धार के लिए जो कार्य पिछली एक शताब्दी में आर्य समाज द्वारा किया गया है वह शायद ही किसी संस्था या संगठन द्वारा किया गया हो। आज उत्तराखण्ड का पर्वतीय समाज जो अपने धर्म एवं संस्कृति के प्रति गर्व की अनुभूति करता है, इसका श्रेय आर्यसमाज को दिया जा सकता है। आर्य समाज द्वारा जिस व्यापक आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ उसने भारतीयों को चिरनिद्रा से जागृत कर उन्नति के मार्ग पर अग्रसर किया। उनके द्वारा चलाया गया शुद्धि आन्दोलन भी उत्तराखण्ड की भूमि में अत्यधिक सफल रहा। आर्यसमाज ने हिन्दुओं में आत्मसम्मान व आत्मविश्वास की भावना भर दी परन्तु कई लोगों ने इसे सम्प्रदायवाद की संज्ञा दी तथा आर्य समाज को एक सम्प्रदायवादी संस्था माना। आर्य समाज को सम्प्रदायवादी मानना उचित नहीं है क्योंकि हम देख चुके है कि ना ही दयानन्द सरस्वती और ना ही आर्य समाज ने किसी धर्म का विरोध किया,

उनका तो मानना था कि आर्य बनो - आर्य का अर्थ ही श्रेष्ठ है। अतः हम यही कह सकते है कि आर्य समाज का द्वार उन सभी के लिए खुला है जो इसके नियमों व सिद्धान्तों में आस्था रखते है। अन्त में हम उस युग पुरुष (स्वामी दयानन्द सरस्वती जी) को अपनी श्रद्धांजलि प्रकट करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डे, बद्रीदत्त (2016) कुमाऊँ का इतिहास, पृ0 643-44 श्याम प्रकाशन अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड।
2. विद्यालंकार सत्यकेतु, वेदालंकार हरिदत्त (1982) आर्य समाज का इतिहास, पृ0 13, आर्य स्वाध्याय केन्द्र, नई दिल्ली।
3. शर्मा डी0 डी0 (2017) उत्तराखण्ड का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पृ0 190, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)
4. शर्मा डी0 डी0 वही पृ0 226
5. गुसांई, मेहरबान सिंह, अनुराधा, (2019) उत्तराखण्ड का राजनैतिक इतिहासः एक मूल्यांकन, पृ0 251 Medtech,A division of Scientific International Pvt. Ltd. New Delhi
6. जोशी घनश्याम, (2020) उत्तराखण्ड का राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पृ0 154 प्रकाश बुक डिपो, बरेली
7. शर्मा डी0 डी0 वही पृ0 227
8. जोशी घनश्याम वही पृ0 155
9. शर्मा डी0 डी0 वही पृ0 229
10. शर्मा डी0 डी0 वही पृ0 232

रांची जिलें के उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों का स्थगन व्यवहार, मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि पर शोध

डेजी लकड़ा

पी.एच.डी शिक्षा, शोधार्थी, श्री रावतपुरा सरकार, विश्वविद्यालय, रायपुर

डॉ० रेखा नरेंद्र जिभकाटे

(शोध निर्देशक), (श्री रावतपुरा सरकार, विश्वविद्यालय, रायपुर

प्रस्तावना

मानव एक प्रगतिशील, गतिशील व विकासशील प्राणी है और विकास कीविभिन्न अवस्थाओं (बाल्यावस्था, किशोरावस्था व युवावस्था) के साथ-साथ मानव में विभिन्न गुणों, योग्यताओं, क्षमताओं, आदतों व व्यवहार सम्बन्धी प्रवृतियों का विकास होता है। इसमें से एक प्रवृति है-आज के कार्य को कल पर और कल के कार्य को आगामी दिनों पर स्थगित करने की प्रवृत्ति। व्यक्ति चाहें कार्यरत हो या अकार्यरत, बालक, किशोर,वयस्क हो, शिक्षित या अशिक्षित हो, उसे प्रत्येक दिन विभिन्न कार्यों को करना होता है लेकिन वह अपने सभी कार्यों को उस दिन पूर्ण नहीं कर पाते हैं और कुछ न कुछ कार्यों को वह कल पर टाल देते हैं। कार्य को कल पर स्थगित करने के इस व्यवहार को स्थगन व्यवहार कहते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति में पायी जाने वाली इस व्यावहारिक प्रवृत्ति को ' स्थगनप्रवृति' कहा है तथा इस प्रवृति को दर्शाने वाले व्यवहार को ' स्थगन व्यवहार' के रूप में परिभाषित किया है। हिन्दी भाषा शब्द कोष में Procrastination शब्द के लिए विभिन्न शब्दों यथा; वाक्छल व्यवहार, विलम्बन व्यवहार, स्थगन व्यवहार, अनिच्छुकता व्यवहार आदि शब्दों को प्रयुक्त किया गया है। प्रस्तुत शोध में शोधकार्य में Procrastination के लिए 'स्थगन व्यवहार' शब्द का प्रयोग किया जाऐगा।

स्थगन व्यवहार क्या है?

शेम्यूल जॉनसन ने कहा है कि स्थगन ''एक सामान्य क्षीणता है जो कि अनेक नैतिक निर्देशों व कारणों के विरोध के बाद भी प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में कम या अधिक मात्रा में विद्यमान रहती है।''

स्थगन व्यवहार की विशेषताएँ-'स्थगन व्यवहार' की अग्रलिखित विशेषताएँ प्रतिबिम्बित होती हैं-

- स्थगन व्यवहार मानव की एक स्वभावगत विशेषता है।
- स्थगन व्यवहार विकास की अवस्थाओं-विशेषकर बाल्यावस्था, किशोरावस्था, वयस्कवस्था, प्रौढ़ावस्था में प्रमुखत: दृष्टिगोचर होता है।
- कम या अधिक योग्यता रखने वाले, शिक्षित/अशिक्षित, स्त्री/पुरूषों, शहरी/ग्रामीण सभी व्यक्तियों में यह व्यवहार परिलक्षित होता है।
- स्थगन व्यवहार में वैयक्तिक भिन्नता पायी जाती है।
- अर्जित व्यवहार होने के कारण स्थगन व्यवहार पर वातावरण का अधिक प्रभाव पड़ता है। सामाजिक स्थितियाँ, परिवेश, कार्य दशाएं, पारस्परिक अर्न्तवैयक्तिक सम्बन्ध, स्थगन व्यवहार को प्रभावित करते हैं।
- स्थगन व्यवहार व्यक्ति की रूचि, योग्यता, आवश्यकता, कार्य के प्रति अभिवृत्ति तथा अभिप्रेरणा स्तर से भी प्रभावित होता है अर्थात् व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक गुण एवं दशाएं भी उनके विलम्बन व्यवहार की प्रवृति को विकसित करती हैं।
- स्थगन प्रवृति वाले व्यक्ति उन कार्यों के प्रति आकर्षित होते हैं जो आनन्ददायक व सरल होते हैं तथा जिन कार्यों को करने में उनकी रूचि होती है।
- स्थगन व्यवहार की आदत व्यक्ति को कार्यों के प्रति असंवेदनशील बनाती है।

व्यक्ति के अर्जित व्यवहारों की कई आधारों पर सैद्धान्तिक व्याख्या की है। साहचर्य, अनुबन्धन एवं पुनर्बलन को मानव व्यवहारों के अधिगम का परीक्षित आधार माना गया है। व्यक्ति उन्हीं व्यवहारों को सीखता है जिनके लिए उसे उपयुक्त पुनर्बलन प्राप्त होता है। आदतों के निर्माण में भी अभ्यास और पुनर्बलन प्रमुख आधार होते हैं। इन्हीं आधारों पर स्थगन की सैद्धान्तिक व्याख्या की जा सकती है अर्थात् यदि व्यक्तिअपने कार्य/कार्यों को स्थगित करता है और उसे पुनर्बलन प्राप्त होता है (ब्राह्य व आन्तरिक), तो धीरे-धीरे उसका यह व्यवहार स्थायित्व ले लेता है। इसी प्रकार से प्रारम्भिक रूप से किए गए टालमटोल या बहानेबाजी बार-बार प्रयुक्त होने के कारण भी स्थगन व्यवहार की आदत के रूप में परिणत हो जाती है।स्थगन व्यवहार, यद्यपि व्यक्ति के जीवन के सभी क्षेत्रों से सम्बन्धित हैलेकिन शैक्षिक कार्यों के प्रति शैक्षिक स्थगन एक अत्यन्त विचारणीय पहलू है। शैक्षिक स्थगन शैक्षिक संरचना व शैक्षिक व्यवस्था से प्रभावित होता है। सामान्यत: विद्यार्थी के पास विभिन्न कार्य होते हैं यथा; विषयगत नोट्स तैयार करना, प्रोजेक्ट को पूर्ण करना, दत्त कार्यों को पढ़ना व पूर्ण करना आदि। इन सभी कार्यों को यदि वह प्रतिदिन पूर्ण नहीं कर पाता है तो शैक्षिक स्थगन उत्पन्न होता है। शैक्षिक स्थगन की व्यावहारिक प्रवृति के कारण विद्यार्थियों में अपने अध्ययन के लिए नियमितता व समयबद्धता विकसित नहीं होती है जो कि उनकी उच्च शैक्षिक उपलब्धि के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अत: शैक्षिक स्थगन, विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को भी प्रभावित करता है।

मानसिक स्वास्थ्य

मानसिक स्वास्थ्य से तात्पर्य उस समायोजी व्यवहार से है जो व्यक्ति के जीवन के सभी मुख्य क्षेत्रों जैसे सांवेगिक, सामाजिक एवं शैक्षिक आदि में सफलतापूर्वक समायोजन करने में मदद करता है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति या छात्र अपने व्यक्तित्व की विभिन्न इच्छाओं, आवश्यकताओं, शीलगुणों आदि के बीच एक ऐसा सामंजस्य रखता हैं कि जिन्दगी के सभी क्षेत्रों में एक संतोषजनक समायोजी व्यवहार करने में समर्थ हो पाता है। अत: मानसिक रुप से स्वस्थ व्यक्ति मूलत: वातावरण के विभिन्न पहलुओं के साथ संतोषजनक ढंग से समायोजन करने की क्षमता रखता है।

लैडेल-''मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ वास्तविकता के धरातल पर वातावरण से पर्याप्त सामंजस्य करने की योग्यता है।''

शैक्षिक उपलब्धि

क्रो एण्ड क्रो ने शैक्षिक उपलब्धि को इस रूप में परिभाषित किया है, ''एक सीमा जिस तक अधिगम के निर्धारित क्षेत्र में दिए गए अनुदेशन से अधिगमकर्ता को लाभ हुआ हो।''

स्वतंत्र चर-स्थगन व्यवहार एवं मानसिक स्वास्थ्य

आश्रित चर-शैक्षिक उपलब्धि

मध्यस्थ चर-लिंग, शिक्षा-बोर्ड, विषय-वर्ग

3. वर्तमान शोध का उद्धेश्य:-

प्रस्तुतअध्ययन के उद्देश्य अग्रांकित हैं:

1. उच्चतरमाध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के स्थगन व्यवहार काअध्ययन करना।
   - विद्यालयी गतिविधियों में विद्यार्थी स्थगन व्यवहार का अध्ययन करना।
   - विद्यार्थियों में स्थगन व्यवहार के स्तर का अध्ययन करना।
   - विद्यार्थियों में स्थगन व्यवहार के प्रति स्व-जागरूकता का अध्ययनकरना।
   - विद्यार्थियों में स्थगन व्यवहार के कारणों का अध्ययन करना।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के स्थगन व्यवहार कानिम्न सन्दर्भों में अध्ययन करना।
   - लिंग-भेद के सन्दर्भ में।
   - शिक्षा-बोर्ड के सन्दर्भ में।
   - विषय-वर्ग के सन्दर्भ में।
4. इस क्षेत्र में पहले से किये गये शोध
   - अग्रवाल, महिमा (2014): पारस्परिक सम्बन्ध और इण्टरनेट व्यसन: तनाव,निद्रा, संज्ञानात्मक असफलता व स्थगन के भविष्यवक्ता के रूप में: इस अध्ययन का उद्देश्य, पारस्परिक सम्बन्ध व इण्टरनेट व्यसन को तनाव, निद्रा, संज्ञानात्मक असफलता और स्थगन के भविष्यवक्ता के रूप में देखना था। शोध अध्ययन हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। न्यादर्श के रूप में वनस्थली विद्यापीठ, नेताजी सुभाष इन्स्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, श्रीराम कॉलेज ऑफ कॉमर्स, भास्कराचार्य कॉलेज ऑफ एप्लाइड सांइस आदि कॉलिजों से 17-25 वर्ष की आयु के 200 विद्यार्थियों (100 छात्र व 100 छात्राओं) का चयन किया गया। उपकरण के रूप में तिल्दें, नेल्सन व मेय (1990) द्वारा निर्मित पारस्परिक सम्बन्ध अनुसूची, यंग (1996) द्वारा निर्मित इन्टरनेट व्यसन परीक्षण, कॉहेन द्वारा निर्मित दृष्ट तनाव स्केल, लेय (1986) द्वारा निर्मित विलम्बन स्केल, मास्टिन, ब्रायसन एवं कोव्यं

(2000) द्वारा निर्मितनिद्रा स्वास्थ्य विज्ञान सूचकांक तथा ब्रोडबेन्ट, कॉपर, फिटजगेराल्ड एवं पारक्स (1982) द्वारा निर्मित संज्ञानात्मक असफलता प्रश्नावाली का प्रयोग किया गया। सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु टी-परीक्षण, सहसम्बन्ध तथा प्रतीपगमन सांख्यिकी का प्रयोग किया गया। निष्कर्षत: पारस्परिक सम्बन्ध को संज्ञानात्मक असफलता व निद्रा का नकारात्मक भविष्यवक्ता पाया गया तथा तनाव का सकारात्मक भविष्यवक्ता पाया गया। पारस्परिक सम्बन्ध का स्थगन के साथ असार्थक नकारात्मक सहसम्बन्ध पाया गया। इन्टरनेट वासन को तनाव, संज्ञानात्मक असफलता, निद्रा व स्थगन का सकारात्मक भविष्यवक्ता पाया गया। इन्टरनेट व्यसन को पारस्परिक सम्बन्ध का नकारात्मक भविष्यवक्ता पाया गया। लिंग-भेद के सन्दर्भ में पारस्परिक सम्बन्ध, इन्टरनेट व्यसन, निद्रा व संज्ञानात्मक असफलता में सार्थक अन्तर पाया गया जबकि तनाव व स्थगन में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

- चांग, हेनरी के. (2014): पूर्णतावाद, चिन्ता और शैक्षिक विलम्बन: कॉलेज विद्यार्थियों में आन्तरिक व ब्राह्य अभिप्रेरणा की भूमिका: इस अध्ययन का उद्देश्य कॉलिज विद्यार्थियों में शैक्षिक विलम्बन के भविष्यवक्ता के रूप में चिन्ता, पूर्णतावादिता व शैक्षिक अभिप्रेरणा के पारस्परिक प्रभाव का अध्ययन करना था। न्यादर्श के रूप में कैलिफोर्निया राज्य विश्वविद्यालय के सामाजिक विज्ञान कक्षा के 335 विद्यार्थियों (260 छात्राएँ व 75 छात्र) का चयन किया गया। उपकरण के रूप में जनसांख्यिकीय प्रश्नावली, वल्लेरंट पेल्लेतिएर, ब्लैस, ब्रिएरे, सनेकल व वल्लिएरेस द्वारा निर्मित शैक्षिक अभिप्रेरणा स्केल, हेविट व फ्लेट (1991) द्वारा निर्मित बहुआयामी पूर्णतावादी स्केल, सोलोमन तथा रोथब्लुम (1984) द्वारा निर्मित विद्यार्थी विलम्बन आँकलन स्केल तथा स्पिएल्वैर्ग्रेर (1983) द्वारा निर्मित राज्य विशेषता चिन्ता अनुसूची का प्रयोग किया गया। सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु वर्णनात्मक सांख्यिकी तथा सहसम्बन्ध सांख्यिकी का प्रयोग किया गया। निष्कर्षत: पूर्णतावादिता तथा शैक्षिक विलम्बन के मध्य आंशिक सम्बन्ध पाया गया। आन्तरिक अभिप्रेरणा की तुलना में ब्राह्य अभिप्रेरणा को शैक्षिक स्थगन से अधिक सम्बन्धित पाया गया तथा चिन्ता व शैक्षिक विलम्बन के मध्य विश्वसनीय सम्बन्ध पाया गया।
- मानसिक स्वास्थ्य से सम्बद्ध शोध अध्ययन
- अखानी, पन्ना, नन्दा राठी तथा पूजा नाथ (2003): आवासीय तथा गैर-आवासीय विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य तथा व्यक्तिगत मूल्यों का सहसम्बन्धात्मक अध्ययन: इस अध्ययन का उद्देश्य 18-22 वर्ष की आयु की आवासीय तथा गैर आवासीय बालिका विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य व व्यक्तिगत मूल्यों का सहसम्बन्ध ज्ञात करना था। अनुसंधानकर्ता द्वारा न्यादर्श के लिए यादृच्छिक रूप से एल. ए. डी. विश्वविद्यालय के विद्यालयों से 200 बालिका विद्यार्थियों का चयन किया गया जिसमें 100 बालिका आवासीय तथा 100 गैर-आवासीय क्षेत्रों से ली गयी। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए डॉ. आर. पी. वर्मा तथा डॉ. एम. वी. एस. जी. पी. शेरी की व्यक्तिगत मूल्य प्रश्नावली तथा प्रमोद कुमार की मानसिक स्वास्थ्य चेक-लिस्ट का प्रयोग किया गया। विश्लेषण के लिए मध्यमान, प्रमाप विचलन तथा टी-परीक्षण का प्रयोग किया गया। निष्कर्ष रूप में पाया गया कि आवासीय विद्यार्थियों के धार्मिक व्यक्तिगत मूल्य, गैर-आवासीय विद्यार्थियों से अधिक थे तथा गैर-आवासीय विद्यार्थियों के स्वास्थ्य व्यक्तिगत मूल्य अधिक उच्च थे तथा दोनों के मानसिक स्वास्थ्य में कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं था।
- शंकर, एस. प्रभु एवं रचेल जेबराज (2006): किशोर अनाथ बालकों के मानसिक स्वास्थ्य पर सुनामी का प्रभाव: इस अध्ययन का उद्देश्य था-किशोर अनाथ बालकों के मानसिक स्वास्थ्य पर सुनामी के प्रभाव का अध्ययन करना तथा इन बालकों की शैक्षिक उपलब्धि को निर्धारित करने में मानसिक स्वास्थ्य के प्रभाव का अध्ययन करना। न्यादर्श के रूप में तमिलनाडू के सुनामी से प्रभावित नागापट्टनम जिले के विभिन्न नगरों के कक्षा 8 से 12 तक के 9-15 साल के 80 अनाथ बालकों का चयन किया गया जिनमें 52 लड़के और 28 लड़कियाँ थी। उपकरण के रूप में ए. के. श्रीवास्तव (2003) द्वारा निर्मित मानसिक स्वास्थ्य अनूसची का प्रयोग किया गया। सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु प्रतिशत व टी-परीक्षण का प्रयोग किया गया। निष्कर्षत: पाया गया कि सुनामी प्रभावित अनाथ किशोर बालकों में से 78 प्रतिशत बालक मानसिक अशान्ति से ग्रस्त थे, उनमें से 14 प्रतिशत बालकों में संवेगात्मक अस्थिरता पायी गयी तथा शेष 8 प्रतिशत बालक असुरक्षा की भावना से ग्रस्त पाए गए। यह भी पाया गया कि बालकों में पाए जाने वाले मानसिक स्वास्थ्य के ये सभी पक्ष उनकी शैक्षिक उपलब्धि को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- सैनी, अमृता (2015): विद्यालयी परिवेश के सन्दर्भ में माध्यमिक विद्यालय विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य: इस अध्ययन का उद्देश्य विद्यालयी परिवेश का विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव का अध्ययन करना था। न्यादर्श के रूप में हरियाणा जिले के सरकारी माध्यमिक विद्यालयों व सरकारी अनुदान प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों से 600 विद्यार्थियों (300 छात्र व 300 छात्राएँ) का चयन किया गया। उपकरण के रूप में सिंह व गुप्ता की मानसिक स्वास्थ्य बैटरी तथा सिन्हा व भार्गव की सामाजिक-संवेगात्मक स्कूल परिवेश अनुसूची का प्रयोग किया गया। सांख्यिकीय विश्लेषण हेतुसहसम्बन्ध गुणांक का प्रयोग किया गया। निष्कर्षत: पाया गया कि विद्यालयी परिवेश व विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य एक-दूसरे से धनात्मक रूप से सहसम्बन्धित थे।

शिक्षक/भावी शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य से सम्बद्ध अध्ययन

- राउल, सुशंता कुमार (2002): स्वायत्त व गैर-स्वायत्त कॉलेज शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता का उनके मानसिक स्वास्थ्य, संगठनात्मक परिवेश तथा विद्यार्थी उपलब्धि के सम्बन्ध में तुलनात्मक अध्ययन: इस अध्ययन के उद्देश्य थे-स्वायत्त व गैर-स्वायत्त कॉलेज शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलताकी तुलना करना, लिंग, संगठनात्मक परिवेश तथा मानसिक स्वास्थ्य के सम्बन्ध में स्वायत्त व गैर-स्वायत्त कॉलेज शिक्षकों की शिक्षण

प्रभावशीलता में भिन्नता का अध्ययन करना तथा स्वायत्त व गैर-स्वायत्त कॉलेज के विद्यार्थियों की उपलब्धि में भिन्नता का अध्ययन करना। शोध अध्ययन हेतु सर्वेक्षण विधि का चयन किया गया। न्यादर्श के रूप में उड़ीसा के 3 स्वायत्त व 3 गैर स्वायत्त कॉलेजों में से बी.ए. अन्तिम वर्ष के 294 शिक्षकों (147 स्वायत्त कॉलेज से तथा 147 गैर-स्वायत्त कॉलेज से) तथा 63 विद्यार्थियों (21 विद्यार्थी, प्रत्येक कॉलेज से) का चयन किया गया। प्रदत्त संकलन हेतुपी. कुमार तथा डी. एन. मुठा (1982) द्वारा निर्मित शिक्षण प्रभावशीलता स्केल, डॉ. जगदीश तथा डॉ. ए. के. श्रीवास्तव (1988) द्वारा निर्मित मानसिक स्वास्थ्य अनुसूची, डॉ. एम. शर्मा (1978) द्वारा विकसित संगठनात्मक परिवेश वर्णनात्मक प्रश्नावली, शिक्षण रेटिंग स्केल तथा विद्यार्थी उपलब्धि प्रपत्र का प्रयोग किया गया। प्रदत्त विश्लेषण हेतु सहसम्बन्ध, टी-टेस्ट, एफ-टेस्ट तथा काई-स्क्वेअर का प्रयोग किया गया। निष्कर्षत: पाया गया कि गैर-स्वायत्त कॉलेज शिक्षकों की तुलना में स्वायत्त कॉलेज शिक्षकों कीशिक्षण प्रभावशीलता अधिक है। गैर स्वायत्त कॉलेज के पुरूष व महिला शिक्षकों की तुलना में स्वायत्त कॉलेज के पुरूष व महिला शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता अधिक पायी गयी। संगठनात्मक परिवेश के सम्बन्ध में स्वायत्त व गैर-स्वायत्त कॉलेज शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता में सार्थक अन्तर पाया गया। निम्न मानसिक स्वास्थ्य शिक्षकों की तुलना में उच्च मानसिकस्वास्थ्य शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता अधिक पायी गयी तथा स्वायत्त व गैर-स्वायत्त कॉलेज के विद्यार्थियों की उपलब्धि में सार्थक अन्तर पाया गया।

- ठाकुर, करतार सिंह एवं संजीव कुमार (2013): हिमाचल प्रदेश में विज्ञान के प्रत्याशित शिक्षकों की संवेगात्मक सामर्थ्यता के भविष्यवक्ता के रूप में मानसिक स्वास्थ्य: इस अध्ययन के उद्देश्य थे - सामाजिक वर्ग, लिंग-भेद और मानसिक स्वास्थ्य के आधार पर विज्ञान के प्रत्याशित शिक्षकों की संवेगात्मक सामर्थ्यता का अध्ययन व तुलना करना तथा सामाजिक वर्ग, लिंग-भेद व मानसिक स्वास्थ्य के आधार पर विज्ञान के प्रत्याशित शिक्षकों की संवेगात्मक सामर्थ्यता के पारस्परिक प्रभाव का अध्ययन व तुलना करना। शोध अध्ययन हेतु सर्वेक्षण विधि का चयन किया गया। न्यादर्श के रूप में हिमाचल प्रदेश के चार जिलों से विज्ञान के 120 प्रत्याशित शिक्षकों का सुविधाजनक व क्रमबद्ध यादृच्छिक न्यादर्शन विधि द्वारा चयन किया गया।

6. प्रस्तावित अनुसंधान प्रविधि:-

अ. परिकल्पना

प्रथमपरिकल्पनाएँ:

प्रथम उद्देश्य से सम्बन्धित अग्रलिखित परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है:

1.1 उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के स्थगन व्यवहार में विद्यालयी गतिविधियों के सन्दर्भ में विभिन्नता पायी जाऐगी।

1.2 उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के स्थगन व्यवहार के स्तर में विभिन्नता पायी जाऐगी।

1.3 उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की स्थगन व्यवहार के प्रति स्व-जागरूकता में (लिंग-भेद, शिक्षा-बोर्ड व विषय-वर्ग के आधार पर) विभिन्नता पायी जाऐगी।

1.4 उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के स्थगन व्यवहार के कारणों में (लिंग, भेद, शिक्षा-बोर्ड व विषय-वर्ग के आधार पर) विभिन्नता पाई जाऐगी।

संदर्भ ग्रंथ

- अदरेंती, रूठ अदुनोला, विलियम्स, तैवो मोतोलानी, ओयिन्लोये, कम्फर्टअदेबोला तथा उवान्ना, न्गोजी कैरलाइन (2013), शैक्षिक विलम्बन, अतिआत्मविश्वास एवं अभिभावकीय अवास्तविक अपेक्षाओं का स्नातकनाइजीरियन विद्यार्थियों में विद्रोहशीलता से सम्बन्ध, द अफ्रीकन सिम्पोजियम, 13 (1), 12-18।
- अग्रवाल, महिमा (2014), पारस्परिक सम्बन्ध और इण्टरनेट व्यसन: तनाव, निद्रा, संज्ञानात्मक असफलता व विलम्बन के भविष्यवक्ता के रूप में (एम. ए. लघु शोध प्रबन्ध), मनोविज्ञान विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थानएकॉफ, आर. एल. (1996), एक्सपेरिमेन्टल डिजाइन ऑफ सोशोलॉजिकलरिसर्च, न्यूयॉर्क: हॉर्पर एण्ड वाल।
- अखानी, पन्ना, राठी, नन्दा एवं नाथ, पूजा (2003), आवासीय तथा गैरआवासीय विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य तथा व्यक्तिगत मूल्यों कासहसम्बन्धात्मक अध्ययन, प्राची जनरल ऑफ साइको-कल्चरल डाइमेंशनस, 19 (2), 99-104।
- अल्लेंस्वार्थ, डी., लाव्सों, ई., नियोल्सों, एल. एवं व्च्चे, जे. (1997), स्कूल एण्डहेल्थ: आवर नेशन्स् इन्वेस्टमेन्ट. वाशिंगटन डी सी: नेशनल एकेडमी प्रेस।
- अट्किंसन, जे., बर्न., ई. एवं वुडवर्थ, आर. एस. (1988), डिक्शनरी ऑफसाइकोलॉजी (चौथा संस्करण), दिल्ली: गोयलसाब।
- बत्रा, क्षमा, मॉन्ट्री, असति तथा कौर, मंजीत (2011), माध्यमिक विद्यालय केजीव-विज्ञान के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर पारम्परिक व कृत्रिमप्रयोगशाला अनुभवों का प्रभाव, जनरल ऑफ कम्युनिटी गाइडेंस एण्ड रिसर्च, 28 (3)।
- भार्गव, महेश (2010), आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन, आगरा: राखी प्रकाशन।
- भट्नागर, डॉ. अनुराग एवं भट्नागर, डॉ मिनाक्षी (2007), भारत में शैक्षिकप्रणाली का विकास, मेरठ: आर. लाल बुक डिपो।
- भट्नागर, सुरेश एवं कुमार, संजय (2005), भारत में शिक्षा व्यवस्था के विकास, मेरठ: आर. लाल. बुक डिपो

- दुबे, भावेश चंद्र (2011), विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर शैक्षिक अभिप्रेरणातथा समायोजन का प्रभाव. भारतीय आधुनिक शिक्षा, 31 (3), 89-94।
- डुगल, निशा (2014), स्कूल विद्यार्थियों में शैक्षिक उपलब्धि तथा अवसादजनरलऑफ कम्युनिटी गाइडेंस एण्ड रिसर्च, 31 (2), 239-247।
- फैलन, एस. डब्ल्यू (1968), हिन्दुस्तानी कहावत कोष, नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट।
- फर्हम, मरयम एवं सानन्दराझ, सैम (2014), ग्रामीण व शहरी कॉलिजविद्यार्थियों में मानसिक स्वास्थ्य, स्व-सम्मान तथा आत्मनिष्ठ कल्याण काविश्लेषणात्मक अध्ययन. जी. सी. टी. ई. जनरल ऑफ रिसर्च एण्ड एक्सटेंशनइन एजुकेशन, 9 (2), 66-75।
- गुप्ता, रतन एवं अवस्थी, ओमप्रकाश (2013), शैक्षिक चिन्ता-किशोरों कीशैक्षिक उपलब्धि के लिए एक अभिशाप, एक वास्तविकता या मिथ्य, जनरल ऑफ इण्डियन एजुकेशन, 71-76।
- गुप्ता, एस. पी. एवं गुप्ता, अलका (2012), उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञानइलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन।
- हॉवर, ई. (2005), टुमारो, आई लव या! द क्रॉनिकल ऑफ हायर एजुकेशन,52(16), 149-158।
- के., करूणाकरन (2014), उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में शैक्षिकउपलब्धि के सम्बन्ध में आत्म-सम्प्रत्यय. जी. सी. टी. ई.-जनरल ऑफ रिसर्चएण्ड एक्सटेंशन इन एजुकेशन, 9 (1)।
- कहन, जोए (2011), डॉक्टरेट शोध प्रबन्ध लिखने वाले स्नातक छात्रों में आत्मप्रभावकारिता के सम्बन्ध में विलम्बन (एम. ए. लघु शोध प्रबन्ध), स्मिथ कॉलिजस्कूल फॉर सोशियल वर्क, नॉर्थम्प्टन,
- कपिल, एस. के. (2010), अनुसंधान विधियां, आगरा: एच. पी. भार्गव बुकहाउस 209
- कार्टर (1959), डिक्शनरी ऑफ एजुकेशन, न्यूयॉर्क: मैकाग्रॉ हिल।

योग की अवधारणा

डॉ० प्रियंका शुक्ला

पी. एच. डी. फिलासॉफी एवं योग

भारत प्राचीन काल से ही योग की जन्म भूमि एवं विस्तार भूमि रहा है। योग की अरूणिम रश्मियाँ भारत भूमि भास्कर से निकलकर सम्पूर्ण विश्व को आलोकित करती रहीं है।

मानव सभ्यता के उषाकाल से जब से मनुष्य को अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व एवं अस्तित्व का बोध हुआ, तब से मानव अपनी अंतर्भूत चेतना को परिमार्जित एवं परिष्कृत करने का प्रयास करते आया है। मानव चेतना के विविध आयामों में व्याप्त असंगति एवं विसंगति को दूर कर योग विद्या ने मानव चेतना को उसके मूल स्वरूप में स्थापित करने का प्रयास किया है। योग साधना से जहाँ एक ओर व्यष्टि चेतना अपने परम पुरुषार्थ मोक्ष, कैवल्य या निर्वाण (समाधि) की ओर उन्मुख हुई है, वहीं दूसरी ओर समष्टि स्तर पर योग साधना अस्तित्वगत एवं स्वरूपगत विभिन्नताओं को दूर करके ब्रह्माण्डीय चेतना में व्यष्टि चेतना को समाहित करने का प्रयास करती है। व्यष्टि और समष्टि का यह संयोग प्राचीनकाल से ही योग साधना का अभीष्ट रहा है। 'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे' का ऋषि उद्घोष कोई कपोल कल्पना नहीं है अपितु समाधि की गहराई में अनुभूत सत्य का निर्वचन है। योग साधना के विविध पक्ष मानव जीवन को सुव्यवस्थित, सुसंस्कृत, परिवर्धित, अनुरंजित एवं आनंदित करते हैं।

योगसाधना मानव जीवन में स्वास्थ्य, शांति एवं आनंद का संचार करते हुए मानव जीवन के विभिन्न पक्षों में सुसंगति स्थापित कर मानव जीवन को पूर्णता प्रदान करती है। यह योग साधना जहाँ एक ओर मानव जीवन से विभिन्न व्याधियों को दूर कर मनुष्य को नैसर्गिक आरोग्य प्रदान करती है, वहीं दूसरी ओर जन्म जन्मांतर की अज्ञानता के बंधन में आबद्ध मानव चेतना को मुक्त कर मुक्ति का आनंद प्रदान करती है। वस्तुतः योग साधना व्याधि से समाधि की ओर प्रयाण है। मानव जीवन इतना जटिल एवं विविध है कि लाख प्रयत्न करने के बाद भी कोई न कोई शारीरिक, मानसिक अथवा मनोदैहिक व्याधि हमें ग्रस्त कर लेती है। विभिन्न व्याधियों की पीड़ा में उलझी हुई मानव चेतना समाज के मार्ग पर कैसे उन्मुख हो सकती है? इसीलिए यह आवश्यक है कि समाधि की अनुभूति पूर्व मानव जीवन को व्याधि मुक्त किया जाए।

वर्तमान समय में योग का यही पक्ष सर्वाधिक प्रचलित एवं विख्यात है। आज योग साधना समाधि की साधना के बजाए लौकिक जीवन में रोग निदानोपाय के रूप में अधिक स्वीकृत एवं समाधित है। योग विशेषतः हठयोग की साधना में लीन असंख्य नर-नारी मूलतः रोगी है, जो समाधि के लिए नहीं बल्कि व्याधि से मुक्ति के लिए योग कर रहें है, क्योंकि व्याधि, जीवन को उसके नैसर्गिक आनंद से वंचित करके नाना प्रकार के असह्य दुखों एवं कष्टों से भर देती है। विभिन्न प्रकार की व्याधियों से कराहता हुआ मानव समाज आज नैसर्गिक आरोग्य की उपलब्धि के लिए योग की शरण में है। योग की साधना मनुष्य के नाना प्रकार के दुखों का निराकरण कर देती है। ''स्वल्पमेव धर्मस्य त्रायते महतो भयात्'' की सूक्ति को चरितार्थ करते हुए आज योग साधना रोगनिदानोपाय के रूप में पूर्णतः प्रतिष्ठित होती जा रही है। विपुल वैभव से सम्पन्न दुनिया के तमाम देश नित्य नवीन असाध्य व्याधियों के शिकार होते जा रहे है। संसाधनों की प्रचुरता उन्हें समग्र स्वास्थ्य प्रदान करने में अपर्याप्त प्रतीत होती है। एक ओर कथित सम्पन्न मानव समाज में धन का प्रभाव है तो दूसरी ओर एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका जैसे विभिन्न क्षेत्रों में धन का अभाव है। धन का प्रभाव एवं धन का अभाव दोनों ही मानव समाज को व्याधि ग्रस्त करते आए हैं। धन के प्रभाव के कारण जहाँ एक ओर धन में मदान्ध मानव समाज अपनी नित्य नवीन इच्छाओं की पूर्ति के लिए अप्राकृतिक, अवैज्ञानिक एवं अनुचित जीवन शैली अपनाकर व्याधि ग्रस्त हो रहे है, वहीं दूसरी ओर धन के अभाव से पीड़ित समाज कुपोषण एवं व्यसनजनित व्याधियों का शिकार होता जा रहा है। योग साधना के माध्यम से व्यक्ति प्रभाव एवं अभाव से मुक्त होकर अपने मूल स्वभाव में जीवन व्यतीत करता है और मानव चेतना मूलतः सच्चिदानंद स्वरूप है अर्थात् जहाँ सत, चित्त और आनंद शाश्वत रूप में विद्यमान है। योग साधना का यह बहुप्रचलित स्वरूप व्याधिग्रस्त मानव के जीवन में व्याप्त भय एवं निराशा को दूर करके उसमें एक नवीन आशा एवं उत्साह का संचार करता है। नाना प्रकार के प्रयोगों से यह सर्वथा सिद्ध हो चुका है कि आज मानव समाज में व्याप्त विभिन्न असाध्य व्याधियों का सफल निदानोपाय योग द्वारा सहज ही संभव है। इस प्रकार योग आज एक उपचार पद्धति के रूप में अधिक प्रासंगिक सिद्ध हुआ है। जब हम आधुनिक परिप्रेक्ष्य में योग की प्रासंगिकता तथा रोग निदानोपाय पर विचार करते है, तो हम पाते है कि आधुनिक जीवन में विद्यमान जटिलता को योग द्वारा सरल किया जा सकता है।

सरल जीवन, स्वस्थ जीवन की आधारशिला है, हमारी जीवन शैली जितनी ही जटिल एवं अवैज्ञानिक होगी उतना ही व्याधिग्रस्त होने की आशंका बढ़ जाती है। नाना प्रकार की व्याधियाँ मूलतः स्वास्थ्य के नियमों की उपेक्षा एवं अवहेलना का परिणाम है। स्वस्थ जीवन प्रकृति का सर्वोच्च वरदान है। धन की पिपासा में दौड़ता हुआ मानव समाज यह भूल जाता है कि धन के अर्जन एवं धन के उपभोग के लिए उत्तम स्वास्थ्य एक पूर्व अपेक्षा है। उत्तम स्वास्थ्य के बिना हमारा कार्य निष्पादन अधिकतम नहीं होगा, फलतः अर्थ की पर्याप्त प्राप्ति नहीं होगी और साथ ही साथ यदि हम उत्तम स्वास्थ्य से वंचित है तो प्राप्त

धन का उपभोग भी नहीं कर सकते, इसीलिए धन के अर्जन व उपभोग की दृष्टि से उत्तम स्वास्थ्य एक अनिवार्य आवश्यकता है। इसी परिप्रेक्ष्य में आज योग की प्रासंगिकता नित प्रति बढ़ती जा रही है। प्राचीन काल में मानव जीवन अत्यंत सरल था। जीवन में शारीरिक श्रम की प्रतिष्ठा थी, अंत:करण शुद्ध एवं पर्यावरण प्रदूषण मुक्त था। नाना प्रकार की प्रतियोगिताओं से मुक्त मानव समाज सहज ही स्वास्थ्य शांति और आनंद का प्रतिरूप था। समय के प्रवाह के साथ जैसे-जैसे जीवन और जगत की स्थितियां जटिल होती गई, वैसे-वैसे मानव समाज नाना प्रकार के साध्य व असाध्य बीमारियों से ग्रस्त होता गया। जटिलता ही व्याधियों का मूल कारण है और सरलता ही उसका निदानोपाय है। योग साधना के माध्यम से हमारा जटिल जीवन सरल जीवन में परिवर्तित हो जाता है और हम सरल, सहज, निर्मल जीवन के अधिकारी बनते हैं।

आज योग साधना मानव जीवन से जटिलताओं को दूर करने का सबसे सरल, सहज एवं सुगम साधन है। न्यूनतम संसाधनों के द्वारा सम्पादित की गई योग साधना से महानतम् सिद्धियों की उपलब्धि सहज संभव है। इस दृष्टि से भी आधुनिक परिप्रेक्ष्य में योग की प्रासंगिकता कहीं अधिक बढ़ जाती है और रोग निदानोपाय के रूप में योग की महत्ता सहज ही स्थापित हो जाती है। योग परम्परा प्राचीनकाल से ही भारत भूमि पर अपने चरण चिन्ह् अंकित करती आई है, जिस पर चलकर असंख्य योग गुरुओं ने समाज को ज्ञान, भक्ति और मुक्ति का मार्ग दिखाया है। योग शास्त्र में ईश्वर का निर्वचन गुरुओं के गुरु अर्थात् परम गुरु के रूप में किया गया है।

''स पूर्वषाम् अपि गुरु: कालेनानवच्छेदात्।।''[4]

''तस्य वाचक प्रवण:।।''[5]

और इस परमगुरु स्वरूप परमात्मा का वाचक प्रणव रहा है। इस प्रकार परमात्मा की साधना गुरु वंदना के रूप में योग परम्परा में प्राप्त होती है। योग की विभिन्न शाखाओं में विभिन्न योग गुरुओं की एक सुदीर्घ गुरु-शिष्य परम्परा प्राप्त होती है। गुरुमुखी विद्या होने के कारण योगविद्या का आद्योपान्त अनुशीलन गुरु सत्ता के बिना कदापि संभव नहीं हो पाता है।

योग परम्परा में गुरुसत्ता का केन्द्रीय महत्व है विभिन्न योग ग्रन्थों में यह स्पष्ट निर्देश प्राप्त होता है कि योग साधना योग्य गुरु के निर्देशन में ही करना चाहिए। यही कारण है कि प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक विभिन्न योग शाखाओं में एक अविरल योग गुरु परम्परा प्राप्त होती है। इस परम्परा में उत्तरवर्ती गुरुसत्ता, पूर्ववर्ती गुरुसत्ता से प्राप्त ज्ञान को नवीन कलेवर एवं नवीन आयाम प्रदान करती है। गुरुसत्ता के इन्हीं प्रयासों के परिणाम स्वरूप योग विद्या पुरातन, सनातन होते हुए भी नित्य नवीन प्रतीत होती है। यहाँ इसके मूल में प्राचीनता की आधारशिला है, वहीं इसके नव पुष्प-पल्लव नवीनता एवं मौलिकता का सौरभ बिखेरते हैं।

संदर्भ-सूची

1. कर्णाटक, डॉ. विमला, पातञ्जलयोगदर्शनम्, तत्त्ववैशारदी योगवर्तिकेटीका, खण्ड चतुष्टय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, एवं रत्ना पब्लिकेशन्स, वाराणसी, 1992,
2. पातञ्जलयोगदर्शन, गीताप्रेस गोरखपुर, 1/2,
3. पातञ्जलयोगदर्शन, गीताप्रेस गोरखपुर, 1/12,
4. तीर्थ, ओमानन्द पातंजल योग प्रदीप, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2015, श्लोक 1/26.
5. तीर्थ, ओमानन्द पातंजल योग प्रदीप, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2015, श्लोक 1/27.

कथासरित्सागरः समग्र विवेचन

डॉ० मधु बाला सिन्हा

सहप्राचार्य, संस्कृत, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय,
काजीपुर, पटना (का.सिं.द.सं. विश्वविद्यालय, दरभंगा)

कथासरित्सागर संस्कृतकथासाहित्य का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसकी रचना कश्मीर के कवि सोमदेव ने की। सोमदेव ने 21588 पद्यों से युक्त इस ग्रन्थ की रचना कश्मीर के राजा अनन्त की पत्नी सूर्यमती के मनोविनोद के लिए 1063 ई. से 1081 ई. के मध्य की। इसका उपजीव्य बृहत्कथा है। बृहत्कथा लोकथाओं का प्राचीनतम संग्रह है जिसे गृणाढ्य ने पैशाची भाषा में लिखा था। 18 लम्बकों एवं 124 तरंगों में विभक्त कथासरित्सागर बृहत्कथा की अन्तिम वाचना है। यद्यपि यह बृहत्कथा का संस्कृतसंस्करण है[1] तथापि कथाओं के प्रस्तुतिकरण की दृष्टि से सोमदेव का विशिष्ट स्थान है। इनकी प्रवाहमयी शैली की रोचकता अद्वितीय है। मानवीय प्रकृति का चित्रण, भाषा शैली की सरलता, वर्णन-सौन्दर्य एवं चातुर्यपूर्ण उक्तियाँ इत्यादि काव्यकौशल ने कथासंग्रह को अद्वितीय बना दिया। सोमदेव ने मूलग्रन्थ बृहत्कथा की औचित्य परम्परा की रक्षा करते हुए इसमें कुछ नवीन काव्यांशों की योजना भी की है।[2]

कथासरित्सागर में 'वेतालपचविंशति'[3] (25 कथाएँ) नामक कथाओं का संकलन भी है। ये कथाएं, कश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी में भी हैं।[4] इन कथाओं के वर्णन में क्षेमेन्द्र ने जहाँ 1203 श्लोकों का प्रयोग किया है, वहीं सोमदेव 2195 श्लोकों का प्रयोग करते हैं। पञ्चतन्त्र की भी अनेक कथाएँ इनमें आयी हैं। इसमें मूलकथाओं के अतिरिक्त 350 अन्तर्निविष्ट कथाएँ हैं। सोमदेव ने कथा के माध्यम से तत्कालीन भारतीय समाज का यथार्थ चित्रण किया है। 11वीं शताब्दी के कश्मीरी समाज की स्त्रियाँ प्रायः अमर्यादित उच्छृंखलता की प्रतीक थीं। कथासरित्सागर ने उनके इस स्वरूप का निःसंकोच वर्णन किया है। वैसे नैतिकता एवं भारतीय जीवन-दर्शन का भी विस्तृत उल्लेख इसमें मिलता है। कहीं प्रकारान्तर से सुपात्र को कन्यादान करने की बात[5], तो कहीं किसी का बुरा नहीं करने की बात6 कही गयी है।

कथासरित्सागर में अठारह लम्बक हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं - (1) कथापीठ (2) कथामुख (3) लावाणक (4) नरवाहनदत्तजनन (5) चतुर्दारिका (6) मदनमंचुका (7) रत्नप्रभा (8) सूर्यप्रभ (9) अलंकारवती (10) शक्तियशस् (11) वेला (12) शशांकवती (13) मदिरावती (14) पञ्च (15) महाभिषेक (16) सुरतमञ्जरी (17) पद्मावती तथा (18) विषयशील।

'कथापीठ' नामक प्रथम लम्बक में कुल आठ तरङ्ग तथा 824 पद्य हैं। इसके अन्तर्गत आने वाले तरङ्गों में पद्यों की संख्या क्रमशः 66,83,79,137,141,167,113 तथा 38 है। इसमें मुख्य रुप से शिव-पार्वती संवाद, पुष्पदन्त और माल्यवान् को पार्वती का शाप, वररुचि, व्याडि, राजा ब्रह्मदत्त, उपकोशा, चाणक्य, गुणाढ्य, राजा सातवाहन, शिववर्मा इत्यादि की कथाएँ हैं। द्वितीय लम्ब ''कथामुख'' नाम का हैं इसमें तरङ्गों की संख्या छह (6) है और पद्यों की संख्या क्रमशः 90, 217, 83, 195, 196 तथा 90 है। इस प्रकार इस लम्बक में कुल 871 पद्य हैं। इसके अन्तर्गत आने वाली कथाओं में राजा सहस्रानीक, रानी मृगावती, राजा उदयन, राजा चण्ड महासेन, लोहजंघ, समुद्रदत्त, रुद्र और प्रमद्वरा की कथाएँ प्रमुख हैं। तृतीय लम्बक का शीर्षक ''लावाणक'' है। इसमें कुल 1198 पद्य तथा छह (6) तरङ्ग हैं। इन तरङ्गों की पद्य-संख्या क्रमशः 149,123,171,407,118 तथा 230 है। इस प्रकार यह लम्बक प्रथम और द्वितीय लम्बक की अपेक्षा दीर्घकाय है। इसमें सबसे छोटा तरङ्ग पांचवाँ (118 पद्य) तथा सबसे बड़ा चौथा (407 पद्य) है। इस लम्बक में वर्णित कथाओं में वत्सराज उदयन, निपुण वैद्य, धूर्त साधु, राजा देवसेन, यइल्लक सेठ, राजा पुण्यसेन, वासवदत्ता, सोमप्रभा और गुहसेन, इन्द्र और अहल्या, फलभूति, गणपति तथा कालरात्रि की कथा प्रमुख हैं।

''नरवाहनदत्तजनन'' नामक चतुर्थ लम्बक में पद्यों की संख्या 501 तथा लम्बकों की संख्या तीन है। इसमें प्रथम तरङ्ग में 148, द्वितीय में 259 तथा तृतीय में 94 पद्य हैं। इसमें भी मुख्यरूप से राजा उदयन की कथा को आगे बढ़ाया गया है जिसमें वत्सराज का मृगया-वर्णन, वत्सराज को नारद द्वारा उपदेश, उन्हें पुत्र की प्राप्ति, वासवदत्ता का स्वप्न आदि हैं। साथ ही राजा पाण्डु, राजा देवदत्त, पिंगलिका, कद्रू और विनता इत्यादि की कथाएँ भी हैं।

पञ्चम लम्बक का शीर्षक 'चतुर्दारिका' है। चतुर्थ लम्बक की तरह इसमें भी तरङ्गों की संख्या तीन ही है। इसमें कुल 820 पात्र हैं जिनमें 233 पद्य प्रथम तरङ्ग में, 298 पद्य द्वितीय तरङ्ग में तथा 289 पद्य तृतीय तरङ्ग में हैं। इसमें शक्तिवेग, हरस्वामी, अशोकदत्त बिन्दुमती, देवदत्त इत्यादि की कथाएँ प्रमुख हैं। प्रथम लम्बक की तरह ''मदनमञ्चुका'' नामक षष्ठ लम्बक भी तरङ्गों की दृष्टि से अपेक्षाकृत बड़ा है। इसमें भी तरङ्गों की संख्या प्रथम लम्बक के तरङ्गों जितनी, आठ, ही है। इसकी कथाओं में राजा कलिंगदत्त, सुरभिदत्ता, राजा धर्मदत्त, राजा सुषेण, सोमप्रभा, कलिंगसेना, तेजस्वती, कदलीगर्भा, राजा श्रुतसेन, मदनमञ्चुका, राजा शूरसेन इत्यादि कथाएँ प्रमुख हैं। इसमें क्रमशः 211, 193, 199, 144, 96, 196, 217 तथा 256 पद्य हैं। कुल पद्यों की संख्या 1512 है।

''रत्नप्रभा'' शीर्षक वाले सप्त लम्बक में 1627 पद्य तथा नौ तरङ्ग हैं। इन तरङ्गों में क्रमशः 164, 134, 244, 161, 247, 116, 61, 225 तथा 275 पद्य हैं। इसमें रत्नप्रभा, राजा विक्रमतुंग, राजा रत्नाधिप, सोमस्वामी, राजा विक्रमादित्य, सिकता-सेतु, नागार्जुन, कर्पूरिका, नरवाहनदत्त का कर्पूरसंभव द्वीप के लिए प्रस्थान करना इत्यादि कथाएँ हैं। अष्टम में तरङ्गों की संख्या सात, पद्यों की संख्या 1572 तथा लम्बक का शीर्षक 'सूर्यप्रभ' है। तरङ्गों में पद्यों की संख्या क्रमशः 187, 413, 249, 121, 138, 252 तथा 212 हैं। इसके षष्ठ तरङ्ग का 244वाँ पद्य लुप्त है। इसमें नरवाहनदत्त की कथा, चन्द्रप्रभ की सभा में मय दानव का आगमन, सूर्यप्रभ के दरबार में नारद मुनि का आगमन, काल ब्राह्मण की कथा, कलावती की कथा, सूर्यप्रभ-चरित, गुणशर्मा ब्राह्मण की कथा इत्यादि वर्णित है।

नवम लम्बक का शीर्षक ''अलङ्कारवती'' है। छह (6) तरङ्गों वाले इस लम्बक में कुल 1738 पद्य हैं जो इन तरङ्गों में क्रमशः इस रूप में विभक्त हैं- 227, 410, 197, 241, 239 तथा 424 पद्य। पञ्चम तरङ्ग के 125वें तथा 126वें पद्य में भाषान्तर पाया जाता है। इसी तरङ्ग का 138 वाँ पद्य खण्डित है। इस पद्य का पूर्वार्ध लुप्त है। पुनः अन्तिम तरङ्ग (षष्ठ तरङ्ग) का 213 वाँ पद्य पूर्णतः लुप्त हैं। इसमें नरवाहनदत्त, अलङ्कारवती, राम और सीता, अशोकमाला, स्थूलभुज विद्याधर, अनंगरति, अनंगप्रभा, प्रलम्बबाहु, वीरवर, सुप्रभ, राजा चमरवाल, राजा बहुसुवर्ण, मरुभूति, राजा कनकवर्ष, नल और दमयन्ती इत्यादि की कथाएँ हैं।

दशम लम्बक का शीर्षक ''शक्तियशस्'' है। दस तरङ्गों वाले इस लम्बक में कुल 2125 पद्य हैं। द्वादश लम्बक के बाद यह दूसरा सबसे बड़ा लम्बक है। इसके प्रथम तरङ्ग में 177 पद्य हैं किन्तु 35 वें पद्य का पूर्वार्ध अप्राप्त है। द्वितीय तरङ्ग 141 पद्य का है जिसके 54 वें पद्य का उत्तरार्ध लुप्त है। तृतीय तथा चतुर्थ तरङ्ग में क्रमशः 179 एवं 254 पद्य हैं। पञ्चम तरङ्ग में 330 पद्य हैं किन्तु इसका 283 वाँ पद्य लुप्त है। पुनः 237 पद्य वाले षष्ठ तरङ्ग का 208 वाँ पद्य अनुपलब्ध है। सप्तम तरङ्ग में 194 पद्य हैं और इसके 125 वें पद्य का उत्तरार्ध उपलब्ध नहीं है। अष्टम, नवम तथा दशम तरङ्ग में क्रमशः 164, 256 एवं 193 पद्य हैं। इसमें भी छोटी-बड़ी अनेक कथाएँ हैं जिनमें मुख्य हैं- भद्रघट, आलजाल, विक्रमसिंह और कुमुदिका, दुःशीला और देवदास, राजा सिंहबल और कल्याणवती, शक्तियशा का कौशाम्बी में आगमन, मनोरथप्रभा, संजीवक (बैल) और पिंगलक (सिंह), हंस, बन्दर, सिंह, खटमल, हिरण्यक चूहा, मूर्ख सेवक, ब्राह्मण और नेवला, सर्प, दुष्टा स्त्री तथा हिरण्याक्ष इत्यादि की कथा। इसके अतिरिक्त नरवाहनदत्त से सम्बन्धित अनेक घटनाओं का भी स्थल-स्थल पर उल्लेख हैं।

''वेला'' नामक एकादश लम्बक में मात्र एक ही तरङ्ग है जिसमें पद्यों की संख्या 115 है। इसमें नरवाहनदत्त की कथा आगे बढ़ाई गयी है। साथ ही रुचिरदेव और पोतक की कथा तथा व्यापारी और वेला की कथा दी गयी है। यह सभी लम्बकों में सर्वाधिक लघुकाय है। इसमें मङ्गलाचरण में गजानन की स्तुति की गई है-

नमताशेषविघ्नौघवारणं वारणाननम्।
कारणं सर्वसिद्धीनां दुरितार्णवतारणम्।।

''शशाङ्कवती'' नामक द्वादश लम्बक सर्वाधिक दीर्घकाल है। इसमें 4275 पद्य हैं तथा यह 36 तरङ्गों में विभक्त हैं इन तरङ्गों में पद्यों की संख्या क्रमशः इस प्रकार है - 73, 185, 132, 305, 407, 441, 326, 196, 42, 95, 132, 50, 54, 115, 52, 39, 68, 39, 171, 60, 61, 115, 207, 61, 87, 102, 137, 97, 51, 48, 75, 58, 59, 392, 153 तथा 245 इनमें षोडश तथा अष्टादश तरङ्ग सबसे छोटे, मात्र 39 पद्य वाले हैं जबकि षष्ठ तरङ्ग सबसे बड़ा, 441 पद्य वाला है। सम्पूर्ण कथासरित्सागर के सभी लम्बकों के अन्तर्गत आनेवाले समस्त तरङ्गों में से लघुत्तम और महत्तम पद्य वाले तरङ्ग इसी द्वादश लम्बक में हैं। इसमें मृगाङ्गदत्त की कथा, वराह की कथा, दान-शील-क्षमा-धैर्य-ध्यान तथा प्रज्ञापारमिताकथा, राजा भूनन्दन की कथा इत्यादि के वर्णनान्तर 'वेतालपञ्चविंशतिकां' शीर्षक से ''वेताल'' की 25 (पचीस) अदभुत कथाएँ दी गयी हैं। ये कथाएँ आठवें से 32वें तरङ्ग तक आयी हैं। आठवें तरङ्ग के 59 वें पद्य से प्रथम वेताल की कथा आरम्भ होती है जबकि द्वात्रिंश तरङ्ग के 41वें पद्य के बाद पञ्चविंश वेताल

की समाप्ति होती है। द्वादश लम्बक का प्रायः अर्धभाग वेतालकथाओं से व्याप्त है। इन 25 वेतालकथाओं में पद्यों की संख्या क्रमशः इस प्रकार है - 138, 41, 95, 132, 50, 54, 115, 52, 39, 68, 39, 171, 60, 61, 115, 207, 61, 87, 102, 137, 97, 51, 48, 75 तथा 41, यद्यपि ''वेतालपञ्चविंशतिका'' 2194 पद्यों में फैली है तथापि प्रथम वेताल (अष्टम तरङ्ग का 59 वाँ पद्य) से आरम्भ कर पञ्चविंशवेताल (द्वात्रिंश तरङ्ग का 41 वाँ पद्य) की कथाएँ 2136 पद्यों की ही हैं। पुनः चतुस्त्रिंश (34) तरङ्ग का 158 वें पद्य का उत्तरार्ध 272 में पद्य का उत्तरार्ध तथा 353 वें पद्य का उत्तरार्ध लुप्त है। इन वेताल-कथाओं के पश्चात् मृगाङ्कदत्तकृत गणपतिस्तुतिः, मन्त्रिचतुष्टय का वृत्तान्त, सुन्दरसेन और मन्दारवती की कथा, मृगाङ्कदत्त और कर्मसेन का युद्ध, मृगाङ्कदत्त द्वारा शशाङ्कवती का हरण तथा दोनों का विवाह इत्यादि प्रमुख कथाएँ हैं।

''मदिरावती'' नामक त्रयोदश लम्बक में एकादश लम्बक (वेला) के समान एक ही तरङ्ग है जिसमें 299 पद्य हैं। इसके 76वें पद्य का उत्तरार्ध अनुपलब्ध है। इसमें मुख्यतः नरवाहनदत्त द्वारा मलयाचल-भ्रमण, वहाँ दो ब्राह्मणपुत्रों का समागम, प्रथम ब्राह्मणपुत्र और मदिरावती की कथा, द्वितीय ब्राह्मणपुत्र की कथा, नरवाहनदत्त का कौशाम्बी आगमन इत्यादि वृत्तान्त दिये गये हैं। चतुर्दश लम्बक का शीर्षक ''पञ्च'' है जिसमें चार तरङ्ग हैं। इन तरङ्गों में पद्यों की संख्या क्रमशः 91, 186, 139 तथा 209 है। इस प्रकार इस लम्बक में कुल 625 पद्य हैं। इसकी कथाओं में मुख्य हैं- मदनमञ्चुका का हरण, अष्टावक्र की पुत्री सावित्री की कथा, वेगवती की कथा, नरवाहनदत्त का गन्धर्वपुरगमन तथा वहाँ राजकुमारी गन्धर्वदत्ता से विवाह, प्रभावती की कथा, नरवाहनदत्त तथा मदनमञ्चुका का समागम, वेगवती की कथा, ब्राह्मण की कथा, मरुभूति की कथा, हरिशिख की कथा, नरवाहनदत्त का पञ्चकन्याओं के साथ विवाह इत्यादि।

''महाभिषेक'' शीर्षक वाले पञ्चदश लम्बक में तरङ्गों की संख्या दो (2) तथा पद्यों की संख्या 300 है। प्रथम तरङ्ग में 152 पद्य तथा द्वितीय तरङ्ग में 148 पद्य हैं। इसमें अमृप्रभ नामक विद्याधर का आगमन, उसकी प्रेरणा से वामदेव के आश्रम में नरवाहनदत्त का गमन, त्रिशीर्षगुहा का वृत्त, नरवाहनदत्तकृत कालरात्रिस्तुति, मन्दरदेव के साथ युद्ध, नरवाहनदत्त की विजय, नरवाहनदत्त का कैलास-गमन, नरवाहनदत्त और मदनमञ्चुका का अभिषेक इत्यादि का आख्यान वर्णित है।

षोडश लम्बक का नाम ''सुरतमञ्जरी'' तथा इसके पद्यों की संख्या 420 है। इसमें तीन (3) तरङ्ग हैं जिनमें क्रमशः 106, 214 तथा 100 पद्य हैं। इसमें सुषेणा और शूरसेन की कथा, वत्सराजादि का परलोकगमन, सुरतमञ्जरी की कथा, राजकन्या तथा कैवर्तककुमार की कथा, वणिक्कन्या तथा चोर की कथा, जीमूतवाहन आदि के राज्यभ्रंश का कारण तथा तारावलोक की कथा इत्यादि आख्यान हैं। ''पद्मावती'' नामक सप्तदश लम्बक में तरङ्गों की संख्या छह (6) तथा पद्यों की कुल संख्या 993 हैं। ये पद्य इन तरङ्गों में क्रमशः इस प्रकार हैं- 144, 156, 95, 182, 197 तथा 219 पद्य। इसमें प्रथम तरङ्ग में राजा ब्रह्मदत्त तथा दिव्यहंसद्वय की कथा, द्वितीय में विद्युत्ध्वज की कथा, तृतीय में विधुत्ध्वज और मुक्ताफलध्वज के युद्ध का वर्णन, चतुर्थ में पद्मावती और मुक्ताफलध्वज का आख्यान, पञ्चम में मुक्ताफलकेतु और मलयध्वज की कथा तथा षष्ठ में पद्मावती और मुक्ताफलध्वज के विवाह का वृतान्त है।

''विषमशील'' नामक अष्टादश लम्बक कथासरित्सागर का अन्तिम लम्बक है। इसमें कुल पाँच (5) तरङ्ग तथा 1120 पद्य है। प्रथम तरङ्ग में 133 पद्य, द्वितीय में 280, तृतीय में 112, चतुर्थ में 345 तथा पञ्चम तरङ्ग में 250 पद्य हैं। इसमें मदनमञ्जरी की कथा, विक्रमादित्य के विवाह की कथा, विक्रमादित्य तथा कलिङ्गसेना की कथा, ब्राह्मणपुत्र की कथा, अग्निशर्म ब्राह्मण की कथा इत्यादि आख्यान हैं। इस लम्बक में नरवाहनदत्त की कथा को समाप्त किया गया है साथ ही बृहत्कथा के श्रवणादि के फलों का भी उल्लेख है। इस प्रकार विषमशील नामक लम्बक की समाप्ति होती है।

कुल 20935 पद्यों में अठारह लम्बकों की रचना की गयी है और ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थकर्ता की प्रशस्ति 13 पद्यों में है जिसमें राजा अनन्त की वीरता, रानी सूर्यमती की दानशीलता, उनके पुत्र राजा कलश तथा पौत्र श्री हर्षदेव का वर्णन है। साथ ही कथासरित्सागर को सज्जनों के हृदय के लिए आनन्ददायक होने की कामना की गयी है।7 इसप्रकार इसमें कुल 20948 (20935+13) पद्य हैं। इस ग्रन्थ की एक विशेषता यह भी है कि प्रत्येक तरङ्ग में मङ्गलाचरण के रूप में एक ही पद्य (इदं गुरुगिरीन्द्रजा..... भवप्रसादेन ते।) का बार-बार प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार अपनी सरलता, सहज-स्वाभाविकता, रोचकता तथा विचित्रता के कारण कथासरित्सागर एक अद्वितीय रचना है। कथाओं में विषयवस्तु की दृष्टि से वैविध्य, इसकी विशेषता है। अनावश्यक पाण्डित्य प्रदर्शन का अभाव है। इसमें कथा के माध्यम से चारित्रिक विकास का प्रयास किया गया है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मनोरञ्जन तथा चारित्रिक उत्थान में समर्थ यह ग्रन्थ संस्कृतकथासाहित्य की अनुपम कृति है।

सन्दर्भसूची:-

1. कथासरित्सागर-1.1.3-बृहत्कथाया : सारस्य संग्रहं रचयाम्यहम्।
2. कथासरित्सागर-1.1.11-12
3. कथासरित्सागर-12.8-32
4. बृहत्कथामञ्जरी-9.2.19-1221
5. कथासरित्सागर-5.1.26
6. कथासरित्सागर-3.6.213
7. कथासरित्सागर, ग्रन्थकर्तुः प्रशस्ति, पद्यसंख्या-13

श्रमिक वर्ग के मसीहा डॉ० अम्बेडकर

प्रा० डॉ० माधव केरबा वाघमारे

राजनीती विज्ञान विभाग प्रमुख, कै. न्हानाभाऊ मन्साराम तुकाराम पाटील स्नातक महाविद्यालय, मारवड, ता. अमलनेर
जि. जलगांव (महाराष्ट्र) 425401

प्रास्ताविक

डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर बिसवी सदी के महानायक, युगपुरुष है द्य भारत के सामाजिक; आर्थिक; राजनैतिक और संविधान निर्माण में उनका योगदान महत्वपूर्ण है। भारत के पिछेडे वर्ग अनुसूचित जाती और जनजाती ओको सन्मानपूर्वक जीवन प्रदान करने हेतू उनका कार्य अमूल्य है। शोषण; जातीयवादी भारतीय समाज विरोध में उन्होने क्रांती का तत्वज्ञान दिया; इसलिए उनको सामाजिक क्रांती के युगपुरुष कहा जाता है। आधुनिक भारत में जिन्होने अपने कार्यो से देश को नई राह दिखाई ऐसे महान लोंगो में डॉ.बाबासाहब अम्बेडकरजी का योगदान अधिक तथा उनका सामाजिक दायित्व अत्यंत मौलिक और महत्वपूर्ण रहा। सामान्य; दरिद्री अनु.जाती जनजाती पिछडे वर्ग जो हजारो सालों से शोषित जीवन-ज्ञापन कर रहे श्रमिकों के अधिकारों के लिए उन्होने जीवनभर संघर्ष किया साथ ही भारतीय संविधान का निर्माण करके सभी लोगो को न्याय देकर भारत की एकता अखंडता; एवं प्रजातंत्र में कोई बाधा निर्माण न हो इसपर ध्यान दिया। जिस तरह वे शोषितों के नेता थे उसी तरह प्रभावी राष्ट्रवादी नेता भी थे। भारत मे अनु.जाती; जनजाती दलित एवं अन्य पिछडे वर्ग के उत्थान के साथ ही डॉ.अम्बेडकरजीं का श्रमिक के हित और कल्याण तथा उनको हक दिलाने में महत्वपूर्ण योगदान है ।

शोध-विधी

इस शोध पत्र को द्वितीयक स्त्रोतो से ग्रहण किया गया है। इसमे ऐतिहासिक विश्लेषण वर्णनात्मक तथा व्यक्तीगत अनुभवो को स्थान दिया है। प्रस्तुत शोध सामग्री प्रसिद्ध पुस्तको, पत्रपत्रिकाओ एवं समाचार पत्रो और नेट पर उपलब्ध जानकारी से प्राप्त हो गई है।

डॉ. बाबासाहब अम्बेडकरजी का कार्य

डॉ. बाबासाहब अम्बेडकरजी का जन्म 14 अप्रेल 1891 इ. को इन्दौर के पास महु छावणी में हुआ। तथा उनकी माध्यमिक शिक्षा का अध्ययन सातारा में हुआ; बाद मे उच्च शिक्षा हेतू अमेरिका; लंडन गए। विदेश से उच्च शिक्षा लेकर बॅरिस्टर की उपाधी ली। कुछ समय वे प्रोफेसर तथा प्रधानाचार्य बन के उन्होने अध्यापन का कार्य किया तथा वकीली भी की। बचपन से ही उन्हे जात-पात पर होनेवाला अत्याचार सहना पडा; उन्होने तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के शोषण के खिलाफ आवाज उठाई। अस्पृश्यो को उनके अधिकार दिलाने में बहिष्कृत हितकारणी सभा; महाड सत्याग्रह मनुस्मृती दहन; कालाराम मंदिर प्रवेश का सत्याग्रह तथा बुध्द धम्म का स्विकार कर के पिपल्स एज्युकेशन सोसाईटी की स्थापना की। और भारतीय संविधान के निर्माण मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके साथ ही कामगार कल्याण और उनके अधिकार के लिए भी उनका योगदान महत्वपुर्ण रहा है। इस प्रस्तुत शोध आलेख से उनके श्रमीक अधिकार के लिए किये कार्यो का अध्ययन करने का प्रयास किया है।

श्रमिक अधिकार की पूर्व पीठिका

प्राचीन काल से ही मालिक - गुलाम; जमिनदार; कामगार वर्ग समाज का हिस्सा है। उस समय से श्रमिकों का शोषण विश्व के सभी देशो मे होता था। इसलिए उस समय से ही श्रमिकों को अधिकार दिलाने का प्रयास सारे विश्व में हुआ। युरोप में औद्योगिक क्रांती के बाद कारखानदारी का उदय हुआ; और कारखाने में काम करने वाले श्रमिकों के शोषण की शुरूवात हो गई और संघर्ष होने लगे। उस समय समाजवादी विचारवंतो ने अपने कार्य से श्रमिकों शोषितों उनके अधिकार दिलाने का प्रयास किया। उसी दौरान कार्ल मार्क्स ने दास कॅपिटल और कम्युनिस्ट मॅनेफिस्टो; जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथो को लिखकर श्रमिकों को अधिकार दिलाने और क्रांती करने के लिए प्रवृत्त किया तथा रशिया मे 1917 को कामगार क्रांती हुई। इस क्रांती के बाद सभी विश्व भर में श्रमिक अधिकारों के लिए प्रयास शुरू हो गये। दुसरे महायुध्द के बाद 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानव अधिकार की घोषणा की। और विश्व के सभी देशो मे समाज; व्यक्ती; श्रमिक महिलाओं को अधिकार देने के प्रयास शुरू हो गये ।

भारत मे श्रमिकों के अधिकार के लिए गये प्रयास

भारत में स्वातंत्र्य पुर्व कालखंड से ही औद्योगिकरण की शुरूवात हो गई। अंग्रेजो के निती अनुसार 19 वी शताब्दी के दौरान भारत में औद्योगिकीकरण हुआ; और कारखानदार जादा फायदा कमाने हेतु मजदुरों का शोषण करने लगे। भारत की कृषी प्रधान व्यवस्था में भी मजदुरों का शोषण हो रहा था। इस शोषण के खिलाफ म. फुलेजी ने अपना योगदान दिया। उन्ही की प्रेरणासेही उनके अनुयायी नारायण मेघाजी लोखंडे ने 1890 में मुंबई के कपडा मिल में

काम करने वाले मजदूरों की संघटना स्थापित करके कामगारों को अधिकार दिलाने का प्रयास किया। स्वतंत्रा के पहले से आजतक भारत में श्रमिक के कल्याण एवं उनके अधिकार के लिए अनेक नेताओं; महात्माओंने अपना योगदान दिया। इसमे आम्बेंडकरजी का योगदान महत्वपूर्ण है।

प्रस्तुत आलेख के उदिष्ट इस प्रकार है –

1. श्रमिकों की स्थिती का अध्ययन करना.
2. शोषण मुक्त समाज का निर्माण करना
3. डॉ. आम्बेंडकरजीने श्रमिकों के हितमे किये कार्यो का अध्ययन करना
4. मजदूर का जीवन स्तर का अध्ययन करना
5. श्रमिकों को उनके अधिकार के लिये जागृत करना

इन उदिष्टों को साध्य करने के लिए डॉ.बाबासाहब अम्बेंडकरजी की देन महत्वपूर्ण है। प्रस्तूत आलेख मे उनके द्वारा के श्रमिको के लिए किये गये कार्य को स्पर्श करने का प्रयास किया है ।

श्रमिक कल्याण एवं उनको अधिकार दिलाने में डॉ. अम्बेंडकरजी की देन

भारतीय समाज में समता प्रस्थापित करने हेतू और शौषण मुक्त समाज के निर्माण के लिए अम्बेंडकरजी ने कार्य किया। मुंबई में रहते समय मजदूर बस्ती में ही रहे थे। इसलिए मजदुरो के जीवन को नजदीक से देखा। वहा उनको दु:ख शोषण का एहसास हुआ इसलिए श्रमिकों को अधिकार दिलाने की शुरूवात की; बॉम्बे टेक्सटाईल्स मजदूर युनियन; म्युनिसिपल सफाई कामगार युनियन का नेतृत्व किया।

डॉ. बाबासाहब अम्बेंडकरजी एक मजदूर सभा को संबोधित करते समय कहा की किसान और मजदूर भारत में शोषित है; इसीकारण उनको संघटीत होना जरूरी है। उनका संघटन बढाकर उनको अधिकार दिलाने का कार्य मजदूर दल के माध्यम से किया। इसी कारणडॉ.अम्बेंडकरजी ने 1936 को स्वतंत्र मजदूर दल की स्थापना की। यह दल स्थापन करने की भूमिका यह थी की; भारतीय राजनिती में धनीक तथा और उच्चवर्णीय अधिक सक्रीय है; इसलिए वह किसानो और मजदूरों को न्याय नही दे सकती। उनके लिए मजबूत संघटीत दल बनाना जरूरी है। इस दल की घोषणा पत्र में कामगारों के हितो पर जोर दिया था। जैसे 1) देश की अर्थव्यवस्था का लाभ विशिष्ट वर्ग को ही होता है; और मजदूरों पर अन्याय होता है। इस व्यवस्था को बदलना जरूरी है। 2) जनहित की दृष्टी से बडे उद्योगों का राष्ट्रीयकरण होना जरूरी है। 3) जमीन जोतने वालो को ही जमीन मिलनी चाहिए।

4. मजदूरों का शोषण नष्ट करने के लिए वेतन पर सरकारी नियंत्रण जरूरी है।
5. मजदूरों को छुटिया; काम का अवधी; बोनस; पेंशन आदी के लिए कानून बनाना जरूरी है ।

डॉ. बाबासाहब अम्बेंडकरजी 1942 को व्हाईसराय के मंत्रीमंडल में बाबासाहब श्रम मंत्री बने और उन्होंने भारतीय श्रमिकों को उनके अधिकार दिलाने का कार्य किया। श्रमिक हितमें और उनके कल्याण के लिए कानून बनाए यहां उनका योगदान मौलिक रहा। श्रम मंत्री बनने के बाद वे मजदूरों को बात करके उनकी स्थिती का आकलन करते हुएं मजदूरों के हितमें विशेष कार्य किया जैसे 1) किमान वेतन का कानून बनाया। 2) काम करने के तासों की सुनिश्चीती की। 3) महिला और पुरुष कामगारों को समान वेतन का कानून बनाया। 4) कामगार बिमा और अपघात पर भरपाई का कानून बनाया। 5) महिलाओं की अवकाश रजा का कानून बनाया। 6) श्रमिक अधिकार और संरक्षण का कानून निर्माण किया। 7) मजदूर को छुटियां; बोनस; पेशंन आदि के लिए कानून बनाया। 8) श्रम मन्त्रालय के माध्यम से रोजगार केंद्र स्थापना की। 9) मजदूरों के पाल्यों को शिक्षा का कानून बनाया। 10) महागाई के अनुसार पगार बढाने को कानून निर्माण किया; यह सब कानून बनाने में उनका योगदान महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

15 अगस्त 1947 के पश्चात स्वतन्त्र भारत का नविन संविधान तैयार करके 26 जनवरी 1950 के दिन लागू किया गया। संविधान के द्वारा नागरिकों को अधिकार मिल गए। धर्म; जाती; जन्म; रंग अथवा भेदभाव के बगैर यह अधिकार प्रदान किये गए। इन परिवर्तनों के कारण दलित शोषित श्रमिकों स्त्रियों में जागृति उत्पन्न हुई। स्वतन्त्रा प्राप्तीसे पहले समाज का पिछडा वर्ग जिस दिन-हिन स्थिती में जीवन व्यतीत कर रहा था; उसमें परिवर्तन आया। श्रमिकों के लिए कानून बनाए गए। उनके लिऐ हमारे देश का संविधान उत्तरदायी है। यह संविधान के निर्माण में बाबासाहब अम्बेंडकरजीने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विशेषतहा मजदूर महिलाओ के प्रती उनके मन मी विकट सहानुभूती थी द्य उनके लिये बिमारी या दुर्घटना आदि के लिये बीमा योजना प्रारंभ की द्य प्रस्तुती काळ की कमजोर और सोचनिय स्थिती को देखते हुए उनपर हो रहे अन्याय के विरोध मे उन्होने प्रस्तुती सुविधा अधिनियम लागू किया।

निष्कर्ष

इस प्रकार डॉ.बाबासाहब आम्बेंडकरजीने भारत मे शोषित पिडीत और श्रमिकों को अधिकार देने के लिए कार्य किया है। बाबासाहबने स्वतन्त्र मजदूर दल; श्रम मन्त्री; भारतीय संविधान के माध्यमसे श्रमिकों को अधिकार देकर उनके जीवनमें चौतन्य लाने का कार्य किया। डॉ. अम्बेडकर स्वयं दलित वर्ग में जन्मे होने के कारण उनकी पिडाओ से परिचित थे, उन्हे मजदुरो का हितेशी बनाया था द्य वस्तुत: श्रमिक वर्ग के प्रती उनकी सहानुभूती परम संवेदना उन्हे मानवशक्ती की आखरी प्रदान करती है द्य उन्होने मजदुरो को अपने अधिकारो की लढाई लढने के लिये सदा प्रेरित किया द्य कारखाना मजदूर, रेल मजदूर, बंदरगाह मजदुरो और सफाई कामगारो को संघटीत करके संघर्ष किया द्य इसी कारण उनको अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, नारी मुक्ती, दलित मुक्ती के क्रांतीकारी योद्धा, स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माता और श्रमिक कल्याण के मसीहा आदि विशेषत: से अलकृत करता है।

संदर्भ-सूची

1. यादव विरेंद्रसिह (2011) बीसवी सदि के महानायक, ओमेगा पब्लिकेशन्स, दरियागंज दिल्ली
2. पांडे बलेश्वर (2014) श्रम कल्याण और औद्योगिक संबंध, रावत पब्लिकेशन्स, जयपूर
3. मीना जनक (2015) भारतीय राजनीती एवं केंद्र राज्य संबंध, पौंइंटर पब्लिशर्स जयपूर
4. पाल विनोदकुमार (2010) राजनीतिक विचारधारा, डिस्कवरी पब्लिकेशन्स हाउस, प्रा.ली. नई दिल्ली
5. वर्मा एम एल (2002) आधुनिक युग के मनु, निकुंज प्रकाशन, बडवनी.

महासमुन्द जिले में कक्षा ग्यारहवीं के छात्राओं में अध्ययन आदतों एवं उनके व्यक्तित्व प्रकार के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन

हेमन्त कुमार खटकर

डॉ० रेखा नरेंद्र जिभकाटे (नवखरे)

प्रस्तावना

महामहिम पूर्व राष्ट्रपति डॉ.ए.पी.जे.अब्दुल कलाम जी कहे थे "भगवान ने हमें मष्तिष्क और क्षमताएं दी है। ईश्वर की प्रार्थना हमें इन शक्तियों को विकसित करने में मदद करती है।" शिक्षा एक ऐसा मशाल है जिससे अंधकार से उजाले की ओर जा सकते है एवं हम प्रकाशवान हो सकते है अर्थात यह कह सकते हैं कि शिक्षा प्रकाश हैं जो सभी का विकास करती है और हमे तेजस्वी बनाने मे सहायता प्रदान करती है। अर्न्तनिहित शक्तियों को प्रस्फुटित कर हमें विकास की ओर अग्रसरकरती है, जिससे संपूर्ण मानव को पतन नही हमेशा उत्थान की ओर ले जाता हैं साथ ही साथ शिक्षा हमारे व्यवहार को उत्तम बनाने मे मुख्य रूप से सहायक सिध्द होती है और हमे संपूर्णता की ओर अग्रसर करती है। ज्ञान का संचय हमें संग्रहण करती है जिसके फलस्वरूप अच्छे कार्यो को करने मे तथा अच्छा व्यक्तित्व निर्माण में सहायता प्रदान करती है। सत्यम, शिवम, सुन्दरम के गुणों का आत्मसात कराती है कर्तव्य की भावना से हमारे ज्ञान चक्षु खोलती है। पालन पोषण करती है साथ ही साथ 'कल्पवृक्ष' के समान हमारे सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण करती है।

प्राचीन भारतीय मनीषियों के अनुसार"ज्ञानं मनुजस्य तृतीय नेत्रं" अर्थात ज्ञान या शिक्षा मानव की तीसरी आंख है।

उपनिषद के अनुसार:- शिक्षा अनुभूति परक ऐसी प्रक्रिया है जो स्वत: हो व्यस्थित होती। इसकी कोई निश्चित पद्धति है फिर भी यह विशेष पद्धतियों से मुक्त है शिक्षा जीवन क्रिया का अनिवार्य भाग है जो आजीवन चलता रहता है।

विष्णू पुराण के अनुसार:- सा विद्या या विमूक्तये अर्थात विद्यारूपी शिक्षा वह है जो मानव को अज्ञानता एवं सर्व बंधनों से मुक्त करती है।

श्रीमत भागवत गीता के अनुसार: -निष्काम कर्म करते हुए जीवन व्यतीत करना ही शिक्षा का लक्ष्य है।

रस्क के शब्दों में:-"अध्ययन ज्ञान या ग्रहण शक्ति को सुरक्षित रखने, योग्यताओ को प्राप्त करने या समस्याओं का समाधान करने के लिए किया जाने वाला नियोजित प्रयास है।" स्पष्ट है कि अध्ययन शक्ति अपनी स्वेच्छा से अपना ज्ञान या ग्रहण शक्ति बढाघ्ने के लिए करता है जो अभ्यास के साथ आदत का रूप ग्रहण कर लेती है।

क्रो एवं क्रो ने कहा है:- "अध्ययन अधिगम के लिए आवश्यक व विद्यालय जीवन के लिए अनिवार्य है।"

जिला महासमुन्द छत्तीसगढ की राजधानी रायपुर से 50 किलोमीटर पूर्व दिशा में राष्ट्रीय राजमार्ग 06 बम्बई से कोलकाता राजमार्ग से 10 किलोमीटर अंदर बसा हुआ है,यहाँ पहुंचने के लिए रेल,बसें,एवं निजी टेक्सियां भी आसानी पूर्वक मिल जाता है। महासमुंद जिला शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है,यहाँ अनेकों महाविद्यालय,विद्यालय एवं डाइट प्रशिक्षण केंद्र स्थापित है, दर्शनिक स्थल के रूप में जिले के महासमुन्द विकास खण्ड में राष्ट्रीय स्तर के दर्शनिक स्थल के रूप में सिरपुर का लक्ष्मण मंदिर है, जिसे देखने देश-विदेश से लोग आतें है,सिंचाई के लिए शहीद वीरनारायण जलाशय एवं दर्शनिक स्थल के लिए बम्हनी मंदिर प्रसिद्ध है। विकास खण्ड बागबाहरा में खल्लारी माँ,तथा घुचाँपाली के चंडी मंदिर में भालू भी पूजा करने तथा प्रसाद ग्रहण करने आतें है, विकास खण्ड पिथौरा के बनदुर्गा माँ के मंदिर को हजारों श्रद्धालु दर्शन करते है एवं सांकरा में जोकनदी अनवरत बह रही है। विकास खण्ड बसना में पूर्व राजा महाराजाओं का निवास गढफुलझर जहाँ वर्तमान में मिट्टी से अनेको कलाकृति किया जा रहा है जिससे लोग आत्मनिर्भर हो रहे है। सराईपाली ओडिसा से लगा हुआ महासमुन्द जिले का अंतिम विकास खण्ड है, यहाँ का कुछ-कुछ सीमा नक्सली क्षेत्र में आता है,शिशुपाल पर्वत एवं सिंघोडा मंदिर देखते ही मन मोह लेता है। महासमुन्द आर्थिक दृष्टिकोण से भी अच्छा माना जाता है क्योकि यहाँ आद्यौगिक क्षेत्र में बिरकोनी का नाम राष्ट्रीय स्तर में गिना जाता है।

अध्ययन

फ्रांसिस बेकन: "अध्ययन हमें आनंद प्रदान करता है।अलकृत करता है और योग्यता प्रदान करता फ्रांसिस बेकन का यह कथन अध्ययन के महत्व को स्पष्ट करता है। अध्ययन से तात्पर्य केवल पुस्तकों का अध्ययन ही नही कहा जा सकता है। व्यक्ति अपनें जीवन काल में जब दूसरों के अनुभवों को शब्दों, निरीक्षण, चिंतन, मनन द्धारा ग्रहण करता है तथा उनका लाभ उठाता है तो यह प्रक्रिया अध्ययन कहलाती है। व्यक्ति सदा अध्ययनरत् रहता है। यह आवश्यक

नहीं कि वह केवल शब्दों का अध्ययन करता हो, वह व्यवहार का भी अध्ययन करता है। ज्ञान को ग्रहण करने की प्रक्रिया का नाम अध्ययन हैं। अध्ययन का सर्वमान्य अर्थ है.उन तथ्यों, विचारों, विषयों, विधियों, समस्याओं आदि का ज्ञान प्राप्त करना, जिनसे छात्र या व्यक्ति अनभिज्ञ हों.अर्थात् नवीन ज्ञान को प्राप्त करने की विधि या प्रयास अध्ययन है।

जे.एडीसन: "मस्तिष्क के लिए अध्ययन की उतनी आवश्यकता है जितनी शरीर को व्यायाम की।"

आदत: आदत शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द श्भ्इंपजमेश्अथवा श्भ्मइमतमश् से हुई है जिसका अर्थ किसी वस्तु को प्राप्त करना होता है। आदत एक सीखा हुआ कार्य या अर्जित व्यवहार है, जो स्वत: हो जाती है, आदत कहलाती है।

विलियम जेम्स:-"प्राणी के पूर्वकृत व्यवहारों की पुनरावृत्ति आदत है।"

मान:-आदत रस्सी की तरह है जिसमें हम रोज एक बट देते हैं लेकिन अंत में इसे तोड नही सकते हैं।

व्यक्तित्व:- व्यक्तित्व अंग्रेजी के च्मतेवदंसपजल शब्द का हिन्दी रूपांतरण है। शब्द चमतेवदंसपजल की उत्पति लैटिन भाषा के शब्द च्मतेवदं से हुई है, जिसका अर्थ होता है नकाब या मुखौटा जिसे कोई पात्र या अभिनेता किसी चरित्र विशेष का चित्रण करते समय अभिनय के रूप में पहनता था।

व्यक्तित्व का अर्थ मनुष्य के व्यवहार का वह शैली है जिसे वह अपने आंतरिक तथा बाह्य गुणों के आधार पर प्रकट करता है।

वुडवर्थ के अनुसार: "व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यवहार की एक समग्र विशेषता है।"

ऑलपोर्ट ने सन 1937 में व्यक्तित्व को 49 कथनों को एकत्र कर यह निष्कर्ष निकाला कि व्यक्तित्व व्यक्ति के अंदर उन मनोशारीरिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है, जो वातावरण के साथ इसका एक अनूठा समायोजन स्थापित करते है।

मार्गन एवं गिलीलैण्ड: "हम जो कुछ भी है उसका योग, व्यक्तित्व के नाम से पुकारा जाता है।"

डेशिल: "व्यक्तित्व व्यक्ति के संगठित व्यवहार का सम्पूर्ण चित्र होता है।"

व्यक्ति के संतुलित तथा प्रभावी विकास के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्तिगत भिन्नताओं को जाना जाए। अलग-अलग व्यक्तित्व धारियों के गुण व आदतें भिन्न-भिन्न होती है,जो विद्यालयीन जीवन से ही छात्राओं में आ जाती हैं। अच्छी आदतें बालकों के चरित्र तथा व्यक्तित्व का निर्माण करती है। अध्ययन जीवन का अभिन्न अंग है तथा यह आदत के रूप में जीवन में शामिल होती है। यदि किसी व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करें तो उनमें कई प्रकार के आदतें दिखाई देती है। आदतें हमारे व्यक्तित्व का आईना है। आदतों पर गौर करके हम किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का अंदाजा लगा सकतें हैं। आदतें बनाई जा सकती है,विकसित की जा सकती हैं कहे कि आदतें ढाली जा सकती है। आदतें छोडी भी जा सकती है। आदतों में परिवर्तन करके हम अपने व्यक्तित्व को अधिक निखार सकते हैं।

उपरोक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व व आदतें एक दूसरे से संबंधित हैं। अध्ययन जीवन से संबंधित वह आदत है जो ज्ञान प्राप्ति में सहायता करती है। जब एक अध्यापक व्यक्तिगत रूप से विद्यार्थियों के आदतों व स्वभाव को जानता है तथा वह उसका उचित मार्गदर्शन करते हुए उत्तम अध्ययन आदतों के विकास में उसकी सहायता कर सकता है, जो उसके अध्ययन व अधिगम दोनों के लिए उपयोगी हो सकता है।शिक्षा से व्यक्ति अपनी नैर्सगिक क्षमताओ का पूर्ण विकास कर सके तथा बदलते हुए परिवेश से अनुकुलन व समायोजन कर अपने विचार कार्य एवं कृति रूपी पुष्प की खुशबु दूर-दूर तक फैला सके तथा समाज एवं राष्ट्र के निर्माण एवं विकास में सक्रिय योगदान दे सके। मनुष्य अपनी आदतों से पहचाना जाता है क्योंकि उसका व्यक्तित्व उसकी आदतों में निहित होता है। शिक्षा के क्षेत्र में भी आदतों पर आश्रित होना पड़ता है। अच्छी आदतें आसानी पूर्वक सुविधा के साथ साथ ज्ञान प्राप्त करने में सहायक सिध्द होती है। अध्ययन भी व्यक्ति की एक आदत है।

3. शोध का उद्देश्य:-

प्रस्तुत शोध के उद्देश्य निम्न लिखित है-

1. कक्षा ग्यारहवीं के छात्राओं के व्यवहारिक आदतों का निर्धारण करना।
2. अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी छात्राओं के अध्ययन आदतों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. अंतर्मुखी एवं उभयमुखी छात्राओं के अध्ययन आदतों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
4. बहिर्मुखीएवंउभयमुखीछात्राओ के अध्ययन आदतों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
5. शिक्षा के माध्यम से व्यक्तित्व का नैसर्गिक क्षमताओ का पूर्ण विकास निर्धारण करना।
6. कक्षा ग्यारहवीं के छात्राओं की आदतों एवं व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन करना।
7. छात्राओं का सम्बंध व्यवहारों एवं आदतों में परिवार विकास के भूमिका को समझना।
8. छात्राओं के व्यक्तित्व विकास में निर्माण हुई नई समस्यों को खोजना।
9. कक्षा ग्यारहवीं के छात्राओं के आदतों एवं व्यक्तित्व निर्माण हेतु गुण दोष की चर्चा करना।
10. कक्षा ग्यारहवीं के छात्राओं में विषय चयन हेतु शैक्षिक गतिविधीयों का चयन करना।

4. इस क्षेत्र में पहले से किए गए अध्ययन

विदेशों एवं भारत वर्ष में किशोरियों एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर पर देश विदेश के विभिन्न शोधार्थियों के द्वारा शोध पत्र प्रकाशित किए गए हैं जिसमे किशोरियों के आदतों एवं व्यक्तित्व में बहुत अधिक भिन्नता पाये गए हैं।

बाला एवं बोरा (2008) ने शिक्षण अधिगम सामग्री का छात्रों में पढने की आदत के लिए समावेश का अध्ययन किया और पाया कि शिक्षण में शिक्षण अधिगम सामग्रियों का प्रयोग मात्र प्रयोग हेतु न किया जाए,अपितु इनका प्रयोग बच्चों के मानसिक स्तर तथा रुचियों को ध्यान में रखकर किया जाए।

बैरी जेनीकर (2005) द्वारा-द इफेक्टर ऑफ शोसियो इकोनॉमिक स्टेयस ऑन एकेडमिक अचीवमेंट विषय पर शोध कार्य किया गया। इस शोध कार्य में इन्होने 10वीं कक्षा में अध्ययन विद्यार्थियों को समग्र के रूप में प्रयोग किया। प्रमाणिकृत परीक्षण द्वारा विद्यार्थियों के समाजिक स्तर तथा आर्थिक स्तर का निर्धारण किया गया। समाजिक आर्थिक स्तर मापने हेतु विभिन्न कारकों जैसे-विद्यालय,परिवार आदि का चयन किया गया।

शोधकर्ता द्वारा निष्कर्ष निकाला गया कि विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं समाजिक आर्थिक स्तर के मध्य निम्न श्रेणी का धनात्मक सहसम्बंध है।

मैथ्यू एवं जयन (2016) द्वारा "एकडमिक स्टैस एण्ड कोपिगं स्टाइल अमंग प्लस टू स्टूडेंटस"विषय पर शोध किया गया, इस शोधकार्य में शोधकर्ता द्वारा 12वीं कक्षा में अध्ययनरत 100 विद्यार्थियों का चयन किया गया जिनमें 50 छात्र एवं 50 छात्राएं सम्मिलित थे। उचित प्रमापीकृत परीक्षणों का प्रयोग शोधकार्य में किया गया। शोधकर्ताओं द्वारा निष्कर्ष निकाला गया कि विद्यालयीन परिस्थितियां समान हो तो छात्र एवं छात्राओं में मामूली शैक्षिक तनाव होता है। 0.05 सार्थकता स्तर पर अध्ययन करने पर पाया गया कि छात्र एवं छाछ्त्राओं के शैक्षिक तनाव में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

यादव, कांती(2003) ने बच्चों की भाषायी दक्षता एवं अध्ययन आदतों पर बाल पत्रिका के प्रभाव काविश्लेषणात्मक अध्ययन किया और ग्रामीण एवं शहरी किशोरियों के अध्ययन आदतों में सार्थक अंतर पाया तथा तथा शहरी छात्र-छात्राओं के अध्ययन आदतों में लिंग भेद का सार्थक प्रभाव नही पाया गया।

पुरी, प्रेरणा और कुमारी लीना (2009-10) ने प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी करने वाले छात्रों के व्यक्तित्व पैटर्न एवं अध्ययन आदतों का अध्ययन किया और पाया कि व्यक्तित्व पैटर्न व किशोरियों के आशावादिता स्तर के बीच सार्थक सम्बंध नहीं है तथा कुछ व्यक्तित्व पैटर्न का अध्ययन आदत के साथ सम्बंध पाया गया।

साव मीरा(2009-10)ने बहिर्मुखी एवं अंतर्मुखी व्यक्तित्व वाले किशोरियों में अध्ययन के प्रतिरूचि एवं शैक्षिक उपलब्धियों का तुलानात्मक अध्ययन किया गया। अध्ययन के प्रति रूचि ज्ञात करना एवं अंतर्मुखी

व्यक्तित्व वाले छात्राओं की शैक्षिक उपलिब्ध का पता लगाना एवं दोनो के बीच अंतर ज्ञात करना। इन्होने बहिर्मुखी एवं अंतर्मुखी व्यक्तित्व वाले छात्राओं में विभिन्न शैक्षिक विषय क्षेत्र में अध्ययन के प्रति रूचि में सार्थक अंतर नहीं पाया एवं बहिर्मुखी एवं अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले किशोरियों की शैक्षिक उपलब्धि में अंतर पाया गया।

भाम्बरी, निशी एवं तिवारी, प्रीति (2005)में सी.बी.एस.ई एवं राज्य माध्यमिक शिक्षा बोर्ड संचालित उ.मा.वि. में अध्ययनरत छात्रों की अध्ययन आदतों एवं शैक्षिक उपलब्धियों का तुल्याात्मक अध्यनन किया और पाया कि सी.पी.एस.ई. एवं राज्य माध्यमिक शिक्षा मंण्डल द्वारा संचालित उ.मा. कक्षा में अध्ययनरत् छात्रों के अध्ययन आदत में सार्थक अंतर है। छात्राओं की अध्ययन आदतें छात्रों की अपेक्षा उत्तम पाई गई।

नलिनी, एच.के एवं भट्ट,एच.के गणेश (2009) ने कुछ प्रभावित करने वाले कारकों के प्रति अध्ययन आदतों और छात्र उपलब्धि में सम्बंध पर अध्ययन किया और कक्षा दसवीं के किशोरियों के सामाजिक आर्थिक स्तर और अध्ययन आदतों के बीच सार्थक सम्बंध है,तथा किशोरियों के अधिगम वातावरण और अध्ययन आदतों के बीच सार्थक सम्बंध है तथा किशोरियों में बुद्धि और अध्ययन आदतों के बीच सार्थक सम्बंध है।

ख नोट किए गए कार्य के क्षेत्र में प्रस्तावित कार्य का योगदान

ख छात्राओं का व्यक्तित्व किस प्रकार से अध्ययन आदतको प्रभावित करता है,यह स्पष्ट करने में सहायता प्राप्त हो सकेगी।

ख शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति के व्यक्तित्व का नैसर्गिक क्षमताओ का पूर्ण विकास निर्धारण हो सकता है।

ख छात्राओं में उत्तम अध्ययन आदतों के विकास से उनकी शैक्षिक उपलब्धि को बढाया जा सकेगी।

ख उच्चतर माध्यमिक स्तर में कक्षा ग्यारहवीं के छात्राओंकी व्यक्तित्व, विषय चयन एवं अच्छी अध्ययन आदतों से आत्मविश्वास बढेगा।

ख अध्यापकों के द्धारा छात्राओं के व्यक्तित्व व अध्ययन आदतों की सही-सही जानकारी प्राप्त हो सकता है।

ख छात्राओं के व्यक्तित्व और अध्ययन आदतों में सम्बंध कर उनके सम्पूर्ण विकास के लिए अध्यापकों को सहायता प्राप्त हो सकेगी।

6. प्रस्तावित अनुसंधान विधि

6.1 परिकल्पना: अनुसंधान के प्रक्रम में समस्या का कथन के तुरंत पश्चात् हमें उपयुक्त परिकल्पना की आवश्यक होता है परिकल्पना के लिए हमें विशिष्ट जानकारी होना आवश्यकता है अन्यथाअनुसंधान कर्ता इधर उधर भटकना है।परिकल्पना के अभाव में वैज्ञानिक अध्ययन प्राय:सम्भव नही है।इसका मुख्य कारण यह है कि समस्या का स्वरूप अत्यधिक विषम,विस्तृत तथा विसरित रहता है,ऐसी समय में उनके व्यापक क्षेत्र को घटाया तथा न्यून करना आवश्यक होता है। परिकल्पना की विशिष्ट जानकारी होना आवश्यक है,परिकल्पना के अभाव में समस्या से सम्बंधित आवश्यक तथ्यों तथा चरों का स्पष्ट जानकारी रखना आवश्यक है। अनुसंधान में परिकल्पना की रचना करना अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है। ऐसा करने से अनुसंधाकर्ता को तर्क संगत आकडों के संकलन में ठीक दिशा मिलती है तथा उपयुक्त,वैध व शुद्ध निष्कर्षो के अनुमान में सुविधा व सरलता रहती है।

करलिंगर- "एक कल्पना दो अथवा दो से अधिक चरों के सम्बंध के विषय में एक कल्पनात्मक कथन होता है।"

टाऊनलैण्ड-"परिकल्पना एक समस्या का प्रस्तावित उत्तर होता है।"

प्रस्तुत अध्ययन की शून्य परिकल्पना निम्नलिखित हो सकता है-

HO1 कक्षा ग्यारहवीं के छात्राओं केव्यवहारिक आदतों में कोई सम्बंध नही है।

HO2 कक्षा ग्यारहवीं के छात्राओं के अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी छात्राओं के अध्ययन आदतों में कोई सम्बंध नही है।

HO3 कक्षा ग्यारहवीं के छात्राओं केअंतर्मुखी एवं उभयमुखी छात्राओं केअध्ययनआदतों में कोई सम्बंध नही है।

HO4 कक्षा ग्यारहवीं के छात्राओं केबहिर्मुखीएवं उभयमुखी छात्राओं के अध्ययन आदतों में कोई सम्बंध नही है।

HO5 कक्षा ग्यारहवीं के छात्राओं के शिक्षा के माध्यम से व्यक्तित्व का नैसर्गिक क्षमताओ का पूर्ण विकास में कोई सम्बंध नही है।

HO6 कक्षा ग्याहरवीं के छात्राओं केअध्ययन आदतों एवं व्यक्तित्व में कोई सम्बंध नही है।

HO7 कक्षा ग्याहरवीं के छात्राओं के सम्बंध व्यवहारों एवं आदतों में परिवार विकास के भूमिका में कोई सम्बंध नही है।

HO8 कक्षा ग्याहरवीं के छात्राओं केव्यक्तित्व विकास में निर्माण हुई नई समस्योंमें कोई सम्बंध नही है।

HO9 कक्षा ग्याहरवीं के छात्राओं के अध्ययन आदतों एवं व्यक्तित्व निर्माण हेतु गुण दोष में कोई सम्बंध नही है।

HO10 कक्षा ग्याहरवीं के छात्राओं केमें विषय चयन हेतु शैक्षिक गतिविधीयों में कोई सम्बंध नही है।

6.2 अनुसंधान विधि: प्रस्तुत शोध अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया जायेगा ।

6.3 न्यादर्श: प्रस्तुत शोध में उच्चतर माध्यमिक स्तर के कक्षा ग्याहरवीं में अध्ययनरत् छात्राओं को महासमुंद जिले के छत्तीसगढ़ माध्यमिक शिक्षा मण्डल से सम्बद्ध ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों का "यादृच्छिक" विधि सेचयनकिया जाएगा। महासमुंद जिले में कुलविद्यालयों की संख्या 146 है, तथा छात्र एवं छात्राओं की संख्या 15973 है जिसमें छात्राओं की संख्या 10823 है। 600 का चयन "यादृच्छिक" विधि से चयन किया जाएगा।

महासमुन्दजिले में चयनित शाला एवं छात्राऐं

	शहरी		ग्रामीण	
	शासकीय विद्यालय	अशासकीयविद्यालय	शासकीयविद्यालय	अशासकीयविद्यालय
कुल विद्यालयों की संख्या	39	17	77	13
न्यादर्श में लिए विद्यालयों की संख्या	20	10	20	10
न्यादर्श में लिए छात्राओं की संख्या	200	100	200	100

6.4 उपकरण

प्रस्तुत शोध में प्रदत्तसंकलन के लिए दो प्रमापीकृत उपकरणों का उपयोग किया गया है। जिसका विवरण इस प्रकार है–

1. अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी मापनी (IEI): प्रस्तुत शोध में कक्षा ग्याहरवीं में अध्ययनरत् छात्राओं के व्यक्तित्व निर्धारण के लिए डॉ.पी.एफ.अजीज एवं डॉ. रेखा गुप्ता (आगरा)1971 पुनर्निर्मित 2005 द्धारा अंतर्मुखी-बहिर्मुखी अविष्कारिका (IEI) किया जा सकता है।

2. अध्ययन आदत अविष्कारिका (SHI): प्रस्तुत शोध में कक्षा ग्याहरवीं अध्ययनरत् छात्राओं मेंअध्ययन आदतों के परीक्षण के एम्मुखोपाध्याय (नई दिल्ली) एवं डीएवंसनसनवाल (इंदौर)1971पुनर्निर्मित 2001द्वारा अध्ययन आदत अविष्कारिका(भ्द्धउपयोग कर परिणाम पहुॅचा जा सकता है।

6.5 सांख्यिकी प्रविधियों का चयन

साख्यिकी अनुसंधान का मूल आधार है। यह वैज्ञानिक अध्ययन की वह कला तथा विज्ञान है,जिसके अन्तर्गत प्राय:पूर्व-निश्चित लक्ष्य के आधार पर अमूर्त तथ्यों का परिमाणन, मापन तथा ऑकडों का संकलन, वर्गीकरण व विश्लेषण इस उद्देश से किया जाता है, ताकि प्राकृतिक व सामाजिक घटनाओं के विषय में अनुमानात्मक व तुलनात्मक ज्ञान उपलब्ध हो सके और प्रर्याप्त मात्रा में सम्बंधित घटनाओं के पारस्परिक सम्बंधों के विषय में वैज्ञानिक स्तर पर भविष्यकथन की क्षमता उपलब्ध हो सके।इस प्रकार सांख्यिकी की आवश्यकता केवल ऑकडों के विश्लेषण में ही नहीं,बल्कि उनके संकलन में भी रहती हैं। व्यवस्थापन के लिए ओंकडों को प्राय: निम्नलिखित रूप दिया जाता है।

सांख्यिकी विश्लेषण

इसके अंतर्गत प्रदत्तों का विश्लेषण दों प्रकार से किया जा सकता है–

1. वर्णात्मक सांख्यिकी विश्लेषण: प्रेक्षित व्यक्तियों के विशेष समूह या वर्ग में प्रदत्तों के विवरण प्रकृति के विश्लेषण के लिए मध्यमान, मध्यिका, मानक विचलन की गणना की जाती है और सामान्यीकरण को उस समूह या वर्ग के लिए सीमित किया जा सकता है।

प्रस्तुत अध्ययन में अंग्राकित सूत्रों का उपयोग किया जायेगा-

I. $M = A.M. + \frac{\Sigma fd}{N}$

जहॉ: M = मध्यमान/माध्य, A.M. = कल्पित मध्यमान

f = आवृत्ति, d = कल्पित मध्यमान विचलन

i = वर्ग अन्तराल की लम्बाई, N = Σf = आवृत्ति का योग = प्राप्तांको की कुल संख्या

II. मानक विचलन s =

आनुमानिक/निष्कर्षात्मक सांख्यिकी विश्लेषण: प्रतिदर्श आंकडों के आधार पर समष्टि या जीव संख्या के किसी विशेषता या गुण के मध्यमान,मध्यिका,मानक विचलन(प्रांचलों) का अनुमान जिन सांख्यिकी प्रक्रिया द्धारा किया जाता है,उन्हे आनुमानिक/निष्कर्षात्मक सांख्यिकी विश्लेषण कहा जाता है।

प्रस्तुत अध्ययन मेंमध्यमानों के अंतर की सार्थकता की जांच के लिए t=मान की गणना अंग्राकित सूत्रों केद्धारा किया जायेगा-

t =

जहॉ: M1=k प्रथम समूह का मध्यमान, M2=k द्धितीयसमूह का मध्यमान

M1~M2 त्रमध्यमानों का अंतर, SEd त्रदोमध्यमानों की मानक त्रुटि

$\sigma 1$ = प्रथम समूह का मानक विचलन,

$\sigma 2$ = द्धितीयका मानक विचलन

N1 = प्रथम समूह में प्राप्तांकों की कुल संख्या,

N2 =द्धितीय समूह में प्राप्तांकों की कुल संख्या

7. आपेक्षित निष्कर्ष

कक्षा ग्यारहवीं के छात्राओं में गुणात्मक एवं प्रभावी शिक्षा में माता-पिता, अध्यापक, विद्यालय, समुदाय एवं समूह आदि शामिल है। कक्षा ग्यारहवीं छात्राओं के व्यक्तित्व एवं अध्ययन आदतों भिन्नता हो सकता है।चूकिं छात्राओं केव्यक्तित्व एवं अध्ययन आदत शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सरल एवं प्रभावी बना सकती है तथा सिर्फ अनुसंधान क्रियाविधि, उपकरण एवं सांख्यिकीय सिद्धांत, का उपयोग करके निष्कर्ष प्राप्त होंगे। इस सम्बंध में शोध करने पर निम्न निष्कर्ष प्राप्त हो सकतें हैं।

- ख अंतर्मुखी एवं उभयमुखी छात्राओं के अध्ययन आदतों में अंतर मिल सकता है।
- ख अंतर्मुखी छात्राओं के अध्ययन आदत उभयमुखी छात्राओं से बेहतर हो सकता है।
- ख अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी छात्राओं के अध्ययन आदतों मे अंतर हो सकता है।
- ख अंतर्मुखी छात्राओं के अध्ययन आदत बहिर्मुखी छात्राओं से बेहतर हो सकता है।
- ख उभयमुखी एवं बहिर्मुखी छात्राओं के अध्ययन आदतों मे सार्थक अंतर हो सकता है।
- ख उभयमुखी छात्राओं का अध्ययन आदत बहिर्मुखी छात्राओं से बेहतर हों सकता है।
- ख उच्चतर माध्यमिक स्तर में कक्षा ग्यारहवीं के छात्राओं की व्यक्तित्व, अध्ययन आदत, विषय चयन एवं आत्मविश्वास पर भी अंतर प्राप्त हो सकता है।
- ख छात्राओं काव्यक्तित्व किस प्रकार से अध्ययन आदत को प्रभावित करता है,यह स्पष्ट करने में सहायता मिल सकता है।
- ख छात्राओं का व्यक्तित्व का अध्ययन कर,उनके व्यक्तित्व के अनुसार शैक्षिक निर्देशन करने मे सहायक हो सकता है।

8. सन्दर्भ ग्रंथसूची

- बाला एवं बोरा (2008) ने शिक्षण अधिगम सामग्री का छात्रों में पढने की आदत के लिए समावेश का अध्ययन।
- बैरी जेनीकर (2005) द्वारा - द इफेक्टर ऑफ शोसियो इकोनॉमिक स्टेयस ऑन एकेडमिक अचीवमेंट विषय पर शोध।
- भाम्बरी, निशी एवं तिवारी, प्रीति (2005) में सी.बी.एस.ई एवं राज्य माध्यमिक शिक्षा बोर्ड संचालित उ.मा.वि. में अध्ययनरत छात्रों की अध्ययन आदतों एवं शैक्षिक उपलब्धियों का तुल्यात्मक अध्ययन।
- व्यक्तित्व का विकास -स्वामी विवेकानंद प्रकाशक स्वामी ब्रम्हास्थानंद अध्यक्ष रामकृष्ण मठ,धन्तोली नागपुर पृ.5
- चद्राकर,एस.(2009-10) हाई स्कूल के विद्यार्थियों के हिन्दी भाषा कौशल तथा अध्ययन आदतों एवं मनोवृत्तियों के सम्बंधों का अध्ययन एम.फिल,शोध प्रबंध ,गुरूघासीदास विश्वविद्यालय बिलासपुर।

- गैरेट,हेनरी इ.(2008) " शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी"सुरजित पब्लिकेशन दिल्ली।
- गुप्ता, .एस.पी.(2011) आधुनिक मापन एवं मूल्याकन,संस्करण2011 शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद-2।
- गुप्ता,डॉ.एस.पी. और गुप्ता,डॉ.अलका(2011) उच्चतर माध्यमिक मनोविज्ञान,शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ.238-239।
- हुसैन ए.(2009) शिक्षक प्रशिक्षण प्रशिक्षणार्थी के व्यक्तित्व का अध्ययन,रिसर्च-67वाल्यूम,पृष्ठ 127-128।
- कपिल,एच.के.(2009)"अनुसंधान विधियॉ" एच.पी. भार्गव बुक हाउस,आगरा।
- कौल, लोकश(2007) "मेथडोलॉजी ऑफ एजुकेशन रिसर्च" विकाश पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि.नोएडा।
- मैथ्यू एवं जयन (2016) द्वारा "एकडमिक स्टैस एण्ड कोपिगं स्टाइल अमंग प्लस टू स्टूडेंटस" विषय पर शोध।
- नलिनी, एच.के एवं भट्ट,एच.के गणेश (2009) ने कुछ प्रभावित करने वाले कारकों के प्रति अध्ययन आदतों और छात्र उपलब्धि में सम्बंध पर अध्ययन।
- पुरी, प्रेरणा और कुमारी लीना (2009-10) ने प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी करने वाले छात्रों के व्यक्तित्व पैटर्न एवं अध्ययन आदतों का अध्ययन।
- साव मीरा (2009-10) ने बहिर्मुखी एवं अंतर्मुखी व्यक्तित्व वाले किशोरियों में अध्ययन के प्रति रूचि एवं शैक्षिक उपलब्धियों का तुलानात्मक अध्ययन।
- सिंह,अरूण कुमार(2009) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान,पंचम संशोधित एवं परिवर्तित संस्करण मोतीलाल बनारसी दास,दिल्ली पृ.37,350,370,386।
- सिंह, के, (2009)स्नातक स्तर के अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धियों का तुलनात्मक अध्ययन,रिसर्च लिंक-58वाल्यूम,पृष्ठ 69।
- उपाध्याय,भवानी शंकर(1983) कार्ल गुस्ताव यूंग विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान,प्रथम संस्करण,राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,जयपुर,पृ.14,69-73।
- विरदी,एम.के.(1989-90)अंर्तमुखी एवं बर्हिमुखी छात्राओं की शैक्षिक,सामाजिक एवं कलात्मक अभिरूचि का तुलनात्मक अध्ययन गुरूघासीदास विश्वविद्यालयबिलासपुर।
- यादव,कांती (2003) ने बच्चों की भाषायी दक्षता एवं अध्ययन आदतों पर बाल पत्रिका के प्रभाव का विश्लेषणात्मक अध्ययन।

9. पब्लिकेशन की सूची

- "किशोरियों के अध्ययन आदतों का व्यक्तित्व प्रकार के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन" इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ रिव्यूस एण्ड रिसर्च इन सोशल साइंस, मार्च 2020 ISSN 2347-5145, 2454-2687
- "ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन" इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ रिव्यूस एण्ड रिसर्च इन सोशल साइंस,मार्च 2020 ISSN 2347-5145,2454-2687

महान् संत संगीतज्ञ पं० रामाश्रय झा 'रामरंग' जी की कृतियों का सांगीतिक योगदान

प्रीति सिंह

शोध छात्रा, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

डॉ० ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय

सहायक आचार्य, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

शोध सार

भारतीय शास्त्रीय संगीत की परम्परा प्राचीन काल से ही समृद्ध रही है। वैदिक काल से आधुनिक काल तक इसमें अनेक प्रकार से रूपान्तरण हुआ है। इस दीर्घकालांतर में अनेक विधाओं का उद्गम हुआ और अनेक विधाएं विधाओं का उद्गम हुआ है और अनेक विधाएं लुप्त भी हो गई। संगीत की इन महान् विभूतियों की श्रृंखला में ऐसे ही दिव्य संगीतज्ञों में से एक थे महान् वाग्गेयकार पं0 रामाश्रय झा 'रामरंग' जी।

पं0 रामाश्रय झा 'रामरंग' जी ने भारतीय संगीत के शास्त्र एवं क्रियात्मक पक्ष को अमूल्य धरोहर प्रदान की है। पं0 रामाश्रय झा 'रामरंग' जी द्वारा रचित 'अभिनव गीतांजलि' भाग 1-5 एवं 'संगीत रामायण बालकाण्ड' संगीत के विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त ही लाभकारी है।

बीज शब्दः कृतियां, महत्व।

भूमिका

भारतीय संगीत जगत् में ऐसे अनेक महान् कलाकार एवं विद्वान् हुए हैं, जिन्होंने अपने कला, साधना तथा लगन के द्वारा समस्त संगीत जगत् में अपना अभूतपूर्व योगदान दिया। इन महान् विद्वान् कलाकारों में भी जो विद्वान् अपनी सृजनात्मक तथा कलात्मक प्रतिभा एवं शक्ति के द्वारा रागों का मौलिक रूप से व्याख्या करता है, वहीं संगीत विद्वान् अपने संगीत में प्राचीन परम्परा का निर्वाह करते हुए नवीनता का निर्माण करता है। ऐसा ही एक उदाहरण वर्तमान समय में पं0 रामाश्रय झा 'रामरंग' जी का मिलता है जिन्होंने अपने संगीत के द्वारा अपने समस्त जीवनकाल में तो सम्पूर्ण संगीत क्षेत्र को लाभान्वित किया ही इसके अतिरिक्त उन्होंने मरणोपरान्त भी अपनी रचनाओं और सांगीतिक विचारों के माध्यम से समस्त भारतीय संगीत जगत् को अपनी अतुलनीय आहुति प्रदान की है।

एक महान् चिंतनशील कलाकार तथा महान् वाग्गेयकार होने के कारण पं0 रामाश्रय झा 'रामरंग' जी चारों पट की गायकी के उच्च कोटि के कलाकार थे। पं0 जी मुख्य रूप से ख्याल, ठुमरी, दादरा, टप्पा, ध्रुपद, धमार, तराना, भजन, त्रिवट, चतुरंग, रागमाला, राग तालसागर तथा लोकगीत इत्यादि को अत्यन्त ही मनोहारी तथा आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करते थे। पं0 रामरंग जी रागों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के अनुसार ही रागों की प्रस्तुति, बंदिश का कहन, बढ़त इत्यादि को प्रस्तुत करते थे। चाहे प्रचलित राग हो या अप्रचलित राग, सबको अत्यन्त ही प्रभावकारी रूप में प्रस्तुत करते थे।

कृतियाँ

पं0 रामाश्रय झा 'रामरंग' जी द्वारा रचित कृतियां इस प्रकार हैं[1]-

1. ''अभिनव गीतांजलि'': पं0 रामाश्रय झा 'रामरंग' जी द्वारा रचित ग्रन्थ 'अभिनव गीतांजलि' पांच भागों में प्रकाशित है। यह ग्रन्थ समस्त संगीत साधकों, संगीत के विद्यार्थियों, कलाकारों तथा उन समस्त संगीत रसिकों के लिए अत्यन्त ही उपयोगी है, जो निरन्तर ज्ञानार्जन करके संगीत के माध्यम से रस एवं आनन्द की परम अनुभूति करना चाहते हैं।

2. ''अभिनव गीतांजलि'' भाग-1: 'अभिनव गीतांजलि' भाग-एक पुस्तक का निर्माण पं0 रामरंग जी ने संगीत प्रवीण अलंकार, एम0ए0 एवं इसके समकक्ष विद्यार्थियों को ध्यान में रखते हुए किया है। इस ग्रन्थ में राग श्याम कल्याण से प्रथम भाग का प्रारम्भ किया गया है। इस भाग में राग से सम्बन्धित विभिन्न बिन्दुओं जैसे-स्वरों का प्रयोग तथा महत्व, आरोह-अवरोह, मुख्य स्वर, स्वर-विस्तार, आलाप एवं तान इत्यादि का वर्णन किया गया है। देवगिरि बिलावल, शुद्ध सारंग, यमनी बिलावल, भटियार इत्यादि रागों का पूर्ण परिचय देते हुए विभिन्न तालों में बद्ध बंदिशों का विवरण है।[2]

3. ''अभिनव गीतांजलि'', भाग-2: इस भाग का निमाण भी एम0ए0 के समकक्ष विद्यार्थियों के लिए ही किया गया है। राग सूहा, नायकी कान्हड़ा, सुघराई कान्हड़ा, शहाना, रामसाख, भवसाख, लच्छा साख, काफी कान्हड़ा, पटदीप, बरवा इत्यादि रागों का पूर्ण परिचय एवं तालबद्ध बंदिशों का विवरण है।3

4. ''अभिनव गीतांजलि'', भाग-3: प्रथम एवं द्वितीय भागों की भांति ही इस भाग में भी रागों का सविस्तार परिचय, राग, स्वर-विस्तार, तान, लक्षणगीत, ख्याल, धुपद, धमार, तराना इत्यादि का वर्णन है। राग कलावती, सरपरदा, बिलावल, हमीर बिलावल, हेमन्त, दुर्गा, बसन्त मुखारी, भैरवी, काफी, खमाज इत्यादि में तालबद्ध बंदिशों का विवरण है।4

5. ''अभिनव गीतांजलि'', भाग-4: अभिनव गीतांजलि ग्रन्थ के प्रथम, द्वितीय, तृतीय भागों की भांति ही चतुर्थ भाग का निर्माण भी संगीत प्रवीण तथा उसके समकक्ष के विद्यार्थियों के लिए किया गया है। इसमें राग भटियारी, तोड़ी, भूपाली, तोड़ी, सगुन रंजनी, सौराष्ट्र भैरव, नटभैरव, भैरव इत्यादि का वर्णन है।5

6. ''अभिनव गीतांजलि'', भाग-5: पं0 रामाश्रय झा 'रामरंग' जी ने अपने ग्रन्थ ''अभिनव गीतांजलि'' के पंचम भाग का निर्माण भी संगीत प्रवीण, एम0ए0 तथा इसके समकक्ष के विद्यार्थियों को ध्यान में रखते हुए किया है।6

ऽ ''संगीत रामायण बालकाण्ड'':-

पं0 रामाश्रय झा 'रामरंग' जी ने इस ग्रन्थ का निर्माण श्री हनुमानजी को समर्पित करते हुए किया है-

''सीतापति श्रीराम शिव पति दन करि पायन,
रामरंग हनुमन्त समर्पण करूं संगति रामायण।।''

इस ग्रन्थ में पं0 ''रामरंग'' जी ने सम्पूर्ण रामायण को ख्याल शैली में बांधकर स्वर लिपिबद्ध किया है।[7]

महत्व

पं0 रामाश्रय झा 'रामरंग' जी द्वारा रचित लगभग दो हजार रचनाएं केवल विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं है, अपितु विभिन्न बड़े कलाकारों, संगीतज्ञों तथा संगीत-प्रेमियों द्वारा भी गायी एवं बजायी जाती हैं। एक विशेष बात यह है कि पं0 रामरंग जी ने अपने ग्रन्थ में स्वयं की रचनाओं का वर्णन तो किया ही है, इसके साथ ही साथ उन्होंने प्राचीन परम्परा को दर्शाने के लिए कहीं-कहीं विभिन्न घरानों के श्रेष्ठ रचनाकारों एवं वाग्गेयकारों द्वारा बनायी गयी श्रेष्ठ बंदिशों को भी संकलित किया है जो वर्तमान समय में समस्त संगीतानुरागियों एवं विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष

अत: यह कहा जा सकता है कि महान् गुरु एवं वाग्गेयकार पं0 रामाश्रय झा 'रामरंग' जी ने अपनी कृतियों से समस्त संगीत जगत् को धन्य कर दिया है। ऐसे महान् गुरु द्वारा दिये गये अतुलनीय योगदान को सम्पूर्ण संगीत जगत् सदैव स्मरण करता रहेगा। ऐसे महान् गुरु को शत् शत् नमन्।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. फोन्दणी, डॉ0 विकास, संत संगीतज्ञ 'पं0 रामाश्रय झा' व्यक्तित्व एवं कृतित्व, आकांक्षा पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2017, पृ0सं0 53
2. झा, पं0 रामाश्रय, अभिनव गीतांजलि, भाग एक, संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मलाका, इलाहाबाद, षष्टम् संस्करण-2006
3. झा, पं0 रामाश्रय, अभिनव गीतांजलि, भाग दो, संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मलाका, इलाहाबाद, षष्टम् संस्करण, 2004
4. झा, पं0 रामाश्रय, अभिनव गीतांजलि, भाग तीन, संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मलाका, इलाहाबाद, पंचम संस्करण-2006
5. झा, पं0 रामाश्रय, अभिनव गीतांजलि, भाग चार, संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मलाका, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, 2000
6. झा, पं0 रामाश्रय, अभिनव गीतांजलि, भाग पाँच, संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मलाका, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, 2001
7. झा, पं0 रामाश्रय, संगीत रामायण बालकाण्ड, उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ, 1998

निम्बार्क सम्प्रदाय की भक्ति में संगीत

प्रमोद कुमार

शोध छात्र, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

डॉ० ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय

सहायक आचार्य, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

शोध सार

परमात्मा, जीव और जगत् की अभिन्नता के समान ही भक्ति और संगीत परस्पर जुड़े हुए हैं। जिस प्रकार परमात्मा जगत् की सृष्टि करता है व जीव की विश्रान्ति के लिए उसका संहार करता है, फिर भी स्वर्ण व स्वर्ण से बने कुण्डल की भांति उनसे अभिन्न है, ठीक उसी प्रकार ईश्वर की आराधना में लिप्त मनुष्य जब पूर्णतः भाव-विभोर हो जाता है, तब उसे अन्तर्मन में ईष्टदेव के प्रति निहित प्रेम भावना को ही भक्ति की संज्ञा दी जाती है। भक्त और भगवान के मध्य भक्ति का साधन 'संगीत' ही है, चाहे वह केवल 'ऊँ' का उच्चारण मात्र ही हो, अतः संगीत कला का सम्बन्ध आध्यात्मिक, आदि दैविक तथा आदि भौतिक उपासनाओं में प्रयुक्त कीर्तन, भजन, मन्त्रोच्चारण, जप-तप आदि के रूप में धर्म व भक्ति से सदा ही रहा है। ''आदि पुराण'' में ईश्वर ने स्वयं ही कहा है-

''नाहं वसामि वैकुंठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।''[1]

अर्थात-न तो मैं वैकुण्ठ में रहता हूँ, और न योगियों के हृदय में ही रहता हूँ। हे नारद! मेरे भक्त जहाँ मेरे गुण, कीर्तन आदि का गान करते हुए मेरा स्मरण करते हैं, मैं वहीं निवास करता हूँ। भगवान ने स्वयं ही कहा है कि उन्हें संगीतमय कीर्तन अधिक अप्रिय है। इसीलिए निम्बार्कीय आचार्यों ने अपनी भक्ति में संगीत को प्रधानता दी है। निम्बार्क सम्प्रदाय के भक्ति में 'संगीत' विषय पर कुछ विचार करने से पूर्व सर्वप्रथम हमारे लिए भक्ति एवं संगीत का विश्लेषण करना परम अनिवार्य है, क्योंकि धार्मिक ग्रन्थों में संगीत के स्थान का सीधा सम्बन्ध निम्बार्क सम्प्रदाय में होने वाली आध्यात्मिक गतिविधियों से ही है। ईश्वर के प्रति प्रेम तथा आत्मसमर्पण की भावना ही 'भक्ति' कहलाती है। ईश्वर में अनुरक्ति ही भक्ति है।

बीज शब्दः निम्बार्क सम्प्रदाय, भक्ति, संगीत।

भूमिका

भक्ति का आधार स्नेह या प्रीति भाव है। इसका तात्पर्य यह है कि उपासक किसी भी भाव से अपने उपास्य की भक्ति कर सकता है, परन्तु उसमें प्रीति या प्रेमभाव का होना अत्यन्त आवश्यक है। ईश्वरीय प्रेम की प्राप्ति हेतु अथवा मानसिक विकारों का शमन करने के लिए जो भजन गाये जाते हैं, वह भक्ति संगीत कहलाता है। भक्ति संगीत से जिस रस की प्राप्ति होती है वह अनिर्वचनीय है उसे शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। ईश्वर का गुणगान, कीर्तन, भजन आदि से ही भक्त मोक्ष प्राप्त करता है। कीर्तन सगुण एवं निर्गुण दोनों भक्ति प्रकारों के भक्तों के लिए अति आवश्यक व उपयुक्त हैं। संगीत की विशेषता यह है कि यह अशान्त चित्तवृत्तियों को शान्त करके तथा चित्त को एकाग्र करके श्रोताओं को तन्मय कर देता है, इसलिए जप-तप और ध्यान आदि से भी अधिक महत्व भजन तथा कीर्तन का माना गया है।

भक्ति में संगीत निहित है तथा संगीत साधना में भक्ति निहित होती है। भक्ति और संगीत परस्पर एक-दूसरे के पूरक हैं। भक्ति में भक्त का चित्त आत्मशान्ति प्राप्त करता है, परन्तु उस भक्ति में स्थिरता व एकाग्रता संगीत के माध्यम से ही आती है क्योंकि संगीत के स्वरों में निहित गति एवं लय हृदय को गम्भीर व एकाग्र बनाने में सहायता देती है। भक्ति संगीत मनुष्य जाति में ही नहीं वरन् देवलोक में भी प्रिय है। भगवान शंकर का डमरू बजाकर ताण्डव नृत्य कुशलता, पार्वती जी का लास्यनृत्य, नारद जी का वीणा बजाकर भजन करना, श्रीकृष्ण का वंशीवादन में निपुण होना तथा देवी सरस्वती का वीणावादन में दक्ष होना, यह सिद्ध करता है कि आदिकाल से ही देवताओं ने भी संगीत में रूचि दिखाई व उसे आत्मसात् किया।

निम्बार्क सम्प्रदाय

वैष्णव सम्प्रदायों में निम्बार्क सम्प्रदाय प्राचीनतम् माना जाता है। वैष्णव जनों के अनुसार निम्बार्क सम्प्रदाय के सर्वप्रथम प्रवर्तक हंस भगवान माने जाते हैं। भागवत एकादश स्कन्ध में इस प्रसंग की कथा है कि एक बार सनकादि ऋषियों ने ब्रह्माजी से कुछ प्रश्न पूछे। ब्रह्माजी उनका उत्तर देने में जब असमर्थ हुए

तब उनकी सहायता के लिए विष्णु भगवान हंस का रूप धारण कर वहाँ आये। उन्होंने सनकादि के सब प्रश्नों का भली प्रकार समाधान किया, सनकादि का सन्देह उससे मिट गया। निम्बकाचार्य के अनुसार सनकादिको ने हंस भगवान से प्राप्त यहीं उपदेश नारद जी को प्रदान किया। यह परम्परा आज भी अनवरत् रूप से प्रचलित है। हंस भगवान द्वारा आर्विभूत होने के कारण सर्वप्रथम इस सम्प्रदाय को हंस सम्प्रदाय फिर 'सनक सम्प्रदाय' कहा गया। निम्बकाचार्य इस मत के प्रधान आचार्य हुए हैं। इन्होंने इस सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार किया, इसके कारण यह सम्प्रदाय 'निम्बार्क सम्प्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। निम्बकाचार्य ने ही सर्वप्रथम उत्तर भारत में युगल उपासना का प्रारम्भ किया।[2]

निम्बार्क सम्प्रदाय का सिद्धान्त और उपासना विधि इस प्रकार है-

श्री निम्बार्क सम्प्रदाय के सिद्धान्त में तत्वत्रय (ब्रह्म, जीव और प्रकृति) को अनन्त और अनादि माना गया है। ब्रह्म स्वतंत्र है, जीव और प्रकृति परतन्त्र (ब्रह्म के अधीन) है। बद्ध, बद्धमुक्त और मुक्त सामान्यत: जीवों के तीन प्रभेद है। समस्त चराचर जगत् ब्रह्म का अंश एवं परा-परात्मिक प्रकृति शक्ति होने के कारण सत्य है। जीव और प्रकृति रूप से चराचरात्मक सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्म से भिन्न है, किन्तु उसका अंश एवं शक्ति होने के कारण स्वभावत: अपृथक सिद्ध एवं अभिन्न भी है। यही स्वाभाविक द्वैताद्वैत (भेदाभेद तथा भिन्ना-भिन्न) नामक सिद्धान्त है। इस सम्प्रदाय में सखी भाव द्वारा श्री राधाकृष्ण की अष्टयाम विधि से उपासना करने का विधान है।

भक्ति

'भक्ति' शब्द 'भज' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय लगाने से बना है जिसके आधार स्वरूप पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' में ''स्त्रियाँक्तिन्'' सूत्र को देखा जा सकता है। 'भक्ति' शब्द स्त्रीलिंग है तथा इसके अनेक अर्थ हैं, जैसे-भिन्नता, पृथकता, बँटवारा, विभाग, अंश, उपचार, अनुराग, श्रद्धा, सम्मान, सेवा, पूजन आदि।3 'भज' धातु का अर्थ है-'सेवा करना' तथा 'क्तिन्' प्रत्यय का अर्थ है-'प्रेम'। धातु एवं प्रत्यय के योग से ही एक सम्पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार 'भक्ति' शब्द का व्यापक अर्थ 'प्रेम पूर्वक सेवा करना' होता है।

भक्ति के दो भेद माने गये हैं -

1. वैधी भक्ति
2. रागानुगा भक्ति

वैधी भक्ति शास्त्रों के अनुसार रीति से की जाती है और रागानुगा भक्ति में भगवान के प्रति आसक्ति, मोह एवं विशेष आकर्षण होता है।

''वैधी रागानुगा चेति-सा द्विधा साधनाभिद्या।''[4]

जब आराधक अपने आराध्य देव की सेवा या भक्ति भिन्न-भिन्न भावों से करता है, तो उनके अनुसार उन भक्तियों के भिन्न-भिन्न नाम होते हैं, जैसे-

ऽ श्रवण ऽ कीर्तन ऽ स्मरण

ऽ पादसेवन ऽ अर्चन ऽ वन्दन

ऽ दास्य ऽ सख्य ऽ आत्मनिवेदनम्

इन भक्तियों को 'नवधाभक्ति' भी कहा जाता है। 'भागवत पुराण' में नवधा भक्ति का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

''श्रवणं कीर्तनं विष्णो: स्मरणं पादसेवनम।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम।।
इति पुंसर्पिता विष्णौ भक्ति चेतन्नव लक्षणा।।''5

संगीत

निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्यों ने ईश्वर की आराधना करने के लिए संगीत को माध्यम बनाया। इस सम्प्रदाय के मन्दिरों में होने वाले कीर्तन तथा भजन का मूलतत्व संगीतमय पूजन ही है। प्राचीन समय से ही यहाँ पर देवाराधना में संगीत का प्रश्रय व महत्व देखने को मिलता है। निम्बार्क सम्प्रदाय के देवालयों में ध्रुवपद-धमार शैली की प्रधानता दिखाई पड़ती है।

वैदिक युग में होने वाले धार्मिक अनुष्ठानों तथा यज्ञ आदि के अवसर पर विभिन्न देवी-देवताओं के लिए जो स्वर व लयबद्ध मंत्र गाये जाते थे, उसमें हम भक्ति-संगीत के प्राचीन रूप को देख सकते हैं। सामवेद में उल्लिखित पंचविध और सप्तविध उपासनाओं में देवताओं की स्तुति विभिन्न प्रकार की गायन-विधियों (हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहर्ता, निधन) से की जाती थी। गायक कलाकारों (प्रस्तोता, उद्गाता आदि) द्वारा ईश्वर के सम्मुख उनकी शरण में गाई जाती थी। विश्वविख्यात् 'रामायण' व 'महाभारत' में भी भक्ति संगीत का प्रचलन व वर्णन दिखता है। किसी भी अवसर पर अथवा संस्कार से पूर्व ईश्वर का स्वरमय पूजन होता था।[6]

मंगला आरती के समय का एक पद इस प्रकार है -

पद - (राग-विलास)

''परी बलि कौन अनोखी बानि।
ज्यौं-ज्यौं भोर होत है त्यौं-त्यौं,

पौढ़त हो पट तानि।।
आरस तजहु अरुनई उदई,
गई निसा रति मानि।
'श्री हरिप्रिया' प्रानधन जीवन,
सकल सुखन की खानि।।''

निष्कर्ष

निम्बार्क सम्प्रदाय के भक्त आचार्यों द्वारा विभिन्न उत्सवों पर संगीत के विविध विधाओं जैसे-नृत्य, वाद्य-वादन आदि का भी आयोजन किया जाता है। इसके अतिरिक्त यहाँ हिण्डोल, होली, बसन्त, आचार्यों का पाटोत्सव आदि उत्सवों पर संगीत के विविध विधाओं का आयोजन किया जाता है। इस प्रकार वर्षभर के सभी उत्सवों में संगीत की प्रधानता दिखती है।

अत: निम्बार्क सम्प्रदाय की भक्ति में संगीत का विशेष महत्व है, इसलिए इस सम्प्रदाय की भक्ति 'रसोपासना भक्ति' कहलाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. त्रिपाठी, श्री श्याम सुन्दर लाल (सम्पादक) आदिपुराण, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, सन् 1999, (19/35/37-39)
2. श्रीवास्तव, डॉ0 प्रेमनारायण, निम्बार्क सम्प्रदाय (सिद्धान्त और साहित्य), श्री निम्बार्क-शोध संस्थान, श्री मोटे गणेश, वृन्दावन, प्रथम संस्करण, सन् 1998, पृ0सं0 39
3. सक्सेना, राकेशबाला, मध्ययुगीन वैष्णव सम्प्रदायों में संगीत, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन् 1990, पृ0स0 2
4. शुक्ल, डॉ0 गौरव, श्री निम्बार्क सम्प्रदाय का सांगीतिक अवदान, लुमिनस् बुक्स, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 2016, पृ0सं0 37
5. वेदव्यास, श्री भागवतमहापुराणम्, गीता प्रेस गोरखपुर, पैतीसवाँ संस्करण, सं0 2068, 7-5. 23-24
6. शुक्ल, डॉ0 गौरव, श्री निम्बार्क सम्प्रदाय का सांगीतिक अवदान, लुमिनस बुक्स, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2016, पृ0सं0 43
7. शुक्ल, डॉ0 गौरव, श्री निम्बार्क सम्प्रदाय का सांगीतिक अवदान, लुमिनस बुक्स, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2016,, पृ0सं0 52

निम्बार्क सम्प्रदाय की सांगीतिक विधायें

डॉ० ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय

सहायक आचार्य, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

शोध सार

निम्बार्क सम्प्रदाय के मन्दिरों में संगीत विधाओं की विभिन्न परम्परायें प्रचलित हैं। जैसे-एकल गायन, समाज गायन, वाद्य वादन आदि। इन सभी सांगीतिक विधाओं के माध्यम से इस सम्प्रदाय में भगवद् आराधना किया जाता है। इस सम्प्रदाय में श्रीराधाकृष्ण की रसोपासना प्रातः मंगला आरती से लेकर रात्रि शयन आरती तक संगीत के विभिन्न राग-रागिनियों के माध्यम से किया जाता है। इसके अतिरिक्त किसी विशेष पर्व पर संगीत का विशेष समारोह किया जाता है।

बीज शब्दः सांगीतिक विधायें।

भूमिका

भारतीय संगीत के मूल तत्वों को संवर्द्धन एवं परिवर्द्धन करने में निम्बार्क सम्प्रदाय का अभूतपूर्व योगदान रहा है, जिसकी आधारशिला के पीछे, निम्बार्क सम्प्रदाय के भक्त संगीतज्ञ तथा वे महान् संगीताचार्य रहे हैं, जिन्होंने काल परिवर्तन से समय-समय पर शास्त्रीय संगीत पर आधारित वाणियों का गान करके न केवल भक्ति भाव को प्रधानता दी अपितु शास्त्रीय संगीत के विकास तथा प्रचार व प्रसार में भी सातत्व सहयोग दिया। इन वाणियों में शास्त्रीय संगीत के तीनों अंगों (गायन, वादन, नृत्य), सांगीतिक शब्दावली एवं विभिन्न रागों तथा तालों का प्रयोग मात्राओं में किया जाता है।

भारतीय सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में भक्ति संगीत तथा धर्म सदैव एक-दूसरे के साथ सम्बद्ध रहे हैं। संगीत के ऐतिहासिक अनुशीलन से ज्ञात होता है कि वैदिक काल से ही यज्ञ आदि धार्मिक कार्यों में संगीत के मूलाधार सामवेद की ऋचाओं के गायन की प्रथा का प्रचलन परिलक्षित होता है। इस सामगान से प्रवाहित होती हुई परिष्कृत संगीत की धारा कालान्तर में ब्रज के देवालयों में प्रयुक्त भक्ति संगीत का आधार बनी, साथ ही साथ इन मन्दिरों में लोक संगीत तथा कीर्तन की सामान्य विधाओं को भी एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ।

सांगीतिक विधायें

निम्बार्क सम्प्रदाय में प्रयुक्त होने वाले संगीत विधाओं का विवरण निम्न है-

एकल गायन

इस सम्प्रदाय में एकल गायन का प्रयोग मुख्यतः अष्टयाम सेवाओं में किया जाता है। प्रातः मंगला आरती यानि भगवान को जगाने से लेकर रात्रि, शयन तक समयानुसार रागों का प्रयोग यहाँ के वाणी ग्रन्थों के पदों के माध्यम से किया जाता है। जिसका गायन यहाँ के साधु संत करते रहते हैं।

निम्बार्क सम्प्रदाय में समाज गायनः-

यहाँ दूसरी सांगीतिक विधाओं में समाज गायन का आयोजन होता है। यह विधा इस सम्प्रदाय में आचार्यों की जयन्ती या उत्सवों पर आयोजित किया जाता है। ब्रज के विभिन्न सम्प्रदायों में प्राचीनतम माने जाने वाले इस सम्प्रदाय में समाज गायन की परम्परा अति प्राचीन है। यहाँ कीर्तन व्यवस्था भी समाज गायन से अभिहित की जाती है।

महावाणी में कहा गया है -

''मोहन मंदिन चौक में, मिलि सब सखी समाज।
बीन बजावहिं, गावहि, मधुर-मधुर सुर साज।''[1]
''बजत बधाई महल में आई सखी समाज।''[2]
''मंगल साज समाज सौं गावत मंगल गीत।''[3]
''सुनियो रे आज नचावै नन्द को हिलि मिलि सकलसमाज।''[4]

समाज गायन से तात्पर्य संगीत के कतिपय गायकों का ऐसा समूह जो मन्दिरों में उत्सव-महोत्सव पर एक साथ बैठकर अनेक वाद्यों के साथ वाणी ग्रन्थों के पदों का गायन करते हैं।

इस प्रकार निम्बार्क सम्प्रदाय में भी 'समाज गायन' की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। इस सम्प्रदाय के आचार्य श्री वृन्दावन देव जी ने समाज संगीत की परम्परा के विषय में कहा है-

'दयो विधाता प्रथम इह नारदादि कौं चाहि।
विधिवन्नारदादिक हूँ धरनि उतारयो याहि।।
नाद ब्रह्म गान्धर्व है या बिनु सुर नहिं नृत्य।
नहीं गीत या बिनु कुछ तातैं यह है नित्य।।
उठत वायु तैं नाद है जातै सुर संघात।।
या ही तै कलि काल में सबग साधन में मुख्य।
कह्यों कीर्तन व्यास शुक ज्यौं नरवतिन में पुष्य।।[5]

निम्बार्क सम्प्रदाय में नृत्य

नृत्य मानव की आदिम प्रवृत्ति है। उल्लास के क्षणों में यह प्रवृत्ति अपनी लय ताल की अनुरूप व्यवस्था में पद गीत को सहज ही अभिनय तत्व से समन्वित करके नृत्य का स्वरूप प्रदान करने में समर्थ हो जाती है। निम्बार्क सम्प्रदाय में नृत्य की अपनी विशेष परम्परा है। यहाँ नृत्य का प्रयोग मुख्यत: कृष्ण जन्माष्टमी अथवा अन्य विशिष्ट अवतारों की जयन्तियों के उपलक्ष्य में आयोजित किया जाता है। इनमें प्रमुख रूप से ढांड़ा-ढांड़ी नृत्य, नृसिंह नृत्य और कहरवा नृत्य का आयोजन किया जाता है।[6]

निम्बार्क सम्प्रदाय में रासलीला

रासेश्वर-युगल-श्रीराधाकृष्ण के जिस माधुर्यमयी रूप एवं रासलीलादि विविध साहित्य में प्राप्त होता है, उसी का सांगोपांग विकास पुराण साहित्य में अत्यन्त विस्तार के साथ परिलक्षित है। रासवर्णन की इस माधुर्यमयी धारा ने जहां एक ओर वैष्णव-शास्त्रज्ञों को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया, वहीं दूसरी ओर रासलीला के व्यवहारिक या खेले जाने वाले स्वरूप का भी, अत्यन्त विस्तार के साथ प्रचार किया। श्रीकृष्णभक्ति से सम्बन्धित वैष्णव सम्प्रदायों ने प्रेमाभक्ति के संवर्द्धन तथा विशिष्ट रस-साधना के प्रचलन की दृष्टि से, रासेश्वर श्रीराधाकृष्ण के स्वरूप तथा लीलाओं का जैसा निरूपण अपने सिद्धान्त ग्रन्थों में किया है, वह निश्चय ही पारम्परिक धारा को तो वेगवान बनाता ही है, साथ ही अपने मौलिक दृष्टिकोण की भी प्रतिष्ठा करता है। ब्रज स्थित श्रीकृष्णभक्तिपरक सम्प्रदायों में सर्वप्राचीन सम्प्रदाय के रूप में सुप्रतिष्ठित श्री निम्बार्क सम्प्रदाय ने अपने स्तर पर सर्वप्रथम रासलीला तथा उसके तत्वों का सहज रूप में निरूपण कर रासलीला का प्रचार तो किया ही, साथ ही विद्वानों, भक्तों तथा आचार्यों का भी पथ इस दिशा में प्रशस्त कर दिया है। निम्बार्क सम्प्रदाय के रास-निरूपण में पारम्परिक मान्यताओं एवं रस सम्बन्धी साम्प्रदायिक विधियों का जो अद्‌भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है निश्चय ही वह अत्यन्त सुदृढ़ आधार भूमि पर स्थित होने के कारण आज भी प्रेरक तथा मौलिक बना हुआ है।

रासेश्वर श्रीकृष्ण, रासेश्वरी श्रीराधा एवं उनकी सखियां, रासलीला की सुरम्य एवं दिव्य स्थली वृन्दावन विविध लीलाओं के केन्द्र-विविध वन एवं क्रीड़ाओं के जो वर्णन निम्बार्क-सम्प्रदाय के साहित्य में उपलब्ध हैं, वे धर्मनिष्ठा उत्पन्न करने के साथ ही, भक्तजनों को रासलीला की साधना में प्रवृत्त करते हुए, रासलीला के प्रति सर्वसाधारण की अभिरूचि का सम्वर्द्धन भी करते हैं।7

निम्बार्क सम्प्रदाय में वाद्य-वादन

निम्बार्क सम्प्रदाय में वाद्य-वादन मुख्यत: यहाँ की सांगीतिक विधाओं व रासलीला में संगीत के लिए प्रयुक्त होता है। मुख्य रूप से पखावज, तानपूरा, हारमोनियम, सारंगी, तबला आदि वाद्यों का प्रयोग यहाँ किया जाता है।8

निष्कर्ष

अत: हम कह सकते हैं कि निम्बार्क सम्प्रदाय में संगीत की सभी विधाओं का समावेश है। साथ ही संगीत का गूढ़ ज्ञान भी सूक्त रूप में अन्तर्निहित है जिसका प्रयोग यहाँ की पूजापद्धति में परम्परागत रूप से प्राचीन काल से किया जाता रहा है।

सन्दर्भ

1. शरण गोविन्द, हरिव्यास देव, महावाणी, श्री निम्बार्क प्रकाशन ट्रस्ट, श्री जी मन्दिर वृन्दावन, द्वितीय संस्करण, सन् 1975, दोहा सं0-110, पृ0सं0 67
2. शरण गोविन्द, हरिव्यास देव, महावाणी, श्री निम्बार्क प्रकाशन ट्रस्ट, श्री जी मन्दिर वृन्दावन, द्वितीय संस्करण, सन् 1975, दोहा सं0-110, पृ0सं0 138
3. शरण, ब्रजवल्लभ (सम्पा0), रूपरसिक देव, श्री वृहदुत्सवमणिमाल, निम्बार्क पीठ सलेमाबाद, प्रथम संस्करण, सन् 1988, पद सं0 168, पृ0सं0 67
4. शरण, ब्रजवल्लभ (सम्पा0), रूपरसिक देव, श्री वृहदुत्सवमणिमाल, निम्बार्क पीठ सलेमाबाद, प्रथम संस्करण, सन् 1988, पद सं0 170, पृ0सं0 69
5. शरण, ब्रजवल्लभ (सम्पा), वृन्दावन देव जी, गीतामृत गंगा, श्री जी मन्दिर वृन्दावन, प्रथम संस्करण, सन् 1991, घाट-14, दोहा 4-5।
6. शुक्ल, डॉ0 गौरव, श्री निम्बार्क सम्प्रदाय का सांगीतिक अवदान, ल्यूमिनस बुक्स वाराणसी, प्रथम संस्करण 2016, पृ0सं0 77
7. शुक्ल, डॉ0 गौरव, श्री निम्बार्क सम्प्रदाय का सांगीतिक अवदान, ल्यूमिनस बुक्स वाराणसी, प्रथम संस्करण 2016, पृ0सं0 78
8. शुक्ल, डॉ0 गौरव, श्री निम्बार्क सम्प्रदाय का सांगीतिक अवदान, ल्यूमिनस बुक्स वाराणसी, प्रथम संस्करण 2016, पृ0सं0 80-81

कनपटा गोरख सम्प्रदाय

डॉ० प्रियंका सिंह

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, दिग्विजयनाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोरखपुर

ABSTRACT

आदिकाल से भारतीय संस्कृति के अभाव में ऋषियों महर्षियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है और भारत में जितने धर्म और सम्प्रदाय विकसित हुए, वैसा विश्व की किसी भी संस्कृति में दिखाई नही देता है। इसलिए धर्म को भारतीय संस्कृति की प्राणवायु माना गया है। इन धार्मिक मान्यताओं में शैष, वैष्णव, शाक्त, गणपति जैसे अनेक सम्प्रदायों का विकास हुआ जिनकी महत्ता देश के अलग-अलग भागों में स्थापित है। भगवान विष्णु की तरह शिव का अतवार नही हुआ बल्कि उनका विकास रुद्र से शिव के रुप में हुआ क्योंकि ऋग्वेद में भगवान शिव को रुद्र नाम से ही सम्बोधित किया गया है जो अपने विघटनकारी और विनाशकारी शक्तियों के लिए जाना जाता है लेकिन उत्तर वैदिक काल तक आते आते रुद्र शिव के रुप में स्थापित हुए और पुराणों ने इन्हे देवाधिदेव महादेव के रुप में श्रेष्ठतम् देवता के रुप में स्थापित किया है।

नाथपंथ जिसकी स्थापना ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दी में हुई जिसमें मत्स्येन्द्रनाथ गुरु गोरक्षनाथ, योगी गम्भीरनाथ जैसे अनेक चमत्कारिक महापुरुषों का अविर्भाव हुआ और गुरु गोरक्षनाथ के रुप में जिन्हे शिवावतार माना गया। इसके सुप्रसिद्ध अधिष्ठात्र देवता के रुप में ही करता है। नाथ पंथ का क्षेत्र भारत के विभिन्न भागों के अतिरिक्त पड़ोसी देश नेपाल सहित अन्य कई देशों में विस्तृत है और सही अर्थों में कहा जाए तो यह पंथ महर्षि पतंजलि के पश्चात् योगिक क्रियायों के लिए सर्वाधिक विख्यात हुआ।

कनपटा गोरख संप्रदाय के योगियों का एक वर्ग है। दीक्षा के समय कान छिदवाकर उसमेंकर्ण मुद्रा या कुंडल धारण करने के कारण इन्हे कनपटा कहते हैं। इसी आधार पर कनपटा योगियों को दरसनी साधु भी कहा जाता है। यह क्रिया प्रायः किसी शुभ दिन अथवा अधिकतर बसंत पंचमी के दिन सम्पन्न की जाती है, और इसमें मंत्रोप्रयोग भी होता है।

KEy~ WORDS- कर्णकुण्डल धारण की प्रथा

गोरखपंथी लोग मुख्यतः बारह शाखाओं में विभक्त हैं। अनुश्रुति के अनुसार स्वयं गोरखनाथ ने परस्पर विच्छिन्ननाथ पंथियों का संगठन करके इन्हे बारह शाखाओं में विभक्त कर दिया था। वे बारह पंथ ये हैं- सत्यनाथी, धर्मनाथी, रामपंथ, नटेश्वरी, कल्हड़, कपिलानी, वैरागपंथ, माननाथी, त्राईपंथ, पागलपंथ, धजपंथ और गंगानाथी। इन बारह पंथों के कारण ही शंकराचार्य के दर्शनार्थी सन्यासियों की भांति इन्हे बारहपंथी योगी कहा जाता है। प्रत्येक पंथ का एक-एक विशेष स्थान है, जिसे ये लोग अपना पुण्यक्षेत्र मानते हैं।

कनपटा गोरख सम्प्रदाय के योगियों का एक वर्ग है। दीक्षा के समय कान छिदवाकर उसमें मुद्रा या कुंडल धारण करने के कारण इन्हे कनपटा कहते है। नाथ योगी सम्प्रदाय में ऐसे योगी, जो कान नही छिदवाते और कुण्डल धारण नही करते, औघड़ कहलाते हैं। औघड़ जालंधरनाथ के और कनपटा मत्स्येन्द्रनाथ तथा गोरखनाथ के अनुयायी माने जाते हैं, क्योंकि प्रसिद्ध है कि जालंधरनाथ औघड़ थे और मत्स्येन्द्रनाथ एवं गोरखनाथ कनपटा। कानचीर कर मुद्रा धारण करने पर योगी लोग कनपटा कहलाते हैं परन्तु उसके पूर्व औघड़ कहे जाते थे। गोरखपंथी लोग कान के मध्य भाग में ही कुण्डल धारण करते है पर कानिया लोग कान की लोरी में भी उसे पहनते हैं। यह मुद्रा गोरखपंथी योगियों का चिन्ह है। गोरखपंथ में इनके अनेक आध्यात्मिक अर्थ भी बताये जाते हैं, कहते है कि यह शब्द मुद्र (प्रशन्न होना) और रा (आदान ग्रहण) इन धातुओं से बना है, ये दोनों जीवात्मा और परमात्मा के प्रतीक हैं, इसलिए इन्हे 'साक्षात्कल्याणदायिनी' मुद्रा कहा जाता है। मुद्रा धारण के लिए कान का फाड़ना आवश्यक है और यह कार्य छुरी या तुरिका से होता है, इसलिए तुरकोपनिषद में छूरी का महात्म्य वर्णित है। तात्पर्य यह है कि जो साधु कान फाड़कर मुद्रा धारण नही करते, उनका गोरक्षनाथ के मार्ग से सम्बन्ध संदेहास्पद ही है।

यद्यपि यही विश्वास किया जाता है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने या गोरखनाथ ने ही कर्णकुण्डल धारण करने की प्रथा चलाई थी तथापि कर्णकुण्डल कोई नई बात नही है। इस प्रकार के प्राचीन प्रमाण मिलते है, जिससे अनुमान होता है कि कर्णकुण्डलधारी शिवमूर्तियाँ बहुत प्राचीनकाल में भी बनती थी। एलोरा गुफा के कैलाश नामक शिव मन्दिर में शिव की एक महायोगी मुद्रा की मूर्ति पायी गयी है, इस मूर्ति के कान में बड़े-बड़े कुण्डल है। यह मन्दिर और मूर्ति आठवीं शताब्दी की हैं। परन्तु ये कर्णकुण्डल कनफटा योगियों की भाँति नही पहने गये हैं।

ब्रिग्स ने बम्बई की लिटरैरी सोसायटी के अनुवादों से उद्धृत करके लिखा है कि सालसेटी एलोरा और एलीफेंटा की गुफाओं में, जो आठवीं शताब्दी की हैं, शिव की ऐसी अनेक योगी मूर्तियां है, जिनके कान में वैसे ही बड़े-बड़े कुण्डल है, जैसे कनफटा योगियों के होते हैं और उनको कान में उसी ढंग से पहनाया भी गया है। इसके अतिरिक्त मद्रास के उत्तरी आरकूट जिले में परशुरामेश्वर का जो मन्दिर है उसके भीतर स्थापित लिंग पर शिव की एक मूर्ति है जिसके कानों में कनफटा योगियों के समान कुण्डल है। इन सब बातों को देखते हुए यह अनुमान करना असंगत नही है कि मत्स्येन्द्रनाथ के पहले भी

कर्णकुण्डलधारी शिवमूर्तियां होती थी। इससे परम्परा का भी कोई विरोध नही होता क्योंकि कहा जाता है कि शिवजी ने ही अपना वेश ज्यों का त्यों मत्स्येन्द्रनाथ को दिया था। एक अनुश्रुति के अनुसार तो शिव का वह वेश पाने के लिए मत्स्येन्द्रनाथ को दीर्घकाल तक कठोर तपस्या करनी पड़ी थी।

नाथपंथियों का मुख्य सम्प्रदाय गोरखनाथी योगियों का है। इन्हे साधारणतया कनफटा और दर्शनी साधु कहा जाता है। कनफटा नाम का कारण यह है कि ये लोग कान फाड़कर एक प्रकार की मुद्रा धारण करते हैं इस मुद्रा के नाम पर ही इन्हे दर्शनी साधु कहते है। यह मुद्रा नाना धातुओं और हाथी दांत की भी होती है। आधुनिक धनी महन्थ लोग सोने की मुद्रा भी धारण करतें है। गोरखनाथी साधु पूरे भारतवर्ष में पाये जाते है। पंजाब, हिमालय, नेपाल और बम्बई में ये लोग 'नाथ' कहे जाते है। ये लोग जो मुद्रा धारण करते हैं वे दो प्रकार की होती है, कुण्डल और दर्शन। दर्शन का सम्मान अधिक है। क्योंकि विश्वास किया जाता है कि इसे धारण करने वाले ब्रह्म साक्षात्कार कर चुके होते हैं। कुण्डल को पविती भी कहते हैं।

नाथ योगी को स्पष्ट रुप से पहचाना जा सकता है। मेखला, सृंगी, सेली, गुदरी, खप्पर, कर्ण, मुद्रा, बंधवार, झोला आदि चिन्ह ये लोग धारण करते हैं। पहले ही बताया गया है कि कान फाड़कर कुण्डल धारण करने के कारण ये लोग कनफटा कहे जाते है। कान फड़वाने की प्रथा किस प्रकार शुरु हुई, इस विषय में नाना प्रकार की दन्तकथाएं प्रचलित हैं। कुछ लोग बताते हैं कि स्वयं मत्स्येन्द्रनाथ ने इस प्रथा का प्रारम्भ किया। उन्होंने शिव के कानों में कुण्डल देखा था और उसे प्राप्त करने के लिए कठिन तपस्या की थी। कुछ लोगों का कहना है कि गोरखनाथ ने भरथरी का कान फाड़कर इस प्रथा को चलाया था। भरथरी के कान में गुरु ने मिट्टी का कुण्डल पहनाया था। अब भी बहुत से योगी मिट्टी का कुण्डल धारण करते हैं परन्तु इसके टूटने की सदा आशंका बनी रहती है। इसलिए धातु या हिरन के सींघ की मुद्रा धारण की जाती है। जो विधवा स्त्रियां सम्प्रदाय में दीक्षित होती है वे भी कुण्डल धारण करती है और गृहस्थ योगियों की स्त्रियाँ भी इसे धारण करते हुए पायी जाती है। गोरखपंथी लोग किसी शुभ दिन को (विशेषकर बसंत पंचमी को) कान को चिरवाकर मंत्र के संस्कार के साथ इस मुद्रा को धारण करतें हैं। उन लोगों का विश्वास है कि स्त्रियों के दर्शन से घाव पक जाते है, इसलिए जब तक घाव अच्छा नही हो जाता तब तक स्त्री दर्शन से बचने के लिए किसी कमरे में बंद रहतें हैं और फलाहार करते हैं। कान का फटजाना भावाजोखी का व्यापार माना जाता है। जिस योगी का कान खराब हो जाता है, वह सम्प्रदाय से अलग हो जाता है, और पुजारी का अधिकार खो देता है। यह कर्णकुण्डल निसंदेह योगी लोगों का बहुत पुराना चिन्ह है परन्तु कुछ ऐसे भी है जो इसे नही धारण करते है। ये लोग औघड़ कहे जाते है। औघड़ लोगों का जब कर्णमुद्रा संस्कार हो जाता है, तब उन्हे योगी कनफटा कहा जाता है। ऐसे भी औघड़ है जो आजीवन कर्णमुद्रा धारण करते ही नही। कहते है कि हिंगलाज में दो सिद्ध, एक शिष्य का कान चिरने लगे थे पर हरबार छेद बन्द हो जाता था। तभी से औघड़ लोग कान चिरवाते ही नहीं है। सुधारक मनोवृत्ति के योगी लोग मानते हैं कि श्रीनाथ ने यह प्रथा इसलिए चलाई होगी कि कान चिरवाने की पीड़ा के भय से अनाधिकारी लोग इस सम्प्रदाय में प्रवेश ही नहीं कर सकेंगे।

नाथमत को मानने वाली बहुत सी जातियाँ घर बारी हो गई है। भारतवष्र के हर हिस्से में ऐसी जातियों का अस्तित्व पाया जाता है। शिमला पहाडिघ्यों के नाथ अपने को गोरखनाथ और भरथरी का अनुयायी मानते हैं। ये लोग गृहस्थ होकर एक जाति ही बन गए है। यद्यपि ये भी कान चीर कर कुण्डल ग्रहण करते हैं, पर इनकी मर्यादा कनफटा योगियों से हीन मानी जाती है। ये लोग उत्तर भारत के महाब्राम्हणों के समान श्राद्ध के समय दान पाते हैं। उपरी हिमालय के नाथों में भी कानचिरवा कर कुण्डल धारण करने की प्रथा है परन्तु घर में कोई एक या दो आदमी ही ऐसा करते हैं । ऐसा करने वाले 'कनफटा नाथ' कहलाते हैं। ये भी गृहस्थ है और इनकी मर्यादा भी बहुत ऊँची नही है। ऐसी जैसी नीच समझी जाने वाली जाति के लोग भी इनका अन्न जल नही ग्रहण करते हैं। अल्मोड़ा में सतनाथी और धर्मनाथी सम्प्रदाय के गृहस्थ योगी है। इनके परिवार का कोई एक लड़का कान में कुण्डल धारण कर लेता है। योगियों में विवाह की प्रथा भी पाई जाती है। कहीं कहीं ब्राम्हण विवाह का संस्कार कराते हैं और कहीं कहीं नाथ ब्राम्हण नामक जाति पंजाब में गृहस्थ योगियों को रावल कहा जाता है। ये लोग भीख मांगकर, करामात दिखाकर, हाथ देखकर अपनी जीविका चलाते हैं।

इस प्रकार क्या बैराग्यप्रवण और ग्रहस्थप्रवण सैकड़ों योगी सम्प्रदाय और जातियाँ समूचे भारत में फैली हुई है। यह परम्परा वैदिक धर्म से भिन्न थी और अब भी बहुत कुछ भिन्न है, इसका आभास उपर के विवरण से मिल गया होता।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गंभीरनाथ प्रसंग
2. ब्रिग्स गोरखनाथ एण्ड कनफटा योगीराज- श्री जार्ज वेन्ट्रल ब्रिग्सलिखित, कलकत्ता 1938
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी- नाथ सम्प्रदाय।
4. डॉ0 जयराम सिंह- नाथ पंथ और गुरु गोरक्षनाथ।
5. भरथरी चरित्र- (नौखण्ड) हावड़ा 1942 ई0
6. भारतीय दर्शन- पं0 बलदेव उपाध्याय, द्वितीय संस्करण काशी 1945 ई0
7. विश्वभारती पत्रिका (हिन्दी)- हजारीप्रसाद द्विवेदी, संपादित, शान्ति निकेतन, बंगाल

स्त्री की यात्रा

डॉ० वन्दना शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर-हिन्दी विभाग, मुलतानीमल मोदी कॉलेज, मोदीनगर

यदि हम विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं के उपलब्ध तथ्यों, पुस्तकीय सामग्री एवं किचिंत विश्वसनीय श्रुत परम्परा पर विचार करें तो ऐसी कोई भी सभ्यता संस्कृति समाज नहीं है जहाँ स्त्रियों की दशा मानव परिवर्तनीय विकासात्मक न रही हो। किसी भी समाज को स्त्रियों की इस ऐतिहासिक यात्रा के विभिन्न पड़ावों ठहरावों और यात्रा स्तम्भों की विवेचना का दायित्व उठाना ही चाहिए। पुरूष स्त्री की यह यात्रा युगों के अंतराल को समेटे हुए है हरेक युग के किसी भी भू-खण्ड की सभ्यता को परखने जानने के लिए हमें उस समय की स्त्री की दशा को जानना होगा।

भारतीय पांडण्मय में हमारे सबसे माननीय ग्रंथ वेद रहे है जिसमें ऋग्वेद हमारा प्रथम वेद मान्य रहा है। जब हम ऋग्वेद के किसी हिंदी अनुवाद का अध्ययन करते हैं तो हमे ज्ञात होता है कि इसकी वैदिक ऋचाओं में सबसे पहला वह सम्बोधन जोकि किसी स्त्री के प्रति आया है वह विद्या बुद्धि की अधिक ठात्री देनि सरस्वती से इस प्रकार है-

'हे पवित्र करने वाली सरस्वती! तू बुद्धि द्वारा अन्न और धन को देने वाली है। मेरे इस यज्ञ को सफल करे दो सत्य कर्मो की प्रेरक उत्तम बुद्धि को प्रशस्त करने वाली सरस्वती हमारे यज्ञ को स्वीकार करने वाली हैं। सरस्वती विशाल ज्ञान-समृद्ध को उज्ज्वल करने वाली है। यहि सब बुद्धियों को ज्ञान की ओर प्रेरित करती है।'

ऋषि-मधुच्छन्दा:, वैश्वामित्र:। देवता-आश्वनौ:, इंद्र:, विश्वेदेव: सरस्वती:। दृढ-गायत्री।

जिस समय में स्त्री की जैसी स्थिति होगी। उसका प्रतिबिम्ब साहित्य और कलाओं में अवश्य ही परिलक्षित होगा तो ऋग्वेद में वर्णित प्रथम स्त्री माँ के रूप में दात्री के रूप में सामर्थ्यवान के रूप में आती हैं चाहे वह सामान्य मानवी नहीं एक देवी ही हैं। ऋग्वेद की अन्य स्थानों पर यदि हम स्त्री के प्रति तत्कालीन समान का दृष्टिकोण खोजते है तो प्रारम्भिक वर्णन अथवा प्रार्थनाएं तो अधिकांशत: गौ-धन, अन्नुधन एवं पुत्र के लिए ही मिलती है।

'हे अग्ने! नए श्लोको से प्रार्थना किए जाते हुए तुम हमारे धन, पुत्र और अन्न के प्रक्षता बनों।

देवियो और देवपत्नियो के जिसने भी आहवान ऋग्वेद में मिलते है वे सभी उनके प्रति बहुत सम्मानपूर्ण समानता के धोतक ही मिलते हैं। उन सभी वर्णन में सभी स्त्रियों परमवीर, द्रुतगामिनी और रक्षा में सामर्थ्यवान वर्णित हुई है। फिर चाहे वे अग्नि की पत्नि हो, वरूण देव की पत्नि हो या इन्द्र की पत्नि हैं।

सामान्य स्त्री का जो प्रथम वर्णन हमें हमारे प्रथम ग्रंथ में मिलता है वह अत्यन्त रोमांचक है। यहाँ ऋषि शनु: शेषै आजीगर्ति: गायत्री छंद में इंद्र देवता की अर्भ्यथना करते हुए लिखते है कि

'हे इंद्र: जहाँ कूटने के लिए दृढ पत्थर का मूसल उठाया जाता हैं वहाँ निष्पन्न किए गए सोमो का बार-बार सेवन करों जहाँ सोम कूटने वाले सिल बट्टे अथवा फलक रखे है, उनसे तैयार किए हुए सोमरस को ग्रहण करो। जहाँ मारी सोमरस तैयार करने के लिए मूसल से कूटने के लिए डालने निकालने का अभ्यास करती है।

'हे इंद्र! वहाँ जाकर सोमरस को ग्रहण करों'

इस प्रकार वेदों में कई स्थानों पर कर्मठ ग्रहस्वामिनी जैसे विशेषणों के साथ भी स्त्री की तत्कालीन स्थिति के संकेत मिलते है। विद्यवा स्त्री के निमश्रय हो जाने के संकेत मिलते है। विवाह योग्य वर कन्या के उनके माता-पिता के संदर्भ भी है।

'इस पति के विवाह नियित्त जिस नारी के माता-पिता पास लाए हैं उसे यह अग्निदेव मधु, छृत से वृद्धि करे इन पति पत्नि का आवास दृग्धादि से सम्पन्न रहे। इनका सज्य वृद्धि करें। त्वष्टा ने इस नारी को उत्पन्न किया है। हे वर: तुम्हे इस स्त्री के पति रूप में भी त्वष्टा ने बनाया हैं, अत: हे पति पत्नि: त्वष्टा तुम्हे सहसायु करें।

साथ ही पुत्र प्राप्ति की मनोकामना के लिए की गई प्रचुर प्रार्थनाएं भीहमें वेदो में मिलती हैं। उत्तम घोड़ों, बलिष्ठ, पुत्रों, प्रचुरगौयधन, धन एवं कृषि योग्य भूमि की आवेगमय प्रच्चाओं में स्त्री का होना वंश के हितार्थ होना है।

विष्णुपुराण में ब्रहमा की टेढ़ी यृकुटि और क्रांध संतप्त ललाट से दोपहर के भासित भास्कर के समान जिस रूद्र की उत्पत्ति बताई वहाँ नारी की उत्पत्ति बताई समानता का जो शंखनाद होता होता हैं वहं निम्न प्रकार वर्णित है।

अर्धनारीनरवपु: प्रचण्डोडतिशरीरवान।

विमजात्मानमित्युक्त्वा तं ब्रहमान्तर्दधे तत:।।

विष्णुपुराण में आए स्वायम्मुव मनु के तप के कारण निष्पाय शतरूपा नाक स्त्री के परिचय से भी हमें तत्कालीन समाज में उत्तम स्त्री के मापदण्ड़ मिलते हैं जिनसे हम उस समय की स्त्री की समाज में स्तिथि, महत्ता, आवश्यकता आदि को समझ सकते हैं। वैदिक काल में कन्या का जन्म प्रार्थनीय तो नहीं मिलत।

प्रार्थनाओं से वह उपनिष्द काल में भी नहीं मिलती पर वहां वह सध्य स्थिति में अवश्य मिलती है। पर दोनो ही कालो में स्त्री के सौभ्य सदाचारी पालनभत्री ग्रहस्वामिनी अन्नपूर्णा एवं विवाह से पूर्व अक्षत यौवना होने को ही अमिष्टित माना गया है प्रचीन भारतीय बाहमय की विद्यार्थी धोबा लानामुख सुलमा नोधा सिरमा लेकर गार्गी मैत्रेयी जैसी आचार्या स्त्रियां भी तत्कालीन समाज में स्त्री के स्थिति का शिलालेक्ष्व है। जिससे यह तो स्पष्ट तथ्य निकलकर आता है कि स्त्रियों को शिक्षा दीक्षा दोनो का पूर्ण अधिकार था। कन्या की शिक्षा दिक्षा को लेकर डा0 उर्मिला प्रकाश मिश्र लिखती है।

''पूर्व वैदिक काल में भी लोपामुद्रा विश्वावारा, सिकता तथा धोषा आदि अनेक विदुषी जी स्त्री कवियों वैदिक मंत्रों की रचना भी की थी और इसलिए वे वेद में 'ऋषि' उपाधि से विमूषित हुई थी। नोधा, अकृष्टामाप, सिकता , निवावादी तथा गोपायना आदि अन्य विदूसी नारियाँ थी जिनका उल्लेख सामवेद से मिलता है।''

प्राचीन परम्परा में पंच मान्यताएं भी परम विदुषी कई योग्यताओं में निष्णात मानी गई है। इनमें कई स्त्रियों उत्तम कोटि की शास्त्र मर्मज्ञ, कवयित्री अथवा वेद अध्ययन में विशेष सफलताएं अर्जित कर चुकी थी।

याज्ञवल्यक गार्गी शास्त्रार्थ से कौन परिचित नहीं है। कन्या रूप में नवदुर्गाओं की जो अवधारणा हमारे पुराणों में उल्लिखित हैं। वे सभी परमवीर उत्तम गुणों से युक्त होने के साथ ही समाज को गात्र अलौकिक स्त्री की किनंदन्ती नहीं देती हैं वे असल में हमारी मान्यताओं में भी स्त्री के पुरूष से नहीं अधिक सामर्थ्यवान होने के मत को धार्मिक दृष्टि से पुष्ट करने का सम्पूर्ण प्रयास भी है। कहा जा सकता है कि हमारी वैदिक स्त्री पुराणों में उपनिवदों मेंएवं हमारी धार्मिक स्थानों में भी पर्याप्त रूप से दृष्टि गोचर हुई है।

अग्नि की प्रार्थना में ऋषि पाराशर जब यह कहते है कि 'वे सक्षम एवम् ग्रहिणी के समान घर में वसने वाले हैं।

'अग्नि कन्याओं का कौमार्य समाप्त करने वाले तथा विवाहित के पति हैं स्त्रियों ग्रहिपत्य अग्नि का रोज पति के साथ पूजन करती है' तब एक अन्य ही वैदिक स्त्री का पता हमें चलता हैं।

उक्त अनुवाक् से यह स्पष्ट संकेत मिलते है कि वैदिक काल में भी अमिजात्य समाज के दृश्य पश्चात् के दृश्यों जैसे ही रहें जब रामशरण शर्मा यह लिखते है कि ''ऋग्वेद में वैदिक जनों के जिन नेताओं का आर्य कहकर गणगान किया गया है तो वे या तो समृद्ध थे या अभिजात थे। जो आर्य जनसाधारण होते थे वे आर्य कहलाते थे''

कृषि भूमि पर अधिकार के संधर्ष, बलिप्रथा, अश्वमेध संख्याशक्ति गौपालन आदि वैदिक समाज के कितने ही ऐसे क्षेत्र हैं जिसके द्वारा हमें स्त्री दशा दिशा महत्ता आवश्यकता आदि का भली प्रकार प्रकार बोध होता हैं।

अथर्ववेद में तो संदर्भ बहुत स्पष्ट रूप में आते है जिनमें कन्या, पत्नि, गणिका, विवाह योग्य कन्या और गर्भवती पत्नि को लेकर अनेक प्रकार की धारणाएं, हितचिंतन और वक्तव्य ऋचाओं में प्रकट किए गए है निष्कर्ष रूप में हम यह पाते है कि पुरा वैदिक काल वैदिक उपनिषद काल में भारतीय वाडमय की स्त्री' तत्कालीन समाज की स्त्री के प्रति अवधारणा या सोच को अत्यन्त स्पष्ट रूप से परिलक्षित करती है और इस पूर्वाग्रह पर चोट अवश्य करती है कि भारतीय समाज स्त्री अधिकारों के प्रति अत्यन्त संकुचित था।

सन्दर्भ सूचीः-

1. (प्रथम अध्याय, पृ0स0 6,7 ऋग्वेद प्रस्तुति आचार्य मानिक, पब्लिकेशन-साधना संस्करण-2009)
2. (प्रथम अध्याय, पृ0स0 12,13 चौथा अनुलाक, ऋषि-में धातिथि काण्वः। देवता-अग्निः। छेद-गायत्री, प्रस्तुति आचार्य मानक, साधना पब्लिकेशन, संस्करण-2009)
3. (प्रथम अध्याय, पृ0स0 24,25 ऋषि-शुनः शेष आजीगर्तिः। देवता-इंद्र यज्ञ सोमादय उक्त संदर्भ में उपलब्ध तथ्य हैं
4. (ऋषि-अथर्वाद। देवता चंद्रमा। छंद अनुष्टुप अथर्ववेद पृ0सं0 163, प्रस्तुति आचार्य मानिक साधना पब्लिकेशन, संस्करण 2008)
5. (श्री विष्णु पुराण, गीता प्रेस गोरखपुर-प्रकाशकन मुद्रक) सं0-2064-तिरपनवाँ पुनर्मुद्रण, प्रथम अंश, श्लोक-13 पृ0सं0 30)
6. भारतीय परम्परा में नारी प्रथम अध्याय, पृ0सं0-2, प्रकाशन म0प्र0 हिन्दी ग्रंथ अकादमी द्वितीय संस्करण-2002)
7. (ऋग्वेद, अनुवाक् 66 पृ0सं0 59/60 ऋषि पाराशरः शाक्यः। देस्ता अग्निः बाकी नहीं)
8. पृं0सं0 14/15, आर्य संस्कृति की खोज-ले0 रामशरण शर्मा, सारांश प्रकाशन, पेपर बैक संस्करण।

भारतीय तर्कशास्त्र में अनुमान विचार

डॉ० श्रीप्रकाश तिवारी

असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय, यूसुफपुर मुहम्मदाबाद, गाजीपुर

ऋग्वेद काल से ही तत्व-साक्षात्कार के लिए मुख्यत: दो पद्धतियों का प्रयोग किया जाता रहा है: 1. प्रज्ञामूलक पद्धति और दूसरा 2. तर्कमूलक पद्धति। प्रज्ञामूलक पद्धति मूलत: रहस्यात्मक है, जबकि तर्कमूलक पद्धति विश्लेषणात्मक, निर्दर्शनात्मक एवं अनुभवाश्रित है। ऋग्वेद में भी तर्कना शक्ति का प्रयोग बड़ी सूक्ष्मता से इसका प्योग किया गया है। हाँ! व्हाँ अनुमान शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है, किन्तु कुछ ऋचाओं से यह ज्ञात होता है कि वहाँ भी साधारण या असाधारण ज्ञान के लिए अनुमान क्रिया का प्रयोग किया जाता था, जैसे 'शकमय धूमम्, मैंने समीप में ही गाय के गोबर से उतपन्न होने वाले धूम को देखा। तत्पश्चात् चारों दिशाओं में व्यापत इस दृष्ट धूम के द्वारा मुझे अदृष्ट अर्थात् नीचे दबी हुई अग्नि का बोध हुआ, आदि-आदि।[1] उपनिषदों और स्मृतियों तकं तर्क और युक्ति पद का अत्यधिक प्रयोग हुआ है। मनुस्मृति में कहा गया है- जो पुरुष ऋषियों द्वारा उपदिष्ट वेद तथा तन्मूलक स्मृतिशास्त्रों के तत्व को वेदानुकूल तर्क द्वारा अनुसंधान करता है वही धर्म के यथार्थ मर्म को समझता है, दूसरा नहीं[2], परन्तु उपनिषदों और स्मृतियों में प्रयुक्त तर्कनाशक्ति आत्मज्ञान की पहली सीढ़ी तक ही सीमित कर दिया गया और कहा गया कि तर्कना के परित्याग से ही आत्मज्ञान की प्राप्ति हो सकती है।

ब्रज नारायण शर्म के अनुसार भारतीय वाङ्मय में अनुमान के लिए 'आन्वीक्षिकी विद्या पद का प्रयोग हुआ है। बाल्मीकि रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि ग्रन्थों में आन्वीक्षिकी विद्या को आत्मविद्या के रूप में प्रतिष्ठित कियागया है।[3] इन ग्रन्थों में आन्वीक्षिकी विद्या को हेतुशास्त्र, हेतुविद्या, वाद-विवाद आदि अनेक नामों से पुकारा गया है।[4] आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता एवं दण्डनीति - इन चार विद्याओं का विधान करने के लिए कौटिल्य ने आन्वीक्षिकी विद्या 'त्रयी' आदि अन्य विद्याओं को विभिन्न युक्तियों द्वारा निर्धारित किया है। यह विद्याय लोक की उपकारक है, सुख-दु:ख में बुद्धि को स्थिर करती है एवं मनुष्य को सोचने, समझने व बोलने की क्रियाओं में निष्णात करती है। इसलिए इस आन्वीक्षिकी विद्या को सर्वदा ही समस्त विद्याओं का प्रदीप,सकल कार्यों का साधक एवं यावत् धर्मों का आश्रय माना गया है।[5]

अनुमान का स्वरूप- भारतीय परम्परा में व्यक्ति की अपेक्षा सम्प्रदाय को सर्वदा विशेष महत्व दिया गया है। यही कारण है कि भारतीय दर्शन भी सम्प्रदाय के नाम से ज्यादा जाना जाता है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त, जैन, बौद्ध, चार्वाक आदि सभी ने अनुमान के विषय में अपने-अपने मत व्यक्त किए हैं। यद्यपि सामान्य रूप से महर्षि गौतम को प्रमाण के रूप में अनुमान को प्रस्तुत करने का श्रेय दिया जाता है। उन्होंने ही न्याय सूत्र लिखकर प्रमाण के रूप में अनुमान को प्रस्तुत करने का श्रेय दिया जाता है। उन्होने ही न्यय सूत्र लिखकर प्रमाण के अन्तर्गत अनुमान को वैज्ञानिक प्रतिष्ठा दी, ऐसा माना जाता है, लेकिन वैशेषिक सूत्र, ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका तथा इनकी माठरवृत्ति भी इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय है। इसी प्रकार जैन परम्परा का अनुयोगद्वार सूत्र और बौद्ध ग्रन्थ दीर्घनिकाय और ब्रह्मजालसुत्त आदि में अनुमान के सूत्र यत्र-तत्र मिल जाते हैं। इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर बाद के आचार्यों जैसे जैन आचार्य सिद्धसेन दिवाकर और बौद्ध आचार्य दिङ्नाग ने प्रमाणशास्त्र को विकसित किया।

इतना तो सत्य है कि प्रमाण की चर्चा के अन्तर्गत सभी दार्शनिकों ने (चार्वाक को छोड़कर) अनुमान को माना है, किन्तु प्रमाण की संख्या के विषय में मतैक्यता नहीं है। चार्वाक एक मात्र प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानता है। प्रत्यक्ष के साथ-साथ बौद्ध और वैषेशिक ने अनुमान, सांख्य अनुमान एवं आगम, नैयायिक अनुमान, शब्द और उपमान, मीमांसा में प्रभाकर ने इन चारों के साथ अर्थापत्ति को तथा कुमारिल भट्ट ने इनके साथ अभाव को भी प्रमाण के अन्तर्गत स्वीकार किया है। जैनों ने दो प्रमाण स्वीकार किए है- प्रत्यक्ष और परोक्ष। परोक्ष के अन्तर्गत इन्होंने स्मृति, प्रत्यभिज्ञा, तर्क, अनुमान, आगम को स्वीकार किया है। प्रस्तुत आलेख में हम अनुमान की चर्चा करेंगे जिसे प्राय: सभी दार्शनिकों ने स्वीकार किया है।

'अनुमति करणं अनुमानम्' अनुमान की यह परिभाशा सभी भारतीय दार्शनिकों को स्वीकार्य है। इसी प्रकार 'अनुमीयतेऽनेन इति अनुमानम्' यह परिभाशा भी सर्वमान्य है। अनुमान शब्द दो पदों से निष्पन्न हुआ है- 'अनु' और 'मान'। 'अनु' उपसर्ग पष्चात् अर्थ में प्रयुक्त होता है जबकि 'मान' का अर्थ है 'ज्ञान'। इसका तात्पर्य है हेतुदर्शन के पश्चात् साध्य का जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह अनुमान है। हर किसी ज्ञान के पश्चात् होने वाला ज्ञान नहीं, अपितु विशिष्ट ज्ञान या व्याप्तिज्ञान से है। व्याप्ति को न्याय-ग्रन्थों में प्रयुक्त प्रसिद्ध उदाहरण के द्वारा समझा जा सता है। रसोई घर में बार-बार धुएँ और अग्नि होती है। जब कहीं जंगल में पर्वत विषेश पर धुएँ को देखता है तो अपने पूर्व निष्चित ज्ञान के आधार पर वह यह अनुमान कर लेता है कि पर्वत पर अग्नि है। उपर्युक्त उदाहरा के द्वारा जिस वस्तु का ज्ञान हुआ वह साधन बना अर्थात् 'धूम'। साधन और साध्य के अविनाभाव समबन्ध को व्यापित कहते हैं, जैसे जहाँ-जहाँ धुँआ है वहाँ-वहाँ धुँआ है वहाँ-वहाँ अग्नि है। व्याप्ति जो अनुमान का तार्किक आधार है को अस्वीकार करते हुए अनेक प्रश्न उठाएं हैं, जैसे व्याप्ति का ज्ञान कैसे होता है, प्रत्येक, अनुमान, उपमान या वह कौन-सा प्रमाण है जो व्याप्ति का साधन है? आदि-आदि। यहाँ हमारा उद्देश्य अनुमान के स्वरूप को प्रस्तुत करना है न कि उस पर लगे आक्षेपों का निराकरण।

विभिन्न मतों में अनुमान- न्याय दर्शन मे कहा गया है- 'तत्पूर्वकम् त्रिविधमनुमानम्।[6] किन्तु सूत्र के पश्चात् भी यह जिज्ञासा बनी रहती है कि 'तत' पद का अभिधेयार्थ क्या है? वात्स्यायन ने 'तत्' पद की व्याख्या इस प्रकार की है- 'तत' शब्द से 'लिंग-लिंगी दर्शन' और 'लिंग दर्शन' दोनों अभिप्रेत है। लिंगी

के साथ लिंग का ग्रहण हो जाने के उपरान्त लिंगदर्शन से व्याप्ति का स्मरण होता है। व्याप्ति स्मरण के बाद लिंग ज्ञान होता है और लिंग ज्ञान से परोक्ष वस्तु की जो जानकारी होती है, उसी को अनुमान कहते हैं, जैसे पर्वत से धुँआ(लिंग) देखकर प्रत्यक्ष के आधार पर व्याप्ति (लिंग-लिंगी), जहाँ-जहाँ धुआँ है वहाँ-वहाँ अग्नि है के ज्ञान से पर्वत पर अग्नि है का ज्ञान अनुमान है। न्यायभाष्य में अनुमान को कुछ इस रूप में परिभाषित किया गया है- ज्ञात लिंग के द्वारा लिंगी रूप अर्थ का जो परवर्ती ज्ञान होता है उसे ही अनुमान कहते हैं।[7] जयन्त ने इन सबसे अलग रूप में व्याख्यायित करने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार पक्ष सत्व आदि पाँच लक्षणों (पक्षसत्व, सपक्षसत्व, विपक्षासत्व, अबाधितविशयत्व, असत्प्रतिपक्षत्व) से युक्त हेतु के ज्ञान से व्याप्ति स्मरण के द्वारा उत्पन्न परोक्ष साध्य-विशय ज्ञान ही अनुमति है और अनुमति का करण अनुमान है।[8]

वैशेषिक मतानुसार कार्य, कारण, संयोगी, विरोधी एवं समवायी आदि लिंगों को देखकर जो तत्सम्बन्धी लिंगी का ज्ञान होता है, इसे 'लैंगिक' अर्थात् अनुमान कहते हैं।[9] वैशेषिक मतानुसार लिंग प्रसिद्धिपूर्वक होना चाहिए।[10] प्रसिद्धि अर्थात् व्याप्ति। जब तक एक वस्तु का दूसरी वस्तु से नियमित सम्बन्ध न निर्धारित कर लिया जाए तब तक किसी सम्बन्ध को व्याप्ति में संज्ञा नहीं दी जा सकती। सांख्य दर्शन के अनुसार प्रतिबंध दर्शन से प्रतिबद्ध का ज्ञान अनुमान है अर्थात् लिंग दर्शन से लिंगी का ज्ञान अनुमान है,[11] जैसे पर्वत पर धूम को देखकर पर्वत पर अग्नि की उपस्थिति का ज्ञान अनुमान है। प्रतिबंध या व्याप्ति। विज्ञानभिक्षु ने कहा है कि व्याप्ति ज्ञान से होने वले व्यापक यानी प्रतिबद्ध का ज्ञान अनुमान है। मीमांसा दर्शन का जो आधार ग्रन्थ मीमांसासूत्र है उसमें कहीं अनुमान को परिभाषित नहीं किया गया है। बाद में भाष्यकार शबरस्वामी ने उस पर प्रकाश डाला है। उन्होनें कहा है- ज्ञात सम्बन्ध के सम्बन्धी एकदेश दर्शन से एक देशान्तर का ज्ञान अनुमानहै। वेदान्तपरिभाषा के अनुसार अनुमितिज्ञान के कारण को अनुमान कहते हैं। यद्यपि वेदान्त दर्शन में अनुमान विचार न्याय दर्शन के अनुमान विचार पर आधारित है। जैन-न्याय'ग्रन्थों में अनुमान का स्पष्ट लक्षण 'न्यायावतार' में प्राप्त होता है। अविनाभावी लिंग द्वारा साध्य का जो निश्चयात्मक ज्ञान होता है उसे अनुमान कहते हैं। अकलंक ने इस परिभाषा के साथ-साथ एक और परिभाषा दी- 'साधनात् साध्यविज्ञानमनुमानम्।'[12] तात्पर्य है साधन को देखकर साध्य का नियत ज्ञान अविनाभाव रूप से प्राप्त करना अनमान है। अनुमान के लिए साधन और साध्य के बीच अविनाभाव सम्बन्ध नितांत अनिवार्य है। उत्तरवर्ती आचार्यों ने अकलंक द्वारा दिए गए अनुमान के इस लक्षण को प्रमुखता दी और स्वीकार किया।

बौद्ध दर्शन में दो प्रमाण स्वीकार किए गए हैं- प्रत्यक्ष और अनुमान। दिङ्नाग ने अनुमान का लक्षण इस प्रकार व्यक्त किया है- नान्तरीयकार्थदर्शनंतद्विदोऽनुमानम इति अर्थात् ज्ञात अविनाभाव सम्बन्ध द्वारा नान्तरीय अर्थ का दर्षन ही अनुमान है। धर्मकीर्ति ने प्रमाणवार्तिक में अनुमान का लक्षण बताते हुए कहा है- किसी सम्बन्धी के धर्म से धर्मी के विषय में जो ज्ञान परोक्ष रूप से उत्पन्न होता है, उसे अनुमान कहा जाता है। जैसे जो अग्न्यादि के सम्बन्धी (पक्ष) के धर्मभूत धूमादि के द्वारा वह्नि का ज्ञान होता ह। दिङ्नाग ने धर्मविशिष्ट धर्मी को ही साध्य के रूप में स्थिर किया है। प्रमाणवार्तिक आदि में पक्ष का निरास किया गया है। नान्तरीय का अभिप्राय है- एक वस्तु का दूसरी वस्तु के अभाव में कभी भी न हो पाना। नान्तरीयक हेतुरूपता सम्पन्न है, इसके तीन लक्षण हैं, पक्षधर्मता, सपक्षसत्य एवं विपक्षासत्व है। इनमें सक एक भी रूप नहीं रहता है तो हेतु, सहेतु न होकर हेत्वाभास बन जाता है।

अनुमान के घटक- अनुमान के तीन घटक माने गऐ हैं- पक्ष, साध्य और हेतु, लेकिन इनके विषय में भी मतैक्यता नहीं है। नैयायिकों और बौद्धों के अनुसार केवल धर्म से युक्त धर्मी पक्ष है। जैन दार्शनिकों के अनुसार ऐसा धर्म केवल अनुमान काल में ही होता है, व्याप्ति काल में नहीं, जैसे घट अनित्य है, क्योंकि प्रमेय है। यह अनुमान वाक्य है। इसमें 'अनित्य' धर्म से युक्त 'घट' धर्मी पक्ष बनता है। व्याप्ति इस प्रकार बनती है कि जो प्रमेय है वह अनित्य है। व्याप्ति में केवल अनित्यता को ही लिया जाता हैं।

बौद्ध हेतु के त्रैरूप्य को स्वीकार करते हैं। इनके अनुसार हेतु को पक्ष का धर्म होना चाहिए, सपक्ष में रहना चाहिए। जिसमें ये तीनों लक्षण हैं, वही सम्यक् है। इस सन्दर्भ में जैनों का अभिमत है कि यदि हम पक्षधर्मता का हेतु का लक्षण मानें तो जिस किसी को हेतु बनाकर अनुमान बनाया जा सकता है, जैसे 'जगत' को पक्ष बनाकर मकान को सफेद सिद्ध करने के लिए कौवे के कालेपन को भी हेतु बनाकर उसमें पक्षधर्मता की कल्पना की जा सकती है, जैसे इस जगत् में सफेद मकान हैं, क्योंकि इसमें काले कौवे पाये जाते हैं, लेकिन ऐसे अनुमान सम्यक् नहीं है। अतः हेतु पक्ष में रहकर ही साध्य को सिद्ध करता है, ऐसा नहीं है। इसलिए पक्षधर्मता हेतु का लक्षण नहीं है। इसी प्रकार सपक्षसत्स भी हेतु का अनिवार्य लक्षण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ऐसे बहुत से हेतु हैं जो सपक्ष में नहीं रहते हुए भी साध्य को सिद्ध कर देता है, जैसे शब्द अनित्य है, क्योंकि सुनाई देता है। इसमें कोई सपक्ष नहीं है, शब्द मात्र को पक्ष बना लिया गया है। शब्द के सिवाय अन्य कोई वस्तु नहीं है जो सुनाई देती हो। अतः सुनाई देना हेतु सपक्ष में नहीं रहता। फिर भी यह हेतु गमक है, अपने साध्य को सिद्ध करता है। यदि यह कहा जाए कि यह विपक्ष में नहीं रहता, अतः साध्यअविनाभाव नियम से बद्ध होने के कारण गमक है, तब तो अविनाभाव को ही हेतु का प्रधान मानना चाहिए।

जिस हेतु में तीनों रूप हों और अविनाभाव न हो तो भी हेतु सम्यक् नहीं होता, लेकिन त्रैरूप्यता रहित हेतु भी साध्य को सिद्ध करने में समर्थ होता है, जैसे रोहिणी नक्षत्र का उदय होगा, क्योंकि कृत्तिकानक्षत्र का उदय हो चुका है। इस अनुमान में पक्षधर्मता नहीं है, क्योंकि यहाँ रोहिणी नक्षत्र पक्ष है और उसका भविष्य में उदय होना साध्य है तथा कृतिका उदय हेतु है। 'कृत्तिका का उदय' यह हेतु 'रोहिणी' इस पक्ष में नहीं रहता हैं। कृत्तिका का उदय कृत्तिका का धर्म है न कि रोहिणी का। इस प्रकार पक्षधर्मता आदि न होने पर भी हेतु साध्य का गमक है। अतः पक्षधर्मता आदि त्रैरूप्य हेतु का लक्षण नहीं है, क्योंकि यह त्रैरूप्य हेत्वाभास में रह जाता है। अविनाभाव ही हेतु का लक्षण है।

नैयायिकों ने हेतु को पंचरूप प्रतिपादित किया है। जिनमें से तीन का निरसन उपर्युक्त प्रसंग में हो चुका है। उससे अतिरिक्त दो रूप है- अबाधितविषयत्व और असत्प्रतिपक्षत्व। अबाधित विषय का अर्थ है- हेतु का साध्य किसी प्रमाण से बाधित नहीं होना चाहिए, जैसे अगिन ठंडी होती है, क्योंकि द्रव्य है, जैसे जल। इस अनुमान में अग्नि का ठंडापन साध्य है, किन्तु यह प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधि है। अतः बाधि विषय है। असत्प्रतिपक्ष का अर्थ है - जिसका कोई प्रतिपक्ष न हो। कोई हेतु अपने विरोधी हेतु से बाधित नहीं होना चाहिए।, जैसे शब्द अनित्य है, क्योकि इसमें नित्यता की उपलब्धि नहीं होती। दूसरे ने कहा शब्द नित्य है, क्योंकि उसकी अनित्यता की उपलब्धि नहीं होती। इस हेतु का प्रथम हेतु से बाधित हो जाने के कारण सत्प्रतिपक्ष है। जिस हेतु में यह दोश न हो वह असत्प्रतिपक्ष है।

यहाँ जैनों का मत है कि जो हेतु बाधित या सत्प्रतिपक्ष वाला होता है उसमें अविनाभाव भी नहीं हो सकता। कहा भी है- बाधाविनाभावयोर्विरोधात् - बाधा और अविनाभाव का विरोध है। जहाँ किसी प्रकार का हेतु दोष है वहाँ अविनाभाव नहीं हो सकता और जहां अविनाभाव है वहाँ कोई भी दोष नहीं रहता। इस प्रकार तीन या पाँच रूपों वाला होने पर अथवा न होने पर भी अविनाभाव से युक्त होने पर साध्य को सिद्ध करने मे समर्थ होते हैं। यह तीन या पाँच रूप तो अविनाभाव का ही विस्तार है। अत: हेतु का एक ही रूप मानना चाहिए और वह है अविनाभाव।

नैयायिकों ने हेतु के तीन प्रकार स्वीकार किए हैं- केवलान्वयी, केवलव्यतिरेकी और अन्वयव्यतिरेकी। इन तीनों भेदों की समीक्षा करें तो यह निष्कर्ष निकलता है कि 'अन्वयव्यतिरेकी' इस एक भेद में ही पंचरूप्य लक्षण घटित होता है। अन्य दोशों में नहीं जबकि नैयायिक पंचरूप्य को हेतु की अनिवार्य शर्त के रूप में स्वीकार करते हैं। अत: पंचरूप्य हेतु अव्याप्त है। अन्यतानुपत्ति यह तीनों ही भेदों में व्यापत है। अत: हेतु की एक ही लक्ष्ण माना सम्यक् होगा।

संदर्भ सूची

1. ऋग्वेद, 1/64/43.
2. मनुस्मृति, 12/106.
3. शर्मा, बजनारायण (1973): भारतीय दर्षन में अनुमान, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, पृ. 31.
4. वही, पृ. 31.
5. वही, पृ. 31-32.
6. न्यायसूत्र, 1/1/5.
7. अनुमान मितेन लिंगेन लिंगिनोऽर्थस्य पश्चान्मानमनुमान्। न्यायभाष्य, पृ. 18.
8. पंचलक्षणकाल्लिंगाद् गृहीतान्नियमे स्मृते:।परोक्षे लिंगिनी ज्ञानमनुमानं प्रचक्षते। न्यायमंजरी, 1/10.
9. अस्येदं कार्य कारणं संयोगि विरोधी समवायि चीति लैंगिकम्। वैशेषिकसूत्र, 9/2/1.
10. प्रसिद्धिपूर्वकत्वादपदेशस्य। वही, 3/1/14.
11. प्रतिबन्ध दृश्य: प्रतिबद्धज्ञानमनुमानम्। सांख्यसूत्र, 1/100.
12. न्यायविनिश्चय, 167.

रामचरितमानस में तुलसीदास के आदर्श स्त्री-पात्र

शाज़िया बशीर

कश्मीर विश्वविद्यालय, हजरतबल, श्रीनगर जम्मू व कश्मीर, 190006

सारांश

मध्ययुगीन मानसिकता के धरातल पर तुलसी का 'नारी' विषयक दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। भक्ति, धर्म व तत्कालीन समाज-बोध के त्रिकोण पर तुलसी की 'नारी' भावना स्थित है। कवि ने समाज-संस्कार के नजरिये से 'मानस' में नारी विषयक दृष्टिकोण व्यक्त किया तो दूसरी ओर भक्ति (ईष्ट की) को लक्षित कर। मध्ययुगीन साधू-संतों का दृष्टिकोण नारी के प्रति अधिक गर्हित एवं अनुदार रहा है। प्रसिद्ध संत कबीर ने गृहस्थ होकर भी नारी की निंदा की, उसे माया का पर्याय माना, लेकिन आश्चर्यजनक बात यह है कि उन्होंने जीव-ब्रह्म के सम्बन्ध को स्त्री-पुरुष सम्बन्ध के अनुरूप माना और अपने को 'हरी की बहुरिया' मान लिया। अपने युग के इस रूढ़िग्रस्त संस्कार को तुलसी ने परंपरा के रूप में गृहण किया। 'मानस' में 'नारी' विषयक दृष्टिकोण एक भक्त एवं सन्यासी का दृष्टिकोण है। रूढ़ियों एवं आस्था के कारण तुलसी ने 'नारी व शूद्र' को एक ही कोटि में ला धरा है। तुलसी की धारणा नारियों के प्रति अच्छी नहीं है केवल विशिष्ट नारियों को छोड़ कर। 'मानस' में तुलसी एक नारी निंदक के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। डॉ. कुन्तल मेघ के शब्दों में, " 'रत्नावली काण्ड' का झटका तुलसी को मानस में ही पड़ा था।"

भूमिका

प्रमुखत: अपने युग के नारी-विरोधी तत्वों से प्रभावित होकर भी तुलसी ने 'मानस' में पारिवारिक जीवन के कल्याणमय व आदर्श जीवन के लिए नारी के कर्तव्य, करुणा, त्याग आदि आदर्श की अभिव्यंजना करायी है। उनका यह चिंतन उनके द्वारा चित्रित पात्रों से साकार हो उठा है। उनके आदर्श भावनाओं, त्याग, करुणा का साकार रूप सीता, कौसल्या, सुमित्रा द्वारा अभिव्यक्त हुआ है। यधपि ये चरित्र इष्ट से संबंधित होने के कारण अधिक उज्जवल हो उठे हैं।

कौशल्या त्याग व ममता की साकार प्रतिमा सी है। पुत्र-वियोग से त्रस्त होकर भी वह अपने धर्म से च्युत नहीं हो जाती है। राम-वनवास के समय धर्म व स्नेह की दुविधा में फँस जाता है, लेकिन अंत में इसका निराकरण वह राम व भारत को सम्मान मानकर करती है। वह बेहद करुणामयी है और उसके ह्रदय में सबके लिए प्रेमभाव है। उसको सभी पुत्र-तुल्य प्रतीत होते हैं। वह वधु को सहर्ष वन जाने की आज्ञा देती है जबकि इस कारण उसको मर्मान्तक वेदना होती है। करुणा की व्यंजन कौसल्या द्वारा हुई है। उनका यह रूप कितना करुणा से भरा है, पुत्र-वियोग से उसकी दशा उस मछली की भांति हो गई थी जिसको मांजा लगा हो।

तुलसी की कौशल्या का यह करुण वात्सल्य अपूर्व है। इस कारण वात्सल्य में कर्तव्य और धर्म भी मिला है। नारी के इस करुण वात्सल्य पर एक ओर दृष्टि डालिए। माता सब कुछ सह सकती है पर अपने बेटे या बेटी का अनिष्ट नहीं। पुत्री के बावले वर को देख मैना विलाप करती है-

"कस कीन्ह बर बौराह विधि जेहि तुम्हहि सुन्दरता देई।।
जा फलु चहिअ सुरतरूहि मो बरबस बबहि लगई
तुम्ह सहित गिरि तो गिरों पावक जरो जलनिधि मुंह परी
घरू जाऊ अपजसु होउ जग जीवित विबाहुन हौं कौ।।"

तुलसी ने कौशल्या को आदर्श सास के रूप में चित्रित किया है, जो पुत्र-वधू को जीवन मूल मान कर स्नेह जल से पालती है। वह माता के सामने वधु के अधिकारों का हनन नहीं करती अपितु बहु को सहर्ष वन जाने की आज्ञा देती है। सीता पत्नी रूप में एक आदर्श हमारे सामने रखती है। पति के लिए वन के कष्टों को सहर्ष झेलती है। उनके दास-दासियां रहने पर भी स्वयं घर का काम देखती है एवं सासुओं की सेवा करती है। वे पतिव्रता के गौरावशालिनी रूप में हमारे सामने आती है।

सुमित्रा का त्याग सराहनीय है। उसके इस त्याग के सामने उसका मातृत्व कुछ गौण-सा रहता है। वह पुत्र को सहर्ष वन भेजती है। उसको एक-मात्र कर्तव्य 'राम की सेवा' का उपदेश देती है,

"पार्वती, पतिव्रताओं की शिरोमणि कहलाती है।"

तुलसी के अनुसार नारी का सर्वश्रेष्ठ धर्म पतिव्रत धर्म है। तुलसी ने नारी के पतिव्रत धर्म की व्याख्या जगह-जगह करायी है। पति-सेवा व गृह-कार्य ही नारी के कर्तव्य हैं। नारी का प्रधान कर्तव्य उसकी पति-पूजा है। अपनी पुत्री पार्वती को मैना का उपदेश है कि शंकर जी की आज्ञा का पालन सदा करना और यह समझना कि पति ही नारी के समस्त धर्मों का सार है,

"करहु सदा संकर पद पूजा।
नारि धरमु पति देव न पूजा।।"

राम सीता को उपदेश देते हैं कि सास-ससुर की आज्ञा का पालन नारी का एक श्रेष्ठ कर्तव्य है। जो नारी इस कर्तव्य का पालन नहीं करती, वह दु:ख को प्राप्त करती है। जब कि सीता पति-पूजा को ही श्रेष्ठ कर्तव्य मानती है। तुलसी द्वारा दिए गए समस्त नारी कर्तव्य का व धर्म का सार अनुसूया के उपदेश में है जो उसने सीता को दिया है। अनुसूया के अनुसार स्त्री के लिए मोक्ष का साधन पति-सेवा है। नारी का एकमात्र धर्म मनसा, वाचा, कर्मणा, पति अनुराग ही है। धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री ख्र इन चारों की विपत्ति के समय परीक्षा होती है। वृद्ध अपाहिज पति का अपमान करने वाली नारी नरक जाती है। इस धर्म के कारण नारी परमगति को प्राप्त करती है।

राजा दशरथ की मृत्यु के बाद उसकी रानियाँ सती होना चाहती हैं, लेकिन भरत ऐसा नहीं चाहते थे, वह चाहते थे यदि मातायें जीवित रहकर राम को लौटा सकें तो अयोध्या में 14 वर्ष बाद नहीं अपितु अभी रामराज्य स्थापित होगा। यहाँ राष्ट्र-कल्याण की भावना अधिक प्रबल है। पति के साथ सती जाने की अपेक्षा पति के लक्ष्यों में व कार्यों में जीवन अर्पित करना सती होने से भी बढ़कर त्याग है, बलिदान है। तुलसी की कौशल्या, सुमित्रा आदि सती नहीं होती अपितु दशरथ के प्रिय कार्य में जीवन व्यतीत करती हैं। यह उनके त्याग का उज्जवल पक्ष है।

तुलसी ने उपदेश के बहाने नारी-कर्तव्यों व धर्म की एक लम्बी सूची 'मानस' में प्रस्तुत की है। नारी के आदर्श रूप का विवेचन करते हुए तुलसी ने अपने पात्रों द्वारा इसका अनुमोदन कराया है। राम-परिवार से सम्बन्धित महिलाएं उच्च कोटि की पतिव्रताएं हैं। पार्वती का तप, त्याग एक श्रेष्ठ उदाहरण है। काम-दहन के उपरान्त पार्वती तप से शंकर को प्राप्त करने का निश्चय करती है। शंकर को पाने के लिए वह राजसी सुखों का त्याग करती है। तप द्वारा उसका पति-प्रेम पवित्र व संयमित बन जाता है। तप द्वारा अपने पति-प्रेम को वह वासना-हीन बनाकर नारीत्व के उच्च शिखर पर पहुँच जाती है। तभी तुलसी ने उसको पतिव्रताओं में शिरोमणि मानकर उसकी वंदना की है।

कर्तव्य व धर्म की लम्बी सूची के अनुसार कवि ने मुनि पत्नी अनुसूया द्वारा नारी की चार श्रेणियां करायी हैं- उत्तम,,माध्यम, निकृष्ट तथा अधम। इनमें से अधम नारी अपने पति-धर्म व कर्तव्य का पालन न करने के कारण नरक में गिरती है।

तुलसी के नारी पात्र अपने में आदर्श कर्तव्य व प्रेम की महत्ता समेटे हुए हैं। करुणा, त्याग व प्रेम की प्रतीति मैना, सुनयना एवं कौशल्या द्वारा होती है। सुमित्रा हमारे सामने त्याग का आदर्श रखती है। उसमें ममता व कोमलता नगण्य है, पर कर्तव्य व त्याग प्रखर है। वह अपने पुत्र लक्ष्मण को सहर्ष वन जाने की आज्ञा देती है। इतना ही नहीं, वह अपने को सौभाग्यशाली मानती है। सीता हमारे सामने कर्तव्य, धर्म व पति-प्रेम का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करती है।

कैकयी भी एक माँ है, वह पुत्र के लिए राज्य मांगती है लेकिन पुत्र द्वारा अपमानित होने पर उसको अपनी गलती का बोध होता है। वह अंत तक पश्चाताप की अग्नि में जलती है। इस प्रकार वह हमारे सामने पश्चाताप का उदाहरण रखती है, व्यक्ति अपनी भूलों पर पश्चाताप करके अपने को सुधार सकता है। उसकी अग्नि में जलकर व्यक्ति शुद्ध बन सकता है। मन्दोदरी भी हमारे सामने एक आदर्श रखती है। वह पतिव्रता होने के साथ-साथ राम-भक्त भी है। वह पति को बार-बार सदुपदेश देती है। लेकिन पति के न मानने पर भी वह उसका त्याग नहीं करती।

इस प्रकार संक्षेप में हमने नारी के आदर्श आदि का अभिव्यंजना की है। आदर्श महिलाओं के प्रेम, त्याग व करुणा आदि की अभिव्यंजना के साथ-साथ तुलसी ने रावण परिवार की नारी मन्दोदरी के करुणा व वात्सल्य की भी अभिव्यंजना की है। मन्दोदरी की करुण दशा है कि उसका पति अपने से शक्तिशाली व्यक्ति की पत्नी का हरण कर लाया है और उससे युद्ध ठान लिया है। वानरों के उत्पात एवं पुत्र की मृत्यु से दुखित होकर मन्दोदरी रावण से प्रार्थना करती है कि वह सीता को लौटा कर राम का भजन करे। मन्दोदरी दो विरोधी परिस्थितियों में झूलती है लेकिन फिर भी वह एक पतिव्रता नारी की तरह पति का साथ छोड़कर नहीं जाती। वह पति से कहती है-

"दुई सुत भरे दहेउ पुर अजहुं पूर पिय देहु।"
कृपा सिन्धु रघुनाथ मजि नाथ बिमल जसु लेहू।"

अंत में जब रावण युद्ध में मारा जाता है, तो मन्दोदरी अतिशय दुखी होकर विलाप करती है, उसकी दारुण दशा का तुलसी ने इस प्रकार चित्रण किया है-

"पति गति देखि ते करहिं पुकारा
छुटे कच नहिं बपुष संमारा।"

तुलसी ने 'मानस में नारी की करुणा, त्याग व प्रेम आदि की अभिव्यंजना के लिए यधपि राम-परिवार की महिलाओं को लिया है और अन्य नारी पात्रों का उल्लेख कम ही किया है। लेकिन रावण-परिवार में मन्दोदरी एवं वानर परिवार में तारा ऐसी नारियां हैं जिनके तप, त्याग व प्रेम आदि की महत्ता किसी से कम नहीं। तुलसीदास ने इन नारी चरित्रों का वर्णन अत्यंत संक्षेप रूप में पर सहानुभूति एवं प्रेरणा पूर्वक किया है।

सन्दर्भ:

1. तुलसीदास. 'श्री रामचरितमानस', ज्ञान गंगा एंड को पब्लिशर्स, सं: 2005
2. मेघ, (डॉ.) रमेश कुन्तल, तुलसी आधुनिक वातायन से', नेहा पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्ज, नई दिल्ली, 2007
3. गुप्त, माताप्रसाद, 'तुलसीदास', booksinhindi.com
4. सिंह, उदयभानु, 'तुलसी-काव्य-मीमांसा', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं:

अष्टछापीय कवि नन्ददास के काव्य में बिम्ब विधान

डॉ० सुषमा पाल

एसोसिएट प्रोफे०, हिन्दी विभाग, साहू रामस्वरूप पी०जी० कॉलेज, बरेली

सारांश

(बिम्ब शब्द अंग्रेजी के शब्द 'इमेज' का पर्याय है, जिसका अर्थ प्रतिच्छाया या अक्स होता है। बिम्ब के द्वारा कवि भावों का आश्रय ग्रहण करके अपनी अनुभूति को सशक्तता से अभिव्यक्ति देता है। वस्तुत: वह शब्द-चित्र है जो कवि के भावों और अनुभूति का पाठकों तक सम्प्रेषण करने का कार्य करते हैं। बिम्बों की सहायता से कवि सूक्ष्म भावों, मन:स्थितियों और अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में समर्थ होता है।

अष्टछापीय कवियों में नन्ददास के काव्य में उच्च कोटि की बिम्ब योजना दृष्टिगत होती है। इन्होने श्रीकृष्ण की शैशवास्था, बाल्यकाल एवं रासलीला के सुमधुर, कोमल, रमणीय, मोहक तथा मनोमुग्धकारी भावों को अद्वितीय बिम्ब योजना से संजोया है। राधा कृष्ण के श्रृंगार वर्णन में सुन्दर-सुन्दर बिम्बों का प्रयोग किया है। इनकी रचनाओँ में विविध बिम्बों की सफल योजनाएँ दृष्टिगत होती है। इन्होने ध्वनि, रूप, स्पर्श, गंध, रसना आदि बिम्बों का विधान अनेक अवसरों पर किया है। कवि ने श्रीकृष्ण शोभा, कृष्ण और गोपी मिलन, वृन्दावन की रमणीयता आदि प्रसंगों में रूप बिम्बों, राधा-कृष्ण के आलिंगन आदि वर्णनों में स्पर्श बिम्बों, पुष्प-गंध आदि के चित्रण में गंध-बिम्बों बाँसुरी की मधुर-तान सम्बन्धी वर्णन में ध्वनि-बिम्बों तथा भोजन आदि के वर्णन में रसना बिम्बों का सुन्दर प्रयोग करके भावानुभूति को और अधिक प्रभावशाली बना दिया है।)

Key words- बिम्ब की अवधारणा, नन्ददास के काव्य में बिम्ब योजना, रूप-बिम्ब, ध्वनि दृष्य, स्पर्ष, श्रव्य, गन्ध, रसना आदि बिम्बों का निरूपण ।

बिम्ब योजना

बिम्ब शब्द अंग्रेजी के शब्द इमेज का पर्याय है, जिसका अर्थ है प्रतिच्छाया, प्रकृति या अक्स। बिम्ब एक ऐसा शब्द है जो कल्पना द्वारा ऐन्द्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है। इसमें कवि भावों का आश्रय ग्रहण कर अपनी अनुभूति को सशक्त अभिव्यक्ति देने में समर्थ होता है। वह कल्पना द्वारा वस्तु का सांगोपांग रूप प्रस्तुत करता है। वस्तुत: बिम्ब के अन्तर्गत मूल वस्तु को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है, जिससे वह कल्पना शक्ति को उत्तेजित करती हुई अनुभूति गम्य हो सके। बिम्ब मूलत: वस्तु का चित्र है, जिसका आधार शब्द होते हैं। बिम्ब द्वारा निर्मित चित्र शब्द-चित्र होने के साथ-साथ भावों और अनुभूतियोँ को उद्वेलित करने की शक्ति सम्पन्न होते हैं। बिम्ब का मूलभूत गुण चित्रात्मकता है, किन्तु बिम्ब के अन्तर्गत ऐन्द्रिय बिम्बों को भी स्वीकारा गया है। इनमें मुख्य हैं- श्रवणबिम्ब, रूपबिम्ब, स्पर्शबिम्ब, दृश्यबिम्ब, गन्ध बिम्ब, रसनाबिम्ब आदि।

बिम्ब योजना से काव्य में लालित्य गुण की वृद्धि होती है। इसीलिए डॉ. परेश ने लिखा है, "लालित्य उद्‌भावन की प्रक्रिया एक प्रकार रमणीय बिंबोदभाव की प्रक्रिया है।"[1] वस्तुत: बिम्ब के सुनियोजन से काव्य में रमणीयता का समावेश होता है। काव्य की प्रभावशीलता में भी बिम्ब की भूमिका रहती है। इसीलिए डॉ. नगेन्द्र ने कहा है, "बिम्ब काव्य का अत्यन्त प्रभावी माध्यम है और इसलिए काव्य के संदर्भ में उसका मूल्य असंदिग्ध है।"[2]

हिन्दी साहित्य कोष के अनुसार "प्रस्तुत परिवेश के सम्वेदनों और प्रत्यक्ष के अतिरिक्त कवि के मानस में अतीत की तथा कभी अस्तित्व न रखने, न घटने वाली वस्तुओं और घटनाओं की असंख्य प्रतिमाएँ भी रहती हैं। बिम्ब शब्द इसी मानस प्रतिमा का पर्याय है। इन बिम्ब या प्रतिमाओं का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है। उद्‌भावना के आधार पर प्रतिमाएँ दो प्रकार की हैं- स्मृतिजन्य और स्वरचित। ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर दृष्टि, शब्द, गंध, रस, स्पर्श प्रतिमाएँ आदि अनेक प्रकार की होती हैं।"[3]

इन बिम्बों से कवि जीवन और जगत के स्थूल-सूक्ष्म, भौतिक-आध्यात्मिक, मूर्त-अमूर्त, परोक्ष-अपरोक्ष और कल्पना सृष्टि के वैशिष्ट्य को प्रकाश में लाता है। प्रो. रामदहिन मिश्र का कथन है- "यह काव्य का प्राण है। कला का मूल है और कवियों की कसौटी है। यही काव्य में प्रभाव उत्पन्न करती है। प्रेषणीयता लाती है। भावों को विशद बनाती है और रमणीयता को वधिर्दत करती है।"[4] अस्तु बिम्ब काव्य का प्रभावोत्पादक अपरिहार्य तत्व है।

बिम्ब योजना की प्रक्रिया में रचनाकार के व्यक्तित्व की भी भूमिका रहती है। बिम्बों (काव्यचित्रों) की सहायता से ही रचनाकार अपने युग के सत्य और सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्त करता है। जिस रचनाकार में सूक्ष्म भावों, मन:स्थितियों और अनुभूति, तीक्ष्ण गहराई की पकड़ जितनी पैनी होगी, बिम्बों का स्वरूप् ओर उनकी रस रमणीयता उतनी ही प्रखर और हृदय ग्रह्य होगी। वस्तुत: बिम्ब काव्य का अन्तरस्थ साधन है, जिसके बिना काव्य अपनी अन्तिम सिद्धि प्राप्ति मे सर्वथा अक्षम रहता है।"[5]

अष्टछापीय कवियों में नन्ददास की बिम्ब योजना उच्चकोटि की है। इन्होने अवतारों की लीलाओं के चित्रण में सुन्दर बिम्बों की सृष्टि की है। इनके काव्य में आराध्य श्री कृष्ण और राधा आदि की प्रेम भावनाओं का रमणीय, मोहक और मनोमुग्धकारी चित्रण है। बिम्बों के विधान से इनके काव्य का रंग, रूप, भाव आदि साहित्य पटल पर हीरे-मोती से चमक उठे हैं।

नन्ददास के काव्य में बिम्ब

नन्ददास की बिम्ब योजना उत्कृष्ट कोटि की है। इन्होने श्रीकृष्ण के श्रृंगार गान में सुन्दर-सुन्दर बिम्बों का प्रयोग किया है। कृष्ण के शैशवास्था, बाल्यकाल एवं रासलीला के सुमधुर, कोमल, रमणीय मोहक तथा मनोमुग्धकारी भावों को अद्वितीय बिम्ब योजना से सँजोया है। कृष्ण के बालवर्णन में नन्ददास की बिम्ब योजना अनूठी बन गयी है। विविध बिम्बों का प्रयोग दृष्टव्य है-

रूप बिम्ब

नन्ददास जी ने श्रीकृष्ण के सौन्दर्य चित्रण में रूप बिम्ब का सुन्दर प्रयोग किया है। नन्ददास ने श्रीकृष्ण के सौन्दर्य की अद्‌भुत चित्रों में रूप बिम्ब की योजना की है। यथा-

निकर विभाकर दुति मेटत सुभ मनि कौस्तुभ अस।
सुंदर नंद कुँवर उर पर सोइ लागत उडु जस।
मोहन अद्‌भुत रूप कहि न आवति छबि ताकी।
अखिल अंड व्यापी जु ब्रह्म आभा है जाकी।[6]

नन्ददास की रूचि कृष्ण की मोहक छवि वर्णन में रमी रही। गाय चराते हुए श्रीकृष्ण के सौन्दर्य एवं आकर्षण के वर्णन में कवि ने रूप बिम्ब का अनूठा प्रयोग किया है। उदाहरण:

गाइ खिलावत सोभा भारी।
गोरज-रंजित बदन-कमल पै अलक झलक घुँघरारी।।
नख-सिख प्रति बहु मोल के भूषन, पहिरत सदा दिवारी।
फैलि रही है खिरक-सभा पै नगन-रंग उजियारी।।[7]

बालकृष्ण का बढ़ता हुआ रूप, बदलती क्रीड़ाएँ, विभिन्न क्रियाएँ एवं चेष्टाएँ माता के हृदय को मोहती रहती हैं।

पालने में झूलते हुए बाल-कृष्ण की विभिन्न छवियों के निरूपण में रूप बिम्ब का सुन्दर प्रयोग दृष्टव्य है-

नंद कों लाल, ब्रज पालनैं झूलैं।
कुटिल अलकावली, तिलक गोरोचन,
चरन-अंगूठा मुख किलक किलक कूलैं।
नैननि अंजन सुरेख, भेष अभिराय सुचि,
कंठ केहरि-नख, किंकिंन कटि झूलैं।
नंददास- के प्रभु नंद-नंदन,
कुँवर, निरखि नागरि देह, गेह भूलैं।[8]

श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर विमोहित गोपिकाएँ उनके चारों ओर ही रहना चाहती हैं। नन्ददास जी ने उस मधुर मादक छवि को रूपबिम्ब द्वारा प्रस्तुत किया है।

धरैं बाँकी पाग, चंद्रिका बाँकी, बाँके बने बिहारीलाल।
बाँकी चाल चलत बाँकी गति सो, बाँके बोलत बचन रसाल।।[9]

ध्वनि बिम्ब

नन्ददास जी ने रास पंचाध्यायी, भँवरगीत आदि कृतियों में निपुणतापूर्वक ध्वनिबिम्ब का विधान किया है। गोपी-मिलन एवं हास-परिहास आदि के वर्णन में कतिपय ध्वनिबिम्ब दृष्टव्य है-

बाजत दुन्दभि भेरियाँ, पटह निसान सुहाय।
दधि हरदी छिरकत सबैं, आनँद मंगल गाइ।।[10]
मोहन के रोर सुनि, कोकिल कुलाहल करि।
तैसोई दादुर हिलमिल सुर गायो।।[11]

प्रात:काल कृष्ण को उठाती हुई यशोदा माता का वर्णन ध्वनि बिम्ब प्रयोग द्वारा दृष्टव्य है।

जगावति अपने सुत को रानी।

उठौ मेरे लाल, मनोहर सुंदर, कहि कहि मधुरी बानी।
माखन, मिश्री और मिठाई दूध मलाई आनी।
छगन मगन तुम करहु कलेऊ मेरे सब सुखदानी।
जननि-वचन सुनि तुरत उठे हरि कहत बात तुतरानी।
'नंददास' प्रभु बलिहारी जसुमति मन हरषानी।[12]

संगीत शिरोमणि श्रीकृष्ण और नृत्य विशारदा राधा का नृत्य वर्णन भी अद्‌भुत है। इसमें राग, वाद्य और नृत्य मुद्राओं की योजना भावोत्कर्षक है। दृष्टव्य है-

निरतत गिरिधरन संग रंग भरी नागरी
वृंदावन रम्य जहाँ बिहरत पिय प्यारी तहाँ
मंडल रचि रास रसिक जुवती बन बाग री
बाजत अनहद मृदंग ताल बिना गति सुगंध
अंग अंगलग्यो निरखि जग्यो रंग राग री
तत्थेई शब्द करत सकल नृत्य भेद सहित
सुलफ सची उरपतिरप लेत नागरी।।[13]

राधाकृष्ण के मधुर मिलन के चित्रण में माधुर्य भाव का संचार करने हेतु ध्वनिबिम्बों का सुन्दर प्रयोग दृष्टव्य है-

प्यारी पग होलें होलें घर जैसें तेरे नूपुर न बाजहीं।
जागत ब्रज के लोग नाहीं सुनायवे लोग।
हाहा री हठीली नेक मेरो कह्यो कर।

नन्ददास जी ने प्रात:काल कृष्ण को उठाती हुई, उमंग से भरी हुई यशोदा के वात्सल्य रस से ओत-प्रोत हृदय का वर्णन किया है। यशोदा माता कृष्ण को जगाने के लिए कभी चिड़िया की चहचहाहट, कभी चकई का मधुर स्वर सुनाती है। यथा-

चिरैया-चुहचाँनी, सुन चकई की बानी,
कहत-जसोदा-रानी जागों मेरे लाला।
रबि की किरन जानी, कमुदनी सकुचानी,
कमल बिकसे दधि मथत बाला।
सुबल, श्रीदाम, तोक उज्जवल-बसन पहिरैं,
द्वारैं ठाढ़े टेरत हैं बाल गुपाला।
नंददास बलिहारी उठो, बैठो गिरिधारी,
सब मुख देखन चहैं लोचन बिसाला।[15]

दृश्यबिम्ब

नन्ददास के काव्य में प्रकृति के मनोरम, मनोमुग्धकारी सुन्दर दृश्यों हेतु दृश्यबिम्बों का सटीक प्रयोग किया गया है। वर्षाऋतु का सुन्दर दृश्यबिम्ब दृष्टव्य है-

नव फूलनि सों फूलि फूलि अस लगति लुनाई
सरद छबीली छपा हँसत छबि सों मनु आई।[16]

प्रकृति के मनोरम सौन्दर्य निरूपण में दृश्य बिम्बों का प्रयोग दृष्टव्य है-

कमल कुमादिनी फूली जमुना के कूल कें।
द्रुम बेलि फूलि फूलि झुकि आई झूमि कें।।
फूली है जसोदा-माय, ढोटा मुख चूमि कैं।
देवता अगिन फूजेघृत खाँड होमि कैं।।[17]
वर्षाऋतु का सुन्दर दृश्य निरूपण दर्शनीय है-
चहुँ दिसि टपकन लागीं बूँदैं।
ब्यौछारन बिंजन भींजैगो, द्वार पिछोरी मूँदै।।[18]

स्पर्श बिम्ब

नन्ददास के काव्य में स्पर्श बिम्बों के प्रयोग राधाकृष्ण की प्रेमलीलाओं में दृष्टिगत होते हैं। नन्ददास की रचनाओं में गोपियों एवं राधाकृष्ण का प्रेम प्रगाढ़ रूप परस्पर स्पर्श पाकर और निखर जाता है। श्री कृष्ण गोपियों के श्रृंगार वर्णन में स्पर्श बिम्बों का कतिपय प्रयोग हुआ है।

पिय प्यारी के चरन पलोटत।
ललितादिक बिजना ले आई तोय देख के घूँघट ओटत।।
चंदन लेप करत दोउ अंगन आलिंगन अधरन रस घोटत।[19]
कुसुम सेज पोढे दम्पति करत रसबलियाँ।
कपोल सों कपोल दिये भुज सों भुज,
भीडे कुच उतंग पिय उर सजत है भतियाँ।[20]

एक अन्य स्थल पर स्पर्श बिम्ब दर्शनीय है-

केलि करि प्यारी-पिय पौंढ़े चारु चाँदनी में
नेह सौं लिपट गए जोवन के जोस में
अंगिया टुरक गई मानो प्रात देखिबे को
चोंच काठि चक्रवाक काम-तर रोस में।[21]

श्रव्य बिम्ब

नन्ददास जी ने कृष्ण-मुरली के प्रसंग में अनेक सुन्दर पदों का सृजन किया है। मुरली की मधुर ध्वनि सभी को विमुग्ध कर देती है। मुरली की ध्वनि के प्रभाव को व्यंजित करने में कवि ने श्रव्य बिम्बों का आश्रय लिया है।

नन्ददास के काव्य में प्रकृति के विभिन्न रूप वर्णन में श्रव्य बिम्बों का सुन्दर प्रयोग दर्शनीय है-

आनँद घन ज्यौं गाजत रजत बाजत दुंदभि भेरी,
राग-रागिनी गावत हरखत, बरखत सुख की ढेरी।[22]
बिछुवन की झनकार, गलिन-गलिन अति है रही
हाथन कंचन-थार, उर पर स्रमकन च्वैं रही।[23]

गंध बिम्ब

नन्ददास के काव्य में भी कतिपय स्थलों पर ही गंधबिम्ब का सुन्दर प्रयोग किया गया है। उन्होने प्रकृति उपादानों का आश्रय लेकर ब्रजमंडल में वृक्षों पर खिले पुष्पों आदि की गंध का सजीव चित्रण किया है-

इतमहकति मालती चारु चंपक चित चोरत
इत घनसार तुसार मलय मंदार झकोरत।
इत कुरुवक केवरा केतरी गंध-बंधु बस।
इत तुलसी छबि हुलसी छाँडति परिमल लपटैं
इत कमोद आमोद गोद भरि-भरि सुख दवटैं।[24]

उक्त पंक्तियों में कवि नन्ददास ने गंध बिम्ब का विधान बहुत ही सुन्दर अनूठे ढंग से किया है। इसमें लौंग, केवरा केतकी, तुलसी, मालती, कपूर आदि की गंध का उल्लेख गंधबिम्ब का बोधक है।

इसके अतिरिक्त कवि ने रूपमंजरी में गंधबिम्ब को निरुपित किया है।
सहज संगंध साँवरी अलकै विनहिं फुलेल उलेल सो झलकैं।[25]

रसना बिम्ब

नन्ददास जी ने श्रीकृष्ण के भोजन, व्यालू, कलेउ आदि के वर्णनों मे रसनाबिम्ब का प्रयोग किया है।

आपु ब्रज-रानी न बिचारै मेरे डला पै धरे,
कनक-थार ओढ़न भरयौं औ बेला न समावै।[26]
मधु, मेवा, पकवान, मिठाई, घर-घर तें लैं निकसीं थाक
नंददास प्रभु कों अति भावत, प्रेम-प्रीति के पोखे पाक।[27]

ऐसो को है जो छुवै मेरी मटुकी, अछूती दहैड़ी जमी
बिन माँगै दियो न जाइ, माँगे तैं गारी खाई[28]

उपर्युक्त उद्धरणों ओदन, मधु, मेवा, पकवान, मिठाई आदि का उल्लेख रसना बिम्ब की सृष्टि का बोधक है।

नन्ददास की रचनाओं में विविध बिम्बों की सफल योजना हैं। इन्होने ध्वनि, रूप स्पर्श, गंध रसना आदि बिम्बों का विधान विविध अवसरों पर किया है। कवि ने श्रीकृष्ण शोभा, श्रीकृष्ण और गोपीमिलन, वृंदावन की रमणीयता आदि प्रसंगों में रूपबिम्बों, राधा-कृष्ण के आलिंगन आदि वर्णनों में स्पर्शबिम्बों, पुष्प गंधादि के चित्रण में गंधबिम्बों, ब्रजबालाओं की विरह दशा और बाँसुरी धुन वर्णन में ध्वनि बिम्बों तथा भोजनादि के वर्णन में रसना बिम्बों का प्रयोग कर भावानुभूति को मार्मिक और प्रभावशाली बना दिया है।

सन्दर्भ-संकेत

1. डॉ. परेश, सूर की लालित्य योजना, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, पृ0 124
2. डॉ. नगेन्द्र, आस्था के चरण, साहित्य रत्न भण्डार आगरा, पृ0 206
3. हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1 पृ0 315
4. मिश्र, पं0 रामदहिन काव्य में अप्रस्तुत योजना, ग्रन्थमाला कार्यालय पटना पृ0 073
5. डॉ. परेश, सूर की लालित्य योजना, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन पृ0 124
6. सं. पं. शर्मा, कृष्ण लाल, नन्ददास ग्रन्थावली, राधाकृष्ण धानुका प्रकाशन वृन्दावन, पृ0 294
7. वही पृ0 295
8. वही पृ0 296
9. वही पृ0 297
10. वही पृ0 294
11. वही पृ0 341
12. वही पृ0 295
13. वही पृ0 04
14. वही पृ0 313
15. वही पृ0 295
16. वही पृ0 04
17. वही पृ0 293
18. वही पृ0 326
19. वही पृ0 308
20. वही पृ0 316
21. वही पृ0 312
22. वही पृ0 291
23. वही पृ0 291
24. वही पृ0 09
25. वही पृ0 106
26. वही पृ0 326
27. वही पृ0 326
28. वही पृ0 327

महात्मा गांधी और धर्म की अवधारणा

डॉ० रीतू तिवारी

सहायक आचार्य (राजनीति विज्ञान), करामत हुसैन मुस्लिम गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, लखनऊ

शन्ति, समन्वय, स्नेह, सहिष्णुता, सद्रभाव और सदाचार के अग्रदूत ,अहिंसा और सत्याग्रह के व्यावहारिक व्याख्याता, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के पुरोधा, बंधनमुक्त मानवता एवं शन्तिपूर्ण अंतराष्ट्रीय व्यवस्था के समर्थक और एक साधक की जिन्दगी जीते हुए मनुष्य से महात्मा की उपाधि प्राप्तकर्ता 'मोहनदास करमचन्द्र गांधी' भारत भूमि की विशिष्टतम विभूति है। वे वैश्विक मानवता की अक्षय निधि है। अपने आदर्श चरित्र और सुयोग्य नेतृत्व से भारतीय जनजीवन के प्रत्येक अंग को प्रभावित करने वाले तथा देश को स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित करने वाले महात्मागांधी शब्द आज किसी व्यक्ति विशेष की ओर इंगित करने वाला शब्द मात्र नहीं है अपितु एक सिद्धान्त और एक विचार है, जो आज भी उतने ही प्रांसागिक है जितने अपने जीवन काल में थे। उनके द्वारा व्यक्त किया गया विचार देश के अधिकारों और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने का एक मार्ग बन चुका है। यही कारण है कि जनता और इतिहास ने उन्हें महात्मा, संत युगपुरूष, राष्ट्रपिता आदि विशेषणों से विभूषित किया। महात्मागांधी संतों के बीच राजनीतिक एवं राजनीतिज्ञों के बीच में संत के रूप में समाहत है।[1] गांधी ने धर्म और नीति का आचरण करते हुए अपनी कथनी व करनी में सामंजस्य स्थापित करते हुए एक सच्चे व्यक्ति का जीवन जीने की कोशिश की, स्वयं को सत्यशोधक कहा। उनका स्वरूप संतप्रधान राजनीतिज्ञ का था।

गांधी जी का दर्शन एवं उनके द्वारा व्यक्त विचारों ने न केवल सामाजिक नवनिर्माण के क्रम में अपना योगदान दिया बल्कि आने वाली भावी पीढिघ्यों को हिन्दू धर्म के मूल तत्वों से परिचित कराया। गांधी जी के विचार: और उनके सिद्धान्त नि:संदेह आज भी प्रासांगिक है। बशर्ते उन्हें हम अपने व्यवहारिक जीवन में उतारे।

महात्मागांधी एक आध्यात्मिक व्यक्ति थे[2] इसलिये उन्होनें धर्मानुप्रणित राजनीति का समर्थन किया। धर्म के सम्बन्ध में विचारों को व्यक्त करते उन्होंने कहा ''धर्म मानवीय प्रकृति का स्थायी तत्व है जो पूर्ण अभिव्यक्ति प्राप्त करने में कोई कमी नहीं रखता और तब तक आत्मा को चौन नहीं लेने देता जब तक आत्मा को निष्ठा का ज्ञान नहीं हो जाता और श्रद्वा द्वारा आत्मा का वास्तविक सम्बन्ध आत्मसात नहीं कर लिया जाता। उनका मानना था कि देश तथा मानवता की अविराम सेवा में ही मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। गांधी जी के अनुसार राजनीति धर्म की अनुगामिनी है।[3] उनके विचारों में राजनीति धर्मविहीन नहीं है क्योंकि धर्मविहीन राजनीति मृत्यपाश है, क्योंकि वह आत्मा का हनन करती है। महात्मागांधी ने राजनीति का आध्यात्मिकरण किया। वह कहतें थें कि, जो यह कहतें हैं कि धर्म का राजनीति के साथ कोई सम्बन्ध नही है वह यह नही जानते हैं कि धर्म का क्या अर्थ ह, धर्म से पृथक कोई राजनीति नही हो सकती । महात्मागांधी जी धार्मिक रुढिवादिता और धर्मांधंता के सर्मथक नहीं थे तथा धर्म के सम्बन्ध में उनका द्वष्टिकोंण अलौकिक और मानवतावादी था।[4]

गांधी जी नें कहा कि यदि मैं राजनीति में भाग लेता हूॅ तो केवल इसलिये कि राजनीति हमें एक सर्प की भांति चारों ओर से घेरे हुऐ है। मैं इस सर्प से लड़ना चाहता हूं, मैं राजनीति मे धर्म का प्रवेश चाहता हूं। उन्होंने कहा अधिकतर धार्मिक मनुष्य जिससे मैं मिला हूॅ वह छुपे तौर से राजनीतिज्ञ है किन्तु मैं राजनीतिज्ञ का जामा पहने हृदय से एक धार्मिक मनुष्य हूं। उन्होंने राजनीति में धर्म का समावेश करके नैतिकता के दोहरे मापदण्ड को मिटाने का प्रयास किया ।उनका मानना था कि राजनीति देश धर्म हैं, उससे व्यक्ति अलग नही हो सकता हैं। उनकी धार्मिकता का अर्थ रूढिवादिता धर्म से नही था क्योंकि धर्मिक पांखड और आडंबर युक्त मूर्ति पूजा के वे विरोधी थे। गांधी जी मानते थे कि धर्म के बिना राजनीति मृत देह के समान हैं जिसको जला देना ही उचित है। राजनीति को धर्म अनुमोदित मानने से गांधी जी का अभिप्राय यह नही था कि राजसत्ता धर्मधिकारियों को सौंप दी जायें या राज्य को किसी धर्म विशेष का, संप्रदाय विशेष का प्रचारक बना दिया जायें ब्लकि उनका मानना था कि आदर्श सर्वोदय समाज धर्मनिरपेक्ष राज्य होता है , जिसका आशय होता है कि राज्य के नागरिकों को निर्विवाद रूप से सर्व धर्म पालन का पूर्ण अधिकार हो ।राज्य न तो किसी धर्म का सरंक्षण करें और न ही कि किसी धर्म के विकास में बाधक हों।[5] इतना ही नही ,राज्य का न तो अपना कोई विशेष धर्म हो और न ही वह धर्म रहित हो। गांधी जी के अनुसार ''राजनीति या सार्वजनिक जीवन में नित धर्म के सार्वभौमिक मूल्यों पर अटल रहना चाहियें।

गांधी जी कहते थे कि ''मैं मानव जाति की सेवा करके उसके द्धारा मैं ईश्वर से साक्षात्कार करने का ही प्रयत्न करता हूॅ क्योंकि मैं जानता हूॅ कि ईश्वर न तो उपर स्वर्ग में हैं और न यहॉ नीचे अपितु हर एक के अन्दर विद्यमान हैं ।''उन्होंने ये भी कहा कि जब जब मेरे सामने कोई दिक्कत उपस्थित हुई तब तब मैंने गीता का ही सहारा लिया और उसी से मुझे सांत्वना मिली। धर्म का गांधी जी के लिए अर्थ था, नैतिक प्रतिज्ञाओं की श्रेष्ठता को मान्यता देना। धार्मिक जीवन का वास्तविक अर्थ है इन प्रतिज्ञाओं का समर्पित रूपेण अनुसरण करना। इस प्रकार धर्म का राजनीति में प्रवेश करने का अर्थ है ''सत्य तथा

न्याय की नैतिक प्रतिज्ञाओं की ओर उत्तरोत्तर बढ़ना''। उन्होंने कहा था कि मैं किसी भी धर्म के ऐसे सिद्धान्त को नहीं मानता जो युक्तिसंगत न हो अथवा जिसका नैतिकता से टकराव हो। गांधी जी के लिए धर्म और नैतिकता में कोई अन्तर नही था।[6]

उन्होंने स्वयं माना कि सत्य के प्रति मेरी आस्था ही मुझे राजनीति के क्षेत्र में खींच लाई है। यह बिना किसी झिझक के तथा पूर्ण विनम्रता के साथ कह सकता हूँ कि जो लोग धर्म का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं मानते, वे धर्म का अर्थ ही नहीं जानते हैं। वे स्वयं स्वीकारते थे कि यद्यपि उन्होंने राजनीतिज्ञ का चोला पहना हुआ था तथापि वह एक धार्मिक पुरूष ही थे। अपने धार्मिक विचारों को जिनसे उनकी राजनीति आप्लावित थी, उन्होंने किसी विशेष धर्म से प्राप्त नहीं किया था। उनका धर्म समस्त मानव जाति की सेवा था। गांधी जी कहते थे कि उनके निकट धर्मप्रेम की ऐसी धुन थी जिसके द्वारा वह सारे जगत को चाहे वह मानव, पशु अथवा वानस्पतिक हो, अपने भीतर ही देख सके। उनके अनुसार ''सूक्ष्मतम परमाणु में भी ईश्वर का वास हैं''।[7]

गांधी जी के अनुसार धर्म वैयक्तिक धरातल पर ईश्वर से साक्षात्कार है। उन्होनें इस वास्तविकता को अपनी अर्न्तद्धष्टि में लाने के लिए 40 वर्षो से अधिक समय तक कठोर संर्घष किया। हिन्दू धर्म की भावना के अनुसार उन्होनें दिव्य ईश्वर को मात्र द्धष्टियातीत नहीं माना, मात्र पूर्णतम ही नहीं माना, प्रत्युत एक व्यक्तिगत ईश्वर भी माना। धर्म तो उनका प्राण था, श्वास था। उनका दावा रहा कि होश संभालने के बाद दिन-रात सोते-जागते राम नाम के जप का तार उनके भीतर से कभी टूटा नही। धर्म वृक्ष के सृदश्य है जिस प्रकार वृक्ष की अनेक शाखाऐं होती, उसी तरह धर्म के अनेक मत मतान्तर है किन्तु मूलत: धर्म एक ही है। वह धर्म हमारी वाणी से परे है धर्म का वास्तविक ज्ञान विभिन्न सम्प्रदायों के मध्य अवरोधों को समाप्त कर देता है।[8] धर्म व्यक्ति का निजी मामला है हमें अपनी-अपनी समझ के अनुसार धर्म का जीवन जीना चाहिये और दूसरों के साथ सौहार्द का भाव रखना चाहिये। गांधी जी मानते थे कि सभी धर्म एक ही जगह पर ले जाने वाले मार्ग हैं। वे धर्म परिवर्तन के विरोधी थे और कहते थे कि हर धर्म को अच्छा मानना चाहिये ।क्या धर्म इतनी सरल वस्तु हैं जैसे कपडे, जिसे एक मनुष्य जब चाहें बदल सकता हैं, नहीं। धर्म ऐसा हैं जिसके लिए मनुष्य अपना पूरा जीवन यूंही व्यतीत कर देता हैं। गांधी जी ने सभी धर्मो को अच्छा बनने की प्रेरणा दी और कहा कि किसी धर्म को अपना दुश्मन मत मानों। गांधी जी का धर्म परम्परागत धर्म नही है, उनका धर्म विभाजक दीवारें नही खडा करता, जो बॉटता नही है ब्लकि आपस में जोडता हैं।

यही ईश्वर को प्राप्त करने के मानवीय प्रयासों का सारांश है।[8] इस्लाम के अल्लाह, ईसाई धर्म के परमेश्वर तथा हिन्दुओं के ईश्वर के साम्य है। ये नाम ईश्वर के व्यक्तिगत स्वरूप को नहीं दर्शाते अपितु उनके गुणों का वर्णन करते है। अकिचंन मानव ने ईश्वर को अनेक गुणो से युक्त माना है वास्तव में ईश्वर गुणातीत अगम्य, अपार एवं अकथनीय है।

ईश्वर में पूर्ण निष्ठा का अर्थ है मानवता में मातृत्व की भावना को स्वीकार करना। इसका अर्थ है सभी धर्मो के प्रति आदर की भावना। विभिन्न धर्म एक बिन्दु पर मिलने वाले विभिन्न-विभिन्न पथ है। एक ही लक्ष्य है पथ अनेक।[9] गांधी जी धर्म को जीवन एक महत्वपूर्ण अंग मानकर अनेक समस्याओं के समाधान में उसका नियोजन करते है। उन्होनें कहा ''मैं ईश्वर का साक्षात्कार मानवता की सेवा के माध्यम से करने में प्रयत्नशील हूँ मैं जानता हूँ ईश्वर न तो स्वर्ग में है न पाताल में वह तो सभी में विद्यमान है।''[10]

समाज को संगठित और द्धढ रखने के लिए आवश्यक है कि इसके सदस्य ईश्वर के नियमों का सहयोग की भावना के साथ पालन करें।[11] धर्म केवल निजी साहिष्णुकरण का साधन नहीं है अपित वह एक शक्तिशाली सामाजिक बन्धन है।[12] परोपकार, न्याय, सहनशीलता, भाईचारा शक्ति तथा सर्वव्यापी प्रेम के अर्थ में केवल धर्म ही विश्व के आस्तित्व का आधार बन सकता है। गांधी जी का विचार है कि समाज से धर्म का उन्मूल करने का प्रयत्न कभी सफल नहीं हो सकता। यदि वह कभी सफल हो सका तो समाज का विनाश हो जायेगा।[13] धर्म सभी कार्यवाहियों को एक नैतिक आधार प्रदान करता है जिसकके बिना केवल मात्र शोर-शराबा ही रह जाता है।

विश्व में राजनीतिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए जितने रक्तपात हुये है उससे भी अधिक धर्म की आड़ लेकर अपने को शक्तिशाली सिद्व करने के लिए हुये हैं इस संदर्भ में गांधी जी विश्व के सभी महान धर्मों का उद्देश्य शांति की स्थापना और मानव कल्याण मानते है।

भारत की विविधता की बहुरंगी झांकी में सर्वधर्म समभाव का महत्वपूर्ण स्थान है।[14] इसी तथ्य को स्थापित करते हुये गांधी जी कहते है कि मेरे सपनों के आदर्श भारत में केवल एक ही धर्म रहेगा। यानि वह सम्पूर्णत: हिन्दू या ईसाई या मुसलमान बन जायेगा। मैं यह चाहता हूं कि वह पूर्णत: उदार और साहिष्णु बने और सब धर्म साथ-साथ चलते रहे। उनके विचार सब धर्मों के प्रति समभाव से आगे और उनकी साधना समभाव के स्तर तक उठती चलती गयी। इस तरह उनके अपने सेक्यूलरिज्म का आशय मानो सर्वाधार्मिता है।[15]

यंग इण्डिया में अपने विचार को प्रस्तुत करते हुऐ वे कहते है कि ''मैं इस्लाम को उसी अर्थ में शांति का धर्म मानता हूं जिस अर्थ में ईसाई बौद्ध और हिन्दू धर्म शांति के धर्म है। वे सभी धर्मों का सम्मान करते हुये उस धर्म विशेष की विशिष्ठता का भी सम्मान करते थे और सर्वधर्म सम्भाव को अपना आदर्श मानते थे।

धर्मनिरपेक्षता आज के सन्दर्भ में धर्म विमुखता बन गई है धर्म के आधार पर सिद्धान्त विस्मृत होते जा रहे है। गांधी जी धर्म का सच्चा सार नैतिकता में निहित मानते थे। सच्ची नैतिकता और सच्चा धर्म एक दूसरे के साथ अविच्छेद रूप से आबद्ध हुये है। नैतिकता के लिए धर्म का वही स्थान है जो जमीन में बीज उगने के लिए जल का होता है। गांधी जी ने धर्म को राजनीति से पृथक नही किया । उनके विचार में धर्महीन राजनीति मृत्यु का एक ऐसा पिजंरा है जो आत्मा की हत्या कर देता है।[16]

गाँधी जी का उपर्युक्त चिन्तन न केवल मानव कल्याण का प्रारूप है बल्कि विश्व बन्धुत्व की प्रेरणा भी देता है।उनका समस्त चिन्तन वस्तुत भारत की उस आधार परक आध्यात्मिक जीवनद्धष्टि तथा सांस्कृतिक परम्परा का आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्द्धित एवं सशोंधित संस्करण हैं जो शताब्दियों

सें नैतिक मूल्यों की स्थापना पर बल देता हैं। उनके द्वारा व्यक्त विचारों का ध्येय मानव जाति को विश्व एकता की ओर अग्रसर करना हैं तथा जिस सेक्यूरिलज्म का वे समर्थन करते थे वह धर्म के प्रति तटस्थता का नही अपितु सब धर्मों के आदर सम्मान का था। निसन्देह आज के समय में भी गांधी जी के द्धारा व्यक्त किये गये विचार विशेष संगति और प्रांसगिकता युक्त है।[17]

संदर्भ

1. मो0 गांधी हिन्द स्वराज्य पृ0 6
2. यंग इण्डिया 5 नवम्बर 1925
3. हरिजन 28 जनवरी 1948
4. यंग इण्डिया 12 मई 1920
5. निर्मल कुमार बोससेलेक्शन्स फ्रॉम गांधी पृ0 (225,1948)
6. प्रो0 पवन कुमार भारतीय राजनीतिक विचारक पृ0 14, ओमेगा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006
7. किशोरीलाल मशरूवाला गांधी विचार दोहन, पृ0 53 1946
8. निर्मल कुमार बोस सेलेक्शन्स फ्रॉम गांधी, पृ. 210, 1948
9. हरिजन 28 नवम्बर 1936
10. हिन्द स्वराज्य, पृ0 63-65
11. रोमा रोलॉ महात्मा गांधी, पृ0 98, लन्दन, 1924
12. वी आर मेहता फॉउण्डेशन ऑफ इण्डियन पॉलीटिक्ल थॉट, पृ0 213-27
13. एम के गांधी माई रिलीजन, पृ0 139-147, 1953
14. एम0के0 गांधी माईरिलीजन,, नवजीवन, पब्लीशिंग, हाउस, अहमदाबाद, 1953, पृ0 83
15. सर्वोदय, तत्व दर्शन, पृ0 128
16. नवजीवन 16 मई 1920
17. महात्मागांधी विचार द्धष्टि 20, फरवरी 1918

कामकाजी महिलाओं और गैर कामकाजी महिलाओं में प्रोसेस्ड फूड के प्रति झुकाव: एक अध्ययन (पटना शहर के संदर्भ में)

कुमारी सुषमा श्रीवास्तव

शोधार्थी, पटना विश्वविद्यालय, पटना

प्रो० (डॉ०) अंजु श्रीवास्तव

गृह विज्ञान विभाग, मगध महिला कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सारांश

अध्ययन का उद्देष्य

कामकाजी महिलाओं तथा गैर कामकाजी महिलाओं में प्रोसेस्ड फूड की खपत तथा इसके प्रति झुकाव का पता लगाना।

कामकाजी महिलाओं तथा गैर कामकाजी महिलाओं में प्रोसेस्ड फूड के प्रति झुकाव के कारणो का पता लगाना।

अध्ययन विधि: अध्ययन के लिए पटना शहर की 100 महिला उपभोक्ताओं पर किया गया है जिसमें 50 कामकाजी महिलाओं और 50 गैर कामकाजी महिलाओं को शामिल किया गया है।

परिणाम: अध्ययन में यह पाया गया कि 48 प्रतिशत कामकाजी 40 प्रतिशत गैर कामकाजी महिलाएं अपने प्रतिदिन की दिनचर्या से किसी न किसी रूप में प्रोसेस्ड फूड का सेवन करती है। ये सभी खाद्य पदार्थ बनाने एवं खाने में कम समय लेते है, बनाने में आसान रखने में आसान इसे कहीं ले जाने में भी सुविधा होती है। प्रोसेस्ड फूड आज के दौर में हर घर की जरूरत बन गया है।

निष्कर्ष: आज के समय में सभी लोगों के खान पान में बदलाव आ गया है, आज के समय में प्रोसेस्ड फूड के बढ़ते बाजार से कोई घर अछूता नहीं है। ज्यादातर महिलाएं इसका इस्तेमाल उर्जा की बचत करने के लिए करती है।

कूंजी शब्द: प्रोसेस्ड फूड, कामकाजी महिलाएँ गैर-कामकाजी महिलाएँ

परिचय

प्रोसस्ड फूड का तात्पर्य ऐसे भोज्य पदार्थ से है जिन्हें खेतों से निकलने के बाद विभिन्न प्रक्रियाओं के गुजारने के पश्चात खाने योग्य बनाया जाता है। आज के आधुनिक समय में महिलाए भी घर से बाहर नौकरी के हर क्षेत्रो में अपना योगदान दे रही है और मल्टीनेशनल कंपनियों का खुलना ऐसे में प्रोसेस्ड फूड लोगों को आसानी की राह दिखा रहा हूँ। आज के समय में सभी लोगों के खान पान में बदलाव आ गया है, आधुनिक टेक्नोलॉजी के कारण खाना बनाना आज बेहद आसान हो गया है। मल्टीनेशनल कम्पनीयों के ख्रुलने के कारण इन दस वर्षो में विश्व की आधी आबादी शहरों में रहने चली आई है, और ज्यादा समय घर से इस काम करने के कारण पैकेज्ड फूड परिवार और व्यक्ति की जरूरत बन गई है।

आज के समय में प्रोसेस्ड फूड के बढ़ते बाजार से कोई घर अछूता नहीं है। प्रोसेस्ड पैकेज्ड फूड को कइ प्रक्रियाओं से गुजारने के पश्चात टिन्ड, केन्ड, फ्रोजेन इत्यादि विधि द्वारा फूड एडिटिवल मिलाकर पैक किया जाता है ताकि ये लम्बे समय तक सुरक्षित एवं संरक्षित रहे। ये सभी खाद्य पदार्थ बनाने एवं खाने में कम समय लेते है, बनाने में आसान रखने में आसान इसे कहीं ले जाने में भी सुविधा होती है। प्रोसेस्ड पैकेज्ड फूड आज के दौर में हर घर की जरूरत बन गया है। यह अध्ययन कामकाजी तथा गैर-कामकाजी महिलाओं में प्रोसेस्ड पैकेज्ड भोजन के प्रति झुकाव के संदर्भ में किया गया है।

अध्ययन विधि

अध्ययन का क्षेत्र: वर्तमान अध्ययन पटना शहर की कामकाजी और गैर कामकाजी महिलाओं के बीच किया गया है।

प्रतिदर्श का चयनः अध्ययन के लिए पटना शहर के मीठापूर और राजाबाजार मुहल्ले से उदेश्यात्मक यादृच्छिक पद्वति द्वारा 50 कामकाजी तथा 50 गैरः कामकाजी महिलाओं का चयन किया गया जिसमें 25 कामकाजी तथा 25 गैर-कामकाजी महिला मीठापुर मुहल्ले से तथा 25 कामकाजी तथा 25 गैर-कामकाजी महिला राजाबाजार मुहल्ले से अध्ययन के लिए चुना गया।

डाटा संग्रहः इस अध्ययन के लिए महिला उत्तरदाताओं से प्रश्नावली भरवायी कइ महिलाएं चुंकि पढ़ी लिखी थी इसलिए उत्तर लेने में ज्यादा परेशानी नहीं हुई प्रश्नावली में प्रश्न खुली तथा बंद दो विधि के लिए की गई थे।

आंकड़ों का विश्लेषणः आंकड़ो का विश्लेषण प्रतिशत में किया गया ।

परिणाम

Table -1

महिलाओं में प्रतिदिन प्रोसेस्ड फूड की खपत (N = 100)

कामकाजी महिला		*गैर-कामकाजी महिला*	
आवृति	*प्रतिशत*	*आवृति*	*प्रतिशत*
24	48	20	40
26	52	30	60

प्रस्तुत अध्ययन में पाया गया कि यह 48 प्रतिशत कामकाजी महिलाएं ओर 40 प्रतिशत गैर कामकाजी महिलाएं प्रतिदिन पैकेज्ड फूड को किसी न किसी रूप में ग्रहण करती है जबकि 52 प्रतिशत कामकाजी और 60 प्रतिशत गैर-कामकाजी महिलाएँ प्रतिदिन इसे नहीं होती है वो घर के खाने को प्राथमिकता देती है।

Table - 2

महिलाओं में प्रोसेस्ड फूड का इस्तेमाल (N = 100)

	कामकाजी महिला		*गैर-कामकाजी महिला*	
	आवृति	*प्रतिशत*	*आवृति*	*प्रतिशत*
चिप्स, नमकीन	11	22	05	10
पफल एवं पफल से बने पदार्थ	04	08	05	10
सूप	04	08	01	02
मसाले	03	06	05	10
दूध् एवं दूध् से बने पदार्थ	02	04	04	08
	N = 26		N = 30	

इस अध्ययन में यह पाया गया कि 22 प्रतिशत कामकाजी और 10 प्रतिशत गैर कामकाजी महिलाएं प्रतिदिन लेज, कुरकुरे का सेवन करती हैं, 5 प्रतिशत कामकाजी और 2 प्रतिशत गैर कामकाजी महिलाएं प्रतिदिन पैकेज्ड फल के रस का सेवन करती है, तथा 6 प्रतिशत कामकाजी तथा 5 प्रतिशत गैर कामकाजी महिलाएं प्रतिदिन खाना बनाने में पैकेअ के मसाले का व्यवहार करती है। 4 प्रतिशत कामकाजी तथा गैर-कामकाजी महिलाएं दूध एवं दूध से बने पदार्थ का सेवन करती है इसके अलावा 52 प्रतिशत कामकाजी और 60 प्रतिशत गैर कामकाजी महिलाएँ इसका इस्तेमाल नहीं करती हैं।

Table - 3

महिलाओं में प्रोसेस्ड भोजन के प्रति झुकाव का कारण (N = 100)

	कामकाजी महिला		*गैर-कामकाजी महिला*	
	आवृति	*प्रतिशत*	*आवृति*	*प्रतिशत*
बनाने में सुविधजनक	10	20	09	18
स्मय की बचत	15	30	13	26
सपफर से आसानी	08	16	14	28
स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभदायक	11	22	05	10
आसानी से उपलब्ध	06	12	09	18
	N = 50		N = 50	

उपर्युक्त तालिका में महिला उपभोक्तओं ने प्रोसेस्ड पैकेज्ड भोजन की खपत के कौन-कौन से कारण है, जिससे प्रभावित होकर महिलाएँ इसका प्रयोग करती है। अध्ययन के पश्चात यह पाया गया कि 20 प्रतिशत कामकाजी महिलाएँ प्रोसेस्ड पैकेज्ड फूड को बनाने में आसानी के कारण इसका इस्तेमाल करती हैं, जबकि 18 प्रतिशत गैर-कामकाजी महिलाएं इस कारण प्रोसेस्ड फूड का इस्तेमाल करती है। 30 प्रतिशत कामकाजी तथा 26 प्रतिशत गैर-कामकाजी महिलाएँ सफर में आसानी के कारण इसका इस्तेमाल करती है। 22 प्रतिशत कामकाजी तथा 10 प्रतिशत गैर कामकाजी महिलाए स्वास्थ्य की दृष्टि से इसे लाभदायक मानकर इसका इस्तेमाल करती है तथा 12 प्रतिशत कामकाजी तथा 18 प्रतिशत महिलाओं का कहना है कि ये हर जगह आसानी से उपलब्ध है इस कारण इसका इस्तेमाल करते हैं।

Table - 4

महिलाओं में प्रोसेस्ड फूड की तरफ झुकाव के प्रभावक तत्व (N = 100)

	कामकाजी महिला		*गैर-कामकाजी महिला*	
	आवृति	*प्रतिशत*	*आवृति*	*प्रतिशत*
दाम/कीमत	15	30	21	42
ब्रांड	19	38	09	18
प्रचार	10	20	08	16
आकर्षक पैकेजिंग	06	12	12	24
	N = 50		N = 50	

प्रस्तुत तालिका से यह स्पष्ट पता चलता है कि महिला उपभोक्ताओं का प्रोसेस्ड की तरफ झुकाव के प्रभावक तत्व किमत, ब्रांड, प्रचार तथा आकर्षक पैकेजिंग है। 30 प्रतिशत कामकाजी तथा 42 प्रतिशत गैर कामकाजी महिलाएँ किमत से प्रभावित होती है कम कीमत पर मिलने वाले ऑफर प्राइस उनको आकर्षित करते है। 38 प्रतिशत कामकाजी तथा 18 प्रतिशत गैर-कामकाजी महिलाएँ ब्राडेड फूड प्रोडक्ट खरीदती है। 20 प्रतिशत कामकाजी तथा 16 प्रतिशत गैर-कामकाजी महिलाएं प्रचार से प्रभावित होती है उन्हें इसकी जानकारी प्रिंट मीडिया तथा इलेक्ट्रॉनिक मिडिया से मिलती है।

निष्कर्ष: प्रस्तुत अध्ययन महिला उपभोक्ता में प्रोसेस्ड फूड की खपत का अध्ययन पटना शहर की महिला उपभोक्ताओं में किया गया और पाया गया कि महिलाएं इसके प्रति आकर्षित हुई क्योंकि यह बनाने-खाने में आसान है, स्वाद भी एक कारण है, आसानी से उपलब्धता है, समय की बचत महिलाओं के व्यस्त जीवन की इसके द्वारा आसान हुई। कामकाजी और गैर-कामकाजी दोनों महिलाओं में इसकी खपत पाई गई लेकिन कामकाजी महिलाओं में इसकी खपत ज्यादा पाई गई।

संदर्भ-सूची

1. कुबेन्द्र, वी. और वनीराजन, टी. ;2005 ''ग्रामीण और शहरी उपभोक्ताओं में दूध की खपत की तुलनात्मक अध्ययन इंडियन जर्नल ऑपफ मार्केटिंग 35 ;12: 27 -30
2. मोंटेरो सी.ए. ;2009 ''पोषण और स्वास्थ्य मुद्दा न तो भोजन है और न ही प्रसंस्करण के रूप में पोषक तत्व''। सार्वजनिक स्वास्थ्य पोषण 12 ;5: 729-731
3. मोंटेरो, सी.ए., लेवी आर. आर. डी. कैनन जी. ;2011 ''अति प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों की बढ़ती खपत और संभावित प्रभाव, सार्वजनिक स्वास्थ्य पोषण 14;1: 5-13
4. ट्रासवेल, ए. एस. ब्रांड जे.सी. ;1985 ''खाद्य प्रसंस्करण'' ब्रिटिश मेडिकल जर्नल 291 ;6503 1186-1190

उपन्यास 'एक कोई था, कहीं नहीं-सा' में बाल-विवाह की समस्या

सलमा असलम

शोध सार :-

विवाह मानव-समाज की एक अत्यंत महवपूर्ण प्रथा एवं समाजशास्त्रीय संस्था है। यह समाज का निमार्ण करने वाली सबसे छोटी इकाई परिवार का मूल है। यह मानव प्रजाति के सातत्य को बनाए रखने का प्रधान जीवन-शास्त्रीय माध्यम भी है। विवाह जैसी पवित्र प्रथा में बाल-विवाह एक कलंक की तरह है। जो न केवल एक व्यक्ति अपितु पुरे समाज और पुरे देश को कलंकित करती है। बाल-विवाह हमारे समाज में एक ऐसी कुप्रथा है जिसे न केवल दो लोगों अपितु उनसे जुड़े परिवार व समुदाय पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। 18 साल की उम्र से पहले होने वाला विवाह बाल-विवाह कहलाता है। बाल-विवाह न केवल बालिकाओं की सेहत के लिए, अपितु उनके व्यक्तिगत विकास के लिए भी हानिकारक होता है। शिक्षा जो कि उनके भविष्य का उज्ज्वल द्वार माना जाता है वह शादी के बाद हमेशा के लिए बंद हो जाता है। बाल-विवाह का बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य और संरक्षणा पर नकरात्मक प्रभाव डालता है।

उपन्यासकार मिरा कांत ने अपने उपन्यास 'एक कोई था कहीं नहीं सा' में बाल-विवाह के सूक्ष्म से सूक्ष्म पक्षों को हमारे समक्ष रखा हैस उन्होंने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि कैसे हमारा समाज बाल-विवाह के कारण पिछड़ता जा रहा है।

बीज शब्द :- बाल-विवाह के दुष्परिणाम, बाल-विवाह का बालिकाओं और उनकी मानसिकता पर प्रभाव।

शोध विस्तार :-

प्रकृति का एक अटल नियम है कि हर कार्य अपने समय के अनुकूल ही होना चाहिए, समय के पूर्व किए जाने वाले कार्य का अक्सर बुरा परिणाम होता है। जैसे कम उम्र में किया गया विवाह जिसका केवल दुष्परिणाम ही देखने को मिलता है। नारी जीवन में बाल-विवाह एक ऐसी कुप्रथा है, जो विष के समान है और जिससे नारी जीवन के पतन की शाखाए विकसित होती है। हम अच्छी फसल पाने के लिए उसके बीज को ऋतु के अनुसार ही बोते है यदि हम बेमौसम किसी भी फसल का बीज बोएंगे तो वह या तो विकसित ही नहीं होगा या फिर वह समय से पहले ही नष्ट हो जाएगी। मनुष्य पर भी प्रकृति का यह नियम लागू होता है। समय से पहले किया गया कार्य हमें विकास नहीं पतन की ओर ले जाता है। यहा तक कि हमारे शास्त्रों में भी इस बात को मान्यता मिली है कि-बालावस्था ख्र पढ़ने-लिखने के लिए, युवावस्था विवाह, प्रौढ़ावस्था घर-गृहस्थी तथा वृद्धावस्था सन्यास के लिए निश्चित की गई है। जब हम कोई कार्य अपनी उम्र से पहले करते हैं तो उसे हमे न केवल मानसिक अपितु शारीरिक कष्ट भी होता है और हमारे सम्पूर्ण जीवन की गतिविधि सुचारू रूप से नहीं चल पाती।

बालावस्था में बच्चे का शरीर और मस्तिष्क दोनों ही कम विकसित हुए होते हैं, वह अपनी आयु से अधिक बोझ और कर्तव्य को नहीं झेल पाते हैं। नया ज्ञान प्राप्त करने और पढ़ने-लिखने के लिए यह अवस्था सर्वाधिक उपयुक्त होती है परन्तु जब इस अवस्था में बच्चों का विवाह करवा दिया जाता है तो विवाह के इस बोझ को बच्चों का शरीर और मस्तिष्क दोनों ही उठा नहीं पाते। कम आयु में लड़कियों का शरीर माँ बनने के लिए पूर्ण रूप से विकसित नहीं होता जिसके परिणामस्वरूप जब उनका बाल-विवाह किया जाता है और कम आयु में वह माँ बनती हैं तो न वह अपना और न ही अपने बच्चे का सही से पालन-पोषण कर पाती हैस अधिकतर देखा गया है कि माँ और बच्चा दोनों ही बाल-विवाह के दुष्परिणाम को भोगते हैं। इसे उनके परिवार और समुदाय पर भी बुरा असर पड़ता हैस कम आयु में विवाह के कारण लड़कियों को हिंसा, उत्पीड़न और दुर्व्यवहार का अधिक सामना करना पड़ता है। बाल-विवाह से लड़का व लड़की दोनों पर शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, बौद्धिक और भावनात्मक प्रभाव पड़ता है, और उन दोनों के शिक्षा के अवसर भी कम हो जाते है, जिससे उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास सही ढंग से नहीं हो पाता।

बाल-विवाह का अभिप्राय उस विवाहित स्त्री से लिया जाता है, जिसका विवाह उसकी विवाह योग्य होने की उम्र से पहले ही कर दिया जाता है। क्योंकि ऐसा माना जाता था कि "युवा होने से पूर्व ही कन्या का विवाह कर देना चाहिए। ऐसा न करने से पाप लगता है।" अत: छोटी आयु में किया गया विवाह बाल-विवाह कहलाता है। यह प्रथा वैदिक युग में नहीं थी। उत्तर-स्मृति युग की देन है बाल-विवाहस "...अशिक्षा, बाल-विवाह आदि बंधन उत्तर व मध्य भारत में शक, हूण आदि विदेशी आक्रमणों के बाद, स्त्री-सुरक्षा की दृष्टि से ही, लगाए गए थे।" मध्य युग में भी इस कुप्रथा के कई भयानक रूप देखने को मिलते है। इस प्रथा का समाज में इतना भयंकर प्रभाव पद रहा था कि लोग सात या दस वर्ष की आयु में अथवा पालने में ही कन्या का विवाह करने लगे। माता-पिता को लड़की एक बोझ सी लगती थी और वह अपनी कन्या को पन्द्रह-सोलह वर्ष तक अविवाहित रखना उचित नहीं समझते थेस इस प्रथा

के कारण नारी ख्रजीवन संकीर्णता की सीमा में बंध गया था, वह न तो अपनी शिक्षा पूर्ण कर पाती थी और न ही आत्मनिर्भर हो पाती थीस जिसके परिणामस्वरूप उसका और उसे जुड़े परिवार का भविष्य अंधकारमय हो जाता है।

हमारे समाज में बाल-विवाह की समस्या और उसे सम्बन्धित मुद्दों को कई उपन्यासकारों ने अपनी लेखनी में स्थान दिया है, इस श्रेणी में लेखिका मीरा कांत का उपन्यास 'एक कोई था कहीं नहीं-सा' भी एक चर्चित उपन्यास है। जिसमें लेखिका ने बाल-विवाह की समस्या को उजागर करते हुए समाज में बाल-विवाह के दुष्परिणामों का चित्रण किया हैस हमारे समाज में आमतौर पर यह देखा गया है कि कम उम्र की अपेक्षा धन को अधिक महत्व दिया जाता है जिसका चित्रण उपन्यासकार मीरा कांत ने भी अपने उपन्यास 'एक कोई था कहीं नहीं-सा' में किया है। चौदह साल की शबरी के विवाह की बात बहुत सारी जगहों पर चलती गयी परन्तु शबरी के भैया-भाभी को दादा-नाना बन चुके अट्ठावन साल के समसार चन्द ही इज्जतदार और खानदानी प्रतीत हुए। समसार चन्द जू का यह तीसरा विवाह था। पहली दो पत्नियां मर चुकी थी तो उसके भैया-भाभी ने मासूम शबरी का विवाह उस वृद्ध व्यक्ति से तय कर दिया। "शबरी मन ही मन लल्लेश्वरी बनी रही और गाशा जी ने उसे अपनी गोद में बैठाकर उसका कन्यादान कर दिया। वर-वधू को एक-दूसरे का हाथ थमा आमने-सामने बैठाकर बड़ी-सी सफेद चादर से ढंका गया। उन्हें शिव-पार्वती का स्वरूप जानकर सभी सम्बन्धियों ने जब 'पोशपूजा' के समय उन पर पुष्पवर्षा की तो सबसे उत्साहित वर समसार चन्द पांच वर्षीय पोती थी। वह दौड़ ख्रदौड़ कर टोकरी में से फूल लाती थी और उन पर डालती जाती थी। ऐसा खेल तो उसने अपने दादा के साथ पहले कभी खेला ही नहीं था।"

बाल-विवाह में छोटी आयु के कारण लड़कियों को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता हैस घर-गृहस्थी का कार्य वह पूर्ण रूप से नहीं कर पाती हैंस न तो उनमें इतनी समझ और न इतनी क्षमता होती है। वह अभी नादान होती है कि उन्हें घर-गृहस्थी की कोई समझ नहीं होती। जिसका उदाहरण 'एक कोई था कहीं नहीं-सा' उपन्यास में देखा जा सकता है। उपन्यास की नायिका शबरी को ऐसी ही बाल-विवाह से उत्त्पन कठिनाई का सामना अपने ससुराल में करना पड़ता है। विवाह के कुछ दिन पश्चात शबरी की सास ने उसे एक बड़ा देगचा मांजने के लिए दे दिया। शबरी ने इतना बड़ा बर्तन शादियों में तो देखा था पर वह इस बात से अनभिज्ञ थी कि इसे कैसे मांजना हैस वह देगचा उसकी कमर के जितना था, शबरी उस देग्चे को बाहर ले आई और इस उलझन में खो गई कि इसे अंदर से कैसे साफ किया जाए। कुछ समय पश्चात समसार चन्द जू वहाँ से गुजरे, उनकी दृष्टि शबरी पर पड़ी जो दुविधा में हाथ में राख लिए हुए खड़ी थी। दुविधा में पड़ी शबरी को जब समसार चन्द ने उसकी दुविधा का कारण पूछा तो शबरी ने अपनी उलझन बताई कि मैं इसे कैसे मांजू? जिसे सुनकर समसार चंद जूं बोले "इसमें क्या सोचना...पहले इसमें ढेर सारी राख दे फिर फेरन टांगों से ऊपर करके इसके अन्दर घुस जा...इसमें गोल गोल घूम... पैरों से खुद ही मंज जाएगा।" शबरी ने अपने बोलेपन में वहीं किया जो उसके पति ने उससे कहा। तभी तारा भाभी की बड़ी बहू ने आकर उसे रोका। शबरी ने सारी बात बताई तो उसे उसके भोलेपन पर दया आ गई।

उपन्यास 'एक कोई था कहीं नहीं-सा' में लेखिका मीरा कांत ने बाल-विवाह का बड़ा ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। उपन्यास में लोगों की ऐसी मानसिकता का वर्णन हुआ है जिस के कारण हमारा समाज उन्नति की ओर नहीं अपितु पिछड़ेपन की ओर जा रहा था। बाल-विवाह जैसी कुप्रथा ने हमारे समाज और समाज में रह रहे लोगों की मानसिकता को अपने नियंत्रण में लिया है। जिसका उदाहरण उपन्यास की पंक्तियों में चित्रित हुआ है। उपन्यास में केदारनाथ ने अपने छोटे भाई अम्बरनाथ से अपनी बेटी दुर्गा के विवाह की बात छेडी। वह उसका विवाह करके उसे ससुराल में देखना चाहते थे "केदारनाथ आस-पास नजर दौड़ाते थे तो दुर्गा के उम्र की लड़कियों को उनकी आखें बच्चा गोद में लिए देखती थी। वे भीतर से घबरा जाते थे। सोचते थे मुझे कुछ हो गया तो ये दोनों रिफार्मी भाई-बहन मिलकर न जाने क्या सोचें और क्या करें। हमारे समाज में लोगों की देखा-देखी में भी कई परिवार नष्ट हो जाते है। जिसका वर्णन उपन्यास में भी हुआ है, और जिसका परिणाम उपन्यास की पात्र दुर्गा ने झेला और न जाने दुर्गा जैसी कितनी लड़कियों को झेलना पड़ा हो। "वैसे भी जमाने को देखते हुए उसकी उम्र शादी की हो गयी थी। सोमावती भी जब दुल्हन बनकर उनके घर आई थी तो महज तेरह साल की थी। फिर दुर्गा तो तेरह पार कर चुकी थी।" अम्बरनाथ को अपने भाई की यह इच्छा नाजायज नहीं लगी। उसने अपने परिचित व्यक्ति जाडू साहब के बेटे मधुसूदन से विवाह की बात पक्की कर दी। "अम्बरनाथ ने केदारनाथ की इच्छानुसार मिडिल के बाद ही पूरी सादगी के साथ दुर्गा को एक नयी भरपूर जिन्दगी के लिए रुखसत किया।"

बाल-विवाह एक बहुत बड़ा अपराध है। जिसके केवल दुष्परिणाम ही होते है और इस कुप्रथा से सबसे अधिक हानी कन्या और उसके संन्तान को होती है। लेखिका मीरा कांत ने अपने उपन्यास 'एक कोई था कहीं नहीं-सा' में बाल-विवाह की समस्सया पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है कि हमारे समाज में दहशत इतनी तेजी से बढ़ रही थी कि जिसके कारण एक पुराणी कुप्रथा को फिर से पनपने का अवसर मिला। जिसके भय के कारण माता-पिता भी अपनी कन्याओं का विवाह छोटी उम्र में ही कर देना उचित समझते थे। क्योंकि "कबाइलियों द्वारा किशोरियों का अपहरण होने की आशंका से कश्मीर में फिर छोटी उम्र की लड़कियों को ब्याह देने की कुरीति का अवतार हुआ। कुरीतियां भी शायद खूंखार दरिन्दा ही होती हैं जो अपने नाखून और दांत चमकाती हमेशा घात लगाये बैठी रहती हैं।"

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि उपन्यास 'एक कोई था कहीं नहीं-सा' में लेखिका ने बाल-विवाह और उसके दुष्परिणामों को बहुत ही सूक्ष्मता से दर्शाया है। जहाँ तक आज की बात की जाए तो आज नारी की स्थिति और गति में दिन-प्रतिदिन निरंतर परिवर्तन आ रहा है। आज नारी सशक्त हो रही है वह स्वयं भी बाल-विवाह के विरुद्ध आवाज उड़ाती है जिसका प्रणाम है नारी का आत्मनिर्भर होना। परन्तु बाल-विवाह की कुप्रथा हमारे समाज से समाप्त तो हो गई है परन्तु अभी भी कुछ ऐसे स्थान है जैसे ग्रामीण अंचलों, पर्वतीय प्रदेशों तथा कई और जगहों पर यह कुप्रथा अभी भी दिखाई देती है।

"संयुक्त राष्ट्र बाल निधि (UNICEF) ने एक रिपोर्ट, 'फैक्टशीट चाइल्ड मैरिजेज 2019' जारी की है जिसके अंतर्गत कहा गया है कि 2005-2006 में जहाँ 47 फीसदी लडकियों की शादी 18 साल की उम्र से पहले हो गई थी, वहीं 2015-2016 में यह आँकड़ा 27 फीसदी था। ...यूनिसेफ की रिपोर्ट के अनुसार गरीबी, लड़कियों की शिक्षा का निम्न स्तर, लड़कियों को आर्थिक बोझ समझना, सामाजिक प्रथाएँ एवं परम्पराएँ बाल-विवाह के प्रमुख कारण हैं, भारत में बाल-विवाह पर रोक संबंधी कानून सर्वप्रथम सन् 1929 में पारित किया गया था, बाद में सन् 1949, 1978 और 2006 के नए कानून के तहत बाल-विवाह कराने पर दो साल की जेल और एक लाख रुपए का दंड निर्धारित किया गया है।"

सन्दर्भ :-

1. वर्मा रतनकुमारी-महिला साहित्यकारों का नारी चित्रण-पृष्ठ- 209.
2. डॉ. माधवी जाधव-मन्नू भण्डारी के साहित्य में चित्रित समस्यायें, पृष्ठ-111.
3. मीरा कांत- 'एक कोई था कहीं नहीं-सा', पृष्ठ - 21.
4. वहीं, पृष्ठ- 51.
5. वहीं, पृष्ठ 117.
6. वहीं, पृष्ठ 118.
7. वहीं, पृष्ठ 133.
8. https://www.gagranjosh.com/current -affairs/unicef-released-factsheet-child-marriages2019 in hindi. feb 15 2019.

शिक्षा प्रणाली पर कोविड-19 का प्रभाव (ऑनलाइन शिक्षा के विषेष संदर्भ में)

डॉ० अलका सक्सेना

एसोसिएट प्रोफेसर, टीचर एजुकेशन डिपार्टमेंट, डी.बी.एस. कॉलेज, कानपुर

सारांश

मानवीय संघर्षों का ऐतिहासिक विश्लेषण की रूपरेखा और प्रकृति बहुआयामी है। चांद तक का सफर पूरा करने वाला मानव आज एक अदृश्य दुश्मन से लड़ने के लिए विवश महसूस कर रहा है। जिसका आकार-प्रकार और रंग-रूप भी अदृश्य है। विश्व में अच्छी स्वास्थ्य सुविधाएं, विज्ञान का उन्नत ज्ञान और उपचार की विभिन्न तरीकों के बावजूद नैनोमीटरों के कुछ छोटे कण ने अपनी भयावह स्थिति प्रकट किया है। यूनेस्को ने हाल ही में जारी एक अध्ययन के मुताबिक कोरोना वायरस के कारण स्कूलों, कॉलेजों एवं शैक्षणिक संस्थानों के बंद होने से दुनिया के 160 देशों में 140 करोड़ छात्रों की शिक्षा प्रभावित हो गई है, जो विभिन्न स्तरों पर नामांकन लेने वाले कुल छात्रों का 86 प्रतिशत है। यूनेस्को के अध्ययन के अनुसार, भारत में कोरोना वायरस की वजह से लॉकडाउन के कारण अनुमानित रूप से 35 करोड़ छात्रों का पठन-पाठन प्रभावित हुआ है, जिसमें 16 करोड़ लड़कियां और 19 करोड़ लड़के शामिल हैं। 2020 के मार्च के दूसरे सप्ताह से कुछ समय के लिए, देश भर की राज्य सरकारों ने स्कूलों और कॉलेजों को अस्थायी रूप से बंद करना शुरू कर दिया, क्योंकि कोरोनो वायरस के प्रसार को रोकने के उपाय के रूप में कोई निश्चितता नहीं थी। जिसके परिणामस्वरूप, स्कूल जाने वाले बच्चों से लेकर स्नातकोत्तर छात्रों तक के शिक्षार्थी प्रभावित हुए। जब स्कूल बंद हो जाते हैं, तो कई बच्चे और युवा सामाजिक संपर्क से चूक जाते हैं जो सीखने और विकास के लिए आवश्यक है। प्रस्तुत शोध पत्र में शिक्षा प्रणाली पर कोविड-19 का प्रभाव (ऑनलाइन शिक्षा के विषेष संदर्भ में) का अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्द- शिक्षा प्रणाली, कोविड-19, ऑनलाइन शिक्षा, प्रौद्योगिकी अवसंरचना, शैक्षिक संस्थान।

परिचय

महामारी हो या युद्ध दोनों ही हमारे जीवन में परिवर्तन लाते हैं। दोनों ही स्थिति में परिवर्तन दुखदायी होते हैं। महामारी किसी भी काल में आया हो, चाहे वो प्राचीन काल हो या आधुनिक काल दोनों काल में हमारे जीवन चक्र को बदल देता है। नोवेल कोरोना वायरस संक्रमण के कुछ इक्के-दुक्के मामले सबसे पहले चीन में सामने आए और उसके कुछ माह बाद ही देखते-देखते इसने वैश्विक महामारी का रूप धारण कर लिया। इस महामारी के कारण वैश्वीकृत दुनिया की एक दूसरे के साथ मजबूती से जुड़ी हुई प्रणालियाँ पूरी तरह से बदल गई है। 20 मार्च 2020 तक थाइलैड, दक्षिण कोरिया, जापान, ताइवान, मकाऊ, हांगकांग, संयुक्त राज्य अमेरिका, सिंगापुर, वियतनाम, भारत, ईरान, इराक, इटली, कतर, दुबई, कुवैत और अन्य 150 देशों में पुष्टि के मामले सामने आए हैं। 23 जनवारी 2020 को विश्व स्वास्थय संगठन ने प्रकोप को अंतरराष्ट्रीय चिंता का एक सार्वजनिक स्वास्थ्य आपातकाल धोषित करने के खिलाफ फैसला किया। विश्व स्वास्थय संगठन ने एक ट्वीट के द्वारा यह कहा कि वुहान में कोरोना वायरस के इंसानों से इंसानों में फैलने के मामले सामने आए हैं। जबकि इससे पहले उसने इससे इनकार किया था। हालांकि डब्लयूएचओ ने पहले चेतावनी दी थी कि एक व्यापक प्रकोप संभव था।

दिसंबर 2002 में भारत सरकार ने संविधन के 86 संशोधन में 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों को मुफ्रत और अनिवार्य शिक्षा को एक मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी है। इसलिए हमारा संविधान राष्ट्र के सभी नागरिकों को शिक्षा ग्रहण करने का मौलिक अधिकार देता है। कोविड-19 महामारी हमारी शिक्षा प्रणाली के लिए एक बड़ी चुनौती के रूप में सामने आई। हालांकि हर कोई सरकार की ओर उत्सुकता भरी नजर से देख रहा है कि वह कब लॉकडाउन को खत्म करें। लेकिन लॉकडाउन खत्म होते ही हम अपने घरों से निकलने के लिए एकदम स्वतंत्र हो जाएंगे लेकिन आगामी वर्षों में सरकार के नीति निर्माताओं के अनुसार सामूहिक समारोह सांप्रदायिक बैठकों में बड़ी संख्या में इकट्ठा होने की अनुमति नहीं दी जाएगी। इस तरह यह लगभग निश्चित है कि शैक्षिक परिसरों को भी किसी भी समय पूरी तरह से आबाद नहीं किया जाएगा। इस संकट के समय में ई-लर्निंग एक वरदान के रूप में दिखाई दिया है। ऑनलाइन शिक्षा हमें घरों पर हमारी सुरक्षा के साथ पाठ्यक्रम और शैक्षिक कार्यक्रम को उपयोग करने की अनुमति देता है। ऑनलाइन शिक्षा सभी प्रकार के विद्यार्थियों को एक लचीली व्यवस्था प्रदान करता है उनके समय को बचाता है। ऐसे में मोबाइल, कंप्यूटर, लैपटॉप द्वारा ऑनलाइन क्लासेस, व्हाट्सएप, फेसबुक, इंस्टाग्राम, ट्विटर, ईमेल, ऑनलाइन कोर्सेज, जूम, गूगल मीट, आदि महत्वपूर्ण एप्लीकेशन सफलतापूर्वक प्रयोग किए जा रहे हैं। ऑनलाइन शिक्षा विद्यार्थियों को कम लागत में अधिक लाभ उपलब्ध कराता है। हमारी पारंपरिक शिक्षण पद्वति में विद्यार्थियों को एक निश्चित समय एक निश्चित स्थान पर कक्षा में उपस्थित होकर एक विशेष समय पर एक लंबे व्याख्यान के माध्यम से और फिर से अगली कक्षा के लिए उसी दिनचर्या का पालन कराने के लिए बाध्य करता है। जोकि कुछ छात्रों के लिए बहुत ही जटिल कार्य प्रतीत होता है। इसके साथ-साथ स्कूल की फीस बहुत ही अधिक होती है। सभी विद्यार्थी स्कूल शुल्क, हॉस्टल शुल्क, भोजन शुल्क का खर्च नहीं उठा पाते। ऑनलाइन शिक्षा इन सभी खर्चों के लिए एक आसान प्रवेश द्वार प्रदान करती है। विद्यार्थी अपनी नौकरियों

के साथ-साथ अध्ययन कार्य भी जारी रख सकते हैं क्योंकि उन्हें एक निश्चित समय पर एक निश्चित जगह पर बार-बार उपस्थित नहीं होना पड़ता।

लॉकडाउन के कारण सारे शैक्षणिक संस्थानों को बंद करना पड़ा, जिससे शिक्षण-प्रक्रिया बाधित हुई है। ज्ञान के निर्बाध प्रसार को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से विद्यालय से लेकर विवि तक समस्त शैक्षणिक संस्थानों को वैकल्पिक शैक्षणिक ऑनलाइन अधिगम अपनाना पड़ा है, जिसे डिजिटल लर्निंग, ई-लर्निंग, वेबवेस्ड लर्निंग, वर्चुअल स्पेस लर्निंग, रिमोट लर्निंग, दूरस्थ शिक्षा या गृह शिक्षा इत्यादि नामों से भी जाना जाता है। अकादमिक विमर्श भी ऑनलाइन हो रहे हैं और प्रशासनिक व अकादमिक निर्णय लेने हेतु बैठकें भी ऑनलाइन हो रही हैं। परिचर्चा, गृहकार्य, डिजिटल अध्ययन सामग्री उपलब्ध कराने और कुछ सीमा तक मूल्यांकन आदि प्रकारों से वे ऑनलाइन शिक्षण से जुड़ रहे हैं, इसलिए कुछ स्तर तक ही सही परन्तु ऑनलाइन शिक्षा को स्वीकारने के लिए वे अभिनन्दन के पात्रा हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) ने कोविड-19 के मद्देनजर सोशल डिस्टेंसिंग को ध्यान में रखते हुए विभिन्न भाषाओं में ऑनलाइन लर्निंग मॉड्यूल विकसित किए हैं। आईआईटी एवं आईआईएम सहित कई भारतीय संस्थान ऑनलाइन मोड में शिक्षा दे रहे हैं। विश्वविद्यालयों और शैक्षणिक संस्थानों ने सामाजिक दूरी सुनिश्चित करने के लिए छात्रों को घर बैठे ऑनलाइन कक्षाओं में भाग लेने की अनुमति दी है। कोरोना ने ऑनलाइन शिक्षा को आवश्यकता बना दिया है और हमें ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली की संभावना और लाभों के बारे में सोचने के लिए मजबूर किया है। ऑनलाइन शिक्षा आधुनिक इतिहास के सबसे महत्वपूर्ण बदलावों में एक है। पिछले दशक में इंटरनेट की उपलब्धता काफी बढ़ गई है। ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली के लिए विश्वसनीय और सुरक्षित ब्रॉडबैंड इंटरनेट कनेक्शन की आवश्यकता होती है, ताकि विभिन्न सॉफ्टवेयरों के माध्यम से वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग की जा सके। उन्नत संचार सॉफ्टवेयर बेहतर दृश्यता के साथ लगातार सामने आ रहे हैं और दूरस्थ संचार को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए एक दूसरे से होड़ कर रहे हैं। केपीएमजी और गूगल द्वारा किए गए एक अध्ययन ऑनलाइन एजुकेशन इन इंडिया के मुताबिक, भारत में ऑनलाइन शिक्षा का बाजार 2021 तक बढ़कर लगभग 1.96 अरब डॉलर होने की उम्मीद है और विभिन्न ऑनलाइन शिक्षण पाठ्यक्रमों के लिए नामांकित छात्रों की संख्या 2021 के अंत तक बढ़कर करीब 96 हो जाने की उम्मीद है। इस तरह 'कोरोना' ने हमें परम्परागत रियल-वर्ल्ड प्लेटफॉर्म के स्थान पर वर्चुअल प्लेटफॉर्म से कार्य करने को विवश कर दिया है। बड़ी संख्या में शिक्षकों और विद्यार्थियों ने कई सीमाओं के बावजूद ऑनलाइन शिक्षा के नये तरीके को अपनाने में उत्साह दिया है।

लॉकडाउन के इस वक्त जहाँ सभी शिक्षा केन्द्र बन्द है। वहाँ ऑनलाइन शिक्षा ने अपनी जगह बना ली है। आज दुनिया के सारे देशों के बच्चे ऑनलाइन शिक्षा का उपयोग करके आसानी से पढ़ाई कर पा रहे है। ऑनलाइन शिक्षा प्राप्त करने के लिए अच्छी और तीव्र गति की इंटरनेट कनेक्टिविटी की जरूरत है। शिक्षक दूरस्थ शिक्षा में वी.एच.अस. वीडियो, डीवीडी और इंटरनेट के पाठ्यक्रमों के अनुसार बच्चों को पढ़ाते है। 1993 में ऑनलाइन शिक्षा कानूनी कर दी गयी और यह एक अनोखा तरीका है जिसके माध्यम से सभी उम्र के छात्रा पढ़ सकते है। इंटरनेट की सहजता के कारण वर्षो से ऑनलाइन शिक्षा लोकप्रिय हो रही है। शिक्षण क्षेत्र पर कोविड-19 और लॉकडाउन के प्रभाव ने शिक्षण संस्थाओं को शिक्षण माध्यमों के नए विकल्पों पर विचार करने हेतु विवश कर दिया है। भारत में ई-शिक्षा अपनी शैशवावस्था में है, आवश्यक है कि इसकी राह में मौजूद विभिन्न चुनौतियों को संबोधित कर ई-शिक्षा के रूप में एक नए शिक्षण विकल्प को बढ़ावा दिया जाए। टेलीविजन और रेडियो कार्यक्रमों के माध्यम से देश के दूरस्थ भागों में स्थित ग्रामीण क्षेत्रों में भी लॉकडाउन के दौरान शिक्षा की पहुँच सुनिश्चित की जा सकती है।

डिजिटल लर्निंग के कई लाभ और चुनौतियां हैं, उनमें से कुछ पर एक नजर डालते हैं-

1. जाति, लिंग, यौन अभिविन्यास, धर्म, राष्ट्रीयता, आयु, पोशाक, शारीरिक उपस्थिति आदि के कारण छात्रों के बीच कोई भेदभाव नहीं।
2. कोई आने और जाने का समय नहीं।
3. एक परिसर में सीखने के विकल्प का चयन करने में कोई भौगोलिक स्थिति बाधा नहीं है।
4. कोई सीखने की गति बाधा नहीं है, आप अपनी गति से सीख सकते हैं और अपनी सुविधानुसार अध्ययन कर सकते हैं।
5. कोई मौखिक रूप से व्यक्त बाधा नहीं है, आप मौखिक रूप से कोर्स वर्क की तुलना में लेखन में खुद को व्यक्त कर सकते हैं।
6. निर्देश आपके क्षेत्र और विषय क्षेत्र के लिए अत्यधिक अनुकूलित किए जा सकते हैं, ये पाठ्यक्रम उन लोगों के लिए बेहतर है जो अंतर्मुखी हैं और जो दृश्य संकेतों के माध्यम से सीखते हैं और सामग्री को समझने में अधिक समय की आवश्यकता होती है।
7. संसाधनों तक पहुंच- दुनिया भर के संसाधनों और सूचना के लिए अतिथि विशेषज्ञों या अन्य संस्थानों के छात्रों के साथ-साथ संसाधनों तक पहुंच को शामिल करना आसान है।
8. उच्च गुणवत्ता वाला संवाद- शिक्षार्थी अगले विषय पर प्रतिक्रिया देने या आगे बढ़ने से पहले प्रत्येक टिप्पणी पर अपनी गुणवत्ता की सोच को ध्यान से देखने में सक्षम है।
9. सहक्रिया- प्रशिक्षक और छात्रों के साथ-साथ स्वयं छात्रों के बीच उच्च स्तर की गतिशील बातचीत। विचारों और संसाधनों को साझा किया जाता है, और सीखने की प्रक्रिया के माध्यम से निरंतर तालमेल बनाया जाएगा क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति सहपाठियों के काम पर चर्चा और टिप्पणियों में योगदान देता है।
10. रचनात्मक शिक्षण: इंटरैक्टिव शिक्षा के माहौल में वयस्क शिक्षा वर्ग में आत्म-दिशा और महत्वपूर्ण सोच में योगदान कर सकते हैं। विशेष रूप से आभासी कक्षा की अर्ध-स्वायत्त और स्व-निर्देशित दुनिया की प्रकृति निर्देशन के लिए अभिनव और रचनात्मक दृष्टिकोण को और भी महत्वपूर्ण बनाती है।
11. छात्र केंद्रित- छात्रों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपने सभी सहपाठियों के योगदानों को पढ़ें, लेकिन वे सक्रिय रूप से केवल उन्हीं भागों में संलग्न हो सकते हैं जो उनकी आवश्यकताओं के लिए सबसे अधिक प्रासंगिक हैं।

चुनौतियां

1. व्याकुलता की संभावनाएं उच्च- बातचीत के लिए कोई संकाय नहीं होने के कारण और कोई सहपाठी जो लंबित असाइनमेंट के बारे में लगातार याद दिलाने में मदद कर सकता है, इस कारण विचलित की संभावना अधिक है।
2. छिपी हुई लागत- कुछ शुरुआती खर्च होते हैं जैसे कंप्यूटर या टैबलेट, प्रिंटर, वेब कैमरा और एक विश्वसनीय इंटरनेट कनेक्शन इन सभी चीजों के लिए कुछ खर्चों की आवश्यकता और पुनरावृत्ति हो सकती है- जैसे रखरखाव और बिजली की लागत।
3. जटिल तकनीक- यदि कोई छात्र कंप्यूटर और तकनीक का जानकार नहीं है, तो उसके सीखने का अनुभव असंतोषजनक हो सकता है। तथा सॉफ्टवेयर या हार्डवेयर में खराबी के कारण सीखने की प्रक्रिया को बाधित कर सकता है।
4. व्यावहारिक के बजाय सिद्धांत पर ध्यान केंद्रित- ई-लर्निंग सामाजिक विज्ञान और मानविकी के लिए अधिक उपयुक्त है, लेकिन चिकित्सा विज्ञान और इंजीनियरिंग जैसे विषयों के लिए व्यावहारिक की की आवश्यकता होती है।
5. सीमित सामाजिक सहभागिता- ऑनलाइन शिक्षण में शिक्षक और छात्रों के लिए आमने-सामने बातचीत करने का एक सीमित अवसर है, सामाजिक संपर्क बनाने के लिए कोई परिसर का माहौल नहीं है।
7. पारंपरिक प्रशिक्षकों के लिए समस्या- पारंपरिक प्रशिक्षकों के लिए सिस्टम और सॉफ्टवेयर को अपनाने में कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। जैसे-जैसे सॉफ्टवेयर अधिक से अधिक उन्नत हो रहा है, पारंपरिक प्रशिक्षकों को लगातार पडेगा। चाहिए कि कैसे बनाए रखना है।

प्रभाव

1. संयुक्त राष्ट्र ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि शिक्षा प्रणाली पर कोविड-19 के प्रभाव के कारण शैक्षिक वित्तपोषण का अंतर एक-तिहाई तक बढ़ सकता है।
2. स्कूलों और शिक्षण संस्थानों के बंद होने से विश्व की तकरीबन 94 प्रतिशत छात्रा आबादी प्रभावित हुई है और निम्न तथा निम्न-मध्यम आय वाले देशों में यह संख्या 99 प्रतिशत है।
3. इसके अलावा कोविड-19 महामारी ने शिक्षा प्रणाली में मौजूद असमानता को और अधिक बढ़ा दिया है।
4. इस महामारी के कारण निम्न आय वाले देशों की कमजोर एवं संवेदनशील आबादी इस वायरस से सबसे अध्कि प्रभावित हुई है। वर्ष 2020 की दूसरी तिमाही के दौरान निम्न आय वाले देशों में प्राथमिक स्तर पर तकरीबन 86 प्रतिशत बच्चे स्कूल से बाहर हो गए हैं, जबकि उच्च आय वाले देशों में यह आँकड़ा केवल 20 प्रतिशत है।
5. इस महामारी का सबसे अधिक प्रभाव लड़कियों और महिलाओं पर देखने को मिल सकता है, स्कूल बंद होने से वे बाल विवाह और लिंग आध रित हिंसा के प्रति अध्कि संवेदनशील हो जाएंगी।
6. साथ ही बच्चों के साथ होने वाले अपराधें में भी बढ़ोतरी देख ने को मिल सकती है।
7. वर्ष 2020 की शुरू में यह अनुमान लगाया गया था कि विश्व के अध्किांश निम्न और मध्यम आय वाले देशों में शिक्षा बजट और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के सतत् विकास लक्ष्य तक पहुँचाने के लिये आवश्यक राशि के बीच लगभग 148 बिलियन डॉलर का अंतर है, कोविड-19 महामारी के कारण इस वित्तपोषण अंतराल में दो-तिहाई तक वृद्वि हो सकती है।

ऑनलाइन शिक्षा को अधिक कारगर बनाने के सुझाव

1. मीडिया की विविधता- हमारी सामग्री में वीडियो, ऑडियो, एनिमेशन, टेबल और प्रिंट करने योग्य सामग्रियों जैसे मीडिया का संयोजन होना चाहिए। एक प्रकार के मीडिया पर निर्भरता की तुलना में मीडिया का मिश्रण अधिक प्रभावी है क्योंकि यह कई प्रकार की सीखने की वरीयताओं को संतुष्ट करता है।
2. संगठन- सामग्री, गतिविधियाँ और अनुभव क्रमबद्ध, संचयी और सुसंगत होना चाहिए। उन्हें अत्यधिक इंटरैक्टिव होना चाहिए और सीखने के स्तर, सीखने के प्रवेश बिंदु और अनुभवों की एक सीमा के लिए अनुमति देना चाहिए। सरल से जटिल तक क्रमिक रूप से आगे बढ़ते हुए विष्य वस्तु को यमाप्त करना चाहिए।
3. डिजाइन स्पष्टता- इसमें पहुंच और नेविगेशन में आसानी होती है। इस तरह की स्पष्टता और सामग्रियों का सहज संगठन शिक्षार्थियों की संतुष्टि और ऑनलाइन शिक्षण वातावरण में पाठ्यक्रम सामग्री के कथित प्रभाव को काफी प्रभावित करता है।
4. सीखने के अनुभवों के प्रकार- लचीले ढंग से डिजाइन किए गए पाठ्यक्रम अच्छी तरह से समझने में सहायक होते है। इससे पाठ और व्याख्यान गतिविधियों को सीखने में दृष्टिकोण को बढ़ावा देते हैं
5. डिजिटल उपकरण- जटिल अवधारणाओं की समझ बनाने के लिए प्रौद्योगिकी केवल डिलीवरी का माध्यम नहीं होनी चाहिए बल्कि एक सीखने की समाग्री है जो ठोस, प्रासंगिक रूप से सार्थक अनुभवों के लिए अवसर प्रदान करती है। जिसके माध्यम से आप स्वयं के मॉडल, अवधारणाओं और रणनीतियों का निर्माण कर सकते हैं।

निष्कर्ष

विश्वव्यापी कोरोना संकट से आज लगभग पूरी दुनिया जूझ रही है। लोग एक-दूसरे से सामाजिक दूरी का ध्यान रख रहे हैं। जहां कोरोना का प्रत्यक्ष असर रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन, यातायात और पर्यटन आदि उद्योगों पर दिखाई दे रहा है वहीं दूरगामी असर का अध्ययन और दुष्परिणामों से निपटने की

तैयारियां भी चल रही हैं। इस बदलते स्वरूप ने ऑनलाइन शिक्षा संस्कृति को प्रासंगिक बना दिया है तथा दुसरी तरफ भारतीय समाज में ऑनलाइन शिक्षा को स्वीकार करने की प्रवृत्ति आंशिक रही है। भारत के शहरों और गावो में शिक्षा के स्तर में फर्क आसानी से देखा जाता है। किसी भी तकनीकी, चिकित्सा या प्रबंधन पाठयक्रम की पढाई तथा शोध कार्य के लिए हम अपनी सरंचना में शहरो पर ही आधारित है। उच्च शिक्षा में गावों को सक्षम नहीं बनाया गया है। हमारे सामने प्रश्न यह खडा है कि ऑनलाइन शिक्षा के माध्यम से समावेशी शिक्षा का लक्ष्य कहां तक प्राप्त कर पायेगे। कोविड-19 महामारी के कारण देश भर में ऑनलाइन शिक्षा का महत्त्व काफी बढ़ गया है, किंतु सामाजिक असमानता और डिजिटल डिवाइड ऑनलाइन शिक्षा के समक्ष अभी भी बड़ी चुनौती बने हुए हैं। कोविड-19 महामारी के कारण डिजिटल माध्यम से अधिक मात्रा में लोग पढ़ाई कर रहे हैं। और कम अवधि वाले पाठयक्रम भी लोकप्रिय हो रहे हैं। इन बदलावों से कठिनाई तो हो रही है लेकिन इनसे शिक्षा के क्षेत्र में नवाचार के उदाहरण भी सामने आ रहे हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि शैक्षणिक जगत में डिजिटल माध्यम का प्रभाव लंबे समय तक रहने वाला है।

संदर्भ सूची

1. हिन्दुस्तान समाचार-पत्र: 1,11,28 अप्रैल, 2020 और 4,6,7,9 मई, 2020 और 16,17 जून, 2020।
2. जनसत्ता: 19 अप्रैल, 22 जून, 2020।
3. लोकमत: 17 अप्रैल, 2020।
4. द हिंदू, नई दिल्ली, 5 जुलाई 2020
5. टाइम्स ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 21 जुलाई 2020
6. योजना, मई 2020

7- https://www.who.int/health-topics/coronavirus
8- https://ayush.gov.in/
9- https://www.mohfw.gov.in/pdf/ImmunityBoostingAYU
10- SHAdvi sory.pdf

भारत में संविधान के नीति-निदेशक तत्व एवं सम्पोषणीय विकास

डॉ० अशोक कुमार

महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

डॉ० राजीव सागर

वरिष्ठ शोध अध्येता, राजनीति विज्ञान, बी.बी.ए.यू. लखनऊ

हमारे भारतीय संविधान में ''भारत के नीति-निदेशक तत्वों'' में भारतीय समाज के कल्याण की बात को अत्यधिक महत्व दिया गया है। जिसके कारण भारतीय संविधान मूल अधिकारों, राज्य के नीति-निदेशक तत्व एवं कर्तव्यों को समाहित किए हुए है। इन सभी में पर्यावरण एवं सम्पोषणीय विकास पर बल दिया गया है और जो हमारी ऊर्जा नीति के लिए महत्वपूर्ण प्रेरक की भांति कार्य करता है।

संविधान की उद्देशिका में समाजवादी राज्य की स्थापना की बात कही गई है। जिसकों केवल सम्पोषणीय एवं सतत् विकास से ही सिद्ध किया जा सकता है। संविधान में मूल अधिकारों के अन्तर्गत अनुच्छेद 14 जो विधि के समक्ष समता अथवा विधि के समान संरक्षण के अधिकार जो बताता है। उसी के क्रम अनु0 21 जो प्राण एवं दैहिक स्वतंतृता को बताता है जो हर प्राणी को स्वच्छ पर्यावरण एवं ऊर्जा प्रदान करने के लिए प्रेरित करता है।

जिस प्रकार भारतीय संविधान पर्यावरण के संरक्षण की बात करता है उससे इसके महत्व को समझा जा सकता है यह इतना महत्वपूर्ण है कि इसे मूल अधिकारों में सम्मलित किया गया है प्राण और दैहिक स्वतन्त्रता के लिये स्वच्छ पर्यावरण स्वच्छ जल वायु के उपभोग के महत्व को समझते हुये इसे हमारे संविधान द्वारा संरक्षित किया गया है क्योंकि अगर पर्यावरण का सम्पोषणीय विकास एवं नाभिकीय ऊर्जा नीतियों से सामंजस्य स्थापित न किया गया तो हर जीव-प्राणी, पेड़-पौधों का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा फिर जीवन भी नहीं रहेगा इसलिये इतना महत्वपूर्ण माना गया है।

''स्वस्थ एवं स्वच्छ पर्यावरण मात्र जीवन का आधार है यही कारण है कि सृष्टिरचना में जल, वायु, सूर्य, पृथ्वी और वनस्पति वैमिन्य तथा जीव विविधता की रचना के बाद मानव की सृष्टि की गयी। प्रकृति को मानव के अनुसार पर्यावरण बनाने में करोडो वर्षो की निस्तता सतत प्रक्रिया से गुजरना पड़ा। इस प्रक्रिया में अनेक प्रकार के जीव जन्तु पेड़ पौधों का जन्म हुआ और कितनी प्रजातियों का अस्तित्व समाप्त हो गया। कई भौगोलिक घटनायें हुयी तब जाकर ऐसे पर्यावरण का निर्माण प्रकृति ने किया जिसमें मानव, पेड़-पौधों, जीवों का अस्तित्व बना हुआ है।

पृथ्वी पर व्याप्त पर्यावरण प्रकृति का सर्वोत्तम वरदान है पर्यावरण वह पक्ष है जिसने पृथ्वी को जीवित जगत का गौरव प्रदान किया है। इस ब्रह्मण्ड में पृथ्वी की तरह अग्रणित ग्रह परन्तु प्रभाविक जानकारी के अनुसार केवल पृथ्वी पर ही जीवन का विकास पाया गया है। पर्यावरण का तात्पर्य पृथ्वी के जैव जगत को आवृत करने वाले भौतिक परिवेश से है। पर्यावरण जैव जगत का प्राणवायु है। इसलिए हर्सकोविट्स ने लिखा है कि पर्यावरण सम्पूर्ण वाह्य परिस्थितियों और जीवधारियों पर पड़ने वाला प्रभाव है जो जैव जगत के विकास का नियामक है यह स्पष्ट है कि पृथ्वी एक जीवित कोशिका है और इसके चारो तरफ फैला पर्यावरण रक्षा कवच है।

पर्यावरण से तात्पर्य आसपास के आवरण से है। पर्यावरण परिस्थितियों एवं पदार्थों का समुच्चय है। जो जीवधारियों के पालन पोषण में सहायक होता है इस तरह अंतरिक्ष, आकाश, सूर्य, चन्द्र, दिन, रात, वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी, वन वनस्पतियाँ, नदियाँ झीलें, समुद्र, पहाड़, वृक्ष, औषधियाँ, खेती तथा मनुष्य सहित पशु-पक्षी कीट-पतंग, अन्न, वस्त्र, शीत, ग्रीष्म, वर्षा आदि ऋतुओं सभी पर्यावरण की समुच्चय है। शायद यही कारण था कि धर्मग्रन्थों में भी सृष्टि संचालक एवं जीवन सम्भाव्यता को दृष्टिगत कर इन सभी तत्वों का वर्णन किया गया है।

पर्यावरण और उसके घटक उनसे बना परिस्थितिकी तंत्र जिसमें हम रहते हैं वह इतना ज्यादा महत्वपूर्ण है कि हमारे धार्मिक ग्रन्थ इससे अछुते नहीं रहे है। धार्मिक ग्रंथों में पर्यावरण के संरक्षण के महत्व को समझते हुये उसके संरक्षण को बताया गया। उन्हें देवी देवताओं की संज्ञा दी गयी, उनके दयालु भाव को दिखाया गया ताकि मानव उनसे प्रेरणा लेकर उन्हें अपने आचरण में समाहित कर पर्यावरण का संरक्षण करें। उसे एक आदर्श रूप में ले। तब ये ही पर्यावरण को संरक्षण करने वाली विधि थी।

आर्थिक आधार को मजबूत का हर देश व्यक्ति दूसरे देश व्यक्ति पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में लगा हुआ है जिसका परिणाम पूरी दुनिया में विश्व युद्ध परमाणु हमले, परमाणु दुर्घटनाओं के रूप में हमारे सामने आते रहते हैं। उपरोक्त परिणामों ने पर्यावरण को बहुत नुकसान पहुंचाया है। पर्यावरण असंतुलन में विश्वव्यापी रूप में सामना करना पड़ रहा है। जिसने पर्यावरण विधि के महत्व को बहुत आर्थिक बढ़ा दिया है।

भारत में पर्यावरण विधि के अध्ययन की महता पश्चिमी देशों की अपेक्षा और अत्यधिक वांछनीय है क्योंकि पश्चिमी देशों में पर्यावरण विधि और नीति समृद्ध मध्यवर्गीय लोगों द्वारा विकास रोकने का माध्यम है। दूसरी तरफ भारत वर्ष में पर्यावरण अवनयन से ज्यादा प्रभावित होने वाले लोग गरीब वर्ग के है। नवीनीकरण से विस्थापित तथा अन्य प्राकृति संसाधनों के बेतहाशा दोहन से प्रभावित, क्षीण आरोग्य, प्रदूषित वायु, संदूषित जल एवं ईंधन हेतु लकड़ी की न्यूनता के शिकार निर्धन वर्ग के लोग हैं। देश के सामूहिक जल, वायु मृदा एवं वन की हानि या अवनयन से सबसे ज्यादा हानि निर्धन वर्ग के लोगों को है। इसलिए यह प्रबल सम्भावना है कि भारत में लोकहित विधि आन्दोलन आवश्यक रूप से पर्यावरण बचाव प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण का रूप ग्रहण कर लेगा।

र्यावरण विधि की महता सामाजिक न्याय के वाहक के रूप में हमारे सामने आयी है। पर्यावरण विधि एवं विकास एक अनवरत प्रक्रिया है। पर्यावरणीय संरक्षण एवं सम्पोषणीय विकास में न्यायालय की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो गयी है। पर्यावरण एवं पर्यावरणीय संरक्षण विधि की रूपरेखा बन गये हैं। जो विकास करने को तो कहते हैं परन्तु वह विकास सम्पोषणीय हो इसको सुनिश्चित करने का प्रयास विधियाँ करती हैं। जिसकी आवश्यकता मानव को अब पर्यावरण समस्याओं को देखने के बाद पूरी दुनिया को समझ में आ रही है।

वर्तमान समय में चाहे देश हो या राज्य या कोई व्यक्ति विकास में सबसे आगे निकलना चाहता है। अपने निजी हितों के पूरा करने के लिए इन्होंने प्रकृति के नियम उसके संतुलन के विरूद्ध जाकर काम किया है। जिससे पूरे पारिस्थितिकी तंत्र के विनाश का खतरा उत्पन्न हो गया है। ये खतरा जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण प्रदूषण के रूप में उसके दुष्प्रभावों के रूप में हमारे सामने आया है।

जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण प्रदूषण और किसी एक देश की समस्या नहीं रह गयी है बल्कि यह एक विश्वव्यापी समस्या बन गयी है जिसको रोकने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर और राष्ट्रीय स्तर पर अनेक सम्मेलन, संन्धियां, विधियां मानक बने हैं।

जलवायु परिवर्तन पर हुए सम्मेलन

जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणामों से निपटने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न प्रयास प्रमुख रूप से किये गये हैं। संयुक्त राष्ट्र 1972 से ही प्रयासरत है। जून 1972 में स्टॉकहोम में पहला पर्यावरण सम्मेलन आयोजित किया गया था इसी सम्मेलन में ''संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यू0एन0ई0पी0)'' की स्थापना की गयी थी। ये सम्मेलन निम्न है। मानव पर्यावरण अभिसमय, 1972 (स्टाकहोम घोषणा), हेलसिंकी सम्मेलन, 1974, लंदन सम्मेलन, 1975, आवास्य सम्मेलन, 1976, मरूस्थलीकरण को दूर करने के लिए सम्मेलन, 1977, यूरोपीय वन्य जीवन तथा प्राकृतिक निवास क्षेत्र संरक्षण सम्मेलन, 1979, मानव पर्यावरण के सम्बन्ध में नैरोवी घोषणा, 1982, विएना सम्मेलन, 1985, मांट्रियल प्रोटोकाल, 1987, टोरण्डो वर्ल्ड कांफ्रेस, 1988, पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन, 1989, विश्व पृथ्वी सम्मेलन, 1992, क्योरो प्रोटोकाल, 1997, जोहांसबर्ग सम्मेलन, 2002, मांडियल सम्मेलन, 2005, बाली सम्मेलन, 2007, कोपेन हेगेन सम्मेलन, 2009, कानकुन सम्मेलन, 2010, डरबन जलवायु परिवर्तन सम्मेलन, 2011, रियो +20 सम्मेलन, 2012, संयुक्त राष्ट्र का दोहा जलवायु सम्मेलन 2012, संयुक्त राष्ट्र का दोहा वारसा सम्मेलन 2013, लीमा जलवायु परिवर्तन सम्मेलन, 2014।

सम्पोषणीय विकास का आशय ऐसे विकास से है। जिससे पर्यावरण को क्षति पहुँचायें बिना विकास करना है। पर्यावरण के संतुलन को बनाये रखना है। सम्पोषणीय विकास में आर्थिक विकास, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक समानता को समाहित किया गया है, ताकि हम विकास तो करें लेकिन वह विकास पर्यावरण के साथ संतुलन बनाते हुये किया जाये। साथ ही साथ इस विकास को इस तरह से करना है कि उस विकास की पहुँच हर व्यक्ति हर वर्ग तक हो उसका लाभ सभी तक पहुँचे सभी देशों तक चाहे वह विकसित हो विकासशील हो या तीसर दुनिया के देश हो तभी वह विकास सही विकास होगा और उस विकास के साथ हमें पर्यावरण को संरक्षित रखते हुये पृथ्वी के पर्यावरण के पारिस्थितिकी तंत्र के संतुलन को बनाये रखने का भी ध्यान रखना होगा ताकि हमारी पृथ्वी के जीवन दायी पर्यावरण को नुकसान ना पहुँचे।

मानव जनित गतिविधियाँ पर्यावरण प्रदूषण का कारक बनती है, ये निम्न हैं-खनिज तेलों का जलाना, वनों को नष्ट करना, खनन, सीवेज, औद्योगिकरण कीटनाशक, परमाणु शक्ति, भौतिक सुखों की वस्तुएँ।

वे कारक जो पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं प्रदूषक कहलाते हैं ये ठोस, द्रव, गैस सभी रुपों में पाये जाते हैं।

(क) प्रदूषण के कारक

पर्यावरण प्रदूषण के मुख्य कारक निम्न है-

1. वनों का क्षरण।
2. जनसंख्या वृद्धि।
3. शहरीकरण।
4. औद्योगिकीकरण।
5. रासायनिक खादों व कीटनाशक का उपयोग।
6. यातायात।
7. युद्ध।
8. परमाणु शक्ति।

उपरोक्त सभी कारक विकास तो बढ़ाते है लेकिन पर्यावरण प्रदूषण के ये ही सबसे बड़े कारक हैं। इन कारकों से विभिन्न प्रकार के प्रदूषण होते हैं।

1. वायु प्रदूषण

2. जल प्रदूषण
3. मृदा प्रदूषण
4. समुद्री प्रदूषण
5. ध्वनि प्रदूषण
6. ताप प्रदूषण
7. रेडियोएक्टिव प्रदूषण
8. प्लास्टिक प्रदूषण।

वायु प्रदूषण

वायु प्रदूषण जीवनदायी तत्व है और वायु स्वस्थ्य जीवन का आधार है। वायु बिना मानव जीवन की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। एक व्यक्ति प्रतिदिन 22 हजार बार सांस लेकर लगभग 16 किग्रा0 वायु ग्रहण करता है। एक घन मीटर वायु का भार 117 मिलीग्राम होता है जिसमें 879 मिलीग्राम नाइट्रोजन, 269 मिलीग्राम0 ऑक्सीजन, 15 मिलीग्राम आर्गन 8 मिलीग्राम जलवाष्प, 0.5 मिलीग्राम कार्बन डाई ऑक्साइड 14 मिलीग्राम नियोन, 4 मिलीग्राम क्रिप्टॉन, 0.8 मिलीग्राम हीलियम 0.5 मिलीग्राम जेनोन तथा 0.05 मिलीग्राम हाइड्रोजन होती है। इस तरह एक दिन में एक आदमी 14000 घन मीटर हवा का प्रयोग करता है। इसमें निहित ऑक्सीजन रुधिर संचार को बनाये रहता है। वायु की यह मात्रा मनुष्य द्वारा ग्रहण किये गये भोजन आदि की मात्रा 80: है। शुद्ध वायु मण्डल में पाये जाने वाले ऑक्सीजन से प्राप्त होती है जो वायुमण्डल में पायी जाने वाली कुल गैसों का 21% है ।

वायु प्रदूषण एक विश्वव्यापी समस्या है वायु प्रदूषण का इतिहास बहुत पुराना है। जब मनुष्य ने पहली बार आग जलाना शुरु किया था तभी से वायु प्रदूषण प्रारम्भ हो गया था।

विधायी प्रयास

1990 के दशक में अनेक राष्ट्रीय विधायी प्रयास किये गये हैं।

सन् 1991 में लोक दायित्व बीमा अधिनियम पारित कर सभी परिसंकटमय रासायनिक उद्योगों पर लागू किया गया है। सन् 1992 में इसमें संशोधन किया गया। परिसंकटमय रसायनों का प्रयोग करने वाली औद्योगिक विनिर्माण संस्थाओं द्वारा दुर्घटनाओं की दशा में दुर्घटना के शिकार लोगों हेतु आवश्यक रूप से प्रतिकर के भुगतान की अपेक्षा की गयी है।

सन् 1995 में राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम पारित कर प्रतिकर सम्बन्धी कठोर दायित्व को लागू किया गया है। सन् 1997 में राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय प्राधिकारी अधिनियम, 1997 पारित किया गया है।

सन् 2010 में दोनों अधिनियमों को निरसित कर राष्ट्रीय हरित अधिकरण, 2010 पारित किया गया। इक्कीसवीं शताब्दी में पर्यावरण एवं पोषणीय विकास नये आयाम के साथ विकसित हो रहे हैं। सन् 2002 में संसद ने जैविकीय विभिन्नता अधिनियम पारित किया है।

पर्यावरण विधि के संवैधानिक आधार

भारत का संविधान देश की सर्वोच्च विधि है एवं यह विश्व के कतिपय संविधानों में से एक है, जिनमें पर्यावरणीय संरक्षण सम्बन्धी प्रावधानों का विशिष्टत: उल्लेख किया गया है। पर्यावरण के प्रति नवीन एवं क्रांतिकारी रूझान-मानव पर्यावरण संरक्षण की वैश्विक चिंता के स्टॉकहोम घोषणा, 1972 के उद्‌गार के साथ भारत में पर्यावरण सोच में चतुर्दिक विकास हुआ है। संविधान का 42वां संशोधन अधिनियम 1976 इस विकसित सोच का स्पष्ट उदाहरण है। पर्यावरणीय विधि विकास के आधार के रूप में संवैधानिक पहलू के दृष्टिकोण से निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत इसका वर्णन करना ज्यादा समीचीन है।

संघ सूची में वर्णित विषय

संघ सूची: संसद भारत के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के लिये सम्बन्धित विषयों पर विधि निर्माण कर सकती है। ये विषय संघ सूची में अंतर्गत आते हैं: -

संघ सूची में निम्न विषयों पर संसद अनन्य रूप से विधि निर्माण कर सकेगी -

1. आयुद्ध, अग्न्यायुध, गोला बारूद एवं विस्फोट (प्रविष्टि-5)
2. परमाणु ऊर्जा एवं उसके उत्पादन हेतु आवश्यक खनिज सम्पदा (प्रविष्टि-6)
3. अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, संगमों (ोवबपंजपवदे) और अन्य निकाओं में आग लेना तथा उनमें लिये गये विनिश्चयों का कार्यान्वयन (प्रविष्टि-13)
4. विदेशों से संधि और करार करना और विदेशों से की गयी संधियों, करारों और अभिसमयों का क्रियान्वयन (प्रविष्टि-14)
5. यन्त्र नोदित जलयानों के सम्बन्ध में ऐसे अंतर्देशीय जलमार्ग पर पोत परिवहन और नौ परिवहन जो संसदीय विधि द्वारा राष्ट्रीय जलमार्ग घोषित किये गये हैं। ऐसे जलमार्गों पर मार्ग का नियम (प्रविष्टि-24)
6. समुद्रीय पोत परिवहन और नौपरिवहन (प्रविष्टि-25)
7. प्रमुख पत्तन जिन्हें संसदीय विधि द्वारा महापत्तन घोषित किया गया है। (प्रविष्टि-27)

8. पत्तन करन्तीन जिसके अंतर्गत उससे सम्बद्ध अस्तपताल, नाविक अथवा सामुदायिक सम्मिलित हैं। (प्रविष्टि-28)
9. वायु मार्ग, वायुयान और विमान चालन (प्रविष्टि-29)
10. रेल समुद्र तथा वायु मार्ग द्वारा अथवा यन्त्रनोदित जलयानों में राष्ट्रीय जलमार्ग द्वारा यात्रियों और माल का परिवहन (प्रविष्टि-30)
11. उद्योग जिन पर संसदीय विधि द्वारा संघ नियंत्रण लोकहित में माना गया है। (प्रविष्टि-52)
12. तेल क्षेत्रों और खनिज तेल सम्पदा का विनियमन और विकास, पेट्रोलियम और पेट्रोलियम और पेट्रोलियम उत्पाद तथा अन्य द्रव्य तथा पदार्थ जो संसदीय विधि द्वारा खतरनाक रूप से ज्वलनशील घोषित हैं। (प्रविष्टि-53)
13. खानों एवं तेल क्षेत्रों में श्रम एवं सुरक्षा का विनियमन (प्रविष्टि-55)
14. अंतराज्यीय नदियों और नदी घाटियों का विनियमन एवं विकास (प्रविष्टि-56)
15. राज्य क्षेत्रीय सागर खण्ड से मछली पकड़ना तथा मीन क्षेत्र (प्रविष्टि-57)
16. राष्ट्रीय महत्व प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारक एवं अभिलेख (प्रविष्टि-67)
17. भारतीय सर्वेक्षण, भारतीय भूवैज्ञानिक, वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान और मानव शास्त्र सर्वेक्षण, मौसम विज्ञान संगठन (प्रविष्टि-68)
18. किसी अन्य विषय पर पर्यावरणीय विषय पर विधान जिनका उल्लेख राज्य सूची अथवा समवर्ती सूची में नहीं किया गया है (प्रविष्टि-97 और अनुच्छेद-248)

समवर्ती सूची में पर्यावरण से सम्बन्धित विषय

समवर्ती सूची: इस सूची में संसद व राज्य दोनों विधि निर्माण कर सकते हैं। इसलिये यह सूची समवर्ती सूची कहलाती है।

1. पशु के प्रति क्रूरता
2. वन (प्रविष्टि 17-क, संविधान के 42 वे संशोधन द्वारा जोड़ी गयी)
3. वन्य जीव-जन्तुओं और पक्षियों का संरक्षण प्रविष्टि 17-29, 42वें संशोधन द्वारा जोड़ी गयी।
4. खाद्य पदार्थों तथा अन्य माल का अपमिश्रण (प्रविष्टि-18)
5. मादक द्रव्य एवं विष (प्रविष्टि-19)
6. आर्थिक और सामाजिक योजना (प्रविष्टि-20)
7. जनसंख्या नियंत्रण और परिवार नियोजन (प्रविष्टि-20 क)
8. श्रमिक कल्याण (प्रविष्टि-29)
9. मानवों, जीव जन्तुओं या पौधों पर प्रभाव डालने वाले संक्रामक या सांसर्गिक रोगों अथवा नाशक जीवों के एक राज्य से दूसरे राज्य में फैलने का निवारण (प्रविष्टि-29)
10. कारखाने (प्रविष्टि-36)
11. वायलर (प्रविष्टि-37)
12. विद्युत (प्रविष्टि-38)

राज्य सूची में वर्णित विषय

राज्य सूची: इन पर्यावरण सम्बन्धी विषयों पर राज्य विधान मंडल को विधि निर्माण का अनन्य अधिकार है।

1. लोक स्वास्थ्य और स्वच्छता, अस्पताल और औषद्यालय (प्रविष्टि-6)
2. भारत के बाहर की यात्राओं से भिन्न यात्रायें (प्रविष्टि-7)
3. मादक लिकर का उत्पादन, विनिर्माण कब्जा, परिवहन, क्रय एवं विक्रय (प्रविष्टि-8)
4. शब गाड़ना और कब्र स्थान, शवदाह और शमशान (प्रविष्टि-10)
5. कृषि का नाशक जीवों से संरक्षण और पादप रोगों का निवारण (प्रविष्टि-14)
6. पशुधन परिरक्षण, संरक्षण और सुधार तथा जीव जंतुओं के रोगों का निवारण (प्रविष्टि-15)
7. अंतर्राज्यिक नदियों को छोड़कर जल प्रदाय सिंचाई और नहरें, जल विकास और तटबंध जल भण्डारण और जल शक्ति (प्रविष्टि-17)
8. मीन क्षेत्र (प्रविष्टि-21)
9. खानों का विनियमन और विकास (प्रविष्टि-23)
10. गैस और गैस संकर्म (प्रविष्टि-25)
11. बाजार और मेले (प्रविष्टि-28)

अनुच्छेद 253 और पर्यावरणीय विधान

अनुच्छेद 253 में संसद को अधिकृत किया गया है कि भारत के अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वों तथा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, संगमों और अन्य निकायों के निर्णयों के प्रवर्तन हेतु विधि निर्माण कर सकती है।

अनुच्छेद-253 का प्रावधान है कि ''इस अध्याय के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुये भी संसद को किसी अन्य देश या देशों के साथ की गई किसी संधि करार या अभिसमय अथवा किसी अंतराष्ट्रीय सम्मिलन, संगम या अन्य विकास में किये गये किसी विनिश्चय के कार्यान्वयन के लिये भारत के सम्पूर्ण राज्यक्षेत्र या उसके किसी आंमत्र लिये कोई विधि बनाने की शक्ति है।

संसद ने अनु0-253 में दी गयी शक्ति का प्रयोग करते हुये वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधि0 1981, और पर्यावरण संरक्षण अधि0 1986 पारित किया है।

भारत की अंतराष्ट्रीय पर्यावरणीय बाध्यतायें

भारत में अनेक संधियों एवं कराटे के माध्यम से क्षेत्रीय तथा विश्वव्यापी पर्यावरणीय मुद्दों के सम्बन्ध में समझौता पक्षकार अथवा हस्ताक्षरकर्ता के रूप में दायित्व स्वीकार किया है।

1. पर्यावरणीय संधियों/करार भारत जिनका समझौता पक्षकार रहा है।

पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी नागरिकों के मूल कर्तव्य सन् 1976 में स्टॉक होम घोषणा 1972 की प्रेरणा से प्रेरित होकर संविधान के वयालीसवें संशोधन अधिनियम द्वारा मूल कर्तव्यों में 51 क (छ) के रूप में पर्यावरण सम्बन्धी मूल कर्तव्य जोड़ा गया है।

संविधान का अनुच्छेद 51. क (छ) उपबंधित करता है। कि ''भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं। रक्षा करे और उनका संविधान को तथा प्राणिमात्र के विरूद्ध दयाभाव रखे''

यद्यपि कि पर्यावरण संरक्षण का मूल कर्तव्य विधिक शब्दावली में प्रवर्तनीय नहीं है। जिस तरह भाग-3 में वर्णित मूल अधिकार हैं।

पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी नागरिकों के मूल कर्तव्य

सन् 1976 में स्टॉकहोम घोषणा 1972 की प्रेरण से प्रेरित होकर संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम द्वारा मूल कर्तव्यों में 51-क(छ) के रूप में पर्यावरण सम्बन्धी नागरिकों के मूल कर्तव्य जोड़ा गया है। ''भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करें और उनका संवर्धन करें तथा प्राणिमात्र के विरूद्ध दयाभाव रखे।''

पर्यावरण संबंधी राज्य के नीति निर्देशक तत्व

पर्यावरण के सम्बन्ध में अनुच्छेद-47 में राज्य पर पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा उठाने तथा लोक स्वास्थ्य सुधार करने का कर्तव्य अधिरोपित किया गया है।

अनु0 47 का उपबंध है। कि ''राज्य अपने लोगों को पोषाहार स्तर पर जीवन स्तर को अंधा करने तथा लोक स्वास्थ्य का सुधार करने को अपने प्राथमिक कर्तव्यों में मानेगा और राज्य विशिष्टतय:, मादक पेयों और स्वास्थ्य के लिए हानिकर औषधियों के औषधीय प्रयोजनों से भिन्न उपभोग का प्रतिषेध करने का प्रयास करेगा।''

48 क. पर्यावरण का संरक्षण तथा संबर्धन और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा: राज्य देश के पर्यावरण के संरक्षण तथा संवर्धन का और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।

राज्यों की सहमति पर पर्यावरणीय विधान

संविधान का अनुच्छेद 252 उपबंधित करता है कि 1. यदि किसी दो या अधिक राज्यों के विधानमण्डलों को यह वांछनीय प्रतीत होता है। कि उन विषयों में से जिनके सम्बंध में संसद को अनुच्छेद 249 और 250 में जैसा कि उपबंधित है उसके सिवाय, राज्यों के लिये विधि बनाने की शक्ति नहीं है। किसी विषय का विनियमन ऐसे राज्यों से संसद विधि द्वारा करे और यदि उन राज्यों के विधान मण्डलों के सभी सदन उस आशय के संकल्प पारित करते है। तो उस विषय का तदनुसार विनियमन करने के लिये कोई अधिनियम पारित करना संसद के लिये विधि पूर्ण होगा। और इस प्रकार पारित अधिनियम ऐसे राज्यों को लागू होगा जो तत्पश्चात् अपने विधान मण्डल के सदन द्वारा या जहां दो सदन है। वहां दोनों में से प्रत्येक सदन इस नियमित संकल्प द्वारा उसको अंगीकार कर लेता है।

संसद द्वारा इस प्रकार पारित किसी अधिनियम का संशोधन या निरसन इसी रीति से पारित या अंगीकृत संसद के अधिनियम द्वारा किया जा सकेगा, किंतु उसका उस राज्य के सम्बन्ध में संशोधन या निरसन जिसको वह लागू करना होता है, उस राज्य के विधानमण्डल के अधि0 द्वारा नहीं किया जायेगा।

संसद ने विभिन्न राज्य विधान मण्डलों की सहमति पर जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधि0 1954 पारित किया है।

मूलाधिकार एवं पर्यावरण संरक्षण

1970 के दशक से मानव पर्यावरण संरक्षण की हवा वह रही है। पर्यावरण संरक्षण का केन्द्र बिन्दु मानव है। न्यायालयों के दृष्टिकोण में पर्यावरण संरक्षक का बिन्दु मुख्यता उभर कर आया है। अनु0 14, 19, 21 में प्रदत्त मूलाधिकारों का निर्वचन पर्यावरण के आलोक में कर न्यायालयों ने इसे विस्तार दिया है।

पर्यावरणीय विधि के सांविधिक आधार (Statutory Basis of Environmental Law)

भारत में पर्यावरण विधि के दो प्रमुख आधार हैं-संवैधानिक एवं सांविधिक। प्रथम का वर्णन किया जा चुका है। सांविधिक आधार के अन्तर्गत आने वाली पर्यावरणीय विधियों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। पहले प्रकार की वे विधियाँ हैं जो संविधान लागू होने के पहले निर्मित हुई थीं और संविधान लागू होने के समय प्रवृत्त थीं। दूसरी तरह की वे विधियाँ हैं जिन्हें संसद अथवा राज्य विधायिका ने संवैधानिक प्राधिकारिता के आधार पर निर्मित किया है।

उच्चतम न्यायालय का निर्णय

उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि आगरा में संचालित 292 उद्योग जो इस मामले में प्रश्नगत है। उन्हें औद्योगिक ईंधन के रूप में प्राकृतिक गैस अपनाना होगा, पत्थर कोयले या कोयला का प्रयोग औद्योगिक आवश्यकताओं में बंद हो। ताज महल क्षेत्र से प्रदूषण लघु उद्योगों को बाहर भेजा जाये और इस हेतु औद्योगिक क्षेत्र की पहचान उत्तर प्रदेश सरकार करे। उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि वर्तमान वाद का प्रयोजन उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित करते हुये प्रदूषण को दूर करना है। यह पुरानी अवधारणा है कि विकास और पारिस्थैतिकी एक साथ नहीं रह सकते अब स्वीकार्य नहीं है इसका उत्तर सम्पोषणीय विकास है। न्यायालय ने पूर्व सावधानी के सिद्धान्त को निर्णायक मानते हुये स्पष्ट किया कि संविधान के अनुच्छेद 47, 48-क, 51-क(छ) तथा विभिन्न पर्यावरणीय विधियों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि पूर्व सावधानी का सिद्धान्त और प्रदूषक भुगतान करे सिद्धान्त देश की पर्यावरणीय विधि का अंग है। पूर्व सावधानी सिद्धान्त के अनुसार पर्यावरणीय उपायों को पर्यावरणीय अवनयन के बारे में पूर्वाभास होना चाहिये उन्हें निवारित करने का प्रयास करना चाहिये और उनके कारणों को दूर करना चाहिये समान्यता यह माना जायेगा कि पत्थर कोयला या कोयला से चलित उद्योगों से व्यापक स्तर पर प्रदूषण होता है। अन्यथा साबित करने का भार उद्योग पर होगा।

एम0सी0 मेहता बनाम भारत संघ (दिल्ली प्रदूषण मानवता)

प्रस्तुत वाद में अनुच्छेद 32 के तहत लोकहित वाद दायर किया गया, जिसमें दिल्ली के उद्योगों द्वारा प्रदूषण के विरुद्ध उपचार की माँग की गयी थी। यह याचिका कैपिटल रीजन एक्ट, 1985 के तहत दायर की गई थी। न्यायालय ने विभिन्न रिर्पोटों के माध्यम से पाया कि प्रदूषण गम्भीर स्थिति में है।

उच्चत्तम न्यायालय ने नोटिस जारी कर केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड को ऐसे प्रदूषण कारित करने वाले उद्योगों को चिन्हित करने को कहा। 168 उद्योगों को काम बंद कर देने तथा 30.11.1996 से राष्ट्रीय राजधानी के किसी अन्य औद्यागिक क्षेत्र में पुनः स्थापित करने का निर्देश दिया।

एम0सी0 मेहता बनाम भारत संघ एवं अन्य

प्रस्तुत वाद में वाहन निर्माण में ठै.प्ट इंजन को लागू करने के सम्बन्ध में है ताकि 1 अप्रैल 2017 के वाद ठै.प्ट के इंजन के वाहनों का निर्माण हो जिससे वाहनों से उत्सर्जित प्रदूषण को नियंत्रण किया जा सके एवं शहरी प्रदूषण में कमी लायी जा सके।

मुरली देवरा बनाम भारत संघ (लोक स्थान में धूम्रपान निषेध का मामला)

प्रस्तुत वाद में स्वास्थ्य के प्रति नागरिकों को आवश्यकता को देखते हुये उच्चतम न्यायालय ने सार्वजनिक स्थानों पर धूम्रपान को निषिद्ध किया है। न्यायालय ने तम्बाकू के हानिप्रद प्रभाव को इंगित करते हुये सिगरेट (उत्पादन, आपूर्ति एवं वितरण) अधिनियम, 1975 के उद्देश्यों एवं कारणों को उद्धत करते हुये भारत संघ, राज्य सरकारों, केन्द्र शासित राज्यों आदि को निर्देश जारी किया कि निम्न स्थानों पर धूम्रपान को निषिद्ध करने हेतु प्रभावकारी कदम उठाये।

(1) प्रेक्षागृहों (2) अस्पताल भवनों (3) स्वास्थ्य संस्थाओं (4) शैक्षणिक संस्थाओं (5) पुस्तकालयों (6) न्यायालय भवनों (7) लोक दफ्तरों (8) लोक-यातायात रेलवे सहित इस तरह न्यायालय ने प्रस्तुत वाद में पर्यावरण और विकास की अपेक्षाओं में सामंजस्य स्थापित करते हुये संपोषणीय विकास को बढ़ावा देने का प्रयास किया है।

के0 राम कृष्णन बनाम केरल राज्य के वाद में केरल उच्च न्यायालय ने सार्वजनिक स्थानों पर धूम्रपान को लोक अपकृत्य माना एवं राज्य सरकार को सार्वजनिक स्थान पर धूम्रपान करने वालों को अभियोजित करने का निर्देश दिया।

माननीय न्यायालयों ने पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में काफी सराहनीय कार्य किया है। इन्होंने वादों के निपटारे के माध्यम से समय-समय पर पर्यावरण संरक्षण को लेकर दिशा-निर्देश देते रहे हैं। भारतीय न्यायालयों ने बहुत से वादों में पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित महत्वपूर्ण गाइडलाइन को जारी किया है।

भारतीय न्यायालयों का मुख्य फोकस सदैव संपोषणीय विकास के कान्सेप्ट पर रहा है। लेकिन भारतीय न्यायपालिका का दुर्भाग्य है कि इसने लैण्डमार्क जजमेंट देने के बावजूद सरकारों द्वारा इनका प्रवर्तन न करा पाना ही पर्यावरण संरक्षण की दिशा में निराश करता है। भारत में न्यायपालिका एवं कार्यपालिका के बीच आपसी समन्वय का अभाव है। इनके बीच हमेशा अपने अधिकार क्षेत्र के अतिक्रमण को लेकर नूराकुश्ती जैसा माहौल बना रहता है। अक्सर इनके बीच टकराव नजर आता है। ये दोनों अपने-अपने क्षेत्रों में सम्प्रभु बने रहने में लगे रहते हैं। कार्यपालिका का कर्तव्य है कि वह पर्यावरण संरक्षण विधियों का सही रूप से प्रर्वतन को लेकर कार्यपालिका के द्वारा विधियों के प्रवर्तन पर पर्याप्त रूप से ध्यान नहीं दिया जाता है। न्यायपालिका के द्वारा दिये गये दिशा-निर्देशों, निर्णयों का सही दिशा में इम्पलीमेंट न हो पाना पर्यावरण संरक्षण की दिशा में कमजोर कड़ी है।

सन्दर्भ सूची

1. प्रसाद, डॉ0 अनिरुद्ध : पर्यावरण एवं पर्यावरणीय संरक्षण विधि की रूपरेखा
2. लयूसेन्टस : सामान्य ज्ञान
3. ल्यूसेन्टस : पारिस्थितिकीय एवं पर्यावरण
4. कुमार अरविन्द : भारत का भूगोल
5. NCERT : विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी (कक्षा-10)
6. NCERT : सामान्य विज्ञान संसाधन एवं विकास (कक्षा-8)

द्वितीयक स्त्रोत

जर्नल/रिपोर्ट

1. ऑल इण्डिया रिपोर्टर
2. सुप्रीम कोर्ट केसेस

पत्र-पत्रिकाएं

1. घटना चक्र-(2017)
2. प्रतियोगिता दर्पण (2017-2018)
3. करेन्ट अफेयर्स अर्द्धवार्षिकांक
4. क्रॉनिकल करेन्ट अफेयर्स (2018)

जैन दर्शन में प्रतिपादित लोक व्यवस्था

श्रीमति अलका डागा

भूमिका

विश्व को समझने का प्रयत्न सभी करते हैं और इसे समझने में आने वाली बाधाओं को दूर करने का प्रयास भी रहता है। तर्कशास्त्र का यह नियम है कि कर्ता के बिना कोई क्रिया नहीं होती अत: प्रत्येक क्रिया के पीछे कर्ता का कर्त्तव्य होता है। अत: भारतीय तथा कई पाश्चात्य दार्शनिकों का भी यह मत है कि इस विश्व का निर्माण करने वाला कोई शक्तिशाली व्यक्ति है जिसने इस सृष्टि का निर्माण किया है और वह शक्तिशाली व्यक्ति कोई साधारण व्यक्ति नहीं है, वह सर्व सामर्थ्यवान् ईश्वर है, जो सृष्टि का निर्माता और नियामक है। उसी से इस सृष्टि का निर्माण हुआ है, किन्तु जैन दर्शन की यह मान्यता नहीं हैं। उनका मानना है कि विश्वर्ा नर्माण के छ: घटक तत्व हैं, वे हैं- धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गलस्तिकाय और जीवास्तिकाय। इन छ:द्रव्यों में जीवास्तिकाय एक जीव है शेष पांच अजीव हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कि इन छ: द्रव्यों से ही इस सृष्टि का निर्माण हुआ है, न कि किसी शक्तिशाली ईश्वर के द्वारा। यह संसार षट्द्रव्यात्मक है- षट्द्रव्यात्मको लोक:।

जैन दर्शन में तत्त्वमीमांसा के अन्तर्गत मुख्यत: षट्द्रव्यों एवं नवतत्त्वों का विवेचन किया गया है। यद्यपि उसमें पंचास्तिकाय का उल्लेख हुआ है, किन्तु उन अस्तिकायों की विवेचना षट्द्रव्यों की अवधारणा के अन्तर्गत ही की गई है। पंचास्तिकाय की अवधारणा में काल को स्वतन्त्र द्रव्य मानकर षट्द्रव्य की अवधारणा विकसित हुई।

ज्ञातव्य है कि जैनदर्शन में काल की स्वतन्त्र द्रव्य के रूप में स्वीकृति तत्त्वार्थभाष्य के काल अर्थात् लगभग तीसरी शती तक विवादास्पद रही है और यह विवाद विशेषावश्यकभाष्य के काल (सातवीं शती) तक भी प्रचलित रहा है। प्रारम्भ में काल को जीव एवं अजीव का पर्याय मात्र माना जाता था। कालान्तर में उसे स्वतन्त्र द्रव्य का दर्जा मिल गया और इस प्रकार षट्द्रव्यों की अवधारणा अस्तित्व में आई। ज्ञातव्य है कि कुछ विद्वानों के अनुसार जैनदर्शन में पँचास्तिकायों की अवधारणा के स्थान पर षट्द्रव्यों की अवधारणा के विकास में भारतीय दर्शन की अन्य परम्पराओं का प्रभाव देखा जाता है।

अत: षट्द्रव्यों की चर्चा करने के पूर्व यह विचार कर लेना आवश्यक है कि विश्व के मूलभूत घटकों के सम्बन्ध में भारतीय और पाश्चात्यविचारकों की अवधारणा क्या है और जैनदर्शन की षट्द्रव्य की अवधारणा की किससे अधिक समीपता है?

विविध दर्शनों में द्रव्य की अवधारणा

वेदान्तदर्शन के अनुसार इस विश्व में जो कुछ है,वह एकमेव अद्वितीय ब्रह्म ही है तथा वह सत् एवं कूटस्थ नित्य है। इन दार्शनिकों का उद्घोष है 'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति' अर्थात् सत् (परमतत्त्व) एक है, किन्तु विप्र (विद्वान्) उसे अनेक रूप से कहते हैं। अत: वे एकमात्र ब्रह्म को ही सृष्टि के मूल घटक के रूप में स्वीकार करते हैं (सर्वं खलु इदम् ब्रह्मं)। उनके अनुसार जगत एक प्रतीति मात्र है, किन्तु उसका अधिष्ठान ब्रह्म ही है।

बौद्धदर्शन के अनुसार विश्व के मूल घटक एक नहीं अनेक हैं, वे क्षणिक हैं तथा उत्पाद् व्यय धर्मा हैं। उनकी दृष्टि में जगत एक प्रवाह या धारा है जिसमें सभी कुछ क्षणिक एवं परिवर्तनशील है। अत: इसमें किसी नित्य'द्रव्य' की अवधारणा ही नहीं है। वे अर्थक्रियाकारित्व या सन्तति के आधार पर ही विश्व की व्याख्या करते हैं।

न्यायवैशेषिकदर्शन बहुतत्त्ववादी दर्शन है, इसमें विश्व के मूलभूत घटक के लिए षट्द्रव्य शब्द' का प्रयोग किया गया है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार द्रव्य वह है जो गुण तथा कर्म का आश्रय एवं उसका समवायी कारण हो। इसमें नौ द्रव्यों की स्वतन्त्र सत्ता मानी गयी है। जिसमें पृथ्वी,जल,तेज एवं वायु,नित्यानित्य द्रव्य और आकाश,दिक् आत्मा,मन एवं काल को नित्य द्रव्य माना है। यहाँ ज्ञातव्य है कि नौ द्रव्यों का समावेश जैनदर्शन द्वारा मान्य षट्द्रव्यों के अन्तर्गत हो जाता है। पृथ्वी,जल,तेज,वायु,आत्मा और मन जीवास्तिकाय या जीव के ही विभिन्न रूप हैं। यदि पृथ्वी,जल,तेज और वायु को अजीव तत्त्व मानें तो पुद्गल के अन्तर्गत तथा जीव मानें तो जीवतत्त्व के अन्तर्गत समाविष्ट होंगें। दिक् और आकाश दोनों आकाश के रूप हैं। काल स्वतन्त्र द्रव्य है।

मीमांसादर्शन भी द्रव्य को गुण एवं कर्म के आधार के रूप में स्वीकार करता है। कुमारिलभट्ट के अनुसार जिसमें क्रिया और गुण हो वह द्रव्य है।

सांख्यदर्शन यह द्वैतवादी दर्शन है। इसके अनुसार मूलतत्त्व दो हैं -(1) प्रकृति और (2) पुरूष। इनसे उत्पन्न तत्त्व बुद्धि,अहँकार,पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ,पाँच कर्मेन्द्रियाँ,पंचतन्मात्रा और पँचमहाभूत हैं। पुरूष शुद्ध चौतन्यरूप है। जो देशकाल आदि बन्धनों से मुक्त है; वह निर्गुण,निष्क्रिय एवं कूटस्थ नित्य है। केवल द्रष्टा एवं भोक्ता है, कर्ता नहीं। प्रकृति जड़तत्त्व है, यह परिणामीनित्य है। सारा दृश्य जगत इस प्रकृति का ही परिणाम है, प्रकृति एवं पुरूष का संयोग ही सृष्टि है तथा इनका अर्थात् प्रकृति और पुरूष का परस्पर वियोग मोक्ष है। इस प्रकार सांरव्यदर्शन में मूल तत्त्व दो तथा इन्हीं के विस्तार रूप पच्चीस तत्त्व माने गये हैं।

अरस्तू- यूनानी दार्शनिक अरस्तू विश्व के मूलभूत तत्त्वों के रूप में 'द्रव्य' (Matter) एवं 'आकार' (Form) को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार जगत इन दो तत्त्वों का ही विस्तार है, जैसे मेज का द्रव्य लकड़ी तथा स्वरूप मेज की आकृति है। इस प्रकार अरस्तू के अनुसार द्रव्य सभी वस्तुओं का मूल कारण है;अत: वह सबका आश्रय या अधिष्ठान है।

डेकार्ट द्वैतवादी दार्शनिक हैं। इनके अनुसार द्रव्य वह है, जिसकी स्वतन्त्र सत्ता है। डेकार्ट सापेक्ष एवं निरपेक्ष ऐसे दो द्रव्यों को स्वीकार करते हैं। ईश्वर निरपेक्ष द्रव्य है तथा चित्त और अचित्त सापेक्षद्रव्य हैं । यहाँ ज्ञातव्य है कि चित्त एवं अचित्त द्रव्य परस्पर तो निरपेक्ष ही हैं पर ये दोनों ईश्वर पर आश्रित हैं अत: सापेक्ष हैं।

स्पिनोजा ईश्वर को एकमात्र परमद्रव्य मानते हैं। अत: ये अद्वैतवादी दार्शनिक कहलाते हैं। इनके अनुसार द्रव्य स्वतन्त्र,निरपेक्ष,अद्वितीय,अपरिच्छिन्न तथा अपरिमित है। इसी प्रकार द्रव्य स्वत: सिद्ध है अर्थात् द्रव्य स्वयं अपना प्रमाण है, स्वसंवेद्य है। द्रव्य का यह स्वरूप स्पिनोजा के परमद्रव्य ईश्वर पर घटित होता है।

लाइबिनिज के शब्दों में द्रव्य वह है जो स्वतन्त्र क्रियाशक्ति से सम्पन्न हो। वे द्रव्य की स्वतन्त्र सत्ता की अपेक्षा उसकी स्वतन्त्र क्रियाशक्ति की सम्पन्नता पर विश्वास करते हैं। इस प्रकार लाइबिनिज का द्रव्यशक्ति सम्पन्न सक्रिय एवं परिणामी है। इनके अनुसार चिदणु विश्व की अन्तिम अविभाज्य इकाई है।

लॉक के अनुसार गुणों का आश्रय या आधार 'द्रव्य' कहलाता है। लॉक की यह परिभाषा जैनदर्शन की द्रव्य की परिभाषा से समानता रखती है। द्रव्य के विषय में दार्शनिक लॉक की मान्यता है कि द्रव्य अज्ञेय है। वह गुणों के समान इन्द्रियानुभूति या प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। अत: उसकी सत्ता अज्ञेय है।

द्रव्य सम्बन्धी इन विभिन्न दार्शनिक अवधारणाओं में जो अवधारणा जैनदर्शन के अधिक निकट है, वह न्यायवैशेषिकदर्शन की द्रव्य सम्बन्धी अवधारणा है। यही कारण है कि कुछ विद्वान तो यहाँ तक कहने का साहस करते हैं कि जैनदर्शन में जो द्रव्य की अवधारणा का विकास हुआ है, वह न्यायवैशेषिक दर्शन से प्रभावित है। इस सम्बन्ध में कुछ निर्णय देने की अपेक्षा यही उचित है कि सर्वप्रथम जैनदर्शन में द्रव्य सम्बन्धी जो विभिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं उन पर सम्यक् एवं तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाये, क्योंकि इससे यथार्थ स्थिति स्वत: ही स्पष्ट हो जायेगी कि द्रव्य सम्बन्धी अवधारणा में कहाँ तक उसका अन्य दर्शनों से नैकट्य है और कहाँ उसका अपना मौलिक चिन्तन प्रकट होता है।

जैनदर्शन में द्रव्य

जैन साहित्य में 'द्रव्य'शब्द का प्रयोग अनेक सन्दर्भो में किया गया है। उदाहरणार्थ द्रव्य,क्षेत्र,काल एवं भाव आदि अनुयोगद्वारों या अपेक्षाओं के सन्दर्भ में; नाम,स्थापना,द्रव्य और भाव आदि निक्षेपों के सन्दर्भ में; द्रव्यकर्म तथा भावकर्म के रूप में; कर्म-सिद्धान्त के सन्दर्भ में द्रव्यार्थिक नय के रूप में ज्ञानमीमांसा के क्षेत्र में 'द्रव्य' शब्द का प्रयोग मिलता है। किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में 'द्रव्य'शब्द की जो चर्चा अभिप्रेत है, वह विश्व के मूलभूत घटक के रूप में है।

जैन साहित्य में प्राप्त 'द्रव्य' की परिभाषा को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से व्याख्यायित किया जा सकता है- गुण आश्रयरूप द्रव्य- उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है 'गुणानां आसवो दव्वो' अर्थात् गुणों का जो आश्रयस्थल है, वही द्रव्य है।[1] विश्व के मूल घटक के रूप में यह द्रव्य की प्रथम परिभाषा है। यह परिभाषा वैशेषिकदर्शन से कथंचित् साम्य रखती है तथा द्रव्य और गुण में कथंचित् भेद का प्रतिपादन करती है।

गुणसमुदायरूप द्रव्य- द्रव्य की एक परिभाषा 'गुणानां समुहो दव्वो' के रूप में भी की गई है। इसमें गुणों के समुदाय को द्रव्य कहा गया है। जैसे. मूल, स्कन्ध, शाखा और प्रशाखा आदि का समूह ही वृक्ष है, उसी प्रकार अस्तित्त्व, परिणामित्व, वस्तुत्व, ज्ञेयत्व आदि सामान्य गुणों तथा चेतना, गतिहेतुत्व आदि विशिष्ट गुणों का समूह ही द्रव्य है। यह परिभाषा आचार्य पूज्यपाद् कृत 'तत्त्वार्थसूत्र' की 'सवार्थसिद्धि' टीका में उद्धृत है।[2] डॉ. सागरमल जैन के अनुसार यह परिभाषा सम्भवत: किसी लुप्त या अनुपलब्ध आगम ग्रन्थ से यहाँ उद्धृत की गई है।

गुण पर्यायवद् द्रव्य- उत्तराध्ययनसूत्र में द्रव्य को गुणों का आश्रय कहा गया है। किन्तु परवर्ती काल में आचार्य उमास्वाति ने 'गुणपर्यायवद् द्रव्यं'[3] कहकर जैनदर्शन द्वारा मान्य भेदाभेदवाद को पुष्ट किया है। इस परिभाषा में प्रयुक्त 'वत्' पद जहाँ द्रव्य, गुण एवं पर्याय में अभेद का प्रतिपादन करता है वहीं इसमें प्रयुक्त द्रव्य, गुण एवं पर्याय की भिन्न-भिन्न संज्ञा इनमें भिन्नता का प्रदर्शन करती है।

सत् स्वरूपमय द्रव्य- आचार्य उमास्वाति ने द्रव्य के गुण पर्यायवत् लक्षण के साथ ही 'सत्' को भी द्रव्य का लक्षण माना है। इससे फलित होता है कि सत् या अस्तित्त्व ही द्रव्य का प्रमुख लक्षण है; किन्तु यहाँ यह ज्ञातव्य है कि इस परिभाषा में किया गया द्रव्य का लक्षण द्रव्य की कूटस्थ नित्यता या अपरिवर्तनशील अस्तित्त्व का द्योतक नहीं है क्योंकि सत् का लक्षण करते हुए आचार्य उमास्वाति ने कहा है 'उत्पाद्व्ययध्रौव्ययुक्तं सत्'[4] अर्थात् 'सत्' उत्पाद् व्यय के साथ-साथ ध्रौव्यात्मक भी है। इस परिभाषा से 'सत्' को परिणामीनित्य माना गया है, जिसके कारण इसमें एकान्त नित्यवाद और एकान्त अनित्यवाद दोनों को किंचित् भी अवकाश नहीं है। इस प्रकार यह परिभाषा समन्वयात्मक दृष्टिकोण की परिचायक है; क्योंकि जहाँ वेदान्त दर्शन 'सत्' को कूटस्थ नित्य तथा बौद्धदर्शन 'पदार्थ' को क्षणिक या अनित्य मानता है, न्यायवैशेषिक तथा सांख्यदर्शन कुछ तत्त्वों को नित्य तथा कुछ को अनित्य मानते हैं; वहीं आचार्य उमास्वाति द्वारा कृत 'सत्' की परिभाषा प्रत्येक द्रव्य में नित्यत्व एवं अनित्यत्व दोनों पक्षों को स्वीकार करती है।

'विशेषावश्यकभाष्य' में 'द्रव्य' को अनेक रूप से व्याख्यायित किया गया है-

1. जो पर्यायों को प्राप्त करता है;
2. जो पर्यायों द्वारा गृहीत होता है;
3. जो सत्ता का अवयवहै;
4. जो सत्ता का विकार है;

5. जो गुणों का समुदाय है और

6. जिसमें भूत एवं भविष्यकालीन पर्यायों को प्राप्त करने की योग्यता है।[5]

आचार्य हेमचन्द्र ने 'प्रमाणमीमांसा' की स्वोपज्ञवृत्ति में विभिन्न पर्यायों को प्राप्त होने वाले ध्रौव्य स्वभावी 'तत्त्व' को 'द्रव्य' कहा है।[6]

आचार्य कुन्दकुन्द के अनुसार जो अपरित्यक्त स्वभाव वाला है, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से युक्त तथा गुण पर्याय सहित है, वह 'द्रव्य' है।[7]

डॉ. सागरमल जैन के अनुसार 'विश्व के मूलभूत घटक जो अपने अस्तित्त्व के लिए किसी अन्य घटक पर आश्रित नहीं हैं तथा जो कभी भी अपने स्व. स्वरूप का परित्याग नहीं करते, वे 'सत्'या 'द्रव्य' कहलाते हैं।8

उपर्युक्त परिभाषाओं के परिप्रेक्ष्य में 'द्रव्य' का निम्न स्वरूप निर्धारित होता है-1. 'द्रव्य' गुणपर्याय से युक्त होता है।, 2. वह उत्पाद्व्ययध्रौव्यात्मक है। 3. निराश्रित या स्वतन्त्र है। 4. विश्व का मूलभूत घटक है तथा 5. विभिन्न अवस्थाओं को प्राप्त करने पर भी अपने मूलस्वरूप का परित्याग नहीं करता है। वस्तुत: 'द्रव्य' को गुणपर्याय से युक्त कहना अथवा उत्पाद् व्यय ध्रौव्यात्मक कहना एक ही बात है, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य के दो पक्ष होते हैं-1. नित्यया ध्रौव्य पक्ष तथा 2. अनित्य या उत्पाद - व्ययात्मक पक्ष। द्रव्य के ये नित्य एवं अनित्य पक्ष ही गुण एवं पर्याय कहलाते हैं। नित्यपक्ष 'गुण' है और अनित्य पक्ष 'पर्याय' है।

इस प्रकार द्रव्य का स्वरूप नित्यानित्यधर्मा है। अत: यहाँ स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि जो नित्य है वह अनित्य कैसे?दो विरोधी धर्मों का एक साथ होना आखिर कैसे सम्भव है? इसके निराकरण हेतु आचार्य उमास्वाति द्वारा की गई 'नित्य' की व्याख्या विचारणीय है। उनके अनुसार जो अपने भाव (जाति) से च्युत या विलग न हो वह 'नित्य' है।9 इससे फलित होता है कि सभी 'द्रव्य' अपनी जाति में स्थित रहते हुए भी निमित्त के अनुसार परिवर्तन को प्राप्त होते हैं। दूसरे शब्दों में द्रव्य में परिणमन होता है फिर भी उसकी स्वरूप हानि नहीं होती। जैसे एक मृत्तिका पिण्ड पिण्डाकार को छोड़कर घट के आकार के रूप में परिवर्तित होता है पर मिट्टी का अस्तित्त्व दोनों अवस्था में सुरक्षित रहता है। यहाँ मिट्टी में उत्पाद् (परिवर्तन) घट पर्याय की अपेक्षा से है, व्यय(विनाश) मृत्तिकापिण्ड की अपेक्षा से है और ध्रुव्रता दोनों में निहित मिट्टी तत्व की अपेक्षा से है अर्थात् प्रत्येक द्रव्य में परिवर्तन में भी स्थिरता (Permanance with a change) है। यही जैनदर्शन का परिणामी नित्यवाद है; परिणामी नित्य में परिणाम का अर्थ अवस्थान्तर को प्राप्त होना है न कि अर्थान्तर को। अत: अवस्थान्तर को प्राप्त होने वाला नित्य परिणामी नित्य है। क्योंकि पर्याय अवस्थाएँ ध्रुव अंश में ही उत्पन्न एवं नष्ट होती हैं। ध्रौव्य पक्ष के बिना पूर्ववर्ती एवं परवर्ती अवस्थाओं में कोई सम्बन्ध नहीं रह सकता है। इसी प्रकार ध्रौव्य के अभाव में यह प्रश्न, प्रश्न ही बना रहेगा कि किसका पर्याय परिवर्तन होता है या कौन परिवर्तित होता है?

आज विज्ञान भी इस बात को स्वीकार करता है कि ऊर्जा की कुल राशि अचल (Constant) है अर्थात् विश्व में द्रव्य का परिमाण सदा समान रहता है। उसमें किंचित् भी न्यूनाधिकता नहीं होती है। यह व्यवहारिक जगत का अनुभूत सत्य भी है कि किसी विद्यमान सत्ता 'द्रव्य' का सर्वथा नाश नहीं होता और न ही किसी नवीन सत्ता 'द्रव्य' की उत्पत्ति होती है। दृश्य-जगत में अनुभूत 'उत्पाद-विनाश' रूपान्तरण मात्र है जैसे कोयला जलकर कार्बन डाई आक्साइड के रूप में परिणत हो जाता है तथा वही कार्बन डाई आक्साइड अन्य द्रव्यों के संयोग से कालान्तर में पुन: ठोस रूप लेकर कोयला बन जाती है। बर्फ, जल के रूप में और जल बर्फ के रूप में परिवर्तित होता रहता है, पर मूल तत्त्व सदैव सुरक्षित रहता है।

वस्तुत: इन परिवर्तनों से गुजरते हुए अपने मूल स्वरूपया गुण को नहीं खोना ही द्रव्य का मूलभूत लक्षण है। द्रव्यशब्द की व्युत्पत्ति मूलक व्याख्या से भी यह ज्ञाता होता है यद् द्रवति इति द्रव्यं। (द्रवति इति द्रव्यं)। 'अद्रुवत्, द्रवति, द्रोष्यति तांस्तान् पर्यायान् इति द्रव्यम्' अर्थात् जो भिन्न-भिन्न अवस्थाओं को प्राप्त हुआ, हो रहा है और होगा वह द्रव्य है।

षट्द्रव्यों का स्वरूप एवं लक्षण

जैन दर्शन में निम्न षट्द्रव्य माने गये हैं-धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव।10 यह क्रम उत्तराध्ययन के अनुसार है, अन्य ग्रन्थों में इनकी विवेचना का क्रम भिन्न भी पाया जाता है।

धर्म द्रव्य/ धर्मास्तिकाय

'धर्मास्तिकाय'शब्द धर्म + अस्ति + काय इन तीन शब्दों के योग से बना है। यहाँ ज्ञातव्य है कि प्रस्तुत प्रसंग में प्रयुक्त 'धर्म' शब्द आत्मशुद्धि के साधनभूत धर्म, उपासना, कर्तव्य, शुभप्रवृत्ति या स्वभाव का सूचक नहीं है अपितु यह जीव एवं पुद्गल की गति में सहायक सृष्टि का एक तत्त्व है। उत्तराध्ययनसूत्र में इसका लक्षण करते हुए कहा गया है 'गई लक्खणो उ धम्मो'[11] अर्थात् धर्मद्रव्य गति लक्षण वाला है। इसे स्पष्ट करते हुए भगवतीसूत्र में बताया गया है कि जीवों का आना-जाना, बोलना, पलकों का झपकना या ऐसी ही अन्य कायिक, वाचिक और मानसिक प्रवृत्तियाँ धर्मद्रव्य के सहयोग से सम्पन्न होती हैं।[12]

जैन दार्शनिकों ने धर्मद्रव्य को जीव एवं पुद्गल की गति में सहायक कारण माना है। वह प्रेरक कारण या उपादान नहीं है। वास्तव में गति तो जीव एवं पुद्गल में ही है। टीकाकार नेमिचन्द्राचार्य अपने ग्रन्थ 'द्रव्यसंग्रह' में धर्म द्रव्य का लक्षण करते हुए लिखते हैं कि गतिपरिणत जीव एवं पुद्गल के गमन में धर्मद्रव्य सहकारी है, जैसे मछली के तैरने में जल सहायक है।[13] गति करने की शक्ति तो जीव और पुद्गल में ही है। वे स्वयं ही गति करते हैं, परन्तु जब भी गति करते हैं धर्मद्रव्य की सहायता से ही करते हैं। जैसे मछली में तैरने की शक्ति है, पानी में वह शक्ति नहीं है, फिर भी पानी की सहायता के बिना मछली तैर नहीं सकती; वैसे ही जीव एवं पुद्गल की गति में धर्मद्रव्य का योगदान है।

धर्मद्रव्य गति सहायक द्रव्य होने पर भी स्वयं अचल एवं अक्रिय है। लोक में प्रसारित होने के कारण यह धर्मद्रव्य अस्तिकाय वर्ग के अन्तर्गत आता है। इसका प्रसारक्षेत्र लोक तक सीमित है। अत:यह लोकव्यापी है। अलोक में इसका अभाव है। यही कारण है कि सिद्धात्माएँ लोक के अग्र भाग में स्थित हैं।

अलोक में धर्मद्रव्य का अभाव होने से सिद्धात्माएँ इसके आगे नहीं जाती हैं। धर्मद्रव्य एक एवं अखण्ड द्रव्य है। वह लोक तक सीमित होने के कारण अनन्त प्रदेशी न होकर असंख्य प्रदेशी है। उत्तराध्ययनसूत्र में काल की अपेक्षा इसे अनादि एवं अपर्यवसित अर्थात् नित्य माना गया है।[14]

आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी इस बात को सिद्ध किया है। ईथर नामक एक अदृश्य पदार्थ है जो गति का कारण है। यहाँ तक कि प्रो. जी.आर. जैन ने ''Cosmology Old and New'' में धर्मद्रव्य के समान ईथर को अभौतिक, अपारमाणविक, अविभाज्य, अखण्ड आकाश के समान लोकव्यापि स्व में स्थित तथा गति का अनिवार्य माध्यम माना है।

अधर्म द्रव्य/ अधर्मास्तिकाय

अधर्मास्तिकाय में प्रयुक्त 'अधर्म' शब्द भी पाप या अधर्म का द्योतक नहीं है। उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार इसका लक्षण 'स्थिति' में सहायक होना है।[15] यह जीव एवं पुद्गल के स्थितिकरण में उसी प्रकार सहायक होता है जैसे वृक्ष की छाया पथिक के विश्राम में सहायक होती है। जहाँ धर्मद्रव्य को गति का माध्यम 'चालक' माना गया है, वहीं अधर्म द्रव्य को गति का कुचालक अर्थात् स्थिति का सहायक माना गया है। यदि अधर्म द्रव्य नहीं होता तो जीव एवं पुद्गल की गति का नियमन असम्भव हो जाता। जैसे वैज्ञानिक दृष्टि से गुरूत्वाकर्षण आकाश में स्थित पुद्गल पिण्डों की गति को नियन्त्रित करता है, उसी प्रकार अधर्मद्रव्य भी जीव एवं पुद्गल की गति को नियन्त्रित करता है। संख्या की दृष्टि से इसे भी एक अखण्ड द्रव्य माना गया है। प्रदेशप्रसार की दृष्टि से लोक में व्याप्त होने के कारण इसे असंख्यप्रदेशी माना गया है। अलोक में इसका अभाव है। सत्ता के स्तर पर यह भी नित्य है।

आकाश द्रव्य/ आकाशास्तिकाय

आकाश शब्द 'आ' और 'काश' इन दो शब्दों के योग से बना है 'आ' का अर्थ सर्वत्र तथा 'काश' का अर्थ प्रकाशित होने वाला है। इसका तात्पर्य यह है कि जो अपने अवगाहदान नामक गुण से सर्वत्र प्रकाशित/प्रभावित होता रहता है, वह आकाश है अथवा जहाँ धर्म, अधर्म, पुद्गल, जीव और काल अपने-अपने स्वरूप से प्रकाशित होते हैं, उसे आकाश कहते हैं।

तत्त्वार्थ सूत्रकार ने भी आकाश का लक्षण 'आकाशस्यावगाहः' किया है अर्थात् जो अवकाश या स्थान दे अथवा जिसमें अन्य द्रव्य अवगाहन कर सके वह आकाश है।[16] यह जीव और अजीव द्रव्यों को स्थान प्रदान करता है। उत्तराध्ययनसूत्र में आकाश को सभी द्रव्यों का आधारभूत भाजन (पात्र विशेष) कहा गया है, अर्थात् सभी द्रव्यों को रहने के लिए स्थान देना आकाश द्रव्य का लक्षण है।[17]

जैनाचार्यों ने आकाश के दो विभाग किये हैं- लोकाकाश एवं अलोकाकाश। विश्व में जो रिक्त स्थान है वह लोकाकाश है एवं विश्व के बाहर जो रिक्त स्थान है वह अलोकाकाश है।[18] उत्तराध्ययन में कहा गया है जहाँ अजीव का एक देश (भाग) अर्थात् केवल आकाश है वह अलोक कहा जाता है।[19] लोक की एक सीमा है, जो उस सीमा को निर्धारित करता है वह अलोक है किन्तु अलोक की कोई सीमा नहीं है। वह अनन्त है। अतः आकाश अनन्त प्रदेशी है। ज्ञातव्य है कि जो भी असीम होता है; वह अनन्त प्रदेशी होता है।।

धर्म एवं अधर्म की भांति आकाश में भी देश-प्रदेश की कल्पना वैचारिक स्तर पर ही की जा सकती है। वस्तुतः तो आकाश भी एक और अखण्ड द्रव्य है। उसमें सत्ता के स्तर पर विभाजन कर पाना सम्भव नहीं है, क्योंकि यह सर्वव्यापी है। जैनाचार्यों के अनुसार प्रत्येक द्रव्य आकाश में है और प्रत्येक द्रव्य में आकाश है। सामान्यतः ठोस समझे जाने वाले पिण्डों में भी रिक्त स्थान 'आकाश' होता है। एक पुद्गल परमाणु में भी विपुल मात्रा में आकाश अर्थात् रिक्त स्थान होता है तभी उसमें अनन्त पुद्गल परमाणुओं को अपने में समायोजित करने की शक्ति सम्भव है। भगवतीसूत्र में कहा है,'एक परमाणु या दो परमाणुओं से व्याप्त आकाश-प्रदेश में सौ सौ करोड़ अथवा एक हजार करोड़ परमाणु भी समा सकते हैं, व्यवहार में भी देखा जाता हैं कि एक दूध से भरे हुए ग्लास में डाली गयी शक्कर दूध या जल से भरे हुए ग्लास में डाला गया नमक जल में समा जाता है; उसका कारण ग्लास में रहा हुआ आकाश है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी यह मान लिया है कि ठोस परमाणु में पर्याप्त रूप से रिक्त स्थान होता है।

पुद्गलद्रव्य/पुद्गलास्तिकाय

पुद्गल शब्द का व्यवहार मुख्यतः जैनदर्शन में ही मिलता है। अन्य दर्शन में इसके स्थान पर प्रकृति, परमाणु आदि शब्द पाये जाते हैं। बौद्धदर्शन में अवश्य पुद्गल शब्द 'जीव' के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। उसमें 'पोग्गल-पंञति' नामक एक ग्रन्थ है, जिसमें जीवों के प्रकारों का विवेचन है।

जैनागम भगवतीसूत्र में भी पुद्गल शब्द को जीव का वाचक स्वीकार किया गया है।[20] ज्ञातव्य है कि यहाँ उसे शरीर की अपेक्षा से पुद्गल कहा गया है, परन्तु कालान्तर में यह पुद्गल शब्द भौतिक पदार्थ के अर्थ में रूढ़ हो गया। आधुनिक विज्ञान में इससे मिलता जुलता शब्द मेटर (Matter) है।

उत्तराध्ययनसूत्र में सभी द्रव्यों का लक्षण बताते हुए पुद्गल का भी लक्षण बताया है, परन्तु वह इसका स्वरूप दर्शन लक्षण है-शब्द, अन्धकार, उद्योत (प्रकाश), प्रभा (कान्ति), छाया, आतप (धूप), वर्ण (रंग), गन्ध, रस और स्पर्श ये सब पुद्गल के लक्षण हैं।[21] बृहद्द्रव्यसंग्रह' एवं 'नवतत्त्वप्रकरण' इन दोनों ग्रन्थों में भी पुद्गल का यही लक्षण दिया गया है।

पुद्गल शब्द की व्युत्पत्ति- पूरणात् पुद् गलयतीति गलः' इस प्रकार से की जाती है जिसका अर्थ जो द्रव्य सम्पृक्त एवं विभक्त होता रहता है वह पुद्गल है। पुद्गल का स्वभाव पूरण इकट्ठा होना (संघात) तथा अलग.अलग होना (विघात) है।

उत्तराध्ययनसूत्र में पुद्गलास्तिकाय के निम्न चार भेद किये गये हैं- स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु।[22]

स्कन्ध अनेक परमाणुओं के एकत्व से स्कन्ध' बनता है अत: दो या अधिक परमाणु का एक समुदाय या एकीभूत पिण्ड स्कन्ध कहलाता है। स्कन्धों की संख्या सदा एक सी नहीं रहती है, वह घटती बढ़ती रहती है। पुराने स्कन्धों के विखण्डन या टूटने से नये स्कन्धों का निर्माण होता है। एक बड़ा स्कन्ध अनेक छोटे स्कन्धों में तथा अनेक छोटे स्कन्ध एक बड़े स्कन्ध का रूप ले सकते हैं। ये दो परमाणु से लेकर अनन्त परमाणु के संयोग से निर्मित होते हैं। पुद्गलस्कन्ध अनन्त हैं। अत: पुद्गलास्तिकाय को अनन्तद्रव्य कहा गया है।

देश पुद्गल स्कन्ध का एक अंश देश कहलाता है। यह परमाणु या प्रदेश से बड़ा एवं विभाज्य होता है। छोटे से छोटा देश भी द्विपरमाणु परिमाण या द्विप्रदेशी होता है तथा बड़े से बड़ा देश अनन्त प्रदेशी भी हो सकता है।

प्रदेश किसी भी स्कन्ध का अविभाज्य अंश प्रदेश कहलाता है। इसका परिमाण परमाणु तुल्य ही होता है। परन्तु परमाणु एवं प्रदेश में अन्तर यह है कि प्रदेश परमाणु परिमाण होता हुआ भी स्कन्ध से अपृथक होता है; जबकि परमाणु स्वतन्त्र होता है स्कन्ध से सम्पृक्त परमाणु प्रदेश कहलाता है, स्कन्ध से पृथक् होने पर वह परमाणु कहलाता है।

परमाणु पाँच अस्तिकायों में पुद्गल ही एक ऐसा द्रव्य है जो स्कन्ध एवं परमाणु दोनों रूपों में उपलब्ध होता है। शेष चारों अस्तिकाय स्कन्ध रूप ही होते हैं, परमाणु रूप नहीं। पुद्गलास्तिकाय के स्कन्ध का निर्माण परमाणु के संयोग वियोग से होता है; परन्तु परमाणु स्वतन्त्र रूप से भी अपना अस्तित्व रखते हैं। परमाणु जब स्वतन्त्र होता है तो परमाणु कहा जाता है और जब सम्पृक्त होते हैं तो स्कन्ध कहे जाते हैं। इसी स्कन्ध का विभाज्य अंश देश और अविभाज्य अंश को प्रदेश कहा जाता है। इस प्रकार पुद्गलास्तिकाय के चार रूप होते हैं–1. स्कन्ध 2. देश 3. प्रदेश और 4. परमाणु। षट्द्रव्यों में पुद्गलास्तिकाय एक मात्र मूर्ळा द्रव्य है। शेष चारों अमूर्त्त हैं अर्थात् वर्ण, गन्ध, रस स्पर्श से रहित हैं। पुद्गल द्रव्य मूर्ळा होने से वर्ण, गन्ध, रस एवं स्पर्श गुण युक्त है। अत: वह इन्द्रिय ग्राह्य भी है।

जीवद्रव्य/ जीवास्तिकाय

उत्तराध्ययनसूत्र के अट्ठाइसवें अध्ययन में जीव का स्वरूप प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग ये जीव के लक्षण हैं।[23] तत्त्वार्थसूत्र में ज्ञान,दर्शन आदि गुणों को उपयोग में समाहित करते हुए कहा गया है 'उपयोगो जीव लक्षणं' अर्थात् जीव का लक्षण उपयोग या चेतना है।[24] व्युत्पत्तिपरक अर्थ के अनुसार 'जीवति प्राणान् धारयति इति जीव:' अर्थात् जो जीता है या प्राणों को धारण करता है वह जीव है। उत्तराध्ययनसूत्र के छत्तीसवें अध्ययन में जीवद्रव्य के प्रकारों का अति व्यापक रूप से वर्णन किया गया है।

कालद्रव्य

उत्तराध्ययनसूत्र में षट्द्रव्यों की अवधारणा में 'काल' को एक स्वतन्त्र द्रव्य के रूप में स्वीकार किया गया है और उसे 'वर्तना' लक्षण वाला कहा गया है।[25] दूसरे शब्दों में समस्त द्रव्यों के वर्तना अर्थात् परिणमन का असाधारण निमित्त काल द्रव्य है। इस प्रकार काल द्रव्यों में होने वाले पर्याय परिवर्तन का कारण है। पर्याय प्रत्येक क्षण उत्पन्न एवं नष्ट होती हैं। अत: समस्त द्रव्यों की पर्याय परिणति में क्षण (काल) निमित्त होता है। परिणमित होने का स्वभाव प्रत्येक द्रव्य का अपना होता है अर्थात् परिमणमन का उपादान कारण तो वह द्रव्य स्वयं ही होता है, किन्तु उसका निमित्त कारण काल है, क्योंकि काल के निमित्त से द्रव्य की परिणमन शक्ति अभिव्यक्त होती है। जैसे बीज में वृक्ष बनने का सामर्थ्य है, परन्तु वह एक निश्चित कालक्रम में ही वृक्ष बनता है। अत: वृक्ष का उपादान कारण बीज तथा निमित्त कारण (काल) है।

जैनदर्शन में षट्द्रव्य के अन्तर्गत पाँच द्रव्य अस्तिकायरूप तथा काल को अनस्तिकाय कहा गया है। इसका कारण यह है कि काल के अतिरिक्त शेष पाँचों द्रव्यों में प्रदेश प्रचयत्व अर्थात् विस्तार होता है। जबकि काल में प्रदेश प्रचयत्व नहीं है। प्रत्येक कालाणु की स्वतन्त्र सत्ता है, अत: उनका स्कन्ध नहीं बनता है। भूत चला गया है और भविष्य अभी आया नहीं है अत: इनका स्कन्ध नहीं बनता, क्योंकि प्रत्येक कण की अपनी स्वतन्त्र सत्ता है और वर्तमान एक समय का होता है। अत: उसका तिर्यक् प्रचयत्व नहीं होता। काल का मात्र ऊर्ध्व प्रचय होता है; जबकि अस्तिकायिक द्रव्यों का तिर्यक् प्रचय होता है। यही कारण है कि काल अनस्तिकाय द्रव्य कहलाता है। काल स्वतन्त्र द्रव्य है या नहीं; इस प्रश्न के सम्बन्ध में प्राचीन काल में मत वैभिन्य देखे जाते हैं। जैनदर्शन में पँचास्तिकाय की अवधारणा से जो षट्द्रव्य की अवधारणा का विकास हुआ है, उससे यह सिद्ध होता है कि जैनदर्शन में काल द्रव्य की स्वतन्त्र सत्ता को कालान्तर में स्वीकार किया गया है।

काल स्वतन्त्र द्रव्य है या नहीं इस मत वैभिन्य के संकेत तत्त्वार्थसूत्र और विशेषावश्यकभाष्य में प्राप्त होते हैं। काल को स्वतन्त्र द्रव्य न मानने वाली और मानने वाली ऐसी दो विचारधाराएँ विशेषावश्यकभाष्य के काल तक अर्थात् विक्रम की सातवीं शती तक रही हैं।काल की स्वतन्त्र सत्ता को अस्वीकार करने वाले विचारक काल को जीव एवं पुद्गल की पर्याय मानते हैं। अत: इनके अनुसार जीव एवं अजीव की पर्याय से पृथक् काल कोई स्वतन्त्र द्रव्य नहीं है।

दूसरी विचारधारा काल की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार करती है। उत्तराध्ययनसूत्र में काल को स्वतन्त्र द्रव्य के रूप में स्वीकार किया गया है। काल को स्वतन्त्र द्रव्य मानने का तार्किक आधार यह है कि जैसे गति और स्थिति का निमित्त धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य है; उसी प्रकार द्रव्य के परिणमित होने का भी कोई न कोई बाह्यनिमित्त कारण अवश्य होना चाहिए और वह काल ही है। अत: काल भी एक स्वतन्त्र द्रव्य है।

काल को स्वतन्त्र न मानने के विरोध में कुछ दार्शनिकों ने एक प्रश्न उठाया है कि यदि अन्य द्रव्यों के पर्याय परिवर्तन का हेतुभूत कारण काल है और इस रूप में काल को स्वतन्त्र द्रव्य माना जाता है, तो फिर अलोकाकाश तथा लोक में भी समयक्षेत्र के अतिरिक्त क्षेत्र में होने वाले पर्याय परिवर्तन का हेतु क्या है? यदि यह माना जाये कि वहाँ कालद्रव्य के अभाव में भी पर्याय परिवर्तन सम्भव है तो फिर कालद्रव्य को स्वतन्त्र मानने का क्या औचित्य है ? यदि यह माना जाये कि अलोकाकाश में पर्याय परिवर्तन नहीं होता है तो द्रव्य लक्षण दोषग्रसित हो जायेगा।

इसका समाधान देते हुए कहा गया है कि आकाश एक अखण्ड द्रव्य है। इसके लोकाकाश एवं अलोकाकाश ये भेद वैचारिक हैं। अत: लोकाकाश में होने वाला परिवर्तन ही अलोकाकाश में घटित हो जाता है; क्योंकि किसी द्रव्य के एक अंश में होने वाला परिवर्तन सम्पूर्ण द्रव्य का परिवर्तन माना जाता है। लोकाकाश में कालद्रव्य के निमित्त से परिणमन होता है और अलोकाकाश का परिणमन भी वही है, अत: दोनों के पर्याय परिवर्तन का सहकारी कारण काल ही है।

इस प्रकार काल को स्वतन्त्र द्रव्य के साथ जीव-अजीव की पर्याय रूप भी माना गया है। वस्तुत: ये दोनों कथन विरोधी नहीं, सापेक्ष हैं। निश्चयदृष्टि से काल जीव-अजीव की पर्याय है और व्यवहारदृष्टि में यह द्रव्य है। उसे द्रव्य मानने का कारण उसकी उपयोगिता है। कहा गया है 'उपकारकं द्रव्यं' स्वयं तत्त्वार्थसूत्र में भी वर्तना, परिणमन, क्रिया, परत्व, अपरत्व आदि काल के उपकार कहे गये हैं।[26]

काल के दो विभाग किए गये हैं-(1) निश्चयकाल और (2) व्यवहारकाल।उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार मुहुर्त, प्रहर, दिन, पक्ष, मास आदि व्यवहारकाल लोकाकाश के एक भाग मनुष्यक्षेत्र तक ही सीमित हैं। इस अपेक्षा से व्यवहारकाल को असंख्य माना गया है, किन्तु दूसरी ओर निश्चय काल अनन्त है।

निष्कर्ष

जैनदर्शन द्वैतवादी दर्शन है वह मूल तत्त्व के रूप में जीव एवं अजीव इन दो तत्त्वों को स्वीकार करता है। वस्तुत: मूल तत्त्व तो दो ही हैं। इन दो का ही विस्तार पँचास्तिकाय, षट्द्रव्य या नवतत्त्व है। सांख्यादि द्वैतवादी दर्शन भी पुरूष एवं प्रकृति ऐसे दो तत्त्वों को स्वीकार करते हैं। सांख्यसम्मत पुरूष को जीव तत्त्व तथा प्रकृति को अजीव तत्त्व के रूप में माना जा सकता है।

पँचास्तिकाय में जीवास्तिकाय जीव तथा शेष धर्मास्तिकाय आदि चार अजीव हैं। इसी प्रकार षट्द्रव्य में भी जीवद्रव्य जीव तथा शेष धर्म आदि पाँच द्रव्य अजीव हैं। तथा नवतत्त्व में जीवतत्त्व एवं अजीवतत्त्व दो मूल तत्त्व हैं। शेष पुण्य-पाप आदि सात तत्त्व अपेक्षाभेद से आश्रव आदि पाँच तत्त्व इन्हीं दो तत्त्वों की संयोग-वियोग रूप अवस्थाओं के सूचक हैं।

सन्दर्भ

1. उत्तराध्ययन - 28/6
2. तत्त्वार्थसूत्र -5/38
3. तत्त्वार्थसूत्र -5/37
4. तत्त्वार्थसूत्र -5/29
5. विशेषावश्यक भाष्य गाथा 28
6. प्रमाणमीमांसा-स्वोपज्ञवृत्ति 1/1/30- उद्धृत द्रव्यानुयोग, भाग 1, पृ. 5
7. प्रवचनसार गाथा 95 एवं 96
8. 'द्रव्यानुयोग' भाग 1, भूमिका, पृ. 25 - डॉ सागरमल जैन
9. तत्त्वार्थसूत्र 5/30
10. ''धम्मो अहम्मो आगासं, कालोपुग्गल-जंतवो। एस लोगो त्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं।।' - उत्तराध्ययन 28/7
11. उत्तराध्ययन 28/9
12. भगवती - 13/4/56 - (अंगसुत्ताणि, खण्ड 2, पृ. 601)
13. वृहद्द्रव्यसंग्रह, गाथा 17
14. उत्तराध्ययन 36/8
15. 'अहम्मो ठाणलक्खणो।' - उत्तराध्ययन 28/9
16. तत्त्वार्थसूत्र 5/18
17. 'भायणं सव्वदव्वाणं, नहं ओगाहलक्खणं।।' - उत्तराध्ययन 28/9
18. वृहद्द्रव्यसंग्रह गाथा 19
19. 'अजीवदेसमागासे, अलोए से वियाहिए।।'' - उत्तराध्ययन 36/2
20. भगवती 13/4/56 - (अंगसुत्ताणि, खण्ड - 1, पृ. 601)
21. 'सद्दंधयार-उज्जोओ, पहा छायातवे इ वा। वण्ण-रस-गंध-फासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं।।- उत्तराध्ययन 28/12
22. खंधा य खंधदेसा य, तप्पएसा तहेव य। परमाणुणो य बोद्धव्वा, रूविणो य चउव्विहा।। - उत्तराध्ययन 36/10
23. 'नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा। वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं।।' - उत्तराध्ययन 28/11
24. तत्त्वार्थसूत्र 2/8
25. 'वत्तणालक्खणो कालो, उत्तराध्ययन 28/10
26. तत्त्वार्थसूत्र 5/22

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उत्तरज्झयणाणि, वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी, सम्पा. आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती, लाडनूं, 2004
2. भगवई, वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी, सम्पा. आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती, लाडनूं, 1975
3. प्रवचनसार, श्रीमत्कुन्दकुन्दस्वामी, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास, 1964
4. पंचास्तिकाय, श्रीमत्कुन्दकुन्दस्वामी, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास, 1986
5. वृहद् द्रव्य संग्रह -पूज्यवाद नेमिचन्द्र, जितेन्द्र कुमार जैन सर्राफ, मेरठ, 1976
6. जैन दर्शन मनन और मीमांसा, आचार्य माप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014
7. आर्हती-दृष्टि-समणी मंगल प्रज्ञा, आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998
8. द्रव्य की अवधारणा, साध्वी योगक्षेमप्रभा, जैन विश्वभारती लाडनूं, 2012
9. तत्त्वार्थसूत्र, श्रीमद् उमास्वाति, (उमास्वामी), जैन संस्कृति शोध संस्थान, इन्दौर, 2017
10. जैन धर्म-दर्शनः एक अनुशीलन, डॉ धर्मचन्द्र जैन, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2015
11. जिणधम्मो, आचार्यश्री नानेश, श्री अखील भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर, 2004

धर्म और साम्प्रदायिकता

बृजेश कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर (अतिथि), इ.डि.का. इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

जब मनुष्य भूखा नंगा और बर्वर था कबीली संस्कृति थी वह पहाड़, पत्थर,पेड़.-पौधों जीव-जन्तुओ के बीच मे रहकर ही अपनी जीविका का निर्वहन करते हुए, प्रयोग पर प्रयोग करते हुए जब वह मानव गरिमा पूर्ण जीवन मे प्रवेश चाहा तो सबसे पहले उसे धर्म ने सहारा दिया, धर्म ने समाज को व्यवस्थित करने और उसे सुचारू रूप से संचालित करने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा कि है।

धर्म शब्द 'धातु' से बना है जिसका तात्पर्य है धारण करना इसकी विशेषता है शक्ति एवं गुण धारण करना जो किसी व्यक्ति या वस्तु मे विधमान रहती है धर्म का ध्येय है धर्म शब्द मनुष्य के साथ बाल्यकाल से ही जुड़ जाता है धर्म संबधी तात्विक चिंतन की लम्बी परंपरा भारतीय मनीषा मे रही हैं पतंजली ने कहा है- 'योग्यता वाछिन्ना धर्मिण शक्तिरेव धर्म' जिसका अर्थ है धर्मी की योग्यतायुक्त शक्ति ही धर्म है महर्षि कणाद ने कहा है -जिसके व्दारा उन्नति हो और अन्त मे मोच्छ प्राप्त हो वही धर्म है साधारण जनता के शास्त्रकारो ने बताया है 'वेदरहित कर्म धर्म है और वेद निषिद्ध कर्म अधर्म है'।[1]

धर्म के संबंध मे श्रुति वाक्य है 'धर्मो विश्वस्य जगत प्रतिष्ठा' तात्पर्य यह कि धर्म ही विश्व का आश्रयभूत है। विवेकानन्द का अपना मत है कि बिना त्याग या वैराग्य के धर्म या नीति का उदय कब हो सकता है त्याग ही से धर्म का आरंम्भ होता है और त्याग मे ही उसकी परिसमाप्ति वेद कहते है -त्याग करो इसके सिवा और कोई पंथ नही है।

"न प्रजया धनेन न चेन्यथा
त्यागनेन केन अमृतत्व मानुष"[2]

अर्थात् मुक्ति न संतानो से, होती है, न धन से न यज्ञ से वह अम्रत्व केवल त्याग से ही मिलता है।

यहां धर्म के विविध संदर्भ दिखाई पड़ते है धर्म को व्यापक रूप मे देखा गया है कभी इसे व्यक्ति के जीवन के साथ जोड़कर तो कभी कर्म से जोड़कर देखने की कोशिश की गयी है कभी धर्म को काल और युग से जोड़कर देखा गया है तो कभी धर्म को मनुष्य के नित्य-कर्म से भी जोड़ा गया है हिंदी मे धर्म शब्द का व्यापक अर्थो मे प्रयोग हुआ है ।

सर्वप्रथम महात्मा गाँधी के धर्म संबंधी विचारो को जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है। धर्म के संबंध में वे स्पष्ट रुप से कहते हैं- मै समझता हूँ कि धर्म से मेरा क्या मतलब है मेरा मतलब हिंदू धर्म से नहीं हैं जिसे मै वेशक दूसरे सब धर्मो से अधीक पसंद करता हूँ मेरा मतलब उस धर्म से है जो हिंदू धर्म को लाघ गया है, जो भीतरी सत्य के साथ हमारा अटूट संबंध जोड़ता है और जो हमे निरंतर अधिक शुध्द और पवित्र करता है वह मानव स्वभाव का शाश्वत तत्व है जो अपनी सम्पूर्ण अभिब्यक्ति के लिए कोई भी कीमत चुकाने को तैयार रहता है और आत्मा को उस समय तक बिल्कुल बेचौन रखता है जब तक उसे अपने स्वरूप का पता नही लग जाता सिरजनहार का ज्ञान नही हो जाता तथा स्रष्टा के और अपने बीच का संबंध समझ में नही आ जाता।[3]

धर्म के संबंध मे कार्ल मार्क्स का विचार अति महत्वपर्ण माना जाता है - मार्क्स धर्म जनता के लिए अफीम मानते है साथ मे ये भी बात करते है धर्म पीड़ित प्राणी की आह है हृदयहीन संसार का हृदय है आत्महीन परिस्थितियो का अत्मा और धर्म जनता के लिए अफिम है।[4]

धर्म मे विकृति तब आयी जब उसने मनुष्य के विवेक पर भी कब्जा जमाना शुरू किया अपने प्रति पूर्ण समर्पण की माँग की ब्यक्ति स्वतंत्र होकर न कुछ कर सकता था। जो कुछ उसे करना था वह धर्म के दायरे मे रहकर ही जन्म से मृत्यु पर्यन्त धर्म की सलाखो से वह जकड़ा हुआ है अगर ऐसा नही करता तो उसे अधार्मिक घोषित कर दिया जाता था जिसकी सजा समाज निष्कासन से लेकर मृत्युदण्ड तक हुआ करती थी अब व्यक्ति का वैयक्तिकता खत्म हो चुकी है पूरा का पूरा समाज धर्म द्वारा संचालित होता है।

वास्तव मे धर्म शब्द का कदाचित दरूपयोग भी किया गया है। धर्म अपने आप में एक ऐसा शब्द है जिसके समस्त रहस्यों का उद्घाटन करने की क्षमता मानव के पास है भी या नहीं अब तो इस बात पर संदेह है। संदेह का आधार धर्म के नाम पर होने वाली ठगी और राजनीति से है धर्म के नाम आये -दिन लोग ठगे जाते है धर्म विश्वास है जिस विश्वास के साथ लोग अपने -अपने धर्म के अनुसार मंदिरो मस्जिदों गिरजाघरो मे जाते है और वहाँ साधु के वेश मे बैठे पोंगा- पंडितो, ढोगियो, हत्यारों, बलत्कारियो आदि द्वारा ठगे जाते है मतलब आज के समय में कहे तो धर्म अधिकतर धंधा ही बनता जा रहा है। धर्म को राजनीति अपने फायदे के लिए खूब इस्तेमाल कर रहीं है जिसका नजारा हम समय -समय पर देखते रहतें है। वह धर्म की आड़ मे दूसरे धर्म या सम्प्रदाय के व्यक्ति को प्रताड़ित करना हिंसक घटनाओं को अंजाम देना आदि -आदि धर्म का प्रमुख अंग है सम्प्रदाय।

किसी विशेष सम्प्रदाय का कोई व्यक्ति यदि अपना कोई एक अन्य मत चलाता है तो उस मत को मानने लोगों का वर्ग भी संप्रदाय कहलाता है। वास्तव मे सभी सम्प्रदायों अथवा मतो का मूल एक ही है। सभी का सम्बंध मानवता से है। हर धर्म मानव को मानव से जोड़ना सिखाता हैं। परंतु जो धर्म इस भावना के विपरीत कार्य करता है उसे धर्म की संज्ञा नही दी सकती। आज कुछ लोग अपने निजि स्वार्थो के लिए धर्म को बदनाम कर रहे है। उसको साम्प्रदायिक

रंग में बाँट कर उसी को आधार बनाकर श्रेष्ठता बोध के नये आयम स्थापित करना चाह रहे है। उसके पीछे उनका राजनीतिक और सत्ता सुख दिया हुआ है। जो समाज में साम्प्रदायिकता जैसे नये शब्द को जन्म दे रहे है। साम्प्रदायीकता की आड़ में लोग मानवता धर्म को भुला रहे है। वे नन्हे- नन्हे मासूम बच्चों को भी नही छोड़ रहे हैं रोज हिंसा बढ़ती जा रही है कभी लव -जेहाद के नाम पर कभी गाय के नाम पर कभी भारत माता के नाम पर तो कभी मंदिर -मस्जिद, हिंदू -मुस्लिम, दलित -सर्वण आदि तरह -तरह की नकारात्मक पहलुओं ने समाज मे विष फैलाना शुरू कर दिया है आज हर व्यक्ति सर्शक्ति और भयग्रस्त माहौल में जीने के लिए मजबूर है और राजनीति अपना काम करती जा रही है यहाँ कबीर का एक दोहा याद आता है -

'हिंदू कहता राम हमारा मुसलमान रहमाना, आपस में दोऊ लरै मरतु है मरम कोई नही जाना'।[5]

साम्प्रदायिकता विश्व भर में ब्याप्त बुराई है इग्लैण्ड मैं रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट मुस्लिम देशो मे शिया और सुन्नी भारत मै बौद्ध -वैष्णव, शैव -बौद्ध सनातनी आर्यसमाजी हिंदू -सिक्ख झगड़े उभरते रहे है इन झगड़ो के कारण नरसंहार होता है और हो भी रहा है। साम्प्रदायिकता को भड़काने मे अग्रेज शासको का गहरा षड़यंत्र था। वे हिंदू -मुस्लिम झगड़े फैलाकर शासक बने रहना चाहते थे। उन्होने सफलता पूर्वक दोनो समुदायों के बीच गहरा असंतोष अपनी सरकारी नीतियों के द्वारा पैदा किया यह असंतोष भारत स्वतंत्रता संघर्ष 1857 से शुरू हुआ और 1947 मे धर्म आधारित राष्ट्र पाकिस्तान के रूप मे प्रतिफलित हुआ। भारत-पाकिस्तान का बँटवारा धर्म के आधार पर किया गया जिसमे लाखों लोग मारे गये हजारों के घर उजड़े मनुष्य मानव न होकर पशु हो गया एक धर्मालंबी दूसरे धर्म के लोगो को मारने-काटने बलात्कार करने घर जलाने के लिए तैयार रहता था। भारत-पाकिस्तान के बटवारे मे धर्म के नाम पर इतना बड़ा नर - संहार कहीं नहीं मिलता।

जो हिंदू -मुस्लिम की आग बटँवारे के समय लगी वो अभी तक शांत नही हुई उसका छिट-पुट तो बीच-बीच मे मिलता ही था परंतु 6 दिसम्बर -1992 को बाबरी विध्वंस ने जो हिंदू -मुसलमानो के बीच दूरियां कम हुई थी उसको पुन जिंदा कर दिया हजारों लोग मारे गये, विस्थापन हुआ उसके बाद दंगो का क्रम ही शुरु हो गया जो गुजरात, मुजफ्फरपुर, बनारस,कासगंज,भागलपुर दंगा के रुप में अभी विद्धमान है आने वाले समय में ये सत्ताधारी दल अपने सत्ता पर पहुँचने के लिए फिर कहाँ-कहाँ दंगा करायेगे जो आगे देखना होगा।

फूट डालो और राज करो की नीति जो भारत मे अपनी सत्ता स्थापित करने व्यापार करने के लिए अपनाई थी उसी को हमारी राजनीतिक पार्टियाँ मूल मंत्र बनाकर सत्ता के लिए धर्म के आधार जाति के आधार पर लोगो मे फूट डाल रही है और सीधे सत्ता पर काबिज हो रही है। अगर हमें अपने समाज को सभ्य, सुसंस्क्रत, सदाचारी, शांति प्रिय, अहिंसात्मक बनाना है तो ऐसी पार्टीया जो धर्म के आधार पर जाति के अधार पर सम्प्रदाय के आधार पर गोलबंदी करती है उनके लिए सख्त से सख्त कानून बनाकर रोकना होगा नही तो वो दिन अब दूर नही जिस तरह समाज मे आये दिन घटनायें घट रहीं है उसके आधार पर भारत भी सीरियाई संस्कृति की राह पर खड़ा होगा ।

कवयित्रि कात्यायनी कहती है - "साम्प्रदायिकता के विरूद्ध जनवादी राजनीतिक संघर्ष के साथ -साथ धार्मिक विश्व दि्ष्टकोण के विरूद्ध सुदीर्घ दार्शनिक विचारधारात्मक संघर्ष चलाना हर उस व्यक्ति का बुनियादी दायित्व है जो वैज्ञानिक विश्व दि्ष्टकोण का पक्षधर होने का दावा करता है। जाहिर है यह काम केवल नास्तिकता का प्रचार या धर्म का विरोध करके नही हो सकता बल्कि हमें उन सामाजिक जीवन स्थितियों की भी प्रखर आलोचना करनी होगी जो तमाम धार्मिक विश्वासों और संस्थाओ के लिए वस्तुगत आधार की भूमिका निभाती हैं।[6]

संदर्भ

1. पाटील, डा0 शैलजा तमस एक अध्ययन (उद्घत) शुभम पब्लिकेशन, कानपुर, संस्करण-2003, पृष्ठ सं-83
2. विवेकानंद (गतांक से आगे) सर्वागवेदांत समन्वय-2अंक-9 ,संस्करण-1980, पृष्ठ सं-399
3. शंभुनाथ (संपा0) यंग इण्डिया-12/5/1920,उद्घृत समकालीन सूमन संदर्भ, धर्म, आतंकवाद आजादी, कोलकाता प्रकाशन 2004, पृष्ठ सं-10
4. रेडक्लिफ, सुसान (संपा0)आम्सफोर्ड डिक्शनरी ऑफ कोटेशन्स एंड प्रोवबर्स, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क संस्करण-2008, पृष्ठ-233
5. कबीर ग्रंथावली, साखी, संपा0-पारसनाथ तिवारी, हिंदी परिषद प्रयाग विश्वविद्यालय प्रयाग,1961
6. किशोर कृष्ण (सपा0)अन्यथा, अंक-11 दिसम्बर 2007-फरवरी-2008,पष्ठ-86
7. लेखक के खुद के अनुभूति और विचार

'महिलाओं के सामाजिक विकास में प्रमुख अवरोधक: रूद्रप्रयाग जनपद में न्यायपंचायतवार एक भौगोलिक अध्ययन

(Major Interruption in Woman Social Development: A Geographical study in Rudraprayag District according to Nayaypanchayat)

बबीता कोहली

प्रवक्ता भूगोल, रा0बा0इ0का0घाट, चमोली

डॉ० इन्द्र सिंह कोहली

सहायक प्राध्यापक, राजकीय महाविद्यालय गैरसैण, चमोली

गणेश सिंह

प्रवक्ता भूगोल, रा0इ0का0 गौणा, चमोली

सारांश

महिलाओं की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक, पारिवारिक एवं अन्य क्षेत्रों में भूमिका प्राचीनकाल सें ही अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है तथा सदैव पुरूषों के सापेक्ष अपने सभी दायित्वयों का निर्वहन करती आ रही है किन्तु पृथ्वी पर मानवीय इतिहास के प्रत्येक काल में महिलाओं की स्थिति कहीं न कहीं पुरूषों के सापेक्ष निम्न देखी गयी है। महिलाओं के बिना पृथ्वी पर मानव जीवन व विकास की कल्पना पूर्णत: अपूर्ण है। आज सम्पूर्ण विश्व में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप सें किसी भी राष्ट्र के सर्वांगीण विकास में महिलाओ का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों में महिलाओं की स्थिति एवं उन से सम्बन्धित समस्याए भिन्न-भिन्न है। प्रस्तुत शोध पत्र में महिलाओं के सामाजिक विकास में अवरोधको का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है जिसके लिए उत्तराखण्ड राज्य के जनपद रूद्रप्रयाग का चयन किया गया है। सामान्यत: महिलाओं के सामाजिक विकास में अवरोधक स्थान, शिक्षा, समाज संस्कृति आदि कारकों के आधार पर भिन्न-भिन्न हो सकती है किन्तु अध्ययन के लिए चयनित रूद्रप्रयाग जनपद में महिलाओं की स्थिति को देखते हुए महिलाओं के सामाजिक विकास में प्रमुख अवरोधक कारणों को रूप में 5 कारको को प्रमुखता के साथ सम्मिलित किया गया है जो कि क्रमश: उचित शिक्षा का अभाव, पारम्परिक रूढिवादी विचारधारा, आर्थिक रोजगार के अवसरों में असमानता, अल्प आयु में विवाह एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याए है। उक्त समस्या का अध्ययन प्राथमिक आकडों के आधार पर किया गया है।

कुजी शब्द- रूद्रप्रयाग, महिलाए, सामाजिक विकास, न्यायपंचायत

अध्ययन क्षेत्र

उत्तराखण्ड राज्य के गढवाल मंडल मे स्थित जनपद रूद्रप्रयाग 30° 17' 00" उत्तरी अक्षांश से 30° 49' 00" तक एवं 78° 49' 00" पूर्वी देशान्तर से 79° 22' 00" के मध्य 1984 वर्ग किमी क्षेत्र में फैला है। जनपद रूद्रप्रयाग उत्तराखण्ड राज्य के सुदूर उत्तरी भाग में गढवाल मण्डल के मध्य हिमालय की गोद में स्थित है। मन्दाकिनी व अलकनन्दा नदियों के पावन संगम पर बसा रूद्रप्रयाग प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से अनुपम है तथा यह नगर बद्रीनाथ व केदारनाथ मार्ग में पडता है जिसकी ऊचॉई समुद्रतल से 610 मी0 है।

Location map of study area

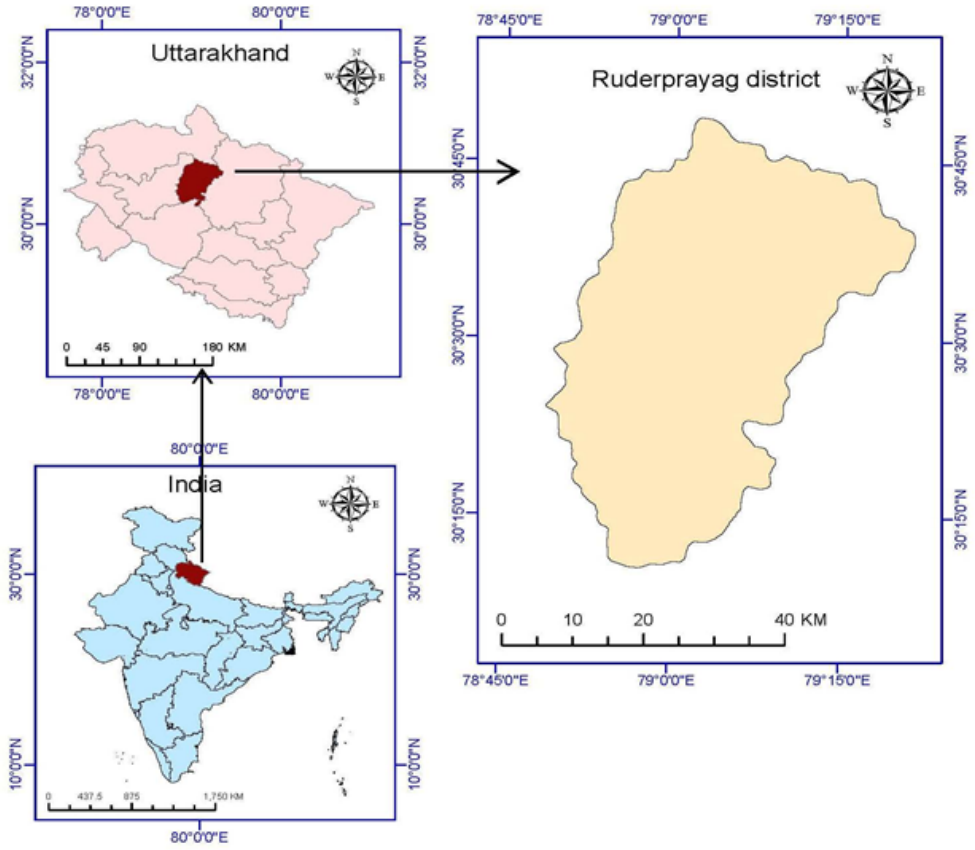

अध्ययन क्षेत्र उद्देश्य- प्रस्तुत शोधपत्र का प्रमुख एवं एक मात्र उद्देश्य रूद्रप्रयाग जनपद में न्यायपंचायतवार महिलाओं के सामाजिक विकास मे प्रमुख अवरोधक कारकों का अध्ययन करना है।

अध्ययन विधि- प्रस्तुत शोधपत्र में रूद्रप्रयाग जनपद में महिलाओं के सामाजिक विकास में प्रमुख अवरोधकों के अध्ययन के लिए प्राथमिक आकडों का संकलन किया गया है जो कि निम्न प्रकार से है। प्रस्तुत अध्ययन के लिए सर्वप्रथम अध्ययन की इकाई न्यापंचायत निर्धारित की गयी तथा वर्तमान समय में रूद्रप्रयाग जनपद में 27 न्यायपंचायत है। इस प्रकार 27 न्यायपंचायतों में दैवनिदर्शन विधि के द्वारा एक-एक गॉव का चयन किया गया। इस प्रकार अध्ययन के लिए कुल 27 गावों का चयन किया गया तथा प्रत्येक गॉव से 10 महिला उत्तरदाताओं का चयन किया गया जिसमें सभी उत्तरदाताओं की उम्र 18 वर्ष से अधिक थी। इस प्रकार अध्ययन में कुल 270 महिला उत्तरदाता सम्मिलित हुए।

रूद्रप्रयाग जनपद में न्यापंचायतवार महिलाओं के सामाजिक विकास में प्रमुख अवरोधको का अध्ययन (प्रतिशत मे)

तलिका 1 में रूद्रप्रयाग जनपद में महिलाओं के सामाजिक विकास में प्रमुख अवरोधको का अध्ययन को प्रदर्शित किया गया है जिसमें जनपद में महिलाओ के विकास में अरोधकों के रूप में उचित शिक्षा का अभाव, पारिम्परिक रूढिवादी विचारधारा, आर्थिक रोजगार के अवसरों में असमानता, अल्प आयु में विवाह एवं स्वास्थय सम्बन्धी कारण है। जनपदीय स्तर पर महिलाओं के सामाजिक विकास में अवरोधकों रूप में उचित शिक्षा का अभाव 24.07%, पारम्परिक रूढिवादी विचारधारा 30.74%, आर्थिक रोजगार के अवसरो में असमानता 37.78%, अल्प आयु में विवाह 4.07% एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या 3.34% उत्तरदायी है। जनपद में महिलाओं के सामाजिक विकास के अवरोधक के रूप मे प्रथम कारक उचित शिक्षा का अभाव न्यायपचायतों में प्रतिशत के आधार पर मरोडा में 80%, उखीमठ 60%, चोपता एवं बजीरा में 50%, चन्द्रापुरी में 40%, भीरी, सुमेरपुर, चोपडा, सारी, कोटाबांर, कण्डाली और पाजणा में 30%, ल्वरा, सौराखाल, पौडीखाल, मायकोटी एवं अगस्त्यमुनि में 20%, जवाडी, मनसूना और गुप्तकाशी में 10% अन्य 6 न्यायपंचायतों में यह शून्य प्रतिशत है।

जनपद में महिलाओं के सामाजिक विकास में अवरोधको में पारम्परिक रूढिवादी विचारधारा भी अहम भूमिका अदा करती है। जनपद के न्यायपंचायतों में यह प्रतिशत के आधार पर क्रमशः उच्छाढुगी में 80%, पांजणा एवं फाटा में 60%, बष्ठबडमा एवं सौराखाल में 50%, मायकोटी, चोपडा, कण्डाली, स्यूरबांगर एवं जवाडी में 40%, उखीमठ, पौडीखाल, अगस्त्यमुनि, भीरी एवं चन्द्रापुरी में 30%, सतेराखाल, सुमेरपुर, सारी, बजीरा, कोटबांगर, डांगीभरदार, ल्वारा एवं गुप्तकाशी में 20% है। जनपद के न्यायपंचायतो में प्रतिशत के आधार पर महिलाओं के सामाजिक कार्यो में अवरोधक के रूप में आर्थिक रोजगार मे असमानता क्रमशः मनूसना एवं सतेराखाल में 80%, पीपली एवं गुप्तकाशी में 70%, ल्वारा में 60%, अगस्त्यमुनि, चोपता, सुमेरपुर, पौडीखाल, सारी एवं

डांगीभरदार में 50%, बष्टबडमा एवं मायकोटी में 40%, चन्द्रापुरी, बजीरा, कोटबांगर, कण्डाली, स्यूरबांगर, जवाडी, सौराखाल एवं फाटा में 30%, उच्छाढुगी, चोपडा, मरोडा व उखीमठ में 10% एवं भीरी तथा पांजणा में शून्य प्रतिशत है।

जनपद में महिलाओं के सामाजिक विकास में अल्प आयु भी एक प्रमुख कारण है जो कि जनपद के न्यायपंचायतों में प्रतिशत के आधार पर स्यूरबांगर एवं चोपडा में 20%, उच्छाढुगी, भीरी, कोटबांगर, जवाडी, पाजणां, बष्टबडमा एवं मनूसना में 10% एवं अन्य 17 न्यायपंचायत में यह शून्यप्रतिशत है। जनपद में महिलाओं के सामाजिक विकास में अतिम अवरोधक कारण स्वास्थ्य सबंधी समस्याए है जो कि जनपद के न्यायपंचायतों में प्रतिशत के आधार पर भीरी में 30, पीपली में 20, कोटबांगर, स्यूरबांगर, जवाडी व फाटा में 10 एवं अन्य 21 न्यायपंचायत में यह शून्य प्रतिशत है। उपरोक्त आकडों को तालिका 1 एवं चित्र 1 के द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 1: रूद्रप्रयाग जनपद में न्यापंचायतवार महिलाओं के सामाजिक विकास में प्रमुख अवरोधको का अध्ययन (प्रतिशत मे)

क्र0सं0	*न्यापंचायत*	*उचित शिक्षा का अभाव*	*पारम्परिक रूढिवादी विचारधारा*	*आर्थिक रोजगार के अवसरों में असमानता*	*अल्प आयु में विवाह*	*स्वास्थय सम्बन्धी समस्याएं*
1	उच्छाढुगी	0	80	10	10	0
2	भीरी	30	30	0	10	30
3	चन्द्रापुरी	40	30	30	0	0
4	अगस्त्यमुनि	20	30	50	0	0
5	चोपता	50	0	50	0	0
6	मायकोटी	20	40	40	0	0
7	सतेराखाल	0	20	80	0	0
8	सुमेरपुर	30	20	50	0	0
9	चोपडा	30	40	10	20	0
10	पीपली	0	10	70	0	20
11	पौडीखाल	20	30	50	0	0
12	सॉरी	30	20	50	0	0
13	मरोडा	80	10	10	0	0
14	अग0 वि0ख0	26.92	27.69	38.46	3.07	3.86
15	बजीरा	50	20	30	0	0
16	कोटबॉगर	30	20	30	10	10
17	कण्डाली	30	40	30	0	0
18	डॉगी भरदार	30	20	50	0	0
19	स्यूरबॉगर	0	40	30	20	10
20	जवाडी	10	40	30	10	10
21	पांजणा	30	60	0	10	0
22	सौराखाल	20	50	30	0	0
23	बष्टाबडमा	0	50	40	10	0
24	ज0 वि0ख0	22.22	37.78	30	6.66	3.34
25	उखीमठ	60	30	10	0	0
26	मनसूना	10	0	80	10	0
27	ल्वारा	20	20	60	0	0
28	फाटा	0	60	30	0	10
29	गुप्तकाशी	10	20	70	0	0
30	उ0 वि0ख0	20	26	50	2	2
31	कुल जन0	24.07	30.74	37.78	4.07	3.34

स्त्रोत: स्वयं सकलित

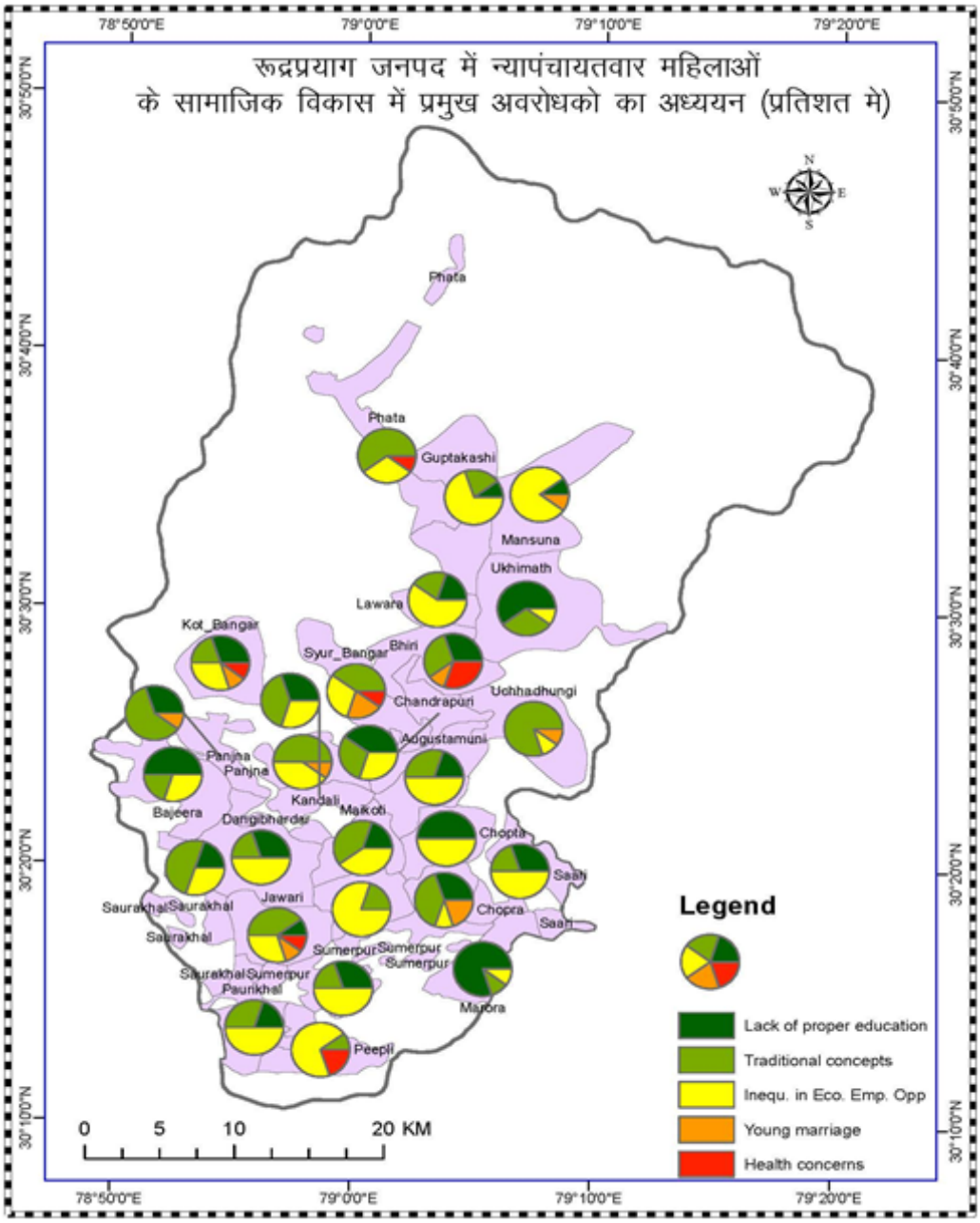

चित्र- 1.1

निष्कर्ष- महिलाए समाज में हर दौर में पुरूषों से किसी ना किसी स्तर पर कम आंकी गयी है जबकि इसके विपरीत महिलाए सदैव समाज के एक दृढ पक्ष के रूप में रही है। महिलाओं के सामाजिक विकास के मार्ग में आज भी वर्तमान युग में कई कारण प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से विद्यमान है। उपरोक्त अध्ययन के लिए जनपद की स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए महिलाओं के सामाजिक विकास में प्रमुख अवरोधकों के रूप में पॉच कारणों को लिया गया जिसमें से अवरोधक के रूप में प्रतिशत के आधार पर 37.78% जो कि आर्थिक रोजगार के अवसरों में असमानता है। यदि यह कहा जाए कि महिलाओं के सर्वांगीण विकास में महिलाओं को प्राप्त होने वाली आर्थिकी महत्वपूर्ण है तो यह अतिश्योक्ति नही होगी क्यों की समाज के स्तर पर व्यवहारिक रूप से आर्थिकी अथवा रोजगार परक महिलाओं को समाज में गैरआर्थिकी प्राप्त महिलाओं से ज्यादा सम्मान मिलता है। अत: महिलाओं के सामाजिक विकास के लिए उन्हे पहले रोजगार परक् होना पडेगा। महिलाओं के सामाजिक विकास मे अवरोधको के रूप मे अध्ययन के आधार पर प्रतिशत के अनुसार द्वितीय स्थान पर पारम्परिक रूढिवादी विचारधारा है जो कि जनपद में 30.74% है। सामान्यत: ग्रामीण समाज में यह देखा जाता है कि रूढिवादी विचारधारा के कारण महिलाओं को एक स्तर के बाद शिक्षा प्रदान नही की जाती, महिलाओं के विभिन्न स्थानों पर जाने आदि की पाबन्दी आदि ऐसे रूढिवादी विचार है जिसके कारण महिलाओं पूर्णत: सामाजिक विकास नही हो पाता है। इसी क्रम में महिलाओं के सामाजिक विकास में अवरोधकों के रूप में उचित शिक्षा का अभाव भी है जो कि जनपद में 27.07% है। समाज में आज भी महिलाओं का अल्प आयु में विवाह किया जाता है जिस कारण भी महिलाओं का सामाजिक, मानसिक, शारिरिक

आदि प्रकार का विकास नही हो पाता है तथा जनपद में महिलाओं के सामाजिक विकास के अवरोधक के रूप में यह कारण 4.07% है। इसी क्रम में महिलाओं के सामाजिक विकास में अवरोधक के रूप में स्वास्थय सम्बन्धी समस्याए है जो कि जनपद में 3.34% है। अतः इस प्रकार उपरोक्त सभी कारण है जिनसे महिलाओं का सामाजिक विकास पूर्णतः नही हो पा रहा है।

सन्दर्भ सूची

बबीता, इन्द्र सिंह कोहली एवं अन्य, ''महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिकाः रूद्रप्रयाग जनपद के सन्दर्भ में एक भौगोलिक अध्ययन'', Published in 'Research Review International Journal of Multidisciplinary, *Volume-03, Issue-08, August-2018,* ISSN: 2455-3085 (Online)

Rajeshwari M. Shettar, *"A Study on Issues and Challenges of Women Empowerment in India"* published in, IOSR Journal of Business and Management (IOSR-JBM) e-ISSN: 2278-487X, p-ISSN: 2319-7668. Volume 17, Issue 4.Ver. I (Apr. 2015), PP 13-19

Dr. T. Rama Devi, "GENDER EQUALITY: WOMEN EMPOWERMENT" published in 'Globle journal of Research Analysis, Volume-6, Issue-9, Special Issue September-2017 • ISSN No 2277 – 8160

Rouf Ahmad Bhat , *"Role of Education in the Empowement of Women in India"* published in Journal of Education and Practice, ISSN 2222-1735 (Paper) ISSN 2222-288X (Online), Vol.6, No.10, 2015

Manisha Desai, "Hope in Hard Times: Women's Empowerment and Human Development", paper published in Human Development Research Paper 2010/14

Jennifer McCleary-Sills and other, "Child Marriage: A Critical Barrier to Girls' Schooling and Gender Equality in Education" published in The Review of Faith & International Affairs, ISSN: 1557-0274 (Print) 1931-7743 (Online) Journal

http://www.journalijar.com/uploads/739_IJAR-13367.pdf

https://www.ideasforindia.in/topics/social-identity/womens-economic-empowerment-and-domestic-violence-hindi.html

मूल्यों के संरक्षण में भगवद्गीता की भूमिका

डॉ० श्रीमती गीता शुक्ला

एसो. प्रो. बी. एड्., एम. डी. पी. जी. कॉलेज प्रतापगढ़

भगवान कृष्ण के मुखार बिंद से उद्भूत हुई भगवद् गीता वास्तव में ज्ञान गंगा की वह अजस्र धारा है जो अनादि काल से हमें पवित्र और शुद्ध करती चली आ रही है। भारतीय चिंतन को जानने का इससे अच्छा कोई दूसरा स्रोत नहीं है। इस पुस्तक ने लगभग 2500 वर्षों में भारत ही नहीं अपितु विश्व के जनमानस को भी प्रभावित किया है। मानवीय मूल्यों का संरक्षण करने में अपनी अहं भूमिका का निर्वाहन भी किया है।

हम भारत वासी पिछले 2000 वर्षों से जब अज्ञानांधकार के युग में रह रहे थे। विदेशी आक्रमणों से जहाँ हमारा बहुत कुछ समाप्त हो चुका था, वहीं बौद्धिक प्रखरता भी कुंठित हो गई थी अंग्रेजों ने छल बलपूर्वक जहाँ राजनीतिक एवं आर्थिक प्रभुत्व प्राप्त किया वहीं अपनी संस्कृति के प्रति हमारी श्रद्धा को आकर्षित करने के लिए अथक प्रयास भी किया। चुपके-चुपके उनके परोक्ष प्रयत्न यह रहे कि भारतीय जनता अपनी संस्कृति को हेय व हीन मानकर उसकी उपेक्षा करें। इस षड्यंत्र में उन्हें आशाजनक सफलता भी मिली फलस्वरूप आजादी के बाद भी वर्तमान में अंग्रेजी भाषा, सभ्यता एवं संस्कृत का दुष्प्रभाव पूरी तरह देखने को मिलता है।

आज यदि वर्तमान में दृष्टिपात करें तो भौतिकवादी पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण से मानवीय मूल्यों का संकट देखने को मिलता है नैतिकता व चरित्र समस्त विश्व से विलुप्तप्राय हो गए हैं। मानव से मानवता समाप्त हो गई है। आज अनेक प्रकार के प्रलोभन हमारे विवेक एवं स्वाभिमान को निगल रहे हैं। अर्थवादी युग में धन लिप्सा को बढ़ावा मिला है जिसके कारण मनुष्य अच्छे बुरे का ज्ञान खो बैठा है मानव जो बुद्धि के कारण सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना जाता था जो अपने कार्यों से उच्च पद प्राप्त करता था आज वही मनुष्य स्वार्थवश मोह के अज्ञान अंधकार के वशीभूत होकर अपनी आत्मा को ही नष्ट कर बैठा है उससे संवेदना, भावना कोसों दूर चली गई है। भौतिक सुख की चाह से मनुष्य कुछ भी करने को तैयार है।

ठीक यही दशा आज के 5000 वर्ष पूर्व थी; जब भारत के क्षितिज पर भादों की अंधेरी अमावस अपनी गहरी कालिमा के साथ छा गई थी। तब भी भारत में जन था, धन था, शक्ति थी, साहस था, कला और कौशल क्या नहीं था? सब कुछ था पर एक अकर्मण्यता भी थी, जिससे सभी कुछ अभिभूत और मोहाछन्न थे। महापुरुष अनेक हुए पर लोकनीति और आध्यात्म को समन्वय के सूत्र में बांधकर कर्मयोग का शंखनाद करने वाले भगवान श्री कृष्ण ही थे, जिन्होंने महाभारत के युद्ध में मोह स्वार्थ के वशीभूत अन्याय के पक्षधर कौरवों को दंड देकर अर्जुन को कर्म योग की शिक्षा देकर सत्य और धर्म को स्थापित किया।

आज भी ठीक वैसी ही दशा मानव समाज की है आज घर-घर में महाभारत हो रहा है। मूल्यों की चर्चा बेमानी लगती है हम केवल मंच पर बड़ी-बड़ी बातें करते हैं परंतु व्यावहारिक जीवन में सब को भूलकर केवल अपने स्वार्थ की ही बात करते हैं। मनुष्य अपने स्वार्थ एवं मोह में इतना अंधा हो जाता है कि वह दूसरों के बारे में बिना सोचे समझे कुछ भी करने में जरा भी संकोच नहीं करता है। समाज में पारिवारिक सामाजिक मूल्यों में निरंतर ह्रास होता जा रहा है।

जिसके संरक्षण की बात यदि की जाए तो शिक्षाविदों का मानना है कि वह श्रीमद्भागवत गीता में बताए गए सूत्र वाक्यों में निहित है। यदि उसका आज वर्तमान में अनुकरण किया जाए तो समाज को नई दिशा देने के साथ साथ मानव समाज को भी सही मार्ग में लाया जा सकता है जिससे मानव एवं सामाजिक मूल्यों को संरक्षित किया जा सकता है।

महाभारत काल में भी आर्य का सर्वांगीण विकास हम सभी क्षेत्रों में श्रीकृष्ण में पाते हैं। राजनीतिक श्री कृष्ण का दर्शन करना चाहते हैं, तो हमें महाभारत के पन्नों को पलटना होगा जो आर्य जाति के पतन का युग कहा जाता है।

उस काल में भी वर्तमान समय की तरह ठीक यही दशा थी। कई छोटे-छोटे राज्यों के राजा जैसे मगध का जरासंघ, चेंदी देश का शिशुपाल, मथुरा का कंस और हस्तिनापुर के कौरव सभी दुष्ट बिलासी और दुराचारी हो गए थे। श्री कृष्ण ने बड़ी चतुराई के साथ इन सबका मूलोच्छेद कराया और युधिष्ठिर का एकछत्र साम्राज्य स्थापित किया।

श्री कृष्ण ने केवल भारत राष्ट्र की अखंडता की रक्षा ही नहीं की अपितु उन्होंने गिरे हुए समाज को भी दिशा प्रदान की तथा मानव मूल्यों की स्थापना की, उस समय स्त्रियों और शूद्रों की अधिक अवनति हो गई थी। स्त्रियों और शूद्रों का मोक्ष पर अधिकार नहीं माना जाता था, वर्ण व्यवस्था गुण कर्म की अपेक्षा जन्म से मानी जाने लगी और इस कारण सूतपुत्र कर्ण को पांडवों द्वारा अपमानित होना पड़ा था। ब्राह्मणों ने अपनी वृत्ति छोड़ दी थी। द्रोणाचार्य सरीखे विद्वान भी शस्त्र विद्या सिखाकर जीवन निर्वाह करते थे लोगों को अत्यधिक नैतिक पतन हो गया था। भीष्म जैसे धर्मात्मा पुरुष ने अन्याय का पक्ष लिया था।

जिस समय समाज का इस प्रकार नैतिक पतन हो गया था, तब भी श्रीकृष्ण ने एक नूतन संदेश दिया था। गीता द्वारा उन्होंने चारो वर्णों का गुण कर्म के अनुसार निर्धारण किया और यह स्पष्ट कर दिया कि इस व्यवस्था की नींव गुण, कर्म व स्वभाव पर है इसका जन्म से कोई संबंध नहीं है। यथा-

चातुर्वर्ण्य मया सृष्टम् गुण कर्म विभागशः

गीता में श्रीकृष्ण ने स्त्रियों व शूद्रों को मोक्ष का अधिकार प्रदान किया-

"हे पार्थ अत्यंत नीच वंश में उत्पन्न मनुष्य हो, स्त्री हो, शूद्र हो जो मेरा आश्रय ग्रहण करते हैं उनको उत्तमगति मिलतीं है।

आज भी हमारा भारतीय समाज इसी मनोदशा का शिकार है स्त्री आज भी सुरक्षित नहीं है, शूद्रों पर आज भी अत्याचार कम नहीं हो रहा है। आये दिन समाचार में अनेक प्रकार के अपराधों को सुना एवं देखा जा सकता है। सारे अधिकार कानून से भले ही मिल गए हैं पर व्यवहार में अभी भी उन्हें यातना एवं कष्ट झेलने पड़ते हैं।

समाज आज जल रहा है, मानवता मूल्य विहीन हो गई है, धन लिप्सा ने मानवता का गला घोंट दिया है। संबंधों, भावनाओं, संवेदनाओं का आज कोई महत्व नहीं है।

ऐसी विषम परिस्थिति में आज भगवान श्रीकृष्ण से उद्भूत श्रीमद्भागवतगीता के एक-एक शब्द मानव मूल्य को पुनः स्थापित व संरक्षित करने का अभूतपूर्व कार्य कर सकते हैं।

युवा पीढ़ी के मन में वास्तव में कुछ प्रश्न सदैव बने रहते हैं जैसे हमें अपनी परंपराओं, कर्तव्यों का पालन करना चाहिए तो क्यों? बड़ों के प्रति आदर भाव व्यक्त करने के कौन से तरीके हैं? इनका कोई तर्कसम्मत उत्तर समाज के पास नहीं होता। हमें अपने रिति-रिवाजों का सम्मान करना ही चाहिए जो केवल श्रद्धा पर ही आधारित होता है। जब मूल्यों की बात होती है तो भारतीय संस्कृति की वैभवशाली परंपरा की याद दिलाई जाती है। हमारे पूर्वजों ने प्राचीन परंपरा की धरोहर को ही हमें सौंपा है जिसका संरक्षण, संवर्धन हमारा मूल कर्तव्य है तभी हम भारत की आत्मा को बचा पाएंगे।

भगवद् गीता में जिस धर्म की बात की गई है वह संकीर्ण धर्म भावना नहीं है। अपितु जीवन जीने की सही कला को बताने का प्रयास किया गया है। इसके द्वारा ही जीवन यापन की आधारशिला मिलती है। उनका धर्म कर्म से जुड़ा है, उसे कर्म से अलग नहीं किया जा सकता है। धर्म आदर्शवाद है तो कर्म व्यवहारवाद है।

भगवद्गीता के तेरहवें अध्याय में अर्जुन को सहज कर्म का उपदेश श्रीकृष्ण ने दिया है-

"सहज कर्म कौन्तेय सदोष मपि न त्यज्यते।
सर्वारम्भा हि दोषेण घूमेनाग्निरिवावृता।।"

अर्थात, अग्नि ठीक से जलने के पूर्व धुआं निकलता है जो सांस लेने में हानिकारक होता है परंतु यदि अग्नि प्रज्वलित रूप में चाहिए तो धुआं स्वीकार कर लेना चाहिए।

अर्थात धुएं को दोष के रूप में न देखकर अग्नि के सच्चे स्वरूप को समझना सत्य को जानने के समान है।

भारतीय दर्शनशास्त्र में ज्तनजी, ळववकदमे ंदक ठमंनजल को सत्यम् शिवम् तथा सुंदरम् के स्वरूप में देखा जाता है।

ये मानव जाति के मूल तत्व है।

प्रो. हरिना के अनुसार- धर्म मानव की वह आंतरिक शक्ति है जो अच्छाई और बुराई के प्रभावों को सही ढंग से पहचान कर सकती है। मानव जाति के सर्वश्रेष्ठ गुणों को धर्म स्वीकार करता है जिसके द्वारा हम मानव मूल्यों का विकास कर सकते हैं और मानव को महामानव बनाकर स्वस्थ्य समाज की स्थापना कर सकते हैं।

गीता में कर्म प्रधान जिन मानव मूल्यों की स्थापना भगवान श्रीकृष्ण ने की थी वो आज वर्तमान में भी उतने ही प्रासंगिक व महत्वपूर्ण है जितने उस काल में थे।

जिस निष्काम कर्म की स्थापना गीता में की गई है वह मानव मूल्यों के विकास व संरक्षण में पूरी तरह सहायक है। क्योंकि निष्काम कर्म के संपादन में ज्ञान और भक्ति की अनिवार्यता को स्वीकार किया गया है। ज्ञान के द्वारा पवित्र राग, भय और क्रोध रहित होकर भक्ति से उनका आश्रय लेकर तथा उनमें स्थिति होते हुए मनुष्य भगवान की ही स्थिति को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार गीता कर्म व ज्ञान के संदेश के रूप में मनुष्य का पथ प्रदर्शन करती है।

वर्तमान में जहाँ मानव मूल्य विलुप्त होते जा रहे हैं मनुष्य पशु से भी निम्न स्तर पर पहुँच गया है ऐसे में एक मार्गदर्शक के रूप में श्रीमद्भागवत गीता हर प्रकार से कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है। आज भी गीता में कहे गए एक-एक वाक्य मनुष्य को महामानव बनाने का कार्य करते हैं यदि हम उसका अध्ययन, मनन व चिंतन करते हुए उसे व्यवहार में लाने का प्रयास करें तो गीता केवल एक धार्मिक ग्रंथ ही नहीं अपितु एक नीतिशास्त्र व कर्तव्य शास्त्र है। संसार से भागकर, तपकर मोक्ष प्राप्त करने का समर्थन गीता नहीं करती अपितु इस संसार में रहकर निषिद्ध कर्मों को त्याग कर स्वकर्म के द्वारा भी ईश्वर की प्राप्ति होती है।

किसी ने कहा है-

"तू खोजता मुझे था जब कुंज और वन में।
मैं ढूँढ़ता तुझे था तब दीन की वतन में।।"

अर्थात दीनों की सेवा करना उनका सम्मान करना ही सही पूजा है न कि मंदिर में जाकर प्रार्थना करना। कहने का तात्पर्य है कि समाज में दीनों, दुखियों, बड़ो की सेवा करना ही मानव का सही धर्म है और वही सच्चा कर्म भी है।

इस प्रकार करने योग्य कर्म को करना और न करने योग्य कर्मों को न करना गीता हमें सिखाती है।

कर्मयोग में निम्न बातें वर्तमान समाज में आए मूल्य संकट से उबरने में वर्तमान समाज के लिए लाभदायक उत्प्रेरक औषधि का कार्य करेंगी-

1) उचित कर्मों का चयन-

गीता संसार में रहकर करने योग्य उचित कर्मों की बात करती है-

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।

न च सन्न्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।।

अर्थात न तो कर्म से विमुख होकर कोई कर्म फल से छुटकारा पा सकता है न क्रम से संन्यास लेकर। इस प्रकार संसार में रहकर उचित कर्मों के माध्यम से ही वह अपना व समाज का कल्याण कर सकता है।

2) आत्मा का शुद्धीकरण-

आज के कलुषित वातावरण में मानव की आत्मा को शुद्ध करके योगत्व प्रदान करने का कार्य भी गीता का कर्मयोग सिखाता है-

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।

ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।।

3) स्वार्थ का परित्याग-

आज संसार में सारी समस्या स्वार्थपरता के कारण है जबकि गीता अपने लिए नहीं औरों के लिए नियत कर्म का उपदेश देती है-

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मण:।

4) मानव सुख की कल्पना-

गीता में स्पष्ट कहा गया है कि भगवान की कृपा से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है क्योंकि भगवान यज्ञ में अर्जित भोजन प्रसाद को खाते हैं परंतु जो अपने इंद्रिय सुख के लिए भोजन बनाते हैं वे पाप खाते हैं अर्थात दूसरों को खिलाकर भगवत् अर्पण करके ही खाना चाहिए।

5) सत्कर्मों का महत्व-

गीता में सत्कर्म की बात कही गई है। सत्कर्म के लिए यज्ञ करना अनिवार्य है क्योंकि वह समस्त भौतिक प्रदूषणों का सामना करने में समर्थ होता है। जिससे समाज एवं राष्ट्र का पर्यावरण शुद्ध होता है तथा मानव विचार भी पवित्र एवं परिष्कृत होते हैं। यथा-

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भव:।

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञ: कर्मसमुद्भव:।।

6) आसक्ति का त्याग-

गीता आसक्ति का त्याग सिखाती है वर्तमान में मनुष्य मोह के वशीभूत होकर अनेकों ऐसे कार्य करता हैं जिससे समाज में बुराइयों का समावेश हो जाता है परंतु यदि अनासक्त भाव से कर्म करें तो तमाम बुराइयों से बचा जा सकता है। यथा-

तस्मादसक्त: सततं कार्यं कर्म समाचर।

असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुष:।।

भगवान ने अर्जुन से कहा कि वह कृष्ण के लिए युद्ध करें।

7) अहंकार की समाप्ति-

गीता में अस्पष्ट कहा गया है कि समस्त कार्य परमात्मा द्वारा ही होते हैं जिससे मनुष्य स्वयं कर्ता के अहंकार से मुक्त हो सके।

8) कर्म तथा सकाम कर्म का ज्ञान-

कर्म एवं सकाम कर्म के अंतर को जानकर मनुष्य इंद्रियों के वशीभूत नहीं रह जाता वह अपने सही अस्तित्व को जान जाता है वह समझ जाता है कि उसे सारे कार्य भगवान श्रीकृष्ण की सेवा में नियोजित करना चाहिए।

9) आत्म साक्षात्कार-

इन्द्रियों एवं उससे संबंधित रागद्वेष को नियंत्रित करने का संदेश गीता देती है जिसे हम आत्म साक्षात्कार कर सके। यथा-

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ।।

अर्थात् इन्द्रिय तृप्ति शास्त्रों के इन्द्रिय तृप्ति शास्त्रों के यम-नियमानुसार करना चाहिए। अनियंत्रित इंद्रिय भोग ही भौतिक बंधन एवं कष्ट के कारण है।

10) आत्मनियंत्रण-

गीता आत्मा के सही रूप का दर्शन कराती है जिससे मानव आत्म नियंत्रण व अनुशासन में रह सके।

11) काम, क्रोध आदि शत्रु पर विजय-

वर्तमान परिवेश में मानव के वास्तविक चार शत्रु है जो मानव मूल्यों के क्षरण में अपनी अहं भूमिका निभाते हैं। वे हैं काम, क्रोध, लोभ और मोह। गीता हमें इन शत्रुओं पर विजय करना सिखाती है।

12) मानव जीवन की सफलता-

वास्तव में मानव जीवन तभी सफल है जब उसमें मानवता का समावेश हो, कर्म का अहंकार न हो कि सब मैने किया है, मै ही सब कुछ कर सकता हूँ।

भगवान कहते हैं-

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः।।

अर्थात सभी कर्म मुझे समर्पित करते हुए सदैव इसी विसर्जन भाव से कर्म करना मनुष्य की विवेकशीलता का परिचायक है।

उपरोक्त श्लोक में व्यक्तित्व नाश के तीन स्रोत बताए गए हैं- नीराशी: निर्ममो भूत्वा अर्थात बिना किसी ममता के उद्‌गिन रहित होकर अपने कार्य का संपादन किया जाए। मन को भूतकाल के पश्चाताप से अशांत होने देना, अपने अंदर ममता का विकास होने देना, वर्तमान में उद्‌गिनता द्वारा शक्तियां को नष्ट करना हमारे स्वभाव में आ गया है।

इस प्रकार इस तनाव युक्त वातावरण में जब हमसे तमाम कर्तव्यों की अपेक्षा की जाती है तब हमारा उद्‌गिन होना स्वभाविक है ऐसे में भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों को साधकर शांत गंभीर बने रहकर समर्पण भाव से कर्म करना ही हमारा धर्म होना चाहिए। मानव जीवन में निरंतर युद्ध सामने आता रहता है यह युद्ध हमारे अंतर्जगत में मनोविकारों के विरुद्ध भी चल रहा है। जीवन के उतार चढ़ाव में विभिन्न समस्याएं जन्म लेती है। जिसमे मानव मन की उद्‌गिनता, संक्षोभ, विक्षोभ असफलता को जन्म देते हैं परंतु यदि अपनी शक्ति का प्रयोग सकारात्मक दिशा में अंतर्जगत को व्यवस्थित करके बुराइयों से संघर्ष करने में, उनके विरुद्ध युद्ध करने में यदि प्रयुक्त किया जाए तो संसार के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास का मार्ग प्रशस्त होगा।

गीता की 31वें व 32वें श्लोक में सफलता एवं असफलता के सूत्र बताए गए हैं जो जीवन के लिए अति उपयोगी है। यथा-

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः।।

अर्थात जो दोष दृष्टि से रहित और श्रद्धायुक्त होकर मेरे इस मत का सदा अनुसरण करते हैं वे भी संपूर्ण कर्मो के बंधनों से छूट जाते हैं। अर्थात उन्हें कर्म फल नहीं भोगना पड़ता है परंतु जो मनुष्य मुझमें दोषारोपण करते हुए मेरे इस मत के अनुसार नही चलते उन मूर्खो को तू सम्पूर्ण शानों में मोहित और नष्ट हुआ जान।

भगवान ने अर्जुन से कहा यदि जीवन संग्राम में सफलता प्राप्त करना है तो एक ही राजमार्ग है किसी महान आदर्श के प्रति अपना समर्पण एवं अपना हृदय उसी के विचारों से भरकर श्रेष्ठता के साथ कर्मों का संपादन। क्योंकि कर्मो के श्रेष्ठ संपादन से ही मानव सत्कर्म करता हुआ श्रेष्ठता को प्राप्त करता है। उसके लिए कर्म ही पूजा है।

कर्म की श्रेष्ठता को तुलसीदास ने भी व्यक्त किया है-

कर्म प्रधान विश्व कर रखा।
जो जस करै सो तस फल चाखा।।

अर्थात उचित कर्म के द्वारा मानव इस संसार को स्वर्ग बना सकता है, संबंधों व विचारों की पवित्रता को संभालकर रख सकता है जिससे हम अपने मूल्यों को संरक्षित एवं सुरक्षित रख सकते हैं।

गीता के अनुसार मनुष्य जीवन में एक स्थिति ऐसी आती है जब उसकी आसक्ति समाप्त हो जाती है वह निर्लिप्त भाव से कर्म करता है और तभी वह कर्म बंधन से मुक्त हो जाता है।

अंत में हम यह कह सकते हैं कि गीता के कर्म संदेश से वर्तमान में मानव मूल्यों को बचाया जा सकता है एवं एक पवित्र समाज की पुर्नस्थापना की जा सकती है यदि हम गीता के बताए मार्ग का अनुसरण करें। कहा गया है-

"निन्दा प्रशंसा एक सी, सम्मान अरु अपमान हो।
ऐसा जिसे आभास है इच्छा बिना ही मुक्ति है।"

इस भाव के समावेश होते ही मनुष्य सारे बंधनों एवं कष्टों से मुक्त हो जाता है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. अखंड ज्योति 1993 पृष्ठ 14
2. युग निर्माण योजना फरवरी 2003
3. गीता 9/32 अध्याय
4. भारतीय दर्शन की रूपरेखा पृष्ठ 119-151 - एम. हिरयन्ना
5. भारतीय धर्म और दर्शन पृष्ठ 63 - डॉ शोभा सत्यदेव
6. The age of imperial unity page-441
7. वही 12/11
8. सुभाषित रत्न भडागर 25
9. महाभारत व.प.21216
10. यथार्थ गीता 86 श्लोक - स्वामी अड़गड़ानंद

पुराणों का स्वरूप एवं सांस्कृतिक महत्व

डॉ० सुम्बुला फिरदौस

बी-28 अशोक नगर एक्सटेंशन, पत्रकार कालोनी, प्रयागराज-211001

सारांश

प्राचीन भक्ति ग्रन्थों के रुप में पुराण बहुत महत्वपूर्ण माने जाते हैं। पुराण भारतीय संस्कृति के आधार हैं। पुराणों को मनुष्य के भूत, भविष्य, वर्तमान का दर्पण कहा जा सकता है। सूर्य के प्रकाश की भांति पुराण को ज्ञान का स्रोत माना जाता है। एक प्रकार से भारतीय सभ्यता, संस्कृति, राजनीति, भूगोल, इतिहास आदि का विश्वकोश कहा गया है। पुराण सभी वेदों, उपनिषदों का सार है। पुराणों में आरम्भ से अन्त तक का विशद वर्णन प्रस्तुत किया गया है। अठारह पुराणों में अलग-अलग देवी-देवताओं को केन्द्र मानकर पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म, कर्म और अकर्म की गाथाएँ कही गई हैं। भारतीय जीवन को जीवन रस, जीवन शैली, जीवन व्यवहार तथा लोक व्यवहार और लोक जीवन का व्यवस्थित स्वरूप पुराणों ने दिया है। इनमें भूगोल, गणित, ज्योतिष, विवाह, मृत्यु, शकुन, विद्या, वस्तुविधा, दिनचर्या, नीति शास्त्र, युद्ध विधि, आयुर्वेद का महासागर है। इनसे भारतीय दर्शन, भारतीय चितन तथा भारतीय आध्यात्मिक विचार प्रणाली निर्मित हुई।

पुराणों का स्वरूप एवं सांस्कृतिक महत्व

पुराण का शाब्दिक अर्थ प्राचीन आख्यान हैं प्राचीन कथाओं का संकलन होने के कारण इन्हें पुराण कहा गया हैं। महाभारत में प्राचीन आख्यानों को पुराण कहा गया है। पाणिनी पुरा शब्द से ट्यु प्रत्येय का विधान करेक तथा निपातनात् तुडागम के अभाव से पुराण शब्द की व्युत्पत्ति करते हैं। यास्कराचार्य के अनुसार जो प्राचीन होकर भी नवीन होता उसे पुराण कहते हैं। मानवीय मूल्यों के अनुस्तरण, अनुरक्षण तथा पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय दायित्वों का निर्वहन भारतीय साहित्य की विशेषता रही है। पुराणों की प्रामाणिकता के कारण पुराणों को वेद सृदश कहा गया है। कतिपय पुराण ग्रन्थों में पुराणों को वेद से भी प्राचीन कहा गया है। प्राचीन कथानको का वर्णन करना तथा उनके माध्यम से श्रोताओं के चित्त को पापात्मक प्रवृत्ति से हटाकर पुण्यात्मक प्रवृत्ति की ओर अग्रसर करना पुराण का मुख्य तात्पर्य है। शतपथ ब्राह्मण में पुराणों को वेद सृदश कहा गया है। उपनिषद तथा नात् सूत्रों में पुराण शब्द का उल्लेख ग्रन्थ के रुप में है। महाभारत के अध्ययन से पता चलता है कि इसके वर्तमान स्वरूप को प्राप्त करने के पूर्व ही पुराण ग्रन्थ अस्तित्व में आ गए थे। हरिवंश तथा वायुपुराण के अनेक अंश परस्पर मिलते हैं। पुराण विश्वविधा के कोश हैं।

पुराण का मुख्य लक्ष्य जनसाधारण के चित्त का आवर्जन कर धर्म की ओर प्रवत्त कराना है। जीवन के विभिन्न धर्मों तथा रहस्यों को अत्यन्त व्यवहारिक उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट करना पुराणों की ही अपनी विशिष्ट शेली है। अमरकोष तथा शुक्रनीति में पुराण के पाँच लक्षण बताए गए हैं- सर्ग तथा सृष्टि की उत्पत्ति, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित। पुराणों के इन पाँच लक्षणों का कथन लगभग सभी पुराणों में है।

पुराणों की सृष्टि विधा के अनुसार सृष्टि में अठारह तत्व प्राप्त होते हैं- अहत, अहंकार, पंचज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय, मन, पंचमहाभूत। इन्हीं अठारह तत्वों की उत्पत्ति का वर्णन होने के कारण पुराण भी अठारह हैं। अष्टादश कर्म, स्वरूपात्मक यज्ञ का प्रतिपादन करने के कारण पुराणों की संख्या अठारह हुई। अठारह पुराणों में सब मिलाकर चार लाख से भी अधिक श्लोक है। विष्णु पुराण जो सबसे अधिक सुरक्षित समझा जाता है। दस हजार से भी अधिक श्लोक है। प्रमुख अठारह पुराण है- मत्स्य पुराण, मार्कण्डेय, भविष्य, भागवत, ब्रह्माण्ड, ब्रद्धावैवर्त, ब्रह्मा, वामन, वाराह, विष्णु, वायु, अग्नि, नारद, पदम्, लिंग, गरूड़, कूर्म, स्कन्द उन्हें महापुराण कहा जाता हे। इसके अतिरिक्त अठारह उपपुराण है- सनत कुमार, नरसिंह, स्कन्द, शिवधर्म, आश्चर्य, नारदीय, कपिल, वामन, औशनस, ब्रह्माण्ड, वारूण, कालिका, माहेश्वर, साम्ब, सौर, पाराशर, मानीच, भार्गव। अठारह पुराणों में अलग-अलग देवी देवताओं को केन्द्र मानकर पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म, कर्म और अकर्म की भाषाएँ कही गई हैं।

पुराणों के संकलनकर्ता महर्षि लोमहर्ष अथवा उनके पुत्र आश्रवा माने जाते हैं। विष्णु पुराण के अनुसार भगवान वेदव्यास ने आख्यान, उपाख्यान, भाषा और कल्पशुद्धि आदि के साथ पुराण संहिता की रचना की। उसका अध्यापन अपने सुयोग्य, सूजातीय, लोमहर्षण नामक शिष्य को कराया था। लोमहर्षण ने अपने कश्यप वंशीय तीन सुपात्र शिष्यों अक्रतवण सावर्णि को पुराणों को ज्ञान दिया। आगे चलकर इन्हीं की शिष्य परम्परा ने उपपुराण की रचना की।

पुराण सरल, सुबोध, व्यवहारिक भाषा में लिखे गए जनता के ग्रन्थ हैं। जो अलपाक्षरों से स्वतात्पर्य को प्रकट करते हैं। इनमें प्राचीन ज्ञान विज्ञान पशु पक्षी एवं वनस्पति विज्ञान, आयुर्वेद आदि सभी का समावेश मिलता है। पुराण ज्ञान के विश्वकोश है। पुराणों की रचना मुख्यत: संस्कृत में हुई। किन्तु कुछ पुराण संस्कृत में रचे गये हैं।

अधिकांश पुराणों की रचना एक समय में न होकर भिन्न-भिन्न कालों में की गई। महाभारत के अध्ययन से संकेत मिलता है कि पुराण इसके अस्तित्व में आ गए थे। पुराणों की रचना का काल निर्णय एक विषम समस्या है। जिसका समाधान नितान्त कठिन है। इसका कारण अवान्तर शताब्दियों में पुराणों का संस्कार एवं प्रति संस्कार माना जाना चाहिए। चौथी-पाँचवीं शताब्दी ई0पू0 तक पुराण अस्तित्व में आ गए थे। वर्तमान पुराण प्राचीन नहीं हैं इनकी रचना

गुप्तकाल के बाद की नहीं हो सकती। ये वैदिक काल में बहुत समय बाद के ग्रन्थ हैं। वेदों के चतुर्भ वर्गीकरण की भाँति पुराणों का भी पंचम वेद के रूप में अलग विभाजन उनकी रचना के बहुत बाद हुआ। लगभग श्रुतिकाल से लेकर बारहवीं शताब्दी तक इनकी रचना संक्षिप्त संस्करण, सम्पादन और संकलन होता गया। पार्जिटर महोदय का मत है कि पुराण मूल रूप से ईसवी सन् की प्रारम्भिक शताब्दी के बाद नहीं हो सकते हैं। पुराणों में अग्निपुराण सबसे प्राचीन है। अग्निपुराण का समय इतिहासकारों ने चौथी शताब्दी या उससे पहले का बताया है। डॉ0 हाजरा ने कालक्रम में प्राचीनतम पुराणों में मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड, विष्णु, मत्स्य, भागवत, कूर्म की गणना की हैं लोकमान्य तिलक का तमत है कि उनका समय ईस्वी सन् दूसरे शतब के बाद का कदाचित नहीं हो सकता है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण का संभावित काल बूलर ने सातवीं शताब्दी बताया है जो कि कश्मीर में रचा गया। नृसिंह पुराण की रचना 400-500 ई0 के बीच हुई। पुराणों की रचना का काल निर्णय एक विषम समस्या है। जिसका समाधान नितान्त कठिन है। इसका कारण अवान्तर शताब्दियों में पुराणों का संस्कार तथा प्रतिसंस्कार माना जाना चाहिए।

पुराणों में पर्याप्त लौकिक विषयों का प्रतिपादन किया गया है। स्तुति, उपवास, उपासना, तीर्थ, वृत, चिकित्सा शास्त्र, व्याकरण, विविध दर्शन आदि विषय पुराणों में विवेचित हुए हैं। पुराण का लक्ष्य जनसाधारण के चित्ता का आवर्जन कर धर्म की ओर प्रवत्त करना है। संसार की अनित्यता तथा परस्पर संयोग वियोग, जीवन मृत्यु के अद्भुत दर्शन को पुराण अपने विशिष्ट शैली में व्याख्यापित करता है। कर्म के सिद्धान्त को समझाने के लिए पुराण कृषक को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करता है। जीवन के प्रत्येक अवसर के लिए भरपूर सामग्री इसमें उपलब्ध है। पुराणों का धार्मिक सामाजिक महत्व होने के साथ ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण है। सभी पुराणों में स्कन्द पुराण वृहत्काय है। वामन पुराण विष्णु से सम्बद्ध है। कर्म पुराण मतें लक्ष्मी, पार्वती के गुणों में समरूपता मानी गई है। मत्स्य पुराण में मत्स्य के साथ मन के संवाद का वर्णन है। गरूड़ पुराण का मृत्यु के बाद शाद्ध के समय पाठ किया जाता है। मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड, वायु, विष्णु, भागवत, पदम, नारदीय, आग्नेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त लिंग, बराह, स्कन्द, वामन, गरूड़, कुर्म और मत्स्य प्राचीन पुराण है। शेष बाद की रचनाएँ हैं। अथर्ववेद में पुराणों का उल्लेख होने से इसकी प्राचीनता स्वत: सिद्ध होती हैं।

संसार की अनित्यता तथा परस्पर संयोग वियोग, जीवन मृत्यु के अद्भुत दर्शनको पुराण अपनी विशिष्ट शैली में व्याख्यापित करता है। ब्राह्य, शैव, वैष्णव, शाकत, सौर तथा आहत् इन छ: प्रकार के दर्शनों का भी परिचय दिया गया है। पुराणों में सामान्य बुद्धि के मनुष्यों के लिए मंदिर, तीर्थ, आदि का माहात्म्य पूर्ण आत्म ज्ञानियों के लिए अक्षर तत्व और रस का निरूपण कर दिया गया है। सांख्य दर्शन का इनमें परिचय मिलता है। दया, दान, अतिथि, सेवा, सर्वधर्मसमभाव, उदार, दृष्टि, व्रत के प्रति निष्ठा इत्यादि मानव गुणों का प्रकाशन कथाओं के द्वारा किया गया है।

पुराणों में देवी देवताओं की स्तुतियाँ और महात्मा वर्णन में अतिश्योक्ति का बाहुल्य देखने को मिलता है। धर्म की हानि होने पर सर्वशक्तिमान देव विविध रूपों के अवतार लेकर पृथ्वी का भार ग्रहण करते हैं। वैदिक धर्म का अवतार लेकर पृथ्वी का भार ग्रहण करते हैं। वैदिक धर्म का उपब्रह्मण पुराणों के द्वारा किया गया है। वैदिक धर्म में इष्ट की प्रमुखता है तो पौराणिक धर्म में पूर्व का आग्रह है। वैदिक धर्म को लोकप्रिय पुराण ने ही बनाया है। अत: पुराणों में परम्परागत तथ्यों का उल्लेख मिलता है। चाहे वे कितने ही विकृत रूप से क्यों न हो। किसी देवता या देवी की उपासना का विधान बताकर इनके प्रति शंका तथा भक्ति पर पुराणों में बल दिया गया है। ब्रह्य, विष्णु तथा शिव की उपासना का विशेष महत्व विविध पुराणों में अंकित है। व्रतों, उपवासों के फल दिखाकर पुराणों में जनसामान्य को धार्मिक बनाने का प्रयास किया गया है। पद्य पुराण में अनेक विषयों के साथ विष्णु भक्ति के अनेक पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। इसका विकास पाँचवीं शताब्दी माना जाता है। शिव का वर्णन वायु पुराण में किया गया है। इस कारण इसे शिव पुराण कहा गया है। विष्णु परम देवता के रूप में निरूपण विष्णु पुराण में है। पुराण के पाँचों लक्षण इसमें घटते हैं। वैष्णवों के उत्सव एवं व्रतों का वर्णन नारद पुराण में है। विष्णु के कूर्म अवतार का वर्णन कूर्म पुराण में है। विष्णु के वराह अवतार का वर्णन वराह पुराण मे है। श्री कृष्ण के चरित्र का वर्णन ब्रह्मवैवर्त पुराण में है। इसमें जीवन के सम्बद्ध पाप, पुण्य, धर्मनीति का वर्णन है। श्रीकृष्ण की भक्ति के विषय में वर्णन भागवत पुराण में है। भागवत पुराण सर्वाधिक प्रचलित पुराण है। इसे सभी दर्शनों का सार कहा जाता है। शिव की उपासना का वर्णन लिंग पुराण में है। शिव के पुत्र स्कन्द के नाम पर स्कन्द पुराण है। यह सबसे बड़ा पुराण है। इन्द्र, अग्नि, सूर्य आदि वैदिक देवताओं का वर्णन मार्कण्डेय पुराण में है। यह प्राचीनतम पुराण माना जाता है। अग्निपुराण को भारतीय संस्कृति और विधाओं का महाकोश माना जाता है। इसमें विष्णु के अवतारों का वर्णन है। शिवलिंग, दुर्गा, गणेश, सूर्य का भी उल्लेख है। वामन पुराण में चार संहिताएँ हैं- माहेश्वरी, भगवती, गौरी, गणेश्वरी। पदम पुराण वैष्णव भक्ति से सम्बन्धित सबसे बड़ा पुराण है। श्रीमद्भागवत् पुराण भक्ति भावनाओं का विशेष आकलन है। यह बहुत प्रसिद्ध और भक्तों का प्रिय पुराण है।

भारती के प्राचीन इतिहास का विस्तृत भाग इन पुराणों में सुरक्षित है जो भारतीय जीवन के क्रमिक विकास धारा का अध्ययन करने में अत्यन्त उपादेय है। पुराणों में ऐतिहासिक स्तर पर कुछ विशेष सामग्री देखने को मिलती है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र पुराणों के अस्तित्व से प्रभावित जान पड़ता है। कौटिल्य के अनुसार कुमार्ग पर चलने वाले राजपुत्रों को पुराणों की शिक्षा से सन्मार्ग पर लाया जा सकता है। पुराणों में ऋषियों एवं राजाओं के वृत्तान्त आदि है। महापुराण में ऋष्यश्रृंग का जो आख्यान वर्णित है। लूडर्स का विचार है कि यह महाभारत में प्राप्त होने वाले आख्यानों से प्राचीनतर है। वायु पुराण में गया में गयासुर की तपस्या तथा यज्ञ का वर्णन है। भगवान नरसिंह ने हिरण्यकशिपु का वध करके प्रहलाद की रक्षा की। गन्धारी और धृतराष्ट्र के एक सौ पुत्रों की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। मार्तण्ड का परिचय, राजा सागर तथा नके वंश की कथा, चन्द्रवंश का वर्णन, उर्वशी पुनुरूवा की कथा बहुत ही रोचक ढंग से प्रस्तुत की गई है। महाभारत में कतिपय पुराणों के उपाख्यानों का ज्यों-त्यों वर्णन मिलता है। सूत्र ग्रन्थों में पुराण ग्रन्थों के उद्धरण मिलते हैं। उपनिषद ग्रन्थों में वेदों के साथ इतिहास पुराण का उल्लेख किया गया है। पंचम वेद के रूप में इसे स्वीकार किया गया है। इनमें ऐतिहासिक दृष्टि से वंशानुचरित का विशेष महत्व है। अठारह पुराणों में केवल पाँच पुराण मत्स्य, वायु, विष्णु, ब्रह्माण्ड, भागवत में राजाओं की वंशावली पाई जाती है। मौर्य वंश के लिए विष्णु पुराण, सातवाहन वंश के लिए मत्स्य पुराण महत्व के है। वायु, भविष्य और भागवत पुराणों में गुप्त वंश का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। विद्वानों की राय है कि गुप्त शासन की सर्वथा अनुकूल परिस्थितियों को पाकर उस समय पुराणों का संस्करण हुआ। वायुपुराण में गुप्त वंश की साम्राज्य सीमा का वर्णन तथा गुप्त वंश की शासन पद्धति का विवरण प्राप्त होता है। ऐतिहासिक तथ्यों के संग्रह में इतिहासवेत्ता स्मिथ, भण्डारकर तथा मजूमदार ने पुराणों की मदद ली है। शतपथ ब्राह्मण ने

पुराण को वेद कहा गया है। छान्दोग्य उपनिषद में इतिहास तथा पुराण को संयुक्त रूप से नारद ने पंचम वेद कहा है। विष्णु पुराण में भविष्य की घटनाओं का वर्णन है। मार्कण्डेय पुराण में ब्रह्मावादिनी मदालसा तथवा अनसूया के चरित्र का वर्णन है।

पुराणों में विभिन्न कथाओ के बीच अध्यात्म, ब्रह्मज्ञान, विज्ञान, चरित्र, नीति आदि को सर्वोच्च तत्व मिले जुले दिखाई पड़ते है। इनमें धार्मिक तत्वों के साथ सामाजिक विषयों का विवेचन बहुत अधिक परिमाण में मिलता है। इनमें ग्रहस्थ, त्यागी, सन्यासी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, स्त्री शूद्र के धर्म एवं कर्तव्यों का वर्णन किया गया है। ब्राह्मण धर्म, वर्णाश्रम धर्म आदि विषयों का वर्णन है।

विण्टरनिट्ज के अनुसार इतिहास वेद की पृथक से पुस्तक नहीं थी अपितु अध्ययन के साधन थे। ऋग्वेद में कई स्थानों पर पुराण शब्द का प्रयोग हुआ है। अथर्ववेद में दो मन्त्रों में पुराण शब्द मिलते हैं। गोपथ ब्राह्मण में ब्राह्मण, उपनिषद, कल्प आदि के साथ पुराण भी वेदांग के रूप में मान्य है। उत्तर वैदिक काल में इतिहास और पुराण स्पष्ट रूप से प्रकाश में आए। इतिहास को पुराण, इतिवृत्त, आख्यान, धर्मशास्त्र तथा अर्थशास्त्र कहा गया है। महापुराण में पुरातन को पुराण वर्णित किया गया है। भागवत पुराण के पाँचवें स्कन्ध के प्रथम छः अध्यायों में ऋषभ देव के वंश, जीवन तथा तपश्चरण का वृत्तान्त उपलब्ध है। पद्मपुराण में राम का चरित्र वर्णित है। इनमें रामायण की असम्भव प्रतीत होने वाली घटनाओं की बौद्धिक व्याख्या की गई है।

पुराण, धर्मशास्त्र छः वेदांग एवं चार वेदों का चौदह प्रमुख विधाओं में स्थान है। पुराण भी विकासशील साहित्य रहा है। अष्टादशः महापुराणों के अध्ययन से विदित होता है कि इनका विषय एवं निर्माण शैली और उनकी पाठ्य विधि आदि बहुत सारी बातों में एकता है। पुराणों में आज जो विभिन्नता दिखाई देती है उसका कारण उनके प्रवर्तक विभिन्न सम्प्रदाय के थे। पुराणों में औषधि विज्ञान, साहित्य और कला सम्बन्धी विवेचन, गृह निर्माण शास्त्र, संगीत रत्न, विज्ञान और विविध विषयों की चर्चा की गई है। अग्निपुराण में तो विविध विषयक ज्ञान इतना अधिक संग्रह किया गया है कि लोग इसे प्राचीन काल का विश्वकोश कहते हैं। यास्क के निरूक्त में वर्णन है कि जो प्राचीन होकर भी नवीन है वह पुराण है। भविष्य पुराण में चौदह हजार श्लोक है। साहित्यिक दृष्टि से पुराणों का महत्व इसलिए भी ज्यादा है कि भारतीय काव्य ग्रन्थों के लिए यह उपजीव्य है। भारतीय भाषाओं में काव्य रचना करने वाला शायद ही कोई प्रख्यात कवि हैं जिसने पौराणिक इतिवृत को अपने काव्य में स्थान नहीं दिया है। अथर्ववेद में चारों वेदों के साथ पुराण का उल्लेख हुआ है जो किसी प्राचीन कथा का नहीं वरन ग्रन्थ का द्योतक है। जिसके अनुसार पुराण का अविर्भाव ऋक, साम, छन्द और यजुस् के साथ ही हुआ था। कुछ पुराणों में व्याकरण, काव्य शास्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद, शरीर विज्ञान, और शास्त्रीय तथा वैज्ञानिक विषयों का संकलन है।

पुराणों का भूगोल काल्पनिक नहीं है। कुछ पुराणों में सृष्टि के आरम्भ से अनत तक का विवरण दिया गया है। ब्रह्मपुराण में सृष्टि, मनु की उत्पत्ति, उनके वंश का वर्णन, देवों तथा प्राणियों की उत्पत्ति का वर्णन है। इस पुराण में विभिन्न तीर्थों का वर्णन है। ब्रह्मपुराण में उड़ीसा के कोणार्क तीर्थ का विवरण हे। अग्निपुराण में कृषि सम्बन्धी विवरण दिया गया है। समस्त ब्रह्माण्ड का वर्णन ब्रह्माण्ड पुराण में है। भारतीवर्ष के पर्वतों, नदियों, विविध तीर्थस्थलों का वर्णन पुराणों में मिलता है। भारत के पर्वतों, नदियों, विविध, तीर्थस्थलों का वर्णन पुराणों में है। पुराणों में भारतवर्ष की अस्मिता, सांस्कृतिक प्रभाव और भौगोलिक सीमाओं का वर्णन किया गया है। विभिन्न पुराणों में प्राचीन विश्व की भौगोलिक स्थिति का वर्णन करते हुए भारतवर्ष की भौगोलिक सीमा, सांस्कृतिक विरासत, विभिन्न भाषाएँ, परम्पराओं प्रान्तरों वाले विशाल भू-भाग, भारतवर्ष की शोभा का वर्णन है। भारतवर्ष के जिन पर्वतों, नदियों, सरोवरों, तीर्थों तक सागरों का वर्णन किया गया है वे आज भी भारतीय उपमहाद्वीप में वर्तमान है।

पुराणों में भारत की सत्य और शाश्वत आत्मा निहित है। इन्हें पढ़े बिना भारत का सत्य एवं शाश्वत इतिहास सामने नहीं आ सकता। वस्तुतः पुराणों में इतिहासकारों को सर्वथा यह असन्तोष रहा कि ये तिथि परक नहीं है तथा कल्पना घटनाओं से परिपूर्ण है। तथापि प्राचीन भारत के इतिहास लेखन में पुराणों नहीं नकारा जा सकता है। जीवन के विभिन्न रहस्यों अत्यन्त व्यवहारिक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करना पुराणों की विशिष्ट शैली है। वस्तुतः मनुष्य के जीवन निर्वाह में पुराण का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। इसी कारण इसमें जनसाधारण की शंका आज भी यथावत अक्षुण्य है।

सन्दर्भ

1. के0सी0 श्रीवास्तव : प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति-इलाहाबाद-1994
2. प्रीती प्रभा गोयल : संस्कृत साहित्य का इतिहास- पृष्ठ 199 जोधपुर-2016
3. अयोध्या नाथ त्रिपाठी : इतिहास के निहितार्थ एवं प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन-पृष्ठ 107 सुल्तानपुर-2010
4. इतिहास पुराणों का परिचय : महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय-2016
5. मत्स्य पुराण : सम्पा0-प0 श्रीराम शर्मा आचार्य-पृष्ठ 11 बरेली 1999
6. रामबिलास चौधरी : संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
7. डॉ0 सुषमा कुमारी : संस्कृत साहित्य का इतिहास-पृष्ठ 37-दिल्ली-2015
8. वायु महापुराण : अनुवाद-राम जी शर्मा इलाहाबाद
9. अयोध्या नाथ त्रिपाठी : इतिहास के निहितार्थ एवं प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन-पृष्ठ 107
10. मत्स्य पुराण : सम्पादक- श्रीराम शर्मा बरेली
11. जिनसेन : महापुराण-काशी-1963-पृष्ठ 1/2
12. डॉ0 देवी प्रसाद मिश्र : जैन पुराणों का सांस्कृतिक अध्ययन पृष्ठ 1-10 इलाहाबाद-1988
13. बलदेव उपाध्याय : पुराण विमर्श- पृष्ठ 70 वाराणसी-1965
14. उमा शंकर ऋषि : संस्कृत साहित्य का इतिहास- पृष्ठ 176 वाराणसी-2019
15. इतिहास पुराणों का परिचय : महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय-सतना-2016

चौतन्य केन्द्रों पर मंत्र साधना का प्रभाव

सायर बोथरा

शोधार्थी, योग एवं जीवन विज्ञान विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं, (राज.)

भारतीय परंपरा अध्यामवादी परंपरा है। अत: आत्म संबंधी खोज हेतु, भीतरी शक्तियों से परिचित होने हेतु, रहस्यों के उद्घाटन हेतु, प्राण शक्ति के विकास हेतु, चेतना के विकास हेतु आदि अनेक ऐसे कारण हैं जो जिज्ञासु साधकों को इस ओर आकर्षित करते रहे हैं। प्राचीन काल से ही शरीर को प्रयोगशाला बनाकर अनेक खोजें हुई, अनेक रहस्यों का उद्घाटन हुआ। इसके लिए अनेक साधना विधियों का उपयोग किया गया। इनके अभ्यास का कायिक, वाचिक तथा मानसिक स्तरों पर विशेष प्रभाव पड़ता है जिसकी पुष्टि विज्ञान भी करता है। इन्हीं साधना विधियों में एक है मंत्र साधना। इसके अंतर्गत अक्षरों तथा शब्दों का उच्चारण होता है और एक अवधि विशेष तक इसका जप किया जाता है। कहा जाता है कि प्रत्येक अक्षर का, प्रत्येक शब्द का अपना एक विशेष अर्थ होता है। बार-बार इसके जप से उसकी शक्ति जाग्रत होती है। अत: मंत्र साधना के लिए भी शरीर के अनेक चक्रों, केन्द्रों को उपयोगी माना गया है। चौतन्य केंद्र जो चेतना के सघन स्थान है, उन पर मंत्र साधना का अपना विशेष स्थान है जिसके अनेक परिणाम बताए गए हैं। अत: प्रस्तुत लेख में चौतन्य केंद्रों पर मंत्र साधना के प्रभाव को देने का प्रयास किया गया है।

कुंजी शब्द: मंत्र, चौतन्य केंद्र, चक्र, मंत्र साधना।

मंत्र का स्वरूप

अक्षरों या शब्दों का संयोजन मंत्र है। का भी है कि अक्षरो के संयोजन विशेष का नाम मंत्र है। शब्द शुा के अनुसार 'मन्त्रि गुप्त माणसे' से मंत्र शब्द का है। जिसका अर्थ है गुप्त मासण और सहस्य की साधना। निरुक के अनुसार 'मननात् इति मंत्र:' से यह ध्वनित होता है जो कि बात मनन करने योग्य है वह मंत्र-शक्ति का रूप है। शब्द शुा के अनुसार मंत्र शब्द 'मन्' धातु में 'त्र' प्रत्यय लगाने से बना है। जिसका अर्थ है 'मन्यते ज्ञायते-आत्मादेशोऽनेन इति मंत्र:' अर्थात् जिसके द्वारा आत्मा का ज्ञान किया जाए वह मंत्र है।[1] शिव-सूत्र विमर्शिनी में कहा है- चित्तं मंत्र:-बाह्य विषयों से संक्षिप्त चित्त ही मंत्र है।[2] मंत्र वह शक्ति जिसके द्वारा शारीरिक, दैविक, मानसिक और आध्यात्मिक चारो प्रकार के रोग मिटाये जा सकते हैं।[3]

मंत्र साधना की तीन अवस्थाएं बताई गई हैं- विकल्प- विचारात्मक, संजल्प- आंतर्जल्प और विमर्श- निर्विकल्पक ज्ञान। विकल्प प्रारम्भिक अवस्था है। संजल्प की अवस्था में मंत्र का बार-बार मानसिक उच्चारण होता है। उससे मंत्र की अर्थात्मा स्पष्ट होती जाती है। संजल्प का अभ्यास करते-करते मंत्र देवता के साथ अभेद प्राणिधान हो जाता है। उस अवस्था में ध्येय का साक्षात्कार हो जाता है। वह मंत्र की निर्विकल्प अवस्था है।[4] इसी प्रकार मंत्र शुा के तीन स्तम्भ हैं- जल्प, संजल्प, विमर्श। मंत्र के तीन तत्व हैं - शब्द, संकल्प और साधना मंत्र का पहला तत्व शब्द। शब्द मन के शवों का वहन करते हैं। भाव शब्द के वाहन पर पढ़कर यात्रा करते हैं। मंत्र का दूसरा तत्व है- संकल्प। मंत्र साधक की संकल्प शक्ति दृढ़ होनी चाहिए। मंत्र का तीसरा तत्व साधना। साधना में निरन्तरता व दीर्घकालिता (यानि जब तक मंत्र का जागरण न हो, जो मंत्र शब्दमय या वह एक ज्योति के रूप में प्रकार न हो जाए, तब तक साधना चलती रहे।) दोनों अपेक्षित हैं।[5]

मंत्रों के प्रकार

मंत्रों के एक नहीं अपितु अनेक प्रकार हैं। मंत्र साहित्य में मुख्यत: 9 प्रकार प्राप्त होते हैं- स्तंभन मंत्र, मोहन मंत्र, उच्चारण मंत्र, वशीकरण मंत्र, सृम्भणमंत्र, विद्वेसण मंत्र, मारण मंत्र, शांति मंत्र और पोस्टिक मंत्र।[6] इसी प्रकार अन्य मंत्रों के प्रकार हैं- मंत्र, पुरुष मंत्र, नपुंसक मंत्र, सिद्ध मंत्र, साध्यमंत्र, सुसिद्ध मंत्र, पिण्ड मंत्र, कर्तरी मंत्र, बीजमंत्र, माला मंत्र, मारक मंत्र, उच्चारक मंत्र सात्विक मंत्र, राजस, तामस मंत्र।7

मंत्र साधक की योग्यता

किसी भी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए साधक में कुछ योग्यताओं का होना आवश्यक हो जाता है। मंत्र साधना के लिए भी यही बात लागू होती है। अत: कहा गया है कि साधक को ब्रह्म मुहर्त में उठने का अभ्यास होना चाहिए। लम्बे समय तक मौन व एकासन में बैठने का अभ्यास होना चाहिए। सकारात्मक विचार होने चाहिए। कोई तरह का व्यसन नहीं होना चाहिए व आलस्य का त्याग होना चाहिए। गुरु के प्रति श्रद्धा, मंत्र के प्रति आस्था व दृढ़ संकल्प होना चाहिए। धैर्यवान व तीनों संख्या जप करने का अभ्यास होना चाहिए। साधक जिस भी मंत्र का जप करे, उसके अर्थ का बोध होना चाहिए।

भैरव पद्मावती कल्प में मंत्र साधक की योग्यताओं का विश्लेषण करते हुए लिखा है–

निर्णित मदनाटोपः, प्रशमितकोपो विमुखिविकधालापः देव्यार्चनानुरक्तो, जिनपदश्क्तो श्वेन् मंत्री।।

गुरुजनहितोपदेशो, गततन्द्रो निद्रया परिव्यक्तः।

परिमित शेजनशीलः स स्यात् आराधको देव्यः।।

जिसके मानसिक विचार शान्त होते हैं, जो वाकशक्ति का दुरुपयोग नहीं करता, जिनेन्द्र शांसन में जिसका अटूट अनुराग है, जो संतुलित और सात्विक भोजन का अभ्यासी है और जो निद्रा विजय की साधना में सफल हो गया है, वह कठोर साधना से प्राप्त होने वाली सिद्धि को भी आसानी से प्राप्त कर लेता है।[8] साधक के लिए स्वर ज्ञान का होना परम आवश्यक है क्योंकि स्वर विद्या वह चाबी है जो साधना के अज्ञात दरवाजों को खोल सकती है। स्वर के साथ किया हुआ मंत्र-जप विशेष लाभप्रद होता है।

मंत्र साधना हेतु आवश्यक नियम

मंत्र-साधना काल में निम्नोक्त 8 शुद्धियों का होना आवश्यक माना जाता है[9]–

1. द्रव्य शुद्धि – विशुद्ध भावना पूर्वक मंत्र जपना
2. क्षेत्र शुद्धि – एकान्त, कोलहाल रहित, मक्खी-मच्छर शून्य स्थान
3. समय शुद्धि – प्राप्तः एवं संध्या के समय कम से कम 45 मिनट तक जाप
4. आसन शुद्धि – काएट पट, शिला पट्ट, शुद्ध भूमि तथा समशीतोष्ण स्थान में किसी एक आसन पर बैठकर माला जपना।
5. विनय शुद्धि – उच्चारण शुद्धि तथा जिस मंत्र का जाप किया जा रहा है, उसके प्रति परम प्रीतिभाव
6. मनःशुद्धि – दूषित वासनाओं का शोधन करके मानसिक एकाग्रता का अभ्यास करना
7. काय शुद्धि – शौचादि क्रियाओं से निवृत होकर शुद्धतापूर्वक मंत्र जपना
8. वचन शुद्धि – लयपूर्वक शुद्ध – लयपूर्वक शुद्ध उच्चारण से जपना।

चौतन्य केंद्र

भारत अध्यात्म प्रधान देश है। यहां ऋषि-मुनियों ने योग साधना से अनेक ऋद्वि, सिद्धि एवं शक्तियों को प्राप्त किया जिनके बीज सूत्र सभी परंपराओं में मिलते हैं। आचार्य महाप्रज्ञ वर्तमान युग के तत्ववेत्ता, ने प्राचीन श्रुाों (आवश्यक निर्युक्ति, कायोत्सर्ग, आचारांग सूत्र, नन्दी सूत्र) का दोहन कर उसमें उपलब्ध जैन ध्यान पद्धति के बीज सूत्र संग्रह किये और उन्हें सन् 1975 में प्रेक्षाध्यान पद्धति के रूप में उद्घाटित किया। प्रेक्षाध्यान पद्धति के मुख्य 8 अंग हैं- कायोत्सर्ग, अन्तर्यात्रा, श्वास प्रेक्षा, शरीर प्रेक्षा, चौतन्य केन्द्र प्रेक्षा, लेश्या ध्यान, भावना और अनुप्रेक्षा। चौतन्य केन्द्र प्रेक्षा, प्रेक्षाध्यान का एक प्रमुख अंग है। हमारे शरीर में कुछ ऐसे स्थान हैं जहां चौतन्य दूसरे स्थानों की अपेक्षा अधिक सघन होता है। उन्हीं सघन प्रदेश को योग के प्राचीन आचार्यो ने चक्र कहा है। विज्ञान की भाषा में जैव विद्युत क्षेत्र (ठपवमसमजतवउमहंदजपबपिमसक) भी कहा जाता है। ग्रन्थि तंत्र को इन केन्द्रों का संवादी तंत्र माना जाता है। चौतन्य केन्द्र को परिभाषित करते हुए कहा है कि बहुश्रिात्मप्रदेशेःअधिष्ठिताःदेहावयवा मर्म-अर्थात् शरीर में जो-जो अवयव अत्यधिक आत्म प्रदेशों से अधिष्ठित हैं, वे मर्म स्थान कहलाते हैं। वे ही मर्म स्थान चौतन्य केन्द्र कहलाते हैं।[10] प्रेक्षाध्यान पद्धति में 13 प्रमुख चौतन्य केन्द्रों का चुनाव किया गया है जिनका विवरण निम्न प्रकार है[11]–

क्रम	चौतन्य केन्द्रों के नाम	स्थान	चक्रों के नाम	ग्रन्थियों से सम्बन्ध
01.	शक्ति केन्द्र	मूलाधार चक्र	गोनाड्स (कामग्रन्थि)	पृष्ठ रज्जू के नीचे के छोर पर
02.	स्वास्थ्य केन्द्र	स्वाधिष्ठान चक्र	गोनाइस (कायग्रन्थि)	पेडू (नाभि से चार अंगुल नीचे)
03.	तैजस केन्द्र	मणिपुर चक्र		एडन्नेनल, पेन्क्रियाज नाभि
04.	आनन्द केन्द्र	अनाहत चक्र	थाथमस	हृदय के पास बिल्कुर बीच में
05.	विशुद्धि केन्द्र	विशुद्धि चक्र	थायराइड पेरा-थायराइड कण्ठ के मध्य शग में	
06.	दर्शन केन्द्र	आज्ञा चक्र	पिच्यूटरी	भृकुटियों के मध्य में
07.	ज्योति केन्द्र	सहस्रार चक्र	पाइनियल	ललाट के मध्य में
08.	ब्रह्म केन्द्र		रसनेन्द्रिय	जिह्वा
09.	प्राण केन्द्र		घ्राणेन्द्रिय	नासाग्र
10.	चाक्षुष केन्द्र		चक्षुरिन्द्रिय	आंखों के भीतर
11.	अप्रमाद केन्द्र		श्रोत्रेन्द्रिय	कानों के भीतर
12.	शांति केन्द्र		हाइपोथेलेमस	मस्तिष्क का अग्र भाग
13.	ज्ञान केन्द्र		वृहदमस्तिष्क (कोर्टेक्स)	सिर के ऊपर का भाग (चोटी का स्थान)

चौतन्य केंद्रों पर मंत्र साधना

चौतन्य केंद्रों पर एक नहीं अपितु अनेक प्रकार से मंत्र साधना ही जाती है जिसका अपना भिन्न-भिन्न प्रभाव होता है। कुछ प्रमुख मंत्रों का संबंध चौतन्य केद्रों से है जो निम्न प्रकार हैं-

1. ब्रह्मचर्य विकास मंत्र-देव-दानव-गंधव्वा, जक्ख-रक्ख सकिन्नरा।
   वंश्यारिं नमंसंति, दुक्करं णे करेंति तं।। -रात्रि में सोने से पूर्व इस पद का 21 बार जप करें।
   उसके बाद नीले रंग की धारणा के साथ विशुद्धि केन्द्र पर 'मैं निर्विकार हूँ' 'पवित्र हूँ' इन वाक्यों की पाँच मिनट अनुप्रेक्षा करें।
2. कषाय विजय मंत्र- एगे जिए जिया पंच, पंच जिए जिया दस।
   दसहा उ जिणिताणं सव्व सत्तू जिणामहं ।।
   ब्रह्म मुहूर्त्त में मंगल स्मरण के बाद इस का 11 बार जप। उसके बाद दीर्घ श्वास के साथ ज्योति केन्द्र पर पांच मिनट तक श्वेत रंग का ध्यान।[12]
3. ज्ञान वृद्धि मंत्र: ऐँ नम:
   इस मंत्र को वैशाख शुक्ला दसमी (प. महावीर केवल-ज्ञान दिवस) से प्राप्त करें।[13] ज्ञान केन्द्र पर चमकते हुए पीले रंग में 'ऐं' नम: मंत्र का जप दीर्घ श्वास के साथ 29 दिन तक रोज 13 माला का जप करना। बताया गया है।
4. संयम शक्तिवर्धक मंत्र -ओम ह्रीँ अर्ह नम:।
   दर्शन केन्द्र पर अरूण रंग के साथ यह अनुचिन्तन करें कि मैं स्वयं अपना मालिक हूँ, मैं अपने मन व इन्द्रियों का गुलाम नहीं हूँ। मैं अनन्त शक्ति सम्पन्न हूँ तथा 21 दिन तक रोज ओम ह्रीँ अर्ह नम: का जप के साथ 11 माला फेरें।[14]
5. आध्यात्मिक विकास मंत्र[15]-
   (क) चन्देसु निम्मलयरा का जप ज्योति केन्द्र पर चमकते हुए सफेद रंग की धारणा के साथ करें।
   (ख) आइच्चेसु अहियं पयासयरा का जप दर्शन केन्द्र पर चमकते हुए अरूण रंग की धारणा के साथ करें।
   (ग) सागरवर-गंशीरा का जप विशुद्धि केन्द्र पर चमकते हुए नीले रंग की धारणा के साथ करें।
   (घ) सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु का जप सफेग रंग की माला से 21 दिन तक प्रतिदिन निर्दिष्ट विधि पूर्वक 5 माला फेरें। रहता है।
6. ग्रह शांति के लिए मंत्र: आचार्य भद्रबाहु तथा अन्य आचार्यो द्वारा रचित ग्रह-शान्ति स्तोत्रों के अनुसार महामंत्र के नियमित जप से तथा तीर्थंकरों के मंत्र पाठ से अमुक ग्रहों का दोष शान्त होता है। रंगों के अनुसार पाँच पदों के मंत्र नवग्रह के साथ इस प्रकार नियोजित किये गये हैं- चन्द्र और शुक्र ग्रह का श्वेत वर्ण है, सूर्य और मंगल का लाल, बुध का हरा, गुरु का पीला, शनि, केतु और राहू का नीला वर्ण है।[16]

ग्रहों की शांन्ति के लिए अध्यात्म में अनेकों ऊपाय बताये गये हैं। जैन धर्म में निम्नलिखित मंत्रों का प्रयोग किया जाता है-

1. सूर्य - इस ग्रह की शान्ति के लिए सर्वप्रथम तैजस केन्द्र (नाभि) पर गहरी एकाग्रता व पूरी जागरूकता के साथ अरूण रंग को देखने का प्रयास करें, वहां पर अरूण रंग में 'ओम ह्रीँ णमो सिद्धाणं' की रोज 10 माला फेरें। 21 दिन के बाद प्रतिदिन एक माला का रूप करें। सूर्य ग्रह की शान्ति के लिए विशेष जप भी किया जाता है। इसके लिए लाल रंग की माला से ओम ह्रीँ प9प्रशे! नमस्तुभ्यं मम शान्ति: शान्ति: इस मंत्र का 7 हजार जप करें।
2. चन्द्र - इस ग्रह की शान्ति के लिए सर्वप्रथम विशुद्धि केन्द्र (कण्ठ) पर गहरी एकाग्रता व पूरी जागरूकता के साथ श्वेत रंग को देखने का प्रयास करें। वहां पर चमकते हुए श्वेत रंग में 'ओम ह्रीँ णमो अरहंताणं' री रोज 10 माला फेरें, 21 दिन के बाद प्रतिदिन। माला का जप करें। चन्द्र ग्रह की शान्ति के लिए विशेष जप भी किया जाता है। इसके लिए श्वेत रंग की माला से ओम ह्रीं चन्द्रप्रशे। नमस्तुभ्यं मम शान्ति: शान्ति:- इस मंत्र का 6 हजार जप करें।
3. मंलग - इस ग्रह की शान्ति के लिए सर्वप्रथम आनन्द केन्द्र (हृदय) पर गहरी एकाग्रता व पूरी जागरूकता के साथ अरूण रंग को देखने का प्रयास करें। वहां पर अरुण रंग में 'ओम ह्रीँ णमो सिद्धाणं' की रोज 10 माला फेरे व 21 दिन के बाद प्रतिदिन एक माला का जप करें। मंगल ग्रह की शान्ति के लिए विशेष जप भी किया जाता है। इसके लिए लाल रंग की माला से ओम ह्रीँ वासुपूज्य प्रशे! नमस्तुभ्यं मम शान्ति: शान्ति:- इस मंत्र का 8 हजार जप करे।
4. बुध - इस ग्रह की शान्ति के लिए सर्वप्रथम शक्ति केन्द्र (मूलाधार) पर गहरी एकाग्रता व पूरी जागरूकता के साथ हरे रंग को देखने का प्रयास करें, व वहां पर चमकते हुए हरे रंग में 'ओम ह्रीँ णमो उवज्झायाणं' की रोज 10 माला फेरे, 21 दिन बाद प्रतिदिन 1 माला का जप करें। बुध ग्रह की शान्ति के लिए विशेष जप भी किया जाता है इसके लिए पीले रंग की माला से ओम ह्रीँ शान्तिनाथ प्रशे! नमस्तुभ्यं मम शान्ति: शान्ति:- इस मंत्र का 10 हजार जप करे।
5. गुरु - इस ग्रह की शान्ति के लिए सर्वप्रथम दर्शनकेन्द्र (भृकुटि) पर गहरी एकाग्रता व पूरी जागरूकता के साथ चमकता हुआ पीला रंग को देखने का प्रयास करें व चमकते हुए पीले रंग में 'ओम ह्रीं णमो आयरियाणं' की रोज 10 माला फेरे, 21 दिन के बाद प्रतिदिन 1 माला का जप करें। गुरु ग्रह की शान्ति के लिए विशेष जप भी किया जाता है। इसके लिए पीले रंग की माला से ओम ह्रीँ ऋषभ प्रशे! नमस्तुभ्यें मम शान्ति: शान्ति:- इस मंत्र का 12 हजार जप करें।
6. शुक्र - इस ग्रह की शान्ति के लिए सर्वप्रथम स्वास्थ्य केन्द्र पर गहरी एकाग्रता व पूरी जागरुकता के साथ श्वेत रंग को देखने का प्रयास करें, व वहां पर चमकते हुए श्वेत रंग में 'ओम ह्रीँ णमो अरहंताणं' की रोज 10 माला फेरे, 21 दिन बाद प्रतिदिन 1 माला का जप करें। शुक्र ग्रह की

शान्ति के लिए विशेष जप भी किया जाता है। इसके लिए श्वेत रंग की माला से 'ओम ह्रीँ सुविधिनाथ प्रशे! नमस्तुभ्यं मम शान्तिः शान्तिः।' इस मंत्र का 11 हजार बार जप करें।

7. शनि - इस ग्रह की शान्ति के लिए सर्वप्रथम इस केन्द्र (मस्तक) पर गहरी एकाग्रता व पूरी जागरूकता के साथ नीले रंग (मयूर की गर्दन की भाँति) को देखने का प्रयास करें, व वहां पर चमकते हुए नीले रंग में 'ओम ह्रीँ णमो लोए सव्व साहूणं' की रोज 10 माला फेरें, 21 दिन बाद प्रतिदिन। माला का जप करें। शनि ग्रह की शान्ति के लिए विशेष जप भी किया जाता है इसके लिए नीले रंग की माला से ओम ह्रीँ मुनिसुव्रत प्रशे! नमस्तुभ्यं मय शान्तिः शान्ति- इस मंत्र का 32 हजार बार जप करें।
8. केतु - इस ग्रह की शान्ति के लिए सर्वप्रथम शक्ति केन्द्र पर गहरी एकाग्रता व पूरी जागरूकता के साथ नीले रंग को देखने का प्रयास करें, व वहाँ पर चमकते हुए नीले रंग में 'ओम ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं' की रोज 10 माला फेरें, 21 दिन बाद प्रतिदिन। माला का जप करें। केतु ग्रह की शान्ति के लिए विशेष जप भी किया जाता है। इसके लिए नीले रंग की माला से ओम ह्रीँ पार्श्वनाथ प्रशे! नमस्तुभ्यं मम शान्तिः शान्तिः। इस मंत्र का जाप 21 हजार बार करें।
9. राहू - इस ग्रह की शान्ति के लिए सर्वप्रथम शक्ति केन्द्र पर गहरी एकाग्रता व पूरी जागरूकता के साथ नीले रंग को देखने का प्रयास करें, व वहां पर चमकते हुए नीले रंग में 'ओम ह्रीँ णमो लोए सव्व साहूणं' की रोज 10 माला फेरे, 21 दिन बाद प्रतिदिन माला का जप करें। राहू ग्रह की शान्ति के लिए विशेष जप भी किया जाता है इसके लिए नीले रंग की माला से ओम ह्रीँ नेमिनाथ प्रशे! नमस्तुभ्यं मम शान्तिः शान्तिः- इस मंत्र का 21 हजार बार जप करें।

चौतन्य केन्द्रों पर नमस्कार महामंत्र का जप

शरीर के भिन्न-भिन्न चौतन्य केन्द्रों पर नमस्कार महामंत्र का ध्यान करने से वह केन्द्र जागृत होता है। प्राण जागृत होता है। जागृत प्राण मंत्र के साथ एकात्म बनकर एक नई उर्जा पैदा करता है।[17]

ख 'णमो अरहंताणं' मंत्र का जाप ज्ञान केन्द्र पर पूरी जागरुकता व एकाग्रता के साथ चमकते हुए सफेद रंग के साथ करें, इससे समता भाव में वृद्धि होती है।

ख 'णमो सिद्धाणं' मंत्र का जाप दर्शन केन्द्र पर पूरी जागरूकता व एकाग्रता के साथ चमकते हुए अरूण रंग के साध करें, इससे अतीन्द्रिय चेतना का विकास होता है।

ख 'णमो आयरियाणं' मंत्र का जाप विशुद्धि केन्द्र पर पूरी जागरूकता व एकाग्रता के साथ चमकते हुए पीले रंग के साथ करें, इससे कला के प्रति रुचि बढ़ती है व वृत्तियाँ शान्त होती हैं।

ख 'णमो उवज्झायाणं' मंत्र का जाप आनन्द केन्द्र पर पूरी जागरुकरता व एकाग्रता के साथ चमकते हुए हरे रंग के साथ करें। इससे सामंजस्य का भाव बढ़ता है व भावधारा निर्मल होती है।

ख 'णमो लोए सव्वसाहूणं' मंत्र का जाप तैजस एवं शक्ति केन्द्र पर पूरी जागरूकता व एकाग्रता के साथ चमकते हुए नीले रंग के साथ करें, इससे रोगों का निवारण होता है व शक्ति का जागरण होता है।

इससे स्पष्ट होता है कि चौतन्य केंद्रों पर विविध प्रकार से मंत्र साधना का प्रावधान मिलता है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विरण से स्पष्ट है कि चौतन्य केंद्रों पर यदि मंत्र साधना का अभ्सास किया जाए तो अनेक समस्याओं का समाधान पाया जाया जा सकता है। चूंकि चौतन्य केंद्रों का संबंध अंतःस्रावी ग्रंथियों से भी है। यह विज्ञान सम्मत है कि ध्यान साधना का प्रभाव नाड़ी-ग्रंथितंत्र पर भी पड़ता है। साथ ही मंत्र साधना की भी अपनी वैज्ञानिकता है। अतः विशेष केंद्रों पर मंत्र साधना का अपना विशेष प्रभाव पड़ता है। मंत्र साधना से चौतन्य केद्रों के जागरण में सहायता मिलेगी साथ ही मंत्र की शक्ति भी प्रस्फुटित होगी। अतः विशेष सावधानी तथा दृढ़ आस्था से मंत्र साधना का अभ्यास किया जाए तो वास्तव में यह कई प्रकार से साधक के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

संदर्भ स्थल

1. नमस्कार महामंत्र, पृष्ठ -20
2. अमृत योग, पृष्ठ 136
3. नमस्कार महामंत्र, पृष्ठ -76)
4. भीतर की ओर, पृष्ठ -180
5. शक्ति की साधना, पृष्ठ -82-83
6. नमस्कार महामंत्र, पृष्ठ 44)
7. अमृत योग, पृष्ठ 136
8. नमस्कार महामंत्र, पृष्ठ -58
9. नमस्कार महामंत्र, पृष्ठ -97

10. प्रेक्षाध्यान पत्रिका, पृष्ठ 14)
11. प्रेक्षाध्यानः चौतन्य केन्द्र प्रेक्षा, पृष्ठ 20-21
12. उपासना कक्ष, पृष्ठ -41
13. उपासना कक्ष, पृष्ठ 40
14. उपासना कक्ष, पृष्ठ 40-42
15. उपासना कक्ष, पृष्ठ 16
16. उपासना कक्ष, पृष्ठ 30
17. उपासना कक्ष, पृष्ठ 20

संदर्भ ग्रंथ

1. नमस्कार महामंत्र,
2. अमृत योग,
3. भीतर की ओर,
4. शक्ति की साधना,
5. प्रेक्षाध्यान पत्रिका,
6. प्रेक्षाध्यानः चौतन्य केन्द्र प्रेक्षा,
7. उपासना कक्ष

वर्षा ऋतु कालीन लोक उत्सव

खुशबू कुमारी

शोध छात्रा, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ० ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश

भारतवर्ष में मुख्य रूप से छः ऋतुएँ हैं, जिनका नाम क्रमशः इस प्रकार है- (1) बसन्त ऋतु, (2) ग्रीष्म ऋतु, (3) वर्षा ऋतु, (4) शरद ऋतु, (5) हेमन्त ऋतु और शिशिर ऋतु। हमारे महान विद्वानों ने जहाँ बसन्त ऋुत को ऋतुओं का राजा माना है वहीं वर्षा ऋतु को ऋतुओं की रानी बताया है। वर्षा ऋतु में गाँवों का दृश्य अद्भुत होता है। सभी ताल-तलैया, नदी जलाशय इत्यादि जल से लबालब होते हैं। वन उपवन में चारों तरफ हरी-हरी छटा बिखरी होती है। आम्र पल्लव की ओट से कोयल की कूक, पेड़ों के झुरमुट से झींगुर का शोर व चिड़ियों का कलरव ऐसा लगता है जैसे मानो भगवान श्रीकृष्ण व राधा झूला झूल रहे हों तथा प्रकृति रिमझिम फुहारों व संगीत द्वारा उनका अभिनन्दन कर रही हो। इस अलौकिक वर्षा ऋतु की शीतल हवाएँ समस्त लोक को शीतलता प्रदान कर रही है। भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है। अधिकांश कृषि वर्षा पर ही आश्रित होती है। अतः किसानों के लिए भी वर्षा ऋतु खुशियों का बौछार लाती है। खेतों में किसान व उनकी पत्नियों द्वारा धान रोपते समय जो गीत गाए जाते हैं, उन गीतों में भी कोई ना कोई रहस्य होता है। यह रहस्य जीवन के हर पहलू से सम्बन्धित होता है।

यह ऋतु बच्चों व बूढ़ों के लिए भी खास होता है। इस ऋतु में जहाँ बच्चे तरह-तरह के खेल खेलते हैं वही बूढ़ों द्वारा मनोहर व ज्ञानवर्द्धक कहानियों का भी आनन्द लेते हैं। आषाढ़, सावन और भादों यही तीन महीना वर्षा ऋतु का काल है। जहाँ आषाढ़ से किसान खेतों में धान की रोपनी शुरू कर देते हैं वही सावन माह में नागपंचमी, बेलपानी, ठकरा इत्यादि उत्सव मनाते हैं। वर्षा ऋतु का अंतिम महीना भादों (भाद्रपद) में भी नित्य नये-नये उत्सव होते हैं। इन उत्सवों में प्रमुख है- बहुला, कृष्णजन्माष्टमी, हरितालिका तीज, गणेश चौथ, चकर्चदा जाट-जाटिन व अनन्त चतुर्दशी इत्यादि। इन सभी व्रत त्योहारों व खेलों में कुछ तो प्रचलित है परन्तु कुछ विलुप्ति के कगार पर है। अतः हम सबका यह नैथ्तक दायित्व है कि इनका संरक्षण व संवर्धन करें।

मुख्य बिंदु - वर्षा ऋतु, लोक उत्सव, व्रत-त्योहार, बेलपानी, ठकरा, चकचंदा, चकचन्ना, चौकचन, कृष्ण जन्माष्टमी, नागपंचमी, अनंत चतुर्दशी, जाट-जाटिन, बसंत ऋतु, हेमन्त ऋतु, ग्रीष्म ऋतु, शरद ऋतु, शिशिर ऋतु, आषाढ़, सावन, भदो इत्यादि।

वर्षा ऋतु का स्थान सभी ऋतुओं में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि इस ऋतु में आचार्य महर्षि भरत के आठों रसों का रसपान करने को मिलता है। संसार के बड़े-बड़े कवियों ने भी इस ऋतु के माध्यम से अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त किया है। यह ऋतु संसार को जीवन देती है, पृथ्वी के प्रत्येक प्राणियों की प्यास बुझाती है व ग्रीष्म ऋतु से जलती ताप के तपन को शीतलता प्रदान करती है। प्रत्येक जीव जन्तु उल्लासित हो जाते हैं व अपनी खुशियों को जाहिर कर प्रकृति को संगीतमय बना देते हैं। तभी तो कहीं कोयल, पपिहा व बुलबुल सुन्दर और मनभावन स्वरों में गायन प्रस्तुत करते हैं तो कहीं नदियाँ, झरने, मेढक व बिजली तालवाद्य का कार्य करते हैं व झींगुर अपना स्वर देकर स्वरपेटी का कार्य करता है। अब जब गायन व वादन हो ही रहा हो तो भला नृत्य कैसे इससे वंचित रहे। पेड़-पौधे भी मोरों के साथ झूम-झूमकर ठुमके लगा रहे हैं। सुन्दर मनोरम दृश्य देखकर कोमल सुन्दर लताएँ भी अपनी दुबली पतली शाखाओं को फैलाकर अपने प्रियतम वृक्ष से लिपटने लगी हैं। प्रकृति का रोम-रोम हर्षित है व विभिन्न प्रकार से वर्षा ऋतुरानी का स्वागत कर रही है। इतनी मनभावन और सुशोभित प्रकृति को देखकर भला मानव क्यों इससे वंचित रहे। भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है और कृषि तो बारिश पर ही आश्रित है। अतः किसानों का भी मन हर्षाया है। नौ महिने से सूखे पड़े ताल-तलैया, खेत पोखर सब जल से लबालब है। खेतों में हरे-हरे धान के बीजों से ऐसा प्रतीत होता है कि हमारी पृथ्वी हरी चुनरी ओढ़ के बागों में कजरी खेलने वाली हैं।

इस ऋतु के सम्बन्ध में महाकवि कालिदास जी लिखते हैं-

ससीकराम्भोधरमत्तकुंजरस्तडित्पताकोऽशनिशब्दमर्द्दलः।

समागतो राजवदुद्धतद्युतिर्घनागमः कामिजनप्रियः प्रिये!।।1।।[1]

अर्थात् प्रिय! अब घनागम (ऋतु चक्र की प्रावृष्ट या वर्षा) ऋतु आ चुकी है। ऐसा प्रतीत होता है कि कोई राजा अपने पूरे ताम-झाम के साथ आ रहा हो। इस राजा के मदमाते हाथी बरसते हुए मेघ हैं, बिजली पताका है और बज्रगर्जना नगाड़ा है। यह ऋतु कामिजनों को अत्यंत प्रिय है।

श्रीरामचरितमानस में भी गोस्वामी तुलसीदास जी ने वर्षा ऋतु का सुन्दर वर्णन किया है।

दादुर धुनि चहु दिसा सुहाई बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई।।

नव पल्लव भए बिपट अनेका। साधक मन जस मिलें विवेका।।1।[2]

अर्थात् चारों दिशाओं में मेंढकों की ध्वनी ऐसी सुहावनी लगती है, मानो विद्यार्थियों के समुदाय वेद पढ़ रहे हों। अनेकों वृक्षों में नए पत्ते आ गए हैं, जिससे वे ऐसे हरे-भरे एवं सुशोभित हो गए हैं जैसे साधक का मन विवेक (ज्ञान) प्राप्त होने पर हो जाता है।

वर्षा ऋतु की नन्हीं-नन्हीं बूँदें जब धरा पर गिरती हैं, तो सुखी धरा गीली हो जाती है एवं सोंधी-सोंधी खुशबू से समूचा वातावरण सुगन्धित हो उठता है। ग्रीष्म ऋतु का आखिरी महीना ज्येष्ठ के बीतते ही आषाढ़ मास से लेकर भादों महीना तक वर्षा ऋतु का काल होता है। इस प्रकार आषाढ़, सावन और भादों 3 महीना वर्षा रानी का राज होता है। वर्षा ऋतु के आरम्भ होने का महीना महाकवि कालिदास ने भी अपने महाकाव्य ''मेघदूतम्'' में आषाढ़ मास को ही बताया है-

आषाढ़स्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानु

वप्रक्रीड़ापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श।[3]

अर्थात् यक्ष आषाढ़ मास के प्रथम दिन पहाड़ की चोटी पर झुके हुए मेघ को जब देखें तो ऐसा लगा जैसे ढूसा मारने में मगन कोई हाथी हो।

मलिक मोहम्मद जायसी ने भी आषाढ़ मास से ही वर्षा ऋतु का आरम्भ माना है-

चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा।[4]

वर्षा ऋतु में प्रकृति, जीव-जन्तु, सभी का रोम-रोम हर्षित हो उठता है और वे अपनी-अपनी कलाओं द्वारा वर्षा ऋतु का स्वागत करते हैं तो भला मनुष्य वर्षा ऋतु का स्वागत कैसे ना करें। वे भी अपने आनन्द को गीत, नृत्य, पर्व-त्योहार एवं उत्सवों द्वारा प्रगट करते हैं।

वर्षा ऋतु को महाकवि कालिदास ने कामियों का महीना बताया है। इस ऋतु में जिस भी महिला के पिया परदेस गए हैं वे घर आ जाते है। जो नायिका अपने नायक से अलग है, वो विरह की आग में झुलसती है व वर्षा ऋतु की शीतल हवाएँ भी उनको आग समान लगती हैं। वर्षा ऋतु केवल विरहनियों के वियोग को ही वर्णित नहीं करता है अपितु यह महीना बच्चे, बूढ़े, जवान, व समस्त प्राणियों के लिए सुखदायी होता है। यह ऋतु बाल मन को भी अपनी ओर खूब आकृष्ट करता है। तभी तो वे कागज के नाव और तरह-तरह के खेलों व कविताओं द्वारा अपने मन के उद्वेगों को प्रष्फुटित करते हैं। साथ ही दादी माँ के साथ रात में सोते हुए कहानी सुनना और उसमें बारिश का होना अहां! सचमुच कितना सुखदायी होता है। दादी एक कहानी कहा करती थी, जिसमें हर किसी को अपना घर बनाने का संदेश था। कहानी कुछ इस प्रकार था-

एक चिड़िया पेड़ पर सुन्दर सा घोंसला बनाकर तैयार करती है। चिड़िया अपना गृह निर्माण कार्य ग्रीष्म ऋतु से ही आरम्भ कर देती है, क्योंकि उसे पता रहता है कि ग्रीष्मकाल समाप्त होते ही बरखा प्रारम्भ हो जाती है और वर्षा ऋतु में हर जगह पानी ही पानी होने के कारण जीवन बिताना कठिन हो जाता है। इसलिए यदि वर्षा का आनन्द लेना हो तो पहले से ही तैयारी कर लो। जो आवश्यक कार्य हो उसे ग्रीष्म ऋतु में ही कर लो। इसी सोच को ध्यान में रखकर चिड़िया तिनका-तिनका जुटाकर सुन्दर घोंसला तैयार कर लेती है। वर्षा ऋतु आरम्भ होता है। चिड़िया अपने घोंसले में बैठकर मारे खुशी से झूम उठती है और गीत गाने लगती है। तभी एक सियार आता है और बारिश से बचने के लिए पेड़ के नीचे छुपने का प्रयास करता है पर भारी बारिश होने की वजह से वह भींगता रहता है। सियार को इस हाल में देखकर चिड़िया सियार को अपनी गीतों द्वारा समझाने की कोशिश करती है-

चिड़िया:- हाथ गोंड़ संयुक्ता। गिरही क्यूं न बनाया रे मूर्खा?

अर्थात् सियार भाई तुम्हारे हाथ पैर दोनों ठिक है फिर भी अपना घर क्यों नहीं बनाया? यदि तुम अपना घर बनाए होते तो आज पेड़ के नीचे बैठकर बारिश में नहीं भींगते।

पर सियार को चिड़िया का यह प्रश्न उचित नहीं लगा और वह चिड़िया को ही धमकाने लगा-

सियार:- *ए चोंचा तू पर घर नोंचा,*
हमसे करत बकताई।
चढ़ेब गाछ उजाड़ेब खोंता
छुटी तोहार बकताई।

अर्थात् अरी चिड़िया तुम तो खुद ही सबके घरों को नोंच-नोंच कर अपना घर बनाई हो और मुझे सिखाने चली हो। अभी पेड़ पर चढ़ेंगे और तुम्हारे घोंसले को उजाड़कर फेंक देंगे।

चिड़िया बुद्धिमान रहती है। उसे पता है कि सियार की कमजोरी क्या है। वह गाती है-

चिड़िया:- *गाँव से आवत जना पच्चास*
हाथ में डंडा कुत्ता साथ।

अर्थात् अरे सियार! गाँव से कुछ लोग आते दिख रहे हैं और उन लोगों के हाथ में डंडा व साथ में कुत्ता भी है।

इतना सुनते ही सियार भाग जाता है और चतुर चिड़िया अपना घोंसला बचा लेती है। इस प्रकार के सुन्दर और मनोरम दृश्यों से भरपूर कहानियों को सुनकर बारिश का आनन्द तो दुगुना होता ही है साथ ही साथ ये कहानियाँ हमें जीवन के मूल्यों से भी अवगत कराती है।

जब काले-काले बादल आसमान में छाते हैं तब बच्चों की टोलियों में होड़ लगती है-

पहला दल- एक मुट्ठी सरसो, पीट पीट बरसो।

एक मुट्ठी लाई महादेव के चढ़ाई

बरखा झमर-झमर आई।

दूसरा दल- *एक मुट्ठी लाइ महादेव के चढ़ाई*

बरखा आते ही बिलाई।

अर्थात् एक मुट्ठी लाई हम महादेव को चढ़ा देंगे और महादेव के कृपा से बरखा उधर ही खो जायेगा और यहाँ बारिश नहीं होगी।

इस प्रकार की वर्षा की अभिव्यक्ति अब धीरे-धीरे लुप्त हो रही है। वर्षा ऋतु के आते ही गाँवों का स्वरूप बदल जाता है। यह ऋतु सिर्फ प्रकृति की तपती काया को ही शितलता प्रदान नहीं करती अपितु यह किसानों के लिए भी खुशियों का बौछार लाती है। क्योंकि भारत वर्ष में ज्यादातर खेती वर्षा पर ही निर्भर है।

वर्षा ऋतु का पहला उत्सव किसानों द्वारा ही आरम्भ होता है।

आषाढ़:- वर्षा ऋतु का आरम्भ आषाढ़ महीना से शुरू होते ही किसान धान की खेती में जुट जाते हैं। औरतों की टोली जब खेतों में हरे-हरे धान के पौधों को रोपना शुरू करती है तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे जल से भरा खेत जलाशय हो और इस जलाशय में हमारी सभी मातृशक्ति एक साथ उतर गई है धरती माँ का गोद हरा भरा करने के लिए। सभी मातृशक्तियाँ कैसे अपनी साड़ियों को उठाकर कमर से घुटनों तक बाँध लेती है और धान के हरे-हरे कपोलों को लेकर धरती माँ की कोख में स्थापित करती है। सच में कितना सुहाना दृश्य होता है साथ में इन मातृशक्तियों द्वारा गूंजित गीत वातावरण को और भी मनोरम बना देता है।

गीत:- *आईल मास आषाढ़, बूँदा पड़ेला हजार।*

भिंजिहे सिया सुकुमारी रिमझिम बूनिए में।

अर्थात् जनकपुर की सखियाँ श्रीराम जी से कहती हैं- हे राम! आषाढ़ महीना और रूक जाओ इस माह रिमझिम बरखा हो रही है। अपनी सिया सुकुमारी को कैसे हम विदा करें? हमारी सिया इस बरखा में भींग जाएगी। इस तरह नाना प्रकार के बहाने करके सखियाँ 1 साल तक रामजी को जनकपुर में ही रखती हैं। जब 1 साल पूरा होता है तब प्रभु श्रीराम जी सिता जी को विदाई कराकर अयोध्या लाते हैं।

सावन माह को सभी मनभावन माह कहते हैं। इस माह में पृथ्वी का मनोरम और अलौकिक रूप हो जाता है। तभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि बादल भी इसके रूप से सम्मोहित होकर इसके दीदार हेतु झुकते ही चले आते हैं और पृथ्वी को अपनी जलधारा से और भी सरस बना देते हैं।

यह माह धार्मिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। बाबा भोलेनाथ का भी विशेष पूजा-पाठ इसी महीना में होता है। इस माह का प्रमुख व्रत-त्योहार है-

बेलपानी:- यह पूजा सावन शुक्ल पक्ष के सप्तमी तिथि को होता है। इस पूजा में गाँव की सभी लड़कियाँ एकत्रित होकर गाँव की देवी की पूजा करती हैं। पूजा में मुख्य रूप से मेंहदी, बेल और कचूर उपयोग होता है। मेंहदी, बेल की पत्ति और कचूर तीनों को अलग-अलग सिलवट्टे पर पीसकर अलग-अलग कटोरियों में सजाती हैं साथ में मेंहदी की डाली और बेल की डाली लेकर गाँव की भगवती के पास जाती हैं। वहाँ मेंहदी और बेल की डालियों से मंदिर को सजाती हैं तथा माँ को मेंहदी, बेलपत्ति और कचूर का तैयार लेप लगाती हैं। लौंग और इलाईची चढ़ाकर, सिंदूर का टीका लगाकर कपूर से माँ की आरती उतारती है। पूजा करते हुए सभी लड़कियाँ एक साथ माँ भगवती का गीत गाती हैं। इन गीतों में मुख्य रूप से पचरा गाया जाता है। पूजा समापन करने के बाद माँ भगवती पर चढ़ा हुआ मेंहदी और जल लेकर घर आती हैं। इस जल को क्यारियों में, घरों में व मवेशियों पर छिड़का जाता है तथा घर के प्रत्येक सदस्य इस जल को अपने आँखों पर डालते हैं। ऐसी मान्यता है कि इस जल को आँखों पर लगाने से आँख स्वस्थ रहते हैं। मेंहदी को घर की सभी महिलाएँ हाथों पर लगाती हैं एवं पुरुषों की अनामिका व कनिष्ठा उँगलियों पर इस मेंहदी को लगाया जाता है। इस पूजा में मेंहदी, बेल और पानी का खास महत्व होता है। इसलिए इस पूजा को बेलपानी पूजा कहा जाता है।

नागपंचमी:- वैसे तो नागपंचमी सावन माह के शुक्ल पक्ष में पंचमी तिथि को मनाया जाता है परन्तु इस त्योहार का उल्लास ठकरा गीतों के साथ ही शुरू हो जाता है। सावन के कृष्ण पक्ष से ही नागपंचमी मनाने का उत्साह गाँवों में देखने को मिलता है, जो प्राय: विलुप्ती के कगार पर है। पहले गाँवों में बिजली नहीं हुआ करती थी। दिन भर खेतों में रोपनी करने के उपरान्त जब ग्रामीण शाम को घर आते थे तो सावन माह की गर्मी का उमस उनको सोने नहीं देता था। क्योंकि उस समय बिजली नहीं होने के कारण इलेक्ट्रॉनिक पंखा भी नहीं था। टी0वी0 व मोबाइल भी नहीं था कि गर्मी से ध्यान हटाने के लिए इन सभी उपकरणों से तन की तपिश को कम किया जाए।

अत: हमारे बड़े बुजुर्गों ने यह उक्ति निकाली होगी कि क्यों ना गीत-संगीत द्वारा खुशियाँ मनाई जाए व दिनभर के थकान व गर्मी से मुक्ति पाई जाए। इसी सोच को ध्यान में रखकर ठकरा खेलने का प्रचलन शुरू हुआ होगा।

ठकरा:- डांडिया की तरह लकड़ी के दो डंडों के साथ ठकरा खेला जाता है। यह खेल रात के समय खाना खाने के बाद खेला जाता है। खेलने का स्थान गाँव का चौपाल या किसी ग्रामिण के द्वार पर होता है। इस खेल में सभी पुरुष खिलाड़ी होते हैं। गोल आकृति बनाकर गीत गाते हुए गोल-गोल घूमते हुए ठकरा बजाते हैं और साथ में गीत भी गाते हैं। कुछ पुरुष खिलाड़ी हथियारों के साथ भी करतब दिखाते हैं, जिसे लाठी भाजना कहा जाता है। कभी वे लाठी को भिन्न प्रकार से घुमाते हैं कभी भाला, बरछी, तलवार आदि उपकरणों के साथ करतब दिखाते हैं।

ठकरा के गीतों में प्राय: ज्ञानवर्धक कहानियों का समावेश रहता है। इन गीतों के माध्यम से लोगों में ज्ञान का संचार किया जाता है। ठकरा के खिलाड़ी बारहमासा भी गाते हैं। जैसे-

''सुनी ए पंचे बारे (बारह) महीना में
कवन-कवन फल ना खायेके
सावन में साग, भादो में दही
कुँआर में करइला ना खायेके।''

इस गीत के माध्यम से हमारे बुजुर्गों द्वारा कितनी आसानी व सरलता के साथ स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी मिलती है।

इस प्रकार ठकरा खेल 15 से 20 दिन चलता है। शुक्ल पक्ष के पंचमी तिथि को नागपंचमी के साथ ही इस खेल का समापन हो जाता है। चूँकि प्रत्येक रात ग्रामिणों की टोली एकसाथ इकट्ठी होकर गीत, नृत्य, कथा, कहावत आदि की प्रस्तुति देते हैं, इसलिए उनमें आपसी एकता व प्रेम, सौहाद्र की उन्नति होती है। गाँवों में भी यह प्रथा अब विलुप्त हो रही है। मेरे गाँव में भी अब सावन महीना में कोई ठकरा नहीं खेल रहा है। हमें सजग होना पड़ेगा और इस प्रथा को बचाना होगा।

15 दिन ठकरा खेलने के बाद नागपंचमी का दिन आता है। नागपंचमी सावन महीना के शुक्ल पक्ष में पंचमी तिथि को मनाया जाता है। ऐसी मान्यता है कि आज के दिन नाग नागिन की पूजा करने से वे प्रसन्न होते हैं और किसी को नहीं काटते हैं। इनकी पूजा में दूध और धान का लावा बरगद के पत्तों पर रखकर चढ़ाया जाता है। गाय के गोबर में बालू और सरसों डालकर मंत्रों द्वारा सिद्ध करते हुए गोवर, बालू और सरसों को मिलाकर मिश्रण तैयार किया जाता है। इस तैयार मिश्रण से गाँवों में लोग अपने-अपने घर के द्वार पर नाग-नागिन का स्वरूप बनाते हैं। शहरों में तो नाग-नागिन के स्टीकर को ही लोग अपने घर के द्वार पर चपका कर काम चला लेते हैं। यह स्टीकर छोटा गुरु-बड़ा गुरु के नाम से मार्केट में खूब बिकता है। नागपंचमी वाले दिन गाँवों में घर-घर अच्छे-अच्छे पकवान बनते हैं। इस अवसर पर गाँवों में मेला भी लगता है। नागपंचमी मेला में ''दंगल'' आकर्षण का केन्द्र होता है।

मोहनजोदड़ों या हड़प्पा की संस्कृति के मिले अवशेषों के आधार पर कह सकते हैं कि उस काल में भी लोग सर्पों (नाग) की पूजा करते थे, क्योंकि अगर ऐसा नहीं होता तो लोग मुद्राओं पर उसकी अनुकृति या अन्य जगहों पर इतनी प्रमुखता के साथ उसे प्रस्तुत नहीं करते।[5]

सावन माह पूर्ण रूप से भगवान शिव को समर्पित होता है। इस महीने घर-घर भोलेनाथ की आराधना होती है। घर-घर में वर्षा ऋतु का आनन्द शिव भक्ति से सराबोर गीतों के माध्यम से लिया जाता है।

गीत:- *शिव शंकर चले कैलाश कि बुन्दियाँ पड़ने लगी।*
गौरा ने पीस लिया हरी-हरी मेंहदी
शिव शंकर ने पीस लिया भांग
कि बुन्दियाँ पड़ने लगी।

इस प्रकार सावन महीना पूर्ण होते ही भादो (भाद्रपद) का महीना आरम्भ होता है। इस माह में भगवान श्रीकृष्ण का जन्म होने के कारण यह महीना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। भादों (भाद्रपद) कृष्ण पक्ष के अष्टमी तिथि को धूमधाम से भगवान श्रीकृष्ण जी का जन्मोत्सव मनाया जाता है। कृष्णजन्मोत्सव के साथ ही गाँवों में डोल स्थापित किया जाता है। गाँव के किसी एक ग्रामीण के घर पण्डाल बनता है व कृष्ण के बाल स्वरूप को स्थापित करके पूजा-पाठ व भजन किर्तन चलता है। इसी को डोल रखना बोला जाता है। इस प्रकार का उत्सव छ: दिनों तक चलता है। छठे दिन भगवान श्रीकृष्ण जी का छठी (छठियार रस्म) होने के बाद यह उत्सव पूर्ण होता है। इस उत्सव में ग्रामीणों द्वारा कृष्ण लीला की भी प्रस्तुति होती है। भजनों में ''सोहर'' का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। कृष्ण जन्माष्टमी से छ: दिनों तक गाँवों में खूब धूमधाम होता है। प्रत्येक रात कृष्णलीला देखने हेतु औरत, पुरुष, बच्चे व बूढ़े सबकी टोली इकट्ठी होती है। भादो की अंधेरी रात व ऊपर से रिमझिम बरखा का बरसना इसके बावजुद भी कृष्ण जन्माष्टमी का कार्यक्रम कहाँ बन्द होता है। कोई छाता लिए तो कोई भींगते हुए आखिर पहुँच ही जाते हैं कृष्ण जन्माष्टमी के उत्सव में शामील होने।

मुझे आज भी याद है कि मेरे चाचा भगवान शंकर का पात्र कैसे निभाते हैं। शंकर जी साधु का वेश बनाकर कृष्णलीला में बालक कृष्ण को देखने के लिए जाते हैं तो माँ यशोदा गीतों के माध्यम से कैसे बोलती हैं-

गीत:- *अबकी के मुनिबाबा लवती के जाई जी*
बबुआ नादान बाड़े कइसे के देखाई जी।
डाईन भुतिन जोगनो बसेली गावाँ गाँई जी
बीतल ना बरहिया चउखट कइसे के हेलाई जी।

अर्थात् माँ यशोदा साधु रूप में शंकर जी को बोलती है कि मेरा लाल अभी छोटा है। अभी नहीं दिखाऊँगी। गाँवों में डाईन, भुतों का राज है यदि मेरे कृष्ण को कुछ हो गया तो? इस प्रकार माँ यशोदा अपने नन्हें बालक को दिखाने से डरती है।

इस प्रकार के सुन्दर दृश्य देखकर भादों का भयावह रात भी सबको सुहाना लगता है।

भादो महीना वर्षा ऋतु का सबसे महत्त्वपूर्ण एवं आखिरी महीना होता है। आसमान में घनघोर बादल छाए हैं खेतों में हरे-हरे धान लहलहा रहे हैं। प्रकृति अपनी सुन्दरता से सबके मन को विभोर कर रही है। इस महीना का शुरूआत बहुला व्रत के साथ होता है। बहुला भादो (भाद्रपद) माह कृष्ण पक्ष चतुर्थी को होता है।

बहुला के बाद कृष्ण जन्माष्टमी का उत्सव हर्षोल्लास से मनाया जाता है।

कृष्ण जन्माष्टमी के बाद भाद्रपद शुक्ल पक्ष तृतीया तिथि को सुहागन स्त्रियों द्वारा हरितालिका तीज व्रत रखा जाता है। इस व्रत में स्त्रियाँ सोलह शृंगार करके बिना अन्न जल ग्रहण किए भगवान शंकर जी का अर्चन वंदन करती हैं।

हरितालिका तीज के अगले दिन गणेश चतुर्थी मनाया जाता है। गणेश चतुर्थी को बच्चे, चकचन्ना या चौकचन के नाम से मनाते हैं। चकचन्ना उत्सव अब विलुप्ति के कगार पर है।

भादो माह में ही किशोरियों द्वारा जाट-जाटिन गीतिनाट्य की प्रस्तुति होती है। भादों शुक्ल पक्ष एकम तिथि से प्रत्येक रात किशोरियों द्वारा जाट-जाटिन का खेल खेला जाता है। भादो शुक्ल पक्ष के चतुर्दशी तिथि को रात में इस खेल का समापन होता है। इस नृत्य में लड़कियों का दो दल होता है। एक दल लड़का का भेष बनाकर जाट बनता है और दूसरा दल जाटिन बनता है। दोनों दल आपस में गीतों द्वारा संवाद करते हुए नृत्य करते हैं। जाट-जाटिन लोकनृत्य का भी प्रचलन अब समाप्त हो रहा है।

भादो शुक्ल पक्ष चतुर्दशी तिथि को अनन्त पूजा मनाया जाता है और इस पूजा के साथ ही भादों (भाद्रपद) महीना का समापन होता है। इस प्रकार आषाढ़, सावन और भादो तीनों महीना हर्षोल्लास से मनाते हुए वर्षा ऋतु की विदाई होती है।

सन्दर्भ -

1. महाकवि कालिदास, ऋतुसंहारम्, द्वितीय सर्ग
2. इंटरनेट, shriramcharitmanas.in, वर्षा ऋतु वर्णन, श्रीरामचरितमानस
3. महाकवि कालिदास, मेघदूतम, पूर्व मेघ, श्लोक सं0-2
4. मलिक मोहम्मद जायसी, नागमती वियोग खण्ड, श्लोक सं0-4
5. भास्कर, भुनेश्वर, भोजपुरी लोक-संस्कृति और परम्पराएँ, पृ0 39

जागर लोक परम्परा में न्यायकारी गोलू देवता: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

कु० बबीता आर्या

समाजशास्त्र विभाग, डी0एस0बी0 परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल

प्रो० ज्योति जोशी

समाजशास्त्र विभाग, डी0एस0बी0 परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल

सारांश

कुमांऊ के धार्मिक जीवन में वैदिक देववाद और पौराणिक देववाद के बाद तीसरा देववाद जागर का है। कुमाऊँ के परिप्रेक्ष्य में जागर पूजा से अवतरित होने वाली अलौकिक शक्ति देव/आत्माएं मुख्यत: दो कोटी की होती है। (1) राजवंशीय/देवांगी तथा (2) भूतवंशीय/भूतांगी, इस क्षेत्र में स्थानीय देवी देवताओं को प्रसन्न करने के लिए गायी जाने वाली गाथाओं का स्वरूप जागर के रूप में परिलक्षित होता है। ये जागर गाथाएँ उन ऐतिहासिक व्यक्तियों तथा देवी-देवताओं की लोक वार्ताए है जो अपने समय में महा क्रूर या जनहितैषी रहे हैं। इसमें स्थानीय गोलू देवताओं की लोकगाथाओं से उनके जीवन की लोकमान्यताओं का पता चलता है।आज कुमांऊनी समाज के लोग अत्याचारों से पीडिघ्त होने व अपने कष्टों के निवारणार्थ न्यायकारी देवता के रूप में गोलू देवता को पूजते हैं।इस हेतू यहां के लोग जाति व धर्म की सीमाओं से ऊपर उठ कर उन्हें नमन करते हैं तथा अपने कष्टों के निवाणार्थ उनकी क्षरण में जाते हैं।

मुख्य शब्द-गोलू देवता, जागर, लोकपरम्परा, लोकगाथा, जगरिया, देवी-देवता

परिचय- प्रस्तुत शोध पत्र उत्तराखण्ड कुमांऊ के लोकदेवता गोलू (गोल्ज्यू) को केन्द्र मानकर प्रस्तुत किया जा रहा है। इस क्षेत्र में लोकदेवताओं की पूजा अराधना जागर लोक परम्परा के रूप में की जाती रही है। जैसा कीलोक परम्पराऐं किसी भी समाज को विशिष्ट पहचान देती है जिनमें उस समाज विशेष की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक व्यवस्था भी परिलक्षित होती है। इन परम्पराओं में पायी जाने वाली विविधता के मध्य के एक संरचनात्मक समानता देखने को मिलती है जो कि मानवीय जीवन से जुड़े हुए कुछ समान विश्वासों को प्रकट करती है, आत्मपूजन इन्हीं विश्वासों में से एक है जो मानव शरीर पर देवत्व की अवतरण की प्रक्रिया से सम्बन्धित है।[1]

लोक परम्पराओं की सामाजिक अवधारणाओं का प्रयोग सर्वप्रथम अमरीकी मानव शास्त्री राबर्ट रेडफील्डने किया। रेडफील्ड के अनुसार परम्पराऐं दो भागों में विभाजित होती है। लघु परम्परा एवं वृहत परम्परा जो परम्पराऐं सामान्य जन लोगों की सदियों से चली आने वाली मौखिक परम्परा होती है वे लघु परम्परा कहलाती है तथा जो परम्पराऐं धर्मग्रन्थों एवं आदिग्रन्थो पर आधारित है उसे वृहत परम्परा कहते है।[2] परम्पराओं को यदि लोक जीवन का प्राण तथा उनकी लोक परलोक संबंधी आस्थाओं एवं संकल्पनाओं का आईना कहा जाये तो इसमें कोई आयुक्ति नहीं होगी यह उनकी जीवनधारा का एक प्रवाहमान जीवन स्रोत होता है क्योंकि इस परम्परा का उद्भव, संवर्द्धन एवं संरक्षण समाज विशेष के सदस्यों को अपनी व्यक्तिगत एवं सामूहिक अनुभूतियां सामाजिक तथा सांस्कृतिक वातावरण के अनुकूल प्राप्त होती है। यद्यपि इसकी उत्पत्ति भले ही व्यक्ति विशेष की अनुभूति अथवा संकल्पना से हुई हो किन्तु कालान्तर में उस समाज के सभी या अधिकतर व्यक्तियों द्वारा उसके प्रति एक मान्यता बन जाने से वह एक सार्वभौम विश्वास/परम्परा का रूप धारण कर पूरे समाज में स्थायित्व प्राप्त कर लेता है।

मैकिम मेरियट ने अपने सार्वभौमिकरण के सिद्धान्त में भी इस बात की पुष्टि की है कि परम्परा के तत्व यथा-देवी-देवताओं, प्रथाओं इत्यादि का फैलाव क्षेत्र जब विस्तृत हो जाता है तब इसकी मान्यताऐं एवं क्षेत्र विशेष में सार्वभौमिक रूप से विद्यमानता आ जाती है।[3] उल्लेख्य है कि उत्तराखण्ड समाज में पाये जाने वाले अनेक विश्वास एवं मान्यताऐं ऐसी है जो कि उसे अपने ऐतिहासिक धरोहर से परम्पराओं के रूप में मिली है। उत्तराखण्ड क्षेत्र में देवी देवताओं की बहुलता का कारण यहां का प्राकृतिक परिवेश रहा है यहां का कोई पर्वत, शिखर, नदी, नाला, गुहा, गर्त यहां तक कि कोई विशाल वृक्ष या पाषाण शिला ऐसी नहीं जो किसी देवी देवता से संबंधित न हो। वस्तुत: देखा जाये तो यहां पर अत्यन्त उबड़-खाबड़ और बीहड़ स्वरूप में प्रकृति और डरावनी धुने प्रेतआत्माओं के अनंत संसार का आभास कराती है।[4]

प्रकृतिवाद के सिद्धान्तवेत्ता मैक्स मूलर का मत है कि प्रकृति में अदृश्य किन्तु सर्वशक्तिमान कोई मानवेत्तर शक्ति है जो प्रकृति के सभी क्रम परिवर्तनों को संचालित एवं नियंत्रित करती है। उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में एवं साधारणीकृत रूप में सभी हिमालयी क्षेत्रों में प्रकृति पूजा एवं भूत-देववाद पूजा का

एक समन्वित रूप देखने को मिलता है।[5] कुमाऊँ के जनजीवन में भी लोक देवताओं के प्रति गहन आस्था देखने को मिलती है। कुमाऊँ में दो तरह के धार्मिक विश्वास देखने को मिलते है जिनमें प्रथम वैदिक एवं पौराणिक देवी-देवताओं संबंधी विश्वास तथा द्वितीय स्थानीय देवी-देवताओं संबंधी विश्वास आते है। स्थानीय देवी-देवताओं पर कुमाऊँ के ग्रामीणजनों को इतना अधिक विश्वास रहता है कि उन्हें हर आधि-व्याधि की जड़ और उनकी दवा भी देवताओं में ही नजर आती है।[6]

कुमाऊँ में लोक परम्परा का जीवंत व प्रचलित प्रमाण जागर (देवी देवताओं का पवित्र अनुष्ठान) है। लोक देवताओं को प्रसन्न करने किसी पारिवारिक विपत्ति से निवृत्ति पाने तथा अनिष्ट का निवारण हो जाने के उपलक्ष्य में देवता विशेष के सम्मान में देवता को आमंत्रित करने तथा उसे व्यक्ति विशेष के माध्यम से अवतरित कराने (नचाने) की प्रथा व्यापक स्तर पर आयोजन कराना ही जागर है।[7] यहॉ की जनमानस की आस्था जागर को एक पुनीत धार्मिक कृत्य मानती है। जागर का संबंध देवता के अवतरण जागरण से है जो लोक विश्वास से जुड़ी मान्यताओं के आधार पर वर्ग विशेष तथा क्षेत्र विशेष में सामाजिक परम्पराओं के रूप में उद्घाटित होती है और जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रही है।

जागर आयोजन में जागर का मुख्य संचालक और गायक जगरिया कहलाता है वह मुख्य गाथा को गाता है सहायकों के रूप में भाग लगाने वाले भगार कहलाते है। देवता अवतरण के लिए जो व्यक्ति माध्यम का मुख्य कार्य करता है वह डंगरिया कहलाता है तथा जागर के आयोजनकर्ता को स्योंकार कहते है।जागर में जगरिये को विशेष स्थान प्राप्त है इन्हीं के परिणामस्वरूप देवता के विभिन्न रूप अवतरित होते है जो लोगों की उत्सुकता को समाप्त करते है। कुमाऊँ में यद्यपि अनेकों देवताओं जैसे गोलू, हरू, सैम, गंगनाथ, भोलानाथ, कलबिष्ट, चौमू, भूमिया इत्यादि देवताओं का जागर/पूजन होता है किन्तु यहां के जनमानस में कुलदेवता या ग्राम देवता में इष्ट देव के रूप में सर्वाधिक श्री गोलू देवता को सम्मान तथा प्रतिष्ठा प्राप्त है जिन्हें न्यायकारी देवता भी माना जाता है। गोलू देवता सभी श्रद्धालुओं न्यायप्रिय तथा धार्मिक लोगों के देवता है इनके सैकड़ों मंदिर कुमाऊँ में यत्र तत्र विद्यमान है जिनमें अत्यधिक महत्वपूर्ण चंपावत, चितई व घोड़ाखाल में स्थित है। गोलू का नाम कुमाऊँ के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है उन्होंने कभी भी राजसी ठाट-बाट नहीं अपनाया उन्होंने जनता के सुख को प्राथमिकता दी। उनका जीवन उदार भावनाओं तथा न्याय के लिये समर्पित था राज्याभिषेक पश्चात वे जनता के सेवक बनकर रहे। उनका सारा जीवन लोगों के दु:खों को अन्त करने में बीता। गोलू के साम्राज्य में कहीं भी उत्पीड़न नहीं था। गोलू देवता की पौराणिक तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अनुसार गोलू देवता को कत्यूरी राजा झलराई के पुत्र के संबंध में माना जाता है।[8]

गोलू देवता का उद्भव चंपावत कहा गया है जहां चंद्र शासक इनकी उपासना करते थे। जब राजधानी अल्मोड़ा स्थानान्तरित हुई तब उन्हें भी चितई लाया गया तथा यहीं इनकी स्थापना हुई ये तलराई के परपोतेहलराई के पोते थे तथा उनकी माता का नाम कलिंका था। स्थानीय प्रमाणों के अनुसार चंपावत के कत्यूरी राजा झलराई की सात पत्नियां थी परन्तु उनकी कोई भी संतान नहीं थी पुत्र प्राप्ति के लिये उन्होंने अनेकों देवताओं की उपासना की, पवित्र नदियों में स्नान किया, धार्मिक कथायें सुनी जिस कारण ज्योतिषियों ने उनकी जन्म कुण्डली देखकर कहा कि वे आंठवा विवाह करें इस आंठवी रानी से इनको देवतुल्य पुत्र गोलू का जन्म हुआ।[9] गोलू देवता ईमानदार तथा दूरदर्शी प्रशासक थे जिसके कारण अपने जीवनकाल में भी वे आदरणीय माने जाते थे। मृत्युपरान्त वे लोकप्रिय देवता के समान सम्मानित हुए। गोलू देवता, भूमि देवता (पृथ्वी से संबंधित) देवता भी कहे जाते है जो पृथ्वी पर रहने वाले लोगों को बुरी आत्माओं तथा उनके कुप्रभावों से बचाते हैं ऐसी मान्यता है कि गोलू देवता न केवल लोगों की आध्यात्मिक आवश्यकताओं की ही पूर्ति नहीं करते अपितु उनकी शारीरिक तथा मानसिक कठिनाईयों व चिन्ताओं को भी दूर करते है। इनके दरबार से शायद ही कोई असन्तुष्ट होकर लौटता हो। यही कारण है कि वे ''न्याय के देवता'' तथा ''मनोकामना पूर्ण करने वाले देवता'' के रूप में सर्वविख्यात है।[10]

मानवीय न्यायालयों द्वारा न्याय में विलम्ब होने या न्याय न मिल पाने पर लोग पूर्णत: निर्भीक होकर उनके दरबार में अपनी उन प्रार्थनाओं पर अंतिम निर्णय की चाह में जाने के लिए बाध्य होते है जिनका सांसारिक न्यायालयों द्वारा उचित रूपेण निर्णय नहीं हो सका है। गोलू देवता ने पीडिष्तो, निराश, प्रताडिष्त लोगों की पुकार पर विविध तरीके से उनके दुखों व विपत्तियों का समाधान किया है। आस्था की दृष्टि से ''चितई के गोलू देवता'' के मंदिर को यहां का ''उच्चतम न्यायालय''माना जाता है वे गरीब जो मानव न्यायालय के द्वारा प्रदत्त खर्चीले न्याय पाने में असमर्थ है यहां तक कि सम्पत्तिशाली और उच्च श्रेणी के कर्मचारी जिन्हें न्यायालय के न्याय में विश्वास नहीं होता अपनी पीड़ा से मुक्ति पाने के लिये गोलू देवता के न्यायालय में आते है तथा अपने प्रार्थनापत्रों को बिना किसी मूल्य के जमा करते है तथा उचित न्याय भी प्राप्त करते है।[11] इच्छापूर्ति या अभीष्ट की प्राप्ति होने के पश्चात जनमानस जागर का आयोजन कर गोलू देवता के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते है। गोलू देवता के जागर का आयोजन सम्पूर्ण गांव के लाभ हेतु ग्राम मंदिरों में या व्यक्तिगत मामलों के लिये घर के भीतर दोनों प्रकार से होता है जिनमें प्रथम प्रकार का आयोजन ''जागा'' तथा द्वितीय ''जागर'' होता है इन्हें क्रमश: बाहरी जागर तथा भीतरी जागर कहते है। गोलू देवता के सम्मान में किये गये जागर में तांबे की थाली, हुड़का तथा मृदंग का प्रयोग किया जाता है। पशुबलि में अत्यन्त आवश्यक है और उन दिनों जब ऐसी बलि प्रथा पर नियंत्रण लग जाता है तब जागर का आयोजन भी नहीं हो सकता है।

जागर के आयोजन में समय और उद्देश्य पूर्व निर्धारित होता है। गोलू के जागर के प्रतिनिधि प्रात: तथा संध्या में स्नान करते है मात्र फल ग्रहण करते है जब उनके शरीर में देवता अवतीर्ण हो जाते है तब वे लाल गर्म फौदी एक (लौह त्रिशूल) धूनी से उठाकर अपनी जीभ से स्पर्श कराते है तथा निडरता से नंगे पांव धूनी के जलते अंगारों पर चलते है। इससे यह प्रदर्शित होता है कि ऐसा करते हुए न तो उन्हें जलने का डर रहता है और न ही उनके शरीर को किसी प्रकार से हानि पहुंचती है। गोलू की अवीतर्ण अवस्था में जगरिये का नृत्य प्राय: आक्रामक, समृद्ध तथा व्यायाम के समान होता है। वह इस दौरान एक पैर पर नाचता है। जिस स्थान पर जागर लगाया जाता है उसे गाय के गोबर से लीपा जाता है। ज्येष्ठ तथा मार्गशीष माह में मुख्यत: गोलू देवता की जागर/पूजा होती है इनके जागर में विश्वास करने वाले व्यक्ति अपनी परेशानियों से मुक्ति प्रसन्नचित्त तथा शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करते है। गोलू देवता के जागर के साथ ''घात लगाने की विशेष परम्परा'' भी जुड़ी हुई है क्योंकि गोलू देवता को ''न्यायप्रिय देवता'' के रूप में माना जाता है।[12]

अत: जब कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति से बहुत अधिक प्रताड़ित होता है तो वह घात लगाकर, चिल्लाकर तथा चीखकर गोलू देवता से अन्याय के प्रति विरोधी को दंडित करने की चुनौतीपूर्ण प्रार्थना करता है। घात लगाकर कानून के साधारण दरबार में गलत निर्णयों में विरोधों में प्रार्थना करता है। घात

लगाते समय वह कहता है कि हे गोलू देवता आपने स्वंय देखा है कि मेरे प्रति कितना अन्याय हुआ है यदि आप न्यायी है तो अवश्य ही अन्यायी को दंड दीजिए यदि इस घात में सत्यता तथा यथार्थता है तो जिसके प्रति अन्याय का दोष था वह या उसके परिवार में संकट आ जाता है क्योंकि गोलू देवता से न्याय निश्चित रूप से प्राप्त होता है।[13]

इस प्रकार सैकड़ों शताब्दियां बीत जाने पर भी ''गोलू देवता'' से न सिर्फ ग्रामीण और अनपढ़ लोग ही प्रभावित है वरन इस क्षेत्र के कस्बों तथा शहरों में भी रहने वाले प्रबुद्ध लोग भी प्रभावित है जो उन पर समर्पण व अटल विश्वास रखते है। आधुनिक न्याय व्यवस्था के होते हुए भी उत्तराखण्ड के जनमानस में न्याय के रूप में गोलू देवता विराजमान है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण ''चितई का गोलू देवता का मंदिर'' है।[14] बड़ी संख्या में यहां कागजों पर लिखी डाक से या साधारण मनौतियां हजारों की संख्या में बांधी गई घंटियां इत्यादि गोलू देवता के न्यायालय में इस न्याय की अपेक्षा से ही आती है कि गोलू देवता उनकी सहायता करेंगे और अपराधी को दण्ड देंगे।

निष्कर्ष–अध्ययन से पता चलता है कि कुमाऊँ के लोग गोलू लोक देवता में समा जाने वाली भावना तथा विश्वास से अवगत होकर उस गोलू देवता के आगे नतमस्तक होते है। जिनका वास्तविक स्वरूप व महिमा का जागर लोकगाथाओं के माध्यम से पीड़ी दर पीड़ी स्थानान्तरण होता रहा है, इस कारण इन देवों के संबध में जानकारी रखने वाला मानव गोलू लोक देवता में समा जाने वाली भावना तथा विश्वास से अवगत होकर उनके आगे नतमस्तक हो जाता है। इस क्षेत्र में गोलू देवता के प्रति अधिक जन भावनाएँ जुड़ी हुई हैं। यहां के जनमानस में कुलदेवता या ग्राम देवता में ईष्ट देव के रूप में सर्वाधिक गोलू देवता को सम्मान तथा प्रतिष्ठा प्राप्त है जिन्हें न्यायकारी देवता भी माना जाता है। गोलू देवता सभी श्रद्धालुओं न्यायप्रिय तथा धार्मिक लोगों के देवता है इनके सैकड़ों मंदिर कुमाऊॅ में यत्र तत्र विद्यमान है,न्यायकारी गोलू देवता का प्रभाव क्षेत्र अत्यंत व्यापक है और वह जो अपने भक्तों के ऊपर कृपा करते हैं तथा जीवन पर्यन्त कठिनाई में उनका साथ देते हैं इस कारण उनकी मान्यता निरन्तर बढ़ती ही गयी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. जोशी, ज्योति: 2014; क्वेस्ट शोध पत्रिका पृष्ठ सं0 8–12 यू0जी0सी0ए नैनीताल
2. रेडफील्ड, राबर्ट: 1941; दि फॉक कल्चर ऑफ यूकान्टा; शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस शिकागो।
3. बलूनी, दिनेश चन्द्र: 2001; उत्तरांचल संस्कृति लोकजीवन; प्रकाश बुक डिपो, दिल्ली।
4. शर्मा, डी0डी0: 1998; हिमालय संस्कृति के मूलाधार; सोलन अल्मोड़ा।
5. थपलियाल, उमा प्रसाद: 2005; उत्तरांचल एतिहासिक; बी0आर0 पब्लिशिंग दिल्ली।
6. भट्ट, मदन चन्द्र: 2002; कुमाऊॅ की जागर कथायें; साई प्रिन्टर्स, हल्द्वानी।
7. सिंह, हयात: 1987; बैसी, पुरवासी, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड।
8. पोखरिया, देव सिंह: 2006; कुमाऊनी लोक गीतों में छन्द परियोजना; हल्द्वानी प्रकाशन।
9. शर्मा, डी0डी0: 2006; उत्तराखण्ड के लोकदेवता; अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी।
10. उनियाल, हेमा: 2014; मानसखण्ड (कुमाऊ, इतिहास, धर्म, संस्कृति, वस्तुशिल्प एवं पर्यटन); केशवपुरम, दिल्ली।
11. पाण्डे, बी0डी0; 1937; कुमाऊॅ का इतिहास; श्याम प्रकाशन, अल्मोड़ा।
12. जोशी, प्रयाग: 1971; कुमाऊॅ की लोकगाथाओं का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन; प्रकाश बुक डिपो, बरेली।
13. तिवारी, ज्योति: 2002; कुमाऊनी लोक गीत तथा संगीत शास्त्रीय परिवेश, नई दिल्ली।
14. अधिकारी, पूरन सिंह: 2006; मौखिक परम्पराओं में प्रतिबिम्बित सामाजिक व आर्थिक जीवन; एक ऐतिहासिक अध्ययन, हल्द्वानी।

महाभारत में अवतारवाद की अवधारणा (एक विश्लेषणात्मक अध्ययन)

अरविन्द कुमार

शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सारांश

महाभारत भक्तिमूलक धार्मिक सम्प्रदायों का परिचय देने वाला प्राचीनतम ग्रन्थ है। ईसा की पाँचवीं शती ई0 तक यह महाकाव्य अस्तित्त्व में आ चुका था। महाभारत में शान्ति पर्व के अन्तर्गत वैष्णव धर्म के परवर्ती इतिहास पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। इसके एक अनुच्छेद में उल्लिखित महावराह शब्द से यह रचना परवर्ती सिद्ध होती है। अवतारवाद के सिद्धान्त का श्रीमद्भगवद् गीता में प्रमुखता से उल्लेख किया गया है। जिसमें कहा गया है कि भगवान् धर्म के उत्थान और अधर्म के विनाश के लिए जन्म लेते हैं। महाभारत के नारायणीय पर्व में विष्णु के अवतारों से सम्बन्धित दो सूचियाँ दी गई हैं। पहली सूची में छह और दूसरी सूची में चार अवतारों का वर्णन है। महाभारत और भागवत पुराण में अवतार के अनेक प्रयोजन बताये गये हैं। अवतार का प्रमुख प्रयोजन मानव को धर्म में प्रवृत्त करना है।

Keywords : अवतार का प्रयोजन, अवतारवाद का प्रारम्भ, वराहावतार, नरसिंहावतार, वामनावतार, वासुदेव, परशुराम (भार्गवराम), राम, अन्य अवतार।

महाभारत सनातन धर्म का एक प्रमुख ग्रन्थ है। यह विश्व का एक प्रसिद्ध महाकाव्य है। जिसकी रचना महर्षि वेदव्यास जी ने की है। इसके वर्णन में यवन, पह्लव चीन, तुखार, हूण, शक आदि जातियों के उल्लेख होने से किसी भी स्थिति में इसका समय ईसा की दूसरी शती से पूर्व निर्धारित नहीं किया जा सकता।[1] महाभारत में वर्णित धार्मिक मत कृष्ण महिमा का वर्णन करते हैं। शान्ति पर्व का मोक्ष धर्म तो एक प्रकार से कृष्ण के उपदेशों का अपूर्व संग्रह है। महाभारत के तृतीय, पंचम, षष्ठ, त्रयोदश और चतुर्दश पर्व वैष्णव धर्म के अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इनमें से त्रयोदश पर्व के 149 वें अध्याय में विष्णु के सहस्रनामों का वर्णन है। इसी प्रकार तृतीय और बारहवें पर्व क्रमशः भीम और भीष्म द्वारा कृष्ण की स्तुति का वर्णन है।

शान्ति पर्व के मोक्ष धर्म खण्ड के अन्तर्गत नारायणीयोपाख्यान से वैष्णव धर्म के परवर्ती इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। यह अंश सम्भवतः कुषाण काल अथवा इसके बाद का है। इसके एक अनुच्छेद में उल्लिखित महावराह[2] शब्द से भी यह रचना परवर्ती कालीन प्रमाणित होती है। कालिदास, प्रवरसेन, वाकाटक तथा गुप्त कालीन अभिलेखों में महावराह अथवा आदिवराह शब्द का विपुल प्रयोग भी यही संकेत करता है।

नारायणीयोपाख्यान में अवतारवाद का विकसित रूप प्राप्त होता है, पूर्ववर्ती सूचियों के चार अथवा छह अवतारों के स्थान पर अब इसमें विष्णु के दस अवतारों को मान्य किया गया है-

हंसः कूर्मश्च मत्स्यश्च प्रादुर्भावाद् द्विजोत्तम।
वराहो नरसिंहश्च वामनो राम एव च।।
रामो दाशरथिश्चौव सात्त्वतः कल्किरेव च।। शान्ति पर्व, 339.103-04

उपर्युक्त दस अवतारों के लोकप्रिय नामों में बुद्ध का अभाव तथा हंस की सत्ता होने से संख्या की पूर्ति हो जाती है। साधारणतः स्वीकृत दस अवतारों का निर्देश पुराणों में प्रमुखता से किया गया है।

अवतारवाद का सिद्धान्त- अवतार शब्द 'अवतृ' धातु से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ है, उतरना, नीचे आना अथवा उत्पन्न होना। श्रीमद्भगवद्गीता में अवतार के लिए जन्म, संभव, सृजन एवं प्रदुर्भाव आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।[4]

महाभारत के नारायणीय खण्ड में इन्हीं शब्दों का प्रयोग किया गया है।[5] यहाँ पर भगवान् के लिए कहा गया है कि उन्होंने रूप धारण किया अथवा मानव शरीर में प्रवेश किया। डॉ0 सुवीरा जायसवाल[6] का मत है कि अवतार शब्द किसी विशेष रूप में स्वयं को अवतीर्ण करने की कृपा करने वाले प्रधान देवता नारायण-विष्णु की आन्तरिक श्रेष्ठता को प्रकट करता है।

अवतार एक आधारभूत वैष्णव सिद्धान्त है, जिसका प्राथमिक विवेचन श्रीमद्भगवद्गीता में किया गया है-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।। 4.7-8

अर्थात् जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं अवतरित होता हूँ, साधुजनों की रक्षा तथा दुष्टजनों के विनाश एवं धर्म की स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में अवतार लेता हूँ। इस प्रकार भगवान् अनेक बार अवतार ग्रहण कर चुके हैं। वैष्णव धर्म के अवतारवाद का सिद्धान्त बौद्ध अवधारणा के अत्यन्त समीप प्रतीत होता है, जिसमें अनेक बुद्ध होने की बात कही गई है क्योंकि ईसा पूर्व तृतीय शती में कुछ पूर्ववर्ती बुद्धों की आराधना प्रमाणित हो चुकी है।[7] अत: यह सिद्धान्त ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन है।

श्रीमद्भगवद्गीता से ज्ञात होता है कि सामर्थ्य, समृद्धि और शक्ति, से सम्पन्न जो कुछ भी है, वह भगवान् की ऊर्जा के अंश से उत्पन्न है।[8] अत: प्रत्येक अच्छी और शक्तिशाली वस्तु भगवान् की ही अभिव्यक्ति है।[9] ऐसा प्रतीत होता है कि बोद्धिसत्त्वों के सामन विष्णु के भी असंख्य जन्म कहे गये हैं। अवतारवाद का सूत्रपात सबसे पहले ब्राह्मण साहित्य में मिलता है। शतपथ ब्राह्मण[10] में प्रजापति का कूर्मरूप धारण करके अपनी सन्तानों की सृष्टि करने तथा वराह बनकर समुद्र के भीतर से पृथ्वी के उद्धार करने का वर्णन किया गया है। विष्णु का वामन रूप धारण कर तीन पगों में असुरराज बलि से सम्पूर्ण पृथ्वी प्राप्त कर लेने की चर्चा ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध होती है। इसी प्रकार नृसिंह का उल्लेख पहली बार तैत्तिरीय आरण्यक में मिलता है। इन ग्रन्थों में वर्णित प्रसंगों से यह स्पष्ट नहीं होता कि उनका वर्णन विष्णु के अवतारों के रूप में किया गया है।

महाभारत के नारायणीय खण्ड में नारायण विष्णु के अवतारों की दो सूचियों का वर्णन किया गया है। पहली सूची में छह और दूसरी सूची में चार अवतारों के नाम दिये गये हैं चार अवतारों वाली दूसरी सूची में वराह, नृसिंह, वामन और मानुष अवतारों की गणना है। महाभारत के आरण्यक पर्व[11] तथा मार्कण्डेय पुराण[12] में भी यही सूची मिलती है। यहाँ मनुष्य के स्थान पर माधुर अर्थात् कृष्ण का उल्लेख है। परवर्ती ग्रन्थों में यह संख्या धीरे-धीरे बढ़ती गई है और इस प्रकार यह संख्या चौबीस तथा उन्तीस तक पहुँच गई है।[13]

अवतार का प्रयोजन- इस विश्व को एकता के सूत्र में बाँधने वाला एकमात्र तत्त्व धर्म है। इस धर्म का नियमन परमात्मा की एक विशिष्ट शक्ति का कार्य है। अत: जब-जब धर्म की हानि और अधर्म का बोल-बाला होता है, तब-तब भगवान् स्वयं को इस विश्व में प्रकट करते हैं। ऊर्ध्वलोक (स्वर्ग लोक) से अधोलोक (पृथ्वी) में उतरकर आना ही अवतार कहलाता है। अवतारवाद के निम्नांकित श्लोक महाभारत में मिलते हैं-

तत्राहं वर्त्तमानैश्च निवृत्तैश्चौव मानवै:।
वह्वी: संसरमाणा वै योनीर्हि द्विजसत्तम।। आश्वमेधिक पर्व, 54.12

अर्थात् जो सब मनुष्य इस धर्म में प्रवृत और पापकर्मों से निवृत्त रहते हैं, मैं ऐसे लोगों के साथ सदा निवास करता हूँ।

धर्मसंरक्षणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च।
तैस्तैर्वेषैश्च रुपैश्च त्रिषु लोकेषु भार्गव।। वही, 54.13

मैं धर्म संस्थापन तथा धर्म रक्षा के लिए अनेक योनियों में भ्रमण करते हुए निवास करता हूँ और तीनों लोकों के बीच वही रूप धारण करता हूँ।

असतां निग्रहार्थाय धर्मसंरक्षणाय च।
अवतीर्णो मनुष्याणामजायत युदुक्षये।
स एव भगवान् विष्णु कृष्णेति परिकीर्त्यते।। वन पर्व, 272.71-72

उपर्युक्त प्रयोजन के अतिरिक्त भागवत पुराण में एक अन्य प्रयोजन भी बताया गया है-

नृणां नि: श्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप:।
अव्ययस्याप्रमोयस्य निर्गुणस्य गुणात्मन: ।। 10.29.14

अर्थात् भगवान् प्रकृति सम्बन्धी, वृद्धि-विनाश, प्रमाण-प्रमेय और गुण-गुणी भाव से रहित है। वे अचिन्त्य-अनन्त, अप्राकृत परम कल्याण स्वरूप गुणों के एक मात्र आश्रय है। उन्होंने स्वयं को और अपनी लीला को इस प्रयोजन से प्रकट किया है कि जीव उसके सहारे अपना कल्याण कर सके।

ज्ञान का प्रसार भी भगवान् के अवतार का तीसरा प्रयोजन है भगवान् ही गुरुओं का गुरु है तथा समस्त ज्ञान का आधार है। वहीं से ज्ञान की धारा प्रवाहित होती है, जिसके बिन्दु मात्र को प्राप्त कर मानव कृतकृत्य हो जाता है। कपिल के अवतार का मुख्य उद्देश्य तत्त्वों का निरूपण तथा आत्मा की उपलब्धि का मार्ग बतलाना था-

एतन्मे जन्म लोकेऽस्मिन मुमुक्षूणां दुराशयात।
प्रसंख्यानाय तत्त्वानां सम्मतायात्मदर्शने।। भागवत पुराण, 3.24.36
कपिलस्तत्त्वसंख्याता भगवान् आत्ममायया।
जात: स्वयमज: साक्षादात्मप्रज्ञप्तये नृणाम्।। वही, 3.25.1

अर्थात् भगवान् कहते हैं कि इस लोक में मेरा यह लिंग शरीर से मुक्त होने की इच्छा वाले मुनियों के लिए आत्म दर्शन में उपयोगी प्रकृति आदि तत्त्व विवेचन के लिए हुआ है। तत्त्वों की संख्या करने वाले भगवान् कपिल साक्षात् अजन्मा नारायण होकर भी मानवों को आत्मज्ञान का उपदेश करने के लिए अपनी माया से उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार जीव को मोक्ष प्रदान करना ही भगवान् के अवतरण का मुख्य उद्देश्य है।

अवतारवाद का प्रारम्भ

अवतारवाद का प्रारम्भ वैदिक ग्रन्थों में सबसे पहले मिलता है। ऋग्वेद के अनेक मंत्र अवतारवाद से सम्बन्धित है। अवतारवाद का घनिष्ठ सम्बन्ध पुनर्जन्म से स्वीकार किया जाता है। पुनर्जन्म से सम्बन्धित अनेक मन्त्र ऋग्वेद में पाये जाते हैं, जिनमें इन्द्र को अपनी माया द्वारा नाना रूपों में धारण करने का तत्त्व प्रतिपादित किया गया है-

रूपं रूपं मघवा बोभवीत
माया कृण्वानस्तन्वं परि स्वाम्।
त्रिर्यद् दिवः परिमुहूर्तमागात्
स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा।। ऋग्वेद, 3.53.8
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव
तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते
युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश।। वही, 6.47.18

उपर्युक्त मन्त्रों में इन्द्र माया द्वारा विभिन्न प्रकार के रूप धारण करते हैं। वैदिक साहित्य में माया का अर्थ अवान्तर लोक प्रचलित अर्थ से भिन्न स्वीकार किया जाता है, परन्तु महाभारत काल में इसका व्यवहार प्रचलित अर्थ में हो गया, क्योंकि पूर्वोक्त मन्त्रों के आधार पर ही यहाँ इन्द्र को बहुमायः बताया गया है-

स (इन्द्रः) हि रूपाणि कुरुते विविधानि भृगूत्तम।
बहुमायः स विप्रर्षे बलहा पाकशासनः।। महाभारत, 13.75.25

ऋग्वेद में अवतारवाद के दिये गये बीज ब्राह्मण ग्रन्थों में विकसित रूप में पाये जाते हैं। इस भावना का स्पष्ट रूप शतपथ ब्राह्मण में देखने को मिलता है। प्रजापति ने ही मत्स्य (1.8.1.1) का, कूर्म (7.5.15; 14.1.2.11) का तथा वराह (14.1.2.11) का अवतार लिया था। रामायण (2.110) में भी वराह अवतार का वर्णन है तथा महाभारत[14] में ब्रह्मा द्वारा वराह रूप धारण करने का कथन है। अभी तक इन अवतारों का सम्बन्ध प्रायः प्रजापति के साथ था, किन्तु कालान्तर में विष्णु की प्रधनता स्थापित हो जाने पर ये अवतार विष्णु से सम्बद्ध कर दिये गये, परन्तु वामनावतार के सम्बन्ध तथ्य कुछ और हैं। प्रारम्भ में विष्णु को उरुगाय तथा उरुक्रम के विशेषण प्रदान किये गये हैं और पगों में पृथ्वी को माप लेना उनका एक साहस पूर्ण कार्य बताया गया है तथा शतपथ ब्राह्मण में (1.2.5.1), विष्णु के वामनावतार की कथा का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। अवतारवाद के बीज ब्राह्मण साहित्य में प्रारम्भ से ही विद्यमान थे, परन्तु इस समय न तो विष्णु की प्रधानता थी और न इन अवतारों की, अभी पूजा प्रारम्भ हुई थी। अवतारवाद का उत्कर्ष उस समय प्रारम्भ हुआ, जब कृष्ण-बलराम की भक्ति का उद्घोष हुआ। वैष्णव धर्म के उदय के साथ वासुदेव कृष्ण का नारायण के साथ एकता स्थापित हो गई और अवतारवाद का युग प्रारम्भ हो गया।

प्रमुख अवतारों का वर्णन

वराहावतार- ऋग्वेद में आर्य विरोधी एक वराह का उल्लेख है, जो असुरों का धन पहाडिघ्यों के दूसरी ओर रखता था।[15] शतपथ ब्राह्मण[16] के अनुसार एक वराह ने प्रलय के समय जल से पृथ्वी को ऊपर उठाया था। विष्णुधर्मोत्तर पुराण[17] में कृषि सम्बन्धी कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व विष्णु के वराहावतार की पूजा का विधान किया गया है। विन्ध्यपर्वत माला के आस-पास के प्रदेश में वराह मत लोक प्रिय था, कदाचित् यह क्षेत्र वराह पूजा का केन्द्र प्रतीत होता है। गुप्त काल में वराह की उपासना अत्यन्त विकसित रूप में प्रचलित थी।

नरसिंहावतार- नरसिंह देवता का प्राचीनतम उल्लेख तैत्तिरीय आरण्यक में मिलता है। यहाँ उन्हें शक्तिशाली पंजे तथा तीक्ष्ण दाँतों वाला बताया गया है।[18] आर0 ओट्टो[19] का मत है कि नरसिंह एक स्वतन्त्र देवता थे, जो दिव्य शक्ति के अवतार माने जाते थे। डॉ0 सुवीरा जायसवाल[20] का कथन है कि नरसिंह भी विनायकों की तरह एक भयानक देवता थे, जो अपने क्रोध के कारण पूजित थे। विष्णुधर्मोत्तर पुराण[21] में उन्हें समस्त दैवी आपदाओं से रक्षा करने वाला बताया गया है। उक्त पुराण[22] के अनुसार भगवान् ने अपना नरसिंह अवतार मद्र देश में लिया था। यह देश मध्य पंजाब में स्थित था। इसकी राजधानी सियालकोट थी।[23] यहाँ मद्रक नामक जाति का निवास था। आज भी यहाँ नरसिंह की उपासना लोकप्रिय है। पंजाब के कुछ भागों में नरसिंह की उपासना ई0 सन् की प्रारम्भिक शतियों से ही प्रारम्भ हो गई थी । इसी समय उन्हें वैष्णव धर्म में आत्मसात कर लिया गया था।

वामनावतार- विष्णु का वामन अवतार ऋग्वेद में वर्णित विष्णु के तीन पगों के पौराणिक आख्यान का विस्तार है, अनुश्रुति है कि बलि नामक एक दैत्य राजा ने सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतकर देवताओं को भयभीत कर दिया। अतः देवताओं को भयमुक्त करने के उद्देश्य से विष्णु ने वामन रूप धारण कर यज्ञ कर रहे दैत्यराज बलि से तीन पग वसुधा की माँग की। बलि द्वारा याचना स्वीकृत हो जाने पर विष्णु ने अपना विराट रूप धारण कर तीन पगों में सम्पूर्ण पृथ्वी को माप कर दैत्यराज को पाताल भेज दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि पहले बलि की पूजा व्यापक रूप से प्रचालित थी और उपर्युक्त आख्यान उसी उपासना के दमन का संकेत करता है।

वासुदेव- नारायणीय खण्ड की दूसरी सूची में मात्र एक नरावतार का उल्लेख है, जो स्पष्टतः वासुदेव का संकेत करता है।

नारायणीय खण्ड की पहली सूची में भार्गव राम और दाशरथि राम को भी सम्मिलित कर लिया गया है इनका वर्णन इस प्रकार है-

परशुराम (भार्गवराम)- परशुराम एक महान् पौराणिक वीर थे, जिन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया था। वाल्मीकि रामायण[24] में दाशरथि राम द्वारा उनके पराभव की कथा के वर्णन से ज्ञात होता है कि यह महाकाव्य परशुराम के प्रति अनुकूल आदरभाव प्रदर्शित नहीं करता है। परशुराम का दैवीकरण भार्गव ब्राह्मणों द्वारा महाभारत का नूतन संस्करण तैयार करते समय किया गया।[25]

राम- रामकथा का प्राचीनतम उपलब्ध विवरण दशरथ जातक में पाया जाता है, किन्तु यह विवरण वाल्मीकि रामायण से अनेक तथ्यों में भिन्न है। रामकथा का सर्वाधिक प्राचीन जैन संस्करण विमलसूरि के पाउमचरिय में उपलब्ध है। विमलसूरि के वर्णन के मूल तत्त्व वाल्मीकि रामायण से मिलते-जुलते हैं। ई0

सन् की प्रारम्भिक शतियों में राम को विष्णु का अवतार स्वीकार कर लिया गया तथा इसी समय रामायण में प्रथम तथा सप्तम् काण्ड जोड़े गये। गुप्त काल तक राम की पूजा व्यापक रूप से लोकप्रिय हो चुकी थी।

अन्य अवतार- उपर्युक्त अवतारों के अतिरिक्त महाभारत में मनु की रक्षा करने वाले मत्स्य का उल्लेख मिलता है। इस महाकाव्य में अपनी पीठ पर पृथ्वी को धारण करने वाले कच्छप का भी वर्णन मिलता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में दोनों का विवरण सृष्टिकर्त्ता प्रजापति के रूप में किया गया है। महाभारत में वर्णित मत्स्य और कच्छप विष्णु से सम्बद्ध नहीं है, किन्तु पुराणों में उनकी गणना विष्णु के अवतारों में की गई है।

सन्दर्भ सूची

1 शुकथंकर, ओन दि मीनिंग्स ऑफ महाभारत, पृ0 63; राय चौधरी हेमचन्द्र, अर्ली हिस्ट्री ऑफ दि वैष्णव सेक्ट्स, पृ0 69; हॉप्किन्स, द ग्रेट एपिक ऑफ इण्डिया, पृ0 387

2 महाभारत, शान्तिपर्व, 12.325.4

3 श्रेडर, इण्ट्रोडक्शन टु दि पांचरात्र एण्ड अहिर्बुधन्य संहिता, पृ0 35

4 श्रीमद्भगवद्गीता, 4.5; 5.6, 8; 5.7

5 महाभारत, 12,326.61; 3.187.11, 28

6 जायसवाल सुवीरा, वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास, पृ0 123

7 द एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ0 391; आप्टे, सोशल एण्ड रिलीजस लाइफ इन द गृह्यसूत्राज, पृ0 450

8 श्रीमद्भगवद्गीता, 10.49

9 महाभारत, 12.337.35; विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 1.74.43.4

10 शतपथ ब्राह्मण, 7.5.1.5;14.1.2.11; राय चौधरी हेमचन्द्र, अर्ली हिस्ट्री ऑफ दि वैष्णव सेक्ट्स, पृ0 96-97

11 महाभारत, आरण्यक पर्व 3.100.9; जायसवाल सुवीरा, वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास, पृ0 135, टि0 71

12 मार्कण्डेय पुराण, 53.56

13 भागवत पुराण, 1.3 तथा आगे; सात्वत संहिता, अध्याय 9; बनर्जी, डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ0 391 तथा आगे।

14 महाभारत, 3.187.11
वाराह रूपंमास्थाय मयेयं जगती पुरा।
मज्जमाना जले विप्र वीर्येणासीत्समुद्धृता।।

15 ऋग्वेद, 1.61.7;8.77.10; तैत्तिरीय संहिता, 6.2.4

16 शतपथ ब्राह्मण, 14.1.2; रामायण, 2.110.4

17 विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 3,119.62

18 तैत्तिरीय आरण्यक, 10.1.6

19 विश्वभारती क्वाटर्ली, खण्ड 1, भाग 1, पृ0 17

20 जायसवाल सुवीरा, वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास, पृ0 125

21 विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 3.119.13; 3.123.1-9; 2.19, 7-8; 1.196.37

22 वही, 3.121.4

23 राय चौधरी हेमचन्द्र, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्सिएण्ट इण्डिया, पृ0 545

25 वाल्मीकि रामायण, 1.75 तथा आगे

25 जायसवाल सुवीरा, वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास, पृ0 126

कोशलः विविध धर्मों का पालनाः एक ऐतिहासिक अध्ययन

कुलभूषण श्रीवास्तव

शोधार्थी (जे0आर0एफ0), इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ0प्र0।

भूमिका- ''धार्यते इति धर्मः'' अर्थात जो धारण करने योग्य है वही धर्म है। मनुष्य के जीवन में धर्म एक महत्वपूर्ण कारक रहा है, जिसने संस्कृतियों के विकास की नीव रखी। प्राचीन भारत में हमें हिंदु, बौद्ध एवं जैन इन तीन धर्मो का सर्वाधिक प्रभाव दिखता है। वैदिक धर्म में कुलीनों की महत्ता बढ़ने लगी। वैदिक धर्म की बढ़ती हुई कर्मकाण्डीय परम्परा ने लोगों में असंतोष उत्पन्न किया। उत्तर वैदिक काल के पश्चात् कुछ नये धर्मों का जन्म हुआ। इनमें बौद्ध एवं जैन धर्म सर्वाधिक प्रभावशाली हुआ। इन धर्मों का प्रादुर्भाव जिस भौगोलिक क्षेत्र में हुआ वह हमें विदित है। हिंदु धर्म के मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम का जन्म स्थान अयोध्या (कोशल) है, बौद्ध धर्म के संस्थापक महातमा बुद्ध का जन्म लुम्बिनी में एवं जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को कोशल का बताया गया है। कोशल क्षेत्र में किस प्रकार वैदिक धर्म के साथ-साथ बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म सभी मनुष्यों के कल्याण हेतु सृजित हुआ, इस तथ्य का अध्ययन इस शोध-पत्र में किया गया है।

छठीं शताब्दी ई० पू० में 16 महाजनपद अस्तित्व में आ चुके थे।[1] उन 16 महाजनपदों में से कोशल भी एक था। सर्वप्रथम शतपथ ब्राह्मण में कोशल जनपद का उल्लेख मिलता है, और अयोध्या को इसके अन्तर्गत एक नगर माना गया है।[2] ऐतिहासिक अध्ययन हमें यह बताते हैं कि कोशल महाजनपद में वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म का उद्भव एवं प्रसार हुआ। यहां के जनपालक नरेशो ने धर्म से संबंधित विविध आयामों का चिंतन किया था। उनके द्वारा धार्मिक संस्थाओं को विकसित करने के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किए गए।

वैदिक धर्म- रामायण और महाभारत में कोशल राज्य को एक प्रभावशाली और सम्पन्न राज्य निरुपित किया गया है। रामायण में कोशल का उल्लेख इस रूप में हुआ है -

कौशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान,
निविट सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान,
अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोक विश्रुता,
मनुना मानपेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम।[3]

अर्थात् कोशल नामक एक बहुत बड़ा जनपद सरयू नदी के किनारे बसा हुआ है। यह बहुत अधिक धन-धान्य से सम्पन्न, समृद्धिशाली एवं सुखी है। इसी जनपद में अयोध्या नगरी है, जो समस्त लोकों में ख्यातिलब्ध है। मनु ने इस पुरी को स्वयं बसाया था। अर्थात् कोशल एक प्रभावशाली राज्य था यहाँ के निवासी धन-धान्य से पूर्ण थे, किन्तु रामायण के श्लोक में प्रयुक्त जनपद शब्द ऐतिहासिक रूप से अधिक महत्व का था। इसे दूसरे शब्दों में कहें तो रामायण काल तक भी कोशल की राजनीतिक स्थिति एक जनपद के रूप में ही थी। महाभारत काल में कोशल का उल्लेख जनपद के रूप में हुआ है।[4] इस समय बृहद्बल नामक एक राजा का शासन था। भीमसेन के दिग्विजय अभियान में भीम के द्वारा वह पराजित हुआ। इक्ष्वाकु वंश की स्थापना कोशल में हुई।

वैदिक धर्म के विभिन्न अनुष्ठानों में सबसे महत्वपूर्ण यज्ञ परंपरा थी। कोशल नरेशों ने भी यज्ञ को महत्व दिया। यज्ञ के माध्यम से उन्होंने जन कल्याण का प्रयास किया। कोशल नरेश वैवस्वत मनु भारत के धार्मिक इतिहास में प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने धार्मिक चिंतन के प्रारंभ में यज्ञ कर्मो की समुचित व्यवस्था की थी। उन्होंने संतान की प्राप्ति हेतु मैत्रावरुण यज्ञ किया था।[5] अयोध्या नरेश पृथु ने अनेक यज्ञ किए थे। युवनाश्व द्वितीय अत्यंत ही धार्मिक नरेश था, उसने हजारों अश्वमेध यज्ञ किए थे।[6] इसके पश्चात कोशल के महान नरेश मांधाता हुए। वह एक महान यज्ञकर्ता एवं दानी नरेश थे। महाभारत में इन्हें सैकड़ों राजसूय यज्ञ करने वाला तथा दानी नरेश स्वीकार किया गया है।[7] कोशल में इसके पश्चात राजा हरिश्चंद्र, जो अपनी सत्यता के लिए विख्यात थे, ने राजसूय यज्ञ किए थे। उन्होंने धार्मिक निष्ठा की पूर्ति हेतु अपनी पुत्री पत्नी एवं राज्य आदि तक को छोड़ दिया था।[8] उनके काल में विविध क्षेत्रों में कोशल की उन्नति हुई। वाल्मीकि के अनुसार दशरथ ने ज्योतिस्तोम, अनुस्टोम, अतिरात्रि, अभिजीत एवं विश्वजीत आदि यज्ञ किए थे।[9] उसने पुत्र प्राप्ति के लिए पुत्रेस्टी यज्ञ सरयू के उत्तरी तट पर करवाया था। यही कारण है कि उनके राज्य में सभी धर्मात्मा,बहुश्रुत, निर्लोम, सत्यवादी, पवित्र भोजन करने वाले, दान देने वाले, अग्निहोत्र करने वाले तथा सदाचारी थे। राम के अश्वमेध यज्ञ में वनवासी, बंदर, राक्षस, ब्राह्मण, ऋषियों, नट, नर्तक सेनाओं, विद्वानों बालकों, वृद्धों, नौकरों कोषाध्यक्ष आदि को बुलाया गया था। यह यज्ञ नैमिषारण्य में हुआ था।[10] उस समय अनेक राजाओं ने आकर राम को विभिन्न प्रकार का उपहार दिया था। राम ने उस यज्ञ में प्रचुर दान किया था। इसी प्रकार कोशल नरेश हिरण्यनाभ महान अश्वमेध यज्ञकर्ता शासक थे। कोशल क्षेत्र में कुछ समय पश्चात बौद्ध एवं जैन धर्म के आगमन से वैदिक यज्ञ एवं कर्मकांड पर भारी आघात हुआ, किन्तु दो शतकों के बाद पुष्यमित्र जैसे अश्वमेध यज्ञकर्ता का अभ्युदय हुआ। वह सगर, भगीरथ, दिलीप एवं राम आदि के यज्ञ परंपराओं में कड़ी जैसा जुड़ गया था। हरिवंश पुराण से पता चलता है कि भविष्य में एक कश्यपगोत्र के

ब्राह्मण का सेनानी होगा, जो कलयुग में अश्वमेघ का पुनरुद्धार करेगा।[11] यह सेनानी स्पष्ट है पुष्यमित्र शुंग था, क्योंकि विष्णु पुराण, अयोध्या अभिलेख, मालविकाग्निमित्रम् एवं हर्षचरित् में उसके लिए सेनापति या सेनानी की उपाधि प्रयोग की गई है। उसके अश्वमेध यज्ञ का विवरण मालविकाग्निमित्रम् तथा अयोध्या अभिलेख में मिलता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक धर्म के विभिन्न राजाओं ने वैदिक यज्ञ परंपरा के अग्रसर होने के लिए अथक प्रयास किए थे, जिसके परिणाम स्वरूप यदि उनके यज्ञयूप कोशल के दक्षिण में सरयु तमसा के तट पर दिखाई देते थे, तो उत्तर में मनोरमा के तट पर यज्ञयुपों की पंक्तियां सुशोभित होती थी।[12]

उपरोक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कोशल महाजनपद ने वैदिक धर्म के विविध तत्वों को धारण किया था, उनकी परम्पराएँ पौराणिक आख्यानों से स्पष्टत: परिलक्षित होती हैं। कोशल की पवित्र धरती पर वैदिक धर्म के आडम्बरों को चुनौती देने के लिए कुछ नए धर्मों का उत्थान आगे चलकर उत्तरवैदिक काल के पश्चात हुआ। ६ठी शताब्दी ई०पू० में यह धर्म अस्तित्व में आ गये।

बौद्ध धर्म- उत्तर वैदिक काल के पश्चात कोशल क्षेत्र में बौद्ध धर्म ने जन्म लिया। यह समय संक्रमण काल था। जब एक ओर यज्ञ कर्मकांड अपनी चरम सीमा पर थे, वहीं दूसरी ओर लोग आर्थिक गतिविधियों की ओर बढ़ रहे थे। वे कृषि अधिशेष के साथ-साथ व्यापार पर अपनी रुचि बढ़ा रहे थे इसी बीच महात्मा बुद्ध का अवतरण उनके इस कार्य में उत्प्रेरक बना। गौतम बुद्ध का जन्म 562 ईसा पूर्व में कपिलवस्तु के लुम्बिनी में हुआ था। कपिलवस्तु का क्षेत्र तत्कालीन महाजनपदों में कोशल महाजनपद का क्षेत्र था। बुद्ध के पिता का नाम शुद्धोधन था। उनकी माता का नाम मायादेवी था। गौतम बुद्ध शाक्य जाति के थे।[12] महावंश में शाक्यों के वंश क्रम का विवरण मिलता है, जिसके अनुसार इक्ष्वाकु वंशीय जयसिंह की दो संताने सिंहहनु एवं यशोधरा थीं। सिंहहनु का विवाह देवदह के शाक्य राजा की कन्या कात्यायनी के साथ तथा यशोधरा का कात्यायनी के भाई अंजन के साथ हुआ। उनके वंशजों ने कपिलवस्तु तथा देवदह का शासन किया, जिसमें राजा शुद्धोधन भी थे। महावंश में हमें जयसेन से राहुल तक की वंश परंपरा मिलती हैं। आगे चल कर इसी में गौतम, आंगिरस इक्ष्वाकु थे। इसीलिए बौद्ध धर्म दर्शन की पृष्ठभूमि के निर्माण में कोशल के योगदान को कम नहीं माना जा सकता। बौद्ध धर्म का बीजारोपण उस दिन हुआ, जब एक दिन गौतम बुद्ध दुनिया की मोह माया को छोड़कर तपस्या करने चल पड़े। राजकीय वैभव एवं अपने परिवार का उन्होंने त्याग कर दिया। उन्होंने अनवरत तपस्या करके बुद्धत्व प्राप्त किया। बुद्धत्व प्राप्त करने के पश्चात उन्होंने हिंदू धर्म की कुछ कुरीतियों जैसे बलि प्रथा, यज्ञ कर्मकांड आदि के सुधारात्मक दृष्टिकोण को अपनाते हुए वेदों तथा उपनिषदों से लिए गए पवित्रता तथा आत्म्मुक्ति के सिधान्तों को लेकर बौद्ध धर्म का प्रचार प्रसार किया। निश्चय ही बौद्ध धर्म हिंदु धर्म का सुधारात्मक रूप था।[13] बौद्ध धर्म की शिक्षा में सबसे प्रमुख गौतम बुद्ध द्वारा बताये गए चार आर्य सत्य है, उन्होंने बताया दुख संसार में विद्यमान है। भौतिक वस्तुओं की सुख भोगने की कामना से ही सांसारिक कष्ट और दुख उत्पन्न होता है। काम तृष्णा और भव तृष्णा ही दुखों का कारण है, लेकिन यदि दुख है, तो उसका निरोध भी है। दुख निरोध के लिए उन्होंने इसके कारण जानने को ही इसका निरोध अस्त्र माना है। तृष्णा, अविद्या, अज्ञान, आदि के त्यागने से ही दुख नष्ट हो जाता है। इसके अलावा गौतम बुद्ध ने दुख निरोध के मार्ग हेतु बताया है कि योगिक क्रिया अथवा तपस्या के माध्यम से दुखों का निवारण नहीं किया जा सकता था। तृष्णा और वासनाओं के विनाश करने से सांसारिक दुखों और जन्म मरण के बंधनों से छुटकारा पा सकते हैं। उन्होंने मुख्य रूप से दुखों के निवारण के लिए अष्टांगिक मार्ग प्रतिपादित किया।

महात्मा बुद्ध का कोशल महाजनपद के साकेत नगर से विशेष लगाव था। उन्होंने साकेत में स्थित अंजनवन में साकेत सुत्त तथा कुंडली सुत्त का प्रवचन किया था।[14] इतिहासकार रीज डेविडस के अनुसार अंजन, बुद्ध के नाना थें। माना जा सकता है कि नाना के ममत्व ने उन्हें साकेत में रहने के लिए प्रेरित किया था।[15] बुद्ध ने अपने जीवन का कुछ समय वर्षावास हेतु साकेत में व्यतीत किया था। यही कारण है कि उनके बालों तथा दातों के अवशेष साकेत में मिलते हैं। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने साकेत के विशाखा में स्थित विहारों का उल्लेख किया है।[16] आगे चलकर हम देखते हैं कि प्रसेनजित के काल में बुद्ध शाला नामक ग्राम जो कि कोसल में स्थित था, में कई प्रवचन दिए थे। वहाँ के गृहस्थ ब्राह्मणों ने इस नए धर्म को अपनाया था। इसके आलावा बुद्ध ने नगर्विंद और सेनाग्पुर ब्राह्मण गाँव जो कोशल में स्थित थे, को अपने धर्म में दीक्षित किया था।

बुद्ध ने अचिरावती नदी के तट पर स्थित मनसाकट ग्राम में भारद्वाज ब्राह्मणों को अपने धर्म में दीक्षित किया था।[17] कोशल नरेश प्रसेनजित बौद्ध धर्म का समर्थक था। संयुक्त निकाय से विदित होता है कि उसने बुद्ध संघ और धर्म का अनुसरण किया था।[18] मज्झिम निकाय से भी पता चलता है कि वह बौद्ध धर्मानुयायी था। उसकी रानियां मल्लिका, सोमा, सकुला बौद्ध धर्मानुयायी थीं। प्रसेनजित और बुद्ध के मिलन का चित्रण भरहुत स्तूप के एक विशाल पट्ट पर किया गया है। इस पट्ट पर दो लेख है-

(1) राजा प्रसेनजित कोशलों (2) भगवतो धमचक्कम। इससे ज्ञात होता है कि कोशल का महान राजा प्रसेनजित, बौद्ध धर्मानुयायी था, जिसका अंकन धम्मचक्र के रूप में किया गया है। मूर्ति में राजा अपने प्रासाद के द्वार से चार घोड़े के रथ में बैठकर बाहर निकल रहा है। उसके साथ हाथी, घोड़े तथा पैदल चलने वालों का जूलूस है। मूर्ति के ऊपरी भाग में एक दुतल्ला भवन है। भूमितल पर खम्भो वाला मण्डप है जिसके मध्य में दो उपासकों के बीच धम्मचक्र रखा हुआ है। ऊपरी तल्ले में पुण्यशाला है जहाँ सम्राट प्रसेनजित ने बुद्ध से अन्तिम बार भेंट किया था।[19] प्रसेनजित ने बातचीत के दौरान बुद्ध से देवताओं के अस्तित्व के बारे में पूछा था कि क्या देवता पृथ्वी पर आते हैं या नहीं ? बुद्ध ने उत्तर दिया कि देवता हिंसक होने पर ही मनुष्य के पास आते हैं। अहिंसक होने पर नहीं आते हैं। प्रसेनजित के काल में श्रावस्ती का महासेट्ठि अनाथपिण्डक बौद्ध धर्म का अनुयायी था। उसने बौद्ध विहार बनवाने की इच्छा से जेतकुमार से जेतवन खरीद लिया।[20] जेत के शर्तानुसार उसने जेतवन में करोड़ों मुद्राएँ बिछवा दिया था। उस युग की प्रसिद्ध महिला विशाखा अपने विवाह के पूर्व साकेत में रहती थी। उसका विवाह श्रावस्ती निवासी मृगर के पुत्र पुण्यवर्धन से हुआ था। विवाह के पश्चात् वह श्रावस्ती में रहने लगी। वहाँ उसने बौद्ध संघ हेतु पूर्वाराम का निर्माण किया था।[21] इसके अतिरिक्त बुद्ध ने अपने कई रितुप्रवास श्रावस्ती में बिताये। उक्त विवरणों से स्पष्ट हो जाता है कि कोशल महाजनपद के इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म का पालन-पोषण हुआ।

जैन धर्म- कोशल महाजनपद का जैन धर्म से विशेष सम्बन्ध था। जैन साहित्य में कोशल नगरी के साकेत, इक्ष्वाकुभूमि, रामपुरी, अपराजिता, विनीता, सुकौशला आदि नाम उल्लिखित है।[22] जैनियों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को कोशलीय कहा गया है।[23] यह सर्वविदित है कि कोशल के महान् चक्रवर्ती नरेश

ऋषभदेव ने अपने राज्य की सम्पूर्ण सम्पदा, वैभव और भोग लिप्सा का परित्याग कर दिया। तत्पश्चात् अपरिग्रह के सिद्धान्त को मानते हुए प्रवज्या व्रत धारण किया था। वे अपने शरीर पर एक भी वस्त्र धारण करना अपरिग्रह के सिद्धान्त की हत्या करना मानते थे। इस दृढ़ संकल्प के साथ वह सही जैन सन्यासी के रूप में कोशल में अवतरित हुए थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से उद्घोषित किया था-मनुष्य शरीर दु:खमय है, यह विषय भोग प्राप्त करने के लिए नहीं है। इस शरीर से दिव्य तप करना चाहिएय जिससे अन्त:करण शुद्ध हो। अध्यात्म शास्त्र के अनुशीलन से एकान्त प्राण, इन्द्रिय और मन के संयम से, शास्त्र और सत्पुरूषों के वचन से यथार्थ बुद्धि रखने आदि में अपने को अर्पित कर दे। ऋषभदेव के पश्चात् जैन तीर्थकर अजितनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमन्तनाथ और अवन्तिनाथ के जन्मभूमि होने का श्रेय कोशल नगरी को मिला। यद्यपि महावीर का जन्म वैशाली में हुआ था, किन्तु वे कोशल नगरी में आये थे।[24] उनके नवें गणधर धवल कोशला पुरी के वसुविप्र थे।

उक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि कोशल के महत्व के कारण ही उसे जैनियों का तीर्थस्थल माना गया। तीथंकर पार्श्वनाथ ने जैनधर्म की शिक्षाओं में चातुर्याम की व्यवस्था किया था। इस सिद्धान्त के निम्नलिखित शिक्षाएँ थीं -

1. सत्य, 2. अहिंसा-यद्यपि अहिंसा के सिद्धान्त का जन्म वैदिक काल से ही हो चुका था तथा वैदिक कर्मकाण्डों की दुरूहता के कारण यज्ञों में पशुबलि की व्यवस्था थी। इन यज्ञीय कर्मों एवं पशुवध के विरोध में पार्श्वनाथ ने अहिंसा के सिद्धान्त पर विशेष जोर दिया। 3. अस्तेय 4. अपरिग्रह। महावीर स्वामी के चातुर्याम में ब्रह्मचर्य को जोड़ देने के पश्चात् पाँच शिक्षात्मक धर्म का प्रतिपादन किया गया। इस प्रकार जैन शिक्षाओं में ब्रह्मचर्य ने पाँचवाँ स्थान प्राप्त किया। 5. ब्रह्मचर्य- महावीर स्वामी के धर्म में आशावाद की स्निग्ध छाया परिलक्षित होती है। उक्त विवरण से यह विदित हो जाता है कि कोशल की पावन भूमि में जैन धर्म के कई तीर्थकरों ने जैन धर्म के आधारभूत मूल्यों का विकास किया।

उपसंहार- प्राचीन भारतीय इतिहास में हमें मनुष्यों के धार्मिक जीवन का अध्ययन अवश्य करना पड़ता है क्योकि संस्कृतियों के निर्माण में धर्म की विशेष भूमिका रहती है। धर्म जिस भौगोलिक क्षेत्र में पलता है उस पर उस क्षेत्र की जलवायु, भौगोलिक परिवेश एवं सामाजिक-आर्थिक गतिविधियो का प्रभाव अवश्य पड़ता है। कोशल के जंगलों में मिलने वाले डाकुओं जिनमें अंगुलिमाल की कथा प्रसिद्ध है। उसके मानसिक परिवर्तन हेतु बुद्ध का बुद्धत्व आवश्यक था। जैन धर्म के प्रथम तीर्थकर ने कोशल के शांत वातावरण में अपरिग्रह का अर्जन किया। इक्ष्वाकु जैसा प्रभावशाली वंश कोशल क्षेत्र में ही सृजित हुआ। आज भी अयोध्या, सहेत-महेत जैसे स्थल प्राचीन इतिहास अध्ययन का मुख्य बिंदु हैं। ऐसे में कोशल महाजनपद के अध्ययन की आवश्यकता है। उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष मिलता है कि कोशल महाजनपद में धार्मिक सौहार्द विद्यमान था, कोशल विविध धर्मों के लिए पालना था। जिसके माध्यम से संपूर्ण प्राचीन भारतीय सामाजिक-आर्थिक जीवन को एक नई गति मिली।

संदर्भ ग्रंथ-

1. अंगुत्तर निकाय- 1.2.13.4
2. शतपथ ब्राह्मण
3. वाल्मीकि रामायण- 1.5.5
4. महाभारत
5. भागवत्पुराण 9/1/13
6. महाभारत 3/126/5-6
7. महाभारत 12/29/91
8. देवी भागवतपुराण स्कंध 7/21-26
9. वाल्मीकि रामायण- 1.14.42
10. वाल्मीकि रामायण- 7.91.28
11. हरिवंशपुराण भ्विष्यपर्व 2/40
12. मौनियर विलियम्स, बुद्धिस्म द्वितीय संस्करण पृ021
13. लूनिया, वी0 एन0, प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृ0 241-243
14. संयुक्त निकाय, भाग 2 पृ0653
15. डेविड रीज, बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ012
16. ळवेनसांग का भारत भ्रमण पृ0261
17. लाहा, विमलचरण, प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल, पृ079
18. संयुक्त निकाय, भाग 1 पृ067
19. मुखर्जी आर0 के0 ,हिंदु सभ्यता पृ0194
20. कर्न, मैनुअल आफ इण्डियन बुद्धिस्म, पृ0187
21. कर्न, मैनुअल आफ इण्डियन बुद्धिस्म, पृ039
22. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ0468
23. कल्पसूत्र, वाल्यूम 22, पृ0 235
24. पाठक विशुद्धानंद, हिस्टी आफ कोशल पृ057

मृदुला गर्ग की कहानियों में विविध स्त्री पात्र एवं स्त्री विमर्श

राजेश कुमार श्रीवास्तव

शोध छात्र (हिन्दी), वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार

सारांश:

हिन्दी कथा साहित्य में मृदुला जी का स्थान विशेष है। मृदुला जी उपन्यासकार, नाटककार होने के साथ-साथ उच्च कोटि की कहानीकार भी है लेखिका मृदुला जी अपनी कहानियों के माध्यम से परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों का खंडन करते हुए नई सांस्कृतिक मूल्यव्यवस्था का निर्माण करना चाहती है। नारी पर होने वाले अत्याचारों का यथार्थ चित्रण कई लेखकों ने किया है लेकिन मृदुला गर्ग उनसे एक कदम आगे रहकर नारी के स्वाभिमान की बात अपनी कहानियों में करती है। सदियों से नारी को हेय दृष्टि से देखा गया है और उसे समाज में निम्न कोटी का दर्जा दिया गया है। आज भी विश्व के कई देशों में नारियां परदा प्रथा में जी रही है। अगर नारी अपने ऊपर होने वाले अत्याचार का विरोध करती है तो उसकी आवाज को दबा दिया जाता है। नारी केवल अपने मानवीय अधिकारों की अपेक्षा रखती है। लेकिन उन अधिकारों से भी उसे वंचित रखने के लिए पुरूष प्रधान समाज हमेशा तत्पर रहता है। मृदुला गर्ग ने समकालीन सत्ता द्वारा प्रतिपादित सांस्कृतिक मूल्यों पर प्रश्नचिन्ह लगाया है। इन मूल्यों की पुनः व्याख्या करते हुए स्त्री मुक्ति का सम्बन्ध स्त्रियों की परम्परागत सोच की मुक्ति के साथ जोड़कर स्त्री की नई छवि का निर्माण करना चाहा है। उनकी रचनाओं में चित्रित स्त्री स्वतंत्र रूप से अपनी सार्थकता की तलाश कर रही है। इसलिए उनकी रचनाओं का सार एकसूत्र में देना हो तो यह कहा जा सकता है कि उनकी स्त्रियां में इस पुरूष के लिए क्या हूँ? यह नहीं देखती बल्कि 'मैं क्या हूँ? यह देखती है।

मूल शब्द - विचारहीन, मानवीय, चरित्र प्रधान, सहजता, उच्छेदन, परम्परागत, यौन, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक, सच्चाई, अधिकार, प्रेम-विवाह।

नई कहानी के बाद हिन्दी कहानी में जिन कथाकारों ने अपनी अलग पहचान बनाई है, उनमें से एक मृदुला गर्ग है। मृदुला गर्ग ने 1972 से लेखन कार्य की शुरूआत की। 1972 में उनकी पहली कहानी 'रूकावट' सारिका पत्रिका में छपी। 'वंशज' और 'चित्र कोबरा' जैसे- उपन्यासों की सर्जक मृदुला गर्ग के प्रमुख कहानी संग्रहों में 'कितनी कैदे' 'टुकड़ा-टुकड़ा आदमी' डैफोड़िल जल रहे है, ग्लेशियर से उर्फ सेम, शाहर के नाम, और 'समागम' प्रमुख है।

मृदुला गर्ग का कहना है ''मुझे लगता है कि हिन्दी कहानी में सबसे ज्यादा वैविध्य मेरी पीढ़ी से आया।''[1] कहानी में वे केवल शिल्प में नहीं, कथ्य में भी नये-नये प्रयोग करने में विश्वास रखती हैं। परिणाम स्वरूप उन्होंने अपनी कहानियों में युग-यथार्थ की पृष्ठभूमि में युग-जीवन को तथा युग जीवन के संदर्भ में व्यक्ति के जीवन के विभिन्न प्रसंगों एवं स्थितियों में अंकित किया है नारी के टूटते जीवन, सेक्स संबंधी टूटते रिश्ते पारिवारिक समस्यायें आदि उनकी कहानियों में चित्रित हुआ है।

'कितनी कैदे' कहानी नारी यौन अनुभवों, प्रेम विषयक आधुनिक जीवन दृष्टि को पूरे खुलेपन के साथ चित्रित करती है। इस कहानी की मीना अत्याधुनिक नारी के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होती है। वह ड्रग भी लेती है और डेट पर भी जाती है। नशे की हालत में कुछ लड़के मिलकर उसके साथ सामूहिक बलात्कार करते है। परिणाम क्या निकलता है मीना के जीवन में एक ही चीज बचती है वह है घुटन। अन्य हिन्दी कथा- लेखिकाओं की भाँति स्त्री की परम्परागत छवि को तोड़कर उसे प्रकृति रूप में स्थापित करने का प्रयास मृदुला गर्ग ने भी किया है।

बलात्कार करने वाला कोई और होता है और सजा भुगतनी पड़ती है स्त्री को। लेखिका ने बडेघ ही प्रखर रूप में इस बात का विरोध करते हुए लिखा है- ''बलात्कार स्त्री के प्रति नहीं, परिवार के मर्दों के प्रति किया गया अपराध है क्योंकि उससे समाज में उनकी इज्जत नहीं रहती है।''[2] भारतीय समाज में स्त्रियों की कामवासना की और सहज, स्वाभाविक, प्राकृतिक रूप में नहीं देखा जाता। उसके साथ पवित्रता, अपवित्रता, परिवार की इज्जत, नैतिकता, अनैतिकता आदि जुड़ जाते हैं। 'कितनी कैदें' में मीना का चरित्र मनोवैज्ञानिक धरातल पर चित्रित हुआ है।

'दुनिया का कायदा' कहानी उच्च वर्गीय जीवन की परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में रक्षा की तल्ख प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करती है। दो खण्डों में विभाजित यह कहानी के प्रथम खण्ड में बहू के मरने की घटना और दूसरे खण्ड में रक्षा के पति द्वारा आयोजित एक पार्टी का चित्रण है। परिवार के अन्य लोगों को बड़ी बहू के मरने का इतना दुःख नहीं है जितना छोटी बहू रक्षा को है। छोटी बहू रक्षा को छोड़कर परिवार के अन्य लोग दिवंगत स्त्री के अधेड़ पति के पुनर्विवाह को लेकर और दान-दहेज को लेकर की जाने वाली चर्चा में ऐसे व्यस्त है जैसे कि कुछ हुआ ही नहीं। छोटी बहू रक्षा जब इस पुनर्विवाह की चर्चा पर आपत्ति करती है तो उन्हें उत्तर मिलता है- ''यह तो दुनिया का कायदा है।''[3] कहानी के दूसरे खण्ड में रक्षा के पति द्वारा आयोजित पार्टी में उसका पति उसे मेहता के साथ नाचने के लिए और उसकी अश्लील हरकतें सहने के लिए विवश करता है। इस पार्टी में भी सब कुछ 'दुनिया का कायदा' के नाम पर होता है।

पढ़ी-लिखी और महाविद्यालय में नौकरी करने वाली समझदार छोटी बहू रक्षा समाज में नारी को दोयम स्थिति में देखकर बेचौन होती है। इस दुनिया का कायदा है, ''औरत आदमी के बगैर रह सकती है, आदमी औरत के बगैर नहीं रह सकता।''[4] यह वाक्य व्यवस्था की क्रूरता की ओर संकेत करता है। स्त्री और पुरूष के लिए भिन्न-भिन्न कायदा बनाने वाले समाज और नारी की स्थिति को देख रक्षा उद्धेलित होती है। इन स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में रक्षा को रखकर रक्षा की पीड़ा, बेचौनी को लेखिका ने आवाज दी है।

लेखिका की 'हरी बिन्दी' कहानी स्त्री की नयी छवि को प्रस्तुत करती है। दाम्पत्य की एकरसता से ऊब चुकी नायिका पारम्परिक सती भी नहीं है और वेश्या भी नहीं है। वह अपनी इच्छानुसार जीने की ललक रखने वाली स्त्री है। परन्तु उसने न घर छोड़ा है न पति को। पति के गाँव जाने के बाद अपने लिए जिन्दगी के पल चुरा लेती है। आधुनिक परिवेश के चित्रण को चित्रित करने वाली यह कहानी महानगरीय बौद्धिक युवती के संदर्भ में अस्तित्वगत चेतना को महसूसती एवं दाम्पत्य जीवन की एकरसता से उक्ता चुकी युवती की दिशाहीनता की कहानी है। इस कहानी के संदर्भ में स्वयं लेखिका ने लिखा है- 'हरी बिन्दी' अपने साथ कुछ क्षण गुजर पाने की ललक की कहानी है।''[5]

'दो एक फूल' की शातम्मा घर की नौकरानी तथा अभिरूचि सम्पन्न नारी है, जो अपने पति के कर्मों की सजा पाकर धीरे-धीरे मृत्यु की ओर जा रही है। पहला पति के कर्मों की सजा पाकर धीरे-धीरे मृत्यु की ओर जा रही है। पहला पति रोज बाजार की औरतों के पास जाता था, दारू पीता था और शातम्मा को पीटता था। सारे दुखों को चुपचाप सहने वाली नारी के रूप में शातम्मा का चरित्र चित्रित हुआ है। अलग-अलग औरतों के साथ सम्बन्ध रखने वाले पति के कारण उसके ब्लड में सिफिलिस प्रेजेंट था। अपना दोष न होते हुए भी अपने को दोषी मानकर सजा भुगतने को तैयार रहने वाली शातम्मा की मान्यता है कि स्त्री को पति की हर स्थिति में समझौता करके ही जीना है। उनके चरित्र के द्वारा देहाती स्त्री की दर्दनाक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

'उसकी कराह' कहानी की सुधा के माध्यम से विषम समाज व्यवस्था में स्त्री की महत्वहीनता पर प्रकाश डाला गया है। दिल के ट्यूमर की बीमारी से धीरे-धीरे मृत्यु की ओर बढ़ने वाली पत्नी सुधा का मृत्यु तक इन्तजार करना उसके पति के लिए कठिन है। इतना ही नहीं सुधा के मरने के पहले ही नयी लड़की के साथ शादी की तैयारियाँ भी शुरू कर देता है।

अवकाश कहानी की वह 'स्त्री' अपने पति महेश और बच्चों के साथ सुखी-दाम्पत्य जीवन जी रही है, लेकिन प्रेम किसी और पुरूष से करती है और अपने प्रेमी के साथ भाग जाने को तैयार हो जाती है। 'ग्लेशियर से' कहानी की विवाहिता मिसेज दत्ता वैवाहिक जीवन की जड़ता को तोड़ने वाली कहानी है। रोजमर्रा की जिन्दगी में बंधने के कारण उसे उसका जीवन नीरस और यंत्रवत लगता है। साठोत्तरी लेखिकाओं ने स्त्रियों के विकास में विवाह को बाधक माना है। वैवाहिक जीवन में अब पति को अपनी पत्नी की इच्छाओं, आकांक्षाओं, उसकी रूचि-अरूचि, उसके विरोध समर्थन को भी ध्यान रखना होगा अन्यथा दाम्पत्य जीवन में दरारें पड़ने लगेगी। यह विवाह संस्था अब परिस्थिति जन्य संतुलन चाहती है।'' ऐसा मत मृदुला गर्ग का भी रहा है। परिणामतः उन्होंने 'ग्लेशियरसे, अवकाश, तुक, वितृष्णा, जैसी कहानियों का सृजन किया है।

दाम्पत्य जीवन में हर स्थितियों में समझौता नारी को ही करना पड़ता है। 'तुक' कहानी की मीरा स्थितियों से समझौता करके जीने वाली, घुट-घुट कर जीने वाली नारी के रूप में प्रस्तुत हुई है। भिन्न स्वभाव, भिन्न रूचि, जीने का भिन्न तरीका, भिन्न संस्कारों के परिणाम स्वरूप उन दोनों के दाम्पत्य जीवन में तनाव की स्थिति पैदा होती है। नरेश के स्वामित्व और मीरा के पालतूपन में ही घरेलूपन बचा था। नरेश के तिरस्कार के बाद भी उसे रिझाने की कोशिश करती है। ''एक मैं ही हूँ जो पति के दफ्तर से घर लौटने पर, उसके चेहरे से अपनी निगाहें हटा नहीं पाती। एक मैं ही हूँ जो प्याले में केतली से चाय डालते हुए या नमकीन के प्लेटें उसकी ओर बढ़ाते हुए उसके चेहरे पर आये हर भाव को पढ़ने की कोशिश करती रहती हूँ।''[6]

भारतीय समाज व्यवस्था की पारिवारिक स्थिति और सामाजिक सुरक्षा के मोह के कारण मीरा सब कुछ सहने को बाध्य है। ''पति का होना उनके लिए एक स्थिति है। पति की खुशी-ना खुशी, आकर्षण विकर्षण, रूचि उदासीनता जैसे मेरे लिए जिन्दगी और मौत का सवाल है।''[7] 'तुक' कहानी की मीरा सामाजिक सुरक्षा के बदले सब कुछ सहने वाली औसत भारतीय नारी है।

'खरीदार' कहानी की नायिका नीना एक शिक्षित, प्रबुद्ध और निर्णय की पक्की युवती है। 'ग्लेशियरसे' की नायिका परम्परागत भारतीय नारी है, तो इस कहानी की नायिका नीना मीरा से विपरीत स्वभाव की युवती है। आई0सी0एस0 की परीक्षा उत्तीर्ण करके सहायक कमिश्नर की नौकरी करने वाली नीना विवाह के बाजार में अपने आपको बेचने के बजाय खरीददार बनना पसंद करती है। नारी को अपनी अस्मिता को बचाने के लिए संघर्ष करना ही पड़ेगा, ऐसे दृढ़ रूप से मानने वाली नीना का कहना है कि समाज में नारी का दूसरा दर्जा है, उसके लिए नारी को ही आगे बढ़ना पड़ेगा। पुरूष को आकर्षित करने वाले सौन्दर्य की मालिक एवं परिवर्तन की आकांक्षी नीना का कहना है ''नहीं। यह बिक्री का माल नहीं है। मैं खरीददार बनूंगी। विक्रेता नहीं खरीददार।''[8] प्रस्तुत कहानी में लेखिका को नीना के चरित्र के द्वारा नारी के इस नये रूप को प्रस्तुत किया है।

'एक चीख का इन्तजार' कहानी की प्रमुख नारी पात्र 'वह' के माध्यम से प्रसव वेदना का सजीव चित्र अंकित करके समाज को स्त्री के इस दर्द को परिचित कराना लेखिका का उद्देश्य रहा है। पुरूष को श्रेष्ठ और स्वयं को हीन मानने वाली नारी की कहानी 'उर्फ सैम' लेखिका की उल्लेखनीय कहानी है। इस कहानी में लेखिका ने भारतीय नारी ओर अमेरिकन नारी की सोच रहन-सहन, मानसिकता आदि को सूक्ष्मता से रेखांकित किया है। साथ ही पति-पत्नी का साथ, अनिवार्यता बनकर नहीं पति के कार्य पूति का साधन मात्र के रूप में आता है।

'वितृष्णा' कहानी की शालिनी स्त्री की परिवर्तित छवि को लेकर प्रस्तुत हुई है। आधुनिक स्त्री के रूप में नये तेवर को लेकर आने वाली शालिनी का मानना है कि पति को अपने स्वाभिमान का सम्मान करना ही पड़ेगा। सम्मान अपने स्वाभिमान के बदले वह कोई चीज नहीं चाहती, यहाँ तक कि घर भी नहीं। शालिनी और दिनेश के दाम्पत्य जीवन की जड़ता का मार्मिक चित्रण इस कहानी में चित्रित हुआ है।

'तीन किलो की छोरी' की शारदाबेन गुजरात के एक छोटे गाँव में ग्राम सेविका का काम करने वाली अश्पृश्य स्त्री है। दूसरों के सुख के दु:ख से सुख-दु:ख की अनुभूति करने वाली शारदावेन को अश्पृश्य जाति के बदले एक दाई के रूप में देखते है तो वह बहुत खुश होती है। ग्रामीण मध्यवर्गीय स्त्री का चित्र अंकित करने में लेखिका को सफलता मिली है। 'वह मैं ही थी' की उमा की कहानी नही है, बल्कि भारत के हर छोटे से गाँव में रहने वाली स्त्री की कहानी है, जहाँ चिकित्सा की कोई सुविधा नहीं है। 'एक चीख का इन्तजार' कहानी में स्त्रियों की पीड़ा को अभिव्यक्त करने का प्रयास हुआ है तो इस कहानी में नारी चिकित्सा के अभाव में गर्भवती उमा का दम तोड़ देने का चित्रण करके लेखिका ने नारी जीवन को उजागर किया है।

अपनी रचनाओं के द्वारा लेखिका ने शोषितों, पीड़ितों, दीनहीन मजदूर वर्ग के जीवन जीने वाले लोगों को नयी दृष्टि से देखा है। वह इन लोगों के प्रति सहानुभूति का निर्माण नहीं, उनको स्वाभिमान की चमक से चमकाना चाहती है। उनमें से एक कहानी है, 'शहर के नाम'। इस कहानी में लड़की का चरित्र भी वैसा है, जिसमें यह चेतना बहुत प्रबल रूप में दिखाई देती है। इस कहानी की प्रमुख नारी पात्र लड़की एक सरकारी अफसर की बेटी है। दीन-हीनों के प्रति सहानुभूति रखकर उनके जीवन को सुधारना चाहती है, इज्जत देना चाहती है। झुग्गी-झोपड़ियों में जाकर नुक्कड़ नाटक के द्वारा भ्रष्टाचार, शोषण, प्रदूषण- जैसे समाज के अनिष्टों से अवगत कराके जागृति लाने का प्रयास करती है। पढ़ाई के लिए अमेरिका जाती है। परन्तु मन न लगने से वह भारत वापिस लौटती है। अपने शहर में आने के पश्चात् वह भूतपूर्व युवराज जिन्होंने आपात्काल के समय आत्महत्या की थी, उनकी आत्मा को महसूस करती है। अपने कर्तव्य को ईमानदारी से निभाने वाले युवराज को याद करते करते वह भी आत्महत्या कर लेती है। जिन्हें अपना परिवार और समाज समझ नहीं सका। अजनबीपन और हताशा से घिरी नायिका अपने-अपने शहर की आत्मा को ढूंढ़ती रही। मृदुला गर्ग ने 'शहर के नाम' कहानी में नए रूप में नारी के चरित्र को उजागर किया गया है।

'मीरा नाची' कहानी में मीरा की अपनी चाहत प्रखर रूप में उभरकर आयी है। 'अपनी चाहत' के बिना किसी भी व्यक्ति का विकास सम्भव नहीं है। नारी की स्वाधीनता और नारी विकास के सारे बीज इनमें छिपे हुए है। लेखिका की अन्य कहानियों की भाँति 'मीरा नाची' की मीरा एक नये रूप मे प्रस्तुत हुई है। 'बर्फ बनी बारिश' कहानी बिन्नी की अस्तित्वगत चेतना को जीवित रखने की है। लेखिका की यह कहानी दाम्पत्य जीवन की एक सशक्त कहानी है। ''मेरा अपना कोई अस्तित्व नही, चुनाव नहीं, निर्णय नहीं।''[9] कहने वाली बिन्नी अपने अस्तित्व की लड़ाई लडती है और अपनी अस्तित्वगत चेतना को जिंदा रखकर जीना चाहती है।

'अदृश्य' कहानी की बीना दाम्पत्य जीवन में कसमसाती और पति के प्यार को तड़पने वाली नारी है। बाँस-फूल एक स्त्री की उसके ही घर में उनकी दयनीय स्थिति का चित्रण करने वाली कहानी है। 'चकरघिन्नी' कहानी 'खरीददार' तथा 'खाली' कहानियों की तरह स्त्री की नयी छवि प्रस्तुत करती है। आज की नारी खुद मूल्यवान बनेगी तो ही दूसरों की नजर में उसका मूल्य होगा, का स्वर इन कहानियों में मुखरित हुआ है।

'चकरघिन्नी' कहानी में विनीता की माँ लेखा 'आदर्श माँ' और 'आदर्श पत्नी भी है। सारे काम-काज निभाते हुए भी उसके पति उससे संतुष्ट है। उनके पति-विनीता से कहते है- ''तुम्हारी माँ से अच्छी पत्नी की मुझे कभी चाह नहीं थी।''[10]

'रेशम' कहानी हेमवती के वैधव्य जीवन को उजागर करने वाली कहानी है। जो रिश्ता जुड़ा ही नहीं उसके टूटने का गम नहीं है हेमवती को। अब तक दब-दबकर जीने वाली हेमवती अपने पति के स्वर्गस्थ होने के पश्चात् सुकून महसूस करती है, मानों एकदम तनाव रहित हो गयी हो, इसीलिए उठावने में आयी औरतों को बड़े सधे स्वर में कहती है- ''मैं कह रही हूँ न, उठावनी हो ली, स्वांग खतम। आप लोग चाय पीकर जाओगे तो मुझे अच्छा लगेगा।''[11] इतना ही नहीं उनकी दूसरी शादी करने की बात होती है, तब वह सोचती है, ''बच्चो ने सोचा होगा, माँ अपने सुहाग की चिंता में फक पड़ गयी है बेचारे, पहली पीढ़ी के बारे में कैसे भ्रम पालते हैं।''[12] पति के चले बसने के बाद भी उसी परिवेश से जुड़े रहने की बात करने वाले लोगों को तथा समाज को हेमवती बहुत बड़ा धक्का देती है।

मृदुला गर्ग की 'छत पर दस्तक' कहानी की नलिनी अकेलेपन की शिकार है। आज के दौर में वस्तुकरण की प्रक्रिया तेज हुई है परिणाम स्वरूप मानवीय सम्बन्धों का अवमूल्यन हो रहा है। अमेरिका का अकेलापन वैभव के बीच से उभरा है और भारत का अकेलापन अभावग्रस्त स्थितियों से। मानवीय संवाद और स्पर्श की जगह उपभोग वस्तुओं ने ली है। परिणामत: 'छत पर दस्तक' कहानी में चित्रित निरूपाय बूढ़ा भी अकेलेपन से त्रस्त है और भारत में संयुक्त परिवार में सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करने वाली नलिनी भी।

निष्कर्षत: मृदुला गर्ग की कहानियों के अध्ययन के पश्चात् हम कह सकते है कि लेखिका नारी स्वतंन्य के स्वर को लेकर आयी है, इतना ही नहीं सीमित लेखन के दायरे को भी तोड़ा है। नारी-जीवन सम्बन्धी विविध पहलुओं को उजागर करते हुए लेखिका की कहानियों में चित्रित नारी-पात्रों में विविधता भी है, नयापन भी है और जिंदादिली भी। ये नारियाँ बड़े आत्म-विश्वास के साथ लगातार आगे बढ़ती जा रही है। कुछेक कहानियों में नारी पात्र परम्परागत भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है। आधुनिक युग के अनुरूप लिखने वाली मृदुला गर्ग का कहना है- ''मैं समझती हूँ कि जब लेखक सांस्कृतिक मूल्य व्यवस्था को पुन: परिभाषित करने की प्रेरणा से, कहानी के कथ्य, शिल्प व भाषा में प्रयोग करता है तो हम कह सकते हैं कि उसमें एक नए बोध को स्वर देने का प्रयास कर रहा है।''[13] मृदुला जी की कहानियों में यह प्रयास सर्वत्र है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1 मृदुला गर्ग दिनाक 25.10.2000 को दिल्ली स्थित निवास पर दिये वक्तव्य से कुमारी राजु.एस. बागल काट।

2 समकालीन कहानी रचना मुद्दा, स0 पुष्पपाल सिंह, पृ0-149, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2138, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-2, प्रथम सं0-1986

3 दुनिया का कायदा (कितनी कैदें) मृदुला गर्ग, पृ0-120, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, के-71, कृष्णनगर दिल्ली-110051, प्रथम संस्करण-1983
4 दुनिया का कायदा, मृदुला गर्ग, पृ0-122, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, के-71, कृष्णनगर दिल्ली-110051, प्रथम संस्करण-1983
5 साठोत्तरी महिला कहानीकार, डा0 मधु संधु, पृ0-90, सन्मार्ग प्रकाशन, 16, यू0बी0 बैग्लो रोड, दिल्ली-7, प्रथम संस्करण-1984.
6 'तुक' (ग्लेशियर से), मृदुला गर्ग, पृ0 41, प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, प्रथम संस्करण-1980
7 'तुक' (ग्लेशियर से), मृदुला गर्ग, पृ0 50-51, प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, प्रथम संस्करण-1980.
8 'खरीददार' (ग्लेशियर से), मृदुला गर्ग, पृ0-65, प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली-11006, प्रथम संस्करण-1980.
9 'बर्फ बनी बारिश' (समागम), मृदुला गर्ग, पृ0-41, सामयिक प्रकाशन 3543, जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, सं0-1998
10 चकरघिन्नी (शहर के नाम), मृदुला गर्ग, पृ0-39, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नई दिल्ली-3, प्र0सं0-1990
11 रेशमा (शहर के नाम), मृदुला गर्ग, पृ0-70, भारतीय ज्ञानपीठ-18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-3, प्रथम संस्करण-1990
12 रेशमा (शहर के नाम), मृदुला गर्ग, पृ0-70, भारतीय ज्ञानपीठ-18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-3, प्रथम संस्करण-1990.
13 साहित्य: क्या, क्यों, कैसे चुकते नहीं सवाल, मृदुला गर्ग, पृ079 सामयिक प्रकाशन, जटवाड़ा, नेता जी सुभाष मार्ग, दरियागंज, दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-1999.

मध्यकालीन की आर्थिक नीति एवं व्यापार

प्रो० अजय विजय कौर

इतिहास विभाग, चौ. चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

डॉ० संजीव कुमार

सहायक आचार्य, महाराज सिंह डिग्री कॉलिज, मुजफ्फरनगर

अमरीश कुमार

शोध छात्र, इतिहास विभाग, चौ. चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

सारांश

प्राचीन काल से मध्यकाल तक विकास के साथ ही साधनों में परिवर्तन भी होता रहा है। जैसे-जैसे समाज में विकास हुआ है ऐसे-ऐसे ही नयी आर्थिक नीतियाँ भी बनती रही है। प्राचीन काल में जब आर्यों की व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है तो किसी भी प्रकार के करों का उल्लेख नहीं मिलता एवं व्यापार भी सीमित थे। क्योंकि प्राचीन समय में कृषि, पशु और वाणिज्य को ही वर्त्ता का नाम देकर उन्हें अर्थ प्राप्ति का मुख्य कारण माना है। कृषि से ही अधिक मात्रा उत्पन्न हुई वस्तुएँ ही व्यापार की आधारशिला थी। परन्तु मुगल काल में ये सब स्थिति बिल्कुल बदल चुकी थी। क्योंकि मुगल काल में अनेको शहरों का उद्भव हुआ। इलाहाबाद, बनारस, आगरा, लाहौर, हैदराबाद आदि सभी व्यापार के केन्द्र बने। आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए मध्यकाल में विभिन्न शासकों द्वारा अनेकों नये कर लगाये गये अथवा करों में वृद्धि भी की गयी तो वहीं कुछ शासकों द्वारा करों को समाप्त करने के साथ करों में छूट भी दी गई। व्यापार के विकास के साथ-साथ मध्यकाल की आर्थिक स्थिति में अनेकों बदलाव भी हुए और साथ ही नये नगरों का उद्भव और व्यापारिक केन्द्रों के उद्भव के साथ-साथ विकास भी हुआ।

प्राचीन भारतीय बुद्धिजीवियों ने धार्मिक आस्था और व्यापार में वृद्धि के लिए तत्कालीन समय के प्रसिद्ध नगरों को नदियों के तटों पर निर्मित किया, क्योंकि उस समय में बड़ी-बड़ी नौकाओं द्वारा यातायात से ही व्यापार होता था। साथ ही गाँवों में उत्पादन एवं छोटे कारखानों से अधिक मांग में वस्तुओं का निर्माण भी होता था। अत: निर्मित वस्तुओं की खपत के लिए ही व्यापार पर ज्यादा बल दिया गया और प्रारम्भ से ही इस बात पर जोर दिया गया कि नगरों को नदी के तटों पर ही बसाया जाये।[1]

मध्यकाल में शहरों की स्थापना

मध्यकाल में शहरों का उद्भव, विकास, आर्थिक-धार्मिक प्रशासनिक कारणों से हुआ। उत्तर भारत के शहर जहाँ पर प्रशासनिक कार्य ही मुख्य रूप में होता था और दैनिक जीवन के उपयोग में आने वाली वस्तुओं का निर्माण का कार्य होता था। मुगल काल में पटना और अहमदाबाद ऐसे नगर थे जहाँ पर आर्थिक कार्यों की देखभाल की जाती थी। वहीं बनारस, इलाहाबाद एवं मथुरा जैसे नगर जो नदी के तटों पर बसे हुए थे, तीर्थ यात्रियों का प्रमुख केन्द्र थे तथा यहाँ पर व्यापारिक वस्तुओं का भी निर्माण होता था। वस्त्रों के निर्माण के लिए अवध में स्थित खैराबाद व दरियाबाद प्रसिद्ध थे।[2]

कुछ इतिहासकारों का मानना है कि मध्यकालीन भारत में शहरों की उत्पत्ति और विकास सूफी सन्तों की खानकाहे, दायरों और दरगाहों के कारण भी हुआ। उत्तरी भारत में कोई भी ऐसा शहर नहीं था जहाँ पर इन सूफी सन्तों की खानकाहें दायरे और दरगाहें न रही हों। ऐसे में इस्लामी देशों के विभिन्न भागों से बहुत बड़ी संख्या में लोगों के आने के कारण उत्तरी भारत के पुराने शहरों में जनसंख्या में भी वृद्धि हुई और यह वृद्धि नियमित तौर पर होती रही। जनसंख्या वृद्धि होने के कारण नये शहर बसने लगे थे। शहरों की वृद्धि होने में जनसंख्या की होने वाली वृद्धि भी इसका मुख्य कारण थी।[3]

प्राचीन काल से ही दिल्ली का भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रहा है, और यह मुगलकाल में देखने को मिला है। परिस्थितियों के साथ इसमें परिवर्तन होते रहे है। दिल्ली के सन्दर्भ में कार स्टीफन ने कहा: लगभग 3500 वर्ष पहले महाराज युधिष्ठर ने यमुना नदी के पश्चिम तट पर पाण्डव राज्य की स्थापना की और इसका नाम इन्द्रप्रस्थ रखा था। इन्द्रप्रस्थ भारत में तुर्कों की सत्ता स्थापना से पहले पृथ्वीराज चौहान की राजधानी थी।[4]

तराइन के द्वितीय युद्ध के पश्चात् से ही कुतुबद्दीन ऐबक का दिल्ली पर अधिपत्य के पश्चात् तुगलक वंश की स्थापना के समय गयासुद्दीन तुगलक ने तुगलकाबाद की स्थापना तथा फिरोजशाह तुगलक ने अनेको शहरों की स्थापना की। सोलहवीं शताब्दी के आते-आते अकबर ने 1556 ई. में यमुना के किनारे विशाल किले का निर्माण कराया। यह किला लम्बाई में अधिक था जिस कारण आगरा शहर की सीमाओं का भी विस्तार हुआ। इसी समय में लाहौर में उद्योग धन्धों का भी अधिक विकास हुआ।[5]

मुगल काल में आय के स्रोत

मुगल काल में आय का प्रमुख स्रोत राजस्व था। इसमें अतिरिक्त राज्य की आय के स्रोत के लिए चुंगी, आबकारी, आयात, नमक, खान व वैश्याओ पर कर प्रावधान था। इन करों से अलग चार कर मुख्य रूप से वसूले जाते थे।[6]

1. विराज कर- यह भूमि कर था जो प्रारम्भ में हिन्दुओं पर लगाया जाता था लेकिन बाद में मुस्लिमों से भी यह कर वसूला जाने लगा।
2. जकात कर- धनी मुसलमानों से उनकी आय का ढ़ाई प्रतिशत निर्धन लोगों की सहायता के लिए वसूला जाता था। बाद में अकबर ने जकात कर को बन्द कर दिया था।
3. खस्क कर- युद्ध में लूट को 20 प्रतिशत राज्य तथा 80 प्रतिशत सैनिको को प्राप्त होता था।
4. जातिया कर- इस्लाम धर्म स्वीकार न करने वालों से उनके परिवार की सुरक्षा के लिए वसूला जाता था। प्रारम्भ में ब्राह्मण से यह कर नहीं लिया जाता था परन्तु फिरोजशाह तुगलक ने ब्राह्मण से भी यह कर वसूला। मुगल शासन अकबर ने धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करते हुए और मुसलमानों से जातियाँ कर समाप्त कर दिया था।[7]

उद्योग

सोलहवीं शताब्दी में भारतीय उद्योग धन्धों के विषय में तत्कालीन अरबी और फारसी ग्रन्थों से कोई विशेष जानकारी तो प्राप्त नहीं होती है। यूरोपीय यात्रियों के समान स्वयं अबुल फजल ने भी सामान्य जनता की उपयोगी वस्तुओं के विषय में असामान्य कोटि की वस्तुओं की ओर अधिक ध्यान दिया है-

धातु उद्योग

भारतीय लोहा, पीतल, चाँदी, जस्ता, अबरख विभिन्न धातुओं का उपयोग करना उपयोग करना अच्छी प्रकार से जानते थे। यह बात विभिन्न मन्दिरों में लोहे की शहतीरों के प्रयोग से सिद्ध हो जाता है। धारियाँ, तलवारों, हथियार तथा बर्छी के बनाने के लोहे के उपयोग मुख्य रूप से किया जाता था। इससे जलयान तथा किश्तियाँ भी बनाई जाती थी।[8]

तम्बाकू शिल्प

अकबर के समय में ही पुर्तगालियों के साथ तम्बाकू भारत में आया। भारत के लोग इस पौधे के बारे में परिचित नहीं थे। यह एक भिन्न प्रकार का शौक ओर व्यसन था। अकबर के समय काल के पश्चात् हुक्का, चीलम का भी तम्बाकू के कारण ही कई शिल्प प्रारम्भ हुए है।

नील उद्योग

उद्योग धन्धों के विकास में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि सबकी उत्पत्ति का माध्यम कृषि ही है। सोलहवीं शताब्दी में नील स्थानीय सीमाओं तक ही सीमित था लेकिन सतहरवीं शताब्दी में नील उद्योग लाभकारी उद्योग में से एक था और यही कारण था कि पुर्तगालियों में इस पर अधिकार कर लिया था।

सूती वस्त्र उद्योग

सूती वस्त्र उद्योग प्राचीन समय से ही विकसित एवं उपयोगी रहा है। चाणक्य द्वारा लिखे गये अर्थशास्त्र में सूती, गरम सभी प्रकार के वस्त्रों के विकास में स्त्री एवं पुरूष दोनों के रोजगार की बात कही है। सूती वस्त्र उद्योग भारत का प्राचीन उद्योग है और यह मध्यकालीन में भी विस्तार पूरे देश में था। इस उद्योग के प्रमुख केन्द्र बंगाल, गुजरात, मालवा, बनारस, उड़ीसा थे। इसी के साथ सूरत, आगरा, लाहौर, पटना, बुरहानपुर, दिल्ली, मुल्तान, उड़ीसा आदि शहर भी प्रमुख केन्द्र थे जो विशेष प्रकार का कपड़ा तैयार करते थे। देश में काबुल, कश्मीर तथा पश्चिमी राजस्थान में ऊन तैयार करने के लिए मुख्य केन्द्र थे तथा साथ ही तिब्बत से उत्तम प्रकार ऊन आती थी। भारत में इस प्रकार सूती, रेशमी और ऊनी वस्त्रों का उत्पादन प्रचुर मात्रा में होता था एवं दूर देशों से भी वस्त्रों की विशेष मांग थी। सल्तनत काल में वस्त्र उद्योग की स्थिति बहुत अच्छी थी। बलवन के राज्यकाल में दिल्ली का कोतवाल रोज एक नई पोशाक पहनता था और शाम को उतारकर उसे किसी गरीब को दे देता था।[9]

उद्योग धन्धों के विकास क्रम में शीशा उद्योग का भी विकास खूब हुआ। वैसे तो शीशे का प्रयोग प्राचीन समय से चला आ रहा है। कोल्हापुर, सतारा, शोलापुर, गोरखपुर, शीशा उद्योग के लिए प्रसिद्ध थे कागज उद्योग का विकास प्रचुर मात्रा में भी हो पाया। मध्यकाल में पटना, दिल्ली, राजगीर, अवध, इलाहाबाद, स्यालकोट, कागज उद्योग के केन्द्र रहे। मध्यकाल में चमड़े की वस्तु अधिक मात्रा में बनती थी, जिनका अरब देशों मे निर्यात होता था। मुख्य रूप से घोड़े की काठी व लगाम तलवार के लिए म्यान पानी के लिए मशक, जूते इन सभी की सबसे ज्यादा मांग थी। बंगाल में बने चमड़े का निर्यात विदेशों में किया जाता था।

इस काल में दिल्ली चमड़े का सबसे सम्पन्न औद्योगिक केन्द्र था सिन्ध में बने हुए चमड़े का सामान सबसे अच्छा माना जाता था। मिट्टी के बर्तन, खिलौने एवं काष्ठ उद्योग मध्य युग में विस्तृत रूप से विकसित था। बहरानपुर, बैलोर, कुम्भाकोनम चमकीले बर्तनों के लिए प्रसिद्ध थे तो वहीं जयपुर, ग्वालियर, अयोध्या, दिल्ली, बनारस मिट्टी उद्योग के मुख्य केन्द्र थे।[10]

आन्तरिक व्यापार

मध्यकाल में भारत में आन्तरिक व्यापार के विकास में विदेशी यात्रियों का वर्णन एवं समकालीन साहित्य में प्रकाश डाला गया है। इस समय प्रत्येक गाँव में छोटा बाजार होता था। वर्ष में एक बार अथवा त्यौहारों के समय मेलों में आस-पास के लोग आते थे और अधिक व्यापार होता था। इसी समय में बाजारों द्वारा, अनाज, नमक, व अन्य खाद्य सामग्री बैलो पर लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे। ये मुल्तान, दिल्ली, लाहौर जैसे बड़े बाजारों में इन्हें लेकर जाते थे। पश्चिमी घाट की प्राकृतिक स्थिति कठिन होने के आन्तरिक व्यापार बहुत ही जटिल था। यहाँ पर सामान मुख्यतः कन्धों पर ढोया जाता था। प्रायः द्वीप के दूसरी ओर से चावल का निर्यात मुख्य था। कृषि उपजों का वितरण देश में अधिकांश रूप से नदी मार्ग द्वारा ही होता था।[11]

विदेशी व्यापार

प्राचीन काल से ही भारत का देशों से समुद्री मार्ग द्वारा वाणिज्य सम्बन्ध थे। इसके दो मार्ग थे-फारस की खाड़ी एवं लाल समुन्द्र। सतरहवीं शताब्दी में विदेशों से व्यापार जल व थल मार्गों द्वारा मुख्य रूप से किया जाता था।[12]

पन्द्रहवीं शताब्दी में यूरोप से गरम मसालों और औषधियों की अधिक मांग थी। सत्रहवीं शताब्दी में जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने रंगाई तथा बुनाई की उन्नत विधि निकाली तभी निर्यात होने लगा था। भारत में बनी सिल्क यूरोप मलाया, वर्मा में निर्यात होती थी बहुत सी पुस्तकों में इस बात का वर्णन मिला है कि मालदा के एक शेख भीक व शेख वेग ने फारस की खाड़ी के मार्ग से रूस को मालदा के कपड़ों के तीन जहाज भेजे थे।[13]

मध्यकाल के सिन्ध में लहरी बन्दरगाह में अरबी तथा ईरानी जहाजों द्वारा बहुत अधिक संख्या में खजूर, घोड़े, मोती, सुगन्धित सामग्री आदि आयात करता था और वापसी में भारत से चीनी, मक्खन, जैतून तेल तथा सूती वस्त्र ले जाते थे। इसी के साथ चोल, दमोल और राजापुर सूती वस्त्र, काली मिर्च आदि सामान का निर्यात फारस की खाड़ी देशों को भेजा जाता था। कोरीमण्डल तट से सूती वस्त्र मलमल, सूत और बंगाल, हुगली चटगांव से चावल, चीनी आदि निर्यात किया जाता था।[14]

इसके अतिरिक्त कैबे क्षेत्र जोकि बन्दरगाहों का एक समूह था बेसिस जहाज निर्माण मुख्य केन्द्र था। गोक, भटकल, यह अपने समय का उच्च कोटि का बन्दरगाह था। बंगाल के प्रसिद्ध बन्दरगाह सतगांव, हुगली, श्रीपुर और चटगांव थे। बंगाल के इन बन्दरगाहों महत्वपूर्ण व्यापार होते थे।

इस प्रकार यह देखा जाता है कि प्राचीन से लेकर मध्यकालीन भारतीय शासकों ने व्यापार में विशेष रूचि लेकर उसकी उन्नति ओर प्रोत्साहन के लिए परिस्थितियों के अनुरूप समय-समय पर अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये है। वहीं उत्साही शासकों ने धैर्य ओर चतुराई का प्रमाण देते हुए व्यापार में लाभ के साथ राज्य का विस्तार किया।[15]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हमीदा खातून नकवी, अर्गेनाइजेशन एक अर्वन सेन्टर्स दी ग्रेट मुगल्स पृ.-3
2. तपनराय चौधरी एवं प्रो. इरफान, द कैम्ब्रिज इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया भाग-1 पृ.-435
3. हमीदा खातून नकवी, अर्गेनाइजेशन एक अर्वन सेन्टर्स दी ग्रेट मुगल्स पृ.-3
4. बृजकिशन चांदीवाला, दिल्ली की खोज, पृ.-1-2
5. डॉ. झारखण्डे और श्रीवास्तव, मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति पृ.-494
6. डॉ. हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ.-128
7. डॉ. आई.एच कुरैशी, दी एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दी मुगल एम्पायर पृ.-148
8. पी.एन. चोपड़ा, पुरी, एवं दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृ.-94
9. पी.एन. चोपड़ा, पुरी एवं दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृ.-91-92
10. पी.एन. चोपड़ा, पुरी एवं दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृ.-98
11. मोरलैण्ड, अकबर की मृत्यु के समय का भारत, पृ.-219
12. कृष्णदत्त वाजपेयी, भारतीय व्यापार का इतिहास पृ.-100
13. पी.एन. चोपड़ा, पुरी एवं दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृ.-100
14. पी.एन. चोपड़ा, पुरी एवं दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृ.-103
15. हरिश्चन्द्र वर्मा- मध्यकालीन भारत पृ.-450

माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण एवं कल्याण: एक सामाजिक-विधिक विश्लेषण

डॉ० विश्व नाथ शर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर, क्लासिक कालेज आफॅ लॉ, बरेली

सार

एक समाज में बुजुर्ग लोग गरीबी, अकेलेपन, उपेक्षा, दुर्व्यवहार और परित्याग से पीडिघ्त होते हैं और उन्हें अपनी बुनियादी जरूरतों के लिए अपने संसाधनों का उपयोग करना बहुत मुश्किल लगता है जिससे वे उन्हें बनाए रखने में असमर्थ या अनिच्छुक होते हैं। इस प्रकार, भारत में विधवाओं, विधुरों और नि:संतान बुजुर्ग भी हीन और दयनीय स्थिति में हैं। वृद्ध व्यक्तियों के कल्याण को सुनिश्चित करने की प्रतिबद्धता की पुष्टि करने के लिए जनवरी 1999 में वृद्ध व्यक्तियों पर राष्ट्रीय नीति की घोषणा की गई थी। इस प्रकार, भारत में माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों की बढ़ती समस्याएं चिंता का विषय हैं। इस पत्र में माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण और कल्याण पर सामाजिक-विधिक विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्द: रखरखाव और कल्याण; वरिष्ठ नागरिकों; सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार; अंतर्राष्ट्रीय वाचा।

परिचय

इन दिनों समाज में लोग तेजी से भौतिकवादी होते जा रहे हैं। अधिकांश बुजुर्ग गरीबी, अकेलेपन, उपेक्षा, दुर्व्यवहार और परित्याग से पीड़ित हैं और उन्हें अपनी सबसे बुनियादी जरूरतों के लिए संसाधन जुटाना मुश्किल लगता है क्योंकि उनके बच्चे या तो असमर्थ हैं या उन्हें बनाए रखने के लिए तैयार नहीं हैं। इस बढ़ती हुई समस्या को दूर करने के लिए, भारत सरकार, एजिंग डिवीजन राज्य सरकारों, गैर-सरकारी संगठनों और नागरिक समाज के निकट सहयोग से वरिष्ठ नागरिकों के लिए कार्यक्रमों और नीतियों को विकसित और कार्यान्वित करता है। भारत में वृद्ध व्यक्तियों के लाभ के लिए जनवरी 1999 में राष्ट्रीय नीति की घोषणा की गई थी ताकि वृद्ध व्यक्तियों की भलाई सुनिश्चित करने की प्रतिबद्धता की पुष्टि की जा सके। 2007 तक विशेष रूप से वरिष्ठ नागरिकों के लिए कोई विशेष या अलग कानून नहीं था। भारत सरकार ने माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के रखरखाव और कल्याण अधिनियम (एम.डब्ल्यू.पी.) 2007 को अधिनियमित किया। इसके तहत बच्चों और उत्तराधिकारियों के लिए मासिक भत्ता प्रदान करके वरिष्ठ नागरिकों और माता-पिता को रखरखाव की पेशकश करना अनिवार्य है जो कि वृद्ध व्यक्तियों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा हेतु सरल और सस्ती व्यवस्था है।[1] यद्यपि एमडब्ल्यूपी अधिनियम 2007 में लागू हुआ था और तब से एक दशक से अधिक समय बीत चुका है, भारत सरकार या राज्य सरकारों द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए गंभीर प्रयास नहीं किए गए हैं कि बुजुर्गों और वृद्धावस्था देखभाल के लिए चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं। बुजुर्ग न केवल संविधान द्वारा बल्कि एमडब्ल्यूपी अधिनियम के प्रावधानों द्वारा गारंटीकृत अपने मानवाधिकारों से अवगत नहीं हैं क्योंकि एक तरफ माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों की समस्याएं दिन-ब-दिन बढ़ रही हैं, दूसरी तरफ सुप्रीम कोर्ट के कुछ मामले दर्ज हैं। वृद्ध माता-पिता को उनके बच्चों द्वारा उपेक्षित किया जा रहा है और उन्हें या तो वृद्धाश्रम में या अपने ही घर में एक अर्थहीन और दर्दनाक जीवन जीने के लिए मजबूर किया जा रहा है। वरिष्ठ नागरिकों की इन समस्याओं के लिए मौजूदा कानून और सामाजिक कल्याण के उपाय और उनका कार्यान्वयन पर्याप्त नहीं हो सकता है। इस प्रकार, भारत में माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों की बढ़ती समस्याएं चिंता का विषय हैं।[2]

वृद्ध माता-पिता के जीवन में बदलाव के कारण वैश्वीकरण की भूमिका

औद्योगीकरण, शहरीकरण और वैश्वीकरण ने जीवन के तरीके को बदल दिया है और पारंपरिक समाजों द्वारा पोषित मूल्य प्रणालियों में ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में लोगों के प्रवास की प्रवृत्ति देखी जा रही है, जिसके परिणामस्वरूप शहरी क्षेत्रों में संयुक्त परिवार प्रणाली का ह्रास हुआ है। इसके अलावा संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन हुआ और एकल परिवारों के गठन में तेजी आई। समाज और उसके लोग तेजी से भौतिकवादी हो गए हैं। वर्तमान परिदृश्य में काम पर जाने वाली महिलाओं की संख्या में वृद्धि का भारत में पारिवारिक संरचना की गतिशीलता पर भी प्रभाव पड़ता है। परिवार में इस तरह के बदलावों का दूसरा आयाम बुजुर्गों से युवा पीढ़ी तक घरों में सत्ता का परिवर्तन रहा है। स्वतंत्रता और व्यक्तिवाद की गहरी भावना के साथ कैरियर उन्मुख युवा पुरुषों और महिलाओं ने संयुक्त परिवार प्रणाली के लिए मौत की घंटी बजा दी है और काफी हद तक बुजुर्गों को हाशिए पर डाल दिया है। वृद्ध माता-पिता अपने बच्चों से कुछ प्राप्त करना चाहते हैं जिनके लिए उन्होंने अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया है लेकिन बच्चे अपने बच्चों को एक सुंदर जीवन देने में व्यस्त हैं। जबकि अधिकांश बुजुर्गों की देखभाल बच्चों द्वारा की जाती है, कई लोग गरीबी, अकेलेपन, उपेक्षा, दुर्व्यवहार और परित्याग से पीडिघ्त हैं और उन्हें अपनी सबसे बुनियादी जरूरतों के लिए संसाधन जुटाना मुश्किल लगता है क्योंकि उनके बच्चे या तो असमर्थ हैं या उन्हें बनाए रखने के लिए तैयार नहीं हैं।[3]

इस बढ़ती हुई समस्या का समाधान करने के लिए, भारत सरकार, सामाजिक न्याय और अधिकारिता विभाग के सामाजिक रक्षा ब्यूरो में वृद्धावस्था प्रभाग राज्य सरकारों, गैर-सरकारी संगठनों और निकट सहयोग से वरिष्ठ नागरिकों के लिए कार्यक्रमों और नीतियों को विकसित और कार्यान्वित करता है। वरिष्ठ नागरिकों के लिए कार्यक्रमों का उद्देश्य वृद्धाश्रमों, डे केयर सेंटरों, मोबाइल चिकित्सा इकाइयों आदि का समर्थन करके, विशेष रूप से गरीब वरिष्ठ नागरिकों के लिए उनके कल्याण और रखरखाव का लक्ष्य है। प्रभाग एक केंद्रीय क्षेत्र की योजना, "वृद्ध व्यक्तियों के लिए एकीकृत कार्यक्रम" को लागू कर रहा है, जिसे 2008 में संशोधित किया गया था और वरिष्ठ नागरिकों के कल्याण के लिए नई नवीन परियोजनाओं को शामिल किया गया था। इसके अलावा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सहानुभूतिपूर्ण कार्यक्रमों के अनुसार, वृद्ध व्यक्तियों के कल्याण को सुनिश्चित करने की प्रतिबद्धता की पुष्टि करने के लिए जनवरी 1999 में वृद्ध व्यक्तियों पर राष्ट्रीय नीति की घोषणा की गई थी।[4] इस नीति ने कुछ अधिकारों को मान्यता दी वृद्ध लोगों को स्वास्थ्य सुविधाओं के साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने और वृद्ध लोगों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के प्रति सरकार की जिम्मेदारी की घोषणा की गई। 2007 तक विशेष रूप से वरिष्ठ नागरिकों के लिए कोई विशेष या अलग कानून नहीं था। भारत सरकार ने 9 मार्च, 2007 को लोकसभा में माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण और कल्याण विधेयक 2007 पेश किया गया।[5]

माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के रखरखाव और कल्याण अधिनियम 2007 का अधिनियमन भारत सरकार द्वारा भारत के वरिष्ठ नागरिकों के कल्याण के लिए प्रतिबद्धता की फिर से पुष्टि करने के लिए एक ऐतिहासिक पहल थी। यह एक सक्षम कानून है जो कमजोर वृद्ध व्यक्तियों के लिए उपलब्ध है और इसमें देरी से बचने के लिए सरल आवेदन प्रक्रिया और कानूनी औपचारिकताएं हैं। यह इस अधिनियम से लाभ प्राप्त करने में वृद्ध व्यक्तियों पर दबाव को कम करने के लिए किया गया है। यह अधिनियम अन्य बातों के साथ-साथ विशेष रूप से गठित अधिकरणों के माध्यम से बच्चों/रिश्तेदारों द्वारा माता-पिता/वरिष्ठ नागरिकों के भरण-पोषण को अनिवार्य बनाता है। यह गरीब वरिष्ठ नागरिकों के लिए वृद्धाश्रम की स्थापना, पर्याप्त चिकित्सा सुविधाएं, जीवन और संपत्ति की सुरक्षा, रिश्तेदारों द्वारा लापरवाही के मामले में वरिष्ठ नागरिकों द्वारा संपत्ति के हस्तांतरण को रद्द करने और वरिष्ठ नागरिकों के परित्याग के लिए दंडात्मक प्रावधानों का भी प्रावधान करता है।[6]

अधिनियम में प्रावधान है कि माता-पिता सहित एक वरिष्ठ नागरिक जो अपनी कमाई से या अपने स्वामित्व वाली संपत्ति से खुद को बनाए रखने में असमर्थ है, वह निम्नलिखित के मामले में आवेदन करने का हकदार होगा- (i) माता-पिता या दादा-दादी, एक के खिलाफ या उसके अधिक बच्चे नाबालिग न हों; (ii) एक नि:संतान वरिष्ठ नागरिक, अपने ऐसे रिश्तेदार के विरुद्ध। एक वरिष्ठ नागरिक को बनाए रखने के लिए बच्चों या रिश्तेदार का दायित्व ऐसे नागरिक की जरूरतों तक विस्तारित होता है ताकि वरिष्ठ नागरिक सामान्य जीवन जी सकें। अपने माता-पिता को बनाए रखने के लिए बच्चों का दायित्व ऐसे माता-पिता या तो पिता या माता या दोनों की जरूरतों तक विस्तारित होता है, ताकि ऐसे माता-पिता सामान्य जीवन जी सकें। कोई भी व्यक्ति जो वरिष्ठ नागरिक का रिश्तेदार है और उसके पास पर्याप्त साधन हैं, वह ऐसे वरिष्ठ नागरिक का भरण-पोषण करेगा, बशर्ते कि उसके पास ऐसे वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति हो या उसे ऐसे वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति विरासत में मिले। हालांकि, जहां एक से अधिक रिश्तेदार एक वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति के उत्तराधिकारी के हकदार हैं, ऐसे रिश्तेदार द्वारा रखरखाव का भुगतान उस अनुपात में किया जाएगा जिसमें वे अपनी संपत्ति का वारिस करेंगे।[7]

अधिनियम में यह भी प्रावधान है कि यदि बच्चे या रिश्तेदार किसी वरिष्ठ नागरिक को खुद का भरण-पोषण करने में असमर्थ होने की उपेक्षा करते हैं या उसे बनाए रखने से इनकार करते हैं, तो ट्रिब्यूनल, इस तरह की उपेक्षा या इनकार से संतुष्ट होने पर, ऐसे बच्चों या रिश्तेदारों को ऐसी मासिक दर पर मासिक भत्ता देने का आदेश दे सकता है। ऐसे वरिष्ठ नागरिक के भरण-पोषण के लिए, जो अधिकरण उचित समझे और ऐसे वरिष्ठ नागरिक को भुगतान करने के लिए जैसा कि अधिकरण समय-समय पर निर्देश दे। अधिकतम भरण-पोषण भत्ता जो ऐसे अधिकरण द्वारा आदेशित किया जा सकता है, वह होगा जो राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किया जा सकता है जो प्रति माह दस हजार रुपये से अधिक नहीं होगा।[8]

धारा 19 के तहत अधिनियम में वृद्धाश्रमों की स्थापना के प्रावधान भी हैं। इस धारा में कहा गया है कि राज्य सरकार चरणबद्ध तरीके से सुलभ स्थानों पर इतनी संख्या में वृद्धाश्रमों की स्थापना और रखरखाव कर सकती है, जिसकी शुरुआत प्रत्येक जिले में कम से कम एक ऐसे घरों में जहां कम से कम एक सौ से हो सकती है। पचास वरिष्ठ नागरिक जो निर्धन हैं, राज्य सरकार वृद्धाश्रमों के प्रबंधन के लिए एक योजना भी निर्धारित कर सकती है, जिसमें उनके द्वारा प्रदान किए जाने वाले मानकों और विभिन्न प्रकार की सेवाएं शामिल हैं, जो ऐसे घरों के निवासियों के लिए चिकित्सा देखभाल और मनोरंजन के साधनों के लिए आवश्यक हैं। वर्ष 2016-17 में सहायता प्राप्त वृद्धाश्रमों की कुल संख्या 396 है।[9]

यह अधिनियम वरिष्ठ नागरिकों के लिए चिकित्सा सहायता के प्रावधान भी प्रदान करता है। अधिनियम में आगे कहा गया है कि वरिष्ठ नागरिक का एक्सपोजर और परित्याग एक अपराध है। बुजुर्ग या तो इस अधिनियम के तहत या आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973 के प्रावधानों के तहत गुजारा भत्ता लेने का विकल्प चुन सकते हैं, लेकिन दोनों प्रावधानों के तहत नहीं। हालांकि सरकार ने अधिनियम 2007 को अधिनियमित किया है और वरिष्ठ नागरिक के प्रदर्शन और परित्याग को एक अपराध बना दिया है और किसी एक अवधि के लिए कारावास जो तीन महीने तक बढ़ाया जा सकता है या जुर्माना जो पांच हजार रुपये तक हो सकता है या दोनों के साथ दंडनीय है। बच्चे ऐसे वरिष्ठ नागरिक को पूरी तरह से त्यागने के इरादे से किसी भी स्थान पर छोड़ देते हैं। कई मामलों में यह दिखाया गया है कि वृद्ध माता-पिता को उनके बच्चों द्वारा उपेक्षित किया जा रहा है और उन्हें या तो वृद्धाश्रम में या अपने ही घर में एक अर्थहीन और दर्दनाक जीवन जीने के लिए मजबूर किया जा रहा है। बच्चे इतने व्यावहारिक हो गए हैं और वे बिना किसी हस्तक्षेप के अपना जीवन जीना चाहते हैं और माता-पिता उनके लिए केवल एक बोझ हैं। इस प्रकार वृद्धजनों को उनके बच्चों और समाज द्वारा उपेक्षित किया जा रहा है और वे या तो वृद्धाश्रम में या अपने ही घर में एक अर्थहीन और दर्दनाक जीवन जीने को मजबूर हैं।

न्यायिक प्रतिक्रिया

अश्विनी कुमार बनाम भारत संघ और अन्य में, याचिकाकर्ता ने सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान विशेष रूप से एमडब्ल्यूपी अधिनियम की धारा 19 की ओर आकर्षित किया जो वृद्धाश्रमों की स्थापना से संबंधित है और प्रत्येक राज्य सरकार को कम से कम एक वृद्धाश्रम स्थापित करने और बनाए रखने की आवश्यकता है।

महाराजा नादर बनाम मथुकानी अम्मल के मामले में एक बेटा अपने वृद्ध माता-पिता को बनाए रखने के लिए व्यक्तिगत दायित्व के अधीन था, भले ही उसके पास कोई संपत्ति हो। लेकिन वह अपनी सौतेली मां को बनाए रखने के लिए किसी भी दायित्व से बाध्य नहीं था, और इसके अलावा अपने दादा दादी को बनाए रखने के लिए भी बाध्य नहीं था जब तक कि उसे पैतृक संपत्ति प्राप्त न हो। हिंदू कानून के तहत बनाए रखने से इनकार करना एक अपराध माना जाता था और माता, पिता, पत्नी या पुत्र को बिना किसी गलती के छोड़ देना राजा द्वारा दंडनीय था।

संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत बुजुर्ग व्यक्तियों के अधिकारों को लागू करने के लिए डॉ अश्विनी कुमार बनाम भारत संघ के बीच एक ऐतिहासिक निर्णय में उन्होंने अधिनियम, 2007 के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए भी प्रार्थना की और बुजुर्गों के लिए पेंशन योजनाएँ उपलब्ध हैं और इस योजना के तहत प्रदान की गई राशि का उपयोग लाभार्थी अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए नहीं कर सकते हैं। उन्होंने इस संबंध में भारत संघ और राज्य सरकारों को कुछ निर्देश जारी किए जो स्वागत योग्य कदम है।

परमजीत कुमार सरोया बनाम भारत संघ और एक अन्य मामले में, अधिनियम से संबंधित कई मामले सामने आए हैं। इससे पहले, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने अधिनियम को बिंदु पर देखा और केंद्र सरकार से अधिनियम के कुछ प्रावधानों की फिर से जांच करने का अनुरोध किया जो अस्पष्ट थे। न्यायालय ने अधिनियम की व्याख्या यह कहने के लिए भी की कि प्रशासनिक न्यायाधिकरण के फैसले की अपील किसी भी पक्ष द्वारा की जा सकती है, और कानूनी प्रतिनिधित्व पर प्रतिबंध के प्रति उदासीन है। यह विधेयक बच्चों, रिश्तेदारों और माता-पिता की परिभाषा को बड़ा करने के लिए 2007 के अधिनियम में संशोधन करता है, बच्चों और रिश्तेदारों द्वारा माता-पिता को देय भरण-पोषण राशि की ऊपरी सीमा को हटाता है, और वरिष्ठ नागरिकों के लिए देखभाल-घर और अन्य लाभ कार्यों का प्रावधान करता है।[10]

स्वैच्छिक संगठन का कार्य

यह इंगित किया जाता है कि एमडब्ल्यूपी अधिनियम की धारा 21 में राज्य सरकारों को सार्वजनिक मीडिया के सभी माध्यमों के माध्यम से उक्त अधिनियम के प्रावधानों का प्रचार करने की आवश्यकता है। बुजुर्गों के कल्याण से संबंधित मुद्दों के समाधान के लिए राज्य सरकार के विभिन्न मंत्रालयों और विभागों के बीच प्रभावी समन्वय के लिए एक जनादेश भी है और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि समय-समय पर समीक्षा किए जाने की आवश्यकता है। याचिकाकर्ता का निवेदन यह है कि एमडब्ल्यूपी अधिनियम के प्रावधानों का शायद ही कोई प्रचार किया गया हो और हेल्प-एज इंडिया जैसे कई संगठनों के प्रयासों के बावजूद, बुजुर्गों के आश्रय और चिकित्सा सुविधाओं के अधिकार के साथ-साथ जराचिकित्सा देखभाल भी बनी हुई है। यह अनुरोध किया जाता है कि भारत सरकार को एमडब्ल्यूपी अधिनियम के प्रावधानों को प्रचारित करने के लिए एक व्यावहारिक योजना के साथ आना चाहिए ताकि बुजुर्ग अपना शेष जीवन सम्मान के साथ जी सकें।

इस प्रकार याचिका बुजुर्गों के मौलिक अधिकारों की मान्यता और प्रवर्तन से संबंधित महत्वपूर्ण मुद्दों को उठाती है। सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि इस विषय पर शायद यह पहली ऐसी याचिका है और दिलचस्प बात यह है कि याचिकाकर्ता की दलीलें पूरी तरह से संविधान के अनुच्छेद 21 और अन्य सहायक संवैधानिक प्रावधानों पर आधारित हैं।

कोर्ट ने कहा है कि संविधान के अनुच्छेद 21 में दिए गए जीवन के अधिकार को व्यापक अर्थ दिया जाना चाहिए। जीवन के अधिकार में कई अधिकार शामिल हैं लेकिन फिलहाल तीन महत्वपूर्ण संवैधानिक अधिकारों से संबंधित हैं, जिनमें से प्रत्येक बुनियादी और मौलिक है। याचिकाकर्ता द्वारा व्यक्त किए गए ये अधिकार सम्मान के साथ जीने का अधिकार, आश्रय का अधिकार और स्वास्थ्य का अधिकार हैं। राज्य यह सुनिश्चित करने के लिए बाध्य है कि ये मौलिक अधिकार न केवल संरक्षित हैं बल्कि सभी नागरिकों को लागू और उपलब्ध कराए गए हैं।[11]

सुप्रीम कोर्ट ने आम सहमति के विचारों के साथ सहमति व्यक्त की है जो चर्चाओं और प्रस्तुतियों के दौरान उभरे हैं और उनकी राय है कि इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों का एक सेट संवैधानिक जनादेश या एमडब्ल्यूपी अधिनियम के जनादेश को पूरा नहीं करेगा। बुजुर्गों को सम्मान के साथ जीने का अधिकार उपलब्ध कराने और उन्हें उचित आवास, चिकित्सा सुविधाएं और वृद्धावस्था देखभाल प्रदान करने के लिए संवैधानिक जनादेश के कार्यान्वयन में प्रगति की निरंतर निगरानी करने की आवश्यकता है। हालांकि इसमें कुछ समय लग सकता है, एकमात्र उपलब्ध समाधान एक निरंतर परमादेश है जो इस न्यायालय द्वारा कई मामलों में अपनाई गई एक अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त अभ्यास और प्रक्रिया है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि लोगों के अधिकारों का सम्मान, मान्यता और लागू किया जाता है और सामाजिक न्याय के रूप में संविधान की प्रस्तावना में निहित अर्थ दिए गए हैं।[12]

इस प्रकार, कानून और इसके कार्यान्वयन के बीच एक बड़ा अंतर है और भले ही 2007 में एमडब्ल्यूपी अधिनियम लागू हुआ और तब से एक दशक से अधिक समय बीत चुका है, भारत सरकार या राज्य सरकारों द्वारा गंभीर प्रयास नहीं किए गए हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए कि बुजुर्गों और वृद्धावस्था देखभाल के लिए चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती हैं। बुजुर्ग न केवल संविधान द्वारा बल्कि एमडब्ल्यूपी अधिनियम के प्रावधानों द्वारा गारंटीकृत अपने मानवाधिकारों से अवगत नहीं हैं क्योंकि एक तरफ माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों की समस्याएं दिन-ब-दिन बढ़ रही हैं, दूसरी तरफ सुप्रीम कोर्ट के कुछ मामले दर्ज हैं। वरिष्ठ नागरिकों की परेशानी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। बिगड़ता स्वास्थ्य, कुपोषण, आश्रय की कमी, भय, अवसाद, बुढ़ापा, अलगाव, ऊब, गैर-उत्पादकता और वित्तीय अक्षमता सबसे आम समस्याएं हैं जिनका सामना आज पूरी दुनिया में वरिष्ठ नागरिक कर रहे हैं।

निष्कर्ष

अधिकांश बुजुर्ग गरीबी, अकेलेपन, उपेक्षा, दुर्व्यवहार और परित्याग से पीड़ित हैं और उन्हें अपनी सबसे बुनियादी जरूरतों के लिए संसाधन जुटाना मुश्किल लगता है क्योंकि उनके बच्चे या तो असमर्थ हैं या उन्हें बनाए रखने के लिए तैयार नहीं हैं। हालांकि, माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण और कल्याण अधिनियम, 2007 भारत में बुजुर्गों की गरिमा और सम्मान की रक्षा के लिए सही दिशा में एक कदम आगे है। वरिष्ठ नागरिकों के लिए पर्याप्त योजनाएं

और नीतियां हैं, लेकिन उनमें से अधिकांश को उनके लिए मौजूदा योजनाओं और नीतियों और इस तरह के लाभों को प्राप्त करने की प्रक्रिया के बारे में पता नहीं है, लेकिन इनमें से कई को ठीक से लागू नहीं किया गया है। अंतर्राष्ट्रीय संधियाँ, सम्मेलन, सरकारी रिपोर्ट, अकादमिक पत्रिकाएँ, समाचार पत्र इस संबंध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत में विभिन्न कानून बनाए गए हैं जिनमें व्यक्तिगत कानून, विश्व स्तर पर बुजुर्गों से संबंधित मुद्दों को संबोधित करने के लिए आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन और राज्यों के विभिन्न उच्च न्यायालयों और भारत के सर्वोच्च न्यायालय के प्रासंगिक निर्णय शामिल हैं। वरिष्ठ नागरिकों के अधिकारों से संबंधित मौजूदा कानून और राष्ट्रीय स्तर पर एक व्यापक कानून के लिए तरीके खोजने और सुझाव देने का परिणाम है। संविधान के तहत गारंटीकृत और मान्यता प्राप्त वरिष्ठ नागरिकों के भरण-पोषण और कल्याण के लिए और उससे जुड़े या उसके आनुषंगिक मामलों के लिए और अधिक प्रभावी प्रावधान प्रदान करना है। अधिकतम अनुरक्षण भत्ता जो अनुरक्षण अधिकरण द्वारा आदेशित किया जा सकता है वह राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किया जा सकता है जो 10,000/- प्रति माह रुपये से अधिक नहीं होगा। भारत के संविधान की समवर्ती सूची (अनुसूची VIII) को अधिनियमित किया गया है। उनमें से एक मुख्य चिंता स्वतंत्रता, आंदोलन की स्वतंत्रता और सामाजिक दुनिया में पूरी तरह से भाग लेने की क्षमता को बनाए रखना है। दादा-दादी या माता-पिता चाहे उनकी उम्र कुछ भी हो, अपने एक या अधिक बच्चों से भरण-पोषण का दावा कर सकते हैं। राज्य सरकार गरीब वरिष्ठ नागरिकों को समायोजित करने के लिए प्रत्येक जिले में कम से कम एक वृद्धाश्रम स्थापित करेगी। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 18 में कहा गया है कि देखभाल करने के लिए परिवार का समर्थन करने के लिए बुजुर्गों को घर आधारित सेवाएं प्रदान करना है। मजबूत समर्थन के लिए संशोधित करने के लिए भारत की सामाजिक सुरक्षा प्रणाली एक महत्वपूर्ण परिवर्तन में संशोधन विधेयक, 2019 को रखरखाव राशि के रूप में 10,000/- रुपये की ऊपरी सीमा के उद्देश्य से पारित किया गया था, जिसे इस अधिनियम के तहत ट्रिब्यूनल द्वारा प्रदान किया गया था। धारा 2 (बी) के तहत रखरखाव के लिए 'रखरखाव' और 'सम्मान का जीवन जीने' का अधिकार विधेयक की धारा 3 (i) (बी) के तहत रखरखाव के लिए शामिल किया गया था। भारत के संविधान का अनुच्छेद 21 किसी व्यक्ति की भलाई के लिए जीवन का अधिकार है।

संदर्भ

1. वरिष्ठ नागरिकों के लिए राष्ट्रीय नीति, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, 2011.
2. फ्रेडवांग एम, बिग्स एस, मानवाधिकार कानून के तहत वृद्ध व्यक्तियों के अधिकार, संरक्षण और अंतराल, 2012.
3. मैड्रिड योजना, हेल्प एज इंटरनेशनल, 2002.
4. दीवान पी. आधुनिक हिंदू कानून 20वां संस्करण, इलाहाबाद लॉ एजेंसी, 2017; 448-449।
5. चेकी डीए. पारिवारिक मूल्य और पारिवारिक परिवर्तन, जे कॉम्प फैम स्टड.1996; 27: 409-411।
6. गुप्ता जी. आर., "संयुक्त परिवार", दास में, एम.एस. और बर्दीस, पी.डी. (संस्करण) एशिया में परिवार (जॉर्ज एलन और अनविन), लंदन1978; 72-87।
7. सिंह जे.पी. "द कंटेम्परेरी इंडियन फैमिली", एडम्स, बीएन और ट्रॉस्ट जे। (संस्करण) हैंडबुक ऑफ वर्ल्ड फैमिलीज (सेज पब्लिकेशन इंक, कैलिफोर्निया) 2004; 129-166।
8. सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय, केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय (केंद्रीय सांख्यिकी प्रभाग): बुजुर्ग भारत प्रोफाइल और कार्यक्रम 2016; 2।
9. माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण और कल्याण अधिनियम, 2007.
10. भारत सरकार, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय लोकसभा, 2020।
11. अश्विनी कुमार बनाम भारत संघ और अन्य। मंत्रालय। 2016 का डब्ल्यू.पी (सिविल) नंबर 193; 2018 ।
12. विधायी संक्षिप्त, माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण और कल्याण (संशोधन) विधेयक, एआईआर 2014 पी एंड एच 121. 2019।

चम्बा क्षेत्र के विवाह सम्बन्धी अनिबद्ध लोकगीतों की परम्परा

आचार्य जीत राम शर्मा

शोध निर्देशक

सोनू देवी

पीएच.डी. रिसर्च स्कॉलर, शोधार्थी, संगीत (गायन), संगीत विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, समरहिल, शिमला-171005

सारांश

किसी भी सामाजिक व्यवस्था का आधार, सम्बन्धित रीति-रिवाजों व लोकगीतों पर निर्भर करता है। रीति-रिवाजों में परिवर्तन पारम्परिक है। लोकगीत वह गीत है जिन्हें कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि पूरा लोक अपनाता है। सामान्यत: लोगों में प्रचलित, लोगों द्वारा रचित एवं लोगों के लिए लिखे गए गीत लोकगीत हैं। लोकगीतों में शास्त्रीय नियमों पर ध्यान नहीं दिया जाता। लोकगीत हमारे भविष्य का निर्धारण करते हैं। लोकगीतों का सम्बन्ध सूक्ष्म मनोभावों की सहज अभिव्यक्ति है। लोकगीतों का हमारे जीवन के हर पहलू से गहरा सम्बन्ध है। कुछ लोकगीत विलुप्त होने की कगार पर है। अनिबद्ध लोकगीतों का प्रचलन चम्बा क्षेत्र में प्राचीन समय से चला आ रहा है। चम्बा लोक संस्कृति में विवाह अवसर पर अनिबद्ध लोकगीतों का प्रचलन अधिक रहता है। विवाह की प्रत्येक रस्म को निभाते समय औरतों द्वारा इन गीतों का गायन होता है। लोकगीतों का गायन सम्पूर्ण चम्बा क्षेत्र की अपनी परम्परा है। यह अध्ययन मुख्यत: चम्बा के विवाह सम्बन्धी अनिबद्ध लोकगीतों से सम्बन्धित है। यह अनुसंधान विलुप्त होते इन लोकगीतों को संजोकर रखने में प्रभावी है। इन विवाह सम्बन्धी अनिबद्ध लोकगीतों में करूण, शृंगार, हास्य रसों व सामाजिक रिश्तों की महत्ता एवं आपसी स्नेह है। जिससे सामाजिक परिपूर्णता सिद्ध होती है।

मुख्य शब्द: अनिबद्ध, संस्कार, लोकगीत।

प्रस्तावना

लोकगीतों को संसार बड़ा ही रोचक है। जिसका सीधा सम्बन्ध लोगों से होता है। लोकसंगीत एक प्राकृतिक प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न हुआ, जो मनुष्य के विकास से प्रारंभ हुआ। लोकगीत हमारी संस्कृति के परिचायक होते हैं। प्रत्येक को अपनी बोली-भाषा के लोकगीत भाते है। लोकगीतों में रीति-रिवाज, परम्परा, सामाजिक व धार्मिक पुट होता है। लोक संगीत मूलरूप से क्षेत्रीय अंचलों में सुरक्षित है। इसलिए इसका वर्गीकरण भी क्षेत्रीय आधार पर किया जाता है। भारत 'अनेकता में एकता' वाला देश है। यहां के संगम स्थल में बहुरंगी जातियां, अनेकों धर्म, बहुरंगी संस्कति एवं भाषाएं है। इस शोध में हिमाचल प्रदेश के जिला चम्बा में प्रचलित विवाह सम्बन्धी अनिबद्ध लोकगीतों की परम्परा पर प्रकाश डाला गया है। चम्बा में प्रचलित अनिबद्ध लोकगीतों की परम्परा अत्यंत प्राचीन है। इन अनिबद्ध लोकगीतों को विभिन्न अवसरों पर गाया जाता है। विवाह सम्बन्धी अनिबद्ध लोकगीत वैवाहिक रस्मों जैसे-पूजा अर्चना, मामा स्वागत, मेहंदी, हल्दी, तेल सांदी, सेहरा (वर पक्ष), लग्न वेदी, विदाई (वधु पक्ष), गृह प्रवेश और वधु पक्ष की लड़कियां व औरतें बारातियों पर हास्यप्रद व्यंग्य करती है, जिन्हें 'गालियां' लगाना कहा जाता है। यह गालियं लगाना एक परम्परा मात्र है जिसे वधु पक्ष की ओर से निभाया जाता है। इन अनिबद्ध लोकगीतों का गायन मुख्यत: औरतों द्वारा किया जाता है, पुरुष इसमें भाग नहीं लेते है। गांव की औरतें कुछ गुटों में बंटी रहती है। इनकी संख्या कम भी हो सकती है और अधिक भी। जो गुट गीत के बोल आरंभ करता है, वही बोल दूसरे गुट द्वारा दोहराए जाते हैं। यह दोहराव दो, तीन या इससे अधिक बार भी हो सकता है। चम्बा में इन लोकगीतों का आरंभ कब हुआ यह कह पाना कठिन है।

सिब्बू देवी से किए गए साक्षात्कार के अनुसार, ''औरतें मिलकर इन गीतों को गाती हैं। इन गीतों को किसी व्यक्ति या समुदाय द्वारा शुरू नहीं किया गया है। यह परम्परित रूप से चलते आ रहे हैं। समयानुसार इनमें परिवर्तन भी होते रहे और वर्तमान में भी यह गीत यहां प्रचलित है।''

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण

1. लक्ष्मीनारायण गर्ग द्वारा ''जो रचना स्वरों मे तो बंधी हुई हो, किन्तु ताल में न हो, वह 'अनिबद्ध गान' के अन्तर्गत आता है।''
2. पूजा शर्मा, संजीत कुमार द्वारा ''अनिबद्ध, इसका अर्थ ताल से मुक्त अर्थात आलाप जैसा गायन है।''

3. पं. शारंगदेव द्वारा रचित संगीत रत्नाकर के प्रबंधाध्याय के अनुसार ''गान के दो प्रकार है निबद्ध तथा अनिबद्ध। वह जो धातुओं और अंगों से बद्ध हो, निबद्ध है तथा वह जो इस प्रकार के बंधन से मुक्त हो, अनिबद्ध है।''

शोध की आवश्यकता एवं महत्व

जिला चम्बा में प्रचलित विवाह सम्बन्धी अनिबद्ध लोकगीत परम्परित है। आधुनिकता के युग मे युवा पीढ़ी का पाश्चात्य संगीत की ओर झुकाव अधिक है, जो प्रचलित लोकगीतों के अस्तित्व के लिए सही नहीं है क्योंकि गांव के वयोवृद्ध लोग ही इन गीतों का गायन करते हैं और युवा पीढ़ी तो इससे दूर होती जा रही है। उनके लिए यह गीत न के बराबर ही हैं। इस अनुसंधान को पूरा करने का यही उद्देश्य है कि इन गीतों को संजोकर, लिपिबद्ध करके आने वाली पीढ़ियो के लिए सुरक्षित रखा जा सके, ताकि आने वाली पीढिघ्यां भी इन सामाजिक लोकगीतों का आनंद ले सकें।

उद्देश्य

जिला चम्बा में प्रचलित अनिबद्ध लोकगीतों की परम्परा का अध्ययन करना।

अध्ययन प्रणाली

इस अध्ययन में मुख्यत: वर्णात्मक अध्ययन प्रणाली का प्रयोग किया गया है।

उपकरण

इस अध्ययन को पूरा करने के लिए प्राथमिक एवं अन्य सहायक डाटा का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक डाटा के लिए साक्षात्कार किए गए है और सहायक डाटा के लिए पत्र पत्रिकाओं व पुस्तकों का प्रयोग किया गया है।

विवाह सम्बन्धी मुख्य अनिबद्ध लोकगीत

मामा का स्वागत

गीत के बोल

''शामडीए कुण गौरे पालिया खडौते,
आया मां शामडीए कुली री माता सो भालिया खड़ौती।
किना गौरे भालंदी हो, भालंदी अपणै पियोकी जो,
किना गौरे भालंदी हो, भालंदी सो तारै भाइऐ।
भाई तेरा आया गौरिए, बिना आए करजा सोहारे,
मामा आया घौडै हो, मामी आई लौले।
जिना बोयाए करजा सो कुँवारे वे हां।''

भावार्थ: गीत की उक्त पंक्तियों में शादी के आरंभ में मामा का स्वागत किया है। दुल्हा/दुल्हन की माता शाम के समय आंगन में खड़ी अपने मायके वालों का इन्तजार कर रही है। वो अपने भाई और भाभी का इन्तजार करती है और कहा गया है जो मामा शादी क दिन नहीं आते वह कर्ज के हकदार होते हैं।

गीत के बोल

''जागा ता जागा चिडुओ पखेरूओ,
मामा पाणी जो आए हां।।
जागा ता जागा चिडुओ पखेरूओ,
मामा पाणी जो आए हां।।
मामा ता तेरा असल गदेटू,
मामी तेरो ताली हां।।
मामा ता तेरा असल गदेटू,
मामी तेरो ताली हां।।
मामा ता तेरा पाणी भरांदो,
मामी लियूण पुआंदी हां।।

मामा ता तेरा पाणी भरांदो,
मामी पूरी लियूण पुआंदी हां।।''

भावार्थ: प्रस्तुत गीत में मामा मामी द्वारा शादी में निभाई जाने वाली रस्मों का वर्णन किया गया है। अंतिम पंक्ति में बताया गया कि मामा पानी भरता है और मामी गोबर से मंडप भूमि को लेपती है।

स्वरलिपि

जा	ऽ	गा	ता	जा	ऽ	गा	ऽ	चि	डु	ओ	प	खे	ऽ	रू	ऽ	ओ	ऽ
प़	–	प़	सा	ध़	–	ध़	–	ध़	ध़	रे	रे	ध़	–	ध़	–	सा	–
मा	ऽ	मा	ऽ	पा	ऽ	णी	जो	ऽ	आ	ऽ	ये	ऽ	हां	ऽ	ऽ		
प़	–	प़	–	सा	–	ध़	सा	–	ध़	–	ध़	–	प़	–	–		
मा	ऽ	मा	ता	ते	ऽ	रा	ऽ	अ	स	ल	ग	दे	ऽ	दू	ऽ		
प़	–	प़	सा	ध़	–	ध़	–	ध़	ध़	रे	रे	ध़	–	ध़	ऽ		
मा	ऽ	मी	ऽ	ते	ऽ	रो	ऽ	ता	ऽ	ली	ऽ	हां	ऽ	ऽ			
सा	–	प़	–	ध़	–	सा	–	ध़	–	प़	–	प़	–	–			

अन्य पंक्तियों में भी इन्हीं स्वरों का प्रयोग किया गया है।

दुल्हे का जोग

गीत के बोल?

''कै गुआ चौत्र चढ़या बसाखौ,
चिडुए पखेरूए बदलीया भाखो,
चिडुए पखेरूए बदलीया भाखो।
अबै गद्दी कनै गुजरा जो लगीआ उदासी,
गद्दी कनै गुजरा जो लगीआ उदासी।
कनै पाइयां मुंदरौ हाथे जो डैंठो,
कनै पाइयां मुन्दरौ हाथे जो डैंठो।
अगै वो विभूतो मुंडै पाइयां झोली,
मुंडै पाइ झोली, पैरै चनन खडाउँ।
अबे हाओ हाओ करंदौ, भावो जो डरांदा,
हाओ हाओ करंदौ भावो जो डरांदो।
कुण कुण तीरथ न्हाणै इन जोगी हो,
कुण कुण तीरथ न्हाणै इन जोगी हो।
गंगडी भी न्हाई, जमुना भी न्हाई शिव कलोत्र न्हाई,
गौरीकुण्ड न्हाए मनीमहेश न्हाए।''

भावार्थ: इस गीत में दुल्हे के जोगी रूप धारण करने का वर्णन किया गया है। जिसमें पक्षियों की बदलती आवाज का सबसे पहले वर्णन है क्योंकि चौत्र महीना खत्म हुआ है और बैसाख का आगमन हुआ है। मौसम परिवर्तन का वर्णन है। जोगी ने कान में मुद्राएं, हाथ में छड़ी, अंग में विभूति, कंधे में झोली और चन्दन खडाउं पहनी है। इस रूप को धारण कर वह अपनी भाभी को डराता है। उससे पूछा जाता है कि तुमने कौन-कौन से तीर्थ स्थल नहाए, तब वह कहता है गंगा, यमुना शिवकलोत्र गौरी कुण्ड और मनीमहेश।

सेहरा

गीत के बाल

''लाड़े दियो बापुआ वो अंदरा जो आयो,
अंदरा जो आयो हेरे हाथ लायो।
हेरे हाथ लायो बारा बात खायो,

बारा बात खायो फेर जानी जायो।
लाडेघ दिया भाइयो हेरे हाथ लायो,
हरे हाथ लायो बारा बात खायो।
बारा बात खायो फेर जानी जायो।''

भावार्थ: उपर्युक्त गीत में दुल्हे को सेहरा पहनाया जा रहा है। उसके पिता और भाई को सेहरा पहनाई के लिए बुला रहे हैं कि वो आएं और सेहरा पहनाई में अपना सहयोग दें। इसी प्रकार अन्य पंक्तियों में चाचा, मामा, दादा और ताया को भी बोला गया है।

बारात का जाना

गीत के बोल

''छोड़े छोड़े घरा जोगै इणा हो,
पुता लेई वो इंयैं अम्बडी जो नोडी हो।
पुता लेई वो इंयै अम्बडी जो नोडी हो।
भाईया लेई वो इंयैं भैणा जो भावो,
भाइया लेई वो इंयैं भैणा जो भावो।''

भावार्थ: उपर्युक्त गीत में दुल्हा उसकी मां और बहन आपस में संवाद कर रहे है। मां और बहन दुल्हे से कहती हैं कि मां के लिए बहु और बहन के लिए भाभी लेकर आ।

बारात का वापस आना

गीत के बोल

''अम्मा पूछंदी अपणै जे पुता जो,
जाई पराई कियां वो छुडाई।
हथै तां लैइया औ ढाल तलवार,
इना तलवारी रै जोरै आंदी वो छुडाई।
नार तां पुछंदी ओ अपणै से विआउए जो,
कड़ी न वियाउआ घर तेरै बार हो।
गिरदै बरांडै ओ मैल वो झरोखे,
एन लाड़ी घर मेरै बार हो।''

भावार्थ: इस गीत में दुल्हे की वापसी का वर्णन है। इसमें मां बेटे का आपसी संवादी का वर्णन है और साथ में वर वधु के आपसी संवाद का वर्णन भी है।

दुल्हन का गृह प्रवेश

गीत के बोल

''सस तेरी आरती करंदी तारै वे ब्याणु री लोई हां,
सस तेरी आरती करंदी नौलाख बलदा दियो हां।
सस तेरी आरती करंदी लाडीऐ घुंडणु सुंवालयां,
सस तेरी आरती करंदी लाडीऐ घुंडणु सुंवालया।''

भावार्थ: इस गीत की पंक्तियों में वधु का गृह प्रवेश करते समय का वर्णन है। सास बहु की आरती उतार रही है।

निष्कर्ष

चम्बा के विवाह सम्बन्धी अनिबद्ध लोकगीत यहां की लोक संस्कृति, लोक परम्परा एवं लोकमूल्यों का वैशिष्टय है। यह लोकगीत त्योहारों, संस्कारों एवं धार्मिक अवसरों पर गाए जाते हैं परंतु समय परिवर्तन के साथ-साथ लोक व्यवहार, सदाचार एवं लोक मूल्यों में कभी आई है। जिसका मुख्य कारण लोक संस्कृति से दूर रहना है। चम्बा के अनिबद्ध लोकगीत आज की युवा पीढ़ी के लिए किसी वरदान से कम नहीं है क्योंकि यह गीत हमें हमारी संस्कृति से जोड़े रखते हैं। इससे हमारी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक योग्यता को मजबूती मिलती है। अत: हम यही कह सकते हैं कि प्रत्येक क्षेत्र के लोकगीत वहां की विशुद्ध संस्कृति के संवाहक होते हैं। इनका संरक्षण संवर्द्धन करना आज की युवा पीढ़ी का दायित्व है।

संदर्भ

1. डॉ. गर्ग, लक्ष्मी नारायण, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय हाथरस, पृ. 243
2. शर्मा पूजा, कुमार संजीत, Anihant, Arihant Publications India, Edition 2021-22, p. 349
3. https://19syanhindi.com

साक्षात्कार (स्थानीय लोकगायिकाएँ)

1. श्रीमती सिब्बू देवी
2. श्रीमती चिपलो देवी
3. श्रीमती सवित्रो देवी
4. श्रीमती धोनी
5. श्रीमती प्रवीणो देवी
6. श्रीमती सुलेखा देवी

विभिन्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के किशोरावस्था के बालक-बालिकाओं के व्यक्तित्व का अध्ययन

अमरजीत सिंह

शोध छात्र (शिक्षा), अ0प्र0 सिंह विश्वविद्यालय रीवा (म0प्र0)

डॉ० डी० एस० सिंह बघेल

(पूर्व आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, विभाग शिक्षा, लाइफ लॉग लर्निंग विभाग), अ0 प्र0 सिंह विश्वविद्यालय रीवा (म0प्र0)

सारांश-किशोरावस्था के बालक एवं बालिकाओं के विभिन्न मनोवैज्ञानिक गुणों जिसमें से एक व्यक्तित्व भी है का विकास उनके माता-पिता के रहन-सहन, उनकी सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति, बाहरी वातावरण से उनका सम्बन्ध, अपने पाल्यों के साथ समायोजन इत्यादि पर निर्भर करता है तथा इनमें किसी भी कारक के प्रभावी होने पर उनके व्यक्तित्व विकास पर भी प्रभाव डालता है। इस परिकल्पना में शोधकर्ता द्वारा यह जानने का प्रयास किया गया कि निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले परिवारों के बालक तथा बालिकाओं के विभिन्न मनोवैज्ञानिक गुण किस सीमा तक प्रभावित होते हैं। इन्हीं मनोवैज्ञानिक गुणों में व्यक्तित्व भी सम्मिलित है। परिकल्पना के ाोधन से पता चलता है कि वर्तमान समय में निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर वाले माता-पिता व अभिभावकों के बालक एवं बालिकाओं के व्यक्तित्व में अन्तर नहीं है अर्थात् वे अपने पाल्यों के व्यक्तित्व विकास में समान रूप से प्रयत्नशील रहते हैं।

मुख्य शब्द-किशोरावस्था, व्यक्तित्व, सामाजिक-आर्थिक स्तर इत्यादि।

प्रस्तावना-शिक्षा मानव के विकास एवं चहुँमुखी प्रगति का एक सशक्त साधन है। वैसे तो शिक्षा निरंतर गतिमान रहने वाली प्रक्रिया है परंतु इसकी औपचारिक शुरूआत कक्षा-कक्षों से ही होती है। अध्यापक भी कक्षा शिक्षण के माध्यम से ही विद्यार्थियों को ज्ञान प्रदान करते हैं। शिक्षा विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में योगदान देती है। हमारे देश के शिक्षण संस्थाओं में विभिन्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थी ज्ञानार्जन करते हैं। किशोरावस्था के बालक व बालिकाओं की शिक्षा समाज व राष्ट्र की प्रगति में आधारशिला का कार्य करती है। इसलिए शिक्षा विशेषज्ञों का मानना है कि किशोरावस्था के बालक तथा बालिकाओं के विभिन्न मनोवैज्ञानिक गुणों का विकास करके शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया की योजना बनाना चाहिए।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व -

बालक के जीवन में 13 से 18 वर्ष तक की आयु संक्रमण की अवस्था होती है। इस अवस्था में बालकों का स्वभाव जिज्ञासु और कौतुहल को पसन्द करने वाला होता है। इसलिए वे जिज्ञासा का समाधान करने के लिए ऐसे विचार व कार्य करने लगते हैं जो उन्हें नहीं करना चाहिए इसके समाधान की समझ उन्हें या तो माता-पिता से मिल सकती है या शिक्षकों से।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, यह अपने आस-पास के वातावरण को स्वयं व्यवस्थित रूप से समझता है। व्यक्तित्व कोई विशिष्ट गुण या लक्षण नहीं है। जो किसी एक या कुछ मनुष्यों मे ंपाया जाता है यह मनुष्य के व्यवहारों का दर्पण है। व्यक्तित्व मनुष्य के गुण, अवगुण, चिन्ता, चिन्तन प्रक्रिया आदि का संगठित रूप है। किशोरावस्था में कल्पना शक्ति का बाहुल्य रहता है। वे अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए दिवा-स्वप्न देखते है। उनकी इस कल्पना शक्ति को सही मार्ग दर्शन देकर कला, संगीत, खेल, साहित्य एवं अन्य रचनात्मक कार्यो में मौलिकता का प्रदर्शन किया जाता है। अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि कल्पना शक्ति की अधिकता बालिकाओं में अधिक होती है, अपेक्षाकृत बालकों के किशोरावस्था में रूचियों का विकास तीव्रता से होता है। स्त्री एवं पुरूष अपनी-अपनी रूचियों का चुनाव भिन्न-भिन्न विधियों से करते हैं। जिस समय किशोरावस्था का आगमन होता है बालकों में तीव्रता के साथ अत्यधिक शारीरिक परिवर्तन होने लगते हैं। इन परिवर्तनों के कारण ही किशोरों में दाढ़ी और मूँछ के प्रारम्भिक चिन्ह दिखाई देने लगते हैं कन्धे चौड़े होने लगते हैं किशोरियों के कूल्हें व वक्षस्थल उभरने लगते हैं कुछ माह के पश्चात् किशोर व किशोरियों में स्वप्न दोष व मासिक धर्म की घटनायें प्रारम्भ हो जाती है। इन परिवर्तनों के अतिरिक्त उनकी रूचियों, आवश्यकताओं व दृष्टिकोणों, आदर्शो तथा नैतिक मान्यताओं में आमूल-चूल परिवर्तन होने लगते हैं और वे माता-पिता, अभिभावकों तथा सामाजिक व सांस्कृतिक परम्पराओं व विधानों से स्वतन्त्र रहना चाहते है। इस अवस्था में परिपक्व व्यक्तित्व शीलगुणों का विकास हो जाता है, जिससे किशोर व किशोरियों में नेतृत्व, मैत्री, सहानुभूति, परोपकार व विनम्रता के गुण प्रबल हो जाते हैं और धीरे-धीरे नकारात्मक प्रवृत्तियों जैसे चिंता, बेचौनी, चिड़चिड़ापन, भय, आकुलता व आक्रामकता में कमी आने लगती है। किशोर में कर्तव्य, ईमानदारी, उत्तरदायित्व, समायोजित व्यवहार व क्रियाकलापों के लक्षण दृढ़ रूप से अद्भुत हो जाते हैं।

इस अवस्था में वे अपना जीवन आदर्श बना लेते है। उनके आदर्श तथा माता-पिता के आदर्श में अन्तर होने के कारण कभी-कभी संवेगात्मक उलझन व तनाव का भी सामना करना पड़ता है। यदि उन्हें परिवार, पडोस, विद्यालय तथा समाज में प्रतिकूल परिस्थितियाँ मिलती है तो उनमें अपराध प्रवृत्तियों व अन्य मानसिक तथा संवेगात्मक असामान्यताओं के विकास की प्रबल सम्भावना रहती है। अत: माता-पिता अभिभावक तथा शिक्षकों के लिए अनिवार्य है कि किशोर तथा किशोरियों की समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुए उनके प्रति सहजतापूर्ण व आदर्श तरीके से व्यवहार करे, जिससे कि किशोर व किशोरियों के व्यक्तित्व में सकारात्मक शीलगुणों का विकास हो सके और समायोजित समाज के अपेक्षित व्यक्तित्व का निर्माण हो सके। यदि ऐसा नहीं होता है तो उनमें नकारात्मक शीलगुणों का विकास प्रबल होता जाएगा जो व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करता है।

सम्बन्धित साहित्य का पुनरावलोकन -

वर्तमान शोध कार्य की समस्या किशोरावस्था के बालक एवं बालिकाओं के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन है। यह अध्ययन विभिन्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के बालक एवं बालिकाओं के व्यक्तित्व विकास पर आधारित है। अतएव सम्बन्धित साहित्य का पुनरावलोकन के अन्तर्गत सामाजिक-आर्थिक स्तर एवं व्यक्तित्व विकास से सम्बन्धित पूर्व में किए गऐ शोध कार्यो की जानकारी उपलब्ध करने का प्रयास किया है जो निम्नवत है-

कैव्ल डे और मीलेड (2006) ने 16 व्यक्तित्व परख प्रश्नावली को 11 व्यावसायिक समूहों में प्रतिपादित किया जैसे-हलवाई आदमी, कुश्ती, क्लर्क, प्रशासनिक, नर्स, धर्म गुरू, विक्रेता, अध्यापक इत्यादि। यद्यपि विभिन्न व्यवसायों में एक दूसरे के व्यक्तित्व में कोई उच्च सार्थक अंतर नहीं पाया गया परंतु सम्पूर्ण विवरणों के व्यवस्था में बहुत से व्यवसाय में विशेषताएँ पाई गई।

जामोर (2010) ने भारतीय परिस्थितियों में व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं और शैक्षिक-सम्प्राप्ति के बीच सहसम्बन्ध की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया तथा उन्होंने इस संदर्भ में यह भी जानने का प्रयत्न किया कि व्यक्तित्व सम्बन्धित चरों से शिक्षार्थियों की संप्राप्ति प्रभावित होती है। इस संदर्भ में अध्ययन के पश्चात् वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे की शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व सम्बन्धी समायोजन का प्रभाव उनकी उपलब्धि पर पड़ता है। उन्होंने यह भी पाया है कि शिक्षार्थियों का समायोजन उनकी विभिन्न क्षेत्रों में समस्याओं एवं सवेंगों पर आधारित होता है। निष्कर्षो से इस बात की पुष्टि हुई कि विद्यालय संप्राप्ति व्यक्तित्व सम्बन्धी समायोजन पर आधारित होती है।

गाट्समैन (2013) एक अध्ययन में माइनेसोटा मल्टीफेजिक पर्सनालिटी इन्वेंटरी की सहायता से व्यक्तित्व सम्बन्धी लक्षणों की तुलना पर देखा कि जुड़वा बच्चों की अनेक व्यक्तित्व विशेषताएँ एक या समान होती है। इस अध्ययन से वह निष्कर्ष निकाला गया कि व्यक्तित्व विकास में वंशानुक्रम का महत्वपूर्ण योगदान है।

माधुर (2013) श्री के0 माथुर ने 2013 में शैक्षिक उपलब्धि एवं व्यवहार पर समाजिक आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन किया यह शोध कार्य हायर सकेंडरी स्कूल के विद्यार्थियों पर किया गया। इस शोध कार्य के अन्तर्गत उन्होनें यह पाया कि छात्रों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का प्रभाव उनकी शैक्षिक उपलब्धियों पर पड़ता है। इसके साथ ही साथ उन्होंने यह भी अध्ययन किया कि छात्रों की आर्थिक एवं समाजिक स्थिति का प्रभाव उनके व्यवहारों पर पड़ता है।

अध्ययन के उद्देश्य - प्रस्तावित शोध प्रबन्ध में निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए शोध अध्ययन को विस्तारित किया गया -

1. उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले शहरी बालक-बालिकाओं के व्यक्तित्व विकास का अध्ययन करना।
2. मध्यम सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले शहरी बालक-बालिकाओं के व्यक्तित्व विकास का अध्ययन करना।
3. निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले शहरी बालक-बालिकाओं के व्यक्तित्व विकास का अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पना-उद्देश्य की पूर्ति हेतु शून्य परिकल्पना निर्मित की गयी थी कि विभिन्न सामाजिक- आर्थिक स्तर वाले बालक -बालिकाओं के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि-प्रस्तुत अध्ययन में प्रयोगात्मक शोध की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या-जनसंख्या का तात्पर्य सम्पूर्ण इकाईयों के निरीक्षण से होता है। इसमें कुछ इकाईयों का चयन करके न्यादर्श बनाया जाता है। प्रस्तुत शोध में प्रयागराज जनपद के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के किशोरावस्था के विभिन्न सामाजिक - आर्थिक स्तर के 600 बालक एवं बालिकाओं को न्यादर्श के रूप में चुना गया है।

न्यादर्शन (Sampling)-''जनसंख्या (इकाई, वस्तुओं या मनुष्यों का समूह) में किसी चर का विशिष्ट मान ज्ञात करने के लिए उसकी कुछेक इकाइयों को चुन लिया जाता है तो इस चुनने की क्रिया को न्यादर्शन (ैंउचसपदह) कहते हैं, तथा चुनी हुई इकाइयों के समूह को न्यादर्श (ैंउचसम) कहते हैं।'' प्रस्तुत अध्ययन में संभाव्यता न्यादर्शन के आधार पर आकड़ों को लिया गया है।

शोध उपकरण-1.डॉ0 अशोक कुमार कालिया तथा डॉ0 सुधीर साहू द्वारा निर्मित तथा प्रमापीकृत सामाजिक-आर्थिक स्तर मापनी-

प्रस्तुत शोध में डॉ0 अशोक कुमार कालिया तथा डॉ0 सुधीर साहू द्वारा निर्मित एवं प्रमापीकृत सामाजिक-आर्थिक मापनी का प्रयोग किया गया है-इस मापनी में ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के बालक तथा बालिकाओं की सामाजिक-आर्थिक स्तर की माप की जायेगी। इस मापनी में कुल 40 कथन है जो बालक तथा बालिकाओं के निम्नलिखित पाँच भागों पर आधारित हैं -

(a) सामाजिक-सांस्कृतिक घटक

(b) आर्थिक घटक

(c) वस्तु एवं सेवाओं पर स्वामित्व

(d) स्वास्थ्य घटक

(e) शिक्षा सम्बन्धी घटक

यह मापनी तथा कथन एवं उत्तर कुंजी का विवरण इस शोध के अन्तर्गत संलग्न परिशिष्ट में दिया गया है।

वर्गीकरण	अंकन (Score)
उच्च सामाजिक - आर्थिक स्तर	71-76
मध्य सामाजिक - आर्थिक स्तर	65-70
निम्न सामाजिक - आर्थिक स्तर	59-64

2. डॉ0 महेश भार्गव द्वारा निर्मित एवं प्रमापीकृत व्यक्तित्व आयामी अनुसूची-(Dimensional Personality Inventory)

प्रस्तुत शोध में किशोरावस्था के बालक व बालिकाओं से सम्बन्धित व्यक्तित्व सम्बन्धी आँकड़ें प्राप्त करने के लिए डॉ0 महेश भार्गव द्वारा निर्मित एवं प्रमापीकृत व्यक्तित्व आयामी अनुसूची का प्रयोग किया जायेगा। इस अनुसूची में 60 कथन दिये गये हैं जो निम्नलिखित छः प्रमुख व्यक्तित्व आयामों से सम्बन्धित हैं -

(i) सक्रियता-निष्क्रियता (Activity - Passivity Trait)

(ii) उत्साही और निरूत्साही गुण (Enthusiastic and Non - Enthusiastic trait)

(iii) सकारात्मक-आज्ञाकारिता (Assertive - Submissive)

(iv) संदेहजनक-विश्वासपूर्वक (Suspicious - Trusting)

(v) अवसादपूर्व-उत्साहपूर्वक (Depressive - Non depressive)

(vi) संवेगात्मक अस्थिरता और संवेगात्मक स्थिरता (Emotional Instability and Emotional Stability)

अनुसूची में व्यक्तित्व आयामों से सम्बन्धित 10 कथन दिये गये हैं। अनुसूची के प्रत्येक कथन के लिए उत्तरदाताओं से तीन प्रतिउत्तरों (Options) यथा-हाँ, अनिश्चित तथा/नहीं पर अपनी राय देने की अपेक्षा की गयी है।

उपकरण का फलांकन -

हाँ	अनिश्चित	नहीं
2	1	0

अनुसूची में सभी छः व्यक्तित्व आयामों में से प्रत्येक के लिए 10-10 कथनों को सम्मिलित किया गया है। इस प्रकार प्रत्येक वर्ग (व्यक्तित्व आयाम) का कुल कलांकन 0-20 तक होगा।

निष्कर्ष -

परिकल्पना (1) से प्राप्त निष्कर्ष -

परिकल्पना (1) में शोधकर्ता ने उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले शहरी बालक-बालिकाओं के व्यक्तित्व विकास में सार्थकता का अध्ययन किया है। अध्ययन के निष्कर्ष में यह परिणाम आया कि दोनों समूहों अर्थात् उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले शहर के बालकों एवं उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले शहरी बालिकाओं के व्यक्तित्व विकास में कोई सार्थक अंतर नहीं प्राप्त हुआ। इस प्रकार शोधकर्ता ने मानी गयी परिकल्पना पूर्णरूप से स्वीकृत की गयी। इस संदर्भ में शोधकर्ता का मानना है कि शहरी क्षेत्र के बालक तथा बालिकाओं के माता-पिता के रहन-सहन-व्यवहार तथा अपने पाल्यों के साथ उनका सम्बन्ध उनके व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव डालता है। इस परिकल्पना के परीक्षण से यह भी निष्कर्ष प्राप्त होता है कि अभिभावकों के सामाजिक-आर्थिक स्थिति का उनके बालक तथा बालिकाओं के व्यक्तित्व विकास पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है। वर्तमान समय में माता-पिता तथा अभिभावक अपने बच्चों को बिना लिंग-भेद के समान शिक्षा की व्यवस्था पर जोर दे रहे हैं इसी का परिणाम है कि सम्बन्धित परिकल्पना में बालक तथा बालिकाओं के व्यक्तित्व विकास में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

प्रायः देखा जाता है कि उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले परिवारों में रहन-सहन, व्यवहार इत्यादि उच्च कोटि का होता है तथा इन परिवारों में निवास करने वाले प्रत्येक सदस्यों की मानसिकता व सोच भी अच्छी होती है वे बालक तथा बालिकाओं में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं करते हैं। वे अपने परिवार के प्रत्येक बालक व बालिका के लिए शिक्षा तथा अन्य सुविधाओं का समान रूप से व्यवस्था करते हैं। उनका मानना है कि परिवार, समाज तथा राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए बालकों के साथ-साथ बालिकाओं की भी शिक्षा की व्यवस्था करना आवश्यक है क्योंकि इसमें से किसी की भी शिक्षा

की उपेक्षा कर विकास की संकल्पना नहीं की जा सकती इसलिए शोधकर्ता की इस परिकल्पना के शोधन के समय भी यह बात सामने आयी कि उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले शहरी बालक तथा बालिकाओं के व्यक्तित्व विकास में सार्थक अंतर नहीं है।

परिकल्पना 2 से प्राप्त निष्कर्ष -

प्रस्तुत शोध की परिकल्पना (2) में शोधकर्ता द्वारा मध्यम सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले परिवार की बालक तथा बालिकाओं के व्यक्तित्व विकास में सार्थकता का अध्ययन किया गया। शोध के परिणामों की व्याख्या के बाद निष्कर्ष में यह पाया गया कि दोनों समूहों के व्यक्तित्व विकास में अन्तर नहीं है। इस प्रकार शोधकर्ता की अनुमानित परिकल्पना सत्य सिद्ध होती है। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि वर्तमान समय में मध्यमवर्गीय परिवार ही अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का व्यापक रूप से प्रबंध कर रहे हैं तथा वे भी बिना किसी भेदभाव तथा लिंग भेद के अपने बालक तथा बालिकाओं को शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। शोधकर्ता ने इस बात को दृष्टिगत रखते हुए अपनी शोध-परिकल्पना का निर्माण किया जो प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर बालक तथा बालिकाओं के व्यक्तित्व विकास में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

मध्यमवर्गीय परिवारों में कुछ समय पहले तक बालक तथा बालिकाओं पर अत्यधिक अनुशासन तथा प्रतिबन्ध रखे जाते थे। विनम्रता, समर्पण, नैतिकता के गुण मध्यमवर्गीय परिवारों के बालक व बालिकाओं में होते हैं। वर्तमान समय में मध्यम सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले परिवारों में भी बालक और बालिकाओं पर अनावश्यक प्रतिबन्ध एवं अनुशासन पर लचीलापन आया है जिसके कारण इन परिवारों के बालक व बालिकाओं की शिक्षा व्यवस्था व अन्य सुविधाओं में समानता आयी है जिसका परिणाम यह हुआ है कि बालक तथा बालिकाओं के अन्दर समान मनोवैज्ञानिक गुणों का विकास हुआ है। प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता द्वारा मध्यम सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले परिवारों के बालक व बालिकाओं के व्यक्तित्व विकास में अन्तर को जानना चाहा। परिकल्पना के विश्लेषण के उपरांत यह ज्ञात हुआ कि मध्यवर्गीय परिवारों के बालक तथा बालिकाओं की समान व आवश्यक शिक्षा की संकल्पना के कारण उनके बालक तथा बालिकाओं के व्यक्तित्व विकास में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

परिकल्पना (3) से प्राप्त निष्कर्ष -

इस शोध की परिकल्पना (3) में निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले शहरी बालक-बालिकाओं के व्यक्तित्व विकास में सार्थक अंतर जानने का प्रयास किया गया। इस परिकल्पना में दोनों समूहों के व्यक्तित्व विकास में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। इस प्रकार शोधकर्ता की यह परिकल्पना, उसके अनुमान के अनुरूप स्वीकृत की गयी। शोधकर्ता का मानना था कि निम्न सामाजिक-आर्थिक परिवार वाले बच्चों का पालन पोषण, स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा व अन्य बुनियादी सुविधाएँ अच्छी नहीं होती हैं जिसके कारण उनके मनोवैज्ञानिक गुण भी प्रभावित होते हैं। सुविधाओं के अभाव में प्रायः बालक एवं बालिकाओं में विभिन्न मनोवैज्ञानिक गुणों का विकास नहीं हो पाता है, उनकी शिक्षा दीक्षा भी प्रभावित हो जाती है। इन्हीं सब बातों को दृष्टिगत रखते हुए शोधकर्ता ने इस परिकल्पना का निर्माण किया तथा यह जानने की कोशिश की कि ऐसे परिवार के बालक व बालिकाओं की शिक्षा व विभिन्न मनोवैज्ञानिक गुणों में कुछ अंतर होता है अथवा नहीं। निम्न अथवा गरीब परिवार के बच्चों के ऊपर कम उम्र में ही जिम्मेदारियाँ आ जाती हैं। प्रायः अभिभावक तथा माता-पिता भी अपने बच्चों से शिक्षा के अलावा घरेलू कार्यो में अधिक लगा देते हैं। खासतौर से ऐसे परिवारों में बालिकाओं के ऊपर आवश्यकता से अधिक जिम्मेदारियाँ थोप दी जाती हैं जिसके कारण बालिकाओं के मनोवैज्ञानिक गुण अधिक प्रभावित होते हैं। उनका समुचित विकास नहीं हो पाता है तथा वे बालकों की अपेक्षा प्रत्येक क्षेत्र में पिछड़ जाते हैं। निम्न सामाजिक आर्थिक परिवारों में प्रायः देखा जाता है कि बालकों की अपेक्षा बालिकाओं की दशा सुधार योग्य होती है। इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए शोधकर्ता ने निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले परिवार के बालक एवं बालिकाओं के विशिष्ट मनोवैज्ञानिक गुण जैसे व्यक्तित्व विकास का तुलनात्मक अध्ययन किया और शोध के निष्कर्ष में यह पाया कि दोनों समूहों के व्यक्तित्व विकास में सार्थक अंतर नहीं है। इसका कारण शोधकर्ता की दृष्टि में वर्तमान समय में अभिभावकों एवं माता-पिता में जागरूकता व बालक-बालिका के प्रति समानता है।

शोध की शैक्षिक उपयोगिता -

शोधकर्ता के प्रस्तुत शोध के निष्कर्षो एवं परिणामों के आधार पर मानव विकास के सबसे महत्वपूर्ण स्तर किशोरावस्था के बालक-बालिकाओं वह चाहे ग्रामीण क्षेत्र के हो या शहरी क्षेत्र के, उनके व्यक्तित्व से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त हो सकेगी तथा इनकी उपयोगिता का भी मूल्यांकन किया जा सकेगा। शोधकर्ता ने बालक व बालिकाओं के व्यक्तित्व सम्बन्धी अन्तर, समानता तथा असमानता को अपने शोधकार्य व निष्कर्ष में भली-भाँति प्रस्तुत किया है। शोधकर्ता को आशा ही नहीं वरन् पूर्ण विश्वास है कि उसके द्वारा सुझाये गये निष्कर्ष भावी अनुसंधानों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगे। शोधकार्य में लगे समस्त व्यक्ति इनके निष्कर्षो का अनुकरण कर लाभान्वित हो सकेंगे। अन्ततः इस शोधकार्य की उपयोगिता के विषय में यह कहा जा सकता है कि अन्य व्यक्तियों का इससे लाभान्वित होना ही शोधकर्ता के लिए वास्तव में प्रसार तथा सम्मान के अनुरूप होगा।

प्रस्तुत शोध समस्या के अतिरिक्त बहुत सी शोध समस्याओं पर शोध कार्य किया जा सकता है। इन समस्याओं में कुछ प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित रूप से शोधकर्ता द्वारा उल्लिखित की जा रही है जिन पर भावी शोधकर्ता अपना शोधकार्य प्रस्तुत करके समाज व राष्ट्र को एक नई दिशा प्रदान करने में योगदान दे सकते हैं -

(1) विभिन्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के परिवारों के बालक एवं बालिकाओं का शिक्षाशास्त्र विषय में रूचि का अध्ययन करना।

(2) इण्टरमीडिएट स्तर पर अध्ययनरत् ग्रामीण बालिकाओं का शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में रूचि का अध्ययन करना।

(3) विभिन्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के बालक तथा बालिकाओं का विज्ञान तथा कला विषय में शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

(4) स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् बालक एवं बालिकाओं की शिक्षा के संदर्भ में उनके अभिभावकों की अभिवृत्तियों का अध्ययन करना।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, आर0ए0 (2008): भारतीय शिक्षा प्रणाली का विकास, आर0लाल बुक डिपो, मेरठ।
2. भटनागर, डॉ0 ए0बी0 (2008): अधिगम एवं शिक्षण, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
3. अग्रवाल, डॉ0 नीता (2008): बाल विकास, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
4. नागर, डॉ0 बीनू एवं राजपूत, डॉ0 आशा (2010): बाल विकास आगरा पब्लिकेशन, आगरा।
5. जायसवाल, सीताराम (2012): व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
6. श्रीवास्तव, डी0एन0 एवं पाठक, के0पी0 (2012): बाल विकास एवं बाल मनोविज्ञान, आगरा पब्लिकेशन, आगरा।
7. श्रीवास्तव, महेन्द्र नाथ एवं कुमार सतीश (2014): बाल विकास एवं सीखने की प्रक्रिया, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
8. श्रीवास्तव, डॉ0 डी0एन0 (2020): अनुसंधान विधियां, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
9. गुप्ता, प्रो0 एस0पी0 एवं गुप्ता, डॉ0 अलका, (2013): सांख्यिकीय विधियाँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. राय, पारस नाथ (2008): अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
11. सिंह, अरूण कुमार (2017): मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस।

भारत में न्यायिक आदेश (Writs) - उत्पत्ति एवं विकास

जितेन्द्र भारती

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग (झारखण्ड)

भारत एक लोकतांत्रिक देश है। लोकतंत्र में जनता सर्वोपरि होती है। जनता के कल्याण एवं संरक्षण हेतु संविधान एवं कानून द्वारा अधिकार प्रदान किए जाते हैं। भारतीय संविधान के तहत भारत में रहने वाले देशी एवं विदेशी नागरिकों को मूल अधिकार दिये गये हैं। इन अधिकारों का अतिक्रमण किसी भी स्थिति में नहीं की जा सकती है। विधि द्वारा स्थापित प्रक्रियाओं (Due Process of Law) के सिवाय इन्हें मूल अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता है। मूल अधिकारों का अतिक्रमण होने पर पीड़ित व्यक्ति स्वयं या उसकी ओर से कोई भी व्यक्ति न्यायालय में शरण ले सकता है। भारत में सर्वोच्च न्यायालय को संविधान के अनु.-32 (संवैधानिक उपचारों के अधिकार के अंतर्गत) के तहत न्यायिक आदेश (Writs) जारी करने और मूल अधिकारों को संरक्षण प्रदान करने के अधिकार हैं। इसी प्रकार भारत के राज्यों में स्थापित उच्च न्यायालय/खंडपीठों को भी अनु.-226 के तहत न्यायिक आदेश (Writs) जारी करने के अधिकार है। अत: मूल अधिकारों के अतिक्रमण से पीड़ित व्यक्ति को न्यायालय द्वारा संरक्षण एवं न्याय प्रदान किया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों को 5 (पाँच) प्रकार के न्यायिक आदेश (Writs) जारी करने के अधिकार है- बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, उत्प्रेषण, प्रतिशेध और अधिकार-पृच्छा।

बन्दी-प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus):- बंदी प्रत्यक्षीकरण नामक न्यायिक आदेश (Writs) की उत्पत्ति बिटेन में सामान्य विधि (Common Law) से सम्बन्धित है। यद्यपि इसका प्रभाव तथा महत्व तीन[1] संसदीय व्यवस्थाओं द्वारा समय-समय पर परिवर्तित किया जाता रहा है, फिर भी रिट के क्षेत्र का ब्रिटिश अधिराटीय काल में स्पष्टीकरण चौथी व्यवस्था द्वारा किया गया।[2] परन्तु भारतवर्ष में इस रिट की उत्पत्ति अधिनियम से सम्बन्धित है। भारत में नियामक अधिनियम (रेगुलेटिंग ऐक्ट)-1773 की धारा 13-22 द्वारा स्थापित सुप्रीम कोर्ट को रिट का अधिकार देने का प्रस्ताव रखा गया और 1774 के जुडीशियल चार्टर के पद 4 द्वारा इसे सर्वप्रथम कलकत्ता सुप्रीम कोर्ट को दिया गया। इस रिट को भारत में इसकी पूर्ण व परिपक्व अवस्था व आकार में प्रयोग किया गया तथा तत्सम्बन्धित सामान्य सिद्धान्त व परिनियमीय व परिनियमीय व्यवस्थाओं का अनुकरण उन परिवर्तनों के साथ किया गया जो देश की भिन्न व विशिष्ट परिस्थितियों में आवश्यक थे। ब्रिटिश भारत में नियामक अधिनियम (रेगुलेटिंग ऐक्ट)-1773 व जुडीशियल चार्टर-1774 के पूर्व किसी भी ऐक्ट द्वारा भारत में इस रिट की चर्चा नहीं की गई थी। 1773 के ऐक्ट की 13 से 22 तक की धारायें इस अधिकार से सम्बन्धित थीं तथा 1774 के जुडीशियल चार्टर का पद 4 भी इससे सम्बन्धित था। 1861 को संसदीय व्यवस्था (Indian High CourtsAct) द्वारा तीनों प्रेसीडेन्सी नगरों की तीन सुप्रीम कोर्ट तथा ब्रिटिश इण्डिया में स्थापित अनेक सदर दीवानी अदालतों को समाप्त करके ब्रिटिश अधिराट् को अधिकार दिया गया कि वे लेटर पेटेन्ट के माध्यम से उच्च न्यायालयों की स्थापना कर सकें। 1861 की व्यवस्था की धारा 9 के द्वारा ऐसे उच्च न्यायालयों को उन अदालतों के वे सारे अधिकार दिये गये जो उन्हें किसी भी प्रकार से उन्मूलन के समय प्राप्त थे। परन्तु धारा 9 की वह व्यवस्था स्पष्ट रूप से गवर्नर-जनरल के विधि निर्माणाधिकार के अधीन रखी गई थी।

उच्च न्यायालय अधिनियम-1861 की व्यवस्था द्वारा गवर्नर-जनरल में निहित अधिकार का प्रयोग शीघ्र नहीं किया गया। बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी करने के विषय में न्यायिक विचार था कि कामन लॉ द्वारा स्वीकृत रिट जारी करने का अधिकार सुप्रीम कोर्ट के मौलिक क्षेत्र के बाहर भी वैधानिक ढंग से प्रयुक्त हो सकता था जिसकी पुनरावृत्ति इन अमीर अली खान में न्यायमूर्ति नारमन ने की। उनके अनुसार सुप्रीम कोर्ट का रिट सम्बन्धी अधिकार स्थानीय क्षेत्राधिकार के बाहर भी प्रयोग किया जा सकता था जिसे 1861 स्थापित उच्च न्यायालयों ने भी प्राप्त किया था। अतएव, उच्च न्यायालयों को भी अधिकार मिलना स्वाभाविक ही था कि स्थानीय क्षेत्राधिकार के बाहर से बंदी प्रत्यक्षीकरण सक्षम रूप से जारी कर सकें।

अपराधिक प्रक्रिया संहिता (CRPC)-1872 तथा बंदी प्रत्यक्षीकरण ऐक्ट की धारा 81 द्वारा प्रत्येक प्रेसीडेन्सी हाईकोर्ट को अधिकार दिया गया कि वे बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रवृति का आदेश जारी कर सकें जिसका विस्तार व प्रभाव प्रेसीडेन्सी नगर के अन्दर तथा बाहर क्षेत्रों में अबाध रूप से हो। परन्तु बंदी प्रत्यक्षीकरण का यह अधिकार व सुविधा यूरोपियन ब्रिटिश प्रजाओं क लिए ही सीमित रखी गई। धारा 82 द्वारा सामान्य विधि के आधार पर प्रयुक्त प्रेसीडेन्सी नगर के बाहर भी रिट जारी करने का हाईकोर्ट का अधिकार स्पष्ट रूप से समाप्त कर दिया गया।

अपराधिक प्रक्रिया संहिता (CRPC)-1875 की धारा 148 द्वारा प्रत्येक प्रेसीडेन्सी हाईकोर्ट को बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में निर्देश जारी करने का अधिकार कुछ शर्तों पर दिया गया तथा अन्य मामलों व उद्देश्यों के लिए रिट जारी करने को मना कर दिया गया। धारा 148 बंदी प्रत्यक्षीकरण के सारे अधिकारों की आधारशिला रह गई। इस धारा द्वारा हाईकोर्ट को अधिकार दिया गया था कि रिट के मामलों का नियंत्रण करने के लिए आवश्यक कानून निश्चित का सकें जिनकी अनुपस्थिति में सामान्य कानून प्रणाली (Common Law System) के अनुसरण का निर्देश दिया गया। इस ऐक्ट में निर्देश दिया गया कि रिट के इस अधिकार का प्रयोग निम्नलिखित अधिनियमों के अन्तर्गत गिरफ्तार व्यक्तियों को रिहा करने के लिए नहीं किया जा सकेगा-

(i) बंगाल रेगुलेशन 2, सन् 1818

(ii) मद्रास रेगुलेशन 2, सन् 1819

(iii) बम्बई रेगुलेशन 24, सन् 1827

(iv) गवर्नर जनरल-इन-काउन्सिल के ऐक्ट नम्बर 34 सन् 1850 तथा ऐक्ट नम्बर 3 सन् 1858।

अपराधिक प्रक्रिया संहिता (CRPC)-1872 तथा बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट की स्थिति-इस कोड द्वारा 1872 तथा 1875 की उपर्युक्त दोनों संहितायें समाप्त कर दी गई। परन्तु इनके पूर्व प्रयुक्त कामन लॉ-प्रणाली को पुनः जागृत न किया जा सका। इस ऐक्ट की धारा 491 द्वारा रिट सम्बन्धी अधिकार उच्च न्यायालयों को पूर्ववत् दिया गया। इस अधिकार का विस्तार प्रत्येक हाईकोर्ट के दीवानी-मामलों के क्षेत्राधिकार के आधार पर निश्चित किया गया। हाईकोर्ट का अधिकार दीवानी-मामलों के विषय में जिन क्षेत्रों में विस्तृत था, रिट का भी अधिकार उन्हीं क्षेत्रों में दिया गया। 1898 में 1882 अपराधिक प्रक्रिया संहिता समाप्त कर दिया गया परन्तु हाईकोर्ट के रिट अधिकार के क्षेत्रीय विस्तार से सम्बन्धित भाग की पुनरावृति की गई। 1914 के संशोधन में भी 1875 के ऐक्ट द्वारा सामान्य विधि के रिट अधिकार पर लगाया गया प्रतिबन्ध प्रेसीडेन्सी नगर के अन्दर तक सीमित रखा गया।

मद्रास उच्च न्यायालय नया प्रिवी काउन्सिल के विचार व अपराधिक कानून संशोधन अधिनियम 1923 तथा रिट अधिकार की स्थिति-मद्रास हाईकोर्ट ने दावा किया कि बंदी प्रत्यक्षीकरण से कामन लॉ द्वारा स्वीकृत रिट अधिकार का विस्तार उस पूर्ण क्षेत्र के लिए प्राप्त है, जहाँ से अपील सुनने का अधिकार हाईकोर्ट को प्राप्त है। इस विचार को प्रिवी काउन्सिल ने भ्रमपूर्ण घोषित किया। इसी सन्देह को दूर करने के लिए 1923 का ऐक्ट पास हुआ जिसने प्रान्तों की प्रत्येक ऊँची अदालत को बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति का निर्देश देने का अधिकार दे दिया। बंदी प्रत्यक्षीकरण की व्यवस्थाजनित रिट का संरक्षण प्रत्येक व्यक्ति को दे दिया गया। प्रत्येक न्यायालय के रिट अधिकार का विस्तार उसके उस क्षेत्र तक रखा गया जहाँ तक फौजदारी के मामलों से अपीलें आती थीं।

भारत का संविधान (1950) तथा बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट-अनुच्छेद 32 में भारत के उच्चतम न्यायालय को अधिकार दिया गया है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण आदि रिट मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिये जारी कर सकें। इस अनुच्छेद में दिया गया उच्चतम न्यायालय को याचिका प्रस्तुत करने का अधिकार स्वयं एक मौलिक अधिकार है। उच्च न्यायालयों के अधिकार-अनुच्छेद 226 के अनुसार भारत की प्रत्येक हाईकोर्ट को अधिकार दिया गया है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण आदि रिटों को मौलिक अधिकारों की सुरक्षा व अन्य किसी भी उद्देश्य के लिये जारी कर सकें। उच्च न्यायालयों को दिया गया रिट-अधिकार अपेक्षाकृत विस्तृत है। भारत में बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट अपने प्रारम्भिक काल में न्यायालयों के पूर्ण संरक्षण में न आ सकी। 1923 तक इसकी प्रकृति असंख्य प्रतिबन्धों का शिकार बनी रही। 1923 के पश्चात रिट की प्रकृति के निर्माण का पर्याप्त अवसर ही न मिल सका कि 1950 का संविधान स्वीकार कर लिया गया, जिसके अनुसार बंदी प्रत्यक्षीकरण व अन्य रिटों का विस्तार सम्पूर्ण राष्ट्र में किया गया।

बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट का राजनीतिक इतिहासः ब्रिटेन की भांति ही भारत में भी बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट का इतिहास राष्ट्र के संवैधानिक विकास से अभिन्न रहा है। 1774 से 1780 के बीच सुप्रीम कोर्ट तथा सुप्रीम गवर्नमेंट के बीच का संघर्ष भारतीय विधि-इतिहास में प्रमुख रहा जिसमें हैबियस कारपस रिट के प्रयोग अपरिमित रूप से किये गये। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रशासक ने मालगुजारी की वसुली के बहाने असंख्य निर्दोष व्यक्तियों को जेलों में बन्द कर रखा था जिन्हें सुप्रीम कोर्ट ने हैबियस कारपस द्वारा मुक्ति दिलाई। बंदी प्रत्यक्षीकरण के प्रभाव को कम करने के लिए समय-समय पर अपवाद बनाये जाते रहे। अपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1878 की धारा 148 में भी 5 ऐक्ट शामिल किये गये जिनके अन्तर्गत गिरफ्तार व्यक्तियों के लिये हैबियस कारपस नहीं जारी की जा सकती थी, जिन्हें वास्तविक रूप में हैबियस कारपस सस्पेन्शन ऐक्ट भी कहा जा सकता है। 1923 के बाद भी प्रशासन का इस तरह का प्रयास चलता रहा। रौलेट ऐक्ट, 1919; दी बंगाल क्रिमिनल अमेन्डमेंट ऐक्ट, 1925, दि० शोलापुर मार्शल लॉ आर्डिनेन्स 1930 व 1932 आदि सभी व्यवस्थाओं का उद्देश्य समय-समय पर राजनैतिक क्रान्तियों को कुचलने के लिये बंदी प्रत्यक्षीकरण की सुविधा पर प्रतिबन्ध रखना था। डिफेन्स ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1915 द्वारा हाईकोर्ट का रिट-अधिकार व्यावहारिक रूप में पूर्णतः समाप्त कर दिया गया था। प्रिवेन्टिव डिटेन्शन ऐक्ट सबसे नया प्रयास था जिससे बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट पर प्रतिबन्ध रखा गया। अपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 491 में स्वयं ही अनेक सीमायें शामिल थीं। 1950 के संविधान निर्माण द्वारा अपराधिक प्रक्रिया संहिता अपने लेजिस्लेटिव व राजनैतिक इतिहास के चरमोत्कर्ष पर पहुँचती है। पार्लियामेंट ने 1950 में प्रिवेन्टिव ऐक्ट का निर्माण किया जिसे 1970 में समाप्त कर दिया गया है। उपर्युक्त ऐक्ट के स्थान पर मीसा ऐक्ट (Maintenance of Internal SecurityAct) बनाया गया था जिसे 1975 के आपातकालीन स्थिति में राजनैतिक कारणों से प्रयोग किया गया और 1977 में जनता व्यवस्था का उद्देश्य पूर्ण होगा। बंदी प्रत्यक्षीकरण की सुविधा का भारत में प्रारम्भ 1773-74 की सुप्रीम कोर्ट से हुआ जिसे 1923 के बाद ही प्रेसीडेन्सी नगरों की सीमाओं के बाहर जारी किये जाने की व्यवस्था की जा सकी।

उत्प्रेषण (Certiorary): उत्प्रेषण एक ऐसा न्यायालयीय आदेश है जिसका प्रभाव व्यक्ति-विशेष पर होता है। इस आदेश को मौलिक वैधानिक प्रक्रिया के दौरान जारी किया जाता है। उत्प्रेषण जारी करने को अधिकार भारत क उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय को ही होता है जो अधीनस्थ सरकारी अधिकारी या अन्य व्यक्ति, जिसके पास कागजातों का लेखा हो, को आदेश देता है कि किसी मामले या कारण को उच्च न्यायालय से तसदीक होने के लिये भेज दें जिसे उच्च न्यायालय सामान्य व्यवस्था के अनुसार निष्पादित कर सके। उत्प्रेषण रिट के द्वारा ऊँची अदालत नीची अदालत या अन्य सरकारी कर्मचारी के ऐसे प्रपत्रों को निरीक्षण के लिये भी माँग सकती है जिसमें प्रार्थी के हितों पर आघात हो रहा हो और जिन्हें अधीनस्थ अधिकारी ने अनुचित ढंग से तैयार किया हो। उत्प्रेषण द्वारा ऐसे कागजात को मँगा कर रद्द किया जा सकता है।

उत्प्रेषण रिट के भारत में विकास का इतिहास - इस रिट को जारी करने का सामान्य अधिकार सन् 1774 ई. के राजपत्र के पद 4 के द्वारा कलकत्ता सुप्रीम कोर्ट को सर्वप्रथम दिया गया था। इसी प्रकार के अधिकार मद्रास तथा बम्बई सुप्रीम कोर्ट को भी दिये गये। उत्प्रेषण का क्षेत्रीय विस्तार कलकत्ता, मद्रास व बम्बई सुप्रीम कोर्ट के उन्हीं क्षेत्रों तक सीमित रहा जिन क्षेत्रों में उन्हें सामान्य व मौलिक दीवानी अधिकार प्राप्त था। इसी प्रकार के अधिकार को उनके

उत्तराधिकार प्रेसीडेन्सी हाईकोर्ट ने भी प्राप्त किया। रैय्यत ऑफ गारबन्धो बनाम जमींदार ऑस पारलकी मेदी-नामक मामले में प्रिवी काउन्सिल ने मत प्रकट किया कि सर्शिओरारी रिट का विस्तार तीनों हाईकोर्टों के उन्हीं क्षेत्रों तक सीमित था जिन क्षेत्रों में उन्हें दीवानी के मामलों में मौलिक न्यायाधिकार सामान्यतः प्राप्त थे जो प्रेसीडेन्सी नगरों की सीमा तक ही सीमित रहे। प्रिवी काउन्सिल का यह ऐतिहासिक विचार जिससे रिट के विस्तार पर प्रतिबन्ध रखा गया था, सर्वप्रथम सन् 1806 ई० में इन रे जेम्स पारेल नामक मामले में चीफ जस्टिस रायन ने प्रकट किया था, जिसकी पुनरावृत्ति सन् 1850 ई० में निर्णीत इन रे सैमुएल वेलेन्टाइन नामक मामले में चीफ जस्टिस पील ने की तथा साधिकारिक उद्घोषणा मद्रास के न्यायाधीश अय्यर ने इन रे नटराज अय्यर नामक मामले में की थी।

उत्प्रेषण रिट के ऐतिहासिक दिग्दर्शन में क्षेत्रीय विस्तार के बाद रुचिकर समस्या यह है कि सशिओरारी की रिट किन व्यक्तियों के खिलाफ जारी की जा सकती है। क्या रिट केन्द्रीय या स्थानीय सरकारों के खिलाफ भी जारी की जा सकती है ?

सन् 1929 ई० में निर्णीत एक मामले में मद्रास हाईकोर्ट ने राय प्रकट की थी कि धारा 106 तथा 110-ए (गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट सन् 1919 ई.) द्वारा दी गई गवर्नर को छूट उसे उत्प्रेषण के अधिकार से मुक्त करती है। अतएव गवर्नर एवं मन्त्रिपरिषद् को उत्प्रेषण नहीं जारी की जा सकती है चाहे समस्या सुरक्षित विषयों से सम्बन्धित हो या परिवर्तित वर्ग से। सन् 1939 ई. में ऐसी ही समस्या मद्रास हाईकोर्ट के समक्ष गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट सन् 1935 ई. के अन्तर्गत उत्पन्न हुई जिसमें मद्रास उच्च न्यायालय ने अपने फैसले की पुनरावृत्ति की कि मद्रास सरकार के खिलाफ नहीं जारी की जा सकती है। इस समस्या का विस्तृत अध्ययन सन् 1949 ई. में बम्बई हाईकोर्ट के एक निर्णय में मिलता है जिसमें नजीरों व व्यवस्थाओं की विस्तृत विवेचना के बाद निष्कर्ष दिया गया कि प्रान्तीय सरकार गवर्नर से सर्वथा भिन्न इकाई है। धारा 306 (1) गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट द्वारा दी गई गवर्नर को रिट अधिकार से छूट उसके व्यक्तिगत मामलों तक ही सीमित है। सन् 1953 ई. के ऐक्ट द्वारा 176 तथा 223 प्रत्येक उच्च न्यायालय को पर्याप्त अधिकार देती है कि प्रान्तीय सरकार के खिलाफ उत्प्रेषण की रिट जारी कर सके। सुप्रीम कोर्ट में अपील का यह निष्कर्ष था कि रिट जारी करने का कोई प्रश्न ही ऐसे मामलों में न उठता था। मूल समस्या को बिना किसी उत्तर के छोड़ दिया गया। महाजन तथा मुखर्जी न्यायाधीशों ने बम्बई उच्च न्यायालय के निर्णयों को सही करार दिया तथा विचार व्यक्त किया कि प्रान्तीय सरकारों के खिलाफ उत्प्रेषण की रिट जारी की जा सकती है। जस्टिस दास ने इस प्रश्न को ऐतिहासिक महत्व का बताया। सन् 1950 ई. का संविधान प्रभाव में आ जाने से जस्टिस दास के विचार सच साबित हुए।

उत्प्रेषण ऐतिहासिक विकास में अन्य महत्वपूर्ण भाग रिट के जारी होने की परिस्थितियाँ व उसके आधार हैं, जिनमें ब्रिटेन तथा अमेरिका के संवैधानिक इतिहास की अनुरूपता स्पष्ट हो सकी है। प्रपत्र पर सुस्पष्ट विधि सम्बन्धी दोष उत्प्रेषण रिट जारी करने के लिये पर्याप्त माना गया है। उत्प्रेषण को जारी करने का अधिकार भारतीय न्यायालयों को यद्यपि दो सदियों पूर्व प्राप्त हो चुका था, परन्तु उनका विकास हाल ही में किया जा सका। बम्बई हाईकोर्ट को उत्प्रेषण सम्बन्धी अधिकार पर विचार करने का प्रथम सफल अवसर सन् 1939 ई. में मजलीसिका एण्ड कम्पनी केस में मिल सका। इसके पूर्व सन् 1871 ई० तथा सन् 1873 ई. में भी उत्प्रेषण रिट प्राप्त करने के यदा-कदा किये गये प्रयासों के उदाहरण मिलते हैं जो ऐतिहासिक महत्व की दृष्टि से नगण्य हैं। रंगून हाईकोर्ट ने प्रथम उत्प्रेषण रिट सन 1941 में जारी की तथा बम्बई हाईकोर्ट में सुप्रीम कोर्ट ने उत्तराधिकारी के स्वर में सन 1945 ई. में सर्वप्रथम प्रशासकीय न्यायाधिकरण के खिलाफ उत्प्रेषण रिट जारी की। अनुच्छेद 226 में प्रत्येक हाईकोर्ट को अधिकार दिया गया है कि वह अपने क्षेत्रीय विस्तार के अधीन स्थित किसी भी व्यक्ति, अधिकारी व सरकार को निर्देश, आदेश व रिट जारी कर सके जिनकी प्रकृति बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, उत्प्रेषण, अधिकार पृच्छा, प्रतिषेध आदि ब्रिटिश अधिराटीय रिटों से मिलती हो तथा जिनके द्वारा मौलिक अधिकारों को पूरा कराया जा सके। हाईकोर्ट में निहित यह अधिकार अन्य उद्देश्यों के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है। क्षेत्रीय स्थिति के अतिरिक्त भी उच्च न्यायालयों को अधिकार होगा कि ऐसे मामलों में भी रिट जारी कर सकें जो पूर्णतः या अंशतः इसके क्षेत्रीय विस्तार-सीमा में घटित हुए हों। सम्बन्धित पक्ष चाहे इस क्षेत्रीय सीमा के बाहर ही क्यों न हों।

सुप्रीम कोर्ट को अधिकार दिया गया है कि भाग तीन में वर्णित मौलिक अधिकारों में किसी के भी निष्पादन के लिए निर्देश, आदेश या रिटें जैसे बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, उत्प्रेषण, अधिकार पृच्छा, प्रतिषेध जारी कर सकेगी। सुप्रीम कोर्ट को दिया गया रिट का अधिकार कुछ विशेष परिस्थितियों जैसे अनुच्छेद 34 व 359, आदि के अतिरिक्त निरस्त नहीं किया जा सकता। उत्प्रेषण की रिट का इतिहास काफी पुराना है परन्तु इसका विकास अभी निरन्तर जारी है।

परमादेश (Mandamus):-परमादेश रिट की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि सबसे रोचक है। इस रिट का विकास ब्रिटेन में व पालन-पोषण क्राउन प्रैक्टिस (अधिराटीय व्यवहार-प्रणाली) द्वारा किया गया जो अत्यन्त दुर्ग्राह्य तथा विषम व्यवस्था थी। इसका प्रयोग सरकारी अधिकारियों को उनके कर्तव्यों पर चलने के लिये बाध्य करने के लिए होता रहा है। परमादेश का भारत में सर्वप्रथम विवरण अन्य रिटों की भाँति 1773 के रेगुलेटिंग ऐक्ट में अन्य अधिराटीय रिटों के साथ ही मिलता है। सुप्रीम कोर्ट के सीमित क्षेत्राधिकार के साथ ही परमादेश की रिट प्रेसीडेन्सी नगर की सीमा में केन्द्रित रही। 1861 की व्यवस्था में प्रेसीडेन्सी हाईकोर्ट को भी उसी तरह का सीमित अधिकार प्राप्त हुआ। कलकत्ता की सुप्रीम कोर्ट से इस मामले में कलकत्ता की सुप्रीम गवर्नमेंट के खिलाफ परमादेश जारी करने की याचना की गई थी जिसे जारी नहीं किया गया था। कासी जुराह के प्रसिद्ध मामले में विस्तार के रूप में इस मामले का विकास हुआ। देश के प्रत्येक हाईकोर्ट को असीमित अधिकार दिया गया है कि तृतीय भाग में वर्णित मौलिक अधिकारों की सुरक्षा व प्रभावोत्पादकता तथा अन्य उद्देश्यों की सफलता के लिये आवश्यक आदेश, निर्देश व रिटें जारी कर सकें जिनमें अन्य रिटों के साथ परमादेश की रिट भी शामिल की गई है। भारत के उच्चतम न्यायालय को भी अधिकार दिया गया है कि संविधान के तृतीय भाग में शामिल मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए परमादेश आदि विं व उनसे मिलता-जुलता आदेश व निर्देश जारी कर सकें। इस अधिकार का विस्तार सम्पूर्ण भारत में होगा।

प्रतिषेध (Prohibition):- प्रतिषेध को रिट न्यायालयीय आदेश होती है जिसे उच्च न्यायालय प्रत्येक अधीनस्थ न्यायालय को इस आशय से जारी करता

है कि सम्बन्धित अधिकारी अपने अधिकार का दुरुपयोग न करें या कोई अधिकार का प्रयोग करने का दावा न करें जो उसमें निहित न हो, या ऐसी कार्यवाही में आगे बढ़ सके जो प्राकृतिक न्याय या सामान्य विधि-व्यवस्था के सिद्धान्तों के प्रतिकूल हो। प्रतिषेध का कार्य-क्षेत्र अधीनस्थ न्यायालय का न्यायाधिकार-क्षेत्र है, चाहे इससे अधिक क्षेत्र के ऊपर दावा के लिए रिट प्रयोग की जाय या न्यायाधिकार-क्षेत्र की स्थिति के अभाव में। यदि न्यायालय कोई कार्यवाही कर रहा हो तो उसे निषेध करने के लिए रिट जारी की जाय। प्रतिषेध की रिट अधिराटीय रिटों में सबसे प्राचीन उत्पत्ति का दावा करती है। इसका सर्वप्रथम प्रयोग चान्सरी रजिस्टर में मिलता है तथा इसका जीवन कॉमन लॉ से अनन्यरूपेण संबद्ध है। प्रतिषेध रिट के लिए यह आवश्यक नहीं है कि यह ऊँची अदालत से नीची अदालत को ही भेजी जाय। वह रिट अंग्रेजी अदालतों का वह विशेष शस्त्र था जिससे वे अपने अधिकार-क्षेत्र की रक्षा कर सकें। प्रतिषेध की रिट व्यक्तिगत पक्षों के खिलाफ तथा ब्रिटिश अधिराट् के खिलाफ भी जारी की गई थी। प्रतिषेध रिट का विकास धर्म की अदालतों व राज्य की अदालतों के बीच अधिकार-विस्तार से सम्बन्धित मुठभेड़ों के बीच अधिक हुआ। अपनी विचित्र प्रकृति के कारण प्रतिषेध रिट को ब्रिटेन की सामान्य अदालत ने प्रिवी काउन्सिल के लिए भी जारी कर दिया था। 1774 के राजपत्र के पद 4 में बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, उत्प्रेषण, अधिकार-पृच्छा तथा प्रतिषेध आदि रिटों की ही चर्चा की गई थी। कलकत्ता सुप्रीम कोर्ट, मद्रास तथा बम्बई सुप्रीम कोर्ट को उनके राजपत्रों द्वारा अधिकार दिया गया था कि मजिस्ट्रेट, कोर्ट ऑफ रिक्वेस्ट तथा जस्टिस ऑफ पीस आदि को उनके अधिकारों तक ही सीमित रखने के लिये उपयुक्त रिटों का प्रयोग कर सकें। 1859 में कलकत्ता सुप्रीम कोर्ट में प्रतिषेध की रिट जारी करने का प्रश्न उठाया गया जिसके द्वारा कलकत्ता के किसी मजिस्ट्रेट को प्रतिषेध करने का प्रयास किया गया था।

भारत का संविधान (1950) एवं हाईकोर्ट को दिया गया अधिकार: प्रत्येक उच्च न्यायालय को अधिकार होगा कि अन्य रिटों के साथ प्रतिषेध की रिट भी जारी कर सकें। इस रिट का क्षेत्रीय प्रभाव उन्हीं प्रान्तों तक सीमित होगा जिनमें सम्बन्धित हाईकोर्ट को न्यायाधिकार दिया गया है। इस सीमा के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति, अधिकारी या सरकार इस रिट से बाध्य होंगे। इस रिट का प्रयोग मौलिक अधिकारों को सप्रभाव लागू करने या अन्य किसी उद्देश्य के लिये भी किया जा सकता है। सुप्रीम कोर्ट को अबाधित अधिकार दिया गया है कि अन्य रिटों के साथ प्रतिषेध की रिट को भी मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिये जारी कर सके। सुप्रीम कोर्ट रिट का क्षेत्र अखिल भारतीय होगा। प्रतिषेध के इतिहास के विकास में अध्ययन किये गये प्रश्नों व समस्याओं को भारत के संविधान में शामिल की गई रिट से स्वभावत: समाधान मिल जाता है। देश की दो उच्च अदालतें सुप्रीम कोर्ट तथा हाईकोर्ट को प्रतिषेध की रिट जारी करने का अबाधित अधिकार प्राप्त है।

अधिकार-पृच्छा (iQuo-warranto): भारत में अधिकार-पृच्छा रिट पर कम ही मामले हुए हैं, अतएव इस रिट का इतिहास भी सीमित ही है। अधिकार-पृच्छा वह रिट है जिसके द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति को वह प्रपत्र दाखिल करने के लिये बाध्य किया जा सकता है जो किसी स्वतन्त्रता व स्थायी प्रकृति के सार्वजनिक कार्यालय में नियुक्त होने का दावा करता हो या ऐसे कार्यालय के अधिकार में हो या मत देने का अधिकार रखने का दावा करता या स्वतन्त्रता का दावा करता हो। रिट के द्वारा ऐसे दावों की वास्तविकता का परीक्षण किया जाता है। इंगलैंड में अधिकार-पृच्छा को सर्वप्रथम रिट का रिचर्ड प्रथम के शासन काल के नवें वर्ष 1198 ई. में प्रयोग होने का विवरण मिलता है। अधिकार-पृच्छा रिट की भी प्रतिषेध की भाँति की भारत में उत्पत्ति का वैधानिक आधार अन्धकारपूर्ण है। 1773 के रेगुलेटिंग ऐक्ट के अधिकार पर जारी किये गये 1771, 1800 व 1823 से कलकता, मद्रास तथा बम्बई के सुप्रीम कोर्ट के राजपत्रों में क्वोवारण्टो का कोई विवरण नहीं मिलता है। कलकत्ता उच्च न्यायालय के इस मामले में सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न न्यायाधिकार क्षेत्र से सम्बन्धित था। ऐडवोकेट-जनरल ने सरकारी प्रक्रियाओं की प्रतिरक्षा में बहस की कि हावड़ा म्युनिसिपैलिटी कलकत्ता हाईकोर्ट के मौलिक सिविल न्यायाधिकार-क्षेत्र के बाहर है, अतएव अधिकार-पृच्छा जारी नहीं किया जा सकेगा। दूसरे तर्क में एडवोकेट-जनरल ने कहा कि मौलवी नोमानी ब्रिटिश प्रजा भी है, अतएव किसी भी प्रकार करके खिलाफ प्रेसीडेन्सी हाईकोर्ट अधिकार-पृच्छा रिट नहीं जारी कर सकता। अधिकार-पृच्छा के विकास में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि अधिकार-पृच्छा की मांग करने वाले व्यक्ति का मामले में स्तर (LAROUS Medi) क्या होना चाहिये, उसकी रुचि क्या है, उसने ही ऐसी दरख्वास्त (Petition) क्यों दी है? इन तमाम संलग्न प्रश्नों का उत्तर निर्णयों द्वारा दिया गया कि रिट की माँग करने वाले व्यक्ति के मामले में व्यक्तिगत रुचि आवश्यक नहीं है। उसे राष्ट्र का नागरिक होना चाहिये और संबंन्धित मामला कुछ ऐसी प्रकृति का होना चाहिये कि उसके विषय में स्पष्टीकरण आवश्यक हो। प्रत्येक उच्च न्यायालय को अपने न्यायाधिकार सीमा के अन्तर्गत अधिकार होगा कि किसी ऐसी सीमा में स्थिति किसी भी व्यक्ति, अधिकारी या सरकार को निर्देश, आदेश व रिट जारी कर सके जिसमें अन्य रिटों के साथ अधिकार-पृच्छा भी शामिल होगी। ऐसी रिट का उद्देश्य चाहे संविधान के तृतीय भाग में प्रदत्त मौलिक अधिकारों की सुरक्षा या अन्य कोई उद्देश्य हो। सुप्रीम कोर्ट को अधिकार है कि मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिये अन्य रिटों के साथ उत्प्रेषण भी जारी कर सके। सुप्रीम कोर्ट की रिट का विस्तार सम्पूर्ण भारत में होगा।

निष्कर्ष:

अंत में यह कहा जा सकता है कि न्यायिक आदेश (Writs) मानवाधिकार की रक्षा हेतु प्रबल संवैधानिक एवं विधिक शस्त्र है। इसकी उत्पत्ति एवं विकास ब्रिटेन एवं भारत सहित लोकतांत्रिक देशों में हुई है। भारत में सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय को न्यायिक आदेश जारी करने के संवैधानिक अधिकार है। भारत में मूल अधिकारों एवं मानवाधिकारों के संरक्षण के दायित्व इन दोनों न्यायालयों को प्राप्त है। न्यायालय ही अंतिम रूप से देश की जनता अथवा नागरिकों की मूल अधिकारों का मुख्य संरक्षक है।

संदर्भ सूची:

1. कश्यप, सुभाष (2018). हमारा संविधान. नई दिल्ली: एन.बी.टी.
2. त्रिपाठी, जी. पी. (2019). भारत का संवैधानिक एवं विधिक इतिहास. इलाहाबाद: सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन.
3. पांडेय, जयनारायण (2018). भारत का संविधान. इलाहाबाद: सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन.
4. त्रिपाठी, बी. एन. मणि (2012). विधिशास्त्र एवं विधिक सिद्धांत. इलाहाबाद : सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन.
5. राय, कैलाश (2012). जनहित वकालत, विधिक सहायता एवं अर्द्ध विधिक सेवाएँ. इलाहाबाद: सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन

वन गूजर पशुचारकों का मौसमी प्रवास व वर्तमान चुनौतियां

गौरव कुमार

डी0 एस0 बी0 परिसर, इतिहास विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, उत्तराखण्ड

शोध सारांश

उत्तराखण्ड गढ़वाल व कुमाऊँ दो मण्डलों में विभक्त है, इस प्रदेश के वनों में गूजर लगभग 150 वर्ष पूर्व से पशुचारण कर रहें हैं। ब्रिटिशकाल उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आर्थिक लाभ कमाने के लिए अंग्रेजों ने मध्य हिमालय के जंगलों को सीमांकन कर नियम बनाये तो इन पशुपालकों के मौसमी प्रवासन और परिचालन स्वतंत्रता को उनके जानवरों की संख्या के हिसाब से प्रतिबंध कर नियंत्रित किया जाने लगा।इन वानिकी नियमों को आजादी के बाद भी वन अधिनियमों के रूप में संरक्षण के लिए लागू किया गया,जैसा कि आज वनों में निवास के कारणगूजर प्रकृति और पर्यावरण पर निर्भर रहते हैं,यह पशुपालक मौसमी उपलब्धता के प्रति सचेत हैं। ऋतुओं के परिवर्तन के संकेत के साथ उनकी भैंसे बेचौन हो जाती हैं, तब वह मौसम परिवर्तन के साथ हिमालय में पारंपरिक प्रवासी मार्गो का उपयोग करते हुए अपने पारंपरिक आवासों के लिए निकल पड़ते हैं। आज अधिकांश वन व प्रकृति संरक्षणवादियों का मानना है कि प्रकृति का संरक्षण मानव के अलग होने से ही हो सकता है।इससे वर्तमान में एक ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिसने संसाधनों, पलायन और आजीविका के अधिकार के लिए एक सतत संघर्ष को जन्म दिया है।

मुख्य शब्द:-वन गूजर, पशुचारक, मौसमी प्रवास, खानाबदोश, चरागाह, वन संसाधन।

परिचय:- ब्रिटिशकालीन राजस्व वन प्रलेखों से पता चलता है कि गूजर ब्रिटिशकाल पूर्व समय से ही उत्तराखण्ड प्रदेश के वनों के बीच अपने मवेशियों के साथ पशुचारण करते आये हैं, तत्कालीन समय में यह राजस्व व दुग्ध आपूर्ति के महत्वपूर्ण स्त्रोत थे,[1] इस समुदाय में मौसमी प्रवास की प्राचीन परम्परा रही है, प्रस्तुत शोध पत्र उत्तराखण्ड प्रदेश के मौसमी प्रवास करने वालेखानाबदोश गूजरों को केन्द्र मानकर प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें गूजर परिवारों से साक्षात्कार अनुसूची व सहभागी अवलोकन के द्वारा आकड़ों का संग्रहण किया गया।इस प्रदेश के वनों में रहने वाले गूजर आज भी गर्मी शुरू होते ही जब उच्च हिमालयी क्षेत्रों में बर्फ गल जाती है, तब अपने मवेशियों के साथ शिवालिक पहाडिघ्यों की तलहटी के जंगलों से पहाड़ों में ऊंचे हरे-भरे चरागाहों में अपने वसंत प्रवास पर निकल पड़ते हैं।

उत्तराखण्ड के गढ़वाल मण्डल में राजाजी नेशनल पार्क को गूजरों की पारंपरिक भूमि माना जाता है, पार्क में वन्यजीव संरक्षण के लिए यहां रहने वाले 1390 गूजर परिवारों को वन विभाग द्वारा सर्वेक्षित कर गैडीखत्ता व पथरी में विस्थापित किया गया हैं, तथा वर्ष 2009 के सर्वेक्षण में पाया गया कि इसके अतिरिक्त 1610 परिवार इस विस्थापन प्रक्रिया में सम्मिलित नहीं किये गये जो आज भी वन क्षेत्रों में अपने मवेशियों के साथ पशुचारण कर रहे हैं।[2] वर्तमान क्षेत्रीय भ्रमण से प्राप्त आकड़ों में कुमाऊँ मण्डल में इनके परिवारों की संख्या 1629 है जिसमें लगभग 10,981 गूजर जनसंख्या वनों के भीतर निवास करती है किन्तु इसके अतिरिक्त भी गूजरों के कई ऐसे समूह हैं जो घने वनों के बीच अपने मवेशियों के साथ निवास कर रहे हैं, उनके पास न तो अपनी कोई भूमि है ना ही वन विभाग उन्हें वनों में रहने की अनुमति देता है, जिसे लेकर आज भी संघर्ष जारी है, इस प्रकार उत्तराखण्ड में देहरादून, हरिद्वार, पौड़ी, टिहरी, नैनीताल व उधमसिंह नगर जनपदों के वन क्षेत्रों में गूजर अधिवास पाये जाते हैं। गूजर संगठनों के अनुसार इस प्रदेश के वन क्षेत्रों में वन गूजरों की लगभग पचास हजार से अधिक जनसंख्या निवास करती है।[3]

अध्ययन से पता चलता है कि वास्तव में गूजर एक कठिन जीवन जीते हैं उनके पास आतिथ्य सत्कार की एक महान परंपरा है, जो उनके साथ बिताए समय को वास्तव में सुखद बनाती है। जैसा की प्रत्येक वसंत में, शिवालिक के नीचे जंगल सूख जाते हैं, जबकि पहाड़ों में बर्फ पिघल जाती है, व ताजा घास प्रकट होती है जो भैंसों के लिए शानदार चारा है। तब वन गूजर अपने जरूरी सामान को बांधते हैं और अपने मवेशियों के साथ यात्रा शुरू करते हैं यह यात्रा लगभग 200 किमी0 लम्बी व 3,000 मीटर से अधिक की ऊंचाई तक होती है। देहरादून राजाजी पार्क के जंगलों में कई परिवारों के समूह आज भी इस परम्परा को बनाये हुए हैं, इस पारंपरिक चरागाहों की यात्रा में गूजर अपने माल मवेशियों के साथ निकलते हैं, जिसमें पुरुष, गर्भवती महिलाएं, बच्चे, और बुजुर्ग भी शामिल हैं।

महत्वपूर्ण पहलू यह है कि गूजर केवल दो ही स्थान पर अपना वार्षिक प्रवास करते है प्रथम उच्च हिमालयी चरागाह व द्वितीय शिवालिक की तलहटी, वन गूजर कभी गाँव में नहीं रहे। आमतौर पर, प्रत्येक परिवार गर्मियों में एक ही घास के मैदान में जाता है और हर सर्दी में शिवालिक में एक ही क्षेत्र में

उसी डेरे (घर) मे लौट कर आएगा यह पीढ़ियों से चला आ रहा है। भले ही वे खानाबदोश हैं किन्तु उनके पास घर की गहरी भावना व लगाव है। सहभागी अवलोकन में भैंसों को चराना, उनके साथ भोजन व उनके साथ जंगल के कच्चे डेरे (झोपड़ी) के नीचे सोने व समुदाय के विभिन्न समारोहों में प्रतिभाग का अवसर प्राप्त हुआ।

गूजर अपने प्रवास के दौरान आने वाली कठिनाईयों से निपटने के लिए पूर्ण अभ्यस्त हैं, चूंकि उनके पास उस जमीन का स्वामित्व नहीं है जिस पर वे चराई करते हैं और रहते हैं, इसलिए हर बार जब वे पलायन कर रहे होते हैं, तो उन्हें वन विभाग से अनुमति लेनी पड़ती थी, जो कि एक औपचारिकता है। हिमालय और शिवालिक की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में पारिस्थितिकी अलग है। संरक्षित क्षेत्रों की तरह राजनीतिक सीमाओं के निर्माण ने गूजर खानाबदोश जीवन और संसाधनों तक उनकी पहुंच को प्रतिबंधित कर दिया है, इसलिए यह गूजरों की आजीविका और संस्कृति के लिए एक बाधा है। गूजर वन विभाग से परमिट प्राप्त कर वन क्षेत्र में अपने मवेशियों को चराते हैं, जिसका वह शुल्क भी जमा करते हैं।[4]

अपने मवेशियों की संख्या के हिसाब से वन विभाग में जमा किया जाने वाले शुल्क की रसीद को गूजरों ने परमिट का नाम दिया है[5] आज जंगलों में राष्ट्रीय उद्यान बनने से उन्हें उनके पारंपरिक चरागाह से दूर किया जा रहा है, जैसे कि वर्ष 1990 में गोविंद राष्ट्रीय उद्यान का सीमांकन बढ़ाने से वन गूजरों को इससे बाहर रहने के लिए कहा गया। 1983 में राजाजी नेशनल पार्क स्थापित होने के बाद शिवालिक के नीचे के अन्य परिवारों के साथ भी ऐसा ही हुआ,[6] अधिकांश प्रकृति संरक्षणवादियों के अनुसार मनुष्य प्रकृति में एक आक्रामक प्रजाति है, और इसकी रक्षा के लिए उन्हें दूर रखा जाना चाहिए। इस प्रकार हमारे सामने इस हरित साम्राज्यवाद से प्रभावित संरक्षण शरणार्थी गूजर हैं जिनका मानना है कि वे जहां रहते हैं उस स्थान के पर्यावरण का एक हिस्सा हैं जो पारिस्थितिकी तंत्र को संतुलन में रखते है।

वर्तमान परिदृश्य व चुनौतिया- वन गूजरों के कई समूह ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के पूर्व समय से ही तराई-भाबर शिवालिक क्षेत्र से गर्मियों में पश्चिमी हिमालय के ऊंचे बुग्याल और सर्दियों में इसके विपरीत मौसमी प्रवास की परम्परा को बनाए हुए हैं, जिस कारण इस खानाबदोश समुदाय व वन विभाग के बीच अक्सर संघर्ष की स्थिति रहती है. आज कई वन गूजरों के पास उनके गर्मियों और सर्दियों के घरों में वैध परमिट हैं।[7] लेकिन वन विभाग ने साल दर साल अनुमति लेने और मवेशियों की चराई की सीमा निर्धारित करने की अनौपचारिक व्यवस्था कर रखी है। वन विभाग द्वारा निर्धारित इस तरह की पूर्व-शर्तों का उल्लंघन करने पर कई वन गूजरों को अक्सर दंड और जुर्माना देना पड़ता था।

आज अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 या वन अधिकार अधिनियम के आगमन ने चीजों को बदल दिया है।इसने यह सुनिश्चित किया है कि चरागाहों के पास भी सामुदायिक वन संसाधन के बदले चरागाहों तक पहुँचने का अधिकार है जिसके वे पात्र हैं। इस अधिनियम की धारा 2 (ए) एक गांव की पारंपरिक या प्रथागत सीमाओं के भीतर प्रथागत आम वन भूमि पर देहाती समुदायों के अधिकारों के लिए निर्धारित करती है।[8] यह देहाती समुदायों के मामले में एक परिदृश्य के मौसमी उपयोग को भी निर्धारित करता है, जिसमें अवर्गीकृत वन, आरक्षित वन, गैर-सीमांकित वन, मानित वन, संरक्षित वन, अभयारण्य और राष्ट्रीय उद्यान शामिल हैं पिछले एक दशक के दौरान वन विभाग द्वारा वन गूजरों के लिए उनके चरागाहों को संरक्षित क्षेत्र या अतिक्रमण के आधार पर घोषित किए जाने के बहाने उनके प्रवेश को प्रतिबंधित किया गया हैं।

वर्तमान वैश्विक महामारी कोविड-19 आगमन के बाद पूरे 2020 में, देशव्यापी तालाबंदी के बदले मौसमी प्रवास को प्रतिबंधित कर दिया गया था। इसने समुदाय के सदस्यों को गर्मियों के दौरान अपने सर्दियों के चरागाहों में रहने के लिए मजबूर किया। प्रतिकूल गर्मी के कारण उनके पशुओं का स्वास्थ्य बिगड़ गया, जिससे सैकड़ों भैंसों की मौत हो गई। इस महामारी ने आय के गंभीर अवसाद को भी जन्म दिया क्योंकि खानाबदोशों को बाजार से अतिरिक्त चारा खरीदना पड़ा क्योंकि अब चराई की कमी थी, वन विभाग द्वारा कोविड-19 की लहर के दौरान उनके प्रवास की अनुमति नहीं दी।[9]

अध्ययन में सम्मिलित उत्तरदाताओं ने बताया कि हमारे झुण्ड में करीब 150 परिवार शामिल हैं, उन्होंने मार्च के अंतिम सप्ताह में देहरादून जिले के धर्मवाला से गोविन्द राष्ट्रीय उद्यान की ओर पलायन शुरू किया। उन्हें अप्रैल के अंतिम सप्ताह तक यात्रा पूरी करने की उम्मीद थी। प्रारंभ में, उन्हें आश्रय खोजने में किसी परेशानी का सामना नहीं करना पड़ा। लेकिन जैसे-जैसे अप्रैल बीतता गया, और अधिक गांवों ने उन्हें विश्राम के लिए प्रवेश से वंचित करना शुरू कर दिया। इसलिए, उन्होंने अपने प्रवासन पारगमन को जल्दी से पूरा करने की इच्छा रखते हुए एकांत क्षेत्रों में रहने का विकल्प चुना। उन्हें आस-पास के गांवों से चारा खरीदने में भी कई परेशानियों का सामना करना पड़ा और उन्हें अक्सर हरिद्वार और ऋषिकेश से लगभग 150-200 मील दूर चारा की व्यवस्था करनी पड़ती थी।[10]

उत्तरदाता सदस्यों ने बताया कि हमारे पास गर्मियों में सांकरी, रूपिन और सुपिन पर्वतमाला तक पहुंचने के लिए आवश्यक परमिट हैं किन्तु जब हम पार्क के बाहरी इलाके में स्थित क्षेत्र नैटवाड़ पहुंचेतब उप निदेशक ने उन्हें कानूनी नोटिस दिया, जिससे उन्हें अपने बुग्यालों तक पहुंचने की अनुमति नहीं मिली। वन विभागीय अधिकारियों के अनुसार कोविड-19 प्रोटोकॉल के अनुसार वन्यजीवों की सुरक्षा के लिए पार्क में किसी भी मानव प्रवेश की अनुमति नहीं दी जा सकती हैं, इस दौरान वन गूजरों को तीन सप्ताह तक खुले में रहने के लिए मजबूर होना पड़ा। उस दौरान आंधी-तूफान का उन्होंने सामना किया तथा साथ ही उन्हें कोविड-19 के शिकार होने का भी अधिक खतरा था। इस अवधि के दौरान, चारे और चरागाह भूमि तक पहुंच की कमी के कारण उनकी 10 भैंसों की भूख से मौत हो गई। जिले में लगाए गए सख्त तालाबंदी से उनके लिए पड़ोसी कस्बों और गांवों में दूध बेचने के लिए जाना मुश्किल हो गया है। कई ग्रामीणों ने भी उनका बहिष्कार किया।[11]

इस संबध में उच्च न्यायालय नैनीताल में थिंक एक्ट राइज फाउंडेशन केस WP PIL No- 140 of 2019 द्वारा याचिका दायर की गई जिसमें यह भी तर्क दिया कि वन गूजरों ने प्रवास करते समय सभी सामाजिक दूरी नियमों का पालन किया था और 14 दिनों समाजिक दूरी कोविड-19 प्रोटोकॉल को पहले

ही पूरा कर लिया था क्योंकि उन्हें इस क्षेत्र में चार सप्ताह हो चुके थे। कोविड-19 प्रोटोकॉल पर निर्णय लेने के लिए एक सक्षम प्राधिकारी नहीं होने के कारण विभागीय अधिकारियों द्वारा वन गूजरों को चरागाहों तक पहुंच से इनकार किया गया।इस क्रम में सबसे महत्वूर्ण जीत उन्हें तब मिली जब नैनीताल में उत्तराखंड उच्च न्यायालय ने उत्तरकाशी जिले में गोविंद पशु विहार राष्ट्रीय उद्यान के भीतर स्थित बुग्याल (हिमालयी अल्पाइन घास के मैदान) में वन गूजरों के एक काफिला (कारवां) के अपने ग्रीष्मकालीन घरों में प्रवास करने के अधिकार को बरकरार रखते हुए एक अंतरिम आदेश पारित किया।[12]

अदालत ने संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुसार यह फैसला दिया जिसमें जनपद उत्तरकाशी के कलेक्टर और पार्क के उप निदेशक को यह सुनिश्चित करने का आदेश दिया कि वन गूजर परिवारों को पक्के घरों में रखा जाए और उनके मवेशियों के लिए पर्याप्त भोजन, पानी, दवाएं और चारा उपलब्ध कराया जाए। अदालत ने जिला प्रशासन को आदेश दिया की कोविड -19 नेगेटिव रिपोर्ट के साथ वैध परमिट धारकों को पार्क में प्रवेश की अनुमति दी जानी चाहिए। इस प्रकार गोविंद पशु विहार राष्ट्रीय उद्यान के उप निदेशक को आदेश को लागू करने की दिशा में उठाए गए पर्याप्त कदमों के संबंध में एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने का आदेश दिया।[13]

निष्कर्ष-अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वनों में निवास के कारणगूजर प्रकृति और पर्यावरण पर निर्भर हैं, यह पशुपालक मौसमी उपलब्धता के प्रति सचेत हैं। गूजरों के पास मौजूद परमिट और अनुमतियों के बाद भी उन्हें प्रवास को पूरा करने के लिए गंभीर कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है, उच्च न्यायालय द्वारा दी गई त्वरित राहत के आदेश से समुदाय को बुग्यालों तक पहुंच बन पायी है। वन गूजरों जैसे खानाबदोश देहाती समुदाय के लिए प्रवास जैसी एक नियमित परम्परागत गतिविधि आज टुटती नजर आ रही है जिस कारण वह गर्मियों में भी तलहटी में समय गुजारने को मजबूर है। वन अधिकार कानून 2006 का प्रभावी कार्यान्वयन इस क्षेत्र में वन गूजर चरवाहों की सामुदायिक पहुंच और प्रवास को मान्यता देने की एकमात्र उम्मीद है। हालाँकि, इन अधिकारों का स्वतंत्र रूप से प्रयोग करने के लिए, समुदाय को न्यायिक सहायता पर निर्भर रहना पड़ रहा है। आवश्यकता है कि चराई चरागाहों तक पहुंच को एक अधिकार के रूप में महसूस किया जाना चाहिए। प्रोटोकॉल का हवाला देते हुए नौकरशाही की बाधाएं नहीं खड़ी की जानी चाहिए। बल्कि, एक उपनिवेशवादी दृष्टिकोण समय की मांग है।गूजर अपने मवेशियों के चारे के लिए वनों पर निर्भर हैं, पिछले कुछ सालों में कुछ गूजर समूह गतिहीनता की ओर परिर्वतित हो रहे हैं इस कारण उनकी सदियों पुरानी स्थिति कुछ बदल रही है और उन्हें मजबूरन गतिरोध की ओर जाना पड़ा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. शासनादेश संख्या 33/32-12, दिनांक 15 जनवरी 1883, अभिलेखागार लखनऊ।
2. क्षेत्रीय भ्रमण व साक्षात्कार अनुसूची से प्राप्त जानकारी2019-20।
3. क्षेत्रीय भ्रमण सहभागी अवलोकन, साक्षात्कार अनुसूची से प्राप्त जानकारी 2019-20।
4. सूचना के अधिकार पत्रांक 51/22-1 दिनांक 5 अगस्त 2017, तराई पश्चिमी वन प्रभाग रामनगर।
5. बिष्ट शेर सिंह, मध्य हिमालयी समाज संस्कृति एवं पर्यावरण, इण्डियन पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2003, पृ0-14
6. साक्षात्कार तरूण जोशी सदस्य वन पंचायत संघर्ष मोर्चा संगठन, भवाली भीमताल 14/02/2018।
7. पत्र संख्या 5082/26-1 कार्यालय निदेशक/वन संरक्षक देहरादून, उत्तराखण्ड, क्षेत्रीय भ्रमण सहभागी अवलोकन, साक्षात्कार अनुसूची से प्राप्त जानकारी 2019-20।
8. अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पारम्परिक वनवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम 2006, पत्रिका कानूनी श्रृख्ला-10, मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली, 110001
9. क्षेत्रीय भ्रमण सहभागी अवलोकन, साक्षात्कार अनुसूची से प्राप्त जानकारी2019-20।
10. क्षेत्रीय भ्रमण सहभागी अवलोकन, साक्षात्कार अनुसूची से प्राप्त जानकारी2019-20।
11. साक्षात्कार, अमीर हम्जा, अध्यक्ष, वन गूजर ट्राईबल युवा संगठन, उत्तराखण्ड,12.05.2020।
12. जनहीत याचिका थिंक एक्ट राईज फाउडेशन संख्या 140/2019 उच्च न्यायालय नैनीताल, उत्तराखण्ड।
13. उपरोक्त, जनहीत याचिका संख्या 140/2019।

गौरा पन्त शिवानी की कहानियों में स्त्री की पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति

प्रियम्वदा मिश्रा

शोध छात्रा, राजा श्री कृष्णदत्त पी0जी0 कॉलेज, जौनपुर, उ0प्र0

डॉ० सुधा सिंह

एसो0 प्रोफेसर, राजा श्री कृष्णदत्त पी0जी0 कॉलेज, जौनपुर, उ0प्र0

हिन्दी साहित्य में कहानी वह विधा है, जिसके माध्यम से साहित्यकार समाज के आर्थिक, सामाजिक एवं नैतिक स्वरूप को प्रकाश में लाता रहा है और समाज को आईना दिखाता है। हिंदी कहानियों का मुख्य विषय सामाजिक समस्याएं रहीं हैं, जिनमें वंचित वर्ग की पीड़ा को व्यक्त किया जाता रहा है। समाज का निर्माण स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर करते हैं, परन्तु प्रधानता पुरुष को दी जाती रही है। वह समाज का मुखिया बना रहा और स्त्री हाशिए पर पड़ी रही। एक विडम्बना के रूप में स्त्री और पुरुष द्वारा एक साथ मिलकर सृजित समाज स्त्री और पुरुष के अलग-अलग खानों में विभक्त हो जाता है। भारतीय समाज में स्त्री के अनेक स्वरूपों को मान्यता दी गई है, जैसे-माता, भगिनी, दुहिता, अर्धांगिनी इत्यादि। वैदिक ग्रन्थों में भी नारी के वात्सल्य, प्रेम, समर्पण, त्याग इत्यादि का मुक्तकण्ठ से गुणगान किया गया है। भारतीय संस्कृति में यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता: का भाव वर्णित है। भगवान शिव के अर्धनारीश्वर स्वरूप को भी महिमामंडित किया गया है। उपरोक्त सम्मान के उपरान्त भी स्त्री पीड़ा एक चिन्तन का विषय बनी हुई है। इसी स्त्री के विभिन्न स्वरूपों और दशाओं को गौरा पन्त शिवानी ने अपनी कहानियों में जीवन्तता के साथ उकेरा है।

गौरा पन्त शिवानी आधुनिक साहित्य की सशक्त साहित्यकार रही हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में नारी के सबल एवं निर्बल पक्षों को बहुत ही बारीकी से प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपनी कहानियों में नारी जीवन के उन समस्त पक्षों को स्पर्श करने का प्रयास किया है, जो तत्समय समाज में घटित हो रहा था, तथा जिसे उन्होंने नजदीक से महसूस किया। उन्होंने नारी के अन्तर्मन में व्याप्त दायित्व-बोध, परम्परा ग्रसित, शोषित अन्धविश्वासी के साथ-साथ शिक्षित स्त्री की अहंवादिता, परंपरा विरोधी तथा सामाजिक मान्यताओं के विपरीत नारी के वीभत्स स्वरूपों की भी चर्चा की है। शिवानी ने नारी को कई भूमिकाओं में बाँट दिया है, जैसे-माँ, बहन, बेटी, पत्नी, गृहणी, सास, बहू, समाज-सेविका इत्यादि। शिवानी नारी का सहज, शालीन और गरिमामय रूप ही श्रेष्ठ समझती हैं, जहां उसे हर क्षेत्र में पुरुष का सहयोगी बनना है, प्रतिद्वंदी नहीं।

नारी के ममतामयी रूप की विशालता का वर्णन शिवानी बड़े ही संवेदनशीलता के साथ करती हैं। किशुनली की डांठ कहानी में, नि:संतान काखी पागल किशुनली पर अपना ममत्व बडेघ औदार्य से लुटाती है। यहाँ तक कि गर्भवती किशुनली को घर से निकालने की बजाय वह समाज द्वारा बहिष्कृत होना स्वीकार कर लेती है। पति की प्रत्येक आज्ञा का आँख मूंदकर पालन करने वाली काखी किशुनली के लिए उसके विरुद्ध भी विद्रोह का बिगुल बजा देती है-"भाड़ में जाए तुम्हारे यजमान और तुम्हारा समाज।...जिस हरामजादे-कमीने ने इस नाबालिग, असहाय, उन्मादग्रस्त छोकरी का सर्वनाश किया है, उसे ढूंढ कर लाए तुम्हारा समाज तब मैं जानू।"[1] दूसरी तरफ, उपहार कहानी में नलिनी अपनी कोख में पल रहे बच्चे को समाप्त करने का आदेश देने वाले पति को घर से चले जाने को कह देती है। वह पति जिससे नलिनी ने अत्यधिक प्रेम किया था, उसकी उपेक्षा कर वह अपने गर्भस्थ शिशु को अपनाने का फैसला करती है। इस तरह इस कहानी में एक पत्नी की अपेक्षा एक माँ का वात्सल्य विजयी होता है।

एक स्त्री का गृहणी स्वरूप शिवानी द्वारा रचित कहानी बन्द घड़ी की नायिका माया में दिखाई देता है। माया अपने पति के खाने-पीने, कपड़ों आदि का ध्यान रखती है, बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा करती है। पति और बच्चों की छोटी से छोटी जरूरत के प्रति वह सचेत रहती है। यहाँ तक कि जब वह आत्महत्या करने का निश्चय कर लेती है, तब भी अपने उत्तरदायित्वों से मुँह नहीं मोड़ पाती- मिट्टी-तेल की बोतल और दिया सलाई लेकर वह गुसलखाने में घुसने को ही थी कि सहसा स्मरण हो आया, प्रतुल सुबह कह गया था- ''मम्मी, मेरी सफेद कमीज में बटन टांक देना, मुझे डिबेट में जाना है।'' झुंझलाकर बाहर निकली और कमीज निकालकर बटन टांकने बैठ गई।[2]

भारतीय संस्कृति में नारी का भगिनी रूप सदैव आदरणीय रहा है। शिवानी द्वारा रचित कहानी तर्पण की नायिका पुष्पा पंत अपने माता-पिता की मृत्यु के उपरान्त छोटे भाई किशन का लालन-पालन कर उसे अपने जीवन-क्षेत्र में आगे बढ़ने का मार्ग दिखाती है, किन्तु वही भाई उसे छोड़ कर सदा के लिए विदेश

में जा कर बस जाता है। इसी नीरस नौकरी का चुग्गा चोंच में बटोर-बटोर उसने अपने झामे की उस चिडिघ्या को पाला, पढ़ाया, कुमाऊँ सेण्टनरी स्कालरशिप ले कर पहले प्रयाग और फिर, जब पर उग आये तो फर-फर कर उड़ गया विदेश! अब वहीं उसने किसी जर्मन लड़की से विवाह कर लिया था।[3] माणिक कहानी में भी नलिनी का जो स्वरूप प्रतिबिम्बित होता है, वह एक बहन से कहीं बढ़ कर है। नलिनी अपनी माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् अपनी छोटी बहन रम्भा को एक पुत्री के समान पालती है और जीवनभर अविवाहित रहने का निर्णय कर लेती है। अपनी इस दुलारी बहन के लिए वह अपना सर्वस्व निछावर कर सकती है, यह उसे कैसे बताये? अन्त में बड़ी चेष्टा से उसने उस दिन रम्भा को खींचकर छाती से चिपटा लिया था, ''रम्भो'! तू आज मुझे छोड़कर ऐसे चली जाती तो मेरा क्या होता, यह सोचा है कभी तूने? बाबू जी हम दोनों के लिए जितना कुछ छोड़ गये हैं, वह सब तेरा ही तो है।''[4]

आदर्श बहू में एक सेवामयी नारी के साथ-साथ धैर्य और सहनशीलता की भी विशेषता अपेक्षित मानी जाती है। यह विशेषता शिवानी जी की नथ कहानी में देखी जा सकती है। कहानी की नायिका पट्टी में भी अपार धैर्य दिखाई पड़ता है। गुमान नें अपनी माँ और बहन के विरोध करने पर भी पट्टी से विवाह कर लिया। ''उसके सौन्दर्य नें धर्म, जाति और रुढ़ियों की उलझी गाँठें क्षण भर में सुलझा दीं, पर न जाने कितनी गालियों से सास ने उसका स्वागत किया।[5]

परम्परागत स्त्रियों के अतिरिक्त शिवानी जी की कहानियाँ आधुनिक, शिक्षित और अपरम्परागत स्वभाव वाली बहुओं का चित्रांकन करते हुए उनके बदलते मानदण्डों को भी बड़ी कुशलता से पाठक के सामने रखती हैं। शिवानी जी ने जहाँ अपनी कहानियों में एक आदर्श बहू का चित्र उकेरा है, वहीं वे आधुनिक, शिक्षित और तीक्ष्ण स्वभाव वाली बहुओं का चित्रण करने से परहेज नहीं रख पाती हैं। भिक्षुणी कहानी में किकी अपनी सास को अपने साथ रखने के लिए तैयार नहीं होती। इसी तरह प्रतिशोध कहानी की सौदामिनी भी सास-ससुर से अलग अपनी गृहस्थी का निर्माण करती है। नथ, चांचरी, लाटी, आदि कहानियों में सास का निर्दय और रौद्र रूप दिखाई देता है। इसी तरह तिलपात्र कहानी में जितनी असहिष्णु बहू है, उतनी ही निर्ममता से सास कटुक्तियों के बाँण चलाकर बहू का हृदयछेदन करती है।

शिवानी जी ने अपनी कहानियों में परम्परागत रुढ़ियों और रीति-रिवाजों पर विश्वास करने वाली स्त्रियों का चित्रण किया है और वहाँ उन्होनें वही लिखा है जिसे उन्होंने प्रत्यक्ष देखा और अनुभव किया है। शिवानी जी के शब्दों में-''मैंने जो कुछ लिखा है, वह अपने अनुभूत तथ्यों के आधार पर लिखा है, अगर मैनें परिवेष का वर्णन किया है, प्रकृति का चित्रण किया है, तो मैंने प्रकृति की छटा को देखा है। मैंने मनुष्य की कुटिलता को भी देखा है। अगर मैंने छलना का वर्णन किया है तो उसकी छलना को भी देखा है और नारी की विवशता, उसके दुःख, उसके शोषण का भी चित्रण किया है तो उसको देखा है।''[6]

शिवानी जी भारतीय संस्कृति और परम्परा के बन्धन को स्वीकार करती हैं। हजार प्रताड़ना सहने के बाद भी, उनकी कहानियों में वर्णित पात्र अपनी परम्पराओं से विमुख नहीं हो पाते और जहाँ विमुख होते हैं, वहाँ पूरे समाज का विकृत रूप ही दिखाई पड़ता है। शिवानी जी कहती हैं-''आज जहाँ हमने सभ्य जीवन को अनेक नवीन उपलब्धियों से समृद्ध किया है, वहीं अपनी संस्कृति की अनेक पुरातन उपलब्धियाँ गवाँ भी दी हैं।''[7]

शोषण, उत्पीड़न और अमानवीय व्यवहार की शिकार नारी की अनदेखी व्यथा का प्रस्तुतिकरण शिवानी जी ने अपनी कहानियों के माध्यम से किया है, क्योंकि इस शोषण को उन्होंने प्रत्यक्ष देखा तथा अनुभूत किया है, इसलिए उन्होंने बड़ी बेबाकी से स्त्रियों की इस व्यथा पर अपनी लेखनी चलाई है। शिवानी जी ने स्वयं लिखा है कि, ''नारी बना कर विधाता ने नारी के अनेक रूपों को देखने-परखने का प्रचुर अवसर दिया है, उसकी महानता, उसकी क्षुद्रता देख कभी-कभी दंग रह गई हूँ। क्या नारी भी ऐसी नीचता पर उतर सकती है? नारी-क्षुद्रता का अहंकार जितना ही प्रचण्ड होता है, उतना ही उसका आघात।''[8] अलखमाई कहानी की जोगी माई दस वर्ष की उम्र में ही आन सिंह के साथ ब्याह दी जाती है। ड्राइवर आन सिंह जब भी घर में आता है तो नशे में डूबा रहता है। जोगी माई को कभी उसकी सास मारती है तो कभी उसका मरद आन सिंह। वह दोनों के संयुक्त शोषण का शिकार होती रहती है। कभी कहता, 'लकड़ी ला' कभी कहता, 'घास काट ला' कभी भूखी-प्यासी माई को भैंस चराने भेज देता जंगल। भैंस भी थी ऐसी हरामी कि जोगी माई को भगा-भगा कर मार देती। माई पूछती 'सासू ज्यू हो, मायके जाऊँ?' तो गरम चिमटे से दाग देता, देख अभी भी 'डाय' (जले का चिन्ह) पड़ा है सब...पेट से ले कर पसलियों तक क्रूर सास के गर्म चिमटे के अमिट चिन्ह गोदने के अमिट स्याही से उभर आये थे।[9] एक दिन माई को बुखार में ही सास बाघ लगे उस वन में भैंस चराने के लिए भेज देती है। माई बहुत रोती है, अपनी सास से मना करती है कि उस वन में बाघ लगा है और हमको बुखार भी है। पर सास ने कहा- ''जा, जा बाघ ने तुझे खा लिया तो हम दूसरा बहू ले आयेगा। उस दिन भैस को भी सास ने मन्तर दिया था। भगाते-भगाते जोगी माई का दम निकाल दिया, आखिर जा कर खड़ी हो गयी हरामी 'म्योल' (घाटी) के ऊपर। नीचे काली गंगा, एक धक्का लगा तो चूर-चूर! माई को बहुत गुस्सा था उस दिन, भूख का गुस्सा, सास का गुस्सा, मरद का गुस्सा सब निकाला उसने भैंस पर। रोज-रोज माई को सताता है 'चांडाल', ले जा!' बस धक्का दिया और धड़ाम से भैंस गिरी। ऐसे वह गयी जैसे कुश...।[10] उत्पीड़न और शोषण से उत्पन्न स्त्री के रोष का रौद्र रूप इस कहानी में दृष्टिगोचर होता है। इसी तरह की अन्य कहानियों नथ, पिटी हुई गोट, ज्येष्ठा आदि में तो शिवानी जी ने स्त्री शोषण को दिखाया ही है, साथ में उन्होंने स्त्री की उस मानसिक स्थिति का भी चित्रण किया है, जो पाठक पर अपनी एक मनोवैज्ञानिक छाप छोड़ता चलता है। शिवानी जी की संस्मरणात्मक कृति सुनहु तात यह अथक कहानी में उनकी कहानियों के बीज मिलते हैं। इस संस्मरण में उन्होंने एक जगह अपनी बड़ी बहन चन्द्रप्रभा का जिक्र किया है, जिसमें उन्होंने उनके बारे में बताते हुए कहा है कि- ''दीदी का नाम था चन्दप्रभा, हमारे लिए वह चन्दा थी।...जीजा जी के साथ हमसे मिलने पहाड़ आतीं, तो मायके में भी डरी-सहमी रहतीं, जैसे पैरोल पर छूटी बंदिनी हों।....चन्दा के ससुराल जाने से पूर्व माँ उनका बक्सा नाना उपहारों से भर पूरे वर्ष भर का ठेका कर देती।...उनके सुदीर्घ मायके प्रवास के कारण, उन्हें ससुराल में दिनों तक जली-कटी सुननी पड़ती।''[11]

जहाँ शिवानी जी ने अपनी कहानियों में स्त्री के रुढ़िवादी एवं परम्परावादी जीवन को जीती स्त्री पात्रों को गढ़ा है, वहीं वह समाज में परिवर्तन लाने वाली स्त्री पात्रों को भी सभी पाठकों के सम्मुख लाने का कार्य करती हैं। उन्होनें अपने संस्मरण सुनहु तात यह अथक कहानी में उसी यथार्थ को प्रस्तुत किया है, जिसमें उनके सामने अनेक वास्तविक पात्रों ने अपनी संस्कृति एवं परम्परा से जकड़े होने के कारण अनेक यातनाओं को झेलते हुए भी अपनी परम्परा

के अनुसार चलना नहीं छोड़ा है। उसमें उन्होंने अपनी माँ के उदार हृदय होने का प्रमाण भी प्रस्तुत किया है। शिवानी जी कहती हैं-''माँ के औदार्य से ऐसी ही हमारी एक और रिश्ते की बुआ जिन्हें उनके उन्मादग्रस्त पति, नगाड़े सा पीट-पाट हमारे द्वार पर डाल जाते। माँ उन्हें लाद कर भीतर ले आती। डोलू की जड़ घिस कर उनके गुमचोटों पर लगाई जाती, घी से तर गर्म हलुआ खिलाया जाता, दूध में फिटकरी डाल पिलाया जाता। पर जरा उठने-बैठने लायक होती तो हमारी धरती सी सहिष्णु बुआ, फिर पति से पिटने चली जाती। माँ भुनभुनाती रहती वह अभागिनी है ही मार खाने लायक। लाख बार समझाया है दूर फेंक ऐसे पति को पर माने तब ना!''[12]

समाज में यदि स्त्रियों की स्थिति में कुछ सुधार हुआ है तो उसका एक महत्वपूर्ण कारण उनका शिक्षित होना ही है। यह शिक्षा ही है जो स्त्रियों में आत्मविश्वास का सृजन करती है, लेकिन जिस तरह से हर चीज के दो पहलू होते हैं, एक तो सकारात्मक और दूसरा नकारात्मक, उसी तरह शिक्षा ने भी अपनी दोनों रूपों में भूमिका निभाई है। शिवानी जी का दृष्टिकोण ऐसा है, जिसमें वे नारी के उस आदर्श चरित्र को ही देखना चाहती हैं जो हमारी भारतीय संस्कृति की धरोहर रहा है। उनका दृष्टिकोण आधुनिक स्त्री को स्वावलम्बी बनाना तो रहा है, परन्तु उसे अपने आदर्श से विचलित करना कदापि नहीं। इसीसे शिक्षित स्त्रियों का आत्मविश्वास कभी-कभी अहंवादिता का रूप ले लेता है, जैसा कि स्वयंसिद्धा और माणिक आदि कहानियों में देखने को मिलता है। अपराजिता कहानी में भी अपनी अस्मिता की खोज करने वाली नारी जब पुरुष को शक्तिहीन पाती है तब वह उस पर अपने व्यक्तित्व का भार डाल देती है। यह एक स्वाभाविक मनोवृत्ति है जिसको शिवानी जी ने भली-भाँति अपनी कहानियों में व्यक्त किया है। अपराजिता कहानी की आरती पढ़ी-लिखी होने पर भी अपने पति को वह प्यार नहीं दे सकी जो एक सफल दाम्पत्य जीवन के लिए आवश्यक होता है। इसी तरह सौत कहानी की परम्परा विरोधी स्त्री राज्यम, शिक्षित हो कर भी स्वच्छन्द विचरण में विश्वास करने वाली स्त्री के रूप में सामने आती है। साथ ही अपनी बेटी की परवाह किये बिना पर-पुरुष के साथ भाग जाने में कोई संकोच नहीं करती। मन का प्रहरी कहानी की पात्र अनुराधा भी परम्परा विरोधी स्त्री है, जो शिक्षित भी है, नौकरी भी करती है लेकिन मन रूपी प्रहरी को दबा कर नहीं रख पाती और अपने ही पढ़ाये शिष्य के साथ शादी कर लेती है, तथा बाद में उसका भी जीवन नष्ट करके अपने पुराने प्रेमी मधुकर के साथ चली जाती है। के कहानी की स्त्री पात्र कमला कुरूप होने के कारण बहुत कुण्ठित रहती है, लेकिन फिर वह अपना सारा ध्यान पढ़ाई पर लगाती है और एक लेडी डाक्टर बन जाती है। कमला अपने स्वभाव में बहुत कठोर रहती है। उसका चेहरा मर्दाना होने के कारण उसका विवाह नहीं हो पाता, लेकिन डाक्टर बनने के बाद वह शेखर नाम के युवक से प्रेम करने लगती है और उसके साथ विवाह कर लेती है। कमला में ईर्ष्यालु स्वभाव भी है। वह अपने पति को किसी दूसरी स्त्री के साथ हँसते-बोलते नहीं देख पाती। आयु में बड़ी होने के कारण वह अपने पति पर सदैव हुक्म चलाती थी, लेकिन उसे आदर नहीं दे पाती थी। एकबार पति को एक सन्यासिनी के प्रेम में फँसा देख वह बड़ी ही चतुराई से आइसक्रीम में विष खिला कर उसकी हत्या करवा देती है।

समाज में नौकरीपेशा या कामकाजी स्त्री ने सामाजिक सत्ता एवं बन्धनों को अपने आत्मनिर्भर बनने तथा आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होने की क्षमता की राह में सदा एक चुनौती ही स्वीकार किया है। स्त्रियाँ अपने व्यक्तित्व और योग्यता के कारण नौकरी तथा परिवार के मोर्चे पर संघर्ष करती आयी हैं। कई बार स्त्रियों के समक्ष ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जब वे न चाहते हुए भी अधिकारी वर्ग के शोषण का शिकार हो जाती हैं। जीवन के लिए बनाये हुए सभी आदर्श शून्य में बदल जाते हैं, और एक स्त्री देह को पैसा कमाने का जरिया बनाते हुए स्त्री को चरित्रहीन बनना पड़ता है। नतीजा यह होता है कि हमारा समाज इसी तरह अन्दर ही अन्दर खोखला होता चला जाता है। स्त्रियों के लिए कई बार घर की सीमा लाँघ कर जीवन संघर्ष के लिए उसे नयी सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। भारतीय स्त्री विषम परिस्थितियों से जूझ रही है। एक तरफ नई सामाजिक चेतना उन्हें आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है तो दूसरी तरफ शिक्षित होकर भी वह पति की छाया मात्र बनकर अस्तित्वहीन जीवन बिताती है। आधुनिकीकरण के इस युग में स्त्री की समस्यायें बढ़ती ही जा रही हैं, भले ही उसकी छवि सबला की बनी है, हम अपनी जिन्दगी को बेहतर बनाते हैं अगर हम खुद को देखे जाने को बेहतर बनायें।[13]

शिवानी जी की कहानियों के स्त्री पात्रों का व्यक्तिगत जीवन हो या समाज की कोई घटना, उसका पूरा परिप्रेक्ष्य यह बताता है कि ऐसे कई तत्व मौजूद हैं, जो उसे समाज से जुड़ने नहीं देते। ऐसा लगता है कि शिवानी के नारी पात्र अनपहचाने व अपरिचित समाज में जीवन की दुरूह परिस्थितियों से जूझ रहे हैं। ये समाज के भीतरी अन्तर्विरोधों और अन्तर्संघर्षों के प्रामाणिक तत्व हैं। दमन और असुरक्षा के भय के बीच अपने मन की बात कहना, स्त्री मनोविज्ञान की दूसरी जटिल स्थिति है। परिवार सामाजिक परिवर्तनों का विरोधी होता है। हर नया विचार वहाँ मनोदशा से ले कर जीवन प्रणाली तक में बदलाव का प्रेरक बन कर आता है, मगर इसे असानी से अपनाया नहीं जाता। परिणामस्वरूप यह सामाजिक समस्या का रूप धारण करता जाता है। समय के साथ इसकी स्थिति और भी भयंकर होती जाती है। परिवार के बाहर स्त्री की पहचान व सामाजिक हैसियत न के बराबर है। भारतीय स्त्री मुक्ति आन्दोलन में यह प्रश्न ज्वलंत समस्या बन गया है। वह जब तक रिश्तों में नहीं बँधती असुरक्षित है।''[14] आधुनिक जीवन के लाभ व हानि स्त्री के लिए समान मात्रा में जान पड़ते हैं। आत्मनिर्भर स्त्री जहाँ जीवन के हर क्षेत्र में होड़ लेते हुए आगे बढ़ती है, वहीं अकेलापन व तनाव उसके व्यक्तिगत जीवन की दारुण दशा का वर्णन करते हैं। इनके पक्ष में परस्पर विरोधी तर्क दिये जाते हैं। शिक्षिता को सम्पन्न कहा जाता है तथा अशिक्षित युवती पिछड़ेपन का शिकार कहलाती है।

निष्कर्षत: शिवानी ने अपनी कहानियों में स्त्री जीवन के अनछुए पहलुओं को उजागर किया है तथा उसका यथार्थ चित्रण किया है। इसमें स्त्री के सबल एवं निर्बल पक्षों के साथ-साथ सामाजिक सम्बन्धों में नारी के विभिन्न स्वरूपों तथा उसकी दशा को भली-भांति उकेरा गया है। शिवानी की कहानियों में केवल नारी का महिमामण्डन ही नहीं बल्कि नकारात्मक पक्ष एवं उसके कारणों को भी विधिवत रूप से प्रस्तुत किया गया है। वे कहती हैं कि स्त्री पुरुष की विरोधी नहीं बल्कि संगिनी है। उनकी कहानी शिक्षित स्त्री के बहुआयामी स्वरूपों को भी दर्शाती है, जब वह सारी वर्जनाओं, रूढ़ियों और नैतिक उपदेशों को धता बताकर स्वतन्त्र राह तलाश लेती है।

सन्दर्भ सूची

1. शिवानी, किशुनली, सरस्वती विहार: दिल्ली(द्वि0सं0), 1980, पृ0सं0-27
2. पाण्डे, मृणाल(सं0), गौरा पन्त शिवानी: सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग-2, राधाकृष्ण पेपर बैक्स: नई दिल्ली, पृ0सं0-351
3. पाण्डे, मृणाल(सं0), गौरा पन्त शिवानी: सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग-1, राधाकृष्ण पेपर बैक्स: नई दिल्ली, पृ0सं0-136
4. पाण्डे, मृणाल(सं0), गौरा पन्त शिवानी: सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग-1, राधाकृष्ण पेपर बैक्स: नई दिल्ली, पृ0सं0-125
5. पाण्डे, मृणाल(सं0), गौरा पन्त शिवानी: सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग-1, राधाकृष्ण पेपर बैक्स: नई दिल्ली, पृ0सं0-37
6. जून, डॉ0 कृष्णा, शिवानी के उपन्यासों में नारी विमर्श, संजय प्रकाशन: नई दिल्ली, पृ0सं0-4
7. शर्मा, डॉ0 ज्योत्सना, शिवानी का हिन्दी साहित्य, सामाजिक परिप्रेक्ष्य में पृ0सं0-67
8. शिवानी, सुनहु तात यह अकथ कहानी, हिन्द पाकेट बुक्स: दिल्ली, पृ0सं0-08
9. पाण्डे, मृणाल(सं0), गौरा पन्त शिवानी: सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग-1, राधाकृष्ण पेपर बैक्स: नई दिल्ली, पृ0सं0-322
10. पाण्डे, मृणाल(सं0), गौरा पन्त शिवानी: सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग-1, राधाकृष्ण पेपर बैक्स: नई दिल्ली, पृ0सं0-322
11. शिवानी, सुनहु तात यह अकथ कहानी, हिन्द पाकेट बुक्स: दिल्ली, पृ0सं0-44
12. शिवानी, सुनहु तात यह अकथ कहानी, हिन्द पाकेट बुक्स: दिल्ली, पृ0सं0-83
13. सम्पादित-एम.एस. मैगजीन, नई दिल्ली पृ0सं0-57
14. हंस पत्रिका-9/2004, अक्षर प्रकाशन दरियागंज: नई दिल्ली पृ0सं0-32

महिला सशक्तिकरण-समस्या एवं निराकरण

डॉ० डी०एन० सूर्यवंशी

निर्देशक, पूर्व प्राचार्य,एस.आर.सी.एस.कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, दुर्ग (छग.)

संजय कुमार ध्रुव

शोधार्थी, एस.आर.सी.एस.कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, दुर्ग (छग.)

प्रस्तावना

भारत के प्राचीन धर्म ग्रंथों तथा पुराणों में नारी को देवी तुल्य माना गया है, परंतु आज समाज में उसकी जो स्थिति होनी चाहिए, वह कहीं भी परिलक्षित नहीं हो रही है। जिसके कारण समाज में शिक्षा और पोषण, स्वास्थ्य, भ्रुण हत्या, बलात्कार आदि जैसी सामाजिक विकृतियों का दृष्टिगोचर हो रहा है। महिलाएं आर्थिक रूप से कमजोर, अशिक्षा, अज्ञानता, रूढ़िवादिता के कारण पुरुष प्रधान समाज में अपनी स्थिति ज्यों की त्यों स्वीकार कर संतोष करने पर विवश है। ऐसी परिस्थितियों में मानव समाज की लगभग इस आधी जनसंख्या की भागीदारी जिस रूप में होनी चाहिए, उस रूप में नहीं हो पाती।

समाज में महिलाओं की उचित भागीदारी सुनिश्चित किए बिना केवल पुरुष वर्ग के योगदान से विश्व का सर्वांगीण विकास संभव नहीं है। महिलाओं के विकास के बगैर तथा बराबर भागीदारी के बिना आदर्श समाज की रचना संभव नहीं है। विकास के इस युग में मानव समाज के विकास में महिलाओं के योगदान से इनकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि नारी के बिना मानव समाज की कल्पना ही अर्थहीन है। फिर भी विकास के क्रम में महिला एवं पुरुष का विकास समान रूप से नहीं हुआ है, फलस्वरूप विश्व के किसी भी समाज को पुरुष के समान दर्जा नहीं मिला है। यही कारण है कि प्रत्येक देश में महिलाओं में कुछ ना कुछ समस्याएं अवश्य पाई जाती है, यद्यपि इन समस्याओं की मात्रा एवं प्रकृति में अंतर पाया जाता है, परंतु विभिन्न देश में महिलाओं की समस्यापूर्ण अस्तित्व से इनकार नहीं किया जा सकता, इन समस्याओं के कारण महिलाओं का पूर्ण रूप से शारीरिक, मानसिक विकास संभव नहीं हो पाता इन समस्याओं को दूर करने के लिए समय-समय पर हमारे देश में परिवर्तन किये गए हैं।

मूल शब्द-महिला सशक्तिकरण

महिला सशक्तिकरण के नाम से ही स्पष्ट है, शक्ति का अर्जन या अर्जित करना। जो व्यक्तियों के लिए कई दशकों से चिंता का विषय रहा है। महिलाओं की स्वतंत्रता के लिए किसी भी राष्ट्र के प्रयास के बिना कानून बनाने में सक्षम नहीं रही है, हालांकि सरकार द्वारा महिलाओं की सुरक्षा एवं उन्हें अधिकार संपन्न बनाने हेतु कानून बनाए गए हैं।

73वें संविधान संशोधन के माध्यम से सरकार ने महिलाओं को 33: आरक्षण ग्राम पंचायत से लेकर जिला पंचायत तक प्रदान कर दिया लेकिन ये महिलाएं निर्णय सक्षम नहीं हो पाएंगे कठपुतली के समान कार्य करने में मजबूर है।

महिला सशक्तिकरण का इतिहास बहुत लंबा और विस्तृत इतिहास है। हमारे भारत जैसे देश में महिलाओं की स्थिति यथापूर्व की भांति ही है जैसे पूर्व में उनकी शिक्षा में वृद्धि की आवश्यकता आज भी है लेकिन लोगों की मानसिकता वही की वही बनी हुई है।

भारत गांवों का देश है, और यहां विभिन्न संस्कृति जाति धर्म संप्रदाय के लोग विद्यमान हैं फिर भी प्रत्येक जाति धर्म संप्रदाय में महिलाओं को लेकर जो विचार है। वो विचार सभी के एक समान ही है, उनमें कोई परिवर्तन नहीं है। वर्तमान में महिलाओं को लेकर लोगों के विचार में कोई खास परिवर्तन तो नहीं आया है पर पूर्व की तुलना में कुछ सुधार अवश्य हुआ है। भारत जैसे देश में महिला को सिर्फ दो लिंग के आधार पर माना जाता है परंतु सामाजिक परिदृश्य में महिलाओं को पुरुषों के समान ही अधिकार, महत्व, समान कार्य सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त हो चुकी है।

नारी मानवता का आधारभूत अंग है, इसलिए यदि वह सफल होगी तो आधी दुनिया अवश्य ही परिवर्तित होगी। किसी भी विकसित समाज के निर्माण में स्त्री व पुरुष दोनों की सहभागिता आवश्यक है, परंतु यह एक विडंबना है, कि समाज में उन्हें बराबरी का दर्जा शायद ही कभी प्राप्त हुआ हो।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकार द्वारा महिलाओं की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए अनेक योजनाएं बनाई गई स्कूल कालेजों में पढ़ाई के साथ-साथ उनके लिए विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। वर्तमान में महिलाएं के लिए स्कूल कालेजों में पढ़ाई के साथ-साथ प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। जिससे महिलाएं शिक्षित होकर अपने गुणों और शिक्षा के दम पर बड़ी संख्या में राजनीति, डॉक्टर, प्रोफेसर, वैज्ञानिक, प्रशासनिक अधिकारी, वकील और इंजीनियर जैसे पदों पर आसीन हो रही है। कला साहित्य एवं राजनीति क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में महिलाओं ने अपनी पहचान बनाई हुई है, लेकिन साथ ही यह भी सच है कि सामाजिक स्तर राजनीतिक जागरूकता एवं आर्थिक स्वालंबन के क्षेत्र के उचित अनुपात में उन्हें अपनी उपस्थिति दर्ज करानी चाहिए जो वर्तमान में संभव नहीं हो पाई है।

समस्या एवं निराकरण

ग्रामीण महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण के लिए महिलाओं एवं पंचायती राज के सम्मुख अनेक समस्या हैं जो निम्न हैं:-

1. अशिक्षा-वर्तमान की बात करें तो महिला शिक्षा में थोड़ी वृद्धि तो हुआ है, लेकिन आज भी महिलाएं पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों की शिक्षा के क्षेत्र में पुरुषों की तुलना में महिलाओं की शिक्षा के स्तर कम है ग्रामीण क्षेत्र में महिला पुरुष ज्यादातर शिक्षित ही रहते हैं। इसी अशिक्षा के कारण उनका विकास नहीं हो पा रहा है। सरकार इन्हें पढ़ने पढ़ाने के लिए विभिन्न योजनाएं लागू करती है,फिर भी इन उनके घरों के मुखिया द्वारा उन्हें पढ़ने की अनुमति ना मिलने के कारण आज भी महिलाओं के शिक्षा का स्तर बहुत ही कम है। वर्तमान समय महिला सशक्तिकरण का युग है, जिसमें महिलाओं को शिक्षित होने पर बल दिया जा रहा है। जिसके चलते आज महिलाओं की स्थिति में कुछ सुधार होना संभव हो सका है
2. प्रशिक्षण का अभाव-महिलाओं को आरक्षण के बल पर आगे तो बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है,लेकिन प्रत्येक स्तर पर जन प्रतिनिधि निर्वाचित होने के बाद उन्हें उपयुक्त प्रशिक्षण ना मिल पाने के कारण वह अपने कार्य एवं अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं रहते और जिसके चलते ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं के द्वारा किसी भी प्रशिक्षण में रुचि ना लेना भी एक समस्या का कारण है।महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने की आवश्यकता है जब तक महिलाएं जागरूक नहीं होंगे तब तक उनके उनके अधिकारों की रक्षा कोई नहीं कर सकता और ना ही उनका विकास संभव हैं।
3. घरेलू प्रतिबंध-भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति आज भी वही है, चाहे वह ग्रामीण हो या शहरी प्रत्येक पुरुषों का मानना यह है। कि महिलाएं घर की चार दीवारी तक ही सीमित रहें और यदि वह घर से बाहर जाकर कामकाज करती है या ध्यान देना निश्चित करती हैं, तो उनका वर्चस्व स्थापित हो जाएगा। इस सोच और दूषित मानसिकता के कारण पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं के सशक्तिकरण के मार्ग में यह एक बहुत बड़ी समस्या है
4. आर्थिक स्थिति-भारत में गांव की महिलाएं ज्यादातर मजदूर वर्ग की होती हैं और प्रतिदिन मजदूरी करके अपने परिवार का लालन पालन करती है। उनकी आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर होती है और इसी के चलते महिलाएं अपने विकास या अपने अधिकारों को समझ नहीं पाती और समय के अभाव में कोई दूसरा कार्य भी नहीं कर पाती है। जिसके चलते वह सिर्फ अपने घर गृहस्थी के कार्यों में उलझ कर रह जाती हैं और अपना विकास नहीं कर पाती है।
5. योजनाओं की जानकारी का अभाव-महिला सशक्तिकरण के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा जो है वह है महिलाओं को केंद्र एवं राज्य सरकार द्वारा महिलाओं के उत्थान के लिए चलाई जा रही विभिन्न जानकारियों या योजनाओं का ज्ञान ना हो पाना और उनके जानकारी के अभाव में उसका लाभ ना उठा पाना एक बहुत बड़ी समस्या है। आज महिलाओं के उत्थान के लिए शिक्षा एवं अन्य क्षेत्रों में शासन द्वारा विभिन्न योजनाओं का संचालन किया जा रहा है जिनका लाभ लेकर महिला और अधिक सशक्त हो सकती है।

निराकरण

ग्रामीण महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण के लिए महिलाओं एवं पंचायती राज के सम्मुख उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने के लिए दीर्घकालीन रणनीति अपनाने की आवश्यकता है। उन्हें व्यवस्थित होकर विभिन्न बाधाओं एवं चुनौतियों को दूर करना पड़ेगा। इस हेतु कुछ प्रमुख समाधान निम्न प्रकार हैं-

1. अनुभव व कार्य कुषलता:-शासन की जनकल्याणकारी योजनाओं को सफल क्रियान्वयन के लिए प्रषासन एवं विषेषज्ञों को स्वतंत्रता प्राप्त होना चाहिए ताकि वे अपने अनुभवों व कार्य क्षमता के आधार पर कार्य कर सकेगें।
2. कार्य अवधि की निष्चिता:-प्रषासन के अधिकारी और कर्मचारियों को विभिन्न कार्यो की प्रस्तावित फाइलों की यथोचित कार्यवाही के साथ एक निष्चित अवधि के अंदर पूर्ण करना चाहिए ताकि सभी कार्यो का सफल क्रियान्वयन हो सके।
3. राजनीतिक दल का नियंत्रण:-राजनीतिक दल व हाई कमानों का नियंत्रण समय-समय पर होना चाहिए, ताकि इनका मनोबल लगन एवं ईमानदारी से कार्य करते रहे, इससे भ्रष्टाचार को बढ़ावा नहीं मिलेगा।
4. आय के स्त्रोत में वृद्धि:-प्रत्येक ग्राम पंचायतों में आय के पर्याप्त संसाधन की व्यवस्था शासन व स्थानीय स्तर पर किया जाना चाहिए ताकि पंचायती राज संस्थाओं की आर्थिक स्थिति मजबूत हो सके।
5. मूल्यांकन की व्यवस्था:- विभिन्न जनकल्याणकारी एवं विकास कार्यो का नियोजन व उनका क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन समय-समय पर किया जाना चाहिए, जिससे विकास कार्यो में सभी पिछड़े हुए क्षेत्रों का विकास तीव्र गति से हो सकेगा।
6. अधिकारी और कर्मचारी का सहयोग:- कर्मचारी व अधिकारियों व आम जनता को योजना के सफल क्रियान्वयन के लिए सहयोग प्रदान करना चाहिए ताकि ग्रामीण विकास के लिए प्रषासन को सहयोग प्राप्त हो सके।

प्रश्न01 क्या आप इस बात से सहमत है कि महिला वर्ग के अधिकारों में वृद्धि हुई है।

तालिका क्रमांक 01

क्र.	अभिमत	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	187	62.33
2	नहीं	102	34
3	कह नहीं सकते	11	3.67
	योग	**300**	**100**

रेखाचित्र क्रमांक 01

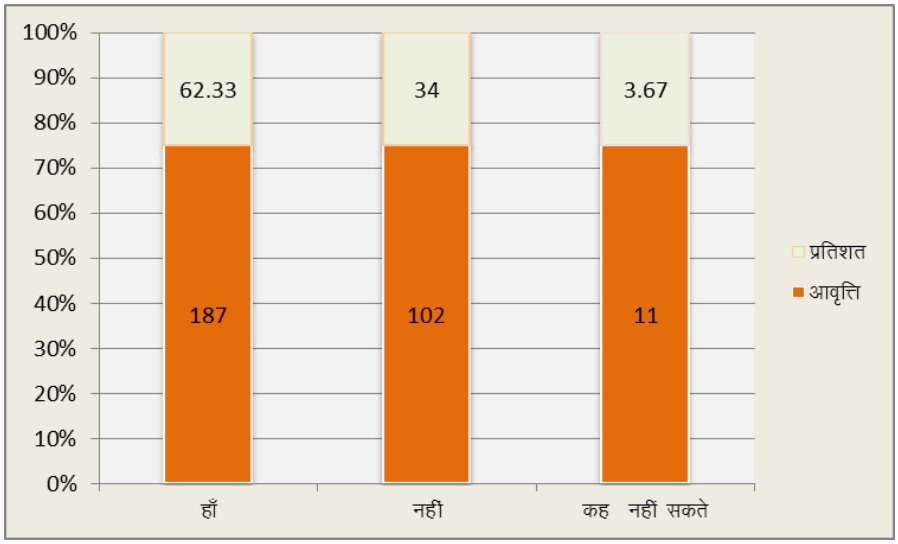

उपरोक्त तालिका के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अध्ययनगत उत्तरदाताओं में 62.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि महिला वर्ग के अधिकारों में वृद्धि हुई है। 34 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि महिला वर्ग के अधिकारों में वृद्धि नहीं हुई है। इसके साथ ही 3.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कुछ भी कहने से इंकार कर दिया।

प्रश्न02. क्या महिला सषक्तिकरण की अवधारणा से भली भांति परिचित है।

तालिका क्रमांक 02

क्रं.	अभिमत	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	185	61.67
2	नहीं	78	26
3	कह नहीं सकते	37	12.33
	योग	**300**	**100**

रेखाचित्र क्रमांक 02

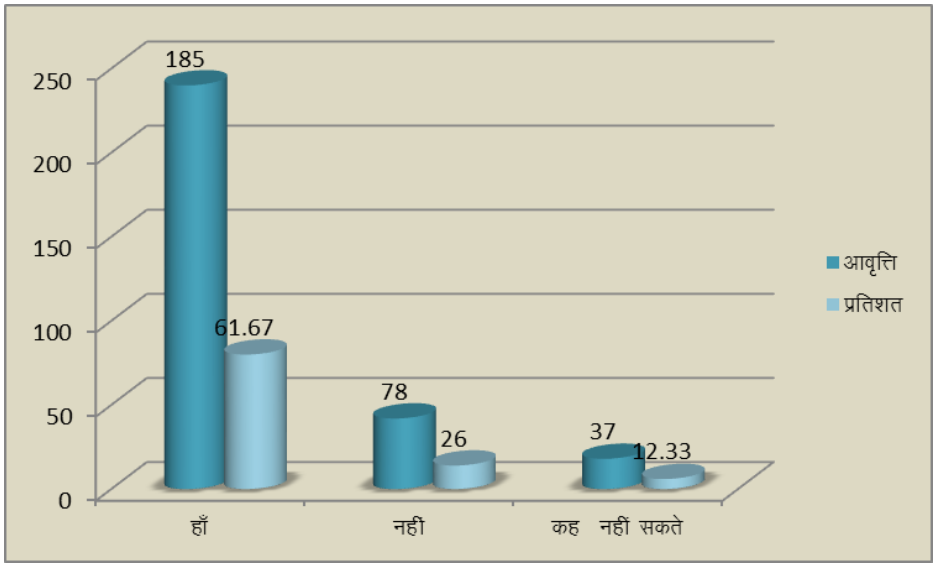

उपरोक्त तालिका के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अध्ययनगत उत्तरदाताओं में 61.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि महिला सशक्तिकरण की अवधारणा से भलीभांति परिचित है। 26 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि महिला सशक्तिकरण की अवधारणा से भलीभांति परिचित नहीं है। इसके साथ ही 12.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कुछ भी कहने से इंकार कर दिया।

निष्कर्ष

प्रजातांत्रिक व्यवस्था की सार्थकता तभी है जब देश की प्रजातांत्रिक व्यवस्था गांवों से लेकर संसद तक प्रत्येक स्तर पर जनता के प्रतिनिधियों की अधिकतम भागीदारी हो। भारत में गांव आर्थिक समृद्धि के प्रतीक है। अतः देश तभी समृद्ध हो सकता है, जब कि इसकी आत्मा के रूप में गांवों की प्रगति हो और गांवों का सर्वागींण विकास पंचायतों की सफलता के द्वारा ही संभव है।

महिला आरक्षण से महिला सशक्तिकरण का यह अच्छा उदाहरण है कि महिलाएँ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों में अपना योगदान दे रही है, तथा समाज में फैली बुराई को दूर कर रही है और राज्य की राजनीति में भाग लेकर देश और राज्य का नाम भी रौशन कर रही है। इसके साथ ही साथ घर की आर्थिक स्थिति को भी सम्भाले हुए है।

21 वीं सदी में महिला सशक्तिकरण की दिशा में अनेक प्रयास प्रारंभ हुए है। इसी कड़ी में महिलाओं को केन्द्र एवं राज्यों में 33 प्रतिशत आरक्षण प्राप्त है तथा केन्द्र में उनके लिए एक तिहाई आरक्षण आरक्षित है। छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण के बाद में छत्तीसगढ़ राज्य में महिलाओं को पंचायतों में 50 प्रतिशत आरक्षण प्राप्त है और आरक्षण के माध्यम से ही महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा मिला है। महिलाओं को उनका अधिकार मिला है जिसका वे लाभ उठा रही है। महिला आरक्षण से ही छत्तीसगढ़ राज्य के प्रत्येक ग्राम पंचायतों, जिला, पंचायतों, जनपद पंचायतों में महिलाओं की भूमिका सराहनीय है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्रीवास्तव, सुरेशलाल 2008 'भारतीय शासन व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी', प्रतियोगिता दर्पण, मई-2008, इंदौर।
2. सिंह, लोकेन्द्र, 2008 'ग्रामीण विकास व महिला भागीदारी', दैनिक नवभारत, अंक 17 अक्टूबर 2008।
3. सिन्हा, डॉ. उमा 2004 'छत्तीसगढ़ में महिला शिक्षा-दशा और दिशा' 'वसुंधरा', स्नातकोत्तर भूगोल परिषद्, अम्बिकापुर।
4. कटारिया, कमलेश; नारी जीवनः वैदिक काल से आज तक, युनिक ट्रेडर्स, जयपुर, 2003.
5. कंशिक, सुशीलाः वीमन एंड पंचायती राज हर-आनंद पब्लिकेशन,नई दिल्ली, 1993
6. कुमार, राधा; स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002.
7. कुमार, मनीष; भारतीय नारीः कल आज और कल, ग्रेसी बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008.
8. कुमार, मनीष; महिला सशक्तिकरण- दशा और दिशा, मधुर बुक्स, दिल्ली, 2008.
9. खन्ना, बी. एस.-पंचायत राज इन इंडिया-रूरल लोकल सेल्फ गवर्नमैंट, दीप एंड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1994
10. महाजन, संतोष; भारतीय समाज, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2007.

भारत में माइक्रो-फाइनेंस माध्यमों की स्थिति : स्वयं-सहायता-समूह, बैंक-लिंकेज-कार्यक्रम और माइक्रो-फाइनेंस संस्थानों का विश्लेषण

आशुतोष कुमार झा

रिसर्च स्कॉलर, विश्वविद्यालय वाणिज्य और व्यवसाय प्रशासन विभाग,
एल.एन.एम.यू., दरभंगा.

पवन कुमार भूरा (जैन)

सहायक आचार्य, वाणिज्य विभाग, श्यामलाल महाविद्यालय (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

अगर हम ग्रामीण समाज में रहनेवाले लोगों के आपसी संबंधों पर गौर करें, तो पाएंगे कि वहां किसी भी कार्य में मदद लेने और देने की परम्परा सदियों से चली आ रही है। 'सामुदायिकता की भावना' ग्रामीण समाज की सबसे बड़ी विशेषता है, जो यह इसके सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक पहलुओं से जुडी हुई है। वर्तमान पूंजी और उपभोक्तावाद के दौर में भी इसका फैलाव, गरीब व सामाजिक तौर से पिछड़े वर्गों में आज भी किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है।

भारत की 75% से भी अधिक ग्रामीण आबादी जीविकोपार्जन के लिए कृषि पर निर्भर है। इन ग्रामीण कृषकों की अनेक समस्याएं हैं। खेती के अतिरिक्त इनके पास दूसरे आय के साधन नहीं होते हैं। खेती के 5 से 6 माह बाद बचे समय में ग्रामीणों की आय बंद हो जाती और और उन्हें आकस्मिक खर्चों के लिए जमीन व गहनों को गिरवी रखनी पड़ती है। इसी बीच यदि अन्य कोई आकस्मिक खर्च (बीमारी, मृत्यु, पर्व, शादी) बढ़ जाये तो अचल संपत्ति बंधक रखने की सीमाएं बढ़ जाती हैं। बैंक शाखाओं का वृहद नेटवर्क होते हुए भी ग्रामीणों की पहुँच उन तक नहीं हैं। परन्तु अब बहुत से किसान, स्वयंसेवी संस्थाओं की मदद से कुछ हद तक अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त करने लगे हैं।

मूल शब्दः ग्रामीण, कृषि, किसान, ऋण, माइक्रोफाइनेंस, बैंक, नाबार्ड, स्वयं सहायता समूह, बैंक-लिकेंज कार्यक्रम

परिचय

अनौपचारिक ऋण प्रणाली के लचीलेपन, सुग्रहिता, अनुक्रियाशीलता जैसे गुणों को औपचारिक ऋण संस्थाओं की तकनीकी क्षमताओं और वित्तीय संसाधनों के साथ संयोजित करने और ऋण वितरण प्रणाली में सकरात्मक नवीनतायें लाने की दृष्टि से राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) ने फरवरी 1992 में स्वयं सहायता समूहों को वाणिज्य बैंकों से जोड़ने के लिये पायलट परियोजना शुरू की थी। जिसमें (बाद में) सहकारी बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को भी शामिल कर लिया गया।

स्वयं-सहायता समूह और ऋण व्यवस्था के गुण-दोषों का विश्लेषणः

ऋण			
अनौपचारिक(महाजन, पड़ोसी)		**औपचारिक (बैंक)**	
दोष	**गुण**	**दोष**	**गुण**
ज्यादा ब्याज	स्थानीय एवं परिचित	छोटा कर्ज	शोषण नहीं
बंधक	समय और ऋण	ज्यादा खर्च और लम्बी प्रक्रिया	ब्याज कम
खुशामद	कर्ज लेने एवं देने वाले के बीच व्यक्तिगत सम्पर्क एंव संलग्नता	सोच है कि गरीब कर्ज लायक नहीं है।	खुशामद नहीं।
लोभ-लालच का प्रयोग		व्यक्ति सम्पर्क का आभाव	सशक्तिकरण (अपनी इच्छा निर्णय शक्ति पर)
अनिश्चित भुगतान तरीका	दुबारा कर्ज	कर्ज वापसी में वातावरण की कमी।	
ससाधन पर नियंत्रण खोने का डर	ऋण पाने का विश्वास	उत्पादन के लिए मात्र कर्ज (सिमित उद्देश्य)	
	पर्याप्त कर्ज	जमानत की जरुरत	
	कम कागजात		
	आसान और शीघ्र		
एस० एच० जी० की विशेषताएं/गुण			

कुछ चुनी हुई गैर-सरकारी संस्थाओं एवं बैंकों की मदद से ही पायलट परियोजना का कार्यान्वयन हुआ। पायलट परियोजना में शुरू में केवल 500 स्वयं सहायता समूह जोड़ने का लक्ष्य रखा गया था, जबकि वर्ष 1993-94 में 650 समुहों को जोड़ा गया। 1994-95 में यह लिंकेज की संख्या 2212 तक पहुँच गयी जिन्हें बैंक कर्ज के रूप में रु० 224.5 लाख दिए गए थे। स्वयं-सहायता समूह बैंक लिकेंज कार्यक्रम की सफलता से प्रभावित होकर भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर ने एक कार्यकारी समूह का गठन किया जिसमें प्रसिद्ध गैर सरकारी संस्थायें, एकेडेमेशियन(प्रबुद्ध शिक्षा विद), बैंक पदाधिकारीगण इत्यादि थे। इस टीम की संतुस्ती पर भारतीय रिजर्व बैंक ने इस कार्यकारी दल के दौर में क्रियाशील स्वयं-सहायता समूह-बैंक लिकेंज कार्यक्रम को अनुमति प्रदान की।

स्वयं-सहायता समूह द्वारा बैंक में मात्र बचत खाता खोलना लिंकेज नहीं माना गया है। लिंकेज का पूर्ण स्वरुप हैं की बैंक से कर्ज के लेन-देन सहित आपसी व्यवहारिक सम्बन्ध भी स्थापित हों।

Region-wise Status of Bank Loan Disbursed to SHGs during 2018-19 to 2019-20

(Total loan disbursed in Rs Lakh; Average loan disbursed in Rs per SHG)

Financial Year	2018-19			2019-2020		
Regions	**No. of SHGs**	**Total Loans Disbursed**	**Average Loan Disbursed**	**No. of SHGs**	**Total Loans Disbursed**	**Average Loan Disbursed**
North Eastern	27,086	29,001	1,07,070	37,807	57,893	1,53,128
Northern	55,922	62,664	1,12,056	62,905	84,694	1,34,637
Central	85,135	72,199	84,805	1,11,074	1,04,249	93,856
Western	1,46,674	1,84,565	1,25,833	1,74,218	2,49,327	1,43,112
Eastern	9,09,375	11,97,079	1,31,638	11,23,517	17,85,075	1,58,883
Southern	14,74,208	42,86,256	2,90,750	16,36,481	54,84,696	3,35,152
All India	26,98,400	58,31,763	2,16,119	31,46,002	77,65,935	2,46,851

इस प्रकार वर्ष 1995 में इस कार्यक्रम का प्रायोगिक दौर समाप्त हो गया। भारतीय रिजर्व बैंक ने दिनांक 2 अप्रैल 1996 को अपने परिपत्र के जरिये स्वयं-सहायता समूहों को मिले ऋण में प्राथमिकता क्षेत्र को अग्रिमों के तहत शामिल किये जाने का ऐतिहासिक आदेश दिया।

Progress under MFI/ MFO-Bank Linkage Programme (Amount in Crore)

Financial Year	2018-19		2019-20	
Particulars	**No. of accounts**	**Amount**	**No. of accounts**	**Amount**
Loans disbursed by banks/FIs to MFIs/ MFOs	1933	14625.95	4762	20225.99
Loans outstanding against MFIs/MFOs as on 31 March	5488	17760.68	15197	29288.62

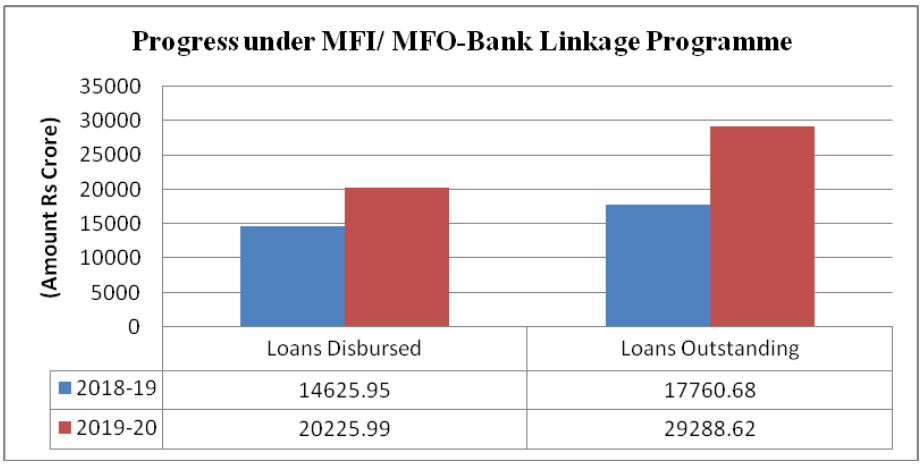

उपरोक्त तालिका, 2018-19 से 2019-20 के दौरान एन.आर.एल.एम. और एन.यू.एल.एम. के तहत कुल स्वयं-सहायता समूहों के साथ-साथ बचत, ऋण वितरण और ऋण बकाया का लेखा-जोखा दिखाती है। बकाया बैंक ऋण में वार्षिक वृद्धि दर के साथ-साथ प्रति एसएचजी बकाया औसत ऋण में वृद्धि का भी संकेत मिलता है। 2008 में एसएचजी ऋणों में एनपीए 21 प्रतिशत से बढ़कर 2015 में 7.4 प्रतिशत हो गया था। इसके बाद एनपीए 7.4 फीसदी (2015-16 में) से घटकर 2018-19 में 5.19 फीसदी रह गया जो 2019-20 में और कम होकर 4.92 फीसदी पर आ गया। वर्ष 2019-20 के दौरान बैंक ऋण लेने वाले स्वयं-सहायता समूहों की संख्या में वृद्धि और स्वयं सहायता समूहों को वितरित संस्थागत ऋण की राशि क्रमश 166 प्रतिशत और 332 प्रतिशत थी।

एसबीएलपी के अंतर्गत भारत में निम्नलिखित 3 मॉडलों का उपयोग और विकास हुआ है:-

- मॉडल प: स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) द्वारा प्रचारित और बैंको द्वारा निर्देशित एवं पोषित मॉडल
- मॉडल प्प: एनजीओ/सरकार द्वारा प्रचारित स्वयं-सहायता-समूहों (एसएचजी) और बैंको द्वारा निर्देशित एवं पोषित मॉडल
- मॉडल प्प्प: एनजीओ द्वारा प्रचारित स्वयं-सहायता-समूहों (एसएचजी) और एनजीओ/औपचारिक वित्तीय माध्यमों की सहायता से बैंको द्वारा वित्तपोषित मॉडल

लिंकेज परियोजना का उद्देश्य

1. गरीबों की ऋण जरूरतों के हिसाब से पूरक ऋण नीतियों का निर्माण एवं विकास करना।
2. ग्रामीणों एंव बैंकों के बीच आपसी भरोसा निर्माण करना।
3. गरीब ग्रामीणों में बचत व ऋण लेने जैसी गतिविधियों को प्रोत्साहित करना।

स्वयं सहायता समूह और बैंक-लिकेंज कार्यक्रम :

1. गरीब भी बचत कर सकते हैं।
2. बैंक गरीबों को भी बैंकिंग सुविधा दी जा सकती हैं।
3. गैर-सरकारी संस्थान एक सहयोगी के रूप में कार्य करता है।
4. समूह को बैंक से कर्ज मिल सकता है।
5. समूह के अपने विवेक और नियमों के अनुसार कर्ज सम्बन्धी निर्णय ले सकता है।

6. समूहों में प्रतिस्पर्धात्मक उन्नति की प्रवृति होती है।

7. समूह को आकस्मिक स्थिति में भी हमेशा कर्ज की प्राप्ति होती रहती है।

स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका:

1. ग्रामीणों को उत्प्रेरित और संगठित करके स्वयं-सहायता समूह में लाना।
2. बचत की भावना को प्रोत्साहित करते हुए संस्थागत और व्यक्तिगत विकास की ओर ले जाना।
3. समूह के सदस्यों को खाता-बही के रख-रखाव, बैठक संचालन और कोष प्रबंधन पर शिक्षण प्रशिक्षण का आयोजन करना।
4. आवश्यक पूंजी की सहायता देते हुए प्रत्येक समूह की प्रारंभिक स्तर की संसाधन उपलब्धता को प्रगति प्रदान करना।
5. बैंक के साथ सम्बद्ध NGO एक फेसिलिटेटर के रूप में कार्य करें।
6. संसाधन का अधिकतम उपयोग करते हुए समूह सदस्यों की तकनीकी और बौद्धिक क्षमता का विकास करें।
7. समूह का एक मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक के रूप में कार्य करें।

उपरोक्त तमाम बिन्दुओं पर गौर करने पर पाते हैं कि प्रमुख स्वयंसेवी संस्थाओं (SEWA –अहमदाबाद, मयराडा, बंगलौर) ने अपने कार्यों के द्वारा सरकारी नीति को प्रभावित किया है और विकास के आयामों को जमीनी स्तर पर खड़ा करने का प्रयास किया है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि समस्या की व्यापकता को देखते हुए सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं को कंधे-से-कंधा मिलाकर चलना होगा। परन्तु प्रश्न है कि अच्छी तरह से स्थापित हुई इन स्वंयसेवी और सरकारी संस्थाओं (प्रखंड से राज्य, राज्य से केंद्र तक) के नेटवर्क को क्या कार्यान्वयन के स्तर पर व्यावहारिक दर्जा दिया जा सका है।

माइक्रोफाइनेंस संस्थाएं (MFIs)

माइक्रोफाइनेंस कंपनियां मूल रूप से ऐसी वित्तीय संस्थाएं हैं, जो ऋण या बचत के रूप में छोटे स्तर पर वित्तीय सेवाएं प्रदान करती हैं। ये कंपनियां उन छोटे व्यवसायों के आसान शर्तों और तरीके से ऋण प्रदान करती हैं, जिन्हें जटिल प्रक्रिया के कारण बैंकों से ऋण नहीं मिल पाता। इसलिए इसे आमतौर पर माइक्रो-क्रेडिट संगठन के रूप में नामित किया जाता है। वे छोटे ऋण प्रदान करते हैं इनके ऋण की सीमा ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 50,000 रुपये से कम और शहरी क्षेत्रों के लिए 1,25,000 रुपये है। भारत में मूल रूप से 2 प्रकार की माइक्रोफाइनेंस कंपनियां हैं। इनमें से एक रिजर्व बैंक ऑफ इंडियन (RBI) के साथ पंजीकृत होती है, और दूसरी को गैर-लाभकारी प्रकार की धारा 8 कंपनी के रूप में पंजीकृत किया जाता है जिसे ट्ठप् की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है।

ये संस्थाएं ज्वाइंट लायबिलिटी ग्रुप (जेएलजी) की अवधारणा के जरिए कर्ज देती हैं। जेएलजी एक अनौपचारिक समूह है, जिसमें 5 से 10 व्यक्तिगत सदस्य शामिल होते हैं। जेएलजी समूह के सदस्य, बैंक ऋण लेने के उद्देश्य से व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से माइक्रोफाइनेंस कंपनी से संपर्क करते हैं।

माइक्रोफाइनेंस की पेशकश के लिए अलग-अलग संस्थानों यानी एमएफआई के अस्तित्व का कारण इस प्रकार है:

- उच्च लेनदेन लागत-आम तौर पर माइक्रो-क्रेडिट बैंकों के लिए महंगा पड़ते हैं
- जमानत की अनुपस्थिति-गरीब आमतौर पर क्रेडिट सुरक्षित करने के लिए जमानत के बदले कुछ भी गिरवी नहीं रख पाते
- लघुऋण आम तौर पर बहुत कम अवधि के लिए लिया जाता है
- किश्तों के पुनर्भुगतान की की उच्च दर के साथ ऋण डिफॉल्ट की संभावना भी अधिक होती है

एमएफआई अपने वित्त पोषण के लिए आम तौर पर दानदाताओं, बैंकों और अन्य संस्थागत स्रोतों पर निर्भर रहते हैं। वे अपने उत्पाद रेंज को बढ़ाने के लिए माइक्रो-इंश्योरेंस और भुगतान लेने-पहुँचाने जैसी अन्य सेवाएं भी प्रदान कर सकते हैं।

छोटे ऋणों के कारण एमएफआई की परिचालन लागत अधिक आती है, जिससे ब्याज की दरें बढ़ जाती हैं। यह उच्च लागत अनिवार्यत: अंतिम ग्राहक को हस्तांतरित की जाती है, जिससे एमएफआई से पैसे की उधारी अपेक्षाकृत महंगी हो जाती है। एमएफआईएस द्वारा वहन की गई निधियों की वित्तीय लागत के अलावा, उन्हें एजेंट वेतन, सामाजिक जुड़ाव और दिन-प्रतिदिन के संचालन पर अतिरिक्त खर्च वहन करना पड़ता है। इससे बाजार दरों से अधिक ब्याज दर वसूल करना एमएफआई के लिए जरूरी हो जाता है। देश में नियामक प्राधिकरण भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं इसलिए एमएफआई पर कोई सख्त ब्याज दर प्रतिबंध नहीं लगाया जाता है।

एमएफआई को माइक्रोफाइनेंस ऋण प्रदान करने वाले बैंक और वित्त संस्थान

- रिलायंस मनी-रिलायंस मनी माइक्रोफाइनेंस संस्थानों (एमएफआई) के साथ साझेदारी करके अधिक ब्याज दरों पर माइक्रोफाइनेंस सुविधा प्रदान करती है। इसने पास ऋण के लिए आवश्यक दस्तावेजों की संख्या काफी कम है। एमएफआई को ऑन-लेंडिंग के लिए जरुरी थोक ऋण सहायता दी जाती है। रिलायंस मनी गारंटी के साथ भी मदद करता है ताकि एमएफआई उपलब्ध तमाम वैकल्पिक स्रोतों से ऋण प्राप्त करने में सक्षम हो।
- आईसीआईसीआई बैंक-आईसीआईसीआई बैंक इन संस्थानों को माइक्रोफाइनेंस लोन देने के लिए कम से कम 10 साल से एमएफआई के साथ साझेदारी कर रहा है। वर्तमान में बैंक निम्नलिखित पर ध्यान केंद्रित कर रहा है:
- चुनिंदा एमएफआई के साथ एक लाभदायक और स्वस्थ ऋण व्यवसाय स्थापित करना ख निवेश जो भारत में माइक्रोफाइनेंस उद्योग के स्वस्थ विकास को सक्षम बनाता है।

आईसीआईसीआई बैंक द्वारा एमएफआईआई को दी जाने वाली वित्त सहायता मुख्य रूप से सावधि ऋण है। बैंक पास F: सर्टिफिकेट भी प्रदान करता है। इनके अलावा बैंक, एमएफआई को नकदी प्रबंधन सेवा, वेतन/बचत खातों और अनुकूलित चालू खातों जैसी अन्य मूल्य वर्धित सुविधाएं, ट्रेजरी और स्टाफ उत्पादों की सेवायें भी प्रदान करता है।

- भारतीय स्टेट बैंक (एसबीआई) ख़ एसबीआई, समाज के निचले हिस्से में पात्र उद्यमियों की जरूरतों के वित्तपोषण के लिए मध्यस्थ के रूप में कार्य करता है। एसबीआई, माइक्रोफाइनेंस संस्थानों और गैर-सरकारी संगठनों को मासिक, त्रैमासिक या 6 महीने के अंतराल पर चुकाया जा सकनेवाला टर्म लोन प्रदान करता है। एसबीआई लघुऋण की कुल पुनर्भुगतान अवधि 3 साल से अधिक नहीं हो सकती और नकद ऋण का नवीनीकरण भी वार्षिक आधार पर किया जाता है।
- एक्सिस बैंक-एक्सिस बैंक माइक्रोफाइनेंस संस्थानों को ऋण प्रदान करता है जो कम आय वाले अर्जक और सूक्ष्म उद्यमियों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाते हैं। बैंक ने देश भर में कई एमएफआईआई के साथ साझेदारी की है। बैंक द्वारा एमएफआई को टर्म लोन की पेशकश की जाती है जो पात्र उधारकर्ताओं को इसका विस्तार करती है।
- डीसीबी बैंक-डीसीबी बैंक माइक्रोफाइनेंसिंग के हिस्से के रूप में दो प्रकार के उत्पाद प्रदान करता है। ये ऑन-लेंडिंग उद्देश्यों के लिए एमएफआई को टर्म लोन और लोन हैं ।

बैंक लिंकेज के सन्दर्भ में शंकाएं एवं चिंताएँ

स्वयं सहायता समूह का निर्माण एक चरणबद्ध प्रक्रिया है, जो सह-लीकेज तरीके से आगे बढ़ता है। ऐसा देखा गया है कि समूह के सदस्य शुरुआत में उपभोग कार्य (बीमारी, शादी, शिक्षा इत्यादि) में ज्यादा खर्च करते हैं। कुछ समय उपरांत खर्च, उत्पादन कार्य की ओर बढ़ता है। जैसे-जैसे समूह पुराना होता जाता है, उसके कर्ज धारणा की क्षमता भी बढती जाती है। इस समय तक समूह पूंजी आवश्यकता भी बढ़ जाती है जिसके लिए इसे किसी स्थानीय वित्तीय संस्था से जोड़ना जरुरी हो जाता है।

आजकल महिला सशक्तिकरण की चर्चा प्रत्येक स्तर पर है और स्वयं-सहायता समूहों को इसके माध्यम के रूप में देखा जा रहा है। उम्मीद की जाती है कि महिलाएं इसके माध्यम से :-

- स्वयं की उपयोगिता का विश्वास एवं आत्मविश्वास बढाकर खुद को सशक्त करेंगी।
- आर्थिक एंव सामाजिक संसाधनों के साथ राजनीतिक प्रक्रियाओं तक पहुँच व नियंत्रण बना सकेंगी।
- परिवार, समुदाय तथा संस्कार से अपने अधिकारों की मांग कर सकेंगी।

बैंक-लिंकेज प्रक्रिया से जुड़े समुदाय की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक पृष्टभूमि का विश्लेषण अत्यावश्यक है।

जब भी लिंकेज का सीधा सम्बन्ध बैंक से जुडाव की ओर होता है। परन्तु ज्यादा जरुरी कि लोगों में सर्वप्रथम उपयोगिता, बाजार एवं स्थानीय संसाधन के बारे जागरूकता बढ़ायी जाये और ठेकेदार तथा दलाल के द्वारा होने वाला शोषण रुके।

उपरोक्त सारी बातें साधारण सी दिखती हैं। परन्तु यदि गहराई से विश्लेषण करें, तो पायेंगे कि ये सब पहलू आपस में जुड़े हुए हैं। समस्त प्रक्रियाओं का परिणाम इस बात पर निर्भर करता है कि बैंक लिंकेज प्रक्रिया में प्रवर्तक संस्था और बैंक पदाधिकारी की सोच एवं रणनीति क्या होगी।

निष्कर्ष

माइक्रोफाइनेंस की शुरुवात गैर-सरकारी संगठनों द्वारा की गयी थी और आज भी वे बैंक और अन्य वित्तीय संस्थानों से धन लेकर माइक्रोफाइनेंस ग्राहकों को रियायती ब्याज दरों पर उधार देते हैं। सरकारें माइक्रोफाइनेंस उद्योग के लिए नीतियां बनाने और गैर-सरकारी संगठनों या अन्य माइक्रोफाइनेंस संस्थानों (एमएफआईएस) को एकमुश्त अनुदान प्रदान करने या गरीबों को सीधे ऋण देने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। क्रेडिट यूनियन, सहकारी समितियां, वाणिज्यिक बैंक, और छोटे अनौपचारिक स्वयं-सहायता समूह, माइक्रोफाइनेंस के अन्य महत्वपूर्ण खिलाड़ी हैं।

विभिन्न आकार और कानूनी रूपों वाले कई संगठन माइक्रोफाइनेंस सेवा प्रदान करते हैं। ये संस्थाएं ज्वाइंट लायबिलिटी ग्रुप (जेएलजी) की अवधारणा के जरिए कर्ज देती हैं। एक जेएलजी एक अनौपचारिक समूह है जिसमें 5 से 10 व्यक्तिगत सदस्य शामिल होते हैं जो व्यक्तिगत रूप से या पारस्परिक गारंटी के खिलाफ समूह तंत्र के माध्यम से बैंक ऋण लेने के उद्देश्य से एक साथ आते हैं।

चूंकि स्वयं-सहायता-समूह अनिवार्य रूप से अपनी ऋण आवश्यकताओं के लिए बैंकों से जुड़े होते हैं, जिससे अक्सर उनके ऋण प्रोसेसिंग में काफी विलम्ब हो जाता है। इसके अलावा सदस्यों का काफी कीमती समय, प्रशिक्षण सत्र और SHG मीटिंग में भाग लेने के कारण नष्ट हो जाता है।

2019-20 की एक रिपोर्ट के अनुसार, 31 मार्च 2020 तक 191 उधारदाताओं का संयुक्त-माइक्रोक्रेडिट पोर्टफोलियो (यानी कुल ऋण बकाया) 2,28,669 करोड़ है जिसमें से एनबीएफसी-एमएफआई (86) और गैर-लाभ एमएफआई (30) के पास एक साथ 76,674 करोड़ (33.35%) का हिस्सा है। एनबीएफसी-एमएफआइ और गैर-लाभ एमएफआइ दोनों ने वर्ष 2019-20 के दौरान 38% वृद्धि दर्ज किया था। आर्थिक पिरामिड के तल में उन लोगों को ऋण देने में एमएफआई द्वारा निभाई गई महत्वपूर्ण भूमिका को ध्यान में रखते हुए और उन्हें बढ़ती अर्थव्यवस्था में अपनी भूमिका निभाने में सक्षम बनाया गया।

27 मार्च, 2020 को, आरबीआई ने सभी वाणिज्यिक बैंकों (क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों, लघु वित्त बैंकों और स्थानीय क्षेत्र बैंकों, सहकारी बैंकों, अखिल भारतीय वित्तीय संस्थानों, और एनबीएफसी (आवास वित्त कंपनियों और सूक्ष्म वित्त संस्थानों सहित) को 1 मार्च को बकाया सभी अवधि के ऋण की किस्तों के भुगतान पर तीन महीने की रोक की अनुमति देने की अनुमति दी।

हालांकि कुछ राज्यों में एसएचजी आंदोलन के मामले में शानदार सफलता प्राप्त की है। लेकिन मूल समस्याओं को हल करने के मामले में यह मॉडल अभी भी पूरी तरह से सफल नहीं हो सका है। देश के अंदरूनी ग्रामीण इलाकों में अभी भी घोर गरीबी मौजूद है और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति, विकलांग और भूमिहीन लोगों केक लिए सामाजिक-आर्थिक सशक्तिकरण एक दूर का सपना है।

सन्दर्भ

- Amarnani, A. and Amarnani, N. (2008), "Venture Capital Funds for Microfinance in India," *NirmaUniversity Journal of Business and Management Studies,* 2 (3-4), 33 – 49.
- CRISIL (2009), *India Top 50 Microfinance Institutions.* www.crisil.com/pdf/ratings/CRISIL ratings_india-top-50-mfis.pdf; accessed on November 30, 2010.
- Fisher, T. and Sriram, M.S. (2002), *Beyond Micro-credit: Putting Development back into Microfinance*. New Delhi: Vistaar Publications.
- Lok Capital (2010), "Microfinance Industry in India,"http://www.lokcapital.com/images/Microfinance White Paper.pdf; accessed on August 12, 2010.
- Yunus, M. (2009), "We Can Create a World of Our Choice," seventh Nelson MandelaAnnual Lecture Johannesburg, July 11, 2009, http://www.nelsonmandela.org/images/uploads/ Nelson_Mandela_ Annual_Lecture_LT.pdf; accessed on January 2, 2010.
- Urmila M (2011) Role of Self Help Group Bank Linkage Model in Women Empowerment.Asia Pacific Journal of Research in Business Management 2: 47-65.
- Suja S (2012) Woman Empowerment Through Self-Help Group-An EvaluativeStudy. Global Management Review 6: 68-83.
- Srabanti M, Proloy P (2011) A Planned Model for a Sustainable Self-Help Group in West Bengal-An Analytic Hierarchical Process Approach. Vilakshan: The XIMB Journal of Managementm 7: 85-98.
- Aruna M, Jyothirmayi R (2011) The role of microfinance in women empowerment; A study on the SHG Bank Linkage Program in Hyderabad (Andhra Pradesh). Indian Journal of Commerce and Management Studies 2: 77-95.
- Sultana S, Hasan SS (2010) Impact of Micro-credit on Economic Empowerment of Rural Women. The Agriculturists 8: 43-49.
- Al-Mamun A, Wahab SA, Mazumder MNH, Su Z (2014) Empirical Investigation on the Impact of Microcredit on Women Empowerment in Urban Peninsular Malaysia. The Journal of Developing Areas 48: 287-306.
- Swain RB, Wallentin FY (2012) Factors empowering women in Indian self-help group programs. International Review of Applied Economics 26: 425-444.
- Krishnamurthy, R., and M. Ratnaparkhi. "Micro- Finance in the New-Economy-India's Experience."*Indian Journal of Agricultural Research*, 2002.*Mohammad Yunus narrates the Grameen Experiences*, Lecture, 2007.
- Puhazhendi, V., and K.C. Badatya.*SHG-Bank Linkage Programme for Rural Poor - An Impact Assessment,* NABARD, 2002.
- Ramakrishna, R.V. *Management Information System (MIS): SHG Bank Linkage Programme*, NABARD, 2006.
- Reddy, A.Amarender., and Dharm Pal Malik. "A Review of SHG-Bank Linkage Programme in India." *Indian Journal of Industrial Economics and Development*, vol. 7, no. 2,2011, pp. 1-10.

Websites
http://www.nabard.org/introduction.asp
http://www.sidbi.com/micro/aboutus.htm
http://rmk.nic.in/chap1.htm
https://www.nabard.org/auth/writereaddata/tender/NABARD%20SMFI%202019-20_compressed.pdf

विवेकी राय जी के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, एवं धार्मिक समस्याओं का अध्ययन

दक्षा मिस्त्री

प्रोफेसर, शोध निर्देशिका, हिन्दी विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा, गुजरात

विरेन्द्र कुमार सिंह

शोधार्थी, हिन्दी विभाग,महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा, गुजरात

शोध संक्षेप

विवेकी राय जी ने अपनी ग्रामीण जीवन के प्रति जो मनोदशा व्यक्त की है उसे पढ़कर ऐसा मालूम होता है कि उनका जीवन दर्शन ग्रामीण परिपेक्ष में अधिक रमा है इस कारण से कहा जा सकता है कि गाँव के विषय में जो बात कही जाती है कि भारत गाँव में बसता है यह बात सौ फीसदी सच है किंतु बड़े पदों पर आसीन होने वाले अधिकारियों नेताओं ने गाँव के ह्रदय मानस कि हमेशा चिंता नहीं की और गाँव आज बिछड़ते और पिछड़ते चले गए जिस प्रकार विवेकी राय जी बताते हैं कि मैं शहरी बनना चाहता था किंतु मेरी दृष्टि गाँव में अधिक रमी और मैं शहर में भी आकर के शहरी नहीं बन पाया क्योंकि वह एक सच्चे कृषक का जीवन भोग चुके थे इसी कारण वे शहर की विभिन्न प्रकार की जालसाजी का जीवन को नहीं भोगना चाहते थे इसी प्रकार शहर में एक दूसरे के नजदीक होते हुए भी लोग आपस में आदर सत्कार नहीं करना चाहते जिस प्रकार गाँव में आते जाते लोग एक दूसरे को स्वत ही राम-राम कर लेते हैं और ह्रदय के विभिन्न पक्षों को एक दूसरे से लगातार साक्षात्कार करते रहते हैं क्योंकि किसान में कृषक अकेला ही कार्य नहीं करता पूरा परिवार के साथ कार्य करता है इसी प्रकार आस-पड़ोस के सभी कृषक मिलजुल कर एक दूसरे के लिए सुख दुख के साथी होते हैं इसी कारण से यह जो मनोदशा विवेकी राय की हुई यह एक सच्चे ग्रामीण जीवन की है और इसमें कहा जा सकता है आज की आधुनिकता वादी सोच जो शहरों में हावी है जो लोग गाँव को छोड़कर आए हैं अक्सर कहते हुए सुने जाते हैं कि देसी खाना और देसी नहाना यह गाँव की बात है क्योंकि गाँव में हर प्रकार के फल फूल सब्जी सब पहुंच में होता है अधिकार में होता है क्योंकि अपनी मिट्टी से जुड़े हुए किसान मनमाफिक चीजों को उगा सकता है और शहर में आदमी इनका मजा लेने के लिए कृषकों पर आश्रित होता है यह कृषक श्रम होता है जिन्हें शहरी लोग भागते हैं। ग्रामीण जीवन की गाथा को प्रकट करने के लिए तो प्रेमचंद ने अपने गोदान उपन्यास ने बखूबी ग्रामीण जीवन को भोगे हुए यथार्थ का चित्रण किया है जो संपूर्ण जीवन को प्रकट करता है जिस पर और भी लिखा जा सकता है किंतु हमें ग्रामीण जीवन की समस्याओं में यथार्थ को भोंकते हुए अपने ऊपर आदर्श की ही बातों में हमेशा रहना पड़ता है जो गाँव की भाग्य रेखा को लिख रहा है।

मुख्य शब्द: ग्रामीण जीवन ईष्या,डाह और पाखण्ड, भावविभोर,यथार्थ का चित्रण.

1.1 प्रस्तावना

ग्रामीण जीवन के प्रति गहरी रागात्मकता उनके लेखन की अपनी एक खास पहचान है। गंवई जीवन के प्रति ऐसा जुडाव हिन्दी के किसी भी निबन्धकार में सर्वथा दुर्लभ रहा है। रेणु के उपन्यासों ने उपन्यास विधा को नई पहचान और एक नया विशेषण 'आंचलिक उपन्यास' दिया, उसी तरह विवेकी राय के निबन्ध भी निबन्ध विधा के भीतर खुद को आंचलिक निबन्ध के रूप मे अलग पहचन दे पाते, यदि आचर्य द्विवेदि और उनके पर्वर्ती निबन्धकारों ने 'ललित निबन्ध' पद को स्वीकार कर सारे व्यक्ति-व्यंजक निबन्धों को इसकी परिभाषा में समहित न कर लिया होता। 'नवनिकष' के विवेकी राय विशेषांक में प्रकाशित अपने आत्मकथ्य में उन्होंने कहा है-"मेरे लेखन की पष्ठ्भूमि ग्राम-जीवन है। वास्तव में वही मेरा जीवन भी है। लगभग आधी उमर धुर देहत के एक गाँव मे गुजारने के बाद एक अत्यन्त पिछडे और छोटे शहर में आया भी तो शहरी नहीं बन पाया। एक पैर गाजीपुर में रहता है तो एक पैर गाँव सोनवानी में रहता है। भारत सरकार की कृपा से गाँव वाले पैर को आराम बहुत है क्योंकि गाजीपुर से गाँव पर जाने के लिए छोटी लाइन के पांचवे स्टेशन ताजपुर-डेहमा पर उतरने के बाद जाडे-गरमी के दिनों में डेढ घंटा पदयात्रा करना अनिवार्य होता है। बाढ-बरसात के दिनो में यह समय दुगुना से ले कर चौगुना तक हो जाता है। सडक एक दु:स्वप्न है। भारत के लाखों गावों की भांति अभी मेरा गाँव भी बिजली और सडक से वंचित है।"(पृष्ठ-7) यही कारण है कि उनके यहां

ग्रामीण जीवन के प्रति गहरी लोक-संसक्ति है। उन्होंने अपने समूचे लेखन में गाँव को बेहद संजीदगी से जिया है। प्रेमचन्द के 'लमही' और विवेकी राय के 'सोनवानी' में फर्क है। लमही बनारस से बहुत नजदीक है और इसलिए शहर से गाँव का लगभग सीधा सम्वाद भी है, गाँव और शहर के बीच सम्वाद की यह झलक प्रेमचन्द के लेखन में बार-बार दिखाई भी देती है। 'गोदान' में भी ग्रामीण और शहरी परिवेश की एक साथ उपस्थिति है। होरी, धनिया, गोबर, मतादीन, सिलिया आदि ग्रामीण पत्रों के साथ ही रायसाहब, मेहता, मालती, खान्ना जैसे नगरीय जीवन के अभ्यस्त पात्र भी हैं। लेकिन, विवेकी राय ने जिस गाँव की बात की है वह इससे अलग है। यदि सीधे-सीधे कहने की सुविधा हो तो यही कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द के यहां ग्रामीण जीवन का चित्रण है और विवेकी राय के यहां गंवई जीवन और परिवेश की आत्मीय उपस्थिति। गंवई जीवन के प्रति उनके जैसी आत्मियता और उसमें घटित होने वाले बदलावों का वैसा सूक्ष्म रेखांकन केवल फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यसों में ही देखा जा सकता है।

विवेकी राय पूर्वाञ्चल के जातीय कथाकार हैं। शिवप्रसाद सिंह के बाद पूर्वी उत्तर प्रदेश की सामाजिक-सांस्कृतिक अवस्थिति को इतने व्यापक ढंग से कथा-साहित्य में उन्होंने ही प्रस्तुत किया।इस अंचल की आबोहवा का निर्माण प्राय: किसान जातियों के द्वारा हुआ है।इसमें दया, करुणा, सहानुभूति और सरलता है, तो ईष्या-डाह और पाखण्ड भी है।विवेकी राय का कथाकार इसी में निर्मित हुआ है।वे इसमें से कुछ चुनते या छांटते-बराते नहीं हैं, बल्कि उसे पूरा का पूरा प्रस्तुत कर देते हैं।जो कहीं कहानी-उपन्यास तो कहीं निबन्ध का रूप धर लेता है।

विवेकी राय का लेखन आजादी के बाद शुरू होता है। 1952 के आस-पास का यह समय है।नई कहानी के प्राय: कहानीकार इसी समय के इर्द-गिर्द लिखना प्रारम्भ करते हैं।नये आजाद हुए देश की रूमानियत और हहाती वास्तविकताएं एक साथ प्रकट होती हैं।एक राष्ट्र बनना शुरू होता है।इसमें कई परम्पराएं, रूढ़ियां, दुर्बलताएं मौजूद हैं।मूल्य और नैतिकता के स्तर पर इस बनते राष्ट्र में पिछड़ापन अधिक है।वह प्राय: वर्णवादी है।आधुनिक मूल्य-बोध से इसकी गहरी टकराहट है।द्वन्द्व, अंतर्विरोध, विसंगतियां इसी टकराहट में जन्म लेती हैं।इस दौर के अन्य कहानीकारों की भांति विवेकी राय भी इससे गुजरते हैं, दर्ज करते हैं। वे उतने व्यवस्थित भले न हों, जितने कि पूर्वाञ्चल के उनके समकालीन अमरकान्त, मार्कण्डेय और शिव प्रसाद सिंह थे।विवेकी राय अंत तक इनके जैसी कथा-भाषा भी प्राप्त नहीं कर पाये, लेकिन पूर्वाञ्चल के जीवन-जगत का व्यापक फलक वे कहीं अधिक छूते हैं।

विवेकी राय की एक और कहानी है, 'बेइमानों के देश में'।यह कहानी एक रूपक कथा के माध्यम से आजादी के बाद की शासन व्यवस्था के भीतर पनपते भ्रष्टाचार को प्रकट करती है। यह कहानी इस पंक्ति के साथ खत्म होती है-कहानी समाप्त होते-होते आधुनिक शासन की आलोचना बन गयी।

यही वर्णवादी वर्चस्व, कृषि संस्कृति और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में भी है।इसे उनकी कहानी, 'रावण', 'मरछिया' आदि में देखा जा सकता है।आजादी के बाद अपनाए गये लोकतन्त्र का मुख्य अंतर्विरोध आधुनिकता और वर्णवादी विरासत के द्वन्द्व से उपजता है।नागार्जुन की एक कविता की पंक्ति, तामझाम है लोकतंत्र काध्लटका है सामन्ती ताला, से इस अंतर्विरोध को समझना आसान होगा।विवेकी राय की कहानियों में लोकतंत्र के तामझाम पर लटके सामन्ती ताले के कई सामाजिक-राजनीतिक व सांस्कृतिक सन्दर्भ मौजूद हैं। 'मांग नहीं सका सोना', 'कानून का दिवाला', 'अपना सपना', 'दमरी की खोज में, 'अतिथि', 'चुनाव-चक्र', 'सामलगमला' आदि कहानियों में यह अच्छे से अभिव्यक्त हुआ है।

1.1.1 ग्रामीण जीवन की अवधारणा

सोनामाटी विवेकीराय: आंचलिकता शब्द अंग्रेजी के 'रिजन' शब्द के पर्याय रूप में प्रयुक्त हुआ है। अंग्रेजी में 'रिजनल नावेल' की सुस्थिर परम्परा रही है। अंचल शब्द का अर्थ किसी ऐसे भूखंड, प्रांत या क्षेत्र विशेष है, जिसकी अपनी एक विशेष भौगोलिक स्थिति, संस्कृति, लोकजीवन, भाषा व समस्याएं हों। एक आंचलिक लेखक एक विशेष क्षेत्र पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है और इस क्षेत्र और वहां के निवासियों को अपनी कथा का आधार बनाता है। आज हम जिस उपन्यास का परिचय देने जा रहे हैं उसके लेखक श्री विवेकी राय जी का कहना है, "'सोनामाटी' की पृष्ठभूमि में पूर्वी उत्तर प्रदेश के दो जिलों, गाजीपुर और बलिया, का मध्यवर्ती एक विशिष्ठ अंचल है करइल। इस अंचल का भूगोल तो सत्य है परन्तु इतिहास अर्थात्प्रस्तुत कहानी में प्रयुक्त करइल क्षेत्र के उन गाँवों और पात्रों आदि के माध्यम से समकालीन जीवन-संघर्ष को चित्रांकित किया गया है। यह संघर्ष किस सीमा तक एक अंचल का है और कहां तक वह व्यापक राष्ट्रीय जीवन यथार्थ से जुड़ा है, इसका निर्णय तो पाठक ही कर सकता है।"

1.2 ग्रामीण जीवन की सामाजिक समस्याएँ

विवेकी राय जी ने अपनी ग्रामीण जीवन के प्रति जो मनोदशा व्यक्त की है उसे पढ़कर ऐसा मालूम होता है कि उनका जीवन दर्शन ग्रामीण परिपेक्ष में अधिक रमा है इस कारण से कहा जा सकता है कि गाँव के विषय में जो बात कही जाती है कि भारत गाँव में बसता है यह बात सौ फीसदी सच है किंतु बड़े पदों पर आसीन होने वाले अधिकारियों नेताओं ने गाँव के ह्रदय मानस कि हमेशा चिंता नहीं की और गाँव आज बिछड़ते और पिछड़ते चले गए जिस प्रकार विवेकी राय जी बताते हैं कि मैं शहरी बनना चाहता था किंतु मेरी दृष्टि गाँव में अधिक रमी और मैं शहर में भी आकर के शहरी नहीं बन पाया क्योंकि वह एक सच्चे कृषक का जीवन भोग चुके थे इसी कारण वे शहर की विभिन्न प्रकार की जालसाजी का जीवन को नहीं भोगना चाहते थे इसी प्रकार शहर में एक दूसरे के नजदीक होते हुए भी लोग आपस में आदर सत्कार नहीं करना चाहते जिस प्रकार गाँव में आते जाते लोग एक दूसरे को स्वत ही राम-राम कर लेते हैं और ह्रदय के विभिन्न पक्षों को एक दूसरे से लगातार साक्षात्कार करते रहते हैं क्योंकि किसान में कृषक अकेला ही कार्य नहीं करता पूरा परिवार के साथ कार्य करता है इसी प्रकार आस-पड़ोस के सभी कृषक मिलजुल कर एक दूसरे के लिए सुख दुख के साथी होते हैं इसी कारण से यह जो मनोदशा विवेकी राय की हुई यह एक सच्चे ग्रामीण जीवन की है और इसमें कहा जा सकता है आज की आधुनिकता वादी सोच जो शहरों में हावी है जो लोग गाँव को छोड़कर आए हैं अक्सर कहते हुए सुने जाते हैं कि देसी खाना और देसी नहाना यह गाँव की बात है क्योंकि गाँव में हर प्रकार के फल फूल सब्जी सब पहुंच में होता है अधिकार में होता है क्योंकि अपनी मिट्टी से जुड़े हुए किसान मनमाफिक चीजों को उगा सकता है और शहर में आदमी इनका मजा लेने के लिए कृषकों पर आश्रित होता है यह कृषक श्रम होता है जिन्हें शहरी लोग भागते हैं। ग्रामीण जीवन की गाथा को प्रकट करने के लिए तो प्रेमचंद ने अपने गोदान उपन्यास ने बखूबी ग्रामीण जीवन को भोगे हुए यथार्थ का चित्रण किया है जो संपूर्ण जीवन को प्रकट करता है जिस पर और भी लिखा जा

सकता है किंतु हमें ग्रामीण जीवन की समस्याओं में यथार्थ को भोंकते हुए अपने ऊपर आदर्श की ही बातों में हमेशा रहना पड़ता है जो गाँव की भाग्य रेखा को लिख रहा है।

1.3 ग्रामीण जीवन की राजनीतिक समस्याएँ

निबन्ध विधा के भीतर भी उनकी पहचान का एक मजबूत आधार ग्रमीण जीवन के प्रति गहरा लगाव है। 'उठ जाग मुसाफिर' संग्रह के दो निबन्ध 'चिन्ता भारत के उजडते गावों की' और 'गाँव पर बनाम गाँव में' तो शीर्षक से ही ग्रामीण परिवेश से जुडाव व्यक्त करते हैं। 'तिनडंडिया चोट से उभरा समय और सवाल' शीर्षक निबन्ध में उन्होंने लिखा है,- "सायंकाल किसी के खेत में 'कोठा' छूट जाने का अनुमान होता, अर्थात लगता कि खेत का कुछ भाग छूट जाएगा, तो कुछ समय पहले काम समाप्त हुए किसी भाई का सहयोग मिल जाता-बिना मांगे भी। एक दिन मुझे भी अकस्मात ऐसा ही सहयोग मिल गया और सूर्यास्त होते-होते 'मेरा कोठा मार दिया गया'। यह प्रेम,भाईचारा,सहयोग और सहकार का अमृत है, जिसे पीकर अकाल पीडित गरीब गाँव जीवित है। साठ-सत्तर साल पूर्व का था यह जीता जागता परिदृश्य। स्वराज्य, विकास, नई खेती, नए ढांचे, नई-नई साधन-सम्पन्नता, सुविधा, नए तन्त्र-यन्त्र और मनी-मन्त्र में फंस किसान निरानन्द और गाँव उदास क्यों हो गए ? यह तुम्हरी कैसी सुराजी विकास की नई यान्त्रिक-व्यापरिक खेती है, जिसने ग्राम-देवता को मार डाला और गाँव भलमानुस-विहीन हो गया? (85-86)। यहां स्वराज, पंचायती राज और समन्वित-विकास की सरकारी होर्डिंगों पोस्टरों और बैनरों से इतर, सरकारी स्लोगनों के ठीक उलट, आज के गाँव की वास्तविक तस्वीर है जो पुरानी पिढी की स्मृतियों के गाँव के रूप में आज के गाँव के सामने डट कर खडी है। लेखक स्मृतियों के उस गाँव को अपने लेखन में फिर से जी रहा है। यह पुरातनता का मोह या उसके पुनर्जीवन कि आकांक्षा नहीं बल्कि, परम्परा के 'अस्ति-पक्ष' को बचाए रखने की एक रचनात्मक जिद है।गाँवों की उपेक्षा और उनसे निरन्तर कटते जाने का आभास महात्मा गांधी को बहुत पहले ही हो गया था। 'हरिजनसेवक' में 30-07-1938 को उन्होंने यह लिखा था-"जिन्हें शिक्षा का सौभाग्य प्राप्त है, उन्हें गावों की बहुत समय से उपेक्षा की है। उन्होंने अपने लिए शहरी जीवन चुना है।" इसके बर-अक्स उन्होंने जिस 'ग्राम-स्वराज' की बात की थी वह उस 'सुराज' से बहुत अलग है, जिसपर विवेकी राय ने व्यंग किया है। उनके सुराज में सहकारी खेती और सहकारी पशुपालन की बात शामिल थी। वे ग्रामीण जीवन के सहयोग और सहकारिता से परिचित थे। उन्होंने गाँवों के लिए एक अहिंसक अर्थव्यवस्था की कल्पना की थी, "अहिंसा की रचना कारखानों की सभ्यता की बुनियाद पर नहीं हो सकती है। मेरी कल्पना की ग्रामीण अर्थ व्यवस्था शोषण का पूरा बहिष्कार करती है और शोषण ही तो हिंसा का सार-तत्व है। इस लिए आपको अहिंसक बनने के लिए पहले ग्रामदृष्टि का विकास करना पडेगा। " (हरिजन सेवक,1.9.1940) स्पष्ट है गांधी 'ग्राम-दृष्टि' और 'ग्राम-जीवन' को नष्ट किए बिना विकास की बात कर रहे थे गाँवों के तथाकथित नगरीकरण और आधुनिकीकरण के नाम पर संसाधनों से लेकर जीवन तक अन्धाधुन्ध यांत्रिकीकरण की नहीं। विवेकी राय की चिन्ता इसी 'यान्त्रिकीकरण' के विरोध से जन्मी है। पुराने जमाने की बात करते हुए उक्त अंश में विवेकी राय जिस रागत्मकता को रेखांकित कर रहे हैं, वह आज यांत्रिक होते ग्रामीण जीवन के कारण क्रमशः छीजती जा रही है-" इसी करवट में ग्राम-विकास की बढती गाडी गावों के उजाड तक पहुंची। विकास तन्त्र, नवजीवित जातिवाद, चुनाव की राजनीति। इन चार रास्तों से चार चोर शनैः शनैः काल्क्रम से, छद्म वेश में घुसे गावों में। गाँव बेपहचान हो गया। उसकी सामजिक एकता, पारस्परिक राह-रस्म। भाईचारा और भोज-भात की अन्यतम विशेषताएं तथा ग्राम-भाव के केंद्रीय तत्व-स्वरूप सांस्कृतिक परंम्पराएं सबकुछ घिस-पिट बदरंग हो समाप्त प्राय है। "(पृष्ठ-88) उनकी चिन्ता इन छीजते हुए जीवन-मूल्यों को बचाने की चिन्ता है जो एक बाहरी आदमी के लिए सम्भव नहीं, उसके लिए गाँव या तो पिकनिक-स्पाट है या तमाम कुरूपताओं, विसंगतियों और विडम्बनाओं की शरणस्थली। वह या तो उसे संरक्षित करना चाहता है, या फिर बदलना। लेकिन विवेकी राय के निबन्ध उससे जुडने, उसे अनुभव करने और जीने के लिए आमंत्रित करते हैं।

1.4 ग्रामीण जीवन की आर्थिक समस्याएँ

विवेकी राय का मन गाँव-घर और सिवान-मथार में खूब रमा है। अर्ध-नगरीय कस्बाई जीवन से आ जुडने के बावजूद, वह अब भी उनकी सैर करने निकल जाता है। निबन्ध उनकी इसी मनोयात्रा के सहचर हैं। गाँवों के प्रति गहरा आकर्षण बल्कि, मोह की स्थिति के कारण प्रायः यह महसूस होता है कि उनके यहां एक ही विषय का अतिशय दोहराव है और वे इससे बाहर नहीं निकल पाए हैं। लेकिन यह एक सतही अनुभव है। उनके निबन्धों में आहिस्ते-आहिस्ते उतरा जाय तो ऊपर से बहुत सरल और सीधे लगने वाले या रोचक लालित्यपूर्ण निबन्ध भी बहुत गहरी अर्थ-व्यंजकता, उदात्त जीवन-दर्शन और सामजिक-बोध से सम्पन्न हैं। गाँव उनके लिए शहस्र-शीर्षा, शहस्र-पाद भारत की एक लघु इकाई हैं। कहा जाता है, एक चावल देख कर तसले के भात के पकने का अंदाजा लग जाता है, गाँव तसले के उसी चावल की तरह हैं जिनसे भारत में हो रहे बदलावों की नब्ज टटोली जा सकती है। विवेकी राय गाँवों के बहाने पूरे भारत की बात करते हैं। भूख, बेरोजगारी, बेकारी, शोषण और भ्रष्टाचार जैसी तमाम समस्याएं, उनके यहां इसी माध्यम से व्यक्त हुई हैं। 'फिर बैतलवा डाल पर' संकलन के 'सोने की लूट' निबन्ध में गाँव के दशहरे के बहाने उन्होंने सामजिक-यथार्थ के अनेक धूप-छाहीं रंगों को मिलाकर ललित निबन्ध के फलक पर भारतीय जीवन का एक वास्तविक चित्र अंकित किया है "अब मेरे सामने यह मुट्ठीभर मिट्टी है।यह मिट्टी नहीं लंका का सोना है। सकल विश्व-सम्पदा की राशि को चाकर रखने वाला रावण जल गया। उसकी सोने की लंका में 'रहा न कुल कोऊ रोवनिहारा'। रामराज्य का श्रीगणेश हो गया। काश कि वह दिन दूर न होता जब विश्वमंच पर शोषण,बर्बरता,अन्याय। धर्मान्धता और पैशचिकता के दशानन का बध होता" (फिर बैतलवा डाल पर,44)। यह एक स्वप्न है, एक शुभाकांक्षा है, जो उनके निबंधों में बार-बार ध्वनित होती है, 'ग्राम-जीवन' इसी स्वप्न की अभिव्यक्ति का एक माध्यम है और ऐसा शायद इसलिए कि यहां नगरीय जीवन से कम जतिलताएं हैं और सहज मानुस-भाव अब भी कुछ-न-कुछ हद तक बचा हुआ है-" रामलीला है, त्यौहारी उल्लास हैं, उर्जस्वित अखाडे हैं, आह्लादक मंगलिक गीत हैं, एक परिवार का मंगलिक महोत्सव जैसे पूरे गाँव का है। सह जीवन सामूहिकता और सहयोग-भाव सर्वोपरि है। ऐसा तो एक दम नहीं हमसे क्या मतलब?" (पृष्ठ,98)। लेकिन, इन स्थितियों के भीतर भी आधुनिकता ने एक फांक पैदा कर दी है। मांगलिक गीतों की धुन फिल्मी गीतों के तिलिस्म में कहीं खोती जा रही है। कंहरुआ,लोरकी,बिरहा से लेकर विवह गीत, सोहर और देवी गीत तक धीरे -धीरे संग्रहालयों की ओर रुख कर रहे हैं। 'मास-कल्चर' और 'पपुलर कल्चर' के वर्तमान दौर में देशीय गंवई परंपराओं की बहुरंगी संस्कृति, 'फिल्मी

कल्चर' के छतनार वृक्ष के नीचे 'बोनसाई' जैसी या एकरूपता के नीरस असीमित विस्तार के बीच किसी 'ओएसिस'(मरुद्यान) की तरह भूले भटके ही दिखाई दे जाती है। विवेकी राय के शब्दों में, "गाँव नकलबाजी में शहर का कर्टून बनकर रह गया है"(पृष्ठ,89)

'उठ जाग मुसाफिर' को पढते समय कभी यह अनुभव होता है कि अपने ही गाँव का कोई बडा-बुजुर्ग, कोई पुरनिया नई पीढी के किसी पढे-लिखे युवक को अपनी स्मृतियों की दुनिया की सैर करा रहा है तो कभी लगता है कि 'कविर्मनीषी परिभूस्वयंभू' को चरितार्थ करता हुआ कोई लेखक आधुनिक गंवई जीवन की संहिता का दर्शन (ऋषयः मंत्र द्रष्टारः) कर उसके मंत्रों का गान कर रहा है। फर्क यह है कि ये मंत्र आदिम मन के मुग्ध-गायन नहीं जैसा कि वैदिक ऋचाओं के सम्बन्ध में माना जाता है, बल्कि लेखक ने यहां असहमतियों के लिए प्रर्याप्त छूट ली है। वह स्वयं उनका भाष्य भी करता चल रहा है। इस पूरी प्रक्रिया में लेखक का 'किसान-मन' अत्यन्त सजग है। इसलिए खेती-बारी, घर-दुआर, गाँव-जवार की ही बात नहीं करता बल्कि, वह ऋतु और मौसम की, बतास और बयार की खबर भी रखता है। जब वह प्रकृति में रमता है, तो निरन्तर डूबता जाता हैय आकण्ठ नहीं आपद-मस्तक। उसका दर्शन ही है- 'ज्यों-जों बूडे श्याम रंग त्यं-त्यं उज्ज्वल होय'। बिना इसके ग्रिष्म जैसे भुतहे मौसम में 'बहार' (ग्रिष्म बहार) की कल्पना कहां संभव है ? एक किसान ही है जिसे इस मौसम में भी मजा लेने की आदत है। चौती कटी है, बाग में महुए की मादक गन्ध है, आम के टिकोरे हैं, जौ या चने का सत्तू और आम की चटनी या 'पन्ना' है। बारहों महीने यह मौज कहां-कभी फांका और कभी आधा-पेट। लेखक आज की 'अपरिचित' गरमी के बीच उन्हीं दिनों की याद कर रहा है- "किसी बगीचे में पेड के नीचे आराम से सोते-बैठते, हंसते-बोलते लू भरी दोपहरी कट जाती। अब न बाग न वृक्ष ! झंखन में अचेत पडे-पडे भीतर-ही-भीतर गुनावट में डूबे हैं गाँव या शहर के वृद्धजन!"(पृष्ठ-62)। किसान का प्रकृति से गहरा नाता है। वह भी उसके परिवार की एक सदस्य है- "गाँव के बाहर कचनार अमराइयां हैं, चीं-चीं चहचह से गुलजार बंसवारियां हैं। वृक्ष देवता भी मानवी रिश्तों में बंधे हैं। नया लगाया गया बाग फलदार होने लगा तो उसका विधिवत विवाह हुआ। लगाने वाला व्यक्ति फल नहीं खाएगा" (पृष्ठ-98)। यह है किसान और प्रकृति का रिश्ता। यहां मानव विजेता और प्रकृति विजित नहीं है। डार्विन के 'श्रेष्ठतम् की उत्तरजीविता' और सम्भावनावादी भूगोलवेत्तओं का मनव-प्रकृति संबंध यहां लागू नहीं है। यहां मानव उपभोक्ता और प्रकृति उपभोज्य नहीं है। दोनों में रागात्मक संबन्ध है, साहचर्य और आत्मीयता है। विवेकी राय की चिन्ता मानव और प्रकृति के बीच इस साहचर्य और आत्मीयता को बचए रखने की चिन्ता है। यही गांधी के अहिंसा दर्शन की भी विशेषता है। ये दोनों ही 'ईशावास्योपनिषद्' के इस श्लोक से प्रभावित जान पडते हैं

'उठ जाग मुसाफिर' प्रख्यात साहित्यकार विवेकी राय द्वारा विरचित ललित निबंध संग्रह है। इस संग्रह में कुल दस निबंध संकलित हैं जो अपने कलेवर में जीवन और जगत के अनेक अनुभवों से परिपूर्ण हैं। विवेकी राय हिंदी जगत के उन गिने-चुने साहित्यकारों में से हैं जिन्होंने ग्रामीण जीवन के यथार्थ को अपने साहित्य का आधार बनाया। वे जिस अंचल में रहते हैं वह अंचल ही उनके साहित्य का प्रेरणा स्रोत है, वही शब्द है, वही छंद है, वही राग है और वही साज और आवाज है। वहाँ की बोली-बानी, तीज-त्योहार, रहन-सहन, दुख-दर्द, आशा-निराशा, छल-छद्म को वहाँ की सामाजिक पहचान के साथ, उसकी तह तक जाकर अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया है। यह निबंध संग्रह उनके रचनात्मक विकास का बहुत ही महत्वपूर्ण चरण है। जिस तरह से उन्होंने अपने अनुभवों की प्रामाणिक अभिव्यक्ति अपने कथा-साहित्य में की है उसी तरह से अनुभव के लालित्य को इन निबंधों में अत्यंत रोचक तरीके से व्यक्त किया है। ग्रामीण जीवन का लालित्य यहाँ चिंता के रूप में भी आया है।

1.5 ग्रामीण जीवन की धार्मिक समस्याएँ

अंचल विशेष को आधार बनाकर रची जाने वाली औपन्यासिक कृति सहज ही आंचलिक उपन्यास मान ली जाती है। विवेकी राय की कहानियों में उत्तरप्रदेश के गाँवों का बड़ा सजीव चित्रण हुआ है। उन्हें ग्रामीण जीवन का कुशल चितेरा कहा जाता है। वे गावों से हमेशा जुड़े रहे। गाजीपुर और उसके आसपास के गावों का उन्हें विशद अनुभव है। प्रस्तुत उपन्यास "सोनामाटी" भी गाँवों से जुड़ा है। इसमें विस्तृत ग्रामांचल की कहानी है जो गाजीपुर और बलिया के बीच फैला है। आज के टूटते-बिखरते गाँव का सम्पूर्ण सत्य उन्होंने इस उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत किया है। गाँवों में व्याप्त मूल्यहीनता की बात इसमें बहुत ही मार्मिक ढंग से कही गई है। पैसे की संस्कृति से गाँव भी अछूता नहीं है। रामरूप उपन्यास का मुख्य पात्र है। वह जीवन-मूल्यों में विश्वास रखता है। लेकिन वह आज के परिवेश में अपने को मजबूर और कमजोर पा रहा है। उसका ससुर हनुमान प्रसाद रावण की भूमिका निभाता है।

इस उपन्यास की एक नारी पात्र है, कोइली। सुग्रीव से उसे प्यार है। कोइली को सुग्रीव चार हजार रुपए में खरीद कर लाया है। वह दगाबाज निकलता है। उसे हनुमान प्रसाद के हवाले कर देता है। हनुमान प्रसाद उससे शादी करना चाहता है। लेकिन उसके घर में कोइली को अनेक यातनाएं सहनी पड़ती हैं। अतः एक रात वह वहां से भाग खड़ी होती है। भागने के क्रम में वह रामरूप से टकराती है। रामरूप उससे पूछता है, "बता, तू कौन है?"

वह बताती है, "आप की ही एक करमजली बेटी।''।

वहां से निकल कर वह बढ़ारपुर के रामसुमेर नाम के बूढ़े के पास शरण लेती है। रामरूप अपने अध्यापक मित्र की सहायता से उससे मिलने जाता है तो देखता है कि कोइली को भीतर बंद करके घर में ताला लगाया गया है। जब रामरूप ताला खोलकर उससे मिलता है तब वह उससे कहती है, "अपने गरीब बाप के घर जवान हुई तब से हर आदमी हमारे पास 'खास' काम के लिए ही आया है मास्टर जी। यहां एकदम एकान्त है। कहिए, सेज लगा दूं, अपने को सौंप दूं? एक बेटी और कर क्या सकती है? यदि सुग्रीव जी की तरह आप भी कहीं और सौदा कर आए हों तो 'राज सुख भोग' के लिए उस पांचवें बाबा के पास आपके साथ चलूं?।"

असहाय स्त्री की दयनीय स्थिति व पूरी त्रासदी को बयान करता है यह वक्तव्य। इस उपन्यास में कोइली का अंकन बड़ा ही मर्मस्पर्शी है। वह एक बूढ़े के साथ जुड़ती है, स्वाभिमान की रक्षा के लिए और सारी लालसायें मसलकर रख देती है। उसके अंकन में अत्यन्त आधुनिक संवेदना का स्पर्श मिलता है। सर्वहारा की पहचान तो उसकी पीड़ा है। लेकिन इसमें भी एक बात निश्चित है कि इस वर्ग की स्त्री सबसे पीड़ित होती है। वह समाज की वासना का शिकार भी होती है। हर किसी के द्वारा शोषित और त्रस्त जीवन उसका नसीब हुआ करता है। एक पुरुष सत्तात्मक समाज स्त्री के बारे में कितना नृशंस और अत्याचारी हो सकता है, इसका प्रमाण विवेकी राय जी के इस उपन्यास में मिलता है।

गिरोहबाजी आज की राजनीति का यथार्थ है। उपन्यास में रामरूप की प्रतिबद्धताओं के समानान्तर उसका अभिन्न मित्र भारतेन्दु इस गिरोह का सदस्य हो जाता है। वह रामरूप को उसके परिवार से अलग कर रहा है। राजनीति का यह आज का रूप रामरूप को व्यक्ति और समाज दोनों ही स्तरों पर अकेला करता जा रहा है।

"धूर्त राजनीतिज्ञों की काली राजनीति के उद्देश्यों के लिए मानवीयता की बलि चढ़ जाती है। रातोंरात निर्लज्ज दलबदल हो जाता है। किसे उम्मीद थी कि दो शरीर एक प्राण सरीखे रहने वाले भारतेन्दु और रामरूप आमने-सामने दो विरोधी शिविर लगाकर बैठ जाएंगे।"

विवेकी राय जी ने इस उपन्यास के माध्यम से यह दर्शाया है कि आजादी के बाद की राजनीति का बिल्कुल ही विघटित रूप गाँवों तक पहुंच गया है। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के आपसी सम्बन्ध के निर्धारण में राजनीति की सक्रिय भूमिका है। आज राजनीति समाज के सामूहिक हित के अपने लक्ष्य से हटती जा रही है। अब उसने स्वार्थी, असत्य, अनैतिक विघटित तत्वों से खुद को जोड़ लिया है। इस तरह वह गिरोह में बदल गई है। गाँवों में आजादी के बाद का यही विघटित रूप वहां के समाज पर हावी हो रहा है। आंचलिकता जिस ऐतिहासिक चेतना से प्रतिफलित होती है उसमें राजनीति की भूमिका रचनात्मक है। किन्तु "सोनामाटी" में हम जिस राजनीतिक यथार्थ से रू-ब-रू होते हैं, वह आज की राजनीति के अमानवीय हो जाने की गवाही देता है।

लेखक विवेकी राय का गाँव की जनता, विशेषकर किसान जनता के दुख-सुख से गहरा सरोकार है। उनके इस गहरे सरोकार के कारण ही "सोनामाटी" की रचना हुई है। गाँव की जनता संघर्षशील है। उपन्यास में लेखक का सर्वाधिक ध्यान अंचल विशेष की जन-चेतना को चित्रित करने पर केन्द्रित है। उन्होंने जन-सामान्य के प्रति हार्दिक संवेदना महसूस करते हुए चित्रित किया है। साथ ही साथ करइल अंचल की लोक संस्कृति भी सहज रूप से अंकित होती चलती है। समय और समाज ने एक मास्टर को अकेले जूझते और समझौता करते छोड़ दिया है। यही गाँव के बुद्धिजीवी की नियति है। गाँव के रावण का अंकन बहुत ही सशक्त है। लगता है, राम कहीं हिरा गये 'राम का हिरा जाना' मतलब आज रामराज कहीं खो गया है।

एक बैठक में पढ़ जाने लायक किताब है यह। ग्रामीण जीवन की जटिल सच्चाई को उसकी सम्पूर्णता के साथ रचनात्मक स्तर पर प्रस्तुत करना विवेकी राय जैसे कलम के जादूगर से ही संभव है। गहरी निष्ठा और असीम धैर्य के साथ, चकित कर देने वाले संतुलन और सामंजस्य के साथ उन्होंने गाँव के विभिन्न पात्रों को चित्रित किया है। इस उपन्यास के शिल्प में गजब की किस्सागोई और व्यंजकता है। भाषा में आंचलिक शब्दों का प्रयोग समाज के मिजाज और उसके विशेष सांस्कृतिक पक्ष को सामने लाता है। यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि इस उपन्यास को पढ़ना एक अंचल, एक समाज, एक देश और एक समय के साथ विचारोत्तेजनाओं के रोमांच के बीच से गुजरना है।

1.6 निष्कर्ष

डॉ. विवेकी राय जी- इन कथा -आन्दोलनों से मैं जान बूझकर ही नहीं जुड़ा क्योंकि मैं उस आन्दोलनी के खोखलेपन को बहुत निकट से देख रहा था। वे आन्दोलन ऐसे थे जैसे उस दौर की राजनीतिक नारेबाजियाँ। मैं स्पष्ट देख रहा था कि एक ही व्यक्ति कई-कई कथा आन्दोलनों में शामिल रहता था। मैं यह भी स्पष्ट रूप से देख रहा था कि हिन्दी कहानी इन आन्दोलनों के सहारे नहीं बल्कि अपनी शक्ति से आगे बढ़ रही है। ये आंदोलन वाले कहानी के मूल धर्मों को अपने ऊपर नहीं बल्कि अपनी नवीनताओं तथा अपनी नयी मुद्राओं को कहानियों के ऊपर आरोपित कर अपने प्रचार का झण्डा बुलंद करते रहे। वास्तव में यह सब एक प्रकार से आत्मप्रचार का साधना मात्र था, जिससे मुझे कुछ भी लेना-देना नहीं था। हाँ ! इतना तो अवश्य मानना पड़ेगा कि इन आंदोलनों से कहानी साहित्य में कोई क्षति नहीं हुई बल्कि गहमा-गहमी के इस वातावरण से कथा-साहित्य के विकास में कुछ लाभ ही हुआ।

विवेकी राय अपने नाम के अनुकूल निर्मल, विवेकी और विनोदी हैं। हंसी-मजाक से दूसरों को प्रसन्न रखते हैं। 'मनबोध मास्टर' का व्यंग्य और उपहास विवेकी राय के अंतरंग में मौजूद है। लेकिन उनका व्यंग्य छिछला या मात्र उपहास नहीं होता है। वह सात्विक, निर्मल और विवेकपूर्ण होता है।

सरलता, सादगी, निश्चल वृत्ति और सच्चाई विवेकी राय की स्वभावगत विशेषताएं हैं। उनके बोलने का ढंग, अदब और शैली में सरलता है। यह सरलता सामने वाले को भावविभोर करती है। उनके स्वभाव की निश्चलता के बारे में डॉ. सत्यकाम अपना अनुभव बताते हैं, हां, एक बार बिजली कटने पर पंखा भी झलने लगे थे। मैंने हाथ पकड़ लिया। वे मुस्कुराने लगे सहज निश्चल हंसी। मैं मंत्रमुग्ध-सा उन्हें देखता रहा। फिर जोर से उन्होंने ठहाका लगाया। मैं अचंभित। उन्होंने कहा, 'मैं सबको ठंड़क पहुंचाता हूं। सारे समाज। सारे देश को। आपको भी पहुंचा रहा हूं तो क्या हर्ज है।' विवेकी राय का स्वभाव असाधारण होने का परिचय प्रस्तुत कथन देता है। (माटी की महक, प. 8) वेदप्रकाश अमिताभ उनके स्वभाव पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं, किसी तामझाम या आधुनिक सजावट से रहित एक कमरे में साधारण वेशभूषा, किंतु असाधारण व्यक्तित्व के धनी विवेकी राय से मिलना कोई 'उत्तेजना' नहीं पैदा करता, अपितु एक विशेष प्रकार का संतोष देता है। (माटी की महक, पृ. 38) यहीं संतोष उनके साहित्य में नजर आता है।

विवेकी राय भीड़-भाड़ की दुनिया से कोसों दूर हैं। वे साहित्य की दलगत राजनीति से भी दूर हैं। किसी के साथ शत्रुता नहीं और किसी के साथ हद से ज्यादा दोस्ती नहीं। वे अपने-आप में मस्तमौला और अपने काम से मतलब रखने वाले एकांतप्रिय व्यक्ति हैं। प्रशंसा या शिकायत सुनने के लिए वक्त भी नहीं है। वे हमेशा अपने कार्य में व्यस्त रहते हैं।

विवेकी राय के अभिव्यक्ति के मुख्य विषय भाषा, संस्कृति, गाँव और राष्ट्र हैं। उन्होंने भाषा की वर्तमान स्थिति पर कई निबंध और कहानियों में चर्चा की है और सरकार की भाषा संबंधी गलत नीतियों की आलोचना भी की है। विवेकी राय भोजपुरी-प्रेमी और हिंदी-सेवी रहे हैं। भोजपुरी के शब्द, कहावतें और मुहावरें हिंदी साहित्य के सौंदर्य में और भी अधिक निखार एवं सरसता लाते हैं। संस्कृति के अध:पतन पर भी उनका मौलिक चिंतन हैं। परिवर्तित गाँव और आधुनिकता के कारण भारतीय संस्कृति अपना अस्तित्व खोती जा रही है। यह गाँव के लिए ही नहीं, देश के लिए भी खतरा है। 'सोना माटी' में इस पर विस्तृत चर्चा की है। इसके साथ ही 'समर शेष है' 'लोकऋण', 'बबूल', 'श्वेत-पत्र' और 'मंगलभवन' में लोकगीत, लोककथाएं, लोकप्रथाएं, रस्म-रिवाज, राष्ट्रगीत आदि प्रचूर मात्रा में है।

'श्वेत-पत्र' का स्वतंत्रता आंदोलन, 'लोकऋण' के गिरीश का दु:ख, 'समर शेष है' में चित्रित शिक्षा की अव्यवस्था और गंदी राजनीति, 'मंगलभवन' की राष्ट्रीय भावना, 'नमामि ग्राम' में गाँवों की बिगड़ती तस्वीर, निबंधों के 'मनबोध मास्टर' की छटपटाहट आदि गाँव और देश के प्रति लेखक की प्रतिबद्धता को स्पष्ट करते हैं। विवेकी राय लिखते हैं, अत्यधिक आत्मीयता और अभिन्नता होने के कारण गाँव मेरे सामने सदेह रूप में प्रकट होता है और पीड़ा प्रकट करता है। उसका नकारात्मक दृष्टिकोण, उसकी उलझनें और उनके क्षोभ भरे तर्क और वक्तव्य चौकाने वाले होते हैं। गाँव के आदेश से ही उसके वक्तव्य लिखकर मैं अपने पाठकों तक पहुंचना चाहता हूं। (नमामि ग्राम, पृ. 5)

गाँव के प्रति आत्मीय भाव ही राष्ट्र की व्यापक परिकल्पना को स्पष्ट करता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अंतिम दशक के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का चित्रण- डॉ. मोहम्मद जमील अहमद- अन्नपूर्ण प्रकाशन, कानपुर- प्रथम संस्करण- 2006.
2. अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों का समान शास्त्रीय अध्ययन-डॉ. गोरखनाथ तिवारी- अन्नपूर्ण प्रकाशन- प्रथम संस्करण- 2008.
3. अक्षर बीज की हरियाली में- डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ- विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी- प्रथम संस्करण- 2002.
4. आंचलिक उपन्यास एकता की खोज- डॉ. आण्टणी पि.एम. जवाहर पुस्तकालय, मधुरा-प्रथम संस्करण- 1993.
5. आंचलिक उपन्यासों में ग्राम्य जीवन-डॉ. उत्तम भाई पट्टेल- क्वालिटी बुक्स एण्ड पब्लिशर्स, कानपुर- प्रथम संस्करण- 1988.
6. आंचलिक उपन्यास और उनके शिल्पविधि- डॉ. आदर्श सक्सेना सूर्यमंदिर प्रकाशन, बीकानेर, राजस्थान- प्रथम संस्करण- 1971.
7. आंचलिक उपन्यास और रेणु- डॉ. सत्यनारायण उपाध्याय- संजय प्रकाशन, बुलानाला, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1980.
8. आंचलिकता और आधुनिकता बोध-डॉ. भगवती प्रकाश शुल्क ग्रन्थ प्रकाशन, कानपुर- प्रथम संस्करण 1972.
9. आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास-डॉ. नगीना जैन- अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड- प्रथम संस्करण- 1976.
10. आंचलिकता की कला और कथा साहित्य-डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्रा- प्राची प्रकाशन, दिल्ली- प्रथम संस्करण- 1981.
11. आंचलिक उपन्यास संवेदना और शिल्प-डॉ. ज्ञानचंद गुप्त अभिनव प्रकाशन, दिल्ली- प्रथम संस्करण- 1975.
12. आज का हिन्दी उपन्यास-डॉ. इन्द्रनाथ मदान- राजकमल प्रकाशन, दिल्ली- प्रथम संस्करण- 1966.
13. आज का हिन्दी उपन्यास: संवेदना और दृष्टि-डॉ. रामदरश मिश्र- अभिनव प्रकाशन, दिल्ली- प्रथम संस्करण- 1975.
14. आठवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में आधुनिकता बोध-डॉ. शोभा देश पाण्डे- चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर- प्रथम संस्करण- 2008.
15. आधुनिक परिदृश्य: आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास-विद्या सिन्हा- वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- प्रथम संस्करण- 2001.

माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण एवं कल्याण: एक सामाजिक-विधिक विश्लेषण

डॉ० विश्व नाथ शर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर, क्लासिक कालेज आफॅ लॉ, बरेली

सार

एक समाज में बुजुर्ग लोग गरीबी, अकेलेपन, उपेक्षा, दुर्व्यवहार और परित्याग से पीड़ित होते हैं और उन्हें अपनी बुनियादी जरूरतों के लिए अपने संसाधनों का उपयोग करना बहुत मुश्किल लगता है जिससे वे उन्हें बनाए रखने में असमर्थ या अनिच्छुक होते हैं। इस प्रकार, भारत में विधवाओं, विधुरों और नि:संतान बुजुर्ग भी हीन और दयनीय स्थिति में हैं। वृद्ध व्यक्तियों के कल्याण को सुनिश्चित करने की प्रतिबद्धता की पुष्टि करने के लिए जनवरी 1999 में वृद्ध व्यक्तियों पर राष्ट्रीय नीति की घोषणा की गई थी। इस प्रकार, भारत में माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों की बढ़ती समस्याएं चिंता का विषय हैं। इस पत्र में माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण और कल्याण पर सामाजिक-विधिक विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्द: रखरखाव और कल्याण; वरिष्ठ नागरिकों; सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार; अंतर्राष्ट्रीय वाचा।

परिचय

इन दिनों समाज में लोग तेजी से भौतिकवादी होते जा रहे हैं। अधिकांश बुजुर्ग गरीबी, अकेलेपन, उपेक्षा, दुर्व्यवहार और परित्याग से पीड़ित हैं और उन्हें अपनी सबसे बुनियादी जरूरतों के लिए संसाधन जुटाना मुश्किल लगता है क्योंकि उनके बच्चे या तो असमर्थ हैं या उन्हें बनाए रखने के लिए तैयार नहीं हैं। इस बढ़ती हुई समस्या को दूर करने के लिए, भारत सरकार, एजिंग डिवीजन राज्य सरकारों, गैर-सरकारी संगठनों और नागरिक समाज के निकट सहयोग से वरिष्ठ नागरिकों के लिए कार्यक्रमों और नीतियों को विकसित और कार्यान्वित करता है। भारत में वृद्ध व्यक्तियों के लाभ के लिए जनवरी 1999 में राष्ट्रीय नीति की घोषणा की गई थी ताकि वृद्ध व्यक्तियों की भलाई सुनिश्चित करने की प्रतिबद्धता की पुष्टि की जा सके। 2007 तक विशेष रूप से वरिष्ठ नागरिकों के लिए कोई विशेष या अलग कानून नहीं था। भारत सरकार ने माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के रखरखाव और कल्याण अधिनियम (एम.डब्ल्यू.पी.) 2007 को अधिनियमित किया। इसके तहत बच्चों और उत्तराधिकारियों के लिए मासिक भत्ता प्रदान करके वरिष्ठ नागरिकों और माता-पिता को रखरखाव की पेशकश करना अनिवार्य है जो कि वृद्ध व्यक्तियों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा हेतु सरल और सस्ती व्यवस्था है।[1] यद्यपि एमडब्ल्यूपी अधिनियम 2007 में लागू हुआ था और तब से एक दशक से अधिक समय बीत चुका है, भारत सरकार या राज्य सरकारों द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए गंभीर प्रयास नहीं किए गए हैं कि बुजुर्गों और वृद्धावस्था देखभाल के लिए चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं। बुजुर्ग न केवल संविधान द्वारा बल्कि एमडब्ल्यूपी अधिनियम के प्रावधानों द्वारा गारंटीकृत अपने मानवाधिकारों से अवगत नहीं हैं क्योंकि एक तरफ माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों की समस्याएं दिन-ब-दिन बढ़ रही हैं, दूसरी तरफ सुप्रीम कोर्ट के कुछ मामले दर्ज हैं। वृद्ध माता-पिता को उनके बच्चों द्वारा उपेक्षित किया जा रहा है और उन्हें या तो वृद्धाश्रम में या अपने ही घर में एक अर्थहीन और दर्दनाक जीवन जीने के लिए मजबूर किया जा रहा है। वरिष्ठ नागरिकों की इन समस्याओं के लिए मौजूदा कानून और सामाजिक कल्याण के उपाय और उनका कार्यान्वयन पर्याप्त नहीं हो सकता है। इस प्रकार, भारत में माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों की बढ़ती समस्याएं चिंता का विषय हैं।[2]

वृद्ध माता-पिता के जीवन में बदलाव के कारण वैश्वीकरण की भूमिका

औद्योगीकरण, शहरीकरण और वैश्वीकरण ने जीवन के तरीके को बदल दिया है और पारंपरिक समाजों द्वारा पोषित मूल्य प्रणालियों में ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में लोगों के प्रवास की प्रवृत्ति देखी जा रही है, जिसके परिणामस्वरूप शहरी क्षेत्रों में संयुक्त परिवार प्रणाली का ह्रास हुआ है। इसके अलावा संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन हुआ और एकल परिवारों के गठन में तेजी आई। समाज और उसके लोग तेजी से भौतिकवादी हो गए हैं। वर्तमान परिदृश्य में काम पर जाने वाली महिलाओं की संख्या में वृद्धि का भारत में पारिवारिक संरचना की गतिशीलता पर भी प्रभाव पड़ता है। परिवार में इस तरह के बदलावों का दूसरा आयाम बुजुर्गों से युवा पीढ़ी तक घरों में सत्ता का परिवर्तन रहा है। स्वतंत्रता और व्यक्तिवाद की गहरी भावना के साथ कैरियर उन्मुख युवा पुरुषों और महिलाओं ने संयुक्त परिवार प्रणाली के लिए मौत की घंटी बजा दी है और काफी हद तक बुजुर्गों को हाशिए पर डाल दिया है। वृद्ध माता-पिता अपने बच्चों से कुछ प्राप्त करना चाहते हैं जिनके लिए उन्होंने अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया है लेकिन बच्चे अपने बच्चों को एक सुंदर जीवन देने में व्यस्त हैं। जबकि अधिकांश बुजुर्गों की देखभाल बच्चों द्वारा की जाती है, कई लोग गरीबी, अकेलेपन, उपेक्षा, दुर्व्यवहार और परित्याग से पीड़ित हैं और उन्हें अपनी सबसे बुनियादी जरूरतों के लिए संसाधन जुटाना मुश्किल लगता है क्योंकि उनके बच्चे या तो असमर्थ हैं या उन्हें बनाए रखने के लिए तैयार नहीं हैं।[3]

इस बढ़ती हुई समस्या का समाधान करने के लिए, भारत सरकार, सामाजिक न्याय और अधिकारिता विभाग के सामाजिक रक्षा ब्यूरो में वृद्धावस्था प्रभाग राज्य सरकारों, गैर-सरकारी संगठनों और निकट सहयोग से वरिष्ठ नागरिकों के लिए कार्यक्रमों और नीतियों को विकसित और कार्यान्वित करता है। वरिष्ठ नागरिकों के लिए कार्यक्रमों का उद्देश्य वृद्धाश्रमों, डे केयर सेंटरों, मोबाइल चिकित्सा इकाइयों आदि का समर्थन करके, विशेष रूप से गरीब वरिष्ठ नागरिकों के लिए उनके कल्याण और रखरखाव का लक्ष्य है। प्रभाग एक केंद्रीय क्षेत्र की योजना, "वृद्ध व्यक्तियों के लिए एकीकृत कार्यक्रम" को लागू कर रहा है, जिसे 2008 में संशोधित किया गया था और वरिष्ठ नागरिकों के कल्याण के लिए नई नवीन परियोजनाओं को शामिल किया गया था। इसके अलावा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सहानुभूतिपूर्ण कार्यक्रमों के अनुसार, वृद्ध व्यक्तियों के कल्याण को सुनिश्चित करने की प्रतिबद्धता की पुष्टि करने के लिए जनवरी 1999 में वृद्ध व्यक्तियों पर राष्ट्रीय नीति की घोषणा की गई थी।[4] इस नीति ने कुछ अधिकारों को मान्यता दी वृद्ध लोगों को स्वास्थ्य सुविधाओं के साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने और वृद्ध लोगों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के प्रति सरकार की जिम्मेदारी की घोषणा की गई। 2007 तक विशेष रूप से वरिष्ठ नागरिकों के लिए कोई विशेष या अलग कानून नहीं था। भारत सरकार ने 9 मार्च, 2007 को लोकसभा में माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण और कल्याण विधेयक 2007 पेश किया गया।[5]

माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के रखरखाव और कल्याण अधिनियम 2007 का अधिनियमन भारत सरकार द्वारा भारत के वरिष्ठ नागरिकों के कल्याण के लिए प्रतिबद्धता की फिर से पुष्टि करने के लिए एक ऐतिहासिक पहल थी। यह एक सक्षम कानून है जो कमजोर वृद्ध व्यक्तियों के लिए उपलब्ध है और इसमें देरी से बचने के लिए सरल आवेदन प्रक्रिया और कानूनी औपचारिकताएं हैं। यह इस अधिनियम से लाभ प्राप्त करने में वृद्ध व्यक्तियों पर दबाव को कम करने के लिए किया गया है। यह अधिनियम अन्य बातों के साथ-साथ विशेष रूप से गठित अधिकरणों के माध्यम से बच्चों/रिश्तेदारों द्वारा माता-पिता/वरिष्ठ नागरिकों के भरण-पोषण को अनिवार्य बनाता है। यह गरीब वरिष्ठ नागरिकों के लिए वृद्धाश्रम की स्थापना, पर्याप्त चिकित्सा सुविधाएं, जीवन और संपत्ति की सुरक्षा, रिश्तेदारों द्वारा लापरवाही के मामले में वरिष्ठ नागरिकों द्वारा संपत्ति के हस्तांतरण को रद्द करने और वरिष्ठ नागरिकों के परित्याग के लिए दंडात्मक प्रावधानों का भी प्रावधान करता है।[6]

अधिनियम में प्रावधान है कि माता-पिता सहित एक वरिष्ठ नागरिक जो अपनी कमाई से या अपने स्वामित्व वाली संपत्ति से खुद को बनाए रखने में असमर्थ है, वह निम्नलिखित के मामले में आवेदन करने का हकदार होगा-(i) माता-पिता या दादा-दादी, एक के खिलाफ या उसके अधिक बच्चे नाबालिग न हों; (ii) एक निःसंतान वरिष्ठ नागरिक, अपने ऐसे रिश्तेदार के विरुद्ध। एक वरिष्ठ नागरिक को बनाए रखने के लिए बच्चों या रिश्तेदार का दायित्व ऐसे नागरिक की जरूरतों तक विस्तारित होता है ताकि वरिष्ठ नागरिक सामान्य जीवन जी सकें। अपने माता-पिता को बनाए रखने के लिए बच्चों का दायित्व ऐसे माता-पिता या तो पिता या माता या दोनों की जरूरतों तक विस्तारित होता है, ताकि ऐसे माता-पिता सामान्य जीवन जी सकें। कोई भी व्यक्ति जो वरिष्ठ नागरिक का रिश्तेदार है और उसके पास पर्याप्त साधन हैं, वह ऐसे वरिष्ठ नागरिक का भरण-पोषण करेगा, बशर्ते कि उसके पास ऐसे वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति हो या उसे ऐसे वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति विरासत में मिले। हालांकि, जहां एक से अधिक रिश्तेदार एक वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति के उत्तराधिकारी के हकदार हैं, ऐसे रिश्तेदार द्वारा रखरखाव का भुगतान उस अनुपात में किया जाएगा जिसमें वे अपनी संपत्ति का वारिस करेंगे।[7]

अधिनियम में यह भी प्रावधान है कि यदि बच्चे या रिश्तेदार किसी वरिष्ठ नागरिक को खुद का भरण-पोषण करने में असमर्थ होने की उपेक्षा करते हैं या उसे बनाए रखने से इनकार करते हैं, तो ट्रिब्यूनल, इस तरह की उपेक्षा या इनकार से संतुष्ट होने पर, ऐसे बच्चों या रिश्तेदारों को ऐसी मासिक दर पर मासिक भत्ता देने का आदेश दे सकता है। ऐसे वरिष्ठ नागरिक के भरण-पोषण के लिए, जो अधिकरण उचित समझे और ऐसे वरिष्ठ नागरिक को भुगतान करने के लिए जैसा कि अधिकरण समय-समय पर निर्देश दे। अधिकतम भरण-पोषण भत्ता जो ऐसे अधिकरण द्वारा आदेशित किया जा सकता है, वह होगा जो राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किया जा सकता है जो प्रति माह दस हजार रुपये से अधिक नहीं होगा।[8]

धारा 19 के तहत अधिनियम में वृद्धाश्रमों की स्थापना के प्रावधान भी हैं। इस धारा में कहा गया है कि राज्य सरकार चरणबद्ध तरीके से सुलभ स्थानों पर इतनी संख्या में वृद्धाश्रमों की स्थापना और रखरखाव कर सकती है, जिसकी शुरुआत प्रत्येक जिले में कम से कम एक ऐसे घरों में जहां कम से कम एक सौ से हो सकती है। पचास वरिष्ठ नागरिक जो निर्धन हैं, राज्य सरकार वृद्धाश्रमों के प्रबंधन के लिए एक योजना भी निर्धारित कर सकती है, जिसमें उनके द्वारा प्रदान किए जाने वाले मानकों और विभिन्न प्रकार की सेवाएं शामिल हैं, जो ऐसे घरों के निवासियों के लिए चिकित्सा देखभाल और मनोरंजन के साधनों के लिए आवश्यक हैं। वर्ष 2016-17 में सहायता प्राप्त वृद्धाश्रमों की कुल संख्या 396 है।[9]

यह अधिनियम वरिष्ठ नागरिकों के लिए चिकित्सा सहायता के प्रावधान भी प्रदान करता है। अधिनियम में आगे कहा गया है कि वरिष्ठ नागरिक का एक्सपोजर और परित्याग एक अपराध है। बुजुर्ग या तो इस अधिनियम के तहत या आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973 के प्रावधानों के तहत गुजारा भत्ता लेने का विकल्प चुन सकते हैं, लेकिन दोनों प्रावधानों के तहत नहीं। हालांकि सरकार ने अधिनियम 2007 को अधिनियमित किया है और वरिष्ठ नागरिक के प्रदर्शन और परित्याग को एक अपराध बना दिया है और किसी एक अवधि के लिए कारावास जो तीन महीने तक बढ़ाया जा सकता है या जुर्माना जो पांच हजार रुपये तक हो सकता है या दोनों के साथ दंडनीय है। बच्चे ऐसे वरिष्ठ नागरिक को पूरी तरह से त्यागने के इरादे से किसी भी स्थान पर छोड़ देते हैं। कई मामलों में यह दिखाया गया है कि वृद्ध माता-पिता को उनके बच्चों द्वारा उपेक्षित किया जा रहा है और उन्हें या तो वृद्धाश्रम में या अपने ही घर में एक अर्थहीन और दर्दनाक जीवन जीने के लिए मजबूर किया जा रहा है। बच्चे इतने व्यावहारिक हो गए हैं और वे बिना किसी हस्तक्षेप के अपना जीवन जीना चाहते हैं और माता-पिता उनके लिए केवल एक बोझ हैं। इस प्रकार वृद्धजनों को उनके बच्चों और समाज द्वारा उपेक्षित किया जा रहा है और वे या तो वृद्धाश्रम में या अपने ही घर में एक अर्थहीन और दर्दनाक जीवन जीने को मजबूर हैं।

न्यायिक प्रतिक्रिया

अश्विनी कुमार बनाम भारत संघ और अन्य में, याचिकाकर्ता ने सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान विशेष रूप से एमडब्ल्यूपी अधिनियम की धारा 19 की ओर आकर्षित किया जो वृद्धाश्रमों की स्थापना से संबंधित है और प्रत्येक राज्य सरकार को कम से कम एक वृद्धाश्रम स्थापित करने और बनाए रखने की आवश्यकता है।

महाराजा नादर बनाम मथुकानी अम्मल के मामले में एक बेटा अपने वृद्ध माता-पिता को बनाए रखने के लिए व्यक्तिगत दायित्व के अधीन था, भले ही उसके पास कोई संपत्ति हो। लेकिन वह अपनी सौतेली मां को बनाए रखने के लिए किसी भी दायित्व से बाध्य नहीं था, और इसके अलावा अपने दादा दादी को बनाए रखने के लिए भी बाध्य नहीं था जब तक कि उसे पैतृक संपत्ति प्राप्त न हो। हिंदू कानून के तहत बनाए रखने से इनकार करना एक अपराध माना जाता था और माता, पिता, पत्नी या पुत्र को बिना किसी गलती के छोड़ देना राजा द्वारा दंडनीय था।

संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत बुजुर्ग व्यक्तियों के अधिकारों को लागू करने के लिए डॉ अश्विनी कुमार बनाम भारत संघ के बीच एक ऐतिहासिक निर्णय में उन्होंने अधिनियम, 2007 के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए भी प्रार्थना की और बुजुर्गों के लिए पेंशन योजनाएँ उपलब्ध हैं और इस योजना के तहत प्रदान की गई राशि का उपयोग लाभार्थी अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए नहीं कर सकते हैं। उन्होंने इस संबंध में भारत संघ और राज्य सरकारों को कुछ निर्देश जारी किए जो स्वागत योग्य कदम है।

परमजीत कुमार सरोया बनाम भारत संघ और एक अन्य मामले में, अधिनियम से संबंधित कई मामले सामने आए हैं। इससे पहले, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने अधिनियम को बिंदु पर देखा और केंद्र सरकार से अधिनियम के कुछ प्रावधानों की फिर से जांच करने का अनुरोध किया जो अस्पष्ट थे। न्यायालय ने अधिनियम की व्याख्या यह कहने के लिए भी की कि प्रशासनिक न्यायाधिकरण के फैसले की अपील किसी भी पक्ष द्वारा की जा सकती है, और कानूनी प्रतिनिधित्व पर प्रतिबंध के प्रति उदासीन है। यह विधेयक बच्चों, रिश्तेदारों और माता-पिता की परिभाषा को बड़ा करने के लिए 2007 के अधिनियम में संशोधन करता है, बच्चों और रिश्तेदारों द्वारा माता-पिता को देय भरण-पोषण राशि की ऊपरी सीमा को हटाता है, और वरिष्ठ नागरिकों के लिए देखभाल-घर और अन्य लाभ कार्यों का प्रावधान करता है।[10]

स्वैच्छिक संगठन का कार्य

यह इंगित किया जाता है कि एमडब्ल्यूपी अधिनियम की धारा 21 में राज्य सरकारों को सार्वजनिक मीडिया के सभी माध्यमों के माध्यम से उक्त अधिनियम के प्रावधानों का प्रचार करने की आवश्यकता है। बुजुर्गों के कल्याण से संबंधित मुद्दों के समाधान के लिए राज्य सरकार के विभिन्न मंत्रालयों और विभागों के बीच प्रभावी समन्वय के लिए एक जनादेश भी है और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि समय-समय पर समीक्षा किए जाने की आवश्यकता है। याचिकाकर्ता का निवेदन यह है कि एमडब्ल्यूपी अधिनियम के प्रावधानों का शायद ही कोई प्रचार किया गया हो और हेल्प-एज इंडिया जैसे कई संगठनों के प्रयासों के बावजूद, बुजुर्गों के आश्रय और चिकित्सा सुविधाओं के अधिकार के साथ-साथ जराचिकित्सा देखभाल भी बनी हुई है। यह अनुरोध किया जाता है कि भारत सरकार को एमडब्ल्यूपी अधिनियम के प्रावधानों को प्रचारित करने के लिए एक व्यावहारिक योजना के साथ आना चाहिए ताकि बुजुर्ग अपना शेष जीवन सम्मान के साथ जी सकें।

इस प्रकार याचिका बुजुर्गों के मौलिक अधिकारों की मान्यता और प्रवर्तन से संबंधित महत्वपूर्ण मुद्दों को उठाती है। सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि इस विषय पर शायद यह पहली ऐसी याचिका है और दिलचस्प बात यह है कि याचिकाकर्ता की दलीलें पूरी तरह से संविधान के अनुच्छेद 21 और अन्य सहायक संवैधानिक प्रावधानों पर आधारित हैं।

कोर्ट ने कहा है कि संविधान के अनुच्छेद 21 में दिए गए जीवन के अधिकार को व्यापक अर्थ दिया जाना चाहिए। जीवन के अधिकार में कई अधिकार शामिल हैं लेकिन फिलहाल तीन महत्वपूर्ण संवैधानिक अधिकारों से संबंधित हैं, जिनमें से प्रत्येक बुनियादी और मौलिक है। याचिकाकर्ता द्वारा व्यक्त किए गए ये अधिकार सम्मान के साथ जीने का अधिकार, आश्रय का अधिकार और स्वास्थ्य का अधिकार हैं। राज्य यह सुनिश्चित करने के लिए बाध्य है कि ये मौलिक अधिकार न केवल संरक्षित हैं बल्कि सभी नागरिकों को लागू और उपलब्ध कराए गए हैं।[11]

सुप्रीम कोर्ट ने आम सहमति के विचारों के साथ सहमति व्यक्त की है जो चर्चाओं और प्रस्तुतियों के दौरान उभरे हैं और उनकी राय है कि इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों का एक सेट संवैधानिक जनादेश या एमडब्ल्यूपी अधिनियम के जनादेश को पूरा नहीं करेगा। बुजुर्गों को सम्मान के साथ जीने का अधिकार उपलब्ध कराने और उन्हें उचित आवास, चिकित्सा सुविधाएं और वृद्धावस्था देखभाल प्रदान करने के लिए संवैधानिक जनादेश के कार्यान्वयन में प्रगति की निरंतर निगरानी करने की आवश्यकता है। हालांकि इसमें कुछ समय लग सकता है, एकमात्र उपलब्ध समाधान एक निरंतर परमादेश है जो इस न्यायालय द्वारा कई मामलों में अपनाई गई एक अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त अभ्यास और प्रक्रिया है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि लोगों के अधिकारों का सम्मान, मान्यता और लागू किया जाता है और सामाजिक न्याय के रूप में संविधान की प्रस्तावना में निहित अर्थ दिए गए हैं।[12]

इस प्रकार, कानून और इसके कार्यान्वयन के बीच एक बड़ा अंतर है और भले ही 2007 में एमडब्ल्यूपी अधिनियम लागू हुआ और तब से एक दशक से अधिक समय बीत चुका है, भारत सरकार या राज्य सरकारों द्वारा गंभीर प्रयास नहीं किए गए हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए कि बुजुर्गों और वृद्धावस्था देखभाल के लिए चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती हैं। बुजुर्ग न केवल संविधान द्वारा बल्कि एमडब्ल्यूपी अधिनियम के प्रावधानों द्वारा गारंटीकृत अपने मानवाधिकारों से अवगत नहीं हैं क्योंकि एक तरफ माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों की समस्याएं दिन-ब-दिन बढ़ रही हैं, दूसरी तरफ सुप्रीम कोर्ट के कुछ मामले दर्ज हैं। वरिष्ठ नागरिकों की परेशानी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। बिगड़ता स्वास्थ्य, कुपोषण, आश्रय की कमी, भय, अवसाद, बुढ़ापा, अलगाव, ऊब, गैर-उत्पादकता और वित्तीय अक्षमता सबसे आम समस्याएं हैं जिनका सामना आज पूरी दुनिया में वरिष्ठ नागरिक कर रहे हैं।

निष्कर्ष

अधिकांश बुजुर्ग गरीबी, अकेलेपन, उपेक्षा, दुर्व्यवहार और परित्याग से पीड़ित हैं और उन्हें अपनी सबसे बुनियादी जरूरतों के लिए संसाधन जुटाना मुश्किल लगता है क्योंकि उनके बच्चे या तो असमर्थ हैं या उन्हें बनाए रखने के लिए तैयार नहीं हैं। हालांकि, माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण और कल्याण अधिनियम, 2007 भारत में बुजुर्गों की गरिमा और सम्मान की रक्षा के लिए सही दिशा में एक कदम आगे है। वरिष्ठ नागरिकों के लिए पर्याप्त योजनाएं और नीतियां हैं, लेकिन उनमें से अधिकांश को उनके लिए मौजूदा योजनाओं और नीतियों और इस तरह के लाभों को प्राप्त करने की प्रक्रिया के बारे में पता नहीं है, लेकिन इनमें से कई को ठीक से लागू नहीं किया गया है। अंतर्राष्ट्रीय संधियाँ, सम्मेलन, सरकारी रिपोर्ट, अकादमिक पत्रिकाएँ, समाचार पत्र इस संबंध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत में विभिन्न कानून बनाए गए हैं जिनमें व्यक्तिगत कानून, विश्व स्तर पर बुजुर्गों से संबंधित मुद्दों को संबोधित करने के लिए आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन और राज्यों के विभिन्न उच्च न्यायालयों और भारत के सर्वोच्च न्यायालय के प्रासंगिक निर्णय शामिल हैं। वरिष्ठ नागरिकों के अधिकारों से संबंधित मौजूदा कानून और राष्ट्रीय स्तर पर एक व्यापक कानून के लिए तरीके खोजने और सुझाव देने का परिणाम है। संविधान के तहत गारंटीकृत और मान्यता प्राप्त वरिष्ठ नागरिकों के भरण-पोषण और कल्याण के लिए और उससे जुड़े या उसके आनुषंगिक मामलों के लिए और अधिक प्रभावी प्रावधान प्रदान करना है। अधिकतम अनुरक्षण भत्ता जो अनुरक्षण अधिकरण द्वारा आदेशित किया जा सकता है वह राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किया जा सकता है जो 10,000/- प्रति माह रुपये से अधिक नहीं होगा। भारत के संविधान की समवर्ती सूची (अनुसूची VIII) को अधिनियमित किया गया है। उनमें से एक मुख्य चिंता स्वतंत्रता, आंदोलन की स्वतंत्रता और सामाजिक दुनिया में पूरी तरह से भाग लेने की क्षमता को बनाए रखना है। दादा-दादी या माता-पिता चाहे उनकी उम्र कुछ भी हो, अपने एक या अधिक बच्चों से भरण-पोषण का दावा कर सकते हैं। राज्य सरकार गरीब वरिष्ठ नागरिकों को समायोजित करने के लिए प्रत्येक जिले में कम से कम एक वृद्धाश्रम स्थापित करेगी। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 18 में कहा गया है कि देखभाल करने के लिए परिवार का समर्थन करने के लिए बुजुर्गों को घर आधारित सेवाएं प्रदान करना है। मजबूत समर्थन के लिए संशोधित करने के लिए भारत की सामाजिक सुरक्षा प्रणाली एक महत्वपूर्ण परिवर्तन में संशोधन विधेयक, 2019 को रखरखाव राशि के रूप में 10,000/- रुपये की ऊपरी सीमा के उद्देश्य से पारित किया गया था, जिसे इस अधिनियम के तहत ट्रिब्यूनल द्वारा प्रदान किया गया था। धारा 2 (बी) के तहत रखरखाव के लिए 'रखरखाव' और 'सम्मान का जीवन जीने' का अधिकार विधेयक की धारा 3 (i) (बी) के तहत रखरखाव के लिए शामिल किया गया था। भारत के संविधान का अनुच्छेद 21 किसी व्यक्ति की भलाई के लिए जीवन का अधिकार है।

संदर्भ

1. वरिष्ठ नागरिकों के लिए राष्ट्रीय नीति, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, 2011.
2. फ्रेडवांग एम, बिग्स एस, मानवाधिकार कानून के तहत वृद्ध व्यक्तियों के अधिकार, संरक्षण और अंतराल, 2012.
3. मैड्रिड योजना, हेल्प एज इंटरनेशनल, 2002.
4. दीवान पी. आधुनिक हिंदू कानून 20वां संस्करण, इलाहाबाद लॉ एजेंसी, 2017; 448-449।
5. चेकी डीए. पारिवारिक मूल्य और पारिवारिक परिवर्तन, जे कॉम्प फैम स्टड.1996; 27: 409-411।
6. गुप्ता जी. आर., "संयुक्त परिवार", दास में, एम.एस. और बर्दीस, पी.डी. (संस्करण) एशिया में परिवार (जॉर्ज एलन और अनविन), लंदन1978; 72-87।
7. सिंह जे.पी. "द कंटेम्परेरी इंडियन फैमिली", एडम्स, बीएन और ट्रॉस्ट जे। (संस्करण) हैंडबुक ऑफ वर्ल्ड फैमिलीज (सेज पब्लिकेशन इंक, कैलिफोर्निया) 2004; 129-166।
8. सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय, केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय (केंद्रीय सांख्यिकी प्रभाग): बुजुर्ग भारत प्रोफाइल और कार्यक्रम 2016; 2।
9. माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण और कल्याण अधिनियम, 2007.
10. भारत सरकार, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय लोकसभा, 2020।
11. अश्विनी कुमार बनाम भारत संघ और अन्य। मंत्रालय। 2016 का डब्ल्यू.पी (सिविल) नंबर 193; 2018 ।
12. विधायी संक्षिप्त, माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण और कल्याण (संशोधन) विधेयक, एआईआर 2014 पी एंड एच 121. 2019।

बूढ़ा (बूढ़ियाच) नृत्य परम्परा का अवलोकन

सुनील कुमार

पीएच.डी. शोधार्थी, संगीत विभाग (गायन), हि.प्र.विश्वविद्यालय, शिमला

सार संक्षेपिका

कण-कण मे देवीय गुणों से भरपूर यह धरा जिला सिरमौर के नाम से प्रसिद्ध है। कृषि से लेकर लोकनुरंजन तक यहां के प्रतिकर्म में समृद्ध सांस्कृतिक परम्पराऐं विद्यमान हैं। यह परम्पराऐं सुव्यवस्थित होकर यहां के लोक जीवन में देवत्व प्रदान करती हैं। सिरमौर के लोक संगीत में बहुत सी लोक गायन, वादन शैलियां हैं जिनको जानने मात्र से दैविक शक्तियों का आभास होता है। बहुत सी गायन, वादन या नृत्य शैलियां (जीणिया, ठोडा नृत्य, ढाकुली वादन) यहां महाभारत काल से प्रचलित हैं। जनमानस कहता है कि सिरमौरी संस्कृति को बुद्धिजीवियों ने प्रकृति तथा महाग्रंथों से आत्मसात करके बहुत सी शैलियां लोक संगीत को दी हैं।

इस शोध पत्र में शोधार्थी ने बूढ़ा नृत्य (बूढ़ियाच) को विषय चुना हैं। बूढ़ा नृत्य या बूढ़ेचू शब्द की उत्पत्ति बूढ़ा से हुई है। बूढ़ा शब्द से अभिप्राय है प्रबुद्ध, प्रौढ़ या अनुभवी व्यक्ति। एक ऐसा व्यक्ति जो रीति, नीति का ज्ञाता हो या शिक्षा देता हो। बूढ़ियाच नृत्य इसी का प्रतीक है। बूढ़ा नत्य महाभारतकाल से समाज में प्रचलित हैं। बुद्धिजीवियों का मत है कि महाभारतकाल में अज्ञातवास से पूर्व पांडवों पर राहू का प्रकोप तथा दु:खों के पहाड़ टूट पड़े तो उसके समाधान के लिए भगवान कृष्ण ने उपाय दिया था। भगवान कृष्ण ने कहा राहू के दरबार में बूढ़े (बूढ़ियाच) का वेश बनाकर तथा चौगा (बूढ़ा नृत्य के लिए विशेष प्रकार का परिधान) पहनकर संगीत की प्रस्तुति दो। संगीत सुनकर राहू अपना गुस्सा भूल जाएगा तथा उसका प्रकोप खत्म हो जाएगा। इस युक्ति से पांडव कष्टों से मुक्त हुए थे। ऐसी मान्यता है कि वही बूढ़ा नृत्य सिरमौर जनपद में आज भी प्रचलित हैं।

समय परिवर्तन के साथ लोक संगीत की हर शैली प्रभावित हुई हैं। बूढ़ा नृत्य जब पूर्वजों ने प्राचीनकाल में प्रारंभ किया था तब स्थिति अनुसार कुछ दिनों तक वह अपने कुटुम्ब को इससे प्राप्त अन्न या धन से गुजर बसर कर लेते थे। वर्तमान में महंगाई के कारण इसके संरक्षकों को इन सात या आठ दिनों परम्परा निभाने के कारण कुटुम्ब पालने में बड़ी कठिनाई आ रही है। धीरे-धीरे लोक इस पारम्परिक शैली को त्यागने लगे है। जिससे पारम्परिक विधाएं लुप्त होती जा रही हैं।

प्रमुख शब्द: बूढ़ा नृत्य, पारम्परिक, महाभारत काल, परिवर्तन, लोक संगीत के संरक्षक।

भूमिका

किसी भी क्षेत्र की संस्कृति या लोक संगीत उस क्षेत्र की सभ्यता का आईना होती है। विश्व भर में हम लोक संगीत या लोक विधा को देखने या सुनने मात्र से ही पहचान लेते है कि यह उस देश की संस्कृति या लोक संगीत है। भारत देश की बात करें तो बिहू शब्द सुनते ही असम की छवि मस्तिष्क में बन जाएगी। गरबा नाम मात्र से ही गुजरात की लोक संस्कृति की एक फिल्म दिमाग में बन जाएगी, उसी प्रकार बूढ़ा नृत्य शब्द मात्र से ही हिमाचल प्रदेश के प्रसिद्ध जिला सिरमौर की संस्कृति की तस्वीर दिमाग में बन जाती है। बूढ़ा नृत्य की बात करें तो सिरमौर जिले के हर क्षेत्र में यह नृत्य हर्षोल्लास के साथ किया जाता है तथा महाभारतकाल से पीढ़ी-दर-पीढ़ी संरक्षित होकर वर्तमान तक सुरक्षित है।

बूढ़ा नृत्य सिरमौर जनपद में नवम्बर के महीने में दीपावली के दौरान किया जाता है। इस नृत्य कि विशेषता है कि इस नृत्य के साथ वीर गाथाएं ही गाई जाती हैं। यह तीन या चार दिन तक प्रसारित होता है। बूढ़ा नृत्य का प्रवहन करने वाले लोग निम्न जाति के ही है। प्राचीनकाल से प्रचलित यह नृत्य जाति विशेष तक रहने के कारण लुप्त होने की कगार पर हैं।

प्राचीन समय में जब मनोरंजन का और कोई माध्यम नहीं होता था तब से बूढ़ा नृत्य का मंचन किया जाता है। इस पर्व पर गांव का हर एक व्यक्ति शामिल होता है तथा धियाईण (गांव की लड़की जिसकी शादी हो चुकी है) मेहमान आती है। लड़की के मां-बाप उसका इंतजार करते हैं तथा खाने के लिए मुंडा (गेहूं को भुनकर तथा भांग भुनकर मिश्रण) बनाया जाता है।[1] (साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी)

बूढ़ा नृत्य के प्रसारण के समय निम्न जाति के गायक विशेष प्रकार के परिधान पहनते है। यह परिधान विशेषकर बूढ़ा नृत्य के लिए ही प्रयोग किए जाते है तथा हाथ में डांगरा (परसा शस्त्र) पकड़ कर नाचते है। इन दो या तीन दिनों निम्न वर्ग के लोगों के लिए, उच्च वर्ग के लोग भोजन बनाते हैं तथा दोपहर का खाना परिवार सहित उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग के लोगों को अपने घर के आंगन में देते हैं।

उच्च वर्ग (राजपूत) जो बूढ़ा नृत्य दल तथा इनके परिवार को भोजन देते है। यह प्रथा भी महाभारतकाल से प्रचलित है परंतु समय परिवर्तन के साथ-साथ इनके भाव तथा तौर-तरीके बदल गए। निम्न वर्ग भी शिक्षित हो गया तथा समाज में सम्मानपूर्वक जीने लगा है। लोगों के आंगन में जाकर खाना वर्तमान युवक आत्मसम्मान को ठेस मानकर इस पारम्परिक बंधनों से विरक्त होना ही उचित समझ रहा हैं।[2] (साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी)

बूढ़ा नृत्य का इतिहास

बूढ़ा नृत्य द्वापर युग (महाभारतकाल) से प्रचलित है। पांडवों द्वारा इस नृत्य का उद्‌गम अज्ञातवास से पूर्व वनवास के दौरान राहू की दशा को टालने के लिए किया गया था। कलयुग में लोगों ने महाभारत से यह नृत्य उठाकर गरीबी के कारण भोजन प्राप्ति के मनसूबे से नृत्य, गायन शुरू किया तथा उनकी यह तरकीब सफल हुई। संगीत सुनकर आनंदित होकर लोगों ने इस बूढ़ा नृत्य करने वाले व्यक्तियों को भोजन तथा पारितोषिक के रूप में अन्न तथा पैसे देना शुरू किया। समय परिवर्तन के साथ मनोरंजन के लिए इन्होंने गांव-गांव में नृत्य, गान शुरू किया तथा लोगों ने खूब सराहना की और इनको अच्छा भोजन देना शुरू किया। बूढ़ा नृत्य दल का गुजर-बसर इन दिनों अच्छा होने लगा। अब मनुस्मृति के समय में जो जाति, जो भी कार्य करती थी उनको समाज में उस दृष्टि से देखा जाना शुरू कर दिया। नाच, गाना करने वाले लोगों को समाज में नीच दृष्टि से देखा जाता था। समाज में उन लोगों को निम्न श्रेणी का समझ कर ज्यादा महत्व नहीं दिया जाता था। राजपूत काल में इस बूढ़ा नृत्य प्रथा को देव वचनों से बांध दिया गया। भविष्य में उनकी पीढ़ियां भी यही काम करेगी। ऐसे वचनों में बांध दिया गया और अगर वचन तोडेंग्गे तो देवता खुद सजा देगा। देव भूमि होने के कारण लोग देवताओं को बहुत मानते थे तो कोई भी व्यक्ति चाहते हुए भी इस प्रथा से दूर नहीं हो सकता। उस समय निम्न जातियों के पास जीवनयापन करने के लिए राजपूतों की जमीन पर काम करने के अलावा कोई साधन भी नहीं थे। वह लोग दीवाली के दिनों महाभारत की गाथा गा कर जीवन बसर करते थे। दीपावली नवम्बर के महीने में होती है उस वक्त ठण्ड भी ज्यादा होती थी तो भोजन प्राप्ति के साथ-साथ मनोरंजन भी हो जाया करता था।

खुमली

खुमलघे यह एक प्रकार की सभा होती है। इसमें गांव का मुखिया गांव के झगड़ों या किसी प्रतियोगिता का आयोजन करना या न करना इसका फैसला करता है। बूढ़ा नृत्य से दो या चार दिन पहले निम्न जाति के ग्राम मुखिया और बेड़े (चार या सात घरों के समूह को बेड़ा कहते है) के चार लोगों के साथ उच्च वर्ग के मुखिया तथा वहां के बेड़े के और चार या पांच व्यक्ति सभा में बुलाते हैं। इस सभा में निम्न जाति के लोगों को किस गांव में दीपावली के दिन नृत्य, गायन करने भेजना है तथा वहां के उच्च वर्ग के लोग इनको कितना पैसा देंगे यह निश्चित किया जाता है। बूढ़ा नृत्य दल ज्यादातर उस उच्च वर्ग के गांव में भेजा जाता है या तो उस गांव में उच्च वर्ग के मुखिया की मृत्यु हुई हो या फिर गांव के किसी नौजवान की मृत्यु या कोई घटना घटी हो। बूढ़ा नृत्य दल सुबह चार बजे उठकर अपनी पारम्परिक पोशाक में उस गांव के ग्राम देवता के स्थान पर जाकर सर्वप्रथम देवता के लिए सेवा गीत गाता है।

सेवा गीत के बोल

ऐथे कोसरा, ऐ थानो
ऐथे कोसरा
ऐथे देवो रा ऐ थानो
ऐथे देवो रा

भावार्थ

''ऐथे कोसरा ऐ थानो'' अर्थात् यह किसका स्थान है। मुख्य गायक यह पंक्ति गाते हैं। सह गायक गाते हैं 'ऐ कोसरा थानो' अर्थात् किसका स्थान है। मुख्य गायक दूसरी पंक्ति गाते हैं कि यह ग्राम देवता का स्थान है। ये पंक्तियां 16 मात्रिक ताल में गायी जाती है। इस सेवा गीत के बाद सबसे पहले उस घर में गाथा गायन होता है, जहां घटना घटी होती है। इस गाथा से पूर्व उस परिवार को सांत्वना दी जाती है तथा परिवार को दु:ख से उभरने के लिए गाथा के माध्यम से हौंसला दिया जाता है।[3] (साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी)

ठीला

गाथा गायन के बाद 12 बजे या 1 बजे दिन में बूढ़ा नृत्य दल को ठीला यानि भोजन दिया जाता है। ठीला प्रथा की उत्पत्ति महाभारतकाल में राहू द्वारा पांडवों को राहू के दरबार में सेवा गायन के बाद खुश होकर राहू ने भोजन करवाया था। वहीं से लोगों ने यह प्रथा उठाई है।

गीतं नृत्तं विचित्रं च चादित्र विविधं तथा

शिक्षायिष्याम्यहं राजविराट भवने स्त्रिय:।

भावार्थ: हे राजन! मै। राजा विराट के महल में स्त्रियों को गाना, नाचना और अनेक प्रकार के विचित्र-विचित्र बाजे सिखलाऊंगा।[4] (वंसत श्रीपाद सातवलेकर (1939), पृ.8)

इस श्लोक से स्पष्ट होता है कि पांडवों को संगीत का ज्ञान था तथा बूढ़ा नृत्य करने की बात कुछ हद तक सच साबित हो रही है। उस समय से ढीला प्रथा शुरू हुई। जनपद में उच्च वर्ग के सभी लोग पूरा बूढ़ा नृत्य दल के व्यक्तियों को बराबर संख्या में अपने-अपने घर भोजन करने ले जाते है। यह व्यक्तियों के बराकर भी गांव का मुख्या बांटता है। शाम होते ही बूढ़ा नृत्य दल के मुख्या को पारितोषिक के रूप में पैसे दिए जाते है।

दीपावली में बूढ़ा नृत्य

जनपद में 5 से 7 दिनों तक बूढ़ा नृत्य दल उच्च वर्ग के मुखिया के आदेशानुसार गांव-गांव बूढ़ा नृत्य गायन करते हैं। इस 5 या 7 दिनों सिर्फ वीरगाथाएं ही गाई जाती है जिसमें की राजपूतों ने कैसे-कैसे युद्ध लड़े, कहां-कहां युद्ध लड़े इसका वर्णन होता है। इस वर्णन से राजपूत अपने पूर्वजों पर गर्व महसूस करते हैं कि हमारे पूर्वज इतने बहादुर थे। बूढ़ा नृत्य दल इन दिनों में 100 रुपये दिन के हिसाब से भी नहीं कमा पाते।[5] (साक्षात्कार से प्राप्त जानकारी)

महाभारत काल	120
अति प्राचीन काल	50
अन्य कारण	30

उपरोक्त सारणी में शोध क्षेत्र से शोधार्थी ने बूढ़ा नृत्य की उत्पत्ति की जानकारी प्राप्त की। बूढ़ा नृत्य की उत्पत्ति के विषय में अधिकतर जनमानस तथा पारम्परिक लोक संगीत के विद्वानों का मानना है कि बूढ़ा नृत्य की उत्पत्ति महाभारत काल में हुई है। महाभारत काल में पांडवों के अज्ञातवास से पूर्व राहू की दशा से व्याकुल पांडवों ने बूढ़ा नृत्य का प्रदर्शन राहू के दरबार में किया था। जनमानस का कुछ वर्ग बूढ़ा नृत्य की उत्पत्ति अति प्राचीनकाल से भी मानता है। कुछ वर्ग अन्य काल भी मानते है। अन्य काल कहने वाले उत्तरदाताओं का मानना है कि बूढ़ा नृत्य तो राजपूत काल से प्रचलित है। प्रश्नोत्तरी का आंकलन करने पर पता चलता है कि बूढ़ा नृत्य महाभारत काल से ही उत्पन्न हुआ है। धीरे-धीरे परम्परा से जुड़कर वर्तमान तक उसी रूप में सुरक्षित बच पाया है। वर्तमान में बूढ़ा नृत्य लुप्त होने की कगार पर है।

वर्तमान स्थिति

वर्तमान में युवक समय को कीमती समझकर तथा महंगाई को देखकर जीवन यापन के लिए 5 या 7 दिनों बूढ़ा नृत्य करने से बेहतर धियाड़ी कमाना उचित समझते है ताकि परिवार को दो वक्त की रोटी तो दे पायें। जाति विशेष से जोड़ने के कारण बूढ़ा नृत्य लुप्त होने के कगार पर आ पहुंचा है। उच्च वर्ग का मानना है कि बूढ़ा नृत्य जाति विशेष का है। ग्रंथों में (महाभारत) वर्णन तथा लोक कथाओं, गाथाओं में महाभारत के वर्णन से तो लगता है कि क्या पांडव भी निम्न जाति के थे। अगर पांडव निम्न जाति के थे तो वह महाभारत में क्षत्रिय क्यूं बताए गए। वर्तमान में बूढ़ा नृत्य की स्थिति दयनीय है तथा लुप्त होने की कगार पर है।

सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा

1. गिरीपार क्षेत्र में दीपावली पूरे महीने मनाई जाती है। पहले दिन का त्यौहार असकाटी (असकली सिरमौरी पकवान) आती हैं। दीपावली के मध्य ही साजा (सक्रान्ति) आता है। इन दिनों कोली और ढाकी गाना गाते है और नाचकर प्रस्तुति देते हैं। अपने अन्नदाता को खुश करते हैं।6 (गजेटियर (1934), पृ.70)
2. बूढ़ा नृत्य सिरमौर जिले में देखने को मिलता है। यह पद्रंह या सोलह लोगों के ग्रुप द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।7 (एन. इंटरोडक्शन टू हिमाचल प्रदेश, (2013), पृ.132)
3. पहाड़ों में दीवाली ''कोली-री-दीवाली'' और बूढ़ी दीवाली के नाम से जानी जाती है। अमावस्या से शुरू होती हैं। यह पर्व तीन दिनों तक चलता है। इसमें ''बलराज'' भी एक दिन का पर्व आता है। लोग मशालें जला कर गांव के मंदिर के प्रांगण में जाते हैं। इस पर्व में कोली और तूरी नाच, गाना करते हैं।[8] (फेस्टीवल, फेयर एंड कस्टम ऑफ हिमाचल प्रदेश (1992), पृ.48)
4. बूढ़ा नृत्य रेणुका तहसील में कोली द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यह नृत्य सिर्फ उन्हीं गांव में प्रस्तुत किया जाता है। जहां उस गांव की उच्च वर्ग की किसी लड़की की शादी हुई हो। यह कोली जाति के लोग बूढ़ा नृत्य व्यवसायिक रूप से करते हैं। इन नर्तकों को स्थानीय बोली में बूढेचु कहा जाता है।[9] (हिमाचल प्रदेश डिस्ट्रिक गजेटियर सिरमौर (1969), पृ.133)

विषय से संबंधित के अध्ययन से शोधार्थी ने पाया वर्तमान तक किसी भी लेखक या शोधकर्ता ने बूढ़ा नृत्य की उत्पत्ति विषय का गहन अध्ययन नहीं किया है। इस शोध पत्र में बूढ़ा नृत्य की उत्पत्ति से संबंधित बुद्धिजीवियों से प्राप्त जानकारी संकलित हैं।

शोध का महत्व

जातिवाद की बीमारी ने समाज को अंदर तक खोखला कर दिया है। इस शोध पत्र से बूढ़ा नृत्य दल के संरक्षकों की स्थिति कर मुख्य कारण लोगों के समक्ष आएगा। जनपद के लोग खुद को पांडवों, कौरवों के वंशज मानते हैं। पांडवों द्वारा चलाया गया बूढ़ा नृत्य निम्न जाति विशेष का कैसे हो गया। पांडव तो क्षत्रिय थे, क्षत्रियों द्वारा निर्मित नृत्य जाति विशेष के सर क्यूं मढ़ा गया। बूढ़ा नृत्य में जो क्रियाएं प्रदर्शित की जाती हैं जो नर्तक की चाल रहती है उसमें युद्ध कौशल स्पष्ट दिखता हैं। अगर यह नृत्य जाति विशेष का है तो उसमें युद्ध कौशल कैसे आया निम्न जातियों को तो युद्ध करने की अनुमति महाभारतकाल में नहीं थी। इस शोध पत्र से समाज में बूढ़ा नृत्य के प्रति संकीर्ण मानसिकता समाप्त हो जाएगी। बूढ़ा नृत्य के संरक्षकों को सम्मान मिलेगा।

उद्देश्य

1. संकीर्ण मानसिकता को खत्म करना।
2. जाति विशेष से खत्म करके सार्वजनिक नृत्य बनाना।
3. संरक्षकों को बूढ़ा नृत्य प्रवहन के लिए मानदेय दिलवाना।
4. उच्च स्तर तक मंच पर प्रदर्शित करवाना।
5. लोक संगीत को स्कूलों में विषय के रूप में चयनित करवाना।

परिकल्पना

बूढ़ा नृत्य के लिए लोगों की परिकल्पना बड़ी संकीर्ण रही है। इन दिनों उच्च वर्ग के लोग बहुत सारा खाना बनाते हैं तथा बूढ़ा नृत्य दल को बासा खाना देते हैं। कई बार इस खाने से लोग बीमार भी हो जाते हैं। बूढ़ा नृत्य के संरक्षकों को आंगन में भी खाना नहीं दिया जाता था। रास्ते में बिठा कर भोजन दिया जाता था। पूरा दिन बूढ़ा नृत्य की प्रस्तुति करवाई जाती थी। तब उनको कुछ पैसे पारितोषिक के रूप में दिए जाते थे। लोग इनको अछूत और निम्न जाति का मानकर बूढ़ा नृत्य भी जाति विशेष का नृत्य माना जाता हैं। इसमें उच्च वर्ग के लोग भाग नहीं लेते। उच्च वर्ग के लोग खुद को राजा समझकर अपने दरबार में इनसे नृत्य करवाते है। शोध क्षेत्र में बुद्धिजीवियों के साक्षात्कार तथा ग्रंथों के अध्ययन से शोधार्थी को बहुत भिन्न मत प्राप्त होते हैं।

अनुसंधान क्रिया विधि

इस शोध में सर्वेक्षण विधि के प्रयोग से दत्त संकलन किया गया। दत्त परीक्षण के लिए प्रश्नावली व साक्षात्कार उपकरणों का प्रयोग किया गया। जब अस्सी प्रतिशत लोगों के मत हमें एक से प्रतीत हुए उसके बाद ही दत्त को शोध में प्रयुक्त किया गया।

शोध के परिणाम

1. बूढ़ा नृत्य की उत्पत्ति का पता चला।
2. संकीर्ण मानसिकता के कारण आई खामियों का पता चला।
3. बूढ़ा नृत्य संरक्षकों की मुश्किलों का पता चला।

भविष्य के लिए सुझाव

1. लोक संगीत को अगर भावी पीढ़ी के लिए सुरक्षित रखना है तो हमें सार्वजनिक रूप से मिलजुल कर बढ़-चढ़कर भाग लेकर साथ चलना पड़ेगा।
2. संरक्षकों को इन पांच या सात दिनों की दिहाड़ी देनी पड़ेगी ताकि वह अपने परिवार का पालन पोषण भी कर पाए।
3. प्रस्तुतिकरण का तरीका वर्तमान समयानुसार बदलना पड़ेगा।

निष्कर्ष

बूढ़ा नृत्य (बूढेचू) बहुत प्राचीन नृत्य है। इसको देव परम्परा में बांधकर यह नृत्य सुरक्षित तो रहा परंतु इसके संरक्षक समय परिवर्तन होने पर इससे जीवन यापन नहीं कर पा रहे हैं। जाति विशेष का नृत्य बनाने से भी युवा पीढ़ी इस लोक गायन, नृत्य से विमुख होती जा रही है। वर्तमान समय में जीवन यापन की जरूरतों के अनुसार प्राचीन शैलियां अब सक्षम नहीं है। जीवनयापन के साथ परम्परा से जुड़ना युवा पीढ़ी को उचित नहीं लगता क्योंकि तकनीकी के इस दौर में पारम्परिक लोक गायन, वादन या नृत्य शैलियों से ज्यादा युवा पीढ़ी अब और तकनीकी माध्यम से कमा लेती है। इस नृत्य का भावी पीढ़ी तक बचाने या पारम्परिक धरोहर को बचाने के लिए सबसे पहले जाति प्रमुख से हटाकर सार्वजनिक बनाना पड़ेगा। आधुनिकीकरण की हौड में लोक संगीत का संरक्षण करना बहुत बड़ा विषय बन गया है।

परिशिष्ठ

1. चौहान, आर.के. (20 जुलाई, 2013), एन. इंट्रोडक्शन टू हिमाचल प्रदेश, चौहान पब्लिकेशन प्रा.लि., नीयर मिलिट्री एरिया, नाहन, पृ. 132
2. धरवाण, मीना राम के साक्षात्कार से प्राप्त जानकारी, 20 जून, 2020
3. डॉ., सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर (1939), वसंत श्रीपाद सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, भारत-मुद्रणालय, पोस्ट स्वाध्याय मंडल (पराड़ी), जिला वलसाड, पृ. 8
4. नेगी, ठाकुर सेन (1969), हिमाचल प्रदेश डिस्ट्रीक गजेटियर सिरमौर, ओरियेंटिड प्रिंटिंग प्रैस, मादार गेट, अलीगढ़, पृ. 133
5. बहादुर, राय और कपूर, सरदार काहन चंद (1934), गजेटियर आफ द सिरमौर स्टेट, इंडस पब्लिशिंग कम्पनी, FS-5, टैगोर गार्डन, नई दिल्ली, पृ. 70
6. बुद्धिजीवियों द्वारा प्राप्त जानकारी, 15 जून, 2020
7. विभिन्न युवाओं से लोक संगीत की प्राप्त जानकारी, 4 मई, 2020
8. सिंह, मियां गोवर्धन (1992), फेस्टीवल, फेयरस एंड कस्टमस ऑफ हिमाचल प्रदेश, इंडस पब्लिशिंग कम्पनी, FS-5, टैगोर गार्डन, नई दिल्ली, पृ. 48

सिरमौर जनपद की पारंपरिक लोक गायन शैलियों पर महाभारतकालीन प्रभाव

विनोद कुमार

पीएच.डी. रिसर्च स्कॉलर, शोधार्थी विषयः संगीत (वादन) संगीत विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, समरहिल, शिमला-171005

सार-संक्षेपिका

''महाभारत'' एक ऐसा महाकाव्य जिसने न केवल भारत बल्कि पूरे विश्व को प्रभावित किया है। जीवन की सत्यप्रद घटनाओं पर आधारित यह महाकाव्य सिरमौर जनपद की लोक संस्कृति से अछूता कैसे रह सकता है? महाभारत युद्ध के बाद कौरव व पाण्डव समर्थित लोगों का सिरमौर क्षेत्र में आगमन हुआ। ये सभी सशस्त्र लोग थे और इन्होंने अपने बल व बुद्धि से यहां के स्थानीय लोगों को अपने अधीन कर अपने संस्कृति का प्रचार व प्रसार किया। यही कारण है कि आज भी सिरमौर का गिरीपार क्षेत्र शाठी (कौरव), पाशी (पाण्डव) समुदायों में बेटा है। यहां के त्यौहारों, मेलों एवं अन्य विशेष अवसरों पर गायन, वादन एवं नृत्य के माध्यम से महाभारतकालीन प्रभाव स्वतः ही दिखाई देता है। सेवा, सीस, ठोडा, विशु एवं पण्डवायण लोक गायन शैलियां कौरव-पाण्डव संस्कृति को उजागर कर कर्ममूल जीवन के प्रति सजग करती आ रही है।

बीज शब्दः ठोड़ा, विशु, पण्डवायण।

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण

1. सहगल (1985) द्वारा सिरमौर जिले में रागछाया तथा भावाभिव्यक्ति पर शोधकार्य किया गया जिसके अन्तर्गत महाभारत को आंशिक रूप से घटना विशेष का लोक गाथा के रूप में वर्णन किया गया है। साथ ही शाठड़ और पाशड़ अर्थात साठ और पांच कौरवों और पाण्डवों के प्रतीक है।
2. कुमार (2001) द्वारा सिरमौरी लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन के अन्तर्गत पण्डवाणी लोकगीत के अन्तर्गत महाभारत के प्रसंग आते है जो महाभारत की महत्वपूर्ण घटनाओं पर आधारित है।
3. देवराज (2001) द्वारा सिरमौरी लोक संगीत पर सीमावर्ती क्षेत्रों का प्रभाव एक तुलनात्मक अध्ययन के अन्तर्गत पण्डयावण भारत लोक गाथा का रस के आधार पर वर्णन किया गया है।

शोध की आवश्यकता

सिरमौरी लोक गायन शैलियों पर महाभारतकालीन प्रभाव न केवल इनका ऐतिहासिक महत्व बताती है बल्कि इन्हें सामाजिक व सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण माना जाता है। यह शैलियां यहां की लोक संस्कृति का अभिन्न अंग है। जहां एक तरफ समाज को कठिन परिस्थिति में लड़ने का साहस प्रदान करता है वहीं कर्त्तव्यनिष्ठा एवं वीरता जैसे गुणों को प्रोत्साहित करती है। वर्तमान समय में लोक सांस्कृतिक मूल्यों के घटते स्तर व लोक संस्कृति के संरक्षण हेतु इस शोध की आवश्यकता और अधिक बढ़ जाती है।

उद्देश्य

गुणात्मक जीवन के उद्देश्य से महाभारतकालीन संस्कृति का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। ताकि इनका सामाजिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्व जान सके।

अनुसंधान पद्धति

यह अनुसंधान सिरमौर जनपद के गिरिपार क्षेत्र में रह रहे हाटी जनसमुदाय के जीवन से सम्बन्धित है। यह जनसमुदाय भारत देश के हिमाचल प्रदेश के जिला सिरमौर में निवास करता है। इस अध्ययन के लिए प्राथमिक आंकड़ों के लिए लोक गायकों के साक्षात्कार तथा सहायक आंकड़ों के लिए पुस्तकों तथा शोध पत्रों का इस्तेमाल किया गया। यह अध्ययन वर्णनात्मक प्रणाली पर आधारित है।

विचार विमर्श एवं परिणाम

इस अनुभाग में हाटी जनसमुदाय के पारंपरिक लोक गायन शैलियों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। यह क्षेत्र अपनी लोक सांस्कृतिक परंपराओं और लोक लुभावन संस्कृति के लिए जाना जाता है। यहां पर सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक भिन्नताओं के कारण पृथक-पृथक् लोक गायन शैलियों का प्रचलन

हुआ। अधिकतर लोक गायन शैलियां सिरमौर के प्राचीन परंपराओं व संस्कृति से उपजी प्रतीत होती है। यहां पर शाठी (कौरव) व पाशी (पाण्डव) पक्ष के समर्थित लोगों का निवास स्थान है। इसी कारण यहां के मेलों, त्यौहारों एवं संस्कारों पर महाभरतकालीन प्रभाव स्वत: ही दिखाई देता है। ये लोक परंपराओं में बोलते स्वर है। यहां की लोक गायन शैलियां इनमें देव आस्था, सेवा भाव, सांस्कृतिक प्रेम और लोक जीवन को निर्देशित करता असीमित ज्ञान भण्डार है जो यहां के लोक जीवन को समय-समय पर आलादित एवं उत्साहित करता रहता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

हजारों वर्ष पूर्व जब महाभारत का युद्ध समाप्त हुआ उसके बाद कौरव व पाण्डव समर्थित लोग आपस में लड़ते-लड़ाते, भागते-भगाते यमुना नदी से होते हुए तौंस नदी की ओर चले गये जो कि पहले सिरमौर का भाग था। पहले सिरमौर कालसियां से थरोच तक फैला हुआ भाग था। कौरव समर्थित ''शाठा'' व पाण्डव समर्थित ''पाशा'' यहां आकर वे नदी के दोनों तरफ रहने लगे। ये सशस्त्र लोग थे धीरे-धीरे उन्होंने यहां के लोगों को बुद्धि व बल से अपने अधीन किया और समस्त क्षेत्र को दो खुंदों (समुदायों) शाठा व पाशा में बांट दिया। ये वीर, साहसी व पराक्रमी लोग थे। वे युद्ध में धनुष-बाण, तलवार, डांगरू इत्यादि अनेक पारंपरिक हथियारों का प्रयोग करते थे। तीर चलाते हुए कमान को कान तक खींचा जाता था इसलिए इसे ''कनेरू'' कहा जाता था। ये लोग जब युद्ध पर जाते तो पूरे गाजे-बाजे के साथ जाते थे। वाद्यों पर ''रथेवला'' ताल वादन होता था जो कि वीरता व साहस का प्रतीक ताल है। इसके वादन से योद्धा में वीरत्व का संचार होता था व जोश से भर जाता था।

शाठा (कौरव), पाशा (पाण्डव) पक्ष की आपसी लड़ाईयों का दौर कई सालों तक चलता रहा। बाद में देव आज्ञा के माध्यम से आपसी सुलह करवाई गई। आपसी भाईचारा बढ़ाने के लिए खेल क्रीड़ाएं (मल्लयुद्ध), ठोडा नृत्य का आयोजन होने लगा। धीरे-धीरे इसका विकास विशु मेले के रूप में हो गया। विशु मेले के गीत आज भी जन प्रचलित है जिसे विशेषावसरों पर सुना जा सकता है।

सेवा गायन शैली

सेवा गायन की परंपरा द्वापर युग में पाण्डवों द्वारा शुरू मानी जाती है जब माता कुंती ने अपने पुत्रों को राहु के सेवा करने के लिए कहा। पाण्डवों पर राहु की बुरी दशा थी उसे समाप्त करने के लिए युधिष्ठिर ने दमेनु, भीम ने हुल्लक, नकुल ने बांसुरी, सहदेव ने छणका और अर्जुन ने चोलणा पहना। राजा राहु की सेवा गायन, वादन व नृत्य के माध्यम से की गई तभी से सेवा गायन शैली की शुरूआत हुई। यह एक अविनद्ध प्रकार की गायन शैली है जिसे दिवाली के दिन दो रूपों में गाया जाता है देव सेवा और ठाकुर सेवा। देव सेवा देवालयों में तथा ठाकुर सेवा ठाकुर के घर पर गाई जाती है।

देव सेवा की कुछ पंक्तियां
एथे बुडू लाई थानो दू,
जे आओ . . . . . बुडू।
एथे कोसरा हो थानो हो?
एथे देव रा ही थानो एथे।

अर्थात बुडू (गायक वादकों का सामूहिक दल) किस स्थान पर आय है? ऐसे स्थान पर जहां देवता का पवित्र स्थान है।

सीस गायन शैली

यह एक मंगल गीत है जिसका गायन सिरमौर जनपद के गिरिपार क्षेत्र के अनुसूचित जाति के लोग किया करते है। दिवाली के दूसरे दिन बुडू (सामूहिक दल) पारंपरिक पोशाक पहने अपने ठाकुरों के घर-घर जाकर सीस गीत के माध्यम से आशीर्वाद देते है। यह एक प्राचीन परंपरा है जिसमें गायन, वादन व नृत्य तीनों का समावेश है।

सीस गीत के बोल
भाई रे ही तेशी बोडी आशो ओ दाता सोती री ही खेलो
दाने दीता भाणजे मूखे सूने रा . . . . . ही
ढेलो रे ही विनोदे राजी कुशलो चेयी सोबे भाणजे ही भाई।

अर्थात हे दाता, हे सत्य का देवता, आपकी ही आस है, विश्वास है, सबकी कुशलता के साथ इस भाणजे और इसके पूरे परिवार को सकुशल रखना जिसने मुझे ये दान दिया है। यह मेरे लिए सोने के ढेर के बराबर है।

पण्डवायण

सिरमौर जनपद के गाथागीत विभिन्न विषयों पर आधारित है जैसे गुगा, भर्तृहरि, हारे, वारे, पवाडे और पण्डवायण। ये सभी ऐतिहासिक घटनाओं से प्रभावित गाथा गीत है। ''पण्डवायण'' पाण्डवों के जीवन में घटित घटनाओं पर आधारित गीत है। पण्डयावण गीतों में द्रोपदी स्वयंवर, अज्ञातवास की घटनाओं आदि का सुन्दर वर्णन है। इन गीतों में करुण, वीर व हास्य रसों की प्रधानता है। ''पण्डवायण'' गाथा गायन शैली सिरमौरी लोक संस्कृति में अपना विशेष स्थान रखती है। यह गाथा गीत न केवल सिरमौरी लोक का मनोरंजन करने में सहायक है बल्कि यहां के लोगों को जीवन के प्रति सजग एवं प्रेरित भी करता है।

संघर्ष की प्रेरणा देता एक गीत
घाटी लागी गोयरी राजा हरसुणा रूंदा,
गापडी मामा गाँखडी रा आज कुए भेन हुंदा।

रूई भे ना राजा होरजुणो इका घिरी न फिका,

टोली दा ना टालिए जू होला कर्मो रा लिखा।

अर्थात जब अर्जुन अपनी उम्मीद त्याग रोने लगता है तो श्री कृष्ण जी उन्हें समझाते हुए कहते है कि जो कर्मो का लिखा है उसे कोई टाल नहीं सकता। स्वयं को असहाय मसहसू न कर, जीवन एक संघर्ष है, संघर्ष करता जा।

विशु गीत

विशु सिरमौर जनपद का प्रसिद्ध एवं पारंपरिक मेला है। यह शाठा (कौरव) व पाशा (पाण्डव) से सम्बन्धित है। यह मेला यहां के कुलीष्ठ देवता विजट महाराज व शिरगुल महाराज के मिलन का प्रतीक है। यह मेला सिरमौर जनपद के गिरिपार क्षेत्र (नैनीधार, भवाई, अंधेरी, कमरऊ, कफोटा, टिम्बी, शिलाई, हाबन) में वैशाख व जेठ माह में अलग-अलग तिथियों को आयोजित किया जाता है। इस दिन शाठा-पाशा पक्ष के लोग गाजो-बाजो के साथ विशु मेले में अपने पौराणिक हथियारों व पारंपरिक पोशाकों को पहनकर जाते है। जुबड़ी (ठोडा मैदान) में सभी एकत्रित होकर ठोडा खेलते है।

विशु मेले का एक प्रसिद्ध गीत

मारे विशु ए जाणा,

विशु बुलो देखणे रा हामो चाव रे।

पाली दरवाले ठिला जो देणा,

चाणो सिडकू रे धियो,

देवते री बोलो गोरनी लाणी,

सोबे देवते मनाओ,

विशु बोलो देखणे रा हामो चाव रे।

उपरोक्त गीत कहता है कि विशु मेले में अलग-अलग पारंपरिक पकवानों का ठीला (सामूहिक भोजन) लगता है। देवताओं का आहवान कर उन्हें मनाया जाता है। विशु हमारा प्रिय सांस्कृतिक त्यौहार है। अत: हमें विशु देखने जाना है।

ठोडा (युद्ध नृत्य)

सिरमौर जनपद में विशु मेला अत्यधिक प्रचलित है। ''ठोडा'' खेल/नृत्य मेले का विशेष आकर्षण है। यह तीरदांजी का खेल है जिसे शाठी व पाशी खुंदों (दलों) के मध्य नृत्य रूप में खेला जाता है। इस खेल को खिलाड़ी नियमानुसार सुथण (मोटा ऊनी पजामा) और बूट (ऊंचे व मोटे जूते) पहनकर खेलता है। सिरमौरी लोक भाषा में ''ठोडा'' तीर को कहा जाता है।'' इस खेल में एक पक्ष का खिलाड़ी विपक्षी पर धनुष से बाण/तीर/ठोडा छोड़ता है तो कि घुटनों के नीचे लगाना आवश्यक होता है। प्रतिद्वंद्वी उस समय विशेष ढंग से अपनी टांगों को हिलाकर बचने की कोशिश करता है। अगर निशाना ठीक लगे तो निशनेबाज जुबड़ी (मैदान) में खुशी से झूमता, नाचता कह उठता है:

हेट मेरया शटेउरी, हेट मेरया नालिया,

बेटा ओसो सिंगा रा, जु बानो उडदे कागो दी घाडो,

जाया ओसो खोशटा, मेरा मारा पाणी न मांगो।

अर्थात निशानेबाज अपना गुणगान करते हुए कहता है कि मैं खोश (राजपूत) परिवार में जन्म सिंगा (वीर व्यक्ति) का बेटा हूँ। मेरे निशाने का कोई जवाब नहीं क्योंकि मैं उड़ते हुए कौए को निशाना लगा सकता हूं।

ठोडा गीत की स्वरलिपि 12 मात्रा के रथेवला ताल पर आधारित

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
गं	गं	रें	गं	–	सं	सं	–	रें	ध	–	–
ओ	रो	दे	मे	रो	ऽ	डा	ऽ	ग	रू	ऽ	ऽ
प	–	ध	ध	स	ध	स	–	रे	स	–	–
डा	ऽ	ग	रू	भा	ई	डा	ऽ	ग	रू	ऽ	ऽ
ग	ग	रे	गृ	स	स	स	–	रे	ध	–	–
मा	रे	जा	णा	बो	लो	जा	ऽ	त	रू	ऽ	ऽ
प	–	ध	ग	प	ध	स	–	रे	स	–	–
जा	ऽ	त	रू	भा	ई	जा	ऽ	त	रू	ऽ	ऽ
ग	2	3	4								

निष्कर्ष

यह अध्ययन हाटी समुदाय की पारंपरिक लोक गायन शैलियों पर आधारित है। इस अध्ययन से पता चलता है कि यह लोक रचित गायन शैलियां यहां के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं का मौखिक दस्तावेज है। इसमें समस्त जनसमूह अपने सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद, आशा-निराशा एवं प्रकृति चराचर की शिष्ट अभिव्यक्ति पाता है। सिरमौर जनपद की महाभारतकालीन संस्कृति के प्राण रूप को वहां की लोक गायन शैलियां चित्रित करती है। साहस, शौर्य और बलिदान का जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करती है। ये लोक गायन शैलियां यहां की लोक परम्पराओं, आदर्शों, मूल्यों व संस्कारों को संजोए हुए है। इसमें समाज को समन्वित करने की ऊर्जा है। इसलिए इसके हर आयोजन में हर जाति, वर्ग एवं संप्रदाय का समान महत्व है। इस लोक भावना से सम्पूर्ण चराचर समान है।

सन्दर्भ

1. जगमोहन बलोखरा, "आलौकिक हिमाचल प्रदेश", एच.जी. पब्लिकेशन, नई दिल्ली-110062, पृ. 740
2. सहगल, किशनलाल (1985), जिला सिरमौर के लोकगीतों में रागछाया तथा भावाभिव्यक्ति, लघु शोध प्रबंध (एम.फिल. हिन्दी), हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला-171005
3. कुमार, नरेश (2001), सिरमौरी लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, शोध प्रबंध, पीएच.डी. (हिन्दी), हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला-171005
4. देवराज (2001), सिरमौरी लोक संगीत पर सीमावर्ती क्षेत्रों का प्रभाव एक तुलनात्म्क अध्ययन, शोध प्रबंध, पीएच.डी. (संगीत), हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला-171005

साक्षात्कार

1. विद्यानन्द सराईक, संस्कृति संरक्षक, जिला सिरमौर
2. मनसा राम, लोक गायक, जिला सिरमौर
3. भजन सिंह, लोक गायक, जिला सिरमौर
4. कल्याण सिंह, लोक गायक, जिला सिरमौर

टेलीविजन धारावाहिकों में लोक तत्व

डॉ० मीनाक्षी कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, जीसस एंड मेरी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

टेलीविजन अपने स्वरूप में दृश्य श्रव्य संचार माध्यम का परिचायक है द्य ऐसे में अपने स्वरूपगत विशेषताओ के साथ वह अनेक कार्यक्रमों को सामान्य जनता तक पहुँचाता है द्य इनमे मुख्य रूप से समाज से रूबरू कराने वाले मुद्दो के साथ ही मनोरंजन तत्व का भी बाहुल्य मिलता है। अपनी तकनीकी प्रणाली से जुड़ा यह इलेक्ट्रॉनिक जनसंचार माध्यम के रूप में दिन ख्रप्रतिदिन ख्याति अर्जित करता जा रहा है। अपनी विशेषताओ का प्रयोग कर टी.वी. ने शिक्षा, ज्ञान, मनोरंजन, अपने परिवेश, परिस्थितियों, समस्याये इत्यादि सभी क्षेत्रो पर अपनी पकड़ बनायी है और सभी सूचनाओ को एकत्रित कर अपने दर्शको तक पहुचाना ही उसका लक्ष्य रहा है। इन्ही विशेषताओ से जुड़ा टी.वी. धारावाहिक भी दर्शक वर्ग में विशेष रूप से प्रचलित है। टीवी धारावाहिकों पर सोप-ऑपेरा का प्रभाव माना जाता है, जो बाद में अपने अलग स्वरुप में सामने आये।

टी.वी धारावाहिक

सामान्यत: धारावाहिक का तात्पर्य उन सभी कार्यक्रमों से माना जाता है जो टेलीविजन पर श्रृंखलाबद्ध रूप मे दिखाए जाते है। ये कार्यक्रम कथात्मक और गैर-कथात्मक दोनों प्रकार के हो सकते है। कथात्मक लेखन का मतलब था- दूरदर्शन के लिए नाटको का लेखन। नाटक चाहे टीवी पर या रेडियो पर प्रस्तुत किया जाये इनकी प्रस्तुति के माध्यमो के अनुसार इसके सिद्धांतो में थोडा बहुत परिवर्तन आ जाता है: "The rules for play writing are universal. They apply generally to the structure of the play written for the stage, film, television or radio. The rules are modified in their specific application by the particular medium special requirement.[1]"

वैसे दूरदर्शन पर सर्वप्रथम नाटको का ही प्रारंभ हुआ था, जो की तीन से चार कड़ियों में दिखाये जाते थे। 1982 की क्रांति के बाद रंगीन टीवी प्रसारण से दूरदर्शन को अधिक सॉफ्टवेयर की आवश्यकता थी। ऐसे कार्यक्रमों की आवश्यकता थी जो जनता का मनोरंजन कर सके। इसीलिए ऐसी कडीबद्ध कहानियां दूरदर्शन के लिए लिखी गयी जो लोक एवं समाज के विविध पक्षों को अपने अन्दर समेटती हुए दर्शको का मनोरंजन करे। दूरदर्शन के ऐसे ही मनोरंजन एवं सूचनाप्रद स्वरुप से जुड़े धारावाहिकों को कुछ प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है:

1. **कड़ीबद्ध धारावाहिक (EPISODE सीरियल):** ये ऐसे धारावाहिक होते है जिनकी की एक निश्चित कहानी होती है और जिसे 13, 26, 52 या 104 एपिसोड्स में बात कर दिखाया जाता है। 'हमलोग' इसका आदर्श उदाहरण है। इसके अतिरिक्त पं. जवाहरलाल नेहरु की पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' पर आधारित 'भारत एक खोज' और रेलयात्रा पर आधारित 'यात्रा' जैसा धारावाहिक भी इसके उदाहरण है।
2. **सोप-ऑपेरा:** यह धारावाहिक वैसे तो महिला केन्द्रित विधा मानी जाती है। इसके विषय में अनगिनत कडियां होने का संकेत दिये जाते है। शुरुवात में यह हफ्ते में एक बार आधे घंटे के लिए दिखाये जाते थे परन्तु इसकी प्रासंगिकता को देखते हुए जब दूरदर्शन ने इसका समय हफ्ते में दो बार करने के साथ ही दोपहर के समय इसका प्रसारण निश्चित किया तब इसे 'डेली सोप' के नाम से सम्बोधित किया गया। ऐसे धारावाहिकों में सर्वप्रथम 'शांति' का नाम आता है। आगे चलकर इनका प्रसारण निरंतर बढ़ता गया और प्राइवेट चौनल्स के आने के बाद तो इनकी बाढ़ सी आ गई। वैसे "सोप-ऑपेरा पूर्णत: व्यावसायिक होते है और इन्हें कथात्मक कार्यक्रमों का सफलतम रूप कहा जा सकता है।"[2]
3. **पीरियड धारावाहिक:** पीरियड धारावाहिक ऐसे धारावाहिक होते है जिसमे इतिहास-पुराण का कालखण्ड दिखाया जाता है और ऐसे तमाम ऐतिहासिक चरित्रों को दूरदर्शन के माध्यम जीवंत कर दर्शको के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। इनमे कुछ प्रसिद्ध धारावाहिक इस प्रकार है- चाणक्य, टीपू सुल्तान, बहादुर शाह जफर, मिर्जा गालिब, अकबर द ग्रेट, झाँसी की रानी।
4. **जासूसी-धारावाहिक:** जासूसी धारावाहिक जासूसी कथाओ पर आधारित होते है। भारतीय टीवी पर इस तरह का पहला धारावाहिक 'करम-चंद' था। इसके उपरांत मार्शल, कमांडर, तहकीकात जैसे कार्यक्रम इसी कोटि के है। आज कल के धारावाहिकों में सी.आई.डी., क्राइम पट्रोल, सावध ान इंडिया जैसे धारावाहिक प्रमुख है।
5. **कैंपस केन्द्रित धारावाहिक:** इस तरह के धारावाहिक किशोर वर्ग के दर्शक वर्ग को ध्यान में रखकर बनाये जाते है। इसमें शहर महानगर, चमक धमक, शोर शराबा, कॉलेज की रैगिंग, मौज मस्ती जैसे तत्वों की प्रमुखता रहती है। दूरदर्शन के 'चुनौती' और 'सुबह' इसी तरह के धारावाहिक थे।
6. **कॉमेडी धारावाहिक:** ये धारावाहिक सबसे लोकप्रिय धारावाहिक होते है क्योंकि सभी वर्गों के लोग इसे एक साथ बैठ कर देख सकते है। सबसे पहला कॉमेडी या सिटकॉम धारावाहिक 'ये जो है जिंदगी' ने बहुत सफलता अर्जित की। इसके आलावा बहु चर्चित कॉमेडी धारावाहिकों में मुंगेरीलाल के हसींन सपने, देख भाई देख, फिल्मी चक्कर इत्यादि प्रमुख है।

इन सभी धरावाहिको में लोक के सभी पक्षों का भरपूर उपयोग किया गया। इनमे भारतीय परिवेश के साथ ही हमारी संस्कृति, रहन सहन, खान पान जैसे विविध पक्षों का उपयोग किया गया है। साथ ही हमारे परिवेश के विविद मुद्दो व् समस्याओ को भी उठाया गया है।

वास्तव में ऐसा माना जाता है कि धारावाहिक अथवा सोप-ऑपेरा पश्चिम की देन है। मैक्सिको के सोप-ऑपेरा को सारी दुनिया में फैलाने में 'CENTRE FOR POPULATION COMMUNICATION INTERNATIONAL' ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई। इस सेंटर से जुड़े हुए लोगो का मानना है की "प्रोडेवेलोप सोप-ऑपेरा को तीसरी दुनिया के देशो तक भी पहुचायाँ जाये ताकि उन्हें इससे अपने देश को विकास के लक्ष्य तक पहुचानें में सहायता मिले। अत: भारत, केनिया, मिस्त्र, नाईजेरिया और ब्राजील के उच्च अधिकारियो को मैक्सिको आने और MR- MIGUEL SABIDO की रचनाओं से लाभान्वित होने का निमंत्रण दिया गया।"[3] वैसे इन टीवी धारावाहिकों की परम्परा विश्व में 1950 से देखी जा सकती है "विश्व का पहला टीवी सोप–ऑपेरा 'The first 100 theaters,' 1950 में प्रसारित हुआ था। ऐसा माना जाता है कि "CENTRE FOR POPULATION COMMUNICATION INTERNATIONAL" के निमंत्रण पर भारत सचिव का अपने ग्रुप के साथ 1983 में वहाँ जाने और उससे प्रभावित होने पर ही भारत में इसका प्रभाव 'हम लोग', (1984) के साथ ही 'ऐसा भी होता है' जैसे धारावाहिकों के रूप में सामने आता है।"[4] वैसे सोप-ऑपेरा का पश्चिम में प्रारंभ "अकेले बैठी स्त्रियों को ध्यान में रखकर किया गया था। इन धारावाहिको की थीम स्त्री ख़केन्द्रित पारिवारिक किस्म की थी जो शनिवार और इतवार को छोड़कर अन्य पांच दिनों में प्रस्तुत किए जाते थे।"[5] इन धारावाहिको को प्रायोजित करने वाली कंपनी प्रॉक्टर एंड गैम्बल ने कपड़े धोने का झागदार साबुन को प्रायोजित किया। इसी कारण इन धारावाहिकों के साथ "सोप" शब्द विशेषण के रूप में जुड़ गया। बाद में भारतीय साहित्य व्यंग्य करने वाले लोगों ने इन पारिवारिक धारावाहिको में शोर शराबे के तत्व पाए जाने पर इसे पश्चिमी ऑपेरा के साथ जोड़ दिया गया।

सोप–ऑपेरा के सफलता के रहस्य के पीछे सोप-ऑपेरा के जनक MR-MIGUEL SABIDO ने पाँच चीजों पर अत्यधिक बल दिया था - 1. अधिक से अधिक दर्शकों को अपनी और आकृष्ट करना, 2. मौलिक प्रचलित सांस्कृतिक तत्वों पर बल देना, 3. कहानी में भावनाओं को शामिल करना, 4. सामाजिक जरूरत के नैतिक मूल्यों पर प्रकाश डालना और 5. सामाजिक शिक्षा की उचित प्रणाली को अपनाना। अपने इन्ही सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर ही MR-MIGUEL SABIDO ने मैक्सिको के एक व्यावसायिक नेटवर्क 'TELEVESA' के माध्यम से छह सीरीज का पहला सोप-ऑपेरा 1988 में प्रस्तुत किया। ये कार्यक्रम प्रारंभ में शिक्षा जैसे मूल विचारों के ही इर्द-गिर्द घूमता था। इससे दर्शको की काफी ज्ञान वृद्धि हुई और यह बहुप्रचलित भी हुआ।

आज के समय में सोपख्रऑपेरा 'हमलोग' से भारत में प्रवेश कर अपनी जड़े पूरी तरह जमा चुके है। समाजशास्त्रियो के अनुसार इन धारावाहिकों के इतना लोकप्रिय होने का कारण जनता एवं दर्शको का किसी परिवार या समुदाय के जीवन में जमकर ताक-झांक करने की प्रवृति कार्यशील है ख़ "इन धारावाहिकों की लोकप्रियता उस समय बढ़ी जब बड़े परिवार खत्म हो चुके थे। पास पड़ोस और समुदाय खत्म हो चुके है। आपके लिए पड़ोसी तक अजनबी है और और आप उसके घर में ताक-झांक नहीं कर सकते। इसीलिए धारावाहिक में आने वाला परिवार या समुदाय आपकी दखलंदाज आत्मा के लिए बहुत जरूरी हो जाता है।..... मेरे अपने लिखे हुए धारावाहिकों में केवल "हमलोग" ही ऐसा था जिसके लिए पाठको के पत्र प्रस्तुतकर्ता अशोक कुमार के नाम से आया करते थे। उन पत्रों को पढ़कर यह प्रमाणित होता था कि भारतीय दर्शक के लिए भी धारावाहिक के पात्र काल्पनिक नहीं, वास्तविक होते है।"[6]

वैसे सोप–ऑपेरा वो टीवी धारावाहिक होते है जिनके केंद्र में ज्यादातर नारी पात्र ही प्रमुख होते है। इसीलिए कुछ विद्वानों का कहना है कि "सोप-ओपेरा एक स्त्रीवादी विधा है, न केवल इसीलिए की वह स्त्रियों को केंद्र में रखते है और स्त्रियों कि समस्यायों को रेखांकित करती है बल्कि इसीलिए भी कि उसकी कथानिरूपण शैली स्त्रियों की जीवनदृष्टिकोण प्रतिबिंबित करती है।"[7] सोप-ऑपेरा अपने बातूनी स्वरुप के कारण जीवन क अधिक निकट भी होता है। उसमे एक्शन से ज्यादा डायलॉग्न होने के कारण दर्शको को अधिक सुहाता भी है। साथ ही ऐसी समस्यायों से दर्शको को रूबरू करता है जो बहुत ही समसामयिक एवं ज्वलंत होते है। इन धारावाहिकों में लोक तत्व के साथ ही अतिनाटकीयता का होना भी बहुत आवश्यक होता है। "इसके लिए जरूरी होता है की आप अपने पात्र इस तरह से बनाये वे अपने दर्शको को सर्वथा जाने-पहचाने से लगे। आप उनका परिवेश रहन-सहन, उनकी बातचीत भी ऐसे दिखाये कि दर्शको को लगे कि हम नाटक नहीं सच्चाई देख रहे है।"[8] ऐसा होने पर ही दर्शकगण उनसे अपना तादातम्य स्थापित कर पाएंगे। ऐसे धारावाहिकों की तो भारत में आज होड़ सी लग गई है जिसका श्रेय मीडिया के भूमंडलीय स्वरुप को जाता है।

टी.वी. का भूमंडलीय स्वरुप:

टी.वी. के ऐसे विस्तृत स्वरुप के ही कारण यह आज हमारे जीवन का अनिवार्य अंग बन गया है। परन्तु ऐसे विस्तृत स्वरुप के अस्तित्व पर विचार करने वाले विद्वान डंटींसस डंबसनींद ने अंडरस्टैंडिंग मीडिया में लिखा था कि 'माध्यम ही सन्देश है'।[9] उनके इस कथन का अभिप्राय यह था कि हम 'भूमंडलीय गाँव' में रहते है। जहाँ नया और उन्मुक्त वातावरण मिलता है क्योंकि राष्ट्र एवं राज्यों की सभी सीमाएं टूट गई है। वास्तव में खाड़ी युद्ध के साथ ख़ साथ सैटलाइट टी.वी. ने भारत के सार्वभौम आकाश को बिना बताये भेद डाला और इसके साथ ही भारत में डिश एंटीना एवं सैटलाइट टी.वी की शुरुआत हो गई। "1991 के फौरन बाद प्रवासी भारतीयों और अन्य कुछ भारतीयों ने यह पाया कि भारत में एक बड़ा मध्य वर्ग मौजूद है जो आकाश के खुलने को तरस रहा है।[10]" इसीके फलस्वरूप हांगकांग से स्टार टीवी भारत में सीधे दिखाना शुरू किया गया।

सैटलाइट के आने से केबल टीवी का दौर शुरू हुआ। केबल के अनेक चौनलों ने (STAR, CNN, ATN, ZEE, SONY, COLORS, SAB ets) दूरदर्शन को सीधी स्पर्धा दी। दूरदर्शन की साख एवं अस्तित्व को असम्भव था। शहरी मध्य वर्ग में इन डिश चौनलों मे स्टार टीवी ने सर्वप्रथम पकड़ बनाई। सैटलाइट द्वारा चौनल प्रसारणों के दर्शकों के आकड़ें इस प्रकार है– "CNN को देखने वाले दर्शकों की संख्या 46 प्रतिशत, ठठब का 79 प्रतिशत, MTV की दर्शकता 55 प्रतिशत, विदेशी सीरियल देखने वाले 75 प्रतिशत, प्राइम स्पोर्ट्स देखने वालों की संख्या 61 प्रतिशत थी दूरदर्शन का एक बड़ा हिस्सा इधर आ गया था।"[11] आकाश मार्ग खुलने से टीवी चौनल्स की इतनी भरमार एवं प्रभाव के चलते ही "प्रसिद्ध लेखक टाफलर ने मनुष्य सभ्यता को पहली लहर, औध्योगिकी को दूसरी लहर और विज्ञान और प्रौधोगिकी को तीसरी लहर माना। "थर्ड वेव" में टाफलर ने जो भविष्यवाणी की थी,वे सच साबित हुई। उसने

घोषणा की थी कि 'भविष्य का युद्ध संचार माध्यमों के बल पर लड़ा जायेगा। संचार माध्यमो के जरिये शक्तिशाली राष्ट्र हथियारो के इस्तेमाल के बिना मस्तिष्क के प्रयोग से युद्ध लड़ेंगे"[12]और ऐसा युद्ध इन देशो के हमारे देश में मीडिया प्रभुत्व के साथ ही अपने देश के खान ख़पान के सीमा विस्तार से भी जुड़ा है। "अब पेप्सी कोला नामक अमेरिकी कम्पनी इस देश में कोल्ड ड्रिंक की बोतलों के पहाड़ लगा देंगी। बच्चे दूध के बजाये कोल्ड ड्रिंक माँगा करेंगे।"[13]

भूमंडलीकरण के परिणामस्वरुप ही भारत में आकाश मार्ग खुलने के साथ ही बहुराष्ट्रीय कंपनियों का भी प्रभुत्व हुआ जिसके प्रभाव से आज सम्पूर्ण देशवासी आधुनिक जनसंचार माध्यमों के प्रयोग के साथ ही बाहर की चीजों के प्रयोग और अंग्रेजी भाषा से जुड़ने में ही अपनी पारंगतता समझते है।

लोक तत्व

विदेश का सोप-ऑपेरा हो या भरतीय मूल के टीवी धारावाहिक, दोनों के ही मूल में लोक और उनसे जुड़े तत्व कार्यशील रहते है। धारावाहिकों का प्रारंभ ही समाज के लिए अर्थात लोक के लिए किया गया है इसीलिए समाज में उसकी सफलता के मापदंड के लिए भी उसके तत्वों का भरपूर उपयोग किया गया है। जहाँ लोक शब्द का प्रयोग होता है वहां उसके पुरातन पक्ष से आधुनिक प्रयोग की बात की जाती है। वैसे लोक शब्द को भवन से जोड़ते हुए 14 भागो में देखा जाता है: "संसार, पृथ्वी, मानव जाति, समाज, प्रजा, समूह, भू-भाग, प्रान्त, निवासस्थान, दिशा, सांसारिक व्यव्हार, दृश्य, 7 ऊपर और 7 नीचे (सप्तलोक)"[14] लोक के इस परिपेक्ष्य में लोक में रहने वाली जनता के आचार-विचार, व्यवहार, वेशभूषा, रहन-सहन, भाषा, संस्कार, नृत्य, संगीत इत्यादि सभी तत्वों की प्रमुखता रहती है। यह (लोक) सूत्र एक ऐसा सूत्र है जो विभिन्न समुदायों को मिला जुला कर उसी प्रकार रखता है जैसे किसी माला में पिरोये हुए मणि हो। सामान्य जनता के तौर तरीको एवं जीवन शैली को आधार बनाकर शिष्ट समाज टीवी धारावाहिकों की पृष्ठभूमि तैयार करता है। यही धारावाहिक सामान्य जनता द्वारा देखे और लोकप्रिय भी बनाये जाते है। "जब दर्शक वर्ग घर में बैठे एक टेलीविजन नाटक या धारावाहिक देख रहा होता है तो वास्तविकता और कल्पना की धाराएँ अटूट क्रम में प्रवाहित होती रहती है। लेकिन वह नाटक को वास्तविकता से भिन्न नहीं मानता है।"[15]

आज भी सभी टीवी धारावाहिकों में उन्हीं लोक तत्वों की प्रधानता मिलती है जो भारत के प्रारंभिक टीवी धारावाहिक 'हम लोग' में मिलती थी। अंतर है तो केवल इतना ही कि आज पब्लिक चौनल्स के साथ ही प्राइवेट चौनल्स ने भी इस क्षेत्र में प्रवेश कर लिया है जिससे इन धारावाहिकों का अति आधुनिक रूप एवं बाहुल्य में इनका विकास हो रहा है। इसका सर्वप्रथम श्रेय भूंडलीकरण और थ्क्प् को जाता है। भारत में सोप- ऑपेरा जैसे विधा की सफलता के पीछे यही लोकतत्व कारगर है। विदेशी चौनल्स यह बात अच्छी तरह जानते है कि यदि भारत जैसे इतने बड़े आबादी वाले देश को अपने चौनल्स की और आकर्षित करना है तो इसके लिए उन्हें हमारे लोक और समाज से जुड़े तथ्यों को आधार बनाना होगा। प्रसिद्ध लेखक मैकवानिल ने 'कम्युनिकेशन' (1975) नामक कृति में इस तथ्य की पुष्टि की है:- "ऑडियंस रिसर्च आमतौर पर मार्किट रिसर्च की तर्ज पर की जाती है। वे ऑडियंस को मार्किट मान कर चलते है।"[16] ऐसी ऑडियंस को टारगेट करने के लिए उन्होंने कुछ मुख्य बिन्दुओ को आधार बनाया है:-

1. टीवी धारावाहिकों में दिखाए गए स्थान और वातावरण दर्शको के लिए परिचित होने चाहिए साथ ही स्थान घर गृहस्थी से परिपूर्ण हो तो उसे फैलाने के लिए अवकाश मिलेगा। ऐसे में दर्शक उससे अपना बेहतर सम्बन्ध कायम कर उसे अपने अधिक नजदीक पायेगा।
2. पत्रों का चयन भी उसी प्रकार होता है परन्तु यह जरूरी नहीं है कि प्रत्यक पात्र से दर्शक का आत्मीय सम्बन्ध स्थापित है मगर जब पात्रो की समस्याये एवं परिवेश से जुड़े तकलीफों को वह देखता है तो कही न कही अपने इर्द गिर्द उन्ही लोगो में वह समस्याये ढूढ़ने लगता है। यह समस्याये जीवन की सच्ची समस्याये होने चाहिए, काल्पनिक परिवेश अथवा परिस्थितियां दर्शको को प्रभावित नहीं कर पाते है। "धारावाहिकों की सफलता के लिए उसकी शुरुवात किसी समस्या की पेचीदगी से होनी चाहिये। वह समस्या इस एपिसोड में हल हो जाये या किसी खूबसूरत मोड़ पर एपिसोड का समापन हो। अगर समस्या हल हो जाती है तो अन्य किसी समस्या की शुरुवात करके थोड़े सी कश्मकश और पेचीदगी पैदा करके छोड़ देना चाहिए ताकि दर्शको की बेचौनी और दिलचस्पी कायम रहे।"[17] इन सभी तत्वों को समाहित करते हुए प्राइवेट चौनल्स नें भारतीय लोक के विभिन्न तत्वों को भी समाहित किया है।

भारत का पहला धारावाहिक 'हम लोग' हिन्दू परिवार को ही पृष्ठभूमि बनाकर चलता था। इसी कारण इसकी भाषा, संस्कार, वेशभूषा इत्यादि इसी के ही अनुरूप थे। इसके विपरीत 'बुनियाद' जैसे धारावाहिको में भारत- विभाजन की स्थिति को प्रधानता दी गयी, जिसमे पाकिस्तान से यहाँ आने और यहाँ से वहाँ जाने वाले निवासियो की मानसिक, शारीरिक और आर्थिक परिस्थितियों को खुलकर उभरा गया है। हमारी संस्कृति में विविधता में एकता का सूत्र वाक्य सदैव से कारगर था लेकिन इतिहास के इस विभाजन ने उस सूत्र को झकझोर कर रख दिया है। यही त्रासदी इस धारावाहिक का मूल विचार था।

भारत में भूंमडलीकरण के दौर ने सोप-ऑपेरा को एक नया विकसित रूप प्रदान किया जिसे एकता कपूर ने 'ज्ञ' सीरीज के धारावाहिकों के माध्यम से प्रस्तुत कर विशेष ख्याति अर्जित की। इन धारावाहिकों में लोक में समाहित किसी एक विशिष्ट समुदाय का चुनाव कर उसमे व्यवहृत वेशभूषा, भाषा, खानपान, सोच विचार, रहन सहन, संस्कार, नृत्य, संगीत इत्यादि को स्थान दिया गया है। उदहारण के लिए 'क्योंकि सास भी कभी बहु थी' में गुजराती परिवार के रहन सहन, खानपान, भाषा, संस्कारो की प्रधानता थी जिसे बां(दादी) और सास सविता द्वारा अपनी बहुओ विशेषत: तुलसी से बच्चों तक पहुँचानें के कार्य को सफलतापूर्वक करती है। खान पान में ढोकला और थेपला जैसे गुजरती व्यंजन, नृत्य संगीत में प्रत्येक वर्ष गर्भे एवं डांडिया का आयोजन किया जाता है। कुछ विशेष अवसरों पर रंगोली बनाना, संस्कारो के लिए गुजरात की ही कुछ प्रचलित मान्यताओ, धारणाओं एवं इष्ट का संकेत बीच बीच में मिलते है। ऐसा ही एक गुजरती धारावाहिक 'साथ निभाना साथिया' हाल ही में स्टार चौनल पर शुरू हुआ है। यह गुजरात के ही मोदी परिवार के उच्च घराने की स्थिति से दर्शको को रूबरू करता है। इसके पात्र भी बीच बीच में गुजरती संस्कारो, भाषा, परम्परा, खान पान इत्यादि का परिचय देते रहते है। पहनावे में यह नारियां लहरिया साडी तथा लहँगा चोली पहनती है।

गुजराती संस्कृति और समाज में वर्णित मान्यताओ को भी इसमें सक्षमता से उभारा गया है। विशेष रूप से नारी जाति से जुडी मान्यताओ को इन धारावाहिकों में प्राथमिकता दी गयी है। दोनों ही धारावाहिक नारी को घर की चारदीवारी के भीतर ही अपनी कार्यक्षमता को सिद्ध करने पर जोर देते है। घर से बाहर का

कार्यक्षेत्र सदैव पुरुषो के ही सुपूर्त रहता है। गुजराती संस्कृति से जुडा यह धारावाहिक नारी की स्थिति को दर्शाता है। 'वही कसौटी जिन्दगी की' धारावाहिक को अलग अलग समुदायों के संस्कारो को एक साथ शामिल किया गया है। इस धारावाहिक का पुरुष पात्र बंगाली परिवार का बेटा है जबकि स्त्री पात्र यू. पी. से जुडी है। बंगाली परिवार का खान पान, भाषा के कुछ शब्द विशेष एवं रहन से दर्शको में विशेष उत्साह बना रहता है। हाल ही में ऐसा ही एक धारावाहिक शुरू हुआ है जिसमे पुनः दो अलग अलग समुदायों को एकसाथ दिखाया गया है. 'ये है मुहब्बतें' नामक इस धारावाहिक में पंजाबी (पुरुष) और कन्नड़ (स्त्री) के आपस में विवाह और जुड़ने के प्रसंग को दर्शाया गया है। इसमें लड़के का परिवार अपने पंजाबी रीति नीति और संस्कारो को लेकर चलते है और लड़की का परिवार अपने रिवाजों को। लड़का लड़की दोनों विवाह उपरांत अपने लालन पोषण के अनुसार अपने रहन सहन को कायम रखे हुए है। दोनों ही धारावाहिको में पारिवारिक रिश्तो के मध्य संघर्ष एवं टकराहट के स्वर सनाई पड़ते है। आजकल के ऐसे धारावाहिकों में आम भारतीय परिवारों के सामान्य मुद्धो से इतर मुद्धे सामने आ रहे है। यहाँ बहन अपने पति की सफलता के लिए भाई का नुकसान करना ठीक समझती है, पति का या पत्नी का दो से ज्यादा शादियां करना और फिर रिश्तों में उलझन पैदा होना। ऐसे ही अलग और विचित्र मुद्दे इन धारावाहिकों की नीव बनते है।

इनके अतिरिक्त आजकल टीवी पर राजस्थानी संस्कारो से जुड़े धारावाहिकों की भी होड़ सी लगी है। इन धारावाहिकों में 'दिया और बाती हम', 'यह रिश्ता क्या कहलाता है', 'बालिका वधु' इत्यादि प्रमुख है। इनमे राजस्थानी भाषा, संस्कार, परिवेश, रहन-सहन, खान पान, बोलचाल, पहनावा, कला इत्यदि सभी पक्ष वही से जुड़े है। इनके पहनावे में घाघरा चोली और चूनरी के साथ बोडला जरूर होता है। खानपान में अक्सर दाल बाटी और चूरमे का जिक्र किया जाता है। अंतर है तो केवल इतना कि 'दीया और बाती हम' में राजस्थान के छोटे से जिले पुष्कर का वातावरण वर्णित है, जबकि बालिका वधु वही के छोटे से गाँव से जुड़ा है और ये रिश्ता क्या कहलाता है शहरी उच्च वर्ग के राजस्थानी परिवार से जुड़ा है। इन तीनो मे ही नारी का परिवेश भिन्न है इसी कारण उनका जीवन, पारिवारिक दायित्व, समस्याये भी भिन्न भिन्न मिलती है। दीया और बाती तथा बालिका वधू में गाँव देहात की नारी से जुड़े राजस्थानी संस्कारो को प्राथमिकता से दिखाया गया है। ऐसे परिवारों में नारी को केवल घर के योग्य माना जाता है। नारी का बाहर जाकर काम काज करना स्वीकार नहीं किया जाता। लेकिन परम्परा के विरुद्ध आधुनिकता का समावेश इन नाटको में भी नजर आता है। ऐसे में संध्या का बहु होने पर ससुराल वालो की सहमती से आई. पी.एस. बनना साथ ही आनंदी का गाँव की पंचायत की पहली महिला युवा मुखिया बनना। ऐसे पिछड़े हुए समाज एवं लोक के संस्कारो में ऐसा आधुनिक परिवर्तन ही आज टीवी धरावाहिको की परिवर्तनीय मुद्दो से जोड़ता है।

ये सभी धारावाहिक अपने अलग-अलग थीम और पृष्ठभूमि के साथ ही भारत के विविध संस्कारो, रहन सहन, नृत्य, कला एवं भारतीय धरोहर को साथ में लेकर चलते है। देखने वाले दर्शक यदि उसी समुदाय से हो जिससे जुड़कर वह धारावाहिक प्रस्तुत किया जा रहा हो तो देखने वाला दर्शक उससे अपन तादात्म्य अच्छे से स्थापित कर लेता है। कभी उन्ही पात्रो को वह खुद में ढूढ़ता है तो कभी दूसरो में। अन्यथा अपने से इतर समुदाय के संस्कारो एवं लोकतत्व से जुड़े धारावाहिक उसे बड़े लुभावने लगते है। ऐसे में जानने की अधिक जिज्ञासा के फलस्वरूप वह रोज ही इन्हें देखने को उत्सुक रहता है।

टीवी धारावाहिकों के निर्माण का लक्ष्य ही यही है कि दर्शक को मनोरंजन प्रदान करे जिसके लिए वे लोक के तत्वों का बड़ी सक्षमता से इस्तेमाल करते है। ऊपर जिन धारावाहिकों का उल्लेख किया गया है वे सभी अपने भीतर भिन्न भिन्न परिवेश, परिस्थितियों और स्थानों से जुड़े है और अपने भीतर एक ऐसा आकर्षण लेकर चलते है जिससे कुछ दर्शकगण वास्तविकता ही समझ लेते है। ऐसा विशिष्ट आकर्षण पैदा करने के लिए प्राइवेट चौनल्स ज्यादातर विसा तंजे का सहारा लेते है। जिस भी समुदाय से जुड़ा धारावाहिक होगा वहीं की लोक कलाओ को प्रमुखता देकर दर्शको के दिलो में उस धारावाहिक के तार गहरे से जोड़ देते है। इन परंपरागत लोक कलाओ में तमाशा, कीर्तन, लोक संगीत एवं नृत्य, रामलीला, रासलीला इत्यादि प्रमुख है। ऐसे धारावाहिकों में लोककलाओ को तवज्जों देने के कारण इनका स्वरुप अधिक अपनत्व से पूर्ण बन जाता हैः- "In contrast to modern mass media] the traditional media are personal] familiar and more credible forms, with majority of literature and identifying with there formats, genres and contents."[18]

ऐसे ही परम्परागत लोक कलाओ का प्रयोग राजस्थानी एवं गुजराती धारावाहिकों में आरती, कीर्तन और व्रत उपवासों के माध्यम से मिलता है, पंजाबी धारावाहिकों में गुरु की अरदास तथा कन्नड़ के परिवारों में पूजा अर्चना, बंगाली धारावाहिकों में परिवारों में काली माँ एवं शिव भगवान की पूजा द्वारा दर्शाया जाता है। इसके साथ ही संगीत और नृत्य भी अलग अलग शैलियों में प्रस्तुत किये जाते है- राजस्थानी धारावाहिको में घूमर शैली, गुजराती धारावाहिकों में गर्भा एवं रासलीला, पंजाबी धारावाहिकों में गिधा और भांगरा इत्यादि के रूपमें सामने आते है।

संदर्भ

- Robert. L. Hilliard, writing television radio and new media, USA, 1999.
- Kumar, Keval J., Mass Communication in India, Jaico publishing house, Mumbai, 2010.
- मानस, मुकेश, 'मीडिया लेखन सिद्धांत और प्रयोग, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, 2011.
- हुसेन, मोहम्मद शाहिद (मूल),डॉ.सिंह,ओम प्रकाश, जफरूल्लाह अंसारी (अनुवाद), ग्रंथलोक प्रकाशन, दिल्ली, 2010.
- रैणा, गौरीशंकर, "संचार माध्यम लेखन", वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2006.
- जोशी, मनोहर श्याम, "पटकथा लेखनः एक परिचय", राल्कमल प्रकाशन, दिल्ली, 2000.
- पचौरी, सुधीश, "दूरदर्शन विकास से बाजार तक", प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली, 1996.
- अमर', अमरनाथ, "दूरदर्शन एवं मीडिया विविध आयाम", अमरसत्य प्रकाशन, दिल्ली,2008.
- प्रसाद, कालिका, सहाय, राधावल्लभ, श्रीवास्तव, मुकुन्दलाल, वृहत हिन्दी कोष, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, 2004.
- चतुर्वेदी, जगदीश्वर, जनमाध्यम प्रोद्योगिकी और विचारधारा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर (प्रा.) लिमिटेड, दिल्ली, 2000,
- प्रो. शाहिद, हुसैन (मूल), सिंह, ओम प्रकाश (अनु.), जनसंचार परम्परा और प्रयोग, ग्रंथलोक प्रकाशन, दिल्ली, 2010.

फुटनोट

1. Robert. L. Hilliard, writing television radio and new media, USA, 1999, p.346
2. मानस, मुकेश, 'मीडिया लेखन सिद्धांत और प्रयोग, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, 2011, पृ. 212.
3. हुसेन, मोहम्मद शाहिद (मूल), डॉ. सिंह, ओम प्रकाश, जफरूल्लाह अंसारी (अनुवाद), ग्रंथलोक प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृष्ठ. 257.
4. रैणा, गौरीशंकर, "संचार माध्यम लेखन", वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृष्ठ. 89.
5. वहीँ, पृष्ठ. 129.
6. जोशी, मनोहर श्याम, "पटकथा लेखन: एक परिचय", राल्कमल प्रकाशन, दिल्ली, 2000, पृष्ठ 137.
7. वहीँ, पृष्ठ. 141.
8. वहीँ, पृष्ठ. 142.
9. पचौरी, सुधीश, "दूरदर्शन विकास से बाजार तक", प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली, 1996, पृष्ठ 28.
10. वहीँ, पृष्ठ 37.
11. वहीँ, पृष्ठ 37-38.
12. अमर, अमरनाथ, "दूरदर्शन एवं मीडिया विविध आयाम", अमरसत्य प्रकाशन, दिल्ली, 2008. पृ. 29.
13. वही, पृ. 30.
14. प्रसाद, कालिका, सहाय, राधावल्लभ, श्रीवास्तव, मुकुन्दलाल, वृहत हिन्दी कोष, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, 2004, पृ. 997.
15. रैणा, गौरीशंकर, "संचार माध्यम लेखन", वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृष्ठ. 69-70.
16. चतुर्वेदी, जगदीश्वर,जनमाध्यम प्रोद्योगिकी और विचारधारा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर (प्रा.)लिमिटेड, दिल्ली, 2000, पृ. 196.
17. प्रो. शाहिद, हुसैन (मूल), सिंह, ओम प्रकाश (अनु.), जनसंचार परम्परा और प्रयोग, ग्रंथलोक प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृ. 260.
18. Kumar, Keval J., Mass Communication in India, Jaico publishing house, Mumbai, 2010, pg. 384

शंकराचार्य के दार्शनिक चिंतन के आधारभूत तत्व

डॉक्टर अमित कुमार शुक्ल

असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, बुंदेलखंड महाविद्यालय, झांसी

शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत को दार्शनिक चिंतन की पराकाष्ठा माना जाता है। शंकराचार्य का दर्शन अद्वैतवाद है क्योंकि यहां पर केवल एक ही तत्व की यथार्थ सत्ता स्वीकार की गई है। शंकराचार्य ने ब्रह्म को एकमात्र सत्य माना, जगत को मिथ्या कहा और आत्मा एवं ब्रह्म में तादात्म्य संबंध को स्वीकार किया है। शंकर के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत्ता है, यह जगत ब्रह्म का आभास मात्र है, जीव वास्तविक रूप में ब्रह्म का ही विवर्त है अत: आत्मा और ब्रह्म में कोई तात्विक भेद नहीं है। शंकराचार्य के दार्शनिक निष्कर्षों को उनके चिंतन के पूर्व ज्ञान के बिना नहीं समझा जा सकता है। क्या कारण है कि शंकराचार्य ने जगत को मिथ्या कहा, ब्रह्म को एक मात्र से सत्ता कहने की पीछे शंकराचार्य की आधारभूत मान्यताएं क्या थी, आत्मा और ब्रह्म में जिस तादात्म्य की बात शंकर करते हैं वह किस प्रकार से सिद्ध किया जा सकता है- शंकर के दर्शन को जान लेना और दार्शनिक निष्कर्षों में से उनके सारतत्व को पहचानना एक प्रमुख समस्या है। वास्तव में शंकराचार्य की दर्शन में प्रत्येक निष्कर्ष परस्पर सुसंगत है। इस दृष्टि से शंकराचार्य की निष्कर्षों की पूर्व मान्यताओं को देखा जाना चाहिए। इस शोधपत्र में यह प्रयास किया गया है कि शांकर- दर्शन के आधारभूत तत्वों का उद्घाटन किया जा सके।

शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या है।[1] ब्रह्म और जीव में कोई तात्विक भेद नहीं है।[2] माया ब्रह्म कि वह शक्ति है जो जगत का अनुभव कराती है।[3]- शंकराचार्य की उपर्युक्त दार्शनिक निष्कर्षों को एवं उनकी पूर्व मान्यताओं को समझने का प्रयास किया जा सकता है। शंकराचार्य ब्रह्म को एकमात्र सत्ता मानते हैं। ब्रह्म, अनंत, नित्य,एक एवं सच्चिदानंद है।[4] शंकराचार्य के तात्विक निष्कर्ष पुष्टि के रूप में प्रमाण- विवेचन की मांग करते हैं। शंकराचार्य के अनुसार श्रुति एकमात्र प्रमाण है जो ब्रह्म की ओर संकेत करती है।[5] शंकर ऐसा इसलिए कहते हैं क्योंकि उनके अनुसार जगत की विविध अनुभव परस्पर एक दूसरे को खंडित करते हैं। अत: प्रश्न उठता है की जगत के अनुभव के आधार पर उच्चतर अनुभव और निम्नतर अनुभव यानी अनुभव के विभिन्न विरोधाभास का अंत कैसे हो सकता है। यहां पर यह आवश्यक हो जाता है की जो वास्तविक ज्ञाता है, उनके वचन को प्रामाणिक माना जाए। शब्द प्रमाण के अंतर्गत श्रुति प्रमाण को शंकर इसीलिए स्वीकार करते हैं कि श्रुति-वचन उनके द्वारा रचित हैं जिन्हें परम तत्व का साक्षात अनुभव हो चुका है । यही कारण है कि शंकराचार्य ब्रह्म को एकमात्र सत्ता स्वीकार करते हैं। इस प्रकार श्रुति के द्वारा शंकराचार्य ब्रह्म को सत्ता के रूप में स्वीकार करते हैं।

अस्तित्व की दृष्टि से एकमात्र ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार करने के कारण शंकर के सम्मुख ही यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जगत क्या है, यदि जगत को भी वास्तविक माना जाए तो ब्रह्म एवं जगत दो प्रकार की सत्ता हो जाती हैं। यह सत्ताएं दो हैं तो शंकर का अद्वैतवाद खंडित हो जाता है। यही कारण है कि शंकर ब्रह्म को एक मात्र सत्य मानते हुए जगत की परमार्थ सत्ता का निषेध करते हैं। शंकर के अनुसार जगत मात्र व्यावहारिक दृष्टि से ही सत्य है, पारमार्थिक दृष्टि से असत्य।जगत की व्यवहारिक सत्ता को स्वीकार करते हुए भी जगत मिथ्या है।यहां मूलभूत प्रश्न से उपस्थित होता है की जगह जो दिखाई देता है, अनुभव में आता है, उसकी यथार्थ सत्ता को स्वीकार नहीं करके शंकर किस आधार पर ब्रह्म की ही एकमात्र यथार्थता स्वीकार करते हैं। स्पष्ट ही इसका कारण यह है कि इस परिवर्तनशील जगत की यथार्थता का निरूपण संभव नहीं है। विभिन्न प्रकार के अनुभव एक दूसरे का निषेध करते हैं उच्चतर ज्ञान निम्न ज्ञान का खंडन कर देता है। इसीलिए ब्रह्म की यथार्थता के लिए शंकर श्रुति का सहारा लेते हैं।

श्रुति को एकमात्र प्रमाण स्वीकार करने के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि शंकर जगत को मिथ्या माने। अब प्रश्न उठता है कि जगत को यदि मिथ्या मान लिया जाए तो ब्रह्म और जगत के संबंध की व्याख्या कैसे हो सकती है। निश्चित रूप से ब्रह्म का आभास इस जगत को मानना होगा और इसकी पुष्टि शंकराचार्य के कारणता सिद्धांत के द्वारा की जा सकती है। शंकराचार्य के अनुसार कारण ही एकमात्र सत है और कार्य कारण का आभास मात्र।[6] अत: यह जगह जो आभास है, कार्य है, और इसका जो अधिष्ठान है वही इसका कारण है, और यह कारण ब्रह्म हीं हो सकता है। आचार्य शंकर अपने अद्वैत वेदांत में जगत को मिथ्या मानते हैं। यह जगह व्यावहारिक दृष्टि से सत्य है किंतु पारमार्थिक दृष्टि से असत्य। इस प्रकार शंकर जगत और ब्रह्म दोनों की अलग-अलग स्तर पर सत्ता को स्वीकार करते हुए भी अपने दर्शन को द्वैतवाद से बचाते हैं। अद्वैतवाद का मूल इस पूर्व मान्यता पर निहित है कि इस जगत का कारण ही एक मात्र सत्य है और यह जगत अपने कारण का आभास मात्र। यही कारण है इस शंकराचार्य ने जगत को ब्रह्म का विवर्त कहां है।[7]

शंकराचार्य की सत्कार्यवाद कारणता सिद्धांत के द्वारा ही उनके सत्य का सिद्धांत प्रतिफलित होता है। यही कारण है कि शंकर सत को त्रिकाला बाधित मानते हैं अर्थात ब्रह्म ही एकमात्र सत्य की कसौटी पर खरा उतरता है जो है परिवर्तनशील नहीं है, क्यूंकि समस्त जगत का कारण है। ब्रह्म और जगत के मध्य संबंध का विवेचन करने के क्रम में श्रुति द्वारा अपरिवर्तनशील ब्रह्म कि सत्ता की स्वीकृति और प्रत्यक्ष अनुभव होने वाले जगत की परिवर्तनशीलता जैसे विरुद्ध कोटि के सत्यों की व्याख्या शंकराचार्य माया सिद्धांत के द्वारा करते हैं। शंकराचार्य अर्थापति को एक प्रमाण के रूप में स्वीकार करते हैं अत: जगत और ब्रह्म के बीच संबंध की व्याख्या के लिए एक तीसरे सत्य का आश्रय लेना आवश्यक हो जाता है। यह तीसरा तत्व माया कहलाती है। माया ब्रह्म की शक्ति है और क्यूंकि ब्रह्म पर आश्रित है, इसलिए ब्रह्म से पृथक इसका कोई अस्तित्व नहीं। माया के द्वारा शंकराचार्य इस बात की व्याख्या करने में सफल हो पाते हैं कि अपरिवर्तनशील ब्रह्म परिवर्तनशील जगत के रूप में कैसे अभासित होता है। माया को स्वीकार करते हुए भी शंकर ने उसके स्वतंत्र अस्तित्व

स्वीकार नहीं किया है यही कारण है की माया ब्रह्म की शक्ति होते हुए भी एक अलग तत्व के रूप में स्वीकार नहीं की जा सकती। माया अनादि है और यह ईश्वर की शक्ति है, माया जड़ एवं अचेतन है, भावात्मक होते हुए भी यथार्थ नहीं।

शंकराचार्य ब्रह्म और जीव के संबंध की विवेचना करते हुए कहा है कि दोनों एक ही है, दोनों में अभेद है। सांसारिक दृष्टिकोण से जीव ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होता है। माया शक्ति के कारण जीव अपने मूल स्वरूप को भूल जाता है। अविद्या के आवरण से आवृत जीव वस्तुत: ब्रह्म ही है किंतु अविद्या के वशीभूत वह अपने आप सांसारिक जीव समझने लगता है। सांसारिक दृष्टि से जीव की अनेकता से सिद्ध है लेकिन पारमार्थिक दृष्टिकोण से जीव ब्रह्म का ही अंश है। वस्तुत: जीव और ब्रह्म एक ही है। उपनिषदों में भी ब्रह्म और जीव के बीच भेद को स्वीकार नहीं किया गया है। उपनिषदों में कहा गया है कि ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म हो जाता है।[8] शंकराचार्य के अनुसार जीव की समाप्ति होने पर वह ब्रह्म में ही विलीन हो जाता है। इसीलिए शंकर का उद्घोष है सब कुछ ब्रह्म ही है।

इसीलिए उपनिषदों में कहा गया है कि यह आत्मा ही ब्रह्म है।[9] प्रश्न उठता है कि शंकराचार्य ने आत्मा को ब्रह्म का विवर्त क्यों नहीं माना जैसा कि जगत को मानते हैं। आखिर यह जगत भी जैसे परिवर्तनशील है वैसे ही हम विभिन्न जीवों को परिवर्तनशील देखते हैं। शंकर आत्मा को ब्रह्म ही क्यों कहते हैं। इसका इसका स्पष्ट उत्तर उपलब्ध नहीं होता लेकिन हम कल्पना कर सकते हैं अनुभव करता और अनुभव दोनों ही अलग-अलग सत्ता हैं। अनुभव अनुभवकर्ता की तार्किक पूर्वापेक्षा करता है। और यदि अनुभव अनुभव करने वाले से पृथक है, तो इसका तात्पर्य है अनुभव कर्ता का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। लेकिन क्यों कि ब्रह्म ही एकमात्र परमार्थिक सत्ता है।अत: इसका तात्पर्य है कि ब्रह्मा और आत्मा दोनों एक ही है। ज्ञाता और ज्ञान दोनों की एकरूपता को अगर स्वीकार न किया जाए तो स्पष्ट रूप से दो तत्वों का विधान करना पड़ेगा। लेकिन शंकर का दर्शन अद्वैतवादी एकतत्व वाद है। इसलिए शंकर के दर्शन में ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान की एकता उनके दर्शन का मूलभूत तत्व है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि शंकराचार्य के दार्शनिक चिंतन के आधारभूत तत्व को कुछ पूर्व मान्यताओं के आधार पर समझा जा सकता है। पहला शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत का प्राथमिक बिंदु विवर्तवादी-सत्कार्यवाद कारणता सिद्धांत है। इसी के आधार पर शंकर यह मानते हैं कि वास्तविक सत्ता अपरिवर्तनशील होता है, परिवर्तन आभास मात्र है और मिथ्या है, असत्य वह है जो है ही नहीं। दूसरे वास्तविक सत्ता का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यथार्थ प्रमाण श्रुति ही है और श्रुति भी मात्र ब्रह्म की ओर संकेत है। ब्रह्म का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए ब्रह्म हो जाना आवश्यक है। तीसरे अपरिवर्तनशील ब्रह्म एवं परिवर्तनशील जगत दोनों के मध्य संबंध स्थापित करने के लिए माया की कल्पना अर्थापति के द्वारा की गई है। क्योंकि शंकर के अनुसार स्वतंत्रता उसी की मानी जा सकती है जो स्वतंत्र एवं निरपेक्ष हो, जो अपरिवर्तनशील हो। अत: माया को स्वीकार करने के बाद भी शंकर ने उसे यथार्थ नहीं माना बल्कि माया को ब्रह्म की शक्ति के रूप में परिभाषित किया है। ब्रह्म और आत्मा की एकता का मूलभूत आधार यह है कि यदि आत्मा को ब्रह्म न माना जाए तो ब्रह्म एवं आत्मा दो अलग चेतन तत्व की सत्ता स्वीकार करनी पड़ेगी। ब्रह्म का निषेध या अस्वीकरण एक बार तो संभव है, किंतु आत्मा जो ज्ञाता है एवं समस्त अनुभवों तथा ज्ञान की तार्किक पूर्वापेक्षा है, उसका निषेध असंभव है।

संदर्भ

1. ब्रह्म ज्ञानावली माला,शंकराचार्य, 20।
2. उपर्युक्त।
3. विवेक चूड़ामणि- श्लोक -110।
4. शंकराचार्य, विवेक चूड़ामणि, श्लोक- 465।
5. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, हरेंद्र प्रसाद सिन्हा,अध्याय- 15, पृष्ठ - 305।
6. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, हरेंद्र प्रसाद सिन्हा,अध्याय- 15, पृष्ठ - 316।
7. अद्वैत वेदांत की तार्किक भूमिका, जगदीश सहाय श्रीवास्तव(1997), पृष्ठ- 208।
8. मुंडककोपनिषद, 3/2/9।
9. वृहदानरक्य, 2/5/19।

अर्थशास्त्र की विषय सामग्री एवं क्षेत्र की विवेचना

डॉ० संजीव कुमार सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, साहिबगंज कॉलेज, साहिबगंज (एसकेएम विश्वविद्यालय, दुमका)

सारांश

अर्थशास्त्र सामाजिक विज्ञान की वो शाखा है, जिसके अन्तर्गत वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, वितरण, विनिमय और उपभोग का अध्ययन किया जाता है। किसी विषय के संबंध में मनुष्यों के कार्यो के क्रमबद्ध ज्ञान को उस विषय का शास्त्र कहते हैं, इसलिए अर्थशास्त्र में मनुष्यों के अर्थसंबंधी कार्यो का क्रमबद्ध ज्ञान होना आवश्यक है।

अर्थशास्त्र का प्रयोग अर्थव्यवस्था की कार्य प्रणाली और समाज के विभिन्न वर्गों के आर्थिक संबंधों को समझने के लिये भी किया जाता है। अर्थशास्त्रीय विवेचना का उपयोग समाज से सम्बन्धित अपराध, शिक्षा, परिवार, स्वास्थ्य, कानून, राजनीति, धर्म, सामाजिक संस्थान और युद्ध, इत्यदि क्षेत्रों में किया जाता है।

प्रस्तुत लेख अर्थशास्त्र के अर्थ समेत उसके शामिल विषयों और उनके क्रिया क्षेत्र का विवेचन करते हुए समझने की कोशिश करता है।

मूल शब्दः अर्थशास्त्र, विज्ञान, कला, अर्थव्यवस्था, सामग्री, क्षेत्र, उत्पादन, वितरण, विनिमय और उपभोग

परिचय

अर्थशास्त्र मानव व्यवहार, उसकी आवश्यकताओं (इच्छाओं) एवं उपलब्ध संसाधनों के वैकल्पिक प्रयोग के मध्य संबंधों के अध्ययन का विज्ञान है। अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री का पता इसकी परिभाषा से चलता है। अर्थशास्त्र सामाजिक विज्ञान की वह शाखा है, जिसके अन्तर्गत वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, वितरण, विनिमय और उपभोग का अध्ययन किया जाता है। 'अर्थशास्त्र' शब्द संस्कृत शब्दों अर्थ (धन) और शास्त्र की संधि से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है - 'धन का अध्ययन'। अर्थशास्त्र का शाब्दिक अर्थ है 'धन का शास्त्र' अर्थात धन के अध्ययन के शास्त्र को अर्थशास्त्र कहते हैं।

अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अंतर्गत निम्नलिखित तीन बातों का अध्ययन किया जाता है -

1. अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री
2. अर्थशास्त्र की प्रकृति अर्थात् क्या अर्थशास्त्र विज्ञान है या कला अथवा दोनों हैं।
3. अर्थशास्त्र वास्तविक विज्ञान है अथवा आदर्श विज्ञान।

इनकी विस्तृत व्याख्या निम्नानुसार है

अर्थशास्त्र की विषय-सामग्रीः अर्थशास्त्र की विषय वस्तु का प्रत्यक्ष संबंध आर्थिक क्रियाओं से है । आर्थिक क्रियाओं को अध्ययन करने के लिए अर्थशास्त्र को अग्रलिखित पांच भागों में बांटा गया है

1. विनिमय- प्रो.जेवन्स के अनुसार, "कम उपयोगी वस्तुओं की अधिक उपयोगी वस्तुओं से अदला-बदली विनिमय कहलाती है"। आर्थिक विनिमय में यह आवश्यक है कि वस्तुओं का लेन-देन स्वतंत्रतापूर्वक एवं स्वेच्छा से हो। विनिमय में मुख्य रूप से वस्तुओं के मूल्य निर्धारण का अध्ययन किया जाता है।
2. वितरण- निर्माण के विभिन्न साधन मिलकर जिस संयुक्त वस्तु का उत्पादन करते हैं, उसको बांटने की क्रिया, वितरण कहलाती है। वितरण के अंतर्गत उत्पत्ति के विभिन्न साधनों जैसे-लगान, मजदूरी, ब्याज, लाभ इत्यादि के निर्धारण का अध्ययन किया जाता है।
3. उपभोग- मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वस्तु की उपयोगिता को नष्ट करना, उपभोग है। अर्थशास्त्र के विकास के प्रारंभिक चरण में उपभोग को विशेष महत्व नहीं दिया गया था परंतु वर्तमान समय में उपभोग का अर्थशास्त्र में महत्व सबसे अधिक है। इसलिए उपभोग को अर्थशास्त्र का आदि तथा अंत कहा जाता है।
4. उत्पादन- उत्पादन से तात्पर्य मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, किसी वस्तु की उपयोगिता के सृजन से है। दूसरे शब्दों में, उपयोगिता का सृजन ही उत्पादन है। उत्पादन के अंतर्गत उत्पत्ति के साधनों-भूमि, पूंजी, श्रम, साहस तथा संगठन की विशेषताओं एवं उनकी कार्यक्षमता, उत्पत्ति के नियम व उत्पत्ति की अन्य समस्याओं का अध्ययन किया जाता है ।
5. राजस्व- वर्तमान समय में आर्थिक कार्यों में राज्य का महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इसलिए अर्थशास्त्र में पांचवां विभाग राजस्व का बनाया गया है । इसके अंतर्गत सरकार के व्यय, आय, ऋण तथा वित्तीय प्रशासन (बजट) आदि से संबंधित सिद्धांतों एवं समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

अर्थशास्त्र के इन पांचों विभागों का चाहे पृथक-पृथक अध्ययन किया जाता हो, परंतु वास्तव में ये एक दूसरे पर निर्भर हैं।

अर्थशास्त्र की प्रकृति या स्वभाव

अर्थशास्त्र की प्रकृति के अंतर्गत इस बात का अध्ययन किया जाता है कि अर्थशास्त्र विज्ञान है या कला। इसको जानने से पहले यह जानना जरूरी है विज्ञान व कला से आशय है।

विज्ञान का अर्थ

किसी शास्त्र के क्रमबद्ध ज्ञान को विज्ञान कहा जाता है। जैसा कि प्रो.पाइनकेयर ने लिखा है, "विज्ञान तथ्यों से ठीक उसी प्रकार बनता है जिस प्रकार एक मंकान पत्थरों से बनता है। किन्तु तथ्यों को एकत्र करना मात्र ही, उसी प्रकार विज्ञान नहीं है, जिस प्रकार पत्थरों का ढेर मकान नहीं होता।" किसी भी शास्त्र को विज्ञान कहलाने के लिए तीन शर्तों को पूरा करना आवश्यक होता है-

(1) उसका क्रमबद्ध अध्ययन हो

(2) वह कारण और परिणाम के बीच संबंध स्थापित करता हो, तथा

(3) उसके नियम सार्वभौमिक हों।

अर्थशास्त्र एक विज्ञान है- अर्थशास्त्रियों का मत है कि अर्थशास्त्र एक विज्ञान है। क्योंकि किसी शास्त्र को विज्ञान कहलाने के लिए जिन शर्तों को पूरा करना आवश्यक है, अर्थशास्त्र उन सभी शर्तों को पूरा करता है।

अर्थशास्त्र विज्ञान नहीं है- कुछ विद्वानों का मत है कि अर्थशास्त्र को विज्ञान कहना उचित नहीं है।

कला का अर्थ

कला का अर्थ करने से है अर्थात् किसी कार्य को उत्तम एवं ठीक ढंग से करना ही कला कहलाता है। प्रोकींस के अनुसार, "कला नियमों की वह प्रणाली है जो किसी दिए हुए उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक हो।"

अर्थशास्त्र कला भी है- अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र को विज्ञान के साथ-साथ कला भी मानते हैं। इसका कारण यह है कि यह आर्थिक समस्याओं के अध्ययन एवं समाधान के लिए व्यावहारिक सलाह भी प्रदान करता है। मुद्रा, बैंकिंग, विनिमय दर का निर्धारण, भुगतान संतुलन आदि से संबंधित समस्याओं के समाधान में अर्थशास्त्र की अहम् भूमिका होती है । इसीलिए अर्थशास्त्र को कला कहना उचित ही है। कुला के रूप में अर्थशास्त्र वास्तविक विज्ञान तथा आदर्श विज्ञान के बीच पुल का कार्य करता है ।

अर्थशास्त्र वास्तविक विज्ञान है या आदर्श विज्ञान

उपरोक्त व्याख्या से यह तो स्पष्ट हो गया है कि अर्थशास्त्र एक विज्ञान है। विज्ञान दो प्रकार के होते हैं-वास्तविक विज्ञान तथा आदर्श विज्ञान। अर्थशास्त्र इन दो में से कौन सा विज्ञान है अथवा दोनों ही विज्ञानं है, इस बात का अध्ययन करना भी आवश्यक है। वास्तविक विज्ञान वह विज्ञान होता है जो अपने को वास्तविकता तक ही सीमित रखता है। वह वस्तु स्थिति का ही अध्ययन करता है। उसकी अच्छाई-बुराई से उसका कोई संबंध नहीं होता है। आदर्श विज्ञान तथ्यों की केवल व्याख्या ही नहीं करता है बल्कि उनकी अच्छाई-बुराई के बारे में सुझाव भी देता है। आदर्श विज्ञान क्या होना चाहिएश का भी अध्ययन करता है।

जो अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र को केवल एक वास्तविक विज्ञान मानते हैं, वे इस संबंध में अनेक तर्क देते हैं। इनके अनुसार कारण और परिणाम के बीच संबंध स्थापित करते समय यह बताना संभव है कि किसी कार्य के करने का परिणाम क्या होगा, यह बताना कठिन है कि क्या होना चाहिए। यदि अर्थशास्त्र को आदर्श विज्ञान मान लिया जाता है तो क्या होना चाहिए और क्या नहीं होना चाहिएश के विवाद में फंसकर अर्थशास्त्र का विकास नहीं होने पाएगा। कुछ अर्थशास्त्रियों का मत तो यहां तक है कि सिद्धांत बनाना, उनको लागू करना, उनके अच्छे-बुरे परिणामों की व्याख्या करना आदि सभी काम जब अर्थशास्त्री ही करने लगेंगे तो अन्य शासक क्या करेंगे। अत: अर्थशास्त्र को एक वास्तविक विज्ञान ही बने रहने देना चाहिए।

दूसरी ओर अनेक अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र को एक आदर्श विज्ञान मानते हैं। इनका मत है कि यदि अर्थशास्त्रं में से इसके आदर्श पहलू को निकाल दिया जाए तो यह बेजान हो जाएगी।

वास्तव में जो भी आर्थिक सिद्धांत प्रतिपादित किए जाते हैं इनका उद्देश्य मानव कल्याण में वृद्धि करना ही होता है । इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ नहीं रह सकता है। अर्थशास्त्र में मानव की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। अन्य विज्ञानों की विषय वस्तु बेजान होती है परंतु अर्थशास्त्र जीवित एवं विवेकशील मनुष्य की क्रियाओं का अध्ययन करता है। उस पर केवल आर्थिक घटनाओं का ही नहीं वरन् दया, प्रेम, भावुकता आदि का प्रभाव भी पड़ता है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र केवल वास्तविक विज्ञान ही नहीं है, वरनु एक आदर्श विज्ञान भी है । अर्थशास्त्री का कार्य केवल व्याख्या और खोज करना ही नहीं, बल्कि विषय के अच्छे-बुरे पहलू को भी समझाना है।

अर्थशास्त्र का महत्व

अर्थशास्त्र का सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक महत्व है।

सैद्धान्तिक महत्व

- विधि ज्ञान हेतु
- ज्ञान में वृद्धि
- सिद्धान्तों में वृद्धि करें
- तर्कशक्ति में वृद्धि करें
- विश्लेषण शक्ति में वृद्धि करें
- अन्य शास्त्रों से सम्बन्ध का ज्ञान

व्यावहारिक महत्व

- उत्पादकों को लाभ,
- श्रमिकों को लाभ,
- उपभोक्ताओं को लाभ,
- व्यापारियों को लाभ,
- सरकार को लाभ,
- समाजसुधारकों को लाभ,
- राजनीतिज्ञों को लाभ,
- प्रबन्धकों को लाभ ,
- विद्यार्थियों को लाभ,
- देश के उत्थान में लाभ,
- वैज्ञानिकों को लाभ।

आर्थिक प्रणालियाँ

आर्थिक प्रणाली एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत विभिन्न व्यवसायों में काम करके लोग अपनी जीविका कमाते है। आर्थिक क्रियाओं को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए दुनिया के तमाम देश अपना अलग आर्थिक मॉडल अपनाते हैं। आर्थिक प्रणालियों को तीन मुख्य भागों में बांटा गया है।

(1) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था (Capitalistic Economy)
(2) समाजवादी अर्थव्यवस्था (Socialistic Economy)
(3) मिश्रित अर्थ व्यवस्था (Miñed Economy)

समाजवाद तथा पूंजीवाद आधुनिक अर्थिक प्रणिलियों के सर्वाधिक उल्लेख तत्व हैं।

आर्थिक नीतियाँ

प्रत्येक राष्ट्र, चाहे वह किसी भी आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत काम करता है, उसको गरीबी, धन व आय की असमानता, बेरोजगारी, मुद्रास्फीति व मन्दी आदि विभिन्न आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए वह विभिन्न नीतियों को अपनाता है। मुख्य आर्थिक नीतियां इस प्रकार हैं-

- मौद्रिक नीति (Monetary Policy)
- राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)
- कीमत नीति (Price Policy)
- आय नीति (प्दबवउम च्वसपबल)
- रोजगार नीति (म्उचसवलउमदज च्वसपबल)
- आर्थिक नियोजन (Economic Planning)

भारत में अर्थशास्त्र का इतिहास

अर्थशास्त्र बहुत प्राचीन विषय है जिसका वर्णन वेदों में भी मिलता है। चार उपवेद अति प्राचीन काल में बनाए गए थे। चार उपवेदों में अर्थवेद भी एक उपवेद माना जाता है, परन्तु अब यह उपलब्ध नहीं है। विष्णुपुराण में भारत की प्राचीन तथा प्रधान 18 विद्याओं में अर्थशास्त्र भी परिगणित है। इस समय ब्राहस्पत्य तथा कौटिलीय अर्थशास्त्र उपलब्ध हैं। अर्थशास्त्र के सर्वप्रथम आचार्य बृहस्पति थे। उनका अर्थशास्त्र सूत्रों के रूप में प्राप्त है, परन्तु उसमें अर्थशास्त्र सम्बन्धी सब बातों का समावेश नहीं है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र ही एक ऐसा ग्रंथ है जो अर्थशास्त्र के विषय पर उपलब्ध क्रमबद्ध ग्रंथ है, इसलिए इसका

महत्व सबसे अधिक है। आचार्य कौटिल्य, चाणक्य के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। ये चंद्रगुप्त मौर्य (321-297 ई.पू.) के महामंत्री थे। आचार्य कौटिल्य के मतानुसार अर्थशास्त्र का क्षेत्र पृथ्वी को प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने के उपायों का विचार करना है। उन्होंने अपने अर्थशास्त्र में ब्रह्मचर्य की दीक्षा से लेकर देशों की विजय करने की अनेक बातों का समावेश किया है। भारतीय संस्कृति में चार पुरुषार्थों में अर्थ (धन-सम्पदा) भी शामिल है। जैन धर्म में अपरिग्रह (बहुत अधिक धन संग्रह न करना) का उपदेश किया गया है। अनेक प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में धन की प्रशंसा या निन्दा की गयी है। भर्तृहरि ने कहा है, श्सर्वे गुणा कांचनम् आश्रयन्तेश (सभी गुणों का आधार स्वर्ण ही है।)। चाणक्यसूत्र में कहा है-

सुखस्य मूलं धर्मः। धर्मस्य मूलं अर्थः। अर्थस्य मूलं राज्यं। राज्यस्य मूलं इन्द्रिय जयः। इन्द्रियजयस्य मूलं विनयः। विनयस्य मूलं वृद्धोपसेवा।

(अर्थ : धर्म, सुख का मूल है। धर्म का मूल अर्थ है। अर्थ का मूल है, राज्य। राज्य का मूल इन्द्रियों पर विजय है। इन्द्रियजय का मूल है, विनय। विनय का मूल है, वृद्धों की सेवा।)

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि, अर्थशास्त्र एक व्यावहारिक तथा आदर्श विज्ञान होने के साथ-साथ कला भी है। प्रो. चौपमेन ने लिखा है, "अर्थशास्त्र एक वास्तविक विज्ञान के रूप में आर्थिक तथ्यों का अध्ययन करता है, नीति प्रधान विज्ञान के रूप में तथ्यों के बारे में समझता है तथा कला के रूप में इच्छित उद्देश्यों की पूर्ति के साधनों के निर्माण और उपलब्धता के बारे में बताता है।"

वैश्विक व्यवस्था में अर्थशास्त्र का बड़ा महत्व है। असल में सारे अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का आधार अर्थ और व्यापार ही है। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट, (1970) ई. के अनुसार सारी दुनिया में अर्थशास्त्र पर लगभग 1,000 ग्रंथ या लेख प्रति घंटे प्रकाशित होते हैं। सारी दुनिया में राजनीति के बाद अर्थशास्त्र ही सबसे चर्चित और व्यवहारिक विषय है। वस्तुतः अर्थशास्त्र का प्रयोग जन-जीवन की भलाई के लिए करना पड़ेगा, अन्यथा केवल भौतिक साधन जुटाने का लक्ष्य निश्चित कर किया जानेवाला उपभोक्तावादी संघर्ष एक दिन सबको ले डूबेगा। संतोष की बात है कि अब अर्थशास्त्री भी इस बात को समझने लगे हैं। भारत का प्राचीन दर्शन इस तथ्य को प्रारंभ से समझता है कि, केवल भौतिक साधनों का आधिक्य ही मनुष्य को सुखी नहीं कर सकता। प्रोङ्ङ शुंपीटर ने अपने लेख 'अर्थशास्त्र का भविष्य' में स्वीकार किया है कि 'सिद्धांत रूप से आर्थिक विकास को हमेशा शांति, सुख एवं कल्याण के हेतु ही कार्य करना होगा।

सन्दर्भ

- वाचस्पति गैरोलाः कौटिलय अर्थशास्त्र;
- तिलकनाराण हजेलाः आर्थिक विचारों का इतिहास;
- निओनेल रार्बिसः अर्थशास्त्र का स्वरूप और महत्व;
- अल्फेड मार्शलः अर्थशास्त्र के सिद्धांत;
- बी.सी. सिन्हाः कीन्स का अर्थशास्त्र;
- जे.के.मेहताः स्टडीज इन ऐडवांसड एकोनामिक थियरी;
- पी.डी. हजेलाः केन्सीय एवं क्लासिकल रोजगार सिद्धांत;
- सुधाकांत मिश्रः अर्थशास्त्र के सिद्धांत;
- डी.एन. चतुर्वेदीः महात्मा गांधी का अर्थिक दर्शन;
- अलेक्जैंडर ग्रेः आर्थिक सिद्धांत का विकास।

सांवेगिक परिपक्वता तथा राजनैतिक दक्षता में सम्बन्ध का अध्ययन

प्रज्ञा सिंह

एम०एड्०, शिक्षा संकाय, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर

संक्षिप्त सारांश

देश की प्रतिष्ठा, विकास, एकता, रक्षा एवं संप्रभुता बनाये रखने का दायित्व भी उन्हीं को निभाना है, राष्ट्र को विकास के कार्य पर निरंतर अग्रसर रखने की महत्वपूर्ण भूमिका भी इन्हीं छात्रों की होगी, किन्तु वर्तमान समय में भारत की नहीं समकालीन विश्वभर के छात्रों का अधिकांश भाग अनुशासनहीनता, क्षेत्रवाद तथा सम्प्रदायिकता के उन्माद जैसी संकीर्ण भावनाओं से ग्रसित है। उनमें नैतिक मूल्यों का निरंतर हरण हो रहा है। और वे स्वार्थ, छल, कपट तथा विकृत राजनीतिक विचारधारा की ओर उन्मुख होते हुए प्रतीत हो रहे है। छात्र एकता जिन्दाबाद का नारा लगाते हुए विद्यार्थियों के विशाल समूह सड़कों पर प्रदर्शन करते दिखाई पड़ते है। कहीं हिन्दी के विरोध में उत्तेजित छात्र बसें फूँकते है तो कहीं उर्दू या अंग्रेजी के विरोध में सार्वजनिक सम्पत्ति को तोड़ते है। कहीं आराजक समर्थक तो कहीं आराजक विरोधी छात्रों के समूह नैतिकता और मानव मूल्यों को भुलाकर मरने मारने पर उतारू हो जाते है। वर्तमान समय का विद्यार्थी विश्वविद्यालय या महाविद्यालय का सर्वश्रेष्ठ छात्र होने की आपेक्षा अमुक दल का अध्यक्ष, मंत्री लिखे जाने या कहे जाने पर अधिक गौरव महसूस करता है।

मुख्य शब्द:- सांवेगिक परिपक्वता, मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, ब्त् मूल्य इत्यादि।

प्रस्तावना:- अधिगम वातावरण व संस्थाओं में अन्य पाठ्यसहगामी क्रियाओं का सही व संतुलित आयोजन विद्यार्थियों में राजनैतिक दक्षता को प्रभावी बनाने का कार्य करते है इस के लिए छात्रों का सांवेगिक रूप से परिपक्व होना भी आवश्यक है। विद्यार्थी महाविद्यालय व विश्वविद्यालय स्तर पर विधि क्रियाकलाप में भाग लेता है उसी में एक है- राजनीतिक क्रियाकलाप। उच्च शिक्षा का मूल उद्देश्य है छात्रों के मानसिक, शारीरिक, चारित्रिक, बोद्धिक एवं माध्यमिक विकास करना। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय समाज संस्कृति, रहन-सहन और राजनैतिक विचार धाराओं में अनेकों परिवर्तन हुए है। जनमानस के जीवनस्तर, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक विचारों और आर्थिक जटिलताओं के कारण बहुत से नये समीकरण बने है।

इस समय हमारा देश व समाज निरतंर बड़े परिवर्तन से गुजर रहा है। पुरातन छूटता जा रहा है और अनेक विषमताओं को पार करता हुआ नूतन उपर उठने की प्रक्रिया में है। इन परिस्थितियों में व्यक्ति को यह निर्णय लेने में कठिनाई हो रही है कि पुरातन एवं नूतन के मध्य कौन-सा मार्ग अपनाया जाय जिससे समाज व देश की समस्यायें सुलझ सकें और देश उन्नति की ओर अग्रसर हो सकें। इन कठिनाइयों का हल एक सही दिशा में शिक्षित कर्तव्यनिष्ठ और अनुशासित छात्रों द्वारा ही सम्भव है। जो देश की आवश्यकता को समझ सके तथा विकास के प्रत्येक क्षेत्र को विकसित पथ पर निरंतर अग्रसित करने के लिए आगे आ सकें।

अध्ययन के औचित्य:- सभी विद्यार्थी सांवेगिक रूप से परिपक्व होते है उनमें सर्वांगिक गुण जैसे-क्रोध, डर, हर्ष, दु:ख, अनुराग, उत्सुकता, जलन इत्यादि पर नियंत्रण रखने की बुद्धि आ जाती है। वे अब सीख जाते है कि संवेगों पर नियंत्रण रखकर ही वे अपना सर्वागीण विकास कर सकते है। सांवेगिक रूप से परिपक्वता के उपरांत ही वे अपनी शैक्षिक उपलब्धि के बढ़ा सकते है तथा समाज व राष्ट्र के लिए सकारात्मक कार्यो को अंजाम दे सकते है। सांवेगिक परिपक्वता के साथ वे महाविद्यालयों में रचनात्मक कार्यो व संस्थान के विकास एवं प्रगति में योगदान दे सकते है। सांवेगिक रूप से परिपक्व होने पर वे महाविद्यालय के शिक्षकों, प्रिसिपल, अपने साथियों एवं अन्य कर्मचारियों के साथ सहयोग एवं समायोजन की भावना रखते हुए शिक्षा ग्रहण कर सकते है। संवगों पर नियंत्रण करने के लिए तथा उसे सही समय पर प्रस्तुत करने की क्षमता संवेगात्मक बुद्धि द्वारा की जाती है। संवेगात्मक बुद्धि वह दक्षता है, जिसके द्वारा कोई व्यक्ति अपने तथा दूसरों के संवेगाो को समझता है, उन्हे प्रेरित करता है और अपने तथा दूसरे के संवेंगो का प्रभावी ढंग से प्रबंधन करता है। संवेगों पर प्रभावशाली नियंत्रण की दक्षता परिपक्वता के कारण आती है। सांवेगिक रूप से परिपक्व मानव अपने आत्मविश्वास, स्वयं सुरक्षा की भावना एवं आत्म सम्मान के द्वारा व केवल अपने संवेगों पर नियंत्रण करने में पूर्णत: सक्षम होता है अपितु इस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न होने पर अथवा किसी दूसरे व्यक्तियों को भी निर्देशित करने के लिए पूर्ण रूप से योग्य होती है।

सभी संवेगात्मक दशाओं का सामाजिक महत्व होता हैं, आयु बढ़ने के साथ बालक की सामाजिक समायोजन की माँग बढ़ने लगती है। तथा उनमें पर्याप्तमात्रा में सामाजिक परिपक्वता आ जाती है। सामाजिक परिपक्वता के कारण वह बिना पक्षपात के अन्य के साथ अच्छा सामायोजन बनाने में सक्षम होता है। जब कोई भी व्यक्ति अपने जीवन एवं परिस्थितियों को अपने नियंत्रण में रखनें का प्रयास किया जाता है तब वह मानता, सुख-दुख, मोह, भय, क्रोध, घृणा, ईर्ष्या आदि से प्रभावित नहीं होता। वही व्यक्ति संवेगात्मक रूप से बुद्धिमान कहलाता है।

साहित्यावलोकन:- वर्तमान मानव के जीवन में साहित्य प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से अपना परिणामदायक महत्व रखते हैं, ऐसी स्थिति में अनुसंधान कार्य में साहित्यों के अभाव की कल्पना करना भी भयानक अनुभूति होती है अर्थात् अनुसंधान में साहित्यों के अध्ययन के महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है।

1. यह पुनरावृत्ति से बचाव करता है।
2. यह अनुसन्धान में विधि के निर्धारण में सहयोगी है।
3. यह अनुसन्धानकर्ता का समय, पैसा व परिश्रम बचाता है।
4. यह अनुसन्धानकर्ता में सूझ पैदा करता है।
5. यह समस्या का समाधान करने तथा उसका सीमांकन करने में सहायक होता है।
6. अनुसंधानकर्ता को सावधान रखता है तथा गलतियों से बचाता है।
7. शोध प्रबन्ध में एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में भूमिका निभाता है।
8. शोध साहित्य का अवलोकन करने से अनुसन्धानकर्ता के विचारों, परिकल्पनाओं व परिसीमाओं के निर्माण में तार्किकता आ जाती है।
9. अनुसंधानकर्त्ता पूर्व में प्राप्त तथ्यों से अवगत हो जाता है।

सन्दर्भ साहित्य का जितना अधिक ज्ञान प्राप्त किया जाये उतना ही विषय समझने में सहायता मिलती है। पूर्व शोध साहित्य के आधार पर ही शोधकर्त्ता अपने शोध का विषय, क्षेत्र, सीमा व विधि का निर्माण करता है। पूर्व में हुए अध्ययनों के आधार पर उसे भावी शोध में परिणाम ज्ञात करने में भी सहायता मिलती है। जहाँ शोधकर्त्ता के लिए नवीन मार्ग, नवीन दिशा की खोज का महत्व है वहीं उसे इस मार्ग पर विकास पाने व सफलता प्राप्त करने के लिए पूर्व में हुए शोध साहित्य का ज्ञान होना भी अत्यन्त आवश्यक है।

सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण के बिना यह ज्ञात नहीं हो सकता कि किसी विषय में कौन सा समस्या अनुसंधान के लिए शेष है।

सिन्धु (2018) ने विद्यालयी शारीरिक-शिक्षा शिक्षकों की व्यावसायिक कुशलता का अन्य चरों के साथ संवेगात्मक परिपक्वता के सम्बन्ध का अध्ययन किया और पाया कि बुद्धि आत्मबोध तथा वातावरणीय सुविधाओं का शारीरिक शिक्षा शिक्षकों की संवेगात्मक परिपक्वता में योगदान नहीं है।

सक्सेना (2019) ने अपने अध्ययन में पाया कि कला वर्ग के विद्यार्थी, विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अपेक्षा संवेगात्मक तथा मानसिक रूप से कम परिपक्व थे तथा छात्रायें-छात्रों की अपेक्षा संवेगात्मक तथा मानसिक रूप से कम परिपक्व थी।

अख्तर (2020) ने अपने अध्ययन में पाया कि छात्रों की तुलना में छात्राओं की संवेगात्मक परिपक्वता उच्च पायी गयी और उनकी शैक्षिक उपलब्धि भी छात्रों से अधिक पायी गई।

नीतू (2021) ने अपने अध्ययन में पाया कि ग्रामीण छात्रों में शहरी छात्रों की अपेक्षा, संवेगात्मक परिपक्वता अधिक थी किन्तु छात्राओं के सम्बन्ध में संवेगात्मक परिपक्वता में कोई अन्तर नहीं पाया गया।

सिंह (2021) ने अपने अध्ययन में पाया कि सांवेगिक परिपक्व तथा अपरिपक्व विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति में समानता थी।

अध्ययन का उद्देश्य:- प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ळा द्वारा अध्ययन के उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि '' सांवेगिक परिपक्वता तथा राजनैतिक दक्षता में सम्बन्ध का अध्ययन करना।''

शोध अध्ययन की परिकल्पना:- उद्देश्य की पूर्ति हेतु शून्य परिकल्पना निर्मित की गई थी कि '' सांवेगिक परिपक्वता तथा राजनैतिक दक्षता में सार्थक सह सम्बन्ध नही है।''

शोध विधि- यद्यपि शैक्षिक शोध को वर्गीत करना एक कठिन कार्य है क्योंकि भिन्न-भिन्न पाठ्यपुस्तकों में कई वर्गीकरण अलग-अलग ढंग से प्रस्तावित किये गये हैं। फिर भी द्वारा प्रस्तावित वर्गीकरण को सबसे उत्तम माना जा सकता है और इसे वर्गीकरण की एक कसौटी मानते हुए शैक्षिक शोध को निम्नांकित तीन प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है। प्रस्तुत अध्ययन विवरणात्मक प्रकार का शोध अध्ययन है जिसका वर्णन निम्नलिखित है-

1. ऐतिहासिक शोध
2. विवरणात्मक शोध
3. प्रयोगात्मक शोध

समष्टि- शोध में समष्टि शब्द का अर्थ भिन्न होता है। समष्टि या जनसंख्या का तात्पर्य सम्पूर्ण इकाइयों के निरीक्षण से होता है इसमें कुछ इकाइयों का चयन करके न्यादर्श बनाया जाता है। न्यादर्श की इकाइयों के निरीक्षण तथा मापन से जनसंख्या की विशेषताओं के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जाता है।

प्रस्तुत शोध में शोधकर्त्ता द्वारा जौनपुर जनपद के अध्ययनरत् माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं को समष्टि अथवा जनसंख्या के रुप में परिभाषित किया गया है।

न्यादर्श- समष्टि के अंश को न्यादर्श माना गया है, एक अंश के आधार पर सम्पूर्ण तथ्य के विषय में ज्ञान दिया जाता है जिसे न्यादर्श की प्रक्रिया कहते हैं।

सामाजिक विज्ञानों में सभी व्यक्तियों से सूचनाएँ एकत्रित करना सम्भव नहीं हो पाता है जिससे शोध अध्ययन को सार्थक कर लिया जाता है जिसे न्यादर्श कहते हैं।

शोधकर्ता द्वारा प्रस्तुत शोध में जौनपुर जनपद में स्थित शहरी एवं ग्रामीण माध्यमिक-स्तर के 600 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में सम्मिलित किया गया है।

न्यादशर्जः- न्यादर्श चयन करने की विधि को न्यादर्शज कहते है जो सम्भाव्यता के आधार पर यादृच्छि प्रविधि द्वारा लाटरी रीति से चयनित की गयी थी।

सम्भाव्यता न्यादर्शन- जब जनसंख्या की किसी इकाई को न्यादर्श में सम्मिलित करने के लिए उसका चयन संयोग पर निर्भर करे तो उस चयन विधि को सम्भाव्यता न्यादर्शन कहते हैं। चयन संयोग पर तब निर्भर करता है जब किसी भी इकाई को न्यादर्शन में सम्मिलित करना या न करना मानव-निर्णय पर निर्भर न हो। सम्भाव्यता न्यादर्शन में कोई भी व्यक्ति किसी विशिष्ट इकाई को अपनी इच्छानुसार न्यादर्श में नहीं रख सकता है। इस न्यादर्श प्रक्रिया के किसी न किसी स्तर पर चयन संयोगवश होता है।

शोध उपकरणः- प्रस्तुत अध्ययन में आंकड़ों के संकलन हेतु शोध उपकरण प्रयुक्त किया गये थे-

सांवेगिक परिपक्वता मापनी- यह मापनी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता जाँचने के लिए तैयार की गई है। मापनी में निजी और अधिगम-कार्य से संबोधित जीवन के विभिन्न पहलुओं से मनोवृत्तियों, संवेगों, उपकरणों का विवरण करते हुए कुछ मध्य दिये गये है। यह अध्ययन केवल शोध कार्य के लिए है और इससे प्रतिवादी की निजी व्यावहारिक जिन्दगी पर कोई प्रभाव नही पड़ेगा।

यह इस मापनी संवेगात्मक परिपक्वता के विभिन्न पहलुओं का विवरण देने का अवसर प्रदान करती है। इसके लिए आपको यह बताना है कि इस नकारात्मक मापनी का हर कथन किस हद तक आपके लिये सच है। इस मापनी में कुल 22 कथन नकारात्मक है। (1, 3, 4, 7, 9, 12, 14, 16, 20, 26, 27, 30, 31, 32, 33, 35, 37, 38, 39, 46, 47, 49) तथा इस मापनी में 28 कथन सकारात्मक है (2, 5, 8, 10, 11, 13, 15, 17, 18, 19, 21, 22, 23, 24, 25, 28, 29, 34, 36, 40, 41, 42, 43, 44, 45, 48, 50) मापनी में प्रत्येक कथन के लिए दिये गये उत्तरों का अंकत निम्नवत् किया जायेगा-

संभावित उत्तर	मेरे लिए हमेशा सच	मेरे लिए प्रायः सच	मेरे लिए कभी–2 सच	मेरे लिए कुछ बार सच	मेरे लिए कभी सच नहीं
धनात्मक कथन	5	4	3	2	1
ऋणात्मक कथन	1	2	3	4	5

विश्वसनीयता- विषय की परीक्षा पुर्नपरीक्षा विधि से विश्वसनीय गुणांक 0.72 प्राप्त हुई।

वैधता- विषयवस्तु वैधता गुणांक 0.81 प्राप्त हुई।

मानक- प्रतिशतांक प्रयोग किया गया है।

परिकल्पनाः- विद्यार्थियों के सांवेगिक परिपक्वता तथा राजनैतिक दक्षता में सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

शोधकर्ता द्वारा शोध की परिकल्पना में विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के सांवेगिक परिपक्वता तथा राजनैतिक दक्षता में सार्थक सहसम्बन्ध ज्ञात किया गया। शोधकर्ता ने दोनों चरों में सहसम्बन्ध ज्ञात करने के लिए कार्ल पियर्सन (Karl Pearson) द्वारा प्रतिपादित गुणनफल-आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणांक का प्रयोग किया गया इस विधि में दोनों चरों पर विभिन्न विद्यार्थियों के प्राप्तांकों के सापेक्ष जेड़ प्राप्तांकों (Z-Scores) की गुणाओं का आघूर्ण अर्थात् गुणनफल आघूर्ण (r) ज्ञात किया गया। त का मान 0.12 प्राप्त हुआ। जो सहसम्बन्ध गुणांक की शाब्दिक व्याख्या के अध्ययन में यह पाया गया कि दोनों चरों के मध्य अत्यन्त निम्न धनात्मक सहसम्बन्ध है।

शोध निष्कर्षः- विश्लेषणोपरान्त प्रस्तुत अध्ययन से यह शोध निष्कर्ष प्राप्त किया गया कि- विद्यार्थियों के सांवेगिक परिपक्वता तथा राजनीतिक दक्षता में सार्थक सह सम्बन्ध नही है का परीक्षराण किया गया है इस परिकल्पना के परीक्षण के लिए गुणनफल आपूर्ण सह सम्बन्ध गुणांक (r) का प्रयोग किया गया। सांख्यिकीय गणना करने के उपरांत गुणनफल आपूर्ण सह सम्बन्ध गुणांक (r) का मान 0.12 प्राप्त हुआ जो सह सम्बन्ध गुणांक की शाब्दिक व्याख्या के अध्ययन में पाया गया कि दोनों चरों अर्थात् विद्यार्थियों की सावेंगिक परिकल्पना व राजनैतिक दक्षता क मध्य अत्यन्त निम्न धनात्मक सह सम्बन्ध है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि महाविद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सांवेगिक परिपक्वता के विकसित होने पर कुछ न कुछ प्रभाव उनकी राजनैतिक दक्षता पर पड़ता है। इस परिकल्पना के निष्कर्ष द्वारा यह जानकारी प्राप्त होती है कि विद्यार्थियों की राजनैतिक दक्षता पर उनकें संवेगों का प्रभाव बहुत निम्न होता है। दूसरे शहरों में कहा जा सकता है कि इन क्षेत्रों चरों की विशेषताएँ अलग-अलग होती है जो विद्यार्थियों के मानसिक व सामाजिक विकास को कुछ विशेष आधार पर ही प्रभावित कर पाती हैं। शोधकर्ता का मानना है कि विद्यार्थियों के विभिन्न संवेगों के परिपक्व होने की दशा में उनमें राजनीतिक दक्षता इत्यादि गुणों का विकास होना स्वाभाविक है परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि विद्यार्थियों की सांवेगिक परिपक्वता में वृद्धि होने पर उनकी राजनैतिक दक्षता में भी वृद्धि हो सकेगी जैसा कि इस परिकल्पना के परीक्षणोपरांत प्राप्त निष्कर्ष द्वारा जानकारी प्राप्त होती है।

अध्ययन की शैक्षिक उपयोगिता- किसी भी शोध कार्य की उपयोगिता तभी सार्थक होती है जब उसके निष्कर्षों से समाज एवं देश को लाभ मिल सके। प्रस्तुत शोध कार्य भी शोधकर्ता द्वारा इसी निमित्त किया गया। एक मौलिक कार्य है जिसकी उपयोगिता थी- शिक्षा, समाज तथा राष्ट्र के चहुँमुखी विकास में

सिद्ध हो सकेगी। शोधकर्ता का मानना है कि वर्तमान समय में महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय अपने छात्रों के अन्दर विभिन्न मनोवैज्ञानिक गुण, नेतृत्व क्षमता इत्यादि का समावेश करने का भरपूर प्रयास कर रहे हैं जिसके द्वारा उनके अधिगम में वृद्धि हो रही है तथा उनकी शैक्षिक उपलब्धि में भी सुविधा हो रहा है। विद्वानों का मानना है कि जिस प्रकार प्राथमिक शिक्षा छात्रों के सर्वांगीण विकास की नींव होती है उसी प्रकार उच्च शिक्षा विद्यार्थियों के नैतिक, सामाजिक, राष्ट्रीय विकास के साथ-साथ उनके समाज व राष्ट्र के चहुँमुखी विकास को भी प्रभावित करती है।

किसी भी राष्ट्र का विकास, प्रतिष्ठा, एकता, सम्प्रभुता बनाये रखने में उच्च शिक्षा का सही मायने में अनुप्रयोग आवश्यक है। समाज के समुचित उन्नयन व विकास के लिए उच्च शिक्षा की दशा व दिशा को सकारात्मक होना आवश्यक है। वर्तमान समय में प्राय: यह देखा जा रहा है कि महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थी राजनीति में तो रूचि ले रहे हैं व उनमें राजनीतिक दक्षता का भी समावेश हो रहा है परन्तु राजनीतिक दक्षता के साथ-साथ उनमें अनुशासहीनता की भावना का भी समावेश हो रहा है। आये दिन वे शैक्षणिक परिसर में नारेबाजी कर रहे हैं तो कहीं शिक्षकों से उलझ रहे हैं तो कहीं अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं से मारपीट कर रहे हैं। यह अत्यन्त खेदजनक स्थिति है जिसका उनके तथा अन्य छात्र-छात्राओं के अधिगम व्यवहार पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है इसके अतिरिक्त परिसर का वातावरण भी बिगड़ रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अस्थाना एवं अग्रवाल ''मनोविज्ञान और शिक्षा'' आगरा, विनोद प्रकाशन.
2. गुप्ता, एस0पी0: ''आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन'' इलाहाबाद शारदा पुस्तक भवन, 2005.
3. चन्द्र, बिपिन : ''आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता'' प्रथम संस्करण, नई दिल्ली,1996.
4. चौबे, सरयू प्रसाद: ''तुलनात्मक शिक्षा आगरा'' विनोद पुस्तक मंदिर 1999.
5. चौहान, एस0 एस0: ''शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में नवाचार'' नोएडा, विकास पब्लिशिग हाउस, 2007.
6. परीक्षापयोगी सरीज: ''अतिरिक्तांक प्रतियोगिता दर्पणहिन्दी मासिक'' राष्ट्रीय आगरा उपकार प्रकाशन, 2002.
7. पाठक, पी0डी0, त्यागी: ''शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त'' आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर 1995.
8. पाठक, एस0पी0 एवं शर्मा एस0 डी0: ''भारतीय शिक्षा की तत्कालीन समस्यायें'' रस्तोगी एण्ड कम्पनी, मेरठ
9. बुच, एम0 वी0 : ''तृतीय सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन 1987'' एन0सी0ई0आर0टी0, नई दिल्ली,
10. बुच, एम0 वी0: ''चतुर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन 1991'' एन0सी0ई0आर0टी0, नई दिल्ली
11. बसु, दुर्गादास : ''भारत का संविधान'' एक परिचय, आठवां संस्करण, वाधवा नागपुर, 2002.
12. मिश्रा, बी0के0 एवं मोहन्ती: ''ट्रेण्ड्स एण्ड इरयूस एन इण्डियन ऐजूकेशन'' मेरठ, लायल, बुक डिपो आर0 के0 मेरठ, लायल, बुक डिपो 2002.
13. मिश्रा, डी0 सी0: ''शिक्षाशास्त्र भाग एक तथा दो'' कानपुर, अनुसंधान प्रकाशन.
14. मंगल, एस0 के0: ''शिक्षण एवं अधिगम का मनोविज्ञान'' लुधियाना, टण्डन पब्लिकेशन्स, 2002.
15. सारस्वत, मालती : ''शिक्षा मनोविज्ञान की रुपरेखा'' इलाहाबाद आलोक प्रकाशन, 2007.
16. सिंह अरुण कुमार: ''मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ'' पटना, मोतीलाल बनारसीदास, 2002.
17. त्रिवेदी, आर0 एन0 एवं शुक्ला, डी0पी0: ''रिसर्च मैथ्डोलॉजी'' जयपुर कॉलेज, बुक डिपो.

Websites:

http://www.eric.ed.gov
http://shodhganga.inflibnet.ac.in
http://www.nuepa.org
http://www.educationindia.net

कमलेश्वर के उपन्यासों में नारी मनोविज्ञान

शिक्षा रानी

एम.ए. हिन्दी, बी.एड. यूजीसी नैट (हिन्दी), शोधार्थी, (पीएच.डी. हिन्दी, हिन्दी-विभाग),
एन.आई. आई.एल.एम. विश्वविद्यालय कैथल (हरियाणा)

डॉ० राजेश कुमार

शोध-निर्देशक, हिन्दी-विभाग, एन.आई.आई.एल.एम. विश्वविद्यालय कैथल (हरियाणा)

सारांशः

स्वतंत्रता के बाद के कथाकारों में कमलेश्वर का महत्वपूर्ण स्थान है। उनका दृष्टिकोण बहुत व्यापक था। उनके अनुभवों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए उपन्यास की विराट विद्या ही अनुकूल हो सकती थी। उन्होंने जीवन के हर क्षेत्र का बड़ी गहराई से चित्रण किया है। कमलेश्वर ने नारी जाती के मनोविज्ञान का भी बड़ी गहराई से चित्रण किया है। पुरुष प्रधान समाज में नारी का व्यक्तित्व बहुत संकुचित रहा है। कमलेश्वर की दृष्टि नारी के रूप-सौंदर्य तक ही सीमित न रहकर मानसिक भावों को परखने में ज्यादा रही है। कमलेश्वर ने नारी का विधवा रूप, नौकरी पेशा, वेश्यावृत्ति के लिए बाध्यकारी, आर्थिक स्वतंत्रता आदि विभिन्न रूपों का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। नारी की विचारधारा क्या है, समाज नारी को किस दृष्टि से देखता है, नारी की वास्तविक स्थिति क्या है इन सब बातों का वर्णन भी कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में किया है।

मुख्य शब्दः स्वतंत्रता, मनोविज्ञान, संत्रास, उपेक्षित, वास्तविक, संकुचित, साम्प्रदायिकता, राजनीतिक, स्वावलंबी, महत्वकांशी, जागरूक, प्रोत्साहित, दृष्टिकोण, विडंबना, अभिव्यक्ति आदि।

शोध आलेख

ईश्वर की अद्‌भुत रचना के रूप में नारी को सृष्टि का मूल माना गया है। जिसके बिना मनुष्य के अस्तित्व की कल्पना करना भी बेकार है। नर के कठोर पुरुषार्थ के अन्तस्थल में शीतल तृप्ति कर अमृत सरिता-सी नारी उसके जीवन को संपूर्णता देती रही है। जननी माता से लेकर प्रिया, पुत्री, सहचरी आदि कितनी भूमिकाओं को निभाती नारी सदा सर्वदा मानव की जिज्ञासा का विषय रही है। कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में नारी की विचारधारा क्या है, वह समाज में अपना जीवन कैसी व्यतीत करती है। समाज में नारी की स्थिति क्या है, समाज नारी के साथ कैसा व्यवहार करता है, इन सब बातों का वर्णन कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में किया है। नारी मनोविज्ञान को चार भागों में बांटा गया हैः

1. नारी मनोविज्ञान - सामाजिक पक्ष
2. नारी मनोविज्ञान - आर्थिक पक्ष
3. नारी मनोविज्ञान - राजनीतिक पक्ष
4. नारी मनोविज्ञान - धार्मिक पक्ष

1. नारी मनोविज्ञान - सामाजिक पक्ष

'डाक बंगला' उपन्यास में एक ऐसी लड़की इरा की कहानी है जो सारा जीवन सच्चे प्रेम की तलाश में भटकती रही है। बचपन में मां गुजर गई, पिता ने कभी ध्यान नहीं दिया। जब विमल इरा से प्रेम से बातें करने लगा तो इरा विमल की ओर आकर्षित होती गई और उससे प्रेम करने लगी। विमल ने इरा से शादी तो कर ली लेकिन आर्थिक तंगी के कारण इरा को छोड़कर चला गया। उसके बाद कभी सोलंकी, कभी बतरा, कभी चन्द्रमोहन इरा की जिन्दगी में आए और इरा का उपयोग किया और चले गए। किसी ने भी इरा से सच्चा प्रेम नहीं किया। किसी भी मर्द ने इरा के साथ घर बसाने की नहीं सोची। इरा एक आडू के बंगले में रहती है और उसकी जिंदगी एक बंगला बनकर ही रह जाती है। इरा ने सभी मर्दों से सच्चा प्रेम किया लेकिन किसी ने भी इरा की भावनाओं को नहीं समझा।

इसमें इरा के भावनाओं को सेक्स के आधार पर मनोविज्ञान के सहारे विश्लेषित करने का प्रयास किया है। इसके नारीत्व में भिन्न पुरुषों के साथ संबंध रखने की मानसिकता बद्धमूल थी। इरा ने अपने जीवन में जो सहन किया उसके साथ जो कुछ घटनाएं घटी उसके बाद इरा का सच्चाई, आदर्श, प्रेम और

अच्छाई से विश्वास उठ गया। अब इरा किसी पर भी विश्वास नहीं करती। उसको पुरुषों के रूप में भेडिघ्ये नजर आते हैं। इरा ने अपने सपनों का राजकुमार के सपने देखे थे जो सपना इरा का कभी पूरा नहीं हुआ।

इसमें लेखक इरा के माध्यम से नारी को आत्मनिर्भर और स्वावलंबी बनने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इरा कहती है कि हर लड़की को अपने पाँव पर खड़ा होना चाहिए। उसको जीवन व्यतीत करने के लिए किसी मर्द का सहारा नहीं पकड़ना चाहिए क्योंकि मर्द हमेशा औरत का फायदा उठाता है और बीच रास्ते में छोड़ देता है। इरा अपनी जिंदगी का अनुभव बताती है। नारी को हर मुसीबत का सामना अकेले करने की हिम्मत रखनी चाहिए। नारी अबला नहीं सबला है। समाज को भी नारी जाती का सम्मान करना चाहिए, नारी को मान देना चाहिए।

'वही बात' इसमें एक महत्वकांशी पति और दमित पत्नी के द्वन्द्व को उजागर किया है। इसमें लेखक कहने का प्रयास कर रहा है कि नारी की भावना को दबाने की कोशिश न की जाए। यदि नारी उपेक्षित और अकेलापन महसूस करती है तो इसका दोषी उसका पति है। पति को अपनी पत्नी की भावनाओं को समझना चाहिए।

इस उपन्यास में समीरा का पति प्रशांत एक चीफ इंजीनियर है। प्रशांत अपने काम में इतना व्यस्त रहता है कि समीरा के साथ समय नहीं व्यतीत कर पाता। समीरा घर में अकेली हमेशा खालीपन महसूस करती रहती है। प्रशांत को दोस्त नकुल है जो प्रशांत और समीरा से मिलने अकसर आता जाता रहता है और वह समीरा से भी बड़े प्रेम से बातें करता है। समीरा अपने जीवन के खालीपन को नकुल के साथ समय बीताकर पूरा करती है और धीरे-धीरे दोनों एक-दूसरे से प्रेम करने लगते हैं। समीरा प्रशांत को सच्चाई बता देती है और वह प्रशांत से तलाक चाहती है। प्रशांत समीरा की खुशी के लिए उसे तलाक दे देता है और समीरा और नकुल शादी कर लेते हैं। प्रशांत अपना स्थानांतरण दूसरी जगह करवा लेता है।

समीरा जैसी बहुत सी औरतें है जो घरों में अकेली रहती हैं। पतियों को काम के लिए घर से बाहर जाना पड़ता है। घरों में अकेली औरत खालीपन महसूस करती है और कई तो मानसिक रोगों का शिकार भी हो जाती हैं। अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए ही नारी पुनर्विवाह करती है। इस उपन्यास में समीरा प्रशांत को छोड़कर नकुल से शादी कर लेती है लेकिन खुश वह अब भी नहीं है क्योंकि उसको अपने पहले पति की याद सताती है। वह प्रशांत को भूल नहीं पाती। उसका अतीत उसका पीछा नहीं छोड़ता क्योंकि काम करने के लिए नकुल को भी घर से बाहर जाना पड़ता है और समीरा अब भी घर में अकेली है। इसमें लेखक रोमांचिकता और यथार्थ के बीच की स्थिति का वर्णन करता है।

2. नारी मनोविज्ञान - आर्थिक पक्ष

'तीसरा आदमी' इसमें कमलेश्वर ने मध्यमवर्गीय परिवार की आर्थिक और सामाजिक स्थिति का वर्णन किया है। मध्यवर्गीय दाम्पत्य में यदि तीसरा व्यक्ति आ जाता है तो दाम्पत्य जीवन बिखर जाता है। इस उपन्यास में नरेश और चित्रा शादी करके दिल्ली आ जाते हैं और अपने साथ बहुत से सपने लाते हैं जिनको वे पूरा करने की कोशिश करते हैं लेकिन दिल्ली जैसे महानगर में रहना आसान नहीं है इसलिए वे नरेश के दोस्त सुमंत के कमरे में रहने लगते हैं। तीनों एक साथ एक ही कमरे में रहते हैं। चित्रा अपने पति से अपनी इच्छाओं की पूर्ति करवाना चाहती है लेकिन नरेश अपनी पत्नी की इच्छाएं पूरी करने में असमर्थ है जिसके कारण दोनों में झगड़ा शुरू हो जाता है।

नरेश झगड़े का कारण सुमंत को समझता है क्योंकि नरेश को हमेशा चित्रा और सुमंत के रिश्ते पर शक रहता है। लेकिन असल कारण झगड़े का पैसा है। यदि पैसा होता तो वे अपने सपनों का घर बना लेते। अपनी इच्छाएं पूरी न होने के कारण चित्रा नरेश से नफरत करने लग जाती है। यह कस्बाई और महानगरीय जीवन की यथार्थ कहानी है। पैसों के कारण घरों में झगड़े होते हैं। उनके परिवार टूटते हैं। चित्रा और नरेश जो दोनों आपस में कितना प्रेम करते थे पैसों के कारण अलग हो जाते हैं।

'समुद्र में खोया हुआ आदमी' इसमें कमलेश्वर ने मध्यमवर्गीय परिवार की आर्थिक स्थिति का वर्णन किया है। श्याम लाल के तीन बच्चे हैं दो बेटियां और एक बेटा। घर में कुल पाँच सदस्य हैं। जिनका गुजारा श्यामलाल की पेंशन से होता है। श्यामलाल ने बड़ी मुश्किल से अपने बच्चों को पढ़ाया-लिखाया है। पैसों की कमी के कारण श्यामलाल की बड़ी बेटी तारा को हरबंस की दुकान पर नौकरी करनी पड़ती है। हरबंस उसकी आर्थिक मजबूरी का फायदा उठाता है और तारा को गर्भवती कर देता है। इसलिए मजबूर होकर श्यामलाल को तारा की शादी हरबंस से करनी पड़ती है।

श्यामलाल का बेटा बीरन जिसकी नेवी में नौकरी लग जाती है जिससे घर में खुशी की लहर दौड़ जाती है लेकिन कुछ दिनों पश्चात बीरन समुद्र में खो जाता है जिससे परिवार सदमे में आ जाता है। परिवार पर मुसीबतों का पहाड़ गिर जाता है। श्यामलाल किसी फैक्टरी में नौकरी करने चला जाता है। वह रात की रखवाली करता है, छोटी बेटी समीरा नर्सिंग करने होस्टल चली जाती है और रम्मी तारा के साथ रहने लग जाती है। इस प्रकार आर्थिक तंगी ने सारे परिवार को बिखेर दिया।

3. नारी मनोविज्ञान - राजनीतिक पक्ष

'काली आँधी' इस उपन्यास में कमलेश्वर ने राजनीति में चरित्रहीनता और भ्रष्टाचार का वर्णन किया है। इस उपन्यास की नायिका मालती है जो अपने पति के कहने पर राजनीति में प्रवेश करती है। मालती को राजनीति में सफलता पर सफलता मिलती है जिसके कारण उसमें अहंकार हो जाता है। वह अपने पति को मैनेजर की छोटी-सी नौकरी को छोड़ने के लिए कहती है। मालती राजनीति में इतनी व्यस्त हो जाती है कि उसे अपने पति बेटी लिल्ली का भी ध्यान नहीं रहता। वह चुनाव जीतने के लिए किसी भी हद तक जाने के लिए तैयार रहती है। लोगों से झूठे वायदे करती है, लेकिन चुनाव जीतते ही भूल जाती है।

जग्गी बाबू मालती से अलग रहते हैं तथा अपनी लिल्ली को होस्टल छोड़ देते हैं। वे मालती से अपनी बेटी को दूर रखना चाहते हैं। मालती जब अकेली होती है तो वह बहुत रोती है। अपनी बेटी को बहुत याद करती है। वह अपने आपको बहुत मजबूर महसूस करती है क्योंकि वह अब न तो राजनीति को

छोड़ सकती और उसे अपने परिवार की भी बहुत याद आती है। इस प्रकार मालती को राजनीति में तो सफलता मिल जाती है लेकिन उसका परिवार बिखर जाता है। उसका दाम्पत्य जीवन बिखर जाता है।

'रेगिस्तान' आजादी से पूर्व हर देशवासी ने अपने स्वतंत्र भारत के बहुत सपने देखे थे जो आजादी के बाद टूट जाते हैं। गांधी जी के आदर्श केवल गांधी जी के जमाने तक ही स्पृहणीय रहे। आजादी की लड़ाई में आम आदमी ने बहुत बलिदान दिए हैं लेकिन आजादी के बाद किसी को आम आदमी की सुख-सुविधाओं का कोई ध्यान नहीं है। जनता ने अपने देश की बागडोर नेताओं के हाथ में सौंप दी थी। लेकिन जननेता व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए जनता के विश्वास को ठग रहे हैं।

इस उपन्यास में विश्वनाथ नामक राष्ट्रभाषा प्रेमी की कहानी है जो राष्ट्रभाषा प्रसार के लिए अपने व्यक्तिगत जीवन के सारे संदर्भ भूल जाता है और अंत में उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता। विश्वनाथ जैसे व्यक्ति देश के कोने-कोने में हिंदी का प्रसार करते हैं और हमारी सरकार विदेशी भाषा अंग्रेजी को बढ़ावा देती है। जब विश्वनाथ अपने प्रयासों में असफल हो जाता है तो अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है और स्वयं भी अंग्रेजी बोलने लग जाता है।

4. नारी मनोविज्ञान - धार्मिक पक्ष

'लौटे हुए मुसाफिर' इस उपन्यास में लेखक ने देश-विभाजन के साथ-साथ हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगों का वर्णन भी किया है। देश-विभाजन के समय लोग धर्म के नाम पर दंगे कर रहे थे। हिन्दु-मुस्लमानों को मार रहे थे और मुस्लमान हिन्दुओं को मार रहे थे। नसीबन एक मुस्लिम महिला है जो बच्चन जो हिंदु है उसके बच्चों की देखभाल अपने बच्चों के समान करती है। जब साई बच्चन के बच्चों को अनाथालय भेजने के लिए कहता है जहाँ उन बच्चों को मुसलमान बना दिया जाएगा। नसीबन इस बात का विरोध करती है और बच्चन के बच्चों को देने से इंकार कर देती है। जब सारा देश साम्प्रदायिकता की आग में जल रहा था उस समय नसीबन इंसानी रिश्तों को महत्व देकर मानव धर्म की रक्षा कर रही थी। इस उपन्यास में लेखक ने धर्म और जाति के आधार पर हो रहे दंगों का वर्णन किया है।

'कितने पाकिस्तान' इस उपन्यास में कमलेश्वर ने हिन्दु और मुस्लमानों के संघर्ष का वर्णन किया है। इसमें लेखक ने पाकिस्तान को एक भौगोलिक इकाई के रूप में नहीं लिया है। यह वह पाकिस्तान है जो दिलों में पैदा होता है। जो कभी मेरठ, कभी इलाहाबाद की आवाज में दिखता है। यह नफरत का बीज है जो हमारे दिलों में बोया गया है। इस उपन्यास में अदीब और सलमा सच्चे इंसान होने का फर्ज निभाते हैं। वे दोनों धर्मों के लोगों को पास लाने की कोशिश करते हैं लेकिन लोग उनको ही बुरी नजर से देखते हैं। इस उपन्यास में देवताओं के भोग विलास पर भी व्यंग्य किया गया है। इस उपन्यास में मानव द्वारा मानव संहार का बड़ा मार्मिक वर्णन किया गया है। अमेरिका द्वारा जापान पर गिराए गए बमों से वहाँ बहुत नरसंहार हुआ था। शहर के शहर तबाह हो गए थे। इसलिए लेखक परमाणु बमों को मानव जाति के खतरा बता रहा है। लेखक कहता है कि यदि परमाणु बम बनाने बंद नहीं किए तो जल्दी ही हमारी मानव जाति खत्म हो जाएगी। लेखक विश्व को शांति का संदेश देना चाहता है।

'सुबह... दोपहर... शाम...' इस उपन्यास में लेखक ने आर्थिक पक्ष, राजनीतिक और धार्मिक पक्ष का वर्णन किया है। यह उस समय की बात है जब हमारा देश अंग्रेजों का गुलाम था। इस उपन्यास में दो नारी पात्र हैं शान्ता और जसवंत की दादी। जसवंत को रेलवे में नौकरी मिल जाती है लेकिन दादी नहीं चाहती कि जसवंत अंग्रेजों की नौकरी करे। दादी अंग्रेजी सरकार के बहुत खिलाफ थी क्योंकि जसवंत के दादा के हत्यारे अंग्रेज ही थे। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में राजा साहब की रक्षा करते हुए जसवंत के दादा शहीद हुए थे। दादा जी की मौत के बाद दादी अंग्रेजों से बहुत नफरत करती थी। घर में अंग्रेजों की कोई भी हिमायत नहीं करता था। जो अंग्रेजों का हिमायती था, दादी का दुश्मन था। दादी की स्वयं की बेटी अंग्रेज सरकार की हिमायती थी तो दादी ने अपनी बेटी कलावती और उसके पति से रिश्ता तोड़ लिया था।

दादी जसवंत को बहुत समझाती है कि वह अंग्रेजों की गुलामी न करे। वह जसवंत को रोटी-रोटी का भेद भी बताती है लेकिन जसवंत नहीं मानता और दूसरी जगह अपनी पत्नी को लेकर चला जाता है और रेलवे में नौकरी करने लग जाता है। दादी को जसवंत की नौकरी से गहरा सदमा लगता है और वह चुपचाप घर छोड़कर जंगल में चली जाती है और वहाँ पशु-पक्षियों के बीच रहकर भगवान की भक्ति में लीन रहती है। घरवाले बहुत ढूँढ़ते हैं लेकिन दादी का कहीं पता नहीं चलता और एक दिन दादी का पता जंगल में लगता है और सारा परिवार दादी को वापस घर लाने के लिए जाता है लेकिन दादी शान्ता के कहने से ही वापस आती है। दादी शान्ता से बहुत प्रेम करती थी।

दादी का जब अंत समय आता है तो दादी अपने बेटे और पोते की बजाय अपनी पोती शान्ता के हाथ से तुलसीदल और गंगाजल ग्रहण करती है। पण्डित कहते हैं कि हमारे धर्म में यह अधिकार लड़की को नहीं है, यह अधिकार बेटों और पोतों को है लेकिन दादी इस परम्परा को तोड़कर यह अधिकार अपनी पोती शान्ता को देकर नारी जाति को सम्मान देती है। शान्ता भी अपनी दादी की तरह ही देशभक्त नारी थी। ससुराल में वह अपने पति प्रवीण के खिलाफ जाकर अपने क्रान्तिकारी देवर नवीन का साथ देती है। इस प्रकार शान्ता भी अपनी दादी की तरह एक निडर और देशभक्त नारी थी। शान्ता को अपने ससुराल में बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा लेकिन जो बात गलत थी शान्ता ने उन सबका डटकर विरोध किया। शान्ता की सास शान्ता को सती होने के लिए बाध्य करती है लेकिन शान्ता का ससुर सती प्रथा के विरूद्ध था। शान्ता ने अपने बच्चों को पालने के लिए बहुत कष्टों का सामना किया। शान्ता एक पढ़ी-लिखी लड़की थी और उसने अचार और मुरब्बे का कारोबार अपने दोस्त सलीम की मदद से शुरू कर दिया और सफल हो गई। शान्ता ने समाज को दिखा दिया कि एक नारी सब कुछ कर सकती है।

नारी जाति के साथ सदियों से ही बुरा बर्ताव किया जाता रहा है। पुरुष प्रधान समाज ने नारी पर हमेशा शासन किया है। (चाहे झोंपड़ी में रहने वाली है या महलों में रहने वाली नारी सभी पर बहुत अत्याचार हुए हैं।) (आधुनिक काल की नारी शिक्षित नारी है। वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है। नारी आत्मनिर्भर बन गई है।)

आज की नारी जागरूक नारी है अपने अधिकारों के लिए लड़ना भी जानती है लेकिन हमारा समाज भी नारी के प्रति भेदभाव की दृष्टि रखता है। यदि किसी नारी का पति मर जाता है तो उसे बहुत से अधिकारों से वंचित होना पड़ता है। अकेली यदि बाहर जाती है तो लोग उसे शक की दृष्टि से देखते हैं। मर्द चाहे कहीं जाए लेकिन औरत अकेली कहीं न जाए। मर्द चाहता है कि औरत चहारदीवारी के अंदर ही बंद रहे। जब औरतें नौकरी करने बाहर जाती हैं तो मर्द उनकी स्वतंत्रता बर्दाश्त नहीं कर सकता। यदि नारी राजनीति में सफल हो जाए तो मर्द ईर्ष्या रखता है।

उपसंहार

कमलेश्वर आम आदमी के कथाकार थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में यथार्थ का वर्णन किया है। नारी मनोविज्ञान के सामाजिक पक्ष, धार्मिक पक्ष, राजनीतिक पक्ष और आर्थिक पक्ष के माध्यम से नारी जाति की असल जिंदगी का वर्णन उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है। कमलेश्वर ने स्वतंत्रता के बाद भय, संत्रास, कुंठा, स्वार्थ से ग्रस्त समाज का चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। आज की नारी की विचारधारा क्या है, उसके अधिकार क्या हैं, समाज की नारी के प्रति कैसी दृष्टि है। कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में बड़ी कुशलता से इन बातों का वर्णन किया है। समाज का दृष्टिकोण बदल रहा है नारी के प्रति, नारी भी अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक हो गई है। आत्मनिर्भर नारी किसी पुरुष का सहारा लेना आवश्यक नहीं समझती। आज की नारी अपनी स्वतंत्र जिंदगी जीना चाहती है। वह खुले आकाश में उड़ना चाहती है। समाज को भी नारी के प्रति अपनी खुली सोच रखनी चाहिए। नारी का उत्साह बढ़ाना चाहिए। नारी मानव-जीवन के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है और वह सृष्टि की निर्मात्री शक्ति भी है। हमारे भारत देश में तो नारी तू नारायण भी कहा गया है। कमलेश्वर के उपन्यासों में नारी अपनी पूर्ण गरिमा, वास्तविकता और आत्म-सम्मान की भावना के साथ उजागर हुई है। कमलेश्वर ने नारी मनोविज्ञान के सभी पक्षों का बड़ी सजीवता से वर्णन किया है।

संदर्भ सूची

1. कमलेश्वर के उपन्यासों में नारी मनोविज्ञान, Narender Kumar, Govind Dwinde In Journal of Advance and scholarly Research in Alied Education.
2. डॉ. धीरजभाई वणकर, कमलेश्वर का कहानी साहित्य और सामाजिक यथार्थ
3. डॉ. विष्णु सखदे, कथाकार कमलेश्वर
4. कमलेश्वर, समग्र उपन्यास
5. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान उपन्यास
6. कमलेश्वर, समुद्र में खोया हुआ आदमी, उपन्यास
7. आचार्य/डॉ. हरिशंकर दुबे, महिला उपन्यासकारों की नारी: प्रगति एवं पीड़ा के आयाम

समकालीन पाश्चात्य दर्शन जगत में गहन पारिस्थितिकी नैतिक दर्शनः एक अनुशीलन

डॉ० मनोज कुमार यादव

सारांश (Abstract)

समकालीन पाश्चात्य दर्शन जगत में एक नवीन प्रकार के नैतिक दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ, जिसकी शुरूआत लिन् जूनियर व्हाइट के लेख ''द हिस्टोरिकल रूट ऑफ आवर इकोलॉजिकल क्राइसिस' से हुई। इसके बाद नार्वे के प्रसिद्ध दार्शनिक आर्नेनैंस ने सतही पारिस्थितिकी दर्शन और गहन पारिस्थितिकी दर्शन में भेद करते हुए विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया। इसी क्रम में जार्ज सेशन, रिचर्ड शिलवान, वान प्लमवुड, लारेन्स जानसन, पाल टेलर, स्वेत्जर आदि दार्शनिकों ने गहन पारिस्थितिकी दर्शन से सम्बन्धित अपने-अपने विचारों को प्रस्तुत किया, जिसका विशद् विवेचन प्रस्तुत शोध-पत्र में किया गया है।

कुंजी शब्द (Key word)-(1) सतही पारिस्थितिकी (2) गहन पारिस्थितिकी (3) संपोषीय विकास (4) पर्यावरणवाद (5) वैश्वीकरण (6) पुनर्जीवीकरण (7) अर्न्तसम्बन्ध (8) समष्टि (9) समन्वयात्मक (10) सामंजस्यपूर्ण (11) नैतिकविद् (12) शुभ (13) अशुभ

उद्देश्य- प्रस्तुत शोध-पत्र में समकालिक दार्शनिकों द्वारा गहन पारिस्थितिकी दर्शन के सन्दर्भ में दिये गये विचारों का दार्शनिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

वर्तमान समय में जो भयावह पर्यावरणीय संकट है, उसके समाधान हेतु पर्यावरणीय विज्ञान, पर्यावरणीय नीतिशास्त्र जैसी 20वीं शताब्दी की नवीन संकल्पनाओं ने जन्म लिया, किन्तु गहन पारिस्थितिकी नीतिशास्त्र इन सबसे अधिक व्यापक और नवीन अवधारणा है, जिसमें संपोषीय विकास की अवधारणा निहित है।

1967 में साइंस पत्रिका में लिन् व्हाइट जूनियर ने 'The Historical Roats of our Ecological Crisis' नामक एक लेख-लिखा-जिसमें उन्होंने पश्चिमी देशों और पूरी दुनिया के समक्ष विद्यमान पारिस्थितिकी संकट के ऐतिहासिक कारणों का विश्लेषण करते हुए लिखा है- ''व्यक्तियों और समुदायों का पर्यावरण के प्रति व्यवहार इस बात पर निर्भर करता है कि वे प्रकृति के साथ अपने सम्बन्ध को किस प्रकार स्वीकार करते हैं। यूरोप और उत्तरी अमेरिका में विद्यमान पर्यावरणीय संकट का प्रमुख कारण वह शोषण परक दृष्टिकोण है जो ईसाई धर्म की शिक्षाओं के परिणाम स्वरूप विकसित हुआ है। ईसाई धर्म के अन्तर्गत मनुष्य को ईश्वर की सृष्टि में सर्वोच्च स्वीकार करते हुए उसे ईश्वर की प्रतिकृति के रूप में स्वीकार किया गया है तथा अन्य सभी वस्तुओं को मनुष्य के प्रयोग, उपयोग, उपभोग और आनन्द के लिए उत्पन्न माना गया है। जेनेसिस में उद्धृत है कि ''ईश्वर ने मनुष्य को अपनी अनुकृति के रूप में उत्पन्न किया तथा समुद्र की मछलियों पर, वायु एवं पृथ्वी पर रेंगने वाले प्रत्येक जीव पर मनुष्य को नियंत्रण एवं शासन करने का अधिकार प्रदान किया जिसके कारण मनुष्य ने प्रकृति को अपनी दासी मानकर उसका अंधाधुंध शोषण किया। मानवता के समक्ष विद्यमान पारिस्थितिकी संकट के निराकरण व निवारण का एकमात्र उपाय यह है कि हमें इस दृष्टिकोण को त्यागने का प्रयास करना चाहिए तथा मानव एवं प्रकृति के बीच समन्वयात्मक एवं सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए। हमें प्रकृति को दासी मानकर उसे उपभोग का साधन मात्र नहीं मानना चाहिए अपितु इसके आन्तरिक मूल्य को स्वीकार करना चाहिए।[1]

लिन् व्हाइट जूनियर के उपरोक्त लेख का परिवर्ती पर्यावरणीय नैतिकविदों के चिन्तन पर गहरा प्रभाव पड़ा। इसके परिणामस्वरूप ही परम्परागत पर्यावरणीय नैतिक सिद्धान्तों के स्थान पर एक नयी पर्यावरणीय नैतिक विचारधारा का जन्म हुआ, जिसके अन्तर्गत केवल मनुष्य ही नहीं अपितु समस्त मानवेतर जगत् को स्वयं में मूल्यवान माना गया और यह कहा गया कि उनका मूल्य केवल इसलिए नहीं कि वे मानव जाति के हितो की पूर्ति में सहायक है, अपितु वे इसलिए मूल्यवान है, क्योंकि उनका स्वयं में मूल्य है। इसे ही आगे चलकर पर्यावरणविदों ने गहन-पारिस्थितिकी की संज्ञा से अभिहित किया।

आगे चलकर नार्वे के प्रसिद्ध दार्शनिक आर्नेनेंस द्वारा सतही पारिस्थितिकी और गहन पारिस्थितिकी के बीच भेद किया गया। उनका मानना है कि 'सतही पारिस्थितिकी चिन्तन' परम्परागत नैतिक धारणा तक सीमित है तथा इसके समर्थकों ने जल आपूर्ति में, प्रदूषण रोकने की बात इसलिए की थी, जिससे कि मनुष्य को पीने के लिए शुद्ध पानी उपलब्ध हो सके। अर्थात सतही परिस्थितिकी चिन्तन मनुष्य के उपयोग एवं उपभोग को सुरक्षित रखने के लिए किया गया। इस अवधारणा में मानवेतर जगत को स्वयं में कोई मूल्य प्रदान नहीं किया गया। दूसरी ओर 'गहन परिस्थितिकी' के अन्तर्गत सम्पूर्ण पर्यावरण के संरक्षण का समर्थन इस आधार पर नही किया जाता कि वे मनुष्य के हित पूर्ति के लिए आवश्यक है, अपितु इस आधार पर इनके संरक्षण का समर्थन किया गया है क्योंकि वे स्वयं में महत्वपूर्ण है। सामान्यतः पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी को एक-दूसरे का पर्याय मान लिया जाता है, जबकि वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। पर्यावरण, पारिस्थितिकी का ही एक अंश है। पर्यावरण का सम्बन्ध प्राकृतिक सत्ता से है, जबकि पारिस्थितिकी का सम्बन्ध जीवन के समग्र आयामों से हैं। इसमें सम्पूर्ण जीवन और जगत के अर्न्तसम्बन्धों की व्याख्या होती है। इसे ही क्रमशः 'सतही पारिस्थितिक' (Shallow Ecology) तथा 'गहन पारिस्थितिकी' (Deep

Ecology) कहा जाता है। फिटज्याफ काँप्रा' तथा अन्य चिन्तकों ने इस अन्तर का समर्थन करते हुए कहा है कि-'गहन पारिस्थितिकी' केवल पर्यावरण सुरक्षा तक की सीमित नही हैं, अपितु सम्पूर्ण जीवन के विभिन्न सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि आयामों से जुड़ी है। इसी समग्रता की दृष्टि को पारिस्थितिकीय दृष्टि कहा जाता है। जिसमें जीवन के विभिन्न आयाम एक-दूसरे से सम्बन्धित तथा परस्पर निर्भर है। इसलिए जीवन को पूर्णता की दृष्टि में देखा जाना चाहिए। इसी को समग्र दृष्टि या विश्व दृष्टि कहा जाता है। जबकि पर्यावरणवाद या सतही पारिस्थितिकी का सीधा सम्बन्ध मनुष्य के कल्याण हेतु किये जाने वाले प्राकृतिक पर्यावरण के नियन्त्रण तथा प्रबन्धन से है। वस्तुतः गहन पारिस्थितिकी किसी नितान्त नये दर्शन का प्रस्ताव न होकर एक ऐसी अवचेतना का पुनर्जीवीकरण है जो हमारी संस्कृति का एक भाग है और यह पारिस्थितिकीय दृष्टि का ही विस्तार है। इसमें सम्पूर्ण विश्व की एकता की भावना है, बल्कि इसे वैश्वीकरण की भावना का प्रसार माना जा सकता है।

1984 में प्रकाशित शोध पत्र में आर्नेनैस और जार्ज सेसन ने गहन पारिस्थितिकी आन्दोलन को गति देते हुए निम्न बिन्दुओं पर बल दिया-

1. इस पृथ्वी पर सभी मनुष्य और मानवेतर प्राणी स्वयं में मूल्यवान हैं (अर्थात उनका आन्तरिक मूल्य है)। मानवेतर जगत का महत्व केवल मानवीय उद्देश्यों की पूर्ति के कारण नही है, अपितु उनके स्वयं के महत्वपूर्ण होने के कारण है।[2]
2. विविध जैविक तत्त्वों की समृद्धि और विविधता उनके आन्तरिक मूल्य की स्थापना में सहायक होते है।[3]
3. अत्यन्त महळवपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त जैविक तळवों की समृद्धि और विविधता को नुकसान पहुँचाने का मनुष्य को कोई अधिकार नहीं हैं।[4]

यद्यपि उपरोक्त कथनों में जैविक तत्त्वों को ही सन्दर्भित किया गया है, परन्तु नैंस एवं सेंसन ने 'गहन पारिस्थितिकी' कें अन्तर्गत नदियों, पहाड़ों और सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तन्त्र का उल्लेख किया है। इसी तरह पर्यावरणीय नीतिशास्त्र के क्षेत्र में कार्य करने वाले दो आस्ट्रेलियन विचारकों रिचर्ड शिलवान और वान प्लमवुड ने भी चेतन प्राणियों के साथ-साथ प्राकृतिक तत्त्वों को भी नैतिकता की परिधि में स्वीकार किया है। Deep Ecology नामक पुस्तक में विलडेवेल और जार्ज सेसन ने सभी प्राणियों के जीवन को उसी प्रकार मूल्यवान मानने व आदरपूर्ण मानने की बात की है जिस प्रकार मानव जीवन को अपने आप में मूल्यवान माना गया है। अन्य सभी प्राणियों को उसी प्रकार जीवन का अधिकार प्राप्त है जिस प्रकार मनुष्यों को। सारांशतः उपरोक्त पारिस्थितिकीविदों ने भू-मण्डल के सभी जैविक व अजैविक तत्वों को अन्तर्सम्बन्धित समष्टि के रूप में स्वीकार किया है तथा समान रूप से मूल्यवान माना हैं समीक्षकों की दृष्टि में सभी जैविक तत्वों को एक समष्टि का भाग मान लेने तथा उनके आन्तरिक मूल्य को स्वीकार कर लेने मात्र से यह प्रमाणित नही होता है कि सभी जैविक तत्वों का समान आन्तरिक मूल्य है। ''A Moraly Deep World'' नामक पुस्तक में लारेन्स जानसन ने यह स्पष्ट किया है कि, सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तन्त्र विभिन्न जीवों का संग्रह मात्र नही है अपितु स्वयं में एक समष्टि है। उनके कथन का निहितार्थ यह है कि जिस प्रकार व्यक्तिगत मानवीय हितों का नैतिक दृष्टि से संरक्षण करना हमारा दायित्व है, उसी प्रकार सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तन्त्र को भी नैतिकता की परिधि में लाने की आवश्यकता है। इसी प्रकार की अपेक्षा की पूर्ति के लिए बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पर्यावरणीय नीतिशास्त्र का विकास किया गया।

इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए अलबर्ट स्वेत्जर ने एक ऐसे नैतिक दृष्टिकोण का समर्थन किया है जिसमें सभी प्राणी समाविष्ट हैं। इनका कथन है कि जिस प्रकार मैं अन्य प्राणियों के बीच में जीवन-यापन करता हूँ और अधिकतम सुख और न्यूनतम दुःख प्राप्त करना चाहता हूँ वैसे ही सभी प्राणी अपना जीवन-यापन करना चाहते हैं। इसलिए जीवन को संरक्षण देना शुभ और जीवन का विनाश अशुभ है। इसीलिए जीवन की पवित्रता को स्वीकार करते हुए हमें किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए। नैतिकता के परिक्षेत्र में विस्तार का समर्थन करते हुए स्वेत्जर ने कहा है कि इसकी परिधि के अन्तर्गत समस्त प्राणियों को सम्मिलित किया जाना चाहिए। अपने इस नवीन नैतिक दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए उन्होंने कहा है- ''सच्चे दर्शन की शुरूआत चेतना के तात्कालिक और व्यापक तथ्यों से होनी चाहिए और इसे निम्न प्रकार से प्रतिपादित किया जाना चाहिए- ''मैं एक ऐसा प्राणी हूँ जो जीवित रहना चाहता है और मैं ऐसे प्राणियों के बीच में हूँ जो जीवित रहना चाहते हैं।..... जिस प्रकार जीवित रहने की मेरी इच्छा और अधिक जीवित रहने की ओर अग्रसर होती है, और जो परिस्थितियाँ जीवित रहने की मेरी इच्छा के अनुकूल है, वे सुखद है तथा जीवित रहने की इच्छा में जो बाधक तत्व हैं वे दुःखद हैं। ठीक इसी प्रकार अन्य प्राणियों में भी जीवित रहने की इच्छा को प्रोत्साहित करने वाले कारक सुखद होते हैं और बाधित करने वाले कारक दुःखद होते हैं। इसलिए नैतिकता का यह तकाजा है कि हमें अन्य प्राणियों के जीवित रहने की इच्छा के प्रति आदरभाव रखना चाहिए, जिस प्रकार की भावना हम स्वयं अपने जीवन के प्रति रखते हैं। स्वेत्जर के अनुसार जीवन को बनाये रखना और सुखद जीवन यापन करना शुभ है, जीवन को नष्ट करना तथा जीवन को बाधित करना अशुभ है। एक व्यक्ति, वास्तविक रूप से नैतिक तभी कहा जायेगा जब वह अन्य प्राणियों के जीवन यापन में सहायक है तथा अन्य किसी भी प्राणी को नुकसान न पहुँचाता हो। किसी भी व्यक्ति के लिए जीवन स्वयं अपने आप में पवित्र है। इस प्रकार नैतिक व्यक्ति किसी भी वृक्ष से पत्तियाँ नहीं तोड़ता है, कोई भी फूल नहीं तोड़ता है, किसी जीव-जन्तु को नहीं कुचलता है, यदि वह ग्रीष्मकालीन संध्या में लैम्प की रोशनी में काम करता है तो वह खिड़कियों को बन्द करके काम करना पसन्द करता है, भले ही वह हवा के ताजे झोकों से वंचित रह जाय, परन्तु यह कभी नहीं चाहता है कि कीट-पतंगे आकर लैम्प की रोशनी में जलकर खाक हो जाय।

उपरोक्त दृष्टिकोण से मिलता-जुलता दृष्टिोण समकालीन अमेरिकी दार्शनिक पॉलटेलर ने अपनी 'पुस्तक रिसपेक्ट फॉर नेचर' में व्यक्त किया है। टेलर के अनुसार- प्रत्येक प्राणी अपने तरीके से अपने हित की पूर्ति में प्रयासरत रहते हैं। एक बार हम इस प्रकार के दृष्टिकोण का विकास कर ले तो हम समस्त प्राणियों को उसी दृष्टिकोण से देखेंगे, जिस प्रकार हम स्वयं अपने आपको देखते हैं, और तब हम उनके अस्तित्व को भी उसी प्रकार का मूल्य प्रदान करेगे जिस प्रकार हम अपने अस्तित्व को मूल्य प्रदान करते हैं, अर्थात् जिस प्रकार हम अपने अस्तित्व को मूल्यवान मानते हैं, उसी प्रकार हम समस्त प्राणियों के अस्तित्व को मूल्यवान समझेगें।''[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वेत्जर और टेलर ने चेतन प्राणियों और अचेतन पदार्थों के, अस्तित्व को समान मूल्य प्रदान किया है। इन्होंने प्राय: रूपको के माध्यम से अपने नैतिक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही एक अन्य अमेरिकी पर्यावरणविद् आल्डोलियो पॉल्ड ने एक नवीन नैतिक दृष्टिकोण की आवश्यकता पर बल दिया है, जिसके अन्तर्गत मनुष्य के पृथ्वी के साथ सम्बन्ध तथा उसके पशुओं और वनस्पतियों के साथ सम्बन्ध की विवेचना की जाय। उनके द्वारा प्रस्तावित 'लैंड एथिक' के अन्तर्गत भूमि, जल, वनस्पतियां, पृथ्वी और पशु सभी सम्मिलित है।[6]

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि पाश्चात्य जगत में पर्यावरण के प्रति जागरूकता एवं पर्यावरणीय नैतिक चिन्तन का विकास बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध की देन है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. "The Historical Roots of Our Ecological Crisis" White Jr. Lynn *Science,* 155 ¼3767½ % 12&03&1207] 1967 A
2. *Basic Principals of Deep Ecology*, Naess, A., sessions, G., p. 67
3. Ibid.
4. Ibid.
5. Singer Peeter] *Practical Ethics,* p& 278&279 A
6. Pold Aldoleo, *Land Ethics, p-133*

समकालीन भारत में दलित समुदाय के सम्मुख उपस्थित वैश्वीकरण की चुनौतियाँ

डॉ० शैलेश कुमार राम

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, राजा सिंह महाविद्यालय, सीवान, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छापरा, बिहार

प्रस्तावना

1980 और 90 के दशक में विश्व फलक पर तेजी से उभरी वैश्वीकरण की संकल्पना ने शीघ्र ही भारत में भी दस्तक दे दी। आर्थिक मंदी से निकलने हेतु वैश्विक आर्थिक संस्थाओं से मदद के एवज में जब भारत की नरसिम्हा राव सरकार ने उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण की शर्तों को स्वीकार किया तब देश के दलितों व आदिवासियों के रूप में वंचित वर्गों पर पड़ने वाले इसके प्रभाव को लेकर बड़ी ही जबरदस्त बहस छिड़ी थी। एक तरफ कुछ विचारक इसे वंचित वर्गों के हित में बताते हुए इस बात पर जोर दे रहे थे कि इससे न सिर्फ इन वर्गों को आर्थिक विकास का अवसर मिलेगा बल्कि उनकी सामाजिक हैसियत भी बेहतर होगी, वहीं दूसरी तरफ उन विचारकों की जमात थी जो मानती थी कि वैश्विकरण से सबसे ज्यादा फायदा अमीर और अगड़ी जातियो को होगा और दलितों व आदिवासियों के लिए उपलब्ध अवसर बढ़ने की बजाय घटेंगे। आज जबकि भारत में इस भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को शुरू हुए तकरीबन ढ़ाई दशक का समय बीत चुका है यह देखना प्रासंगिक होगा कि दलितों व आदिवासियों के ऊपर वैश्विकरण का क्या प्रभाव पड़ा है। इस आलेख में हमने दलितों और आदिवासियों के उपर पड़ने वाले वैश्विकरण के प्रभावों को विश्लेषित करने की कोशिश की है साथ ही यह भी देखने का प्रयास किया है कि इस दौरान इन वर्गों के विकास की गति, दशा व दिशा क्या रही है और क्या इनके लिएवैश्वीकरण वाकई फायदे की चीज रही है या फिर उन विचारकों की भविष्यवाणी सही साबित हो रही है जिन्होंने वैश्वीकरण की प्रक्रिया को दलितों और आदिवासियों के लिए घातक बताते हुए इस बारे में सतर्क रहने को कहा था।

विषय विस्तार

सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक पहलूओं से युक्त वैश्वीकरण वर्तमान समय के सर्वाधिक चर्चित सप्रत्ययों में से एक है जिसका प्रभाव विश्व के अलग अलग हिस्सों में विविध रूपों में देखा जा सकता है। वैश्वीकरण का शाब्दिक अर्थ ''स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं के विश्व स्तर पर रूपांतरण की प्रक्रिया है। इसे एक ऐसी प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर एक समाज बनाते है तथा एक साथ कार्य करते हैं। यह एक प्रक्रिया, तकनीकी, सामाजिक और राजनीतिक ताकतों का एक संयोजन है।''(विकीपीडिया, वैश्वीकरण) ब्लैकवेल डिक्सनरी ऑफ सोशियोलॉजी (1995) के अनुसार ''भूमंडलीकरण वह प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत विभिन्न समाजों का सामाजिक जीवन, राजनीतिक एवं व्यापारिक क्षेत्र से लेकर संगीत, वेशभूषा एवं जन मीडिया के क्षेत्रों तक, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अत्यंत द्रुत गति से प्रभावित हुआ है।''(हसनैन, 2011: 571)वैश्वीकरण की अवधारणा के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य को डेविड हैल्ड तथा अन्य विचारकों ने तीन श्रेणियों संशयवादी, अतिवादी तथा परिवर्तनवादी के रूप में वर्गीकृत किया है। इसमें संशयवादी विचारधारा वैश्वीकरण की धारणा के सार्वभैमिकरण और इसे अतिशय महत्व दिए जाने को नकारती है वहीं अतिवादी दृष्टिकोण का मानना है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया वास्तविक और आवश्यक है जो तीव्र गति से विकास और बदलाव लाने हेतु जरूरी है। परिवर्तनवादी विचारधारा मध्यमार्गी है जो वैश्वीकरण की प्रक्रिया से होने वाले मौलिक परिवर्तनों के मूल को प्राचीन काल में तलाशने के कारण विभिन्न देशों के भिन्न-भिन्न सामाजिक परंपराओं एवं संस्कृतियों के महत्व को स्वीकार कर उन्हें बनाए रखने की वकालत करती है। दुर्भाग्यवश भारत में वैश्वीकरण की प्रक्रिया कुछ इस तरह आगे बढ़ी है कि इसने जमीनी परंपराओं और संस्कृतियों को न सिर्फ अवांछनीय साबित कर दिया है बल्कि उन लोगों की जिंदगी को भी नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है जिन्होंने अपनी जमीनी परंपराओं और संस्कृतियों को सिरे से नकारना स्वीकार नहीं किया। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के साथ जैसे-जैसे सामाजिक अंतर्क्रिया का फलक बढ़ रहा है हाशिए का समाज और भी अधिक हाशिए पर होता जा रहा है। इसी परिप्रेक्ष्य में भारत में वैश्वीकरण के पदार्पण के बाद दलित और आदिवासी समाज के लिए चुनौतियाँ निरंतर बढती जा रही है।

भूमंडलीकरण ने राज्य को अपनी संवैधानिक जिम्मेदारियों ये पीछे हटने की सहूलियत और बाध्यता दोनों दे दी है। अंतर्राष्ट्रीय जगत से जुड़ाव और इस प्रक्रिया में किये जाने वाले समझौतों, संधियों तथा अभिसमयों आदि के कारण न सिर्फ राज्य की संप्रभुता अनेक मामलों में सीमित हुई है बल्कि लोक प्रशासन के क्षेत्र में राज्य के पश्चगमन की प्रक्रिया भी तीव्र हुई है,जिसका सीधा असर उन वर्गों पर पड़ा है जो अपने संरक्षण एवं विकास हेतु पूर्णतया राज्य पर निर्भर

रहे हैं। भारत में दलित और आदिवासी समाज इसी वर्ग में शामिल है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था के निम्नतम सोपान पर स्थित दलित 2011 की जनगणना के अनुसारजहाँ देश की आबादी का तकरीबन 16.2 प्रतिशत भाग हैवहीं आदिवासी समाज की आबादी तकरीबन 8.6 प्रतिशत है।जनसंख्या के लिहाज से तकरीबन आधी दलित आबादी भारत के चार राज्यों उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, बिहार तथा तमिलनाडु में निवास करती है। इसी तरह आबादी की दृष्टि से आदिवासी समाज के लोगों का मुख्य संकेद्रन मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, गुजरात और झारखंड़ में है। दलितों की स्थिति को विकास के विभिन्न पैमानों पर रखकर देखें तो हम पाते है कि दलित 3,237 रूपए प्रति व्यक्ति आय के साथ 4,485 रूपए प्रति व्यक्ति आय के राष्ट्रीय औसत से काफी नीचे है। गाँवों में निवास करने वाली दलित आबादी का तीन चौथाई भाग भूमिहीन कृषि श्रमिक, बटाईदार और ग्रामीण गैर कृषि श्रमिक है, वही देश के 6 करोड़ बाल श्रमिक में से 40 प्रतिशत दलित समाज से आते है। आंकड़ों पर नजर डालें तो शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में क्रमशः 36.25 प्रतिशत तथा शहरी क्षेत्र में 38.47 प्रतिशत दलित निर्धनता रेखा के नीचे जीवनयापन करने को अभिसप्त हैं।आदिवासियों की स्थिति भी दलितों के समान ही है और 2013 में जारी स्टैटीकल प्रोफाईल ऑफ सेड्यूल्ड ट्राईब्स इनइंडिया के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले तकरीबन 45.86 प्रतिशत आदिवासी एवं शहरी क्षेत्र में रहने वाले लगभग 34.75 प्रतिशत आदिवासी गरीबी रेखा के नीचे आते है। इसके बावजूद की आजादी के बाद से ही सरकारें दलितों और आदिवासियों के हित में विभिन्न कार्य करने और उनके हितैषी होने का दावा करती रहीं है इन वर्गों का जिस सीमा तक विकास होना चाहिए वह नहीं हो सका है। 2011 की जनगणना के अनुसार 72.99 प्रतिशत की राष्ट्रीय साक्षरता दर की तुलना में दलितों एवं आदिवासियों में साक्षरता दर क्रमशः 66.07 प्रतिशत एवं 58.96 प्रतिशत है। दलित समुदाय की 75 प्रतिशत महिलाएँ रक्ताल्पता की शिकार हैं। शिशु मृत्यु दर 66.4 प्रति 1000 जीवित जन्म तथा बाल मृत्यु दर 23.2 प्रति 1000 जीवित जन्म के भयावह स्तर पर है। आदिवासियों की स्थिति यहाँ भी दलितों के ही समान है और नेशनल फेमिली हेल्थ सर्वे 2005-06 के अनुमानों के मुताबित उनमें भी शिशु मृत्यु दर 62.1 प्रति 1000 जीवित जन्म एवं बाल मृत्यु दर 35.8 प्रति 1000 जीवित जन्म के चिन्ताजनक स्तर पर बनी हुई है। दलितों द्वारा नौकरियों में बिना योग्यता के ही भारी संख्या में स्थान हासिल कर लेने और दूसरों का भी हिस्सा हड़प जाने के हालिया आरोपों से उलट स्थिति यह है कि सिर्फ समूह 'डी' की उन नौकरियों को छोड़ दें जिन्हें आमतौर पर ऊँची जाति के लोग करना पसंद नहीं करते तो किसी भी वर्ग की सेवा में दलित अभी अपने लिए निर्धारित कोटे तक की सीट नहीं हासिल कर सके हैं। विशेष रूप से समूह 'ए' तथा 'बी' की केंद्रीय सेवाओं में उनकी हिस्सेदारी क्रमशः 11.90 प्रतिशत तथा 13.70 प्रतिशत ही है। आदिवासियों की स्थिति तो और भी बुरी है। इंडियन एक्सप्रेस में प्रकाशित खबर के अनुसार भारत में सिर्फ 4 प्रतिशत दलित और आदिवासी परिवार ऐसे है जिनके यहाँ से कोई सदस्य सरकारी सेवा में है।

समकालीन भारत में दलित समुदाय के सम्मुख उपस्थित वैश्वीकरण की चुनौतियाँ

भूमंडलीकरण के आगमन के बाद ऐसा विश्वास किया जा रहा था कि इससे समाज के विभिन्न वर्गों के मध्य खाई कम हो सकेगी और सभी वर्गों को विकास के अवसर प्राप्त हो सकेंगे, जिससे दलित और आदिवासी भी समान रूप से लाभांवित होगे लेकिन दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं हो सका है। इसके पीछे कई कारण जिम्मेदार रहे हैं जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण निम्नलिखित हैं -

1. भूमंडलीकरण ने रोजगार के अवसर सृजित किए है लेकिन इनका स्वरूप वह है जिसमें दलित और आदिवासी समाज पारंगत नहीं है। कहने का अभिप्राय यह है कि दलित और आदिवासी जो मुख्य रूप से शारीरिक श्रम से जुड़े व्यवसाय करते रहे हैं उनके लिए भूमंडलीकरण के बाद बढ़े तकनीकी कौशल और स्वचालनयुक्त व्यवसाय नुकसानदेह ही रहे हैं। योग्यतम की उत्तरजीविता के नाम पर निजीकरण को बढ़ावा देने और आरक्षण को सीमित करते जाने का परिणाम यह हो रहा है कि दलितोंऔर आदिवासियों के लिए सरकारी क्षेत्रों में रोजगार के अवसर निरंतर कम होते जा रहे हैं।
2. देश के लगभग 3/4 से अधिक दलित अपनी आजीविका हेतु मुख्यरूप से कृषि क्षेत्र पर निर्भर है जिनमें से ज्यादातर छोटे किसान और भूमिहीन खेतिहार मजदूर है। वहीं शहरों में रहने वाले ज्यादातर दलित अपनी आजीविका हेतु असंगठित क्षेत्र पर निर्भर है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने शहरों और गाँवों दोनों ही जगहों पर रहने वाले दलितों के लिए रोजगार के अवसरों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है। ग्रामीण क्षेत्र में विश्व बैंक, आईएमएफ तथा डब्लयूटीओ के दिशानिर्देशों के अनुकूल भूहदबंदी की समाप्ति और सब्सिडी वापसी जैसे कदमों से जहाँ छोटे किसानों के लिए खेती गैर लाभप्रद होती जा रही है वहीं शहरी क्षेत्र में उद्योगपतियों के हित में बनने वाले कानून और सामाजिक सुरक्षा योजनाओं से सरकार के हाथ खिंचने के कारण दलित वर्ग के शोषण की घटनाएँ अनवरत बढ़ती जा रही है।
3. भूमंडलीकरण के बाद वैश्विक प्रतिस्पर्धा हेतु देश को तैयार करने के लिए शिक्षा के क्षेत्र में बड़े पैमाने पर बदलाव किया जा रहा है और उच्च शिक्षा के निजीकरण द्वारा उसे व्यावसायिक आधार पर चलाने की दिशा में पहल हो रही है। आल इंडिया सर्वे ऑन हायर एजुकेशन के अनुसार देश के 34908 महाविद्यालयों में से तकरीबन 73 प्रतिशत निजी प्रबंधन के अधीन हैं। अधिकांशनिजी महाविद्यालयों का एकमेव लक्ष्य पैसा कमाना है जिनमें दाखिले का एकमात्र पैमाना पैसा है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि एक तरफ भुगतान सीटों के चलन के कारण दलित और आदिवासी वर्गों के छात्र शिक्षा से वंचित होते जा रहे है और गुणवत्ता युक्त शिक्षा उनकी पहुँच से बाहर होती जा रही है वहीं समाज का उच्च वर्ग सभी अवसरों पर कब्जा जमाता जा रहा है। इस सर्वथा अलग मूल्य आधारित शिक्षा का उद्देश्य टकसाली किस्म की अभिजात्य आधुनिकता को जन्म देना और जमीनी आधुनिकता को नकारना है जिसमेंदलितों और आदिवासियों के लिए कोई स्थान नहीं है।

4. भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने हेतु लागू की गई नई आर्थिक नीति के दौर में देश में नौकरी रहित विकास के वर्तमान काल में दलितों के लिए लागू आरक्षण को जिस तरह सामान्य वर्ग की बेरोजगारी की जड़ बताकर दलितों पर प्रहार हुए है वह भी अपने आप में एक चिंतनीय विषय है। सच्चाई यह है कि दलित इस नई व्यवस्था में सबसे अधिक नुकसान की स्थिति में रहे है और ''1977-78, 1983-84 एवं 1993-94 में तत्काल साप्ताहिक एवं तत्काल दैनिक प्रस्थितियों पर आधारित अनु. जातियों यानि दलितों की बेकारी दर अन्य श्रमिकों की तुलना में काफी अधिक है।दलित श्रमिकों की उच्च बेकारी दर, नौकरी पर रखने में दलितों के विरूद्ध जाति आधारित भेदभाव के सम्भावित अस्तित्व को दिखाती है। इस पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि 1977-78 एवं 1993-94 के मध्य सभी प्रस्थितियों में दोनों, अनुसूचित जाति एवं अन्य की बेकारी दर निरन्तर घटी है। 1993-94 के बाद उदारीकरणकी कालावधि में पहली बार बेकारी दर में बढ़ोतरी हुई है। अत: यह स्पष्ट है के 1990 के दशक में रोजगार की दर घटी है और तदनुरूप बेकारी दर बढ़ी है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उदारीकरण से पूर्व की कालावधि में, रोजगार में जिस सकारात्मक प्रवृत्ति का अनुभव किया गया था, उसे इसने निश्चित रूप से उलट दिया है। नौकरी के अवसर कम हो गए है।''(जोगदंड, 2010: 298-299)
5. भूमंडलीकरण ने आधुनिकता और योग्यता की नई परिभाषा गढ़ी है जिसमें निजी क्षेत्रों द्वारा रोजगार हेतु सुंदर, श्वेत या गौण वर्ण के अंग्रेजीदाँ पश्चिमी पहनावे ओढ़ावे वाले व्यक्तियों को ही वरीयता दी जाती है। ऐसा करने के पीछे का तर्काधार यह होता है कि चूँकि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संबंध बनाने है और व्यापार को देश की सीमाओं के बाहर भी पहुँचाना है अत: ऐसे लोग होने चाहिए जो देखने में आकर्षक, फर्राटेदार अंग्रेजी बोलने वाले और पश्चिमी तौर तरीकों में रचे बचे हो। जाहिर सी बात है दलितों और आदिवासियों के पास यह नही है लिहाजा योग्यता के इस पैमाने पर वे खरे नहीं उतर पाते और उनके लिए नौकरियों के दरवाजे बंद हो जाते हैं।

   दलितों और आदिवासियों की स्थिति में न सिर्फ गरीबी, शोषण और तिरस्कार के स्तर पर समानता देखने को मिलती है बल्कि दोनों पर भूमंडलीकरण का प्रभाव भी कमोबेश एक सा ही हुआ है। सामाजिक सुरक्षा मद में कटौती, विनिवेश और निजीकरण से घटते रोजगार अवसर, गैर लाभकारी होती कृषि और पहुँच से दूर होती शिक्षा दलितों की तरह आदिवासियों के लिए भी समान रूप से चिंता का विषय है। लेकिन कुछ बिंदुओं पर आदिवासी समाज की भूमंडलीकरणजनित समस्याएँ दलितों से अलग हैं जिनका उल्लेख निम्नवत है-
6. औद्योगिक विकास के नाम पर खदानों से खनिज के निष्कासन हेतु बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आदिवासी क्षेत्रों में प्रवेश की गति जो कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया शुरू होने के बाद बेहद तेजी से बढ़ी है उसने आदिवासियों को जल, जंगल, जमीन, तीनों से विस्थापित कर दिया है। बिना व्यवस्थित पुनर्वास योजना को अमल में लाए आदिवासियों को उनकी जमीन से उजाड़ने के कारण आदिवासियों की जीविका के साथ-साथ उनकी सामाजिक सांस्कृतिक विरासत भी खतरे में पड़ चुकी है। आदिवासियों के इलाके के वनों को लगातार काट कर व्यवसायिक लाभ हेतु बेचा जा रहा है, जबकि आदिवासी जो अब तक उन वनों की देखभाल करते आए हैं उन्हे उन वनों के लिए खतरा बताकर उनके वाजिब वन अधिकारों से भी वंचित कर दिया गया है।
7. भूमंडलीकरण के कारण आदिवासी क्षेत्रों में तेजी से पाँव पसारती जा रही औद्योगिक उपयोग सामग्रियों ने आदिवासियों की सरल जीवन शैली को प्रभावित किया है। इससे उनके कुटीर एवं लघु उद्योगों तथा हस्त कौशल उद्योगों पर भी मार पड़ी है जो नई प्रौद्योगिकी वाले बड़े उद्योगों के सामने नही टिक पा रहे हैं। ऊपर से पश्चिम की चमक दमक का प्रभाव जिसने उन्हें एक नए संस्कृतिक प्रतिमान की तरफ ढ़केलना शुरू किया है, उनके सामने सांस्कृतिक विचलन और इससे पनपती मानसिक असंतोष की समस्या को जन्म दे रहा है।
8. भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के साथ कदमताल करने की विचारहीन चेष्टा ने हमारे नीति निर्माताओं को बाजार की शक्तियों और बहुराष्ट्रीय संस्थाओं का गुलाम बना दिया है, जिनके कारण अनुसूचित क्षेत्रों से संबंधित कानूनों व नीतियों चाहें वह भूमि हस्तांतरण नियंत्रण कानून हो, पेसा (पीईएसए)हो, वन अधिनियम होया पर्यावरण संरक्षण अधिनियम हो, को एक एक कर किनारे लगाने की साजिश रची जा रही है ताकि सामुदायिक अधिकारों की कीमत पर निजी अधिकारों को आगे बढ़ाया जा सके। कुल मिलाकर यह विकास के नाम पर निजी राष्ट्रीय- बहुराष्ट्रीय कंपनियों को खुली छुट देने की कवायद है जिसमें आदिवासियों के जीवन से जुड़े सभी मुद्दों को बड़ी ही निर्ममता से खारिज कर दिया गया है।

निष्कर्ष

दलित एवं आदिवासी भारतीय समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा होने के बावजूद लंबे समय से समाज की मुख्यधारा से अलग रहे हैं। इन दोनों ही वर्गो को समाज की मुख्यधारा में स्थान दिलाने एवं इनका चतुर्दिक विकास सुनिश्चित करने हेतु स्वतंत्रता पश्चात अनेक कदम उठाने के बावजूद अभी तक वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हो सके हैं। 1980- 90 के दशक में वैश्वीकरण की प्रक्रिया को अपनाने के बाद अनेक विद्वानों को यह उम्मीद थी कि समाज के अन्य वर्गों की भांति इससे दलितों और आदिवासियों को भी आर्थिक, सामाजिक विकास के अवसर प्राप्त हो सकेंगे, लेकिन दुर्भाग्यवश वैश्वीकरण ने इन वर्गों को अब तक सकारात्मक की तुलना में नकारात्मक रूप से अधिक प्रभावित किया है। वैश्वीकरण की नीतियों ने इन वर्गों को लक्ष्य बनाकर किये गए संवैधानिक प्रावधानों को धीरे धीरे ही सही अर्थहीन करना शुरू कर दिया है। रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा, सुरक्षा आदि जैसे अनेक अधिकार वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया को आगे बढ़ने हेतु सरकार द्वारा उठाये जाने वाले कदमों की बलि चढ़ चुके हैं। समावेशी विकास, जिसकी वकालत सरकार द्वारा की जा रही है उसकी वास्तविकता उन आंकड़ों के जरिये समझी जा सकती है जिनका हमने ऊपर उल्लेख किया है और जो खुद सरकारी एजेंसियों द्वारा ही उपलब्ध कराये गए हैं। कुल मिलाकर वैश्वीकरण को यदि हम पुरे तौर पर खारिज न भी करें तो भी इतना तो स्वीकार करना पड़ेगा कि समाज के वंचित वर्गों की विशिष्ट

आवश्यताओं के सन्दर्भ में वैश्वीकरण के उपकरण प्रभावी सिद्ध नहीं हो रहे हैं। ऐसे में सरकार को वैश्विक प्रतिबद्धताओं और वंचित वर्गों के प्रति उत्तरदायित्वों के मध्य संतुलन बनाते हुए आगे बढ़ने की आवश्यकता है ताकि एकांगी विकास के स्थान पर सही मायनों में सबका विकास और सभी क्षेत्रों में विकास को सुनिश्चित किया जा सके।

References

1. Paswan, Amarnath, Chandra, Manish, Bharat mein Dalit Utpidan in Bharatiy Loktantra ka Samajik aur Rajnitik Pariprekshy, Edited by Paswan, Amarnath, Chandra, Manish, Victorious Publishers, 2016
2. Sharma, B.D., Rashtrapati ke Naam Chitthee, in Maowaad, Hinsa aur Adiwasi, Edited by Rajkishor, Vani Prakashan, 2010
3. Chandra, Manish, Panchayat (Anusuchit Kshetron mein Vistar) Adhiniyam, 1996: Vartman Sthiti, Chunautiyan ewam Sujhav in Indian Journal of Dalit and Tribal Studies, Vol.2, Issue 2, July-December, 2014
4. Hasanain, Nadeem, Samakalin Bharatiy Samaj, Bharat Book Centre, 2011
5. P. G. Jogdand, Arakshan Neeti ewam Daliton ka Sashaktikaran, in Adhunik Bharat mein Dalit, Edited by S.M. Michael, SAGE Publications India Pvt. Ltd., 2010
6. Jodhka, Surendra, Caste in Contemporary India, Routledge India, 2014

20वीं शताब्दी में भारतीय इतिहास-लेखन की दशा एवं दिशा: एक अवलोकन

डॉ० माया नन्द

यूजीसी-नेट, जे.आर.एफ. (आई.सी.एच.आर.)

भारत में इतिहास-लेखन प्राचीनकाल से ही होता आ रहा हैं परन्तु समय एवं परिस्थितियों के अनुसार इसके स्वरूप एवं उद्देश्य में परिवर्तन होता रहा है। औपनिवेशिक काल में पश्चिमी चिंतकों का आरोप रहा है कि भारत में इतिहास लेखन की परंपरा नहीं था। प्राचीन भारत में इतिहास-लेखन की परंपरा का आरंभ 'वेद' से मान सकते हैं। वेद की ऋचाओं एवं सूक्तों में पूर्वजों की स्तुति एवं पूर्वजों का गुणगान किया गया है। भारतीय इतिहास-लेखन का उद्देश्य लोक-कल्याण रहा है। पूर्व मध्यकालीन भारत में कल्हण का इतिहास- चिंतन में इतिहास-लेखन की अवधारणा समकालीन विश्व में सबसे अधिक वैज्ञानिक था। इसलिए हमें 'इतिहास' और 'भ्पेजवतल' में अंतर समझना चाहिए। भारत में इतिहास लेखन प्राचीन साहित्य एवं धर्म का पर्याय रहा है।

मध्यकालीन भारत में इतिहास-लेखन प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन एवं अरबों के इतिहास-लेखन से प्रभावित रहा है। औपनिवेशिक इतिहास-लेखन जो पूर्णत: पूर्वाग्रह से प्रेरित रहा है। पुनर्जागरण काल के बाद पश्चिमी देशों में 'इतिहास-दर्शन' पर वाद-विवाद होता रहा। वाल्तेयर स्पष्ट रूप से लिखता है कि ''हमें प्राचीन भारत एवं चीन के धर्म एवं इतिहास का अध्ययन करना चाहिए।'' इससे स्पष्ट है कि मध्यकालीन यूरोप में पुनर्जागरण के प्रभाव से जो व्यवस्था उन्नत हुई, वह व्यवस्था पर प्राचीन भारतीय इतिहास का अमिट छाप था।

20वीं शताब्दी आधुनिक भारत के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण शताब्दी रहा है चाहे वह राजनैतिक क्षेत्र में हो या बौद्धिक क्षेत्र में। वैसे 20वीं शताब्दी पूरे विश्व के लिए भी महत्वपूर्ण रहा है। सामान्यत: 20वीं शताब्दी पश्चिमी या यूरोपीय प्रभुत्व की समाप्ति की रही है। इसलिए इस शताब्दी में परिवर्तनों का विभिन्न दौर आना स्वभाविक था। 20वीं शताब्दी में भारतीय इतिहास -लेखन के स्वरूप में भी बदलाव देखने को मिलता है। जहाँ शताब्दी के प्रारंभ में औपनिवेशवादी इतिहास-लेखन मिलता है उसके उपरान्त राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन, आर्थिक इतिहास लेखन, मार्क्सवादी, उपाश्रयी और उत्तर-आधुनिकतावादी इतिहास-लेखन मिलता है, जो इतिहास-लेखन के स्वरूप में बदलाव को दर्शाता है।

'इतिहास' के संबंध में यूरोपीय विद्वानों द्वारा आधुनिक काल में समय-समय पर मंथन चलता रहा। 20वीं शताब्दी में ई. एच. कार ने 'इतिहास क्या है' के संबंध में स्पष्ट दृष्टिकोण रखा कि इतिहास, इतिहासकार और उसके तथ्यों की क्रिया-प्रतिक्रिया की एक अनवरत प्रक्रिया है, अतीत और वर्तमान के बीच एक अंतहीन संवाद है।[1] समाज के सामने इतिहास को प्रस्तुत करने का कार्य इतिहासकारों द्वारा किया जाता है,जो इतिहास-लेखन के माध्यम से प्रस्तत होता है। इतिहास-लेखन एक निरंतर प्रक्रिया है। लेखन प्रक्रिया में कुछ भी शाश्वत नहीं होता है।[2]

विश्व में इतिहास लेखन का कोई सर्वमान्य 'स्वरूप' नहीं हो पाया था। इतिहास के स्वरूपों पर चर्चाएँ चलती रही। आर्थर मारविक स्पष्ट लिखते हैं कि ''आज हमारे जीवन पर, और अध्ययन पर, निर्णायक प्रभाव 17वीं सदी के बाद चल रही वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय क्रांतियों और 18वीं सदी के बाद चल रही राष्ट्रीय और जनवादी क्रांतियों का है। इतिहास-लेखन के इतिहासकारों में इस पर मतभेद है किस युग को स्पष्ट रूप से आधुनिक इतिहासकार पैदा करने का श्रेय दिया जाए। पहला युग, जिसमें वैज्ञानिक क्रांति को, जो कला, उद्योग और साहित्य में पूरी तरह प्रवाहित थी, उस समाज प्रबोधन के नाम से जाना जाता था और आज भी हम यही प्रयोग कर सकते हैं। अठारहवीं सदी के बौद्धिक जीवन के महानतम अलंकार 'बोल्तेयर' को प्राय: पहला आधुनिक इतिहासकार मानते हैं। दूसरे व्याख्याकारों ने उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में ऐतिहासिक अध्ययन में जर्मन इतिहासकारों द्वारा लाई गई क्रांति रेखांकित किया है।

पुनर्जागरण काल के लेखन के प्रभाव में इतिहास ने विवेक बोध का एक उच्चतर स्तर और पहले से अधिक उन्नत पद्धति विकसित कर ली। बहुत सा बेढंग्गापन बाकी था, जिसे प्रबोधन काल ने साफ कर दिया। इसलिए वोल्तेयर और उसके समकालीनों की एक नई ऐतिहासिक परंपरा के प्रारंभकर्ता के रूप में न देखकर उन्हें पुरानी परंपरा का चरमोत्कर्ष कहेंगे। क्योंकि अंतिम अर्थ में एक अकादमिक अनुशासन के रूप में इतिहास रानके और उन्नीसवीं सदी के अन्य हर्मनों के काल में स्थापित हुआ।[3]

व्यापक अर्थो में पश्चिमी ऐतिहासिक परंपरा हेरोदोतस (484 ई. पू. - 425 ई. पू.) और थुसीदीदेस (455 ई. पू.-400 ई. पू.) आदि के समय इतिहास निस्संकोच रूप से जीवन, विशेष रूप से राजनीतिक और सैनिक जीवन की तैयारी जैसी थी। सारत: तब इतिहास महान कार्यों या किसी व्यक्ति परिवार या जनसमूह के लिए महत्वपूर्ण घटनाओं की स्मृति और उनके ज्ञान के प्रसार को सुरक्षित रखने की दृष्टि से स्मरणीय घटनाओं का वर्णन मात्र था। उस समय राजनीतिक घटनाएँ, युद्ध और क्रांतियाँ ही प्रमुख होती थीं।[4] उसके उपरान्त इतिहास-लेखन की पाठ्यपुस्तकों ने मध्ययुग के इतिहासकारों को जितने इतिहासबोध का श्रेय दिया है अकसर उनके पास उससे अधिक इतिहास की समझदारी थी, फिर भी उनके लिए पवित्र और सामान्य बातों में अंतर करना कठिन होता था।[5]

पुनर्जागरण काल के लेखक फिर प्राचीन इतिहासकारों का अनुकरण करने लगे। उनकी उपलब्धि भी वह तर्क संगत धर्म निरपेक्ष दृष्टि, जिससे वह उन बातों को देखते थे, जिन्हें पहले दैवी रहस्य का अंग और आलोचनात्मक विद्वता का विकास माना जाता था। इस काल में इतिहास के अध्ययन में मुख्य प्रेरणा बाह्य परिस्थितियों से मिली। भौगोलिक खोजों ने सही ऐतिहासिक और भौगोलिक सूचनाओं की मांग पैदा कर दी। मुद्रण के आविष्कार ने इतिहास-लेखन के आधारभूत तत्व संचार को और महत्व दे दिया।[6]

उपर्युक्त विवरण पश्चिमी देशों के इतिहास-लेखन को स्पष्ट करता है कि वैज्ञानिक इतिहास-लेखन का प्रारंभ सत्रहवीं-अठारहवीं सदी में हुआ है। पश्चिमी इतिहास-लेखन में खामियाँ थी, वह खामियाँ भारतीय इतिहास-लेखन में दर्शाने की कोशिश की गयी। वाल्टेयर ने अपने बातों पर जोर दिया कि इतिहासकारों को भारत और चीन की सभ्यताओं की ओर उचित ध्यान देना चाहिए, धर्म का तुलनात्मक अध्ययन होना चाहिए बिना किसी झुकाव के यहूदी-ईसाई धर्मों में स्वत: कोई प्रमुखता है और यह कि इतिहासकार के लिए आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बातें उतनी ही महत्वपूर्ण है जितने पोपों और राजाओं के कारनामे।[7] भारतीय इतिहास-लेखन के संबंध में पश्चिमी विचारधारा दुराग्रह से प्रेरित रही है। प्राचीन भारतीय इतिहास-लेखन के संबंध में तीन अन्तर्सम्बद्ध मतस्थापित किए गए हैं 1. प्राचीन भारत में 'इतिहास' जैसा कोई ज्ञान अथवा विद्या नहीं थी। 2. प्राचीन भारत में वैज्ञानिक इतिहास-लेखन अथवा इतिहास-लेखन का अभाव था। 3. भारतीयों को इतिहास के प्रति रुचि नहीं थी। इन तीनों में यह तो निश्चित है कि वैज्ञानिक इतिहास-लेखन तो 18-19वीं शताब्दी के आधुनिक पाश्चात्य की देन है।[8]

उपर्युक्त वर्णित आरोप जो भारतीय इतिहास-लेखन के क्षेत्र में लगता रहा है, वह एक सुनियोजित मार्ग हो सकता है भारत बौद्धिक परंपरा को समाप्त करने का। कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में इतिहास की परिभाषा निम्न प्रकार दी है:-

''पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रां चेतीहिहास:।

अर्थात् पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र तथा अर्थशास्त्र का समावेश 'इतिहास' है।

इसके अतिरिक्त एक अन्य संस्कृत श्लोक में इतिहास के संबंध में निम्नलिखित बातें कही गयी है-

''धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितं।
पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते।।[9]

अर्थात् इतिहास धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, उपदेश, पूर्ववृत्त तथा कथा से समन्वित होता है।

रातजरंगिनी में कल्हण ने लिखा है कि-

''श्लाधय: स एव गुणवान्रागद्वेषबहिस्कृता ।
भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती ।।[7]।।

अर्थात् वह गुणवान कवि ही प्रसंशा का पात्र होता है, जिसकी वाणी राग-द्वेष से रहित एवं सच्चे इतिहासको बताने में समर्थ हो।[10]

इसी प्रकार की मान्यताएँ मध्यकालीन भारत में भी दृश्य होते हैं। उदाहरणस्वरूप बरनी, मिजामुद्दीन अहमद, बदाँयूनी, शैख अबुल फज्ल आदि ने मध्यकालीन भारत में इतिहास-लेखन को समृद्ध किया। अबुल-फज्ल ने इतिहास और इतिहास-लेखन संबधी विचार अपने विचार अकबरनामा के दूसरे खंड में विस्तार से रखा।[11]'' अबुल-फज्ल के शब्दों में, इतिहास दुनिया में होने वाले सभी परिवर्तनों को समेटता है।[12] इतिहास आमोद-प्रमोद के मेलों-ठेलों और जश्नों को दर्ज करता है तथा युद्धों और अभियानों को भी। इसमें गंभीर और अगंभीर, दोनों तरह की बातें शामिल होती है (पर अबुल-फज्ल अगंभीर से कोई सरोकार नहीं रखते)।[12]

उपर्युक्त विश्लेशण से पश्चिमी एवं भारतीय इतिहास-लेखन की भी तुलना हो जाती है। भारत में इतिहास-लेखन की लंबी परंपरा रही है, जो आज के वैज्ञानिक इतिहास-लेखन के समान थी। भारत में मध्यकाल के उपरान्त कंपनी एवं ब्रिटिश शासन रहा, जो स्थायित्व के लिए प्रयासरत था। इसलिए उसे भारतीय इतिहास का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक था। पश्चिमी विद्वानों ने सुनियोजित ढंग से भारतीय इतिहास एवं बौद्धिकता को जड़ या खत्म करने के लिए लौकिकेत्तर दर्शन पर विश्वास एवं निरंकुश शासन की आदत का प्रचार करते रहे।[13]

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी शासन के आरंभ में भारतीय सभ्यता की यूरोपीय व्याख्या की दो प्रमुख लडिघ्याँ थीं; जिन्हें प्राच्यवादी और उपयोगितावादी की संज्ञाएँ दी गई। इनका विकास भारत के साथ व्यापार करनेवाली ब्रिटिश कंपनी के लिए काम करनेवाले उन अधिकारियों के द्वारा या किए गए अध्ययनों से हुआ जिनमें से कुछ तो भारत में पदासीन थे लेकिन कुछ स्वदेश से ही काम करते थे। कंपनी के प्रशासनिक प्रकार्यों का तध्काजा था कि उनके अधिकारी भारतीय रीति-रिवाजों से परिचित हो। यह स्थिति खास तौर पर तब उत्पन्न हुई जब भारत के कुछ हिस्से कंपनी के प्रशासन के अधीन हो गये और अंतत: उपनिवेश बन गए। भारत संबंधी ज्ञान को 'साम्राज्य का आवश्यक उपस्कर' माना गया।[14] मिल से लेकर स्मिथ तक का जो लेखन है, सभी दूरग्रहों से परिपूर्ण है, बस समय-समय पर शासन के मजबूती के लिए भारतीय समाज को विभाजित करने हेतु ऐतिहासिक तर्क प्रस्तुत करने का कार्य किया जाता रहा। परन्तु 20वीं शताब्दी के पूर्व एक-दो दशकों से इस प्रकार की मानसिकता को भारतीय इतिहासकारों ने चुनौती देना आरंभ कर दिया।

20वीं शताब्दी के प्रारंभ से अंत तक विश्व इतिहास लेखन के साथ भारतीय इतिहास-लेखन में परिवर्तन दिखता है। इस आलेख में हम भारतीय इतिहास-लेखन के स्वरूप में परिवर्तन पर विचार कर रहे हैं। उन्नीसवीं सदी के इतिहास-लेखन (विशेषकर पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका) में राजनैतिक पहलू, राष्ट्रीय चेतना अध्कि महत्वपूर्ण दिखाई देती है। इसी प्रकार 20वीं सदी के इतिहासकार आर्थिक एवं सामाजिक जनतंत्रा में पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं। दुनिया के मंच पर बहुत सी राष्ट्रीयताएँ दिखाई देने लगी थीं, इतिहास, चीनी इतिहास, पूर्वी एशिया का इतिहास इस तरह राष्ट्रीयता ने इतिहास-लेखन को प्रभावित किया।15

भारतीय इतिहास लेखन के स्वरूप में परिवर्तन 20वीं शताब्दी में दिखता है। इतिहास-लेखन पर स्पष्ट रूप से राजनैतिक, भौगोलिक नृविज्ञान, साहित्य आदि का प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त स्रोतों की उपलब्धता प्रत्यक्षत: प्रभावित करता है। 20वीं सदी के भारत का अवलोकन करने पर निम्नलिखित मुख्य बिन्दु स्पष्ट होता है, जिससे इतिहास-लेखन के स्वरूप में परिवर्तन स्पष्ट होता है:-

1. 20वीं सदी के आधे दशक तक भारत पराधीन रहा।
2. 20वीं सदी के पूर्व एक-दो दशकों से राष्ट्रीय-चेतना का विकास हो रहा था।
3. 19वीं सदी के आरंभिक दशकों से समाज सुधार की प्रक्रिया चल रही थी।
4. औपनिवेशिक इतिहास-लेखन 20वीं सदी के प्रारंभ से ही परिवर्तन की दौर में आ गया। उपयोगितावादी एजेंडे से परिवर्तित होकर 'साम्प्रदायिक एजेंडे' की ओर बढ़ने लगा।
5. औपनिवेशिक इतिहास-लेखन के प्रतिक्रिया स्वरूप राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन का कार्य होने लगा। जिसमें आगे चलकर साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों का विकास क्रिया-प्रतिक्रिया के पफलस्वरूप होने लगा।
6. पुरातात्विक स्रोतों का उत्खनन, सिन्धु घाटी सभ्यता की पहचान से स्वदेशी भावनाएँ जागृत हुई।
7. बंग-भंग आन्दोलन, ने स्वदेश में लेखन को प्रभावित किया, जबकि इंडिया हाउस की स्थापना से भारतीय इतिहास-लेखन विदेशों में प्रभाव डाला।
8. 'अर्थशास्त्र' जैसे पुरातन साहित्यों की खोज, अनुवाद ने भारतीय चिन्तन-परांपरा को उद्वेलित किया एवं अब तक जो पश्चिमी लेखकों के द्वारा जो सत्य पर पर्दा डालने का प्रयास किया गया कि "India has no history" भारत के पास कोई ऐतिहासिक अवधारणाएँ नहीं है। पश्चिमी चिन्तन के विरुद्ध वह सत्य प्रदर्शित हो गया। जिसने भारतीय इतिहास-लेखन के स्वरूप को परिवर्तित कर दिया।
9. सिन्धु सभ्यता की 'नगर-सभ्यता' के पुरातात्विक प्रमाणों ने पश्चिमी श्रेष्ठता को चुनौती प्रदान की।
10. स्वतंत्रता-संघर्ष के काल में भारतीय इतिहास-लेखन का कार्य तो हो रहा था, परन्तु छपाई पर विभिन्न प्रकार के प्रतिबंध भी लगा था, जिसके कारण या तो लेखक को आपत्तिजनक अंश को हटाना होता था, या उसे दूसरे रूप भाषा या दूसरे देशों में प्रकाशित कराना होता था।
11. स्वतंत्रता के समय विभाजन ने भी भारतीय इतिहास-लेखन के स्वरूप में परिवर्तन लाया।
12. संपूर्ण क्रांति के प्रभाव के कारण जन इतिहास-लेखन की परंपरा चरम पर पहुँचने के लिए अग्रसर हुआ।
13. वैश्विकरण एवं उदारीकरण के प्रभाव के कारण उत्तर आधुनिकतावादी इतिहास-लेखन अग्रसर हुआ।
14. "Concept of New History Writing", To make history" जैसी शाखाएँ या स्कूल स्थापित हुआ नये-से-नये इतिहास-लेखन का चलन बढ़ गया। उदाहरणस्वरूप नये इतिहास-लेखन के वादों में लिखने की प्रवृत्ति बढ़ी-राष्ट्रवादी, मार्क्सवादी, उपाश्रयी, लिंग-भेद, नारी, आधुनिकतावादी, उत्तर आधुनिकातावादी आदि आदि।[16]
15. 'Indian history congress' की स्थापना 1935 में हुई और इसे पहचान मिली "New era in evolution of historical writing." से राष्ट्रवादी के साथ-साथ और भी परंपराएँ इतिहास-लेखन को प्रभावित करने लगी। रूस के प्रभाव में मार्क्सवादी इतिहास-लेखन भी महत्वपूर्ण हो गया। 1935 के पूना अधिवेशन में यह शंका प्रस्तुत की गयी कि ब्रिटिश इतिहास-लेखन के साथ-साथ मार्क्सवादी इतिहास -लेखन भारतीय इतिहास-लेखन को प्रभावित कर रहा है। 1948 के Indian history congress के मुम्बई अधिवेशन में मोहम्मद हबीब ने भी अतीत की अध्यात्मिकता को नकार कर श्रमिक वर्ग को इतिहास के विषय में सम्मिलित करने का पूरजोर आग्रह किया।17
16. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इतिहास-लेखन के परिदृश्य में व्यापक बदलाव आया। प्राचीन भारतीय समाज पर लगाए गए आक्षेपों ने भी सामाजिक विद्वेश को इतिहास-लेखन का विषय बनाया। राजवंशों के स्थान पर समाज, जन, स्त्री आदि, आदि को इतिहास लेखन के विषय के रूप में स्थापित करने का चलन हुआ। कहा गया कि यह वर्ग इतिहास में नहीं, वरन् इतिहास -लेखन में भी हाशिए पर रहा। इन्हें लेखन की धुरी पर स्थापित कर इतिहास लिखने की आवश्यकता है। समाज के अध्ययन में सबसे अधिक प्रभावित करने वाली मार्क्सवादी परंपरा थी। जिन राष्ट्रों में मार्क्सवाद ने जन्म लिया था, मार्क्सवादी पनपे थे, वहाँ तो लुप्त प्राय हो गया और भारत में आज भी इतिहास -लेखन पर अधिकार जमाए हुए हैं। यह लेखन भक्ति में सामंतवाद को ढूंढ़ने का प्रबल आग्रह लेकर चल रहा है। आश्चर्यजनक रूप से सिन्धु सभ्यता के मूल केन्द्र को अब पाकिस्तान में ही ढूँढ रहा है।[18]
17. भारतीय इतिहास अनुसंधन परिषद् की स्थापना 1972 ई. में हुआ। इसके स्थापना से इतिहास में शोध की संख्या एवं रूची बढ़ी। लेखन कार्य को बढ़ावा मिला। इस परिषद् में एकाधिकार एवं इसके संसाधनों के दुरुपयोग भी हुआ। एक खास विचारधारा जो मार्क्सवादी विचारधारा है, के इतिहासकारों द्वारा आधिपत्य बनाये रखा गया, जिसे सरकार का भी समर्थन प्राप्त था।
18. अस्सी के दशक से भारतीय इतिहास लेखन में सबसे बड़ा बदलाव यह हुआ है कि इसने इतिहास के कुलीन केन्द्रित नजरिए को छोड़कर आम लोगों, खासकर ग्रामीण लोगों को बदलाव का मुख्य वाहक मानकर इतिहास लेखन शुरू किया है। दूरद्रष्टा इतिहासकार रणजीत गुहा ने इस मामले में एक बड़ी कमजोरी की पहचान क की शुरूआत की है।[19] जैसा कि रणजीत गुहा ने 'सबाल्टर्न स्टडीज' (निम्नवर्गीय प्रसंग) के पहले खंड अपनी भूमिका में लिखा है:

''भारतीय राष्ट्रवाद का इतिहास काफी समय से कुलीनवाद- उपनिवेशवादी कुलीनवाद और बुर्जुआ-राष्ट्रवादी कुलीनवाद के प्रभाव में रहा है। ये दोनों कुलीनवादी नजरिए भारतीय राष्ट्र के निर्माण और राष्ट्रवादी चेतना के विकास के मामले में अपने-अपने पूर्वग्रहों से ग्रसित रहे हैं और दोनों ही दावा करते हैं कि राष्ट्रवादी चेतना का विकास प्रक्रिया मूलत: प्रमुख कुलीनों के चलते ही चली।[20]

19. सत्तर से अस्सी के दशक में जनजाति, किसान और श्रमिक आन्दोलनों पर शोधों का प्रकाशन हुए और निम्न जाति पहलों पर प्रवर्तक और सहानुभूतिपूर्ण काम हुए जो अधिकांशत: मुख्य धारा राष्ट्रवाद से स्वतंत्र थे या उसके विरोधी भी थे।[21]
20. परवर्ती सबलटर्न अध्ययनों और इससे उत्पन्न कुछ आलोचनाओं का अधिकांश आकर्षण उत्तर आधुनिकतावाद या और सटीक रूप में कहें तो उत्तर औपनिवेशिक के सथ इसी स्पष्ट घनिष्ठता से आया है। इसमें शामिल है प्रबोधन विरोधी वक्तृता, 'समुदाय' और 'खंड' के बीच दोलन और बीच-बीच में ज्ञान मामींसात्मक अनिश्चितता की मन:स्थितियों में दिलचस्पी।[22] हाल के वर्षों में उत्तर आधुनिकतावाद पहचान राजनीति के अभिकलनों (प्रबोधन के समय से चली आ रही सार्वभौमिक और बराबर अधिकारों की कथित रूप से समरूपकारी राजनीति के खिलाफ) और भूमंडलीकरण में तेजी के साथ संकरण, पहचानों के घुलने के समारोहों के बीच तेजी से झूलती रहती है।[22] भारत में पर्यावरणीय इतिहास-लेखन रामचन्द्र गुहा द्वारा प्रारंभ किया गया।
21. 20वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में भारतीय इतिहास का पुनर्निर्माण पर कार्य होना प्रारंभ हुआ। जिसपर काफी वाद-विवाद उत्पन्न हुआ है। इस वाद-विवाद से मार्क्सवादी इतिहासकारों द्वारा इतिहास लेखन को किस प्रकार प्रभावित एवं ह्रास किया गया यह अब समाज के सामने आने लगा है।

उपर्युक्त लिखित महत्वपूर्ण बिन्दुओं से स्पष्ट है कि 20वीं शताब्दी में भारतीय इतिहास-लेखन के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन हुआ है। भारतीय इतिहास-लेखन का स्वरूप अध्यात्मवाद से ऐतिहासिक भौतिक, कुलीनवाद से जनवादी लेखन तक परिवर्तित हुआ। इतिहास-लेखन के स्वरूप में परिवर्तन परिष्कृत व्यवस्था एवं समय के अनुकूल रहा है।

संदर्भ-सूची

1. ई. एच. कार- इतिहास क्या है, मैकमिलन, दिल्ली, 2007, पृ. 21
2. प्रभात कु. शुक्ल (सं.) -इतिहास -लेखन की विभिन्न दृष्टियाँ, ग्रन्थ शिल्पी, प्रथम संस्करण, 2012, पृ. 9
3. आर्थर मारविक, इतिहास का स्वरूप, अनुवादक लाल बहादुर वर्मा, ग्रन्थ शिल्पी, 2003, पृ. 26
4. वही, पृ. 26
5. वही, पृ. 27
6. वही, पृ. 27
7. वही, पृ. 29
8. प्रो. विभा उपाध्याय- ज्ञमल दवजमे स्मबजनतम रू छंजपवदंस ैमउपदंतए प्राचीन भारतीय इतिहास -लेखन: दशा एवं दिशा, बी.एच.यू. 23-25 मार्च 2017
9. राजतरंगिनी
10. वही
11. इरफान हबीब (सं.)- मध्यकालीन भारत भाग-4, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 89
12. वही, पृ. 81
13. वही, पृ. 90
14. रामशरण शर्मा- भारतीय इतिहास एवं पुनर्विचार, हिन्दी मा. कार्या. निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
15. रोमिला थापर- पूर्वकालीन भारत, हिन्दी मा. कार्या. निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ. 20
16. प्रो. विभा उपाध्याय, पूर्वोक्त
17. वही
18. वही
19. अमर्त्य सेन- अतीत का वर्तमान (भारतीय इतिहास के अध्ययन का संदर्भ) अनुवादक अरविन्द मोहन, ग्रन्थ शिल्पी, 2003, पृ. 33
20. गुहा और स्पिवाक- सेलेक्टेड सबाल्टर्न स्टडीज, पृ. 37 में पुर्नप्रस्तुत
21. प्रभात कु. शुक्ल- पूर्वोक्त, पृ. 453
22. वही, पृ. 455
23. वही

भारत में विधि के शासन का सिद्धांत - एक विश्लेषण

त्रिकालज्ञ तिवारी

शोधछात्र, विधि विभाग, इलाहबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश

विधि के शासन का सिद्धांत किसी भी लोकतंत्रात्मक व्यवस्था के नींव के पत्थर के सामान होता है क्यों की बिना इसकी मजबूती के लोकतंत्र अपनी पूर्णता को कभी प्राप्त नहीं कर सकता है। भारतीय लोकतंत्र को विकसित करने के लिए विधि के शासन ने एक महान भूमिका निभाई है। हमारे संविधान निर्माताओं ने हमारे संविधान के अंत:करण में विधि के शासन के सिद्धांत को शामिल किया था। सरकार के तीनों अंग नियंत्रण एवं संतुलन की व्यवस्था के माध्यम से विधि के शासन की स्थापना के लिए एक दूसरे के समन्वय से कार्य करते हैं। न्यायपालिका ने विधि के शासन की स्थापना की दिशा में कुशलता से काम किया है और संसद द्वारा निर्धारित और न्यायपालिका द्वारा व्याख्या किए गए कानूनों का पालन करके नागरिकों और सरकार द्वारा समान रूप से समर्थित किया गया है।

उद्देश्य

इस पत्र का उद्देश्य विधि के शासन के सिद्धांत से संबंधित विभिन्न पहलुओं, इसके इतिहास, इसके अर्थ और भारतीय परिपेक्ष्य में इसकी अवधारणा एवं कार्यान्वयन का विश्लेषण करना है।

परिचय और पृष्ठभूमि

शब्द 'विधि का शासन' (Rule of Law) फ्रांसीसी वाक्यांश 'ला प्रिंसिपे डी लीगलाइट' (वैधता का सिद्धांत) से लिया गया है, जो एक शासक की मनमानी के विपरीत विधि और न्याय के सिद्धांतों पर आधारित सरकार को संदर्भित करता है। विधि के शासन की अवधारणा अपने सबसे मौलिक अर्थों में वह नींव है जिस पर आधुनिक लोकतांत्रिक समाज की स्थापना की जाती है और वह स्थापित करना चाहता है। विधि के शासन का सिद्धांत एक ऐसे राज्य में निहित है जो कानूनों द्वारा शासित होता है न कि लोगों के मनमाने कार्यों से। समकालीन राजनीतिक आदर्शों को बनाने वाली वस्तुओं की सूची में विधि का शासन एक महत्वपूर्ण घटक है; इस सूची में अन्य मदों में लोकतंत्र, मानवाधिकार और मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था के सिद्धांत शामिल हैं।[i]

"Rule of Law symbolizes an enlightened civilized society's efforts and quest to combine that degree of liberty without which law is tyranny with that degree of law without which liberty becomes license."[ii]

विधि के शासन के सिद्धांत का उद्भव

विधि के शासन के सिद्धांत की उत्पत्ति 13 वीं शताब्दी ईस्वी मानी जा सकती है जब हेनरी डी ब्रेक्टन, हेनरी III के शासनकाल के एक न्यायाधीश ने कहा कि राजा को भगवान और विधि के अधीन होना चाहिए क्योंकि यह वह विधि है जिसने उसे बनाया है। राजा हालांकि, उन्होंने विधि के शासन वाक्यांश का उपयोग नहीं किया, इसलिए विधि के शासन की अवधारणा की उत्पत्ति का श्रेय एडवर्ड कोक को दिया गया है, जिन्होंने कहा था कि राजा को भगवान और कानून के अधीन होना चाहिए और इस तरह विधि की सर्वोच्चता को साबित किया।

लेकिन विधि के शासन की अवधारणा का विस्तृत विश्लेषण प्रोफेसर ए.वी. डाइसी ने वर्ष 1885 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'संविधान के विधि के अध्ययन का परिचय' में विधि के शासन की अवधारणा को विकसित करने का प्रयास किया। डाइसी के अनुसार भूमि के सामान्य न्यायालयों के समक्ष सामान्य वैधानिक तरीके से स्थापित विधि के एक अलग उल्लंघन को छोड़कर कोई भी व्यक्ति दंडनीय नहीं है या वैधानिक रूप से शरीर या सामान में पीड़ित नहीं हो सकता है।[iii] उन्होंने इस तथ्य की वकालत की कि विधि सर्वोच्च है और अधिक विवेकाधीन शक्तियां अधिकारियों में निहित नहीं होनी चाहिए क्योंकि जहां शक्ति का बहुत अधिक संकेंद्रण है वहां मनमानी की गुंजाइश है यानी शक्ति का दुरुपयोग जिसके कारण स्वतंत्रता का उल्लंघन होता है। डाइसी के विधि के शासन के सिद्धांत में तीन बुनियादी सिद्धांत शामिल हैं:-

1. विधि की सर्वोच्चता- डाइसी का मानना था कि विधि का शासन विधि की पूर्ण सर्वोच्चता के लिए है। कोई भी व्यक्ति, चाहे उसकी स्थिति कुछ भी हो, चाहे वह आम आदमी हो या सरकारी अधिकारी, कानून का पालन करने के लिए बाध्य नहीं है। कानून के उल्लंघन के अलावा किसी को भी दंडित नहीं किया जाना चाहिए और यह कि कथित अपराध सामान्य अदालत के समक्ष उचित प्रक्रिया का पालन करते हुए साबित हो जाता है।

2. विधि के समक्ष समानता- इसका अर्थ है सामान्य अदालतों द्वारा प्रशासित भूमि के कानून के लिए सभी वर्ग के लोगों की समान अधीनता। कोई भी व्यक्ति विधि से ऊपर नहीं है और विधि की नजर में उनके साथ समान व्यवहार किया जाएगा, भले ही उनके जीवन में उनका स्थान कुछ भी हो।
3. वैधानिक भावना की प्रधानता- वैधानिक भावना वाक्यांश न्याय की भावना को दर्शाता है। यह अवधारणा इस सिद्धांत की वकालत करती है कि विधि न्याय के अनुसार होना चाहिए न कि इसके विपरीत। वह देश के लिखित संविधान में व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार, स्वतंत्रता आदि जैसे अधिकार प्रदान करने के खिलाफ थे। संविधान स्रोत नहीं है बल्कि व्यक्तियों के अधिकारों का परिणाम है[iv] इस प्रकार ये अधिकार न्यायिक निर्णयों का परिणाम होना चाहिए।

भारत में विधि के शासन के सिद्धांत का विकास

संवैधानिक प्रावधान

भारत में, विधि के शासन की अवधारणा का पता उपनिषदों से लगाया जा सकता है। इसके निशान महाभारत और रामायण जैसे महाकाव्यों, दस आज्ञाओं, धर्म चक्र और अन्य मौलिक दस्तावेजों में भी पाए जा सकते हैं। आधुनिक समय में ऐसा कोई मसौदा नहीं है जिसमें विधि के शासन पर सीधे चर्चा या उल्लेख किया गया हो। भारत में प्रशासित विधि के शासन की व्याख्या संविधान के कई प्रावधानों के भीतर सन्निहित होने के रूप में की जाती है। हमारे संविधान के निर्माता न केवल डाइसी द्वारा प्रतिपादित विधि के शासन की अभिधारणाओं से परिचित थे, बल्कि ब्रिटिश भारत में इसकी कार्रवाई द्वारा संशोधित भी थे। संविधान उस देश का मानदंड है जहां से अन्य सभी कानून अपना अधिकार प्राप्त करते हैं, इस प्रकार इसके अधीन कार्य करते हैं और भारत के संविधान के तहत परिकल्पित विधि के शासन के अभिधारणाओं को कायम रखते हैं। आगे अनुच्छेद 13(1) में कहा गया है कि विधायिका द्वारा बनाया गया कोई भी कानून संविधान के अनुरूप बनाया जाना चाहिए, ऐसा न करने पर उसे अमान्य घोषित कर दिया जाएगा।[v] इस प्रकार बनाया गया प्रत्येक कानून संवैधानिक प्रावधानों के अनुरूप होना चाहिए। हमारे संविधान की प्रस्तावना में न्याय, स्वतंत्रता और समानता शब्द शामिल है जो एक न्यायसंगत और निष्पक्ष व्यवस्था का एक स्पष्ट संकेतक है, जो कि जीवन में उनके कद के बावजूद जनता के बीच किसी भी मौजूदा असमानता के बिना है। डाइसी द्वारा प्रगणित विधि के समक्ष समानता को भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 में शामिल किया गया है जो विधि के समक्ष समानता और कानूनों के समान संरक्षण के सिद्धांत को निर्धारित करता है।[vi] जीवन का अधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता जो कि बुनियादी मानव अधिकार है, संविधान द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को गारंटी दी गई है।[vii]

न्यायायिक निर्णय

संवैधानिक प्रावधानों के अलावा, न्यायिक निर्णयों ने भारत में विधि के शासन की समझ और विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विधि के शासन को संविधान की मूल संरचना का एक हिस्सा माना जाता है या इसलिए, इसे संसद द्वारा भी निरस्त या नष्ट नहीं किया जा सकता है।[viii] कई न्यायविदों का मत है कि विधि का शासन वह आधार है जिस पर हमारे संविधान की स्थापना हुई है। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक मामले में, न्यायमूर्ति आर.एस. पाठक ने कहा कि:

> *"It must be remembered that our entire constitutional system is founded on the Rule of Law, and in any system so designed it is impossible to conceive of legitimate power which is arbitrary in character and travels beyond the bounds of reason."*[ix]

न्यायिक निर्णयों ने राज्य की ओर से किसी भी मनमानी का मुकाबला करने के लिए एक अनिवार्य भूमिका निभाई है। में ए.के. क्रिपक बनाम यूनियन ऑफ इंडिया[x] सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि हमारा कल्याणकारी राज्य होने के कारण, यह विधि के शासन द्वारा नियंत्रित और नियंत्रित है। मेनका गांधी बनाम भारत संघ[xi] में, अदालत ने सुनिश्चित किया कि सरकार द्वारा मनमाने तरीके से सत्ता का प्रयोग लोगों के अधिकारों का उल्लंघन नहीं करेगा। में ई.पी. रोयप्पा बनाम तमिलनाडु राज्य[xii], भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 की व्याख्या सर्वोच्च न्यायालय ने की थी और इसके दायरे को विस्तृत किया गया था। इस अनुच्छेद को एक नया आयाम दिया गया और इसे मनमानी के खिलाफ गारंटी माना गया। सर्वोच्च न्यायालय ने बाद के एक फैसले में कहा कि संविधान के अनुच्छेद 14 में शामिल विधि का शासन भारतीय संविधान की ष्मूल विशेषताष है और इसलिए इसे संविधान के अनुच्छेद 368 के तहत संविधान के संशोधन द्वारा भी नष्ट नहीं किया जा सकता है।[xiii]

विधि के शासन के तीसरे सिद्धांत के अनुरूप, भारत में एक स्वतंत्र न्यायपालिका है जो स्वतंत्र रूप से अपने कार्यों को करते हुए शासन के अन्य अंगों पर नियंत्रण रखती है। एल चंद्र कुमार बनाम भारत संघ[xiv] में अनुच्छेद 323A और 323B की संवैधानिक वैधता को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि यह संविधान की भावना के विपरीत है क्योंकि यह अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को बाहर करता है। और उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उन मामलों में जिन पर केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा उक्त प्रावधानों के तहत मुकदमा चलाया गया था। अदालत ने न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बुनियादी ढांचे का हिस्सा घोषित किया और आगे अदालत ने संविधान के अनुच्छेद 323A में संशोधन को रद्द कर दिया। बाद के एक मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि सरकार के कृत्यों की वैधता के विवादों का निर्णय उन न्यायाधीशों द्वारा किया जाएगा जो कार्यपालिका से स्वतंत्र हैं[xv] और इस प्रकार, सरकार के अल्ट्रा वायर्स या मनमानी कृत्यों पर नियंत्रण रखा जा सके।

बंदी प्रत्यक्षीकरण मामला[xvi] विधि के शासन के संबंध में सबसे महत्वपूर्ण मामलों में से एक था। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या संविधान में अनुच्छेद 21 [26] के अलावा भारत में विधि के शासन का कोई भंडार है। इस प्रश्न के संबंध में बहुमत का निर्णय नकारात्मक था, हालांकि, न्यायमूर्ति एचआर खन्ना ने एक असहमतिपूर्ण राय दी और कहा कि संविधान में अनुच्छेद 21 के अभाव में भी, राज्य को, विधि के अधिकार के बिना, किसी व्यक्ति को उसके जीवन और स्वतंत्रता से वंचित करने की कोई शक्ति नहीं है।

उपसंहार

इस प्रकार, उपरोक्त जानकारी के आधार पर यह निर्विवाद रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इसकी स्थापना के बाद से, विधि के शासन का सिद्धांत बहुत ही अवधारणा में निहित गतिशीलता के कारण तेज गति से विकसित हुआ है। इस विकास को संसद द्वारा निर्धारित कई कानूनों और कई न्यायिक घोषणाओं के माध्यम से मान्यता दी जा सकती है। हालाँकि, इस अवधारणा के सभी विकास के बावजूद, भारत के संदर्भ में विश्लेषण किए जाने पर विधि का शासन मौजूद है, लेकिन इसे सख्ती से पालन नहीं कहा जा सकता है। अक्सर ऐसे उदाहरण सामने आते हैं जब किसी विशेष विधि का पालन करना सार्वजनिक सुविधा के अधीन हो जाता है और वे ऐसे कानून की सदस्यता तभी लेते हैं जब यह सही और गलत की उनकी धारणा के अनुरूप हो और उन विचारधाराओं के अनुरूप हो जिन्हें वे कायम रखते हैं।

सन्दर्भ

i Jeremy Waldron, *The Concept and the Rule of Law*, Vol. 43,Georgia Law Review, (2008) available at https://digitalcommons.law.uga.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=1028&context=lectures_pre_arch_lectures_sibley.

ii Soli J. Sorabjee's Lecture at Brandeis University, Massachusetts, April 14th 2010, available at http://www.brandeis.edu/programs/southasianstudies/pdfs/rule%20of%20law%20full%20text.pdf

iii A.V. Dicey, Introduction to the study of the law of the constitution, (10th edition, 1985).

iv *ibid*

v Art. 13 (1), the Constitution of India.

vi Art. 14, the Constitution of India.

vii Art. 21, the Constitution of India.

viii केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य, AIR 1973 SC 1461.

ix सुमन गुप्ता एवं अन्य बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य AIR 1983 SC 1235.

x ए.के. क्रिपैक और अन्य। बनाम भारत संघ, AIR 1970 SC 150.

xi AIR 1978 SC 597.

xii AIR 1974 SC 555.

xiii श्रीमती इंदिरा नेहरू गांधी बनाम श्री राज नारायण, AIR 1975 SC 2299.

xiv (1997) 3 SCC 261.

xv भारत संघ बनाम आर गांधी, (2007) 4 SCC 341.

xvi एडीएम जबलपुर बनाम शिवकांत शुक्ला, AIR 1976 SC 1283.

संत कबीर जैसा अक्खड़-फक्कड़-बेबाक कोई और नहीं

डॉ० गिरीश चंद्र जोशी

एसोसिएट प्रोफेसर, श्री अरविद महाविद्यालय (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

किसी बड़े विद्वान का कथन है कि युग की बड़ी विभूतियां काल प्रसूत होती हैं। संत कबीरदास के विषय में तो यह बात स्वत: स्पष्ट हो जाती है। संत कवियों के सिरमौर कबीर दास न सिर्फ हिंदी साहित्याकाश के सूर्य हैं बल्कि संपूर्ण भारतीय साहित्य के इतिहास में उन जैसा अक्खड़-फक्कड़-बेबाक व्यक्तित्व, मस्ती से सराबोर और सब कुछ को झाड़-फटकार कर चल देने वाला कांतिदृष्टा संत ढूंढे नहीं मिलता। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने तो कबीरदास को भारतीय धर्म साधना के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी मानते हुए कहा कि वे उन मार्गद्रष्टाओं में है जिनके बारे में बार-बार लिखा जाएगा, फिर भी लिखने को कुछ रह ही जाएगा।'[1]

नि:सन्देह, कबीरदास की सारगर्भित वाणी का ओज-तेज भारतवासियों के अज्ञान के अंधकार को दूर करने की अचूक क्षमता को अपने में समाहित किए हुए है। और आज के संदर्भ में तो कबीर की प्रासंगिकता बहुत अधिक बढ़ गई है।

'हिंदी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में यह व्यक्तित्व केवल एक ही प्रतिद्वंद्वी जानता है तुलसीदास।'[2] प्रभु भक्ति में समर्पित निष्ठा, समाज सुधार की अथक ललक, सब कुछ को झाड़-फटकार कर चलने का बेजोड़ अंदाज, दार्शनिक की सूक्ष्म-बुद्धि और भावुक कवि की निश्चल आत्माभिव्यंजना जिस परिणाम में कबीरदास में देखने को मिलती है संभवत वैसी लोक प्रचलित कवि तुलसीदास के काव्य में भी एक साथ देखने को नहीं मिलती। कबीर हिंदुओं के लिए वैष्णव भक्त, मुसलमानों के लिए पीर, सिक्खों के लिए भगत, कबीरपंथियों के लिए अवतार, आधुनिक राष्ट्रवादियों के लिए हिंदू मुस्लिम ऐक्य-विधायक, नव वेदांतियों के लिए विश्व धर्म अथवा मानव धर्म प्रवर्तक, प्रगतिशील तत्वों की दृष्टि में समाज सुधारक, जातिगत श्रेष्ठता के विरोधी, सामाजिक दृष्टि से कमजोर वर्ग के पक्षधर, कांतिद्रष्टा और समता, बंधुत्व भावना, न्याय तथा एकता के प्रतिपादक के रूप मे सर्वमान्य व सर्वस्वीकृत हैं।

'कबीर के धार्मिक विश्वास' शीर्षक अपनी पुस्तक में डॉ. धर्मपाल मैनी ने उचित ही लिखा है, कि–'कबीर की भर्त्सना में जितनी प्रचण्डता है उसकी डांट में जितनी तीव्रता है

उसके व्यंग में जितनी मुस्कुराहट है उसके वर्णन में जितनी सजीवता है, उसके कथन में जितनी सादगी है, उसके संदेश में जितनी गहराई है, उसके शब्द में जितनी मर्मस्पर्शिता है, उसके काव्य में जितना रस है, उतनी ही उसकी अभिव्यक्ति में अनुभूति है। यही कारण है कि आडंबर भरे संपूर्ण जगत के विरोधी कबीर का विरोध करके भी कुछ ना कर सके। राज्य शासक उसे मारकर भी मार न सके, समाज उसका बहिष्कार करके भी उसे छोड़ न सका, रामानंद उसे ठोकर लगा कर भी ठुकरा न सके, लेकिन दुख की बात यह है कि हिंदू और मुसलमान उसे अपना कह कर भी अपना न सके। संभवत: प्रत्येक दिव्यात्मा का ऐसा ही अंत होता है और कबीर भी उसके अपवाद ना थे।'[3]

कहा जाता है कि कबीरदास की मृत्यु के अवसर पर (मगहर बस्ती जिले का एक कस्बा) में उनके हिंदू-मुस्लिम अनुयायियों में उनके शव को जलाने अथवा दफनाने के प्रश्नों को लेकर काफी विवाद हो गया था। इस किंवदंती में कितना सत्य है कहा नहीं जा सकता। लेकिन इससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि उनका व्यक्तित्व संकीर्ण धार्मिक सीमाओं से इतना परे था कि वह हिंदू-मुस्लिम दोनों संप्रदायों के श्रद्धा-भाजन बन सके थे।उनके व्यक्तित्व की उदारता का इससे भी प्रमाण मिलता है कि उनके हिंदू-मुस्लिम भक्तों के अतिरिक्त सिक्खों ने भी उनकी रचनाओं को अपने धर्म ग्रंथ में स्थान दिया और उनके विचारों की उदारता को देखकर पाश्चात्य विद्वानों ने घोषित किया कि उनके कतिपय उपदेश बाइबल के निकट हैं। यही नहीं, पश्चिम में कबीर पर जितना कार्य हुआ है संभवत हिंदी के किसी अन्य कवि पर उतने ग्रंथ नहीं लिखे गए।

कबीरदास के जीवन वृत्त और जन्म के बारे में प्रामाणिक बातें उपलब्ध नहीं होती, लेकिन अनेक ऐसे साक्ष्य और जन-श्रुतियां हैं जिनसे कबीर के जीवन संबंधी कुछ संक्षिप्त बातें उपलब्ध होती हैं। कबीर चरित्र बोध के अनुसार उनका जन्म संवत 1455 ज्येष्ठ पूर्णिमा को हुआ, देखिए–

'चौदह सौ पचपन साल गए, चंद्र पार इक ठाठ गए।
जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी तिथि प्रकट भए।
घन गरजें दामिनी दमके बूंदे बरषें झर लाग गए।
लहर तलाब में कमल खिले तहं कबीर भानु प्रकट भए।[4]

कहा जाता है कि कबीर एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे जो लोक-लाज वश इन्हें लहरतारा नामक तालाब के किनारे फेंक आई थी। वहीं से नीरू और नीमा नामक जुलाहा दंपत्ति ने इनको पाया और उन्होंने ही इनका लालन-पालन-पोषण किया। निर्धनता के कारण इनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध न हो सका। इन्होंने स्वयं कहा भी है कि–'मसि कागद छुयौ नहिं, कलम गह्यो नहिं हाथ। चारिउ जुग को महातम, मुखहिं जनाई बात।' इनके गुरु रामानंद थे। कहते हैं कि इनका विवाह लोई नामक स्त्री से हुआ था तथा इनके एक पुत्र कमाल व एक पुत्री कमाली थी। इनकी मृत्यु मगहर में हुई।

कबीर की वाणी का संग्रह श्बीजकश नाम से सुप्रसिद्ध है जिसके तीन भाग हैं–साखी, सबद और रमैनी/रमैणी। कबीरदास ने जिस लोक-अर्जित सत्य को समय-समय पर अपनी वाणी, शिक्षा या उपदेश के रूप में बोला या कहा, उसे ही उनके शिष्यों ने उनकी मृत्यु पश्चातृ, ग्रंथ-रूप में संकलित किया, वहीं बीजक कहलाता है। गुरू वचन ही उपदेश या शिक्षा है अत: पदों को सबद नाम दिया गया। शुद्ध अन्त:करण से प्रसूत वाणी ही साक्षी है, अत: दोहों को साखी नाम दिया गया और चौपाई शैली में कहीं गई बातों को रमैनी/रमैणी नाम दिया गया।

कबीरदास के व्यक्तित्व के बारे में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं–'कबीर नृसिंहावतार की मानव प्रतिमूर्ति थे। नृसिंह की भांति वे नाना असंभव समझी जाने वाली परिस्थितियों के मिलन बिंदु पर अवतीर्ण हुए थे। जहां से एक ओर हिंदुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर से मुसलमानत्त्व, जहां एक ओर ज्ञान निकल जाता है दूसरी और अशिक्षा, जहां पर एक ओर योगमार्ग निकल जाता है दूसरी ओर भक्तिमार्ग, जहां से एक तरफ निर्गुण भावना निकल जाती है दूसरी ओर सगुण साधना,उसी प्रशस्त चौराहे पर वह खड़े थे।[4] इसी अद्‌भुत व्यक्तित्व ने उनकी दार्शनिक विचारधारा का निर्माण किया था। चूंकि कबीर का प्रादुर्भाव इस प्रकार की युगसंधि में हुआ था, जबकि धर्म साधनाओं तथा मानवीय मनोभावनाओं में विविधता-सी दिख पड़ती है और हिंदुओं-मुसलमानों में पारस्परिक

सौहार्द्रता को बढ़ाना अत्यंत आवश्यक था। अत: हिंदुओं व मुसलमानों दोनों की कटु आलोचननाएं उन्होंने की हैं और दोनों ही सम्प्रदाय एवं धर्मों की त्रुटियों-खामियों पर प्रकाश डाला है। 'उनका भीतर-बाहर एक था। उनके साथ वही चल सकता था जिसने माया-मोह के सारे बंधनों को काट कर फेंक दिया हो, जिसने वैभव-विलास की वासना को जलाकर राख कर दिया हो। वे जिस सहज जीवन के आकांक्षी थे, वह कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता था।'[5] अत::कबीर के युग की स्थितियों-परिस्थितियों ने उनके व्यक्तित्व को परखा व निखार प्रदान किया। देश की तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों में उथल-पुथल मची हुई थी। 1450 ईसवी से 1526 ईसवी तक दिल्ली पर लोदी वंश का शासन रहा। लोदी वंश के द्वितीय शासक सिकंदर लोदी से कबीर का संपर्क हुआ था, ऐसा कई लोग स्वीकार करते हैं। धर्मालोचक और समाज सुधारक के रूप में, कबीर का योगदान सर्वोपरि है। उन्होंने अपने सहज विवेक की कसौटी पर धर्म का, समाज का एवं जीवन के अनेक अगूढ़ तत्वों का दर्शन प्राप्त कर लिया था।

कबीरदास अहिंसा के कट्टर पक्षपाती थे, इसलिए उन्होंने इस्लाम-धर्म की हिंसा तथा जीव-वध संबंधी विचारधारा की कड़ी आलोचना की है और यही कहा है कि–

'बकरी मुरगा किन कुरमाया, जिसके हुकुम तुम छुरी चलाया दरद न जाने पीर कहावे, बैता पढ़ि-पढ़ि जग समझावे।'

और,

'दिन भर रोजा रहत है रात हनत हो गाय
एक तो खून वह बंदगी क्यों कर खुशी खुदाय।'

तो दूसरी ओर हिंदुओं पर कड़ी टीका करते हुए यही मत व्यक्त करते हैं कि–

'पहन पूजै हरि मिले तो मैं पूजूं पहार,
ताते यह चाकी भली पीसि खाय संसार।'

और यह भी–

'तीरथ गए ते बहि मुये, जुड़े पानी न्हाय।
कह कबीर संतों सुनो, राक्षस ह्वै पछिताए।'

कबीर के विचारानुसार ब्रह्म जीवात्मा में निवास करता है

और वही इस सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माता और विनाशकर्ता है–

'पाणी ही ते हिम भया, हिम ह्वै गया विलाय
कबीरा जो था सोई भया, अब कछु कहा न जाय।'

कबीरदास सामान्यत: निर्गुण राम के साधक व उपासक हैं। निर्गुण से कबीर का अभिप्राय गुणहीन नहीं, बल्कि गुणों की सीमा से परे होना है। यह सच है कि उन्होंने प्रभु अथवा ब्रह्म को अनेक अवतारी नामों से पुकारा है, यथा–राम, हरि, गोविंद, मुकुंदादि। और और इस्लामी स्रोत से भी अनेक नाम लिए हैं, यथा–खुदा, अल्लाह, करीम इत्यादि। लेकिन उनके राम निर्गुण ब्रह्म ही हैं राजा दशरथ के घर जन्मे राम नहीं। उनके राम या ब्रह्म रुपाकार विहीन हैं, पुष्प गन्ध से भी सुक्ष्म–

'जाके मुंह माथा नहीं, नाही रुप कुरूप
पुहूप बास तें पातरा, ऐसा तत्त अनूप।'

कबीर के लिए ब्रह्म 'स्वामी' है और वह स्वयं 'राम की बहुरिया' हैं। कबीर ब्रह्म को एकमात्र सत्य मानते हैं। और कनक-कुंडल न्याय का दृष्टांत देते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार सोने से कुंडल बनता है और उस कुंडल के नष्ट हो जाने पर सोना बना रहता है उसी प्रकार नाम रूपात्मक हृदय-जगत की उत्पत्ति ब्रह्म से होती है और नष्ट होने पर वह ब्रह्म में समा जाता है।

कबीरदास जीवात्मा को परमात्मा का अंश कहते हैं। उनकी मान्यता है कि दोनों में अंश-अंशी की भावना है। है तो आत्मा अपने स्वरुप में जा मिलती है–

'जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहिर भीतर पानी
फूटा कुंभ जल जलहिं समाना, यह तत कहौ गियानी।'

ऐसी स्थिति में जीव अथवा आत्मा प्रेम-विभोर हो कण-कण में अपने प्रिय अथवा परमात्मा को देखती है और स्वयं भी परमात्मालीन हो जाती है–

'लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।'

'तू कहता कागज की लेखी, मैं कहता आंखन की देखी', 'ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय', 'पाहन पूजे हरि मिले तो मैं पूजूं पहाड़', 'दिन भर रोजा रहत है रात हनत हो गाय' 'लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल', 'कबीर इस संसार का झूठा माया मोह' जैसी ढेरों मनोरम-मारक-मर्मस्पर्शी व लोकप्रिय-जनप्रिय उक्तियों का निर्माण इसी आत्मज्ञान के आधार पर करके कबीर ने संपूर्ण समाज को जाति, धर्म और वर्ग की श्रेष्ठता के स्थान पर करुणा, त्याग, क्षमा, समानता, अहिंसा और दया के मानवीय मूल्यों के आधार पर सोचने व चलने को प्रेरित व तैयार किया था। 'मध्यकालीन संतों में से क्रांतिद्रष्टा कबीर ने ऐसा अनुभूत सूत्र जन-समाज को दिया, जिसे संभवत जनता तो न अपना सकी, लेकिन जिस किसी भी बिरले ने अपनाया, वही महान हो गया। बादशाह के मोदीखाने में आटा तोलने वाले ने 'मनि जीते जगु जीति' रूप में इसे अपनाया और वह गुरु नानक बन गया।'[6]

संत कबीरदास द्वारा की गई सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक पाखंडों-आड़म्बरों की आलोचना हिंदी साहित्य में ही नहीं, अपितु संपूर्ण भारतीय साहित्य में उल्लेखनीय एवं बेजोड़ है और इस रूप में वह एक अनुपम निधि है। बेहद सीधे, सरल, स्पष्ट, बैलोस शब्दों में कबीर की वाणी में सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में फैले मिथ्याचारों, अंधविश्वासों और कुरीतियों, विसंगतियों, वहमों पर इतनी गहरी, करारी व मारक चोट की है कि नि:सन्देह कहा सकता हैं कि 'कबीरदास एक जबरदस्त क्रांतिकारी पुरुष थे। इनके कथन की ज्योति जो इतने क्षेत्रों को उद्घाटित कर सकी है सो मामूली शक्तिमत्ता की परिचायक नहीं है।'[7] ऐसा अक्खड़-फक्कड़-बेबाक क्रांतिदर्शी कोई दूसरा कवि 'ना भूतो ना भविष्यति'! डॉ. श्यामसुंदरदास तो स्पष्ट रूप से कहते हैं कि–'प्रभाव से यदि श्रेष्ठता माने तो तुलसी के बाद कबीर का ही नाम आता है, क्योंकि तुलसी को छोड़कर हिंदीभाषी जनता पर कबीर के समान या उनसे अधिक प्रभाव किसी कवि का नहीं पड़ा।'[8]

यहां ओशो रजनीश की निम्नलिखित पंक्तियां कबीर के बारे में अक्षरत: सच प्रतीत होती हैं कि–एक एक शब्द बहुमूल्य है। उपनिषद् फीके पड़ जाते हैं कबीर के सामने। वेद देयनीय मालूम पड़ने लगता है। कबीर बहुत अनूठे हैं। वे बेपढ़े-लिखे हैं, लेकिन जीवन के अनुभव से उन्होंने कुछ सार पा लिया है। और चूंकि वे पंडित नहीं है, इसलिए सार की बात संक्षेप में कह दी है। उनमें विस्तार नहीं है। बीज की तरह उनके वचन है–बीज मंत्र की भांति।'

डॉ. धर्मपाल मैनी ने कबीर के बारे में अक्षरत: सही व सच लिखा है कि :''सत्य के प्रति आग्रह और असत्य पर आघात, भक्त से आत्मीयता और मायावी से अलगाव, कथनी में शक्ति और करनी में विश्वास, निवृत्ति-परक होते हुए भी प्रवृत्ति-परक जीवन, संत होते हुए भी पूर्ण गृहस्थी, संघर्षमय जीवन बिताते हुए भी, स्वत: सरल, उपदेश देने वाले होकर भी स्वत: आचरणशील, सामान्य होकर भी असामान्य एवं अद्वितीय स्वभाव, कृतित्व एवं व्यक्तित्व रखने वाले युग-द्रष्टा कबीर युग नायक भी थे।''[9]

कहना न होगा कि कबीर ने समाज, धर्म, दर्शन, अध्यात्म सभी क्षेत्रों में अपनी ओजस्वी, सारगर्भित तथा अचूक व्यंग्यात्मक वाणी से क्रांति की जो अमृत-धारा प्रवाहित की है वह गंगा सम पुनीत, सनातन, शाश्वत और अनुपम है। डॉ. श्यामसुंदर दास ने उचित ही लिखा है–''निर्गुण संत कवियों में प्रचार की दृष्टि से तथा कविता की दृष्टि से भी कबीर का स्थान सर्वोपरि है। उनके पीछे प्राय: सब संतो ने अधिकतर उनका ही अनुसरण किया है।'' अस्तु, उनकी मनोरम-मनभावन वाणी की कतिपय लोकप्रिय पंक्तियों के साथ मैं अपने इस आलेख को समाप्त कर रहा हूं–इस आशा संग कि हम-सब उन्हें अपने जीवन पर चरितार्थ करने की भरसक चेष्टा करेंगे:–

– बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिलिया कोय जो दिल खोजा आपना मुझसे बुरा न कोई।
– मेरा मुझमें कुछ नहीं जो कुछ है सो तेरा तेरा तुझको सौंप दी क्या लगी है मेरा।
– कबीर सो धन संचिए जो आगे की होई, सीस चढ़ाए पोटली ले जात न देखा कोई।
– कागज केरी नांव री, पानी केरी गंग, कहे कबीर कैसे तिरूं पंच कुसंगी संग।
– तिनका कबहुं न निंदिए दिए जो पावन तर होय, कबहुं उडि आंखन परै पीर घनैरी होय।
– पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ पंडित भया न कोय, ढाई आखर प्रेम का पढ़े सौ पंडित होय।

संदर्भ-सूची:

1. कबीर के धार्मिक विश्वास, धर्मपाल मैनी, प्रकाशक डॉ. धर्मपाल मैनी, सेक्टर 14, चण्डीगढ़, 1964, 'दो शब्द' में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
2. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, तीसरा संस्करण, 1976, पृ.222
3. कबीर के धार्मिक विश्वास, धर्मपाल मैनी, पृ.127
4. कबीर ग्रंथावली, संपादक डॉ. श्यामसुंदर दास, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, संस्करण 2013, पृ.21
5. कबीर मीमांसा, डॉ. रामचन्द्र तिवारी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1999, पृ.177
6. कबीर के धार्मिक विश्वास, धर्मपाल मैनी, पृ.110
7. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.226
8. कबीर-ग्रंथावली, संपादक डॉ. श्यामसुंदर दास, पृ.58
9. कबीर के धार्मिक विश्वास, धर्मपाल मैनी, पृ.13

नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल का नाट्य-कर्म

डॉ० राजेश कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, रामलाल आनंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ० गिरीश चन्द्र जोशी

एसोसिएट प्रोफेसर, श्री अरविन्द महाविद्यालय (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

आजादी प्राप्ति के बाद के हिंदी नाट्य-साहित्य को जिन नाटककारों ने अपनी सार्थक रचनाशीलता के माध्यम से एक व्यापक फलक प्रदान किया, उनमें डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का महत्वपूर्ण स्थान है। हिंदी नाटक और रंगमंच के प्रति पूर्णत: समर्पित डॉ. लाल बहुमुखी प्रतिभा संपन्न रचनाधर्मी साहित्यकार थे। नाटककार, कहानीकार, उपन्यासकार, जीवनीकार, समालोचक और एक स्वतंत्र चिंतक के रूप में डॉ. लाल ने हिंदी साहित्य को अपनी बहुमुखी प्रतिभा का बखूबी परिचय दिया है। लेकिन रचनाधर्मी डॉ. लाल के इन सभी रूपों में सबसे सशक्त और प्रखर बनकर उभरता है उनका नाटककार का रूप। वह केवल एक सफल नाटककार ही नहीं थे, अपितु एक कुशल अभिनेता, रंग-निर्देशक, रंग-शिल्पी और नाट्य एवं रंग-समीक्षक भी थे।

हिंदी नाटक और रंगमंच को एक नई दिशा व दृष्टि प्रदान करने वाले आजादी प्राप्ति के बाद के हिंदी नाटककारों में मोहन राकेश के बाद लक्ष्मीनारायण लाल का नाम उभरकर सामने आता है।भारतेंदु हरिश्चंद्र की सोई हुई रंगमंच-विहीन नाट्य-परंपरा को नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल ने एक नवीन व महत्वपूर्ण मोड़ प्रदान किया और इस प्रकार वे हिंदी रंगमंच-आंदोलन के एक महत्वपूर्ण नेता बने। वस्तुत: डॉ. लाल नाट्य-सृजना के क्षेत्र में ऐसे समय में आए जबकि हिंदी के पास-'रंगमंच की दृष्टि से बहुत नाटक नहीं थे और उसे सार्थक एवं आधुनिक चेतना से जुड़े नाटकों की तलाश थी, साथ ही नवीन रंग-शिल्प की खोज थी, उस समय इन्होंने निरंतर तीव्र गति से नाट्य रचना करके नाटक और रंगमंच को एक-दूसरे का पर्याय बनाया और हिंदी नाटक के लिए नवीन राहों की संभावनाओं का अन्वेषण किया।'[1]

कहना न होगा कि उन्होंने निरंतर श्रेष्ठ नाटकों के सर्जन द्वारा न केवल हिंदी नाटकों के कोष को ही समृद्ध किया अपितु गुणात्मक दृष्टि से भी उसके भंडार में श्री वृद्धि की।

'नाटक लिखा नहीं जाता, रचा जाता है' की स्थापना करने वाले डॉ. लाल का नाटक-लेखन नवीन भाव-बोध का ध्योतक है। उनकी 'सबसे बड़ी विशेषता है कि वे अपने स्वस्थ संस्कारों को अपनी नाट्य-कृतियों में फौवारे की तरह बरसाते हैं।'[2] उनके प्राय: प्रत्येक नाटक में कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से एक नवीन मार्ग खोजने का प्रयत्न दिखलाई पड़ता है। इसके साथ ही, भारतीय एवं विदेशी नाटकों का सुभग समन्वय इनके नाटकों में हुआ है। यथार्थवादी नाटकों से अपना नाट्य-जीवन प्रारंभ करते हुए प्रतीकात्मक, मिथकीय, लोकनाट्य, लीलानाट्य से होते हुए उनकी यह नाट्य-यात्रा भारतीय रंगभूमि के उन नाटकों पर आकर रुकी, जिनमें यथार्थ में कल्पना हो, दृश्यत्व से उभरता काव्य हो, कथाकार, सूत्रधार, नट-नटी हो, गीत-संगीत-नृत्य हो। 'अंधा कुआं' (1955) से अपनी नाट्य-यात्रा प्रारंभ करने वाले डॉ. लाल ने अपनी तीन दशक की नाट्य-यात्रा के दौरान–कथा विसर्जन (1987)–तक हिंदी नाट्य-जगत को लगभग 30 मौलिक नाटक प्रदान किए, जिनमें अंधा कुआं, मादा कैक्टस, दर्पण, सूर्यमुख, मिस्टर अभिमन्यु, कर्फ्यू, अब्दुल्ला दीवाना, व्यक्तिगत, एक सत्य हरिशचंद्र जैसी कुछ कथ्य, शैली, शिल्प व रंगमंच के आधार पर श्रेष्ठ कालजयी कृतियां हैं जिनसे कोई भी नाटक और रंगमंच गौरवान्वित हो सकता है।

समाजचेता नाटककार डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने समाज की विसंगतियों, विद्रूपताओं एवं ज्वलंत प्रश्नों को नाटकों का कथ्य बनाते हुए आज के जीवन के विविध की झांकियां अपने सभी नाटकों में प्रस्तुत की हैं। स्वयं नाटककार के शब्दों में–'मैं ऐसे नाटक लिखना चाहता हूं जिनमें कोई बदसूरती बेनकाब कर दी गई हो, कोई घिनौना नासूर घाव साफ करके दिखा दिया गया हो, स्वप्न में रोते हुए इंसान के आंसुओं को मूर्त कर दिया हो।'[3] यही कारण है कि इनके 'अंधा कुआं'-1955-से लेकर 'कथा विसर्जन'-1987-तक के प्राय: सभी नाटकों में युगीन संदर्भों को सर्वथा नवीन आयामों और अछूते विषयों द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। नाटकों का संपूर्ण क्रिया-व्यापार किसी व्यक्ति या समूह को आधार बनाकर उस व्यक्ति या समूह के क्रमश: विकसित चरित्र का अंकन करता है और इस प्रकार सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व धार्मिक चेतना को बड़ी तीव्रता से उभारकर नाटककार ने समसामयिक प्रश्नों व समस्याओं को बहुत ही तीखेपन पर कलात्मक संयम और तार्किक आधार पर प्रस्तुत करने की सफल कोशिश की है। अपने नाटकों के कथानक में भावना, अनुभूति एवं विचारों को प्रधानता देखकर नाटककार लाल ने घटनाओं और परिस्थितियों को गौण बना दिया है। इस दृष्टि से अंधा कुआं, मादा कैक्टस, सूर्यमुख, मिस्टर भिमन्यु, कर्फ्यू, एक सत्य हरिश्चंद्र आदि नाटक उल्लेखनीय है।

चरित्र सृष्टि में नाटककार को पर्याप्त सफलता मिली है और इस दृष्टि से नाटककार लाल ने स्मरणीय चरित्रों की सृष्टि की है। सभी पात्र रोचक एवं सजीव बन पड़े हैं तथा नाटकीय दृष्टि से सफल हैं। नाटकों के पात्र जीते-जागते इंसान हैं जिन्हें समाज के विभिन्न क्षेत्रों से लिया गया है। पुराण काल के आदिम प्रवृत्तियों वाले मिथकीय पात्रों के साथ-साथ अत्याधुनिक जटिल व्यक्ति चरित्रों का बहुरंगी व बहुस्तरीय विस्तार इनके नाटकों में दिखलाई देता है। प्राय: चरित्र ही घटनाओं का निर्माण करते हैं। चरित्रों में कोई आंतरिक या बाहरी संगति देखने को नहीं मिलती। नाटककार ने चरित्रों के मनोवैज्ञानिक विकास पर भी विशेष ध्यान नहीं दिया है।फिर भी चरित्र विश्वसनीय, स्वाभाविक तथा जीवंत बन पड़े हैं। सूका, सुधीर, कुंतल, दर्पण, प्रद्युम्न, वेनुरती, राजन और हैरूप के चरित्र डॉ. लाल के नाटकों में ही नहीं, हिंदी नाटकों में भी अपना अन्यत्तम स्थान रखते हैं।

संवाद कथानक को गति प्रदान करने वाले, चरित्रों के अंतर्मन का उद्‌घाटन करने वाले और देशकाल व वातावरण को सजीवता से प्रस्तुत करने वाले हैं। नाटककार के नाटकों के संवाद तेजतर्रार, पैने और स्पष्ट होने के कारण थप्पड़ की तरह सीधे हमारे मर्मस्थल पर प्रहार करते हैं। संवादों के माध्यम से नाटककार जीवन और जगत की व्याख्या करता दिखाई देता है। यद्यपि संवादों की संरचना में आंतरिक बौद्धिकता के दर्शन होते हैं किंतु मानवीय आंतरिक भावना का समन्वय करके नाटककार ने उन्हें प्रभावशाली बना दिया है। संवाद प्रयोग की अनेक शास्त्रीय एवं लोकजनीन शैलियों का प्रयोग करते हुए, नाटककार लाल संवाद-शिल्प के प्रति विशेष जागरूक दिखाई पड़ते हैं। यही कारण है कि वे संवाद-शिल्प के स्तर पर कई प्रयोग करते मिलते हैं।

भाषिक-संरचना की दृष्टि से उनके सभी नाटकों की भाषा आम बोलचाल की होते हुए भी बाजारू या साहित्यिक नहीं है। उनकी नाट्य-भाषा नाटकीय-मनोरंजक व सरल होने के साथ-साथ, सीधी मार करने वाली तथा अर्थों को घावों की तरह उघाड़ने वाली है जिसमें लोक-भाषा, लोक-बोलियों, मुहावरों और लोकोक्तियों का खुलकर प्रयोग देखने को मिलता है। यथार्थवादी भाषिक-चेतना को लेकर शुरुआत करने वाले नाटककार लाल लोक-तत्व, मिथक और एब्सर्ड तक कई भाषिक स्तरों का सफल प्रयोग अपने नाटकों में करते हैं। नाटकीयता की दृष्टि से भी उनकी भाषा पर्याप्त रूप से शक्तिशाली बन पड़ी है। गोविंद चातक में लिखा है कि-'नाट्य भाषा को साहित्य या पुस्तकों की सड़ी-गली भाषा से उबारने में उन्होंने एक लंबी यात्रा तय की है।'[4]

डॉ. लाल की अन्वेषणी नाट्य-प्रतिभा ने शैली व शिल्प-प्रयोग की दृष्टि से भी अपने नाटकों में नवीन प्रयोग किए हैं।

प्रतीक, मिथक, लोककथा, एब्सर्ड यानी विसंगत नाट्य, यथार्थवादी आदि शैली व शिल्प के प्रयोग द्वारा अपने नाटकों को नया स्वरूप देने का उन्होंने प्रयास किया। पाश्चात्य नाट्य-शिल्प के कई उपादेय तत्वों को भारतीय नाट्य-शिल्प में ढ़ालने के प्रयोग भी डॉ. लाल ने किए।

नाटककार लाल के प्राय: सभी नाटक रंगमंचीयता, अभिनेयता या प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से एकदम सफल हैं। रंगमंच से अपने लगाव तथा रंगकार्य के अनेक पक्षों से संबद्ध रहने के कारण डॉ. लाल ने नाटकों को रंगमंचीयता प्रदान करने की भरपूर कोशिश की। अपने नाटकों में रंगमंच का स्वरूप खोजने के साथ-साथ वे रंगमंच को नया स्वरूप, नई अवधारणा देने का भी प्रयास करते दिखाई देते हैं। आधुनिक रंग-शिल्प के तत्वों, यथा-ध्वनि, प्रकाश, पार्श्व-संगीत आदि का भी प्रयोग करते हुए, उन्होंने मंच-सज्जा की दृष्टि से अपने नाटकों में विविधता प्रस्तुत की है। रंगमंच को एक भाव, एक अनुभूति मानने वाले डॉ. लाल के अनेक नाटकों का, अनेक शहरों में कई बार सफल मंचन उनके नाटकों की अभिनेयता, रंगमंचीयता को स्वत: सिद्ध करता है।

चूंकि डॉ. लाल के प्राय: सभी नाटक सामान्य मानव के सामान्य जीवन से उद्‌भूत हैं, इसीलिए उसी के (मानव-मात्र के) जीवन-दर्शन को, मानस-चित्र को अपनी पूर्ण यथार्थता में अभिव्यक्ति प्रदान करना ही उनके नाटकों का उद्देश्य रहा है। नाटक को मानव के दैनिक जीवन और व्यवस्था से जोड़ते हुए डॉ. लाल ने उसे गंभीर विषयों के प्रतिपादन का माध्यम बनाकर, मात्र रस-बोध के धरातल से बहुत ऊंचे सिहासन पर प्रतिष्ठित किया। यही कारण है कि उनके नाटक मनुष्य के विभिन्न मुखोटों को उतारकर पाठक व दर्शक को अपने भीतर झांकने, कुछ सोचने को विवश करते हैं। वास्तव में, किसी भी नाटक की सार्थकता दो-चार बुद्धिजीवियों द्वारा उसे देख-पढ़कर सराह देने में न होकर, आम आदमी के दैनंदिन जीवन और व्यवस्था की विभिन्न विसंगतियों, समस्याओं, कठिनाइयों, संघर्षों और विद्रूपताओं को पूरी निर्ममता, निर्भीकता व बेबाकी से अनावृत्त करने में ही है।

डॉ. दशरथ ओझा ने लिखा है कि-'इनकी नाट्य-कृतियों में इतना वैविध्य है, प्रयोगों की इतनी बहुलता है, विचारों का इतना विस्तार है, प्रश्नों की इतनी भरमार है कि जो भी इनके नाटक पढ़ता अथवा रंगमंच पर देखता है वह विचारों, समस्याओं, प्रश्नों की एक लंबी कतार साथ देकर घर लौटता है।'[5] वास्तव में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में कथ्य एवं शिल्प के स्तर पर एक नवीनता, तरोताजगी, ऊर्वरता एवं गतिशीलता के दर्शन होते हैं।'[5]

नाट्य-विकास के विभिन्न स्तर:

रचनाधर्मी नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल का नाट्य-सृजन सन् 1955 से प्रारंभ होकर लगभग तीन दशक तक (सन् 1987 तक) निरंतर गतिशील रहा। निरंतर श्रेष्ठ नाटकों का सृजन करके, हिंदी नाटकों के कोश को समृद्ध करने वाले नाटककारों की सूची में उनका नाम अग्रगण्य है। डॉ. लाल का नाटककार व्यक्तित्व उनके नाटकों में समय के साथ-साथ क्रमश: विकसित होता चला गया है। उनकी नाट्य-यात्रा को तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है:

प्रथम चरण: सन् 1955 से 1962 तक

अंधा कुआं (1955), मादा कैक्टस (1959), सुन्दर रस (1959), सूखा सरोवर (1960), तीन आंखों वाली मछली (1960), नाटक तोता मैना (1960), दर्पण (1961), रातरानी (1962), रक्त कमल (1962)

द्वितीय चरण:-सन् 1963 से 1975 तक:

सूर्यमुख (1968), कलंकी (1969) मिस्टर अभिमन्यु (1971), कर्फ्यू (1972), अब्दुल्ला दीवाना (1973), गुरु (1974), नरसिंह कथा (1975), व्यक्तिगत (1975)

तृतीय चरणः- सन् 1976 से 1987 तक

एक सत्य हरिशचंद्र (1976), यक्ष प्रश्न (1976), संस्कार ध्वज (1976), चतुर्भुज राक्षस (1976), सबरंग मोहभंग (1977), गंगा माटी (1977), सगुन पंछी (1977), पंचपुरूष (1978), राम की लड़ाई (1979), कजरी वन (1980), लंका कांड (1983), अरुण कमल एक (1984) मन्नू (1984), बलराम की तीर्थ यात्रा (1984) कथा विसर्जन (1987)

एक आलोचक के शब्दों में-'लाल के सभी नाटक हमारी त्रासद यात्राओं, बीहड़ यंत्रणापूर्ण जंगलों के परिक्रमणों, मोहभंग से मिले दुखान्तों में संकल्पित हस्तक्षेप करते हैं। वे अपने संपूर्ण मिजाज, स्वभाव, आचरण से हमारी खोज, पहचान और हमारी अस्मिता के रक्षा-व्रतों का एक ज्वलन्त आलेख और तहरीर हैं जो सनदयाफ्ता हैं। ये किन्हीं पूर्व तैशुदा मुद्दों से नहीं जुड़े हैं। इनका लगाव तो हमारे अनिर्णीत, निर्विकल्प, संख्यात्मक और धुरीहीन आचरण से है ...ये हमारे सामान्यजन की दुर्नियतियों, विसंगतियों के ऐसे पक्षधर हैं जिनके पास हमारा वकालतनामा सुरक्षित है। और जो हमारे मुख्तार की हैसियत से हमारी पैरवी करते प्रतीत होते हैं।'[6]

संपूर्ण रूप में, नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल के नाट्य-कर्म का अनुशीलन करने के पश्चात कहा जा सकता है कि उनके नाटकों में कथ्य एवं शिल्प के स्तर पर अत्यधिक वैविध्य दिखाई पड़ता है। यथार्थवादी नाटकों से शुरू हुई उनकी नाट्य-यात्रा प्रतीकात्मक, मिथकीय, लोकनाट्य, लीला नाटकों का संस्पर्श करती हुई, बड़ी कुशलता के साथ विविध प्रयोगों से परिपूर्ण होकर भारतीय नाट्य सौंदर्य के आधारभूत तत्व रंगभूमि पर आकर विराम पाती दिखाई देती है।

संदर्भ-सूचीः

1. समकालीन हिंदी नाटककार, गिरीश रस्तोगी, इंद्रप्रस्थ प्रका., प्रथम संस्करण, 1982, पृ.49
2. आज का हिंदी नाटक : प्रगति और प्रभाव, डॉ. दशरथ ओझा, राजपाल एंड संस, प्रथम संस्करण, 1984, पृ.84
3. पर्वत के पीछे, डॉ. लक्ष्मी लाल, सैंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1952, भूमिका से
4. कृतिकार लक्ष्मीनारायण लाल, डॉ. रघुवंश के अन्तर्गत गोविन्द चातक का लेख, लिपि प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1979, पृ.117
5. आज का हिंदी नाटकः प्रगति और प्रभाव, डॉ. दशरथ ओझा, पृ.76
6. हिन्दी नाटक और लक्ष्मीनारायण लाल की रंगयात्रा, डॉ. चंद्रशेखर, प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1979, पृ.148.

अमृता शेरगिलः परिचय एवं कला परिचय

ममता सोनी

शोद्धार्थी, ललित कला विभाग, ओम स्टर्लिंग ग्लोबल यूनिवर्सिटी, हिसार, हरियाणा

प्रो० डॉ० बीना दीक्षित

ललित कला विभाग, ओम स्टर्लिंग ग्लोबल यूनिवर्सिटी, हिसार, हरियाणा

परिचय

अमृता शेरगिल (30 जनवरी 1913-5 दिसंबर 1941) भारत के प्रसिद्ध चित्रकारों में से एक थीं। उनका जन्म बुडापेस्ट (हंगरी) में हुआ था। कला, संगीत व अभिनय बचपन से ही उनके साथी बन गए। 20वीं सदी की इस प्रतिभावान कलाकार को भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण ने 1976 और 1979 में भारत के नौ सर्वश्रेष्ठ कलाकारों में शामिल किया है। सिख पिता उमराव सिंह शेरगिल (संस्कृत-फारसी के विद्वान व नौकरशाह) और हंगरी मूल की यहूदी ओपेरा गायिका मां मेरी एंटोनी गोट्समन की यह संतान 8 वर्ष की आयु में पियानो-वायलिन बजाने के साथ-साथ कैनवस पर भी हाथ आजमाने लगी थी।

1921 में अमृता का परिवार समर हिल शिमला में आ बसा। बाद में अमृता की मां उन्हें लेकर इटली चली गई व फ्लोरेंस के सांता अनुंजियाता[1], आर्ट स्कूल में उनका दाखिला करा दिया। पहले उन्होंने ग्रैंड चाऊमीअर में पीअरे वेलण्ट के और इकोल डेस बीउक्स-आर्टस में ल्यूसियन सायमन के मार्गदर्शन में अभ्यास किया। सन 1934 के अंत में वह भारत लौटी। बाईस साल से भी कम उम्र में वह तकनीकी तौर पर चित्रकार बन चुकी थी और असामान्य प्रतिभाशाली कलाकार के लिए आवश्यक सारे गुण उनमें आ चुके थे।[2], पूरी तरह भारतीय न होने के बावजूद वह भारतीय संस्कृति को जानने के लिए बड़ी उत्सुक थी। उनकी प्रारंभिक कलाकृतियों में पेरिस के कुछ कलाकारों का पाश्चात्य प्रभाव प्रभाव साफ झलकता है। जल्दी ही वे भारत लौटीं और अपनी मृत्यु तक भारतीय कला परंपरा की पुनः खोज में जुटी रहीं। उन्हें मुगल व पहाडी कला सहित अजंता की विश्वविख्यात कला ने भी प्रेरित-प्रभावित किया। भले ही उनकी शिक्षा पेरिस में हुई पर अंततः उनकी तूलिका भारतीय रंग में ही रंगी गई। उनमें छिपी भारतीयता का जीवंत रंग हैं उनके चित्र।[3]

अमृता ने अपने हंगेरियन चचेरे भाई से 1938 में विवाह किया, फिर वे अपने पुश्तैनी घर गोरखपुर में आ बसीं। 1941 में अमृता अपने पति के साथ लाहौर चली गई, वहाँ उनकी पहली बडी एकल प्रदर्शनी होनी थी, किंतु एकाएक वह गंभीर रूप से बीमार पडीं और मात्र 28 वर्ष की आयु में शून्य में विलीन हो गई।

विरासत

शेरगिल की कला ने सैयद हैदर रजा से लेकर अर्पिता सिंह तक जैसी भारतीय कलाकारों की पीढ़ियों को प्रभावित किया है और महिलाओं की दुर्दशा के उनके चित्रण ने उनकी कला को भारत और विदेशों में बड़े पैमाने पर महिलाओं के लिए एक प्रकाशस्तम्भ बना दिया है। भारत सरकार ने उनकी कृतियों को राष्ट्रीय कला कोष घोषित किया है और उनमें से अधिकांश को नई दिल्ली के राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय दीर्घा में रखा गया है।[4] उनकी कुछ चित्र लाहौर संग्रहालय में भी हैं। 1978 में भारतीय डाक द्वारा उनकी चित्र 'हिल वुमन' को दर्शाते हुए एक डाक टिकट जारी किया गया था और लुटियंस दिल्ली में उनके नाम पर अमृता शेरगिल मार्ग है। उनके काम को भारतीय संस्कृति के लिए इतना महत्वपूर्ण माना जाता है कि जब इसे भारत में बेचा जाता है, तो भारत सरकार ने यह निर्धारित किया है कि कला को देश में रहना चाहिए - उसके दस से भी कम चित्र विश्व स्तर पर बेचे गए हैं। 2006 में, नई दिल्ली की एक नीलामी में उनकी चित्र 'विलेज सीन' 6.9 करोड़ में बिकी, जो उस समय भारत में एक चित्र के लिए दी जाने वाली सबसे अधिक राशि थी।[5]

बुडापेस्ट में भारतीय सांस्कृतिक केंद्र का नाम अमृता शेर-गिल सांस्कृतिक केंद्र है।[6] भारत में समकालीन कलाकारों ने उसके कामों को फिर से बनाया और व्याख्यायित किया है।[7]

कालरा सुजेसी, 1932

हंगेरियन जिप्सी गर्ल, 1932

कई समकालीन भारतीय कलाकारों के लिए एक प्रेरणा के अलावा, 1993 में, वे उर्दू नाटक तुम्हारी अमृता के पीछे भी प्रेरणा बनी।[8]

यूनेस्को ने 2013 में शेरगिल के जन्म की 100वीं वर्षगांठ में, अमृता शेर-गिल अंतर्राष्ट्रीय वर्ष घोषित किया था।[9]

अमृता चौधरी के समकालीन भारतीय उपन्यास फेकिंग इट में शेरगिल का कार्य एक प्रमुख विषय है।[10]

सलमान रुश्दी के 1995 के उपन्यास 'द मूर्स लास्ट साय' का एक पात्र औरोरा जोगिबी, शेरगिल से प्रेरित था।[11]

शेरगिल को कभी-कभी भारत के फ्रिडा काहलो के रूप में जाना जाता था क्योंकि उन्होंने 'क्रांतिकारी' रूप से पश्चिमी और पारंपरिक कला रूपों का मिश्रण किया था।[12]

2018 में, द न्यूयॉर्क टाइम्स ने उनके लिए एक बेल्टेड ऑबिट्यूज प्रकाशित किया था।[13]

2018 में, मुंबई में एक सोथबी की नीलामी में, अमृता शेरगिल की पेंटिंग 'द लिटिल गर्ल इन ब्लू' को रिकॉर्ड तोड़ 18.69 करोड़ में नीलाम किया गया। यह पेंटिंग शिमला की रहने वाली अमृता के चचेरे भाई बबित का चित्र है और 1934 में चित्रित किया गया था जब वह केवल 8 वर्ष का था।[14]

अमृता शेरगिल के चित्र आधुनिक भारतीय कला के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यह उनकी प्रतिभा ही थी कि उन्होंने विश्व की श्रेष्ठ कला शैलिओं और पारंपरिक भारतीय शैली के बीच सामंजस्य स्थापित करते हुए एक मौलिक चित्रण शैली का विकास किया।

वधु श्रृंगार, तैल रंग, चित्रकार-अमृता शेरगिल साभार: प्रकाशन ललित कला अकादमी

अमृता शेरगिल (1913-1941) आधुनिक भारत के उन कलाकारों में से थी जिन्होंने पश्चिमी कला और भारतीय पारंपरिक कला के सम्मिश्रण से एक नई शैली का सृजन किया। कम उम्र में ही उन्होंने कला के नये प्रतिमान स्थापित किये हैं।

अपने दिल्ली प्रवास के दौरान आधुनिक कला संग्रहालय में मुझे अमृता शेरगिल के अनेक चित्रों को देखने का सुअवसर मिला। उनके चित्रों में मानवाकृतियों का सरल व सहज संयोजन। भावप्रवण चेहरे। सुन्दर, चित्ताकर्षक रंग संगति ने मुझे बहुत प्रभावित किया।

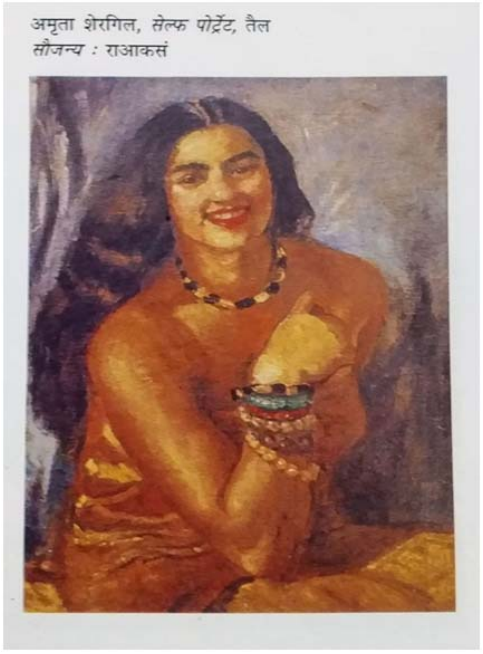

अमृता शेरगिल, आत्म चित्र।

साभार: भारत की समकालीन कला एक परिपेक्ष्य, लेखक-प्राणनाथ मागो

अमृता ने अजंता कला शैली और लघुचित्रण शैली का गहन अध्ययन किया और पारंपरिक भारतीय चित्रकला और मूर्ति कला की विशेषता को समझ पाई।

उन्होंने अकादमिक यथार्थवाद का विरोध किया। उन्होंने कला में हूबहू, जस का तस अंकन वृत्ति को निरर्थक बताया।

भारतीय मूल के सिख पिता उमराव सिंह और हंगेरियन मूल की माँ की संतान थीं अमृता शेरगिल। यह उनका भारतीय कला, संस्कृति, प्राकृतिक और ग्रामीण परिवेश के प्रति रोमांस ही था कि उन्होंने भारत को अपने कला सृजन के लिए अनुकूल समझा। नौ वर्ष की उम्र में वह अपने चाचा के घर रहने आई थीं। उन्होंने वहां जो देखा, उसका असर उन पर और किसी भी और चीज से ज्यादा पड़ा था-उदास चेहरों वाले किसान, खोईदृखोई सपनीली निगाहें, मंथर लचकीली चाल...अपने समग्र कला सृजन में, अमृता शेरगिल ने एक भी ऐसा भारतीय चित्रांकन नहीं किया था, जो क्रियाशील हो, दौड़ रहा हो या अंग-संचालन कर रहा हो या नाच रहा हो या खुशियां मना रहा हो। उनकी सभी आकृतियाँ आलस्य से पसरी हुई या हल्के कदमों से चलती हुई। बड़ी-बड़ी निर्जीव दीवारें, विशाल निश्छल पेड़ उनके काम के निस्तब्ध मौन और निश्छल शांति को और बढ़ाते हैं।-चार्ल्स फाबरी।

जैसा कि कलाकारों के साथ होता है अमृता शेरगिल ने भी पांच साल की उम्र में पेंटिंग और ड्राइंग बनाना शुरू कर दिया था। 1924 में वे अपनी मां के साथ इटली चली गईं और फ्लोरेंस में कुछ समय कला शिक्षा पाई। 1927 के बाद वे छह साल भारत में रहीं।

इस दौरान उनके चित्रों के विषय यूरोप के लोग और भू दृश्य ही थे जो रेखांकन और जल माध्यम में थे। अमृता के मामा इर्विन बेकटे, जो एक चित्रकार थे, ने उन्हें व्यक्ति चित्रण (लाइफ माडल्स) के लिए प्रेरित किया। 1929 में अमृता अपने माँ और पिता उमराव सिंह के साथ पेरिस आ गईं और कला पर विधिवत शिक्षा प्राप्त की।

अध्ययन के दौरान ग्रां शोमिएर में, पिअर वालिएं की कक्षाओं में तथा एकोल दे बोजार में, लूसियन सिमोन की कक्षाओं में, बहुत सारी महिलाओं और पुरूषों के शरीर अध्ययन चित्र चारकोल में बनाए जो अति संवेदनशील प्रतीत होते हैं।

1930 से अमृता ने तैल रंगों में चित्र बनाए जिनकी शैली सेजां, गोगां और मातिस से बहुत प्रभावित हैं। इनमें उनके गहरे रंगों में बने आत्मचित्र महत्वपूर्ण हैं।

1935 में अमृता भारत वापस आ गई। अमृता ने अपनी एक मौलिक शैली का विकास किया जिसकी आत्मा में भारत का ही वास था। वे बहुत प्रतिभाशाली थीं और अपनी अल्प आयु में ही आधुनिक भारतीय कला को एक नई दिशा दी थी।

उन्होंने एक तरफ तो अकादमिक यथार्थवाद का तो विरोध किया ही साथ ही पुनरुत्थानवादी कला शैली की भी, उसकी मंथर और निस्तेज गति के कारण विरोध किया। उन्होंने अपनी प्रतिभा को उनसे श्रेष्ठ माना जिसके कारण उनके समकालीन कलाकारों द्वारा उनकी उपेक्षा की गयी। उदाहरण स्वरूप भारत में एक प्रदर्शनी के दौरान एक प्रसिद्ध कलाकार ''रूप कृष्ण ने अमृता की पेंटिंग सचमुच में ही उठाकर फेंक दिये थे क्योंकि वह अमृता द्वारा अपनी कला की श्रेष्ठता के दावे से क्रोधित हो उठे थे। सतीश गुजराल, पुस्तक: भारत की समकालीन कला एक परिपेक्ष्य। सच है कि वह स्वतंत्रता उन्मुख भारत में जरूर रह रही थी लेकिन भारतीय कला जगत में उनकी नवीन प्रगतिशील कला दृष्टिकोण के कारण उन्हें विरोध का सामना करना पड़ रहा था। सचमुच संवेदनशील, कोमल भाव वाली अमृता के लिए ये अत्यंत विषम परिस्थितियां थीं। भारत में जिस कला उद्देश्य और नये जीवन की आशा ले कर अमृता निवास कर रहीं थीं कितने क्षीण, प्रतिकूल और नैराश्य भरे हो गये होंगे कि 28 वर्ष की अल्पायु में अचानक और अत्यंत दुखद मृत्यु हो गई।

दरअसल अमृता शेरगिल ने आधुनिक कला का अध्ययन किया था और वे भारतीय चित्रकला कि बारीकियों को समझ पाई। वह अजंता चित्र शैली की गतिशील रेखाओं से प्रभावित तो थीं ही लेकिन इसके मद्धिम रंग संगति की उन्होंने समीक्षा की। अजंता के बारे में उन्होंने कार्ल खंडालावाला को लिखा ''ऐलोरा भव्य है। अजंता विस्मयकारी रूप से सूक्ष्म और ऐन्द्रजालिक चित्ताकर्षण से भरपूर...मैं नहीं सोचती कि मैंने कभी कोई ऐसी कृति देखी है जो इसकी बराबरी कर सकती है...।''

अमृता ने मुगल, राजपूत और कांगड़ा शैली को बहुत पसंद किया। परंतु इन शैली का अंधानुकरण का पूरा विरोध किया था। श्वह एक तरफ तो अकादमिक यथार्थवाद और दूसरी तरफ पुनरुद्धार से लड़ने वाली अकेली विचारधारात्मक योद्धा थीं। अकादमिक यथार्थवादियों के खिलाफ उनकी शिकायत के और भी कई कारण थे, क्योंकि वे, 'पांचवें दर्जे की पश्चिमी कला के 'मॉडल' अनुसार अपनी कला को ढाल रहे थे'-एन.भुवनेन्द्र।

अमृता शेरगिल के चित्र आधुनिक भारतीय कला के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यह उनकी प्रतिभा ही थी कि उन्होंने विश्व की श्रेष्ठ कला शैलिओं और पारंपरिक भारतीय शैली के बीच सामंजस्य स्थापित करते हुए एक मौलिक चित्रण शैली का विकास किया।

जैसा कि कलाकारों का सही मूल्यांकन उनके अवसान के बाद ही होता है, हालांकि यह त्रासदी पूर्ण है। प्रसिद्ध कला समीक्षक प्राण नाथ मागो ने संवेदशील ढंग से अमृता शेरगिल पर विस्तार से लिखा है, ''भारत में अमृता शेरगिल की छह वर्ष की अल्प अवधि का कला-सृजन नए व अत्यंत कलात्मक महत्व का है। भारतीय कला के निर्णायक युग में उन्होंने अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय दिया था और पूर्वी तथा पश्चिमी कला के मिलन-बिंदुओं को रेखांकित किया था, जो उनकी उम्र के व्यक्ति में कम ही देखने को मिलता है।''

नयी सोच और आधुनिक भारतीय कला को महत्व देने वाले देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने भी अमृता शेरगिल के चित्रों का अवलोकन किया और पसन्द किया था। यह अमृता के द्वारा कार्ल खंडालावाला को लिखे गये पत्रों से जाहिर होता है।

अमृता ने कार्ल खंडालावाला को लिखा: शिमला, 17 अप्रैल 1937...मैं दिल्ली में जवाहरलाल नेहरू से मिली...वे मेरे चित्र प्रदर्शनी में आये और हमारी लंबी बातचीत हुई। कुछ समय पूर्व उन्होंने मुझे लिखा था कि ''मुझे तुम्हारे चित्र अच्छे लगे क्योंकि उनमें इतनी शक्ति और दृष्टि दिखाई देती है। तुममें ये दोनों गुण हैं। ये चित्र इन जीवनहीन प्रयत्नों से कितने अलग हैं जो हम अक्सर हिन्दुस्तान में देखते हैं...।"

सन्दर्भ

1. 'मेरी प्रिय महिला चित्रकार अमृता शेरगिल'. जो न कह सके. मूल (एचटीएम) से 6 अक्तूबर 2008 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 26 मार्च 2008. (access&date) में तिथि प्राचल का मान जाँचें (मदद)
2. 'कला और कलाकार अमृता शेरगिल'. अभिव्यक्ति. मूल (एचटीएम) से 24 जुलाई 2008 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 26 मार्च 2008.
3. 'कला की जीवंत रंग अमृता शेरगिल' (एएसपी). अमर उजाला. अभिगमन तिथि 26 मार्च 2008. (access&date) में तिथि प्राचल का मान जाँचें (मदद) मृत कड़ियाँ,
4. Amrita Sher-Gil atArchived 2019&03&26 at the Wayback Machine- Culturalindia-net (30 January 1913)
5. "White Shadows"- Outlook- 20 March 2006. मूल से 26 जनवरी 2013 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 5 February 2013.
6. "Great success in a short life. The Budapest Times"- budapesttimes-hu (अंग्रेजी में). मूल से 24 जनवरी 2016 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 2017-05-14.
7. "Two artists are recreating painterAmrita Sher&Gil's self portraits"- hindustantimes-com (अंग्रेजी में). 2017-03-23. मूल से 26 मार्च 2019 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 2017-05-14.
8. Digital encountersArchived 2012-10-26 at the Wayback Machine The Hindu, 13August 2006,
9. "Amrita Sher&Gil in Paris | Magyar Mûvészeti Akadémia"- www-mma-hu (अंग्रेजी में). मूल से 26 मार्च 2019 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 2017-05-14.
10. Faking It — Amrita V Chowdhury- मूल से 9 अप्रैल 2017 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 5 February 2013.
11. "Amrita Sher&Gil: A Self&Portrait in Letters and Writings", ed-Vivan Sundaram, Tulika Books, 2010
12. "The Indian Frida Kahlo"- Telegraph-co-uk (अंग्रेजी में). मूल से 26 मार्च 2019 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 2017-05-14.
13. "Overlooked No More: Amrita Sher&Gil] a Pioneer of Indian Art"- The New York Times- मूल से 27 मार्च 2019 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 2018-06-23.
14. "Sotheby's Mumbai auction: Amrita Sher&Gil's 'The Little Girl in Blue'k~ fetches record bid of ?18-69 crore"- मूल से 26 मार्च 2019 को पुरालेखित

मार्कण्डेय के कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन पर राजनीति पक्ष का प्रभाव

आशुतोष कुमार सिंह

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, कला संकाय, नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, जमुनीपुर कोटवा, दुबावल, इलाहाबाद

1.1 शोध संक्षेप

भारतीय समाज व्यवस्था का प्रमुख आधार कही जाने वाली वर्ण व्यवस्था का विकृत रूप जाति व्यवस्था के रूप में देखा जाता है जिसके अन्तर्गत दलित वर्ग के लोग अथवा पिछड़ी जातियाँ सदैव अमानवीय शोषण का शिकार रही हैं। ग्रामीण अंचलों में प्राय: ऊँच-नीच, छुआ-छूत तथा भेदभाव करने वाली कुप्रथाएँ सदैव विद्यमान रही हैं। आंचलिक एवं ग्रामीण लोग भोले होने के साथ-साथ इस प्रकार के जातीय शोषण में खासे चतुर भी होते हैं। मार्कण्डेय के उपन्यास 'अग्निबीज' में ज्वालासिंह द्वारा हरिजन मतों का लाभ उठाना तथा उसके कहने पर मुसई को पुलिस द्वारा पकड़वाना, ज्वालासिंह द्वारा हिरनी के हत्यारों को छुड़वाना जैसी घटनाओं से दलित जातियों के प्रति तथाकथित उच्च जातियों का शोषणपरक नजरिया साफ-साफ दिखाई देता है। जमींदारों द्वारा किसानों पर किये गये अत्याचारों का जिक्र 'मधुपुर के सिवान का कोना, कहानी में व्यक्त किया गया है। पिता के कर्ज को चुकाने के लिए मुन्नन को बखरी को सौंपा जाता है और एक आँख फूटने पर भी जुल्म ढ़ाये जा रहे हैं तो दूसरी ओर 'अग्निबीज' उपन्यास में छुआ-छूत की भावना को दूर करने के लिए कुछ जरूरी प्रयासों के संकेत भी किये गये हैं। ये अलग बात है कि ऐसे प्रयास उतने कारगर और वाजिब नहीं लगते जितना इन्हें होना चाहिए था।

मुख्य शब्द- सोहबत, उच्चवर्गीय , रीति-रिवाज, कल्पनाशीलता, मिलनसारिता, भावुकता.

1.2 प्रस्तावना- मार्कण्डेय का व्यक्तित्व अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों के प्रति एक साथ जागरुक और उत्तरदायी लेखक का व्यक्तित्व रहा है। एक सफल लेखक बनने से पूर्व विद्यार्थी-दशा से ही उनमें राजनीति के प्रति आकर्षण था। यही कारण है कि प्रारंभ में गांधीजी तथा गांधीवादी विचारधारा और बाद में आचार्य नरेंद्र देव तथा उनकी कांग्रेस समाजवादी पार्टी से जुड़ गए और अभावग्रस्त तथा शोषित ग्रामीणों के लिए कार्य करने लगे। श्री. आनंद प्रकाश के शब्दों में, "उनका संबंध छात्र आंदोलन से रहा है और वे सजग रूप में प्रगतिशील संगठन और वामपंथी दलों के निकट रहे हैं। उनमें वक्तृत्व का गुण भी विकसित हो चुका था। अत: प्रतापगढ़ में महविद्यालयीन पढ़ाई के दरमियान पंडित नेहरू के स्वागत का प्रसंग हो या बाद में छात्रों के शिबिर का आयोजन हो, हर आयोजन के कर्ताधर्ता मार्कण्डेय ही हुआ करते थे। अब वे एक अच्छे कार्यकर्ता बन गये थे। छात्रावस्था में ही खद्दर पहने मार्कण्डेय कांग्रेस सोशालिस्ट पार्टी के कार्यक्रमों में सुदूर गाँवों में जाते। लोग उनके रूप में एक नवयुवक को पहले कौतुहल ही निगाह से देखते, परंतु जब मंच पर खड़े मार्कण्डेय का धारा प्रवाह भाषण सुनते, तो मंत्र-मुग्ध हो जाते। इस तरह युवावस्था में ही एक सफल कार्यकर्ता के गुण उनमें दिखने लगे थे, परंतु आगे किसी ठोस वैचारिक आधार के अभाव में उन्होंने लेखक बनना अधिक श्रेयस्कर समझा। इस संबंध में वे कहते हैं, श्उस समय हमारे आसपास कोई संगठन होता तो मैं लेखक न बनकर एजिटेटर (आंदोलक) बन गया होता। उपर्युक्त सभी विशेषताओं के साथ-साथ मार्कण्डेय के व्यक्तित्व में गंभीरता, स्पष्टवादिता, स्वाभिमान, आत्मविश्वास, कल्पनाशीलता, मिलनसारिता, भावुकता, देशप्रम आदि अनेक पहलुओं के दर्शन होते हैं। जो उन्हें अन्यों से भिन्न स्थापित करते हैं।

मार्कण्डेय की आँचलिक कथा रचनाओं में प्रकृति चित्रण की विशिष्ट चित्रात्कता है जिससे जीवन की गहरी अनुभवशीलता का अहसास होता है। जैसे-"मुराद के कंधे पर श्यामा का पूरा शरीर झूलता है, ठंड जैसे धीरे-धीरे रेंगती निगलती हुई ऊपर चढ़ रही है।" मार्कण्डेय के 'अग्निबीज' उपन्यास में प्रकृति चित्रण, परिवेश और रीति रिवाजों आदि का बड़ी कुशलता से चित्रण किया गया है। शिक्षा का प्रचार, शहरीकरण राजनीतिक हस्तक्षेप, समान अधिकार की मांग आदि अनेक कारणों से सामाजिक व्यवस्था में बदलाव आ रहा है। कहीं-कहीं आधुनिकता ने रूढिघ्यों को तोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। तो कहीं रूढिघ्यों ने मध्यवर्ग को ध्वस्त कर रखा है। रूढिघ्यों से जर्जर परिवार, रीति-रिवाज, जाति-संस्कार आदि समाज को नरकमय बना रहे हैं। सामाजिक व्यवस्था में विवाह तथा उससे जुड़ी हुई परम्पराओं, मान मर्यादाओं का बड़ा महत्व है। मार्कण्डेय में 'अग्निबीज' उपन्यास में श्यामा के विवाह के अवसर पर सामाजिक रूढिघ्यों एवं प्रथाओं को गहन यथार्थ बोध और तज्जनित चिंताओं के साथ व्यक्त किया है। पारिवारिक स्तर पर संयुक्त परिवारों का विघटन एवं उसके कारण पारिवारिक व्यवस्था को हिला देने वाले परिवर्तन को वर्तमान समाज में देखा जा सकता है। लेकिन मार्कण्डेय के आँचलिक कथा साहित्य में पारिवारिक व्यवस्था के प्रति अवहेलना का दृष्टिकोण नहीं है। मूल्यों में आये बदलावों के बावजूद उनके आंचलिक कथा साहित्य में पुरानी मान मर्यादाओं को खारिज नहीं किया गया है। इसलिए वहाँ प्रगतिशील श्यामा भी कुल की मान मर्यादा को ध्यान में रखते हुए लड़के को देखे बिना शादी के लिए तैयार हो जाती है।

वर्ग संघर्ष की समस्या आंचलिक जीवन की प्रमुख समस्या है। स्वाधीनता के बाद भी वर्णव्यवस्था अपने पुराने रूप में गांवों, अंचलों में अन्दर तक घुस-घुस कर जड़ जमाये हुई है। समाज के शोषित लोगों में मुक्ति की आकांक्षा की बेचौनी, छटपटाहट और कसमसाहट तो है, पर लाख कोशिश के बाद भी वे जाति

व्यवस्था की उस किलेबन्दी को नहीं तोड़ पा रहे हैं। इसलिए वे बार-बार अलग-अलग तरह से शोषित होते जाने को अभिशप्त हैं। मार्कण्डेय 'अग्निबीज' उपन्यास में हरिजन सागर को सवर्ण स्कूल में शिक्षक नियुक्त करके, बजमा नदी के पानी पर सबका समान अधिकार आदि से वर्ण-व्यवस्था को चटकाकर वर्ग चेतना के अंकुरण का रास्ता साफ तो करते हैं पर बरगद की जड़ों की तरह पाताल तक पहुँची हुई ग्रामीण समाज की जातिगत सोच को उखाड़ फेंकने के लिए यह क्रांतिकारी कदम भी नाकाफी साबित होता है। 'गनेसी' कहानी में सभी वर्गों को जंगली सूअर का मांस खिलाना, 'धून' कहानी में सेठानी की लड़की को चमारिन द्वारा लिट्टी का टुकड़ा खिलाना जैसे प्रसंगों में वस्तुस्थिति का अतिक्रमण करने और भावी यथार्थ को रेखांकित करने की कोशिश मार्कण्डेय जी द्वारा जरूर की गयी है।

मार्कण्डेय जी के आंचलिक साहित्य में स्त्रियों की समस्याओं को लेकर भी एक अलग तरह की चेतना जागृत होते दिखाई देती है। 'अग्निबीज' उपन्यास की श्यामा कहती है - "हमारे सामने सीता, सावित्री के आदर्शों के होते हुए भी आज वह राम, कृष्ण, अर्जुन, भीम का जमाना नहीं रहा है। यह घुरहू, कतवारू का समाज है। किताब में द्रौपदी की कहानी है और आँखों के सामने हिरनी की हत्या है।" स्त्रियों की दशा में तब तक सुधार नहीं आएगा जब तक वह आर्थिक रूप से स्वावलम्बी न हो। मुराद के माध्यम से मार्कण्डेय ने यही सुझाया है। मृणाल पाण्डे ने भी माना है जब तक दूसरा विकल्प नही होगा तब तक वह आर्थिक शोषण का विरोध नहीं कर सकती। स्त्री की पतिनिष्ठा, यौन सुचिता और वर्जनाओं आदि को आँचलिक कथा साहित्य में परम्परागत रूप में स्वीकार किया गया है। कहीं भी यौन उच्छृंलकता या व्यभिचार को गौरवान्वित करने का चित्रण नहीं है। मार्कण्डेय ने अपनी समाजवादी आस्था और प्रगतिशील चेतना के अनुरूप अपनी आंचलिक रचनाओं में स्त्री को प्रस्तुत किया है। पर वहाँ स्त्रियाँ उतनी मुखर, क्रांतिकारी या व्यवस्था परिवर्तन की खालिश प्रतीक नहीं हैं। आँचलिक सन्दर्भों में शायद ऐसे स्त्री पात्रों की रचना का जोखिम बना ही रहता है।

मार्कण्डेय के आंचालिक कथा साहित्य में राजनीतिक चेतना भी ठेठ ग्रामीण अंदाज दिखाई देती है। वहाँ राजनीति तो पहुँची है, पर साथ ही राजनीति की टुच्चई भी आ धमकी है। राजनीति के नाम पर विकास और सुराज के नारे तो बहुत लगे हैं पर हकीकत में राजनीति ने गांव के बिरादरी में नीम ही घेली है। इतना ही नहीं अज्ञान एवं अशिक्षा के कारण चुनाव प्रणाली शोषण का एक औजार तक बन गयी है।

मार्कण्डेय ने अपने समग्र कहानी-साहित्य में स्वतंत्रता के प्रति उपजे माहेभंग से लेकर ग्रामीण जन-जीवन में व्याप्त सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक तथा सांस्कृतिक आदि सभी तरह की समस्याओं को समग्रता के साथ प्रस्तुत किया है। उनकी कहानियों में आजाद भारत का समग्र ग्राम-परिवेश अपनी सभी दुर्बलताओं के साथ उजागर हुआ है।

मार्कण्डेय जी के कथा साहित्य में सामाजिक परिवर्तन के उजले संकेतों के साथ-साथ राजनीति के सामाजिक कुप्रभावों का भी रेखांकन मिलता है। वस्तुतः वे सुविधा सम्पन्न वर्ग की अभिलाषाओं का अधिक विवरण न देकर आम आदमी के जीवन की आशाओं और आकांक्षाओं को चित्रित करने में अधिक रूचि प्रदर्शित करते हैं। सुराज के सुख का अनुभव करता हुआ रामू किसान चारों ओर फैले हुए भ्रष्टाचार से भौंचक्का है। उसे लग रहा है कि समूचे विकास में उसके हिस्से में कुछ भी नहीं पड़ रहा है। विशेषकर स्वराज का एक प्रमुख आधार कही जाने वाली पंचायत व्यवस्था के प्रति अनास्था का स्वर 'बातचीत' कहानी में बहुत तीव्र है। प्रसिद्ध साहित्यकार विवेकी राय ने भी माना है कि मार्कण्डेय की 'बातचीत' कहानी में यही आम आदमी चित्रित हुआ है। इसी प्रकार 'चाँद का टुकड़ा' कहानी में एक आदमी यातायात-सम्बन्धी नवनिर्माण के बारे में सोचता है कि - 'देहात के इलाके में यह सड़क स्वतंत्रता की पहली निशानी है।' वास्तव में हकीकत भी यही है। इस कहानी में विकास के लिए तरसती देहाती दुनिया को एक वोट बैंक समझ कर उनका अपने हक में इस्तेमाल कर राजनीति का राजमार्ग तैयार करने वाले राजनीतिज्ञों पर कठोर व्यंग्य किया गया है। गाँव में मोटरों का न आना भी यही दर्शाता है कि गाँव के लोगों तक राजनीतिक की वास्तविक चेतना न पहुँच सके जिनसे कि राजनीति और व्यवस्था की ताकत पार्टी और नेताओं की बजाय गांव के लोगों के हाथों में न चली जाय। वास्तव में देखा जाय तो एक लोकतांत्रिक व्यवस्था ही सामाजिक जन-जीवन की विकासशील शिराओं को गति प्रदान करती है, और इस लोकतांत्रिक व्यवस्था की प्रमुख धुरी है राजनीति। पर राजनीति की समूची शक्ति वोट के रूप में जनता के पास स्थित है। मार्कण्डेय जी ने इन सभी स्थितियों को बखूबी समझकर उन्हें आँचलिक सन्दर्भो के साथ जोड़कर प्रस्तुत करने का कार्य किया है। वस्तुतः मार्कण्डेय जी ने अपनी प्रगतिशील सोच और समाजवादी आस्था के कारण अपने समूचे आँचलिक कथा साहित्य में आँचलिक संस्कृति को उसके तमाम अन्तर्विरोधों के साथ चित्रित किया है। वहाँ सादगी और सच्चाई के साथ जीवन यापन करता समाज भी है तो चतुरता और चालाकी के साथ अपने स्वार्थ सिद्धि का कांईयापन भी है, अनास्था और अविश्वास का राजनैतिक घटाटोप भी है तो दलित, शोषित और जातीय जकड़न में पथराई तंद्रा के टूटने की आवाज भी है। निपट निरक्षर लोगों की कुरीतियाँ, अंधविश्वास और छद्म नैतिकताएं हैं, तो शिक्षा की उजली किरणों के आगमन का अबूझ अहसास भी। मार्कण्डेय जी उन गिने-चुने आंचलित कथाकारों में से हैं, जिन्होंने आँचलिक सरोकारों और क्षेत्रीय पहचान के साथ जन सामान्य की पीड़ा, अपमान, संघर्ष, विषमता, चेतना, मूल्यों और संस्कृति को कथा एवं पात्रों के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि अंचल विशेष का एक समग्र चित्र पाठकों के सामने उपस्थित हो जाता है। इसलिए मार्कण्डेय जी जन चेतना के आंचलिक यथार्थ के कथा शिल्पी कहे जा सकते हैं।

1.3 मार्कण्डेय के समकालीन राजनीति परिस्थितियाँ

स्वाधीनता के बाद भारत के आंचलिक जीवन को उन्नत करने के तमाम प्रयत्न उल्टे साबित हुए हैं। राजनीति के दाँव-पेंच ने गाँव में घुसकर उसे विषाक्त बना दिया है। 'अग्निबीज' उपन्यास में आज भी गांवों में ज्वालासिंह जैसे अवसरवादी, धूर्त और चालाक लोगों की एक अच्छी खासी संख्या है, जो साधो काका जैसे लोगों के त्याग और तपस्या का फल आजाद भारत में भोग रही है, अपनी जय-जयकार करा रही है। स्वातंन्त्योत्तर अवसरवादिता, कानून का लचीलापन और उससे उपजे आक्रोश का स्वर मार्कण्डेय के कथा साहित्य में सर्वत्र दिखाई देता है। मार्कण्डेय की 'भूदान' कहानी की भागो बहन के माध्यम से उस आक्रोश की धुरी को नापने की कोशिश की गयी है। ग्रामीण चरित्रों के सजग विश्वास और मानवीय आस्था के विपरीत उच्च वर्ग की कुटिल नीतियों की

यह कहानी गांवों की स्थितियों और वास्तविकताओं को उभारती है।'' आजादी के बाद जनमानस में उत्पन्न नयी चेतना एक नया आत्मविश्वास, संघर्षशीलता, अपने अधिकारों के प्रति सजगता, प्रगतिशीलता तथा हर रूढ़ि, अंधविश्वास, अन्याय, अत्याचार और प्रतिक्रियावादी, प्रगति विरोधी शक्तियों से लड़ने वाली नयी मानसिकता का उभार भी हमें मार्कण्डेय जी की इन रचनाओं में दिखाई देता है। सबसे निचले पायदान पर खड़े व्यक्ति, खासकर मजदूर, किसान और दलित वर्ग अधिकार-बोध की चेतना के कारण व्यवस्था के प्रति सीधे-सीधे टकराहट की मुद्रा भी अख्तियार कर रहा है। बजमा के पानी पर टिकस लगाने के बाद मुसई की झूठे जुल्म में गिरफ्तारी तथा बैठुकी सागर पर होने वाले अत्याचारों का विरोध उसी चेतना और जागृति का परिणाम है। यह सामाजिक जन चेतना सिर्फ 'अग्निबीज' में ही नहीं 'बीच के लोग' कहानी में भी साफ-साफ दिखाई देती है। मनरा द्वारा फऊदी को रोककर अन्याय के विरूद्ध लड़ने की क्षमता नयी पीढ़ी में कहीं ज्यादा दिखाई देती है।

1.4 मार्कण्डेय की विचार धारा पर राजनीतिक प्रभाव

मार्कण्डेय साहित्यकार को सामाजिक चेतना के साथ-साथ राजनीतिक चेतना से जुड़ा हुआ मानते हैं। मार्कण्डेय के आंतरिक व्यक्तित्व के निर्माण में उनकी सामाजिक राजनीतिक सक्रियता ही कारणभूत रही है। बचपन में अपने पितामह श्री। महादेव सिंह बाबा के साथ सुराजियों के सभा-सम्मेलनों में उपस्थिति के कारण तथा बाद में प्रतापगढ़ में महविद्यालयीन पढ़ाई के दौरान गांधीजी और आजादी के आंदोलन से प्रभावित होने के कारण राजनीति के प्रति उनका आकर्षण बढ़ा। दूसरी ओर उस काल में अमीरों के द्वारा गरीब किसान और मजदूरों पर होने वाले अत्याचारों को बहुत नजदीक से देख पाने के कारण मार्कण्डेय ने नौकरी पाकर सुखी जीवन बिताने की अपेक्षा राजनीति में सक्रिय होकर जनसेवा करना अधिक श्रेयस्कर समझा और तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था तथा शोषण नीति का जमकर विरोध किया।

मार्कण्डेय के अनुसार स्वराज के पहले गाँव का किसान शोषित था, स्वतंत्रता के बाद स्थिति में बहुत ज्यादा परिवर्तन नहीं हुआ। क्योंकि अब उसके शोषण के नए रूप उभर आए हैं। पंचायतें आज भी गाँव के बड़े लोगों के हाथों में हैं। पहले जमींदार का कारिंदा बेदखली नामा लेकर आता था, अब सरकारी कारिंदा वारंट लेकर आता है। इसी तरह सरकारी विकास योजनाएँ भी शोषण का माध्यम बन गयी हैं। नहर बनती है तो वह छोटे लोगों के खेतों से होकर गुजरेगी। उनकी श्भूदान, आदर्श कुक्कुट गृह, उत्तरधिकार, दाना-भूसा आदि कहानियों तथा अग्निबीज उपन्यास में उक्त तथ्यों को देखा जा सकता है। 'अग्निबीज के हरगोन सिंह कहते हैं-किसी पार्टी की नीति क्या है, वह देश की भूखी-नंगी जनता की समस्याएँ कैसे हल करना चाहती हैं, शोषण और अन्याय खतम करने के बारे में उसके क्या कार्यक्रम हैं, यह देखना चाहिए। मार्कण्डेय की दृष्टि में किसी राजनीतिक दल का महत्व आम जनता की दैनंदिन जरूरतों को लेकर उसकी नीति तथा प्रत्यक्ष कार्य प्रणाली पर अवलंबित हैं। परंतु आजकल राजनीतिक दल जनता की उन जरूरतों के लिए उतने संघर्षशील नहीं है जितने कुर्सी के लिए हैं। मार्कण्डेय सत्ता हथियाने के लिए जाति और धर्म की राजनीति करने वाली पार्टियों तथा नेताओं की खबर लेने से नहीं हिचकते। अपनी कहानी नौ सौ रुपए और एक ऊँट दाना के बुचऊ की जबान से वर्तमान राजनीति की परिभाषा करते हुए लिखते हैं-विचार नाहीं रहा अब अउर बिना विचार की नेति कहाँ? अब तो कुरसी की नेति है। धरम के नाव पर, जाति के नाव पर वोट उगहात है। ठाकुर के ठाकुर, बाहमण के बाहमण कहाँ गयी गरीबी ? कहाँ गया छूवा छूत ? अब विचार नहीं रहा, बस वोट रह गया है। देश की राजनीति पर की गई यह व्याख्या वर्तमान राजनीति पर अधिक करारा व्यंग्य है। वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों में वे गांधीवादी आदर्शो को अनुपयुक्त मानते हैं। क्योंकि महात्मा गांधी के आदर्शो की दुहाई देने वाली कांग्रेस आज उनके सिद्धांतों से दूर है। गांधीजी के आदर्शों को वे गांधीजी के साथ ही समाप्त होने की बात करते हैं। श्राजनेत तो गन्ही महतमा के साथ चली गयी बच्चन। उनके अनुसार आज के कांग्रेसी गांधीजी के आदर्शों पर नहीं, खद्दर और टोपी से प्रेम करत हैं। यह खद्दर और टोपी उनके लिए ढाल का काम करती हैं। उनकी प्रसिद्ध कहानी श्प्रलय और मनुष्य की मेझुकी (मेढ़क) कहती है-"डरों नहीं यह खादी की टोपी है। इसकी दीवारों के बीच हम सुरक्षित हैं । यह इस लोक की सबसे बड़ी ढाल है। इसके पीछे कुछ भी छिप सकता है।

मार्कण्डेय समाजवादी समाजरचना के पक्षधर हैं। मार्कण्डेय के विचार से भारत में स्थित अन्य राजनीतिक दलों की अपेक्षा कम्यूनिस्ट पार्टी ही पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त कर जनता का शासन स्थापित कर सकती है। वर्तमान युग में एक तरफ राजनीति पर जाति, धर्म, संप्रदाय हावी हैं और दूसरी ओर फाँसीवादी ताकतों तथा बाजारवाद के बढ़ते दबावों को देखते हुए मार्कण्डेय समस्त लोकतंत्र को संकटग्रस्त महसूस करते हैं। अपनी इस चिंता को व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं-हमारे सामाजिक संदर्भ ही नहीं बल्कि शासन और सत्ता भी एक ऐसे दौर से गुजर रही है, जो फासिस्ट शक्तियों के दबाव से मुक्त नहीं है। बाजारवाद ने हमें आदमी की जगह ग्राहक बना दिया है, जहाँ हमारा लोकतंत्र जैसे झूठा होता जा रहा है। भूख और बेरोजगारी से सारा देश त्रस्त है। किसान जो इस देश का प्रथम नागरिक है, आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा है। निश्चय ही हमारे समय का यथार्थ बदल गया है। उनके अनुसार, "वर्गों में बटे समाज में लोकतंत्र एक दिखावा बनकर रह जाता है। मार्क्सवादी विचारो के समर्थक मार्कण्डेय अपने उक्त विचारों के माध्यम से शोषितों का एक व्यापक संगठन निर्माण करना चाहते हैं जो वर्तमान पूँजीवादी-तंत्र को समाप्त कर एक नई-व्यवस्था को लाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सके।

मार्कण्डेय की कहानियाँ राजनीतिक चेतना से अनुप्राणित हैं। इसकी एक वजह यह हो सकती है कि उपर्युक्त स्वातंत्र्योत्तर विकृत और विद्रूप राजनीति को मार्कण्डेय ने स्वयं (ग्राम-जीवन के धरातल पर) देखा और भोग है, अनुभव किया है। यही कारण है कि उनकी राजनीतिक चेतना भी मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित है। क्योंकि मार्क्स के विचारों से अनुप्राणित कम्युनिस्ट पार्टी पूंजीवाद और सर्वहारा के शोषण का विरोध कर उसके हित को महत्वपूर्ण मानती है। जैसा कि ऊपर कहा गया है स्वातंत्र्योत्तर काल में शहरों के साथ-साथ भारत के गाँव भी राजनीतिक सरगर्मियों के केंद्र बनते गए। मार्कण्डेय की कहानियों में भ्रष्टाचार जाति, वर्ग, सत्ता, पूंजी, हिंसा और वोट की राजनीति, चुनावतंत्र तथा स्वार्थ केंद्रित राजनीति आदि अनेक कुरूपताओं का चित्रण हुआ है, जो राजनीतिक वैषम्य और समस्याओं का जन्म देती है। इस दृष्टि से उनकी 'हंसा जाई अकेला', 'नौ सौ रूपये और एक ऊँट दाना', 'प्रलय और मनुष्य' आदि कहानियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

मार्कण्डेय के कहानी-साहित्य में राजनीतिक समस्याएँ

1.4.1 मोहभंग

आजादी के बाद राजनीति के जितना नगर-जीवन को प्रभावित किया है, कदाचित उतना ही ग्राम-जीवन को भी। राजनीति स्वातंत्र्योत्तर समसामायिक ग्रामीण जीवन का एक अनियार्य अंग रही है। ''आजादी के बाद गाँववालों ने खास कर गाँधीजी के रामराज्य साकार होने की परिकल्पना की थी, सपने बुने थे लेकिन आजादी जैसे-जैसे बचपने की अवस्था लांघती गई और 15-16 वर्ष की किशोरी, किशोरी से युवती होती गई। यह अपने आप में अल्हड़ बदचलन और स्वार्थी होती गई। उसने अपना रिश्ता आम आदमी से काटकर सिर्फ बड़े-बड़े छद्मवेशी जन-नेताओं, पूंजीपतियों, भू-स्वामियों नौकरशाहों के साथ अपना गठबंधन कर लिया। भूख से बिलबिलाते, भू-स्वामियों से मार खाते, शोषित, पीडिघ्त-प्रताडिघ्त आम आदमी के लिए उसके हदय में कोई स्थान नहीं रह गया, गो कि घडिघ्याली आँसू वह आम आदमी की तकलिफों के लिए ही बहाती रही। 60-62 आते-आते आम आदमी ने महसूस कर लिया कि यह आजादी उसकी अपनी नहीं थी, वस्तुत: वह पराई थी। वह भ्रम में था। मोहान्थ था। उसका मोह टूटा।'' इस तरह आजादी के बाद भारतीय राजनीति का क्षेत्र शनै:-शनै: गँदला होता गया और सेवा, निष्ठा एवं समर्पण का स्थान स्वार्थ और विसंगति ने ले लिया। आम आदमी की स्थिति तेज हव ामें तिनके के सदृश हो गई। चुनावों में चारों ओर पैसा, जातीयता, संप्रदाय और धर्म का बोलबाला शुरू हुआ। भ्रष्ट राजनेताओं द्वारा आम आदमी का ऐसा शोषण हुआ जो गुलामी के दिनों में भी शायद नहीं हुआ था।

1.4.2 स्वार्थिंकंद्रित विकृत राजनीति

आजादी के पश्चात गाँवों में प्रविष्ट राजनीति में सेवा के नाम पर सत्ता, स्वार्थ और हिंसा के ही दर्शन होते हैं। ये सभी दोष तमाम विकृतियों को जन्म देते हैं। इस विकृत राजनीति ने गाँवों के आपसी प्रेम-संबंधों में दरारें पैदा कीं। गांधीजी के विचारों को माननेवाले सच्चे समाजसेवकों को हाशिए की जिंदगी जीने को बाध्य किया गया और आम जनता का जीवन इतना गंदला कर दिया कि अच्छे-बुरे की पहचान लुत्प हो गई।

मार्कण्डेय की प्रसिद्ध कहानी 'नौ सौ रूपए और एक ऊँट दाना' उक्त सभी तथ्यों को रेखांकित करती है। प्रस्तुत कहानी का केंद्रीय पात्र बुचऊ कहता है, ''राजनेत तो गन्ही महतमा के साथ चली गई बच्चन, विचार नाही रहा अब, अउर बिना विचार की नेति कहाँ। अब तों कुरसी की नेति है।'' आजादी के बाद पनपी स्वार्थ केंद्रित राजनीति ने बुचऊ को अंतबोह्य तोड़ दिया। बुचऊ जैसे आजादी के आंदोलन में सक्रीय लोगों के हिस्से में अब केवल हाशिए की जिंदगी जीना ही लिखा है। आजादी के बाद राजनीति में सक्रीय चतुर और चालबाज भूतपूर्व जर्मीदार वर्ग ने बुचऊ को समाज बिरादरी से बहिकृत कर दिया है। बुचऊ जैसे अनेक नि:स्वार्थ और भावुक लोगों के हिस्से में एकाकी जीवन जीने के अतिरिक्त अन्य कोई चारा नहीं है। वर्तमान सरकारें और राजनीतिज्ञ आम जनता को न्याय और उनके विकास के नाम पर स्थानिक स्वराज्य संस्थाएँ, अनेकानेक योजनाएँ आदि बनाते हैं, परंतु इससे लाभ उन धूर्त राजनेताओं और सरकारी अधिकारियों का ही होता हे। 'बातचीत' शीर्षक कहानी में स्वातंत्र्योत्तर पहले दशक में बनी पंचायतों का संदर्भ आता है। इस कहानी का रामू कहता है, ''पंचाइत बनी थी किसानों के फायदे के लिए, लेकिन सरपंच हो ही गए गयादीन ठाकुर। खूब मुठ्ठी गरम होती है।'' स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण राजनीति की यह कड़वी सच्चाई है जो बड़ी मात्रा में आज भी बरकरार है। 'प्रलय और मनुष्य' कहानी में फैंटसी के माध्यम से राजनेताओं की अवसरवादिता, भ्रष्टाचार, ढोंग आदि पर मार्मिक व्यंग्य किए हैं। मेढ़कों के माध्यम से छद्म गांधीवादियों पर लेखक का व्यंग्य बहुत सटीक है, ''डरो नहीं, यह खादी की टोपी है। इसकी दीवारों के बीच हम सुरक्षित हैं।'' प्रलय के बहाव में फँसा राजनेता मौत को सामने देखकर कबूल करता है कि ''भले दिनों में वह स्वार्थ से अंधा हो जाता है, तंत्र को धोखा देता है, जनता का गला काटता है।''

1.4.3 चुनाव या वोट की राजनीति

वोट या चुनाव से संबद्ध राजनीति वर्तमान राजनीति की सर्वाधिक बड़ी विकृति है। लोकतंत्र और उसमें चुनाव के महत्व को बताते हुए वर्तमान राजनीतिज्ञों और नेताओं का ध्यान केवल वोटों पर केंद्रित होता हुआ दिखाई देता है। फिर उस 'वोट' को हासिल करने के नाम पर इन तथाकथित राजनताओं का नैतिक स्तर पर इतना पतन होता है कि ये जाति और धर्म के नाम पर वोट बटोरते हुए दिखाई देते हैं। 'नौ सौ रूपए और एक ऊँट दाना' के बुचऊ के कथन से यह स्पष्ट हो जाता है, ''क्या हो रहा है। धरम के नाव पर, जाति के नाव पर वोट उगहात है। ठाकुर के ठाकुर, बाह्मन के बाह्मन, कहाँ गई गरीबी? कहाँ गया छूवा-छूत? अब विचार नहीं रहा, बस वोट रह गया है।'' इस चुनाव की विकृत राजनीति के ही कारण आजादी के बाद के गाँवों में प्रेम, आदर, सहिष्णुता, इन्सानियत आदि मानवीय मूल्यों का लोप होता हुआ दिखाई देता है। गाँवों की एकता बैर ओर दुश्मनी में तब्दील हो जाती है। डॉ. विवेकी राय ने ठीक ही लिखा है, 'गाँव की स्वातंत्र्योत्तर उखड़न और टूटन में सबसे अधिक प्रभाव चुनाव का है।''

1.5 किसान और मजदूर आंदोलन

भारत एक कृषिप्रधान देश है। यहाँ की 70 प्रतिशत जनता कृषि और उससे सम्बन्धित व्यवसाय से जुडी हुई हैं। इस तरह भारतीय अर्थव्यवस्था की नींव कृषि पर आधारित है। इस अर्थव्यवस्था की धुरी है किसान। लेकिन आज उन किसानों की जिन्दगी कठिन संघर्ष से गुजर रही है। सालों से किसान कड़ी मेहनत करके अन्न उगाता आ रहा है, और प्रकृति के अनुकूल जीवन बिता कर एक नैतिक समाज का पालन करता आ रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव, औद्योगीकरण तथा विज्ञान के प्रचार-प्रसार की वजह से खेती में भी तीव्र परिवर्तन आने लगा। धीरे-धीरे खेती व्यवसाय में तबदील होने लगी। नवउपनिवेशवादी आर्थिक नीतियाँ जैसे उदारीकरण, निजीकरण आदि के तहत अर्थव्यवस्था मुनाफा केंद्रित हो गयी। पूरी दुनिया भूमंडलीकृत बाजार में बदलने लगी। विकास योजनाओं के नाम पर देशी-विदेशी कॉरपरेट कंपनियों के लिए कृषि योग्य जमीन का अधिग्रहण होने लगा। इसके फलस्वरूप किसान का अस्तित्व खतरे में पड़ गया। धीरे-धीरे इस वैश्वीकृत दुनिया में कृषि और किसान की अहमियत खतरे में पड़ने लगी। ऐसे माहौल में इस विषय पर गंभीरता से विचार करना लाजिमी है।

1.6 मार्कण्डेय और गाँधीवाद

आजादी के बाद राजनीति के जितना नगर-जीवन को प्रभावित किया है, कदाचित उतना ही ग्राम-जीवन को भी। राजनीति स्वातंत्र्योत्तर समसामायिक ग्रामीण जीवन का एक अनियार्य अंग रही है। ''आजादी के बाद गाँववालों ने खास कर गाँधीजी के रामराज्य साकार होने की परिकल्पना की थी, सपने बुने थे लेकिन आजादी जैसे-जैसे बचपने की अवस्था लांघती गई और 15-16 वर्ष की किशोरी, किशोरी से युवती होती गई। यह अपने आप में अल्हड़ बदचलन और स्वार्थी होती गई। उसने अपना रिश्ता आम आदमी से काटकर सिर्फ बड़े-बड़े छद्मवेशी जन-नेताओं, पूंजीपतियों, भू-स्वामियों नौकरशाहों के साथ अपना गठबंधन कर लिया। भूख से बिलबिलाते, भू-स्वामियों से मार खाते, शोषित, पीडिघ्त-प्रताडिघ्त आम आदमी के लिए उसके हदय में कोई स्थान नहीं रह गया, गो कि घड़ियाली आँसू वह आम आदमी की तकलिफों के लिए ही बहाती रही। 60-62 आते-आते आम आदमी ने महसूस कर लिया कि यह आजादी उसकी अपनी नहीं थी, वस्तुत: वह पराई थी। वह भ्रम में था। मोहान्थ था। उसका मोह टूटा।'' इस तरह आजादी के बाद भारतीय राजनीति का क्षेत्र शनै:-शनै: गँदला होता गया और सेवा, निष्ठा एवं समर्पण का स्थान स्वार्थ और विसंगति ने ले लिया। आम आदमी की स्थिति तेज हवा में तिनके के सदृश हो गई। चुनावों में चारों ओर पैसा, जातीयता, संप्रदाय और धर्म का बोलबाला शुरू हुआ। भ्रष्ट राजनेताओं द्वारा आम आदमी का ऐसा शोषण हुआ जो गुलामी के दिनों में भी शायद नहीं हुआ था।

1.7 भारतीय नेता भ्रष्टाचार में संलिप्त

आजादी के पश्चात गाँवों में प्रविष्ट राजनीति में सेवा के नाम पर सत्ता, स्वार्थ और हिंसा के ही दर्शन होते हैं। ये सभी दोष तमाम विकृतियों को जन्म देते हैं। इस विकृत राजनीति ने गाँवों के आपसी प्रेम-संबंधों में दरारें पैदा कीं। गांधीजी के विचारों को माननेवाले सच्चे समाजसेवकों को हाशिए की जिंदगी जीने को बाध्य किया गया और आम जनता का जीवन इतना गंदला कर दिया कि अच्छे-बुरे की पहचान लुत्प हो गई।

मार्कण्डेय की प्रसिद्ध कहानी 'नौ सौ रूपए और एक ऊँट दाना' उक्त सभी तथ्यों को रेखांकित करती है। प्रस्तुत कहानी का केंद्रीय पात्र बुचऊ कहता है, ''राजनेत तो गन्ही महतमा के साथ चली गई बच्चन, विचार नाही रहा अब, अउर बिना विचार की नेति कहाँ। अब तों कुरसी की नेति है।'' आजादी के बाद पनपी स्वार्थ केंद्रित राजनीति ने बुचऊ को अंतबोह्य तोड़ दिया। बुचऊ जैसे आजादी के आंदोलन में सक्रीय लोगों के हिस्से में अब केवल हाशिए की जिंदगी जीना ही लिखा है। आजादी के बाद राजनीति में सक्रीय चतुर और चालबाज भूतपूर्व जर्मीदार वर्ग ने बुचऊ को समाज बिरादरी से बहिकृत कर दिया है। बुचऊ जैसे अनेक नि:स्वार्थ और भावुक लोगों के हिस्से में एकाकी जीवन जीने के अतिरिक्त अन्य कोई चारा नहीं है। वर्तमान सरकारें और राजनीतिज्ञ आम जनता को न्याय और उनके विकास के नाम पर स्थानिक स्वराज्य संस्थाएँ, अनेकानेक योजनाएँ आदि बनाते हैं, परंतु इससे लाभ उन धूर्त राजनेताओं और सरकारी अधिकारियों का ही होता हे। 'बातचीत' शीर्षक कहानी में स्वातंत्र्योत्तर पहले दशक में बनी पंचायतों का संदर्भ आता है। इस कहानी का रामू कहता है, ''पंचाइत बनी थी किसानों के फायदे के लिए, लेकिन सरपंच हो ही गए गयादीन ठाकुर। खूब मुठ्ठी गरम होती है।'' स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण राजनीति की यह कड़वी सच्चाई है जो बड़ी मात्रा में आज भी बरकरार है। 'प्रलय और मनुष्य' कहानी में फैंटसी के माध्यम से राजनेताओं की अवसरवादिता, भ्रष्टाचार, ढोंग आदि पर मार्मिक व्यंग्य किए हैं। मेढ़कों के माध्यम से छद्म गांधीवादियों पर लेखक का व्यंग्य बहुत सटीक है, ''डरो नहीं, यह खादी की टोपी है। इसकी दीवारों के बीच हम सुरक्षित हैं।'' प्रलय के बहाव में फँसा राजनेता मौत को सामने देखकर कबूल करता है कि ''भले दिनों में वह स्वार्थ से अंधा हो जाता है, तंत्र को धोखा देता है, जनता का गला काटता है।''

1.8 गाँव में सवर्णों की राजनीति

वोट या चुनाव से संबद्ध राजनीति वर्तमान राजनीति की सर्वाधिक बड़ी विकृति है। लोकतंत्र और उसमें चुनाव के महत्व को बताते हुए वर्तमान राजनीतिज्ञों और नेताओं का ध्यान केवल वोटों पर केंद्रित होता हुआ दिखाई देता है। फिर उस 'वोट' को हासिल करने के नाम पर इन तथाकथित राजनताओं का नैतिक स्तर पर इतना पतन होता है कि ये जाति और धर्म के नाम पर वोट बटोरते हुए दिखाई देते हैं। 'नौ सौ रूपए और एक ऊँट दाना' के बुचऊ के कथन से यह स्पष्ट हो जाता है, ''क्या हो रहा है। धरम के नाव पर, जाति के नाव पर वोट उगहात है। ठाकुर के ठाकुर, बाह्मन के बाह्मन, कहाँ गई गरीबी? कहाँ गया छूवा-छूत? अब विचार नहीं रहा, बस वोट रह गया है।'' इस चुनाव की विकृत राजनीति के ही कारण आजादी के बाद के गाँवों में प्रेम, आदर, सहिष्णुता, इन्सानियत आदि मानवीय मूल्यों का लोप होता हुआ दिखाई देता है। गाँवों की एकता बैर ओर दुश्मनी में तब्दील हो जाती है। डॉ। विवेकी राय ने ठीक ही लिखा है, 'गाँव की स्वातंत्र्योत्तर उखड़न और टूटन में सबसे अधिक प्रभाव चुनाव का है।''

1.9 पंचायत व्यवस्था

प्रसिद्ध आँचलिक कथाकार रामदरश मिश्र के कथन से अगर मैं अपनी बात शुरू करूँ तो आँचलिक कथा साहित्य में अंचल अपनी सम्पूर्ण विविधता और समग्रता के साथ नायक होता है। अंचल के जीवन की सारी परम्पराओं, ऐतिहासिक प्रगतियों, शक्तियों, अभिव्यक्तियों, छवियों, अछवियों को लेखक जितनी अधिक सच्चाई से पकड़ता है, आँचलिक जीवन के चित्रण में वह उतना ही सफल होता है। आँचलिक कथाकार जनपद विशेष के जीवन के बीच वहाँ के पात्रों, समस्याओं, सम्बन्धों, वहाँ के प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश के समग्र रूपों, परम्पराओं और संस्कृतियों को अंकित कर सकता है, क्योंकि उसने उन्हें अनुभूति में उतारा है। श्री रामदरश मिश्र ने आँचलिक कथा साहित्य को ह्रदय में कसमसाती हुई किसी प्रदेश की जीवनानुभूति को वाणी देने का अनिवार्य प्रयास माना है।

1.10 विरादरी और विरादरी का प्रभाव

'हंसा जाई अकेला कहानी मार्कण्डेय की जनपक्षधरता का उदाहरण है। मार्कण्डेय समाज के उस अंतिम व्यक्ति के साथ खड़े हैं जो श्रमजीवी और निश्छल है। 'हंसा' के प्रति उनमें अपार करूणा है, वह उनकी सहानुभूति का आलम्बन है। यह कहानी यह दिखाती है कि जिस सामान्य व्यक्ति को लोग अर्थहीन, उपेक्षणीय और हास परिहास का पात्र समझते हैं, वह भले ही भाग्य का मारा हो, लेकिन अपनी मेहनत और जज्बात में सच्चा है। वह राजनीति के दंगल में भी निर्णायक भूमिका निभाता है। यह कहानी 'लघु मानव' को प्रतिष्ठास्पद बनाती है और उसी के साथ आजाद भारत के राजनीतिक चरित्र को भी उद्घाटित करती है। भले ही 'हंसा' का यह सच हो कि वह अकेला जायेगा, (वैसे यह तो सबका सच है) और देश दुनिया में उसका कोई नहीं है लेकिन कहानी की सफलता यह है कि वह पाठक में हंसा के प्रति गहरी सहानुभूति और लगाव पैदा कर देती है। हंसा का पागलपन पाठक की चेतना को झंकृत कर देता है और उसकी आत्मीय छवि उसके चित्त पर छा जाती है। हंसा अपनी लघुता में भी महान हो जाता है। यह कहानी मनुष्यता का पोषण करती है और मानवीय संवेदना को प्रगाढ़ करती है। सरलता और सादगी का सौन्दर्य रचती हुई यह कहानी स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी को नयी जमीन और नयी चेतना देती है। प्रेमचन्द के ग्रामीण यथार्थ को और अधिक घने, आत्मीय और बिम्बात्मक रूप में प्रस्तुत करने के कारण यह उनकी कथा परम्परा में एक नया प्रस्थान बिन्दु रेखांकित करती है।

1.11 निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि ''मार्कण्डेय की कहानियाँ गाँव की राजनीति पर आधारित हैं। उनके गाँव राजनीति के आखाड़े हैं, जहाँ गाँवों के नारद से लेकर कृषक, श्रमिक, राजनेता और सामाजिक कार्यकर्ता सभी जमा होते हैं। मार्कण्डेय की कहानियों का मुख्य विषय ग्रामीण जीवन का शोषण है। गाँव के किसानों का शोषण राजनेता करते हैं, पंचायत के सदस्य, जमींदार, सरकारी कर्मचारी कोर्ट-कचहरी के लोग करते हैं। इस तरह गाँव का किसान और मजदूर बहुमुखी शोषण से ग्रस्त हैं।''

सन्दर्भ

1. राम दरश मिश्र -हिन्दी उपन्यास - एक अंतर्यात्रा - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-154.
2. वृषाली मांद्रेकर -मार्कण्डेय एवं पुण्डलीक नायक के आंचलिक कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, गोवा विश्वविद्यालय, गोवा, पृष्ठ-56.
3. शिवपूजन सहाय-देहाती दुनिया, भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-8.
4. विद्या सिन्हा-आधुनिक परिदृश्य आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ-206.
5. मार्कण्डेय-अग्निबीज, नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ-19.
6. मेल्टिना टोप्पो-हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों की सांस्कृतिक चेतना,सत्यम पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृष्ठ-109.
7. वृषाली मांद्रेकर-मार्कण्डेय एवं पुण्डलीक नायक के आंचालिक कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, गोवा विश्वविद्यालय,गोवा, पृष्ठ-188.
8. मार्कण्डेय -अग्निबीज, नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ-107.
9. ज्ञानचन्द्र गुप्त-स्वातंन्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना, राधा पब्लिकेशन, दिल्ली, पृष्ठ-122.
10. मार्कण्डेय -अग्निबीज, नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ-15.
11. रघुनाथ देशाई -हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में समाज जीवन, अमन प्रकाशन.
12. राम दरश मिश्र -हिन्दी उपन्यास - एक अंतर्यात्रा - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-154.
13. वृषाली मांद्रेकर -मार्कण्डेय एवं पुण्डलीक नायक के आंचलिक कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, गोवा विश्वविद्यालय, गोवा, पृष्ठ-56.
14. शिवपूजन सहाय-देहाती दुनिया, भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-8.
15. विद्या सिन्हा-आधुनिक परिदृश्य आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ-206.
16. मार्कण्डेय-अग्निबीज, नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ-19.
17. मेल्टिना टोप्पो-हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों की सांस्कृतिक चेतना,सत्यम पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृष्ठ-109.
18. वृषाली मांद्रेकर-मार्कण्डेय एवं पुण्डलीक नायक के आंचालिक कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, गोवा विश्वविद्यालय,गोवा, पृष्ठ-188.
19. मार्कण्डेय-अग्निबीज, नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ-107.
20. ज्ञानचन्द्र गुप्त-स्वातंन्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना, राधा पब्लिकेशन, दिल्ली, पृष्ठ-122.
21. मार्कण्डेय-अग्निबीज, नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ-15.
22. रघुनाथ देशाई -हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में समाज जीवन, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ-68.

जातक कथाओं की ऐतिहासिकता

डॉ० पार्थ सारथी

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, अनुग्रह मेमोरियल कॉलेज, गया, बिहार

सार

जातकों को साहित्य का एक निकाय माना जा सकता है जिसमें गौतम बुद्ध के मानव और पशु दोनों रूपों में जन्म लेने के जीवन के विभिन्न आख्यान शामिल हैं। कथाएँ उन्हें एक हाथी, एक राजा, एक बहिष्कृत आदि के रूप में पैदा होने का वर्णन करती हैं, लेकिन प्रत्येक कथा के पीछे का मकसद नैतिक मूल्यों को उजागर करना है जो उन्होंने इन पात्रों के माध्यम से प्रचारित किया। कहानियों के वर्णन और उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली नैतिक शिक्षा के कारण आख्यान बच्चों के बीच काफी लोकप्रियता पाते हैं। प्रस्तुत पत्र के माध्यम से जातक कथाओं की ऐतिहासिकता को उद्धृत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्द: जातक; गुण; इतिहास; दंतकथा; बोधिसत्व।

परिचय

जातक, या जन्म-कथाएँ, बौद्धों की पवित्र पुस्तकों में से एक हैं और बुध के पूर्व जन्म के कार्यों से संबंधित हैं। किसी भी कहानी में सर्वश्रेष्ठ चरित्र की पहचान गुरु के साथ की जाती है। इन किंवदंतियों को लगातार बौद्ध शिक्षकों के धार्मिक प्रवचनों में उनके विश्वास के सिद्धांतों को चित्रित करने या बुद्ध की महिमा और पवित्रता को बढ़ाने के लिए पेश किया गया था। कुछ हद तक यूरोप में मध्ययुगीन प्रचारक दंतकथाओं और लोकप्रिय कहानियों का इस्तेमाल अपने उपदेशों को जीवंत बनाने के लिए करते थे।

सांची, अमरावती और भरहुत के अवशेष मंदिरों के चारों ओर नक्काशीदार रेलिंग पर पाए गए जातकों के मूर्तिकला दृश्यों से संकेत मिलता है कि "जन्म-कथाएं" तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में व्यापक रूप से जानी जाती थीं, और तब उन्हें पवित्र इतिहास का हिस्सा माना जाता था। पहले कहानियों को शायद मौखिक रूप से इस्तेमाल किया गया था, यह अनिश्चित है कि उन्हें व्यवस्थित रूप में एक साथ रखा गया था। कुछ कहानियां बौद्ध हैं और बौद्ध धर्म के लिए कुछ रिवाज या विचार पर अपनी बात के लिए निर्भर करती हैं, कई सदियों पुरानी दंतकथाएं, लोककथाओं के संकलन हैं, जो सदियों से विभिन्न रूपों में प्रकट हुई हैं।[1]

जातक साहित्य की सटीक तिथियां निर्धारित नहीं की जा सकतीं क्योंकि लेखन की कई शाखाएं अलग-अलग कालों से जुड़ी हुई हैं। एक मीट्रिक विश्लेषण इंगित करता है कि सामग्री लगभग चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में विकसित की गई थी। कुछ किस्से बुद्ध के जन्म से बहुत पहले रचे गए थे जबकि कुछ बाद की तारीखों से संबंधित थे। जातकों के तिथि-निर्धारण के सवाल को और भी कठिन बना दिया गया है क्योंकि बौद्ध धर्म के विभिन्न संप्रदायों की कहानियों पर अलग-अलग दावे हैं। आन्ध्र क्षेत्र के चौतक संप्रदाय बौद्ध परंपरा को विभिन्न वंशों में विभाजित करने से पहले उनके द्वारा विकसित जातकों को मूल संग्रह के रूप में मानते हैं। लेकिन थेरवाद संप्रदाय का उनकी कहानियों की मौलिकता पर समान दावा है। प्रति-दावे एक बात का संकेत देते हैं अर्थात् विभिन्न कालखंडों में कहानियों का विकास। इस प्रकार, हमारे अतीत से इन मूल्यवान कहानियों के लिए एक निश्चित तारीख को आगे बढ़ाना अनुचित होगा। हालाँकि, कुछ प्रयास अतीत के साक्ष्यों से किए जा सकते हैं जैसे कि अजंता की गुफाओं की दीवारों पर जातक माला या आर्य सुरा के उद्धरणों का शिलालेख जो 6ठी शताब्दी का है। इस अवधि में एक उल्लेख इन कहानियों के एक और भी पुराने विकास को इंगित करेगा ताकि उन्हें छठी शताब्दी में इतना महत्व दिया जा सके। इसके अलावा, 434 ईसा पूर्व चीनी साहित्य में इन कहानियों के अनुवाद शामिल हैं।[2]

जातक कथाएँ कहानियों और कविताओं का एक संग्रह है। लेकिन कई अनुवादों और व्याख्याओं के कारण, ऐसी मूल सामग्री की सही संख्या ज्ञात नहीं है। लगभग 34 कहानियां हैं जो सभी बोरोबुदुर (जावा, इंडोनेशिया में स्थित एक महायान बौद्ध मंदिर, दुनिया का सबसे बड़ा मंदिर होने और यूनेस्को की विश्व धरोहर स्थल के रूप में चिह्नित) में चित्रित की गई हैं। थेरवाद की परंपरा के अनुसार, उनके जातक में 547 कविताएँ हैं, जिनमें से केवल अंतिम 50 को बिना किसी टिप्पणी के पढ़ा जा सकता है। शेष को भाष्यों के माध्यम से समझने की आवश्यकता है जो कि ज्यादातर गद्य के रूप में छंद की सामग्री को दर्शाते हुए लिखे गए हैं। इन गद्यों ने लोकगीतों के बीच लोकप्रियता हासिल की है और मूल कविताओं के की वनिस्पत उनके रूपांतरण को व्यापक स्तर पर पढ़ा गया है। लेकिन उपलब्ध प्रकाशन बताते हैं कि आज की तारीख में लगभग 549 जातक कहानियां छप चुकी हैं। यद्यपि जातकों को उनके मूल रूप में पढ़ने के कुछ ही प्रयास हुए हैं, फिर भी उनके ग्रंथ बड़ी संख्या में अनुवादों के कारण कई लोगों तक पहुंचे हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि जातकों को केवल बुद्ध के पिछले जन्म और नैतिक मूल्यों की कहानियों के रूप में नहीं माना जा सकता है। वे न केवल साहित्य और कला के लिए मूल्यवान पुस्तकें हैं बल्कि तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व की सभ्यता के इतिहास में एक महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। इसलिए, उनमें ईसा पूर्व दूसरी और तीसरी शताब्दी में समाज की

राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक संरचना का सुंदर वर्णन है। लेकिन गौतम बुद्ध की जीवनी का बहुत कम चित्रण करने के लिए उनकी अक्सर आलोचना की गई है।[3]

जातक कथाओं की लोकप्रियता एवं व्यापक प्रसार ने भारतीय साहित्य में पंचतंत्र, नीति शास्त्र आदि के कथानक विषय-क्षेत्र तथा उद्देश्य पर भी स्पष्ट प्रभाव छोड़ें। कहानियों को हर क्षेत्र की स्थानीय भाषाओं में अपनाया गया है और मौखिक परंपरा के माध्यम से प्रसारित किया गया है। द मंकी एंड द क्रोकोडाइल, द टर्टल हू नॉट स्टॉप टॉकिंग आदि जैसी सरल कहानियों के कथनों द्वारा उनके आसान बनाने की सुविधा है। हालांकि यह कहानियों की महानता को साबित करता है। बड़े पैमाने पर एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक आदान-प्रदान मूल कहानी के कुछ हिस्सों को बाधित करता है। इसलिए, हालांकि संस्कृत और तिब्बती जातक कहानियों ने पाली परंपरा के मूल ग्रंथों को यथासंभव बनाए रखने की कोशिश की है, फारसी या अन्य भाषाओं में कई संशोधन पाए जाते हैं।[4]

आधुनिक रूप में, ई.बी. कोवेल जैसे कुछ अंग्रेजी लेखकों ने उनका अंग्रेजी में अनुवाद किया जो लगभग 1895 से 1907 में कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा छह खंडों में प्रकाशित किया गया। कहानियों के कुछ हिस्सों वाली छोटी किताबें दुनिया भर में बेची जाती हैं। सरल रूप से परिभाषित, एक जातक कहानी बुद्ध के पिछले जीवन में एक प्रकरण से संबंधित है। आमतौर पर यह बुद्ध ही होते हैं जो अपने पिछले जीवन की कहानी सुनाते हैं, ताकि किसी ऐसी स्थिति या चरित्र के बारे में कुछ स्पष्ट किया जा सके जिसका उन्होंने या उनके अनुयायियों ने सामना किया है। कहानी में हमेशा एक चरित्र होता है जिसे बुद्ध के रूप में पहचाना जाता है। यह अक्सर नायक होता है। कई कहानियाँ सामान्य बौद्ध नैतिक आदर्शों को दर्शाती हैं, जिनमें ईमानदारी, ज्ञान, दया, उदारता और वैराग्य शामिल हैं। क्योंकि समझा जाता है कि उन्हें बुद्ध ने कहा था, जातक कहानियां हमें दिखाती हैं कि कैसे बौद्ध बुद्ध को उनके पिछले जीवन की महान अंतर्दृष्टि और स्मृति के रूप में देखते हैं। पिछले जन्मों की स्मृति को ऐसी चीज के रूप में देखा जाता है जो गहन ध्यान से संभव होती है। एक महान दूरदर्शी होने के साथ-साथ बुद्ध को सर्वोत्तम संभव कहानीकार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कई कहानियों में भारत के के विभिन्न क्षेत्रों के साथ विदेशों में भी प्रचलित (बाइबल और ईसप की दंतकथाओं सहित) अन्य कहानी संग्रहों में समानताएं हैं। शैली का एक उद्देश्य यह घोषित करना है कि बुद्ध सभी ज्ञात कहानियों का स्रोत थे। बुद्ध को किसी भी उलझन भरी स्थिति की व्याख्या करने के लिए सबसे अच्छी कहानी चुनने में सक्षम होने के रूप में भी दिखाया गया है। उदाहरण के लिए, वह कर्म के कार्यों को प्रदर्शित करने के लिए पिछले जीवन की कहानी बता सकता है, जैसे कि अतीत में एक क्रिया का परिणाम वर्तमान के अनुभव में होता है। उदाहरण के लिए, बुद्ध ने अपने पिछले जन्मों में पवित्र पुरुषों के सम्मान के कारण उन्हें अपने अंतिम जीवन में सम्मानित किया। अन्य कहानियों को यह दिखाने के लिए कहा जाता है कि पात्र कैसे हो सकते हैं, उदाहरण के लिए बहुत सारी कहानियाँ बुद्ध और उनके चचेरे भाई के बीच जन्म-जन्मांतर की प्रतिद्वंद्विता के बारे में बताती हैं, जिन्होंने बुद्ध को उनके अंतिम जीवन सहित कई जन्मों में मारने की कोशिश की।[5]

समग्र रूप में कहानियों को अक्सर यह दिखाने के रूप में समझा जाता है कि बुद्ध कैसे बुद्ध बन गए, पिछले कई जन्मों में बहुत सारे गुणों का अभ्यास करके। इन गुणों की सूची समय के साथ संकलित की गई थी, और कहानियों को अक्सर उनमें से एक या अधिक को प्रदर्शित करने के रूप में पढ़ा जाता था। बुद्धत्व का लंबा रास्ता बोधिसत्व या बोधिसत्व पथ के रूप में जाना जाता है। कुछ कहानियाँ अनुकरणीय हैं, और अनुयायियों को बुद्ध की तरह व्यवहार करने की कोशिश करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। अन्य लोग पिछले जन्मों में भी बुद्ध की अद्भुत महानता का प्रदर्शन करते हैं, ताकि प्रशंसा और के भाव उत्पन्न हो सके।

महायान बौद्ध धर्म में यह विचार विकसित हुआ कि सभी बौद्धों को बोधिसत्व बनने और कई जन्मों तक बुद्धत्व के लिए प्रयास करने की आवश्यकता है। तब जातकों ने बुद्धत्व के मार्ग के नक्शे के रूप में एक नया अर्थ ग्रहण किया। महायान बौद्ध धर्म में आत्म-बलिदान या शारीरिक उपहार देने की कहानियां विशेष रूप से लोकप्रिय हुईं। जातक कथाओं का प्रयोग अभी भी उपदेशों और धार्मिक शिक्षाओं में किया जाता है। उन्हें पूरे बौद्ध जगत में, मंदिरों में भी चित्रित किया गया है। वे बौद्ध त्योहारों (जैसे वेसाक) और अनुष्ठानों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे बौद्ध देशों, विशेष रूप से दक्षिण पूर्व एशिया की साहित्यिक और सांस्कृतिक विरासत का एक महत्वपूर्ण हिस्सा भी हैं, जहां, उदाहरण के लिए, उन्हें विभिन्न काव्य रूपों में ओपेरा के रूप में मंचित किया गया है।[6]

जातक - गुणों के बारे में कहानियां

जातक बौद्ध कला और साहित्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। वे बुद्ध (प्रबुद्ध व्यक्ति) के पिछले अस्तित्व या जन्म का वर्णन करते जब वे मानव और गैर-मानव दोनों रूपों में बोधिसत्व (ऐसे प्राणी जो अभी तक ज्ञान या मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाए हैं) के रूप में प्रकट हुए थे। ये कहानियाँ हमें बताती हैं कि कैसे विभिन्न सिद्धियों या दिव्य गुणों (जिन्हें आमतौर पर पारमिता कहा जाता है) का अभ्यास करना ज्ञान (मोक्ष) या संसार से मुक्ति, पुनर्जन्म के अंतहीन चक्र को प्राप्त करने के लिए बौद्ध दृष्टिकोण की कुंजी है।

जातक नामक साहित्यिक पाठ में 500 से अधिक कहानियां हैं और पाली की प्राचीन भारतीय भाषा में लिखे गए पंद्रह ग्रंथों की दसवीं पुस्तक का हिस्सा है जिसमें सुत्त पिटक शामिल है। सुतपिटक बौद्ध धर्म के हीनयान संप्रदाय का सैद्धांतिक पक्ष वर्णित करता है जो शाक्यमुनि के जीवन पर आधारित है। कुछ जातक कथाओं का पता करिया पिटक, बुद्धवंश और पाली साहित्य के अन्य भागों से भी लगाया जा सकता है।[7]

कहानी से "जातक" तक

यद्यपि यह संदेह से परे है कि जातक सामग्री का एक बड़ा हिस्सा बौद्ध धर्म के लिए विशिष्ट है, इन कहानियों में लोककथाओं का एक बेजोड़ संग्रह है जो संभवत: बौद्ध समुदायों के बाहर प्रसारित होता है। बड़ी संख्या में जातक मूल रूप से प्राचीन भारतीय कहानी या कथा परंपराओं से संबंधित थे जो समृद्ध और विविध दोनों थे। कहानियों, दंतकथाओं, उपाख्यानों और परियों की कहानियों को बताना एक पसंदीदा तरीका है जिसके द्वारा विश्व धर्मों के नेता अधिक अनुयायियों की तलाश करते हैं और अपने विश्वासों के लिए लोकप्रियता बढ़ाते हैं। जातकों में लोक या लोकप्रिय घटकों को शामिल करने से अंतत: उन्हें

कथात्मक तत्वों के माध्यम से बड़े दर्शकों तक पहुंचने में सक्षम बनाया गया, जिन्हें लोग आसानी से पहचान सकते थे। कुछ मामलों में, एक सांसारिक या मनमानी कहानी, जो मूल रूप से बौद्ध विचारों से असंबंधित थी, को "बौद्धिक" किया गया और एक जातक कहानी में बदल दिया गया।[8]

कला में जातक

मौखिक और साहित्यिक रूपों के अलावा, जातक कला के माध्यम से आमजन और भिक्षुओं तक पहुंचे, जो व्यापक जनता के लिए बौद्ध सिद्धांतों और दर्शन को संप्रेषित करने में एक शक्तिशाली माध्यम साबित हुआ। जातक अक्सर बौद्ध स्तूपों और गुफाओं में मूर्तिकला रेलिंग या चित्रों में पाए जाते हैं। इसलिए, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि अब भरहुत, सांची, अमरावती, अजंता और नागार्जुनकोंडा में कई बौद्ध स्थलों की लोकप्रियता में भी जातक चित्रण प्रभावशाली हैं। कलाकारों ने जातक कहानियों का सार खोए बिना और उन्हें व्यापक दर्शकों के लिए आसानी से समझने योग्य बनाने के लिए सरल और प्रभावी तरीके विकसित किए।

एक जातक कथा जो बौद्ध कला में लोकप्रिय हुई वह है महाकपी जातक। यह जातक वर्णन करता है कि कैसे बोधिसत्व एक महान बंदर के रूप में पैदा हुआ था जो बंदरों के एक बड़े दल के बीच एक सुंदर हिमालयी जंगल में रहता था। कहानी के अनुसार, गंगा नदी के किनारे एक विशाल बरगद के पेड़ में दिव्य सुगंध और स्वाद के फल लगे थे। हालांकि महान बंदर (बोधिसत्व) और उनकी सेना ने यह देखने के लिए अत्यधिक सावधानी बरती कि कोई फल न बढ़े और न ही गंगा की ओर फैली शाखा से गिरे, एक पका हुआ फल नदी में गिर गया और एक मछुआरे के जाल में फंस गयां। मछुआरों ने बनारस के राजा को फल दिखाया। राजा अपने अनुचर के साथ पेड़ के पास गया और बंदरों को फल खाते देखा। क्रोधित होकर उसने अपने धनुर्धारियों को उन्हें मारने का आदेश दिया। भयभीत वानर बोधिसत्व के पास पहुंचे, जिन्होंने उन्हें सांत्वना दी और कहा कि वे चिंता न करें। उसने नदी के दूसरे पेड़ के बीच एक बांस का पुल बनाने की कोशिश की। लेकिन किसी तरह बांस की टहनी पुल बनाने के लिए आवश्यक लंबाई से कम हो गई। यह महसूस करते हुए, बोधिसत्व ने अंत में खुद को बढ़ाया, ताकि उसका झुंड सुरक्षित रूप से उसकी पीठ के ऊपर से गुजर सके। बोधिसत्व की पीठ पर चलते हुए बंदर भाग निकले। जैसा कि महाकपी जातक बताते हैं, राजा देखकर भाव-विहल हो गया था कि कैसे बोधिसत्व ने अपने अनुचर की सुरक्षा के लिए अपने जीवन को खतरे में डाल दिया। राजा ने अपने सेवकों को बोधिसत्व को सुरक्षित रूप से नीचे लाने का आदेश दिया।[9]

इस जातक का एक आश्चर्यजनक प्रतिनिधित्व भरहुत (वर्तमान मध्य प्रदेश, भारत के राज्य में एक महत्वपूर्ण बौद्ध स्थल) में एक पदक में पाया जाता है। हम इस एक पदक में कहानी के कई क्षण देखते हैं। मछली से भरी एक बहती नदी द्वारा दृश्य को दो भागों में विभाजित किया गया है। नदी के किनारे दो पेड़ हैं: एक दाहिनी ओर बंदरों का निवास है, और दूसरा, बाईं ओर छोटा वह पेड़ है जिससे वे बच जाते हैं। इन पेड़ों के बीच में महान बंदर (बोधिसत्व) ने बांस के तने के एक सिरे को बाईं ओर के पेड़ के शीर्ष पर और दूसरे छोर को अपने दाहिने पैर के टखने तक बांधा है। वह पुल बनाने के लिए दाहिनी ओर पेड़ की दो छोटी ऊपरी शाखाओं से चिपक जाता है।

कलाकार बंदरों को इस दृश्य में पेड़ों के बीच सक्रिय रूप से चलते हुए चित्रित करते हैं। बड़े बरगद की शाखाओं के बीच कई बंदर चढ़ते हैं, एक बंदर बोधिसत्व की पीठ पर छलांग लगाते हुए दिखाई देता है, और दो भाग्यशाली बंदर सुरक्षित रूप से दूर तक पहुंच गए हैं। . नीचे हम कहानी के अगले पल को देखते हैं जिसमें दो आदमी एक कपड़े को एक सुरक्षा जाल के रूप में पकड़े हुए हैं, जब वह पेड़ से नीचे कूदता है तो उसे पकड़ने के लिए। तल पर अंतिम दृश्य में, बोधिसत्व और राजा एक दूसरे के सामने बैठते हैं, क्योंकि बोधिसत्व सेना को बचाने के लिए अपने नाटकीय करतब के दौरान हुए घावों से मरने से पहले बौद्ध कानून में राजा को निर्देश देता है। कहानी हमें बताती है कि राजा ने तब महान बंदर को शाही अंतिम संस्कार के साथ सम्मानित किया।[10]

महाकापी जातक का एक और चित्रण भारत के मध्य प्रदेश में भी, सांची में महान स्तूप के पश्चिमी प्रवेश द्वार पर दिखाई देता है। सबसे नीचे दिखाया गया पहला दृश्य बनारस के राजा के आगमन को दर्शाता है, जो सैनिकों के साथ घोड़े पर सवार था। राजा को उसके सिर पर एक छत्र के साथ दिखाया जाता है, जो उसकी शाही स्थिति को दर्शाता है। एक विशेषता जो उत्सुकता जगाती है वह है राजा के साथ आने वाले संगीतकारों का चित्रण - शायद राजा की शाही स्थिति को बढ़ाने के लिए, यह सुझाव देते हुए कि वह परिचारकों और संगीत संगत के साथ यात्रा करता है। राजा के दायीं ओर एक धनुर्धर धनुष और बाण के साथ बोधिसत्व (महान बंदर) को निशाना बनाता हुआ दिखाई देता है।

भरहुत की तरह, सांची के कलाकार बोधिसत्व को उस पुल के रूप में दिखाते हैं जिसके द्वारा बंदर जंगल में बाकी सैनिकों में शामिल होने के लिए भाग जाते हैं। नदी के बाईं ओर दो आदमी, संभवत: राजा के आदेश का पालन करते हुए, महान बंदर के नीचे एक चादर पकड़े हुए दिखाई देते हैं। सांची पैनल में दर्शाए गए दृश्य समय या कारण और प्रभाव के माध्यम से आदेश का कोई संकेत नहीं देते हैं। इस चित्रण की जटिलता इतनी अधिक है कि इस कहानी से अच्छी तरह वाकिफ एक दर्शक को भी पैनल की बारीकी से जांच करनी चाहिए, जैसा कि कला इतिहासकार विद्या देहजिया इसे सटीक रूप से "पढ़ने" के लिए कहते हैं। जाहिर है, कलाकार ने इसे जातक कहानियों से परिचित वाले दर्शकों के लिए बनाया था।[11]

बोधिसत्व के कई अन्य पुण्य कर्म और बलिदान जो जातकों को बौद्ध समुदाय या संघ के बीच बेहद लोकप्रिय बनाते हैं, उन्हें चड्डंत, विश्वांतर, विधुर पंडित, रुरु, महाजनक और हंस जातक जैसी कहानियों में शामिल किया गया है। जातकों को मध्य एशिया, अफगानिस्तान, चीन, जापान और श्रीलंका में चित्रित किया गया, जिससे भारतीय उपमहाद्वीप से परे क्षेत्रों में बौद्ध कला और साहित्य पर एक अमिट छाप छोड़ी गई और वह बौद्ध परंपरा का एक अविभाज्य हिस्सा बन गया।

निष्कर्ष

यह तथ्य कि जातकों ने प्राचीन भारत की अधिकांश समझ को प्रभावित किया है, न केवल साहित्य में परिलक्षित होता है, बल्कि उस काल से ली गई कलात्मक संरचनाओं, समारोहों आदि में भी समान रूप से स्पष्ट होता है। सबसे महत्वपूर्ण में से एक बोरोबुदुर मंदिर है। एक महत्वपूर्ण संरचना मनकियाला

स्तूप है, जो अब उत्तरी पाकिस्तान में है। जातक इस स्थान पर एक बाघ को खिलाने के लिए खुद को बलिदान करने के लिए बुद्ध के अवतारों में से एक को दर्शाते हैं। तपस्वी एकश्रृंग, मंगलुरा, हड्डा पर्वत और सर्वदत्तन में किए गए समान बलिदानों की कहानियां हैं। इनमें से अधिकतर स्थान पाकिस्तान में हैं।

जातकों को थिएटर कलाकारों और नर्तकियों के बीच भी लोकप्रियता मिली थी। कुछ प्रसिद्ध किस्से जो तुलनात्मक रूप से लंबे थे, उन्हें कई नृत्य प्रदर्शनों, नाटकों और पाठों के माध्यम से अपनाया गया। इनमें द ट्वेल्व सिस्टर्स, वेस्संतर जातक आदि शामिल हैं। ये आज तक के समारोहों में किए जाते हैं और कुछ बौद्ध प्रमुख देशों जैसे कंबोडिया, थाईलैंड, श्रीलंका, म्यांमार और लाओस में छुट्टियों के साथ भी जुड़े हुए हैं।

संदर्भ

1. विद्या देहजिया, प्रारंभिक बौद्ध कला में प्रवचन: भारत की दृश्य कथाएँ, दिल्ली: मुंशीराम मनोहरलाल, 1997, पृ.74।
2. "शुरुआती बौद्ध कला में दृश्य वर्णन के तरीकों पर," द आर्ट बुलेटिन, वॉल्यूम 72, 3 (सितंबर, 1990), पृ. 374-392।
3. जातकमाला या गारलैंड ऑफ बर्थ-स्टोरीज ऑफ आर्यासुर, द्वारा अनुवादित। जे.एस. स्पीयर, पहला लंदन संस्करण, 1895; पुनर्मुद्रण, दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1982, पृ.46।
4. जातक या बुद्ध के पूर्व जन्मों की कहानियां, विभिन्न हाथों से अनुवादित, ईडी. ई.बी. कॉवेल, 6 खंड, दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 2005, पृ. 59।
5. जॉन मार्शल, ए गाइड टू सांची, नई दिल्ली: न्यू सोसाइटी, 1990, पृ. 126।
6. एस.सी. सरकार, जातकों और अवदानों पर एक अध्ययन: महत्वपूर्ण और तुलनात्मक, पीटी. 1 कलकत्ता: सारस्वत पुस्तकालय, 1981, पृ. 61।
7. सुजातो, भांते (2012), संप्रदाय और संप्रदायवाद: बौद्ध स्कूलों की उत्पत्ति, शांतिपाड़ा, पी. 51
8. वार्डर, ए.के., भारतीय बौद्ध धर्म, 2000. पृ. 286-287
9. बी वार्डर, ए.के. भारतीय बौद्ध धर्म, 2000. पृ. 332-333
10. किंवटानिला, सोन्या राई (2007), मथुरा में प्रारंभिक पाषाण मूर्तिकला का इतिहास, 150 ईसा पूर्व - 100 सीई. ब्रिल, पी. 226.
11. विंटरनिट्ज स., सिल्वेन लेवी, ह्यूबर, गुष्टस्पशाह के.: संस्कृत बौद्ध धर्म का साहित्यिक इतिहास मोतीलाल बनारसीदास पब्लिक, 1972 पी. 44

गजलकार जहीर कुरेशी: व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रा० डॉ० संगिता उप्पे

हिंदी विभाग प्रमुख ग्रामीण महाविद्यालय, घोणसी ता. जलकोट, जिला लातूर

प्रस्तावना

मनुष्य व्यक्तित्व का उसके जीवन का अभिन्न अंग है। जिसके अंतरंगश् और श्बहिरंगश् दो पक्ष होते है। किसी एक पक्ष का अध्ययन दूसरे पक्ष के अध्ययन के अभाव अधूरा रह जाता है। अत: किसी व्यक्ति के जीवन को पूर्ण समझने के लिए आवश्यक है कि, उसके व्यक्तित्व की परख को सूक्ष्मता से जाँचा एवं परखा जाए। कलाकार के व्यक्तित्व की परख उसके जन्म विवरण के माध्यम से करना असंगत है। इसके लिए हमें उसके व्यक्तिगत रूचियों, आदतों, प्रतिक्रियाओं, परिवेश, और सृजन का सहारा लेना पड़ता है।

इसके अतिरिक्त कलाकार के जीवन की विचित्र अवस्थाएँ और उसके मूल में कार्य कर रही शक्तियों की पहचान करने के लिए व्यक्ति को उसकी आन्तरिक संवेदना को छूना आवश्यक हो जाता है। इसके बाद ही हम कलाकार के व्यक्तित्व का सही विश्लेषण कर सकते हैं। और उनकी आदतों रूचियों और प्रतिक्रियाओं का सही निर्णयात्मक हल ढूँढ़ सकते हैं। जहीर कुरेशी के व्यक्तित्व का विश्लेषण करने पर उसमें अनेक विरोधी धाराएँ स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है।

अ. जहीर कुरेशी का जीवन परिचय- जहीर कुरेशी एक आज के नये जमाने के मशहूर गजलकार है। उनकी गजलों में आज के युग का सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक रुप यर्थाथ प्रतीत होता है। जहीर कुरेशी अस्सी के दशक में उभरकर आने वाले सबसे प्रभावी हिन्दी के गजलकार माने जाते है। सत्तर के दशक मे दुष्यंत कुमार ने 'साए में धूप' गजल संग्रह लिखकर हिन्दी गजल को नई दिशा दी उसी का सुखद परिणाम जहीर कुरेशी जैसे मेधावी रचनाकारों का आगमन है। जहीर कुरेशी जी का व्यक्तिमत्व सर्वसामान्य आम लोगों जैसा हैं। वे हसमुख मेहेनती, शांत और संकोची स्वभाव के व्यक्ति है। हर किसी को मदत करना और खुद किसी से मदत नही लेना 'जहीर कुरेशी' के स्वभाव का एक गुण है। अपनी मेहनत, लगन और गजलों में बेपनाह रूची के करन ही 'जहीर कुरेशी' एक प्रसिद्ध गजलकार के रूप में उभर कर आए है। जहीर कुरेशी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में हमने निम्न प्रकार से अध्ययन किया है।

1. जन्म- जहीर कुरेशी का जन्म 5 अगस्त, 1950 को मध्यप्रदेश प्रांत के अशोकनगर जिले के 'चन्देरी' नामक कस्बे में हुआ। यूँ तो जरी की नायाब साड़ियों के लिए चन्देरी शहाजहाँ के युग से मशहूर है। लेकिन चन्देरी साड़ी के दस्तकार आज भी साड़ी बुनवाने वाले सेठों के शोषण का शिकार है। जहीर कुरेशी के जन्म के समय चन्देरी की जो दशा थी, आज चन्देरी उससे बीस पच्चीस कदम भी आगे बढ़ी होगी। आज भी चन्देरी रेल्वे स्टेशन से 40 कि.मी. दूर है। चन्देरी का निकटवर्ति रेल्वे स्टेशन मुंगावली या ललितपुर है। चन्देरी साड़ी व्यापारी के लिए व्यापारी को बस द्वारा पहले ललितपुर रेल्वे स्टेशन पहुंचना पड़ता है। उसके बाद ही साड़ियाँ देश के किसी भी महानगर का सफर तय कर सकती है।

2. परिवार- जहीर कुरेशी के पिता का नाम श्शेख नजीर मोहम्मद कुरेशी था वे उस समय कस्टम में नाकेदार थे। शेख नजीर धर्म का सख्ती से पालन करने वाले मुस्लिम व्यक्ति थे। उनकी कुछ रुचि शायरी में भी थी लेकिन एक हद तक। जहीर कुरेशी की माता का नाम श्रीमती 'मासूमा' बेगम है। जो कम पढ़ी-लिखी लेकिन बुद्धि से कुशाग्र थी। जहीर के पिता का कँसर से पीड़ित रहने के कारण निधन हुआ। उस समय 'जहीर कुरेशी' केवल छह वर्ष के थे। और श्रीमती मासुमा बेगम की आयु केवल 33 वर्ष थी। आज भी श्रीमती 'मासुमा' बेगम जीवित है और उनकी आयु 87 वर्ष है। जहीर कुरेशी अपने तीन भाई-बहनों में सबसे छोटे है। पिता के निधन के बाद सबसे बड़े भाई 'बशीर मोहम्मद कुरेशी' और माता मासुमा बेगम ने परिवार को संकट से उबारने के लिए कमर कसी। बशीर मिडिल पास करके शिक्षक हो गए बाद में उन्होंने बी.ए.बी.एड. कर लिया और सेवानिवृत्त होने के आठ साल पहले उच्च श्रेणी शिक्षक पद प्राप्त किया। बशीर से छोटे और 'जहीर कुरेशी' से बड़े भाई 'कदीर मोहम्मद कुरेशी' अपने स्वाध्याय और प्रतिभा के बल पर निम्न श्रेणी शिक्षक से छलाँग लगाकर एम.पी.ए.एस. में चयनित हुए। सेवा निवृत्त होते समय 'कदीर मोहम्मद कुरेशी' अतिरिक्त निदेशक (वित्त एवं लेखा) जैसे बड़े पद पर थे। जहीर कुरेशी की एकमात्र बहन श्रीमती 'खातून बेगम' विवाह के लगभग 20 वर्ष बाद 'मेनेन जाइटिस' बिमारी से ईश्वर को प्यारी हुई।

3. नाम और उपनाम- साहित्य के क्षेत्र में रचनाकार के नाम के साथ 'उपनाम' पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। हिंदी के चर्चित लेखकों ने अपने नाम के साथ-साथ 'उपनाम' जोड़कर रचनाएँ लिखी है। जैसे- 'प्रेमधन', 'निराला', 'आँचल', 'नीरज' आदि रचनाकार है। इस विषय में 'जहीर कुरेशी' को कोई विशेष रुचि तो नही पर समय की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए बड़े भाई 'कादीर कुरेशी' ने जहीर को जहीर कुरेशी 'शाद' बना दिया। लेकिन आगे 1967 में श्रीमती लक्ष्मी नारायण 'शोगण' ने जहीर को हिन्दी का कवि मानते हुए उपनाम 'मंयक' दिया। इस प्रकार 1967 में जहीर कुरेशी 'शाद' से जहीर कुरेशी 'मंयक हो गए। लेकिन जहीर कुरेशी दोनों ही उपनामों से संतुष्ट नही थे। अत: उन्होंने तय किया कि उपनामों का बंधन तोड़ कर, जहीर कुरेशी ही बने रहेंगे। 1969 के बाद जहीर कुरेशी का जो भी साहित्य प्रकाशित हुआ है, वह 'जहीर कुरेशी' नाम से ही हुआ है।

4. जाति, धर्म तथा वंश- मेरा मानना है कि, जो प्राणी शारीरिक दृष्टि से एक जैसा या समान होता है, वह एक ही जाति का होता है। जैसे घोड़ा, बैल, पर इंसान अपने आपको अलग-अलग जाति धर्म में बाँट लिया है, इस तरह से 'जहीर कुरेशी' जात से मुस्लिम थे वह भी 'सुन्नी' और वह 'इस्लाम धर्म को मानने वाले थे। धर्म का मतलब जीवन जीनेका तरीका यह हमारा मालिक हमारा निर्माता हमकों बताता है। के आपको जीवन कैसा जीलाते मालिक बताए हुए तरीके पर चलना याने धर्म का पालन करना है। हम सब का मालिक एक है। तो वह मालिक जीवन जीने की पद्धत भी एक ही बताई होगी पर हम अपने मन के अनुसार अपने-अपने धर्म बता लिए और उसके अनुसार अपना मनमानी जीवन जीने लगे। खैर छोड़िए जहीर खुरेशी का धर्म 'इस्लाम' है। जहीर कुरेशी मुस्लिम संप्रदाय में प्रचलित 'सिया' और 'सुन्नी' संप्रदाय में से 'सुन्नी' मुसलमान है। उनके पिता शेख थे। उनके परिवार की शादियाँ सैयद, काजी, मुगल, पठाण जातियों में हुई है। जहीर कुरेशी के वंश पर थोड़ी सी नजर डालने के उपरान्त उनका वंशवृक्ष कुछ इसप्रकार नजर आता है। जहीर के पिता शेख नजीर मोहम्मद कुरेशी अपने तीन भाईयों में सबसे छोटे थे। नजीर से बड़े भाई शेख अमीर मोहम्मद थे। शेख अमीर से बड़े भाई 'सुलताना' थे। जहीर के दादा का नाम 'शेख वजीर मोहम्मद' था।

5. बचपन- प्रसिद्ध ब्रिटीश साहित्यकार 'डोरिस लेसिंग के मत से तनावपूर्ण और कष्टपूर्ण बचपण अक्सर लेखक उत्पन्न करता है। क्योंकि ऐसा बचपन बच्चों को प्रत्येक चीज के प्रति जागरुक और निरीक्षक बन जाना सिखाता है, और लेखक बनने के लिए यही चाहिए। जहीर कुरेशी के बचपन कि परिस्थितियाँ ही कारण है, उन्हें एक अच्छा गजलकार लेखक बनाने में क्योंकि जहीर का बचपन काफी संकटो और संघर्षो के बीच गूजरा है।

जन्म से ही बालक जहीर स्वस्थ और सुन्दर थे, लेकिन चार वर्ष की आयु में नियती ने उनके साथ क्रुर खेल खेला, हँसते खेलते जहीर को टाइफाईड बुखार हो गया। बढ़ते-घटते टाइफाइड फीवर में जहीर इक्कीस दिन तक दाहिनी करवट पर पड़े रहे। परिवारवालों को लगता रहा की बच्चे को दाहिनी करवट पर आराम मिल रहा है। लेकिन कम बुखार वाले एक दिन माँ ने बच्चे को पहले की तरह चलने को प्रेरित किया तो बालक जहीर चलते हुए गीर गया। पूरे परिवार के परिक्षण करने पर यह तथ्य सामने आया कि बालक जहीर के दाये पैर को लकवा मार गया है। फलस्वरुप पूरा परिवार घबरा गया और 53 साल पहले बुन्देलखंड के एक पिछड़े गाँव चन्देरी का एक साधन विपन्न परिवार जो घरेलू इलाज करवा सकता था, वह उसने किए लेकिन फिर भी नियती ने हार स्वीकार नहीं की और जहीर कुरेशी को विकलाँग बना दिया।

कहा जाता है कि, मुसीबत कभी अकेली नहीं आती। जहीर की विकलांगकता को नियती का खेल मानकर परिवारवालों ने स्वीकार किया ही था कि, जहीर के पिता को मुँह का कँसर घोषित किया गया। 54 साल पहले मरिज को कँसर घोषित करने का अर्थ था मृत्यु से मुठभेड फिर भी, माँ और बड़े भाई ने हिम्मत नहीं हारी। भारी कर्जा उठा कर एक उम्मीद का दामण थामे हुए पिता को इलाज के लिए बम्बई ले जाया गया। लेकिन बम्बई में रहकर कँसर जैसे मँहगे इलाज को परिवार वहन नही कर पाया माँ और बड़े भाई बम्बई से चन्देरी लौट आए। चन्देरी लौटने के बाद, पिता 4-6 महीने जीवित रहे। अंत में अपने विपन्न परिवार को मँझधार में छोड़कर ईश्वर को प्यारे हो गए। उस समय जहीर की आयु केवल छह वर्ष की थी।

पिता के अवसान के बाद परिवार पर संकट का पहाड़ टूट पड़ा। उस समय सबसे बड़े भाई बशीर की आयु 18 वर्ष थी और शिक्षा मिडिल पास। 18 वर्ष की आयु तक किसी भी प्रकार की शासकीय नौकरी की संभावना नही थी। फलस्वरुप डेढ़ वर्ष परिवार का पेट मेहनत मजदूरी पर ही चलता रहा। विधवा माँ और अग्रज बशीर ने चट्टानी सहारे का परिचय दिया। गरिबी की हालात में भी माँ और अग्रेज ने 'जहीर और 'कदीर का स्कूल नहीं छूटने दिया। कुछ समय बाद अग्रज बशीर निम्न श्रेणी शिक्षक बन गए। फिर भी विपन्नता की मार और विकलांगता की चुनौती का सामना करते हुए जहीर बचपन की शरारतों और खेल कुद से दूर होते चले गए। खेल कूद से दूर रहने के लिए पढ़ने लिखने में मन लगाने के सिवाय कोई चारा नहीं था। संभवत: यही वह कारण था जिसने कुशाग्र जहीर को पढ़ाई की ओर आकृष्ट किया 15 वर्ष की आय तक तो जहीर उर्द शायरी, प्रेमचंद और शरदचन्द्र जी का बहुत सा साहित्य पढ़ चुके थे। कुशाग्र बुद्धि और स्वाभिमान ने साहित्य की ओर आकृष्ट विकलांग जहीर कुरेशी को हिम्मत दे दी, अनेक विषम परिस्थितियों के बावजूद बालक जहीर को लगता रहा कि वह कोई विशेष कार्य करने के लिए संसार में आया है।

6. शिक्षा-दीक्षा- जहीर कुरेशी की शिक्षा का आरंभ घर पर ही हुआ उनकी माँ श्रीमती 'मासुमा बेगम' ने शुरुवाती तौर पर अरबी, उर्दू और हिन्दी का घर पर ही अक्षर-ज्ञान देना आरंभ किया। पाच वर्ष की आयु में हिन्दी की विधिवत शिक्षा के लिए जहीर प्राथमिक पाठशाला चंदेरी में भर्ती करा दिए गए। जहीर की स्मरण शक्ति बहुत ही तीक्ष्ण थी। लंबी-लंबी कहानियाँ और कविताएँ जहीर को शब्दश: याद रहती थी। समय पर कक्षा में पहुँचकर अग्रीम पंक्ति में बैठना और गणित के कठीण सवालों को चुटकी में हल करना जहीर के बाए हाथ का खेल था। शीघ्र ही यह स्वीकार किया गया कि जहीर विद्यालय का सबसे कुशाग्र छात्र है। शालेय शिक्षा के अलावा कविता, पाठ, वाद-विवाद प्रतियोगिता आदि में भी जहीर अव्वल था। उस समय चंदेरी कस्बा अवाक रह गया। जब मिडिल परिक्षा में सभी विषयों में विशेष योग्यता सहित जहीर ने गना जिले के हजारों परिक्षार्थियों में सर्व प्रथम स्थान प्राप्त किया। म.प्र.बोर्ड की मैट्रिक (दसवीं) परीक्षा में भी जहीर ने 75% से अधिक अंक प्राप्त किए। बोर्ड ऑफ सेकण्ड्री एज्यूकेशन की हाय्यर सेकण्ड्री परीक्षा में जहीर 73% अंको से उत्तीर्ण हुए। उस समय तक जहीर का डॉक्टर बनने का लक्ष्य बन चुका था।

अगले वर्ष म.प्र. में इण्टर बोर्ड घोषित किया गया। यानी लगातार तिसरे साल भी म.प्र. बोर्ड की परीक्षा इण्टर बोर्ड के अंको के आधार पर ही 1969 में छात्रो को डॉक्टरी में चयन होना था। लेकिन नियती को तो कुछ और ही स्वीकार था। वर्ष भर जहीर कुरेशी ने अपना अभीष्ट प्रोफेशन (डॉक्टरी) में चयन के लिए जम कर मेहनत की परीक्षाएँ आरंभ हुई। कार्यक्रम के अंत में जुलॉजी (प्रथम) और दूसरे दिन जुलॉजी (द्वितीय) प्रश्नपत्र होकर परीक्षाओं का समापन होना था। जहीर के सभी प्रश्नपत्र मनोकुल जा रहे थे। जहीर परीक्षा के लगभग अंत में जुलॉजी (प्रथम) का प्रश्नपत्र देने परीक्षा हॉल में पहुँचे, प्रश्नपत्र देते उन्हें बुखार चढ़ने लगा। तीन घंटे के प्रश्नपत्र के अंतिम प्रहर में जहीर को बुखार 103 डिग्री का था प्रश्नपत्र देते देते जहीर परिक्षा हॉल में अचेत होकर गीर पड़े। उसके बाद जहीर को होश नही रहा। बुखार 104 तक पहुँचा, अगले दिन जूलॉजी (द्वितीय) का प्रश्नपत्र था। जिन्दगी और मौत के बीच झुलते जहीर चाह कर भी जुलॉजी (द्वितीय) का प्रश्नपत्र न दे सके। इण्टर की परीक्षाएँ समाप्त हो गई। परीक्षाओं के बाद जहीर कुरेशी डिप्रेशन में चले गए उन्होंने मित्रों से मिलना जुलना कम कर दिया। स्थानीय उत्सवों (जैसे-उर्स, मिला, दुन्नवी उत्सव) आदि में भी उनकी भागीदारी न्यून हो गइ। डॉक्टर बनने के सपने देखने

वाला नवयुवक इण्टर में फेल होने के भय से जुझने लगा। समाचार पत्रो में इन्टर मिजिएट का रिजल्ट आया तो फिर उलट पुलट। जहीर का हितचिंतक सहपाठी फुलचंद साहु दौड़ता हुआ घर पर आया और जोर से चिल्लाने लगा जहीर का रोल नंबर फस्ट डिविजन में है। जहीर को विश्वास नही हुआ। अधिकतम लोगों को विश्वास नहीं हो रहा था। बड़े भाई कदीर वाचनालय गए और खबर लेकर आए। हाँ जहीर फस्ट डिविजन में पास हुआ है।

इण्टर की अंक सूची की प्रतीक्षा होने लगी एक सप्ताह के अंदर भोपाल से जहीर की अंक सूची आयी। जूलॉजी (प्रथम) में जहीर के 50 में से 38 अंक आए थे जूलॉजी (द्वितीय) में अनुपस्थित रहने के कारण शून्य। जहीर जूलॉजी विषय में उत्तीर्ण मान लिए गए अन्य विषयों में बहुत अच्छे अंक प्राप्त होने के कारण जहीर का कुल प्रतिशत बना 65.7% अंक सूची आते ही एक बार पुन: जहीर का डॉक्टर बनने के स्वप्न साकार होता गया। 15 दिन के अंदर डॉक्टरी प्रवेश का फॉर्म भरा गया। घर से बाहर जाने और खर्च पूरा करने की योजनाएँ बनाई जाने लगी। लेकिन जब समाचार पत्र में डॉक्टरी में चयनित छात्रों के नाम प्रकाशित हुए उनमें जहीर कुरेशी का नाम नदारद था। अदर कास्ट में चयनित अंतिम छात्र का प्रतिशत 62.2% यानी जहीर कुरेशी 5 अंको के अभाव में डॉक्टर बनते रह गए। शायद यह घटना जहीर के लिए दुर्घटना थी लेकिन जहीर की किस्मत में मरीजों की सेवा करना न होकर हिन्दी गजल प्रेमियों की सेवा लिखी होगी उसे कौन टाल सकता है। बाद में जहीर के डॉक्टर बनने की इच्छा को 28 साल बाद पूरा किया उनकी इकलौती सुकन्या डॉ. तबस्सुम कुरेशी ने।

7. विवाह- 10 जनवरी, 1975 को जहीर कुरेशी का विवाह 'राबिया खान' से हुआ इस प्रकार राबिया खान श्रीमती राबिया कुरेशी बनी। राबिया से विवाह का भी मजेदार किस्सा है। जहीर के अग्रज बशीर मोहम्मद कुरेशी मुंगावली में शिक्षक थे। मुंगावली में ही अब्दुल अमीन खॉन व्हेटेनरी फिल्ड असिस्टण्ट के पद पर काम करते थे। बशीर कुरेशी और अब्दुल अमीन खान में गाठी दोस्ती थी अमीम खाँ की सबसे बड़ी सुकन्या राबिया जहीर की भाभी के पास नियमित रुप से सिलाई-बुनाई कढ़ाई सीखने आती थी। एक बार, ग्वालियर से जहीर कुरेशी एक हप्ते के लिए भाई साहबसे मिलने मुंगावली पहुँचे। जहाँ जहीर ने पहली बार राबिया को देखा। इकहरे बदन, गोल चेहरे, तिख्खे नाक नक्श वाली राबिया को देख कर जहीर ने पहली बार किसी लड़की के प्रति गंभीरता पूर्वक आकर्षण महसूस किया। जहीर की भाभी गृहस्थ राबिया की प्रशंसक पहले से ही थी साधारण पढ़ी-लिखी सुन्दर सुडौल राबिया के विषय में जहीर ने जब भाभी से पूछताछ की तो भाभी ने हँसकर पूछा श्राबिया से शादी करोगे?' जहीर ने उत्तर दिया कर लेंगे। प्रत्युत्तर में भाभी ने राबिया के परिवार के विषय में विस्तार से बताया - 5 बहिने और 3 भाई है। बड़ी लड़की है, इसलिए जिन्दगीभर दौड़ते भागते रहोगे। जहीर ने दिठाई से कहा भाग लेंगे। इस तरह से दोनो परिवार में सलाह मशवरा हुआ और दोनो परिवारो की ओर से जहीर के विवाह को सम्मती मिल गई।

8. संतान- जहीर राबिया के विवाह के ठीक एक साल बाद प्रणय की निशाणी बेटे समीर के रुप में संसार में आयी, और समीर के जन्म के ठीक दो साल बाद जहीर को कन्यारत्न हो गया। जिसका नाम बड़े प्यार से 'तबस्सूम' रखा गया। एक आदर्श पिता की जिम्मेदारी का वहन करते हुए जहीर कुरेशी ने अपने बच्चों को उनके रुची के मुताबिक पढ़ाया। इसी कारण जहीर कुरेशी का पुत्र 'समीर आर्किटेक्चर बन गया तो पुत्री 'तबस्सूम' डॉक्टर बन गयी।

9. नौकरी- डॉक्टर हो पाने में असफल हो जाने के बाद जहीर कुरेशी ने भोपाल रह कर बहुत मेहनत से स्नातक की पढ़ाई पूरी की। उसी समय, भारतीय डाक तार विभाग 'समय मान लिपिक' के कुछ पद विज्ञापित हुऐ थे जिनके लिए जहीर ने आवेदन किया था। कुछ ही दिनो बाद अनायास जहीर कुरेशी को 3 माह के प्रशिक्षण का ज्ञापन मिला। जहीर ने बिना एक पल गँवाये, टेलीफोन विभाग, ग्वालियर में 'समय मान लिपिक' पद के लिए, प्रशिक्षण लेना आरंभ कर दिया। 18 दिसंबर, 1971 को मंडल अभियंता फोंस ग्वालियर में 'समय मान लिपिक' के पद पर नियुक्त कर दिए। उस समय तक जहीर की गजले नवगीत, धर्मयुग, सारिका, कादम्बिनी, साप्ताहिक, हिन्दुस्थान जैसी प्रथम श्रेणी की पत्रिकाओं मे छपने लगी थी। नौकरी के समय बचा हुआ समय जहीर साहित्य पठन या साहित्य सृजन में खर्च करते थे। ईश्वर की कृपा से राबिया जैसी समझदार, सहयोगी और गृहस्थ पत्नी के साथ ने जहीर कुरेशी के सृजन को प्रेरणा दी। नौकरी में भी जहीर अपने व्यवस्थित काम करने अपनी प्रामाणिकता के कारण अधिकारीयों के चहेते बने रहे। उन्हें अपने साहित्य सृजन के लिए श्संचार श्रीश् जैसा विरल सम्मान भी प्राप्त हुआ। 'समय मान लिपिक' से 'अनुभाग पर्यवेक्षक', 'अनुभाग पर्यवेक्षक' से 'वरिष्ठ अनुभाग पर्यवेक्षक और वरिष्ठ अनुभाग पर्यवेक्षक के बाद आज जहीर शाखा दूरसंचार प्रशिक्षण केन्द्र, ग्वालियर में प्रशिक्षक के तौर पर कार्यरत है। अपनी 36 साल की विभागीय सेवा में, दुरसंचार विभाग ने समयसमय पर उनकी साहित्यिक उपलब्धियों के लिए भी सम्मानित किया है।

ब. जहीर कुरेशी का व्यतिव- व्यक्तित्व व्यक्ति का भाववाचक शब्द है, जिससे व्यक्ति के गुण, धर्म, कार्य और व्यापार का परिचय मिलता है। व्यक्ति का उसके गुण, धर्म, कार्य और व्यापार के कारण समाज में जो स्वरुप बनता है। यही पूंज्यी भाव और स्वरुप व्यक्तित्व की संज्ञा में आती है। रचनाकार का व्यक्तित्व अपनी रचना के माध्यम से साकार हो कर बोलता है, किन्तु उसके व्यक्तित्व के बहुत से ऐसे पक्ष होते है, जिनका प्रकाशन कृतियों द्वारा नहीं हो पाता। अतरू रचनाकार के जीवन दर्शन को समझने के लिए हमें उसके जीवन क्रम और विशिष्ट घटनाओं पर दृष्टिपात करना आवश्यक हो जाता है। जहीर कुरेशी की कल्पना शीलता पर उनके कस्बे चन्देरी के प्राकृतिक सौन्दर्य का गहरा प्रभाव रहा। चन्देरी के चारों और अवस्थित ऊँचे-ऊँचे पहाड़, उन पर आच्छादित हरोतिमा, चन्देरी के चारों ओर फैले जंगल, झरने, तालाब, मंदिर, मस्जिद आदि प्राकृतिक दृश्यों ने जहीर की यथार्थवादी गजलों को भी अनोख्ने बिम्ब और आकर्षक संकेत प्रदान किए। गाँव से शहर में आ बसने के कारण जहीर के व्यक्तित्व मे एक सर्व ग्राह्य सहजता के दर्शन होते है। उनसे पहली बार मिलने वाला कोई भी व्यक्ति शीघ्र ही उनसे आत्मीयता महसूस करने लगता है। उनसे बात करते हुए आपको कभी यह लगता नही है कि, आप हिन्दी गजल के शीर्षस्थ रचनाकार से बात कर रहे है।

जहीर के पास दूसरों की सहायता करने की उत्कट प्रवृत्ति है। फलस्वरुप उनके यहाँ गजल के विद्वानों से लेकर गजल सीखने की प्रवृत्ति वाले कवियों का तांता लगा रहता है। खास तौर से इतवार या किसी छुट्टी वाले दिन इसे उनके आवास पर साक्षात देखा जा सकता है। मेहमान नवाजी उनके स्वभाव का दूसरा पक्ष संकट में फसे अवांछित मेहमानो को भी घर में पनाह देते हुए लोगों ने जहीर को देखा है पैसा न होते हुए भी, आर्थिक सहायता करणे का स्वभाव कई बार पति-पत्नी के बीच तकरार का कारण बनता है। काव्य गोष्टियों में अलग-अलग कोने में बैठे हुए जहीर कुरेशी मंच पर आते ही जादू जगाने में माहिर है। उनके पास कविसम्मेलनी हाथकण्डे नहीं होते। उनके शेरों की सच्चाई और ताप श्रोता को वाह-वाह कहने पर मजबूर कर देती है। 'सुकवि बैजू कानुनगों'

जहीर की देने की प्रवृत्ति का बखान करते हुए कहते है, ग्वालियर में ऐसा कोई कवि या पत्रकार नहीं है, जिसने जहीर से कोई सहाय्यता न ली हो। जहीर ने निस्पृह होकर लोगों की मदत की। अब वे ही लोग पीछे-पीछे जहीर का उपहास करते है, तो जहीर सब कुछ भूल कर फिर सहायता के लिए खड़े है, तो ऐसे व्यक्ति को आप संत नही कहेंगे तो क्या कहेंगे।'

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि जहीर कुरेशी का व्यक्तित्व निरभिमान, कर्मठता, बाल-सुलभता, मानवता, कुशाग्रता, स्वाभिमान आदि गुणों के कारण और भी निखर पड़ा है।

1. रहने का स्थान- जहीर कुरेशी अभी भी ग्वालियर स्थित समीर कॉटेज नामक घर में रहते है। उन्हें फूलों से पौंधो से बड़ा प्यार है, जो एक कवि होने के कारण स्वाभाविक है। उनके 40 गज के छोटे से प्लॅट में फूलों वाले गमलों के अलावा मोसमी, आम, आमरुद जैसे फलदार वृक्ष भी लगे है, इसी बगीचे के बीच उनका समीर कॉटेज उपस्थित है। जहीर कुरेशी का लिखने का कमरा अलग है। जिसमें पत्र-पत्रिकाओं के कॅरीने से सजे ढेर दिखाई देते है। लिखने की लंबी चौड़ी टेबल पर दायी ओर लॅण्ड लाईन टेलीफोन और मोबाईल रखा रहता है। सामने लिखने के लिए कागज और लाल निली कलम वाली पेन रहती है। आल्पिन, इरेजर्स और फेवी स्टिक उनकी टेबिल के बायी ओर उपस्थित रहती है। जहीर कुरेशी दिन में लिखते है तो कई बार परिवारवालों की परेशानियों को सहते-सहते रात में भी लाईट जलाकर लिखते रहते है। एक गजल के शेर उनके दिमाग में कई दिन तक चलते है। सात शेर पूरे होने के बाद, जहीर इस गजल को लंबित रस देते हैं। उसमें यथोचित काट-छाँट की जाती है। संतुष्ट होने के बाद गजल को फेयर कॉपी में नोट किया जाता है। लेखन के लिए जहीर की कोई पसंदीदा कलम नहीं है फिर भी, अटक-अटक कर चलने वाली कलम को वे नापंसद करते हैं।

2. वेशभूषा- जहीर कुरेशी पहनने को तो पॅण्ट बुश्शर्ट ही पहनते है। इसके साथ-साथ उदास दबे हुऐ रंगो से उन्हें अरुचि है। उनकी बुश्शर्ट प्रायरू चटख रंग की होती है। जो उनके गोरे रंग पर खिलती है। वे प्रतिदिन साफ धुले, प्रेस किए हुए कपड़े पहनते है। एक दिन के अंतर से शेव करते है। सफेद बालों को डाई करते है युवा दिखने में उनकी गहरी रुचि है।

3. रुचियाँ एवं खान-पान- जहीर केवल चाय पीने के शौकीन है। चाय भी गर्म-गर्म पीते है। जहीर कुरेशी माँसाहारी नही है। मजेदार बात यह है कि, उनकी बहु को छोड़कर उनका पूरा परिवार शाकाहारी है। शाकाहार में भी उन्हें चिली-पनीर, भिण्डी, उर्द की दाल सबसे अधिक पंसद है। मिठाई में उन्हें पेड़े सबसे ज्यादा प्रिय है। फलों मे केले उनको अधिक लुभाते है।

4. मित्र-परिवार- जहीर के मित्रों का एक भरा पूरा परिवार है। पूरे देश में गीत-गजल, कहानी, फ्री वर्स पोइट्री लिखने वाले लेखक उनके मित्र है। ग्वालियर में साहित्यकार एवं पत्रकार मित्रों की एक बड़ी संख्या उनका आदर करती है। मीठी ईद पर सैकड़ों साहित्यिक मित्र प्रतिवर्ष उनके घर आकर खाते-पीते मौज मनाते है। ग्वालियर में उनके खास मित्रों में बैजू कानुनगो शकिल ग्वालियरी, पवन करण, और अशोक पाण्डेय के नाम लिए जा सकते है। जिनके साथ आज भी जहीर का मिलना-जुलना, उठना-बैठना, बहस-मुबाहिसे करना है।

5. संगठन- सबको जोड़ने के स्वभाव का सबसे अच्छा उपयोग जहीर कुरेशी ने जनवादी लेखक संघ के सचिव के रुप मे किया है। 1971 में जब जहीर ग्वालियर आए, तब उन्हें ग्वालियर के साहित्यकारों के बीच स्वीकृत होने के लिए अधिक संघर्ष नही करना पड़ा। देश की प्रथम पंक्ति की पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर छपने के कारण नामसे ग्वालियर के साहित्यकार उनकों जानते थे। शीघ्र ही जहीर प्रसिध्द गीतकार मुकुट बिहारी 'सरोज' के संपर्क में आए जो वैचारिक रुप से वाम पंथी थे और जनवादि लेखक संघ ग्वालियर के अध्यक्ष थे। दस बारह मुलाकातों के बाद 'सरोज' ने जहीर को श्जनवादी लेखक संघश् का सचिव नियुक्त कर दिया। सबको जोड़ने के स्वभाव और उत्कृष्ट रचना शीलता के कारण, जहीर ने जनवादी लेखक संघ से अनेक प्रतिभावाली युवा रचनाकारों को जोड़ा। उन्हें प्रतिबद्ध रचनाशीलता से अवगत कराया। उन्हें समझाया कि सच्चा और खरा रचनाकार क्यों लिखता है। श्री मुकुट बिहारी 'सरोज' के अवसान के बाद 'जनवादी लेखक संघ' की बागडौर जहीर के हाथों में है। वे स्थानीय तौर पर 'जनवादी लेखक संघ' के अध्यक्ष है। प्रादेशिक स्तर पर जनवादी लेखक संघ के प्रांतीय संयुक्त सचिव है। राष्ट्रीय स्तर पर जनवादी लेखक संघ की कार्यकारणी के सदस्य है।

क. जहीर कुरेशी का कृतित्व- सामान्य परिवार में जन्म लेने वाला, परिस्थिती से मार खाया हुआ, शारिरीक दृष्टी से विकलांग बालक अपनी जिद, मेहनत और साहित्य के प्रति अपनी आस्था के कारण एक महान गजलकार बन गया। और अपनी गजलों के माध्यम से पूरे देश में मशहूर हो गया। ऐसे चर्चित शायर का कृतित्व निम्न तरह से देखा जा सकता है।मात्रा में कम लेकिन परिणाम की दृष्टी से प्रभावी रचनाकार के रुप में जहीर की ओर देखा जाता है। जहीर ने अपने 35 वर्ष की साहित्य यात्रा में कुल पाँच गजल संग्रह लिखे है। बाद में आगे चलकर 12 गजल संग्रह लिख्खे है। जिनको विस्तृत रुप से निम्न तरह से देखा जा सकता है। "कवित विवेक एक नही मोरे, सत्य कहहू लिखि कागज कोरे यह कहकर गोस्वामी तुलसीदास ने रचनाकारों के सामने एक महान आदर्श प्रस्थापित किया है, उसी आदर्श की अनुभुती डॉ.जहीर कुरेशी में रहनेवाले शायर की है।"

1. लेखनी के स्वप्न- सन 1975 में प्रकाशित 'लेखनी के स्वप्न' प्रस्तुत गजल संग्रह 'जहीर कुरेशी' के साहित्यिक जीवन का पहिला पड़ाव है। "लेखनी के स्वप्न की अधिकाँश गजले रुमानी एटीट्युड की है। लेकिन उन गजलों के रुमान का अर्थ विस्तार उदात्त है।" लेखक के इस कथन से स्पष्ट होता है कि, शायर 'जहीर कुरेशी' ने अपने गजल साहित्य का आरंभ ही सामाजिक विद्रुपताएँ और राजनीतिक समस्याओं पर प्रहार करते हुए किया है। आज के जीवन की औपचारिकता को बताते हुए शायर कहता है।

"पीड़ा व्यक्त न हो जाए, इस भय से
मुख पर फीका हास, लिए फिरते है।"

इसके अलावा भी प्रस्तुत गजल संग्रह में कई भिन्न-भिन्न समस्याओं पर सूक्ष्म अति सूक्ष्म प्रहार करने में शायर सफल हुआ है। इसी कारण इस गजल संग्रह को राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रियता मिलनी शुरु हो गइ।

2. एक टुकड़ा धूप- 'एक टुकड़ा धूप' यह जहीर कुरेशी का दूसरा गजल संग्रह है। उस गजल संग्रह का प्रकाशन सन 1979 में इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली से हुआ है। इसमें 30 नवगीत और 40 गजले संग्रहित है। कवि ने समकालीन परिवेश में आम आदमी की 'समङ् गौते से लड़ाई' और 'लड़ाई से समझौते' तक की दूरी को मापने की बखूबी कोशिश की है। गजलकार के शब्दों में अगर कहना है तो ''इनमें शब्दों ने उस दर्पन का काम किया है, जो आम आदमी को न केवल उसकी शक्ल दिखाने का काम करता है, वरन उसे अपनी मुखाकृति की मूल रेखाओं के प्रति आस्थावान भी बनाता है।'' इस गजल संग्रह में ही जहीर कुरेशी ने पहली बार स्वगीर्य 'दुष्यंत कुमार' को उर्दू सुभाव का गजलकार कहने का दुस्साहस किया है। अपने अनुभवों को बयान करने के लिए जहीर कुरेशी ने गजल को ही माध्यम क्यों बनाया है। इसका उत्तर देते हुए शायर कहता है, "कविता मेरे लिए न तो बुध्दि विलास का साधन रही और न ही कविता को मैंने पेट भरने का काम सौंपा। यह दोनों स्थितियाँ कवि को कविता के प्रति ईमानदार नही रहने दे सकती। कविता मेरी उस तिलमिलाहट की अभिव्यक्ति है, जो वर्तमान जीवन-परिवेश में बिखरी हुई विसंगतियों तथा विद्रुपताओं के कारण मुझमें बूंद-बूंद जमा होती रहती है। इसके साथ प्रस्तुत गजल संग्रह 'एक टुकड़ा धूप' संग्रह में शायर ने नए प्रतीकों और बिम्बों का प्रयोग आम आदमी की जिन्दगी को व्याख्यायित करने के लिए किया है। जैसे -

''अब कठिन हो गई जिन्दगी,
आलापिन हो गई जिन्दगी।''

कालान्तर में इस गजल संग्रह को उत्तर प्रदेश का 'अनुशंशा पुरस्कार' भी प्राप्त हुआ है।

3. चाँदनी का दु:ख- यह गजल संग्रह 1986 में पराग प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसकी 65 गजले वर्तमान जीवन-परिवेश में आज के आम आदमी की व्यथा एवं संघर्ष कथा की संवेदनशील अभिव्यक्तियाँ है। यह गजले जहाँ एक ओर फिरका-परस्ती पर तेज प्रहार करती है, वही मनुष्य के भीतर जो आदमी सत्य की लो थराथरा रही है, उसका भी पूर्ण आभास देती है।

शायर जहीर ने प्रस्तुत गजल संग्रह में समाज की बुरी प्रवृत्तियों पर इतना तिखा प्रहार किया है कि, इस गजल संग्रह को पढ़ते समय कबीर, निराला, मुक्तिबोध, धुमिल जैसे कवियों की याद आती है। आज के समाज में व्यक्ति अत्याधिक बौध्दिक हो गया है। कुछ पाने के लिए कुछ भी करने को तैयार है। ऐसे ही एक महत्वकांक्षी पति का उदाहरण देते हुए शायर कहता है।

"महत्वकाँक्षी पति के इशारे पर,
गई थी कल भी वो साहब के बिस्तर तक।''

इससे स्पष्ट होता कि जहीर की कलम कितनी तेज और तिखी है। अपनी अन्य एक गजल में शायर देश की संसद पर प्रहार करता है और कहता है।

''लोग संसद में विगत चालीस वर्षों से
कर रहे है भुखमारी को हल विवादो में।।''

इसके अलावा भी कई ऐसे शेर है, जिसको पढ़कर लेखक के अभिव्यक्ति कौशल्य का पता चलता है।

4. संमदर ब्याहने आया नहीं है- यह गजल संग्रह सन 1992 में अयन प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में कुल 78 गजले संकलित है। इस चर्चित संग्रह में छद्म आधुनिकता, अंधानुकरण, पक्षधर न्यायप्रणाली और नारी शोषण की यथार्थ अभिव्यक्तियाँ शेरो के रुप में प्रकट हुई है। और आज के मनुष्य की तुच्छताओं और दिखावटी आदर्श को प्रस्तुत कर उनके रुप को पहचानने का आग्रह करता है। शायर के शब्दों में अगर कहा जाए तो "संमदर ब्याहने आया नही है की 78 गजले वर्तमान राजनीतिक छलकपट की बखिया इस कुशलता से उघडती है कि सत्ता के दलालों का असली चेहरा पाठक के सामने बेनकाब हो उठता है।" भ्रष्ट जीवनमूल्य, धार्मिक उन्माद, राजनीतिक छल-कपट, साम्प्रदायिकता, संवेदनहीनता आदि से संपूर्ण समाज गस्त है और वर्तमान पीढ़ि दिशाहीन है। नारी शोषण और अत्याचार चारों ओर व्याप्त है। जहीर प्रस्तुत गजल संग्रह में नारी जीवन की व्यथा को कई शेरों के माध्यम से व्यक्त किया है। जैसे -

"धीरे धीरे वो कुशल नृत्यांगना बन गई।
वक्त ने उस एक औरत को नचाया है बहुत।"

भीड़ में सबसे अलग- यह गजल संग्रह सन 2003 में मेघा बुक्स, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। इसमें कुल 100 गजलें संकलित है। अभिव्यक्ति की नवीनता के कारण, यह गजल-संग्रह वास्तव में देश में आज तक प्रकाशित हिन्दी गजल संग्रहो की भीड़ में सबसे अलग है। यह गजले दिल को छू लेने वाली गजले है। गजलकार का शेर कहने का यही भाषाई रंग उसे, हिन्दी गजल का अत्यंत सशक्त गजलकार घोषित करता है। "भीड़ में सबसे अलग" की गजलों में मानवीय मूल्यों का विघटन, महानगरीय जीवन की विद्रूपताएँ, नारी शोषण एवं अत्याचार, बेईमानी, झूठ और फरेब, संपूर्ण देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, आतंकवाद और अलगाववाद की समस्या आम आदमी की पीड़ा, नैतिक मूल्यों का हास आदि पर उल्लेखनीय शेर कहे गए है।

आज के राजनीति तज्ञ का मूल्य पतन हो गया है। सत्ता की लालच में उन्होंने अपने आप को बेच दिया है। इसलिए अब उनके पास बोलने के लिए कुछ बचा ही नही है। इस बात को लेकर जहीर कुरेशी कहते है। जैसे

''दरबारी लोगों ने अपने स्वाभिमान को बेच दिया,
वो क्या बात करेंगे तन कर खुद्दारी की भाषा में।''

इसके अलावा शायर जहीर कुरेशी की शायरी में और एक खासियत है कि, वे देश वासियों को शान्ति और चौन मिले इसलिए भी प्रयास करते है। इसलिए युद्ध, संघर्ष, द्वंद आदि बाते न हो और दो पक्षों के बीच समझौता हो यही धारणा जहीर कुरेशी की रही है। इसलिए वे कहते है।

"संघर्ष खत्म करने का दो दुश्मनों के पास,
क्या संधी के अलावा भी कोई निदान है।"

6. पेड़ तन कर भी नहीं तूटा- यह गजल संग्रह 2010 में श्अयन प्रकाशनश् महरौली, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस गजल संग्रह में कुल मिलाकर 101 गजलें हैं। इस गजल संग्रह की गजलों में साफगोई, सरलता, समय की पकड़ नजर आती है। इस गजल संग्रह की जहीर कुरेशी की गजलें जीवंत और अर्थवान है।

"ये विफलता हमारी रही, दर्द से रिश्तेदारी रही,
छीन कर ही मिली रोटियाँ,इस कदर मारा-मारी रही।"

इस तरह ही 'जहीर कुरेशी' की गजलें समाज की वास्तविकता का परिचय देती है। उनकी गजलें वास्तविक हालात को बयान करती है। जहीर कुरेशी ने आज की तेज रफतार दुनिया में भी पाखंड और अंधविश्वास चल रहा है। कुछ स्वार्थी लोग अपने स्वार्थ के खातिर आम मासूम लोगों को धर्म के नाम पर गुमराह कर रहें है। जैसे

"तेज रफ्तार चलते रहे, देह के पार चलते रहे।
आज भी धर्म के नाम पर, कुछ चमत्कार चलते रहे।"

7. बोलता है बीज भी- यह गजल संग्रह सन 2014 में प्रकाशित हुआ है। इसमें 100 गजलें संग्रहीत है। इस संकलन में समकालीन जीवन की विसंगतियों विद्रूपताओं पर मार्मिक प्रहार हुआ है। जहीर कुरेशी कहते है। जैसे

"तुम्हारे पास है, परिवार का दु:ख,
तुम्हारे साथ है,संसार का दु:ख,बोलता है बीज भी।"

इससे पता चलता है कि, आज हर कोई अपने सुख दु:ख मे व्यस्त है। अपने कोई अनुचित घटना घटी तो ही हमें दु:ख में व्यस्त है। अपने घर में कोई अनुचित घटना घटी तो ही हमें दु:ख होता है। वरन हमें बाहर की दुनिया मेंउ चाहे कितना भी दु:ख हो हमें उससे कोई वास्ता नहीं। पर जहीर कुरेशी को पूरे संसार का दु:ख अपना दु:ख लगता है। जहीर संसार का दु:ख देखकर व्यथित होते है। यह उनकी गजलों में प्रतीत होता है।

8. निकला न दिग्विजय को सिकंदर- यह गजल संग्रह जहीर कुरेशी का आठवाँ गजल संग्रह है। यह गजल संग्रह 2016 में अंजुमन प्रकाशन मुट्ठी गंज, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है। इस गजल संग्रह में 100 गजलें प्रकाशित है। वरिष्ठ आलोचक डॉ. शिवकुमार मिश्र कहते है, जहीर कुरेशी की गजलें अपने समय येसंवाद भी करती है, और उससे मूठभेड़ भी करती है। उनका कहना है, जहीर कुरेशी की गजलें वास्तविक स्थिति का परिचय है। जैसे

"जो शिखर पर दिखाई दिए, सब को सुंदर दिखाई दिए।
घर के अंदर कई बार हम,हद से बाहर दिखाई दिए।"

इस शेर से पता चलता है कि जहीर कुरेशी ने पारीवारिक संवेदना को भी छेड़ा है। आज पारिवारिक किन हालात से गूजर रही है, इस वास्तविकता का परिचय 'जहीर कुरेशीश् अपनी गजलों के माध्यम से व्यक्त किया है।

9. रास्तों से रास्तें निकलें- यह गजल संग्रह जहीर कुरेशी का 2017 में प्रकाशित हुआ है। इस गजल संग्रह में कुल 100 गजलें है। इस गजलों के माध्यम से 'जहीर कुरेशी' जी ने 'सामाजिक' और 'राजनीतिक आयाम को परिलक्षित तो किया है। इसीके साथ-साथ नारी पर भी मार्मिक व्यंग किया है। जैसे

"नींद सबको सुलाती नहीं स्वप्न में नींद आती नहीं।
वो अकेले में हँसने लगी, जो कभी मुस्कुराती नहीं।"

10. दोहों से दोहा गजलों तक- सन 2019 में प्रकाशित इस श्दोहा गजल संग्रहश् में छह दोहें है। और लगभग 30 दोहा गजल खण्ड़ है। इस दोहा गजल संग्रह के प्रकाशन समन्वय प्रकाशन गाजियाबाद है। जहीर कुरेशी जी ने 20 वीं सदी के अंतिम दशक में श्दोहा छंदश् में गजल कहना आरंभ किया। जिनका मिजाज जहीर कुरेशी जी की गजलों के स्वभाव से अलग था। भिन्न था। जहीर कुरेशी ने महसूस किया कि, दोहा टूक बात कहने में विश्वास रखता हैं। इसलिए दोहा-शेर में सांकेतिकता के अवसर थोड़े कम है। जहीर कुरेशी कहते है, जहीर कुरेशी जी के दोहा गजलों के अनुसार की स्वष्टवादिता कारण पाठकों ने बहोत प्रशंसा की। लगभग 30 'दोहा गजलों' को कहने बाद जहीर कुरेशी जी स्थापित हो गए। और फिर अपनी गजलों की दुनिया में लौट आकर इस 'दोहा गजल' संग्रह का में जहीर कुरेशी जी ने अपने दोहों के माध्यम से सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, पारिवारिक जीवन को उजागर किया है। जैसे

"उपर उठकर क्या मिला, वायुयान से पूछ,
उड़ने वालों की व्यथा आसमान से पूछ।
होते आनतीज पर लाखों बालविवाह,
कानुनों की दुर्दशा सांविधान से पूछा।"

आगे जहीर खुरेशी अपने गजलों में कहते है।

"इस सीमा तक भा गई दोहे की तासीर, गीत गजल के साथ ही दोहे की जहीर। रास्ते भर गाती रही नचती रही फिजूल,ज्यों ही सागर से मिली नदी गई सब भूल।"

11. जिंदगी से बड़ा जिदंगी का सफर- श्रास्तों से रास्ते निकले के बाद जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर यह जहीर कुरेशी जी का गजल संग्रह 2019 में प्रकाशित हुआ इसमें जहीर कुरेशी की गजलें 101 ताजा गजलें संग्रहीत है। इसका प्रकाशन अयन प्रकाशन महरौली, नई दिल्ली से है। इस गजलों में

पारंपारिक गजल की काव्य रूढ़ीयाँ, रूढिघ्यों से मुक्त होने का प्रयास भी है। और नष्ट शिल्प एवं विषयों का उत्तरोत्तर विकास भी दिखाई देती है। वैसे ही समकालीन जीवन की जटिल परिस्थिति का चित्रण भी लिया गया है। जहीर कुरेशी जी ने अपने गजलों के माध्यम से बताया है कि, यह नई राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिवर्तन और सारी परिस्थितियाँ देश और भाषा से ही जुड़ी है। अंतर्राष्ठीय स्तर पर भी है इसलिए जहीर कुरेशी कहते है। जैसे

"पीले पत्ते बदलते रहते है, पेड़ कपड़े बदलते रहते है।
दु:ख की पीड़ा कभी नहीं बदली, सिर्फ दुखड़े बदलते रहते हैं।''
और जहीर कुरेशी जी आगे कहते है
''आग है ऐसी संसार में, लोग जलतें रहें प्यार में।
सात पर्दो के पर्दानशी, आ गए खुद ही बाजार म।''

इस प्रकार से जहीर कुरेशी जी ने अपने गजलों में सामाजिक, सांस्कृतिक पारिवारिक राजनीतिक आर्थिक रूढ़ी परंपरा व्यवस्था और वास्तविकता का परिचय दिया।

12. विमर्श के बहाने- यह पुस्तक हाल ही में यानी कि 2019 में प्रकाशित हुई है। यह पुस्तक 110 पृष्ठों की है। इस पुस्तक में जहीर कुरेशी जी ने ग्यारह विरल गजकारों के रचना अवदान की और समिक्षा की है। इन ग्यारह गजल कारों में एक या दो ही चर्चित है बाकी गजल कारों को हिंदी जगत में बहोत ही कम जाना जाता है। पर जहीर कुरेशी के विमर्श आलेख पढ़ने के बाद लगता है कि, यह सब रचनाकार महत्वपूर्ण है। जो निम्नलिखित है। प्रो.नन्दलाल पाठक, इन्द्रमोहन मेहता कैफ, गुलाब खण्डेलवाड, डॉ. हनुमंत नायडू, सूर्यभानु गुप्त, मेयार सनेही, विनोद तिवारी, शिव ओम अम्बर, डॉ. दरवेश भारती डॉ. अख्तर नज्मी और जगदीशचन्द्र पण्डया आदि।

निष्कर्ष

जहीर कुरेशी का मानना है कि हिंदी गजल को केवल भाषा संस्कार से जोड़कर देखना एक प्रकार से उसे एक प्रकार से सीमित कर देता है। भाषा से कहीं अधिक उसकी चेतना का संस्कार महत्वपूर्ण है। यह सामाजिक और राजनीतिक चेतना का ही संस्कार है।, जो उसे उर्दू की पारंपारिक गजलों से तो अलगाता ही है। समकालीन हिंदी कविता के समांतर एक महत्वपूर्ण काव्य के तौर पर भी प्रतिष्ठित करता है। इसलिए ही यह गजल संग्रह लेखक के गजल संग्रह और हिन्दी के चर्चित गजल संग्रहों की भीड़ में सबसे अलग है। गजलकार के संपूर्ण गजल रचना से गुजरने के बाद यह नि:संकोच कहा जा सकता है कि उसने हिन्दी गजल को मुख्य धारा की कविता अर्थात समकालीन कविता के समानान्तर खड़ा किया है। इसलिए डॉ. मधु खराटे 'जहीर कुरेशी की चुनिंदा गजले' पुस्तक की भूमिका में जहीर को देश का सर्वोपरि हिन्दी गजलकार कहते है।

संदर्भ सूची

1. प्रश्नोत्तरी से, पृ. 01
2. लेखनी के स्वप्न, जहीर कुरेशी पृ. 03,
3. एक टुकडा धूप, जहीर कुरेशी, प्लैप से, पृ. 03
4. वही,
5. एक टुकडा धूप, जहीर कुरेशी, पृ. 47
6. चाँदणी का दु:ख, जहीर कुरेशी, पृ. 38
7. प्रश्नोत्तरी से,
8. समंदर ब्याहने नही आया, जहीर कुरेशी , पृ. 22
9. भीड़ में सबसे अलग, जहीर कुरेशी, पृ. 23
10. वही, पृ. 36
11. भीड़ में सबसे अलग, जहीर कुरेशी, पृ. 23
12. पेड़ तन कर भी नहीं तूटा, जहीर कुरेशी, पृ. 83
13. पेड़ तन कर भी नहीं तूटा, जहीर कुरेशी, पृ. 34
14. बोलता है बीज भी, जहीर कुरेशी, पृ. 13
15. निकला न दिग्विजय को सिकंदर,जहीर कुरेशी, पृ. 31
16. रास्तों से रास्तें निकलें,जहीर कुरेशी, पृ. 69
17. दोहों से दोहा गजलों तक, जहीर कुरेशी, पृ. 1
18. दोहों से दोहा गजलों तक,जहीर कुरेशी, पृ. 19
19. जिंदगी से बड़ा जिदंगी का सफर, जहीर कुरेशी, पृ. 19
20. जिंदगी से बड़ा जिदंगी का सफर, जहीर कुरेशी, पृ. 12

चंद्रकांता के उपन्यासों में आतंकवाद से उपजी समस्याएं

पूजा सिंह

हिन्दी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

आतंकवाद एक किस्म का हिंसात्मक क्रियाकलाप है। यदि कोई व्यक्ति या संगठन अपने राजनीतिक, आर्थिक एवं विचारात्मक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए देश या देश की जनता की सुरक्षा को निशाना बनाए और उसे क्षति पहुँचाए तो उसे आतंकवाद कहते हैं। भारत बहुत समय से इसका शिकार होता आ रहा है। कश्मीर, नागालैंड, असम, बिहार, पंजाब, मुंबई आदि विशेष रूप से आतंक से प्रभावित प्रदेश हैं।

आतंकवाद हमारे देश की काफी बड़ी समस्या है, जिसने यहाँ की शासन व्यवस्था को हिला कर रख दिया है। आतंकवाद ने हमारे देश की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों को बहुत प्रभावित किया है।

आतंकवाद की समस्या एक सामाजिक समस्या है, जिसे आज राजनीति में लोग एक अस्त्र के रूप में प्रयोग कर रहे हैं। अंग्रेजों ने अपने शासनकाल में हमारे देश में सांप्रदायिक फूट डालकर देश का विभाजन करवाया। हिंदू-मुस्लिम में फूट डाली। लेखिका चंद्रकांता का जन्म कश्मीर में ही हुआ और अपने जीवन का बहुत से समय उन्होंने वही व्यतीत किया। उस समय कश्मीर की जो दशा थी वह बहुत दयनीय थी। जिसका मुख्य कारणआतंकवाद है। चंद्रकांता ने अपने उपन्यास ने आतंकवाद पर विभिन्न विडंबनाओं को अंकित किया है। जैसे

(क) इस्लामी राज्य के निर्माण के प्रयत्न
(ख) देश विभाजन का दर्द
(ग) स्वतंत्र कश्मीर की माँग
(घ) प्रसार-माध्यम
(ड़) दिशाहीन युवक
(च) जेहाद व कर्फ्यू
(छ) अल्पसंख्यकों पर अत्याचार
(ज) औरतों पर अत्याचार
(झ) हत्याकांड की समस्या
(ड) शरणार्थियों की समस्या और दु:ख

(क) इस्लामी राज्य के निर्माण के प्रयत्न

चंद्रकांता 'कथा सतीसर' उपन्यास में इस समस्या का चित्रण किया है कि कश्मीर राज्य को मुस्लिम राज्य बनाने के लिए पाकिस्तान ने बहुत प्रयत्न किए। कश्मीर में आतंक और दहशत फैलाने के लिए खूंखार मसूद और आफरी जैसे कबाइली आक्रमणकारियों को भेजा। हिंदू और सिखों को मारकर कत्लेआम मचाया। कश्मीर की वादी में भारत की व्याख्या ही बदल गई। जबरदस्ती इस्लाम कबूल करवाया जाने लगा, जिन्होंने उसका प्रस्ताव स्वीकार किया उनको छोड़ दिया बाकियों को मौत के घाट उतार देते।

''उस दिन बाद ही में विरोधी हलचलें तूफान उठाती रही। एक तरफ मुर्दाबाद के नारे दूसरी और जिंदाबाद के। मारपीट, आगजनी अलग से। चारपाइयों, खटियाओं के ऊपर, जख्मियों, मृतकों को उठाकर शहर में घुमाया गया। खोपड़ियों से झता जनूनी रक्त, फूटी पसलियों से निचुड़ता काला चिपचिपा खून ! शेर ए कश्मीर के समर्थकों ने कोहराम मचाया, शेर ए कश्मीर जिंदाबाद। ...''[1] कश्मीर में रहने वाले हिंदुस्तानी पंडित हिंदुस्तान के एजेंट बन गए, जिसकी वजह से बहुत से पंडितों को निष्कासित भी कर दिया गया। हरे रंग को मजहब कारंग बना दिया गया। हिंदू महिलाओं को अपनी इज्जत बचाने के लिए हरे रंग का फिरना पहनना पड़ा।

(ख) देश विभाजन का दर्द

चंद्रकांता ने अपने उपन्यास 'कथा सतीसर' में देश-विभाजन के समय हुए मार-काट और खून खराबे का यथार्थ चित्रण किया है। 15 अगस्त, 1947 को देश की आजादी मिलते ही कश्मीरवासियों के मन में खुशी और उल्लास के साथ-साथ चिंताएं भी अपना डंक मारने लगी। ''ह्यूमन अर्थक्वेक। आजादी के साथ बँटवारे में जो दो तरफा मार-काट, लूट और आगजनी हुई, उसे देख नेहरू भौचक्का हो गए थे। बापू शायद इसी परिणति से पहले ही आशंकित थे। तभी तो अंत तक वे बंटवारे के लिए राजी नहीं हुए थे। अयोध्या नाथ के माथे पर चिंता की लकीरें थी।''[2]

25 अक्टूबर, 1947 को पाकिस्तान ने कश्मीर पर कबाइली हमला करवा दिया, जिसमें काफी मार-काट, लूट-पाट हुई। धर्म के नाम पर कश्मीर में अनगिनत दंगे हुए, देश विभाजन के समय।

(ग) स्वतंत्र कश्मीर की माँग

'कथा सतीसर' उपन्यास लेखिका ने इस समस्या पर भी अपनी लेखनी चलाई है। राजा हरि सिंह और शेख साहब कश्मीर को स्वतंत्र रखना चाहते थे। उस समय जम्मू और कश्मीर दोनों राज्य एक दूसरे से जुड़े हुए थे। जब पाकिस्तान ने कश्मीर पर कबाइली आक्रमण करवाए तब सिर पर मुसीबत देख राजा हरी सिंह कश्मीर को भारत से में मिलाने के प्रस्ताव को स्वीकार लिए। अफवाह, आतंकवादी, पाकिस्तानी मिलिटेंट और भारत के विरोध में प्रचार से कश्मीरी जनता की गलत मानसिकता हो गई और वे लोग भारत और पाकिस्तान दोनों को ही अपना दुश्मन मानने लगे।

(घ) प्रसार के माध्यम

चंद्रकांता ने अपने उपन्यास 'कथा सतीसर' में प्रसार के माध्यमों का किस प्रकार गलत प्रयोग किया जाता है वह दर्शाया है। इस उपन्यास में केशव नाथ और अन्य लोग 'आजादी कश्मीर' रेडियो सुनते हैं, जिस पर निरंतर जनता को भड़काने के लिए भारत विरोधी तत्वों को ही सुनाया जाता है। एक स्थान पर केशव नाथ जनता को जागरूक करने के लिए अखबार में कुछ छापाना चाहते हैं और जब संपादक से मिलने जाते हैं तब उन्हें पता चलता है कि ''संपादक साहब कमरे में कैद थे, प्रोफेसर साहब। आजकल तो वही छपता है, जो वे चाहते हैं और जो कुछ छपता है, बंदूक के साथ में छपता है।'' संपादक साहब की भूरी पुतलियों में डर बैठ गया था।''[3] इस प्रकार कश्मीर की मीडिया भी खौफ खाकर स्वतंत्र रूप से भारत को सहयोग नहीं कर पा रही थी।

(ड़) दिशाहीन युवक

'कथा सतीसर' और उपन्यास में ही लेखिका ने युवाओं के गुट को दिशा से भटकते दर्शाया है-

कई साल पहले तीसरी कक्षा की किताब में सोत्रामाली के बेटों, गुले-सुलेने एक सबक पढ़ा था, ''तुम कह तो सकते हो, हथियार नहीं है, तुम्हारे पास, पर तुम्हें लड़ना है इस्लाम के नाम।''

वे गुले-सुले अब जवान हो गए थे। पाकिस्तान से ट्रेंड मिलिटेंट बनकर लौट आए थे, हथियार लेकर। मस्जिदों-मकबरों मेंलिखाई इस्लामी तालीम उनके अध पढ़े जेहन में घुस गई थी कि, ''तुमने लड़ना है इस्लाम के नाम।''

''किससे लड़ना है ?''

''काफिरों से !''

''काफिर कौन ?''

''वादी में हिंदुस्तान का हिमायती, हमारी आजादी और पाकिस्तान का दुश्मन।''

'याने ?''

''तुम जानते हो ! शुरू हो जाओ, काफिरों को कब तक बर्दाश्त करोगे ?''[4]

उपरोक्त उदाहरण में चंद्रकांता ने उन युवा वर्गों को चित्रित किया है जिन्हें पाकिस्तान धर्म का दुरुपयोग करके आतंकवादी बनाना चाहता है और भारत विरोधी जन समुदाय बनाना चाहता है।

(च) जेहाद व कर्फ्यू :

'कथा सतीसर' और उपन्यास में लेखिका ने जेहाद व कर्फ्यू का प्रस्तुतीकरण किया है। कश्मीर की सामान्य जनता को कोई जेहाद नहीं चाहिए था परन्तु कश्मीर को हासिल करने के लिए वहाँ जेहाद का निर्माण किया गया। एक और जहाँ मुस्तक खुद को जेहादी मान बैठा है वहीं दूसरी तरफ असलम को कुछ लोग जोर-जबर्दस्ती से उठाकर जेहादी बनाने के लिए ले जाते हैं, उसके लाख मना करने पर भी नहीं छोड़ते। एक स्थान पर लेखिका ने जेहादियों के इरादों पर इस प्रकार अपनी लेखनी चलाई है कि

''... जेहादियों के इरादे फौलादी हैं
निजामें मुस्तफा लाकर रहेंगे।
भारतीय कुलां, वापस जाओ।''[5]

साथ ही कर्फ्यू से उत्पन्न समस्याओं का भी अंकन किया है, कश्मीर में हो रहे सियासी दंगे व आतंकवाद के कारण कभी सरकार द्वारा तो कभी आतंकवादियों द्वारा कर्फ्यू लगा दिया जाता है, जिससे कि वहाँ की आम जनता को अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में काफी समस्या होती है जो व्यक्ति जहाँ हैं वहीं पर कर्फ्यू के निश्चित समय तक बंद हो जाता है। ना कहीं आना ना जाना। जीवनोपयोगी सभी संसाधन बंद हो जाते। बारामुला में औरतें, बच्चे तक आजादी की मांग करते सड़क पर आ गये और आर्मी अफसर ने लाल रूमाल हिलाकर फायरिंग शूरू करवा दी ....पता है कि बेकसूर मरे ऊपर से कर्फ्यू लगवाया हम जख्मियों को अस्पताल भी नहीं ले जा सके।''[6]

(छ) अल्पसंख्यकों पर अत्याचार

'कथा सतीसर' उपन्यास लेखिका चंद्रकांता ने अल्पसंख्यकों की दयनीय दशा का चित्रण किया है।

''आजादी के 39 साल बाद, एक बार फिर अकारण ही अल्पसंख्यकों पर बुला हमला बोल दिया गया। फर्क इतना था कि इस बार हमलावर पाकिस्तान के भेजे कबाइली नहीं थे, अपने ही भटके हुए भाई बंद थे।''[7]

कश्मीर में रह रहे कट्टरपंथी इस्लामी जो ना पाकिस्तान के हो सके ना ही भारत के परन्तु भारत के लिए खतरा जरूर है, जो चाहते थे कि जम्मू-कश्मीर को इस्लामी स्टेट घोषित कर दिया जाए, इसलिए अल्पसंख्यकों पर अत्याचार कर रहे थे। अल्पसंख्यकों के बच्चों को वहाँ पर कोई काम भी नहीं मिलता, मजबूरी में वे युवा दूसरे राज्यों में काम करने के लिए विवश थे।

(ञ) औरतों पर अत्याचार

'यहाँ वितस्ता बहती है' उपन्यास में हुए कबाइली आक्रमण से त्रस्त महिलाओं का अंकन किया है, जो अब शरणार्थी के रूप में रहने को विवश थी। ''कबाइलियों द्वारा भगाई गई औरतों को फिर से अपने अपने घरों में बसाने की समस्या ज्यादा विकट थी। ...''[8]

'कथा सतीसर' उपन्यास में हिंदू-मुस्लिम दोनों पंथ की औरतों पर अत्याचार किया जाता है। आतंकवादी मार-काटमचाते हैं और औरतों की इज्जत लूटते हैं। मुस्लिम औरतों को बुरखा पहनने के लिए मजबूर करते हैं, डराते-धमकाते हैं, जो उड़ते उनकी बातें नहीं मानती है उनको अगवा कर लेते हैं और उन पर बर्बरता करते हैं। जेहादी किसी भी लड़की से शादी के लिए उसके घर मेहंदी के पैकेट भिजवा देते हैं। इसी उपन्यास में तुलसी नाम की पात्र के पति और घरवालों की हत्याकर उसकी इज्जत को लूट लिया जाता है। चंद्रकांता ने औरतों के साथ हो रहे अत्याचारां का यथार्थ रूप से चित्रण किया है।

(झ) हत्याकांड की समस्या

लेखिका ने कुछ एक उपन्यासों में देश के बंटवारे के समय हत्याकांड का चित्रण किया है। 'कथा सतीसर' उपन्यास में आतंकवादियों द्वारा कतार-कतार मर्दो को गोली मारते दर्शाया है। एक स्थान पर ''14 सितंबर, 89 को शाम, इकबाल कृष्ण हाँफता-हाँफता घर आया।

''तिकलाल टपलू को जे.के.एल.एफ. वालों ने मार दिया. भाई साहब।''

''कहाँ ...कि ... क्यों ? केशवनाथ हकलाए। लल्ली चौक से पानी का गिलास लेकर आई।''

''घर के सामने ही गोली दाग दी। उसे तो वे लोग भारतीय जासूस समझते थे।''

''त्राहि-त्राहि ! क्या बिगाड़ा था उसने किसी का ? ...''[9]

'ऐलान गली जिंदा है' के उपन्यास में जियालाल का साला अपनी बहन को कबाइलियों से बचाने जाता है जहाँ उसकी हत्या हो जाती है।

शरणार्थियों की समस्या और दुःख

चंद्रकांता ने 'यहाँ विस्ता बहती है' उपन्यास में देश विभाजन के बाद कश्मीर पर हुए कबाइली आक्रमण से उपजी समस्याओं का चित्रण किया है। किस प्रकार कबाइलीयों ने बारामुला में आकर लूट-मार मचाई थी। उनसे बचते-बचाते जो लोग वापस आए थे, उनकी स्थिति को लिखती है। ''झुंड के झुंड शरणार्थी भागकर शहर में बसने आए थे। लुटे पिटे खाली हाथ तन पर कुर्ते मात्र, नंगे पैर। जो जिस हाल में था जान बचाकर भाग आया। तो सरकार ने सुरक्षा प्रबंध कर कईयों को वापस अपने गाँव घरों में बसाया था पर जिनके घर जलाए गए पूरे परिवार गोलियों से भून दिए गए, उन्हें शहर में नए सिरे से शुरुआत करनी थी।''[10]

'कथा सतीसर' उपन्यास में भी लेखिका ने आतंकवाद से बेघर हुए लोगों की दयनीय दशा को उजागर किया है। लोग कश्मीर से भागकर भारत के दूसरे राज्यों में रहने के लिए शरण लेते थे। वैसे तो सरकार ने शरणार्थियों के लिए 125 रूपये प्रति माह देना स्वीकार किया था परन्तु इतने कम पैसों में तो उनके लिए उपयोग की वस्तुएं भी नहीं मिल सकती थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चंद्रकांता मुख्य रूप से अपने तीन उपन्यास ऐलान गली जिंदा है,यहाँ वितस्ता बहती है और कथा सतीसर में आतंकवाद से उपजीसमस्याओं का दुख व यथार्थ चित्र अंकित किया है।

फुटनोट

1 चन्द्रकांता: 'कथा सतीसर', पृ. सं. 270
2 चन्द्रकांता: 'कथा सतीसर', पृ. सं. 195
3 चन्द्रकांता: 'कथा सतीसर', पृ. सं. 492
4 चन्द्रकांता: 'कथा सतीसर', पृ. सं. 493
5 चन्द्रकांता: 'कथा सतीसर', पृ. सं. 492
6 वही, पृ. सं. 555
7 वही, पृ. सं. 483
8 चन्द्रकांता: 'यहाँ वितस्ता बहती है', पृ. सं. 87
9 चन्द्रकांता: 'कथा सतीसर', पृ. सं. 492
10 चन्द्रकांता: 'यहाँ वितस्ता बहती है', पृ. सं. 87

'वैयक्तिक अनन्यता' की समस्या का तार्किक विवेचन

अर्चना भट्ट

शोध छात्रा, दर्शन शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

सारांश

'वैयक्तिक अनन्यता' दर्शन की वह समस्या है जो यह उत्तर खोजने का प्रयास करती है कि किन परिस्थितियों मे कोई व्यक्ति वह व्यक्ति है जो कि वह पहले था। अन्य शब्दों में कहा जाए तो वह क्या कसौटी है जिसके आधार पर हम कह सकते हैं भिन्न-भिन्न समयों में कोई व्यक्ति वही व्यक्ति है? सामान्यत: इसके लिए तीन प्रत्युत्तर प्राप्त होता है- (1) शरीर (2) आत्मा (3) स्मृति। वैयक्ति अनन्यता की समस्या के समाधान हेतु तीन आधार प्रस्तुत किये गये हैं। वैयक्तिक अनन्यता का निरूपण करने में जितने भी आधार दिये गये है अलग-अलग रूप में संकुचित दृष्टिकोण रखते हैं इनमें से किसी भी एक सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने से वैयक्तिक अनन्यता की समस्या का समाधान नहीं हो सकता किन्तु सभी निकषों के समुचित समन्वय से समस्या का सम्भावित समाधान किया जा सकता है।

सूचक शब्द- 'व्यक्ति' निकष, वैयक्तिक अनन्यता, शरीर, मन, आत्मा।

वैयक्तिक अनन्यता की समस्या का प्रश्न मानव अस्तित्व से जुड़ा है जैसे हम जानते है कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है किन्तु इस परिवर्तनों के बावजूद यह कहना कि यह वही व्यक्ति है, यही वैयक्तिक अनन्यता की समस्या है जिसकी कोई स्पष्ट और सर्वमान्य परिभाषा नही दी जा सकती, अब मूल प्रश्न यह है कि 'व्यक्ति' क्या है? और व्यक्ति के पहचान हेतु क्या मापदण्ड है?

हम प्राय: अपने मित्रों तथा अन्य व्यक्तियों के संदर्भों में अंतर होते हुए भी वही व्यक्ति मानते हैं। उदाहरण के लिए दस वर्षों के बाद मिलने पर भी हम कहते हैं कि यह वही व्यक्ति है जो दस वर्ष पहले हमारे साथ पढ़ता था। उतने समय के अंतर पर तथा समय के साथ अन्य अनेक अंतरों के होने पर भी यह व्यक्ति वही व्यक्ति है जो हमारे साथ था। किन्तु इस प्रत्यभिमान का मापदण्ड क्या है? कुछ दार्शनिकों का मत है कि परिवर्तन और अनन्यता परस्पर सुसंगत नहीं हैं। उदाहरण के लिए ह्यूम का मत है कि निरंतर परिवर्तन होने पर किसी वस्तु को वही वस्तु नहीं कहा जा सकता। यही बात व्यक्ति के लिए भी सत्य है। समय के साथ व्यक्ति में भी परिवर्तन होता है और परिवर्तन होने पर किसी व्यक्ति को वही व्यक्ति मानने का कोई मापदण्ड या औचित्य नहीं हो सकता। वैयक्तिक अनन्यता के संबंध में तीन प्रश्न उठते हैं- (1) वह क्या तत्व है जिसके कारण कोई व्यक्ति एक ही व्यक्ति रहता है। (2) किस मापदण्ड के आधार पर एक व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों से पृथक् किया जाता है। (3) किस मापदण्ड के आधार पर हम कह सकते हैं कि कोई व्यक्ति समय में अंतर होने पर भी वही व्यक्ति है। प्रथम प्रश्न का सम्बन्ध वैयक्तिक तादात्म्य के तात्विक आधार से है, दूसरे का व्यक्ति के अभिज्ञान या पहचान से और तीसरे का वैयक्तिक अनन्यता के मापदण्ड या प्रत्यभिमान से है, यद्यपि ये तीनों प्रश्न एक दूसरे से सम्बन्धित हैं किन्तु तीसरे का महत्व सबसे अधिक है व्यक्तिक अनन्यता का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यही है।

लॉक यह सिद्ध करना चाहता था कि वैयक्तिक अनन्यता का तात्विक आधार द्रव्य या आत्मा है किन्तु मापदण्ड स्मृति पर लॉक दोनों का संबंध स्पष्ट नहीं कर पाता। अत: ह्यूम द्रव्य रूप आत्मा का खण्डन करता है। ह्यूम का मत है कि आत्मा केवल विभिन्न अनुभवों का समूह है और अनुभव निरंतर परिवर्तनशील है। अंतर्निरीक्षण से किसी एकता का ज्ञान नही होता है जो विभिन्न प्रत्यक्षों को इकाई प्रदान कर सके। उसके अनुसार वैयक्तिक अनन्यता केवल भ्रम है। मनुष्य केवल प्रत्यक्षों अथवा अनुभवों का प्रवाह है। यद्यपि वह प्रवाह समानता, कारणता, स्मृति आदि द्वारा परस्पर संबंधित है। पर कहीं भी अनन्यता या इकाई नहीं है। फिर इकाई का भ्रम क्यों होता है? ह्यूम का कहना है कि हम दो भिन्न स्थितियों में अंतर करना भूल जाते हैं। प्रथम स्थिति में वस्तु में कोई परिवर्तन नहीं होता है, किन्तु क्रम में समानता रहती है तथा परिवर्तन धीरे-धीरे होता है। असावधानी के कारण परिवर्तन की उपेक्षा की जाती है तथा इस स्थिति में भी इकाई मान ली लाती है। दार्शनिक जानता है कि विश्लेषण होता है, इसलिए वह एक आध्यात्मिक द्रव्य की कल्पना कर लेता है किन्तु ऐसा कोई द्रव्य नहीं है। इस विश्लेषण में ह्यूम दो गलतियाँ करता है। प्रथम वह मान लेता है कि परिवर्तन होने पर इकाई असंभव है। वह भूल जाता है कि वस्तु तथा व्यक्ति के संप्रत्यय में ही परिवर्तन निहित है। तुलनात्मक अर्थ में परिवर्तन और इकाई में विरोध है, किन्तु संख्यात्मक अनन्यता में दोनों के साथ संभव है। ह्यूम की दूसरी भूल यह है कि कोई व्यक्ति अपने अनुभव में इकाई खोजने का प्रयास तभी कर सकता है जब वह अपने को अन्य व्यक्तियों से भिन्न समझा जाता है। उसी आधार पर उसकी अनन्यता का भी ज्ञान होता है और यह आधार या मापदण्ड मानना आवश्यक है। इस प्रकार हम कह सकते हें कि व्यक्ति की इकाई की समस्या अनावश्यक है तथा आध्यात्मिक आत्मा अनन्यता के मापदण्ड के रूप में अनुपयोगी है।

इसी प्रकार व्यक्ति का वास्तविक सम्प्रत्यय एक मनोभौतिक सत्ता का सम्प्रत्यय है केवल मानसिक सत्ता का नहीं व्यक्ति को केवल मानसिक सत्ता मानने के कारण ही कठिनाइयाँ उत्पन्न होती है। इससे सिद्ध होता है कि वैयक्तिक अनन्यता के लिए शारीरिक एकता और स्मृति दोनों का प्रयोग मापदण्ड के रूप में आवश्यक है तथा शरीर का मापदण्ड अधिक महत्वपूर्ण है, इसके अनेक कारण हैं- (1) यद्यपि स्मृति और शरीर दोनों पर्याप्त हैं किन्तु शरीर अनिवार्य है। (2) शारीरिक मापदण्ड अधिक व्याप्त है, क्योंकि स्मृति सदैव नहीं रहती (भूलना भी होता रहता है) जबकि शरीर जीवन पर्यन्त रहता है। (3) स्मृति की अपेक्षा शारीरिक एकता के निर्धारण की अनेक तथा सरल विधियाँ हैं, जैसे रक्त की जाँच अंगूठे का निशान आदि। पर एक दूसरी स्थिति की कल्पना कीजिए। मस्तिष्क के दो भाग होते हैं-बायाँ भार और दायाँ भाग। दोनों ही स्मृति के केंद्र हैं। अब मान लिजिए तीन व्यक्ति दुर्घटनाग्रस्त हो जाते हैं जिनमें एक का मस्तिष्क बच जाता है और दो का शरीर। डॉक्टर मस्तिष्क का विभाजन करके दायाँ एक को तथा बायाँ दूसरे को लगा देते हैं। अब जो दो व्यक्ति हैं उन दोनों को प्रथम व्यक्ति की स्मृतियाँ हैं। क्या दोनों भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं? या दोनों ही पृथक-पृथक रूप में अथवा सम्मिलित रूप में एक ही व्यक्ति हैं? स्पष्ट है कि निश्चित परम्परा न होने से निश्चित रूप से कुछ भी कहना कठिन है। किन्तु इतना स्पष्ठ है कि इन उदाहरणों में भी केवल स्मृति की प्रधानता सिद्ध नहीं होती, क्योंकि स्मृति बिना शरीर के असंभव है, तथा मस्तिष्क भी शरीर का ही अंग है। अत: यही निष्कर्ष उपयुक्त प्रतीत होता है कि केवल शरीर या केवल स्मृति वैयक्तिक अनन्यता के मापदण्ड नहीं हो सकते। दोनों का सम्मिलित प्रयोग आवश्यक है, यद्यपि कुछ संदर्भो में स्मृति पर अधिक बल दिया जाता है और कुछ में शरीर पर।

वैयक्तिक अनन्यता दर्शन की वह समस्या है जो यह उत्तर खोजने का प्रयास करती है कि किन परिस्थितियों में कोई व्यक्ति वह व्यक्ति है जो कि वह पहले था। यदि अन्य शब्दों में कहा जाय तो वह क्या कसौटी है जिसके आधार पर हम कह सकते है कि भिन्न-भिन्न समयों में कोई व्यक्ति वही व्यक्ति है? सामान्यत: इसके लिए तीन प्रत्युत्तर प्राप्त होते है- (1) शरीर (2) आत्म (3) स्मृति। वैयक्तिक अनन्यता की समस्या के समाधान हेतु तीन आधार प्रस्तुत किये गये है।

1. आत्मगत आधार - इसके समर्थक देकार्त है इसके अनुसार आत्मा वैयक्तिक अनन्यता का निकष है जिसके आधार पर वैयक्तिक अनन्यता का निरूपण किया जा सकता है देकार्त आत्म को विशेष महत्व देते है।
2. स्मृतिगत आधार - इसके समर्थक लॉक है जो स्मृति को वैयक्तिक अनन्यता का निकष मानते है जिसके आधार पर वैयक्तिक अनन्यता का निरूपण किया जा सकता है।
3. शारीरिक आधार - इससे समर्थक ए.जे. एअर है इनके अनुसार वैयक्तिक अनन्यता का निकष शारीरिक आधार होता है क्योंकि आत्मा अमूर्त होती है स्मृति का लोप हो सकता है किन्तु शरीर का नही।

अब प्रश्न यह है कि भौतिक एवं मानसिक आयामों से युक्त 'व्यक्ति' को कैसे पहचाना जा सकता है? परम्परागत रूप से वैयक्तिक अनन्यता के लिए दो निकषों का उल्लेख मिलता है - (क) शारीरिक निरन्तरता (ख) स्मृति। इस सन्दर्भ में वैयक्तिक अनन्यता से सम्बन्धित दो समस्याएँ विचारणीय हैं-

1. मेरी अर्थात् उत्तम पुरुष की वैयक्तिक अनन्यता
2. अन्य व्यक्तियों, अर्थात् अन्य पुरुष की वैयक्तिक अनन्यता

शारीरिक आधार कुछ परिवर्तनों के साथ एक ही शरीर का लगातार कायम रहना वैयक्तिक अनन्यता की सार्वाधिक मान्य पहचान है। एक व्यक्ति की शारीरिक स्थिति में बचपन से लेकर बुढ़ापे तक काफी परिवर्तन हो जाते है, फिर भी उसमें एक इस प्रकार की शारीरिक निरन्तरता बनी रहती है कि हम यह मानते हुए भी कि उसकी शारीरिक स्थिति में काफी परिवर्तन हुए है यह भी मानते है कि उसके शरीर में निरन्तरता कायम है और उस आधार पर हम कह सकते है कि यह वही व्यक्ति है। इस प्रकार एक व्यक्ति की पहचान 'उसी' व्यक्ति के रूप में करने में उसकी शारीरिक निरन्तरता का प्रमुख हाथ होता है। व्यक्ति की मानसिक आदि स्थितियों में काफी कुछ परिवर्तन भी हो जा सकते है, जैसे कि वह पहले की सारी बाते भूल जाये, फिर भी शारीरिक मित्रता के आधार पर हम कह सकते है यह वही व्यक्ति है और ऐसा मानने का हमारा आधार निश्चित ही शारीरिक निरन्तरता है।

स्मृति के आधार पर वैयक्तिक अनन्यता की पहचान की जाती है कुछ विचारक मानते है कि स्मृति वैयक्तिक अनन्यता की मूलभूत पहचान है, लॉक जैसे विचारको ने तो स्मृति को वैयक्तिक अनन्यता की एकमात्र कसौटी माना है। लॉक ने प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर 'मन' नामक एक स्थाई द्रव्य को स्वीकार करते है जो उसकी चेतना की निरन्तरा का आधार है और चेतना की यह निरन्तरता ही व्यक्ति की उसकी विशिष्ट पहचान दिलाती है, शरीर में परिवर्तन हो सकता है किन्तु चेतना सदैव वही रहती है, चेतना के निरन्तरता के आधार पर ही हम किसी व्यक्ति को वही व्यक्ति मानते है इसलिए स्मृति ही वैयक्तिक अनन्यता की एक मात्र कसौटी है।

निष्कर्ष- वैयक्तिक अनन्यता की समस्या व्यक्ति की 'पहचान' की समस्या है जो मानव के अस्तित्व से जुड़ी है व्यक्ति विभिन्न अंगों का समुच्चय है जिसमें भौतिक और मानसिक तत्वों का समन्वय होता है किसी भी तत्व के अभाव में मानव व्यक्तित्व का विश्लेषण समुचित ढंग से नही किया जा सकता। वैयक्तिक समस्या के समाधान हेतु दो निकषों की विवेचना की गयी है। (1) शारीरिक (2) स्मृति ये दोनों ही निकष एकांकी एवं संकुचित दृष्टिकोण रखते है इनमें से किसी भी एक निकष को स्वीकार कर लेने से वैयक्तिक समस्या का समाधान नही किया जा सकता किन्तु दोनों निकर्षो के समुचित समन्वय से समस्या का सम्भावित समाधान किया जा सकता है। समकालीन दार्शनिक पी0एफ0 स्ट्रासन ने 'व्यक्ति के संप्रत्यय' में इसका स्पष्ट विवेचन किया है। इनके अनुसार व्यक्ति एक इकाई है, जिसमें मानसिक और भौतिक ये दोनो गुण पाये जाते है। मानसिक और भौतिक क्रियायें व्यक्ति के दोनों पहलुओं के सम्बन्धित है। दोनों (मानसिक एवं भौतिक क्रियायें स्वरूपत: एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी एक दूसरे में संबंधित है व्यक्ति के सम्प्रत्यय का निरूपण करने

के लिए भौतिकवादी और अभौतिकवादी दोनों ही विचारधाराएं एकांकी है। व्यक्ति के सम्प्रत्यय में दोनों का समावेश हो जाता है। प्रश्न उठाता है कि क्या शरीर के बिना व्यक्तित्व सम्भव है? इसी प्रकार क्या मृत शरीर को व्यक्तित्त्व प्रदान किया जा सकता है? इन दोनों ही प्रश्नों का उत्तर निषेधात्मक है। इन सिद्धान्तों की कठिनाइयों के कारण भौतिकवाद और अभौतिकवाद के सिद्धान्तों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। इस संदर्भ में द्विपक्षीय सिद्धान्त (The Double Aspcct Theory) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके प्रवर्तन का श्रेय स्पिनोजा को है। उसके अनुसार मानसिक और भौतिक घटनाएं एक ही द्रव्य के दो पहलू हैं। वैयक्तिक अनन्यता का निरूपण करने में जितने भी आधार दिये गये है अलग-अलग रूप में संकुचित दृष्टिकोण रखते है इनमें से किसी भी एक सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने से वैयक्तिक अनन्यता की समस्या का समाधान नही हो सकता किन्तु सभी निकषो के समुचित समन्वय से समस्या का सम्भावित समाधान किया जा सकता है।

संदर्भ सूची

- Ayer, A.J. The Problem of Knowledge, Pelican Books London, 1990.
- Ayer, Locke, Clarendon Press- oxford 1955
- Blanshard, Brand, Reason and Analysis, La Salle, III Open Court Published Co. 1963
- Chatterjee S.G., The Problem of Philosphy, University of Calcutta (IInd Ed), 1964.
- Pandey, S.L., Problem of depth Epistemology; R.N. Kanl Liberary of Philosophy, University of Allahabad,1987.
- शर्मा, नन्द किशोर, भारतीय दार्शनिक समस्याए, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2011.
- मिश्र वाचस्पति, न्याय वार्तिक तात्पर्यटीका, कलकत्ता संस्कृत ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक 18, 1938
- मिश्र केशव, तर्कभाषा, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी 1963
- भट्ट जयन्त, न्यायमंजरी, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी 1936

धर्मनिरपेक्षता के भारतीय पहलू और भारतीय संविधान

नर्गिस खान

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

डॉ० नागेन्द्र सिंह भाटी

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

सार

धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को लोकतंत्र के प्रचार में शामिल किया गया है भारतीय संविधान का उद्देश्य राष्ट्रीय एकता और अखंडता को बनाए रखना है। संविधान के प्रावधान में धर्मनिरपेक्ष समाजों के गठन के लिए संविधान के अनुच्छेद 25 में किसी भी नागरिक के साथ धर्म, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता है। अनुच्छेद 25 धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार देता है। भारत के प्रत्येक नागरिक को यहां पूर्ण अधिकार है की वह अपने धर्म का पालन करें और अपने धर्म का प्रचार और प्रसार करें। लेकिन सार्वजनिक जीवन मेंगनागरिकों के बीच धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता। अनुच्छेद 28 के अनुसार राज्य निधि से संचालित कोई भी शिक्षण संस्थान धार्मिक शिक्षा प्रदान नहीं करेगा। अनुच्छेद 30 के अनुसार सभी अल्पसंख्यकों को शिक्षा स्थापित करने का अधिकार दिया गया है अपने धर्म और के मानदंड के अनुसार अपनी पसंद के संस्थान शिक्षा स्थापित कर सकेगा।

मुख्य शब्दः लोकतंत्र, धर्म, धर्मनिरपेक्षता,

परिचय

भारत को बहुसंस्कृतिवाद विरासत में मिला है। यहां कई धर्म और संस्कृति हैं। बहुसंस्कृतिवाद के कारण भारत की एक विशिष्ट पहचान दुनिया में है। एक राष्ट्र के निर्माण के लिए एक धर्म, एक संस्कृति, होना चाहिए। लेकिन भारत में यह अपवाद है। भारत में विभिन्न धर्म, विभिन्न संस्कृतियां एक साथ रहती है। फिर भी भारत एक राष्ट्र के रूप में बना हुआ है। भारत में बहुसंस्कृतिवाद के साथ-साथ सामाजिक सहिष्णुता समाज की रीढ़ है। भले ही लोग अपने धर्म और संस्कृति के अनुसार व्यवहार करते हैं, लेकिन एक दूसरे के धर्म और दूसरे की संस्कृति का सम्मान आज भी किया जाता है। भारत में सभी को धर्म और संस्कृति को बढावा देने का अधिकार है। भारतीय समाज को धर्म के बिना नहीं माना जा सकता, क्योंकि धर्म भारतीय समाज का अभिन्न अंग बन गया है। आजादी के भारतीय संविधान ने राष्ट्रीय एकता और सामाजिक सहिष्णुता को बनाए रखने के लिए धर्मनिरपेक्षता को गले लगाया है। निजी जीवन में लोगों को धार्मिक स्वतंत्रता होगी। ऐसी सकारात्मक धर्मनिरपेक्षता अवधारणा को स्वीकार किया जाता है। इसलिए भारतीय समाज की अखंडता जस की तस बनी हुई है।

अध्ययन का उद्देश्य

भारतीय समाज में विभिन्न धर्मों के लोग रहते हैं। इसलिए संविधान में सभी धर्मों का सम्मान करते हुए राजनितिक व्यवस्था द्वारा धार्मिक सहिष्णुता पैदा करना है। हमारे धर्म की स्वतंत्रता के साथ-साथ अन्य धर्मों की स्वतंत्रता का सम्मान करें और हमें सावधान रहना चाहिए कि हमारी स्वतंत्रता जनहित को बाधित न करे। हालाँकि, आज भारतीय समाज में धार्मिक कट्टरता दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। मुख्य इस अध्ययन का उद्देश्य राष्ट्र निर्माण में धर्मनिरपेक्षता की भूमिका को समझना है। इस अध्ययन का एक अन्य उद्देश्य यह समझना है कि क्या है धर्मनिरपेक्षता और भारतीय समाज में धर्मनिरपेक्षता का भविष्य।

धर्मनिरपेक्षता का अर्थः

धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है कि राज्य किसी धर्म विशेष को आश्रय नहीं देता है।

ब्रिटिश इनसाइक्लोपीडिया में, धर्मनिरपेक्षता को गैर-आध्यात्मिक के रूप में परिभाषित किया गया है।

धर्मनिरपेषता कोई नास्तिकता नहीं है बल्कि सभी धर्मों में एक समान आस्था है राज्य का स्वयं का कोई धर्म नहीं होता है। साथ ही, राजनीतिक व्यवस्था धर्म द्वारा शासित नहीं होगी। विभिन्न धर्मों के नागरिक राज्यों में रह सकते हैं। हर नागरिक अपने धर्म के अनुसार स्वतंत्र रूप से जीवन जी सकता है। यही धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है। भारतीय परंपरा, में धर्मरिपेक्षता को निम्नलिखित तीन विचारधाराओं में परिभाषित किया है।

1. एक, उदारवादी विचारधारा ने धर्मनिरपेक्षता की पष्चिमी अवधारणा का समर्थन किया है। राजनीति और धर्म पूरी तरह से अलग होना चाहिए। राजनीति धर्म से प्रभावित नहीं होनी चाहिए।

2. परिवर्तनवादी विचारधारा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास पर जोर देती है। यह विचारधारा मानती है कि धर्म को व्यक्ति के निजी जीचन तक सीमित होना चाहिए।
3. गांधीवादी विचारधारा धार्मिक सहिष्णुता धर्म और राजनीति परस्पर जुड़े हुए हैं और इन्हें अलग नहीं किया जा सकता है। उनका मानना है कि राजनीतिक नैतिकता के लिए धार्मिक मूल्य आवश्यक हैं।

उपरोक्त तीनों विचारधाराओं के प्रभाव से भारतीय धर्मनिरपेक्षता की प्रकृति पश्चिमी धर्मनिरपेक्षता से भिन्न है। हालांकि, भारत में धर्म को राजनीति से अलग माना जाता है। व्यक्तिगत जीवन में धर्म को स्वीकार किया जाता है। भारत में धर्मनिरपेक्षता की सकारात्मक अवधारणा विकसित हुई जिसका राज्य को पालन करना चाहिए। इस प्रकार, धर्म भारत की राष्ट्र अखंडता को बनाए रखता है।

भारतीय संविधान और धर्मनिरपेक्षता

मूल संविधान में धर्मनिरपेक्षता शब्द का उल्लेख नहीं था। फिर भी भारतीय संविधान का दर्शन धर्मनिरपेक्ष था। इसका मतलब है कि कोई विशेष धर्म को भारत में राज्य का धर्म नहीं माना जाता है। इस दर्ष्टिकोण से राज्य, के सभी धर्मो का सम्मान होगा। धर्म के अस्तित्व को स्वीकार करने के बावजूद एक धर्मनिरपेक्ष समाज धार्मिक सहिष्णुता और कट्टरता के आधार पर बनाया गया है। इसके लिए प्रावधान भारतीय संविधान के विभिन्न भागों में बनाए गए है।

भारतीय वंविधान की प्रस्तावना में इसका उल्लेख है, ''हम लोग भारत....''। इस वाक्य में धर्मनिरपेक्षता की प्रमुख विशेषता पाई जाती है। इस वाक्य में धर्म का स्थान है। हालाँकि, 1974 में, संशोधन संविधान में धर्मनिरपेक्ष शब्द शामिल था। इसका मतलब यह नहीं है कि भारत एक नहीं था।, भारत संविधान के तहत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है। यह विभिन्न प्रावधानों से स्पष्ट है की धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को लोकतंत्र के प्रचार में शामिल किया गया है तथा यह राष्ट्रीय एकता और अखंडता को बनाए रखता हैं। आगे के प्रावधान में पाए जाते हैं धर्मनिरपेक्ष समाजों के गठन के लिए संविधान की धारा 15 किसी भी नागरिक से धर्म, जाति, लिंग, जन्म के आधार पर भेदभाव नहीं करेगी। अनुच्छेद 25 धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार देता है। भारत के प्रत्येक नागरिक को पूर्ण अधिकार हैं। अपने धर्म का पालन करें और आपने धर्म का प्रचार और प्रसार करें। लेकिन सार्वजनिक जीवन में नागरिकों के बीच धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता। धारा 28 राजय निधि किसी भी नागरिक संचालित किसी भी शिक्षण संस्थान को धार्मिक शिक्षा प्रदान करने का अधिकार नहीं है। अनुच्छेद 30 के अनुसार धर्म और भाषा के आधार पर अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद के मुताबिक शैक्षिक संस्थानों को स्थापित करने का अधिकार है। इसके अलावा इस अनुच्छेद के तहत देश की सरकार धर्म या भाषा को आधार मानकर किसी भी अल्पसंख्यक समूह द्वारा चलाए जा रहे शैक्षिक संस्थानों को वित्तीय मदद देने से इनकार नहीं कर सकती है या उनके साथ भेदभाव नहीं कर सकती है। अल्पसंख्यकों के शैक्षिक संस्थानों के गठन के साथ ही शिक्षा अधिनियम के अधिकार के अनुसार गरीबों के लिए 25 प्रतिशत सीटें आरक्षित करने की छूट देता है।

समय-समय पर सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि धर्मनिरपेक्षता भारतीय समाज का मौलिक हिस्सा है और इसे किसी भी तरह से बदला नहीं जा सकता है। केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973) 4 एससीसी 225, संवैधानिक पीठ माननीय सुप्रीम कोर्ट ने दोहराया कि धर्मनिरपेक्षता भारतीय संविधान का बुनियादी ढांचे का हिस्सा है। यह दृश्य एसआर बोम्मई बनाम के ऐतिहासिक मामले में क्रिस्टलीकृत हुआ। यूनियन ऑफ इंडिया (1994) 2 एससीसी 1 वास्तम में, एस आर बोम्मीज मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने राज्य की सरकारों को बर्खास्त करने संबंधी अनुच्छेद की व्याख्या की और कहा कि अनुच्छेद 356 के तहत यदि केन्द्र सरकार राज्य में चुनी हुई सरकार को बर्खास्त करती है तो सर्वोच्च न्यायालय सरकार बर्खास्त करने के कारणों की समीक्षा कर सकता है और न्यायालय केन्द्र से उस सामग्री को कोर्ट के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए कह सकता जिसके आधार पर राज्य की सरकार को बर्खास्त किया गया है।

कहते है कि भारतीत संविधान में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा व्यापक सहमति में है। हालांकि वैज्ञानिक सोच पर आधारित धर्मनिरपेक्षता की सक्रिय, सकारात्मक अवधारणा जिसकी उसने वकालत की थी। इसके बाद, कुख्यात रामजन्मभूमि मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धर्मनिरपेक्षता की अपनी अवधारणा को विस्तृत रूप से उद्धत करते हुए न्यायोचित ठहराया भारतीय शास्त्र के अनुसार भारत के धर्मनिरपेक्ष चरित्र को वास्तव में एक झटका लगा और भारत में धर्मनिरपेक्षता का मुद्दा आज तक सरल नहीं हुआ है, खासकर बढते हुए प्रकाश में धार्मिक कट्टरवाद जो सरकार की विफलता के कारण अपने पुनरूद्धार का श्रेय देता है।

सुप्रीम कोर्ट ने धर्मनिरपेक्ष प्रकृति पर अपने विचार व्यक्त किए

सरदार सैयदना ताहिर सैफुद्दीन साहब बनाम राज्य में पहली बार संविधान बॉम्बे जहां यह आयोजित किया गया था कि ''अनुच्छेद 25 और 26 धार्मिक सिद्धान्त को शामिल करते है। एमएच कुरैशी बनाम राज्य बिहार इस मामले को कुरैशी गोहत्या मामले में रूप में जाना जाता है, सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि राज्य गोहत्या पर प्रतिबंध लगाए, मुसलमान के धार्मिक अधिकारों का हनन नहीं किया। केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य की संवैधानिक पीठ माननीय सुप्रीम कोर्ट ने दोहराया कि विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, और स्वतंत्रता संविधान की मूल संरचना के भाग में धर्मनिरपेक्षता का हिस्सा है।

यह दृश्य एसआर बोम्बई बनाम के ऐतिहासिक मामले में क्रिस्अलीकृत हुआ। हालांकि, एक साल के भीतर माननीय, इस्माइल फारूकी बनाम सुप्रीम कोर्ट भारत संघ (अयोध्या अधिग्रहण मामले के रूप में भी जाना जाता है) ने सक्रिय को कमजोर करना शुरू कर दिया, वैज्ञानिक सोच पर आधारित धर्मनिरपेक्षता की सकारात्मक अवधारणा में यह माना गया था कि संविधान की प्रस्तावना विशेष रूप से अनुच्छेद 25 व 30 के साथ पढ़ी जाती है।

यह इस पर जोर देती है: सभी व्यक्तियों और समूहों को धर्म के मामले में समानता की गारंटी उनकी आस्था के बावजूद इस बात पर जोर दिया गया कि राज्य का काई धर्म नहीं है। इसके बाद, कुख्यात राम जन्मभूमि मामले में, एएस नारायण दीक्षितुलु बनाम आंधप्रदेश राज्य माननीय सुप्रीम कोर्ट ने

धर्मनिरपेक्षता की अपनी अवधारणा को सही ठहराया। धर्मनिरपेक्षता की अपनी अवधारणा को सही ठहराने के लिए भारतीय धर्मग्रन्थों से बड़े पैमाने पर उद्धरण देकर:

'सर्व धर्म संभव' यानी सभी धर्मो के प्रति सहिष्णुता। सुप्रीम कोर्ट को लग रहा था। चर्च को अलग करने के आधार पर धर्मनिरपेक्षता की पश्चिमी अवधारणा को खारिज कर दिया है। अरूणाराय बनाम भारत संघ में अदालत ने देखा कि धर्मनिरपेक्षता का सार राज्य द्वारा लोगों के साथ गैर-भेदभाव है।

धार्मिक मतभेदों के आधार ''धर्मनिरपेक्षता'' के लिए खतरे का एक और संभावित कारण अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बड़े पैमाने पर धार्मिक उथल-पुथल को भी जिम्मेदारी ठहराया जा सकता है।

भारत में धर्मनिरपेक्षता की आवश्यकता-

भारत जैसे बहुसांस्कृतिक राष्ट्र में धर्मनिरपेक्षता का कोई विकल्प नहीं है। इसलिए, भारतीय संविधान ने धर्मनिरपेक्षता को अपनाया। विभिन्न भाषाओं के लोग और धर्म भारतीय संघ में रहते है। उन्हें एक साथ रखने के लिए धर्मनिरपेक्षता की जरूरत थी। इसलिए स्वतंत्रता के अधिकार के साथ धर्मनिरपेक्षता को स्वीकार करना आवश्यक था। हालांकि भारत में विविधता में एकता लाने की कोशिश, अल्पसंख्यक समुदाय भुगत रहे हैं। बेशक, भारत के धर्मनिरपेक्ष बनने के बाद भी राज्य में राष्ट्रवाद की भावना पैदा नहीं की जा सकी। सामाजिक असहिष्णुता के प्रति जागरूकता अल्पसंयकों के बीच राष्ट्रीय एकता के लिए खतरा है। धर्मनिरपेक्षता की जरूरत देश में अल्पसंख्यक समूहों के बीच राष्ट्रवाद की भावना पैदा करने के लिए है। यद्यपि भारत ने धर्मनिरपेक्ष राज्य की अवधारणा को अपनाया है, परंतु वास्तव में धर्म ने राजनीतिकरण किया है। धार्मिक संस्थाओं का इस्तेमाल वोटिंग की राजनीति के लिए किया जाता है। इलिए सांप्रदायिकता बढ़ने से धर्मनिरपेक्षता का सिद्धांत पिछड़ रहा है। सांप्रदायिकता लोकतंत्र विरोधी है, इसलिए धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को प्रचार में निहित करने की आवश्कयता लोकतांत्रिक मूल्य हैं भारत जैसे बहुलवादी समाज में धर्म पर आधारित राजनीति राष्ट्रीय अखंडता के लिए हानिकारक है। इसलिए, एक मजबूत लोकतंत्र के निर्माण के लिए, धार्मिक मूल्यों का सम्मान करते हुए समाज में धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों को सम्मान किया जाना चाहिए।

भारत में धर्मनिरपेक्षता के सामने चुनौतियां

भारत किसी धर्म विशेष से बंधा नहीं हे। धर्म और धर्मनिरपेक्षता की स्वतंत्रता के साथ-साथ भारतीय सामाजिक जीवन का धर्म एक अभिन्न अंग है। राजनीति में धर्म का बढ़ता दखल सेक्युलर के सामने एक बड़ी चुनौती है। वर्तमान समय में राज्य में होने वाले चुनाव में चुने जाने वाले उम्मीदवारों को धर्म और जाति के आधार पर वोट मिलते हैं मुस्लिम, ईसाई, पारसी जैसे अल्पसंख्यक समुदाय हैं।

हिंदू बहुमत के साथ रह रहे सिख हर किसी को अपने धर्म को बढावा देने का अधिकार है। बावजूद धार्मिक अल्पसंख्यकों में असुरक्षा की भावना आज भी कायम है वर्तमान में धार्मिक वाद की भावना कम होती नहीं दिखाई दे रही हैं इससे धर्मनिरपेक्ष समाज बनाना मुश्किल हो जाता है। भारत मैं बढ़ता जाविाद धर्मनिरपेक्ष समाज के सामने प्रमुख चुनौतियों में से एक है। जब तक देश के सभी समुदाय राष्ट्रीय भावना के साथ एक साथ नही आते हैं, तब तक एक धर्मनिरपेक्षसमाज संभव नहीं है।

निष्कर्ष

धर्मनिरपेक्षता के अभ्यास के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण और न्यायसंगत स्थापित करने के लिए सांसारिक जीवन में सामाजिक न्याय के लिए नियोजित प्रयासों की आवश्यकता होती है। संविधान ने धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार दिया है और यह निर्विवाद है। हमें पृष्ठभूमि को समझना चाहिए कि अधिकार व्यक्ति को दिया जाता है, धर्म को नहीं। भारत में अधिकांश लोग धर्म को मानते हैं। बहुत से लोग मानते हैं। बहुत से लोग मानते है कि हर शास्त्र एक मानवीय सिद्धांत है। हम समझ सकते है कि क्या सभी धर्म सम्मानपूर्वक, स्वतंत्र रूप से और आधुनिकता के पूरक भागों के साथ संयोजन करके धर्म शिक्षा को धार्मिक पाठ्यक्रम और स्कूली पाठ्यक्रम में शामिल करना चाहिए। ऐसा करने से सब समझ सकते है सभी धर्मो और धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार को सचेत रूप से लागू किया जा सकता है। तभी नागरिक धर्म को स्वीकार या अस्वीकार करेंगे। यह ध्रुवीकरण धार्मिक सद्भाव में मदद करेगा। वैज्ञानिक दृष्टिकोण धर्मनिरपेक्षता का एक अभिन्न अंग है। संविधान में शामिल निदेशक सिद्धांत और नागरिकों के मूल कर्तव्य। धर्म और राजनीति दोनों को अलग रखने की बात करते है और अगर ऐसा होता है, तो धर्मनिरपेक्षता का सही अर्थ यह है कि धर्म होना चाहिए। आधिकारिक तौर पर राज्य का कोई धर्म नहीं है। भारत में बहुसंख्यक लोगो का मानना है कि धर्म और मानवीय उपदेश सभी शास्त्रों का आधार है। यह धर्मनिरपेक्ष समाज के निर्माण में सहायक बन सकता है।

संदर्भ

1. International Journal of Humanities and Social Science Invention Volume 6 Issue 6, 2817.
2. www.navjyot.net
3. IOSR Journal Of HumanitiesAnd Social Science (IOSR-JHSS) Volume 22, Issue7,Ver.11 (July. 2017) PP 49-53 e-ISSN: p-1SSN: 2279-0845
4. Bhargav, R (ed) (2008), Politics and Ethics of the Indian Constitution, New Delhi: Oxford University Press. (2010). The Promise of India's Secular Democracy. New Delhi: Oxford University Press.
5. Janshakti, 22 Dec. 2016.
6. Indian Journal of Research Vo. 5. Issue 8.August 2016.
7. Constitution of India.
8. Asia Pacific Journal of Research. Vol. l. Issue XXIV. Feb. 2015

पटना में सामुदायिक रेडियो की स्थिति का आकलन

प्रगति पल्लवी

सहायक प्रोफेसर, एमिटी यूनिवर्सिटी, पटना

सार

वर्तमान शोध पत्र पटना में स्थित सामुदायिक रेडियो की स्थिति का मूल्यांकन करने का एक प्रयास है, खासकर जब सामुदायिक रेडियो कई मामलों में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा है। राष्ट्र भर में सामुदायिक रेडियो (सी.आर.) एक से अधिक कारणों से अपनी स्थिरता के लिए पूरी तरह से प्रतिरोध का रहा है। उदाहरण के लिए, सामुदायिक रेडियो में 'समुदाय' को शामिल करने को गंभीरता से चुनौती दी जाती है, भागीदारी गंभीर रूप से बाधित है जो कि आतंरिक की तुलना से बाह्य कारणों से अधिक है। समुदाय की आवाज तथा उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए उचित पहल नही करना एक सुव्यवस्थित जानबूझकर किया गया प्रयास है। दूसरे शब्दों में, लोगों को आवाज की पहुँच को प्रभावित करना एक संरचित साजिश हो सकती है और परिणामस्वरूप लोगों की मुक्ति एक दूर की वास्तविकता है। वर्तमान अध्ययन पटना स्थित शैक्षिक संस्था IIBM द्वारा संचालित उत्तम सामुदायिक रेडियो 90.4 पर आधारित है। इस शोध का उद्देश्य वर्तमान स्थिति, सीआर में समुदायों की भागीदारी और उत्तम सामुदायिक रेडियो की स्थिरता के मुद्दों का पता लगाना है। सी.आर.स्टेशन में समुदाय की भागीदारी की प्रकृति और सीमा का पता लगाने के लिए गहन साक्षात्कार जैसी गुणात्मक शोध पद्धति का उपयोग किया गया है और इसकी प्रभावशीलता का पता लगाने की कोशिश की गई है। एक गहन साक्षात्कार के आधार पर पता चला कि उत्तम सामुदायिक रेडियो समुदायों की भागीदारी में पिछड़ रहा है। इसके अलावा, निष्कर्ष यह भी बताते हैं कि प्रबंधन टीम स्थानीय लोगों और छात्रों के बीच जागरूकता,भागीदारी और रुचि पैदा करने में बहुत कम ध्यान देती है।संस्थान वित्तीय रूप से स्थिर है तथा वित्तीय समस्या का सामना नहीं कर रही है।

मुख्य शब्दः सामुदायिक रेडियो, लोगों की मुक्ति और आवाज की संकुचित पहुँच।

1. परिचय

मीडिया किसी देश की विकास प्रक्रिया में केंद्रीय भूमिका निभाता है। यह देश के लोगों के मुखपत्र के रूप में काम करता है। लोकतांत्रिक समाज का गठन नागरिकों की औपचारिक या अनौपचारिक भागीदारी द्वारा होता है। औपचारिक भागीदारी का अर्थ है – सार्वजनिक निकायों के चुनावों में खड़े होना या मतदान करनाजबकि अनौपचारिक भागीदारी मजबूत, समावेशी और स्थायी समुदायों के निर्माण के माध्यम से होती है। इस प्रक्रिया में मीडिया से अधिक समावेशिता और समानता की उम्मीद की जाती है, परन्तु समाज के दबे कुचले हुए तबके की मुख्यधारा की मीडिया द्वारा लगातार अनदेखी की जा रही है। 90 के दशक में वैश्वीकरण ने भारत में प्रवेश किया तथा इसने भारतीय मीडिया को अवश्यम्भावी रूप से प्रभावित किया। इसके परिणामस्वरूप मीडिया का व्यवसायीकरण हुआ तथा यह विज्ञापन तथा उपभोक्ता केन्द्रित बन गया। वैश्वीकरण के कारण मीडिया के इस व्यावसायीकरण ने समाज के कमजोर वर्ग की आवाज को मुख्यधारा सेबाहर कर दिया। वैश्वीकरण ने विकास के दायरे में कई असुविधाजनक दोष रेखाओं को जन्म दिया है, जहां मुख्यधारा की मीडिया में स्थानीय जमीनी स्तर के लोगों की आवाज अनसुनी है, क्योंकि मुख्यधारा की मीडिया बाजार संचालित है और लाभ कमाने में लिप्त है। बड़े औद्योगिक समूह दवारा मीडिया समूह का अधिग्रहण मीडिया के निगमीकरण को सुस्पस्ट करता है। मीडिया और कॉर्पोरेट क्षेत्र के बीच इस अपवित्र गठजोड़ के कारण समाज के कमजोर और हाशिए वाले तबके का प्रतिनिधित्व समाप्त हो गया है। Jurgen Habermas ने 'सार्वजनिक क्षेत्र' की अवधारणा प्रस्तुत की है जिसमें उन्होंने बताया कि सार्वजनिक क्षेत्र एक ऐसा स्थान है जहाँ लोग एक साथ आते हैं और अपनी आवाज पहुंचाते है। मास मीडिया वह सार्वजनिक क्षेत्र है जहां लोगों की आवाज सुनी जाती है। लेकिन निगमीकरण और व्यवसायीकरण के कारण मीडिया प्रकृति में कुलीन बन रहा है, इसका अर्थ यह है कि सत्ता मीडिया बैरन और कॉर्पोरेट सेक्टर के हाथ में है, जिसके परिणामस्वरूप एक हाथ समाज के अभिजात वर्ग मुख्यधारा के मीडिया में परिलक्षित हो रहे है तथा दूसरे हाथ जानबूझकर समाज के कमजोर तबके की आवाज दबाई जा रही है। सार्वजनिक क्षेत्र का उपयोग मीडिया के लाभ कमाने के लिए किया जाता है और समाज के हाशिए पर रहने वाले लोग मुख्यधारा की मीडिया में अपनी आवाज नहीं पहुंचा पा रहे, इसलिए विकास प्रक्रिया में उनकी भागीदारी अनदेखी है। संचार की वैकल्पिक अवधारणा जैसे सामुदायिक रेडियो मुख्यधारा के मीडिया के पैटर्न को बदलने का प्रयास कर सकते हैं। AMARC (वर्ल्ड एसोसिएशन ऑफ कम्युनिटी ब्रॉडकास्टर्स) के कम्युनिटी रेडियो के सिद्धांतों के अनुसार कम्युनिटी रेडियो एक माध्यम के तौर पर दबे-कुचले लोगों के मुखपत्र तथा आवाज को पहुंचाने के साथ विकास के उपकरण के रूप में कार्य करता है (पावराला et-al, 2007)। इसे तीन पहलुओं के रूप में परिभाषित किया गया है:- गैर-लाभकारी, सामुदायिक स्वामित्व और नियंत्रणतथा सामुदायिक भागीदारी (पावराला et-al, 2007)। इस प्रकार AMARC द्वारा दिए गए सामुदायिक रेडियो के उपरोक्त सिद्धांत सही है कि सामुदायिक रेडियो में समाज के गरीब और शक्तिहीन तबकों को आवाज देने की क्षमता है। कम्युनिटी रेडियो उन विशेष समुदायों की सेवा करने के लिए है जहाँ मुख्यधारा की मीडिया नहीं पहुँच रहा है और इसके कारण उनके आवाज की पहुँच नहीं है। यह मुख्यधारा के मीडिया की भूमिका और जिम्मेदारियों पर सवाल उठाता है। लोगों की आवाज की पहुँच नहीं होना की अक्षमता उस निर्णय को प्रभावित करेगी जो उनके जीवन को प्रभावित

करता है और निर्णय लेने में भाग लेने के अधिकार को प्रभावित करता है (टैची, 2006)। लाभ उन्मुख मीडिया उद्योगों के व्यवस्थित प्रयास से समाज के कमजोर वर्ग की आवाज नहीं पहुँच रही है जिससे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रभावित होती है। यह मुख्यधारा के मीडिया में इन लोगों की भागीदारी के अवसरों की कमी से भी संबंधित हो सकता है। मीडिया में इन समूहों को जगह देने से उनके विचार और समस्या मुख्यधारा की सार्वजनिक बहस का हिस्सा बन जाते हैं।

मीडिया बाजार में अनियमित वृद्धि विविधता और बहुलवाद को कम करती है और अधिकांश व्यक्तियों की उनके विचारों को सुनाने की क्षमता सीमित करती है। मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का अनुच्छेद 19, राय और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा किसी भी मीडिया के माध्यम से सूचना और विचारों को प्राप्त करने और प्रदान करने की स्वतंत्रता की गारंटी बिना हस्तक्षेप के देता है। नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय वाचा का अनुच्छेद 19 भी सभी को विचार रखने तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार देती है, जिसमें मोर्चे की परवाह किए बिना सूचना और विचारों की तलाश और प्राप्त करने की स्वतंत्रता शामिल है। ये अंतर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त सिद्धांत सामुदायिक रेडियो प्रसारण को बढ़ावा देते हैं क्योंकि यह एक ऐसा माध्यम है जो हाशिए पर गये लोगो की आवाज को आवाज देता है तथा उनके मुखपत्र के रूप में कार्य करता है।यह समाज के भीतर संचार व लोकतांत्रिक प्रक्रिया के लिए केंद्रीय है। सामुदायिक रेडियो नागरिकों को दैनिक जीवन में कई क्षेत्रों में सक्रिय होने की अनुमति देता है और संचार के अधिकारों को लागू करता है। संचार सोसायटी (CRIS) में संचार अधिकार नवंबर 2001 में शुरू किया गया। संचार अधिकार के लिए अंतरराष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठनों और स्थानीय नेटवर्क का एक समूह बताता है कि सामुदायिक संचार जैसे सामुदायिक रेडियो लाभ उन्मुख कॉर्पोरेट मीडिया का महत्वपूर्ण विकल्प प्रदान कर रहे है। वे अपनी सामाजिक समस्याओं पर ध्यान देकर वंचित समाज को सशक्त बनाने के लिए प्रेरित होते हैं। सामुदायिक रेडियो का स्वामित्व और नियंत्रण समुदायों के हाथों में है और वे सांस्कृतिक, राजनीतिकतथा आर्थिक क्षेत्र में अपनी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए साधन प्रदान करते हैं। (थॉमस, 2006)

2. साहित्य की समीक्षा

लोकतंत्र में प्रभावी आवाज महत्वपूर्ण है, जबकि आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में विभिन्न तरीकों से आवाज दी जाती है। पिछले तीन दशकों से राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में समकालीन आवाज का संकट रहा है।

आवाज के दो अर्थ हैं, एक है 'बोलने वाले व्यक्ति की आवाज', दूसरा है 'वॉयस ऑफ ओपिनियन'। विशिष्ट परिपेक्ष्य की अभिव्यक्ति को स्वीकार करने की आवश्यकता है एवं आवाज के प्रतिनिधित्व की लंबी उलझी हुई असमानताओं को दूर करना आवश्यक है। आवाज को एक मूल्य के रूप में मानने का अर्थ है सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संगठन के ढांचे के खिलाफ भेदभाव जो एक प्रक्रिया के रूप में आवाज को नकारते या कम करते हैं। व्यावहारिक रूप से, सांस्कृतिक रूप से और काल्पनिक रूप से समकालीन विश्व पर नवउदारवाद हावी हो रहा है। यह संवाद आर्थिक दृष्टिकोण से संचालित होता है और आवाज को महत्व नहीं देता है तथा आर्थिक जीवन के दृष्टिकोण को राजनीति पर लागू करता है (कैनरी, 2010)।

सामुदायिक रेडियो माध्यम का उपयोग शोषित लोगों (नस्लीय, लिंग या वर्ग के आधार पर) के मुखपत्र, आवाज पहुंचाने के माध्यम और विकास के उपकरण के रूप में कार्य करना है। सामुदायिक रेडियो के तीन पहलू हैं: गैर-लाभकारी बनाना, सामुदायिक स्वामित्व और नियंत्रण तथा सामुदायिक भागीदारी। सामुदायिक रेडियो समुदाय के लिए कुछ करने के बारे में नहीं है, बल्कि समुदाय अपने लिए कुछ करने के बारे में भी है, यानी, संचार के अपने साधनों कास्वामित्व व नियंत्रण स्वयं करे (पावराला, 2007)। यह एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें समुदाय के सदस्य कार्यक्रमों को तैयार करने के लिए एकत्रित होते हैं और इस प्रकार अपने भाग्य निर्धारण में अभिनेता की प्राथमिक भूमिका निभाते हैं। सामुदायिक रेडियो का जोर मीडिया के उपयोग के संबंध में समुदाय के सदस्यों द्वारा लोकतांत्रिक और विकास प्रयासों के स्वामित्व पर होना चाहिए चाहे समुदाय की पहल जो भी हो। सार में, यह भागीदारी संचार व प्रक्रिया है, न कि तकनीक अथवान ही केवल एक साधन। यह समुदाय के बारे में एक दूसरे से संवाद करना और समान लक्ष्यों (फ्रेजर और एस्ट्राडा, 2001) के लिए एक साथ काम करना है।

दक्षिण अफ्रीका केलिम्पोपो प्रांत में सामुदायिक रेडियो क्षेत्र के सामने स्थिरता चुनौतियों के अध्ययन का उद्देश्य समुदायों को लक्षित करने के लिए सामुदायिक रेडियो की सामाजिक स्वीकृति का पता लगाना और निर्धारित करना, निधि जुटाना और वाणिज्यिक योजना की पहचान करना तथा इसकी शासन विधि और प्रबंधन नीतियों का मूल्यांकन करना है। विस्तृत साहित्य समीक्षा, फोकस समूह चर्चा, गहन साक्षात्कार, अभिलेखीय रिकॉर्ड और संस्थागत दस्तावेजों के विश्लेषण को अनुसंधान विधियों के रूप में उपयोग किया गया है। परिणाम में यह पाया गया है कि सामुदायिक सहभागिता और शासन के मुद्दों में अन्य चर की तुलना में स्टेशनों ने अच्छा प्रदर्शन किया (70% औसत स्कोर)। अन्य चर में सहभागी प्रोग्रामिंग (65%), विपणन रणनीतियों (65%), वित्तीय प्रबंधन (63%) और निधि संग्रहण (53%) शामिल थे। यह देखा गया कि विपणन और वित्तीय प्रबंधन की तुलना में सामाजिक स्वीकृति अधिक व्यवहार्य थी, जबकि निधि जुटाने की कोशिश का स्तर सबसे कम था। अध्ययन से पता चला कि सामुदायिक रेडियो प्रकृति स्वरुप स्थायी राजस्व तथा अन्य प्रकार के वित्त पोषण के लिए सार्वजनिक प्रसारणकर्ताओं और वाणिज्यिक की तुलना में संघर्ष करता है। यह वैश्विक मीडिया पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण घटक बना हुआ है। यह पूरे समाज के सामाजिक और आर्थिक विकास में व्यापक योगदान देता है। यह श्रोताओं तथासक्रिय सामुदायिक भागीदारी के लिए वैकल्पिक मीडिया भी प्रदान करता है और अब दक्षिण अफ्रीका में सार्वजनिक और वाणिज्यिक ब्रॉडकास्टर्स दोनों के लिए सबसे बड़ा टैलेंट फीडर बन गया है (तविसो, 2009)।

आजीविका सुधार में सामुदायिक रेडियो की भूमिका: सिमली सामुदायिक रेडियो का अध्ययन घाना के उत्तरी क्षेत्र के टोलन-कुंबुंग जिले में लोगों की आजीविका सुधार के लिए सिमली रेडियो के योगदान पर आधारित है। सिमली सामुदायिक रेडियो के डेटा को एक शैक्षिक उपकरण के रूप में प्रसारित करने, पारंपरिक संस्कृति के प्रचार, संचार और सूचना साझा करने तथा मनोरंजन और आय संवर्धन के आधार पर एकत्र किया गया था। इस शोध में डेटा संग्रह के लिए बैठकें, फोकस समूह चर्चा, अवलोकन, हितधारक के साक्षात्कार और डी-ब्रीफिंग सत्र का उपयोग किया गया है। इस शोध में यह पाया गया

कि सिमली सामुदायिक रेडियो विकेन्द्रीकरण और स्थानीय शासन के निर्माण में मदद कर रहा है। लोग सरकारी नीतियों से अधिक परिचित हैं और वे जानते हैं कि उनके सांसद कौन हैं और वे नीतियों पर सवाल उठाते हैं और अब वे अपने से संबंधित किसी भी विकास के मुद्दों से अनभिज्ञ नहीं हैं। इसने लघु और मध्यम उद्यम (एसएमई) विकास को बढ़ावा दिया है। स्टेशन ने एसएमई को बहुत सस्ती फीस पर विज्ञापन देकर बड़ी आबादी तक पहुंचने के लिए एक मंच प्रदान किया है। रेडियो सिमली ने स्थानीय भाषा में कार्यक्रम का प्रसारण किया और स्टेशन लोगो को एक साथ रखने के पारंपरिक मनोरंजन के रूपों को फिर से जीवंत कर रहा है।यह सुनने वाली बहुमत जनता के हित में काम कर रहा है क्योंकि यह संस्कृति को बढ़ावा देता है। सामयिक मुद्दों पर तैयार किए गए कार्यक्रमों ने सिमली रेडियो को लोगो का प्रिय बनाया है। स्टेशन कार्यक्रमों में विशेषज्ञ मेहमानों को आमंत्रित करते है। वे अपने विशेषज्ञता के क्षेत्रों में मुद्दों को स्पष्टता से समझाते हैं। परिचर्चा में प्रमुख विषयों में पारिवारिक जीवन, नैतिक शिक्षा, लिंग और सामाजिक समावेश, घरेलू हिंसा, संघर्ष और संघर्ष समाधान तथा शांति निर्माण आदि शामिल हैं। सिमली रेडियो अपने व्यापक कवरेज क्षेत्र के कारण समन्वय में चुनौतियों का सामना कर रहा है। रेडियो नेतृत्व की कठिनाइयों का सामना करता है। इसके अलावा, प्रस्तुतकर्ता के संगठन छोड़ने के बाद रेडियो कार्यक्रमों के समाप्त होने की एक उच्च प्रवृत्ति है। वाह्य कारको ने सिमली रेडियो को जबरदस्त रूप से प्रभावित किया है। बिजली आपूर्ति नहीं होने के कारण स्टेशन सामाजिक कार्यक्रमों के अपने लक्ष्य को पूरा नहीं कर सका। (हसन et-al, 2011)

श्रीलंका में महावेली सामुदायिक रेडियो परियोजना किण्वन की स्थिति और क्षेत्र में स्थानीय रेडियो के लिए संभावनाओं की बढ़ती समझ में योगदान देता है। यह परियोजना एक स्वायत्त सामुदायिक रेडियो परियोजना के बजाय राष्ट्रीय प्रसारण प्रणाली की एक शाखा के रूप में संचालित है। यह एक बड़ा कदम था और इसने एक उपयोगी मॉडल प्रदान किया जिसका बाद में कई एशियाई देशों द्वारा अनुकरण किया गया था। 1991 में वियतनाम ने एक महत्वपूर्ण कदम उठाया जिसमें कई स्थानीय सामुदायिक रेडियो स्टेशनों की स्थापना देखी गई। ये स्टेशन सामुदायिक प्रतिनिधियों द्वारा संचालित हैं और स्थानीय स्वायत्तता के उच्च स्तर का आनंद ले रहे हैं। फिलीपींस में स्थिति अन्य एशियाई देशों से भिन्न रही है। उनकी प्रसारण प्रणाली संयुक्त राज्य अमेरिका की व्यावसायिक परंपरा से काफी प्रभावित हुई है। हालांकि, विश्वविद्यालयों और अन्य संस्थानों (करुणानायके, 2016) द्वारा कई ग्रामीण रेडियो परियोजनाए स्थापित की गई हैं।

केपीकेजे उज्जस सामुदायिक रेडियो परियोजना का पहला कार्यक्रम KMVS द्वारा Drishti Media Collective, Direct Mediainputs के साथ KMVS द्वारा निर्मित किया गया था। यह अहमदाबाद स्थित एक गैर सरकारी संगठन है जो अभिव्यक्ति देने के मीडिया की क्षमता में विश्वास रखता है कि 'सामाजिक संचार सूखी, उबाऊ, पांडित्यपूर्ण या निराशाजनक' नहीं होनी चाहिए। केवीवीएस द्वारा कच्छियों की मीडिया सम्बन्धी आदतों के आकलन हेतु किए गए गांव-आधारित सर्वेक्षण से पता चला है कि कच्छी भाषा के कार्यक्रमों के लिए लोगों की मांग थी, लेकिन आकाशवाणी भुज ने अपने अधिकतर प्रसारण के लिए राज्य भाषा गुजराती को प्राथमिकता दी। कच्छी बोली, जिसका कोई लिखित रूप नहीं है, उसे KPKJ के लिए मूल भाषा के रूप में चुना गया था क्योंकि इसने अधिकांश स्थानीय लोगों (पावराला, 2007) के लिए भावनात्मक पहचान के बिंदु के रूप में काम किया था। संगम रेडियो भारत में सामुदायिक रेडियो में से एक है। आंध्र प्रदेश राज्य के मेदक जिले में ग्रामीणों विशेष रूप से महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए डेक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी के स्वामित्व के अधीन चलाया जाता है। संगम रेडियो एक सामुदायिक रेडियो है जो मुख्य रूप से मेडक जिले में विभिन्न विकासात्मक गतिविधियों को बढ़ावा देने में अग्रशील है, जिससे क्षेत्र में गरीबों और दलितों पर मुख्य ध्यान देने के साथ-साथ समुदाय की आजीविका में सुधार होता है। संगम रेडियो में विकास से संबंधित विभिन्न कार्यक्रम हैं तथा इसने स्थापना के बाद से मेदक जिले में हजारों महिलाओं के जीवन को बेहतर बनाने में एक महान भूमिका निभाई है।

3. उद्देश्य

- पटना में उत्तम सामुदायिक रेडियो की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए।
- पटना में उत्तम सामुदायिक रेडियो में सामुदायिक भागीदारी की आलोचनात्मक जाँच करने के लिए।
- उत्तम सामुदायिक रेडियो की स्थिरता की चुनौतियों का पता लगाने के लिए।

4. शोध प्रश्न

RQ1: उत्तम सामुदायिक रेडियो की वर्तमान स्थिति क्या है?

RQ2: उत्तम सामुदायिक रेडियो में सामुदायिक भागीदारी कितनी है?

RQ3: सामुदायिक रेडियो कैसे स्थिरता की समस्या का सामना कर रहा है?

5. वैचारिक ढांचा

5.1 Jurgen Habermas द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र की अवधारणा

Jurgen Habermas ने 'सार्वजनिक क्षेत्र' की अवधारणा को रेखांकित किया, जिसमें उन्होंने सार्वजनिक क्षेत्र को एक ऐसे स्थान के रूप में पेश किया, जहाँ लोग एक साथ आते हैं और अपनी आवाज पहुँचाते हैं, प्रतिभागी सामान्य हित के मामलों पर चर्चा करने के लिए एकत्रित होते हैं, यह सामाजिक जीवन का क्षेत्र है जहाँ सूचना और प्रश्नों पर विचार होते हैं और राय का आदान-प्रदान किया जाता है, जिससे आमराय बनती है। 'सार्वजनिक क्षेत्र' की अवधारणा सामुदायिक रेडियो (हॉली, 2013) के सिद्धांतो और प्रकृति (मजीवे) से जुड़ी हुई है। वर्तमान शोध इस सन्दर्भ में है कि जेर्गेन हेबरमास द्वारा प्रस्तुत सार्वजनिक क्षेत्र की अवधारणा का उपयोग उन लोगों के लिए कैसे किया जाता है जिनकी आवाज कठोरता से दबा दी जाती है। सामुदायिक रेडियो सार्वजनिक क्षेत्र की धारणा की पुष्टि करता है क्योंकि यह समुदाय की भागीदारी को सक्षम बनाता है। यह आम समस्याओं के सम्बन्ध में समुदाय को एकत्रित करता है तथा

समस्याओं के समाधान के लिए एक मंच प्रदान करता है। बड़े पैमाने पर समूह में मीडिया संगठन के विकास के कारण, सार्वजनिक क्षेत्र में कुलीन वर्ग की आवाज का बोलबाला बढ़ा है, और समाज के हाशिए वाले तबके की आवाज दबी है। इसके विपरीत, सामुदायिक रेडियो में समाज के हाशिए और दलित वर्ग की भागीदारी से सार्वजनिक क्षेत्र को फिर से मजबूत करने की क्षमता है। उपरोक्त चर्चा के साथ शोधकर्ता यह याद दिलाते हैं कि सामुदायिक रेडियो बहु समाज की सेवा कर सकता है। सामुदायिक रेडियो राज्य और बाजार के क्षेत्र के बाहर प्रतीकात्मक शक्ति का एक नया क्षेत्र है। सार्वजनिक क्षेत्र में हाशिए पर गए वर्ग की आवाज को शामिल करके उन्हें अपनी स्वयं की शक्ति का एहसास कराने की जबरदस्त क्षमता है।

5.2 पाउलो फ्रेरे द्वारा संगति की अवधारणा

पाउलो फ्रेरे ने 'कर्तव्यनिष्ठा' की अवधारणा पेश की जिसमें उनका तर्क है कि संचार माध्यमों को मानसिक और मनोवैज्ञानिक बेड़ियों से मुक्त करने के लिए इस्तेमाल किया जाना चाहिए जिसमें समाज के उत्पीड़ित वर्ग दशकों से रह रहे हैं। फेरे ने ईश्वर मीमांसा के आधार पर तर्क दिया कि विकास संचार का उपभोग दशको से पीड़ित वर्ग के मुक्ति हेतु किया जाना चाहिए। इस सरंचित उत्पीड़न से बाहर आने के लिए उत्पीड़ित वर्ग को शामिल करने की आवश्यकता है जो कि संचार को वाहन बनाकर पूरा किया जाएगा। यह शोध सभी लोगों की मुक्ति हेतु अपने स्वयं के संचार माध्यमों के प्रयोग के बारे में है। लोगों को एक दूसरे को समझने और एक दूसरे की समस्याओं की पहचान करने के लिए अपनी स्वयं की संचार प्रक्रिया का उपयोग करना चाहिए। कम्युनिटी रेडियो पाउलो फ्रेरे द्वारा दी गई 'कर्तव्यनिष्ठा' की अवधारणा को दोहराता है क्योंकि यह समुदाय को रेडियो में भागीदारी के माध्यम से अपनी आवाज देकर उन्हें मुक्त करने में सक्षम बनाता है। सामुदायिक रेडियो हाशिए के समुदाय की अभिव्यक्ति और भागीदारी के लिए एक वाहन के रूप में काम करता है (मेल्कोटे और स्टीव्स, 2013)।

6. अनुसंधान पद्धति

इस शोध में अनुसंधान हेतु गहन साक्षात्कार पद्धति का उपयोग किया गया है क्योंकि यह विशेष शोध गुणात्मक अनुसंधान दृष्टिकोण की मांग करता है इसलिए अनुसंधान की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए गहन साक्षात्कार को शामिल किया गया है। उत्तम कम्युनिटी रेडियो के प्रबंधन दल के सदस्यों के साथ गहन साक्षात्कार किया गया। शोधकर्ता ने उत्तम समुदाय के मालिक के साथ साक्षात्कार हेतु समय लिया। शोधकर्ता ने साक्षात्कार के लिए संरचित प्रश्नावली तैयार की और संरचित प्रश्नावली के अनुसार साक्षात्कार लिया। इसका उपयोग प्रतिभागियों के दृष्टिकोण, उत्तम सामुदायिक रेडियो की स्थिति व स्थिरता को उजागर करने के लिए किया जाता है। उत्तम कम्युनिटी रेडियो के मालिक के साथ गहराई से साक्षात्कार किया गया था जिससे सामुदायिक रेडियो की स्थिति, भागीदारी और स्थिरता के बारे में लाभप्रद सूचना प्राप्त हो सके। साक्षात्कार दो बार उत्तम सामुदायिक रेडियो के कर्ताधर्ता के साथ आयोजित किया गया था और निष्कर्ष दोनों साक्षात्कार पर आधारित हैं ।

7. प्रमुख निष्कर्ष

7.1 उत्तम सामुदायिक रेडियो की वर्तमान स्थिति

उत्तम सामुदायिक रेडियो को एक शैक्षिक संस्थान प्ण्ठड (पटना) द्वारा वर्ष 2005 में शुरू किया गया था। यह भारत में सातवां और बिहार का पहला सामुदायिक रेडियो है। शुरुआत में इसे IIBM के छात्रों के लिए लॉन्च किया गया था। यह प्रबंधन स्नातक युवा समूह के लिए समर्पित था। शोधकर्ता द्वारा उत्तम सामुदायिक रेडियो के विशिष्ट समुदाय के बारे में पूछा गया, तो सामुदायिक रेडियो के कर्ताधर्ता श्री उत्तम कुमार सिंह ने बहुत आत्मविश्वास से उत्तर दिया कि उत्तम सामुदायिक रेडियो समाज के सामाजिक रूप से दबे हुए तबके के लिए नहीं है और उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि हमें उनमें दिलचस्पी नही है तथायह केवल प्रबंधन के छात्रो के लिए है। शुरू में इसे छात्रों के लिए शुरू किया गया था, लेकिन बाद में जब सूचना मंत्रालय ने कार्यक्रम बनाने में अधिक सामाजिक समूह जोड़ने के लिए उन पर लगातार दबाव डालना शुरू किया, तो उन्होंने उत्तम सामुदायिक रेडियो में कार्यक्रम बनाने के लिए आसपास के इलाकों को शामिल करने की कोशिश की ताकि सूचना और प्रसारण मंत्रालय के दबाव से बचा जा सके। बातचीत से यह स्पष्ट था कि उन्होंने केवल आसपास के इलाके को शामिल करने की कोशिश की है, लेकिन समुदाय को कार्यक्रम के बारे में चर्चा करने व कार्यक्रम बनाने की प्रक्रिया में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करने का प्रयास नहीं किया क्योंकि इरादा केवल सूचना और प्रसारण मंत्रालय के दबाव से बचने का था। इसके अलावा उन्होंने अपने स्टेशन से प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों की कुछ सूची भी प्रस्तुत किया। उत्तम रेडियो से प्रसारित होनेवाले कुछ कार्यक्रम स्वास्थ्य के मुद्दों पर हैं। यह समुदाय में स्वास्थ्य जागरूकता फैला रहा है। इस प्रकार उत्तम सामुदायिक रेडियो स्वास्थ्य शिक्षा में शैक्षिक और हिमायती की भूमिका निभा रहा है। समुदाय में उत्तम रेडियो द्वारा कई स्वास्थ्य जागरूकता कार्यक्रम चलाए जाते हैं। स्वास्थ्य संबंधी विभिन्न मुद्दों पर डॉक्टरों द्वारा चर्चा आयोजित किए जाते हैं। विशेषज्ञ डॉक्टर इन कार्यक्रमों के माध्यम से जागरूकता फैलाते हैं। यह पटना में स्वच्छता कार्यक्रम को फैलाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। स्वच्छ भारत कार्यक्रम के संदेश सामुदायिक रेडियो के माध्यम से प्रसारित किए गए हैं। उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि आने वाले समय में यातायात जाम की असुविधा से बचने के लिए नागरिकों हेतु यातायात रिपोर्टिंग तथा रेलवे पूछताछ की वैकल्पिक व्यवस्था के तौर पर रेलवे समय सारणी सूचना जैसे कार्यक्रमों को शामिल करने की योजना है।

उत्तम सामुदायिक रेडियो पटना शहर के केंद्र में स्थित है। उत्तम सामुदायिक रेडियो का कवरेज क्षेत्र 50 किमी से कम है। इसके कार्यक्रमों के प्रसारण के लिए 50 वाट का ट्रांसमीटर लगाया गया है। उत्तम सामुदायिक रेडियो के कार्यक्रम का प्रसारण समय सुबह 6-12 और शाम 6-12 है। उत्तम कुमार सिंह के साथ साक्षात्कार में उन्होंने खुलासा किया कि छात्रों को कार्यक्रम बनाने में भाग लेना है, लेकिन साथ ही उन्होंने इस तथ्य को भी स्वीकार किया कि छात्र कार्यक्रम बनाने तथा प्रसारित कार्यक्रमों को सुनने में दिलचस्पी नहीं दिखाते है। कवरेज क्षेत्र के बारे में बात करते वक्त उन्होंने कार्यक्रमों के प्रसारण के बारे में निम्न मुद्दों का खुलासा किया:-

- उत्तम सामुदायिक रेडियो शहर में चलता है इसलिए यह ऊंची इमारतों से घिरा हुआ है जो इसके प्रसारण को प्रभावित करते हैं।
- कम वोल्टेजऔर निर्बाध विद्धुत आपूर्ति की समस्या है - जो कार्यक्रमों के प्रसारण में बाधा उत्पन्न करती है।

7.2 सामुदायिक सहभागिता

शोध का दूसरा उद्देश्य इस बात की जांच करना है कि जनता उत्तम कम्युनिटी रेडियो के संचार प्रणाली की प्रबंधन प्रक्रिया, प्रबंधन और योजना में कैसे भाग लेती है। यह खंड उत्तम सामुदायिक रेडियो की भागीदारी के प्रकृति को उजागर करने का प्रयास करता है कि लोग कार्यक्रम को बनाने में कैसे भाग लेते हैं और उनकी जरूरतों को रेडियो स्टेशन द्वारा पूरा किया जाता है अथवा नहीं। उत्तम कुमार सिंह ने साक्षात्कार में खुलासा किया कि यह छात्रों के लिए है, इसलिए छात्र कार्यक्रम बनाने में भाग लेते हैं। अत: इस बात की पुष्टि हेतु शोधकर्ता ने संस्थान के कुछ छात्रों से उत्तम सामुदायिक रेडियों में उनकी भागीदारी के बारे में जानना चाहा तो बहुत ही आश्चर्यजनक और चौंकाने वाला तथ्य सामने आया कि उन्हें उत्तम सामुदायिक रेडियो के बारे में कोई जानकारी नहीं है और उन्होंने कभी भी कार्यक्रम बनाने में भाग नहीं लिया। शोधकर्ता द्वारा कार्यक्रमों में शामिल किये जानेवाले सामाजिक समूह के बारे में जानकारी लेने पर छात्रों द्वारा जगत अपार्टमेंट का नाम बताया गया, जो सी.आर. स्टेशन के पास ही स्थित है। परन्तु शोधकर्ता ने जगत अपार्टमेंट के लोगों से बातचीत में पाया कि वे इसके बारे में पूरी तरह से अनभिज्ञ थे। एक साक्षात्कार में, यह उल्लेख किया गया था कि लाइव साक्षात्कार या विषय विशेष के बारे में बात करने के लिए स्टेशन पर अतिथि वक्ता को आमंत्रित किया जाता है। टॉक शो के लिए उत्तम रेडियो में मुख्य रूप से डॉक्टर, व्यापारी, शिक्षाविद्, उद्यमी आदि आमंत्रित किये जाते है। अतिथि वक्ता सामुदायिक रेडियो में भाग लेते हैं और वे समुदाय में अपनी नीतियों का प्रसार करते हैं। वे उद्यमिता के विचारों का प्रसार भी करते हैं। शोधकर्ता ने सामुदायिक रेडियो के अन्य सदस्यों का साक्षात्कार करने के लिए अनुरोध किया तब उन्होंने जानबूझकर इस प्रश्न को नजरअंदाज कर दिया और बताया कि शोधकर्ता को केवल सामुदायिक रेडियो के कर्ताधर्ता श्री उत्तम कुमार सिंह (निदेशक IIBM) से ही प्रश्न पूछने के लिए कहा गया था।

संक्षेप में, उत्तम सामुदायिक रेडियो अपने संचालन में सामुदायिक भागीदारी की सभी आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता है। सामुदायिक रेडियो को हाशिए के लोगों का मुखपत्र माना जाता है, लेकिन एक शोध में यह पाया गया है कि मास मीडिया द्वारा उनकी भागीदारी को अनदेखा किया जाता है तथा समाज के कुलीन वर्ग की आवश्यकताओं को पूर्णकिया जाता है। उपरोक्त के आलोक में शोधकर्ता ने निष्कर्ष निकाला कि वंचित वर्ग का मुखपत्र बनने के बजाय उत्तम कम्युनिटी रेडियो कुलीन वर्ग का मुखपत्र बन रहा है। सामुदायिक रेडियो को मुख्यधारा के मीडिया के आधिपत्य को चुनौती देने या उसका मुकाबला करने के लिए माना जाता है, परन्तु यह मुख्यधारा के मीडिया के पदचिन्हों पर चल रहा है।

7.3 उत्तम सामुदायिक रेडियो की स्थिरता

तीसरा उद्देश्य उत्तम सामुदायिक रेडियो के स्थायित्व मुद्दे का पता लगाना है। (डैगरोन, 2001) सामुदायिक रेडियो की स्थिरता पर तीन अलग-अलग लेकिन परस्पर संबंधित अवधारणाओं के रूप में चर्चा करता है: सामाजिक स्थिरता, संस्थागत स्थिरता तथा वित्तीय स्थिरता। वर्तमान अध्ययन में उत्तम सामुदायिक रेडियो कीवित्तीय स्थिरता का खुलासा किया गया। उत्तम कम्युनिटी रेडियो के कर्ताधर्ता से बातचीत में उन्होंने उल्लेख किया कि यह IIBM द्वारा वित्त पोषित है। IIBM से प्राप्त निधि सामुदायिक रेडियो को चलाने के लिए पर्याप्त है और इसे किसी अन्य संगठन से किसी भी वित्तीय सहायता की आवश्यकता नहीं है।

8. चर्चा

उत्तम सामुदायिक रेडियो IIBM पटना के प्रबंधन छात्रों के लिए उच्च आशाओं के साथ शुरू हुआ। श्री उत्तम कुमार सिंह (निदेशक IIBM) पटना ने IIBM में प्रबंधन के छात्रो के लिए उत्तम सामुदायिक रेडियो प्रारम्भ किया। समय बीतने के साथ जब उत्तम सामुदायिक रेडियो पर सूचना और प्रसारण मंत्रालय से अधिक सामाजिक समूह को शामिल करने के लिए लगातार दबाव मिलना शुरू हो गया तो उन्होंने कार्यक्रम बनाने में स्थानीय लोगों को शामिल किया, लेकिन शोधकर्ता कोई भी कार्यक्रम नहीं खोज पाए जो कर्ताधर्ता द्वारा उल्लेखित समुदाय उत्तम सामुदायिक रेडियो में बनाता है। यह पुन: सुस्पष्ट करता है कि उत्तम सामुदायिक रेडियो स्थानीय समुदाय की आवाज नहीं बन रहा है, बल्कि यह अपने स्वयं के लाभ के लिए बनाया गया है। जहां तक सी.आर. में छात्रों की भागीदारी की बात है, उनके साथ एक संक्षिप्त साक्षात्कार के बाद यह पाया गया है कि छात्र अपने स्वयं के शैक्षिक परिसर में सामुदायिक रेडियो के अस्तित्व से पूरी तरह से अनभिज्ञ हैं। उत्तम कम्युनिटी रेडियो के कर्ताधर्ता ने बहुत ही आसानी से छात्रों पर यह आरोप मढ़ दिया कि वे कार्यक्रम बनाने और सुनने में दिलचस्पी नहीं दिखाते हैं, लेकिन छात्रों के साथ हुई बातचीत से पता चला है कि उन्हें उत्तम कम्युनिटी रेडियो के बारे में जानकारी नहीं है, जो बताता है कि उत्तम कम्युनिटी रेडियो का उपयोग प्रबंधन के छात्रो के विकास के लिए नहीं किया जा रहा है बल्कि इसका उपयोग उनकी अपनी छवि निर्माण के लिए किया गया है, जो पूर्णरूपेण सामुदायिक रेडियो की विशेषता नहीं है। यदि छात्र उत्तम सामुदायिक रेडियो से प्रसारित कार्यक्रमों को सुनने के साथ-साथ भाग नहीं ले रहे हैं, तो सवाल यह उठता है कि वास्तव में समुदाय कौन हैं जिनके लिए कार्यक्रम बनाए जाते हैं। शोधकर्ता ने यह भी देखा कि प्ठड की अधिकारिक वेबसाइट पर उत्तम सामुदायिक रेडियो द्वारा उपलब्ध कराई गई जानकारी श्री उत्तम कुमार सिंह के साक्षात्कार के तथ्यों से मेल नहीं करती है। यह स्पष्ट है कि प्रबंधन टीम ने उत्तम सामुदायिक रेडियो के अपने प्रदर्शन और प्रभावकारिता के बारे में लंबे दावे किए हैं, लेकिन जब शोधकर्ता ने साक्षात्कार के माध्यम से दस्तावेजीकरण की कोशिश किया तो यह उनकी वेबसाइट में अपलोड की जा रही जानकारी के साथ मेल नहीं खा रहा है। उत्तम सामुदायिक रेडियो में निधि का कोई मुद्दा नहीं है तथायह वित्तीय रूप से स्थिर है। उत्तम सामुदायिक रेडियो की वित्तीय आवश्यकता को पूरा करने के लिए IIBM से प्राप्त निधिपर्याप्त है। कुछ तकनीकी चुनौतियां हैं जैसे-बिजली और वोल्टेज की समस्या। उस क्षेत्र में ऊंची इमारत सिग्नल प्राप्त करने में बाधा पहुँचाते हैं। उत्तम कम्युनिटी रेडियो पटना का पहला सामुदायिक रेडियो है जिसका उल्लेख कर्ताधर्ता ने बहुत गर्व के साथ किया था लेकिन यह फिर से बहुत ही निराशाजनक है कि उत्तम सामुदायिक रेडियो में सामाजिक समुदाय का समावेश अभी भी नहीं है। अध्ययन में केवल गहन साक्षात्कार शामिल था, लेकिन शोधकर्ता ने महसूस किया कि अध्ययन को अधिक विश्वसनीय और वैध बनाने के लिए अन्य तरीकों को ध्यान में रखा जा सकता है। समय की कमी के

कारण इस अध्ययन में प्रतिभागियों और श्रोता सर्वेक्षण का अभाव है, इसलिए बेहतर सामान्यीकरण में बाधा आती है,जो भविष्य के अनुसंधान के लिए गुंजाइश देता है।

9. सन्दर्भ

Berrigan, F.J. (ed.). (1977). Access: Some Western models of community media. Belgium: UNESCO.

Carpentier, N., R. Lie and Jan Servaes.(2002). 'Making Community Media Work', in Jan Servaes (ed.), Approaches to Development Communication. Paris: UNESCO.

Couldry, N. (2010) Why voice Matters Culture and Politics after Neoliberalism, Sage Publication, London.

Dagron, Alfonso G. (2001). Making Waves: Stories of Participatory Communication for Social Change. New York: The Rockefeller Foundation

Fraser, C and Estrada, R.S. (2001) Community Radio Handbook, UNESCO.

Howley, K. (2013) Understanding Community Media, Sage Publication, Singapore.

Kumar J. Keval. (2010) Mass Communication in India, Jaico Publication, New Delhi.

Melkote, S Steeves, H. (2013) Communication for Development in the Third World Theory and Practice for Empowerment, Sage Publication, New Delhi.

Karunanayake, N (2016) TheMahaweli Community Radio in Sri Lanka: A Promising Experiment, Media Asia, 13:4, 209-214, DOI: 10.1080/01296612.1986.11726231

Narula,U. (2016) Development Communication Theory and Practice,HarAnand Publication, New Delhi.

Pavarala, V Malik, k. (2007) Other Voices, Sage Publication, New Delhi.

Seidu Al-hassan, Alhassan Andani and Abdulai Abdul-Malik, The Role of Community Radio in Livelihood Improvement: The Case of Simli Radio , *Field Actions Science Reports* [Online], Vol. 5 | 2011, Online since 15 July 2011, connection on 19 April 2018. URL : http://journals.openedition.org/factsreports/869

Tavhiso, M. (2009) Sustainability challenges facing community radio: a comparative study of three community radio stations in Limpopo Province (University of Limpopo, 2009) Retrieved from URI: http://hdl.handle.net/20.500.11892/88201

Thomas, P. (2006) The communication rights in the information society (CRIS) campaign: Applying social movement theories to an analysis of global media reform. TheInternationalCommunication Gazette, 68 4: 291-312.doi:10.1177/1748048506065763.

कुरूभूमि से संबंद्ध रचनाकारों का साहित्य लेखन में योगदान

डॉ० रीना देवी गोरा

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी), चौधरी ईश्वर सिंह कन्या महाविद्यालय, फतेहपुर-पुण्डरी (कैथल)

ऋग्वेद 10.33.4 में एक राजा का वर्णन है-'कुरुश्रवण'। उसी से इतिहास प्रसिद्ध कुरुवंश की उत्पत्ति हुई। वह हरियाणा का शासक था पहले उसका यह राज्य काफी छोटा था। पर चूँकि कुरु अत्यंत पराक्रमी वीर पुरुष था इसलिए उसने हरियाणा के अपने छोटे राज्य को काफी विस्तृत बना दिया। इसलिए उस वीर पुरुष के नाम पर उसका यह विस्तृत राज्य 'कुरुक्षेत्र' कहलाया।[1] स्वामी नारायण गिरि के अनुसार-सृष्टि रचना के पूर्व जब श्री विष्णु जी की नाभि कमल से ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए तब यह पृथ्वी उनके बैठने की जगह आसन रूप में प्रकट होने से इसका नाम ब्रह्मासन (ब्रह्मा सदन) हुआ। फिर ब्रह्माजी की तपस्या से वेदज्ञान प्रकट होने से इसका नाम 'अविमुक्त' क्षेत्र हुआ। कालांतर में इसका नाम 'धर्मक्षेत्र' और 'समन्त पंचक' हुआ पुनः जब ब्रह्माजी ने 'महाविश्व यज्ञ' किया तब यह क्षेत्र 'ब्रह्मवेदी' नाम से प्रसिद्ध हुआ। कुरु राजा के श्राप मुक्त होने से इस पृथ्वी का नाम कुरुक्षेत्र हुआ। कुरुक्षेत्र का विस्तार 48 कोस है। प्राचीनकाल में इसमें नौ नदियाँ बहती थीं। इसके चारों कोनों पर चार यक्ष रहते हैं। इनमें 767 (सात सौ सड़सठ) तीर्थ हैं और छः चक्र हैं। कुरु भूमि पर सात स्थल और सात स्थली हैं, सात वन हैं, सात कूप हैं और सात समुद्र हैं।[2]

कुरूक्षेत्र की पहचान एक आध्यात्मिक नगरी के रूप में है परन्तु इसी धरा से शिक्षा का प्रसार और प्रचार भी विश्वभर में कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय के माध्यम से हो रहा है। यही वजह है कि कुरूक्षेत्र साहित्य सृजन की भूमि भी है। इस भूमि पर हर्षवर्धन, बाणभट्ट, भूषण, अहमद बख्श थानेसरी आदि ने साहित्य-साधना की। हिन्दी-साहित्य लेखन की समृद्ध परम्परा में कुरूक्षेत्र के रचनाकारों ने भी अपना उल्लेखनीय योगदान दिया है।

विनयमोहन शर्मा

आचार्य डॉ. विनयमोहन शर्मा का जन्म 16 अक्तूबर, 1905 में हुआ। उनका वास्तविक नाम शुकदेव प्रसाद तिवारी था। प्रतिभा-सम्पन्न आलोचक और निबंधकार के रूप में उनकी विशेष ख्याति है। वे अनेक वर्षों तक कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष रहे। वे कुछ समय तक 'केन्द्रिय हिन्दी संस्थान' आगरा के निदेशक पद पर कार्य करते रहे। वे उच्चकोटि के समालोचक थे। उनकी आलोचना का क्षेत्र अकादमिक था। उन्होंने आलोचना के मानदंड के रूप में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा प्रवर्तित शास्त्रीय पद्धति को अपनाया है। उन्होंने अनेक आलोचनात्मक कृतियों का सृजन किया है। 'साहित्य कला', 'भूले गीत', 'कवि प्रसादः आँसू तथा अन्य कृतियाँ', 'हिन्दी गीत गोविन्द', 'दृष्टिकोण', 'साहित्यावलोकन', 'हिन्दी को मराठी संतों की देन', 'रेखा और रंग', 'शोध और समीक्षा', 'हिन्दी का व्यावहारिक रूप', 'साहित्यान्वेषण' आदि उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। 'कवि प्रसादः आँसू तथा अन्य कृतियाँ' उनका मानक ग्रंथ है। 'रहस्यवाद', 'छायावाद', 'प्रगतिवाद', 'प्रयोगवाद', 'नियतिवाद' का उन्होंने सुन्दर विश्लेषण किया है।

आचार्यजी ने 'आँसू' को छायावाद युग की प्रतिनिधि रचना माना है। 'आँसू' की दार्शनिकता प्रासंगिक है। 'आँसू' का आधार ससीम व्यक्ति है, जिसके मिलन-सुख की स्मृति ने यत्र-तत्र परोक्ष का संकेत कर उसे आलौकिकता की आभा से दीप्त करने का प्रयास किया है, जिससे ऐसा लगता है मानो कवि का उस 'विराट्' से साक्षात्कार को चुका हो। निम्न पंक्तियों में कुछ ऐसा ही संकेत है-

कुछ शेष चिह्न हैं केवल,
मेरे उस महामिलन के
आती है शून्य क्षितिज से
क्यों लौट प्रतिध्वनि मेरी।[3]

आचार्यजी कवि भी थे। उन्होंने 'वीरात्मा' नाम से हिन्दी में अनेक कविताएँ भी लिखी हैं। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग को उन्होंने अपने अथक परिश्रम से राष्ट्रीय स्तर पर चमकाया।

पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

आचार्य पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' वर्चस्वी कवि, कलम के धनी, सजग साहित्यकार थे। उनका जन्म आगरा जिले के बरी का नगला गाँव में 22 जनवरी, 1915 को हुआ था। वे हिन्दी, उर्दू और फारसी के प्रकांड पंडित थे। उन्होंने आगरा चुंगी और डिस्ट्रिक बोर्ड के लोवर प्राइमरी स्कूल से लेकर मिडिल स्कूल में मास्टरी तक, 'राष्ट्रभाषा प्रचारक मंडल, सूरत के प्रमुख हिन्दी-प्राध्यापक से लेकर, बम्बई हिन्दी विद्यापीठ के आचार्य तक, आगरा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा संचालित 'हिन्दी साहित्य विद्यालय' के प्रधानाचार्य से लेकर आगरा कॉलेज में प्रवक्ता बनने तथा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में रीडर एवं प्रोफेसर के प्रतिष्ठित

पद तक पहुँचने तक उन्होंने अपनी प्रतिभा तथा योग्यता के ज्वलन्त पदचिह्न छोड़े हैं।

कविता के क्षेत्र में उन्होंने अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया, जिनमें प्रमुख हैं- 'तू युवक है', 'धरती पर उतरो', 'दूब के आँसू', 'एक युग बीत गया'। आलोचना के क्षेत्र में आपकी निम्न पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं- 'हिन्दी गद्य काव्य', 'शोध प्रबन्ध', 'हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास', 'हिन्दी गद्यः विधाएँ और विकास', 'प्रेमचन्द की साहित्य साधना', 'वृंदावनलाल वर्मा रू व्यक्तित्व और कृतित्व', 'राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह', 'निरालाः काव्य समीक्षा', 'गुजराती रू भाषा और साहित्य समीक्षा', 'संदर्भ और दिशाएँ'।

'दिग्विजय' डॉ. कमलेश की छंदोमयी काव्य-कृति है। इस कृति में पाँच सर्ग हैं तथा प्रत्येक सर्ग में पचास छंद हैं। इस कृति में जगत्गुरु आद्य शंकराचार्य के जीवन की प्रमुख घटनाओं को अंकित किया गया है। इसमें राष्ट्रीय चेतना का स्वर प्रमुख है। इस कृति की कतिपय पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

भूतल पर है देश शिरोमणि जिसको कहते भारतवर्ष।
जहाँ जन्म लेने हित करते कठिन तपस्या देव सहर्ष।।[4]

'एक युग बीत गया' डॉ. कमलेश का काव्य संकलन है। इसमें 31 कविताएँ हैं। समीक्षक रूप में कमलेशजी को विशेष ख्याति मिली है। 'प्रेमचंद और उनकी साहित्य साधना' की भूमिका में कमलेशजी ने लिखा है, ''ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमचंद के आलोचकों ने उनकी अनेक रचनाओं को विशेष महत्त्व नहीं दिया है। 'राजा राधिकारमण सिंहः व्यक्तित्व एवं कृतित्व' ग्रन्थ भी उनका उल्लेखनीय ग्रंथ है। कमलेशजी ने अधिकांशतः व्यावहारिक आलोचना लिखी है।'' उनका देहावसान 5 फरवरी, 1974 को कुरुक्षेत्र में हुआ।

जयभगवान गोयल

प्रोफेसर डॉ. जयभगवान गोयल का जन्म 30 सितम्बर, 1931 को अम्बाला जिले के छछरोली गाँव में हुआ था। इन्होंने सन् 1955 में पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ से एम.ए. प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। सन् 1962 में एम.एल.एन. कॉलेज, यमुनानगर में हिन्दी-प्राध्यापक के रूप में कार्य किया। डॉ. गोयल ने पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ से पीएच.डी. की डिग्री हासिल की। इनके शोध का विषय था-''गुरु प्रताप सूरज के काव्य-पक्ष का अध्ययन''। इन्होंने भाई संतोष सिंह के काव्य ग्रंथों- 'गुरु प्रताप सूरज' तथा 'गुरुनानक प्रकाश' का गुरुमुखी लिपि से नागरी लिपि में रूपांतरित किया तथा इनकी भूमिकाएँ भी लिखीं। 'गुरु गोविन्द सिंहः विचार और चिंतन' विषय पर ग्रंथ भी लिखा। 'गुरुमुखी लिपि में साहित्य' ग्रंथ में हिन्दी भाषा की रचनाओं का परिचयात्मक विवेचन किया है।

सन् 1964 में डॉ. गोयल ने कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक नियुक्त हुए। इसके बाद आप पंजाब विश्वविद्यालय के प्रादेशिक केन्द्र, रोहतक में रीडर पद पर नियुक्त होकर रोहतक चले गए। इसके बाद सन् 1980 में डॉ. गोयल कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में 'प्रोफेसर' पद पर आसीन हुए। डॉ. गोयल ने हरियाणवी ग्रंथों पर शोधार्थियों से शोध कार्य करवाया। हरियाणा के लोक नाट्यकारों, लोक कवियों, लोककथाओं और लोकोक्तियों पर भी शोध-कार्य करवाया है। इन शोध कार्यों से हरियाणा की एक पहचान बनी। इनके द्वारा संपादित काव्य ग्रंथ हैं-'गुरु शोभा', 'जंगनामा गुरु गोविन्द सिंह', 'संक्षिप्त गुरुनानक सूरज', 'गुरु गोविन्द सिंह का वीर काव्य', 'वीर अमर सिंह', 'गुरुविलास', 'गुरुनानक प्रकाश', 'गुरुप्रताप सूरज', 'संक्षिप्त गुरुप्रताप सूरज', 'हरियाणा साहित्यकार निर्देशिका' आदि।[5]

इसी प्रकार अंबवा की डार पे कूके कोयलियाः 'अंबवा की डार पे कूके कोयलिया' में विचारात्मक, चरितात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक तथाप व्यंगात्मक निबंधों का संग्रह है। इसमें रिपोर्ताज, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा विवरण तथा भेंटवार्ता आदि समाविष्ट हैं। इस ग्रंथ में युगबोध के साथ-साथ लालित्य तत्त्व की भी सुंदर प्रस्तुति हुई है।

प्रोफेसर लालचंद गुप्त 'मंगल'

प्रोफेसर डॉ. लालचंनद गुप्त 'मंगल' का जन्म कुरुक्षेत्र के निकटवर्ती गाँव लुक्खी में 15 मार्च, 1946 ई. को हुआ। इनकी प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा गाँव के ही प्राईमरी विद्यालय में सम्पन्न हुई। आठवीं कक्षा कुरुक्षेत्र के डी.बी. मिडिल स्कूल से पास की। दसवीं कक्षा श्रीमद्भगवद्गीता उच्च विद्यालय, कुरुक्षेत्र से पास की। सन् 1965 में आपने हिन्दी साहित्य में बी.ए. (ऑनर्स) की परीक्षा स्वर्णपदक के साथ पास की। सन् 1967 में एम.ए. (हिन्दी) की परीक्षा पास की। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की छात्र-वृत्ति के साथ आपने कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से 'अस्तित्ववाद और नई कहानी' विषय पर सन् 1970 में पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की। सन् 1970 में ही डॉ. 'मंगल' की मुलतानीमल मोदी कॉलेज, पटियाला में हिन्दी-प्राध्यापक के रूप में नियुक्ति हुई। जननवरी सन् 1969 में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के पत्राचार निदेशालय में प्राध्यापक पद पर नियुक्ति हुई। इसके पश्चात् डॉ. 'मंगल' हिन्दी-विभाग में प्राध्यापक के रूप में आ गए। इस विभाग वे प्रोफेसर भी बने तथा कला एवं भाषा विभाग के अधिष्ठाता भी बने। आप हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला के सदस्य भी रहे। इस संस्था के सदस्य के रूप में आपने 'हिन्दी-पत्रकारिता', 'हरियाणा में रचित साहित्य' और हिन्दी साहित्य के अनछुए विषयों का लेखन व संपादन करवाया।

इन्होंने अनेक ग्रंथों का लेखन व संपादन किया है। इनमें अस्तित्ववाद और नई कहानी, चौथे स्तंभ की चुनौतियाँ, उत्तरशती के श्रेष्ठ हिन्दी कवि, आधुनिक युगबोध और साहित्य, हिन्दी साहित्यः वैचारिक पृष्ठभूमि, हिन्दी बारहमासा साहित्य, हरियाणा का लोक साहित्य, हरियाणा का हिन्दी साहित्य, हरियाणा रू प्रतिनिधि कहानियाँ, हरियाणा के प्रमुख साहित्यकार, रास लीला मंडल, पं. माधव प्रसाद मिश्र शामिल हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने अनेक पाठ्य पुस्तकों का संपादन भी किया है। यथा-'गद्य गौरव', 'गद्य-गंगा', 'एकांकिका', 'अभिनव गद्य गरिमा', 'कहानी-माला', 'आठ अर्वाचीन कवि', 'पद्य-गंगा', 'सरस्वती' आदि। डॉ. मंगल ने हिन्दी विभाग की अंतर्राष्ट्रीय दृष्टियुक्त एवं प्रतिष्ठित शोध-पत्रिका 'संभावना' का संपादन किया। इस पत्रिका का 'हरियाणा का हिन्दी साहित्य विशेषांक' विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

'आधुनिक युगबोध और साहित्य' डॉ. मंगल का एक महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक ग्रंथ है जिसमें चौदह चुनिंदा लेख संकलित हैं। 'प्रेमचंद का शिक्षा दर्शन', 'प्रेमचंद और साम्प्रदायिकता', 'प्रेमचंद की दहेज दृष्टि', 'कहानीकार अंगराज', 'कथाकार ओमप्रकाश सिंहल', 'हिन्दी का डायरी साहित्य', 'हिन्दी कथा साहित्य और हरियाणा', 'हरियाणा के हिन्दी नाट्यकाव्य', 'अस्तित्ववाद और हिन्दी उपन्यास' आदि आलेख प्रमुख हैं। वस्तुतरू मंगल जी प्रबुद्ध साहित्यकार हैं। इनका व्यक्तित्व समर्पित शिक्षक, आलोचक, शोधक, समीक्षक, सम्पादक, शोध निर्देशक आदि विशेषताओं से मंडित है। मंगलजी सेवानिवृत्ति हो चुके हैं। आज भी वे देशभर में हिन्दी भाषा और साहित्य को लेकर आयोजित होने वाले कार्यक्रमों में सक्रियता से भाग लेते हैं, अपने विचार रखते हैं, साहित्य प्रेमियों और अध्येताओं का मार्गदर्शन करते हैं।

प्रोफेसर मीरा गौतम

प्रोफेसर डॉ. मीरा गौतम का जन्म 9 जुलाई सन् 1951 में हुआ। इनकी प्रारंभिक शिक्षा देहरादून और उच्च शिक्षा सागर विश्वविद्यालय, मध्यप्रदेश में हुई। हाई स्कूल से एम.ए. तक आप प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई। इन्होंने आधुनिक हिंदी साहित्य पर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। हरियाणा को महान् कवि सूरदास पर आपने डी.लिट. की उपाधि प्राप्त की। इन्होंने अध्यापन कार्य में असंख्य विद्यार्थियों का मार्गदर्शन किया। वे कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग से सेवानिवृत्त हुई। इस दौरान 'गुरु रविदास चेयर' तथा 'हरियाणवी लोकपीठ' की अध्यक्ष भी रहीं। कला एवं भाषा संकाय के डीन पद पर रहते हुए पत्रकारिता एवं जन-संचार विभाग, उर्दू विभाग तथा माडर्न यूरोपियन लैंग्वेजेज के अध्यक्ष पदों पर भी बखूबी कार्य किया। गुरु रविदास चेयर की अध्यक्ष के रूप में इन्होंने शोध-निर्देशन के रूप में अनेक विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया। इसी दौरान इन्होंने संत रविदास पर एक विशाल ग्रंथ भी प्रकाशित किया।[6]

मीरा गौतम के कृतित्व में काव्य-सृजन के अंतर्गत 'समय रहेगा हाथ में' और 'समय की मुंडेर पर' कृतियाँ शामिल हैं वहीं उनके द्वारा रचित आलोचनात्मक ग्रंथों की श्रृंखला में 'सूर काव्य में लोकदृष्टि का विश्लेषण', 'साठोत्तरी हिन्दी काव्य में क्रांति और सृजन', सूर की भक्ति, शोधपरक निबंध और विविध, धर्मवीर भारती की कविता-एक अनुशीलन, अष्टछाप में लौकिक दृष्टि शामिल हैं। उन्होंने गुरु रविदासः वाणी एवं महत्त्व, अंतिम दो दशकों का साहित्य, गद्य शिखर, अभिनव गद्य गरिमा, हरियाणवी लोकधारा पुस्तकों का संपादन किया है। 'शिबना', 'सात घड़ों का बड़ा बगड़' उनके द्वारा लिखित उपन्यासों में शामिल हैं।[7]

वस्तुतः मीरा जी चिंतनशील कवयित्री व समीक्षक हैं। इन्होंने काव्य, आलोचना, संपादन आदि क्षेत्रों के अतिरिक्त अध्ययन-अध्यापन में विशेष ख्याति प्राप्त की है।

प्रोफेसर बाबूराम (डी.लिट्)

प्रोफेसर डॉ. बाबूराम (डी.लिट्) बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। आपका जन्म 8 अक्तूबर, 1968 को कुरुक्षेत्र के निकटवर्ती गाँव सिद्धपुर (नीलोखेड़ी) ननिहाल में हुआ। उन्होंने गीता की जन्मस्थली ज्योतिसर से इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के यूनिवर्सिटी कॉलेज से बी.ए. (ऑनर्स) और हिन्दी विभाग से एम.ए, एम.फिल. और पीएच.डी. की उपाधियाँ प्राप्त कीं। आपने आगरा विश्वविद्यालय से डी.लिट. की उपाधि प्राप्त की। डॉ. बाबूराम ने विपुल मात्रा में साहित्य सृजन किया है। साहित्य सृजन की यह यात्रा अनवरत् जारी है। उनके द्वारा रचित साहित्य में सृजनात्मक साहित्य के अंतर्गत 'एक और अवधूत' उपन्यास, सनातन संदेश-निबंध संग्रह, चमत्कार-एकांकी संग्रह, अज्ञातवास-नाटक, परमहंस ब्रह्मानंद सरस्वती (जीवनी), शिवानंद महिमा शामिल हैं, वहीं शोधपरक आलोचनात्मक साहित्य के अंतर्गत निबंधकार वासुदेवशरण अग्रवाल, शुक्लोत्तर हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना, संत शिरोमणि ब्रह्मानन्द सरस्वती, हिन्दी निबंध साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, हरियाणवी साहित्य का इतिहास, हरियाणवी भाषा और साहित्य, महेश दिवाकरः समीक्षा के निकष पर, डॉ. लक्ष्मणसिंह के साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, रघुवीर सिंह मथाना की साहित्य साधना, मेरे प्रिय गुरुजन आदि कृतियाँ शामिल हैं। उनके द्वारा संपादित साहित्य में लहना सिंह अत्री ग्रंथावली, संत ब्रह्मानंद सरस्वती ग्रंथावली, जयनाथ नलिन ग्रंथावली, हरियाणवी के अनमोल रतन, हरियाणवी लोकधारा, हरियाणा के संत कवि, आधुनिक हिन्दी कविता, समकालीन हिन्दी कविता, गद्य-शिखर, अभिनव गद्य गरिमा, अभिनव गद्य गौरव शामिल हैं।

'एक और अवधूत' स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती भूमा कुरुक्षेत्री के जीवन पर आधारित एक जीवनपरक उपन्यास है, जिसमें स्वामी जी के ऐतिहासिक तथ्यों का यथार्थ चित्रण है। 'सनातन संदेश' में ललित निबंध संकलित हैं। 'संतशिरोमणि ब्रह्मानंद सरस्वती' नामक पुस्तक में स्वामी जी के जीवन पर प्रकाश डाला गया है और उनके विश्व मानवतावादी लोक कल्याण को प्रस्तुत किया गया है। इसमें स्वामी जी की पाँच पुस्तकों का विश्लेषण किया गया है। इसमें स्वामी जी ने यश महिमा, पर्यावरण, वृक्षारोपण और गऊपालन लोक कल्याण के लिए आवश्यक बताई गई है।[8]

'हिन्दी निबंध साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन' डॉ. बाबूराम के डी.लिट् का शोध कार्य है, जिसमें हिन्दी निबंध के 150 वर्षों का विवेचन विश्लेषण है। 'हरियाणवी साहित्य का इतिहास' पुस्तक हरियाणवी भाषा और साहित्य पर आधारित प्रथम इतिहास जिसमें हरियाणवी लोकभाषा और साहित्य, लोक साहित्य, लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, लोकनाट्य, भजनीक, संत साहित्य, लोक संस्कृति, हरियाणवी की आधुनिक विधाओं कविता, नाटक, कहानी, एकांकी, लघुकथा की रचनाओं और रचनाकारों का विशाल भंडार है। 'हरियाणवी भाषा और साहित्य' ग्रंथ में हरियाणवी को वैदिककाल से जोडकर और आधुनिक युग तक की विभिन्न विधाओं में विकास यात्रा को प्रस्तुत किया गया है।[9]

डॉ० सुभाषचन्द्र

डॉ. सुभाषचन्द्र बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। आपकी जन्म 5 अक्तूबर 1965 में हुआ। आपने प्रारंभिक शिक्षा कुरुक्षेत्र से प्राप्त की। आपने एम.ए., पीएच.डी. की शिक्षा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से प्राप्त की। आप प्रबुद्ध समीक्षक हैं। प्रसिद्ध समीक्षकों में आपका नाम है। आप एम.एन. कॉलेज, शाहाबाद मारकण्डा (कुरुक्षेत्र) हरियाणा में हिन्दी-प्राध्यापक रहे। आजकल आप कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में अध्यक्ष हैं। आपने समीक्षा सम्बन्धी अनेक ग्रंथ लिखे हैं जिनमें समीक्षाः 'साम्प्रदायिकता', 'हरियाणा में उच्च शिक्षा', 'दलित मुक्ति की विरासत-संत रविदास', 'दलित मुक्ति आंदोलन-सीमाएँ और संभावनाएँ',

'सांझी संस्कृति की विरासत', 'हरियाणा की कविता-जनवादी स्वर', 'अल्ताफ हुसैन हाली शामिल है। संपादन क्षेत्र में 'प्रतिनिधि रागनियाँ', 'जाति क्यों नहीं जाती' शामिल है। अनुवाद के क्षेत्र में 'भारत में साम्प्रदायिकता-इतिहास एवं अनुभव', 'हरियाणा में सत्ता की राजनीति-जाति और धन का खेल शामिल है।

'साम्प्रदायिकता' उनकी मौलिक कृति है। इनका मत है कि साम्प्रदायिकता हमेशा उच्च वर्ग के हितों की सेवा करने का औजार रही है।[10] समाज के सामान्य लोगों के दुरूख दर्दों से साम्प्रदायिकता का कोई लेना-देना नहीं है। अपने सम्प्रदाय के बीच अशिक्षा, गरीबी, कुपोषण, अंध-विश्वास, बेकारी, भ्रूण-हत्या, स्त्री-विरोधी पुरातन मानसिकता, जाति की अमानवीय प्रथा के प्रति कभी आवाज नहीं उठाई जाती क्योंकि साम्प्रदायिकता धर्म का इस्तेमाल करती है, धर्म के साथ जुड़ी संकीर्णता, पिछड़ापन व अंधविश्वास की खुराक लेकर वह समाज में वैधता बनाने की कोशिश करती है।

वे पत्रिका 'देस हरियाणा' के माध्यम से भी हरियाणा की कला और संस्कृति को विश्वस्तर पर प्रचारित करने हेतु लगातार प्रयासरत हैं।

हरदेव बाहरी

डॉ. हरदेव बाहरी का जन्म सन् 1907 में उ.प्र. के अटक जिले में हुआ। आपने एम.ए., एम.ओ.एल., पीएच.डी.,डी.लिट् की उपाधियाँ पंजाब तथा प्रयाग विश्वविद्यालय से प्राप्त कीं। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग की स्थापना सन् 1961 में हुई। 30 जुलाई सन् 1961 में डॉ. बाहरी ने इस विभाग का कार्यभार अध्यक्ष के रूप में संभाला। वे इस विभाग में 5 जुलाई, 1962 तक रहे। तदन्तर वे अनेक वर्षों तक प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग में प्राध्यापक रहे। उन्होंने सन् 1971 में अवकाश ग्रहण किया। एक श्रेष्ठ अध्यापक होने के साथ वे श्रेष्ठ प्रशासक भी थे। डॉ. बाहरी का कार्यक्षेत्र भाषा-विज्ञान रहा है। हिन्दी के भाषा वैज्ञानिकों में आपका नाम मुख्य रूप से उल्लेखनीय है।[10] उन्होंने कोशकार के रूप में कोष-कार्य भी कार्य किया है। आपका हिन्दी-अंग्रेजी कोश एक प्रामाणिक कार्य है। हरदेव जी ने अनेक ग्रंथों की रचना की है, जिनमें 'हिन्दी की काव्य-शैलियों का विकास' (1947), 'प्राकृत और उसका साहित्य' (1952) 'प्रसाद साहित्य कोश' (1957), 'हिन्दी सेमान्टिक्स' (अंग्रेजी में), 'व्यावहारिक हिन्दी व्याकरण' (1974) प्रमुख हैं।

छविनाथ त्रिपाठी

प्रोफेसर छविनाथ त्रिपाठी का जन्म 18 अक्तूबर, 1923 को बिहार प्रदेश के श्रीकरपुर गाँव में हुआ था। त्रिपाठीजी ने दो विषयों (हिन्दी व संस्कृत) में एम.ए. की परीक्षा पास की। 31 जुलाई 1961 को कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में व्याख्याता के रूप में नियुक्त हुए। सन् 1961 में उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से संस्कृत में तथा 1966 में उन्होंने हिन्दी में पीएच.डी. की उपाधियाँ प्राप्त कीं। 10 अक्तूबर में वे 'रीडर' पद पर आसीन हुए। 31 अक्तूबर 1983 में वे प्रोफेसर पद से सेवानिवृत्त हुए।

त्रिपाठी जी ने पद्य व गद्य की अनेक विधाओं पर कार्य किया। उन्होंने तीन काव्य-ग्रंथों की रचना की- 'धरा की यात्रा', 'कभी-कभी', 'चलते-चलते'।[11] 'धरा की यात्रा' महाकाव्य है जिसमें कुल 11 सर्ग तथा 565 छंद हैं। 'चलते-चलते' उनके दोहों का संकलन है। 'कहानी कला और उसका विकास', 'चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन', 'मध्यकालीन कवियों के काव्य-सिद्धान्त' उनकी गद्य रचनाएँ हैं। डॉ. त्रिपाठी दो बार कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष रहे। इनका देहावसान हो चुका है।

डॉ. ब्रह्मानन्द

डॉ. ब्रह्मानन्द का जन्म नारनौल के निकटवर्ती गाँव मंढाणा में हुआ। कालांतर में वे बहरोड़ (अलवर) में आ बसे। आपकी मिडिल तक की पढ़ाई बहराड़ के सरकारी विद्यालय में हुई। आपने बी.ए. की परीक्षा अहीर कॉलेज, रेवाड़ी से पास की। आपने डी.ए.वी. कॉलेज, जालंधर से एम.ए. की परीक्षा पास की। आगरा विश्वविद्यालय के के.एम. विद्यापीठ से सन् 1960 में डॉ. सत्येन्द्र और सुकुमार सेन के निर्देशन में 'बंगला पर हिन्दी का प्रभाव' विषय पर पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की। इस तुलनात्मक शोध कार्य की अनेक विद्वानों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। आपने अध्यापन कार्य का प्रारंभ दयानंद कॉलेज, अजमेर और डूंगर कॉलेज, बीकानेर से प्रारंभ किया। सन् 1963 में आपकी नियुक्ति कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में हुई।[12] वे शिक्षक और कुशल प्रशासक रहे हैं। इनके निर्देशन में अनेक शोधार्थियों ने एम.फिल. और पीएच.डी. की उपाधियाँ प्राप्त की हैं। वे हिन्दी के प्रतिष्ठित नाटककार भी थे। इनके 'महाबलिदान', 'भर्तृहरि', 'अज्ञातवास', 'श्रीकृष्ण संदेश', 'मायामृग' आदि नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। वे दो बार कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष रहे। इनका देहावसान हो चुका है।

डॉ. भीमसिंह

डॉ. भीमसिंह का जन्म संवत् 1989 में रोहतक जिले के अटाल नामक ग्राम में हुआ। सन् 1955 में पंजाब विश्वविद्यालय से हिन्दी भाषा एवं साहित्य में एम.ए. किया। सन् 1971 में उन्होंने कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से 'जायसी के काव्य का सांस्कृतिक अनुशीलन' विषय पर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। डॉ. मलिक शोधक और समीक्षक होने के साथ-साथ कहानीकार और निबंधकार भी थे। उनकी प्रकाशित कृतियों में शोध-प्रबन्ध -'जायसी काव्य का सांस्कृतिक अनुशीलन'। शोधात्मक कृतियाँ-'हरियाणा का लोक साहित्य: सांस्कृतिक संदर्भ', 'हरियाणा के लोकगीत रूसांस्कृतिक मूल्यांकन', 'लोहपुरुष सरदार पटेल'। निबंध-'प्रबंध-प्रवाह', सम्पादन-'भक्ति-सुधा' आदि शामिल है। वे 90 से 93 तक कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष रहे। 'हरियाणा के लोकगीत : सांस्कृतिक मूल्यांकन' उनका मानक ग्रंथ है जिसमें लोकगीतों के मर्म को गंभीरता से प्रस्तुत किया है। डॉ. मलिक ने लोकगीतों के माध्यम से 'बारहमासा' और 'षड्ऋतु' का सुंदर विश्लेषण किया है। डॉ. मलिक कर्मठ अध्यापक के साथ-साथ कलम के धनी भी थे। डॉ. मलिक इस संसार में नहीं हैं लेकिन उनके व्यक्तित्व व कृतित्व की याद आज भी बनी हुई है।

प्रोफेसर डॉ. सरिता वाशिष्ठ

प्रोफेसर डॉ. सरिता वाशिष्ठ का जन्म 15 सितम्बर सन् 1954 में भिवानी में हुआ। इन्होंने बी.ए. (ऑनर्स), एम.ए., पीएच.डी. तक की शिक्षा प्राप्त की है। 'हिन्दी नाटक और युगबोध' इनका पीएच.डी. का

शोध-प्रबन्ध है। डॉ. वाशिष्ठ के अनेक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। 'निर्मल वर्मा की कहानियों का विदेशी परिवेश' नामक ग्रंथ में निर्मल वर्मा की अनेक कहानियों की समीक्षा की है। 'सूर्य सनातन आस्था और विज्ञान' शीर्षक ग्रंथ में सूर्य (ऊर्जा) की महत्ता और प्राणवत्ता का वर्णन किया गया है। 'आत्मबोध से इदन्नमम' शीर्षक ग्रंथ सामाजिक तथा यथार्थपरक ललित निबंधों का संग्रह है। 'हिन्दी साहित्य: वर्तमान दशक' इनका शोध-परक ग्रंथ है।[13] इसमें सूचना औद्योगिकी, उदारीकरण, वैश्वीकरण, विश्व बाजारवाद के संदर्भ में वर्तमान दशक के साहित्य पर गंभीर विचार किया है। 'महिला और कानून' में भारतीय संविधान और कानून द्वारा महिलाओं को दी गई सुविधाओं, सुरक्षा और शक्तियों आदि का गंभीर विश्लेषण किया है। इन्होंने 'श्रीमदभगवद गीता' का हरियाणवी रूपांतरण भी किया है। इन्होंने हिन्दी विभाग की पत्रिका 'संभावना' के दो अंकों का सफल संपादन किया है। वे 2010 में कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग की अध्यक्ष बनीं और 2013 तक इस पद पर रहीं।

डॉ. रामपत यादव

वैसे तो प्रोफेसर डॉ. रामपत यादव सिसोट (महेन्द्रगढ़) के मूल निवासी हैं, लेकिन इनका जन्म 20 मई, 1946 को अलवर जिले के खैरथल नामक गाँव में हुआ। उन्होंने सन् 1967 में आपने राजकीय महाविद्यालय, कोटपूतली से बी.ए. की परीक्षा पास की। सन् 1969 में आपने राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से एम.ए. प्रथम श्रेणी में पास की। सन् 1977 में इन्होंने पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला से संस्कृत में एम.ए. पास की। इन्होंने सन् 1990 में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से एल.एल.बी. की परीक्षा पास की। सन् 1973 में इन्होंने राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से 'बिहारी सतसई का अर्थ वैज्ञानिक अध्ययन' विषय पर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। प्राध्यापक के रूप मे 1971 से अहीर महाविद्यालय, रेवाड़ी से इन्होंने अध्यापन कार्य शुरू किया।वे 1974 से 1997 तक यूनिवर्सिटी कॉलेज में प्राध्यापक व रीडर के पद पर कार्य करते रहे। वर्ष 1997 में आप 'रीडर' बनकर हिन्दी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में चले गये। हिन्दी-विभाग में रहते हुए 2006 में प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुए। इसके पश्चात् इसी विभाग से आप सेवानिवृत्त हुए। उन्हें हरियाणा व राजस्थान की अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित किया गया।

डॉ. यादव ने लगभग 18 ग्रंथों की रचना की है जिनमें गरीबदासी पंथ: सिद्धान्त और साहित्य, हरियाणा का भक्ति साहित्य, लोकांचल और साहित्यान्वेषण, उपन्यास का आँचलिक वातायन, पाठालोचन और बिहारी सतसई, भारतभूषण सांघीवाल हिन्दी काव्य ग्रंथावली, भारतभूषण सांघीवाल हरियाणवी काव्य ग्रंथावली, काव्यांग दीपिका, व्याकरण बोधिनी, निबंध पारिजात, निबंध पत्रालोक, भक्ति एकादशी, काव्य रत्नाकर, रीति सप्तक, गद्य शिखर, अभिनव गद्य गरिमा, हरियाणवी लोकधारा, निबंध सप्तक।

'गरीबदासी पंथ: सिद्धान्त और साहित्य', 'हरियाणा का भक्ति साहित्य', 'पाठालोचन और बिहारी सतसई', 'उपन्यास का आँचलिक वातायन', 'काव्यांग दीपिका' आपके मानक ग्रंथ हैं।

संदर्भ सूची:

1. के.सी. यादव, हरियाणा लाइव, (अंक 4-5) पृ. 25
2. स्वामी नारायण गिरि, श्री कुरुक्षेत्र यात्रा, पृ. 1
3. विनय मोहन शर्मा, आँसू तथा अन्य कृतियाँ, पृ. 47
4. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', दिग्विजय, पृ. 36
5. लालचंद गुप्त 'मंगल', हरियाणा के प्रमुख साहित्यकार, पृ. 194
6. शील कौशिक, हरियाणा की महिला साहित्यकार: विविध आयाम, पृ. 175
7. वही,
8. बाबूराम, स्वामी ब्रह्मानंद भूमा कुरुक्षेत्री, उपन्यास, पृ. 8
9. वही,
10. सुभाषचन्द्र, साम्प्रदायिकता, प्राक्कथन, पृ. 8
11. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश (भाग-2), पृ. 671
12. लालचंद गुप्त 'मंगल', हरियाणा के प्रमुख हिन्दी साहित्यकार, पृ. 150
13. शील कौशिक, हरियाणा की महिला रचनाकार, पृ. 201

दैनिक समाचार पत्र के 'साहित्यिक पुनर्नवा' की काव्य रचनाओं में भारतीय काव्यशास्त्र

सुमन देवी

शोध छात्रा - हिन्दी विभाग, डी.ए-वी. कॉलेज, सिविल लाइन्स, कानपुर

डॉ० दया दीक्षित

शोध निर्देशिका एवं एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी.ए-वी. कॉलेज, सिविल लाइन्स, कानपुर

सारांश

प्राचीन समय में मनोरंजन का मुख्य साधन कविता ही हुआ करती थी। उत्तम काव्य सामाजिक को सामान्य जगत् से विलग कर उच्चतम कल्पनालोक की भूमि में पहुँचाकर आनंद से सराबोर कर देता था। मनुष्य अपने सुख-दुख भूलकर काव्य के साथ एकात्म भाव हो जाता था। परन्तु वर्तमान समय मे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की तरह काव्य भी प्रभावित हुआ है जिसको भी तुकबन्दी आ जाती है वही कवि बन जता है। किन्तु फिर भी उत्तम रचनाकारों की कमी नहीं है जो अपने सरस काव्य के माध्यम से सहृदयों के हृदयों को आहलादित करते रहते हैं। इक्कीसवीं सदी की कविताओं में 'दैनिक जागरण समाचारपत्र के 'साहित्यिक पुनर्नवा में प्रकाशित रचनाएँ' काव्य शास्त्रीय गुणों से ओतप्रोत हैं।

काव्य हेतुः किसी व्यक्ति में काव्य-सृजन की सामर्थ्य उत्पन्न करने वाले तत्व काव्य हेतु कहलाते हैं। भारतीय काव्य शास्त्र में काव्य हेतु के तीन भेद बतलाये गये हैं - प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास। इनमें प्रतिभा सबसे प्रमुख तत्व है। प्रतिभा को कवित्व का बीज माना गया है। आचार्य भामह ने 'काव्यलङ्कार' में कवि की प्रतिभा को ही काव्य-सृजन का मूल हेतु माना है। आचार्य दण्डी ने नैसर्गिक प्रतिभा, निर्मल शास्त्र ज्ञान तथा सुदृढ़ अभ्यास तीनों को संयुक्त रूप से काव्य सृजन का हेतु माना हैं पण्डित राज जगन्नाथ ने व्युत्पत्ति और अभ्यास को काव्य का हेतु न मानकर प्रतिभा को हेतु स्वीकार किया है। उनका कहना है काव्य का कारण कवि में रहने वाली प्रतिभा होती है। प्रतिभा कवि हृदय में नित्य नवीन उद्भावना करने वाली मानसिक शक्ति है। आचार्य राजशेखर ने प्रतिभा के दो भेद बताये हैं - कारयित्री प्रतिभा और भावयित्री प्रतिभा। दूसरे काव्यहेतु व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में राजशेखर ने लिखा है। उचित अनुचित का विवेक ही व्युत्पत्ति है। अभ्यास तीसरा काव्य हेतु है। निष्ठापूर्वक निरंतर किये जाने वाले प्रयत्नों की अखण्ड श्रृंखला को अभ्यास कहते हैं।

काव्य-प्रयोजनः प्रयोजन से तात्पर्य है उद्देश्य अर्थात् काव्य सृजन से प्राप्त होने वाले लाभ। आचार्य प्रवर मम्मट ने काव्य के निम्नलिखित प्रयोजन बताये हैं:

''यशषे अर्थकृते व्यवहार विदे शिवेतर क्षतये।
सद्यः परिनिर्वत्तये कान्तासम्मित तपोपदेशपुजे ।।''[1]

अर्थात् काव्य रचना का उद्देश्य यश की प्राप्ति, अर्थ प्राप्ति, व्यावहारिक ज्ञान, अमंगल का विनाश, तत्काल आनंद तथा कांता के समान उपदेश देने के लिए है।

राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त ने काव्य रचना का उद्देश्य बताते हुए कहा है-

''केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।।''[2]

काव्य को ब्रह्मानंद सहोदर कहा गया है। वास्तव में ब्रह्मानंद प्राप्त करने का सौभाग्य तो बहुत उच्च कोटि के साधकों को ही मिल पाता है। किंतु यदि काव्य में रस हो और सामाजिक में आस्वादन की क्षमता, तो काव्यानंद तो प्रत्येक सहृदय को साधारणतयः सुलभ हो जाता है।

रस सिद्धान्त- भारतीय काव्यशास्त्र में रस सिद्धान्त सबसे अधिक प्राचीन है। भरतमुनि को रस सम्प्रदाय का प्रवर्तक और उनके ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' को रस निरूपण का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है। भरत मुनि ने ''विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसः निष्पतिः''[3] कहकर विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावों' (स्थाई भाव) को रस निष्पति का हेतु बताया है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में रसों की संख्या 8 मानी है। शृंगार, वीर, करुण, हास्य भयानक, वीभत्स, रौद्र और अद्भुत

रस। मम्मट ने शान्त रस का स्थाई भाव निर्वेद को मानकर रसों की संख्या 9 कर दी। विश्वनाथ ने रति या वत्सल को स्थाई भाव मानकर वात्सल्य नामक 10वें रस का प्रतिपादन किया। रूपगोस्वामी ने देवविषयक रति को स्थाई भाव मानकर 11वें रस का प्रतिपादन किया। आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ 'साहित्य दर्पण' में ''वाक्यं रसात्मकं काव्यम्''[4] रस को काव्य की आत्मा घोषित किया है।

दैनिक जागरण समाचार पत्र के साहित्यिक पुनर्नवा की रचनाओं में, शृंगार, वीर, करुण, हास्य, निर्वेद और अद्‌भुत रसों का सुन्दर समावेश हुआ है। सोम ठाकुर रचित 'स्मृति गीत' में शृंगार का मनोरम वर्णन दर्शनीय है:

''वह रसों का रास वह बेला सुगंधा
स्वर्णरूपा देह के पारस परस वे,
गीत गोबिन्द रचाये से अधर वे
देव दुर्लभ अश्रु उत्सव के दरस वे''[5]

महाकवि भवभूति ने ''एको रसः करुण रख निमित्त भेदात्''[7] कहकर करुण रस को ही सभी रसों का स्रोत माना है। दैनिक जागरण के साहित्यिक पुनर्नवा में – हरीश निगम द्वारा रचित कविता 'नदिया रे' करुण रस से ओत्प्रोत एक किसान की एक मर्मभेदी पुकार है:

''नदिया रे
बढ़ना ना और।
सूखे ने फेर दिया पानी
पहले ही डूब गये
खेत-वेत धानी
हाथों से छिनते हैं कौर।''[8]

हास्य तो जीवन की संजीवनी है। हास्य व्यक्ति को स्वस्थ बनाता है और स्वस्थ शरीर युक्त व्यक्ति ही जीवनकी किसी भीसाधना में सफल होता है। दैनिक जागरण के साहित्यिक पुनर्नवा में प्रकाशित दोहे नीरस को भी हंसने के लिए बाध्य कर देते हैं। होली के पर्व पर सूर्य कुमार पाण्डे रचित दोहे दृष्टव्य हैं:

''होली की टोली कहाँ बदले रीति रिवाज।
नेट पर अब होली मिलन जेट पर चढ़ा समाज।
बदला रंग लिहाज का गाँव शहर उत्फुल्ल।
छोरी खुल्लम खुल्ल है छोरे टुल्लम टुल्ल।।''[9]

छंद– यूँ तो इक्कीसवीं सदी में छन्द मुक्त काव्य का अधिक प्रचलन है। किन्तु दैनिक जागरण के साहित्यिक पुनर्नवा की रचनाओं में दोहा, सवैया, कवित्त तथा धनाक्षरी जैसे काव्य शास्त्रीय छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। होली से सम्बन्धित सवैया प्रस्तुत है –

''होरी गई यदि कोरी हमारी किसी को गुलाल उड़ाने न दूँगी
कैद कराऊँगी मंजरी को, डफ ढोल पै थाप लगाने न दूँगी
फूलने दूँगी नहीं सरसों तुम्हें, कोयलो कूक सुनाने न दूँगी
फाग को बाँध रखूँगी सिवान में, गाँव में फागुन आने न दूँगी।''[10]

अलंकार – अलंकार का अर्थ होता है आभूषण अर्थात् भूषित करने वाले उपादान को आभूषण कहा जाता है जो अलंकृत करे वही अलंकार है। आचार्य भामह को अलंकार सम्प्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है। आचार्य भामह ने अलंकार को काव्य का अनिवार्य तत्व घोषित करते हुए कहा है कि जिस प्रकार स्त्री का सुन्दर मुख भी आभूषणों के बिना शोभित नहीं होता है उसी प्रकार अलंकार के बिना कविता शोभित नहीं होती है।

अलंकार सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य भामह दण्डी, उद्‌भट तथा रुद्रट को माना जाता है। इन आचार्यों ने अलंकार को ही काव्य की आत्मा माना है। भामह ने वक्रोक्ति को सम्पूर्ण अलंकारों में व्याप्त बतलाते हुए उसे समस्त अलंकारों का एकमात्र आश्रय माना है।

आचार्य दण्डी के अनुसार – काव्य के शोभाकारक धर्म अलंकार है – ''काव्य शोभाकरान धर्मान अलंकारान प्रचक्षते''[11] आचार्य वामन ने दण्डी के मत का विरोध किया और कहा काव्य के शोभाकारक धर्म तो गुण हैं और अलंकार उस शोभाकारक धर्म का संवर्धन करने वाला हेतु है।

''काव्यशोभायाः कर्तारौ धर्माः गुणाः
तदतिशप हेतवस्तलंकाराः ।।''[12]

आचार्य जयदेव ने तो यहाँ तक कह दिया कि अलंकार के बिना कविता उसी प्रकार है – जैसे उष्णता के बिना अग्नि। किन्तु आचार्य आनंदवर्धन, मम्मट और विश्वनाथ ने अलंकार का महत्व कम कर दिया। उनके अनुसार अलंकार काव्य के बाह्य शोभाकारक धर्म हैं। जिस प्रकार हारादि अलंकार किसी स्त्री के नैसर्गिक सौन्दर्य की शोभा बढ़ाने के उपकारक हैं, उसी प्रकार अलंकार काव्य की रसात्मकता को बढ़ाते हैं।

इस प्रकार अलंकार काव्य के बाह्य सौन्दर्य के उत्कर्षण तत्व हैं।

इक्कीसवीं सदी की कविताओं में विभिन्न अलंकारों का स्वाभाविक रूप से प्रयोग हुआ है। दैनिक समाचार पत्र के साहित्यिक पुनर्नवा में अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण आदि अलंकार अत्यन्त मधुर बन पड़े हैं उपमा मिश्रित मानवीकरण का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है –

''चौंक कर जागी नदी अधनींद में
लहरियाँ तट को लगीं चुमकारने
बंद पलकों में कुंआरे स्वप्न सा
दिवस का नूतन कथानक सामने।''[13]

साहित्यिक पुनर्नवा में प्रकाशित असंगति अलंकार का प्रयोग दर्शनीय है:

''मुंसिफ तेरा फैसला हमें न आया रास।
आँखों के अपराध थे, दिल को कारावास ।।''[14]

रीति (शैली)– संस्कृत आचार्य वामन ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालङ्कार सूत्र' में रीति को काव्य की आत्मा माना हैं 'रीतिरात्मा काव्यस्य' ''विशिष्ट पद रचना रीतिः''[15] कहकर उन्होंने रीति को वख्यायित किया है अर्थात् विशेष प्रकार की पदरचना को रीति कहते हैं। वामन के अनुसार रीति के तीन भेद हैं – वैदभी रीति, गौड़ी रीति और पांचाली रीति। वामन ने वैदर्भी रीति को सर्वश्रेष्ठ माना है, उसमें सभी गुण विद्यमान होते हैं गौड़ी रीति को परुषा भी कहते हैं मधुरता और सुकुमारिता का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। इस दृष्टि से वीर रस, रौद्र रस, भयानक रसों में गौड़ी रीति का भरपूर परिपाक होता हैं पांचाली रीति माधुर्य एवं सौकुमार्य गुणों से युक्त होती है।

वैदभी रीति मे ंसमास रहित सहज सरल भाषा का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणस्वरूप डॉ. सुरेश अवस्थी रचित दोहा प्रस्तुत है –

''सूरज बुनकर अति कुशल, सुन्दर सुघड़ अनूप
किरणों से चादर बुने कहते जिसको धूप।।
मूंदे खोले नयन को करने को व्यायाम।
सूरज के इस खेल से होती सुबहो शाम।।''[16]

प्रतीक और बिम्बविधान– साहित्यिक पुनर्नवा की कविताओं में नवीन प्रतीकों को अपनाया गया हैं पुराने प्रतीकों का जादू और उनकी अर्थवता अब समाप्त हो चुकी हैं अब काव्य में नये उपमानों का प्रयोग होता है। यथा –

''धीरे–धीरे खिल गयी, यह फागुन सी धूप।
याद तुम्हारी हो गयी 'सांची का स्तूप''
इन्दधुनुष खुद हो गया रंग नहाया वेश।
किरणों का कंघा लिए धूप काढ़ती केश ।।''[17]

बिम्ब का कार्य है मूर्त रूप प्रदान करना। कविता के लिए चित्र भाषा की आवश्यकता को पन्त जी ने पल्लव की भूमिका में स्वीकार किया है। पुनर्नवा की रचनाओं में नवीन बिम्ब विधानों का प्रयोग हुआ है। बिम्ब का मनोरम दृव्य उपस्थित है –

''दूर तक फैला हुआ आकाश नीला सा
उड़ रहा चिडिघ्या सरीखा रिबन पीला सा।
है पतंगे
मिल रही है
ढील खिड़की से।''[18]

इस प्रकार हम देखते हैं कि दैनिक जागरण समाचारपत्र के साहित्यिक पुनर्नवा की कविताओं में रस, छन्द, अलांकार प्रतीक बिम्ब, कल्पना आदि सभी काव्यशास्त्रीय गुणों को समावेश हैं बस हमारी दृष्टि पारखी होनी चाहिए। युग बदलता है तो परिस्थितियाँ बदलती हैं। इन बदली हुई परिस्थितियों के साथ यथार्थ और आदर्श भी बदल जाते हैं तो कवि पुानी परिपाटी को पूर्ण रूप से कैसे जीवित रख सकते हैं। उन्हें भी कुछ न कुछ बदलना ही पड़ता है। उनके बदलाव को स्वीकार करना सहृदय पाठकों धर्म है।

संदर्भ सूची

1. काव्य प्रकाश, लेखक–मम्मट संपादक श्रीनिवास शास्त्री, प्रकाशन–साहित्य भंडार, सुभाष बाजार, मेरठ प्रथम संस्करण 1960, पृष्ठ संख्या 06
2. हिन्दी भाषा एवं साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास, लेखकद्वय– गोविन्द पाण्डेय, सरस्वती पाण्डेय, अभिव्यक्ति प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2014, पृष्ठ संख्या 405

3. नाट्यशास्त्र - रचनाकार भरतमुनि (षष्ठम् अध्याय) स्रोत काव्यप्रकाश - व्याख्याकार विश्वेश्वर पाण्डेय, प्रकाशन ज्ञानमण्डढल लिमिटेड, बासबसी संस्करण 2019, पृष्ठ संख्या 100
4. काव्य प्रकाश, लेखक-मम्मट व्याखाकर - स्व. आचार्य विश्वेश्वर, प्रकाशक - ज्ञानमण्डल लिमिटेड, 2019, पृष्ठ संख्या 78
5. स्मृति गीत - रचनाकार सोम ठाकुर, संपादक राजेन्द्र राव, दैनिक जागरण के साहित्यिक पुनर्नवा विशेषांक अंक, 2 मार्च 2009
6. 'उत्तर रामचरितम्' - महाकवि भवभूति, व्याख्याकार डॉ. कृष्ण कान्त शुक्ला प्रकाशन साहित्य भंडार मेरठ, संस्करण वर्ष 2006, पृष्ठ संख्या 271
7. कविता - 'नदिया रे' रचनाकार हरीश निगम - संपादक-राजेन्द्र राव, दैनिक जागरण समाचारपत्र - 'साहित्यिक पुनर्नवा', अंक 25 अगस्त 2014
8. दमदार दोहे - छोरे टुल्लम टुल्ल, सूर्य कुमार पाण्डेय, संपादक-राजेन्द्र राव, दैनिक जागरण समाचारपत्र - 'साहित्यिक पुनर्नवा', अंक 2 मार्च 2007
9. सवैया - 'फागुन आने न दूँगी' संपादक राजेन्द्र राव, दैनिक जागरण समाचारपत्र, साहित्यिक पुनर्नवा, अंक 2 मार्च 2007
10. साहित्य दर्पण- रचनाकार महाकवि विश्वनाथ - व्याख्याकार अभिराज डॉ. राजेन्द मिश्र, प्रकाशन-अक्षयवट इलाहाबाद संस्करण 2013, पृष्ठ संख्या 19
11. काव्य प्रकाश, रचनाकार-आचार्य मम्मट व्याखाकर-स्व. आचार्य विश्वेश्वर, प्रकाशक-ज्ञानमण्डल लिमिटेड, 2019, पृष्ठ संख्या 78
12. कविता - 'धूप के पन्ने', रचनाकार-हृदयेश्वर संपादक राजेन्द्र राव दैनिक जागरण समाचारपत्र 'साहित्यिक पुनर्नवा', अंक 6 अप्रैल 2009
13. दोहे-दिल को कारावास, रचनाकार-रामनारायण हलधर, दैनिक जागरण समाचारपत्र, 'साहित्यिक पुनर्नवा', पृष्ठ अंक 7 फरवरी 2011
14. काव्यालड़ंकार सूत्र - आचार्य वामन - स्रोत साहित्य दर्पण - व्याख्याकार अभिराज डॉ. राजेन्द मिश्र, अक्षमवट प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2013, पृष्ठ संख्या 94
15. दोहे - 'सूरज बुनकर अति कुशल' - रचनाकार डॉ. सुरेश अवस्थी संपादक राजेन्द्र राव, दैनिक जागरण समाचारपत्र 'साहित्यिक पुनर्नवा', अंक 21 जनवरी 2013
16. दोहे - 'चूनरी बोले मौन अबीर' - रचनाकार यश मालवीय - संपादक राजेन्द्र राव, दैनिक जागरण समाचारपत्र 'साहित्यिक पुनर्नवा', अंक 25 मार्च 2013
17. कविता - 'झील खिड़की से' - रचनाकार यश मालवीय - सम्पादक राजेन्द्र राव, दैनिक जागरण समाचार पत्र - साहित्यिक पुनर्नवा, पृष्ठ अंक 24, जून 2013

मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास और वैश्विक बाजारवाद की मनोवृत्ति

डॉ० अखिलेश कुमार वर्मा

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, रामनगर पी०जी० कॉलेज, रामनगर, बाराबंकी (उ०प्र०)

सारांश

मनोहर श्याम जोशी हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध साहित्यकार थे। एक निष्ठावान एवं समर्पित उपन्यासकार के रूप में जोशी जी ने अपनी औपन्यासिक कृतियों- 'कुरु कुरु स्वाहा' (1980 ई0), 'कसप' (1982 ई0), 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' (1994 ई0), 'हमजाद' (1996 ई0), 'ट-टा प्रोफेसर' (2001 ई0), 'क्याप' (2001 ई0) में व्यक्ति-चेतना के विविध आयामों को प्रस्तुत किया था। उन्होंने अपने सभी उपन्यास विविध विषयों एवं समस्याओं को आधार बनाकर लिखे, जिनमें वैश्विक बाजारवाद की मनोवृत्ति के भी दर्शन होते हैं।

प्रमुख शब्द- वैश्विक बाजारवाद, हैवानियत का दस्तावेज, आर्थिक समस्याओं, सामाजिक असंतोष, वर्ग संघर्ष।

आज के युग में अर्थ हमारे जीवन की बाह्य गतिविधियों को ही संचालित नहीं करता है वरन् आन्तरिक विचारधाराओं-भावनाओं को भी प्रभावित और संचालित करता है। अर्थाभाव में मानसिक निश्चिन्तता और शांति संभव नहीं। आधुनिक उपन्यासों में जिन चरित्रों का वर्णन होता है, वे किसी न किसी रूप में आर्थिक समस्याओं से प्रभावित होते हैं। जो भी स्थितियाँ उपन्यास में वर्णित होती हैं उनमें से अधिकांश अर्थ सम्बन्धित होती हैं। अनमेल विवाह, बहुविवाह अथवा विधवा विवाह आदि की समस्यायें प्रत्यक्ष रूप से अर्थ से सम्बन्धित हैं। नारी के घर से बाहर जाने की समस्या के मूल में अर्थ ही है। अर्थ ने उपन्यास के वस्तु-विन्यास को सर्वाधिक रूप में प्रभावित किया है। अर्थ असन्तुलन प्रत्येक आन्दोलन को जन्म देता है। सामाजिक असंतोष और वर्ग संघर्ष के मूल में अर्थ ही प्रमुख कारण है। इन समस्याओं या इनसे सम्बन्धित पात्रों को चित्रित करने वाले उपन्यासों के वस्तु-विन्यास प्रकारान्तर के अर्थ से प्रभावित हैं। पात्रों की मानसिक शांति के अभाव में संगठित वस्तु विन्यास को ह्रास की स्थिति तक पहुँचाने का बहुत कुछ कारण अर्थ ही है।[1]

वर्तमान युग में वैश्विक स्तर पर बाजारवाद की मनोवृत्ति के विविध क्षेत्रीय सूत्र स्पष्ट हो रहे हैं। श्री जोशी के उपन्यासों में 'हमजाद' एक भिन्न कोटि का उपन्यास है, जो वैश्विक स्तर पर बढ़ते बाजारवाद की मनोवृत्ति की उपज है। यह बाजारवाद स्त्री-पुरुष, धर्म, नैतिकता, परम्परा, संस्कृति, मूल्य सब कुछ को 'वस्तु' का रूप देने की ओर अग्रसर है। 'हमजाद' में बाजारवाद की इस प्रवृत्ति में आकंठ निमग्न एक छोटे से समाज का अंकन किया गया है, जो अपने देह-सुख के लिए सारे नैतिक मूल्यों को नकारता हुआ कमीनी-से-कमीनी हरकतें करता है। आदमी इतना नीचे गिर सकता है, नैतिक मूल्य इस हद तक नकारे जा सकते हैं, इसकी कल्पना करना भी अभी मुश्किल मालूम होता है। धोखाधड़ी, हेराफेरी, अपहरण, बलात्कार, अनियन्त्रित सेक्स का अपने पूरे- नंगेपन में चित्रण हुआ है। उपन्यास का एक पात्र कहता है-'इस अफ्सान में यहाँ से वहाँ तक गन्दगी ही गन्दगी है।' यह बात बिल्कुल सच है। इस उपन्यास को कमीनगी की हैवानियत का दस्तावेज कहा जा सकता है।

उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि उक्त उपन्यास के निम्नलिखित अंश से भी होती है जिसमें परम्परागत नैतिकता के उच्च आदर्शों की खुले बाजार में नीलामी कर दी गयी है। तखतराम के नाम लिखे गये जयदेव के पत्र का निम्नलिखित अंश इस रूप की परिपुष्टि करता है-''नये साल की मुबारकबाद के साथ तुम्हें यह खुशखबरी देनी है कि अपने पापा के गुजर जाने के गम को गलत करने के लिए मैंने एक कमसिन लड़की से शादी कर ली है। खुद पापा कमसिन लड़कियों के बहुत काइल थे, इसलिए मैं समझता हूँ कि मेरे इस नेक काम से उनकी आत्मा को बहुत शान्ति मिलेगी। अपनी बीबी को अपने खास-खास दोस्तों और रिश्तेदारों से मिलवाने के लिए मैंने अपनी पाली हिल वाली कोठी में न्यू इयर पार्टी देने का फैसला किया है। तुमसे दरख्वास्त है कि नई बहू और नये साल का खैर-मकदम करने के लिए इस पार्टी में शरीक हो ओ। पार्टी 31 दिसम्बर रात 8 बजे कॉकटेल्स के साथ शुरू होगी और पहली जनवरी सुबह 8 बजे शैम्पेन ब्रेकफास्ट के साथ खत्म होगी। जोड़े से आना किसी नयी माशूक को नहीं तो पुरानी बीवी को ही, साथ ले आना।''[2]

व्यावहारिक दृष्टिकोण से बाजारवाद की प्रवृत्ति के मूल में 'पूँजीवादी व्यवस्था' है जिसने आर्थिक मूल्यों के विशृंखलन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है-ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यदि पूँजीवादी व्यवस्था पर विचार किया जाये तो यह ज्ञात होगा कि इतिहास में यह व्यवस्था विद्यमान रही और निर्धनों के शोषण में इसकी भूमिका भी बहुत अधिक भर्त्सना के योग्य है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से भारतीय आर्थिक व्यवस्था में पूँजीवाद की भूमिका अनेक दृष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण रही है, इसका एक पक्ष सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन की आर्थिक प्रगति से सम्बन्धित है, वहीं दूसरी ओर शोषण के लिए भी वह उत्तरदायी है।

उपर्युक्त मन्तव्य की व्यावहारिक परिणति सम्पूर्ण विश्व में नैतिक विघटनशीलता की बाजारवादी प्रवृत्ति में परिलक्षित होती है। जोशी जी के उपन्यास 'कुरु-कुरु स्वाहा' का निम्नलिखित अंश इसी प्रवृत्ति का निदर्शन है-बाबू लौटकर आया और बोला, 'उसका बँधेला गाहक पारसी सेठ आ गया, नेंई तो तुम्हारा सौदा करा देता।' 'फिर कभी सही', मैंने उसे सान्त्वना दी, 'अभी तो हमें-तुम्हें और उसे बहुत जिन्दा रहना है। वह पारसी सेठ ही चन्द दिनों का मेहमान नजर

आया, क्या।' बाबू और मैं, दोनों हँसे। हँसते-हँसाते उस श्वेतकेशा गुजरातन के पास गए जो 'घरेलू माल' लेकर अपने परिचित ग्राहकों के साथ नितान्त पारिवारिक भंगिमा में गोला बनाकर चौपाटी में बैठी रहती थी। हमने इधर चौपाटी में नए-नए आए एक अन्य परिवार की चर्चा की, जिसमें एक अदद 'बाप' और दो उपकिशोरी बेटियाँ थीं। श्वेतकेशा के एक ग्राहक ने आपबीती का हवाला देकर बताया कि इन छोकरी को यह दलाल बढिघ्या होटेल या फेमिली केबिन में ही ले जाने देता। उदर ये साली आइसक्रीम-वाइसक्रीम खूब खातीं। थोड़ा कीस-वीस करने देतीं। लेकिन तुम जास्ती आगल बढ़ेगा तो एक बोलेगी, 'अंकल प्लीज'। दूसरा बोलेगी, अंकल, मैं शोर करेगी, अपना डैडी को बुला लेगी अभी। डैडी साला बाहर बैठकर चा पीता रहता। खाली चिमनी देखने-छूने का पचास रुपया देवे तो कोई गेल्या देवे। मैं तो दुबारा गया नहीं कभी।[3]

वास्तव में आधुनिक विश्व में विभिन्न क्षेत्रीय विघटनशीलता के मूल में, 'पूँजीवाद' की प्रतिक्रिया का परिणाम का एक सूत्र बेरोजगारी भी बताया गया है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से जमघेदारों, महाजनी और पूँजीवादी शोषण का एक पक्ष शिक्षितों और अशिक्षितों में व्याप्त बेकारी की समस्या है। वस्तुतः बेकारी आधुनिक युग की एक प्रमुख समस्या है। इसे औद्योगिक विकास का एक स्वाभाविक परिणाम भी कहा जा सकता है। भारतवर्ष में तो बेकारी की समस्या अत्यन्त भयंकर है। इस समस्या के समाधान के लिए अर्थव्यवस्था का जितना अधिक विश्लेषण किया जाता है, उतने ही अधिक कारक इसमें प्रकट होते हैं। इसका प्रमुख कारण, बेकारी की समस्या का विभिन्न कारकों से सम्बन्धित होना है।

भारत को आज विश्व एक उपभोक्ता समाज के रूप में देख रहा है। चीन ने अपने कितने ही प्रकार के उत्पादन सस्ती दरों पर भारत की मंडियों में भेज दिये हैं। इससे भारतीय उपभोक्ता समाज उस ओर आकर्षित हो रहा है। प्रचार-माध्यमों से ऐसी विदेशी कम्पनियाँ और उनके माल की पहुँच अब नगरों को लांघ कर गांवों तक होने लगी है। पहले बताया जा चुका है कि भारतीय अर्थ-व्यवस्था में उदारीकरण की ढील के बाद यहाँ की उपभोक्ता चेतना और अधिक तीव्र हो गई है। शहरी क्षेत्रों में मध्यम वर्ग उपभोक्ता समाज के रूप में तेजी से आगे आया है। इस समाज के लोगों की आय खरीददारी के लिहाज से पर्याप्त है। इसलिए इस मध्यम वर्गीय समाज के लोग मीडिया और संचार-क्रांति द्वारा विज्ञापनों का शिकार होकर बहुत तीव्र गति से अपने उपभोक्ता होने का परिचय देने लगे हैं। उन्हें और अधिक आकर्षित करने के लिए विज्ञापन भी उत्तेजक हो उठे हैं। वे सैक्स और स्त्री का भरपूर प्रयोग करते हुए देहवाद को महत्त्व दे रहे हैं।[4]

फिल्मी दुनिया के आकर्षण से भी समाज का एक बहुत बड़ा युवा वर्ग बाजारवाद की वृत्ति का शिकार होता है। सामान्य रूप से किसी अजनबी स्थान पर कोई अप्रत्याशित एवं अपरिचित सा प्रतीत होने वाला दृश्य इसके लिए आधारभूमि बनता है। उदाहरणार्थ जोशी जी लिखित ''कुरु-कुरु स्वाहा'' का निम्नलिखित अंश हैंगिंग गार्डन की एक पगडंडी की रेलिंग पर झुकी हुई खड़ी थी वह। अभिसार भंगिमा, समझे ना ! उल्टे हुए नगाड़ों-से नितम्बों से लेकर सावन की घटाओं-से उसके खुले केशों तक सरपट निगाह डाली मैंने। पिछवारे से ही पहचान गया। अगवाड़ा-पिछवाड़ा सब गोया उसके अपने ही ढंग का था, यूनीक! मैं उसके पास आकर उसकी भंगिमा में खड़ा हो गया। जमकर उसे घूरा। लेकिन साहब उसे कोई रिएक्शन शॉट नहीं, कोई प्रतिक्रिया नहीं। मनोहर कहने लगा, शून्य की साक्षिणी है यह। अब इसका मतलब वही जाने। जोशी जी कह रहे थे कि इस तरह किसी अपरिचित की एकान्त व्यथा को घूरना, हरकते-नाशायस्ता है, अनसॉफेस्टिकेटेड ! मैंने अभिनेता राजकुमार की तरह मानीखेज 'पाज' और 'स्ट्रेस' देकर एक बात कही, गोया हवाओं के नाम, 'जिसके इन्तजार में कोई खड़ी है, वह आज आएगा नहीं।' मुझे विश्वास था कि यह डायलॉग उसका ध्यान खींचेगा। खास तौर पर इसलिए कि मनोहर की करुण दीवान मार्का 'पापी पपीहा' आवाज में यह कह गया था। लेकिन इससे उसके कानों के पर्दों पर जो भी हरकत हुई हो, चेहरे पर बहरहाल कुछ नहीं हुई।[5]

वास्तव में समसामयिक परिस्थितियों में बाजारवाद की बिकाऊवादी प्रवृत्ति के विकास का एक कारण परम्परागत पारिवारिक विघटन, वैवाहिक प्रथा के विरोध, शिक्षित-बेरोजगारी एवं नारी-स्वातंत्र्य से भी सम्बन्धित है। बेकारी के सामान्य कारण अनेक हैं जैसे श्रम की माँग व पूँजी में असंतुलन, मन्दी, उपयोग की अपेक्षा बचत में आधिक्य होना, श्रम, धन्धों की माँग, विवेकीकरण, जनसंख्या में वृद्धि इत्यादि हैं। इस बेकारी की समस्या से अनेक भयानक परिणाम होते हैं। समस्या को दूर करने के लिए अनेक गैर-सरकारी तथा सरकारी प्रयत्न, जनसंख्या में वृद्धि को रोकना, शिक्षा प्रणाली में सुधार करना, उद्योगों का विकास, कृषि व्यवस्था में सुधार-सार्वजनिक निर्माण कार्यों को बढ़ावा, रोजगार केन्द्रों की स्थापना, बेरोजगार बीमा, बेकारी दूर करने के लिए भारत सरकार द्वारा भी अनेक प्रयत्न किए जा रहे हैं। सम्प्रति बेरोजगारी की समस्या का एक ज्वलन्त पक्ष स्त्री-शिक्षा और स्वालम्बन भी है। आज की स्त्री अपनी शिक्षा और स्वालम्बन के माध्यम से आत्मनिर्भर बनना चाहती है जैसा कि पूर्व के युगों में नहीं था। नारी समाज में विशेष रूप से चेतना जाग्रत हुई है। शिक्षा के प्रचार और पर्दा प्रथा के निर्मूलन का भी इसमें विशेष योग रहा है। श्री जी0के0 अग्रवाल के शब्दों में आज स्त्रियाँ पर्दे की कुप्रथाओं से बाहर निकल कर शिक्षा के क्षेत्र में तेजी से आगे बढ़ रही है। स्त्रियाँ भी स्कूल, दफ्तरों तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों में पुरुषों के साथ काम करने में लगी हैं। अब ये पुरुषों की दया पर आश्रित नहीं हैं, विवाह के प्रति स्त्रियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है। अब वे संयुक्त परिवारों की स्थापना करके सभी प्रकार के अधिकारों की माँग करती है। राजनीतिक क्षेत्र में भी स्त्रियों ने प्रवेश किया है। इस चेतना का आरम्भ स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हुआ और कुछ ही वर्षों में अनेक स्त्रियों ने राज्य के सर्वोच्च पदों को प्राप्त कर लिया है। स्त्रियों के जीवन में होने वाला यह परिवर्तन केवल नगरीय समुदाय से ही सम्बन्धित नहीं है, बल्कि विशेष महत्व की बात तो यह है कि ग्रामीण समुदाय में भी स्त्रियाँ परम्परागत सामाजिक बन्धनों को तेजी से तोड़ रही हैं और उनको बाबा 'वाक्यम प्रमाणम' की विचारधारा अब अधिक प्रभावित नहीं करती। सम्पत्ति के क्षेत्र में भी स्त्रियों के अधिकारों में वृद्धि होने से उनकी स्थिति में सुधार हुआ है।[6]

उपर्युक्त मन्तव्य के परिप्रेक्ष्य में बहुसूत्रीय कथावस्तु का निर्माण करते हुए मनोहर श्याम जोशी ने 'हमजाद' नामक उपन्यास में यह इंगित किया है कि यह बाजारवाद सामूहिक विकृतियों की उपज है और उसके अनेक कुत्सित रूप भी जन्म ले रहे हैं। इनमें से एक ब्लैकमेलिंग भी है- ब्लैकमेलिंग का एक प्रसंग द्रष्टव्य है- ''आपको याद होगा आपने कहा था कि मारे डर के पैसा देते हैं। तो पुलिस से तो आप डरते ही होंगे? कत्ल के इल्जाम से भी? आप इस गलतफहमी में न रहें कि इस मामले में सिर्फ मेरी यादें ही मेरी गवाह हैं। यकीन मानिए मेरे पास ठोस सबूत हैं-खुतूत, फोटो, फिल्म और वीडियो टेप वगैरा। इसे आप कोरी धमकी न समझें इस खघ्याल से मैं महज नमूने के तौर पर आपके पापा जी के एक खत की फोटोकापी और उनके आखिरी वीडियो टेप की नकल इस खत के साथ आपकी खिदमत में भिजवा रहा हूँ। मुझे बताया गया है कि आप हनीमून मनाने पता नहीं कहाँ चले गये हैं और वहीं से न्यूयार्क

चले जाएंगे। लिहाजा मैं यह पैकेट काफी खर्चा करके कूरियर से आपके न्यूयार्क के पते पर भिजवा रहा हूँ-इस उम्मीद में कि आइन्दा मुझे इस तरह के छोटे-छोटे खर्चों के बारे में परेशान होने की कोई जुरूरत नहीं पड़ेगी। तो हुजूर आप मेरा लिखा अफ्साना और आपके पापा जी का लिखा खत पढ़ लें, कैसेट देख लें और फिर रोमिला के साथ मिल बैठकर यह तय करें कि आपको मुझ बदकिस्मत का बुढ़ापा सुधारने के लिए क्या कुछ करना चाहिए? मैं आपके पापा जी की तरह लालची नहीं हूँ। आप बस अपने वादे के मुताबिक इस अफ्साने के लिए चार हजार डॉलर की बकाया रकम भिजवा दें और मुझे अपना सी0सी0 बना लें। आपके पापा जी दस हजार रुपया माहवार देते थे, आप दस हजार डॉलर दे दिया करें। मेरी बेटियों की शादी के लिए दस-दस लाख रुपया दे दें और वीडियो स्टूडियो का पूरा साजो-सामान खरीदवाकर मेरे बेटे को धन्धे में जमवा दें। मैं ताजिंदगी चुप रहूँगा और अपने होंठ खोलूँगा भी तो खुदा से आपके और रोमिला के वास्ते दुआएँ माँगने के लिए ही।''[7]

आधुनिक विश्व में प्रगति की दौड़ का एक आधार आर्थिकता की प्रधानता है। मनोहर श्याम जोशी जी ने वैश्विक स्तर पर, बाजारवाद की प्रवृत्ति की उपज का यह परिणाम बताया है कि आज प्रत्येक वस्तु बिकाऊ रूप में सामने आ रही है और उसके केन्द्र में देह-सुख की जड़ है। 'हमजाद' में इन्होंने वर्तमान-मानव जीवन में अर्थ की प्रधानता और उसके अभाव में मनुष्य की पंगुता इंगित की है। उन्होंने वैश्विक स्तर पर बाजारवाद की मनोवृत्ति का परिणाम, स्त्री-पुरुष, धर्म-नैतिकता, सांस्कृतिक मूल्य आदि के गिरावट के मूल में निहित अर्थ-प्रधान जीवन को माना है। 'कुरु-कुरु स्वाहा' में सम्पूर्ण विश्व में परिव्याप्त नैतिक-विघटनशीलता की बाजारवादी प्रवृत्ति स्पष्ट है। 'हमजाद' में साम्प्रतिक भारत में बेरोजगारी की समस्या के विभिन्न विकृत परिणाम चित्रित किये गये हैं। ''हरिया हरक्यूलीज की हैरानी'' में भी यह संकेत है कि आज के युग में संयुक्त पारिवारिक विघटन ने समग्र सामाजिक व्यवस्था में विखराव पैदाकर दिया है। जोशी जी ने 'ट-टा प्रोफेसर' में भी सांस्कृतिक अवमूल्यन का कारण बाजारवाद को बताया गया है, 'कसप' में सांस्कृतिक विरोधाभास और द्वंद्व के चित्र अंकित है, जो बिकाऊ नैतिकता-जनित मानसिक विकृतियों के परिचायक हैं। जोशी जी ने अपने उपन्यासों में बाजारवाद का विश्लेषण करते हुए उसे समकालीन नैसर्गिक औपन्यासिक प्रवृत्ति के रूप में चित्रित किया है, उनकी मान्यता है कि समसामयिक भारतीय-जनजीवन आधुनिकता की जिस दौड़ में सम्मिलित हो गया है, वह अर्थ-प्रधान है। वैश्विक स्तर पर बाजारवादी प्रवृत्ति प्रत्येक वस्तु को क्रय-विक्रय के योग्य समझती है, यही कारण है कि आज अर्थ न केवल हमारी जीवन की बाह्य गतिविधियों को संचालित करता है, वरन् आभ्यान्तरिक भावनाओं को भी प्रदूषित करता है। फलतः नैतिकता के उच्च आदर्श खुले बाजार में नीलाम हो रहे हैं। बेरोजगार युवा-वर्ग नवीन प्रलोभनों के आकर्षण में आत्मविक्रय हेतु प्रस्तुत है। आर्थिक वर्ग-भेद ने संयुक्त पारिवारिक प्रथा को विघटित कर दिया है, इसी ने मानवीय सम्बन्धों का बाजारीकरण करके आदर्श सांस्कृतिक परम्पराओं को भी विक्रय की वस्तु बना दिया है।

संदर्भ सूची

1. "आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तु विन्यास", डॉ० सरोजनी त्रिपाठी, पृ० 287
2. "हमजाद", मनोहर श्याम जोशी, पृ0 11
3. "कुरु-कुरु स्वाहा", मनोहर श्याम जोशी, पृ0 8
4. ''उत्तर आधुनिकता स्वरूप और आयाम'', डॉ० बैजनाथ सिंहल, पृ० 119
5. "कुरु-कुरु स्वाहा'', मनोहर श्याम जोशी, पृ० 11
6. ''समाजशास्त्र'', श्री पी०के० अग्रवाल, पृ० 262
7. "हमजाद'', मनोहर श्याम जोशी, पृ० 16

भारत में बेराजगारी की समस्या एवं समाधान

डॉ० रवि प्रकाष यादव

यूनिवर्सिटी प्रोफेसर, विश्वविद्यालय औद्योगिक संबंध एवं कार्मिक प्रबंध विभाग, ति० मॉ० भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, (812007)

निशित रंजन

शोध छात्र, विश्वविद्यालय औद्योगिक संबंध एवं कार्मिक प्रबंध विभाग, ति० मॉ० भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, (812007)

प्रत्येक समाज की अपनी-अपनी समस्याएँ होती है। प्राचीन समाज की अपनी समस्याएँ थी, आधुनिक समाज की अपनी यद्यपि सभी समाजों में इन समस्याओं का आकार और तीव्रता भिन्न-भिन्न होती है। बेरोजगारी की समस्या आज की नई समस्या नहीं है। प्राचीन काल, मध्यकाल और आधुनिक काल में यह समस्या अपने विषालतम रूप में आ चुकी है। प्रत्येक समाज की अधिकांश आबादी गांव में रहती है इसलिए यह समस्या का आकार गांव में ज्यादा बड़ा है। यह एक सामाजिक सह आर्थिक समस्या है। और यह एक ऐसी समस्यसा है जिससे कई सरकार इसे मुददे से बनती है और गिरती है विपक्ष पाटी के लिए यह एक बड़ा मुद्दा होता है। जिससे मजबूत से मजबूत सरकारें की जड़ हिल जाती है। प्रत्येक सरकार के लिए बेरोजगारी एक बहुत बड़ी चुनौती है। जैसे-जैसे बेरोजगारी दर एवं बेरोजगारों की समस्या बढ़ती है वैसे-वैसे सरकार एवं समाज की धड़कने भी बढ़ने लगती है। प्रत्येक सरकार का सर्वप्रथम यह प्रयास होता है कि किसी तरह से बेरोजगारी की समस्या पर लगाम लगाया जा सके। बेरोजगारी की समस्या एक ऐसी समस्या है जिस पर आप एक सीमा तक नियंत्रण तो लगा सकते है किन्तु पूरी तरह से समाप्त नहीं कर सकते है।

I. बेरोजगारी का आभार (Size of unemployment)

संसार में वर्ष 2001-2019 के मध्य श्रम सहभागिता दर लगातार गिरता जा रहा है। श्रम षक्ति की संस्था इन अवधि में 281 करोड़ से बढ़कर 357 करोड़ तक पहुँच गया। वहीं बेरोजगारी दर में लगातार गिरावट दिखाई आई है। जो इस अवधि में 5.6% से घटकर 4.9% तक हो गया।

लघु शब्द (Key words):- श्रम शक्ति, रोजगार, बेरोजगारी, बेरोजगारी के कारण, बेरोजगारी की समस्या, बेरोजगारी के उत्थान।

तालिका सं0 -01: संसार में श्रम बाजार की स्थिति 2001-2021 (संख्या करोड़ में)

		2001	2005	2011	2015	2018	2019	2021	
1. श्रम षक्ति सहभागिता दर %	कुल	64.4	63.5	62.1	61.7	61.4	61.2	60.8	
	पुरूष	78.2	77.0	75.9	75.3	74.9	74.7	74.3	
	महिला	50.7	49.9	48.5	48.1	47.9	47.7	47.3	
2 श्रम षक्ति (संख्या करोड़ में)	कुल	281.6	300	321	336.5	347.8	351.1	357.3	
	पुरूष	170.4	181.6	195.8	205.3	212.1	214	218.6	
	महिला	111.1	118.5	125.2	131.1	135.7	136	138.8	
3. रोजगार (करोड़ में)	कुल	262.5	283.3	303.8	318.8	330.5	336.8	339.7	
	पुरूष	159.2	172.0	185.8	195.2	202.2	206.5	208.5	
	महिला	103.2	111.3	118.0	123.7	128.3	130.3	131.2	
4. बेरोजगारी दर%	कुल	5.6	5.6	5.4	5.2	5.0	4.9	4.9	
	पुरूष	5.3	5.3	5.1	4.9	4.7	4.6	4.6	
	महिला	5.9	6.2	5.8	5.6	5.4	5.4	5.1	
5. बेरोजगारी	कुल	15.7	16.84	17.2	17.4	17.3	17.4	17.7	
	पुरूष	9.1	9.55	9.9	10.2	9.9	9.9	10.1	
	महिला	6.6	7.29	7.3	7.4	7.4	7.4	7.6	

स्त्रोत: World Employment, social out look, IL0 Geneva,2019 P.83-84,

• संभावित

जहाँ तक बेरोजगारी लोगो की संख्या का सवाल है, यह इस अवधि मेंइनकी संख्या 15.7 करोड़ से बढ़कर 17.4 करोड़ तक पहुँच गया। जहाँ पुरूष बेरोजगारों की संख्या 9.1 से बढ़ 9.9 करोड़ पहुँच गई। वही महिला बेरोजगारों की संख्या इस अवधि में 6.6 करोड से बढ़कर 7.4 करोड़ तक पहुँच चुकी है। संसार में क्षेत्रवार बेरोजगारों की संख्या का विश्लेषण करे तो हम पाते है कि नार्थ अमेरिका के देशों कनाडा एवं अमेरिका में बेरोजगारियों की संख्या बढ़ी है। जबकि एशियाई देशों में बेरोजगारों की संख्या घटी है। जबकि अफ्रिकी देशों में यह संख्या 3.23 करोड़ तक पहुँच गई।

तालिका संख्या -2: संसार में क्षेत्रवार बेरोजगारी (संख्या लाख में)

क्षेत्र	2017	2018	2019	2020
नार्थ अमेरिका (लाखों में)	84	77	76	79
1.कनाडा	13	12	12	13
2.यू. स्टेट ऑफ अमेरिका	71	65	64	67
एषिया एवं पैसेफिक	716	718	722	723
इस्टर्षन एषिया (लाखों)	395	393	392	387
1.जापान	19	16	16	5
2.रिपब्लिक ऑफ कोरिया	10	11	10	10
3.इडोनेषिया	54	56	58	60
यूरोप	184	168	161	157
1. फ्रांस	28	28	28	27
2 जर्मनी	16	15	14	13
3. इटली	28	26	23	22
4. युनाईटेड किंगडम	15	13	13	13
5. रूस	39	35	33	31
6. तुर्की	34	35	39	41
अफ्रिका	323	330	340	349
लैटिन अमेरिका एवं कैरेबियन	250	253	255	253
1.ब्राजील	135	133	131	127
2. मैक्सिको	20	20	20	20

स्त्रोत: world employment Social outlook , 2019 P 20-42-

ILO के "Global Employment Social out look, 2019 के रिर्पोट के अनुसार वर्ष 2018 में संसार में लगभग 350 करोड़ श्रमिक थे, जिसमे प्रत्येक 5 में 3 पुरूष थे। जबकि संसार के श्रम बल सहभागिता दर (Labour force Participation Rate) पुरूषों की 75% तथा महिलाओं की 48% सहभागिता दर थी । इसमें Gender Gap 27% था। साथ ही साथ 200 करोड़ लोग out side of extended Labour force श्रेणी में थे। इसमें लगभग 300 करोड़ का संबंध अनौपचारिक (Informal Sector) क्षेत्र से था। जहाँ आर्थिक सुरक्षा, समान अवसर, मानव विकास, Decent living, सामाजिक सुरक्षा का घनघोर अभाव है। इसमें 110 करोड़ लोग own accont worker तथा 36 करोड़ family worker थे।

तालिका सं0-3: संसार में बेरोजगारी 2017-2020 (संख्या करोड़ में)

वर्ष	2017	2018	2019	2020
संख्या (करोड़ में) कुल	17.41	17.25	17.36	17.93
पुरूष	9.97	9.88	9.92	9.95
महिला	7.44	7.37	7.44	7.48
नवयुवक	6.04	5.93	5.91	5.87

स्त्रोत-: Global Emplayment Social out look , 2019, P.19

बेरोजगारी Global Society के लिए एक 'यक्ष प्रश्न' बना हुआ है। जिसका जबाव किसी सामाजिक एवं आर्थिक रणनितिकार के पास नहीं है, और न ही किसी भी सरकार के पास नहीं है। यहाँ आकर प्रत्येक सरकार विफल हो जाती है। हाँलाकि रोजगार सृजन एवं बेरोजगारी उन्मूलन के प्रयास सभी देशों में चल रहे हैं। फिर भी इस प्रयासों के बावजूद संसार में वर्ष 2018 में लगभग 17 करोड़ लोग बेरोजगार थे, वर्ष 2020 में यह संख्या 17.40 करोड़ पहुँच जाने की उम्मीद है। जबकि Global unemployment Rate 5% था। इसके अतिरिक्त ILO के अनुसार 14 करोड़ लोग संसार में Unutilized Labour या Potential Labour force थे। इसमें 8.5 करोड़ महिलाएँ तथा 5.5 करोड़ पुरूष थे। यद्यपि संसार में "High Income Country" में Unemployment Rate घटा है। लेकिन "High Upper Middle Income Country" में बेरोजगारी दर बढ़ी है। इसका मुख्य कारण "Economic Slowdown" था। जहाँ तक भारत का सवाल है NSSO के आकड़ों के अनुसार देश में लगभग 47 करोड़ श्रमिक थे, जिसमें 39 करोड़ असंगठित क्षेत्र में कार्य करते थे। और 8 करोड़ संगठित क्षेत्र में कार्यरत थे। वर्ष 2019 दिसम्बर माह में CMIE के अनुसार Unemplayment Rate 7.6 के शीर्ष तक जा पहुँचा था। सरकारी आकड़े इसे 4 मानती है।

NSSO के हाल के रिर्पोट के अनुसार भारत में वर्ष 2017-18 में देष बेरोजगारी पिछले 45 साल का रिकोर्ड तोड़ चुका है। देश में बेरोजगारी दर के आंकड़ों के अनुसार 6% तक पहुँच चुका है। Business Standerd में प्रकाशित (2019) के NSSO के रिर्पोट के अनुसार वर्ष 1972-73 में बेरोजगारी दर बहुत ऊँची थी। उसके बाद वर्ष 2017-18 में ही यह दर अपने उफान पर आ चुकी है। यद्यपि यह वर्ष 2011-12 में 2.2 इस दर में गिरावट दर्ज किया गया था।

तालिका-4: Job lessness in Rural India (Age 15-29)

वर्ष	पुरूष	महिला
2011—12	5%	4.8%
2017—18	17.4%	13.6%

Business Stander Jan, 2019

वही Labourforce Participation Rate वर्ष 2004-05 में 39.5% था जो वर्ष 2017-18 में घटकर 36.9 हो गया।

बेरोजगारी का अर्थ (Meaning of unemployment)

बेरोजगारी की समस्या वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति कमाने की अन्तनिहित क्षमता और इच्छा दोनों रखता है फिर भी उसे वैतनिक (Remunerative) काम नहीं मिल पाता है। बेरोजगारी की स्थिति में 15-59 आयु के सामान्य कार्यरत बल (Working force) को सामान्य कार्य काल (Working time) में सामान्य वेतन पर और सामान्य परिस्थितियों में जबरदस्ती और उसकी इच्छा के विरूद्ध वैतनिक कार्य से अलग रखा जाता है।

पीगू (pigou) के अनुसार ''बेरोजगारी का साधारण व्यक्ति प्रयोग करते है तथा जिसके साधारण अर्थ लगभग सभी जानते है। परन्तु जिसकी ठीक-ठीक व्यवस्था करना कुछ कठिन है।

1. प्रो0 पिगु के अनुसार -"बेरोजगारी का अर्थ मजदूरी-अर्जक वर्ग (Wage earning classes) में व्याप्त बेकारी से है और उसका संबंध केवल मजदूरी कार्य (wagee work) से ही होता है। इसमें सब बेरोजगार व्यक्ति सम्मिलित नहीं किये जा सकते है। वरन् वे ही लोग जो परिस्थितियाँ देखते हुए ऐच्छिक रूप से बेकार नहीं है, रखे जा सकते है।

   इस प्रकार उन लोगों की बेरोजगारी को इसमें सम्मिलित नहीं है जो वृद्धावस्था, दुर्बलता तथा बीमारी के कारण काम करने योग्य नहीं है। वे लोग भी बेकार नहीं कहे जा सकते है। जो विवशता से वशीभूत होकर नहीं वरन् अपनी इच्छा से काम नहीं कर रहे है।
2. डी. मैलो (1969) के अनुसर -"बेरोजगारी वह स्थिति है जिसमें एक व्यक्ति इच्छा के बावजुद वैतनिक व्यवस्था की स्थिति में नहीं है।"

3. योजना आयोग के अनुसार-"वह व्यक्ति बेरोजगार है जो एक सप्ताह में एक दिन बगैर काम के रहता है।"
4. आई.एल.ओ. के अनुसार-"वह व्यक्ति कार्यरत (employed) माना जाएगा जिसके पास एक सप्ताह (पाँच दिन) में 15 घंटे (लगातार दो दिन) काम होता है।
5. प्रिबम के अनुसार-"बेरोजगारी श्रम-बाजार की वह स्थिति है, जिसमें श्रमशक्ति की आपूर्ति उपलब्ध नौकरियों की संख्या से अधिक होती है (unemployment is a condition of Labour market in which the supply of labour is greate then the number of available openings employments)

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर बेरोजगारी के निम्न चार तत्व महत्वर्पूण है:-

1. व्यक्ति में काम करने की इच्छा (Will to work)
2. व्यक्ति में काम करने की क्षमता (Ability to work)
3. व्यक्ति को काम ढूढ़ने के लिए प्रयत्न करना (effort to search work)
4. मजदूरी के लिए काम (Work for wages)

II. बेरोजगारी के प्रकार (Kinds of unemployment)

समाज में बेरोजगारी के विभिन्न प्रकार विद्यमान हैं। जो क्षेत्र प्रकृति, आदि आधार के अनुसार श्रेणीबद्ध किए गए हैं।

बेरोजगारी के निम्नलिखित प्रकार है:-

1. मौसमी बेरोजगारी (Seasonal unemployment)
2. कृषि बेरोजगारी (Agriculter unemployment)
3. प्रौधोगिकी बेरोजगारी (Technological unemployment)
4. अस्थायी बेरोजगारी (Temporary unemployment)
5. ऐच्छिक बेरोजगारी (Voluntary unemployment)
6. चक्रिय बेरोजगारी (Cyclic unemployment)
7. अर्द्ध बेरोजगारी (Under unemployment)
8. प्रच्छन्न बेरोजगारी (Disguised unemployment)
9. संरचनात्मक बेरोजगारी (Structural unemployment)
10. ग्रामीण बेरोजगाारी (Rural unemployment)
11. शहरी बेरोजगारी (urban unemployment)

III. बेरोजगारी के कारण (Caures of unemployment)

बेरोजगारी का किसी एक कारण से नहीं वरन् कई कारणों से उत्पन्न होती है। इसके लिए जिम्मेदार कारण कई है। समय, परिस्थिति के अनुसार कोई एक कारण ज्यादा प्रभावी हो सकते है। लेकिन बेरोजगारी की जननी कोई कारण नहीं वरन् कई है। हरेक समाज के भी प्रभावी कारण अलग-अलग हो सकते है।

1. क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार:- बेरोजगारी का मूल कारण मांग और पूर्ति में असंतुलन (Inbalance in demand and supply) है। इनके अनुसार जब वस्तुओं की माँग अधिक मात्रा में होगा, तो रोजगार में वृद्धि होगी। अगर वस्तुओं की माँग कम है, तो रोजगार में कमी होगी।
2. नई क्लासिक अर्थषास्त्रियों के अनुसार:- अति उत्पादन (Over production) भी बेरोजगारी को उत्पन्न करता है।
3. केन्स के 1952 अनुसार:- 'बचत की इच्छा' (Desire for saving) बेरोजगारी के लिए जिम्मेदार है। क्योंकि यदि व्यक्तियों में बचत की इच्छा अधिक होगी, तो बाजार में निवेष कम होगा, कम निवेष उत्पादन को प्रभवित करती है और इस बेरोजगारी बढ़ती है।
4. कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार :- बेरोजगारी की जड़े 'औधोगिक समृद्धि' के बाद व्यापार चक्र में आई मंदी (Recession) में है'।
5. लायनील ऐडी (1926) के अनुसार:-बेरोजगारी आर्थिक ढांचे में विघटन (Disorganisition in economic structure) के कारण होती है।
6. इलियट और मेरिल (1950) के अनुसार:-बेरोजगारी विषेष रूप से व्यापार चक्र में मंदी जो औद्योगिक समृद्धि के काल के पश्चात आती है, का परिणाम है तकनीक निपुर्णताओं का विकास और श्रमिकों का उत्कृष्ट रूप से विशेषीकृत्य विभाजन भी स्वस्थ व्यक्तिओं के नौकरी प्राप्त करने को असंभव बना देती है।
7. बार्टलेट के अनुसार:-लोहा एवं स्टील उद्योग (Irion and Steel Industry) जैसे एकाधिकारी उद्योग (Monopoly Industries) का मंदी लाने मुख्य कारक होते है। ये उद्योग अपने उत्पादन को बनाये रखने के लिए उस अवधि में भी अपनी कीमतों को नहीं गिराते है जबकि दूसरे उद्योगों की कीमतों के स्तर मं गिरावट आती है।

क्लास्कि अर्थशास्त्री डेविड रिकार्डो, बेरोजगारी के लिए दीर्घकालीन संतुलन (Long term Equilibrium) पर जोर देते थे। जबकि केन्स, पीगू, मार्शल जैसे अर्थशास्त्रियों ने अल्पकालीन संतुलन को महत्व दिया। दूसरे, क्लासिकल अर्थषास्त्री बचत और मितव्ययिता को काफी महत्व देते थे। जबकि केन्स का

मानना था कि बचत से प्रभावपूर्ण माँग में कमी आती है। जिससे बेरोजगारी उत्पन्न होती है। इसलिए उन्होनें कहा कि मंदी (Depression) के समय में बचत करने के बजाय खर्च (Expense) करना चाहिए।

तीसरे, क्लासिकल अर्थशास्त्री मजदूरी कटौती (Wage deduction) को रोजगार -वृद्धि का साधन मानते थे। जबकि केन्स के अनुसार मजदूरी लागत के साथ एक आय भी है। इसलिए एक सामान्य मजदूरी कटौती का प्रभावपूर्ण माँग के स्तर पर उल्टा असर पड़ता है और रोजगार बढ़ने के बजाए घट जाता है।

चौथी बात, क्लासिकल अर्थशास्त्रीयों की मान्यता थी कि पूर्ण रोजगार (Full Employment) सामान्य स्थिति है। केन्स ने कहा कि समाज में पूर्ण रोजगार नहीं हो सकता। उसमें थोड़ी सी कमी रह जाती है। इसे उन्होनें न्यून-रोजगार संतुलन (Under employment Equilibrium) कहा।

कई विद्वान ने बेरोजगारी के लिए आर्थिक कारणों के साथ सामाजिक व वैयक्तिक कारकों को भी जिम्मेदार माना है। समाजशास्त्रियो के अनुसार व्यक्गित कारणों मे आयु, व्यावसायिक योग्यता, षारीरीक अयोग्यता, बीमारी, सामाजिक कारकों में सामाजिक प्रस्थिति, भगौलिक गतिहिनता, जनसंख्या में तीव्र वृद्धि, दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली कृषि का पिछड़ापन, अविकसित उद्योग, अपर्याप्त औद्योगिक विकास, मुद्रस्फिति, सरकारी नीतियाँ, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था आदि है।

IV. बेरोजगारी का दुष्प्रभाव (Bad ffeects of unemployment)

बेरोजगारी परिवार, समाज और सरकार सभी को प्रभावित करती है। इसके प्रभाव से कोई नहीं बच सकता है। बेरोजगारी के निम्न दुष्प्रभाव है।

1. वैयक्तिक विघटन (Individual disorganisation)
2. अवसाद (Depression)
3. सामाजिक विघटन (Social disorgenisation)
4. भिक्षावृत्ति (Beggary)
5. वेष्यावृत्ति (Prostitution)
6. पारिवारिक विघटन (Family disorganisation)
7. अपराध (Crime)
8. आर्थिक परनिर्भरता एवं त्रणग्रता (Economic dependency and Indebtness)
9. सामाजिक एवं राजनैतिक अस्थिरता (Social and political Instability)
10. अषिक्षा (Uneducation)
11. स्वास्थ्य (Health)
12. बालश्रम को प्रोत्साहन (Encouragement to Child Labour)
13. आर्थिक विकास में बाधा (Obstaclein Economic Progress)

बेरोजगारी के प्रभाव व दोष को जितना बताया जाए कम है। कार्ल मार्क्स का कहना है कि कार्य 'मानवीय अस्तित्व' के लिए मूल शर्त है। व्यापक बेरोजगारी एक ऐसी बुराई है जो गम्भीर आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक खतरों से भरी है। तकलिफ, निराशा और असंतोष पैदा करके बेरोजगारी राजनैतिक और सामाजिक जीवन को बहुत कड़वा बना देती है। साथ ही साथ सुरक्षा को ठेस पहुँचाती है। बेरोजगारी से व्यक्ति के मन में यह भावना आ जाती है कि समाज के लिए वह गैर -जरूरी है। जिसमे समाज विरोधी और अपराधी तक बन जाता है। इसका सबसे प्रत्यक्ष एवं गंभीर परिणाम गरीबी है। जो बेकार व्यक्तियों एवं समाज की एक बड़ी दुश्मन है। मानवीय दृष्टिकोण से अर्थात व्यक्तिगत श्रमिक की दृष्टि से इसका सीधा मतलब अधिक गंभीर व्यक्तिगत नुकसान है। दीर्घकालिन बेरोजगारी श्रमिक के लिए चाहे वह कितना भी कुषल या निपूण हो, एक बुराई है। क्योंकि इससे बर्वादी और मुसीबत बढ़ती है तथा चरित्र एवं निपुणता में गिरावट आती है। यह श्रमिक में निष्ठा एवं सहयोग की भावना को रोकती है। यह लगातार चिन्ता और निराशा का कारण है। जो विनाशात्मक एवं निराशावादी दृष्टिकोण को उसकाती है। जिससे औधोगिक शांति (Industrial peace) और उत्पादन खतरें में पड़ जाती है। यह राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर उत्पादक साधनों की बर्बादी है।

V. बेरोजगारी दुर करने के उपाय (Measures to Remove unemployment)

बेरोजगारी उन्मूलन के प्रयास सभी सरकारों द्वारा किया जाता है। जो प्रत्येक परिस्थिति, हालात, काल, देश में भिन्न-भिन्न होते है। बेरोजगारी उन्मूलन के लिए किसी एक उपाय से नही कई बतिका एक रणनीति के तहत कई कारणों पर एक साथ प्रहार की आवश्यकता होती है। इसलिए सरकार की विभिन्न एजेंसी के माध्यमों से बेरोजगारी उन्मूलन के कार्यक्रम चलाती है। पंचवर्षीय योजनाओं में भी ग्रामीण एवं बेरोजगारी परकेन्द्रीत कर इसकों दूर करने के लिए विभिन्न कार्यक्रम चलाए जा रहें है। गांव में भूमिहीन, साधनहीन तथा शहरों में मलिन वस्तियों (Slum) के लिए विशेष रोजगार कार्यक्रम चलाए जाते है। बेरोजगारी उन्मूलन के निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं:-

1. जनसंख्या पर नियंत्रण (Population control)
2. बाल श्रम उन्मूलन (Child Labour Eradication)
3. आर्थिक असमानता में कमी (Reducation in Economic Inequality)
4. आर्थिक विकास को बढ़ावा (Encouragement of Economic Development)
5. निवेष को प्रोत्साहन (Encouragement to Investment)

6. लघु उघोग के विकास पर प्रोत्साहन (Encourgement to small Industry)
7. कार्योन्मुखी षिक्षण एवं प्रषिक्षण को प्रोत्सहन (Jobn`oriented Education and Training)
8. पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधा की व्यवस्था (Sufficient heath Facilities arragment)
9. बेरोजगारी उन्मूलन के विशेष कार्यक्रम (Special Programmer for unemployment Eradication)

बेरोजगारी उन्मूलन एवं पंचवर्षीय योजनाएं

बेरोजगारी उन्मूलन के लिए सरकार ने पंचवर्षीय योजनओं मे विशेष रणनीति बनाई हैं। जिसमें बेरोजगारी पर एक निश्चित सीमा तक अंकुश लगाने का प्रयास किया गया हैं जिसका वर्णन नीचे किया जा रहा हैं:-

1. प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56):-इसमें 300 करोड़ रूपये खर्च कर आर्थिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों में रोजगार सृजन का लक्ष्य रखा गया था। इस योजना अवधि में लगभग 54 लाख लोगों के लिए रोजगार सृजन संभव हो पाया था।
2. दूसरी पंचवर्षीय योजना(1956-61):- इसमें कृषि की जगह उद्योग विकास (Industrial Decelopment) का किया गया। इस योजना अवधि में कुल 80 लाख लोगों को रोजगार मिल सका था। जिसमें 65 लाख लोग ग्रामीण क्षेत्र (Rural Area) के थे।
3. तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-66):-इस योजना काल में प्रभावी ढ़ग से ग्रामीण विद्युतीकरण, ग्रामीण निर्माण, ग्रामीण उद्योगको लक्ष्य बनाते हुए रिकार्ड 1.5 करोड़ लोगों को रोजगार प्रदान मिल गया था। रोजगार के दृष्टिकोण से यह एक सफल योजना काल माना जा सकता हैं।
4. चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74):- इस पंचवर्षीय योजना काल मं 1.9 करोड़ लोगों का रोजगार दिलाने का लक्ष्य रखा गया था। यह बहुत बड़ा लक्ष्य था। लेकिन विडबना यह रही कि मात्र 27 लाख लोगों को ही रोजगार दिलाया जा सका था।
5. पंचवी पंचवर्षीय योजना (1974-79):-इस योजना काल में लघु सिंचाई, पशुपालन और दुग्धशालाओं का विकास, मत्सयपालन, गोदाम आदि संबंधित कार्यक्रमों पर ध्यान केंद्रित किया गया था।
6. छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85):-इस योजना में असंगठित क्षेत्रों (Unorganised sector) को किया गया था। इसी काल में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (N R E P) चलाया गया था।
7. सातवी पंचवर्षीय योजना (1992-97):-इस योजना काल के लिए सरकार ने ग्रामीण विकास हेतु 30000 करोड रूपये निर्धारित की थी। इसमें मुख्य लक्ष्य ग्रामीण इलाकों में बेरोजगारी उन्मूलन करना था।
8. नौवी पंचवर्षीय योजना (1997-2000):-इस योजना काल में भी स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (1999), स्वर्णजयंती षहरी स्वरोजगार योजना(1997), प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (2000), संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना 2001, वाल्मीकी अंवेडकर आवास योजना (2001) प्रारंभ हुई थी। जिसने कई मामलों में सफलता प्राप्त की थी।
9. दसवी पंचवर्षीय योजना (2002-07):-इस योजना काल हेतु 10 करोड़ रोजगार सृजन (Employment Generation) करने का लक्ष्य रखा गया फिर इसे संशोधित कर 3 करोड़ किया गया, (श्रम मंत्रालय, 2004)। भारत सरकार के रिर्पोट के अनुसार 55 वें NSSO रिर्पोट को दर्ज करते हुए बताया गया कि भारतं में कुल 39.7 करोड़ श्रमिकों में 12.2 करोड़ ऐसे श्रमिक है, जो काम पर तो लगे हुए है, लेकिन निर्धनता रेखा (च्वअमतज स्पदमद्ध के ऊपर आय प्राप्त नहीं कर पा रहे थे।
10. इस समस्या को ध्यान में रखते हुए केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना, (नरेगा) 2006 लागू किया। जिसमें गरीबी रेखा से निचे (B P L) गुजर-करने वाले प्रत्येक परिवार के सदस्यों को वर्ष में न्यूनतम 100 दिनों के लिए रोजगार प्रदान करने के उद्देश्य से योजना को प्रारंभ किया गया था।
11. ग्यारहवी पंचवर्षीय योजना (2007-2012):- इस योजना का लाभ कृषि क्षेत्र में लगें लगभग 53.2% लोगों को रोजगार प्राप्त हुआ। इस योजना का कुल बजट 10 वी पंचवर्षीय योजना से 39,900 अधिक था।
12. बारहवी पंचवर्षीय योजना (2012-2017):-इस योजना में बेरोजगारी दूर करने के लक्ष्य प्रत्येक क्षेत्र के लिए निर्धारित किया गया है इसके लिए कृषि क्षेत्र, शिक्षा परियोजना, राष्ट्रीय कृषि उद्यमी परियोजना, योजना के क्षेत्र तक प्रत्येक गांव को बिजली सड़क तथा स्वच्छ एवं निर्मल गांव का दर्जा प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया था। इस योजना में आर्थिक विकास (Economic Development) का लक्ष्य को सर्वोपरि रूप में रखा गया था। आर्थिक सेंमट के कारण आर्थिक विकास दर के लक्ष्य को 10% प्रतिवर्ष से घटाकर 8.1% कर दिया गया था।

इस विश्लेषण से स्पष्ट है कि सरकार द्वारा बेरोजगारी उन्मूलन हेतु प्रथम पंचवर्षीय योजना से अब तक विभिन्न प्रकार के उपाय किए गए। ताकि बेरोजगारी खासकर 'ग्रामीण बेरोजगारी' (Rural Employment) से समाज को निजाद दिलाया जा सके। साथ ही साथ कई प्रकार के विशेष कार्यक्रम इस समस्या के निदान के लिए प्रारंभ किए गए। समस्या बड़ा है और समाज के प्रत्येक हिस्से प्रत्येक कोने में भ्रष्टाचार (Corruption) व्यापत है। वो एक बहुत बड़ी बाधक बन रही है। साथ ही साथ प्रशासकों में कठोर इच्छाशक्ति का घरघोर अभाव है। ग्रामीण भी अपनी समस्याओं के निदान के लिए उदासीन है। खासकर ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा (Education) का घनघोर अभाव है। वो अपने अधिकार व कर्त्तव्य के प्रति आक्रमक नहीं हैं। सरकारी योजना और लाभ के प्रति उनकी जागरूक कम है। जिससे वो सम्पूर्ण योजना का बेहतर ढ़ग से लाभ नहीं उठा पाते है। बिचौलिया उनके मुख्य लाभ को चट कर जाते है। इस प्रकार की समस्याएँ ही बेरोजगारी को चिर स्थायी बना देती है।

सदर्भः-

1. World employment Social Outlook, ILO Geniva, 2019 P. 83-84
2. World employment Social Outlook, ILO Geniva, 2019 P. 20-42
3. Global Employment Social Outlook 2019 P-19
4. Business Stander jan, 2019
5. Cksjkstxkjh dSls nqj djs] eku flagusxh] Nation Press; 1st edition, 11 fed 2020 P.30.31
6. Roral Provesty and unemployment in lndia Page-20-27

कृषि श्रमिकों के पलायन का उनके आर्थिक जीवन पर प्रभावः बिहार राज्य के विशेष सन्दर्भ में

रिंकू कुमारी

शोध-छात्रा, अर्थशास्त्र विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

शोध-सार

बिहार में मजदूरों का पलायन वर्षों पहले से हो रहा है, और समय के साथ-साथ शहरी क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर पलायन बढ़ा है। पलायन का मुख्य कारण जोत का आकार छोटा होना या भूमि हीन होना, कृषि से प्राप्त आय का काफी कम होना, संरचनात्मक सुविधावों की कमी, बेरोजगारी, सामाजिक सुरक्षा का अभाव इत्यादि है। जिसके कारण ये प्रवासी श्रमिक अन्य स्थानों पर पलायन के लिए मजबूर होते हैं। इनकी आर्थिक स्थिति इस बात से भी स्पष्ट होती है कि ये अपनी आय का बड़ा हिस्सा अपने परिवार को आजीविका चलाने हेतु भेजते हैं, और स्वयं कम पैसों में बड़े कष्ट के साथ अस्वस्थयकर स्थानों पर निवास करते हैं, जिसका प्रभाव उनकी कार्य क्षमता पर पड़ता है। पलायन में समय के साथ-साथ वृद्धि के कारण ग्रामीण तथा शहरी दोनों क्षेत्र प्रभावित होता है, जिसके दो पहलू हैं, सकारात्मक तथा नकारात्मक।

एक ओर यह माना जा रहा है ग्रामीण क्षेत्र से हो रहे पलायन से भूमि पर अतिरिक्त भार कम हो रहा है। किन्तु दुसरी तरफ इसका नाकारात्मक प्रभाव कृषि सम्बंधित कार्यों तथा वहाँ की सभ्यता संस्कृति पर पड़ रहा है। शहरी क्षेत्रों में भी विकास के साथ-साथ अनावश्यक भार या अतिरिक्त जनसंख्या का दबाव लगातार बढ़ता जा रहा है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि कार्य स्थलों पर श्रम कानून का अधिनियमन किया जाना चाहिए। प्रवासी श्रमिकों के लिए पूरे देश में श्रम बाजार को विभाजित कर कार्य-काल की सुरक्षा के साथ एक अलग श्रम बाजार विकसित किया जाना चाहिए, साथ ही प्रवासी श्रमिक आवश्यक बुनियादी सुविधाओं का लाभ उठा सकें, इसके लिए सरकार द्वारा उन्हें पहचान-पत्र जारी किया जाना चाहिए।

मूल शब्दः- श्रमिक, संरचनात्मक सुविधाएँ, सीमांत किसान, असंगठित क्षेत्र, आर्थिक जीवन।

प्रस्तावना

प्रवासी श्रमिक वह है, जो रोजगार पाने के उद्देश्य की पूर्ती हेतु अपने मूल निवास स्थान को छोड़कर, अन्य स्थानों पर स्थाई या अस्थाई रूप से असंगठित क्षेत्र में अपने देश के भीतर या बाहर काम पाने के उद्देश्य से पलायन करता है। प्रवासी श्रमिक आमतौर पर उस देश या क्षेत्र में स्थायी रूप से रहने का इरादा नहीं रखते हैं, जिसमें वे काम करते है। हमारे देश में अंसगठित क्षेत्र मूलतः ग्रामीण आबादी से विकसित हुआ है, और इसमें अधिकांशता वे लोग शामिल हैं, जो गाँव में परम्परागत कार्यों विशेषकर कृषि सम्बंधित कार्यों से जुड़े हैं और शहरों में ये प्रवासी श्रमिक अनेक कार्यों जैसेः- खुदरा कारोबार, विनिर्माण उद्योग, परिवहन, भंडारण और निर्माण उद्योग में काम करते हैं। इनमें से अधिकांश श्रमिक ऐसे है जो फसल की बुआई और कटाई के समय गाँवों में वापस चले आते हैं और कार्य समाप्त होते ही पुनः वापस आकर शहरों, महानगरों में काम करने के लिए आजीविका तलाशते हैं।

किसी भी देश में अंतर्राष्ट्रीय प्रवास की तुलना में देश के विभिन्न राज्यों में होने वाले पलायन की अधिकता है। पलायन से आर्थिक विकास के साथ-साथ पलायनकर्ता का सामाजिक-आर्थिक जीवन भी प्रभावित होता है, यदि हम ध्यान से देखें तो हम पाते है कि, बढ़ती आबादी तथा पलायन परस्पर सम्बंधित है। यदि हम प्रथम जनगणना तथा वर्ष 2011 की जनगणना का तुलनात्मक अध्ययन करें तो हम पाते है कि ग्रामीण आबादी 1951 में 83 प्रतिशत तथा शहरी आबादी 17 प्रतिशत थी। जो वर्ष 2011 में ग्रामीण जनसंख्या घटकर 68 प्रतिशत तथा शहरों में बढ़कर 32 प्रतिशत हो गई, जो समय के साथ ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर बढ़ रहे पलायन को दर्शाता है।

साधारणतः पलायन के सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रभावों को देखा जा सकता है। क्योंकि एक तरफ ये प्रवासी श्रमिक शहरी क्षेत्रों में उत्पादन, विकासात्मक कार्यों, दैनिक जीवन को सरल बनाने में अपना पूर्ण सहयोग देते हैं तो दूसरी तरफ नाकारत्मक प्रभाव के रूप में गाँव की पूरी तरह से देख-भाल नहीं हो पाती है, तथा वहाँ की सभ्यता, संस्कृति भी धिरे-धिरे विलुप्त होती जा रही है। शहरी क्षेत्र में भी जनसंख्या का बोझ बढ़ जाने से बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध कराने जैसे- स्वच्छ पेय जल, चिकित्सा, शिक्षा की व्यवस्था, संरचनात्मक सुविधाओं के विस्तार में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। अतः कहा जा सकता है कि पलायन गाँव तथा शहरों दोनों जगहों पर सकारात्मक के साथ-साथ नकारात्मक प्रभाव भी डालते हैं।

पलायन के कारणों पर प्रकाष डाले तो हम पाते हैं कि, पलायन के अनेक कारण है, विशेषकर जनसंख्या वृद्धि, कुटीर एवं लघु उद्योग का पतन, ग्रामीण ऋणग्रस्तता, संयुक्त परिवार के सदस्यों का एक ही सदस्य पर निर्भर होना, यातायात एवं संचार की सुविधाओं का अभाव, सामाजिक दण्ड से बचने के उद्देश्य से, जोत का छोटा आकार इत्यादि है। बिहार के पुनपुन प्रखंड के संदर्भ में देखे तो हम पाते है की पलायन का मुख्य कारण जोत का छोटा आकार तथा भूमि

हीन होना एवं उचित मजदूरी तथा स्थाई रोजगार का अभाव, कृषि के अतिरिक्त सहायक उद्योग धंधों का अभाव, कौशल का अभाव, शिक्षा की कमी इत्यादि के रूप में देखा जा सकता है।

बिहार आबादी के दृष्टिकोण से देश का तीसरा सबसे बड़ा राज्य है। यदि हम बिहार में जोतों के वितरण 2015-16 के अनुसार हम देखते है कि, बिहार में कृषक सिमांत परिवार 91ण्2 प्रतिशत है। (सिमांत किसान जिनके जोत का आकार 2 हेक्टेयर से भी कम हो)। 2015-16 में इनके पास कुल भू-क्षेत्र का 57.7 प्रतिशत हिस्सा था। जोतों का औसत आकार 2015-16 में 0.39 हेक्टेयर था। 2015-16 में राज्य में अर्ध मध्यम तथा मध्यम आकार की जोते 03 प्रतिशत थी। यदि संख्या के दृष्टिकोण से देखा जाए तो सीमांत जोतो को संख्या में वृद्धि हुई है तथा अन्य जोतों की संख्या घटी है। 2010-11 तथा 2015-16 में कार्यशील जोतो की संख्या का आकलन करे, तो हम पाते हैं कि सीमांत जोत सं0- 2010-11 (हजार) में 14744 तथा 2015-16 में 14971 थी तथा लघु जोत सं0- 2010-11 (हजार) में 948 तथा 2015-16 में 944 हो गयी। लघु-मध्यम जोत सं0- 2010-11 (हजार) में 415 तथा 2015-16 में 414 हो गयी। मध्यम तथा वृहत आकार की जोतों की संख्या प्राय: स्थिर रही अर्थात् 2010-11 तथा 2015-16 में यह 81-81 रही एवं वृहत जोत की संख्या 3-3 रही इस प्रकार जोत का आकार का निरंतर छोटा होना, धीरे-धीरे कृषि क्षेत्र से प्राप्त होने वाली आमदनी को घटती दर को प्रदर्शित करता है। क्योंकि छोटे जोत वाले किसानों द्वारा स्वयं एवं परिवार को अनिवार्य आवश्यकता को पूरा कर पाना संभव नहीं है। फलस्वरूप वो अन्य जगहों पर पलायन करने को मजबूर होते हैं।

यदि हम 1998-99 तथा 2009-10 में कुल प्रवास करने वाले प्रवासी श्रमिकों के प्रतिशत को देखें तो हम पाते है कि 1998-99 प्रवासी कामगारों का 16 प्रतिशत था जो 2009-10 में बढ़कर 25 प्रतिशत हो गया। (स्त्रोत IIPA, 2010 Rodgers एवं अन्य al 2013) तथा भारत के महानिबंधक और जनगणना आयुक्त, जनगणना 2011 के अनुसार कुल प्रवासी की संख्या 27,245 जिसमें 23,267 ग्रामीण क्षेत्र से तथा 3,978 शहरी क्षेत्रों से पलायन हुआ है जो अनेक चुनौतियों को जन्म देता है।

मूल तथा गन्तव्य स्थानों पर प्रवासी श्रमिकों की आर्थिक दशा

बिहार से मजदूरों का पलायन न केवल ग्रामीण बल्कि शहरी क्षेत्रों से भी हुआ है। और इन्हें अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है यहाँ बढ़ती जनसंख्या तथा औद्योगिक निवेश में कमी के कारण एक प्रकार का आर्थिक ठहराव आ गया है। अत: पलायन एक स्वाभाविक प्रक्रिया के तहत देखा जाने लगा। पलायन मूख्य रूप से रोजगार प्राप्त करने के उद्देश्य से हुआ है। (NSS-2018) के अनुसार काम की तलाश में राज्य से बाहर जाकर काम करने वाले कुल मजदूरों में से 79 प्रतिशत गाँव से गाँव में तथा 12 प्रतिशत मजदूर ऐसे हैं जिनका पलायन गाँव से शहरों की ओर हुआ है। आर्थिक सर्वेक्षण (2017-18) के अनुसार 47 प्रतिशत प्रवासी ऐसे हैं, जिसके पास निर्धारित वेतन वाली नौकरियाँ है। 70 प्रतिशत ऐसे प्रवासी कामगार है जो औपचारिक क्षेत्र में कार्य करते है किन्तु कोई तय कॉन्ट्रेक्ट नहीं है। 54 प्रतिशत ऐसे है जिसके पास बीमार पड़ने पर छुट्टी का अधिकार नहीं है। 49 प्रतिशत कामगार ऐसे है जिन्हें सामाजिक सुरक्षा का लाभ प्राप्त नहीं है। 53 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र मे काम करते हैं। साधारणत: ये टैक्सी ड्राइवर, सड़क किनारे ठेला लगाने वाले इत्यादि हैं।

ग्रामीण बिहार में तीन चौथाई हिस्सा सीमांत किसानों का था। कृषि मजदूरों के रूप में कृषि क्षेत्र पर निर्भर है जहाँ उनकी आय बहुत कम है। (त्वकहमते एवं अन्य 2013) कहा जाता है कि आजादी के इतने सालों बाद भी उत्पादन अर्द्ध-सामंती है जहाँ कृषि योग्य भूमि के बड़े हिस्से पर मालिकाना हक उच्च जाति के दबंग लोगों के पास है। जाति वर्ग एवं भूमि स्वामित्व, सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक ताकत का निर्धारण करती है। भूमिहीन एवं सीमांत किसानों को सहायक रोजगार के अभाव में अपना तथा अपने परिवार की आजीविका चलाने के उद्देश्य से राज्य से बाहर तथा अपने-अपने घरों से दूर रहते हैं। परिणामस्वरूप उनका परिवार सरकार द्वारा उपलब्ध करायी जा रही विभिन्न सेवाओं और स्कीमों के लिए अपनी पात्रता का दावा कर पाने में असमर्थ होते हैं।

प्रवासन ज्यादातर 15 से 40 वर्ष के आयु वर्ग के बीच के लोगों का होता है। (Rodgers एवं अन्य 2013) भूमिहीन-श्रमिक, परिवार के भरण-पोषण के उद्देश्य से स्वयं के साथ-साथ अपने 14-15 वर्ष के बच्चों को भी काम करने के लिए अलग-अलग राज्यों में भेजने को मजबूर होते हैं।

मूल निवास स्थान पर जहाँ साधारणत: समाज पितृसतात्मक होती है पूरूषों की अनुपस्थिति में महिलाओं को काम करने के साथ-साथ घर संभालने में काफी परेशानीयों का सामना करना पड़ता है। दूसरी तरफ काम के तलाश में बाहर जाने वाले 85 प्रतिशत बिहारी मजदूरों को मात्र 5.000 रू0 प्रति माह से भी कम प्राप्त होता है (IIPA 2010)। चुँकि उनका पलायन बहुत ही कम उम्र में हो जाता है अत: आगे चलकर ये अकुशल या अर्द्धकुशल मजदूर बन जाते हैं। निर्माण क्षेत्र या औद्योगिक क्षेत्र जहाँ ये संलग्न होते हैं खतरनाक, हानिकारक तथा अस्वस्थ्यकर होती है। कार्यस्थल पर इन्हें दुर्घटना होने पर मुआवजा, पीएफ आदि के लाभ से वंचित रखा जाता है। अत: गन्तव्य स्थानों पर भी इनका जीवन बहुत ही असुरक्षित होता है।

बिहार जनसंख्या के दृष्टिकोण से देश का तीसरा सबसे बड़ा राज्य है। 55.3 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे अपना जीवन जीने को मजबूर है, हालांकि पिछले दशक में राज्य में आर्थिक विकास की गति तीव्र हुई है, किन्तु इसक प्रभाव द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्रों पर ही रहा है। कृषि क्षेत्र में कोई विशेष अन्तर नहीं आया, फलस्वरूप कृषि क्षेत्र में रोजगार की उपलब्धता नहीं होना, ऋणग्रस्तता, जोत का छोटा आकार, निम्न सामाजिक स्तर, कृषि क्षेत्र में संलग्न श्रमिकों में संगठन के अभाव के कारण इनकी आर्थिक स्थिति लगातार खराब होती चली गई और एक राज्य से दूसरे राज्यों में पलायन करना इनकी मजबूरी हो गई है। (IPPA 2010) के अनुसार बिहार से दूसरे राज्यों में पलायन करने वालों की संख्या लगभग 44 से 50 लाख है। अत: आवश्यकता इस बात की है कि श्रमिकों को मूल स्थानों पर ही रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराया जाए, ताकि पलायन की दर को कम किया जा सके।

उद्देश्य:

- पलायन के कारणों को जानना।

- प्रवासी श्रमिकों के आर्थिक दशा पर प्रकाश डालना।
- गन्तव्य स्थानों पर उनकी कार्य स्थिति को दर्शाना।
- प्रवासी श्रमिको के पलायन का गन्तव्य तथा मूल स्थानों पर पड़ने वाले प्रभावों को जानने का प्रयास करना।

सुझाव

- पंचायत स्तर पर मजदूरों के निबंधन करने का प्रयास किया जाना चाहिए जिससे प्रवासी मजदूरों को वास्तविक संख्या, उनकी उम्र तथा उनकी कार्य कुशलता का आकलन सही ढंग से हो सके।
- इन मजदूरों का कुशलता का उपयोग ग्रामीण विकास में विशेष निति निर्माण के तहत किया जाना चाहिए।
- पुनपुन क्षेत्र में किये गये अध्ययन में यह पाया गया कि, ज्यादातर पलायन अल्प मजदूरों तथा स्थायी, रोजगार के अभाव में होता है अतः मनरेगा के साथ-साथ अन्य वैकल्पिक रोजगार की व्यवस्था गाँव में ही की जानी चाहिए।
- प्रवासी मजदूरों के लिए कौशल विकसित करने के लिए विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था तथा उनके उपयोग की व्यवस्था की जानी-चाहिए।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि, बिहार से पलायन कर रहे प्रवासी मजदूर, स्वयं ही नहीं अपने साथ नये कौशलों से युक्त होकर वापस आते है अतः इनका उपयोग उचित निति निमार्ण कर ग्रामीण विकास के लिए किया जाना चाहिए। साथ ही हमारी नष्ट होती ग्रामीण सभ्यता संस्कृति एवं परम्परा की रक्षा की जा सके। शहरी क्षेत्रों का विकास भी सुनियोजित ढंग से हो सके। साथ ही सरकार द्वारा दि जा रही सुविधाओं का लाभ इन्हें आसानी से उपलब्ध हो सके इसकी व्यवस्था की जानी चाहिए।

संदर्भ - सूची

- आर्थिक सर्वेक्षण, 0019-20, वित्त विभाग, बिहार सरकार, पृ0- सं0- 173.
- बिहार से मजदूरों के प्रवासन पर राज्यस्तरीय परामर्श बैठक, 12/10/2017, पृ0- सं0- 03.
- बिहार का आर्थिक सर्वेक्षण, 2018-19, वित्त विभाग, बिहार सरकार, पृ0- नं0- 80.
- भारत में आंतरिक प्रवासियों के बेहतर समावेश हेतु भारत में आतंरिक प्रवासन पहल नीति सार, अक्टूबर, 2012, ISBN : 978-81-8921846-1
- डॉ0 सोलंकी अर्जुन, ''ग्रामीण क्षेत्रों से पलायनः करण एवं परिणाम'', कुरूक्षेत्र, सितम्बर, 2014. पृ0- सं0- 17.
- बाधवा मजुला, ''कामगारों एवं श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ'', कुरूक्षेत्र, जुलाई, 2020, पृ0- सं0- 22.

भिवाड़ी क्षेत्र में बढ़ते औद्योगीकरण के कारण उत्पन्न समस्याएं और उनके प्रभाव

कल्पना यादव

शोधार्थी (भूगोल विभाग), राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

डॉ० गायत्री यादव

शोध निर्देशिका, सह-आचार्या (भूगोल विभाग), बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

सारांश

भिवाड़ी मेट्रो सिटी, दिल्ली के बाहरी इलाके में सबसे तेजी से बढ़ता औद्योगिक शहर है। एनसीआर और राजस्थान के प्रमुख औद्योगिक शहर भिवाड़ी में 3 औद्योगिक क्षेत्र शामिल हैं, जिनके नाम भिवाड़ी, चोपनकी और खुशखेड़ा हैं।

यद्यपि भिवाड़ी क्षेत्र में औद्योगीकरण से वस्तुओं का उत्पादन बढ़ने के साथ आर्थिक समृद्धि आयी है। परन्तु इससे जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण, स्लम, बुनियादी सुविधाओं की आपूर्ति के साथ पर्यावरण पर दबाव, प्रदूषण और अपराध भी बढे हैं। उद्योगों के लिए जमीन की कमी और पर्यावरण प्रबंधन अब औद्योगिक विकास प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण निर्णायक कारक बन चुके हैं।

औद्योगिक प्रदूषण, औद्योगिक देशों में अनुभव की जा रही सबसे बड़ी पर्यावरणीय समस्या है। भारत का औद्योगिक ढांचा आर्थिक सुधारों के बाद कई बदलावों से गुजरा है। हालांकि, भारत में पर्यावरण पर औद्योगिक ढांचा बदलने के प्रभाव को ध्यान में रखते हुए कोई बड़ा पर्यावरण सुधार शुरू नहीं किया गया। इसलिए भारत में औद्योगिक क्षेत्र के पर्यावरणीय प्रभावों का विश्लेषण करने की जरूरत है। चूंकि विभिन्न उद्योगों में प्रदूषण की तीव्रता अलग-अलग है, इसलिए इस शोध पत्र में सबसे पहले संरचना पर एक नजर डाली है।

प्रस्तुत आलेख में अतीत और मौजूदा परिस्थितियों के सावधानीपूर्वक आकलन और पर्यावरण के साथ सद्भाव में उचित योजना और एकीकृत ढांचे का आह्वान किया गया है। प्रभावित क्षेत्र का अनुभवजन्य ज्ञान, स्थानीय संदर्भ को समझने और जमीनी वास्तविकताओं के आधार पर भविष्य के कार्यक्रम विकसित करने में मदद करता है। इसी उद्देश्य से भिवाड़ी के वर्तमान औद्योगिक परिवेश तथा उसके सामाजिक एवं पर्यावरणीय प्रभाव पर एक अध्ययन किया गया। एक कारण श्रृंखला विश्लेषण ने औद्योगीकरण के तात्कालिक और मूल कारणों और कारकों को रेखांकित करते हुए, स्थानीय पर्यावरण पर इसके गंभीर प्रभावों का संकेत दिया है।

मूल शब्दः भिवाडी, उद्योग, प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, वाणिज्यिक क्षेत्र, वाहन घनत्व, टप्पूनगर

परिचय

भिवाड़ी, भारत के राजस्थान राज्य के अलवर जिले में स्थित एक नगर है। राजस्थान का यह औद्योगिक केंद्र नई दिल्ली से 65 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है और यह एनसीआर का एक हिस्सा है। यह शहर अलवर से 90 किलोमीटर, गुड़गांव से 22 किलोमीटर और फरीदाबाद से 60 किलोमीटर दूर है।

भिवाड़ी एक औद्योगिक केंद्र है, जिसमें 1850 छोटे और बड़े उद्योग, जिनमें एमएनसी औद्योगिक इकाइयां और स्टील, फर्नेस, इंजीनियरिंग, फार्मास्यूटिकल्स, टेक्सटाइल आदि शामिल हैं।

1971 में, भिवाड़ी 1624 लोगों की एक छोटी सी ग्रामीण बस्ती थी। दिल्ली से निकटता और अन्य स्थानिक लाभों के कारण राजस्थान सरकार ने इसे औद्योगिक के रूप में विकसित करने का निर्णय लिया। राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास एवं निवेश निगम (RIICO) ने 1975 के बाद से, भिवाड़ी के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भिवाड़ी की आबादी 1991 में 15,000 बढ़ी थी जो आगे 2001 में 33877 हो गयी।

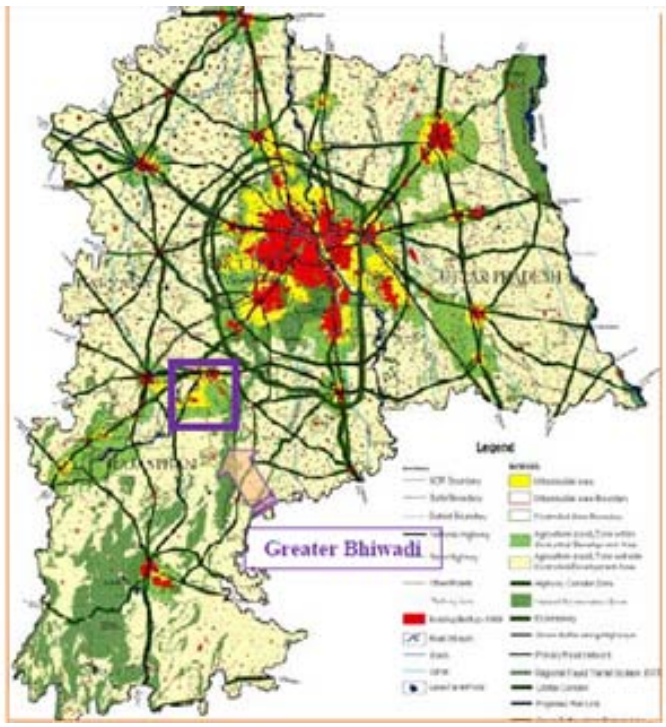

चित्रः एनसीआर विभागीय भूप्रयोग

2011 की जनगणना के मुताबिक राजस्थान के स्वर्ण प्रवेश द्वार बन चुके भिवाड़ी की कुल आबादी 1.15 लाख है। जिसके 2031 तक 15 लाख तक पहुंच जाने का अनुमान है। ग्रेटर भिवाड़ी में 9 रोजगार सृजन औद्योगिक परिसर हैं। यहाँ लगभग 3,000 विनिर्माण उद्यम चल रहे हैं, और निकट भविष्य में कई नए एसईजेड और औद्योगिक आउटलेट आने की संभावना है। इसके अलावा, मल्टीमॉडल ट्रांजिट स्टेशन, इंटीग्रेटेड फ्रेट कॉम्प्लेक्स और ट्रांसपोर्ट नगर जैसी आगामी ढांचागत परियोजनाओं से माल और लोगों के कुशल परिवहन में सुविधा होगी।

अब सिस्को खुशखेड़ा-भिवाड़ी के लिए एक सूचना और संचार प्रौद्योगिकी मास्टरप्लान तैयार कर रहा है, ताकि जल प्रबंधन में सुधार हो, सार्वजनिक सुरक्षा बढ़ाई जा सके, ऊर्जा खपत की निगरानी की जा सके और इसी तरह की सेवाएं प्रदान की जा सके। भिवाड़ी के पास एक छोटे से क्षेत्र में केंद्रित सामाजिक बुनियादी ढांचा था जिसे और विकसित कर कम लागत पर सामूहिक रूप से साझा करने, और समूह के लाभों से लाभान्वित होगी।

जनसांख्यिकी

2011 की जनगणना के अनुसार, भिवाड़ी की आबादी 104,883 थी, जिसमे पुरुषों का अनुपात 57% और महिलायें 43% है। भिवाड़ी शहर का लिंगानुपात प्रति 1000 पुरुषों पर 800 महिलाएं हैं।

लगभग 5,300 एकड़ में फैले हुए इस शहर में लगभग 2,700 घर बने हुए हैं।

उद्योग

इस शहर में स्टील मिलों और भट्टियों से लेकर ऑटोमोबाइल और इलेक्ट्रॉनिक्स मैन्युफैक्चरिंग तक बड़े, मझोले और छोटे उद्योग शामिल है।

सारणीः औद्योगिक इकाईयां

S. No.	Location	Units Currently Functioning	Units under Construction	Total Units
1	Bhiwadi	1455	118	1573
2	Kahrani	Nil	3	3
3	Chopanki	183	347	530
4	Khushkhera	87	290	377
5	IID Khuskhera	10	64	74
6	Tapukara	Nil	4	4
7	Sarekhurd	1	4	5
8	Pathredi	3	4	7
Total		**1739**	**834**	**2573**

रोजगार

ग्रेटर भिवाड़ी कॉम्प्लेक्स में कृषि के बाद उद्योग दूसरे सबसे बड़े रोजगार प्रदाता हैं जहाँ 70050 लोग काम करते हैं।

एक क्षेत्रीय सर्वेक्षण के अनुसार, ग्रेटर भिवाड़ी परिसर में 4442 खुदरा उद्यम थे जिनमें अनुमानतः करीब 10 हजार लोग काम करते हैं।

भिवाड़ी राजस्थान के अलवर जिले का एक छोटा सा शहर है, जिसकी कुल आबादी बमुश्किल एक लाख है, राजस्थान से कुल जीएसटी संचय का 12 प्रतिशत राज्य खजाने में जमा करता है।

औद्योगिक कर्मचारियों के लिए बुनियादी सुविधाओं का अभाव

औद्योगिक श्रमिकों के लिए आवास व संबद्ध सामाजिक बुनियादी सुविधाओं का अभाव एक जटिल समस्या है।

भिवाड़ी में स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी सामाजिक सुविधाएं अपर्याप्त हैं। मजबूरी में कम आय वाले कर्मचारी आसपास के क्षेत्रों में बैरक में या आसपास गांवों में रहते हैं। एकल आवास और सामाजिक सुविधाओं की कमी के कारण श्रमिकों के परिवार साथ नहीं रहते हैं। इसके अलावा वहां विभिन्न आय के लिए मनोरंजक और सामाजिक-सांस्कृतिक सुविधाएं जैसेः पार्क और खेल के मैदान की कमी है।

अविकसित वाणिज्यिक बुनियादी ढांचा

ग्रेटर भिवाड़ी कॉम्प्लेक्स में वाणिज्यिक बुनियादी ढांचा अभी ठीक से विकसित नहीं हुआ है। तेजी से बढ़ती आबादी, औद्योगिक विस्तार, पार्किंग और एटीएम सुविधाओं की कमी से भी काफी समस्याएं पैदा हो रही हैं।

जलापूर्ति

ग्रेटर भिवाड़ी कॉम्प्लेक्स की जल आपूर्ति का प्राथमिक स्रोत भूजल है। भिवाड़ी शहर के विस्तारित क्षेत्र में पानी की आपूर्ति यूआईटी, हाउसिंग बोर्ड और आरआईसीओ जैसी एजेंसियों करती हैं।

पुराने भिवाड़ी क्षेत्र में रहने वाली आबादी को पर्याप्त पानी नहीं मिलता।

पूरे औद्योगिक क्षेत्रों में पानी सहित प्रमुख बुनियादी सेवाएं प्रदान करने की जिम्मेदारी रीको (त्प्ब्ब्) पर है। औद्योगिक उपयोगों के लिए पानी की बढती मांग को ट्यूबवेल के जरिये पूरा करने की कोशिश की जा रही है।

सीवरेज नेटवर्क और कवरेज

किसी भी शहर में स्वच्छता और स्वास्थ्य की दृष्टि से एक व्यवस्थित सीवरेज सिस्टम एक बुनियादी जरुरत है। ग्रेटर भिवाड़ी कांप्लेक्स में सीवरेज की व्यवस्था नहीं है। भिवाड़ी शहर में उत्पन्न सभी घरेलू अपशिष्ट जल यूआईटी, आरएचबी और आरआईसीओ द्वारा निर्मित खुली और कुछ बंद नालियां में बहाया जाता है।

शहरीकरण की गति के साथ, भिवाड़ी शहर में सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट की जरुरत तीव्रता से अनुभव की जा रही है, जिसे शीघ्र ही विकसित किया जाना जरुरी है। मौजूदा सीईटीपी की क्षमता अपर्याप्त है जिसमें आंशिक रूप से उपचारित अपशिष्ट जल के लिए भी कोई उचित निपटान आउटलेट फिलहाल मौजूद नहीं है। आंशिक रूप से शोधित पानी का एक हिस्सा थारा गांव के पास खुले कृषि क्षेत्र में निपटाया जाता है। जबकि सीईटीपी से अनुपचारित अपशिष्ट जल, स्थानीय ढलान की स्थिति के कारण हरियाणा की सीमा से लगे सीईटीपी से ओवरफ्लो होता है। यह राजस्थान और हरियाणा राज्यों के अधिकारीयों के लिए जटिल प्रशासनिक समस्याएं पैदा करता है।

प्रदूषण

तेजी से बढ़ता औद्योगीकरण पूरी दुनिया में जल प्रदूषण का एक प्रमुख कारण है। बड़े पैमाने में उद्योगों से निकल रहे अपशिष्ट जल का निपटान विकासशील देशों में एक गंभीर समस्या का रूप लेता जा रहा है ।

कीटनाशक, वस्त्र, रसायन, उर्वरक, लुगदी और कागज, पेंट फार्मास्यूटिकल्स आदि उत्पादन करने वाले विभिन्न उद्योग बड़ी मात्रा में दूषित जल पैदा करते हैं। प्रदूषण के मामले में भारत दुनिया के शीर्ष 10 औद्योगिक देशों में शामिल है।

भिवाड़ी दुनिया का पांचवां सबसे प्रदूषित शहर

भिवाड़ी अपने धुआं उत्सर्जक उद्योगों और वाहनों की गतिविधियों में वृद्धि के कारण बीमार है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने एक रिपोर्ट जारी कर परिवेशी वायु गुणवत्ता और वायु गुणवत्ता सूचकांक (एक्यूआई) के अनुसार भिवाड़ी को देश का सबसे प्रदूषित शहर बताया है, जहाँ भारी प्रदूषक कणों का स्तर 425 माइक्रोग्राम प्रति क्यूबिक मीटर तक पहुँच गया है।

शहरी जीवन, स्वास्थ्य और खुशी

शहरी प्रदूषण और श्वसन रोगों के बीच गहरे सम्बन्ध हैं। लेकिन हमारे फेफड़ों पर प्रभाव केवल एक ही कारण शहर के रहने से चिंतित है। हाल ही में हुए एक अमेरिकी अध्ययन में शहर के वायु प्रदूषण की तुलना 29 साल तक प्रति दिन सिगरेट का एक पैक धूम्रपान करने से की गई है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) अब शहरी प्रदूषण के स्तर को ष्सार्वजनिक स्वास्थ्य आपातकालष् कहता है; क्योंकि हममें से 91% उन क्षेत्रों में रहते हैं जहां वायु प्रदूषण, एजेंसी के दिशा-निर्देशों से अधिक है।

मलिन बस्तियों की समस्या

दुनिया के किसी भी हिस्से में भूमि उपयोग और प्लानिंग का मुद्दा ज्यादा महत्वपूर्ण है। पिछले दशकों में त्वरित शहरीकरण, विशेष रूप से विकासशील देशों में न केवल शहरी केंद्रों की संख्या में बहुत तेजी से वृद्धि हुई है, बल्कि उनकी आबादी की संख्या भी बढ़ गई है।

राष्ट्रीय आंकड़ों के अनुसार राजस्थान सबसे सामाजिक रूप से पिछड़े राज्यों में से एक है। प्रदेश में स्वच्छता की स्थिति भी बहुत कमजोर है और खुले में शौच की दर भी अधिक है।

यहां की बड़ी आबादी जीवन की मूलभूत सुविधाओं से भी वंचित हैं। उन्हें न तो रहने की पर्याप्त जगह मिल पाती है और न ही पीने का स्वच्छ पानी। स्थिति इतनी विकट है कि तीन चौथाई मलिन बस्तियों में शौचालय और लगभग एक तिहाई में जल निकास व जल-मल निकास की सुविधाओं का पूर्णत: अभाव है। इन बस्तियों में प्रतिदिन निकलने वाले कूड़े-करकट को हटाने और ठिकाने लगाने की व्यवस्था नहीं है। इन बस्तियों के आधे से अधिक बच्चे कुपोषण का शिकार हैं। इन बस्तियों में रहने वाले परिवारों में बाल मृत्युदर स्वच्छ आवास एवं पर्यावरण में रहने वाले शहरी परिवारों के मुकाबले तीन गुनी है।

एनसीआर क्षेत्रीय योजना 2021 में भिवाड़ी को एक प्रमुख क्षेत्रीय केंद्र के रूप में विकसित करने का प्रस्ताव किया गया है। ग्रेटर भिवाड़ी परिसर में 99 राजस्व गांव शामिल हैं, जिनमें लगभग 250 वर्ग किमी का क्षेत्रफल है। भिवाड़ी, टपूकड़ा, खुशखेड़ा और चौपांकी परिसर में प्रमुख औद्योगिक नोड्स हैं।

निष्कर्ष

अलवर जिले के भिवाड़ी को उसकी भौगोलिक विशेषता के कारण एक औद्योगिक शहर के रूप में विकसित किया गया है। इसके वर्तमान चरित्र और भविष्य के एकीकृत विकास को बनाए रखने के लिए औद्योगिक विकास के लिए सहायक बुनियादी ढांचे के विकसित करने के लिए प्रावधान किए गए हैं। सम्बद्ध संस्थाएं भविष्य की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए पर्याप्त बुनियादी सुविधाओं पर काम कर रहे है और ग्रेटर भिवाड़ी परिसर को क्षेत्रीय केंद्र बना रही हैं।

भिवाड़ी के राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र का हिस्सा होने के बावजूद, यहाँ बुनियादी सुविधाओं का अभाव है। औद्योगिक प्रदूषण, विकसित औद्योगिक देशों में सबसे बड़ी समस्या है जो अब नई अर्थव्यवस्थाओं को अपनी चपेट में ले रही है। भारत का औद्योगिक ढांचा विशेष रूप से आर्थिक सुधारों के बाद से विभिन्न बदलावों से गुजरा है। हालांकि, भारत में पर्यावरण पर औद्योगिक ढांचे के बदलने के प्रभाव को ध्यान में रखते हुए कोई बड़ा पर्यावरण सुधार शुरू नहीं किया गया। इसलिए भारत में औद्योगिक क्षेत्र के पर्यावरणीय प्रभावों का विश्लेषण करने की जरूरत है। उद्योगों के बढ़ने के साथ ही शहरीकरण की गति भी तेज हुई है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों से आद्योगिक इलाकों की और पलायन बढ़ा है और शहरों के बुनियादी संसाधनों पर बढती आबादी के बोझ से लोगों को बिजली, पानी, आवास, परिवहन और स्वास्थ जैसी सुविधायों से महरूम होना पड़ रहा है।

सन्दर्भ

- Arora AN, Goyal R (2003) Conceptual groundwater modeling using GIS. In: GIS India 2003, National Conf. on GIS/GPS/RS/Digital Photogrammetry and CAD, Jaipur, 8th–10th Jan 2003
- CGWB (2017) Report on aquifer mapping and ground water management, district Alwar, Rajasthan (Under Xii Plan), July, 2017. Central Ground Water Board. Ministry of Water Resources, River Development & Ganga Rejuvenation, Government of India, Western Region, Jaipur.
- "Macro overview of Economy of Rajasthan". Just Wiki. 2016-07-11. Archived from the original on 2016-08-18. Retrieved 2016-08-07.
- Rajasthan ki Jankalyankari Yojnayen - Published by state government, Dec. 2011.
- Urban Development - Published by state government, Dec. 2011.

* Urjavaan Rajasthan - Published by state government, Dec. 2011.

ग्रामीण भारत में आवास समस्या (राजस्थान की इंदिरा आवास योजना के विशेष सन्दर्भ में)

नवीन कुमार पहाड़िया

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय (अलवर)

सारांश

आवास केवल चार दीवारों और छत से नहीं बनता है। आवास की अवधारणा में बुनियादी सुविधाओं की व्यवस्था ख़पीने के लिए शुद्ध पानी, जल निकासी की उचित व्यवस्था, सामुदायिक केंद्र, बच्चों के लिए स्कूल, औषधालय, आदि सभी चीजें आती हैं जिसमें ऐसी सुविधाएँ हैं।[1]

वैसे तो आवास की समस्या दुनिया भर में मौजूद है, लेकिन हमारे भारत वर्ष में घनी आबादी की वजह से यह समस्या ज्यादा गंभीर है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह समस्या अधिक है क्योंकि = जनसंख्या गांवों में रहती है।

2001 की जनगणना के अनुसार देश में 4 करोड़ 10 लाख मकानों की कमी थी। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार 148 लाख ग्रामीण आवासों की कमी है। इससे पता चलता है की देश के ग्रामीण क्षेत्रों में अब भी 148 लाख परिवारों के पास अपना घर नहीं है।[2]

संयुक्त राष्ट्रसंघ[2] के एक फैसले के अनुसार वर्ष 1987 को आवासहीनों के लिए आवास उपलब्ध कराने के उद्देश्य से उस वर्ष को अंतर्राष्ट्रीय वर्ष के रूप में मनाया गया था। इस निर्णय में प्रत्येक देश में नये सिरे से आवास नीति का निर्माण करना तथा सन 2000 तक सभी गरीबों के लिए आवास उपलब्ध कराने का लक्ष्य रख गया था। हमारे देश में आवास नीति को तो बना लिया गया लेकिन अभी तक सभी गरीबों के लिए आवास की व्यवस्था का जो सपना थी वह पूरा नहीं हो सका है। मकान जो भी बनाये जा रहे है उनमें से अधिकतर मकानों में पानी, शौचालय, आदि की उचित सुविधा न होने के कारण निवासियों को कष्ट का सामना करना पड़ रहा है।

एक अनुमान के अनुसार भारत की आधी आबादी, अपने 5-6 सदस्यों वाले परिवार के साथ एक कमरे में रह रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में रहने के कारण परिवार का वातावरण तो अस्वस्थ बनता ही है, साथ ही बच्चों की पढाई-लिखाई में भी बहुत सी बाधाएं आती हैं।

आजादी के बाद से ही केंद्र सरकार ने लगातार ऐसे कई कदम उठाये हैं, जो आवास निर्माण गतिविधियों को बढ़ाने के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने में मदद की है। इनका मुख्य उद्देश्य आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों, ग्रामीण भूमिहीन मजदूरों और कारीगरी, अनुसूचित जाति/ जनजाति के लोगों, विधवाओं, अकेली महिलाओं और महिला प्रधान घरों तथा विकलांग लोगों आदि को सस्ते मकान उपलब्ध कराना है।[3]

इंदिरा आवास योजना ऐसा ही एक कार्यक्रम है, जिसका मुख्य उद्देश्य अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति, मुक्त बंधुआ मजदूरों के सदस्यों द्वारा मकानों के निर्माण में मदद करना तथा गैर ख़ अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के गरीबी रेखा से नीचे के ग्रामीण लोगों को अनुदान मुहैया कराकर मदद करना है। मकानों का आबंटन यद्यपि लाभार्थी परिवार के महिला सदस्य के नाम होना चाहिए, परन्तु इसे पति एवं पत्नी दोनों के सम्मिलित नाम से भी आबंटित किया जा सकता है।[4]

मूल शब्दः ग्रामीण भारत, गरीबी-रेखा, अनुदान, आवास समस्या, इंदिरा आवास योजना , राजस्थान

परिचय

मानव के जीवन निर्वाह के लिए आवास, बुनियादी जरूरतों में से एक है। एक सामान्य नागरिक के लिए आवास उपलब्ध होने से उसे आर्थिक सुरक्षा और समाजिक प्रतिष्ठा मिलती है। एक बेघर व्यक्ति को आवास उपलब्ध हो जाने से उसके अस्तित्व में सामाजिक परिवर्तन आता है, तथा उसके पहचान बनती है और वह शीघ्र ही अपने सामाजिक वातावरण से जुड़ जाता है।

भारत में आजादी के सात दशक बाद भी आवास की समस्या निरंतर जटिल बनी हुई है। जिस गति से हमारी जनसंख्या बढ़ रही है, उस गति से नये मकान नहीं बन रहें हैं। आज भी शहरों की 25 प्रतिशत आबादी गन्दी बस्तियों में रह रही है। ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति तो और भी विकट है। तीसरी दुनिया के सभी देशों का लगभग यही हाल है।[5]

आवासों के प्रकार

भारत आज भी गांवों का देश कहा जाता है, जहाँ 5 लाख से अधिक गाँव है। इन ग्रामों में विभिन्न प्रकार के लोग अलग-अलग आर्थिक परिस्थितियों और आवासों में निवास करते हैं। इन आवासों को तीन श्रेणियों में बाँट सकते हैं।[6]

1. प्रथम श्रेणीख्इस श्रेणी में वे पक्के आवास आते हैं, जिनकी दीवारें ईट ख पत्थर की होती है और छत पक्की/खपरैल/टाइल्स या सीमेंट चादरों की होती हैं। इस प्रकार के मकानों की संख्या अभी भी बहुत कम है।
2. दूसरी श्रेणी- इस श्रेणी में मिट्टी की दीवार वाले मकान आते हैं। इस प्रकार के मकानों में छत खपरैल या टीन की चादरों से बनी होती हैं।
3. तीसरी श्रेणी ख इस श्रेणी में घास ख फूस से बनी झोपड़ियाँ आती हैं। इस तरह के मकानों में खराब मौसम में कोई सुरक्षा नहीं रहती। इन मकानों में रहने वालों को गर्मी, जाड़ा और बरसात के तीनों मौसम में कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है।

आवास समस्या के दुष्परिणाम

आवास की कमी व्यक्तियों का आसराहीन बना कर पतन की ओर मोड़ देती है। जिस कारण वे समाज के साथ तालमेल नहीं बैठा पाते। यहाँ तक की ये लोग समाज और स्वंय की लिए बोझ बन जाते हैं। औद्योगिक श्रमिकों और ग्रामीणों में आवास की समस्या अनके बुराइयों को जन्म देती है।

ग्रामीण आवास नीति की आवश्यकता

आवास की सुविधा या मकान की जब बात चलती है तो अधिकांश लोगों के मन में शहरी मकानों की कल्पना साकार हो उठती है। भारत सरकार ने भी जब राष्ट्रीय आवास नीति घोषित की थी, तब उसका अधिक जोर शहरी आवास समस्या के समाधान पर ही ज्यादा था। आम चर्चा में भी शहरों में आवास की समस्या ही मुखर होती है। मकानों के कमी और बढ़ते किराये की समस्या शहरों तक सीमित समझी जाती है।

गाँव की हमारी परम्परागत कल्पना में कच्चे, मिट्टी की बनी दीवारों, फूस की छतों और अँधेरी बंद कोठरियों या झोपड़ियों का दृश्य ही बसता है। हम यह मान कर चलते रहे हैं कि गाँव में आवास की कोई समस्या नहीं है और गांववासी जहाँ जगह मिलती है, दीवारें खड़ी कर लेता है। हमारी यही मान्यता उस स्थिति के लिए दोषी है जिसमें हमारे अधिकांश ग्रामवासी रह रहे हैं। उन्हें देखकर यह विचार हमारे मस्तिष्क में कौंधता ही नहीं की उन्हें भी साफ-सुथरे, सुविधाजनक और पक्के मकानों की जरूरत है या ऐसी सुविधायें उन्हें भी मिलें।

अनुसूचित जाति, जनजाति, आदिवासी, भूमिहीन, विधवाएँ, विकलांग और आरक्षित वर्ग विशेष रूप से यह अपेक्षा करते हैं की समाज के सम्पन्न वर्ग उनकी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होगें।[7]

इंदिरा आवास योजना

इंदिरा आवास योजना की उत्पति 1980 में शुरू हुए ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों से हुई है। 1980 के राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और 1983 में शुरू हुए ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम के अंतर्गत आवासों का निर्माण एक मुख्य गतिविधि था। हालाँकि, राज्यों में ग्रामीण आवास के लिए कोई समरूप नीति नहीं थी। कुछ राज्यों ने राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम/ ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम की निधियों में से निर्माण लागत का एक हिस्सा देना ही मंजूर किया और शेष राशि की पूर्ति लाभार्थियों द्वारा अपनी बचत अथवा स्वयं हासिल किए गए ऋणों की गयी। इसके विपरीत अन्य राज्यों ने सम्पूर्ण खर्च को एन.आर.ई.पी./ आर.एल.ई.जी.पी. की निधियों में से पूरा करना मंजूर किया। कुछ राज्यों ने मात्र ने आवासों के मरम्मत की मंजूरी दी।[8]

जून 1985 में केन्द्रीय वित्त मंत्री की घोषणा के अनुसार ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम की निधियों का एक हिस्सा अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों तथा मुक्त बंधुवा मजदूरों के मकानों के निर्माण हेतु अलग रखा गया। पहले जवाहर रोजगार योजना की कुल धनराशी का 6% इंदिरा आवास योजना के कार्यान्वयन के लिए आबंटित किया जाता था। वर्ष 1993-94 से इंदिरा आवास योजना के अन्दर गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली गैर अनुसूचितजातियों/जनजातियों के लोगों को भी शामिल कर लिया गया तथा इसके लिए उपलब्ध संसाधनों को 6% से बढ़ाकर 10% का दिया गया। परंतु इसमें एक शर्त यह जोड़ी गयी कि गैर खअनुसूचित जातियों/जनजातियों के गरीबों को दिया जाने वाला लाभ, जवाहर रोजगार योजना के कूल आबंटन का 4% से अधिक न हो। इंदिरा आवास योजना को 1 जनवरी 1996 से अलग कर एक स्वतंत्र योजना बना दिया गया।[9]

निर्माण सहायता के लिए अधिकतम सीमा

इस समय इंदिरा आवास योजना के अंतर्गत निर्माण सहायता की सीमा निम्नानुसार हैं:-

मैदानी क्षेत्र	पहाड़ी/दुर्गम क्षेत्र	
स्वच्छ शौचालय और धुवाँ रहित चूल्हा सहित मकान का निर्माण	17,500/-रू	19,500/-रू.
ढाँचा और सामान्य सुविधाएँ प्रदान करने की लागत	2,500/-रू.	2.500/-रू.
कुल	20.000/-रू.	22.000/-रू.

स्त्रोत[10]: Ministry of Rural Development, Manual of IAY, February, 2013.

वित्त-पोषण पद्धति

आवास निर्माण क्षेत्र में धन के प्रावधान को बढाने के लिए 21 आवास वित्त संस्थाएं, राष्ट्रीय आवास बोर्ड/भारतीय रिजर्व बैंक के निरीक्षण में काम कर रही हैं। इन संस्थाओं ने आवास निर्माण के लिए पर्याप्त मात्रा में धन दिया है। राष्ट्रीय आवास बोर्ड उन्हें ब्याज की सस्ती दरों से पुनर्वित सुविधा प्रदान करता है। हुडको सहित कुछ आवास वित्त संस्थाएँ अपना आधार बढ़ानें के लिए सार्वजनिक जमा योजनाएँ चलती हैं।

इंदिरा आवास योजना केंद्र सर्कार द्वारा प्रायोजित और पोषित है, इसके वित्तपोषण लागत में केंद्र और राज्य सरकारों की हिस्सेदारी 80.20 के अनुपात में होती है। संघ राज्य क्षेत्रों के मामले में इस योजना के तहत सारे संसाधन भारत सरकार द्वारा उपलब्ध कराये जाते हैं।

राजस्थान में इंदिरा आवास योजना की स्थिति

राजस्थान राज्य सरकार द्वारा प्रदेश के गरीब नागरिकों के लिए 'राजस्थान इंदिरा आवास योजना' का संचालन किया जा रहा है।। 'राजस्थान इंदिरा आवास योजना' ग्रामीण विकास मंत्रालय के अंतर्गत कार्यरत है। इस योजना के अंतर्गत प्रदेश के अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, मुक्त बंधुआ मजदूरों आदि नागरिकों को घर निर्माण करने में आर्थिक सहायता की जाती है। इसके साथ ही गैर अनुसूचित जाति, जनजाति के गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले गरीब ग्रामीण नागरिकों को भी अनुदान प्रदान किया जाता है।[11]

Number of Census Houses

	Rural	Urban	Total
Number of census houses	18,070,963	13,296,654	31,367,617
Number of vacant census houses	1,846,993	1,203,878	3,050,871
Number of occupied census house	16,223,970	12,092,776	28,316,746

स्त्रोत: https://www.rajras.in/rural-housing-schemes-rajasthan/

ग्रामीण विकास विभाग में उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार इंदिरा आवास योजना के अंतर्गत 2011-12 से 2015-16 तक मंजूर 4. 87 लाख आवास अब तक पूर्ण नहीं हो पाए है।

सीएम-बीपीएल आवास योजना के तहत 2011-12 से 2013-14 मंजूर किये गए 6.69 लाख घरों में से 41,099 आवास अभी भी पूरी तरह से तैयार नहीं हो पाए हैं। अब जबकि दोनों ही योजनायें बंद हो चुकी हैं, सीएम-बीपीएल आवास योजना के 13,231 गृह और IYY के 14,287 आवास विवादों में फंस गए हैं। जिन लोगों ने धन लेकर भी गृह निर्माण पूरा नहीं किया या धनराशि का उपयोग किन्हीं अन्य कामों में कर लिया है, उनके विरुद्ध मुकदमें समेत तमाम प्रशासनिक कार्यवाहियाँ किये जाने के विकल्प ढूंढे जा रहे है।

निष्कर्ष

इंदिरा आवास योजना का क्षेत्र जरुरत के अनुसार घटता-बढ़ता रहा है। प्रारंभ में इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रहे अनुसूचित जाति, जनजातियों तथा मुक्त बंधुआ मजदूरों को मुफ्त आवास उपलब्ध कराना था। कुछ समय पश्चात इस योजना में गैर अनुसूचित जातियों/जनजातियों के गरीबों तथा शहीद सैनिकों के परिवारों को भी शामिल किया गया।

2016 में इंदिरा आवास योजना का नाम बदलकर प्रधानमंत्री आवास योजना कर दिया गया। बीपीएल परिवारों को मिलने वाली आर्थिक मदद को भी 45,000 रुपये से बढ़ाकर 70,000 रुपये कर दिया गया। भारत में इंदिरा आवास योजना/प्रधानमंत्री आवास योजना एक केंद्र सरकार का कार्यक्रम है। जिसमे वित्तपोषण केंद्र और राज्यों द्वारा 75:25 के अनुपात में किया जाता है। उत्तर-पूर्व के राज्यों के लिए केंद्र-राज्य की वित्त सहायता का अनुपात 90:10 है। संघ शासित प्रदेशों के लिए 100% वित्त सहायता केंद्र सरकार वहन करती है।[12]

अब तक प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना के अंतर्गत देशभर में 1.26 करोड़ पक्के मकान बनाए जा चुके हैं। इस योजना के अंतर्गत निर्माण के क्षेत्र को 20 वर्ग मीटर से बढ़ाकर 25 वर्ग मीटर कर दिया गया है, जिसमें रसोई घर भी शामिल है।

वर्तमान में प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना के अंतर्गत मैदानी इलाकों में 1.20 लाख रुपए तथा पहाड़ी इलाकों में 1.30 लाख रुपए प्रदान किए जाने का प्रस्ताव है।

वर्ष 2022 तक सभी को पक्ष्का मकान मुहैया कराने की सरकारी घोषणा पर विचार करते हुए ग्रामीण विकास मंत्रालय ने इंदिरा आवास योजना (आईएवाई) को पुनर्गठित करने के लिए आवश्घ्यक कार्रवाई शुरू कर दी है।

भवन निर्माण गतिविधियाँ, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास से सीधे जुड़ी होती हैं। अर्थव्यवस्था में विकास से भवन निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है। ग्रामीण संदर्भ में भी यह कहा जा सकता है की देहातों में जीवनस्तर में सुधार का एक लक्षण मकानों के निर्माण में देखा जा सकता है।

सन्दर्भ

1. Parvathamma C. Housing, Rural Poor, and Their Living Conditions. Gyan Publishing House; 1987.
2. Gupta KR. Rural Development in India. New Delhi: Atlantic Publication, 2003: pp.177-178.
3. Parvathamma C. Housing, Rural Poor, and Their Living Conditions. Gyan Publishing House; 1987.
4. Gupta KR. Rural Development in India. New Delhi: Atlantic Publication, 2003: pp.177-178.
5. Basic Rural Infrastructure and Services for Improved Quality of Life. Hyderabad: NIRD
6. Publication, p.631
7. Verma B. Rural Development Reforms. New Delhi: Deep Publication, 2006: p. 91- 93.
8. Choudhury R.C. Basic Rural Infrastructure and Services for Improved Quality of Life. Hyderabad: NIRD Publication, 1999; p.632.
9. Ministry of Rural Development, Manual of IAY, February, 2013.
10. https://www.rajras.in/rural-housing-schemes-rajasthan/
11. Prabhu Dayal Choudhary, Rural Housing and Infrastructural Problems in India · 2010. Prateeksha Publications.
12. Political Economy Journal of India, 2010; 19(2), p. 89

मुस्लिम महिलाओं में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता: नालंदा जिले के सन्दर्भ में

रफत परवीन

शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, पाटलीपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

सारांश

देश के समग्र, संतुलित व तीव्र विकास में महिलाओं के स्वास्थ्य की अहम भूमिका है। भारत में कुल मुस्लिम जनसंख्या 17.2 करोड़ है, जो कि देश की कुल जनसंख्या का 14.23 प्रतिशत है। इनमें से लगभग आधी जनसंख्या, महिलाओं की है। लेकिन यह देश का सबसे बड़ा अल्पसंख्यक समुदाय होते हुए भी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक व राजनैतिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। और वे न सिर्फ निर्धन हैं, बल्कि मानवीय दशाओं को समझने में भी असमर्थ है।

विभिन्न अध्ययनों से यह पता चलता है कि, भारत में 50 से 90 प्रतिशत गर्भवती महिलाएँ खून की कमी से पीड़ित रहती हैं। जिनमें से 20 प्रतिशत माताओं की मृत्यु जन्म के समय खून की गम्भीर कमी से हो जाती है। बहुत अधिक रक्तअल्पता की स्थिति में जन्म देने की प्रक्रिया में अति रक्तस्त्राव से मौत भी हो सकती है।

इसीलिए देश का विकास होने के लिए मुस्लिम समुदाय का विकास होना भी बहुत आवश्यक है। यह विकास मुस्लिम महिलाओं के विकास से ही सम्भव है, क्योंकि भावी पीढ़ी का सामाजिक-आर्थिक विकास इन्हीं से सम्भव है। लेकिन सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण अध्ययन करने के पश्चात मुस्लिम समुदाय तथा मुस्लिम महिला के शिक्षा का स्तर निम्न पाया गया (सेन्सस 2011 में 7 वर्ष ऊपर महिला का प्रतिशत 62.04 प्रतिशत तथा हिन्दू महिला 64.34 प्रतिशत तथा 20 वर्ष से ऊपर मुस्लिम महिला 3.91 प्रतिशत तथा हिन्दू महिला में 7.60 प्रतिशत), मुस्लिम महिला का स्वास्थ्य का स्तर निम्न पाया गया (सच्चर समिति प्रतिवेदन 2006) तथा मुस्लिम समुदाय की आबादी की राष्ट्र के श्रमिक वर्ग में भागीदारी 33 प्रतिशत से कम है, जो अखिल भारतीय औसत 40 प्रतिशत से कम है। इस प्रकार मुस्लिम महिलाओं की औपचारिक कार्य भागीदारी दर अन्य धार्मिक समुदायों से कम है।

भारत के सेन्सस 2011 (14.08 प्रतिशत) में मुस्लिम शिक्षा में लिंग असमानता को प्रभावित करने वाले कारकों को देखा गया (गुप्ता, रूज 2018) तथा मुस्लिम महिलाओं में डिजिटल साक्षरता भी कम देखी गई। (रजाक एवं पिसाल 2016)। वर्तमान समय में मुस्लिम महिलाओं का सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक स्तर तुलनात्मक रूप से कम है। (सच्चर समिति प्रतिवेदन 2006, रंगनाथ मिश्रा कमीशन 2007, मानव विकास रिपोर्ट 2011)

मुस्लिम महिला के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक स्तर उच्च होने में परिवार, समाज और सरकार का सहयोग अत्यंत आवश्यक है।

मूल शब्द : मुस्लिम महिला, स्वास्थ्य, जागरूकता, पोषण, शैक्षणिक स्तर, भारत, बिहार, नालंदा

परिचय

महिलाएं परिवार की आधार स्तम्भ हैं। इसके बावजूद उनके परिवार के प्रति उनकी भक्ति और समर्पण को परिवार और समाज में पर्याप्त सम्मान नहीं दिया जाता है।

एक स्वस्थ माँ ही स्वस्थ संतान और समाज को जन्म दे सकती है। महिलाओं को स्वस्थ रखने में पोषण और स्वास्थ्य सुविधाओं अनिवार्य भूमिका है। केसरवानी (2011) ने महिलाओं के स्वास्थ्य पर ध्यान केंद्रित किया महिला सशक्तिकरण के माध्यम से सुधार किया जा सकता है।

महिलाओं में पोषण की स्थिति

भारत में 15-49 आयु वर्ग की 23 प्रतिशत महिलाएं पतली हैं, 21 प्रतिशत मोटापे से ग्रस्त या अधिक वजन और ५६ प्रतिशत का बॉडी मास इंडेक्स (बीएमआई) एक सामान्य सीमा पर है। उम्र 15-49 की की महिलाओं में उम्र के अनुपात में पतली महिलाओं की संख्या कम होती जाती है। 2005-06 में जहाँ पतली महिलाओं की संख्या 36 प्रतिशत थी वहीँ 2015-16 में उनकी संख्या 23 प्रतिशत पर आ गयी। हिंदू महिलाओं के मामले में पतली महिलाओं के अनुपात में 12.8 प्रतिशत अंक की गिरावट आई है, जबकि मुस्लिम महिलाओं में 13.6 प्रतिशत की गिरावट आई। झारखंड और बिहार जैसे राज्यों में 15-49 आयु की 30 प्रतिशत से अधिक महिलाओं का बीएमआई सामान्य से कम था। केरल एकमात्र ऐसा राज्य था जहां 2015-16 में केवल 10 प्रतिशत से कम महिलायें पतली कही जा सकती थीं। एक दशक पहले सभी राज्यों में पतली महिलाओं की संख्या काफी ज्यादा थी, चाहे वो किसी भी धर्म की हों।

महिला स्वास्थ्य का जरूरी हिस्सा प्रजनन समस्यायें

भारतीय महिलाओं की स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्यादातर समस्यायें उच्च स्तर के प्रजनन से जुडी या उससे ज्यादा गंभीर हुयी जटिलताओं की हैं। समग्र रूप से देखें तो भारत में प्रजनन दर घट रही है। जैसा कि आकलन किया गया है कि, वर्ष 2005-06 तक कुल प्रजनन दर घट कर 27 रह गई है। फिर भी प्रजनन स्तर में राज्य, शिक्षा, धर्म, जाति और आवास स्थान के अनुसार बहुत अधिक अंतर पाया जाता है।

भारत के अधिकतम जनसंख्या वाले प्रान्तों अर्थात् उत्तर प्रदेश और बिहार में कुल प्रजनन दर प्रति महिला 4 बच्चों से अधिक है। इसके विपरीत केरल जैसे प्रान्त में, जहाँ महिला शिक्षा और स्वायत्तता की स्थिति उच्च स्तर की है, कुल प्रजनन दर दो से कम है।

जहाँ शहरी इलाकों की महिलाओं की प्रसव उपरान्त देखभाल अपेक्षाकृत बेहतर ढंग से होती है, वहीं ग्रामीण महिलाओं को यह लाभ नहीं मिलता है। अगर धार्मिक दृष्टि से देखें तो मुस्लिम महिलाओं की देखभाल प्रसव के बाद आमतौर पर अच्छी तरह नहीं हो पाती।

मुस्लिम महिलाएं, खेल और स्वास्थ्य

किसी भी देश की समृद्धि के लिए लोकशक्ति व समानता का विशेष महत्व होता है। इसमें स्त्री एवं पुरुष दोनों का ही समावेश हैं, क्योंकि ये दोनों समाज के अपरिहार्य अंग हैं। यदि किसी भी देश को विकसित करना है तो सबसे पहले महिलाओं का विकास करना होगा, क्योंकि महिला ही समाज की जननी होती है। भारतीय संविधान में बिना लैंगिक भेदभाव (gender discrimination) के सभी नागरिकों के लिए समान अधिकारों की व्यवस्था की गयी है। आधुनिक युग में, दुनिया भर में महिलाएँ राजनीति, प्रशासन, विज्ञान एवं प्रौद्योगिक, खेल सहित तमाम क्षेत्रों में पुरुषों के साथ कदम मिलाकर चल रही हैं।

अगर खेल की बात हो तो इसकी प्रकृति सार्वभौमिक है। यह जाति, धर्म, रंग, लिंग आदि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करता। इस्लाम अच्छे स्वास्थ्य एवं क्रियाशीलता को प्रोत्साहित करता है तथा स्त्री व पुरुष दोनों को ही स्वस्थ जीवन जीने के लिए शारीरिक क्रियाकलापों व व्यायाम अपनाने को बढ़ावा देता है। हालांकि धर्म के कुछ पहलू हैं जो यह निर्धारित करते हैं कि खेलों को कैसे खेला जाए। उदाहरण के लिए इस्लाम का पालन करते हुए स्त्री व पुरुष के एक साथ खेलने पर रोक है तथा उन्हें अपने माहौल और पहनावे का भी ध्यान रखना होता है।

सामाजिक व सांस्कृतिक प्रतिबन्धों के कारण खेलों में सक्रिय भागीदारी प्राप्त करने में, मुस्लिम महिलाओं को बहुत सी बाधाओं का सामना करना पड़ता है। वैसे ये कठिनाईयां न केवल मुस्लिम महिलाओं, बल्कि अन्य सम्प्रदायों व वर्गों की महिलाओं के सामने भी आती हैं। मुस्लिम महिलाओं के सम्बन्ध में स्थिति अधिक गम्भीर है।

मुस्लिम महिलाओं के लिए खेल के लिए मर्यादित वेशभूषा, सुरक्षा की भावना तथा आर्थिक सहयोग कुछ ऐसे कदम हैं जो उनके खेलों में प्रतिभाग को सकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकते हैं। सानिया मिर्जा, लैला अली, हसीबा बुलमर्का, रानिया-अल-वानी आदि अनेक मुस्लिम महिला खिलाड़ी हैं जो अन्य मुस्लिम महिलाओं के लिए प्रेरणा का स्रोत हैं।

यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य जागरूकता दिवस

भारत में समय-समय पर विभिन्न स्थानों पर यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य (एसआरएच) के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। एसआरएच में लैंगिकता (यौनिकता) से संबंधित रोग, प्रक्रिया की कमजोरी के साथ शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक और सामाजिक तन्तुरुस्ती भी शामिल हैं।

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के मुताबिक मुसलमानों की नई पीढ़ी परिवार नियोजन के दिशा में काम कर रही हैं हालांकि उनके आंकड़े अब भी हिन्दुओं से ज्यादा है।

बीमार महिलाओं के प्रति परिवार एवं समाज का रवैया

कई अध्ययनों में बीमार मुस्लिम महिलाओं के प्रति समाज के रवैये के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि 50 प्रतिशत महिलाओं के प्रति उनके परिवार का रवैया सहानुभूतिपूर्वक तथा 50 प्रतिशत परिवारों का रवैया उनके प्रति उपेक्षापूर्ण पाया गया। 20 प्रतिशत महिलाओं के पड़ोसी उनके प्रति सहानुभूति रखते थे, जबकि 80 प्रतिशत महिलाओं के पड़ौसी उनकी उपेक्षा करते थे। 30 प्रतिशत महिलाओं के रिश्तेदारों का रवैया उनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण था जबकि 70 प्रतिशत इकाईयों के रिश्तेदार उनके प्रति उपेक्षापूर्ण था। तथा 20 प्रतिशत महिलाओं के मुहल्लेवालों का रवैया उनके प्रति सहानुभूतिपूर्वक रखते थे जबकि 80 प्रतिशत महिलाओं के मुहल्लेवालों का रवैया उनके प्रति उपेक्षापूर्ण था।

नालंदा जिले में स्वास्थ्य जागरूकता

अधिकारिक जनगणना 2011 के अनुसार, नालंदा एक हिंदू बहुसंख्यक जिला है। जिले में हिंदुओं की जनसंख्या 92.78% है, जबकि मुस्लिमों की आबादी 6.88% है। अन्य धर्मो की बात करें तो जिले में ईसाई 0.07%, जैन 0.02%, सिख 0.01% और बौद्ध 0.01% हैं।

पूरे बिहार में पोषण अभियान चलता है। ऐसे में समाज कल्याण विभाग की यह रिपोर्ट चौंकाने वाली है कि प्रदेश में आधे से अधिक बच्चे कुपोषण के शिकार हैं, वहीं खून की कमी (एनीमिया) से जूझ रहीं करीब 80 फीसद माताएं नहीं जानती हैं कि 'कुपोषण' क्या बला है।

कुपोषण से अपरिचित महिलाओं को बहुत सी स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं और बीमारियों जूझना पड़ रहा है। इन महिलाओं में कमजोरी, तनाव, चिड़चिड़ापन, बेहोशी और अनिद्रा जैसी शिकायतें आम हैं।

प्रदेश की 49.13 फीसद महिलाओं में रक्ताल्पता (एनीमिया) की गंभीर समस्या है। सबसे खराब स्थिति अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति और मुस्लिम वर्ग की महिलाओं की है। इन वर्गों कीं करीब 90 फीसद माताएं कुपोषण की शिकार हैं।

हर साल चलने वाले पोषण जागरूकता कार्यक्रमों का लाभ भी जरुरत मंदों को नहीं मिल रहा है। महिलाओं में स्वास्थ्य जागरूकता के मामले में पटना और नालंदा जिले की स्थिति बाकी जिलों से कुछ बेहतर है, जहां क्रमशः 86 फीसद एवं 84 फीसद महिलाएं कुपोषण के प्रति जागरुक हैं।

निष्कर्ष

किसी भी महिला को अपने दैनिक कार्य करने, बीमारियों की रोकथाम तथा सुरक्षित व स्वस्थ जीवन के लिए अच्छे भोजन की आवश्यकता होती है। फिर भी, पूरी दुनिया में, किसी अन्य स्वास्थ्य समस्या की तुलना में महिलाओं को कुपोषण का सबसे अधिक सामना करना पड़ता है। इसके कारण थकावट, कमजोरी, अशक्तता और बुरा स्वास्थ्य हो सकता है।

भुखमरी और अच्छा भोजन न खा पाने के अनके कारण हैं। इनमें सबसे प्रमुख है गरीबी और जानकारी का अभाव। दुनिया भर के देशों में वहां की धन-दौलत तथा संसाधन पर कुछ गिने-चुने लोगों का कब्जा है। वे भोजन देने वाली फसलों की बजाय गन्ना व तम्बाकू जैसी ज्यादा आमदनी देने वाली नकदी फसलें उगाते हैं। गरीब लोग कर्ज लेकर जमीन के छोटे से टुकड़े पर खेती करते हैं जबकि उसकी फसल का एक बड़ा भाग दूसरे लोग हड़प जाते हैं।

गरीबी का सबसे अधिक बुरा प्रभाव महिलाओं के स्वास्थ्य पर पड़ता है। घर में खाने के लिए जितनी भी कमी आये, महिलाओं को सबसे आखिर में और सबसे कम भोजन मिलता है। इसलिए भुखमरी तथा कुपोषण की समस्या का तब तक कोई समाधान नहीं निकल सकता, जब तक जमीन व अन्य संसाधनों का न्यायपूर्वक वितरण नहीं होता है और महिलाओं को पुरुषों के बराबरी नहीं माना जाता है।

इन सबके बावजूद, अनके ऐसी बातें हैं जिनका पालन करके लोग, कम पैसे में भी, बेहतर भोजन प्राप्त कर सकते हैं। यथासंभव पौष्टिक भोजन खाकर वे अपनी सामर्थ में वृद्धि कर सकते हैं। और जब लोगों को पेट भरा होगा तो वे अपने परिवार व समुदाय की आवश्यकताओं पर ध्यान लगा सकते हैं और उनमें परिवर्तन लाने के लिए कार्यरत हो सकते हैं।

स्वास्थ्य सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण अध्ययन करने के पश्चात मुस्लिम समुदाय तथा मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा का स्तर निम्न पाया गया (सेन्सस 2011 में 7 वर्ष ऊपर महिला का प्रतिशत 62..04 प्रतिशत तथा हिन्दू महिला 64.34 प्रतिशत तथा 20 वर्ष से ऊपर मुस्लिम महिला 3.91 प्रतिशत तथा हिन्दू महिला में 7.60 प्रतिशत), मुस्लिम महिला का स्वास्थ्य का स्तर निम्न पाया गया (सच्चर समिति प्रतिवेदन 2006) तथा मुस्लिम समुदाय की आबादी 33 प्रतिशत से कम कार्य भागीदारी दर है जो अखिल भारतीय औसत 40 प्रतिशत से कम है इस प्रकार मुस्लिम महिलाओं की औपचारिक कार्य भागीदारी दर अन्य धार्मिक समुदायों से कम है।

भारत में मुस्लिम शिक्षा में लिंग असमानता को प्रभावित करने वाले कारकों को देखा गया (गुप्ता, रूज 2018) तथा मुस्लिम महिलाओं में डिजिटल साक्षरता भी कम देखी गई। (रजाक एवं पिसाल 2016)। वर्तमान समय में मुस्लिम महिलाओं का सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक स्तर तुलनात्मक रूप से कम है।

इसीलिए देश का विकास होने के लिए मुस्लिम समुदाय का विकास होना भी बहुत आवश्यक है। इसका विकास मुस्लिम महिलाओं के विकास से ही सम्भव है, क्योंकि भावी पीढ़ी का सामाजिक-आर्थिक विकास इन्हीं से सम्भव है।

सन्दर्भ

- डब्लू.एच.ओ. (1975), प्रोमोटिंग हेल्थ इन हयूमन इन्वायरमेंट, जिनेवा। 3. डब्ल्यू.एच.ओ. (1984),
- हैल्थ फार ऑल, सीरीज नं0 9
- सच्चर (2006), ''सोशल इकोनॉमिक स्टेट्स आफ एजुकेशनल मुस्लिम कम्युनिटी इन इंडिया'', राजेन्द्र सच्चर कमेटी
- रिपोर्ट, प्राइमिनिस्टर्स हाई लेवल कमेटी, कैबिनेट सेक्रेट्रिएट, नवम्बर 2006, नई दिल्ली।
- शौरिफ (2014) उदृधत, बीबी हसीना, ए0ए0 (2012), हैल्थ स्टेटस ऑफ मुस्लिम वुमैन इन कैरेला, अनपब्लिशेड थीसिस
- Hasan, Z. & Menon, R. (2004). Unequal Citizens- A study of Muslim Women in India. Oxford University Press
- Weigl, C. (2010). Reproductive Health Behavior and Decision-making of Muslim Women: An Ethnographic Study in a Low-income Community in Urban North India. LIT VerlagMünster.

राष्ट्रीय शिक्षा नीतियाँ एवं समाजशास्त्रीय मूल्यांकन

डॉ० दिलीप कुमार सोनी

सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र), शा. कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सीधी (म.प्र)

सारांश

नई शिक्षा नीति की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें कक्षा के उवाऊ महौल से निकालते हुये एक ऐसा प्लेटफॉर्म देने की कोशिश की गई है जिससे विद्यार्थी नई तकनीकि से अध्ययन के साथ फील्ड वर्क जैसी विधाओं से जुड़ पाएगा। जिसका परिणाम यह होगा कि वह केवल किताबी कीड़ा न होकर व्यवहारिक ज्ञान भी प्राप्त कर पाएगा जिससे वह न केवल डिग्री धारक होगा अपितु रोजगारोन्मुखी प्रशिक्षण प्राप्त व्यवहारिक व्यक्तित्व होगा जिससे उसे समाज में सफल होने की संभावनाएं ज्यादा होंगी।

सभी मनुष्य योग्यता एवं दक्षता में समान नहीं है और ऐसे समाज की कल्पना करना भी अविवेकपूर्ण और आदर्शहीन होगा जो अपने सभी सदस्यों को एक समान स्थिति और लाभ प्रदान कर सके, फिर भी उनके उद्देश्यों और आकांक्षाओं की प्राप्ति के लिए सभी लोगों को समान अवसर प्रदान करना आवश्यक है, जिसे आन्दे वेतेई ने ''अस्तित्व की दशाओं'' में असमानता कहा है (आन्दे 1977:3)।

सामाजिक स्थिति सुधारने के लिए अवसर की समानता नवीन विचार है जो कि व्यक्ति के जीवन में प्रदत्त स्थिति के महत्व को अस्वीकार करने के बाद अर्जित स्थिति के महत्व को मान्यता देकर स्वीकार किया गया है। सामाजिक गतिशीलता तभी संभव हो पाई है जब से व्यक्ति की स्थिति आनुवांशिक बन्धनों से मुक्त हुई है (गोरे 1990:29) उनका कहना है कि प्रौद्योगिकी विशेषता अर्जित करना उच्च प्रशासनिक पद ग्रहण करना और नये धंधे सीखना धन की सफलता और समाज में सम्मान प्राप्त करने के लिए कुछ कार्य क्षेत्र है। योग्यता और श्रेष्ठता प्राप्त करना केवल शिक्षा से ही संभव है, यद्यपि शिक्षा सभी लोगों को उच्च स्थिति और उच्च पद पर पहुंचने की गारण्टी नहीं देती फिर भी शिक्षा के बिना सामाजिक गतिशीलता प्राप्त करना संभव नहीं होता (गोरे 1990:30)।

मुख्य शब्द:- शिक्षा नीति, साक्षरता, आधारभूत संसाधन

स्वतंत्रता के उपरान्त भारत ने एक ऐसी शिक्षा प्रणाली को प्राप्त किये जो व्यापक पैमाने पर तथा अन्तर क्षेत्रीय तुलनाओं से मुक्त थी। इस शिक्षा प्रणाली के द्वारा कुछ ही लोगों को शिक्षित किया जा रहा था जिसके कारण शिक्षित और अशिक्षित का अन्तर लगातार बढ़ रहा था। सन् 1947 में देश की साक्षरता दर मात्र 14 प्रतिशत की थी तथा महिला साक्षरता 9 प्रतिशत थी इसलिए ऐसा माना गया कि बिना साक्षरता को बढ़ाये एक मजबूत राष्ट्र की कल्पना नहीं की जा सकती।

कोई भी ऐसा व्यक्ति जो किसी न किसी भाषा को पढ़ एवं लिख सकता हो, साक्षर होता है। युनेस्को (UNESCO) ने ऐसे किसी भी व्यक्ति को साक्षर के रूप में परिभाषित किया है - ''जो अपने दैनिक जीवन को समझने के साथ-साथ किसी छोटे साधारण अभिकथन को पढ़ एवं लिख सकता हो।'' युनेस्को का अनुसरण करते हुये सन् 1991 को भारतीय जनगणना के द्वारा भी साक्षर व्यक्ति को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है जो न केवल पढ़ एवं लिख सकता हो बल्कि ''समझने के साथ-साथ'' किसी व्यक्ति को साथ जाने वाले के लिए उसके पास विद्यालय मे प्राप्त की गई औपचारिक शिक्षा का होना अनिवार्य नहीं है। (आहूजा 2020:242)

सन् 1968 में अपनाई गई राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर पारित किये गये एक प्रस्ताव के अंतर्गत शिक्षा के आमूल-चूल उन निर्धारण को प्रस्तावित किया गया था फिर सन् 1986 में संसद ने शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति (NPE) को स्वीकृति प्रदान कर दी। इसके द्वारा एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का निर्धारित किये जाने का प्रयास किया गया (आहूजा 2020:245)।

राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की अवधारणा का अर्थ यह है कि एक नियत स्तर तक सभी छात्रों चाहे वह किसी भी जाति, लिंग अथवा स्थान से सम्बन्ध रखते हों, के पास एक तुलनात्मक गुणवत्तायुक्त शिक्षा तक पहुंच उपलब्ध होनी चाहिए। निरक्षरता के उन्मुलन के सम्बन्ध में सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्रस्ताव करती है कि 15-35 वर्ष आयु समूह के अंतर्गत वयस्क एवं सतत् शिक्षा के एक व्यापक कार्यक्रम को विभिन्न माध्यमों को लागू किया जाएगा। सन् 1992 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 को संशोधित किया गया तथा एक कार्यवाही योजना का सूत्रपात किया गया, जिसके द्वारा व्यवस्था की गई कि सन् 1995 तक लगभग 10 करोड़ लोगों को राष्ट्रीय वयस्क शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत शामिल किया जायेगा। 2005 में भारतीय संसद द्वारा शिक्षा का अधिकार (RTE) पारित किया गया जो जन मानस के लिए मील का पत्थर साबित हुआ।

सन् 2020 में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का पदार्पण हुआ जिसके अंतर्गत पुर्व की शिक्षा नीति जो ''क्या पढ़ना है'' (WHAT To READ) की जगह ''कैसे पढ़ना है'' (HOW To READ) पर आधारित है। म0प्र0 भारत का पहला राज्य बना जहाँ उच्च शिक्षा विभाग ने नई शिक्षा नीति 2020 को लागू कर दिया। इस नई शिक्षा नीति की विशेषताएं है:-

1. स्नातक स्तर पर चार वर्षीय पाठ्यक्रम, 2. च्वाइस बेस्ट क्रेडित सिस्टम, 3. विद्यार्थी केन्द्रित अकादमिक लचीलापन, 4. बहुविकल्प दृष्टिकोण, 5. बहु प्रविष्टि एवं बहु निकास की उपलब्धता, 6. रोजगार परक व्यवसायिक पाठ्यक्रम, 7. व्यवहारिक ज्ञान को बढ़ावा देने हेतु प्रथम वर्ष से ही इर्न्टनशिप का प्रावधान, 8. माननीय शन परंपरा का पाठ्यक्रम में समावेश, 9. शोध प्रविधि एवं स्नातक शेध प्रबंध, 10. क्रेडिट हस्तान्तरण की सुविधा, 11. प्रत्येक विद्यार्थी को आनर्स पाठ्यक्रम करने का अवसर, 12. कला विद्वान शारीरिक शिक्षा और अन्य पाठ्येतर गतिविधियों को बढ़ावा देना, 13. जीवन कौशल विकसित करना, 14. व्यवहारिक शिक्षा।

नई शिक्षा नीति की चुनौतियाँ:-

1. इस नीति हेतु सबसे बड़ी चुनौती तो यह है कि इसमें संभाग या उत्कृष्ठ संस्थाओं के मॉडल को स्वीकार किया गया है जो कि वास्तविक धरातल पर उपलब्ध नहीं है।
2. इस नीति हेतु न तो महाविद्यालय में आवश्यक संसाधन उपलब्ध है और जब शिक्षक ही नीति के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी से अवगत नहीं हो पा रहे तो हम समाज से क्या अपेक्षा करेंगे।
3. नई शिक्षा नीति 2020 के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण चुनौतियों को देखते हुये शासन कैसे महाविद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं को उपलब्ध करायेंगे साथ ही अन्य संस्थाओं से समन्वय स्थापित कर इसके उद्देश्यों को पूरा करवाना अत्यन्त मुश्किल कार्य होगा।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का प्रथम भाग स्कूल शिक्षा के लिए है जबकि दूसरा भाग उच्चतर शिक्षा हेतु निर्धारित किया गया है। जिसमें 11 बिन्दुओं का सम्मिलन किया गया है:-

1. संस्थागत पुनर्गठन एवं समेकन, 2. प्रेरित सक्रिय एवं सक्षम संकाय, 3. गुणवत्तापूर्ण विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय भारतीय उच्चतर शिक्षा व्यवस्था हेतु एक नया तथा भविष्यीमुखी दृष्टिकोण, 4. सीखने के लिए अनुश्तम वातावरण एवं छायों का सहयोग, 5. उच्चतर शिक्षा में समाता समावेशन, 6. प्रेरित सक्रिय एवं सक्षम संकाय, 7. समग्र एवं बहुसंख्या शिक्षा की ओर, 8. व्यवसायिक शिक्षा का नवीन आकल्पन, 9. उच्चतर शिक्षा की नियामक प्रणाली में आम्रल धूत परिवर्तन, 10. उच्चतर शिक्षा संस्थानों के लिए प्रभावी शासन और नेतृत्व, 11. नीवन राष्ट्रीय अनुसंधान फाउन्डेशन के मउश्यम से सभी क्षेत्रों में गुणवत्तायुक्त अवदनिक अनुसांधान को उत्प्रेरित करना।

सूमा चिटनिस (1972) में भी वम्बई नगर में उच्च शिखा कॉलेज छात्रों के प्रवेश में असमानताओं तथा उनके द्वारा मांगी गई समत्याओं की जांच की थी।

विधितंत्र:- प्रस्तुत अध्ययन में उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि का उपयोग करते हुये 20 शिक्षक उत्तरदाताओं का चयन किया गया है जिनसे साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से सूचनाएं प्राप्त करने का प्रयास किया गया जिससे न केवल सूचनाएं प्राप्त होती है बल्कि पूरक प्रश्नों के द्वारा विभिनन जानकारियां प्राप्त होती हैं।

तालिका क्र0 01

नई शिक्षा नीति 2020 की जानकारी होने संबंधी

क्र0	विवरण	संख्या	प्रतिशत
01	हाँ	06	30.00
02	नहीं	10	50.00
03	मालूम नहीं	04	20.00
	योग	20	100.00

उपयुक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि जब उत्तरदाताओं से नई शिक्षा नीति 2020 की जानकारी ली गई तो सर्वाधिक 50 प्रतिशत ने नहीं में जवाब दिया जो स्पष्ट करता है कि इस सम्बन्ध में अभी व्यापक प्रचार नहीं हुआ है जबकि 30 प्रतिशत ऐसे उत्तरदाताओं का था जो हां में जवाब देते हुयक कहते हैं कि वे महाविद्यालयीन शिक्षक हैं और उन्हें ट्रेनिंग दी गई है यद्यपि अभी भी बहुत सी बातों पर असमंजश बना हुआ है। 20 प्रतिशत ऐसे उत्तरदाताओं का रहा जो पूरी तरह से इस बातों में अनभिज्ञ दिखें।

नई शिक्षा नीति 2020 की जानकारी होने संबंधी

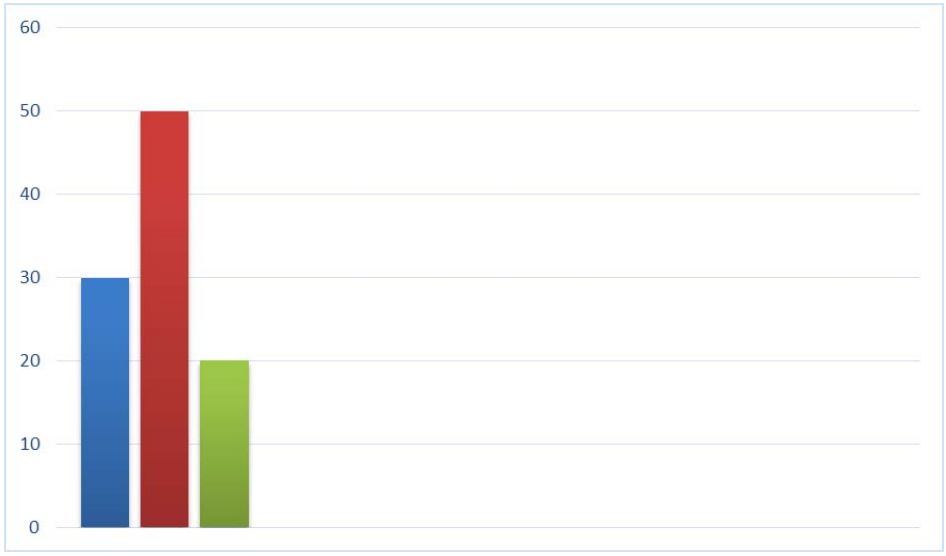

तालिका क्र0 02

नई शिक्षा नीति 2020 की भविष्य की संभावनाएँ संबंधी

क्र0	विवरण	संख्या	प्रतिशत
01	सकारात्मक	11	55.00
02	नकारात्मक	06	30.00
03	मालूम नहीं	03	15.00
	योग	20	100.00

उपयुक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि जब उत्तरदाताओं से नई शिक्षा नीति 2020 के भविष्य में परिणाम पर बात की गई तो कुल 20 उत्तरदाताओं ने 55 प्रतिशत ने सकारात्मक जवाब देते हुए बताया कि चूंकि यह नीति रोजगारोंन्मुखी, कौशल समर्थन जैसे विषयों को समाहित करती है इसलिए इसकी सफलता की संभावनाएं अधिक हैं यद्यपि इनमें से बहुत से ऐसे उत्तरदाता थे जो नीति के सम्बन्ध में बहुत सतही जानकारी रखते थे। जबकि 30 प्रतिशत ने इस शिक्षा नीति को नकार दिया और कहा कि यह व्यवहारिक नहीं है क्योंकि इसे लागू करने के लिए पर्याप्त संसाधन उपलब्ध नहीं है। 15 प्रतिशत ऐसे उत्तरदाताओं की भी रहा जो कुछ बोलने से इंकार कर दिया।

निष्कर्ष:-

1. नई शिक्षा नीति 2020 समयानुकूल है जब बेरोजगारी अपनी चरम पर है तो परम्परागत शिक्षा की बजाय व्यावसायिक पाठ्यक्रम आवश्यक था जो न केवल विद्यार्थियों को शिक्षित करने के साथ-साथ समाज एवं संस्कृति को एक साथ में संजोने का प्रयास विभिन्न शिक्षा नीतियों में किया गया है।
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति में बहुत अच्छे प्रयोग होने पर भी परिणाम की उम्मीद में संशय समझ में आता है क्योंकि इसे सामान्य समझ से परे रखा गया है।

सुझाव:-

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों में सैद्धान्तिक की जगह व्यवहारिक पहलू पर भी सोचने की जरूरत है जब वह सामान्य समझ तक पहुंच जाए एवं लोग उसकी उपयोगिता को समझने लगे।
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लागू करने के पहले अपने संसाधन एवं पूर्व तैयारी को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है जिससे सार्थक परिणाम प्राप्त किये जा सकें।

संदर्भ ग्रन्थः-

1. आहूजा राम (2020) - सामाजिक समस्वाएं, राबत पब्लिकेशन जयपुर
2. आहूजा राम (2020) - सामाजिक सवैक्षण एवं अनुसंधान, रावत पब्लिकेशन्स जयपुर
3. Beteille, Andre (1974) - Easte & Social stratification Among the muslims, Delhi, Mawhai Both service.
4. Beteille, Andre (1977) - Inequality, Among men, Delhi, Oxfood, Wivers Press.
5. Chitmis Suma (1972) - Education for Equeality : Te ease of schedeleo easte in higher education ecconomic and Political weerly, Bombay.
6. दुबे रमाशंकर - राष्ट्रीय शिक्षा नीति -2020: आधार नए भाज का पांचजन्य 08 सितम्बर 2020
7. Gore. m.s. (1970) - Immigrants & neiglihourhoods : Two Aspeats of a metropolitew city, tata institale of Social Sciences Bombay.
8. राबत हरिकृष्ण (2017) - सामाजिक शोध की विधयों, रावत पब्लिकेशन्स जयपुर
9. WWW.pmmodiyojna.in
10. WWW.in.KZAgram.com

उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का समायोजन के शैक्षिक आयाम पर प्रभाव का अध्ययन

डॉ० पार्वती यादव

सीमा कुमारी

सारांश –

प्रत्येक समाज के कुछ नियम तथा आदर्श होते है जिनका पालन करना समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिये आवश्यक माना जाता है। ये नियम तथा आदर्श ही नैतिक मूल्य कहलाते है। नैतिक मूल्य व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करता है। इनमें से एक महत्वपूर्ण पक्ष समायोजन है। प्रस्तुत शोध में उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों के समायोजन के शैक्षिक आयाम पर प्रभाव का अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत शोध में बिलासपुर जिले के उच्च माध्यमिक स्तर के 800 विद्यार्थियों को चयन किया गया है। विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों के मापन हेतु अल्पना सेन गुप्ता एवं अरूण कुमार सिंह द्वार निर्मित नैतिक मूल्य मापनी एवं समायोजन के मापन हेतु ए.के.पी. सिन्हा एवं आर. पी. सिंह द्वारा निर्मित एडजस्टमेंट इनवेन्टरी फॉर स्कूल स्टूडेन्ट का प्रयोग किया गया है। आंकडों के सांख्यिकीय विशेलषण के पश्चात यह पाया गया है कि विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का उनके समायोजन के शैक्षिक आयाम पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

प्रस्तावना

मनुष्य एक समाजिक प्राणी है। उसका पूरा जीवन समाज में व्यतीत होता है। समाज का अभिन्न अंग होने के कारण उसे समाज के नियमों एवं आदर्शो का पालन करना होता है। इन आदर्शो तथा नियमों को नैतिक मूल्य कहा जाता है। नैतिक मूल्य मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करता है। विद्यालयों में शिक्षा के माध्यम से नैतिक मूल्यों के बारे में बताया जाता है तथा छात्रों को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसका पालन करने के लिये प्रेरित किया जाता है। नैतिक मूल्य और समायोजन का विशेष संबंध है। नैतिक मूल्य छात्रों के समायोजन के शैक्षिक आयाम को इस प्रकार प्रभावित करता है इसी बिन्दु पर प्रकाश डालने का प्रयास प्रस्तुत शोध में किया गया है।

अध्ययन का औचित्य

वर्तमान समय में नैतिक मूल्य के प्रति आस्था कम होने के कारण समाज में नैतिक संकट की स्थिति उत्पन्न होती जा रही है। यदि विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का अभाव निरंतर जारी रहा तो समाज में अराजकता और विघटन की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। वर्तमान में विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का पता लगाना आवश्यक है। और यह भी ज्ञात करना आवश्यक है कि नैतिक मूल्यों छात्रों के समायोजन के शैक्षिक आयाम को किस प्रकार प्रभावित करता है। एक सफल जीवन हेतु समायोजन का गुण होना आवश्यक है। छात्रों में समायोजन का गुण उन्हें विद्यालय एवं समाज में समायोजित होने में मदद करता है। समायोजन के शैक्षिक आयाम को नैतिक मूल्य किस तरह प्रभावित करता है यह ज्ञात करने के लिए प्रस्तुत शोध में उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियो के नैतिक मूल्यों का उनके समायोजन के शैक्षिक आयाम पर प्रभाव का अध्ययन किया गया।

समास्या कथन

उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का समायोजन के शैक्षिक आयाम पर प्रभाव का अध्ययन।

प्रस्तुत पदो की क्रियात्मक परिभाषा

1. **नैतिक मूल्य**– प्रत्येक व्यक्ति को समाज में रहते हुए समाज के नैतिक संबंधी नियमों का पालन करना होता है ये नैतिक संबंधी नियम ही नैतिक मूल्य कहलाता है।

2. **समायोजन के शैक्षिक आयाम**- समायोजन के शैक्षिक आयाम के तात्पर्य है कि व्यक्तियों के शैक्षिक वातावरण के अनुरूप व्यवहार करने में संतुलन बनाये रखना है। व्यक्ति एवं शैक्षिक वातावरण के मध्य प्रभावपूर्ण संतुलन की प्रक्रिया ही समायोजन का शैक्षिक आयाम कहलाती है।

अध्ययन के उद्देश्य-

1. उच्च एवं औसत नैतिक मूल्यों वाले विद्यार्थियों के समायोजन के शैक्षिक आयाम का तुलानात्मक अध्यय करना।
2. उच्च एवं निम्न नैतिक मूल्यों वाले विद्यार्थियों के समायोजन के शैक्षिक आयाम का तुलानात्मक अध्ययन करना।
3. औसत एवं निम्न नैतिक मूल्यों वाले विद्यार्थियों के समायोजन के शैक्षिक आयाम का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पना-

1. उच्च एवं औसत नैतिक मूल्यों वाले विद्यार्थियों के समायोजन के शैक्षिक आयाम मेंसार्थक अंतर नही पाया जायेगा।
2. उच्च एवं निम्न नैतिक मूल्यों वाले विद्यार्थियों के समायोजन के शैक्षिक आयाममें सार्थक अंतर नही पाया जायेगा।
3. औसत एवं निम्न नैतिक मूल्यों वाले विद्यार्थियों के समायोजन के शैक्षिक आयाम मेंसार्थक अंतर नही पाया जायेगा।

जनसंख्या एवं न्यादर्श-

प्रस्तुत शोध में छत्तीसगढ़ के बिलासपुर संभाग के 800 विद्यार्थियों का चयन किया गया है। इन 800 विद्यार्थियों में 400 छात्र तथा 400 छात्राएं शामिल है।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण -

प्रस्तुत शोध में आंकडो के संकलन हेतु निम्नांकित उपकरणों का प्रयोग किया गया है-

1. अल्पना सेन गुप्ता एवं अरूण कुमार सिंह द्वारा निर्मित- नैतिक मूल्य मापनी।
2. ए.के.पी. सिन्हा एवं आर.पी.सिंह द्वारा निर्मित- Adjustment inventory for school students.

अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकीय विधियॉ -

1. मध्यमान
2. मानक विचलन
3. मानक त्रुटि विचलन
4. टी-परीक्षण

परिकल्पनाओं का विश्लेषण एवं व्याख्या -Ho1. उच्च एवं औसत नैतिक मूल्य वाले विद्यार्थियों के समायोजन के शैक्षिक आयाम में सार्थक अंतर नही पाया जाऐगा।

सारणी क्रमांक - 1

Variable	Category	N	Mean	SD	SED	t-test value	df	Significance level	Interpretation
Educational Dimensions of Adjustment	Good	202	13.84	4.87	0.38	6.86	626	0.05 = 1.96	HO-1 Rejected
	Average	426	11.23	4.40				0.01 = 2.59	

विश्लेषण- सारणी क्रमांक-1 से ज्ञात होता है कि उत्तम एवं औसत नैतिक मूल्य वाले विद्यार्थियों के समायोजन के शैक्षिक आयाम के आधार पर प्राप्त किये गये मध्यमान क्रमशः 13.84 तथा 11.23 है वही प्रमाणित विचलन क्रमशः 4.87 तथा 4.40 है। मध्यमानों में अंतर की सार्थकता जांचने के लिये t-मूल्य परीक्षण किया गया। गणना से प्राप्त t – का मान 6.86 है। df =k 626 के लिये t का सारणी मान 0.05 के सार्थकता स्तर पर 1.96 एवं 0.01 के सार्थकता स्तर पर 2.59 है। t – का प्राप्त मान t – के सारणी मान से 0.05 तथा 0.01 दोनो सार्थकता स्तरों से अधिक है अर्थात उत्तम और औसत मूल्य वाले विद्यार्थियों के समायोजन के शैक्षिक आयाम में सार्थक अंतर पाया गया।

परिणाम- उत्तम और औसत नैतिक मूल्य वाले विद्यार्थियों के समायोजन के शैक्षिक आयाम में सार्थक अंतर है।

Ho2. उच्च एवं निम्न नैतिक मूल्य वाले विद्यार्थियों के समायोजन के शैक्षिक आयाम में सार्थक अंतर नही पाया जायेगा।

सारणी क्रमांक - 2

Variable	Category	N	Mean	SD	SED	t-test value	df	Significance level	Interpretation
Educational Dimensions of Adjustment	Good	202	13.84	4.87	0.44	10.65	372	0.05 = 1.96	HO-2 Rejected
	Poor	172	9.15	4.08				0.01 = 2.59	

विश्लेषण- सारणी क्रमांक 2 से ज्ञात होता है कि उत्तम और निम्न नैतिक मूल्य वाले विद्यार्थियों के समायोजन के शैक्षिक आयाम के आधार पर प्राप्त किये गये मध्यमान क्रमशः 13.86 तथा 9.15 है वही प्रमाणिक विचलन क्रमशः 4.87 तथा 4.08 है। मध्यमानों में अंतर की सार्थकता जांचने के लिये t– मूल्य परीक्षण किया गया। गणना से प्राप्त t– का मान 10.65 है। df=k 372 के लिये t का सारणी मान 0.05 के सार्थकता स्तर पर 1.97 एवं 0.01 के सार्थकता स्तर पर 2.59 है। t का प्राप्त मान t के सारणी मान से 0.05 तथा 0.01 दोनो ही सार्थकता स्तरों से अधिक है अर्थात उत्तम और निम्न नैतिक मूल्य वाले विद्यार्थियों के समायोजन के शैक्षिक आयाम में सार्थक अंतर पाया गया।

परिणाम- उत्तम और निम्न नैतिक मूल्य वाले विद्यार्थियों के समायोजन के शैक्षिक आयाम में सार्थक अंतर है।

Ho3. औसत एवं निम्न नैतिक मूल्य वाले विद्यार्थियों के समायोजन के शैक्षिक आयाम में सार्थक अंतर नही पाया जायेगा।

सारणी क्रमांक - 3

Variable	Category	N	Mean	SD	SED	t-test value	df	Significance level	Interpretation
Educational Dimensions of Adjustment	Average	426	11.23	4.40	0.36	5.77	596	0.05 = 1.96	HO-3 Rejected
	Poor	172	9.15	4.08				0.01 = 2.59	

विश्लेषण- सारणी क्रमांक 2 से स्पष्ट होता है कि औसत और निम्न नैतिक मूल्य वाले विद्यार्थियों के समायोजन के शैक्षिक आयाम के आधार पर प्राप्त किये गये मध्यमान क्रमशः 11.23 तथा 9.15 है वही प्रमाणिक विचलन क्रमशः 4.40 तथा 4.08 है। मध्यमानों में अंतर की सार्थकता जांचने के लिये t मूल्य परीक्षण किया गया। गणना से प्राप्त t का मान 5.77 है। df=k 596 के लिये t का सारणी मान 0.05 के सार्थकता स्तर पर 1.96 एवं 0.01 के सार्थकता स्तर पर 2.59 है। t का प्राप्त मान t के सारणी मान से 0.05 तथा 0.01 दोनो ही सार्थकता स्तरों से अधिक है अर्थात औसत और निम्न नैतिक मूल्य वाले विद्यार्थियों के समायोजन के शैक्षिक आयाम में सार्थक अंतर पाया गया।

परिणाम- औसत और निम्न नैतिक मूल्य वाले विद्यार्थियों के समायोजन के शैक्षिक आयाम में सार्थक अंतर है।

संदर्भ ग्रंथ-

1. पाण्डेय, आर एस (2003) शिक्षा मनोविज्ञान, आर. लाल बुक डिपों, मेरठ, पृ. 340
2. नायक, पी.के. एवं दुबे, पी. (2016): रिसर्च मेथेडोलॉजी, ए.पी.एच. पब्लिशिंगकार्पोरेशन, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली।
3. नायक, पी.के. (2018): शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
4. जैन पारस (2017) महाविद्यालय के छात्रों का समायोजन, इंटरनेशनल जर्नल ऑफएडवांस इन सांइटिफिक रिसर्च एंड इंजीनियरींग के वाल्यूम 3, इश्यू 5।
5. डॉ. शर्मा, तृष्णा (2008): किशोरों में समायोजन क्षमता, शोध प्रकल्प, अंक 43, वर्ष 13, संख्या 2, पृ. 31-33.
6. मंगल, एस.के. एवं मंगल, शु. (2017): व्यावहारिक विज्ञानों में अनुसंधान विधियॉ,पी एच आई लनिंग, नई दिल्ली, पृ. 244.
7. शर्मा, वी.पी. (2015): रिसर्च मेथडॉलॉजी, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ. 450.
8. सिंह, ए.के. (2015): मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियॉ,मोतीलाल बनारसीदास, पटना, पृ. 101, 217.

उत्तर प्रदेश के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के बी.एड. स्तर के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा, स्मृति एवं व्यक्तिगत मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

किरन सिंह

शोधकर्त्री, हड़िया पी.जी.कालेज, हडिया, प्रयागराज

सारांश

"शिक्षा मात्र मनुष्य के अन्तस्थल के अंधकार को मिटाने वाली कुंजी ही नहीं अपितु राष्ट्र के विकास की जीवंतता का प्रमाण है। अत: शिक्षा के द्वारा की हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। हमारा देश सदैव से ही इस दिशा में प्रयत्नशील रहा है। प्राचीन काल में हमारी भारतीय शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आत्मज्ञान की प्राप्ति करना था। उस समय शिक्षा का उद्देश्य आध्यात्मिक एवं चारित्रिक विकास करना था। जिससे एक श्रेष्ठ नागरिक का निर्माण हो सके। शिक्षा की आधारशिला शिक्षक होता है इस बात को कोई नकार नहीं सकता। शिक्षक को प्रदर्शक की संज्ञा दी गई है। वही अपने ज्ञान एवं कौशल के माध्यम से अपने विद्यार्थियों को शिक्षा के लिए अभीप्रेरित करता है ।

वर्तमान समय विकास का है जिसमें शिक्षा की अहम भूमिका है। इस भूमिका के निर्वहन में ग्रामीण क्षेत्र के नागरिकों का भी अहम योगदान है। आज व्यावसायिक तथा आर्थिक प्रगति के दौर ने ग्रामीण क्षेत्र के नागरिकों को भी उतना ही जागरूक किया है जितना कि शहरी क्षेत्र को। समाज में शिक्षण व्यवसाय को दृष्टिगत रखते हुए शोधकर्त्री ने प्रस्तुत अध्ययन में ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड़. स्तर के छात्राध्यापक एवं छात्राध्यापिकाओं की अभिप्रेरणा के प्रभाव का अध्ययन करने का प्रयास किया है।"

Keyword: ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र, बी.एड. प्रशिक्षु, शैक्षिक अभिप्रेरणा,स्मृति एवं व्यक्तिगत मूल्य।

प्रस्तावना

किसी भी राष्ट्र के विकास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान वहां की शिक्षा व्यवस्था का होता है। वही राष्ट्र सर्वाधिक उन्नति करता है जहां की शिक्षा श्रेष्ठ हो। इस शैक्षिक व्यवस्था को श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर करने का दायित्व शिक्षक का माना जाता है शिक्षक को समाज में पथ प्रदर्शक की संज्ञा दी गई है और उससे यह अपेक्षा की जाती है की वह भावी नागरिकों के विकास में अपना संपूर्ण सहयोग देगा। शिक्षक का कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। प्रसिद्ध विद्वान एच० जी० वेल्स ने शिक्षक के कार्य का महत्व देखते हुए उसे 'राष्ट्र का निर्माता' कहां है। जिसमें सबसे प्रमुख भूमिका होती है शिक्षक प्रशिक्षकों की जो एक सामान्य विद्यार्थी को प्रशिक्षित कर विभिन्न कौशलों से युक्त एक शिक्षक के रूप में उसका निर्माण करते हैं। वर्तमान समय में बदलते हुए सामाजिक परिवेश में शिक्षण व्यवसाय के प्रति समाज के लोगों में वह सम्मानजनक स्थिति नहीं रह गई है जो पूर्व में थी।आज के आर्थिक विकास के युग में शिक्षण व्यवसाय के प्रति लोगों आकर्षण कम हुआ है।

अध्यापकों के सफल प्रयास द्वारा ही देश विकसित एवं समृद्ध होता है। इसके लिए हमें उच्च कोटि के प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापकों की आवश्यकता है। क्योंकि वही अपनी शिक्षा द्वारा उच्च आदर्श वाले छात्रों को तैयार कर सकते हैं। अत: देश के लिए अध्यापक प्रशिक्षण का विशेष स्थान है। अध्यापक प्रशिक्षण के महत्व को बताते हुए 'डॉ राधाकृष्णन' ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं ''समाज में अध्यापक का स्थान महत्वपूर्ण है यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बौद्धिक परंपरा और तकनीकी कौशल पहुंचाने का केंद्र है और सभ्यता के प्रकाश को प्रज्वलित रखने में सहायक होता है। वस्तुत: किसी भी देश का स्तर वहां के शिक्षकों पर निर्भर करता है और शिक्षकों की योग्यता एवं क्षमता उनके प्रशिक्षण या शिक्षा पर निर्भर करती है। अत: पूर्ण संपूर्ण शिक्षा प्रणाली की धूरी अध्यापक ही है।"

शिक्षक प्रशिक्षण प्रत्येक शिक्षा व्यवसाय का अभिन्न अंग है। यह समाज एवं राष्ट्र के चरित्र उसकी संस्कृति एवं लोकाचार से घनिष्ठ रूप से संबद्ध होती है। शिक्षा जगत में विशेष रूप से शिक्षक प्रशिक्षणार्थी जोकि भावी अध्यापक के रूप में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं तथा अध्यापन व्यवसाय को अपनाना चाहते हैं वह बी.एड़. या अन्य अध्यापक की प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में प्रवेश लेते हैं। वे विषय वार विभिन्न वर्गों ग्रामीण/शहरी और कला/विज्ञान आदि से होते हैं।

प्रस्तुत शोध में इसी दृष्टिकोण को अपनाया गया है और यह जानने का प्रयास किया जाएगा कि ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा,स्मृति एवं व्यक्तिगत मूल्यों का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर कैसा प्रभाव पड़ता है।

शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा से तात्पर्य प्रशिक्षण से संबंधित उत्तेजना से है, जिससे प्रशिक्षणार्थियों को प्रेरणा मिलती है। अभिप्रेरणा एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति को व्यवहार करने की शक्ति प्रदान करती है तथा एक खास उद्देश्य की ओर व्यवहार को ले जाती है। अभिप्रेरणा अधिगम प्रक्रिया का स्थानांतरण करने में सहायक होती है। शिक्षक प्रशिक्षण, शिक्षा प्रक्रिया या अधिगम अंतरण में अभिप्रेरणा का कार्य करता है।

मानव जीवन में स्मृति या स्मरण का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। अच्छी स्मृति के अभाव में किसी भी व्यक्ति को अपना जीवन सुचारु रुप से संचालित करने में विभिन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अध्यापन कार्य में स्मृति का स्थान और अधिक महत्वपूर्ण इसलिए हो जाता है क्योंकि अध्यापन की 60% प्रक्रिया स्मृति आधारित ही होती है। स्मृति एक सामान्य पद है, जिसका तात्पर्य पूर्व अनुभूतियों या ज्ञान का मस्तिष्क में इकट्ठा कर रखने की क्षमता से है। शिक्षा मनोविज्ञान में स्मृति के दो पक्ष बताए गये हैं, धनात्मक पक्ष और ऋणात्मक पक्ष। स्मृति के धनात्मक पक्ष से तात्पर्य पूर्व की स्मृतियों को याद रखने की क्षमता से होता है और ऋणात्मक पक्ष उन पूर्व स्मृतियों या अनुभूतियों को याद रख सकने की असमर्थता से होता है। स्मृति एक मानसिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति धारण की गई विषय वस्तु को पुनः स्मरण करके चेतना में लाकर उसका प्रयोग करता है। किसी भी शिक्षक या प्रशिक्षक को अपने प्रकरण की व्याख्या करते समय अनुभव की सहायता लेनी पड़ती है। जिस अध्यापक की स्मृति जितनी अच्छी होगी उसके ज्ञान का प्रभाव उतना अधिक उसके संप्रेषण के समय पड़ेगा तथा वह समस्या का समाधान उचित ढंग से विस्तार पूर्वक कर सकने में सफल होगा।

मानव जीवन में मूल्यों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है वह चाय व्यवहारिक हुई आदर्शवादी मूल्यों के आधार पर ही संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना ही माला जीवन का परम लक्ष्य जीवन में मूल्य वस्तुतः मानवीय संबंधों को सुन्दर एवं सरस बनाने एवं मानवीय गुणों से संपन्न होकर संपूर्ण जीव जगत के प्रति अपने कर्तव्य निर्वहन का एक सुंदर साधन है मूल्य एक प्रयोजन है जो पूर्णता को प्रमाणित करता है मानव में जो परंपरा के रूप में परिलक्षित होता है उसे हम मूल्य करते हैं शिक्षा के माध्यम से हम समय को आगे ले जाना चाहते हैं तो उसके लिए आवश्यक है कि वह मूल्यपरक हो मूल्य शिक्षा का समावेश हमारे पाठ्यक्रम में प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा के स्तर तक होना चाहिए प्राथमिक स्तर पर संबंधों को ध्यान में रखना चाहिए उन संबंधों का ज्ञान कराना चाहिए माध्यमिक स्तर पर दर्शन की पूर्व सूचना के साथ कुछ अभ्यास तथा उच्च शिक्षा में उस को पूर्णता प्रदान की जानी चाहिए विद्यार्थियों के व्यवहार का चित्रण करने से उन्हें मूल्य का प्रभाव परिलक्षित होता है प्रथम शिक्षा माता-पिता द्वारा दूसरा परिवार तथा पारिवारिक संपर्क द्वारा शिक्षा एवं वातावरण ग्रहण की जाती है इन्हीं से मूल्यों का निर्माण होता है कृतियों के परिमार्जन के द्वारा संस्कार या मूल्य प्रमाणित होता है

अध्ययन का उद्देश्य

उत्तर प्रदेश के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के बी.एड स्तर के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा,स्मृति एवं व्यक्तिगत मूल्यों का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन करना, इस शोध का मुख्य उद्देश्य है।

1. उत्तर प्रदेश के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के बी.एड़.स्तर के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक प्रेरणा का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन करना।
2. उत्तर प्रदेश के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र की बी.एड़.स्तर के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की स्मृति का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
3. उत्तर प्रदेश के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तिगत मूल्यों का अध्ययन करना।

परिकल्पना

1. उत्तर प्रदेश के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के बी.एड़. स्तर के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक प्रेरणा का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता।
2. ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की स्मृति का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर कोई प्रभाव नही पड़ता है।
3. ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तिगत मूल्यों का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

शोध की विधि

शोध कार्य को अधिक प्रभावी बनाने के लिए तथा अधिक सफलता अर्जित करने के लिए एक निश्चित प्रक्रिया से करना आवश्यक हो जाता है। अतः प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि को अपनाया गया है। इस विधि के अंतर्गत वर्तमान तत्वों का अध्ययन एवं व्याख्या की जाती है। विषय की वर्तमान स्थिति क्या है? वर्तमान दशाओं, क्रियाओं, अभिवृद्धि तथा स्थिति में विषय ज्ञान प्राप्त करना इसका मुख्य उद्देश्य होता है। ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा क्या उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करने के लिए 'टी' अनुपात का प्रयोग किया गया है और प्राप्त परिणामों के आधार पर परिकल्पना का 0.5 स्तर पर परीक्षण किया गया। कथनों के प्रति शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के रुझान को ज्ञात करने के लिए प्रतिशतीय विश्लेषण का प्रयोग किया गया है।

प्रतिदर्श चयन

शोधकर्त्री ने प्रतिदर्श के रूप में इलाहाबाद जनपद के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के 300 शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों का चयन (जिसमें 150 ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थी एवं 150 शहरी क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थी) यादृच्छिक विधि से किया है।

परिणाम तथा विवेचना

परिकल्पना 1– उत्तर प्रदेश के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के बी.एड़.स्तर के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक प्रेरणा का उनकीशैक्षिक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है, विवेचन एवं व्याख्या–

प्रस्तुत अध्ययन की प्रथम परिकल्पना ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक प्रेरणा का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, का अध्ययन करना है। इस अध्ययन हेतु ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के बी.एड़. स्तर के 150–150 प्रशिक्षुओं द्वारा दी गई प्रश्नावली के माध्यम से निम्नलिखित आंकड़े प्राप्त हुए हैं।

सारणी 1:1

क्रम संख्या	प्रतिदर्श	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	'टी' का मान	सार्थकता स्तर
1	ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थी	150	21.378	7.780	0.14	'टी' 0.01=2.59
2	शहरी क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थी	150	19.766	7.12		'टी'0.05=1.97 असार्थक

सारणी संख्या 1:2 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि उत्तर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक प्रेरणा का मध्यमान 21. 378 एवं मानक विचलन 7.780 तथा शहरी क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों का मध्यमान 19.766 एवं मानक विचलन 7.12 प्राप्त हुआ है। जिसका मान 0. 14 है जो कि 'टी 'मान 0.01= 2.59 एवं 'टी' मान 0.05=1.97 स्तर पर असार्थक है। मध्यमान अंतर यह स्पष्ट करता है कि ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक प्रेरणा का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है। अत: यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

उपरोक्त आकलन से यह स्पष्ट होता है कि क्षेत्र के आधार पर उत्तर प्रदेश के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक प्रेरणा का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

परिकल्पना 2– उत्तर प्रदेश के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के बी.एड. स्तर के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों स्मृति का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है का अध्ययन करना है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन की दूसरी परिकल्पना उत्तर प्रदेश के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की स्मृति का अध्ययन करना है, इस अध्ययन हेतु शोधकर्त्री ने 150–150 शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों द्वारा दी गई प्रश्नावली से निम्नलिखित आंकड़े प्राप्त किये।

सारणी 1:2

क्रम संख्या	प्रतिदर्श	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	'टी' का मान	सार्थकता स्तर
1	ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थी	150	157.64	38.328		'टी' 0.01=2.60
2	शहरी क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थी	150	153.22	37.947	2.78	'टी' 0.05=1.97 सार्थक

सारणी संख्या 1:2 के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के शिक्षा प्रशिक्षणार्थियों की स्मृति का मध्यमान 157.64 एवं मानक विचलन 38.328 है और शहरी क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की स्मृति का मध्यमान 153.22 एवं मानक विचलन 37.947 प्राप्त हुआ है। जिसका 'टी' मान 2.78 है, जो कि 'टी' मान 0.01= 2.60 एवं 'टी' मान 0.05=1.97 स्तर पर सार्थक है। मध्यमान का अंतर स्पष्ट करता है कि क्षेत्र के आधार पर ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के प्रशिक्षणार्थियों की स्मृति का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। अत: यह परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि क्षेत्र के आधार पर ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की स्मृति का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

परिकल्पना 3– उत्तर प्रदेश के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के बी.एड. स्तर के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तिगत मूल्यों का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है का अध्ययन करना था।

प्रस्तुत शोध अध्ययन की तीसरी परिकल्पना उत्तर प्रदेश के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तिगत मूल्यों का उनके शैक्षिक उपलब्धि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है का अध्ययन करना है इसके लिए शोधकर्ताओं ने ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र से 150-150 शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों द्वारा दी गई प्रश्नावली के माध्यम से निम्नलिखित आंकड़े प्राप्त किए।

सारणी 1:3

क्रम संख्या	प्रतिदर्श	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	'टी' का मान	सार्थकता स्तर
1	ग्रामीण क्षेत्र की शिक्षक प्रशिक्षणार्थी	150	356.028	42.312		'टी' 0.01=1.97
2	शहरी क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थी	150	355.066	47.096	0.06	'टी' 0:.05=2.60 असार्थक

प्रस्तुत अध्ययन की सारणी संख्या 1:3 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र बी.एड. स्तर के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तिगत मूल्यों का मध्यमान 356.028 एवं मानक विचलन 42.312 है और शहरी क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तिगत मूल्यों का मध्यमान 355.066 एवं मानक विचलन 42.096 प्राप्त हुआ है: जिसका 'टी' मान 0.06 है जो कि 'टी' मान 0.01=1.97 एवं टी मान 0.05=2.60 स्तर पर असार्थक है।

मध्यमान के अंतर यह स्पष्ट करता है कि ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के बी.एड. स्तर के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तिगत मूल्यों का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है। अत: यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट होता है, कि उत्तर प्रदेश के बी.एड.स्तर के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तिगत मूल्यों का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

अध्ययन का निष्कर्ष एवं व्याख्या:-

ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के बी.एड़. स्तर के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा,स्मृति एवं व्यक्तिगत मूल्यों के प्रभाव का अध्ययन एवं व्याख्या

1. प्रथम परिकल्पना की सारणी संख्या 1:1 में प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि क्षेत्र के आधार पर ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के बी. एड़. स्तर के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है। अत: यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।
2. द्वितीय परिकल्पना की सारणी संख्या 1:2 से प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि क्षेत्र के आधार पर ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के बी.एड.स्तर के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की स्मृति का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव पड़ता है। अत: यह परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है।
3. परिकल्पना तीन की सारणी संख्या 1:3 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि उत्तर प्रदेश के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के बी.एड. स्तर के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तिगत मूल्यों का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है। अत: यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

उपरोक्त विश्लेषण के उपरांत यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के बी.एड़. स्तर के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों ने स्वीकार किया है कि व्यवसायिक पाठ्यक्रमों में के अंतर्गत बी.एड. प्रशिक्षण प्राप्त करना रोजगार प्राप्ति में सहायक हैं। उन्होंने उक्त पाठ्यक्रम के प्रति अपने अत्यधिक रुचि तो नहीं दिखाई किंतु विकल्प के रूप में सहमति जताई। छात्राध्यापिकाओं ने अपनी पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति के आधार पर भी इस पाठ्यक्रम के प्रति अपनी रुचि दर्शायी। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के बी.एड़. स्तर के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा,स्मृति एवं व्यक्तिगत मूल्यों का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. अग्रवाल, जे०सी० (2009) शैक्षिक तकनीकी व प्रबंधन, आगरा श्री विनोद पुस्तक मंदिर।
2. सिंह, मयाशंकर,अध्यापक शिक्षा असमंजस में नई दिल्ली अध्ययन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
3. गुप्ता, एस०पी० उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन।
4. सिंह, डा० अरुण कुमार, भारती भवन पब्लिकेशन, दिल्ली।
5. गुप्ता, एस०पी० अनुसंधान संदर्शिका, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाल

भारत में महिला उद्यमिता की समस्याएं एवं संभावनाएं

दीपक कुमार दास

(शोध छात्र), वाणिज्य एवं व्यवसायिक प्रबंध विभाग, राँची विश्वविधालय, राँची

ज्योत्सना कुमारी

(शोध छात्रा), राजनीति विज्ञान, राँची विश्वविधालय, राँची

1.0 प्रस्तावना

महिला उद्यमिता को किसी भी देश की आर्थिक प्रगति का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। महिला उद्यमी न केवल खुद को आत्मनिर्भर बनाती हैं, बल्कि दूसरों के लिए भी रोजगार के अवसर बढ़ाती है। भारतीय समाज में महिला उद्यमिता को प्रोत्साहन देने के लिए सामाजिक, पारिवारिक और आर्थिक मोर्चों पर बदलाव लाने की जरूरत है। विगत दशकों में हुए वैज्ञानिक प्रगति एवं अनेक सामाजिक परिवर्तनों के बावजूद आज भी महिलाओं को समाज मे अबला, निरीह एवं असक्षम प्राणी के रूप मे देखा जाता है। आदिकाल से उद्यमिता पर पुरूषों का वर्चस्व रहा है, इस कारण इस क्षेत्र मे महिलाओं के प्रवेश को आवाँछनीय व अनुपयुक्त समझा जाता है। महिला उद्यमिता को महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण के लिए एक प्रभावी साधन माना जाता है। यह सच है की भारत में महिलाएं कई दशकों तक आर्थिक रूप से अविकसित रहीं किन्तु हाल के वर्षो में महिला उद्यमिता की अवधारणा गति पकड़ रही है। भारत सरकार द्वारा किए गए कई उपायों और प्रोत्साहनों के बावजूद महिला उद्यमी की संख्यां बहुत अधिक दर से नहीं बढ़ रही हैं। यह महिलाओं द्वारा उद्यमिता की प्रक्रिया में कुछ व्यावहारिक समस्याओं के कारण है। शोधार्थी इस पेपर के माध्यम से भारत में महिला उद्यमिता की विभिन्न समस्याओं और संभावनाओं का विश्लेषण कर उस पर प्रकाश डालने का प्रयास करेगा।

''आप किसी राष्ट्र की स्थिति उसकी महिलाओं की स्थिति को देखकर बता सकते हैं'' -जवाहर लाल नेहरू

मुख्य शब्दः उद्यमिता, महिला, सशक्तिकरण, विकास, समस्याएं, संभावनाएं

2.0 परिचयः

प्रत्येक देश अपने लोगों की समृद्धि और बेहतर जीवन स्तर के लिए आर्थिक विकास प्राप्त करने का प्रयास करता है। विकास के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक आयाम हैं और यह महिलाओं के विकास के बिना अधूरा है, जिसकी आबादी, कुल आबादी का लगभग 50 प्रतिशत है। अतः स्वस्थ राष्ट्र निर्माण के लिए आर्थिक गतिविधियों में महिलाओं का योगदान आवश्यक है। आज के समय में सभी देशो के आर्थिक विकास के लिए उद्यमिता आवश्यक है चाहे वो विकशित देश हो या विकाशशील, क्योंकि यह किसी भी देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी होती है। जो व्यक्ति जोखिम उठाता हैं तथा संसाधनों की व्यवस्था करता है, उद्यमी कहलाता है तथा वह जो कौशल दृष्टिकोण चिन्तन करता हैं उसे उद्यमिता कहते हैं। एक उद्यमी का आशय ऐसे व्यक्ति से है जो व्यापारिक अवसर की पहचान करता है, नये व्यवसाय की स्थापना हेतु आवश्यक कदम उठाता, व्यवसाय उपक्रम को सफल बनानें के लिए विभिन्न संसाधनों जैसे व्यक्ति, सामग्री और पूँजी को एकत्र करता हैं और निहित जोखिम व अनिश्चितताओं को वहन करता है। उद्यमिता का अभिप्राय उद्यमी द्वारा किये गए कार्यो से हैं। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति किसी नए व्यवसाय की स्थापना में निहित विभिन्न कार्यों को करता है वास्तव में जो कुछ उद्यमी करता है वही उद्यमिता है। अतः उद्यमिता का आशय उस कौशल, दृष्टिकोण, चिन्तन, तकनीक एवं कार्यप्रणाली से है, जिसके द्वारा व्यवसाय में निहित अनेक प्रकार की जोखिम एवं अनिश्चितताओं का सामना किया जाता है एवं व्यवसाय को संचालित किया जाता है।

पीटर एफ. ड्रकर के अनुसार, ''उद्यमी वह व्यक्ति है जो सदैव परिवर्तन की खोज करता है, उस पर प्रतिक्रिया करता है तथा एक अवसर के रुप में उसका लाभ उठाता है।''

2.1 महिला उद्यमिता की अवधारणाः

महिला उद्यमी वे हैं जो व्यावसायिक उद्यम के बारे में सोचती हैं, इसे शुरू करती हैं, उत्पादन के कारकों को व्यवस्थित करती हैं और संयोजित करती हैं तथा उद्यम का संचालन करती हैं, जोखिम उठाती हैं और उस विशेष उद्यम में एक नियंत्रित रुचि होने से आर्थिक अनिश्चितता को संभालती हैं। उद्यमी

के रूप में, महिला उद्यमी वे महिलाएं होती हैं जो व्यावसायिक विचारों को उत्पन्न करती हैं या सर्वोत्तम अवसर का चयन करती हैं, संसाधन जुटाती हैं, उत्पादन के कारकों को जोड़ती हैं, जोखिम उठाती हैं और लाभ कमाने के लिए एक नए के साथ सबसे अधिक प्रभावशीलता में उद्यम संचालित करती हैं।

भारत सरकार के अनुसार, एक महिला उद्यमी को एक उद्यम के रूप में परिभाषित किया जाता है, जो एक महिला के स्वामित्व और नियंत्रण में होती है और एक महिला द्वारा स्वामित्व और नियंत्रित होती है और महिलाओं को उद्यमों में उत्पन्न रोजगार का न्यूनतम वित्तीय ब्याज 51: होता है।

3.0 अध्ययन का उद्देश्य:

- भारत में महिला उद्यमियों की स्थिति का अध्ययन करना।
- भारत में महिला उद्यमियों द्वारा सामना की जाने वाली विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करना ।
- भारत में महिला उद्यमियों के विकास की भावी संभावनाओं को जानना।
- महिला उद्यमियों के विकास के लिए विभिन्न सरकारी योजनाओं को जानना।

4.0 अध्ययन का महत्व:

किसी भी देश के अर्थव्यवस्था को दो भागो में वर्गीकृत किया जाता है पहला विकसित अर्थव्यवस्था, दूसरा विकासशील अर्थव्यवस्था। विभिन आंकड़ों के अनुसार यह ज्ञात है कि विकसित अर्थव्यवस्था विकसित इसलिए है क्युकि वहाँ महिलाओं की भागीदारी लगभग पुरूषों के बराबर है और उन्हें पुरुषों के समान ही प्राथमिकता भी दिया जाता है, लेकिन विकासशील अर्थव्यवस्था वाले देशो में महिलाओं को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, जिसके कारण उनकी भागीदारी बहुत कम है, हालांकि सरकार महिलाओं के लिए तरह-तरह की योजनाएं चला रहा है। सभी क्षेत्रों में महिलाएं दिन-प्रतिदिन अच्छी तरह से विकसित हो रही हैं। इस पेपर में शोधर्थी भारत में महिला उद्यमिता की विभिन्न समस्याओं और संभावनाओं का विश्लेषण कर उसपर प्रकाश डालने का प्रयास करेगा साथ ही साथ भारत में महिला उद्यमियों के विकास की भावी संभावनाओं को जानने के साथ महिला उद्यमियों के विकास के लिए विभिन्न सरकारी योजनाओं का अध्ययन करेगा।

5.0 अनुसंधान क्रियाविधि:

प्रस्तुत अध्ययन पूर्ण रूप से वर्णनात्मक प्रकृति का है, एवं द्वितीय समंकों पर आधारित है। द्वितीय समंकों का संकलन जनगणना सर्वेक्षण, आर्थिक सर्वेक्षण , शोधपत्रों, समाचार पत्रों व पत्रिकाओं, आदि से किया गया है।

भारत में महिला उद्यमिता की समस्याएं एवं संभावनाएं को जानने के लिए शोधकर्ता द्वारा प्रामाणिक स्रोतों से ली गई आंकड़ों का अध्ययन किया गया है। शोधकर्ता द्वारा विभिन्न प्रकाशित शोधों से अन्य द्वितीयक आंकड़े एकत्र किए गए हैं जो भारत में महिला उद्यमिता की समस्याओं और संभावनाओं से संबंधित हैं।

6.0 भारत में महिला उद्यमिता की वर्तमान परिदृश्य:

भारत में महिला उद्यमिता विगत कुछ सालों में बड़ी तेजी से उभर रही है। उद्यमियों के रूप में महिलाओं का प्रतिनिधित्व भारत में काफी सीमित है। इस सेक्टर में भारत में महिला उद्यमियों के प्रतिनिधित्व का विश्लेषण प्रमुख सरकारी प्रकाशनों में उपलब्ध आंकड़ों के माध्यम से किया जाता है। जिसमे भारत सरकार के सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम मंत्रालय द्वारा जारी वार्षिक रिपोर्ट महत्वपूर्ण है इस पेपर में महिला उद्यमिता की वर्तमान परिदृश का मूल्यांकन एमएसएमई वार्षिक रिपोर्ट 2020-21 के माध्यम से किया गया है।

भारत में पुरूष और महिला स्वामित्व वालें उद्यमियों की संख्यां (लाख में)

पुरूष	महिला
504.76	129.12

Sources: MSMe Annual Report, 2020-21¼

भारत सरकार के सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम मंत्रालय द्वारा जारी वार्षिक रिपोर्ट 2020-21 के अनुसार वर्तमान में भारत में कुल 633.88 एमएसएमई कार्यरत है जिसमे से 504.76 लाख एमएसएमई पुरूषों का स्वामित्व वाले है। वहीं महिलाओं द्वारा स्वामित्व वाले उद्यमों की संख्यां केवल 129.12 लाख है। अर्थात वर्तमान समय में कुल एमएसएमई का 79.63 प्रतिशत पुरूषों का स्वामित्व वाला और केवल 20.37 प्रतिशत महिलाओं स्वामित्व वाले उद्यम कार्यरत है।

आर्थिक सर्वेक्षण 2019-20 के अनुसार इस वर्ष के प्रारंभ में देश की स्टार्टअप कंपनियों में कम से कम एक महिला निदेशक वाली कंपनियों का हिस्सा 43 प्रतिशत ही था। सेबी के निर्देशानुसार सभी सूचीबद्ध कंपनियों को अपने निदेशक मंडल में कम से कम एक महिला को नियुक्त करना जरूरी है। इससे उनकी संख्या बढ़ी जरूर है, लेकिन इसे उनकी कारोबारी भागीदारी से जोड़कर नहीं देखा जा सकता। 2019 के महिला उद्यमी सूचकांक के 57 देशों में भारत का स्थान 52वाँ रहा है। महिला उद्यमियों को आगे लाने के लिए केवल आर्थिक मदद काफी नहीं होती। शिक्षा के बढ़ते आंकड़े भी इस स्थिति में अधिक

बदलाव नहीं ला पाए हैं। नेशनल सैंपल सर्वे के अनुसार भारत के व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में से केवल 14 प्रतिशत प्रतिष्ठान ही महिलाओं द्वारा संचालित हैं। इनमें से अधिकतर उद्यम स्ववित्त पोषित और छोटे स्तर के हैं।

7.0 महिला उद्यमियों द्वारा सामना की जाने वाली विभिन्न समस्याओं और चुनोतियाँ:

महिला उद्यमी देश के मानव संसाधन का अहम हिस्सा हैं। बावजूद इसके कारोबारी परिवेश में आज भी महिला नेतृत्व वाले संस्थानों के प्रति लोगों में असहजता और अविश्वास का माहौल देखने को मिलता है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (एनएसएसओ) का कहना है कि भारत के व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में से महज चौदह फीसद महिलाओं द्वारा संचालित हैं। इनमें से अधिकतर उद्यम छोटे स्तर के और स्व-वित्तपोशित हैं। इसकी एक वजह यह भी है कि महिलाओं को संसाधनों के वित्तपोषण और कारोबार की सहायता के लिए मौजूद योजनाओं की जानकारी भी कम ही होती है।

सदियों से चली आ रही परंपराओं को तोड़कर भारतीय महिलाएं अपने कम्फर्ट जोन से बाहर निकली हैं और व्यापार जगत में अपनी एक अलग पहचान बनाई है। कॉर्पोरेट करियर ने उन्हें वित्तीय स्वतंत्रता और अपने प्रबंधकीय कौशल का प्रदर्शन करने का अवसर दिया है। लेकिन, उद्यमिता ने उन्हें बहुत आगे बढ़ाया और एक उदाहरण के साथ दुनिया का नेतृत्व करने का विश्वास दिलाया। भारत में वर्तमान में 129 लाख से अधिक महिला उद्यमी हैं। यह कुल भारतीय व्यापार उद्योग का लगभग 14: है। इसके अलावा, हाल के आंकड़ों से यह भी पता चलता है कि 79: से अधिक महिला-स्वामित्व वाले उद्यम स्व-वित्तपोषित हैं। महिला उद्यमियों द्वारा सामना की जाने वाली प्रमुख समस्याओं और चुनौतियाँ निम्म्लिखित है:-

- वित्त की कमी: वित्त किसी भी व्यवसाय की रक्त सामान है, चाहे वह छोटा हो या बड़ा बिना वित्त का परिचालन असंभव है। भारत में महिला उद्यमियों के सामने सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक वित्त की कमी है। उन्हें दो मामलों में धन की कमी का सामना करना पड़ता है। सबसे पहले, उनके नाम पर आम तौर पर पर्याप्त संपत्ति नहीं होती है। इसका मतलब है कि उनके पास बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थानों से धन उधार लेने के लिए संपार्श्विक के रूप में उपयोग करने के लिए कुछ भी नहीं है। यह स्थिति वित्त के बाहरी स्रोतों तक उनकी पहुंच को सीमित करती है। महिला उद्यमियों द्वारा सामना की जाने वाली प्रमुख समस्या है। दूसरे, उधार देने वाले संस्थानों को भी लगता है कि पुरुषों की तुलना में महिलाएं कम क्रेडिट योग्य हैं। उनका मानना है कि महिला उद्यमी व्यक्तिगत प्रतिबद्धताओं के लिए कभी भी अपने व्यवसाय को बंद कर सकती हैं।
- शिक्षा की कमी: भारत में महिला साक्षरता दर 74 प्रतिशत पुरुष साक्षरता दर की तुलना में लगभग 65.4 प्रतिशत है। निरक्षरता हमेशा भारत में कई सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का मूल कारण रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी महिलाएं उच्च शिक्षा से वंचित हैं। यह स्थिति उनके व्यवसाय प्रबंधन कार्यों की जानकारी को सीमित करती है। महिला उद्यमियों द्वारा सामना की जाने वाली प्रमुख चुनौतियों में एक सुशिक्षित महिला के पास एक सफल व्यापारिक साम्राज्य के प्रबंधन की अधिक संभावना होती है। दूसरी ओर, कम योग्य महिलाओं को नियमित व्यावसायिक कार्यों के प्रबंधन के लिए भी बहुत संघर्ष करना पड़ता है।
- कम जोखिम लेने की क्षमता: हालाँकि भारतीय माता-पिता अपनी बेटियों को समृद्ध जीवन प्रदान करने के लिए आगे आ रहे हैं, फिर भी वे महिलाओं को सुरक्षित खेलना पसंद करते हैं। वे अपनी बेटियों को अपना स्वतंत्र उद्यम शुरू करने के बजाय एक स्थिर नौकरी में कदम रखने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। महिला उद्यमियों द्वारा सामना की जाने वाली प्रमुख चुनौतियों में, इस रवैये ने महिलाओं की जोखिम लेने की क्षमता को काफी हद तक प्रभावित किया है।
- परिवार की जिम्मेदारियां: एक महिला के लिए क्या अधिक महत्वपूर्ण है- परिवार या आजीविका? अधिकांश भारतीय कहेंगे, परिवार। एक करियर-उन्मुख महिला को अपने काम और परिवार के बीच लगातार तालमेल बिठाना पड़ता है। महिला उद्यमियों द्वारा सामना की जाने वाली प्रमुख चुनौतियों में, उसे पुरुषों की तरह अपने करियर पर ध्यान केंद्रित करने की आजादी नहीं दी जाती है।
- खराब नेटवर्किंग कौशल: व्यावसायिक संबंधों को मजबूत करने, ज्ञान प्राप्त करने, आत्मविश्वास बढ़ाने और व्यवसाय के विस्तार के लिए नेटवर्किंग महत्वपूर्ण है। हालांकि, यह देखा गया है कि महिलाएं खुद को अपने कंफर्ट जोन से बाहर निकलने से रोकती हैं।उनमें से अधिकांश ग्राहकों और ग्राहकों के साथ नेटवर्किंग में समर्थक नहीं हैं। यह आदत उनके उद्यमशील उपक्रमों की सफलता में एक बड़ी बाधा के रूप में कार्य कर सकती है।
- महिला सुरक्षा के मुद्दे: सुरक्षा और सुरक्षा की कमी भारत में महिला उद्यमियों की सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। उद्यमिता लंबे समय तक काम करने और पूर्ण समर्पण की मांग करती है। वह सब कुछ नहीं हैंय आपको बहुत अधिक यात्रा करने की भी आवश्यकता हो सकती है, और ग्राहकों और ग्राहकों के लिए 24'7 उपस्थित रहना पड़ सकता है। महिला उद्यमियों द्वारा सामना की जाने वाली प्रमुख चुनौतियों में, अपराध दर में निरंतर वृद्धि महिलाओं को एक सफल व्यवसाय स्वामी बनने के अपने जुनून को आगे बढ़ाने से हतोत्साहित करती है। हालांकि भारत सरकार इस मुद्दे पर अंकुश लगाने के लिए हर संभव कदम उठा रही है, लेकिन हालात सामान्य और सुरक्षित होने में समय लगेगा।

8.0 महिला उद्यमियों के विकास की भावी संभावनाएँ:

इक्सवीं शताब्दी में, महिलाओं ने न सिर्फ धन अर्जन करने में अपनी भूमिका दर्ज कराई है बल्कि भावी संगठनों का निर्माण करते हुए अभिकर्ताओं का स्व रूप भी परिवर्तित किया है। हाल के वर्षों में, महिलाओं ने जीवन के हर क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति की है। विगत तीन-चार दशकों में, महिलाओं ने कॉरपोरेट

जगत में महत्वोपूर्ण सफलता हासिल की है, सामाजिक नैतिकता की बाध्यवताओं को पार करते हुए घर तथा कार्यस्थहल पर स्वेयं को सफल उद्यमी एवं कार्यकारी व्याावसायिकों के रूप में साबित किया है। भारतीय महिला उद्यमी वर्ग ने नए उद्यमों को आरंभ करने एवं उनका सफलतापूर्वक संचालन करने में बेहतर कार्य-निष्पायदन के कई उदाहरण प्रस्तु त किए हैं।

उद्यमिता की जिम्मेएवारियों को अपने कंधे पर लेने वाली महिलाओं की संख्याि पिछले कुछ वर्षो में काफी बढ़ी है। वैसे इनकी संख्यां में धीरे-धीरे वृद्धि होने के बावजूद भारत में महिला उद्यमिता को अभी काफी लंबा रास्ताव तय करना है। आवश्यंकता इस बात की है कि अधिक से अधिक महिलाओं को नया उद्यम आरंभ करने एवं संचालन कर सकने संबंधी उनकी क्षमताओं के प्रति उन्हें पूरी तरह आश्वउस्तक करने की है।

भारत में सफल महिला उद्यमियों के अनेकोनेक उदाहरण मिलते हैं। जैसेदृ राधा भाटिया (अध्योक्ष, बर्ड ग्रुप), मल्लिमका श्रीनिवासन (अध्य क्ष तथा सीईओ, ट्रैक्टार्स एण्डध फार्म इक्वि पमेंट), प्रिया पॉल (अध्यक्ष, एपीजय पार्क होटल्से), शाहनाज हुसैन (सीईओ, शाहनाज हर्बल्सट इन्क), एकता कपूर (संयुक्तर प्रबंध निदेशक, बालाजी टेलीफिल्म्सल) और बहुराष्ट्रीणय कंपनियों में उच्चलतम मुकाम हासिल करने वाली महिलाएं जैसे इंद्रा कृष्णाकमूर्ति नूई (अध्यमक्ष तथा मुख्यर कार्यकारी अधिकारी पेप्सि को), नैनालाल किदवई (समूह महाप्रबंधक तथा देश प्रमुख, एच एस बी सी इंडिया), चंद्राकोचर (सीईओ तथा प्रबंधक निदेशक आई सी आई सी बैंक)। भले ही महिलाएं व्यएवसाय के संचालन में समान रूप से सक्षम हैं, लेकिन महिला उद्यमी बनने की उनकी राह में अनेक सामाजिक और सांस्कृकतिक अड़चनें हैं। इनमें सबसे प्रमुख न सिर्फ भारत में बल्कि पूरे विश्वन में पुरूष अधिपत्यब वाले कॉरपोरेट परिदृश्यं का परंपरागत विचारधारा का होना है।

महिला उद्यमिता को बढ़ावा देने हेतु बहुस्त रीय रणनीति की आवश्य कता है जिसमें विभिन्ने स्टेाकधारक नामत: सरकार, वित्तीवय संस्थासएं, विशेषज्ञ समूह, व्यमवसाय एवं उद्योग संघ तथा महत्वमपूर्ण रूप से सफल महिला उद्यमियां शामिल हैं। फिक्कीन में हम उद्यमीय जागरूकता, क्षमता निर्माण तथा कौशल विकास को सृजित करने के प्रति प्रयत्नहरत हैं और कॉरपोरेट जगत में महिलाओं की शक्ति को परिलक्षित करने में महत्वृपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

9.0 महिला उद्यमियों के विकास के लिए चलायें जा रहे विभिन्न सरकारी योजनाएँ:

- स्त्री शक्ति योजना - इस योजना के तहत सरकार महिलाओं को आर्थिक सहायता प्रदान करती है, जिसके जरिए वह अपना खुद का काम-काज शुरू कर सकती है। सरकार इस योजना के माध्यम से महिलाओं को बैंक से 25 लाख रूपए तक का लोन दिलाने की काम करती है। इस योजना के तहत जो महिलाएं अपना बिजनेस शुरू करना चाहती हैं, लेकिन आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण नहीं कर पाती उन्हें एसबीआई बैंक द्वारा लोन प्रदान करवाया जाएगा। ताकि लोन प्राप्त कर महिलायें अपने सभी प्रकार की आर्थिक तथा वित्तीय समस्याओं का समाधान निकाल सके और अपना व्यवसाय शुरू कर सकें।
- महिला उद्यम निधि योजना: यह योजना महिला व्यवसायियों के विकाश के लिए लिए सिडबी द्वारा शुरू की गई है। महिला उद्यम निधि योजना के तहत सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमी महिला व्यवसायियों को अपने व्यवसाय को स्थायी रूप से चलाने के लिए 10 लाख रुपये तक का व्यवसाय ऋण प्रदान किया जाता है। इस योजना का मूल उद्देश्य महिला व्यवसायियों को बढ़ावा देना है। सिडबी द्वारा लिए गए व्यावसायिक ऋणों की सहायता से महिला व्यवसायी अपने एमएसएमई व्यवसाय में नई मशीनरी खरीद सकती हैं और व्यवसाय की आवश्यकता के अनुसार महिला उद्यम निधि तक पहुँच प्राप्त कर सकती हैं।
- सेंट कल्याणी योजना: यह योजना सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया की एक विशेष ऋण योजना है। इस योजना के तहत सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया द्वारा महिलाओं को व्यवसाय शुरू करने के लिए ऋण प्रदान किया जाता है। इस योजना के तहत विनिर्माण और लघु व्यवसाय के लिए ऋण उपलब्ध कराया जाता है।
- प्रधानमंत्री रोजगार योजना: यह योजना सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े महिला उद्यमियों के लिए सबसे कारगर योजनाओं में से एक है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य महिला उद्यमियों के माध्यम से कौशल-आधारित, स्व-रोजगार के अवसर प्रदान करना है। इस योजना की लाभ लेने के लिए आयु सिमा 35 वर्ष है और व्यवसाय क्षेत्र के लिए ऋण सीमा दो लाख लाख जबकि सेवा क्षेत्र के लिए ऋण सीमा पांच लाख है।
- मुद्रा योजना: यह भारत सरकार की एक पहल है जिसका उद्देश्य देश में महिलाओं को व्यावसायिक ऋण प्रदान करके और उन्हें समर्थन देकर उनकी स्थिति में सुधार करना है, ताकि वे आर्थिक रूप से स्वतंत्र और आत्मनिर्भर हो सकें। ऋण की स्वीकृति के बाद, उन्हें मुद्रा कार्ड दिए जाएंगे जो क्रेडिट कार्ड की तरह काम करते हैं, जिसमें निकासी की सीमा ऋण की 10: होगी। इस योजना में व्यवसाय के प्रकार, विस्तार के स्तर और ऋण के उद्देश्य के अनुसार कई अलग-अलग प्रकार की योजनाएं हैं। सरकार द्वारा इस योजना के तहत ऋण सीमा रु। 10 लाख की है।
- अन्नपूर्णा योजना: अन्नपूर्णा योजना स्टेट बैंक ऑफ इंडिया की एक विशेष ऋण योजना है। इस योजना के तहत महिलाओं के व्यवसाय का विस्तार करने में मदद करना है। इस योजना में महिला उद्यमी को 50 हजार रुपये तक लोन की सुविधा दी जाती है।
- भारतीय महिला बैंक बिजनेस लोन: भारतीय महिला बैंक बिजनेस लोन स्कीम भारतीय महिला बैंक द्वारा शुरू की एक योजना थी जो 2017 में स्टेट बैंक ऑफ इंडिया (SBi Bank) से मर्ज हो गयी है । इस योजना का उद्देश्य उद्यमियों को व्यवसाय शुरू करने, अपना बिजनेस आगे बढ़ाने या फिर कोई मैन्युफैक्चरिंग एंटरप्राइज के लिए 20 करोड़ रुपये तक का बिजनेस लोन उपलब्ध कराना है। महिला उद्यमियों को सस्ती दरों पर विशेष ऋण की सुविधा इस योजना के तहत उपलब्ध कराती है। इस बैंक का विजन महिलाओं को आर्थिक सशक्तिकरण प्रदान करना है।

- देना शक्ति योजना: यह योजना महिला उद्यमियों के लिए है, लेकिन केवल कृषि, खुदरा, विनिर्माण, छोटे उद्यम या माइक्रो-क्रेडिट संगठनों के क्षेत्र में सीमित है। भारतीय रिजर्व बैंक की सीमा के अनुसार, महिला लाभार्थियों को अधिकतम सीमा भी उस क्षेत्र के अनुसार प्रदान की जाती है जिसमें वे विस्तार कर रहे हैं या व्यवसाय खोलने की योजना बना रहे हैं।
- उद्योगिनी योजना: इस योजना के तहत उन महिलाओं को लोन मिलता है, जो महिलाएं खुद का कारोबार करना चाहती हैं।उद्योगिनी योजना में महिलाओं को न्यूनतम ब्याज दर पर अधिकतम 3 लाख रुपये तक का लोन मिलता है। इस योजना की खास बात यह है की अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति (एससी दृ एसटी) और शारीरिक रुप से अक्षम महिलाओं को ब्याज मुफ्त लोन दिया जाता है।
- ओरिएंट महिला विकास योजना: ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स (ओबीसी) बैंक इस योजना के तहत उन महिलाओं को ऋण प्रदान करता है जो व्यक्तिगत रूप से या संयुक्त रूप से, स्वरोजगार की मालिक हैं और 51: शेयर पूंजी रखती है। ओरिएंटल महिला विकास योजना में, महिला उद्यमियों को लघु उद्योगों के लिए 10 लाख रुपये से लेकर 25 लाख रुपये तक के ऋण दिए जाते हैं। इस ऋण का लाभ उठाने के लिए किसी प्रकार के गारंटर की आवश्यकता नहीं होती है, और महिला उद्यमी अपने ऋण को 7 वर्ष की अवधि में चुका सकती हैं। महिला उद्यमियों को लगभग 2: ऋण ब्याज दर रियायत भी दी जाती है।

10.0 निष्कर्ष:

निष्कर्षत महिला उद्यमियों के सम्बन्ध में यह कहना यथोचित होगा कि भारत में उद्यमिता के बढ़ते क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी में वृधि हुई है । महिला उद्यमिता देश के विकास में अहम भूमिका निभा रही है। भारत में महिला उद्यमिता के समक्ष अनेकों चुनोतियाँ और समस्याएं है जिनका सामधान कुछ हद तक सरकारी योजना के मदद से सरकार को करना होगा तो कुछ समाज को रूढिघ्वादी सोच से बाहर निकलन कर करना होगा। यह सत्य है की महिला उद्यमियों के लिए भारत में बहुत से योजनाएँ चलाये जा रहे है, किन्तु वो सभी योजनाएँ वैसी महिलावों के पहुच से आज भी बहार है जो नई स्टार्टअप शुरू करना चाहती है। इसलिए सरकार को चाहिए की योजना का प्रचार-प्रसार करें ताकि सभी तक जानकारी पहुच सकें और जरुरत मंद महिला नई व्यवसाय शुरू कर सके।

महिला उद्यमिता को किसी भी देश की आर्थिक प्रगति का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। महिला उद्यमी न केवल खुद को आत्मनिर्भर बनाती हैं, बल्कि दूसरों के लिए भी रोजगार के अवसर बढ़ाती है। भारतीय समाज में महिला उद्यमिता को प्रोत्साहन देने के लिए सामाजिक, पारिवारिक और आर्थिक मोर्चों पर बदलाव लाने की जरूरत है।

11.0 संदर्भ ग्रंथ सूची:

- रवि कुमार (2018) महिला उद्यमी: एक अध्ययन; विशिष्ट गुण, समस्याएँ, समाधान Remarking An Analisation, E: ISSN NO.: 2455-0817, VOL-3, ISSUE-5,pp-267-271
- https:èkèkwww.kailasheducation.comèk2020èk08èkmahila-udyami-samasya.html
- https:èkèkwww.scotbuzz.orgèk2017èk07èkudyamita.html
- https:èkèkwww.uou.ac.inèksitesèkdefaultèkfilesèkslmèkMCM-202.pdf
- https:èkèkwww.businessmanagementideas.comèkhièkentrepreneurship-2èkproblems-faced-by-women-entrepreneurs-in-indiaèk21048

भारतीय साइबर संस्कृति का व्योम : उपयोगिता दृष्टियों की प्रवृत्ति एवं व्यवहार

संदीप कुमार वर्मा

सहायक आचार्य, जनसंचार विभाग, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

शोध-सार - मानव जीवन के हर क्षेत्र में कंप्यूटर और इंटरनेट का महत्व जिस प्रकार पढ़ना और लिखना मानव का आधारभूत कौशल है ठीक उसी प्रकार आज कंप्यूटर और सूचना प्रोद्योगिकी के साधनों का अनुप्रयोग बुनियादी कौशल माना जाने लगा है। विद्यालय की पढ़ाई हो या महाविद्यालय या फिर विश्वविद्यालय का रिसर्च, सभी में इंटरनेट की भूमिका उल्लेखनीय हो गई है। अस्तु, साइबर संस्कृति को संजोता इंटरनेट ने हमें संचार समागम के अत्याधुनिक युग में पहुंचा दिया है। पूरी दुनिया में आज नवीन माध्य के रूप में सोशल नेटवर्किंग जरिया संचार का एक सशक्त माध्यम के रूप में उभरा है। खासकर आधुनिक भारतीय युवा पीढ़ी की दशा एवं दिशा तय करने में नवमीडिया की प्रभावशाली व निर्णायक भूमिका स्पष्ट परिलक्षित हो रही है। वर्तमान परिवेश चूंकि विज्ञान संचालित है, अत: विज्ञान एवं तकनीकी विकास की बदौलत हमारी सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यताओं में भी परिवर्तन हुआ है। ऐसे में उपयोगकर्त्ताओं की प्रवृत्ति एवं व्यवहार-विश्लेषण के निहितार्थ भारतीय साइबर संस्कृति का सर्वाधिक विचारणीय आयाम यह है कि किस प्रकार समकालीन भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियां एवं दूषित वातावरण जो समाज की विकास एवं प्रगति में अवरोध उत्पन्न कर रहा है, के खिलाफ ठोस एवं कारगर साइबर कार्यशैली को विकसित किया जाए। क्योंकि, सूचना क्रांति के इस युग में इंटरनेट जनसंचार का सबसे प्रभावी माध्यम सिद्ध हुआ है।

कुंजी शब्द : साइबर संस्कृति, सूचना क्रांति, सोशल नेटवर्किंग, सहमति-निर्माण, जनसंवाद, वस्तु प्रस्तुति, उपक्तावाभोदी प्रवृत्ति, मूल्य धर्मिता।

परिचय

आधुनिक संचार विचारक डेनिस मैक्वेल ने ठीक ही कहा है कि ''मीडिया समाज परिवर्तन की यंत्रशक्ति है।''[01] समकालीन परिवेश में साइबर मीडिया ने जनसंचार का एक ऐसा जाल बुना है कि पूरी दुनिया, घर, आंगन तथा ड्राइंग कक्ष तक सिमट कर रह गई है। आज मानव जिज्ञासारूपी घर की समस्त खिड़कियां साइबर संचार की तरफ खुली हैं जहां ज्ञान, विज्ञान, शिक्षा और मनोरंजन के क्षेत्र में नए कीर्तिमानों का जन्म हुआ है। और, परोक्ष रूप से व्यक्ति के विचार एवं व्यवहार प्रभावित हुए हैं जिन्होंने सामाजिक परिर्वनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हालांकि, उपयोगकर्ताओं की प्रवृत्ति एवं व्यवहार के आलोक में नवमीडिया की कार्यशैली एवं प्रभाव समाज विकास की दिशा से हटकर हमारे समाज को तथाकथित आधुनिकीकरण के नए रूप देने की प्रक्रिया में स्वयं के आधार पर चिंता का विषय बनते जा रहे हैं। विगत कुछ वर्ष पहले तक साइबर मीडिया वैकल्पिक मीडिया के तौर पर समाज के सजग प्रहरी की भूमिका से जुड़ने की उम्मीद बनी। लोगों द्वारा ऐसी संभावना व्यक्त की गई कि इनका कार्यान्वयन क्षेत्र व्यावसायिकता तथा उपभोक्ता वर्ग विशेष तक पहुंच को लेकर नहीं, अपितु मानवीय व लोकतांत्रिक समाज के बेहतर लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु किया जाएगा। आज जब हम बदले हुए परिवेश में साइबर संस्ष्कृति की बात करते हैं तो ऐसा लगता है कि इस अत्याधुनिक संचार तकनीकी ने उपयोगकर्ताओं की जिन्दगी को गहराई से प्रभावित किया है। सामाजिक सोच के परिवर्तनीय पहलू के अलग-अलग स्तर पर यह एक बेहद शक्तिशाली माध्यम का स्वरूप धारण कर चुका है। समाज वैज्ञानिक ऑगबर्न के अनुसार ''प्रौद्योगिकी, समाज को पर्यावरण में परिवर्तन द्वारा जिसके प्रति हमें अनुकूलित होना पड़ता है, बदलती है। यह परिवर्तन प्राय: भौतिक पर्यावरण में पहली बार आता है। हम इन परिवर्तनों के साथ जो अनुकूलन करते हैं, उससे प्रथाओं तथा सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन हो जाता है।''[02] यह तथ्य साइबर मीडिया संस्कृति पर भी लागू होता है। क्योंकि, नवमीडिया तो वैसे भी उच्चतर तकनीकी की ही उपज है। जनसंचार माध्यम के रूप में साइबर मीडिया उपयोगकर्ताओं के चिंतन, व्यवहार तथा सहमति निर्माण का कार्य भी करते हैं।

प्रस्तुति एवं विश्लेषण

वर्तमान संदर्भ में साइबर मीडिया को जनसंचार का सशक्त माध्यम माना जा रहा है। प्रस्तुत शोध प्रपत्र का मुख्य उद्देश्य उपयोगकर्ताओं की प्रवृत्ति एवं व्यवहार विश्लेषण के आलोक में साइबर मीडिया की भूमिका व प्रभाव का अनुशीलन है। भारतीय संदर्भ में साइबर मीडिया की अंतर्वस्तु व प्रस्तुति का प्रभाव क्षेत्र भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक वर्चस्व का महत्त्वपूर्ण कारक है। वर्तमान में उपयोगकर्ता-व्यवहार एवं साइबर मीडिया संस्कृति दोनों कहीं-न-कहीं एक दूसरे के पर्याय अथवा पूरक हो चुके हैं। बगैर इंटरनेट आधुनिक युवा चिंतन व्यवहार का विस्तार या उसके आधिपत्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। उदाहरण के तौर पर आज इंटरनेट की पहुंच ही निर्णय करने लगे हैं कि कोई विचार, सेवा या उत्पाद बाजार के हिसाब से बिक्री योग्य हैं भी अथवा नहीं। इसमें दो मत नहीं है कि वैश्विक तंत्र को संचारयुक्त अनंत संभावनाओं से भरा-पूरा क्षेत्र बनाने में साइबर मीडिया की उल्लेखनीय भूमिका है। डॉ. डरबन के शब्दों में इसे (साइबर मीडिया संस्कृति) को युक्ति कहना अधिक श्रेयस्कर होगा क्योंकि इसके अंतर्गत संचार की वे सभी क्रियायें आ जाती हैं जिनके अनुसार दृश्यमान अथवा मौखिक सूचना संप्रेषित होती है।

साइबर मीडिया की प्रकृति में कुछ निर्धारित मापदंड हैं जैसे कि उसका प्रमुख लक्ष्य सूचना को अत्यंत तीव्र गति से प्रापक तक पहुंचाना। अगर कोई सूचना स्पष्ट नहीं है तो भी वह उतनी ही तीव्र गति से संचारित करेगा। हालांकि, उसका प्रभाव भी स्पष्ट नहीं होगा। अस्तु, इंटरनेट आधारित मीडिया अंतर्वस्तु की गुणवत्ता को प्रभावित कर पाने समर्थ नहीं हो पाता है। इस संदर्भ में प्रो. सुधीश पचौरी कहते हैं कि ''समकालीन दौर में इंटरनेट पोषित संचार-अंतर्वस्तु की गुणवत्ता काफी मायने रखती हैं, उपयोगकर्ताओं की प्रवृत्ति व व्यवहार को समझने में, उसका व्यवहार-विश्लेषण करने में। यही कारण है कि केवल भारत ही नहीं, बल्कि संपूर्ण विश्व के सापेक्ष साइबर मीडिया की संस्कृति एवं प्रभाव को व्याख्यायित किए जाने की महती आवश्यकता है। क्योंकि, किसी भी किस्म की पेचीदगी या उलझाव उपयोगकर्ताओं के मानस पटल पर विपरीत प्रभाव डाल सकती है। इसका सर्वाधिक सटीक एवं उपयुक्त बचाव यही है कि साइबर मीडिया पर परोसे गए कंटेंट सही, तथ्यपरक एवं विषय केंद्रित हो।''[03]

अस्तु, साइबर-व्योम में भारतीय साइबर संस्कृति के निहितार्थ कतिपय महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का विश्लेषण करने पर जो तथ्य सामने आता है, वह यह है कि उपयोगकर्ताओं की इंटरनेट में गहरी मनोवैज्ञानिकता अंत:निहित होती है। उपयोगकर्ता की विभिन्न प्रकार की वृत्तियों को साइबर मीडिया के माध्यम से बहुत शीघ्र ही किसी नियोजित दिशा में उद्‌बुद्ध, उत्तेजित और उत्प्रेरित किया जा सकता है। इतना ही नहीं, उपयोगकर्ता की जिज्ञासा तथा उत्सुकता को जाग्रत तथा शमित करने की दिशा में इंटरनेट पर निर्मित कथ्य को बहुत ही प्रभावी ढंग से सक्रिय किया जा सकता है। कहना गलत न होगा कि एक मायने में उपयोगकर्ता की सुरक्षा-वृत्ति, सुख-सुविधा वृत्ति, परंपराओं व आदतों के प्रति लोभ मोह की वृत्ति, साहसिकता-वृत्ति, सूचना संचय-वृत्ति, खेल-वृत्ति आदि का मनोवैज्ञानिक स्तर पर साइबर मीडिया की संस्कृति अच्छी तरह दोहन करते हैं। इस आलोक में संचार विचारक प्रो. बी. के. कुठियाला कहते हैं कि ''आज तकनीकी और प्रौद्योगिकी के उन्ध्नत प्रभाव ने हर व्यक्ति को साइबर दुनिया में प्रवेश होने के लिए बाध्य कर दिया है। इसका नानाविध रूपों में फैलाव जिसे आजकल तकनीकी भाषा में कनवर्जेंस कहा जा रहा है, की वजह से उपयोगकर्ता के मानस पर इंटरनेट का गहरा प्रभाव पड़ा है। सूचनाओं की भूख के आयाम आजकल बहुत विस्तृत एवं व्ध्यापक हो गए हैं। प्रभाव जगजाहिर है और हम भी इससे इंकार नहीं कर सकते हैं कि साइबर मीडिया की अनेक सकारात्मकता के बावजूद भारत ही नहीं, अपितु पूरे विश्व की सांस्कृतिक विविधता नष्ट हो रही है।''[04] तथ्यपरकता को जाने-अनजाने में ही इंटरनेट ने आज पूरी तरह से उलझा दिया है।

साइबर मीडिया संस्कृति में उपयोगकर्ताओं की सृजनशीलता का ह्रास हो रहा है। और, सूचनाओं की भ्रामक संस्कृति अपना आधिपत्य कायम कर रही है। इस निरंतर और तीव्र परिवर्तन से उपयोगकर्ताओं की प्रवृत्ति व व्यवहार सापेक्षिक सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया भी उतनी ही तेजी से बदलती जा रही है। इस परिप्रेक्ष्य में प्रो. के. वी. राव कहते हैं कि ''यह बदलाव केवल सकारात्मक होता तो संचार दुनिया की बात ही कुछ और होती। निश्चित रूप से हमारा वर्तमान समाज साइबर मीडिया के प्रभाव से संगठित होने की बजाय निरंतर विघटनोन्मुखी होता जा रहा है। और, इसका प्रभाव केवल उपयोगकर्ताओं तक ही सीमित नहीं है। इसका कुप्रभाव चहुंओर परिलक्षित हो रहा है। स्थिति बहुत नाजुक है।''[05]

साइबर मीडिया संस्ष्कृति में उपयोगकर्ताओं के अभिव्यक्ति की भाषा, मुहावरे, शैली और शिल्प लगभग सबकुछ बदल गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि साइबर संस्कृति की समझ केवल उपयोगकर्ताओं की पीढ़ी ही समझती है, लेकिन पूरे समाज को उस पर चलाने की कोशिश पर अडिग है। क्योंकि, उसकी दृष्टि में वह ही सब कुछ जानता है। अनभिज्ञता शब्द उसके कोश से बाहर है। बहुचर्चित पत्रकार आलोक मेहता लिखते हैं कि ''आज भारतीय जनमानस में फैले लोकप्रिय तकनीकी, मिथकों आदि को लेकर नित नए-नए प्रयोग किए जा रहे हैं। इसलिए शेष विश्व की तुलना में हमारे यहां इसका प्रभाव थोड़ा जटिल है। हम भारतीय उपयोगकर्ताओं की चिंतन व कार्यशैली उस उस स्तर तक ठोस एवं सुनियोजित नहीं है कि हम साइबर मीडिया के दुष्प्रभाव को प्रभावी तरीके से नियंत्रित कर सकें। साइबर मीडिया का प्रभाव आज केवल शहरों व कस्बों तक ही सीमित नहीं है। और, इसका चलन व परिक्षेत्र केवल कुछ वर्गों तक ही बाध्य नहीं है। पर विडंबना यह है कि साइबर मीडिया संस्कृति ने कहीं-न-कहीं हमारी सामूहिकता की भावना पर प्रहार किया है, उसे खंडित किया है। भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में साइबर मीडिया का दुष्प्रभाव पूरी ताकत सहित विद्रूपता के संग प्रभावी हुई है।''[06]

दरअसल समकालीन भारतीय समाज में साइबर मीडिया की वर्चस्वशाली संस्कृति तेजी से विकसित हुई है। एक गैर सरकारी संगठन 'पथ इंडिया' द्वारा किए गए सर्वेक्षण में इस बात का खुलासा हुआ है कि साइबर मीडिया के निशाने पर लगभग 63 प्रतिशत उपयोगकर्ताओं में मध्य वर्ग, किशोर-किशोरियां, कामकाजी महिलाएं व पुरूष हैं। प्रो. सुभाष धुलिया कहते हैं कि ''वैश्वीकरण के साथ-साथ जब बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अपनी सेवा एवं उत्पादों के लिए अंतरराष्ट्रीय बाजार की खोज में बाजार-युद्ध में उतरीं तो स्वयंमेव 'लाभ-युद्ध' भी आरंभ हो गया। साथ ही साथ मूल्यों का अवमूल्यन भी तेज हो गया। हमारी सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यताएं खुद-ब-खुद ढहने लगीं। नैतिक मूल्यों का पतन और परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार का सर्वत्र बोलबाला हो गया।''[07]

यह ज्ञात तथ्य है कि भारत में बीस-तीस वर्ष से कम उम्र के युवा वर्ग की आबादी लगभग पचास करोड़ से भी अधिक है जो यूरोप के किसी भी देश या अमेरिका या आस्ट्रेलिया की जनसंख्या से कहीं अधिक है। यह एक ऐसी उम्र है कि जब ये किशोरवय न तो इतने व्यस्क होते हैं कि अपना निर्णय खुद ले सकें और न इतने छोटे होते हैं कि इनके निर्णय इनके लिए मां-बाप करें। सुविख्यात मनोवैज्ञानिक प्रो. रंजीत वर्मा लिखते हैं कि ''साइबर मीडिया का प्रभाव सबसे अधिक युवाओं पर पड़ा है। सूचना क्रांति ने कई सकारात्मक कीर्तिमान स्थापित की है। शिक्षा व रोजगार में सकारात्मक बदलाव से हम इंकार नहीं कर रहे हैं। विज्ञान व तकनीकी विकास निरंतर जारी है। लेकिन, मानसिक स्तर पर हमारा समाज पहले की अपेक्षा कुंठित हुआ है, प्रदूषित हुआ है, हमारी शक्ति का क्षरण हुआ है। मानसिक शांति की बजाय भौतिकवादी प्रवृत्तियों की ओर हमारा झुकाव बढ़ा है। लेकिन हम चहुंओर अवसाद से घिर गए हैं। शिक्षा व ज्ञान शांति का जरिया नहीं रह गए हैं। सांस्कृतिक ढांचे पर बाजार का हमला तेज हो गया है। हमारा दिमाग पहले की तुलना आज ज्यादा भ्रमित हो गया है। सूचनाओं की बहुलता से हमारी जिज्ञासा शांत होने की बजाय उलझ गई है। मनोविज्ञान में यह सबसे खतरनाक स्थिति है जहां हमारी चेतनाएं यंत्रवत हो जाती हैं। और, मनुष्य जिंदा लाश होकर रह जाता है। सबकुछ शून्य-सा प्रतीत होने लगता है।''[08]

साइबर मीडिया संस्कृति व प्रभाव संबंधी प्रत्यक्षीकरण की बात करते हुए हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि उपयोगकर्ता के चारों ओर कई प्रकार की उत्तेजनाएं प्रवाहित होती रहती हैं। उपयोगकर्ता इन सभी उत्तेजनाओं में से कुछ का ही चयन करता हैं जिसे कई प्रकार के बाह्य एवं आंतरिक अवधान प्रभावित करते हैं। बाह्य वातावरणीय कारक उत्तेजना की तीव्रता, विषमता, आकार, आवृत्ति, पहचान, गति, नवीनता आदि को सम्मिलित किया जा सकता है जबकि

अवधान के अंतर्गत साइबर मीडिया पर परोसे गए कंटेंट के आलोक में अधिगम, अभिप्रेरण, सामाजिकता, व्यक्तित्व, सूचना संसाधन व ग्रहणीयता आदि महत्त्वपूर्ण घटक हैं। डॉ. विशाल भारद्वाज कहते हैं कि ''अनेक खूबियों के बावजूद साइबर मीडिया की उपयोगिता संदेहास्पद है। क्योंकि, साबइर मीडिया अपनी उपयोगिता में बहुत ही उच्चस्तरीय मानसिकता एवं व्यवहार की मांग करता है। शिक्षा एवं व्यवहार में सिद्धांत की बजाय यह (साइबर मीडिया) कुशलता की हिमायती करता है। कोई जरूरी नहीं है कि हरेक उपयोगकर्ता कार्यकुशल ही हो। यही कारण है कि इंटरनेट का सर्वाधिक दुष्प्रभाव अपरिपक्व उपयोगकर्ताओं पर है। कार्यकुशल लोग इसके दुष्प्रभाव से पूरी तरह मुक्त हैं। उदाहरण के तौर पर ज्ञान-विज्ञान, नीति, कूटनीति, राजनीति, तकनीकी, चिकित्सा, शोध, प्रशासन, अर्थनीति, बाजार आदि क्षेत्रों में साइबर संस्कृति का सकरात्मक प्रभाव सहज ही अनुभूत है। वैसे भी साइबर मीडिया को केवल सूचना-संप्रेषण का साधन-मात्र ही नहीं माना जा सकता है। यह प्रवृत्ति नियामक के तौर पर हमारे बीच अधिक सक्रिय है।''[09]

आलोच्य परिप्रेक्ष्य में उपयोगकर्ता की प्रवृत्ति एवं व्यवहार में परिवर्तन हेतु एक महत्त्वपूर्ण संघटक यह भी है कि वह अपनी ही मनोवृत्ति, अनुभूति, भाव एवं संवेगों को सीधे समझने में असमर्थ होता है। वह अपने व्यवहारों के प्रेक्षण के आधार पर उस परिस्थिति को अधिक समझता है जहां उससे संबंधित आंतरिक संकेत अस्पष्ट होते हैं। यदि हम व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से बात करें तो साइबर मीडिया कंटेंट की व्यावसायिकता के प्रभाव ने हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक नैतिक मानदंडों को दरककिनार करना आरंभ कर दिया है। वस्तुतः यह एक प्रकार की मानसिक विकृति का परिचायक है। कुछ लोग तो इसके अभ्यस्त हो चुके हैं। लेकिन संसार को देखने का यह तरीका सही और स्वाभाविक नहीं है, क्योंकि हमने अपने चिंतन व बौद्धिकता को घटकाकर, नैतिक मूल्यों से परहेज कर, भौतिकवादी वृत्तियों की ओर आसक्त होकर खुद अचौतन्य बना लिया है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

साइबर मीडिया उपभोक्ता-मन को अपनी बहाव में बहा ले जाने वाला सशक्त हथियार है जिसका लक्ष्य स्पष्टता के बावजूद भ्रामक है, संदेहास्पद है। संचार विशषज्ञों का मानना है कि मीडिया के इस नए प्रारूप ने उत्तर आधुनिक नए परिस्थितियों को रचा है। इसने उपयोगकर्ता के देखने-समझने के ढांचे को बदल दिया है तथा कभी पूरी न होने वाली एक तृष्णा को जना है। आज इसका अधिकतर हिस्सा डिजिटल की ओर उन्मुख है। लेकिन मानवीय मूल्यों व निर्णायक संबंधों को डिजिटलाइज नहीं किया जा सकता है। तकनीकी विकास से पनपी साइबर संस्कृति ने मानवीय कलाओं व उसकी रचनात्मकता को नष्ट करने हेतु आमदा है। अस्तु, साइबर मीडिया की पहुंच को संयमित एवं तर्कसम्मत बनाये जाने की आज महती आवश्यकता है। इसमें प्रत्येक की भागीदारी अपेक्षित है। शासन, प्रशासन एवं राजनीति को वैश्विक स्तर पर मूल्यपरक बनना होगा। एक समेकित नीति व मार्ग विकसित करना होगा। विकास की प्रक्रिया को मानवोन्मुखी बनाना होगा। इस अनुक्रिया में कतिपय प्रयास उल्लेखनीय हैं; यथा-

- संवाद की स्थापना.
- जनसूचना की सामाजिक-सांस्कृतिक महत्त्व को रेखांकित करना।
- विकास संबंधी प्रक्रियाओं व समस्याओं पर मूल्यपरक व मानवोन्मुखी पहल को चयनित कर बढ़ावा देना।
- साइबर अपराध पर अंकुश लगाने हेतु ठोस नीति एवं नियमों के अनुपालन को सुनिश्चित करना।
- जागरूकता, सहभागिता, शिक्षा एवं सदाचरण को अभिप्रेरित करना।

संदर्भ-सूची

01. पचौरी, डॉ. सुधीश, उत्तर आधुनिक मीडिया विमर्श, पृ.सं. 31.
02. वहीं, पृ.सं. 83.
03. कुमार, डॉ. मनोज, साइबर मीडिया संस्कृति एवं प्रभाव (आलेख), समयांतर (फरवरी, 2011), मासिक पत्रिका, पृ.सं. 21.
04. वहीं, पृ.सं. 23.
05. वहीं, पृ.सं. 24-25.
06. दीक्षित, डॉ. संजीव कुमार, जनमाध्यम प्रौद्योगिकी एवं प्रभाव, रचना प्रकाशन, पृ.सं. 37.
07. वहीं, पृ.सं. 39.
08. पचौरी, डॉ. सुधीश, नए जनसंचार माध्यम और हिंदी, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं. 81.
09. वहीं, पृ.सं. 121.

भारत में नागरिकता एवं अद्यतन संशोधन

डॉ० त्रिविक्रम तिवारी

असिस्टेंट डायरेक्टर/असिस्टेंट प्रोफेसर, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश

नागरिकता किसी राज्य में व्यक्ति के विधिक व्यक्तित्व को प्रदर्शित करती है, जो की न सिर्फ व्यक्ति के राज्य के प्रति कर्तव्य को स्पष्ट करती है, अपितु यह व्यक्ति के अधिकारों का भी आधार है। भारतीय संविधान के भाग 2 के अनुच्छेद 5 से लेकर 11 तक नागरिकता संबंधी प्रावधानों का वर्णन है। संविधान का भाग 2 नागरिकता से संबंधित संपूर्ण विधि प्रस्तुत नहीं करता। यह केवल उन वर्गों के बारे में उल्लेख करता है जो संविधान लागू होने की तिथि 26 जनवरी 1950 को भारतीय नागरिक माने गए थे तथा नागरिकता संबंधी शेष बातों पर विधि बनाने का अधिकार संसद को प्रदान करता है। अनुच्छेद 11 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए संसद ने नागरिकता संबंधी बातों के विनियमन के प्रयोजन से 'भारतीय नागरिकता अधिनियम 1955' पारित किया। यह स्वतंत्र भारत का नागरिकता संबंधी प्रथम अधिनियम है, जो की नागरिकता प्राप्त के संदर्भ में संपूर्ण विधि है। बाद में विभिन्न वर्षों में अभीष्ट परिवर्तन हेतु विभिन्न नागरिकता (संशोधन) अधिनियमयों द्वारा 'भारतीय नागरिकता अधिनियम 1955' में व्यापक संशोधन किए गए हैं। इस अधिनियम में, विभिन्न परिस्थितियों के चलते हैं, कुल 10 छोटे-बड़े संशोधन किए गए हैं। इन संशोधनों में 1986, 2003, 2015 और 2019 के संशोधन प्रमुख हैं। नागरिकता अधिनियम में दसवां व नवीनतम संशोधन वर्ष 2019 में हुआ, जो कि नागरिकता अधिनियम 1955 में आवश्यक एवं अनिवार्य संशोधन करता है।

कुंजी शब्द

1. नागरिकता, 2. राष्ट्रीयता, 3. संविधान, 4. अनुच्छेद, 5. उपबंध, 6. अधिनियम

उद्देश्य:

इस शोधपत्र का उद्देश्य भारतीय संविधान के नागरिकता सम्बन्धी उपबंधों से अवगत कराने के साथ-साथ भारत की नागरिकता प्राप्त करने तथा खोने के तरीकों की जानकारी देनेय भारतीय नागरिकता अधिनियम 1955 के वर्तमान स्वरुप तथा उसमें हुए अद्यतन परिवर्तनों का परिचय देना है।

नागरिकता किसी व्यक्ति की संप्रभु राज्य अथवा राष्ट्र की विधिक सदस्यता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। नागरिकता की विधिक स्थिति व्यक्ति के राज्य के प्रति न सिर्फ कर्तव्य को स्पष्ट करती है, अपितु यह व्यक्ति के अधिकारों का भी आधार है। निष्कर्षत: नागरिकता किसी राज्य में व्यक्ति के विधिक व्यक्तित्व को प्रदर्शित करती है। अंतर्राष्ट्रीय विधि में नागरिकता का स्थान राष्ट्रीयता ले लेती है, परंतु भारत जैसे देश जहां उप-राज्यों जैसे कि उत्तर प्रदेश, गुजरात, मणिपुर, तमिलनाडु, पंजाब इत्यादि में अलग अलग नागरिकता का प्रावधान नहीं है, यह दोनों समानार्थी शब्द हो जाते हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय संविधान में दुनिया के अन्य संविधानों के समान ही नागरिकता का प्रावधान किया गया। परंतु विभाजन का दंश झेल रहे राष्ट्र के लिए ऐसा कर पाना सरल नहीं था क्योंकि उस समय भारत की जनसंख्या प्लवित अवस्था में थी। कारण यह था की धार्मिक आधार पर विभाजित हुए पाकिस्तान से बड़ी संख्या में लोग अपने मूल देश भारत की ओर आ रहे थे और साथ ही समाज का एक वर्ग पाकिस्तान पलायन कर रहा था। ऐसे में भारत आ रहे लोगों को नागरिकता प्रदान करना तथा भारत छोड़कर जा रहे लोगों की नागरिकता को समाप्त करना आवश्यक था। साथ ही तात्कालिक सरकार द्वारा भविष्य में भी पाकिस्तान के अल्पसंख्यकों के भारत आगमन का विकल्प खुला रखा था। अत: ऐसे प्रावधानों का समावेशन भी आवश्यक था, जो भविष्य में पाकिस्तान से भारत आने वाले लोगों को नागरिकता प्रदान कर सके। इन कारणों के परिणामस्वरूप भारत की संविधान सभा को नागरिकता संबंधी प्रावधानों पर अंतिम निर्णय तक पहुंचने में 2 वर्ष से अधिक का समय लगा।[1]

भारतीय संविधान के भाग 2 के अनुच्छेद 5 से लेकर 11 तक नागरिकता संबंधी प्रावधानों का वर्णन है। भारतीय संविधान में नागरिकता की कोई परिभाषा नहीं दी गई है। आमतौर पर किसी भी देश में निवास करने वाले लोगों को -नागरिक एवं विदेशी- दो वर्गों में विभाजित किया जाता है। नागरिक को कुछ सामाजिक एवं राजनीतिक अधिकार प्राप्त होते हैं जो विदेशी व्यक्ति को प्राप्त नहीं होते।[2] भारतीय संविधान में भी इस प्रकार के अधिकारों का वर्णन है। अनुच्छेद 15, 16, 19, 29 एवं 30 में वर्णित मूल अधिकार कुछ संवैधानिक पदों जैसे कि राष्ट्रपति- अनुच्छेद 58(1)(अ); उपराष्ट्रपति अनुच्छेद- 67(3)(अ); उच्च एवं उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश- अनुच्छेद 217(2), 214(3); राज्यपाल- अनुच्छेद 157; महान्यायवादी- अनुच्छेद 76; महाधिवक्ता- अनुच्छेद 165 आदि को धारण करने का अधिकार एवं केंद्रीय एवं राज्य विधान मंडलों के प्रतिनिधियों को चुनने एवं इन संस्थाओं का सदस्य बनने का अधिकार केवल नागरिकों को ही प्रदान किए गए हैं।[3]

संविधान का भाग 2 नागरिकता से संबंधित संपूर्ण विधि प्रस्तुत नहीं करता। यह केवल उन वर्गों के बारे में उल्लेख करता है जो संविधान लागू होने की तिथि 26 जनवरी 1950 को भारतीय नागरिक माने गए थे तथा नागरिकता संबंधी शेष बातों पर विधि बनाने का अधिकार संसद को प्रदान करता है। अनुच्छेद 5 संविधान के लागू होने की तिथि पर भारत में रह रहे ऐसे व्यक्ति को नागरिकता प्रदान करता है जो स्वयं या जिसके माता-पिता में से कोई भारत में जन्मा हो अथवा संविधान लागू होने के 5 वर्ष पूर्व से भारत का निवासी रहा हो। अनुच्छेद 6 पाकिस्तान से प्रव्रजन कर भारत आए व्यक्तियों की नागरिकता का उल्लेख करता है। अनुच्छेद 7 भारत से प्रव्रजन कर पाकिस्तान जाने वाले लोगों की नागरिकता की समाप्ति की घोषणा करता है। अनुच्छेद 8 भारतीय उत्पत्ति के ऐसे व्यक्तियों की नागरिकता का प्रावधान करता है, जो विदेशों में रहते हैं। अनुच्छेद 9 भारतीय मूल के ऐसे व्यक्तियों की नागरिकता की समाप्ति का उपबंध करता है, जिन्होंने स्वेच्छा से विदेशी राज्य की नागरिकता ग्रहण कर ली है। अनुच्छेद 10 यह उपबंध करता है कि प्रत्येक व्यक्ति जो अनुच्छेद 5 से लेकर 9 के अनुसार भारत का नागरिक है या माना जाता है उसका यह अधिकार अनंतिम ना होकर संसद द्वारा बनाई गई विधि के अधीन होगा।[4] अनुच्छेद 11 संसद को नागरिकता अर्जन, समाप्ति तथा इस संबंध में किसी अन्य विषय पर कानून बनाने की शक्ति प्रदान करता है। अर्थात अनुच्छेद 11 द्वारा प्रदत्त अधिकार का प्रयोग करते हुए संसद कानून बनाकर किसी को नागरिकता प्रदान कर सकती है या किसी की नागरिकता समाप्त कर सकती है अथवा नागरिकता अर्जन या समाप्ति के संदर्भ में कुछ विशिष्ट उपबंधों को अधिनियमित कर सकती है। इस संदर्भ में संसद की शक्ति अनंतिम है, यद्यपि नागरिकता प्रदान या समाप्त करने हेतु संसद द्वारा कानून पारित करना आवश्यक है।[5]

अनुच्छेद 11 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए संसद ने नागरिकता संबंधी बातों के विनियमन के प्रयोजन से 'भारतीय नागरिकता अधिनियम 1955' पारित किया। यह स्वतंत्र भारत का नागरिकता संबंधी प्रथम अधिनियम है, जो की नागरिकता प्राप्त के संदर्भ में संपूर्ण विधि है। बाद में विभिन्न वर्षों में अभीष्ट परिवर्तन हेतु विभिन्न नागरिकता (संशोधन) अधिनियमयों द्वारा 'भारतीय नागरिकता अधिनियम 1955' में व्यापक संशोधन किए गए हैं। नागरिकता संशोधन अधिनियम 2019 भी इसी पूर्वर्ती अधिनियम में आवश्यक संशोधन करता है।

नागरिकता अधिनियम 1955 का वर्तमान स्वरुप

नागरिकता अधिनियम 1955 का वर्तमान स्वरूप, उसके मूल स्वरूप से कुछ भिन्न है जिसका कारण इस अधिनियम में हुए बहुतेरे संशोधन हैं। इस अधिनियम में, विभिन्न परिस्थितियों के चलते हैं, कुल 10 छोटे-बड़े संशोधन किए गए हैं। इन संशोधनों में 1986, 2003, 2015 और 2019 के संशोधन प्रमुख हैं। नागरिकता अधिनियम में दसवां व नवीनतम संशोधन वर्ष 2019 में हुआ। यह अधिनियम 9 व 11 दिसंबर 2019 को क्रमशः लोकसभा व राज्यसभा से पारित होने के पश्चात् 12 दिसंबर 2019 को राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत किया गया तथा इसे 10 जनवरी 2020 से लागू किया गया।

नागरिकता अधिनियम 1955 में कुल 24 धाराएं हैं। इसमें धारा 1 में अधिनियम का नाम बताया गया है तथा धारा 2 में अधिनियम में प्रयोग किया गए विभिन्न शब्दों की व्याख्या की गई है। धाराएं 3 से 7 नागरिकता प्राप्त करने के विभिन्न उपाय बताती हैं तथा धाराएं 7।-7क् ओवरसीज नागरिकता अर्थात विदेशी भारतीयों की नागरिकता के लिए उपबंध प्रदान करती हैं। धारा 8 से 10 नागरिकता की समाप्ति के प्रावधान निश्चित करती हैं। इसके बाद की धाराएं पूरक प्रकृति की हैं तथा वे विभिन्न प्रकार की प्रक्रियाओं को निश्चित करती हैं। इसके अलावा इस अधिनियम में दो अनुसूचियां हैं। अधिनियम के मुख्य प्रावधानों का विश्लेषण इस प्रकार है-

नागरिकता प्राप्ति के प्रावधान

इस अधिनियम के अधीन संविधान लागू होने के पश्चात निम्नलिखित पांच प्रकार[6] किसे नागरिकता प्राप्त की जा सकती है-

(1) जन्म से नागरिकता

नागरिकता अधिनियम की धारा 3 यह उपबंधित करती है कि निम्नांकित दशाओं में एक व्यक्ति भारत की नागरिकता प्राप्त कर सकता है:-

(a) प्रत्येक व्यक्ति जिसका जन्म 26 जनवरी 1950 पश्चात् किंतु 1 जुलाई 1987 के पूर्व हुआ हो,

(b) 1 जुलाई 1987 पश्चात् किंतु नागरिकता संशोधन अधिनियम 2003 के पूर्व जन्मा हो और जिनके माता-पिता उसके जन्म के समय भारत के नागरिक थे,

(c) संशोधन अधिनियम 2003 पर या उसके पश्चात जहाँ (i) उसके माता-पिता दोनों भारतीय नागरिक हैं, या (ii) उसके माता-पिता में से कोई एक भारत का नागरिक है।

गौरतलब है कि धारा 3 अपनी उपधारा 2 में अपवाद का प्रावधान देता है जिसके अनुसार उपरोक्त नियम किसी विदेशी संप्रभु के दूत एवं दुश्मन राष्ट्र के किसी व्यक्ति पर लागू नही होता है।

(2) वंशक्रम द्वारा नागरिकता

धारा 4 यह प्रावधान प्रदान करती है की कोई ऐसा व्यक्ति जो 26 जनवरी, 1950 को या उसके पश्चात भारत के बाहर पैदा हुआ हो तो वो वंशक्रम द्वारा भारत का नागरिक होगा, यदि उसके जन्म के समय उसका पिता भारत का नागरिक है। किंतु यदि किसी व्यक्ति का पिता वंश क्रम से भारत का नागरिक नहीं है तो वह व्यक्ति तब तक भारत का नागरिक नहीं होगा जब तक की-

(d) उसका जन्म किसी भारतीय कॉउंसलेट में एक निश्चित अवधि के भीतर पंजीकृत ना करा लिया गया हो या

(e) उसका पिता उसके जन्म के समय भारत सरकार के अधीन सेवारत हो

विदेशों में पैदा होने वाले लोगों को भारतीय नागरिकता उपर्युक्त शर्तों को पूरी करने से प्राप्त होती है।

(3) रजिस्ट्रीकरण द्वारा नागरिकता

धारा 5 के अंतर्गत कोई भी व्यक्ति जो संविधान या नागरिकता अधिनियम के उपबंधों के अनुसार नागरिक नहीं है, रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन देकर भारत की नागरिकता अर्जित कर सकता है। रजिस्ट्रीकरण द्वारा निम्नलिखित व्यक्ति नागरिकता प्राप्त कर सकते हैं-

(क) व्यक्ति जो रजिस्ट्रेशन के लिए आवेदन पत्र देने के 5 वर्ष पहले से भारत में आमतौर से निवास कर रहा होय

(ख) भारत में जन्मा व्यक्ति भारत के बाहर किसी अन्य देश में आमतौर से निवास कर रहा होय

(ग) भारतीय नागरिकों की पत्नियांय

(घ) भारतीय नागरिकों के नाबालिक बच्चेय

(ङ) प्रथम अनुसूची में वर्णित देशों के नागरिक।

(4) देशीयकरण द्वारा नागरिकता

धारा 6 के अनुसार, कोई भी व्यक्ति जो वयस्क हो चुका है और प्रथम अनुसूची में वर्णित देशों का नागरिक नहीं है, भारत सरकार से निर्धारित प्रपत्र पर देशीयकरण के लिए आवेदन दे सकता है। कुछ निर्धारित शर्तों के आधार पर यदि केंद्रीय सरकार संतुष्ट है तो वह आवेदनकर्ता को देशीयकरण का प्रमाणपत्र दे सकती है। देशीयकरण तथा भारतीय नागरिकता प्राप्ति के लिए निम्नलिखित शर्तों को पूरा करना आवश्यक है -

(च) किसी ऐसे देश देश का नागरिक ना हो जहाँ भारतीय देशीयकरण द्वारा नागरिक बनने से रोक दिए जाते होंय

(छ) उसने अपने देश की नागरिकता का परित्याग कर दिया हो और केंद्रीय सरकार को इस बात की सूचना दे दी होय

(ज) वह देशीयकरण के लिए आवेदन करने की तिथि से पहले 12 वर्ष तक या तो भारत में रहा हो या भारत सरकार की सेवा में रहा हो। केंद्रीय सरकार यदि उचित समझे तो उस अवधि को घटा सकती हैय

(झ) या उक्त 12 वर्षों से के पहले के कुल 7 वर्षों में कम से कम 4 वर्ष तक उसने भारत में निवास किया हो या भारत सरकार की नौकरी में रहा होय

(ञ) वह एक अच्छे चरित्र का व्यक्ति होय

(ट) वह राज्यनिष्ठा की शपथ ग्रहण करेंय

(ठ) उसे भारतीय संविधान द्वारा मान्य भाषा का सम्यक ज्ञान होय

(ड) देशीयकरण के प्रमाण पत्र की प्राप्ति के उपरांत उसका भारत में निवास करने या भारत सरकार की नौकरी में रहने का इरादा हो।

धारा 6 में इन नियमों के साथ-साथ एक अपवाद भी दिया गया है। केंद्रीय सरकार उपर्युक्त शर्तों में से सभी या किसी को उन व्यक्तियों के संबंध में लागू नहीं करेगी जिन्होंने विज्ञान, कला, दर्शन, साहित्य, विश्व शांति या मानवीय प्रगति हेतु विशिष्ट सेवा की हो। ऐसे व्यक्तियों को उपर्युक्त शर्तों को पूरी किए बिना ही देशीयकरण द्वारा नागरिकता प्रदान की जा सकती है।

(5) अर्जित भू-भाग द्वारा नागरिकता

यदि कोई नया भू-भाग भारतीय क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया जाता है तो भारत सरकार विज्ञप्ति द्वारा उन व्यक्तियों का उल्लेख करेगी जो उस भूमि के सम्मिलित किए जाने पर भारत के नागरिक हो जाएंगे। यह प्रावधान धारा 7 में दिया गया है।

नागरिकता समाप्ति के प्रावधान

नागरिकता अधिनियम नागरिकता समाप्ति के विषय में भी प्रावधान रखता है। चाहे वह नागरिकता इस अधिनियम के अंतर्गत प्राप्त की गई हो या संविधान के उपबंधों के अनुसार प्राप्त की गई हो। इस अधिनियम के अनुसार नागरिकता समाप्ति तीन प्रकार से हो सकती है-

(1) नागरिकता का परित्याग

कोई भी वयस्क भारतीय नागरिक जो किसी दूसरे देश का भी नागरिक है भारतीय नागरिकता को त्याग सकता है। इसके लिए उसे घोषणा करनी होगी और इस घोषणा के रजिस्ट्रीकरण हो जाने पर वह भारत का नागरिक नहीं रह जाएगा। युद्ध काल में की गई घोषणाओं को भारत सरकार रोक सकता है। जब कोई पुरुष भारतीय नागरिकता का त्याग करता है तो उसके साथ-साथ उसके अवयस्क बच्चे भी नागरिकता खो देते हैं। ऐसा कोई भी अवयस्क बच्चा भारतीय नागरिकता पुनः प्राप्त कर सकता है यदि वह वयस्क होने के 1 वर्ष की अवधि के भीतर भारतीय नागरिक होने के बारे में घोषणा कर दे।

(2) दूसरे देश की नागरिकता स्वीकार करने पर

धारा 9 के अनुसार यदि भारत का कोई नागरिक अपनी इच्छा से किसी ने देश की नागरिकता स्वीकार कर लेता है तो उसकी भारतीय नागरिकता स्वतः समाप्त हो जाती है। किन्तु युद्ध काल में यह नियम लागू नही होता।

(3) सरकार द्वारा नागरिकता से वंचित किए जाने पर

नागरिकता अधिनियम की धारा 10 द्वारा प्रदान किए गए अधिकारों के अंतर्गत केंद्रीय सरकार नागरिक को उसकी नागरिकता से वंचित कर सकती है। किंतु केंद्र सरकार को इस प्रकार का कोई कदम लोक हित को ध्यान में रखकर उठाना होता है। निम्नांकित परिस्थितियों में केंद्र सरकार ऐसा आदेश जारी कर सकती है–

(i) रजिस्ट्रीकरण या देशीयकरण कपट से, मिथ्या निरूपण से, या किसी सारवान तथ्य को छिपाकर प्राप्त किया गया था।

(ii) उस व्यक्ति ने व्यवहार या भाषण द्वारा अपने को भारतीय संविधान के प्रति निष्ठाहीन दिखाया है।

(iii) किसी ऐसे युद्ध में, जिसमें भारत एक पक्ष हो, अवैध रूप से दुश्मन से व्यापार या संचार किया हो।

(vi) वह अपने रजिस्ट्रीकरण या देशीयकरण से 5 वर्ष की अवधि के अंदर कम से कम 2 वर्ष के लिए दंडित किया गया हो।

(v) यदि वह भारत से बाहर लगातार 7 वर्षों तक सामान्यतया निवास करता रहा हो।

किंतु केंद्रीय सरकार के लिए यह आवश्यक है कि उपर्युक्त उपबंधों के अंतर्गत आदेश देने से पहले उस नागरिक को एक लिखित नोटिस दें और उसमें उन आधारों का उल्लेख करें, जिनके आधार पर उसे नागरिकता से वंचित किया जा सकता है। इस स्थिति में यदि वह नागरिक अपने मामले को जांच समिति को सौंपने की मांग करता है तो केंद्रीय सरकार उस मामले को जांच समिति को सौंपने के लिए बाध्य है। सामान्यतया इस समिति की रिपोर्ट सरकार का मार्गदर्शन करती है जिसके अनुसार ऐसे आदेश दिए जाएं।

भारतीय मूल के विदेशी नागरिकों की नागरिकता

धारा 2 के खण्ड (ee) के अनुसार विदेशी नागरिक से तात्पर्य ऐसे नागरिक से है जो इस अधिनियम की धारा 7A के तहत विदेशी भारतीय नागरिक कार्ड होल्डर है। विदेशों में रहने वाले भारतीय बहुत लंबे समय से दोहरी नागरिकता की मांग करते आए थे। किंतु भारतीय संविधान दोहरी नागरिकता का प्रावधान नहीं रखता है। समस्या को हल करने के लिए नागरिकता अधिनियम संशोधन कानून 2005 लाया गया। उल्लेखनीय है यह सुविधा विश्व के सभी देशो के भारतीय मूल के नागरिकों को उपलब्ध है सिवाय पाकिस्तान और बांग्लादेश के। विदेशी नागरिकता के संबंध में प्रावधान 7A, 7B, 7B व 7D धाराओं में दिए गए हैं।[7]

नागरिकता अधिनियम में किए गए संशोधन

जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है भारतीय नागरिकता अधिनियम अपने वर्तमान स्वरूप में कई संशोधनों के बाद पहुंचा आइए एक नजर देखते हैं वह कौन से संशोधन थे और उनके मुख्य बिंदु क्या है–

1. प्रथम संशोधन 1957: अधिनियम बनने के महज 2 साल बाद हुआ यह संशोधन देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के कार्यकाल में हुआ।
2. द्वितीय संशोधन 1960: प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू।
3. तृतीय, चतुर्थ व पंचम संशोधन, 1985, 1986 व 1987: उपरोक्त दोनों संशोधन सूक्ष्म प्रकृति के थे और इनका कोई व्यापक असर ना तो अधिनियम पर पड़ा और ना ही जनमानस पर। नागरिकता अधिनियम में तीन बड़े संशोधन तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी के कार्यकाल में किए गए। यह संशोधन उस समय किए गए इस समय असम अवैधानिक आप्रवासी समस्या से जूझ रहा था। यह समस्या आगे चलकर एक आंदोलन का रूप ले ली थी और यह आंदोलन असम समझौते के साथ 1985 में शांत हुआ। असम समझौते के अनुसार भारत सरकार को नागरिकता कानून में संशोधन करने पड़े तथा इन संशोधनों में रने ेवसप अर्थात जन्म भूमि संबंधी अधिकारों को अपनाना पड़ा और उससे संबंधित नागरिकता के प्रावधानों को लाया गया। 1986 के संशोधन में जन्म के आधार पर मिलने वाली नागरिकता को सीमित करते हुए यह प्रावधान लाया गया कि प्रार्थी के माता पिता में से कम से कम कोई एक भारतीय नागरिक होने चाहिए।
4. छठवां संशोधन 1992: यह संशोधन प्रधानमंत्री पीवी नरसिंहा राव के कार्यकाल में आया।
5. सातवां संशोधन 2003: 1986 के संशोधन के बाद यह दूसरा 1986 के संशोधन के बाद यह दूसरा बढ़ा संशोधन बड़ा संशोधन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के कार्यकाल में 2004 में लागू हुआ। इस संशोधन में, माता या पिता में से किसी एक के भारतीय नागरिक होने की शर्त के साथ एक और शर्त यह जोड़ी गई कि वे अवैधानिक प्रवासी नहीं होनी चाहिए।
6. आठवां संशोधन 2005: यह संशोधन अपने विदेशी नागरिकता के प्रावधानों के लिए जाना जाता है। जैसा कि ऊपर चर्चा की हुई है किस संशोधन के द्वारा ऐसे कई प्रावधान लाए गए जिनसे विदेशी नागरिकता का मार्ग सुगम हुआ। मूलत: यह सुविधा अनुसूची 4 में दिए गए कुछ देशों – यथा अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम, फ्रांस इत्यादि जैसे बड़े देशों के नागरिकों को ही दिया गया था।
7. नवां संशोधन 2015: इस संशोधन द्वारा चौथी अनुसूची को हटा दिया गया जिसमें वह देश उल्लिखित थे जहां के नागरिकों को भारत की विदेशी नागरिकता मिलती। इस प्रकार विदेशी नागरिकता का प्रावधान सभी देशो के भारतीय मूल के लोगों पर लागू किया गया। PIO (Propel of Indian Origin) कार्ड को समाप्त करके उसे ओवरसीज कार्ड में मिला दिया गया।

8. दसवां संशोधन 2019: हाल ही में आया यह संशोधन पाकिस्तान बांग्लादेश और अफगानिस्तान से पीड़ित होकर पलायन किए हुए वहां के अल्पसंख्यक जैसे कि हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी और ईसाई धर्म के लोगों को नागरिकता प्रदान करने के लिए लाया गया है।[8]

निष्कष:

विभाजन के परिणामस्वरुप स्वतंत्रता पश्चात् भारतीय संविधान में नागरिकता के उपबंधों का समावेश करने में 2 वर्ष से अधिक का समय लगा। ऐसा इस कारण हुआ की बड़ी संख्या में लोग भारत आ रहे थे और पाकिस्तान की ओर पलायन कर रहे थे। अंतत: संविधान के भाग 2 के अंतर्गत अनुच्छेद 5 से लेकर 11 तक नागरिकता सम्बन्धी मूलभूत बातों का उल्लेख किया गया तथा इस सन्दर्भ में व्यापक नीतियों के निर्माण की शक्ति संसद को प्रदान किया गया (अनुच्छेद 11)। इस प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए संसद ने नागरिकता अधिनियम 1955 पारित किया। समय के साथ इस अधिनियम में अनिवार्य संशोधनों की आवश्यकता हुई और संसद ने इन समयानुरूप परिवर्तनों को मूर्तरूप दिया। सन् 1957 में प्रथम संशोधन से प्रारम्भ होकर यह अधिनियम अब तक कुल 10 संशोधनों से परिष्कृत हो चुका है। नागरिकता (संशोधन) अधिनियम 2019 इन परिवर्तनों के क्रम का 10वाँ चरण है, जो कि नागरिकता अधिनियम 1955 में आवश्यक एवं अनिवार्य संशोधन करता है।

सन्दर्भ सूची

1 एम.वी. पायली, ऐन इंट्रोडक्शन टू द इंडियन कंस्टीटूशन, विकास : नई दिल्ली, 2004 (चौथा संशोधित संस्करण)
2 सुभाष कश्यप, हमारा संविधान, एन.बी.टी. : नई दिल्ली, 2017
3 जय नारायण पाण्डेय, भारत का संविधान, सी.एल.ए. : इलाहाबाद, 2012 (45वाँ संस्करण)
4 भाग 2, भारत का संविधान, विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
5 डी.डी. बसु, भारत का संविधान : एक परिचय, लेक्सिसनेक्सिस : नई दिल्ली, 2019 (12वाँ संस्करण)
6 नागरिकता अधिनियम 1955
7 नागरिकता अधिनियम 1955
8 नागरिकता (संशोधन) अधिनियम 2019

माध्यमिक स्तर के अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों के कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

सन्तोष कुमार

(शोध छात्र), शिक्षाशास्त्र (कला वर्ग) हण्डिया पी0 जी0 कालेज, हण्डिया, प्रयागराज

शिक्षा ही एक ऐसा साधन हैं जो मनुष्य की पूर्ण क्षमता को प्राप्त करने, एक न्यायपूर्ण एवं न्यायसंगत समाज के निर्माण और राष्ट्रीय विकास को बढावा देने के लिए शिक्षा मूलभूत आवश्यकता है। भारत की सतत् प्रगति और आर्थिक विकास के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सार्वभौमिक पहुँच प्रदान करना वैश्विक मंच पर सामाजिक न्याय और समानता, वैज्ञानिक उन्नति, राष्ट्रीय एकीकरण और सांस्कृतिक संरक्षण के सन्दर्भ की कुंजी है। सभी के लिए उच्च स्तरीय शिक्षा ही उचित माध्यम है, जिससे देश की समृद्ध प्रतिभा और संसाधनों का सवोत्तम विकास और संवर्द्धन व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व की भलाई के लिए किया जा सकता है। आने वाले समय में भारत विश्व का सबसे युवा जनसंख्या वाला देश होगा और इन युवाओं को उच्च गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा।

प्रस्तुत शोध के अध्ययन से यह स्पष्ट होता हैं कि माध्यमिक स्तर के अनुदानित विद्यालयों एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों के कार्य संतुष्टि में अन्तर पाया जाता हैं, इसका प्रमुख कारण अनुदानित विद्यालय के शिक्षकों के वेतनमान अन्य आर्थिक सुविधाओं एवं अन्य देय भत्तो की तुलना में स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों का कम वेतनमान, आर्थिक सुविधाओं का अभाव, रोजगार के प्रति असुरक्षा एवं स्थिरता देखने को मिला। यही प्रमुख कारण था कि जिसमें अनुदानित विद्यालय के शिक्षकों एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों में कार्य संतुष्टि में अन्तर प्रभावी रूप से देखने को मिला।

शिक्षा मानव जीवन की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। शिक्षा के द्वारा ही मानव जीवन को सरल एवं सजीव बनाया जा सकता है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक एवं आध्यात्मिक विकास सम्भव हो पाता है। शिक्षा सामाजिक चेतना का दर्पण होता है जिससे ज्ञान, चिन्तन, योग्यता आदि जैसे गुणों का विकास होता है। यह सब तभी सम्भव हो सकता है जब हमारी शिक्षा व्यवस्था ठीक हो, क्योंकि शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से ही समाज और राष्ट्र का विकास होता है। शिक्षा की इस व्यवस्था में माध्यमिक शिक्षा का सुदृढ़ होना अति आवश्यक है क्योंकि इसी स्तर से ही छात्र अपना मार्ग व क्षेत्र को निर्धारित करते हैं कि हमें किस व्यवसाय अथवा क्षेत्र को चयन करना है? यह तभी होगा जब इस स्तर पर योग्य शिक्षक हो। भारतीय समाज में यह कहा जाता है कि शिक्षकों के व्यक्तित्व से उसकी सामाजिक व सांस्कृतिक स्तर का अनुमान लगता है।

शिक्षा जगत में शिक्षकों का कार्य-निष्पादन सर्वश्रेष्ठ महत्व का निवेश है। शिक्षा के क्षेत्रों से सम्बन्ध विभिन्न योजनाओं का सफलता पूर्वक क्रियान्वयन अध्यापकों के व्यक्तिगत अभिव्यक्ति, कार्य निष्ठा, शिक्षण अधिगम क्रियाओं पर आधारित है। वैदिक काल में शिक्षकों ने अपने छात्रों की सफलता के लिए पूर्णरुपेण प्रतिबद्ध, सृजनशील एवं परिश्रमी शिक्षा प्रणाली से संलग्न असन्तोष नगण्य लाभों के बावजूद अपने व्यावसायिक उत्तरदायित्वों को आत्मभाव से निभाया है। देश का दुर्भाग्य है कि भारत के प्रमुख श्रेष्ठ ग्रन्थों विभिन्न पुस्तकों के साथ-साथ विभिन्न शोधकार्यों के बाद भी अध्यापकों की उदासीनता एवं अभाव पूर्ण गुणवत्ता के कारण भारतीय शिक्षा की सर्वाधिक हानि हुई। भारतीय समाज में अध्यापकों से बहुत उम्मीदें लगायी जाती हैं, किन्तु आज के समय में युवा वर्ग शिक्षण कार्य को अपने अन्तिम विकल्प के रुप में रखते हैं। इस दशा में ऐसे भी व्यक्ति शिक्षक बन जाते हैं। अधिकतम संख्या में शिक्षक शिक्षण व्यवसाय का चयन कर लेते हैं जिसमें न तो शिक्षण अभिवृत्ति एवं न ही अभिक्षमता ही होती है। भारत जैसे विशाल देश में ऐसे ही अनुपयुक्त अध्यापकों के द्वारा ही हमारी शिक्षा व्यवस्था अपंग होती जा रही है। इस प्रकार के शिक्षकों में अभिप्रेरणा, जिज्ञासा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, भाषा कौशल, वाद-विवाद प्रतियोगिता, शिक्षण सहायक सामग्री, बुद्धि विकास, मानव मूल्य, लेखन कौशल, शारीरिक दक्षता आदि कौशलों को छात्रों में विकसित करने में सफल नही हो पाते हैं। यही उत्सुकता एवं जिज्ञासा ही हमारे शोधकार्य की उपज है।

शोध के उद्देश्य

1. माध्यमिक स्तर के अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों के कार्य संतुष्टि का अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तर के अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना

1. माध्यमिक स्तर के अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों के कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. माध्यमिक स्तर के अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए प्रयागराज जनपद के माध्यमिक स्तर के अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों का चयन किया गया। इन विद्यालयों में शिक्षणरत शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं को बराबर भाग में बाट कर सर्वेक्षण विधि से अध्ययन किया गया। प्रदत्तों का संकलन विद्यालय स्तर पर जा कर एकत्रित किया गया है।

शोध साख्यिकीय विधि

प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन तथा क्रांतिक अनुपात (CR) का प्रयोग किया गया है।

शोध उपरकरण

शोधकर्ता ने शोध अध्ययन के लिए D. N. Muthe – P. Kumar द्वारा निर्मित उपरकरण Teacher Job Satisfaction Questionair प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्तों का संकलन

प्रस्तुत अध्ययन के लिए जनसंख्या मे से शिक्षको का प्रतिनिध्यात्माक समूह का चयन किया गया। विद्यालयों एवं शिक्षकों का चयन प्रयागराज जनपद से किया गया हैं, इसके लिए 60 विद्यालयों के 600 शिक्षकों का सर्वेक्षण एवं साक्षात्कार किया गया, इसमें इसकी रुपरेखा निम्न प्रकार से है -

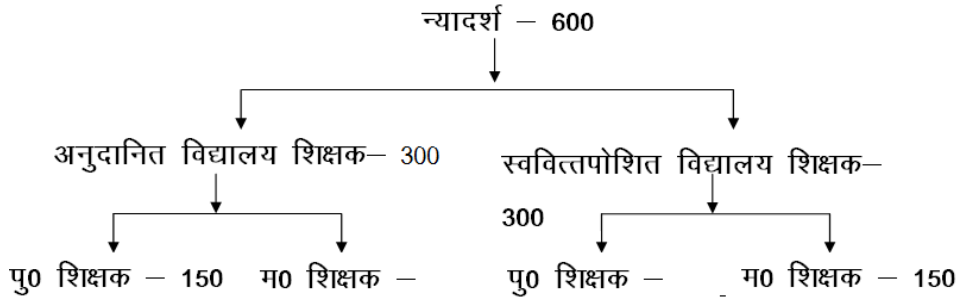

आंकड़ों का विश्लेषण

प्रस्तुत अध्ययन में निर्धारत किये गये उद्देश्यों के सन्दर्भ में विश्लेषण तथा व्याख्या की गयी है जिसमें प्रत्येक उद्देश्य के अध्ययन को पूर्ण करने के लिए अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों-शिक्षिकाओं को आधार बनाया गया हैं, इसी के अनुरुप शून्य परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया हैं। जिसका आधार 0.05 सार्थकता स्तर रखी गयी है जिसके आधार पर इसे स्वीकृत या अस्वीकृत किया जा सकता है।

विश्लेषण व व्याख्या

प्रस्तुत अध्ययन पूर्ण करने के क्रम में प्रथम उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि- ''माध्यमिक स्तर के अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों के कार्य संतुष्टि का अध्ययन करना''। इस उद्देश्य के अध्ययन को पूर्ण करने के लिए शून्य परिकल्पना बनायी गयी थी कि- ''माध्यमिक स्तर के अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों के कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है''। कार्य संतुष्टि से सम्बन्धित निम्नलिखित आंकडों द्वारा इसे प्रदर्शित किया जा सकता हैं।

तालिका संख्या-1

माध्यमिक स्तर के अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों के कार्य संतुष्टि का अध्ययन

तुलनात्मक समूह	वर्ग	संख्या	माध्य	मानक विचलन	मानक त्रुटि	सी०आर० मूल्य
अनुदानित विद्यालय	शिक्षक	150	278.31	12.41	1.26	4.69
स्ववित्तपोषित विद्यालय	शिक्षक	150	278.36	12.44		

उपरोक्त तालिका के अध्ययन से सम्बन्धित शून्य परिकल्पना बनायी गयी थी कि ''माध्यमिक स्तर के अनुदानित विद्यालयों एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों के कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है'', से सम्बन्धित विश्लेषण एवं व्याख्या से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता हैं कि अनुदानित विद्यालय के शिक्षकों का माध्य 278.31 व मानक विचलन 12.41 हैं और स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों का माध्य 278.36 मानक विचलन 12.44 हैं जिनमें मानक त्रुटि 1.26 तथा सी. आर. मूल्य 4.69 पाया गया। जो क्थ् (298) के 0.01 सार्थकता स्तर पर 2.59 से अधिक है जिससे बनायी गयी शून्य परिकल्पना अस्वीकृत हो जाती है।

प्रस्तुत अध्ययन से प्राप्त आकड़ों का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि अनुदानित विद्यालय के शिक्षकों का शैक्षिक योग्यता, विद्यालय बितायी गयी समयावधि, छात्र-छात्राओं के प्रति उनकी जवाबदेही, उत्तरदायित्व, कार्यप्रणाली आदि स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों का विद्यालय बितायी गयी समयावधि, छात्र-छात्राओं के के प्रति उनकी जवाबदेही, उत्तरदायित्व एवं शैक्षिक योग्यता, कार्यप्रणाली एक समान होती हैं, किन्तु अनुदानित विद्यालयों के शिक्षकों के वेतनमान सुविधाओं एवं अन्य भत्तों की अपेक्षा में स्ववित्तपोषित विद्यालय के शिक्षकों का रोजगार के प्रति असुरक्षा, कम वेतनमान, सुविधाओं का अभाव पाया गया। यह एक ऐसा पहलू हैं, जो किसी न किसी रूप में अध्ययन के समय प्रश्नावली भरवाने के दौरान साक्षात्कार के समय यह बात शिक्षकों के बीच से प्रमुख रूप से उभर कर सामने आया। इस प्रकार दोनों वर्ग के शिक्षकों में कार्य संतुष्टि के प्रति अन्तर देखने को मिला।

विश्लेषण व व्याख्या

प्रस्तुत अध्ययन पूर्ण करने के क्रम में द्वितीय उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि- ''माध्यमिक स्तर के अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि का अध्ययन करना''। इस उद्देश्य के अध्ययन को पूर्ण करने के लिए शून्य परिकल्पना बनायी गयी थी कि- ''माध्यमिक स्तर के अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है''। कार्य संतुष्टि से सम्बन्धित निम्नलिखित आंकडों द्वारा इसे प्रदर्शित किया जा सकता हैं।

तालिका संख्या-2

माध्यमिक स्तर के अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि का अध्ययन

तुलनात्मक समूह	वर्ग	संख्या	माध्य	मानक विचलन	मानक त्रुटि	सी० आर० मूल्य
अनुदानित विद्यालय	शिक्षिका	150	278.32	12.42	1.26	4.68
स्ववित्तपोषित विद्यालय	शिक्षिका	150	278.35	12.44		

उपरोक्त तालिका के अध्ययन से सम्बन्धित शून्य परिकल्पना बनायी गयी थी कि माध्यमिक स्तर के अनुदानित विद्यालयों एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षिकाओं के कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं हैं इसके आधार पर तालिका से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि अनुदानित विद्यालयों के शिक्षकों का कार्य संतुष्टि के प्रति माध्य 278.32 एवं मानक विचलन 12.42 है वहीं दूसरी तरफ से स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि के प्रति माध्य 278.35 एवं मानक विचलन 12.44 है। जिनमें मानक त्रुटि 1.26 तथा सी. आर. मूल्य 4.68 पाया गया। जो क्थ् (298) के 0.01 सार्थकता स्तर पर 2.59 से अधिक हैं जिससे बनायी गयी शून्य परिकल्पना अस्वीकृत हो जाती है।

अध्ययन से प्राप्त आकड़ों के विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि अनुदानित विद्यालयों के शिक्षिकाओं की एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों की शिक्षिकाओं की शैक्षिक योग्यता, उत्तरदायित्व, अनुशासन, कार्यप्रणाली, छात्र-छात्राओं के प्रति उनकी जवाबदेही, समयावधि दोनों स्तर के विद्यालयों के शिक्षिकाओं की एक समान होती हैं, किन्तु अनुदानित विद्यालयों के शिक्षिकाओं की वेतनमान एवं सुविधाओं की अपेक्षा में स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षिकाओं की वेतनमान एवं सुविधाओं का अभाव पाया जाता हैं। अध्ययन के दौरान पाया गया कि दोनों स्तर के विद्यालयों की शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि में अन्तर होता हैं।

निष्कर्षः-

प्रस्तुत शोध पत्र से प्राप्त आकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या करने पर हम कह सकते हैं कि माध्यमिक स्तर के अनुदानित विद्यालयों एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षक एवं शिक्षिकाओं के कार्य संतुष्टि में अन्तर हैं। अनुदानित विद्यालय के शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं का शैक्षिक योग्यता, विद्यालय बितायी गयी समयावधि, छात्र-छात्राओं के प्रति उनकी जवाबदेही, उत्तरदायित्व, कार्यप्रणाली आदि स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं का विद्यालय बितायी गयी समयावधि, छात्र-छात्राओं के के प्रति उनकी जवाबदेही, उत्तरदायित्व एवं शैक्षिक योग्यता, कार्यप्रणाली एक समान होती हैं, किंन्तु अनुदानित विद्यालयों के शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं के वेतनमान सुविधाओं एवं अन्य भत्तों की अपेक्षा में स्ववित्तपोषित विद्यालय के शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं का रोजगार के प्रति असुरक्षा, कम वेतनमान, सुविधाओं का अभाव पाया गया। यह एक ऐसा पहलू हैं, जो किसी न किसी रूप में अध्ययन के समय प्रश्नावली भरवाने के दौरान साक्षात्कार के समय यह बात शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं के बीच से प्रमुख रूप से उभर कर सामने आया। इस प्रकार दोनों वर्ग के शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं में कार्य संतुष्टि के प्रति अन्तर देखने को मिला।

शैक्षिक निहितार्थः-

प्रस्तुत शोध पत्र के अध्ययन एवं सर्वेक्षण से प्राप्त परिणाम के आधार पर कहा जा सकता हैं कि अनुदानित विद्यालयों के शिक्षकों एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों के कार्य संतुष्टि में प्रभावी अन्तर स्पष्ट होता हैं। जिसका प्रमुख कारण दोनों प्रकार के विद्यालयों के शिक्षकों को वेतनमान अन्य आर्थिक सुविधाएं एवं देय भत्ते जैसी विषमता पायी जाती हैं, जिसके लिए शासन स्तर पर, समाज स्तर पर एवं विद्यालय प्रबन्ध तंत्र के स्तर पर प्रभावी निर्णय एवं कार्य किए जाने की आवश्यकता हैं, जिससे इस विषमता को कम किया जा सके। जिससे अनुदानित विद्यालयों के शिक्षकों एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में समानता हो।

सन्दर्भ- ग्रंथ सूची

1. राय पारसनाथ-(2018) अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. गुप्ता डॉ0 एस0 पी0-(2018) अनुसंधान संदर्शिका सम्प्रव्यय, कार्य विधि एवं प्रविधि, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
3. नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020:- नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार 29 जुलाई 2020
4. भट्टाचार्या डॉ0 जी0 सी0-(2007-08) अध्यापक शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
5. गुप्ता डॉ0 एस0 पी0-(2003) सांख्यिकीय विधियाँ, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
6. सारस्वत डॉ0 मालती-(2007) शिक्षा मनोविज्ञान की रुपरेखा, आलोक प्रकाशन, लखनऊ।
7. अस्थाना विपिन एवं श्रीवास्तव विजया-(2012-13) शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकी, अग्रवाल पब्लिकेसन्स, आगरा।

भारत में संस्थागत कृषि साख: फार्म आकार के विशेष संदर्भ में

सुरेन्द्र कुमार शर्मा

सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
श्यामलाल महाविद्यालय (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश:

अर्थव्यवस्था के किसी भी क्षेत्र के विकास हेतु साख महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है यही अवधारणा कृषि क्षेत्र के संदर्भ में भी सत्य है। कृषि साख एक महत्वपूर्ण मध्यवर्ती साधन है जो कृषि उत्पादन, उत्पादकता को प्रभावकारी रूप से प्रभावित करती है अत: कृषि साख की समय-अनुसार उचित दर, सुगमता एवं पर्याप्त उपलब्धता कृषि विकास की सतत वृद्धि के लिए आवश्यक है।

प्रस्तुत लेख में भारत में कृषि संस्थागत साख स्रोतों की संरचना इनकी प्रवृत्तियां एवं संस्थागत साख का फार्म आकार के संदर्भ में विश्लेषण करने का प्रयास किया गया हैए इस हेतु प्रस्तुत शोध पत्र में पैनल डाटा का प्रयोग किया गया है जिसमें अलग-अलग वर्षों में (वर्ष 2013 एवं वर्ष 2020) में फार्म आकार के आधार पर वर्गीकृत कृषकों की संस्थागत साख के आंकड़ों एवं गणनित प्रतिशत के आंकड़ों को लिया गया है।

परिचय:

भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में कृषि क्षेत्र का बुनियादी महत्व है। भारत के प्राकृतिक संसाधनों का सबसे बड़ा अंश भूमि का है और कार्यशील जनसंख्या का एक बड़ा भाग लगभग 42.6 प्रतिशत कृषि क्रियाओं में संलग्न है। अत: कृषि क्रियाएं अभी भी लोगों के रोजगार आजीविका का प्रमुख स्रोत है भारत की लगभग 20% सकल घरेलू उत्पाद (GDP) कृषि क्षेत्र से उत्पन्न होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय कृषि पिछड़ी हुई थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही तथा अन्य योजना अवधि में कृषि क्षेत्र पर विशेष बल दिया। परिणाम स्वरूप कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि प्रतीत हुई है, परंतु कृषि क्षेत्र का स्थिरता के साथ विकास महत्वपूर्ण है इसके अलावा समावेशी विकास प्राप्त करने के लिए वित्तीय समावेशन अति आवश्यक है देश के आर्थिक विकास को और अधिक समावेशी बनाने के लिए कृषि क्षेत्र में उचित दरों , समयानुसार एवं पर्याप्त उपलब्धता के साथ मध्यवर्ती साधन के रूप में कृषि साख की मात्रा को बढ़ाना आवश्यक है।

इस शोध पत्र में कृषि संस्थागत साख स्रोतों की संरचना, प्रवृतियां एवं संस्थागत साख का फार्म के आकार के अनुसार विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

उद्देश्य:

1. भारत में कृषि संस्थागत साख की संरचना एवं उनकी प्रवृत्तियों का अध्ययन करना
2. संस्थागत साख का फार्म के आकार के अनुसार वर्गीकृत कृषकों के लाभ का अध्ययन करना

भारत में कृषि साख के लिए संस्थागत साख संरचना:

कृषि साख मुख्यत: संस्थागत एवं गैर संस्थागत स्रोतों से प्राप्त होती है। भारत में संस्थागत साख संरचना को निम्न वर्गीकरण द्वारा चित्रित किया गया है:

संस्थागत-साख संरचना :

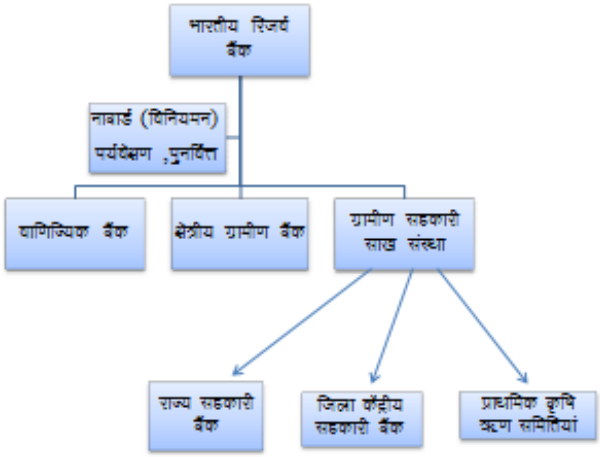

कृषि संस्थागत साख की प्रवृतियां: विभिन्न संस्थानों का सापेक्षिक अंश

निम्नांकित तालिका में कृषि हेतु विभिन्न संस्थागत साख की प्रवृत्तियों का सापेक्षिक अंश दिया गया है इसमें आर्थिक सुधारों से पूर्व एवं पश्चात की प्रवृत्तियों को बताया गया है

तालिका-1

वर्ष	सहकारी बैंक(%)	वाणिज्यिक बैंक(%)	ग्रामीण सहकारी बैंक(%)	कुल साख (करोड़ रूपए में)
1980-81	61.6	38.4	NA	3292
1990-91	49.0	47.6	3.4	9830
2000-01	39.4	52.6	8.0	52827
2010-11	16.7	73.8	9.5	468291
2020-21	15.1	72.1	12.8	1500000

स्रोत: 1. राकेश मोहन ''एग्रीकल्चरल क्रेडिट इन इंडिया'' इकोनामिक एंड पॉलीटिकल वीकली मार्च 18, 2006, तालिका एक पृष्ठ संख्या 1016 तथा गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, इकोनामिक सर्वे 2012-13 तालिका 557 पेज वन 111 2. नाबार्ड अप्रैल 2020-मार्च 2021

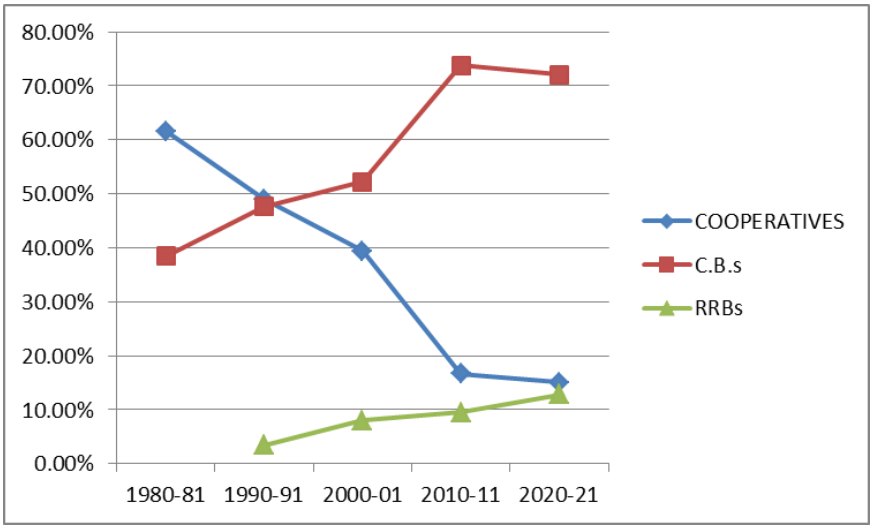

उपर्युक्त तालिक-1में 1980-81 में वाणिज्यिक बैंकों का कृषि वित्त में हिस्सा 38% था जो 2020-21 में बढ़कर 72.1 प्रतिशत हो गया इसके परिणामस्वरूप सहकारी समितियों का संस्थागत वित्त में हिस्सा जो 1981 में 61.6 प्रतिशत था जो 2020-21 में कम होकर लगभग 15.1 प्रतिशत रह गया। जहां तक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का प्रश्न है उन्होंने संस्थागत कृषि वित्त का 8 से 10 प्रतिशत प्रदान किया है। तालिका में 1980-81 तथा 1990-91 के मध्य अवधि के दौरान कृषि क्षेत्र में संस्थागत साख के प्रभाव पर दृष्टिपात करते हैं तो यह ज्ञात होता है कि कुल कृषि साख (जिसमें वाणिज्य बैंक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक तथा सहकारी बैंक) का लगभग 3 गुना वृद्धि हुई (आर्थिक सुधारों के पूर्व)। वहीं यदि 2000-01 से 2020,-21 के मध्य अवधि के दौरान यह वृद्धि लगभग 28 गुना रही है। अत: कहा जा सकता है कि पिछले कुछ वर्षों के दौरान (आर्थिक सुधारों के पश्चात) कृषि क्षेत्र में संस्थागत साख के प्रभाव में उल्लेख वृद्धि दर्ज की गई है।

फार्म के आकार अनुसार संस्थागत साख का विश्लेषण :

यहां यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि संस्थागत साख में फार्म के आकार के अनुसार किसका अंश ज्यादा है अर्थात कौन इस वृहत संस्थागत साख का लाभ उठा रहा है इस हेतु वर्ष 2013 तथा वर्ष 2020 के आंकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन निम्नांकित तालिकाओं द्वारा किया गया है :

तालिका. 2

संख्या- (000)

फार्म का आकार(हेक्टेयर)	परिचालन होल्डिंग की कुल संख्या	संस्थागत ऋण लेने वाले परिचालन होल्डिंग की अनुमानित संख्या	परिचालन होल्डिंग की अनुमानित संख्या का प्रतिशत (संस्थागत साख का परिचालन होल्डिंग की संख्या से अनुपात)
सीमांत(<1 हेक्टेयर)	64316.37	12631.81	19.64
छोटे (1-1.99)	18776.33	6167.85	32.84
अर्धमध्यम(2-3.99)	11217.9	3875.76	34.54
मध्यम(4-9.99)	15335.50	2104.32	39.43
बड़े (10 और ज्यादा)	1003.43	402.07	40.06
कुल	100649.54	25181.80	25.01

एग्रीकल्चरल स्टेटस एट ए ग्लांस 2013

वर्ष 2020

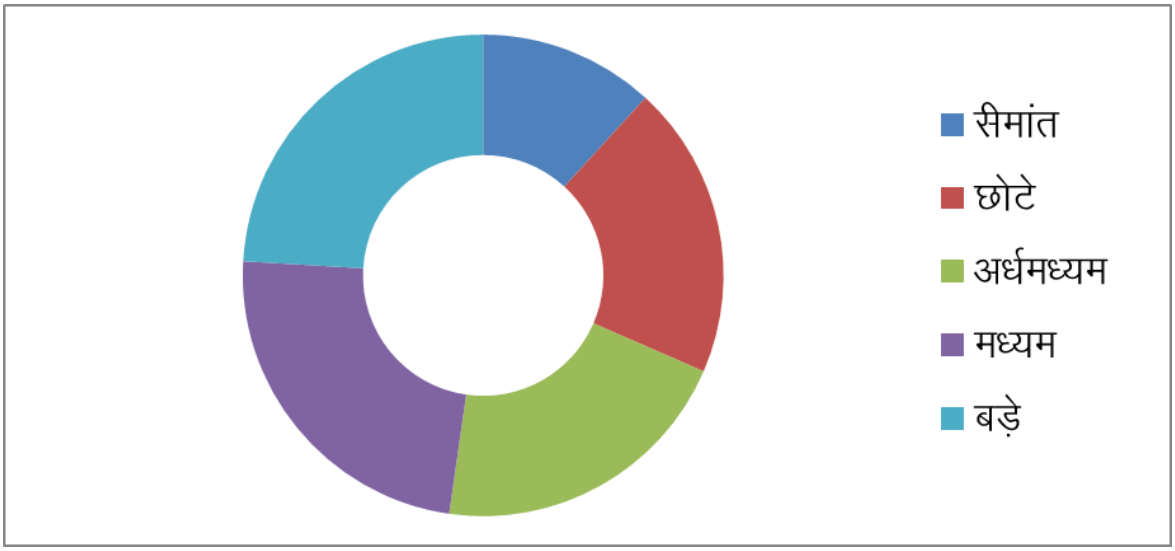

उपर्युक्त तालिका के द्वारा ज्ञात होता है कि अनुमानित परिचालन होल्डिंग का केवल 19.64% सीमांत; जो 1 हेक्टेयर से कम (कृषकों से संबंधित है जिन्होंने कृषि उद्देश्य के लिए संस्थागत ऋण लिया था, यही अन्य फार्माकारों के अनुसार वर्गीकृत कृषकों यथा छोटे, अर्धमध्यम एमध्यम तथा बड़े का इस संस्थागत साख में प्रतिशत क्रमश 32.84%, 34.54%, 39.43% तथा 40.06% रहा, यही संपूर्ण देश की बात करें तो तालिका-2 से ज्ञात होता है कि कुल अनुमानित परिचालन होल्डिंग में से मात्र लगभग 25% ने कृषि उद्देश्य हेतु संस्थागत साख प्राप्त किया है।

अत: स्पष्ट होता है कि कुल परिचालन होल्डिंग के लगभग 75% ने संस्थागत साख का लाभ नहीं उठाया है।

इसी संदर्भ में वर्ष 2020 के आंकड़ों पर दृष्टिपात करते हैं ए जिसे तालिका-3 में दर्शाया गया है।

तालिका 3

संख्या, (000)

फार्म का आकार(हेक्टेयर)	परिचालन होल्डिंग की कुल संख्या	संस्थागत ऋण लेने वाले परिचालन होल्डिंग की अनुमानित संख्या	परिचालन होल्डिंग की अनुमानित संख्या का प्रतिशत (संस्थागत साख का परिचालन होल्डिंग की संख्या से अनुपात)
सीमांत(<1 हेक्टेयर)	100098	33806	33.77
छोटे (1-1.99)	25772	12616	48.95
अर्धमध्यम(2-3.99)	13963	7153	51.22
मध्यम(4-9.99)	5538	3068	55.39
बड़े (10 और ज्यादा)	819	437	53.35
कुल	146190	57080	39.04

एग्रीकल्चरल स्टेटस एट ए ग्लांस 2020

तालिका-3 अभिज्ञानित होता है कि सीमांत कृषकों से संबंधित अनुमानित परिचालन होल्डिंग जो वर्ष 2013 में 19.64% था वह वर्ष 2020 में बढ़कर 33.77% हो गया अर्थात वर्ष 2013 से 2020 की अवधि के दौरान सीमांत कृषकों द्वारा संस्थागत साख (जो कृषि उद्देश्यों के लिए है) में वृद्धि 2.67 गुना हुई है यही अन्य फार्म आकारों के अनुसार वर्गीकृत कृषकों यथाय छोटे और अर्ध-मध्यम, मध्यम तथा बड़े आकार का इस वृहद संस्थागत साख में अंश क्रम से लगभग 49% तथा 51% तथा 55% रहा है वर्ष 2013 एवं वर्ष 2020 के मध्य-अवधि के दौरान सभी फार्म आकारों के अंश में क्रम से छोटे आकार में लगभग 2 गुना, अर्ध-मध्यम आकार में लगभग 1.85 गुना, मध्यम आकार में लगभग 1.5 गुना एवं बड़े आकार में लगभग 1.1 गुना वृद्धि दर्ज की गई है यदि संपूर्ण देश की बात करें तो यह 2013 में जो लगभग 25% था अब यह 2020 में लगभग 39% हो गया जिससे स्पष्ट होता है कि कृषि उद्देश्य हेतु संस्थागत साख का वर्ष 2013 में 25% ने लाभ उठाया तथा 2020 में अनुमानित परिचालन होल्डिंग में कृषकों ने लगभग 39% ने लाभ उठाया इस संदर्भ में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई है।

वर्ष 2020

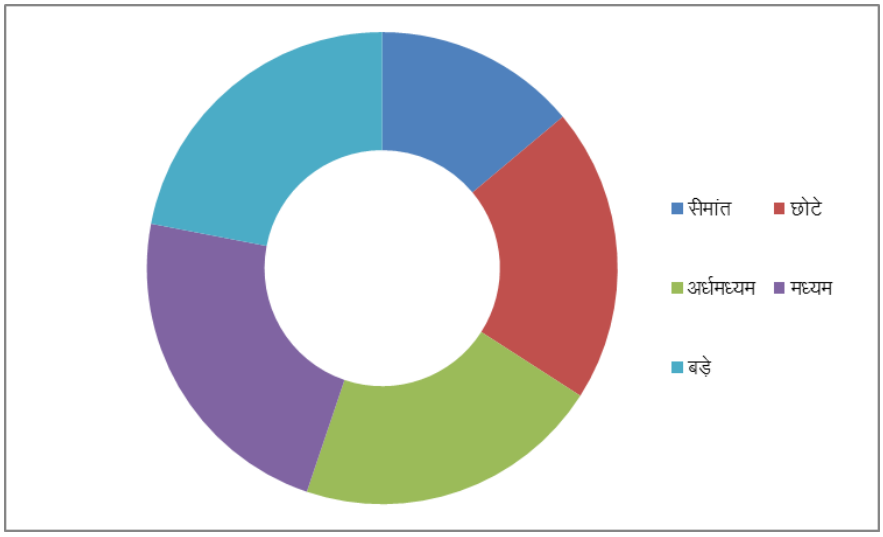

तालिका 4

फार्म आकार (हेक्टेयर में)	संस्थागत साख की ली गई मात्रा			अल्पकालीन ऋण			
	अल्पकालीन साख	मध्यम कालीन साख	दीर्घकालीन साख	दी गइ फर्टिलाइजर की मात्रा का मूल्यं	अन्य साधनो(INPUTS) की मात्रा का मूल्यं	कुल नकद ली गई राशि	कुल
-1	-2	-3	-4	-6	-7	-8	-9(6+7+8)
(<1.00)छोटे	1959872.91	530878.34	268994.93	305528.65	56406.28	1597937.99	1959872.91
(1.0-1.99) अर्ध मध्यम	1281948.16	388801.81	246649.71	197097.63	40352.95	1044497.58	1281948.16
(2.0-3.99) अर्ध मध्यम	1123167.76	335450.41	324918.60	179968.24	42247.50	900952.01	1123167.76
(4.0-9.99) मध्यम	821381.28	306984.09	432030.10	141487.12	39358.51	640535.64	821381.28
(10 &>)बड़े	213982.23	92075.62	152396.00	39599.49	11029.19	163353.55	213982.23
(सभी वर्गों)	**5400352.34**	**1654190.27**	**14249989.34**	**863681.14**	**189394.44**	**4347276.76**	**5400352.34**

एग्रीकल्चरल स्टेटस एट ए ग्लांस 2013

तालिका 5

फार्म आकार (हेक्टेयर में)	संस्थागत साख की ली गई मात्रा			अल्पकालीन ऋण			
	अल्पकालीन साख	मध्यम कालीन साख	दीर्घकालीन साख	दी गइ फर्टिलाइजर की मात्रा का मूल्यं	अन्य साधनो(INPUTS) की मात्रा का मूल्यं	कुल नकद ली गई राशि	कुल
-1	-2	-3	-4	-6	-7	-8	-9
(<1.00)छोटे	13752050	3373150	819622	1612319	869829	11269903	13752050
(1.0-1.99)अर्ध मध्यम	8392012	2428182	646128	1086480	528083	6777450	8392012
(2.0-3.99)अर्ध मध्यम	6673044	2055348	755189	785825	426471	5460748	6673044
(4.0-9.99)मध्यम	4257710	1483165	640092	510623	281246	3465841	4257710
(10 &>)बड़े	890230	276255	174263	98835	72398	718997	890230
(सभी वर्गों)	**33965047**	**9616101**	**3035293**	**4094082**	**2178027**	**27692938**	**33965047**

एग्रीकल्चरल स्टेटस एट ए ग्लांस 2020

उपर्युक्त तालिकाओं से ज्ञात होता है कि सभी बैंकों द्वारा संवितरित कुल अल्पकालीन (उत्पादन साख) संस्था के साथ में से सीमांत कृषकों द्वारा उठाए गए लाभ का वर्ष 2013 में वर्ष 2020 में क्रम से 36.3% तथा 40.4% रहा है तथा छोटे अर्ध मध्यम मध्यम एवं बड़े आकार वालों का प्रतिशत वर्ष 2013 में क्रम से 23.7% ,20.8 परसेंट 15.2% तथा 4% रहा है। यही आंकड़ा वर्ष 2020 के लिए छोटे कृषकों के लिए 24.7% अध-मध्यम कृषकों के लिए 19. 6% मध्यम कृषकों के लिए 12.5% तथा बड़े आकार वाले कृषकों के लिए 2.6% रहा। वर्ष 2020 में कुल अल्पकालीन साथ में से संवितरित नगद का प्रतिशत लगभग 81.5% रहा जो वर्ष 2013 में लगभग 80.5% था। अत: इसे लगभग 1% वृद्धि हुई। बाकी 18.5% (वर्ष 2020) फर्टिलाइजर एवं अन्य इनपुट्स का प्रतिशत रहा है।

निष्कर्ष

कृषि के आधुनिकीकरण में और इसकी उत्पादकता में सुधार के लिए साख की एक बड़ी भूमिका है। भारत में कृषि और संबंधित गतिविधियों के लिए संस्थागत साख में तीव्र वृद्धि हुई है। यह कृषि क्षेत्र की विकास दर को बढ़ावा देने के लिए एक प्रभावी कदम है ,क्योंकि यह किसानों को आवश्यक उपकरण एवं अन्य आदानों को खरीदने के लिए मदद करता है संस्थागत ऋण प्रभाग के उच्च लक्ष्यों की स्थापना के साथ साथ उन लक्ष्यों को प्राप्त करना, निसंदेह प्रत्येक वित्तीय वर्ष में कृषि क्षेत्र को तीव्र तनाव से बाहर निकालने में मदद की है, जिसका उन्होंने अतीत में सामना किया था। यद्यपि तालिका 2 तालिका 3 तथा तालिका 4 एवं 5 से विदित होता है कि संस्थागत साख का लाभ उठाने वाली परिचालन होल्डिंग्स का निम्न प्रतिशत (देश में कुल होल्डिंग में से) अभी भी सरकार के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती बनी हुई है, अर्थात सीमांत एवं छोटे कृषकों की संस्थागत साख में प्रतिशत अभी भी कम है तथा इनका कुल परिचालन होल्डिंग्स का लगभग 82.5% (वर्ष 2013) में था। संस्थागत साख में सीमांत एवं छोटे किसानों के प्रतिशत में बढ़ोतरी की जानी चाहिए, ताकि कृषि विकास के लक्षित उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

सन्दर्भ

- एग्रीकल्चरल स्टेटस एट ए ग्लांस 2013
- एग्रीकल्चरल स्टेटस एट ए ग्लांस 2020
- Ministry of Agriculture and Farmers' Welfare, Government of India, *Pocket book of Agricultural Statistics, 2015* (New Delhi: Government of India), 2015, http://eands.dacnet.nic.in/PDF/Pocket-Book2015.pdf.
- Partha Saha and Sher Verick, "*State of rural labour markets in India*," ILO Asia-Pacific working paper series (New Delhi: International Labour Organisation), 2016, http://www.ilo.org/wcmsp5/groups/public/—asia/—ro-bangkok/—sro-new_delhi/documents/publication/wcms_501310.pdf.
- National Sample Survey Organisation, *Some Aspects of Farming: Situation Assessment Survey of Farmers* (New Delhi: Ministry of Statistics and Planning Programme Implementation, Government of India), 2005b.
- National Commission for Enterprises in the Unorganised Sector, *A Special Programme for Marginal and Small Farmers* (New Delhi: Government of India, 2008), http://nceuis.nic.in/Special_Programme_for_Marginal_and_Small_Farmers.pdf.
- Ministry of Human Resource Development, Government of India, "*Adult Education*," Ministry of Human Resource Development, Government of India, (New Delhi, 2016), http://mhrd.gov.in/adult-education.
- Ministry of Finance, Government of India, *Economic Survey of India 2013 -15-16-20,* Ministry of Finance, Government of India (New Delhi, 2016), http://indiabudget.nic.in/es2015-16/echapvol2-05.pdf.
- A. Jagadeesh Babu, "Challenges and Opportunities of small farmers in India," *International Journal of Academic Research*, 2(1), 2015.
- K J S Satyasai, "How Indian farmers borrow, produce and earn? – Evidence from recent NSSO surveys," NABARD Rural Pulse, 8, 2015. https://www.nabard.org/Publication/How_Indian_farmers_borrow_produce_and_earn_h.pdf
- Ashok Gulati and Prerna Terway, "Wake up, smell the leakage," *The Indian Express*, April 11, 2016, accessed on September 8, 2016,
- Ramesh Chand, "Farmer Needs a New Deal," *The Indian Express*, March 16, 2016, accessed on September 9, 2016, http://indianexpress.com/article/opinion/columns/farmer-needs-a-new-deal-2/.

दर्शन के परिप्रेक्ष्य में पतंजलि योग के समग्र स्वास्थ्य के आयाम-एक दार्शनिक अनुशीलन

डॉ० शिव शंकर प्रसाद

एसोसिएट प्रोफेसर सह विभागाध्यक्ष दर्शनशास्त्र, मुंशी सिंह महाविद्यालय, मोतिहारी (पूर्वी चंपारण), बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार :

सृष्टि के समस्त प्राणियों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ, विवेकशील, साधन सम्पन्न, चिंतन-मनन करने वाला प्राणी है। इतना ही नहीं सृष्टि के विकास में उसका योगदान प्रारंभ से ही रहा है। मनुष्य जीवन पर सुख की कामना करता है। इसके लिए भारतीय दार्शनिकों ने पुरुषार्थ चतुष्टय का निर्देश किया है। पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म, अर्थ एवं का ये तीनों इहलौकिक सुख के साधन हैं तथा मोक्ष चरम सुख अर्थात् पारलौकिक सुख का साधन है। किन्तु इन सभी का सम्पादन तभी सम्भव है जब हमारा शरीर समग्र रूप से स्वस्थ हो। आचार्य चरक ने भी मूल पुरुषार्थ चतुष्टय को ही माना है।[1] अर्थात जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समग्र रूप से स्वस्थ होना अत्यावश्यक है। स्वस्थ्य शरीर एवं स्वस्थ मन में ही सभी कार्यों को सुचारू रूप से संचालन करने की क्षमता होती है। कहा भी गया है ''स्वास्थ्य ही धन है''। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य भी मनुष्य समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति कर अपने जीवन के परम लक्ष्य अर्थात् पुरुषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति कर सकता है और आरोग्यता तथा आनन्दपूर्वक जीवन यापन कर सकता है। पतंजलि का योगदर्शन, समाधि, साधन, विभूति और कैवल्य इन चार पादों या भागों में विभक्त है। समाधिपाद में यह बतलाया गया है कि योग के उद्देश्य और लक्षण क्या हैं और उसका साधन किस प्रकार होता है। साधनपाद में क्लेश, कर्मविपाक और कर्मफल आदि का विवेचन है।

मुख्य शब्द : परिभाषा, समग्र स्वास्थ्य, निष्कर्ष।

परिभाषा : स्वस्थ शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है - 'स्व' और 'स्थ'। 'स्व' का अर्थ है 'अपने में' और 'स्थ' का अर्थ है 'स्थिति अर्थात स्वयं में स्थिति'। स्वास्थ्य के इस व्यापक अर्थ को सिद्ध करने के लिए योग से अधिक समग्र समाधान कुछ और हो नहीं सकता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार स्वास्थ्य रोग का न होना या अशक्तता मात्र नहीं, बल्कि पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक तन्दुरुस्ती की स्थिति है।[2] पिछले कई वर्षों से इस परिभाषा का विस्तार हुआ जिसमें सामाजिक व आर्थिक रूप से गुणकारी जीवन व्यतीत करने की क्षमता को सम्मिलित किया गया है। हमारे ऋषि मुनियों ने आज से हजारों वर्ष पूर्व में इस संदर्भ में कहा था-

समदोष: समाग्निश्च समधातु मलक्रिय:।
प्रसनात्मेन्द्रियमन: स्वास्थ्य इत्यभिधीयते।।[3] *सुश्रुत संहिता-15/41*

अर्थात् जिसके शरीरस्थ वात्, पितत्त, कफ दोष समान अवस्था में हो, जिसकी शरीरस्थ अग्नियाँ ठीक प्रकार से कार्य कर रही हों, जिसके शरीर में धातुओं का निर्माण कार्य ठीक प्रकार से हो रहा हो और वे सामान अवस्था में हों, जिसके शरीर से मलों के विसर्जन क्रिया भली-भाँति हो रही हो तथा जिसकी आत्मा, इन्द्रियाँ और मन प्रसन्नता का अनुभव करते हों, इन सभी लक्षणों से युक्त पुरुष ही स्वस्थ है।

स्वास्थ्य योग को लेकर कई परिभाषाएं मौजूद हैं जिनमें से दो प्रमुख हैं। पहली परिभाषा के अनुसार गीता में लिखा **है "योग : कर्मसु कौशलम्"** अर्थात् फल की इच्छा के बिना कर्म की कुशलता ही योग है। दूसरी परिभाषा महर्षि पतंजलि द्वारा दी गई जिन्हें योग गुरु या जनक माना जाता है। महर्षि सुश्रुत ने समग्र स्वास्थ्य का प्रबंधन एक ही वाक्य में कर दिया। उनके अनुसार यदि हम स्वास्थ्य के शाब्दिक अर्थ को देखते हैं तो वह यही है कि जो स्व में स्थित है वही स्वस्थ है। वेदों के ऋषि मनुष्य को सौ वर्ष से भी अधिक बिना दूसरों के सहारे रहकर जीने की कामना करता है। वह अपने कानों को, आँखों को, मन को हृदय को, बुद्धि को तथा प्रत्येक इन्द्रियों को स्वस्थ देखना चाहता है। **वाक्म आप्यायता मनो मे आप्यायंतां चक्षु आप्यायताम्।** इत्यादि कहकर वेद पुरुष को पूर्ण स्वस्थ देखना चाहता है। यदि मनुष्य समग्र रूप से स्वस्थ है तो वह शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है।

योग के समग्र स्वास्थ्य :

समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति योग द्वारा ही संभव है। महर्षि पतंजलि कहते हैं कि योग सिद्ध हो जाने पर दष्ठाटा अर्थात् आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाती है।[4] योग का स्वास्थ्य से बहुत गहरा सम्बन्ध है। मानसिक तनाव हो, शारीरिक अस्वस्था हो या आध्यात्मिक उन्नति में बाधा हो-इन सभी का निदान योग के माध्यम से करने की प्रेरणा महर्षि पतंजलि देते हैं। योगदर्शन में चित्त की वृत्तियों का निरोध सुनने में एक साधारण सा कथन प्रतीत होता है, लेकिन वास्तव में यह एक विज्ञान है जो पदार्थ, जीवन तथा चेतना को एक साथ लेकर चलता हे। यह विज्ञान तथा अध्यात्म की खाई पर एक सेतु का कार्य करता है। महर्षि पतंजलि ने चित्तवृतियों का सर्वथा निरोध करने के लिए अभ्यास और वैराग्य दो उपाय बताये हैं।

मन को किसी उद्देश्य या ध्येय में स्थिर करने के लिए बार-बार चेष्टा करते रहने का नाम अभ्यास है। महर्षि पतंजलि के अनुसार बहुत काल तक निरंतर आदरपूर्वक सांगोपांग सेवन किये जाने पर अभ्यास दृष्टढ़ अवस्था वाला हो जाता है।[5] योग में आरूढ़ होने के लिए गीता कहती है जब योगी न तो इन्द्रियों के विषय में और न ही कर्मों में आसक्त मन वाला होता है तथा सब प्रकार के संकल्पों का भलीभांति त्याग कर देता है, तब वह योगारूढ़ कहलाता है।[6]

योगदर्शन में–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रतयाहार, धारणा, ध्यान व समाधि ये सभी अष्टांग योग के अंग हैं। इन अष्टांगों में प्रथम दो (यम, नियम) मुख्यत: आचार सम्बन्धी अभ्यास है, ये दोनों योगाङ्ग मनुष्य को व्यवहार में निपुण बनाते हैं। अगले दो अंग (आसन, प्राणायाम) मानव शरीर को भौतिक दृष्टि से योगाभ्यास करने योग्य बनाते हैं। पाँचवा अंग प्रत्याहार है, जो इन्द्रिय-निग्रह का उपाय है और उसके बाद की प्रक्रियाएँ (धारणा, ध्यान, समाधि) पूर्णरूप से मानसिक व आध्यात्मिक नियमन की साधना ये है। महर्षि पतंजलि यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार को बहिरंग योग कहते हैं और धारणा, ध्यान, समाधि को अन्तरंग योग कहते हैं।[7]

योगदर्शन में व्याधि निवारण का एक महत्वपूर्ण अंग व सिद्ध साधन है, क्योंकि व्याधि का मूल कारण मानसिक क्लेश को माना गया है, जब व्यक्ति का मन अस्वस्थ हो तो उसका शरीर भी विभिन्न प्रकार की व्याधियों का घर बन जाता है। संसार के अंदर जितने भी कष्ट है, उसका मूल कारण चित्त का अव्यवस्थित होना ही माना गया है। इसीलिए चित्त के व्यापार को रोकने के लिए महर्षि पतंजलि ने सर्वप्रथम चित्तवृति निरोध की बात कही है। पतंजलि ने चित्त की क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, निरुद्ध और एकाग्र ये पाँच प्रकार की वृत्तियाँ मानी है, जिनका नाम उन्होंने **'चित्तभूमि'** रखा है। उन्होंने कहा है कि आरंभ की तीन चित्तभूमियों में योग नहीं हो सकता, केवल अंतिम दो में हो सकता है। इन दो भूमियों में संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात ये दो प्रकार के योग हो सकते हैं। जिस अवस्था में ध्येय का रूप प्रत्यक्ष रहता हो, उसे संप्रज्ञात कहते हैं। यह योग पाँच प्रकार के क्लेशों का नाश करनेवाला है। असंप्रज्ञात उस अवस्था को कहते हैं, जिसमें किसी प्रकार की वृत्ति का उदय नहीं होता अर्थात् ज्ञाता और ज्ञेय का भेद नहीं रह जाता, संस्कारमात्र बचा रहता है। यही योग की चरम भूमि मानी जाती है और इसकी सिद्धि हो जाने पर मोक्ष प्राप्त होता है।

(1) क्षिप्तावस्था– यह चित्त की रजोगुण प्रधान अवस्था है, जिसमें सत्य और रजस दबे रहते हैं। इस अवस्था वाला चित्त अत्यंत चंचल होता है जो निरंतर विषयों के पीछे भागता रहता है। यह बर्हिमुख होता इसलिए निरंतर बाह्य विषयों में प्रवृत्त होता रहता है। इस अवस्था में चित्त विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा सब ओर दौड़ता रहता है, वह निरंतर अशांत और अस्थिर बना रहता है। ऐसे चित्त वाले व्यक्ति कोई भी कार्य ठीक प्रकार संपादित नहीं कर सकता। इस अवस्था में मानसिक क्रियाओं पर कोई नियंत्रण नहीं होता। वह पूर्णतया सांसारिक विषयों में लिप्त रहता है। निरंतर सुखी-दुखी, चिन्तित और शोकपूर्ण एवं राग-द्वेष युक्त रहता है। उसमें राजसी वृत्तियों का उदय होता है। इसमें धर्म, अधर्म, वैराग्य, अवैराग्य, ज्ञान-अज्ञान तथा ऐश्वर्य-अनैश्वर्य की तरफ प्रवृत्ति होती है। इस अवस्था में प्रधानता तो रजोगुण की ही होती है। परन्तु सत्व और तमस् भी गौण रूप से उपस्थित होते हैं। इसमें चित्त स्वभावत: अत्यंत अस्थिर होता है। जिस चित्त में अतीन्द्रिय विषयों की विचारणा के लिए जितनी स्थिरता और बौद्धिक शक्ति की आवश्यकता है। उतनी नहीं होती है चित्त की यह अवस्था सामान्य सांसारिक मनुष्यों की होती है। जो यौगिक दृष्टष्टि से यह अवस्था मानसिक स्वस्थता का प्रतीक नहीं है, यह मानसिक स्वस्थता से बहुत दूर है।

(2) मूढ़ाप्तावस्था– जो चित्त किसी इन्द्रिय विषय में मग्न होने के कारण तत्त्व चिन्तन करने में आरोग्य हो जाता है वह चित्त की मूढ़ावस्था है।[8] यह चित्त की तम: प्रधान अवस्था है। इस अवस्था में रजस और सत्त्व दबे रहते हैं। तमोगुण उद्रेक से चित्त इस मूढ़ावस्था को प्राप्त होता है। चित्त की इस अवस्था में मनुष्य को निद्रा, तन्द्रा, मोह, भय, आलस्य, दीनता, भ्रम और विषयों के ज्ञान की अस्पष्ट प्राप्ति का अनुभव होता है। इस अवस्था में व्यक्ति ठीक प्रकार सोच-विचार नहीं कर सकता, उसकी बौद्धिक शक्तियों पर आवरण पड़ा रहता है। इस अवस्था में मनुष्य की प्रवृत्ति अज्ञान, अधर्म, अवैराग्य, अनैश्वर्य में होती है और व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह से युक्त होता है। इस अवस्था में व्यक्ति विवेकशून्य होने के कारण उचित-अनुचित का विचार नहीं कर पाता है। वह नहीं समझ पाता कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं। वह काम, क्रोध, लोभ, मोह के वशीभूत होकर विपरीत और अनुचित कार्यों में प्रवृत्त रहता है। यह अवस्था राक्षसों, पिशाचों तथा मादक द्रव्य सेवन किये हुए उन्मत्त और नीच मनुष्यों की होती है।[9] वह व्यक्ति मानसिक रूप से रोगी है जिसका उपचार अपेक्षित है।

(3) विक्षिप्तावस्था– विक्षिप्त का तात्पर्य है– जो क्षिप्त से विशिष्ट हो। अर्थात् जिस अवस्था में चित्त कभी-कभी स्थिर हो और कभी-कभी चंचल हो जाता हो, वह विक्षिप्त है।[10] इस अवस्था में सत्व गुण की प्रधानता रहती है तथा अन्य दोनों गुण रजस और तमस् दबे रहते हैं। रजोगुण की प्रबलता के कारण क्षिप्त चित्त कभी स्थिर नहीं होता, वह सदा चंचल बना रहता है, परन्तु विक्षिप्त अवस्थायें सत्व की अधिकता के कारण स्थिरता को प्राप्त कर लेता है।[11] इसमें व्यक्ति ज्ञान, धर्म, वैराग्य और ऐश्वर्य की तरफ प्रवृत्त होता है। इस अवस्था में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि गौण हो जाते हैं और सांसारिक विषयों के प्रति रूचि नहीं रहती। इस अवस्था में व्यक्ति निष्काम कर्म में प्रवृत्त होता है। परन्तु चित्त स्थिर नहीं रहती है। इस अवस्था में पहुँचा व्यक्ति अधिकांश कसौटियों पर सर्वथा सामान्य एवं मानसिक रूप से स्वस्थ ही माना जाएगा किन्तु मानवीय अस्तित्व पर आत्यन्तिक रूप से विचार करने वाली यौगिक दृष्टष्टि में यह समग्र मानसिक स्वास्थ्य अर्थात् समाधि से दूर है।

(4) निरुद्धावस्था– इस अवस्था में चित्त की संपूर्ण वृत्तियों का निरोध होता है। चित्त में स्थिरता पूर्ण रूप से स्थापित हो जाती है। इस अवस्था में साधक को आत्मा और चित्त के भेद का साक्षात्कार हो जाता है, इस अवस्था में विवेक ख्याति भी चित्त की एक वृत्ति है, यद्यपि यह उच्चतम सात्विक वृत्ति है। अत: उसका भी निरोध हो जाता है। इस उच्चतम सात्विक वृत्ति का निरोध परवैराग्य द्वारा किया जाता है। इस वृत्ति का निरोध हो जाने पर साधक सम्पूर्ण चित्त वृत्ति निरोध की अवस्था में पहुँच जाता है। इसमें चित्त आत्मस्वरूप में स्थित हो जाता है, जिसमें अविद्यादि पंचक्लेश नष्ट हो जाते हैं।

(5) एकाग्रावस्था– जिस चित्त का अग्र या अवलंबन एक है उसे एकाग्रचित कहते हैं।[12] सूत्रकार ने कहा है–एक वृत्ति निवृत्त होने पर यदि उसके बाद ठीक तदनुरूप वृत्तियों का प्रवाह चलता रहे तो ऐसे चित्त को एकाग्रचित्त कहते हैं।[13] चित्त की अवस्था में चित्त विशुद्ध सत्व रूप हो जाता है, रजस् तथा तमस् तो वृत्ति मात्र ही रह जाते हैं। अत: रजोगुण एवं तमोगुण के विक्षेप रुक जाने से वृत्तियों का प्रवाह एक ही दिशा में बना रहता है तथा सत्त्वगुण की प्रधानता के कारण चित्त निर्मल स्फटिक मणि के समान पवित्र और स्थिर हो जाता है उस अवस्था को एकाग्र अवस्था कहते हैं।[14] इस अवस्था में वृत्ति विशेष के सिवाय अन्य वृत्तियों का निरोध हो जाता है। वह अवस्था योगियों की होती है।[15]

इन पाँच अवस्थाओं में प्रथम तीन योग (समाधि) के लिए नितांत अनुपयोगी हैं परंतु अंतिम दो अवस्थाओं में योग का उदय होता है।[16] इसमें सत्व की प्रधानता रहती है, अत: इसमें कोई रोग उत्पन्न नहीं होता। विविध मानसिक रोग मन की मूढ़ व क्षिप्त अवस्थाओं में उद्‌भूत होते हैं क्योंकि मानसिक-अस्वस्था का प्रभाव बाहरी शरीर पर पड़ता है इसमें होने वाले रोगों को मनोकायिक रोग कहा जाता है जो कि मन के विकारग्रस्त होने पर शरीर में उसके लक्षण प्रकट होने लगते हैं। इसप्रकार से जनित रोगों को मनोकायिक रोगों की श्रेणी में रखा जाता है। अत: जिसका मानसिक व्यापार मर्यादित होता है वे कभी शोक-मोह तथा शारीरिक रोगों से अभिभूत नहीं होते। यही कारण है कि योगी का जीवन अरोग्यतापूर्ण व दीर्घजीवी होता है। यदि साधारण मनुष्य भी मन को संयमित करके अष्टांग योग का अनुष्ठान प्रारंभ कर दे तो वह थोड़े समय में ही अपने आप को तन-मन से सुखी एवं स्वस्थ अनुभव करेगा।

आचार्य पं. श्री राम शर्मा के अनुसार, ''योग शरीर, मन, व आत्मा तीनों के परिष्कार पर केन्द्रित है।''[17] जीवन तन और मन के जोड़ से कुछ अधिक है। इसमें अन्तर्भावना, अन्तर्चेतना एवं अन्तरात्मा जैसे अदृश्य आयाम भी हैं। ''चित्त में उत्पन्न हुए विकार से ही शरीर में दोष उत्पन्न होता है। शरीर में क्षोभ या दोष उत्पन्न होने से प्राणों के प्रसार में विषमता आ जाती है और प्राणों की गति में विकार होने से नाड़ियों के परस्पर सम्बन्ध में खराबी आ जाती है। कुछ नाड़ियों की शक्ति का तो स्राव हो जाता है और कुछ में जमाव हो जाता है।''[18]

सुप्रसिद्ध चिकित्सा विज्ञानी सर डब्ल्यू रिचर्डसन ने अपनी कृति 'दि फील्ड ऑफ डिसीजेज' में लिखा है कि मानसिक उद्वेग एवं चिन्ताओं के कारण त्वचा की एलर्जी एवं फुन्सियों के प्रकोप देखे जाते हैं। कैंसर, हिस्टीरिया, मिर्गी आदि हालत में भी सबसे मानसिक जगत में ही विकार बढ़े होते हैं। **आचार्य श्री** के अनुसार, शरीर की थकावट शारीरिक परिश्रम नहीं वरन् उतावलापन, घबराहट, चिंता, विषम मन:स्थिति या अत्यधिक भावुकता होती है। निराशाजनित घबराहट, अधूरी आशाएँ और शक्ति से अधिक कामनाएँ, भावुकता की परस्पर विरोधा उलझनें भी रोगी में थकान पैदा करती है। थकान से बचने के लिए आवश्यक है कि सदैव प्रसन्नता और आशावादी विचारों का संचार किये रखा जाए।

निष्कर्ष :

मानसिक स्वास्थ्य बिना योगाभ्यास के प्राप्त ही नहीं किया जा सकता है। नियमित योगाभ्यास, ध्यान के बिना मानसिक स्वास्थ्य की कल्पना करना भी भयावह है। योग जहाँ एक ओर शरीर के स्तर पर कार्य करता है तो वही दूसरी ओर मन पर भी गहराई से प्रभाव डालता है। शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य जब मिलता है तो यह जोड़ ही आत्मिक स्वास्थ्य बनता है। ऐसा नहीं हो सकता है कि शारीरिक स्वास्थ्य है लेकिन मानसिक स्वास्थ्य नहीं है और हम आत्मिक स्वास्थ्य को पा जाएँ।

यौगिक जीवन शैली बाहरी एवं आंतरिक जीवन में सामंजस्य बनाने का कारगर उपाय है। सामंजस्य सही हो तो जीवन में कुशलता, सफलता एवं क्षमता स्वयं ही विकसित हो जाती है। प्राण प्रवाह भी स्वयं अपने सम्पूर्ण परिपथ में प्रवाहित होता है। यौगिक जीवन शैली कारगर निदान हेतु ही नहीं, वरन् समग्र स्वास्थ्य के लिए भी एक समग्र चिकित्सकीय दृष्टिकोण है, खाना-पीना, सोना-जागना, चिंतन-चरित्र, व्यवहार आदि सभी इसमें समाहित है। योग को समग्र स्वास्थ्य का कारगर सूत्र यदि कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

सन्दर्भ सूची:-

1. चरक सूत्र, 1/15
2. विश्व स्वास्थ्य संगठन (1948)
3. सुश्रुत संहिता-15/41
4. योगसूत्र-1/3
5. गीता, 6/4
6. योगसूत्र-2/29
7. डॉ. प्रणव पण्ड्या (1993), अखंड ज्योति, प्रज्ञायोग की सर्वसुगम साधना, वर्ष-56, अंक-085, पृ.-18
8. आरण्य, हरिश्चन्द्र, पातंजलसूत्र योग दर्शन, पृ. 4
9. डॉ. शांतिप्रकाश आत्रेय, योग मनोविज्ञान, पृ. 131
10. आरण्य श्रीमत स्वामी हरिहरानन्द, पातंजल योग दर्शन, पृ. 4
11. आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ. 264
12. आरण्य श्रीमत स्वामी हरिहरानन्द, पातंजल योग दर्शन, पृ. 4
13. पा. यो. सूत्र 3/12
14. आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ. 294
15. डॉ. हरेंद्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ. 336
16. आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ. 294
17. डॉ. प्रणव पण्ड्या (2001), अखंड ज्योति, मई, योग का ज्ञान विज्ञान, वर्ष-64, अंक-05, पृ.-12
18. वही, (1998), मार्च, अखण्ड ज्योति, जाड़े मन में, रोग, तन में, वर्ष-61, अंक-03, पृ. 39

जनपद अमरोहा के ग्रामीण खेतीहर श्रमिकों का एक आर्थिक एवं सामाजिक विश्लेषण

मुकेश कुमार

शोधार्थी, मोनाड विश्वविद्यालय, अर्थशास्त्र विभाग, हापुड़

डॉ० मनन कौशल

एसोसिएट प्रोफेसर, विभाग अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, जे एस हिंदू स्नातकोत्तर कॉलेज अमरोहा, उत्तर प्रदेश

शोध संक्षेप

प्रत्येक राष्ट्र का मुख्य लक्ष्य मानवीय संसाधनों का चहुमुखी विकास करना होता है। मानवीय संसाधन आर्थिक परिवर्तन के मुख्य वाहक होते हैं, जैसा कि प्रो. गुन्नार मिर्डेल का कहना है। मानवीय संसाधनों का विकास एवं गुणवत्ता उनकी आय, रोजगार एवं उपभोग के स्तर पर निर्भर करती है। आय, रोजगार एवं रहन-सहन के स्तर में वृद्धि और इसके साथ ही साथ जनता के सामाजिक व आर्थिक कल्याण में वृद्धि सभी आर्थिक योजनाओं का मुख्य उद्देश्य रहा है। इन योजनाओं को सफल बनाने के लिए भविष्य में वस्तुओं की माँग-पूर्ति एवं मानवीय संसाधनों के बीच सनतुलन स्थापित करना अति आवश्यक है। यदि वस्तुओं एवं संसाधनों की माँग पूर्ति के बीच असन्तुलन रहता है, तो आर्थिक विकास का क्रम अवरूद्ध हो जाता है। इसीलिये ग्रामीण क्षेत्र के परिवारों के व्यवसाय, रोजगार एवं आय-व्यय प्रारूप से सम्बन्धित अध्ययन अति आवश्यक है। हौथेकर एवं प्रेस ने भी पारिवारिक आय-व्यय अध्ययन को अत्यधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण बतलाया है। इतना ही नहीं, अपितु श्रीमती हेलैन एवं लेमले ने तो पारिवारिक आय, व्यय, बचत एवं रोजगार सम्बन्धी अध्ययनों को आर्थिक विकास रूपी पहिये का हब भी कहा है।

मुख्य शब्द- रोजगार एवं आय-व्यय,श्रम शक्ति, आर्थिक नियोजन।

1.1 प्रस्तावना

पारिवारिक सर्वेक्षण न केवल व्यवसाय, रोजगार एवं आय-व्यय स्तर सम्बन्धी समंक उपलब्ध कराते हैं, अपितु पूर्व में किये गये सर्वेक्षणों से प्राप्त समंकों से तुलना करने में भी सहायक होते हैं। ऐसे सर्वेक्षण रोजगार, आय, व्यवसाय, रहन-सहन के स्तर आदि में सुधार करने के लिए जिस प्रकार की नीति एवं कार्यक्रम अपनाये जाने चाहिये, उनकी ओर भी इंगित करते हैं। श्रीमती लेमले ने पारिवारिक सर्वेक्षणों के तीन प्रमुख लाभ विश्लेषण, प्रवृत्ति एवं सूचना बतलाये हैं।

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसमें आज भी कुल श्रम शक्ति का 65 प्रतिशत भाग कृषि कार्य में संलग्न है तथा कुल राष्ट्रीय आय का लगभग 30 प्रतिशत भाग कृषि से प्राप्त होता है। इतना ही नहीं अपितु कुल राष्ट्रीय निर्यात में 40 प्रतिशत योगदान कृषि का होता है। इससे स्पष्ट है कि भारत की समृद्धि एवं कल्याण कृषि की समृद्धि व उन्नति पर निर्भर करती है। विगत दो दशकों से खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता की प्राप्ति भारतीय कृषि का एक सकारात्मक प्रेरणादायक पक्ष कहा जा सकता है। कुछ दशक पूर्व यह कहा जाता था कि केवल मध्यम एवं वृहद् कृषक ही नयी कृषि तकनीक को अपना सकते हैं, परन्तु आज बदलते परिवेश एवं अनेक अध्ययनों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सीमान्त एवं लघु कृषक भी नयी तकनीक अपनाने में असमर्थ नहीं हैं। भारत में कृषि क्षेत्र पर किये गये विभिन्न सर्वेक्षण-प्रतिवेदनों ने यह सिद्ध कर दिया है कि वृहद् जोतों की तुलना में लघु जोतों से प्राप्त प्रति हेक्टेयर उत्पादन अधिक होता है। साहनी एवं खांडेकर का अभिमत इसी प्रकार है। महाराष्ट्र में किये गये एक अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि लघु कृषकों की आय में वृद्धि दर वृहद् कृषकों की अपेक्षा बहुत अधिक थी।

भारत ने विभिन्न ग्रामीण विकास योजनाओं, पंचवर्षीय योजनाओं, हरित-क्रान्ति, पीली क्रान्ति, कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम (सी.ए.पी.) आदि के रूप में कृषि क्षेत्र की उत्पादकता एवं किसानों की आय वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं।

विकासात्मक कार्यों तथा आर्थिक नियोजन के परिणामस्वरूप रोजगार, आय, उपभोग-स्तर एवं अन्य आर्थिक, सामाजिक पहलुओं में हुए परिवर्तनों से सम्बन्धित तथ्यों एवं समंकों का संकलन करने के लिए प्राय: सभी देशों में स्थायी या अस्थायी सर्वेक्षण संगठनों की स्थापना की गयी है। इस संगठन में राष्ट्रीय

स्तर पर अनेक चक्रपूर्ण कर विकास सम्बन्धी बहुमूल्य समंक प्रदान किये हैं। इन समंकों से सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण एवं नीति निर्धारण में अमूल्य योगदान प्राप्त हुआ है।

किन्तु खेद का विषय है कि राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (NSSO) केवल राष्ट्रीय स्तर पर ही सर्वेक्षण करता है, न कि खण्ड-स्तर या क्षेत्रीय स्तर पर। राष्ट्रीय स्तर पर किये गये सर्वेक्षणों के परिणाम खण्ड या क्षेत्रीय स्तर पर लागू नहीं किया जा सकते हैं, क्योंकि भारत एक विशाल एवं विविधताओं से पूर्ण देश है। क्षेत्रीय स्तर के सर्वेक्षण के महत्व को दृष्टिगत रखकर ही प्रस्तुत शोध कार्य उ.प्र. के अमरोहा जनपद में किया गया है।

1.1.1 वर्तमान अध्ययन की आवश्यकता

उत्तरांचल राज्य के निर्माण से पूर्व उ.प्र. एक विशाल राज्य रहा है, जिसका क्षेत्रफल 294411 वर्ग किलोमीटर था। यह भारत का सर्वाधिक जनसंख्या वाला प्रदेश भी रहा है। यहाँ की लगभग 78 प्रतिशत जनंसख्या का मुख्य व्यवसाय कृषि है तथा आज भी कुल श्रम शक्ति का 65 प्रतिशत भाग कृषि कार्यों में संलग्न है। उ.प्र. की गणना सर्वाधिक खाद्यान्न, गन्ना एवं तिलहन पैदा करने वाले राज्यों में होती है। उ.प्र. में सन् 2010-11 में खाद्यान्न 40440 हजार मी. टन, दालें 25725 हजार मी. टन, तिलहन 852 हजार मी. टन एवं 115419 मी. टन गन्ने का उत्पादन हुआ। कृषि में तकनीकी परिवर्तनों के परिणामस्वरूप उ.प्र. में न केवल कृषि उत्पादन बढ़ा है, अपितु कृषकों की आय, रोजगार एवं व्यावसायिक संरचना में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। अतः वर्तमान में यह समीचीन ही है कि उ.प्र. के कृषकों की आय, व्यवसाय एवं रोजगार संरचना का गहन अध्ययन क्षेत्रीय स्तर पर किया जाये।

सन् 2001 की जनगणना के अनुसार उ.प्र. में जनसंख्या का घनत्व 689 प्रति वर्ग किलोमीटर था, जो सम्पूर्ण भारत के जनसंख्या घनत्व 324 की अपेक्षा बहुत अधिक था। उत्तर प्रदेश में न केवल जनसंख्या घनत्व अधिक है, अपितु अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या भी अधिक है। उ.प्र. में यह जनसंख्या 21.2 प्रतिशत थी जो राष्ट्रीय स्तर के अनुपात (16.48 प्रतिशत) से अधिक है। यहाँ की प्रति व्यक्ति आय 1989-99 के मूल्यों पर 9765 रूपये थी, जो अन्य राज्यों की तुलना में कम है। यहाँ गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या सन् 1997-98 के अनुसार 36.9 प्रतिशत है। राज्य में गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाले परिवार सबसे कम अमरोहामें (6.33%) हैं।

1.2 सम्बन्धित साहित्य का पुनरावलोकन

अनेक विद्वानों, अनुसंधानकर्त्ताओं एवं आर्थिक विश्लेषणकर्त्ताओं ने प्रस्तुत शोध विषय के विविभन्न पहलुओं का गहन अध्ययन किया है। सम्बन्धित साहित्य के पुनरावलोकन का अर्थ प्रस्तुत अध्ययन से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं एवं अनुसंधान कार्यों के सूक्ष्म अवलोकन से है। साहित्य का पुनरावलोकन न तो पूर्व विद्वानों द्वारा किये गये अनुसंधान कार्यों का आलोचनात्मक परीक्षण है, और न ही पूर्व अनुसन्धानों का अद्यतन विवरण है, अपितु प्रस्तुत शोध कार्य से सम्बन्धित कुछ अति महत्वपूर्ण साहित्य का विवरण प्रस्तुत करना है।

हमारे शोध से सम्बन्धित महत्वपूर्ण कृषक परिवारों का व्यवसाय-प्रारूप, रोजगार एवं आय प्रवृत्ति आदि हैं। अध्ययन के ये पहलू पूर्ण स्वतन्त्र न होकर परस्पर सम्बन्धित हैं। अतः इन पहलुओं से सम्बन्धित साहित्य के पुनरावलोकन में कुछ अंश तक पुनरावलोकन में कुछ अंश तक पुनरावृत्ति की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। फिर भी प्रस्तुत शोध से सम्बन्धित साहित्य को निम्न महत्वपूर्ण भागों में विभाजित किया जा सकता है:-

1. सीमान्त एवं लघु कृषकों की समस्याओं से सम्बन्धित साहित्य।
2. कृषक परिवारों के व्यवसाय एवं रोजगार सम्बन्धी साहित्य।
3. कृषक परिवारों के आय प्रारूप, आय स्तर एवं आय प्रवृत्ति सम्बन्धी साहित्य।
4. विभिन्न श्रेणी के कृषकों के पास उपलब्ध संसाधनों के उपयोग एवं उत्पादकता सम्बन्धी साहित्य।

प्रस्तुत शोध कार्य से सम्बन्धित साहित्य के प्रमुख भागों को अनेक उप विभागों में भी विभाजित किया है; जैसे लघु एवं वृहद् कृषकों की आय का तुलनात्मक अध्ययन, आय की असमानता, भूमि जोत का आकार एवं रोजगार, जोत का आकार एवं कृषि उत्पादकता, आय के स्रोत, लाभान्वित एवं गैर लाभान्वित कृषकों की आय के स्रोत व आय स्तर का तुलनात्मक अध्ययन, संसाधनों की उत्पादकता एवं उसमें असमानता के कारण आदि।

1.2.1 सीमान्त एवं लघु कृषकों की समस्याओं से सम्बन्धी साहित्य

खेतिहर ग्रामीण, सीमान्त एवं लघु कृषकों से सम्बन्धित अनेक समस्यायें हैं। इनमें वित्त का अभाव, रोजगार की समस्या, खेतों का विखण्डन, सिंचाई सुविधाओं का अभाव आदि प्रमुख हैं। ये समस्याऐं बहु आयामी हैं। इसलिए प्रारम्भ से ही इन समस्याओं ने अनुसंधानकर्त्ताओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। इन समस्याओं से सम्बन्धत कुछ महत्वपूर्ण अध्ययन निम्न प्रकार हैं-

शुक्ला एवं चौहान ने 1970 में सम्पन्न अपने अध्ययन से निष्कर्ष निकाला कि लघु कृषक भी अपनी भूमि से पूर्ण रोजगार प्राप्त करने में असफल थे। लघु कृषक केवल फसलों की बुवाई व कटाई के समय में ही पूर्ण रोजगार की अवस्था में रहे हैं; शेष अवधि में लघु कृषकों को भी अल्प रोजगार की गम्भीर समस्या का सामना करना पड़ता था। कृषि श्रमिकों की स्थिति तो और भी अधिक गमीीर थी।

ग्रेवाल एवं सिह ने अपने शोध अध्ययन में पाया कि सीमान्त एवं लघु कृषक स्वयं के खेतों पर क्रमशः 65 दिन एवं 126 दिन का रोजगार एक वर्ष में प्राप्त कर पाते थे। बेरोजगारी एवं अल्प आय के कारण अच्छे दुधारू पशु खरीदने में भी असमर्थ थे। इन कृषकों के सामने न केवल बेरोजगारी की समस्या थी, अपितु कृषि उत्पादन के विपणन की भी समस्या गम्भीर थी।

एस0के0 सिंह एवं रमन्ना के अनुसार उन्नत कृषि तकनीक के प्रयोग के साथ साथ यदि पर्याप्त साख सुविधायें भी किसानों को उपलब्ध करायी जाये, तो इससे लघु एवं सीमान्त कृषकों के पारिवारिक सदस्यों में व्याप्त भयंकर अल्प बेरोजगारी की समस्या को दूर किया जा सकता है।

दिवाकर ने पश्चिमी राजस्थान में 100 कृषकों के प्रतिदर्श के आधार पर सर्वेक्षण के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि रहट एवं चरस जैसे परम्परागत सिंचाई के साधनों की तुलना में आधुनिक साधनों के प्रयोग से कृषि एवं बहु फसली कार्यक्रम का विस्तार होने से मानव-श्रम की मांग में अत्यधिक वृद्धि होती है। इससे अल्प बेरोजगारी एवं अदृश्य बेरोजगारी की समस्या से मुक्ति पायी जा सकती है।

प्रो. हनुमंत राव के मतानुसार कम उपजाऊ एवं बारानी क्षेत्रों में नयी तकनीक जैसे भूमि सुधार, सिंचाई सुविधायें, अच्छी किस्म के बीज, खाद का प्रयोग आदि से रोजगार एवं गरीबी की समस्या को दूर किया जा सकता है।

व्यास ने कृषकों को नवीन कृषि नीति अपनाने में आने वाली समस्याओं का अध्ययन किया। उनके अनुसार कृषि तकनीक अपनाने की प्रमुख बाधायें क्रय-शक्ति का अभाव, वित्त का अभाव, वित्तीय संस्थाओं का निर्बल संगठनात्मक ढांचा, शिक्षा का निम्न स्तर आदि हैं।

विभिन्न अध्ययनों से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट हुआ है कि नवीन कृषि उत्पादन विधि के प्रयोग के कारण कृषकों के रोजगार एवं व्यवसाय प्रारूप में असाधारण परिवर्तन हुए हैं। कुछ महत्वपूर्ण अध्ययनों का पुनरावलोकन निम्नवत् है:-

मुथैया ने थान्जावुर जनपद में नवीन कृषि पद्धति का कृषि श्रमिकों के रोजगार स्तर पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया। उनके अनुसार धान के उन्नत बीज के प्रयोग से श्रमिक मांग में 39 से 65 प्रतिशत तक वृद्धि होती है; जबकि परम्परागत बीजों के प्रयोग से ऐसा नहीं होता है। अत: मुथैया ने बताया कि तकनीकी परिवर्तन ने पारिवारिक श्रम के साथ-साथ कृषि श्रमिक की मांग के अवसरों में भी वृद्धि की है।

सिंह और श्रीवास्तव ने प्रति फार्म एवं प्रति हैक्टेयर उपलब्ध मानव श्रम रोजगार में पारिवारिक श्रम एवं मजदूरी पर श्रम के अनुपात का आकलन किया। उनके मतानुसार प्रति फार्म एवं प्रति हैक्टेयर क्रमश: 1599 एवं 1066 श्रम घंटों का रोजगार प्रापत होता है। इसमें पारिवारिक श्रम का उपयोग 71 से 76 प्रतिशत के बीच रहता है। कुल उपलब्ध पारिवारिक श्रम में केवल 28.69 प्रतिशत श्रम को ही रोजगार मिल सका।

प्रो. भल्ला ने नयी कृषि तकनीक के प्रयोग से रोजगार पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया। उन्होंने उन्नत बीजों के प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रभावों का भी आकलन किया। उनके मतानुसार गेहूँ की उन्नत किस्मों के उपयोग करने से परम्परागत बीजों की तुलना में प्रति हैक्टेयर भूमि से 49.16 प्रतिशत मानव श्रम घन्टों का अधिक रोजगार प्राप्त होता है। इसी प्रकार चावल एवं बाजरे के उन्नत बीजों से क्रमश: 112.63 एवं 159.34 श्रम घन्टों का रोजगार अधिक प्राप्त होता है। डॉ. भल्ला के परिणाम बतलाते हैं कि गेहूँ, चावल एवं बाजरे की उन्नत प्रजातियों के प्रयोग से कुल रोजगार में (प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभाव) क्रमश: 76.21, 148.67 एवं 200.14 श्रम घन्टों की वृद्धि होती है।

प्रो. आचार्य ने राजस्थान के उदयपुर एवं चित्तौड़गढ़ जनपद में नयी कृषि तकनीक के उपयोग से रोजगार पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया। उन्होंने बतलाया कि बैल एवं रहट के स्थान पर पम्प सैट व ट्रैक्टर का प्रयोग करने का रोजगार के अधिक अवसर अर्जित किये जा सकते हैं, जिससे मजदूरी पर अधिक श्रमिकों को रोजगार उपलब्ध होता है। उन्होंने यह भी बतलाया कि देशी बीजों के स्थान पर उन्नत बीजों के उपयोग से करीब 50 प्रतिशत अधिक श्रमिकों की आवश्यकता होती है।

दिवाकर ने पश्चिमी राजस्थान में सिंचाई के आधुनिक उपकरणों एवं परम्परागत तरीकों के प्रयोग से रम रोजगार पर पड़ने वाले प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन किया। उन्होंने 100 कृषकों के प्रतिदर्श के आधार पर सर्वेक्षण के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि रहट एवं चरस जैसे परम्परागत सिंचाई के साधनों की तुलना में आधुनिक साधनों के प्रयोग से सघन कृषि एवं बहुफसली कार्यक्रम का विस्तार होने से मानव श्रम की मांग में अत्यधिक वृद्धि होती है। इससे अल्प बेरोजगारी एवं अदृश्य बेरोजगारी की समस्या से मुक्ति पायी जा सकती है।

नरेन्द्र कुमार ने जनपद मेरठ में विकास खण्ड रजपुरा के चार गाँवों से 121 कृषक परिवारों के प्रतिदर्श का सर्वेक्षण किया। प्रतिदर्श में 31 ट्रैक्टर मालिक थे, 57 किराये पर ट्रैक्टर का प्रयोग करने वाले तथा 33 मुख्य रूप से बैलों का प्रयोग करने वाले कृषक परिवार थे। इस अध्ययन से उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि बैलों की तुलना में ट्रैक्टर के प्रयोग से उत्पादन एवं रोजगार में अधिक वृद्धि होती है। उन्होंने सुझाव दिया कि विशेष रूप से सीमान्त एवं लघु कृषक बैलों की तुलना में ट्रैक्टर का प्रयोग कर अपनी आय बढ़ा सकते हैं तथा प्राप्त अतिरिक्त आय का उपयोग सिंचाई, खाद एवं बीज में करके अधिक लाभ उठा सकते हैं।

व्यास ने सुझाव दिया कि यन्त्रीकरण के उपयोग से न केवल उपज में वृद्धि होती है, अपितु कृषि क्षेत्र में विकास के नये-नये आयाम भी स्थापित होते हैं। बैलों की अपेक्षा ट्रैक्टर का उपयोग अधिक सस्ता साबित हुआ है। यन्त्रीकरण इसलिए भी प्रभावी हुआ है, क्योंकि इनके क्रय हेतु आसान शर्तों पर सरकार द्वारा ऋण उपलब्ध कराया जाता है। सम्भवत: यही कारण है कि भूस्वामी अब श्रमिकों के स्थान पर यन्त्रीकरण की ओर अधिक अग्रसर है। योजना काल में कृषि क्षेत्र में प्रति हैक्टेयर पावर का उपयोग भी अत्यधिक बढ़ा है। यही कारण है कि कृषकों की आय में वद्धि पहले से अधिक है। वस्तुत: नयी किस्मों के बीज, ट्रैक्टर, पम्प सैट, ट्यूबवैल आदि से न केवल भारतीय कृषि का तेजी से विकास हुआ है, अपितु कृषक आत्मनिर्भर भी हुए हैं। किन्तु सामान्य कृषकों को यन्त्रीकरण से लाभ कम मिल रहा है। इसके महत्वपूर्ण कारक क्रय-शक्ति का अभाव, वित्त का अभाव, वित्तीय संस्थाओं का निर्बल संगठनात्मक ढांचा, शिक्षा का निम्न स्तर आदि है।

महारत्ना अरूप ने वीरभूम के गाँवों में किये गये अपने शोध अध्ययन से पाया कि कृषक परिवारों के किशोर बालकों द्वारा मजदूरी पर एवं स्वयं के खेतों पर कार्य करने से कृषि श्रमिकों एवं कृषि कर्मियों के रोजगार स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बाल श्रमिकों का कार्य करना गरीबी दूर करने का उचित उपाय नहीं कहा जा सकता है। इसलिए अरूप का सुझाव था कि गरीब परिवारों को जनसंख्या नियंत्रण के तरीकों से अवगत कराया जाये। अधिक जनसंख्या से होने वाले कुप्रभावों की जानकारी दी जाये। यह भी समझाया जाये कि गरीबी का प्रमुख कारण अधिक जनसंख्या है। ऐसी मानसिकता से गरीबी की तीव्रता कम की जा सकेगी।

जी.एस. भल्ला एवं गुरमैल सिंह ने नयी कृषि तकनीक से सम्बन्धित अपने अध्ययन द्वारा देखा कि उन्नत बीज, खाद तथा सुधरे उपकरणों की नवीन कृषि विधि जो साठा के दशक में प्रारम्भ हुई थी, के प्रयोग से कृषि उत्पादन में असाधारण वृद्धि हुई है। इसके फलस्वरूप कृषि में क्रान्तिकारी तकनीकी परिवर्तन आया है। भारत के विभिन्न प्रान्तों एवं क्षेत्रों में इस विधि को अलग-अलग रूपों में अपनाया गया है। इसलिये सम्पूर्ण भारत में कृषि में एक समान परिवर्तन देखने को नहीं मिलते हैं।

डॉ. शिवशंकर एवं वर्मा के मतानुसार दुग्ध व्यवसाय से कृषि उपज, ग्रामीण रोजगार व आय में अत्यधिक वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त लघु कृषकों के लिए यह कृषि उत्पादकता बढ़ाने में बहुत सहायक सिद्ध हुआ है, क्योंकि दुग्ध व्यवसाय से प्राप्त नियमित आय द्वारा कृषि प्रयोग में आने वाले बीज, खाद, कीटनाशक दवा आदि आसानी से क्रय किये जा सकते हैं।

सुब्रमन्यम के निष्कर्ष हैं कि अधिक उपज देने वाली किस्मों के बीजों के प्रयोग एवं यन्त्रीकरण से श्रमिकों की मांग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, किन्तु महिला श्रमिकों की मांग पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। किन्तु यदि महिलाओं द्वारा सम्पादित कार्य भी यंत्रों द्वारा ही किये जाते ळैं, तो उनकी मांग पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इस प्रकार सुब्रमन्यम के निष्कर्ष प्रोङ्क आचार्य, प्रोङ्क भल्ला, सुभाष चन्द्र दुआ आदि के निष्कर्षों से भिन्न हैं।

पंघल, हिम्मत सिंह और ल्यूहेक के अध्ययन के अनुसार कृषि जोत में वृद्धि के साथ साथ महिला श्रम का उपयोग बढ़ता जाता है। उन्होंने स्त्री एवं पुरूषों के तुलनात्मक अध्ययन से निष्कर्ष निकाला कि कुछ कार्यों जैसे-निराई-गुड़ाई, खरपतवार, पौध लगाना आदि में पुरूषों की तुलना में स्त्रियों का अधिक योगदान होता है। इसके विपरीत सिंचाई एवं भूमि की जुताई जैसे श्रम साध्य कार्यों में स्त्रियों का योगदान नगण्य ही रहता है।

सिंह ने अपने शोध अध्ययन से निष्कर्ष निकाला कि मणिपुर क्षेत्र में नयी कृषि तकनीक के प्रयोग का प्रभाव वहाँ के कृषि श्रमिकों पर प्रभावी रूप से पड़ा है। यह भी देखने में आया कि जैसे जैसे कृषकों में शिक्षा का प्रसार हुआ है, वैसे-वैसे ही रसायनिक खाद, बीज तथा दवाओं के उपयोग में भी वृद्धि हुई है। इस प्रकार सिंह ने उननत कृषि तकनीक की सफलता में शिक्षा के योगदान को महत्वपूर्ण बताया है।

कृषि क्षेत्र में तकनीकी परिवर्तन न केवल कृषक आय को बढ़ाते हैं, वरन् विभिन्न कृषक श्रेणी के मध्य आय असमानता के अन्तर को भी बढ़ाते हैं। विगत दो तीन दशकों में कृषि क्षेत्र से प्राप्त आय में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये हैं। अनुसन्धानकर्त्ताओं द्वारा आय से सम्बन्धित अनेक अध्ययन किये गये हैं, इनमें प्रमुख निम्नवत् हैं-

पाठक एवं उनके सहयोगियों ने परभनी जनपद के लघु कृषकों के रोजगार एवं आय प्रारूप का अध्ययन करके निष्कर्ष निकाला कि लघु कृषकों की आय का प्रमुख स्रोत फसल उत्पादन है। उनके अनुसार कुल वार्षिक आय में फसल उत्पादन का हिस्सा 46 प्रतिशत रहा, जबकि कृषि मजदूरी से प्रापत आय करीब 40 प्रतिशत थी। संतोष जाखड जिन्होंने गत शताब्दी के अन्तिम दशक में हरियाणा के यमुना नगर जनपद के विभिन्न श्रेणी के कृषकों के आय प्रारूप का अध्ययन किया है, उनके परिणाम भी पाठक आदि के निष्कर्षों के अनुरूप हैं। इससे स्पष्ट है कि आज भी कृषकों की आय का प्रमुख स्रोत फसल उत्पादन ही है।

गर्ग एवं उनके सहयोगियों ने पहाड़ी क्षेत्र के पौड़ी गढ़वाल जनपद में सीमान्त एवं लघु कृषक परिवारों की आय का तुलनात्मक अध्ययन करके बतलाया कि सीमान्त कृषकों की आय प्रति हैक्टेयर 667.00 रूपये थी, जबकि लघु कृषकों की आय 970.00 रूपये थी। उनके अनुसार आय का यह अन्तर कृषि भूमि के आकार में अन्तर के कारण था।

वर्मा एवं तिवारी ने उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद में कृषि जोत के आकार व डेयरी व्यवसाय से प्राप्त आय के मध्य तुलनात्मक अध्ययन करके स्पष्ट किया कि सीमान्त एवं लघु कृषक परिवारों ने डेयरी व्यवसाय से वृहद् कृषकों की अपेक्षा अधिक आय प्राप्त की है। उनके अनुसार यह भी देखने में आया कि लघु कृषकों के पास दुधारू पशुओं की संख्या वृहद् कृषकों की तुलना में बहुत अधिक थी।

नरेन्द्र कुमार ने उत्तर प्रदेश के मेरठ जनपद में तकनीकी परिवर्तनों का किसानों के रोजगार, आय प्राप्ति एवं आय वितरण पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि कृषि तकनीक में परिवर्तन से मध्यम एवं वृहद् किसानों को तो लाभ होता ही हैद्ध साथ ही सीमान्त व लघु कृषकों की आय में भी वृद्धि होती है। लघु कृषक हल-बैलों को रखने में असमर्थ रहते हैं। अतः इनके स्थान पर ट्रैक्टर एवं एवं अन्य कृषि यन्त्रों का प्रयोग करके अपनी आय और अधिक बढ़ा सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि सीमान्त और लघु कृषक भी उन्नत कृषि तकनीक से लाभान्वित हो सकते हैं।

शैलेथ आर. मारिया ने तमिलनाडू के त्रिचुरापल्ली जनपद के कृषकों के आय प्रारूप में हुए परिवर्तनों का अध्ययन किया। उनके अनुसार ग्रामीण कृषकों में व्यावसायिक विविधताओं के कारण उनके आय प्रारूप एवं आय स्तर में अत्यधिक परिवर्तन हुआ है।

कल्हन एवं कपूर का मानना है कि बड़े फार्मों में छोटे-छोटे खेतों की तुलना में प्रति हैक्टेयर उत्पादकता अधिक थी, जिसका मुख्य कारण बड़े किसानों का अधिक साधन सम्पन्न होने के कारण कृषि में अधिक विनियोग करना था। इस प्रकार नानावती एवं कल्हन-कपूर के परिणाम एक समान हैं। छोटे कृषकों की निम्न उत्पादकता का मूल कारण संसधनों का अभाव है।

जबकि धवन एवं बन्सल ने अपने लेख से स्पष्ट किया कि सीमान्त एवं लघु कृषक भी नये बीज, खाद एवं उन्नत कृषि तकनीक के द्वारा अपनी आय को बढ़ा सकते हैं।

अरूण घोष ने "कृषि एवं सिंचाई जल संसाधन व्यवस्था" नामक शोध लेख के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि ग्रामीण क्षेत्रों में साख सुविधाओं के अभाव के कारण ही कृषक आधुनिक सिंचाई तकनीक का लाभ नहीं उठा पाते हैं। उनका कहना है कि यदि सीमान्त, लघु एवं गरीब कृषकों का विकास कर उन्हें आत्म निर्भर बनाना है, तो गरीब कृषकों को ऋण उनकी सम्पत्ति (जमानत) के आधार पर न देकर उनकी उत्पादन क्षमता के आधार पर दिया जाना चाहिए।

कृष्ण कुमार सिंह ने अपने अध्ययन द्वारा बतलाया कि बिहार में कृषि का पिछड़ापन सिंचाई सुविधाओं के कारण है। बिहार की कृषि मानसून पर निर्भर है। बिहार में कुल 308 लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है, जिसमें 163 लाख एकड़ भूमि वृहद् एवम् मध्यम श्रेणी की सिंचाई परियोजनाओं द्वारा तथा शेष 145 लाख एकड़ भूमि लघु सिंचाई परियोजनाओं द्वारा। स्वतन्त्रता के बार से अब तक सरकार ने बिहार की सिंचाई पर लगभग 3000 करोड़ रूपये व्यय किये। फिर भी अन्य राज्यों की अपेक्षा बिहार में कृषि उत्पादन कम है। श्री सिंह का कहना है कि कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए आधुनिक सिंचाई सुविधाएँ, चकबन्दी, बाढ़ नियन्त्रण, उर्वरक आदि पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

प्रो. सी.एच. हनुमंत राव का विश्वास है कि निम्न उत्पादकता एवं बारानी भूमि वाले क्षेत्रों में भी उन्नत तकनीक जैसे भूमि सुधार, आधुनिक सिंचाई, उन्नत बीज, खाद, ऋण सुविधाओं आदि के उपयोग से रोजगार के नये नये अवसर सृजित कर गरीबी दूर कर सकते हैं।

सम्बन्धित साहित्य के उपर्युक्त पुनरावलोकन से स्पष्ट होता है कि सीमान्त एवं लघु कृषकों के लिए आय एवं रोजगार का सबसे अच्छा साधन डेयरी है, यदि उनको निम्न ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध हो जाए। विभिन्न अध्ययनों से यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि यन्त्रीकरण ने भूमि से अतिरिक्त मानव श्रम के भाव को कम किया है तथा सिंचाई के साधनों का अभाव है। साथ ही वित्त, उन्नत किस्म के बीज, खाद आदि के अभाव के कारण भी इन कृषकों की आय निम्न रहती है। वर्ष भर पर्याप्त रोजगार उपलब्ध नहीं हो पाता है। यदि सीमान्त एवं लघु कृषकों को पर्याप्त संसाधन उपलब्ध करा दिये जावें तो आय एवं रोजगार के अवसरों में वृद्धि वृहद् कृषकों की भांति ही होगी।

1.3 शोध अध्ययन के उद्देश्य

उपर्युक्त विश्लेषण, तत्यों एवं क्षेत्रयी अध्ययन के महत्व को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध कार्य निमनांकित प्रमुख विशिष्ट उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए किया गया है-

1. जनपद अमरोहा के ग्रामीण खेतिहर परिवारों की वर्तमान व्यवसायिक संरचना का कृषक श्रेणी, जाति, धर्म, शैक्षिक स्तर तथा स्त्री-पुरूष आदि के आधार पर गहन अध्ययन।
2. प्रस्तावित शोध क्षेत्र के चयनित कृषक परिवारों के रोजगार प्रतिरूप का अध्ययन तथा कृषक श्रेणी, कृषि एवं गैर कृषि क्षेत्र के अनुसार तुलनात्मक अध्ययन।

1.4 शोध अध्ययन की परिकल्पनायें

1. "आथिक सम्पन्नता उत्पादन कार्यों में महिला-भागीदारी में बाधक होती है, जबकि शैक्षिक उच्चता सहायक।"
2. "कृषकों के शैक्षिक स्तर में सुधार कृषि क्षेत्र में उनके रोजगार के अवसर घटाता है, जबकि गैरकृषि क्षेत्र में बढ़ाता है।"

कृषक श्रेणी के आधार पर प्रतिदर्श परिवारों की लिंग संरचना एवं पुरूष-महिला अनुपात सम्बन्धी समंक निम्न तालिका 1.1 में प्रदर्शित किये गये हैं:-

तालिका 1.1: जनपद अमरोहा में कृषक परिवारों की लिंग संरचना

क्र०सं०	कृषक श्रेणी	पुरूष (संख्या)	स्त्री (संख्या)	पुरूष–महिला अनुपात
1.	सीमान्त कृषक	488	382	783
2.	लघु कृषक	154	131	851
3.	निम्न मध्यम	120	100	833
4.	उच्च मध्यम	51	44	863
5.	वृहद् कृषक	57	53	930
	प्रतिदर्श	**870**	**710**	**816**

स्रोत: परिशिष्ट तालिका 1

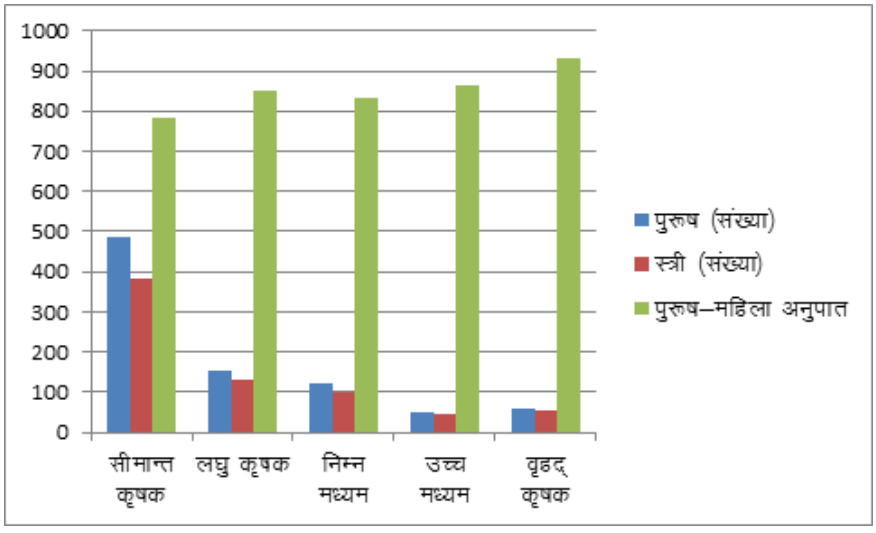

उपर्युक्त तालिका एवं ग्राफ से परिलक्षित होता है कि हमारे प्रतिदर्श का महिला पुरूष अनुपात 816 है। 2011 की जनगणना के अनुसार उत्तर प्रदेश राज्य और जनपद बागपत का लिंग अनुपात क्रमशः 898 व 848 रहा है। हमारे प्रतिदर्श का लिंग अनुपात इनसे कम है। यह इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि आज भी बालक की अपेक्षा बालिकाओं को कम महत्व दिया जा रहा है। संभवतः बालिका भ्रूण हतया के कारण ही लिंग अनुपात निम्न है। सीमान्त कृषकों का लिंग अनुपात प्रतिदर्श के औसत अनुपात से कम है। इसका प्रमुख कारण यह प्रतीत होता है कि ये कृषक निम्न आय होने के कारण महिलाओं एवं लड़कियों पर कम ध्यान देते हैं। अधिकांश लड़कियाँ बीमारी एवं कुपोषण से मर जाती हैं। वृहद् कृषकों में लिंग अनुपात सबसे अधिक 930 है। संभवतः वृहद कृषक अधिक आय के कारण स्त्रियों एवं लड़कियों की देखभाल पर पर्याप्त ध्यान देते हैं। उच्च जीवन स्तर के कारण महिलाओं के लिये पर्याप्त चिकित्सा सुविधा भी उपलब्ध हो जाती है।

1.5 प्रतिदर्श की धार्मिक आधार पर लिंग संरचना

धर्म न केवल व्यवसाय प्रारूप एवं रोजगार स्तर को प्रभावित एवं निर्धारित करता है, अपितु पारिवारिक लिंग संरचना को भी प्रभावित करता है। धर्म के आधार पर प्रतिदर्श परिवारों के लिंग संरचना सम्बन्धी समंक तालिका 1.1 में प्रस्तुत किये गये हैं।

धर्म एवं आयु वर्ग के अनुसार लिंग अनुपात

तालिका 1.2: धर्म एवं आयु वर्ग पर आधारित लिंग अनुपात

क्र० सं०	आयु वर्ग (वर्ष)	हिन्दू धर्म			मुस्लिम धर्म		
		पुरूष	स्त्री	लिंग अनुपात	पुरूष	स्त्री	लिंग अनुपात
1.	0–14	189	180	952	25	24	960
2.	15–60	539	414	768	39	39	1000
3.	60 से अधिक	72	49	680	06	04	666
प्रतिदर्श		**800**	**643**	**804**	**70**	**67**	**957**

स्रोतः परिशिष्ट तालिका 1

तालिका 1.1 एवं ग्राफ का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि 0-14 आयु वर्ग में मुस्लिम परिवारों का लिंग अनुपात 960 है, जबकि हिन्दु परिवारों में इससे कम अर्थात् 952 है। इसके अलावा 15-60 वर्ग के आयु वर्ग में भी हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों का लिंगानुपात अधिक है। 60 वर्ष या इससे अधिक आयुवर्ग के अन्तर्गत हिन्दुओं में लिंग अनुपात 680 है; जबकि मुसलमानों में मात्र 666 है। इसका कारण संभवतः हिन्दुओं में रहन-सहन का उच्च स्तर होना, वृद्ध स्त्रियों की उचित देखभाल करना, चिकित्सा सुविधा की व्यवस्था करना, कम रूढिघ्वादी होना आदि प्रतीत होता है। हिन्दू धर्मावलम्बी अपने वृद्ध माता-पिता, दादा-दादी की सेवा करना अपना कर्तव्य समझते हैं। निम्न जीवन स्तर, अशिक्षा एवं पर्दा प्रथा के कारण मुसलमानों में वृद्ध महिलाओं की संख्या बहुत कम है।

1.6 उपलब्धियाँ

उपरोक्त अध्ययन से निम्न परिणाम प्रदर्शित होते हैं:-

1. जनपद अमरोहा में ग्यारहवीं एवं बारहवी पंचवर्षीय योजना में बैंकों का कृषि क्षेत्र पर सकारात्मक प्रभाव देखा गया है।
2. वर्तमान में कृषि क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी बना हुआ है जो सीधे कुटीर उद्योग में उत्पन्न रोजगार सीधे तौर पर प्रति व्यक्ति आय, सकल घरेलू उत्पाद व विदेश आप को प्राप्त करने का मुख्य साधन है।
3. किसी अर्थव्यवस्था में कृषि, कुटीर उद्योगों की वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के साथ-साथ जीवन स्तर तथा उपभोग के स्तर में परिवर्तन लाते हैं साथ ही सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति भी बदलती है।
4. अध्ययन से एक लाभ और प्रदर्शित होता है, अधिकतर कृषि एवं कुटीर उद्योगों से उत्पन्न एवं निर्मित माल, लघु उद्योगों तक नहीं पहुँच पाता, जिसमें बैंकिग व्यवस्था, सूद खौरी, बिचौलिये, गैर जिम्मेदार सरकारी नीतियाँ होती हैं। साथ ही यदि जनसंख्या वृद्धि की दर कुटीर उद्योगों की वृद्धि की दर से अधिक है तो इनका योगदान निर्यात से प्राप्त आय में भी कम होने लगता है।

1.7 सुझाव

- सूक्ष्म साख को बढ़ावा देने के लिए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का जनपद अमरोहामें तीव्र विकास होना चाहिए। जिससे कृषि श्रमिकों की स्थिति में सुधार हो सके।
- सेमिनारों में उठाये गये प्रश्नों पर निर्णय लेने एवं उन निर्णयों को राज्य स्तर पर लागू करने के लिए निदेशालय स्तर पर एक समिति गठित की जानी चाहिए और इस समिति को पर्याप्त अधिकार दिये जाने चाहिए।

- सरकारी व गैर सरकारी संस्थाओं के द्वारा कृषि एवं कुटीर उद्योगों के लिए आधारभूत ढाँचा तैयार किया जाना चाहिए जिसमें बिजली, पानी, सूचना के साधन व यातायात व्यवस्था सुदृढ़ होनी चाहिए।
- सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में समय-समय पर कृषि एवं कुटीर उद्योगों से सम्बन्धित प्रदर्शनी लगानी चाहिए। साथ ही कृषि एवं कुटीर उद्योग के उत्थान के लिए साहसियों को पुरस्कार की भी व्यवस्था की जानी चाहिए।
- पर्याप्त मात्रा में समय से कृषि एवं कुटीर उद्योगों को बजट उपलब्ध कराया जाना चाहिए। जिला उद्योग केन्द्रों से जनपद स्तर पर समस्त अधिकार देते हुए कार्यदशाओं में व्यापक सुधार के प्रयास किये जाने चाहिए।
- यदि कोई साहसोद्यमी अथवा कृषक साहस के साथ आगे आकर जिला उद्योग केन्द्र अथवा ऐसी किसी संस्था से सम्पर्क स्थापित करता है तो जिला उद्योग केन्द्र या उस संस्था को चाहिए कि उसे कुछ भी करना पड़े लेकिन वह उस उद्यमी अथवा कृषक को हतोत्साहित न होने दें।
- गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यापन करने वालों के लिए संचालित एकीकृत ग्राम्य विकास योजना को अब वित्तीय सहायता बन्द कर देनी चाहिए। इसके स्थान पर कृषि एवं हस्तकला उद्योगों को बढ़ावा देकर उनके लिए ग्रामीण क्षेत्रों में सकेन्द्रण के आधार पर कच्चे माल का डिपों तथा निर्मित माल एवं उत्पन्न फसलों की ब्रिकी के ग्रामीण डिपों खोले जाने चाहिए।

Bibliography

1. अग्रवाल, आर0 एन0, इण्डियन इकॉनोमी.
2. हसबैण्ड एण्ड डाकरे, इन्ट्रोडक्शन टु बिजनेस फाइनेन्स, 1987, सेज पब्लिकेशन.
3. हाबार्ड एण्ड उपटोन, मॉर्डन कॉरपोरेशन फाइनेन्स, सेज पब्लिकेशन, 1987.
4. आर्थिक सर्वेक्षण 2007-08, भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के आर्थिक खण्ड द्वारा आक्सफोर्ड यूनिवर्सटी प्रेस से प्रकाशित
5. लघु उद्योग विकास विभाग भारत सरकार, ए हैण्डबुक ऑफ सरल इण्डस्ट्रीज डेवलपमेनट, 1988
6. जी. रामचन्द्रन, ग्रोथ ऑफ स्मॉल सेक्टर इकोनोमिक टाइम, अप्रैल 22, 1986
7. सी. वी. कुप्युस्वामी, स्मॉल यूनिट्स माइल्स टू गो फाइनेन्शियल एक्सप्रेस
8. फ्लोटेन्स, पी0 एम0, इकोनोमिक्स एण्ड सोशियोलॉजी ऑफ इण्डस्ट्री, 2006
9. कनका, एस0एस0, इण्डस्ट्रियल डेवलपमेन्ट इन कुमायूं, 1988
10. जी. वी. वेज, वार्किंग कैपिटल नीड्स एण्ड बैक फाइनेन्स, दि बैकर, अगस्त 1979
11. वी. चन्द्रशेखर, एडवान्सेज टु एस.एस.आई. ग्रो एट ए फास्टर पेस, फाइनेन्शियल एक्सप्रेस, जनवरी 9, 1982
12. ए.डी. नाईक, इण्डस्ट्रियल स्लोडाउन एण्ड क्रीपिंग रिसेशन, इकोनोमिक टाइम्स, जनवरी 30, 1992
13. डॉ. के. कुलश्रेष्ठ, क्रेडिट मैनेजमेन्ट इन स्मॉल विजिनेंस, इकोनोमिक टाइम्स, जनवरी 1, 1987
14. मेरठ उद्योग सांख्यिकी पत्रिका, 2008
15. शासनादेश सं0 6086/10-2-24(3)/83 दिनांक 9.11.1984 के अनुसार
16. उत्तर प्रदेश में औद्योगिक विकास की प्रगति, समीक्षा-2000उद्योग निदेशालय, कानपुर

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों मेंविवाहित स्त्रियों की आर्थिक पराधीनता

प्रोफेसर लता सुमन्त

शोध निर्देशिका, हिन्दी विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय , बड़ौदा, गुजरात

प्रमोद कुमार सिंह

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा, गुजरात

सार-स्त्री देह के कारण अन्याय सहती है। अपराध पुरूष करता है और दोषी स्त्री को माना जाता है। पुरूष अपराधी होकर भी सही सलामत छूट जाता है। अपराधी नहीं कहलाता। मैत्रेयी स्त्री के लिए बनाई नैतिकता का पर्दाफाश करती है। परंपराओं तथा रीति-रिवाजों ने स्त्री का जीवन खोखला बनाया है। विवाह के नाम पर स्त्री को बंदी बनाया जाता है। पुरूष स्त्री को सिर्फ देह रूप में देखता है। अब स्त्री पुरूष के षड्यंत्र को समझ गई है। यह अपने अधिकारों को जान गई है। यह भी मुक्ति चाहती है। लड़कियाँ अपने कैरियर के प्रति जागृत हो गई है। समाज में बराबरी का दर्जा चाहती है। अपनी इच्छा से स्वतंत्र रूप से निर्णय लेना चाहती है। आज स्त्री हर क्षेत्र में आगे है। उसने अपने सामर्थ्य से हर क्षेत्र में विजय हासिल की है।

मुख्य शब्द-विविधता, घनीभूत अभिव्यक्ति, हरामजादी, नामुमकिन

1.1 मैत्रेयी जी की कथा-कहानियों की खास बात उनके नारी चरित्र हैं। शायद ही किसी समकालीन लेखक के नारी पात्रों में इतनी विविधता और गहरायी हो। गहरायी हो सकता है कहीं, और भी मिल जाय, लेकिन इतनी विविधता कहीं नहीं है। अपने समय की औरत के इतने अलग-अलग शेड्स या छायाएँ और कहीं ढूँढ़ना शायद नामुमकिन है।

अन्य स्त्री पात्रों की सर्जना नारी पीड़ा की घनीभूत अभिव्यक्ति के लिए हुई है। आनंदी, धीरज की अम्मा, संतोले की बहू आदि पात्र नारी पीड़ा को चाहे वह सभ्य समाज के पुरूषों द्वारा प्रताड़ित हो या कबूतरा समाज के सामने लाती है। इन पात्रों ने नारी पीड़ा को अभिव्यक्ति तो दी है, किन्तु इस पीड़ा के विरूद्ध संघर्ष का जज्बा इनमें नहीं है जैसा कि उपन्यास की मुख्य पात्रों अल्मा, भूरी और कदमबाई में मिलता है।

कहानी में यह संदेश स्पष्ट है कि स्त्री जाग उठी है और पग पग पर वह संघर्ष कर रही है। पुरूष समाज उसे अपने नागपाश में कसने का प्रयत्न करता है, कभी भय से, कभी धमकी से, कभी 'इमोशनल ब्लैकमेल से, परन्तु स्त्री अब इन घनचक्करों को समझ चुकी है। वह 'एडजस्ट' करना जानती है, लेकिन कोने में धकेले जाने पर पलटकर वार करना भी सीख गयी है। अपनी बात कहने और अपना हक माँगने का साहस उसमें आ गया है। यही कहना इस उपन्यास का मंतव्य और प्रतिपाद्य प्रतीत होता है।

1.2 आलोचनात्मक लेख (स्त्री मेरे पाठ में)

परमानंद श्रीवास्तव ने लिखा है- ''मैत्रेयी का संवाद ज्वलंत विषयों पर बना हुआ है। विवाह से लड़की आत्मनिर्भर स्वतंत्र हो जाती है, यह शुद्ध भ्रम है। रूपवती चाहे रंभा जैसी हो, बुद्धिमानी आपदा है। अविवाहित लड़की प्रसन्न दिखे, तो समझिए उसमें बड़ा खोट है।''[1] पुरूष प्रधान संस्कृति में घर का प्रमुख पूरूष है, और स्त्री को दोयम दर्जा मिलता है जो सेवा और समर्पण की भावना से घर बनाती है। 'प्रेमचंद' की कहानी 'आपकी धनिया' की धनिया होरी के अधीन रहकर अपना सर्वस्व उसके सुख के लिए निछावर करती है। पति के मत से सहमत है उसका कोई अलग अस्तित्व नहीं। पति के लिए लड़ने वाली औरत ही समाज में इज्जत पाती है। 'आपकी धनिया' लेख में मैत्रेयी ने कहा है, ''आपको सच बताऊँ हमारे समाज में अपने वजूद की मालकिन औरत नहीं होती, उसको वैधता देने वाला कोई एक घर होता है।''[2] स्वार्थी जमींदार, साहूकार गरीब किसानों का शोषण करते थे। उनके मुकाबले किसान भी किसी दर्जे कम नहीं थे वे औरत का शोषण करते थे। रोटी और कपड़े की एवज में स्त्री को बंधक बनाकर अपने इशारों पर नचाते है। धनिया होरी द्वारा दी गई यातनाओं को सहती है। जानवरों की तरह काम करती है। पति के सामने मुँह नहीं खोलती वह जानती है स्वार्थ और दब्बूपन के खिलाफ आवाज उठाने वाली पति के छल का विरोध करने वाली कुल्टा कहलाती थी।

मैत्रेयी स्त्री को समाज में मिलने वाले अमानुष बर्ताव के खिलाफ शिकायत करते हुए कहती है- 'प्रेमचंद' जी स्त्री को परिवार में मिले स्थान से पूरी तरह सहमत थे। नहीं तो वे अपनी कहानी की प्रमुख पात्र 'धनिया' में यह साहस भर देते कि वह पुरूष वर्चस्व से तंग आकर उनके खिलाफ विद्रोह करके औरतों का एक समूह बना लेती, लेकिन 'प्रेमचंद' ने स्त्री को इस अधिकार के काबिल नहीं माना।

धनिया 'होरी' की गुलाम बनकर रहती हैं। पति की मार-पीट सहती है। फिर भी तलाक लेना नहीं चाहती। पति के लिए त्याग और बलिदान की मिसाल बनकर पति की खुशी के लिए जीती है। उसका दु:ख अपना दु:ख मानती है। पुनिया के हक की बात करती हुई वे बताती हैं। भोला चौधरी के बिना पूछे बाँस काटने पर पुनिया बाँस की कीमत कम लगाने से लड़ी थी। वह खरीद बेच में अपना फैसला देना चाहती थी। खेत का मालिक हीरा है पर वहाँ पुनिया का भी तो हक है। पुरूष स्त्री को पीटकर अपनी ताकत तो प्रदर्शित करता ही है इसके साथ-साथ गालियों की बौछार भी करता है। हीरा कहता है- ''हरामजादी, तूने हमारी नाक काट दी। जब भइया ने बाँस तय कर दिए थे तो तू बीच में कूदने वाली कौन थी? खोदकर गाड़ दूँगा।''[3] क्या इन्साफ है पुरूष का? इतनी सी बात पर मार डालने की बात करता है। पुनिया की बात करते हुए धनिया ने अपने हाथ पर होरी द्वारा दिए गए दाग को देखा था। आगे धनिया दूसरे घाव के लिए तैयार न थी। 'कफन' कहानी की 'बुधिया' को उसके कामचोर पति ने अपनी कामाग्नि संतुष्ट करने के लिए गर्भ दिया जो चाहकर भी शोषण से मुक्त नहीं हो पाती। घीसू और माधव के लिए मर जाती है। लेखक ने औरत को पुरूष के अधीन न बनाकर खुद की पहचान से अपनी जगह बनाने के हक से प्रेरित किया होता तो वह 'भोग-वस्तु' बनकर न रहती। मैत्रेयी जी ने धनिया के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि 'धनिया' का अस्तित्व होरी की पत्नी और गोबर की माँ के रूप में है। उसकी सबसे बड़ी जिम्मेदारी पति और पुत्र की चिंता। इसी चिंता के कारण ही तो वह प्रेम की कसौटी पर स्वयं को खरा सिद्ध करती है, जो पुत्र मोह से पिघलकर उसका पक्ष लेती है, और बहू को स्वीकार करती है। 'धनिया' को 'होरी' नासमझ मानकर बेटी का विवाह अपनी मर्जी से अपने स्वार्थ के लिए एक अधेड़ को बेटी बेचकर खेती बचाता है। लड़की पर भी अन्याय करता है तो भी धनिया पति के सामने कुछ नहीं बोल पाती। पति की इच्छानुसार जीवन जीने वाली स्त्री को श्रेष्ठ माना जाता है। ग्रामीण औरतों का जीवन करूणा और व्यथा से भरा हुआ है।

मैत्रेयी ने 'बाड़े लाँघती स्त्रियाँ' शीर्षक लेख में स्त्री जीवन की सच्चाई बयान की है। '''संगतिन यात्रा' जिसे ऐसी सात ग्रामीण औरतों ने लिखा है, जिनके पास लेखन कला नहीं, केवल अनुभव थे। उनकी जीवन-कथा करूणा और व्यथा की स्याही से लिखी गई जहाँ उन्हें दु:ख ही खींच लाया।''[4] 'संगतिन यात्रा' नाम की इस किताब में बताया है- स्त्री-स्त्री की दुश्मन नहीं, बल्कि सहेली होती है। एक दूसरी के साथ सुख-दु:ख बाँटती है। पुरूष व्यवस्था को यह अच्छा नहीं लगता, यह अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए स्त्री को भुलावे में डालकर अपनी साजिश में कामयाब होना चाहता है और स्त्री को स्त्री की दुश्मन बनाता है। पुरूष स्त्री को इज्जत के नाम से पर्दे में रखता आया है। अगर स्त्री ने नियमों का उल्लंघन किया तो पुरूष उसकी पिटाई करके उसे अपमानित कर उसे छोड़ देता है। जो मायके और ससुराल में विभिन्न सम्बन्ध निभाती है। बेटी के चलन से नाराज पिता माँ को सजा देते हैं।

'औरत और फुटबाल' लेख में मैत्रेयी ने लेखिका 'सोना चौधरी' के उपन्यास 'पायदान' में पुरूष सत्ता के वर्चस्व के सामने स्त्री की स्थिति का चित्रण किया है। जिसमें कशिश, आँचल और आस्था के बहाने एक ही औरत के विकास और विनाश की गाथा का वर्णन किया है। जो पितृसत्तात्मक समाज द्वारा स्त्री के लिए बनाए नियमों का उल्लंघन करके अपना अस्तित्व बनाना चाहती है। इसी कारण स्त्री के लिए वर्जित क्षेत्र फुटबाल के मैदान में आती है। परिवार में बचपन से ही बेटा-बेटी में किया जाने वाला भेदभाव, भाई की आजादी देखकर किसान बेटी कशिश को अपने जीवन से घृणा होती है। माँ के जीवन की यातनाएँ देखकर उसे विवाह से नफरत हो जाती है, और वह विवाह नहीं करना चाहती। वह अपने जीवन का नवनिर्माण करके मनुष्य बनकर स्वाभिमान से जीना चाहती है। कशिश नाम का त्याग करके आँचल बनकर भविष्य बनाना चाहती है पर घर बाहर स्त्री देह के कारण पुरूष मानसिकता से प्रताडिघ्त होती है। संरक्षक बनकर चाचा भी उसकी देह कुचलना चाहता था। पुरूष के विरोध को सहकर वह अपने जीवन का खुद फैसला करके अपनी जगह बनाना चाहती है। अपना व्यक्तित्व निर्माण करने की आकांक्षा करती है तो पुरूषों की खौफनाक चेहरों के सामने सिर्फ स्त्री का मादा रूप आता है। खेल के मैदान और बाहर देह का शोषण करने वाले शोषकों से वह जूझती है। उनकी गिद्ध दृष्टियों का सामना करती है, जो उसे बराबरी का दर्जा नहीं देते। बल्कि स्त्री देह को आनंद का साधन मानकर लांछित करते हैं। पुरूष स्त्री की उन्नति देख नहीं सकता। आँच को स्त्री होने के कारण सामाजिक नियति का शिकार होकर संघर्ष का सामना करना पड़ता है। पुरूष प्रधान समाज हर जगह उसकी देह से खिलवाड़ करता है। बलात्कार जैसे घिनौने कृत्य को आनंद मानता है। देह दाँव पर लगाई तो उसकी जिंदगी में बाधा नहीं आएंगी। आँचल अपनी मेहनत और लगन से फुटबॉल के क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक जाकर देश का गौरव बढ़ाकर अपना जीवन सम्मान से बिताने का साहस करना चाहती है। लेकिन पुरूषों की पाश्विकता के आगे विवश है। कशिश आँचल बनकर लड़ती है और आस्था बनकर टूट जाती है। औरत होने की सजा मानसिक यातना के रूप में सहती है।

मैत्रेयी ने अपने साहित्य में गाँव की नारी का चित्रण किया है। वह नारी को बराबरी का दर्जा देना चाहती है जो लोकतंत्र में प्राणों की तरह जरूरी है। इसमें आधी दुनिया का जीवित सच उजागर किया है। 'अंधकार और रोशनी' 'बेबी हालदार' की आत्मकथा में शोषित, पीडिघ्त औरतों के दर्द का चित्रण किया है जो पति के शोषण की शिकार होती है। 'बेबी हालदार' की शादी बारह साल की उम्र में ही पच्चीस साल के युवक से कर दी जाती है। वह पति की कामाग्नि को संतुष्ट करती है पुरूष के आनन्द के लिए उसके निरोधक के प्रयोग पर रोक लगा दी जाती है। वह प्रति वर्ष बच्चे पैदा करने वाली मशीन बनकर रह जाती है। गरीबी का सामना करती है। पति की पिटाई से तंग आकर संघर्षों का सामना करती है। बेबी अपने तीन बच्चों को लेकर अपने जीवन की लड़ाई लड़ना चाहती है। भूख के कारण तड़प रहे बच्चों को लेकर काम की तलाश में भटकती है। मगर धनिक लोग उसकी ओर शंकित होकर, उसके पति के बारे में पूछते है। जिसके अत्याचार से तंग आकर वह बचना चाहती है उसके बारे में ही पूछा जाता है।

''श्रमशीलाओं को भी विवाह व्यवस्था बखघ्शती नहीं क्योंकि यह समाज का अनिवार्य संस्कार है, भले एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरे आदमी के घर बैठे, मगर विवाहिता होना होगा, क्योंकि पति के बगल में खड़ी औरत विश्वासनीय लगती है। क्या गजब है कि स्त्री का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं, जिसे आसानी से स्वीकार कर सके।''[5] वैवाहिक बंधनों में जकड़कर भी बेसहारा छोड़ दी गई स्त्रियाँ मेहनत करती है। 'अंधकार और रोशनी' दु:ख, पीड़ा और अनुभवों से बने विचार है। जो मनुष्य के हृदय से संबंध रखते हैं। इसी कारण 'बेबी हालदार' की आत्मकथा करोड़ों स्त्रियों की कहानी बन गई है।

मैत्रेयी ने 'जीवन पलटकर तो देखा' लेख में 'लीड़िया' के माध्यम से स्त्री की व्यथा का चित्रण किया है। 'लीडिघ्या' की रूसी भाषा में लिखी पुस्तक 'मेरे जिंदगी में चेखव' रंजना श्रीवास्तव द्वारा अनुदित है। 'लीडिघ्या' को स्त्री होने के कारण डेढ़ सौ साल पहले जिस स्थिति से गुजरना पड़ा। उसी तरह आज भी भारतीय स्त्री पुरूष वर्चस्व और घोर यंत्रणा की शिकार बन गई है। समाज के भय से वह चाहकर भी मुक्त नहीं हो पाती। 'लीडिघ्या' भी समाज के डर

के कारण अपनी प्रेमकथा जीते जी नहीं छपवाती। समाज की मर्यादा से घिरी होने के कारण बंधनों से छुटकारा नहीं पाती। पति के हाथ की कठपुतली बनकर रह जाती है। अपनी इच्छाओं को दबाकर पति का सुख ही उसकी जिम्मेदार बन जाती है। शादी के बाद लेखिका बनने का उसका सपना अधूरा रह जाता है। लिखना चाहती तो पति को गुस्सा आता है। लिखने का इरादा दु:ख देता था। इसी कारण चेखव की 'पीड़ा' नामक कहानी से प्रेरित होकर चेखव से मिलने की हिम्मत करती है। चेखव ने लीड़िया की लगन देखकर समझाया लेखक को अपने लेखन के प्रति ईमानदार होकर सच्चाई के साथ अपने अनुभवों का बयान करना चाहिए। स्त्री को उस जमाने में लिखने की आजादी नहीं थी, वह अपने अनुभवों का चित्रण करती तो उसका हश्र क्या होता? आज के जमाने में भी अनुभवों को लिखने का गुनाह तस्लीमा नसरीन भुगत रही है। महान लेखक चेखव लीड़िया से प्यार करता था। लीड़िया भी अपना अधूरा सपना पूरा करना चाहती है। लीडिघ्या मिखाइल की पत्नी होते हुए चेखव से भी प्यार करती थी। क्योंकि उसका मन जानने वाला संवेदनशील व्यक्ति चेखव ही था। दोनों को अपनी जिन्दगी का निर्णय लेने का अधिकार देकर कर्त्तव्य निभाती रही। विवाहिता स्त्री की तरह नाटक कर रही थी। सच्चाई का सामना करके समाज की नजरों से गिरना नहीं चाहती थी। पुरूष ने अपने हित के लिए नियम बनाए जिनकी सुविधा सिर्फ पुरूषों को ही हैं। पुरूषों के लिए स्त्री की देह महत्वपूर्ण है, मन नहीं। मन को समझने वाले और ज्ञान देने वाले बहुत कम होते हैं जैसे चेखव। ऐसा होते हुए भी दोनों हमेशा आजाद रहे क्योंकि प्रेम की गाँठ को समाज के बंधनों के कारण जीते जी नहीं खोल पाए। लीडिघ्या ने जीवन को परखकर अपनी प्रेमकथा में प्रेम की धारा बहा दी। लेकिन ऐसी किताब लेखिका के जीवन में ही छपनी चाहिए। लीड़िया की प्रेमकथा किसी भी स्त्री की कहानी हो सकती है।

समाज की परवाह न करते हुए अपनी हिम्मत का परिचय देती है। पुरूषों ने धर्म के नाम पर सारे नियम अपनी सुविधा के लिए बनाए हैं। औरत ने आत्मनिर्भर बनने की कोशिश की तो मौलाना फतवों से राह रोकते हैं। धर्म का पाखंड फैलाकर लड़कियों को कामुकता का शिकार बनाया जाता है। बूढ़े भी अपनी शिष्याओं को वासना का शिकार बनाते हैं। सच्चाई का पर्दाफाश किया तो किताब पर रोक लगाई। देश से निकाल दिया। मारने के लिए इनाम घोषित किया। पुरूषों की असलियत सामने लाने वाली औरत उनकी दुश्मन बन जाती है। उसे सजा दी जाती है। अपमानित तस्लीमा डॉ0 हबीबुल्ला से प्रेम करती है। जिसके प्यार में स्वार्थ छिपा है। वह अपने आपको स्वतंत्र अपने देह की स्वामिनी मानती है। 'उपभोग की वस्तु' नहीं बनना चाहती। वह सबसे ज्यादा अपने लेखन से प्यार करती है। जिसके लिए जोगी बनकर अपने विचारों पर अटल रहती है। 21वीं सदी की स्त्री ने अपने लिए नियम खुद बनाए हैं। न वह आपको छिपाती है, न पुरूषों के कुकर्मों को। सच्चाई के कारण पुरूष वर्चस्व नष्ट होकर खतरों का सामना कर रहा है।

मैत्रेयी ने 'मैं चित्रलेखा हूँ' लेख में विधवा की व्यथा का चित्रण किया है। 'भगवतीचरण वर्मा' ने अपने उपन्यास की पात्र 'चित्रलेखा' का निर्माण करके विधवा के जीवन का निर्माण किया है। 'चित्रलेखा' में यह चेतना निर्माण की- विधवा होने से उसकी इच्छाएँ मर नहीं जाती। चित्रलेखा वैधव्य को भुलाकर कृष्णादित्य से प्रेम करके उसके बेटे की माँ बन गई। कृष्णादित्य पिता के धिक्कार को न सह सके, और उन्होंने आत्महत्या कर ली। दूसरी बार पति खो देने के गम में बालक भी मर गया। पति और बेटे की मौत से चित्रलेखा टूट जाती है। समाज उसे अभागिन, अपशकुनी मानता है। इससे छुटकारा पाने के लिए वह ऐसी स्त्री का सहारा लेना चाहती है जो समाज से डरती नहीं, जो स्वतंत्र है। वही उसकी सहायता करेगी। एक नर्तकी का सहारा पाकर, वह नृत्य में निपुण हो गई। नृत्य देखने, अपना मन बहलाने के लिए वहाँ श्रेष्ठ पुरूष आते। जो विधवा को अपशकुनी मानते थे, वही नर्तकी के पाँव छूते थे क्योंकि वे नर्तकी के रंभा रूप के, उसके सौंदर्य के दास थे। शृंगार करके उसे पुरूषों को खुश करना है, नहीं तो उम्र भर विधवा के रूप में जीवन बिताना है। चित्रलेखा सार्वजनिक महफिल सजाने लगी और लोगों की लाँछित दृष्टि झेलने लगी। लोगों की दृष्टि में वह वेश्या होने के कारण उस पर सबका अधिकार था। बीजगुप्त और कुमारगिरी ने 'चित्रलेखा' को वासना का शिकार बनाया। उसकी निकटता में न भोगी बचा न योगी। इन्हें पत्नियाँ वंश चलाने के लिए चाहिए और मनमाने आनंद के लिए चित्रलेखा स्त्री की इच्छा रखते हैं। मैत्रेयी के अनुसार 'चित्रलेखा' पर हुए अन्याय का प्रतिकार तभी संभव है जब उसका निर्माण स्त्री करें तब उसे न्याय मिलेगा क्योंकि स्त्री का मन स्त्री ही जान सकती है। वह उसके साथ इन्साफ करके उसे अपने बोर में निर्ण लेने का अपने बारे में सोचने का हक देगी। यह सत्य है कि पुरूष स्त्री के दु:ख-दर्द, उनकी यातना तथा पीड़ा को सिर्फ महसूस कर सकते हैं। अनुमान लगा सकते हैं किन्तु पीड़ा तो स्त्री ही सहन करती है इसलिए स्त्री की लेखनी स्त्री के संदर्भ में जितनी सही साबित हो सकती है, शायद पुरूष की उतनी नहीं। इस संदर्भ में महादेवी वर्मा जी का यह कथन दृष्टव्य है- ''पुरूष के द्वारा नारी का चित्रण अधिक आदर्श बन सकता, परन्तु यथार्थ के समीप नहीं। पुरूष के लिए नारीत्य अनुमान है परंतु नारी के लिए अनुभव। अत: अपने जीवन का जैसा सजीव चित्र वह हमें दे सकेगी वैसा पुरूष बहुत साधना के उपरांत भी शायद ही दे सके।''[6]

मैत्रेयी के साहस को बोल्ड होने का इल्जाम लगाया जाता है। स्त्री के फैसले को व्यभिचार मानकर पुरूष मानसिकता गिद्ध की तरह नोंचती है। 'चाक' उपन्यास में मैत्रेीय जी ने 'सारंग' के माध्यम से बताया है कि मन के साथ शरीर को भी स्वतंत्रता चाहिए। उसे राजनीति में भी सक्रिय दिखाकर मैत्रेयी श्रम और सेक्स को सकारात्मक रूप से देखती हैं। वह स्त्री के लिए देह ही बंधक मानती है। यदि उस पर बात करें तो अश्लीलता का आरोप लगाया जाता है। यह सब पुरूष वर्चस्व का निर्माण है नियम उन्होंने बनाए हैं, जो स्त्री के खिलाफ है। नियम बनाते समय स्त्री की राय नहीं ली गई। न ही उसके बारे में सोचा गया।

साहित्य के कर्णधारों से मैत्रेयी पुष्पा का मर्मभेदी सवाल है कि, ''बेशक आप साहित्य में शाइस्तगी और सजावट के साथ मर्यादा पसंद करते हैं, मगर हम तो अपनी जिंदगी तबाह होने देने की नैतिकता लेकर जीवित रहने नहीं आए।''[7] 'मैत्रेयी' अपनी नायिका को गुलाम नहीं, आत्मनिर्भर बनाती है। वह पतिव्रता बनकर सती होने के लिए मजबूर नहीं करती। साहित्यकार 'मैत्रेयी' पर स्त्री विमर्श के बदले देह-विमर्श का आरोप लगाते हैं। स्त्री के लिए देह ही उसकी पूंजी है, पति को अपनी देह समर्पित करके ही वह पत्नी का दर्जा पाती है। पुरूष का रिश्ता स्त्री की देह से है, जो स्त्री के शरीर का नियंता बनकर उसे अपने अधिकार में रखता है। मरने के बाद भी स्त्री देह पर अधिकार जताने के लिए सती धर्म बताया गया है। सती होने से बची स्त्रियों का जीना हराम किया जाता है जो विधवा का यातनामय जीवन जीने से तंग आकर आत्महत्या कर लेती है।

'श्री' पिता का आदेश न मानकर अपनी जिंदगी का फैसला खुद लेती है। वह अपनी प्रतिभा विकसित करने के लिए प्रेमी से विवाह करती है। मगर संसार की तमाम जिम्मेदारियों को निभाते वह अपने बारे में नहीं सोच सकती और पति की गुलाम बन जाती है। वह घर की चारदीवारी में कैद नहीं रहना चाहती

वह अपनी प्रतिभा विकसित करने के लिए अपने से दस वर्ष छोटे युवक से प्रेम करके उसे संगीत सिखाती है। तो वह समाज के लिए पापी बन जाती है। पुरूष के लिए अलग नैतिकता है। उसके प्यार पर किसी को विस्मय नहीं होता। अनेक पत्नियाँ होना उसके लिए सामर्थ्य की बात बनती है, जिसे समाज भी स्वीकार करता है। नारी द्वारा अन्य पुरूष को स्वीकार करते ही वह पापी कहलाती है।

'श्री' नाम की औरत सतीश से प्यार करके स्त्री के लिए बनाई नैतिकता का उल्लंघन करती है। यह उसका अपराध माना जाता है। विवाह के लिए एकाधिकार पाने वाला पति यह बर्दाश्त नहीं करता। वह उस पर बंधन डालता है। 'श्री' परिवार की मर्यादा तोड़कर स्त्री की चेतना, प्रतिभा, क्षमता के विकास को महत्व देती है। जिससे अपनी अलग पहचान बनाने में सफल होती है। स्त्री और पुरूष के लिए दोहरी नैतिकता है। पुरूष घर छोड़ जाता है, तो वह महान बन जाता है। लेकिन औरत का घर छोड़ना अपराध मानकर उसे बदचलन बनाया जाता है।

'सुनो मालिक सुनो' के लेखों द्वारा मैत्रेयी ने स्त्री के बारे में ज्वलंत प्रश्नों पर चर्चा की है। स्त्री जीवन की तमाम सच्चाईयों को पाठकों के सम्मुख रखा है। जिसे मानवीय अधिकारों से वंचित करके गुलाम की जिंदगी जीने को विवश किया है। उनके लेखन का प्रमुख उद्देश्य स्त्री में बदलाव लाना तथा उसे अपने हक के प्रति जागृत करना है। अपनी लेखनी से वह स्त्री की हिम्मत तथा हौसला बढ़ाती हैं। स्त्री को सामाजिक, आर्थिक मुक्ति दिलाने का प्रयास करती है। समाज द्वारा स्त्री के लिए बनाए नियमों को तोड़ने का साहस करती है। उसे 'वस्तु' बनकर नहीं 'व्यक्ति' बनकर जीने की प्रेरणा देती हैं। पुरूष वर्चस्व को चुनौती देकर समानाधिकार चाहती हैं। स्त्री के लिए बनाई नैतिकता का विरोध करती है। स्त्री को पुरूष की हमदर्दी नहीं बराबरी का दर्जा चाहिए। वे समाज के दोहरे मानदंड को ललकारती है। मैत्रेयी ने भारतीय समाज के सामंती विचारों पर अपने लेखों द्वारा खुलकर प्रहार किया है। उनका लेखन स्त्री के विराट अनुभवों का एक ऐसा दस्तावेज है जिसे खोलने का दुस्साहस पूरी ईमानदारी के साथ किया है।

1.3 चर्चा हमारा

'चर्चा हमारा' मैत्रेयी का स्त्री विमर्श की दृष्टि से लिखे गए महत्वपूर्ण लेखों का संग्रह है। इसमें कही गई बातों का उल्लेख उनकी रचनाओं में भी हो चुका है। पुनरावृत्ति को छोड़कर मैंने मैत्रेयी के अन्य विचारों को इसमें प्रस्तुत किया है। मैत्रेयी ने पुरातन रूढ़ियों, परंपराओं का विरोध करके निर्भयतापूर्वक अपने विचारों को व्यक्त किया है। 'चर्चा हमारा' की भूमिका में मैत्रेयी ने लिखा है- ''चर्चा हमारा में जहाँ आप पाएँगे स्त्री लेखन की चुनौतियों पर गंभीर चिंतन, वहीं सामंती पुरूष पक्ष की उड़ती धज्जियाँ भी नजर आएँगी। बाजार होती औरतों के विरोध में ही नहीं, स्त्री सोच के संस्कारों के खोखलेपन को उजागर करने में भी मैत्रेयी जी की कलम सन्नध रही है।''[8] स्त्री की समस्याओं को स्त्री ही समझ सकती है। मैत्रेयी ने स्त्री के लिए बनाई अलग नैतिकता, पुरूष वर्चस्व के कारण नारी पर हो रहा अत्याचार शारीरिक तथा मानसिक शोषण से मुक्त करने का प्रयास अपने लेखन से किया है। पुरूष नारी को घर की चारदीवारी में कैद करके गुलाम बनाता है, पर अब पढ़-लिखकर नारी अपने अस्तित्व के प्रति सचेत हुई है। मैत्रेयी का साहित्य पढ़कर स्त्रियों में बल आया है। उनकी रचनाएँ स्त्रियों के लिए प्रेरणा बन गई। जहाँ औरत, औरत की दुश्मन नहीं सखी नजर आती है। मैत्रेयी स्त्रियों के लिए समानाधिकार की माँग करती हैं- ''स्त्री समाज को रचती है और समाज स्त्री को रचाता है। जिन्हें वह अपने गर्भ में पालकर दुनिया में लाती है, जिन्हें उँगली पकड़कर चलना सिखाती है, वही उनके चाल-चलन का हिसाब रखने लगते है। यह स्त्री की नियति है।''[9] स्त्री अपने लिए जीवन नहीं जीती। वह अपने प्यार का त्याग करके पिता, पति, पुत्र के लिए बलिदान करती है।

1.4 निष्कर्ष

हमारे ऋषि मुनियों ने स्त्री को नियमों में कसकर ऐसा जाल बनाया जिससे उसे पुरूषों के अधीन बना दिया। पुरूषों के इन नियमों को, अन्याय को जो स्त्री सहती है वह पवित्र मानी जाती है। इसका धिक्कार करने वाली कुल्टा कहलाती है। सदियों से स्त्री देह को 'वस्तु' मानकर उसका शोषण किया गया। उसे कुचला गया। धर्म के नाम पर उसके साथ धोखाधड़ी करके उसे गुलाम बनाया। सबकुछ सहते हुए सिर झुकाकर जी रही स्त्री इस घुटनभरी जिन्दगी से मुक्त होना चाहती है। स्वातंत्र्योत्तर स्त्री में परिवर्तन आया है। उसने यह जान लिया कि अब तक वह अपनी आकांक्षाओं का गला घोंटकर जीती रही। उसके साथ किए जाने वाले भेदभाव के खिलाफ वह जागृत हुई है। वह शोषण के खिलाफ विद्रोह करके अपने बारे में सोचने लगी है। अपनी शक्ति को पहचानकर उसने स्वयं के बारे में लिखना शुरू किया। घर की चारदीवारी से बाहर आकर निर्भय होकर राजनीति में भी भाग लेने लगी है। वह समाज के नियमों को ठुकराकर स्त्री के साथ होने वाला अन्याय हटाकर स्त्री को न्याय देना चाहती है। पुरूष वर्चस्व को ठुकराकर अपनी रक्षा करती है। दीन-हीन लाचार बनकर नहीं जीना चाहती।

जन्म से लेकर स्त्री-पुरूषों में कोई भेद नहीं है। परन्तु पितृसत्तात्मक समाज द्वारा स्त्री को देह मानकर अनेक बंधनों में जकड़ दिया जाता है। पुरूष उसका रक्षक तथा भक्षक बन जाता है। स्त्री जो सोचती है, वैसा सोचने के लिए उसे मजबूत किया जाता है। मैत्रेयी ने अपनी नायिकाओं में यह साहस भर दिया है कि वह परिस्थितियों से जूझकर देह के बल पर विजयी होती है। पुरूष के सामने चुनौती बनकर गाँव तथा समाज का नेतृत्व करती है। भ्रष्टाचार की जड़ों को उखाड़ना चाहती है।

सवाल यह है कि आत्मकथा के विश्लेषण की पद्धति क्या हो ? क्या एक पद्धति से आत्मकथा समझ में आएगी ? आत्मकथा को एक पद्धति या शास्त्र या सिद्धांत से समझना संभव नहीं है। इस प्रसंग में पहली बात यह कि स्त्री का लिंग तय है और हमारा समाज स्त्री को सामाजिक निर्मिति न मानकर ईश्वरप्रदत्त या प्राकृतिक देन मानकर चलता है। पहली आवश्यकता है कि स्त्री को ईश्वरप्रदत्त न मानें। स्त्री के बारे में बनाए सभी कानूनों, मान्यताओं और संस्कारों को अपरिवर्तनीय, स्वाभाविक,अनिवार्य और अपरिहार्य न मानें। स्त्री की निर्मिति की सामाजिक प्रक्रियाओं पर नजर रखें, इन प्रक्रियाओं की जितनी गहरी समझ होगी। स्त्री के बारे में उतने ही बेहतर मूल्यांकन की संभावनाएं भी होगी। जिस तरह समाज बदलता रहता है उसी तरह स्त्री भी बदलती रहती है। स्त्री कैसे बदल रही है उस प्रक्रिया को सहृदयभाव से समझने और स्वीकार करने की जरूरत है। स्त्री को जड़ और अपरिवर्तनीय रूप में देखने के कारण ही हमारे आलोचक एक खास किस्म के स्टीरियोटाइप से आगे जाकर स्त्रियों की समस्याओं को समझने में असमर्थ रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सोनटक्के माधुरी, महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में चेतना के प्रवाह, विकास प्रकाशन, कानपुर संस्करण प्रथम 2010, पृ. 73
2. मैत्रेयी पुष्पा, अल्मा कबूतरी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, छठा संस्करण 2016, पृ. 13
3. मैत्रेयी पुष्पा, इंदनमम, किताबधर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2012, पृ. 409
4. मैत्रेयी पुष्णा, चाक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2013, पृ. 427
5. मैत्रेयी पुष्पा, अगनपाखी, वाणी प्रकाशर, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृ. 7.
6. डॉ. तेज सिंह, नागार्जुन का कथा साहित्य, पृ., 130
7. मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम, पृ. 56
8. विष्णु प्रभाकर, इदन्नमम, फ्लैप पर पीछे
9. मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम, पृ. 128
10. मैनेजर पाण्डेय चाक, फ्लैप पर पीछे
11. मैत्रेयी पुष्पा, चाक, पृ0-10
12. इन्द्रप्रस्थ भारती, सम्पादक-नानक चन्द्र, जन मार्च, 2004, पृ0-39
13. मैत्रेयी पुष्पा, अल्मा कबूतरी, पृ0 2659
14. मैत्रेयी पुष्पा, अगनपाखी, पृ0-8
15. मैत्रेयी पुष्पा, कही ईसुरी फाग, पृ0 14

फुटनोट

1 दीक्षित सूर्य प्रसाद- 'चाणक्य विचार', मई 2009, पृ0 12
2 मैत्रेयी पुष्पा- 'सुनो मालिक सुनो', पृ0 167
3 मैत्रेयी पुष्पा- 'सुनो मालिक सुनो', पृ0 168
4 मैत्रेयी पुष्पा- 'सुनो मालिक सुनो', पृ0 174
5 मैत्रेयी पुष्पा- 'सुनो मालिक सुनो', पृ0 190
6 वर्मा महादेवी- 'श्रृंखला की कडिघ्याँ', पृ0 74, त्रिपाठी शशिकला- 'उत्तरशती के उपन्यासों में स्त्री', पृ0 14 से उद्धृत
7 मैत्रेयी पुष्पा- 'सुनो मालिक सुनो', पृ0 255
8 मैत्रेयी पुष्पा- 'चर्चा हमारा', मुख्य पृष्ठ
9 वही, पृ0 19

भगवान महावीर के प्रेरणाश्रोत प्रभु पार्श्वनाथः एक अनुचिंतन

कुमारी उदिता

H.I.G. 20, न्यू हाउसिंग कॉलोनी, चँदवा, आरा

भगवान महावीर के प्रेरणास्त्रोत पार्श्वनाथ ही थे। भगवान पार्श्वनाथ जैन निर्ग्रन्थ परम्परा के 23वें तीर्थंकर थे जिनका अवतरण काशी में राजकुल में ईसा के नौ सौ वर्ष पहले हुआ था। दो सौ पचास वर्ष का अन्तराल कोई लम्बा नहीं होता। उनकी विचार - परम्परा चल ही रही थी, जीवित थी। अनेक श्रमणमुनि अहिंसा अपरिग्रह आदि जीवन - तत्त्वों का प्रचार करते हुए विचरण कर रहे थे। बिहार भी सटा हुआ क्षेत्र था। महावीर प्रभावित हुए और सामाजिक विषमता, वर्ग - भेद, शोषणयुक्त समाज - व्यवस्था के उन्मूलन के लिए चल पड़े। पुराणों में कमठ के उपसर्ग की कथा सर्वविदित है। अनेक जन्मों तक बैर - विरोध की यह कथा चलती रही। कमठ का विरोध या उपसर्ग व्यक्ति द्वेष या ईर्ष्या का परिणाम नहीं था। पार्श्वनाथ का विरोध तो वास्तव में इस कारण था कि पार्श्वनाथ पशुबलि, यज्ञानुष्ठान, मिथ्याधर्म परम्परा तथा अनुचित क्रियाकांड आदि के विपरीत मानवधर्म का, अहिंसा का सत्य, अपरिग्रह आदि सद्विचारों का प्रचार कर रहे थे। वे इन्हीं गुणों के विकास को व्यक्ति तथा समाज के लिए धर्म कह रहे थे। निहित स्वार्थीवर्ग इन्हीं सीधी सादी, आडंबरविहीन व्यक्ति - स्वातंत्रय की सीख को सहन कैसे कर सकता था ? जो भी व्यक्ति समाज कल्याण के लिए आगे बढ़ता है, उसका विरोध तो होता ही है। उसे प्राण तक गँवाने पड़ते हैं। हर युग में यही हुआ है, आज भी हो रहा है। प्रह्लाद के साथ यही हुआ। सुकरात के साथ हुआ। मीरा के साथ हुआ। गांधी के साथ हुआ। राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए हजारो देशभक्तों को यातनाएँ झेलनी पड़ी, शूली - फाँसी पर लटकना पड़ा।

कहा जाता है कि पार्श्वनाथ क्षत्रिय थे, इक्ष्वाकुवंश के थे। ऐसा लगता है कि भारत में नागों के प्रति बहुत लगाव रहा है। शिवजी के कंठ में नाग लिपटा है। श्रीकृष्ण शेषशायी है, कालिया - मर्दन भी करते हैं। पार्श्वनाथ के सिर पर सप्तफनी नाग का छात्र है।[1] नागों के प्रति आकर्षण का एक कारण तो यह प्रतीत होता है कि नाग का विग्रह चमकदार, सुन्दर तथा लचीला, मुलायम होता है। दूसरे वह कृषि रक्षक भी है। भूमि में रहता है और फसल नष्ट करने वाले जीव - जन्तुओं से पेट भरता है। इसीलिए वर्षा के मौसम में, सावन में, गाँव - गाँव में नागपूजा होती है। इसी तरह आरम्भ से ही वृषभ कृषि उद्योग का बहुत बड़ा आधार रहा है। वृषभ पूजा भी अनेक प्रदशों में होती है। गाय से जीवन पोषक दूध मिलता है। गाय - बैल के गोबर से खेती उपजाऊ होती है। मानव के आर्थिक विकास में, मूल उद्योग कृषि ही है, वहीं वास्तव में सम्पत्ति है। जैन मान्यता या परम्परा के अनुसार नाग, वृषभ आदि की पूजा को मिथ्या भले ही कहा जाय पर हम नहीं जानते कि जैनधर्म में कब, किस सन्दर्भ में कृषि - उद्योग को प्रायः क्यों निषिद्ध मान लिया गया ? यद्यपि आज भी अधिकांश जैनी कृषि कार्य करते - कराते हैं। ऋषभदेव का बाल्यकाल का नाम जो भी रहा हो, पर कृषि के प्रवर्तक होने के नाते जनता उन्हें भी ऋषभ या वृषभनाथ कहने लगी।

भारतीय जनमानस की एक आध्यात्मिक विशेषता रही है कि जीवन के लिए उपयोगी किसी भी प्राणी का आदर होनी चाहिए। तुलसी, पीपल, नीम आदि वनस्पति की पूजा का भी यही कारण है। वास्तव में अहिंसा इतनी निष्प्राण नही है, न हो सकती है।

एक महत्वपूर्ण बात यह है कि समाज - सेवक सदैव बुराईयों के जहर को, विष को पीने और पचाने के लिए तैयार रहता है। वह हर प्रकार के सामाजिक या आध्यात्मिक भय से मुक्त रहता है। जीवन का मोह तो उसे स्पर्श ही नहीं कर पाता। विश्व कल्याण की चरम कामना या दया - प्रेम समानत्व की, अहिंसा की उच्च स्थिति को स्पर्श करने की भावनावाला योगी, तपस्वी और अनासक्त पुरूष उसे भी प्यार देता है, उसकी भी हित कामना करना है, जिसे समाज घातक या शत्रु या असुर समझता है। पार्श्वनाथ तो अहिंसा के परिपूर्णरूपेण समता के जीवन प्रतीक थे। उन्होंने तो नागदेवता को भी अपने माथे पर अवस्थित कर लिया। सर्प को लोग काल का प्रतिनिधि मानते हैं, उससे भयभीत रहते हैं। उसे देखते ही काँप उठते हैं। साँप भी प्यार को समझता है। वह यों ही जानबूझकर डंसता नहीं है। हाँ, वह इतना स्वाभिमानी अवश्य होता है कि किसी का पाद - प्रहार सहन नहीं कर सकता। जिसका चित्त शुद्ध - निर्मल होता है, कषाय - मुक्त होता है, किसी के प्रति कोई ग्रन्थि नहीं होती, वही तो विषपायी होकर भी हँसता - मुसकराता है। मीरा विष का प्याला पीकर भी तो मगनमन नाच रही थी। आदिपुराण में कथा है कि भरत चक्रवर्ती के काल में सुलोचना सती के जब साँप का स्पर्श करने को छलपूर्वक कहा गया तो वह साँप भी स्नेह का कोमल मधुर - स्पर्श पाकर फूल की तरह निर्विष हो गया।

इतिहासविदों का यह भी मत है की पार्श्वनाथ स्वयं नाग जाति के थे। यह क्षत्रियों की एक शाखा रही है, जो बिहार और बंगाल में विशेष रूप से थी। आज भी बिहार बंगाल में नाग जाति के लोग हैं सम्भव है, नाग जाति के क्षत्रियों ने पार्श्वनाथ को अपना प्रमुख नेता, कल्याणकर्त्ता स्वीकार कर लिया हो और सदैव उनकी रक्षा - व्यवस्था में सावधान, तत्पर, जागृत रहे हों। सम्भवतः यही कारण हो कि कालान्तर में उनका शीश पर प्रतीक रूप में सर्प - फन अंकित कर दिया गया हो।

श्वेताम्बर आगामों में विशेषकर स्थानांगसूत्र[2] तथा उत्तराध्ययन[3] में उल्लेख है कि - पार्श्वनाथ ने अहिंसा, सत्य, अचौर्य और अपरिग्रह रूप चातुर्याम धर्म का उपदेश किया था। ब्रह्मचर्य को अपरिग्रह में ही निहित मान लिया गया था। ग्रंथो या परम्परा के आधार पर प्रजा को जड़बुद्धि, सरलबुद्धि या वक्रबुद्धि आदि

कुछ भी कहे, पर सच्चाई यह प्रतीत होती है कि तत्कालीन समाज में स्त्री भी परिग्रह मानी जाती थी। प्रतिष्ठा इसमें थी कि कौन कितनी अधिक पत्नि का पति या स्वामी है। चक्रवर्ती के वैभव की पराकाष्ठा छियानबे हजार रानियों के द्वारा आँकी गयी। आठ, सोलह, बत्तीस से लेकर छियानबे हजार तक गिनती लग गयी। इसका अर्थ यही तो हुआ कि स्त्री परिग्रह है, सम्पत्ति, है दासी है या भोग्य वस्तु है। इसीलिए भगवान पार्श्वप्रभु ने अपरिग्रह को धर्म बताया कि स्त्री - संख्या का भी संवरण किया जाय। बाद में जब इसमें से भी अपने बचाव के रास्ते खोजे जाने लगे, तब भगवान महावीर को स्पष्ट रूप से ब्रह्मचर्य अर्थात् स्वदारसन्तोष व्रत का विधान करना पड़ा। यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखने की है कि पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी, दोनों बालब्रह्मचारी यानी ब्रह्मचर्य के महाव्रती ही रहे। जिनकी कथनी - करनी एकरूप होती है, वे अपने कथन का पालन अपने से ही प्रारंभ करते हैं।

पार्श्वनाथ के चातुर्याम पर गोवा निवासी प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् स्व धर्मानन्दजी कौसाम्बी की एक पुस्तक 'पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म' पंडित नाथूरामजी प्रेमी ने लगभग पचास वर्ष पूर्व हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई से प्रकाशित की थी। ऐतिहासिक शोध की दृष्टि से यह पुस्तक अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। अब तो यह कृति अप्राप्य है। सन् 1941 - 42 में वृद्धावस्था तथा बीमारी के कारण वे गांधी जी के सान्निध्य में सेवाग्राम - आश्रम में आगये और वहीं उन्होंने सल्लेखना पूर्वक समाधिमरण प्राप्त किया।[4]

धरणेन्द्र - पद्मावती की कथा तो सर्वविख्यात है। सहस्त्राधिक वर्षों से यह कथा रूचि तथा भावना के साथ पढ़ी जाती है। यह कहना तो कठिन है कि यह कहानी कब से प्रचलन में है। रोचक एवं चमत्कारिक तो है ही। श्रद्धा और भक्ति की अपनी महिमा है। नाटक समयसार में, मंगलाचरण के पद में बनारसीदास जी भी कहते हैं कि पार्श्वनाथ के वचनों को हृदयगम करते ही नागयुगल पलमात्र में धरणेन्द्र पद्मावती के रूप में देव बन गये।[5] पहली बात तो यह कि सर्प - जोड़ी ईंधन में आग की लपट में झुलस रही थी। ऐसी स्थिति में काठ में से जोड़ी को विलग करना और उनके निकट पहुँचकर शांतिका मंत्र कान में सुनाना और झुलसते जीवों का सुन पाना कितना संभव है ? वैज्ञानिकों का कहना है कि साँप को कर्ण - इन्द्रिय नहीं होती, वह आँखों से ही, देखकर क्रियाएँ करता है। मान लीजिये, उसके कान होते है तब भी वह समनस्क होता है ? और अंतिम कष्टदायी स्थिति में क्या मन या हृदय चौतन्य रह सकता है ? सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि यदि साँप जैसे जीव जन्तु मंत्र सुनने मात्र से देव योनि प्राप्तकर सकते हैं तो फिर मनुष्य जैसा सर्वेन्द्रिय तथा मनयुक्त जीव भव - भव में क्यों भटकता है ? जब भगवान् का नाम लेने मात्र से जीवनभर के दुष्कृत्यों, अपराधों अनुचित आचरण से मुक्त हुआ जा सकता है तो फिर जीवन भर नैतिकता, सदाचार, संयम, सामाजिक शिष्टाचार, विनय आदि के व्यवहार क्यों किया जाय ? ढेर सारे उपदेशों की क्या आवश्यकता ?

प्रकांड दार्शनिक आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने, अपने स्वयंभू स्तोत्र में पार्श्वनाथ की स्तुति की है।[6] आचार्य जिनसेन ने तो पार्श्वाभ्युदय काव्य में, प्रत्येक छन्द की एक पंक्ति में कालिदास के मेघदूत की पंक्तियों को इस तरह कुशलता से संयोजित या गुंफित कर दिया कि मेघदूत की पंक्तियों के अर्थ ही नये रूप में बदल गये।

अकबर - कालीन विद्वान् महाकवि बनारसीदास ने तो नाटक समयसार में, मंगलाचरण के रूप में, तीन सवैयों में पार्श्वनाथ का अत्यन्त लालित्यपूर्ण स्तवन किया है। वे कहते हैं कि पार्श्वप्रभु की जन्मपुरी के नाम के प्रभाव से ही मैंने आत्मस्वरूप की झलक पायी। वे यह भी कहते हैं कि पार्श्वनाथ के नाम के प्रभाव से ही पारस पत्थर विश्व में प्रसिद्ध हुआ है। जिसके स्पर्श से लोहा भी स्वर्ण बन जाता है। यह कितनी उच्चकोटि की भक्ति है। पारस नाम का पाषाण भी जब लोहे को सोना बना सकता है, तब जिसके मन - मन्दिर में पारस प्रभु का निवास हो, उसकी त्रिलोक - सम्पदा का कौन पार पा सकता है ?

मंगलाचरण का दूसरा छनद तो अद्‌भुत है। उसमें सारे शब्द बिना मात्रा के हैं। उपमाओं या विशेषणों की जैसे झड़ी लगा दी है। इस पद में कवि कहते हैं -

पर - अध रजहर जलद,

सकल जननत भव - भय हर।

अर्थात् आपका तन जल से भरे हुए मेघ के समान नीलवर्ण है, जो जन - जन का भव - भय हरनेवाला है। त्रिताप से मुक्त करनेवाला है। दृष्टव्य है कि कवि ने उनके तन को नीलवर्ण कहा है। यह एक विशेष प्रतीक है। शिवजी भी नीलकंठ है, कृष्ण भी श्याम (नील) वर्ण के ही रहे। सलोने - साँवले श्याम वर्ण की भी एक गरिमा महत्ता है। संसार की बुराइयों को पचाने की क्षमता वाले सेवा - तपस्वी नीलवर्ण ही हो सकते हैं, वे देहसक्त हो ही नहीं सकते। प्रथम छन्द में भी कवि ने कहा है कि - आपका तन सजल जलद के समान है और नाग के सप्तफनों का मुकुट आपके ऊपर शोभायमान है। हे प्रभु आप अभय प्रदान करने वाले हैं - आपकी जय हो, जय हो। ध्यान देने की बात है कि उन्होंने पार्श्वप्रभु के शीश पर सप्तफनों का मुकुट चित्रित किया है। यह प्रतीत है धरणीधर के प्रति, विषधर के प्रति भी वात्सल्य भाव का। भगवान महावीर ने भी चंडकौशिकनाम को निर्विष बना दिया था। यह वात्सल्य की ही, सम्पूर्णमना स्नेह की ही महिमा है कि सब जीव बैर - विरोध विसारकर समभाव में पहुँच जाते हैं - हरिणी के बालक को सिंहनी भी पाल सकती है। अठारहवी शताब्दी के हिन्दी कवि भूधरदासजी ने तो काव्य रूप में पार्श्वपुराण की ही रचना की है। वह एक उत्कृष्ट कृति है। चौबीसी पूजाओं के रचयिता भक्त और रसज्ञ कवि वृन्दावनजी ने समुच्चय पूजा की जयमाला में पार्श्वप्रभु को अनाथों का नाथ कहकर तीर्थकर पद को विश्व करूणा का अवतार ही घोषित कर दिया। यों तों पार्श्वनाथ पर समय - समय पर कवियों ने अनेक पद स्तुतियाँ भी रची हैं, जिनका पाठ किया जाता है।

संदर्भ सूची

1. भारतीय संस्कृति एवं साहित्य - मारूतिनन्दन तिवारी
2. स्थानांग सूत्र - आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर
3. उत्तराध्ययन सूत्र - आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर
4. पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म - धर्मानन्द जी, कौसाम्बी - 3/9
5. समयसार नाटक - बनारसीदास - पृ0 36.
6. स्वयंभू स्तोत्र - आचार्य समन्तभद्र - 2/21

प्राचीन भारत में गुप्तयुगीन सिंचाई व्यवस्था

डॉ० दीपा गुप्ता

एसोसिएट प्रो0-प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पूरातत्व विभाग, (कन्या गुरुकुल परिसर हरिद्वार),
(गुरुकुल कांगड़ी समवि0वि0) हरिद्वार उत्तराखण्ड

गुप्त शासकों का शासनकाल प्राचीन भारतीय इतिहास में गौरवशाली युग का प्रतिनिधित्व करता है। कुषाण साम्राज्य के विघटन के पश्चात् जिस विकेन्द्रीयकरण के युग का प्रारम्भ हुआ, वह चतुर्थ शताब्दी ईस्वी के प्रारम्भ तक चलता रहा। देश में कोई ऐसी शक्तिशाली केन्द्रीय शक्ति नहीं थी जो विभिन्न छोटे-बड़े राज्यों को विजित कर एकछत्र शासन की स्थापना कर सकती। मगध के गुप्त राजवंश में इस समय महत्वाकांक्षी महान् सेनानायकों का जन्म हुआ। फलस्वरूप सभ्यता और संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र में इस समय अभूतपूर्व प्रगति हुई तथा भारतीय संस्कृति के विकास को पूर्णता प्राप्त हुई। गुप्तकाल के चहुंमुखी विकास को देखते हुए ही विद्वानों ने इस काल को हिन्दू संस्कृति के ''स्वर्णयुग'' अथवा ''क्लासिकल युग'' की संज्ञा से अभिहित किया है।

आर्थिक दृष्टि से गुप्तकाल को समृद्धि एवं सम्पन्नता का काल माना जाता है। आर्थिक जीवन के अन्तर्गत कृषि का इस समय महत्व बढ़ा और कृषि भूमि का विस्तार हुआ, धान, गेहूँ, गन्ना, जूट, तिलहन, कपास, ज्वार, बाजरा, मसाले इत्यादि इस समय पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न किये जाते थे। कृषि के महत्व के बढ़ने पर खेतों की आवश्यकतानुसार सिंचाई होना ज्ञात होता है। नारद न तीन प्रकार के सेवकों में सिपाहियों को प्रथम श्रेणी में और कृषकों को मध्यम श्रेणी में रखा है। वराहमिहिर ने कृषि को वार्ता (कृषि-पशुपालन एवं व्यापार) में प्रमुख स्थान दिया है। कालिदास ने कृषि को राष्ट्रीय समृद्धि का एक महत्वपूर्ण साधन माना है।

इस काल में राज्य की ओर से अधिकाधिक भूमि को कृषि योग्य बनाये जाने के प्रयास किये जा रहे थे, जिसके लिए राज्य द्वारा बंजर भूमि को उपजाऊ बनाने के उद्देश्य से कृषकों को दान कर दी जाती थी। राजकीय कर से मुक्त होने के कारण ऐसी भूमि को ग्रहण करने में कृषक अधिक रूचि लेते थे। बंजर भूमि को उपजाऊ बनाने में श्रम के साथ-साथ सिंचाई की पर्याप्त आवश्यकता पड़ती थी। यही नहीं बीजों के अंकुरण तथा पौधों के संवर्धन के लिए खेत एवं फसलों की सिंचाई परमावश्यक थी। यही कारण है कि गुप्तकालीन अर्थव्यवस्था में कृषि एवं सिंचाई व्यवस्था का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रहा था।

गुप्तकाल में सिचांई के मुख्यत: दो साधन थे

1. प्राकृतिक साधन
2. कृत्रिम साधन

प्रकृतिक सिंचाई के साधनों में वर्षा, नदी, झील एवं झरने आदि प्रमख थे, जबकि कृत्रिम सिंचाई के साधन में कुंए, (कूप) नहर, तालाब, बावड़ी और जलाशय आदि प्रमुख थे। प्राचीन भारत में गुप्त काल तक आते-आते कृषकों ने प्राकृतिक एवं कृत्रिम परम्परागत जलस्रोतों में समयानुकूल पर्याप्त सुधार कर लिया था। तथा कृत्रिम साधनों को कृषकों ने प्राकृतिक साधनो की अनुकम्पा पर निर्भर न रखने के लिए व्यक्तिगत तथा सामूहिक प्रयासों के आधार पर निर्मित कर लिया था।

गुप्तकाल में सिंचाई के प्राकृतिक साधनों ने वर्षा का प्रमुख स्थान था। साधारणतया लोग सिंचाई हेतु वर्षा पर ही निर्भर करते थे। भारत के कुछ भागों में कृषि वर्षा के जल पर ही निर्भर करती थी। उन दिनों पूर्वोत्तर भी अपने दो समुद्र मानसूनों के लिए प्रसिद्ध है।

वराहमिहिर ने गुप्तकालीन भारत के कुछ भागों में होने वाली तीन मानूसूनी वर्षा और तदनुसार तीन वार्षिक फसलों ग्रीष्म, शारदीय और बासन्ती का उल्लेख किया है। पुराणों के अनुसार उस समय वर्षा के लिए विभिन्न प्रकार के यज्ञानुष्ठान किये जाते थे। कालिदास ने भी यज्ञानुष्ठान से होने वाली वर्षा का उल्लेख किया है। मिलिन्दपन्नौह में भी हम कुछ असामयिक एवं छिटपुट वर्षा के अतिरिक्त वर्ष में तीन नियमित वर्षा का उल्लेख पाते हैं। इन क्षेत्रों की प्रमुख फसले धान, गन्ना, आदि थी जो एकमात्र वर्षा जल पर ही निर्भर करती थी पुराणों में वर्षा के महत्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि खेतों की सिंचाई हेतु किसी कृत्रिम यंत्र आदि की आवश्यकता नहीं थी। वर्षा के जल से ही प्रचुर मात्रा में सिंचाई होती थी।

साहित्यिक ग्रंथों में वर्षा होने का कारण इन्द्र, मेघ और सूर्य को बतलाया गया है। कामंदक ने सूर्य को वर्षा का एकमात्र कारण मानते हुए कहा कि संपूर्ण संसार की इच्छा को जानती हुई सूर्य किरणें पृथ्वी से धरोहर के रूप में जल लेकर पुन: उसे वापिस कर देती हैं। अत: सूर्य कृषकों को स्वामी है। वराहमिहिर कृषि हेतु वर्षा का बड़ा ही रोचक वर्णन करते हुए कहते हैं कि संसार का प्राण अन्न है और वह अन्न वर्षा के अधीन है। कालिदास ने तो बादल के गरजने मात्र से ही धरती के उपजाऊ हो जाने का वर्णन किया है। यदि वर्षा समयानुकूल एवं आवश्यक मात्रा में बरसें और पृथ्वी हरी भरी होकर लहला उठे तो उसका महत्व अलग ही है।

प्राकृतिक सिंचाई के साधनों में वर्षा के उपरान्त नदियों का स्थान था। ''अमरकोष'' में नदियों के बारह नाम नदी सरित, तरंगिनी, सैवीलनी, तटिनी, हदिनी, धुनी स्रोतस्वती, दीपवती, स्रवन्ती, निम्नगा, आयगा आदि नाम मिलते हैं। पुराणों में गंगा, शतुद्र तथा चन्द्रभागा आदि विविध नदियों और उपनदियों के उल्लेख मिलते हैं। जो अपने औषधि गुणों से युक्त जल द्वारा खेतों को उर्वरा अर्थात उपजाऊ बनाती रहती थी। इस प्रकार सिंचाई के साथ साथ इन नदियों के कारण भारतीय जन स्वस्थ एवं हृष्टपुष्ट भी रहते थे। कालिदास ने वर्षा के जल से परिपूर्ण तथा मौसमी नदियों और उनकी ऋतुगत स्थिति और उनके द्वारा सिंचित प्रदेशों (क्षेत्रों) का एक विस्तृत एवं रोचक विवरण दिया है। मैती ने सिंचाई के संदर्भ में वर्णन करते हुए लिखा है कि उत्तरी भारत को सिंचाई के स्रोत के रूप में निरन्तर पानी बहाने वाली नदियों का आशीर्वाद प्राप्त है।

उत्तर भारत में बहने वाली जैसे सिंधु, गंगा, यमुना, सरयू, सरस्वती, मन्दाकिनी, तमसा, वेत्रवती, गन्धवती, गन्भीरा, शिप्रा, लौहित्य अथवा ब्रह्मपुत्र इत्यादि नदियों के अतिरिक्त उड़ीसा और दक्षिण भारत में बहने वाली कुछ प्रमुख नदियों का भी कालिदास ने उल्लेख किया है। इनके नाम हैं नर्मदा, वरदा, कावेरी, ताम्रवर्णी, गोदावरी, मुरला, इत्यादि हैं। अधिक वर्षा होने पर (अनावृष्टि) नदियों में यदा-कदा बाढ़ भी आ जाया करती थी। जो आसपास के क्षेत्रों की फसलों को तत्काल नष्ट कर देती थी, परन्तु उसकी मिट्टी को इतना अधिक उपजाऊ बना देती थी कि भविष्य में उस क्षेत्र का उत्पादन प्रायः दुगुना हो जाता था।

गुप्तकाल में वर्षा एवं नदियों के अतिरिक्त सिंचाई हेतु प्राकृतिक साधनों के रूप में झीलों तथा झरनों के भी नाम मिलते हैं। इस काल में सिंचाई संबंधी व्यवस्था में झीलों का एक अहम् योगदान रहा है। कृषि की रक्षा करना राजा का महत्वपूर्ण कर्त्तव्य माना जाता था, इसीलिए सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि राज्य की ओर से सिंचाई आदि का समुचित प्रबंध किया जाता रहा होगा। गुप्तकाल में राज्य सिंचाई संबंधी व्यवस्था की ओर कितना सजग था, इसका उदाहरण स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख से मिलता है, जिसके अनुसार स्कन्दगुप्त के समय में चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा निर्मित सुदर्शन झील का बाँध पुनः टूट गया। परिणामस्वरूप निकटवर्ती क्षेत्र जलमग्न हो गये। तदुपरान्त सम्राट स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ के राज्य पाल पण्दित्त के पुत्र चक्रपालित ने विशाल धनराशि खर्च करके दो माह तक बाँध की मरम्मत का कार्य लगातार कराकर 100 हाथ लंबे तथा 68 हाथ चौड़े बाँध का पुनर्निर्माण कराया था। जब कि शक शासक रूद्रदामन प्रथम के जूनागढ़ अभिलेख (150 ई0) में उसके प्रांतीय शासक सुविशाख द्वारा निर्मित सुदर्शन झील के बांध की लंबाई 420 हाथ (लगभग 630 फुट) बतलाई गई हैं। इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि सिंचाई के निमित्त बड़ी-2 झीलों का निर्माण ही नहीं किया जाता था बल्कि इस काल में उसके रखरखाव और मरम्मत की व्यवस्था भी की जाती थी। चीनी यात्री हवेनसांग ने भी ऐसी ही एक विशाल झील का उल्लेख किया है और उसे सिंधु, गंगा, आक्सस, सीता आदि नदियों का उद्गम् स्थल बताया है। यह विशाल झील संभवतः जम्बूद्वीप में स्थित थी।

इस प्रकार प्राकृतिक जलस्रोतों में वर्षा, नदी, झील एवं झरनों आदि के द्वारा भारत का केवल एक निश्चित भू-भाग पूर्वोत्तर ही सिंचित हो पाता था, क्योंकि इस भूभाग की भौगोलिक स्थिति प्राकृतिक रूप से जलस्रोतों द्वारा परिपूर्ण थी। जबकि भारत का मध्य तथा पश्चिमोत्तर खेतिहर भाग इस सुविधा से सर्वथा वंचित था। इसीलिए यहां कृत्रिम जलस्रोतों के माध्यम से ही सिंचाई व्यवस्था पूर्ण हो पाती थी। परिणामतः परती, बंजर एवं अनउपजाऊ भूमि में भी मनोवांछित कृषि संभव हो गयी थी। प्राकृतिक स्रोत चाहे कितनी भी अधिक मात्रा में थे लेकिन उनके सहारे कृषि जुए की तरह थी, ऐसी स्थिति में ही कृत्रिम साधनों का महत्व बढ़ जाता है। कामंदक ने बिना वर्षा के ही कृत्रिम साधनों से सींचने पर अन्न उपजान वाली भूमि को प्राणियों के सुख का द्योतक माना है।

कृत्रिम जल स्रोतों में कूप (कुएं) नहर तालाब, वापी, जलाशय आदि थे जो जमीन को एक निश्चित गहराई तक खोदकर निर्मित किये जाते थे। सिंचाई के पर्याप्त साधनों की व्यवस्था करना राजा की विशेषता बतलाई गई हैं जहां पर वर्षा कम होती थी, वहां लोग सिंचाई हेतु कुंएं नहरों, तड़ागों (तालाबों) वापियों तथा जलाशयों का प्रयोग करते थे। बृहस्पति के अनुसार नवीन तालाब, बावड़ी एवं कुंए बनवाने वाला अथवा पुराने तालाब का जीर्णोद्धार कराने वाला स्वर्गलोक को प्राप्त करता है। बृहस्पति ने कुंआ बावड़ी आदि बनाने के पुण्य का वर्णन करते हुए कहा है कि ''जो कोई नया तालाब बनवाये या पुराने तालाब का खुदवाकर पुनः उसका जीर्णोद्धार करवायें, वह अपने समस्त कुल का उद्धार करके स्वर्गलोक में जा सकता है।'' बृहस्पति ने यह भी कहा है कि सिंचाई के कुंओं तालाबों आदि की देखरेख श्रेणी संगठनों को करनी चाहिए।

गुप्तकालीन कृत्रिम जलस्रोतों मं कुओं एवं नहरों का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा हैं कूप (कुएं) खोदने वाले को महावस्तु में 'कूपखनक' कहा गया है। इसके अतिरिक्त अन्य साहित्यिक तथा पुरातात्विक साक्ष्यों से भी इस काल में निर्मित अनेक कुओं की पुष्टि होती है। विश्ववर्मन के जूनागढ़ पाषाण अभिलेख में गांधार के एक ऐसे कुएं का उल्लेख मिलता है जिससे जल पीने के साथ-2 आसपास के छोटे-2 खेतों की सिंचाई भी होती थी। अमरकोष में भी इस प्रकार के कुओं के उल्लेख मिलते हैं। जिन्हें अन्धु, प्रहि, कूप तथा उदपान इन चार नामों से संबोधित किया गया है। आज की भांति उन दिनों भी प्रायः कुओं द्वारा खेतों को सींचने के लिए पुखट, ओट तथा रहट आदि यंत्रों का प्रयोग किया जाता था। जिनके सहारे इनमे से पानी निकाला जाता था। अमरकोष में इन यंत्रों को ''घटीयंत्र'' कहा गया है।

नहरें भी सिंचाई का एक महत्वपूर्ण साधन थे। अमरकोष में इन्हें कर्षू कहा गया है। इन नहरों द्वारा सुदूर एवं विस्तृत फैले हुए क्षेत्रों की सिंचाई अपेक्षाकृत कम समय में ही भली-भाँति हो जाती थी। सिंचाई के अतिरिक्त इन नहरों का कृषि की दृष्टि से एक दूसरा महत्व भी था क्योंकि नदियों से निकलने के कारण बाढ़ आदि कालों में ये नदियों के जल को अपने में खींचकर बाढ़ पर अंकुश लगाकर फसलों को नष्ट होने से बचाती थी।

सिंचाई के कृत्रिम स्रोतों में तालाबों का भी विशेष महत्वपूर्ण स्थान था। तालाबों को वापी, जलाशय, जलाधार, बावली आदि अनेक नामों से संबोधित किया गया है। वर्षा के जल रोककर तथा नदियों में बांध बनाकर तालाबों का निर्माण होने लगा था। सिंचाई के साधन के रूप में कुएं से तुलना करते हुए नारद ने तालाब अथवा तड़ाग को कुएं से सौगुना अधिक महत्वपूर्ण बताया है। तालाब भी संभवतः प्राकृतिक एवं कृत्रिम दो प्रकार के होते थे। प्राकृतिक तालाब मानसून की वर्षा से जल प्राप्त करते थे तथा ग्रीष्म आदि ऋतुओं में प्रायः सूख जाते थे। कालिदास ने ऐसे अनेक वन्य तालाबों का उल्लेख किया है जो

ग्रीष्मकाल में तो सूख गये थे किन्तु वर्षा आते ही पुनः जल से भर गये थे। अमरकोष में प्राकृतिक तालाबों को 'अखात' कहा गया है। कृत्रिम तालाबों को निर्मित करने का मुख्य उद्देश्य सिंचाई ही था।

सिंचाई के कृत्रिम स्रोतों मं वापियों (जो एक प्रकार से तालाब का ही रूप थी) का निर्माण भी किया गया था। जिसके माध्यम से सिंचाई भली प्रकार हो जाती थी। इन वापियों के तट पर सुन्दर छायादार वृक्ष लगवाये जाते थे। इन वापियों से पानी किसी भी प्रयोजन के लिए बाहर ले जाने हेतु इसके एक ओर पत्थर की नाली बनी होती थी जो ऊपर से लकड़ी द्वारा ढककर मिट्टी से सुदृढ़ कर दी जाती थी। संभवतः इन ढकी नालियों द्वारा पानी वापी से खेतों तक पहुँचाया जाता था।

इस प्रकार गुप्तकाल में कृत्रिम सिंचाई के साधनों में कुओं, नहरों, तालाबों एवं वापियों का एक महत्वपूर्ण स्थान रहता था। इस समय जहाँ एक ओर तड़ाग (तालाब) वापी एवं कुएं आदि का निर्माण करना पुण्यकर्म माना जाता था, वहीं तड़ाग के पानी को दूषित करने वाले के लिए कात्यायन ने दण्ड का प्रावधान किया है।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि गुप्तकाल में सिंचाई के प्रचुर साधन उपलब्ध थे। प्राकृतिक एवं कृत्रिम दोनों प्रकार के साधनों ने सिंचाई व्यवस्था के क्षेत्र में अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। सिंचाई के स्रोतों में प्राकृतिक स्रोत तो ईश्वरीय देन ही थी लेकिन कृत्रिम जल स्रोतों के निर्माण में धार्मिक तथा आध्यात्मिक भावना लोगों को प्रेरित करती रही थी। उदाहरणार्थ-बृहस्पति का यह कथन कि जो कोई नया तालाब बनवाता है या पुराने तालाब को खुदवाकर उसका जीर्णोद्धार करवाता है, वह अपने समस्त कुल का उद्धार करके स्वर्गलोक को प्राप्त करता है। अन्ततः यही कहा जा सकता है कि तत्कालीन विद्वानों महाकवि, कालिदास, अमर सिंह आदि के वर्णन से तो सुदृढ़ सिंचाई व्यवस्था ज्ञान होता ही है लेकिन वरहमिहिर ने प्राकृतिक एवं कृत्रिम सिचाई के विभिन्न तत्वों पर विस्तृत रूप से जो प्रकाश डाला है उससे ज्ञात होता है कि स्वर्णयुगीन भारत तक आते-2 कृषि एक उद्योग का रूप धारण कर चुकी थी।

संदर्भ संकेत

1. सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट, पृष्ठ संख्या-134
2. बृहत्संहिता, 19/11
3. रघुवंश, 16/2
4. एस0के0 मैती, इकोनोमिक लाइफ ऑफ नार्दन इंडिया इन दि गुप्ता पीरियड, पृष्ठ संख्या-97
5. अमरकोष, 1/5-6, 1/10-13
6. एस0के0 मैती, पूर्वोत्तर, पृष्ठ संख्या 86
7. बृहत्संहिता, सस्यजातकाध्याय 2/3
8. विष्णु पुराण, 1/6-8
9. रघुवंश, 1/62
10. मिलिन्दपन्नौह, 4/1/36
11. अच्छेलाल यादव प्राचीन भारत में कृषि, पृष्ठ संख्या-221
12. कामंदक, 12/48, ''समपिवन्तो जगता मतानि जलानि भूमेरिव सूर्यपाहाः''
13. बृहत्संहिता, गृहभक्तियोगाध्याय, 4/5
14. बृहत्संहिता, गर्भलक्षणाध्याय, 1
15. मेघदूत, 11
16. अभिज्ञान शाकुन्तलम्, 6/24, रघुवंश, 18/2
17. अमरकोष-1, वारिवर्ग, 30
18. विष्णुपुराण, 2/3/10-18, सर्वदानन्द पाठक, विष्णुपुराण का भारत, पृष्ठ संख्या-117
19. भागवतशरण उपाध्याय, कालिदास का भारत, पृष्ठ संख्या 22-23
20. सचिन्द्र कुमार मैती, पूर्वोक्त, पृष्ठ-86
21. रघुवंश, 6/42-46, मालविकाअग्निाभित्रम पृष्ठ-9, मेघदेत, 19, गौमती अभिज्ञान शाकुन्तलम्, 42, रघुवंश, 4/45, 4/50
22. जे0 फ्लीट, कार्पस इंस्क्रिप्शन इण्डिकेरम् 3, पृष्ठ सं0 60-61
23. डी0 सी0 सरकार, सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स वियरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, 1, पृष्ठ संख्या 170-71, वासुदेव उपाध्याय, प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन पृष्ठ संख्या 190-91
24. थॉमस वाटर्स, ऑन हुआन च्वांग्स ट्रेवल्स इन इंडिया, 33-35
25. दामंदक, 4/52

26. बृहस्पति, 1/62-63
27. बृहत्संहिता, 17/11-12
28. राधा गोविन्द बसाक, ए स्टडी ऑफ दि महावस्तुअवदान, पृष्ठ संख्या 40
29. जे0 फ्लीट गुप्त इन्सकृपिशन्स, पृष्ठ संख्या 76
30. अमरकोष, 9/10, 1/26
31. वही, 2/10/27, ''उद्घाटन घटीयंत्रम् सलिलोद्वाहनं पहे:''
32. अमरकोष, 3/3/222
33. ए0 एल0 यादव प्राचीन भारत में कृषि, पृष्ठ संख्या-237
34. सचिन्द्र कुमार मैती, इकोनोमिक लाइफ इन नार्दन इंडिया इन दि गुप्ता पीरियड, पृष्ठ संख्या 117
35. वासुदेव शरण अग्रवाल, मार्कण्डेय पुराण एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ संख्या 129
36. नारदस्मृति, 1/212
37. कुमारसंभव, 12/39, रघुवंश, 19/5
38. अमरकोष, 3/27
39. कात्यायनस्मृति, 758/59
40. बृहस्पति स्मृति, 1/62
यस्तडागं नवं कुर्य्यात पुराणं वाडपिखानयेत् क सर्वकुल मुद्धृत्य स्वर्गेलोकेमहीयते''।।

पौराणिक पर्यावरणीय सन्दर्भः गहनता और अनुकार्यता

डॉ० विष्णु कान्त त्रिपाठी

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संस्कृत, काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही, उ0प्र0

साहित्य की महत्ता सर्वविदित है। ये किसी समाज व राष्ट्र की निधि होते हैं। इनका सबसे महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य है कि ये जिस कालखण्ड में सृजित होते हैं उस कालखण्ड की सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था, धार्मिक विश्वास, परम्परा, भौगोलिक स्वरूप, पर्यावरणीय चेतना तथा दार्शनिक प्रवृत्तियों को निर्मल दर्पण की भाँति प्रतिबिम्बित करते हैं। संस्कृति और सभ्यता का अन्तरण भी इनके द्वारा सम्पन्न होता है। जो साहित्य जनमानस की संवेदनाओं, भावों, अनुभूतियों, जीवनमूल्यों, परम्पराओं और आदर्शों के जितना करीब होगा, वह साहित्य उस समाज में उतना ही लोकप्रिय होता है। लोगों की समस्याओं और उसके समाधान का कथन, स्वीकृत मूल्यों के अनुसार लक्ष्यों का निर्धारण, लोक-कल्याण की आकांक्षा का भाव और सुस्पष्ट तथा निरपेक्ष व्यवस्था का निरूपण भी साहित्य की लोकप्रियता के मानक है। कालक्रमानुसार ऐसे साहित्य उस समाज के लिए आदर्श बन जाते हैं तथा लोगों का मार्गदर्शन करते हैं। वेद, उपनिषद्, पुराण, रामायण और महाभारत जैसे साहित्य इसी कोटि में आते हैं। भारतीय जनमानस प्राचीन काल से इन साहित्यों से अनुप्राणित, प्रेरित और प्रकाशित होता आया है।

''इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत''[1] इस पौराणिक स्वीकारोक्ति के अनुसार पुराण वेदनिहित चिन्तन रूपी बीज को आख्यान, उपाख्यान और कथाओं से पल्लवित तथा पुष्पित करता है। पुराणों ने न केवल वैदिक ज्ञान परंपरा को कथावैचित्र्य, रोचक दृष्टान्त तथा सरल एवं सरस भाषा से समृद्ध किया बल्कि पौराणिक काल में विकसित समस्त ज्ञानधाराओं को अपने में समाहित किया है। इसी कारण इन्हें उस समय का विश्वकोष कहा जाता है। उक्त वैशिष्ट्य के कारण पुराण भारतीय जन-मानस में पूर्णतया रचे-बसे हैं और गौरवास्पद हैं। पुराणों के संदर्भ में वायुपुराण का यह कथन सार्थक प्रतीत होता है-

यो विद्याच्चतुरो वेदान् सांगोपनिषदो द्विजः।
न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः।।[2]

पर्यावरण को ज्ञान की स्वतंत्र शाखा के रूप में मान्यता आधुनिक समय की देन है। पूर्व में यह विविध स्वतंत्र ज्ञानविधाओं से सम्बद्ध था। पौराणिक काल में पर्यावरणीय तत्त्वों का विषयवस्तु के रूप ग्रहण और तत्सम्बन्धी चिन्तन धर्म, दर्शन, लोकाचार, मानवीय जीवनमूल्यों के विवेचन, सौन्दर्यबोध और काव्यानन्द हेतु प्रकृति चित्रण के अन्तर्गत हुआ है। आधुनिक अवधारणाओं के अनुसार पर्यावरण मानव को प्रभावित करने वाले सभी जैविक-अजैविक तत्त्वों, तथ्यों, प्रक्रियों और घटनाओं के समुच्चय से निर्मित इकाई है। मानव और पर्यावरण की अन्तर्क्रियायें एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। आज पर्यावरण विज्ञान के अन्तर्गत पर्यावरणीय तत्त्वों का मानवीय संदर्भों में अध्ययन हो रहा है। इसमें मानव पर्यावरण का अंग न होकर उसका नियन्ता और उपभोक्ता है। इसके अध्ययन का केन्द्र मानवीय अस्तित्व की सुरक्षा और विकास है।

पुराण निष्पादित पर्यावरणीय विचारधारा में मानव प्रकृति का अंग ही नहीं बल्कि प्राकृतिक तत्त्वों की एक समष्टि है। मानव की चेतनता और क्रियाशीलता का आधार वही परमात्मतत्त्व है जो अन्य जागतिक प्राणियों का है। वह उस चक्रीय व्यवस्था अथवा प्रक्रिया का भाग है जिसमें प्रत्येक प्राणी अपनी कर्मगति के अनुसार विभिन्न प्राणियों के रूप में जन्म लेता रहता है।[3] मानव शरीर उच्चकर्म और उच्च चेतना का परिचायक है। इस रूप में वह अन्य प्राणियों के साथ उदारता, सदाशयता, सद्भाव, प्रेम, अहिंसा और साहाय्य का भाव रखकर इस जन्म-मृत्यु के चक्र तथा विभिन्न योनियों में संस्सरण से मुक्त हो सकता है। यही उदार, उच्च मानवीय गुणों से समवेत और उत्कृष्ट आदर्शों वाली पौराणिक विचारधारा पर्यावरणीय संरक्षण और पर्यावरणीय चेतना के रूप में मुखरित हुई है। पुराणों में दिखाई देने वाली मानव और विभिन्न जीवों के मध्य आत्मीयता, सह-अस्तित्व, विविध कोटिक अन्तर्सम्बंध और अन्योन्याश्रिता का आधार भी यही चिन्तन हैं। मार्कण्डेय पुराण में मदालसा-अलर्क संवाद के अन्तर्गत मदालसा अपने पुत्र अलर्क को गृहस्थाश्रम की महत्ता बताते हुए कहती है कि 'हे वत्स! मनुष्य गृहस्थाश्रम का अवलम्बन करके अखिल जीवों का पोषण करता है और उसी पुण्य के प्रभाव से समस्त वांछित लोक प्राप्त करता है। पितृगण, ऋषिगण, देवगण, नरगण, कृमिकीट-पतंगगण, पक्षीगण, पशुगण और असुरगण यह समस्त ही गृहस्थों का अवलम्बन करके जीवनयात्रा का निर्वहन करते हैं-

वत्स गार्हस्थ्यमास्थाय नरः सर्वमिदं जगत।
पुष्णाति तेन लोकाँश्च स जयत्यभिवांछितम।।
पितरो मुनयो देवा भूतानि मनुजास्तथा।
कृमिकीटपतङ्गाश्च वयांसि पशवोऽसुराः।।[4]

जटिल पारिस्थितिक तन्त्र में प्रत्येक जीव का अपना महत्त्व है, फिर चाहे वह बड़े प्राणी हो अथवा कीट पतंग या सूक्ष्म जीवाणु। ऋषि प्रतिभा इससे परिचित थी। उक्त प्रसंग (मदालसा-अलर्क प्रसंग) में उच्च चेतना सम्पन्न, विकसित अन्तःकरण और सात्त्विक गुणयुक्त मानव के जीवों के प्रति कर्त्तव्यों का निर्देश है। मानव अपने कर्त्तव्यों के प्रति शिथिल न हो एतदर्थ लिंगपुराण कहता है कि पशुओं की उत्पत्ति ब्रह्मा के विविध अंगों से हुई है।[5] विष्णुपुराण भी भगवान्

विष्णु के विविध अंगों से पशु, पक्षी, वृक्ष और औषधियों की उत्पत्ति निरूपित करता है।[6] एक अन्य स्थल पर लिंगपुराण उपदेशित करता है कि हे द्विजों! गृहस्थ को सदा झाड़ू लगाने, पोंछने, अग्नि का उपयोग करने, कूटने-पीसने तथा जल का संग्रह करने आदि में अहिंसा का भाव अपनाना चाहिए। हिंसा से बचना चाहिए। सब जीवित प्राणियों के प्रति अहिंसा का भाव रखना सबसे बड़ा गुण है। अहिंसा परम धर्म है।[7] वह अहिंसा को परिभाषित करते हुए कहता है कि सभी प्राणियों को अपनी तरह ही समझना और सभी प्राणियों के कल्याण में रत रहना अहिंसा है। यह आत्मज्ञान में सहायक है-

आत्मवत्सर्वभूतानां हितायैव प्रवर्त्तनम्।

अहिंसैषा समाख्याता या चात्मज्ञानसिद्धिदा।।[8]

''भूतानि चानुदिवसं पोष्याणि स्वतनुर्यथा''[9] अर्थात् समस्त प्राणियों का प्रतिदिन पोषण वैसे करें जैसे अपनी संतानों का करते हैं। यह मार्कण्डेय पुराण का संदेश है। पुराणों में वर्णित मानव-जीव सम्बन्ध उपयोगितावाद पर आधारित न होकर एकात्मकता पर आधारित है। पुराण मानवीय स्वार्थों, सुखभोग और क्षुद्र आर्थिक लाभ हेतु किसी भी प्राणी की हिंसा अथवा उनके विनाश की अनुमति नहीं देते। यहाँ विकास की अवधारणा राजनैतिक लक्ष्यों अथवा आर्थिक प्रगति तक सीमित नहीं है। मानवीय प्रगति और विकास की सीमा मात्र प्राकृतिक संसाधन के अन्धाधुन्ध प्रयोग पर आधारित भौतिक प्रगति तक संकुचित न होकर त्याग और उच्च आदर्शों पर आधारित आध्यात्मिक प्रगति तक विस्तृत है। ऋषि-मुनि इसी दिशा में समाज को ले जाते दिखाई देते है। अग्निपुराण कहता है कि सभी प्राणियों के भीतर आत्मतत्त्व को और आत्मतत्त्व में सभी प्राणियों को समान रूप से देखता हुआ मनुष्य कर्मयोगी होता है।[10] मत्स्यपुराण में ययात्यष्टक संवाद के अन्तर्गत ययाति का कथन है कि तप, दान, शम, दम, लज्जा, आर्जव और प्राणियों पर दया ये सात ही लोगों की प्रगति के महान् द्वार हैं, जिनको स्वर्गलोक के सन्त भी कहा करते हैं।[11]

पुराणों में जीवों के प्रति मानवीय कर्त्तव्यों का पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ, स्वर्ग-नरक और बन्धन-मोक्ष द्वारा नियमन दिखाई देता है। विष्णुपुराण में प्रह्लाद का वक्तव्य है कि कर्मों के कारण ही सब उत्पन्न होते हैं और कर्म ही शुभाशुभ गतियों के साधन हैं। इसलिए प्रयत्नपूर्वक शुभकर्मों का आचरण करना चाहिए।[12] ''कीटाः पतंगाश्च भवन्ति पापात्''[13] अर्थात् पापकर्म से लोग दूसरे जन्म में कीट पतंग होते हैं, ऐसा मत्स्यपुराण का अभिमत है। मेषविक्रयोपजीवी और शिकारी (व्याधगण) वह्निज्वाल नरक में गिरते हैं।[14] जीवों को क्लेश देने पापी लोग नरकभोग के अनन्तर क्रम से स्थावर, कृमि, जलचर, पक्षी, पशु, मनुष्य, धार्मिक पुरुष, देवगण तथा मुमुक्षु होकर जन्म ग्रहण करते हैं, ऐसा विष्णुपुराण का अभिमत है।[15] अग्निपुराण पशुहिंसा अथवा पशुओं को पीड़ा पहुँचाने पर दण्ड की व्यवस्था करता है।[16] वह पशु-पक्षियों की मिथ्या चिकित्सा पर भी दण्ड की व्यवस्था करता है।[17] जीवहत्या हो जाने पर वह प्रायश्चित् का विधान करता है। तदनुसार बिल्ली, गोह, नेवला, मेढक, कुत्ता और पक्षी की हत्या हो जाने पर तीन दिन तक दूध पीकर कृच्छ्रचान्द्रायण व्रत रहना चाहिए।[18] भूमि को जोतकर, औषधियों को काटने तथा चीटीं को मारने से होने वाले पाप की शुद्धि किसानों को यज्ञ करने तथा देवपूजन करने से होती है।[19] प्रतिदिन संपादित दैनिक कर्म में अज्ञानता अथवा अनवधानता के कारण होने वाली जीवहिंसा द्वारा उत्पन्न अपुण्य के अपनयन हेतु पंचमहायज्ञों का पुराणों में विधान मिलता है। देवयज्ञ, ऋषियज्ञ, पितृयज्ञ, नृयज्ञ और भूतयज्ञ ये पाँच महायज्ञों में परिगणित हैं। भूतयज्ञ के अन्तर्गत प्रतिदिन अन्न आदि देकर पशु-पक्षियों का पोषण किया जाता है। यह अपरिहार्य कर्म था। मार्कण्डेय पुराण ''पंचयज्ञविधानं तु यथाशक्तिं न हापयेत्''[20] कहते हुए पंचयज्ञ का अनुष्ठान न त्यागने का निर्देश देता है। वह ''यथाशक्त्यान्नदानेन वयांसि पशवस्तथा''[21] कहते हुए पशु-पक्षियों को अपनी शक्ति के अनुसार अन्नदान द्वारा पालन करने का सदुपदेश देता है। कण्डनी, पेषणी, चुल्ली, जलकुम्भी और प्रमार्जिनी कर्म द्वारा छोटे और सूक्ष्म जीवों की हिंसा द्वारा उत्पन्न अपुण्य को दूर करने के लिए मत्स्यपुराण इन पंचमहायज्ञों का विधान करता है।[22] मार्कण्डेय पुराण अनुदिवस संपादित पंचमहायज्ञ के परिणाम का वर्णन करते हुए कहता है कि पंचमहायज्ञ को सम्पन्न करने वाले गृहस्थ का देवता, पितर, महर्षि, अतिथि, बान्धव, पशु-पक्षी और सूक्ष्म कीट सब ही अत्यन्त प्रसन्न होकर कल्याण करते हैं-

श्रेयोभिवर्षिणः सर्वे भवन्त्यतिथिबान्धवाः।

पशुपक्षिमृगास्तृप्ता ये चान्ये सूक्ष्मकीटकाः।।[23]

समस्त प्राणियों में मानव की श्रेष्ठता उसकी एकाधिकारिता में निहित न होकर उसकी अन्य प्राणियों के प्रति कर्त्तव्यबोध और हृदय की विशालता में निहित है। स्वकल्पित मानवीय एकाधिकारिता और उससे उत्पन्न निरंकुशता आज पर्यावरण के समक्ष एक चुनौती है। आधुनिक तकनीकि से युक्त मनुष्य भावशून्यता की तरफ अग्रसरित है। वह भूल चुका है कि मानव-अस्तित्व से जुड़ा प्रश्न एक निरपेक्ष विषयवस्तु नहीं है, बल्कि यह जीव-जन्तुओं के अस्तित्व से जुड़ा हुआ है। अत्यधिक लाभ प्राप्त करने एवं अधिक से अधिक भौतिक संसाधन जुटाने की प्रवृत्ति को विकास के रूप में परिभाषित करने वाली धारणा हमें पर्यावरणीय अवनयन की तरफ ले जा रही है। जीव-जन्तुओं की अनेक प्रजातियाँ आवासीय क्षेत्र में ह्रास, जीवों के अंगों के व्यापार, अवैध शिकार, मानवीय अतिक्रमण, जलवायु सम्बन्धी दशाओं में परिवर्तन एवं विविध प्रकार के प्रदूषण के चलते नष्ट हो गयीं हैं। कई प्रजातियाँ विलुप्त होने के कगार पर हैं। यह स्थिति अत्यन्त भयावह है। आज हमें पुनः उक्त मान्यताओं को आत्मसात् करना होगा। मानवीय भावों से शून्य विज्ञानी मानव उस व्यसनी के समान है जो व्यसन को हेय जानता हुआ भी उसी में प्रवृत्त रहता है और अपने विनाश को आमन्त्रित कर लेता है।

वनस्पतियाँ जटिल जीवमण्डलीय पारिस्थितिक तन्त्र में उत्पादक (Producder) की भूमिका का निर्वहन करती हैं। वनस्पतियाँ, नीलहरित शैवाल और सायनोवैक्टीरिया प्रकाशसंश्लेषण द्वारा सौर ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में तथा अकार्बनिक यौगिको को कार्बनिक यौगिकों में बदलते है। प्रकाशसंश्लेषण की प्रक्रिया में ही प्राणवायु (आक्सीजन) उद्भूत होती है। इस प्रकार आहार एवं श्वसनादि क्रियाओं हेतु जीव प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से वनस्पतियों पर निर्भर होते हैं। जैविकीय आहार शृंखला और पारिस्थितिकीय ऊर्जा पिरामिड के ये आधार हैं। वनों के रूप में इनका स्वयं का पारिस्थितिक तन्त्र होता है तथा दूसरे पारिस्थितिक तन्त्र के सन्तुलन में भी इनकी भूमिका अतिशय महत्त्वपूर्ण होती है। अतएव भूमण्डलीय जीवों का अस्तित्व वनस्पतियों के अस्तित्व से जुड़ा हुआ है। पुराणों में पर्यावरणीय विज्ञान इतनी विकसित अवस्था में था, ऐसा हम पूर्णरूप से नहीं कह सकते लेकिन ज्ञान को क्रियान्वित करने का उपागम, उनकी दृष्टि, विधान और वनस्पतियों के प्रति उनके भाव को देखकर हम इस बात से इंकार भी नहीं कर सकते। यहाँ ज्ञान का मात्र थोथा प्रदर्शन नहीं है। पौराणिक

संस्कृति इसे आत्मसात् करती हुई सी दिखाई देती है। यहाँ प्रतिपादित मानव-वनस्पति अन्तर्क्रिया, उनकी एकात्मकता, सह-अस्तित्व की भावना और जीवनशैली को देखकर निराज्ञानी भौतिकवादी मानव हतप्रभ रह जाता है।

सृष्टिवर्णन पुराणों का प्रमुख विषय है और कुछ परिवर्तनों को छोड़ दिया जाय तो प्रायः सभी पुराणों में समान है। इस सृष्टि प्रक्रिया में यदि स्थावरों अर्थात् वृक्ष, गुल्म, लता, तृण और वीरुध् की बात करें तो वहाँ इनको मुख्य सर्ग के अन्तर्गत रखा गया है।[24] सृष्टि रचनाक्रम में पशुपक्षियों, देवताओं और मनुष्यों से पूर्व वनस्पतियों की उत्पत्ति हुई, ऐसा पुराण मानते हैं।[25] विष्णु पुराण ओषधियों की उत्पत्ति भगवान् विष्णु के रोमों से हुई, ऐसा कहते हुए वनस्पतियों पर देवत्व का आरोपण करता है।[26] यहीं पर ''लताभूता श्रीविष्णुर्द्रुमसंज्ञितः''[27] कहते हुए वृक्षों को विष्णु का तथा लताओं को माता लक्ष्मी का स्वरूप बताया गया है। विष्णु पुराण के प्रथम अंश के नवम अध्याय के अन्तर्गत दुर्वासा-इन्द्र प्रकरण में दुर्वासा देवराज इन्द्र शासित त्रिलोक को श्रीहीन होने का शाप देते हैं। शाप के अनन्तर इन्द्र के तीनों लोक वृक्ष-लता आदि के क्षीण हो जाने से श्रीहीन और नष्टभ्रष्ट होने लगे, ऐसा वर्णन मिलता है। इस प्रकरण से वनस्पतियों के प्रति पौराणिक दृष्टि का संकेत मिलता है। वनस्पतियाँ त्रिलोक की शोभा हैं। इनके बिना यह समस्त जगत् श्रीविहीन है, यहाँ यही भाव संप्रेषित होता है। मत्स्यपुराण में एक उल्लेख आया है कि माता पार्वती वृक्षों का पालन अपने पुत्रों की भाँति करती थीं। वह ''दशपुत्रसमो द्रुमः''[28] अर्थात् एक वृक्ष दश पुत्रों के समान (उद्धारक) होता है, कहते हुए वृक्षों की महत्ता की स्थापना करतीं हैं। ''पापनाशः परासिद्धिर्वृक्षारामप्रतिष्ठया'' कहते अग्निपुराण वृक्षों तथा बगीचों की प्रतिष्ठा अर्थात् रोपण कराने को पापनाशक तथा परमसिद्धि प्रदायक बतलाया है।[29] यहीं पर पादपप्रतिष्ठा अर्थात् वृक्षारोपण की विधि का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है।[30] ब्रह्माण्ड पुराण भृगु आश्रम का वर्णन करते हुए लिखता है कि वह आश्रम अतीव घनी, शीतल छाया वाले, सभी ऋतुओं के गुणों से समन्वित तथा प्रीतिदायक फलों और पुष्पों से युक्त तरुवरों से संयुत था।34 यहाँ विविध प्रकार के पक्षियों के समूहों की ध्वनियाँ हो रहीं थीं जो मन और कानों को सुख दे रहीं थीं। अहिंसा के पूर्ण विश्वास से शंका रहित अपने छोटे-छोटे बच्चों के सहित हरिणियों के झुण्ड मुनियों के कुटियों के आँगन में लगे हुए वृक्षों की छाया में बैठे हुए थे।[31]

चतुर्दिक् प्रसृत कंकरीट के जंगल में कृत्रिम सौन्दर्य को ढूँढ़ते आधुनिक मानव हेतु उक्त वर्णन अतिशय शिक्षाप्रद है। मानव जीवन का वास्तविक सौन्दर्य प्रकृति के साहचर्य में है न कि उसके विनाश और आधुनिक कृत्रिमता में। प्रकृति का सानिध्य मानवीय गुणों का विकास करते हुए सकारात्मकता एवं सर्वकल्याणपरकता की तरफ उन्मुख करता है। पुराणों में ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिनसे तत्कालीन प्रकृति और मानव के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध, प्राकृतिक तत्त्वों के प्रति उनकी दृष्टि और चिन्तन पर प्रकाश पड़ता है। ब्रह्मपुराण में वर्णित दधीचि-इन्द्र प्रसंग इन्हीं प्रसंगों में से एक है। इस मार्मिक तथा प्रकृति और मानव की एकात्मकता और पारस्परिक अन्तर्क्रिया को प्रतिपादित करने वाले आख्यान में वर्णित है कि इन्द्र आदि देवता कपटपूर्ण रीति से दधीचि ऋषि की अस्थि प्राप्त कर लेते है। दधीचि ऋषि भी देवताओं के कल्याणार्थ अपनी अस्थियाँ देवताओं को देने का संकल्प ले प्राण त्याग देते हैं। देवता ऋषि की अस्थियों को लेकर चले जाते है। तदन्तर दधीचि ऋषि की गर्भवती पत्नी शोकातुर हो अपनी कुक्षि का विदारणकर बालक को त्याग वनस्पतियों, गंगा और पृथ्वी को प्रणाम कर अग्नि में प्रवेश कर जाती है। दधीचि और प्रातिथेयी के प्राण-त्याग के पश्चात् उन दोनों के द्वारा पालित-पोषित वन के वृक्ष, पक्षी और मृगादि विलाप करते हुए मातृ-पितृ तुल्य दधीचि और प्रातिथेयी के सुकृत्यों का स्मरण करते हैं। वृक्षादि असहाय पड़े दधीचि और प्रातिथेयी के पुत्र के पालन-पोषण का संकल्प लेते हैं।[32] ''पिप्पलैः पालितो यस्मात् पिप्पलादः सः बालकः''[33] अर्थात् पिप्पल वृक्ष के द्वारा पालित वह बालक पिप्पलाद कहलाया। आगे चलकर यही बालक पिप्लाद ऋषि के नाम से प्रसिद्ध होता है। इसी प्रकार का प्रकरण अग्निपुराण में भी प्राप्त होता है। वहाँ उल्लिखित है कि मृकण्डु और प्रम्लोचा की परित्यक्ता पुत्री मारिषा का पालन वृक्षों ने किया था। मारिषा का वैवाहिक संस्कार प्रचेता से सम्पन्न होता है। प्रचेता और मारिषा से ही दक्ष का जन्म होता है।[34] ये आख्यान तत्कालीन मानव-प्रकृति के भावनात्मक और समभावपूर्ण सम्बन्ध को व्यक्त करते हैं। यह मानव-प्रकृति अन्तर्क्रिया का उत्कृष्ट उदाहरण है। यहाँ यह पर्यावरणीय संदेश निहित है कि हम जो प्रकृति को देंगे, प्रकृति उसे हमें अवश्य लौटायेगी। हम पर्यावरणीय तत्त्वों को क्षति पहुँचाकर अपनी क्षति को आमंत्रित करेंगे। आधुनिक पर्यावरणीय समस्यायें प्राकृतिक तत्त्वों की क्षति तथा उससे उत्पन्न परिस्थितिकीय असन्तुलन की उपज है। इन समस्याओं का समाधान उक्त प्रकार के समदर्शी और सर्वकल्याणात्मक चिन्तन में निहित है।

पुराणों में पर्यावरणीय चेतना का प्रसार लम्बे-चौड़े पर्यावरणीय सिद्धान्तों के रूप में नहीं है। परमसत्ता के अधीन संचालित जैविक और अजैविक तत्त्वों की व्यवस्था के अंग के रूप में वह अपने कार्य, व्यवहार तथा जीवनचर्या से प्रतिपल उत्कृष्ट पर्यावरणीय भावना का प्रचार करते हुए सा दिखाई देता है। यदि पर्यावरणीय मूल्यों की स्थापना की आवश्यकता पड़े तो वह धार्मिक उपागम (Approach) का ही आश्रय लेता है। इसी उपागम का आश्रय लेता हुआ विष्णुपुराण कहता है कि ''असिपत्रवनं याति वनच्छेदी वृथैव यः''[35] अर्थात् जो अनावश्यक ही वनों को काटता है, वह असिपत्र नामक नरक में जाता है। एक अन्य स्थल पर वह कहता है कि वृक्ष और लता आदि में चन्द्रमा के स्थित रहने पर (अर्थात् अमावस्या में) जो उन्हें काटता है अथवा उनका एक भी पत्ता तोड़ता है, उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है।[36] अग्निपुराण वृक्षों के शाखाच्छेदन पर दण्ड की व्यवस्था करता है।[37] स्ववनेऽन्यवने पुष्पैस्त्रिगुणं वनजैः फलम्''[38] अर्थात् अपने तथा दूसरे के उद्यान की अपेक्षा वन्य पुरुषों द्वारा देवाराधन का तीन गुना फल होता है। अग्निपुराण का यह कथन प्राकृतिक पर्यावरण की महत्ता को चरितार्थ करता है। यह तुलनात्मक दृष्टिकोण मात्र है। अन्यथा वह मानवनिर्मित पर्यावरण में पारिस्थितिक दृष्टि से उपादेय तत्वों के प्रति प्रोत्साहित करते हुए कहता है कि बावली, कुँआ, तालाब, देवमन्दिर, अन्य का सदावर्त्त करना एवं बगीचे आदि बनवाना ये सब मोक्ष प्रदान करने वाले पूतधर्म कहलाते हैं-

वापी-कूप-तडागानि देवतायतनानि च।
अन्नप्रदानमारामाः पूर्तं च मुक्तिप्रदम्।।[39]

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश जैसे अजैविक तत्त्व स्थूल और दृश्य जगत् के मूल तत्त्व हैं, ऐसा भारतीय परम्परा स्वीकार करती है। इनके उचित संयोजन अर्थात् पंचीकरण के पश्चात् ही समस्त स्थूलभूत जैविक और अजैविक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। पुराणों में सृष्टिवर्णन के अवसर पर इनका विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। इनकी मूल प्रकृति में परिवर्तन अथवा इनमें अवांछित मिश्रण पृथ्वी पर संपादित समस्त प्रक्रियाओं तथा उससे उत्पन्न कार्यरूप प्रपंच को दूषित करेगा, यह स्वाभाविक है। हमारे चतुर्दिक् प्रसृत सृष्टि में कारणभूत उक्त पंचतत्त्व की उपादेयता को देखते हुए पुराणो ने इन पर देवत्व का आरोपण किया

है। व्यपोहन-स्तव-निरुपण प्रसंग में लिंगपुराण लिखता है कि आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य और आत्मा शिव की मूर्तियाँ है। ये मेरे पापों को दूर करें तथा भय का नाश करें।[40] विष्णुपुराण में भगवान् विष्णु की स्तुति करते हुए कहा गया है कि हे प्रभो! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अन्तकरण, मूलप्रकृति और प्रकृति से परे पुरुष ये सब आप ही हैं।[41] विष्णु पुराण में ही एक अन्य स्थल पर पृथ्वी आदि तत्त्वों को भगवान् विष्णु का स्वरूप मानते हुए उनकी वन्दना की गयी है। विष्णु पुराण लिखता है कि जो कठिनतायुक्त होकर इस सम्पूर्ण संसार को धारण करते हैं और जो शब्द आदि विषयों के आधार तथा व्यापक हैं, उन भूमिरूप भगवान् को नमस्कार। जो समस्त देवताओं का हव्यभुक् और पितृगण का कव्यभुक् रूप मुख है, उस अग्निस्वरूप विष्णु को नमस्कार है, जो संसार का योनिरूप है और समस्त देहधारियों का बीज है, भगवान् के उस जलस्वरूप को हम नमस्कार करते हैं। जो प्राण, अपान आदि पाँच प्रकार से देह में स्थित होकर दिन-रात चेष्टा करता रहता है तथा जिसकी योनि आकाश है, उस वायुरूप भगवान् को नमस्कार है।[42] पृथ्वी आदि का नैसर्गिक स्वरूप यथावत् रहे, यह प्रसास पुराणों में दृष्टिगोचर होता है। औद्योगीकरण के पश्चात् मानव की आर्थिक क्रियायें अत्यधिक बढ़ी हैं। कृषि, यातायात, उद्योग, विद्युत उत्पादन, रक्षा तथा अन्य क्षेत्रों से विशाल मात्रा में निसृत विविध प्रकार के अपशिष्टों ने पर्यावरणीय प्रदूषण की भयावह तस्वीर उत्पन्न की है। आज ये अवशिष्ट शृंखलाबद्ध ढंग से जीवन हेतु उपयोगी मूलतत्त्वों को दूषित कर रहे हैं। यह जीवन हेतु संकट है। विज्ञान और तकनीकि में वृद्धि होने के बावजूद उक्त पौराणिक भावनायें विलुप्त होने के कारण पर्यावरणीय संकट बढ़ते ही जा रहे हैं। हमें इस दिशा में सोचने की आवश्यकता है।

जल जीवन का आधारभूत तत्त्व है। जीवन के सभी ज्ञात रूप जल पर निर्भर करते हैं। यह कार्बनिक यौगिकों को उन तरीकों पर प्रतिक्रिया देने की अनुमति देता है जो अन्ततः प्रतिकृति की अनुमति देती है। जल अपनी विशिष्ट ऊष्मा क्षमता और उच्च वाष्पीकरण ऊर्जा के कारण पृथ्वी की जलवायु को नियमित करने की क्षमता रखता है। प्रकाशसंश्लेषण, श्वसन और चयापचय जैसी क्रियाओं के लिए जल मूलभूत तत्त्व है। लिंगपुराण का कथन है कि सभी प्राणियों के कल्याण के लिए शिव ने जल को बनाया है। यह जल ही उनकी अन्तिम गति है। जल से ही भूः, भुवः, स्वः, अन्न और अमृत बनता है। जल सम्पूर्ण जगत् के प्राणियों और स्वयं भुवनों का प्राण है। अधिक कहने से क्या लाभ ? यह चर और अचर युक्त जगत् जल से ही बना हुआ है-

हिताय सर्वजन्तूनां गतिः शर्वेण निर्मिता।
भूभूर्वः स्वस्तथा ह्यापो ह्यन्नं चामृतमेव च।।
प्राणा वै जगतामापो भूतानि भुवनानि च।
बहुनात्र किमुक्तेन चराचरमिदं जगत।।[43]

जो संसार का योनिरूप है और समस्त देहधारियों का बीज है, भगवान् हरि के उस जलस्वरूप को हम नमस्कार करते हैं।[44] विष्णुपुराण का यह कथन जल की महत्ता के प्रति पुराणों की दृष्टि का निदर्शन है। ''जलरुपेण हि हरिः सोमो वरुण उत्तमः''[45] कहते हुए अग्निपुराण जल की जीवन के प्रति अपरिहार्यता को ही चरितार्थ करता है। इसी कारण वह जल के संरक्षण हेतु सजग दिखाई पड़ता है और तडागादि की प्रतिष्ठा का वर्णन करते हुए कहता है कि चूँकि तडाग के जल को जीव आदि पीते हैं अतएव तडागादि की प्रतिष्ठा करने वाले को पाप नहीं लगता। जलदान द्वारा सभी दानों का फल प्राप्त करके व्यक्ति स्वर्ग लोक का अधिकारी बन जाता है।[46] ''मलादिप्रक्षिपेन्नाप्सु न नग्नः समाचरेत्''[47] इस सामाजिक कर्त्तव्य के सदुपदेश में अग्निपुराण जलप्रदूषण के दुष्प्रभावों से सजग और उसके रोकथाम में कृतसंकल्प दिखाई देता है। जगह-जगह जलतीर्थों का सुन्दर वर्णन तथा नदियों के प्रति वर्णित उत्कृष्ट भावनायें उसके इसी सोंच को अभिव्यक्त करती नजर आती हैं। लिंगपुराण जल को दूषित होने से बचाने के लिए स्पष्ट रूप से निर्देश देते हुए कहता है-

न जलं ताडयेत्पद्भ्यां नांभस्यंगमलं त्यजेत्।
मलं प्रक्षालयेन्तीरे प्रक्षाल्य स्नानमाचरेत।।48

ऐसा ही निर्देश देते हुए मार्कण्डेय पुराण लिखता है- ''नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा निष्ठीवं न समाचरेत्''[49] अर्थात् जल में मलमूत्र और थूकना जैसी क्रियायें न करें। पुराण जलचक्र (Hydrological Cycle) से भी परिचित हैं। लिंगपुराण के अनुसार जल का नाश अथवा वृद्धि नहीं होती।[50] सूर्य शब्द के पर्याय सविता शब्द की वैज्ञानिक व्याख्या करते हुए वह लिखता है कि 'सु' धातु का प्रयोग दो अर्थों में होता है- रस की खींचना या बहना। चूँकि सूर्य जल को ग्रहण करता है और जल को बहाता है, इसलिए उसे सविता कहा जाता है।[51] ''सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते किरणैर्जलम्''[52] लिखते हुए वह कहता है कि सूर्य सहस्र गुणा जल बरसाने हेतु अपनी किरणों से जल ग्रहण करता है। भगवान सूर्य देव नदी, समुद्र, पृथ्वी तथा प्राणियों से उत्पन्न इन चार प्रकार के जलों का आकर्षण करते हैं, ऐसा विष्णुपुराण का अभिमत है।[53] पुराणों के ये निष्कर्ष उनके पारिस्थितिक तन्त्र के गूढ़ ज्ञान के परिचायक है।

भारतीय संस्कृति का पल्लवन अरण्यों में हुआ। यहीं से वह समाज को नियमित एवं नियन्त्रित करती रही। इसी अरण्य सनातन संस्कृति के द्वारा ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास के रूप में जीवन का तीन चौथाई भाग जंगलों में प्रकृति के सानिध्य में व्यतीत करने का विधान हुआ। ऐसे में प्रकृति से आत्मीयता, भावनात्मक लगाव और उसके रहस्यों का अवबोध सहज ही है। पर्यावरणीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण और औषधीय गुणों से युक्त पीपल, बरगद, नीम, ऑवला, पाकड़, बेल, तुलसी और केला आदि वनस्पतियों को देवतुल्य मानना इसी का परिणाम है। धार्मिक और सांस्कृतिक कार्यों में वनस्पतियों का अपरिहार्य रूप से प्रयोग सनातन संस्कृति की प्रकृति के साथ अनन्यता का ही प्रतिफलन है। प्रकृति के सानिध्य में पौराणिक जनों की चेतना मुकुलित दृष्टिगत होती है।

संदर्भः

1. ब्रह्माण्डपुराण 1/1/71, शिवपुराण 7/1/1/40, वायुपुराण 1/201
2. वायुपुराण 1/200
3. 'पुण्यां योनिं पुण्यकृतो विशन्ति पापां योनिं पापकृतो व्रजन्ति।' मत्स्यपुराण, 39/19
4. मार्कण्डेयपुराण, 26/3-4

5. लिंगपुराण, 1/70/237-239
6. विष्णुपुराण, 1/5/47-50
7. संमार्जने तथा नृणां मार्जने च विशेषतः।
   अग्नौ कंडनके चौव पेषणे तोयसंग्रहे।।
   हिंसा सदा गृहस्थानां तस्माद्धिंसा विवर्जयेतृ।
   अहिंसेयं परो धर्मः सर्वेषां प्राणिनां द्विजाः।।
   लिंगपुराण, 1/78/5-6
8. 1/8/12
9. 26/16
10. सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि।
    समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति।। 162/6-7
11. तपश्च दानंच शमो दमश्च ह्रीरार्जवं सर्वभूतानुकम्पा।
    स्वर्गस्य लोकस्य वदन्ति सन्तो द्वाराणि सप्तैव महान्ति पुंसाम्।। 39/22
12. कर्मणा जायते सर्व कर्मैव गतिसाधनम्।
    तस्मात्सर्वप्रयत्नेन साधु कर्म समाचरेत्।। 1/18/32
13. मत्स्यपुराण, 39/19
14. औरभ्रिको मृगव्याधो वह्निज्वाले पतन्ति वै। विष्णु0, 01/06/26
15. 2/6/34
16. 248/32
17. 248/36
18. मार्जारगोधानकुलमण्डूकश्वपतत्रिणः।
    हत्वा त्र्यहं पिवेत्क्षीरं कृच्छ्रंचान्द्रायणं चरेत्।। 173/18
19. अग्निपुराण, 142/3
20. 25/20
21. 26/04
22. 30/15-16
23. 26/44
24. मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः, अग्निपुराण, 20/03
25. द्रष्टव्य- शिवुपुराण 7/1/12, विष्णु पुराण 01/05, अग्निपुराण अध्याय 20
26. 1/5/50
27. विष्णु पुराण, 1/8/30
28. मत्स्यपुराण, 153/513
29. 70/08
30. अग्निपुराण, अध्याय-70
31. ब्रह्माण्ड पुराण, पूर्वभाग, परशुराम संवाद, श्लोक संख्या 37, 38, 43
32. ब्रह्मपुराण, 110/75-77
33. वही, 110/80
34. अग्निपुराण, 18/26-27
35. 02/06/26
36. 02/12/10
37. 258/25
38. अग्निपुराण, 202/11
39. वही, 209/02
40. लिंगपुराण, 1/82/44-45
41. 3/17/14
42. 1/14/28-32

43. 1/54/34-35
44. यद्योनिभूतं जगतो बीजं यत्सर्वदेहिनाम।
तत्तोयरूपमीशस्य नमामि हरिमेधसः।। विष्णु0, 1/14/29
45. अग्निपुराण, 64/01
46. गवादि पिवते यस्मात् तस्मात् कर्तुर्न पातकम।
तोयदानात् सर्वदानफलं प्राप्यदिवं ब्रजेत्।। 64/44
47. अग्निपुराण, 155/22
48. 1/58/151
49. 31/25
50. जलस्य नाशो वृद्धिर्वा नास्त्येवास्य विचारतः। 01/54/67
51. सवने स्यंदनेऽर्थे च धातुरेष विभाष्यते।
सवनात्तेजसोऽपां च तेनासौ सविता मतः।। 01/61/04
52. लिंग पुराण, 1/54/66
53. 2/9/11

संदर्भ-ग्रन्थ-सूचीः

1. अग्निपुराण, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
2. अथर्ववेदः, स्वाध्यायमण्डल, पारडीनगर, बलसाड, गुजरात, चतुर्थ संस्करण
3. उपनिषद्, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर, दिल्ली-2002
4. ऋग्वेदसंहिता, स्वाध्यायमण्डल, पारडीनगर, बालसाड, गुजरात, चतुर्थ संस्करण
5. कूर्मपुराण, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1993
6. पद्मपुराण, नाग पब्लिकेशन, दिल्ली, 1984
7. ब्रह्मपुराण, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1993
8. ब्रह्मवैवर्तपुराण, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2002
9. ब्रह्माण्डपुराण, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 1982
10. मत्स्यपुराण, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2006
11. मार्कण्डेयपुराण, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1996
12. लिंगपुराण, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, प्रथम संस्करण-2008
13. वामनपुराण, नाग पब्लिकेशन, दिल्ली
14. विष्णुपुराण, नाग पब्लिकेशन, दिल्ली
15. शिवपुराण, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1986
16. श्रीमद्भागवतपुराण, गीताप्रेस गोरखपुर, 2011
17. यजुर्वेद, संस्कृति साहित्य प्रकाशन, एम-12, कनाट सरकस, नई दिल्ली-2015
18. श्रीमद्भगवद्गीता, भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, हरे कृष्ण धाम, जुहू, मुम्बई, महाराष्ट्र, 2007
19. द्विवेदी, डॉ0 कपिलदेव, संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, रामनारायण लाल विजय कुमार, 2, कटरा रोड, प्रयागराज
20. उपाध्याय, आचार्य बलदेव, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, 37बी, रवीन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी, पंचम संस्करण
21. त्रिपाठी, कृष्णमणि, पुराणतत्त्व मीमांसा, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 38 यू0एस0, जवाहर नगर, बंगलो रोड, दिल्ली, 2009
22. दूबे, हरिनारायण, पुराण समीक्षा, इण्टरनेशनल इन्स्टीट्यूट फॉर डेवलपमन्ट रिसर्च, 255, ममफोर्डगंज, प्रयागराज, 1984

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और गाँधी दर्शन

डॉ० संजीत कुमार सिंह

सहायक आचार्य (राजनीति विज्ञान विभाग), बापू पी0जी0 कालेज पीपीगंज गोरखपुर

गाँधीजी ने अपने सिद्धान्तों, आदर्शो एवं मूल्यों का प्रयोग राष्ट्रीय आन्दोलन में किस प्रकार किया है उसका परिणाम क्या हुआ है उस बिन्दुओं पर विचार विचार करना इसका मुख्य लक्ष्य है गाँधी दर्शन जो गाँधी की अटूट आस्था का प्रतिपादन करता है वे अटूट आस्था सत्य के प्रति उनका समर्थन का भाव है सत्य की प्राप्ति के लिए प्रेम और अहिंसा के मार्ग को स्वीकार कर सत्याग्रह जैसे पवित्र साधन की वकालत गाँधी ने किया है मानव जाति अपितु समग्र सृष्टि के नाम अहिंसक एवं प्रेम व्यवहार गाँधी को मूल दृष्टि थी । इस मूल दृष्टि कि उन्होने राष्ट्रीय आन्दोलन में सफल प्रयोग किया चम्पारण सत्याग्रह से लेकर भारत छोड़ो आन्दोलन तक गाँधी की सक्रियता एवं सहभागिता उपर्यूक्त मूल्य एवं दृष्टि का ही प्रयोग है।

चम्पारण में अंग्रेजो ने नील बनाने के कारखाने खोल रखे थे इन लोगो ने कुछ जिलो के भूभागो के जमीन पर कब्जा कर अपनी कोठिया बना ली थी अपने खेतो में तो नील पैदा करने ही थे साथ ही पूरे जिलो के किसानों को इस बात के लिए बाध्य करते थे कि प्रत्येक बीधे में तीन कट्टा में नील की खेती करे। पैदा किये गए नील को ये अंग्रेज व्यापारी मनमाने दर से खरीदते थे इस प्रथा को तीन कठिया प्रथा कहा जाता था। तीन कठिया प्रथा के कारण चम्पारण के किसानो का इन गोरे निलहो द्वारा शोषण हो रहा था गाँधीजी को अंग्रेजो द्वारा चलाये गए इस क्रूरता दुरव्यवहार से अवगत कराया गया गाँधीजी स्वयं एक किसान थे और गाँधी जी से प्रार्थना की गयी कि गाँधी जी चम्पारण आकर वहॉ की स्थिति का स्वयं आकलन करे।

राजकुमार शुक्ल के निमंत्रण पर गाँधी जी अप्रैल महीने में चम्पारण पहुँचे गाँधीजी के चम्पारण पहुँचते ही निलहे गोरो तथा अंग्रेज अफसरो में खलबली मचगयी गाँधीजी ने गोरो के संघ के अध्यक्ष से मिलना चाहे पर उसने उदण्डता पूर्वक मिलने से इंकार कर दिया तिरहुत मंण्डल के कमिश्नर ने भी गाँधीजी को तिरहुत छोड़कर चले जाने का आदेश दिया पर गाँधीजी ने आदेश कर उल्लंधन करके चम्पारण की यात्रा को जारी रखा गाँधीजी ने विहार के राजेन्द्र बाबू प्रोफेसर जे0 बी0 कृपलानी तथा बृजकिशोर बाबू आदि नेताओ की सहायता से चम्पारण के किसानो की दशा का अध्ययन किया।

बिहार के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर ने स्वयं चम्पारण के किसानो की शिकायतो की जॉच करने के लिए एक जॉच समिति का गठन किया इस जॉच समिति के प्रतिवेदन पर ''चम्पारण कृशण कानून'' पास किया गया इस कानून के अनुसार ''तीन कठिया'' प्रथा उठा दी गयी और निलहे गोरो को यह आदेश दिया गया कि उन्होने जो नाजायज पैसा चम्पारण के किसानो से वसूल किया है उनका कुछ हिस्सा चम्पारण के किसानो को लौटा दे। चम्पारण में गाँधी जी ने सत्याग्रह के अस्त्र का सफल प्रयोग किया सौ वर्षो से चली आ रही ''तीन कठिया'' प्रथा के उठते ही गोरो के अत्याचार का साम्राज्य समाप्त हो गया और चम्पारण से अपनी जमीन बेचकर भागने लगे।

चम्पारण अभियान के दौरान गाँधीजी को चम्पारण के गाँवों को नजदीक से देखने का मौका मिला ग्रामीण में फैले हुए अज्ञान, अशिक्षा, अन्धविश्वास एवं गंदगी को देखकर उसे हटाने का दृढ़ निश्चय किया उन का यह दृढ़ विश्वास था कि उचित शिक्षा के प्रसार के बिना गाँवों का कल्याण नही हो सकता।

गाँधीजी के आगमन से भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में एक नई रोशनी और एक नया मार्ग सामने आया। गाँधीजी ने देश की जनता को नया सबक सिखाया वह नया सबक था अभय जिसका कोई भय न हो उन्होने अपने देश वासियों के दिमाग से भय को निकालने का पाठ पढ़ाया अभय के साथ-साथ गाँधीजी ने सत्य एवं अहिसां का पाठ भी देशवासियों को पढ़ाया क्योकि भय असत्य पर आधारित होता है और अभय सत्य पर।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन सत्य एवं अहिंसा पर आधारित संघर्ष का सूत्रपात हुआ गाँधीजी ने इस संघर्ष का प्रारम्भ उपवास के साथ किया राष्ट्रीय आन्दोलन में भारत की प्राचीन आध्यात्मिक परम्परा को जागृत एवं क्रियाशील बनाकर राष्ट्रीय संघर्ष को एक आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान कर दिया 6 अप्रैल 1919 ई0 को रोलेट एक्ट के विरूद्ध सत्याग्रह प्रारम्भ किया सत्याग्रह के दौरान हिन्दू मुस्लिम एकता के अटूट दृष्य देखने को मिले उपर्युक्त घटनाएँ वैयक्तिक स्वतंत्रता हिन्दू, मुस्लिम एकता तथा राष्ट्र राज्य निर्माण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण गाँधीवादी प्रयोग है अमृतसर में 10 अप्रैल 1919 ई0 को आम हड़ताल हुई इन नेताओं की रिहाई की मांग करने के लिए एक षांतिपूर्ण जुलूस जब अमृतसर के जिलाधीष के दफ्तर की ओर बढ़ रहा था तभी उस पर पुलिस ने गोलियॉ चलायी जिसमें कई व्यक्ति हताहत हुए क्रुद्ध भीड़ ने सरकारी सम्पति को नुकसान पहुँचाया तथा अंग्रेजो को मारा पीटा इन घटनाओं से अमृतसर में तनाव इतना बढ़ गया कि पंजाब सरकार ने अमृतसर नगर का षासन अंग्रेजी सेना का एक अफसर ब्रिगेडियर जनरल डायर के हाथो सौप दिया इसने 12 अप्रैल को अमृतसर में दफा 144 लगा दिया तथा हर तरह के जुलुस एवं सभा पर रोक लगा दी सरकारी दमन एवं अत्याचार का विरोध करने के लिए अमृतसर नगर की कांग्रेस ने 13 अप्रैल 1919 ई0 साढ़े चार बजे दिन में जलियावाला नामक स्थान पर एक सभा का आयोजन किया जिसमें गोली काण्ड मे मृत व्यक्तियों के प्रति शोंक व्यक्त करने का भी प्रस्ताव पास करना था।

13 अप्रैल को लगभग 20 हजार व्यक्ति जिनमें स्त्रियॉ और बच्चे भी शामिल थे जलियावाला बाग में एकत्र हुए यह चार दीवारी से धिरा हुआ एक छोटा सा मैदान था इससे बाहर निकलने के लिए एक ही रास्ता था सभा की कार्यवाही ज्यों ही शुरू हुई त्यों ही जनरल डायर सेना की एक टुकड़ी के साथ वहॉ पहुँच गया तथा निहत्थी भीड़ पर बिना चेतावनी दिए गोली चलाने का हुक्म दिया लगभग पैतालीस मिनट तक गोलियॉ चलती रही जब डायर वहा से हटा तब सरकारी आकड़ो के अनुसार 397 व्यक्ति वही मर चुके थे गैर सरकारी सुत्रो के अनुसार लगभग एक हजार वही मर गये तथा कई हजार घायल लोगो को पानी तक नही दिया गया इसके तुरन्त बाद अमृतसर में कर्फ्यू लगा दिया गया पंजाब में आतंक का राज्य स्थापित हो गया।

गाँधीजी ने जलियावाला बाग हत्याकाण्ड खिलाफत के प्रश्न और 1919 ई0 के सुधारो की कमी को ध्यान में रखकर सरकार से असहयोग करने के अलावा दूसरा कोई रास्ता नही था गाँधीजी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन की प्रगति बहुत तेजी से होने लगी बहुत से प्रसिद्ध व्यक्यिों ने अपनी वकालत छोड़ दी पंड़ित मोती लाल नेहरू, जवाहर लाल नेहरू, डा0 राजेन्द्र प्रसाद, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, देशबन्धु चितरंजनदास, सरदार बल्लभभाई पटेल, आदि प्रसिद्ध वकीलो ने वकालत छोड़ दी मौलाना अबूलकलाम आजाद, डा0 एम0ए0 अन्सारी, मौलाना मुहम्मद अली, शौकत अली जैसे मुस्लिम नेताओ ने भी इस आन्दोलन में खुलकर भाग लिया हजारों विद्यार्थियों ने स्कूल कालेजो में पढ़ना छोड दिया राष्ट्रीय शिक्षा के लिए जगह-जगह विद्यापीठ की स्थापना हुई वाराणसी में काशी विद्यापीठ की स्थापना, पटना में विहार विद्यापीठ की स्थापना, अहमदाबाद में गुजरात विद्यापीठ की स्थापना हुई पूना में तिलक विद्यापीठ की स्थापना हुई इन विद्यापीठों में आचार्य नरेन्द्र देव, डा0 राजेन्द्र प्रसाद, डा0 जाकिर हुसेन और सुभाश चन्द्र बोस जैसे प्रसिद्ध नेताओं ने पढ़ाना शुरू किया।

गाँधीजी ने अपने व्यक्तित्व से इस आन्दोलन को बहुत लोकप्रिय बनाया 21 सितम्बर 1921 ई से उन्होने धोती-कुर्ता छोड़कर एक गमछा पहनना शुरू किया 3 फरवरी 1922 ई0 का यू0पी0 के गोरखपुर जिले के चौरीचौरा थाने के पास सत्याग्रहियों के जुलूस तथा थाने के कुछ सिपाहियों में पारपीट हो गयी पुलिस ने गोली चलाई तथा जब उनकी गोलिया समाप्त हो गयी तो वे सभी थाने के अन्दर भाग गए तथा अपने को भीतर से बन्द कर लिया जुलूस के लोगो ने पुनः एकत्र होकर थाने में आग लगा दी जिसमें 22 सिपाही जलकर तथा क्रुद्ध भीड़ की हिंसा के कारण वही मर गए गाँधीजी को जब यह सब समाचार प्राप्त हुआ तो उनको दुख एवं षोक की सीमा न रही।

22 फरवरी 1922 ई0 को उन्होने अपना असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया। आन्दोलन के एकाएक वापस लेने से देश के महान नेताओं तथा जनता को घोर निराशा हुई जो जनता ''एक साल में स्वराज्य'' का सपना देख रही थी वह गाँधी जी के इस निर्णय से बहुत हतोत्साहित हुई असहयोग आन्दोलन पूर्णतया असफल नही रहा उसने देश में राजनीतिक जागरण बहुत तेजी से फैलाया तथा सभी देशवासियों को आत्मसम्मान का सबक सिखाया।

गाँधीजी ने हिन्दूस्तानियों से कहा कि वह अपने को आजाद समझे लड़ाई छिड़ने पर उनके मार्ग दर्शन के लिए कोई नेता बाहर नही रहेंगे भारतवासियों को अपनी जिम्मेदारियों को समझ कर इस लड़ाई को चलाना होगा मैं इस लड़ाई में आपका नेतृत्व करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेता हूँ सेनापति अथवा नियंत्रक के रूप में आपका सेवक हूँ।

1920-22 ई0 का असहयोग आन्दोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है गाँधीजी के नेतृत्व में यह पहला देश व्यापी संघर्ष था। जिसमें देश की जनता ने बहुत बड़े पैमाने पर भाग लिया। देश के प्रबुद्ध वर्ग विद्यार्थियों और किसानों ने पहली बार निर्भीक होकर अंग्रेजी राज्य को चुनौती दी यह पहला जन आन्दोलन था जिसकी आवाज देश के कोने-कोने और गाँव-2 तक सुनाई पड़ी असहयोग आन्दोलन के दोरान गाँधी ने दो प्रकार का संदेश दिया। उनका पहला संदेश अंग्रेजी राज्य की दहषत से मुक्त होना था और उनका दूसरा संदेश देश और समाज की बुराईयो को दूर करने की ओर था।

गाँधीजी ने देशवासियों को यह सीख दी कि अंग्रेजी राज्य का मुकाबला करने के लिए हमें सामाजिक बुराईयो को दूर करना आवश्यक है हमें देश की एकता हो मजबूत करना स्त्रियों की दिशा को सुधारना स्वावलम्बी बनाना और छूआछूत के कलंग को दूर करना आवष्यक है। गाँधीजी ने अहिंसात्मक ढ़ग से संघर्ष करने तथा कष्ट सहने का पाठ भी पढ़ाया इसलिए उनके नेतृत्व में पहली बार भारतवर्ष के लोगो में अंग्रेजी राष्ट्र के विरूद्ध साहस का प्रादुर्भाव हुआ।

गाँधीजी अपने प्रारभ्भिक आन्दोलन में (विशेश रूप से अफ्रीका के संदर्भ में) निस्क्रिय प्रतिरोध एवं सत्याग्रह में बहुत अधिक भेद नही मानते थे इस कारण यह भ्रांति हो जाता है कि सत्याग्रह एवं निस्क्रिय प्रतिरोध दोनो समानार्थक है किन्तु गाँधीजी ने अपने बाद के विचारो में इसे अत्यधिक स्पष्ट कर दिया है कि सत्याग्रह को निस्क्रिय प्रतिरोध मानना उचित नहीं है गाँधीजी का सविनय अवज्ञा सभी प्रकार के अनैतिक कानूनों का अहिंसक प्रतिरोध करता है यह सत्याग्रह का एक अंग है अतः इसे पूर्ण सत्याग्रह नही कहा जा सकता है असहयोग भी सत्याग्रह की एक शाखा है जिसमें किसी राज्य के सभी नागरीक भाग ले सकते है और राज्य के शोशण से अपना असहयोग कर सकते है सत्याग्रह केवल सामूहिक संघर्ष और प्रतिकार की ही पद्धति नही है अपितु यह व्यक्तिगत तथा घरेलु संघर्ष का भी समाधान प्रस्तुत करता है।

गाँधीजी ने स्वराज्य दल को कार्य करने की पूरी छूट प्रदान की और उसकी सभी मांगे स्वीकार कर ली नवम्बर 1926 ई0 के चुनावों में स्वराज्य दान की पराजय हुई उससे यह स्पष्ट हो गया की सफलता प्राप्त नहीं हो पाएगी।

अप्रैल 1926 ई0 लार्ड इर्विन भारत में वायसराय बनकर आये उन्होने यहॉ पहले साम्प्रदायिक उन्माद पर बड़ा दुख प्रकट किया, क्योंकि इर्विन मानवतावादी दूष्टिकोण के व्यक्ति थे भारत में चल रही इस साम्प्रदायिक हिंसा में जातिय संकीर्णता ने भी अपना पूरा-पूरा भूमिका निभायी।

साइमन कमीशन 3 फरवरी 1928 ई0 के ब्रिटेन से मुम्बई पहुँचा यहॉ उसका देश व्यापी हड़ताल से स्वागत हुआ मुम्बई में पूर्ण हड़ताल रही एक बड़ा जुलूस ''साइमन वापस जाओ'' के नारे लगाता हुआ निकाला 3 फरवरी को हड़ताल हुई और जुलूस निकाले गए मद्रास में पुलिस की गोली से तीन क्रान्तिकारी शहीद हुए कलकत्ता में पुलिस और छात्रो के बीच संघर्ष हुआ।

ब्रिटिश शासकों ने मुम्बई के माहौल को देखकर साइमन कमीशन को तुरन्त दिल्ली रवाना किया यहॉ भी ट्रेन से उतरते ही काले झण्डे और ''गो बैक साइमन'' के नारे से स्वागत हुआ सरकार ने इस विरोध के विरूद्ध दमन चक्र चलाया जुलूसो पर अन्धाघुन्ध लाठिया चलाई गयी तथा घोड़े दौड़ाये गए। लखनऊ स्टेशन के सामने जवाहरलाल नेहरू तथा गोविन्दबल्लभ पंत जैसे नेताओं को भी जुलूस का नेतृत्व करते हुए पुलिस द्वारा लाठियो के भयानक प्रहार को सहना पड़ा।

देश के दूसरे भागों में भी इस प्रकार के विरोध प्रदर्शन क्रांन्तिकारियों द्वारा किये जाते रहे। इन प्रदर्शनों में कांग्रेस के साथ मजदूरो, किसानों और नौजवानों संगठनों ने बढ़ चढ़कर भाग लिया इन विरोध प्रदर्शनों पर काबू न पाकर 31 मार्च 1928 ई0 को साइमन मुम्बई होता हुआ ब्रिटेन चला गया।

दिसम्बर 1929 ई0 में इण्डियन नेशनल कांग्रेश का अधिवेशन लाहौर में हुआ। इसकी अध्यक्षता गाँधीजी करने वाले थे मगर देश की मौजूदा स्थिति को देखते हुए उन्होने अपनी जगह पं0 जवाहरलाल नेहरू को अध्यक्ष बनाया अपने इस निर्णय को उचित ठहराते हुए गाँधी ने कहा देश प्रेम में कोई भी उनसे बढ़कर नहीं हो सकता वह वीर और गर्म मिजाज के है और इस वक्त यह गुण बहुत जरूरी है यदपि वह गर्म मिजाज और संघर्ष में अडिग है तथापि उनमें एक राजनेता की तार्किक शक्ति है और वे अनुशासन के समर्थक है उनके हाथो में राष्ट्र पूरी तरह सुरक्षित है अपने अध्यक्षीय भाषण मे नेहरू जी ने कहा कि '' आज हमारा सिंर्फ एक लक्ष्य है स्वाधीनता'' हमारे लिए स्वाधीनता का अर्थ ब्रिटिश आधिपत्य और ब्रिटिश साम्राज्यवाद से पूर्ण स्वतंत्रता समाजवादी और गणतंत्रवादी है 26 जनवरी 1930 ई0 को पूर्ण स्वाधीनता दिवस सारे भारत में मनाने का निर्णय लिया गया है जिसमे कहा गया है कि लोग-2 जगह इकट्ठा होकर कांग्रेस का झण्डा फहराये और एक प्रतिज्ञा पत्र सामूहिक रूप से पढ़े पं0 मोतीलाल नेहरू की अंतिम इच्छा भी यही थी कि वह स्वतंत्र भारत की गोद में ही दम तोडे उन्होंने कहा कि ''अगर मुझे मरना ही है तो मुझे स्वतंत्र भारत की गोद में मरने दो'' मुझे चिर निद्रा में गुलाम देश में नही स्वाधीन और स्वतंत्र देश में सोने दो।

12 नवम्बर सन 1930 ई0 को गोलमेज परिशद का सम्मेलन शुरू हुआ और 19 जनवरी 1931 तक लंदन में सेण्ट जेम्स पैलेस में हुई जिसमें ब्रिटेन के राजनीतिक दलो के अलावा भारत के इण्डियन लिबरल फेडरेशन मुस्लिम लीग एवं हिन्दू महासभा के प्रतिनिधियों ने भाग लिया गाँधी इर्विन के बीच 15 दिन तक लम्बी वार्ता चली जिसके बाद, 4 मार्च 1931 ई0 को दोनो के बीच एक समझौता हो गया तथा सारा आन्दोलन बंद कर दिया गया यह समझौता '' गाँधी इर्विन पैक्ट'' के नाम से जाना जाता है।

1935 का भारत अधिनियम साइमन कमीशन और गोलमेज सम्मेलन की सिफारिशों के आधार पर किया गया था कि बड़ा ही जटील विस्तृत एवं वृहतकार संवैधानिक दस्तावेज था इस अधिनियम के अनुसार वर्मा को भारत से अलग देश मान लिया गया। 1932 ई0 के चुनाव में बर्मा निवासियों ने भारत से अलग होने के पक्ष में मतदान किया था। उड़ीसा को विहार से अलग एक प्रान्त बना दिया गया। तथा इसी तरह सिन्ध को मुम्बई से अलग कर एक प्रान्त बना दिया गया। भारत के प्रान्तों को गवर्नर द्वारा षासित प्रान्त कहा गया।

सन् 1942 की अगस्त क्रान्ति सितम्बर सन 1942 ई0 तक सरकारी दमन चक्र के द्वारा दबा दी गयी उ0प्र0 के बलिया, बंगाल, के मिदनापुर और महाराष्ट्र के सतारा जिले में अंग्रेजी शासन लगभग दो महीने के लिए समाप्त हो गया। राष्ट्रीय आन्दोलन का गाँधी काल अनेक दृष्टि से महत्वपूर्ण है आन्दोलन को अहिंसा एवं सत्याग्रह से जोड़ना सत्य और प्रेम का केन्द्र में रखकर आन्दोलन को प्रभावित एवं संचालित करना असहयोंग एवं बहिस्कार जैसे अहिंसक मार्ग को स्वीकार कर आन्दोलन की सफलता की ओर अग्रसारित करना गाँधीजी की अदभूत उपलब्धियॉ है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. महात्मा गाँधी, आत्म कथा (अंग्रेजी में) पृ0 305,
2. वही आत्म कथा, पृ0
3. डा0 राजेन्द्र प्रसाद, चम्पारण में महात्मा गाँधी (पटना विहार राष्ट्रभाषा परिषद 1965) नृ0 120-60
4. एस0 माधव पाठक 'भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इति0' पृ0 147
5. रिपोर्ट ऑफ दि कमीशन एपाइंटेड बाई दि पंजाब सब कमेटी ऑफ दी नेशनल कांग्रेस (भाग-2) मुम्बई
6. एस0 माधव पाठक भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास पृ0 147
7. टी0वी0 बालबैंक ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एण्ड पॉ पृ0 157
8. एस0 माधव पाठक भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास पृ0 148-55,
9. पट्ाभि सीमारमैया ''हिस्ट्री ऑफ इण्डियन कांग्रेस'' पृ0 543
10. पं0 जवाहरलाल नेहरू ''ऐन आटोबायोग्राफी'' पृ0 177
11. रजनी पामदत्त ''इंडिया टूडे'' पृ0 360-61
12. रजनी पामदत्त ''इंडिया टूडे'' पृ0 362

धर्मवीर भारती के कथा साहित्य में 'परिवार एवं समाज में नारी की स्थिति'

आराधना वर्मा

असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महाराणा प्रताप राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय बिल्सी (बदायूँ), उ0प्र0

सारांश

धर्मवीर भारती ने हिन्दी साहित्य में लगभग सभी विधाओं को अपने भावयित्री और कारयित्री प्रतिभा से सम्पन्न किया। 'चाँद और टूटे लोग', 'मुर्दो का गाँव' एवं 'बन्द गली का आखिरी मकान' कहानी संग्रह में जहाँ सांस्कृतिक सौन्दर्य को प्रस्तुत करने का प्रयास है, वहीं समाज के भीतर घुटन, टूटन और खुली हवा में साँस लेने की छटपटाहट भी है। उपन्यास के क्षेत्र में 'गुनाहों का देवता' एवं 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' ऐसी औपन्यासिक कृतियाँ हैं जो भाषा, भाव और अभिव्यक्ति की दृष्टि से अनूठी है। अब तक धर्मवीर भारती के लगभग सात कविता संग्रह, दो रिर्पोताज, पाँच निबन्ध, दो आलोचना, एक एकांकी, एक शोध-प्रबन्ध, दो अनुवाद, एक यात्रा विवरण, एक पत्र संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। इन रचनाओं में भी इन्हें पर्याप्त ख्याति मिली है। एक पत्रकार और सम्पादक के रूप में भी इन्होंने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की है। 1987 ई0 तक इन्होंने हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ साप्ताहिक पत्रिका 'धर्मयुग' का संपादन किया। हिन्दी साहित्य को अपनी अभूतपूर्व देन के फलस्वरूप धर्मवीर भारती विभिन्न सम्मानों और पुरस्कारों से विभूषित हुये और चार सितम्बर 1997 ई0 में यह महान साहित्यकार चिर-निद्रा में लीन हो गया। प्रस्तुत लेख में धर्मवीर भारती के कथासाहित्य में 'परिवार एवं समाज में नारी की स्थिति' के बारे में प्रकाश डाला गया है।

परिवार और समाज दोनों की रचना के आधारभूत स्तम्भ स्त्री एवं पुरुष हैं। इस दृष्टि से देखा जाये तो दोनों ही समान हैं। दोनों को ही समान अधिकार और सम्मान पाने का अधिकार है, परन्तु हमारे पुरुष प्रधान देश में हमेशा से ही नारी को निम्न दृष्टि से देखा गया है, उसे दबाया गया है और उस पर अत्याचार किये गये हैं। हमारे स्वतंत्र भारत में नारी स्वातंत्र्य के अनेकों आन्दोलन छेड़े गये मगर आज भी नारी स्वातंत्र्य की पुकार अंधविश्वासों और घिसी-पिटी मान्यताओं के कोलाहल में दबी हुई हैं। हमारे देश की नारी आज भी बहुत सी समस्याओं से त्रस्त हैं। भारती ने अपने कथा साहित्य में नारी की इसी दीन-हीन दशा को यथार्थता के साथ वर्णित किया है। शायद इसके प्रभाव से हमारी आँखे खुल जायें और हम नारी के असली अर्थ को जान पायें।

हमारे समाज में परिवार में कन्या का जन्म अभिशाप माना जाता है क्योंकि लोगों को कन्या के जन्म के साथ ही उसके विवाह में होने वाले खर्च की चिन्ता हो जाती है। वो उसे बोझ की तरह सारा जीवन पालते हैं और जल्द से जल्द ही बोझ को उतारने के लिये व्याकुल रहते हैं। वैदिक युग से लेकर आज तक प्रत्येक माता-पिता की यही कामना रही है कि उन्हें पुत्र लाभ हो। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में कन्या विषाद के कारण के रूप में प्रस्तुत की गयी है। ''इसके अनुसार वह केवल जन्म के समय ही दुख नहीं देती है, अपितु विवाह के समय दहेज के रूप में बहुत सा धन ले जाती है, युवावस्था में कुल को कलंकित कर सकती है, अतः कन्या माता-पिता का हृदय विदीर्ण करने वाली होती है।''[1] कन्या को लेकर आज के युग में भी यही कारण सम्मुख आते हैं।

हमारे समाज में नारी जीवन की सबसे बड़ी समस्या दहेज प्रथा है, इसी कारण माता-पिता को कन्या का जन्म बोझ लगता है। पहले कन्या के लिये उपयुक्त वर की तलाश की चिन्ता, फिर विवाह के लिये धन जुटाने की परेशानी, साथ ही कन्या के विवाह के लिये हर प्रकार के अपमान सहन करने की विवशता। भारतीय दहेज की इस विषाक्त प्रथा ने कन्या के जीवन को दयनीय बना दिया है। कन्या के पिता आर्थिक अभावों से ग्रस्त रहने के कारण कन्या का विवाह उपयुक्त वर के साथ नहीं कर पाते क्योंकि अच्छे लड़कों के माता-पिता भारी दहेज की माँग करते हैं। कन्या के पिता निराष होकर अपनी कन्या को किसी प्रौढ़ व्यक्ति के साथ ब्याह देते हैं जो कन्या के लिये सबसे बड़ा अभिशाप है। 'सूरज का सातवां घोड़ा' उपन्यास में जमुना के माता-पिता उसका विवाह एक धनी वृद्ध व्यक्ति से कर देते हैं, उसकी माँ सफाई देती हुई कहती है, '' लड़का तिहाजू है तो क्या हुआ मरद और दीवार जितना पानी खाते हैं उतना ही पुख्ता होते हैं।''[2] और जल्दी ही यह पुख्ता दीवार गिर जाती है और जमुना वैधव्य को प्राप्त हो जाती है।

दहेज की समस्या के साथ-साथ हमारे देश में बेटियाँ रीति-रिवाजों और अंधविश्वासों की बलि भी चढ़ती आयी है और चढ़ रही हैं। जमुना का विवाह तन्ना से इसलिये नहीं होता क्योंकि वह निम्न गोत्र का है और इसी कारण दोनों का प्रेम अधूरा रह जाता है। न तन्ना का जीवन सुखी हो पाता है न ही जमुना का। जमुना की माँ स्वयं यह घोषणा करती हैं कि ''लड़की पीपल से ब्याह देंगे पर नीचे गोत्र वालों को लड़की नहीं देंगे।''[3] 'गुनाहों का देवता' उपन्यास में सुधा भी जातिवाद की भेंट चढ़कर अपने चन्दर से दूर हो जाती हैं। लड़की को हमेशा ही अशुभ और तरह-तरह की गालियों से सम्मानित किया जाता है क्योंकि उसने लड़की का जन्म लेकर बहुत बड़ा पाप किया। 'गुनाहों का देवता' उपन्यास में विनती की माँ हमेशा उसको कोसती रहती है। ''ऐसी कुलच्छिनी

है कि पैदा होते दिन बाप को खाय गयी।''[4] 'आश्रम' कहानी में भी शान्ता के भाइयों की असमय मृत्यु के लिये उसके नक्षत्रों को ही जिम्मेदार समझा जाता है और उस पर अशुभ का टीका लग जाता है। लड़की का रिश्ता टूट जाना हमारे समाज में बहुत ही शर्म की बात है, भले ही इसके लिये लड़के वाले क्यों न उत्तरदायी हों, पर सारा अपमान लड़की को सहना पड़ता है, उसी के ब्याह में बाधा पड़ती है, अत: इसके लिये उसे फिर अपशब्दों की बौछार झेलनी पड़ती है। विनती की शादी तीन फेरों के बाद रोक दी जाती है, क्योंकि लड़के ने अपनी शिक्षा आदि के सम्बन्ध में झूठ बताया होता है परन्तु विनती की माँ विनती को ही कोसती रहती है ''तू हमारी छाती पर मूंग दरै के लिये बैठी रही, तौन जमी है। भगवान कौनों को ऐसी कलंकिनी बिटिया न दें। तीन भांवरी के बाद बारात उठ गयी भइया! हमारा तो कुल डूब गया।''[5]

विधवा के पुर्नविवाह को लेकर हमारे देश में कई आन्दोलन हुये और विधवा के पुनर्विवाह की आवाज को स्वर भी मिला परन्तु कुछ नेता आदि इसे भी अपनी प्रसिद्धि के हथियार के रूप में प्रयोग करते हैं। भारती की कहानी 'कुलटा' में लाली का विवाह नन्दराम से समाज के मन्त्री जी करा देते हैं परन्तु वो लाली को दासी के अतिरिक्त कुछ नहीं समझता, यहाँ तक कि उसके पहले पुत्र से भी उसे मिलने नहीं देता और उसे बहुत ही बेदर्दी से पीटता भी है। नन्दराम के दोनों बच्चे भी जब लाली के प्रति उसके कान भरते हैं तो नन्दराम उस पर बरस पड़ता है-''मैं कहे देता हूँ कि घर में इन्हीं बच्चों के आराम के लिये लाया हूँ। तुझे माँ बनकर रहना हो तो रहो वरना याद रख भूखों मर रही थी, अब चर्बी चढ़ गयी है न। हड्डी-हड्डी तोड़ डालूँगा।''[6] निम्न वर्ग में स्त्री अपने ही घर में नौकरानी की तरह रहती है, पत्नी तो केवल नाम की होती है। 'गुलकी बन्नों' कहानी में गुलकी का पति एक अन्य स्त्री को रखकर गुलकी को छोड़ देता है परन्तु जब उसकी दूसरी पत्नी माँ बनने वाली होती है तो घर के कामों के लिये उसे फिर लेने चला आता है। एक तो अपने मतलब से गुलकी बन्नों को लेने आता है उस पर भी एहसान जताता हुआ कहता है-''इसे ले तो जा रहा हूँ पर इतना कहे देता हूँ आप भी समझा दे कि रहना हो तो दासी बनकर रहे। न दूध की न पूत की, हमारे किस काम की, पर हाँ औरतिया की सेवा कर उसका बच्चा खिलावे, झाड़ू-बुहार करे, दो रोटी खाए, पड़ी रहे, पर कभी जुबान लड़ाई तो खैर नहीं। हमारा हाथ बड़ा जालिम है। एक बार कूबड़ निकला, अगली बार परान निकलेगा।''[7] इसे अपने भाग्य समझ गुलकी खुशी-खुशी उसके साथ चली जाती है, जीवन भर एक दासी का जीवन जीने के लिए। नारी की ऐसी दशा का कारण उसकी पुरुष पर आर्थिक निर्भरता भी है। यदि वो अपना बोझ खुद उठा ले तो इस तरह के अत्याचारों से अपने आप को बचा सकती हैं जैसे 'सूरज का सातवां घोड़ा' उपन्यास में सत्ती आत्मनिर्भर है, उसके माता-पिता नहीं है और उसका पालक चमन ठाकुर भी हाथ से अपाहिज होता है, तो सत्ती ही साबुन जमा कर बेचकर, अपना और अपने पालक का पालन-पोषण करती है।

हमारे समाज में नारी को एक भोग्या वस्तु से अधिक कुछ नहीं समझा जाता, जिसका उपयोग यौवन अवस्था के बाद समाप्त हो जाता है। तभी तो 'हिन्दू या मुसलमान' कहानी में जब बीमार बुढ़िया कम्पनी के एक दरबान से भीख माँगती है तो वो उसका मजाक बनाता हुआ कहता है- ''चल-चल ! आगे बढ़, अगर तू जवान होती तो इज्जत बेचने पर शायद 8-10 पैसे मिल भी जाते। अब किस बिरते पर भीख माँगने आयी है ?''[8] शायद पेट की मजबूरी ही नारी को वेश्या का पेशा करने के लिए बाध्य कर देती है। वो लोगों के लिए केवल मनोरंजन का साधन है। पुरुष चाहे चोर, आवारा, खूनी की क्यों न हो परन्तु एक औरत के चरित्र पर अगर एक बूंद दाग लग जाये तो उसे वेश्या की संज्ञा दी जाती है। 'धुआँ' कहानी में लोगों की भीड़ को आग में जली वेश्याओं से ज्यादा उनका तमाशा देखने और फब्तियाँ कसने में ज्यादा आनन्द मिल रहा था। उनकी करुण चीत्कार को सुनकर भीड़ में कई लोग ठहाके मार रहे थे। उनके जले शरीर को देखकर भी उनकी वासना की अग्नि दहक रही थी। ''हाय! हाय! अभी एक गयी है, मुश्किल से 18 बरस की होगी। चम्पई रंग झकाझक।''[9]

हमारे समाज में यदि लड़की अनाथ है तथा उसके सिर पर उसके माता-पिता का हाथ नहीं है तो उसकी इज्जत भी सुरक्षित नहीं है क्योंकि दूर के रिश्ते और पालने वाले भी मजबूरी और धन के लालच में उनका सौदा करने से चूकते नहीं है। 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास में सत्ती की यही दशा है। उसके पालक चमन ठाकुर ने अपनी जरूरतों के लिए सत्ती को महेसर दलाल के हाथों बेच दिया क्योंकि महेसर की नजर बहुत दिनों से सत्ती पर गड़ी थी और वो रुपयों का लालच देकर नित ही सत्ती को फँसाने की कोशिश करता रहता था।

पुरुष चाहे कैसा भी हो, उसके ऊपर कोई उंगली नहीं उठाता, इसी कारण पति जब चाहे पत्नी को त्याग देता है और चाहे दोष पति का ही क्यों न हो, पत्नी को सारे समाज में तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। 'गुलकी बन्नो' कहानी में गुलकी का पति उसे इसलिए छोड़ देता है क्योंकि वो सन्तान पैदा करने में असमर्थ होती है। 'बन्द गली का आखिरी मकान' में बिरजा का पति शराबी होता है और उसे घर से दोनो बेटों के साथ निकाल देता है। बिरजा के शब्दों में उसकी व्यथा व्यक्त करता है- ''हमारा तो भाग ही खोटा है नहीं तो वही जिससे सात फेरे लिये थे, हाथ पकड़कर घर से क्यों निकाल देता''[10] नारी की सबसे बड़ी व्यथा यही है कि चाहे उसने अपराध किया हो, चाहे न किया हो, हमेशा सजा की भागीदार वो ही बनती है। हमारे समाज में तो ये धारणा है- ''अपराध सदा नारी करती है। पुरुष तो अनजान है-निर्दोष है।''[11]

भारती के कथासाहित्य में मुख्यत: नारी की शोचनीय और त्रासदीपूर्ण स्थिति का चित्रण हुआ है परन्तु उन्होंने नारी के विद्रोही स्वरूप को भी उजागर किया है। आज व्यक्ति प्रतिष्ठा की वीथी पर नारी भी बनी बनायी लीक पर चलने को तैयार नही है। वह अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा स्वयं करने को सचेष्ट हो गयी है। 'गुनाहों का देवता' की आधुनिक युवा वर्ग की प्रतीक सुधा और विनती जाति-पांति के बंधनों में अविश्वास व्यक्त करती है। विनती विवाह की वेदी पर अपने अयोग्य वर का विरोध कर स्वाभिमान का परिचय देती है। इस पर उसकी माँ उसको कोसने लगती है। इससे पहले वो अपनी माँ की हर बात सहन कर लेती थी परन्तु अब तो स्थिति का मुकाबला करना जान गई है। वो अपनी माँ को भी करारा उत्तर देती है- ''बहुत सुन लिया मैंने। अब और बरदाश्त नहीं होता। तुम्हारे कोसने से अब तक नहीं मरी, न मरूँगी। अब मैं सुनूँगी नहीं, मैं साफ कह देती हूँ। तुम्हे मेरी शक्ल अच्छी नहीं लगती तो जाओ तीरथ-यात्रा में अपना परलोक सुधारो। भगवान का भजन करो। समझी कि नहीं।''[12]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि धर्मवीर भारती ने भारतीय परिवार एवं समाज में नारी की स्थिति बहुत शोचनीय दर्शायी है, चाहे वह आर्थिक स्थिति हो, मनोवैज्ञानिक स्थिति हो या आचरण सम्बन्धी स्थिति हो। परन्तु धीरे-धीरे उनमें अन्याय व अत्याचार एवं अवमानना को सहन न करने की स्वस्थ प्रकृति भी दिखाई है।

संदर्भ सूची-

1. ऐतरेय ब्राह्मण, 33/1
2. सूरज का सातवां घोड़ा, धर्मवीर भारती, पृ0 36
3. वही, पृ0 36
4. गुनाहों का देवता, धर्मवीर भारती, पृ0 62
5. वही, पृ0 181-182
6. साँस की कलम से, सं0 पुष्पा भारती, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2003, पृ0 89
7. वही, पृ0 235
8. वही, पृ0 129
9. वही, पृ0 100
10. वही, पृ0 311
11. वही, पृ0 189
12. गुनाहों का देवता, धर्मवीर भारती, पृ0 182-183

धर्म एवं धर्म-पुरुषार्थ

विवेक कुमार दुबे

शोध-छात्र, दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश (Abstract)

धर्म शब्द अपने अन्तस् में विविध प्रकार के अर्थों को समाहित किये हुये है। कभी इस शब्द का प्रयोग धार्मिक क्रिया-कलापों के लिए किया जाता है तो कभी इसका प्रयोग सम्प्रदाय विशेष के सन्दर्भ में तो कभी पुरुषार्थ के रूप में। वास्तव में धर्म का निहितार्थ भारतीय मनीषियों ने कर्तव्य के अर्थ में करते हुए इसे पुरुषार्थ के रूप में स्पष्ट किया है। प्रस्तुत शोध-पत्र के अन्तर्गत धर्म के विविध अर्थों को स्पष्ट करते हुए धर्म-पुरुषार्थ के निहितार्थ को व्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

कुंजी शब्द (Key Word) (1) धर्म-पुरुषार्थ (2) कर्तव्य (3) अन्तस् चेतना (4) निवृत्ति मार्ग (5) प्रवृत्ति मार्ग (6) पुरुषार्थ चतुष्टय (7) संस्कार (8) वर्ण-व्यवस्था (9) आश्रम व्यवस्था (10) श्रेयस् (11) प्रेयस्।

उद्देश्य-

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य धर्म शब्द के विविध अर्थों को स्पष्ट करते हुए पुरुषार्थ के रूप में इसकी उपयुक्तता को सिद्ध करना है।

इस सम्पूर्ण जगत् का एक मात्र आधार धर्म है। समस्त प्रजा धार्मिक के पास अपने-अपने संशयों की निवृत्ति हेतु जाती है। धर्म से ही पाप की निवृत्ति होती है। इसलिए विश्व में सबसे श्रेष्ठ तत्व धर्म है।[1] पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म पुरुषार्थ का प्रथम स्थान है। धर्म शब्द धृअ् धारणे धातु में मप् प्रत्यय के योग से निष्पन्न है, इस प्रकार इसका व्युत्पत्ति मूलक अर्थ है, वह तत्व जो धारण किये रहे, सम्भाले रहे, गिरने न दे, बिखरने न दें। इस व्युत्पत्ति मूलक अर्थ के आधार पर महाभारत के धारत तत्व की विशिष्टता को स्पष्ट करते हुए कहा गया है-

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यत्स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः।।[2]

इस प्रकार पुरुषार्थ के रूप में धर्म वह तत्व है, जो अर्थ एवं काम को मर्यादित करके लौकिक सुख (प्रेयस) तथा पारलौकिक सुख (निःश्रेयस) की सिद्धि में सहायक हो, जैसा कि महर्षि कणाद् ने लिखा है-''यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धि स धर्मः।''[3] इस सन्दर्भ में अभ्युदय का निहितार्थ उतने ही अर्थ तथा काम के सेवन से है, जितने के ग्रहण से शरीर यात्रा एवं मनस्तुष्टि का निर्वाह हो जाय, किन्तु अर्थ, काम में आसक्ति न उत्पन्न हो। जैसा कि मनु ने कहा है-

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।।[4]

महर्षि जैमिनी ने धर्म के प्रमाण एवं फल दोनों पर विचार करते हुए कहा है-''चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः''।[5] अर्थात् वेद लक्षण वाला अर्थ धर्म है। आचार्य मनु ने धर्म के चार स्रोतों की चर्चा करते हुए मनुस्मृति में कहा है-

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।[6]

अर्थात् श्रुति, स्मृति, सदाचार और आत्मतुष्टि यही धर्म के लक्षण है।

आचार्य मनु ने मनुस्मृति में धर्म के तीन भेदों की चर्चा की है-साधारण धर्म, विशिष्ट धर्म एवं आपदधर्म।

1. साधारण धर्म

साधारण धर्म के अन्तर्गत उन मानवीय मूल्यों एवं कर्त्तव्यों का समावेश किया गया है जो सभी के लिए अनुकरणीय होता है। मनु साधारण धर्म के दस लक्षणों की चर्चा करते हुए मनुस्मृति में लिखा है-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।[7]

अर्थात् धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह धी, ज्ञान, सत्य अक्रोध ये दस लक्षणों से युक्त कृत्य साधारण धर्म कहलाते हैं।

2. विशिष्ट धर्म

विशिष्ट धर्म से तात्पर्य व्यक्ति की समाज में स्थिति तथा उसकी अवस्था के साथ उसके गुण के अुनरूप किये जाने योग्य कर्त्तव्य पालन से है। इसके अन्तर्गत वर्णधर्म, आश्रमधर्म, गुण धर्म स्वधर्म नैमित्तिक धर्म इत्यादि का समावेश किया जाता है। इन धर्मों (कर्त्तव्यों) के पालन का निर्देश व्यक्ति अथवा वर्ग विशेष की दृष्टि से किया गया है। उदाहरणार्थ मनुस्मृति में कहा गया है-

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे।
अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपत:।।
तप: परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवावाहुर्दानमेकं कलौ युगे।।[8]

अर्थात् कृतयुग, त्रेता युग, द्वापर एवं कलियुग के धर्म कालवैशिष्टय से अलग है।

3. आपद्धर्म

वे कर्म जो आपतकालीन (प्रतिकूल) परिस्थितियों में किये जा सकते है, उन्हें आपद्धर्म कहते है। इसके अंतर्गत विशेष परिस्थितियों में व्यक्ति एक दूसरे वर्णों के कर्मों को अपना सकता है, तथा ऐसे कर्मों को भी कर सकता है, जिनको सामान्य परिस्थितियों में नहीं करना चाहिए। जैसे-ब्राह्मण, क्षत्रियों का, राजन्य वैश्य का और वैश्य शूद्र का धर्म अपना सकता है।

स्पष्टत: धर्म का विचार भारतीय चिन्तन परम्परा का केन्द्र बिन्दु है, यही व्यक्ति की भौतिक उन्नति तथा उसके आध्यात्मिक विकास दोनों का आधार है। यही व्यक्ति का व्यक्तित्व समाज का समाजत्व और संस्कृति का संस्कृतित्व बनाये रखता है। इस विषय में आचार्य मनु कहते है कि-''धर्मो रक्षति रक्षित:''।[9] अर्थात् धर्म की रक्षा करने से मनुष्य स्वत: सुरक्षित रहता है।

गीता में श्रीकृष्ण व्यक्ति को अपनी सामाजिक स्थिति के अनुरूप स्वधर्म का पालन करने के लिए विशेष जोर देते हुए कहते है-''स्वधर्मे निधनं श्रेय:, परधर्मो भयावह:''।[10] अर्थात् अपने धर्म का पालन करते हुए मृत्यु भी हो जाय तो अच्छा है, अपेक्षाकृत दूसरे के धर्म का पालन करने से।

इस प्रकार भारतीय परम्परा में धर्म एक ओर जहाँ ऐसी सामाजिक व्यवस्था एवं नियम को बनाये रखने का कार्य करता है, जिससे समाज में संतुलन बना रहे। वही दूसरी ओर पुरुषार्थ के रूप में यह अर्थ एवं काम को शासित करने का कार्य करता है। इस रूप में धर्म समाज को स्वार्थी एवं कामी होने से बचाता है, साथ ही व्यापक अर्थ में धर्म व्यक्ति के कर्त्तव्य पालन को इंगित करता है।

उल्लेखनीय है भारतीय परम्परा में कर्त्तव्य बोध को धर्म बोध तथा कर्त्तव्य पालन को धर्म पालन के रूप में व्यक्त किया गया है। गीता में जब भगवान कृष्ण अर्जुन से युद्ध करने के लिए कहते है तब वे उनके कर्त्तव्य बोध अर्थात् क्षत्रिय 'धर्म' की याद दिलाते है। यह सन्दर्भ 'कर्त्तव्य' पालन को ही धर्म के रूप में बताता है।

भारतीय दर्शन में वर्णित धर्म के व्यापक स्वरूप पर विचार करने के पश्चात् यह तथ्य प्रकट होता है कि मनीषियों द्वारा बतलाये गए सद्गुण विचार धर्म रूपी पुरुषार्थ में समाहित हो जाते है। क्योंकि धर्म एक मूल्य है और जब मूल्य मानव के आचरण से सम्बन्धित हो जाता है तो वह सद्गुण का रूप धारण कर लेता है। उल्लेखनीय है कि भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भी समानता, स्वतंत्रता, न्याय, बन्धुत्व इतयादि मूल्यों को अंगीकार किया गया है। यहाँ पर यह तथ्य स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि मानव कल्याण हेतु प्राचीन भारतीय मनीषियों ने जिन मूल्यों का प्रतिपादन किया है उसे सद्गुण के रूप में व्यक्त करते हुए हम कह सकते है कि मानव के वे गुण जो उसके व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ समाज के संतुलित विकास में योगदान देता है तथा जिसे मानव आदर्श के रूप में अपने मानवीय क्रिया-कलापों में चरितार्थ करता है, उसे सद्गुण के रूप में जानते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. तैत्तिरीय आरण्यक, 9/11
2. महाभारत कर्मपर्व, 109.58
3. वैशेषिक सूत्र, 1.1.2
4. मनुस्मृति, 2.13
5. मीमांसासूत्र, 1.2
6. मनुस्मृति, 2.6.12
7. मनुस्मृति, 6.92
8. मनुस्मृति, 1, 85-86
9. मनुस्मृति, 8.15
10. गीता, 3.35

कोरोना जागरूकता में कुमाऊँवाणी सामुदायिक रेडियो की भूमिका

हर्षवर्धन पाण्डे

शोधार्थी, कुमाऊँ विश्वविद्यालय

शोध सार

सामुदायिक रेडियो का मुख्य मकसद समुदाय के अंतिम व्यक्ति से संवाद स्थापित करना और उसके सुख-दुख में भागीदार बनना है। विकास से वंचित, उपेक्षित लोगों को इन चीजों से मुक्ति देने का माध्यम बनाना, समुदाय में गुणात्मक परिवर्तन लाना, सृजनशीलता को बढावा देना और लोककला व लोकहित को जिंदा रखने में इसकी भूमिका देखते ही बनती है। आमतौर पर सामुदायिक रेडियो उन समुदायों की अभिव्यक्ति का मंच बनता है, जहां मीडिया नहीं पहुंचता। सामुदायिक रेडियो समुदाय विशेष की सामुदायिक संस्कृति, सामुदायिक बोली अथवा भाषा, सामुदायिक रहन-सहन को संरक्षित करने में सहायक सिद्ध हुआ है। स्मार्ट फोन और मनोरंजन के तमाम आधुनिक साधनों की दौड़ में आज भी रेडियो की चमक बरकरार है। उत्तराखण्ड के मुक्तेश्वर स्थित कुमाऊँवाणी सामुदायिक रेडियो ने कोरोनाकाल में जनजागरूकता में बड़ी भूमिका निभाई है। ग्रामीण जनता के बीच यह कोरोनाकाल में जनजागरूकता का एक सेतु बनकर उभरा है। प्रस्तुत शोध पत्र कुमाऊँवाणी सामुदायिक रेडियो की कोरोना काल में भूमिका का अध्ययन करता है।

शब्द कुंजी सामुदायिक रेडियो, विकास, प्रासंगिकता, भारत

सामुदायिक रेडियो ने देश में सूचनाओं के प्रचार और प्रसार में न केवल अहम भूमिका निभाई है बल्कि ग्रामीण विकास, कृषि, स्वास्थ्य,पोषक आहार, शिक्षा जैसे मुद्दों के बारे में सूचना का प्रसारण कर खुद को विकास की प्रक्रिया में भागीदार बनाया है। उदारीकरण के दौर के आने के बाद रेडियो चौनलों की बढ़ती मांग को देखते हुए मनोरंजन के साथ देशभर में सामुदायिक रेडियो स्टेशन पिछले दो दशक से समय में स्थानीय संचार के रुप में एक बहुत सशक्त माध्यम के रूप में उभरा है जो विभिन्न समुदायों की आवाज उठाने का काम कर रहा है। इस रेडियो स्टेशन के जरिये समुदायों के लोग अपने समूहों की बात अपनी आवाज में रखते हैं। सामुदायिक रेडियो स्टेशन ऐसे समुदायों द्वारा परिचालित और संचालित होते हैं और स्वामित्व भी उनका ही होता है, जिनके लिए वे सेवा प्रदान करते हैं। सामुदायिक रेडियो लाभ कमाने के लिए नहीं होते । यह व्यक्ति विशेष, समूह और समुदायों की अपनी विविध कहानियों को कहने, अनुभवों को बांटने की प्रक्रिया को सुगम बनाते हैं। सामुदायिक रेडियो का स्वरूप लोकतांत्रिक है जिसमें हर व्यक्ति को बोलने, सुनने और कार्यक्रम बनाने की पूरी छूट है। सामुदायिक रेडियो के माध्यम से ग्रामीण विकास की नई राह खुलती है और निरक्षर भी यहाँ अपनी भागीदारी निभा सकते हैं। इसके ग्रामीण न केवल श्रोता हैं, बल्कि कार्यक्रम निर्माण में भी उनकी प्रमुख भूमिका है। सामुदायिक रेडियो के माध्यम से विभिन्न सरकारी योजनाओं, पंचायती राज और ग्रामीण विकास जैसे मुद्दों पर स्थानीय भाषा में कार्यक्रम प्रसारित किए जा रहे हैं। हर रोज सभी ग्रामीण अपनी आवाज में अपने कार्यक्रम सुनने को लिए रेडियो सेट के सामने जमा होने लगते हैं। दुनिया की 95 फीसदी जनसंख्या तक रेडियो की पहुंच है, जिसमें सामुदायिक रेडियो दूर-दराज के समुदायों और छोटे समूहों तक कम लागत में पहुंचने वाला संचार का सबसे आसान साधन है। कहीं ये सामुदायिक रेडियो आदिवासियों की आवाज बना है तो कहीं पहाड़ी समुदाय की आवाज बना है। आपदा के समय सामुदायिक रेडियो महत्वपूर्ण भूमिका निभाते आ रहे हैं। 2018 में देश के एक महानगर और एक औसत दर्जे के शहर में मार्केट रिसर्च फर्म नीलसन द्वारा किया गया सर्वे बहुत ही दिलचस्प है। सर्वे की रिपोर्ट के अनुसार टीवी के बाद रेडियो दूसरा सबसे अधिक आम लोगों की पहुँच वाला मीडिया प्लेटफॉर्म है जबकि मोबाइल के माध्यम से सभी तक आसानी से अपनी पहुँच बनाने वाला सोशल नेटवर्किंग भी सामुदायिक रेडियो के सामने पिछड़ जाता है अर्थात सभी तक आसानी से अपनी पहुँच बनाने के बावजूद सोशल नेटवर्किंग की अपेक्षा रेडियो लोगों की उम्मीदों पर कहीं अधिक खरा उतरता है।

सामुदायिक रेडियो का चलन आज पूरे भारत में जोरों पर है। वैकल्पिक माध्यमों की जरुरत और रेडियो की विशेषताओं ने सामुदायिक रेडियो को जन्म दिया है। यह एक समुदाय विशेष में सुना जा सकने वाला रेडियो है। भारत सरकार इसे 5 -15 किलोमीटर की परिधि में सुनाने का लाईसेन्स देती है। भारत में सामुदायिक रेडियो के चलन का अभियान 1990 के दशक से शुरू हो गया था। फरवरी 1995 में सुप्रीम कोर्ट ने "ध्वनि तरंगे सार्वजनिक सम्पत्ति हैं" इस बात को मानते हुए सामुदायिक रेडियो स्टेशनों को मंजूरी दी थी।

सामुदायिक रेडियो आंदोलन भारत में 1995 के समय शुरू हुआ जब सुप्रीम कोर्ट ने वायु तरंगों को सार्वजनिक संपत्ति घोषित किया लेकिन वायु तरंगों को पूरी तरह सार्वजनिक होने में काफी वर्ष लग गए। अभिव्यक्ति की पूर्णत: आजादी के लिए लड़ते लड़ते 2006 में भारत सरकार ने एन.जी.ओ और सिविल सोसाइटी को सामुदायिक रेडियो शुरू करने की हरी झंडी दिखाई। तब से लेकर आज तक भारत में करीब 270 सामुदायिक रेडियो स्टेशन काम कर रहे हैं। हर एक सामुदायिक रेडियो स्टेशन अपने-अपने समुदाय की भाषाओँ को प्राथमिकता देती है। जो भाषा आम टी.वी.चौनलों में अथवा अखबारों में नहीं मिलती वह सामुदायिक रेडियो स्टेशन में आपको मिलेगी। एक समुदाय का तात्पर्य सिर्फ भौगोलिक समुदाय से नहीं है बल्कि वे एक गाँव के कुछ लोग भी हो सकते हैं जिनकी अपनी उपभाषा हो या अलग-अलग शहरों से आए प्रवासी हों। विश्वविद्यालय अथवा कॉलेज में विद्यार्थियों और शिक्षकों को भी हम समुदाय बोल

सकते हैं। एक सामुदायिक रेडियो स्टेशन अपना प्रसारण 15 कि.मी. की परिधि में कर सकता है। यह सच है कि शुरूआती दौर में रेडियो, समाज के लिए एक प्रेरणा बन कर उभरा था लेकिन इसका क्षेत्र काफी संकुचित था जिससे सिर्फ रेडियो स्टेशन पर केवल शिक्षा के प्रोग्राम चलाने की ही अनुमति मिल पाई थी। भारत का पहला सामुदायिक रेडियो स्टेशन ''अन्ना'' फरवरी 2004 को लांच हुआ जिसका संचालन एजुकेशन एंड मल्टीमीडिया रिसर्च सेंटर (ईएमआरसी) करता है और सारे कार्यक्रमों का निर्माण अन्ना विश्वविद्यालय के मीडिया विज्ञान के विद्यार्थियों द्वारा किया जाता है। सामुदायिक रेडियो पूरी दुनिया में वंचित समुदाय के संवाद और विकास का सशक्त माध्यम बनकर उभरा है। दक्षिण एशिया में नेपाल पहला देश है, जहां 1997 में सामुदायिक रेडियो की शुरुआत हुई। भारत में सामुदायिक रेडियो की अवधारणा नई है लेकिन विश्व व एशिया के तमाम देशों में यह सामाजिक सरोकारों के सशक्त आंदोलन का स्वरूप ग्रहण करता जा रहा है। भारत में पहली बार 1999 में आकाशवाणी के सहभागी के तौर पर (भुज, गुजरात) समुदाय आधारित कार्यक्रम प्रसारित हुआ। केंद्र सरकार की ओर से 2006 में सामुदायिक रेडियो नीति बनाई गई, जिसकी औपचारिक गतिविधि 2007 में शुरू हुई। गैर सरकारी संगठन और नागरिक समाज निकायों की लम्बी लड़ाई के बाद 16 फरवरी 2006 को सूचना और प्रसारण मंत्रालय एवं भारत सरकार ने सामुदायिक रेडियो स्टेशन के लिए दिशा-निर्देश जारी किए, जिसके अनुसार समुदाय आधारित संगठनों तथा नागरिक संस्थानों और स्वैच्छिक संगठनों, राज्य कृषि विश्वविद्यालयों (एसएयू), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् संस्थान, कृषि विज्ञान केन्द्रों, पंजीकृत सोसाइटियों, सोसायटी अधिनियम के तहत पंजीकृत सार्वजानिक ट्रस्टों को सामुदायिक रेडियो स्टेशन चलाने की अनुमति दी गई जिसके बाद सामुदायिक रेडियो ने गति पकड़ी और देश के विभिन्न हिस्सों में इसका संचालन होने लगा।

सरकार ने कैंपस रेडियो के लिए 2002 में निर्णय लिया कि आकाशीय तरंगों पर अधिकार की सुविधा शैक्षणिक संस्थाओं को भी दी जाए। दक्षिण भारत में अन्नामलाई यूनिवर्सिटी ने 90.4 फ्रैक्सी के साथ पहला कैंपस रेडियो की शुरुआत की। शिक्षा के प्रति जागरुक रखने के लिए इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय ने सन 2001 में ''ज्ञानवाणी'' के नाम से रेडियो स्टेशन की शुरुआत की। ज्ञानवाणी के माध्यम से छात्र राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद और गैर सरकारी संगठनों (एनसीईआरटी) से निशुल्क फोन सेवा के जरिए परामर्श ले सकते हैं। 9 से 11 फरवरी 2013 की अवधि में नई दिल्ली में आयोजित तीसरे सामुदायिक रेडियो सम्मेलन में केंद्र सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय में अधिकारियों ने कहा कि ''2002 में देश की प्रथम सामुदायिक रेडियो नीति लागू होने बाद से भारत सामुदायिक रेडियो दो दशक पूरा कर चुका है, परंतु इस भागीदारीपूर्ण संचार माध्यम की पूरी क्षमता का दोहन करने के लिए अभी बहुत कुछ किया जा सकता है'। हालांकि, सरकार ने हाल ही स्पष्ट किया है कि खबर की कुछ श्रेणियों को रेडियो पर प्रसारित करने की अनुमति है, जिनमें खेल समाचार और टिप्पणियां, यातायात और मौसम की स्थिति के बारे में जानकारी, सांस्कृतिक कार्यक्रमों और त्यौहारों के कवरेज, शैक्षिक घटनाओं के बारे में जानकारी, सार्वजनिक बिजली और पानी की आपूर्ति जैसी उपयोगिताओं से संबंधित घोषणाएं, आपदा चेतावनी और स्वास्थ्य सूचना शामिल हैं। सामुदायिक रेडियो पर प्रति घंटे पांच मिनट के विज्ञापन की अनुमति है। केन्द्र या राज्य सरकार द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम को छोड़कर प्रायोजित कार्यक्रम की अनुमति नहीं है। सामुदायिक रेडियो स्टेशन लोगों से उनकी स्थानीय भाषा में संचार करते हैं, जिससे न सिर्फ भाषा के बचाव में योगदान होता है, बल्कि अगली पीढ़ी तक उसका विस्तार भी होता है। कम्युनिटी रेडियो लोकगीतों के माध्यम से न सिर्फ संस्कृति का प्रचार प्रसार करते हैं, बल्कि सरकारी योजनाओं की जानकारी भी लोगों तक पहुंचाते हैं।

सामुदायिक रेडियो का पहला सिद्धांत सहभागिता है। सामान्यत: मीडिया के विभिन्न माध्यमों में एकतरफा संचार होता है। सामुदायिक रेडियो में जिस समुदाय द्वारा अथवा जिस समुदाय के लिए रेडियो संचालित किया जाता है उसकी संपूर्ण सहभागिता होती है। आयु, लिंग अथवा सामाजिक विकार समुदाय की सहभागिता में बाधक नहीं बनते। दूसरा सिद्धांत स्वतंत्रता है। समुदाय विशेष अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए स्वतंत्र होता है। सामुदायिक रेडियो में समुदाय अपने सामुदायिक विषयों की प्रस्तुति हेतु स्वतंत्र होता है। यह ऐसा संचार मंच है, जहाँ सामुदायिक समस्याएँ, सामुदायिक तथ्य, सामुदायिक व्यवस्था, सामुदायिक विकास, इत्यादि पर विचार विमर्श होताहै। सामुदायिक रेडियो का तीसरा सिद्धांत सहभागिता है समानता। सामुदायिक रेडियो के द्वारा समाज का कोई भी वर्ग भागीदार बन सकता है। आयु, जाति, वर्ग, लिंग, धर्म अथवा प्रजाति के आधार पर सामुदायिक रेडियो विभेद नहीं करता। चौथा है स्वायत्तता। सामुदायिक रेडियो कार्यक्रमों के प्रसारण में स्वायत्त है। सामुदायिक रेडियो, जनता का रेडियो जनता के लिए रेडियो, जनता के द्वारा संचालित रेडियो के सिद्धांत पर कार्य करता है। पांचवा है सत्यता। सामुदायिक रेडियो के माध्यम से सत्यपरक कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है। व्यावसायिक मीडिया की तुलना में सामुदायिक रेडियो सत्यता के अधिक निकट होता है। सामुदायिक मीडिया के संचार का मूलभूत आधार ही होता है - सत्यता का प्रसारण। छठा है सामाजिक सरोकार। सामुदायिक रेडियो सनसनी अथवा ब्रेकिंग न्यूज में रुचि नहीं रखता। यह सॉफ्ट न्यूज अथवा सॉफ्ट कार्यक्रमों में रुचि रखता है। प्राय: सामाजिक सरोकार के मुद्दे इसके अग्रिम श्रेणी के कार्यक्रम होते हैं। इसके अलावा सामुदायिक रेडियो समुदाय विशेष की सामुदायिक संस्कृति, सामुदायिक बोली अथवा भाषा, सामुदायिक रहन-सहन को संरक्षित करने में सहायक सिद्ध हुआ है।

लोकप्रियता के शिखर पर 'कुमाऊंवाणी'

उत्तराखण्ड कुमाऊं का पहला सामुदायिक रेडियो 'कुमाऊं वाणी' आज लोकप्रियता के शिखर पर है। अपने कार्यक्रमों के जरिये ये आज पहाड़ के दूरस्थ ग्रामीण अंचल तक अपनी पैठ बना चुका है। मुक्तेश्वर के समीप सूपी गांव स्थित इस सामुदायिक रेडियो ने अपनी संस्कृति और सभ्यता को जीवित रखने के लिए भरसक प्रयास किया है। इस रेडियो स्टेशन ने कुमाऊनी भाषा को एक नयी दिशा दी है। रेडियो के अधिकांश कार्यक्रम कुमाऊंनी में तैयार किये जाते है। रेडियो जॉकी भी कुमाऊंनी बोली का ही प्रयोग करते हैं। टेरी संस्था (ऊर्जा संसाधन संस्थान) द्वारा स्थापित सामुदायिक रेडियो कुमाऊंवाणी का उदघाटन 11 मार्च 2010 को तत्कालीन राज्यपाल मार्गरेट अल्वा ने किया था। रेडियो का उद्देश्य सूचना और जानकारी की मदद से कुमाऊं के पहाड़ी समुदाय को विकास के पथ पर अग्रसर करना है। देश के जाने माने पर्यावरणविद् डॉ आर. के. पचौरी इस रेडियो के निदेशक रह चुके हैं। इस सामुदायिक रेडियो की सारी जिम्मेदारी स्थानीय युवाओ के कंधे पर है। कई युवा रेडियो से जुड़े हैं। गांव-गांव जाकर लोगों से मिलकर कार्यक्रम तैयार किये जाते हैं। इन कार्यक्रमों की फेहिरस्त भी काफी लंबी चौड़ी है, जिसमें बच्चों से लेकर बड़े बुजुर्गों महिलाओं को मद्देनजर रखते हुए कार्यक्रम बनाये जाते हैं। रेडियो प्रबंधक मोहन कार्की बताते हैं कि 'जल, जंगल, जमीन को लेकर जागरूकता, कुमाऊं की रवायत और यहाँ की संस्कृति को आगे बढ़ाना, सरकारी संस्थाओं तक लोगों की समस्याओं को पहुचाना, शिक्षा, स्वास्थ्य, विज्ञान पर कार्यक्रम बनाना फिलहाल रेडियो का उद्देश्य है।' इन कार्यक्रमों के माध्यम से अब तक हमसे 3 तीन लाख श्रोता

जुड़ चुके हैं। हमारे पास कुछ चुने हुए रिपोर्टर हैं जो आस-पास के गांवों से ही हैं और कड़ी मेहनत कर कार्यक्रम तैयार करते हैं। साथ ही कई छुपी हुई प्रतिभाओं को भी रेडियो के माध्यम से सामने लाने का कार्य भी किया जा रहा है। रेडियो के श्रोता टेलीफोन, एसएमएस, फेसबुक, पत्र आदि के माध्यम से अपनी बात हम तक पहुंचाते हैं, जिससे कार्यक्रम तैयार करने में आसानी होती है। इससे लोकप्रिय कार्यक्रम तैयार करना भी आसान हो जाता है।'

इतने कम समय मे रेडियो को सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय द्वारा वर्ष 2014 में छोटे एवं सीमान्त किसानों के लिए चलने वाले कार्यक्रम 'बाजार लाये बौछार' को सामुदायिक सहभागिता के लिए नेशनल अवार्ड से नवाजा गया। वर्ष 2013 मे जन सहभागिता को आधार बनाकर कुमाऊं की बेहतरी के विकास कार्यक्रमों में मजबूती प्रदान हेतु डेवलपमेंट एम्पावरमेंट फाउंडेशन की ओर से मंथन अवार्ड भी प्राप्त हो चुका है। रेडियो के धारावाहिक कार्यक्रम 'बाजार लाये बौछार,' 'सौंधी खुश्बू,' 'हम और हमारी पंचायत,' 'अजब खेल गजब गणित' जैसे कार्यक्रम काफी लोकप्रिय हुए हैं। कहा जा सकता है हाल के वर्षों में सामुदायिक रेडियो ने कला, संस्कृति, खेती बाड़ी, स्वास्थ्य, जैसे अनगिनत विषयों को छुआ है। कुमाऊं वाणी को एफएम 90.4 मेगाहर्ट्ज पर सुना जा सकता है। इसके अलावा सोशल मीडिया के माध्यम से भी कार्यक्रमों को सुना जा अकता है । 'आपुण रेडियो आपुण बात' इसी को चरितार्थ करते हुए यह सामुदायिक रेडियो आज युवाओं, बुजुर्गों और महिलाओं का सुख-दुःख का साथी बना हुआ है। कुमाऊंवाणी मुक्तेश्वर मंडल का पहला सामुदायिक रेडियो स्टेशन और कुमाऊं, मंडल का पहला सामुदायिक रेडियो स्टेशन है। खास बात यह है कि इसके रेडियो जॉकी प्रसारण के समय कुमाऊँनी में ही बातचीत करते हैं। कुमाऊंनी बोली के कारण यह रेडियो स्टेशन विभिन्न जिलों के सैकड़ों गांवों में अपनी पहचान बना चुका है। प्रारंभ में यह केवल एक ही घण्टे के लिए चलाया जाता था लेकिन अब यह रोजाना सुबह 8 बजे से 1 बजे तक संचालित होता है। इसके बाद 1 से 5 बजे तक रिपीट प्रसारण किया जाता है जिसमें श्रोताओं के लिए विभिन्न कार्यक्रम चलाए जाते हैं। इस रेडियो स्टेशन का उद्देश्य सूचना और जानकारी की मदद से कुमाऊं के पहाड़ी समुदाय को विकास के पथ पर अग्रसर करना है। रेडियो स्टेशन में स्थानीय युवा ही हर काम करते हैं। यहां पांच स्थानीय निवासी कार्य करते हैं जिन्हें संस्था द्वारा ही प्रशिक्षण दिया जाता है। कुमाऊँवाणी के लिए युवा गांव-गांव जाकर लोगों से मिलकर बातचीत कर कार्यक्रम तैयार करते हैं। इसमें हर वर्ग को ध्यान में रखकर कार्यक्रम तैयार किए जाते हैं वहीं कृषि, पर्यावरण, शिक्षा,रोजगार, स्वास्थ्य आदि से सम्बंधित कार्यक्रमों में विशेषज्ञों को जोड़ा जाता है। अपने स्थापना दिवस से अब तक 10 वर्षों के अंतराल में कुमाऊँ वाणी ने कई उपलब्धियां हासिल की हैं। 10 वर्षों में कुमाऊंवाणी रेडियो स्टेशन ने नैनीताल, अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, चमोली, बागेश्वर, चम्पावत के 500 से अधिक गाँवों तक अपनी आवाज को पहुँचाया है। वहीं तीन लाख से अधिक श्रोताओं को अपने साथ जोड़ा है। कम्युनिटी रेडियो सिर्फ समस्याओं की और ध्यान नहीं दिलाता, बल्कि उनका समाधान करने का प्रयास भी करता है। मौजूदा दौर में कम्युनिटी रेडियो पर विज्ञापन का अनुपात 7 मिनट प्रति घंटा है, जिसे बढ़ाए जाने की नितांत आवश्यकता है। बढ़े हुए समय से कम्युनिटी रेडियो को आर्थिक लाभ होगा और अपने लिए वित्तीय संसाधन जुटाने में मदद मिलेगी। इसके अलावा भारत सरकार को देश में कम्युनिटी रेडियो के विकास हेतु बढ़ी धनराशि खर्च करने की नितांत आवश्यकता महसूस की जा रही है।

कोरोना काल में कुमाऊँवाणी सामुदायिक रेडियो की भूमिका

सामुदायिक रेडियो सिर्फ रेडियो नहीं बल्कि लोगों की एकीकृत आवाज है। कोरोना महामारी के संक्रमण से आम जन को बचाने, अफवाहों से सचेत रहने और आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित कराने के लिए कुमाऊँवाणी सामुदायिक रेडियो ने जैसी भूमिका निभाई है उसकी सराहना की जानी चाहिए। उत्तराखंड के ग्रामीण इलाकों में विषम भौगोलिक परिस्थितियाँ हैं और कनेक्टिविटी की विकट समस्या है। ऐसे में कोरोना जैसी भयावह बीमारी के संक्रमण को रोकने के लिए जब केन्द्र सरकार द्वारा 24 मार्च 2020 को देशव्यापी लॉकडाउन की घोषणा की गई तो तमाम ग्रामीण इलाकों में खलबली मच गई क्योंकि ग्रामीण समुदाय इस प्रकार के अप्रत्याशित कदम के लिए तो कतई तैयार नहीं थे। ऊपर से प्रवासी भाई बहनों का पलायन उत्तराखंड में हो रहा था। ऐसे में सामुदायिक रेडियो ही था जो ग्रामीण समुदायों की मदद के लिए खुलकर आगे आया और उनकी समस्याओं, जरूरतों को शासन-प्रशासन तक पहुंचाया ताकि जरूरतमंदों को राशन एवं अन्य रोजमर्रा की जरूरत की चीजें पहुंचाई जा सकें। सोशल डिस्टेन्सिंग, दो गज की दूरी मास्क है जरूरी जैसे नारे जन-जन तक इसके माध्यम से ही ग्रामीण इलाकों में पहुंचे। साफ सफाई, हाथ और मुंह धोते रहने का आह्वान कुमाऊँवाणी अपने कार्यक्रमों के दौरान करती रही। मुक्तेश्वर से संचालित सामुदायिक रेडियो ने अपने कार्यक्रमों के माध्यम से ग्रामीण श्रोताओं को हर स्तर पर कोरोना को लेकर जागरूक किया है। रेडियो स्टेशन लगातार कोरोना से बचाव के तरीकों के प्रति अपडेट करने में लगा रहा। जब से कोरोना वायरस को लेकर चर्चा प्रारंभ हुई है, तभी से इस सामुदायिक रेडियो द्वारा जागरूकता कार्यक्रम बनाना एवं उसका प्रसारण प्रारंभ कर दिया गया कार्यक्रमों का उद्देश्य लोगों को इस बीमारी के प्रति जागरूक करना रहा। प्रधानमंत्री ने जनता कर्फ्यू की अपील की थी उस समय भी रेडियो ने तमाम अधिकारियों व जनप्रतिनिधियों से बात कर श्रोताओं तक पहुंचाया। सामाजिक कार्यकर्ताओं, विशेषज्ञ चिकित्सकों से हर छोटी और बड़ी जानकारी लेकर अभी भी श्रोताओं के लिए जागरूकता कार्यक्रम प्रसारित कर रहा है। मुक्तेश्वर के सुदूर ग्रामीण इलाकों में आज भी संचार का सस्ता और सुलभ संसाधन रेडियो ही है। किसी भी महामारी व आपदा से अवगत कराने के लिए विशेष सूचनाओं एवं जानकारी को स्थानीय भाषा में बड़ी सरलता से कैसे समझाया जाता है इसकी मिसाल कुमाऊँवाणी है जिसने कोरोना को लेकर ग्रामीण जनता के भ्रम को हाल के दिनों में बहुत हद तक दूर करने का काम किया किया है। जो काम टीवी, प्रिंट मीडिया गाँवों में कोरोना से बचाव को लेकर नहीं कर पाया कोरोना से बचाव के तरीके उन्हीं की भाषा में बताकर कुमाऊँवाणी कम्युनिटी रेडियो स्टेशनों ने करके दिखाया है जिसके पीछे मोहन सिंह कार्की जैसे कर्मठ स्टेशन मैनेजर की मजबूत टीम और मेहनत है। सोशल मीडिया के इस दौर में ग्रामीण क्षेत्रों में रेडियो की महत्ता कम नहीं हुई है। आज भी सामुदायिक रेडियो कोरोना से जंग लड़ने के लिए लोगों को अपडेट रखने की भूमिका सफलतापूर्वक चला रहा है। कोरोनावायरस (कोविड-19) महामारी और इससे बचाव के बारे में लोगों को जागरूक करने के लिए सूचना प्रसारण मंत्रालय ने भी सामुदायिक रेडियो स्टेशनों का सहारा लेने का निर्णय लिया। इसी क्रम में सूचना प्रसारण मंत्री प्रकाश जावड़ेकर ने कुछ समय पहले देश के सामुदायिक रेडियो स्टेशनों पर श्रोताओं को संबोधित किया और इस महामारी की रोकथाम के उपायों पर चर्चा की। यह पहली अनूठी पहल रही जिसमें सभी सामुदायिक रेडियो पर एक साथ श्रोताओं को संबोधित किया और कुमाऊँवाणी ने भी प्रधामन्त्री से लेकर सूचना प्रसारण मंत्री तक के सम्बोधन चलाया।

कुमाऊँवाणी के आरजे बहादुर सिंह कहते हैं कोरोना महामारी के दौर में उत्तराखंड में 6 स्टेशनों ने मिलकर एक उम्मीद नेटवर्क बनाया, जिसके द्वारा कोरोना से बचाव के उपाय लोगों को बताये गए। महामारी के इस दौर में प्रशासन को भी ये अहसास हुआ कि लोगों तक जानकारी पहुंचाने में कम्युनिटी रेडियो की

महत्वपूर्ण भूमिका है। बहादुर कहते हैं कोरोना दुनिया में जब पहली बार वुहान से निकला तो लोगों को इसके बारे में कोई जानकारी नहीं थी तब उनका स्टेशन थोड़ा बहुत विश्व में पसार रही इस बीमारी के बारे में जानकारी दे रहा था। रेडियो जाकी अपनी रिसर्च में कोरोना को लेकर काम कर रहे थे और साफ सफाई रखने पर विशेष ध्यान दे रहे थे। किन-किन देशों में लाकडाउन लगा है और भारत में भी इसके लगने के आसार हैं ऐसी जानकारी रेडियो के माध्यम से ही दी जा रही थी। शुरुवाती दौर में जब जनता के बीच इस महामारी के बारे में सूचनाओ का अकाल था तो तब कुमाऊँवाणी सामुदायिक रेडियो स्टेशन कोरोना के खिलाफ जंग लड़ने की तैयारियां करता नजर आ रहा था। धीरे धीरे स्टेशन के पास अन्य संस्थाओं के माध्यम से इस विषय पर जानकारी आने लगी। केंद्र सरकार, तमाम संस्थाओं और स्वास्थ्य विभाग के दिशा निर्देश आने के बाद इस केंद्र ने इस पर बड़े फोकस तरीके से काम करना शुरू किया। छोटे-छोटे कार्यक्रम शुरू किए, रेडियो जिंगल्स के मैसेज के माध्यम से लोगों को जागरूक किया। कोरोना के दौरान क्या सावधानियाँ रखनी हैं और लोगों के सामने क्या हिदायतें हैं इसकी जानकारी दी। नीति आयोग के मैसेज पहली लहर में रेडियो स्टेशन के पास पहुँचने लगे वहीं स्मार्ट संस्था के माध्यम से भी मैसेज आए जिनको कुमाऊँवाणी ने प्रसारित किया। यहाँ पर स्थानीय चिकित्सक जो दिन रात कोरोना के खिलाफ जंग में देश के साथ कंधे से कंधा मिलाये हुए खड़े थे, उनसे बात की और उनके टेलिफोनिक इंटरव्यू, लाइव इंटरव्यू किए। इस दौरान तमाम अस्पताल के हालातों को अपने श्रोताओं के सामने रखा। यूनिसेफ के कुछ कार्यक्रम भी इस दौरान स्टेशन से प्रसारित किए गए। उम्मीद नेटवर्क की मदद से स्टेशन को जो इंटरव्यू मिले वो प्रसारित किए। बच्चों, महिलाओं और बुजुर्गों की सेहत का विशेष ध्यान रखा। कोरोना का देशी और विदेशी टीका जब देश को पहली बार मिला तब सामुदायिक रेडियो नें मुक्तेश्वर में कोरोना के टीकाकरण को लेकर भी जागरूकता अभियान चलाया। वैक्सीनेशन सेंटर्स पर जाकर वहीं से कुमाऊँवाणी के लिए कई एपिसोड तैयार किए।

टीकाकरण केंद्र कहाँ पर हैं और किस समय टीका लगाया जा सकता है? इसकी जानकारी अपने श्रोताओं को उपलब्ध करवाई। कोरोना की वैक्सीन लेना जरूरी है, ये बात ग्रामीणों के बड़े समूहों तक पहुंचाई। कोविड से जुड़ी तमाम भ्रांतियों को तोड़ने का भी काम मुक्तेश्वर स्थित इस स्टेशन ने किया। लोग कह रहे थे, कोरोना का टीका लगने के बाद लोग नपुंसक हो जाते हैं, बुखार आ जाता है, चार साल बाद आदमी मर जाएगा पर जिन्होनें कोरोना से बचाव के लिए टीका लगा लिया उनसे बात कर अपने कार्यक्रमों को नया मंच प्रदान किया। इस दौरान तमाम सरकारी विज्ञापन जो कोरोना जागरूकता से जुड़े थे उनको भी प्रसारित किया। उम्मीद नेटवर्क का एक कार्यक्रम युवाओं को लेकर था, जो मानसिक स्वस्थ्य को लेकर सभी युवाओं को लाकडाउन के दौरान बहुत जागरूक कर रहा था। वैक्सीन को लेकर जो फेक न्यूज चल रही थी उनकी पड़ताल भी सूपी के इस सामुदायिक केंद्र ने की। स्वास्थ्य विभाग के विशेषज्ञों की साउंड बाइट को भी हर कार्यक्रम में शामिल किया। इस दौरान 8-1 हर दिन लाइव और दोपहर 1-से शाम 5 बजे तक रिपीट प्रसारण होता था।

बहादुर कहते हैं "कोरोना की पहली और दूसरी लहर के दौरान आफिस और फील्ड जाने में परेशानी हुई। हालांकि नैनीताल और मुक्तेश्वर पुलिस की तरफ से आने की अनुमति थी लेकिन हमने यह तय किया एक समय में मात्र 2 कर्मचारी स्टूडियो में रहें। बाकी लोग घर से काम कर रहे थे। गहना, दाडिमा जैसे मुक्तेश्वर के गाँव, रानीखेत, अल्मोड़ा, मजखाली, चंपावत, बागेश्वर, चमोली, पौड़ी के श्रोताओं ने बड़े पैमाने पर कुमाऊँवाणी को सुना। इंटरव्यू, सजीव वार्ता, रेडियो नाटक, सामुदायिक रिपोर्टिंग, फोन इन, लोक संगीत जैसी कई विधाओं में प्रसारण स्थानीय भाषा में हुआ जिसका लाभ गांवों में रहने वाली एक बड़ी आबादी ने उठाया। इस दौरान कुछ लोग अवसाद में भी जाने लगे तब इस सामुदायिक रेडियो केंद्र ने मानसिक स्वास्थ्य को लेकर 6 एपिसोड का एक विशेष प्रसारण भी किया। सकारात्मकता का संचार करते हुए खुद को और अपने परिवार वालों को बचाने के लिए श्रोताओं को जागरूक किया। इस दौरान सामुदायिक रेडियो केंद्र में काम करने वाले आर जे और फील्ड रिपोर्टरों ने लोगों के बीच जाना भी शुरू किया। सोशल डिस्टेन्सिंग का पालन करते हुए उस दौरान 20-25 लोगों के बीच गांवों में जाकर कोरोना की वस्तुस्थिति का पता लगाया और लोगों को अपने कार्यक्रमों और सरकार के संदेशों से जागरूक किया और नैरो-कास्टिंग शुरू की।

सामुदायिक रेडियो के प्रसारण का मुख्य आधार ही समुदाय की सहभागिता पर आधारित कार्यक्रम होते हैं। सामुदायिक रेडियो से मुख्यत: दो तरह के कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। पहला है फोन आधारित कार्यक्रम जिसमें संचार दो-तरफा होता है। फोन आधारित कार्यक्रमों में विषय आधारित फोन कार्यक्रम, सामाजिक विषयो पर आधारित फोन कार्यक्रम, श्रोता की ओर से कार्यक्रम प्रस्तुतकर्ता को एवं कार्यक्रम प्रस्तुतकर्ता की ओर से श्रोताओं को फोन इत्यादि कार्यक्रम शामिल हैं। दूसरा पत्र आधारित कार्यक्रम जिसमें पत्र आधारित कार्यक्रमों से श्रोताओं की सामूहिक रुचि का ज्ञान हो जाता है। साथ ही श्रोताओं के पत्रों से रेडियो पर प्रसारित कार्यक्रमों के प्रति जनमत का पता लगता है। इसके अतिरिक्त ऑडियंस की कार्यक्रम की शैली एवं विषय वस्तु के प्रति अभिमत का ज्ञान होता है। कोरोना काल में स्थानीय ग्रामीणों को अपनी स्थानीय बोली कुमाऊँनी में कोरोना से बचाव के कार्यक्रम सुनने को मिले। कोरोनाकाल में कुमाऊँवाणी सामुदायिक रेडियो ने ग्रामीणों और स्थानीय प्रशासन के बीच एक सेतु के तौर पर काम किया। सुबह शाम स्थानीय भाषा में कोरोना से संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों और सरकार के तमाम दिशा निर्देशों को न केवल श्रोताओं को सुनाया बल्कि स्वास्थ्य से जुड़े तमाम विशेषज्ञों के कार्यक्रमों के माध्यम से कोरोना के खिलाफ जंग में जागरूकता लाने का काम किया।

निष्कर्ष इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सूचना और तकनीकी के इस युग में कुमाऊँवाणी सामुदायिक रेडियो ग्रामीणों की सोच और उनको आत्मनिर्भर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।कोरोना से बचाव को लेकर नई-नई जानकारियों से ग्रामीणों को लैस करने में कुमाऊँवाणी सामुदायिक रेडियो स्टेशन की भूमिका देखते ही बनती है। बात सूचना की हो या साफ-सफाई की हर सूचना को जन-जन तक कुमाऊँवाणी सामुदायिक रेडियो ने ही कोरोना काल में मुक्तेश्वर और कुमाऊँ के ग्रामीणों तक पहुंचाया है। समय विशेष की जरुरत के अनुसार सामुदायिक रेडियों से समाज के हर वर्ग के लिए जागरूकता कार्यक्रम, टीकाकरण केंद्र की जानकारी, हाथ मुह साफ रखने, सैनीटाइजर के इस्तेमाल सहित कई महत्वपूर्ण सूचनाएँ ग्रामीण श्रोताओं को दी गई हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि कोरोना संकट के समय में कुमाऊँवाणी सामुदायिक रेडियो का बेहतर उपयोग जागरूकता अभियान के तौर पर हुआ है और इसका कुमाऊँ के ग्रामीण समाज पर अच्छा प्रभाव पड़ा है। पहले भी हमने देखा है आपदाओं के समय पहाड़ी इलाकों में भी यह किस प्रकार कारगर साबित हुआ है।

अत: आज आवश्यकता है सामुदायिक रेडियो के विकास को नई गति देने की, जिससे यह माध्यम जन जन के बीच अपनी अलग पहचान कायम करने में सफल हो सके। मीडिया का निजीकरण और पूर्णत: स्वतंत्र मीडिया भारतीय के लिए मायने नहीं रखता। आज भी भारत गाँवों में बसता है और ग्रामीणों की प्रसारण आवश्यकताओं की पूर्ति बड़े प्रसारक नहीं कर सकते। जिस देश में बहुत कम दूरियों पर लोगों की जरूरतें, भाषा, संस्कृति बदल जाती हो वहां यह संभव भी नहीं है। ऐसे में कुमाऊँवाणी जैसे सामुदायिक रेडियो केंद्र देश में सामुदायिक कल्याण, पर्यावरण जागरूकता, विविधता में एकता और समग्र विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकते है। यही नहीं कुछ और स्वतंत्रता मिलने पर यह छोटे केन्द्र प्रजातंत्र को उसका सही अर्थ प्रदान कर सकते हैं ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- भारत में जनसंचार, जे कुमार, केवल, जैको पब्लिशिंग हाउस, मुंबई, 2017
- भारत में रेडियो प्रसारण, कुमार, डॉ प्रशांत, ए आर पब्लिशिंग कंपनी, नवीन शाहदरा, दिल्ली, 2015
- दूरसंचार कथा, राजन, मोहन सुंदर, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 1995
- रेडियो प्रबंधक मोहन कार्की से हर्षवर्धन पाण्डे की बातचीत 25/9/2020
- आरजे बहादुर सिंह से हर्षवर्धन पाण्डे की बातचीत 25/9/2020
- मैनाली, रघु. (2008). रेडियो प्लेज. नेपाल सीआरएससी
- शर्मा, कौशल, रेडियो प्रसारण, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली
- लेले, मधुकर, भारत में जनसंचार और प्रसारण मीडिया, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
- हरिमोहन, रेडियो और दूरदर्शन पत्रकारिता, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
- पतंजलि प्रेमचंद, मीडिया के 50 वर्ष, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
- दूरसंचार कथा, राजन, मोहन सुंदर, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 1995
- पंत, एन सी ''पत्रकारिता एवं जनसंचार'', कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।
- सिंह, डॉ महावीर, भारत में जनसंवाद, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय मंत्रालय, भारत सरकार, 1994
- त्रिपाठी, डॉ दुर्गेश व मल्होत्रा, वेब रेडियो एंड इट्स इम्पैक्ट, अपूर्वा कम्यूनिकेशन टुडे वाल्यूम 13 अक्टूबर-दिसंबर 2011, पेज-71
- लूथरा, एच आर, इंडियन ब्राडकास्टिंग, प्रकाशन विभाग, दिल्ली, 1986
- कुमार, राकेश, इलेक्ट्रानिक मीडिया एवं साइबर पत्रकारिता, नटराज प्रकाशन, दिल्ली, 2009
- कुमार, डॉ अशोक, रेडियो और संगीत, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2011
- सिंह, डॉ महावीर, कठेरिया, धरवेश, रेडियो माध्यम और तकनीक, शिल्पायन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2013
- नंदा, वर्तिका, रेडियो जर्नलिज्म इन इंडिया, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2017
- विलियम्स, रेमंड, संचार माध्यमों का वर्ग चरित्र, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली, 2000
- भानावत, डॉ संजीव, रेडियो टीवी एवं फिल्म माध्यमों का दिग्दर्शन, जनसंचार केंद्र, राजस्थान यूनिवर्सिटी
- सिंह, डॉ देवव्रत, भारतीय इलेक्ट्रोनिक मीडिया, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
- कैक्लीश, राबर्ट, रेडियो प्रोडक्शन, संस्करण 5, फोकल प्रेस, लन्दन
- जोशी, पी सी, कम्युनिकेशन एंड नेशनल डेवेलपमेंट, 2002, अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली
- https://www-jagran-com/jharkhand/giridih&awernes&programme&20167373-ht ml
- K Malik Kanchan & Pavrala Vinod , The Struggle for community radio in India Sage Publication, Delhi , 2007
- https://groundreport-in/community&radio&and&women&empowerment/
- https://www-gaonconnection-com/stories/villagers&powerful&medium&information&community&radio
- https://www-pravakta-com/the&role&of&community&radio&has&increased&in&the&development&of&the&village
- http://mib.gov.in/sites/default /files/93-94_0.pdf
- https://www.trai.gov.in

प्राचीन भारतीय समाज मे स्त्रियों की भूमिका एवं स्थिति का पुनर्विलोकन

डॉ० नसरीन बेगम

एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास संस्कृति और पुरातत्व विभाग, हमीदिया गर्ल्स स्नातकोत्तर महाविद्यालय, (संघटक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय), प्रयागराज

मानव सभ्यता की गतिशीलता को मजबूत करने में स्त्रियों की अहम भूमिका है। एक सभ्यता की भावना को समझने और इसकी उत्कृष्टता की सराहना करने और इसकी सीमाओं को महसूस करने का सबसे अच्छा तरीका है कि इसमें स्त्रियों की स्थिति और इतिहास का अध्ययन किया जाय। समाज का कोई भी अध्ययन स्त्री के स्तर, उसकी भूमिका और स्थिति के अध्ययन के बिना अधूरा है साहित्यिक सर्वेक्षण यह अभिव्यक्त करता है कि स्त्रियाँ प्राचीन भारत में पुरूषों के समान अधिकार और स्तर का उपभोग कर रही थी (अल्टेकर, ए0एस0 2014)।

इस शोध पत्र का उद्देश्य प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति का पुनर्विलोकन करना हे और पत्र का आशय स्त्रियों के द्वारा प्राचीन काल में किस प्रकार कठिनाइयों का सामना किया गया उसकी जानकारी देनें है यह अध्ययन प्राचीन समय में स्त्रियों के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षिक और घरेलू मामलों में भागीदारी को भी रेखांकित करता है। इस पत्र की शोध प्रविधि पूर्णरूप से विवरणात्मक है और अपेक्षित जानकारी प्राचीन भारतीय साहित्यिक साक्ष्यों से एकत्रित की गयी है। धार्मिक ग्रन्थ जैसे वेद, उपनिषद, रामायण और महाभारत प्राचीन भारतीय समाज की सच्ची तस्वीर वर्णित करते हैं। मनुस्मृति, ऋग्वेद संहिता, शुश्रुत संहिता, स्मृतियाँ और पुराण आदि प्राचीन भारतीय इतिहास में स्त्रियों के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षिक और राजनीतिक स्थिति के मूल्याकंन के महत्वपूर्ण स्रोत है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्त्री को गौरवपूर्ण स्थान दिया गया है। स्त्री परिवार की धुरी है। धुरी के बिना पहिया में सही गतिशीलता हो ही नहीं सकती है। अत: स्त्री के संवेदन-सूत्र से ही परिवार के सदस्य परस्पर जुड़े रहते है। स्वामी दयानन्द सरस्वती का यह कथन सर्वथा सत्य प्रतीत होता है कि एक सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत स्त्री पूरे परिवार को सुशिक्षित एवं सुसंस्कारवान बना देती है। स्त्री के बिना पारिवारिक सृष्टि असंभव एवं अकल्पनीय है। इसीलिए उसे गृहस्वामिनी, गृहलक्ष्मी तथा सुगृहिणी आदि शब्दों से संबोधित किया गया है।

स्त्रियों की स्थिति में वैदिक काल से लेकर मध्यकाल तक अनेक उतार-चढ़ाव परिलक्षित होते हैं। बदलती हुई स्थितियों के अनुरूप स्त्री के सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों में भी विभिन्न कालों में अनेक परिवर्तन होते रहे।

वैदिक युग में स्त्री की दशा अत्यंत श्रेष्ठ थी। गृहस्थ जीवन में माता, पुत्री अथवा पत्नी के रूप में उसका बड़ा समादर तथा महत्वपूर्ण स्थान था। बालकों की भांति कन्याओं का भी उपनयन संस्कार सम्पन्न किया जाता था। उन्हें भी 8 वर्ष की उम्र हो जाने के पश्चात् शिक्षा ग्रहण का अधिकार प्राप्त था। स्त्री शिक्षा के परिणामस्वरूप ही इस काल में अनेक विदुषी एवं मंत्रदृष्टा स्त्रियों का प्राकट्य हुआ। इस युग की छात्राओं के दो वर्गों का उल्लेख मिलता है-1) सद्योद्वाहा तथा 2) ब्रह्मवादिनी। ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर शिक्षा प्राप्त करने वाली बालाएँ युवा काल में जब गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होती थी, तो उन्हें 'सद्योद्वाहा' कहा जाता था। ऐसी कन्याएँ माता बनकर गृहस्थ आश्रम एवं परिवार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती थी। सामान्यतया इनका विवाह 16 या 17 वर्ष की उम्र में संपन्न किया जाता था। वैदिक यज्ञों के संपादन में भी इनकी महत्वपूर्ण स्थिति रहती थी। उपनिषद् काल में 'ब्रह्मवादिनी' बालाओं की लंबी परम्परा मिलती है। ये बालाएँ शिक्षा-प्राप्ति के उपरांत विवाह नहीं करती थी, अपितु वे अपना संपूर्ण जीवन ब्रह्मचिंतन तथा ब्रह्मसम्बंधी व्याख्यान करने में समर्पित करती थी। वे संपूर्ण जीवनपर्यंत तपस्यारत रहतीं तथा ज्ञान एवं ब्रह्मचिंतन में अपने युग के बड़े-बड़े ऋषियों से बढ़-चढ़ कर प्रतिष्ठित थीं। बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य के समान ज्ञानी तथा ब्रह्मवादिनी दो नारियों-गार्गी तथा मैत्रेयी का विशद् उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार विश्ववारा को भी 'ब्रह्मवादिनी' कहा गया है। मंत्र-दृष्टा विदुषी नारियों में लोपामुद्रा, अपाला, घोषा, सिकता, विशपला, मुद्गलानी, निवापरी आदि विशेष समादृत नाम है। दार्शनिक चिंतन तथा मंत्रदर्शन के अतिरिक्त इस काल में अध्यापन करने वाली 'उपाध्याया' नारियाँ भी विद्यामन थीं, जिनका उल्लेख पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' में किया हैं।

वैदिक काल में 'गृह' एवं पत्नी' दोनों लगभग एकार्थक हो गए थे। बिना पत्नी के 'गृह' संस्था स्वत्वहीन कही जाती थी। ऋग्वेद में एक स्थल पर वधू को गृह की साम्राज्ञी (साम्राज्ञी स्वसुरे भव, साम्राज्ञी अधिदेवेषु) कहा गया है। वधू अपने पति के साथ गृहस्थी के सभी कार्यों में मुक्त भव से सहयोग करती थी। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि वह पति के साथ याज्ञिक कर्म संपन्न करती थी तथा उसका समाज में स्थायी एवं गौरवशाल स्थान था। पुरूषों के समान स्त्री को भी शिक्षा -प्राप्ति का अधिकार था। वृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार माता-पिता सुशिक्षिता कन्या-जन्म के लिए प्रार्थना किया करते थे (अथ य इच्छेद् दुहिता में पण्डिता जायेत सर्वमायुरियादिति तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवै)। बालकों की भांति बालिकाएँ भी ब्रह्मचर्याश्रम के

नियमों का सम्यक् अनुपालन करती हुई पूरी शिक्षा ग्रहण करने की अधिकारिणी थीं। इनमें कुछ ऐसी विदुषी नारियाँ भी हुई, जो जीवनपर्यन्त ज्ञान-साधना में संलग्न रहती थी तथा जिन्हें 'ब्रह्मवादिनी' अभिधान प्राप्त था। स्त्रियाँ पुरूषों के समान यज्ञोपवीत धारण करती थीं। गोभिल गृह्यसूत्र में विवाह के समय वर को दी जाने वाली कन्या के लिए 'यज्ञोपवीतनीय' (यज्ञोपवीत धारण करने वाली) शब्द का प्रयोग मिलता है। पत्नियाँ अपने पति के साथ यज्ञ में हाथ बँटाती थी। (''अयज्ञो वा होष योडपत्नीक:'', तैत्तिरीय ब्राह्माण 2.2.2.6)। इस प्रकार ऋग्वैदिक कालीन समाज में स्त्री की स्थिति उत्तम थी। वे वैदिक साहित्य का अध्ययन-मनन कर सकती थी तथा स्वयं मंत्र दृष्टा भी हो सकती थी। वे देवताओं की उपासना तथा यज्ञ कर सकती थी। तत्कालीन समाज में उनके विवाह में विशेष कठिनाई नहीं थी। विधवा भी पुनर्विवाह करने तथा नियोग के लिए स्वतंत्र थीं। विधवाएँ समाज पर बोझ नहीं समझी जाती थीं।

उत्तरवैदिक काल में नारी की सामाजिक स्थिति में किन्वित् गिरावट के संकेत मिलते हैं। इस काल में कन्यायें पुत्रों की भाँति पूर्वजों की पूजा के लिए यज्ञ करने की अधिकारिणी नहीं रह गई थीं। इस काल में नारी के व्यक्तित्व में कतिपय मूलभूत कमियों को भी इंगित किया जाने लगा। मैत्रीयणी संहिता एवं शतपथ ब्राह्मण में उसे कतिपय स्थलों पर अनृत एवं असत्यभाषी कहा गया है। क्रय द्वारा विवाह की गई स्त्री पर यह दोष लगाया जाने लगा कि वह परपुरूष के साथ मानसिक अथवा कायिक संपर्क भी रख सकती है। तैत्तिरीय संहिता में उसे पुरूषों के साथ यज्ञीय सोम में भाग लेने से भी वंचित किए जाने का उल्लेख मिलता है। एक ओर जहाँ ऋग्वैदिक काल में नारी को अपने पिता तथा श्वसुर दोनों गृहों में सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त था, वहीं उत्तर वैदिक काल में उसको सम्पत्ति के अधिकार से धीरे-धीरे वंचित किया जाने लगा। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि ''कन्या विवाह हो जाने के उपरान्त भी धन प्राप्त करने के लिए अपने पितृकुल में आती रहती थी (''अभ्रान्तेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धना नाम', ऋग्वेद 1, 124, 7)। ऐसी अविवाहित कन्याएँ भी अपने पिता की सम्पत्ति की हकदार होती थीं, जो वहीं पलती हुई बूढ़ी हो जाती थी'' (अमाजूरिव पित्रो: सवा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम्। कृषि प्रकेतमुप मास्वाभरवृद्धि भागं तन्वो येन मामह:।।), परन्तु उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों को धीरे-धीरे उनके सम्पत्ति के अधिकार से वंचित किया जाने लगा। तैत्तिरीय संहिता में एक स्थल पर कहा गया है कि स्त्रियों को दाय की इच्छा नहीं करनी चाहिए क्योंकि वे तो 'अदायादी' होती है। इसी बात की पुष्टि शतपथ ब्राह्मण से भी होती है, जिसमें पत्नी को जायदाद से वंचित बताया गया है। (शतपथ ब्राह्मण, 4, 4, 2, 13)। फिर भी, उपनिषदों तथा उपर्युक्त ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रारम्भिक उत्तर वैदिक युग में स्त्री की दशा ऋग्वैदिक युग की तुलना में किन्चित् खराब अवश्य हो रही थी तथापि परवर्ती सूत्रकाल की तुलना में श्रेष्ठतर थी। ब्राह्मण ग्रन्थों से पता चलता है कि यज्ञ के समय मंत्रों के गायन का कार्य होता की पत्नी ही करती थी। उपनिषद् काल में गार्गी, मैत्रेयी, आत्रेयी प्रभृति सुयोग्य नारियों को महान वैदिक दार्शनिकों के समान समादर प्राप्त था।

रामायण एवं महाभारत में प्राप्त उल्लेखों से ज्ञात होता है कि महाकाव्य काल में नारी की सामाजिक स्थिति अच्छी एवं संतोषजनक थी। वे स्वतंत्रतापूर्वक धार्मिक कृत्यों, पर्वों तथा सामाजिक उत्सवों में पुरूषों के समान भाग ले सकती थी। रामायण में सीता का राम के साथ वनगमन तथा महाभारत में द्रोपदी का पाण्डवों के साथ वनवास में भ्रमण नारी की स्वत्रंत सामाजिक स्थिति को इंगित करता है। महाभारत में भीष्म पितामह के द्वारा यह कहलवाया गया कि स्त्री सदा स्नेह और आदर की पात्रा है। इसको दिए जाने वाले समादर भाव से देवता गण प्रसन्न होते है। स्त्रियों के अनुपस्थिति में किये जाने वाले सामाजिक एवं धार्मिक कृत्य अपवित्र हो जाते है। इसी प्रकार रामायण में सीता को बहुत आदरणीय एवं आदर स्त्री के रूप में वर्णित किया गया है। फिर भी जैसा कि महाभारत में प्राप्य भीष्म-युधिष्ठिर संवाद से ज्ञात होता है कि स्त्रियों को प्रत्येक वय में पुरूष के संरक्षण अथवा नियत्रंण में रहना ही श्रेयस्कर एवं उचित माना गया है।

महाकाव्य काल में स्त्रियों की दशा उतकी अच्छी नहीं रह गयी थी जितनी वैदिक काल में थीं यद्यपि कैकेयी, कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी जैसी प्रभावशाली स्त्रियाँ थी जो राजकीय विचारों और नीतियों तक को नियंत्रित करती थी। अभिजात और समृद्ध लोगों में बहुपत्नी विवाह का व्यापक प्रचलन दृष्टिगत होता है। कन्यायें स्वयंवर में अपने पति का वरण करती थी। सती प्रथा का भी उल्लेख मिलता है।

इस काल में स्त्रियाँ शिक्षा प्राप्त करती थी। भार्या के रूप में नारी को श्रेष्ठतम सखा कहा गया है। महाभारत में माता के रूप में स्त्री की स्तुति सर्वाधिक की गयी है। राजधर्म का उपदेश देते हुए भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा था कि अकेली माता ही अपने गौरव के द्वारा समस्त पृथ्वी को तुच्छ बना देती है। अत: माता के समान कोई दूसरा गुरू नहीं है। पिता की कृपा से यह लोक, माता की सेवा से परलोक तथा गुरू की कृपा से ब्रह्मलोक में विजय प्राप्त होती है। (ओझा, श्रीकृष्ण 2017 पृष्ठ संख्या 4)।

इस समय भी अनेक स्त्रियाँ मन्त्रविद् और विदुषी थी जैसे- अनुसूइया, कौशल्या, कुन्ती, सुलोचना, कैकेयी, अत्रेयी और कामन्दकी आदि।

रामायण में सीता के माध्यम से एक आदर्श स्त्री का चित्र चित्रित किया गया है। जिसके माध्यम से महिलाओं की स्थिति व अधिकारों का बोध होता है। (ओझा, श्रीकृष्ण, 2017 पृष्ठ 6) पति पत्नी की विशुद्ध प्रीति एवं माता-पिता, पुत्र आदि संबंधों का पालन, सामाजिक सम्बन्धों का उचित निर्वाह कुशलता से दर्शाया गया है। परिवार में पति के प्रभुत्ता रखने पर भी पत्नी की प्रभुत्ता में कोई कमी नहीं थी। पति के साथ पत्नी का भी राज्याभिषेक किया जाता था। पितृ तर्पण का भी उन्हें अधिकार प्राप्त था। वे यज्ञों में भी भाग लेती थी। रामायण काल में स्त्रियों के धार्मिक अधिकार अत्यन्त व्यापक थे। स्त्रियों के लिए पतिव्रत धर्म को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी थी। वह पुरूष की सहयोगिनी थी। गृह की संचालिका थी। विधवा का पुनर्विवाह नहीं होता था विधवा नारियाँ या तो सती हो जाती थी या तपोनिष्ठ जीवन व्यतीत करती थी (सिंहल, लता, 1991 पृष्ठ संख्या 45-47)।

सूत्र साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि स्त्रियों की सामाजिक दशा अत्यंत ह्रासोन्मुखी हो चुकी थी। कन्यायें यज्ञोपवीत संस्कार, शिक्षा और वैदिक मंत्रोचारण करने से वंचित की जाने लगी। कन्याओं का विवाह कम उम्र में किया जाने लगा तथा विवाह को ही इसका यज्ञोपवीत संस्कार का विकल्प मान लिया गया। मनु के अनुसार पति ही कन्या का गुरू, विवाह ही यज्ञोपवीत संस्कार तथा पति की सेवा गुरू आश्रम की सेवा तथा गृहस्थी के दिनोदिन कार्य सम्पादन ही उनके धार्मिक कृत्य है।

''वैवाहिको विधिः स्त्रिणां संस्कारो वैदिको मतः।
पतिसेवा गुरौर्वासो गृहार्थोग्नि परिक्रियाः।।''

स्मृतियो के काल में कन्या के विवाह की उम्र घटा कर बारह वर्ष के भीतर मनोनीत कर देने से उसकी शिक्षा भी बाधित होने लगी। उपनयन संस्कार से वंचित कन्याओं की सामाजिक स्थिति शूद्रों के समान होती गई। परन्तु इस प्रकार की स्थिति राज परिवार की स्त्रियों की नहीं थी। उन्हें ललित कला, संगीत आदि चौसठ कलाओं की शिक्षा दिए जाने का विधान मिलता है।

सूत्रकाल में स्त्रियों की स्वतंत्रता पर नियंत्रण रखने को मान्यता दी गई। वशिष्ठ धर्मसूत्र में यह निर्वचन प्राप्त होता है कि 'स्त्री को स्वतंत्रता रखना ठीक नहीं होता है।' सूत्र ग्रन्थ के अनुसार बचपन में पिता, युवावस्था में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र स्त्री की रक्षा करते है:

''पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्राः न स्त्री स्वातन्त्रमर्हति।।''

मनु ने तो यहाँ तक व्यवस्था दी है कि पति के चरित्रहीन अथवा दुराचारी होने पर भी पत्नी के लिए यही उचित है कि वह अपने पति की देवता के समान सेवा करें:-

''विशीलः कामवृत्तो वा गुणैवः परिवर्जितः।
उपचर्यः स्त्रिया साध्या सततं देववत्पतिम्।।

मनुस्मृति, याज्ञवलक्य स्मृति, पाराशर स्मृति, नारद स्मृति, बृहस्पति स्मृति, कात्यायन स्मृति आदि सभी स्मृतियों में यह वर्णन मिलता है कि गर्भाधान से शमशान पर्यन्त की समस्त क्रियायें वैदिक मंत्रों से सम्पन्न की जाती थी। सभी संस्कार स्त्रियों के लिये भी किये जाते थे परन्तु वे मंत्र रहित होते थे। स्त्रियों के केवल विवाह संस्कार में वैदिक मंत्र पढ़े जाते थे। बाल विवाह का प्रचलन था। व्यास और गौतम ने कन्या को स्वयं वरण का अधिकार दिया है। विवाह को समस्त संस्कारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। अतः स्मृतिकारों ने ब्रह्मचर्य के पश्चात् गृहस्थ आश्रम को अनिवार्य माना। सभी स्मृतियों में गृहस्थ आश्रम की प्रशंसा की गयी है। इसी में रहकर व्यक्ति सारे धार्मिक कृत्य सम्पन्न करता था। अतः धर्म, अर्थ, और काम की सिद्धि का श्रेष्ठतम साधन पत्नी को माना गया है। स्मृतियों में पिता के अतिरिक्त अन्य सम्बन्धियों को भी कन्यादान का अधिकार दिया गया है। सभी स्मृतियों में विवाह में कन्या को उत्तम अलंकार एवं आभूषण देने की स्पष्ट चर्चा प्राप्त होती है। यह एक प्रकार का स्त्रीधन होता था। पति की सेवा ही पत्नी का मुख्य धर्म था।

ईसा पूर्व द्वितीय शतब्दी से ईसा की तीसरी शताब्दी तक उत्तरी भारत के विभिन्न क्षेत्रों पर विदेशी जातियों के आक्रमण एवं शासन स्थापन का क्रम चलता रहा। फलतः इन आक्रमणों के कारण समाज में अव्यवस्था व्याप्त रही। इस प्रकार की अव्यवस्था का प्रभाव सर्वाधिक नारी पर ही पड़ा। इस काल में कन्या के पुनर्विवाह की व्यवस्था अथवा नियोग प्रथा बहुत प्रचलन में नहीं रह गयी थी फलतः स्त्रियों के लिए पुनर्विवाह का मार्ग बन्द हो जाने की स्थिति में उनके लिए बिक्षुणी बनना अथवा संयास ग्रहण करना ही अभिष्ट रह गया था। सती प्रथा जिसकी प्राचीनता ऋग्वेद काल तक मानी जाती है तथा जिसे रामायण काल में कुछ समय के लिए अच्छा नहीं माना जाता था, को सूत्र तथा स्मृतियों के काल में पुनः मान्यता मिलने लगी। फलतः स्त्रियों की स्थिति बद से बदतर होती चली गयी। परन्तु स्मृतियों में जहाँ एक ओर स्त्री की सामाजिक स्थिति में गिरावट को निरूपित किया गया है, वहीं दूसरी ओर उनके बढ़ते हुए आर्थिक अधिकार पर भी विपुल प्रकाश डाला गया है। मनु के अनुसार विवाह के समय प्राप्त धन, पतिग्रह जाते समय पारिवारिकजनों से प्राप्त धन तथा माता-पिता, भाई आदि से प्राप्त धन पर विवाहिता स्त्री का ही अधिकार होता है।

''अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीति कर्मणि।
भातृ मातृ पितृ प्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्।।''

मिताक्षरा (याज्ञवाल्क्य स्मृति 2, 143, 44) के अनुसार विवाह होने के उपरान्त ससुराल में श्वसुर, सास तथा पादवन्दानादि प्रथा के फलस्वरूप मिलने वाली धन सम्पत्ति पर भी वधू का ही अधिकार मन्तव्य है:-

''पितृ मातृपति भातृ दत्तमध्यान्युपागतम्।
आधिवेदनिकाद्यान्च स्त्रीधनं परिकीर्तितम्।।''

इतना ही नहीं, अपरार्क ने तो यहाँ तक कहा है कि परिवार में सम्पत्ति विभाजन के समय माता अथवा पत्नी का पुत्र के समान ही समान अंश अथवा भाईयों के अंश के चतुर्थांश भाग को स्त्रीधन स्वीकार किया जाना चाहिए। इस प्रकार मनु, याज्ञवाल्क्य तथा अन्य स्मृतियों में यह विधान मिलता है कि पति द्वारा, पिता द्वारा अथवा उत्तराधिकार में प्राप्त धन सम्पत्ति स्त्री धन होता है। याज्ञवाल्क्य ने तो यहाँ तक माना है कि असुर विवाह में कन्या के हेतु परिवार वालों को मिलने वाला भी स्त्री धन है।

''अप्रजस्त्रीधनं भर्तृब्राह्मादिषु पर्ष्वपि।
दुहितृणां प्रसूता चेच्छेषु पितृणामि तत्।।''

स्मृतियों ने स्त्री धन को बहुशः आलोकित करने का प्रयत्न किया है। मनु के अनुसार इसके अन्तर्गत स्त्री परिवार की भूमि-भवन आदि ही नहीं अपितु मूल्यवान वस्त्राभूषण आदि भी समाहित होते है, जिन्हें वह उपयोग किया करती है।

''स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति मानवाः।
नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापा यान्त्यधोगतिम्।।''

कात्यायन ने तो यहाँ तक व्यवस्था दी है कि स्त्री अपने स्त्री धन को आवश्यकता पड़ने पर बंधक अथवा विक्रय कर सकती है। कात्यायन के इस कथन की संपुष्टि जीभूतवाहन ने भी ''दाय भाग'' में किया है।

''सौदायिके सदा स्त्रीणां स्वातंत्रयं परिकीर्तितम्।
विक्रये चौव दाने च यथेच्छ स्थावरेष्वपि।।''

एक ओर जहाँ स्मृतिकारों ने स्त्री धन में नारी के अधिकारों की स्थिति स्पष्ट की है। वहीं दूसरी ओर धर्मशास्त्र ग्रन्थों में स्त्री धन को पति अथवा परिवार के अन्य सदस्यों के द्वारा उपयोग में लाने पर कतिपय कड़े प्रतिबन्धों का प्राविधान किया है। पति अत्यन्त विपरीत स्थितियों में यथा व्याधिग्रस्त होने पर, दुर्भिक्ष पड़ने पर अथवा धर्म-कार्यों पर ही स्त्री धन को उपयोग में लाने का अधिकारी हो सकता है। नारद स्मृति में कहा गया है कि ''विपरीत परिस्थिति में नारी केवल अपनी चल सम्पत्ति ही बेच सकती है न कि अचल सम्पत्ति''। इस बात को परवर्ती धर्मशास्त्रों ने भी दुहराया है। विज्ञानेश्वर ने स्त्रीधन की उत्तराधिकारिणी पुत्री को बताया है तथा पितृधन का उत्तराधिकारी पुत्र को। परन्तु पराशर का अभिमत् है कि स्त्रीधन अप्रदत्ता अर्थात् अविवाहित पुत्रियों को ही मिलना शास्त्र विहित है। यदि पुत्रियाँ प्रदत्ता अर्थात् विवाहित हों तो उन्हें परस्पर समान भाग मिलना चाहिए। लेकिन व्यभिचारिणी, निर्लज्जा, अपचार, क्रियारता अथवा व्यर्थव्ययी कन्याओं को चाहे वे विवाहित हो अथवा अविवाहित, दोनों ही स्थितियों में स्त्रीधन की अधिकारिणी नहीं हो सकती हैं।

इस प्रकार धर्मशास्त्रकारों ने स्त्री धन की विशद् व्याख्या प्रस्तुत करके नारी की सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियों को स्पष्ट किया है। उदार शास्त्रकारों ने पति अथवा पिता के अभाव में नारी की सामाजिक-आर्थिक परेशानियों को ध्यान में रखकर उसके जीवनयापन आदि के लिए स्त्री धन पर उसके विशिष्ट अधिकार को वैधानिकता प्रदान किया है। किन्तु कतिपय अनुदार धर्मशास्त्रकारों ने नारी को स्वतंतत्रापूर्वक स्त्री धन के उपयोग पर किन्चित प्रतिबन्ध भी लगाया है। अस्तु, धर्मसूत्रों से लेकर स्मृतियों तक जहाँ एक ओर नारी को शिक्षा तथा यज्ञादि कार्यों में खुलकर भाग लेने को प्रबल समर्थन देना उचित नहीं समझा था, वहीं दूसरी ओर पूर्व मध्ययुगीन धर्मशास्त्रकारों ने नारी के सामाजिक एवं आर्थिक स्वातंत्रय को 'स्त्री धन' पर उसके पूर्ण स्वामित्व को विधिसम्मत बताकर उसकी किन्चित् समुन्नत दशा को आलोकित करने का प्रयत्न किया है।

बौद्ध साहित्य में तीन प्रकार के विवाहों का उल्लेख है-

प्राजापत्य, स्वयम्बर और गन्धर्व (कोवेल, ई.बी. 2011 पृष्ठ 226-228) सामान्यतया विवाह प्राजापत्य पद्धति से होता था। परम्परागत प्रथा के अनुसार समान जाति और स्थिति के कुलों में माता पिता की इच्छानुसार वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया जाता था। परन्तु स्वयम्बर तथा गन्धर्व विवाहों के भी अनेक उदाहरण बौद्ध साहित्य में मिलते है और इन्हें भी धर्मानुकूल समझा जाता था। जाति के बाहर विवाह भी उस समय प्रचालित थे। कन्याओं का विवाह सामान्यतया सोलह वर्ष की आयु में किया जाता था। बाल विवाह की प्रथा उस समय प्रचलित नहीं थी। बौद्ध काल में विवाहों में दहेज की प्रथा भी प्रचालित थी जैसे धम्मपद टीका में श्रावस्ती के श्रेष्ठी मिगार की कथा जिसमें मिगार ने अपनी कन्या विशाखा को विवाह में 54 कोटि धनराशि विवाह के अवसर पर दी थी। कोशल के राजा महाकोशल ने मगधराज बिम्बसार के साथ अपनी कन्या कोशल देवी का विवाह करते हुये काशी का एक ग्राम प्रदान किया था। जिसकी आमदनी एक लाख वार्षिक थी यही ग्राम फिर वाजिरा के विवाह के अवसर पर अजातशत्रु को प्रदान किया गया था।

बौद्ध काल में बहु विवाह की प्रथा प्रचलित थी बहु विवाह को बहुत से दृष्टांत बौद्ध साहित्य में उपलब्ध होते हैं। विवाह के लिये मुहूर्त देखने की (कोवेल, ई.बी. 1895: पृष्ठ 295-296) पद्धति बौद्ध काल में भी प्रचलित थी (कोवेल, ई.बी. 1895, पृष्ठ 125) नक्खत्त जाति में राजा ब्रह्मदत्त द्वारा विवाह के लिए उपयुक्त मुहूर्त्त के सम्बन्ध में कुल पुरोहित से पूछने का वर्णन आता है इसी की पुष्टि दीघ निकाय से भी होती है (दीध निकाय, बाल्यूम 1 पृष्ठ 11) बौद्ध काल में स्त्री शिक्षा का भी प्रचार था और अनेक विदुषी तथा सुशिक्षित महिलाओं का परिचय बौद्ध साहित्य के अध्ययन में मिलता है। संयुक्त निकाय में एक महिला का उल्लेख है जो वाग्मिता में अत्यन्त प्रवीण थी। उसका नाम था, सुक्का। यह एक भिक्षुणी थी और इसकी वक्तृता शक्ति अपने समय में अद्वितीय मानी जाती थी।

भिक्षुणी खेमा विनय में पारंगत थी। वह अत्यन्त विदुषी, बुद्धिमती, वाग्मी, सुशिक्षता और प्रतिभा से युक्त थी। उसकी कीर्ति इतनी विस्तृत थी कि कौशल देश का राजा प्रसेनजित उसकी सेवा में गया और उसने अनेक दार्शनिक विषयों पर विचार किया। इसका विवाह मगध के प्रसिद्ध सम्राट बिम्बिसार के साथ हुआ था, परन्तु महात्मा बुद्ध के संसर्ग में आकर इसने भिक्षु जीवन स्वीकृत कर लिया था और राजप्रसाद के सम्पूर्ण सुखों को ठुकराकर भिक्षुणी बन गयी थी।

भद्धा राजगृह के एक अत्यन्त समृद्धिशाली श्रेष्ठी की कन्या थी परन्तु इसमें भी सामान्य गृहस्थ का जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा भिक्षुणी बनना स्वीकृत किया। यह निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गयी थी और निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय की सम्पूर्ण शिक्षाओं में यह पूर्ण रूप से पारंगत थी और एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिभ्रमण करती हुयी उनकी प्रचार करती थी। बाद में इसने निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय का परित्याग कर बौद्ध धर्म को स्वीकृत कर लिया। धम्मदिन्ना राजगृह की रहने वाली थी और इसका विवाह एक समृद्ध श्रेष्ठी के साथ हुआ था। महात्मा बुद्ध के उपदेश सुनकर उसके जीवन में भारी परिवर्तन आ गया और उसने धम्म का अनुशीलन करना प्रारम्भ किया। शीघ्र ही वह 'धम्म' में पारंगत हो गयी थी और महात्मा बुद्ध उससे बहुत प्रसन्न हुये थे।

संघमित्रा तीनों विद्याओं में पारंगत थी। वह तन्त्रविद्या में भी प्रवीण मानी जाती थी। विनय पिटक का अध्ययन उसने बड़ी गम्भीरता के साथ किया था। इसी प्रकार अन्जली भी विविध विद्याओं की प्रसिद्ध विदुषी थी। यह भी संघमित्रा के समान विनय पिटक में इतना पाण्डित्य प्राप्त कर चुकी थी कि दूसरों

को इसकी शिक्षा दे सकती थी। अन्य भी अनेक महिलायें बौद्ध धर्मग्रन्थों की पारंगत पण्डितायें थी। उत्तरा, काली, सुपत्रा, चन्ना, उपाली और रेवती आदि अनेक महिलाओं के सम्बन्ध में बौद्ध ग्रन्थों में यह बात उल्लिखित है कि वे विनय पिटक में पारंगत थी और उसका अध्यापन सफलता के साथ कर सकती थी। इस काल में स्त्रियों को भी पुरूषों के समान शिक्षा प्राप्त करने की सुविधायें प्राप्त थी उनकी शिक्षा को एक असम्भव तथा व्यर्थ की बात नहीं माना जाता था। अन्यथा इतनी शिक्षित महिलाओं का बौद्ध धर्म में पारंगत होना और उसके प्रचार के लिये प्रयत्न करना अद्‌भुत प्रतीत होता है।

बौद्ध काल में स्त्रियाँ शिक्षा ग्रहण करती थी इसका उल्लेख दिव्यावदान में मिलता है जहाँ स्त्री विद्यार्थिनियों का उल्लेख किया गया है। प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ 'थेरीगाथा' में उन कविताओं का संग्रह है जिनका निर्माण बौद्ध भिक्षुणिओं द्वारा हुआ था यह ग्रन्थ इस बात का प्रमाण है कि बौद्ध काल में जिस नवीन साहित्य का विकास हो रहा था। उसमें स्त्रियाँ भी अपना योगदान दे रही थी और उन्होंने भी बौद्ध साहित्य की प्रगति में महत्वपूर्ण कार्य किया था (अंगुत्तर निकाय, पृष्ठ 226-268)।

बौद्ध धर्म के इतिहास में भिक्षुणी संघ का बड़ा महत्व है। जिस प्रकार महात्मा बुद्ध के उपदेशों से प्रभावित हो कर बहुत से पुरूषों ने सांसारिक जीवन का त्याग कर मनुष्य जाति की सेवा करने के लिये भिक्षुव्रत स्वीकृत किया था इसी प्रकार उस समय की बहुत सी स्त्रियों ने भी सांसारिक सुखों को छोड़कर मानव सेवा का कठोर व्रत धारण किया था। बौद्ध धर्म के प्रचार में इन भिक्षुणियों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। देश विदेश में गौतम बुद्ध की शिक्षाओं को प्रसारित करने में इन भिक्षुणियों ने बहुत काम किया था। (कोवेल, ई.बी. 2010, पृष्ठ 239-40)। बौद्ध काल की स्त्रियों का काम केवल गृहस्थ जीवन तक ही सीमित नहीं था बल्कि उन्होंने अपने जीवन को अधिक विस्तृत क्षेत्र में लगाया था। बहुत सी स्त्रियों ने अपने गृहों का परित्याग कर भिक्षुणी बनना स्वीकार किया था और धीरे-धीरे भिक्षु संघ के समान भिक्षुणी संघ भी निरन्तर उन्नति करता गया था।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में जिस समाज की परिकल्पना है उसमें स्त्रियों को पुरूषों की तुलना में गौण स्थान प्राप्त था स्त्रियों के प्रति ब्राह्मण ग्रन्थों का यह सामान्य दृष्टिकोण है इसकी तुलना में बौद्ध दृष्टिकोण अधिक उदार है। स्त्रियाँ भिक्षुणी बनकर संघ में प्रवेश करने को स्वतंत्र थी स्वयं अशोक की पुत्री संघमित्रा ने भिक्षु जीवन ग्रहण किया था। अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि वे गुप्तचरों और अंग रक्षिकाओं का भी कार्य करती थी। मेगस्थनीज ने इण्डिका में चन्द्रगुप्त की महिला अंग रक्षिकाओं का उल्लेख किया है और लिखा है कि कुछ स्त्रियाँ रथों पर, कुछ अश्वों पर और कुछ हाथियों पर आरूढ़ होती है और वे प्रत्येक प्रकार के अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित रहती है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों वे किसी सशस्त्र अभियान के लिए जा रही है। बहुविवाह प्रथा, विधमान थी। मेगस्थनीज ने भारतीय द्वारा कई पत्नियाँ रखे जाने का उल्लेख किया है। वे अपने पतियों के साथ धार्मिक कृत्यों में पूर्ण रूप से भाग लेती थी।

अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि मौर्य काल में कन्याओं का जन्म गौरव का विषय था। कन्याओं की शिक्षा का भी ध्यान रखा जाता था। अर्थशास्त्र में आठ प्रकार के विवाहों का वर्णन है- ब्रह्म, प्राजापत्य, आर्य, देव, आसुर, गान्धर्व, राक्षस, पैशाच।

ब्रह्म, प्राजापत्य, आर्य और देव विवाह धर्म सम्मत थे। सामान्यतया स्त्रीधन खर्च नहीं किया जाता था लेकिन विशेष परिस्थितियों में इसको खर्च करने की अनुमति अर्थशास्त्र में प्रदान की गयी है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि उस काल में विवाहित स्त्रियों को अनेक प्रकार के बन्धनों में रहना पड़ता था। कौटिल्य ने लिखा है कि यदि कोई स्त्री पति के घर से बाहर जाय तो उसे छः पण दण्ड दिया जाय। मौर्य काल में स्त्रियाँ प्रायः घर में ही रहा करती थी। कौटिल्य ने केवल कुछ विशेष दशाओं में ही स्त्रियों को बाहर जाने की छूट दी। इस काल में ऐसी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है जो परिव्राजिका, दासी, भिक्षुणी, नर्तकी आदि के वेश बनाकर राज्य के गुप्तचर विभाग में कार्य करती थी इसके अलावा कुछ स्त्रियाँ गणिका या वेश्या के रूप में भी स्वतंत्र जीवन व्यतीत करती थी और वे भी सम्मान की पात्र मानी जाती थी।

इस समय के समाज ने सामान्यतः बालिकाओं को शिक्षा दी जाती थी और उनका उपनयन सम्बन्धी संस्कार भी होता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कन्याओं को वैदिक एवं साहित्यिक शिक्षा दी जाती थी।

शुङ्ग-सातवाहन काल में स्त्री का समाज में सम्मानपूर्ण स्थान था वह अपने पति के साथ धार्मिक कार्य सम्पन्न करती थी। अन्तर्जातीय विवाह उस समय सम्मान की दृष्टि से नहीं देखे जाते थे परन्तु, सहिष्णु होने के नाते स्वयं सातवाहन नरेशों ने अब्राह्मण कन्याओं से विवाह किये थे। राजाओं के नाम के पहले उनकी माताओं के नाम होने से स्त्रियों की प्रमुखता स्पष्ट दिखाई पड़ती है। शातकर्णि प्रथम की विधवा पत्नी नागानिका ने अपने कुमारों की अभिभाविका के रूप में शासन चलाया था। नागानिका अपने पति के साथ दो अश्वमेघों में भी सम्मिलित हुयी थी। पाणिनी ने स्वतंत्र बालिका विद्यालय का उल्लेख किया है। जो स्त्री की उन्नति की दिशा में समाज द्वारा किया जाने वाला प्रयास है।

गुप्त कालीन समाज में स्त्रियों को उच्च स्थान प्राप्त था। गुप्त राजाओं की वंशावलियों में पिता के साथ-साथ माता का भी नाम मिलता है। चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्ता ने अपने वाकाटक पति की मृत्यु के बाद अपने पुत्रों की कम आयु के कारण कुछ दिनों तक खुद शासन कार्य चलाया था। इस समय भी धार्मिक कार्यों को करते समय पति के साथ पत्नी का रहना आवश्यक समझा जाता था। समाज में विधवा विवाह प्रचलित था। अनमेल विवाह भी होते थे। सती प्रथा का भी प्रचलन था उदाहरणार्थ भानुगुप्त के सेनापति गोपराज की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी अपने पति की चिता में जल कर मरी थी। मृच्छकटिका नाटक में भी चारूदत्त की पत्नी को सती होने के लिए प्रस्तुत दिखाया गया है।

गुप्त कालीन मूर्तियों और साहित्यिक ग्रन्थों से पता चलता है कि लोग सुन्दर वस्त्र, विभिन्न प्रकार के आभूषण एवं केश सज्जा से अपना सौन्दर्य बढ़ाते थे। अजन्ता के चित्रों में स्त्रियों का अत्यन्त सुन्दर केश-श्रृंगार देखा जा सकता है। कालिदास के ग्रन्थों में केशों को पुष्पों से सजाने का उल्लेख मिलता है। स्त्रियाँ नेत्रों में काजल और ओठों पर अंगराग चढ़ाती थी। स्त्री पुरूष दोनों आभूषण पहनते थे।

इस समय के स्मृतिकारों ने अपने ग्रन्थों में पिताओं के लिए यह निर्देश दिया है कि अनिवार्य रूप से अपनी कन्याओं का विवाह यौवनावस्था प्राप्त करने से पूर्व ही कर दे किन्तु इस बात के भी प्रमाण मिलते है कि उच्चयुगीन परिवारों में स्त्रियों को शिक्षा अवश्य प्रदान की जाती थी। इस समय आश्रम पद्धति प्रचलित थी आश्रमों में आश्रमवासिनी कन्यायें इतिहास और पुराण का अध्ययन अध्यापन करती थी। अमर कोश में स्त्री शिक्षिकाओं के लिये उपाध्याया और उपाध्यायी शब्द प्रयुक्त है तथा वैदिक मन्त्रों की शिक्षा देने वाली विदुषी स्त्रियों का उल्लेख भी मिलता है। कन्याओं का विवाह 12 या 13 वर्ष की अवस्था में हो जाने से उनका उपनयन संस्कार नहीं होता था। विवाह साधारणतया अपनी जाति में ही होते थे परन्तु अन्तर्जातीय विवाह भी प्रचलित थे। वाकाटक राजा रूद्रसेन ब्राह्मण थे। उसने गुप्त कुलोत्पन्न राजकुमारी प्रभावती गुप्ता से विवाह किया था। कदम्बराजा भी ब्राह्मण थे उन्होंने भी गुप्त वंशीय राजकुमारियों से विवाह किया था।

गुप्तोत्तर काल से ही भारत भूमि पर विदेशी आक्रमण होने लग गये थे। इन आक्रमणों से भारतीय समाज पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। जिसके कारण माता-पिता अपनी पुत्रियों का विवाह कम आयु में ही करने लग गये थे। बाल विवाह प्रथा इस समय प्रचलित थी इस समय अनेक ऐसे उदाहरण मिलते है। जिसमें कन्या के विवाह की आयु 8-10 वर्ष पायी गयी है। हर्ष की बहन राज्य श्री का विवाह भी लगभग 11-12 वर्ष की आयु में ही हो गया था इस काल में 8 वर्ष की आयु की लड़की को ''गौरी'' तथा 10 वर्ष की लड़की को 'कन्या' कहा गया है। स्त्रियों का विवाह कम आयु में होने से सर्वाधिक प्रभाव उनकी शिक्षा पर पड़ा था। हर्ष कालीन समाज में उच्च वर्ग की स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार था। राजकुमारी राज्यश्री को संगीत एवं नृत्य की शिक्षा दी गयी थी। हर्ष द्वारा रचित प्रियदर्शिका नाटिका में राजा अपनी रानी को दासी प्रियदर्शिका के लिए नृत्य और संगीत की व्यवस्था करने का कार्यभार सौंपता है। बाण के अनुसार (पाठक जगन्नाथ, 2017 पृष्ठ संख्या 239)। राज्यश्री को नृत्य और संगीत आदि की शिक्षा दी गयी थी। उसके अनुसार राज्यश्री कुशल स्त्रियों तथा सखियों के साथ रहकर नृत्य, गीत तथा नाना प्रकार की कलाओं में दिन प्रतिदिन प्रवीण होती गयी।'' राज्यश्री पंडिता था और वह हेनसांग के व्याख्यानों को भली भांति समझ लेती थी। हर्ष काल में स्त्रियाँ नृत्य करने, गाने और बजाने एवं चित्रकारी में कुशल होती थी। (चटर्जी, गौरी शंकर, 2017 पृष्ठ संख्या 195) स्त्रियों को चित्रकला की शिक्षा दिये जाने का उल्लेख प्रियदर्शिका एवं रत्नावली से प्राप्त होता है। पर्दा प्रथा नहीं थी (पाठक जगन्नाथ, 2017 पृष्ठ संख्या 579) क्योंकि हर्ष की बहन राज्यश्री ह्वेनसांग के उपदेशों को बिना पर्दा किये ही सुनती थी। इस काल में सती प्रथा का उल्लेख मिलता है। बाण के अनुसार रानी यशोमती ने सती होने का अडिग निश्चय कर लिया था और हर्ष के आंसू भी उसके निश्चय को न टाल सके और वह पति के साथ सती हो गयी थी। (पाठक जगन्नाथ, 2017 पृष्ठ संख्या 239)। राज्यश्री भी जीवन से निराश हो अग्नि में प्रवेश के लिये तत्पर थी यदि हर्ष दिवाकर मित्र के साथ समय पर न पहुँचते तो अवश्य ही राज्यश्री सती हो गयी होती।

पूर्व मध्यकाल में भी स्त्रियाँ काफी शिक्षित थी। राज्य श्री ने बौद्ध सिद्धान्तों का अध्ययन किया था। मण्डन मिश्र की पत्नी भारती इतनी विदुषी थी कि उसने शास्त्रार्थ में शंकराचार्य को निरूत्तर कर दिया था। जो तर्क मीमांसा वेदांत और साहित्य में पूर्ण दक्ष थी। राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी ने प्राकृत कविता में देशी शब्दों का एक कोष बनाया था।

कुलीनघरों में बहु विवाह की प्रथा विद्यमान थी। स्वयंवर में कन्यायें अपने वर चुनती थी विधवा विवाह भी होते थे। सती प्रथा प्रचलित थी। लेकिन सब विधवाओं के लिये सती होना आवश्यक न था। राजपूत स्त्रियाँ अपने सतीत्व की रक्षा के लिये जौहर भी करती थी।

अल्बेरूनी ने लिखा है कि स्त्रियाँ अधिकतर शिक्षित थी। वे लिख पढ़ सकती थी और संस्कृत समझ सकती थी। कथासारित्सागर से ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ भी पुरूष गुरूओं से संस्कृत भाषा पढ़ती थी।

पूर्व मध्यकाल सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण काल माना जाता है इस काल में हुये सामाजिक परिवर्तनों के पीछे आर्थिक घटनाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जिन्होंने प्राचीन काल से चली आ रही सामाजिक व्यवस्था की प्रथा के प्रति लोगों का दृष्टिकोण ही बदल दिया। इस काल में न केवल जाति व्यवस्था ही प्रभावित थी बल्कि स्त्रियों की दशा और उनके प्रति दृष्टिकोण में भी बदलाव आया था। पूर्व मध्यकाल तक आते-2 उन पर कई प्रकार की वर्जनाएं लगायी गयी। लेकिन फिर भी भिन्न-भिन्न वर्गों की स्त्रियों की दशा में एकरूपता न थी और इस काल में भी कई स्त्रियों ने प्रतिबन्ध होने के बावजूद अपने विद्धता को सिद्ध किया।

राजपूत काल में स्त्री की स्थिति में क्रमशः और गिरावट आ गयी थी कन्या का जन्म इस काल के आते-आते घोर निराशा का कारण बन चुका था। समाज में दहेज प्रथा का प्रचलन भी बहुत जोर शोर से चल रहा था। इसलिये कही कहीं कन्या को जन्म के समय ही खत्म कर दिया जाता था। दहेज प्रथा के कारण समाज में एक अन्य शोचनीय समस्या ने जन्म लिया। वह थी- बाल विवाह। दहेज कम देने के चक्कर में और अन्य मुश्किलों से बचने के लिए कन्या का विवाह बाल व्यवस्था में ही किया जाने लगा। इस काल में दहेज प्रथा ने एक गम्भीर समस्या का रूप धारण कर लिया था यह प्रथा मुख्य रूप से राजघरानों तक ही सीमित थी। सती प्रथा या जौहर प्रथा का प्रचलन भी इस युग में अपनी चरम सीमा पर था। कन्या का छोटी उम्र में विवाह के कारण समाज में स्त्री अशिक्षित थी। राजपूत समाज में ऐसा भी पाया जाता है जहाँ राजपूत अपनी स्त्रियों का आदर सत्कार करते थे और प्रायः अनेक मामलों में उनके साथ परामर्श भी किया करते थे। परन्तु यह सब बहुत सीमित था। साधारणतया स्त्री की दशा शोचनीय थी और धीरे-धीरे पराधीनता बढ़ती जा रही थी। दाम्पत्य जीवन में भी उनका स्तर गिरता जा रहा था। उन्हें अब सिर्फ दासी या भोग्या ही समझा जाता था जिनका काम केवल गृहकार्य करना और पति की बातों को परमेश्वर का वचन समझ उसका पालन करना था। धीरे-धीरे स्थिति शोचनीय और दयनीय होती जा रही थी। बहुविवाह एवं बाल विवाह जैसी कुप्रथाओं ने अब काफी जोर पकड़ लिया था।

इस तरह पूर्व मध्यकाल तक आते-आते स्त्रियों की दशा अत्यन्त खराब हो गयी थी ब्राह्मणों और राजपूत परिवारों में कन्या का जन्म महान अपशकुन समझा

जाने लगा था। स्त्री शिक्षा केवल उच्च परिवारों तक ही सीमित रह गयी थी पूर्व मध्य कालीन स्त्रियों में चौहान शासक गूवक द्वितीय की बहन कलावती, राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी, मोरिख एवं विज्जा, विजय भट्टारिका, मण्डन मिश्र की पत्नी भारती प्रसिद्ध विदुषियाँ थी जिन्होंने समाज में अद्वितीय स्थान प्राप्त किया था।

इस तरह स्त्रियों की दशा में युगों के अनुसार परिवर्तन होता रहा है। उनकी स्थिति में वैदिक युग से लेकर पूर्व मध्य युग तक अनेक उतार चढ़ाव आते रहे और उनके अधिकारों में भी परिवर्तन होते रहे है यद्यपि वैदिक युग में उनकी अवस्था अत्यन्त उन्नत और परिष्कृत थी किन्तु जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया वैसे-वैसे स्त्रियों की स्थिति में भी परिवर्तन प्रारम्भ हो गया। ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों को समाज में सम्मानीय स्थान प्राप्त था। यद्यपि परिवार पितृसत्तात्मक था तथापि स्त्री सम्मान से युक्त थी। ऋग्वेद में उसे साम्राज्ञी होने का आशीर्वाद दिया जाता था। उत्तरवैदिक काल में भी अनेक विदुषी स्त्रियों का प्रादुर्भाव हुआ किन्तु तत्युगीन साहित्यिक साक्ष्यों से यह संकेत मिलता है कि इस समय संभवत: स्त्री की दशा पतनोन्मुख होने लगी थी। महाकाव्य काल में स्त्री की दशा कही-कही अधिक सम्मानीय स्वातंत्रय और प्रतिष्ठित दिखाई देती है और कहीं-कहीं इन्हें घर की चहारदीवारी में ही बोध देने का प्रयास किया गया है। सूत्र साहित्य से भी स्त्रियों की दशा में गिरावट के संकेत मिलते है। तथापि इस बात के भी स्पष्ट साक्ष्य मिलते है कि स्त्रियों के भी शैक्षणिक संस्कार सम्पादित किये जाते थे। स्मृति युग की गार्गी और मैत्रेयी ऐसी विदुषी स्त्रियाँ थी जिनके आगे विद्धत्त परिषद श्रद्धावनत था। बौद्ध साहित्य से यह ज्ञात होता है कि स्त्रियों को घरों की चहारदीवारी में ही रहना पड़ता था। संघ में प्रवेश करने के बाद लगभग 100 भिक्षुणियों ने मिलकर थेरीगाथा नामक गीत संग्रह की रचना की जिससे उनके बौद्धिक विकास का स्पष्ट परिचय मिलता है। थेरियों में शुभा, सुमेधा और अनुपमा के नाम उल्लेखनीय है। मौर्य काल में भी स्त्रियों की स्थिति में क्रमश: पतन हुआ। इस समय पति-पत्नी का पारस्परिक सम्बन्ध स्नेह और सच्चाई पर आधारित था किन्तु दाम्पत्य जीवन में कुछ कमियाँ भी आ गयी थी जिसका मूल कारण बहु विवाह प्रथा थी। सातवाहन युग में स्त्रियों को समाज में पर्याप्त सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था। तत्कालीन अभिलेखों से इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिलते है।

गुप्तकाल में पूर्ववर्ती युगों की अपेक्षा स्त्रियों की स्थिति पत्नोन्मुख प्रतीत होती है। बाल विवाह के कारण उनके लिये उच्च शिक्षा का द्वार अवरूद्ध हो गया था इसी तरह से हर्ष के काल में बहुपत्नी प्रथा प्रचलित थी जिसके कारण स्त्रियों की स्थिति का दयनीय होना स्वाभाविक था और पूर्वमध्यकाल (राजपूत काल) में तो स्त्रियों की दशा अत्यन्त खराब हो गयी क्योंकि विदेशी आक्रमणों के कारण सुरक्षा की भावना ने ही जौहरव्रत एवं सती प्रथा का स्पष्टरूप परिलक्षित किया। इस तरह उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि जिस काल में स्त्री की दशा उन्नत थी वह समाज सन्तुलित एवं विकसित रहा अन्यथा वह समाज स्त्री दशा के साथ ही पतनोन्मुख रहा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. रीज, डेविड्स 2012 बुद्धिस्ट इंडिया, क्रियेट स्पेस इंडिपेन्डेण्ट पब्लिशिंग प्लेटफार्म पृष्ठ 103-107
2. लॉ, बी.सी. वूमेन इन बुद्धिस्ट लिटरेचर, चौप्टर V
3. कोवेल, ई.बी. 2010 द जातक (वाल्यूम II) कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ 239-43, 226-296
4. कोवेल, ई.बी. 1895 द जातक (वाल्यूम I) कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ 125-165
5. कोवेल, ई.बी. 2011 द जातक (वाल्यूम V) कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ 226-228
6. मिश्र, जयशंकर 1986 प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना पृष्ठ 342-344
7. विद्यालंकार, सत्यकेतु 1975 प्राचीन भारत का धार्मिक सामाजिक एवं आर्थिक जीवन, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली, पृष्ठ 207-215
8. सिंहल, लता 1991 भारतीय संस्कृति में नारी, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली पृष्ठ 132-234, 226-272, 311-322
9. मिश्र, उर्मिला प्रकाश 2002 प्राचीन भारत में नारी, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ठ 03-13, 46-47, 119
10. अवस्थी, शशि 1981 प्राचीन भारतीय समाज, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना पृष्ठ 144-202
11. मुखर्जी, राधाकुमुद 2009 प्राचीन भारत, अनुवादक, डॉ0 बुद्ध प्रकाश राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 56-61
12. अल्तेकर, ए0एस0 2014 पोजिशन आफ वुमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, मोती लाल बनारसी दास पृष्ठ 84-107
13. प्रकाश, ओम 2006 प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, इलाहाबाद, पटना, पृष्ठ 230-234
14. त्रिपाठी, आर0एस0 1989 कन्नौज का इतिहास, मोती लाल बनारसी दास पब्लिकेशन्स पृष्ठ 180-291
15. मिश्र, आनन्द स्वरूप 1992 कन्नौज का इतिहास, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ पृष्ठ 43-47
16. मजूमदार आर0सी0 2012 द एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, वाल्यूम 4, भारतीय विद्या भवन, पृष्ठ 08-11
17. शर्मा, ठाकुर प्रसाद 1926 हेनसांग का भारत भ्रमण, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, पृष्ठ 96-98
18. पाठक, जगन्नाथ 2017 बाणभट्ट का हर्षचरित, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, पृष्ठ 239-579
19. चटर्जी, गौरीशंकर 1938 हर्षवर्धन, हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 147
20. ओझा, श्रीकृष्ण 2017 प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, रिसर्च पब्लिकेशन्स, पृष्ठ संख्या 9-21
21. प्रसाद, ईश्वरी 1980 प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म तथा दर्शन, मीनू पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद पृष्ठ संख्या 292-94
22. गुलाटी, सरोज 1985 वूमन एण्ड सोसायटी-नादर्न इण्डिया इन 11वीं एण्ड 12वीं सेन्चुरी, दिल्ली चाणक्या पब्लिकेशन्स, पृष्ठ संख्या 87-89

वैदिक-साहित्ये विज्ञानस्य विवेचनम्

डॉ० मो० मेराज अहमद

सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, कश्मीर विश्वविसालय, हजरतबल, श्रीनगर

(सारांशः)

वेदेषु विज्ञानस्य अनेकाणि सूत्राणि उपलभ्यन्ते। विज्ञान-शब्दान्तर्गते भौतिकशास्त्रं, रासायनशास्त्रं, वनस्पतिशास्त्रं, जीवविज्ञानं, शिल्पविज्ञानं, वृष्टिविज्ञानम्, गणितशास्त्रं, च प्रमुखत्वेन परिगण्यन्ते। तत्र सर्वप्रथम भौतिकविज्ञान विषयकाणि सूत्राणि विविच्यन्ते यानि चतुर्षु वेदेषु प्राप्यन्ते। आधुनिकविज्ञानमतेन भौतिकशास्त्रे शक्ति-गति-ऊर्जादया विषयाः प्रमुखत्वेन अधीयन्ते।

वेदानुसारेण ब्रह्माण्डस्य प्रत्येकस्मिन् कणे ऊर्जायाः सत्वम् अस्ति। विश्वव्यापी-ऊर्जायाः नामान्तरं वैश्वानराग्निरिति वेदेषु। अयंचाग्निः सृष्टेः सर्वेषां पदार्थानाम् उत्पादकः अस्ति। वैश्वानर-ऊर्जा सर्वान् पदार्थान् आकर्षयति। अयं च शतविधगतियुक्तः चेति। यथोक्तं-

वैश्वानरो विश्वकृत् अथर्व 6/47/1

वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनाम्। ऋग्वेद-1/59/1

यजुर्वेदस्य मंत्रद्वये उल्लेखितमस्ति यत् अग्निः संसारस्य अमरदूतः अस्ति। अमरदूतेन अत्र 'संदेशवाहकः' इति ज्ञेयम्। अग्नेः संप्रेषणशक्तिकृते द्रुतगामितासूचकः ''दुद्रवत्'' शब्दः प्रयुक्तोऽस्ति। एतस्य संप्रेषणशक्तिम् अधिकृत्यैव आकाशवाण्याः दुर्दर्शनस्य चाविष्कारं जातम्।

ऋग्वेद प्रोक्तं यत् सूर्यः ऊर्जायाः अक्षयनिधिः। अन्यत्रोक्तं यत् ऋषिभिः सूर्येन ऊर्जाः प्राप्ताः-

स शेवधिं नि द्रधिषे विवस्वति। ऋग्वेद 2/13/6

आ सूर्याद् अभरन् धर्ममेते। ऋग्वेद 10/181/3

सूर्यः विश्वस्य सर्वान् भूतान् भोजयति। अस्मिन् अक्षयधनं विराजते

अप्सु सूर्ये महद्धनम। ऋग्वेद8/68/9

ऋग्वेदे अथर्ववेदे च सूर्यस्य सप्तानां रश्मिणाम् उल्लेखः प्राप्यते। ऐषां किरणानां महन्महत्त्वम् अस्ति।

आधुनिक विज्ञाने प्रतिपादितं यत् एभिः सप्तभिः वर्णैः संसारस्य सर्वेपदार्थाः विविधान् वर्णान् आप्नुवन्ति। एतेरश्मयः रोगनाशकाः सन्ति। कृष्युत्पादने वृद्धिः ह्रासश्च भवति। सप्तरश्मयः सप्तवर्णान् जनयन्ति। एते च एकविंशतिधा सृजायन्ते-

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वारूपाणि बिभ्रतः। अथर्व0 1/1/1

विश्वा रूपाणि जनयन् युवा कविः। अथर्व0 13/1/11

यजुर्वेदे प्रोच्यते यत् सूर्ये प्राणापाननामकं शक्तिद्वयम् अस्ति। सूर्यः संसारे सर्वान् भूतानाम् ऑक्सीजनामकं प्राणशक्तिं ददाति। किंबहुना Co_2 नामकं प्रदूषितं वायूं च नाशयति।

प्रोफेसर आइन्सटाइनमहोदयेन ऊर्जा-संरक्षणस्य सिद्धान्तः प्रतिपादितोऽस्ति। तेन निगदितं यत् द्रव्यं ऊर्जा च न उत्पद्येते न नश्यते वेति। केवलम् उभयोः रूपान्तरणमेव सम्भवति। ऊर्जा द्रव्येपरिणतं भवति द्रव्यं च ऊर्जायामिति। तेन च एकं प्रसिद्धं सूत्रं प्रतिपादितम्-

$E=mc^2$ इत्यत्र E= ऊर्जा m=द्रव्यम् C= प्रकाशस्य गतिः च ज्ञेयम्।

ऊर्जा-संरक्षणस्य अयमेव सिद्धान्तः ऋग्वेदे प्राप्यते। तत्र एकस्मिन् मन्त्रे उक्तं यत् अदितेः दक्षो उत्पद्यते, दक्षेण चादितिः। अत्र अदितिः द्रव्यस्य बोधकः, दक्षश्च ऊर्जायाः इति। अनेन स्पष्टीक्रियते यत् ऊर्जा नोत्पद्यते, न विनश्यते।

उपनिषत्सु गुरूत्वाकर्षणसिद्धान्तस्य उल्लेखः प्राप्यते। वृहत्-जाबाल-उपनिषदि गुरूत्वाकर्षणस्य सिद्धान्तस्य नामान्तरं ''आधारशक्तिः'' अस्ति। अत्रोक्तं यत् विश्वमिदं अग्निसोमयोः समन्वयमिति। अग्नेः ऊर्ध्वगतिः सोमस्य चाधोगतिः भवति। उभाभ्यां शक्तिद्वाभ्याम् आकर्षणेन संसारस्य स्थितिः अस्ति।

आचार्यवरेण वाराहमिहिराचार्येण बृहत्संहितायाम् इन्द्रधनुषः निर्माणस्य प्रक्रिया निर्दिष्टा अस्ति। तत्रोक्तं यत् यदा सूर्यस्य विविधवर्णाः मेघयुक्त नभसि पवनेन विघटिताः सन्तः प्रकीर्यन्ते तदा इन्द्रधुनुषः निर्माणं भवति।

चतुर्षु वेदेषु, ब्राह्मणग्रन्थेषु च वनस्पतिशास्त्रविषयकानि अपि सूत्राणि सन्ति। अथर्ववेदस्य एकस्मिन् मन्त्रे उक्तं यत् वृक्षेषु हरितिमा ''अवितत्वस्य'' प्रभावात् भवति। अत्र ''अवि'' आधुनिकविज्ञानस्य 'क्लोरोफिल' शब्दस्यैव नामान्तरम् अस्ति। आवितत्वं वृक्षान् पोषयति रक्षति चेति। तद्यथा-

अविर्वै नामदेवता ऋतेनास्ते परीवृत्ता।

तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः।। अथर्व 10/8/31

यजुर्वेदस्य रूद्राध्याय`शिवः वृक्षाणां, वनस्पतीनां, औषधीनां च पतिरिति उक्तम। वृक्षाणि शिवतुल्याणि यतोहि ते कार्बनडाईऑक्साइडरूपं विषं पीत्वा ऑक्सीजननामकं प्राणवायुं ददति। वृक्षनाशे सति सृष्टिनाशः संजायते यथा शिवस्य रूद्ररूपेण सृष्टिप्रलयः भवति।

दशमलवस्थानमानपद्धतिः भारतस्य सर्वोत्कृष्टः आविष्कारः अस्ति। अस्यां पद्धत्यां 1 तः 9 यावत् अंकाः, दशमश्च शून्यः अस्ति। इयमेव पद्धतिः विश्वेषु सर्वेषुदेशेष ुप्रयुज्यन्ते। शून्य कृतेवेदेषु 'ख' शब्दस्य प्रयोगः अस्ति।

ऋग्वेदे अथर्ववेदे च पृथिवीं परितः विद्यमानस्य ओजोनपरतस्य उल्लेखोऽस्ति। ऋग्वेदे ओजोनपरतस्य कृते 'महत्-उल्ब' शब्दः प्रयुक्तोऽस्ति। मंत्रेषु स्पष्टोल्लेखः अस्ति यत् ओजोनपरतः पृथिवीं रक्षति। ओजोनक्षयः अतिहानिप्रदः अस्ति सर्वेषा भूतानां कृते। अयं सूर्यस्य पारावैगनीरश्मीन् अवशोषयति वृक्षाणि, जन्तवः च भस्मसात् न भवन्ति।

आधुनिकगणितशास्त्रस्य पायथागोरसप्रमेयः कात्यायनशुल्बे प्राप्यते-

''(क) पदं तिर्यङ्यानी त्रिपदा पार्श्वमानी तयाक्ष्णया रज्जु र्दशकरणी।

(ख) एवं द्विपदा तिर्यङ्मानी षद्पदा पार्श्वमानी तस्याक्ष्णया रज्जुः चत्वारिंशत् करणी।'' कात्यायनशुल्ब 2/8-9

अयमेव पायथागोरसप्रमेयः सुष्ठु स्पष्टीक्रियते आर्यभटेन

''यश्चौव भुजावर्गः कोटिवर्गश्च कर्णवर्गः सः।'' आर्यभटीय गणितपाद।

एवमेव विज्ञानस्य अनेकाणि तत्त्वानि सन्ति वेदेषु।

यजुर्वेदस्य मंत्रद्वये उल्लेखितमस्ति यत् अग्निः संसारस्य अमरदूतः अस्ति। अमरदूतेन अत्र 'संदेशवाहकः' इति ज्ञेयम्। अग्नेः संप्रेषणशक्तिकृते द्रुतगामितासूचकः ''दुद्रवत्'' शब्दः प्रयुक्तोऽस्ति। एतस्य संप्रेषणशक्तिम् अधिकृत्यैव आकाशवाण्याः दुर्दर्शनस्य चाविष्कारं जातम्। तथाहि यजुर्वेदे-''विश्वस्य दूतममृतम्। स दुद्रवत् स्वाहुतः''।[3] यजु0 15/33/34

ऋग्वेदे च ऊर्जा तीव्रतमसंदेशवाहिका इत्युक्तम्। ऊर्जायाः तरंगाणिसिन्धोः तरंगानामिव तीव्रतमानि। यथोक्तं ऋग्वेदे-

जीरं दूतम् अमर्त्यम्। सिन्धोरिव ऊर्मयः...अग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः।[4] ऋग्वेद 1/44/11-12

ऋग्वेदे 'श्रुत्कर्ण' शब्दः प्राप्यते। अनेन शब्देन निर्दिश्यते यत् विद्युत् द्वारा ध्वनि-तरंगानामपि सप्रेषणं भवति येन दुरस्थजनाः परस्परं संभाषन्ते। एतदधिकृत्यैव दुरभाषस्य क्रियाणि सम्पाद्यन्ते। तथाहि ऋग्वेदे-

''श्रुधि श्रुत्कर्णवह्निभिः''।[5] ऋग्वेद 1/44/13

महर्षिः अथर्वन् विश्वस्य प्रथमः वैज्ञानिकः वभूव येन अग्निविषयकाः त्रयो आविष्काराः कृता। ऋग्वेदानुसारेण अग्निः ऊर्जायाः 'सम्राट्' इत्याभिधीयते-

त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजम्[6] ---ऋग्वेद 3/10/11

महर्षिणा अथर्वना सर्वप्रथमम् ''अरणि'' नामकस्य वृक्षस्य काष्ठेन अग्नेः आवष्किारः कृतः। ऋग्वेदे यजुर्वेदे च अस्य विशद्विववरणं प्राप्यते। यथाहि-

अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थद् अग्ने।[7] यजु0 11/32

तमु त्वा दध्यङ् ऋषिः पुत्र ईधे अथर्वणः।[8] यजु0 11/33

ऋग्वेदे वर्णितं यत् पाषाणयोः घर्षणेन अग्निः उत्पद्यते-

योअश्मनोरन्तरग्निंजजान।[9] ऋग्वेद- 2/12/3

महर्षेः अथर्वणः द्वितीयोऽऽविष्कारः जलीय-विद्युत् अस्ति। ऋग्वेदे, यजुर्वेदे, सामवेदे, तैतिरीय संहितायां चप्राप्यते यत् अथर्वणा तडागस्य जलमन्थनेन जलीयविद्युतः आविष्कारः कृतः-

त्वामग्ने पुष्करादधि-अथर्वा निरमन्थत्।[10] ऋग्वेद-6/16/13, यजु011/32, साम 9

तृतीय्च भूगर्भीय-अग्नेः आविष्कारः अस्ति। अस्य विशद्-विवरणं ऋग्वेदे, यजुर्वेदे, तैत्तिरीय संहितायां च प्राप्यते। ऋग्वेदादीषु ''पुरीष्यासो अग्नयः'' शब्दस्य प्रयोगो विहितः। अत्र भूगर्भीय-अग्नेः नामान्तरं पुरीष्याग्निरिति। अत्र भूगर्भीय-अग्नेः बहुवचने प्रयुक्तत्वात् सर्वेषामेव भूगर्भीय-प्रज्वलनशीलपदार्थानां ग्रहणं भवति-

पुरीष्योऽसि विश्वभरा अथर्वात्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने।[11] यजु0-11/32

पृथिव्याः सधस्थाद् अग्निं पुरीष्यम् खनामः।[12] यजु0 11/28

पुरीष्यासो अग्नयः।[13] ऋग0 - 3/22/4

यजुर्वेदे प्रोक्तं यत् अग्नौ तापेन प्रसारणं भवति। अग्नेः विस्तारेणैव लोकविस्तारं भवति। 'मन्त्रे' उच्चताप शब्दस्य कृते 'त्वेष' शब्दः प्रयुक्तोऽस्ति-

अग्ने-येनान्तरिक्षम् उर्वाततन्थत्वेषः सः।[14] यजु-12/48

ऋग्वेदे प्रोक्तं यत् सूर्यः ऊर्जायाः अक्षयनिधिः। अन्यत्रोक्तं यत् ऋषिभिः सूर्येन ऊर्जाः प्राप्ताः-

स शेवधिं नि द्रधिषे विवस्वति।[15] ऋग0-2/13/6

आ सूर्याद् अभरन् धर्ममेते। ऋग0 10/181/3 सूर्यः विश्वस्य सर्वान् भूतान् भोजयति। अस्मिन् अक्षयधनं विराजते-

अप्सु सूर्ये महद्धनम्[16]। *ऋग0 8/68/9*

ऋग्वेदे अथर्ववेदे च सूर्यस्य सप्तानां रश्मिणाम् उल्लेखः प्राप्यते। ऐषां किरणानां महन्महत्त्वम् अस्ति।

आधुनिक विज्ञाने प्रतिपादितं यत् एभिः सप्तभिः वर्णैः संसारस्य सर्वेपदार्थाः विविधान् वर्णान् आप्नुवन्ति। एतेरश्मयः रोगनाशकाः सन्ति। कृष्युत्पादनेवृद्धिः ह्रासश्च भवति। सप्तरश्मयः सप्तवर्णान् जनयन्ति। एते च एकविंशतिधा सृजायन्ते-

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वारूपाणि बिभ्रतः[17]। *अथर्व0 1/1/1 विश्वा रूपाणि जनयन् युवा कविः। अथर्व0 13/1/11*

यजुर्वेदे प्रोच्यते यत् सूर्ये प्राणापाननामकं शक्तिद्वयम् अस्ति। सूर्यः संसारे सर्वान् भूतानाम् ऑक्सीजनामकं प्राणशक्तिं ददाति। किं बहुना Co_2 नामकं प्रदूषितं वायूं च नाशयति-

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणदपानती।[18] *यजु0 3/7*

ऋग्वेदे प्रकाशस्य गतिविषयकं एकं मंत्रम् अवाप्यते। तत्र 'तरणिर्विश्वदर्शतः वषृ'[19] (ऋग्-1/50/4) इत्यस्य मंत्रस्य व्याख्याप्रसंगे सायणाचार्येण एकस्य प्राचीन-आचार्यस्य वचः उद्धृतः यः वैज्ञानिकदृशा अतिमहत्वपूर्णम् अस्ति। सायणाचार्येण लिखितम्-

'तथा च स्मर्यते-

योजनानां सहस्त्रे द्वे, द्वे शतेद्वे च योजने।

एकेन निमिषार्धेन, क्रममाण नमोऽस्तु ते।[20]

सायणभाष्यम् ऋग्वेद-1/50/4

टनेन मंत्रेण निर्दिश्यते यत् निमिषार्धेन सूर्यस्य रश्यिणाम् 2202 योजनपरिमिता गतिः अस्ति। आर्वाचीनविज्ञाने प्रकाशस्य गतिः 1,816,281 मील/सेकेण्ड इत्यंगीक्रियते।

ब्रह्माण्डे प्रत्येकस्मिन् परमाणौ आकर्षण-शक्तिः अस्ति यया प्रत्येकं परमाण अन्यत् परमाणुम् आकर्षयति-

''एको अन्यत्-चकृषे विश्वम् आनुषक।[21]

ऋग्वेद-1/52/1

प्रोफेसर आइन्सटाइनमहोदयेन ऊर्जा-संरक्षणस्य सिद्धान्तः प्रतिपादितोऽस्ति। तेन निगदितं यत् द्रव्यं ऊर्जा च न उत्पद्येते न नश्यते वेति। केवलम् उभयोः रूपान्तरणमेव सम्भवति। ऊर्जा द्रव्ये परिणतं भवति द्रव्यं च ऊर्जायामिति। तेन च एकं प्रसिद्धं सूत्रं प्रतिपादितम्-

$E=mc^2$ इत्यत्र E= ऊर्जा m=द्रव्यम् C= प्रकाशस्य गतिः च ज्ञेयम्।

ऊर्जा-संरक्षणस्य अयमेव सिद्धान्तः ऋग्वेद`प्राप्यते। तत्र एकस्मिन् मन्त्रे उक्तं यत् अदितेः दक्षोउत्पद्यते, दक्षेण चादितिः। अत्र अदितिः द्रव्यस्य बोधकः, दक्षश्च ऊर्जायाः इति। अनेन स्पष्टीक्रियते यत् ऊर्जा नोत्पद्यते, न विनश्यते तथाहि-

अदितेर्दक्षो अजायत् दक्षाद् उ-अदितिः परि।[22] *ऋग0 10/72/4*

उपनिषत्सु गुरूत्वाकर्षण सिद्धान्तस्य उल्लेखः प्राप्यते। वृहत्-जाबाल-उपनिषदि गुरूत्वाकर्षणस्य सिद्धान्तस्य नामान्तरं ''आधारशक्तिः'' अस्ति। अत्रोक्तं यत् विश्वमिदं अग्निसोमयोः समन्वयमिति। अग्नेः ऊर्ध्वगतिः सोमस्य चाधोगतिः भवति। उभाभ्यां शक्तिद्वाभ्याम् आकर्षणेन संसारस्य स्थितिः अस्ति। यथोक्तं-

''अग्निषोमात्मकं जगत्।''[23] *वृ0 जा0 उप0 2/4*

आधारशक्त्यावधृतः, कालाग्निरस्याम् ऊर्ध्वगः।

तथैव निम्नगः सोमः।[24] *वृ0जा0उप0 2/8*

भास्कराचार्य-द्वितीयेनापि सिद्धान्तशिरोमणौ गुरूत्वाकर्षणसिद्धान्तस्य कृते 'आकृष्टिशक्तिः इत्यस्य प्रयोगोकृतः। तन्मतेन पृथिव्याम् आकर्षणशक्तिः भवति, यया आकाशस्थं गुरूं पदार्थ आकर्षयति-

''आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरूं स्वाभिमुखं स्वशक्त्या आकृष्यते तत् पततीव भाति समे समन्तात्क्व पतत्वियं खे।।''[25]

पृथिवी परितः यत् धूमयूक्तं वायुमण्डलं व्याप्तं तदेव वातावरणमिति। तत्र वायुमण्डले मुख्यत्वेन नाइट्रोजन-ऑक्सीजन-कार्बनडाइऑक्साइडाख्यानि धूमानि विद्यमानानि सन्ति। ऋग्वेद`ऑक्सीजनस्य नामान्तरं प्राणशक्तिरिति। तत्रोक्तं यत् वायौ प्राणशक्तिः भवति यया जनाः आरोग्य`दीर्घायुष्यं च आप्नुवन्ति-

यददो वात ते गृहे-अमृतस्य निधिर्हितः।

त्तो ना`देहि जीवसे।[26] *ऋग0 10/186/3*

ऋग्वेदे यजुर्वेदे च नाइट्रोजनस्य वर्णनं 'नियुत्' शब्देन प्राप्यते। वाया नाइट्रोजनं मुख्यत्वेन वर्तते तस्मात् नियुत्वानिति कथ्यते। किं च इयं संदर्शवाहकत्वेन वर्णितमस्ति-

नियुत्वान् वायौ.....आ गहि।[27] *यजु0 27/29*

सहस्त्रेण नियुता नियुत्वते0।28 ऋग0- 1/35/1

ऋग्वेदे वर्णितम् यत् मरूत्सु चुम्बकीयशक्तिः अस्ति। किं च मरूता एव शक्तेः विकीरणं भवति। चुम्बकीयशक्तियुक्तत्वात् मरूतः 'अयोदंष्ट्र' नाम्नाभिधीयन्ते-

''मरूतः..अयोदंष्ट्रान् विधावतः।[29] *ऋग0 1/88/5*

एते मरूतः विधुत्-चुम्बकीय-क्षेत्रं जनयन्ति-

टा विद्युन्मद्भिर-मरूतः स्वर्काः ।

वयो न पप्तता सुमायाः।।[30] *ऋग0 1/88/1*

आर्वाचीन विज्ञानमतेन विद्युत चुम्बकीयविकिरणे विद्युत चुम्बकीय शक्त्योः समन्वयं भवति। अस्य विकिरणार्थं कस्यापि माध्यमस्य आवश्यकता न भवति। इयं उन्मुक्तरूपेण नभसि संचरति। अस्याः गतिः 18 62 82 मी0/से0 अस्ति। अनयैव विद्युत्-चुम्बकीय-क्षेत्रस्य माध्यमेन प्रकाशतरंगानि रेडियोतरंगानि च संचरन्ति-

स हि स्वसृत पृषदश्वा युवा गणः।

अया ईशानस्तविषीभिरावृतः।।[31] *ऋग0-1/87/4*

आचार्यवरेण वाराहमिहिराचार्येण बृहत्संहितायाम् इन्द्रधनुषः निर्माणस्य प्रक्रिया निर्दिष्टा अस्ति। तत्रोक्तं यत् यदा सूर्यस्य विविधवर्णाः मेघयुक्ते नभसि पवनेन विघटिताः सन्तः प्रकीर्यन्ते तदा इन्द्रधुनुषः निर्माणं भवति-

सूर्यस्य विविधवर्णाः पवर्नन विघटिताः कराः साम्रे।

वियति धनुः संस्थाना ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनुः।।[32]

-बृहत्संहिता, अध्याय 35, श्लोक 1.

वेदेषु रासायनविज्ञानेन सम्बद्धानि अपि सूत्राणि उपलभ्यन्ते। तत्र जलस्य महत्त्वं, जलस्य गुणाः, जलेन सृष्टेः उद्भवः, विविधाः धातवः, तेषां धातूनां विविधाः उपयोगाः इत्यादयो विषयाः विवेचिताः सन्ति वेदेषु।

ऋग्वेदस्य एकस्मिन् मंत्रे जलस्य सूत्रं प्राप्यते। तत्रोक्तं यत् मित्रवरूणयोः संयोगेन जलस्य उत्पत्तिः भवति। तथाहि ऋग्वेदे-

''मित्रं हुवे पूतदक्षं वरूणं च रिशादसम्।

धियं घृताची साधन्ता।[33] *ऋग्वेद- 1/2/7*

मंत्रेऽस्मिन् 'मित्र' शब्देन ऑक्सीजनस्य वरूणशब्देन च हाइड्रोजनस्य निर्देशोऽस्ति। परन्च उभयोः ऑक्सीजनहाइड्रोजनयोः परिमाणस्य स्पष्टोल्लेखः नास्ति। आर्वाचीनविज्ञानमतेन जलस्य सूत्रं-''H^2 अस्ति। अर्थात जलनिर्माणार्थं हाइड्रोजनस्य परमाणुद्वयंम् ऑक्सीजनस्य चौकंपरमाणुः अपेक्ष्यते। उभयोः मिश्रणे विद्युत्-तरंग-प्रवाहे सति जलं प्राप्यते।

अथर्ववेदस्य एकस्मिन् मंत्रे स्वर्ण-लौह ताम्र-अयस् - त्रप्वादीनाम् उल्लेखः प्राप्यते। तत्र स्वर्ण-रजत्-अयसादीनाम् संयोगेन यज्ञोपवतीस्य निर्माणस्य उल्लेखः प्राप्यते। यथाहि-

हरिते त्रीणि रजते त्रीणि अयसि त्रीणि तपसा विष्ठितानि।[34] *अथर्व0 5/28/1*

यास्कस्य निरूक्ते वर्णितमस्ति यत् सूर्यरश्मिभिः सूर्यकान्तमणिना तापोत्सर्जनं भवति येन शुष्कगोमयं प्रदीप्यते-

''अथादित्यात्'' उदीचि प्रथमसमावृत्त आदित्ये कंसं वा मणिं वा परिमृज्य प्रतिस्वरे यत्र शुष्कगोमयम् अ स्पर्शयन् धारयति तत् प्रदीप्यते।[35]

निरूक्ते 7/23

चतुर्षु वेदेषु, ब्राह्मणग्रन्थेषु च वनस्पतिशास्त्रविषयकानि अपि सूत्राणि सन्ति। अथर्ववेदस्य एकस्मिन् मन्त्रे उक्तं यत् वृक्षेषु हरितिमा ''अवितत्वस्य'' प्रभावात् भवति। अत्र ''अवि'' आधुनिकविज्ञानस्य 'क्लोरोफिल' शब्दस्यैव नामान्तरम् अस्ति। आवितत्वं वृक्षान् पोषयति रक्षति चेति। तद्यथा-

अविर्वै नामदेवता ऋतेनास्ते परीवृत्ता।

तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः।।[36] *अथर्व 10/8/31*

यजुर्वेदस्य रूद्राध्याये शिवः वृक्षाणां, वनस्पतीनां, औषधीनां च पतिरिति उक्तम्। वृक्षाणि शिवतुल्याणि यतोहि ते कार्बनडाईऑक्साइडरूपं विषं पीत्वा ऑक्सीजननामकं प्राणवायुं ददति। वृक्षनाशे सति सृष्टिनाशः संजायते यथा शिवस्य रूद्ररूपेण सृष्टिप्रलयः भवति।

तद्यथा-

ओषधयो वै पशुपतिः।[37] *शत0 ब्राह्मण 6.1.3.12*

''वनानां पतये नमः। वृक्षाणां पतय ेनमः।

ओषधीनां पतय ेनमः कक्षाणां पतये नमः।''[38] *यजु0 16.17-19*

शिल्पविज्ञानस्यापि सूत्राणि सन्ति वेदेषु। तत्र बहूनां दिव्यास्त्राणम् उल्लेखः प्राप्यते। यथा-अग्नेयास्त्रं वायव्यास्त्रं पाशुपतास्त्रम्, आथर्वणास्त्रं, संमोहनास्त्रम् तामसास्त्रम् चेत्यादीनि उल्लेखितानि। ब्रह्मणः घोरतपसा ब्रह्मास्त्रं प्राप्यते स्म यस्य प्रहारकक्षमता असाधरणा आसीत। तद्यथा-

ब्रह्मणो हेते तपसश्च हेते।

मेन्या मेनिरसि।[39] *अथ0 5/6/9*

अथर्ववेदे यजुर्वेदे च वातानुकूलितभवनस्य वर्णनं प्राप्यते। तत्र भवने ग्रीष्मतौ शैत्यानुभवः शरदतौ च उष्णत्वानुभवः स्यादित्यस्य चारू व्यवस्था आसीत्। इदं भवनं च प्रदूषणरहितं भवति स्म। यथोक्तं अथर्ववेदे-

आयने ते परायण`इर्वा रोहतु पुष्पिणीः।

मध्य`हृदयस्य नो गृहाः पराचीना मुखाकृधि।

हिमस्य त्वाजरायुणा शालेपरि व्ययामसि।

शीतह्रदा द्वि नो भुवोऽग्निष्कृर्णातु भेषजम्।[40] *अथर्व 6/106/1-3*

वेदेषु बहूनां विमानानामपि चर्चा प्राप्यते। तत्र मरूताम् एकस्य स्वचालितविमानस्यापि वर्णनं प्राप्यते। अयं च विमानः अरथीः, अनवसः, अनभीशुः, भवति स्म। अर्यविमानः पृथ्व्याकाशयोः मध्ये विचरति स्म।

दशमलवस्थानमानपद्धतिः भारतस्य सर्वोत्कृष्टः आविष्कारः अस्ति। अस्यां पद्धत्यां 1 तः 9 यावत् अंकाः, दशमश्च शून्यः अस्ति। इयमेव पद्धतिः विश्वेषु सर्वेषु देशेष प्रयुज्यन्ते। शून्यकृते वेदेषु 'ख' शब्दस्य प्रयोगः अस्ति-

खेरथस्या।[43] *ऋग्वेद- 8/11/7*

ओं खं ब्रह्म।[44] *यजु0 40/17*

केषुचित् अंकेषु शून्यविन्यासाद् (दक्षिणपक्षे) ताः अकाः दशगुणिताः भवन्ति। शून्यस्य आविष्कारात् दशशत सहस्रादीनां सम्यग्लेखनं सरलं जातम्। यथोक्तम्-

अंकेषु शून्यविन्यासाद् वृद्धिः स्यात् तुदशाधिका।

तस्मात् ज्ञेया विशेषेण, अकानां वामनो गतिः।।[45]

समयोचितपद्यरत्नमालिका वेदेषु रेखागणितस्य अपि सूत्राणि सन्ति। ऋग्वेद`वृतविषये विवरणं प्राप्यते

चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिः

चक्रं न वृतं व्यतींरवीविपत् ।[46] *ऋग 1.155.6*

यजुर्वेदे च त्रिभुजस्य रूपरेखा प्राप्यते

तिरश्चीना`विततो रश्मिरेषा

अधः स्विदासीद् उपरि स्विदासीत।[47] *यजु0 33/74*

आधुनिकगणितशास्त्रस्य पायथागोरसप्रमेयः कात्यायनशुल्ब`प्राप्यते-

''(क) पद तिर्यङ्यानी त्रिपदा पार्श्वमानी तयाक्ष्णया रज्जु र्दशकरणी।

(ख) एवं द्विपदा तिर्यङ्मानी षद्पदा पार्श्वमानी तस्याक्ष्णया रज्जुः चत्वारिंशत् करणी।''[48] कात्यायनशुल्ब 2/8-9

अयमेव पायथागोरसप्रमेयः सुष्ठु स्पष्टीक्रियते आर्यभटेन

''यश्चौव भुजावर्गः कोटिवर्गश्च कर्णवर्गः सः।'' आर्यभटीय गणितपाद 17

चतुर्षु वेदेषु यज्ञस्य प्रभूतं महत्त्वं वर्णितम्। प्राकृतिकसंतुलनार्थं यज्ञः आवश्यकः अस्ति। यज्ञद्वारैव भूप्रदूषणं जलप्रदूषणं, वायुप्रदूषणं, ध्वनिप्रदूषणं च निवारयितुं शक्यन्ते। छान्दोग्योपनिषदि उक्तं यत् पर्यावरणप्रदूषणस्य निवारणाय यज्ञः सर्वोत्तमं साधनमिति-

एष ह वै यज्ञो योऽयं पवते,

इदं सर्वं पुनाति तस्मादेष एव यज्ञः।[50]

छन्दो0 उप0 4/16/1

ऋग्वेदे अथर्ववेदे च पृथिवीं परितः विद्यमानस्य ओजोनपरतस्य उल्लेखोऽस्ति। ऋग्वेदे ओजोनपरतस्य कृते 'महत्-उल्ब' शब्दः प्रयुक्तोऽस्ति। मंत्रेषु स्पष्टोल्लेखः अस्ति यत् ओजोनपरतः पृथिवीं रक्षति। ओजोनक्षयः अतिहानिप्रदः अस्ति सर्वेषा भूतानां कृते। अयं सूर्यस्य पारावैगनीरश्मीन् अवशोषयति वृक्षाणि, जन्तवः च भस्मसात् न भवन्ति। तथाहि ऋग्वेदे-

महत् तदुल्बं स्थविर तंदासीद्

येनाविष्टितः प्रविवेशिथापः।[51] *ऋग्वेद-10/51/1*

निष्कर्षतः वक्तुं शक्यते यत् वेदेषु आधुनिकविज्ञानस्य सर्वाणि तत्त्वानि सूत्रात्मकत्वेन प्राप्यन्ते येषां अध्ययनम् आवश्यकमिति।

संदर्भसूचयः-

1. अथर्व0 6.47.1
2. ऋग0 1.59.1
3. यजु0 15.33.34

4. ऋग0 1.44.11-12
5. ऋग0 1.44.13
6. ऋग0 3.10.1
7. यजु0 11.32
8. यजु0 11.33
9. ऋग0 2.12.3
10. ऋग0 6.16.13
11. यजु011.32
12. यजु0 11.28
13. ऋग0 3.22.4
14. यजु0 12.48
15. ऋग0 2.13.6
16. ऋग0 8.68.9
17. अथर्व 1.1.1, 13.1.11
18. यजु0 3.7
19. ऋग0 1.50.4
20. ऋग0 (सायणभाष्यम्) 1.50.4
21. ऋग0 1.52.14
22. ऋग0 10.72.4
23. वृ0जा0उप0 2.4
24. तदेव 2.8
25. सिद्धान्तभुवन 16 सिद्धान्तशिरोमणिभास्कराचार्य द्वितीय
26. ऋग0 10.186.3
27. यजु0 27.29
28. ऋग0 1.135.1
29. ऋग0 1.88.5
30. ऋग0 1.88.1
31. ऋग0 1.87.4
32. वृहत् संहिता 35.1
33. ऋग0 1.2.7
34. अथर्व 5.28.1
35. निरूक्त 7.23
36. अथर्व 10.8.31
37. शतपथब्राह्मण 6.1.3.12
38. यजु0 16.17-19
39. अथर्व 5.6.9
40. तदेव 6.106.1-3
41. ऋग0 6.66.7
42. यजु0 17.2
43. ऋग0 8.11.7
44. यजु0 40.17
45. समयोचितपद्यरत्नमालिका
46. ऋग0 1.155.6
47. 33.74
48. कात्यायनशुल्ब 2.8-9
49. आर्यभट्टीयगणितपाद-17
50. छा0उप0 4.16.1
51. ऋग0 10.51.1

औपनिषदिक चिन्तन में परमतत्व की संकल्पना

डॉ० रश्मि यादव

असि० प्रो० संस्कृत, काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर, महाविद्यालय ज्ञानपुर, भदोही

आदिकाल से ही मानव पारलौकिक सत्ता का जिज्ञासु और अन्वेषी रहा है। विश्व की भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के पुरोधाओं ने उस परमतत्व की अलग-अलग विवेचना की है। सभी ने परमतत्व को अपनी दृष्टि से देखा, सुना और जाना। उन सबका पारलौकिक चिन्तन कालचक्र के साथ परिवर्तित एवं परिवर्धित होता रहा। कभी मूर्त, कभी अमूर्त, कभी सगुण, कभी निर्गुण, कभी प्राकृतिक और कभी आध्यात्मिक इत्यादि रूपों में उसकी संकल्पना की गयी। इन भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों के कारण अनेक धर्म तथा सम्प्रदाय अस्तित्व में आये। सभी धर्मों में जिस परमतत्व का विमर्श किया गया है, वह स्वरूपतः एक ही है किन्तु उसके नाम और उस तक पहुँचने का मार्ग भिन्न अवश्य है। सभी मत-मतान्तरों में वर्णित इस सारतत्व को सही अर्थों में ग्रहण न करने में वर्णित कारण कदाचित यह वैभिन्नता धार्मिक-उन्माद, असहिष्णुता और धार्मिक-कट्टरता की जनक बन जाती है। अस्तु, आज परमतत्व के वास्तविक स्वरूप की तार्किक और वैज्ञानिक समीक्षा आवश्यक है। इस दृष्टि से परमतत्व विषयक औपनिषदिक दृष्टि अनुशीलनीय है।

भौतिक जगत् के गूढ़ तत्वों का अनुशीलन करते हुए परमतत्व के अन्वेषण में सतत् साधनारत् रही है।

वैदिक ज्ञानराशि के चूड़ान्त निदर्शन के रूप में प्रतिष्ठित उपनिषदों का सकल चिन्तन परमतत्व का विमर्श है। वैदिक मनीषा भौतिक सतत् साधनारत् रही है। अध्यात्मपरक इस ज्ञानयात्रा के प्रथम चरण-वेदों में प्राकृतिक शक्तियों को जगत् के स्रष्टा एवं नियामक सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया।

फलस्वरूप द्यावापृथिवी, इन्द्र, आप, उषा, अग्नि, मरूत्, सूर्य, वरूण शक्तियाँ इत्यादि अनेक प्राकृतिक शक्तियाँ देवतुल्य हो गयी। किन्तु विविध प्राकृतिक शक्तियों की स्तुति करने वाले मंत्रदृष्टा ऋषि मात्र प्रकृति-उपासक नहीं थे, अपितु उनकी अन्तर्दृष्टि विभिन्न तथ्यों में अन्तर्निहित ''एक सर्वशक्तिमती चेतना'' का साक्षात्कार करती रही। उन्होने समग्र चराचर जगत् को उसी परम-चेतना का प्रतिरूप माना है। उस परमतत्व के वास्तविक स्वरूप का विमर्श करते हुए ऋषियों के अन्तर्मन को सदैव यह प्रश्न उद्वेलित करता रहा ''कस्मै देवाय हविषा विधेम।''[1] अर्थात् मैं अमरत्व प्राप्त देवताओं में किस देवता को हवि प्रदान करूँ'' इसी प्रकार की अनन्त सम्भावनाओं तथा तर्कों की मीमांसा करते हुए ऋषि पुनः यह प्रश्न करते हैं- जिसमें सूर्य, रूद्र हैं। वसु, भूत, भव्य, और सभी लोक निहित है, उस स्कम्भ को बताओ। तैंतीस देवता जिसकी निधि की रक्षा करते हैं, उस निधि का ज्ञाता कौन है?''[2]

इन जिज्ञासाओं के समाधान में वे कभी अग्नि, कभी इन्द्र, कभी सोम और कभी वरूण को सृष्टि की नियामक सत्ता के रूप में प्रतिपादित करते हैं। किन्तु यह देववादी अवधारणा परमतत्व के अन्वेषी वैदिक ऋषिओं की जिज्ञासा का शमन करने के लिए पर्याप्त नहीं थी।

ऋषियों के इन्हीं आध्यात्मिक जिज्ञासाओं से परमतत्व विषयक अवधारणा आविर्भूत हुई। मंत्रदृष्टा ऋषियों की चेतना ने सम्पूर्ण विश्व के प्रत्येक कण में विद्यमान एक परमतत्व के अस्तित्व की अनुभूति की, जो सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सब का कर्त्ता और नियामक है। ऋग्वेद में सभी देवताओं के असुरत्व अप्रतिहतसामर्थ्य को स्पष्टतया एक ही स्वीकार किया गया है- देवानामसुरत्वमेकम्''[3] ऋग्वैदिक मनीषी समस्त देवों को एक ही परमतत्व ''सत्'' का प्रतीक मानते हुए दृढ़तापूर्वक यह उद्घोषणा करते हैं-एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति।''[4]

अर्थात् मेधावीजन् एक ही सत् को विविध प्रकार से वर्णित करते हैं। वेदों में वर्णित ऋत[5] तथा अभय ज्योति[6] की अवधारणा इसी परमतत्व विषयक विचारधारा की ओर संकेत करती है। ऋग्वेद का कथन है-यो नः पिता जनिता यो विधाता यो देवानां नामधा एक एव।''[7] अर्थात् जो हमारा पिता है, उत्पत्तिकर्ता, विधाता और अनेक देवताओं के नाम से विख्यात है, वह एक ही है। इसी प्रकार अथर्ववेद में भी उद्धृत है -यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति।[8] (एक ही परम ज्योति अनेक रूपों में प्रकाशित है)

वैदिक मंत्रों में प्रादुर्भूत इस परमतत्व की संकल्पना का चरमोत्कर्ष उपनिषदों में दृष्टव्य है। उपनिषद् वैदिक मेधा के आध्यात्मिक चिन्तन के उत्कृष्ट प्रतिफल है। इन ग्रन्थों को परमतत्व सम्बन्धी सुनिश्चित सिद्धान्तों का प्रतिष्ठापक माना जाता है। परमतत्व का अनुशीलन करने वाली आध्यात्मिक विद्या का मूल स्रोत उपनिषद् ही है। उपनिषदों का सकल चिन्तन परमतत्व की मीमांसा पर ही आधृत है। औपनिषदिक मनीषियों ने सृष्टि के कर्ता, धर्ता और संहर्ता के रूप में एक अद्धितीय और सर्वव्यापी परमसत्ता को अंगिकृत किया है जिसे वह अनेकशः ब्रह्म, परमात्मा, आत्मा और पुरूष जैसे पदों से अभिहित करते हैं। उन्होंने जगत् की परम सत्ता को व्यष्टि रूप में नहीं, समष्टि रूप में व्याख्यायित किया है और उसको विश्व की सर्वोच्च और अद्वितीय सत्ता माना है।

परमतत्व के वास्तविक स्वरूप का विमर्श करते हुए मुण्डकोपनिषद् में पृच्छा की गयी है-वह कौन है जिसके जान लेने पर सब कुछ जाना हुआ प्रतीत होता है।[9] इन जिज्ञासाओं के आलोक में ब्रह्मवेता मनीषियों ने अनेक मंत्रो में एक ही परमतत्व की सत्ता स्वीकार की है। याज्ञवल्क्य ऋषि अपनी ब्रह्मवादिनी पत्नी मैत्रयी से कहते हैं-एकमात्र आत्मा ही दर्शनीय, श्रवणीय, मननीय और ध्यान करने योग्य है जिसके दर्शन, श्रवण, मनन और विज्ञान से सब जाना हुआ हो जाता है-आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो व अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्व विदितम्।[10]

उपनिषदों में परमतत्व के एकतत्व स्वरूप को निरूपित तथा सम्पोषित किया गया है जिससे कालान्तर में एकेश्वरवाद तथा अद्वैतवाद की विचारधारा

विकसित हुई। औपनिषदिक मंत्रद्रष्टाओं ने ब्रह्मण्ड के विस्तार में एक ही परमतत्व का साक्षात्कार किया है, जो सब में ह्यन्तरात्मा रूप में निवास करता है–येनैष भूर्तैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा।''[11] वह परमतत्व प्रपञ्चोशर्म, शान्त, शिव और अद्वैत है– प्रपञ्चोपशम शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यते स आत्मा स विज्ञेयः।''[12]

वेदान्त दर्शन में प्रतिपादित अद्वैतवाद का बीज इन्ही औपनिषदिक उक्तियों में अन्तर्निहित है। उपनिषदों में जीवात्मा और परमात्मा की अद्वैतवाद स्थिति को स्वीकार करते हुए एक ही तत्व को सभी का अधिष्ठाता माना गया है। अनन्त जीवों एक ही चौतन्य, चिन्मात्र, नित्य, शुद्ध, मुक्त और सत्य स्वभाव वाला की परमतत्व अनुस्यूत है।

अयमात्मा ब्रह्म[13] *अहं ब्रह्मास्मि*[14] *तत्वमसि*[15] *और प्रज्ञानं ब्रह्म*[16]

इन महावाक्यों में अद्वैतवाद की प्रतिष्ठापना की गयी है। समस्त तत्वों में अनुस्यूत होने के कारण उस अद्वैत परमतत्व का स्वरूप अनन्त भी है। वही नाना रूपों को धारण कर जगत् के प्रत्येक कण में ज्योति स्वरूप में विद्यमान है। औपनिषदिक दृष्टि पर परमब्रह्म के स्वरूप का साक्षात्कार अनन्त और विश्वरूपो में करती है–''अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो।''[17] तैत्तिरीयोपनिषद् में ब्रह्म के स्वरूप को सत्य ज्ञान और अनन्त कहा गया है।[18]

उपनिषदों में समग्र सृष्टि-प्रक्रिया को एक ही परम चेतन-शक्ति के संकल्पना के प्रतिफल के रूप में प्रदिपादित किया गया है। छान्दोग्योपनिषद् में उदृधत है कि सृष्टि के पूर्व में एक और अद्वितीय सत् ही था जिसने बहुत्व होने की इच्छा प्रकट की, उससे तेज और उसके तेज से नाना प्रकार की सृष्टि उत्पन्न हुई–''सत्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्। तदैक्षत बहुस्याँ प्रजायेयेति।''[19] इसी प्रकार की अनुगूंज तैत्तिरीयोपनिषद् में भी सुनाई पड़ती है, जिसके अनुसार बहुत्व होने की इच्छा वाले परमेश्वर ने तप से तेजस्वी होकर सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् की सृष्टि की और उसी में प्रविष्टि हो गया। अतएव इस व्यक्त जगत में जो भी साकार और निराकार है, सब उसी का अंश मात्र हैं। परमतत्व ही वह सूत्र है जिसमें सब लोक और समस्त जीव आबद्ध है। वहीं परमतत्व नाना रूपों में विस्तृत है, प्रसरित है और व्याप्त है। यही एकत्व की अवधारणा उपनिषदों में इस प्रकार अभिव्यंजित हुई है– सर्वत्र जिसका नेत्र है, सर्वत्र जिसका मुख है, सर्वत्र जिसका हाथ-पॉव है, जो मनुष्यों को भुजाओं और पक्षियों को पंखो से युक्त करता है, जो आकाश-पृथ्वी का रचयिता है व परमब्रह्म एक ही है।[20] ऋषि गण पुनः पुनः यह उद्घोषणा करते हैं कि ''परमतत्व एक ही है, वह ही त्रिधा (तेज, जल, और पृथ्वी), पंचधा (पॉच विषय), सप्तधा (सात लोक), नवधा (नव ग्रह), एकादश (दस इन्द्रियाँ तथा ग्यारहवाँ मन) एक सौ दस (वृत्तियाँ) और इक्तिस हजार (श्वासोच्छवास) भी हो जाता है। मुण्डकोपनिषद् में एक ही तत्व की जगत् के निमित्तोपादान कारणता को सिद्ध करने के लिए मकड़ी का दृष्टान्त दिया गया है–''यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च।''[21] अर्थात् जिस प्रकार मकड़ी बिना किसी साधन के एकमात्र अपने ही लार से निर्मित आतान-वितान वाले तन्तुओं से अपना जाल बुनती है उसी प्रकार परमतत्व अकेले बिना किसी अन्य तत्व के एकमात्र अपनी संकल्पशक्ति से सम्पूर्ण जगत की सृष्टि करता है। उपनिषदों की दृढ मान्यता है कि सृष्टि के पूर्व एक ही परमतत्व था, उसी की संकल्पना से जडचेतनमय सृष्टि प्रादुर्भूत हुई। अतएव समस्त विश्व चाहे वह व्यक्त रूप में हो या अव्यक्त रूप में वह सब ब्रह्ममय ही है।

औपनिषदिक ऋषि उस ''विश्वरूप आत्मा''[22] के साधक थे जो समस्त लोको, समस्त भूतों और समस्त आत्माओं का समष्टि रूप है–''स सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मस्वन्नमत्ति।''[23] ईशावास्योपनिषद में ऋषि का यही चिन्तन इस प्रकार प्रकट हुआ है:–''ईशावास्यमिदं सर्व यत्किच जगत्या जगत।''[24] अर्थात् अखिल विश्व में जड़चेतन जो भी विद्यमान है, वह सब ईश्वर से परिव्याप्त है। श्वेदाश्वतरोपनिषद् में सब जीवों में एक ही परमतत्व की सत्ता को स्वीकृत किया गया है–''एको देवः सर्वभूतेषु गूढ'' और उसे ही ''सर्वव्यापी'', 'सर्वभूतान्तरात्मा' 'सर्वभूताधिवासः' कहा गया है।[25] कठोपनिषद में यम नचिकेता से कहते हैं कि यह आत्मतत्व ही सब प्राणिओं में अव्यक्त रूप में विद्यमान है–''एष सर्वेषु भूतेषु गूढोअत्मा न प्रकाशते।''[26] उपनिषदों में जगत का प्रत्येक कण एक ही परमब्रहा का प्रतिरूप माना गया है। ''सर्व खल्विदं ब्रह्म''[27] तथा ''सर्व होतद् ब्रह्म''[28] जैसे उपनिषदीय वाक्य परमतत्व की सर्वव्यापकता का प्रतिपादन करते हैं। छान्दोग्योपनिषद् में सम्पूर्ण विश्व को ब्रह्ममय कहकर सम्पूर्ण तत्वों को उसी से (तत्) उत्पन्न (ज=जायते) उसी में लीन होने वाला (ल=लीयते) और उसी में जीवित (अन्) रहने वाला कहा है:-सर्वखल्विदं ब्रह्म तज्जलानीति। वह परमतत्व जिससे यह सम्पूर्ण प्राणिजगत् उत्पन्न होता है, जीवित रहता है और अन्तर्भूत होता है, उसे तैत्तिरीयोपनिषद् में ब्रह्म की संज्ञा देते हुए जगत में एक ही तत्व की परमसत्ता की ओर संकेत किया गया है।[29] वह परमतत्व ब्रह्मण्ड के कण-कण में उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार मिट्टी प्रत्येक मृदभाण्ड में सुवर्ण सभी स्वर्णाभूषण में और लौह समस्त लौह पात्रों में विद्यमान होता है।[30]

माण्डूक्योपनिषद में उस अद्वितीय तत्व को सर्वेश्वर, सर्वज्ञ तथा योनि सर्वस्व (सबका कारणभूत)[31] कहा गया है।

औपनिषदिक ऋषियों का चिन्तन विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों में देवस्य की कल्पना से कहीं ऊपर पहुँच चुका था। उनकी अध्यात्मिक मेधा सभी प्राकृतिक तत्वों में विराजमान उस अर्मूत-चेतना की अन्वेषी थी जिससे यह संसार-चक्र अनवरत प्रवर्तित हो रहा है। उन्होने सभी तत्व में एक ही प्राणतत्व की अनूभूति की जिससे सब प्राणमान् और प्रकाशवान हैं। मुण्डकोपनिषद् में ऋषि इसी निष्कर्ष की स्थापना करता हुआ परिलक्षित होता है:- ''न तत्र सूर्यो भांति न चन्द्रतारक नेमा विद्युतो भान्ति कुतोअयमग्निः। तमेव भान्मनुभाति सर्व तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।''[32] अर्थात् न तो सूर्य प्रकाशित है, न ही चन्द्र, तारा और विद्युत। अग्नि का प्रकाश भी कहॉ है। केवल उस परमतत्व के प्रकाश से सब प्रकाशित हैं। उसी का प्रकाश सब को प्रकाशित करता है।

उपनिषदीय मनीषा परमतत्व के दार्शनिक स्वरूप की तार्किक मीमांसा करती है। उसकी अन्तश्चेतना इस सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् में एक सर्वशक्तिसम्पन्न, सर्वसमर्थ तथा श्रेष्ठ शक्ति की अनुभूति करती है जो अद्वितीय है। ऋषियों ने उस पराशक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी दूसरे तत्व के अस्तित्व का दृढ़तापूर्वक खण्डन किया है। कठोपनिषद् में उस परमतत्व को पुरुष की संज्ञा देते हुए कहा गया है:–''पुरूषान्न परं किंचित सा काष्ठा सा परागतिः।''[33] अर्थात् उस पुरुष से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। वही पराकाष्ठा और सब की परम गति (लक्ष्य) है। अन्यत्र इसी मत की पुष्टि करते हुए आर्षवाणी इस प्रकार मुखरित हुई है:- न तु तद्द्विवतीयमस्ति ततोऽन्यद् विभक्त यत् पश्येत। उससे भिन्न कोई दूसरी वस्तु है ही नहीं जिसे देखा जाय। अद्वैत की इसी भावना से उत्प्रेरित होकर ऋषिगण यह घोषणा करते हैं कि सृष्टि के पूर्व मात्र एक परमात्मा ही था। अन्य कुछ भी न था। उसने ही लोकसृजन की संकल्पना की।1 वहीं अद्धितीय तत्व सगुण और निर्गुण दोनो रूपों में अभिव्यक्त हो रहा है। वही आनन्दस्वरूप ''रसौ वै सः''[34] और ''विज्ञानस्वरूप विज्ञानमानन्दं ब्रह्म''[35] है। वह परमतत्व वाणी मन नेत्र कर्ण और प्राण द्वारा नहीं जाना जा सकता अपितु वाणी इत्यादि स्वयं उस परमब्रह्म द्वारा प्रकाशित होते हैं।[36] इसीकारण श्रुति उसे ''नेति नेति''[37] कहकर

उसकी अनिर्वचनीयता का प्रतिपादन करती है। वह परमतत्व अक्षर (क्षय रहित) अस्थूल, अनणु अहरव, अदीर्घ, अलोहित, अरनेह, अच्छाय, अतम, अवायु अनाकाश असंग अरस और अगन्ध है।[38] उस अदृश्य अगोत्र, अवर्ण तथा चक्षु-श्रोत्र -पाणि इत्यादि इन्द्रियों से परे[39] परमतत्व को श्वेदाश्वतरोपनिषद् में ''साक्षी चेतन केवल और निर्गुण कहा गया है- साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।''[40]

वस्तुत: औपनिषदिक दृष्टि परब्रह्म-परमात्मा का सर्व प्रकार से पूर्णरूप में साक्षात्कार करती है। वह सम्पूर्ण मानव जाति को यह संदेश देती है कि परमतत्व सर्वप्रकार पूर्ण है। यह विश्व भी पूर्ण है। उस पूर्ण (परमात्मा) से यह पूर्ण जगत प्रकट हुआ है। पूर्ण से पूर्ण को निकाल लेने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है-

ऊँ पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।। ईशावस्योपनिषद्

औपनिषदिक दर्शन उस आध्यात्मिक चेतना को जागृत करता है जिससे सहज ही यह बोध हो जाता है कि सम्पूर्ण सृष्टि का आधारभूत परमतत्व एक ही है। अनन्त रूपों दर्शनो और मतवादों में उसी चौतन्य शक्ति की उपासना की जा रही है। उपनिषद् ईश्वर की अखण्डता पर बल देता है। उसका अटूट विश्वास है कि एक ही परमतत्व सबके अन्त:करण और बाह्य जगत में समान रूप में स्थित है।[41] उपनिषदों ने धार्मिक सहिष्णुता का आदर्श प्रस्तुत किया है। उनके चिन्तन का सार सर्वमोंकार: एष:[42] इसी निष्कर्ष में समाहित है। सब ऊँ तथा ब्रह्ममय है। जब सब में एक ही परम तत्व भासित हो रहा है तब किससे किसको पृथक किया जा सकता है। अतएव किसी धार्मिक सम्प्रदाय के प्रति वैमनस्य या कट्टरता का प्रदर्शन मानव की मूढ़ता ही है। उससे निवृत्त होकर आध्यात्मिक सारतत्व को आत्मसात कर समस्त जगत् को एक ही परमतत्व का स्वरूप मानते हुए उसकी मानसिक उपासना करना ही प्रबुद्धता है।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद 10.121.1-9
2. भूर्त च यत्र भव्यं च सर्वे लोका: प्रतिष्ठिता:।
   स्कम्भं तं ब्रुहि कतम: स्विदेव स:।
   यस्य त्रयरित्रंशद् देवा निधि रक्षन्ति सर्वदा।
   निधिं तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ।। अथर्ववेद 10.7.22-23
3. ऋग्वेद 3.55.1-22
4. ऋग्वेद 1.1644.46
5. तदैव 9.108.8
6. तदैव 2.27.11-14, 10.129.2
7. तदैव 10.82.2-3
8. अथर्ववेद-13.3.17
9. मु0उ0 1.13-कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति।
10. मा0 उ0 2
11. बृ0उ0 1.4.10
12. छा0उ0 6.8.7
13. ऐत0उ0 3.1.3
14. श्वेदाश्वतरोपनिषद् 1.9
15. तैत्तिरीयोपनिषद् 2.1
16. छा0उ0 6.2.2-3
17. सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तपत्वा इदं सर्वमसृजत्। यदिदं किंच। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। तदनु प्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत।-तै0उ0 2.6
18. विश्वतश्चक्षुरूत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरूत विश्वतस्पात।
    स बाहुभ्यां धमति स पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एक:।।-श्वेदाश्वतरोपनिषद्-3.3
19. छा0उ0 7.26.2
20. मु0उ0 1.1.7
21. छा0उ0 5.13.1
22. तदैव 5.18.1
23. ईश 1
24. श्वे0उ0 6.11
25. कठो0 1.3.12
26. छा0उ0 3.14.1

27. मा0 उ0 2
28. तै0उ0 3.1-यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।
    यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति....। तद्धि जिज्ञासस्व तद् ब्रहोति।।
29.. छा0उ0 6.1. 4-5-6
30. मा0उ0 6
31. मु0उ0 2.2.10
32. कठोपनिषद्-1.3.12
33. बृ0उ0 4.3.23
34. ऐतरेयोपनिषद-1.1
35. तै0उ0 2.7
36. बृ0उ0 3.9.28
36. केनोपनिषद् 1.4.8
37. बृ0उ0 4.4.22-स एष नेतिनेत्यात्मा।
38. बृ0उ0 3.8.8-तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वहस्वमदीर्घमलोहितमरने हमच्छायम-तमोवाय्वनाकाष्मसंगमरसमगन्धम0
39. मु0 उ0 1.16 यत्तदद्रेश्यमग्राह्य मगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत। तदपाणिपादम।
40 श्वेदा उ0 6.11
41. ईश0 5-तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य ब्राह्यतः।
42. मा0 उ0-1

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. कठोपनिषद्-शांकरभाष्य सहित-गीता प्रेस गोरखपुर।
2. केनोपनिषद्-गीता प्रेस गोरखपुर
3. तैत्तिरीयोपनिषद्-गीता प्रेस, गोरखपुर
4. 108 उपनिषद- पं0 श्री राम शर्मा आचार्य संस्कृति संस्थान बरेली प्रकाशन, 2007
5. छान्दोग्योपनिषद-सम्पादक-पं0 गंगाधर एवं पं0 महावीर प्रसाद, भाषा टीकाकार-बाबू जालिम सिंह, प्रकाशक-चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 2008
6. बृहदारण्यकोपनिषद(सानुवाद शांकरभाष्य सहित) गीता प्रेस, गोरखपुर
7. ईशावास्योपनिषद-गीता प्रेस, गोरखपुर
8. वेदाश्वतरोपनिषद्-गीता प्रेस, गोरखपुर
9. वैदिक दर्शन-डॉ0 कपिल देव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद ज्ञानपुर (भदोही) द्वितीय संस्करण-2006
10. वैदिक देवों का आध्यात्मिक और वैज्ञानिक स्वरूप-डॉ0 कपिल देव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद ज्ञानपुर (भदोही) प्रथम संस्करण-2007
11. वैदिक देवता, उद्भव और विकास-गयाचरण त्रिपाठी, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली द्वितीय संस्करण, 2011

पुरुषार्थ का अर्थ वैचारिकत एवं समसामयिक प्रासंगिकता

डॉ० पवन पाठक

असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, श्यामा प्रसाद मुखर्जी पी.जी. कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्राचीन काल के भारतीय विचारकों ने मनुष्य के जीवन को आध्यात्मिक, भौतिक और नैतिक दृष्टि से उन्नत करने के लिए 'पुरुषार्थ' के नाम से अपने दार्शनिक विचारों की स्थापना व व्याख्या प्रस्तुत की। इन विचारकों के अनुसार जीवन के सुख के दो आधार है-एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक। भौतिक सुख के अन्तर्गत सांसारिक आकर्षण और ऐश्वर्य प्रधान माना गया है तथा आध्यात्मिक सुख के अन्तर्गत त्याग और तपस्या। भौतिक सुख क्षणिक व अस्थिर है परन्तु आध्यात्मिक और विचारधाराओं का जीवन के उत्थान में कितना योगदान है, यह विचार का विषय है। शारीरिक आवश्यकतो और कामनापरक वृत्तियों की पूर्ति के लिए मनुष्य अवश्यक प्रखत्मशील रहता है। किन्तु इनके अतिरिक्त जीवन को संयमित, नियमित और आदर्शपूर्ण बनाना भी उसका परम कर्तव्य है। संकीर्णता और बद्धता, स्वार्थ और लिप्सा तथा कामना और वासना का जीवन आदर्श जीवन नहीं है। भौतिक सुख व समृद्धि ही जीवन नहीं है। इसके नष्ट होने से जीवन भी नष्ट हो जायेगा। ऐसी स्थिति में मनुष्य का संयमित और नियमित आचार तथा आध्यात्मिक विचार ही यथोपित निर्णय प्रदान कर सकने में समर्थ होता है। अत: मनुष्य के जीवन का लक्ष्य आध्यात्मिक सुख होना चाहिए। मनुष्य की प्रवृत्तियाँ विलासपरक न होकर धर्मपरक होनी चाहिए, भौतिक प्रवृत्तियाँ अस्थायी है जबकि आध्यात्मिक प्रवृत्तियाँ सात्त्विक, चिरस्थायी है। आध्यात्मिक प्रवृत्तियाँ में सांसारिकता के साथ-साथ आध्यात्मिकता भी है। भोग के साथ योग भी है तथा कामना के साथ-साथ साधना भी है। वस्तुत: जीवन में भौतिक और आध्यात्मिक दोनों सुख का महत्त्व है, दोनों का समन्वित और संतुलित रूप ग्रहण करना ही जीवन की सार्थकता है। इन दोनों को सम्मिलित रूप से पुरुषार्थ कहते है। भौतिक अथवा लौकिक सुख के अन्तर्गत अन्य और काम हैं, तथा आध्यात्मिक अथवा पारलौकिक सुख के अन्तर्गत धर्म और मोक्ष। पुरुषार्थ में भौतिक और आध्यात्मिक दोनों तत्व निहित है। हिन्दू विचारधारा लौकिक की अपेक्ष पारलौकिक लक्ष्य को अधिक महत्त्व देती है, तथा मनुष्य के दीर्घ जीवन को सामने रखकर आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत पुरुषार्थ को कर्तव्यनिष्ठा का सार्थक दायित्व स्वीकार करती है।

मनुष्य का सर्वांगीण विकास पुरुषार्थ के माध्यम से होता है। पुरुषार्थ के स्वरूप को समझने के लिए हमें सर्वप्रथम पुरुष शब्द का अर्थ समझना आवश्यक है। अपने व्युत्पत्तिमूलक अर्थ में पुरुष शब्द पू:=पुरं शरीरं च। पुरि शेते इति पुरुष:। अर्थात् जो इस पुर में सोया हो, प्रवेश किया हो, शरीर में अवस्थित थे, इस चौतन्याश जीव को पुरुष कहते हैं, इस अर्थ में पुरुष शब्द का यौगिक अर्थ जीवात्मा है। परन्तु पुरुषत्वे चव मां धीरा:, परम् पुरुषमात्मवान् इत्यादि प्रसंग में योग आदि के अनुसार पुरुष शब्द मुख्यतया पुरुषवाची है। इस प्रकार ऐसे प्रसंग में पुरुष का अर्थ जीव साधारण न होकर मनुष्य होता है। इसके अनुसार पुरुष पद से जुड़ा हुआ पुरुष शब्द मनुष्यवाची है। इसलिए पुरुष शब्द का अर्थ नर-नारी (मनुष्य) है।

पुरुशार्थ शब्द पुरुष और अर्थ शब्दों के योग से बना है। पुरुष का अर्थ विवेक सम्पन्न प्राणी (मनुष्य) से है तथा अर्थ का आशय लक्ष्य या उद्देश्य से है। इस प्रकार विवेक सम्पन्न प्राणी के जीवन में व्याप्त लक्ष्यों का संपुंजन ही पुरुषार्थ है।''

दूसरी परिभाषा के अनुसार अर्थ्यते प्रार्थ्यते अति अर्थ:। इस व्युत्पत्ति के अनुसार अभिलिखित फल (विषयों) को अर्थ कहते है। और पुरुषार्थ:। इस के अनुसार जो पुरुषों से चाहा जाए अर्थात् मनुष्य जिस फल की इच्छा करे उसका नाम पुरुषार्थ है। वेदशास्त्र ने मनुष्य जीवन के सभी अभीष्टों में धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को ही प्रमुख अभीष्ट बताया है और यही पुरुषार्थ है। इनके सम्पादन की शक्ति केवल पुरुष (मनुष्य की जीवात्मा) में है, अत: सभी जीवन इनका सम्पादन नहीं कर सकते है इसलिए इन्हें पुरुषार्थ कहा जाता है।

इस प्रकार पुरुषार्थ से व्यक्तित्व का सर्वांगीण होता है, साथ ही समाज का उत्कर्ष होता है। धर्म, अन्य, काम और मोक्ष मनुष्य के चार पुरुषार्थ माने गए जिन्हें शास्त्रकारों ने 'चतुर्वर्ग' कहा है। इन्ही पुरुषार्थो के बल पर व्यक्ति अपने समस्त कर्म उत्साह पूर्वक करता है तथा जीवन, जगत् और परमात्मा के प्रति अपनी कर्मनिष्ठता ज्ञापित करता है बाद में चलकर 'मोक्ष को अन्तिम मानकर तीन पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ और काम) पर ही बल दिया गया, जो त्रिवर्ग कहा गया। ''धर्म, अर्थ, काम तीनों एक साथ जीवन में अनुसरित होते है।[1] धर्म-प्रवण कार्यों से अर्थ और काम की विशुद्ध रूप में प्राप्ति होती है। एक आदर्श समाज के लिए धर्म, अर्थ और काम का अनुसरण इसी आधार पर होना चाहिए; जिससे व्यक्ति के कर्तव्य और अधिकार धर्म के विस्तृत परिवेश जगत के प्रति उत्कंठित रहता है। इस दृष्टि से पुरुषार्थ लोक व परलोक दोनों के निमित्त किये जाने वाले कर्म में आस्था रखता है, तथा दोनों में सामंजस्य स्थापित करता है। भौतिक और आध्यात्मिक समृद्धि के मध्य का संतुलित दृष्टिकोण ही पुरुषार्थ का सही स्वरूप है। इस मध्यम मार्ग पर चलकर ही मनुष्य अपने जीवन का वास्तविक सुख और तद्गत उद्देश्यों को प्राप्त करता है तथा अन्तत: परम ब्रह्म की ओर उन्मुख होकर वह सर्वोच्च लक्ष्य 'मोक्ष' की ओर अग्रसर होता है। चारों पुरुषार्थ मनुष्य के चार उद्देश्य है।

'धर्म' मनुष्य को सन्मार्ग का दिग्दर्शन करता है। इस सम्पूर्ण जगत का एक मात्र आधार धर्म है। समस्त प्रजा धार्मिक के पास अपने-अपने संशयों की निवृत्ति हेतु जाती है। धर्म से ही पाप की निवृत्ति होती है। इसलिए विश्व में सबसे श्रेष्ठ तत्व धर्म है।[2] महाभारत के अनुसार 'धर्म' वही है जिससे किसी दूसरे को कष्ट न पहुँचे, बल्कि लाभ हो। जो मात्र अपने लिए ही अंधानुकरण करता है, वह अन्धे के समान सूर्य की प्रभा से अछूता रहता है।[3] महाभारत के अनुसार धर्म के ही सेवन से मनुष्य का कल्याण निश्चित किया गया।[4] महाभारत में ही कहा गया है कि धर्म वह तत्व है, जो अर्थ एवं काम को मर्यादित करके लौकिक सुख (प्रेयस) तथा पारलौकिक सुख (नि:श्रेयस) की सिद्धि में सहायाक हो। महर्षि कणाद ने लिखा है-''यतऽभयुदय: नि:श्रेयस सिद्धि स धर्म:। वस्तुत: धर्म व्यक्ति के आचरण और व्यवहार की एक संहिता है जो उसके कार्यों को देश, काल और परिस्थिति के अनुसार व्यवस्थित, नियमित और नियंत्रित करता है तथा उसे स्वस्थ और उज्जवल जीवन जीने के ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करता है। आचार अथवा सदाचार को धर्म का लक्षण माना गया है। तथा आचार से ही धर्म को फलीभूत होने वाला कहा गया है।[6] 'धर्म' शब्द 'धृ' धातु से बना है जिसका अर्थ 'धारण' करने से है। महाभारत के अनुसार धारण करने वाले को 'धर्म' कहते है। धर्म प्रजा को धारण करता है।[7] धर्म आचरण की संक्षिता है, जिसके माध्यम से व्यक्ति समाज के सदस्य के रूप में और एक व्यक्तित्व के रूप में नियंत्रित होता हुआ क्रमश: विकसित होता है और अन्त में चरम उद्देश्य की प्राप्ति करता है।[8]

इसी प्रकार 'अर्थ' पुरुषार्थ को द्वितीय स्थान प्राप्त है। अर्थ की महत्ता को स्वीकार करते हुए ही इसे दूसरे पुरुषार्थ के रूप में स्थापित किया गया है। अर्थ का अभिप्राय उन सभी उपकरणों अथवा भौतिक साधनों से है, जो व्यक्ति को समस्त सांसारिक सुख उपलब्ध करते हैं तथा तत्सम्बन्धी सभी आवश्यकताओं और साधनों की पूर्ति करता है। व्यवहारिक रूप से देखा जाए तो मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताएँ और उसकी भौतिक इच्छाएँ अर्थ के माध्यम से ही पूरी होती है। मनुष्य को अपने जीवन में कर्तव्य पालन और उतरदायित्वों के पालन में अर्थ की आवश्यकता होती है।

निर्धनस्त्यज्यते भार्यापुलाधै: सगुोऽप्यत:।
संसृतौ व्यवहाराय सारभूतं धमं स्मृतम्।
अतो यतेत तत्प्राप्त्यै नर: सूपायसाहसै:।।

भावार्थ यह है कि निर्धन मनुष्य चाहे कितना भी गुणवान क्यों न हो, तो भी उसके स्त्री, पुत्र और परिवार वाले उसका कुछ भी आदर नहीं करते उसका परित्याग कर देते है। अत: जगत में व्यवहार के लिए धन का बहुत बड़ा महत्त्व है। इसलिए मनुष्य को सत् उपाय, सत् साहस आदि साधनों के द्वारा अर्थ का उपार्जन अवश्य करना चाहिए। कौटिल्य ने कहा है कि जो भी क्रियाएँ भौतिक जीवन से सम्बद्ध है, उन्हें अर्थ की संज्ञा से सम्बोधित किया जाता है।[9] इसी क्रम में कौटिल्य ने यह भी कहा कि अर्थ प्रधान है, प्रमुख है। यह धर्म एवं काम का मूल है।[10]

इस प्रकार अर्थ पुरुषार्थ वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक आवश्यक मूल्य है। ऋग्वैदिक युग के आर्य भी भौतिक सुखों की कामना करते थे। धन, सम्पत्ति, गाय-अश्व इत्यादि की वृद्धि के लिए थे भगवान से प्रार्थना करते थे।[11] व्यक्ति के अन्दर प्राप्त करने की तुष्टि ही अर्थ है। इस सन्दर्भ में याज्ञवल्क्य और राजा जनक का प्रसंग स्मरणीय है। जब याज्ञवल्क्य राजा जनक के यहाँ पहुँचे तब जनक ने उनसे पूछा कि आपको धन और पशु अप्थवा शास्त्रार्थ और विजय चाहिए? उन्होंने उत्तर दिया कि दोनों चाहिए। महाभारत में कहा गया है कि- अर्थ सम्पन्न लोग सुख से रह सकते है। अर्थहीन लोग मृत सदृश हैं। धन को काम व धर्म का आधार माना गया है; इससे स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त होता है। धर्म-स्थापन के लिए अर्थ आवश्यक है, क्योंकि इसी से प्राप्त सुविधा द्वारा धार्मिक कृत्य किये जा सकते है।[12]

अर्थ पुरुषार्थ की महत्ता इस बात से सिद्ध होती है कि इसके समुचित पालन से ही व्यक्ति इहलौकिक जीवन को सुखमय बना सकता है। इसके साथ ही पारलौकिक जीवन को सुखमय बनाने के साधन के रूप में अर्थ पुरुषार्थ की उपादेयता निर्विवाद है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में कहा है-'समरथ नहिं कुछ दोष गोसाई''। प्रत्येक व्यक्ति को धर्म आधारित अर्थोपार्जन का प्रयास करना चाहिए।

''काम'' पुरुषार्थ मनुष्य का तीसरा पुरुषार्थ है। गीता में कहा गया है कि[13] विषयों की ओर चित्त का खिंचाव न होने पर ही मनुष्य को वास्तविक शान्ति का सुख प्राप्त होता है। इस प्रकार से काम की निवृत्ति भी काम से ही हों सकती है। इसलिए 'काम' भी एक अद्वितीय पुरुषार्थ है।

काम का प्रयोग सामान्यतया दो अर्थो में किया जाता है, विशेष अर्थ और सामान्य अर्थ। विशेष दृष्टिकोण से काम का अर्थ इन्द्रियजन्य सुख से लिया जाता है। यह काम पुरुषार्थ का संकीर्ण अर्थ है। जबकि व्यापक अर्थ में प्राणी मात्र की वे सभी इच्छाएं सम्मिलित है जिसकी वह कामना करता है। 'काम के हम व्युत्पत्ति मूलक अश्र को मनीषियों ने कई रूपों में स्पष्ट किया है, जो निम्न है-''कामते इति काम''। इस शब्द का अर्थ है-कामना करना या आनन्दानुभूति की इच्छा करना काम है। काम को शारीरिक सुख के रूप में परम पुरुषार्थ मानते हुए चावार्क दर्शन का कहना है कि काम ही एक मात्र पुरुषार्थ है।

श्रीकृष्ण ने 'काम' को मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में बाधक तत्व के रूप में मानते हुए गीता में कहते हैं कि विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की इन विषयों में असक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती हैं, और कामना में विध्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अत्यन्त मूढ़भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है स्मृति भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है। बुद्धि क नाश हो जाने से यह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है।[14] ऋषि वात्सायान ने माकमेजरी में काम की दो कोतियाँ बतालायी है-विशेष तथा सामान्य। विशेष कोटि को स्पष्ट करते हुए वो कहते है कि-पुरुष का स्त्री के प्रति और स्त्री का पुरुष के प्रति स्वाभाविक आकर्षण विशिष्ट काम कहा गया है।[15] सामान्य काम से तात्पर्य पांच ज्ञानेन्द्रियों के पांच विषयों में से अपनी-अपनी प्रकृति के अनुकूल प्रीतिकर पदार्थ है, उनके अनुभव की 'इच्छा' सामान्य काम है।

कामना और वासना दोनो मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ है। मन, मस्तिष्क की तुष्टि समस्त इच्छाएँ, ऋण से मुक्ति, गृहस्थ जीवन आदि काम के अन्तर्गत आते है। किन्तु इसका अतिरेक भी महान दुर्गुण है। काम धार्मिक नियमों, संयमों के अनुरूप ही होना चाहिए। कहीं-कहीं धन को काम और धर्म का आधार माना गया है।[17] कौटिल्य ने काम को अन्तिम श्रेणी में रखा है तथा धर्म और अर्ध को बाधा पहुँचाये इसका पालन करने के लिए निर्दिष्ट किया है।[18] मनु ने काम को तमोगुण लक्षणवाला कहा है।[19]

मनुष्य के जीवन में अभीलाषाओं का प्रमुख स्थान है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति के वशीभूत होकर ही वेद पढ़ता है एवं अन्य कार्यों में तत्कालीन होता है। काम धर्म का सार मान गया है तथा धर्म और अर्ध से उसे विशिष्ट कहा गया है। धर्म और अर्थ का स्त्रोत काम को माना गया है।[20] काम के तीन आधार बताये गये है-जैविकीय, सामाजिक और-धार्मिक।

इस प्रकार काम पुरुषार्थ की विश्व के समस्त प्राणियों के लिए उपादेयता है। सामान्य व विशेष दोनों दृष्टि से काम पुरुषार्थ का सेवन आवश्यक है। सृष्टिवाद, विकासवाद, सामाजिकता, भावनात्मक पक्ष, बन्धुत्व, वसुधैये कुटुम्बकम, विश्व शान्ति आदि में काम पुरुषार्थ आवश्यक है, परन्तु 'काम' का आधार धार्मिक होना चाहिए या काम पुरुषार्थ' का आधार धर्म होना चाहिए तभी काम पुरुषार्थ सार्थक और ग्राह्य होगा। तभी सकारात्मकता का विकास गया, नैतिकता के प्रतिमान की स्थापना होगी। अत: धर्म के अंकुश में ही काम सेवन, काम पुरुषार्थ कहलाता है।

मनुष्य के पुरुषार्थ की अन्तिम और चरम परिणिति मोक्ष है। जन्म व पुर्नजन्म के बन्धन से छुटकारा तथा इस संसार के आवागमन से मुक्ति ही मोक्ष है। वैशेषिक दर्शन में कहा गया है कि-आत्मज्ञान से परिपूरित कर्म ही मोक्ष है। न्याय दर्शन में कहा है कि प्रतिकूल अनुभूति का होना ही दु:ख है और जिस अवस्था में दु:खों का पूर्णरूपेण अवसान हो जाता है, वही मोक्ष है।[22] मोक्ष आध्यात्मिक जीवन का अन्तिम और उच्चतम आदर्श है। मनुष्य में जब सहजता, स्वाभाविकता, आत्मचिन्तना, आध्यात्मिकता, बौद्धिकता का उदय होने लगता है तब वह निवृत्ति मार्ग की ओर उत्कंठित होता है। निश्चय ही ये भावनाएं मनुष्य को मानकीय सुख से अलग करके आध्यात्मिक सुख की ओर उत्प्रेरित करती है तथा भौतिक अभिव्यक्तियों और आकांक्षाओं को सहजतापूर्वक प्रेरित करती है। जब मनुष्य में ज्ञान का उदय होता है तो वह प्रवृत्ति से विलग होने की चेष्ठा करता है। व्यक्ति धीरे-धीरे संयमित और नियमित वृत्तियों के सहारे निवृस्ति मार्ग पर अग्रसर होता है। मोक्ष की प्राप्ति पूर्णतया आध्यात्मिक और धार्मिक होने ही प्राप्त होती है।

मोक्ष का अर्थ जीवन से मुक्ति प्राप्त करने के लिया जाता है। मोक्ष शब्द की व्युत्पत्ति 'मुक्' धातु से हुई है। जिसका अभिप्राय है मुक्त करना अथवा स्वतंत्र करना। अत: मोक्ष का अर्थ है आत्मा की मुक्ति। मनुष्य के जीवन का अन्तिम उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना होता है। सत्, रज् और तम् प्रवृत्तियाँ प्रभावित करती रहती है। सांख्य[23] के अनुसार व्यक्ति पूर्णरूपेण अकर्त्ता, अनजाना और अनभिज्ञ है। ऐसी स्थिति में क्रियाओं का कर्त्ता पुरुष न होकर प्रकृति है। मनुष्य की बुद्धि और मन प्रकृति से संचालित होते है। यह प्रकृति माया है जो मनुष्य को आवृत्त करती है। जब मनुष्य को सात्विक ज्ञान प्राप्त होता है तब माया का आवरण हट जाता है। गीता में कहा गया है कि जो पुरुष सम्पूर्ण कर्मो का सब प्रकार से प्रवृति द्वारा किया हुआ देखता है। तथा पुरुष अकर्त्ता देखता है, वही सही रूप में देखता है।[24] वस्तुत: प्रकृति और पुरुष के परस्पर संबंध से ही सम्पूर्ण जगत की स्थिति है।[25]

ज्ञान का सही व सार्थक ज्ञान होने पर ब्रह्म (ईश्वर) की प्राप्ति हो सकती है। निराकार ब्रह्मज्ञान ही आध्यात्मिकता की स्थिति है, जो उसके संयम का अनुपालन करके परमब्रह्म की ओर ले जाती है। आत्मज्ञान की पूर्णता ही ब्रह्म की निकटता है, जो मोक्ष भी है। जो व्यक्ति निश्चयपूर्वक अन्तरात्मा में ही सुख वाला है, आत्मा में ही आरामवाला है और आत्मा में ही ज्ञानवाला है। ऐसा ही योगी परब्रह्म परमात्मा के साथ एकीभूत होकर शान्त ब्रह्म को प्राप्त करता है।[26] काम-क्रोध से रहित, जीते हुए चितवाले, परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार कर चुके ज्ञानी पुरुषों के लिए सब ओर से शांत पर ब्रह्म परमात्मा ही प्राप्त है।[27] इस प्रकार ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म हो जाता है।[28]

भारतीय दार्शनिक परम्परा में मोक्ष प्राप्ति के तीन आधार बताये गए है- कर्म, ज्ञान और भक्ति। मोक्षार्थी व्यक्ति के लिए अपना मन शुद्ध, आचरण विशुद्ध और चरित्र सात्विक रखना अत्यन्त आवश्यक था। मनु के अनुसार इन्द्रिय-निरोधी, रागन्द्वेष का त्यागी और अहिंसा-परायण व्यक्ति ही मुक्ति के योग्य होता है।[29] विष्णु पुराण के अनुसार ऐसे व्यक्ति को शत्रु-मित्र सबसे समभाव रखते हुए कभी किसी जीव से द्रोह नहीं करना चाहिए तथा लोभ, मोह, काम, क्रोध सत्य आदि गुणों का पालन अनिवार्य था।[31] मनु के व्यवस्था दी है कि अहिंसा, विषयों में अनासक्ति, वेद-प्रतिपादित कर्म और कठिन तपश्चर्या से इस लोक में उस पद (ब्रह्मपद) को यह साथ लेता है।[32] सभी प्रकार की निस्पृहता रहलोक और परलोक दोनों में शाश्वत सुख प्रदान करती है।[33]

मनुष्य के व्यक्तित्व का उत्कर्ष पुरुषार्थ से ही सम्भव रहा है। सांसारिक और माध्यमिक आधार का अनुसरण करके मनुष्य अपने जीवन को ऊँचा और आदर्श बनाता है। वह अपने विभिन्न कर्मो और कर्त्तव्यों का सम्पादन पुरुषार्थ के ही संयोग करता है तथा इसी के माध्यम से अपने विविध उत्तरदायित्वों को निष्ठापूर्वक कर सकने समर्थ रहता है। चारो पुरुषार्थ का आपस में लगाव और संबंध है। हिन्दू विचारको का जीवन दर्शन विश्व का अकेला और अनुपम जीवन दर्शन है, जिसमें जीवन के प्रति मोह है तो योग भी है, बन्धन है तो मुक्ति भी है, कामना है तो साधना भी है, आसक्ति है तो त्याग भी है। प्रवृत्ति से हटकर निवृत्ति की ओर झुकना पुरुषार्थ का महान लक्ष्य है। पुरुषार्थ की नियोजना व्यक्ति के जीवन को व्यवस्थित और संतुलित आधार प्राप्त करता है। आज की नियम, संयम और शास्त्र-वचन का अनुपालन किया जाए तो समाज में अर्थ और काम से उत्पन्न विसंगतियों को समाप्त किया जा सकेगा। जिससे स्वस्थ समाज और सशक्त राष्ट्र का निर्माण सम्भव होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. राधाकृष्णन, रिलिजन ऐंड सोसायटी, पृ0 105-6
2. धर्मो विश्वस्य जगत: प्रतिष्ठा,
   लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति।
   धर्मेण पापमपनुदति
   धर्मे सर्व प्रतिष्ठितम्
   तस्माद धर्म परमं वदन्तिर (तैत्तिरीय आरण्यक)
3. महाभारत, वनपर्व, 33.21-3 - कर्षणार्धो हि मो धर्मी मिलाणमात्मनस्तथा।
   व्यसनं नाम तद् राजन न धर्मा: सकुघर्म तत्।।
   यस्य धर्मो हि धर्मार्धे क्लेश भाड. न स पण्डिता।

न स धर्मस्य वंदार्थ सूर्यस्यान्धः प्रभामिव।

4. महाभारत शान्तिपर्व, 167.9 – ''धर्म प्रधानेन भवितव्यं मवात्मानाम्।''
5. महाभारत कर्मपर्व, 109.58 – धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजः।
   मत्स्याद्धारण संयुक्तं स धर्म इति निश्चयः।
6. महाभारत, अनुशासन पर्व, 54.9 – आचार लक्षणो धर्मः सन्तश्चारितहनक्षणः।
   साधूनां च यथा वृन्त मेतदाचारत्यक्षणम्।
7. महाभारत, कर्णपर्व 109.58–
8. जिगर, फिलासफीज ऑव इंडिया – पृ0– 28–35
9. अर्थशास्त्र, 1.15.1 –
10. अर्थशास्त्र, 1.7.11 – अर्थ एवं प्रधान इति कौटिल्यः।
    अर्थमूलो हि धर्मकमौ।
11. ऋग्वेद, 1.73, 2.21.6, 4.36.9, 5.4.11, 6.31.1
12. महाभारत, उद्योगपर्व, 72.23–4 – धनमाहूः परं धर्म धने सर्वपतिष्ठितम्।
13. श्रीमद्भागवन, भाग 09–4–25 – समर्द्धयन्ति तान् कामाः स्वाराज्यप परिभाविताः।
    दुर्लभा नापि सिद्धानां मुकुन्द हदि पश्चतः।।
14. श्रीमदभगवत गीता, 2.62–65 – ध्यायलोक विषयान्पुंस सऽ्गात्सन्जायते काम कामात्क्रोधोडभिजायते।
    क्रोधाद्भभति सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
    स्मृतिभ्रंशाद बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।
15. काममंजरी, 91 – आनन्दाज्जायते विश्वं स एव इतिरूच्यते
    स्त्रीपुंसां ऋणु विपेन्द्र मनसो मोननं रतिः।।
16. महाभारत, शान्तिपर्व, 133.10 – सम्प्रमोदमलः कामोभूयः स्वगुणवर्षितः।
17. महाभारत, स्वर्गारोहण, 5.63 – न जातु कामान्न भयान्न लोभादधर्म त्येजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
    नित्यो धर्मः सुखदुः खेत्वनित्ये जीवे नित्यो हेतुरस्यत्वनित्यः।।
18. अर्थशास्त्र, 17 – धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत्।
19. मनु0 12.38 – तमसो लक्षणं कामो।
20. महाभारत, शांतिपर्व, CLXVII, 29, 31, 34, 37 – अर्थ लोलुपत्रादुः समिति बुद्धं चिरान्मया।
    यद्यदालम्बसे काम तन्तदेवानुखध्यसे।।
21. शेषिक दर्शन, 612/16 – आत्मकर्मसु मोक्षो व्याख्यतः।
22. न्याय दर्शन 1/1/21/22 – बाधना लक्षणं दुखम्।
    तदत्यन्त विमोक्षो अपवर्गः।
23. सांख्यकारिका, 62, 13.24
24. गीता, 13.29 – प्रकृत्येवेच कर्माणि क्रियामणानि सर्वशः।
    यः पश्यति तथात्मानमकर्त्तारं स पश्यति।।
25. गीता, 13.26 – क्षेत्रक्षेत्र संयांगान्तद्धिद्धि भरतर्षभ।।
26. गीता, 5.24 – योऽन्तः सुखान्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेयः।
    स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतौऽषिगच्छति।।
27. गीता, 5.26 – कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
    अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदित्रत्मनाम्।।
28. मुंडक उपनिषद् 3.2.9 – ब्रह्मविद् ब्रहौत भवति।
29. मनु0 0.6.60 – इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च।
    अहिंसया च भूतानाममृत्याम कल्पते।।
30. विष्णु पुराण, 8.176–77 – दया भूतेषु च शमा ..... सत्यं च।।
31. मनु0 6.75 – अहिंसयेन्द्रियासंधैर्वैदिकैश्वै कर्माभिः।
    तपश्चनणेश्चोग्रेः साध्यन्तीह तत्पदम्।।
32. मनु0 6.80 – यदा भावेन भवति सर्वभविषु निःस्पृहः।
    तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम्।।

बाजारवाद, हिंदी सिनेमा और स्त्री

डॉ० हनुमत लाल मीना

नयी सृजनशीलता को दूर-दूर तक पहुँचाने में स्थानीय और अंतराष्ट्रीय बाजार की बहूत महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है और आज भी है। लेकिन 'बाजार' और 'बाजरवाद' में अन्तर है। बाजार सृजनशीलता को लोगों तक पहुँचाने का माध्यम है, जबकि बाजारवाद वह विचारधारा है, जो हर चीज को बिकाऊ मानकर चलती है। इसके चलते साहित्यिक या कलात्मक सृजन, दार्शनिक चिंतन, वैज्ञानिक अनुसंधान, ज्ञान और शिक्षा का प्रसार, समाज-सुधार, राजनीतिक परिवर्तन, सिनेमा आदि व्यापक मानवीय उद्देश्यों से किये जाने वाले कार्य भी सीमित व्यावसायिक उद्देश्यों से किये जाने वाले कार्य बन जाते हैं। बाजारवाद का स्पष्ट उदाहरण हिन्दी सिनेमा में देखा जा सकता है। नयी फिल्में बनाने वाले नये लोग अच्छी तरह से जानते हैं कि वे बाजार में हैं, बाजार के लिए फिल्में बना रहे हैं, लेकिन वे पैसा कमाने के लिए घटिया फिल्में नहीं, बल्कि बढ़िया और कलात्मक फिल्में बनाते हैं, जिनमें एक सार्थकता भी होती है और एक तरह का आदर्शवाद भी होता है।

बाजारवाद समाज में सफलता को एक सर्वोपरि मूल्य की तरह स्थापित करता है। यह सच है कि वर्तमान समय की सृजनशीलता पर बाजार का दबाव कुछ ज्यादा है, लेकिन यह दबाव सृजनशीलता के विरुद्ध है और विचार पर कलाओं की गुंजाइश कम कर रहा है, यह मानने में मुझे कुछ सुविधा होती है। दरअसल, लेखन या कोई कला पैदा ही किसी दबाव या तनाव से होती है। सृजनशीलता को जनता तक बाजार नहीं पहुँचाता, आंदोलन पहुँचाता है। बाजार माल को पहुँचाता है। अभी संकट यह है कि आंदोलन के मुहाने पर काई जमा दी गयी है। परिवर्तन के इस रास्ते में प्रवाह दिखायी नहीं दे रहा है, जबकि बाजारवाद का तेजी से विस्तार हो रहा है। इस बाढ़ में वह परिवर्तनगामियों को भी बहा ले जाना चाहता है।

स्त्री वह किसी भी राष्ट्र की क्यों न हो, किसी भी जाति, वर्ग, वर्ण, समुदाय रंग की क्यों न हो, उसकी स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है। आज भी सर्वथा प्रासंगिक है कि सामाजिक परिवेश ऐसा नहीं है कि स्त्रियाँ-पुरुष अत्याचार के विरुद्ध मुखर हो सकें। साथ ही, बचपन से ही समर्पण, निर्भरता, त्यागपूर्ण प्रेम और वफादारी के आदर्शों व नैतिक शिक्षाओं से उनकी सोच को अनुकुलित करके उन्हें दिमागी गुलाम बनाने का पूरा प्रयास किया गया है।

हिन्दी सिनेमा के निर्देशक-निर्माता जानते हैं कि व्यावसायिक दृष्टि से नायक-नायिका को कैसे पेश किया जाता है? स्त्रियों की ताकत दिखाते हैं उसके अधनंगेपन और नंगेपन में। टाई वाले नायक को रिझाने के लिए उसे मिनी स्कर्ट पहनने का निर्देश होता है। गीत गाते या डांस करते हुए नायक का वस्त्र न कही से खुलता है न कहीं से खिसकता है। पर नायिका का आंचल या दुपट्टा हमेशा गिरता-पड़ता-उड़ता रहता है, वे अपने कपड़े संभाल नहीं सकती या सायास संभालती नहीं।

स्त्रियों की यह ताकत सदियों से समाज स्वीकृत है। उसका मांसल, यौन उत्तेजक से लेकर निरीह, दयनीय अबला, मूक मूर्तिमयी, नादान गुड़िया जैसा रुप इसलिए प्रदर्शन में आसान भी है। अधिकांश हिन्दी फिल्में यह आसान तरीका ही अपनाती हैं। नारी सिर्फ शरीर है-यह हमारे समाज का निर्मित और सदावादी दृष्टिकोण था। उसको 'मनुष्य' का दर्जा प्राप्त नहीं था। इसलिए उसकी आत्मा की चिन्ता तक समाज में नहीं के बराबर थी।

स्त्रियाँ वृत्तांत के भीतर भी होती है और बाहर भी, उस विचार के अन्दर भी जो उन्हें स्त्री के रुप में प्रस्तुत करता है और उसके बाहर भी क्योंकि वह, वह नहीं प्रस्तुत करता है जो वे हैं। फिल्मों में अनावश्यक प्रसंग फिल्म-उद्योग के वर्चस्व के कारण है, निर्माताओं के वर्चस्व के कारण। कामुक दृश्यों के मानक टूट रहे हैं, हिंसा की कोई सीमा नहीं दिखाई देती है, यह चिन्ताजनक है। इन दृश्यों पर सेंसर बोर्ड की मुहर भी लगती है। समाज की नियामक शक्ति इन फिल्मों को गाँव-गाँव तक चलवाती है। इनसे व्यक्तिवाद को बढ़ावा मिलता है। साहित्य के क्षेत्र में सिनेमा को अपनी तरह से चलाने का कारगर हथियार साबित हुआ है। शादी-विवाह में टुइस्ट जैसा निरर्थक नाच घंटो तक चलता रहता है। सिनेमा में 'टुइस्ट' और 'ब्रेक डांस' तो लोकप्रिय बने हैं जिस कारण कर्णप्रिय संगीतों का संसार अनाथ हो गया है। सेक्स-वर्जनाओं के टूटने की अपनी कहानी है। फिल्म साहित्य के साथ उद्योग भी है। उद्योग मालिक के कहने पर सैक्स की वर्जनाएँ टूटती हैं। उद्योग पर नियंत्रण दर्शक का नहीं है। दर्शक के मुताबिक वर्जनाएं नहीं टूटती हैं दर्शक के लिए भी नहीं टूटती हैं, बल्कि दर्शक को अपने वास्ते तैयार करने के लिए वर्जनाओं का अतिक्रमण किया जाता है। एन.आर. पसरीचा की फिल्म 'जूली' में नेहा धूपिया के साथ नायक का प्रेम दृश्य है। उसके पूरे बदन पर 'आई लव यू' लिखा है, 'हीरो' प्यार की वास्तविकता समझे। ऐसी समर्पित प्रेमिका मिलेगी कहाँ? इस दृश्य की पृष्ठभूमि में कई पूर्वाग्रह हैं। नेहा धूपिया गोवा की है और फिल्मों के लिए गोवा रोमांस की जगह है। फिर जूली ईसाई भी है। फिल्म वालों के लिए लड़की ईसाई हो, गोवा की हो और पेशे से वेश्या हो, इन तीनों को मिलाकर जूली का नया समीकरण दर्शकों को समझ में आ सकता है यानी बिस्तर पर कुछ गज साटन और रेशमी टुकड़ों में लिपटी धूपिया। इसी प्रकार अनेक अनावश्यक प्रसंगों में नायिका की कामुकता उसे फिल्म उद्योग में 'बोल्ड' बना देती है। पूरा बाजार उसके पीछे हो जाता है। मल्लिका शेरावत एन.डी.टी.वी./मुकाबला मे इसे व्यक्तिगत आजादी कहती हैं। निखिल बागले स.महानगर के हर प्रश्न के उत्तर में वह स्वतंत्रता की दुहाई देती हैं। वह फिल्मों में काम करने को व्यवसाय मानती हैं।

आमतौर पर फिल्म के निर्माता और निर्देशक अपनी परिस्थितियों के मुताबिक दर्शक तैयार करने में लगे रहते हैं। वित्त पोषक से भारी सूद पर उन्हें पैसा मिलता है। इसकी अदायगी के साथ भारी मुनाफा होना फिल्म की असली शर्त होती है। कामुक दृश्यों में अभिनय कोई शर्त नहीं है। एक गोपनीय अनुबंध है दोनों के बीच। फिल्म क्या किसी भी उद्योग के लिए ऐसा होना नयी बात नहीं है। सिनेमा में कहानी का बहाना बनाकर नायिकाओं से ऐसे दृश्य करवाये जाते हैं कि परिवार के साथ बैठकर फिल्म नहीं देखी जा सकती है। किसी फिल्म के दृश्यों का सीधा प्रभाव समाज पर दिखाई देता है। बिना इस प्रकार के दृश्यों के बगैर भी बाजार में फिल्में 'हिट' हुई हैं। 'दीवार' सत्तर के दशक की साफ-सुथरी और सफल व्यावसायिक फिल्म थी। बाद के दशकों में 'मैंने प्यार किया, 'हम आपके हैं कौन', आदि सफल व्यावसायिक फिल्में थीं। काम-प्रधान फिल्मों को शिक्षाप्रद बनाने के बजाए उत्तेजक बनाने के दृष्टिकोण से फिल्मों का सामाजिक उद्देश्य संकीर्ण हो जाता है।

फिल्मों के सन्दर्भ में इस बात को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि सिर्फ वे मनोरंजन का माध्यम नहीं हैं। ऐसे फिल्मकार सदैव रहे हैं, जिनके लिए फिल्म रचनात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम है। इसी तरह दर्शकों का एक हिस्सा भी सोद्देश्य और रचनात्मक रुप से श्रेष्ठ ऐसी फिल्में देखना चाहता है, जिनमें जीवन के प्रति आलोचनात्मक रुप अख्तियार किया हो। इसलिए यह स्वाभाविक है कि बाजारवाद की चुनौती के आगे घुटने टेकने की ये प्रवृत्ति हिन्दी सिनेमा में नहीं दिखायी देती, उस चुनौती को स्वीकार करने की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। फिल्मकारों के लिए यह सिर्फ वैचारिक चुनौती नहीं है, बल्कि रचनात्मक चुनौती भी है। चूँकि यह नयी तरह की चुनौती है, इसलिए यह बहूत स्वाभाविक है कि इसका मुकाबला भी नये ढंग की सृजनशीलता द्वारा ही संभव हो।

बाजारवाद एक किस्म की व्यावसायिक सफलता की चकाचौंध पैदा करता है। वह समाज में सफलता को एक सर्वोपरि मूल्य की तरह स्थापित करता है। वह सृजन के क्षेत्र को भी कई हिस्सों में विभाजित कर देता है। वह विचारधारात्मक और गैर-विचारधारात्मक ललित कलाओं के बीच विभाजक रेखाएं खींचता है। पूँजीवाद का यह खेल सृजनात्मकता के खेल में कई-कई स्तरों पर अपना काम करता है। इसका ताना-बाना बहूत जटिल और उलझा हुआ है। सिनेमा में, संगीत में, चित्रकला में, नाटक में और साहित्य में निरंतर चलने वाला यह आखेट बहूत सारे प्रतिभाशाली सर्जकों को अपना शिकार बना लेता है।

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में स्त्रियों को हुए लाभ के संबंध में जगदीश भगवती कहते हैं कि भूमंडलीकरण ने स्त्रियों को समान वेतन, लिंगाधारित असमानता की समाप्ति, स्वास्थ्य, सुरक्षा आदि के माध्यम से अधिक सामाजिक अवसर उपलब्ध करवाया जो कि भूमंडलीकरण की अनुपस्थिति में विकासशील देशों की संकीर्ण मानसिकता में संभव नहीं था। इसलिए भूमंडलीकरण को सामाजिक हित के आधार पर आज विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली बल मानते हुए लिखते हैं कि ''भूमंडलीकरण सिर्फ आर्थिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि सामाजिक दृष्टि से भी हितकर है।''

भूमंडलीकरण की व्यवस्था को कार्य के स्तर पर बाजार द्वारा लागू किया जाता है। बाजार हर चीज को वस्तुपरक दृष्टिकोण से देखता है। चाहे वह संस्कृति, धर्म, भावना जैसी मानवीय चीज ही क्यों न हो? बाजार भूख पैदा करता है वस्तु के लिए जिसके लिए वह कई तरह के हथकंडे अपनाता है। भूमंडलीकरण के व्यापार में वस्तु का जिस प्रकार से आयात-निर्यात हुआ है, उसमें स्त्री के प्रति पारंपरिक वस्तुवादी अवधारणा का इस्तेमाल किया गया, जिसका सांस्कृतिक फायदा पुरुषों को मिल रहा हैं। स्त्री पुरुषवादी समाज में एक प्रजनन कोख मात्र बनकर रह गई है जिसकी पवित्रता और नैतिकता पुरुषवादी समाज तय करता है। उसकी आजादी का स्वरूप क्या और कितना होना चाहिए, यह सब पुरुष के आधीन था और है भी। समाज की सारी जड़ परंपरा का निर्वाह किस प्रकार करना है यह बात स्त्री को बताई जाती थी, जो आज भी करीब-करीब उसी प्रकार से मौजूद है, बस थोड़ा सा स्वरुप बदल गया है। ''पूँजीवादी राष्ट्रों की मिलीभगत के परिणामस्वरुप जो भूमंडलीकरण की नीति अपनाई गई, जिसमें उन्होंने अपने लिए सबसे सरल फायदे के लिए स्त्री को चुना। पूँजीवाद ने अपनी इस रणनीति को भूमंडलीकरण के माध्यम से अपनाया।''

पाश्चात्य सोच और विचार, प्रगतिशील दृष्टिकोण, आधुनिक बोध ने स्त्री को जिस प्रकार से अपनी पराधीनता का अहसास कराया, इससे स्त्री को आवाज उठाने और पितृसत्ता की कैद से निकलने की ललक और ताकत भी पैदा की। इस चेतना का इस्तेमाल भूमंडलीकरण के माध्यम से बाजार ने अपनाया, जो कि प्यासे को मिलने वाले पानी का स्रोत जैसा है, पर इस पानी का स्वाद पुरुषवादी है जिसने स्त्री को अपने तरीके से इस्तेमाल किया। जो उसे मुक्त तो जरुर करता है लेकिन उसे उसकी तरह से नहीं बल्कि अपने तरीके से। सस्ते श्रम की खोज स्त्री मुक्ति का एक आधार तो बना, साथ ही सेक्स की पुतली बनाकर बाजार ने उसे मनोरंजन और आरामदायक वस्तु बनाए रखा।

भूमंडलीकरण औरत की छवि में प्रदर्शन के तरीके से नयापन लाया न कि उसके व्यक्तित्त्व के आन्तरिक विकास और न ही पुरुषवादी मानसिक संरचना में बदलावा आया। बाजार के माध्यम से एक और तो स्त्री को स्पेस मिल रहा है वहीं दूसरी ओर धर्म, परंपरा, संस्कार जैसी मान्यताओं के आधार पर स्पेस को वापिस खींचा जा रहा है।''भूमंडलीकरण ने परंपरा और धर्म के अलावा आर्थिक आधुनिकीकरण और वैकासिक आग्रहों को भी नई पितृसत्ता का जनक बना दिया, जबकि कभी इन दोनों को औरत की आजादी का संभावित जरिया माना जाता था। इस तरह भूमंडलीकरण के तहत पितृसत्ता और मजबूत हो गयी।''

बाजारवाद के दौर में स्त्री की शक्ति बढ़ी है। व्यवसायिक तौर पर उसके पास हर सवाल का जवाब है। भूमंडलीकरण के बहाने आज स्त्री के पास अनेक विकल्प हैं। आज वह प्रत्येक क्षेत्रों में मौजूद है। इसमें कोई शक नहीं है कि भूमंडलीकरण के माध्यम से कई विकल्प खुले हैं, जिन्होंने स्त्री को 'पॉवर वूमन' बनाने में सहयोग दिया, लेकिन यह 'पॉवर वूमन' बाजार का एक मिथ है जिसे चाहे अनचाहे हमें स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इस मिथक में यथार्थ की भी मौजूदगी है। इस मिथक ने स्त्री के लिए एक आर्थिक स्थिति दी है। भूमंडलीकरण में जो आर्थिक रास्ते स्त्री को मिले हैं, वो आर्थिक रास्ते स्त्री को उसके अपने पैरों के नीचे की जमीन देते हैं, जिस पर स्त्री ठोस तरीके से खड़ी होकर अपने अधिकारों को प्राप्त कर सकती हैं। इस पूरी आर्थिक आजादी को बड़े ही नकारात्मक तरीके से प्रस्तुत किया गया। पुरुषवादी मानसिकता ने स्त्री की ताकत को यौनता का नाम देकर पुरुष को अपने वश में करने वाली एक वस्तु के रुप में रखा साथ ही उसकी उपलब्धियों की पुरुष से तुलना करते हुए, पुरुष को एक समर्थ स्त्री के सामने कमजोर और मासूम बना दिया गया, जो संस्कृति और परंपरा को किसी प्रकार से निभा रहा है। जिसकी अपेक्षा स्त्री ने अपनी मान्यताओं एवं मूल्यों को भूला दिया है।

भूमंडलीकरण ने परंपरावादी और कट्टरपंथी विचारधारा के लोगों को 'पॉवर वूमन' के नाम पर हिला तो जरुर दिया परन्तु वहीं दूसरी और उसकी पॉवर और आजादी के नाम पर स्त्री को बाजार की बिकाऊ वस्तु के रुप में और भी ज्यादा व्यवसायिक रुप में बदल दिया। इस व्यवसायिकता का स्वरुप बाजार के सिर्फ उस रुप से ताल्लुकात नहीं रखता है, जो मात्र सौंदर्य उद्योगों से जुड़ा हुआ है। अपितु यह व्यवसाय इतिहास के पन्नों पर हमेशा से मौजूद रहा है जिसे भूमंडलीकरण के बाद आमदनी का अच्छा-खासा और साथ ही व्यापक स्रोत बनाया गया है।

बाजारवाद के इस युग में स्त्री का शरीर अब ग्लोबल वेश्यावृत्ति और बलात्कार के लिए ज्यादा आसान हो गया है। पर्यटन, शादी, नौकरी आदि न जाने किन-किन तरीकों से छलावा देकर एवं यौन खिलौने के रुप में इस्तेमाल किया जा रहा है। उसकी मासूमियत, परतंत्रता, गरीबी के बहाने बाजार में उसे एक वस्तु की तरह रख दिया जाता है, जहाँ उसके शरीर का मोल भी स्त्री खुद तय नहीं कर सकती और न ही मूल्य का उचित लाभ उसे मिलता है।

''भूमंडलीकरण ने औरतों को अतीत की किसी भी कालावधि के मुकाबले अधिक निर्ममता और संपूर्णता से एक बिकाऊ जिंस में बदल दिया है। यहाँ औरत को बिकाऊ माल में बदलकर केवल सौंदर्य उद्योग के संदर्भ में या आमतौर पर बाजार की आलोचना के नए पुराने मुहावरे के तौर पर नहीं बताया जा रहा है। दास प्रथा के दिनों से भी ज्यादा और सामंतवादी युग की व्यापकता को भी पीछे छोड़ते हुए भूमंडलीकरण के पिछले दस वर्षों में दुनिया के पैमाने पर औरतों के निर्यात के जरिए अरबों खरबों डालर की रकम कमाई गयी है। निर्यात करने वाले देशों की प्रति व्यक्ति आय से आयात करने वाले देशों में प्रति व्यक्ति आमदनी तकरीबन दुगनी है। ये गरीब देश वहीं है जिन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक की सलाह पर ढांचागत समायोजन कार्यक्रमों को अपनाया था। ये वही देश हैं जिन्होंने विदेशी पूँजी के आने जाने पर लगी परंपरागत बंदिशों को क्रमशः हटा लिया है। ये भूमंडलीकरण की होड़ में कूदने वाले देश हैं। लेकिन इस चक्कर में वे कर्ज़ के बोझ तले दब गये हैं। उनकी कृषि और उद्योग उन्हें कर्ज उतारने के लिए आवश्यक विदेशी मुद्रा नहीं दे पा रहे हैं इसलिए वे औरतों का निर्यात करके डॉलर और पाउंड हासिल करने में लगे हैं।''

भूमंडलीकरण के बाद निजी क्षेत्रों में रोजगार का जो अवसर सभी को मिला है, उसमें स्त्री की सबलता पुरुष प्रताड़ना की शिकार हो रही है। निजी क्षेत्रों में सरकारी क्षेत्रो की अपेक्षा बॉस द्वारा नौकरी पर रखने या छुड़वाने का अधिकार बहूत ज्यादा रहता है। जिसका फायदा पुरुषवादी बॉस उठाता है। सामाजिक और पारिवारिक दबाव के कारण कई स्त्रियाँ इस फायदे के विरुद्ध नहीं जा पाती हैं, लेकिन कई ऐसी भी लड़कियाँ है जो अपने को सफल या आर्थिक आधार देने के लिए पहले से तैयार रहती हैं, बॉस की कामवासना के लिए अपनी जिन्दगी को संवारने की लालसा उन्हें मजबूर करती है। कई स्त्रियाँ ना चाहते हुए भी परिस्थितिवश पुरुषों की वासना का शिकार बनती हैं। बाजार ने जो स्त्री को 'पॉवर वुमैन' बनने का मौका दिया है, उसमें इस सबल स्त्री की नई मजबूरियाँ है जिसका संस्कृति और परंपरा के ठेकेदार पुरुष कई तरीके से फायदा उठाते हैं। बाजार के माध्यम से यौनता को उभारने का काम भी पितृसत्ता ने किया, जो स्त्री के लिए अपने ढंग से एक ऐसा जाल बुनती है जिसका शिकार किसी न किसी तरीके से स्त्री जरुर होती है।

स्त्री को भूमंडलीकरण के माध्यम से जो स्पेस मिला है उसमें एक ऐसी स्त्री तैयार हो रही है जो एक नई स्त्री है जिसमें किसी से संवाद करने की शक्ति है, जो अपने अत्याचारों के खिलाफ लड़ सकती है। बाजार ने जो स्त्री की छवि तैयार की है उसमें आज की स्त्री पुरुष की नजरों में भले ही बगैर बुद्धि की हो पर तेज तर्रार और बोल्ड है जो परंपरागत धारणाओं को सर झुकाकर स्वीकार नहीं कर सकती। उसके पास आज अपने तर्क हैं।

''वर्तमान सामाजिक व्यवस्था ने स्त्री को एक ऐसे 'उत्पाद' के रुप में पेश किया है जो पुरुषों द्वारा 'उपयोग' और 'विनिमय' में लाया जाता है। स्त्री की स्थिति पण्य-वस्तु या 'सामग्री' की है। सामग्री बनी स्त्री बोलने के अधिकार से वंचित है। उपयोग और विनिमय के लिए काम में आने वाली वस्तु बोलने और विनिमय के व्यापार में हिस्सेदारी का दावा कैसे कर सकती है? 'सामग्री' कभी अपने आप स्वयं को बाजार में नहीं ले जाती और अगर वह बोले तो बिल्कुल नहीं? अतः कुल मिलाकर स्त्री को एक ऐसे इन्फ्रास्ट्रक्चर' की तरह रहना होगा जिसे समाज और संस्कृति मान्यता नहीं देगी। उनके 'सेक्सुअलाइज्ड' कामुकतापूर्ण शरीर का उपयोग, उपभोग और वितरण समाज-व्यवस्था के संस्थान और पुनरुत्पादन के उस रुप को पेश करता है जो स्त्री को कभी भी 'सब्जेक्ट' की तरह नहीं देखता।''

कहना न होगा कि स्त्री आज भी जिस तरह का अर्थहीन, अस्तित्त्वहीन जीवन जी रही है, दुःखों और कष्टों को सहनशील, समर्पिता बनकर भोग रही है, जिन अमानवीय हिंसक यातनाओं, संतापों से भरी जिंदगी जी रही है वह पितृसत्तात्मक नैतिक मर्यादा वर्चस्व की देन है। जब तक वह पैतृक नैतिकताओं, मर्यादाओं का अनुसरण करेगी तब तक उसका जीवन नारकीय कष्टों, अभिशापों से भरा रहेगा। फिलहाल स्त्री की इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, सपनें, इन्द्रधनुषी कल्पनाएँ धूमिल हैं, क्योंकि उसके लिए घर में एक रोशनदान की व्यवस्था है, उस रोशनदान को भेदती रोशनी और हवा ही उसको लगती है, क्या वही जिंदा रहने के लिए काफी नहीं है। वह घर में रहे या बाहर उसके लिए रोशनदान की सी रोशनी और हवा ही पर्याप्त है। इससे अधिक उसके पास कुछ नहीं है, क्योंकि वह एक आदर्श देवी स्वरुप भारतीय स्त्री की गरिमा से मंडित है। बाजारवाद ने इस नई औरत को जन्म अवश्य दिया लेकिन वह एक नए मर्द को जन्म नहीं दे पाया जो इस 'पॉवर वुमैन' के साथ नए तरह के नर-नारी संबंधों का सिलसिला शुरु कर सकता है।

सन्दर्भ.

1. In defence of globalçation, Jagdish Bhagwati, p.28.
2. भूमंडलीकरण की चुनौतियांए सच्चिदानंद सिन्हा, पृष्ठ.134
3. हंस, मार्च 2001, सग्राजेन्द्र यादव, पृष्ठ. 27
4. हंस, मार्च 2001, सग्राजेन्द्र यादव, पृष्ठ. 28
5. ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ, डॉ. सुधा सिंह, पृष्ठ. 87

डॉ० भीमराव अम्बेडकर की सामाजिक क्रान्ति

राजीव त्रिपाठी

शिक्षा संकाय पी0जी0 कालेज, उपरदहां (बरौत) प्रयागराज

भारत की सामाजिक क्रान्ति के इतिहास में डॉ0 भीमराम अम्बेडकर का नाम विशेष आदर से लिया जाता है। भारत की आजादी से पूर्व एवं आजादी मिलने के बाद भी डॉ0 अम्बेडकर ने विशेष सराहनीय कार्य किया। इन्हें वह सामर्थ्यशाली सूरज कहा जा सकता है, जिन्होंने अपनी किरणों द्वारा भारतीय समाज को अन्धेरे से निकालते हुए रोशनी प्रदान किया। हम सभी को ईश्वर की कृपा स्वीकार करनी होगी कि ऐसे महापुरूषों को नि: स्वार्थ जीवन व्यतीत करने के लिए जन्म दिया। जिस प्रकार सामान्य व्यक्ति के समक्ष कुछ आदर्श तत्वों वाले व्यक्ति होते है। उसी प्रकार, जिसे हम आदर्श व्यक्ति स्वीकार करते है, उनके समक्ष भी कुछ आदर्श व्यक्ति के जीवन के आदर्श प्रसंग होते है हमारे समक्ष हमारे कुद शिक्षको के विशेष गुण होते हैं। उनकी हम प्रशंसा भी करते हैं। हमारे सामने कोई आदर्श हो, यह जरूरी नही है लेकिन जो आदर्श है, उसे परखना चाहिए। आदर्श व्यक्ति स्वीकार करना ठीक है, लेकिन अन्ध-श्रद्धा से व्यक्ति पूजा करना ठीक नहीं है।

डॉ. अम्बेडकर ने केवल एक व्यक्ति थे, अपितु एक संस्था और समाज सुधारक थे। जब व्यक्ति में से समाज की सुगन्ध आने लगती है तब वह सम्पूर्ण हो जाता है और सम्पूर्णता की अनुभूति मुक्ति के द्वार पर दस्तक देने लगती है। हर व्यक्ति समाज नहीं हो सकता, समाज भी कौन सा? भारतीय समाज। भारतीय समाज अनेकानेक समाजों का एक समूह है, उनमें विविध संस्कृतियॉ एवं सभ्यताएँ समाहित हैं। डॉ0 अम्बेडकर ऐसे विविधामूलक और अनेक धर्मी समाज के प्रतिनिधि थे या प्रतीक? वे मात्र दलित वर्ग तक सीमित थे । सरोजनी नायडू उन्हें भारत का मूसोलनी; मानती थी और के0 एम0 मुन्शी 'दम्भी एवं दबंग' कहते थे। कहने को उन्हें देशद्रोही एवं समाजद्रोही भी कहा गया है लेकिन वे सम्पूर्ण भारतीय समाज के प्रतीक थे।

डॉ. अम्बेडकर लोभी नही थे और स्वार्थी भी नही थे। वे ईमानदार थे, समर्पित और त्यागी थे। वे फौलादी व्यक्तित्व के जनक थे, दृढ़ता उनके चरित्र का अभिन्न अंग थी। वे किसी प्रलोभन में नहीं फंसे, अंग्रेजी सरकार उन्हें जज बनाना चाहती थी, पर वे नही बने। गांधी जी उन्हें अपने साथ लेना चाहिते थे, पर वे उनके साथ नही आयें मन नहीं माना तो वे मंत्रिमण्डल से भी विलग हो गये। दरअसल उनके मन में कबीर थे और उनकी आस्था में बुद्ध। वे संघर्षी मुद्रा मे रहे और आजीवन घाव सहते रहे, घाव पर मरहम लगाकर वे जूझते रहे। उन्होंने कहा कि यह सम्भव हो सकता है कि मैं गलती पर होऊ। परन्तु मैंने हमेशा कहा कि यह सम्भव हो सकता है कि मैं गलती पर होऊ । परन्तु मैंने हमेशा यही मुनासिब समझा है कि दूसरों के पथ-निर्देशक और आदेशों को मानने और मौन बैठे रहने व स्थितियों को बिगड़ने देने की अपेक्षा त्रुटियॉ करना कहीं श्रेयस्कर है वे निडर थे और बराबर समाज के प्रहरी बने रहे।

डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म की दोहरी नीति का पर्दाफाश किया। उस समय उन्हें भारत विरोधी कहा जाता था। जब हिन्दू धर्म ने डॉ अम्बेडकर को छोड़ना चाहा तब उन्होंने मजबूर होकर बौद्ध धर्म स्वीकार किया। अगर हिन्दू धर्मवादी अस्पृश्यता को बन्धुभाव से देखते तो डॉ. अम्बेडकर को हिन्दू धर्म छोड़ने की नौबत क्यों आती। क्यों डॉ. अम्बेडकर ने एक ही रात मे धर्म छोड़ने का निर्णय कर लिया था? क्यो उनको धर्म परिवर्तन से कोई सदमा नहीं पहुंचा था? अधिक अन्याय को वे बर्दाश्त नहीं कर सके और अन्त में धर्म बदलने का निर्णय लिया। यह भारतीय समाज के लिए अच्छा हुआ। उनके धर्म बदलने से हिन्दू धर्म की दोहरी नीति सामने आयी। हिन्दू धर्म को सुधार करने की आवश्यकता समझ में आने लगी। अत: डॉ. अम्बेडकर के निर्णय का हमे आभारी होना चाहिए।

व्यक्ति पूजा करना डॉ. भीमराव अम्बेडकर को पसन्द नहीं था, उनका कहना था कि अगर पुतले बोल सकते है तो क्या उन्हें ऐसे शर्मीन्दिगी पर गौरव हो सकता है? क्या पुतले कभी अपनी मानव द्वारा होने वाली दुर्दशा पर बयान कर सकते है,? क्या धूप क्या पानी क्या ठंड क्या लगातार बरसात सभी को उनको सहना पड़ता है। इससे अधिक बर्ताव हम पुतले से क्या कर सकते हैं।

डॉ. अम्बेडकर को केवल उनके छात्र जीवन में ही नहीं, बल्कि वे केन्द्र सरकार में कानून मंत्री थे तब भी उन्हें शूद्र एवं अस्पृश्य होने के कारण कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। अस्पृश्यता के विरोध मे जो कार्य डॉ0 अम्बेडकर ने किया, वह अपने आपमें एक श्रेष्ट मिसाल है। वे अस्पृश्यता निवारण के लिए उच्चवर्णियों से कोई दया की भीख नहीं लेना चाहते थे। उनकी लड़ाई अपने हक की थी। वे एक मान से दूसरे मानव के प्रति अच्छे बर्ताव की अपेक्षा करते थे। अपने अधिकार को हासिल करने के लिए उन्होंने अस्पृश्यों को संगठित किया। महाड़ तालाब का संघर्ष एव नासिक मन्दिर प्रवेश आन्दोलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि शोषण के प्रति लड़ने वाला शोषण का शिकार हो तो लड़ाई और भी अधिक सजीव दिखाई देती है।

हिन्दू धर्म में फैली जातियता मिटाने के लिए डॉ. अम्बेडकर ने भरसक कोशिश की। अस्पृश्यों का विकास प्राथमिक स्तर पर उनके लिए आवश्यक ही था लेकिन केवल यह सीमित कार्य ही उनेक सामने नहीं था। अनुसूचित जाति संघ 1942 ई0 मे उन्होंने अनुसूचित जाति की शिक्षा और अन्य हकों के लिए स्थापित किया था। डॉ. अम्बेडकर ने अपने बहुत सारे साथियों के साथ हिन्दू धर्म को छोड़ दिया था। यह भारत जैसे लोकशाही प्रधान देश को एक सत्य घटना के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए। हमे लोकशाही का बहुत आदर करना चाहिए। यह लोकशाही की कमजोरी नहीं बल्कि जीत है। डॉ. अम्बेउकर ने 1935 ई0 में हिन्दू धर्म छोड़ने की खुले में आमचर्चा की थी ओर 1956 ई0 में बौद्ध में हिन्दू धर्म छोड़ने की खुले में आमचर्चा की थी और 1956 ई0 में बौद्ध धर्म स्वीकार किया था। 21 साल का समय किसी दृष्टि से कम नहीं होता है। इंग्लैण्ड और अमेरिका की धरती पर शिक्षा लेते समय उन्होंने जिस

स्वतंत्रता का अनुभव किया था, क्या वैसा अनुभव उन्हें भारत में मिल सका। भारत की भूमि पर उन्हें जातियता का घिनौना दृश्य दिखायी दिया। यदि परम्परावादियों द्वारा उन्हें अच्छा बर्ताव मिल जाता तो उनके मस्तिष्क में हिन्दू धर्म छोड़ने का विचार कभी न आता। जब पानी सिर से ऊपर बह रहा था तब मजबूर होकर हिन्दू धर्म छोड़ना पड़ा।

डॉ. अम्बेडकर एक अच्छे अर्थशास्त्री थे। अस्पृश्य जाति की आर्थिक स्थिति से वे भली-भांति परिचित थे। राजकीय, सामाजिक और शैक्षणिक क्षेत्र मे कुछ हासिल करने के लिए वे अस्पृश्यों को ऊपर उठाना चाहते थे। उनका निजी अनुभव था कि बिना संघर्ष के कुछ नहीं पाया जा सकता है। 1935 ई0 में डॉ0 अम्बेडकर ने महार वतनदारी समाप्त करने के लिए एक बिल पेश किया था। 1937 ई0 में महार वतनदारी पर अपने विचार रखे। महार वतनदारी, महारो को 20वीं शताब्दी में गुलामगीरी की ओर ले जा रही है। अगर उनको स्वतंत्रता एवं वैभवशाली जीवन पसंद है तो वतनदारी को समाप्त करना होगा। जाति के आधार पर अस्पृश्यों को निचले दर्ज का कार्य करना पड़ता है यह बंद करना होगा।

डॉ. अम्बेडकर जाने माने कानून विशेषज्ञ भी थे। बम्बई लेजिस्लेटिव असेम्बली में उनके द्वारा जो बिल पेश किये गये थे उनमें बहुत सारी पिछड़ी जातियों की आर्थिक दशा से थीं उनके द्वारा पेश किया गया Sahukari Control Bill एक महत्वपूर्ण बिल था। जिससे साहूकारों द्वारा विभिन्न जातियों का शोषण समझ में आता है। इस बिल के प्रमुख मुद्दों मे साहूकारी व्यवसाय करने के लिए आदेश, इन आदेशों का नवीनीकरण, गैर-व्यवहार के कारण व्यवसाय करने का परवाना रोकना, आर्थिक व्यवहार की लिखा पढ़ी तथा साहूकारों द्वारा ऋण लेने वाले को पासबुक देना सम्मिलित थां डॉ0 अम्बेडकर ने खोत पद्धति की समाप्त करने के लिए बिल पेश किया था। खोतो द्वारा छोटे किसानों को शोषण होता था। खोतों द्वारा अपने समर्थन मे शिकायते दायर की गयी थी जिसके वकील की हैसियर से डॉ. अम्बेडकर ने पर्दाफाश किया एवं गरीब किसानों को न्याय दिलवाया।

भारत की आजादी के बाद समानता का ज्ञान विशेष रूप से सामने आया। इसको भारतीय संविधान में सम्मिलित करने का प्रयास डॉ. अम्बेडकर ने किया। डॉ. अम्बेडकर भारतीय जन सामान्य के लिए कार्य कर रहे थे और उनका निश्चित मत था कि भारतीय आजादी जनसामान्यों से जुड़ी होनी चाहिए और इसमें वर्ण-द्वेष, जातीयता और सामजिक शोषण से दूर होना चाहिए। भारतीय संविधान को अन्तिम रूप देते समय डॉ0 अम्बेडकर भरसक कोशिश की, कि भारतीय समाज एक सशक्त रूप में आये।

समाज सुधार आन्दोलन का सहयोग मिलता तो आजादी के बाद भारतीय समाज का एक अच्छा सुदृढ़ चित्र सामने आता। प्रत्येक समाज को आगे बढ़ाने मे शिक्षा सबसे महत्वपूर्ण तत्व होता है डॉ. अम्बेडकर ने शिक्षा की परिभाषा दी है। जो शिक्षा योग्य न बनाये समानता न सिखाये और नैतिकता का बोध न कराये वह शिक्षा नहीं है। वे उसे शिक्षा मानते थे। जो मानव मात्र के हित का संरक्षण करती है। जो शिक्षा समाज को समता, पेट को रोटी और ज्ञान को तृप्ति दे। वही सच्ची शिक्षा है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि डॉ अम्बेडकर ने स्वीकार किया है कि शिक्षा वही उपर्युक्त है जो समाज में समानता लाये।

शिक्षा ही दलितों के उत्थान का एक मात्र साधन है। लेकिन कठिनाई यह है कि समाज के जिसे वर्ग की हालात पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता बतायी जाती है। शिक्षा मं समाज के उसी वर्ग को प्रवेश से वंचित किया जाता है ।जहॉ कहीं भी प्रवेश दिया जाता है, वहॉ समानता का दर्जा नहीं मिलता है। दलित वर्ग की शिक्षा बचपन से ही परिष्कृत होनी चाहिए। उन्हें प्रारम्भ से ही धार्मिक व नैतिक शिक्षा देनी चाहिए। शराब व अन्य प्रकार की दुर्गन्ध और तेज गन्ध वाले भोज्य पदार्थो के खाने के कारण दलित वर्ग के बालकों में दुर्गन्ध आती रही है। यदि वे भी पीढ़ियों से शुद्ध भोजर करते रहे तथा सफाई से रहे तो सुसंस्कृत बालकों के समान ही है। परन्तु दलितों के बच्चों को अन्य के समकक्ष लाने में पीढ़ियां गुजर जायेगी। हमें दलित वर्गो को भी उस भौतिक शुद्धता के स्तर पर लाना होगा और जब तक ऐसा न ही किया जाता उनमें निकट सम्पर्क स्थापित करना अनुचित होगा। डॉ० अम्बेडकर ने कहा है कि इस समुदाय में रहने वाले व्यक्तियों से कहा कि अपने बच्चों को सफाई से रहने, शराब नशाखोरी, दुर्गन्ध भोजन व मांस न खाने की शिक्षा दे, जिससे उनका इन वस्तुओं के न प्रयोग करने से सम्पूर्ण विकास हो सके। डॉ. अम्बेडर के शब्दों में - इसके लिए उन बच्चों तथा उनके माता-पिता को दोष नही देते मै तो कटु वास्तविकता स्पष्ट कर रहा हूं। ऐसे बच्चों को स्कूल मे प्रथम पाठ के तौर पर नहाना, सफाई से रहना, साफ कपड़े पहनना तथा साफ भोजन करने की शिक्षा देने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. रानाडे, गांधी एवं जिन्ना: भीम पत्रिका पब्लिकेशन नकोदर रोड, जालघंर।
2. कीर, धनंजय: भीमराव अम्बेडकर, लाइफ एण्ड मिशन बॉम्बे पापुलर 1990।
3. नगवी सैय्यद करनाम अहमद: डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का प्रेरणादायक व्यक्तित्व, अम्बेडकर पुस्तकालय, जौनपुर, 1994।

सर छोटूराम का कृषि संबंधी योगदान

सरला

शोद्धार्थी, एन.आई.आई.एल.एम. विश्वविद्यालय, कैथल, हरियाणा

डॉ० अजमेर सिंह पुनिया

एन.आई.आई.एल.एम. विश्वविद्यालय, कैथल, हरियाणा

शोध-लेख सार

भारत एक महान राष्ट्र है। इतिहास, राजनिति व दूसरे उपलब्ध दस्तावेज इसका प्रमाण है। इन्हीं महा-उपलब्धियों में सर छोटूराम का नाम भी आता है। जिसे जन-साधारण 'युग-पुरूष' मानते हैं। उपलिब्ध, योगदान व नेक सोच-विचार को जानते है। अंगेजी सरकार ने उन्हें 'सर' की उपाधि से नवाजा। सर छोटूराम के नेक इरादों-प्रयत्नों के कारण 'रहबरे आजम', 'किसानों के मसीहा' बोला जाता है। प्रस्तुत शोध-पत्र सर छोटूराम का किसानों को योगदान को सीमित शब्दों में स्पष्ट करने का प्रयत्न है।

मुख्य शब्दः अन्नदाता, सर छोटूराम, किसान, अधिनियम।

भूमिका

अन्नदाता किसान का सम्मान जहां पर
सच पूछो देवताओं का वास वहां पर

सर छोटूराम का जन्म जिला रोहतक के गढ़ी सांपला नामक एक छोटे से गाँव में 24 नवम्बर 1881 को ओहलान गोत्रीय जाट किसान चौ. सुखीराम के घर हुआ। उनके बचपन का नाम राम रिछपाल था। उनकी माता जी का नाम सिरिया देवी था। चौ. छोटूराम का विवाह 12 वर्ष की आयु में 5 जून 1893 ई. को ज्ञानो देवी सुपुत्री नान्हा सिंह गुलिया झज्जर (खेड़ी जट्ट) में हुआ था। सर छोटूराम अपने भाईयों में सबसे छोटे थे इसलिए परिवार के सब लोग इन्हें छोटू कहकर पुकारते थे। स्कूल में मास्टर जी ने भी रजिस्टर में उनका नाम छोटूराम दर्ज कर दिया था और ये महापुरूष छोटूराम के नाम से विख्यात हुए।

'सर छोटू राम जी के लेखों और पत्रों के संकलन के इन पांच खंडों का लोकार्पण करते हुए मुझे हर्ष और संतोष की अनुभूति हो रही है। मुझे संतोष है कि मैं हमारे देश की इतनी महान विभूति से जनता को परिचित कराने का माध्यम बना। हमने अपने इतिहास की अनेक महान विभूतियों के साथ न्याय नहीं किया। उन्हें वो सम्मान नहीं दिया जिसके वे अधिकारी थे। हमारे स्वाधीनता आंदोलन के अनेक ऐसे नायक थे जिन्होंने अपने क्षेत्र में या समुदाय में काम किया लेकिन उनके द्वारा किए गए कामों का महत्व क्षेत्र या समुदाय तक सीमित नहीं था बल्कि देश व्यापी था ।

ऐसे महापुरुष हर क्षेत्र, हर वर्ग में हुए जिन्होंने शोषण और अन्याय के खिलाफ लोगों को जागरूक किया, उन्हें संगठित किया। जरूरी है कि इन विभूतियों के जीवन और कामों से देश को परिचित कराया जाये। उन्हें देश के इतिहास में सम्मान के साथ स्थापित किया जाय। जिससे आने वाली पीढ़ियां, स्वाधीनता आंदोलन में विभिन्न क्षेत्रों और वर्गों के संघर्ष से भी परिचित हो सकें। स्वाधीनता आंदोलन, अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ सिर्फ राजनैतिक आंदोलन नहीं था। स्थानीय समुदायों के स्तर पर वह सामाजिक, आर्थिक सुधार का भी आंदोलन था। वह सांस्कृतिक जागरण का आंदोलन था। उन्नीस सौ बीस (1920) से उन्नीस सौ चालीस (1940) की अवधि में, अविभाजित पंजाब की राजनीति में, सर छोटू राम जी और उनकी यूनियनिस्ट पार्टी के योगदान को कैसे भुलाया जा सकता है, जिन्होंने धर्म के आधार पर देश के बंटवारे का विरोध किया।

उनकी मृत्यु के बाद, विभाजन के समय पंजाब में हुई हिंसा का इतिहास गवाह है। तब सरदार पटेल ने कहा भी था -

"I would not have had to worry of the Punjab, if Chhotu Ram was alive."

1919 के संवैधानिक सुधारों के बाद से सर छोटू राम जी पंजाब विधान मंडल में चुने जाते रहे। अपने "Rural Block" के माध्यम से किसानों और उस क्षेत्र के मुद्दे उठाते रहे।

उन्नीस सौ सैंतीस (1937) के चुनावों के बाद पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी की सरकार में विकास मंत्री के रूप में सर छोटू राम जी ने किसानों को साहूकारों, आढ़तियों के शोषण से मुक्त कराने के लिए कानून बनाए।

उन्होंने कृषि श्रमिकों के हित में जिन कानूनों को लागू किया उन्होंने भविष्य के कृषि सुधारों की नींव रखी। उन्होंने ब्याज और कर्ज के कुचक्र से किसानों को मुक्ति दिलाई, उनकी भूमि को वापस दिलवाया। किसानों के गिरवी रखे घरों, जानवरों को साहूकारों के कब्जे से बचाया। किसान अपनी उपज का सही दाम पा सकें इसके लिए स्थानीय स्तर पर मंडियां स्थापित करवाई। मुझे ज्ञात हुआ है कि उन्होंने कृषि और पशुपालन में आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली विकसित करने के लिए शोध संस्थान स्थापित किए। मुझे यह भी ज्ञात हुआ है कि सतलज पर भाखड़ा बांध की कल्पना सबसे पहले सर छोटू राम जी ने ही की थी और उसके निर्माण के लिए अंग्रेज सरकार तथा बिलासपुर के शासक से समझौता भी किया था। ये कार्य वही व्यक्ति कर सकता है जिसने किसानों और कृषि की समस्याओं को स्वयं अनुभव किया हो। जो अपने समाज की समस्याओं के प्रति गहरी समझ और संवेदना रखता हो। सर छोटूराम जी स्वयं एक किसान परिवार से थे। ग्यारह वर्ष के उस बच्चे की वेदना के बारे में सोचिए जिसकी पढ़ाई के लिए कर्ज मांगने पर, उसके पिता को साहूकार से अपमानित होना पड़ा हो। इसी घटना ने उस बालक को शिक्षित होने और शोषण के खिलाफ लड़ने का संकल्प दिया। सर छोटूराम ने न केवल देश के प्रतिष्ठित कॉलेजों से शिक्षा हासिल की बल्कि आप स्वयं शिक्षक भी रहे और कई शिक्षा संस्थाओं को स्थापित भी किया। सर छोटूराम जी विचारक और लेखक थे। उन्होंने ट्रिब्यून जैसे अखबारों में नियमित लेख लिख कर समाज के लोगों को भी जगाया। कई अखबारों का संपादन भी किया। अपने समुदाय में जागृति लाने के लिए आपने 'जाट गजट' नामक पत्र की स्थापना की और उसमें लेखों के माध्यम से क्षेत्र की समस्याओं पर लोगों का ध्यान दिलाया, उन्हें संगठित किया। मुझे बताया गया कि जाट गजट हरियाणा का सबसे पुराना समाचार पत्र है और उसे आज भी पढ़ा जाता है। भारत में कृषि सिर्फ व्यवसाय नहीं है, यह हमारी संस्कृति का आधार है। गांव के खेतों में सिर्फ अनाज ही नहीं पैदा होता, हमारे सामुदायिक संस्कार भी जन्म लेते हैं। यदि गांव पिछड़ेगा तो हमारे संस्कार भी पिछड़ेंगे, उनमें रूढिघ्यां-कुरीतियां पनपेंगी। हमारी संस्कृति पिछड़ेगी और देश का विकास रुकेगा। एक खुशहाल गांव का समाज भी जीवंत होता है। वह अपनी कुरीतियों को खुद दूर करता है।

सर छोटूराम को भी अपने जीवनकाल में भेदभाव के दौर से गुजरना पड़ा। उच्च वर्णीय लोग, उनके प्रतिस्पर्धी तो उनसे दूर रहते ही थे, जबकि उनके समाज व गरीब तब के लोगों ने समर्थन न देकर भदेभाव जाहिर किया। नही तो भारत सर छोटूराम के सपनों का भारत होता। खुशहाल भारत होता। शहरी वकीलों ने उनसे ईर्ष्या बरती और मुव्वकिलों को बहका कर उनसे दूर रहने के प्रयत्न किए। जाहिर है छोटूराम को अपने धंधे में बना रहने के लिए उन शहरी वकीलों के हथकण्ड़ों का जवाब देना था। अत: उन्होनें गाँव के मुव्वकिलों को, विशेष रूप से जाटों को, जिनका रोहतक में बाहुल्य था, प्रभावित करना शुरू किया। पर बिना ठोस आधार के तो यह प्रभाव स्थायी नहीं रह सकता था। अत: उन्होंने इसे स्थायित्व प्रदान करने के लिए प्रयत्न शुरू किए। उनके अपने शब्दों में: "1912 में मैं रोहतक आ गया। यहाँ बहुत ही अच्छे कार्यकर्त्ताओं का दल पहले से विद्यमान था जिसके सब सदस्य, छोड़कर सर लालचन्द और कुछ सेवानिवृत सैनिक अफसरों के, आर्य समाजी थे। सबसे सलाह-मश्विरा हुआ और जाटों को सुप्त अवस्था से जगाने के लिए अभियान छेड़ दिया गया।" यह अभियान किस प्रकार का था? समाज को सुप्त अवस्था से कैसे जगाया गया? छोटूराम के शब्दों में यह ब्यौरा भी प्रस्तुत है। "हमारे गुरू के प्रयत्न अपने समाज के सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक उत्थान के प्रोग्राम पर आधारित थे। परिणाम बड़ा ही अच्छा रहा।" जाट महासभा, जिसकी नींव 1906 में उत्तरप्रदेश में पड़ चुकी थी, की यहाँ भी शाखाएँ स्थापित हो गई। 1913 में रोहतक में जाट स्कूल स्थापित हो गया। जिसकी प्रबन्ध कारिणी के छोटूराम सैक्रेटी चुने गए। इस प्रकार थोड़े से समय में ही छोटूराम जातीय नेता के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

दीनबन्धु का बीजारोपण

चौ. छोटूराम द्वारा मुवक्किलों के साथ किए जा रहे यथेष्ट सम्मानजनक व्यवहार पर सख्त एतराज उठाते हुए कहने लगे कि इस तरह से आचरण से इस पवित्र पेशे की आब पर आँच आती है। जो हम सबके लिए नुकसानदेह है। इस प्रकार के व्यंग्य और कटाक्ष के बावजूद छोटूराम अपनी राह चलता गया। यहीं पर उसके दीनबन्धु होने का बीजारोपण हो गया। यूनियनिस्ट पार्टी का एक महान स्तम्भ बन कर उन्होंने इसके भव्य भवन को यह गौरवशाली रूप प्रदान किया कि सम्भवत: पंजाब के सार्वजनिक जीवन में किसी भी राजनीतिक संगठन ने आज तक ऐसा रूप प्राप्त नहीं किया होगा। 1914 में जब प्रथम विश्व युद्ध छिड़ा तो छोटूराम की स्थिति में और भी मजबूती आई। उनके जातीय नेतृत्व की बढ़ती हुई साख को देखकर सरकार में उन्हें जिला सैन्य कमेटी का सैक्रेटी मनोनीत कर दिया। चौ. छोटूराम ने जाटों को सेना में भर्ती करवाने की मुहीम खूब जोरों से चलाई। ऐसा करने के उनके दो उद्देश्य थे। गरीब किसानों की सैन्य सेवा से आर्थिक स्थिति अच्छी हो जाएगी, और दूसरे घर से बाहर निकल कर वे कुछ सीखेंगे। छोटूराम की दोनों ही बातें एक दम सही निकली। कालान्तर में सैन्य सेवा से हरियाणवासियों में जो आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन आया। वह अत्यधिक विस्तृत और गहरा था। सरकार ने उन्हें राव साहब की पदवी दी थी और 100 एकड़ भूमि प्रदान की। सर छोटूराम की लेखनी का चमत्कार "जाट गजट (1916)" नामक साप्ताहिक पत्र में देखा जा सकता है। इसी समाचार पत्र में चौ. छोटूराम ने "बेचारा जमीदार" नाम से कुछ लेख लिखे थे। इन लेखों का प्रभाव इतना हुआ कि पाठकों की प्रेरणा पर इन्हें पुस्तक रूप दे दिया गया। छोटूराम की लेखनी जब लिखती थी तो आग उगलती थी। "बाजार ठगी की सैर" और "बेचारा किसान" के लेखों में से 17 लेख जाट गजट में छपे। झज्जर के ये जुझारू नेता चौ. छोटूराम विकास व राजस्व मंत्री बने और गरीब किसानों के मसीहा बन गए। सर छोटूराम ने अनेक समाज सुधारक कानूनों के जरिए किसानों को शोषण से निजात दिलवाई। उनका स्थान भारत के तत्कालीन नर्मदलीय कांग्रेसी नेताओं में था। राजा रामपाल सिंह के राज घराने से सम्बन्ध होते हुए भी कांग्रेस की राष्ट्रीय राजनीति से जुड़े हुए थे। पं. मदन मोहन मालवीय और दूसरे कांग्रेसी नेताओं का सदैव जमघट लगा रहता था। राजा साहब के यहाँ राष्ट्रीय चेतना का साहित्य और अखबार आदि भी प्रचुर मात्रा में मिलते थे। तत्कालीन राजनीतिक स्थिति पर दिन-रात वहाँ बहस भी होती रहती थी। लगता है छोटूराम को इन सब बातों ने अत्यधिक प्रभावित किया। वे सार्वजनिक जीवन में उतरने के लिए प्रेरित हो गए। सन् 1923 में छोटूराम ने पंजाब के जाने-माने मुस्लिम नेता सर फजले हुसेन के साथ मिलकर किसानों का एक जबरदस्त संगठन बनाया जिसे युनियनिस्ट पार्टी या जमींदार लीग कहते है। इसके बाद छोटूराम जीवन पर्यन्त युनियनिस्ट पार्टी में रहे। यह उनके नेतृत्व का तीसरा और अन्तिम आयाम था। अब उन्होने अपनी समस्त शक्ति नए, विस्तृत, धर्म निरपेक्ष प्रोग्राम को क्रियान्वित करने में लगा दी। दिन-रात, कहने का तात्पर्य कि सारे समय, सब स्थितियों में, अब उनके सामने एक ही बात रहती थी कि पंजाब के किसानों को, पिछड़े शोषित वर्गो को उठाकर और उन्हें एक मजबूत सूत्र में बांध कर सबसे शक्तिशाली पार्टी बनाया जाए। इतनी

लगन से काम करने वाले को असफलता के दर्शन नहीं होते। यह एक निर्विवाद सत्य है। ऐसा ही छोटूराम के साथ हुआ। साथ ही सार्वजनिक जीवन का राजनीतिक ध्येय और प्रोग्राम भी कच्चे मस्तिष्क में अंकित हो गया। "वह ध्येय था स्वराज्य प्राप्ति और प्रोग्राम का संवैधानिक राजनीति" छोटू राम जीवन पर्यन्त इन दोनों बातों से जुड़े रहे। इन्हीं को लेकर वे कांग्रेस में आए और जब कांग्रेस ने असहयोग आन्दोलन का प्रोग्राम अपनाया तो उससे अलग होकर इन दोनों बातों को सामने रखकर नया दल बनाकर उसमें जीवन भर रहे। सर छोटूराम का प्रथम मन्त्रिकाल 1924 ई. से आरम्भ होकर 26 दिसम्बर 1926 ई. तक रहा।

उदाहरण के लिए, यह पंजाब कांग्रेस की विरोधी थी पर गांधी जी को अपना नेता और पथ प्रदर्शक मानती थी। इसी प्रकार यह जिन्नाह के पंजाब में दखल देने के विरूद्ध थी, पर सिकन्दर-जिन्नाह पैकेट (1937) पर हस्ताक्षर करके अपने साथियों को छूट दे दी कि राष्ट्रीय स्तर पर वे मुस्लिम लीग के साथ रह सकते हैं। सिखों के संबंध में भी यह बात थी एक तरफ यह आजाद पंजाब के विरूद्ध थी और दूसरी तरफ सिकन्दर-बलदेव पैकेट (1942) बना लिया था। इससे राजनीतिक अस्थितरता बढ़ी और छोटूराम सरीखे महान नेताओं के न रहने पर यही अस्थिरता युनियनिस्ट पार्टी को ले डूबी।

छोटूराम के युग में पंजाब में तीन जातियां-हिन्दु, मुसलमान और सिख का वर्चस्व माना जाता था। छोटूराम ने अपने राजनैतिक जीवन के दौरान कभी-भी यह दिखाने का प्रयास नहीं किया कि वे केवल एक विशेष जाति का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे प्रत्येक विषय में पूर्ण व्यवहारवादी दृष्टिकोण रखते थे और कभी भी भावावेश के वशीभूत होकर उन्होने कोई काम नहीं किया।

किसानों के हितों के लिए लड़ने के कारण कुछ स्वार्थी तत्वों ने छोटूराम को साम्प्रदायिक भी कहना आरम्भ कर दिया। हिन्दु, सिख और मुसलमान किसानों को आर्थिक आधार पर एकमंच पर लाने का प्रयास करने वाले व्यक्ति को साम्प्रदायिक कहना कहाँ तक उचित है। इस बात पर विचार करना अति आवश्यक है।

परन्तु यह मजबूत संगठन अधिक दिन तक प्रांत की राजनीति में अपना महत्वपूर्ण रोल अदा नहीं कर सका। चौ. छोटूराम की मृत्यु के बाद (1945) इसमें पतन के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। इसके कारण युनियनिस्ट पार्टी में बहुत सारी कन्ट्राडिकशन्स थी, जैसे राष्ट्रीय पार्टी और स्थानीय संगठनों से अपने संबंधों को यह स्पष्ट नहीं कर पाई।

चौ. छोटूराम के कृषि सम्बन्धी कार्य

भारत के राजनीतिक इतिहास में चंद लोग ही ऐसे मिलते हैं जो देश के भूखे-नंगे गरीबों, जमीदारों तथा सूदखोर महाजनों द्वारा शोषित किसानों और भ्रष्ट नौकरशाहों द्वारा उत्पीड़ित लोगों के जीवन में खुशियाँ भरने के लिए आजीवन संघर्ष करते रहे हो। ऐसे लोगों में सर छोटूराम का स्थान बहुत ऊँचा है। इस देश की राजनीति में ऐसे लोगों का भी वर्णन मिलता है।

एक समय ऐसा था कि पंजाब में लगभग कृषि ही प्रान्तीय अर्थ-व्यवस्था की रीढ़ की हड्डी थी। अत: भू-स्वामित्व के कारण जाटों का महत्व स्वत: ही माना जाता था। बोर्ड ऑफ इकानामिक इन्कवारी के आलेख से पता चलता है कि रोहतक मे बड़े जमींदार कम और छोटे जमींदार अधिक थे।

सिंचाई की सुविधा का अभाव

किसान के पास चाहे कितनी भी भूमि क्यों न हो। यदि उनमें सिंचाई की सुविधा नहीं है तो उसकी आर्थिक स्थिति कभी नहीं सुधर सकती है। जिला रोहतक में किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए समय-समय पर छोटे-छोटे प्रयास होते रहे हैं लेकिन प्रतिफल आशा जनक नहीं रहे। जहाँ पर पानी खारा है और सिंचाई का प्रबन्ध नहीं है, वहाँ हमने बोरिंग करना आरम्भ किया हुआ है। मियाँवाली और रोहतक जिले में कहीं-कहीं दो सौ फीट की गहराई से पानी निकाला गया है।

किसानों के विकास के लिए तकनीकि जानकारी देना

खेती अब लाभदायक पेशा बन गई थी और खाद्यान्नों का उत्पादन कई गुणा ज्यादा हो गया था। विशेष मौकों पर किसानों को विकसित कृषि यन्त्र भी दिए जाने लगे थे। इसलिए उन्नत किस्म के बीज भी मिलने लगे थे। किसानों को बीज बोने तथा फसल काटने के लिए नई तकनीकि सहायता भी दी जाने लगी थी। उनका अपने खेतों में नई-नई किस्म के खादों का प्रयोग करना भी सिखाया गया था। बड़े पैमाने पर सिंचाई के लिए कुए खोदे गए थे। कुछ इलाकों में टयूबवैलों के लिए बिजली आपूर्ति कर दी गई थी। टयूबवैल (नलकूप) लगाने तथा नए किस्म के औजार खरीदने के लिए अनुदान दिए गए थे।

पंजाब भूमि हस्तान्तरण कानून 1907

सन् 1901 ई. के कानून के अनुसार कृषि योग्य भूमि केवल जमींदारों को ही बेची जा सकती थी और गैर जमींदार जातियों पर यह पाबन्दी थी कि वे 20 वर्ष की अवधि से अधिक किसी भी भूमि को रहन नहीं रख सकती थी। सन् 1901 ई. के कानून मे सन् 1907 ई. में एक संशोधन किया गया। इसको पंजाब भूमि हस्तान्तरण कानून 1907 कहा जाता है। इस संशोधित कानून के अन्तर्गत कब्जे के अधिकार को भूमि की परिभाषा में लिया गया है और जमींदार तथा गैर जमींदार भू-स्वामियों को यह अधिकार दिया कि वे कब्जे के अधिकार के स्वामित्व खरीदने का अधिकार प्राप्त हो गया।

सुनहरी कानूनों का सूत्रपात 1929

सन् 1929 ई. से आरम्भ होकर बाद के वर्षो तक रहने वाले आर्थिक उतार चढ़ाव ने पंजाब सरकार को इस बात के लिए विवश कर दिया कि वह ऋण की बढ़ती हुई समस्या से निबटने के लिए कानून बनाए। (निर्धारित मानक) से कम होते हैं और दूसरे मामले में अर्थात् जिन्स लेते समय माप-तोल मानक से अधिक होते है। अत: लेते समय ज्यादा तोलना और देते समय कम तोलना भी ऋण का एक कारण है।

कर्जा माफी अधिनियम 1935

यह क्रान्तिकारी ऐतिहासिक अधिनियम दीनबन्धु सर छोटूराम ने 8 अप्रैल 1935 में किसान व मजदूर को सूदखोरों के चंगुल से मुक्त कराने के लिए बनवाया। इस कानून के तहत अगर कर्जे का दुगुना पैसा दिया जा चुका है वे ऋणी ऋण-मुक्त समझा जाएगा। इस अधिनियम के तहत कर्जा माफी (रीकैन्सिलेशन) बोर्ड बनाए गए जिसमें एक चेयरमैन और दो सदस्य होते थे। दाम दुप्पटा का नियम लागू किया गया। इसके अनुसार दुधारू पशु, बछड़ा, ऊँट, रेहड़ा, घेर, गितवाड़ आदि आजीविका के साधनों की निलामी नहीं की जाएगी।

पंजाब ऋण राहत कानून 1935

इस परीक्षण से ही पंजाब में किसानों के लिए सुनहरी कानूनों की परम्परा आरम्भ हो जाती है। किसानों की ऋण समस्या को लेकर पंजाब कौंसिल में सरकार की तरफ से सन् 1934 में पंजाब ऋण राहत बिल प्रस्तुत किया गया जोकि 8 अप्रैल 1935 ई. में कानून बनकर पंजाब में लागू हुआ। इस बिल का विरोध शहरी हिन्दुओं की तरफ से होना ही था। राजा नरेन्द्र नाथ कश्मिरी ब्राहमण थे और साथ में बहुत बड़े जमींदार भी थे। उनकी विचारधारा हिन्दू महासभा से मेल खाती थी। वे ऋण बिल जैसे प्रस्तावों को हिन्दुओं पर चोट समझते थे। वस्तुतः यह बिल हिन्दुओं पर चोट न होकर ऋण में फसे किसानों को कुछ राहत दिलाने का एक प्रयास था। किसान ऋण के नीचे कितना दबा हुआ था।

किसानों की परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए और किसानों को ऋण से मुक्ति दिलाने की भावना से प्रेरित होकर सर साहब ने बिल पर बोलते हुए कहा कि इसका लक्ष्य उन लाखों जमींदारों और देहातियों को लाभ पहुँचाना है। अतः सूदखोर साहूकारों के हथकण्डों को जोकि वे ऋण प्राप्त करने के लिए अपनाते हैं, इस कानून से काटा जा सकता है।

साहूकार पंजीकरण एक्ट 1938

यह कानून 2 सितम्बर 1938 को प्रभावी हुआ था। इसके अनुसार कोई भी साहूकार बिना पंजीकरण के किसी को कर्ज नहीं दे पाएगा और न ही किसानों पर अदालत में मुकद्मा कर पायेगा। इस अधिनियम के कारण साहूकारों की एक फौज पर अंकुश लग गया।

गिरवी जमीनों की मुफ्त वापसी एक्ट-1938

यह कानून 9 सितम्बर 1938 को प्रभावी हुआ। इस अधिनियम के जरिए जो जमीनें 8 जून 1901 के बाद कुर्की से बेची हुई थी तथा 37 सालों से गिरवी चली आ रही थी, वो सारी जमीनें किसानों को वापिस दिलवाई गई। इस कानून के तहत केवल एक सादे कागज पर जिलाधीश को प्रार्थना पत्र देना होता था। इस कानून के तहत मूल राशि का दोगुना धन साहूकार प्राप्त कर चुका है तो किसान को जमीन का पूर्ण स्वामित्व दिए जाने का प्रावधान किया गया।

कृषि उत्पाद मंडी अधिनियम-1938

यह अधिनियम 5 मई 1939 से प्रभावी माना गया। इसके तहत नोटिफाइड ऐरिया में मार्किट कमेटियों का गठन किया गया। एक कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार किसानों को अपनी फसल का मूल्य एक रूपये में 60 पैसे ही मिल पाता था। अनेक कटौतियों का सामना किसानों को करना पड़ता था। आढ़त, तुलाई, रोलाई, मुनीमी, पल्लेदारी और कितनी ही कटौतियों होती थी। इस अधिनियम के तहत किसानों को उसकी फसल का उचित मूल्य दिलवाने का नियम बना। आढतियों के शोषण से किसानों को निजात इसी अधिनियम ने दिलवाई।

बनिये का व्यवहार

कपास, गुड़, तेल, सरसों, गेहूँ और कर्जदार की दूसरी कृषि उपज सब सीधे बनिये की दुकान में चली जाती हैं। परम्परा के अनुसार कर्जदार को समय-समय पर अपने साहूकार को चारा, ईधन, दूध और बेगार (बिना मेहनताना दिए काम लेना) भेंट स्वरूप देनी पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त हमारे प्रान्त में आम प्रचलन यह है कि साहूकार अपने आसामी की बहुत सारी फसलें या पैदावार खलिहान में से ही उठा ले जाता है। इसके कारण कर्जदार फसल आने के एक महीने के भीतर ही अपनी आम जरूरत की चीजों अनाज इत्यादि साहूकार से मोल लेने पर विवश हो जाता है। यहाँ रिवाज यह है कि साहूकार अपनी आसामी को दिए अनाज आदि का भाव उस समय प्रचलित बाजार भाव से अधिक लगाएगा। इस तरह साहूकार को मुनाफा बहुत अधिक होता है और कृषक या आम जनता को ऋण का भार उठाना पड़ता है।

व्यवसाय श्रमिक अधिनियम-1940

यह अधिनियम 11 जून 1940 को लागू हुआ। बंधुआ मजदूरी पर रोक लगाए जाने वाले इस कानून ने मजदूरों को शोषण से निजात दिलाई। सप्ताह में 61 घंटे, एक दिन में 11 घंटे से ज्यादा काम नहीं लिया जा सकेगा। वर्ष भर में 14 छुट्टिया दी जाएगी। 14 साल से कम उम्र के बच्चों से मजदूरी नहीं कराई जाएगा। जुर्माने की राशि श्रमिक कल्याण के लिए प्रयोग हो पाएगी। इन सबकी जांच एक श्रम निरीक्षक द्वारा समय-समय पर की जाया करेगी।

मण्डी जल विद्युत योजना

हम सर साहब के उन कार्यों के विषय में लिखना चाहते हैं जो कि उन्होंने अपने प्रथम मन्त्रिकाल में जनहित के लिए किए थे। मन्त्री बनने पर सर साहब को कृषि विभाग का कार्य दिया गया। कृषि मन्त्री के रूप में पंजाब को हरा भरा बनाने में सर छोटूराम ने कोई कमी नहीं रखी। इनसे पहले सरकार ने एक प्राइवेट कम्पनी को आर्थिक सहायता देकर माधोपुर जल विद्युत योजना आरम्भ करवाई थी। सर साहब ने कृषि मन्त्री का कार्य भार सम्भालते ही मण्डी जल विद्युत योजना को आरम्भ किया। इसके पूर्ण होने पर आधे पंजाब को बिजली और पानी मिलने की सम्भावना स्पष्ट दिखाई देती थी।

कृषक सहायता कोष

सर छोटूराम उस खतरे को भी जानते थे, जो किसानों के लिए आग चीज थी। ये खतरे प्राकृतिक आपदाओं के थे। जैसे ओले पड़ना, बाढ़ आना, टिड्डी दल का प्रकोप होना और सूखा पड़ना आदि जो किसान की फसलों को बर्बाद कर दिया करते थे। पंजाब के किसानों को इन आपदाओं से बचाने के लिए पंजाब रिलीफ फंड (पंजाब मदद कोष) की स्थापना की गई थी और सरकार ने 55 लाख रूपये साल की रकम जमा की थी। ऐसी आपदाओं से बचाव के लिए दिया गया रूपये वापिस नहीं लिया जाने वाले था। सरकार ने बहुत से माल गोदाम स्थापित किए थे। जहाँ किसान कृषि उत्पादों का अनुकूल भाव आने तक अपनी पैदावार को रख सकता था। इनका किराया साधारण था, जो किसान की पहुँच के भीतर था। किसानों ने इन सुविधाओं का पूरा लाभ उठाया और आर्थिक उत्थान के लिए बहुत अधिक प्रयास किया।

भाखड़ा बाँध योजना

बीसवीं सदी शताब्दी के आरम्भ में निक्लसन नामक एक अंग्रेज सुपरिन्टेन्डेन्ट इंजीनियर ने भाखड़ा बांध योजना की यह सम्भावना द्वारा पंजाब के सूखे जिलों रोहतक और हिसार को पानी सुलभ कराने का प्रस्ताव सुझाया था। यह योजना अनेक वर्षों तक मात्र कागजों में ही दबी रही। यदा-कदा इस पर विचार करने का प्रश्न आया। तो अन्य विषयों को वरीयता देकर उसे भुला दिया जाता रहा और इसके स्थान पर सिन्ध सागर नहर का जन्म हो गया और इस रेतीले प्रान्त सिन्ध सागर में शहनबाज जैसे बड़े-बड़े व्यक्तियों ने बहुत सारी भूमि खरीद ली। मन्त्री बनने पर जब सर छोटूराम ने सिन्ध सागर नहर की अपेक्षा भाखड़ा बांध को पुनर्जीवित करने के प्रयास आरम्भ किए तो बड़े मुसलमान जमींदार नाराज हुए और इस योजना का विरोध करने लगे। इस समय सरदार सुन्दर सिंह ने सर साहब का साथ दिया।

निष्कर्ष

भारत गणराज्य में हरियाणा का गौरवपूर्ण स्थान है। यह राज्य कृषि, उद्योग और संस्कृति की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं। इसी पुण्य भमि पर दीनबंधु छोटूराम ने जन्म लिया। वे केवल राजनीतिक सुत्रधार और नेता ही न थे, वरन् वे कृषकों के सच्चे हितैषी, दुखियों के अतरंगसाथी और शोषित-पीडिघ्त जनता के पोषक, सर्मथक और उद्धारक थे। उनमें चारित्रिक दृढ़ता थी। राजनीतिक सूझ-बूझ थी। इन सबसे भी बढ़कर वे एक महान इन्सान थे। जाति, भाषा, प्रांत आदि के भेद-भावों से ऊपर उठकर वे मानव और मानवता में गहरा विश्वास रखते थे। उनकी दृष्टि उदार और सम्प्रदाय-निरपेक्ष थी। अपने व्यक्तित्व की इन्हीं विरल विशेषताओं के कारण वे हरियाणा और समूचे भारत के राजनीतिक जीवन के क्षितिज पर एक-युग पुरूष और मसीहा के रूप में उदित हुए। उनका जीवन निश्चय ही अत्यंत प्रेरक और प्रभावशाली सिद्ध हुआ है।"

संदर्भ

1. कुण्डु डॉ. धर्मवीर (मार्च 2012). छोटूराम भारती भूमिका, पृ0 22
2. यादव, के. सी. (1975), "हरियाणा में स्वतन्त्रता आंदोलन का इतिहास", जालंधर पवन प्रिन्टर्स, पृ0 97
3. विद्यार्थी डॉ. धर्मदेव (2013). 'क्रांन्तिवीर' प्रथम संस्करण, हरियाणा ग्रंथ अकादमी पंचकूला पृ0 138
4. वर्मा, डी. सी. (1981). सर छोटूराम लाईफ एण्ड टाईम्स, नई दिल्ली, स्टर्लिग पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, पृ0 49
5. सिंह, बलबीर (1997). "सर छोटूराम चिन्तन और कर्म" रोहतक, गढ़ी सांपला: सर छोटूराम जन्म स्थान ट्रस्ट, पृ0 107
6. वर्मा, डी. सी. (1981). सर छोटूराम लाईफ एण्ड टाईम्स, नई दिल्ली, स्टर्लिग पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, पृ0 49
7. सिंह, बलबीर (1997). "सर छोटूराम चिन्तन और कर्म" रोहतक, गढ़ी सांपला रू सर छोटूराम जन्म स्थान ट्रस्ट, पृ0 107
8. कादियाँ प्रभावती (1993). दीन बंधु सर छोटूराम (प्रथम संस्करण), सुर्यप्रभा प्रकाशन जी-564, सुलतानपुरी, नई दिल्ली भूमिका पृ0 03
9. सिंह, बलबीर(1982). "सर छोटूराम: ए सांगा आफ इन्सपाइरेशनल लिडरशीप", नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग सूचना व प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ0 237
10. गोपाल, मदन (1977). "सर छोटूराम ए पॉलिटिकल बायोग्राफी", दिल्ली, बी.आर. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, पृ0 164
11. विद्यार्थी डॉ. धर्मदेव (2013). 'क्रांतिवीर' प्रथम संस्करण, हरियाणा ग्रंथ अकादमी पंचकूला पृ0 0139
12. शास्त्री, रघुवीर सिंह (1965). "सर छोटूराम जीवन चरित्र", रोहतक छोटूराम मैमोरियल सोसायटी, पृ0 385
13. चाहर, आजाद सिंह (2005). "झज्जर इतिहास के आइने से", पंचकूला, हरियाणा साहित्य अकादमी, पृ0 192

भारतीय राजनीति में गठबंधन एवं महागठबंधन

डॉ० विनय कुमार पिंजानी

सहायक आचार्य (राजनीति विज्ञान), बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

सारांश

मूल शब्दः भारतीय राजनीति, गठबंधन, महागठबंधन, सरकार

परिचय

भारतीय संविधान के अनुसार भारत का प्रशासनिक ढांचा अर्द्धसंघीय और सरकार का प्रारूप संसदीय है। संसदीय और राष्ट्रपति आधारित लोकतंत्र में राजनीतिक पार्टियों की उपस्थिति अनिवार्य हो गयी है।

भारतीय समाज की विविधता भरी प्रकृति और उससे पैदा हुयी समस्याओं की पेचीदगी ने राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय स्तर पर कई पार्टियों को जन्म दिया जिनमें मामूली वैचारिक अंतर थे। यदि हम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को स्वाधीनता संग्राम में राष्ट्रीय आंदोलन मान लेते हैं तो दिखता है कि, इसमें विभिन्न हितों, वर्गों, समुदायों और जातियों का प्रतिनिधित्व था। लेकिन आजादी से पहले भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का एकमात्र उद्देश्य भारत की आजादी हासिल करना था। जैसे ही वह उद्देश्य पूरा हुआ, कांग्रेस ने केंद्र तथा राज्यों में जवाबदेह सरकारें चलाने की चुनौती स्वीकार करने के लिए खुद को राजनीतिक पार्टी में बदल लिया।

भारत में तमाम कठिनाइयों के बावजूद पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और श्रीमती इंदिरा गांधी जैसे कुछ करिश्माई नेताओं के कारण केंद्र में स्थिर सरकारों का लंबा दौर रहा। इन नेताओं को लाल बहादुर शास्त्री, कामराज, चव्हाण जैसे निःस्वार्थी नेताओं का भी सहारा मिला। वर्तमान में ऐसे करिश्माई व्यक्तित्व दुर्लभ हैं, लेकिन "अक्षम" व्यक्ति खूब हैं, जिन्हें पेशेवर राजनेताओं का सहारा मिल रहा है।

तकरीबन 16 वर्ष तक चले जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में केंद्र तथा कई राज्यों में कांग्रेस पार्टी का एकछत्र राज था। नेहरू के करिश्माई व्यक्तित्व और देश-विदेश में लोगों को आकर्षित करने की उनकी चुंबकीय क्षमता ने, भारत को राजनीतिक हलकों में ऐसी स्थिति में पहुंचा दिया, जिससे दूसरों को ईर्ष्या होती थी। नेहरू का निधन, जनता और कांग्रेस पार्टी के लिए धक्का था। उस वक्त पैदा हुए शून्य को उनकी पुत्री इंदिरा गांधी ने काफी हद तक भर दिया। लेकिन उनके कार्यकाल में ही कांग्रेस के पतन की प्रक्रिया शुरू हुई और अंत में उनके समय में ही पार्टी टूट गई। कांग्रेस पार्टी के विघटन से एक पार्टी की प्रधानता वाली प्रणाली खत्म हो गई और कुकुरमुत्तों की तरह राजनीतिक पार्टियों के उगने का दौर शुरू हो गया। भारतीय राजनीति में सरकारों के ढांचे तथा कामकाज को नए आयाम देने वाली बहुदलीय व्यवस्था का उद्‌भव शुरू हो गया।

हमारे संविधान निर्माताओं ने कैबिनेट सरकार वाले संसदीय लोकतंत्र का ब्रिटिश मॉडल सोच-समझकर अपनाया था क्योंकि सामूहिक जिम्मेदारी के विचार के कारण वह भारत के लिए सबसे अनुकूल था। लोकतांत्रिक व्यवस्था में गठबंधन बहुदलीय व्यवस्था की अनिवार्य शर्तों का सीधा परिणाम है। यह बहुदलीय सरकार में अल्पमत वाली कई पार्टियां सरकार चलाने के लिए हाथ मिला लेती हैं, जो एकदलीय व्यवस्था पर आधरित लोकतंत्र में संभव ही नहीं होता। गठबंधन की सरकार तब बनती है, जब सदन में कई राजनीतिक पार्टियां अपने मोटे मतभेदों को दूर रखकर साझा मंच पर हाथ मिलाने के लिए तैयार हो जाती हैं और सदन में बहुमत जुटा लेती हैं। असहमति के बावजूद इसमें हैरतअंगेज तालमेल होता है।

गठबंधन की राजनीति

संसदीय लोकतंत्र में गठबंधन आम तौर पर राजनीतिक बाध्यता का ही नतीजा होते हैं। ये नस्ली, सांप्रदायिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक अथवा राजनीतिक टकरावों का परिणाम हो सकते हैं। आपात स्थिति के कारण भी गठबंधन बन सकता है। गठबंधन सरकार की नीतियां उसमें शामिल पार्टियों द्वारा बनाई जाती हैं और गठबंधन का नेता उन्हें अंतिम रूप भर देता है। टकराव भरी गठबंधन की राजनीति में प्रत्येक राजनीतिक दल दूसरी पार्टी का विरोध करता है और अधिक से अधिक मंत्री पद अपने कब्जे में लेने का प्रयास करती है।

1990 के दशक में राजनीतिक संघवाद और आर्थिक उदारीकरण के मामले में जो भी परिवर्तन हुए, उनका पीछे 1989 से नई दिल्ली में मौजूद गठबंधन सरकारें और अल्पमत सरकारें भी थीं। 1989 तक कांग्रेस के लंबे शासन के बाद केंद्र में गठबंधन और अल्पमत की सरकारें दिखनी शुरू हो गयीं, जो 1999 तक लगातार आती-जाती रहीं। भारत में गठबंधन और अल्पमत सरकारें संसदीय व्यवस्था की उस नाकामी का नतीजा हैं, जिसके तहत एक राजनीतिक दल सरकार बनाने के लिए निचले सदन (लोकसभा) में पूर्ण बहुमत हासिल करने के पैमाने पर खरी नहीं उतर पाता है। 1989 के बाद से किसी भी पार्टी को सदन में बहुमत हासिल नहीं हुआ था। 2014 के चुनावों में भाजपा नीत राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) ने 336 सीटें जीतकर (जिनमें भाजपा की 282 सीटें शामिल थीं) केंद्र में अपनी सरकार बनायीं।

भारतीय समाज पहचान और उप-पहचान के आधार पर सामाजिक विघटन की दिशा में बढ़ रहा है। समाज के विघटन की यह प्रक्रिया राजनीतिक पार्टियों के विघटन और नई पार्टियों के बनने की प्रक्रिया को तेज कर रही है। यह अकारण ही नहीं था कि 1999 से 2004 तक भाजपा नीत राजग में 24 पार्टियां और समूह थे तथा आंध्र प्रदेश की तेदेपा जैसी विशुद्ध क्षेत्रीय पार्टी 'बाहर से' उसका समर्थन कर रही थी। साथ ही लोकसभा चुनावों में पैंतालीस पार्टियों और समूहों ने हिस्सा लिया था।

क्षेत्रीय राजनीतिक दल और गठबंधन की राजनीति ने राजनीति के अपराधीकरण को भी तेज किया है। क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियों की संख्या बढ़ने से आपराधिक पृष्ठभूमि वाले लोगों के चुनावी राजनीति में और प्रतिनिधि संस्थाओं में प्रवेश की समस्या बहुत बढ़ गई है। गठबंधन की राजनीति ने राजनीतिक व्यवस्था की साख को दांव पर लगाकर उन्हें राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दी है। आज कई ऐसे नेता हैं, जो क्षेत्रीय और राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभा रहे हैं, लेकिन उनके खिलाफ आपराधिक मुकदमे चल रहे हैं। क्षेत्रीय पार्टियों की मदद से गठबंधन की राजनीति ने समूची भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में भ्रष्टाचार का रोग फैलाने का काम किया है। क्षेत्रीय राजनीतिक दल अपनी संकीर्ण सोच नहीं छोड़ते हैं और इसीलिए उनकी दृष्टि भी संकीर्ण ही होती है। ये पार्टियां लोकलुभावन तरीकों से समर्थन हासिल करती हैं। इस व्यवस्था में सत्ता केंद्र से राज्यों में आती है। गठबंधन के सभी भागीदारों के क्षेत्रीय एजेंडा तो मजबूत होते हैं किन्तु राष्ट्रीय एजेंडा का अभाव होता है। नतीजा यह होता है कि राज्य मजबूत हो जाते हैं और केंद्र कमजोर हो जाता है।

1967 से 1977 का दशक एक पार्टी के वर्चस्व से बहुदलीय राजनीति के सफर का गवाह बना। इस परिवर्तन ने 1989 के चुनावों से पार्टी व्यवस्था में नए युग का सूत्रपात कर दिया। पार्टियों की संख्या बढ़ने में दो कारणों का योगदान रहा है: पहला क्षेत्रवाद और क्षेत्रीय पार्टियों की बढ़ती ताकत; और दूसरा सैद्धांतिक असहमति के बजाय राजनीतिक सत्ता हासिल करने के लगातार बढ़ते प्रयास। 1999 में जनता दल के टूटने, 1999 के आम चुनावों से ठीक पहले महाराष्ट्र में राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी (राकांपा) का गठन और 1998 में उत्तर प्रदेश में कांग्रेस तथा बहुजन समाज पार्टी की टूट का कारण भी यही था।

प्रतिस्पर्धी राजनीति के बढ़ने से पार्टी प्रणाली बदल गई है और राष्ट्रीय दलों के बीच की प्रतिद्वंदिता अब क्षेत्रीय पार्टियों के बीच भी पहुंच गई है। 1989, 1990, 1996, 1997, 1998, 1999 और 2004 से 2009 के बीच कई पार्टियों ने गठबंधन सरकारें बनाई। 1977 के बाद से गठित 138 राज्य सरकारों में से 40 गठबंधन की थीं और उनका औसत कार्यकाल 26 महीने से अधिक नहीं रहा।

नेहरू के समय में कांग्रेस का समूची भारतीय राजनीति पर प्रभाव था, लेकिन उनके बाद कांग्रेस ने हिंदी पट्टी में सबसे ज्यादा आधार गंवाया। कांग्रेस की कमजोरी का असली फायदा क्षेत्रीय पार्टियों ने उठाया।

क्षेत्रीय चेतना ने कई नई राजनीतिक पार्टियों को बढ़ावा दिया। क्षेत्रीय चेतना हरेक राज्य में अलग-अलग थी और गठबंधन व्यवस्था ही इकलौती व्यवस्था थी, जिसमें क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियों को आराम से जगह मिल सकती थी।

गठबंधनों को राजनीति अस्थिरता का कारक मानने के बजाय एक ही पार्टी के दबदबे के खिलाफ मतदाताओं के असंतोष और उसके कारण पनपे रोष, विरोध तथा अतिवाद का संकेत मानना चाहिए। यदि मतदाता सख्त रुख और इकतरफा ताकतों को खारिज कर राजनीतिक सामंजस्य और राजनीतिक पार्टियों की साझी सत्ता को तरजीह देते हैं तो यह उनकी परिपक्वता की निशानी है। गठबंधन काल से निकली भारतीय राजनीतिक पार्टियां इतनी परिपक्व या प्रतिबद्ध नहीं हो पाई हैं कि वे संसदीय लोकतंत्र की जरूरतों को पूरा कर सकें। कई राज्य स्तरीय पार्टियां नई हैं और बचकाना व्यवहार करती हैं।

गठबंधन के दौर में "बाहर से समर्थन" की राजनीति ने प्रधानमंत्री के पद को "लॉटरी" जैसा बना दिया और इसके कारण केंद्र में प्रशासन बहुत कमजोर हो गया। क्षेत्रीय पार्टियों ने 1989 से ही कांग्रेस और भाजपा जैसी दो पार्टियों में से किसी एक साथ आकर या लोकसभा में दोनों राष्ट्रीय पार्टियों द्वारा जीती गई सीटों के मुताबिक गणित बिठाकर राष्ट्रीय राजनीति में बहुत अहम भूमिका निभाई।

महागठबंधन

महागठबन्धन अथवा साधारणतया गठबन्धन, गैर-कांग्रेसी, गैर-भाजपाई भारत के विभिन्न लोकसभा निर्वाचन क्षेत्रों पर उत्तर प्रदेश के दो पूर्व मुख्यमंत्रियों, समाजवादी पार्टी के अखिलेश यादव एवं बहुजन समाज पार्टी की मायावती के साथ राष्ट्रीय लोक दल के अजीत सिंह और कुछ अन्य दलों के साथ २०१९ के आम चुनाव से पूर्व मिलाकर बनाया गया भारतीय राजनैतिक गठबन्धन है।

2014 और 2019 के लोकसभा चुनाव में बीजेपी की अकल्पनीय जीत से विपक्ष राजनीतिक दृष्टिकोण से निष्क्रिय हो गया था। राजनीतिक दल अपना अस्तित्व बचाने के लिए बीजेपी सरकार के विरुद्ध मुद्दे तलाश रहे थे। 2014 के लोकसभा चुनाव के परिणामों से शोकग्रस्त विपक्ष जहां ठहर सा गया था, वहीं 2019 के लोकसभा चुनाव के बाद, विपक्षी दलों में केंद्र सरकार के विरुद्ध सक्रिय और संगठित होने की भावना देखने को मिली। कोरोना काल की त्रासदी को मुद्दा बनाकर विपक्षी दल अपने-अपने तरीके से केंद्र सरकार को घेरने की कोशीश कर रहे थे। लेकिन 2021 के पश्चिम बंगाल विधानसभा चुनाव में ममता बेनर्जी ने जिस प्रकार मोदी-अमित शाह की जोड़ी को परास्त किया उससे विपक्षी दलों में एक नई आशा की किरण नजर आई।

विपक्ष अब महागठबंधन की महत्वत्ता को समझने लगा है। वैक्सीन ओर टीकाकरण, पेगासस, नए कृषि कानून और मूल्य वृद्धि इन चार मुद्दों को लेकर सभी विपक्षी दल अब मिलकर लोकसभा और राज्यसभा में सरकार को घेरने की कोशिश कर रहे हैं।

अगर वर्ष 2014 और 2019 के चुनावों को छोड़ दिया जाए तो हम देखते हैं कि 1984 के बाद किसी भी राजनीतिक दल ने केंद्र में सरकार बनाने के लिए जरुरी लोकसभा की न्यूनतम 272 सीटें नहीं जीती। 2014 के लोकसभा चुनावों में, बीजेपी ने 543 में से 282 सीटों पर भारी जीत हासिल की थी। बीजेपी के नेतृत्व में 12 राजनीतिक दलों के राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) ने कुल 336 सीटें जीती। जबकि कांग्रेस के नेतृत्व में बने सात दलों के संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) को केवल 60 सीटें प्राप्त हुईं तथा अन्य 17 राजनीतिक दलों को कुल 147 सीटें मिली।

2019 के लोकसभा चुनाव में चुनाव से पहले पांच मुख्य राष्ट्रीय गठबंधन थे- बीजेपी के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए), कांग्रेस की अध्यक्षता में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए), महागठबंधन (एमजीबी), अखिल भारतीय तृणमूल कांग्रेस की अध्यक्षता वाली संघीय मोर्चा और वाम मोर्चा।

2019 के लोकसभा चुनावों में बीजेपी के विरुद्ध, कांग्रेस ने हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों में गठबंधन नहीं किया। परन्तु जम्मू और कश्मीर, बिहार, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, कर्नाटक, झारखंड और केरल जैसे राज्यों में वह क्षेत्रीय दलों के साथ गठबंधन कर चुनाव में उतरी।

इनके अलावा बहुजन समाज पार्टी और समाजवादी पार्टी ने इस चुनाव में उत्तर प्रदेश की 80 सीटों में से 76 सीटों पर चुनाव लड़ने के लिए एक महागठबंधन बनाया। महागठबंधन ने कांग्रेस के लिए दो सीटें, अमेठी और रायबरेली, और अन्य राजनीतिक दलों के लिए दो सीटें छोड़ी थीं।

महागठबंधन का नेतृत्व

महागठबंधन का नेतृत्व अपने आप में एक बड़ा सवाल है। केन्द्र मे सरकार गठन के परिपेक्ष्य की परिपेक्ष में क्षेत्रीय दलों पर आस्था रखना कठिन है, क्योंकि क्षेत्रीय दलों की अपने क्षेत्र के प्रति एक अलग जिम्मेदारी है। हमेशा यह देखा गया है कि क्षुद्र प्रांतीय मुद्दे, राजनेताओं की महात्वाकांक्षा और केन्द्र की सत्ता सुख महागठजोड़ का कारण बनते हैं। और यही कारण है कि गठजोड़ बनाना जितना आसान है उतना ही मुश्किल है गठजोड़ को पकड़ के रखना। राष्ट्रीय स्तर पर अगर देखा जाए तो बीजेपी के बाद कांग्रेस ही एकमात्र ऐसा राजनीतिक दल जिसकी सर्वभारतीय पहचान है।

पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी केंद्र में बीजेपी मुक्त सरकार बनाने का जो प्रयास कर रही हैं वह केवल केंद्र को राज्य की राजनीति से दूर रखने का एक प्रयास है। विपक्ष द्वारा बीजेपी सरकार के विरुद्ध जो गठबंधन बनाने की कोशिश हुई है उसका नेतृत्व केवल कांग्रेस पार्टी द्वारा ही संभव है। वर्तमान में राहुल गांधी की नेतृत्व कुशलता में परिपक्वता दिखाई दे रही है। राजनीति में राष्ट्रीय मुद्दे और चुनावी मुद्दे के अंतर को समझना अति आवश्यक है। कुशल नेतृत्व के अभाव के कारण राष्ट्रीय मुद्दे को चुनावी मुद्दे में बदलने की क्षमता अभी विपक्षी दलों में नहीं है। संभव है आने वाले दिनों में देश को ऐसा नेतृत्व देखने को मिले।

निष्कर्ष

गठबंधन सरकार के जितने सकारात्मक पक्ष हैं, उतने ही नकारात्मक पक्ष भी हैं सबसे बडी बात तो यह है कि इसकी सफलता पर संदेह बना रहता है और सरकार स्वतंत्र रूप से कोई भी निर्णय लेने से पहले कई बार सोचती है शायद भारतीय जनता भी इस ओर ध्यान देने में केन्द्रित करने करने पर मजबूर हुई है, तभी तो उसने 16वीं लोकसभा के चुनावों में नरेन्द्र मोदी की अगुवाई वाली भारतीय जनता पार्टी को स्पष्ट जनादेश दिया है। आशा है कि यह सरकार जनता की उम्मीदों पर खरी उतरेगी, ताकि जनता को फिर से गठबंधन वाली सरकार पर विचार न करना पडे।

संदर्भः

- डी देवनाथन, स्ट्रेन्थनिंग कोअलिशन एक्सपेरिमेंट ऑफ सेंटरः अ फ्यू सजेशन्स, थर्ड कॉन्सेप्ट, खंड 12, क्रमांक 143, जनवरी, 1999, पृष्ठ ख्र 26
- ई सुधाकर, कोअलिशन ईरा इन इंडियन डेमोक्रेसी, थर्ड कॉन्सेप्ट, खंड - 18, क्रमांक 212, अक्टूबर, 2004, पृष्ठ - 11-12
- पार्वती ए.ए., इमरजेंस ऑफ कोअलिशन सिस्टम इन इंडियाः प्रॉब्लम्स एंड प्रॉस्पेक्ट्स, थर्ड कॉन्सेप्ट, खंड 19, क्रमांक 217, मार्च, 2005, पृष्ठ ख्र 9
- विद्या स्टोक्स, कोअलिशन गवर्नमेंट्स फॉल्ट लाइन्स इन इंडियन पॉलिटी, अजय भंडारी द्वारा संपादित संघ सरकार विषयक, विधान सभा सचिवालय, जनवरी - जून, 2000, पृष्ठ ख्र 10
- अख्तर मजीद, कोअलिशन पॉलिटिक्स एंड पावर शेयरिंग, मानक पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2000, पृष्ठ - 2
- अरिहन्त पब्लिकेशन्स इंडिया लिमिटेड -योगेशचंद जैन
- तुलनात्मक शासन एवं राजनीति- गाँधी. जी. राय

विविध राजभाषा की गतिविधियाँ

डॉ० मुक्कप्प राठोड

सहायक प्रध्यापक हिन्दी विभाग, बेंगलूरू विश्वविद्यालय-56

आकशवाणी एवं दूरदर्शन गुवाहाटी

अपर महानिदेशक (अभियांत्रिकी) का कार्यालय (उत्तर पूर्व क्षेत्र) आकाशवाणी एवं दूसरदर्शन गुवाहाटी में एक दिवसीय हिन्दी कार्यशाला आयोजित की गई। कार्यशाला का उद्घाटन श्री चंद्र भानु सिंह मौर्य अपर महानिदेशक (अभियांत्रिकी) द्वारा किया गया। कार्यशाला में व्याख्याता के तौर पर बेमबेम देवी प्रबंधक (राजभाषा) बैटक ऑफ बडौदा क्षेत्रीय कार्यालय में हिन्दी कार्यशालाओं का आयोजन समय-समय पर किया जाता ह। ताकि हिन्दी में सरकारी काम-काग करने का अभ्यास बना रहे है। उन्होंने कहा कि आज की कार्यशाला के विषय हिन्दी में टिप्पण आलेखन और हिन्दी पत्रचार बहुत ही सार्थक और महतवपूर्ण विषय है जिसके अभ्यास से हिन्दी कार्यान्वयन को एक गति प्राप्त होगी।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद कोलकता

राष्ट्रीय पटसन एवं समवर्गी रेशा प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् कोलकाता में एक संस्थान के हिन्दी अनुभाग के प्रभारी अधिकारी श्री आर-डी-शर्मा सहायक निर्देशक (राजभाषा) की अध्यक्षता में राजभाषा के रूप में हिन्दी विषय पर एक दिवसीय हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया। विषय संबंधी सत्र शुरू करने के पहले हिन्दी को राजभाषा बनाए जाने के पीछे कारण हिन्दी और राजाभाषा का तुलनात्मक विवरण समेत राजभाषा का कार्यान्वन स्वरूप कार्यालय में प्रयुक्त होने वाले तकनीकी परिभाषिक शब्दों के प्रयोग पर प्रकाश डालते हुए कार्यालयीन टिप्पणी के प्रकारों को सोदाहरण देकर समझाया। उन्होंने प्रतिभागियों को विषय की जानकारी हिन्दी बंग्ला एवं अंग्रेजी में देते हुए उदाहरण प्रस्तुत किए। प्रतिभागियां की भाषा संबंधी से अवगत होते हुए उनकी वैयाकरणिक कमियाँ को दूर करने के गुरू भी सिखाए।

कार्पोशन बैंक ऑचलिक कार्यालय बेलगांव

कार्पोरेशन बैंक आंचलिक कार्यालय बेलगांव में दिनांक नवंबर को होटेल साई संगम कोल्हापुर क्रॉस बेलगांव में आधिकारिों एवं कर्मचारियों को लिए सामान्य हिन्दी कार्यशाला आयोजित की गई। श्री ए पी सुरेश उप महाप्रबंधक ऑचलिक कार्यालय बेलगांव अपने उद्घाटन भाषण में बताया कि कार्पोरेशन बैंक राजभाषा व्याख्याता के क्षेत्र में पहले से अग्रणी रहा है। इसलिए हमें इस क्षेत्र के उत्कृष्ट योगदान के लिए लगातार पुस्तकार मिलते रहे है। हाली में श्री एस-आर-बंसल अध्यक्ष एवं प्रबंध निर्देशक ने हमारे बैंक में राजभाषा कार्यान्वयन के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान हेतु माननीय राष्ट्रपति महोदय से इंदिरा गांधी शील्ड पुरस्कार प्राप्त किया। इसके पश्चात् डॉ- जय शंकर यादव वरिष्ठ प्राध्यापक हिन्दी शिक्षण योजना राजभाषा विभाग गृह मंत्रलय भारत सरकार बेलगांव ने राजभाषा नीति के बारे में श्री पवन कुमार सिहं सहायक प्रबंधक (राजभाषा) यूनियन बैंक ऑफ इंडिया क्षेत्रीय कार्यालय बेलगांव ने बैंकिग अनुवाद के बारे में श्री राहुल अग्रवाल कनिष्ठ तकनीकी अधिकारी बी- एस- एन- एल-बेलगांव ने यूनिकोड के बारे में और श्री प्रशांत ने प्रोत्साहन योजनाओं के बारे में श्री गुरूराज होन्न नाशी वरिष्ठ प्रबंधक ने ई- के वाई सी- के बारे में श्री के- बी-सतीश वरिष्ठ प्रबंधक ने वसूली के बारे में श्री चन्द्रकांत कांबले प्रबंधक (विधि) ने लोक अदालत के बारे में सत्र लिए।

भारतीय विमानपतन प्राधिकरण तिरूवनंतपुरम

भारतीय विमानपतन प्राधिकारण त्रिवेन्द्रम अंतराष्ट्रीय हवाई अड्डे के सम्मेलन केक्षत्र में अधिकारियों कर्मचारयिों के लिए हिन्दी कार्यशाला आयोजित की गई। अध्यक्षीय भाषण देते हुए विमानत्तन निदेशक महोदय द्वारा हिन्दी कार्यशाला के प्रतिभागियों को संबोधन करते हुए कहा कि हिन्दी पखवाड़ा समारोह के इस अवसर पर आयोजित हिन्दी कार्यशाला के माध्यम से ज्यादा- से- ज्यादा काम हिन्दी में करके वार्षिक कार्यक्रम में बताए। गए लक्ष्य को हासिल करने की भरसक कोशिश करें। श्रीमती कोमल कुमारी अम्मा द्वारा राजभाषा नीति जाँच बिन्दु वार्षिक कार्यक्रम राजभाषा अधिनियम की धारासे संबंधित दस्तावेज राजभाषा जागरूकता टिप्पणि एवं प्रारूपण प्रशासनिक एवं पारिभाषिक शब्दावाली आदि विषयों में व्याख्यान दिये गये । हिन्दी कार्यशाला आदि विषयों में व्याख्यान दिये गये । हिन्दी कार्यशाला के द्वितीय सत्र मे पत्रचार के विभिन्न प्रकार एवं संघ के राजभाषा नीति आदि विषयों पर व्याख्यान दिया। श्री साजी सी- अब्राहम प्रबंधक (राजभाषा) द्वारा समापन समारोह का संचालन किया गयाहै।

भारतीय मात्स्यिकी की सर्वेक्षण क्षेत्रीय कार्यालय गोवा

प्रति तिमाही हिन्दी कार्यशाला आयोजन के मुख्यालय के अनुदेश के अनुपालन में इस बेस कार्यालय पर सिंतबर को हिन्दी में नोटिंग-ड्राफ्रिटंग विषय पर हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया। श्री राजेन्द्र सिंह हिन्दी अधिकारी मूरगांव पत्तन न्यास, मुरगांव गोवा को इस अवसर पर एम-अली वरिष्ठ मात्स्यिकी वैज्ञानिक ने आयोजन की अध्यक्षता की। अपने संबोधन में कार्यलाय प्रधान श्री अली ने उपस्थित से कार्यशाला का लाभ लेते हुए उसे दैनिक कार्यालयीन कार्य में उपयोग कर हिन्दी का काम बढ़ाने की अपील की। अभ्यास सत्र में फाइलों में सामान्य रूप से लिखी जाने वाली टिप्पणियों की भाषा एवं शब्द चयन पर कर्मचारियों की जिज्ञासाओं का जवाब दिया। श्री राजू एम-नागपूरे वरिष्ठ वैज्ञानिक सहायक ने अंत में उपस्थिति का आभार प्रकट किया।

मुख्य आयकर आयुक्त कार्यालय शिलांग

राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार तथा सरकार कामकाज में हिन्दी में कार्य को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से मुख्य आयकर आयुक्त कार्यालय शिलांग मेंसितंवर को एक दिवसीय हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला में आयकर विभेग शिलांग क्षेत्र के कार्मिक शामिल हुए। श्री मनीष कुमार साह वरिष्ठ हिन्दी अनुवादक ने कार्यशाला में यूनिकोड के बारे में विस्तार से बताया एवं अभ्यास कराया। यह भी कहा कि कार्यालय द्वारा आयोजित कार्यशालाओं का भरूपूर लाभ उठाया जाना चाहिए जिससे कि कार्यालयीन कामकाज में हिन्दी के प्रयोग सार्थक सुधार हो सके।

दूरदर्शन केन्द्र राजकोट

दूरदर्शन केन्द्र राजकोट में कार्यालय-स्टॉफ के लिए राजभाषा हिन्दी से संबंधित कार्यशाला आयोजित की गई। कार्यशाला में अतिथि-वक्ता डॉ-शैलेश महेता प्राचार्य हिन्दी विभाग सौराष्ट्र विश्वविद्यालय राजकोट के थे और कार्यशाला का विषय था।-हिन्दी राजभाषा के रूप में और सरकारी कामकाज में इसकी उपयोगिता। प्रथमत: केन्द्र के प्रभारी हिन्दी अधिकारी श्री एक के शर्मा ने राजभाषा कार्यशाला की नीतिगत आवश्यवकता उद्देश्य व महत्व पर प्रकाश डालते हुए यह स्पष्ट किया कि इसमें भाग लेने के अनेक लाभ है। कर्त्तव्यपालन ज्ञानवर्धन कठिनाईयों को समाधाना आदि जो सभी सरकारी सेवकों के कर्त्तव्य का एक अनिवार्य अंग है। कार्यशालाओं की इस कड़ी में उक्त विषय पर अतिथि-वक्ता के संबोधन से पहले केन्द्र के कार्यालय महोदय श्री अनिल भारद्वाज जी ने अतिथि-वक्ता का पुष्प गुच्छ से स्वागत किया।

केन्द्रीय जल और विद्युत अनुसंधान पुणे

केन्द्रीय जल और विद्युत अनुसंधानशाला पुणे के आलिपिकों को हिन्दी में काम करने हेतु प्रेरित करने के उद्देश्य से दिनांक को हिन्दी कार्यशाला आयोजित की गई। कार्यशाला के आरंभ में प्रभारी सहायक निदेशक श्री कृष्ण कुमार गुप्ता ने उपस्थिता का स्वागत करते हुए कार्यशाला का उद्देश्य एवं उसके रूपरेखा की जानकारी दी और सरकारी कार्यालयों में हिन्दी उपयोगिता के संबंध में अवगत कराया।

कार्यशाला का उद्घाटन वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष राजभाषा कार्यान्वयन समिति डॉ-(श्रीमती) वी-वी-भोसेकर के करकमलों द्वारा हुआ। कार्यशाला में व्याख्याता की है सियत से श्री उग्रसेन सिंह वरिष्ठ हिन्दी के बारे में और अनुसंधान के बारे में बताया है।

आधारग्रंथ

1. प्रतियोगिताएं पत्रिका-पृं. 77
2. आंचलि पत्रिका शमशाद बेगम पृं. 101
3. राजभाषा पत्रिका राकेश पृं. 10

नक्सल माओवादी विद्रोह छत्तीसगढ़ के विशेष संदर्भ में

डॉ० मनीष कुमार साव

सहायक प्राध्यापक-राजनीतिविज्ञान, शास.एम.एम.आर. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चांपा (छ.ग.)

आज देश के विभिन्न भागों में नक्सलवाद एक गंभीर समस्या के रूप में उभरकर सामने आया है। नक्सलियों के आतंकी एवं हिंसात्मक गतिविधियॉ देश की आंतरिक सुरक्षा एवं कानून व्यवस्था के लिए बहुत बड़ा खतरा है। नक्सलवाद सामाजिक, आर्थिक से उपजा एक गंभीर चुनौती बन गया है, यह आतंकवाद का पर्याय तथा भटके हुए लोगों का आन्दोलन है। यद्यपि छत्तीसगढ़, झारखण्ड व आंध्रप्रदेश इससे सर्वाधिक प्रभावित है वही मध्यप्रदेश, उड़ीसा, उत्तरप्रदेश, बिहार, कर्नाटक, उत्तराखण्ड, तामिलनाडु केरल भी इससे अछुते नहीं है। 4 अप्रैल 2021 को छत्तीसगढ़ के बस्तर के टेकुलगुड़ा क्षेत्र में स्थानीय और केन्द्रीय पुलिस बलों द्वारा संचालित तलाशी अभियान विफल हो गया जिसमें 22 सुरक्षा कर्मियों की मौत हो गयी और कई लोग घायल हो गये यह दुखद घटना गई स्तरों पर भारत को आंतरिक सुरक्षा क्षमता के लिए एक बड़ा झटका है। इस चुनौती को उजागर करती है कि वामपंथी उग्रवाद जारी है। भारत दशकों से तीन प्रकार की आंतरिक सुरक्षा की चुनौतियों का सामना कर रहा है, जैसे कश्मीर में एक छदम युद्ध और आतंकवाद, पूर्वात्तर में उप राष्ट्रीय अलगाववादी आंदोलन और रेड कॉरिडोर में नक्सल माओवादी विद्रोह। सरकार ने पहली दो चुनौतियॉ कश्मीर में छद्म और आतंकवाद और पूर्वोत्तर में उपराष्ट्रीय अलगाववादी आंदोलन को समाहित किया है लेकिन टेकुलगुड़ा की घटनाएँ दर्शाती है कि अब नक्सल माओवादी विद्रोह को खत्म करने के लिए ठोस कदम उठाने चाहिए।

उद्‌भव एवं विकास

नक्सलवाद का उद्‌भव 1967 में पं. बंगाल के दार्जलिंग जिले नक्सलवाडी गांव से माना जाता है जमीन व जायज हक भूमि सुधार की मांग पर आधारित जनक्रांति के रूप में उभरा जिसमें साम्यवादी नेता चारू मजुमदार, कानू सन्याल, जंगल संथाल जैसे लोगों का समर्थन प्राप्त था।

वर्तमान में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (माओ) पिपुल लिबरेशन आर्मी (PLGA) पिपुल वार ग्रुप तथा छापामार दस्ता जैसे संगठनों ने अपने उपस्थिति दर्ज करायी है। मई 1968 में ऑल इण्डिया कमिटी ऑन कम्युनिष्ट निवोल्यूशनरी नामक संस्था का गठन किया गया।

21 सितंबर 1999 को नक्सली संगठनों की ताकत में उस समय बड़ा इजाफा हुआ अब PWG और MCC के विलय से एक नए संगठन CPL (माओवादी) का निर्माण हुआ। नक्सलवाद आज देश के 223 जिलों दो हजार थाना क्षेत्र तथा छत्तीसगढ़ के 13 जिलों में अपने पैर पसारे हुए है। छत्तीसगढ़ के लगभग 11000 वर्ग कि.मी. पुलिस प्रशासन की मौजूदगी नहीं हैं।

विचारधारा

नक्सली विचारधारा साम्यावादी विचार धारा से संबंधित साम्यवाद का अतिरूप, मार्क्सवादी, लेनीनवादी विचारधारा पर आधारित है। ये वर्ग संघर्ष एवं हिंसा पर भरोसा करते है।

साथ ही नक्सलवादी माओं के भूमिगत आन्दोलन की रणनीति पर आधारित राजनैतिक सत्ता बन्दूक की नली से निकलती है। पर विश्वास रखते है। नक्सल वादी वस्तुतः लोकतंत्र विरोधी, जनक्रांति के समर्थक तथा वामपंथी विचार धारा पर आधारित विचारों के पोषक हैं।

नक्सल क्रांति की रणनीति

शोषित पीड़ित जनता में सामाजिक, आर्थिक चेतना लाना, उन्हे संगठित करना। सम्पूर्ण क्षेत्र का सर्वे छिपने योग्य गुप्त स्थान का चयन तथा भौगोलिक जानकारी इकट्ठा करना एवं लोगो के बीच जाकर उनकी संस्कृति बोली-भाषा का प्रयोग करना, उनकी छोटी-मोटी जरूरतों को पूरा करना। उन्हें सामान्य चिकित्सीय सहायता उपलब्धता करना। साथ ही शोषक वर्ग की पहचान कर, हत्या शारीरिक चोट, आम जनता को पुलिस प्रशासन के खिलाफ भडकाना, समान्तर अदालतों का आयोजन करना। हत्या, अपहरण, लूट, डकैती, बारूदी सुरंग, बम विस्फोट, ग्रामीणों का भय व आंतकित कर समर्थन हासिल करना, आदिवासी महिला बच्चों का मानव कवच के रूप में इस्तेमाल करना।

नक्सलवाद का वास्तविक स्वरूपः-नक्सलवादियों का मूल उद्देश्य अब हिंसा के बल पर सत्ता हथियाना हो गया है सामाजिक-आर्थिक वंचना के नाम पर वे हिंसा को वैध मान रहे है। नक्सली नेता अपना निजी हित साध रहे है तथा लोगो को भ्रमित कर रहे है, अब नक्सली महिला, बच्चों दलित, आदिवासी का शोषण व आंतकित कर रहे है, ये अपनी विचार धारा से भटक गये हैं। अपने आदर्श रूप में सर्वहारा शासन के जितना निकट थे। व्यावपारिक रूप से उतने ही दूर हो गये हैं। अतः यह कहना उचित होगा कि नक्सलवाद के उद्‌भव का कारण चाहे कितने भी तार्किक क्यों ना हो किन्तु उसका वर्तमान स्वरूप उन कारणों से सभ्यता नही रखता।

रेड कॉरिडोर:-वर्तमान में नक्सली गुटो ने देश के कुछ राज्यों के क्षेत्रों को मिलाकर एक 'रेड कारिडोर' का निर्माण कर लिया है। भारतीय सरकारी स्त्रोतों के अनुसार रेड कारिडोर में 8 राज्यों आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, ओड़िसा, झारखण्ड, मध्यप्रदेश, प. बंगाल, उत्तरप्रदेश के 83 जिले को शामिल किया गया है।

नक्सलवाद के उद्‌भव के कारण:-

1. भूमि सुधार:-भारत में मांग के अनुरूप भूमि सुधारों की मांग तथा उपनिवेशी शोषण के उपजी जमीदारी व्यवस्था ने जन आंदोलन को पनपने का अवसर प्रदान किया।
2. अशिक्षा:-भारत को उन क्षेत्रों में जहां जनजातियों की जनसंख्या अधिक अथवा वन क्षेत्रों में जहां शिक्षा का स्तर काफी कम था नक्सलवाद का प्रसार हुआ।
3. लोकतंत्र का विफलता:-लोकतंत्र का एक दोष धीमी निर्णयन क्षमता होती है धीमी निर्णयन क्षमता से योजना परियोजना तथा विकास कार्यो की मंद गति असंतोष पैदा करती है।
4. क्रोनी कैपेटलीज्म:-यह राजनीतिज्ञ तथा कार्पोरेट पूंजीपतियों का अनैतिक गठजोड है जो स्थानीय हितो की अनदेखी कर सार्वजनिक संपदा पर कब्जा कर लेते है।
5. गरीबी:-भारत में आज गरीबी का स्तर अधिक है। कुल जनसंख्या का 21 प्रतिशत अधिक तथा छ.ग. में 47 प्रतिशत लोग गरीबी में जीवन यापन कर रहें है।
6. शोषण एवं अत्याचार:-साहूकार, वन अधिकारी, प्रशासन के प्रतिनिधि तथा सत्ता प्राप्त समस्त अधिकारीयों द्वारा आदिवासी के हितो की अनदेखी कर स्वयं के जेबो को भरना।
7. बेरोजगारी:-भारत में आज बेरोजगारी चरम पर है जनसंख्या की अधिकता तथा कौशल विकास के अभाव ने बेरोजगारी की संख्या में वृद्धि हुई है।
8. आदिवासी हितों की उपेक्षा:-स्थानीय आदिवासीयों की अनदेखी, उनकी संस्कृति, भाषा विचार, रहवास को प्रभावित अथवा छति पहुंचाई।
9. भ्रष्टाचार:-पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी के अनुसार कुछ आबंटित लाभ का मात्र 15 प्रतिशत ही आम जनता तक पहुंच पाता है शेष भाग भ्रष्ट्राचार के भेट चढ़ जाता है।
10. आर्थिक असमानता:-भारत में आर्थिक असमानता अधिक है देश में कुल सम्पति का आधे से अधिक भाग पर मात्र 2 प्रतिशत लोगों का अधिपत्य है।
11. भौगोलिक स्थिति का योगदान:-देश अन्य समस्या के साथ-साथ भौगोलिक बनावट व पहाड़ी, पठारी, दूर्गम भौगोलिक क्षेत्रों में प्रशासन की अनुपस्थिति समस्या को और बढ़ा देती है।
12. पृथक समस्याओं को निरूपित करने के बजाए अगर समग्रता में कहा जाए तो गरीबी रोजगार के सीमित अवसर, सामाजिक भेदभाव, मानविधाकारों का हनन शिक्षा-स्वास्थ्य का निम्नतर स्तर, न्याय न मिलना मानवीय गरिमा का हास व्यवस्था से मोहभंग आदि कारक लोगो को विद्यमान व्यवस्था के विरूद्ध उकसाते है।

छ.ग. में नक्सली गतिविधि जो हाल के वर्षो में निम्नानुसार हैं:-

नक्सलियों द्वारा छ.ग. में अपनी गतिविधि 1985 से खुलकर सामने आने लगी। वर्तमान में ये छ.ग. के 13 जिलों के 20 ब्लॉक में अपनी गतिविधियां निरंकुश रूप से संचालित कर रहें है। छ.ग. के उत्तरी क्षेत्र सरगुजा संभाग तथा दक्षिणी क्षेत्र बस्तर संभाग में अपने अस्तित्व को बनाये रखा है।

छ.ग. में वर्ष 2000 से नक्सलियों ने सुनियोजित हमले करने प्रारंभ किये वर्ष 2010 में तालमेटला हमला में 76 जवान शहीद हुए राजनांदगांव के एस. पी. विनोद चौबे की हत्या, कलेक्टर अलेक्सपाल मेमन का अपहरण, दंतेवाड़ा जिला जेल पर हमला इत्यादि। 25 मई 2013 में झीरम घाटी काण्ड में कांग्रेस के 30 नेताओं की हत्या ओड़िसा के विधायक झीना हिकाका का अपहरण छ.ग. के विधायक भीभा मंडावी की हत्या।

गृह मंत्रालय के आंकड़ो के अनुसार वर्ष 2015 में 101, 2016 में 107, 2017 में 130, 2018 में 98 जवानों की हत्या हुई। 21 मार्च 2020 को सुकमा जिलें में 14 जवानों की हत्या कर दी गई 4 मार्च 2020 को दो जवान शहीद हो गये। गृह मंत्रालय के ऑतरिक सुरक्षा रिपोर्ट 2019 जारी (3 मार्च 2020) के अनुसार 2005 से अब तक छ.ग. में 5432 लोगो की मृत्यु नक्सली हिंसा से जुड़े हैं। जिसमें से 1562 जवान है तथा इस दौरान 900 से अधिक नक्सलियों की हत्या 500 से अधिक नक्सलियों का आत्मसर्मण कराया जा चुका है। उपरोक्त सभी घटनाएं पुलिस बल के विरूद्ध की गई थी। नक्सली इसके आलावा सड़क निर्माण में बाधा उत्पन्न करते है, स्कूलों को क्षति पहुंचाते है, ग्रामीणें का ब्रेनवास करके अपने पक्ष में करते है साथ ही भोले-भाले आदिवासीयो को अपने साथ शामिल करते है। समाचार पत्रों में यह समानता देखा जाता है नक्सली ठेकेदारो से अवैध वसूली करते है। मुखबिरी के शक में ग्रामीणें की हत्या करते है। वर्तमान समय में नक्सली शहरी नेटवर्क बनाने में लगे है। नक्सली का निर्माण कर चुकी है। अनेक पुलिस मुठभेड़ में महिला नक्सली के मारे जाने से इसकी पुष्टि होती है। ये अपने क्षेत्र का समानान्तर सरकार की स्थापना करना चाहते है।

बंदोपाध्याय समिति की रिपोर्ट- 1970 के दशक में पश्चिम बंगाल में नक्सलियों से निपटने के लिए सेवानिवृत आई.ए.एस. अधिकारी डी. बंदोपाध्याय की अध्यक्षता में योजना बनायी गई। आयोग ने मई 2006 में एक विशेषज्ञ समिति की नियुक्ति की थी। इस समिति के अनुसार देश भर मे दबे-कुचले लोगों पर किये जा रहे राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक भेदभाव एक प्रमुख कारक है जो उन्हे नक्सलियों की ओर खिचता है। स्थानीय समुदायों के सशक्तिकरण का अभाव एक अन्य कारण के रूप में उद्धत किया गया था।

नक्सलवाद उन्मूलन के प्रयास-

केन्द्र सरकार का मानना है कि नक्सली आंतरिक सुरक्षा के लिए बड़ी चुनौती है। अतः सरकार ने बहुमुखी उपाय किये है-

1. समाधान कार्यक्रम-नक्सलवाद से निपटने के लिए समाधान पहल-केन्द्र सरकार ने पांच सूत्रिय समाधान परियोजना का प्रारंभ किया है।

1. S- Smart leadership	कुशल नेतृत्व
2. A- Aggressive Start	आक्रामक रणनीति
3. M- Motivational and training	प्रोत्साहन एवं प्रशिक्षण
4. A- Actionable intelligance	कारगर प्रक्रिया तंग
5. D- Dashboard based key performance Indicators & key result qreas	कार्य योजना के कारक
6. H- Harnessing Technology	कारगार प्रौद्योगिकी
7. A- Action plant for each threat	प्रत्येक रणनीति की कार्य योजना
8. N- No access to financing	नक्सलवादियों के लिए घोषणा को विफल करने की रणनीति आत्मसमर्पण नीति

2. प्रतिरोधी उपायः-

20.000 सी.आर.पी.एफ. सुरक्षा बलों की तैनाती प्रभावित इलाकों में की गयी है साथ ही रोजगार सृजन पर बल दिया गया है। एवं वन अधिकार अधिनियम 2006-वन अधिकार पट्टों का वितरण आत्म निर्भरता हेतु एवं मनरेगा तथा रोशनी योजना-के माध्यम से सामाजिक, आर्थिक विकास का प्रयास किया गया है एस.टी.एस. विशेष सूचना शाखा की स्थापना, पुलिस आधुनिकीकरण, जन सुरक्षा विधेयक 2005 लागू करना आदि प्रमुख प्रतिरोधी उपाय है।

3. पुनर्वासः-

नक्सलियों को प्रमुख धारा में शामिल करने उनके पुनर्वास तथा आत्मसर्मपण को प्रोत्साहित करने की नीति योजना को प्रोत्साहन दिया गया है। इस नीति के तहत आत्मसर्मपण करने वाले नक्सली को शासकीय सेवा नौकरी, पति-पत्नि दोनो के सर्मपण पर 20 हजार की तत्काल सहायता तथा 4.5 लाख की अन्य वित्तीय सहायता इसी तरह हथियार के साथ सर्मपण पर 10 लाख की वित्तीय सहायता नौकरी, आवास व सुरक्षा सहायता प्रदान करना प्रमुख है।

छ.ग. सरकार के प्रयास-

1. सलवा जुडुम (2005)-एक शांति अभियान था जिसे सुप्रीम कोर्ट के निर्देश के बाद अब स्थगित कर दिया गया।
2. छ.ग. खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2012 लागू किया गया जिससे खाद्यान की सुलभता बढ़ायी जा सकें।

कैरियर संबंधी पहलः-

1. आस्था-नक्सली हिंसा से अनाथ हुए बच्चों के लिए दंतेवाड़ा जिले में आस्था गुरूकुल विद्यालय की स्थापना की गयी। विद्यालय में कक्षा पहली से लेकर बारहवी तक निःशुल्क शिक्षा एवं आवास की व्यवस्था।
2. निष्ठा-इस योजना के अंतर्गत नक्सली हिंसा में मृत माता-पिता के बच्चे तथा प्रभावित ग्राम या क्षेत्र के बच्चे राजनांदगांव जिले में निजी शिक्षण संस्थाओं में अध्ययन कर रहे है। जिसका खर्च सरकार वहन करती है।
3. प्रयास-नक्सली प्रभावी जिले के प्रतिभावन विद्यार्थियों के उत्कृष्ठ एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के साथ-साथ राष्ट्रस्तर की इंजीनियरिंग, मेडिकल, वाणिज्य एवं विधि विषय से संबंधित प्रवेश परीक्षाओं में सफल होने हेतु प्रयास विद्यालय की स्थापना की गई।
4. लोन वर्राटू प्लान (गृह वापसी)-लोन वर्राटू प्लान (गृह वापसी) पर छ.ग. सरकार पुर्नवास हेतु नक्सल सर्मपण पर कार्य कर रही है जो मुख्यतः दंतेवाड़ा तथा उसके सीमावर्ती जिलों में संचालित है। प्रारंभ के 16 दिनों में ही 58 नक्सलियों ने आत्मसमर्पण किया है।
5. नई औद्योगिक नीति में बस्तर क्षेत्र सहित राज्य के 101 विकासखण्डों में 200 से अधिक फुड पार्क की स्थापना की गयी है।

   पोनी पसारी योजना के माध्यम से स्थानीय संस्कृति व परम्परा के साथ-साथ रोजगार सृजन की पहल की गयी है। वन अधिकार अधिनियम का क्रियान्वयन अब तक 46 हजार से अधिक वन अधिकार पट्टों का वितरण/मनरेगा के तहत् 26.34 लाख परिवारों को रोजगार 2020-21 में 9. 82 करोड़ मानव दिवस रोजगार का सृजन। 31 वन उपजों की खरीदी समर्थन मूल्य पर

6. पुलिस आधुनिकीकरण-राज्य पुलिस के आधुनिकीकरण हेतु एम.पी. एक योजना तथा सुरक्षा के लिए एस.आर.ई. योजना चलाई जा रही है। समय-समय पर ऑपरेशन स्टीपलचेंज और ऑपरेशन ग्रीन हंट जैसे एक्सन प्लान भी संचालित किये गये है।

समाधान सुझावः-

1. संवाद/वार्ता-हाल में नक्सल विचारधारा कमजोर हुई है, इस मौके पर नक्सली नेताओं से संवाद स्थापित कर उन्हे मुख्यधारा से जोड़े जाने का प्रयास किया जाना चाहिए।
2. स्थानीय जन संपर्क-स्थानीय बोली भाषा में अधिकारी कर्मचारीयों का जनसंपर्क प्रशासन जनता की दूरी को खत्म करना एक प्रभावी कदम हो सकता है।
3. प्रशासन तंत्र के सभी तंत्रो तथा अंतर्राज्यीय समन्वय समाधान में कारगर साबित।
4. संचार तंत्र खुफीया तंत्र को मजबूती से बेहतर रोकथान संभव है।
5. पुलिस आधुनिकीकरण पर जोर आम नागरिको के नक्सली हमें में मृत्यु पर वित्तीय सहायता की व्यवस्था।
6. नक्सलियों का मुख्य धारा से जुड़ने के लिए कौशल विकास, व्यवसायिक शिक्षा, रोजगार की उपलब्धता, खाद्यान्न सुरक्षा सुनिश्चित हो
7. ऐसा वातावरण बनाया जाए जिससे नक्सली बंदूक छोड़कर प्रत्यक्ष चुनाव में भाग लेने के लिए प्रेरित हो, नेपाल में इसी प्रकार से नक्सली मुख्य धारा से जुडे तथा उनके प्रमुख नेता पुष्प कुमार दाहाल (प्रचंड) वहां के पहले नक्सली प्रधानमंत्री बने।
8. हमारे पड़ोसी देश श्रीलंक में सैन्य बल द्वारा उग्रवादी संगठन रूज्म् को समाप्त किया गया परंतु हिंसा हमारा आखरी हथियार होना चाहिए।

निष्कर्ष -

भारतीय लोकतंत्र हर विचारधारा को जन स्वीकृति के लिए जनादेश प्राप्त करने का पर्याप्त अवसर प्रदान करता है लेकिन जब तक नक्सलियों में यह विवेक नही जागृत होता है, एक प्रभावी प्रत्युत्तर बल ही एकमात्र विकल्प बचता है। आमतौर पर विशेषज्ञ एवं हितभागी यह मानते है कि नक्सली खतरों को करारा जवाब देने की तैयारी के अतिरिक्त राज्य को नक्सल प्रभावित इलाकों के नाराज और असंतुष्ट लोगों के लिए विकास की गति तेज करे और उन्हें विकास की मुख्यधारा से जोड़े। प्रभावकारी नीति निर्माण के साथ ही उनका जमीनी स्तर पर सफल क्रियान्वयन के माध्यम से ही नक्सलवाद की समस्या पर काबू पाया जा सकता है। समावेशी विकास का मॉडल और शासन में प्रत्येक वर्ग की भागीदारी तथा राजनैतिक इच्छाशक्ति इस समस्या के तार्किक एवं व्यवहारिक समाधान है।

संदर्भ सूचीः-

1. इंडियन एक्सप्रेस 08/04/2019 को प्रकाशित लेख Lessons from Tekhlguda
2. दैनिक भास्कर रायपुर 5 अप्रेल 2019
3. कम्युनिस्ट घोषणा पत्र मार्क्स एंजेल्स
4. डॉ. अजय कुमार सिन्हा, डॉ. अनिल कुमार सिंह: नक्सलवाद एवं भारत की आन्तरिक सुरक्षा, राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली 2013 पृ. 127-137
5. दुबे अभय कुमार: क्रान्ति का आत्म संघर्ष
   विनय प्रकाशन नई दिल्ली-1991
6. जौहरी जे.सी. नेक्सलाइड पॉलिटिक्स इन इंडिया नई दिल्ली 1972
7. योजना: अंक 11 फरवरी 2007
8. मित्तल सतीश चन्द्र-संवाद का सच प्रतिभा पब्लिकेशन नई दिल्ली-2008

भारतीय अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का विस्मृत इतिहास

डॉ० देवेन्द्र कुमार साहू

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, शासकीय लाल श्याम शाह महाविद्यालय, मानपुर, जिला. राजनांदगांव, छत्तीसगढ़

सारांश:

वर्त्तमान समय में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों पर भारत का क्या दृष्टिकोण है तथा इसका मतलब यह है कि भारतीय अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को यूरोप व उत्तरी अमेरिका में आमतौर पर पश्चिमी शिक्षण परंपरा से ही उपजा हुआ माना जाता है। अर्थात् ये विचार भी दक्षिण एशियाई बुद्धिजीवीयों, विद्वानों व कार्यकर्ताओं के बीच 20वीं शताब्दी के समय उभरे राजनैतिक व अंतर्राष्ट्रीय विचारों के व्यापक कार्य को व्यक्त नहीं करता है और दक्षिण एशिया में भी अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की उत्पत्ति, उद्देश्य एवं मौजूदगी के कारण भुला दिया गए। इतिहास के पुर्नमूल्यांकन का भी समय आ गया है। इसमें वह शिक्षण परंपरा सामने भी आई है, जो अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के दायरे को व्यापक करती है तथा उपनिवेश के विरोधी व शक्तिशाली वैश्विक दृष्टिकोण को सामने लेकर आती है, जो एक स्वतंत्र भारतीय विदेश नीति की आधारशिला रखती है। प्रस्तुत शोध पत्र में भारत के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का वर्णन किया गया है।

मुख्य शब्द: अंतर्राष्ट्रीय संबंध, उपनिवेश, विदेश नीति।

भूमिका:

आज के समय में भारत अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के अंदर एक प्रमुख शक्ति की मांग कर रहा है जो वर्त्तमान समय में दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है और हो सकता है कि उसने इस क्षेत्र में कुछ प्रगति भी की हो, लेकिन फिर भी अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अध्ययन कुछ हद तक प्राथमिक स्तर पर ही है और अंतर्राष्ट्रीय संबंध में भारतीय समाज में बहुत कम मूल्यवान उद्यमों में से है। भारत के अंतर्राष्ट्रीय संबंध विद्वानों द्वारा लिखी गई केवल कुछ पुस्तकों या लेखों नें विश्व स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय संबंधों पर विद्वानों द्वारा लिखी गई है। केवल कुछ पुस्तकों या लेखों ने विश्व स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय संबंध सिद्धांतकारो या विदेश-नीति विश्लेषकों का ध्यान आकर्षित किया है, जिनमें ज्यादातर में वो हैं जो भारत-पाकिस्तान संघर्ष, परमाणु प्रसार और प्रतिरोध जैसे मुद्दों से निपटते हैं। और प्रणाली भारतीय विद्वानों ने तो विशेष रूप से उत्तरी अमेरिका में भी बेहतर प्रदर्शन किया है। हालांकि इस क्षमता को भी पूरी तरह से महसूस नहीं किया गया है क्योंकि देशी भारतीय विद्वान शायद ही कभी अपने कार्यों का हवाला देते हैं, जो कठिन अर्थशास्त्र में अपने वतन के विपरीत, भारतीय अंतर्राष्ट्रीय संबंध विद्वान शायद ही कभी प्रतिष्ठित वैश्विक स्थानों के माध्यम से प्रकाशित करते हैं। सिद्धांत के क्षेत्रों में प्रतिमान संचालित और पहेली चालित दोनों ही कार्य किसी भी तरह भारतीय विद्वता को दूर करते हैं। जबकि भारत में राजनीति विज्ञान और अंतर्राष्ट्रीय संबंध के लिए कई विश्वविद्यालय और शैक्षणिक संस्थान समर्पित है, इनमें से कई सामाजिक विज्ञान विभागों और उनमें किए जाने वाले विद्वतापूर्ण कार्यों की स्थिति अपेक्षाकृत खराब ही है, जो यह भारत के प्रमुख वैज्ञानिक, विज्ञान अनुसंधान संस्थान जैसे भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, भारतीय प्रबंधन संस्थान, भारतीय विज्ञान संस्थान और अन्य सरकारी और निजी सुविधाओं और प्रौद्योगिकी पार्क से काफी अलग है। सन् 1919 से पहले इस विषय के प्रति उदासीनता के कई मुख्य कारण थे जो इस प्रकार से है-प्रथम इस समय तक यही समझा जाता था कि युद्ध व राज्यों के गठबंधन उसी प्रकार स्वभाविक है जैसे कि गरीबी व बेरोजगारी। अत: युद्ध विदेश नीति तथा राज्यों के बीच परस्पर संबंधों को रोक पाना भी मानवीय सामर्थ के वश से बाहर माना जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय संबंध से तात्पर्य है दो या दो से अधिक शब्दों के बीच के संबंधों से है, जिसमें राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं सामरिक संबंध स्थापित होते हैं जो दो या दो से अधिक राष्ट्रों के मध्य संबंधों का निर्धारण अनेक पहलुओं के द्वारा होता है, जिसमें मुख्य कारक शामिल होते हैं-राष्ट्र की शासन व्यवस्था, भौगोलिक उपस्थिति, संसाधनों की उपलब्धता, सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक विकासक्रम विचारधारा एवं ऐतिहासिक मूल्य इत्यादि। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को अंतराष्ट्रीय, संगठन, वैश्विक व्यापार प्रतिरूप एंव नेतृत्व क्षमता भी प्रभावित करती हैं। राष्ट्र की सुरक्षा एवं समानता को सुनिश्चित करने के लिए न सिर्फ पड़ोसी देशों के साथ बल्कि उच्च राष्ट्रों के साथ भी सकारात्मक व सोहार्दपूर्ण संबंध सहायक सिद्ध होते हैं क्योकि मध्य युग तक राष्ट्र राज्यों का अस्तित्व ही नही भी संभव नही था तथा इस बात के स्पष्टीकरण की कोई आवश्यकता भी नही हैं कि प्राचीन काल में अन्तर्राष्ट्रीय मामलों को उजागर करने वाली राजनीतिक गतिविधियां प्रत्यक्ष थी। हालांकि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में शब्द-राज्य व्यवस्था को अवधारणा के उदय के संकेत 1648 की वेस्टफेलिया की संधि से मिलते है, जिसमें यूरोप में तीन वर्षों के युद्ध को समाप्त कर दिया।

यह संधि राज्य व राज्य-व्यवस्था को कानूनी मान्यता देती थी। वास्तव में इसके द्वारा दो राज्यों स्विट्जरलैंड और नीदरलैंड का निर्माण हुआ ठीक इसके बाद यूरोपीय शासकों ने रोमन कैथोलिक चर्च की सत्ता को अस्वीकार कर दिया गया। भारत शुरुआत से ही अकादमिक अनुशासन व अभ्यास दोनों ही क्षेत्रों में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के विषय में ज्ञान विकसित करने में रहा है। परन्तु जब कोई जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गांधी और रविंद्र नाथ टैगोर के विषय दृष्टि

प्रभावों से परे देखता है तो उस समय वीर सावरकर और सुभाष चंद्र बोस जैसे विद्वानों के वैश्विक प्रभाव वाले विचारों पर भी दृष्टि डालनी अत्यंत जरूरी हो जाती है। इस क्षेत्र में बौद्धिक योगदान भारत के कई स्रोतों को व्यवस्थित रूप से खोलना अनिवार्य हो जाता है।

इसी तरह भारत के अंदर ज्ञान और विकास के लिए एक भारतीय परिषद थी जो विश्व स्तरीय मामलों पर पहला स्वतंत्र अंतर्राष्ट्रीय मामलों का थिंक टैंक था, उसके साथ ही वर्ष 1943 से अमेरिका थिंक-टैंक और यूनाइटेड स्टेटस डिपार्टमेंट के बीच एक घूमने वाले दरवाजे की भाँति। सी. डब्लू. ए. एक संस्थागत पावर हाउस बन गया था, जिसने न केवल एक उपनिवेशवादी राज्य के लिए ही नहीं बल्कि बड़े पैमाने पर भी दुनिया भर के लिए विदेश नीति का ज्ञान उत्पन्न किया। इसके साथ ही अंगदिपुरम अफागंरई जैसी प्रमुख हस्तियाँ व कुछ-कुछ विद्वान व्यवसायियों के एक नए कैडर का भी हिस्सा थी, जो गुटनिरपेक्ष आंदोलन की अवधारणा व कार्मान्वयन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे। जिन्होंने मूलभूत तरीकों से शीत युद्ध के बामनेरिज को भी चुनौती दे डाली थी तथा स्वतंत्र भारत के लिए इस तरह की उपयोगी विदेश नीति ज्ञान का सृजन भारतीय अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का एक वंश प्रदान करता है, लेकिन हमें वहाँ पर रुकने की बिल्कुल भी जरूरत नहीं है। 20वीं शताब्दी की शुरुआत के समय पर भारत में अंतर्राष्ट्रीय स्तर के विचारों के अग्रदूत इस तरह अपने साथ विश्व स्तर पर उपनिवेशवाद विरोधी और स्वतंत्रता आधारित विचार लेकर चल रहे थे परन्तु वे अपने विद्वतापूर्ण प्रयासों के साथ ही उनमें से कई के ऐसे राजनीतिक संगठनों से भी संबंध थे, जो औपनिवेशिक शासन की समाप्ति के लिए कार्यरत थे। इन्ही विवादित नीतिगत मुद्दों के बीच ही विभिन्न देशों में फैले भारतीय समुदाय का भी उदय हुआ, जिससे व्यापक भारत की परिकल्पना भी सामने आती देखने को मिली तथा औपनिवेशिक राज्य के अन्याय और इसके नस्लीन, कानूनी और राजनीतिक भेदभाव पर भी सवाल उठा रही थी। विश्व परिदृश्य में भी भारत के भविष्य को लेकर 20वीं शताब्दी की शुरुआत और स्वतंत्रता उपरांत के शुरुआती दिनों में कई सारे दक्षिण एशियाई विद्वानों के अपने-अपने अंतर्निहित और सुस्पष्ट मत थे, लेकिन उनकी विद्वता संकेत करती है कि उनके विचार ही स्पष्ट नहीं थे संभवत: उनको ये लगता था कि इसमें से बहुत कुछ अभी छूट गया है।

निष्कर्ष:

अंत में कह सकते हैं कि वर्त्तमान समय में व्याप्त अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के अंदर एक प्रमुख शक्ति की मांग कर रहा है और यह मांग आज दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के मामले में भारतीय आयाम की खोज भी नहीं है, अंतर्राष्ट्रीय विचार के इतिहास और भारत में राजनीतिक विज्ञान के उदय पर गौर करें तो भारतीय शब्द के इतिहास में अंतर्राष्ट्रीय मामलों पर दक्षिण एशियाई नागरिक को आगे बढ़ाने के भारतीय विद्वानों के लगातार होते रहे प्रभावों का भी पता चलता है। इसमें इन सभी का विस्तृत वर्णन भी किया गया है, जो अंतर्राष्ट्रीय राजनीति को समझने का प्रयास किया गया है परन्तु एक निष्कर्ष अति स्पष्ट रूप से निकलता है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के मामलों में भारतीय ही नहीं विदेशी राजनीतिज्ञों के भी अलग-अलग रहे हैं, जिन्होंने विभिन्न विषयों के संदर्भ में अपने मत दिए है जो अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के विषय में सकारात्मक व सौहार्दपूर्ण सिद्ध भी हुए हैं क्योंकि इसमें यह बताया गया है कि मध्य युग तक तो राष्ट्रीय राज्यों का अस्तित्व ही नहीं था और तकनीकी दृष्टि से भी उस दौरान अंतर्राष्ट्रीय संबंध संभव नहीं था। यदि भारत खुद को कम समय में एक महाशक्ति के तौर पर देखता है तो भारत को अमेरिका के साथ अपने संबंधों को आगे बढ़ाना चाहिए तथा चीन की चुनौतियों से डटकर सामना करने के लिए अमेरिका की तकनीकी पर भरोसा करना होगा और लंबी अवधि में अलग भारत स्वयं को महाशक्ति के तौर पर देखना चाहता है तो अपनी शक्ति की पहचान करने के लिए देसी विकल्पों को तैयार करना चाहिए।

सन्दर्भ सूचि:

1. बेलिसए जॉनए स्टीव स्मिथ और पेट्रीसिया ओवेन्स। विश्व राजनीति का वैश्वीकरणरू अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का एक परिचय (2011)
2. https://www orforline.org/hindi/research
3. मिंगस्ट, करेन ए।, और इवान एम। अर्रेगिन-टोफ्ट। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की अनिवार्यता '5वां संस्करण। 2010)
4. www.hindustanitimes.com/opinion/the-histories of-india-international-relation
5. दृष्टि, ''अंतर्राष्ट्रीय संबंध'', उतराखंड लोक सेवा आयोग, पृ. 1
6. https://www drishtiias.com
7. नाउ, हेनरी आर. पर्सपेक्टिव्स ऑन इंटरनेशनल रिलेशंस: पावर, इंस्टीट्यूशंस, आइडियाज (2008)
8. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृ 25-28 https://himwikipedia.org
9. https://www dspmuranchi.ac.in
10. रोस्किन, माइकल जी., और निकोलस ओ. बेरी। आईआर: अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की नई दुनिया (8वां संस्करण। 2009)

रोजगार सृजन में मनरेगा की भूमिका का अध्ययनः मिर्जापुर जनपद (उ. प्र.) के ग्रामीण क्षेत्रों क्रे विशेष संदर्भ में

संदीप सरोज

शोध छात्र, भूगोल विभाग, तिलकधारी पी. जी. कॉलेज, जौनपुर, उत्तर प्रदेश- 222002।

डॉ० मनोज कुमार सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, तिलकधारी पी. जी. कॉलेज, जौनपुर, उत्तर प्रदेश- 222002।

सारांश

आजादी के बाद से ही देश में अनेक प्रयासों के बावजूद ग्रामीण क्षेत्रों के विकास का अपेक्षित स्तर प्राप्त नहीं किया जा सका और विकास के इसी अंतर को पूरा करने के लिए 21वीं शताब्दी के आरंभ से ही अनेक विचार प्रस्तुत किए गए। वर्ष 2005 में अनेक अध्ययनों के बाद राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम के रूप में एक व्यापक योजना को लागू किया गया। इस योजना का लक्ष्य न केवल ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार उत्पन्न करके आर्थिक संपन्नता को बढ़ावा देना था बल्कि सामाजिक एवं आर्थिक विकास स्तरों को भी ऊंचा उठाना था। लगभग 15 वर्षों का एक लंबा समय बीतने के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि मनरेगा योजना के तहत प्राप्त किए गए लाभों एवं इससे उत्पन्न चुनौतियों का विश्लेषण किया जाए, जिससे यह देखा जा सके कि इस योजना के सामाजिक आर्थिक निहितार्थ क्या हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जनपद के संदर्भ में मनरेगा योजना की रोजगार सृजन में भूमिका का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित वर्तमान अध्ययन मनरेगा के तहत जनपद में जारी किए गए जॉब कार्ड की स्थिति को जानने के साथ ही इस योजना की रोजगार सृजन क्षमताओं को भी विश्लेषित किया गया है। रोजगार सृजन क्षमताओं के आधार पर इस योजना के क्षेत्र की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों पर पड़ने वाले प्रभावों का भी आकलन किया गया है। वर्ष 2020-21 को आधार मानते हुए विभिन्न सरकारी स्रोतों से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण उपयुक्त सांख्यिकी विधियों का प्रयोग करते हुए किया गया है। अनेक स्थितियों में यह प्राप्त किया गया है कि मनरेगा के तहत पंजीकृत परिवारों की संख्या, उनको जारी किए गए जॉब कार्ड तथा परिवारों को प्रदान किए गए रोजगार की स्थिति में व्यापक अंतर है।

बीज शब्द-ग्रामीण विकास, रोजगार सृजन, जॉब कार्ड, सामाजिक सशक्तिकरण, आर्थिक विकास, जनभागीदारी।

भूमिका

भारत में वर्तमान समय में भी आबादी का एक बड़ा हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है। 1960 के दशक में देश की कुल आबादी में ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली जनसंख्या का भाग 80% से अधिक था जो कि वर्ष 2011 की जनगणना में कम होकर 68.72% तक आ गया है। ग्रामीण जनसंख्या में होने वाली इस लगभग 10% से अधिक की कमी के बावजूद यह देखा जा सकता है कि अन्य विकसित एवं विकासशील देशों की तुलना में भारत में ग्रामीण आबादी का हिस्सा अपेक्षाकृत अधिक है। देश की इस वृहद ग्रामीण आबादी के आर्थिक विकास तथा सामाजिक सुरक्षा को सुदृढ़ करने के लिए अनेक योजनाओं को लागू किया गया। इन योजनाओं ने वर्ष 1952 के सामुदायिक विकास कार्यक्रम से लेकर वर्ष 2001 के संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना के रूप में एक लंबा सफर तय किया है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम ने देश के ग्रामीण क्षेत्रों के विकास को आगे बढ़ाने में व्यापक भूमिका निभाई। यह न केवल भारत बल्कि अनेक एशियाई देशों में सामुदायिक विकास से संबंधित चुनौतियां को दूर करने में महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है (चटर्जी, 1957)[1]।

फिर भी, देश में विकास के प्रगति के स्तरों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि आरंभिक समय में लागू की गई इन योजनाओं की सीमित सफलता के बावजूद ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन का संकट और भी गहरा हुआ है। इसके परिणाम स्वरूप देश के विभिन्न भागों के ग्रामीण क्षेत्रों की सामाजिक-आर्थिक विकास स्थितियों में व्यापक अंतर बना हुआ है तथा इसने ग्रामीण-शहरी प्रवास को बढ़ाने में एक बड़ी भूमिका निभाई है। स्वतंत्रता के

बाद देश में विभिन्न विकास केंद्रों के रूप में कुछ शहरी क्षेत्रों में विकास गतिविधियों को इस आधार पर बढ़ावा दिया गया था कि यहां की जाने वाली आर्थिक क्रियाओं का व्यापक प्रभाव आसपास के क्षेत्रों पर पड़ेगा और प्रत्येक शहरी केंद्र एक बड़े क्षेत्र को विकसित करने में योगदान करेगा। यह संकल्पना अपने आरंभिक वर्षों में ही कोई व्यापक सकारात्मक प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकी और देश में क्षेत्रीय विषमताओं में वृद्धि देखी गई। आगे चलकर 1970-80 के दशक में देश में वृद्धिशील विषमताओं को कम करने के लिए पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम, जनजातीय विकास कार्यक्रम तथा तटीय विकास कार्यक्रम के रूप में अनेक क्षेत्रीय योजनाओं को लागू किया गया। इन योजनाओं ने देश में बढ़ती सामाजिक-आर्थिक विषमता को रोकने में तो मदद की किंतु इनसे ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक विकास को ऊपर उठाने में सीमित सफलता ही प्राप्त हो सकी। ग्रामीण-शहरी प्रवास बीसवीं सदी के अंतिम दशक तक एक बड़ी समस्या के रूप में उभरा और इसमें शहरी क्षेत्रों में आवास तथा स्वच्छता से संबंधित अनेक चुनौतियों को उत्पन्न किया।

उपर्युक्त चुनौतियों से निपटने के लिए तथा देश के ग्रामीण क्षेत्रों के विकास स्तरों को समान स्तर पर लाने के लिए एक व्यापक तथा दीर्घकालिक योजना की आवश्यकता थी। इसी को ध्यान में रखते हुए वर्ष 2005 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम के रूप में नरेगा को लागू किया गया। आगे चलकर यह योजना मनरेगा अर्थात महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम के रूप में संपूर्ण देश में प्रवर्तित की गई। मनरेगा का प्रथम लक्ष्य यह था कि ग्रामीण क्षेत्रों में विकास गतिविधियों को बढ़ावा देने के क्रम में व्यापक मात्रा में रोजगार क्षमताओं का सृजन किया जाए। रोजगार सृजन के माध्यम से परिसंपत्तियों का निर्माण तथा सामाजिक-आर्थिक विकास को बढ़ावा देना भी इस योजना के प्रमुख लक्षणों में शामिल थे। इस योजना के अपेक्षित प्रभाव न केवल ग्रामीण क्षेत्रों के विकास स्तर को ऊपर उठाने बल्कि ग्रामीण-शहरी प्रवास को कम करके शहरी क्षेत्रों की चुनौतियों को भी संबोधित करने के लिए संकल्पित थे। इस कार्यक्रम की सर्वप्रमुख विशेषता यह थी कि इसके अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों के अकुशल लोगों के लिए निर्धारित दिनों तक रोजगार प्राप्त करने की गारंटी प्रदान की गई थी। अर्थात, ग्रामीण क्षेत्र के लोग वर्ष में एक निश्चित समय हेतु रोजगार प्राप्ति के लिए अपनी इच्छा अनुसार आवेदन कर सकते हैं। महिलाओं तथा अक्षम लोगों के लिए इस कार्यक्रम के अंतर्गत अलग से प्रावधान किए गए थे। इस प्रकार यह योजना भारत के ग्रामीण क्षेत्रों के समग्र विकास को दृष्टिकोण में रखकर संकल्पित की गई थी। वर्ष 1992-93 में पंचायती राज संस्थाओं के गठन के बाद मनरेगा के माध्यम से उन्हें व्यापक अधिकार प्रदान किए गए। विभिन्न अध्ययन इस बात की ओर इंगित करते हैं कि कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाये तो मनरेगा ने देश के ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की गति को आगे बढ़ाया है। इसी क्रम में, भट्टाचार्य, गैहा, एवं झा (2011)[2] ने निष्कर्ष निकाला है कि मनरेगा ने ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की समस्या को कम करने में एक महत्वपूर्ण साधन की भूमिका निभाई है।

भारत की जनसंख्या की एक बड़ी आबादी युवा है और वह कार्यशील जनसंख्या में सम्मिलित है। कौशल विकास कार्यक्रमों के अभाव में मनरेगा कार्यक्रम 100 दिन का रोजगार प्रदान करके आर्थिक संकट को कम करने में सहायक सिद्ध हो रहा है वेंकटेश (2009)[3]। क्योंकि इससे श्रम आधारित प्रवास में कमी आने के साथ देश की एक बड़ी गरीब आबादी के लिए आजीविका के अवसरों में वृद्धि हुई है। अनेक अध्ययनों से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि मनरेगा ने ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन करने के अपने उद्देश्यों में व्यापक रूप में सफल रहा है। रोजगार प्रदान करने के साथ ही समय पर मजदूरी का भुगतान ग्रामीण समुदाय की आय को बढ़ाने में एक प्रमुख कारक सिद्ध हुआ है। प्रस्तुत अध्ययन में मिर्जापुर जनपद की सामाजिक तथा जनसांख्यिकीय विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए यहां के ग्रामीण क्षेत्रों में मनरेगा के माध्यम से रोजगार सृजन तथा इसका सामाजिक आर्थिक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण किया गया है।

मिर्जापुर जनपद

उत्तर प्रदेश के सुदूर दक्षिणी-पूर्वी भाग में मिर्जापुर जनपद 23°52 'उत्तरी एवं 25°32' उत्तरी अक्षांश तथा 827' पूर्वी एवं 83°33' पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। यह उत्तर में भदोही तथा वाराणसी जनपद, पूर्व में चंदौली जनपद, दक्षिण में सोनभद्र जनपद तथा उत्तर-पश्चिम में प्रयागराज जनपद से घिरा हुआ है। मिर्जापुर का भौगोलिक क्षेत्रफल लगभग 4521 वर्ग किलोमीटर है। यह उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर डिवीजन का एक प्रमुख अंग है तथा इसे प्रशासनिक रूप से 4 तहसीलों एवं 12 विकासखंडों में विभाजित किया गया है। यहां की तहसीलों में मिर्जापुर सदर, चुनार, मडिहान तथा लालगंज के नाम शामिल हैं। ये तहसीलें लालगंज, जमालपुर, पटेहरा, छानबे, राजगढ़, सिटी, हालिया, मझवां, कोन, पहाड़ी, नारायणपुर तथा सिखड़ नामक विकासखंडों में विभाजित की गई है। वर्ष 1989 में सोनभद्र जनपद के अलग होने तक यह उत्तर प्रदेश का सबसे बड़ा जनपद था। जनगणना, 2011 के अनुसार जनपद की कुल जनसंख्या लगभग 2,496,970 थी तथा यहां का घनत्व लगभग 561 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर था। वर्ष 2001-2011 के मध्य जनपद में जनसंख्या की वृद्धि दर 17.89% दर्ज की गई है तथा यहां का लिंगानुपात लगभग 913 था। जनपद में पुरुषों (70.38%) की तुलना में महिलाओं (54%) की साक्षरता दर अत्यंत ही निम्न है।[4]

भौगोलिक दृष्टिकोण से जनपद का एक महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि यहां पर गंगा विंध्य पर्वत से मिलती है। यहां स्थित दादरी, खजूरी तथा लखनिया जलप्रपात अपनी दर्शनीय स्थिति के लिए प्रसिद्ध है। विंध्य पर्वतों में स्थित विंध्यवासिनी मंदिर को अपने पर्यटन तथा धार्मिक महत्व के लिए जाना जाता है। जनपद में 95% से अधिक जनसंख्या द्वारा हिंदी भाषा का प्रयोग किया जाता है तथा कुछ क्षेत्रों में उर्दू तथा भोजपुरी भाषाएं भी बोली जाती हैं। वर्ष 2006 में मिर्जापुर जनपद को पंचायती राज मंत्रालय द्वारा देश के 250 सर्वाधिक पिछड़े जिलों में शामिल किया गया था।[5] यह उत्तर प्रदेश के उन 34 जनपदों में शामिल है जिन्हें पिछड़ा क्षेत्र अनुदान कोष कार्यक्रम के तहत विकास कार्यों को बढ़ावा देने के लिए अतिरिक्त राशि प्रदान की जाती है। कृषि कार्यों के साथ पर्यटन यहां की आय का प्रमुख स्रोत है। अनेक जल-प्रपातों के साथ कोटवा-पटेहरा वन क्षेत्र, चुनार का किला तथा दादरी-हालिया वन क्षेत्र यहां के प्रमुख पर्यटन स्थलों में शामिल हैं। आर्थिक रूप से पिछड़ा होने के कारण जनपद में अतिरिक्त आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है इस

संदर्भ में मनरेगा यहां के लोगों को रोजगार प्रदान करने का एक प्रमुख साधन बन सकता है। इसी संदर्भ में, मनरेगा के लागू होने के बाद इसकी प्रगति से संबंधित अध्ययन किए जाने की आवश्यकता है।

शोध के उद्देश्य

किसी भी अध्ययन के व्यापक आयाम हो सकते हैं ऐसे में यह आवश्यक होता है कि उसे किन्ही निश्चित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर संपादित किया जाए। वर्तमान अध्ययन के संदर्भ में निम्नलिखित उद्देश्यों को निर्धारित किया गया है।

- अध्ययन क्षेत्र में विकासखंडवार मनरेगा जॉब कार्ड धारकों की स्थिति का पता लगाना।
- अध्ययन क्षेत्र में मनरेगा की रोजगार सृजन क्षमता का आकलन करना।
- अध्ययन क्षेत्र में मनरेगा के अंतर्गत सृजित रोजगार सुविधाओं के सामाजिक आर्थिक-पहलुओं का अध्ययन करना।

शोध विधि

वर्तमान अध्ययन भारत तथा उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा मनरेगा के संदर्भ में प्रकाशित विभिन्न स्रोतों से प्राप्त द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है। इस प्रकार के आंकड़े भारतीय जनगणना-2011, ग्रामीण विकास मंत्रालय-भारत सरकार तथा अर्थ एवं संख्या प्रभाग-मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश से प्राप्त किए गए हैं। प्राप्त आंकड़ों के आधार पर मनरेगा से संबंधित विशेषताओं का विश्लेषण करने के लिए विभिन्न सूचकों का चयन किया गया है। इन सूचकों में शामिल हैं-

- मनरेगा के अंतर्गत पंजीकृत परिवारों की संख्या।
- पंजीकृत परिवारों में जॉब कार्ड प्राप्त परिवार।
- जॉब कार्ड प्राप्त परिवारों में रोजगार इच्छुक परिवार।
- जॉब कार्ड प्राप्त परिवारों में रोजगार प्राप्त परिवार।
- जॉब कार्ड प्राप्त परिवारों में 100 दिन का रोजगार पूर्ण करने वाले परिवार।

उपरोक्त सूचकों से संबंधित आंकड़ों के संग्रहण के पश्चात उन्हें आनुपातिक रूप में तुलना योग्य बनाने के लिए प्रतिशत मानों का आकलन किया गया है। विभिन्न विकासखंडों के मध्य एक बेहतर स्थिति को प्राप्त करने के लिए तथा मनरेगा की प्रगति का वास्तविक आकलन करने के लिए प्रत्येक सूचक को विकासखंड के अनुसार वरीयता क्रम में व्यवस्थित किया गया है। आंकड़ों को प्रसंस्करण के पश्चात उपयुक्त चित्रों की सहायता से प्रदर्शित किया गया है जिससे अध्ययन की समग्रता को प्राप्त किया जा सके। इस प्रकार हम संक्षेप में यह कह सकते हैं कि, इस अध्ययन में आंकड़ों के संग्रहण, सारणीयन, विभिन्न सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग तथा चित्रों को उपयोग में लाया गया है जिससे विश्लेषण को सुगमता प्रदान की जा सके।

साहित्यिक समीक्षा

मनरेगा योजना को लागू किए हुए लगभग 15 वर्षों से अधिक समय बीत चुका है तथा इसके प्रभावों के विश्लेषण से संबंधित अनेक अध्ययन किए जा चुके हैं। इस प्रकार के अध्ययन देश के अलग-अलग क्षेत्रों तथा राज्यों के स्तर पर किए गए हैं। भाटिया तथा द्रेज जीन (2006)[6] ने देश के विभिन्न क्षेत्रों में मनरेगा का अध्ययन करके यह पाया कि ग्रामीण लोगों के जीवन स्तर में सुधार करने के लिए मनरेगा सरकार की एक सफलतम योजना सिद्ध हुई है। आरंभ में मनरेगा के लेखा-जोखा से संबंधित सभी कार्य कागजी कार्यवाही द्वारा संपन्न किए जाते थे। इसके अंतर्गत धीरे-धीरे विभिन्न सूचना प्रौद्योगिकियों का उपयोग करके बेहतर परिणाम प्राप्त करने की कोशिश की गई है। इसी पर दृष्टिपात करते हुए गोस्वामी (2013)[7] ने आंध्र प्रदेश के संदर्भ में एक अध्ययन संपादित किया और यह पाया कि राज्य में मनरेगा के सभी चरणों में सूचना प्रौद्योगिकी का व्यापक उपयोग किया जा रहा है और इससे बेहतर परिणाम प्राप्त हुए हैं। चंद्रशेखर तथा घोष (2005)[8] ने मनरेगा के आरंभ में ही इसके द्वारा प्रदान किए जाने वाले 100 दिन के रोजगार को सरकार के एक सकारात्मक कदम के रूप में देखा था। उन्होंने बताया कि मनरेगा ग्रामीण गरीबी को दूर करने के लिए एक स्वागत योग्य कदम है किंतु मांग किए जाने वाले कार्यों को 15 दिन में उपलब्ध कराना तथा समय पर मजदूरी भुगतान करना इसकी प्रमुख चुनौतियों में से होंगी और इसकी राह में आने वाली बाधाओं को दूर किए जाने की आवश्यकता है। सामाजिक एकीकरण तथा महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के संदर्भ में मनरेगा महत्वपूर्ण कदम साबित हुआ है। धीरजा एवं राव (2010)[9] ने पाया कि मजदूरी भुगतान प्रक्रिया के तहत व्यापक मात्रा में डाकघरों तथा बैंकों में महिलाओं ने अपने खाते खुलवाए हैं जिससे उन्हें वित्तीय सुविधाओं से जोड़ा जा सका है। इसी प्रकार, सुदर्शन (2009)[10] ने अपना अध्ययन केरल राज्य के संदर्भ में किया है। उन्होंने बताया कि मनरेगा के अंतर्गत मिलने वाली मजदूरी से महिलाओं की अतिरिक्त आय में वृद्धि हुई है तथा उनमें आर्थिक रूप से सशक्तिकरण की भावना को देखा जा सकता है।

कृषि तथा गैर कृषि स्रोतों से प्राप्त होने वाली मजदूरी पर मनरेगा के पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया गया और यह पाया गया कि मनरेगा कार्यक्रम के लागू होने के बाद कृषि तथा गैर कृषि कार्य में संलग्न लोगों की आय में भी वृद्धि हुई है क्योंकि श्रम की कमी के परिणाम स्वरूप ग्रामीण लोग अब उच्च मजदूरी दर प्राप्त कर रहे हैं। मनरेगा कार्यक्रम ने न केवल ग्रामीण क्षेत्रों के जीवन स्तर को ऊपर उठाने में मदद की है बल्कि एक हद तक इसने शहरी समस्याओं से निपटने में भी सहायता की है। इस योजना के लागू होने के बाद ग्रामीण-शहरी प्रवास में व्यापक रूप से कमी देखी गई क्योंकि लोगों को अब उनके निवास स्थान के आस-पास ही उचित रोजगार उपलब्ध हो रहे थे। कुमार एवं प्रसन्ना (2010)[11] ने बस्तर जिले (छत्तीसगढ़) में मनरेगा योजना का अध्ययन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि जनपद से रोजगार प्राप्त करने के लिए पलायन करने वाले लोगों की संख्या में व्यापक कमी आई है। एक व्यापक

अध्ययन करते हुए उन्होंने प्राथमिक आंकड़ों का संग्रहण किया तथा यह पाया कि पहले रोजगार के लिए प्रवास करने वाले लोगों की संख्या लगभग 4500 थी जो कि बाद में घटकर लगभग 500 तक ही रह गई।

इस प्रकार उपरोक्त अध्ययनों के आधार पर हम यह देख सकते हैं कि मनरेगा ने ग्रामीण जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया है। एक तरफ तो इसने रोजगार साधनों में वृद्धि करने के साथ मजदूरी दर में वृद्धि की है तो वहीं दूसरी तरफ महिला सशक्तिकरण तथा सामाजिक एकीकरण को बढ़ावा देने का भी कार्य किया है। इस योजना के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक स्तर पर परिसंपत्तियों का सृजन किया गया है। इस प्रकार सृजित अतिरिक्त परिसंपत्तियां अतिरिक्त रोजगार सुविधाएं मुहैया करा रही हैं।

विश्लेषण

जैसा ऊपर वर्णित किया गया है कि वर्तमान अध्ययन द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त आंकड़ों पर आधारित है। साथ ही, अध्ययन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न सूचकों को आधार बनाया गया है। इन सूचकों में मिर्जापुर जनपद में मनरेगा योजना के तहत पंजीकृत परिवार, पंजीकृत परिवारों में जॉब कार्ड प्राप्त परिवार, जॉब कार्ड प्राप्त परिवारों में रोजगार के इच्छुक परिवार, जॉब कार्ड परिवारों में रोजगार प्राप्त परिवार तथा जॉब कार्ड प्राप्त परिवारों में 100 दिन का रोजगार प्राप्त करने वाले परिवारों को शामिल किया गया है। जनपद में रोजगार की स्थिति का आकलन करने के लिए प्रथम दो सूचकों को सारणी 1 में प्रदर्शित किया गया है।

सारणी के आधार पर यह देखा जा सकता है कि जनपद में मनरेगा के अंतर्गत वर्ष 2020-21 में कुल 375754 परिवारों को पंजीकृत किया गया था। इन परिवारों की सर्वाधिक संख्या हालिया (12.66%), छानबे (12.66%), राजगढ़ (10.74%) तथा सिटी (10.63%) विकासखंडों में देखने को मिलती है। जहां इनकी संख्या 10: से अधिक है। पंजीकृत परिवारों की निम्नतम संख्या कोन (4.90%) तथा सिखड़ (3.65%) है। पंजीकृत परिवारों में जॉब कार्ड प्राप्त परिवारों की बात की जाए तो हम देखते हैं कि सर्वाधिक जॉब कार्ड पटेहरा (96.13%) विकासखंड में प्रदान किए गए हैं। इसके बाद क्रमशः सिटी (94.41%) तथा सिखड़ (93.98%) विकासखंडों का स्थान आता है। एक सकारात्मक बात यह है कि लगभग सभी विकास खंडों में 90% से अधिक पंजीकृत परिवारों को जॉब कार्ड प्रदान किए गए हैं। पंजीकृत परिवारों में जॉब कार्ड प्राप्त परिवारों के अंतर्गत निम्नतम स्थान पर मझवां (88.73%) तथा कोन (88.97%) विकासखंडों का नाम देखने को मिलता है।

सारणी 1

मिर्जापुर जनपद में मनरेगा के तहत पंजीकृत तथा जॉब कार्ड प्राप्त परिवार (2020.21)

क्रम संख्या	विकासखंड	पंजीकृत परिवार	पंजीकृत परिवार (% में)	वरीयता क्रम	पंजीकृत परिवारों में जॉब कार्ड प्राप्त परिवार (% में)	वरीयता क्रम
1	हालिया	47588	12.66	1	92.38	9
2	छानबे	47566	12.66	2	90.90	10
3	राजगढ़	40340	10.74	3	93.47	5
4	सिटी	39936	10.63	4	94.41	2
5	जमालपुर	34163	9.09	5	92.82	8
6	लालगंज	31648	8.42	6	93.18	6
7	नारायणपुर	29708	7.91	7	92.99	7
8	पटेहरा	26938	7.17	8	96.13	1
9	पहाड़ी	22926	6.10	9	93.64	4
10	मझवां	22822	6.07	10	88.73	12
11	कोन	18402	4.90	11	88.97	11
12	सिखड़	13717	3.65	12	93.98	3
जनपद		375754	100		92.69	

स्रोतः ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

चित्र 1

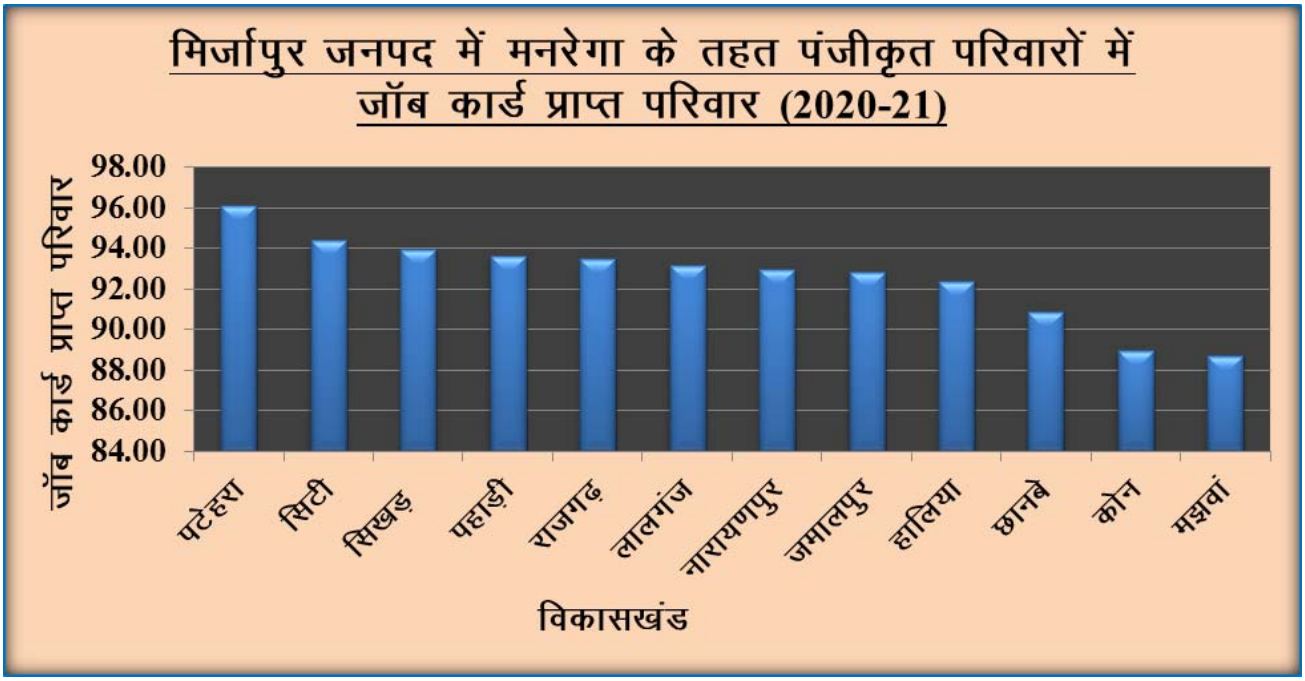

इस सारणी के आधार पर एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह प्राप्त होता है कि पंजीकृत परिवारों तथा रोजगार के संदर्भ में जॉब कार्ड प्रदान किए जाने वाले परिवारों की स्थिति जनपद के सभी विकासखंडों में एक समान नहीं है। कुछ ऐसे विकासखंड है जिनमें पंजीकृत परिवारों की संख्या अधिक है किंतु वहां उस मात्रा में जॉब कार्ड प्रदान नहीं किए जा सके हैं। दूसरी तरफ सिखड़ जैसे विकासखंड जो पंजीकृत परिवारों की अत्यंत ही निम्न संख्या को धारित करते हैं किंतु इनमें अन्य की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक परिवारों को जॉब कार्ड प्रदान किए गए हैं। जॉब कार्ड प्रदान किया जाना पंजीकरण की अगली प्रक्रिया है जो कि यह सुनिश्चित करने में मदद करती है कि अधिक से अधिक लोगों को रोजगार की प्राप्ति हो सके। ऐसे में यह निष्कर्ष निकलना महत्वपूर्ण हो जाता है कि वे विकासखंड जिनमें पंजीकरण की संख्या तो अधिक है किंतु जॉब कार्ड अपेक्षाकृत कम मात्रा में प्रदान किए गए हैं उनमें प्रक्रियागत सुधार किए जाने की आवश्यकता है। जनपद में मनरेगा के तहत पंजीकृत परिवारों में जॉब कार्ड प्राप्त परिवारों को चित्र 1 की सहायता से दर्शाया गया है। चित्र में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि किस प्रकार पटेहरा विकासखंड में अन्य की तुलना में जॉब कार्ड प्राप्त करने वाले परिवार अपेक्षाकृत अधिक हैं। चित्र से स्पष्ट है कि सिटी से लेकर हालिया विकासखंड तक जॉब कार्ड प्राप्त परिवारों की संख्या में एक सतत रूप से कमी आ रही है। इस कमी की दर छानबे, कोन तथा मझवां विकासखंडों में उच्च हो जाती है।

उपरोक्त की भांति मिर्जापुर जनपद में मनरेगा के अंतर्गत रोजगार सृजन क्षमता का पता लगाने के लिए चयनित सूचकों से संबंधित आंकड़ों को को सारणी 2 में प्रस्तुत किया गया है। जनपद में कुल जॉब कार्ड प्राप्त परिवारों में से 68.59% परिवारों ने रोजगार प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की है और ऐसे परिवारों की संख्या सर्वाधिक रूप में लालगंज (81.99%), जमालपुर (79.72%) तथा पटेहरा (77.29%) विकासखंडों में है। इन विकासखंडों में जॉब कार्ड प्राप्त करने वाले परिवारों के लगभग 75% से अधिक परिवारों ने मनरेगा के तहत रोजगार प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की है तथा इस हेतु आवेदन किया है। सारणी 1 में हमने देखा था कि सिखड़ विकासखंड में पंजीकृत परिवारों की संख्या निम्नतम थी उसी भांति यहां भी इसी विकासखंड में रोजगार प्राप्त के इच्छुक परिवारों की संख्या सबसे कम (37.14%) है। जैसा हमने देखा है कि जनपद में जॉब कार्ड धारक परिवारों में से औसत रूप से 68.59% परिवार रोजगार प्राप्त करने की इच्छुक हैं। जनपद के औसत से अधिक संख्या में रोजगार के इच्छुक परिवारों वाले विकासखंडों में उपरोक्त लालगंज, जमालपुर तथा पटेहरा के साथ छानबे (74.10%), राजगढ़ (73.84%) सिटी (73.37%) तथा हालिया (71.01%) विकासखंड भी शामिल हैं।

सारणी (2) में एक महत्वपूर्ण तथ्य निकल कर यह सामने आया है कि जॉब कार्ड परिवारों में से रोजगार प्राप्त करने वाले परिवारों की संख्या तेजी से कम हुई है और प्रत्येक विकासखंड में यह संख्या रोजगार के इच्छुक परिवारों की तुलना में अत्यंत ही निम्न स्तर पर है। सारणी (2) से पता चलता है कि किसी भी विकासखंड में जॉब कार्ड धारक परिवारों में से 60% से अधिक लोगों को रोजगार प्रदान नहीं किया गया है। संपूर्ण मिर्जापुर जनपद में रोजगार प्राप्त करने वाले लोगों की संख्या जॉब कार्ड प्राप्त परिवारों की संख्या की केवल 48.90% की है। जॉब कार्ड प्राप्त परिवारों को रोजगार प्रदान करने की दर राजगढ़, छानबे तथा पटेहरा जैसे विकासखंडों में सर्वाधिक है। इन विकास खंडों में जॉब कार्ड प्राप्त

सारणी 2

मिर्जापुर जनपद में मनरेगा के तहत रोजगार प्राप्त परिवारों की स्थिति (2020.21)

क्रम संख्या	विकासखंड	जॉब कार्ड प्राप्त परिवारों में रोजगार इच्छुक परिवार (% में)	वरीयता क्रम	जॉब कार्ड प्राप्त परिवारों में रोजगार प्राप्त परिवार (% में)	वरीयता क्रम	जॉब कार्ड प्राप्त परिवारों में 100 दिन का रोजगार पूर्ण करने वाले परिवार (% में)	वरीयता क्रम
1	लालगंज	81.99	1	45.20	8	5.61	6
2	जमालपुर	79.72	2	49.02	6	4.52	7
3	पटेहरा	77.29	3	57.12	3	6.51	3
4	छानबे	74.10	4	58.60	2	5.87	5
5	राजगढ़	73.84	5	58.71	1	8.14	2
6	सिटी	73.37	6	56.18	4	10.29	1
7	हालिया	71.01	7	52.12	5	4.30	8
8	मझवां	60.75	8	33.08	10	1.75	10
9	कोन	59.74	9	39.51	9	1.84	9
10	पहाड़ी	52.46	10	46.55	7	5.95	4
11	नारायणपुर	45.46	11	29.68	11	1.43	11
12	सिखड़	37.14	12	28.95	12	1.33	12
जनपद		68.59		48.90		5.36	

स्रोतः ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

परिवारों में रोजगार प्राप्त परिवारों की संख्या क्रमशः 58.71%, 58.60% तथा 57.12% है। सिखड़ तथा नारायणपुर विकासखंडों में न केवल रोजगार के इच्छुक परिवारों की संख्या निम्न है बल्कि यहां अत्यंत ही निम्न संख्या में परिवारों को रोजगार प्रदान किया गया है। इन विकासखंडों में क्रमशः 28.95% तथा 29.68% जॉब कार्ड धारक परिवारों को ही मनरेगा के तहत रोजगार प्रदान किया जा सका है। इन दोनों विकासखंडों (नारायणपुर तथा सिखड़) के साथ मझवां (33.08%), कोन (39.51%), लालगंज (45.20%) तथा पहाड़ी (46.55%) विकासखंडों में तो जनपद के औसत (48.90%) के सामान भी रोजगार प्रदान नहीं किए जा सके हैं।

चित्र 2

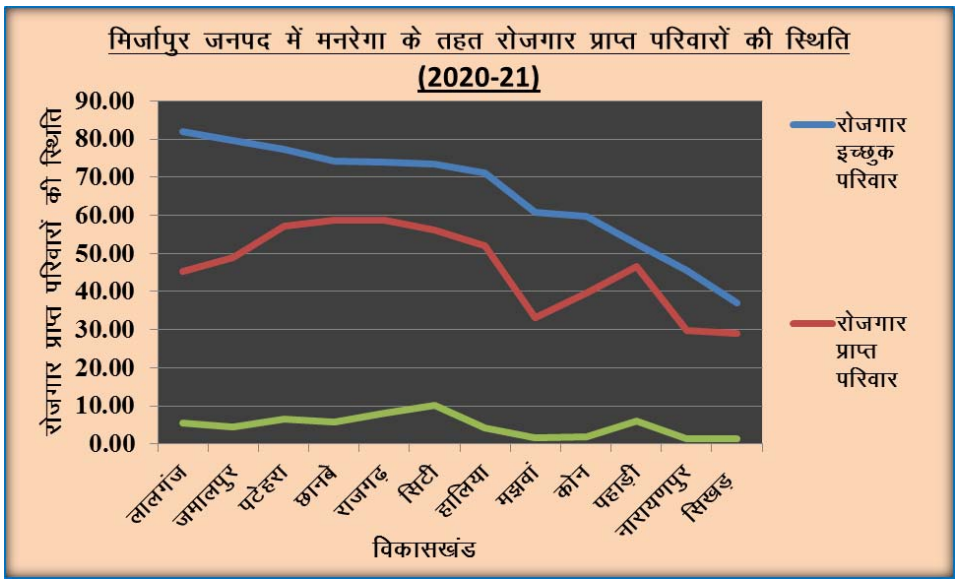

इसी सारणी (2) में जॉब कार्ड धारक परिवारों की ऐसी संख्या जिन्होंने 100 दिन का रोजगार कौन किया है, से संबंधित आंकड़ों को भी प्रदर्शित किया गया है। यहां एक निराशाजनक परिणाम प्राप्त होते हैं और हम देख सकते हैं कि प्रत्येक विकासखंड में 100 दिन का रोजगार पूर्ण करने वाले परिवारों की संख्या चिंतनीय रूप से अत्यंत ही निम्न है। सिटी विकासखंड (10.29%) को छोड़कर किसी भी विकासखंड में प्रतिशत के दहाई अंकों में भी लोगों ने 100 दिन का रोजगार पूर्ण नहीं किया है। कोन (1.84%), मझवां (1.75%), नारायणपुर (1.43%) तथा सिखड़ (1.33%) विकास खंडों में तो यह संख्या 2% से भी कम है। उपरोक्त तीनों सूचकों की बेहतर स्थिति प्राप्त करने तथा उन्हें समझने योग्य प्रस्तुत करने के लिए आंकड़ों को चित्र 2 में प्रदर्शित किया गया है। चित्र में स्पष्ट हो रहा है कि रोजगार के इच्छुक परिवारों की संख्या संपूर्ण जनपद में अत्यधिक है। रोजगार के इच्छुक परिवारों की संख्या की तुलना में रोजगार प्राप्त परिवारों की संख्या में तेजी से कमी हुई है। साथ ही, हम देख सकते हैं कि 100 दिन का रोजगार पूर्ण करने वाले परिवार तो रोजगार की इच्छुक परिवारों की संख्या की तुलना में नगण्य ही हैं।

उपरोक्त सारणियों तथा चित्रों से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर मनरेगा द्वारा सृजित रोजगार सुविधाओं के सामाजिक-आर्थिक पहलुओं का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। मिर्जापुर जनपद के ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जाति तथा जनजाति समुदाय की एक बड़ी संख्या निवास करती है। ऐसे में जब मनरेगा के अंतर्गत रोजगार प्राप्त करने वाले परिवारों की संख्या समग्र रूप में निम्न है तो इन अनुसूचित जाति तथा जनजाति वर्ग के परिवारों का स्तर तो और भी निम्न होगा। अत: यह कहा जा सकता है कि जनपद में मनरेगा कार्यक्रम के अंतर्गत न केवल रोजगार सुविधाओं के प्रसार की आवश्यकता है बल्कि इन्हें विभिन्न सामाजिक वर्गों तक पहुंचाया भी जाना चाहिए।

निष्कर्ष एवं सुझाव

अब तक के विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकल कर सामने आते हैं:

- मनरेगा के तहत पंजीकृत परिवारों की संख्या में विभिन्न विकास खंडों में व्यापक अंतर विद्यमान है, साथ ही यह भी देखने को मिला है कि रोजगार प्राप्त करने वाले परिवार न केवल पंजीकृत परिवारों बल्कि जॉब कार्ड प्राप्त परिवारों की तुलना में अत्यंत ही कम हैं।
- सारणी 2 से मनरेगा योजना के तहत किए गए दावों पर प्रश्न चिन्ह लगता है क्योंकि जनपद में लगभग सभी विकास खंडों में 100 दिन का रोजगार पूर्ण करने वाले परिवारों का प्रतिशत अत्यंत ही निम्न है और यह मझवां विकासखंड को छोड़कर किसी भी विकासखंड में 10% से अधिक नहीं है।
- इसका कारण यह हो सकता है कि पंजीकृत तथा जॉब कार्ड धारक परिवारों की एक बड़ी संख्या लंबी प्रक्रिया के कारण रोजगार प्राप्त करने से वंचित रह गई अथवा उन्हें मनरेगा की तुलना में अधिक मजदूरी दर पर अन्य रोजगार के साधन उपलब्ध हुए होंगे।
- रोजगार प्राप्त करने वाले परिवारों की संख्या के साथ 100 दिन का रोजगार पूर्ण करने वाले परिवारों की संख्या निम्न स्तर पर बनी हुई है। दोनों में खराब प्रदर्शन का कारण कुछ भी हो किंतु यह निश्चित है कि मनरेगा कार्यक्रम अपने अपेक्षित प्रभावों को समाज में लागू नहीं कर पाया है। ऐसी दशा में इसके अंतर्गत परिकल्पित सामाजिक-आर्थिक दशाओं की बेहतरी के संदर्भ में भी सकारात्मक परिणाम प्राप्त नहीं हुए होंगे।
- अनेक अध्ययनों में यह दावा किया गया है कि मनरेगा ने ग्रामीण लोगों की समग्र जीवन दशा को सुधारने में व्यापक योगदान दिया है। किंतु, जनपद में प्राप्त उपरोक्त निष्कर्षों के आधार पर यह कथन सत्य प्रतीत नहीं होता है क्योंकि जब 100 दिन का रोजगार पूर्ण करने वाले परिवारों की संख्या अत्यंत निम्न है तो ऐसी दशा में महिलाओं तथा अनुसूचित जाति एवं जनजातियों द्वारा इस प्रकार के 100 दिन के रोजगार पूर्ण करने वाले परिवारों की संख्या को और भी निम्न रही होगी।

उपरोक्त समस्याओं के दृष्टिगत यह सुझाव दिया जा सकता है कि जनपद में मनरेगा की प्रगति के संदर्भ में एक व्यापक निगरानी प्रणाली को निर्मित किए जाने की आवश्यकता है। प्रत्येक विकासखंड के अनुसार यह सुनिश्चित किए जाने की आवश्यकता है कि वहां न केवल जॉब कार्ड धारकों की संख्या में वृद्धि की जाए बल्कि अधिक संख्या में परिवारों को रोजगार उपलब्ध कराने के साथ उन्हें 100 दिन का रोजगार पूर्ण करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। यह सर्वविदित है कि जनपद उत्तर प्रदेश के पिछड़े जिलों में शामिल है। ऐसे में, मिर्जापुर जनपद में मनरेगा द्वारा व्यापक मात्रा में परिसंपत्तियों के सृजन की संभावना है। यहां के ग्रामीण लोगों को व्यापक मात्रा में रोजगार प्रदान करके इस प्रकार की परिसंपत्तियों का सृजन किया जा सकता है जो आगे चलकर जनपद के समग्र विकास में मदद करेंगी। एक अध्ययन में साहा रॉय (2013)12, ने पाया कि मनरेगा कार्यक्रम के खराब प्रदर्शन का एक प्रमुख कारण इस योजना में ग्रामीण स्तर पर अवैध ठेकेदारों की उपस्थिति है। साथ ही, उन्होंने मजदूरी के भुगतान में देरी को भी इस योजना की उत्पादकता को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले कारकों में से एक माना है। मिर्जापुर जनपद के संदर्भ में भी इस प्रकार की समस्याओं को पहचान कर उन्हें दूर किए जाने की आवश्यकता है।

Reference:

1. Chatterjee B., (1957). *"Rural community development in India"*. Civilizations, Vol. 7 (2), pp. 187-198.
2. Bhattacharyya, S., Gaiha, R., & Jha, R. (2011). "Social safety nets and nutrient deprivation: An analysis of the National Rural Employment Guarantee Programme and the Public Distribution System in India", ASARC Working Paper 2010-4. Canberra: *Australian South Asian Research Centre (ASARC).*
3. Venkatesh, A. (2009). "Economic crisis and rural livelihoods. Chennai": *M. S. Swaminathan Research Foundation.*
4. Census of India (2011). Govt. of India; New Delhi.
5. Ministry of Panchayati Raj (8 September 2009). "A Note on the Backward Regions Grant Fund Programme"; New Delhi.

6. Bhatia, B. and Dreze, J., (2006). "Employment Guarantee in Jharkhand: Ground Realities", *Economic and Political Weekly*, Vol., XLI (29). pp. 3200-3202.
7. Goswami, H. K., (2013). NGRGA Implementation in Andhra Pradesh. *The Assam Tribune*, October, 15.
8. Chandrasekhar C. P. and Ghosh J., (2005). "Social Inclusion in the NREGS", *Business Line (India)*.
9. Dheeraja, C., Rao, H. (2010). "Changing gender relations: A study of MGNREGS across different states". *Hyderabad: National Institute of Rural Development (NIRD)*.
10. Sudarshan, R. M. (2009). "Examining India's National Regional Employment Guarantee Act: Its impact and women's participation". New Delhi: *Institute of Social Studies Trust (ISST)*.
11. Kumar, R., Prasanna, R. (2010). "Role of NREGA in providing additional employment for tribals and curtailing migration. In National Rural Employment Guarantee Act (NREGA): Design, process and impact". New Delhi: *Ministry of Rural Development*.
12. Saha, R., Chhanda, (2013). "Right Based Approach in Accessing Social Sector Services – A Case Study of MGNREGA", *Global Research Methodology Journal*, Vol. II (8).

चेरो शासक मेदिनी राय (1658-1674 ई.)

मो० परवेज अहमद

शोधार्थी, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

डॉ० रंजन सिन्हा

शोध-निदेशक, सेवानिवृत एसोसिएट प्राध्यापक, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सारांश

मध्यकाल में झारखण्ड में तीन प्रमुख शासक-वंश थे-छोटानागपुर-खास के नागवंशी, पलामू के चेरो तथा सिंहभूम के सिंह शासक। इनमे दूसरे अर्थात् चेरो वंश की स्थापना 1538 ई. तक पलामू में हो चुकी थी। उसी वर्ष महारथ चेरो तथा शेर खाँ के बीच युद्ध हुआ था। महारथ चेरो के बाद भागवत राय पलामू की गद्दी पर बैठा। भागवत राय अकबर का समकालीन था। जहाँगीर के समय पलामू पर दो चेरो राजाओं ने राज किया। ये दो चेरो राजा थे-अनन्त राय एवं सहबल राय। प्रताप राय शाहजहाँ का समकालीन था। ऐसा प्रतीत होता है कि पुराना पलामू किला प्रताप राय के शासनकाल में ही बना। औरंगजेब के शासन के प्रारम्भिक वर्षों में पलामू का चेरो राजा मेदिनी राय था। उसने 1658 से 1674 ई. तक राज किया। वह एक शक्तिशाली राजा था और गद्दी पर बठते ही उसने मुगलों की अधीनता अस्वीकार कर दी थी। मेदिनी राय ने चेरो को विरासत में मिली रक्सेल प्रशासकीय परम्पराओं के अलावा अफगान एवं मुगल प्रशासकीय तत्त्वों को समाहित कर एक कुशल शासन-व्यवस्था की स्थापना की थी। ये प्रजा की भलाई के लिए हमेशा तत्पर रहते थे।

मेदिनी राय की प्रजावत्सलता, दानशीलता और न्यायप्रियता के लिए आज तक पलामू में चर्चाएँ होती है। अभी भी वहाँ एक लोकगीत प्रचलित है-

''धनि-धनि राजा मेदनियाँ
घर-घर बाजे मथनियाँ।''

आधार शब्द रू पलामू, चेरो, मेदिनी राय, औरंगजेब, जनजाति।

परिचय

प्राकृतिक दृष्टि से झारखण्ड दो मुख्य भागों में बँटा है- छोटानागपुर और संथाल परगना। इसकी भौगालिक स्थिति महत्वपूर्ण है। यह मध्य भारत के विशाल पठार का पूर्वी भाग है। झारखण्ड पहाड़ों, जंगलों और खनिज पदार्थों से भरा पड़ा है। भारतीय इतिहास के विभिन्न युगों में झारखण्ड विभिन्न नामों से जाना जाता रहा है। जंगलों, पहाड़ों से आच्छादित होते हुए भी यह प्रदेश बाह्य जगत से पूर्णत: कटा हुआ नहीं था। प्राचीन काल से ही भारत के अन्य भागों से इसका जातीय एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता रहा। फिर भी, दुर्गम भौगोलिक प्रभाव के कारण यह क्षेत्र भारत के अन्य भागों से ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से बहुत कुछ भिन्न रहा है। यहाँ एक विशिष्ट सभ्यता का विकास हुआ, जिसने बाह्य प्रभावों के बावजूद अपनी विलक्षणता को अक्षुण्ण बनाए रखा। प्राचीन भारत में गुप्त शासकों एवं शशांक को छोड़कर किसी राजवंश ने यहाँ लंबे समय तक शासन नहीं किया।[1] तुर्क विजेता अपने तीन सौ साल के शासनकाल में कभी भी इस क्षेत्र को आक्रांत नहीं कर सके। मुगल सम्राटों का भी सीमित संपर्क रहा। इन विशेष परिस्थितियों के कारण ही झारखंड के इतिहास का तथा सांस्कृति प्रगति का एक विशेष दिशा में झुकाव रहा। द्रविड़ तथा आर्यों द्वारा अधिक उपजाऊ प्रदेशों से निकाले जाने पर भारतीय आदिम समुदायों ने यहीं शरण लिया, जैसे-मुण्डा, हो, उराँव, संथाल, चेरो तथा खरवार आदि। इस तरह यह प्रदेश प्राचीन भारतीय आदिम जनजातियों का निवास-स्थान बनता चला गया। ऐतिहासिक युग में यहाँ पर कांकजोल शासकों, नागवंशियों, सिंहों, रक्सेलो तथा चेरओं के प्राय: छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्य ही रहे हैं। इसकी प्राकृतिक बनावट ने स्थानीय स्वतंत्रता के पनपने में सहायता पहुँचाई। पहाड़ी भूमि तथा वनों के कारण यहाँ के निवासी अत्यधिक मितव्ययी, सहनशील, परिश्रमी तथा युद्ध प्रिय रहे हैं।[2]

भारतीय इतिहास की समृद्धि के लिए जनजाति पर अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण है। जयपाल सिंह द्वारा भारतीय संविधान सभा में 'जनजाति' के संबंध में आरक्षण आदि पर मांग की गयी। उनके अनुसार स्वतंत्रता के अपमानित योद्धाओं भारत के आदिवासियों जो कि भिन्न-भिन्न प्रकार की पिछड़ी हुई जाति, असभ्य जाति, जरायन पेशा कौम और जो कुछ भी हो, नामों से परिचित की गई है। उनके अनुसार आदिवासी समाज का समस्त इतिहास भारत से बाहर से आये हुए व्यक्तियों द्वारा स्वत्व-हरण और शोषण का इतिहास है, जो विद्रोह और अव्यावस्था से अंकित है। जयपाल सिंह ने डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के वक्तव्य को संविधान सभा में रखा।[3]

''बिहार का यह भाग जहाँ यह विशाल जनसमूह एकत्रित हो रहा है, अपनी स्वयं विशेषता रखता है। सौंदर्य में यह अनुपम है। इसका इतिहास भी अनोखा है। इन भागों में अधिकतर वे लोग बसते हैं, जो कि भारतवर्ष के मूल निवासी माने जाते हैं। अन्य व्यक्तियों की सभ्यता से इसकी सभ्यता कई बातों से भिन्न है। प्राप्त प्राचीन वस्तुओं से यह सिद्ध होता है कि यह सभ्यता बहुत पुरानी है। आदिवासी, आर्यों से भिन्न वंश के हैं और इनके वंश के मनुष्य भारत के दक्षिण-पूर्व के कई टापूओं में सुदूर तक फैले हुए हैं-इनकी प्राचीन सभ्यता इन भागों में पर्याप्त सीमा तक सुरक्षित रही है, संभवत: अन्य स्थानों से अधिक।"[4]

चेरो जनजाति के संबंध में विभिन्न अवधारणाएँ हैं। रिसले के अनुसार ''चेरो या चेस बिहार एवं छोटानागपुर के निवासी है, जिनका मुख्य पेशा कृषि एवं भूमि से संबंधित (जमींदारी) कार्य प्रणाली रहा है। बिहार एवं छोटानागपुर के अतिरिक्त पूर्वी उत्तर प्रदेश के क्षेत्र बनारस एवं मिर्जापुर में भी निवास करते हैं। सर हेनरी इलियट के कथनानुसार चेरो भार जनजाति की शाखा है, जो कोल जनजाति से संबंधित है। वे लोग राजपूत जाति से संबंधित करते रहे हैं। इनका पहनावा भी उनसे मिलता जुलता है। इन लोगों की भाषा कोल भाषा से निकट रहा है। जो मुंडा से भी संबंधित है। मुंडा जनजाति तथा मुंडा भाषा का प्रभाव सभी जनजाति भाषाओं में दृश्य होता है।[5]

चेरो आदिवासी द्रविड़ प्रजाति के हैं। ये हिन्दी, भोजपूरी से मिलती-जुलती 'कुरूख' बोली बोलते हैं। चेरो तीन प्रकार के हैं, 1. 'बबुआन' ये अपने को राजपूत कहते हैं, 2. 'बारह हजारी', इन्हें बबुआन अपने से छोटा समझते हैं और वैवाहिक सम्बन्ध नहीं रखते हैं, 3. 'तेरह हजारी', इन्हें 'बीर बँधिया' भी कहा जाता है। 'बारह हजारी' इन्हें अपने से छोटा समझते हैं। चेरो समाज पितृसत्तात्मक होता है।[6]

बुकानन का सुझाव है कि चेरो, क्षत्रिय कुल से संबंधित रहे हैं। वे सुनका परिवार के सदस्य माने जा सकते हैं, जो छठी या सातवीं शताब्दी ई. पू. गौतम के समय फले-फूले। बौद्ध षिलालेख में 'फुदी चन्द्र' का उल्लेख है, जिसे पारंपरिक रूप से चेरो कहा जाता है।[7]

मुगल काल के आरंभ में झारखंड में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि रक्सेलो को पराजित कर चेरओं ने पलामू में एक नये राजवंश की स्थापना कर ली थी।[8] परम्परागत विचार यह है कि राजा भागवत राय ने पलामू के चेरो राजवंश की स्थापना जहाँगीर के शासनकाल में की थी किन्तु अत्याधुनिक शोधकर्त्ताओं ने प्रमाणित किया है कि शेर खाँ के गद्दी पर बैठने के पूर्व ही चेरो रोहतास से चलकर पलामू में प्रवेश कर चुके थे। चौसा की लड़ाई के ठीक पहले शेर खाँ ने अपने सेनापति खवास खाँ को झारखण्ड के एक राजा महारथ चेरो के खिलाफ भेजा था। रोहतासगढ़ पर शेर खाँ का अधिकार 1538 ई. में हुआ था।[9] महारथ चेरो के विरुद्ध शेरशाह की सफलता का चेरओं पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा था।

महारथ चेरो के बाद पलामू का शासक भागवत राय बना। भागवत राय मुगल शासक अकबर का समकालीन था। मुगल मनसबदार राजा मानसिंह ने भागवत चेरो को पराजित कर पलामू पर मुगल संप्रभुता स्थापित की। भागवत राय का उत्तराधिकारी अनन्त राय हुआ। अनन्त राय के समय मुगल शासक जहाँगीर था।

चेरो परम्परा के अनुसार प्रताप राय ने 1630 से 1631 तक अर्थात् 31 वर्षों तक शासन किया था।[10] चेरो परम्परा के अनुसार जहाँगीर के शासनकाल में एक अन्य चेरों राजा सहबल राय हुआ। किन्तु मुस्लिम इतिहास ग्रंथों में उसका कोई उल्लेख नहीं मिलता है। संभावना यह है कि लगभग 1612 ई. में अनन्त राय की मृत्यु हो गयी और उसके बाद सहबल राय राजा बना। सहबल राय की मृत्यु के बाद प्रताप राय पलामू की गद्दी पर बैठा। वस्तुत: इसी के समय से पलामू का इतिहास क्रमबद्ध एवं प्रामाणिक जान पड़ता है। यद्यपि प्रताप राय के शासनकाल में पलामू पर मुगलों के कई आक्रमण हुए। वह एक शक्तिशाली राजा सिद्ध हुआ। ऐसा लगता है कि पुराना पलामू किला उसी के शासन काल में निर्मित हुआ।[11] उस समय पलामू का चेरो राजा अत्यंत समृद्ध था। चेरो राज्य में विशाल बाजार तथा घनी आबादी वाले गाँव थे। यह राज्य काफी विस्तृत था और उसकी उत्तरी सीमा पटना से केवल 71 मील दूर थी। दक्षिण-पश्चिम की ओर यह राज्य कनहर नदी तक फैला था। दक्षिण में यह राज्य टोरी (आधुनिक चँदवा) तक फैला था। कोठी कुंडा और देवगन के सीमांतक किले इसे मुगलों के बिहार सूबा से पृथक करते थे।[12]

मेदिनी राय एक योग्य, शक्तिशाली एवं लोकप्रिय चेरो शासक था। औरंगजेब के शासन के प्रारम्भिक वर्षों में पलामू का चेरो राजा मेदिनी राय ही था। उसने 1658 से 1674 ई. तक शासन किया।[13] गद्दी पर बैठते ही उसने मुगलों की अधीनता अस्वीकार कर दी और अपनी परम्परागत मुगल विरोध नीति पर लौट आये। मेदिनी राय ने न केवल कर देना बन्द कर दिया बल्कि सीमावर्ती मुगल प्रदेशों को आक्रांत करना भी आरंभ कर दिया। आलमगीरनामा के अनुसार 'पलामू के विधर्मी जमींदार' पलामू की दुर्गमता में विश्वास कर न केवल सालाना पेशकश देना बन्द कर बैठे, बल्कि पलामू के सीमावर्ती शाही इलाकों पर भी कब्जा करने लगे।[14] सीमावर्ती मुगल प्रदेशों के अतिरिक्त मेदिनी राय अपने पड़ोसी राजाओं से भी लड़ता-भिड़ता रहा। उसके सैनिक अभियानों की विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है, किन्तु इतना निश्चित है कि उसने कोकरह के नागवंशी राजा की राजधानी दोइसा नगर पर आक्रमण किया। लूट के सामान में वह प्रसिद्ध पत्थर का फाटक भी था जो अब नागपुर द्वार नाम से पलामू के नया किला की शोभा बढ़ा रहा है।[15]

मेदिनी राय ने पलामू के नये किले का निर्माण पुराने किले के निकट की एक पहाड़ी पर करवाया था और इसी में नागपुर फाटक को लगाया गया। किले की अभेद्यय स्थिति औरंगजेब जैसे साम्राज्यवादी शासक के लिए असह्य थी। उसने बिहार के सूबेदार दाऊद खाँ को पलामू पर आक्रमण करने तथा चेरो राजा से कर वसूलने का आदेश दिया।[16] बिहार के विभिन्न जागीरदारों और फौजदारों के साथ दाऊद खाँ 23 अप्रैल, 1660 ई. को पटना से पलामू की ओर रवाना हुआ। कोकरह का नागवंशी राजा भी इस अभियान में मुगलों की ओर से शामिल हुआ, क्योंकि वह मेदिनी राय द्वारा दोइसा नगर पर हुए हमले का बदला लेना चाहता था।[17] दाऊद खाँ जानता था कि उसके पूर्ववर्ती सूबेदार चेरओं को पराजित करने में सफल हुए थे, किंतु उनका पूर्ण विनाश नहीं कर सके थे। अत: वह पलामू का पूर्ण दमन करना चाहता था। वह निर्विरोध पलामू में प्रविष्ट हुआ और 5 मई, 1660 ई. के दिन उसने कोठी के किले पर अधिकार कर लिया। इसके बाद वह कुंडा के किले की ओर बढ़ा। 3 जून, 1660 ई. को यह किला मुगलों द्वारा नष्ट कर दिया गया।[18]

कुंडा के शासक चुन राय ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया और उसे शाही सनद द्वारा सम्मानित किया गया। किन्तु, उसका धर्म परिवर्तन चेरो पचा नहीं पाये और मेदिनी राय के इशारे पर उसकी हत्या सुखवर राय ने कर दी।[19] इसी बीच मेदिनी राय ने दाऊद खाँ से आग्रह किया कि वह पेशकश की रकम स्वीकार कर पटना लौट जाए। दाऊद ने इसे अस्वीकार कर दिया और कुंडा से 25 अक्टूबर, 1660 ई. को चेरओं की राजधानी के लिए रवाना हुआ। 3 नवम्बर, 1660 ई. को वह तरहसी पहुँचा।[20] तरहसी में पलामू राजा के मंत्री सूरत सिंह ने दाऊद खाँ से मुलाकात की। उसने राजा द्वारा बिना किसी शर्त के आत्मसमर्पण का आश्वासन दिया। उसने पलामू राजा की ओर से राजा बहरोज को मध्यस्थता करने का आग्रह किया। उसने पेशकश के रूप में एक लाख रुपये तथा दाऊद को पचास हजार रुपये देने का भी वायदा किया।[21] दाऊद खाँ ने उसकी सूचना औरंगजेब को भेजी तथा शाही उत्तर आने तक युद्ध को स्थगित कर दिया। लेकिन, युद्ध विराम की अवधि में ही एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना हो गई। पलामू राजा के कुछ लोगों ने एक शाही काफिले को दाऊद खाँ के शिविर से 18 किलोमीटर की दूरी पर लूट लिया। इस घटना से क्षुब्ध होकर दाऊद खाँ 1 दिसम्बर, 1660 ई. को तरहसी से पलामू किले की ओर रवाना हुआ।[22] बाध्य होकर मेदिनी राय को भी युद्ध की तैयारी करनी पड़ी।

चेरो पलामू किले में बाहर निकल आये। उन्होंने मिट्टी के टील्हों के पीछे खाई खोदकर बहुत बड़ी संख्या में मोर्चेबंदी कर ली। इस तरह अंतिम लड़ाई के लिए तैयार होकर दोनों पक्ष शाही आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। कुछ दिनों बाद औरंगजेब का आदेश आया कि पलामू के राजा को इस्लाम धर्म स्वीकार करना होगा और पेशकश की रकम देनी होगी। तभी उसे राजा पद पर बने रहने दिया जायेगा, अन्यथा दाऊद खाँ को छूट थी कि पलामू किला को ध्वस्त कर चेरो राज्य पर कब्जा कर ले।[23] इस आदेश को मेदिनी राय तक पहुँचा दिया गया, किन्तु इसके पहले कि वह कोई उत्तर देता, 17 दिसम्बर को युद्ध के लिए अत्यधिक उतावले तहब्बुर खाँ ने दाऊद खाँ की जानकारी और आदेश के बिना ही चेरओं पर आक्रमण कर दिया। दूसरी ओर, पलामू के बहादुर राजा मेदिनी राय ने औरंगजेब की शर्तों को अस्वीकार कर दिया और अंतिम क्षण तक युद्ध करने के लिए तैयार हो गया।[24] दोनों पक्ष में भयंकर लड़ाई हुई। इसमें चेरओं को पीछे हटना पड़ा और पुराने पलामू किले पर दाऊद खाँ का कब्जा हो गया। चेरो राजा ने कीमती सामान निकालकर महिलाओं और बच्चों को जंगल में भेज दिया तथा नये किले की अभेद्यता में अटूट विश्वास होने के कारण वह अपने अनुयायियों के साथ वहाँ डटा रहा और शत्रु का सामना करता रहा। लेकिन, आक्रमणकारी नगर की बाहरी दीवार तोड़ने में सफल हुए और नगर में प्रवेश कर उन्होंने नये किले के मुख्य द्वार पर हमला किया। आधी रात तक धनधोर लड़ाई चलती रही और तब चेरओं का प्रतिरोध क्षीण पड़ने लगा। मेदिनी राय उस द्वार से भाग निकला जो जंगल की ओर खुलता था। इस तरह दोनों किलों पर मुगलों का कब्जा हो गया और संपूर्ण राजधानी उसके नियंत्रण में आ गई।[25] पलामू के किलों के पतन के बाद लड़ाई प्रायः समाप्त हो गई। बहादुर मेदिनी राय ने देवगन के किले के पास एक बार पुनः मुगलों का सामना किया, किंतु उस किले पर भी दाउद खाँ के एक सैन्य अधिकारी शेख शफी ने कब्जा कर लिया। पलामू के राजा मेदिनी राय को अंततः सुरगुजा में शरण लेनी पड़ी।[26]

पलामू-विजय के बाद दाऊद खाँ वहाँ के प्रशासन की व्यवस्था के लिए पलामू में कुछ दिनों तक रूका रहा। वित्तीय मामलों को सुलझाने के अतिरिक्त उसने कई स्थानों की किलेबंदी की। 1662 ई. में पुराना किला में पलामू-विजय की स्मृति में एक मस्जिद का निर्माण कराया गया। मस्जिद की एक दीवार पर निम्नलिखित पंक्तियाँ उत्कीर्ण करायी गई:-''कुफ्र-ए-देरिन बुद पलामुन अजनाबर्द हालिया दाउद खाँ इस्लमा कर्द।"[27] विजित प्रदेशों की समुचित प्रषासकीय व्यवस्था करने के बाद दाउद खाँ पटना लौट गया। औरंगजेब ने मनकली खाँ को पलामू का फौजदार नियुक्त किया। लौटते समय दाउद पलामू-किला का सिंह-दरवाजा अपने साथ लेता गया। उसने उसे दाउदनगर (वर्त्तमान औरंगाबाद जिला में) की अपनी गढ़ी में लगवाया। उसने पलामू से लूटे गए सामान को औरंगजेब के पास भेजा। इसमें दो हाथी भी शामिल थे। 5 अप्रैल, 1661 ई. को औरंगजेब ने इस सामान का मुआयना किया। चेरओं के विरूद्ध दाउद की सफलता से वह बहुत प्रसन्न हुआ। 17 नवम्बर, 1661 ई. को दरबार से दाउद के लिए खिल्लत भेजी गयी। वर्त्तमान औरंगाबाद जिला स्थित अमछा, मनोरा तथा गोह नामक स्थान ईनाम के रूप में दाउद को दिये गये। उसे पचास हजार रुपये मूल्य के मोतियों की एक माला भी दी गई। पलामू-अभियान में भाग लेने वाले अन्य प्रमुख लोगों को भी पुरस्कृत किया गया। वर्त्तमान दरभंगा राज-पिता के पूर्वज सुन्दर ठाकुर के पुत्र महीनाथ ठाकुर (1667-1687 ई.) को तिरहुत, मुंगेर, पूर्णियाँ और ताजपुर सरकार के कई परगने दिये गये।[28]

फौजदार मनकली खाँ पलामू में 1666 ई. तक रहा। 22 अगस्त, 1666 ई. को उसका पलामू से तबादला हो गया और पलामू को सीधा बिहार के सूबेदार की देख-रेख में रख दिया गया। दाउद द्वारा पराजित होने पर चेरो राजा मेदिनी राय सुरगुजा भाग गया था। मनकली खाँ के हटते ही वह पुनः पलामू लौट आया और अपने खोये हुए राज्य पर अधिकार कर लिया।[29]

मेदिनी राय को न्यायी राजा कहा गया। उसने शीघ्र ही पलामू के विपन्नावस्था से उबार कर समृद्धि के शिखर पर ला बैठाया। प्रतीत होता है कि उसके अधीन पलामू की सुधरी हुई दशा को ध्यान में रखकर मुगलों ने पलामू को उसके अधीन रहने दिया। आज भी पलामूवासी मेदिनी राय के शासनकाल को चेरों-शासन के "स्वर्ण युग" के रूप में स्मरण करते हैं। उसने कृषि को प्रोत्साहित किया और बार-बार होने वाले मुगल आक्रमण से ध्वस्त पलामू की दशा को सुधारने का सराहनीय प्रयास किया। पलामू अत्यंत समृद्ध हो गया और प्रजा को सुख-सुविधा की कोई कमी नहीं थी। एक लोकप्रिय गीत के माध्यम से उसके समय में पलामू को समृद्धि को अभी भी स्मरण किया जाता है जब पलामू में शायद ही ऐसा कोई घर था जिसमें 'न मथनी हो और न मक्खन।' कहा जाता है कि वह वेश बदलकर घर-घर घूम कर देखता था कि किसी घर में गाय अथवा भैंस की कमी तो नहीं है। उसने संभवतः अपनी प्रजा में कभी कोई कर नहीं वसूला। यही कारण था कि जब एक अवसर पर उसने कर के रूप में प्रत्येक गाँव में एक कौड़ी वसूलने का निर्णय लिया तो प्रत्येक गाँव के मुखिया ने उसे एक सोने की कौड़ी कर के रूप में दी। वह अपनी प्रजा में बच्चें की तरह स्नेह करता था। उसके शासनकाल के दूसरे भाग में पलामू में पूर्ण शांति एवं समृद्धि थी। उसे दयालू स्वभाव और सुशासन के विषय में आज पलामू में अनेक कहानियाँ प्रचलित है। 1674 ई. में मेदिनी राय की मृत्यु हो गई।30

निष्कर्ष

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि प्रताप राय के पश्चात् मेदिनी राय पलामू का शक्तिशाली एवं न्यायप्रिय शासक हुआ। गद्दी पर बैठते ही इसने मुगलों की अधीनता अस्वीकार कर तथा सालाना कर देना भी बंद कर दिया। पलामू के नये किले का निर्माण मेदिनी राय ने करवाया था तथा इस किले में नागवंशी राजा की राजधानी दोइसा से प्राप्त प्रसिद्ध पत्थर के फाटक को लगवाया। तात्कालीन मुगल सम्राट औरंगजेब ने दाउद खाँ को मेदिनी राय के विरुद्ध भेजा। भयंकर प्रतिरोध एवं युद्ध के बाद पलामू के दोनों किलों का पतन हुआ और चेरों राजा को सुरगुजा भागना पड़ा। लेकिन 1666 ई. में मनकली खाँ के पलामू से हटते ही वह पुन: पलामू आया और खोये हुए राज्य पर अधिकार कर लिया। मेदिनी राय न्याय प्रिय एवं दानशील राजा था। उसने शीघ्र ही पलामू को विपन्नावस्था से उबार कर समृद्धि के शिखर पर ला बैठाया। पलामू वासी 'मेदिनी राय' के शासन काल को आज भी चेरों शासन के 'स्वर्ण युग' के रूप में स्मरण करते हैं।

संदर्भ-सूची

1. डॉ0 बी0 वीरोत्तम, झारखंड: इतिहास एवं संस्कृति, पृ.-23
2. वही, पृ.-32
3. संविधान सभा वाद-विवाद, भाग-1, पृ.-04
4. वही, पृ.-04
5. डॉ0 बी0 वीरोत्तम, द नागवंशीज ऐंड द चेरोज (दिल्ली, 1972), पृ.-87
6. वही, पृ.-87
7. वही, पृ.-89.
8. अबुल फजल, अकबरनामा (अनु0) खंड-3
9. अब्बास खाँ सरवानी; तारीख-ए-शेरशाही, द्वारा इलियट ऐंड डाउसन, जिल्द-4, पृ.-84
10. रामदीन पाण्डेय, पलामू का इतिहास, पृ0-25
11. वही, पृ.-25
12. वही, पृ.-26
13. अब्दुला, तारीख-ए-दाऊदी, ओ0पी0एल0 पांडुलिपि
14. वही
15. तारीख-ए-खानदान-ए-तैमुरिया, ओ0पी0एल0 पांडुलिपि
16. मुहम्मद काजिम, आलमगीरनामा,
17. होदीवाला, स्टडीज इन इंडो मुस्लिम हिस्ट्री, पृ.-456
18. अकबरनामा; भाग-3, पृ.-191
19. मुहम्मद काजिम, आलमगीरनामा, पृ.-650
20. वही, पृ0-650
21. अब्दुल हमीद लाहौरी, पादशाहनामा, पृ. 248-250
22. तुजुक-ए-जहाँगीरी, अनु. भाग-1, पृ.-315
23. नागवंशावली, अध्याय-6
24. पलामू डिस्टिक्ट गजेटियर, 1961, पृ.-56
25. बिहार राजकीय अभिलेखागार, पटना
26. एस.सी. राय, द मुंडाज
27. नागवंश, भाग-2
28. अब्दुला, तारीख-ए-दाऊदी, ओ0पी0एल0 पांडुलिपि
29. वही,
30. मुहम्मद काजिम, आलमगीरनामा, पृ0-660.

पंडिता रमाबाई

डॉ० विशाखा सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर (राजनीतिशास्त्र), दयानन्द गर्ल्स पीजी कॉलेज, कानपुर

प्राचीन भारतीय रीति रिवाजों, रूढ़ियों और जटिल परम्पराओं से भारतीय महिलाएं सर्वधिक प्रभावित रही हैं। हांलांकि भारत में जाति और धर्म आधारित भेदभाव, अन्याय और असमानताएं समाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी स्तरों पर विद्यमान रही हे। परन्तु महिलाओं को जाति, धर्म आधारित भेदभाव के अतिरिक्त महिला होने का भी देश विशेषत: झेलना पड़ा। हर जाति और धर्म में महिलाओं के लिए बमाए गए विशेष प्रकार के रूढ़ियों, प्रथाओं और परंपराओं ने महिलाओं की अवस्या को निरंतर पीड़ाादायक और गतिहीन रूप दिया, महिलाओं की इदस शोचनीय अवस्था ने भरत में सुधारों की एक नवीन श्रृंखला को जन्म दिया जो विशेषत: नारी केन्द्रित था। तत्कालीन समाज में अनेक समाज सुधारकों का प्रादुभवि हुआ जिन्होंने अपने विचारों, कर्त्तव्यों और प्रयास से समाज को नई दिशा और दशा प्रदान की।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी दयानन्द सरस्वती, महात्मा ज्योतिबा फुले, महादेव गोविन्द रानाडे ऐसे विचारक और सुधारक ये जिन्होने ही स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए अथक प्रयास किये। इन्हीं समग्र प्रयासों के परिणामत: की शुरूआत हुई। भारतीय महिलाओं के सुधारों के प्रयासों और नारी केन्द्रित चिन्तन की परम्परा को 'भारतीय नारीवादी आन्दोलन' के रूप में जाना जाता है।

नारीवादी आन्दोलन की परंपरा में पंडिता रमाबाई कानाम विशेष उल्लेखनीय हैं, उन्होंने आजीवन भारतीय महिलाओं की स्थिति में सुधार करने, उन्हें जागरूक करने के लिए संधर्ष किया। भारतीय महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव का, उनके साथ होने वाले अन्याय का विरोध किया और नारी मुक्ति के लिए समाज का विरोध सहकर भी प्रयासरत रहीं ।

जीवन परिचय:-

पंडिता रमाबाई का जन्म कर्नाटक के दक्षिणी कनारा जिले में करकल के निकट मल्हेरन्जी गाँव के चितपावन ब्राम्हण परिवार में 23 अप्रैल 1858 को हुआ था। उनके पिता का नाम अनन्त शास्त्री डोंगरे और माता का नाम लक्ष्मीबाई डोंगरे था। विवाह के समय उनकी माँ की उम्र मात्र 9 वर्ष थी जबकि उनके पिता की आयु 44 वर्ष थी। बाल्यावस्था में हुए विवाह के फलस्वरूप उनकी माता को अनेक प्रकार की समस्याओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

पंडिता रमाबाई के पिता अनन्त डोंगरे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान ये, वे महिलाओं को शिसित किए जाने के पसधर थे। इसकी शुरूआत उन्होंने अपने परिवार में अपनी पत्नी से की। प्राचीन धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं के उस युग में जब महिलाओं पर उनके प्रकार के रूढ़िगत बंधन ये महिला शिक्षा के लिए उनके प्रयास को समाज में नकारात्मक दृष्टि से देखा गया और उनके प्रगतिशील कार्यों का विरोध भी हुआ। पंडित अनन्त शास्त्री डोंगरे ने पत्नी को तो सुशिक्षित किया ही इसके साथ ही अपनी पुत्री की शिक्षा दीक्षा की और भी पर्याप्त ध्यान दिया। पंडित अनन्त शास्त्री डोंगरें ने अनेक प्रकार के उद्धरणों से यह प्रमाणित करने का प्रयास कियाकि स्त्रियाँ भी संस्कृत शिक्षा की अधिकारी है। परन्तु समाज नहीं हुआ और अन्नत: उनको समाज से बहिष्कृत कर दिया गया।

पंडित अनन्त शास्त्री डोंगरे अपनी पत्नी और पुत्रो को शिक्षित करने के लिए समाज में होने वाले विरोध से विचलित नहीं हुए, उनकी शिक्षा बिना किसी अवरोध के निरन्तर चलती रहे इसके लिए उन्होंने पश्चिमी घाटर के गंगामूल प्रदेश को अपना निवास स्थान बना लिया, उनकी पत्नी की शिक्षा जारी रही।

पंडित रमाबाई के पिता विद्वान होने के साथ-साथ धर्मपरामण भी थे और धार्मिक रीति रिवाजों का कठोरतापूर्वक पालन करते थे। इसी कारण से उन्होंने अपनी बड़ी पुत्री कृष्णाबाई का अल्पायु में ही विवाह कर दिया जिसके परिणाम सुखद नहीं रहे। कृष्णाबाई उच्च शिक्षित थी जबकि उनके पति अनपढ़ ही थे। बेटी के जीवन के इस दुखदायी अध्याय ने बाल विवाह के औचित्य पर कई प्रश्न खड़े किए। बाल विवाह महिलाओं के व्यक्तित्व के विकास में बाधक और उनकी मानसिकता को कुंठित करने वाली परंपरा थी। इसी प्रकार उनके भाई का भी बाल विवाह सुखद न रहा, इन सबके परिणामस्वरूप पंडिता रमाबाई के पिता ने उनका बाल विवाह नहीं होने दिया और उनकी शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया।

पंडित अनन्त शास्त्री डोंगरे की आर्थिक स्थिति धीरे-2 अत्यन्त क्षीण होती चली गई, यहाँ तक कि वे निवास विहीन हो गये। जब पंडिता रमाबाई 16 वर्ष की थीं उसी समय उनके पिता का स्वर्गवास हो गया।

रमाबाई का जीवन कठिनाइयों और संघर्षो से परिपूर्ण रखा। उनकी बड़ी बहन कृष्णाबाई की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने दक्षिण भारत छोड़ने का निर्णय किया। उनके ज्ञान को उज्जवल करने में तीर्थ स्थानों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इन तीर्थ स्थानों की यात्रा के फलस्वरूप रमाबाई विभिन्न स्थानों के प्राकृतिक जलवायु, रीति रिवाजों और परम्पराओं से परिचित हुई, जीवन की विशालता और विराटता का भी उनको बोध हुआ। मनुष्य अपने जीवन को कितने संघर्षो में व्यतीत करता है और अपने मार्ग की कठिनाइयों का किस प्रकार सामना करता हैं इसका उन्हें ज्ञान हुआ। रमाबाई को स्त्रियों की स्थिति, उनके साथ हो

रहे अन्याय और भेदभाव पूर्ण व्यवहार को जानने का अवसर मिला। इन तीर्थ यात्राओं के दौरान उनके और उनके भाई की ईश्वर में अनन्त श्रद्धा रही। वे धार्मिक आचरण, पूजा, पाठ, तप, कर्मकाण्ड में निरन्तर लगे रहे परन्तु उनके जीवन के संघर्षो को सूक्ष्म करने में किसी भी प्रकार की दैवीय सहायता प्राप्त नहीं हुई। इस स्थिति में उनका विश्वास धार्मिक कर्मकाण्डों से कम होने लगा।

पंडिता रमाबाई ने अपने जीवन में बाल्यावस्था से ही विभिन्न स्थानों की यात्रा की शुरूआत की परंतु उनकी स्थिति में परिवर्तन कलकत्ता पहुँचने के बाद ही शुरू हुआ। 6 जुलाई, 1878 को वे कलकत्ता पहुँचीं, कलकत्ता इस समय देश की राजधानी हुआ करता था।

कलकत्ता के बदले वातावरण ने पंडिता रमाबाई के मन मस्तिष्क में नवजीवन का संचार किया, वस्तुतः यह उनके आत्मविकास के लिए एक अवसर के समान था। कलकत्ता विद्वानों और मनीषियों का गढ़ था, यहाँ ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन, राममोहन राय, द्वारिकानाथ दास जैसे महान समाज सुधारक ये जिन्होंने सामाजिक रूढ़ियों और कुप्रयाओं का प्रबल विरोध किया। कलकत्ता में पंडिता रमाबाई को विभिन्न सभाओं और गोष्ठियों में अपने विचारों को प्रकट करने का अवसर प्राप्त हुआ। धीरे-2 समाज सुधारक, विद्वान, सरकारी अधिकारी उनके विचारों को सुनने के लिए आने लगे।

कलकत्ता के विद्वानों और समाज सुधारकों में पंडिता रमाबाई का हद्य से स्वागत किया। वे उन्हें स्त्री सुधार के लिए आशा की किरण दिखाई दीं। रमाबाई की विद्वता और महिला सुधार के लिए उनके आग्रह ने विद्वान जनमानस में उनके लिए नवीन श्रद्धा को जन्म दिया। धाराप्रवाह संस्कृत वाचन करने वाली रमाबाई में उन्हें साज्ञात् गार्गी का स्वरूप दिखने लगा।

रमाबाई के संस्कृत ज्ञान की कलकत्ता के विद्वानों में अत्यन्त प्रशंसा हुई, उनके संस्कृत ज्ञान की परीक्षा के लिए एक कमेटी गठित की गई जिसमें संस्कृत के तीन विद्वान थे-महामहोपाध्याय पंडित महेशचन्द्र, प्रोफेसर गॉ और प्रोफेसर टोने। प्रोफेसर टोने ने उनसे संस्कृत में श्लोंक कहा-

यया भवत्या चकिताः पण्डिता ईदृशाः वयम्।
ततो भव्यामहे साक्षात् वतंतेऽत्र सरस्वती।।

(हम पंडित लोग आपके ज्ञान से चकित हैं कि लगता है कि साक्षात् सरस्वती उपस्थित हो गई हें।)

पंडिता रमाबाई ने इसका इस प्रकार उत्तर दिया-

भवद्भिर्यानि पुष्र्णाण प्रक्षिप्ता ममोपरि।
अहं न तत्पात्रभूता, न तभैवास्मि पण्डिता।।

पंडिता रमाबाई ने समिति के सदस्यों को सहजतापूर्वक और आत्मविश्वासपूर्ण तरीके से उत्तर दिया। सभा के अंत में पंडिता रमाबाई को 'सरस्वती' की उपाधि दी गई। कुछ समय पश्चात् बंगाल के चर्चित नेता महाराज ज्योतींद्र मोहन टैगोर ने एक आयोजन में उनको 'पंडिता' की उपाधि दी। तब से लोग उनको पंडिता रमाबाई सरस्वती कहने लगे।

अपने भाई की मृत्यु के छः माह पश्चात् रमाबाई ने एक बंगाली विद्वान विपिन बिहारी गांगुली से शादी कर ली। यद्यपि उनके पति निम्न जाति से संबंध रखते थे तथापि वे अत्यन्त मेधावी और विद्वान पुरूष थे। तत्कालीन समाज में अन्तर्जातीय और वो निम्न जातीय पुरूष से विवाह अत्यन्त क्रांतिकारी कदम या जिसके फलस्वरूप रमाबाई को समाज में अनेकों प्रकार की आलोचनाओं का शिकार होना पड़ा।

विवाह के कुछ समय पश्चात् उनके घर में एक पुत्री ने जन्म लिया जिसका नाम मनोरमा रखा गया। पुत्री का जन्म उनके परिवार के लिए अत्यन्त सुखदायक या परन्तु ये खुशियाँ भी रमाबाई से तब हिन गई जब पुत्री जन्म के कुछ माह पश्चात् ही उनके पति की बीमारी से मृत्यु हो गई। अब रमाबाई को अपनी पुत्री के सायं अकेले ही जीवन यापन करना था। रमाबाई के जीवन का यह समय अत्यन्त दुखद और संकटपूर्ण था।

विधवा होने के पश्चात् भी रमाबाई अपने उद्देश्यों और कर्तव्यों से विमुख नहीं हुई। सामाजिक परिवर्तन और स्त्री सुधार के उनके प्रयास पुनः शुरू हुए। इस दौरान वे रानाडे, चंद्रावरकर, भंडारकर, तैलंग आदि विद्वानों और समाज सुधारकों के संपर्क में आई जो मराठी समाज के प्रसिद्ध सुधारक थे।

स्त्री-सुधार के पंडिता रमाबाई के प्रयास

स्त्री सुधार के अपने उद्देश्य को नियोजित रूप देने और महिलाओं को संगठित करने के लिए पंडिता रमाबाई ने पूना में आर्य महिला समाज की स्थापना ...1772... की। इस संगठन का लक्ष्य था महिलाओं को जागरूक करना, उन्हें प्रचलित रूठियों से मुक्ति दिलाना। धीरे-2 छोटे-2 शहरों में आर्य महिला समाज का संगठन स्थापित होने लगा और लोग अपने घर की स्त्रियों को वहाँ भेजने लगे।

पंडिता रमाबाई एक प्रभावशाली और कुशल वक्ता थी। हंटर कमीशन के समक्ष भी पंडिता रमाबाई ने स्त्री शिक्षा की बकालत की। वे स्त्रियों की मेडिकल और पैरामेडिकल शिक्षा की विशेष समर्थक थीं। हंटर महोदय भी रमाबाई के व्यक्तव्यों से अत्यन्त प्रभावित हुए और महिला सुधार के उनके प्रयासों की प्रशंसा भी की।

इंग्लैण्ड की यात्रा

पंडिता रमाबाई को शीघ्र हो इस बात का अनुभव हो गया कि भारत की महिलाओं को शिक्षित करने के लिए सर्वप्रथम स्वयं का शिक्षित प्रारीक्षित होना आवश्यक है, अतः स्त्रियों की शिक्षा के विषय में ज्यादा जानकारी जुटाने और महिलाओं को मेडिकल शिक्षा के प्रति जागरूक करने के लिए उन्होंने इंग्लैण्ड जाकर मेडिकल की पढ़ाई का निर्णय लिया। पंडिता रमाबाई ने लड़कियों की मेडिकल शिक्षा के लिए सरकार से सहयोग माँगा। इस समस्या की ओर रानी

विक्टोरिया का ध्यान गया। लार्ड डफरिन की पत्नी लेडी डफरिन के द्वारा चलाए गए डफरिन आन्दोलन के माध्यम से महिलाओं की मेडिकल शिक्षा की ओर ध्यान दिया गया। तत्कालीन भारत में लड़कियों की मेडिकल की शिक्षा के लिए पर्याप्ति सुविधाएं नहीं थी। इस दिशा में रमाबाई की ओर से प्रयास किए गए।

इंग्लैण्ड में सेंट मैरी होम्स की सिस्टरों ने उनका बहुत सहयोग किया। मैरी गौल्डराइन नामक सिस्टर से उनकी अच्छी मित्रता स्थापित हुई जो आजीवन बनी रही।

लंदन में निवास के दौरान पंडिता रमाबाई ने 'रेस्क्यू होम्स' देखे जो महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए बनाए गए थे। रमाबाई को इस प्रकार के रेस्क्यू होम्स भारतीय महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए आशा की किरण प्रतीत हुए।

ईसाई धर्म का स्वीकार करना

रमाबाई धीरे-2 हिंदू धर्म से विमुख होने लगी। कारण या हिंदू धर्म के कर्मकाण्डी स्वरूप का प्रचलन और हिंदू समाज में व्याप्त भेदभाव पूर्ण व्यवहार। रमाबाई को बांग्ला में अनुदित संत ल्यूक के ईसाई धर्म के सिद्धान्तों ने अत्यन्त प्रभावित किया। रमाबाई ने इसाई धर्म को ग्रहण करने की घोषणा कर दी। कुछ समय पश्चात् उनकी पुत्री मनोरमा ने भी ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। रमाबाई का झुकाव अब पूरी तरह स्त्री शिक्षा और स्वयं की शिक्षा पर केन्द्रित हो गया। लंदन में उन्होंने इंग्लिश भाषा के ज्ञानार्जन की ओर भी ध्ययान दिया। इंग्लैण्ड के चेल्टनहैम कॉलेज में वे संस्कृत की प्रोफेसर नियुक्त हुईं। चेल्टनहैम कॉलेज में सब लोग उनकी विद्वता से प्रभावित हुए। चेल्टनहैम कॉलेज की पत्रिका में उन्होंने तरह-तरह के आलेख लिखें। पाठकों के लिए अपना जीवन परिचय लिखा। उनका जीवन परिचय टाइम्स और इंडिया अखबार में छपा और दोबारा कॉलेज पत्रिका में भी छपा।

अमेरिका की यात्रा

1886 में पंडिता रमाबाई को अमेरिका आने का प्रस्ताव मिला। फिलाडेल्फिया के वीमेंस कॉलेज के दीक्षांत समारोह में उनको बुलाया गया। यहां पर आनंदीबाई जोशी को दीक्षांत की डिग्री मिलने वाली थी। इस संमेलन में भारतीय स्त्रियों के उद्धार के लिए आश्रम खोलने पर भी चर्चा हुई। अमेरिका निवास के दौरान पंडिता रमाबाई इस देश के वातावरण से परिचित हुईं। अमेरिका का वातावरण उनको इंग्लैण्ड की तुलना में अधिक प्रगतिशील और उदारवादी लगा। अमेरिका में 1789 से ही स्त्री शिक्षा के लिए आन्दोलन हो रहे थे। महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों के लिए अमेरिका में अनेक नारीवादी आन्दोलन हुए। इन सबके परिणामस्वरूप रिक्यों के लिए बंद दरवाजे धीरे-2 खुलने लगे। स्त्री अधिकार के लिए 1848 में अमेरिका में बड़ा सम्मेलन हुआ।

टमेरिका में रहते हुए पंडिता रमाबाई ने महिलाओं के सुधार के लिए अनेक प्रकार के मार्गों की तलाश की ।इन मार्गों मेंसे एक या हिंदू विधवा महिलाओं के लिए आरम की स्थापना करना। यह ऐसे आश्रम की संकल्पना थी जो विधवाओं को उनका जीवन सफल बनाने में सहयोग कर सके। इन आश्रमों में महिलाओं की शिक्षा की व्यवस्था तो होगी ही साथ ही उन्हें सिलाई, कढ़ाई, कला, शिल्प आदि का भी प्रशिक्षण दिया जायेगा ताकि वे अपना जीवन यापन कर सकें।

अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिए 1887 में रमाबाई एसोसिमेशन की स्थापना की गई जिसका लक्ष्य था धार्मिक संकीर्णता से ऊपर उठकर महिलाओं की स्थिति में सुधार करना।

1889 में बम्बई वापस आने के पश्चात् पंडिता रमाबाई ने 'शारदा सदन' की स्थापना। शारदा सदंन का लक्ष्य विधवा महिलाओं की स्थिति में सुधार करना था। सदन में शिक्षा का माध्यम मराठी, अंग्रेजी, गुजराती और संस्कृत को बनाया गया। श्रीमती काशीबाई कानेतकर और सदाएिव पांडुरंग की भी इस सदन की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका रहो। शारदा सदन की लोकप्रियता धीरे-धीरे बढ़ रही थी, विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में इसका जिक्र हुआ।

'प्रार्थना समाज' को स्थापना में भी रमाबाई की विरोष भूमिका रही। प्रार्थना समाज ने पंढरपुर में अनाथ बच्चों के लिए घर खोला था। इसका उद्देश्य या असहाय, अविवाहित स्त्रियों की मदद करना।

मुक्ति मिशन

पंडिता रमाबाई ने महाराष्ट्र के गांवों में मुक्ति मिशन की स्थापना की। यह मिशन विद्यवाओं बच्चों, अनाथों और समाज के अन्य प्रकार शेषित पीड़ित बच्चों और महिलाओं के लिए आश्रम स्थल था। 1900 तक मुक्ति मिरान के अन्तर्गत 1500 और अधिक लोगों को शरण दिया गया। यह मिशन आज भी सक्रिय है जो विधवाओं और बच्चों को घर, शिक्षा, प्रशिक्षण आदि उपलब्ध कराता है।

1882 में ब्रिटिश सरकार द्वारा डब्ल्यू डब्ल्यू हेटर की अध्यक्षता में हंटर कमीशन का गठन किया गया। पंडिता रमाबाई को हंटर कमीशन के समक्ष औपचारिक व्यक्तव्य देने का निमंत्रण मिला। अपने व्यक्त में पंडिता रमाबाई ने कमीशन को निम्न महत्वपूर्ण सुझाव दिए-

- पंडिता ने अपने पिता की सुधारवादी विरासत को संदर्भित किया और महिलाओं की शिक्षा के लिए उदारवादी शिक्षा कार्यक्रम की वकालत की।
- रमाबाई का कथन या कि महिलाओं की शिक्षा के लिए जो पाठ्यक्रम विकसित किया जाय उसमें शास्त्रों के साथ-साथ धर्मनिरपेक्षा को भी सम्मलित किया जाय।
- अंग्रेजी भाषा के ज्ञान को भी उन्होंने अपने व्यक्तव्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया।

- महिला विद्यालय में महिला शिक्षिकाओं और महिला निरीक्षकों की नियुक्ति अवश्य होनी चाहिए क्योंकि पुरूष वर्ग प्राय: स्त्री शिक्षा और स्त्री सुधार के विरोधी थे।
- हंटर कमीशन के माध्यम से उन्होंने भारतीय महिलाओं के चिकित्सा शिक्षा के लिए ब्रिटिश सरकार से सहयोग की अपील की।

रमाबाई के सुझावों की भारत के रूठिवादी वर्ग के द्वारा तीव्र आलोचना की गई। परंतु हंटर महोदय ने उनके सुझावों की प्रशंसा की। उनके सुझावों को अनुदित करके इंग्लैण्ड में प्रचारित प्रसारित कियाग या। श्रीमती फ्रांसिना सोराबजी ने इस प्रस्ताव का प्रबल समर्थन किया जो कि पूना में विक्टोरिया हाईस्कूल की संचालिका थी। आनंदीबाई जोशी अमेरिका में चिकित्सा की शिक्षा के लिए गई, उन्होंने फिलाडेल्फिया के मेडिकल कॉलेज से शिक्षा प्राप्त की और भारत की प्रथम महिला डॉक्टर बनी। 'लेडी डफरिन फंड' के माध्यम से महिलाओं की मेडिकल शिक्षा के लिए धन एकत्र किया गया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में भूमिका

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में भी महिलाओं का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं था। इस हेतु रमाबाई ने प्रयास किए। धीरे-धीरे इस कार्य में उन्हें सफलता प्राप्त होने लगी। 1889 में जिन 10 स्त्रियों का प्रतिनिधिमंडल कांग्रेस में शामिल हुआ उसमें काशीबाई कानेतकर और रमाबाई भी सम्मलित थी। उन्होंने शराब विरोधी संगठन और-आर्य महिला समाज का प्रतिनिधित्व किया। स्त्री अधिकार और भाषा को लेकर भाषण भी दिए।

29 दिसंबर 1889 को भारतीय राष्ट्रीय समाजिक कांफ्रेंस के मंचसे उन्होंने बाल विधवाओं की स्थिति पर अपने विचार व्यक्त किए। उन्होंने मांग की कि विधवाओं के मुंडन की प्रया पर रोक लगाई जाय क्योंकि यह अमानवीय है। विधवा को स्वतंत्र जीवन प्राप्त होना चाहिए। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार पुरूष के साथ स्त्री को भी मिलना चाहिए।

रमाबाई के इन प्रयासों की आलोचना और प्रशंसा दोनों हुई। उनके लिए इंदुप्रकाश नामक पत्रिका में शब्द थे, ''औह! क्या विद्वान औरत थी।''

ज्योतिबा फुले ने 'सतसार' पत्रिका में लिखा, दरअसल पुरूष लेखक एक स्त्री की पुख्ता आवाज से विचलित हो गये हैं।

लोकमान्य तिलक की पत्रिका केसरी ने रमाबाई पर तमाम प्रकार के आरोप लगाए। उनकी संस्था शारदा सदन पर उन्होंने आरोप लगाया।

कि यह संस्था महिलाओं को ईसाई बनाने के लिए है। सुबोध पत्रिका में भी पंडिता रमाबाई की प्रशंसा होती थी परंतु अब उसमें भी उनकी आलोचना होने लगी। विवेकानंद और रामकृष्ण परमहंस ने भी प्रतिकूल प्रतिक्रिया थी। पंडिता रमाबाई का धर्मातरण इन सुधाराकों और विचारकों को उचित नहीं लगा।

पंडिता रमाबाई के विचारों को जानने का सर्वोत्तम माध्यम हैं उनकी सर्वप्रमुख कृतियां 'हाई कास्ट हिन्दू वीमेन' और 'स्त्री धर्म नीति'। हाई कास्ट हिंदू वीमेन में रमाबाई के विचारों को विश्व स्तर पर प्रशंसा प्राप्त हुई परंतु स्वदेशी स्तर पर तीव्र आलोचना का भी शिकार हुई। इस कृति ने पंडिता रमाबाई को भारत की नारीवादी विचारक के रूप में स्थापित कर दिया। 'हाई कास्ट हिंदू वीमेन' रमाबाई के नारीवादी विचारों के उत्पान के मार्ग में मील का पत्थर सिद्ध हुई। यह पुस्तक उनके मन मस्तिष्क के पितृसत्तावादी से नारीवादी और यथास्थितिवादी से परिवर्तनवादी बनने की यात्रा को दिखाती है। इस पुस्तक में रमाबाई ने तत्कालीन समाज के उच्च जातीय रूढ़िवादी ब्राम्हणों की धर्मान्धता पर कड़ा और तीखा प्रहार किया है। समाज में धर्म, जाति, लिंग आधारित भेदभाव की वास्तविकताओं को बिना किसी भय के और स्पष्ट शब्दों में पाठकों के समक्ष रखा।

हाईकास्ट हिंदू वीमेन में पंडिता रमाबाई ने महिलाओं की तीन अवस्थाओं परविचार किया है- बाल्यावस्था, दांपत्य और वैधव्य।

बाल्यावस्था नामक अध्याय में उन्होंने समाज में प्रचलित बालक-बालिका भेदभाव पर चर्चा की है। तत्कालीन समाज में पुत्र को ही जीवन के उद्धारक के रूप में देखा जाता था। पुत्र जन्म पर परिवारों में त्योहार और पुत्री जन्म होने पर शोक मनाया जाता था। पुत्रियों की तुलना में पुत्रों को विशेष देखभाल और स्नेह प्राप्त था। पुत्रियों को बोझ के समान माना जाता था, उनकी शिक्षा दीक्षा, स्वास्थ्य और स्वच्छता सम्बन्धी स्थिति अत्यन्त निम्न और असंतोषजनक थी। यह संपूर्ण स्थिति बालिकाओं के विकास में अवरोधक थी। दांपत्य नामक अध्याय में उन्होंने बच्चियों के बाल विवाह पर तमाम प्रश्न उठाए हैं। उनका मानना था बचपन में होने वाले ये विवाह अनैच्छिक और दबावपूर्ण तरीके से होते थे जहां बालिकांए मन मस्तिष्क और शरीर से अल्पविकसित होती थीं। संयुक्त परिवारों की जटिल परम्पराओं में न उनका सही विकास हो पाता था न ही उनके पति पत्नी के रिश्ते में कुछ भावनात्मक जुड़ाव हो पाता था। 'वैधव्य' अध्याय में रमाबाई ने विधवाओं के नारकीय जीवन की पीड़ा को व्यक्त किया है। यह किसी स्त्री के जीवन की ऐसी अवस्था जहां वो संसार में अभिशप्त जीवन जीने को विवश कर दी जाती है। उन्होंने विधवाओं में भी पद क्रम की चर्चा की है। वे विधवांए जो पुत्रों की माँ होती हैं उनकी स्थिति अपेक्षाकृत अन्य विधवाओं से बेहतर होती थी। पुत्री की माँ यदि विधवा हो जाती थी तो समाज में वह अत्यन्त उपेक्षा और तिरस्कार का शिकार होती थी। सबसे पीड़ाजनक अवस्था बाल विधवाओं की होती थी जहां उन्हें 'ईश्वर द्वारा दण्डित और अभिशापित' घोषित का दिया जाता था और जीवन भर का दण्ड और पीड़ा प्राप्त होती थी।

रमाबाई ने विधवाओं के उद्वार की चर्चा करते हुए पुनर्विवाह का समर्थन किया परन्तु उनके विचार से पुनर्विवाह विधवाओं की समस्याओं का एक मात्र समाधान नहीं था। पुनर्विवाह के पश्चात् भी ऐसी महिलाओं को समाजमें अपेक्षित स्थान नहीं मिल पाता था और उनके साथ घृणित व्यवहार किये जाते थे। अन्य अध्याय जिसका शीर्षक है 'महिलाओं का धर्म और समाज में स्थान' में पंडिता रमाबाई ने मनुस्म्रति की भांति अन्य प्राचीन हिंदू ग्रन्थों के नारी विरोधी विचारों को उजागर किया।

स्वास्थ्य, शिक्षा और मन मस्तिष्क से कमजोर स्त्रियाँ जब मां का रूप धारण करती है अर्थात् मां बनती हैं जो शारीरिक और मानसिक विकास की कमी के फलस्वरूप अस्वस्य बच्चों को ही जन्म देती हैं, उनके लालन पालन में भी उनका कमजोर और पीड़ित व्यक्तित्व अवरोधक बनता है। रमाबाई के अनुसार

आत्मविश्वास और अच्छी शिक्षा के परिणामस्वरूप ही महिलाओं की स्थिति को सुधारा जा सकता है। शिक्षा ही उन्हें अपने हितों और अधिकारों के लिए जागरूक कर सकती है। 'अनुरोध' नामक अध्याय में हिंदू महिलाओं के उद्धार के लिए रमाबाई ने संपूर्ण अंमेरिकी समाज से निवेदन किया है कि वे धर्म, नस्ल आदि वैचारिक सीमाओं से परे हटकर महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य आदि को बेहतर बनाने हेतु धन, प्रशिक्षण आदि के द्वारा सहयोग प्रदान करें। महिलाओं को समाज में प्रचलित विभिन्न व्यवसायों, सेवाओं जैसे अध्यापन, चिकित्सा, लघुउद्योग आदि में सहभागिता देकर स्वावलंबी बनने का प्रयास करना चाहिए।

स्त्री धर्म नीति (Morals for Women, 1882)

पुस्तक में पंडिता रमाबाई के विचार-

स्त्री धर्म नीति पुस्तक का प्रकाशन 1882 में हुआ। यह पुस्तक मराठी भाषा में थी। इस कृति में पंडिता रमाबाई ने स्त्रियों के नैतिक व्यवहार, उनके पारिवारिक दायित्वों, उनकी शिक्षा, पत्नी और माता के रूप में उनकी भूमिका को लेकर कई महत्वपूर्ण सुझाव दिए हैं। उन्होंने स्त्रियों को आत्म मूल्यांकन के लिए प्रेरित किया है ताकि वे समझ सकें कि समाज में उनकी निम्नतर स्थिति किन कारणों से है।

पुस्तक की भूमिका में पंडिता रमाबाई भारतीय महिलाओं की बुरी दशा का विवेचन करती हैं। सामाजिक उपेक्षा और अशिक्षा महिलाओं विकास में प्रमुख अवरोधक है। महिलाओं के व्यवहार हिंदू समाज में शास्त्रों के द्वारा तय किये जाते हैं परंतु वास्तव में शास्त्रों में क्या लिखा है, इसके लिए महिलाएं अनभिज्ञ हैं। शास्त्रों के व्याख्याकारों द्वारा शास्त्रा की तोड़मरोड़कर व्याख्या की गई है। इनकी भाषा संस्कृत निष्ठ क्लिष्ट है जिसे पढ़ना दुष्कर है इसीलिए पंडिता रमाबाई ने प्रयास किया कि शास्त्रों की बातों को सरल भाषा में प्रस्तुत किया जाए ताकि उसका पाठन सर्व सुलभ हो सके।

पुस्तक को रमाबाई ने विभिन्न अध्यायों में विभाजित किया है। आधार (फाउंडेशन) नामक अध्याय में महिलाओं की समुचित शिक्षा हेतु महत्वपूर्ण सुझाव देती हैं। आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास और आत्म अवलोकन हेतु शिक्षा अति आवश्यक है। शिक्षा को उन्होंने ऐसा 'अज्ञम धन' बताया है जो मनुष्य को सच्ची संपन्नता, आत्म अवलोकन की क्षमता और दुनिया की वास्तविकता को समझने का दृष्टिकोण प्रदान करती है। उन्होंने इतिहास, भौतिकी, राजनीतिशास्त्र, नीतिशास्त्र, चिकित्सा आदि विषयों के अध्ययन हेतु प्रेरित किया। जीवन की छोटी मोटी समस्याओं को सुलझाने, और पारिवारिक हिसाब किताब को दुरूस्त रखने के लिए गणित का भी ज्ञान आवश्यक है।

विनय (मॉडेस्टी) और टू रिजीजन सच्चा धर्म (टू रिलीजन) अध्याय में उन्होंने धर्म और नीति को उस माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया है जिसके द्वारा पारिवारिक, सामाजिक खुशहाली का विकास किया जा सकता है। सच्चा धर्म वह है जो वैश्विक खुशहाली और शान्ति लाये, नैतिकता का विकास करे और मुत्योंपरांत मोक्ष प्रदान करने में सहायक हो।

विवाहिताओं का आचरण (कंडक्ट फॉर ब्राइड्स) नामक अध्याय में महिलाओं/विवाहिताओं को सफल वैवाहिक जीवन के संचालन के लिए सुझाव देती हैं। उनका मानना है कि पुरूष और महिला ईश्वर की सम्पूरक रचनाएं हैं। कोई भी पारिवारिक दायित्व उनके आपसी सहयोग और भागीदारी से ही पूर्ण हो सकता है।

''स्त्री और पुरूष एक दूसरे पर निर्भर बनाए गए हैं। यह ईश्वर की इच्छा है कि स्त्री पुरूष एक दूसरे का सहयोग और समथ्रन करते रहें।''

पंडिता रमाबाई ने विवाह को समाज की मूल्यवान परंपरा बताया। विवाह ईश्वर की प्राकृतिक इच्छा और मनुष्य का अधिकार है।' यद्यापि उन्होंने विवाह की प्रथा का समर्थन किया परंतु विवाह की तत्कालीन प्रचलित आयु को लेकर असंतोष व्यक्त किया। उनका कहना था कि भारतीय समाज में 8, 9 वर्ष के बच्चों क विवाह उनके शारीरिक और मानसिक विकास में अवरोधक है। 20 वर्ष तक की अवस्था किसी भी बच्चे के शारीरिक और मानसिक विकास के लिए आवश्यक है क्योंकि इसी समय उनके अंदर सीखने, समझने की क्षमता और आत्मविश्लेषण, आत्मज्ञान का बोध होता है। अध्ययन के द्वारा वे अपना विकास करने में सक्षम होते हैं। इस उम्र में यदि बच्चों का विवाह कर दिया जाता हे तो इस प्रक्रिया में बाधा पहुँचती है साथ ही दो अबोध और अज्ञानी साथी अपने वैवाहिक जीवन को भी खुशहाल बनाने में सक्षम होते हैं। इस प्रकार के विवाह का आधार पारस्परिक सहमति और प्रेम ने होकर सामाजिक दबाव और विवशता होता है। इस स्थिति में जन्म लेने वाली सन्ततियाँ कमजोर और अयोग्य होती हैं, परिणामस्वरूप परिवार, समाज और देश पिहड़ेपन की ओर अग्रसित होते हैं।

पंडिता रमाबाई ने सीता, सावित्री जैसी सती और गुणवान भारतीय महिलाओं के उदाहरण दिए हैं जिन्होंने अपने साहस और सतीत्व के बल पर समाज में भारतीय पत्नी का आदर्श रूप प्रस्तुत किया। 'पारिवारिक कर्त्तव्य' नामक अध्याय में महिलाओं को उनके पारिवारिक दायित्वों के प्रति सचेत किया हे 'शिशु एवं उनका पोषण'

अध्याय में सुजननिकी पर चर्चा की है। यह अध्याय स्पष्ट करता है कि अच्छे, स्वस्थ माता-पिता ही स्वस्थ बच्चो को जन्म दे सकते हैं और उत्तम गुणों का विकास करते हैं।

आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन में पंडिता रमाबाई ही मात्र ऐसी विचारक थी जिन्होंने स्वयं को स्वतंत्र नारीवादी चिन्तक और महिला अधिकार कार्यकर्ता के रूप में स्थापित किया जबकि अन्य महिला नारीवादी सुधारक किसी न किसी पुरूष समाज सुधारक से संबद्ध रहीं। महिलाओं को उनका अधिकार बोध कराने, अपने हितों के प्रति जागरूक करने, उन्हें समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए रमाबाई ने अयक प्रयास किये। सामान्यत: एक विचारक की तुलना में महिलाओं में आत्मनिर्भरता लाने, उनमें आत्म विश्वास उत्पन्न करने और पीड़िताओं को मुक्त करने के लिए उनके रचनात्मक कार्यक्रम और विभिन्न मिशन अधिक महत्वपूर्ण रहे।

समग्र दृष्टि से देखा जाय तो वर्तमान समय में भी स्त्रियों की स्थिति में पूरी तरह सुधार नही हो पाये हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार जेडा लर्नर के अनुसार पितृसंस्था संस्थागत हो चुकी है। 4000 साल पुरानी व्यवस्था आज भी समाज की बैचारिकी में घुली हुई है। महिलाओं को लगातार हतोत्साहित किया गया और उनका कार्यसेब सीमित कर पुरूष पर आश्रित कर दिया गया। 'अपनी किताब द क्रिएशन ऑफ हिस्ट्री' में वह कहती हैं कि शोध और लेखन जैसे क्षेत्रों में पुरूष थे, उन्होंने सब कुछ अपने हिसाब से लिखा, प्रत्येक वर्णन उनकी अभिव्यक्ति है, महिलाओं की अभिव्यक्ति के लिए इतिहास में कोई स्थान नहीं है। समाज के सभी क्षेत्रों में महिलाओं को अपने स्पेसेज 'रिक्लेम' करने होंगे, तभी वे समतावादी समाज बना पाएंगी। पंडिता रमाबाई जैसी विचाराकों और सुधारकों ने नारीवादी आंदोलन के गुरूआती दौर में ही इस बात के संकेत दे दिए थे।

वर्ममान वैश्वीकरण और उत्तर आधुनिकता के युग में विश्व ने कितना ही विकास क्यों न कर लिया हो, कितनी ही आशुनिकीकरण हो चुका हो, महिलाएँ आज भी संकटपूर्ण स्थितियों का सामना कर रही हैं। भ्रूण हत्या, घरेलू हिंसा, दहेज प्रया, महिला हिंसा, स्त्रियों के साथ दोयम व्यवहार जैसी तमाम समस्याएं हमारे समाज में व्याप्त है जिनकी समाप्ति के लिए पंडिता रमाबाई जैसी ओजस्वी और क्रान्तिकारी कार्यकर्ता की आज भी प्रासंगिकता है।

संदर्भ (Refernces)

1. सरस्वती, पंडिता रमाबाई, द हाई कास्ट हिंदू वीमेन, रफेल पब्लिशर्स, न्यूयार्क, 1901.
2. वर्मा, वी0पी0, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2014.
3. मेहता, वी0 आर0 फाउंडेशन ऑफ इंडियन पॉलिटिकल यॉट, मनोहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1966.
4. अप्पादोराई ए, पॉलिटिकल यॉट इंन इंडिया, खन्ना पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2001.
5. त्यागी, रूचि, भारतीय राजनीतिक चिंतन, हिन्दी माध्यम कार्यन्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2010.
6. गबा, ओम प्रकाश, भारतीय राजनीतिक विचारक, मयूर पेपर पब्लिशर्स, 2015.
7. चक्रवर्ती विद्युत तथा पाण्डेय राजेन्द्र कुमार, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन: विचार व सन्दर्भ, राव पब्लिकेशन, जयपुर, 2012.

मानस में ममतामयी माँ कैकेयी

डॉ० सुषमा चौबे

सहायक प्राध्यापिका, हिंदी विभाग, पटना वीमेंस कॉलेज (ऑटोनोमस)

शोध सार

गोस्वामी तुलसीदास विरचित श्रामचरितमानस 'हिंदी काव्य-मणिमाला का मध्य हीरक राज है। अपनी विराट संस्कृतिक-चेतना, उदात्त समन्वय-भावना, लोकोन्मुख जीवन-दर्शन एवं विशद चरित्र-चित्रण के कारण यह आज भई सामान्य जन-जीवन तथा पंडित वर्गों में समादृत है।

तुलसी के राम विश्व रूप होकर भी मानव हैं और मानव होकर भी परब्रह्म स्वरूप हैं। रामराज्याभिषेक की हर्षभूमि से रामवनगमन का शोकाकुल वातावरण उतपन्न हुआ। इसी की बलिवेदी पर महाराज दशरथ ने अपने प्राणोत्सर्ग कर दिए। गौर करने वाली बात यह है कि इसके केंद्र में महाराज की सर्वाधिक प्रिये रानी कैकेयी हैं। हमने अपने शोध-पत्र में यही विचार किया है कि क्या सचमुच कैकेयी ऐसी ही निष्ठुर थीं? क्या उनको भरत के लिए राज्य ही चाहिए था। यदि यही अभीष्ट था तो महाराज के द्वारा भरत का राज्य मिलने पर भी उन्होंने वनगमन क्यों माँगा?

कैकेयी राम को सर्वाधिक प्यार करती थीं। वह अपने प्रिय-पुत्र के अवतार को व्यर्थ नहीं होने देंगी। वह कर्म की प्रतीक बनती हैं। एक माँ का प्रेम ऐसा होता है जिसमें स्वार्थ की कोई गुंजाइश नहीं होती। माँ का त्याग अनुपम होता है। माँ कैकेयी ने खुद को बदनामी की चादर में लपेट लिया। उसे बोध था कि इतिहास में उसका नाम काले अक्षरों में लिखा जायेगाए पर एक माँ अपना भला कब सोचती है? राम की अनन्य प्रेमी होकर उसने सिर्फ रामावतार को सार्थक बनाया।

इसप्रकार परिलक्षित होता है कि हमें कैकेयी से नफरत करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि हमें तो उससे नि:स्वार्थ प्रेम और त्याग सीखने की जरूरत है। वस्तुत: कैकेयी का चरित्र वत्सल-रस की पराकाष्ठा है जिसमें वह सर्वदा वंदनीय हैं।

बीज-शब्द-रामचरितमानस, तुलसीदास, कैकेयी

भूमिका

गोस्वामी तुलसीदास जी ने त्रिताप से संतप्त पथिकों के लिए सुशीतल सुधा-स्रोतस्विनी रामभक्ति-मन्दाकिनी की धवल धारा प्रवाहित की है। उन्होंने भक्त-भ्रमरों के लिए अपनी कृति-वाटिका में भाव-कंज-कलिकाओं से अनुराग मकरंद प्रदान किया है। उनका श्रामचरितमानसश् भारतीय समाज के मनोमंदिर का इष्टदेव बना हुआ हैए जिनकी अभूतपूर्व रचना विश्व में समादरणीय स्थान पाती जा रही है।

लोकनायक महाकवि तुलसीदास जी एक ऐसे सचेष्ट समाज द्रष्टा हैं जो समाज के विभिन्न पहलुओं की पड़ताल का रेखांकन अत्यंत गंभीरता के साथ करते हैं। इनकी संवेदनशीलता श्रामचरितमानस ''जैसी महान कृति में ही सफल सिद्ध होती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी के अनुसार...'' इसी एक ग्रन्थ से जन साधारण को नीति का उपदेश, सतकर्म की उत्तेजना, दु:ख में धैर्य, आनंदोत्सव में उत्साह, कठिन स्थिति को पार करने का बल सब कुछ प्राप्त होता है। यह उनके जीवन का साथी हो गया है।''[1]

रामचरितमानस में कई नारी-पात्रों का समायोजन किया गया है। कौशल्या, सुमित्रा, सीता, मंदोदरी आदि नारियों की गणना श्रेष्ठ वर्ग में की जाती है। पर श्कैकेयी का नाम आते ही प्राय: सबका दृष्टिकोण बदलने लगता है। राम के अनन्य प्रेमोपासिका कैकेयी को पाठक भावनाशून्य, हठी, क्रूरता की प्रतिमूर्ति के रूप में देखते हैं।

उद्देश्य

सामान्य...आम जन-जीवन में विमाता कैकेयी की अवधारणा की तलाश करना।

विशिष्ट...

क. गोस्वामी तुलसीदास द्वारा प्रतिपादित कैकेयी के चरित्र का सन्धान करना।

ख. वज्र-सी कठोर प्रतीत होने वाली पुत्र-वत्सला कैकेयी के सर्वस्व त्याग को उजागर करना।

ग. एक ऐसी माँ की तलाश जिसने पुत्र-प्रेम के लिए जीवनपर्यंत खुद को मौन बना लिया।

अध्ययन पद्धतिः

द्वितीयक पद्धतिः इस शोध पत्र के लिए द्वितीयक पद्धति को अपनाया गया है, जिसके तहत तथ्यों के संग्रह के लिए पूर्व के शोध-ग्रंथों, पत्र-पत्रिकाओं एवं इंटरनेट की मदद ली गई है।

मानस के नारी पात्रों में कैकेयी का स्थान प्रायः सबकी दृष्टि में निम्नतर समझा जाता है। नारी-समाज में तो उसके नाम के लिए भी जगह नहीं रह गई है, सम्मान की तो बात ही क्या? यद्यपि आज हमारे नामकरण पर पाश्चात्य प्रभाव भी तेजी से पर रहा है तथापि, जब भी माताएँ अपनी सभ्यता-संस्कृति से जुड़कर नामकरण करती हैं, तब हम पाते हैं कि कन्याओं का नाम कौशल्या, सुमित्रा तो रखती हैं, परन्तु कैकेयी नहीं। यहाँ तक कि ग्रामीण क्षेत्रों में धनिया, जिरबा, दुखिया, बुधिया आदि नाम मिल जाते हैं परन्तु, कैकेयी नाम गलती से भी नहीं मिलता। क्या सचमुच कैकेयी का चरित्र निम्नकोटि का है? कैकेयी की अधमता का कारण क्या है? इसका एक ही उत्तर है...राम का वन-गमन।

अपनी कन्याओं को कैकेयी की काली छाया से भी हम बचाना चाहते हैं और कदाचित इसीलिए उसका नाम उन्हें नहीं देते। किन्तु, देखना यह है कि वस्तुतः कैकेयी को हम जितना अधम समझते हैं, उनका चरित्र वैसा ही है? क्या सचमुच कैकेयी राम-राज्य विरोधिनी थीं? नहीं, कदापि नहीं। राम-राज्याभिषेक का शुभ समाचार कैकेयी को सर्वप्रथम मंथरा द्वारा मिलता है। वह बहुत प्रसन्न होती हैं। माँ कैकेयी के वास्तविक स्वरुप का वर्णन गोस्वामी जी ने यों किया है-

सुदिन सुमंगल दायक सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई।।

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई।। (रामचरितमानस...अयोध्याकांड)

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में भी लगभग इसी प्रकार की बात कही गई है। राम के राज्याभिषेक का समाचार सुनते ही कैकेयी अपनी शय्या से उठ खड़ी होती हैं और मंथरा को मनोनुकूल सर्व सुन्दर वस्तु माँग लेने को कहती हैं...

''परम् वरं ते प्रददामि तं वृणु''[2]

कैकेयी अत्यंत दृढ़ चरित्र वाली महिला थीं जिसने हमेशा धर्म के लिए युद्ध किया। उन्होंने देवासुर संग्राम में पति के साथ अधर्म के विरुद्ध लड़ा। देवासुर संग्राम में कैकेयी के पराक्रम से अभिभूत हो महाराज दशरथ ने वर माँगने को कहा था। कैकेयी तीनों रानियों में चपल थीं, सुन्दर थीं, साहसी थीं। कदाचित यही कारण रहा होगा जिससे महाराज दशरथ उनसे सर्वाधिक स्नेह करते थे। रामराज्याभिषेक की खबर महाराज अपनी प्राणाधिका प्रिया कैकेयी को स्वयं अपने श्रीमुख से सुनाना चाहते थे। समयाभाव के कारण, कल की तैयारी में व्यस्त राजा संध्या समय कैकेयी के महल में पहुँचे। तब तक बहुत देर हो चुकी थी। रानी अपनी प्रिये दासी मंथरा की मन्त्रणा से कोप भवन में जा चुकी थीं। राजा सहम गये। गोस्वामी जी लिखते हैं...? भय वश अगहुर पड़ई न पाऊ। डरते हुए राजा ने अपने कदम बढ़ाये। अब प्रारम्भ होता है राम के माता-पिता के बीच राम के लिए संग्राम। पिता की जिद लौकिक थी .. अपने प्रिय पुत्र कोए प्रजा-वत्सल पुत्र को राजा बना देना, तो दूसरी ओर माता की जिद थी अपने प्रिय पुत्र के जन्म को सार्थकता प्रदान करना। जो लोग बिना सोचे-विचारे कैकेयी पर लांछन लगा देते हैं, उनसे मैं आग्रह करना चाहूँगी कि क्या एक अनपढ़, मंदबुद्धि स्त्री भी ऐसा कदम उठा सकती है? निश्चित रूप से आपका जवाब ''नाश् होगा। तो फिर हम कैकेयी जैसी समझदार, व्यवहारकुशल स्त्री से इस घटना की उम्मीद यों ही कैसे कर लेते हैं? कैकेयी की दृष्टि दूर-दृष्टि थी।

कैकेयी ने देवासुर संग्राम के समय ही यह तय कर लिया था कि अगली लड़ाई अब कहाँ लड़नी है। इसीलिए उसने उस वरदान को सुरक्षित रखा था। यही कारण है कि सारी लांछना, पुत्र का वियोग, पति का वैधव्य...सब कुछ सहा...मात्र उस पुत्र के लिए...जिसे वह अगले जन्म में भी पाना चाहती थी।

''मानस'' में कैकेयी बीज रूप हैं। इनकी महत्वकांक्षा और बुद्धि-विपर्यय के कारण ही राम-वनवास, सीता हरण आदि घटनाएँ घटित होती हैं। कैकेयी कलंक लेकर यदि दो वरदान मांगकर पृष्ठभूमि न बनायी होतीं तो दो महान उद्देश्य अधूरे रह जाते...प्रथम, भरत चरित्र का प्राकट्य और द्वितीय-रावण-वध।

श्री रामकिंकर उपाध्याय जी के अनुसार...''कैकेयी का व्यक्तित्व कोमलता-कठोरता, प्रेम-ईर्ष्या, कर्तव्य-अकर्तव्य, दृढ़ता-दुर्बलता, प्रज्ञा-जड़ता जैसे परस्पर विरोधी तत्वों के मेल से संघटित है क्योंकि ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना गुण-अवगुण को मिलाकर ही की है।''[3]

तुलसी केवल ज्ञान का ग्रंथ नहीं लिख रहे थे। मनुष्य के नित्य जीवन में घटने वाले ईर्ष्या-द्वेष, सुख-दुःख और लोभ-मोह के विकारों के भीतर से उन्होंने अपने पाठकों को ले जाना चाहा। वे मनुष्य के जीवन की गहराई में उतरे थे। सर्वथा स्वार्थरहित मनुष्यता कहाँ होती है?

माँ कैकेयी का चरित्र इतना प्रभावशाली है कि सब उसे चाहते हैं। एक तरफ कैकेयी यदि राम को प्राणों से अधिक चाहती हैं तो दूसरी तरफ राम भी उसे कम नहीं चाहते। कौशल्या क्या उन्हें कम महत्व देती हैं? राम के वन .गमन के समय उन्होंने कहा कि पिता के साथ यदि माता कैकेयी की भी आज्ञा है तब तो जरूर वन जाओ...

जो केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बरि माता।

जो पितु मातु कहेउ वन जाना। तौ कानन शत अवध समाना। (रामचरितण्...अयोध्याण्)

अगले जन्म में भरत और मांडवी के बदले कैकेयी को राम और सीता ही चाहिए...

जौं विधि जनम देई करि छोहू। होहिं राम सिय पूत पतोहू।।

इस याचना के वक्त उन्हें भरत के पक्षपात की आवश्यकता नहीं थी। दरअसल जिस स्नेह के कारण पुत्र का जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो जाये, उसे स्नेह नहीं मोह कहेंगे। कैकेयी ने अपनी झूठी ममता की बलि देकर राम के जीवन को सफल बनाया। गोस्वामी जी लिखते हैं कि पुत्र के कल्याण के लिए माँ उसके शरीर के घाव को चिरवा ही देती है, वह विचलित नहीं होती...

जिमि शिशु तन व्रन होई गोसाईं। मातु चिराव कठिन कि नाई।।

यद्यपि प्रथम दु:ख पावई, रोवई बाल अधीर। व्याधि नाश हित जननी, गनति न सो शिशु पीर।। (रामचरितण् उत्तर...दोहा सं. 74)

मानस में माता कौशल्या ज्ञान, कैकेयी कर्म और सुमित्रा भावना की प्रतीक हैं। इन तीनों में सर्वाधिक विवादास्पद कर्म ही है। जब हम कर्म करेंगे तो कुछ अच्छे भी होंगे कुछ बुरे भी। प्रभु श्रीराम नर लीला करने आये थे। इतने महान उद्देश्य को अकेले कैसे पार ले जाते? इसलिए अपने अनुरूप सहचरों की भी योजना की थी। स्वाभाविक हुए बिना नर लीला की स्थापना कैसे होती?

अयोध्यावासी ने कैकेयी पर अपशब्दों की वर्षा कर दीए पर माँ मौन, निस्तब्ध, निस्तन्द्र।

एकमात्र पुत्र भरत ने उसे त्याग दिया, जीवन भर उससे बातें नहीं की। पर माँ राम की खातिर मौन ही रहीं...

जब तैं कुमती जिय ठयऊ। खंड खंड होइ हृदय न गएउ।।

बर मांगत मन भई नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा।। (रामचरितण्...अयोध्याण्)

गुरुजनों के प्रति कठोर शब्दों का प्रयोग ही मृत्युदंड के समान होता है। इस दृष्टि से यहाँ कैकेयी की मृत्यु हो जाती है, फ्लस्वरुप हम उन्हें मौन पाते हैं। तुलसीदास जी ने भी उनका उल्लेख नहीं किया है।

रामावतार ही रावण-वध की खातिर हुआ था। मनुष्य के हाथों उसका मारा जाना सुनियोजित था। रावण की आयु चौदह वर्ष शेष बची थी, इसीलिए माँ ने माँग की...

तापस वेश विशेष उदासी। चौदह बरिस राम वनवासी।। (रामचरितण् अयोध्याण्)

माँ कैकेयी का उद्देश्य भरत का अभिषेक नहीं था, वह तो एक बहाना भर था। कोप भवन में महाराज दशरथ ने तो सहर्ष स्वीकार ही लिया था...

प्रिया हासरिस परिहरति, मांगु विचारि विवेक।

जेहि देखऊं अब नयन भरि, भरत राज अभिषेक।। (रामचरितण्...अयोध्याण् दोहा सं. 32)

पर वह टस-से-मस नहीं होती। राम परम ब्रह्म के अवतार थे और उनका सत्ताईस वर्ष का समय निकल चुका था। माँ अभी अपने प्रिय पुत्र को अभी और समय बर्बाद नहीं करने देगी, भले ही स्वयं को कलंक की चादर में ही क्यों न लिपटना पड़े।

लोक-विदित है कि कृष्णावतार में राम ने अपनी इस माँ की इच्छा पूर्ण की। कैकेयी को देवकी और कौशल्या को यशोदा बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अत: माँ सदा त्यागमयी है, महान है। मानस तरंग की ये पंक्तियाँ सर्वथा उचित प्रतीत होती हैं...

माँ तेरी यह अमर कहानी। इस जग में जन-जन के मन में तू कलंक की खानी।

त्यागमयी तू राममयी है, कुमति कहहिं अज्ञानी। सुख सुहाग तज दिया किन्तु बस इष्ट राम की ठानी।

भरत राज्य लेकर रह जाती क्या तेरी थी हानि। (मानस तरंग, मिश्र, पृष्ठ 16)

वनवास से लौटने पर राम ''सब माताओं से पहले कैकेयी से प्रेमपूर्वक मिले। क्यों? उसे चिढ़ाने के लिए? कदापि नहीं। कैकेयी से प्रेमपूर्वक मिलने की सबसे अधिक आवश्यकता थी। अपना महत्व या सहिष्णुता दिखाने के लिए नहीं, उसके परितोष के लिए। अपनी करनी पर कैकेयी को जो ग्लानि थी, वह राम ही के किए दूर हो सकती थी और किसी के किए नहीं।''[5] (त्रिवेणी, शुक्ल, पृष्ठ 77)

लोक निंदा सुन-सुन कर कैकेयी जीवन भर ग्लानि में गलती रहीं। विचारणीय है कि ग्लानि होती किसे है? ग्लानि प्रायश्चित का सबसे उत्तम तरीका है। कुटिल व्यक्ति ग्लानि नहीं कर सकता। सहृदय को ही आत्मग्लानि का अहसास होता है।'' आत्मग्लानि का उदय शुद्ध और सात्विक अन्त:करण में ही हो सकता है।''[6] (त्रिवेणी, शुक्ल, पृष्ठ 87)

राम को कैकेयी की सहजता और सरलता ज्ञात थी। गोस्वामी जी ने लिखा है कि रावण-वध के उपरांत जब राम का दशरथ से मिलन हुआ तो रस्म ने पिता से माँ कैकेयी को शापमुक्त करने की प्रार्थना की।

निष्कर्ष

'माँ' शब्द ईश्वरत्व से भी ऊपर है। माँ कैकेयी ने बदनामी, कुटिलता, तिरस्कार सबको आत्मसात कर लिया जैसे शिव ने संसार के कल्याण-हेतु 'नीलकंठ' कहलाना श्रेयस्कर समझा। माता कैकेयी का हृदय मोम सा मुलायम और रुई सा कोमल था। ममता से अप्लावित उस हृदय में सिर्फ राम की ही धारा प्रवाहित होती थी। जहाँ भरत रूपी 'स्व' की आड़ में राम रूपी 'पर' की ही कामना की गई थी, जहाँ क्रूरता की जगह ऋजुता थी। जहाँ जोंक की वक्रता के बदले सिर्फ सरलता ही सरलता थी। अत: यह त्याग की प्रतिमूर्ति माँ कैकेयी प्रशंसनीय है, नित्य वंदनीय है। इस ममतामयी माँ की जितनी भी भूरि-भूरि प्रशंसा की जाय, वह कम है।

आधार ग्रन्थ

1. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र-गोस्वामी तुलसीदास...पृष्ठ 45
2. वाल्मीकि रामायण-अयोध्याकांड
3. उपाध्याय, रामकिंकर...मानस प्रवचन...पृष्ठ 60
4. मिश्र, पं. हरिशंकर...मानस तरंग...पृष्ठ 16
5. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र...त्रिवेणी, पृष्ठ 77
6. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र...त्रिवेणी, पृष्ठ 87
7. तुलसीदास, गोस्वामी...रामचरितमानस

महाभारत में प्रतिपादित मोक्ष का स्वरूप

विश्वजीत भारद्वाज

एम. ए. (संस्कृत विभाग) मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

भारतीय धर्मशा स्त्र में मानव-जीवन के चार पुरुषार्थ विवेचित हैं-धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। धर्म, अर्थ, तथा काम भौतिक पुरुषार्थ हैं और मोक्ष आध्यात्मिक पुरुषार्थ है। धर्म.अर्थ.काम व्यक्ति को सांसारिकता की ओर प्रवृत करते हैं और मोक्ष व्यक्ति को सांसारिकता से निवृत्त करता है। संसार आवागमन, जन्म.मरण और नश्वरता का केन्द्र है। ज्ञान के अभाव के कारण मानव इस संसार के चक्र में फंसा रहता है और जन्म.मरण के चक्रव्यूह से मुक्त नहीं हो पाता। जिस कारण उसे नाना प्रकार के कष्टों का अनुभव करना पड़ता है। इन कष्टों से आत्यन्तिक मुक्ति पाना ही मोक्ष है।

'मोक्ष' की अवधारणा हमारे वेद, दर्शन, ऐतिहासिक ग्रन्थ, साहित्य, आदि सभी विधाओं में प्राप्त होती है। महाभारत में भी मोक्ष तत्त्व का सविस्तार वर्णन है। महाभारतीय मुक्ति जीव (पुरुष) द्वारा अहं त्याग और नारायण में अवस्थित हो जाने पर या स्वयं को परब्रह्म सदृश्य समझने पर ही सम्भव है। 'शान्तिपर्व' के अनुसार आत्मज्ञान ही एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा व्यक्ति का सांसारिक वस्तुओं के प्रति मोह समाप्त हो जाता है और वह सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर, जगत् को मिथ्या समझकर, परमात्मा में लीन होने लगता है। इस प्रकार 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' की अनुभूति ही मोक्ष है।

मूल शब्द : धर्म, मोक्ष, महाभारत, आध्यात्मिक, पुरुषार्थ , श्रीमद्भगवद्गीता, त्रिवर्ग, ज्ञान, चिन्तन, सांसारिकता, भारतीय, आत्मज्ञान, बन्धन

प्रस्तावना

मानव-जीवन की सार्थकता जिस गन्तव्य स्थान पर पहुँच कर 'चिर शान्ति' को प्राप्त करता है, वही 'मोक्ष' है। 'मोक्ष' भारतीय धर्म का आधारभूत एवं सर्वमान्य प्रत्यय है। 'मोक्ष' का चिन्तन भारतीय संस्कृति के समस्त शास्त्रों के मूल में रहा है। भारतीय धर्मशास्त्र में मानव.जीवन के चार पुरुषार्थ विवेचित हैं-धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। धर्म, अर्थ, तथा काम भौतिक पुरुषार्थ हैं और मोक्ष आध्यात्मिक पुरुषार्थ है।

धर्म-अर्थ-काम, व्यक्ति को सांसारिकता की ओर प्रवृत करते हैं और 'मोक्ष' व्यक्ति को सांसारिकता से निवृत्त करता है। वास्तव में 'त्रिवर्ग' मोक्षरूप साध्य का साधन है। त्रिवर्ग की धारणा, इहलौकिक जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं एवं रूचियों से सम्बन्ध रखती है। जबकि मोक्ष पारलौकिक जीवन की राह पर अग्रसर व्यक्ति को आध्यात्म केन्द्रित सुख में निमग्न कर देने वाली तैयारी का नाम है।

मोक्ष का अर्थ है-'मुच्यते सर्वैदु:खबन्धनैर्यत्र स: मोक्ष:'। अर्थात् जिस पद को पाकर जीव आध्यात्मिक आदि सम्पूर्ण दु:खबन्धनों से मुक्त हो जाता है, उसे 'मोक्ष' कहते हैं, इसीलिए इसको मुक्ति भी कहते हैं। मुक्ति श्शब्द भी 'मुच्लृ मोचने' धातु से 'क्तिन' प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है। इसका अर्थ है-बन्धनों से छूट जाना। इस बन्ध से छूटने का नाम ही मुक्ति, मोक्ष, अपवर्ग, निर्वाण और कैवल्य आदि है। 'शब्दकल्पद्रुम'[1] के अनुसार मोक्ष श्शब्द का निर्वचन है 'मोक्ष्यतेदु:खमनेन'

अर्थात् जिसके द्वारा दु:ख से छुटकारा पाया जाता है।

''मोनियर विलियम्स के अनुसार मोक्ष का अभिप्राय है-सांसारिक सत्ता (आवागमन) से मुक्ति होना अथवा अंतिम रूप से मुक्ति।''

सम्पूर्ण भारतीय वाड्मय में मोक्ष को ही जीवन का अन्तिम उद्देश्य बताया गया है, क्योंकि मोक्ष प्राप्त किये बिना जीव के दु:ख.परम्परा रूप सम्पूर्ण अनर्थों की निवृत्ति नहीं हो सकती है। इसीलिए मोक्ष को परम पुरुषार्थ भी कहते हैं। यह पुरुषार्थ ही मनुष्य को शिक्षा देता है कि सांसारिक सुखानुभूति क्षणिक है, क्योंकि सुख पाने पर व्यक्ति और अधिक सुख पाने की लालसा करता है, और सुखप्राप्ति में विघ्न होने पर दु:ख ही प्राप्त करता है। इसीलिए मोक्ष को आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक-त्रिविध दु:खों का विनाश क माना है।

जब मनुष्य को ज्ञान हो जाता है कि वास्तविक सुख सांसारिक सुख नहीं है, अपितु वास्तविक सुख मोक्ष.प्राप्ति है तब वह मोक्ष प्राप्ति की ओर उन्मुख हो जाता है और मोक्ष-प्राप्ति के अनन्तर संसार के जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है।

मोक्ष की अवधारणा हमारे वेद, दर्शन, ऐतिहासिक ग्रन्थ, साहित्य, आदि सभी विधाओं में प्राप्त होती है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भी मानव को संसाररूपी भवसागर से पार कराने के लिए अर्थात् मोक्ष प्राप्ति हेतु ईश्वर से प्रार्थना की गई है। 'ऋग्वेद' में ईश्वर से सांसारिक बन्धनों से छूटने हेतु प्रार्थना की गई है।

'उर्वारूकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्'।

अर्थात् जिस प्रकार एक ककड़ी या खरबूजा अपनी बेल में पक जाने के उपरान्त उस बेल.रूपी संसार के बन्धन से मुक्त हो जाती हैए उसी प्रकार हम भी इस संसार.रूपी बेल में पक जाने के उपरान्त जन्म.मृत्यु के बन्धनों से सदा के लि, मुक्त हो जाएं।

विष्णु पुराण में कहा गया है कि-

इति संसार-दु:खार्क-ताप-तापित-चेतसाम्।
विमुक्ति-पादपच्छायामृते कुत्र सुखं नृणाम्।।[4]

अर्थात् सांसारिक दु:खरूपी प्रचण्ड सूर्य के ताप से जिनका अन्त:करण सन्तप्त हो रहा है, उन पुरुषों को मोक्षरूपी कल्पवृक्ष की श्शीतल छाया को छोड़कर और कहाँ सुख मिल सकता है? इस प्रकार मोक्ष ही समस्त पुरुषार्थों और समस्त सुखों का सम्राट है।

मोक्ष के सम्बन्ध में बौद्ध दर्शन के अनुसार जहाँ 'आत्मोच्छेदो मोक्ष: अर्थात् आत्मा का विनाश कर देना ही मोक्ष है, वहीं जैन दार्शनिक कहते हैं-

'सम्यग्दर्शन ज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्ग:'

अर्थात् सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चरित्र तीनों ही मोक्ष के साधन हैं।

कठोपनिषद् में ज्ञानेन्द्रियों तथा मन के आत्मा में लय हो जाने को मोक्ष कहा गया है-

यदा पंचावतिश्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेश्टति तामाहु: परमांगतिम।।[5]

संस्कृत वाङ्मय का सर्वाधिक विशालकाय ग्रन्थ महाभारत स्वयं में ज्ञान की सम्पूर्णता से पूरित है जिसके कारण कहा जाता है कि यह धर्मशास्त्र होने के साथ.साथ अर्थशास्त्र एवं मोक्षशास्त्र भी है।

धर्मशास्त्रमिदं पुण्यमर्थशा स्त्रमिदंपरम्
मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना।[6]

महाभारत में मोक्ष-तत्त्व का सविस्तार वर्णन है। महाभारतीय मुक्ति जीव (पुरुष) द्वारा अहं त्याग और नारायण में अवस्थित हो जाने पर या स्वयं को परब्रह्म सदृष्य समझने पर ही सम्भव है। महाभारत में मोक्ष के तीन प्रमुख मार्ग प्रसिद्ध हैं। कर्मयोग, भक्तियोग, तथा ज्ञानयोग। इन तीनों ही मार्गों का विशद् विवेचन भीष्मपर्व के प्रमुख भाग श्रीमद्भगवद्गीता में किया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण ने मोक्ष के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृशय: क्षीणकल्मशा:।
छिन्नद्वैधा यतात्मान: सर्वभूतहिते रता:।।
कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्।।
स्पर्षान् कृत्वा बहिर्बाह्यांष्चक्षुष्चौवान्तरे भ्रुवो:।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ।।
यतेन्द्रिय मनोबुद्धिर्मुनिमोक्ष परायण:।
विगतेच्छाभयक्रोधो य: सदा मुक्त एव स:।।[7]

अर्थात् पापरहित, द्वैधभाव से रहित, आत्मतत्त्व का चिन्तन करने वाले, सभी प्राणियों के हित में संलग्न ऋशि, परमब्रह्मरूपी निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं। काम-क्रोधरहित, मन को वश में करने वाले, आत्मतत्त्व को जानने वाले ऋषियों को ब्रह्मनिर्वाण प्राप्त हो जाता है। बाह्यविषयों को छोड़कर, दृष्टि को बीच में स्थित करके, नासिका में विचरने वाले, प्राण और अपान वायु को सम करके, इन्द्रियों तथा मन-बुद्धि को जीतने वाले, इच्छा, भय और क्रोध से रहित, मोक्षपरायण मुनि मुक्त होता है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने ज्ञानयोग और कर्मयोग का उपदेश देने के साथ-साथ उपदेश दिया है कि जो व्यक्ति भक्तियोग के द्वारा मेरी सेवा करता है, वह सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों का अतिक्रमण करके ब्रह्मस्वरूप ही बन जाता है, अर्थात् मुक्त हो जाता है। श्रीकृष्ण के अनुसार भक्ति के साथ भगवच्छरणागति भी मोक्ष का साधन है। वे कहते हैं कि जो अपना सब.कुछ भगवान् को समर्पित कर देता है, वह मनुष्य सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है, क्योंकि सांसारिक बन्ध ही मोक्ष प्राप्ति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। इसीलि, व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन करते हु, सब कर्मों को भगवदर्पण कर देना चाहिए और बाद में सभी धर्मों को त्याग कर ईश्वर का आश्रय लेना चाहिए।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं श्शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिश्यामि मा शुच:।।[8]

मोक्ष प्राप्ति के लिए मन की एकाग्रता भी आवश्यक है। क्योंकि एकाग्रता बिना आत्मसाक्षात्कार असम्भव है। किन्तु मानव मन बहुत चंचल होता है जिस पर नियन्त्रण पाना बहुत कठिन है। अत: भगवान् कृष्ण ने अभ्यास और वैराग्य द्वारा मन को वश में करने का उपदेश दिया है। इसीलिए ज्ञान द्वारा वैराग्य प्राप्त करना चाहिए।

ज्ञान द्वारा जब व्यक्ति समझ लेता है कि सांसारिक सुख क्षणभंगुर हैं, तभी उनके प्रति विरक्त होता है, और तत्पष्चात् उसका सम्पूर्ण ध्यान मोक्ष पर ही हो जाता है। श्शान्तिपर्व के अनुसार आत्मज्ञान ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा जीव जन्म-मरण रूपी दुर्गम संसार.सागर से पार हो जाता है।

ज्ञानान्मोक्षो जायते[9]

इसीलिए मोक्ष प्राप्ति हेतु ज्ञान का सबसे अधिक महत्त्व बताया गया है। इसी से महाभारत में कहा है कि-जो मनुष्य बुद्धि से जीवों के आवागमन पर इस प्रकार श्शनैः 'शनैः विचार करके विशुद्ध एवं उत्तम आध्यात्मिक ज्ञान को प्राप्त कर लेता है, वह परम' शान्ति को प्राप्त होता है।

एतां बुद्ध्वा नरः सर्वां भूतानामागतिम्।
अवेक्ष्य च श्शनैर्बुद्धया लभते श्शमनं ततः।[10]

'वेतष्वतरोपनिश' में भी ब्रह्मज्ञान को मोक्ष प्राप्ति का साधन बताते हुए कहा गया है-

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य सृश्टामनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेश्टितारं ज्ञात्वा शिवं श्शान्तिमत्यन्तमेति।।[11]

अर्थात् सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, अविद्या और उसके कार्यरूप दुर्गम स्थान में स्थित, जगत के रचयिता, अनेक रूप और संसार को एकमात्र भोग प्रदान करने वाले शिव को जानकर जीव परमशान्ति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है।

ज्ञान द्वारा ही मनुष्य के दुःखों का विनाश और मुक्ति-लाभ होता है। भीष्म पितामह कहते हैं कि ''जैसे मैले शरीर वाले मनुष्य निर्मल जल से भरी नदी में स्नान करके साफ-सुथरे हो जाते हैं, उसी प्रकार इस ज्ञानमयी नदी में अवगाहन करके मलिनचित्त मनुष्य भी अत्यन्त शुद्ध एवं ज्ञानसम्पन्न हो जाते हैं''।

मलिनाः प्राप्नुयुः श्शुद्धिं यथा पूर्णां नदीं नराः।
अवगाह्य सुविद्वांसो विद्धि ज्ञानमिदं तथा।।[12]

मोक्ष की प्राप्ति मानव.जीवन का सर्वोच्च लाभ है, इसीलिए मनुष्य को संसार के सम्पूर्ण दुःखों से मुक्त होने के लिए सदैव प्रयत्नशील होना चाहिए। महाभारत में भीष्म पितामह बुद्धिमानों को सचेत करते हुए कहते हैं-यह सारा जगत् जन्म-मृत्यु, जरावस्था के दुःखों, व्याधियों और मानसिक व्यथाओं से घिरा हुआ है। अतः बुद्धिमान पुरुष को इनसे मुक्त होने के लिए अर्थात् मोक्ष के लिए सदा प्रयत्न करना चाहिए।

मोक्ष के स्वरूप को स्पश्ट करते हुए कहा गया है कि 'जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों के द्वारा जगद्व्यापकत्व को प्राप्त करके अस्ताचल को जाते हुए अपनी किरणों को समेट लेने पर निर्गुण हो जाता हैए उसी प्रकार इस संसार में जीव सुख-दुःख से निर्विषेश होकर गुणरहित, अव्ययब्रह्म में प्रवेश करता हुआ, अविनाशी परब्रह्म का दर्शन करके मोक्ष को प्राप्त करता है।

जैसे नद और नदियाँ समुद्र में मिलकर अपने नाम और रूप को त्यागकर सागरजल में लीन हो जाती है तथा जिस प्रकार बड़े-बड़े नद छोटी-छोटी नदियों को अपने में विलीन कर लेते हैं, उसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा में विलीन हो जाता है तथा मोक्ष को प्राप्त करता है।

यथार्णवता नद्यो व्यक्तीर्जहति नाम च।
नदाष्च स्वतां नियच्छन्ति तादृषः सत्वसंश यः।।

इस प्रकार मोक्ष के सम्बन्ध में हमारे मनीशियों श्शरीरान्त होना, जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा पाना, परमात्मस्वरूप का साक्षात्कार करना, इन्द्रियसंयम, काम-क्रोध, राग-द्वेश आदि को छोड़ना आदि को मोक्ष माना है। वस्तुतः मोक्ष पुरुशार्थ की कोटि में तब आता है, जब त्रिवर्ग के पश्चात व्यक्ति सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर, जगत् को मिथ्या समझकर, परमात्मा में लीन होने लगता है, इस प्रकार ष्ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' की अनुभूति ही मोक्ष है।

वर्तमान युग में मोक्ष की महत्ता से सब परिचित है। संसार के दुःखमय स्वभाव को जानकर प्रत्येक मनुष्य इस आवागमन के चक्र से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करना चाहता है। अतः महाभारत में प्रतिपादित मोक्ष के स्वरूप से स्पष्ट होता है कि मनुष्य को जब आत्मज्ञान हो जाता है, तब वह सांसारिक बन्धनों से मुक्त होता हुआ परमात्मा में विलीन होकर इस संसाररूपी भवसागर से पार हो जाता है अर्थात् वह जन्म-मृत्यु के प्रपंच से मुक्त हो जाता है।

सन्दर्भ

1. शब्दकल्पद्रुम पृष्ठ संण् 786
2. ऋग्वेद 7/59/12
3. विष्णु पुराण 6/5/57
4 कठोपनिषद 2/3/10
5 तत्त्वार्थसूत्र 1/1/1
6 श्रीमद्भगवद्गीता 5/24-28
7 9. महाभारत, श्शान्तिपर्व 318/87
8 10. महाभारत, श्शान्तिपर्व 194/56
9 11. वेताष्वतरोपनिशद् 4/14
10 12. शान्तिपर्व 194/53

मृदुला सिन्हा के कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श

डॉ० सुनील दत्त

सहायक प्रोफेसर (हिन्दी), पं० चिरंजीलाल शर्मा राजकीय महाविद्यालय, करनाल

आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में महिला लेखन की धारा में मृदुला सिन्हा ने अपना एक अलग स्थान बनाया है। अपने चिरपरिचित भारतीय स्वरूप से भारतीय स्त्री के आत्मिक और चारित्रिक शौर्य को प्रकाश में लाने का कार्य किया है। दूसरे अर्थों में कहें तो आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में भारतीय नारी के सनातन स्वरूप की चिंतनधर्मी लेखिका हैं, मृदुला सिन्हा। हिंदी साहित्य में 'स्त्री विमर्श' के नाम पर चल रहे 'बोल्ड लेखन' से इतर भारतीय अर्थ में 'स्त्री' के पुरातन और आधुनिक स्वरूप के बीच गठजोड़ बिठाने वाली लेखिका हैं।

मृदुला जी का नारी विषयक चिंतन भारतीय विचार चिंतन पर आधारित है। वे नारी समानता के लिए अर्द्धनारीश्वर में निहित स्त्री-पुरुष की परस्पर पूरकता की धारणा को समाज में समानता के प्रतीक रूप में अपनाने पर बल देती हैं। वहीं स्त्री पक्ष की विशेष हिमायती और सशक्त पैरोकार के रूप में स्त्री को पुरुष की तुलना में विशेष शक्तिप्रदा, विशेष सम्मान की हकदार और विकास के अधिक अवसर दिलाने की भी पक्षधर हैं। बेटी को बेटे की बजाय परिवार-समाज में विशेष रूप से स्थापित करने की कोशिश में वाणी-लेखनी को धाराप्रवाह रूप से बुलंद करती रहती हैं। समाज के बीच रहकर आस्थावादी और जीवनमूल्यों पर आधारित जीवन जीने की पक्षधर मृदुला सिन्हा, व्यक्ति-व्यक्ति के कर्त्तव्यपालन, अनुशासन एवं संयम पर विशेष बल देती हैं।

एक पौराणिक और जागरूक आधुनिक भारतीय नारी की दृष्टि से मृदुला जी ने आज की महिलाओं के पारिवारिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन के समसामयिक जटिल प्रश्नों पर गंभीरतापूर्वक मंथन किया है। दूसरे शब्दों में कहें तो इनके नारी चिंतन में पौराणिक और आधुनिक नारी चिंतन का गठजोड़ विद्यमान है। तभी तो इन्होंने 'हम भारत की नारी हैं, फूल नहीं चिनगारी हैं', जैसे उत्तेजक एवं संघर्षशील नारों संशोधित कर 'हम भारत की नारी हैं, फूल और चिनगारी हैं' के रूप में आम लोगों के सामने प्रस्तुत किया है। अर्थात् नारी फूल सदृश्य कोमल तो होती है, परंतु दुर्बल नहीं, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर लक्ष्मीबाई का रूप भी धारण कर सकती है।

मृदुला जी नारी को पुरुष के समान बनाने की बजाय मातृत्व से मंडित करते हुए कहती हैं- 'आज स्त्रियों को पुरुष के समान बनने की जगह नारीत्व से पूर्ण बनने की जरूरत है। नारी, नारी होती है और पुरुष, पुरुष। नारी कभी पुरुष के समान हो ही नहीं सकती। वह तो पुरुष से भी श्रेष्ठ है, क्योंकि वह दातृ होती है।' नारी अधिकारों की माँग की आड़ में मृदुला जी कर्तव्यों बोध को नहीं भुलाती बल्कि कर्तव्यों के माध्यम से अधिकारों को प्राप्त करने का रास्ता दिखाती हैं। एक ओर ये नारी दहलीज से लेकर कार्यालय तक ले जाने की वकालत करती हैं, तो दूसरी ओर घरेलू दायित्वों को निभाने का जिम्मा भी सौंपती हैं। आज के टूटते-बिखरते परिवार इनकी चिन्ता के केन्द्र में हैं। इनको बचाने की आशा ये नारियों से ही रखती हैं। स्त्री अपनी त्यागवृत्ति से परिवार को संयुक्त रखती हैं। स्त्री होने पर नाज जताते हुए मृदुला जी कहती हैं कि ''स्त्री हर क्षेत्र में आगे है। सर्जन के लिए ममत्व आवश्यक है। पुरुष ममत्व से वंचित है। परन्तु जब उसमें भी यह गुण आ जाता है तो वह आकाश बन जाता है। परिवार जीवन की सबसे बड़ी पाठशाला है। भारतीय संस्कृति सभी को साथ लेकर परिवार के रूप में आगे बढ़ने वाली संस्कृति है। बेटियों भले ही तुम आज जल, थल, नभ पर अपने कदम बढ़ाओ, पर यह मत भूलना की तुम्हें माँ बनना है। आज समानता के नाम पर जो स्त्री को पुरुष बनाने पर तुले हैं, वे उपहास के पात्र हैं। सभ्यता रूपी रोटी बेलते-बेलते मुड़ जाती है, परन्तु अभी रोटी बहुत अधिक नहीं टूटी है। इस सभ्यता को लीक पर लाने का काम भारतीय संस्कृति का है। बेटियों तुम्हें भोजन बनाने का मौका नहीं मिलेगा, पर परोसना मत छोड़ना। संयुक्त परिवार भारतीय परिवार व्यवस्था की पहचान है- जब साथ चलती हैं तीन पीढिघ्याँ, तब चढ़ता है परिवार विकास की सीढिघ्याँ।''[1] इनका स्पष्ट मत है कि जो अपनी, अपने परिवार की सेवा नहीं कर सकता, वह दूसरों की सेवा क्या करेगा। सेवा स्वयं से प्रारंभ होकर दूसरों तक पहुँचती है।

मृदुला जी की स्त्री-पुरुष संबंधित चिंतन भारतीय संस्कृति के अनुकूल है। इन्होंने नारी समस्या को संपूर्ण समाज की समस्या के रूप में देखा है। इसीलिए नारी को समाज में उचित सम्मान दिए बिना, समाज की समस्या के रूप में देखा है। इसीलिए नारी को समाज में उचित सम्मान दिए बिना, समाज का विकास इन्हें असंभव लगता है। ये नारी और पुरुष के बीच सहयोगवृत्ति की पक्षधरों में अन्योन्याश्रित संबंधों की मजबूती के लिए स्त्री और पुरुष दोनों से अपेक्षा रखती हैं। एक के बिना दूसरे का जीवन अधूरा है। इनके अनुसार नारी वस्तु नहीं हैं। अविकसित पुरुष भी नहीं है और मात्र देह भी नहीं है, न नारी कठपुतली है और न ही उड़पपरी। नारी को पुरुष सापेक्ष होकर भी स्वयं व्यक्तित्व से संपन्न होना चाहिए। प्रेम के संबंध में इन्होंने प्रचलित अर्थ वाले प्रेम को न अपनाकर प्रेम की उदात्तता को स्वीकार कर प्रस्तुत किया है।

मृदुला जी ने भारतीय संस्कृति के अनुरूप मातृत्व को नारी जीवन की सार्थकता माना है। आज की नारी को सलाह देती हैं कि स्त्री को मर्द बनने की लालसा नहीं पालनी चाहिए। मृदुला जी आज की महिलाओं की दशा को सुधारने के लिए तथा उपभोक्तावाद और बाजारीकरण के कारण आए संकटों से उबारने के लिए सत्त प्रयास कर रही हैं। इनकी रचनाओं में एक ओर महादेवी जैसी आस्था के स्वर भी दृष्टिगत होते हैं, तो दूसरी ओर महादेवी जैसी पीड़ा, दु:ख

और करुणा की अनुभूति देखने को मिलती है, तीसरी ओर लोक के प्रति प्रबल विश्वास। नारी को आत्मसंबल का पाठ पढ़ाती इनकी रचनाएँ भारतीय नारी चिंतन को अभिव्यक्त करती हैं। सीता, सावित्री और मंदोदरी आदि भारतीय नारी के चरित्रों में आधुनिक नारी का जीवन संबल तलाशती, इनकी लेखनी धन्य धन्य हो जाती है।

एक तरफ मृदुला जी ने अपनी लेखनी से विकलांगों की समस्या का संवेदनशील-क्रियात्मक निवारण 'ज्यों मेहँदी को रंग' उपन्यास में प्रस्तुत किया, तो दूसरी तरफ भारत के उद्योग व्यवसाय को विश्व पटल पर लाने की दबती इच्छा को व्यक्त कर भारत के चरित्र को तत्कालीन संदर्भों में प्रस्तुत किया 'अतिशय' उपन्यास में। तीसरी तरफ बिहार या फिर कहें भारत के गाँवों के जीवन स्तर और वहाँ के घात-प्रतिघातों, मजदूरों की गुजर-बसर स्थिति-परिस्थितियों को यथार्थ ढंग से प्रस्तुत किया 'घरवास' उपन्यास में और अमलीजामा भी पहनाया 'घरवास' का और लेखनी के इन सब रचनात्मक प्रयोगों से इतर महिला लेखन पर एक नई सोच और लेखन परंपरा का श्री गणेश किया। भारतीय स्त्री के पौराणिक चरित्रों के आत्मकथात्मक उपन्यास लिखकर, आधुनिक भारतीय नारी के लिए सती सावित्री, सीता एवं मंदोदरी के आत्म स्वाभिमान, आत्मसम्बल और चारित्रिक शौर्य को पुनः प्रगट और पुनर्स्थापित किया है उन्हीं की आत्मकथ्यात्मक शैली में सीता, सावित्री एवं मंदोदरी के आत्मकथात्मक उपन्यास लिखकर। वैसे लिखने को तो हिंदी में आत्मकथात्मक उपन्यास संख्या की दृष्टि से बहुतेरे लिखे गए परन्तु महिला लेखन में भारतीय स्त्री के आदर्श पात्रों (सीता, सावित्री, मंदोदरी) के मुँह से अपनी आत्मकथा कहलवाना एक न्यारी और विलग बात है जिसे मूर्त रूप दिया है कथाकार मृदुला सिन्हा ने। ज्यों मेहंदी को रंग मृदुला सिन्हा का पहला उपन्यास है जो विकलांगों के जीवन पर आधारित है। इसमें विकलांगों के प्रति समाज और सामाजिक संस्थाओं का नजरिया वास्तविकता के साथ चित्रित किया गया है। यह रचना विकलांगों को स्वयं अपने प्रति देखने की दृष्टि को विकसित-स्थापित करती है और विकलांगों की एक स्वयंसेवी संस्था की कल्पना कर उनके लिए चतुर्मुखी करणीय-अकरणीय कार्य का भी विचार करती है। एक प्रकार से यह उपन्यास समाज और सामाजिक संस्थाओं को विकलांगों के प्रति एक दिशा दिखाने का सफल प्रयास है। विकलांगों के बारे में स्वयं लेखिका इस उपन्यास की भूमिका में कहती हैं ''कोई आवश्यक नहीं कि इनके लिए कुछ कर गुजरने के लिए बड़ी संस्था बने, बड़े पैमाने पर काम हो। जीवन में एक अंधे की लाठी बन जाना भी पर्याप्त है।''[2] और ऐसा लगता है कि लेखिका ने अपनी इस रचनाधर्मिता को 'अंधे की लाठी' के रूप में प्रस्तुत किया है जोकि इनकी सार्थकता और सोद्देश्यता को भी व्यंजित करता है।

जैनेन्द्र कुमार ने इस उपन्यास पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि ''विकलांगों को आधार बनाकर लिखा गया संभवतः यह हिंदी का प्रथम उपन्यास है। सरकारी और गैर सरकारी प्रयत्नों से भी बढ़कर स्वयं विकलांगों की मानसिकता में परिवर्तन की राह दिखाता यह उपन्यास जीवंत और समाजोपयोगी है। सुपरिचित लेखिका मृदुला सिन्हा की सहज-सरल शैली और विकलांग पुत्र संग-संग जीने से उत्पन्न स्वानुभूति से भरपूर यह उपन्यास पाठकों को अवश्य प्रेरित करेगा। उपन्यास में लेखिका ने विकलांगों की समस्याओं पर बड़ी हृदयस्पर्शिता व मार्मिकता से अपनी कलम चलाई है। इस तरह का यह एक शोधपरक उपन्यास है।[3] डॉ. शुकदेव सिंह ने इस उपन्यास को 'स्वयं के ऊपर बिलखती हुई यातना का दस्तावेज' कहा है। स्वयं लेखिका भी इस बारे में कहती हैं कि ''जिस पर बीत्ती है, वही समझ सकता है और जिस पर बीत्ती है, वह इनके लिए कुछ करता है तो वह स्वाभाविक होता है और उपयोगी भी।''[4]

'ज्यों मेंहंदी को रंग' उपन्यास पर प्रथम शोध कार्य करने वाले डॉ. ओमप्रकाश शर्मा लिखते हैं कि ''इसमें जहाँ एक ओर मानवीय गलतियों से उत्पन्न विकलांगता को और अधिक भयावह बनाने वाले घटकों आत्महीनता, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, परिवार-समाज, की उपेक्षा आदि भावों समग्र अंकन किया है, वहीं विकलांगता के अंतर्गत शरीर-विकृति से बढ़कर खंडित मानसिकता तक को समेटने का प्रयास किया गया है। समाज सेवा और समाज सुधार की भावना से अनुप्रेरित होकर लिखा गया यह उपन्यास विकलांगों की स्वयं की मानसिकता, परिवारजनों की सोच तथा समाज के नजरिये को मानवीयता से परिपूर्ण बनाने का प्रयत्न करता है।''[5]

'घरवास' उपन्यास बिहार के एक गाँव के घात-प्रतिघात, उत्थान-पतन, सामाजिक व राजनीतिक उथल-पुथल पर आधारित बिहार के एक गाँव में एकता के बीज ढूंढता है। इस उपन्यास में बिहार से बाहर पंजाब गए मजदूरों के जीवन में आये परिवर्तन और उस परिवर्तन को गाँव द्वारा स्वीकार्य-अस्वीकार्य को बड़ी सजीवता के साथ उकेरा गया है। राजनीतिक कारणों से जातियों के खेमें में बंटा वह गाँव कैसे एकता के बीज अंकुरित करे, यह उपन्यास का उद्देश्य रहा है।

पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने इस उपन्यास के लोकार्पण के अवसर पर कहा था कि 'यह सच है कि एक समय पंजाब के खेत चंद वहशियों द्वारा रक्त से रंजित किए जा रहे थे, बिहार की नदियों में भी जातिगत हिंसा में मारे गए निर्दोषों की लाशें तैर रही थीं परंतु लेखिका का उद्देश्य महज पंजाब और बिहार की सच्ची कहानियाँ कहना भर नहीं है। इनकी लेखनी ने संपूर्ण भारतीय समाज में भी अनेकता में एकता ढूंढने का प्रयास किया है। ग्रामीण जीवन की विविधताओं और विशिष्टताओं को जीवंत्ता से उकेरा है। घोर अंधकार में प्रकाश ढूंढती यह रचना सराहनीय है। डॉ. ओम प्रकाश शर्मा 'घरवास' उपन्यास पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि ''बिहार प्रान्त की आंचलिक विशेषताओं से परिचित कराता यह उपन्यास अपने गृह प्रदेश में शोषण और दमन से त्रस्त मेहनतकश बिहारी मजदूरों की व्यथा-कथा को प्रस्तुत करता है... यह उपन्यास बिहार और पंजाब की सांस्कृतिक एकता का भी बड़ा अभिनव चित्र उपस्थित करता है।''[6]

भारतीय चिंतन से प्रवाहमान मृदुला सिन्हा ने देवयानी-ययाति के पौराणिक कथ्य को लेकर लिखा है 'अतिशय' उपन्यास, एक पौराणिक कथ्य के अनुसार महर्षि शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी का विवाह होना था, बृहस्पति के पुत्र से। लेकिन हो गया नहुष पुत्र ययाति से। ययाति कामलोलुप और भोगवादी प्रवृत्ति का था। यौवनावस्था में ही वह अपने ससुर के श्राप से बूढ़ा हो जाता है। बुढ़ापे में भी वह काम और भोग की प्रबल कामना से अपने पुत्रों से उनकी यौवनावस्था की माँग कर बैठता है। पुरु अपने पिता ययाति की कामलोलुपता को अपनी यौवनावस्था देकर पूरी भी करता है। परंतु ययाति की काम व भोग की प्रवृत्ति संयमित नहीं हो पाती। इस कथ्य की सच्चाई वर्तमान जीवन में भी दृष्टिगोचर होती है। संयम बनाम भोग की होड़ से नारी चिंतन की दृष्टि से 'अतिशय' उपन्यास में पश्चिम की नारी अवधारणाओं पर भारतीय नारी के सनातन स्वरूप की विजय दिखाई देती है। हाँलाकि कई महिला आलोचक, लेखिकाओं ने नारी के उपेक्षित व दमित स्वरूप पर प्रश्न भी उठाये हैं, डॉ. कुसुम शर्मा नारी के अधिकारों, नारी की उपेक्षा, अवहेलना, दमित स्थिति पर प्रश्न उठाती हुई

कहती हैं ''लेखिका पश्चिम की अवधारणाओं पर भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता व सद्‌गुणों को तो उजागर करना चाहती हैं लेकिन नारी मन की विवशता, पुरुष दंभ से कुचली आहत नारी पर दोहरी जिम्मेदारी डालना चाहती हैं। उपेक्षित जीवनयापन के बाद समाज सुधार, समाज सेवा और अंत में फिर बेचारी शिवानी, शर्मिष्ठा अपने प्रौढ़ यौवन के लिए अपने पति के पास पहुँच जाती है, आखिर क्यों ?''[7]

मृदुला सिन्हा इस प्रश्न का जवाब भारतीय दर्शन-चिंतन पद्धति को आधार बनाते हुए देती हैं ''दरअसल हमारे दर्शन में व्यक्ति को केवल अपने लिए जीने का विधान नहीं है, उसके जीवन से परिवार और समाज भी प्रभावित होता है, व्यक्तिवादी दृष्टिकोण हमारे जीवन दर्शन में नहीं है, जैसे पत्नी पति के लिए और पति पत्नी के लिए। माँ बच्चों के लिए और बच्चे माँ के लिए''[8] इसके आगे भी वे कहती हैं कि स्त्री की पहचान माँ के रूप में ही है। प्रकृति ने उसे माँ की भूमिका में ही सिरजा है। प्रेयसी और पत्नी तो बहाने हैं, मातृत्व प्राप्त करने के रामायण की 'रामकथा' को आधार बनाकर आत्मकथा शैली में सीता माता के मन के भावों को अपनी भाषा से शब्दबद्ध करता 'सीता पुनः बोली' उपन्यास का 2007 में विद्या विहार प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित होता है, इसमें सीता माँ के 'मन' की थाह ली गई है, सीता माँ से जुड़े सभी प्रश्नों को उठाया गया है, नारी की आत्मिक शक्ति के साथ मातृत्व की प्रतिष्ठा की गई है, भारतीय नारी की आचरणशीलता और पतिव्रत धर्म को सीता माँ के शक्ति संपन्न रूप के साथ संजोया गया है। सीता के अंतर्मन में उमड़-घुमड़ रहे कई-कई अनुत्तरित प्रश्नों को मृदुला सिन्हा ने लोकमन के साथ उठाया है, उनका हल भी ढूंढा है- स्वयं लेखिका कहती हैं ''व्यष्टि से समष्टि की ओर ले जाने का प्रयास ही था सीता मन को चाहना, रामकथा के प्रवाह में और थामना।''[9] और आगे कहती हैं ''लोकचित्र में स्थित सीता अबला नहीं है, उनमें बड़ा तेज है, आत्मगौरव है। राम से अटूट संबंध बनाए हुए मात्र निरपेक्ष होने का संकल्प उनके मातृत्व पद से उत्पन्न वैरागी मन की उपज है। मातृत्व भी एक शौर्य भाव है। उनके दर्द और शौर्य को आत्मसात् करने की कोशिश करती रहती हूँ। तभी यह लिखना सहज और संभव हुआ।''[10]

'सीता पुनि बोली' उपन्यास में सीता राम के वनवास मिलने पर अपने संकल्प की दृढ़ता को प्रस्तुत करते हुए कहती है ''आप जब तापस वेश धारण करेंगे तो क्या मैं रानी वेश में सजूँगी। मैं भी तापस वेश में बन जाऊँगी।''[11] पूरे उपन्यास में सीता माँ का चरित्र अपने आत्म स्वाभिमान के शौर्य के साथ प्रदीप्त है। जब राजा राम द्वारा राजधर्म और लोक धर्म का पालन करते हुए सीता का परित्याग हुआ, तब सीता ने अपने आत्मबल के शौर्य से उस स्थिति का भी सामना किया ''लक्ष्मण, मेरे निर्वासन पर वे (राम) आँसू न बहाएँ, क्योंकि मुझे पीड़ा होगी।''[12] सीता का चरित इस उपन्यास में नारी के आत्मिक और चारित्रिक शौर्य को रेखांकित करता हुआ भारतीय स्त्री के आत्मबल और स्वाभिमान को ऊँचाइयाँ प्रदान करता है।

भारतीय पुस्तक परिषद्, नई दिल्ली से 2013 में प्रकाशित 'विजयिनी' उपन्यास सती सावित्री की आत्मकथा के रूप में है जिसमें आधुनिक भारतीय नारियों के लिए आत्मसम्बल खोजने की कोशिश की गई है। भारतीय नारी का आत्मस्वाभिमान, आत्मनिर्णय, स्वावलम्बन, अस्मिता की पहचान आदि बिन्दुओं को इस उपन्यास के द्वारा उकेरा गया है। भारतीय नारी का आदर्श कौन हो? इस प्रश्न के उत्तर स्वरूप लिखा गया है विजयिनी उपन्यास। लेखिका ने इसकी भूमिका में कहा है कि ''सावित्री हमारा इतिहास है। भारतीय नारी की की तेजस्विता का इतिहास। नारी विकास की दशा निर्धारण के समय तो और भी आवश्यक है, सावित्री की निर्णय-स्वतंत्रता के पहलुओं को जानना, समझना और आत्मसात करना।''[13]

'विजयिनी' उपन्यास में सती सावित्री अपने सत और तप से अपने पति सत्यवान की मृत्यु को जीवन में बदल देती है, अपने पति की मृत्यु पर कहती है, संकल्प धारण करती है ''मैं सत्यवान के प्राण वापस लाऊँगी।''[14] और जब यमराज ने सावित्री से कहा कि सत्यवान के प्राण के सिवा मुझसे दूसरा वर माँगों, तब सावित्री ने कहा कि, ''मेरे सास-ससुर अपनी आँखों से (प्रज्ञा चक्षु थे इसलिए) अपने पौत्र-पौत्रियों का मुँह देखें और मैं बलशाली, पराक्रमी, बुद्धियुक्त संतानों को जन्म दे सकूँ।''[15] बस, यही है भारत की स्त्रियों के सत्व, तप, व्रत, संकल्प का शौर्य, जो सती सावित्री जैसी नारियों के जीवन चरित से उदीप्त-प्रदीप्त हो उठता है। ऐसी ही एक ऐतिहासिक कथा की सशक्त महिला पात्र मंदोदरी की वीरता, विद्वता और व्यावहारिकता आधारित जीवन संघर्ष को उकेरकर आज जल, थल, नभ पर कदम रखती युवतियों के लिए आदर्श गढ़ती संवेदनशील लेखनी का प्रयास है- 'परितप्त लंकेश्वरी' उपन्यास।

मंदोदरी एक ओर अपने वीर, विद्वान, अजेय एवं शिवभक्त पति रावण के साथ मिले सुख एवं सौभाग्य पर गर्व करती है, तो दूसरी ओर अपने पति के अंहकारी, क्रूर एवं कामलोलुप स्वभाव को अपने आत्मिक शौर्य से टक्कर देती है। अपने पति को सद्मार्ग पर लाने की जी-तोड़ कोशिश करती रही, चाहे उसे वांछित सफलता नहीं मिल पाई हो। पर मंदोदरी का अपने आत्मबल से सत्य के मार्ग से विचलित नहीं होना ही उसके शौर्य की सबसे बड़ी जीत है। युद्ध में जब रावण की मृत्यु हो जाती है, तब उसके उपरांत सीता को अयोध्या के लिए विदा कराते वक्त मंदोदरी के मुँह से अपने पति के लिए एक ही आकांक्षा निकलती है'' स्वर्गवासी (अर्थात् रावण) की भूलों को क्षमादान दिया जाता है।''[16]

मृदुला सिन्हा ने अपने दादा-दादी, ईआ (माँ) - बाबू जी और सेवक-सेविकाओं से सुनी ई लोककथाओं को 'पुराण और लोक जीवन की कथाएँ' में सँजोया है। ये लोककथाएँ बिहार के ठेठ ग्रामीण जीवन की खुशबू से पाठकों को सराबोर करती हैं। परिवार की सामाजिक समरसता से पाठकों को रू-ब-रू कराती हैं। अतीत की लोकपरंपराओं से वर्तमान को दिशा प्रदान करने के लिए मृदुला सिन्हा इन लोककथाओं को अपने स्मृति पटल से कागज पर अपनी कलम से उतारती हैं, अंकित करती हैं। मनुष्य-मनुष्य के आपसी स्नेहसिक्त व्यवहार को पशु-पक्षी, पेड़-पौधे और खेत-खलिहानों के प्राकृतिक संबंधों को। जिससे आज का मनुष्य अपनी पिछली सदियों के उन्नत एवं सामाजिक समरस ग्रामीण जीवन का दर्शन कर सके।

आत्मकथ्य शैली में अपनी बात कहने का आनंद कुछ और ही होता है और बच्चे जब अपनी कहानी को अपनी शैली में बोलें-लिखें, तो रोचकता कुछ और बढ़ जाती है। इस तरह की कथाएँ संजोयी हैं मृदुला जी ने 'पुराण के बच्चे' में, दूसरे बच्चे भी इस शैली से अधिक प्रभावित प्रेरित होते हैं। पुराणों के दस बच्चों- लव-कुश, ध्रुव, आरूणि, एकलव्य, अर्जुन, नचिकेता की मुँह जुबानी कही दस कथाओं को इसमें रोचकता और सजीवता के साथ पिरोया गया है।

आज भी मृदुला जी का लेखन क्रम सत्त जारी है। चाहे वह स्तंभ लेखन के रूप में हो या विशेष लेखन के रूप में। कई पत्र-पत्रिकाओं में इनके स्तंभ और लेखों को नियमित रूप से पढ़ा जा सकता है। कथा कहानी या लेख जैसे ही इनके मन में बुनने-घुमड़ने लगता है, तो वह या तो किसी पत्र-पत्रिका

के पृष्ठों पर उकरकर अपना रूप धर लेता है, या फिर एक नई किताब के रूप में पाठक समाज के सामने आ जाता है। दिल्ली से प्रकाशित दैनिक समाचार-पत्र 'जनसत्ता' के 'दुनिया मेरे आगे' कॉलम में, 'दैनिक हिंदुस्तान' के 'अनहद' स्तम्भ' के 'संकल्प' कॉलम में और राजस्थान पत्रिका के 'विषयांतर' कॉलम में इनकी लेखनी के मुरीद पाठक जानते हैं कि मृदुला जी अपने लेखों में भी संस्मरण पिरो देती हैं, जो इनके लेखन की न्यारी और अनोखी विशेषता है।

संदर्भ सूची:

1. मुख्य वक्तव्य मृदुला सिन्हा, राष्ट्रीय संगोष्ठी - महिला महीयसी, अखिल भारतीय महिला साहित्यकार सम्मेलन, अजमेर (राज.), 25-27 अक्तूबर, 2015
2. मृदुला सिन्हा, ज्यों मेंहदी को रंग (उपन्यास), प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, भूमिका
3. जैनेन्द्र कुमार, आवरण पृष्ठ, ज्यों मेहंदी को रंग (उपन्यास), प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981
4. मृदुला सिन्हा, ज्यों मेंहदी को रंग भूमिका
5. डॉ. ओम प्रकाश शर्मा, ज्यों मेहंदी को रंग: एक अंतर्गमन, पूजा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ. 30
6. डॉ. ओम प्रकाश शर्मा, ज्यों मेंहदी को रंग: एक अंतर्गमन, पृ. 18
7. मृदुला सिन्हा के साहित्य में नारी चेतना (स्मारिका), संपादक डॉ. मथुरेश नंदन कुलश्रेष्ठ, अखिल भारतीय साहित्य परिषद् राजस्थान, जयपुर, पृ. 17
8. मृदुला सिन्हा, अतिशय (उपन्यास), प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 2003, पृ. 207
9. वही, पृ. 9
10. वही, पृ. 11
11. वही, पृ. 83
12. वही, पृ. 226
13. मृदुला सिन्हा, विजयिनी (उपन्यास), भारतीय पुस्तक परिषद्, नई दिल्ली, 2013, पृ. 10
14. वही, पृ. 136
15. वही, पृ. 147
16. मृदुला सिन्हा, परितप्त लंकेश्वरी, (उपन्यास), प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 230

भारत में नक्सल-आन्दोलन के विभिन्न रूप

प्रो० (डॉ०) रण विजय कुमार

(शोध निर्देशक) सेवानिवृत प्राचार्य, पटना कॉलेज, भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

रवि शंकर कुमार

शोधार्थी, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

भारत में जब से नक्सल आन्दोलन का उद्‌भव हुआ उसके बाद विकास हुआ तब यह आन्दोलन विभिन्न रूप में विकसित हुआ। जैसा कि भारत में नक्सलवादी आन्दोलन पं. बंगाल के दार्जिलिंग जिला के नक्सलबाड़ी नामक गांव से उत्पन्न हुई। यह किसान विद्रोह के गर्भ से उपजा नक्सलवाद टेढ़े-मेढ़े रास्ते से गुजरता हुआ, आज करीब तीन दशक से अधिक समय को पार कर रहा है। इस लम्बी अवधि के दौरान भारतीय राजनीति में उथल-पुथल के कई गंभीर दौर आये हैं, लेकिन नक्सलवादी भी मील का एक पत्थर बना हुआ है। इस बीच भारतीय शासक वर्गों एवं उनके प्रचार माध्यमों के जरिये कई बार नक्सलबाड़ी व नक्सलवाद को मृत घोषित किया है, लेकिन नक्सलबाड़ी न केवल जिन्दा है, बल्कि पहले से कहीं ज्यादा प्रभावशाली हो चुका है।[1] वर्तमान समय में नक्सलबाड़ी की चिनगारी देश के कोने-कोने में फैल चुकी है। उदाहरण स्वरूप बिहार, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, कर्नाटक और कमोबेश हर राज्य में यह अन्दोलन फैल चुका है।

आमतौर पर लोग यह समझते हैं और इनमें नक्सलवादी आन्दोलन से सहानुभूति रखने वाले लोग भी शामिल हैं कि नक्सलवादी आन्दोलन में टूट व बिखराव की वजह है-मजदूरी बढ़ाने, जमीन, तालाब वगैहर पर अधिकार जैसे सवालों पर ग्रामीण जनता को न्याय हासिल करने- कराने के प्रतियोगी दावे-वादे। ऐसे लोगों की राय में नक्सलवादी आन्दोलन में टूट व बिखराव की वजह ये है कि विभिन्न गुट एक ही इलाके में अपना वर्चस्व कायम करने की कोशिश में लगे हैं। इसीलिए आन्दोलन बिखरता जा रहा है और विभिन्न ग्रुप, आपसी हिंसा और जवाबी हिंसा की कार्रवाई में लगे हैं।[2]

आन्दोलन में टूट की शुरुआत दरअसल वहीं से शुरू हो गई जब 1968 में कम्युनिस्ट क्रांतिकारी इकट्ठा हुए और एक अखिल भारतीय पार्टी बनाने की बात हुइ। 22 अप्रैल, 1969 से चारू मजुमदार की लाइन पर कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के बीच एकता बनी और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) यानी भाकपा (माले) का गठन हुआ।[3] 15-16 मई, 1970 को भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) का प्रथम अखिल भारतीय काँग्रेस हुयी। चारू मजुमदार प्रथम महासचिव निर्वाचित हुए।

28 जुलाई, 1974 को केन्द्रीय कमिटी पुर्नगठित की गई। इसके महासचिव सुब्रत दत्त उर्फ जौहर हुए। भाकपा (माले) लिबरेशन गुट नाम रखा गया। विनोद मिश्र और रघु भी नई केन्द्रीय कमिटी के सदस्य हुए। 29 नवम्बर, 1975 को भोजपुर के जिला के बाबूबांध गाँव (सहार अंचल) में पुलिस मुठभेड़ में जौहर मारे गए।[4]

भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) लिबरेशन- सुब्रत दत्त की मृत्यु होते ही लिबरेशन गुट के महासचिव विनोद मिश्र हुए। 6-8 फरवरी, 1976 को दूसरी अखिल भारतीय काँग्रेस हुई। पुनः विनोद मिश्र महासचिव नियुक्त हुए। तीसरे और चौथे काँग्रेस में भी विनोद मिश्र महासचिव हुए। दिसम्बर 1992 में लिबरेशन गुट का संपन्न पाँचवी काँग्रेस में भी विनोद मिश्र महासचिव हुए। पाँचवीं काँग्रेस शुरू होने से पूर्व तक लिबरेशन गुट अर्द्ध गुप्त थी लेकिन पाँचवीं काँग्रेस के समापन के बाद बिग्रड मैदान, कलकत्ता में विशाल रैली का आयोजन किया गया और पूरी केंद्रीय कमिटी खुले मंच पर आई। महासचिव विनोद मिश्र ने पहली बार खुले रूप में भाषण दिया। वर्तमान में दीपांकर भट्टाचार्या महासचिव हैं।[5]

सी. ओ. सी. सी. पी. आई. (एम.एल.) (पार्टी यूनिटी)- 1977 के बाद जेल से बाहर आने पर सी. पी. आई. (एम. एल.) के कुछ सदस्यों ने अलग से पार्टी बनाने का निर्णय लिया। ये लोग 1975 में महादेव मुखर्जी से अलग हो गए थे[6] और 1979 के आरंभ में पार्टी यूनिटी, सी. पी. आई. (एम. एल.) नामक एक ग्रुप का गठन किया। उन्होंने 'पार्टी यूनिटी' नाम से एक पत्रिका की भी शुरूआत की। उनकी प्रारंभिक घोषणा यह थी कि वे कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों की लम्बी सूची में एक और नाम नहीं जोड़ना चाहते हैं, बल्कि ये उन सबों की एकता के लिए एक मंच मुहैया करना चाहते हैं। बाद में यह ग्रुप एक अन्य ग्रुप के साथ विलय कर गया और उन दोनों ने मिलकर यूनिटी आर्गेनाइजेशन, सी. पी. आई. (एम. एल.) का गठन किया। 'पार्टी यूनिटी' इस संयुक्त संगठन का मुख्य पत्र बना रहा। 1981 में, यूनिटी आर्गेनाइजेशन ने शर्मा के नेतृत्व वाले सी. ओ. सी. के साथ विलय करके सी. ओ. सी. (पार्टी-यूनिटी) का गठन किया। 'पार्टी-यूनिटी' इसके मुख्य पत्र के रूप में बरकरार रहा।[7]

माओवादी कम्युनिस्ट केंद्र (एम. सी. सी.)-ऑल इंडिया कोऑर्डिनेशन कमिटी ऑफ कम्युनिस्ट रिवोल्यूशनरीज में कुछ ऐसे क्रांतिकारी ग्रुप थे जो 1969 में सी. पी. आई. (एम. एल.) में शामिल नहीं हुए थे। एम. सी. सी. उन्हीं में से एक है जिसका नेतृत्व उस समय अमूल्य सेन करते थे। वे लोग उस समय

कोई पार्टी गठित कर लेना अनुचित समझते थे। एम. सी. सी. एक भूमिगत संगठन है। पं. बंगाल और बिहार के कुछ हिस्सों में मुख्यत: किसानों के बीच इसका काम है।[8]

केन्द्रीय कमिटी, एम. पी. आई. (एम. एल.) पीपुल्स वार- चारू मजुमदार की मृत्यु (1972) के बाद आंध्रप्रदेश राज्य कमिटी के सदस्यों ने शर्मा के साथ मिलकर सेन्ट्रल ऑर्गेनाइजेशन कमिटी (सी. ओ. सी.) का निर्माण किया। लेकिन, सी. ओ. सी. अखिल भारतीय केन्द्र के रूप में विकसित नहीं हो सका और के सीतारमैय्या के नेतृत्व में ए. पी. एस. सी. स्वतंत्र ढ़ँग से काम करने लगा। 1980 में उनलोगों ने कोठान्डरमन के नेतृत्व वाले तमिलनाडु राज्य कमिटी के एक हिस्से के साथ मिलकर केन्द्रीय कमिटी सी. पी. आई. (एम. एल.) 'पीपुल्स वार' का गठन किया।[9] सीमारमैय्या इसके महासचिव चुने गऐ। 'पीपुल्स वार' इस गुट की गोपनीय पत्रिका है।

यू. सी. सी. आर. आई. (एम. एल.)- 1969 में सी. पी. आई. (एम. एल.) के गठन के समय कुछ कम्युनिस्ट क्रांतिकारी ग्रुप इसकी परिधि के बाहर ही रहे, क्योंकि उनके विचार से उस समय पार्टी गठन की अवस्था परिपक्व नहीं हुई थी। पश्चिम बंगाल और आंध्रप्रदेश में इन शक्तियों ने खुद को क्रमश: डब्ल्यू. वी. सी. सी. तथा ए. पी. सी. सी. सी. आर. में संगठित किया। ए. पी. सी. सी. सी. आर. 1972 में टूट गया क्योंकि सी. पी. रेड्डी के नेतृत्व वाला ग्रुप संगठन से अलग हो गया और अंतत: एस. एन. सिंह के नेतृत्व में चलने वाली केंन्द्रीय कमिटी सी. पी. आई. (एम. एल.) में शामिल हो गया। टी. नागी रेड्डी के नेतृत्व में ए. पी. सी. सी. सी. आर. के अन्य लोग मणि गुहा के नेतृत्व वाले डब्ल्यू वी. सी. सी. आर. के साथ शामिल हो गये और उनलोगों ने 1974 में यू. सी. सी. आर. आई. (एम. एल.) का गठन किया। टी. नागी रेड्डी इस संगठन के महासचिव बने।[10]

संतोष राणा के नेतृत्ववाली पी. सी. सी. पी. आई. (एम. एल.)- 1977 के अंत में सत्यनारायण सिंह के नेतृत्ववाली केन्द्रीय कमिटी और भास्कर नंदी के नेत्त्ववाली यूनिटी कमिटी ने आपस में विलय करके अस्थायी केंद्रीय कमिटी, सी.पी.आई. (एम.एल) का गठन किया जबकि सी.पी. रेड्डी 1974 में ही एस.एन. सिंह के नेतृत्ववाली केन्द्रीय कमिटी में शामिल हो चुके थे।11 1979 के उत्तरार्द्ध में पी. सी. सी. दो हिस्सों में टूट गया। एक हिस्सा सी. पी. रेड्डी के नेतृत्व में तथा दूसरा एस. एन. सिंह के नेतृत्व में चला गया।

रामचन्द्रन के नेतृत्ववाली केन्द्रीय कमिटी, सी. पी. आई. (एम. एल.)- पी.सी.सी. में 1979 के विभाजन के बाद, 1980 में आयोजित स्पेशल काँग्रेस से सी. पी. आर. के नेतृत्ववाली केन्द्रीय कमिटी निर्वाचित हुई। 1984 में केन्द्रीय कमिटी के सदस्य और आंध्रप्रदेश राज्य कमिटी के सचिव पैय्यला वासुदेन राव संगठन से अलग हो गये तथा आंध्रप्रदेश राज्य कमिटी ऊपर से नीचे तक टूट गई, जिसमें राज्य कमिटी के अधिकांश लोग उनके पक्ष में चले गये। शीघ्र ही उनलोगों ने सामानान्तर पत्रिकाएँ प्रकाशित करनी शुरू कर दी और आंध्रप्रदेश में जनसंगठन भी विभाजित हो गये। सी. पी. रेड्डी की मृत्यु के बाद सचिव पर पैय्यला वासुदेव राव के अलग होने से सम्बन्धित मुद्दों को लेकर भाईजी और मणि चक्रवर्ती (केन्द्रीय कमिटी के सदस्यगण) भी संगठन से अलग हो गये। केन्द्रीय कमिटी के इन दो सदस्यों ने पी. वी. राव के नेतृत्ववाली राज्य कमिटी के अन्य सदस्यों तथा बलदेव सिंह, के. डी. सेठी, रामचंद्रन, फणि बागची आदि ने रामचन्द्रन को अपना महासचिव निर्वाचित किया।[12]

नक्सली संगठनों में एकता के प्रयास-फरवरी 81 के अखबारों में खबर छपी कि 30 जनवरी से दो फरवरी तक कलकत्ता में 13 नक्सली गुटों की एक बैठक हुई जिसने एक संयुक्त आह्वान किया। आह्वान पत्र पर ए के विश्वास (यूनाइटेड कम्युनिस्ट रिवोल्यूशनरी) गुट, उत्तर प्रदेश, पार्थ चौधरी (यू. सी. सी. आर. आई. शांति राय) गुट, विजय कुमार (रिआर्गेनाइजेशन कमिटी), शोम (माओवादी कम्युनिस्ट सेंटर), गोविंद (यूनिटी आर्गेनाइजेशन), ए. के. राय (सी. ओ. सी.), दीपक राय (पश्चिम बंगाल राज्य समिति), घनपाल (तमिलनाडु राज्य समिति), ध्रुव चौधरी (पी. सी. सी., सत्यनारायण सिंह) गुट, के. जी. सत्यमूर्ति (पीपुल्स वार-सीतारमैया) गुट, निर्मलाचंद (पुल्ला रेड्डी) गुट और रघु (लिबरेशन) गुट के दस्तख्त थे।[13]

विभिन्न ग्रुपों में बहस के कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे- अभी सारे नक्सलवादी ग्रुपों के बीच अनुभवों के इकट्ठा करने की प्रक्रिया चल रही है। उनसे सबक सीखने की कोशिश हो रही है आज नक्सलबाड़ी आंदोलन जिन वैचारिक, सैद्धान्तिक व सांगठनिक सवालों से जूझ रहा है, उनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं।

विचारधारा का सवाल- वैसे तो प्राय: सभी संगठन मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा को अपना गाइड लाइन मानते हैं। कुछ लिन प्याओ एवं तेंग सियाओ पिंग की पूँजीवादी विचारधारा का समर्थन करते हैं।[14]

समाजवाद के बारे में- कुछ संगठनों के अनुसार आज दुनिया में कोई भी समाजवादी देश नहीं है और साम्राज्यवादी खेमा व समाजवादी खेमा के बीच का बुनियादी अंतरविरोध समाप्त हो गया है, लेकिन कुछ संगठन जिनमें पीसीसी नई पहल, रेड फ्लैग प्रमुख हैं अभी भी चीन, वियतनाम या क्यूबा के समाजवाद को असली समाजवाद की संज्ञा देते हैं। कुछ संगठन, जिनमें रामचन्द्रन ग्रुप, पीपुल्स वार, पार्टी यूनिटी साम्राज्यवादी खेमा व समाजवादी शक्तियों के बीच के अंतरविरोध को ही एक बुनियादी अंतरविरोध मानते हैं।[15]

तीन दुनिया के सिद्धान्त के बारे में- चीन ने यह सिद्धांत पेश किया था। आज भी कई नक्सलवादी संगठन इसे 'साम्राज्यवाद व अतिमहाशक्तियों' से लड़ने का एक मार्गदर्शक सिद्धान्त मानते हैं जबकि कई ग्रुप इसे चीन के संशोधनवादियों द्वारा इसे वर्ग समझौतावादी सिद्धांत मानते हैं।[16]

विश्व में साम्राज्यवादी विचारधारा और उसके खतरा मंडराने के संदर्भ में-आज मुख्यत: अपने अंदरूनी कारणों से सोवियत संघ का विघटन हो गया है, लेकिन कुछ संगठन जिनमें नई शक्ति, रेड फ्लैग प्रमुख हैं वे अभी भी इसे एक अति महाशक्ति के रूप में मानते हैं। कुछ संगठनों का मानना है कि सोवियत रूस के विघटन के याद विश्व में केवल अमेरिकी अतिमहाशक्ति बची हुई है, जो विश्व की जनता का सबसे बड़ा दुश्मन है। हालांकि इस अतिमहाशक्ति के खिलाफ जर्मनी, जापान जैसे नये ध्रुवों का उदय हो रहा है। कई संगठन बहुध्रुवीय दुनिया के अस्तित्व की वकालत कर रहे हैं। अधिकांश नक्सलवादी समूहों की मान्यता है कि साम्राज्यवाद लगातार स्थायी संकट व सम्पूर्ण विघटन की ओर बढ़ रहा है। साम्राज्यवाद उतार-चढ़ावों के साथ एक नियादी संकट, जिसका चरित्र सर्वव्यापी है, के दौर में है और उसमें अभी भी पुर्नसंगठन की क्षमता है। हालांकि वह हर पुनसंगठन के बाद और अधिक गहरे संकट में फँसता जा रहा है।

दलाल नौकशाह पूँजीपति के चरित्र के बारे में- कुछ नक्सलवादी ग्रुप इस वर्ग को साम्राज्यवाद की कठपुतली के रूप में पेश करते हैं, जबकि अन्य नक्सलवादी संगठनों का मानना है कि इसकी एक विशिष्ट पहचान है और यही वह वर्ग है, जो एक ओर साम्राज्यवादी अन्तरविरोध का इस्तेमाल कर इस या उस साम्राज्यवादी/अतिमहाशक्तियों से गठजोड़ और दूसरी ओर जमीन्दारों से साठ-गाँठ करने में मुख्य भूमिका अदा करता रहा है। इसके अलावे मोल-तोल की क्षमता (साम्राज्यवाद के समक्ष) रखने वाला, भारत का दलाल नौकरशाह पूँजीपति वर्ग अपने चरित्र में विस्तारवादी भी है।[17]

पार्टी एकता के बारे में- तमाम नक्सलवादी संगठन यह स्वीकार करते है कि भारत की नवजनवादी क्रांति को सफल करने के लिए मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा से लैस एक एकताबद्ध व मजबूत कम्युनिस्ट पार्टी की आवश्यकता है लेकिन उनका मानना है कि ऐसी पार्टी आनन-फानन में नहीं बनाई जा सकती है।[18] वर्तमान समय में कुछ ग्रुप उन क्रांतिकारी ग्रुपों को एकताबद्ध करने पर जोर देना चाहते हैं जो समान रणनीतिक-सांगठनिक कार्यनीति (मसलन, दीर्घकालीन लोकयुद्ध, शुरू से ही हथियारबंद संघर्ष, चुनाव बहिष्कार व गुप्त पार्टी आदि) पर दृढ़तापूर्वक अमल करते है। और वाम व दक्षिणपंथी गलतियों-भटकाव से सबक लेकर अपने को दुरूस्त करने की क्षमता रखते हैं। इन 'ग्रुपों' का मानना है कि हमारे देश में गैर-सैद्धान्तिक एकता के कई असफल प्रयोग हुए हैं, लेकिन इसके बावजूद आज भी कई 'ग्रुप' मात्र रणनीतिक सवालों पर आम सहमति की बुनियाद पर पार्टी एकता का महत्वपूर्ण कार्य भार को पूरा करने की सोच से ग्रसित हैं।

अधिकांश नक्सलवादी ग्रुप यह आशा करते हैं कि उपर्युक्त वैचारिक, सैद्धान्तिक व कार्यनीतिक मसलों पर सही दृष्टिकोण अपना सके, तो निश्चय ही क्रांतिकारी आंदोलन में एक नया उभार आ सकता है और नक्सलबाड़ी की राह पर चलते हुए नवजनवादी क्रांति की मंजिल की ओर कुछ कदम आगे बढ़ा जा सकता है।

संदर्भ

1. संजीव, नक्सलबाड़ी की राह पर, सी. पी. आइ. (एम. एल.) पार्टी यूनिटी, बिहार राज्य सांगठनिक कमिटी द्वारा प्रकाशित, 1996, पृ.-47
2. वही, पृ.-12
3. दूबे, अभय कुमार, क्रांति का आत्मसंघर्ष, नक्सलवादी आन्दोलन के बदलते चेहरे का अध्ययन, विनय प्रकाशन, पृ.-7, 168
4. राय, घनश्याम, नक्सलवादी आन्दोलन में महिलाएँ, प्राच्य प्रकाशन, पटना, 2009, पृ. 43
5. वही,
6. वही, पृ.-44
7. वही
8. वही, पृ.-45
9. वही, पृ.-47
10. वही, पृ.-48
11. वही, पृ.-49
12. वही, पृ.-50
13. दुबे, अभय कुमार, पूर्वोक्त, पृ.-263
14. जावेद, सोहेल, द नक्साइट मूवमेंट इन इंडिया, एशोसिएटेक पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1979, पृ.-35
15. घोष, शंकर, द नक्साइट मूवमेंट: ए माओइस्ट एक्सपेरीमेंट, फर्मा के लिए मुखोपाध्याय, कलकत्ता, 1995, पृ.-63
16. संजीव, पूर्वोक्त, पृ.-12
17. पाण्डेय, सच्चिदानंद, नक्सल वायलेंस, सोशियो पोलिटिकल स्टडी, चाणक्या पब्लिकेशन, दिल्ली, 1985, पृ.-69
18. राय, घनश्याम, पूर्वोक्त, पृ.-62

पंजाब के पटियाला जिले में फूलों की खेती में विपणन की समस्याएं

जसप्रीत कौर

शोधकर्ता, अर्थशास्त्र विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, पंजाब

सार

पंजाब में फूलों की खेती कई तरह की मार्केटिंग समस्याओं से जूझ रही है। यहां विपणन समस्याओं की पहचान करने के लिए राज्य के पटियाला जिले में एक शोध अध्ययन किया गया है। इस शोध अध्ययन में अध्ययन के उद्देश्य को पूरा करने के लिए आठ प्रखंडों के 32 नमूना गांवों/कस्बों/शहरों से फूलों का उत्पादन करने वाले 119 किसानों का नमूना लिया गया है। पंजाब राज्य के पटियाला जिले के पटियाला, राजपुरा, नाभा, समानाए भुनेरहेरी, पटरण, घनौर और सनौर इसमें शामिल है। यह पाया गया है कि उच्च स्तर की भंगुरता, असंगठित बाजार, बड़ी संख्या में बिचौलियों, न्यूनतम समर्थन मूल्य और भंडारण सुविधा की कमी, दूरस्थ बाजार के लिए दृष्टिकोण, ग्रेडिंग और मानकीकरण, प्रसंस्करण उद्योग और एकता और संगठित कौशल जैसी विपणन बाधाएं पंजाब के साथ-साथ पटियाला जिले में फूलों की खेती की धीमी वृद्धि के लिए जिम्मेदार हैं।

मुख्य शब्दः फूल, समस्याएं, मार्केटिंग, किसान।

परिचय

कृषि विपणन गतिविधि कृषि और गैर.कृषि क्षेत्रों के बीच की कड़ी है। यह एक आर्थिक प्रक्रिया है जिसके तहत कृषि वस्तुओं का आदान-प्रदान किया जाता है। कृषि उत्पाद के विपणन को कृषि का एक अभिन्न अंग माना जाता है, क्योंकि एक कृषक को अधिक निवेश करने और उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। कृषि में विपणन की प्रक्रिया कृषि उत्पादों के मूल्य को पैसे के संदर्भ में निर्धारित करती है और उन्हें अंतिम उपभोक्ता तक पहुंचाती है। घरेलू और निर्यात बाजार में फूलों की बढ़ती मांग के लिए फूलों की खेती के विकास के लिए सरकार के साथ-साथ निजी उद्यमियों की ओर से एक केंद्रित प्रयास की आवश्यकता है। फूलों की विपणन प्रणाली को इस तरह से डिजाइन किया जाना चाहिए ताकि निर्माताओं के प्रयास को उचित इनाम दिया जा सके। लेकिन पटियाला जिले में कई समस्याओं के कारण फूलों की मार्केटिंग व्यवस्था कारगर नहीं है। कमीशन एजेंटों और असंगठित बाजार की भागीदारी का विपणन दक्षता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अन्य बाधाएं जागरूकता की कमी, बिचौलियों द्वारा शोषण, निर्यात बाधाएं आदि हैं।

(एस. बोस, 2013), कुमारी, एट. अल. (2016) अपने अध्ययन में "हिमाचल प्रदेश, के सोलन जिले में फूलों की खेती में विपणन समस्याओं और चुनौतियों के प्रति किसानों की धारणा" शीर्षक से इस बात पर प्रकाश डाला गया कि किसानों में फूलों के परिवहन के बारे में अधिकतम जागरूकता थी, हालांकि उन्होंने ग्रेडिंग, मानकीकरण के बारे में सबसे कम जागरूकता दिखाई। और फूल किसानों के सामने श्रम और रोपण सामग्री की अनुपलब्धता, उच्च परिवहन लागत और बाजार की जानकारी की कमी थी।

ओलियारासनेत अल. (2018) ने "तमिलनाडु में हाई-टेक कट फ्लावर ग्रोअर्स के उत्पादन और विपणन बाधाओं" शीर्षक से अध्ययन किया, जिसमें पाया गया कि बाजार के बिचौलियों द्वारा देर से भुगतान, व्यापारियों के बीच कार्टेल के कारण फूलों की असंतोषजनक कीमत के बाद कीमतों में उतार-चढ़ाव सबसे आम समस्या थी। बाजार की आसूचना और सूचना, परिवहन की उच्च लागत, अनुपयुक्त बाजार, स्थानीय बाजार की अनुपलब्धता और शेल्फ जीवन को बढ़ाने के लिए अपर्याप्त शीत भंडारण सुविधाओं के बारे में अनभिज्ञता थी ।

मौ (2012) ने अपने पेपर "बांग्लादेश के फूल उत्पादन और विपणन प्रणाली की लाभप्रदता" में निष्कर्ष निकाला कि फूलों की खेती बांग्लादेश में सब्जियों की खेती की तुलना में अधिक लाभदायक थी। लेखक ने सुझाव दिया कि सरकारी और गैर-सरकारी एजेंसियों को किसानों और व्यापारियों के प्रशिक्षण, उत्पादन सहायता, भंडारण सुविधा, आवश्यक बुनियादी ढांचे के लिए प्रभावी प्रयास करने चाहिए और बाजार सूचना प्रणाली, ऋण और पैकेज नीतियों में सुधार करना चाहिए ताकि फूलों की खेती संतुलित हो सके।

अनुसंधान क्रियाविधि

अध्ययन के उद्देश्य को पूरा करने के लिएए फूल पैदा करने वाले 119 किसानों का नमूना आठ ब्लॉकों के 32 गांवों/कस्बों/शहरों से लिया गया है। इस अध्ययन में पंजाब राज्य के पटियाला जिले के पटियाला, राजपुरा, नाभा, समाना, भुनेरहेरी, पटरण, घनौर और सनौर शामिल है।

परिणाम और चर्चारू प्रमुख विपणन समस्याओं को चित्र-1 में ग्राफ के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

चित्र-1- पटियाला जिले में विपणन समस्याओं का ग्राफिक प्रतिनिधित्व

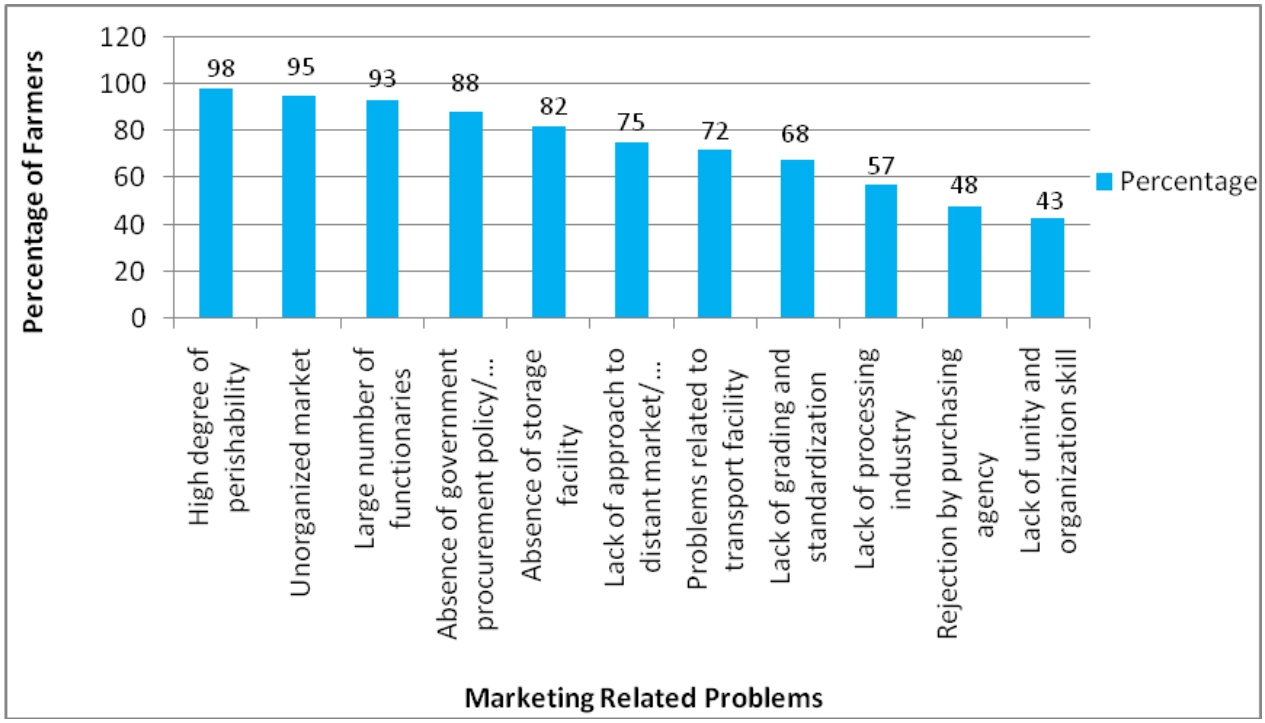

चित्र-1 में वर्ष 2015-16 में पटियाला जिले में फूलों के विपणन में समस्या का सामना कर रहे किसानों के प्रतिशत को दर्शाया गया है। यहाँ नमूना किसानों के उच्चतम अनुपात की पहचान की गई है, यानी 98 ने फूलों की खराब होने वाली प्रकृति के बारे में शिकायत की है। कुल किसानों में से लगभग 95 प्रतिशत ने पटियाला जिले में फूलों के असंगठित बाजार की समस्या की सूचना दी है। इसलिए किसानों को फूल बिना किसी नीलामी के थोक विक्रेताओं और खुदरा विक्रेताओं को बेचना पड़ा। सैंपल लिए गए किसानों के एक बड़े हिस्से यानी 93 प्रतिशत ने पटियाला जिले में फूलों के विपणन में बड़ी संख्या में बिचौलियों की समस्या को उजागर किया है। सर्वेक्षण में यह भी सामने आया कि फूलों को लेकर कोई सरकारी खरीद नीति नहीं है। यह अनुमान लगाया गया है कि कुल किसानों में से 88 प्रतिशत फूलों की कीमत में अस्थिरता से पीड़ित थे और उन्होंने सरकारी खरीद नीति की मांग की। फूलों के खराब होने की प्रकृति के कारण उनकी ताजगी, गुणवत्ता, बनावट और जीवन काल को बनाए रखने के लिए कोल्ड स्टोरेज सुविधाएं बहुत आवश्यक हैं।

कोल्ड स्टोरेज सुविधा की आवश्यकता को कुल किसानों में से 82 प्रतिशत ने समझा है। सर्वेक्षण में यह भी पता चला कि सरकारी एजेंसियों के माध्यम से स्थानीय और दूर के बाजार में कीमतों के बारे में जानकारी या जागरूकता नगण्य पाई गई थी। इस समस्या का उल्लेख फूलों के कुल किसानों में से 75 प्रतिशत ने किया था। सर्वेक्षण के दौरान कुल 72 प्रतिशत किसानों द्वारा पर्याप्त परिवहन सुविधा न होने की समस्या को समझाया गया था। परिवहन के साधन जो उत्पादकों को किराए पर लेने पड़ते थे, वे बहुत महंगे थे। यह पाया गया है कि पटियाला जिले में फूलों की वैज्ञानिक ग्रेडिंग का कोई प्रमाण नहीं होने के कारण कुल किसानों में से 68 प्रतिशत फूलों की ग्रेडिंग और मानकीकरण प्रणाली में सुधार करना चाहते थे। पटियाला जिले में प्रसंस्करण उद्योग की भी कमी पाई गई थी जोकि किसानों के लिए आय बढ़ाने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। पटियाला जिले में छोटे स्तर पर गुलाब जल और गुलाब सीरप बनाने वाले केवल दो उत्पादक हैं।

सर्वेक्षण के दौरान यह पता चला है कि फूलों की खराब होने वाली प्रकृति और उचित ग्रेडिंग सिस्टम की कमी के कारण क्रय एजेंसी ने किसानों की उपज को अस्वीकार कर दिया। क्रय एजेंसी द्वारा अस्वीकृति की समस्या कुल किसानों के 48 प्रतिशत द्वारा बताई गई थी। इसके अलावा, 43 प्रतिशत किसानों में पाया कि पटियाला जिले में कृषक समुदाय के बीच एकता और संगठन कौशल की कमी थी, जो चयनित उत्पादकों के बीच क्लस्टर समूहों और सहकारी समितियों के गठन में एक बड़ी समस्या साबित हुई थी।

उपसंहार:

विपणन बाधाएं जैसे उच्च स्तर की नाशता, असंगठित बाजारए बड़ी संख्या में बिचौलिए, न्यूनतम समर्थन मूल्य और भंडारण सुविधा की कमी, दूरस्थ बाजार तक पहुंच, ग्रेडिंग और मानकीकरण, प्रसंस्करण उद्योग और एकता और संगठित कौशल की कमी, जो फूलों की खेती की सुस्त वृद्धि के लिए जिम्मेदार हैं। पंजाब के साथ-साथ पटियाला जिले में भी राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड और बागवानी विभाग, पंजाब में फूलों के उत्पादन और उपज को प्रोत्साहित करने और विपणन प्रणाली में सुधार के लिए योजनाएं शुरू की हैं। निस्संदेह, इन योजनाओं की सफलता उचित क्रियान्वयन पर निर्भर करती है, जिसके लिए सरकार की भागीदारी बहुत आवश्यक है।

संदर्भ सूची:

बोस, एस. (2013), कर्नाटक में फूलों का विपणन: बुनियादी ढांचा, प्रणाली और अर्थशास्त्र, राष्ट्रीय कृषि विपणन संस्थान (भारत सरकार का एक संगठन) जयपुर, राजस्थान।

कुमारी, एम., पी. मेहता और के. के. रैना (2016), हिमाचल प्रदेश, भारत के सोलन जिले में फूलों की खेती में विपणन समस्याओं और चुनौतियों के प्रति किसानों की धारणा, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इकोनॉमिक प्लांट्स, 3 (4), 143-149.

एमओ, एनएच (2012), बांग्लादेश के फूल उत्पादन और विपणन प्रणाली की लाभप्रदता, कृषि अनुसंधान का बांग्लादेश जर्नल, 37 (1), 77-95.

ओलियारासन, एस., एस.डी. शिवकुमार और के. महेंद्रन (2018), तमिलनाडु में हाई-टेक कटे हुए फूल उत्पादकों के उत्पादन और विपणन की कमी, कृषि विज्ञान और अनुसंधान का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, 8 (3), 113-118.

कवि 'वीर' कृत जंबूसामिचरिउ का आलोचनात्मक अध्ययन

राजीव कुमार

शोध छात्र स्नातकोत्तर, प्राकृत एवं जैनशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

डॉ० दुधनाथ चौधरी

शोध निर्देशक सह अध्यक्ष, स्नातकोत्तर प्राकृत एवं जैनशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

जंबूसामिचरिउ के रचयिता महाकवि वीर हैं। वैसे महाकवि वीरके पूर्व जंबूस्वामीचरित की कथावस्तु संघदासगणि ने वसुदेवहिंडी में कथा की उत्पत्ति नामक प्रथम प्रकरण में, गुणभद्र ने उत्तरपुराण के छिहत्तरवें पर्व में तथा कवि गुणपाल ने गद्य-पद्य मिश्रित शैली में रचित प्राकृत जंबूचरियं में ग्रथित की है। पुष्पदंत ने अपभ्रंश महापुराण के उत्तर खंड में सौवीं संधि में 'जंबूसामि-विषवण्णणं' में पूर्ण रूप से गुणभद्र का ही अनुकरण किया है। न आचार्यों ने नायक को प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित कर तदनंतर उसकी भव - परंपरा प्रस्तुत की है। पर वीर कवि ने विधुन्माली देव के चमत्कार से आकृष्ट हो श्रेणिक - द्वारा उसके पूर्वभावों को जानने की जिज्ञासा व्यक्त करायी है। अत: कवि ने प्रारंभ में ही यह दिखलाने का सफल प्रयास किया है कि सर्वसाधारण विषयासक्त मनुष्य भी साधना के बल से भगवत्पद को प्राप्त कर सकता है। आत्मा परमात्मा है, पर उसकी यह शक्ति अप्रकअित है। इसे प्रकाश में लाने के लिए पुरूषार्थ अपेक्षित है। इस तथ्य को मन में निहित रखकर ही कवि ने नायक का उत्तरोत्तर विकास दिखलाया है। अत: अध्यात्मिक साधना की व्यंजना उत्तरोत्तर वर्द्धमान है।

जैन साहित्य की ऐतिहासिक परम्परा भगवान महावीर से प्रारंभ होती है, जिनका निर्वाणकाल भारतीय इतिहास, साहित्य एवं संस्कृति स्वदेशों एवं विदेशी लगभग सभी विद्वान् अब एक मत से 527 ई0 पूर्व अथवा 470 वि0 पूर्व मानते है। भगवान महावीर के पश्चात् उनके प्रमुख गणधर इंद्रभूति गौतम का नाम आता है। वि0पू0 470 में कार्तिक कृष्ण अमावस्या को प्रात: काल महावीर का निर्वाण हुआ, उसी दिन संध्याकाल में गौतम को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। बारह वर्ष तक केवली रूप से धर्मोपदेश देते रहकर जिस दिन गौतम निर्वाण को प्राप्त हुए, उसी दिन महावीर के दूसरे प्रधान शिष्य सुधर्मा को कैवल्य की प्राप्ति हुई और ये बारह वर्षों तक संघ के प्रधान रूप से धर्मोपदेश देते हुए विचरण कर निर्वाण को प्राप्त हुए। उसी दिन सुधर्मा के प्रमुख शिष्य जंबू केवली पद को प्राप्त हुए, तथा जैन श्रमण संघ के प्रधानाचार्य अथवा कुलपति बने और अड़तीस वर्षों तक जैन धर्म व श्रुतका प्रचार - प्रसार करते रहकर वि0पू0 408 (ई0पू0 465) में निवार्णगामी हुए। ये ही जंबू प्रस्तुत चरित के नायक जंबू स्वामी हैं। जैन परंपरा में इन्हें अंतिम केवली माना जाता है, तथा ये एवं इनकी शिष्यसंतति के द्वारा ही भगवान महावीर के उपदेशों की अर्द्धमागधी जैनागम के रूप में सुरक्षा हो सकी यह ऐतिहासिक सत्य है। इस कारण जैन पम्परा में जंबूस्वामी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वीर नि0 के बीस वर्ष पश्चात् सुधर्मा और सुषर्मा के निर्वाण जाने के उपरांत चवालीस वर्षों तक केवलज्ञानी रूप से धर्मोपदेश देते हुए विचरण करते रहकर जंबूस्वामी मोक्षको गये।[2] इस प्रकार वी0नि0 के चौंसठ वर्षों तक तीन केवल ज्ञानियों की यह परंपरा अविच्छिन्न रूप से चली। जंबूस्वामी के बाद इनके समकालीन गुरूबंधु प्रभव, जिन्हें दिग आम्नाय के साहित्य में विधुच्चर नाम से जाना जाता है, और जो हमारे चरित काव्य के एक अन्य प्रमुख पात्र हैं, वे 11 वर्ष तक संघ के प्रधान रहे; इनके उपरांत शयंभव 23 वर्ष, यशोभद्र 50 वर्ष, सैमूतिविनय 8 वर्ष और भद्रबाहु 14 वर्ष उपर्युक्त दोनों गुरू - परंपराओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि जंबूस्वामी के निर्वाणकाल - अर्थात् वी0नि0 के 62 या 64 वर्षों तक दोनों की गुरू शिष्य वंशावली एक समान है। जंबू के पश्चात् से इनमें स्पष्ट भेद पड़ जाता है। दिगम्बर परंपरा में जंबू के उपरांत विष्णु या नंदिका नाम आता है, तथा गुरू - पट्टावली में कहीं भी विधुच्चर का नाम नहीं आता, जबकि श्वेंताम्बर परंपरा में प्रभवंक 11 वर्ष तक संघ प्रधान रहने का उल्लेख है। आगे के अन्य नाम भी भिन्न हैं। गुरू-शिष्य वंशानुक्रम के इस मतभेद में पड़ना प्रस्तुत प्रसंग में आवश्यक नहीं है। जंबूसामिचरिउ में वीर कवि ने कहा है कि जंबूस्वामी के दीक्षा लेने के अठारह वर्षोपरान्त माष शुक्ल सप्तमी के दिन प्रात: काल सुषर्मा को मोक्ष हुआ3 और उसी दिन जंबू को केवलज्ञान, तथा सुषर्मा के निर्वाण के अठारह वर्ष व्यतीत होने पर जंबू को मोमक्ष प्राप्त हुआ। ये दोनों मिलकर छत्तीस वर्ष पूरे हुए। अब श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों संप्रदायों की ऐतिहासिक गुरू - परंपरानुसार यदि वी0नि0 के 62 या 64 वर्ष पीछे जंबू का निर्वाण माना जाये तो इस रीति से वीर कवि के उपर्युक्त उल्लेखानुसार वी0नि0 से 26 या 27 वर्ष पीछे गौतम का निर्वाण मानना होगा, जो अबतक उपलब्ध अन्य सभी जैन साहित्यिक ऐतिहासिक प्रमाणों से सर्वथा विपरीत है। तिलोयपण्णत्ति के रचयिता यतिवृषभाचार्य शैरसेनी षट्खंडागम के धवला टीकाकार वीरसेन, और गोम्मटसार के रचयिता निमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती एवं उत्तरपुराण के कर्त्ता गुणभद्र तथा अपभ्रंश महापुराण के प्रणेता महाकवि पुष्पदंत इन सभी ने वी0नि0 के 12 वर्ष पश्चात् गौतम, इनके 12 वर्षोपरान्त सुषर्मा, एवं सुषर्मा के 40 वर्ष पीछे जंबूस्वामी को मोक्ष प्राप्त होना एक मत से मान्य किया है।[4] जब यदि हम अन्य उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री की ओर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि भगवान बुद्ध का निर्वाण 544 ई0 पू0 में हुआ। बुद्ध के निर्वाण से 7 वर्ष पहले 552 ई0 पू0 में अजातशत्रु गद्दी पर बैठा और लगभग उसी समय राजा श्रेणिक बिंविसार की मृत्यु हुई।[5]

जंबूस्वामी के जन्म के संबंध में स्वयं भगवान महावीर से अथवा कहिए गौतम गणधर से राजा श्रेणिक बिंबिसार ने प्रश्न किये, ऐसा उल्लेख सभी जैन साहित्यकारों ने किया है। तदनुसार जंबू का जन्म श्रेणिक के स्वर्गवास से कुछ काल पूर्व अथवा उसी के आसपास लगभग 552-553 ई0पू0 में होना चाहिए। और ऐसा होना असंभव नहीं है कि जंबूस्वामी की आयु अस्सी वर्ष न होकर उससे अधिक नब्बे वर्ष रही हो। वीर कवि ने और उसके अनुसार ब्रह्म जिनदास तथा राजमल्ल ने यह भी कहा है कि जंबूस्वामी ने राजा श्रेणिक बिंबिसार के राज्यकाल में ही दीक्षा अंगीकार की थी, और राजा ने स्वयं उनका दीक्षोत्सव बड़े धूमधाम से मनाया था। इस कथन पर विचार करने से जंबू का जन्म 552 ई0पू0 में श्रेणिक की मृत्यु के कम से कम 16, 17 वर्ष पूर्व अर्थात् ई0 पू0 567-69 में मानना पड़ेगा, और ऐसा मानने से जंबू का आयुष्य 463 ई0पू0 से 567 ई0पू0 तक लगभग 105 वर्ष का, तथा गौतम इंद्रभूति, सुधर्मा एवं जंबू तीनों के केवलाान काल के संबंध में श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनों संप्रदायों द्वारा स्वीकृत कालक्रम का खंडन करना होगा, जिसके लिए हमारे पास कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। अतः वीर कवि का यह कथन ऐतिहासिक दृष्टि से समीचीन प्रतीत नहीं होता।

जंबूस्वामी के जीवन के संबंध में इससे अधिक सामग्री आगम साहित्य से प्राप्त नहीं होती। आगमिक परंपरा के अध्ययन के उपरांत काल क्रम से यतिवृषभाचार्य कृत तिलोय - पण्णतिका नाम आता है, जिसमें जैन दृष्टि से त्रेसठ पौराणिक महापुरूषों के जीवनचरित अथवा जैन महापुराणों व चरितग्रंथों की सामग्री बीज रूप से नामावलियों के रूप में प्राप्त है, जिनमें माता - पिता, वंश, जन्मस्थान, निर्वाणस्थान व महापुरूषों के जीवन से संबद्ध प्रमुख व्यक्तियों, स्थानों व घटनाओं के नाम मात्र उल्लिखित हैं। परन्तु जंबूस्वामी के संबंध में इस ग्रंथ में केवल इतनी ही संक्षिप्त सूचना उपलब्ध होती है कि जिस दिन भगवान महावीर सिद्ध हुए उसी दिन गौतम गणधर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। पुनः गौतम के सिद्ध होने पर उनके पश्चात् सुधर्म स्वामी केवली हुए।[6] सुधर्मस्वामी ने मुक्त होने पर जंबूस्वामी केवली हुए। पश्चात् जंबूस्वामी को भी मोक्ष को प्राप्त होने पर फिर कोई अनुबद्ध केवली नहीं रहें।[7]

जम्बूसामि के जीवन की एक और घटना का वर्णन मिलता है। उसी काल में जयपुरवासी विंध्य राजा का कलानिपुण प्रभव नामक पुत्र था, जो पिता के द्वारा छोटे भाई प्रभु को राज्य दे देने से रूष्ट होकर राज्य छोड़कर चला आया था, और विंध्याचल की विषम तलहटी में चोर सरदारों के साथ चोरी करके जीवन यापन करता हुआ रहता था। जंबूस्वामी का विवाह एवं अपरिमित दहेज की बात सुनकर अपने साथी पाँच सौ चोरों के साथ अटवी से निकलकर, रात के समय नगरी में प्रविष्ट हुआ। तालोद्घाटनी विद्या से ताले खोलकर जंबूस्वामी के घर में पहुँचा, तथा अपसर्पिणी विद्या के बल से सबके सो जाने पर चोर सोते हुए लोगों के आयूषण आदि खोलने लगे। यह देखकर चोर की विद्या से अप्रभावित, अतः जागते हुए जंबू ने ये निर्भीक वचन कहे - 'आमंत्रित लोागों को स्पर्श मत करना'। ये वचन सुनकर चोर सतंभित जैसे हो गये। प्रभव ने जंबू को देखकर अपना परिचय देकर कहा मेरी दो विद्याएँ 'तालोद्घाटिनी व अवस्वापिनी' ले लीजिए, और मुझे अपनी 'स्तंभिनी तथा मोचनी' विद्याएँ दे दीजिए। इसपर जंबूने कहा मुझे सांसारिक विद्याओं से कोई प्रयोजन नहीं है। मैंने तो गणधर के पास संसारमोचनी - विद्या ग्रहण की है। प्रभाव होते ही घर - परिवार सब छोड़कर मैं दीक्षा लूंगा। जंबू के ऐसे वचन सुनकर प्रभव आश्चर्यचकित रह गया, व उसने भी यौवन में मानुषिक विषयसुख भोगकर पक्व वयः में दीक्षा लेना उचित बतलाया।

इसी प्रकार जंबू ने सांसारिक संबंधों की असारता के विषय में कुबेरदत्त एवं कुबेरदत्ताका, पितरों की पिंडदानादि रूप लोकधर्म की असंगति के बारे में महेश्वरदत्त का, तथा सांसारिक सुख व मोक्ष सुख की तुलना के संबंध में एक कौड़ी के लिए सर्वस्व हार जाने वाले तथा धन के सदुपयोग के बाबत गोपयुवकका, ये सब कथानक प्रभव को सुनाये। इस कथा-वार्ता के उपरांत प्रभव को भी बोध हो गया। प्रातःकाल होते ही जंबूस्वामी ने दीक्षा के लिए अभिनिष्क्रमण किया। जंबूद्वीप के अधिपति अनादृत देव ने स्वामी का अभिनिष्क्रमण महोत्सव मनाया।

संदर्भ सूची

1. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान - डॉ0 हीरालाल जैन पृ0 25 - 26
2. चौबीस तीर्थंकर - पृ0 47
3. जंबूसामिचरिउ - 10-23, 24
4. तिलोयपण्णत्ति - 4, 210
5. जैनसाहित्य का इतिहास - पं0 कैलाश चन्द्र शास्त्री पृ0 303
6. तिलोयपण्णत्ति - 4.1476
7. तिलोयपण्णत्ति - 4.1477

जी एम फसलों का भारत के अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

डॉ० जीतू सिंह राना

प्रवक्ता अर्थशास्त्र विभाग

जीएम (Genetic Modification) क्या हैं?

Genetic Modification यानि जीनान्तरण, जेनेटिक इंजीनियरिंग की वह विधा है जिसमें किसी जैविक जीनोम (organism"s genome) को बायो तकनीकी की मदद से परिवर्तित कर दिया जाए।

यह एक क्रांतिकारी कदम होने के साथ ही आत्मघाती कदम भी है। जैसे की नाभिकीय रिएक्टर से अपार बिजली तो बनाई जा सकती है पर किसी प्राकृतिक आपदा या चूक से नाभिकीय पदार्थों के रिसाव से लाखों लोगों के जींस में परिवतन से यह पीढ़ियों के लिए अभिशाप भी बन सकता है।

जीएम फसलें क्या हैं?

जैनेटिक इंजीनियरिंग के द्वारा किसी भी जीव या पौधों के जीन को दूसरे पौधों में डाल कर एक नई फसल की प्रजाति विकसित कर सकते हैं। मतलब यह कि अब दो अलग.अलग प्रजातियों में भी संकरण किया जा रहा है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के मुताबिक जीएम ऑर्गेनिज्म (पौंधे, जानवर, माइक्रोऑर्गेनिज्म) में डीएन, को इस तरह बदला जाता है जैसे प्राकृतिक तरीके से होने वाली प्रजनन प्रक्रिया में नहीं होता।

वैसे प्रकृति में जीनों का जोड़-तोड़ चलता रहता है। पर प्रकृति में यह बड़ी धीमी प्रक्रिया है, कई हजारों लाखों वर्षों में ये बदलाव आते हैं। क्योंकि प्रकृति पूरी तरह तसल्ली करके ही किसी पौधे या जानवर या सूक्ष्मजीव को पनपने देती है, वरना उसे खत्म कर देती है। लेकिन आज जैनेटिक इंजीनियरिंग की मदद से जीनों को एक प्रजाति से दूसरी प्रजाति में डाला जा रहा है। इस प्रकार प्राप्त फसलों को पारजीनी फसलें यानी जैनेटिकली मोडिफाइड क्रॉप (Genetically modified crops) कहा जाता है।

हालांकि इन फसलों का विचार नया लगता है लेकिन इनके संबंध में मानव समाज में सदियों से विचार पनपते रहे हैं। मानव अपने जीवन को सुविधाजनक करने के लिए समय.समय पर अनेक वस्तुओं का विकास करता रहता है। इसी प्रकार फसलों को उगाने के दौरान फसलों को अनेक बीमारियों के प्रति प्रतिरोधी बनाने या उनमें कम पानी में विकास करने की क्षमता को विकास करने के लिए प्रयास किए जाते रहे हैं । साथ ही फसलों से अधिक उत्पादन के लिए भी अनेक प्रयास किए गए हैं। जीनांतरित फसलें इसी दिशा में एक और कदम हैं।

जेनेटिक इंजिनियरिंग के जरिए किसी भी जीव या पौधों के जीन को दूसरे पौधों में डाल कर एक नई फसल प्रजाति विकसित की जाती है। 1982 में तंबाकू के पौधे में इसका पहला प्रयोग किया गया थाए जबकि फ्रांस और अमेरिका में 1986 में पहली बार इसका फील्ड ट्रायल किया गया था। 1996 से लेकर 2015 के दौरान पूरी दुनिया में जीएम फसलों की खेती में इजाफा हुआ है।

जीएम फसलों के लाभ

- यह बीज साधारण बीज से कहीं अधिक उत्पादकता प्रदान करता है।
- इससे कृषि क्षेत्र की कई समस्याएँ दूर हो जाएंगी और फसल उत्पादन का स्तर सुधरेगा।
- जीएम फसलें सूखा.रोधी और बाढ़.रोधी होने के साथ कीट प्रतिरोधी भी होती हैं।
- जीएम फसलों की यह विशेषता होती है कि अधिक उर्वर होने के साथ ही इनमें अधिक कीटनाशकों की जरूरत नहीं होती।

जीएम फसलों के नुकसान

जीएम तकनीक के नुकसान भी हैं। इससे प्राकृतिक खेती में संक्रमण का खतरा रहता है। इसके अलावा स्वास्थ्य के लिहाज से भी इस फसल को बहुत अच्छा नहीं माना जाता। इसी के चलते बीटी बैंगन पर रोक लग गई थी। यही नहीं जीएम फसलों के जरिए बीजों के मामले में भारतीय किसान विदेशी कंपनियों पर निर्भर होंगे।

जीनान्तरण की प्रक्रिया

इसके लिए शोधकर्ता टिश्यू कल्चरए म्युटेशन यानि उत्परिवर्तन द्वारा और नए सूक्ष्मजीवों की मदद से पौधों में नए जीनों का प्रवेश कराते हैं। इस तरह की एक बहुत ही समान्य प्रक्रिया में पौधे को एगारेबेटेरियम टुमुफेसियन् ;।हतवइंबजमतपनउ जनउमबिपमदेद्ध नामक सूक्ष्मजीव से सक्रंमित कराया जाता है। यह सूक्ष्मजीव एक विशिष्ट जीन जिसे टी.डीएनए ;जतंदेमित क्छ।द्ध कहा जाता हैद्य इससे पौधे को सक्रंमित करके पौधे में डीएनए का प्रवेश कराकर एक युति बनाता है। शोधकर्ता इस एग्रेबेटेरियम के टी.डीएनए को वांछित जीन जो बीमारी या कीट प्रतिरोधक होता है उससे सवाधानी से प्रतिस्थापित कर देते हैं जिससे वह कीट फसल को प्रभावित न कर सके और फसल उत्पादन में वृद्धि हो सके।

बैक्टीरिया से संक्रमित वांछित जीन को टी.डीएनए (transfer DNA) के स्थान पर प्रतिस्थापित करके पौधे के जीनोम में बदलाव लाकर मनचाहे गुणों की जीनांतरिक फसल प्राप्त की जाती है। वैज्ञानिक डीएनए बंध के लिए बहुत ही सूक्ष्म सोने और टंगस्टन के कणों का उपयोग करते हैं जिनको उच्च दाब पर पौधे के जीनोम में कोशिष्का नाभिक में छोड़ा जाता है।

क्या है बीटी कॉटनए बीटी बैंगन और बीटी सरसों का मुद्दा

हमने अक्सर बीटी कॉटन (*Bt~ Cotton¼, chVh cSaxu _Bt~ Bringle)ए बीटी आलू (Bt~ Pottato) नाम सुना होगा। इसमें आगे वाला शब्द बीटी को बेसिलस थुरेंजिनेसिस (Bacillus Thuringiensi) बेक्टेरिया के संक्षिप्त नाम के रूप में उपयोग किया जाता है। इस बेक्टीरिया में उपस्थित विशेष जीन जिसे सीआरवायी ;ब्तल।।द्ध जीन कहते हैं की मदद से यह एक प्राकृतिक कीटनाशक जिसे सीआरवाय टॉक्सिन ;ब्तलद्ध कहते हैं बनाया जाता है। जब इस जीन को पौधे में डाला जाता है तो पौधा कीटनाशक उत्पन्न करता है जिससे वह कीटों के प्रति प्रतिरोधक हो जाता है।

कहांए कितनी जीएम फसलें

दुनिया के कई देशों में जीएम फसलें इस्तेमाल में लाई जाती हैं। इनमें उत्तर और दक्षिण अमेरिका के अधिकांश देश शामिल हैं जहां सोयाबीनए मक्काए राई और चुकंदर आदि की जीएम फसलें उगाई और इस्तेमाल में लाई जाती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में पूरी दुनिया की आधी से अधिक जीएम फसलें इस्तेमाल की जाती हैं। इसके विपरीत यूरोप के केवल सात देशों में ही अभी तक जीएम फसलों के इस्तेमाल को कानूनी मान्यता प्रदान की गई है। एशिया में भी भारत और चीन समेत केवल तीन देशों में ही जीएम फसलों को इस्तेमाल में लाए जाने की शुरुआत हुई हैए लेकिन इसके लिए कड़े नियामक हैं। अफ्रीका में भी केवल तीन देश ही हैं जिन्होंने जीएम फसलों के इस्तेमाल की इजाजत अभी तक दी है।

विवाद क्या है

जहां वैज्ञानिक उत्पादकताए प्रतिरोधकता का तर्क दे रहे हैं वहीं सामाजिक कार्यकर्ताओं ने सवाल उठाया है कि जीएम फसलों का स्वास्थ्य पर क्या असर पड़ेगा, इस पर विस्तृत और पूरा अध्ययन नहीं किया गया है, हालांकि डब्लूएचओ की वेबसाइट बताती है कि दुनिया के जिन देशों में जीएम फसलें उगाई जा रही हैं वहां की मानक एजेंसियों ने कहा है कि ऐसे प्रमाण नहीं मिले हैं कि इस फसलों का स्वास्थ्य पर कोई बुरा प्रभाव पड़ रहा हो, विवाद जैव-विविधता यानी बायो डायवर्सिटी को लेकर भी है सामाजिक संगठनों का कहना है कि इस बारे में अध्ययन किए जाने की जरूरत है कि हमारे देश की जैव विविधता पर जीएम फसलों से बुरा असर तो नहीं पड़ेगा।

जीएम फसलें भारतीय परिप्रेक्ष्य में

दरअसलए पहली बार 1996 में पहली बार जीएम बीज (GM Seeds) भारत में पेश किए गए थे। उससे पूर्व करीब 25 देशों में उनका इस्तेमाल किया जा चुका था। अब देश में दस अन्य जीएम फसलों के उत्पादन की तैयारी हो चुकी है। हालांकि इनके बाजार में आने का मार्ग तभी तय हो सकेगा जबकि बीटी बैंगन को व्यावसायिक तौर पर सफलता मिलेगी। अन्य फसलों में चावल, आलू, टमाटर, मक्काए मूंगफलीए गोभी जैसी सब्जियां हैं।

सन् 2002में देश में 55हजार किसानों ने देश के चार मध्य और दक्षिणी राज्यों में ठज् कपास फसल उगाई थी। फसल रोपने के चार माह बाद कपास के ऊपर उगने वाली रुई ने बढ़ना बंद कर दिया था। इसके बाद पत्तियां गिरने लगीं। बॉलवर्म भी फसलों को नुकसान पहुंचाने लगा था। अकेले आंध्र प्रदेश में ही कपास की 79 प्रतिशत फसल को नुकसान पहुंचा था।

मध्य प्रदेश में समूची कपास फसल बर्बाद हो गई थी। महाराष्ट्र में भी तीस हजार हैक्टेयर में उगाई गई फसल बर्बाद हो गई थी। नतीजतनए 200 से अधिक किसानों ने आत्महत्याएं की और करोड़ों रुपए का नुकसान हुआ। बाद में नतीजे सामने आए कि कीट के कारण फसल को नुकसान पहुंचा था और यह फसल पारंपरिक और बीटी दोनों थीं।

वैसे कुल 56 जीएम फसलों के उत्पादन की तैयारी है जिनमें से 41 खाद्यान्न से जुड़ी हैं। हालांकि, बीटी कॉटन व्यावसायिक तौर पर जारी किया जा चुका है और इसे सफलता मिली है। लेकिन अन्य जो फसलें जिन पर अभी प्रयोगशाला में शोध चल रहे हैं वह हैं गेहूं, बासमती चावल, सेब, केला, पपीता, प्याज, तरबूज, मिर्च, कॉफी और सोयाबीन। कई गैर खाद्यान्न फसलों पर भी शोध जारी हैं।

बीटी कॉटन से केवल मोंसेंटो जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को मुनाफा हो रहा है, जो अपने पेटेंट किए हुए बीजों से अब तक 1,500 करोड़ रुपये की रॉयल्टी कमा चुकी है।

1990 में अमेरिका से आयात हुए गेंहू में ऐसे खरपतवार आये जिसने भारत की फसलों की कमर तोड़ दिया। इसके बाद आया अमेरिका के 'Monsanto' कंपनी के खरपतवार नाशक दवाइयों का अंतहीन दौर। यह चल ही रहा था की यह खतरनाक कम्पनी GM बीजों के साथ भारत में आ रही है जो हमारी सभ्यता के लिए भी खतरा बन सकती है।

कुछ सालों पहले ही पश्चिमी देशों ने एक द्वीप पर संसार के सारे अनाज के बीजों और जीवों का संरक्षण यह कहकर किया की किसी भी परमाणु या विकिरण हमले में भी संसार की प्रकृति को बचाया जा सके। अब उसके 3 सालों बादए उन्ही के द्वारा GM बीजों का षड्यंत्र भारत जैसे कृषि प्रधान देश को अपने गिरफ्त में लेने को आतुर है।

मुख्य जीएम फसलें

दुनिया में जितनी भी जीएम फसल पैदा हो रही है उसमें सोयाबीन, मक्का, कपास, कैनोला (सरसों) का हिस्सा 99% है बाकी 1% में आलू, पपीता, बैंगन जैसी फसलें हैं जिन्हें कुछ देश उगा रहे हैं।

सुझाव

जीएम फूड को बेचते वक्त पैकेट पर लगे लेबल पर सभी जानकारियां साफ-साफ लिखी हों। इससे लोगों को पता चल सकेगा कि वह क्या खा रहे हैं। इस तरह जिन लोगों को जीएम फूड से दूर रहना हो वह इसका इस्तेमाल नहीं करेंगे।

विशेषज्ञों की राय

जीएम कृत्रिम बीज में बालवर्म नाम का एक जिवाणु होता है। जानकार बताते हैं कि बालवर्म नाम के इस जिवाणु से सेहत पर प्रभाव पड़ सकता है। यह एक खतरनाक एलर्जी भी कर सकता है। यही नहीं अभी तक कोई ऐसा प्रमाण मौजूद नहीं है कि इससे फायदा ही होगा।

हम सबका यह कर्तव्य है की इन GM फसलों का विरोध कर अपनी संस्कृति और मानवता की रक्षा करें।

कुल मिला कर हमें सम्पूर्ण मानवता के लिए अभिशाप सिद्ध होने वाले इस जीएम फसलों (Genetically Modified Crops) पर बेहद सावधान होने की जरुरत है। जब तक इसपर विश्व स्तर पर पूरी तरह से यह सिद्ध न हो जाए की यह मानवता के लिए सुरक्षित है इसका प्रयोग निषिद्ध होना चाहिए।

चूंकि भारत में आधिकारिक रूप से कपास को ही वादिजयीक जी एम फसल के तौर पर मान्यता प्राप्त है अत: जी एम फसलों के सही और वर्तमान आर्थिक प्रभावों का आकलन कपास के आकनों के आधार पर ही लगाया जा सकता है।

भारत दुनिया में कपास के सबसे बड़े उत्पादक में से एक है, जो दुनिया के कपास उत्पादन का लगभग 26% हिस्सा है।

कपास की उत्पादकता 2002.03 में 191 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर से बढ़कर 2017.18 में 477 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर हो गई और देश में बीटी के कपास के कारण कपास का उत्पादन 2002.03 में 86.21 लाख गांठ से बढ़कर 2017.18 में 348.88 लाख गांठ हो गया है।

फरवरी 2000 में भारत सरकार द्वारा कपास पर प्रौद्योगिकी मिशन के शुभारंभ के बाद से उच्च उपजवाली किस्मों के विकास, प्रौद्योगिकी के उचित हस्तांतरण, बेहतर कृषि प्रबंधन प्रथाओं, बीटी कपास संकरों की खेती केतहत बढ़े क्षेत्र आदि के माध्यम से उपज और उत्पादन बढ़ाने में महत्वपूर्ण उपलब्धियांहा सिलकी गईहैं। इन सभी घटनाक्रमो के परिणामस्वरूप पिछले 7 से 8 वर्षों से देश में कपास उत्पादन मे बदलाव आया है। प्रतिहेक्टेयर उपज जो कि इतने वर्षोंतक लगभग 300 किलोग्राम/हेक्टेयर तक स्थिर थी, वर्ष 2017-18 में 506 किलोग्राम तक उछलगई और वर्ष 2013-14 में 566 किलो ग्राम प्रति हेक्टेयर के स्तर तक पहुंचगई थी। यद्यपि प्रति हेक्टेयर उपज अभी भी दुनिया के औसत से लगभग 762 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर कम है, लेकिन देश में कपास की खेती के दायरे में जो मूल भूत परिवर्तन हो रहे हैं, वे वर्तमान उत्पादकता स्तर को दुनिया के पास लेजाने की क्षमता रखते हैं। निकट भविष्य में औसत .2018.19, 2019.20 और 2020.21 के लिए देश में क्षेत्र, उत्पादन और उपज के बारे में विवरण नीचे दिए गए हैं:

Year	Area in lakh hectares	Production in lakh bales	Yield kgs per hectare
2018-19	126.14	333.00	448.79
2019-20*(P)	133.73	365.00	463.99
2020-21*(P)	129.57	371.00	486.76

जी एम कपास की सफलता के चलते भारत का जी एम फसल उत्पादन में यू एस ए ब्राजील और अर्जेन्टीना के बाद चौथा स्थान है वर्तमान में भारत के आठ राज्यों में जी एम फसलों के परीक्षण किया जा रहा है जो इस प्रकार है

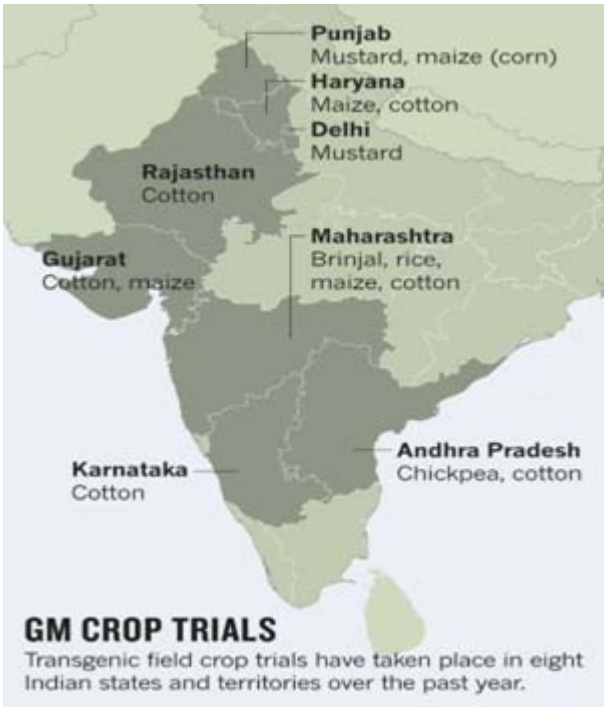

- यदि भारत जी एम फसलों के संतुलित लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है तो विश्व के अन्य देशों पर आपूर्ति की निर्भरता से मुक्त हो सकता है।
- इसके साथ ही भारत विश्व के अन्य देशों विशेषकर दक्षिण एशियाई देशों में फसलों का निर्यात कर मुनाफा कम सकता है
- बढ़ते निर्यात का स्वाभाविक असर भारत में रोजगार के नए साधन उपलब्ध कराएगा।
- इसके अतिरिक्त भारत जैसे विशालकाय देश की बड़ी जनसंख्या को सुलभ खाद्य आपूर्ति पहुंचाना संभव होगा।

पंचायती राज में महिलाओं की भूमिका एवं चुनौतियाँः बिहार के कोशी प्रमंडल के सन्दर्भ में

अखिल सिंह परमार

शोधार्थी, स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग, बी एन मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा

सारांश

भारत में महिलाएं की विशाल संख्या अधीनता तथा उपेक्षित वर्ग का जीवन बिता रही है और इसी कारण समाज में विशमता बढ़ रही है। हांलाकि महिलाएं अब बड़ी संख्या में आर्थिक एवं राजनैतिक क्रियाकलापों तथा परिवर्तन की प्रक्रिया में भाग ले रही हैं, पर वास्तव में न तो वे इसस लाभान्वित हो रही हैं और न ही वे अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए इस बदलाव कि प्रक्रिया को नियंत्रित करने में सक्षम हैं। स्थानीय प्रशासन की इकाईयों में ऐसा बहुत ही कम होता है कि ग्रामीण महिलाएं प्रत्यक्ष रूप से स्वयं अपने बलबूते पर ही निर्वाचित हों जबकि अधिकांशतः यह देखा जाता है कि जो महिला प्रतिनिधि निर्वाचित होती हैं उसमें उसके पुरूष परिवारजनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रस्तुत अध्ययन में बिहार राज्य की कोशी प्रमंडल में त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की महिला प्रतिनिधियों के आनुभाविक प्रमाणों के आधार पर राज्य में महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, प्रशासनिक स्थिति एवं राजनीति में भागीदारी एवं सक्रियता की प्रकृति का परीक्षण किया गया है।

भूमिका

बिहार एक राजनीतिक इकाई के रूप में लिखित रिकॉर्ड उपलब्ध होने के समय से ही भारत गणराज्य के भीतर एक राज्य के रूप में अपनी पहचान रखता है। प्रसिद्ध इतिहासकार रोमिला थापर ने प्राचीन भारत के इतिहास को प्राचीन बिहार का इतिहास बताया है। शिक्षा, शासन, समाज या धर्म के क्षेत्र में भारत जिन अनेक उपलब्धियों के लिए प्रसिद्ध हुआ, उनकी जड़ें बिहार में हैं। राज्य के भीतर और भारतीय उपमहाद्वीप के बाहर व्यपार और आर्थिक जुड़ाव में बिहार की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ एक ऐसे अतीत से उभरती हैं, जो आज के बिहार में कोई जीवित विरासत नहीं छोड़ी है, ऐसा अतीत जिसे या तो भुला दिया गया है, या पूरी तरह से अविश्वसनीय माना जाता है।

विभिन्न सरकारी योजनाओं में महिला आरक्षण बिहार में लैंगिक समानता और सशक्तिकरण की दिशा में किए जा रहे प्रयासों का प्रतिबिंब है। पितृसत्तात्मक मानदंडों और संरचनाओं की निरंतर उपस्थिति के बीच, ग्रामीण समाज लिंग रूढ़िवादिता परिवर्तन के लिए कम लचीला है। हालांकि, कुछ तत्व हैं जो समय के साथ बदलाव लाती है। रोजगार के पर्याप्त अवसरों की अनुपस्थिति पुरूषों को अपने गांवों से बाहर जाने के लिए प्रेरित करती है, जो बदले में, महिलाओं की भूमिकाओं और जिम्मेदारियों को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। परिणामस्वरूप निर्णय लेने, पर्यवेक्षण और कार्य भागीदारी में महिलाओं की भूमिका में बदलाव के साथ-साथ गतिशीलता में सुधार देखा गया है, परन्तु दुश्परिणामस्वरूप गाँव के भीतर और बाहर, बाल श्रम में वृद्धि या काम के लिए बच्चों के प्रवास नकारात्मक प्रभाव देखा गया है।

समय के साथ बिहार में अत्यधिक उच्च गरीबी के स्तर को देखते हुए विशेष रूप से गरीब और पिछड़े समुदायों के बीच, शिक्षा, स्वास्थ्य और पोशण, संचार, सार्वजनिक सेवाओं और महिला सशक्तिकरण में वृद्धि से निश्चित सुधार हुआ है। प्रवासियों के द्वारा भेजे गए रूपये से परिवारों की आय बढ़ी है, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास हुआ है। बढ़ी हुई आय और उच्च स्थानीय मजदूरी ने आवश्यक भोजन और स्वास्थ्य सेवा तक बेहतर पहुंच को सक्षम किया है।

जैसा कि हम जानते हैं, कई सरकारी गैर-सरकारी संस्थाओ ने महिला सशक्तिकरण एवं महिला की स्थिति सुधार हेतु योगदान दिया है। पंचायती राज संस्थाओं (PRI) में महिलाओं के लिए आरक्षण की शुरूआत को महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी में सुधार लाने और उनके सशक्तिकरण के लिए एक बड़े उपाय के रूप में देखा जाता है। 1992 में 73 वें संवैधानिक संशोधन के बाद, जिसने स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत सीटे आरक्षित की, 2001 में पहली बार बिहार में पंचायती राज चुनाव हुए। पंचायती राज संस्थाओं के तीन स्तरों में सदस्यों के रूप में महिलाओं की हिस्सेदारी उस समय बिहार में 44 प्रतिशत थी। उल्लेखनीय है कि 2006 में बिहार राज्य सरकार ने सभी सामाजिक श्रेणियों की महिलाआं के और पंचायती राज संस्थाओं (ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद) के तीन स्तरों के सभी पदो के लिए 50 प्रतिशत सीटें महिलाओं हेतु प्रतिनिधियों की हिस्सेदारी बढ़कर 54 प्रतिशत हो गई।

साहित्य समीक्षा

कोशी प्रमंडल भारत के बिहार राज्य में 9 प्रमंडल में से एक प्रमंडल है। इसमें तीन जिले सहरसा, सुपौल और मधेपुरा शामिल हैं। यह अध्ययन न केवल कोशी मंडल पर केंद्रित है बल्कि कोशी क्षेत्र पर भी केंद्रित है जिसमें पूर्णिया संभाग के पूर्णिया और अररिया सहित पाँच जिले शामिल हैं, जो पहले कोशी मंडल का हिस्सा थे। यह मुख्य रूप से कोशी नदी जिसे बिहार का अभिशाप कहा जाता है जो नेपाल में हिमालय पहाड़ से निकलती है बिहार के इसी क्षेत्र में धरती पर आती है, आने साथ भयंकर बाढ़ लाती है। बिहार का यह हिस्सा बाढ़ हवा के झोंके और भूकंप जैसी आपदाओं के लगातार प्रभावों के कारण बहुत पिछड़ा हुआ है। विशेष रूप से कम बुनियादी ढांचे के विकास, स्कूलों, कॉलेजों और अस्पतालों की संख्या की कमी के कारण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर सभी क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति बहुत कम है।

सर्वेक्षण किए कोशी डिवीजन के कुछ गाँवों में, स्थानीय निकायों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व अपेक्षाकृत कम प्रतीत होता है। यह देखना उत्साहजनक है कि समूह साक्षात्कारों में महिलाओं ने स्थानीय संस्थानों में अपने प्रतिनिधित्व के महत्व को पहचाना यह ध्यान रखना भी उतना ही दिलचस्प है पुरूषों ने सकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त की जब उनसे पूछा गया कि क्या महिलाओं को इन गतिविधियों में भाग लेना चाहिए। ग्राम सभाओं में पुरूषों के मौजूद होने पर महिलाओं के लिए बोलना अभी दुर्लभ है, लेकिन कम से कम कुछ गांवों ने बैठकों में उनकी भागीदारी सुनिश्चित की गयी। सर्वेक्षण किए गए कम से कम सात गांवों में, ग्राम सभाओं में महिलाओं की भागीदारी एक तिहाई से अधिक थी।

स्थानीय संस्थानों में महिलाओं की प्रभावी भागीदारी में बाधा डालने वाले कारकों में से एक, चाहे वे राजनीतिक निकाय हों या किसी भी प्रकार की अन्य ग्राम सचितियाँ, उनकी शिक्षा का निम्न कार्यो जैसे कि पैरा शिक्षक, आंगनवाड़ी केंन्द्रों को चलाने, आशा के रूप में, और कुछ गाँवों में संचालित बचत ऋण योजनाओं के संचालक के रूप में विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों का लाभ मिला है। महिला सशक्तिकरण अनिवार्य रूप से समाज में पारंपरिक रूप से वंचित महिलाओं की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति के उत्थान की प्रक्रिया है। इसमें एक ऐसे समाज का निर्माण शामिल है जिसमें महिलाएं उत्पीड़न, शोषण, आशंका, भेदभाव और उत्पीड़न की सामान्य भावना के डर के बिना सांस ले सके, जो परंपरागत रूप से पुरूष प्रधान समाज में एक महिला होने के कारण सहन करना पड़ता है। दूसरे शब्दों में महिला सशक्तिकरण अधिवक्ताओं द्वारा निर्धारित एक प्रमुख चिकित्सा राजनीतिक निर्णय लेने में भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए कानून के माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाना है।

इस तरह का दृष्टिकोण महिलाओं को पुरूषों के सामने खड़े होने, महिलाओं के उत्पीड़न, अधीनता और संबंधित मुद्दों पर अपनी आवाज उठाने के लिए एक संवैधानिक मंच प्रदान करता है और इस प्राकर, उन्हें एक रूढ़िवादी पुरूष प्रधान सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था में एक पहचान प्रदान करता है। उन्हें सीधे प्रभावित करने वाली समस्याओं के निवारण के लिए एक बहुत आवश्यक मंच प्रदान करता है। वर्त्तमान अध्ययन प्रक्रिया में सशक्तिकरण के गतिशीलता को देखने का प्रयास किया गया है, जिससे महिला सशक्तिकरण कानून या पंचायती राज संस्था में महिलाओं की भागीदारी के माध्यम से प्राप्त किया जा रहा है। अध्ययन कोशी क्षेत्र के संबंधित जिलों के कुछ ब्लॉकों (प्रखण्डों) में विभिन्न महिलाओं से एकत्र किए गए प्राथमिकी प्रत्यक्ष साक्षत्कार पर आधारित है और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक जैसे समाज के हर पहलू में मूल समस्याओं का विश्लेषण करने का प्रयास करात है। क्या महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी एक ऐसे राज्य में ठोस महिला सशक्तिकरण में तब्दील हो पाता है जहां महिलाएं पारंपरिक पुरूष समाज में खुद के लिए एक अनुकूल स्थिति बनाने में सक्षम होती हैं और सफलापूर्वक लिंग संबंधी मुद्दों के प्रभावी निवारण कर पायी हैं या महिलाओं की बढ़ी हुई राजनीतिक भागीदारी (50% से अधिक, जैसा कि कोशी क्षेत्र का मामला), एक छलावा है, संख्या का एक अनविार्य निपुण बाजीगरी है जिसका परिणाम कोई महिला सशक्तिकरण नहीं है।

अध्ययन से बड़े पैमाने पर पता चलता है कि ग्राम पंचायतों (बिहार के कोशी क्षेत्र में) में महिलाओं की बढ़ी हुई राजनीतिक भागीदारी का महिला सशक्तिकरण पर महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता है और बड़ी निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के पास अनुकूल मंचों की कमी होती है ओर वे महिला विशिष्ट मुद्दों के निवारण की मांग करने में भी विफल रहती हैं। चूंकि वे मुख्य रूप से (ज्यादातर) डमी हैं, अभी भी प्रबल पुरूश वर्ग के अधीन हैं। हाल ही में महिलाओं की स्थिति के बारे में जागरूकता बढ़ी है, जो महिला सशक्तिकरण के मुद्दं पर वैश्विक बहसों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

पंचायतों में महिलाओं ने भले ही अपनी आकर्शक उपस्थिति दर्ज करायी है लेकिन हमारे लिए यह जानना भी आवश्यक है कि उनकी कार्यप्रणाली भी ऐसी ही आकर्षक है या नहीं। क्या महिलायें पंचायतों में अपने कर्त्तव्यों और अधिकारों को पूरी आत्मीयता से निभा रही हैं या नहीं ? यह जानने के लिए हमने पंचायतों की महिला सदस्यों एवं प्रधानों से साक्षात्कार के माध्यम से उनकी कार्यप्रणाली एवं भूमिका जानने का प्रयास किया है। जिसमें पंचायत संस्थाओं की सामान्य जानकारी, महिलाओं की कार्यपद्धति, भूमिका एवं समस्याएं, पंचायतों की वित्तीय स्थिति एवं उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक पुष्ठभूमि से सम्बन्धित प्रश्नों को समाहित किया गया है एवं प्रप्त संख्यात्मक आंकड़ों का विष्लेषन निम्नलिखित सारणियों के माध्यम से किया गया है।

प्रखंडो में होने वाली बैठकों में भागीदारी

क्रम सं0		हमेशा	कभी कभी	कभी नहीं	योग
1	आवृत्ति	100	250	150	500
2	प्रतिशत	20	50	30	100

उपरोक्त सारणी के अनुसार अध्ययन में देखा गया कि पंचायतों की केवल 20 प्रतिशत निर्वाचित महिला प्रतिनिधि ही प्रखंडो में होने वाली बैठकों में हमेंशा भाग लेती है। जबकि बिहार सरकार द्वारा महिलाओं को पंचायतों में 50 प्रतिशत आरक्षण दिया गया है और महिलाएं 50 फीसदी क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व कर

रहीं हैं। लेकिन केवल संख्यात्मक वृद्धि से ही उनकी स्थिति में परिवर्तन नहीं आ सकता है। इसके लिए उन्हें स्वयं प्रखंडो में होने वाली बैठकों में नियमित रूप् से भाग लेकर अपनी नेतृत्व क्षमता को विकसित एवं सशक्त करना पड़ेगा।

पंचायतों की निर्णय प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका

क्रम सं0		कभी कभी	हमेशा	कभी नहीं	योग
1	आवृत्ति	377	65	58	500
2	प्रतिशत	75.04	13	11.06	100

उपरोक्त सारणी के अनुसार नई पंचायती राज व्यवस्था में महिला प्रतिनिधियों की राय को इस प्राकर समझा जा सकाता है, केवल 13 फीसदी महिला प्रतिनिधि हमेशा निर्णय प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाती हैं अर्थात् स्वयं सभी विशयों पर स्वतन्त्रता पूर्वक निडर होकर निर्णय लेती हैं। यह महिलाओं के सशक्तिकरण को दर्शाता है। परन्तु बहुसंख्यक 75.04 प्रतिशत महिला प्रतिनिधि कभी कभी ही स्वयं निर्णय लेती हैं अर्थात् वे अधिकाशत: अपने कार्यो व अधिकारों के प्रयोग से सम्बन्धित निर्णय लेने के लिए दूसरों पर निर्भर हैं। इतने अधिकारों के बावजूद 11.06 प्रतिशत महिला प्रतिनिधि कभी भी निर्णय प्रक्रिया में सक्रिया भूमिका निभाती ही नहीं है। उनके अधिकारों का प्रयोग उनके पुरूश परिवारजनों द्वारा किया जा रहा है। वह केवल मोहर लगाकर हस्ताक्षर करने का कार्य कर रहीं हैं। जो एक चिन्ताजनक स्थिति को दर्शाता है। पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण देकर उन्हें नेतृत्व की कमान जो सौपी गयी किन्तु यह पर्याप्त नहीं है। उन्हें व्यवस्था में भागीदारी तो मिल चुकी है लेकिन वे प्रशिक्षित नहीं हैं। यही कारण है कि वे पंचायती व्यवस्था में नियोजन का अंग नहीं बन पा रही है।

चुनाव में खड़े होने पर महिलाओं को समस्याओं का सामना

क्रम सं0		पुरूषों का विरोध	आर्थिक समस्या	समाज का विरोध	राजनेताओ का दबाव व हस्तक्षेप	अन्य कारण	योग
1	आवृत्ति	50	150	100	100	100	500
2	प्रतिशत	10	30	20	20	20	100

उपरोक्त सारणी के अनुसार अध्ययन में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों ने कहा कि महिलाओं के लिए राजनीति में सफल हो पाना एक बहुत बड़ी चुनौती है। राजनीति (चुनाव) में एक प्रत्याशी के रूप में प्रतिभाग करना बहुत कठिन कार्य है, इसीलिए अधिकांश महिलाएं केवल आरक्षित सीटों से ही चुनाव में खड़ी होती हैं। जब उनसे वह कारण जानने की कोशिश की गई जो पंचायतों में महिलाओं की सक्रियता को प्रभावित कर रहे हैं तो उनके द्वारा दिये गये उत्तरों को उपरोक्त सारणी में देखा जा सकता है। जिसके आधार पर हम कह सकते है कि 30 फीसदी महिलाओं ने माना कि आर्थिक समस्या एक बड़ी चुनौती है। वर्त्तमान समय में यदि चुनाव के दौरान देखा जाए तो धन बल का बहुत अधिक प्रयोग मतदाताओं को प्रभावित करने में किया जाता है। चूंकि ग्रामीण क्षेत्रों की अधिकांश महिलाएं आर्थिक रूप से पराश्रित होती हैं तो उनके लिए ये सम्भव नहीं है। 20 प्रतिशत ने माना कि समाज में आज भी लोग महिला से ज्यादा पुरूशों के राजनीतिक कार्यों एवं भूमिका को महत्व देते हैं और महिलाओं को कमजोर समझते हुए उनके चुनाव जीतने का समर्थन नहीं करते हैं। आज पंचायत चुनावों में भी बड़े-बड़े राजनेताओं का दखल बढ़ता जा रहा है और वह अपने प्रत्याशी को येन-केन प्रकारेण जिताने में जुट जाते हैं जिससे कईबार इन चुनावों का स्वरूप विकृत हो जाता है। भायदा 20 प्रतिशत महिलाए इसीलिए चुनावों में भागीदारी करने से कतराती हैं। साथ ही अन्य कई कारण जैसे पारिवारिक जिम्मेदारियाँ, घरेलू कार्यों की अधिकता, अशिक्षा, अज्ञानता, पति व पारिवारिक सदस्यों द्वारा अनुमति न देना आदि कई अन्य ऐसे कारण हैं जो महिलाओं को पंचायत चुनावों में खड़े होने में समस्या उत्पन्न करते है।

महिलाओं सशक्तिकरण अनवार्य रूप से समाज में पारंपरिक रूप से वंचित महिलाओं की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति के उत्थान की प्रक्रिया है। यह उन्हें सभी प्रकार की हिंसा से बचाने की प्रक्रिया है। कॉफी अन्नान मानवाधिकारों के उल्लंघन के लिए महिलाओं के खिलाफ हिंसा को सबसे शर्मनाक मानते हैं। उसके लिए, ''महिलाओं के खिलाफ हिंसा विभिन्न रूप लेती है जैसे: घरेलू हिंसा, बलात्कार, महिलाओं की तस्करी, जबरन वेश्यावृत्ति और सशस्त्र संघर्श में हिंसा (जैसे हत्या, व्यवस्थित बलात्कार, यौन दासता और जबरन गर्भावस्था) और ऑनर किलिंग दहेज से संबंधित हिंसा, कन्या भूण हत्या और पुरूष शिशुओं के पक्ष में माता-पिता का लिंग चयन, महिला जननांग विकृति और अन्य हानिकारक प्रथाओं और परंपराओं महिला सशक्तिकरण में एक ऐसे समाज का निर्माण, एक राजनीतिक वातावरण शामिल ले, जिसमें महिलाएं उत्पीड़न, शोषण, आशंका, भेदभाव और उत्पीड़न की सामान्य भावना के डर के बिना सांस ले सकती हैं, जो पारंपरिक रूप से पुरूश 'मेजरिंग एम्पावरमेंट' में ''सशक्तिकरण को गरीब लोगों की संपत्ति और क्षमताओं के विस्तार के रूप में निर्धारित किया है, जिसमें भाग लेने, बातचीत करने, नियंत्रण को प्रभावित करने और उनके जीवन को प्रभावित करने वाले जवाबदेह संस्थानों को पकड़ने के लिए'' आर्थिक जीवन में लैंगिक असमानताएं भी एक कारण हैं। लड़कियों के बाल विवाह के बारे में मानदंड, लड़कियों की शिक्षा के खिलाफ लिंग पूर्वाग्रह, महिलाओं की सीमित गतिशीलता, प्रजनन निर्णयों पर महिलाओं के नियंत्रण की कमी, मजदूरी और रोजगार में लिंग अंतर, सभी गरीबी और लैंगिक असमानताओं के बीच दुश्चक्र के माध्यम से गरीबी से बचने की कठिनाइयाँ उत्पन्न करती हैं।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षस्वरुप हम कह सकते हैं कि महिलाएं स्वयं जागरूक एवं शिक्षित होकर अपने अधिकारों के महत्व को समझ कर यदि उनका प्रयोग करती हैं और आगे बढ़कर अपनी भूमिका को सशक्त बनाती हैं, तभी पंचायती राज में उनके 50 प्रतिशत आरक्षण का वास्तविक अर्थ साकार होगा अन्यथा केवल संख्यात्मक वृद्धि से उनकी स्थिति में गुणात्मक सुधार नहीं हो सकता है। क्योंकि 50 प्रतिशत आरक्षण द्वारा महिलाओं को नेतृत्व की कमान तो सौंपी गयी है, पर खुले तौर पर वे पराधीन हैं। वे व्यवस्था का संचालन पुरुशों की सहमति के बिना नहीं कर पाती हैं। परन्तु धीरे-धीरे उनमें परिवर्तन आया है। वे विचार-विमर्श एवं प्रशिक्षणों की सहायता से राजनीति में सक्रियता दिखा रही हैं। यदि बिहार में महिलाओं में यह जागरूकता आ जाए, कि वे स्वयं सब कुछ कर सकती हैं, घर संभाल सकती हैं, देश भी संभालना जानती हैं, तो महिलाओं के चेहरों पर तो रौनक लौटेगी ही, साथ ही गाँव, क्षेत्र व देश का विकास भी तीव्र गति से होगा। ऐसे कई उदाहरण हमें आँकड़े एकत्रीकरण के दौरान मिले जहाँ ग्रामीण क्षेत्रों की इन महिला प्रतिनिधियों ने कई तरह की समस्याओंकी तरफ हमारा ध्यान आकर्शित किया। जिनमें कई बार समाज द्वारा महिला प्रतिनिधियों को पुरूश प्रतिनिधियों के समानमहत्त्व न देकर पुरूश मानसिकता को बढ़ावा दिया जाता रहा है, तो कई बार विभागीय अधिकारियों द्वारा महिला प्रतिनिधियों में नेतृत्व क्षमता विकास व पंचायतों के काम को लेकर समय से उचित प्रशिक्षण नहीं दिया जाता हैं।

सन्दर्भ सूची

1 भारत-प्रकाशन विभाग, 'सूचना और प्रसारण मंत्रालय', भारत सरकार, नई दिल्ली, 2002 पृ0 सं0 456

2 सिंह, निशांत, 'पंचायती राज और महिलाएं', सुनील साहित्य, दिल्ली, पृ0 सं0 08

3 रेडडी, जी0राम: सोशल कम्पोजीशन ऑफ पंचायती राज बैक ग्राउण्ड ऑफ पॉलिटिकल एक्जीक्यूटिव आंध्र इकानामिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, वाल्यूम 111, न0 50, 23 दिसम्बर 1967, पृ0 2211

4 अवस्थी, इन्द्रा ; रूलर ऑफ वूमन ऑफ इण्डिया: चुंग पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1983.

5 नरसिंम्हन, शकुन्तला इम्पावरिंग वूमन - एन एलटरनेटिव स्ट्रेटरजी फ्रॉम रूलर इण्डिया, सेज पब्लिकेशन, (1999), न्यू देहली।

6 पार्वथम्मा, सी, 'इलेक्शन एण्ड रेडिशनल ए लीडरशिप इन अ मैसूर विलेज' इकानामिक वीकली, 1964, न011, पृ0 476-481.

7 रावत, ब्रजमोहन नारी समानता एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन, अप्रकाशित शोध ग्रन्थ, हे0न0ब0गु0 वि0वि0 श्रीनगर, 2004, पृ0-78

8 कौशिक, आशा, नारी सशक्तिकरण विमर्श एवं यथार्थ, प्वाइंटर पब्लिशर्स, जयपुर, 2007, पृ0 सं0 123.

9 आउटलुक 2008 साप्ताहिक पंचायतों का तूफान; 22-28 अप्रैल 2008 ; पृ0 सं0-32.

10 मेहरा, ममता: पंचायती राज एवं महिला सशक्तीकरण (ग्राम पंचायतों की महिला प्रतिनिधियों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, बागेश्वर जनपद के संदर्भ में, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध)

11 रिसर्च इण्डिया प्रेस, नई देहली, 2011, पृ0सं0 214

12 श्रीवास्तव, दिनश, 'भारत में ग्राम विकास की नई चेतना', प्रतियोगिता दर्पण, नवम् अंक, अप्रैल 2009, पृ0 सं0 1603-1609

13 प्रसाद, श्यामसुन्दर, 'ग्रामोदय से भारत उदय, अभियान की प्रासंगिकता', प्रतियोगिता दर्पण, नवम्बर 2016, पृ0सं0 91-92.

14 कुमार, मनीष 'ग्रामीण विकास में पंचायती राज की भूमिका', कुरुक्षेत्र, अगस्त 2007, पृ0 सं0-27.

चित्रकूट के विभिन्न तीर्थ स्थल

सीलू सिंह

(S-R-F), शोध छात्राप्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, जे.आर.एच.यू. चित्रकूट (उत्तर प्रदेश)

चित्रकूट की भूमि विचित्र है। जितना विचित्र इसका वहिर्कूट-वाहुरूप है उससे भी विलक्षण उसका अन्त:कूट हैअर्थात् इसका अन्त: स्वरूप है। महर्षि वाल्मीकि जी का मानना है कि मनुष्य जब तक चित्रकूट के कूटों कादर्शन करता है तब तक उसका जीवन मंगलमय बना रहता है और उसका मन मोह माया से मुक्त रहता है -

"यावता चित्रकूटस्य नर: श्रगाण्यपेक्षते ।
कल्याणानि समाद्यन्ते ना मोहे कुरुते मन:।।"

चित्रकूट की इसी दिव्य शक्ति से आकर्षित होकर यहाँ अनेक ज्ञाताज्ञात योगी साधनारत हैं जो अपनीअनवरत साधना से सिद्ध कोटि में पहुँच चुके हैं। चित्रकूट के विभिन्न दर्शनीय स्थलों का विस्तृत विवरण निम्नहै।

श्रीकामदगिरि:-

चित्रकूट धाम के प्रधान देवता श्री कामदगिरि हैं विचित्र शिखरों के कारण यह शचित्रकूटश नाम से विख्यात है। भगवान श्रीराम के यहाँ वनवास काल में रहने के कारण इसे श्रामगिरीश भी कहते हैं। चित्रकूट पर्वत इलाहाबाद से 120 कि०मी०, सतना से 80 कि०मी०, कर्वी चित्रकूट धाम रेलवे स्टेशन से 10 कि०मी०, शिवरामपुर रेलवे स्टेशन से 6 कि०मी०, मझगवाँ रेलवे स्टेशन से 35 कि०मी० तथा रामघाट (मन्दाकिनी तट से1 कि०मी० की दूरी पर है।)

चित्रकूट पर्वत की परिक्रमा परिधि लगभग 5 कि०मी० है। प्रदक्षिणा के लिए पक्का परिक्रमा पथ बनाहुआ है। परिक्रमा पथ का सर्वप्रथम निर्माण चित्रकूट के शासक पत्रा राज्य की महारानी ने करवाया था। बादमें पत्रा नरेश श्री अमानसिंह ने भी कुछ और सुधार किया था। आजकल सरकारी सहायता तथा कुछ निजीसंस्थाओं के सहयोग से परिक्रमा मार्ग पर्याप्त विस्तृत सुविधाजनक बन गया है।

चित्रकूट पर्वत अचल तीर्थ है। यह तीर्थों का भी तीर्थ माना गया है- "तीर्थानाम् परम् तीर्थम्।"

चित्रकूट से सम्बन्धित प्राचीन मुख्य ग्रन्थ बताते हैं, कि चित्रकूट के सभी पत्थर स्वर्ण, रजत, मणि तथा रत्नों के हैं।इसके अन्तराल में एक दिव्य सरोवर है जिसमें स्वर्ण का एक विशाल मन्दिर है, जिसके गर्भगृह में एक स्वर्णसिंहासन पर भगवान् श्रीराम, महारानी जानकी जी तथा उनकी विमलादि सखियाँ सदैव विराजमान रहती हैं।द्वार पर सभी देवता तथा महर्षिगण उपस्थित होकर भगवान की स्तुति करते रहते हैं। यह पर्वत कामद है, कामनाओं को पूरा करने वाला है। पापों का क्षय करता है। शोक का विनाश करता है और मानव का सर्वकल्याण करता है।

चित्रकूट की महत्ता तथा उसकी आध्यात्मिक शक्ति को ही देखकर महर्षि भारद्वाज द्वारा महर्षि वाल्मीकि नेश्रीराम जी को वनवास का समय शान्तिपूर्वक बिताने के लिए चित्रकूट में वास करने का परामर्श दिया था।भारद्वाज जी के अनुसार या पर्वत बड़ा पवित्र है, पूण्यवान् है, यहाँ बड़े-बड़े महर्षि तपस्या करते हैं जिसके दर्शनमात्र से ही जीव का कल्याण हो जाता है -

"महर्षि सेवित: पुण्य: पर्वत: शुभदर्शन:।
यावता चित्रकूटस्य नर: श्रंगाण्यंवेक्षते।
कल्याणानि समाधत्ते ना मोहे कुरुते मन:।"

कामदगिरि (मुख्यद्वार) :-

यह चित्रकूट परिक्रमा का प्रवेश द्वार है। मन्दाकिनी नदी में स्नान करके यात्री यहाँ पहुँचते हैं और कामदगिरि के प्रथम दर्शन करते हैं। यहाँ पर्वत की तलहटी में एक दिव्य मन्दिर में भगवान् कामता (चित्रकूट)की मूर्ति विराजमान है। सामने यहाँ के सिद्ध सन्त महात्मा प्रेमपुजारीदास जी की समाधि पर उनकी प्रतिमास्थापित है उसका दर्शन भी यात्री बड़ी श्रद्धा से करते हैं।

मुखारविन्द (द्वितीयद्वार) :-

प्रथम मुख्यद्वार से थोड़ा आगे परिक्रमा पथ पर एक स्थान है। यहाँ पूर्वाभिमुखी मन्दिर में भगवान श्रीकामतानाथ जी की प्रतिमा स्थापित है जिसकी पूजा-अर्चना यात्रियों द्वारा की जाती है।

नरहर कुटिपा तथा तुलसीदास जी द्वारा रोपित पीपल वृक्ष :-

प्रथम मुखारविन्द से चलकर नरसिंह गुफा के आगे गोस्वामी तुलसीदास जी के गुरु की कुटिया है जो मन्दिर के

रूप में है। इसके पीछे परिक्रमा पथ पर एक दिव्य पीपल का वृक्ष है जो सन्तकवि तुलसीदास जी द्वारा लगाया गया था। यात्री इसका स्पर्श करते हैं और प्रसाद चढ़ाते हैं।

(मुखारविन्द तृतीयद्वार) :-

यह स्थान खोही अखाड़ा के प्रवेश द्वार पर है। एक कोठरी में कामतानाथ जी की भव्य तथा विशाल प्रतिमास्थापित है। यात्री दर्शन पूजन करते हैं।

रामघाट :-

रामघाट मन्दाकिनी नदी का अत्यन्त महत्वपूर्ण घाट है वनवास काल में भगवान श्रीराम, भगवती सीता औरअनुज लक्ष्मण जिस जगह मन्दाकिनी नदी में स्नान करते थे वह घाट कालान्तर में श्रामघाटश नाम से विख्यातहुआ।

"चित्रकूटे वसन् रामः सीतासौमित्र संयुतः।

नानामकरोत् नित्य च रामघाटः स कथ्यते।"

गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में रामघाट का उल्लेख किया है-

"मुनि बहुविधि विदेह समझाए।

रामघाट सब लोग नहाए।।"

उत्तर से दक्षिण विस्तृत मन्दाकिनी के घाट समूह के मध्य भाग में रामघाट स्थित रामघाट के पश्चिमी टीलेपर दिगम्बर अखाड़ा, यज्ञवेदी मदगञ्जन स्वामी, बड़ा मठ तथा चरखारी मन्दिर के उत्तुंग भवन खड़े हुए हैं। यहटीला श्सम्प्रतिपुरीश नाम से प्रसिद्धहै।चित्रकूट तीर्थ में मन्दाकिनी नदी का प्रमुख घाट होने के कारण पहले लोग इसे चित्रकूट घाट नाम से भी सम्बोधित करते थे। इसलिए किसी कवि ने गोस्वामी तुलसीदास जी वश्रीहनुमान जी की भेंट का दृश्याँकनकरते हुए इस घाट को श्चित्रकूट घाटश ही कहा है।

"चित्रकूट के घाट पर भई सन्तन की भीर।

तुलसीदास चन्दन घिसे तिलक करे रघुवीर।।"

किन्तु आजकल लोग इसे रामघाट नाम से जानते हैं। रामघाट से दक्षिण क्रमशः मदगञ्जन स्वामी घाट, बड़ामठ (हाथी दरवाजा) घाट तथा अन्त में राघव प्रयाग घाट सुशोभित है। रामघाट के उत्तर भी कई घाट हैं, जो बूढ़े हनुमान जी घाट तक फैले हैं। रामघाट की भव्यता और विशालता को देखते हुए काशी के गंगा घाटों की याद आ जाती है। कुछ वर्षो से यहाँ चित्रकूट धाम नगर पालिका कर्वी की ओर से नित्य गंगा आरती का शुभारम्भ किया गया है जिससे यह घाट और भी महत्वपूर्ण बन गया है।

राघव प्रयाग घाट

रामघाट से दक्षिण मन्दाकिनी पयस्विनी तथा गायत्री इन तीन नदियों के संगम में राघव प्रयाग घाट है। श्रीराम जी के वनवास आने के पूर्व यह संगम प्रयाग घाट कहा जाता था किन्तु जिस दिन से श्रीराम ने अपनेस्वर्गीय पिता दशरथ जी का श्राद्ध कर्म इस घाट पर सम्पादित किया उस दिन से इसे श्राघव प्रयाग घाटश कहाजाने लगा है। राघव प्रयाग घाट का प्रथम उल्लेख वृहत् रामायण में मिलता है।मत्तगयेन्द्र स्वामी रामघाट के ही ऊपर यज्ञ वेदी से दक्षिण मत्तगयेन्द्र शंकर जी का प्राचीन मन्दिर है। शंकर जीकी स्थापना प्राचीन काल में ब्रह्मा जी ने की थी। सम्प्रति चित्रकूट पर्वत के बाद मदभञ्जन स्वामी की हीमान्यता है। प्रत्येक सोमवार को श्रद्धालुओं की भारी भीड़ एकत्र हो जाती है। शिव पुराण में मत्तगयेन्द्र शंकरजी की चर्चा की गई है।

अनसूया आश्रम :-

रामघाट से 17 कि०मी०दक्षिण प्रकृति देवी की हरी-भरी गोद में मन्दाकिनी के तट पर अवस्थित महासती अनसूया तथा महर्षि अत्रि की तपस्थली स्थल श्अनसूया आश्रमश के नाम से विख्यात है। शास्त्रों में इस वनाँञ्चल को श्कामदवनश कहा गया है।

पुण्यशील दम्पत्ति :-

अत्रि और अनुसूया के तपोअनुष्ठान से यहाँ का कण-कण परम पवित्र है। ऊपर उत्तुंग पर्वत भाग, नीचे मन्दाकिनी का तरल प्रवाह, मध्य में महासती अनुसूया तथा अत्री जी का मन्दिर और परमहंस बाबा का भव्य स्मारक एवं तपोमन्दिर इस स्थान के गौरव हैं और प्राकृतिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से यह स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।यह वही पवित्र भूमि है जहाँ तपस्या करके माता अनुसूया ने स्वर्ग से लाकर मन्दाकिनी गंगा को प्रवाहित किया था। यह वही पावन धाम है जहाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेश को आकर चन्द्रमा, दत्तात्रेय और दुर्वासा के रूप में पुत्र बनकर पालने में झूलना पड़ा है।यह वही आदर्श आश्रम है जहाँ वनवास के समय माता अनुसूया ने महारानी जानकी जी को दिव्याभरण एवं वस्त्र पहनाया था और पतिव्रत धर्म का दिव्य उपदेश दिया था। यहाँ पहुँचने के लिए चित्रकूट सतना मार्ग से एक सम्पर्क मार्ग जाता है। रामघाट से बसें तथा टैक्सिया यहाँ के लिए बराबर आती-जाती रहती हैं।

गुप्त गोदावरी :-

प्रकृति देवी की अनोखी कलाकृति का प्रतीक गुप्त गोदावरी तीर्थ अनसूया आश्रम से 6 किलोमीटर पश्चिम है। रामघाट से 18 किलोमीटर की दूरी पर है। महाभारत आदि ग्रन्थों में वर्णित तुंगकारण्य पर्वत के उत्तर भाग में तुंगकाचल पर्वत के उत्तरी छोर पर पर्वत के गर्भ से गुप्त गोदावरी का उद्गम हुआ है। पर्वत के भीतर एक विशाल गुफा है जिसके भीतर देवी-देवताओं की मूर्तियां हैं। एक सँकरे मार्ग में यात्री प्रवेश कर गुफा के भीतर भ्रमण का आनन्द लेते हैं। यह गुफा इतनी लम्बी चौड़ी है कि एक साथ सैकड़ों यात्री प्रविष्ट होकर इसका अन्तदर्शन कर सकते हैं। गुफा की छत पर एक शिलाखण्ड लटका हुआ है, वह हर समय हिलता डुलता रहता है जिसे खटखटाचोर कहते हैं। पहले यहाँ के तीर्थ पुरोहित मशाल अथवा गैस जलाकर इसे प्रकाशित करते थे अब विद्युत व्यवस्था हो गई है। ऐसी प्राकृतिक कन्दरा देश में शायद ही अन्यत्र कहीं हो।

तुंगकाचल की कुक्षि से जिस जगह गुप्त गोदावरी का निर्गम हुआ है, वह उद्गम मार्ग काफी लम्बा है। नीचे का निर्मल प्रवाह है और उसी प्रवाह में चलकर यात्री काफी दूर तक अन्दर चले जाते हैं। 15-16 गज के भीतर एक जलकुण्ड है जिसे सीताकुण्ड कहते हैं। यहाँ का प्राकृतिक कला कौशल अद्भुत है। गुप्त गोदावरी के उद्गम स्थल पर भगवान् शंकर की दिव्य प्रतिमा स्थापित हैं। महाभारत वन पर्व में इसे सप्तगोदावरी कहा है और इसके माहात्म्य में कहा है कि जो व्यक्ति इस सप्तगोदावरी में स्नान करता है वह महान पुण्य का भागी होता है और वह सहज स्वर्ग को प्राप्त कर लेता है।

इसी प्रकार महाभारत में तुंगकारण्य (तुंगाचल पर्वत) की प्रशंसा में भी कहा गया है कि तुंगकारण्य में प्रवेश करते ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं तवरण्यं प्रविष्टस्य तुंगकं राजसत्तम

"पापं प्रणश्यत्यखिलं स्त्रियो वा पुरुषस्य वा।।"

श्री हनुमान धारा तीर्थ :-

रामघाट से 3 किलोमीटर पूर्व संकर्षण पर्वत पर श्री हनुमान धारा तीर्थ प्रसिद्ध तीर्थ स्थित है धरातल से सैकड़ों फीट ऊपर तथा ऊपर से सैकड़ों फीट नीचे पर्वत के मध्य भाग में श्री हनुमान जी की मूर्ति विराजमान है ऊपर से निकल कर एक धरना की धार मूर्ति को नहला ती है और नीचे गिरकर विलीन हो जाती है मूर्ति के चारों ओर डाला ने कमरे तथा जला से बने हुए हैं थोड़ी ऊपर सीता रसोई नामक मन्दिर है सब मिलकर यहाँ का प्राकृतिक दृश्य इतना सुन्दर मनोरम तथा आकर्षक है जिसे देखकर यात्री मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं और थोड़ी देर तक सब कुछ भूल कर इस दृश्य को देखना देखता ही रहता है।धरातल से मूर्ति तक पहुँचने के लिए 300 से अधिक सीढ़ियाँ बनी हुई है प्रत्येक मंगलवार को यहाँ यात्री पहुँचते रहते हैं, पर भाद्र सुदी में बुढ़वा मंगल को यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है।मन्दिर के प्रबन्ध की व्यवस्था चित्रकूट नयागाँव के पूर्व जागीरदार के परिवारी जनों के संरक्षण में एक प्रेस ट्रस्टद्वारा की जाती है।रामघाट से ऊपर मन्दाकिनी में पुल का निर्माण हो जाने से हनुमान धारा पहुँचने में यात्रियों को बड़ी सुविधा होगई है। हनुमान धारा तीर्थ के नीचे धरातल पर कई सुविधाजनक आश्रम, दुकानें धर्मशाले आदि भी बन गएहैं।

गणेश बाग :-

कर्वी से 1 कि०मी० दक्षिण मिनी खजुराहोश के नाम से चर्चित गणेशबाग स्थान है। इसका निर्माण 19वींशताब्दी के प्रारम्भ में श्रीमन्त विनायकराव पेशवा ने अपने आमोद- प्रमोद के लिए कराया था। उनकी राजधानी मन्दाकिनी तट कर्वीवह राजमहल नदीकिनारे आज भी अद्धध्वंश की स्थितिविद्यमान है। विनायकराव सन 1802 ई. के बाद ही कर्वी आया था। और इसके पश्चात् ही उन्होंने कर्वी काराजमहल और गणेश बाग का निर्माण कराया था।

गणेशबाग की इमारतों का निर्माण भारतीय स्थापत्य कला का उत्कृष्ट नमूना है बीच में प्राचीन शैली का भव्यषट्कोणीय पञ्चमन्दिर है जिसके ऊपरी भाग में चारों ओर भित्ति प्रस्तरों पर बारीक कटाई करकेशैली में देवी-देवताओं की मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गई है। मूर्तियों की कई मूर्तियाँ रतिक्रीड़ा में रत दिखाई गई हैंएक और देवी-देवताओं की धार्मिक मूर्तियाँ तो वहीं दूसरी ओर सम्भोग श्रृंगार में निरत मूर्तियों का संयोजनकिस मानसिकता का प्रतीक है इसका रहस्य आज भी अवगुण्ठन में है। सामने एक स्वच्छ जल वालाखजुराहो कीचतुष्कोणीय भव्य सरोवर है जिसके चतुर्दिक सोपान (सीढियाँ) बनी हुई हैं। मन्दिर के पश्चिमी भाग में एक सुन्दरजलाशय है जिसमें कूप और वापी (बावली) का अद्भुत सम्मिश्रण है। यह तीन खण्डों का है। इसके दो खण्डपानी में प्रायः डूबे रहते हैं। गर्मियों में दूसरा तल भी खुल जाता है। यह स्थान पर्यटन के रूप में देखा जाता है।सम्प्रति यह पुरातत्त्व विभाग द्वारा संरक्षित है।

सोमनाथ मन्दिर-(प्रथम ज्योतिर्लिंग) :-

चित्रकूट कर्वी से 12 किलोमीटर पूर्व कर्वी इलाहाबाद रोड तथा कर्वी मानिकपुर रोड के मध्यवर्ती ग्रामसेमें बाल्मीकि नदी के तट पर एक पहाड़ी पर भगवान सोमनाथ शिव जी का भव्य प्राचीन मन्दिर है। मन्दिर केगर्भगृह की द्वारभित्ति पर एक शिलालेख अंकित है। जिसमें लिखा हुआ है कि इसका निर्माण 14वीं शताब्दी के अन्त में तत्कालीन नरेश राजा कीर्ति सिंह ने कराया है।

सोमनाथ भगवान शंकर के 10 ज्योतिर्लिंगों में प्रथम ज्योतिर्लिंग है। मूल मंदिर सौराष्ट्र प्रदेश में था किन्तुविधर्मियों द्वारा उसके विध्वंस तथा भ्रष्ट हो जाने पर वहाँ के तत्कालीन शासक राजा व्याघ्रदेव जी वहाँ सेपलायन कर चित्रकूट में शरण ली थी और यही राज्य स्थापित कर लिया था। इन्हीं के वंशज राजा कीर्तिसिंह नेग्राम चर में अभिनव सोमनाथ मन्दिर का निर्माण कराया था। जिसकी मान्यता ज्योतिर्लिंग पीठ के रूप में हीप्रतिष्ठित हुई थी। जिस पहाड़ी पर इस मन्दिर का निर्माण हुआ है उस पहाड़ी को हमारे पूर्वज सौरठिया पहाड़ी कहते थे। उससमय सौरठिया का अर्थ लोगों को समझ में नहीं आया था पर अब स्पष्ट हो गया है कि सौराष्ट्र का अपभ्रंशसौरठिया है। इसके समीप ही तत्कालीन शासकों की उपराजधानी भी थी जिसका नाम मदनगढ़ था।

आजकल लोगश्मदनाश नाम से पुकारते हैं। उसके ध्वशावशेष आज भी विद्यमान हैं।सौभाग्य से इन पंक्तियों के लेखक का जन्म इसी चर गाँव में हुआ था। इसलिए आँख खोलते ही हमेंसोमनाथ भगवान के दर्शनों तथा उनसे जुड़ी जनश्रुतियों को सुनने का अवसर मिला था। परन्तु इन जनश्रुतियोंका ऐतिहासिक

आधार अभी खोजा नहीं जा सका है।मन्दिर के प्राँगण में तथा मन्दिर के बाह्य भूभाग में जीर्णावस्था में असंख्य भग्नावशेष बिखरे पड़े हुए हैंऔर उनमें से एक भी ऐसा प्रस्तर खण्ड नहीं है जिसमें नक्काशी ना हो जो उत्कीर्ण ना हो।मन्दिर की चतुर्दिक् भित्तियों पर देवी-देवताओं की मूर्तियाँ पत्थर की कटाई करके उत्कृकीर्ण हैं जोप्राचीन शिल्प कला का अद्भुत नमूना है

वनाँञ्चल में नदी के किनारे निर्मित इस देवालय के बारे में जन चर्चा है कि इसके निर्माता बघेलनरेशों ने स्वर्ण रजत एवं रत्नों का अपरमित भण्डार गुप्त रूप में छिपा रखा है। प्रस्तर की बड़ी पेटियाँ तथा गुप्तगृहों के भग्नावशेष इन अनुमानों के साक्षी हैं। विगत वर्षों में अनेक लोगों को धनराशियाँ मिली थी किन्तुवह धन उन्हें फलीभूत नहीं हुआ, पाने वाले को कोई ना कोई अनिष्ट हो ही जाता था।इर्द-गिर्द की बस्तियों के लोग शंकर जी की पूजा अर्चना करने आते रहते हैं शिवरात्रि पर्व पर एक छोटा सा मेला लग जाता है। इस प्राचीन धरोहर की रक्षा के लिए चर गाँव के कुछ प्रबुद्ध लोगों का ध्यान इधर आकृष्ट हुआ है। श्रमदान, स्वच्छता, सफाई का अभियान चलाया गया है। बिजली नल की व्यवस्था तथा सड़कों का निर्माण भी हुआ है। सुन्दरीकरण का प्रयास हो रहा है। पुरातत्त्व विभाग के कर्मचारी तथा पत्रकार वर्ग भी यथा समय पहुँचने लगे हैं।

बुन्देलखण्ड के इतिहास के अनुसार विधर्मियों द्वारा सौराष्ट्र प्रदेश के प्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिर को लूटने और ध्वंस करने के बाद वहाँ के तत्कालीन बघेल शासक व्याघ्रदेव बघेल तेरहवीं सदी के अन्त में सौराष्ट्र छोड़कर कालिञ्जर में शरण ली थी। कुछ दिन चित्रकूट के समीप मड़फा में शासन करने के पश्चात् बघेलशगहोराश को अपनी राजधानी बनाया। तभी गहोरा के पास ही बरकोट गाँव में कुछ भवन बनवाए और सौराष्ट्र के सोमनाथ मन्दिर की स्मृति में उसी के अनुरूप गाँव चर के इस सोमनाथ मन्दिर का निर्माण कराया था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1) चित्रकूट दर्शन 2012-13 चित्रकूट सूचना कोष अर्थ एवं संख्या अधिकारी कार्यालय चित्रकूट द्वारा प्रकाशित ।
2) जय नारायण पाण्डेय भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद, 1998।
3) वरुण डी०पी० (सम्पादक), बाँदा जिला गजेटियर लखनऊ 1977 ई०।
4) डॉक्टर महेन्द्र कुमार उपाध्याय बुन्देलखण्ड का पुरातत्व एवं संस्कृति।

कट्टरता और आतंकवाद का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

डॉ० अनामिका

सहायक प्राध्यापक, मनोविज्ञान विभाग, जमुनी लाल कॉलेज, हाजीपुर, भीम राव अंबेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

कट्टरता और उग्रवादी मानसिकता विश्व शांति और सुरक्षा के साथ ही राष्ट्रों के आंतरिक सुरक्षा के लिए बड़े खतरे के रूप में बरकरार है। कट्टरता चाहे धार्मिक हो, सांस्कृतिक हो, विचारधारागत हो या इस्लामिक हो, राष्ट्र की एकता और अखंडता के लिए गंभीर खतरा है। चूँकि उग्रवाद एवं आतंकवाद एक ज्वलंत सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक, प्रशासनिक समस्या है तथा इस क्षेत्र में बहुत कम तथ्य परक शोध हुये हैं अत एव आतंकवाद के राजनैतिक तत्त्वों के अध्ययन हेतु वर्त्तमान शोध विषय का चयन किया गया है। वर्त्तमान शोध पत्र में आतंकवाद को एक सामाजिक, प्रशासनिक एवं व्यवहारिक घटना के रूप में परिभाषित किया गया है। जिसकी अभिव्यक्ति तोड़-फोड़, लूटपाट, हत्या एवं नरसंहार के रूप में होती है। भारत जैसे बहुधार्मिक, बहुसांस्कृतिक और बहुनृजातीय देश में यह आश्वासन कि कट्टरपंथ और कट्टरपंथियों का कोई खास मजहब नहीं होता, कट्टरपंथी किसी भी धर्म से संबंधित हो सकते हैं फिर चाहे वो इस्लामिक कट्टरपंथी हों या फिर हिन्दू व सिक्ख हो। गृह मंत्रालय का मानना है कि रेडिकलाइजेशन के वैधानिक रूप से परिभाषित ना होने के चलते पुलिस द्वारा इस स्थिति का दुरुपयोग किया जाता है। गुमराह युवाओं को जो देश में माओवादी, नक्सवादी या वामपंथी उग्रवाद, आतंकी गतिविधि, अलगाववादी और उग्रवादी गतिविधि में संलग्न होते हैं, उन्हें किन आधारों पर कट्टरपंथी कहा जाएगा, यह परिभाषित होना जरूरी है जिससे देश के विधि प्रवर्तनकारी निकायों के समक्ष उनके खिलाफ कार्यवाही करने में कोई असमंजस ना हो और कोई मानवाधिकार की दुहाई देते हुए कश्मीर या उत्तर पूर्व के अलगाववादियों, मिलिटेंट्स के हक में बोलने के लायक रह जाए।

परिचय

आतंकवाद किसी एक देश की समस्या नहीं, वरन् विश्वव्यापी चुनौती है। भारत करीब दो दशक से भी ज्यादा समय से आतंकवाद का कष्ट झेलता आ रहा है। यहां हजारों लोग, जिनमें महिलाऐं और बच्चे भी शामिल हैं, आतंकवाद के शिकार हो चुके हैं। विश्व के किसी देश या विश्व संगठन ने इस अमानवीय उत्पात को गम्भीरता से नहीं लिया। भारत यह निरन्तर मांग करता रहा है कि आतंकवादी हिंसा के खिलाफ अन्तरराष्ट्रीय मोर्चा खोला जाए, लेकिन मौखिक सहानुभूति के सिवाय व्यवहार में कुछ भी नहीं हुआ। परिणाम आज सभी के सामने है। भारत सहित अफगानिस्तान, रूसी समूह के गणतंत्र चेचन्या एवं बोस्निया, फिलिपीन्स, इंडोनेशिया आदि देशों में भी आतंकवाद अपनी जड़ें जमा चुका है। आतंकवाद आज एक ऐसा यथार्थ बन गया है जिससे हर कोई व्यक्ति, समुदाय, संगठन और देश परिचित ही नहीं हैं बल्कि उससे कम या अधिक प्रभावित और आहत भी हो रहे हैं। आज आतंकवाद जो कि अधिकांश रूप में हमारे सामने हिंसात्मक रूप में है, को समाप्त करने के लिए केवल हिंसा और हिंसा की बातें की जा रही हैं। आतंकवाद को समाप्त करने के लिए एक दूसरे प्रकार के आतंकवाद से बात नहीं बनने वाली है। इसके लिए निष्पक्ष, समन्वित और उद्देश्यपरक रूप से इसको उत्पन्न करने वाले कारणों की शुद्ध रूप में पहचान करने और उसकी जड़ों पर हमला करने की आवश्यकता है। विश्वभर में आतंकवाद के विरूद्ध विरोध के जो स्वर उभर कर आ रहे हैं वह पानी की बूंद की तरह हैं, जबकि आवश्यकता एक समग्र एवं समन्वित प्रयास की जरूरत है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए हाल ही में यूरोपीय देश फ्रांस ने अपने देश में एक पृथकतावाद विरोधी विधेयक पारित किया है जिसका मुख्य उद्देश्य इस्लामिक कट्टरता और उग्रवाद से अपने सामाजिक सांस्कृतिक ताने बाने को सुरक्षा देना है। फ्रांस में विचार और अभिव्यक्ति की आजादी बनाम धार्मिक आस्था का प्रश्न इस्लामिक कट्टरता से निपटने के प्रश्न से जुड़ गया है। इसलिए फ्रांस ने ऑनलाईन अथवा साइबर उग्रवाद से निपटने और ऑनलाईन हेट स्पीच तथा इंटरनेट से व्यक्तिगत जानकारी को लेकर कट्टरता बढ़ाने जैसी गतिविधियों पर प्रभावी नियंत्रण लगाने के लिए मजबूत कानून ले आने का काम किया है। फ्रांस का मानना है कि धार्मिक कट्टरता और रूढ़िवादिता विश्व के देशों के लोकतांत्रिक मूल्यों पर चोट कर रही है। फ्रांस में इस्लामिक आतंकी संगठनों के द्वारा धार्मिक आस्था के नाम पर नागरिकों, शिक्षकों की हत्याएं की गई हैं जिन्हें फ्रांस किसी भी कीमत पर औचित्यपूर्ण मानने के लिए तैयार नहीं हैं लेकिन फ्रांस को यह साफ करना पड़ा है कि वह इस्लामिक कट्टरता से निपटने वाले बिल के जरिए फ्रांस में रहने वाले मुस्लिम समुदाय को रेडिकल इस्लाम की मजबूत जकड़न से मुक्त करने की मंशा रखता है, ना कि इस्लाम और पूरे मुस्लिम समुदाय को निशाना बनाने की। फ्रांस के इस प्रस्तावित कानून के जरिए मस्जिदों को प्राप्त होने वाली विदेशी वित्तीय सहायता पर रोक लगाना आसान हो जाएगा। वहीं टर्की जैसे देश फ्रांस के इस निर्णय को एक रेसिस्ट कदम कह रहे हैं जो इस्लाम के खिलाफ जाते दिख रहा है।

फ्रांस से हट कर अपने देश भारत की बात करें तो यहां भी कट्टरता, धर्मांधता, धार्मिक और अन्य आधारों पर उग्रवादी मानसिकता, रूढ़िवादिता के जरिए आतंकी गतिविधि, अलगाववादी आंदोलन, जेहादी विचारधारा को फलने फूलने का अवसर मिला है और इस बात की गंभीरता को ध्यान में रखकर भारत सरकार के गृह मंत्रालय ने भी हाल ही में देश में हर तरह के रेडिकलाइजेशन (कट्टरता) की वर्तमान स्थिति को जानने और उसके हिसाब से देश की आंतरिक सुरक्षा के लिए काम करने के उद्देश्य से एक व्यापक अध्ययन को मंजूरी दी है। देश में कट्टरता की स्थिति का पता लगाने संबंधी अनुसंधान इस दिशा में

देश में पहली बार किया जा रहा है। इसके तहत कट्टरता शब्द को वैधानिक रूप से परिभाषित किया जाएगा और उसके अनुरूप वैधानिक क्रियाकलाप (रोकथाम) अधिनियम, 1967 में आवश्यक संशोधन करने की सिफारिश की जाएगी। गृह मंत्रालय के तत्वावधान में इस अध्ययन और अनुसंधान को दिशा देने वाले नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी, दिल्ली ने स्पष्ट किया है कि देश में किस-किस प्रकार की कट्टरता है, उसकी वजह क्या है, उसको बढ़ावा देने वाले कारक कौन से हैं और कट्टरता की सोच को खत्म कैसे किया जा सकता है, इन सब अध्ययनों को धार्मिक रूप से तटस्थ होकर संपन्न किया जाएगा।

गृह मंत्रालय के इस अनुसंधान पहल के तहत भारत के पवित्र धर्म ग्रंथों कुरान, गीता, बाइबल की सही व्याख्या करने पर बल देने के साथ ही कट्टरपंथी युवाओं को दोषी नहीं बल्कि गुमराह युवा होने की बात की गई है जो सरकार के उदार दृष्टिकोण को दर्शाता है। इसलिए यह कहा गया है कि गुमराह युवाओं के खिलाफ आक्रामक पुलिस कार्यवाही का उल्टा प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए जोर इस बात पर होना चाहिए कि गुमराह युवाओं का डी - रेडीकलाइजेशन रणनीति के तहत कैसे उनकी कट्टरपंथी सोच और वैचारिकी का खात्मा किया जा सकता है। गृह मंत्रालय के तत्वावधान में गुमराह युवाओं को उनकी कट्टरपंथी सोच से उन्हें मुक्त करने के लिए डी- रेडीकलाइजेशन के लिए महाराष्ट्र मॉडल का अध्ययन किया गया है जहां इस दिशा में सफलता पाई गई है। भारत में युवाओं में कट्टरपंथ के प्रसार का साक्ष्य संयुक्त राष्ट्र के इस्लामिक स्टेट, अलकायदा और अन्य संबंधित व्यक्तियों और इकाइयों से संबंधित एनालिटिकल सपोर्ट एंड सैंक्शंस मॉनिटरिंग टीम पर 26 वीं रिपोर्ट में दिया गया है। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि आईएसआई और अलकायदा के कई सदस्य कर्नाटक और केरल के हैं। ऐसी भी आशंका रिपोर्ट में व्यक्त की गई है कि आईएसआईएल से संबद्ध भारतीय शाखा हिन्द विलायाह में लगभग 200 सदस्य हैं जो इस्लामिक चरमपंथी मानसिकता के शिकार हैं। वहीं भारत के नेशनल इन्वेस्टिगेशन एजेंसी भी तेलंगाना, केरल, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु से 122 व्यक्तियों जिन पर आईएसआईएस से जुड़े होने का आरोप है पर 17 मामलों के तहत अभियोग चलाकर उन्हें गिरफ्तार किया गया था।

कश्मीर में ओवरग्रांउड वर्कर्स के रूप में गुमराह युवा

ओवरग्राउंड वर्कर ऐसे युवा व्यक्ति हैं जो प्रत्यक्ष रूप से आतंकी घटना को संपन्न करने में तो संलग्न नहीं होते लेकिन आतंकवादियों को हिंसक आतंकी हमलों और उनके अन्य उद्देश्यों को पूरा कराने में सहायक की भूमिका अदा करते हैं। ये ऐसे व्यक्ति हैं जो आतंकी विचारधारा से धर्म और मौद्रिक लाभों के आधार पर प्रभावित होते हैं और आतंकियों के लिए अपने घरों में शरण देने, उनके लिए विभिन्न आवश्यक उपकरण जैसे मोबाइल, सिम, हथियार, अन्य आवश्यक रसद मुहैय्या कराने में अप्रत्यक्ष रूप से लगे होते हैं। इनके द्वारा धर्म के आधार पर युवाओं को गुमराह कर आतंकी गुटों में भर्ती कराने के लिए सक्रियता देखी गई है। कश्मीर में ओवर ग्राउंड वर्कर ने आतंकियों की भर्ती और प्रशिक्षण को संपन्न कराने में सहायक की भूमिका निभाई है। ये विभिन्न प्रकार के वाहनों का इंतजाम कर आतंकियों के लिए हथियारों की आपूर्ति करते हैं। दक्षिणी कश्मीर में सक्रिय हिज्बुल मुजाहिदीन जैसे आतंकवादी गुटों के ओवर ग्राउंड वर्कर के नेटवर्क पर नियंत्रण लगाने के उद्देश्य से ही भारत सरकार ने वर्ष 2019 के प्रारंभ में ही कश्मीर में जमात ए इस्लामी पर प्रतिबंध लगा दिया। यह संगठन अपने ओवर ग्राउंड वर्कर्स की सहायता से कश्मीर में अलगाववाद और पत्थरबाजी के साथ ही आतंकवादियों को सहयोग देने के कार्य में लिप्त पाया गया था। भारत सरकार के गृह मंत्रालय द्वारा कहा गया है कि जमात-ए-इस्लामी जो कि हिज्बुल मुजाहिदीन और हुर्रियत का अभिभावक संगठन है, वह कश्मीर घाटी में पृथकतावादी और कट्टर विचारधारा के प्रसार के लिए जिम्मेदार है। इसके साथ ही यह हिज्बुल मुजाहिदीन को सभी प्रकार के सहयोग और समर्थन लगातार उपलब्ध करा रहा है। यह हिज्बुल मुजाहिदीन को भर्ती, फंडिंग, हथियारों की सप्लाई, आश्रय और लॉजिस्टिक्स समर्थन प्रदान करते हुए पाया गया है।

गौरतलब है कि जमात-ए-इस्लामी एक सामाजिक धार्मिक समूह के रूप में वर्ष 1942 से जम्मू और कश्मीर में सक्रिय रहा है लेकिन हाल के समय में इसके द्वारा पाकिस्तान से प्राप्त फंडिंग के जरिए कश्मीर के युवाओं को इस्लामिक रेडिकलाइजेशन के मार्ग पर ले जाने का सक्रिय प्रयास किया गया है और स्थानीय युवाओं ने इसकी कट्टर धार्मिक सीखों से प्रेरित होकर आतंकवादी संगठनों के सदस्य बन गए हैं। हाल के समय में अधिकांश स्थानीय नागरिक जो कश्मीर में आतंकवादी समूहों से जुड़े हैं, वे जमात-ए-इस्लामी से भी उसके शैक्षणिक संस्थानों या धार्मिक गतिविधियों से किसी न किसी रूप में जुड़े रहे हैं। वर्ष 2018 में 180 से अधिक कश्मीरी युवाओं ने आतंकी समूहों की सदस्यता ली है जिसमें 56 प्रतिशत से अधिक स्थानीय नागरिक थे। वर्ष 2018 में ही कश्मीर में 252 आतंकवादी मारे गए जिनमें से लगभग 60 प्रतिशत स्थानीय नागरिक थे। पूर्व में विदेशी आतंकवादी ज्यादा संख्या में मारे जाते थे लेकिन पिछले 2 वर्षों में कश्मीर के स्थानीय युवा जो आतंकी बन चुके हैं उनकी मौत अधिक हुई है। यह बात गुमराह युवाओं की स्थिति को दर्शाता है। केंद्र सरकार ने 28 फरवरी 2019 को जमात-ए-इस्लामी पर प्रतिबंध लगाते हुए कहा था कि यह कश्मीर घाटी में बच्चों और युवाओं के मध्य अपने स्कूली नेटवर्क का इस्तेमाल कर भारत विरोधी भावना और मानसिकता का पोषण कर रहा है इसके नेता जमात-ए-इस्लामी के यूथ विंग के कैडरों को प्रोत्साहित कर रहे हैं और इसका यूथ विंग जमीअत उल तुलबा युवाओं को आतंकियों के रूप में भर्ती करने के कार्य में लगा है।

कट्टरपंथ से निपटने की आवश्यकता

भारत सरकार के गृह मंत्रालय के तहत देश में चरमपंथ और कट्टरपंथी सोच से निपटने के लिए आतंकवाद-रोधी एवं इस्लामिक कट्टरवाद रोधी (सीटीसीआर) प्रभाग बनाया गया है। यह आतंकवाद, आतंकवाद से मुकाबला करने, कट्टरपंथीकरण, गैर कानूनी क्रियाकलाप (रोकथाम) अधिनियम, नेशनल इन्वेस्टिगेशन एजेंसी अधिनियम, फेक इंडियन करेंसी नेटवर्क (एफआईसीएन) और फाइनेंशियल एक्शन टास्क फोर्स (एफएटीएफ) के आतंक के वित्त पोषण को रोकने, काले धन और मनी लॉन्ड्रिंग से निपटने के प्रयासों को दिशा देता है। इसके अलावा कट्टरपंथ से निपटने के लिए भारत के सशस्त्र बलों, अर्ध सैनिक बलों के द्वारा कट्टरपंथ, अलगाववाद और आतंकवाद प्रभावित क्षेत्रों में प्रभावी तरीके से सिविक एक्शन प्रोग्राम और परसेप्शन मैनेजमेंट रणनीति के जरिए गुमराह युवाओं में शासन प्रशासन के प्रति विश्वसनीयता के भावों का विकास किया जाना जरूरी है। जेहादी साहित्य, दस्तावेज आदि के प्रसार को रोकने के लिए सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स का प्रभावी विनियमन जरूरी है। उग्रवाद, आतंकवाद और कट्टरतावाद या चरमपंथ को केवल बल के इस्तेमाल से पराजित नहीं किया जा सकता और इसके लिए समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता को स्वीकार करना राष्ट्रों के लिए जरूरी है। अतिवादी और हिंसक विचारधाराओं

को बढ़ावा देने के लिए वेब और सोशल मीडिया के उपयोग को रोकना, युवाओं को कट्टरपंथी बनाने और आतंकवादी कार्यकर्ताओं की भर्ती करने में धार्मिक केंद्रों के उपयोग को रोकने और सहिष्णुता को बढ़ावा देने के उपाय राष्ट्रों द्वारा किए जाने आवश्यक हैं। इस संदर्भ में उरुग्वे के सवाब और हेदायह केंद्र जैसी पहलों के योगदान का उदाहरण दिया जा सकता है जो चरमपंथी विचारधाराओं का मुकाबला करने और अंतरराष्ट्रीय उग्रवाद-विरोधी सहयोग को ऑनलाईन स्तर पर आगे बढ़ा रहे हैं। ऐसे ही चरमपंथ विरोधी केंद्रों के गठन की जरूरत भारत में भी है। इसके अतिरिक्त आधुनिक शिक्षा प्रणाली जिसमें मानवीय मूल्य, लोकतांत्रिक मूल्यों और सरोकारों, मानवाधिकारों, राष्ट्रीय एकीकरण के भावों को संवेदनशीलता के साथ रखा गया हो, उसे चरमपंथ प्रभावित क्षेत्रों में कुशलता से रखा जाना आवश्यक है।

उग्रवाद एवं आतंकवाद एक विश्वव्यापी समस्या वर्त्तमान समय में उत्पन्न हो गई है तथा विभिन्न रूपों में इसकी अभिव्यक्ति एवं परिणति हो रही है। सकारात्मक एवं नकरात्मक दोनों ही उद्देश्यों से इसकी अभिव्यक्ति एवं प्रस्तुती हो रही है चाहे वह चेचन्या का विद्रोह हो, मनीला में बामपंथी सरकार एवं दक्षिणपंथी जनता का विद्रोह हो, श्रीलंका में सरकार तथा लिट्टे के बीच का विद्रोह हो, अमेरिका के विश्वव्यापार केन्द्र एवं पेंटागन पर 11 सितम्बर 2001 को विनाशाकारी आक्रमण हो, भारत के गुजरात राज्य में हिन्दूवाद की परिणति आतंकवाद के रूप में भी होने लगती है तथा मूल उद्देश्य से हटकर आतंक फैला एवं राजनीति के लाभ लेना इसका उद्देश्य हो जाता है।

जहाँ तक भारत में आतंकवाद की घटना का प्रश्न है यह 20 वीं शताब्दी के द्वितीय दशक से प्रारम्भ हुई। जब देश की आजादी हेतु कुछ स्वतंत्र विचारवाले व्यक्ति विप्लववादी संगठन का निर्माण किये जिसके प्रमुख लाला लाजपत राय, बालगंगाधर तिलक, विपीन चन्द्रपाल थे। इन विप्लवियों द्वारा उग्रवादी घटनाओं को अंजाम दिया जाता था जिसका उद्देश्य देश की आजादी प्राप्त करना था। इस विप्लवियों के उग्रवादी घटनाओं का प्रथम चरण 1915 ई0 से 1923 ई0 तक रहा। द्वितीय चरण निर्णायक चरण था जो 1935 ई0 से 1947 ई0 तक रहा और देश की आजादी के पश्चात् समाप्त हुआ।

उग्रवाद, आतंकवाद एवं सामूहिक हिंसा के क्षेत्र में कुछ छिटपुट अध्ययन हुये है। इस संदर्भ में डोलार्ड तथा अन्य (1939) ने कुंठा (हताश) आक्रामकता सिद्धान्त को प्रस्तुत करते हुए कहा है कि जब व्यक्ति या समूह किसी परिस्थति में कुंठा या हताश महसूस करता है तो उसके प्रतिकार के रूप में अक्रामक एवं उग्रवादी घटनाओं की व्याख्या में सहायक हो सकता है। यह सिद्धान्त हो सकता है किन्तु विभिन्न क्षेत्रों कुंठा या हताश के कारणों की व्याख्या अलग-अलग ढंग से की जा सकती है। बिहार में अनेक उग्रवादी संगठनों के उत्पत्ति के पीछे निश्चय ही विभिन्न प्रकार के कुंठा या हताशो की भूमिका रही है जैसे एम. सी.सी., पीपुल्सवार ग्रुप, रणवीर सेना आदि सक्रिय उग्रवादी संगठन है। ये संगठन लूटपाट एवं नरसंहार की घटनाओं को अंजाम देते हैं। कभी-कभी परस्पर वर्चस्व स्थापित करने के लिये भी उग्रवादी संगठनों द्वारा हत्या लूटपाट एवं आतंक का वातावरण बनाया जाता है।

देश एवं समाज में बढ़ते हुये आतंकवाद एवं तत्संबंधी अपराधिक घटनाओं से जनसमूह में अत्यधिक भय एवं चिन्ता का वातावरण बनता जा रहा है जिसके कारण अनेक प्रकार के मनोवैज्ञानिक कुवृत्तियाँ एवं मनोदैहिक रूग्नतायें उत्पन्न हो रही है, जो शहर या गाँव आतंकवाद से प्रभावित रहता है वहाँ के लड़के-लड़कियों के विवाह में कठिनाईयाँ होती है। इतना ही नहीं उक्त इलाके के गरीब, मजदूर एवं कमजोर वर्ग के लोग गाँव को छोड़कर अनिश्चित स्थान पर चले जाते हैं जिससे अर्थव्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हो रही है। यद्यपि सरकार के द्वारा आतंकवादी घटनाओं को रोकने के लिये सरकारी व्यवस्था की जाती है परन्तु विगत सालों से यह व्यवस्था प्रभावशाली नहीं हो पा रही है क्योंकि जब तक आतंकवादी घटनाओं के कारणों को खोजकर दूर नहीं किया जाएगा तबतक इसे रोकना असंभव है। प्रस्तुत शोध पत्र में उन सामाजिक राजनैतिक कारकों की खोज की जाएगी जो आतंकवाद के उत्पत्ति में सहायक होते हैं। चूँकि हमारे यहाँ फैले आतंकवाद का सम्यक अध्ययन नहीं हो पाया है अतएव इसका अध्ययन करना इस शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य है। 11 सितम्बर 2001 को अमेरिका पर हुए फिदायीन हमले में हजारों मासूम लोगों की मौत के बाद अमेरिका एवं विश्व के अन्य देशों की आंख खुली। स्वयं आहत होने पर अमेरिका को भान हुआ कि आतंकवादी कितने नृशंस, क्रूर और खतरनाक हैं। अपने ऊपर हमलों को अमेरिका ने युद्ध की संज्ञा दे डाली। आनन-फानन में बिना किसी ठोस सबूत के संयुक्त राष्ट्र सघ के माध्यम से नाटो सेनाओं द्वारा पहले अफगानिस्तान और फिर इराक पर एकतरफा आक्रमण कर दिया। अमेरिका का चेतावनी पूर्वक कहना है कि विश्व के देश इस मुहिम में उसके पक्ष में होकर आतंकवाद के विरूद्ध लड़ाई में उसका साथ दें और जो ऐसा नहीं करेगा वो देश स्वत: ही विपक्ष में समझा जाएगा।

आतंकवाद के काले बादल केवल गैर मुस्लिम देशों पर ही नहीं मंडराते रहे हैं, इससे बड़ी संख्या में मुस्लिम देश भी पीडिघ्त रहें हैं जिसमें सूडान, लीबिया, लेबनान, सीरिया, ईरान, इराक, मिश्र, अल्जीरिया आदि प्रमुख हैं। जानकार मानते हैं कि दुनिया के अधिकांश देश आतंकवाद को समूल नष्ट करना चाहते हैं क्योंकि इसके चलते उनकी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था ध्वस्त होने लगी है। मुस्लिम देशों की परेशानी का बड़ा कारण अफगानिस्तान से होने वाली मादक पदार्थों का तस्करी भी है। उल्लेखनीय है कि अफगानिस्तान में दुनिया की लगभग 70 प्रतिशत से भी ज्यादा अफीम पैदा होती है। इससे बनने वाले मादक पदार्थों की आय से आतंकवादी गतिविधियों का संचालन होता है। आज आतंकवाद दुनिया के कई हिस्सों में फैला हुआ है, जिसका संचालन अफगानिस्तान से होता है। पाकिस्तान और अफगानिस्तान ही दो ऐसे देश हैं, जो आतंकवादियों को पनाह ही नहीं देते, वरन छापामारी का प्रशिक्षण, अस्त्र-शस्त्र, गोला बारूद भी देते रहें हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति परिवर्तनशील है, इसलिए नीतिकारों का कहना है कि राजनीति में न कोई स्थायी मित्र होता है, न कोई शत्रु। सन् 1980 के दशक में अफगानिस्तान सरकार के लिए जब तत्कालीन सोवियत संघ की सेनाऐं वहां तैनात की गई तो उन्हें उखाड़ने, भगाने के लिए अमेरिकी गुप्तचर संस्था सीआईए ने ओसामा-बिन-लादेन एवं उसके संगठन अलकायदा को अफगानिस्तान में छापामारी एवं अस्त्र-शस्त्र का सहारा दिया। वहां आतंकवादियों के गिरोह अमेरिकी आर्थिक और शस्त्र की सहायता से संगठित किये गये। इस अभियान का संयोजन एवं संचालन पाकिस्तान को सौंपा गया। कट्टरपंथी तालिबान एवं सऊदी अरब मूल के आतंकवादी सरगना ओसामा-बिन-लादेन उसी दौर का उपज था। वर्षों से अलकायदा को लेबनान के हिजबुल्ला गुरिल्लाओं, सूडान, पाकिस्तान और अफगानिस्तान की कथित तालिबान सरकार से मदद मिल रही है। अलकायदा चेचन्या से लेकर यमन, फिलिपींस तक आतंकवादी हमले में शामिल रहा है। पाकिस्तान इसकी शह लेकर भारत में भी आतंकवाद को बढ़ावा देता रहा है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि देश की आजादी के डेढ़ दशक पश्चात् भारत में पुनः आतंकवादी घटनाओं की शुरूआती होने लगी। आंध्रप्रदेश के तेलांना तथा पं0 बंगाल के नक्सलवाड़ी क्षेत्र में शोषितों एवं दलितों द्वारा अपने उपर किये जाने वाले शोषण एवं अत्याचारों के विरूद्ध घोर विरोध किया जाने लगा तथा धीरे-धीरे उग्रवादी संगठन का रूप धारण कर लिया। सन् 1970 के आसपास बिहार में उग्रवादी घटनाओं की शुरूआत हुई। 1971 ई0 में पूर्णिया के धमदाहा प्रखंड के रूपसपुर चंदवा में बिहार विधानसभा में पूर्व अध्यक्ष लक्ष्मी नारायण सुधांशु के परिवार तथा 14 संथाली आदिवासी बंटाईदारों को गोली मार दिया गया था। इस तरह 1927 से लेकर 2002 तक बिहार में उग्रवाद एवं नरसंहार के लगभग 100 घटनाएँ घट चुकी है। मध्य बिहार के गया, आरा, जहानाबाद, बक्सर में सर्वाधिक उग्रवादी घटनाएँ घटी है। विगत 20 वर्षों से सरकार उग्रवादी नियंत्रण हेतु अनेक योजनाएँ बना चुकी है तथा कानून व्यवस्था में भी सुधार लाने का प्रयास कर रही है। परन्तु इस पर पूर्ण नियंत्रण नहीं हो पाया है। इसका कारण यह है कि इसके उत्पत्ति में सामाजिक एवं राजनैतिक कारकों की अहम भूमिका रहती है। अतः इन कारकों की उपेक्षा कर मात्र प्रशासनिक उपायों से इसका रोकथान नहीं किया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. रजनीश 'सही विकल्प की खोज' योजना प्रसारण सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय नई दिल्ली अंक फरवरी 2007 पृष्ठ-18
2. सिंह, प्रकाश 'नक्सल विरोधी रणनीति' सम्पादकीय, दैनिक जागरण 14 जुलाई 2010 पृष्ठ -10
3. गुप्ते, संजय, सम्पादकीय, दैनिक जागरण प्रकाशन नैनीताल 4 मार्च 2010
4. राय प्रभात कुमार' 'जवाबी कार्यवाही नक्सल समस्या का हल नहीं' सम्पादकीय, अमर उजाला नैनीताल 18 जून 2007 पृष्ठ-6
5. वरिष्ठ सम्पादक 'सामाजिक मुद्दे' सिविल सर्विसेज क्रानिकल प्रकाशन नई दिल्ली अंक सितम्बर 2010 पृष्ठ 91-92
6. चौहान डा0 श्याम सुन्दर सिंह,' भारत में नक्सलवाद प्रतियोगिता दर्पण प्रकाशन उपकार आगरा अंक नवम्बर 2010 पृष्ठ-729
7. वरिष्ठ सम्पादक 'सामाजिक मुद्दे' सिविल सर्विसेज क्र ानिकल प्रकाशन नई दिल्ली अंक सितम्बर 2010 पृष्ठ-92
8. संवाददाता 'नेपाली माओवायिों ने बजा दी खतरे की घंटी' अमर उजाला नैनीताल 14 नवम्बर 2005 पृष्ठ-13
9. एम. जी. चितकर-''आतंगवाद का मुकाबला'', ए. पी. एच0 पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन, संस्करण वर्ष 2003, पृष्ठ 271
10. अशोक भट्ट-''वैश्विक आतंकवाद'', लोटस प्रेस, संस्करण वर्ष 2007, पृष्ठ 312
11. पीटर आर न्यूमैन-''पुरानी और नई आतंकवाद'', मालदा एम. ए. पॉलिटी प्रेस, पृष्ठ 204
12. विवके सक्सेना-''नक्सली आतंकवाद'', पृष्ठ 226
13. डॉ0 सरनजी और जी. आई. संधू- ''भारत में आतंकवाद विरोधी कानून'' संस्करण वर्ष 2014, पृष्ठ 205
14. रंजना आरोड़ा-''हिंसा, सामप्रदायिकता और भारत में आतंकवादः राजनीति के अपराधिकरण की ओर'', दीप और दीप प्रकाशन, नई दिल्ली 1995, पृष्ठ 165
15. मानचंद खंण्डेला- अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद, पृष्ठ 111

भारतीय परिप्रेक्ष्य में समावेशी शिक्षा: चुनौतियाँ, सुझाव एवं शिक्षक की भूमिका

पवन कुमार राय

शोधार्थी, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

डॉ० सुरेन्द्र राम

सह प्राध्यापक, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

सार

प्रस्तुत शोध पत्र 'भारतीय संदर्भ में समावेशी शिक्षा की समस्याओं, चुनौतियों एवं उनके समाधान में शिक्षकों की भूमिका' से संबंधित है। प्रस्तुत शोध पत्र में शोधार्थी द्वारा यह प्रयास किया गया है कि समावेशी शिक्षा लागू करने में कौनसी समस्यायें/चुनौतियाँ हैं, किस प्रकार से समावेशी शिक्षा की समस्याओं का समाधान किया जा सकता है, पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास किया गया है। वर्तमान में भारत में दिव्यांग जनों की शिक्षा हेतु शासन द्वारा अनेक नीतियों का निर्माण किया गया है। जिसके अंतर्गत सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान, शिक्षा का अधिकार जैसी सरकारी नीतियों का निर्माण कर प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रयास किये जा रहे हैं। इन्हीं नीतियों में दिव्यांग जनों की शिक्षा में विकास हेतु सार्थक कदम उठाये गए हैं जिसके द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि दिव्यांग जन आत्मनिर्भर बन सकें एवं उनका आत्म-विश्वास जागृत हो सके। वर्तमान में दिव्यांग जनों की शिक्षा के विकास के लिये समावेशी शिक्षा पर जोर दिया जा रहा है। जिसे पूर्णत: लागू करने में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इन समस्याओं के समाधान के लिए विद्यालय की संरचना में परिवर्तन के साथ-साथ शिक्षकों की भूमिका में परिवर्तन भी आवश्यक है। समावेशी शिक्षा की चुनौतियों/समस्याओं को दूर करने में विद्यालय, समाज एवं शिक्षक की भूमिका सर्वोपरि है। विद्यालय, समाज एवं शिक्षक के प्रयासों के द्वारा समावेशी शिक्षा के अधिकांश उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

प्रस्तावना

प्रस्तुत शोध पत्र 'भारतीय संदर्भ में समावेशी शिक्षा की समस्याओं, चुनौतियों एवं उनके समाधान में शिक्षकों की भूमिका' से संबंधित है। स्वतंत्रता के बाद से विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थानों के द्वारा उन्हें मुख्यधारा में जोड़ने के लिए अनेक प्रयास किए गये हैं, फिर भी उन्हें समाज की मुख्यधारा से जोड़ नहीं पाये हैं। उन्हें मुख्यधारा से जोड़ने के लिए ऐसी शिक्षा व्यवस्था प्रणाली/समावेशी शिक्षा पर बल दिया गया, जिसके अंतर्गत विशेष आवश्यकता वाले बच्चे सभी सामान्य बच्चों के साथ अध्ययन कर सकें, एवं समावेशी शिक्षा के द्वारा विद्यालय एवं समाज के लोग भी उनके साथ सामान्य व्यवहार कर सकें। जिसके अंतर्गत विशेष आवश्यकता वाले बच्चे स्वयं को समाज अलग न समझकर समाज का हिस्सा ही समझें। समावेशी शिक्षा का आरम्भ 19वीं शताब्दी से हुआ। समेकित बाल विकास योजना (1974), राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986), में 14 वर्ष तक के समस्त बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान था। तत्पश्चात् सर्व शिक्षा अभियान (2000) एवं शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009) में प्राथमिक शिक्षा हेतु नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को प्रारंभ किया गया, एवं राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान में माध्यमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु प्रयास किये गए। 21 वीं शताब्दी में दिव्यांग जनों की शिक्षा के विकास हेतु सरकार द्वारा अनेक नीतियों यथा - शिक्षा का मौलिक अधिकार, सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान, बालिका शिक्षा कार्यक्रम का निर्धारण किया गया।

शिक्षा मौलिक मानवाधिकार है, जो बच्चों एवं युवाओं को बेहतर जीवन शक्ति प्रदान प्रदान करता है, जो गरीबी के चक्र को तोड़ता है, यह आर्थिक एवं सामाजिक विकास का प्रमुख घटक माना जाता है। (जॉनसन एवं विलमेन, 2001; पीटर, 2004; यूनेस्को, 1997)। विश्व शिक्षा इनसाइक्लोपेडिया (2004) में शिक्षा को पूर्ण करने हेतु तीन कार्यो की पहचान की गई है। घ्प्रथम, शिक्षा एक बुनियादी मानव अधिकार है जिसका अर्थ है कि लोगों को न केवल शिक्षा की आवश्यकता संरचित जानकारी के लिए है बल्कि कौशलों, अभिवृत्तियों एवं मूल्यों को प्राप्त करने के लिए एक उपकरण के रूप में प्रयोग करना है। द्वितीय, शिक्षा का उपयोग अन्य मूलभूत आवश्यकताओं जैसे रोजगार आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक साधन के रूप में किया जाता है। तृतीय कारक यह है कि शिक्षा एक गतिविधि है जो प्रत्येक देश के आर्थिक विकास को बनाए रखती है। शिक्षा एक निवेश के साधन के रूप में सेवा के समस्त स्तरों पर कुशल श्रमिकों को प्रशिक्षित करती है एवं अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करती है (यूनेस्को, 1997)।

शिक्षा को केवल समाज का आइना नहीं होना चाहिए, शिक्षा की भूमिका सामाजिक परिवर्तन लाने में और उन व्यवस्थाओं को चुनौती देने की भी है जो कुछ बच्चों में भेदभाव करती है। शिक्षा को इस योग्य होना चाहिए कि वह देख सके कि वह कैसे कुछ को लाभ दे रही है और दूसरों को वंचित रख रही है। विद्यालयों में सामाजिक सम्मिश्रण की अनुमति होनी चाहिए, जहाँ विभिन्न सामाजिक-आर्थिक समूहों, योग्यताओं, लिंग, जाति, भाषा एवं धर्म के बच्चे एक साथ सीख सकें। शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्रत्येक बच्चे को होना चाहिए। बच्चों में व्यक्तिगत भिन्नतायें होती है, अत: विद्यालयों में सभी बच्चों के अंतरों को पहचानने एवं उनके लिए उचित व्यवस्था का प्रावधान किया जाना चाहिए। इसलिए वर्तमान में सामान्य शिक्षा के साथ-साथ समावेशी शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया जा रहा है।

समावेशी शिक्षा

समावेशी शिक्षा के अंतर्गत विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ मुख्यधारा के विद्यालयों में अध्ययन अध्यापन के अवसर मिलते हैं। विशेष आवश्यकता वाले बच्चे सामान्यत: वे बच्चे होते हैं जो दृष्टि, श्रवण, एवं अधिगम अक्षमता के साथ-साथ मानसिक मंदता से ग्रस्त होते हैं, अर्थात् जिन्हें सामान्य बच्चों के साथ समायोजन करने में कठिनाई होती है। विद्यालयों में समावेशन के द्वारा इन अंतरों को कम किया जा सकता है। समावेशी शिक्षा में बालक को विद्यालय के अनुसार ढालना नहीं पड़ता है, बल्कि विद्यालय अपने आप को बालक के अनुसार ढालता है। प्रत्येक बालक की आवश्यकतानुसार भवन निर्माण, फर्नीचर, आदि आधारभूत संरचना की व्यवस्था की जाती है, जिससे कोई भी बालक विद्यालय के वातावरण के साथ समावेशित हो सके एवं उसे शिक्षा ग्रहण करने में किसी भी प्रकार की असुविधा न हो सके।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय के समावेशित शिक्षा योजना (2003) के अनुसार - "समावेशित शिक्षा से तात्पर्य सभी सीखने वाले, बिना विकलांग एवं विकलांग नवयुवक पूर्व विद्यालय प्रावधानों, विद्यालय एवं सामुदायिक शैक्षिक स्थानों पर उपयुक्त तंत्र एवं सहायक सुविधाओं के साथ एक साथ सीख (पढ़) सकें।"

दिव्यांग अधिकार अधिनियम (2016) में समावेशी शिक्षा को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि - "सम्मिलित शिक्षा" से ऐसी शिक्षा पद्धति अभिप्रेत है जिसमें दिव्यांगता रहित छात्र एक साथ विद्या ग्रहण करते हैं एवं शिक्षण एवं विद्या की पद्धति, विभिन्न प्रकार के दिव्यांग छात्रों की विद्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उचित रूप ये अनुकूलित की गयी है।

इस प्रकार समावेशन सतत् रूप से चलने वाली प्रक्रिया है समयानुसार विद्यार्थियों की विभिन्नता के आधार पर विद्यालयीन अधोसंरचना में परिवर्तन आवश्यक है। समावेशी शिक्षा लगभग समस्त विद्यालयों में लागू की जा रही है परन्तु सभी बालकों को एक साथ एक ही विद्यालय में शिक्षा देना उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा देना, एक चुनौती है।

वर्तमान में संपूर्ण वैश्विक स्तर पर शिक्षण व्यवस्था के समक्ष समावेशन एक प्रमुख चुनौती है, जिसका मुख्य उद्देश्य ऐसे विद्यालयों का विकास है, जो विद्यार्थियों की विविधता विशेष रूप से ऐसे विद्यार्थियों के समूह जो सीमान्तता, बहिष्करण और निम्न उपलब्धि वाले हैं की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। समावेशी शिक्षा एक उपागम है जो सभी बच्चों, युवाओं और प्रौढ़ों की अधिगम आवश्यकताओं को पूर्ण करने का प्रयास करती है। बच्चे जो अशक्त हैं अथवा नहीं, एक साथ समान पूर्व-विद्यालयी व्यवस्थाओं, विद्यालयों तथा सामुदायिक शैक्षिक व्यवस्थाओं में सहायक सेवाओं के उचित तंत्र के साथ सीखने में सक्षम होते हैं, जो कि एक लचीली शिक्षण व्यवस्था में संभव है, इस व्यवस्था में बच्चे के पास सहायक सेवाओं ले जाया जाता है न कि बच्चे को सहायक सेवाओं तक ले जाया जाता है, यह प्रयास किया जाता है कि बच्चे को कक्षा में होने का लाभ मिले न कि केवल अन्य बच्चों के साथ रखन का प्रयास किया जाता है। यह इस बात पर बल देता है कि विद्यालयों को ऐसे वातावरण का विकास करना चाहिए जिसमें विशेष आवश्यकताओं वाले समुदाय के महतवपूर्ण अंग के रूप में देखे जाएँ तथा उन्हें सक्षम व सकारात्मक योगदान करने के योग्य के समझा जाए। समावेशी विद्यालय का मूलभूत सिद्धांत है कि जहाँ तक संभव सभी बच्चों को एक साथ अध्ययन करने के अवसर प्राप्त हों, सामान्य विद्यालय को अपने विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पहचानने एवं उन्हें पूर्ण करने का प्रयत्न करना चाहिए।

हमारा समाज विविधतापूर्ण है क्योंकि हम सब अलग-अलग पृष्ठभूमि से आते हैं, हमारे खान-पान अलग-अलग हैं, सांस्कृतिक विभिन्नताएँ हैं, सभी का समझने व सोचने का नजरिया भिन्न-भिन्न है। समावेशन एक अवधारणा है जिसका उद्देश्य लोगों की विभिन्न जीवन शैलियों के बीच आपसी आदरभाव को बढ़ावा देना है। समावेशी शिक्षा एक उपागम है जो सभी बच्चों, युवाओं और प्रौढ़ों की अधिगम आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास करती है। यह सभी अध्येताओं पर लागू होती है। बच्चे जो अशक्त है, अथवा नहीं एक साथ समान पूर्व विद्यालयी व्यवस्थाओं, विद्यालयों तथा सामुदायिक शैक्षिक व्यवस्थाओं में सहायक सेवाओं के उचित तंत्र के साथ सीखने में सक्षम होते हैं। यह केवल एक लचीली शिक्षण व्यवस्था में संभव हैं जो अध्सेताओं की विविध अधिगम आवश्यकताओं को पूरा करने व उनके अनुसार अनुकूलित हो सकता है। यह व्यवस्था के सभी भागीदारों से विविधता के साथ सुविधापूर्ण स्थिति में होने तथा इसे समस्या के स्थान पर एक चुनौती के रूप में देखने की अपेक्षा रखती है।

समावेशन, प्रत्येक बच्चे के अधिकत्तम संभावित सीमा तक कक्षा तथा विद्यालय में, जहाँ वह जाता है, शिक्षण हेतु एक वचनबद्धता है।

समावेशी विद्यालय ऐसे विद्यार्थियों को प्रवेश देते हैं जो विभिन्न मानव जातीय समूहों, भाषा समूहों, संस्कृति, विभिन्न पारिवरिक आर्थिक स्थितियों से होते हैं, जिनकी सीखने की अलग-अलग रूचि होती है, उद्देश्य अलग-अलग होते हैं, जिनकी भिन्न-भिन्न क्षमताएँ होती है, एवं भिन्न-भिन्न सीखने के ढंग्ग होते हैं। समावेशी कक्षा में प्रत्येक बच्चे की पहुँच ज्ञान, कौशल एवं सूचना तक होती है, बच्चों का संबंध केवल ज्ञानक्षेत्र तक सीमित न रहकर भावनात्मक तथा अभिवृत्तीय क्षेत्र तक पहुँच जाता है।

समावेशी शिक्षा के उद्देश्य

- विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों को शिक्षा के द्वारा देश की मुख्य धारा से जोड़ना।
- दिव्यांग जनों में आत्म-निर्भरता की भावना जाग्रत करना।
- दिव्यांग जनों के लिए पुर्नवास का प्रबन्ध करना।
- दिव्यांग जनों को सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से जोड़ना।
- प्रजातांत्रिक मूल्य जिनमें न्याय, समानता एवं भ्रातृत्व उद्देश्यों का प्राप्त करना।

विशिष्ट आवश्यकताओं वाले बच्चों के समावेशन में बाधाएँ

समावेशी शिक्षा में अनेक बाधाएँ हैं --

1. सर्वप्रथम विद्यालयों की आधारभूत संरचना संबंधी समस्याओं की ओर ध्यान जाता है जैसे-इमारत संबंधी, परिवहन संबंधी समस्यायें हैं। सामान्यत: शिक्षा संस्थाओं का निर्माण शारीरिक रूप से स्वस्थ विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर किया जाता है, अत: जब हम समावेशन की बात करते हैं तो हमें सर्वप्रथम विद्यालयों की आधारभूत संरचना में परिवर्तन की आवश्यकता है। विद्यालय में दरवाजे, सीढिघ्याँ, रैम्प, शौचालय, कुर्सियाँ समावेशी शिक्षा के अनुकूल नहीं है जिससे विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को समस्यायें हो सकती है। कक्षा के आकार की भी समस्या है। सभी विद्यालयों की अधोसंरचना में परिवर्तन आवश्यक है।
2. समाज द्वारा समावेशी शिक्षा को सहर्ष स्वीकार नहीं किया जाता है, भारतीय समाज की प्रमुख समस्या है कि समावेशी शिक्षा के क्रियान्वयन में समाज की सही तरीके से सहायता नहीं मिल पाती है।
3. अभिभावकों का प्रतिरोध भी समावेशी शिक्षा के लिए प्रमुख बाधा है।
4. समावेशी शिक्षा व्यवस्था में सभी प्रकार के विद्यार्थी होते हैं उनकी आवश्यकताएँ एवं योग्यताएँ भिन्न-भिन्न होती है परन्तु सभी के लिए एक समान पाठ्यचर्या लागू करने से विद्यार्थियों के समक्ष समस्यायें उपस्थित हो जाती हैं। कक्षा की समय-सारणी का एवं कठोर पाठ्यक्रम भी समावेशी शिक्षा के लिए बाधा है।
5. समावेशी शिक्षा के लिए अध्यापकों का अप्रशिक्षित होना भी एक बाधा है।
6. जागरूकता का अभाव

समावेशी शिक्षा हेतु सुझाव

- विद्यालय अधोसंरचना में परिवर्तन - विद्यालय भवन में लिफ्ट या ढलान द्वारा पहुँचने की सुविधा होनी चाहिए। कक्षा-कक्ष हेतु उचित माध्यमों/स्तरों की सुविधा होनी चाहिए, जिससे सभी बच्चे समान रूप से शिक्षा प्राप्त कर सकें।
- पाठ्यचर्या में उचित परिवर्तन - पाठ्यक्रम को परिवर्तित करना आवश्यक होगा।
- सामान्य एवं विशेष शिक्षकों की नियुक्ति की जानी चाहिए।
- शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। जिससे समावेशी शिक्षा के प्रत्यय को समझ सकें। वे विद्यार्थियों को उनकी योग्यता के आधार पर समझ सकें। वे विद्यार्थियों को उनकी आवश्यकतानुसार कार्य दे सकें। समूह शिक्षण कर सकें एवं सहपाठियों के समूह बनाकर शिक्षण अधिगम को प्रभावी बना सकें। वे सह-शिक्षण को बढ़ावा दे सकें। शिक्षक विद्यार्थियों की योग्यताओं को पहचान सकें एवं उनकी योग्यताओं के आधार पर उनके लिए क्रियाकलाप दे सकें।
- विद्यालय स्तर पर शिक्षकों द्वारा अभिभावकों के लिए जागरूकता अभियान चलाया जाना चाहिए।
- पाठ्यक्रम को लचीला किया जाना चाहिए। लचीले अधिगम वातावरण एवं अनुदेशन की अनुमति होना चाहिए। पाठ्यक्रम नियोजन इस प्रकार का होना चाहिए जिससे समस्त विद्यार्थी लाभान्वित हो सकें।
- कक्षा संगठन में परिवर्तन करना चाहिए। शिक्षण अभ्यास में परिवर्तन एवं शिक्षण विधियों में परिवर्तन करना चाहिए। शिक्षण विधियों में रचनात्मक रणनीतियों, सहयोगात्मक अधिगम, समस्या समाधान, भूमिका निर्वाह, कक्षा परिचर्चा का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- अभिभावकों एवं शिक्षकों को जागरूक करना चाहिए, जिसके लिए उन्हें प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। शिक्षकों को व्यापक योग्यताओं और व्यवहारों को समझने के अवसर दिये जाने चाहिए।
- शिक्षकों एवं अभिभावकों का समावेशी शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखने हेतु प्रयास करना चाहिए।

समावेशी शिक्षा हेतु शिक्षकों की भूमिका

- विद्यालयों में समावेशी प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति होना आवश्यक है।
- शिक्षक द्वारा विशिष्ट बालकों की समस्याओं को समझने का प्रयास किया जाना चाहिए।
- शिक्षकों को बालकों के मनोवैज्ञानिक, व्यावहारिक एवं भावात्मक पक्ष को समझना चाहिए।
- विशिष्ट बालकों के लिए सहपाठ्यक्रम का आयोजन उनके क्षमता के अनुसार किया जाना चाहिए।

- शिक्षकों को उनके अभिभावकों से मिलकर उनके जीवनचर्या के बारे में चर्चा करना चाहिए।
- बालकों में समानता, बंधुत्व, भाईचारे, आत्म-सम्मान, तथा सदाचार जैसे मूल्यों को निर्माण करने हेतु तत्पर रहना चाहिए, ऐसी गतिविधियों को कराना चाहिए जिससे बालकों में उचित मूल्यों का विकास हो सके।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: कह सकते हैं कि समावेशी शिक्षा की चुनौतियों/समस्याओं को दूर करने में विद्यालय, समाज एवं शिक्षक की भूमिका सर्वोपरि है। विद्यालय, समाज एवं शिक्षक के प्रयासों के द्वारा समावेशी शिक्षा के अधिकांश उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ

कुमार, के. एवं शुक्ला, एस. के. (2016). समसामयिक भारतीय शिक्षा. राखी प्रकाशन.

गुप्ता, एस. पी. एवं गुप्ता, ए. (2012). भारतीय शिक्षा का इतिहास. शारदा पुस्तक भवन.

गुप्ता, एस. पी. एवं गुप्ता, ए. (2012). भारतीय शिक्षा का ताना बाना. शारदा पुस्तक भवन.

ठाकुर,, वाय. (2017). समावेशी शिक्षा. अग्रवाल पब्लिकेशन्स.

पाठक, के. के. (2015). समावेशी शिक्षा - एक नजर. इन्टरनेशनल मल्टीडिसप्लिनरी रिसर्च जर्नल: गोल्डन रिसर्च थॉट, (4),10. http://oldgrt.lbp.world/UploadedData/5539.pdf

बिष्ट, ए. (2006). विशिष्ट बालक. विनोद पुस्तक मंदिर

भार्गव एवं गुप्ता (2016). समावेशी शिक्षा का निर्माण. राखी प्रकाशन.

मंगल, एस. के. (2009). एजुकेशनल एक्सेप्शनल चिल्ड्रेन: एन इन्ट्रोडक्शन टू स्पेशल एजुकेशन. पी एच आई लर्निंग लिमिटेड.

https://www.uou.ac.in/sites/default/files/slm/MAED-206.pdf

भारत में पारिवारिक प्रताड़ना की शिकार महिलाएं: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ० अलका सक्सेना

असिस्टेंट प्रोफेसर, क्लासिक कॉलेज ऑफ लॉ, बरेली

सार

भारत में लिंग आधारित हिंसा का मुद्दा पिछले कुछ वर्षों से नीतिगत एजेंडे में छाया हुआ है। आंकड़े साबित करता है कि भारत में महिलाओं के खिलाफ बड़े पैमाने पर पारिवारिक प्रताड़ना एक वास्तविकता है। केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा जारी राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण की रिपोर्ट के अनुसार, देश में 15 साल की उम्र से हर तीसरी महिला को विभिन्न रूपों में पारिवारिक प्रताड़ना का सामना करना पड़ा है। सर्वेक्षण के अनुसार, भारत में 15 वर्ष की आयु से 27 प्रतिशत महिलाओं ने शारीरिक हिंसा का अनुभव किया है। महिलाओं के बीच शारीरिक हिंसा का यह अनुभव शहरी क्षेत्रों की महिलाओं की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक आम है। पारिवारिक प्रताड़ना के मामले, जहां ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में महिलाओं ने शारीरिक शोषण की सूचना दी, क्रमशः 29 प्रतिशत और 23 प्रतिशत थे। प्रस्तुत पत्र के अंतर्गत भारत में पारिवारिक प्रताड़ना की शिकार महिलाओं पर विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्दः पारिवारिक प्रताड़ना; कारण; प्रताड़ना की अभिव्यक्ति; विभिन्न रूप; सामाजिक कारक।

परिचय

घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005, पारिवारिक प्रताड़ना की एक ऐसी परिभाषा प्रदान करता है जो व्यापक है और इसमें सभी प्रकार की शारीरिक, भावनात्मक, मौखिक, यौन और आर्थिक हिंसा शामिल है, और इस तरह की प्रताड़ना के वास्तविक कृत्यों और धमकी दोनों को शामिल किया गया है। इस हिंसा के अधिकतर अपराधी पति ही रहे हैं। 31 प्रतिशत विवाहित महिलाओं ने अपने जीवनसाथी द्वारा शारीरिक, यौन या भावनात्मक प्रताड़ना का अनुभव किया है। वैवाहिक हिंसा का सबसे आम प्रकार शारीरिक प्रताड़ना (27 प्रतिशत) है, उसके बाद भावनात्मक पारिवारिक प्रताड़ना (13 प्रतिशत) होती है। सर्वेक्षण में बताया गया है कि 15 वर्ष की आयु से शारीरिक प्रताड़ना का अनुभव करने वाली विवाहित महिलाओं में से 83 प्रतिशत ने अपने वर्तमान पतियों को अपराधी के रूप में बताया। हालांकि, जिन महिलाओं की शादी नहीं हुई है, उनके लिए शारीरिक प्रताड़ना का अनुभव सबसे आम अपराधियों से होता है, जिसमें माता या सौतेली माँ (56 प्रतिशत), पिता या सौतेले पिता (33 प्रतिशत), बहनें या भाई (27 प्रतिशत) और शिक्षक (15 प्रतिशत) शामिल हैं ।[1]

यौन प्रताड़ना

भारतीय महिलाओं के लिए यौन अधिकार एक गंभीर चिंता का विषय है। इस चिंता की पुष्टि करते हुए, भारत में छह प्रतिशत महिलाओं ने अपने जीवनकाल में यौन प्रताड़ना का अनुभव करने की सूचना दी। पति और पत्नी बलात्कार कानूनों के दायरे से बाहर होने के कारण पुरुषों को अपने घर की सुरक्षा में महिलाओं का 'शिकार' करने में सक्षम बनाता है। ये आंकड़े भारत में युवा लड़कियों और महिलाओं के यौन उत्पीड़न और हिंसा के प्रकार का स्पष्ट संकेत देते हैं। अविवाहित महिलाओं के लिए परिदृश्य अलग नहीं है। सर्वेक्षण रिपोर्ट में इस बात पर प्रकाश डाला गया कि अविवाहित महिलाओं पर यौन हिंसा के सबसे आम अपराधी अन्य रिश्तेदार थे, इसके बाद एक वर्तमान या पूर्व प्रेमी, उनका अपना दोस्त या परिचित और एक पारिवारिक मित्र था। यौन हिंसा अक्सर उन व्यक्तियों द्वारा की जाती है जिनके साथ महिलाओं का घनिष्ठ संबंध होता है। शारीरिक हिंसा और यौन हिंसा अलगाव में नहीं हो सकती है; बल्कि, महिलाओं को विभिन्न प्रकार की हिंसा के संयोजन का अनुभव हो सकता है, सर्वेक्षण रिपोर्ट में कहा गया है। विडंबना यह है कि भारत उन 36 देशों में से एक है जहां वैवाहिक बलात्कार, जीवनसाथी की सहमति के बिना अपने जीवनसाथी के साथ यौन संबंध बनाना अभी भी एक आपराधिक अपराध नहीं है।[2]

महिलाओं के खिलाफ पारिवारिक प्रताड़ना के कारण

कई लोगों ने लिंग चयन गर्भपात के लिए महिलाओं की मजबूरी के बारे में बात की। ये या तो बेटे की वरीयता को बढ़ावा देने वाले सामाजिक मानदंडों से उत्पन्न होते हैं या क्योंकि यदि वे पुत्र पैदा नहीं करते हैं तो उनका जीवन दांव पर लगा दिया जाता है। कुछ ने यह भी कहा कि अवांछित लड़कियों ने अपने जन्म के घरों में गंभीर बीमार उपचार का जोखिम उठाया, जिससे उन्हें भावनात्मक और मानसिक आघात पहुंचा।

कन्या भ्रुण हत्या

यह एक विचारधारा की घातक अभिव्यक्ति है जो एक बालिका का अवमूल्यन करती है। मध्य प्रदेश और राजस्थान जैसे राज्यों में जन्म के समय बालिकाओं को हल्के में डुबो दिया जाता है क्योंकि कोई भी उनका समर्थन करने को तैयार नहीं होता है। यह जघन्य कृत्य दर्शाता है कि किस प्रकार बाद के वर्षों में उस लड़की का सामाजिक और आर्थिक बोझ बच्चे के जन्म की खुशी पर हावी हो जाता है और माता-पिता और परिवार को मासूम बच्ची पर इस तरह के अत्याचार करने के लिए मजबूर करता है।[3]

बाल शोषण/अनाचार

भले ही मेल और फीमेल चिल्ड्रन दोनों के खिलाफ हिंसा होती है, लेकिन यह देखा गया है कि बाल शोषण के शिकार लोगों में अनुमानित 90.1 प्रतिशत लड़कियां हैं और बाल यौन शोषण के 90.1 प्रतिशत से अधिक अपराधी पुरुष हैं। बाल शोषण उन घरों में आम है जहां घरेलू हिंसा के उदाहरण मौजूद हैं, परिवार के अन्य सदस्य विशेष रूप से महिलाएं हैं।

बाल विवाह

यह घरेलू हिंसा की अभिव्यक्ति है जिसकी जड़ें ऐतिहासिक हैं लेकिन वर्तमान और भविष्य में व्यापक हैं। यह एक प्रकार की हिंसा है जो स्त्री के पूरे अस्तित्व को उसके पूरे जीवन काल में मिटा देती है, जिससे वह मन और शरीर दोनों में स्थायी रूप से कमजोर हो जाती है।

वैवाहिक घर में महिलाओं के खिलाफ पारिवारिक प्रताड़ना की अभिव्यक्ति

शारीरिक शोषण

घरेलू दुर्व्यवहार, जिसे पति-पत्नी के दुर्व्यवहार के रूप में भी जाना जाता है, तब होता है जब एक अंतरंग संबंध या विवाह में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर हावी होने और नियंत्रित करने का प्रयास करता है। घरेलू हिंसा जिसमें शारीरिक हिंसा शामिल है, घरेलू हिंसा कहलाती है।[4]

दहेज संबंधी उत्पीड़न

दहेज संबंधी विवाद पत्नी की पिटाई या पति-पत्नी के दुर्व्यवहार के लिए सूचीबद्ध वैध कारणों का एक अभिन्न हिस्सा हैं। यह महिलाओं पर की जाने वाली हिंसा का सबसे चर्चित और ज्वलंत रूप है। दहेज, दुल्हन के परिवार द्वारा भारतीय विवाह में दुल्हन को देने के साथ-साथ दूल्हे के परिवार को नकद या / और तरह का भुगतान है। कन्यादानम हिंदू वैवाहिक संस्कारों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। कन्या का अर्थ है बेटी, और दान का अर्थ है उपहार। दहेज की उत्पत्ति उच्च जाति के परिवारों में उसके परिवार से दुल्हन को शादी के उपहार के रूप में हुई थी। दहेज को बाद में शादी के खर्च में मदद करने के लिए दिया गया था और इस मामले में बीमा का एक रूप बन गया कि उसके ससुराल वालों ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया। यद्यपि 1961 में दहेज को कानूनी रूप से प्रतिबंधित कर दिया गया था, फिर भी यह अत्यधिक संस्थागत बना हुआ है। दूल्हा अक्सर दहेज की मांग करता है जिसमें बड़ी रकम, खेत के जानवर, फर्नीचर और इलेक्ट्रॉनिक्स शामिल होते हैं।[5]

दहेज से होने वाली मौतें उन युवतियों की मौत हैं जिनकी हत्या या आत्महत्या के लिए प्रेरित किया जाता है, जो दहेज में वृद्धि के प्रयास में पतियों और ससुराल वालों द्वारा निरंतर उत्पीड़न और प्रताड़ना के कारण होती हैं। दहेज हत्या को दक्षिण एशिया में महिलाओं के खिलाफ हिंसा की कई श्रेणियों में से एक माना जाता है। दहेज की ज्यादातर मौतें तब होती हैं जब उत्पीड़न और यातना को सहन करने में असमर्थ युवती आत्महत्या कर लेती है। इनमें से ज्यादातर आत्महत्याएं फांसी या आग से होती हैं। कभी-कभी महिला को आग लगाकर मार दिया जाता है; इसे "दुल्हन जलने" के रूप में जाना जाता है।

वैवाहिक बलात्कार

वैवाहिक बलात्कार को अपराध के रूप में मान्यता नहीं दी गई है क्योंकि यौन कर्तव्यों के प्रदर्शन को विवाह का एक अभिन्न अंग माना गया है। यदि इस तरह के कर्तव्य का उल्लंघन होता है तो पुरुष वैध रूप से यौन शोषण से हिंसा का उपयोग कर सकते हैं। इसलिए अगर पति-पत्नी के बीच गैर-सहमति, जबरदस्ती यौन संबंध हैं तो भी इसे वैवाहिक बलात्कार नहीं माना जाएगा।

वर्ष 1991 में यूनाइटेड किंगडम में वैवाहिक बलात्कार एक आपराधिक अपराध बन गया था। सरकार ने वैवाहिक बलात्कार को परिवार में हिंसा की रोकथाम और पीड़ितों के संरक्षण अधिनियम 1993 में एक अपराध के रूप में मान्यता दी है। यह स्पष्ट करते हुए कि 'बलात्कार बलात्कार है' चाहे वह विवाह के भीतर या बाहर किया गया हो। भारत में भी वैवाहिक बलात्कार को एक आपराधिक अपराध तभी माना जाता है जब पत्नी प्रथा पर न्यायिक अलगाव के एक डिक्री के तहत अलग रह रही हो।[6]

उम्र से संबंधित दुर्व्यवहार

महिलाएं अपने जीवन के हर चरण में किसी न किसी रूप में हिंसा का अनुभव करती हैं। अक्सर यह देखा गया है कि जो महिलाएं अपने वैवाहिक घर में हिंसा का अनुभव करती हैं, वे अपने जन्म के घर में हिंसा का शिकार हो सकती हैं। जन्म के घर में शिक्षा से वंचित होने से वैवाहिक घर में आर्थिक शोषण हो सकता है, क्योंकि वृद्धावस्था में पीडिघ्त महिलाओं के लिए जन्म के घर में एक बच्चे के रूप में और वैवाहिक घर में एक पत्नी के रूप में हिंसा के अपने अनुभव के साथ एक निरंतरता हो सकती है।

जबरन वेश्यावृत्ति

पुरुष भागीदारों या माता-पिता द्वारा जबरन वेश्यावृत्ति या अन्य प्रकार का व्यावसायिक शोषण दुनिया भर में रिपोर्ट की गई महिलाओं और बच्चों के खिलाफ हिंसा का एक और रूप है। निराश्रित परिवार, अपने बच्चों का भरण-पोषण करने में असमर्थ, अक्सर अपने बच्चों को किराए पर या बेच देते हैं, जिन्हें बाद में वेश्यावृत्ति के लिए मजबूर किया जा सकता है। बहुत बार युवा लड़की को घरेलू कामगार के रूप में भेजा जाता है, ऐसी स्थिति में उसके नियोक्ता द्वारा उसका शारीरिक और यौन शोषण किया जा सकता है।

सम्मान के नाम पर हत्या

परिवार के "सम्मान" के नाम पर हर साल सैकड़ों परिवारों द्वारा महिलाओं की हत्या कर दी जाती है। ऑनर किलिंग की घटना पर सटीक संख्या प्राप्त करना मुश्किल है; हत्याओं की अक्सर रिपोर्ट नहीं की जाती है, अपराधियों को सजा नहीं मिलती है, और पारिवारिक सम्मान की अवधारणा कुछ समाजों की नजर में इस कृत्य को सही ठहराती है। ऑनर किलिंग को एक ऐसी मौत के रूप में परिभाषित किया जाता है जो परिवार की एक महिला को माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध शादी करने, विवाहेतर और विवाह पूर्व संबंध रखने, एक ही गोत्र में या किसी की जाति से बाहर शादी करने या एक अलग जाति के चचेरे भाई से शादी करने के लिए दी जाती है। ऑनर किलिंग दहेज से होने वाली मौतों से अलग है जो भारत में भी एक बहुत ही सामान्य प्रथा है, क्योंकि दहेज से होने वाली मौतों के मामले में, उस कार्रवाई के अपराधियों का दावा है कि उन्हें महिला को परिवार में स्वीकार करने के लिए पर्याप्त भौतिक पुरस्कार नहीं दिए गए हैं। यूनिसेफ के अनुसार, भारत में, उदाहरण के लिए, सालाना 5,000 से अधिक दुल्हनें मर जाती हैं क्योंकि उनके दहेज को अपर्याप्त माना जाता है। कुछ अधिकार अधिवक्ताओं का कहना है कि जुनून के अपराध, जिनके साथ लैटिन अमेरिका में बेहद नरमी से व्यवहार किया जाता है, एक ही नाम के अलग-अलग नाम हैं।[7]

पारिवारिक प्रताड़ना के रूप

शारीरिक शोषण

घरेलू हिंसा से महिलाओं के संरक्षण अधिनियम, 2005 के तहत घरेलू हिंसा को परिभाषित करते हुए, अधिनियम की धारा 3 में शारीरिक शोषण को किसी भी कार्य या आचरण के रूप में समझाया गया है जो इस तरह की प्रकृति का है जो शारीरिक दर्द, नुकसान या जीवन के लिए खतरा पैदा करता है, अंग, या स्वास्थ्य या पीड़ित व्यक्ति के स्वास्थ्य या विकास को खराब करता है और इसमें हमला आपराधिक धमकी और आपराधिक बल शामिल है। शारीरिक शोषण एक परिवार में महिलाओं को अधीन करने का सबसे व्यापक और प्राचीन तरीका है, यह घरेलू क्षेत्र में एक महिला के खिलाफ लागू होने वाला सबसे आम नियंत्रण तंत्र है।

मनोवैज्ञानिक/भावनात्मक दुर्व्यवहार

घरेलू क्षेत्र में एक महिला के साथ दुर्व्यवहार का कारण बहुआयामी है। घरेलू हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा अधिनियम, 2005 के तहत भावनात्मक या मनोवैज्ञानिक दुर्व्यवहार को मौखिक के रूप में वर्गीकृत किया गया है, जिसमें शामिल हैं - अपमान, उपहास, अपमान, नाम पुकारना और अपमान विशेष रूप से बच्चा या पुरुष बच्चा नहीं होने के संबंध में। और वहां दोहराया ताकि किसी भी व्यक्ति को शारीरिक पीड़ा हो, जिसमें पीडिघ्त व्यक्ति रुचि रखता है। मनोवैज्ञानिक दुर्व्यवहार महिलाओं द्वारा सामना किए जाने वाले दुर्व्यवहारों के प्रमुख रूपों में से एक है।

यौन शोषण

महिलाओं के खिलाफ हिंसा के संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय कानून ने महिलाओं के खिलाफ यौन शोषण को सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों द्वारा की जाने वाली हिंसा के रूपों में से एक के रूप में मान्यता दी है। घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 बताता है कि यौन शोषण में यौन प्रकृति का ऐसा कोई भी आचरण शामिल है जो महिलाओं को अपमानित करता है या अन्यथा महिलाओं की गरिमा का उल्लंघन करता है। दुर्व्यवहार का यह रूप एक पुरुष और एक महिला के बीच अक्सर वैवाहिक संबंधों में पारस्परिक संबंध के लिए विशिष्ट है। एक पत्नी के अपने पति के प्रति कई कर्तव्यों में से यौन कर्तव्यों का प्रदर्शन उनमें से एक है। एक पत्नी से कभी भी अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करने की अपेक्षा नहीं की जाती है, यौन कर्तव्यों को पूरा करने में विफलता या अविश्वासपूर्ण पूर्णता पुरुषों की हिंसा के लिए व्यापक रूप से स्वीकार्य और समझने योग्य स्पष्टीकरण है। वर्तमान समय में पुरुष अपनी श्रेष्ठ मर्दानगी का दावा करने और उसे बनाए रखने के लिए यौन हिंसा का उपयोग करते हैं। दुर्व्यवहार का यह रूप उन घरों में अधिक आम है जहां पुरुष साक्षर और संपन्न हैं।[8]

आर्थिक दुरुपयोग

आर्थिक शोषण एक व्यक्ति की सामाजिक व्यवस्था में उसे बनाए रखने की मूलभूत आवश्यकता से वंचित है। आर्थिक दुरुपयोग में शामिल हैं:

वित्तीय संसाधनों के सभी या किसी भी आर्थिक से वंचित होना, जिसके लिए पीडिघ्त व्यक्ति किसी भी कानून या प्रथा के तहत हकदार है, चाहे वह अदालत के आदेश के तहत देय हो या अन्यथा या जिसकी पीड़ित व्यक्ति को आवश्यकता से बाहर की आवश्यकता होती है, जिसमें पीड़ित व्यक्ति के लिए सीमित घरेलू आवश्यकताएं शामिल नहीं हैं और उसके बच्चे, यदि कोई स्त्रीधन संपत्ति संयुक्त रूप से और अलग से पीड़ित व्यक्ति के स्वामित्व में है, तो साझा घर और रखरखाव से संबंधित किराये का भुगतान।

चल या अचल संपत्ति, कीमती सामान, शेयर, प्रतिभूतियां, बांड और अन्य संपत्ति की तरह, जिसमें पीड़ित व्यक्ति का हित है या घरेलू संबंधों के आधार पर उपयोग करने का हकदार है या जो उचित रूप से हो सकता है, घरेलू प्रभावों का निपटान पीड़ित व्यक्ति या उसके बच्चों या उसके स्त्रीधन या किसी अन्य संपत्ति या पीड़ित व्यक्ति के पास अलग से आवश्यक है।

उन संसाधनों या सुविधाओं तक निरंतर पहुंच का निषेध या प्रतिबंध, जिनका उपयोग करने का पीड़ित व्यक्ति साझा परिवार तक पहुंच सहित घरेलू संबंधों के आधार पर उपयोग करने या आनंद लेने का हकदार है। आर्थिक अभाव एक महिला को असुरक्षा देता है क्योंकि उसे अकेले रहने पर गरीबी का सामना करने का डर होता है। यह रवैया उसे आर्थिक रूप से निर्भर बनाता है, भले ही वह पारिवारिक आय के पूरक के लिए पैसा कमाती हो। यह असुरक्षा महिला के सकारात्मक सम्मान को आहत करती है क्योंकि वह खुद को लगातार उन लोगों की दया पर महसूस करती है जो उसे प्रदान कर रहे हैं।

बौद्धिक शोषण

इस परिदृश्य में महिलाओं को बौद्धिक रूप से हीन, हिस्टीरिकल और अविश्वसनीय आदि के रूप में माना जाता है। यह घरेलू क्षेत्र में महिलाओं को अलग-थलग कर देता है और उनकी भूमिका को बच्चों, बेहतर पुत्रों के जन्म और उनके परिवारों के पालन-पोषण तक सीमित कर देता है। यहां तक कि शिक्षित और आर्थिक रूप से स्वतंत्र महिलाएं भी इस अलगाव का सामना करती हैं क्योंकि पितृसत्तात्मक व्यवस्था में पुरुषों की सभी आर्थिक गतिविधियों और ज्ञान सहित सभी संपत्तियों तक पहुंच नियंत्रित होती है जो उनकी लाभप्रदता में योगदान करती हैं। इसके अलावा भारत में एक महिला के काम को मुख्य रूप से घर और बाहर पितृसत्तात्मक अधिकारियों द्वारा आकार दिया जाता है और निगरानी की जाती है।[9]

पारिवारिक प्रताड़ना के लिए जिम्मेदार कारक

ऐतिहासिक कारक

ऐतिहासिक कारक वर्तमान समय में बाहरी प्रभाव, इस्लामी नियम, ब्रिटिश उपनिवेशवाद और पश्चिमी प्रभाव जैसे विभिन्न पहलुओं की पारिवारिक प्रताड़ना की उत्पत्ति का पता लगाते हैं जो महिलाओं के खिलाफ इस अपराध के विकास और प्रसार का कारण बनते हैं।

धार्मिक कारक

धार्मिक दृष्टिकोणों ने महिलाओं के साथ व्यवहार करने के तरीके को प्रभावित किया है, ऐसा लगता है कि भारतीय समाज के इतिहास में धार्मिक पवित्रता प्राप्त करने वाले इतिहास में एक उदात्त मनोवैज्ञानिक दुर्व्यवहार प्रकट हुआ है। हमारे समाज की संरचना के तरीके पर धर्म का प्रभाव पड़ता है। स्तरीकरण नस्ल के जन्म और वंश पर आधारित था जिसे क्रमशः वर्ण और जाति कहा जाता था।

सामाजिक कारक

इन कारणों का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षों के अंतर्गत किया जा सकता है: -

आक्रामक रवैया: सहिष्णुता शब्द आज की दुनिया में अपनी प्रासंगिकता खो रहा है। इस नई दुनिया में कोई नैतिकता और मानदंड मौजूद नहीं हैं। यहां कोई भी शरीर नहीं जानता कि उसकी अहिंसा हिंसा से बेहतर है। क्यों लोग हर मुद्दे पर आक्रामक व्यवहार करते हैं। उनका मानना है कि घर के अंदर और बाहर हर मामला शांति से नहीं शारीरिक शक्ति से सुलझाना चाहिए। इसके अलावा इस पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं को पुरुषों से आगे रहने की अनुमति नहीं है क्योंकि यह विश्वास है कि जो पुरुष महिलाओं को नियंत्रित नहीं कर सकता है वह वास्तविक अर्थों में मतलबी नहीं होगा।[10]

गरीबी: जब किसी व्यक्ति को गरीबी के कारण दो शाम का भोजन नहीं मिल पाता है, तो वह आक्रामक और हिंसा का शिकार हो सकता है और इससे अक्सर महिला के खिलाफ पारिवारिक प्रताड़ना होती है।

स्थिति अंतर: स्थिति अंतर पारिवारिक प्रताड़ना का एक अन्य मुख्य कारण है। प्रत्येक समाज में मनुष्य महान उन्नति के अतिरिक्त उच्च पद प्राप्त करने का प्रयास करता है और इसके लिए उसका धन का लालच बढ़ता है और इससे पारिवारिक प्रताड़ना हो सकती है।

हावी व्यवहार: पारिवारिक प्रताड़ना तब शुरू हो सकती है जब एक साथी को दूसरे पर नियंत्रण और हावी होने की आवश्यकता महसूस हो। कम आत्मसम्मान, अत्यधिक ईर्ष्या, क्रोध को नियंत्रित करने में कठिनाई और अन्य मजबूत भावनाओं के कारण या जब वे शिक्षा और सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि में दूसरे साथी से हीन महसूस करते हैं, तो दुर्व्यवहार को अपने साथी को नियंत्रित करने की आवश्यकता महसूस हो सकती है।

नशीली दवाओं की लत: शराब और अन्य रासायनिक पदार्थ हिंसक व्यवहार में योगदान कर सकते हैं। एक नशे में या उच्च व्यक्ति के अपने हिंसक आवेग को नियंत्रित करने की संभावना कम होगी।

निष्कर्ष

ह्यूमन राइट्स वॉच (एचआरडब्ल्यू) ने नवंबर 2017 की अपनी रिपोर्ट में पाया कि भारत में यौन उत्पीड़न पीडिष्तों को न्याय और महत्वपूर्ण सहायता सेवाएं प्राप्त करने में महत्वपूर्ण बाधाओं का सामना करना पड़ता है। बलात्कार और अन्य यौन हिंसा से बचने वाली महिलाएं और लड़कियां अक्सर पुलिस स्टेशनों और अस्पतालों में अपमान का शिकार होती हैं। भारत में अधिकांश पारिवारिक प्रताड़ना, यौन हिंसा और वैवाहिक बलात्कार के मामले भी कभी दर्ज नहीं किए जाते हैं। शुद्ध संख्या के अनुसार, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण और राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़ों की तुलना करने पर इन मामलों की रिपोर्ट काफी कम है। प्रशिक्षित परामर्शदाताओं की कमी जो घरेलू दुर्व्यवहार पीडिष्तों की मदद कर सकते हैं और कानूनी सहायता तक कम पहुंच भी इन पीड़ितों के दुख को बढ़ाती है।

महिलाओं के साथ उनके घरों में होने वाले सभी दुर्व्यवहारों के बावजूद, अभी भी एक उम्मीद की किरण है। पारिवारिक प्रताड़ना की स्वीकृति में मुख्य विशिष्ट कारक शिक्षा है। रिपोर्ट में कहा गया है कि स्कूली शिक्षा और शिक्षा के साथ शारीरिक और यौन हिंसा सहित पारिवारिक प्रताड़ना का अनुभव तेजी से कम होता है।

संदर्भ

1. जयसीलन एल., 2007, भारत में महिलाओं के खिलाफ शारीरिक रूप से हिंसा: कुछ जोखिम कारक। जे बायोसोक विज्ञान, पृ. 70
2. जीजीभॉय एसजे, 1998, ग्रामीण भारत में पत्नी की पिटाई: पति का अधिकार? सर्वेक्षण के आंकड़ों से साक्ष्य, पृ. 855-62
3. खोसला एएच, दुआ डी, देवी एल, सूद एसएस, 2005, उत्तर भारतीय महिलाओं में गर्भावस्था में घरेलू हिंसा। भारतीय जे मेड विज्ञान, पृ. 195
4. डब्ल्यू. एच. ओ., 2005, महिलाओं के स्वास्थ्य और महिलाओं के खिलाफ घरेलू हिंसा पर बहु-देशीय अध्ययन, पृ. 92
5. डिलन जी, हुसैन आर, लॉक्सटन डी, रहमान एस., 2013, मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य और महिलाओं के खिलाफ अंतरंग साथी हिंसा: साहित्य की समीक्षा, इंट जे फैमिली मेड, पृ. 46
6. कुमार एस, जयसीलन एल, सुरेश एस, आहूजा आरसी2005 घरेलू हिंसा और उसका मानसिक स्वास्थ्य भारतीय महिलाओं में सहसंबद्ध है। ब्र जे मनश्चिकित्सा, पृ.62
7. चंद्रा पीएस, सत्यनारायण वीए, केरी एमपी, 2009, भारत में अंतरंग साथी हिंसा की रिपोर्ट करने वाली महिलाएं। आर्क महिला मानसिक स्वास्थ्य. पृ. 79
8. वाछेर ए. एस, शर्मा ए .के. 2010, दिल्ली की एक कॉलोनी में महिलाओं के खिलाफ घरेलू हिंसा और उनकी मानसिक स्वास्थ्य स्थिति, इंडियन जे कम्युनिटी मेड, पृ. 403-5
9. चंद्र पी. एस, सत्यनारायण वी. ए., 2013, यौन हमले की उत्तरजीवी महिलाओं के लिए मनोवैज्ञानिक सहायता - स्वास्थ्य सेटिंग्स के लिए एक मसौदा टूल किट, पृ. 85
10. कौर आर, गर्ग एस., 2008, महिलाओं के खिलाफ घरेलू हिंसा को संबोधित करना: एक अधूरा एजेंडा, इंडियन जे कम्युनिटी मेड, पृ. 73-6

उपन्यास के तत्व एवं भेद

गोविंदराज के०

पी.एच.डी षोधार्थी, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा

उपन्यास के तत्त्व

जीवन और जगत के वैविध्य का ही व्यापक दृष्टियों से चित्रण होने के कारण इसमें जीवन और जगत के विभिन्न और विविध प्रकार के कार्यकलापों, घटनाओं, पात्रों और उनके चरित्रों, पारम्परिक सम्बन्धों आदि का अंकन होता है। उसमें देशकाल के वास्तविक संदर्भ भी रहा करते हैं। उनकी अभिव्यक्ति भाषा के द्वारा ही सम्भावित होती है। जीवन के सत्यों को सजा-सँवार कर प्रस्तुत करने के लिए उपन्यासकार कल्पना का आश्रय भी लिया करता है। उसके सामने जीवन का कोई उदात्त स्वरूप, उदात्त लक्ष्य, जीवन के लिए संप्रेषण योग्य संदेश आदि भी होते हैं। भारतीय काव्यशास्त्रियों के उपन्यास के स्वरूप के अन्तर्गत चर्चा में उपन्यास रचना प्रक्रिया के लिए तीन तत्त्व आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण माने हैं।

(1) वस्तु (2) नेता (3) रस।

इन्ही तीन तत्त्वों के संदर्भ में पाश्चात्य विद्वानों ने उपन्यास के मुख्यत: छ: तत्त्व स्वीकार किए हैं।

(1) कथावस्तु, (2) पात्र और चरित्र-चित्रण, (3) संवाद या कथोपकथन, (4) देशकाल या वातावरण, (5) भाषा-शैली, (6) उद्देश्य

इनके अलावा द्वन्द, संघर्ष तथा कौतूहल या द्विधा (सस्पेन्स) भी उपन्यास में आवश्यक कारक माने जाते हैं। किन्तु वास्तव में ये तत्त्व रचना-कौशल के ही अंग हैं। इनका अन्तर्भाव अन्य तत्त्वों में ही समाविष्ट हो जाता है। अत: स्वतन्त्र चर्चा की जरूरत नहीं है।

उपन्यास के भेद

उपन्यासों के विभिन्न प्रकारों को निश्चित करने के लिए विद्वानों ने कई आधारों को स्वीकार किया है। अत: उपन्यास के प्रकारों को लेकर विद्वानों में मतभेद प्रवर्तमान है। उपन्यास के तत्त्वों के आधार पर उपन्यास के केवल तीन प्रकार हैं- घटना प्रधान, चरित्र-प्रधान और नाटकीय। तो कुछ विद्वान कार्य अथवा वर्ण्य विषय के आधार पर (1) धार्मिक (2) सामाजिक (3) राजनैतिक (4) ऐतिहासिक (5) प्रागैतिहासिक (6) आर्थिक (7) यौन-सम्बन्धी (8) मनोवैज्ञानिक उपन्यास बताते हैं।

उपन्यास के तत्त्वों के आधार पर

(1) कथावस्तु प्रधान (घटना प्रधान) (2) चरित्र प्रधान (3) कथोपकथन प्रधान (4) देश काल प्रधान (वातावरण प्रधान) (5) शैली प्रधान (6) उद्देश्य प्रधान या विचारात्मक (7) रस प्रधान या भावात्मक ऐसे सात प्रकार के उपन्यास दर्शाने वाले डॉ0 गणपति चंद्र गुप्त हैं। किन्तु यह वर्गीकरण स्वीकार नहीं किया गया। विशेषकर वस्तु एवं तत्त्वों के आधार पर उपन्यास के चार प्रकार अधिक मान्यता प्राप्त है (1) घटना प्रधान (2) चरित्र प्रधान (3) नाटकीय (4) ऐतिहासिक उपन्यास। वस्तुत: मानव-वृत्तियाँ और मानव-जीवन में घटित होने वाली घटनाओं की अनन्तता के कारण उपन्यासों को कुछ गिने-चुने कठघरों में बन्द नहीं किया जा सकता। कोई भी वर्गीकरण आत्यन्तिक सिद्ध होगा, यह नहीं माना जा सकता।

घटना प्रधान उपन्यास

ऐसे उपन्यासों में चमत्कारिक घटनाओं की प्रधानता रहती है। पाठकों के कौतूहल और उत्सुकता को निरन्तर जागृत बनाएँ रखने में ही इसकी सफलता मानी जाती है। पाठक वर्णित घटनाओं के जाल में ही उलझा रहता है।

ये घटनाएँ पाठक के हृदय में विस्मय को जागृत कर उसे निरंतर मुग्ध बनाए रहती है। इनमें पात्रों का महत्त्व कथा की अपेक्षा गौण रहता है। यहाँ घटनाएँ ही प्रधान रहती हैं, पात्र घटनाओं में उलझे रहते हैं फिर चमत्कारपूर्ण ढंग से उनमें से बाहर निकल आते हैं। इनका अन्त आनन्दमय होता है। घटनाओं के इस उतार-चढ़ाव में पाठक पूर्णतया डूबा रहता है। उसका ध्यान घटनाओं की वास्तविकता, अवास्तविकता और पात्रों के चरित्र-चित्रण की ओर नहीं जा पाता। विस्मयजनक परिस्थितियों के जटिल विकास और उनके चमत्कार में वह पात्रों को पूर्णतया भुला देता है। इसी कारण पात्रों का चारित्रिक विकास ऐसे उपन्यासों में कोई महत्त्व नहीं रखता। साहित्यिक दृष्टि से इन उपन्यासों का मूल्य कम माना जाता है। इनमें वास्तविक जीवन का चित्रण न होकर प्राय: काल्पनिक तथा चमत्कारपूर्ण जीवन का प्राधान्य रहता है। ऐसे उपन्यासों की कथावस्तु प्रेमाख्यान, पौराणिक कथाओं तथा जासूसी, तिलस्मी घटनाओं से निर्मित होती है। हिन्दी उपन्यास के आरम्भिक युग में ऐसे ही उपन्यासों की भरमार रही है। उस समय जासूसी, ऐय्याशी, तिलस्मी उपन्यास खूब लिखे गये हैं। चन्द्रकान्ता संतति, चन्द्रकान्ता, भूतनाथ आदि उपन्यास इसी श्रेणी में आते हैं। आजकल तो हिन्दी में घटना प्रधान उपन्यास और जासूसी बड़ी संख्या में प्रकाशित हो रहे हैं। ऐसे

उपन्यासों के सन्दर्भ में प्रसिद्ध उपन्यास लेखक स्टीवेन्सन ने लिखा है- ''ऐसे उपन्ययास की सबसे बड़ी सफलता इसी में है कि एक भ्रान्ति की सृष्टि कर रोचक परिस्थितियों का इतना कुशल अंकन करें कि पाठकों की कल्पना उसके प्रति आकृष्ट हुए बिना न रह सके। और वे उस क्षण के लिए स्वयं को कहानी का एक पात्र समझने लगे और उनके कार्यों को वैयक्तिक रूप से अपना समझकर अनुभव करने लगे।'' ऐसे उपन्यास जनता में लोकप्रिय रहते हैं। प्रेमचंद पूर्व युग के हिन्दी उपन्यास घटना प्रधान ही हैं, जिसमें सारी घटनाएँ मनोरंजनात्मक ही होती है।

चरित्र प्रधान उपन्यास

ऐसे उपन्यासों में घटनाओं के स्थान पर पात्रों की प्रधानता रहती है, घटनाएँ गौण होती हैं। चरित्र प्रधान होने के कारण इसका कथानक प्राय: शिथिल और असंगत होता है। इनमें पात्रों के चारित्रिक विकास पर ही पूर्ण ध्यान दिया जाता है। पात्र घटनाओं से पूर्ण, स्वतन्त्र रहते हैं। वे स्वयं परिस्थितियों के निर्माता होते हैं न कि परिस्थितियाँ उनकी। पात्रों के चारित्रिक गुण-दोष आरम्भ से अन्त तक एक रस बने रहते है। केवल उपन्यास के विस्तार के साथ-साथ उनके विषय में पाठक के ज्ञान में वृद्धि होती रहती है। इन चरित्रों में परिवर्तन नहीं होता। घटनाएँ केवल पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालती है। कौतूहल का अभाव रहता है। इससे इनमें एक प्रकार की शिथिलता और गतिहीनता आ जाती है। परन्तु ये उपन्यास समाज देश तथा जाति की चारित्रिक विशेषताओं का प्रदर्शन सर्वाधिक प्रभावशाली और संवेदनशील रूप में करते हैं। इसलिए घटना प्रधान उपन्यासों से इनका महत्त्व अधिक माना गया है। हिन्दी में जैनेन्द्र, उग्रजी, ऋषभचरण, चतुरसेन शास्त्री के कुछ उपन्यास इसी वर्ग में आते हैं। कुछ लोग प्रेमचंद के 'गोदान' और 'गबन' को चरित्र प्रधान उपन्यास मानते हैं किन्तु यह सही नहीं है।

नाटकीय उपन्यास

उपन्यास-कला की दृष्टि से इस वर्ग के उपन्यास सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। इन उपन्यासों में कथावस्तु और पात्र दोनों का समान संतुलन रहता है। पात्रों की विचारधारा और उनके कार्य भावी घटनाओं की गतिविधियों को प्रभावित करते हैं। घटनाएँ और पात्र परस्पर सम्बन्धित रहते हुए भी स्वतन्त्र होते हैं। इस प्रकार ऐसे उपन्यासों में प्रारम्भ से अन्त तक पात्रों और घटनाओं का पूर्ण सामंजस्य रहता है। दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त इनमें कल्पित जीवन के स्थान पर वास्तविक सामाजिक जीवन का चित्रण होता है। यद्यपि कथा और पात्रों का निर्माण कल्पना-प्रसूत ही रहता है। ऐसे उपन्यासों की कथावस्तु तर्कसंगत और स्वत: विकासमान रहती है। घटनाएँ जीवन के नियमों द्वारा संचालित होकर निर्धारित पथ पर अग्रसर होती रहती है। समय की गति का इसमें पूरा ध्यान रखना पड़ता है। समय की गति के साथ होते-होते पात्र और घटनाएँ पूर्णत: स्पष्ट हो जाती है। इसका अन्त कलात्मक एवं सुन्दर होता है। ऐसे उपन्यासों में घटना-स्थल संकीर्ण और सीमित रहता है। एक संकुचित दायरे में ही सारा कार्य-कलाप समाप्त हो जाता है। प्रेमचंद के कुछ उपन्यास इस कोटि के हैं।

ऐतिहासिक उपन्यास

इस प्रकार के उपन्यासों में भी पात्रों और घटनाओं का समन्वित रूप मिलता है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता इन उपन्यासों में देशकाल का चित्रण है। इन उपन्यासों का यह प्राण है। यदि ऐसे उपन्यासों में देशकाल का पूर्ण और संगत चित्रण नहीं होता तो ऐसे उपन्यासों का कोई मूल्य नहीं है। इनकी ऐतिहासिकता का रक्षक यही देशकाल का चित्रण है। देशकाल के चित्रण से अभिप्राय है कि जिस देश अथवा स्थान का और इतिहास के जिस काल-खण्ड का वर्णन हो, वह उचित यथार्थ और इतिहासपरक होना चाहिए। कोरिया को हिमालय पर्वत पर बताना और सिंकदर के समय इस्लामी वेश-भूषा और रीति-रिवाजों का वर्णन करना देश और काल का विरोध है, क्योंकि कोरिया हिमालय पर न होकर चीन के उत्तरी-पूर्वी समुद्र तट पर स्थित है और सिकन्दर के समय तक इस्लामी संस्कृति के प्रर्वतक मुहम्मद साहब का जन्म भी नहीं हुआ था।

इसलिए ऐतिहासिक उपन्यासकार को वर्णित युग औद देश की संस्कृति, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि परिस्थितियाँ, रहन-सहन, रीति-रिवाजों, इतिहास आदि का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। साथ ही सम्बन्धित युग का कथानक गढ़ने के लिए एक अपूर्व कल्पना-शक्ति की भी पूर्ण आवश्यकता है, जिससे तत्कालीन जीवन का सर्वांगीण, आन्तरिक और प्रभावोत्पादक चित्रण हो सकें। इसलिए ऐसे उपन्यासों में इतिहास और कल्पना का सम्पूर्ण योग रहता है। इनमें से एक का अभाव होने से सफल ऐतिहासिक उपन्यास की रचना नहीं हो सकती। ऐतिहासिक उपन्यास इतिहासकारों पुरातत्त्ववेत्ताओं आदि द्वारा संगृहीत नीरस तथ्यों को कल्पना द्वारा जीवित और सुन्दर बना देता है। दूसरे शब्दों में वह इतिहास की कंकालवत नीरस अस्थियों पर कल्पना का रक्त-माँस चढ़ाकर उन्हें माँसल और आकर्षक बना देता है। प्रेमचंद पूर्व युगीन हिन्दी उपन्यास लेखन प्रवृत्ति में इस प्रकार के उपन्यास देखने को मिलते हैं। किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'हृदयहारिणी' या 'आदर्शरमणी', 'तारा', 'राजकुमारी', 'कनक-कुसुम', 'रजिया-बेगम' आदि। गंगा प्रसाद गुप्त के उपन्यास 'पृथ्वीराज चौहान', 'कुमार सिंह', मथुरा प्रसाद शर्मा कृत 'नूरजहाँ' आदि प्रेमचंद पूर्व युग के ऐतिहासिक उपन्यास माने गए हैं।

सामाजिक उपन्यास

कुछ विद्वानों ने अपने उपन्यासों के पाँचवें वर्ग में सामाजिक उपन्यासों को रखा है, ऐसे उपन्यासों में सामयिक युग के विचार आदर्श और समस्याएँ चित्रित होती हैं। सामाजिक समस्याओं का चित्रण ही इनका मूल उद्देश्य होता है। साथ में ऐसे उपन्यासों में राजनीतिक धारणाओं और मतों का विशेष प्रभाव रहता है। इन उपन्यासों में लेखक अपने समय के आदर्शों के रूप में पात्रों का चित्रण करता है। आज के प्रगतिवादी लेखकों के अधिकांश उपन्यास तथा प्रेमचंद के कुछ उपन्यास इसी वर्ग में आते हैं। परन्तु सामाजिक उपन्यास जैसा कोई वर्ग निश्चित करना अवैज्ञानिक है, क्योंकि लगभग सभी उपन्यासों में समाज के किसी न किसी पक्ष या रूप का चित्रण आवश्यक रहता है। इसलिए सभी उपन्यासों को सामाजिक उपन्यास माना जाना चाहिए। प्रेमचंद के बाद भी ऐसे उपन्यासों की एक लम्बी परम्परा रही है जो सामाजिक जीवन के यथार्थ को लक्ष्य बनाकर चली है। वे व्यक्ति को सामाजिक जीवन के परिवेश में रखकर

चलते हैं। ऐसे उपन्यासों में मध्यम वर्ग को ही कथावस्तु के रूप में चुना जाता है। मध्यम वर्ग एक अजीब वर्ग है। वह अपनी झूठी शान, काल्पनिक गरिमा, आर्थिक खोखलापन के बीच में अजीब हारा हुआ-सा, कुण्ठित-सा दिखाई पडता है। द्वन्द का सबसे बड़ा शिकार होता है। यशपाल, उपेन्द्रनाथ अश्क, अमृतराय, धर्मवीर भारती, रांगेय राघव, भैरव प्रसाद गुप्त, भीष्म साहनी आदि ऐसे सामाजिक उपन्यासकार हैं। जिन्होंने नये परिवेश में आगे बढ़कर प्रगतिशील सामाजिक उपन्यास लिखे हैं।

आँचलिक उपन्यास

आँचलिक उपन्यास उपन्यासों का एक नया प्रकार है जो किसी अँचल के जीवन से सम्बद्ध होता है। उपन्यासों की इस नवीन और विशिष्ट धारा का विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की एक नवीन उपलब्धि समझी जाती है।

हिन्दी में उपन्यास को आँचलिक उपन्यास की संज्ञा देने वाले सर्वप्रथम फणीश्वरनाथ रेणु हैं। उन्होंने अपने पहले उपन्यास 'मैला आँचल' की भूमिका में लिखा है- ''यह है मैला आँचल'' एक आँचलिक उपन्यास। कथानक पूर्णिया.....मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को पिछड़े गाँव का प्रतीक बनाकर इस उपन्यास का कथा क्षेत्र बनाया है।''

1954 में लेखक की इस घोषणा से हिन्दी साहित्य में 'आँचलिक उपन्यास' शब्द प्रचलित एवं प्रसिद्ध हुआ। आँचलिक के लिए अंग्रेजी में 'Local colour', 'Regional touch' आदि शब्द हैं, जिनका अर्थ है स्थानीय रंग। अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार टॉमस हार्डी ने कई ऐसे उपन्यास लिखे जो 'wessek novels' के नाम से प्रसिद्ध है। 'आँचलिक उपन्यास' को हिन्दी कथा साहित्य की एक मौलिक और नवीन उपलब्धि माना जा सकता, क्योंकि ऐसे उपन्यासों में क्षेत्र विशेष ही स्थानीय रंग के साथ उसका सम्पूर्ण जनजीवन अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ सजीव और साकार हो उठता है।

आधुनिक गद्य साहित्य में हमारे सामने जो गद्य के विभिन्न रूप आये, उनमें कथा साहित्य के अन्तर्गत उपन्यास को बड़ी लोकप्रिय और विकासशील गद्य विधा माना गया है। रामदरश मिश्र की दृष्टि में- ''उपन्यास आज के साहित्य की सबसे अधिक प्रिय और सशक्त विधा है। कारण यह है कि उपन्यास में मनोरंजन का तत्त्व तो अधिक रहता है साथ ही साथ जीवन को उसकी बहुमुखी छवि के साथ व्यक्त करने की शक्ति और अवकाश होता है। साहित्य की समस्त सृजनात्मक विधाओं में उपयुक्त दोनों गुण विद्यमान होते हैं, किन्तु अन्य विधाएं अपने-अपने विशिष्ट स्वरूप के कारण इन दोनों तत्त्वों का अनुकरण उतना नहीं कर पाती जितना उपन्यास कर पाता है।''[1]

फुटनोट

रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास, एक अर्न्तयात्रा, पृ0 11

ढडीकर-हाजीपुर पाषाणकालीन शैलचित्रों का विश्लेषण

डॉ० फूलसिंह सहारिया

शोध निर्देशक (सह आचार्य) बाबू शोभाराम, राजकीय कला महाविद्यालय

संदीप कुमार

शोधार्थी, पंजीकरण संख्या: 034

सन् 1879 में स्पेन के अल्तामीरा में चित्रित शैलाश्रयों की खोज ने पाषाणयुगीन मानव इतिहास लेखन हेतु नवीन स्त्रोत उपलब्ध कराये इसी क्रम भारत में 1880 में मिर्जापुर व बाद में भीमबेटका व दक्षिणी राजस्थान के शैलचित्रों की तरफ इतिहासकारो व पुरातत्वविद्ो का ध्यान आकृष्ट हुआ। मार्च 2003 में अलवर जिले के पश्चिमी क्षेत्र में श्रीमती प्रेमलता पोकराना व श्री जे एस बक्शी (स्थानीय पत्रकार) ने ढडीकर व हाजीपुर नामक दो गांवो की पहाडियों में शैलचित्रों की पहचान की।[1] ये शैलआश्रय चारो तरफ से गहन वनस्पति तथा पहाडियों से घिरे हुए है प्रशासनिक रूप से ढडीकर व हाजीपुर समूह के शैलाश्रय ग्राम पंचायत डेहरा में $27^0$34‘ से $27^0$31.5‘ उत्तरी अक्षांश में $76^0$34‘ देशांतर पर उपस्थित है।

ढडीकर व हाजीपुर पुरास्थल की शैल -चित्रकला एक ही क्षेत्र में पार्श्ववती ग्रेनाइट पहाडियों पर अवस्थित है। इंदिरा गॉधी राष्ट्रीय कला केन्द्र व भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के सर्वे में इन्हे दक्षिणी अंर्द्धाश को ढडीकर समूह तथा उत्तरी अंर्द्धाश को हाजीपुर समुह में समाकलित किया गया है।

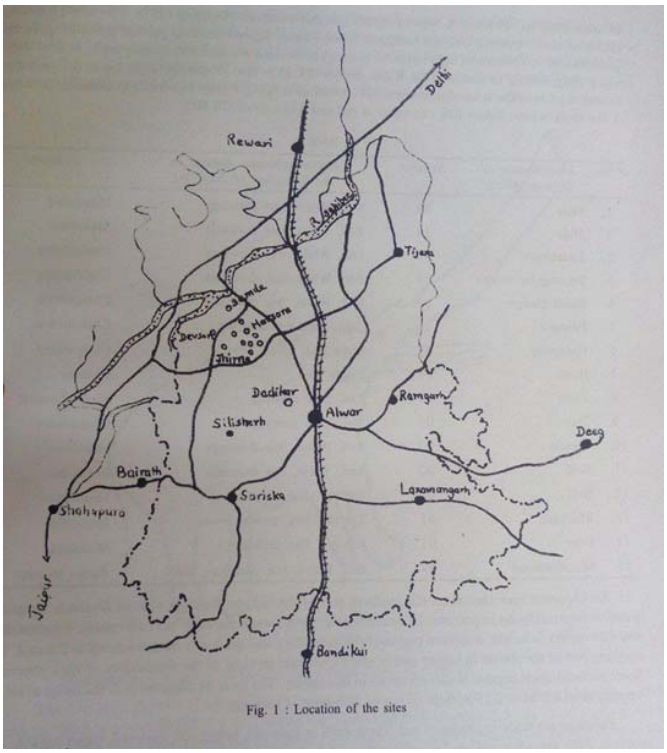

Fig. 1 : Location of the sites

चित्र-1 पुरास्थल की स्थिति

पुरापाषाण युग के निम्न व मध्य कालखण्डों में प्रयुक्त हस्तकुठार तथा चौपर-चापिंग जैसे बडे आकार वाले औजारो की प्राप्ति विभिन्न भारतीय पुरास्थलों से हुई है। जबकि उच्च पुरापाषाण काल में सर्वप्रथम तुलनात्मक रूप से कुछ छोटे-औजार के साक्ष्य प्राप्त हुए है जो यह दर्शाते है कि मानव अपने अगुंठे का प्रयोग पहले से अच्छे तरीके से करने लगा था। संमवत: यही वह पहला काल था जब मनुष्य अपनी हाथ की मजबूत पकड से चित्रण की शुरूआत करता है भीमबेटका व मिर्जापुर शैल चित्र पुरास्थलो से प्राप्त पुरातत्व सामग्री की डेटिंग लगभग इसी काल के आस-पास पायी गई है।[2]

उच्च पुरापाषाण व मध्यपाषाण के मध्य सक्रमणकाल में जलवायु परिवर्तन के कारण जैवविविधता का ह्रास हुआ जिसमें मानव सूक्ष्म पाषाण औजार की ओर अग्रसर हुआ ताकि उन्हें फेककर आखेट में तीव्रता ला सके। इन्हीं सूक्ष्म औजारो की सहायता से सर्वप्रथम चट्टानो पर कुरेद कर चित्रण के साक्ष्य भी विभिन्न शैलआश्रयों से प्राप्त होते है। ढडीकर के शैलचित्रों में भी इसी प्रकार के कुछ शुरूआती चित्र प्राप्त हुए है।

ढडीकर शैल चित्रकला समूह में कुल 8 चित्रित शैलाश्रय तथा हाजीपुर में 7 चित्रित शैलाश्राय पाये गए है इन चित्रों को ऐतिहासिक अनुसंधान की दृष्टि से ज्यामितिक आकृति, पशु-पक्षी व मानव तथा आखेट/शिकार दृश्य में वर्गीकृत किया जा सकता है।

ज्यामितीय आकृतियां -विश्व के विभिन्न चित्रित शैलाश्रयो के अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि मानव द्वारा चित्रण प्रक्रिया में सर्वप्रथम रेखीय अंकन का प्रयोग प्रागैतिहासिक काल में किया गया।[5] भारत में प्राप्त विभिन्न उच्च पुरापाषाण कालीन चित्रों में भी इसके साक्ष्य मिले है। जैसे - भीमबेटका, मिर्जापुर, ढडीकर, हरसौरा आदि से प्राप्त शैल चित्रों में इसी क्रम में इसी क्रम में ढडीकर शैलाश्रय संख्या 3, 4 व 5 में रेखीय चित्रण का अंकन पाया गया है।

यह रेखीय अंकन ही शनैः गने मानव, पशु तथा आवाज के अंकन की प्रेरणा बना। उदाहरण के लिए यदि हम आधुनिक मानव के द्वारा आवास निर्माण की प्रक्रिया को देखे तो वह सर्वप्रथम रफ कार्य के रूप में नक्शा तैयार करवाता है तत्पश्चात् उसे अम्ल में लाता है तथा कई बार उससे बदलाव की प्रेरणा भी लेता है। इसी क्रम अनुसार पाषाणकालीन मानव के लिए सबसे आसान सरल रेखाओं को मिलाना था जिससे उसने बडे जानवरो, वर्गाकार प्रारूप तथा मानवीय चित्रों को आरेखित किया होगा। ये चित्रण ही आगे चल कर नववापाषाण काल में पहिए, चाक के निर्माण हेतु प्रेरणास्त्रोत रहे होगें।

आधुनिक समाज को हम देखते है तो यह लगता है कि जब मानव अपनी सामान्य प्रकृति में किसी शक्तिशाली कार्य के पीछे कोई तर्क न समझ पाये तो उसे चमत्कारिक मानकर पूजने लगता है इसी अनुसार ढडीकर के शैलाश्रय संख्या 1, 4 व 6 में सूर्य-चाँद की अल्पनाएँ, स्वास्तिक का निर्माण तथ चिघांडते हुए हस्ति को चित्रित किया है जिनको शायद पवित्र मानकर चित्रित किया गया है।

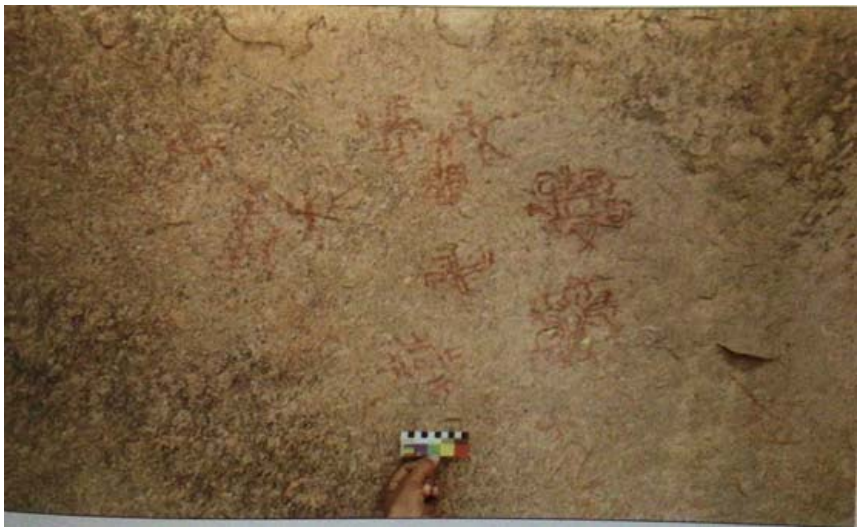

चित्र सं. 2 स्वास्तिक व अन्य प्रतीकांकन

चित्र सं 3 हाजीपुर - अलंकृत वर्गाकार संरचना/आवास में मानवकृतियो का अंकन

हाजीपुर से प्राप्त उपरोक्त चित्र संख्या-3 मे, लाल वर्गाकार संरचना में मानव का चित्रण भी किया गया है वर्ग के एक तरफ रास्ता बनाया गया है जो कि दरवाजा प्रतीत होता है। वर्ग में 6 व्यक्तियों का चित्रण विभिन्न मुद्राओं में में किया गया है। इस प्रकार यह चित्राकंन मानव के समुदाय व परिवार के रूप में आवास में रहने का शुरूआती साक्ष्यों में से एक है। यहां चित्रित मानवो को घुटनो तक घघरीनुमा आवरण ओढे हुए दिखाया गया है। यहां इन्होंने आवरण के रूप में जानवरो की चर्म व वनस्पति के पत्तों को प्रयोग में लिया गया दिखाई दे रहा है। इस शैलाश्रय के पास से प्राप्त पुरातत्व सामग्री से चित्र को नव पाषाणकालीन का माना जा सकता हैं।

वही दूसरी तरफ हाजीपुर में शैलाश्रय संख्या 4 में श्वेत रंग द्वारा वर्गाकार संरचना चारो तरफ से त्रिभुज या तीरनुमा आकृति से घिरी हुई निर्मित की गई है। यह संरचना आवास के रूप में बनायी गई प्रतीत होती है जो आवास को जंगली जानवरो से सुरक्षित करने हेतु चारो तरफ सूक्ष्य पाषाण युक्त औजार को लकडी के आगे लगाया हुआ प्रतीत हो रहा है।

चित्र सं. 4 श्वेत रंग द्वारा वर्गाकार संरचना का अंकन

चित्र सं. 5 मध्यपाषाणयुगीन आखेट तकनीक का अंकन

आखेट तकनीक - ढडीकर में शैलाश्रय संख्या-2 में मध्य पाषाणयुगीन आखेट तकनीक का सुंदर चित्रात्मन किया गया है। उपरोक्त चित्र सं 5 में तीन परिकल्पनाए समाहित हो सकती है पहला आखेटक सूक्ष्म औजार युक्त हथियार की सहायता से सुरक्षित बचाव की मुद्रा हिरण /बकरी /जंगली कुत्त को मारने का प्रयास कर रहा हैं, दूसरा इस चित्र में नीचे की तरफ कुछ मानव की आकृतियों का भी अंकन किया गया है जो शायद उपरोक्त जानवर को बडे की तरफ धकेल रहे है, जिससे छुपा हुआ आखेटक उसे पकड सके। विभिन्न इतिहासकारों द्वारा यह निष्कर्ष भी निकाला गया है कि मानव द्वारा सर्वप्रथम आसानी से पकडे जा सकने वाले जानवर जैसे भेड-बकरी को सर्वप्रथम पालतु बनाया गया होगा जिनसे व मांस के साथ दूध की प्राप्ति भी कर सके। यहा तीसरी परिकल्पना में व्यक्ति को खतरनाक जानवरो से स्वयं की सुरक्षा करने के तरीके के रूप में भी देखा जा सकता है। सामान्यत: आखेट के दौरान जानवर शिकारी से दूर भागता हुआ प्रतीत होता है लेकिन उपरोक्त चित्रण में इस जानवर को मानव पर आक्रमणकारी के रूप में तथा व्यक्ति को शैलाश्रय या गुफा में बचाव मुद्रा में दिखाया गया हैं शायद यही वह प्रक्रिया थी जिसके कारण मध्यपाषाण कालीन मानव आवास रूपी संरचनाओं व सुरक्षित गुफाओं में निवास करने लगा था।

इस प्रकार गुफा शैलाआश्रयों में मनुष्य समुहों के रूप में रहने लगा जिससे धीरे-धीरे एक दूसरे कीतरफ बढते लगाव से सामुदायिक भावना का उदय हुआ होगा। तथा पारिवारिक संरचना की नींव पड़ी।

चित्र सं. 6 सरीसृप सदृश्य आकृति का अंकन

ढडीकर की शैलाश्रय संख्या 2 में सरीसृप सदृश्य आकृति का अंकन (30×10 सेमी.) किया गया है।[5] हॉलाकि उपरोक्त चित्र सरीसृप (मगरमच्छ) का होना मुश्किल है क्योंकि तत्कालीन मनुष्य के पास इतनी तीक्ष्ण हथियार नही थे कि वह मगरमच्छ जैसे सख्त चर्म वाले जीव को हानि पहुंचा सके। सामान्यत: मानव स्वयं से सम्बंधित किसी विशेष कार्य या अवसर था महत्वपूर्ण वस्तु/जीव को ही उपरोक्त चित्रण के तरह अंकन करने की इच्छा रखता होगा उपरोक्त चित्र को गौर से देखा जाए तो यह लेटे हुए मानव के समान प्रतीत होता है। तथा इस चित्रण के पास खडे अन्य व्यक्तियों को देखकर यह लगता है कि यह किसी महत्वपूर्ण सदस्य का शव है। जिसके पास उससे संबंधित व्यक्ति खडें है जो कि शोक अवस्था में है यह चित्रण भी मानव के समाजीकरण के शुरूआती साक्ष्यों को प्रदर्शित करता हुआ दिखाई दे रहा है।

ढडीकर की शैलाश्रय संख्या 6 में हाथी की सुंड उपर उठाकर चिंघाडते हुए चित्र का भी अंकन किया गया।

चित्र सं 7 हस्ति का बाह्य रेखाकंन

चित्र सं. 8 मोर का चित्रण

चित्र संख्या 7 मध्यपाषाणकाल का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें मानव इसे शक्तिशाली जानवर के रूप में अंकन का प्रयास किया है इसी प्रकार ढडीकर की शैलाश्रय संख्या- 3 में मोर का अंकन किया गया है यह मानव का प्राकृतिक पक्षीयों के सौदर्य की तरफ झुकाव को दर्शाता है। इस प्रकार के मोर व हस्ती का चित्रण वर्तमान के कच्चे घरो की दीवारो पर भी देखा जा सकता है।

ढडीकर में शैलाश्राय संख्या-2 से प्राप्त आखेट दृश्य में बाडे के उपर कुपडयुक्त बैल का अंकन भी मिलता है चित्र सं. 5 जो नव पाषाण कालीन कृषि व्यवस्था का शुरूआती चरण को दर्शाता है।

चित्र सं. 9 अश्वारोही मानव अंकन

हाजीपूर समूह की शैलाश्रय संख्या 7 में अश्व का प्रदर्शन किया गया है जो पशुओं के पालतुकरण को दर्शाता है तथा परिवहन साधन के रूप में प्रयोग को भी दर्शाता है। यह ताम्रपाषाण कालीन चित्रण है। यहां निकटवर्ती क्षेत्रीय ताम्रपाषाण काल के औजारो की प्राप्ति हुई है।[6]

ढडीकर व हाजीपुर के चित्रित शैलासयो में मुख्यत: लाल, गेरू, सफेद तथा काले रंग का बहुतायत प्रयोग किया गया इन्हे हेमेटाइट, लिग्नाइट तथा प्राकृतिक वनस्पति में प्राप्त किया गया प्रतीत होता है यहां निर्मित चित्रो में ढडीकर समूह से प्राप्त चित्रों मध्यपाषाणकाल में से ताम्रपाषाण काल तथा हाजीपुर में नवपाषणकाल से ताम्रपाषाण काल तक के चित्रि व पुरातत्व अवशेष प्राप्त हुए है।

इन चित्रण के निर्माण हेतु आधारभूत शुरूआती तकनीक का प्रयोग किया गया है जिसमें सर्वप्रथम पशु पक्षी व व्यक्ति की आउट लाइन बना कर उसने ज्यामितिय आकृतियां उकेरी गई है। यहां के किसी भी चित्र से रंग के बहने के अवशेष नहीं मिले है जिससे यह लगता है कि ये चित्र सुखे पाउडर या प्रस्तर को मजबूत पकड के साथ घिसकर बनाए गऐ है हॉलाकि ढडीकर की युक्त संख्या 3 व 4 से प्राप्त हस्तछाप आकृतियों का अंकन हाथो को रंग के घोल में डूबाकर निर्मित किए गए है। इस प्रकार की हस्तछाप वर्तमान में भी शादी विवाह के अवसरो पर घरो की दीवारों पर देखा जा सकता है ये नवविवाहित दम्पत्ति के बंधन के प्रतीक होते है।

भारतीय शैलकला के क्रमिक विकासक्रम को डा. वी.एस. वाकणकर द्वारा वैज्ञानिक तरीके से उच्च पुरापाषाण से ऐतिहासिक युग तक तर्कसंगत रूप से वर्गीकृत किया गया है। जिसमे उन्होने शुरूआती चित्रण प्रक्रिया में जानवरो को बडे आकार में निर्मित दर्शाया है जिसमें आयत व वर्ग का प्रयोग से निर्मित प्रदर्शित किया है।

इन चित्रों के आंतरिक भाग को ज्यामितीय आकृतियो से भरा दिखाया गया है7 इसी तकनीक के अनुरूप ढडीकर शैलकला में पशुओं को बडे आकार में दिखाया गया है। जिससे इनको मध्यपाषाण काल के अर्तगत रखा जा सकता है। जबकि हाजीपुर से प्राप्त शैलाश्रय तुलनात्मक रूप से नवीन है यहा से ताम्रपाषाण कालीन अवशेष भी प्राप्त हुए है।

इस प्रकार इन शैलाश्रय चित्रण से मतस्य क्षेत्र में न केवल प्राचीनतम मानव आवास के साक्ष्य मिलते है बलिक भारतीय उपमहाद्वीप में मानव के प्राचीनतम वंशजो के स्वभाव, जीवन संघर्ष, तत्कालीन पर्यावरण व पशु-पक्षी की जानकारी प्राप्त होती हैं ये चित्रण मनुष्य में समाहित सृजनशीलता की मौलिक उद्‌भावना का सुंदर चित्रण प्रस्तुत कर इतिहास-लेखन का महत्वपूर्ण स्त्रोत उपलब्ध कराते है।

संदर्भ -ग्रंथ सूची

1. शर्मा एम.एल. मीना एम.एल, गोधल विनीत
   A. इण्डियन आर्कियोलॉजी हिस्ट्री एण्ड कल्चर दिल्ली (2012) (पृष्ठ सं. 103)
   B. राजस्थान में प्रागोतिहासिक काल, राजस्थान आर्कियोलाजी एण्ड एपिग्राफी कांग्रेस 2019 (पृष्ठ सं. 150)

2. अग्रवाल, डी.पी., खरकवाल, जे.एस.: साउथ एशियन प्री हिस्ट्री-ए मल्टीडिसीप्लीनरी स्टडी
3. शर्मा एम.एल.- डाक्यूमेन्टेशन आफ रॉक पेटिंग ऑफ अलवर, डिस्ट्रक्ट इन नार्थ इस्ट राजस्थान, पोजेक्ट यू.जी.सी. भोपाल (पृष्ठ संख्या (39-45)
4. सोनावले वी.एच. - अपर पेलियोलिथिक आर्ट ऑफ इण्डिया ए फ्रेश लुक पुरालेख - 8, (1-2) 1997 (पृष्ठ स.-8)
5. शर्मा एम.एल. राजस्थान की शैल-चित्रकला दिल्ली 2018
6. उपरोक्त पृष्ठ संख्या (375)
7. वाकणकर,-वी.एस., भारतीय प्रागैतिहासिक चित्रकला और उसका काल निर्णय, मानव, लखनऊ, एथेनोग्राफिक एण्ड कल्चर सोसायटी, जिल्द-1, अंक-1, (पृष्ठ संख्या-38-50)
8. मीना आर.जी, सहारिया, डॉ. फूलसिंह: मतस्य जनपद में ढडीकर के शैलचित्र एवं मीणा जनजाति, अलवर 2016
9. मीणा, गोविन्द सिंह: अलवर व उसके आस-पास के क्षेत्रों से प्राप्त शैलचित्र: एक अध्ययन, अलवर 2016
10. इण्डियन आर्कियोलॉजी रिव्यू 1997-98

भोजपुरी लोककथाओं में नीति

डॉ० आकाश वर्मा

हिन्दी विभाग, असम विश्वविद्यालय, सिलचर

हम जानते हैं कि कथा लोक-अभिव्यक्ति का प्राचीन माध्यम है। इतनी प्राचीन कि जब पढ़ने लिखने जैसी कोई व्यवस्था नहीं थी, तब से कथाओं द्वारी कहने-सुनने की परम्परा है। लोक की इन कथाओं में लोक के सामाजिक व्यवहार से लेकर राजनीति, ईश्वर के प्रति श्रद्धाभक्ति, दुख-सुख की संवेदना, मनोरंजन, सभी कुछ प्रस्तुत होता आया है। लिखित साहित्य इन्हीं का विकसित रूप माना जा सकता है, जिनमें हम वर्तमान समय में तमाम विमर्शों, विचारधाराओं का अध्ययन भी करते हैं। इन लोक कथाओं में किसी वैचारिक दर्शन, वाद अथवा किसी मत-मतान्तर की खोज करना एकदम गैरजरूरी है, क्योंकि ये कथायें मानव जीवन के प्रवाह, जीवन परिस्थितियों एवं उनके प्रभाव के साथ स्वतः उत्पन्न होती आयी हैं। ये ही जीवन के सीखने-सीखाने और जीने के मानदण्ड का रूपक बनती हैं। भोजपुरी लोककथायें भी अपने सहज एवं स्वाभाविक रूप में लोककंठ में स्थापित होती आयी हैं। कहने का अर्थ यह है कि ये लोक कथायें मानव मन के लोक-अनुभूति का लोक-मस्तिष्क द्वारा सृजित रूप हैं, जो मौखिक परम्परा में एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी तक आगे जाती हैं। हालांकि आज आधुनिकता और तकनीकी से भरे जीवन शैली में इनके लुप्त होने की स्थिति भी चुकी है। कॉमिक्स, कार्टून विडियो और विडियो गेम दौर में बालमन इन कथाओं से परहेज करने लगा है। यही नहीं जीवन की जटिलताओं एवं आपाधापी के चलते पुरानी पीढ़ी के पास भी इसके लिए धैर्य और उत्सार में कमी होती दिख रही है। हम जानते हैं नानी-दादी की कहानियों और अनेक अवसरों पर लोगों के बीच में ये कथायें जबानी ही कई शताब्दियों से हमारे बीच रहती आयी हैं लेकिन अब इन कथाओं के लिए हमारे बीच अवसर नहीं के बराबर हैं। इनके लिए जगह घट रही है, वह चाहे शहरी जीवन हो या ग्रामीण क्षेत्र।

भोजपुरी लोककथाओं को समग्र रूप में देखें तो विषयगत स्वरूपों के आधार पर हम इनकों कुछ इस तरीके से बाँट सकते हैं[1]-

1. धार्मिक- व्रत, त्योहार, देवता सम्बन्धी कथा
2. युद्ध सम्बन्धी कथायें
3. प्रेम सम्बन्धी कथायें- प्रेमी-प्रेमिका, लौकिक प्रेम
4. सामाजिक चित्रण सम्बन्धी कथायें- जाति, परिवार सम्बन्धी, आपसी मधुरता और कटुता सम्बन्धी
5. मनोरंजन कथा- चतुरता, किसी की मूर्खता सम्बन्धित
6. अलौकिक कथायें- देव-दानव, परी, रूप बदलने आदि से सम्बन्धित
7. दुस्साहसिक कथायें- चोर, डाकू से सम्बन्धित
8. उपदेशात्मक कथायें- नीति अथवा दृष्टान्त सम्बन्धित।

भोजपुरी में जितनी भी लोक कथायें प्राप्त होती हैं, अधिकाशंतः उपदेशात्मक होती हैं[2]। इस उपदेशात्मकता को हम नीति से जुड़ा मान सकते हैं क्योंकि उपदेश एक प्रकार से मनुष्य जीवन के सभी पक्षों से जुड़े नीतिप्रधान तथ्य ही होते हैं, जो समाज को व्यवस्थित और आकार प्रदान करने के लिए होते हैं। ऊपर के वर्गीकरण भी भले अलग-अलग दिखायी दे रहे हैं, किन्तु उन सबमें भी कहीं न कहीं उपदेशात्मकता का भाव बना रहता है। कुल मिलाकर ये लोक अथवा सामाजिक व्यवसाय के नैतिक स्वरूप को व्यवहृत रूप में बनाये रखने के प्रति सचेत करते हैं। ये कथायें एक प्रकार से पौराणिक पात्रों, ऐतिहासिक पात्रों, व्रत-त्योहारों को आधार बनाकर, कल्पना द्वारा सृजित होती हैं, जिनके बीच मनुष्य, देव-दानव, पेड़-पौधे तथा पशु-पक्षी जैसे पात्र स्वाभाविक तरीके से जुड़े रहते हैं। भोजपुरी की इन लोक कथाओं की विशेषता की बात करें तो कृष्णदेव उपाध्याय ने आठ प्रकार बतायें हैं[3]-

1. प्रेम का अभिन्न पुट
2. अश्लील श्रृंगार का अभाव
3. मानव जीवन की मूल प्रवृतियों से निरन्तर साहचर्य
4. समृद्धि और मंगलकामना की भावना
5. संयोग में अंत
6. रहस्य, रोमांच एवं अलौकिकता की मात्रा की प्रधानता
7. उत्सुकता की प्रबल भावना
8. वर्णन की स्वाभाविकता।

ऊपर हमने भोजपुरी लोक कथाओं के विषयगत स्वरूप तथा विशेषताओं के जिन रूपों को रखा ये सभी मिल करके मानव जीवन को नीतिप्रधान बनाने

का कार्य करती हैं। ध्यातव्य है कि नीति से तात्पर्य दिशा निर्देश, व्यवस्थित करने वाले विचार, तथ्य, नियम अथवा मान्यता से होता है। इन कथाओं में राजा, गरीब आदमी, किसान, जातिगत आदमी, पशु-पक्षी, परी और परियों का देश, दानव आदि के जीवन से जोड़कर कथायें मिलती हैं, जो अपने भीतर के सक्षिप्त घटनाक्रम के सहारे सुनने वाले को सीख अथवा जीवन का संदेश देती हैं।

भोजपुरी की इन लोक कथाओं को कहने और सुनने का खास तरीका है। सुनने वालों में एक आदमी अथवा कोई भी, थोड़ी थोड़ी देर पर हाँ-हूँ (हुँकारी भरना) करता रहता है। जैसे ही कथा समाप्त होती है वह कथाकार कहता है- राजा या कथा गईलै बन में , सोचै अपना मन में। अर्थात कथा अब समाप्त होती है, अब इसके तथ्य को अपने मन में विचार करें और गुनें। यह जो मन में विचारने या गुनने वाली बात है, इसी से इन कथाओं के नीतिप्रधान होने का अन्दाजा लगाया जा सकता है। इन लोककथाओं के कहने सुनने का उद्देश्य ही रहा है- सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा व्यावहारिक जीवन के अन्य स्वरूपों तथा उसके प्रवाह को नीतिगत बनाये रखा जाये। प्रत्येक कथा में कोई न कोई विशेष बात, कोई न कोई उपदेश छुपा रहता है। इसलिए कथाकार उसके मनन पर विशेष बल देता है ताकि लोग उसे अपने जीवन में उतार सकें[4]। कथायें अनगिनत हैं, इसलिए कुछ ही कथाओं का सहारा लेकर अपनी बात को रखने का प्रयास करेंगे। मूल लोक कथायें भोजपुरी में हैं, अतः यहाँ उनके हिन्दी रूपान्तर के साथ अपनी बात रखने का प्रयास किया हूँ। निम्नवत उदाहरण से अपनी बात प्रारम्भ करता हूँ-

बहुत समय पहले की बात है। किसी गाँव में चार मित्र रहते थे- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। उनकी मित्रता बहुत गहरी थी। एक बार वे चारों धन कमाने के लिए परदेश के लिए निकल पड़े। चलते-चलते एक जंगल के बीच में रात हो गयी, अतः एक पेड़ के नीचे उनको रुकना पड़ता है। भयावह जंगल, जंगली जानवरों की आवाज चारो ओर से आने लगी। रात का सन्नाटा माहौल को और ही डरा रहा था। चारों दोस्तों के बीच तय हुआ कि बारी-बारी से तीन लोग सोयेंगे और एक आदमी पहरा देगा। ऐसे रात कट जायेगी। सबसे पहले ब्राह्मण पहरा देने के लिए तैयार हुआ। बाकी लोग सो गये। अचानक जिस पेड़ के नीचे वे सोये थे उसमे एक सोने का फूल खिल आया। ब्राह्मण ने उससे पूछा- तुम कौन हो। फूल ने कहा- मैं सोने का फूल हूँ। तब ब्राह्मण ने कहा कि- तब नीचे गिर जाओ जिससे हम सभी का कल्याण हो जाये और हम लोग वापस अपने घर लौट जायें। फूल ने कहा- गिर तो सकता हूँ किन्तु जहाँ मैं रहूँगा वहाँ लोगों की आपस में नहीं बनेगी। अनिष्ट होने लगेगा, अब कहो तो गिर जाऊँ। ब्राह्मण ने मना कर दिया।

जब क्षत्रिय की बारी आयी तो फूल उसे भी दिखा। क्षत्रिय ने भी पूछा तो उसने कहा कि मैं सोने का फूल हूँ, मैं जहाँ रहूँगा वहाँ अनिष्ट होने लगेगा। क्षत्रिय ने भी मना कर माफी मांग ली। जब वैश्य की बारी आयी तो उसे भी फूल दिखा। वह भी इसी प्रकार की बातचीत के बाद मना कर दिया। चौथे पहर में जब शूद्र की बारी आयी, लटका हुआ फूल उसे भी दिखा। उससे भी उसी प्रकार से बातचीत होने लगी। सोने के फूल ने बताया कि- मैं सोने का फूल हूँ। शूद्र ने कहा- तब तुम गिर जाओ कि हम लोग लेके वापस लौट जायें। हम लोग तुमको प्राप्त करने के लिए घरबार छोड़कर निकले हैं। फूल ने उसको भी बताया कि मैं गिर तो जाऊँगा लेकिन में जहाँ रहूँगा वहाँ अनिष्ट होना शुरू हो जायेगा। तब शूद्र ने कहा कि- ऐ भाई तुम गिर जाओ जो होगा सो देखा जायेगा। फूल गिर गया। उसने फूल को उठाकर रख लिया।

सुबह जागने के बाद सबको पता चला। किसी ने कुछ नहीं कहा। आपस में विचार किया गया कि जिसके लिए आये थे वह मिल ही गया, अब इसको बाँट लेते हैं, भोजन करते हैं और वापस लौट चलते हैं। सभी ने आपस में विचार करके तय किया कि दो लोग बाजार से खाना लाने जायेंगे और दो लोग वहीं इन्तजार करेंगे। इसके बाद जो दो लोग खाना लाने जा रहे थे आपस में विचार करने लगे कि ऐसे तो चार लोगों में प्राप्त हुआ धन बाँटना पड़ेगा। लालच में इन दोनों ने तय किया कि पहले हम लोग खाना खा लेते हैं फिर बाकी दोनों के खाने में जहर मिला देंगे। इसी प्रकार जो दो लोग वहाँ बैठे इन्तजार कर रहे थे उन्होंने भी तय किया कि जैसे ही वे लोग आयेंगे उन पर हमला करके उन्हें मार दिया जायेगा। जैसे ही वे लोग आये उन पर हमला करके उन्हें मार दिया गया। फिर सोचे अब तो वापस जाना ही है खाना खा लेते हैं। खाना खाने के साथ ही उनकी भी मृत्यु हो गयी।

इस लोक कथा को सबसे पहले देखें तो आज का बौद्धिक समुदाय इसे दलित विरोधी कथा कहेगा। वस्तुतः लोग इसका हवाला देंगे कि उच्च वर्गीय समाज सदैव शूद्र (वर्तमान में दलित) से ही निकृष्ट कार्य कराता आया है। माना जायेगा कि इस वर्ग से इस प्रकार के अनुचित कार्य कराने की अवधारणा समाज में बहु पहले से ही चलती आ रही है। लोक मानस उच्च जातियों से गलत काम नहीं करने वाली बात को अधिक महत्त्व दिया है। ध्यान से विचार करें तो पायेंगे कि इस लोक कथा में ऐसा कुछ नहीं है। यह कथा उस समय की है जब वर्ण व्यवस्था थी तथा सभी वर्ग समान थे। वे सभी मिलकर जीवन व्यवहार के उद्योग करते थे। भेदभाव जैसी कोई बात होती तो उच्च वर्ण वाले मिलकर शूद्र से पूरी रात पहरेदारी करने को कह सकते थे और आराम से सो सकते थे। स्पष्टतः कथा संकेत करती है कि सामाजिक रूप से वर्ण व्यवस्था में लोगों के बीच भेद नहीं था। इसका तात्पर्य यह है कि यह कथा मूल रूप आपसी दोस्ती में धन लोभ के चलते वैमनष्य, संतोष-असंतोष, सहयोग भावना जैसी अनेक मानव प्रवृतियों की ओर संकेत करती है और सद्गुणों के प्रति सचेत करती है, जो समाज एवं लोक के लिए जरूरी तत्त्व है। धन का लोभ किसी को भी हो सकता है। यह ऐसे नीतिगत मानदण्डों की ओर संकेत करती है, जिससे मानव चरित्र को विकारों से बचाया जा सके।

इस प्रकार की कथायें इस बात की प्रमाण हैं कि इनमें सदाचार, राजनीति, लोक-व्यवहार के ज्ञान तथा नीति-शिक्षा ही दी गयी है। लोमड़ी और अंगूर खट्टे, अंधेर नगरी चौपट राजा, किसान के चार बेटे और लकड़ी द्वारा एकता में बल आदि जैसी अनेक कथायें प्रायः हर कहीं पायी जाती हैं। विचार कर सकते हैं कि भोजपुरी की ये लोक कथायें भी मानव जीवन को नीतिप्रधान शिक्षा ही देने का कार्य करती हैं। इसी प्रकार से एक ऊँट और सियार की छोटी सी लोक कथा को देख सकते हैं। यह कथा दुष्ट के साथ लोग उसी के जैसा व्यवहार करते वाली बात को बताती है तथा मूर्ख दोस्तों से बचने का संकेत करती है-

एक जंगल में एक ऊँट और एक सियार रहते थे। दोनों में खूब दोस्ती थी। एक दिन सियार ने ऊँट से कहा कि गंगा के उस पार खूब फूट (एक प्रकार का तरबूज) लगा है। हम लोग चल के खाते हैं। सियार ऊँट की पीठ पर बैठ के नदी पार कर गया। दोनों फूट खाने लगे। सियार का पेट छोटा था जल्दी भर गया। उसने ऊँट से कहा कि ऊँट भाई हमारा पेट तो भर गया, चलो चलते हैं। ऊँट का पेट बड़ा, वह भरा नहीं, उसने कहा थोड़ा रूको मेरा भी पेट भर जाये तो चलते हैं। सियार तो सियार, थोड़ी देर बाद उसने कहा कि अब तो हमको हुँआस (सियार रात को मिलकर जैसे चिल्लाते हैं, उसे हुँआस कहते हैं। हुँआस भोजपुरी में नीद आने से पहले आनी वाली उबासी को भी कहते हैं लेकिन यहाँ यह अर्थ नहीं है) आ रही है और वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा। शोर सुनकर इतने में खेत का मालिक आ गया। फुर्तिला सियार चट से भाग गया, ऊँट बेचारा फंस गया। खेत वाले ने उसे खूब पीटा। इसके बाद वह जैसे तैसे नदी किनारे पहुँचा। सियार उसका इन्तजार कर रहा था कि ऊँट आये तो उसकी पीठ पर बैठ के नदी पार करे। ऊँट अपने साथ हुआ वाकया कैसे भूल सकता था। नदी के बीच में जाकर ऊँट ने सियार से कहा- भई अब मुझे लोटवास (लेटने का मन होना) लगी है। यह सुन सियार को तो अब जैसे को तैसा मिला। वह पानी में डूबते उतराते हुए बह गया। छोटी सी यह कहानी अन्त में यह भी कहती है कि जो दूसरों के साथ धोखेबाजी करता है या उसका सम्मान नहीं करता, उसके साथ भी लोग ऐसा ही करते हैं।

निश्चित रूप से भोजपुरी की लोक कथायें नीति प्रधान हैं जो लोक जीवन के लिए सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक मानदण्डों को तैयार करती हैं, जिनसे लोक सुधार एवं लोक स्वरूप को बनाये रखा जा सके। इन कथाओं के शीर्षक हालांकि एक प्रकार से सुनिश्चित नहीं होते, किन्तु उनकी कथा के हिसाब से उनके शीर्षक सुने जा सकते हैं। ग्रामपंचायत का फैसला, घोड़ा के सिंघ, चींटी और चिड़िया, चोर और भागवत कथा, टेढ़की खीर, दैत्य और राजकुमार, दो बहनें और राक्षस, धोबी और नेवला, पंछियों की बोली जानने वाली औरत की कथा, बकरी, लोमड़ी और कौवे की कथा आदि-आदि ऐसी सैकड़ों कथायें हैं जिनके शीर्षक कथा को सुनाने वाला अपने हिसाब से रख लेता है। इसलिए इन लोककथाओं के शीर्षक रूढ़ नहीं होते। इन कथाओं में जाति व्यवस्था का आकलन करती हुई कथायें भी हैं। जो बताना चाहतीं है कि लोगों के बीच बढ़ते भेद, असमानता अथवा भाईचारे का भाव इससे नष्ट होता जा रहा है। प्रायः सभी कथायें लोकमानस के भीतर होते जा रहे बदलाव की ओर भी संकेत करती हैं और बनते बिगड़ते मानव स्वभाव की ओर संकेत करती हैं तथा उन्हें जागरूक करती हैं। एक उदाहरण-

किसी गाँव के रहने वाले एक ब्राह्मण, एक क्षत्रिय और एक नाऊ कहीं जा रहे थे। इन तीनों लोगों को रास्ते में बूट (चना) का खेत मिला। चने की कचरी खूब लहलहा रही थी। ये देखकर तीनों के मन में खाने का लालच आ गया। दोपहर के समय में किसी को न देखकर खेत में आराम से बैठकर चने उखाड़-उखाड़ के खाने लगे। थोड़ी देर में जब खेत का मालिक आया तो तीन लोगों को एक साथ अपनी फसल का नुकसान करता देखकर गुस्सा भी आया और डर भी। तीन लोगों से एक साथ निपट नहीं सकता। इसलिए उसने चतुराई से इन तीनों को पीटने की योजना बनाया।

पहले उसने सबके बारे में जानकारी और पहचान लेने की कोशिश की। उसके बाद उसको क्या करना है यह तय किया। बारी बारी से उसने पूछा कि आप कौन हैं महाराज। ब्राह्मण ने कहा कि हम बाबाजी हैं। उसने जबाव दिया- आपको तो खाने का अधिकार हर जगह है। गाय और ब्राह्मण को तो मन से खिलाना ही चाहिए। खाईये-खाईये। दूसरे ने कहा कि हम राजपूत हैं। तब उसने कहा- आप तो मालिक हैं सरकार आप खूब खाईये। तीसरे ने जबाव दिया हम तो नाऊ हैं। बस वह चतुर आदमी समझ गया क्या करना है। उसने नाऊ से शुरू किया। गाली देते हुए बात शुरू की- ये तुम्हारे बाप का खेत नहीं हो जो खाये जा रहे हो। तुमको किसने कह दिया खाने को। उसके बाद इसने उसे जूतों और लाठी से पीटना शुरू कर दिया। बाकी दोनों लोग अपने जाति के पद और महानता में खुब खुश होते रहे और अपने साथी को पीटते हुए तमाशा भी देखते रहे। उसे जमकर पीटने के बाद वह तुरन्त ठाकुर साहब की ओर मुड़ा और कहा- तुम किससे पूछ के मेरे खेत का चना खा रहे थे क्या ये खेत तुम्हारे बाप का है। यह कहते हुए उनकी भी जमकर धुनाई कर डाली। बाबाजी खुश थे कि मैं तो पूजनीय पण्डित व्यक्ति हूँ, पूरे समाज में मेरी इज्जत है। इस बात को यह आदमी भी मानता है। वे तमाशा देखते रहे। इन दोनों को पीटने के बाद, वह इनकी ओर आते हुए कहा- ये जो तुम कदम-कदम पे दक्षिणा के नाम पर लूटते रहते हो इसका क्या। तुमको तो जजमनिका से मुफ्त में सारा कुछ लेने की आदत पड़ गयी है। आज हम तुम्हारी ये आदत छुड़ा ही देंगे। वह आदमी इनको भी जम के मारा। तीनों फिर किसी तरीके से भाग खड़े हुए।

यह कथा बताती है कि वे तीनों जाति भेद और समाज के भीतर फैली असमानता के भाव के कारण पिट गये। अगर यह जातिभेद नहीं होता तो वे तीनों आराम से उस अकेले आदमी का मुकाबला कर सकते थे। चूँकि सामाजिक संरचना में उनके बीच न कोई मानवीय बन्धन था, न ही कोई नैतिक सम्बन्ध, जो एक दूसरे की मदद के लिए प्रेरित करता। ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि उनके भीतर के जातीय अहंकार को उस चतुर आदमी ने जगा दिया था। ये कहानी यह भी कहती है कि इस प्रकार का बँटा हुआ समाज पतनशील ही होगा। वह अधिक तीव्रता से आगे नहीं बढ़ सकता, न ही अपनी सुरक्षा कर सकता है। हम बेहतर जानते हैं कि आधुनिक भारत में कुछ सौ-हजार ब्रिटिश आकर हम करोड़ों भारतीयों पर शासन करने लगे। वस्तुतः यह कथा यही कहती है कि बाहरी ताकतों ने हमारे इसी सामाजिक तथा मानव-मानव के बीच के भेद से लाभ अधिक उठाया। यह भी कि लोग आपस में ही इतने बँटे हुए हैं कि उनके बीच आपसी सौहार्द्र और भाईचारा लुप्त होता जा रहा है। भोजपुरी लोक की नीति कथाओं में ऐसी अनेक कहानियाँ हैं, जो सहज तरीके से सुधारवादी चेतना भरने और लोगों को कर्मठ, जागरूक और चेतन प्रधान बनाने का कार्य करती हैं। हम नीचे लोक को नीति की शिक्षा देती कुछ और छोटी-छोटी कहानियों के देख सकते हैं-

एक मूर्ख आदमी था। उसने कभी पढ़ा था कि तालाब बनवाने, कुआँ खोदवाने या रास्ता बनवाने वाले स्वर्ग में जाते हैं। कहने का अर्थ यह लोक मान्यता है कि सामाजिक कल्याण का काम करने वाले स्वर्ग जाते हैं। वह अपनी सारी जमीन-जायदाद बेचकर तालाब बनवाने

लगा। लेकिन होता क्या था कि स्वर्ग की कामधेनु गाय आकर उसके हो रहे काम को किसी तरह से नष्ट करके चली जाती थी। ऐसा रोज होने लगा। वह त्रस्त होता और गुस्सा करके रह जाता। एक दिन वह छुप कर देखने लगा कि ऐसा कौन करता है। उसने कामधेनु को आते देखा तो वह झट से उसकी पूँछ पकड़ लेता है। वह गाय उड़ते हुए स्वर्ग की ओर जाने लगती है। वह आदमी भी स्वर्ग पहुँच जाता है। वह खुश हो जाता है। अनुमान के आकार से बड़ी-बड़ी मिठाईयाँ और पकवान और सुख-सुविधायें देखकर वह बहुत खुश होता है। इसके बाद कामधेनु गाय उसे नीचे भी छोड़ देती है। यह बात वह अपने दोस्तों से बताता है। वे भी कहते हैं कि हमें भी स्वर्ग की बड़ी-बड़ी मिठाई खिलाओ। वह मान जाता है।

फिर एक रात सभी छुपे रहते हैं। कामधेनु के आते ही वह मूर्ख आदमी उसकी पूँछ पकड़ लेता है। फिर एक एक करके सभी साथी एक दूसरे का पैर पकड़ लेते हैं। उड़ते हुए अचानक एक से रहा नहीं जाता है। लालचवश वह पूछ ही बैठता है- भाई वहाँ जो मिठाई मिलेगी कितनी बड़ी होगी। वह तो ठहरा मूर्ख। गाय की पूँछ छोड़, दोनों हाथ फैलाकर कहता है- इतना बड़ा। अब तो सभी नीचे गिरे और मर गये। इसीलिए समझ लीजिए कि समय के हिसाब से विचार करके बात करना चाहिए और मूर्ख दोस्त से समझदार दुश्मन अधिक अच्छा होता है।

कुसंगत से बचने की शिक्षा देने वाली एक कथा इस प्रकार है-

एक बार एक कौए और एक हंस में दोस्ती हो गयी। कुछ दिनों बाद हंस ने कौए से कहा कि तुम अपने घर ले के चलो, घूम आते हैं। कौआ अपने घर ले गया। चारो ओर फैली बदबू और गन्दगी देखकर हंस ने कहा- भाई तुम तो बड़ी गन्दी जगह पर रहते हो यह तो ठीक नहीं है। कौए ने कहा कि ठीक है चलो मैं तुम्हे अपना दूसरा घर दिखाता हूँ। दूसरी जगह राजा के एक बगीचे में थी। जिस पेड़ में उसका घोसला था उसी के नीचे राजा आराम कर रहा था। कौए की आदत, कौए ने डाल पर बैठते ही राजा के ऊपर बीट कर दिया। राजा अपने बहेलियों को संकेत करता है। बहेलिये तीर चलाने लगते हैं। ऐसे में कौआ तो भाग जाता है क्योंकि उसकी आदत होती है लेकिन हंस को जब तक समझ में आता, तब तक एक तीर उसे लग जाता है। नीचे गिरकर मरते हुए हंस कहता है कि राजा मैंने ऐसा नहीं किया। मैं तो तालाब में सफाई से रहने वाला जीव हूँ। पर अब क्या हो सकता था। कुसंगत में पड़कर उसकी जान व्यर्थ में चली जाती है।

हम ध्यान दे सकते हैं कि ये कथायें केवल इन्सानों ही नहीं पशु-पक्षियों और जीव-जन्तुओं के सहारे भी अपना काम करतीं हैं। ये कथायें एक प्रकार से जीवन को सरलतम बनाये रखने का भी प्रयास करती हैं, अर्थात जीवन की जितनी भी जरूरत है, केवल उतने ही के लिए सजग रखना चाहती हैं। इसके लिए ये कथायें प्राकृतिक अवयवों के पास भी चली जाती हैं। पुराने समय में जीवन की भयावह जटिलता, लोक या विशेष रूप से ग्राम्य परिवेश में कभी नहीं थी। हालांकि यह स्थिति पुराने समय में नगरों में भी बहुत नहीं थी। यह सारी समस्या आधुनिक युग की ही है। जटिल जीवन शहरी संस्कृति, जिनमें सुख-संधाधनों की आपाधापी, धनलोलुपता जैसे प्रवृति काम करती है, में देख सकते हैं। वर्तमान काल के उत्तरआधुनिक, औपनिवेशिक पूँजीवादी समय में मानव के पास अनुभव कम, जटिलता अधिक है। इस जटिलता को अनुभव कहेंगे कि नहीं यह सवाल है क्योंकि एक कार्य, एक अहसास, एक परिस्थिति, एक मानसिकता जैसी एक अवधारणा आज नहीं रही। वर्तमान काल में इस जटिल समय ने शहर से लेकर सुदूर ग्रामीण अंचल तक, सबको ऐसे घेर रखा है जिसमें वह परिवेश भी नष्टप्राय हो गया है जहाँ ये लोककथायें लोकमानस की प्रवृतियों को सम्हाले रखती थीं। जिनको सुनकर मानव, जीवन उद्योग को आगे बढ़ाता था। मानव की अच्छाईयों-बुराईयों, खेती, व्यापार, ज्ञान, धर्म, मौसम, जीवन के अनुभव आदि लोक की नीतिकथाओं में विषय बने हैं। मानव जीवन इन्हीं से पूरित होता है। इसलिए इन लोक कथाओं में जटिल जीवन जैसा कुछ नहीं है। इसमें प्रस्तुत मनुष्य की जीवन उसके सरल और व्यावहारिक भर ही है। यह सब नष्ट होता जा रहा है। इस उद्देश्य को संपुष्ट करता एक आखिरी उदाहरण कथा देखें-

एक गाँव में दो भाई रहते थे। दोनों पिता के मरने के बाद अलग-अलग हो गये। समय के साथ बड़ा भाई अमीर हो गया और छोटा गरीब ही रह गया। बड़े भाई के चार बेटे थे, जो अमीरी के साथ बिगड़ गये और किसी की बात नहीं सुनते। छोटे के भी तीन बेटे थे जो अभावों में पल रहे थे। छोटे भाई की हालत इतनी खराब होती गयी कि उनको ठीक से खाना भी नहीं मिलता। बड़ा भाई कोई मदद नहीं करता था। ऐसे में वे एक दिन दूसरी जगह पर कमाने के लिए निकल पड़ते हैं। चलते-चलते जब रात हो गयी तो रास्ते में ही एक पेड़ के नीचे रूक गये। ये चारो लोग घर से जो थोड़ा-बहुत खाने के लिए लाये थे बनाने खाने की व्यवस्था करने लगे। छोटे भाई ने एक बेटे से कहा कि तुम जाकर सूखी लकड़ी ले के आओ। दूसरे बेटे से कहा तुम जाकर कहीं से आग का जुगाड़ करो। इस प्रकार से वे मिलजुल कर अपना काम कर रहे थे। वह पेड़ बहुत पुराना पीपल का पेड़ था, जिस एक जिन्न रहता था। उसने आग और लकड़ी मंगाने की बात सुनी तो सोचने लगा कहीं ऐसा तो नहीं ये मुझे जलाने की व्यवस्था कर रहे हैं। वह डर गया क्योंकि सभी अपना काम चुपचाप मन से करने में लगे थे। वह नीचे आके छोटे भाई से कहने लगता है- आप सब ऐसा क्यों कर रहे हैं। आप लोग ऐसा मत कीजिए। आप लोगों को जो चाहिए मैं दे दूँगा। छोटा भाई लालची नहीं था लेकिन समझदार था। वह समझ गया उसे क्या करना है। उसने कहा हम ऐसा नहीं करेंगे तो हमे क्या मिलेगा। जिन्न ने कहा- मैं धन दे सकता हूँ। धन लेकर छोटा भाई और उसके तीनों बेटे वापस लौट गये। वे अपने गाँव में सबसे अमीर बन गये।

ऐसा देखकर बड़ा भाई परेशान। वह उसके पास गया। वह उसे धमकाने लगा- तुम लोगों के पास तो फूटी कौड़ी नहीं थी। इतना धन कहाँ से आने लगा। जरूर तुम लोग चोरी करते हो। बताओ नहीं तो मैं राजा के सिपाहियों के पास तुम लोगों की शिकायत कर दूँगा। ये लोग डर के सब सच बता दिये। अब ये लोग लालच में आकर वैसे ही उस पेड़ के पास गये और जानबूझकर आग जलाने का उपक्रम करने लगे। बड़े भाई ने अपने बेटों को काम सौंपा। किन्तु ये मेहनती स्वभाव के तो थे नहीं तो एक दूसरे को काम कर देने के लिए

कहते रहे। यह देखकर जिन्न नीचे आया। पूछा- यह आग क्यों जलाना चाहते हो। बड़े भाई ने कहा- हम लोग तुमको ही जलाने की व्यवस्था कर रहे हैं। जिन्न बोला- तुम लोगों की आपस में तो बन नहीं रही है, मुझे क्या जलाओगे। पहले एक साथ रहना तो सीख लो। यह कहते हुए वह उन पाँचो को मार डालता है। इसीलिए कहा जाता है कि लालच नहीं करना चाहिए। संतोष करना चाहिए तथा एकता में बहुत बल होता है इसलिए मिलजुल कर रहना चाहिए।

हम देख सकते हैं कि यह लोक कथा भी हमें नीति की शिक्षा ही दे जाती है। वस्तुतः भोजपुरी की ये नीति कथायें लोक के सही स्वरूप एवं स्वभाव को बनाये रखने के लिए निर्मित होती गयी हैं। सही अर्थों में कहे तो मानव को समाज विरोधी और विकृत प्रवृति से दूर रखने के लिए बनी हैं। यही उनका मूल कर्म और उद्देश्य होता है। हम जानते हैं कि भिन्न जीव-जन्तु आपस में बात नहीं करते और न ही मनुष्य की किसी और जीव- पशु-पक्षी, पेड़-पौधे से बात होती है, किन्तु इन कथाओं में यह सब होना उसके अन्तिम उद्देश्य सर्वहित तथा लोक के सत्य को बचाये रखने के लिए होता है। भोजपुरी की इस प्रकार की नीति कथायें लोक जीवन को सही दिशा में बनाये रखने का लोक का ही प्रयास है। प्रत्येक कथा के अन्त में मन में सोचने की बात इसीलिए कही जाती है कि वह कथा किसी न किसी लोकनीति से जुड़ी होती है। इसको सुनने के बाद मन में विचार करना है और अपने जीवन में लागू करना है। ये कथायें इसी प्रकार से अपनी बात कहते हुए समाप्त हो जाती है। अतः ये नीतिनियामक का कार्य करती रही हैं। आज तो इनकी उपस्थिति और भूमिका कम हो रही है किन्तु मानव चरित्र को सामाजिक और नीतिप्रधान बनाये रखने के लिए इनसे बेहतर आज भी कोई उपाय नहीं है। बनावटी संसार में ये लोककथायें ही मौलिक हैं।

सन्दर्भ

1. भोजपुरी नीतिकथा, संपा.- रसिक बिहारी ओझा निर्भीक, पृष्ठ- 14
2. भोजपुरी लोक साहित्य, कृष्णदेव उपाध्याय, पृष्ठ- 384
3. तदेव, पृष्ठ- 389
4. भोजपुरी लोक साहित्यः सास्कृतिक अध्ययन, श्रीधर मिश्र, पृष्ठ- 375

सहायक ग्रंथ

1. भोजपुरी लोक संस्कृति- कृष्णदेव उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्रथम संस्करण- 1989
2. भोजपुरी लोक साहित्यः सांस्कृतिक अध्ययन- श्रीधर मिश्र, हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रथम संस्करण- 1971
3. लोक संस्कृति के आइने में भोजपुरी भाषा- संपादक- वीरेन्द्र सिंह यादव, ओमेगा पब्लिकेशन्स, दरियागंज, दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2010
4. भोजपुरी लोक साहित्य, कृष्णदेव उपाध्याय, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, द्वितीय संस्करण- 2008
5. भारत में लोक साहित्य, कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन प्राईवेट लिमिटेड, इलाहाबाद प्रथम संस्करण- 1998
6. भोजपुरी नीतिकथा, संपादक- रसिक बिहारी ओझा निर्भीक, भोजपुरी अकादमी, पटना, पहिला संस्करण- 1983
7. लोक साहित्य के प्रतिमान, कुन्दन लाल उप्रेती, भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़, तृतीय संस्करण- 2000
8. लोक साहित्य की भूमिका, कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन प्राईवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, संस्करण- 2013

विनोबा भावे के भूदान आन्दोलन की विवेचना

कुमार राजीव रंजन

शोध छात्र, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

विनोबा भावे 18 अप्रैल 1951 को आन्ध्र प्रदेश के तेलंगाना के नालगुंडा जिले के पंचमपल्ली गांव में भूमिहीन हरिजनों की दर्द भरी कहानी सुनकर भूदान का कार्य प्रारम्भ किया। उन्होंने अनुमान लगाया कि यदि भूमिहीन कृषकों को किसी प्रकार से भूमि प्राप्त हो जाये तो भारत की भूमि समस्या का समाधान हो सकता है। उनके अनुमान से पांच करोड़ एकड़ जमीन भारत से भूमिहीनता को मिटाने के लिए आवश्यक थी जो कि कुल काश्तकारी जमीन का छठा हिस्सा था। उन्होंने गांव-गांव में घूम कर भूमि का दान मांगा और भूदान आन्दोलन का सूत्रपात किया। वहां से वे पुनः पवनार आश्रम आये, तीन महीने बाद उन्होंने दिल्ली की ओर प्रयाण किया और 62 दिन की पवनार से दिल्ली की यात्रा में उन्हें 19 हजार 436 एकड़ भूमि दान में मिली। इसके बाद उन्होंने उत्तर प्रदेश की पदयात्रा की और वहाँ उनको 2,95,018 एकड़ भूमि प्राप्त हुई। बिहार में उन्हें 839 दिन की यात्रा में 22,32,474 एकड़ भूमि भूदान में प्राप्त हुई। बिहार के लिए उन्होंने यह दिखा दिया कि अहिंसा की शक्ति से भूमि समस्या का निराकरण कैसे किया जा सकता है। इसके बाद विनोबा ने उड़ीसा की 249 दिन की पदयात्रा में 2,57,277 एकड़ भूमि, आन्ध्र प्रदेश की 224 दिन की पदयात्रा में 50,754 एकड़ भूमि, तमिलनाडु में 341 दिन की पदयात्रा में 47,092 एकड़ भूमि केरल की 138 दिन की पदयात्रा में 1,571 एकड़ भूमि तथा कर्नाटक की 212 दिन की पदयात्रा में 1,109 एकड़ भूमि भूदान में प्राप्त की। विनोबाजी ने सर्वोदय कार्यकर्ताओं को 8 मार्च 1953 को चान्डिल्य में सम्बोधित करते हुए कहा, ''हमारा उद्देश्य केवल भूदान प्राप्ति ही नहीं है। हमें स्वतंत्र लोकशक्ति का निर्माण करना है, जो हिंसक शक्ति के विरोधी और दंड शक्ति से भिन्न होगी। इस अहिंसक लोकशक्ति से देश की विभिन्न समस्यायें आसानी से हल की जा सकेंगी।''

विनोबा जी के भूदान आन्दोलन का यह प्रभाव हुआ कि जयप्रकाश नारायण ने इस अहिंसक क्रांति के लिए लगभग 600 कार्यकर्ताओं के साथ जीवन दान का व्रत लिया। जमीन के दाम गिरने लगे। जमींदार स्वयं विनोबाजी के पास आते और हाथ जोड़कर भूमि का छठा हिस्सा स्वीकार करने का आग्रह करते। किन्तु बिहार में इसकी एक प्रतिक्रिया यह हुई कि अनेक बड़े जमीन्दार घबरा गये। कांग्रेस तथा उसके समर्थक राजनीतिक क्षेत्रों में खलबली मच गई। जमीन हाथ से जाती देखकर कई कांग्रेसी झल्ला उठे और उन्होंने किसी तरह से विनोबा जी को बिहार से विदा किया। लेकिन इसका परिणाम यह हुआ कि बिहार के जमींदार तथा बिहार की कांग्रेसी सरकार ने बिहार के भूदान आन्दोलन को जर्जरित कर दिया और भूमिहीनों की समस्या वैसे की वैसी बनी रह गई।

भूदान आन्दोलन शनैः शनैः शिथिल होता गया। उनकी पदयात्रायें दिखावा रह गईं। बड़े-बड़े सरकारी अधिकारी तथा मंत्री उनकी पदयात्रा की अगवानी करते और स्वागत के लिए तैयार रहते लेकिन विनोबा जी के साथ फोटो खिंचाते ही फिर गायब हो जाते। उन लोगों का भूमि समस्या को हल करने में अथवा राष्ट्र का पुनर्निर्माण करने में कोई योगदान नहीं था। वे केवल स्वार्थवश विनोबाजी के साथ हो जाते थे। भूदान के बाद विनोबा जी ने ग्रामदान की योजना प्रारम्भ की। उन्हें पहला ग्रामदान 23 मई 1951 को उत्तर प्रदेश के हमीरपुर जिले के मंगरात गांव में प्राप्त हुआ जहाँ सभी भूमिवालों ने अपनी जमीन विनोबाजी को दान कर दी। विनोबाजी ने ग्रामदान की 4 शर्तें रखीं थी : (1) गांव के सब वयस्क निवासी, स्त्री हों अथवा पुरुष, मिलकर ग्रामसभा बनायें। (2) गांव के सब भूमिवान अपनी-अपनी जमीन का स्वामित्व ग्रामसभा को सौंप दें। (3) गांव के सब भूमिवान अपनी जमीन का बीसवां हिस्सा ग्रामसभा को दान कर दें ताकि वह भूमिहीनों को दिया जा सके। (4) गांव में ग्राम कोष खोला जाये जिसमें भूमिवान लोग अपनी जमीन में होने वाली पैदावार का चालींसवा हिस्सा जमा करें और मजदूरी करनेवाले या वेतन पाने वाले लोग प्रतिमाह एक दिन की मजदूरी या वेतन जमा करें।

विनोबा ही ग्रामदान के माध्यम से प्रत्येक गांव को एक परिवार जैसी सूरत देना चाहते थे। परिवार के सदस्य जिस प्रकार मिल-जुलकर आपसी सलाह से काम करते हैं उसी तरह गांव के सारे विवाद ग्रामसभा के द्वारा तय करें, उन्हें कोर्ट अथवा पुलिस थाने में जाने की आवश्यकता नहीं रहे। सारे झगड़े ग्रामसभा में निपटाये जायें। इसी तरह प्रत्येक गांव में ग्राम भंडार की स्थापना की जाय। गांव की सफाई, सिंचाई, शिक्षा, सुरक्षा, चिकित्सा, पशुपालन आदि ग्रामसभा की देख-रेख में हो। ग्रामसभा द्वारा इन कार्यों के लिए जमीन दी जाये तथा उद्योग धंधों की स्थापना करें। खेती की व्यवस्था अलग-अलग होते हुए भी लगान ग्रामसभा द्वारा दिया जाये। विनोबा के अनुसार ग्राम स्वराज्य का आदर्श 'खेत गांव का, खेती किसान की' था। किन्तु विनोबाजी का यह कार्यक्रम अधिक सफल नहीं हुआ। विनोबाजी ने ग्रामदान के पश्चात् प्रखण्डदान मांगा और उसके बाद जिलादान की मांग की। बिहार में दरभंगा पहला जिला था जिसका जिलादान हुआ। एक-एक करके सभी जिलों का दान हो गया और पूरा बिहार ही दान में आ गया। लेकिन इससे भूमिहीनों की समस्या नहीं सुलझी और यह केवल दिखावे का ही आन्दोलन रहा। विनोबा ने सरकार की सामुदायिक योजना और ग्रामदान योजना के बीच घनिष्ठ सहयोग की मांग की और यह सहयोग कुछ अर्से तक प्राप्त भी हुआ लेकिन सामुदायिक विकास के अधिकारियों द्वारा मिलने वाला सहयोग जनता में भ्रांति फैलाने में सहायक हुआ। जनता यह समझने लगी कि शायद भूदान तथा ग्रामदान का कार्य सरकारी है। सामुदायिक विकास का काम ढीला पड़ने के कारण ही भूदान काम भी शिथिल होने लगा। इसके लिए भूदान आन्दोलन के अन्तर्निहित दोष काफी हद तक उत्तरदायी है। पहला दोष यह था कि जमीन के बंटवारे में दानदाता का सहयोग नहीं लिया गया था। भूदान का सारा तंत्र ऐसा खड़ा किया गया था मानो भूदान वालों को भूमिवान के प्रति डर तथा अविश्वास है। इसका नतीजा यह हुआ कि भूदान करने वालों ने विशेष रुचि नहीं दिखाई। भूदान कार्यकर्ता भी अच्छे-बुरे सभी तरह के लोग थे। अतः कुछ भूमि भूमिहीनों को मिली तो कुछ भूमि हड़प ली गई।

स्वयं विनोबा ने बाद में यह स्वीकार किया कि भूमिवानों की सलाह न लेकर उन्होंने बड़ी गलती की थी। उनके अनुसार यह उनके पुण्य का अहंकार था कि वे न्याय की बात छोड़ गये लेकिन इस चेतावनी के बाद भी विनोबा ने भूमिवानों को भूमि वितरण के कार्य में सम्मिलित नहीं किया।

दूसरी त्रुटि विनोबा के आन्दोलन में यह रही कि कार्यकर्ताओं के मामले में हुए खर्चे का ठीक से हिसाब नहीं रखा गया। भूदान आन्दोलन को गांधी स्मारक निधि से आर्थिक सहायता प्राप्त हुई थी चूंकि विनोबा ने यह आन्दोलन अखिल भारत सर्व सेवा संघ के अन्तर्गत चलाया था। सर्व सेवा संघ के अधीन प्रान्तीय भूदान समितियां काम करती थीं जिसका लेखा-जोखा परीक्षकों को पंसद नहीं आया। कार्यकर्ताओं ने ठीक से हिसाब रखने में असमर्थता प्रकट की। उनका यह उत्तर था कि क्रांति के काम में लगे हुए लोग हिसाब-किताब ठीक से नहीं रख सकते। परिणाम यह हुआ कि गांधी स्मारक निधि ने विनोबाजी को शिकायत की और इससे आन्दोलन को आर्थिक सहायता मिलनी बन्द हो गई। विनोबाजी तथा जयप्रकाश नारायण के अलावा और कोई व्यक्ति ऐसा नहीं था जो भूदान आन्दोलन के लिए निस्वार्थ भाव से अपना जीवन अर्पित करता। फिर भी भूदान आन्दोलन ने वह कार्य कर दिखाया जो सरकारी तंत्र नहीं कर सकता था। 1957 तक 40 लाख एकड़ से ज्यादा जमीन भूदान में प्राप्त हुई थी। यद्यपि 5 करोड़ के लक्ष्य की दृष्टि से चालीस दसवें हिस्से से भी कम था किन्तु इससे लाखों भूमिहीनों को जीवन का नवीन मार्ग प्राप्त हुआ। भूमिहीनों में भूदान आन्दोलन ने नवीन जीवन का संचार किया। अनेक समाज सेवी आगे आये और सर्वोदय कार्यकर्ताओं का निश्चित समुदाय जनता के समक्ष प्रस्तुत हुआ। विनोबाजी की अहिंसक क्रांति जैसे-जैसे ग्रामदान, जिलादान, संपत्तिदान की ओर आगे बढ़ी भूदान आन्दोलन कमजोर होता गया। यदि सर्वोदय आन्दोलन केवल भूदान तक ही सीमित रहता तो उसका लक्ष्य भी पूरा हो जाता और आन्दोलन को शिथिल नहीं होना पड़ता।

भूदान की असफलता आर्थिक विषमता, गरीबी तथा बेरोजगारी की समस्या के लिए चुनौती थी। भूदान आन्दोलन के सम्बन्ध में जयप्रकाश नारायण ने अपनी जेल डायरी में 18 अगस्त 1975 को यह अंकित किया, ''शायद विनोबाजी यह समझते थे और अब भी समझते हैं कि बिना किसी संघर्ष के, शांतिपूर्ण संघर्ष के बगैर भी राजनीतिक तंत्र में क्रमागत परिवर्तन लाया जा सकता है, लेकिन ग्राम स्वराज्य कार्य के वर्षों के अपने अनुभव से मेरा यह निश्चित मत बन गया है कि ग्राम स्वराज्य अपने में एक मूल्यवान राजनीतिक संगठन है बशर्ते कि वह काम करे और सिर्फ कागज पर न रहे। ग्राम स्वराज्य आंदोलन में क्रमागत राजनीतिक परिवर्तन लाने की कोई क्षमता नहीं थी। सैद्धांतिक दृष्टि से इस क्षमता का कोई कारण नहीं था...जिले लिए गए, फिर नमूना बनाने की दृष्टि से प्रखंड लिए गए, लेकिन सफलता नहीं मिली। भूदान से शुरू होकर और ग्रामदान में से होकर (आने वाले ग्राम स्वराज्य के लिए एक तरह का आधार समझे गये थे) बीस साल से ज्यादा लम्बे अरसे तक चलने के बाद ग्राम स्वराज्य आन्दोलन उस निष्फल हालत में पहुंच गया था जिसमें वह आज है।''[1] विनोबा भावे ने भूदान कार्यक्रम शुरू किया। भूदान कार्यक्रम में यह कहा गया कि यह आन्दोलन भूदान में प्राप्त भूमि को भूमिहीन व्यक्तियों को बन्दोबस्त कर दिया जाय। बड़े भूस्वामियों से आग्रह किया गया कि अपनी जमीन का कुछ हिस्सा दान करें ताकि गरीब भूमिहीन मजदूरों को जीवन यापन के लिए कुछ जमीन मिल सके।

लेकिन सच्चाई यह है कि भूमिहीन गरीबों के दुखों की विनोबा भावे को चिन्ता कम थी, कम्युनिस्टों का भय ज्यादा था। देश में कम्युनिस्टों के बढ़ते प्रभाव से वे चिंतित थे। वे नहीं चाहते थे कि भूमि आन्दोलन के जरिये गरीब भूमिहीन कम्युनिस्टों के प्रभाव में आ जाये। विनोबा भावे ने स्वयं कहा कि कम्युनिस्ट धनी व्यक्तियों की कृति हैं। कम्युनिस्टों के खतरों से लड़ने में पुलिस बहुत मददगार नहीं हो सकती। इनको जड़ से उखाड़ फेंकने का एक ही रास्ता है–शान्तिपूर्ण तरीके से भूमि का वितरण।[2] जो भी हो, भूदान कार्यक्रम में एक अच्छी बात यह कही गई कि भूमि का वितरण किया जाय और भूमिहीन गरीब मजदूरों को जमीन दी जाय।

विनोबा भावे ने भूदान अभियान चलाने के लिए देश में सबसे उपयुक्त बिहार को माना। वे 14 सितम्बर, 1952 को बिहार आये। भूदान के अभियान के दौरान उन्होंने विभिन्न जिलों का दौरा किया। सुदूर गांवों में भी वे गये। बिहार में उनका भूदान अभियान 27 महीनों तक चला। वे 31 दिसम्बर, 1954 तक बिहार में रहे। बिहार की धरती को उन्होंने अहिंसा का नया प्रयोग करने के सर्वाधिक उपयुक्त माना। क्योंकि उन्हें मालूम था महात्मा बुद्ध ने इसी बिहार से अहिंसा का संदेश विश्व के अन्य देशों में फैलाया। लेकिन इस संदर्भ में वंद्योपाध्याय भूमि सुधार आयोग ने दुख के साथ लिखा है कि भूदान यज्ञ कमिटी और राज्य सरकार के राजस्व विभाग की अकुशलता के कारण ज्यादा कुछ हासिल नहीं किया जा सका।[3]

आयोग ने बिहार में भूमि सुधार के सभी पहलुओं– आर्थिक, सामजिक, न्यायिक आदि के संबंध में सभी तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने के लिए सरकारी अभिलेखों, सरकारी अधिकारियों, राजनीतिक दलों, संगठनों, बुद्धिजीवियों, शोध संस्थानों आदि का सहारा लिया। जमीनी हकीकत की जानकारी पाने के लिए आयोग ने 14 जिलों में 15 जन सुनवाइयां आयोजित की। इन जन सुनवाइयों में स्थानीय अधिकारियों, राजनीतिक नेता एवं कार्यकर्त्ताओं, जनसंगठनों के प्रतिनिधि और जमीन से जुड़े आम लोग शामिल हुए। आयोग ने सबकी बातें सुनी और उनके सुझावों को नोट किया। सभी तथ्यों और जानकारियों के आधार पर आयोग ने माना कि भूदान कार्यक्रम में बड़े पैमाने पर धोखाधड़ी, षड्यंत्र, कानूनों का उल्लंघन, जमीन की हेरा-फेरी और जालसाजी की गई हैं। इन सब गलत धंधों में भूस्वामी, सरकारी अधिकारी, भूदान यज्ञ कमिटी और राज्य सरकार के राजस्व विभाग के अधिकारी शामिल हैं। इन सबों ने सांठगांठ करके भूदान के मूल उद्देश्य को ही रौंद डाला।

भूदान में मिली जमीन की देखभाल करने, उसके अभिलेख तैयार करने, उसका वितरण करने आदि कामों के लिए राज्यस्तर पर भूदान यज्ञ कमिटी का गठन किया गया था। प्रत्येक जिले में उसकी जिला इकाइयाँ भी गठित की गई। 1954 में भूदान कार्यक्रम को कानूनी मान्यता देने के लिए बिहार भूदान यज्ञ अधिनियम पारित हुआ।[4]

भूदान यज्ञ कमिटी ने आयोग को जानकारी दी कि भूदान में कुल 6,48,476 एकड़ जमीन प्राप्त हुई। उनमें से 2,78,320 एकड़ जमीन वितरण के अयोग्य पायी गई। शेष में से 2,55,347 एकड़ भूमि 6,15,454 परिवारों के बीच वितरित की गई। 1,14,708 एकड़ भूमि वितरण के लिए शेष रह गई हैं, जो अभी तक वितरित नहीं की गई है।

इन आंकड़ों को देखकर आयोग आश्चर्यचकित हो गया। किसी को भी यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि जमीन का इतना बड़ा रकबा किस आधार पर वितरण के अयोग्य मान लिया गया। इसकी जानकारी न भूदान यज्ञ कमिटी को है और न ही राजस्व विभाग को। जमीन का चरित्र क्या है, यथा जंगल

है, पहाड़ है, नदी, झील या जलकर, ऊसर है, खेती योग्य है, इसकी भी जानकारी कमिटी और राजस्व विभाग को नहीं है। कमिटी और राजस्व विभाग को यह भी जानकारी नहीं है कि उस जमीन पर किसका नियंत्रण और कब्जा है। ऐसी स्थिति में यह आसानी से समझा जा सकता है कि भूदान जमीन के इतने बड़े रकबे को वितरण के अयोग्य मानने के पीछे कोई अवश्य बड़ा घोटाला और षड्यंत्र है। भूदान यज्ञ कमिटी और राजस्व विभाग ने ऐसी जमीन की भौतिक जांच भी कभी नहीं करायी।

उल्लेखनीय है कि यह जमीन भूदान में भूदान यज्ञ कमिटी को मिली। लेकिन उस जमीन पर न तो भूदान यज्ञ कमिटी का कब्जा और नियंत्रण है और न ही भूमिहीनों में उसका वितरण हुआ है। तो स्पष्ट है कि उस जमीन पर भूदानदाताओं या किन्हीं भू-माफियाओं का कब्जा और नियंत्रण है। दूसरी बात यह कि कुल जमीन जंगल, पहाड़, नदी-झील तो नहीं होगी। कुल जमीन उनमें से अवश्य ऐसी होगी जिसको विकसित करके खेती या बागवानी आदि के लायक बनाया जा सकता है। इन सब तथ्यों को नजरअंदाज करके 2,75,320 एकड़ जमीन वितरण के अयोग्य मान लिया जाय, यह न सिर्फ अनैतिक, लापरवाही या उपेक्षा कही जायेगी, बल्कि यह एक बड़ा षड्यंत्र है।[5]

इतना बड़ा षड्यंत्र किनको लाभ पहुंचाने के लिए रचा गया, यह विचारणीय है। यह तय है कि यह जमीन चाहे भू माफियाओं के कब्जे में हो या दान दाताओं के कब्जे में, उनका लाभ वे ही उठाते होंगे। अगर इस जमीन का वितरण होता तो उसका लाभ भूमिहीन लाभार्थियों को मिलता। वितरण न होने से भूमिहीन गरीब उस जमीन से मिलने वाले लाभ से वंचित हो गये। स्पष्ट है यह षड्यंत्र भू-माफियाओं या भूदान दाता भूस्वामियों को ही लाभ पहुंचाने और भूमिहीन गरीबों को उनको मिलने वाले लाभ से वंचित करने के उद्देश्य से रचा गया है।

यह भी हो सकता है कि भूस्वामी ने भूहदबंदी से फाजिल जमीन को चुराने के वास्ते अपनी जमीन को भूदान में दे दिया। लेकिन व्यवहार में उसने न तो भूदान में जमीन दी और न अधिशेष भूमि मानकर राजस्व विभाग को ही दी। दोनों ही हालत में भूमिहीन गरीबों को नुकसान और भूस्वामियों को लाभ मिला। क्योंकि जमीन अगर हदबंदी से फाजिल घोषित होती तो भी उस जमीन का वितरण भूमिहीनों में ही होती और उसका लाभ उन्हें मिलता। आश्चर्य की बात है कि भूदान की जमीन के इतने बड़े घोटाले पर आज तक राज्य की किसी भी सरकार का ध्यान नहीं गया। न तो पूर्ववर्ती सरकारों ने इस ओर ध्यान दिया और न ही वर्तमान सरकार ने। क्या यह संदेह पैदा नहीं करता कि इस बड़े घोटाले में सत्ता के ऊंचे पद पर रहने वाले राजनेताओं का हाथ भी हो सकता है?[6]

एक बात और, भूदान यज्ञ कमिटी के अनुसार अभी भी उसके पास 1,14,708 एकड़ भूदान की जमीन है। यह वितरण योग्य है, लेकिन वर्षों बाद भी अभी तक वितरित नहीं की जा सकी है। इस जमीन के वितरण में इतना विलंब का भी कोई कारण अवश्य होगा। इसी से जुड़ा दूसरा प्रश्न विचारणीय है कि फिलहाल इस जमीन पर किसका कब्जा और नियंत्रण है। इस जमीन का लाभ वर्षों से कौन उठा रहा है ? क्या भूदान यज्ञ कमिटी को उस जमीन से मिलने वाले लाभ का कोई हिस्सा मिलता है या नहीं? इस जमीन के नहीं बांटने से किसको लाभ से वंचित होना पड़ रहा है ? क्या भूस्वामियों को लाभ पहुंचाने और भूमिहीनों को लाभ से वंचित करने की नीयत से जमीन के वितरण में विलंब नहीं किया जा रहा है? इन प्रश्नों का सही-सही उत्तर भूदान यज्ञ कमिटी या राजस्व विभाग के किसी अधिकारी के पास नहीं है। ऐसी हालत में पाठक स्वयं इनका उत्तर ढूंढ़ लें।

2,55,347 एकड़ भूदान की जो जमीन वितरित की गई, उसमें भी आयोग को भारी घोटाला का पता चला है। यह जमीन भूदान यज्ञ कमिटी के अनुसार 3,15,454 परिवारों में वितरित की गई। इस वितरण में भी भारी घोटाला, बेईमानी और मनमानी की गई है। आयोग के रिपोर्ट के अनुसार वितरित जमीन का विवरण इस प्रकार है–निजी लाभार्थियों को 7.7542 एकड़ प्रति परिवार, आदवासियों को 6 एकड़ प्रति परिवार, अन्य पिछड़े वर्ग को 2 एकड़ प्रति परिवार जमीन दी गई। आश्चर्य के साथ आयोग ने नोट किया है कि 59 संस्थाओं को 11,130.9375 एकड़ जमीन वितरित की गई। ज्ञातव्य है कि भूदान की जमीन के वितरण के लिए लाभार्थियों की गई श्रेणियाँ बनायी गई हैं। इनमें एक है ''सार्वजनिक एवं अन्य''। आयोग ने कहा है कि यह वाक्यांश अस्पष्ट और भ्रामक है। सी वाक्यांश का लाभ उठाते हुए भूदान यज्ञ कमिटी ने 59 संस्थाओं को 11,130.9375 एकड़ जमीन दे दी। पता नहीं इस जमीन का इस्तेमाल उन संस्थाओं के विकास आदि के लिए किया जा रहा है या कुछ दबंग व्यक्ति संस्था के नाम पर जमीन लेकर उसे इस्तेमाल निजी हित के लिये कर रहे हैं। किसी भी ईमानदार सरकार के लिए यह जाँच का विषय है।

आयोग ने यह भी कहा है कि भूदान की जमीन के इस वितरण के बावजूद 15,000 एकड़ जमीन का औपचारिक वितरण अभी तक नहीं हुआ है।

बिहार भूदान यज्ञ अधिनियम 1954 भी भूदान जमीन के वितरण के सवाल पर दोषपूर्ण है। जन सुनवाई के दौरान आयोग के सामने यह सवाल जोरदार ढंग से उठाया गया। जन सुनवाई में इस अधिनियम के अनुच्छेद 15 की उपधारा (3) को समाप्त करने की मांग की गई। यह धारा भूदान यज्ञ कमिटी को यह अधिकार देती है कि वह भूदान की जमीन को किसी भी व्यक्ति को दे सकता है। भूमिहीनों को देना अनिवार्य नहीं है। अधिनियम का यह प्रावधान उसी अधिनियम के बुनियादी उद्देश्य को समाप्त कर देता है। अधिनियम की प्रास्तावना में कहा गया है कि इस तरह की जमीन (भूदान जमीन) भूमिहीन व्यक्ति या गांव समुदाय, ग्राम पंचायत या सहयोग समिति, जो भूदान यज्ञ कमिटी द्वारा संगठित की गई हो को बन्दोबस्त की जायेगी। इस तरह देखा जाय तो उपधारा (3) अधिनियम के मूल उद्देश्य के विपरीत है। आयोग ने कहा है कि ड्यूटी कलक्टर को अनुच्छेद 21 के तहत मिले अपने अधिकार का इस्तेमाल करते हुए उस जमीन से अवांछित व्यक्ति को हटा देना चाहिए।[7]

आयोग ने भूदान की जमीन के बारे में एक अन्य समस्या को नोट किया है। वह है कि भूदान की जमीन के बारे में राजस्व विभाग और भूदान यज्ञ कमिटी के अभिलेख में दर्ज आंकड़ों में एकरूपता नहीं है। राजस्व विभाग के आंकड़ों के अनुसार 1,11,000 एकड़ भूमि की पुष्टि नहीं हुई है। लेकिन कमिटी के आंकड़ों के अनुसार असत्यापित भूमि के कोई भरोसेमंद आंकड़े नहीं है। यह विसंगति स्थानीय विवाद और संकट का बहुत बड़ा स्रोत है।

आयोग ने भूदान जमीन में व्याप्त धोखाधड़ी, जालसाजी, मनमानी, पक्षपात, ठगी आदि को दर्शाने के लिए कुख्यात हथुआ राज के मामले को प्रस्तुत किया है। हथुआ राज ने एक मामूली पत्र के द्वारा विनोबा भावे को अपनी एक लाख एकड़ जमीन भूदान में दान दे दी। यह घटना 1959-60 में प्रकाशित सारण गजेटियर में उल्लिखित है। यह कोई कहावत नहीं है। यह भूदान यज्ञ कमिटी के अभिलेखों में भी दर्ज है।

भूदान यज्ञ कमिटी ने आयोग को बताया कि अप्रैल, 1959 के अन्त तक सारण जिला में भूदान में कुल 1,03,902 एकड़ जमीन मिली। लेकिन 23-3-2007 को गोपालगंज जिला के तत्कालीन कलक्टर ने बताया कि भूदान यज्ञ कमिटी को कुल 21,237 एकड़ जमीन मिली। जिसमें से 10,263 एकड़ जमीन की पुष्टि हो सकी। पहले गोपालगंज सारण जिले का एक अनुमंडल था। अब वह अलग जिला बन गया है। आयोग ने कहा है कि सर्वे कराकर हथुआ राज द्वारा दी गई जमीन की जांच कराने की आवश्यकता है। हथुआ राज ने न सिर्फ विनोबा भावे के साथ धोखाधड़ी की, बल्कि बिहार और गोपालगंज जिला की जनता के साथ भी धोखाधड़ी की। भूहदबंदी से फाजिल जमीन को छुपाने के लिए हथुआ राज ने एक लाख एकड़ जमीन भूदान में फर्जी तरीके से दान कर दी, लेकिन व्यवहार में उसने भूदान में एक इंच भी जमीन नहीं दी। झूठ का सहारा लेकर बिहार सरकार और आम जनता की आंखों में धूल झोंकते हुए उसने एक लाख एकड़ अधिशेष भूमि भूदान में देने की घोषणा कर दी।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने हथुआ राज के इस धोखाधड़ी को कई बार उजागर किया, आन्दोलन किया और उसके खिलाफ धोखाधड़ी का मामला दर्ज कर उसके खिलाफ कार्रवाई की मांग की। लेकिन पूर्ववर्ती सरकार या वर्तमान सरकार किसी ने भी हथुआ राज को नाखुश करने की कोशिश नहीं की। एक लाख एकड़ अधिशेष भूमि पर हथुआ राज कब्जा जमाये हुए है और कोई उसका बाल बांका भी नहीं कर पा रहा है। स्पष्ट है कि इतनी बड़ी धोखाधड़ी कानून और सरकार को ठेंगा दिखाते हुए बिना बड़ी हस्तियों की सांठगांठ के संभव नहीं है। यह कुख्यात कांड राजस्व विभाग के अधिकारी, भूदान यज्ञ कमिटी के अधिकारी तथा हथुआ राज तीनों के अपवित्र गठबंधन और राज्य सरकार के संरक्षण में सम्पन्न किया गया है। ये तीनों हथुआ राज को खुश रखना चाहते हैं और हथुआ राज इन तीनों को खुश करता रहता है। मारे जा रहे हैं भूमिहीन जिनको यह जमीन कानूनी तरीके से मिल सकती थी।[8]

बिहार विधान परिषद में इन्द्रदीप सिंह

बिहार में ग्राम-दान तूफान आंदोलन को लेकर संत विनोबा भावे 11 सितम्बर को आये और पता चला कि पिछले साढ़े तीन महीनों के इस राज्य के दौरे में उन्हें साढ़े तीन हजार गाँव दान में मिले हैं। इन गाँवों के प्रबन्ध और प्रशासन के लिए विधान मंडल में विधेयक प्रस्तुत हुआ था और दोनों सदनों में पारित भी हुआ।[9]

विधान परिषद में कम्युनिस्ट सदस्य श्री इन्द्रदीप सिंह ने ग्राम दान के सिलसिले में आर्डिनेंस जारी किये जाने पर एतराज जाहिर करते हुए बताया कि बहुत-सी ऐसी बाते हैं जिनका सम्बन्ध जनता के हित से है लेकिन सरकार ने इस पर आर्डिनेंस जारी नहीं किया। गत साल तरह-तरह के भीषण कांड इस राज्य में हुए। नफाखोरी-गल्लाचोरी हुई, साम्प्रदायिक दंगे हुए और तरह-तरह की गड़बड़ी हुई लेकिन इस समय सरकार ने कोई आर्डिनेंस जारी नहीं किया। आज देखा जाता है कि धड़ाधड़ जमीन सम्बन्धी बंटवारे चल रहे है और सरकार के सीलिंग (हदबंदी) को नाकामयाब करने की लगातार कोशिश चल रही लेकिन कभी भी सरकार ने आर्डिनेंस लगाने की आवश्यकता महसूस नहीं की।

विनोबा का आदर्श और अमल

श्री इन्द्रदीप सिंह ने बताया जब आचार्य विनोबा भावे ने यह घोषणा की कि 'सर्व-भूमि गोपाल की' यानी दुनिया में जितनी जमीन है सब भगवान की है, तो हमलोगों को कुछ खुशी हुई कि इस घोषणा के द्वारा कम-से-कम विनोबाजी हमलोगों के आधे सिद्धांत को मानते हैं। अर्थात् वह जमीन पर जमींदारों का कोई नैसर्गिक अधिकार नहीं मानते हैं। विनोबा जी ने भी अपने आदर्श को कई अवसरों पर स्पष्ट किया है कि उनके सिद्धान्त के मुताबिक धीरे-धीरे इस आन्दोलन के द्वारा आज जिन लोगों के हाथ में जमीन है, उनके हाथ से जमीन निकल कर उनलोगों के हाथ में चली जायगी जिनके पास जमीन नहीं है या बहुत ही कम है। हमलोगों ने उनसे कहा कि आप अगर इस तरह का आंदोलन चाहते हैं तो हमलोग उसका समर्थन करते हैं। लेकिन लेकिन उस दिशा में कोई खास प्रगति नहीं हुई। इस तरह का आन्दोलन बाहर से चलाया जाय तो हमलोग इसका समर्थन करेंगे। इसलिए नहीं कि इससे समस्या का समाधान होगा, बल्कि इसलिए कि जो गरीब हैं उनको आप जमीन दिलाना चाहते हैं। इसी दृष्टिकोण से ग्राम दान में कम्युनिस्ट पार्टी ने आंशिक समर्थन दिया है।[9]

विधेयक

लेकिन जो विधेयक प्रस्तुत है, वह विनोबा जी के सिद्धांत का उल्लंघन है। इतना ही नहीं, जमीन के बारे में दूसरे जो कानून है उनका भी उल्लंघन है, और फिर कहा जाय कि भारतीय संविधान के अनुसार हमारे देश में जो शासन प्रणाली है उसके मूल सिद्धांत का भी यह उल्लंघन करता है।

विधेयक में कहा गया है कि गांव में 51 फीसदी जमीन के मालिक और 75 फीसदी व्यक्ति ग्राम दान पत्र पर हस्ताक्षर करेंगे। तो वह ग्राम दानी ग्राम कहलायेगा। अर्थात् उसमें यह कल्पना है कि 25 फीसदी जो बच जायेंगे, वे 49 फीसदी तक जमीन के मालिक होंगे। वे ही ग्रामदान आंदोलन में रोड़े लगा रहे हैं और जहां-जहां ग्रामदान में जमींदार और महाजन हैं, वही विरोधी है। वे ग्रामदान में आते नहीं, ग्रामदान हो जाने पर उसे असफल बनाने की चेष्टा करते हैं।[10]

ग्राम सभा कैसे काम करेगी ?

विधेयक में कहा गया है कि जो दान-पत्र नहीं देंगे, बिगहा कट्टा नहीं देंगे, मन-सेरा नहीं देंगे, ग्रामदान में कुछ भी कुर्बानी नहीं करेंगे वह भी ग्राम सभा के सदस्य होंगे। यह ग्राम सभा कैसे काम करेगी ? इस विधेयक में कहीं भी बहुमत से फैसले के आधार पर ग्राम सभा निर्मित होने की चर्चा नहीं है। एक जगह लिखा हुआ है कि ग्राम सभा का संचालन बहुमत के आधार पर नहीं बल्कि कहां-कहां होगा वह रुल (नियम) के द्वारा सरकार प्रिस्क्राइब करेगी (बनायेगी)। यह संविधान का उल्लंघन है। जो भी फैसला हो, बहुमत से होना चाहिए। कोई विरोध नहीं करे तो अच्छी बात है। अगर मत मिलता है तो जो जनवादी पद्धति है वह लागू की जाय।[11]

सर्वसम्मति-सर्वानुमति

ग्रामदान के एक संकल्प में लिखा हैं-''गाँवों के प्रत्येक परिवार से एक व्यक्ति को शामिल कर हम ग्राम सभा का गठन करते हैं। यह ग्राम सभा गाँव के सब लोगों की देखभाल करेगी। ग्राम सभा का संचालन सर्व-सम्मति से या सर्वानुमति से होगा।''

इसके बाद फुटनोट में लिखा है : ''सर्वसम्मति से'' का अर्थ सबकी राय से। जब लोग एकमत होकर निर्णय करते हैं, तो वह सर्वसम्मति से माना जाता है। ''सर्वसम्मति से माना जाता है। ''सर्वानुमति'' का अर्थ है सबकी अनुमति से या निर्विरोध। जब किसी निर्णय पर हमलोग एक मत नहीं होते, लेकिन अलग विचार करते हुए कोई विरोध नहीं करता तो वह निर्णय ''सर्वानुमति से'' माना जाता है।

इस विधेयक के अन्दर जो बातें है, उसके अनुसार इस निर्णय का अर्थ होगा कि गांवों के धनी लोग, जमीन रखनेवाले लोग, अथवा महाजन लोग जो ग्रामदान नहीं करेंगे वे भी ग्राम सभा के सदस्य होंगे। ऐसा एक व्यक्ति भी फैसला रोक सकता है। इस कानून में यह विशेष अधिकार ग्रामदान आन्दोलन के प्रतिकूल है।

खंड 16–ग्राम सभा का संचालन शीर्षक में लिखा है– ''ग्राम सभा और उसके समितियों का संचालन विनिमयों द्वारा विहित नीति से होगा और उन विनिमयों में वे मामले विनिर्दिष्ट रहेंगे जिनका विनिश्चय ग्राम सभा या उसकी समितियों को बहुमत के आधार पर करना है।''[12]

इसका अर्थ साफ है कि कुछ ही लोगों का निर्णय बहुमत से होगा। शेष का निर्णय सर्वसम्मत या सर्वानुमति से होगा। लेकिन इसकी व्यवस्था विधेयक में नहीं की गयी है। उसे अधिनियम के लिए छोड़ दिया गया है। साफ है कि अधिकतर काम सर्व सम्मति से या सर्वानुमति से होगा। इस प्रकार आपने विटो देने का अधिकार उन लोगों को दे दिया है जो लोग ग्रामदान के विरोध में हैं, जो ग्रामदान नहीं करते हैं।

बिहार के जमीन मालिकों ने बाबा को भूदान में खुलकर दान दिया। बलुआही, पथरीली और नदियों के पानी में पड़ी जमीन का उद्धार हो गया। जमीन दान की सार्वजनिक घोषणाएँ हो गई, दानदाता की उदारता का जयगान भी हुआ, सार्वजनिक प्रतिष्ठा भी मिली। कुछ ऐसी जमीनों का उद्धार हो गया जो झगड़े के बीच फंसी थी जिस पर केस मुकदमा चल रहा था उसका भी उद्धार हो गया। कुछ ने हजारों बीघे जमीन दान में दिया लेकिन आजतक उनका बंटवारा नहीं हो सका। सरकार ने हिम्मत तक नहीं जुटाई कि ऐसी जमीनों का बंटवारा करे। हथुआ राज द्वारा दी गई हजारों बीघे जमीन आज तक उन्हीं के पास है। बहुतों ने गैर मजरूआ खास और गैर मजरूआ आम जमीनों को भी दान में दे दिया जिसका सार्वजनिक उपयोग गांव के गरीब लोग करते थे।[13]

डॉ. लोहिया ने गांधीवादियों की तीन कोटियां बनायी थी – सरकारी, मठी और कुजात। सरकारी गांधीवादी कांग्रेसियों को कहते थे जो एम.एल.ए., एम. पी. और मंत्री गांधीजी के नाम पर बनते थे क्योंकि शुरू में जनता समझती थी कि आजादी का श्रेय गांधीजी और उनकी कांग्रेस पार्टी को है और वह कांग्रेस को अपना मत दे दिया करती थी। मठी उनको कहते थे जो गांधीजी द्वारा बनायी संस्थाओं में काम करते थे। सरकार उन्हें अनुदान दिया करती थी और वे मठों में रहनेवाले महंथो और साधुओं की तरह राज भोग करते थे। अपने और अपने तरह के सोशलिस्टों को जो गांधीजी के विचारों के प्रति इत्तफाक रखते थे – कुजात गांधीवादी कहते थे। विनोबा के चेले मठी गांधीवादी थे।

बिहार की सरकार ने भूदान यज्ञ कमिटी को जो भूदान में मिली जमीनों की देखरेख करते हैं और जमीनों का बंटवारा करते हैं और उनका हिसाब किताब रखते हैं–उसको सरकारी दर्जा दे रखा है। इसके सचिव को राज्यमंत्री का दर्जा हासिल है और वह लालबत्ती वाली गाड़ी में चलता है। भूदान यज्ञ कमिटी के नियमानुसार दानदाता से पूछा जाता है कि आप अपनी दान में दी गई जमीन को किसे देना चाहते हैं और वैसे लोग जिन नामों का सुझाव देते हैं–उसे ही जमीन दे दी जाती है।

जानकारों का यह भी कहना है कि यह कमिटी दो चार सालों के अन्तराल पर दानदाताओं से पूछती रहती है कि क्या आप अपने दान में दी गई जमीन को लौटाना चाहते हैं।

विचित्र विडम्बना है कि 55-56 वर्षों की इतनी बड़ी अवधि के बीत जाने के बावजूद आजतक भूदान यज्ञ में दान में मिली जमीन का आजतक बंटवारा नहीं हो सका।

संदर्भ

1. जयप्रकाश नारायण, प्रिजन डायरी, पृ. 131.
2. पॉलिटिक्स ऑफ लैंड रिफार्म इन इंडिया–डी. ठाकुर।
3. वही, पृ. 17।
4. वही, पृ. 18।
5. वही, पृ. 19।
6. वही, पृ. 20।
7. वही, पृ. 20।
8. वही, पृ. 21।
9. जनशक्ति, रविवार, 2 जनवरी 1966, पृ. 3।
10. वही।
11. वही।
12. वही।
13. वही।

महिला संरक्षण से संबंधित भारतीय दंड संहिता की धारा 354 एवं इसका दुरूपयोग

रीना रानी जाट

सहायक प्राध्यापक, माधव विधि महाविद्यालय ग्वालियर मध्य प्रदेश

सार

महिलाओं के खिलाफ अपराधों की धारणा तेजी से बढ़ रही है। यह वास्तव में महिलाओं के जीवन पर भारी पड़ा है जिससे मानसिक और शारीरिक पीड़ा हुई है। भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 354 में महिलाओं की अपमानजनक विनम्रता की अवधारणा को स्पष्ट रूप से वर्णित किया गया है। यह एक अच्छी तरह से स्थापित तथ्य है कि हमले और आपराधिक बल के पहलुओं की गहन व्याख्या की आवश्यकता है। यह विचार कि ये अपराध समाज में विद्रोह कर रहे हैं, इनकार करना कठिन है। हालांकि, यह भी देखा गया है कि इन विशिष्ट और महत्वपूर्ण कानूनों का दुरुपयोग बड़े पैमाने पर हो रहा है। संहिता में संशोधन के साथ, और प्रावधान जोड़े जाने की संभावना है। यह पत्र विभिन्न मामलों में न्यायालयों द्वारा की गई व्याख्या का विश्लेषण करने का भी प्रयास करता है और बदलते समय के साथ प्रावधानों में सुधार के लिए कुछ सुधारों का सुझाव देता है, जिसमें विशिष्ट प्रासंगिकता के साथ हमले, आपराधिक बल और उस संबंध में अन्य महत्वपूर्ण शर्तों का गहरा अर्थ होता है। महिलाओं से संबंधित विभिन्न यौन अपराधों के बीच स्पष्ट अंतर पर स्पष्टता प्राप्त करने के लिए स्पष्ट रूप से चर्चा की गई है।

मुख्य-शब्द: महिला संरक्षण; धारा 354; दुरूपयोग: वर्तमान परिदृश्य; खतरनाक स्थिति।

परिचय

1860 में भारतीय दंड संहिता के आगमन के साथ, असंख्य अपराधों का संहिताकरण हुआ। महिला का शील भंग करने के अपराध को संहिता की धारा 354 के तहत इसकी परिभाषा मिली है।यह ध्यान देने योग्य है कि 'विनम्रता' शब्द में एक उपयुक्त परिभाषा का अभाव है और इसलिए पूरे कोड में कहीं भी स्पष्ट रूप से वर्णित नहीं किया गया है। इस प्रकार, सर्वोच्च न्यायालय ने अंतत: विनय शब्द के अर्थ को "एक महिला की शील का सार उसका लिंग हीं" के रूप में परिभाषित किया। धारा 354 के तहत अपराध को जुर्माने या कारावास से दंडनीय बनाया गया है जो एक वर्ष से कम नहीं है और जिसे पांच साल तक बढ़ाया जा सकता है और यह संज्ञेय और गैर-जमानती प्रकृति का है सामान्य अर्थों में, किसी महिला की लज्जा भंग करने को छेड़छाड़ के रूप में जाना जाता है। इसके अलावा, धारा 354ए, 354बी, 354सी और 354डी में क्रमश: यौन उत्पीड़न, कपड़े उतारने के इरादे से महिला पर हमला, ताक-झांक और पीछा करने का प्रावधान है। अपराध की गहराई की घटना के रूप में हाल ही में प्रमुख घटनाक्रम हुए हैं जिससे पूरे अपराध का विकास पूरी तरह से हुआ है। एक स्पष्ट परिप्रेक्ष्य बनाने के लिए, महिलाओं के अपमान के अपराध और महिलाओं के खिलाफ किए गए अन्य यौन अपराधों के बीच अंतर को समझने की आवश्यकता है। साथ ही, पीडिघ्त विज्ञान के सिद्धांतों में अपराध और ऐसे अपराधों में किए जा रहे जिरह के दृष्टिकोण का एक अलग संदर्भ है।[1]

अपमानजनक शील और बलात्कार

महिलाओं की लज्जा भंग करने और बलात्कार के अपराध में उन तथ्यों और प्रावधानों में एक प्रमुख अंतर है जो किसी भी अपराध का आरोप बनाते हैं। यहां तक कि महिलाओं की लज्जा भंग करने का अपराध भी बलात्कार के प्रयास से बिल्कुल अलग है। हालांकि, यह एक सच्चाई है कि यह एक पतली रेखा का अंतर है। इस प्रकार का अंतर वास्तव में अदृश्य है।

जय चंद बनाम राज्य 30 के मामले में आरोपी ने जबरन धक्का दिया और पीड़िता को बिस्तर पर लिटा दिया और उसके नीचे का तार तोड़ दिया, हालांकि, उसने फिलहाल खुद को कपड़े उतारने का कोई प्रयास नहीं किया। साथ ही, एक बार लड़की ने उसे धक्का दे दिया, तो उसने उसे फिर से नहीं पकड़ा। इस प्रकार यह माना गया कि चूंकि इस मामले में अदालत को बताए गए तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार बलात्कार का कोई सबूत नहीं है, इसलिए जो अपराध किया गया था वह भारतीय दंड संहिता की धारा 354 के तहत महिलाओं की शील भंग करने का था। हालांकि, राम मेहर बनाम हरियाणा राज्य के मामले में, 31 में, आरोपी ने अभियोक्ता को पकड़ लिया और उसे ऊपर ले गया, बाद में उसे नीचे धकेल दिया और पीड़िता की तह खोलने की कोशिश की, यह माना गया कि बलात्कार का अपराध था लिंग का प्रवेश नहीं होने के कारण बाहर नहीं निकला क्योंकि उसने दरांती से प्रहार किया था। साथ ही, आरोपी रक्त का नमूना देने में विफल रहा जिसके परिणामस्वरूप यह माना जा सकता है कि निर्दोषता अत्यधिक संदिग्ध थी।[2]

इसके बाद के घटनाक्रम भारतीय दंड संहिता के इस विशेष अपराध में असंख्य संशोधन किए जा रहे हैं ताकि इस तरह के अपराध के आपराधिक रिकॉर्ड की बढ़ती दर को रोकने और सुरक्षा, सुरक्षा के प्रावधान का लाभ उठाने के इरादे से प्रावधान को सख्त बनाया जा सके। व्यापक रूप से महिला को सुरक्षा। 23 जनवरी, 2013 को प्रस्तुत की जा रही न्यायमूर्ति वर्मा समिति की रिपोर्ट के अनुसार, यौन संपर्क के गैर-प्रवेश रूपों को यौन हमला माना जाना चाहिए और भारतीय दंड संहिता की धारा 354 के तहत सजा को बढ़ाकर पांच साल किया जाना चाहिए। . साथ ही, यह सिफारिश की जा रही थी कि महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों में एक त्वरित और त्वरित सुनवाई एक घंटे की आवश्यकता है। समिति की अध्यक्षता भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश जे.एस. वर्मा और समिति द्वारा यह पहचाना गया कि यौन अपराधों का मूल कारण शासन की विफलता है। यह विशेष रिपोर्ट 2013 के प्रमुख संशोधन को लाने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। दी गई सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए, प्रमुख संशोधन मार्च 2013 में आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2013, के माध्यम से लाया गया था, जिसके कारण छिटपुट विकास हुआ है हुआ। सजा बढ़ा दी गई।[3]

यह संशोधन न केवल भारतीय दंड संहिता, 1860 में बल्कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में भी क्रमशः सुधार लाया। इसके अलावा, भारतीय दंड संहिता, 1860 में नई धाराएँ जोड़ी जा रही हैं जो हैं: धारा 354। (यौन उत्पीड़न), धारा 354 ए (एक महिला को निर्वस्त्र करने का इरादा), धारा 354बी (दृश्यरतिकता) और धारा 354सी (पीछा करना) के साथ क्रमशः अलग दंड। तब से प्रमुख घोषणाएं हुई हैं। हाल के अपने फैसले में, दिल्ली उच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया है कि एक महिला को मध्यमा उंगली दिखाना उसकी शील भंग करने के बराबर है, जिससे यह साबित होता है कि कानून पहले की तरह अधिक कठोर हैं। हालांकि, प्रावधानों का दुरुपयोग बड़े पैमाने पर हो गया है। ऐसे असंख्य मामले हैं जो दायर किए जा रहे हैं और झूठे आरोप साबित हुए हैं। 2019 में, एक विशेष फैसले में, कलकत्ता उच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया कि धारा 354 के तहत गलती से धक्का देना महिला की शील भंग नहीं है।[4]

यौन उत्पीड़न के कानून की धारा 354 के तहत यौन उत्पीड़न की परिभाषा स्पष्ट रूप से प्रदान की गई है और उप धारा (2) और उप धारा (3) के तहत एक ही धारा में अपराध बनाया गया है। यह प्रावधान किया गया है कि कोई भी व्यक्ति जो कोई भी शारीरिक संपर्क या आगे बढ़ता है जिसमें यौन प्रस्ताव शामिल है या किसी भी यौन पक्ष की मांग करता है या किसी महिला को उसकी सहमति के बिना कोई अश्लील सामग्री दिखाता है और साथ ही यौन टिप्पणी करता है, यौन उत्पीड़न के अपराध के लिए उत्तरदायी होगा। हालांकि, विशाखा बनाम राजस्थान राज्य के प्रमुख मामले के तहत, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संपूर्ण दिशा-निर्देश निर्धारित किए जा रहे थे और यह माना गया था कि महिलाओं की शील भंग से संबंधित अपराध नहीं किया जा सकता है एक मामूली अपराध के रूप में लिया गया। सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित दिशा-निर्देशों को वैधानिक मान्यता मिली, जिससे कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013 को अधिनियमित किया गया।

यौन उत्पीड़न के इस अपराध को अब आपराधिक कानून में संज्ञेय अपराध बना दिया गया है; इसलिए, यह कार्यस्थलों पर शिकायतों को वापस लेने की भी अनुमति देता है, जिसके बाद आमतौर पर समझौता होता है और इस प्रकार, यह वास्तव में कानून की अदालत में जांच के दायरे में नहीं आता है। इसके अलावा, सरकार का विचार है कि सामान्य तौर पर, महिलाओं को उस संगठन के भीतर मामले को निपटाने का विकल्प प्रदान करने में कोई नुकसान नहीं है जिसमें अपराध हुआ है या पुलिस में शिकायत की गई है। हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम प्रेम सिंह का मामला, 36 यह माना गया था कि अभियोजक के साक्ष्य को पढ़ते समय, प्रतिवादी की ओर से बलात्कार का मामला नहीं बनाया जा सकता था और इसलिए वह आईपीसी की धारा 376 के तहत उत्तरदायी नहीं था। चूंकि बलात्कार और यौन उत्पीड़न के अपराध के बीच एक पतली रेखा का अंतर है और दोनों को एक दूसरे के साथ भ्रमित नहीं होना चाहिए।[5]

महिला को निर्वस्त्र करने का इरादा

एक महिला को निर्वस्त्र करने के इरादे का अपराध आईपीसी की धारा 354 बी में किया जा रहा है जिसमें कहा गया है कि यदि कोई पुरुष किसी महिला पर हमला करता है या आपराधिक बल का प्रयोग करता है या महिला को निर्वस्त्र करने के इरादे से इस तरह के कृत्य के लिए उकसाता है। या उसे नग्न होने के लिए मजबूर करने के इरादे से तीन साल के कारावास या जुर्माना या दोनों की सजा के लिए उत्तरदायी है। विधायिका का इरादा इस तरह के कृत्य को अपराध बनाना था जैसा कि वह अपने विवेक में सोचती है कि एक महिला को उसके कपड़े उतारने के ऐसे उदाहरण और कार्य पूरी तरह से शर्मनाक, शर्मनाक और नश्वर स्थिति के हैं। इसके अलावा, ऐसे मामलों में किसी प्रत्यक्ष और शारीरिक स्पर्श की आवश्यकता नहीं होती है। यह अपराध संज्ञेय प्रकृति का है, जिसमें पुलिस अधिकारी अपराध दर्ज करने के लिए बाध्य है। यह जमानती अपराध नहीं है।[6]

ताक-झांक

आईपीसी की धारा 354सी के तहत ताक-झांक का अपराध बनाया गया है, जिसमें अगर कोई पुरुष किसी महिला को देखता है या कोई निजी हरकत करता है या ऐसी किसी छवि का प्रसार करता है तो बाद में दो सजाओं के तहत वह जिम्मेदार हो जाता है। इस धारा के तहत स्पष्टीकरण निजी अधिनियम की स्पष्ट परिभाषा प्रदान करता है और साथ ही यह भी कहता है कि यदि कोई महिला ऐसी छवियों या किसी भी कार्य को कैप्चर करने के लिए सहमति देती है लेकिन तीसरे व्यक्ति को इसके प्रसार के लिए सहमति नहीं देती है, तो ऐसा कार्य, यदि किया जाता है, इस धारा के तहत आदमी को उत्तरदायी बनाओ।. संशोधन के बाद, यह अपराध लिंग-तटस्थ अपराध नहीं रह गया। यह ध्यान से देखा गया कि इस तरह के अपराधों ने लड़कियों के मन में एक भय पैदा कर दिया, जिससे उन्हें न केवल संविधान के तहत दी गई स्वतंत्रता बल्कि उस मामले के लिए शिक्षा के अधिकार से भी वंचित होना पड़ा। चूंकि अभियोजन की कोई मशीनरी स्थापित करना संभव नहीं था, लेकिन इसे बड़े विपथन में बढ़ने से रोकने के लिए कुछ निवारक उपाय किए जा रहे थे।[7]

पीछा करना

पीछा करने का अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 354डी में प्रदान किया जा रहा है। इस अवधारणा के तहत, अपराध में कहा गया है कि यदि कोई पुरुष महिला का अनुसरण करने का प्रयास करता है या संपर्क करने का प्रयास करता है, इस तथ्य के बाद भी कि उसने एक दिया है कोई रुचि नहीं होने

का स्पष्ट संकेत, वह व्यक्ति विशेष अपराध के लिए उत्तरदायी हो जाता है। इसमें इंटरनेट या किसी अन्य इलेक्ट्रॉनिक प्लेटफॉर्म पर महिला के उपयोग की निगरानी भी शामिल है। निर्धारित सजा दो दोषसिद्धि में है, यानी पहली सजा में आरोपी को एक अवधि के लिए दंडित किया जाता है जिसे तीन साल तक बढ़ाया जा सकता है और बाद में दोषसिद्धि में एक अवधि के कारावास का प्रावधान जो पांच साल तक हो सकता है। इस विशेष अपराध के आगमन के लिए, न्यायमूर्ति वर्मा समिति ने एक प्रमुख भूमिका निभाई है जिससे आपराधिक कानून संशोधन, 2013 हुआ और इस विशेष अपराध को अस्तित्व में लाया गया।[8]

वर्तमान परिदृश्य

उक्त प्रावधान के कानूनी रुख से संबंधित वर्तमान परिदृश्य को ज्यादातर धोखाधड़ी के रूप में इस्तेमाल किया गया है, हालांकि, महिलाओं को ऐसे गंभीर अपराधों से बचाने के लिए प्रावधान अत्यधिक महिला केंद्रित साबित हुए हैं। यह साबित करने की जिम्मेदारी आदमी पर है कि वह निर्दोष है। इसके अलावा, ऐसे मामलों में, यदि कोई महिला किसी पुरुष के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज करना चाहती है, तो पुलिस को इसे दर्ज करना होगा, भले ही यह दुर्भावनापूर्ण हो, पुलिस अधिकारी इसे दर्ज करने से इनकार नहीं कर सकता है जैसा कि ललिता कुमारी बनाम में आयोजित किया जा रहा था। यूपी सरकार, और अमित कुमार बनाम जोगिंदर सिंह, एसएचओ को निलंबित किया जा रहा था और यह माना गया था कि सभी राज्यों के पुलिस विभागों को अनिवार्य निर्देश हैं कि पुलिस अधिकारी इस संबंध में प्राथमिकी दर्ज करने के लिए बाध्य हैं। शिकायत जो संज्ञेय अपराध का खुलासा करती है और उसे दर्ज करने से इनकार करने पर कड़ी कार्रवाई हो सकती है।[9]

महिलाओं द्वारा कानून के दुरुपयोग और दुरुपयोग के विपरीत, यह देखा गया है कि कुछ घटनाओं में, अपमानजनक शील के बड़ी संख्या में मामले दर्ज नहीं किए जाते हैं और महिलाओं को जीवन भर पीडिष्त होना पड़ता है। स्थिति विभिन्न स्थितियों की चरम डिग्री में खड़ी होती है और ऐसे संशोधनों को लाने की आवश्यकता है जो न केवल महिलाओं की रक्षा करते हैं बल्कि इसका दुरुपयोग रोकने का भी लक्ष्य रखते हैं। संशोधन ऐसे होने चाहिए कि प्रावधान संतुलन पर प्रहार करें। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि शील भंग से संबंधित सभी अपराधों को गैर जमानती बनाया जाना चाहिए और अपराध की सूचना देते समय महिलाओं द्वारा लगाए गए आरोपों की प्रामाणिकता की पहले से ही जांच होनी चाहिए ताकि दुरुपयोग को रोका जा सके।

चल रहे दुरुपयोग- भारत में पुरुषों के लिए एक खतरनाक स्थिति

कुख्यात केपीएस गिल, जिन्हें धारा 354 के तहत एक विशेष पार्टी के कहने पर रूपन देओल को थप्पड़ मारने के लिए दोषी ठहराया जा रहा था, जजों ने उनकी सजा को बरकरार रखते हुए कड़ा बयान दिया कि यह विश्वास करना असंभव था कि उनका शील भंग करने का कोई इरादा नहीं था। पीडिष्त के रूप में महिला के पिछले हिस्से को थप्पड़ मारने के कृत्य की तुलना यादृच्छिक तर्क या झगड़े के दौरान उसे धक्का देने के लिए करना बेहद मुश्किल था और इस प्रकार यह तुलना करने के लिए एक महान न्यायिक अक्षांश बन जाता है। सामान्य दुरुपयोग को समझने के लिए और यह स्पष्ट रूप से समझने के लिए कि क्या महिला की अपमानजनक शील का गठन नहीं करता है, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि केवल यह ज्ञान कि एक महिला की शील भंग होने की संभावना हो सकती है, बिना किसी गणना के अपराध का गठन करने के लिए पूरी तरह से पर्याप्त है या उसकी शील भंग करने का जानबूझकर इरादा।

धारा 354 प्रत्येक यौन कृत्य पर लागू होती है जो कि किसी विशेष महिला के खिलाफ किया जाता है या किया जाता है, जिससे वास्तव में प्रवेश की कमी होती है। हालांकि, यह देखा गया है कि, समय-समय पर, वास्तविक मूल्यांकन की कमी रही है। पूरे मामले की गहराई में और यह कानून की मंशा पर ध्यान से विचार करने और किसी विशेष व्यक्ति की शिकायत के वजन को मापने में सक्षम नहीं होने का यह भ्रम है जो पूरे बोर्ड में अदालतों को प्रभावित करता है। इसके अलावा, यह भी देखा गया है कि अपराध के खिलाफ महिला की ओर से विरोध की कमी को ही अपराधी के लिए बहाना नहीं कहा जाना चाहिए।

विद्याधरन बनाम केरल राज्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अग्रणी निर्णय दिया जा रहा था, जिसमें, अधिनियम अपराध के गंभीर रूप के अंतर्गत आता था, जिसे भारतीय दंड संहिता की धारा 354 के तहत दंडनीय होने की आवश्यकता थी, इस प्रकार, यह माना गया कि शील भंग करने के अपराध के लिए अलग से कोई सजा नहीं दी जा रही थी। इसके अलावा, केरल उच्च न्यायालय के समक्ष अपील की गई और इससे भी अपीलकर्ता को कोई राहत नहीं मिली। हालांकि, सुप्रीम कोर्ट ने भारतीय दंड संहिता की धारा 354 और भारतीय दंड संहिता की धारा 448 के तहत अपराध के लिए आरोपी को हिरासत में सजा देने का फैसला किया, जिससे रिकॉर्ड के अनुसार यह पता चला कि यह लगभग था तीन महीने और तदनुसार न्याय के उद्देश्यों को पूरा करना चाहिए, पृष्ठभूमि के तथ्यों और कुछ विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए जो मामले के लिए विशेष थे। रूपन देओल बजाज बनाम कंवर पाल सिंह गिल, के मामले में, आरोपी जो सुपर कॉप के रूप में लोकप्रिय था, जिसका नाम के.पी.एस. गिल को याचिकाकर्ता आरडी बजाज के पीछे से थप्पड़ मारने के लिए दोषी ठहराया जा रहा था, जो समाज में महिलाओं के प्रति अक्सर होने वाली समस्या और उल्लेखनीय प्रकृति को उजागर करता है। 48 एक तरफ, महिलाओं के साथ छेड़छाड़ के मामले सामने आ रहे हैं। दूसरी ओर ऐसे कई मामले हैं जो यह दर्शाते हैं कि उनके द्वारा इस तरह के प्रावधानों का काफी हद तक दुरुपयोग किया जा रहा है। अर्नेश कुमार बनाम बिहार राज्य और अन्य, 49 के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने फैसला सुनाया कि दहेज विरोधी के संबंध में कानून के तहत आरोपित आरोपियों को मामले में अंतिम जांच होने से पहले स्वचालित रूप से गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार, यह विशेष कार्रवाई उन महिलाओं पर एक मजबूत और शक्तिशाली जांच रखने के लिए की गई थी जो लगातार अपने पति और पति के रिश्तेदारों के खिलाफ झूठे और अनुचित मामले दर्ज कर रही थीं और इसके ठीक बाद, यह विशिष्ट प्रावधान लागू हो गया।[10]

निष्कर्ष

महिलाओं की लज्जा भंग करने से संबंधित अपराध अत्यधिक विकास की प्रक्रिया से गुजरा है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़ों के अनुसार, 2015 और 2016 के दौरान क्रमशः भारतीय दंड संहिता की धारा 509 से संबंधित महिलाओं के शील अपमान के तहत 8685 और 7305 मामले दर्ज किए गए हैं। यह स्पष्ट रूप से देखा गया है कि 2013 में पूरे आपराधिक कानून में बड़े संशोधन के साथ, प्रावधानों का दुरुपयोग भी विद्रोह कर रहा है। समाज से बुराई को खत्म करने के लिए, सबसे पहले प्रावधानों के दुरुपयोग पर रोक लगाने और अक्सर झूठे आरोप लगाने वाले पुरुषों और अक्सर दुर्व्यवहार करने वाली महिलाओं दोनों की सुरक्षा सुनिश्चित करने की तत्काल आवश्यकता है। इसके अलावा, बलात्कार की अवधारणाओं और महिलाओं की अपमानजनक विनम्रता के बीच अंतर करना होगा, क्योंकि हमेशा एक द्वंद्व मौजूद होता है। चूंकि, बलात्कार का अपराध और शील भंग करना ऐसे अपराध हैं जिनमें मामलों के तथ्यों और परिस्थितियों के बीच घनिष्ठ समानता के कारण भेद का कारक नहीं होता है। इसके अलावा, 2013 में किए गए सबसे बड़े और सबसे क्रांतिकारी संशोधन के बाद, अपमानजनक शील के अपराध के लिए कानून और प्रावधान पूरी तरह से बदल गए और यौन उत्पीड़न, महिलाओं को निर्वस्त्र करने का इरादा, दृश्यरतिकता, पीछा करना और एसिड हमले को जोड़ा गया। यह उचित नहीं है कि, चूंकि, जघन्य और गंभीर प्रकृति के ऐसे अपराध पैदा करने के लिए परिवर्तन किए गए हैं।

यह ध्यान से देखा गया है कि किए गए संशोधन के प्रावधानों को आरोप तय करने और खुद को गिरफ्तार करने के मूल चरण से ही त्रुटिपूर्ण देखा जाता है। हालांकि, महिलाओं से संबंधित कुछ विशिष्ट मुद्दों के निवारण के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया है। इस प्रकार, प्रावधान के दुरुपयोग को रोकने के लिए और महिलाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए, कानून में कुछ संशोधन किए जाने की आवश्यकता है जैसे कि अगर किसी महिला के कहने पर कानूनों का दुरुपयोग किया जा रहा है तो कड़े प्रावधान किए जाने चाहिए। और एक अलग कानून में संहिताबद्ध होना चाहिए और साथ ही आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2018 के हालिया संशोधन ने 12 साल से कम उम्र की लड़की के बलात्कार के अपराध को मौत की सजा के साथ दंडनीय बना दिया है और न्यूनतम सजा 20 साल है। कानूनी इतिहास में पहली बार कारावास की सजा साथ ही, 16 साल से कम उम्र की लड़की से बलात्कार से संबंधित प्रावधानों को भी सामान्य रूप से बलात्कार के अपराध के लिए कारावास की अवधि में वृद्धि के साथ जोड़ा गया है। इस प्रकार, मामले की गंभीरता और गहराई को व्यापक रूप से समझना आवश्यक है।

संदर्भ

1. शर्मा, रितिका - तृतीय वर्ष बी.ए. एलएलबी (ऑनर्स।) - विवेकानंद इंस्टीट्यूट ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज, जीजीएसआई पीयू, दिल्ली।
2. भारतीय दंड संहिता 1960, 354.
3. जैन निराली, एक महिला की शील भंग, 5 इंटरनेशनल जर्नल ऑफ लॉ 57, (2019)।
4. रतनलाल और धीरजलाल, भारतीय दंड संहिता (35 वां संस्करण, लेक्सिस नेक्सिस, 2017)।
5. गौर, के.डी., भारतीय दंड संहिता पर पाठ्यपुस्तक (6 वां संस्करण, यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग, 2016)।
6. वही, पृ.72
7. सिंह, सोइबम, समझायाः बलात्कार और यौन अपराधों पर कानून, द हिंदू, (आखिरी बार 21 जुलाई, 2020)
8. भट्टाचार्य, रितुपर्णा, आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2013: क्या यह सार्वजनिक स्थानों पर महिलाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करेगा? अंतरिक्ष और संस्कृति भारत, 2013।
9. वहीं, पृ. 41
10. मोटवानी, आर.के. तेजस, भारतीय दंड संहिता की धारा 354 का विश्लेषण, सिमेंटिक स्कॉलर, (अंतिम बार 21 जुलाई, 2020,)

वृत्ति चयन में महिलाओं की भूमिका एवं उसके प्रभाव

डॉ० अर्चना सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर (समाज कार्य), समाजशास्त्र, समाज विज्ञान एवं समाज कार्य विभाग,
डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

शैलजा वर्मा

शोधार्थी (समाज कार्य), समाजशास्त्र, समाज विज्ञान एवं समाज कार्य विभाग, डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

भूमिका

आधुनिकता के इस दौर में प्रत्येक व्यक्ति आत्मनिर्भर होने के लिए प्रयासरत है। भारत में महिलाओं एवं पुरुषों दोनों को ही समान संवैधानिक अधिकार प्राप्त हैं। संवैधानिक अधिकारों के फलस्वरूप ही महिलाएं अपने लिए स्वतंत्र निर्णय लेकर विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिनिधित्व कर रही हैं। रोजगार के लिए भी महिलाएं वृत्ति चयन कर कैरियर बना रही हैं। जहाँ कुछ महिलाएं स्वतंत्र निर्णय लेकर अपने कैरियर का चुनाव करती हैं, वहीं कुछ महिलाएं अपने अभिभावक, मित्रों, अथवा मार्गदर्शक के निर्देशानुसार कैरियर चुनती हैं। आज भी महिलाएं अपनी रूचि के कैरियर का चुनाव करने हेतु पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं हैं, जो कि उनके जीवन को विभिन्न रूपों से प्रभावित करता है। पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक आदि कई ऐसे कारण हैं जो महिलाओं को उनके कैरियर का चुनाव करने में प्रोत्साहित एवं हतोत्साहित करते हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र में कैरियर चुनाव में महिलाओं की भूमिका एवं उसके प्रभावों का विश्लेषण किया गया है।

मूल शब्दः वृत्ति चयन, महिला, महिला अधिकार, सशक्तिकरण, पितृसत्ता, आत्मनिर्भरता

परिचय

स्त्री और पुरुष गाड़ी के दो पहियों के समान हैं। दोनों को शिक्षा के लिए समान अवसर मिलना चाहिए। यदि महिला शिक्षित और आत्मनिर्भर होती है तो वह अत्याचार और शोषण के खिलाफ आवाज उठाने से घबराती नहीं है। एक पुरुष के शिक्षित होने से एक व्यक्ति शिक्षित होता है लेकिन जब एक महिला शिक्षित होती है तो पूरा परिवार शिक्षित होता है। शिक्षा पूरी मानव सभ्यता को आकार देने वाली शक्ति है। वह पशुता और इंसानियत में भेद स्थापित करती है। एक महिला के शिक्षित होने पर वह स्वयं और बच्चों के स्वास्थ्य के प्रति सजग रहती है साथ ही घर की आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने में भी योगदान देती है।

हाल में जारी श्रम बल सर्वेक्षण के अनुसार, वित्त वर्ष 2019-20 में 15 वर्ष से अधिक उम्र की महिलाओं की श्रम बल में भागीदारी दर (एलएफपीआर) 5.5 प्रतिशत बड़ी यानी 24.5 प्रतिशत से 30 प्रतिशत तक पहुंच गई, जबकि इस दौरान श्रम बल में पुरुषों की भागीदारी केवल 1.3 प्रतिशत बढ़ी यानी यह 75.5 प्रतिशत से 76.8 प्रतिशत हो गई ।

अर्थशास्त्रियों का मानना है कि लड़कियाँ विभिन्न स्तरों पर शिक्षित हो रही हैं। 2010-2015 के बीच सेंकेंड्री स्तर (कक्षा 9-10) में उनका एनरोलमेंट 58 फीसदी से बढ़कर 85 फीसदी हो गया है। कई राज्य लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए स्कॉलरशिप, लैपटॉप और साइकिल आदि देकर उन्हें पढ़ाई के लिए प्रोत्साहित भी कर हैं। ऐसे में इन लड़कियों के पास शहरों में नौकरियां पाने के अवसर बढ़ रहे हैं।

इससे लगता है कि शिक्षा के चलते महिलाओं का हिस्सा वर्कफोर्स में सामान्य रूप से बढ़ रहा है। आखिर महिलाओं की शिक्षा का स्तर बढ़ने पर ऐसा होना स्वाभाविक है। लेकिन अर्थव्यवस्था की सुस्ती के बीच यह ट्रेंड भ्रम पैदा करता है और सेवा क्षेत्र में सीमित नौकरियां आने से यह तर्क और कमजोर हो जाता है क्योंकि भारत में ज्यादातर पढ़ी-लिखी महिलाएं शहरी इलाकों में सेवा क्षेत्र में ही नौकरियां पाती रही हैं।

यह भ्रम इसलिए और मजबूत हो जाता है क्योंकि सेंटर फॉर मॉनीटरिंग इंडियन इकॉनमी (CMIE) के मुताबिक साल 2019-20 में कोरोना के चलते आर्थिक संकट आने पर पुरुषों के मुकाबले महिलाओं की नौकरियां ज्यादा गईं।

महिलाओं में वृत्ति चयन की आजादी और परिवार तथा समाज का हस्तक्षेप

केवल भारत में ही नहीं बल्कि दुनिया के ज्यादातर देशों की महिलाएं भेदभाव का शिकार होती आयी हैं, सभी स्तरों पर निर्णय लेने की प्रक्रिया से बाहर रखी जाती रही हैं तथा वंचित और अधिकार विहीन रही हैं। इसका कारण पितृसत्ता का प्रचलन है, यह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें पुरुषों को

महिलाओं से श्रेष्ठ समझा जाता है, जहां संसाधनों पर, निर्णय लेने की प्रक्रिया और विचारधारा पर पुरुषों का नियंत्रण होता है। पितृसत्ता में महिलाओं पर हिंसा, व्यवस्था का अंग होती है अर्थात् महिलाओं को हिंसा या हिंसा की धमकी के माध्यम से नियंत्रित किया जाता है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, 'प्रत्येक तीन में से एक महिला हिंसा की शिकार होती है'।

राजनीतिक एवं सामाजिक निर्णय लेने में महिलाओं की भागीदारी बेहद कम है। संसद में महिलाओं की भागीदारी कभी 10 प्रतिशत से ज्यादा नहीं रही। उन्हें विधिक प्राधिकरण से बाहर रखा जाता है। उनके जीवन को प्रभावित करने वाले सामाजिक, आर्थिक, कानूनी, राजनीतिक नियमों के निरूपण में उनकी राय नहीं ली जाती और उन्हें अधीन रखा जाता है। सभी जगह तो नहीं लेकिन भारत के ज्यादातर हिस्सों में लड़कियां असुविधाओं, बोझ और भय के डर तले जीवन बिताती हैं।

महिलाओं के अधिकारों की स्थिति में हाल के दशकों के दौरान यद्यपि काफी सुधार देखा गया है फिर भी पुरुषों और महिलाओं के बीच असमानता (लिंग भेद) और परिवारो में ही महिलाओं के अन्य बुनियादी अधिकारों के उल्लंघन के गंभीर मामले अब भी सामने आते रहते हैं। दुनिया भर में महिलाओं के वजूद, अधिकारों और निर्णय लेने की उनकी क्षमता को, परिवारों की संस्कृति और मूल्यों को बचाने के नाम पर नकारा जाता है।

कामकाजी महिलाओं में कैरियर विकास पहली प्राथमिकता

वर्किंग वुमेन (Working Women) यानी काम करने वाली महिलाओं को लेकर हुई एक स्टडी में ये बात सामने आई है कि महिलाएं अपने कैरियर को लेकर ज्यादा फोकस होती हैं। दैनिक भास्कर अखबार में छपी न्यूज रिपोर्ट के मुताबिक महिलाओं के लिए काम करने वाली एक संस्था, कैरियर प्लेटफॉर्म 'जॉब्स फॉर हर' ने अपनी रिसर्च में पाया है कि कामकाजी महिलाएं अपने कैरियर को लेकर पुरुषों के मुकाबले ज्यादा फोकस होती हैं। इस रिसर्च के मुताबिक, 2019 में महिलाओं को काम पर रखने वाली कंपनियों की संख्या 18 फीसदी थी, वहीं ये आंकड़ा साल 2021 में 33 फीसदी हो गया। रिसर्च में ये बात सामने आई है कि कंपनियां हर भूमिका/रोल के लिए महिला कर्मचारियों पर भरोसा जता रही हैं।

कैरियर पहली प्राथमिकता

वॉशिंगटन में प्यू रिसर्च सेंटर (Pew Research Center) की मानें तो युवा महिलाएं पुरुषों से ज्यादा कैरियर ओरिएंटेड होती हैं। महिलाओं के लिए सफल कैरियर ही पहली प्राथमिकता है। हालांकि ऐसा भी नहीं है कि वे अपने कैरियर के आगे परिवार के बारे में नहीं सोचती हैं, आधुनिक दौर की महिलाएं अपनी इस पारंपरिक छवि को भी बनाए रखती हैं साथ ही परिवार एवं कैरियर दोनों पर ध्यान देती हैं।

महिलाओं को कंपनियां, मैनेजमेंट से लेकर सीनियर लेवल तक की जिम्मेदारियां दे रही हैं। करीब 300 कंपनियों पर किए गए सर्वे में यह तथ्य उभर कर आया है कि पढ़ी-लिखी और सक्षम होने के बावजूद भी महिलाएं विवाह पश्चात् अपने कैरियर को छोड़ देती हैं लेकिन अब वर्क फ्रॉम होम उनके लिए नया कल्चर बनकर उभरा है।

शिक्षित और कामकाजी महिलाएं कितनी सशक्त

भारत में यह विडंबना है कि महिलाओं के साथ परिवार-समाज कोई रियायत नहीं बरतता। कार्यस्थल पर उन्हें यह कहकर कोई छूट नहीं मिलती कि 'उन्हें तो पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर चलना है'। महिला सशक्तिकरण भी हो जाए और घर के कामकाज में स्त्री लगी रहे, इसके लिए अध्यापन जैसे पेशे को महिलाओं के लिए सबसे उपयुक्त माना जाता है। कोई शिक्षिका यह नहीं कर सकती कि सुबह उठकर वह स्कूल जाने की तैयारी करे पर घर की साफ-सफाई न करे, परिवार के लिए भोजन न पकाए जबकि उसी स्कूल में पढ़ाने वाले पुरुष शिक्षक घर में चाय बनाने से ज्यादा कोई योगदान शायद ही करते हों।

कामकाजी स्त्रियों की इस स्थिति का अंदाजा शीर्ष संस्थाओं को भी है इसीलिए चार साल पहले विश्व बैंक ने टिप्पणी की थी कि, "हम महिलाओं के सशक्तिकरण का चाहे जितना ढोल पीट लें पर 21वीं सदी के भारत में भी महिलाओं की स्थिति में कोई विशेष फर्क नहीं आया है। वे पढ़-लिखकर कामकाजी जरूर हुई हैं परन्तु घर से बाहर उन्हें और ज्यादा परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है। नौकरी के लिए निकलते हुए उन्हें अपने पति और सास-ससुर से इजाजत लेनी पड़ती है। पुरुषों से कम वेतन पर उन्हें ज्यादा असुविधाजनक माहौल में काम करने के साथ कई बार सार्वजनिक स्थानों पर यौन उत्पीड़न सहना पड़ता है और वे हिंसा का शिकार भी होती हैं। इसके बाद भी उन्हें घर के काम या अन्य जिम्मेदारियों से छूट नहीं मिलती"। इसके बावजूद बहुत से शोध दिखाते हैं कि महिलाओं की जिन्दगी और सोच में पहले की तुलना में काफी बदलाव आये हैं।

संबंधित साहित्य

1. सचदेवा (2000), ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि घरेलू महिलाओं का बेकार बैठे रहना सामाजिक रूप से अवांछित माना जाता है । ऐसी महिलायें जिन्हें उनके कार्य के लिए पारिश्रमिक प्राप्त होता है उनमें आत्मविश्वास बढ़ा है।
2. त्रिपाठी (2007), ने अपने अध्ययन में स्पष्ट किया कि आर्थिक और शैक्षणिक दोनो रूपों से मजबूत महिलाओं में आत्मविश्वास स्तर बढ़ा है।
3. थैमई एवं देवी (2013), ने इम्फाल एवं मणिपुर में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन किया, अध्ययन से ज्ञात हुआ कि जो महिलायें स्वयं सहायता समूह जैसे कार्यक्रमों से जुड़ी हुई हैं उनमें आत्मविश्वास स्तर अधिक है।
4. कौर नवनीत, कौर नवलीन (2015), के अध्ययन में पाया गया कि पंजाब विश्वविद्यालय में अध्ययनरत छात्राओं में सामाजिक स्वतन्त्रता अधिक है जबकि पंजाब विश्वविद्यालय से सम्बन्धित महाविद्यालय की छात्राओं में कम सामाजिक स्वतन्त्रता है।

5. स्मृतिकण मित्र घोष (2016), ने राँची की महिलाओं में सामाजिक स्वतन्त्रता का अध्ययन उनके शैक्षिक, कामकाजी,गैर कामकाजी तथा वैवाहिक स्तर के आधार पर किया, अध्ययन में पाया गया कि उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाएँ व कामकाजी महिलाएँ निम्न शैक्षिक स्तर व गैर-कामकाजी महिलाओं की तुलना में सामाजिक रूप से अधिक स्वतन्त्र है।
6. स्मिता शर्मा (2016), ने महिलाओं के क्षेत्र, शैक्षिक स्थिति, वैवाहिक स्थिति व कामकाजी व गैर कामकाजी आधार पर महिलाओं में सामाजिक स्वतन्त्रता का अध्ययन किया। अध्ययन में पाया गया कि क्षेत्र के आधार पर ग्रामीण व शहरी, विवाहित व अविवाहित महिलाओं, शिक्षित व अशिक्षित तथा कामकाजी व गैर कामकाजी महिलाओं की सामाजिक स्वतन्त्रता में अन्तर है जबकि एकल व संयुक्त परिवार की महिलाओं की सामाजिक स्वतन्त्रता में अन्तर नहीं है।

सफल कैरियर के साथ और क्या चाहती हैं 'आत्मनिर्भर' महिलाएं?

समय के साथ समाज तेजी से बदल रहा है। वैश्विकरण के प्रभाव के बाद अब दुनिया डिजिटल दौर में प्रवेश कर चुकी है जिसमें लोगों का मोबाइल और इंटरनेट के जरिए एक दूसरे के साथ संपर्क बढ़ा है। शिक्षा, नौकरी और दुनिया से जुड़ी महिलाओं का दायरा और सोच बदल रही है, जिससे उनकी महत्वकांक्षायें भी बढ़ी है। ऐसे में यह जानना दिलचस्प है कि कैरियर में कामयाबी के साथ महिलाएं और क्या चाहती हैं? इस सवाल का जवाब जानने के लिए ईटी और शीरोज के एक विशेष सर्वे में 900 शहरी महिलाओं से कुछ सवाल किए गए।

सर्वे में शामिल 50 फीसदी से अधिक महिलाओं ने बताया कि वे अपने हुनर की पहचान करते हुए अपने लिए शानदार कैरियर की चाहत रखती हैं। इस सर्वे में शामिल 26 फीसदी महिलाओं ने स्वीकार किया कि वे दुनिया पर अपनी अमिट छाप छोड़ना चाहती हैं जबकि महज 13 फीसदी महिलाओं के लिए प्यार और रिश्ते मुख्य प्राथमिकता में हैं। इस सर्वे ने महिलाओं के जीवन में प्यार के महत्व के मिथक को तोड़ दिया। 20 लाख महिला सदस्यों वाली शीरोज ने 20 से 35 वर्ष की शहरी महिलाओं से उनके घर से कैरियर तक के सफर के बारे में बातचीत की। इस सर्वे में शामिल 44 फीसदी महिलाओं ने माना कि शादी जीवन का बेहद अहम हिस्सा है। 38 फीसदी ने माना कि शादी जरूरी है मगर बहुत ज्यादा नहीं। 18 फीसदी महिलाओं ने कहा कि उनके जीवन में शादी की कोई खास जगह नहीं है।

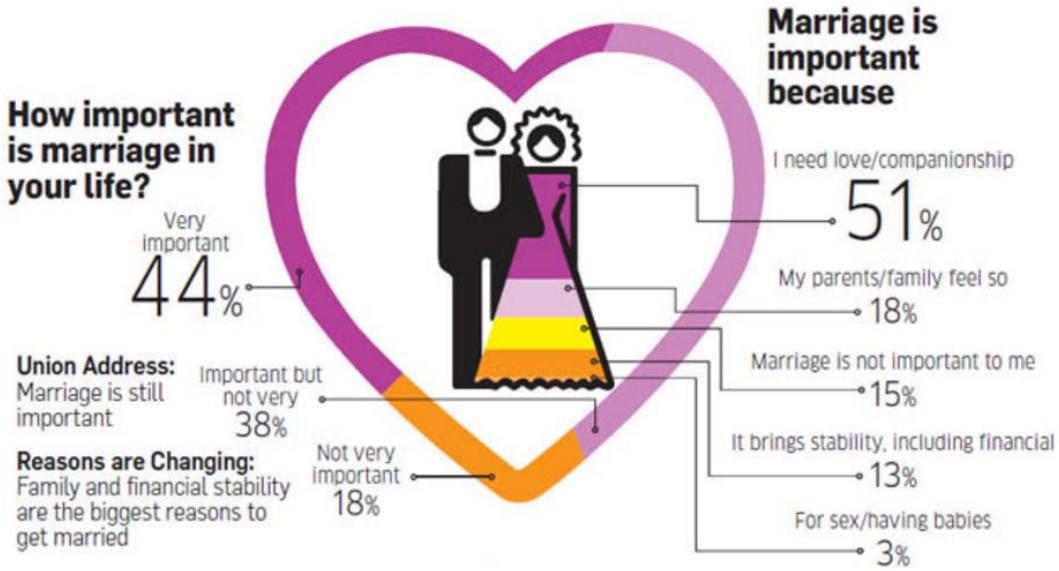

स्त्रोत: ईटी और शीरोज सर्वे

50 फीसदी महिलाओं ने माना कि जीवन में प्यार और अच्छे साथ के लिए शादी करनी चाहिए। 38 फीसदी महिलाओं ने इस सवाल को सिरे से खारिज किया। उन्होंने अपने महिला होने पर गर्व प्रकट किया।

कामकाजी महिला से परिवार और समाज की अपेक्षायें एवं उनके प्रभाव

कामकाजी महिलाएं दोहरी चुनौती का सामना करती हैं। उन्हें अपने घर में परिवार, रिश्ते-नातों को भी संभालना होता है और साथ में ऑफिस की जिम्मेदारी भी निभानी पड़ती है। इन दोनों के बीच संतुलन बनाना तनाव और चुनौतीपूर्ण काम है क्योंकि किसी भी पक्ष पर पूरा ध्यान न देने से जीवन की नैया डगमगाने लगती है।

आजादी के बाद नारी शिक्षा की स्थिति में सुधार के कारण उच्च-मध्यवर्गीय के साथसाथ आम शहरी मध्यवर्गीय परिवारों की महिलाएं भी शिक्षित हुई और उन्होंने अपने पैरों पर खड़े होने का प्रयास किया। इसमें बहुत सी महिलाओं को सफलता भी मिली लेकिन पितृवादी सोच हमेशा उनके आड़े आकर परेशानियां बढाती रही। ऑफिस में अभी भी पुरुषों की तुलना में महिलाओं की संख्या कम है जिससे वे वहां के माहौल में पूरी तरह से सहज नहीं हो पाती हैं।

पारंपरिक रूप से घर का काम महिलाओं की जिम्मेदारी माना जाता रहा है ए पहले परिस्थितियां अलग थी क्योंकि तब महिलाएं घर में ही काम करती थीं लेकिन अब जबकि वे बाहर निकलकर काम करने लगी हैं तब भी उनसे घर के सारे काम करने की उम्मीद की जाती है। एक कामकाजी महिला को कामकाजी पुरुषों से दुगना काम करना पड़ता है। अब भी उन्हें अपने रोजगार के साथ घर परिवार को पूर्ववत् ही संभालना पड़ता है। अब चूँकि धीरे-धीरे संयुक्त परिवार टूट रहे हैं इसलिये उनका हाथ बँटाने वाला कोई नहीं है जिससे उनकी समस्याएँ और भी बढ़ जाती हैं।

निष्कर्ष

वृत्ति या आजीविका का चुनाव जीवन का एक अनिवार्य अंग है। आज के प्रतियोगी जीवन में अपनी योग्यता के अनुसार रोजगार का चुनाव बड़ा महत्व रखता है। आप जिस वृत्ति को चुनते हैं वही आपके भविष्य की बुनियाद होती है। पहले लोग अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद अपनी आजीविका/वृत्ति का फैसला लेते थे परन्तु वर्तमान पीढ़ी को अपनी विद्यालयी शिक्षा पूरी करने से पहले ही अपने भविष्य निर्माण की दिशा में कदम बढ़ाना पड़ता है। वृत्ति का चयन किसी व्यक्ति की जीवन शैली को अन्य किसी घटना की तुलना में सबसे अधिक प्रभावित करता है। इस प्रतियोगिता के दौर में प्रारम्भ से ही आजीविका सम्बन्धी सही चुनाव अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसीलिए एक ऐसी प्रक्रिया की आवश्यकता है जो किसी व्यक्ति को विभिन्न जीवन वृत्तियों से अवगत कराए।

लड़कियों और महिलाओं की शिक्षा गरीबी एवं बेरोजगारी पर काबू पाने में एक महत्वपूर्ण कदम है। कुछ परिवारों के कमाऊ पुरुष दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटनाओं के फलस्वरूप असक्षम हो जाते हैं, उस स्थिति में परिवार का पूरा बोझ परिवार की महिलाओं पर आ जाता है। महिलाओं की ऐसी जरूरतों को पूरा करने के लिए उन्हें शिक्षित एवं आत्मनिर्भर किया जाना चाहिए। वे विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश कर सकती हैं। महिलाएँ शिक्षक, डॉक्टर, वकील और प्रशासक के रूप में कार्य कर रही हैं। शिक्षित महिलाएँ अच्छी माँ बन सकती हैं, महिलाओं की शिक्षा और आत्मनिर्भरता से दहेज, बेरोजगारी की समस्या और कई पारिवारिक-सामाजिक मामलों को सरलता से सुलझाया जा सकता है।

अत: परिवार और समाज को महिलाओं की शिक्षा एवं रोजगार में सहायक की भूमिका निभानी होगी।

सन्दर्भ

1. अग्रवाल, जे सी, (2009), भारत में नारी शिक्षा, प्रभात प्रकाशन, आई.एस.बी.एन. 978-81-85828-77-0.
2. गोस्वामी, प्रेमचन्द्र, (2006), "नारी शक्ति से समाज परिवर्तन", महेश बुक डिपो, जयपुर.
3. दुबे, श्याम सुन्दर, (2007), "समसामयिक निबंध" "उभरती हुई नारी शक्ति और हमारा समाज", विद्या विहार, नई दिल्ली.
4. नागदा, भंवरलाल, (2007), "शिक्षा के नूतन आयाम", अंकुर प्रकाशन, उदयपुर (राज.).
5. राय, पारसनाथ एवं राय, सी. पी., (2014-15), "अनुसन्धान परिचय", लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा
6. शर्मा, संगीता एवं शर्मा, राजेश कुमार, (2005), "महिला विकास एवं राजकीय योजनाएँ", रितु पब्लिकेशन्स, जयपुर.
7. सिंह, जे. पी. (2016), आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, PHI Learning Pvt. Ltd. आई.एस.बी.एन. 978-81-203-5232-2.
8. सुमन, कृष्ण कांत (2001), इक्कीसवीं सदी की ओर, राजकमल प्रकाशन. आई.एस.बी.एन. 978-81-267-0244-2.
9. Afridi, F., Dinkelman, T. and Mahajan ,K.(2016), Why Are Fewer Married Women Joining the Work Force in India? A Decomposition Analysis over Two Decades. Technical report, Institute for the Study of Labor (IZA).
10. Elke, H. and Kirsch, A. (2011), "Women still the exception on executive boards of Germany's large firms-gradually increasing representation on supervisory boards",DIW Economic Bulletin.
11. Hutter,E.W.(1859), Female Education: Its Importance, the Helps and the Hindrances : Address Delivered Before the faculty and Students of the Susquehanna Female College, at Selinsgrove, Pa., on Tuesday Evening, November 8th, 1859.
12. Korishetty, Vijaya B ,(2003), Female Education: A Study of Rural India. Cosmo Publications. आई.एस.बी.एन. 978-81-7755-207-2.
13. Prillaman, Soledad Artiz , Pande, R., Singh, V. and Moore , C.T. (2017), What constrains young Indian women's labor force participation? evidence from a survey of vocational trainees. Technical report, JPAL and Evidence for Policy Design.
14. Annual Report | Ministry of Labour & Employment
https://labour.gov.in › annual-reports , 15.08.20
15. https://economictimes.indiatimes.com/hindi/wealth/personal-finance/what-indian-urban-women-want-here-are-the-answers/articleshow/63169366.cms?from=mdr,10.08.20

ग्रामीण क्षेत्र की महिला की सामाजिक, आर्थिक स्थिति (समाज शास्त्रीय अध्ययन) "जनपद कानपुर देहात के विशेष सन्दर्भ में"

दीपक कुमार गौतम

शोध छात्र, पी. के. विश्वविद्यालय, म० प्र०

डॉ० महा लक्ष्मी जोहरी

(निर्देशिका) प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, पी० के० विश्वविद्यालय, म० प्र०

प्रस्तावना:- किसी भी देश की महिलायें समाज की अत्यन्त महत्वपूर्ण घटक होती है। इस तथ्य को भारत की सामाजिक तथा सांस्कृतिक परम्परा में विशेष महत्व दिया गया है। सामाजिक स्तर पर महिलायें पत्नी, मॉ एवं ग्रहिणी के रूप में पहचानी जाती हैं। यदि हम ग्रामीण समाज में महिलाओ की स्थिति जानना चाहते हैं तो हमे मूल रूप से उन भूमिकाओ की जटिलताओं को जानना होगा जो महिलायें समाज में सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक तथा राजनैतिक क्षेत्रो में निभाती हैं ऐसे कारको का पता लगाकर कि वे किस तरह जीवन पर्यन्त उन सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का सामना करती हैं जो उनके लिंग जन्म भूमिकाओं से सम्बन्धित है तथा वह किस प्रकार इन परिस्थितियों से स्वयं को समायोजित करती हैं।

ग्रामीण समाज में महिलाओ की स्थिति आज भी विचारणीय एवं दयनीय बनी हुई है इसका प्रमुख कारण ग्रामीण समाज का आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक चेतना में पिछड़ा होना है। वर्तमान में ग्रामीण महिलाओ के लिये गम्भीर खतरा गरीबी का है मानवता का एक बड़ा हिस्सा गरीबी में जीवन यापन कर रहा है।

ग्रामीण महिलाओं की मुख्य समस्या पोषण की कमी, खराब स्वास्थ्य, निर्धनता, स्त्री पुरूष में भेदभाव, निरक्षरता, स्वास्थ्य सेवाओ का अभाव है। महिलाओ की निर्भरता पुरूषों पर निर्भर करती है जिसके कारण परिवार में उनकी स्थिति दयनीय होती है। भारतीय समाज में ग्रामीण महिलाओ तथा अन्य महिलाओं की स्थिति के सम्बन्ध में विभिन्न अध्ययन किये गये है।

श्रीमती हाटे (1948)- ने अपने शोध में पाया कि सामाजिक दृष्टि से भारतीय नारी की स्थिति दयनीय है उसका मुख्य कारण विवाह है उसकी स्थिति में सुधार तभी सम्भव है जब उसे शिक्षा के समान अवसर प्राप्त हो।

अल्टेकर (1956) - ने भारतीय महिलाओं का प्रागैतिहासिक काल से वर्तमान समय तक अध्ययन किया है उन्होने अपने अध्ययन में महिलाओं के बचपन, शिक्षा, विधवाओ की स्थिति, विवाह से सम्बन्धित तथा धार्मिक स्थिति एवं सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारो तथा समाज में उनकी स्थिति आदि पर प्रकाश डाला है।

इति तिवारी (2008)- ने अपने अध्ययन में महिलाओं की प्राचीन एवं वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डाला है इसमे सामाजिक गतिविधियों का उनके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है उनके अनुसार महिलाओ की शिक्षा पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है उन्होने पाया वर्तमान से सभी वर्ग की महिलायें आत्मनिर्भरता के लिये घर से बाहर आकर काम करने का प्रयास कर रही हैं।

डा0 निशान्त सिंह (2008)- भारतीय महिलायें एक सामाजिक अध्ययन में महिलाओं की स्थिति को स्पष्ट करने के लिये अपने अध्ययन के माध्यम से कुछ तथ्यों को स्पष्ट किया है उन्होने महिलाओ की स्थिति को विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय मापको व सूचको के आधार पर मापने का प्रयास किया है।

शोध के उद्देश्य

1. ग्रामीण महिलाओं का सामाजिक, आर्थिक अध्ययन
2. गरीबी तथा उससे सम्बन्धित कारको का अध्ययन
3. ग्रामीण महिलाओं की कृषि एवं रोजगार सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करना
4. ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं में शासकीय कार्यक्रमो के प्रभाव का अध्ययन करना
5. ग्रामीण महिलाओं के विकास में आने वाली समस्याओं की जानकारी लेना तथा समाधान के उपायों की अनुशंसा करना

शोध विधि:- प्राथमिक शोधो के संग्रहण हेतु निदर्शन, साक्षात्कार अनुसूची तथा अवलोकन विधि का प्रयोग किया गया है।

द्वितीयक स्त्रोत में सम्बन्धित साहित्य एवं शोध तथा समाचार पत्रों में लेख आदि का प्रयोग किया जाता है।

शोध क्षेत्र:- प्रस्तुत शोध अध्ययन जनपद कानपुर देहात के तहसील अकबरपुर के ग्राम चिराना में किया गया है।

यह ग्राम कानपुर देहात के मुख्यालय से 15 किलो मीटर की दूरी पर स्थित है ग्राम की जनसख्या 2700 के लगभग है इसमे सवर्ण कुल 15 प्रतिशत तथा 50 प्रतिशत के लगभग अनुंसूचित जातियां है बाकी जनसंख्या पिछड़ा वर्ग तथा अन्य उपजातियो की है।

अनुसंधान प्रारूप:- इस अध्ययन में शोधार्थी ने अन्वेषणात्मक विधि का प्रयोग किया है शोध के उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कुछ तथ्यों का संकलन किया जायेगा जबकि कुछ तथ्य पूर्व में ही उपलब्ध होगे।

निदर्शन विधि:- समग्र जनसंख्या से रैन्डम सैमलिंग विधि द्वारा 300 उत्तरदाताओं का चयन किया जायेगा जो सम्पूर्ण जनसंख्या का लगभग 10 प्रतिशत के लगभग होगा। प्रत्येक इकाई को समान रूप से चुनाव का अवसर प्राप्त होगा।

तथ्य संकलन पद्धति:- एक अनुसूची के माध्यम से चयनित उत्तरदाताओं से पूर्व सूचना देकर साक्षात्कार के द्वारा सूचनाये एकत्र की गयी है। इसके अतिरिक्त अवलोकल पद्धति का भी प्रयोग किया गया है विश्लेषण के उपरान्त तथ्यों का सामान्यीकरण किया जायेगा।

उत्तरदाताओ की सामाजिक,आर्थिक विशेषतायें

तालिका सं0- 1: उत्तरदाताओ के परिवार का स्वरूप

क्र0	*परिवार का स्वरूप*	*आवृत्ति*	*प्रतिशत*
1	संयुक्त	116	38.6
2	एकांकी	184	61.4
3	कुल	300	100

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि ग्राम में सर्वाधिक 61.4 एकांकी परिवार पाये गये, उनका मत था कि एकांकी परिवारो में पारिवारिक कलह कम होती है तथा परिवार में निर्णय लेने की स्वतन्त्रता होती है। जबकि 38.6 प्रतिशत उत्तरदाता संयुक्त परिवार को अधिक अच्छा मानते थे कि इसमें खर्चे कम होते है तथा बच्चो की देखभाल अच्छी तरह से होती है तथा वर्तमान काल में परिवार का स्वरूप परिवर्तित हो रहा है। परिवार गांवो में भी संयुक्त से एकांकी हो रहा है।

(1) श्रोत:- जनसंख्या रजिस्टर विकासखण्ड अकबरपुर कानपुर देहात

(2) Exploraty study

तालिका संख्या -2: उत्तरदाताओ की शैक्षणिक स्थिति

क्र0	*शैक्षणिक स्थिति*	*संख्या*	*प्रतिशत*
1	प्राथमिक शिक्षा	140	46.67
2	माध्यमिक	120	40.00
3	उच्च शिक्षा	10	3.33
4	अशिक्षित	30	10.00
	कुल योग	300	100 प्रतिशत

उपरोक्त तालिका से विदित होता है कि सर्वाधिक 46.67 प्रतिशत उत्तरदाता प्राथमिक शिक्षा प्राप्त हैं क्योकि गांव में ही प्राथमिक पाठशाला स्थित है तथा 40 प्रतिशत माध्यमिक शिक्षा प्राप्त हैं क्योकि यह ग्राम कानपुर देहात के मुख्यालय से 15 किलो मीटर की दूरी पर है लेकिन 10 प्रतिशत उत्तरदाता अभी भी अशिक्षित हैं। उत्तरदाताओं की शैक्षणिक स्थिति संतोषजनक है क्योकि शिक्षा की सुविधाये उपलब्ध हैं।

तालिका सं0- 3: उत्तरदाताओं के पास कृषि योग्य भूमि की स्थिति

क्र0	*विवरण*	*संख्या*	*प्रतिशत*
1	हाँ	210	70
2	नही	90	30
	कुल योग	300	100 प्रतिशत

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि लगभग 70 प्रतिशत उत्तरदाताओ के पास कृषि योग्य भूमि तो है लेकिन वह सीमान्त किसान हैं अधिक जोतवाले किसान नही हैं उतनी भूमि में उनका भरण पोषण ठीक से नही हो पाता है इसके अतिरिक्त 30 प्रतिशत उत्तरदाताओ के पास कृषि योग्य भूमि भी नही है जिसके कारण वह गरीबी में जीवन यापन कर रहे हैं।

तालिका की संख्या-4: उत्तरदाताओ की प्रमुख आर्थिक समस्याये

क्र0	*विकल्प*	*संख्या*	*प्रतिशत*
1	उचित मजदूरी का अभाव	50	16.67
2	ऋण की समस्या	70	24.67
3	आवास की समस्या	32	10.66
4	महिलाओ कः लिये विशेष सुविधाओ का अभाव	32	10.66
5	सरकारी सहायता का अभाव	48	16.00
6	पारिवारिक कारण	58	19.33
	कुल	300	100 प्रतिशत

तालिका संख्या 4 से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक उत्तरदाता 24.67 प्रतिशत ऋण की समस्या से ग्रस्त हैं तथा 14.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं की प्रमुख आर्थिक समस्या उनके अपने पारिवारिक कारण हैं जैसे बीमारी या कोर्ट में लम्बित मामले है, 10.66 प्रतिशत मानते है कि आवास की समस्या है तथा 10.66 प्रतिशत उत्तरदाता अनुभव करते हैं कि उनके लिये सरकार के पास विशेष सुविधाओं का अभाव है तथा 16 प्रतिशत का मत है कि सरकार कोई सहायता नही प्रदान करती है।

तालिका संख्या- 5: ग्राम में रोजगार के अवसर

क्र0	*विवरण*	*संख्या*	*प्रतिशत*
1	कृषि कार्य	180	60.00
2	सरकारी योजनाओ में कार्य	10	3.3
3	नौकरियो में,प्राइवेट या सरकारी संस्थानो में	80	26.7
4	स्वयं का व्यापार	25	8.03
5	कोई व्यवस्था नही	05	1.7
	कुल	300	100 प्रतिशत

उपरोक्त आकड़ो से स्पष्ट है सर्वाधिक 60 प्रतिशत रोजगार के अवसर कृषि क्षेत्र में ही हैं, केवल 26.7 प्रतिशत उत्तरदाता सरकारी या प्राइवेट सस्थानों में कार्यरत है कःवल 8.7 प्रतिशत स्वयं का व्यापार कर रहे है। कृषि क्षेत्र अब भी रोजगार का श्रोत है जिस पर भार अधिक है तथा आय सीमित है।

तालिका सख्या-6: महिलाओ में शासकीय कायक्रमों का प्रभाव

क्र0	*शासकीय कार्यक्रम/योजनायें*	*लाभ प्राप्त हुआ*	
		हाँ	*नही*
1	सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में समानता	79(26.3 प्रतिशत)	221(73. 7 प्रतिशत)
2	स्वास्थ्य सेवाओ तक पहुंच	53(17.75 प्रतिशत)	247(82.3 प्रतिशत)
3	विकास प्रक्रिया में समान भागीदारी	88 (29.37 प्रतिशत)	212(70.7 प्रतिशत)
4	भेदभाव व उनकः प्रति हिंसा में कमी	39(13.0 प्रतिशत)	261(87.0 प्रतिशत)
5	शिक्षा तक पहुंच	119(39.6 प्रतिशत)	181(60.3 प्रतिशत)
6	अन्य	-	-

उपरोक्त तालिका में ग्रामीण महिला उत्तरदाताओं से मुख्य शासकीय एवं सामाजिक कार्यक्रम जो उनके उत्थान हेतु संचालित किये जा रहे उनसे उनको कितना लाभ प्राप्त हुआ। सर्वाधिक उत्तरदाताओं को इनका लाभ प्राप्त नही हुआ।

तालिका सं0- 7: ग्रामीण महिलाओं के विकास में आने वाली बाधायें

क्र0	*बाधायें*	*हाँ*	*नही*
1	राजनैतिक भागीदारी की कमी	278(92.7 प्रतिशत)	22(7.3 प्रतिशत)
2	संसाधनो तक पहुंच नही	188(62.7 प्रतिशत)	112(37.3 प्रतिशत)
3	शिक्षा का अभाव	202 (67.4 प्रतिशत)	98(32.6 प्रतिशत)
4	चिकित्सा सेवाओ का अभाव	179(59.7 प्रतिशत)	121(40.3 प्रतिशत)
5	काफी महिलाये कुपोषण की शिकार	234(78.0 प्रतिशत)	66(22.0 प्रतिशत)
6	संगठित न होने कः कारण सामाजिक सहायता का अभाव	248(82.7 प्रतिशत)	52(17.3 प्रतिशत)

तालिका संख्या 7 में उन कठिनाइयों, बाधाओं के सम्बन्ध में ग्रामीण महिलाओ से राय ली गयी कि इन सभी कारण उनके विकास में बाधक है सर्वाधिक उत्तरदाता इस बात से सहमत थे, उपरोक्त सभी कारण उनके विकास में बाधक है। इन सभी अभाव दूर होने पर ही महिलाओं का समग्र विकास सम्भव है।

निष्कर्ष का सुझाव

ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति

एक समाज शास्त्रीय अध्ययन जनपद कानपुर देहात के तहसील अकबरपुर के ग्राम चिराना में किया गया।

अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्न थे।

1. ग्रामीण महिलाओं का सामाजिक, आर्थिक अध्ययन
2. ग्रामीण महिलाओं का शैक्षिक स्तर
3. ग्रामीण महिलाओं की कृषि व रोजगार के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना
4. शासकीय कार्यक्रमों का उन पर क्या प्रभाव हुआ ज्ञात करना।
5. महिलाओं के विकास के लिये आने वाली समस्याओं के सम्बन्ध में जानकारी लेना।

अध्ययन ग्राम चिराना में किया गया जो कानपुर देहात की तहसील अकबरपुर तथा कानपुर देहात के मुख्यालय से 15 किलो मीटर की दूरी पर स्थित है ग्राम की जनसंख्या 2700 थी, जिसमें रैंडम सैम्पलिंग विधि द्वारा 300 महिला उत्तरदाताओं का चयन किया किया।

प्रमुख निष्कर्ष निम्न है:-

1. ग्राम में सर्वाधिक परिवार एकांकी पाये गये, वर्तमान काल में गांव में परिवार एकांकी हो रहे हैं तथा परिवारो के स्वरूप में परिर्वतन आ रहा है उत्तरदाताओं के अनुसार पारिवारिक कलह से मुक्ति मिल रही है तथा स्वयं निर्णय लेने के अवसर प्राप्त हुये हैं दूसरा कारण कृषि पर अधिक भार होना भी है।
2. उत्तरदाताओं में शिक्षा का स्तर संतोषजनक पाया गया क्योकि गांव में ही प्राइमरी तक की शिक्षा उपलब्ध है तथा उच्च शिक्षा के लिये कानपुर देहात के मुख्यालय जो केवल 15 किलो मीटर की दूरी पर हैं सुविधाये उपलब्ध है।
3. ग्राम में सर्वाधिक उत्तरदाता सीमान्त किसान हैं जिनके पास कृषि योग्य भूमि तो है लेकिन गरीबी के कारण कृषि पर खर्च करने के लिये पैसे नही हैं, फलस्वरूप फसल से अच्छी पैदावार नही होती है इस कारण वे परिवार का खर्च नही उठा पाते हैं क्योकि आय का अन्य साधन नही है।
4. उत्तरदाताओ की प्रमुख आर्थिक समस्याओं में ऋण ग्रस्तता प्रमुख है सर्वाधिक उत्तरदाता ऋणग्रस्त पाये गये, अन्य कारण गांव में रोजगार का अभाव आवासो की कमी, महिलाओं को विशेष सुविधा न मिलना, सरकारी सहायता का न मिलना तथा पारिवारिक कारण भी थे जैसे बीमारी, अदालतों पर खर्च आदि इसके अतिरिक्त 30 प्रतिशत किसान महिलाये भूमिहीन पायी गयीं।
5. गांव में प्रमुख रोजगार कृषि पर आधारित था, सर्वाधिक उत्तरदाता कृषि कार्य में संलग्न थे। गावं में सर्वाधिक जनसंख्या अनुसूचित जाति के लोगो की है जो अधिकतर भूमिहीन श्रमिक है परन्तु 26.7 प्रतिशत गांव की महिलाये तथा पुरूष सरकारी या प्राइवेट नौकरी में थे परन्तु महिलाओ की संख्या कम थी।
6. गांव में संचालित की जा रही विकास कार्यक्रम योजनाओ का लाभ उत्तरदाताओं को नही मिल पाया है इन कार्यक्रमों में न तो उनकी सहभागिता है, न जानकारी ग्राम पंचायत में उनकी भूमिका सीमित है।
7. ग्रामीण महिलाओं से राय ली गयी कि वे कौन से कारक हैं जो उनके विकास में बाधक है उन्होने कहाकि उनकी राजनीति में कोई भागीदारी नही है। संसाधनो तक उनकी पहुंच नही है। महिलाओं की काफी जनसंख्या अशिक्षित है इस कारण वे अपने उत्थान के लिये उदासीन हैं गरीबी के कारण काफी महिलाये कुपोषित हैं तथा बीमारियों से ग्रस्त हैं। अब भी उचित चिकित्सा सेवाओ का अभाव है इसके अतिरिक्त गांव की महिलाये आपस में संगठित नही है इस कारण सामाजिक सहायता नही मिल पाती है।

गांवो में महिलाओ की स्थिति आज भी विचारणीय तथा दयनीय है सबसे बड़ा खतरा गरीबी का है इसके अतिरिक्त अन्य सामाजिक, आर्थिक कारण भी उनकी इस स्थिति के लिये उत्तरदायी है जैसे:-

1. कम उम्र में विवाह
2. दहेज प्रथा
3. शिक्षा का अभाव
4. उत्तराधिकार से सम्बन्धित कारण
5. गांव में असुरक्षा की भावना आदि।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. तिवारी इति (2008) नारी एवं समाज यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन अंसारी रोड न्यू दिल्ली।
2. सिंह निशान्त (2008) भारतीय महिलायें एक सामाजिक अध्ययन, ओमेगा पब्लिकेशन दिल्ली।
3. सहाय सुषमा (1998) वूमेन एण्ड इम्पावरमेन्ट एप्रोजेएण्ड स्टेट्रटीज डिस्कवरी पब्लिसिंग हाउस नई दिल्ली।
4. श्रीवास्तव रागिनी (2011) आधुनिक समाज एवं महिलाये मून प्लाजा नेहरू स्ट्रीट सेन्टर इन्दौर
5. नाराणी (2010) भारतीय समाज और नारी पार्क पब्लिशर्स वैशाली नगर जयपुर
6. भारत सरकार (1988) ''महिला विकास और लैगिंक न्याय'' मैनुअल युवा मामलो का विभाग मानव संसाधन मंत्रालय नई दिल्ली।
7. अल्टेकर ए. एस. पोजीशन आफ वूमेन इन हिन्दू सिविल इन्जेशन मोतीलाल बनारसीदास न्यू दिल्ली
8. तिवारी राधिका चन्दन (1999) कृषि विकास और महिलाये समस्या एवं सुझाव, ए.पी.एल पब्लिशेन नई दिल्ली
9. भण्डारी रमेश (2009) रोल एण्ड स्टेटस आफ वूमेन इन पंचायती राज सिस्टम अल्फा पब्लिकेशन न्यू दिल्ली
10. अवस्थी इन्दिरा (1982) रूरल वूमेन आफ इण्डिया बी. आर. पब्लिशिंग कारपोरेशन न्यू दिल्ली

छत्तीसगढ़ के जशपुर जिले एवं बिलासपुर जिले के प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों एवं अभिभावकों में बाल अधिकारों के बारे में जागरूकता का अध्ययन

विजय कुमार साहू

रिसर्च स्कॉलर, शिक्षा विभाग, श्री रावतपुरा सरकार विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़-492015

डॉ० संजीत कुमार साहू

शोध-निर्देशक, विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग, श्री रावतपुरा सरकार विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़-492015

1. समस्या कथन

छत्तीसगढ़ के जशपुर जिले एवं बिलासपुर जिले के प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों एवं अभिभावकों में बाल अधिकारों के बारे में जागरूकता का अध्ययन।

2. प्रस्तावना

किसी भी देश का भविष्य उस राष्ट्र के बालक होते हैं। किसी भी राष्ट्र की आर्थिक और भौतिक समृद्धि तब तक चिरस्थाई नहीं रह सकती जब तक नई पीढ़ी का सर्वांगीण विकास न हो। अत: देश के भविष्य को सुरक्षित करने के लिये वर्तमान संतति का सम्यक पालन पोषण एवं विकास किया जाना आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य है।

हमारे देश के संविधान में उल्लिखित नीति निर्देशक तत्वों में भी बचपन को कुंठाओं और उत्पीड़न से बचाने के लिये आवश्यक दिशा निर्देश प्रदान किये गये हैं। भारतीय संविधान की धारा 39 (च) में स्पष्ट उल्लेख है कि शैशव और किशोरावस्था का संरक्षण हो। संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकारों में से एक शोषण के विरूद्ध अधिकार के अन्तर्गत अनुच्छेद 24 में व्यवस्था की गई है कि 14 वर्ष तक के आयु वाले बच्चे को जोखिम पूर्ण काम में न लगाया जाय। इस परिप्रेक्ष्य में यह धारणा है कि इस अवस्था तक बच्चों को उपयोगी, उत्तरदायी एवं योग्य नागरिक बनने की शिक्षा दी जाए। अल्पायु में बच्चों के खेलकूद व शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने के स्थान पर जोखिम पूर्ण कार्यों में उनका नियोजन, शोषणपूर्ण अमानवीय कार्य है।

संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 20 नवम्बर 1989 को बच्चों के अधिकारों की घोषणा की गई थी। इस घोषणा पत्र में 54 अनुच्छेद हैं।

अनुच्छेद 27 के अनुसार, इस समझौते में शामिल देश मानते हैं कि हर बच्चे को उसके भौतिक, मानसिक, आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक विकास के लिए समुचित जीवन स्तर प्राप्त करने का अधिकार है।

अनुच्छेद 28 के अनुसार समझौते में शामिल देश के बच्चों के शिक्षा के अधिकार को मान्यता देते हैं और समान अवसर के आधार पर इस अधिकार को उपलब्ध कराने में निरंतर प्रगति के लिये अग्रांकित उपाय करेंगे:-

- प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाकर सभी बच्चों को नि:शुल्क शिक्षा उपलब्ध कराना।
- सभी बच्चों को शैक्षिक तथा व्यावसायिक सूचना और दिशा निर्देश उपलब्ध कराना।
- स्कूलों में बच्चों की नियमित उपस्थिति सुनिश्चित करने तथा पढ़ाई के बीच में ही बच्चों के स्कूल छूट जाने की दर को कम करना।
- यह सुनिश्चित करने के उपाय करना कि स्कूल में अनुशासन लागू करने के तरीके बच्चे की मानवीय गरिमा के अनुरूप हों।

यह बच्चों का अधिकार है कि राष्ट्र उनके प्रति अपनी जिम्मेदारी निभाए। हमें यह भी समझना होगा कि बच्चे वयस्कों का विकसित संस्करण नहीं हैं वे ''विशेष'' व्यक्ति हैं जिनकी स्वतंत्र सत्ता है, अपनी आवश्यकताएं हैं। यह दूसरी बात है कि वे जीवन के प्रारंभिक वर्षों में पूरी तरह और किशोरावस्था में बहुत हद तक वयस्कों पर निर्भर हैं और अपना पक्ष और अपनी माँगें सबके सामने रखने तथा अपने अधिकारों पर स्वयं न्यायालयों और अभिकरणों अथवा किसी अन्य उपयुक्त मंच के माध्यम से प्राप्त कर सकने में असमर्थ हैं। इसलिए जब हम बच्चों के अधिकारों की बात सोचते हैं तो इसका अर्थ माता पिता,

अध्यापक, समाज और सरकार के दायित्वों से होता है। अत: आवश्यक है कि बाल अधिकारों के प्राप्ति के लिए यह जाना जाए कि जिनके कंधों पर बाल अधिकारों की लड़ाई लड़ने का दायित्व है, वे बाल अधिकारों के प्रति कितने जागरूक हैं ?

3. वर्तमान अध्ययन/शोध के उद्देश्य

- बाल अधिकारों के प्रति प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की जागरूकता का अध्ययन करना।
- बाल अधिकारों के प्रति प्राथमिक विद्यालयों के अभिभावकों की जागरूकता का अध्ययन करना।
- बाल अधिकारों के प्रति माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की जागरूकता का अध्ययन करना।
- बाल अधिकारों के प्रति माध्यमिक विद्यालयों के अभिभावको की जागरूकता का अध्ययन करना।
- बाल अधिकारों के प्रति प्राथमिक विद्यालयों के पुरूष एवं महिला शिक्षकों की जागरूकता का अध्ययन करना।
- बाल अधिकारों के प्रति माध्यमिक विद्यालयों के पुरूष एवं महिला शिक्षकों की जागरूकता का अध्ययन करना।
- बाल अधिकारों के प्रति सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों की जागरूकता का अध्ययन करना।
- बाल अधिकारों के प्रति ग्रामीण एवं शहरी अभिभावकों की जागरूकता का अध्ययन करना।
- बाल अधिकारों के प्रति ग्रामीण एवं शहरी शिक्षकों की जागरूकता का अध्ययन करना।
- बाल अधिकारों के प्रति प्राथमिक विद्यालयों के अभिभावकों एवं शिक्षकों की जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- बाल अधिकारों के प्रति माध्यमिक विद्यालयों के अभिभावकों एवं शिक्षकों की जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- बाल अधिकारों के प्रति जशपुर जिले एवं बिलासपुर जिले के प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- बाल अधिकारों के प्रति जशपुर जिले एवं बिलासपुर जिले के माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- बाल अधिकारों के प्रति जशपुर जिले एवं बिलासपुर जिले के प्राथमिक विद्यालयों के अभिभावकों की जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- बाल अधिकारों के प्रति जशपुर जिले एवं बिलासपुर जिले के माध्यमिक विद्यालयों के अभिभावकों की जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- बाल अधिकारों के प्रति जशपुर जिले एवं बिलासपुर जिले के शिक्षकों की जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- बाल अधिकारों के प्रति जशपुर जिले एवं बिलासपुर जिले के अभिभावकों की जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

4. इस क्षेत्र में पहले से किये गये अध्ययन/शोध

प्रस्तुत अध्ययन से पूर्व अन्य शोधकर्ताओं का ध्यान बालकों की समस्याओ एवं बाल अधिकारो की ओर केन्द्रित हुआ और उन्होंने निम्न अध्ययन किये-

- किशोर जी. एवं सैनी ए. (2010).माताओं की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति का मूल्यांकन कर स्पष्ट किया कि महिलाओं की प्रारूपित बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति साकारात्मक है।
- भारद्वाज, ऋतु. (2011). ने संविधान की विभिन्न धाराओं 3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,16,17 व अनिवार्य एवं नि: शुल्क शिक्षा का अधिकार अधि कार अधिनियम के विषय में प्रतिक्रिया एवं बाधा ज्ञात करने का प्रयास स्वनिर्मित प्रश्नावली के माध्यम से किया गया। इस अध्ययन में पाया गया कि इन दोनों समूहों (शिक्षक एवं अभिभावक) में सार्थक अंतर नहीं पाया गया । अत: कहा जा सकता है कि दोनों ही वर्ग शिक्षा का अधिकार अधिनियम के प्रति बराबर जागरूक हैं अर्थात् अधिनियम के प्रति साकारात्मक विचार रखते हैं।
- दिनेश कुमार एवं शर्मा , सरिता. (2011). शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के सम्बन्ध में शिक्षकों एवं पालकों के जागरूकता का अध्ययन

निष्कर्ष

शिक्षा का अधिकार अधिनियम के सम्बन्ध में शिक्षक , माता पिता की तुलना में ज्यादा जागरूक हैं।

- मलयकाण्डेय एवं उषा, अजितकुमार .(2011). माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों एवं छात्राध्यापकों के बीच उनके सामाजिक ,आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में जागरूकता और बाल अधिकारों के बारे में जागरूकता का अध्ययन।

निष्कर्ष

1. संयुक्त राष्ट्र संघ के सी. आर. सी. के बाल अधिकारों के बारे में माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों एवं छात्राध्यापकों में जागरूकता कम है। बहुत सारे लागों ने यू. एन. सी. आर. सी. के बारे में सुना तक नहीं है।
2. सामाजिक, आर्थिक स्थिति , लिंग एवं संस्था का प्रकार माध्यमिक विद्याालय के शिक्षकों के जागरूकता को प्रभावित नहीं करती परंतु छात्राध्यापकों को संस्था के प्रकार प्रभावित करते हैं।
3. भारतीय संविधान द्वारा बाल अधिकारा प्रावधान के संबंघ में माध्यमिक शिक्षकों एवं छात्राध्यापकों में जागरूकता है। जैसे बाल विवाह, जुवेनाइल जस्टिस आदि।
4. शासकीय या अनुदान प्राप्त विद्यालय के छात्रध्यापकों में यू. एन. सी. आर. सी के अधिकारों के संबंध में जागरूकता है।
    - जस्टिन, ए. एवं संतोष, जे.के. (2012). ने अपने शोध ''अभिभावकों की, बालकों की शिक्षा एवं अभिव्यक्ति के अधिकारों के प्रति जागरूकता का अध्ययन'' में पाया कि अभिभावकों की जागरूकता आवासीय स्थिति से प्रभावित होती है।

- जे. बी. बी. व करथेरा ए.(2012). ने अभिभावकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति पर अध्ययन कर स्पष्ट किया कि साधरणतया बाल अधिकारों की सभी दिशाओं में अभिभावकों की अभिवृत्ति अनुकूल है। भौगोलिक स्थिति अभिभावकों की अभिवृत्ति को प्रभावित नहीं करती।
- मनराल, मीना(2012) मलिन बस्तियों में रहने वाले बच्चों की शैक्षिक समस्याएँ, देहरादून नगर की मलिन बस्तियों के संदर्भ में

निष्कर्ष

1. माता पिता के अशिक्षित होने के कारण बच्चो के शिक्षा के प्रति उदासीन थे।
2. मलिन बस्तियों के असुरक्षित वातावरण के कारण बालिकाएँ घर से बाहर निकलने पर असुरक्षा की समस्या से ग्रसित थी।
3. अध्यापको की असंवेदनशील व्यवहार के कारण शिक्षा की समस्या से बालिकाएँ , बालकों की अपेक्षा ज्यादा प्रभावित थीं।

- सुधा. (2012). माताओं की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन कर स्पष्ट किया कि माताओं की अभिवृत्ति जीवन स्तर पर साधरण शिक्षा के प्रति अनुकूल है परन्तु यह मुख्य रूप से माताओं के शैक्षिक स्तर से प्रभावित होता है।
- सत्यराज, ए. एवं जयरमन, डी.(2013)ण् तमिलनाडु के तिरूचिरापल्ली जिले के प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के बीच बाल अधिकारों के बारे में जागरूकता का अध्ययन से निष्कर्ष निकला कि संयुक्त राष्ट्र सी. आर. सी. के बाल अधिकारों के बारे में माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों एवं छात्राध्यापकों में जागरूकता कम है। बहुत से लोगों ने यू. एन. सी. आर. सी. के बारे में सुना तक नहीं है।
- सिंह,बी. एवं वर्मा, डी. (2013).आई सी एस सी बोर्ड एवं सी बी एस ई बोर्ड के विद्यालयों में अध्यापन करने वाले शिक्षकों में बाल अधि कार जागरूकता सम्बन्धी तुलनात्मक अध्ययन में पाया कि आई. सी. एस. ई बोर्ड स्कूलों में पढ़ाए जाने वाले प्राथमिक शिक्षक सी बी एस ई बोर्ड स्कूलों में पढ़ाने वाले प्रथमिक शिक्षकों की तुलना में बाल अधिकारों के प्रति जागरूकता अधिक रखतें हैं।
- आदित्य, मदन लाल (2014) ने शिक्षा के मौलिक अधिकार के प्रति प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की जागरूकता का अध्ययन किया।

निष्कर्ष

1. शासकीय विद्यालयों के शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं का शिक्षा के मौलिक अधिकार के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
2. अशासकीय विद्यालयों के शिक्षिकाओं की अपेक्षा शिक्षक ज्यादा जागरूक हैं।
3. शिक्षा के मौलिक अधिकार के प्रति जागरूकता में क्षेत्र का प्रभाव नहीं पड़ता।

- चौधरी, सरिता (2014). ने बाल अधिकारों के प्रति अध्यापकों की अभिवृत्ति का अध्ययन में पाया कि अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति में लैंगिक,सामाजिक पृष्टभूमि, सामाजिक वर्गों एवं विषय वर्गों में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
- वर्मा, ब्रजेश कुमार. (2014). ने नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक अभिभावकों की अभिवृत्ति का अध्ययन किया जिसमें पाया गया कि अधिनियम के प्रति बहुसंख्यक अभिभावकों की अभिवृत्ति अल्पसंख्यकों की तुलना में अधिक साकारात्मक हैं। पुरूष वर्ग के दानों अभिभावकों की अभिवृत्ति महिलाओं की अपेक्षा साकारात्मक है।
- अरोरा, एस. एवं ठाकुर, आर. (2015). जम्मू में प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के बीच बाल अधिकारों की जानकारी सम्बन्धी अध्ययन में पाया कि सरकारी एवं निजी दोनों स्कूलों के अधिकांश शिक्षक बाल अधिकार, विकास का अधिकार, सुरक्षा का अधिकार और भागीदारी का अधिकार जैसे बाल अधिकारों के बारे में जानते थे।
- भार्गव, एम., एवं अहमद, टी. (2015). राष्ट्रीय बाल संरक्षण आयोग के विशेष संदर्भ में चंडीगढ़ जिले के विद्यालयों, अभिभावकों एवं विद्यार्थियों के बीच बाल अधिकार सम्बन्धी जागरूकता पर अध्ययन में पाया कि बच्चे उनके स्कूल में हुए दुर्व्यवहार के बारे में बताते हैं। विद्यालय में बाल अधिकारों के उल्लंघन की शिकायत दर्ज कराने की सुविधा थी कुछ में नहीं था। छात्रों को अधिकारों के बारे में जानकारी देने के लिये किसी प्रकार की कोई सेमीनार का आयोजन नहीं किया गया था।
- सिंह, कविता. (2015). स्कूलों की बाल मित्रता के सम्बन्धी बाल अधिकार के प्रति विद्यालय के शिक्षकों में जागरूकता सम्बन्धी अध्ययन से पाया कि कुछ व्यक्तिगत एवं जन सांख्यिकीय चर बाल अधिकारों के प्रति जागरूकता को प्रभावित करते है। जैसे स्कूल शिक्षा बोर्ड, प्रशिक्षण, शिक्षा का स्तर आदि।
- कोटुरसामी, एस. (2018) ने बाल दुर्व्यवहार पर मॉस मीडिया के प्रभाव के सम्बन्ध में बच्चे, उनके अभिभावक एवं शिक्षकों के बीच जागरूकता का अध्ययन में पाया गया कि बालक एवं बालिकाओं द्वारा मॉस मीडिया से प्राप्त जानकारी मे सार्थक अंतर रहा। बालक, बालिकाओं की तुलना में ज्यादा जागरूक हुए। महिला एवं पुरूष पालकों एवं शिक्षक शिक्षिकाओं के जागरूकता स्तर में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

अध्ययन की आवश्यकता

बाल अधिकार एक महत्वपूर्ण विषय है जिसका बच्चों के जीवन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। संविधान में बालकों के हित के लिये कई कानून बनाए गये पर उनके प्रति लोगों की जागरूकता कितनी है यह एक ज्वलंत प्रश्न है। इस विषय पर अन्य क्षेत्रों मे अनेक शोध किये गये हैं परंतु अभी तक छत्तीसगढ़ में समग्र बाल अधिकारों को लेकर शोध कार्य नहीं किये गये हैं। अन्य क्षेत्रों में भी जितने अध्ययन हुए हैं उनमें शिक्षा का अधिकार अधिनियम पर एवं प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों की जागरूकता का अध्ययन अधिकांशत: किया गया है। चूँकि बच्चों की परिभाषा के अनुसार 18 वर्ष से कम आयु वाले बच्चे बाल अधिकार के अंतर्गत आते हैं इसलिये अपने अध्ययन क्षेत्र में उच्च प्राथमिक विद्याालयों के शिक्षकों को भी शामिल किया गया है। जिससे यह पता लगाया

जा सके कि उच्च प्राथमिक स्तर तक के बच्चों को अध्यापन कराने वाले शिक्षकों एवं उन बच्चों के अभिभावकों में बाल अधिकारों को लेकर कितनी जागरूकता है? इस आधर पर शिक्षकों एवं अभिभावकों को जागरूक करने हेतु शासन स्तर से भी योजनाएँ बनाई जा सकती है। लेकिन इसकी जानकारी हमें शोध कार्यो से ही हो सकती है। अत: इसकी जानकारी प्राप्त करने के लिये इस शोध कार्य का चयन किया गया है।

सम्बंधित साहित्य के अध्ययन हमें यह बताते हैं कि अब तक जितने भी शोध हुए हैं उनमें बालकों की समस्याओं और शिक्षा के अधिकारों कों ध्यान में रखकर अध्ययन किया परन्तु किसी भी शोध कर्ता ने समग्र रूप से बाल अधिकारों पर अपना ध्यान केन्द्रित नहीं किया है। अत: बालकों के समग्र विकास को ध्यान में रखते हुए बाल अधिकारों के संदर्भ में उन्हें लागू करने वालों (शिक्षकों एवं अभिभावकों) की जागरूकता जानना ही शोधकर्ता का उद्देश्य है जिससे कि बाल अधिकारों की सम्यक प्राप्ति के सन्दर्भ में दिशा बोध प्राप्त कर कार्य योजना में सुधार किया जा सके।

5. नोट किये गये कार्य के क्षेत्र में प्रस्तावित कार्य का योगदान

- प्रस्तुत अध्ययन के पश्चात् शिक्षकों एवं अभिभावकों में बाल अधिकारों के प्रति जागरूकता का स्तर पता लगाया जा सकेगा।
- अध्ययन के पश्चात् बाल अधिकारों का क्रियान्वयन और भी बेहतर ढ़ंग से किया जा सकेगा।
- इस अध्ययन से शिक्षकों एवं अभिभावकों में बाल अधिकारों के प्रति जानकारी बढ़ेगी।
- इस अध्ययन से पालकों एवं विद्यार्थियों में भी बाल अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ेगी।
- इस अध्ययन के पश्चात् जशपुर जिले के शिक्षकों एवं अभिभावकों में बाल अधिकार के प्रति रूचि जागृत किया जा सकेगा।
- इस अध्ययन के पश्चात् बिलांसपुर जिले के शिक्षकों एवं अभिभावकों में बाल अधिकार के प्रति रूचि जागृत किया जा सकेगा।

6. प्रस्तावित अनुसंधान प्रविधि

अ. 1.. परिकल्पना

$H0_1$ बाल अधिकारों के प्रति प्राथमिक विद्यालयों के पुरूष एवं महिला शिक्षकों की जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

$H0_2$ बाल अधिकारों के प्रति माध्यमिक विद्यालयों के पुरूष एवं महिला शिक्षकों की जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

$H0_3$ बाल अधिकारों के प्रति सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों की जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

$H0_4$ बाल अधिकारों के प्रति ग्रामीण एवं शहरी अभिभावकों की जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

$H0_5$ बाल अधिकारों के प्रति ग्रामीण एवं शहरी शिक्षकों की जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

$H0_6$ बाल अधिकारों के प्रति प्राथमिक विद्यालयों के अभिभावकों एवं शिक्षकों की जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

$H0_7$ बाल अधिकारों के प्रति माध्यमिक विद्यालयों के अभिभावकों एवं शिक्षकों की जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

$H0_8$ बाल अधिकारों के प्रति जशपुर जिले एवं बिलासपुर जिले के शिक्षकों के जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

$H0_9$ बाल अधिकारों के प्रति जशपुर जिले एवं बिलासपुर जिले के अभिभावकों के जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

अ. 2. शोध प्रश्न

- बाल अधिकारों के प्रति प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की जागरूकता का स्तर क्या है?
- बाल अधिकारों के प्रति प्राथमिक विद्यालयों के अभिभावकों की जागरूकता का का स्तर क्या है?
- बाल अधिकारों के प्रति माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की जागरूकता का स्तर क्या है?
- बाल अधिकारों के प्रति माध्यमिक विद्यालयों के अभिभावको की जागरूकता का स्तर क्या है?

ब. अनुसंधान विधि

प्रस्तुत अनुसंधान विश्लेषणात्मक प्रकृति का सर्वेक्षण आधारित अनुसंधान है। इसके अन्तर्गत जशपुर जिले एवं बिलासपुर जिले के संमस्त प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों एवं अभिभावकों की बाल अधिकारों के प्रति जागरूकता और तत्परता का स्वनिर्मित प्रश्नावली द्वारा सर्वेक्षण किया जायेगा। सर्वेक्षण के द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर समंक निर्मित किये जायेंगे तथा अनुसंधान के उद्देश्यों एवं शोध प्रश्नों के अनुरूप उन्हें वर्गीकृत एवं सारणीबद्ध करके प्रतिशत निकालकर शोध प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किये जायेंगे।

स. न्यादर्श विधि

प्रस्तुत अध्ययन में न्यादर्श का चयन साधारण अनियमित न्यादर्श (रैण्डम नम्बर) से किया जायेगा। जिसमें जशपुर जिले के समस्त विकासखण्डों (कुल 8) में शामिल कुल 2620 प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों में से प्रत्येक विकासखण्ड से 30-30 विद्यालयों का चयन रैण्डम नम्बर द्वारा किया जायेगा। उसी प्रकार बिलासपुर जिले के समस्त विकासखण्डों (कुल 7) में शामिल 3178 प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों में से प्रत्येक विकासखण्ड में से 30-30 विद्यालयों का चयन अनियमित न्यादर्श (रैण्डम नम्बर) द्वारा किया जायेगा। इन चयनित विद्यालयों में से ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों के 15-15 शिक्षक एवं 15-15 अभिभावकों (कुल 900) का चयन साधरण अनियमित न्यादर्श (रैण्डम नम्बर) द्वारा किया जायेगा। इस प्रकार इन चयनित विद्यालयों के समस्त कार्यरत शिक्षकों एवं अध्ययन रत विद्यार्थियों के अभिभावकों को न्यादर्श के रूप में चयनित किया जायेगा।

1. शिक्षकों एवं अभिभवकों की बाल अधिकारों के प्रति जागरूकता और तत्परता का स्वनिर्मित प्रश्नावली द्वारा सर्वेक्षण किया जायेगा।
2. उक्त प्रश्नावली के माध्यम से उनकी जागरूकता का पता लगाया जायेगा।

3. प्रत्येक प्रश्न के उत्तर के आधार पर प्रतिशत में अंतर स्थापित किया जायेगा।
4. प्राप्त अंतर के आधार पर ग्रामीण एवं शहरी अभिभावकों के जागरूकता का स्तर किया जायेगा।

क्र	*प्रयोज्य*	*ग्रामीण*	*शहरी*	*योग*
1	शिक्षक	225	225	450
2	अभिभावक	225	225	450
3	योग	450	450	900

द. उपकरण

बाल अधिकारों के प्रति प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों एवं अभिभावकों की जागरूकता का मापन करने हेतु स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया जायेगा। शोधकर्ता जहां तक संभव होगा स्वयं प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों एवं अभिभावकों से सम्पर्क कर जागरूकता के मापन हेतु आंकड़ों का संग्रह प्रश्नावली द्वारा करेगा।

इ. साख्यिकी विधियों का चयन

विश्लेषण हेतु शिक्षकों एवं अभिभावकों को दिये गये प्रश्नावली से प्राप्त प्रत्येक उत्तर के आधार पर काई वर्ग परीक्षण ,मध्यमान, मानक विचलन, टी परीक्षण एवं प्रतिशत द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण कर निष्कर्ष निकाला जायेगा।

7. अपेक्षित निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध के द्वारा प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों एवं अभिभावकों के बाल अधिकार संम्बन्धी जागरूकता का पता चल पायेगा जिससे उसके सम्बन्ध में आगामी कार्ययोजना का निर्माण कर क्रियान्वयन किया जा सके।

8. संदर्भ ग्रंथ

अरोरा, एस. एवं ठाकुर, आर. (2015). जम्मू में प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के बीच बाल अधिकारों की जानकारी सम्बन्धी अध्ययन

आदत्यि,मदन लाल (2014) शिक्षा के मौलिक अधिकार के प्रति प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की जागरूकता का अध्ययन

भार्गव, एम., एवं अहमद, टी. (2015). राष्ट्रीय बाल संरक्षण आयोग के विशेष संदर्भ में चंडीगढ़ जिले के विद्यालयों, अभिभावकों एवं विद्यार्थियों के बीच बाल अधिकार सम्बन्धी जागरूकता पर अध्ययन

चौधरी, सरिता (2014).बाल अधिकारों के प्रति अध्यापकों की अभिवृत्ति का अध्ययन

दिनेश कुमार एवं शर्मा , सरिता (2011) शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के सम्बन्ध में शिक्षकों एवं पालकों के जागरूकता का अध्ययन

जे. बी. बी. व करथेरा ए.(2012). अभिभावकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति पर अध्ययन।

जस्टिन, ए. एवं संतोष, जे.के. (2012). अभिभावकों की, बालकों की शिक्षा एवं अभिव्यक्ति के अधिकारों के प्रति जागरूकता का अध्ययन.

कपिल, एच0के0: सांख्यिकी के मूल तत्व।

किशोर जी. एवं सैनी ए. (2010).माताओं की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति का मूल्यांकन

मलयकाण्डेय एवं उषा, अजितकुमार. (2011). माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों एवं छात्राध्यापकों के बीच उनके सामाजिक, आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में जागरूकता और बाल अधिकारों के बारे में जागरूकता का अध्ययन।

मनराल, मीना(2012) मलिन बस्तियों में रहने वाले बच्चों की शैक्षिक समस्याएँ, देहरादून नगर की मलिन बस्तियों के संदर्भ में

एस सी ई आर टी:शिक्षा का अधिकार अधिनियम (बुकलेट), प्रकाशन- राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, रायपुर (छ0ग0)

शर्मा, आर0 ए0: शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकी के मूल तत्व।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के 1989 में जारी घोषणा पत्र।

सत्यराज, ए. एवं जयरमन, डी.(2013)ण् तमिलनाडु के तिरूचिरापल्ली जिले के प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के बीच बाल अधिकारों के बारे में जागरूकता का अध्ययन

सुधा. (2012). माताओं की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन

वर्मा, ब्रजेश कुमार .(2014). नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक अभिभावकों की अभिवृत्ति का अध्ययन

9. पब्लिकेशन की सूची

विजय कुमार साहू एवं विद्याभूषण शर्मा: रोल ऑफ इन्फर्मेशन एण्ड कम्युनिकेशन टेक्नॉलाजी इन एजुकेशन, डोगो रेंगसेंग रिसर्च जर्नल वॉल्युम - 10, इश्यू- 6, नम्बर- 4 जून 2020 आईएसएसएन 2347-7180 पेज नम्बर 30 से 37

विजय कुमार साहू एवं विद्याभूषण शर्मा: बाल अधिकारों के प्रति प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों एवं अभिभावकों की जागरूकता का अध्ययन, शोध सरिता रिसर्च जर्नल वॉल्युम - 07, इश्यू- 25, जनवरी -मार्च 2020 आईएसएसएन 2348-2397 पेज नम्बर 199 से 204

पी. बी. शेली के काव्य में प्रेम और सौंदर्य

प्रणीता किरण

विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग, तिलका माँझी विश्वविद्यालय, भागलपुर

अंग्रेजी स्वच्छंदतावाद कविता के महान कवि पर्सी बिश शेली। उनका जन्म ४ अगस्त १७९२ ईस्वी में हुआ था और मात्र २९ साल की उम्र में ही उनका अकाल मृत्यु हो गया। उन्हें अंग्रेजी कविता के सर्वश्रेष्ठ गीत कवि के रूप में माना जाता है। शेली की कविताओं में तत्कालीन राजनीति और सामाजिक दृश्य देखा जा सकता है। उनकी ख्याति जीवन काल में तो नहीं हुई , परंतु मृत्यु के बाद उनकी काफी प्रसिद्धि हुई।

13 वर्ष की अवस्था में वे इंटर्न नामक प्रसिद्ध सार्वजनिक विद्यालय में प्रविष्ट हुए। वह एक कुशल छात्र थे और पढ़ने में उनकी अत्यंत रुचि थी। शीघ्र की उन्होंने ग्रीक तथा लैटिन भाषा पर अपना अधिकार प्राप्त कर लिया। उन्होंने विद्यालय छोड़ने से पहले विचित्रवाद शैली में दो उपन्यास लिखे...'जेस्टोजी ' (१८१०) और 'सेंटईविन' (१८११)।उन्होंने अनेक कविताओं की भी रचना की जो १८१० ई. में 'ओरिजिनल पोएट्री बाई विक्टर ऐंड के जायर' के नाम से पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई।

शेली ने १८१० ई. में इटली स्कूल को छोड़कर ऑक्सफोर्ड विद्यालय विश्वविद्यालय के यूनिवर्सिटी कॉलेज में भर्ती हुए। किंतु , एक वर्ष पश्चात् उन्होंने 'नेसेसिटी ऑव एथीज्म' नामक दो पृष्ठ की पुस्तिका लिखी। जिसमें उन्होंने अपनी विचारधारा के अनुसार अनीश्वरवाद की आवश्यकता प्रमाणित की और उसकी प्रतियाँ उन्होंने विश्वविद्यालय के अधिकारियों के पास भेजी। वे लोग क्रोध में आकर शेली को विश्वविद्यालय से निकाल दिया और जब शेली के पिता को यह बात का पता चला तो उन्होंने शैली को घर आने से मना कर दिया। इसी कारण से वह लंदन पहुंचे और वहां उनकी मुलाकात एक हेरियट वेस्टबुक नामक युवती से हुई और उन्होंने १८११ में उनसे विवाह कर लिया।

बीसवीं शताब्दी के मैं पी.पी. शेली की आलोचनात्मक प्रतिष्ठा में उतार-चढ़ाव आया लेकिन हाल के दशकों में उन्होंने अपनी काव्य -कल्पना की व्यापक गति शैलियों और पद्य रूपों में अपनी महारत औरसंशयवादी, आदर्शवादी और भौतिकवाद विचारों के जटिल परस्पर क्रिया के लिए आलोचनात्मक प्रशंसा हासिल की है। शेली की सबसे प्रसिद्ध कृतियों में...'ओजिमंडियास' (१८१८), 'ओड टू द वेस्ट विंड' (१८१९), टू ए स्काईलार्क (१८२०),'द सेन्सी'(१८१९), 'द मास्क ऑफ एनार्की' (१८१९), 'एलास्टर या द स्पिरिट ऑफ सॉलिट्यूड' (१८१५), 'जूलियन और मैडालो' (१८१९), 'एडोनिस '(१८२१),'प्रोमेथियस अनबाउंड '(१८२०), उत्कृष्ट कृति-'हेलस '(१८२२)' और उनकी अंतिम अधूरी रचना 'द ट्रायम्फ ऑफ लाइफ (१८२२)।

19वीं शताब्दी में सबसे प्रसिद्ध रोमांटिक कवि रहे थे शेली। अंग्रेजी कविता में पर्सी बिश शेली का प्रमुख योगदान है। उनकी कविता के दो अलग मिजाज हैं - एक रूप में उनकी कविताएं हिंसक सुधारक है, तो दूसरे रूप में स्वयं को विभाजित करती है। अपनी सभी लेखन में शेली का मानना है कि वे एक बेहतर समाज के लिए मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

शेली अंग्रेजी के सबसे महान प्रकृति के कवि रहे हैं और साथ ही वह सबसे महान राजनीतिक लेखकों में से एक हैं। उदाहरण के लिए उनकी कविता 'ओड टू द वेस्ट विंड' प्रकृति पर आधारित एक बेहतरीन कविता है। उन्होंने अपनी रचना 'लव फिलोसपी' में प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण किया है। शेली ने बताया है कि प्रकृति में जो झड़ने होते हैं वे नदियों और सागर के साथ मिल जाते हैं और उस वातावरण में सदैव स्वर्ग रूपी हवाएँ चलती रहती है, उसी प्रकार जो ऊंचे - ऊंचे पहाड़ होते हैं वे आसमान को चूमते हुए प्रतीत होते हैं और सागर की लहरें होती है वे एक - दूसरे से चिपकी रहती है।इसी प्रकार जो सूरज की किरणें होती है, वे धरती को अपनी रोशनी में जकड़ लेती है और चंद्रमा समुद्र को चूमता है।

शेली द्वारा लिखित 'लव फिलासफी' एक प्रसिद्ध रोमांटिक कविताओं में से एक है।उन्होनें प्रेम के प्रतिनिधि के रूप में इस कविता में प्रेम के बारे में अपनी कोमल भावनाओं को प्रस्तुत करते हैं। कविता में वह अपने प्रिय के साथ रहने की अपनी अत्यधिक इच्छा के बारे में बोलते हैं। वह अपने प्यार के लिए तरसते हैं और निराशा महसूस करते हैं कि उनका प्यार उसके साथ नहीं है जब वह अपने आसपास के कुछ चीजों को जोड़ने में देखते हैं तब वह समझते हैं कि लोग एक दूसरे के साथ घूलने -मिलने के लिए होते हैं।

इस कविता का विषय एकतरफा प्रेम है कि घटना है। संपूर्ण पाठ प्रेम के अंतरंग प्रकृति पर चर्चा करता है।आलंकारिक भाषा और प्रकृति - कल्पना का उपयोग करते हुए कवि इस प्रेम की व्याख्या करता है। उनका तर्क है कि ब्रह्मांड में मौजूद हर चीज का एक साथी है और प्रकृति दुनिया में कोई सार्थक अलगाव नहीं है।उनकी इस रचना में प्रेम और संबंधों का विचार पाठकों को आवश्य ही मंत्रमुग्ध कर देगा।

पी.बी. शेली प्रसिद्ध प्रेम कविओं में शामिल होने वाले महान अंग्रेजी रोमांटिक कवि में से एक हैं। उनके अंदर एक जुनून महान क्रांतिकारी भावना और स्वतंत्र विचार थे, जिसे उन्होंने सामाजिक अन्याय के विरुद्ध अपने संघर्ष में इस्तेमाल किया।शेली के लिए कविता और राजनीति के बीच कोई अंतर नहीं था और उनके कार्य ने इस कट्टरवाद को प्रतिबिंबित भी किया।जिसने उन्हें अपने दोस्त वायरल की तरह बना दिया।

शेली की कविता के इस परिभाषित पहलू का एक अच्छा उदाहरण है 'द मास्क ऑफ अनार्फी'। जिसे उन्होंने १८१९ में पीटरलू नरसंहार के विरोध में लिखा था।

I met murder on the way-

He hadA mask like castlereagh

प्रेम के कारण ही शेली की दो बार शादी हुई थी। उनकी दूसरी पत्नी मैरी गॉडविन दार्शनिक और अराजकतावादी विलियम गॉडविन की बेटी थी, जो ना केवल खुद शेली के लिए बल्कि लॉर्ड बायरन और वड्र्सवर्थ के लिए भी काफी प्रभाव वाली थी।

पी.बी. शेली ने अपनी कविता 'व्हेन दी लैंप इज शेटर्ड' में इंद्रधनुष की महिमा और बिखरे बादल के माध्यम से प्रेम और सौंदर्य का चित्रण किया है एवं इसी प्रकार संगीत और वैभव के रूप में दीया और रोशनी को चित्रित किया है।

पी. बी. शेली ने अपनी कविता 'म्यूजिक व्हेन ऑफ वॉयस डाई में प्रेम को दर्शाया है। शेली ने इस कविता में प्रेम के प्रसंग को गुलाब और गुलाब के पत्ते के माध्यम से प्रदर्शित किया है।

पी. बी. शेली ने निश्चित रूप से प्रसिद्ध प्रेम कविताओं पर अपनी छाप छोड़ी है।अपने जीवन - काल में उनका नाम और प्रतिष्ठा कई लोगों के लिए अभिशाप थी विशेष रुप से अमीर और पैसे वाले राजनीतिक वर्ग के लिए जिनके साथ में रहते थे। पी. बी. शैली ने अपनी कविता और साहित्य के माध्यम से अपने अमरता की जो छाप छोड़ी है वह आज तक कायम है।जबकि उनके कई विरोध इतिहास के धुँध में गायब हो गए हैं।

स्विट्जरलैंड के जिनेवा झील पर बायरन के साथ एक नौका बिहार भ्रमण के दौरान ही पी. बी. शेली द्वारा हाइम टू इंटेलेक्चुअल ब्यूटी की कल्पना और लेखन किया गया था। झील और स्विस आल्प्स की सुंदरता शेली के लिए नया था और पूरी तरह सुंदर था। वह इसकी गहराई से प्रभावित हुए।

शेली जिसने ईसाई धर्म छोड़ दिया था उसको आखिरकार अल्पाइन के दृश्य के रूप में एक देवता मिल गया था जिससे वे पूरे दिल से प्यार करता था।सुंदरता की पूजा शेली का नया धर्म था और यह हमारे लिए जानना भी महत्वपूर्ण है कि वह अपनी कविता को भजन कहते थे। इस शब्द का इस्तेमाल विशेष रूप से धार्मिक कविताओं के लिए किया जाता है।

शेली वास्तव में अंग्रेजी - साहित्य के महानतम् कवियों में से एक हैं और निसंदेह सभी रोमांटिक कवियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान रखते हैं। शेली प्रकृति के पवित्र कवि रहे हैं। उनकी रचनाओं में हमें प्रकृति का सौंदर्य देखने को मिलता है एवं साथी -ही-साथ प्रेम की भावना भी उनकी कविताओं में निहित रहती है। उनकी रचनाओं में प्रकृति पूर्ण विविधता के साथ सजीव रूप से विद्यमान है। पर्सी बिश शेली ने अपनी रचनाओं में प्रेम और सौंदर्य के अनेक चित्र को दर्शाया है। अपनी कविताओं में एक को उन्होंने प्रकृति के सौंदर्य दिखा है तो दूसरी ओर ,उन्होंने मानव- प्रेम की व्याख्या की है। प्रेम और सौंदर्य को दर्शाते हुए उन्होंने अपनी रचना में सुंदर लेख उपमा के रूप को और मानवीकरण बयानबाजी का उपयोग किया है।

संदर्भ

1 समरीन एण्ड एनालिसिस हईम टू इंट्लेक्चुअल ब्यूटी

2 शेली फेमस लव पोइट्री

3 लव्स फिलोसोफी

4 शेली लव फॉर नेचर

5 पी बी शेली व्यू आफ नेचर एण्ड लॉ एण्ड हाऊ ही डिफर्स फ्रोम वर्डसवर्थ एण्ड कीट्स

पटना जिला का भूमि उपयोग: एक भौगोलिक विश्लेषण

बबलू कुमार रविदास

शोधार्थी, भूगोल विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

सारांश (Abstract):- भूमि वर्तमान विकसित मानव के लिए महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है। प्रारंभिक काल से मानव इसी धरती पर अपना जीवन व्यतीत करते आ रहा है। इनके तमाम क्रियाकलापों का निष्पादन पृथ्वी के वक्ष स्थल पर होते आ रहा है। आख़ेट युग से लेकर वर्तमान नैनोटेक्नोलॉजी युग तक सभी कार्य कलापों का निष्पादन का आधार तल भूमि ही है। पटना जिला बिहार के मैदानी भाग में सधन जनसंख्या वाला जिला है। यहाँ राज्य की राजधानी भी स्थित है। फलस्वरूप यहाँ के भूमि पर मानवीय दबाव भी अन्य जिला से अधिक है। ऐसी स्थिति में भूमि का विवेकपूर्ण और श्रेष्ठतम उपयोग अत्यंत आवश्यक है। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखकर पटना जिला का भूमि उपयोग का अध्ययन किया गया है।

शब्द कुंजिका:- संसाधन, नैनोटेक्नोलॉजी, जनसंख्या, भूमि उपयोग, मैदानी भाग ।

परिचय:- भूमि प्रकृति का श्रेष्ठ उपहार है। मानव के प्रारंभिक काल से ही इसकी उपयोगिता रही है। मानव जन्म से मरन तक भूमि की गोद में पलता, बढ़ता और विकसित होता है। उसके वक्ष स्थल को चिर कर अन्न, फल, औषधीय पौधे एवं पर्यावरण के सम्पोषक उधान लगाते हैं। भूमि मानवीय विकास का आधार है और सर्वश्रेष्ठ संसाधन है। यों तो विवेकशील मानव भूमि का उपयोग करते आ रहे हैं। परन्तु वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए भूमि का श्रेष्ठत्तम उपयोग आवश्यक है। भारत जैसे बड़ी आबादी वाले देश को भूमि का सधनत्तम, समुचित और श्रेष्ठत्तम उपयोग आवश्यक है। बिहार के मैदानी भाग में स्थित पटना जिला उपजाउ जलोढ़ मिट्टी और समतल भूमि के कारण इसके अधिकांश भूमि पर खेती की जाती है। साथ ही पर्याप्त वर्षा एवं नदियों के प्रवाह के कारण यहाँ सतही एवं भूमिगत जल संसाधन भी प्रयाप्त मात्रा में उपलब्ध है। सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हैं। फलत: सदियों से यहाँ की अधिकतम भूमि पर कृषि कार्य का सम्पादन किया जाता रहा है। दूसरी और गैर कृषि कार्य यथा-मकान, सड़क रेलमार्ग, हवाई अड्डा एवं अन्य आधारभूत संरचनाओं के निर्माण में भूमि का उपयोग किया जा रहा है। विगत वर्षों में जिला के भूमि उपयोग में बदलाव भी हुआ है इसके बावजुद भी अधिकत्तम भूमि का उपयोग कृषि कार्यों में किया जाता है।

भूमि उपयोग की अवधारण कोई नयी नहीं हैं। केवल इसके स्वरूप एवं अध्ययन के विकास की अवधारणा में समय के साथ परिवर्तन होते रहे हैं। जसवीर सिंह एवं ढिल्लन ने भूमि उपयोग को परिभाषित करते हुए कहा है -

"Land use in an area is the cumulative out came of historical growth, the interaction of economic forces with the natural environment and the value of society."

अर्थात किसी क्षेत्र में भूमि उपयोग वहाँ के ऐतिहासिक विकास, आर्थिक क्रियाकलाप एवं प्राकृतिक पर्यावरण के साथ प्रतिक्रिया का फल है। इस प्रकार भूमि उपयोग के क्रम में लोग अपनी आवश्यकताओं के अनुसार भूमि का विकासात्मक कार्य करते हैं। वर्तमान समय में भूमि उपयोग का निर्धारण अधिवास प्रारूप, आर्थिक एवं सामाजिक स्तर, कृषि विकास के लिए उपलब्ध आधारभूत संरचना भूमि उपयोग को निर्धारीत करने वाले महत्वपूर्ण कारक हैं। पटना जिला को बिहार राज्य की राजधानी का गौरव भी प्राप्त है। यह प्राचीन मगध साम्राज्य का गौरवपूर्ण राजधानी भी रहा है। गंगा, सोन एवं पुनपुन जैसी नदियाँ यहाँ की शस्य श्यामली भूमि के निर्माण में सहायक है। साथ ही सिंचाई के लिए जल भी उपलब्ध कराती है। अत: यहाँ की भूमि का सर्वोत्तम उपयोग के द्वारा यहाँ के निवासी सर्वाधिक लाभ प्राप्त करने में सक्षम हैं।

अध्ययन का उद्देश्य:- वर्तमान अध्ययन पटना जिला का भूमि अध्ययन: एक भौगोलिक विश्लेषण के निम्नांकित उद्देश्य है:-

1. पटना जिला के भूमि के प्रकार का अध्ययन करना ।
2. यहाँ के भूमि उपयोग के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन करना ।
3. पटना जिला में कृषि मुख्य व्यवसाय है, परिणामस्वरूप यहाँ की सर्वाधिक भूमि का उपयोग कृषि कार्यों में की जाती है। अत: शुद्ध बोया गया क्षेत्र का अध्ययन करना।
4. कृषि के अलावे यहाँ की भूमि का विभिन्न कृषेत्तर कार्यों में उपयोग किया जाता है। उसकी भी जानकारी प्राप्त किया है।
5. पटना जिला के परती भूमि का अध्ययन किया है।

परिसंकल्पना :- वर्तमान शोध पत्र निम्नांकित परिकल्पनाओं पर आधारित है:-

1. पटना जिला की भूमि समतल मैदानी एवं उपजाऊ है।

2. यहाँ की अधिकतर भूमि का उपयोग कृषि कार्य के लिए किया जाता है।
3. वर्तमान समय में जिला में कृषेत्तर कार्यों के लिए भूमि उपयोग में वृद्धि हुआ है।
4. पटना जिला में चालू एवं अन्य परती भूमि का क्षेत्र घटते जा रहा है।

विधितंत्र :- प्रस्तुत अध्ययन प्राथमिक और द्वितीयक आकड़ों पर आधारित है। प्राथमिक आकड़ों का संग्रह जिला के विभिन्न क्षेत्रों में भ्रमण कर क्षेत्रीय अवलोकन किया । साथ ही वहाँ के स्थानीय लोगों से मिलकर भूमि उपयोग से सम्बंधित तथ्यों की जानकारी प्राप्त किया है। द्वितीयक आकड़े के लिए पटना जिला का कृषि कार्यालय, पटना जिला कृषि अनुदेश पुस्तिका, जिला सांख्यिकी कार्यालय, पटना, पटना भू-राजस्व विभाग इत्यादि कार्यालयों से प्राप्त आकड़ों का विश्लेषण के लिए उपयोग किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र :- अध्ययन क्षेत्र पटना जिला मध्य गंगा के दक्षिणी भाग में स्थित है। इसका विस्तार $25^0$12" उत्तरी अक्षांश से $25^0$44" उत्तरी अक्षांश एवं $84^0$42" पूर्वी देशान्तर से $85^0$4" पूर्वी देशान्तर के बीच है। इसके उत्तर में पवित्र पावनी गंगा नदी, दक्षिण में नालंदा, जहानाबाद और अरवल जिला, पूरब में लखीसराय जिला और पश्चिम में सोन नदी स्थित है। इसका क्षेत्रफल 3202 वर्ग किलो मीटर एवं कुल जनसंख्या 57.5 लाख (2011) है। पटना जिला में 5 अनुमंडल एवं 23 प्रखण्ड है।

भूमि उपयोगः- जिस भूमि पर मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक तमाम आर्थिक एवं गैर आर्थिक क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं। सभ्यता, संस्कृति एवं विज्ञान का विकास होता है, उसका समुचित एवं श्रेठतम उपयोग अति आवश्यक हैं साथ ही भूमि उपयोग की व्यवहारिकता को भी नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है।

इस संदर्भ में अध्ययन क्षेत्र पटना जिला का भूमि उपयोग का अध्ययन आवश्यक है। पटना जिला की भूमि गंगा के मैदानी भाग की भूमि है। यह अत्यन्त उर्वर है। यहाँ कार्य के लिए प्रयाप्त संख्या में मजदूर भी मिल जाते हैं। अतः कृषि कार्य यहाँ का मुख्य पेशा है। साथ ही सिंचाई की भी मुकम्मल व्यवस्था है। फलस्वरूप प्रति हेक्टेयर उत्पादन भी प्रयाप्त होता है। उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए पटना जिला के भूमि उपयोग के अध्ययन की आवश्यकता महसूस किया गया ।

यों तो भूमि उपयोग का अध्ययन का आरम्भ इंग्लैण्ड में स्टाम्प महोदय ने 1930-31 ई॰ में किया था। बाद में विश्व के अन्य देशों के साथ भारत में भी इसका अध्ययन किय गया। भारत में भूमि उपयोग का अध्ययन प्रो॰ चटर्जी, प्रो॰ राव, प्रो॰ शफी, प्रो॰ मिश्रा जैसे महान भूगोलवेताओं ने किया है।

किसी भी क्षेत्र की भूमि का मुख्य रूप से दो रूपों में उपयोग किया जाता है। प्रथम कृषि कार्य में व्यवहृत भूमि और दूसरा कृषेत्तर कार्य में व्यवहृत भूमि इनके अलावे, बाग, बगीचे, परती भूमि, चारागाह एवं वन होते हैं। इन्हीं तथ्यों के आधार पर पटना जिला के भूमि को निम्नांकित भूमि उपयोग के श्रेणियों में बांटा गया हैः-

तालिका-1: पटना जिला का भूमि उपयोग (2018)

क्र॰सं॰	*भूमि उपयोग*	*क्षेत्रफल (हे॰)*	*प्रतिशत*
1.	कृषि कार्य में व्यवहृत भूमि	213011.14	66.52
2.	चालू परती भूमि	27557.47	8.61
3.	कृषि योग्य बंजर भूमि	3016.93	0.94
4.	कृषेत्तर कार्यों में व्यवहृत भूमि	57180.04	17.86
5.	अन्य उपयोग में आने वाली भूमि	19448.79	6.07
श्रोतः- जिला कृषि कार्यालय, पटना ।		320214.39	100.00

1. **कृषि कार्य में व्यवहृत भूमिः-** इसके अन्तर्गत वैसी भूमि को सम्मिलित किया जाता है जिस भूमि पर नियमित रूप से कृषि कार्य का सम्पादन किया जाता है। इसे शुद्ध बोया गया क्षेत्र के नाम से भी जाना जाता है। परिस्थितिवश इसकी कुछ भूमि परती भी रह जाती है। इस प्रकार इस श्रेणी की भूमि में परिवर्तन होते रहता है। पटना जिला की भूमि समतल है। इसके अलावे उपजाऊ दोमट मिट्टी, नहरी एवं भूमिगत जल द्वारा सिंचाई की मुकम्मल व्यवस्था, इत्यादि कारणों के उपलब्धि के कारण यहाँ की अधिकांश भूमि कृषि कार्य में व्यवहृत की जाती है। 2018 के प्राप्त आकड़े के आधार पर पटना जिला में कृषि कार्यें व्यवहृत भूमि अथवा शुद्ध बोया गया क्षेत्र के अन्तर्गत 213011.14 हेक्टेयर अर्थात कुल भूमि उपयोग का 66.52 प्रतिशत है।
2. **चालू परती भूमिः-** बिहार राज्य में चालू परती भूमि के अन्तर्गत वैसी भूमि को रखा गया है, जो सर्वेक्षण के समय कृषि कार्य में उपयोग नहीं की गयी है। परन्तु इसके पूर्व उस भूमि में कृषि कार्य सम्पादन किया गया है। इस प्रकार चालू परती भूमि भी कृषि के अन्तर्गत आती है। ऐसी भूमि अपेक्षाकृत कम उपजाऊ होती है। किसान इस श्रेणी के भूमि को श्रमिक आंदोलन, वर्षाभाव, सिंचाई की व्यवस्था के आभाव, बीज एवं खाद की कमी के कारण परती छोड़ देता है। कभी-कभी भूमि की उर्वरा शक्ति में ह्रास होने पर उसे पुर्नस्थापित करने के लिए भी भूमि में फसल लगाये बिना रहने दिया जाता है बीच में इस प्रक्रिया के द्वारा भूमि पुनः उर्वरा हो जाती है। पटना जिला में इस श्रेणी की भूमि 27557.47 हेक्टेयर है अर्थात सम्पूर्ण भूमि उपयोग का 8.61 प्रतिशत है।
3. **कृषि योग्य बंजर भूमिः-** इस भूमि उपयोग के अन्तर्गत वैसे भूमि को सम्मिलित किया जाता है जो व्यवहारिक दृष्टिकोण से कृषि कार्य के लिए उपयुक्त नहीं है। इस प्रकार की भूमि उबड़-खाबड़ ऊची-नीची, अम्लीय क्षारीय या बंजर है। इस पर कृषि कार्य सम्पन्न नहीं किया जा सकता है।

इसमें पौधों का समुचित विकास संभव नहीं। परिणामस्वरूप इस प्रकार की भूमि न तो कृषि कार्य के लिए उपयुक्त है और न तो पशुचारण के लिए । अम्लीय और क्षारीय भूमि को कृषि के लिए उपयुक्त बनाने के लिए कृषि वैज्ञानिकों की सहयोग की आवश्यकता है। इसमें उचित मात्रा में नाइट्रेट, जिंक इत्यादि का व्यवहार के द्वारा मिट्टी की गुणवत्तता को बढ़ाकर कृषि के लिए व्यवहार में लाया जा सकता है। इसे काफी कठिनाई एवं मेहनत के द्वारा कृषि के लिए उपयुक्त बनाया जा सकता है। कृषियोग्य बंजर भूमि का क्षेत्रफल बहुत ही कम है। इस प्रकार की भूमि मात्र 3016.93 हेक्टेयर (0.94 प्रतिशत) है। यहाँ इस प्रकार की भूमि दियारा क्षेत्र में पायी जाती है।

4. **कृषेत्तर कार्य में व्यवहृत भूमिः**- इस प्रकार के भूमि उपयोग के अन्तर्गत ऐसी भूमि को संलग्न किया जाता है जिसमें खेती नहीं होती है। परन्तु इसका उपयोग कृषेत्तर कार्य यथा- अधिवास यातायात के लिए सड़के, रेलगाड़ी, सार्वजनिक संस्थाएँ नहर, आहर, पइन इत्यादि में संलग्न भूमि को कृषेत्तर कार्यों में व्यवहृत भूमि के रूप में जाना जाता है। अधिवास के तहत वस्तियाँ, नगर, कार्यालय, मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर, शैक्षिक एवं औद्योगिक संस्थान को संलग्न किया जाता है। इस प्रकार की भूमि पटना में 57180.04 हेक्टेयर (17.86 प्रतिशत) है। पटना जिला एवं बिहार राज्य में गैर कृषि कार्यों में व्यवहृत भूमि का क्षेत्रफल दूसरी भूमि उपयोग की श्रेणी में है। साथ ही तिव्र गति से बढ़ते निर्माण कार्य एवं आधारभूत संरचनाओं के विकास के वजह से इस प्रकार की भूमि का क्षेत्रफल बढ़ते जा रहा है। भविष्य में इसमें और अधिक विस्तार की संभावना है। उन प्रखण्डों में जनसंख्या अधिक है। जहाँ अधिवास, सड़क, रेलमार्ग, नहर, व्यापार एवं औद्योगिक क्षेत्र का विस्तार अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। जहाँ नगरीकरण हुआ है, वहाँ कृषेत्तर कार्यों में संलग्न भूमि का क्षेत्रफल अधिक है। पटना जिला बिहार की राजधानी है। इसके अलावा यहाँ 5 अनुमंडल और 23 प्रखण्ड है। इन स्थानों में कृषेत्तर कार्य में संलग्न भूमि अपेक्षाकृत अधिक है।

5. **अन्य उपयोग में आनेवाली भूमिः**- इस श्रेणी में बाग, बगीचे, उधान, अन्य परती भूमि एवं बंजर भूमि को शामिल किया गया है। पटना जिला में बाग-बगीचों उधान एवं अन्य परती भूमि भी है जो यहाँ के भूमि उपयोग का क्षेत्रफल 19448.79 हेक्टेयर (6.67 प्रतिशत) है। गाँव के सम्पन्न किसान या जागरूक व्यक्ति अपने निजी भूमि में फलदार पौधा या लकड़ी के लिए मूल्यवान पौधे लगाते है। एक तो इससे फल और लकड़ी मिल जाती है और दूसरी और पर्यावरण का संरक्षण होता है। वायुमंडल को शुद्ध करने में बाग-बगीचे, पेड़-पौधे इत्यादि का महत्वपूर्ण भूमिका है। जल, जीवन, और हरियाली कार्य योजना के तहत हरित क्षेत्र का रकवा बढ़ाया जा रहा है। इसके अलावे इस क्षेत्र में बंजर भूमि को भी शामिल किया गया है।

निष्कर्षः- इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि पटना जिला की भूमि उर्वरा है। अतः यहाँ कृषि कार्य में संलग्न भूमि सर्वाधिक अर्थात (66.63 प्रतिशत) है चालू परती भूमि (8.00 प्रतिशत) कृषि योग्य बंजर भूमि (0.05 प्रतिशत) कृषेत्तर कार्य में व्यवहृत भूमि (17.85 प्रतिशत) एवं अन्य उपयोग में लायी गयी भूमि (6.07 प्रतिशत) है। हाल के वर्षों में पटना जिला में नगरीकरण कार्य तिव्रगति से बढ़ा है। फलस्वरूप आधारभूत संरचना और सड़क, रेलमार्ग, सार्वजनिक भवन, अधिवास, हवाई अड्डा, चिकित्सालय बाजार इत्यादि में संलग्न भूमि के अंश में वृद्धि हुआ है। कृषेत्तर कार्य में संलग्न भूमि का क्षेत्र बढ़ने से कृषि कार्य में संलग्न भूमि का क्षेत्रफल में कुछ कमी हो रहा है। अतः भूमि का विवेकपूर्ण उपयोग आवश्यक है। भूमि का विवेकपूर्ण उपयोग से जिला के लोगों का समुचित विकास होगा और लोग सुखी होगें।

संदर्भ सूचीः-

1. सिंह जशवीर एवं ढिल्लन एस.एस. (1982) एग्रीकल्चर ज्योग्राफी टाटा मैग्रों हिल, लिमिटेड नयी दिल्ली।
2. स्टाम्प एल॰ डी॰ (1950)''द लैण्ड ऑफ ब्रिटेन, इट्र्स यूज एण्ड मिशयूज'' सेकेंड एडिशन, लौंग मैन, ग्रीन, एण्ड कम्पनी लिमिटेड, लंदन।
3. चटर्जी, एस॰बी॰ (1948)''लैण्ड यूटिलाइजेशन 24 परगना डिस्ट्रीक्ट, पश्चिम बंगाल'' कलकत्ता।
4. शफी मो॰ (1963),''एग्रीकलचरल प्रोडक्टविटी एण्ड रीजनल इम्बैलेंशः ए स्टडी ऑफ उत्तर प्रदेश'' कंसेप्ट पब्लिकेशन कम्पनी, नयी दिल्ली।
5. अताउल्लह मो॰, एवं मुसलिम्मुदिन, मो॰ (2002) बिहार का आधुनिक भूगोल ब्रिलिएन्ट प्रकाशन, पटना पृ॰ 60।
6. सिंह बी॰ बी॰ (1979), ''एग्रीकल्चरल ज्योग्रफी'' तारा पब्लिकेशन वाराणसी।
7. सिंह, बी॰ एन॰ (1968), ''एग्रीकल्चरल इफिसिएन्सी इन इंडिया'', विशाल पब्लिकेशन, कुरूक्षेत्र।
8. सिंह आर॰ पी एण्ड कुमार अनिल (1970), ''मोनोग्राफ ऑफ बिहार'' भारती भवन, पटना।
9. प्रसाद आर॰ एस॰ एण्ड सिन्हा, के॰ एस॰ (1917) ''डायमर्सिफिकेशन ऑफ एग्रीकल्चर एण्ड रूरल डेभलपमेंट ऑफ बिहारः ए ज्योग्रफिकल स्टडी ज्योग्रफिकल पर्सपेक्टिव'', डिपार्टमेंट ऑफ ज्योग्रफी पटना यूनिभर्सिटी पटना भॉल्युम 16।
10. सिंह, एच॰ के॰ एण्ड प्रसाद आर॰ एस॰ (2019) नालंदा जिला के सतत् कृषि विकास में बदलते फसल संयोजन का प्रभावः एक भौगोलिक विश्लेषण'' राँची यूनिभर्सिटी प्रेस, राँची भॉल्युम XXVIII।

काश्मीर शैवदर्शन में सृष्टिप्रक्रिया : तत्त्वमीमांसीय दृष्टिकोण

डॉ० प्रदीप

(सहायक प्रोफेसर), संस्कृत विभाग (साहित्य विद्यापीठ), महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र (भारत)

Abstract (संक्षिप्तिका) :- भारतीय ज्ञानपरम्परा में धर्म, दर्शन, संस्कृति एवं अध्यात्म के संदर्भ में विविध प्रकार के गम्भीरपरक ज्ञानविषयों का वर्णन मिलता है। इनमें मोक्ष, अपवर्ग, जीव, जगत्, सृष्टि, एवं परमतत्त्व इत्यादि आध्यात्मिक विषय प्रसिद्ध हैं। संसार के स्वरूप को लेकर भारतीय ज्ञानपरम्परा के ग्रन्थों में पदे पदे साक्षात्कार परिलक्षित होता है। संसार के रहस्य को जानने की उत्कण्ठा मानव समाज में प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान तक बौद्धिक मीमांसा का प्रमुख भाग रही है। इसके संदर्भ में वैदिक साहित्य की ऋचाओं में तथा प्रमुख सूक्तों में सरलतापूर्वक वर्णन प्राप्त होता है। भारतीय ज्ञानपरम्परा के प्रथम ग्रन्थ ऋग्वेद में ऋषि के द्वारा सृष्टि रहस्य की उत्कण्ठा के संदर्भ में स्पष्ट कहा गया है –

"को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्कुत अजाता कुत इयं विसृष्टि:।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद कुत आबभूव"।।[1]

इस प्रकार सृष्टि रहस्य विषयक प्रश्न साधकों एवं योगियों की साधना का प्रमुख केन्द्रित विषय है। व्याकरण की दृष्टि से जब हम इस विषय पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि संसार को सृष्टि के संदर्भ में विविध ज्ञानग्रन्थों में प्रतिपादन किया गया है। सृष्टि शब्द की व्युत्पत्ति "सृज्" धातु में क्तिन् प्रत्यय के सयोंग करने से होती है। जिसका अर्थ होता है - संसार की रचना, प्रकृति या प्राकृतिक संम्पत्ति आदि।[2] इस संदर्भ में भारतीय दार्शनिक ज्ञानपरम्पराओं में तत्त्वमीमांसीय दृष्टि अनेक प्रकार से विचार प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत शोधपत्र में "काश्मीर शैवदर्शन में सृष्टिप्रक्रिया : तत्त्वमीमांसीय दृष्टिकोण" विषय को केन्द्र में रखकर दार्शनिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। यह शोधपत्र विद्यार्थियों, शोधार्थियों एवं काश्मीर शैवदर्शन के पाठकों के लिए सामान्य जानकारी प्रदान में मौलिक चिन्तन को प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध होगा ।

शब्द-संकेत (Key words):- सृष्टिप्रकिया, प्रमुख तत्त्व, परमशिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, सद्विद्या, माया, पञ्चकञ्चुक एवं पुरुष, प्रकृति, अन्त:करण इत्यादि।

विषय (Subject) :- भारतीय ज्ञानपरम्परा में काश्मीर शैवदर्शन का अन्यतम स्थान माना जाता है। यह दर्शन तन्त्र, आगम, धर्म, संस्कृति, कला, अध्यात्म, योग, साधना एवं प्रकृति के विभिन्न विषयों की विशद व्याख्या प्रस्तुत करता है। इसको ज्ञानपरम्परा में त्रिकदर्शन, अद्वैतवादिदर्शन, प्रत्यभिज्ञादर्शन, स्पन्दर्शन एवं शिवाद्वयवादी दर्शन इत्यादि अनेक नामों से जाना जाता है। इसका आधार आगमशास्त्र हैं। आगमशास्त्रों का उत्स भगवान शिव के मुख से माना गया है।

आगमशास्त्रों के सृष्टा एवं स्वयं वक्ता शिव हैं। इन शास्त्रों में शिव एवं पार्वती संवादों का वर्णन किया है। यहाँ सम्पूर्ण विश्व शिव का आभासमात्र है। यह शिव चेतना का अवभासात्मक प्रकाशरूप है। चेतना जहाँ भी रहती है। वहाँ वह प्रकाशित होती रहती है। प्रकाश का स्वभाव विमर्श होता है। इसके संदर्भ में शिवदृष्टि के रचनाकार आचार्य सोमानन्द ने में स्पष्ट कहा है -

"अस्मद्रुपसमाविष्ट: स्वात्मनात्मनिवारणे।
शिव: करोतु निजया नम: शक्तया तदात्मने"।।[3]

अर्थात् शिव ही आत्मरुप है। वह निज शक्ति से स्वयं को सर्वत्र प्रकाशित करता रहता है। यह शिव का स्वभाव है। काश्मीर शैवदर्शन में सृष्टि को शिव का विलास कहा गया है। संसार में शिव से भिन्न अन्य कोई वस्तु नहीं है। यह शिवसंसार का परमकारण है।[4] विश्व की सृष्टि और प्रलय, बन्धन और मोक्ष की कल्पना उसका स्वातन्त्र्य स्वभाव है।[5] उसके इस स्वभावरुप स्वातन्त्र्यशक्ति की संज्ञा स्पन्द है।[6] इसी स्वभाव के कारण वह पञ्चविध कृत्यों में निरन्तर संलग्न रहता है। इन पञ्चकृत्यों में क्रमश: सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रह की गणना की जाती है। इनके द्वारा वह स्वयं को आनन्दित करते हुए जगत के क्रियाकलापों में आभसित करता है। इस सारांश रूप वर्णन इस प्रकार है।

1. सृष्टि : सृष्टि का निर्माण करना।
2. स्थिति : जगत् का ठहराव और नियमपूर्वक उसका पालन करना।
3. संहार : जगत् सर्जन पुन: समेट लेना
4. तिरोधान : परमशिव द्वारा स्वयं के वास्तविक स्वरूप का विलय, तिरोधान, निग्रह, आवरण कर लेना।
5. अनुग्रह : परमशिव अपने प्रकाश शक्ति से शिष्य पर अनुग्रह करना।

काश्मीर शैवदर्शन में सृष्टिप्रक्रिया को ज्ञान की दृष्टि से तीन भागों में विभाजित किया गया है। यह विभाजन तत्त्वमीमांसा के छत्तीस तत्त्वों का किया गया है। जिसमें मुख्यत: शुद्ध सृष्टि, शुद्धाशुद्ध सृष्टि एवं अशुद्ध सृष्टि का परिगणन प्रतिपादित हैं।

1. शुद्ध सृष्टि :- इस सृष्टि में शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या का स्वरूप वर्णन होता है।
2. शुद्धाशुद्ध सृष्टि :- इस सृष्टि में माया, काल, कला, नियति, विद्या, राग, पुरुष का वर्णन प्रतिपादित है।
3. अशुद्ध सृष्टि :- इस सृष्टि में अव्यक्त महत् अंहकार, मन, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च क्रमेन्द्रियाँ, पञ्च तन्मात्रा, पञ्च महाभूतों का वर्णन किया जाता है।

इस प्रकार त्रिविध विभाजन के अनुसार इन छत्तीस तत्त्वों सरलता के साथ विवेचित किया गया है।

1. शिवतत्त्व :- काश्मीर शैवदर्शन की सृष्टिप्रक्रिया में शिव ही एकमात्र परमतत्त्व है। वह परमशिव शुद्ध अद्वैत की तत्त्वातीत अवस्था है। इसको ही परमकारण कहा गया है-"शिव परमकारणम्"।[7] इसी प्रकार अन्यत्र इसको अनुत्तर तत्त्व भी कहा जाता है। यह सदैव दो भाव विश्वमय और विश्वोतीर्ण में रहता है। इस चित् की शक्ति चित्ति है- "चिति: स्वतन्त्रता विश्वसिद्धिहेतु:"।[8] यह अपनी स्वेच्छा से विश्व का निर्माण करता है- "स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति"।[9] इसको अनेक नामों से जाना जाता है। इसे परमेश्वर, परा संवित् या परमशिव आदि कहा जाता है। यह तत्त्व संसार की हर जड और चेतन में विद्यमान है। यह नित्य और अनन्त है। यही तत्त्व प्रकाश और विमर्श के स्वातन्त्र्य-रुप से भासमान होने के कारण शिवतत्त्व कहा जाता है।[10] अत: यह सत्य प्रकाश का आभासरूप कहा गया है।[11]

2. शक्तितत्त्व :- यह परमशिव की आभासरुपता का दुसरा तत्त्व है। यह शिव का अभिन्नरुप है। यह प्रकाशात्मा है। विमर्श ही इसका स्वभाव है। इसे ही विश्वमय के नाम से भी जाना जाता है।शिव और शक्ति दोनों में अविनाभाव सम्बन्ध है।[12] शिव अनुत्तर तत्त्व है, शक्ति तत्त्व अनुत्तरा कहलाती है। इन दोनों में परस्पर भेद नही है। आचार्य सोमानन्द ने शिवदृष्टि में भी कहा है- "शक्ति शक्तिमतोर्भेद शैव जातु न विद्यते"।[13] यही अनुत्तर तत्त्व ज्ञान व क्रिया का समवेत रूप है। इस तत्त्व को परावाक्, स्वातन्त्र्य आदि नामों से भी जाना जाता है। शिव में जो पूर्ण अकृत्रिम अहंभाव है उसी कोविमर्श शक्ति कहते हैं। इसके अभाव में शिव अनीश्वर एवं जड हो जाता है। क्योंकि दोनों तत्त्व एक ही है। नेत्रतन्त्रटीका में भी कहा गया है-

"शक्तिश्च शक्तिमांश्चौव पदार्थद्वयमुच्यते।
शक्त्योऽस्य जगत्कृत्स्नं शक्तिमांश्च महेश्वर:"।।[14]

शिव के बिना शक्ति एवं शक्ति के बिना शिव की कल्पना भी नही की जा सकती है। शक्ति के पञ्चविध स्वरुपों का सामान्य वर्णन इस प्रकार है।

1. चित् शक्ति :- परमशिव प्रकाश्य वस्तुओं के अभाव में भी स्वयं प्रकाशित करना।
2. इच्छाशक्ति :- परमशिव अपने को स्वतन्त्र और अप्रतिहत इच्छा से सम्पन्न अनुभव करते हैं।
3. आनन्द शक्ति :- वस्तुओं के उपयोग के बिना ही परमेश्वर पर निरतिशय आनन्द में मग्न रहना।
4. ज्ञान शक्ति :- शिव स्वयं ज्ञानरुप है तथा सभी पदार्थों का पूर्ण ज्ञान है।
5. क्रिया शक्ति :- शिव स्वयं को सभी रूपों में धारण करने में स्वतन्त्र हैं।

3. सदाशिव :- सदाशिव सदाख्य तत्त्व भी कहते हैं।[15] इस तत्त्व में अहन्ता और इच्छा-प्राधान्य रहता है। जब शक्ति में उन्मेष होता है, तब सृष्टि होती है। जब निमेष होता है तब जगत् का लय होता है। इसी उन्मेष के कारण सदाशिवतत्त्व की अभिव्यक्ति होती है। सृष्टि के विकास में यह पहला तत्त्व है, जिससे सत् का ज्ञान होता है। इस अवस्था में ब्रह्माण्ड या अनुभव का इदम् अंश धुँधले विचार के रुप में रहता है। इसमें मै और विश्व में कोई भी भेद नही रहता है। सदाशिव की इस दशा में मन्त्रमहेश्वर कहा जाता है।

4. ईश्वर :- यह तत्त्व चतुर्थ है। इसमें ज्ञान की सर्वाधिक प्रधानता रहता है। इसमें अहं का ज्ञान और विश्व का आभास दोनों समानरुप से एक साथ विद्यमान रहता है। यहाँ अहम् अंश गौण रहत है और इदम् की प्रधानता होती है। "यह मैं हूँ" इसका शुद्ध प्रत्यय सहित ज्ञात होता है। अर्थात् विश्व का स्फुटता होने वाला वेद्य परामर्श ही ईश्वरतत्त्व कहलाता है।[16] इसमें प्रमाता की संज्ञा मन्त्रेश्वर कहलाती है।

5. शुद्धविद्या :- काश्मीर शैवदर्शन में इस तत्त्व को शुद्ध विद्या या सद्विद्या के नाम से जाना जाता है। इसमें क्रिया का प्राधान्य होता है। इस अवस्था में विमर्श का रूप "अहम् इदम्" प्रत्यय द्वारा प्रकट किया जाता है।[17] यहाँ भेदाभेद की अवस्था रहते हुए भी "मैं" और "यह" की बराबर स्थिति बनी रहती है। अर्थात् इसमें यह ज्ञान होता है कि मैं विश्व हूँ। यह मेरा रूप मुझसे भिन्न नही है। इसलिये इसे शुद्धविद्या कहते हैं। इस प्रकार इन पाँच तत्त्वों को शिव अपनी इच्छा से अवभासित करता है। जिनका वर्णन "तन्त्रालोक" में इस प्रकार किया गया है-

"तदेवं पंञ्चकमिदं शुद्धोऽध्वा परिभाष्यते।
तत्र साक्षाच्छिवेच्छैव कर्त्र्यभासितभेदिका"।।[18]

इन भेदों का नाम इस प्रकार है-

"शक्तिजा मन्त्रमहेशा मन्त्रनायका:।
मन्त्रा इति विशुद्धा: स्युरमी पंचगणा: क्रमात्"।[19]

इस क्रम को शांभव, शक्तिज, मन्त्रेश्वर, मन्त्रनायक तथा मन्त्र कहा गया है। इस प्रकार यहाँ तक की सृष्टि शुद्ध सृष्टि कही जाती है।

6. माया :- माया परमेश्वर की स्वातन्त्र्य शक्ति है, जो भेद-दशा का अवभासन करने के कारण माया-शक्ति कहलाती है-"परमेश्वरस्य भेदावभासने स्वातन्त्र्यं तदेवाव्यतिरेकिणि अपूर्णताप्रथनेन मीनाति हिनस्ति इति मायाशक्ति: उच्यते"।[20] यह परमेश्वर की स्वरूपगोपनात्मिका इच्छाशक्ति भी कहलाती है। इस माया के पाँच कञ्चुक हैं।जिनका सृष्टिप्रक्रिया में विशेष स्थान है।

पञ्चकञ्चुक :- माया के पाँच कञ्चुकों का जीव पर सर्वाधिक प्रभाव होता है। अयह प्रभाव जीव के सभी गुणों में स्पष्ट परिलक्षित होता है। इनका सारांश रूप में वर्णन इस प्रकार है।

क. कला :- इसमें के द्वारा कर्तृत्व का संकोच होता है।शिव का स्वातान्त्र्य सीमित हो जाता है।उसके सर्वकर्तृत्व के स्थान पर किञ्चित् कर्तृत्व आ जाता है। अतः इसे किञ्चित्कर्तृत्वोद्बलनमयी कहा गया है।[21]

ख. विद्या :- इस अवस्था में ईश्वर का सर्वज्ञत्व सिमटकर किञ्चिज्ञत्व में आ जाता है। जीव में कुछ वेद्यों का ज्ञान उत्पन्न होने के कारण इसे किंचिज्ज्ञत्वोन्मीनरूपा कहा गया है।

ग. राग :- यह तत्त्व कञ्चुक पूर्णतृप्ति से यत्किञ्चित् भोगों का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। इस अवस्था में जीव किसी भी वस्तु मम् समझकर उसे गुणशालिनी मानने लगता है। अतः इस गुणारोपणनय शक्ति को ही राग कहा गया है।[22]

घ. काल :- इसके द्वारा परमेश्वर नियत्व संकुचित् होकर अतीत ,वर्तमान और अनागत में परिच्छिन्न हो जाता है अतः यह काल कहलाता है।

ड़. नियति :- इस अवस्था में परमेश्वर का स्वातान्त्र्य संकुचित होकर विशिष्ट कार्य के लिये विशिष्ट कारण का नियम धारण करता है। नियम की नियामिका होने के कारण यह नियति कहलाती है।[23]

पुरुषतत्त्व :- पुरुष तत्त्व बारहवाँ तत्त्व होता है। जब जीव पञ्च कञ्चुकों से संकुचित होकर शिव पुरुषरुप (जीव) धारण कर लेता है। जब यह शिव पुरुषरूप धारण करता है तो पुरुष कहालाता है-"मायागृहीतसंकोचः शिवः पुंस्तत्मुच्यते"।[24] यह सब शिव स्वेच्छा के आनन्द हेतु करता है। इस प्रकार पुरुष तत्त्व तक की सृष्टि शुद्धाशुद्ध सृष्टि कहलाती है।

प्रकृति :- माया प्रमाता का जो सामान्य आचार इदम् इतने ही रुप को अवभासित हुआ प्रमेय तत्त्व होता है, उसे प्रकृति कहते हैं। शिव के भेदमय दृष्टिकोण से अवभासित होता हुआ जो उसका वेद्यरूप विश्व का अविभक्त सामान्य आकार है उसे ही प्रकृतितत्त्व रूप में जाना जाता है।

सद्विद्या के अहम् अंश से पुरुष का उन्मेष एवं इदम् अंश से प्रकृति का उन्मेष होता है। यह त्रिगुणात्मिका है। यही तत्त्वों के विकास का प्रधान और मूलकारण है। इससे 23 प्रमेयों का विकास होता है-

"त्रयोविंशतिधा मेयं यत्कार्यकारणात्मकम्।
तस्याविभागरूप्येकं प्रधानं मूलकारणम्"।।[25]

काश्मीर शैवदर्शन के छत्तीस तत्त्वों द्वारा सृष्टि का सर्जन माना गया है। इनमें शक्ति की विशेष प्रधानता है।

अन्तःकरण :- काश्मीर शैव के त्रिविध अन्तकरणों महत, अहंकार एवं मनस्-तत्त्वों का प्रतिपादन किया गया है। इनका सारांश रूप में वर्णन इस प्रकार है।

क. महत्-तत्त्व :- अन्तःकरण में सर्वप्रथमं सत्त्वगुण से युक्त प्रधान भाव उत्पन्न होता है। यह बुद्धितत्त्व के नाम से जाना जाता है। यह तत्त्व अपनी स्वच्छता के कारण सृष्टि की वस्तुओं में आभासित होता है। इसको ज्ञान और क्रिया का साधन कहा गया है।

ख. अहंकार-तत्त्व :- यह तत्त्व रजोगुण की प्रधानता से युक्त होता है। इसमें अहं की भावना सर्वाधिक होती है। यथा – मैं जानता हूँ , केवल मैं ही इस कार्य को कर सकता हूँ। अतः इसको "अभिमानोरूपोऽहङ्कारः" भी कहा गया है।[26]

ग. मनस्-तत्त्व :- यह तत्त्व इन्द्रियों के सहयोग से प्रत्यक्ष का अनुभव एवं संकल्प तथा विकल्प करता है। मनुष्य के विचारों को उत्पन्न करने वाली शक्ति ही मनस्-तत्त्व कहलाती है। यह अहंकार का परिणाम होता है। प्रत्येक कार्य में संकल्प और विकल्प करना ही इसका प्रमुख कार्य माना गया है।

पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ :- यह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मानव के व्यवहारों को सम्पादित करती हैं। इनकी व्युत्पत्ति अहङ्कार के परिणाम स्वरूप होती है। जिसका सार वर्णन इस प्रकार है।

- **चक्षु** :- इसका प्रमुख कार्य रूपवर्ण के आकार की जानकारी प्रदान करना है।
- **श्रवण** :- इसका प्रमुख कार्य सुनने की शक्ति को प्रदान करना है।
- **घ्राण** :- इसका प्रमुख कार्य गन्ध की जानकारी प्राप्त करना है।
- **रसना** :- इसका प्रमुख कार्य स्वाद की जानकारी प्राप्त करना है।
- **स्पर्श** :- इसका प्रमुख कार्य शीतोष्ण की जानकारी प्रदान करना है।

पञ्च कर्मेन्द्रियाँ :- यह पाँच क्रमेन्द्रियाँ मानव के कर्मकार्यों को सम्पादित करती हैं। जिसका सार वर्णन इस प्रकार है।

- **वाक्** - इसका प्रमुख कार्य बोलने की क्षमता प्रदान करना है।
- **पाणि** - इसका प्रमुख कार्य- कार्य करने का साधन प्रदान करना है।
- **पाद** - इसका प्रमुख कार्य गमन करने का साधन प्रदान करना है।
- **पायु** - इसका प्रमुख कार्य विसर्जन करने का साधन प्रदान करना है।
- **उपस्थ** - इसका प्रमुख कार्य आनन्द को व्यक्त करने का साधन प्रदान करना है।

पञ्च तन्मात्रा :- यह पञ्च महाभूत पञ्चतन्मात्राओं का परिणाम है। जिसका सार वर्णन इस प्रकार है।

- **शब्द** :- यह आकाश का गुण है।

- **स्पर्श** :- यह वायु का गुण है ।
- **रूप** :- यह अग्नि का गुण है ।
- **रस** :- यह जल का गुण है ।
- **गन्ध** :- यह पृथ्वी का गुण है।

पञ्चमहाभूत :- ये पंचतन्मात्राओं का परिणाम है। जिनका वर्णन इस प्रकार है।

- **आकाश** :- यह पञ्च महाभूतों में प्रथम तत्त्व माना गया है। यह शब्द तन्मात्रा में परमेश्वर के इच्छा के क्षोभ से होता है। यह कार्यजनन और उन्मुखता को प्रकट करता है। तन्त्रालोक में भी कहा गया है ख्र "क्षुभितमति कार्यजन्नोन्मुखमित्यथः"।[27]
- **वायु** :- यह स्पर्श तन्मात्रा का परिणाम है।
- **तेज** :- यह रूप तन्मात्रा का परिणाम है।

  यह रस तन्मात्रा का परिणाम है। यह शब्द-स्पर्श-रूप-र्स की क्षुभित अवस्था से उत्पन्न होता है।
- **पृथ्वी** :- गन्ध तन्त्रमात्रा ही इसका इसका मुख्य उपादान है। पृथ्वी को गन्धवती कहा जाता है। तन्त्रालोकविवेक में स्पष्ट कहा गया है – "गन्ध त्वं भूमेर्लक्ष्णम्"।[28]

इस प्रकार से सृष्टिप्रक्रिया में उपयुर्युक्त सभी तत्त्वों का कार्यसम्पादन होता है। सभी तत्त्व अपने गुण-धर्म के अनुसार कार्य करते हैं। इन सभी तत्त्वों के द्वारा सृष्टि अथवा संसार की निर्मिति होती है।

Conclusion (उपसंहार) :- अन्त में निष्कर्ष से कहा जा सकता है कि काश्मीर शैवदर्शन में वर्णित सृष्टि विशयक चिन्तन बहुत ही गम्भीर एवं चिन्तकपरक है। यह साधकों के द्वारा साधित किया गया है। तत्त्वमीमांसा की दृष्टि से यहाँ तत्त्वों की सर्वाधिक संख्या का विवेचन है। इन सभी तत्त्वों का मूल कारण परमशिव है। उसकी स्वेच्छा ही जगत का निर्माण करता है। प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में भी कहा गया है- "स्वेच्छया स्वभितौ विश्वमुन्मीलयति"। वह अपने आनन्द के लिए स्वयं की भित्ति पर पञ्चकृत्यकारी स्वरूप ग्रहण करते हुए जगत की रचना करते हैं ।

साधक इसको अनुभव के द्वारा साधित करते हैं। काश्मीर शैवदर्शन की सृष्टिप्रक्रिया में तत्त्वमीमांसा सर्वाधिक प्रबल मानी गई है। इसके संदर्भ में काश्मीर शैवग्रन्थों में अनेकानेक तथ्यों का वर्णन मिलता है। जिसमें सृष्टिप्रक्रिया का मूल कारण परमशिव को कहा गया है। तन्त्रालोक में स्पष्ट कहा गया है - "शिवः परमकारणम्"।

Bibliography (संदर्भ ग्रन्थ सूची)

1. तन्त्रालोक : अभिनवगुप्त, भाग-१-२, राजानक जयरथ कृत विवेक व्याख्या सहित, परमहंस मिश्र (हिन्दी भाष्य एवं सम्पादक), वाराणसी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, 1922
3. तन्त्रसार : अभिनवगुप्त, राजानक जयरथ (व्याख्याकार) सं० मधुशुदन कौल शास्त्री, श्री नगर, काश्मीर सीरिज आफ टेक्स्ट्स एण्ड स्टडीज, 1918
4. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी : भाग- 1-2, अभिनवगुप्त, सं० मधुशुदन कौल शास्त्री, श्री नगर, काश्मीर सीरिज आफ टेक्स्ट्स एण्ड स्टडीज, 1921
5. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी : अभिनवगुप्त, (भास्करी सहित), के.ए.एस.अय्यर तथा के.सी.पाण्डे (संपादक), दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, 1986
6. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् : क्षेमराज, शिवशंकर अवस्थी, शास्त्री, (व्याख्याकार एवं सम्पादक), वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, 1970
7. शैवदर्शन एवं स्पन्दशास्त्र : डॉ श्यामकान्त द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-2009

भारतीय संस्कृति का सिंगापुर में प्रादुर्भाव

आशा कुमारी सिन्हा

शोधार्थी, इतिहास विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय पटना

सार

विशाल इमारतें, तेजी से विकास, और आर्थिक विकास जो अपनी हरियाली के रूप में उतना ही फलता-फूलता है, सिंगापुर का हलचल वाला महानगर होनहार व्यवसायों, बाजारों और व्यापार से भरा हुआ है। लेकिन वास्तव में शहर के भीतर जो फलता-फूलता है वह आंखों के देखने से परे है। चीनी, मलय, भारतीय और कई अन्य जातियों से बनी, सांस्कृतिक विरासत सिंगापुर, को बनाती है - विभिन्न संस्कृतियों का एक समूह जो एक अनुकूल स्थान में सह-अस्तित्व में है। सिंगापुर में भारतीय संस्कृति का अद्‌भुत छाप एवं पहचान देखने को मिलता है। भारतीय समूह सबसे विविध है, जिसमें तमिल (आधे से अधिक), मलयाली और सिख शामिल हैं; इसमें पाकिस्तानी और सिंहली समुदाय भी शामिल हैं। इस पत्र के माध्यम से भारतीय संस्कृति का सिंगापुर में प्रादुर्भाव पर विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्दः सिंगापुर; भारतीय संस्कृति; प्रादुर्भाव; भारतीय संपर्क; मलय संस्कृति।

परिचय

जब सर स्टैमफोर्ड रैफल्स 1819 में सिंगापुर गए, तो उनके साथ सिंगापुर में 2320 भारतीय बसने वालों का एक दल था, और वे मुख्य रूप से चाइनाटाउन में चुलिया स्ट्रीट के पास के क्षेत्र में रहते थे, जिसे रैफल्स ने मूल रूप से भारतीय समुदाय के लिए नामित किया था। 19वीं सदी के अंत में, कई भारतीय प्रवासी काम की तलाश में सिंगापुर आए, चाहे वह सड़क बनाने के लिए हो, दलदलों को साफ करने के लिए या सिविल सेवा में महत्वपूर्ण पदों को लेने के लिए। जिस स्थान पर आज लिटिल इंडिया खड़ा है, वहां भारतीयों की आमद के दो प्रमुख कारण थे, मिस्टर बेलिलोस (कलकत्ता से एक यहूदी भारतीय) जैसे धनी पशु व्यापारियों द्वारा रोचोर नदी के पास उपजाऊ भूमि पर पशु-पालन की शुरुआत, और भवन 1843 में पास के यूरोपीय लोगों के लिए रेस कोर्स। कलकत्ता, मद्रास और मलाया के अप्रवासी यहां आते थे और सदी के अंत तक, यह क्षेत्र, जो कभी जुआरी, केले और सब्जियों के बागानों से आच्छादित था, भारतीय समुदाय के लिए एक समृद्ध वाणिज्यिक केंद्र बन गया था। . सेरंगून रोड के दोनों ओर से फैले भारतीय समुदाय के इस छोटे से एन्क्लेव को प्यार से लिटिल इंडिया के नाम से जाना जाने लगा।[1]

प्राचीन भारत के संपर्क ने सिंगापुर की स्वदेशी मलय संस्कृति पर गहरा प्रभाव छोड़ा और भारतीयों का द्वीप पर बड़े पैमाने पर प्रवास केवल 1819 में अंग्रेजों द्वारा आधुनिक सिंगापुर की स्थापना के साथ शुरू हुआ। प्रारंभ में, भारतीय आबादी क्षणिक थी, जिसमें मुख्य रूप से युवा पुरुष शामिल थे। बहुत सारे कार्यकर्ता, सैनिक और अपराधी के रूप में आए। 20वीं सदी के मध्य तक, एक अधिक संतुलित लिंग अनुपात और आयु समूहों के बेहतर प्रसार के साथ एक बसे हुए समुदाय का उदय हुआ था। सिंगापुर की भारतीय आबादी अपने वर्ग स्तरीकरण के लिए उल्लेखनीय है, जिसमें बड़े अभिजात वर्ग और निम्न आय वर्ग हैं। यह 1990 के दशक से भारत से सुशिक्षित और अकुशल दोनों तरह के प्रवासियों की आमद के साथ और अधिक स्पष्ट हो गया है, जिसने नए विरोधाभास पैदा किए हैं। आज, भारतीय चीनी या मलय की तुलना में अधिक औसत मासिक आय अर्जित करते हैं और इन समूहों की तुलना में विश्वविद्यालय की डिग्री रखने की अधिक संभावना है। साथ ही, भारतीय प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय के छात्र प्रमुख परीक्षाओं में राष्ट्रीय औसत से कम प्रदर्शन करते हैं।[2]

सिंगापुर के भारतीय भाषाई और धार्मिक रूप से विविध हैं, जिनमें जातीय तमिल और नाममात्र के हिंदू बहुसंख्यक हैं। भारतीय संस्कृति लगभग 200 वर्षों में स्थायी और विकसित हुई है। 1990 के दशक तक, यह समकालीन दक्षिण एशियाई संस्कृतियों से कुछ अलग हो गया था, यहां तक कि भारतीय तत्व सिंगापुर की व्यापक संस्कृति के भीतर फैल गए थे। तब से, नए अप्रवासियों ने स्थानीय भारतीय आबादी के आकार और जटिलता में वृद्धि की है। कम लागत वाले वाहक, केबल टेलीविजन और इंटरनेट अब स्थानीय भारतीय समुदाय को भारत की संस्कृति और भारतीय डायस्पोरा से जोड़ते हैं। प्रमुख भारतीय व्यक्तियों ने लंबे समय से राष्ट्रीय जीवन में विभिन्न क्षेत्रों के नेताओं के रूप में सिंगापुर में अपनी पहचान बनाई है। राजनीति, शिक्षा, कूटनीति और कानून जैसे क्षेत्रों में भी भारतीयों का सामूहिक रूप से अच्छी तरह से प्रतिनिधित्व किया जाता है, और कभी-कभी अधिक प्रतिनिधित्व किया जाता है।[3]

सिंगापुर में उड़ीसा पदचिह्न

80 के दशक के मध्य में, आधुनिक सिंगापुर ने सिंगापुर में अपनी बढ़ती अर्थव्यवस्था में शामिल होने के लिए भारतीय प्रवासियों को आकर्षित करना शुरू कर दिया और इसके कारण युवा और महत्वाकांक्षी ओडिया काम पर आए और सिंगापुर में रहने लगे। उड़ीसा से पहला व्यक्ति 1987 में अपने मौजूदा

भारतीय जातीय समाज में एक और विविध समुदाय को जोड़ने के लिए सिंगापुर पहुंचा। तब से सिंगापुर में उडिघ्या प्रवासियों का प्रवाह बढ़ता रहा। अधिकांश उडिघ्या प्रवासी विभिन्न क्षेत्रों (शिक्षा, सूचना प्रौद्योगिकी, विनिर्माण, बैंकिंग आदि) में कार्यरत हैं।

सिंगापुर में भारतीय संस्कृति

सांस्कृतिक विरासत सिंगापुर की पहचान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इस तरह कोई अपने विचारों, विश्वासों और जीवन के तरीके को व्यक्त करता है। सिंगापुर में हम इतनी सारी जातियाँ पा सकते हैं। चीनी और मलय के अलावा, यह भारतीय हैं जो देश का अधिकांश हिस्सा बनाते हैं। सिंगापुर में भारतीय समुदाय के बड़े हिस्से हिंदू हैं, लेकिन हम ऐसे हिंदुस्तानी पा सकते हैं जो ईसाई, मुस्लिम और बौद्ध भी हैं। वे अपनी स्वादिष्ट करी और रोटियों और साल भर आयोजित होने वाले जीवंत त्योहारों के लिए अत्यधिक प्रशंसित हैं। यह त्यौहार हैं जो भारतीय संस्कृति के महत्व को उजागर करते हैं। रंग, रोशनी, भोजन, नृत्य और गायन सभी संस्कृतियों के लोगों को आनंदित करता है। हिंदू धर्म में गाय को पवित्र पशु माना जाता है। अधिकांश हिंदू बीफ नहीं खाते हैं या वे बौद्ध मान्यताओं के कारण सख्त शाकाहारी होना पसंद करते हैं।[4]

रोशनी का त्योहार, जिसे दीपावली के नाम से जाना जाता है, सिंगापुर और पूरी दुनिया में हिंदुओं द्वारा मनाया जाने वाला एक और कार्यक्रम है। इसका वास्तव में अर्थ है रोशनी की पंक्ति। यह रंगीन दावत अक्टूबर और नवंबर के बीच आती है। दिवाली के दौरान घरों को ताजे आम के पत्तों और कोलम से सजाया जाता है। इस उत्सव के दौरान मीठे शरबत जैसे जेलीबी, नेय उरुंडई, थोसै, मुरुक्कू और वडाई परोसे जाते हैं। लोग सभी समृद्ध रंगों के कपड़े पहनते हैं। इस आयोजन के दौरान दिवंगत लोगों को विशेष रूप से याद किया जाता है। तमिल नव वर्ष अप्रैल के महीने में आता है, और इसे वरुशा पिराप्पू के नाम से भी जाना जाता है। इस दिन के दौरान वे सार्थक और सामंजस्यपूर्ण गतिविधियों में संलग्न होते हैं। हर कोई नए कपड़े पहनता है और खरीदारी करने जाता है, बड़े उत्सव के लिए मिठाई और नमकीन नाश्ता तैयार करता है। नए साल की शुरुआत में दीया जलाने की परंपरा है। एक और जीवंत घटना पोंगल या हार्वेस्ट त्योहार है। सिंगापुर में इस घटना को थाई के शुभ महीने की शुरुआत के रूप में मनाया जाता है। यह एक ऐसा त्योहार है जहां भगवान को प्राथमिकता माना जाता है और भगवान को प्रसाद चढ़ाया जाता है। इस मौसम के दौरान वे पोंगल चावल बनाते हैं, ढोल बजाते हैं, शहनाई बजाते हैं और शंख बजाते हैं। भारत के बहुत सारे अद्भुत सांस्कृतिक उत्सव हैं जो देश में आयोजित किए जाते हैं। इस क्षेत्र में हिंदू भारतीय रीति-रिवाजों और संस्कृति का पालन करते हैं जैसे वे भारत में करते हैं। सिंगापुर में अपने प्रवास के दौरान यदि हम सिंगापुर होटल आरक्षण चाहते हैं, तो हमारे लिए आदर्श होटल कोप्थोर्न किंग्स होटल सिंगापुर होगा जो सिंगापुर शहर के केंद्र में एक असाधारण होटल है।[5]

सिंगापुर में भारतीय अर्थव्यवस्था के साथ-साथ भारतीय प्रवासी समुदाय के तेजी से विकास ने कई भारतीय शैक्षणिक संस्थानों और टाई-अप की स्थापना की है। सिंगापुर सरकार और सामुदायिक संगठनों की ओर से ललित कला के मंदिर, सिंगापुर इंडियन फाइन आर्ट्स सोसाइटी और नृत्यालय एस्थेटिक्स सोसाइटी सिंगापुर को सांस्कृतिक समर्थन भी है, जो भारतीय कला, शिल्प, शास्त्रीय संगीत और नृत्य को बढ़ावा देते हैं। वर्तमान में, सिंगापुर भारत के पटना में प्राचीन नालंदा विश्वविद्यालय को पुनर्जीवित करने के लिए एक अंतरराष्ट्रीय संघ का नेतृत्व कर रहा है। हालाँकि, ये सांस्कृतिक पहल, जैसा कि वे वर्तमान में खड़े हैं, काफी हद तक सरकार द्वारा संचालित हैं, और वे कुछ हद तक सहायक भूमिका निभाते हैं, मुख्य रूप से रुचि समूहों का चयन करने के लिए अपील करते हैं। ये पहल सांस्कृतिक पहचान को राज्य की पहचान के साथ मिलाने का जोखिम उठा सकती हैं, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक दोनों अंतरों को फिर से आकार देने या उन्हें पार करने के बजाय। वे भारत की "असमान विविधता" की श्रृंखला को अत्यधिक सरल बना सकते हैं, और भारत की सांस्कृतिक रूढिघ्यों को पुनः पेश कर सकते हैं, साथ ही राज्य-केंद्रित दृष्टिकोण जो सत्ता की राजनीति और संकीर्ण रूप से परिभाषित राष्ट्रवाद का पक्ष लेते हैं।[6]

वास्तव में हाल के वर्षों में, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अध्ययनों ने यह पता लगाने के लिए अपने दायरे का विस्तार किया है कि कला, फिल्म, साहित्य और यहां तक कि वास्तुकला अंतरराष्ट्रीय संबंधों और सुरक्षा में कैसे योगदान करती है।[7]

इस संबंध में, भारत की महान ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सभ्यतागत ऊंचाई सिंगापुर-भारत संबंधों को मजबूत करने के लिए नए सांस्कृतिक और बौद्धिक आयाम खोलती है। अन्वेषण के लिए भारतीय फिल्म और साहित्य दो सबसे अधिक उत्पादक रास्ते हो सकते हैं। भारत का बॉलीवुड सांस्कृतिक उत्पादन का एक विशिष्ट क्षेत्र है जो अब वैश्विक मंच पर एक बहु-अरब डॉलर का उद्योग है। लंबे समय से "राष्ट्रीय लोकप्रिय" डोमेन में महत्वपूर्ण माना जाने वाला, "ग्लोबल बॉलीवुड" भूगोल, सांस्कृतिक उत्पादन और सांस्कृतिक पहचान के बीच संबंधों को फिर से फ्रेम करना शुरू कर रहा है जो भारत और दुनिया को बदल रहे हैं।[8]

इसी तरह, भारत साहित्य में एक विशाल है, और यह निश्चित रूप से हाल की घटना नहीं है: रवींद्रनाथ टैगोर को 1913 में साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था - यह सम्मान हासिल करने वाले पहले गैर-यूरोपीय थे। तब से, भारत या प्रवासी भारतीयों के लेखकों ने विशेष रूप से अंग्रेजी साहित्य के क्षेत्र में दुनिया की प्रशंसा की है: अरुंधति रॉय, विक्रम सेठ, सलमान रुश्दी, वी.एस. नायपॉल, किरण देसाई, अनीता देसाई, अमित चौधरी और झुम्पा लाहिरी, कुछ नाम है। उनके कार्यों ने न केवल भारत के विचार को बदल दिया है, उन्होंने अंग्रेजी भाषा के परिवर्तन में भी योगदान दिया है। संस्कृति के इन पहलुओं में सिंगापुर-भारत संबंधों को बढ़ाने की क्षमता है, और भारत के साथ सिंगापुर के जुड़ाव में इसे अधिक गंभीरता से लिया जा सकता है। फिल्म और साहित्य भारत के जटिल चेहरों और स्वरूपों को अधिक पर्याप्त रूप से और सटीक रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं। यह भारत की पूर्ण समझ में योगदान देता है, और जुड़ाव के अधिक पारंपरिक क्षेत्रों में सद्भावना पैदा करता है।

दरअसल, दिल्ली के विभिन्न विद्वानों के साथ किए गए साक्षात्कार विदेश नीति और सिंगापुर-भारत संबंधों का हिस्सा बनने के लिए इन क्षेत्रों में सांस्कृतिक जुड़ाव की अत्यधिक इच्छा प्रकट करते हैं। वे ध्यान देते हैं कि संस्कृति का सीमित ज्ञान द्विपक्षीय संबंधों को कैसे नुकसान पहुंचा सकता है, और यह कि भारत के सभ्यतागत लोकाचार और इसके सांस्कृतिक दर्शन - "समानांतर स्थान" और "अंतर्निहित बहुलताएं" - के साथ पर्याप्त रूप से नहीं जुड़े हैं।[9]

भारत के कई त्योहारों और फिल्म में सांस्कृतिक ताकत और साहित्य में सिंगापुर और भारत के लोगों के बीच जुड़ाव के व्यापक मंचों में सहायक नीतियों को दरकिनार करने की काफी क्षमता है। इसी तरह, थिंक टैंक, विश्वविद्यालय और नागरिक समाज सांस्कृतिक ज्ञान के उत्पादक आदान-प्रदान के स्थल हैं जिनका उपयोग करने की आवश्यकता है। जैसा कि भारतीय विचारक देखते हैं, भारत और सिंगापुर की सांख्यिकीय अवधारणाओं के तहत, "सिल्क रोड कॉस्मोपॉलिटनवाद" इन दो संस्कृतियों के भीतर और बीच में जीवित और अच्छी तरह से है, जहां "विभिन्न प्रकार की अंतरंगताएं" हैं फोटो क्रेडिट: फैंडैंगो लिब्री संभव है।[10]

शिक्षा जगत एक प्रमुख स्थल बना हुआ है जहां अंतरराष्ट्रीय संबंधों और विदेश नीति की अवधारणाओं और प्रथाओं पर पुनर्विचार होता है। यह सांस्कृतिक प्रक्रियाओं और प्रस्तुतियों पर महत्वपूर्ण विश्लेषण और दृष्टिकोण प्रदान करता है - जिससे सांस्कृतिक कार्यों, दूसरे की संस्कृति और उन्नत संबंधों की गहरी समझ होती है। पारंपरिक कला और डिजाइन की पेचीदगियों को सांस्कृतिक विरासत के माध्यम से भी मनाया जाता है। पेरानाकन मनके और कढ़ाई तकनीकों के लिए अभ्यास, धैर्य और जुनून की आवश्यकता होती है। इसमें जूतों से लेकर विभिन्न रंगों के सुंदर, लघु मोतियों की सिलाई, कसुत मानेक नामक सुंदर चप्पल बनाना शामिल है। सारंग कबाया, एक पारंपरिक पेरानाकन पोशाक, साथ ही अन्य रोजमर्रा के घरेलू सामानों को सजाने के लिए एक ही शिल्प का उपयोग किया जाता है।

सिंगापुर दुनिया भर के व्यंजनों की एक विस्तृत श्रृंखला परोसता है और भोजन, जैसा कि हम जानते हैं, सांस्कृतिक विरासत का अनुभव करने के लिए सबसे सुलभ प्रवेश द्वारों में से एक है। उदाहरण के लिए, रोजक एक सलाद जैसा व्यंजन है जिसे विभिन्न जातियों द्वारा अलग-अलग तरीके से परोसा जाता है - सिंगापुर में संस्कृति का एक रूपक प्रतिनिधित्व करता है। भारतीय रोजक में स्क्वीड, पके हुए झींगे और बीन दही होते हैं, जिन्हें सब्जियों के साथ डीप फ्राई किया जाता है। मलय रोजक में, किण्वित सोयाबीन को टेम्पेह कहा जाता है, मिश्रण में मिलाया जाता है। और चीनियों के लिए: खीरा, अनानास और आटा पकौड़े एक मीठी चटनी में भीगते हैं।

सांस्कृतिक विरासत सिंगापुर के त्योहारों के पोटपौरी में भी परिलक्षित होती है। यह गर्मजोशीपूर्ण निमंत्रण पड़ोसियों, मित्रों और परिवार को दिया जाता है, चाहे जाति, भाषा या धर्म कुछ भी हो। और कोई फर्क नहीं पड़ता कि ये उत्सव कितने अलग हो सकते हैं, इन सभी में अलग-अलग समानताएँ हैं: पुनर्मिलन, पारंपरिक व्यंजन और शुभकामनाएँ।

पूसा के दिन मुसलमान मस्जिद में नमाज अदा करने के लिए जल्दी उठते हैं। उसके बाद, वे दोस्तों और परिवार से मिलने के लिए रंगीन बाजू कुरोंग में खुद को तैयार करते हैं। चंद्र नव वर्ष के दौरान, शुभकामनाओं के तार का आदान-प्रदान करते हुए विवाहित जोड़ों द्वारा होंगबाओस (लाल धन के पैकेट) दिए जाते हैं। दीपावली के साथ कई मीठे व्यंजन आते हैं: अधिरसम, गुड़ के साथ एक डोनट जैसा इलाज; मुरुक्कू, गहरे तले हुए आटे से बना एक कुरकुरे नाश्ता; और एक मीठे नोट पर समाप्त करने के लिए, लड्डू, मेहमानों को खुशी और समृद्धि के प्रतीक के रूप में पेश किया जाने वाला एक मीठा व्यवहार। ये उत्सव अक्सर विभिन्न जातियों को एक साथ लाते हैं, उन्हें उत्सवों के माध्यम से बंधन के लिए आमंत्रित करते हैं, संस्कृतियों के बीच समझ के अवसर पैदा करते हैं।

निष्कर्ष

सांस्कृतिक विरासत सिंगापुर को बनाती और आकार देती है जिसे हम आज देखते हैं। हालांकि, समय के साथ आगे बढ़ने के लिए लगातार विकसित हो रहे शहर में जीवन की तेज गति के साथ, सांस्कृतिक विरासत को रोजमर्रा की जिंदगी के एक अमूर्त हिस्से के रूप में रखना पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। संस्कृति - कला, फिल्म और साहित्य, यहां खोजे गए कुछ भाव - अंतरराष्ट्रीय और राजनीतिक दोनों हैं, भले ही शायद ही कभी इस तरह से मान्यता प्राप्त हो। इसमें राष्ट्रों और राजनीति के बारे में हमारी समझ को बढ़ाने और इस प्रकार विदेशी संबंधों का हिस्सा बनने की अपार संभावनाएं हैं। यह सुविधा के लिए सरकारों की क्षमताओं के भीतर भी अच्छी तरह से है। यह सिंगापुर-भारत संबंधों का सबसे मजबूत प्रमाण हो सकता है, जब यह दोस्ती इन सांस्कृतिक, कलात्मक और रोजमर्रा के क्षेत्रों में स्थापित होने लगती है।

संदर्भ

1. पारेख, बिखू, "री-इमेजिनिंग इंडिया", री-इमेजिनिंग इंडिया एंड अदर एसेज में, नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान (2000), पृ. 153।
2. हॉब्सन, जॉन, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की यूरोकेंद्रिक अवधारणा: पश्चिमी अंतर्राष्ट्रीय सिद्धांत, 1760-2010, कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस (1992), पृ. 44
3. वही, पृ. 79
4. ब्लेकर, रोलैंड, एस्थेटिक्स एंड वर्ल्ड पॉलिटिक्स (न्यूयॉर्क: पालग्रेव मैकमिलन, 2000), पृ. 192।
5. वही, पृ. 193
6. पी. अश्विन और आनंदम कावूरी, "परिचय: वैश्विक बॉलीवुड", आनंदम कावूरी और अश्विन पुनाथमबेकर में, एड।, ग्लोबल बॉलीवुड, (नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999), पृ. 83
7. वही, पृ. 76
8. बेहरा, नवनीता, व्यक्तिगत साक्षात्कार, नई दिल्ली, 20 मार्च, 2000।
9. नंदी, आशीष, व्यक्तिगत साक्षात्कार, 27 मार्च 2000, आशीष नंदी, द रोमांस ऑफ द स्टेट एंड द फेट ऑफ डिसेंट इन द ट्रॉपिक्स, (नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2000) पृ. 62
10. पेरिस, रोलैंड पेरिस, "ऑर्डरिंग द वर्ल्ड, एकेडमिक रिसर्च एंड पॉलिसीमेकिंग ऑन फ्रैजाइल स्टेट्स", इंटरनेशनल स्टडीज रिव्यू, 13(1), मार्च 2000, 58-71

बदलते बिहार में दलित महिलाओं के उत्थान के लिए गैर सरकारी संगठनों (एन.जी.ओ.) के कार्य

श्वेता कुमारी

शोध छात्रा, इतिहास विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय पटना

सार

भारत में गैर सरकारी संगठनों ने ग्रामीण जनता विशेषकर दलित महिलाओं के उत्थान में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। दलित महिलाओं को आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से उत्पीड़न, दमन और उनके बकाया से इनकार का सामना करना पड़ता है। माइक्रो क्रेडिट योजनाओं और बैंक लिंकेज के माध्यम से गैर सरकारी संगठनों ने भारतीय संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वर्तमान अध्ययन एक वैचारिक अध्ययन है जिसमें दलित महिलाओं के उत्थान में गैर सरकारी संगठनों की भूमिका निभाई जाती है।

मुख्य-शब्द: दलित महिलाएं; गरीबी; सामाजिक लामबंदी; माइक्रो क्रेडिट; एन.जी.ओ.।

परिचय

किसी राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए महिला सशक्तिकरण सबसे महत्वपूर्ण साधन है। महिलाओं को मुख्यधारा में लाना हर सरकार के लिए सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। वैश्विक शासन नेटवर्क में महिला सशक्तिकरण एक मीम बन गया है। इस संदर्भ में, गैर सरकारी संगठन हमारे देश के ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक-आर्थिक क्रांति पैदा करने के लिए शक्ति का प्रयोग करने वाले उपकरण के रूप में उभरे हैं। गैर सरकारी संगठनों ने न केवल मूर्त संपत्ति और सदस्यों के जीवन स्तर में सुधार किया है, बल्कि उनके दृष्टिकोण, और विश्वदृष्टि को बदलने में भी मदद की है। भारत में दलित महिलाएं कई सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक कारकों की शिकार हैं। देश के आर्थिक विकास और सामाजिक उत्थान के लिए महिलाओं की मुक्ति एक पूर्वापेक्षा है।[1]

साहित्य की समीक्षा

डॉ. योगिंदर सिंह (2013) का तर्क है कि महिलाएं दुनिया की आबादी का पचास प्रतिशत हैं और दुनिया की आय का मुश्किल से दस प्रतिशत प्राप्त करती हैं और दुनिया की एक प्रतिशत से भी कम संपत्ति की मालिक हैं। साक्षरता दर, श्रम भागीदारी दर और कमाई के मामले में पुरुषों की तुलना में उन्हें कई नुकसान होते हैं। महिला सशक्तिकरण के लिए प्रमुख रणनीतियों में सामाजिक सशक्तिकरण, राजनीतिक सशक्तिकरण और लैंगिक न्याय के साथ-साथ जनसांख्यिकीय न्याय (ग्रामीण और शहरी) शामिल हैं। ग्रामीण महिलाओं के लिए, ग्रामीण विकास के दृष्टिकोण के आधार पर गैर सरकारी संगठनों की अवधारणा के माध्यम से आर्थिक सशक्तिकरण प्राप्त किया जा सकता है।[2]

गैर सरकारी संगठन वास्तव में ग्रामीण गरीब महिलाओं के लिए एक वरदान हैं जो अपने दम पर व्यवहार्य आर्थिक गतिविधियाँ करती हैं। एन. जी. ओ. कुछ सामान्य लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए गठित लोगों का स्वैच्छिक संघ है। इस पत्र में, व्यवसाय की प्रकृति और गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से महिलाओं द्वारा किए गए इसके प्रदर्शन और ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक सशक्तिकरण पर इसके प्रभाव का मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है।

सोनिया माहे (3) का प्रस्ताव है कि दलित महिलाओं पर बड़ी संख्या में रिपोर्ट किए गए अत्याचार भारत में विभिन्न समाचार पत्रों के लेखों, पत्रिकाओं और सरकारी रिपोर्टों में दर्ज किए जा सकते हैं, जिनमें से कई इंटरनेट साइट पर देखे जा सकते हैं। हम जिन कहानियों को पढ़ते और सुनते हैं उनमें से अधिकांश उज्ज्वल युवा दलित लड़कियों की हैं, जिन्हें भारत के ग्रामीण इलाकों में उच्च जाति के शिक्षकों द्वारा अच्छे ग्रेड हासिल करने की हिम्मत के लिए दंडित किया जाता है। इस स्थिति में अधिकांश लड़कियों को खारिज कर दिया गया महसूस करना स्कूल छोड़ देता है और हाथ से मैला ढोने और अन्य प्रतिकूल नौकरियों की ओर मुड़ने के लिए कहीं नहीं है।[3]

जया, एस. आनंद (2002) कहते हैं कि 1970 से नीति निर्माताओं और शिक्षाविदों ने सोचना शुरू किया कि विकास कार्यक्रमों को गरीब महिलाओं से कैसे जोड़ा जा सकता है। महिलाओं के मुद्दे विकास के मुद्दे हैं और उन्हें विकास कार्यक्रमों में पास करने का मतलब है कि लगभग आधे मानव संसाधन को विकास हस्तक्षेप से बाहर छोड़ देना । महिलाओं में गरीबी के मुद्दे काफी अलग और जटिल हैं।[4]

उनकी सामान्य गरीबी की स्थिति, रुग्णता, भोजन की कमी, पेयजल और स्वच्छता सुविधाएं कुछ प्रमुख मुद्दे हैं जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। घर के भीतर भोजन और अन्य अधिकारों के वितरण में लैंगिक भेदभाव के कारण एक गरीब परिवार की महिला सदस्य अक्सर अपने पुरुष सदस्यों की तुलना में बदतर होती हैं। 'बढ़ती गरीबी में एक महिला का चेहरा होता है'।[5] 1990 के बाद से यूएनडीपी की मानव विकास रिपोर्ट गरीबी के बढ़ते नारीकरण के तथ्य की पुष्टि करती है।

शब्दों की परिभाषा

दलितों

'दलित' शब्द का अर्थ किसी भी उत्पीडिघ्त समूह से है। बिहार के जिले से संबंधित अनुसूचित जाति समूह की महिलाएं ज्यादातर सामाजिक रूप से दबी हुई हैं, सांस्कृतिक रूप से उपेक्षित हैं और बिहार में उच्च जाति के लोगों द्वारा आर्थिक रूप से शोषण किया जाता है।

अधिकारिता

'सशक्तिकरण' जिसका अर्थ है 'शक्तिशाली बनना', एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति, समूह और समुदाय अपनी परिस्थितियों को नियंत्रित करने और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। यह उन्हें अपने जीवन की गुणवत्ता को अधिकतम करने के लिए स्वयं और दूसरों की मदद करने की दिशा में काम करने में सक्षम बनाता है। सशक्तिकरण के विभिन्न आयाम अर्थात् शैक्षिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और राजनीतिक आपस में जुड़े हुए हैं।

सामाजिक लामबंदी

इस अध्ययन में "सोशल मोबिलाइजेशन" शब्द को "एसजीएसवाई के संदर्भ में स्वयं सहायता समूहों को व्यवस्थित और बढ़ावा देने के लिए गैर सरकारी संगठनों द्वारा उपयोग किए जाने वाले विभिन्न तरीकों और उपकरणों" के रूप में परिभाषित किया गया है।

गैर सरकारी संगठन

शब्द "एन.जी.ओ. को सक्रिय रूप से "एक सामाजिक शक्ति के रूप में संगठनों के रूप में परिभाषित किया गया है जो सामूहिक कार्रवाई और लोगों की लामबंदी की सुविधा प्रदान करता है और विभिन्न सामाजिक लामबंदी प्रक्रियाओं के माध्यम से एसजीएसवाई के तहत स्वयं सहायता समूहों को बढ़ावा देने में शामिल है"।

एसजीएसवाई

स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (एसजीएसवाई) नवीनतम गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम है जो 1 अप्रैल, 1999 से चल रहा है। एसजीएसवाई सामाजिक लामबंदी के माध्यम से गरीबों को स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) में संगठित करके समूहों के दृष्टिकोण पर केंद्रित है। एसजीएसवाई का उद्देश्य बड़ी संख्या में सूक्ष्म उद्यमों की स्थापना करना है और यह सुनिश्चित करने की अपेक्षा करता है कि समूह के सदस्य लगभग रुपये की वृद्धिशील आय के माध्यम से गरीबी के चंगुल से बाहर आएं। 2000/- प्रति माह समूह के गठन के 2-3 वर्षों के भीतर।

भारत में एसएचजी की अवधारणा

महिलाओं के एसएचजी काफी समय से भारत में मौजूद हैं और सेवा वितरण से लेकर सशक्तिकरण तक, विकास लक्ष्यों की एक विस्तृत श्रृंखला के लिए उनका उपयोग किया गया है। हालांकि, ग्रामीण क्षेत्र में विकास कार्यक्रमों की ये बहुलता स्थायी आने वाले अवसरों के सृजन के माध्यम से गरीबी उन्मूलन के मूल मुद्दे पर ध्यान केंद्रित करने में विफल रही। इसलिए भारत में एसएचजी की मूल अवधारणा 'स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना' (एसजेजीएसवाई) में शामिल रही है, जिसे ग्रामीण गरीबों, विशेष रूप से महिलाओं को स्वरोजगार और आर्थिक सशक्तिकरण प्रदान करने के लिए शुरू किया गया था।

स्वयं सहायता समूहों की आवश्यकता

महिला सशक्तिकरण एक बहुआयामी धारणा है जिसमें आर्थिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक सशक्तिकरण शामिल है। यह महिलाओं की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक ताकत को देखने और बढ़ावा देने के लिए संदर्भित करता है। महिलाओं की भूमिका कम से कम निर्णय लेने की शक्ति वाले बच्चे के पालन-पोषण और हाउस कीपिंग तक ही सीमित रही है। समाज के कमजोर वर्ग के रूप में महिलाओं की राज्य और केंद्र सरकारों द्वारा शुरू की गई सेवाओं तक सबसे कम पहुंच है। ऐतिहासिक रूप से महिलाएं सबसे ज्यादा हिंसा और अन्य सामाजिक बुराइयों की शिकार रही हैं और बिहार के मामले में, राजनीतिक आघात के कारण उनकी पीड़ा और तेज हो गई है।

हालांकि, समान अवसर के मानदंड निर्धारित करने वाले कानून हैं लेकिन परिवार, समुदाय और समाज के विभिन्न स्तरों पर उनके द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों के कारण महिलाओं को लाभान्वित होने के बहुत कम मौके दिए जाते हैं। इन परिस्थितियों में, स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) का गठन महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए एक व्यवहार्य विकल्प साबित हो सकता है और लंबे समय में स्वयं सहायता समूहों का गठन एक शक्तिशाली माध्यम है जो खासकर ग्रामीण इलाकों में महिलाओं के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित कर सकता है।

स्वयं-सहायता समूहों का प्रभाव आत्म-मूल्य जैसे आत्मविश्वास सह क्षमता निर्माण के संदर्भ में महत्वपूर्ण रूप से वित्तीय संकट को पूरा करने के लिए स्वरोजगार के अवसरों को साबित करना। यह विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, स्वास्थ्य और शैक्षिक मामलों के संदर्भ में निर्णय लेने की क्षमता में भी सुधार करता है और महिलाओं को बड़े पैमाने पर परिवार और समाज में उनके खिलाफ विभिन्न प्रकार के शोषण के खिलाफ लड़ने के लिए प्रेरित करता है (इरशाद अहमद इरशाद और अल्ताफ अहमद भट 2015)।

स्वयं सहायता समूहः भारत में गरीबी से बाहर निकलने का रास्ता

स्वयं सहायता समूह (एसएचजी) आज ग्रामीण भारत में गरीबी उन्मूलन में एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं। भारत के विभिन्न हिस्सों में बढ़ती संख्या में गरीब लोग (ज्यादातर महिलाएं) एसएचजी के सदस्य हैं और सक्रिय रूप से बचत (वास्तविक टर्म थ्रिफ्ट) और क्रेडिट (एस/सी) के साथ-साथ अन्य गतिविधियों (आय सृजन, प्राकृतिक संसाधनों) में सक्रिय रूप से संलग्न हैं। प्रबंधन, साक्षरता, बाल देखभाल और पोषण, आदि एसएचजी में एस/सी फोकस सबसे प्रमुख तत्व है और पूंजी पर कुछ नियंत्रण बनाने का अवसर प्रदान करता है। एसएचजी प्रणाली महिलाओं को शोषण और अलगाव से धीरे-धीरे दूर होने की संभावना प्रदान करने में बहुत प्रासंगिक और प्रभावी साबित हुई है। लगभग सभी प्रमुख दाता एजेंसियां भारत में किसी न किसी रूप में एसएचजी का समर्थन करती हैं, और कई सफलता की कहानियां उपलब्ध हैं, जिसमें यह वर्णन किया गया है कि कैसे एक एसएचजी में सदस्यता ने किसी विशेष व्यक्ति या समूह के जीवन को बेहतर के लिए बदल दिया। कई गैर सरकारी संगठन एसएचजी तंत्र को बढ़ावा दे रहे हैं और इसे विभिन्न अन्य विकास हस्तक्षेपों से जोड़ रहे हैं।

जबकि इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि एसएचजी दृष्टिकोण गरीबों को संगठित और सशक्त बनाने के लिए एक बहुत प्रभावी, कुशल और प्रासंगिक उपकरण है, आय-सृजन गतिविधियों (आईजीए) को बढ़ावा देने के लिए कार्यक्रमों के डिजाइन, विकास और परिचय के साथ उत्पन्न होता है जो पर्याप्त, टिकाऊ उत्पन्न करेगा और नियमित आय। गरीबी उपशमन का दृष्टिकोण जमीनी स्तर पर स्वयं सहायता समूहों के गठन पर आधारित है। इससे उन्हें एक समूह में संगठित करने की आवश्यकता होती है जिसके द्वारा वे सामूहिक धारणा, सामूहिक निर्णय लेने और सामान्य लाभों के लिए कार्यक्रम के सामूहिक कार्यान्वयन का लाभ निर्धारित करते हैं।

यह संगठन शक्ति धारण करता है और शक्ति प्रदान करता है और गरीबों की लाचारी के लिए एक विरोधी के रूप में कार्य करता है। स्वयं सहायता समूहों की समूह बचत तत्काल निवेश के अलावा अन्य उद्देश्यों की एक विस्तृत श्रृंखला की पूर्ति करती है। दृष्टिकोण भारत में वर्षों से विकसित हुआ है। गरीबी उन्मूलन में एक उपकरण के रूप में स्वयं सहायता समूहों की ताकत को समझने से पहले, भारत में विभिन्न गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के विकास को समझना अनिवार्य है।

भारत में दलित लड़कियों की स्थिति

पुरुष प्रधान समाज में दलित महिलाओं को न केवल जाति के आधार पर, बल्कि लिंग के आधार पर भी अकल्पनीय उत्पीड़न का सामना करना पड़ा, जिससे कोई बच नहीं सकता था। मनुस्मृति और अन्य वैदिक शास्त्रों के कानून सभी आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षिक और व्यक्तिगत चौनलों को बंद कर देते हैं जिनके माध्यम से दलित महिलाओं का उत्थान किया जा सकता है। मनुस्मृति में भयानक कानूनों को हिंदू धर्म में शामिल किया गया था क्योंकि वे केवल उच्च जातियों के लिए अनुकूल थे, जो भारत के बहुमत का निर्माण करते हैं। आज भी आधुनिक समय में हम दलित महिलाओं का घोर उत्पीड़न और शोषण देखते हैं। मनुस्मृति के नियमों का दलित महिलाओं की शिक्षा के स्तर पर विनाशकारी प्रभाव पड़ता है।

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आयोग 2000 के अनुसार, भारत सरकार के सख्त कानूनों के बावजूद लगभग 75 प्रतिशत दलित लड़कियां प्राथमिक विद्यालय छोड़ देती हैं, जिसमें दलित बच्चों के लिए आरक्षण है। गहरी शैक्षणिक योग्यता दिखाने के बावजूद, शिक्षा प्रणाली से इस जल्दी छोड़ने का कारण गरीबी या सहपाठियों, समाज और यहां तक कि उनके शिक्षकों द्वारा अपमान, बदमाशी और अलगाव से बचना है।

दलित जाति और सूक्ष्म वित्त

माइक्रोफाइनेंस आंदोलन अगर सही तरीके से क्रियान्वित किया जाए तो भारत में सबसे गरीब व्यक्ति को भी मदद मिल सकती है। भारतीय संस्कृति एक जाति व्यवस्था पर आधारित है, जहां सबसे निचली जाति को दलित (अछूत के रूप में भी जाना जाता है) कहा जाता है। परंपरा, रिवाज और प्रथा ने दलितों को सरकारी संस्थानों और वाणिज्यिक बैंकों तक पहुंचने से लगभग हमेशा बाहर रखा है।

निचली जातियों को ऐसे व्यक्तियों के रूप में जाना जाता था जिन पर ऋण वापस करने के लिए भरोसा नहीं किया जा सकता था। इस प्रकार, निचली जातियों के पास अपने स्वयं के संस्थान खोलने के अलावा कोई विकल्प नहीं था जो तब आय और संसाधन उत्पन्न करने में मदद करेगा और उन्हें समाज में अधिक सम्मान देगा। 1980 के दशक के मध्य में कुछ दलित आधारित गैर सरकारी संगठनों ने माइक्रोफाइनेंस के ग्रामीण मॉडल (जो बांग्लादेश में बहुत सफल रहा) के आधार पर महिलाओं के बचत और ऋण कार्यक्रम शुरू किए। इन कार्यक्रमों (सहकारी मॉडल) की सफलता ने साबित कर दिया कि दलितों पर क्रेडिट का भरोसा किया जा सकता है।

इन कार्यक्रमों ने दलित समुदाय को आय प्राप्त करने, संसाधन उत्पन्न करने और उनके आर्थिक तनाव को कम करने में मदद की। गैर-सरकारी संगठन (एनजीओ) सहकारी मॉडल से परिचित हो गए और इस मॉडल के आधार पर अधिक कार्यक्रम बनाने लगे। 1996 तक उन्होंने अंकुरम-संगमन-पोरम (एएसपी), एक नया सहकारी माइक्रोफाइनेंस शुरू किया था।

एएसपी सहकारी समितियां भारत की वित्तीय प्रणाली के अलावा, गरीब से गरीब व्यक्ति के लिए एक अलग आर्थिक प्रणाली की पेशकश करती हैं। ये ग्राम सहकारी समितियाँ लोगों द्वारा लोगों के लिए संगठित, शासित और प्रशासित होती हैं। अंकुरम-संगमन-पोरम शुरू होने के बाद से, निचली जातियों में सशक्तिकरण की भावना बढ़ी है और वे पहली बार सरकारी और व्यावसायिक गतिविधियों में भाग लेने में सक्षम हैं। सहकारी मॉडल ने उन्हें भारत में जाति व्यवस्था की परंपरा के बावजूद आय उत्पन्न करने और समृद्ध होने के उपकरण दिए। वे अपने समुदाय के भीतर सामाजिक कार्रवाई के लिए एक मंच और अपने स्वयं के संस्थानों और कार्यक्रमों के निर्माण के लिए एक माध्यम के द्वारा ऐसा करने में सक्षम हैं।

अनुसूचित जाति की महिलाओं का सशक्तिकरण

लोगों की भलाई निस्संदेह सभी विकास प्रयासों का अंतिम उद्देश्य है और मानव प्रयास की मूल खोज हमेशा जीवन की बेहतर गुणवत्ता की तलाश करना है। किसी राष्ट्र के नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता को सड़कों पर और पिछड़े क्षेत्रों में लोगों के जीवन स्तर को ऊपर उठाकर ही प्रभावी ढंग से सुधारा जा सकता है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सामान्य रूप से सामाजिक सशक्तिकरण और विशेष रूप से महिला सशक्तिकरण बहुत ही मौलिक है।

लोकतंत्र की संस्था सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों के सामंजस्य के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करती है। इस प्रकार व्यापक लोकतांत्रिक ढांचे के भीतर, कम से कम समय में जीवन की बेहतर गुणवत्ता प्रदान करने के लिए महिलाओं और आर्थिक विकास कार्यक्रमों के तालमेल के लिए महान अवसर हैं । महत्वपूर्ण रूप से, आर्थिक सशक्तिकरण को समग्र विकास के लिए महत्वपूर्ण माना गया है।

ग्रामीण विकास के बदले हुए संदर्भ में सूक्ष्म ऋण की मांग करने वाले सूक्ष्म उद्यमों के सतत् विकास और प्रोत्साहन पर अधिक जोर दिया जा रहा है। दिलचस्प बात यह है कि कई व्यक्तियों, संस्थानों और एजेंसियों द्वारा सामुदायिक विकास, सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक स्वतंत्रता में महिलाओं के महत्वपूर्ण योगदान पर अत्यधिक जोर दिया जाता है।

सुझाव

दलित महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए अध्ययन क्षेत्र में एसएचजी और बैंक लिंकेज कार्यक्रम को बढ़ावा देने के लिए निम्नलिखित सुझाव अग्रेषित किए गए हैं:

- एसएचजी को पास के बैंक में बैंक खाता खोलना चाहिए जहां संगठन या समूह बनाए गए हैं।
- समूह को उचित लेखा रिकॉर्ड, बचत रिकॉर्ड और ऋण रजिस्टर बनाए रखना चाहिए।
- ग्रामीण लोगों, विशेषकर दलित महिला समुदाय को विभिन्न वित्तीय संस्थानों और बैंकों द्वारा दी जाने वाली विभिन्न वित्तीय सेवाओं और उत्पादों के बारे में शिक्षित किया जाना चाहिए।
- जागरूकता योजनाओं या विज्ञापन कार्यक्रमों को विशेष रूप से क्षेत्रीय भाषाओं में बढ़ाया जाना चाहिए।
- एटीएम कैश डिस्पेंसिंग मशीनों को उन लोगों के लिए उपयोगकर्ता के अनुकूल बनाने के लिए उपयुक्त रूप से संशोधित किया जा सकता है जो अनपढ़, कम शिक्षित या अंग्रेजी नहीं जानते हैं।

निष्कर्ष

ग्रामीण दलित महिलाएं जो भारतीय समाज के सबसे निचले पायदान पर हैं, उन्हें सशक्तिकरण और उत्थान की जरूरत है। जाति, वर्ग और लिंग के अमानवीय बंधनों को समाप्त करना होगा और मानवीय गरिमा के साथ जीने के उनके अधिकारों को बहाल करना होगा। न्याय और मुक्ति के इस संघर्ष में इन महिलाओं को निरंतर सहभागी प्रयासों से जागरूक करना होगा। स्वयं सहायता समूह आंदोलन और संयुक्त उद्यम सरकारी और गैर-सरकारी एजेंसियां दलित महिलाओं की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर सकती हैं। दलित महिलाओं के जीवन में समानता की एक नई सुबह भारत में स्वतंत्रता की सच्ची सुबह है।

सन्दर्भ

1. थिंड जी.एस. हमारी भारतीय उपमहाद्वीप विरासत। क्रॉसटाउन प्रेस, लि. ब्रिटिश कोलंबिया, कनाडा।
2. अग्रवाल एस. हिंदू धर्म में महिलाओं का नरसंहार। सुद्रस्तान बुक्स. जबलपुर, भारत, 1999।
3. मनु, स्मृति। मेधातिथि के भाष्य के साथ मनु के नियम। गंगा नाथ झा द्वारा अनुवादित। कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता, भारत, 1920
4. सीआईआरडीएपी डेवलपमेंट डाइजेस्ट, 1998
5. मानव विकास रिपोर्ट, 1995

औपनिवेशिक बिहार के जनजातियों का सांस्कृतिक जीवन अध्ययन

मोनी कुमारी

शोध छात्रा, इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश

सांस्कृतिक परम्परा पर विचार करने से पहले यह परिभाषित कर लेना उचित प्रतीत होता है कि संस्कृति क्या है? संस्कृतिक्या जीवन शैली से संबंधित है: जनजातीय संस्कृति और लोक संस्कृति में कोई अंतर है या नहीं? विविध प्रकार की जीवन-शैलियों और सामाजिक परम्पराओं में संस्कृति के जो स्थानिक और देशिक रूप दिखलाई पड़ते हैं, उनके वर्गीकरण और एकीकरण के क्या आधार हो सकते हैं। संस्कृति की जो व्याख्या मानवशास्त्री देते हैं वह स्वयं संस्कृति कर्मियों के लिए कितना अर्थपूर्ण है? वस्तुत: संस्कृति का सीधा-सादा अर्थ है परिष्कार या संस्कार। परिमार्जित संस्कार ही संस्कृति है। इसके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ. राम खेलावन पांडेय ने लिखा है कि ''संस्कृति शब्द का प्रयोग अपेक्षाकृत अर्वाचीन है और अंग्रेजी कल्चर का समानार्थक सूचक। इसके संबंध की मान्यताओं में पर्याप्त मतभेद और विरोध हैं। इसकी सीमाएँ धर्म की ओर तक स्पर्श करती हैं तो दूसरी ओर साहित्य को अपने बाहुपाश में आबद्ध करती हैं। संस्कृति भौतिक साधनों के संचयन के साथ ही अध्यात्मिकता की गरिमा से मंडित होती है। वेश-भूषा, परम्परा, पूजा-विधान और सामाजिक रीति-विधान और सामाजिक रीति-नीति की विवेचन भी संस्कृति के अंतर्गत होती है। प्रकृति की सीमाओं पर मनुष्य ने जो विजय चाही, उसका भौतिक स्वरूप सभ्यता और आत्मिक, अध्यात्मिक अथवा मानसिक स्वरूप संस्कृति है। सभ्यता बाह्य प्रकृति पर हमारी विजय का गर्वध्वज है और संस्कृति अंत: प्रकृति पर विजय-प्राप्ति की सिद्धि।

मुख्य शब्द: धार्मिक नृत्य, झारखंडी संस्कृति, लोकगीत, उपयोगितावादी कला, परिमार्जित संस्कार

प्रस्तावना

औपनिवेशिक बिहार वर्तमान झारखंड राज्य के जनजातीय समाज और उसकी संस्कृति बहुत पुरानी है। मुंडा जनजाति के भूमिज लोगों ने सिंहभूम - वराहभूम के इलाके में भूमिज राज कायम किया था। छोटानागपुर में पाए जाने वाले अनेक असुर स्थलों पर प्राप्त पुरातात्विक वस्तुओं के आधार पर यह कहा जाता है कि सांस्कृतिक दृष्टि से छोटानागपुर उतना ही प्राचीन है, जितनी सिंधु घाटी की सभ्यता। फिर भी साधारणत: बिहार का और विशेषकर छोटानागपुर का प्रारंभिक सांस्कृतिक इतिहास रहस्य के आवरण में ढंका हुआ है। इसलिए इस क्षेत्र का इतिहास मुख्यत: वैदिक पौराणिक, जैन तथा बौद्ध साहित्य के छिटपुट अवलोकन, पुरातात्विक वस्तुओं के अध्ययन एवं क्षेत्रीय लोकसाहित्य और दंतकथाओं के विश्लेषण के आधार पर ही तैयार किया जा सकता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि मुंडा लोग इस क्षेत्र में ईसाई युग शुरू होने से पहले ही आकर बसने लगे होंगे। असुर संस्कृति के बारे में यह कहा जा सकता है कि यह संस्कृति कम-से-कम कुषाण काल तक (लगभग 70 से 150 ई0 सन) तो थी ही जैसा कि दो असुर स्थलों पर पाए जाने वाले कुषाण सिक्कों से पता चलता है। ऐसा माना जाता है कि असुर लोग भगवान शिव के बड़े भक्त थे तथा शिवलिंग की पूजा करते थे।[1]

छोटानागपुर व झारखंड के सांस्कृतिक परिवर्तनों के पिछले पांच सौ वर्षों का इतिहास व्यापक उलट-फेर का काल रहा है और उसने झारखंडी संस्कृति की बुनियादी पहचान को कई स्तरों पर तोड़ा और मोड़ा है। इसी दौर में पुराने समाज संगठन ढीले पड़े और मुस्लिम और ईसाई जीवन दृश्टियों से उसका परिचय हुआ। इसलिए यह कहना इतिहास सम्मत होगा कि अपने प्रारंभिक उद्‌भव काल में इस क्षेत्रीय संस्कृति में हिन्दू समाज-संस्कृति की कई विकृतियाँ और संस्कार जुड़े, किन्तु इससे ज्यादा बड़े पैमाने पर संस्कृति-संकरता के आक्रमण मुस्लिम और अंग्रेज शासन काल में दिखाई पड़ते हैं। यहाँ इस बात का उल्लेख अत्यंत महत्त्व का है कि आज के क्षेत्र की दो प्रमुख जनजातियों का प्रवेश इस क्षेत्र में इसी अवधि में हुआ है। ये जनजातीय समुदाय संथाल और उराँव कबीलों के हैं जो मुंडाओं और सदानों के बाद उत्तर मध्यकाल और पूर्व आधुनिक काल के बीच सबसे बड़े जनसांख्यिकी समीकरण बनाने से सफल हुए। उरांवों और संथालों के आगमन से पूर्व झारखंड के ये क्षेत्र असुरों और पहाडिघ्या जनजातियों के प्रभुत्व में थे।

उराँवों के संबंध में यह कहा जाता है किवे श्शेरशाह के रोहतास पर आक्रमण के बाद वहाँ से छोटानागपुर में आए। उनके रोहतास छोड़ने की तिथि 6 अप्रैल 1538 बताई जाती है। इसे अगर आधार माना जाए तो उराँवों को छोटानागपुर में बसे लगभग साढ़े चार सौ वर्ष ही हुए हैं। इसी तरह छोटानागपुर में संथालों का आगमन अंग्रेजों के शासनकाल में ही संभव हुआ। आज जिसे संथाल परगना क्षेत्र के नाम से जाना जाता है, उस क्षेत्र में संथालों का आगमन अभी सिर्फ दो सौ वर्षों पहले की बात है। इस क्षेत्र के निवासी पहाडिघ्या जनजाति के लोग हैं। ब्रिटिश साम्राज्य का शोषण एवं दमन जब बढ़ने लगा तब पहाडिघ्या लोगों ने विद्रोह किया। उस विद्रोह के दमन के लिए अंग्रेजों ने सन 1770 से 1790 के बीच संथालों को यहाँ लाकर बसाया था। इस प्रकार आज के झारखंड के क्षेत्र के दो बड़े जनजातीय समुदायों का इतिहास इस क्षेत्र के लिए अधिक पुराना नहीं है।

छोटानागपुर की जनजातीय संस्कृति में परिवर्तन की यह अवधि पुरानी पहचान के कारणों के नष्ट होने की दृष्टि से विशेष रूप से विचारणीय हो जाती है। रोहतास से राँची पहुँचकर भी उराँव संस्कृति भी नए दबावों में आकर कायाकल्प करने को विवश हुई। ब्रिटिश कानूनों के तहत जनजातियों की सम्पत्ति विषयक अवधारणा का सम्पर्ण क्षरण हुआ। उनकी सामुदायिक की भावना में पतनोन्मूख प्रवृत्तियाँ विकसित हुई। और उनके खूँटकुट्टी गांवों की भूमि व्यवस्था भंग हो गई तथा उसकी जगह निजी स्वामित्व की सम्पत्ति विशयक अवधारणा का विकास हुआ। धर्मांतरण ने भी स्वयं इन समुदायों के धीरे-धीरे फैलते-बढ़ते संगठित होते एक प्रभावशाली वर्ग को अपनी संस्कृति की मूल जड़ों से काटकर आधुनिकीकरण और अलगाव के खाते में दर्ज कर दिया। इस नई स्थिति के कारण जनजातियों के समाज संगठन कमजोर हुए, सामाजिकता की भावना में ह्रास आया, अखरा-धुककुडिघ्या (धुमकुडिघ्या) की परम्परा अवरूद्ध हुई।[2]

प्राय: जनजातियों का सांस्कृतिक जुड़ाव जंगल में पाए जाने वाले पेड़-पौधों, तथा पशु-पक्षी पर आधारित है। पेड़-पौधें तथा पशु-पक्षियों के साथ उनका टोटम संबंध है। उन्हें वे पवित्र मानते हैं तथा अपने गोत्र पुरूष के रूप में पूजते हैं जनजातीय विश्वास के अनुसार जंगल देव, जंगल देवी, पितृ-देव, पितृ-देवी, धरती देव तथा देवी, नागदेव, बाघदेव, सिंह देव, बोंगा आदि सभी का निवास स्थान भी जंगल ही है। इसीलिए वे पेड़-पौधों, टीलों, पेड़ की जड़ों आदि की पूजा करते हैं। उनका सारना स्थल अर्थात् देवताओं का वास स्थान भी जंगल अथवा उसके पास स्थित होता है। सरना स्थल को जनजातीय समाज के सदस्य श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। पर्व-त्यौहार के अवसर पर जंगल में उपलब्ध पेड़-पौधों की डाली, पत्तियों तथा फूलों की पूजा की जाती है। सरहुल के अवसर पर सखुआ वृक्ष की पूजा की जाती है। करमा पर्व के अवसर करम वृक्ष की पूजा की जाती है। सखुआ, करम, पलास, फूल, धवई आदि के फूल पत्तियों के सहारे पितृदेव तथा देवियों को प्रसन्न किया जाता है।[3]

जनजातीय समाज के सदस्य जंगल से लकड़ी, बाँस, पत्ती, झाड़ी आदि लाकर अपना घर तथा लकड़ी के सहारे घरेलू फर्नीचर जैसे खटिया, मचिया आदि का निर्माण करते हैं। जंगल से प्राप्त लकड़ी के सहारे कृषि उपकरण बनाते हैं तथा लोहा निर्मित कृषि तथा घरेलू उपकरणों में लकड़ी का हथिया (मुठ) लगाते हैं। जंगल से प्राप्त पत्तों तथा छालों के सहारे रस्सी का निर्माण करते हैं। बाँस, पत्ती, घास आदि के सहारे चटाई का निर्माण करते हैं। इस प्रकार जनजातीय समाजों की भौतिक संस्कृति पर जंगल का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। जंगल के पास-पड़ोस में बसे जनजातीय समाज के परिवारों में टोकरी, झाड़ू, चटाई, रस्सी आदि बनाने का प्रचलन है। इन सभी वस्तुओं का प्रयोग घरेलू काम में होता है। विभिन्न प्रकार के टोकरी, चटाई, झाड़ू, रस्सी आदि बनाने के लिए कच्चे माल का संकलन जंगल से किया जाता है। उदाहरण के लिए बाँस, पत्तियाँ, पौधे इन्हीं जंगली वस्तुओं के सहारे टोकरी, रस्सी, चटाई तथा झाड़ू बनाया जाता है। घर में प्रयोग के साथ-साथ उन्हें बाजार में भी बेचा जाता है।

मुंडा जनजाति के पोशाक तथा आभूषण

पुरूष नितम्ब के बीच के भाग में 'बटोई' पहनते हैं। युवक कमर के चारों ओर करफनी कपड़े को लपेटते हैं। वृद्ध व्यक्ति जो घर पर रहते हैं केवल भगवा पहनते हैं। मुण्डा लोग जाड़ों के दिनों में कम्बल का प्रयोग करते हैं इन दिनों सुखी मुण्डा एक धोती और एक कमीज का भी प्रयोग करने लगे हैं। स्त्रियाँ धोती को इस प्रकार से पहनती हैं जिससे उनके स्तन पर पर्दा रहे। देहातों में स्त्रियाँ कमर के चारों ओर लहंगा नामक कपड़ा लपेटे रहती ह। परिणाम यह होता है कि उनके ऊपर का शरीर नग्न रहता है। युवतियाँ अपने शरीर को विभिन्न प्रकार के आभूषणों से सजाती है। ये आभूषण प्राय: काँसे व पीतल के बने होते हैं। कान के आभूषण प्राय: चाँदी के बने होते हैं। काँसे के बाले व लोहे की चूडिघ्याँ भी पहनी जाती है। आजकल हाथ और पाँव में अंगूठियाँ पहनी जाती है। गले में काँसे का आभूषण भी पहना जाता है। युवक भी आभूषण पहनने लगे हैं।

ये लोग कमर में रंगीन धारीदार वस्त्र लपेटते हैं, जो बोताई कहलाता है। बच्चे तथा वृद्ध कोपीन या लंगोटी (बगोबा) ही लगाते हैं। बाजार 'पीठ' में जाते हुए धनिक मुंडा पगड़ी (बैधड़) पहनते हैं। ये लोग गहनों के शौकीन होते हैं। इनमें गोदना (सिंधा) गुदाना भी अच्छा समझा जाता है। पहले इनमें 8-10 वर्ष के बच्चे ही बाँह पर गर्म लोहे से निशान बना देने का भी प्रचलन था। हिन्दुओं तथा ईसाइयों के सम्पर्क में आने के कारण रीति-रिवाज और रहन-सहन में कुछ परिवर्तन हो गया है।

संथाल तथा उराँव के पोशाक तथा आभूषण

संथाल जनजाति तथा उराँव जनजाति के एक जैसे पोशाक होते हैं। भिन्नता बहुत कम ही रहती है। ये लोग परंपरागत पोशाक कुपनी, कांचा, पंची, पारहांड, दहड़ी, पाटका इत्यादि आधुनिक पोशाकों से विस्थापित हो चले हैं। इन दिनों संथाल पुरूष व उराँव पुरूष धोती-कुर्त्ता के साथ-साथ पेंट-शर्त भी पहनना आरंभ कर दिये हैं। संथाल व उराँव महिलाएँ साड़ी, पेटीकोट तथा बलाउज के साथ-साथ ब्रेसियर भी पहनने लगी हैं। महिलाएँ अपने जुड़े को गोलाकार रूप में एक विशेश ढंग से बांधती हैं। इनके हाथ-पैर तथा गले में गोदना चिह्न भी देखने को मिलते हैं। किन्तु गोदना का रिवाज अब धीरे-धीरे विलुप्त होता जा रहा है। युवतियाँ तथा महिलाएँ प्राय: शंख, कांसे, पीतल, तांबे तथा चांदी से निर्मित आभूषण पहनती हैं। हाथों में शंख निर्मित सांखा, कांसे, पीतल या चांदी के बने सकोम, बाँह में खागा, गले में हँसली तथा सकड़ी तथा कानों में सोने व चाँदी से निर्मित पानरा, नाक में मकड़ी पांवों में कांसे की बांक-बंकी तथा पांव की अंगुलियों में बटरिया इनके सामान्य आभूशण हैं। युवकों के आभूषण - हाथों में चांदी के टोडोर, बांहों में खांगा तथा कानों में कुंडल हैं। इनके अलावे फूल तथा पत्तियों से भी वे अपने शरीर को सजाया करते हैं। उराँव जनजाति की महिलाएँ जो पोशाक पहनती है उसे ''ठाढ़ी गतला तोलोंग किचरी कूरना'' कहते हैं। अर्थात् साड़ी के सीधा पल्ला पहनकर, कमर के पास से आंचल निकालते हैं। आजकल ये पहनावा बहुत कम लोगों के द्वारा पहना जाता है। ये महिलाएँ एक विशेष प्रकार की साड़ी पहनती है जिसे वे ''मट्ठा किचरी'' कहते हैं, अर्थात् मोटा साड़ी। ये साड़ी सूती साड़ी होती है।[4]

जनजातियों का लोक साहित्य, कला और शिल्प

जनजातियों में लोग साहित्य के कार्य महत्त्वपूर्ण होते हैं, उसका स्वरूप नहीं। वे साहित्य की उद्‌गम व परिभाषा की कम चिंता करते हैं। उनके लिए जहाँ लोरियाँ बच्चों को सुनाने के लिए हैं वहाँ प्रेमगीत युवा जोड़े का उत्साहवर्धन करते हैं। वृद्ध लोग अपने पूर्वजों की कहानियाँ सुनकर अपने बच्चें को शिक्षित

करते हैं। लोग साहित्य का सबसे बड़ा प्रकार्थ यह है समूह में एकता, शिक्षा व मनोरंजन का प्रसार करता है। उराँव व मुण्डा जनजाति के लोग चावल (धान) की खेती करते समय स्त्री व पुरूष अपनी खेती संबंधी क्रियाओं में सामंजस्य लाने के लिए विशेष प्रकार के लोकगीत गाते हैं। लोकगीतों व लोक कहानियों में नैतिक आदर्श भी होते हैं। लोक कथाओं में दिन-रात, गर्मी व सदी, सूर्य व चन्द्रमा आदि की कल्पना मनुष्य के रूप में की जाती है। जनजाति के लोगों की धारणाएँ उनके साहित्य में प्रतिध्वनित होती है।[5]

लोक साहित्य

प्राय: सभी जनजातियों (मुंडा, संथाल, उराँव तथा अन्य) का लोक साहित्य अनेक पौराणिक कथाओं से भरा पड़ा है जिसमें चाँद, तारे विश्व की उत्पत्ति, पानी, आकाश आदि से संबंधित वर्णन होता है जो कि उन लोगों के ज्ञान व विश्वास के आधार पर उनके साहित्य में सम्मिलित होता है। उनके साहित्य में सामान्य पूर्वज जो कि पूर्व में ही मर चुके होते हैं, की शक्तियों का वर्णन होता है यह माना जाता है कि ये पूर्वज कष्ट में उनकी मदद करते हैं।

उक्त सभी जनजातियों के साहित्य में अलौकिक शक्तियों का वर्णन अवश्य मिलता है। यह माना जाता है कि यह सर्प, चूहा, बिल्ली, मछली और यहाँ तक की निर्जीव वस्तुओं तक का आकार ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार प्रत्येक जनजाति में कोई न कोई अलौकिक शक्ति पायी जाती है जो उनके धर्म का प्रतिनिधि होता है।

जनजातियों के लोक साहित्य में नैतिकता छिपी होती है तथा अच्छे आदर्शों को उभारा जाता है यहाँ तक कि पशुओं तक को उनके साहित्य में नैतिक दिखाया जाता है।

जनजाति के साहित्य में गीत, संचयी होते हैं अर्थात् पीढ़ी दर पीढ़ी ही गीत तो हस्तांतरित होते ही है, साथ ही हर पीढ़ी उनमें अपनी तरफ से कुछ न कुछ जोड़ देती है।

अपने साहित्य को संगीतमय व उसमें तुक बन्दी पैदा करने के लिए वे उसमें निरर्थक शब्द भी लगा देते हैं। जादू-टोने में भी, चुड़ैल कर्म, भूत-प्रेत संबंधी आदि के मंत्रों में भी ऐसे निरर्थक शब्दों का उच्चारण किया जाता है। छोटानागपुर के झूमर साहित्य में ऐसे बहुत से लोकप्रिय पद है, जिनमें तुकबंदी के लिए निरर्थक शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

लोकगीत धार्मिक व सामाजिक अवसरों पर गाए जाते हैं व उनकी प्रशंसा होती है।

त्यौहारों पर अक्सर कोई-न-कोई कथा कही जाती है। त्यौहार अक्सर किसी पूर्वज की कहानियों से जुड़े रहते हैं। उदाहरण के लिए उराँव व मुण्डा जनजाति का कर्मा त्योहार, संथालों का 'बाहा' त्योहार भी पूर्वज कथाओं से जुड़े हैं।[6]

लोक संगीत एवं नृत्य

जनजातियों के नृत्य व गीत परस्पर मिले-जुले होते हैं। जनजाति के लोग तीन चार पंक्तियों को ही संगीतमय ध्वनि में गाते रहते हैं। उनके गीत या तो जीवन चक्र से संबंधित होते हैं अर्थात् जो कि जन्म, विवाह, मृत्यु आदि अवसरों पर गाए जाते हैं अथवा नैतिक आदर्शों से संबंधित होते हैं जिनमें विचार, दर्शन, मानव जीवन की समस्याओं आदि से संबंधित होते हैं। मौसम से संबंधित अथवा देवताओं की स्तुति में प्रस्तुत करते हैं। कुछ गीत ऐसे होते हैं जिनमें किसी शिल्प की तकनीक को समझाया जाता है जैसे चटाई बुनने की कला, हल चलाने की कला, टोकरी बुनने की कला आदि को गीतों के माध्यम से समझाया जाता है। गीत की प्रत्येक पंक्ति में क्रम से इन वस्तुओं को बनाने की विधि समझायी गयी है। ताकि नई पीढ़ी संगीत के माध्यम से इन शिल्पों को बनाने की विधि अचेतन रूप से सीख ले। गाने वालों की संख्या के आधार पर जनजातीय लोक संगीत भी तीन प्रकार का होता है:

(1) समूह गीत - ये गीत नृतकों के समूह फसल बोने अथवा काटने के समय गाते हैं। युवा लड़के-लड़कियाँ मिलकर नाचते हैं व गाते हैं। समूह गीत जनजातियों में सर्वदा लोकप्रिय रहे हैं।

(2) युगल गीत - ये गीत एक जोड़े के द्वारा गाए जाते हैं जिसमें एक स्त्री व एक पुरूष होते हैं। इस प्रकार के गीत जनजाति में बहुत कम गाए जाते हैं। युगल गीत की विद्या बहुत लोकप्रिय नहीं है।

(3) एकल संगीत - इसमें एक गायक गीत प्रस्तुत करता है और गायन की यह विद्या बहुत लोकप्रिय है। ऐसे गीत गायक की एकरसता को समाप्त करते हैं और उसका मनोरंजन भी करते हैं।

संगीत के वाद्य यंत्र -जनजातियों (मुंडा-संथाल-उराँव) में ढोल और बांसुरी मुख्य वाद्ययंत्र है। उनकी बांसुरी 25 से 50 से0मी0 लम्बी व पोले बांस की बनी होती है जिसके नीचे का सिरा खुला होता है और ऊपर का सिरा तिकोना कटा होता है। पशु चराते समयये लोग अक्सर बांसुरी बजाते हैं जिससे पशु और दूसरे पशु चराने वाले चौकन्ने रहते हैं। ढोल वादक को विशेष महत्त्व दिया जाता है। उसे सामाजिक, धार्मिक व आनुवंशिक प्रस्थिति प्राप्त होती है। जिस प्रकार गीत तीन प्रकार के होते हैं उसी प्रकार नृत्य भी समूह नृत्य, युगल नृत्य व एकल नृत्य होते हैं। जनजातियों में तीन अन्य प्रकार के और नृत्य प्रचलित हैं यथा -

(1) युद्ध एवं शिकार नृत्य: छोटा नागपुर की उराँव, मुंडा व संथाल जनजातियों में युद्ध नृत्य पाये जाते हैं। इस नृत्य में वे युद्ध में जाते समय प्रयोग में आने वाले हथियार रखते हैं और जोर-जोर से चिल्लाते हैं।

(2) धार्मिक नृत्य: यह सर्वाधिक लोकप्रिय है तथा किसी देवता बलि स्थान, पवित्र पेड़ तथा कुएँ के आस-पास किया जाता है। अच्छी फसल के लिए यह पेड़ के चारों तरफ किया जाता है।

(3) सामाजिक नृत्य: यह नृत्य किसी भी जनजाति में प्राय: निश्चित होते हैं और एक निश्चित समय पर किए जाते हैं। उराँव जाति में जादुर नामक नृत्य एक सामाजिक नृत्य है जो बंसत ऋतु में रंग-बिरंगी पोशाक में स्त्री व पुरूषों द्वारा किया जाता है। संथाल लोगों में ताड़ी नृत्य भी इसी प्रकार का

है। संथाल जनजाति में 'डोना' एक विशेष प्रकार का नृत्य है। जो विवाह के अवसर प्रस्तुत किये जाते हैं। जिसमें तलवार की कलाओं द्वारा अपहरण करने की पद्धति को प्रदर्शित किया जाता है।

जनजातियों की कला एवं शिल्प को हम मुख्य रूप से तीन भागों में बांट सकते हैं –

(1) धार्मिक कला व शिल्प – इस प्रकार की कला किसी धार्मिक संस्कार को पूरा करने के लिए सृजित की जाती है। किसी धार्मिक विश्वास या रहस्यात्मक विचार की पूर्ति के लिए ये कलाएँ बनती है – जैसे, किसी चबूतरे का निर्माण, किसी खम्भे का निर्माण,, किसी झोपड़ी का निर्माण, किसी पत्थर की शिला द्वारा किसी देवता का निर्माण।

(2) उपयोगितावादी कला – इसके अन्तर्गत वे वस्तुएँ बनाई जाती हैं जो दिन प्रतिदिन के उपयोग की है जैसे टोकरियाँ, चीनी के बर्तन, दरियाँ, वस्त्र आदि।

(3) व्यक्तिगत कलाएँ – इसके अन्तर्गत कलाकार की भावनाओं, उद्वेगों, आवेगों एवं प्रेम को अभिव्यक्ति देने के लिए बनाई जाने वाली वस्तुओं जैसे किसी पशु-पक्षी, प्रणय युगल अथवा प्रकृति चित्रण को अंकित करना है। चटाई बनाना व सुन्दरतापूर्वक किसी विशिष्ट प्रकार की बुनाई करना इसी कोटि की कला है।[7]

प्राय: सभी जनजातियों (मुंडा, संथाल, उराँव तथा अन्य) में आत्माओं को भेंट देने की प्रथा है। उन्हें हाथी, सूअर, घोड़े तथा बैल जैसे पशुओं की बलि दी जाती है। पुरोहित वर्ग के लोग लकड़ी या पीतल पर उनकी खुदाई करते हैं। ये कलाएँ यथार्थवादी होती है, प्रतीकात्मक कम होती है। जनजाति के लोगों की कलात्मक रूचि अपने घरों को सुसज्जित करने में भी देखी जा सकती है। वे अपने शरीर पर सुन्दर वस्त्र व गहनें पहनते हैं व शरीर के विभिन्न भागों पर चित्र व नाम गुदा लेते हैं। चूंकि वे कम वस्त्र पहनते हैं, अत: शरीर पर स्थायी रूप से विभिन्न प्रकार की शैलियाँ गुदा कर उसे सुन्दर बना लेते हैं। वस्त्रों पर जो रंग करते हैं वे उनके खुद के निर्मित होते हैं। लाल-पीले, नीले, हरे व काले रंग उनके चहेते रंग है तथा ज्यामिति आकार के डिजाइन वे वस्त्रों पर बनाते हैं।

मुंडा संथाल तथा उराँव जनजातियों में सांस्कृतिक परिवर्तन: विदेशियों तथा विदेशी जीवनशैली के कारण बिहार में जनजातियों का जीवन तेजी से बदल रहा है। पहले तो गैर जनजातियाँ, ईसाई धर्म प्रचारकों, छोटे-छोटे सरकारी कर्मचारियों तथा व्यापारियों से इनका संघर्ष हुआ। इनसे जनजाति प्रभावित हुए और उनकी जीवन-शैली में बदलाव आने लगा। आजकल मुख्य पांच तत्त्वों ने उन्हें तथा उनकी जीवन-शैली को प्रभावित किया है। ये हैं, नगरीकरण, औद्योगीकरण, सामुदायिक विकास कार्यक्रम, गैर सरकारी कल्याणकारी संगठन तथा राज्य का कल्याण विभाग। विगत तीन सौ वर्षों से हिन्दू जातियों जनजातियों के दूरवर्ती गांवों में रहती आई है। दोनों ने एक-दूसरे से भिन्न नहीं मानता। हिन्दू जातियों ने अनेक देवी-देवताओं की पूजा तथा विश्वासों को जन्म दिया है। जनजातियों ने हिन्दुओं की तरह आत्मा के आवागमन, स्वर्ग-नरक की कल्पना, वैवाहिक और मृतक कर्मकाडों को अपना लिया है। हिन्दुओं के रीति-रिवाज को अपनाने से उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई है।

हिन्दुओं के प्रभाव में आकर मुंडा, संथाल और उरांवों ने सुधार आंदोलन भी शुरू किया है। हिन्दुओं तथा ईसाइयों के रीति-रिवाजों से प्रभावित होकर बिरसा आंदोलन का सूत्रपात किया गया जो मुख्य रूप से सामाजिक-आर्थिक आंदोलन था। इसने ब्रिटिश शासन की चूलें हिला दीं। संथालों का साफा होड़ आंदोलन हिन्दू संपर्क का ही परिणाम था।[8]

छोटानागपुर में ईसाई धर्म प्रचारक भी कार्यरत हैं। ये यहाँ के दूर-दराज गांवों में जाकर, लोकहितैषी कार्यों में लगे हुए हैं। शिक्षा स्वास्थ्य, कृषि आपदा प्रबंधन, अनाथालय इत्यादि के माध्यम से ये लोगों से जुड़े हुए हैं। इनमें सेवा का भाव अप्रतिम है। पहाड़ी इलाकों में रहने वाली निर्धन जनजातियाँ आसानी से इनके जाल में फंस गई। ईसाई धर्म प्रचारक उन्हें ईसाई धर्म में भी दीक्षित करने लगे। जनजाति बहुल इलाकों में स्कूल, अस्पताल, अनाथालय खोले गए। जनजातियाँ इनसे काफी प्रभावित हुईं। ईसाई-धर्म में दीक्षित जनजातियों से ही जनजाति नेता निकल आए। ईसाई धर्म प्रचारकों ने उनमें स्वाभिमान की भावना उत्पन्न की तथा उनका आधुनिकीकरण किया।

शहरीकरण ने भी जनजातियों को प्रभावित किया है। शहरों के पार्श्ववर्ती गांवों का शहरीकरण होने लगा है। इससे दूरवर्ती गांव भी प्रभावित हुए हैं। जो लोग पूर्ण रूप से खेती पर आश्रित थे, वेअब मजदूर बन गए हैं तथा शहरों में आकर मेहनत-मजदूरी करने लगे हैं। वे गांवों के आनंद और निश्चितता को भूल गए हैं तथा शहरी जीवन की भाग-दौड़ में शामिल हो गए हैं। शहर से पांच या छह किलोमीटर दूर के ग्रामीण भी शाक-सब्जी व अनाज को बेचने के लिए प्रतिदिन शहर आते-जाते हैं। वे मकान-निर्माण, रिक्शा खींचने ठेला ढोने आदि का काम करते हैं। ये लोग गांवों को नहीं छोड़ते और शहर बाजार जाकर जीविकोपार्जन करते हैं। उनमें शहरी तहजीव, फैशन, आदतें स्वत: घर कर जाती है।

छोटानागपुर में खनिज पदार्थों, जैसे लोहा, कोयला, मैंगनीज, तांबा, बॉक्साइट, यूरेनियम की प्रचुरता है। अधिकांश जनजाति छोटानागपुर में ही रहते हैं। जब तक खनिज पदार्थों का अधिक शोषण दोहन नहीं होता था, जनजातियों का जीवन शांतिमय था। लेकिन अब जनजाति इलाकों का औद्योगीकरण होने लगा है। नए-नए कल-कारखाने खुल रहे हैं। अत: अब जनजातियों का जीवन शांतिमय नहीं रह गया। दामोदर घाटी निगम, बोकारो इस्पात कारखाना, हटिया (रांची) का भारी मशीनरी संयंत्र आदि से आर्थिक विकास में गति आई है।

वर्तमान में सामुदायिक विकास ने आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं का द्वार खोल दिया है। इससे जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक व सांस्कृतिक विकास की संभावना बढ़ गई है। जिन प्रखंडों में सामुदायिक विकास योजना कार्यरत हैं वहाँ के जनजातियों के जीवन में सुधार आया है। अब अधिकांश जनजाति खपरैल के घरों में रहते हैं तथा जो हाल में बने हैं उनमें दरवाजे, खिड़कियाँ भी हैं। प्राय: सभी गांवों में कुछ ऐसे मकान हैं जहाँ कुर्सियाँ, मेज और चारपाइयाँ हैं। अल्मूनियम के बर्तन, संदूक, चम्मच, केतली, प्याले, तश्तरियाँ आदि निश्चित रूप से धर्मांतरित जनजातियों के घरों में देखी जा सकती है। मिट्टी के दीये की जगह लालटेन ने ली है। कुछ लोग खिलौने, धूप चश्में, घडिघ्याँ, कैमरा, सिलाई मशीन छाता, और सायकिल भी रखने लगे हैं। औद्योगीकृत इलाकों में आदिवासी औरतें केश तेल, साबुन तथा कुछ सस्ती शृंगार प्रसाधनों का उपयोग करने लगी है। केवल दूर-दराज के गांवों में ही हम पारंपरिक परिधानों में लोगों को पाते हैं। धोती, साड़ी, कमीज, पैंट, ब्लाउज, फ्रॉक आदि पहनने का रिवाज बढ़ गया है।

सामाजिक संबंधों तथा रिश्तेदारियों में दरार उत्पन्न हो गई है। सामूहिक नाच-गान का महत्त्व कम हो गया है। मनोरंजन के नए साधन अपनाए जा रहे हैं। जिन जनजाति परिवारों में पुरूष शिक्षित और नारी अशिक्षिता है उनके दांपत्य जीवन में खटास पाई जाती है। जनजातियों के ग्राम पंचायत असंगठित हो गई है। अब सभी इलाकों में सरकार संपोषित पंचायतें काम कर रही हैं। केवल सामाजिक अपराधों जैसे आदिवासी रीति-रिवाजों के उल्लंघन होने पर कुछ प्रभावशाली ग्रामीण अपने मामलों की सुनवाई पंचायत स्तर पर करते हैं।

औपनिवेशिक काल से बिहार की जनजातियों से वर्तमान की जनजातियों की महत्त्वाकांक्षाएँ बढ़ गई है। अधिकांश जगहों में लोग शिक्षा के महत्त्व को समझने लगे हैं। नई-नई आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु मुंडा, संथाल व उराँव जनजाति सजग हैं। वे अपने जीवन मूल्यों को समझने लगे हैं। वे अपनी पारंपरिक संस्थाओं जनजाति नृत्य-गान, पंचायत-परहा, ढुमकुडिघ्या आदि को नया रूप दे रहे हैं राज्य सरकार उनकी परम्पराओं को जीवित रखने के लिए प्रयत्नशील हैं।[9]

समयानुसार हमारे जनजातीय मुंडा, संथाल तथा उराँव बंधुवों के बीच परिवर्तन होता आया है। उक्त जनजातीय समाज के बीच होने वाले परिवर्तन प्रक्रियाओं को विभिन्न नामों से जाना जाता है; जैसे हिन्दूकरण, संस्कृतिकरण, विजन-जातिकरण, ईसाईकरण, पश्चिमीकरण, नगरीकरण, आधुनिकीकरण, जाति-जनजाति सातत्य इत्यादि। इन प्रक्रियाओं के कारण जनजातीय समाज में व्यापक परिवर्तन हुए हैं। जनजातीय संस्कृति के भौतिक एवं अभौतिक दोनों पक्ष परिवर्तन प्रक्रियाओं से प्रभावित हुए हैं। जनजातीय जीवन शैली पर इन परिवर्तन प्रक्रियाओं का सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव परिलक्षित हुए हैं। जनजाति समाज का हमारे हिन्दू समाज के साथ संपर्क बहुत पुराना है। हिन्दूकरण के कारण जनजातीय समाज में जाति की अवधारणा विकसित हुई है। तथा उनके बीच सामाजिक स्तरण अस्तित्व में आया है। हिन्दूकरण के अन्तर्गत जनजातियाँ अपने आप को हिन्दू राजाओं के वंशज तथा क्षत्रिय जाति बतलाती है। संस्कृतिकरण प्रक्रिया के अन्तर्गत जनजातियों के बीच ब्राह्मण तथा क्षत्रिय जीवन शैली अस्तित्व में आयी है। ईसाईकरण के कारण जनजातियों के बीच ईसाई धर्म गुरु, गिरजाघर तथा ईसाई पर्व त्योहारों के प्रति आस्था उत्पन्न हुई है। ईसाईकरण के कारण जनजातियों के बीच शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवा का विकास हुआ है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विश्लेशणोपरांत निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि मुंडा संथाल तथा उराँव जनजातियों के सांस्कृतिक जीवन में काफी समानताएँ हैं। अगर इन जनजातियों में थोड़ी-बहुत असमानताएँ हैं तो भाषा का है साथ ही नाम का है। यथा मुंडा का युवागृह, उराँव का धुमकुड़िया व संथाल का अखाड़ा इन सभी संस्थाओं में कर्म एक जैसी ही होते हैं। खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज में थोड़े अंतर दिखाई देते हैं परन्तु आधुनिक व औद्योगीकरण नगरीकरण आदि का प्रभाव उक्त जनजातियों पर पड़ा है। शराब पीना और पिलाना मुंडा, संथाल तथा उराँव जनजातियों में काफी लोकप्रिय है। ये लोग किसी भी मेहमान का स्वागत दारू व हडिघ्या से ही करते हैं। इन समानों में अंग्रेजी गराबों तथा दारू भट्ठी का प्रचलन हुआ है। अपनी सामाजिक प्रतिश्ठोको श्रेष्ठ दर्शाने के लिए अंग्रेजी शराब की ओर आकर्षित हुए हैं।

संदर्भः

1. सच्चिदानंद, कल्चरल चेंज इन ट्राईबल बिहार, कलकत्ता, 1994, पृ.-117
2. झारखंड समाज संस्कृति और विकास, जेवियर समाज-सेवा, संस्थान, रांची
3. विजय शंकर उपाध्याय एवं गया पाण्डेय, जनजातीय विकास, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2001, पृ.-70
4. एस. सी. राय, द उराँव ऑफ छोटानागपुर, पूर्व उद्धृत, पृ.-151
5. नरेन्द्र कुमार सिंधी एवं वसुधाकर गोस्वामी, समाजशास्त्र विवेचन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1997, पृ.-409
6. वही, पृ.-411
7. कौलेश्वर राय, बिहार का इतिहास, किताब महल, इलाहाबाद, 2010, पृ.-344
8. वही, पृ.-412
9. वही, पृ.-345

बिहार की ग्रामीण आबादी के जीवन में माइक्रोफाइनेंस का महत्व

नीरज कुमार

शोधछात्र एवं सहायक प्राध्यापक, रामकृष्ण महाविद्यालय, मधुबनी, बिहार

डॉ० अमरकान्त चौधरी

शोध पर्यवेक्षक, रामकृष्ण महाविद्यालय, मधुबनी, बिहार

भूमिका

ग्रामीण लोग जो कम पढ़ेखलिखे लोग या अनपढ़ लोग होते हैं; फाइनेंस, बैंक सम्बंधित जानकारी आदि विषयों को ठीक से समझ नहीं पाते हैं। जिस कारण वे बहुत सारी सुविधाओं का लाभ नहीं उठा पाते हैं।

भारत जैसी ग्रामीण और विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए माइक्रोफाइनेंस की अवधारणा बहुत ही लाभदायक है। हमारे समाज के गरीब, पिछड़े या वंचित लोगों को इस अवधारणा से बचत, रोजगार और अन्य सुविधाओं की प्राप्ति बढ़ गयी है। हमारे समाज के बेहतर वित्तीय स्थिति से ही देश का विकास निर्भर करता है।

माइक्रोफाइनेंस संस्थान उन लोगों के लिए उपयोगी है जिन लोगों की पहुँच बैंकों तक नहीं है। इसके जरिये कम आय वाले लोग अपने पैरों पर खड़े होते है।

माइक्रोफाइनेंस संस्थानों का काम केवल ऋण देना नहीं होता है। वे उधारकर्ता का साथ तब तक नहीं छोड़ते हैं जब तक वे स्वयं अपना कारोबार चलाने के लिए सक्षम नहीं हो जाते और बचत का प्रबंधन बेहतर तरीके से नहीं करने लगते। यही एक विशेष कारण है कि हमारे देश में डथ्प् कंपनियों की सफलता दर अधिक है।

माइक्रोफाइनेंस संस्थाओं का पंजीकरण गैर सरकारी संगठन (सहकारी या ट्रस्ट) के तौर पर होता है जो कंपनी अधिनियम के सेक्सन 25 के अधीन होता है। इसके द्वारा दिए गए ऋण का मुख्य उद्देश्य आय और रोजगार का सृजन करना है।

इसके तहत ऋण एक व्यक्ति या व्यक्ति के समूह को लघु अवधि के लिए दिया जाता है और इसकी सबसे खास बात यह होती है कि ऋण की वसूली की दर बहुत ऊँची है।

माइक्रोफाइनेंस, वित्तीय समावेशन और आर्थिक विकास एक नया प्रतिमान है, जो बिहार जैसे राज्य से गरीबी दूर करने में प्रमुख भूमिका निभा रहा है । आर्थिक विकास और उन्नति के मामले में बिहार जैसे किसी भी विकासशील या पिछड़े राज्य की सर्वोच्च प्राथमिकता समाज का वित्तीय समावेशन है। माइक्रोफाइनेंस अमीर और गरीब लोगों के बीच की खाई को कम करके उन्हें आर्थिक रूप से सक्षम बनाता है । आर्थिक समृद्धि किसी भी अर्थव्यवस्था के समग्र विकास के मजबूत स्तंभ का प्रतीक है।

विभिन्न अध्ययनों में देखा गया है कि, बिहार के जीएसडीपी पर माइक्रोफाइनेंस की वृद्धि हुयी है और कुल बचत में भी सकारात्मक वृद्धि पाई गई है। नाबार्ड, एनजीओ, ट्रस्ट, सोसायटी (एनबीएफसी को छोड़कर) जैसे एमएफआई, राज्य के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। बिहार जैसे राज्य में माइक्रोफाइनेंस की वृद्धि में छोटे पेमेंट बैंकों और स्मॉल फाइनेंस बैंकों की भूमिका भी काफी महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत शोध बिहार में माइक्रोफाइनेंस का वर्तमान परिदृश्य और आर्थिक विकास में इसकी भूमिका के आकलन का एक प्रयास है।

मूल शब्द : माइक्रो फाइनेंस, वित्तीय समावेशन, आर्थिक विकास, एमएफआई, बैंक, ग्रामीण, बिहार

परिचय

माइक्रो फाइनेंस के अंतर्गत ग्रामीण जनताओं की विभिन्न जरूरतों को ध्यान में रखते हुए छोटी ख़ छोटी वित्तीय सुविधाएँ प्रदान करने की व्यवस्था की जाती है। इसके तहत आर्थिक रूप से कमजोर लोगों को अपना कामकाज शुरू करने के लिए कर्ज दिए जाते हैं।

देश की आबादी का लगभग 69 फीसदी हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है, जिसका एक बड़ा हिस्सा अब तक औपचारिक वित्तीय सेवाओं से वंचित है। यह इसकी सबसे बड़ी दिक्कत है। ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय उपलब्धता को सुनिश्चित करने के लिए ही माइक्रोफाइनेंसिंग की शुरुआत हुई। भारतीय माइक्रोफाइनेंस इंस्टीट्यूशन को शुरू करने का मुख्य उद्देश्य भी समाज के गरीब और पिछड़े वर्ग का वित्तीय समावेश करना ही था। ग्रामीण भारत, विशेष रूप से महिलाओं के लिए माइक्रोफाइनेंस ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्वयं सहायता समूहों के साथ बैंकिंग प्रणाली को जोड़ने से भारत में माइक्रोफाइनेंसिंग को अपने उद्देश पूरा करने में और ज्यादा सफलता मिली।

देश में माइक्रोफाइनेंस कंपनियां रीड की हड्डी की तरह कार्य कर रही है। खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले गरीब तबके के लोगों के लिए माइक्रो फाइनेंस कंपनी अहम भूमिका निभा रही है। कंपनी के द्वारा ऋण के रूप में प्रदान की जा रही राशि से गरीब तबके के लोग छोटे-छोटे व्यवसाय करके अपना परिवार चलाने में सक्षम हो रहे हैं।

ये माइक्रोफाइनेंस संस्थाएं कॉमर्शियल बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (आरआरबी), सहकारी समिति और अन्य बड़े कर्जदाताओं के लिए रीफाइनेंसिंग की सुविधा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। माइक्रोफाइनेंस संस्थाएं व गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियां, समाज के गरीब वर्ग की तमाम वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करती हैं। इनमें माइक्रो क्रेडिट, माइक्रो सेविंग, माइक्रो इंश्योरेंस इत्यादि जैसी सेवाएं शामिल हैं। प्रधानमंत्री मुद्रा योजना, प्रधानमंत्री जन धन योजना के तहत ओवरड्राफ्ट की सुविधा ने माइक्रोफाइनेंस को बढ़ावा दिया है। लेकिन, आज भी इसकी तकनीकी क्षमता, ब्याज दरों में बदलाव व ग्रामीण सशक्तिकरण में इसकी भूमिका संदेह के घेरे में है।

माइक्रोफाइनेंस, भारत भारत में सरकार और रिजर्व बैंक की वित्तीय समावेशन रणनीति में एक महत्वपूर्ण तत्व है। यह वंचितों (गरीब) के समग्र आर्थिक विकास में मददगार है।

बिहार, भारत के सबसे गरीब राज्यों में से एक है, जहाँ आज भी 33.7% आबादी गरीबी रेखा से नीचे रहती है। इसलिए, भारत में विशेष रूप से बिहार जैसे राज्यों में वित्तीय समावेशन और लघु वित्त कार्यक्रमों द्वारा गरीब और वंचित लोगों को नवीनतम वित्तीय उत्पाद और सेवाएं प्रदान किये जाने की बहुत जरुरत है। इस कार्य में स्वयं सहायता समूहों का योगदान भी प्रसंसनीय रहा है।

विभिन्न अध्ययनों ने भी माइक्रोफाइनेंस की भूमिका को बिहार के ग्रामीणों की स्थिति को बेहतर बनाने सहायक पाया है।

सूदखोरी और माइक्रोफाइनेंस संस्थाएं

सूदखोरी वो व्यवस्था होती है जिसमें कर्ज अत्यधिक ब्याज पर या कोई अनैतिक तरीके से दिया जाता है। इस व्यवस्था में कर्ज लेने वाले का लाभ नहीं बल्कि कर्ज देने वाला का लाभ प्रधान होता है।

अनुमंडल मुख्यालय समेत ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी सूदखोरी की प्रथा परवान पर है। सरकार भले ही बैंकों पर लोगों को विभिन्न कार्यों के लिए ऋण देने का दबाव बनाती हो, लेकिन बैंकों का रवैया आज भी इस मामले में उदासीन ही है। इस कारण आमलोग जरूरत पड़ने पर आज भी महाजन से सूद पर रुपये लेने को मजबूर हैं। लोग जरूरत पड़ने पर सूदखोरों की सभी शर्तें मानकर रुपये ले लेते हैं और उसके बाद उसके शोषण का शिकार होते रहते हैं।

सूद पर रुपये लगाने का कारोबार शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में फलफूल रहा है। शहरी क्षेत्र में लोग कारोबार को बढ़ाने, व्यापार प्रारंभ करने और कभी-कभी घर की जरूरतों को पूरा करने के लिए सूद पर रुपया उधार लेते हैं। एक दिन, एक सप्ताह या एक महीना के लिए कारोबारी लोगों को अधिक ब्याज पर सूदखोर रुपया उधार देते हैं। रकम के हिसाब से भी सूद की दर तय होती है। कम रुपया लेने पर अधिक ब्याज देना पड़ता है।कम राशि कम दिनों के लिए लेने पर पांच से दस प्रतिशत प्रति सैकड़ा के हिसाब से ऋण लिया जाता है। अधिक राशि लेने पर ब्याज की दर तीन प्रतिशत प्रति सैकड़ा होती है। वहीं, ग्रामीण क्षेत्र में लोग बेटा-बेटी की शादी पर, तो कभी घर में किसी के बीमार पड़ने पर, तो कभी घर में किसी की मृत्यु हो जाने पर आयोजित होने वाले श्राद्धकर्म के लिए महाजन से सूद पर उधार लेते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में तीन से पांच रुपये प्रति सैकड़ा के हिसाब से महाजन सूद पर रुपया उधार देते हैं। महाजन अगले के जरूरत को देखते हुए सूद की दर निर्धारित करते हैं, जिस पर रुपया उधार लेने की मजबूरी बनी रहती है।

महाजन दो तरीकों से सूद पर रुपया लगाते हैं। या तो गहना गिरवी रखकर या स्टैंप पेपर पर हस्ताक्षर या अंगूठे का निशान लेकर रुपया सूद पर उधार देते हैं। कई बार सूद का रुपया समय पर नहीं देने पर लोगों को बंधक लगाए गहनों से भी हाथ धोना पड़ता है, तो कई बार पंचायत के माध्यम से दोनों के बीच लोग सुलह कराई जाती है। कई बार तो स्थिति मारपीट तक पहुंच जाती है, लेकिन हमेशा जीत सूदखोर की ही होती है। अधिकतर छोटे किसान बीज, खाद, कीटनाशक और अपनी दूसरी जरूरतों के लिए सूदखोरों पर निर्भर हैं।

माइक्रोफाइनेंस के समर्थक अक्सर दावा करते हैं कि इस तरह की पहुंच गरीब लोगों को गरीबी से बाहर निकालने में मदद करेगी, जिसमें माइक्रोक्रेडिट शिखर सम्मेलन अभियान में भाग लेने वाले भी शामिल हैं। कई लोगों के लिए, माइक्रोफाइनेंस सूक्ष्म उद्यमियों और छोटे व्यवसायों के समर्थन के माध्यम से आर्थिक विकास, रोजगार और विकास को बढ़ावा देने का एक तरीका है; दूसरों के लिए यह गरीबों के लिए अपने वित्त को अधिक प्रभावी ढंग से प्रबंधित करने और जोखिमों का प्रबंधन करते हुए आर्थिक अवसरों का लाभ उठाने का एक तरीका है। आलोचक अक्सर सूक्ष्म-ऋण की कुछ बुराइयों की ओर इशारा करते हैं जो ऋणग्रस्तता पैदा कर सकती हैं। कई अध्ययनों ने इसके प्रभावों का आकलन करने की कोशिश की है।

महिला-उन्मुख उधार पर माइक्रोफाइनेंस का जोर विवाद का विषय है, क्योंकि यह दावा किया जाता है कि माइक्रोफाइनेंस गरीबी उन्मूलन के माध्यम से महिलाओं की स्थिति में सुधार करता है। यह तर्क दिया जाता है कि महिलाओं को प्रारंभिक पूंजी प्रदान करके, वे पुरुषों से स्वतंत्र रूप से अपना समर्थन करने में सक्षम होंगी, जिससे उद्यम के सतत विकास और अंततः आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहित किया जा सके। यह दावा अभी तक किसी भी ठोस रूप में सिद्ध नहीं हुआ है। इसके अलावा, संभावित निवेश आधार के रूप में महिलाओं का आकर्षण ठीक इसलिए है क्योंकि वे आज्ञाकारिता, पारिवारिक कर्तव्य, घरेलू रखरखाव और निष्क्रियता की ऐसी अवधारणाओं के संबंध में सामाजिक-सांस्कृतिक मानदंडों से विवश हैं।[38] इन मानदंडों का परिणाम यह है कि जहां सूक्ष्म-ऋण महिलाओं को अपने दैनिक जीवन-निर्वाह में अधिक स्थिर गति से सुधार करने में सक्षम बनाता है, वहीं वे कम-कुशल, कम आय वाले सीमित दायरे से परे बाजार-उन्मुख व्यवसाय अभ्यास में संलग्न नहीं हो पाएंगे। , अनौपचारिक कार्य। इसका एक हिस्सा समाज में अनुमति की कमी है; घरेलू रखरखाव के अतिरिक्त बोझ का एक हिस्सा जो महिलाओं को सूक्ष्म वित्तीय सशक्तिकरण के परिणामस्वरूप अकेले ही वहन करना पड़ता है; और अर्थशास्त्र की लैंगिक धारणाओं के इर्द-गिर्द प्रशिक्षण और शिक्षा की कमी का हिस्सा है। विशेष रूप से, मानदंडों में बदलाव जैसे कि महिलाएं सभी घरेलू निजी क्षेत्र के श्रम के साथ-साथ अपने परिवारों के लिए सार्वजनिक आर्थिक सहायता के लिए जिम्मेदार बनी रहती हैं, पुरुष सहायता से स्वतंत्र होने के बजाय पहले से ही सीमित व्यक्तियों पर बोझ कम हो जाता है।

'सफलता की तमाम कहानियों' के बावजूद इसके अंतर्गत गरीबों को दिये जाने वाले ऋण की मात्रा काफी कम रहती है और वह ज्यादातर उत्पादन के काम के लिए नहीं बल्कि उपभोग के मद में इस्तेमाल होता है तथा इसमें सूद की दर 20 से 40 फीसदी तक रहती है तथा कर्जे की वसूली 98 फीसदी तक देखी गयी है। यह भी कहा जाता रहा है कि श्यह तमाम राजकीय और व्यावसायिक बैंकों की असफलता का ही सूचक है कि वे वास्तविक गरीब को कर्जा देने में अक्षम साबित हुए हैं।

माइक्रोफाइनेंस और बिहार की अर्थव्यवस्था

आर्थिक सर्वेक्षण की रिपोर्ट के मुताबिक, बिहार में गरीबी की दर 33.7 फीसद है, जो राष्ट्रीय औसत से काफी ज्यादा है। ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की दर, शहरी क्षेत्रों की तुलना में अधिक है। देश के जिन जिलों में 60 प्रतिशत से अधिक गरीबों की आबादी है (4 करोड़), उनमें से 2.8 करोड़ बिहार के 11 जिलों में रहते हैं।

माइक्रोफाइनेंस गरीबी उन्मूलन के लिए एक शक्तिशाली विकल्प है, जिसमें सस्ती, समय पर और पर्याप्त के माध्यम से गरीब लोगों के लिए ऋण और अन्य वित्तीय सेवाएं उपलब्ध होती हैं। बिहार में यह बात खास तौर पर सच है।

माइक्रोफाइनेंस (माइक्रो फाइनेंस इंस्टीट्यूशंस एंड सेल्फ हेल्प ग्रुप बैंक) के दोनों प्रमुख मॉडल राज्य में शुरू से ही प्रचालन में रहे हैं। लेकिन, स्वयं सहायता समूह-बैंक लिंकेज, अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों और सह-समूह द्वारा कार्यान्वित कार्यक्रम (एसएचजी-बीएलपी) ऑपरेटिव बैंक, बिहार में प्रमुख माइक्रोफाइनेंस के रूप में उभरा है। बिहार में साल 2015-16 में 2.79 लाख एसएचजी थे। जिनकी कुल बचत 10,000 करोड़ रुपये थी।

Table1- SHG&Bank Linkage in Selected States of India (March 2016)

Table1. SHG-Bank Linkage in Selected States of India (March 2016)

State	No. of SHGs ('000) with Bank Linkage	Savings of SHGs with Banks (Rs crore)	Bank loans disbursed during the year (Rs crore)	State	No. of SHGs ('000) with Bank Linkage	Savings of SHGs with Banks (Rs crore)	Bank loans disbursed during the year (Rs crore)
Andhra Pradesh	902	4146	11505	Maharashtra	789	857	1600
Bihar	**279**	**360**	**611**	Odisha	487	486	860
Chhattisgarh	160	160	96	Punjab	30	40	38
Gujarat	221	184	266	Rajasthan	264	187	322
Haryana	43	159	54	Tamil Nadu	852	920	4826
Jharkhand	99	96	66	Uttar Pradesh	364	382	294
Karnataka	962	1442	6259	West Bengal	831	1535	1954
Kerala	273	629	1407				
Madhya Pradesh	249	248	591	**Total**	**7903**	**13691**	**37287**

Source : Status of Micro Finance in India, 2015-16, NABARD

Table 2: Growth of MFI Model & SHG-Bank Linkage Model in Bihar

MFI MODEL							
	2009-10	**2010-11**	**2011-12**	**2012-13**	**2013-14**	**2014-15**	**2015-16**
Client Outreach(Lakh)	7.5	10.19	11	12	17	24	24
Gross Loan Portfolio Outstanding(In Rs. Crore)	496	537	895	1036	1669	3076	3526
SHG-Bank Linkage MODEL							
	2009-10	**2010-11**	**2011-12**	**2012-13**	**2013-14**	**2014-15**	**2015-16**
Client Outreach	140824	248197	305113	270890	3240000	2918000	3621000
Gross Loan Portfolio(Rs. Lakh)	8539.57	10857.3	14042.4	16967.6	89814.2	102676	100248
Savings of SHGs with Banks (Rs. Crore)	81.69	108.57	140.42	169.64	164.66	280.45	360.06

Source: Compiled from various reports of NABARD & Sa-Dhan (Author)

तालिका 2 पिछले कुछ वर्षों में बिहार में माइक्रोफाइनेंस मॉडल के विकास के रुझान प्रस्तुत करती है । मार्च, 2016 तक, एमएफआइ ने 24 लाख परिवारों को कवर किया, जबकि ग्रामीण बिहार में बैंक लिंकेज एसएचजी कवरेज 36.21 लाख घरों तक पहुंच गया। एमएफआईएस सेगमेंट में कुल सकल ऋण पोर्टफोलियो 10,000 करोड़ रुपये तक पहुंच गया। मार्च, 2016 के अंत में एसएचजी-बैंक लिंकेज में कुल बचत 360.06 करोड़ थी। जो पिछले वर्ष से 28% अधिक थी।

निष्कर्ष

एक ओर जहाँ माइक्रो फाइनेंस कम्पनियाँ वित्तीय सेवाएं प्रदान करने का कार्य कर रही है, वहीँ दूसरी ओर गरीब और वंचित वर्ग की मदद करके देश की अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का कार्य भी कर रही हैं। साथ ही साथ ये कम्पनियाँ लोगों को बचत करने और अपने धन का समुचित उपयोग करने के बारे में भी शिक्षित कर रही है।

माइक्रोक्रेडिट, माइक्रोफाइनेंस के लिए एक और शब्द है जिसका प्रयोग भी लोगों के द्वारा खूब किया जाता है। हम सब जानते हैं कि अल्प आय वाले गरीब और ग्रामीण लोगों को आसानी से अपना स्वयं का व्यवसाय शुरू करने का अवसर प्राप्त नहीं होता है।

बिहार जैसे पिछड़े राज्य में माइक्रोफाइनेंस की बचत और ऋण सुविधा में, ग्रामीणों और गरीबों के आर्थिक विकास को तीव्र करने की क्षमता है। नवीनतम आंकड़ों के अनुसार बिहार राज्य में अभी भी 33.7% लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे हैं।

सुलभ, सस्ती और उचित वित्तीय सेवाएं बिहार जैसे राज्य में हमेशा एक समस्या रही है जहाँ प्रभावी समावेशी वित्तीय सुविधाएँ जनता और राज्य के आर्थिक विकास के लिए जरूरी हैं । आरबीआई, नाबार्ड, प्रतिष्ठित एन जी ओ और माइक्रो फाइनेंस कंपनियां अब बिहार के ग्रामीणों के जीवन में बेहतर वित्तीय समावेशन, लघु वित्त, स्वरोजगार में मदद करके नयी रौशनी लाने का कार्य कर रहे हैं।

सन्दर्भ

1. Chakraborty, K.C. (2013, September), Keynote address on financial Inclusion, Mumbai
2. Chithra, N., & Selvam, M. (2013). Determinants of financial inclusion: an empirical study on the inter-state variations in India. Retrieved from ssrn.com/abstract=2296096.
3. Economic Survey, Year 2016-2017 (Finance Department), Govt. of Bihar.
4. Edward Luce (August, 2006), In spite of the Gods: The rise of Modern India Book.
5. Gireesh, Kumar G.S (2005). Micro Finance in India: A Viable Option for Vulnerable Sections. Indian Journal of Multidisciplinary Research Vol 1(2), pp 255-262.
6. Kamboj, S. (2014). Financial inclusion and growth of Indian economy: An empirical analysis. The International Journal of Business & Management, 2(9), 175–179.
7. Mukherjee, A., & Chakraborty, S. (2012). Financial inclusion of the poor and marginalized in Jharkhand: Analysis of the existing model. International Journal on Research and Development: A Management Review, 1(1). Retrieved fromhttp://papers.ssrn.com/sol3/papers.cfm?abstractid=2169673
8. NABARD Annual Report on „Status of Microfinance on India from financial year 2006-07 to 2015-16.
9. Rangarajan, C. (2008). Report on the Committee on Financial Inclusion, Ministry of Finance, Government of India
10. Sa-Dhan (Association of Community Development Finance Institutions Annual Report on „Status of Microfinance in India from financial year 2006-07 to 2015-16.

मातृ शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रमों के उपयोग को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन

अर्पणा सिन्हा

शोध छात्रा, मगध महिला कॉलेज, पटना यूनिवर्सिटी, पटना, बिहार

डॉ० रूपम कुमारी

एसोसिएट प्रोफेसर ऑफ होम साइंस, मगध महिला कॉलेज, पटना यूनिवर्सिटी, पटना, बिहार

सारांश – बच्चे किसी भी देश के महत्वपूर्ण धरोहर हैं। आज के बालक ही कल के जिम्मेदार नागरिक बनते हैं। बालकों के उचित विकास हेतु उनकी माता का स्वस्थ होना भी अत्यंत आवश्यक होता है क्योंकि एक स्वस्थ माता ही स्वस्थ शिशु को जन्म दे सकती है। माताओं एवं शिशुओं के उत्तम स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने हेतु विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों द्वारा अनेकों कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं परंतु इन कार्यक्रमों की उपयोगिता वांछित स्तर तक पहुंच नहीं पाई है। प्रस्तुत अध्ययन में दीघा, पटना की झुग्गी झोपड़ियों में रहने वाली महिलाओं को लिया गया है जिनका चयन उद्देश्य पूर्ण निदर्शन विधि द्वारा किया गया एवं आंकड़ों का संग्रह साक्षात्कार प्रविधि द्वारा एवं विश्लेषण प्रतिशत के माध्यम से किया गया है। इस अध्ययन की उत्तरदाताएँ अत्यंत ही गरीब महिलाएं थी जिनके उत्तम स्वास्थ्य हेतु यह कार्यक्रम चलाए जाते हैं। इस अध्ययन को व्यापक स्तर पर करने से इन कार्यक्रमों की उपयोगिता में कारक बाधा पहुंचा रहे हैं, उनको दूर करके इनकी उपयोगिता को बढ़ाया जा सकता है जिससे वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति हो सके एवं देश विकास की ओर अग्रसर हो सके।

शब्द कुंजी – मातृ स्वास्थ्य, शिशु स्वास्थ्य, स्वास्थ्य कार्यक्रम, उपयोगिता, कारक

प्रस्तावना – मां बनना हर महिला के लिए अत्यंत गौरवपूर्ण अनुभूति होती है परंतु एक नए जीवन को इस दुनिया में लाने के दौरान महिलाओं को काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। गर्भावस्था एवं प्रसव के दौरान मृत्यु के जोखिम के अतिरिक्त महिलाएं और भी कई छोटी अथवा लंबी बीमारियों से ग्रस्त हो जाती हैं। विश्व बैंक का अनुमान है कि अगर महिलाओं को प्रसव एवं गर्भावस्था से संबंधित विभिन्न सेवाएं प्रदान की जाए तो इन जटिलताओं को काफी हद तक रोका जा सकता है। भारत सरकार ने पहली एवं दूसरी पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान मातृ एवं शिशु के स्वास्थ्य को सुरक्षित करने एवं बढ़ावा देने का उद्देश्य रखातथा तब से आज तक इन कार्यक्रमों में आवश्यकतानुसार अनेक बदलाव भी किए गए। गर्भावस्था के दौरान महिलाओं के स्वास्थ्य की जांच की जाती है तथा इसके कारण अगर महिलाओं में और किसी भी प्रकार की भी स्वास्थ्य संबंधी समस्या होती है वो भी पहचान में आ जाती है तो भविष्य में माता एवं शिशु दोनों के ही उत्तम स्वास्थ्य को प्राप्त किया जा सकता है।

गर्भधारण से पहले, गर्भावस्था में, प्रसव के बाद एवं दो गर्भावस्था के बीच में यदि माताएं उचित देखभाल सेवाओं का उपयोग सही प्रकार से करती हैं तो गर्भावस्था से संबंधित जटिलताओं के जोखिम को भी कम किया जा सकता है। इसके अलावा स्वस्थ देखभाल में शिशु का जन्म होने के कारण तथा शिशु के विकास में होने वाली देरी एवं विकलांगता इत्यादि को प्रारंभिक स्तर पर ही पहचान लिया जाता है एवं उसका उपचार कर दिया जाता है जिससे शिशुओं में मृत्यु विकलांगता अथवा अन्य स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को रोका जा सकता है जिससे बालक अपने अंदर मौजूद क्षमताओं को प्राप्त करके एक सक्षम नागरिक बनते हैं।

अध्ययन के उद्देश्य

यह पता लगाना कि ग्रामीण निम्न आय वर्गीय महिलाओं को मातृ शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रमों की जानकारी किस स्तर तक है।

यह पता लगाना कि ग्रामीण निम्न आय वर्गीय महिलाओं में मातृ शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रमों के उपयोग का स्तर क्या है।

यह पता लगाना कि ग्रामीण निम्न आय वर्गीय महिलाओं के मातृ शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रमों के उपयोग को कौन से कारक प्रभावित करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ का पुनरावलोकन

पावलापल्ली एवं डीएम रमेश (1992 93) ने भारतीय राष्ट्रीय स्वास्थ्य सर्वेक्षण आंकड़ों का विश्लेषण किया तथा इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मातृ देखभाल सेवाओं के प्रयोग पर माता की स्कूली शिक्षा का महत्वपूर्ण सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। उनके अनुसार भारत में मातृ स्वास्थ्य सेवाओं के उपयोग का सबसे महत्वपूर्ण निर्धारक शिक्षा ही है।

सुंदरी टी के (1992) ने अपने शोध में बताया कि कैसे विकासशील देशों में अपर्याप्त स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली की गलत प्राथमिकताएं मातृ मृत्यु को उच्च करने में योगदान देती हैं। आवश्यक स्वास्थ्य जानकारी की दुर्गमता महिलाओं को सबसे अधिक प्रभावित करती हैं। साथ ही आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भौतिक दूरी भी महिलाओं की एक विशाल आबादी को स्वास्थ्य सेवाओं से अलग करती हैं। यहां तक कि जब महिला एक स्वास्थ्य केंद्र तक पहुंच भी जाती है तो भी उसे उचित एवं पर्याप्त देखभाल प्राप्त करने में अनेकों कठिनाइयां आती हैं।

शोध प्रविधियाँ

अध्ययन का क्षेत्र - प्रस्तुत शोध के लिए दीघा, पटना, बिहार का चयन किया गया है।

निदर्शन आकार एवं निदर्शन तकनीक - अध्ययन के लिए कुल 50 महिलाओं का चयन किया गया है जो कि उद्देश्य पूर्ण निदर्शन विधि द्वारा किया गया है।

आंकड़ों का संग्रहण

1. प्राथमिक स्रोत - साक्षात्कार, अनुसूची, प्रस्तुत शोध में मातृ शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रमों की उपयोगिता को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करने हेतु स्वनिर्मित अनुसूची का निर्माण किया गया। इसके साथ ही अवलोकन तथा साक्षात्कार विधि का भी प्रयोग किया गया।

2. द्वितीयक स्रोत - द्वितीयक स्रोत का संकलन पुस्तक, शोध पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों से किया गया है।

आंकड़ों का विश्लेषण - आंकड़ों का विश्लेषण प्रतिशत में किया गया है।

परिणाम एवं परिचर्चा - प्रस्तुत अध्ययन मातृ शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रमों के उपयोग को प्रभावित करने वाले कारकों की जानकारी हेतु किया गया। अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण इस प्रकार है।

तालिका - 1 महिलाओं में मातृ शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रमों की जानकारी का स्तर

क्रमांक	*कार्यक्रमों की जानकारी का स्तर*	*महिलाओं की संख्या (50)*	*प्रतिशत*
1	हां	22	44
2	नहीं	12	24
3	कुछ-कुछ	16	32

आज माताओं एवं शिशुओं में बढ़ रहे कुपोषण एवं मृत्यु दर इत्यादि को ध्यान में रखते हुए विभिन्न स्वास्थ्य कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं परंतु ग्रामीण इलाके में रहने वाली निम्न आय वर्गीय महिलाएं इन कार्यक्रमों के बारे में पूरी तरह से नहीं जानती हैं। ग्रामीण निम्न वर्गीय महिलाएं इतनी ज्यादा गरीब होती हैं कि उन्हें रोज की दो वक्त की रोटी के लिए बहुत ही ज्यादा मेहनत करनी होती है तो उनका ध्यान सिर्फ और सिर्फ दो वक्त के भोजन जुटाने पर ही केंद्रित हो जाता है। उन्हें अगर किसी भी माध्यम से इन कार्यक्रमों की जानकारी दी भी जाती है तो वह इन पर ध्यान नहीं दे पाती हैं। तालिका 1 के अनुसार 44 प्रतिशत महिलाओं को इन कार्यक्रमों के बारे में जानकारी है। इन कार्यक्रमों द्वारा उन्हें क्या-क्या सुविधाएं प्रदान की जाती है, यह वह जानती हैं। वहीं 24 प्रतिशत महिलाओं ने बताया कि वे इन कार्यक्रमों के बारे में नहीं जानती हैं तथा 32 प्रतिशत महिलाओं को माताओं एवं शिशुओं के स्वास्थ्य हेतु चलाए जा रहे इन कार्यक्रमों के बारे में कुछ- कुछ जानकारी थी। महिलाओं में जानकारी का यह स्तर अत्यंत चिंताजनक है क्योंकि पटना शहर जो कि हमारी राजधानी है, के ग्रामीण इलाके में रहने वाली महिलाओं से जानकारी के अच्छे स्तर की अपेक्षा रखी गई थी परंतु महिलाओं में इससे संबंधित जानकारी उत्तम ना होना परिस्थिति की गंभीरता को दर्शाता है।

तालिका - 2 महिलाओं में मातृ शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रमों के उपयोग का स्तर

क्रमांक	*कार्यक्रमों के उपयोग की संख्या*	*महिलाओं की संख्या (50)*	*प्रतिशत*
1	0	4	8
2	1	32	64
3	2	8	16
4	3	6	12

गर्भावस्था के दौरान स्वास्थ्य केंद्रों पर 3 सेवाएं प्रदान की जाती है जिसमें प्रथम तिमाही में खून जांच, शारीरिक जांच, ब्लडप्रेशर जांच आदि सामान्य स्वास्थ्य जांच किए जाते हैं।दूसरी तिमाही में अल्ट्रासाउंड, ब्लड प्रेशर,आयरन फोलिक एसिड गोलियां प्रदान करना इत्यादि सेवाएं दी जाती है तथा तीसरी तिमाही में भी ब्लड प्रेशर, गर्भवती के स्वास्थ्य की जांच, अल्ट्रासाउंड इत्यादि स्वास्थ्य जांच किया जाता है। तालिका 2 से स्पष्ट होता है कि महिलाओं में मातृ शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रमों के उपयोग का स्तर बहुत ही निम्न है। कुल 8 प्रतिशत महिलाएं ऐसी थी जिन्होंने गर्भावस्था के दौरान एक भी सेवा नहीं ली तथा इनका प्रसव भी घर पर ही करवाया गया। 64 प्रतिशत महिलाएं ऐसी हैं जिन्होंने सिर्फ एक सेवा स्वास्थ्य केंद्र तक जाकर ली है और वह भी पूरे गर्भावस्था में किसी जांच हेतु केंद्र तक नहीं गई, सिर्फ प्रसव करवाने हेतु स्वास्थ्य केंद्र तक गई। प्रसव हेतु स्वास्थ्य केंद्र तक जाने का कारण पूछने पर महिलाओं ने बताया कि प्रसव केंद्र पर प्रसव करवाने के उपरांत उन्हें सरकार से सहायता राशि भी मिलती है जिससे वे अपना एवं शिशु का ध्यान रख सकती है, इसलिए प्रसव के

लिए केंद्र तक जाती हैं। 16 प्रतिशत महिलाएं ऐसी हैं जिन्होंने गर्भावस्था के दौरान 2 सेवाएं ली है अर्थात गर्भावस्था के दौरान एक बार तो शारीरिक एवं स्वास्थ्य जांच हेतु केंद्र तक गई तथा दूसरी बार प्रसव हेतु केंद्र पर गई। 12 प्रतिशत महिलाओं ने कुल 3 जांच करवाया तथा उनकी शारीरिक जांच, स्वास्थ्य जांच आदि सभी प्रकार की जांच की गई तथा प्रसव भी स्वास्थ्य केंद्र पर करवाया गया। परंतु यह स्थिति बहुत ही निराशाजनक है।

तालिका - 3 मातृ शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रमों के उपयोग पर विभिन्न कारकों का प्रभाव

क्रमांक	*कारक*	*महिलाओं की संख्या*	*प्रतिशत*
1	शिक्षित	40	80
2	अशिक्षित	6	12
3	कम आयु की महिला	36	72
4	प्रौढ़ महिला	10	20
5	अत्यंत निम्न आय	32	64
6	निम्न आय	14	28
7	निर्णय लेने की आजादी	22	44
8	निर्णय की आजादी नहीं	24	48

तालिका 3 से ज्ञात है कि मातृ शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रमों के उपयोग को विभिन्न कारक प्रभावित करते हैं। महिलाओं की शिक्षा का भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। 80 प्रतिशत महिलाएं साक्षर एवं शिक्षित हैं जिन्होंने मातृ शिशु स्वास्थ्य सेवाओं का कम से कम एक बार उपयोग किया है वहीं 12 प्रतिशत अशिक्षित महिलाओं ने कम से कम एक सेवा प्राप्त की है। महिला की आयु का भी मातृ शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रमों के उपयोग पर प्रभाव पड़ता है। अगर माता की उम्र कम होती है तो वह इतनी परिपक्व नहीं होती है कि वह अपने एवं शिशु के स्वास्थ्य हेतु सोच सके एवं जागरूक रहें। 72 प्रतिशत महिलाएं कम आयु में ही गर्भधारण करने वाली महिलाएं हैं जिनमें से अधिकांश ने गर्भावस्था के दौरान किसी भी प्रकार की सेवा नहीं ली बस प्रसव करवाने हेतु केंद्र तक कई हैं। इन महिलाओं की उम्र एक तो इतनी कम होती है, वे शारीरिक अथवा मानसिक रूप से गर्भधारण हेतु तैयार नहीं होती है साथ ही इस दौरान सामान्य दिनों की तरह ही खानपान रखती हैं तो खुद भी कुपोषित हो जाती हैं एवं शिशु भी कुपोषित हो जाता है। 20 प्रतिशत महिलाएं ऐसी हैं जो 18 वर्ष से अधिक आयु में मां बनी है तथा शारीरिक एवं मानसिक तौर पर काफी हद तक मां बनने को तैयार होती हैं। इन महिलाओं ने दो या दो से अधिक सेवाएं केंद्र तक जा कर ली है। महिलाओं के परिवार की आय का भी इन सेवाओं के उपयोग पर प्रभाव पड़ता है। जो महिलाएं अत्यधिक गरीब हैं, जिन्हें दो वक्त का भोजन भी नहीं मिल पाता है वह महिलाएं पहले अपने भोजन के इंतजाम को ही जरूरी समझती हैं तथा इन सेवाओं के प्रयोग हेतु बिल्कुल भी इच्छुक नहीं होती हैं। इन सेवाओं को लेने हेतु केंद्र तक जाने की बजाय ये काम पर जाना पसंद करती हैं। 64 प्रतिशत महिलाएं अत्यंत गरीब परिवार से हैं तथा उन्होंने गर्भावस्था के दौरान किसी प्रकार की कोई सेवा नहीं ली है तथा प्रसव हेतु केंद्र तक गई है। 28 प्रतिशत महिलाएं ऐसी हैं जिनके घरों की आर्थिक स्थिति थोड़ी ठीक है और यह महिलाएं प्रसव पूर्व जांच इत्यादि में रुचि रखती हैं। महिलाओं की निर्णय लेने की आजादी का भी प्रसवपूर्व सेवाओं के उपयोग पर प्रभाव देखा जाता है। अगर महिला को निर्णय लेने की आजादी होती है, उन्हें सही गलत समझाया जाता है तो वे इन सेवाओं को लेने हेतु तैयार हो जाती हैं परंतु अगर महिला को निर्णय की आजादी नहीं होती है तो घर के बड़े बुजुर्ग या पति इन सब चीजों को नजरअंदाज कर देते हैं। 44 प्रतिशत महिलाएं ऐसी हैं जिन्हें निर्णय लेने की कुछ हद तक या पूर्ण आजादी है तथा इन्होंने इन सेवाओं का लाभ लिया है परंतु 48 प्रतिशत महिलाएं ऐसी हैं जिन्हें निर्णय लेने की आजादी नहीं है।ऐसी महिलाएं अधिकांश सिर्फ प्रसव हेतु ही केंद्र तक आई हैं। इसके अतिरिक्त 8 प्रतिशत महिलाएं ऐसी हैं जिन्होने एक भी सेवा नहीं ली है,प्रसव घर पर करवाया है ,वे अशिक्षित हैं,अत्यंत ही निम्न आय वर्ग की हैं।

निष्कर्ष - हमारे देश में महिलाओं एवं शिशु में बढ़ रहा कुपोषण, खराब स्वास्थ्य एवं मृत्यु चिंता का विषय है। इन समस्याओं से निपटने हेतु अनेकों कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं जिससे इनके स्वास्थ्य को सुनिश्चित किया जा सके परंतु स्थिति कुछ और ही है। सबसे दुख की बात है कि जिन अत्यंत ही गरीब महिलाओं के लिए यह कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं वह महिलाएं अन्य विभिन्न कारणों से इन कार्यक्रमों का लाभ नहीं ले पा रही है। बहुत सारी महिलाओं को इन कार्यक्रमों की कोई जानकारी ही नहीं है। वहीं बहुत सारी महिलाओं को जानकारी होते हुए भी विभिन्न कारणों से सेवाएं नहीं ले पाती हैं। अधिकांश महिलाएं गर्भावस्था के दौरान किसी महिला को किसी प्रकार की कोई समस्या होती है तो उसका पता समय पर नहीं चल पाता है तथा अधिक देर हो जाने की वजह से स्थिति अत्यंत भयावह हो जाती है। अधिकांश निम्न आय वर्गीय महिलाएं कम पढ़ी लिखी होती हैं तथा वे अपने एवं अपने शिशु के स्वास्थ्य हेतु बिल्कुल भी जागरूक नहीं होती हैं तो इस स्थिति में इन सेवाओं का उपयोग किया जाना अत्यंत ही आवश्यक हो जाता है जिससे कि माता एवं शिशु दोनों के स्वास्थ्य को सुनिश्चित किया जा सके।

प्रस्तुत शोध अत्यंत ही छोटे स्तर पर किया गया है। वृहद स्तर पर यदि शोध को किया जाए तो एक बड़े वर्ग से महत्वपूर्ण जानकारियां मिलेंगी तथा आगे का कदम उठाना और सरल हो जाएगा। इन कार्यक्रमों के उपयोग के रास्ते में जो बाधाएं आ रही हैं उनका सही प्रकार से अध्ययन करके उन्हें दूर करने का प्रयास किया जा सकता है। साथ ही वर्तमान में चलाए जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों में अगर कुछ परिवर्तन की आवश्यकता है तो वह भी किया जा सकता है ताकि अधिक से अधिक महिलाएं इसका उपयोग कर लाभ उठा सकें।

संदर्भ सूची

पावलापल्ली, जी. रमेश, बी. एम., (1997). मैटरनल एजुकेशन एंड यूटिलाइजेशन ऑफ मैटरनल एंड चाइल्ड हेल्थ सर्विसेज इन इंडिया, एनएफएचएस सर्वे सब्जेक्ट रिपोर्ट नंबर 5. मुंबई: इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर पापुलेशन साइंसेज.

रॉयस्टन, एरिका, आर्मस्ट्रांग, स्यू एंड वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाइजेशन, (1989). प्रीवेंटिंग मैटरनल डेथ, एडिटेड बाय एरिका रॉयस्टन एंड स्यू आर्मस्ट्रांग. वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाइजेशन.

सुंदरी, टी.के., (1992) द अनटोल्ड स्टोरी: हाउ द हेल्थ केयर सिस्टम इन डेवलपिंग कंट्रीज कंट्रीब्यूट टू मैटरनल मोर्टालिटी, इंटरनेशनल जर्नल आफ हेल्थ सर्विसेज. 22,513 - 528.

गोखले, मेधा,के., एट ऑल,(2002), इन्फेंट मोर्टालिटी इन इंडिया: मैटरनल एंड चाइल्ड हेल्थ सर्विसेज इन रिलेशन टू लिट्रेसी स्टेटस, जर्नल ऑफ हेल्थ पापुलेशन एंड न्यूट्रिशन, 20 (2),138 -147.

ब्लूम,एस.एस., वायपिज,डी.,दासगुप्ता, एम., (2001), डायमेंशन ऑफ विमेंस ऑटोनॉमी एंड द इनफ्लुएंस ऑन मैटरनल हेल्थ केयर यूटिलाइजेशन इन अ नॉर्थ इंडियन सिटी. डेमोग्राफी, 38,67-78.

नवनीथम, के., धर्मालिंगम, ए.,(2002), यूटिलाइजेशन ऑफ मैटरनल हेल्थ केयर सर्विसेज इन सदर्न इंडिया. सोशल साइंस मेडिसिन, 55(10),1849 -186

समकालीन हिन्दी कविता का राग विराग

डॉ० आर०पी० वर्मा

एसो० प्रो० एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय गोसाईखेड़ा, जनपद-उन्नाव (उ०प्र०)

चिन्तन एवं विवेकशील व्यक्ति का व्यक्तित्व समाज-सापेक्ष होता है। समसामयिक विद्रूपताएं, कट्टर मान्यताएं, अप्रिय घटनाएं एवं विसंगतियों से उत्पन्न विडम्बनात्मक परिस्थितियाँ उसके चित्त को झकझोरती है, उसके अन्तःजगत को आन्दोलित करती है फिर वह व्यक्ति उस समस्या को शब्दों का प्रश्रय अथवा आलंबन लेकर अभिव्यंजित करता है। कविता भी एक ऐसा मजबूत एवं प्रभावोत्पादक साधन है जहाँ इसमें समष्टि एवं व्यष्टि से संबंधित सरोकार मुखरित होते हैं वही कविता इन सरोकारों एवं समस्याओं का निदान भी प्रस्तुत करती है। आदिकालीन कवि सरहपा, स्वयंभू से लेकर समकालीन कवि लीलाधर जगूड़ी, अशोक बाजपेयी, मदन कश्यप, सभी कवियों ने कविता का माध्यम बनाकर अपने उद्‌गारों, प्रत्यक्ष अनुभूतियों, एवं चिन्ताओं को अभिव्यक्त किया है। समकालीन कविता के राग, रंग, कथ्य संवेदन, मान्यताएँ, वैचारिक सरोकार, ध्वन्यार्थ को जानने से पूर्व समकालीन कविता की सैद्धान्तिकी, उसके मर्म को जानना आवश्यक है। डॉ. उपाध्याय ने समकालीन कविता में 'वर्तमान के प्रत्यक्ष यथार्थ' को अनिवार्य माना है- "समकालीन कविता अपने समय से मुख्य अन्तर्विरोधी और द्वन्दों की कविता है। समकालीन कविता में जो हो रहा है (बिकमिंग) का सीधा खुलासा है, इस कविता को पढ़कर वर्तमान काल का बोध हो सकता है, क्योंकि इसमें जीते, संघर्ष करते, लड़ते, बौखलाते, तड़पते-तड़पते तथा ठोकर खाकर सोचते वास्तविक मानव का परिदृश्य है।"

नंदकिशोर नवल ने समकालीन कविता को राजनीतिक कविता का संबोधन दिया है। इनके अनुसार समकालीन कविता का मुख्य एजेंडा भ्रष्ट व्यवस्था के प्रति विरोध का बिगुल है, "समकालीन कविता का प्रमुख नारा है, 'व्यवस्था का विरोध' यह विरोध सही ढंग से किया जा रहा हो, या गलत ढ़ग से, लेकिन इनमें कोई शक की बात नही है कि वह विरोध राजनीतिक है। इस प्रकार समकालीन कविता मूलतः राजनीतिक है।"

डॉ. हुकुमचन्द राजपाल ने भी समकालीन कविता और राजनीति के अन्योन्याश्रित संबंधों को स्वीकार कर समकालीन कविता को जीवन एवं समाज के यथार्थ का प्रस्तुतीकरण माना है- "समकालीन कविता आदर्श को बिल्कुल नकारती है, वह जीवन और समाज के यथार्थ स्वरूप को व्यंजित करने में विश्वास रखती है। आज की विसंगतियों को ज्यों का त्यों वर्णित करना उसका लक्ष्य है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण तत्व समकालीन कविता का राजनीति से पूर्णतः सम्बद्ध होना है। यही राजनीतिक सम्बद्धता या समझ कवि में इतिहासबोध की मानसिक स्थिति का उत्सव है।" युग चिंतन, युग प्रतिबद्धता, युग-सापेक्षता समकालीन के निकष है। हिन्दी कविता में समकालीनता के कुछ अंकुर साठा के आसपास प्रस्फुटित होने लगे तो स्वातंत्रयोत्तर मोहभंग की उपह है। आगे चलकर आपातकाल और शासन की जननिपरेक्ष नीतियों की प्रतिक्रिया ने हिन्दी कविता को और युगानुरूप व युग प्रतिबद्ध साबित कर दिया। नब्बे के दशक तक आते-जाते भूमण्डलीकरण के बढ़ते शोषण तंत्र के सामने प्रतिरोध एवं प्रतिकार की प्रचण्ड ऊर्जा लेकर हिंदी कविता ने अपने समकालीन होने की पूर्ण गवाही दी। शिव कुमार मिश्र ने समकालीन कविता की समय की नब्ज को पकड़कर उससे मुठभेड़ करने वाली कविता की संज्ञान दी है "कठिन चुनौतियों के बीच जन्म लिया है उससे शिद्दत भरा कवि कर्म रहा है, उससे जुड़ने वालों का। बावजूद इसके समकालीन कविता कलंकित कविता है, काल से सीधे आँखे मिलाने वाली, उससे मुठभेड़ करने वाली कविता है।"

कुमार कृष्ण ने समकालीन कविता के धरातल अथवा कथ्य को पूर्ववर्ती रचना संसार से विलग मान दुनिया के आत्मसंघर्षों, पराजयों, नैराश्य तथा उनमें मिली भीतरी तनाव प्रतिक्रियाओं की काव्यात्मक परिणतियां माना है "समकालीन कविताओं की कविताएँ अपने पूर्ववर्ती रचना-संसार से लग नयी बेचौन दुनिया के आत्मसंघर्षों पराजयों तथा उनसे मिली आतंरिक तनाव प्रक्रियाओं की काव्यात्मक परिणतियाँ हैं। मैं इसी तनाव को कविता की रचना का कारण मानता हूँ। कविता मनुष्य के तनावों को व्यवस्था प्रदान करती है। यही कारण है कि आज संगीत का स्थान उसी तनाव ने ले लिया है। कविता में आज तनाव का संगीत है। उसकी लय तनाव की लय है। उसका संसार तनाव का संसार है।"

डॉ. बलदेव वंशी समकालीन कविता में विचार को अधिक महत्व देते हैं। इनका मानना है कि विचार के कारण ही समकालीन कविता का पृथक वौजूद है। आज की कविता का मुख्य प्रेरक बिंदु विचार है। यों कहेंगे कि इस काव्यधारा की कविताओं का संकेन्द्रक विचार है। यही विचार बिन्दु उसे अन्य प्रकार की कविताओं से पृथक पहचान देता है। यह विचार जहां उसे एक ओर मध्यकालीन बोध से अलग करके आधुनिकता से जोड़ देता है, वहां नई कविता, अकविता, और प्रतिबद्ध कविता से भी अलग करता है। इस धारा की समकालीन कविताओं में विचार संपूर्ण संरचना को समाया हुआ है, न कि कविता में अलग से रखा हुआ है।"

धूमिल समकालीन कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। अपने चिंतन एवं वैचारिक प्रवाह द्वारा इन्होंन समकालीन कविता को पोषित किया। अपनी सपाटबयानी द्वारा इन्होंने विकृत राजनीति, राजनीति प्रपंचों, निकृष्ट राजनीतिक दांवपेचों, संसद की अपराध एवं अपराधियों के प्रति निष्क्रियता, राजनीतिज्ञों के घिनौने रूप के विभिन्न उपादानों को प्रस्तुत किया। वास्तव में धूमिल राजनीतिक विश्लेषक के रूप में कविता में विस्फोट करते हैं तथा राजनीति के विभिन्न तंतुओं को परत-दर-परत उधेड़ते हैं। धूमिल ने राजनीतिज्ञों की मानसिकता, उनकी स्वयं को पोषित करने की नीति, सामान्य वर्ग को वाग्जाल में फंसाने क वक्तृया का चित्रण अपने काव्य कर सामान्य जन को उनके विरुद्ध चेतना प्रदान की है। अपने काव्य संग्रह "संसद से सड़क तक" में वे लिखित हैं -

दरअसल-अपने यहाँ जनतंत्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान
मदारी की भाषा है।

जिस प्रकार मदारी अपनी भाषा के चमत्कार से एकत्रित भीड़ को ठग लेता है ठीक उसी प्रकार राजनीतिक आका चुनावों से पूर्व अपने कलात्मक भाषणों द्वारा निरक्षण जनता को भ्रमित कर सत्ता पर आरुढ़ हो जाते हैं। समकालीन कवियों में श्रीकांत वर्मा ने काव्य जगत में अपनी महती उपस्थिति दर्ज करवाई है। समकालीन विद्रूपताओं एवं विसंगतियों को शब्दों के माध्यम से उकेर, शासनतंत्र की निरंकुशता, अन्याय भ्रष्टाचार, व्यभिचार, राजनीति से लुप्त होते ईमान, मूल्य सत्य के प्रति गहरी संवेदनाएँ अभिव्यक्त की है। 'मायादर्पण' नामक काव्य-संग्रह में इन्होंने कवि गायक पत्रकार, राजनीतिज्ञों सभी को कटघरे में खड़ा किया है। वास्तव में इन सभी का जीवन समाज एवं राष्ट्र के लिए होता है। यह सभी अपनी निष्पक्ष साधना द्वारा समाज को जाग्रत एवं संचालित करते हैं किन्तु विडम्बना यह है कि आज अर्थ प्रधान सोच ने सभी तरह की नीतियों नैतिकता, संस्कारों को ध्वस्त किया। सभी किसी-न-किसी तरह मोल बिकने लगे। प्रतिभा का विनिमय होना आरम्भ हुआ। श्रीकांत वर्मा ने दूषित, प्रदूषित होती इस वसुंधरा के प्रति गहन चिंतन व्यक्त किया है। बलात्कार, घूसखोरी, घोटाले, आतंकवाद ने इस पृथ्वी को कलुषित एवं मलिन कर दिया। आज बुद्धिजीवियों द्वारा चिंता का विषय उपर्युक्त विषय नहीं है वह तो राजनीतिज्ञों के पिछलग्गू बन उनकी विरुदावलियां गा रहे हैं-श्रीकांत वर्मा लिखते हैं-

झूठे हैं समस्त कवि
गायक
पत्रकार
आत्माएँ
राजनीतिज्ञों की
बिल्लियों की तरह
मरी पड़ी हैं
सारी पृथ्वी से
उठती है
सड़ांध....

चंद्रकांत देवताले की कविताओं का उत्सव उपेक्षित, शोषित, पीडिघ्त वर्ग है यद्यपि कहने को प्रजातंत्र है, किन्तु वास्तव में प्रजा पायदान पर और तंत्र मजबूत हो गया है। गुण्डाराज सर्वत्र व्याप्त है। स्त्रियों का शारीरिक शोषण और नाबालिग बच्चे घरेलू सिथति खराब होने के कारण शिक्षा प्राप्त करने की अपेक्षा रेस्तरां, घरों, दुकानों में कार्यरत है। प्रजातंत्र के इस रथ के तलें सभी पीसे जा रहे हैं और आम आदमी सत्ता के खौफ से मूकदर्शक बना सब देख रहा है। चंद्रकांत देवताले ने लोकतंत्र के इसी सत्य को उद्घोटित किया है अपने काव्य-संग्रह आग हर चीज में बतायी गयी थी में वे प्रजातंत्र के इन्हीं तथ्यां को सार्वजनिक करते हैं -

प्रजातंत्र की रथयात्रा निकल रही है
औरतों और बच्चों को रौंदा जा रहा है
गुंडों और चोरों की ताकत से हत्प्रभ लोग
खामोश खड़े हैं

राजेश जोशी ने अपनी कविताओं द्वारा समाज के प्रत्येक विषय को अभिव्यक्ति दी है। प्रत्येक कविता किसी-न-किसी गंभीर अर्थ को धारण किये हुये है भले ही इनकी कविता विडम्बना हो या पागल। कविताओं के शीर्षक ही आगे की दास्तां बयां कर देते हैं। समकालीन कवि किसी शक्ति, सत्ता, राजनीतिक आकाओं, प्रपंचों प्रलोभनों के आगे झुकने वाला नहीं है। वह स्वाभिमान एवं आत्मबल से ओत-प्रोत है। वह किसी के दबाव में नहीं है। मैं झुकता हूँ, कविता में कवि राजेश जोशी अपनी इसी प्रवृत्ति को व्यक्त करते हुये लिखते हैं -

झुकता हूँ लेकिन उस तरह नहीं
जैसे एक चापलुस की आत्मा झुकती है
किसी शक्तिशाली के सामने
जैसे लज्जित या अपमानित होकर झुकती है
आंखे
झुकता हूँ
जैसे शब्दों को पढ़ने के लिए आँखें झुकती है।

देवेन्द्र दीपक ने अत्यंज की व्यथा की कथा अपने काव्य में प्रस्तुत की है। दलित समाज की परिस्थितियां उनका जीवन उकेरने में इन्हें महारत हासित है। अपने काव्य-संग्रह मेरी इतनी सी बात सुनो में इन्होंने सदियों से चली आ रही एक वृहत समाज की लोमहर्षक त्रासदी को उसके अनुकूल सौन्दर्यशास्त्र के माध्यम से प्रस्तुत करने का भगीरथ प्रयास किया। आज दलित साक्षर, चेतना युक्त, अधिकार बोध से सम्पन्न है। उसमें एक अभूतपूर्व एवं अश्रुतपूर्व जागृति का प्रस्फुटन हुआ है। वह अब स्थितियों से भयभीत होने वाला नहीं। वह अब एक अदभुत शक्ति, अप्रतिम चेतना, अद्वितीय अधिकारों से जबरेज है। देवेन्द्र दीपक ने अपनी कविताओं में इस ओर इंगित किया है कि दलित अब अपनी कुंभकर्णी निद्रा से जाग्रत हो अपन अधिकारों एवं स्तर को पाने के लिए उद्यत है। वे लिखते हैं -

तुम चतुर सुजान थे
हम निपट अजान थे
हमारा बस इतना-सा था कसूर
हमने बिना प्रश्न किए
मान लिया
तुम्हारा दिया हुआ दस्तूर।

लीलाधर जगूड़ी ने समाज में बढ़ रहे अपराधों की शल्य-चिकित्सा कर यह निष्कर्ष निकाला है कि अपराधों का कारण है गरीबी। एक अकिंचित व्यक्ति जो निर्धनता एवं अभावों से ग्रस्त है, वह कोई भी निकृष्ट अपराध करने के लिए विवश हो जाता है। सरकारी अपराधों के बढ़ रहे सूचकांक को लेकर चिंतित है, किन्तु गरीबी का सूचकांक इन्हें दिखाई नहीं देता। कवि ने गरीबी की बीमारी की संबोधन प्रदान किया है कि और कहा है कि बीमारी को कोई भी चिकित्सक नहीं मिटा सकता।

गरीबी किसी भी अपराध की ओर उसे ले जाने
को तैयार है
जो लोग कहते हैं कि अपराध बढ़ रहे हैं।
वे एक बार भी नहीं कहते कि गरीबी बढ़ रही है।
मेडिकल कॉलेज की भीड़ से गुजरते हुए
उसे इलहाम हुआ कि उस जो बीमारी है
उसका नाम गरीबी है और उसे डॉक्टर नहीं मिटा
सकते।

ममता कालिया ने जहाँ आत्मकथाओं, उपन्यासों एवं कहानियों के द्वारा स्त्री जीवन को रूपायित किया वहीं कितने प्रश्न करुं, काव्य-संग्रह में इन्होंने रामकथा प्रसंग के द्वारा इन्होंने नारी की बेबसी एवं नियति को आरेखित किया है। ममता कालिया प्रशासनिक मुद्रा में है। और समाज को कठघरे में खड़ाकर उससे बड़े तीखे प्रश्न करती है कि नारी को ही क्यों जीवनपर्यन्त पीडिघ्ता का जीवन भोगना पड़े? वह ही क्यों तिरस्कृत एवं बहिष्कृत होती है? उसे ही क्यों उपेक्षाआं के बाणों से बिघंना होता है उसे ही क्यों सूचित और कुलटा की श्रेणी में विभाजित किया जाता है? वे प्रश्न करती है-

नारी को क्या जीवन-भर
यों ही पीडिघ्त होना है
शंका से ऊपर नर है
नारी को ही रोना है
अपवित्र सिर्फ नारी ही
होती है क्या जीवन में
क्या पुरुष पान कर आता
पावनता की घुट्टी में।

लीलाधर जगूड़ी ने समकालीन यथार्थ को यथातथ्य एवं यथावत् प्रस्तुत किया है। आज प्रत्येक तरफ एक अशान्त माहौल है। सर्वत्र भोग, हत्यारों, हत्याओं एवं हथियाओं का साम्राज्य है। व्यक्ति इतना आक्रामक, अशान्त, मानसिक विक्षिप्त हो गया है कि वह छोटी सी बात पर दूसरे की हत्या करने के लिए लायातित है। इसी अशान्त अस्थिर, समाज का चित्रण लीलाधर जगूड़ी ने अपनी कविता "यह भी एक युग है" में किया है। व्यक्ति की संवेदनहीनता एवं यांत्रिकता का चित्रण करते हुये वे कहते हैं -

हत्यारों में भरा, हथियारों से भरा
यह हत्याओं का युग है

यह खून को देखकर निशाने की तारीफ का युग
है
यह पसीना नहीं खून बहने का युग है
मृत्युलोक यह मर जाने का नहीं
मारे जाने का युग है।

समकालीन कविता आर्थिक वैषम्य पर तीखा व्यंग्य कर उसके कारणों की खोज करती है। समकालीन कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से जनता की विपन्नता के कारणों की भी खोज की है। वर्तमान समय में हर सत्ताधारी आम आदमी का शोषण कर स्वयं का पोषण कर रहा है। डॉ. ब्रजेश अवस्थी इसका चित्रण इन शब्दों में करते हैं -

जिसकी रकम असीम गोदामों में पड़ी है
उन भूखों की भूखों से बड़ी भूख बड़ी है
जो पेट भरे इनका तो अनाज ही नहीं
इनके उदर के घेरे का अंदाज ही नहीं।

समकालीन कवियों के काव्य में पर्यावरणीय चेतना पूरे ध्वज के साथ विद्यमान है चूंकि पर्यावरण का दूषित होना भी सामाजिक सरोकार है तो कतव इस समस्या को कैसे अनदेखा करता। समकालीन कवियों ने जहां दृश्यमान जगत के प्रत्येक कोण का संस्पर्श किया वहीं दूषित वातावरण के प्रति अपनी संवेदना के सैलाब को प्रवाहित किया। कवि नरेश सक्सेना का प्रकृति प्रेम 'एक वृक्ष भी बचा रहे' में परिलक्षित होत है। वे पेड़ों के अस्तित्व को बनाएं रखना चाहते हैं ताकि उसमें निवास करने वाली गौरैया, गिलहरियां सुरक्षित रहें। पेड़ों के निरन्तर कटाव के कारण कवि की अन्तिम इच्छा है कि अन्तिम समय में उसके पार्थिव शरीर का दाह-संस्कार बिजली के दाह घर में हो ताकि इस वसुधरा पर पेड़ों का अस्तित्व बना रहे। वे मानों अपनी अंतिम वसीयत लिखत हुये कहते हैं-

अन्तिम समय में जब कोई जायेगा साथ
एक वृक्ष जायेगा
अपनी गौरैया-गिलहरियों से बिछुड़कर
साथ जायेगा एक वृक्ष
अग्नि में प्रवेश करेगा मुझसे पहले
लिखता हूँ अन्तिम इच्छाओं में
कि बिजली दाह घर में ही मेरा संस्कार
ताकि मेरे बार
एक बेटे और एक बेटी के साथ
एक वृक्ष भी बचा रहे संसार में।

वास्तव में समकालीन कविता में विडम्बनाओं, विद्रूप यथार्थ, विसंगतियों का यथावत चित्रण है। स्पष्टवादिता एवं सपाटबयानी में जीवन के वास्तव को प्रस्तुत करना समकालीन कविता का महत्वपूर्ण कार्य है। यही कारण है कि समकालीन कविता को नवीन धरातल, नवीन, कथ्य, नया शिल्प मिला।

संदर्भ

1. विश्वंभरनाथ उपाध्याय (सं) समकालीन की भूमिका, मैकमिलन: नई दिल्ली 1976 पृ. 3-3
2. नन्दकिशोर नवल, राजनीति और समकालीन कविता, आलोचना सम्पादक: नामवर सिंह, दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, जनवरी-मार्च 1975, पृ. 36
3. डॉ. हुकुमचन्द राजपाल, समकालीन बोध और धूमिल का काव्य, कोणार्क प्रकाशन: दिल्ली, 1980, पृ. 10
4. कुमारी सुप्रिया के.पी., समकालीन हिंदी कविता में पर्यावरण अवबोध, दक्षिण भारत, संपादक: आय राजवेल, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा: मद्रास, जनवरी-मार्च 2015, पृ. 50
5. कुमार कृष्ण, कविता की सार्थकता, साहित्य निधि: दिल्ली 1986, पृ. 43
6. डॉ. बलदेव वंशी, समकालीन कविता: वैचारिक आयाम, इन्द्रप्रस्थ प्रकाश न: दिल्ली, पृ. 39
7. राकेश कुमार, धूमिल की काव्य चेतना: विविध आयाम, ज्योति प्रकाशन: पटियाला, 1986, पृ. 123
8. डॉ. रतन शर्मा श्रीकान्त वर्मा का आत्मसंघर्ष एवं उनकी कविता, शीतल प्रिंटर्स, जयपुर 2008, पृ. 95

9. चंद्रकांत बांदिवडेकर चंद्रकांत देवताले की कविता-स्वभाव, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1995
10. राजेश जोशी, चाँद की वर्तनी, नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2006, पृ. 11
11. जनसत्ता, 3 जुलाई 2016 पृ. 8
12. लीलाधर जगूड़ी, खबर का मुँह विज्ञापन से ढका है, वाणी प्रकाशन: नयी दिल्ली, 2008, पृ. 64-65
13. ममता कालिया, कितने प्रश्न करुँ, वाणी प्रकाशन: नयी दिल्ली 2008 पृ. 54
14. लीलाधर जगूड़ी, अनुभव के आकाश में चाँद, राजकमल प्रकाशन: नयी दिल्ली, 2003 पृ. 16
15. डॉ. एस. फिरोज अहमद (सं) वाङ्मय समकालीन हिंदी कविता में आर्थिक चेतना, प्रो. रामहरी काकड़े, जुलाई-सितम्बर 2016 वर्ष 13
16. नरेश सक्सेना, समुद्र पर हो रही है बारिश, राजकमल प्रकाशन: नई दिल्ली 2001 पृ. 35
17. समकालीन कविता का राग - विराग डॉ0 अनीश कुमार, पृ. 88-95 तक
18. समकालीनता के अर्थों में हिन्दी कविता संपादक, प्रो0 सुखदेव सिंह मिन्हासन, पृ. 95

शिक्षा प्रणाली में आधुनिक तकनीक के प्रभाव का एक अध्ययन

डॉ० कालिंदी लालचंदानी

एसोसिएट प्रोफेसर, भगवंत यूनिवर्सिटी, अजमेर

सारांश

शैक्षिक प्रौद्योगिकी (अधिगम प्रौद्योगिकी भी कहा जाता है) उचित तकनीकी प्रक्रियाओं और संसाधनों के सृजन, उपयोग तथा प्रबंधन के द्वारा अधिगम और कार्य प्रदर्शन सुधार के अध्ययन और नैतिक अभ्यास को कहते हैं, शैक्षिक प्रौद्योगिकी शब्द के साथ प्राय: अनुदेशात्मक सिद्धांत तथा अधिगम सिद्धांत संबद्ध और शामिल होते हैं। जबकि अनुदेशी प्रौद्योगिकी में अधिगम एवं अनुदेश की प्रक्रियाएं तथा प्रणालियां शामिल हैं, शैक्षिक प्रौद्योगिकी में मानवीय क्षमताओं के विकास हेतु प्रयुक्त अन्य प्रणालियां शामिल होती हैं। शैक्षिक प्रौद्योगिकी सॉफ्टवेयर, हार्डवेयर और इंटरनेट अनुप्रयोगों तथा गतिविधियों का समावेश करती है किंतु इन तक सामित नहीं है। लेकिन इन शब्दों के अर्थ को लेकर अब भी बहस होती है। टेक्नोलॉजी ईश्वर की देन है। जीवन के उपहार के बाद यह शायद भगवान का सबसे बड़ा उपहार है। साथ ही आधुनिक तकनीक की मदद से कई जटिल और महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं को आसानी से और अधिक दक्षता के साथ अंजाम दिया जा सकता है। प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग के लिए धन्यवाद, जीवन बदल गया है और यह बेहतर के लिए बदल गया है। टेक्नोलॉजी ने शिक्षा के क्षेत्र में क्रांति ला दी है। स्कूलों में प्रौद्योगिकी के महत्व को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। वास्तव में, शिक्षा के क्षेत्र में कंप्यूटर की शुरुआत के साथ, शिक्षकों के लिए ज्ञान प्रदान करना और छात्रों के लिए इसे हासिल करना आसान हो गया है। प्रौद्योगिकी के उपयोग ने शिक्षण और सीखने की प्रक्रिया को और अधिक मनोरंजक बना दिया है।

मुख्यशब्द: कंप्यूटर, क्षेत्र, शिक्षा, आधुनिक तकनीक, शिक्षण, जीवन

परिचय

शैक्षिक प्रौद्योगिकी को सर्वाधिक सरलता और सुगमता से ऐसे उपकरणों की एक सरणी के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो शिक्षार्थी के सीखने की प्रक्रिया में सहायक सिद्ध हो सकें. शैक्षिक प्रौद्योगिकी, प्रौद्योगिकी ''शब्द'' की एक व्यापक परिभाषा पर निर्भर करती है। प्रौद्योगिकी, मानव उपयोग की भौतिक सामग्रियों जैसे मशीनों या हार्डवेयर के रूप में संदर्भित की जा सकती है, लेकिन इसमें प्रणालियां, संगठन की विधियां तथा तकनीक जैसे व्यापक विषय भी शामिल हो सकते हैं। कुछ आधुनिक उपकरण शामिल हैं लेकिन ये सिर्फ ओवरहैड प्रोजेक्टर, लैपटॉप, कंप्यूटर और कैलकुलेटर तक ही सीमित नहीं हैं। ''स्मार्टफोन'' और गेम (ऑनलाइन और ऑफलाइन दोनों) जैसे नए उपकरण गंभीरता से अपनी अभिज्ञान क्षमता की वजह से काफी ध्यान आकर्षित करने लगे हैं।

21वीं सदी के युग को अक्सर प्रौद्योगिकी के युग के रूप में माना जाता है। टेक्नोलॉजी आज हमारे जीवन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसे अर्थव्यवस्था के विकास के आधार के रूप में देखा जाता है। एक अर्थव्यवस्था जो प्रौद्योगिकी में खराब है वह आज के परिदृश्य में कभी विकसित नहीं हो सकती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि तकनीक हमारे काम को बहुत आसान और कम समय लेने वाली बनाती है। प्रौद्योगिकी के प्रभाव को हर संभव क्षेत्र में महसूस किया जा सकता है, ऐसा ही एक क्षेत्र शिक्षा है।

शिक्षा में आधुनिक तकनीक

नवीनतम अंतर्दृष्टि के अनुसार कि कैसे आज के आधुनिक छात्र प्रौद्योगिकी का उपयोग करना पसंद करते हैं और यदि वे प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हैं तो उनके सीखने पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह पता चला था कि आधुनिक उपकरण प्रौद्योगिकी और उपकरणों का उपयोग, छात्रों की सीखने और अंत:क्रियाशीलता बढ़ जाती है. जब वे प्रौद्योगिकी द्वारा सहायता प्राप्त करते हैं, तो वे इसे और अधिक इंटरैक्टिव, साथ ही दिलचस्प क्षेत्रों से भरे हुए पाते हैं। छात्र आज निम्नलिखित तरीकों से प्रौद्योगिकी का उपयोग कर सकते हैं:

चौबीसों घंटे इंटरनेट कनेक्शन और कनेक्टिविटी

एक दशक की प्रक्रिया में इंटरनेट का महत्व कई गुना बढ़ गया है। शिक्षा जगत में इसके महत्व को अब कभी कम नहीं किया जा सकता है। धोखाधड़ी और कमियों की संभावना के बावजूद इंटरनेट का उपयोग छात्रों के लिए वरदान के समान है। आज इंटरनेट एक ऐसी चीज है जो हमारे द्वारा उपयोग की

जाने वाली लगभग हर चीज में मौजूद है। टेलीविजन से लेकर गेमिंग कंसोल और हमारे फोन तक, इंटरनेट सचमुच हर जगह है।

प्रोजेक्टर और विजुअल का उपयोग करना

शब्दों की तुलना में दृश्य छवियों में हमेशा एक मजबूत अपील होती है। सीखने में सहायता के लिए प्रोजेक्टर और विजुअल का उपयोग करना महान तकनीकी उपयोग का दूसरा रूप है। दुनिया भर के शीर्ष संस्थान, अब सीखने को इंटरैक्टिव और रोचक बनाए रखने के लिए अद्‌भुत पावरपॉइंट प्रस्तुतियों और अनुमानों के उपयोग पर भरोसा करते हैं।

शिक्षा क्षेत्र में डिजिटल फुटप्रिंट

अगर हम डिजिटल और शिक्षा की बात करें तो शिक्षा के क्षेत्र में डिजिटल मीडिया की पैठ अब बढ़ गई है। इस पैठ के परिणामस्वरूप छात्रों और विभिन्न मंचों के साथ चौबीसों घंटे संपर्क हुआ है जो विभिन्न प्रकार के असाइनमेंट या सहायता के लिए उपलब्ध हैं। जैसे-जैसे डिजिटल की शक्ति बढ़ती है, वैसे-वैसे और अधिक अनुप्रयोग होंगे जो छात्रों को विकास और सीखने में सहायता करेंगे।

प्रौद्योगिकी के उपयोग के साथ ऑनलाइन डिग्री

ऑनलाइन डिग्री अब एक बहुत ही सामान्य घटना हो गई है। लोग अपने सीखने और प्रमाणन के लिए ऑनलाइन पाठ्यक्रम लेना चाहते हैं। शीर्ष संस्थान विभिन्न अनुप्रयोगों और इंटरनेट के उपयोग के साथ अद्‌भुत ऑनलाइन कार्यक्रम पेश करते हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी की भूमिका चौगुनी है: इसे पाठ्यक्रम के एक भाग के रूप में, एक निर्देशात्मक वितरण प्रणाली के रूप में, निर्देशों की सहायता के साधन के रूप में और संपूर्ण सीखने की प्रक्रिया को बढ़ाने के लिए एक उपकरण के रूप में भी शामिल किया गया है। प्रौद्योगिकी के लिए धन्यवादय शिक्षा निष्क्रिय और प्रतिक्रियाशील से अंत:क्रियात्मक और आक्रामक हो गई है।

शिक्षा में प्रौद्योगिकी को प्रभावित करने वाले कारक

1. जंग ज्ञान के तेजी से विस्तार के कारण हमारे समाज में शिक्षकों के सामने आने वाली भारी चुनौती के बारे में बात करते हैं। आधुनिक प्रौद्योगिकियां मांग कर रही हैं कि शिक्षक अपने शिक्षण में इन तकनीकों का उपयोग करना सीखें।

इसके अलावा सबसे अधिक उद्धृत बाधाएं हैं:

- समय की कमी
- पहुंच की कमी
- संसाधनों की कमी
- विशेषज्ञता की कमी और
- समर्थन की कमी।

विश्वसनीयता में हार्डवेयर विफलता, घर और स्कूल के बीच असंगत सॉफ्टवेयर, खराब या धीमी इंटरनेट कनेक्टिविटी और पुराने सॉफ्टवेयर शामिल हैं जो ज्यादातर स्कूल में उपलब्ध हैं जबकि छात्रोंध्शिक्षकों के पास घर पर अधिक अप-टू-डेट सॉफ्टवेयर हैं।

शिक्षा पर आईसीटी का प्रभाव

शैक्षिक संदर्भ में, आईसीटी में शिक्षा तक पहुंच बढ़ाने और इसकी प्रासंगिकता और गुणवत्ता में सुधार करने की क्षमता है। टिनियो (2002) ने जोर देकर कहा कि आईसीटी का शिक्षा पर जबरदस्त प्रभाव पड़ता है, जिसके प्रचार के माध्यम से शिक्षकों और छात्रों दोनों के लिए ज्ञान का अधिग्रहण और अवशोषण होता है:

सक्रिय शिक्षण: आईसीटी उपकरण परीक्षा के लिए प्राप्त जानकारी की गणना और विश्लेषण में मदद करते हैं और छात्रों की प्रदर्शन रिपोर्ट को भी कम्प्यूटरीकृत किया जा रहा है और पूछताछ के लिए आसानी से उपलब्ध कराया जा रहा है।

सहयोगात्मक और सहकारी शिक्षा: आईसीटी छात्रों, शिक्षकों के बीच बातचीत और सहयोग को प्रोत्साहित करती है, भले ही उनके बीच की दूरी कुछ भी हो। यह छात्रों को विभिन्न संस्कृतियों के लोगों के साथ काम करने और समूहों में एक साथ काम करने का मौका भी प्रदान करता है, इसलिए छात्रों को उनके संचार कौशल के साथ-साथ उनकी वैश्विक जागरूकता को बढ़ाने में मदद करता है।

क्रिएटिव लर्निंग: आईसीटी मौजूदा जानकारी के हेरफेर को बढ़ावा देता है और एक मूर्त उत्पाद या दिए गए निर्देशात्मक उद्देश्य का उत्पादन करने के लिए स्वयं का ज्ञान बनाता है।

एकीकृत शिक्षण: आईसीटी पारंपरिक कक्षा के विपरीत सिद्धांत और व्यवहार के बीच सिंथेटिक अलगाव को समाप्त करके, शिक्षण और सीखने के लिए एक एकीकृत दृष्टिकोण को बढ़ावा देता है जहां जोर सिर्फ एक विशेष पहलू को शामिल करता है।

मूल्यांकनात्मक शिक्षा: सीखने के लिए आईसीटी का उपयोग छात्र-केंद्रित है और विभिन्न इंटरैक्टिव सुविधाओं के माध्यम से उपयोगी प्रतिक्रिया प्रदान करता है।

सकारात्मक प्रभाव

1. उन्नत शिक्षण और सीखना: डिजिटल कैमरा, प्रोजेक्टर, माइंड ट्रेनिंग सॉफ्टवेयर, कंप्यूटर, पावर प्वाइंट प्रेजेंटेशन, 3डी विजुअलाइजेशन टूल जैसे तकनीकी विकासय ये सभी शिक्षकों के लिए एक अवधारणा को आसानी से समझने में छात्रों की मदद करने के लिए महान स्रोत बन गए हैं।
2. वैश्वीकरण: जब राज्य के विभिन्न हिस्सों में स्कूल, छात्र कक्षा से बाहर निकले बिना वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से अपने समकक्षों से ''मिल'' सकते हैं।
3. कोई भौगोलिक सीमा नहीं: ऑनलाइन डिग्री कार्यक्रमों की शुरूआत के साथ कक्षा में शारीरिक रूप से उपस्थित होने की शायद ही कोई आवश्यकता हो। यहां तक कि कई विदेशी विश्वविद्यालयों ने ऑनलाइन डिग्री कोर्स शुरू किया है, जिसमें छात्र शामिल हो सकते हैं।

दूरस्थ शिक्षा और ऑनलाइन शिक्षा अब एक दिन शिक्षा प्रणाली का बहुत महत्वपूर्ण हिस्सा बन गए हैं।

नकारात्मक प्रभाव

1. लेखन कौशल में गिरावट: ऑनलाइन चौटिंग और शॉर्टकट के अत्यधिक उपयोग के कारण, आज की युवा पीढ़ी के लेखन कौशल में काफी गिरावट आई है।

   आजकल, बच्चे डिजिटल संचार पर अधिक से अधिक भरोसा कर रहे हैं कि वे अपने लेखन कौशल में सुधार करना पूरी तरह से भूल गए हैं। वे अलग-अलग शब्दों की वर्तनी नहीं जानते, व्याकरण का सही उपयोग कैसे करें या कर्सिव राइटिंग कैसे करें।
2. धोखाधड़ी की बढ़ती घटनाएं: तकनीकी विकास जैसे ग्राफिकल कैलकुलेटर, उच्च तकनीक वाली घडिघ्याँ, मिनी कैमरा और इसी तरह के उपकरण परीक्षा में नकल करने के महान स्रोत बन गए हैं।

   छात्रों के लिए रेखांकन कैलकुलेटर पर सूत्र और नोट्स लिखना आसान होता है, जिसमें पकड़े जाने की संभावना कम से कम होती है।
3. फोकस की कमी: एसएमएस या टेक्स्ट मैसेजिंग कई छात्रों का पसंदीदा शगल बन गया है। छात्रों को अपने सेल फोन, आईफोन से दिन-रात खेलते हुए या ड्राइविंग करते हुए और अक्सर व्याख्यान के बीच में भी देखा जाता है।

ऑनलाइन दुनिया से हमेशा जुड़े रहने के परिणामस्वरूप शिक्षाविदों में और कुछ हद तक, यहां तक कि खेल और पाठ्येतर गतिविधियों में भी ध्यान और एकाग्रता की कमी हुई है।

कक्षा में प्रौद्योगिकी

पारंपरिक कक्षाओं में वर्तमान में कंप्यूटर और गैर कंप्यूटर प्रौद्योगिकी के कई प्रकार उपयोग में हैं। इनमें शामिल हैं:

कक्षा में कम्प्यूटर: कक्षा में कंप्यूटर होना एक शिक्षक के लिए एक संपत्ति है। कक्षा में एक कंप्यूटर के साथ, शिक्षक एक नया पाठ प्रदर्शित करने, नयी सामग्री प्रस्तुत करने, नये प्रोग्राम का उपयोग समझाने और नयी वेबसाइट दिखाने में सक्षम होते हैं।

कक्षा वेबसाइट: अपने छात्रों के काम को प्रदर्शित करने का इससे बेहतर तरीका और क्या हो सकता है कि अपनी कक्षा के लिए डिजाइन किया हुआ एक वेब पेज बनाया जाये. एक बार एक वेब पेज बनाया लिया गया है, तो शिक्षक उस पर गृहकार्य, छात्र कार्य, प्रसिद्ध उद्धरण, छोटे-मोटे गेम और भी बहुत कुछ पोस्ट कर सकते हैं। आजकल के समाज में, बच्चे कंप्यूटर का उपयोग जानते हैं, वे वेबसाइट खोल सकते हैं, तो उन्हें क्यों नहीं कंप्यूटर उपलब्ध करवा दिया जाये जहां वे एक प्रकाशित लेखक बन सकें।

कक्षा ब्लॉग और विकी: वेब 2.0 के उपकरणों के कुछ प्रकार हैं जिन्हें कक्षाओं में क्रियान्वित किया जा रहा है।

मोबाइल डिवाइस: या स्मार्टफोन मोबाइल उपकरण जैसे क्लिकर्स या स्मार्टफोन कक्षा अनुभव बढ़ाने के लिए उपयोग किये जा सकते हैं, इससे प्रोफेसरों को प्रतिपुष्टि प्राप्त होने की संभावना होती है।

स्मार्टबोर्ड्स: एक इंटरैक्टिव सफेद बोर्ड है जो कंप्यूटर अनुप्रयोगों के लिए स्पर्श नियंत्रण प्रदान करता है।

ऑनलाइन मीडिया: कक्षा पाठ के संवर्द्धन हेतु प्रदर्शित वीडियो वेबसाइट का उपयोग किया जा सकता है (जैसे यूनाइटेड स्ट्रीमिंग, टीचर ट्यूब आदि)।

स्थानीय स्कूल बोर्ड और कोष उपलब्धता के आधार पर अन्य बहुत से उपकरणों का उपयोग किया जाता है। इन में डिजिटल कैमरा, वीडियो कैमरा, इंटरैक्टिव व्हाइटबोर्ड उपकरण, दस्तावेज कैमरा या एलसीडी प्रोजेक्टर शामिल हो सकते हैं।

लाभ

यह छात्रों को सीखने के लिए और अधिक उत्साहित करता है।

व्यस्त कार्यक्रम वाले छात्रों की मदद करें, अपने समय पर घर पर काम करने की स्वतंत्रता।

छात्रों को नई प्रौद्योगिकी कौशल सीखने के लिए प्रशिक्षित करें जिनका वे बाद में कार्यस्थल में उपयोग कर सकते हैं।

''हरित क्रांति" की अवधारणा को बढ़ावा देते हुए कागज और फोटोकॉपी की लागत में कमी।

नुकसान

कई विशेषज्ञ और अनुभवी लोगों का कहना है कि शिक्षा में इस तरह की तकनीक के कारण छात्रों की कल्पनाशक्ति प्रभावित होती है, उनकी सोचने की क्षमता कम हो जाती है।

कभी-कभी शिक्षक की दृष्टि से भी इसमें समय लगता है। ऐसी तकनीक को स्थापित करना महंगा है। सीमा से अधिक उपयोग करने पर स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं भी हो सकती हैं। कुछ छात्र आधुनिक कंप्यूटर तकनीकों का खर्च नहीं उठा सकते।

आलोचना

हालांकि कक्षा में प्रौद्योगिकी के कई लाभ है, वहां स्पष्ट कमियां भी हैं। उचित प्रशिक्षण की कमी, एक प्रौद्योगिकी की पर्याप्त मात्रा तक सीमित पहुंच और प्रौद्योगिकी के कई क्रियान्वयनों के लिए अतिरिक्त समय की आवश्यकता, कुछ कारण हैं जिनकी वजह से अक्सर कक्षा में प्रौद्योगिकी का बड़े पैमाने पर प्रयोग नहीं किया जाता है।

प्रौद्योगिकी कार्यान्वयन में भी समय लग सकता है। कुछ प्रौद्योगिकियों के प्रयोग में एक प्रारंभिक सेटअप या प्रशिक्षण समय लागत निहित हो सकती है। इन कार्यों के पूरा होने के बाद भी, गतिविधि के दौरान प्रौद्योगिकी की विफलता पाए जाने पर, परिणाम में शिक्षकों के पास एक वैकल्पिक पाठ तैयार होना चाहिए। एक अन्य प्रमुख मुद्दा प्रौद्योगिकी के विकासशील स्वभाव की वजह से उठता है। जब भी तकनीकी मंच बदल जाता है, नये संसाधन डिजाइन और वितरित करने होते हैं। इस तरह के परिवर्तनों के बाद अक्सर कक्षा उद्देश्यों का समर्थन करने के लिए गुणवत्ता सामग्री प्राप्त मुश्किल होता है, उनकी पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता के बाद भी शिक्षकों को इन संसाधनों को अपने मुताबिक डिजाइन करना होता है।

निष्कर्ष

प्रौद्योगिकी का शिक्षा पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है और साथ ही यह नकारात्मक प्रभाव भी डाल सकता है। शिक्षकों और छात्रों को इसका अच्छी रोशनी में लाभ उठाना चाहिए और उन कमियों को दूर करना चाहिए जो कई छात्रों के साथ-साथ स्कूलों को उत्कृष्टता प्राप्त करने से पीछे खींच रही हैं। इस प्रकार प्रत्येक देश के लिए भविष्य में अधिक तकनीकी रूप से सुसज्जित शिक्षा क्षेत्र शुरू करने का समय आ गया है।

संदर्भ

- शाह (2011, 16 जुलाई) लेखन हमें स्मार्ट क्यों बनाता है ?
- बेरिंगर, वी. (2009, 20 अक्टूबर) बच्चों के लिए, पेन कीबोर्ड से अधिक शक्तिशाली है।
- बाउंड्स, जी। (2010, अक्टूबर 5) हस्तलेखन मस्तिष्क को कैसे प्रशिक्षित करता है - अक्षर बनाना सीखने, स्मृति, विचार की कुंजी है।
- ब्रिल, जे.एम., और गैलोवे, सी. (2007)। खतरे और वादे: विश्वविद्यालय के प्रशिक्षकों का कक्षा-आधारित प्रथाओं में प्रौद्योगिकी का एकीकरण। शैक्षिक प्रौद्योगिकी का ब्रिटिश जर्नल। 38(1), 95-105.
- बेडनर, एम.आर. और स्वीडर, जे. जे. (2005). परिभाषित और विचार प्रौद्योगिकियों का आवेदन: शिक्षकों के लिए एक व्यवस्थित और वैचारिक ढांचे। कंप्यूटर इन द स्कूल्स, 22(3ध4).
- जौनासेन, डी. (1997). अच्छी तरह से संरचित और कुसंरचित समस्या-समाधान अधिगम परिणामों के लिए अनुदेशात्मक डिजाइन मॉडल. एजुकेशनल टेक्नोलॉजी रिसर्च एंड डेवेलपमेंट, 45, 65-94.
- प्रोफेसर ब्रायन जे. फोर्ड, निरपेक्ष जेनो, प्रयोगशाला समाचार पृष्ठ 16 जनवरी 2006.
- मैकेंजी, जॅमी (2006). ''लेखन और सोच से प्रेरित होकर''
- मैकेंजी, जॅमी (2007). ''डिजिटल छंजपअपेउ, डिजिटल भ्रम और डिजिटल अभाव''
- मैकेंजी, जॅमी (2008). ''डिजिटल का युग क्या है?''
- मिश्रा, पी. एंड कोहलर, एम.जे. (2006). तकनीकी शैक्षणिक ज्ञान सामग्री: शिक्षक ज्ञान में एकीकरण प्रौद्योगिकी के लिए एक रूपरेखा. शिक्षकों के कॉलेज रिकार्ड, 108(6), 1017-1054.

हिन्दी साहित्य में विकलांग विमर्श की समस्याएँ एवं समाधान

ईरणण-जे

हिन्दी विभागध्यक्ष, सरकारी महाविद्यालय, होसदुर्ग कर्नाटक

मानव शरीर में किसी भी प्रकार की अपंगता, किसी अंग का शरीर से अलग होना, शरीर के किसी अंग का कार्य न करना, किसी अंग के द्वारा अंशत: कार्य करना शारीरिक विकलांगता कहलाता हैद्य विकलांगता की सबसे दुखद दशा मानसिक होती है, जिनका मानसिक रूप से विकास न हो सका हो। प्रस्तुत समस्या से पीड़ित लोग समाज में दया और स्नेह के पात्र होते हैं किन्तु यह कठोर समाज इन्हें अछूत मानता है। बहरापन, अंधापन, लंगड़ाना, गूंगापन जैसी शारीरिक विकलाँगताएँ इस प्रकार की विकृतियाँ जिनसे मनुष्य को सामान्य जीवन जीने में परेशानी होती हैं। यह विकलांगता दो प्रकार की होती है -1. जन्मजात 2. किसी दुर्घटना इत्यादि के कारण।

विकलांगों का समाज में स्थान :- हमारे समाज का विकलांगों के प्रति कठोर और स्नेहहीन रवैया दु:ख देनेवाला है - बहरा, लंगड़ा, अंधा, पगला इत्यादि शब्द उनके प्रति उपेक्षा दिखातें हैं। हमारे घर में कोई विकलांग है तो हम उसे समाज की नजरों से बचाकर रखना चाहते हैं -कौन उपेक्षा सहन करें -अथवा यह सोचते हैं कि उस विकलांग को प्रत्यक्ष या परोक्ष ताने मिलेंगे, इससे अच्छा तो यह होगा कि उसे समाज की नजरों से बचाकर रखा जाए। वर्तमान समय में भी समाज की नजरों से बचाकर रखा जाए। आज भी समाज की नजर में विकलांगता जैविक या जन्मजात विकृति को एक अभिशाप माना जाता है। वास्तव में यह रोग या अभिशाप नहीं किन्तु एक स्थिति है जो कि सामाजिक पूर्वाग्रह और तरह-तरह की बाधाओं के कारण ओर कठिन बन चुकी है। पुरुष तो किसी तरह अपने अपने हिस्से की जिंदगी जी लेते हैं किन्तु स्त्रियों के लिए जिंदगी बद से बदतर हो जाती है। क्योंकि उसके लिए तो बंधन है, मर्यादाओं की दहलीज है। दहलीज के बाहर निकलने में एतराज है, दहलीज के भीतर रहने में समस्याएँ हैं। अब हम हिन्दी साहित्य के संदर्भ में विकलांगता की समीक्षा करेंगे . ...।

मनुष्य की सभी जरूरतों की पूर्ति का मूल आधार अर्थ ही है जिसे किसी भी परिस्थिति में नकारना है हमारे लिए असंभव है। जिस प्रकार आर्थिक आर्थिक संतुलन की परिस्थिति देश का विकास करती है, अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाती है, उसी प्रकार आर्थिक असंतुलन विषमता, आर्थिक मंदी, गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, बढ़ती जनसंख्या, असमानताएँ, शोषण, प्रादेशिक विभिन्न समस्याएँ, गिरता शैक्षिक तथा नैतिक स्तर अस्थिरता जैसी समस्याओं से हमारे देश को घेर लेती है। इसीलिए सभी विकास शील देशों ने आर्थिक असंतुलन को दूर करने के लिए आर्थिक नियोजन को अपनाया है। प्रो. रॉबिन्स के अनुसार - "आर्थिक नियोजन द्वारा विकासशील राष्ट्र आर्थिक पिछड़ेपन की समस्या से निजात पाते हैं।

साहित्य मनुष्य के जीवन की कलापरक अभिव्यक्ति है। साहित्य का परीक्षण, मूल्यांकन की कसौटियाँ, साहित्य प्रयोजन वो केन्द्र में रखकर निर्माण हुई है। कथ्य, शिल्प के साथ-साथ विचारधारा परिवेश को आधार बनाकर साहित्य की आलोचना की गई है। - '19 वी शताब्दी के बाद सामाजिक शास्त्र मनुष्य जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रभावक हो गए। मनोविज्ञान, वर्ण संघर्ष, आर्थिक संघर्ष, जनतांत्रिक मूल्य, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का बोलबाला, यथार्थपरकता की मांग ने साहित्य सर्जन को भी प्रभावित किया, बिंब, प्रतीक, भाषा बदले, 'स्व की अभिव्यक्ति महत्वपूर्ण बनी', 'अस्मिता', 'अस्तित्व' के साथ-साथ समानता का भाव भी जनमानस में हावी हुआ, परिणामत: साहित्य में आलोचना की कसौटियों के रूप में विभिन्न विमर्शों का आगमन हुआ।

वास्तव में लेखक अपने अनुभव से यह जानता है कि उसे जो कहना है वह कहना महत्वपूर्ण है, और जिस तरह से वह बीज धारण करता है उसी में उसकी आकृति, स्वभाव, गुण सब निहित होते है। इसलिए निर्विवाद रूप से यह सत्य है कि साहित्य समाज का गहन आंतरिक विश्लेषण करता है तथा अपनी रचना को उसी ताने-बाने में बुनता है। आज विमर्शों के दौर में विकलांग विमर्श की विचारधारा का पनपना कोई नई बात नहीं है अपितु प्राचीन काल से विकलांगों की स्थिति पर चिन्तन चला आ रहा है। दादा-नानी की कहानी से लेकर आज के साहित्य की विधाओं में अवगाहन करें तो हम पाते हैं कि जो विकलांग है वे कहीं न कहीं सकलांगों को चुनौती देते है।

उनकी ज्ञान चक्षु इतनी तीक्ष्ण होती है कि वे किसी भी संदर्भ में वे पीछे रह सकते है। हम सभी कुब्जा, अष्टावक्र जैसे विकलांग विभूतियों की कथाओं से अनभिज्ञ नहीं है। विकलांग विमर्श की कथा भूतकाल से चली आ रही है। कथाकारों ने विकलांगों को सम्मान देने तथा उन्हें सम्मानपूर्वक स्थान दिलाने का अपनी कथा विधाओं के द्वारा अधिक प्रयत्न किया है। कथाकारों ने उनकी सभी समस्याओं को नजदीक से देखा है, समझा है। -"विकलांगों की समस्त प्रतिभा क्षमता को ऊर्जस्वित कर समाज के समक्ष प्रस्तुत करना हमारा धर्म होना चाहिए। यह नारा दिया।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में विकलांग समस्या पर आधारित हिन्दी उपन्यासों का सृजन पहले से होता रहा है। हां आधुनिक उपन्यासों में जैसे जैसे विषय वैविध्य एवं बदलाव की परिस्थियाँ दिखाई दी वैसे वैसे विकलांग पात्रों की मजबूरी तथा परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए दृढ़ता के साथ उभारा गया सामान्यत: हमारे समाज में यह प्रचलन है कि यदि कोई विकलांग है तो उसे भीख मांगकर ही गुजारा करना पड़ेगा।

हिन्दी में विकलांग पात्र आधारित पचास से ज्यादा उपन्यास लिखे गए हैं। जिसमें मुख्य उपन्यासों के पात्रों की आर्थिक समस्या को चित्रित किया गया है। जैसे - 'रंगभूमि' उपन्यास का नायक अंधा सूरदास भीख मांगकर गुजारा करता है जबकि वह करोड़ों की जमीन का मालिक होता है, किन्तु तत्कालीन राजनैतिक दलों का शिकार होते होकर पूंजीवादी व्यवस्था द्वारा उसकी जमीन हड़प लेने का प्रयत्न अन्त तक होता रहता है। 'खंजन नयन' नामक उपन्यास का नायक सूरदास कृष्ण भजन गाकर जीवन व्यतीत करता है, किन्तु तत्कालीन सामाजिक वातावरण के कारण उसे आजीवन आर्थिक आर्थिक समस्या से संघर्ष करना पड़ता है। 'राग दरबारी' उपन्यास का नायक लंगड़ अपने जीवन के कागज बनाने के चक्कर में अपना घर बार सब छोड़कर संघर्ष करता है। गरीब होने के कारण अदालती भृष्टता का शिकार बन जाता है। 'कठगुलाब' उपन्यास की नायिका स्मिता माता-पिता की आर्थिक परेशानियों के कारण मजबूर होती है कहीं दूसरी जगह रहने के लिए तथा मानसिक और सामाजिक रूप से कमजोर बन जाती है। 'बेघर' उपन्यास में विकलांग माँ की देखभाल के लिए संजीवनी आजीवन आर्थिक समस्या से जूझती है। 'अंधरे बंद कमरे' में नीलिमा के पिता पक्षघात के रोगी होने के कारण परिवार आर्थिक समस्या का सामना करता हुआ जीवन व्यतीत कर रहा है। 'यह पथ बंधु था' उपन्यास में विकलांगता के बाद भी कथानायक व्यापार करता है तथा अपनी आर्थिक स्थिति को सन्तुलित बनाता है। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास का नायक विकलांग नवयुवक पालियों अपने दोनों हाथ खो चुकने के बाद भी शिक्षा प्राप्त कर नौकरी पाने की उम्मीद में संघर्ष करता है। 'आंवा' उपन्यास की नायिका नमित पिता के पक्षाघात होने के बाद आजीवन परिवार को आर्थिक सुदृढ़ता देने तथा पिता की देखभाल के लिए आर्थिक समस्या का सामना करती है। 'विजन', 'ज्यों मेहंदी का रंग', आदि में भी विकलांगों को समस्या को निरुपित किया गया है।

विनोद कुमार मिश्र के अनुसार - 'विकलांग पात्रों का हिन्दी उपन्यासों में आर्थिक संघर्ष के विभिन्न पक्षों का अंकन किया गया है तथा अनेकों दृष्टिकोणों से विकलांगता किस तरह परिवार व समाज को आर्थिक दृष्टि से प्रभावित करती है , का सार्थक अंकन किया गया है जो पाठक को विश्लेषणात्मक बुद्धि से सोचने पर विवश करता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के लिए रोजगार आर्थिक स्वतंत्रता को प्रदान करता ही है बल्कि आत्म सम्मान भी बढ़ता है विकलांग व्यक्ति के लिए यह और आवश्यक होता है क्योंकि आम तौर पर विकलांगता अभिशाप मानी जाती है और इससे विकलांग व्यक्ति कार्यक्षमता में कम लेकिन आत्म सम्मान और सामाजिक स्वीकार्यता का अधिक नुकसान होता है। विकलांगों को रोजगार इसलिए भी आवश्यक है ताकि बोझ बनने की अपेक्षा समाज के लिए आर्थिक योगदान कर सकें।

"आर्थिक स्वावलंबन का व्यक्ति के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है हिन्दी उपन्यासों में विकलांग चरित्रों को जिन आर्थिक समस्याओं से गुजरकर संघर्ष करना पड़ता है वे अग्ग्रान्कित बिंदुओं में उल्लेखित कर रही हूँ।

1. भीख मांगकर गुजारा करना 2. निर्धनता 3. सामाजिक उपेक्षा के शिकार 4. दयनीय स्थिति 5. विभिन्न पारिवारिक समस्याएँ 6. शैक्षिक अवनति 7. उचित चिकित्सा का अभाव 8. बलात्कार 9. शोषण. 10. भृष्ट राजनीति व कानून के शिकार 11. अनेक संघर्षों के बाद भी असफलता 12. बेरोजगार 13. आरक्षण व अनेक कल्याणकारी योजनाओं के बावजूद दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर विकलांग 15. रिश्वत खोरी 16. गिरता जीवन स्तर 17. जातिगत भेदभाव 18. कर्ज में डूबना 19. जमीनें, गहने, पैसे विकलांगता के कारण बचा नहीं पाना 20. सत्य व आत्मबल के जरिये स्वयं को स्थापित करने की कोशिश करना 21. विकलांग स्वयं अथवा मुखिया की विकलांगता के कारण अवैध संबंधों की शिकार 22. नशे की लत के कारण आर्थिक भयावहता .. जैसी अनेक समस्याएँ है जो विकलांग पात्रों के जीवन संघर्ष करने के लिए मजबूर करती है। एक जगह पर 'आवां' उपन्यास की लेखिका चित्रा मुद्गल देवी शंकर पाण्डे की स्थिति का वर्णन करती हुई कहती है - 'पैसे की ताकत मनुष्य की सबसे बड़ी ताकत से बुद्धिहीन, अपाहिज, असमर्थ व्यक्ति बुद्धिमान का मस्तिष्क और सबल की शक्ति खरीद बड़ी आसानी से अपने हितों के लिए उसका उपयोग कर समाज और संसार का सबसे समर्थ व्यक्ति बन सकता है।"7 इसलिए आर्थिक आत्मनिर्भरता आत्म सम्मान में वृद्धि करती है एक विकलांग के लिए यह अत्यन्त जरूरी है क्योंकि सामाजिक विकास विकलांगों का अभिशाप मुक्त जीवन से मुक्त नहीं कर रहा है।

हिन्दी कहानी साहित्य में कई विकलांग पात्र हैं जो कहानीकार अपनी चेतना से तथा प्रतिभा से एक सार्थक और सशक्त कृति तैयार करता है। जिसमे मौजूदा समाज का वास्तविक वर्णन होता है। साहित्यकार समाज में जो विकलांग लोगों के साथ घटित घटनाओं का अंकन हमारे समक्ष रखता है जिस में समाज की गहराइयों की जानकारी हमें प्राप्त होती हैं। उन रचनाओं के द्वारा हमारा सारा जीवन परिवर्तित होता है तथा जीवन की दिशा परिवर्तित होती है।

कहानीकार सुदर्शन ने 'जल्पमंजरी', 'सुप्रभात', 'पुष्पलता', 'फूलवती' इत्यादि कहानियाँ लिखकर कहानी साहित्य को समृद्ध किया है। उनकी 'हार की जीत' विकलांग समस्या से जुड़ी कहानी है। प्रस्तुत कहानी में चित्रित विकलांगता के विषय में सरला शर्मा ने कहा है - 'दुष्ट बुद्धि खड़गसिंह अपाहिज का स्वाँग धर बाबा भारती में गन्तव्य तक पहुँचा देने की प्रार्थना करता है, दीन - दुखियों के सहायक बाबा भारती सहर्ष तैयार हो जाते है...पलक झपकते बाबा भारती को घोड़े से गिराकर खड़गसिंह जीत की हंसी हंसता है। इस कहानी में फर्जी अपाहिज बनकर बाबा भारती का घोड़ा भगाकर ले जाने का प्रयत्न करते हैं। उसी तरह आज भी कई अविकलांग व्यक्ति विकलांगता का फर्जी प्रमाणपत्र निकालकर असली विकलांगों जैसा ही फायदा उठाते है। लेकिन विकलांगों को उनके अधिकारों से वंचित रहना पड़ता है। हिन्दी के प्रसिद्ध कहानीकार प्रेमचंद की कहानी 'पत्नी से पति' विकलांग समस्या से जुड़ी हुई कहानी है। जिसमें चित्रित विकलांग पात्र भीख माँगकर पैसे कमाता है। कमाया हुआ पैसा खुद के लिए नहीं तो देश के लिए दान करता है। वह विकलांग होकर भी सकलांग के लिए प्रेरक बनता है। उसी तरह जयशंकर प्रसाद की 'मधुआ', 'बेड़ी', 'दुखिया' इत्यादि कहानियों में भी विकलांग समस्याएँ दृष्टिगोचर होती हैं। 'मधुआ' कहानी में व्यक्ति के ह्रदय हो रेत देनेवाली विकलांग पात्र की पीड़ा को चित्रित किया गया है। इस कहानी का अंध पात्र जो एक 9-10 वर्ष के लड़के का लाठी के रूप में आधार लेकर भीख माँगकर अपना जीवन व्यतीत करता है। जयशंकर प्रसाद के शब्दों में - "अंधे को अंधा न कहकर सूरदास के नाम से पुकारने की चाल मुझे भली लगी। इस संबोधन में दीन के अभाव की, सहानुभूति और सम्मान की भावना थी, व्यंग्य न था।

इसके अतिरिक्त इलाचंद्र जोशी की कहानियाँ 'अनाश्रित', 'पागल की सफाई', क्रय - विक्रय आदि में मनोविकृतियाँ और मानसिक दुरावस्था का चित्रण किया गया है। जैनेन्द्र कुमार की 'अंधे का भेद', यशपाल की 'अभिशप्त', ममता कालिया की 'आजादी', मैत्रेयी पुष्पा की 'सहचर', श्रीमती अंजना सिंह ठाकुर की 'एक थी शकुन' इत्यादि भी विकलांग समस्या से संबंधित कहानियाँ है।

हिन्दी साहित्य में विकलांगता पर कई कवियों ने कविता में उनकी व्यथा को व्यक्त किया है - 'जो बोल नहीं सकते अपने मन की बात/मन के भावों से करते होंगे अपनों से बात/जो लगा नहीं सकते ऊँची छलाँग/उनके सपने जरूर होतें होंगे बेलगाम/ये सारी विलक्षण प्रतिभाएँ हो जाएंगी दीपमान/जैसे ही हम मान लेंगे हर 'विकलांग' को दिव्यांग।

इसके अलावा अविनाशसिंह, रमण, रामप्रकाश मुरारका, सूर्यकुमार पाण्डेय, ललित कुमार, भारतेन्दु मिश्र ने भी कविता के क्षेत्र में अपना योगदान दिया है। आत्मकथा के क्षेत्र में 'टूटे पंखों से परवाज तक' - सुमित्रा महरोल, 'जीवन कांडा किफुल' - झमक धिमिरे, 'शर्मिष्ठार आत्मकथा'-शर्मिष्ठा प्रीतम ने भी विकलांगता की समस्याओं को उठाया हैं।

विकलांगता के समाधान

उपरयुक्त हिन्दी साहित्य में हमने विभिन्न विधाओं में विभिन्न प्रकार की समस्याओं को विश्लेषित किया। मेरे मन्तव्य से विकलांगता का समाधान तभी संभव है हम इसके प्रति खुद का सारा दृष्टिकोण अपनाएँ। इसके प्रति अपना नैतिक दायित्व को समझें। अपनी नैतिक जिम्मेदारी को निभाने के लिए दृढ़ संकल्प लें अपने निजी स्वार्थो को बलि देकर इसके समाधान की दिशा ढूंढे इस तरह विकलांगता को दूर करने के लिए हमें विकलांगो के प्रति स्वस्थ मानवीय दृष्टिकोण परिचय देना पड़ेगा।

स्वयं की हीन भावना को छोड़ना चाहिए। विकलांगो में आत्मविश्वास जगाना चाहिए। उन्हें यह यकीन दिलाना चाहिए कि वे समाज के अंग है, उन्हें सामान्य जीवन जीने का अधिकार है। वह समाज और देश की सभी गतिविधियों और स्वरूपों के लिए जिम्मेदार बनकर स्वयं की उपलब्धियों पर पहचान बनाने में सशक्त और योग्य है। रोजगार, उद्योग -धंधों के लिए अवसर प्रदान करने चाहिए। आर्थिक स्थिति से बाहर निकलने के लिए स्वयं विकलांग, स्वयं सेवी संस्थाएँ, सामाजिक तथा न्याय अधिकारिता मंत्रालय, सरकार तथा साहित्य चिंतक इस प्रकार की व्यवस्था तथा आदर्श रास्ता सुझाए जिससे वे सम्मानित जीवन जी सकें।

संदर्भ - संकेत

1. भारत में आर्थिक नियोजन. डॉ. रेणु त्रिपाठी -पृ.43
2. 21 वीं सदी का नव विमर्श - विकलांग विमर्श. प्रो. माहेश्वरी सुरेश. पृ.19
3. साहित्य और सामाजिक परिवर्तन - मिश्र अनन्त राम बद्रीनारायण पृ.103
4. कथा साहित्य में विकलांग विमर्श - डॉ. विनय कुमार पाठक .पृ.242
5. विकलांगता समस्याएँ व समाधान -विनोदकुमार मिश्र .पृ.101
6. उपन्यास साहित्य में विकलांगों की समस्याएँ -डॉ. हर्षद पृ.100
7. आंवा - चित्रा मुद्गल. पृ.201
8. कथा साहित्य में विकलांग विमर्श -डॉ. विनय कुमार पाठक. पृ.136
9. संपूर्ण कहानियाँ -जयशंकर प्रसाद. पृ. 171
10. विकलांग कविता -प्रिया आस्था. पृ .15

स्त्री अधिकार और 'महासमर' : एक संक्षिप्त अध्ययन

पंकज सिंह

शोध छात्र-हिंदी एवं भाषा विज्ञान विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)

शोध-सार

भारतीय मिथक परंपरा में 'रामायण' और 'महाभारत' दो ऐसे महाग्रंथ हैं, जो अपने उत्सकाल से वर्तमान तक प्रासंगिक बने हुए है । हिंदी वाङ्मय का कोई भी युग अथवा कालखण्ड ऐसा नहीं रहा है, जिसमें इन महाकाव्यों का पुनर्पाठ न किया गया हों। अपभ्रंश साहित्य से लेकर 21वीं सदी के कथा साहित्य तक यह परम्परा निर्बाध गति से चलायमान रही है। समय-समय पर विभिन्न रचनाकारों ने अपने युगबोध से अनुप्राणित होकर इन कथाओं के माध्यम से समस्या की भयावहता का समाधान प्रस्तुत करने की कोशिश की है। इन्हीं रचनाकारों में से एक नाम है - 'नरेन्द्र कोहली'।

कोहली जी सांस्कृतिक राष्ट्रवादी साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय जीवन-शैली एवं दर्शन का सम्यक् परिचय करवाया है। 'नरेन्द्र कोहली' का सृजनात्मक व्यक्तित्व बहुत विराट है। इन्होनें साहित्य की सभी प्रमुख विधाओं (यथा-उपन्यास, व्यंग्य, नाटक, कहानी) एवं गौण विधाओं (यथा-संस्मरण, निबंध, पत्र) और आलोचनात्मक साहित्य में अपनी लेखनी चलाई। उनके रचना संसार को देखते हुए कई सारे विषय मन में कौंधते हैं, जिनमें से पौराणिक संदर्भ के उपन्यास प्रमुख हैं। मिथकीय चेतना से ओत-प्रोत इन उपन्यासों में 'महासमर', 'अभ्युदय' तथा 'शरणम्' आदि रामायण तथा महाभारत कालीन विषय को एक नया अर्थ विस्तार देते हुए वर्तमान की समस्याओं से टकराते हैं।

'महासमर' की कथा मनुष्य के उस अनवरत युद्ध की कथा है, जिसमें उसे अपने बाहरी तथा भीतरी शत्रुओं के साथ निरंतर लड़ना पड़ता है। संसार में चारों ओर लोभ और स्वार्थ की शक्तियाँ निरंतर संघर्षरत हैं। बाहर से अधिक उसे अपनों से लड़ना पड़ता है। लोभ, त्रास और स्वार्थ के धर्म के विरूद्ध इस सात्विक युद्ध को 'नरेन्द्र कोहली' एक आधुनिक मौलिक उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किए हैं। 'महासमर' भव्य संस्करण के अन्तर्गत कोहली जी के उपन्यास बंधन ,अधिकार कर्म, धर्म, अंतराल प्रच्छन्न, प्रत्यक्ष निर्बन्ध, तथा आनुषंगिक आदि कुल नौ भागों में प्रकाशित है।

'नरेन्द्र कोहली' का व्यक्तित्व, स्वाभिमानी, जिन्दादिली, ईमानदारी एवं अध्ययन शीलता आदि विशेषताओं का धनी है। कोहली जी को हिंदी उपन्यास धारा में महाकाव्यात्मक उपन्यास विधा की शुरूआत करने वाला कथाकार माना जाता है। पौराणिक एवं ऐतिहासिक गुत्थियों को सुलझाते हुए, उनके माध्यम से आधुनिक नारी समाज की समस्याओं एवं उनके समाधान को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करना कोहली जी अन्यतम विशेषता है। 'महासमर' एक विराट कृति है, जो भारतीय नारी के जीवन, चिन्तन, दर्शन एवं व्यवहार को मूर्तिवत रूप में प्रस्तुत करता है। नरेन्द्र कोहली ने महाभारत कालीन नारी के चिन्तन को इस कृति के माध्यम से आधुनिक युग में नारी के व्यक्तित्व को पूर्णतः जीवन्त कर दिया है।

महासमर में सत्यवती, अंबा, अम्बिका, गांधारी, कुंती, माद्री, हिडिम्बा और द्रौपदी आदि नारी चरित्रों को अत्यन्त नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। कोहली जी की मान्यता है वही उन नारी चरित्रों का महाभारत में चित्रण वास्तविक रूप में हैं। कोहली जी के वैचारिक व लेखनीय चिन्तन से '' 'महासमर' मे प्रस्तुत नारी जीवन को वर्तमान में उत्पन्न विभिन्न समस्याओं का समाधान महासमर उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में सत्यवती राजस्-गुण अर्थात भोग, विलास, बल, वैभव, काम, लोभ एवं द्वेष आदि गुणों की प्रतीक है। दासराज पुत्री सत्यवती पराशर से समागम कर कृष्ण द्वैपायन को पुत्र के रूप में प्राप्त करती है एवं लोक-लाज वश उसे त्याग देती है, तत्पश्चात् सत्यवती शान्तनु से विवाह कर हस्तिनापुर की महारानी बन जाती है। सामान्य नारी की तरह सभी सुख -वैभव का भोग करना चाहती है। वह अपनी बुद्धि पर विश्वास करती है एवं अपने पुत्रों के शिक्षा-दीक्षा और भविष्य के विषय में निर्णय स्वंय करती है, जिसके फलस्वरूप चित्रांगद अत्यन्त क्रोधी, घमण्डी, उदण्ड तथा उच्छृंखल हो जाता है और द्वंद्व युद्ध में मारा जाता है। सत्यवती भीष्म को लेकर संशकित है कि कहीं वह उसके पुत्रों का कोई अनिष्ट न कर दें । इसलिए वह कहती है कि ''अपना दाना छीनने वाले को तो चींटी भी काट लेती है, भीष्म तो मनुष्य है।'' सत्यवती स्थिर वाणी में बोली, ''मछली के एक बोझ के पीछे मैंने मछुवारों को एक-दूसरे की हत्या करते हुए देखा है।"[1]

पति तथा पुत्र के मृत्यु के पश्चात् भी सत्यवती टूटती नहीं बल्कि सत्ता पाकर सक्षम, कठोर एवं कहीं-कहीं निर्मम भी हो जाती है, जैसे अम्बिका के ना चाहने पर भी पर पुरूष कृष्ण- द्वैपायन के द्वारा नियोग विधि से पुत्र पैदा करवाती है। आधुनिक नारी की तरह सत्यवती भी सत्ता, अधिकार एवं ऐश्वर्य पूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहती है।

इस उपन्यास में अंबा, अंबिका, अंबालिका के माध्यम से तत्कालीन समाज में स्थित नारी की दयनीय, कमजोर, निस्सहाय एवं दीनहीन अवस्था में भी उनके विद्रोह स्वरूप का चित्रण है। काशीराज की पुत्रियों (अंबा, अंबिका, अंबालिका) का भीष्म, विचित्रवीर्य से विवाह के लिए हरण करते हैं। अंबा विचित्रवीर्य से विवाह का विरोध करती है। जहाँ अंबा के हरण के कारण शाल्व नरेश विवाह नहीं करते एवं भीष्म प्रतिज्ञा वश अंबा से विवाह के लिए तैयार नहीं हैं। वही अंबा को विचित्रवीर्य विवाह के लिए स्वीकार नहीं, इस लिए वह रूष्ट होकर तपस्विनी बन जाती है।

अंबिका तथा अंबालिका क्षय रोग से पीड़ित विचित्रवीर्य से विवाह करके भी पतिसुख से वंचित है। विचित्रवीर्य के मृत्यु के पश्चात सत्यवती नियोग विधि से अंबिका और अंबालिका को पुत्र प्राप्त करने के लिए कहती है, जिसका प्रतिरोध करते हुए अंबिका कहती है ''अपने अनुराग के बंधन में बँध, किसी पुरूष को अपना प्रिय मानना, उससे विवाह कर आजीवन संग रहने का संकल्प करना.... और फिर अपने प्रेम के प्रमाण के रूप में सन्तान उत्पन्न करना, नारी के जीवन का गौरव हो सकता है, किन्तु मात्र सन्तान उत्पन्न करने के लिये किसी अपरिचित पुरूष के साथ सहवास''[2]

इस उपन्यास में आधुनिक नारी की तरह जहाँ गांधारी एक तरफ कुंती से द्वेष का भाव, राजसत्ता का मोह एवं अपने पुत्र के प्रति प्रबल स्नेह है, वही दूसरी तरफ वह धर्म-अधर्म में भेद विरोधी एवं प्रतिकारी स्वरूप का प्रतीक है। भीष्म द्वारा सैनिक शक्ति का प्रभाव दिखाकर गांधार राज सुबल को अपनी पुत्री गांधारी का धृतराष्ट्र से विवाह के लिए मजबूर किया जाता है। इस बात के प्रतिरोध में गांधारी अपनी आँखों पर पट्टी बाँध लेती है। जो कि गांधारी के दो स्वरूप, प्रथम नारी पतिव्रता का एक अंग एवं द्वितीय नारी विद्रोह और प्रतिवाद का एक रूप व्यक्त करता है। धृतराष्ट्र की तरह पुत्र मोंह में उस सीमा तक नहीं पहुँचती कि जहाँ धर्म-अधर्म में भेद ही न कर सकें। पुत्र दुर्योधन द्वारा द्रौपदी के अपमान किये का विरोध करती है।

इस उपन्यास में कुंती का व्यक्तित्व प्रसंगानुकूल है। वही कही जटिल कठोर एवं कोमल होती है, तो कही वह अत्याचारों को धैर्य पूर्वक सहने वाली, अधिकार तथा प्रतिरोध के भाव से अपने पुत्रों को प्रेरित करने वाली नारी हैं। आज की नारी की तरह कुंती का व्यक्तित्व संघर्षशील, ममतामयी, करूणामयी उदार एवं आदर्श का प्रतीक है। पृथा (कुंती) शूरसेन की पुत्री है जिसकों शूरसेन के फूफेरे भाई कुंतिभोज द्वारा गोद लिया जाता है। जिसके फलस्वरूप पृथा का नाम परिवर्तित होकर कुंती हो जाता है। वह दुर्वासा ऋषि की सेवा कर मंत्र प्राप्त करती है। मंत्र के सामर्थ्य से वह जिस देव शक्ति का ध्यान कर किसी श्रेष्ठ पुरूष को, उस देव शक्ति को प्रतिनिधि मानकर संतान प्राप्त करेंगीं, तो उस देवता के समान गुणों वाली संतान प्राप्त होगी। विवाह पूर्व ही इस मंत्र का प्रयोग कर सूर्य पुत्र कर्ण को प्राप्त करती हैं, लेकिन कानीन पुत्र होने के कारण कुंतिभोज कर्ण को नदी में बहा देते है। कुंती का विवाह पांडुरोग से पीडिघ्त पांडु से होता है। जिसकी वजह से उसे पति सुख भी प्राप्त नहीं होता। अपने पति की अक्षमता को अपना दायित्व समझकर स्वयं को प्राप्त मंत्र द्वारा युधिष्ठिर, भीष्म, अर्जुन तीन पुत्र को जन्म देती है। कुंती, गांधारी, माद्री, हिडिम्बा के प्रति उदार एवं सरल है। इस प्रकार कुंती प्रारम्भ से अंत तक संघर्ष करती है।

माद्री जहाँ सौंदर्य की पराकाष्ठा है। वही विद्रोहणी नारी भी है। मद्रराज शल्य की बहन को भीष्म पर्याप्त शुल्क देकर पांडु की पत्नी के रूप में लाते है। माद्री को पति से न तो काम सुख और न ही राज सुख प्राप्त होता है।

द्रौपदी आज की नारी की तरह आत्म स्वाभिमानी, अद्वितीय, कमनीय, स्वतंत्र तपस्विनी, निर्भीक, निडर एवं सशक्त नारी पात्र है। यज्ञ कुंड की अग्नि से उत्पन्न द्रौपदी, द्रुपद नरेश की पुत्री है। उसका विवाह पाँच पाण्डव से होता है। द्यूत प्रसंग में बालों से घसीट कर सभा में लाये जाने पर निर्भीक एवं निडर होकर न्याय की बात करती है एवं अपने आत्म सम्मान की रक्षा करती है। जय द्रथ के हरण करने के प्रयास को निष्फल करती है। कीचक की कुदृष्टि का प्रतिरोध करती है। वह क्षमाशील नहीं अपितु दुर्योधन, दुशासन, कीचक, जयद्रथ, कर्ण एवं अश्वथामा आदि के द्वारा किये गये अपमान का बदला लेना चाहती है।

जहाँ एक तरफ युग-युगान्तर से अनेक साम्राज्य बने और नष्ट हो गये। अनेक नयी संस्कृतियों का विकास हुआ, उनमें कितनी ही संस्कृतियां लुप्त हो गयी। संसार में अनेक असम्भव परिवर्तन हुये, किन्तु नारी समाज की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता दिखा। कल भी स्त्री शोषण, घरेलू हिंसा, अनाचार, बलात्कार एवं असमानता आदि का व्यवहार झेल रही थी, और वर्तमान में भी घर, दफ्तर, स्कूल एवं सामाजिक जगहों पर यौन शोषण, असभ्य व्यवहार, हिंसा आदि झेल रही है। अंग्रेजों से भारत आजाद हुआ तो संविधान में स्त्री को पुरूषों के बराबर का अधिकार प्राप्त हुआ, पर दु:खद यह है कि संवैधानिक समानता केवल संवैधानिक ही है। आधी आबादी को अपने अधिकार के बारे में जानकारी ही नहीं प्राप्त है। पुरूष सत्ता का समाज कभी यह नहीं चाहा की उनकी बराबरी में किसी स्त्री को स्थान मिले। उन्होंने हमेशा स्त्रियों को एक वस्तु की तरह ही समझा है, जिसके कारण आज भी स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार होता है। ''युगों के अनवरत प्रवाह में बड़े-बड़े साम्राज्य बह गये, संस्कृतियाँ लुप्त हो गयी, जातियाँ मिट गयी, संसार में अनेक असम्भव परिवर्तन सम्भव हो गये, परन्तु भारतीय स्त्रियों के ललाट में विधि की वज्रलेख से अंकित अदृष्ट लिपि नहीं धुल सकी। आज भी सारा गतिशील संसार निरन्तर परिवर्तन की अनिवार्यता प्रमाणित कर रहा है,। स्त्रियों के जीवन को काट-छाँट कर उसी साँचे के बराबर बनाने का प्रयत्न हो रहा है, जो प्राचीनत युग में ढाला गया था।''[3]

भारतीय संस्कृति में नारी को उच्चतम स्थान प्राप्त है। नारी की मर्यादा पुरूषों से अधिक है एवं स्त्री-पुरूष में भेद नहीं है, वही उसी नारी के साथ अत्याचार एवं तरह -तरह की बंदिशें लगी हैं। भारतीय नारी को देवी कहकर पुरूष समाज ने उनको उनके अधिकारों से वंचित रखा और अपने वर्चस्व को बनाये रखा। पुरूष समाज को कतई बर्दास्त नहीं होता है कि वे अपने अधिकार को किसी स्त्री से छोटा पाये, वे कभी स्त्री समाज को आगे बढ़ने ही नहीं देना चाहते । हमारे समाज में पुरूषों को श्रेष्ठ माना जाता है। वे सारे काम कर सकते हैं और स्त्रियों को कमजोर कहकर घर की चार दिवारों में कैद कर दिया जाता है।

''भारतीय स्त्री की सामाजिक स्थिति का इतिहास भी उसके विकृत से विकृततर होने की कहानी मात्र है। बीती हुई शताब्दियों उसके सामाजिक प्रसाद के लिए नींव के पत्थर नहीं बनी, वरन् उसे ढहाने के लिए वज्रपात बनती रही हैं, फलत: उसकी स्थिति उत्तरोत्तर दृढ़ तथा सुन्दर होने के बदले दुर्बल और कुत्सित होती गयी।''[4]

वहीं दूसरी तरफ भारतीय नारी शिक्षा के कारण अपने अस्तित्व एवं अधिकारों के प्रति जागृति हुई है। अब वह अपने भविष्य का निर्माण स्वयं करना चाहती है, जिसके लिए वे वह पुरूषों द्वारा बनाये गये सारे बन्धन से मुक्त होना चाहती है, जो उनके उज्ज्वल भविष्य और सुखपूर्ण जीवन में बाधक बनी हैं। ''नारी में जन्मी यह नव-विकसित मानसिकता ही उसकी मुक्ति-चेतना है। आज की नारी माँ, बहन, बेटी, पत्नी से पहले एक स्वतंत्र मनुष्य के रूप में अपनी पहचान के प्रति सचेत हो रही है''।[5]

आधुनिक युग की नारी सामाजिक ढ़ाँचे को तोड़कर अपने नये मूल्य को स्थापित कर रही हैं। अपने शोषण के विरूद्ध वाणी में विद्रोह के स्वर मुखर एवं अपने सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि जीवन के सभी क्षेत्रों के प्रति सजग एवं जागृत है। आधुनिक शिक्षा के कारण नारी को अपने सर्वांगीण विकास के लिए एक नवीन दृष्टि मिली एवं प्राचीन रूढिघ्यों के बन्धनों से मुक्त होने की चेतना ''आज की नारी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व, अपना वजूद तलाशने लगी है। वह महसूस करने लगी है कि उसका अपना कहने को क्या है ? वह अपने आप में क्या है ?''[6]

भारतीय नारी के जीवन में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक अनेक परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। भारतीय समाज में नारी कभी वन्दनीय रही तो कभी निन्दनीय रही। युग परिवर्तन के बाद भी नारी की दशा ज्यों-की त्यों बनी रही । वह अनेक कुप्रथाओं एवं बन्धनों जंजीरों में जकड़ी रही । आधुनिक युग में अनेक समाज सुधारकों के अथक प्रयासों तथा स्वंय नारी के प्रयासों से उनकी स्थिति में पर्याप्त सुधार हुए। इस नवीन युग में परम्परागत अबला रही नारी सबला बनकर पुरूष के समक्ष प्रतिष्ठित करने का निरन्तर प्रयास कर रही है। इस कारण से समाज में उनकी प्रतिष्ठा में अत्यधिक परिवर्तन आया है, लेकिन यह भी कटु सत्य है कि इक्कीसवीं सदीं में भी भारतीय समाज की नारी जीवन से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को झेल रही है। आदिकालीन अशिक्षित एवं अधीनता में रहने वाली नारी आधुनिक युग में शिक्षित स्वतन्त्र एवं समानता का अधिकार पाने के बाद भी नारी यौन शोषण, लैंगिक भेदभाव, घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न एवं हिंसा आदि की समस्याएँ उतनी ही ज्वलन्त है जितनी महाभारत काल में थी।

प्राचीन काल से चली आ रही यौन शोषण की प्रवृत्ति आज भी ज्वलन्त समस्या है। इस समस्या ने आधुनिक समय में भयंकर रूप धारण कर लिया है। नारी इस हिंसा का शिकार प्रत्येक जगह जैसे घर, सार्वजनिक स्थान एवं दफ्तर आदि में हो रही है। 'महासमर' की अम्बिका एवं अम्बालिका के सन्दर्भ में यह शोषण कुछ इसी प्रकार का है उन स्त्रियों को पराये पुरूष से पुत्र पैदा करने के लिए मजबूर किया जाता है। माता सत्यवती की इस अनुचित आज्ञा पर अम्बिका का विरोध का स्वर मुखर हो उठता है ''मैं आपकी गोशाला की गाय नहीं हूँ। न आपके लिए पौत्र उत्पन्न करने का कोई यंत्र हूँ।''7 अम्बिका अपने नारीत्व की रक्षा के लिए समस्त ताने -बाने की छिन्न - भिन्न करने को आतुर है जिस तरह आधुनिक युग की नारी अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के रक्षा के लिए सामाजिक मर्यादा की सारी सीमाएँ लाघने को तैयार रहती है। कुछ इसी तरह का प्रतिरोध अम्बिका में भी दिखता है । ''पर अम्बिका इस प्रकार का कोई धर्म स्वीकार नहीं कर सकती, जिसमें उसका दम घुटता हों ''आज यदि अम्बिका का धर्म सत्यवती और भीष्म के धर्म के प्रतिकूल पड़ रहा है तो वह अपने ही धर्म का निर्वाह करेगी।''[8]

आज की नारी अपने आपको परम्परागत आदर्शवादी रूप में नहीं देखना चाहती है। वह अपना जीवन शिक्षित, जाग्रत और स्वाभिमानी स्त्री के रूप मे व्यतीत करना चाहती है। धन वैभव, सत्ता, वासना एवं अधिकार चाहिए न कि अध्यात्म, त्याग, बलिदान की बेडिघ्याँ चाहिए । आधुनिक नारी बंधन मुक्त रहना पसन्द करती है न की बंधन युक्त। आधुनिक युग के इस बदलाव को 'महासमर' की नारी पात्र सत्यवती में प्रत्यक्ष प्रतीत होता है। ''मैं वैसी नारी नही हूँ और न ऐसा कोई आदर्श पालने की इच्छा है , जिसमें बांधकर मुझे मूर्ख बनाया जा सके। ''सत्यवती बोली, ''अपने यह भी सुन रखा होगा कि नारी वासना भी है और माया भी । उसमें इच्छाएं होती हैं। वह पृथ्वी के मृण्मय तत्वों से बनी हैं, इसलिए उसमें भोग और भोग के अधिकार की लालसा होती है । यह पृथ्वी के समान प्रत्येक वस्तु पर अपना अधिकार चाहती है। धन,वैभव, सत्ता-सबकी माया व्यापती है मुझे। मैं कुरूकुल की रानी और हस्तिनापुर के सम्राट की माँ के रूप में राजमाता बनना चाहती हूँ । निवृत्ति, अध्यात्म, त्याग, बलिदान की बाते नहीं भांती मुझे । और मैं चाहूँगी कि मेरे पुत्र भी ऐसे ही हों।''[9]

आधुनिक युग की नारी में महात्वाकांक्षी कूट-कूट कर भरी है । अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए वह कुछ भी करने को तत्पर रहती हैं। धन, शौर्य, यश और वैभव की चाह में वह अनुचित कार्य करने में भी नहीं हिचकती । ऐसी महत्वाकांक्षी भावना से ग्रस्त सत्यवती वृद्ध शान्तनु से विवाह करके राजपत्नी और राजमाता का सुख भोगना चाहती हैं। अपने राजसत्ता का सुख वह किसी भी कीमत पर हासिल करना चाहती है। सत्यवती पति और पुत्र की मृत्यु के दु:ख को भुलाकर राजवैभव की प्रबल इच्छा को अत्यधिक महत्व देती है। ''क्या इसीलिए उसने विवाह किया था, वृद्ध शान्तनु से कि वह अपने और पुत्र के प्राणों की रक्षा के लिए राज्य, धन, सम्पत्ति ।.....सब कुछ छोड़कर भाग जाए।''[10]

आधुनिक समाज में ऐसी भी नारियाँ है जो सामाजिक परम्पराओ, रूढ़वादिता जैसे श्राप से अभिसप्त हैं और वे आजाद होने के लिए संघर्षशील हैं। वे अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए अपने पति तक का त्याग करने में नहीं हिचकिचाती हैं। 'बन्धन' उपन्यास की माद्री में एक आधुनिक नारी की छवि दिखाई देती हैं। वह अपने वैवाहिक जीवन से पूर्ण रूप से त्रस्त होकर वैवाहिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह का स्वर मुखर करती है। ''हमारे विवाह की धर्म-सम्मत अपेक्षाओं पर पाण्डु पूरा नहीं उतरता, इसलिए मैं इस विवाह को धर्म सम्मत नहीं मानती ।..... मैं पुरूसत्वहीन पति के साथ रहना नहीं चाहती .....यह कहा का न्याय है कि पुरूष चाहे तो नारी का सत्कार करे, चाहे तो तिरस्कार। नारी को सब कुछ वैसा ही स्वीकार करना होगा, जैसे पुरूष की इच्छा है। जैसे नारी का अपना कोई अस्तित्व न हो, इच्छा न हो, विचार न हो। नारी मनुष्य नहीं हैं क्या ? जड़ पदार्थ है? पाषाण है?''[11]

सामन्ती व्यवस्था में बहु-विवाह का प्रचलन था। इसके माध्यम से नारी का शोषण किया जाता था। यह कुप्रथा आज भी समाज में व्याप्त है। आज भी नारियों को खरीदा और बेचा जाता है। नारी को भोग की वस्तु मानने और उनका स्थान पैरों की जूती समझने वाले मानसिकता के लोग आज भी समाज में व्याप्त हैं । गांधारी और माद्री के प्रसंग में आधुनिक युग की इस समस्या का साक्षात् दर्शन होता है। घ्यूत सभा में द्रौपदी पर हुए अत्याचार से दु:खी होकर गांधारी अपनी पीड़ा प्रकट करती है ''गांधार के राजप्रसाद से मैं तो पशुबल से घसीटकर हस्तिनापुर लाई गयी थी, अब क्या कुरूकुल की बधुएँ भी घसीट ा कर सभाओं में लाई जाऐंगी।''[12]

नारी शालीनता, दया, करूणा, ममता आदि गुणों की प्रतिमूर्ति है। आधुनिक युग की नारी स्वअस्तित्व, सम्मान एवं समानता के अधिकार के साथ समाज में रहना चाहती है। अपमानित होने पर वह अपने स्वाभाविक गुणों का त्यागकर अपने अपमान का बदला लेने हेतु नारी से चण्डी बन जाती है । अम्बा का

विद्रोहणी नारी का रूप 'नरेन्द्र कोहली' की कथा में वर्णित है वह निर्भीकता और निडरता के साथ उद्घोष करती है कि न वह भोग विलास की वस्तु है और न पुरूष इच्छा पूर्ति का माध्यम है। आज की नारी की तरह वह शिक्षित और जागरूक है । वह अपने जीवन से जुड़े हर फैसले को लेने में सक्षम है। वह अपनी इच्छा के अनुसार अपने जीवन साथी का वरण करना चाहती है। अम्बा के व्यक्तित्व में आज की नारी की तरह जागरूकता की भावनाएँ झलकती है। अम्बा रूग्ण एवं कामुक विचित्रवीर्य से विवाह के प्रस्ताव का सशक्त ढ़ग से विरोध करती है।'' यदि वे न माने तो मेरा विवाह मेरी इच्छा के विरूद्ध विचित्रवीर्य से होगा? .....क्या राजकुमार की प्रतिज्ञा की चिंता किए बिना उनका विवाह किसी और की इच्छा से हो सकता है।''[13]

कोहली द्वारा 'महासमर' में चित्रित कुंती अत्यन्त ही सजीव, जीवन्त, गतिशील एंव आदर्श नारी पात्र है। परिस्थिति-जन्य अनुभवों ने कुंती को अन्याय और अत्याचार के प्रति पाषाण-सा कठोर बना दिया है। उसकी परछाई आज भी मौजूद है। 21 वीं सदी की नारी अपने ही लोगों के द्वारा अपमानित और प्रताडिघ्त हो रही हैं। वह अपने नारीत्व के अपमान को बर्दाश्त नहीं कर पाती एवं अपनी खामोशी तोड़कर विरोध का शंखनाद करती है। उसके स्वर कुंती में का स्वर सुनाई पड़ रहा है। '' मेरे पुत्र युधिष्ठिर से कहना कि वह साम, दाम, दण्ड, भेद से किसी प्रकार अपने पैतृक राज्य का उद्धार करें..... ं मैं उसकी माता, उसे जन्म देकर भी अनाथ की भाँति, दूसरों के दिए अन्नपिंड की में आकाश की ओर दृष्टि लगाए रहती हूँ ''उनसे यह भी कहना कृष्ण मुझे राज्य के छिन जाने का उतना कष्ट नहीं हुआ , जितना कृष्ण के अपमान से हुआ है। वे उसका निराकरण करें , तो ही इस क्षत्राणी का पुत्र-प्रसव सार्थक होगा।''[14]

'महासमर' की द्रौपदी आधुनिक जागरूक नारी की प्रतीक है। द्रौपदी प्राचीन काल की एक ऊर्जावान और ओजस्वी नारी है। वह अपनी सशक्त एंव मजबूत नारी शक्ति से पाण्ड़वों को अपने अधिकार को प्राप्त करने के पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करती है। उनके सुप्त पुरूषार्थ एंव पौरूष को जाग्रत करती है। द्रौपदी की तरह आज की नारी भी पुरूष के सुप्त पौरूष में चेतना और शिक्षा का प्रकाश पुन्ज को प्रज्वलित करती है। आधुनिक जागरूक भारतीय नारी की तरह द्रौपदी में अपने अपमान की व्यथा एवं प्रतिशोध के लिए प्रबल भावना से भरकर अपने पतियों को धिक्कारते हुए कहती है ''मैं तो धिक्कारती हूँ अपने पाँच पतियें को, इनके क्षत्रित्व को, इनके युद्ध कौशल को, इनके दिव्यास्त्रो को ,.....''केशों से पकड़ , दुःशासन मुझे भरी सभा में घसीट लाया:, और ये लोग बैठे देखते रहे। वे मुझे निर्वस्त्र करने का प्रयत्न करते रहे, काम -भोग का निमन्त्रण देते रहे, और ये सिर झुकाए धर्म - चिन्तन करते रहे।''.....''कैसे बताऊँ कि मेरे मन में अपने पतियों के लिए, कैसे - कैसे धिक्कार उठने लगते हैं। मेरे मन में इतनी भयंकर प्रतिहिंसा जागती है कि, इच्छा होती है, सारी सृष्टि को जलाकर क्षार कर दूँ।''[15] द्रौपदी के इस कथन में युग-युगान्तर के संस्कारों की बेडिघ्यों में बंधी शोषित नारी की मनोव्यथा अंकित हुयी है। शोषित कर्ता पुरूष वर्ग के प्रति द्रौपदी का यह विद्रोह है। द्रौपदी का यह प्रतिकार शोषित नारी का प्रतिकार है। जहाँ 'महासमर' की कथा में द्रौपदी केन्द्रीय धुरी है वही आधुनिक जागरूक नारी का प्रतीक भी है।

कोहली जी ने 'महासमर' उपन्यास में नारी जीवन को उसकी सम्पूर्ण वीरता के साथ अत्यंत मौलिक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। नारी जीवन के वास्तविक रूप से संबन्धित प्रश्नों का समाधान वे अनुभूति और तर्क के आधार पर देते है । इस कृति में महाभारत के कथानक के माध्यम से वर्तमान नारी के जीवन की समस्या को व्याख्यायित करते हुए उसका समाधान नवीन ढ़ंग से करने का प्रयास किया गया है।

'महासमर' के पौराणिक नारी पात्रों के माध्यम से लेखक ने आधुनिक नारी की यथार्थ स्थिति का चित्रण किया है। आधुनिक सामज में स्त्री को पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त होने के बावजूद भी उसे अपनी समस्याओं से एवं परिस्थितियें से संघर्ष करना पड़ रहा है । प्राचीन परम्पराओं एवं रूढिघ्यों का प्रबल विरोध करती हुई, वह अपने अस्मिता , अस्तित्व एवं समानता के अधिकार की रक्षा हेतु प्रयासरत है। जहाँ एक तरफ सत्यवती के भौतिक सुख, महत्वाकांक्षा एवं राजवैभव आदि सुख चाहिए वहीं आधुनिक युग की नारी को भी धन, वैभव, स्वतन्त्रता आदि सुख की अभिलाषा एवं लालसा करती है। जहां एक तरफ अम्बिका तथा अम्बालिका शोषण का शिकार होती हैं और पराये पुरूष से पुत्र पैदा करती हैं। वहीं आधुनिक नारी भी शोषण का शिकार हो रही हैं और उसकी प्रतिकार कर रही हैं। सामाजिक परम्पराओं और रूढ़ियों के विरूद्ध जैसे माद्री का स्वर मुखर हो उठता हैं, वैसे ही आज की नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग है।

जिस प्रकार गांधारी द्रौपदी पर हुए अत्याचार को प्रतिकार करती है, उसी प्रकार आज की नारी एक -दूसरे पर हो रहे शोषण एवं अत्याचार के लिए संगठित होकर विरोध कर रही है । जैसे- कुंती, अपनी बहु (द्रौपदी) पर कौरवों के किये गये असभ्य व्यवहार का अपने पुत्रों को प्रतिशोध लेने के लिए कहती है, उसी प्रकार वर्तमान नारी अपने प्रति हुए दुर्व्यवहार का प्रतिकार संगठित होकर करती है। द्रौपदी अपने साथ हुए अनाचार के प्रतिकार पांडवों को प्रतिशोध न लेने के लिए धिक्कारती है। इस घटना को कोहली जी आज के संदर्भ में जोड़कर देखते हैं, एवं नारी के प्रति विषमतओं, अत्याचारों और शोषण के खिलाफ पुरजोर आवाज उठाने की बात करते हैं। लेखक ने 'महासमर' के पौराणिक नारी पात्रों को आधुनिकता और नवीनता के रंग में रंग दिया है। उनकी नवीनता, जागरूकता, चौतन्यता और संघर्षशीलता की भावना आधुनिक युगीन नारी के लिए शिक्षाप्रद है । यह लेख आज के युग की नारियों के लिए प्रेरणा का स्रोत है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. नरेन्द्र कोहली, महासमर (बंधन) पृष्ठ सं0-80 वाणी प्रकाशन, दिल्ली
2. नरेन्द्र कोहली, महासमर (बंधन) पृष्ठ सं0-240 वाणी प्रकाशन, दिल्ली
3. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कडिघ्या पृष्ठ सं0-22
4. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कडिघ्या पृष्ठ सं0-76

5. डॉ0 गीता सोलंकी, नारी चेतना और कृष्णा सोवती के उपन्यास , पृष्ठ सं0-14
6. डॉ0 गीता सोलंकी, नारी चेतना और कृष्णा सोवती के उपन्यास , पृष्ठ सं0-161-162
7. नरेन्द्र कोहली, महासमर (बंधन) पृष्ठ सं0-240 वाणी प्रकाशन, दिल्ली
8. नरेन्द्र कोहली, महासमर (बंधन) पृष्ठ सं0-265 वाणी प्रकाशन, दिल्ली
9. नरेन्द्र कोहली, महासमर (बंधन) पृष्ठ सं0-81 वाणी प्रकाशन, दिल्ली
10. नरेन्द्र कोहली, महासमर (बंधन) पृष्ठ सं0-127 वाणी प्रकाशन, दिल्ली
11. नरेन्द्र कोहली, महासमर (बंधन) पृष्ठ सं0-398 वाणी प्रकाशन, दिल्ली
12. नरेन्द्र कोहली, महासमर (धर्म) पृष्ठ सं0-411 वाणी प्रकाशन, दिल्ली
13. नरेन्द्र कोहली, महासमर (बंधन) पृष्ठ सं0-179 वाणी प्रकाशन, दिल्ली
14. नरेन्द्र कोहली, महासमर (प्रत्यक्ष) पृष्ठ सं0-267-268 वाणी प्रकाशन, दिल्ली
15. नरेन्द्र कोहली, महासमर (अंतराल) पृष्ठ सं0-90-91 वाणी प्रकाशन, दिल्ली

सुमन राजे के काव्य में संस्कृति एवं लोकतत्व का विवेचनात्मक अध्ययन

बिन्दू वर्मा

शोध छात्रा- हिन्दी विभाग, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

शोध-सार

डॉ. सुमन राजे का आलोचना-संसार लगभग तीन दशकों की यात्रा है, जिसमें निरन्तर नए क्षेत्रों की तलाश की कशिश है। क्षेत्रों की विविधता ने उनकी आलोचना को एक दुर्लभ नयी बुनावट दी है। प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं के ज्ञान को नितान्तर समकालीन संदर्भों से जोड़ना सहज ही पहचान में आने वाली विशेषता है। साहित्येतिहास के क्षेत्र में डॉ. सुमन राजे एक स्थापित नाम है। उन्होंने मात्र सिद्धान्त कथन करके एक 'समग्र गुणशील साहित्येहितास' का वायवी रूप खड़ा नहीं किया, बल्कि स्वयं इतिहास लेखन के बीहड़ में सार्थक यात्राएं की हैं। साहित्येतिहास संरचना और स्वरूप 'साहित्येतिहासः आदिकाल' सवाल भी उठाते हैं तथा उत्तर प्रस्तुत करने की विनम्र कोशिश भी करत हैं। इस प्रक्रिया में विकसित डॉ. राजे की इतिहास दृष्टि उनकी आलोचना की मूल शक्ति है। 'काव्य-रूप संरचना उद्‌भव और विकास' में इस मूल दृष्टि के कारण ही वे काव्य-रूपों को सांस्कृतिक इतिहास के साथ जोड़कर देखती हैं।

मुख्य बिन्दु- दुर्लभ, बुनावट, अपभ्रंश, साहित्येतिहास, गुणशील, सार्थक

शोध-प्रपत्र

साहित्य के अस्तित्व और सार्थक उपस्थिति के लिए सबसे बड़ी चुनौती है तेजी से प्रसारित होने वाली लोकप्रिय संस्कृति, संस्कृति के केन्द्र में जिस संस्कारिता का संस्पर्श जरूरी होता है लोकप्रिय संस्कृति उससे विमुख है। भौतिकता वादी मीडिया ने एक अनैतिक, सौंदर्यात्मक, विलासपूर्ण मनोरंजक साहित्य के प्रसार ने बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लोकप्रिय संस्कृति के केन्द्र में लेखक, कलाकार और बुद्धिजीवी नहीं होते, वरन् 'शोबिज' के अदाकार होते हैं। ''जनसंचार माध्यम किसी को भी हीरो बना सकते हैं उसके लिए विशिष्ट प्रतिभा संवेदनशीलता की नहीं शरीर के आकर्षण और उससे भी अधिक उसके प्रदर्शन का मूल्य है।''[1]

सातवें दौर के क्रुद्ध-आक्रोशी-तूफानी दौर के बाद, आठवें दशक की कविता में सन्तुलन का विकास हुआ है और इस माने में हिन्दी कविता सही अर्थों में वयस्क हुई है और उसने समझदार चुप का सहारा भी लिया है। हम देखते हैं कि समकालीन कविता में कविता परिवेश का चत्रिण नहीं है। केवल परिवेशगत यथार्थ के बयान से कविता नहीं उपजती। इस दृष्टि से आज की कविता है। सच तो यह है कि आज की कविता ने एकायामी मुहावरे को तोड़ा और नई किस्म की सम्भावनाओं को विकसित किया है।

अब कविता के स्वायत्त संसार की बातें कोई नहीं करता। अनुभव की स्वायत्त-निरपेक्ष सत्ता आधुनिक स्थितियों के दबावों के तहत अपना अर्थ खो चुकी हैं। ''अनुभव की प्रामाणिकता के बहाने कविता में अनुभव को निरपेक्ष रूप में प्रस्थान बिन्दु मानकर चलना और उसे ही कविता की चरम परिणति करार कर देना बेईमानी है और आज की कविता इस अनुभववादी धारणा को तोड़ रही है। नहीं। अब जरूरी हो गया है। ले लेना निर्णय। क्योंकि सांस लेने भर की राहत के लिए की। हमें यह सारी सख्त चटटानें तोड़नी होंगी।''[2] (उग्रसेन सिंह)

सातवें दशक की कविता का विद्रोही कवि या तो महानगरीय कुंठाग्रस्त अकवि था, अथवा राजनैतिक उग्रपंथी। लेकिन आठवें दशक की कविता का नया तेवर विकसित हुआ यह एकायामी व्यक्ति की अभिव्यक्ति नहीं है-

आखिर हवा किसनियाँ कहारिन तो नहीं मालिक
जो कराहती हुई
चौका-बासन करे आपका
आखिर धूप सुरजा तो है नहीं मालिक
जिसकी कमीज आप गुस्से से फाड़ दें
जिसकी काली-पीठ पर
अपनी चिलमची केगुल झाड़ दे। (उदय प्रकाश)

समकालीन कविता बिम्बों के विरूद्ध जिहाद नहीं छेड़ती और न ही किसी भी प्रकार की संवेदना को रोमानी गन्ध कह कर दूर दुराती है-

बहुत ही नन्हें-नरम दो हाथ
छू रहे हैं पीठ-गर्दन-माथ
खाँसियों में फेफड़े का दर्द ढालता है
दिन निकलता है। (शलभ श्रीराम सिंह)

समकालीन कविता अनुभव और अनुकरण में एक निश्चित अन्तर सूचित करती है। ''मुक्तिबोध ने जिसे बाह्यजगत का अभ्यास्तरीकरण कहा था इस दशक में घटित हो सका है। अपने आस-पास के परिवेश के साथ समकालीन कविता पूरी तेजी और शक्ति के साथ टकराती है, और उससे जो ऊर्जा उत्पन्न होती है वह रचनात्मक समझ और भाषा का बिल्कुल नया नमूना है।''3 यह सिर्फ कुशलता के कारण नहीं- संवेदनात्मक शिराओं पर एक नये गहरे दबाव के कारण भी है पहले वे एक अलंकरण ही थे, अब वे अपने आप के स्वायत्त स्थिति में भी व्यवस्था और व्यक्ति केबीच गहरे तनाव को चरितार्थ करते हैं। जिस अनुपात में यह प्रतिक्रिया सजगता बढ़ी है, उसी अनुपात में अतवर्य सपाटता और शब्द स्फीति निरी साहसिकता के प्रदर्शन, चतुर सूक्तिप्रियता का आतंक कम हुआ है।

जब हम कहते हैं कि समकालीन कविता अपनी जड़ों के करीब पहुंच रही है, तो हमारा मतलब होता है कि वह अपनी शक्ति सीधे धरती से सोख रही है। भाषा के स्तर पर इसका अर्थ होगा कि वह शासन और शासक दोनों को अस्वीकार है। नये और एकदम अपरिचित शब्द कविता में अतिथि की तरह नहीं, बल्कि चौकन्ने सृजक की समझ को सामाजिक संरचना के संदर्भ में व्यापक व पुष्ट करने के लिए उपजे हैं।

केदारनाथ सिंह भी नई कविता के गीति धामों के रूप में जाने जाते रहे हैं। उनकी प्रसिद्धि तीसरे सप्तक के कवि रूप मे भी है। लेकिन अपने पहले काव्यसंग्रह से लगभग बीस वर्षबाद प्रकाशित उनका नया काव्य संग्रह 'जमीन पक रही है' उनकी काव्य-चेतना का विस्फोट ही कहा जायेगा। कविता के पाठकों के लिए यह तथ्य भी मनोरंजक सिद्ध हो सकता है कि एक ही वर्ष में इसके दो संस्करण प्रकाशित हुए हैं। ''जीवन के घोर और कंटीले यथार्थ के साथ, पारदर्शी एन्द्रिकता हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है। वैचारिक टकराव से यह कविता गहरे स्तर पर जुड़ी है और उसमें वह पूरी शक्ति के साथ शामिल है।''4 इस भ्रम में रोटी, बैल और आलू जैसी जानी पहचानी वस्तुओं के माध्मय से मानव-विरोधी शक्तियों के बरबस उसकी कल्पनाशीलता और साहस का आत्मीय संघर्ष करती है-

चुप रहने से कोई फायदा नहीं। मैंने दोस्तों से कहा और दौड़ा। सीधो खेत की ओर। कि कहीं शब्द पक न गये हों। यह दोपहर का समय था। और शब्द पौधों की जड़ों में साो रहे थे। खुशबू यहीं से आ रही थी- मैंने कहा यही यहीं शब्द यहीं हो सकता है? जड़ों में।

तारसप्तक के कवि भारतभूषण अग्रवाल (मृत्यु 1975) भी इसी अर्थ में चर्चित हुए हैं। राजनीति तंत्र की बरावट कसावट और उसकी बहुरंगी प्रदर्शनियों के बीच कवि सीधा मुखातिव होता है-

भाइयो। सहधर्मियो। सुनो, तुम्हें मन की एक बात बतलाता हूँ। सूरज का कोई सबस्ट्रीट्यूट नहीं है। यहाँ तक कि चाँद भी। जितना उजाला है। उतना वह सूरज है।

जब यह कहा जाता है कि आठवां दशक कविता की वापिसी का दशक तब यह भी भूलना नहीं होगा, कि कविता की वापिसी का अर्थ कविता में कविता की वापिसी भी है। इस सन्दर्भ का अर्थ कविता में कविता की वापिसी भी है। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि शोषण बन्दूक, रक्त, क्रान्ति गोली, आग जैसे शब्दों के बाद कविता माँ, पिता, बच्चा, पेड़ चिडिघ्या, जैसे आत्मीय शब्दों पर लौटी है। परन्तु भूलना नहीं होगा कि इस कविता में घरेलू चीजें मामूली लगने वाले मानवीय अनुभवों और व्यवहारों के माध्यम से उस व्यापक यथार्थ की अभिव्यक्ति हो रही है। जिसमें सामान्य मनुष्य अपनी क्षमता के साथ अगली लड़ाइयों के लिए तैयार हो रहा है। समकालीन कविता की एक उल्लेखनीय शक्ति यह है कि उसमें छोटे और साधारण लगने वाले अनुभव बड़े और स्तरबहुल अनुभवों से जुड़े हैं और उनमें व्यक्तिगत पीड़ाओं के माध्यम से राजनैतिक यातनायें सामने आई हैं। इसलिए इस कविता संसार में पेड़ सिर्फ पेड़ नहीं है चिडिघ्या भी सिर्फ चिडिघ्या नहीं है।

कविता के शिल्प को लेकर एक तथ्य उल्लेखनीय है। वह है महाकाव्योचित ऊर्जास्विता एवं संरचनात्मक नाटकीयता की स्थानापन्न विधा लम्बी कविता का स्वतंत्र रूप से विकास। नई कविता की वृत्ति छोटी कविताओं की थी, जिसका चरम विकास अज्ञेय की हाइकू शैली में देखा जा सकता है। परन्तु निराला और मुक्तिबोध में पनपती हुई लम्बी कविता इन दशकों मे अनन्त सम्भावनाओं में युक्त हुई है।''[5] यह एक जटिल विविधता पूर्ण कविता संसार है जो समकालीन यथार्थ से अनेक स्तरों पर टकराता है।

संदर्भ सूची

1. बाजपेयी अशोक, फिलहाल, पृ.160
2. डॉ. जगदीश, नई कविता, पृ.8
3. डॉ. श्रीवास्तव परमानन्द, समकालीन कविता का व्याकरण, पृ.17
4. उपाध्याय विश्वम्भर नाथ, समकालीन कविता की भूमिका, पृ.14
5. श्रीवास्तव जगदीश, समकालीन कविता पर एक बहस, पृ.15

प्रभा खेतान के उपन्यासों में नारी की समस्याएँ

धर्मशीला कुमारी

एम एन सिंह कॉलेज जहानाबाद, मगध विश्वविद्यालय बोधगया

वसुधा की सजीव कविता और प्रकृति की मनोरम पुत्री नारी, अनंतकाल से साहित्य का मुख्य विषय रही है। सावन की प्रथम फुहार सी शीतल, उल्लास दायिनी, आकर्षण से भरी जीवन भर निर्मल धारा बनकर बरसने वाली नारी साहित्यकारों की कलम से अनेक रुपों में चित्रित होते रही हैं।

नारी के चारों तरफ जिंदगी चहचहाती है और रिश्ते फूल और फलदार पेड़ के रूप में बनते है। अनुभव के रास्ते तय करती हुई वह अनुभूतियों के कई रास्ते खोलती हैं और यथार्थ की टेढ़े-मेढ़ी पगडंडियों से गुजरते हुए अपनी मंजिल तय करती हैं।

प्राचीन भारत सांस्कृतिक धर्मशास्त्र में नारी मानवता के सब आदर्श और नैतिक मूल्यों का जिम्मेदार रही है। वह विद्या की देवी सरस्वती ए धन की देवी लक्ष्मी, पराक्रम-साहस की देवी दुर्गा, अंबिका, सौंदर्य रति, पवित्रता की गंगा के रूप में पूजनीय रही। उसके अर्ध नारीश्वर रूप के कारण सीताराम एराधेश्याम एउमाशंकर जैसे नामों की स्थापना हुई। वह धर्म एसाहित्य और इतिहास का मूलाधार रही है। बावजूद भी भारत में किसी नारी ने स्वतंत्र रूप से यज्ञ नहीं किया, वह अपने पति की चिता पर जल गई किन्तु किसी पुरूष ने पत्नी के लिए इस प्रकार का त्याग नहीं किया। उसे देवी शक्ति के रूप में सम्मान तो मातृत्व प्रधान युग के कारण मिला। उसके व्यक्तित्व को दोहरा मापदण्ड दिया गया। एक तरफ उसे पूजनीय माना गया तो दूसरी तरफ उसके अस्तित्व को मानने से मना कर दिया गया। उसका पूरा अस्तित्व मानों पुरुष के लिए ही है। पुरुष को आनंद देने के कारण वह 'प्रमदा' है। सौंदर्य बिखेरने के कारण वह 'वामा' है। रम्या होने के कारण 'रमणी' है। पति द्वारा भरण-पोषण के कारण 'भार्या' है। बलहीन होने के कारण 'अंगना' है। बंध्या एसतीत्व एपतिता शब्द से जोड़कर सदियों से उसके अस्तित्व से खिलवाड़ किया जा रहा है। अर्धांगिनी होकर भी उसे कोई राजनैतिक एसामाजिक अधिकार नहीं थे। उसे देवदासी, नगरवधू, कुटनी और गणिका समझकर अपमानित होना पड़ा। कभी सीता बनकर उसे धरती माता के कोख में जाना पड़ा तो कभी द्रौपदी समझकर भरी सभा में उसके वस्त्र हरण हुए। नारी का स्वाभिमान और उसकी गरिमा की प्राचीन काल से अवहेलना होती रही है। उसके अस्तित्व और अस्मिता को नजर अंदाज किया जा रहा है।

हिन्दी में महिला साहित्यकारों की परंपरा को विकसित करने में मीराबाई, महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान प्रधान रही है। स्वतंत्रता के बाद प्रस्तुत परंपरा को विकसित करने में मन्नू भंडारी, शिवानी, कृष्ण सोबती, रजनी पन्निकर जैसे महिला लेखन ने अपने साहित्य द्वारा हिन्दी साहित्य को नई दिशा दी। ममता कालिया, कृष्णा अग्निहोत्री, चित्रा मुद्गल, मणिका मोहनी, मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, कुसुम अंसल, कृष्णा सोबती, प्रभाखेतान, राजी सेठ, नमिता सिंह, जया जादवानी, इंदु जैन, दीप्ति खंडेलवाल, सुनीता जैन जैसी कई महिला कथाकार है, जिन्होंने नारी जीवन से जुड़ी समस्याओं के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक भावनाओं को समझने-समझाने का प्रयत्न किया गया है। नारी होने के नाते नारी मन की अतल गहराइयों का चित्रण इनकी रचनाओं में है।

"आजादी के पहले महिला साहित्यकारों के लिए परम्परागत उदात्त मूल्यों, सतीत्व, पत्नीत्व, मातृत्व को ही अपना अस्तित्व मानना रहा है। जबकि अंतिम दशक की रचना के अवरूप में नारी चेतना आत्मबोध से सम्पन्न परजीवी नहीं, स्त्रीत्व की पहचान उसके संघर्ष के मूल में है, प्रतिवाद उसकी धार है।"[1]

प्रभा खेतान ने हिन्दी में 6 कविता संग्रह, 6 उपन्यास, 2 उपन्यासिका, 5 चिंतन परक पुस्तकें तथा 'अन्या से अनन्या' नामक आत्मकथा इत्यादि का लेखन कार्य किया। इसके अलावा 2 पुस्तकों का अनुवाद किया, तथा 'पितृसत्ता के नये रूप' नामक पुस्तक का उन्होंने राजेन्द्र यादव तथा अभय कुमार दुबे के साथ मिलकर संपादन कार्य भी किया। मासिक अंक 'हंस' के मार्च 2001 महिला विशेषांक का अतिथि संपादन भी किया। उनका जन्म 1 नवंबर 1942 को हुआ था। उन्होंने प्रभा खेतान फाउन्डेशन की स्थापना की थी, फिगरेट नामक महिला स्वास्थ्य केन्द्र की स्थापना की, उन्होंने सन 1966 से 1976 तक चमड़े तथा सील-सिलाए वस्त्रों की निर्यातक कंपनी 'न्यू होराइजन लिमिटेड की' प्रबंध निदेशिका के रूप में भी कार्य किया। उन्होंने नारीवादी चिंतन तथा समाज सेविका के रूप में भी उल्लेखनीय योगदान दिया। उन्हें कलकत्ता चौंबर ऑफ कॉमर्स की एकमात्र महिला अध्यक्ष होने का गौरव भी प्राप्त था। वे केन्द्रीय हिन्दी संस्थान की सदस्यता भी रही थीं। 'आओ पेपे घर चले, 'ताला बंदी', 'अग्निसम्भवा', 'एडस', 'छिन्नमस्ता', 'अपने-अपने चेहरे, 'पीली आंधी', 'स्त्री पक्ष' तथा अन्य दो लघु उपन्यास 'शब्दों का मसीहा सार्त्र', 'बाजार के बीच : बाजार के खिलाफ' इत्यादि उपन्यास प्रसिद्ध रहें हैं।

फ्रांसीसी लेखिका सिमोन द बोउवा की पुस्तक 'दी सेकेंड सेक्स' के अनुवाद 'स्त्री उपेक्षिता' ने प्रभा खेतान को ख्यातनाम बनाया। इसके सिवा कई पुस्तकें जैसे बाजार बीच बाजार के खिलाफ और उपनिवेश में स्त्री जैसी रचनाओं ने उनकी नारीवादी छवि तथा समस्या को उद्घाटित किया। अपने जीवन के अनछुए पहलुओं को चित्रित करनेवाली आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' लिखकर सुंदर और शालीन प्रभा खेतान ने साहित्य संसार को चमत्कृत कर दिया। डॉ० प्रभा खेतान के साहित्य में नारी समस्या को निरुपित किया गया है। बंगाली नारियों के माध्यम से इन्होंने नारी जीवन में बहुत बारीकी से झाँकने का प्रयत्न किया है। उन्होंने कई निबंध भी लिखे हैं। उन्हें नारीवादी चिन्तक होने का गौरव प्राप्त हुआ वहीं से नारी चेतना के कार्यों में वे सक्रिय रूप से भाग लेती रही। उन्हें श्प्रतिभाशाली महिला पुरस्कार और 'टॉप पर्सनैलिटी अवार्ड' भी दिया गया।

प्रभा खेतान जहाँ एक तरफ नारी जीवन की विभिन्न समस्याओं को उठाया हैं, वहीं दूसरी तरफ उन्होंने इन समस्याओं से नारी को रोज दो चार कराने वाली सामाजिक व्यवस्था की सच्चाई से रु-ब-रु भी कराया है। प्रभाजी ने अपने उपन्यासों में पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था के बीच स्वतंत्रता तथा समानता के अधिकार के लिए संघर्षशील विविध स्त्री पात्रों का निरूपण किया है। ये नारी पात्र जहाँ एक तरफ पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था की सड़ी-गली मान्यताओं को मनाने से इन्कार करती हैं, वहीं दूसरी तरफ स्वयं के लिए अलग रास्ता बनाने की तरफ अग्रसर है।

प्रभाजी ने व्यवसाय से साहित्य, घर से सामाजिक कार्यों तथा देश से विदेशों तक की यात्रा में कई मंजिलें तय की हैं। धरातल से शुरू किए अपने जीवन को खुले आकाश की ऊंचाइयों तक पहुँचाने के प्रभा के साहस और शक्ति को कई पुरस्कार तथा सम्मानों से भी सम्मानित किया गया है।

प्रभा खेतान का प्रसिद्ध उपन्यास 'छिन्नमस्ता' नारी के शोषण, उत्पीड़न, और संघर्ष का जीवंत दस्तावेज है। समृद्ध मारवाड़ी समाज की भूमिका में लिखा गया यह उपन्यास जिसकी नायिका प्रिया परत-दर-परत नारी जीवन के उन हिस्सों को उद्घाटित करती हैं, जिनको पुरुष समाज स्त्री की स्वाभाविक नियति मानता रहा है और इस प्रक्रिया में वह हमें नारी की युगों-युगों से संचित पीड़ा से रु-ब-रु कराती हैं। बचपन से ही भेदभाव और उपेक्षा की शिकार साधारण शक्ल-सूरत और सामान्य बुद्धि की प्रिया परिवार की 'सुरक्षित' चौहद्दी के अंदर ही यौन शोषण की शिकार भी होती है उसके बावजूद प्रेम और भावनात्मक सुरक्षा की तलाश में उन सभी आघातों से दो-चार होती है जिनसे संभवत: प्रत्येक नारी को गुजरना होता है। अपने जड़ संस्कारों में जकड़ा पति भी उसे मानवोचित आदर नहीं दे पाता। इन सबके उपरांत प्रिया अपनी एक पहचान बनाती है। मनुष्य के रूप में अपनी जिजीविषा और नारी के रूप में अपनी संवेदनशीलता को जीती हुई वह अपना स्वतन्त्र तथा सफल व्यवसाय स्थापित करती है। घर के सीमित दायरे से मुक्त करके अपने सपनों को सुदूर क्षितिज तक विस्तृत करती है।

"प्रिया को हर होटल में इसी तरह खाने की आदत थी। वह सोचने लगी - कितने वर्ष हो गए चमड़े का यह व्यवसाय शुरू किए हुए? और यह यायावरी की जिंदगी? देश-विदेश घूमते रहना। आखिर यह एक्सपोर्ट का काम मैंने शुरू क्यों किया? किस दुख को भूलने के लिए? मगर सुख क्या? क्या कभी सुख था? कहीं कुछ खो गया? याद नहीं आ रहा?"[2] यहाँ पर लेखिका ने व्यवसायिक समस्या को मूल्यांकित किया है।

"आओ पेपे घर चले" उपन्यास सन 1990 में प्रकाशित हुआ। किन्तु उपन्यास की कथावस्तु सन 1966 की है। लेखिका सन 1966 में ब्यूटी थैरेपी का कॉर्ष करने अमरीका गई थी। इसी समय में हुई घटनाओं और अपने अनुभवों को प्रभाजी ने इस उपन्यास की कथावस्तु बना दी है। प्रस्तुत उपन्यास का वातावरण विदेशी है और इसकी सारी कथा अमरीका की जीवन शैली पर आधारित है। बड़े घरों की नारियों की अकेलेपन की समस्या को यहाँ पर बड़ी ही मार्मिकता से उद्घाटित किया है। अमरीका में ज्यादातर नारियों के पास सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं है। प्रभाजी प्रस्तुत उपन्यास के सभी नारी पात्रों को एक ही मंच पर खड़ी करती हैं। मिसेज डी, आइलिन, कैथरीन एहेल्गा एमरील ये सब नारियाँ समृद्ध, सम्पन्न होकर भी दु:खी हैं। गोयल राय के शब्दों में - "हिन्दी उपन्यास में भारतीय नारी की पीड़ा का चित्रण तो प्रचुर और अनेक रूपों में हो चुका था पर अमरीकी औरत के भयानक सच को प्रस्तुत करनेवाला यह हिन्दी का पहला उपन्यास है। भोग विलास में डूबी अमरीकी औरत भीतर से कितनी अकेली, असहाय और पीड़ित है, इसका चित्रण इस उपन्यास में गहरी संवेदनशीलता के साथ किया गया है।"[3]

उपन्यास के कथा के केन्द्र में 70 वर्षीय अमरीकी वृद्ध आइलिन है जो भोग विलास में डूबी औरत है। असहाय एवं अंदर से कितनी अकेली है, इसका वर्णन बडी ही गहरी संवेदना के साथ चित्रित किया गया है। दो पतियों और पाँच प्रेमियों को याद करती कुते पेपे को बेटा समझकर जीवन बिताती है। परित्यक्ता, चालीस वर्षीय मरील से प्रभाजी की मुलाकात होती है। मरील का भिन्न व्यक्तिव, भिन्न दर्शन और अपनी तरह की अलग संस्कृति है। उसकी दो बिटियाँ लारा और नैन्सी हैं। लारा खुले आम हिप्पी लड़कों के साथ घुमती हैं। माँ के लड़ने पर उनके प्रेमियों की संख्या गिना देती हैं। दूसरी बेटी नैन्सी भी अपनी माँ से घृणा करती है। उसका मानना था कि माँ के कारण ही उनके पिता ने घर छोड़ दिया था। यह इस प्रकार का परिवार है जहाँ पैसा है किन्तु कोई किसी का नहीं है।

मिसेज डी अपने पति को अधिक प्यार करती है। लेकिन पति क्लारा ब्राउन के प्यार में पागल है। वह अपनी पत्नी का शोषण करता है। परेशान होकर वह आत्महत्या करने का प्रयत्न करती है, अंतत: तलाक लेने का वक्त आ जाता है। अपना घर बचाने में कामयाब नहीं रहती है। प्रभाजी के जीवन में कैथरीन मूर आती है। कैथी आर्थिक स्वतंत्रता को जीने की पहली शर्त मानती है। बी.के. क्लासवा के अनुसार - 'वैसे तो पूरा उपन्यास विदेशी धरती पर पल रही नारी जगत की करुण कहानियों का सच्चा बयान है लेकिन साथ में नारी चेतना का एक बीज भी है।'[4]

प्रभाजी बार-बार पाश्चात्य जीवन से भारतीय जीवन की तुलना करती है कि समाज में नारी की दशा समान है। इसकी स्पष्टता आइलिन के कथन से की है - "दुनिया में ऐसा कोई कोना बताओं जहाँ औरत के आँसू नहीं गिरे।"[5] दो संस्कृतियों के निष्कर्ष से यह तथ्य निकलता है कि वैश्विक स्तर पर नारी का जीवन नगण्य एवं शून्य है।

"तालाबंदी" यह प्रभाजी का दूसरा उपन्यास सन 1991 में प्रकाशित है, जो व्यावसायिक विषय को निरुपित करता है। व्यवसायी जगत में अधिक व्यस्त रहने के कारण वह अपनी बीमार माँ की पूछताछ एवं अपनी पत्नी के साथ शांति से दो पल बिताने के लिए समय नहीं निकालता। स्त्री की एकलता की समस्या का यहाँ विश्लेषण किया गया है।

"अग्निसंभवा" प्रस्तुत उपन्यास की नायिका सामान्य किसान की बेटी है। जिनका नाम आइवी है उन्हीं के जीवन संघर्ष की बात की गई है कि किस प्रकार वह टैक्सी ड्राइवर से मि. डीके के मैनेजर, शिव की सेक्रेटरी बनती है और बाद में हांगकांग ब्रांच की मैनेजर नियुक्त होती है। चीनी महिला आइवी जो चीन से भागकर हांगकांग आती है। जीने के लिए संघर्ष करती है। आइवी प्रभाजी के टैक्सी में रहे पासपोर्ट पर्स लौटाने के लिए उसकी खोज करती है, तो वह अस्वीकार करती है अत: शिव उसे अपने कार्यालय में सेक्रेटरी के पद पर नियुक्त करता है। शिव की पत्नी कैंसर से पीड़ित है यह जानकर वह शिव के बेटे को अपने पुत्र की तरह प्यार करती है। इस उपन्यास में लेखिका ने आइवी के जीवन के साथ वहाँ की चीनी संस्कृति, चीनी क्रांति, मार्क्सवाद, गोरी जाति का शोषण, राजनैतिक घटनाओं का निरूपण तथा पति द्वारा नारी शोषण, भ्रुण हत्या इत्यादि समस्याओं को चित्रित किया है। डॉ. यशकीर्ति राणावत के

अनुसार - "लेखिका ने वैश्विक धरातल पर स्त्री के संघर्ष को मुखर किया है। वे बताना चाहती है कि स्त्री में एक दैवी शक्ति है यदि वह कुछ करने की ठान ले तो वह मारवाड़ी पारंपरिक घर की स्त्री हो या चीन की मामूली किसान की बेटी सफलता के परचम लहरा सकती है। "प्रभा खेतान ने आइवी के द्वारा इस प्रकार की नारियों को अंकित किया है जो अपना दुखड़ा रोकर हाथ पर हाथ रखकर बैठने के बदले स्वयं की जिंदगी को सार्थक, सफल बनाने का प्रयास करती हैं।

'एड्स' यह उपन्यास सन 1994 में प्रकाशित हुआ था वैश्विक धरातल पर फैले हुए 'एड्स' के आतंक को चित्रित करता हुआ उपन्यास है। लेखिका प्लेन में बैठे पुरुष से बात करना नहीं चाहती थी किन्तु वह पुरुष सहयात्री अपने जीवन की कहानी सुनाना शुरू कर देता है। सुयोग से एक बार उसकी मुलाकात प्रभाजी से पेरिस में हो जाती है। उसी वक्त लेखिका ने उसकी पत्नी के बारे में जानना चाहा तो उसे जानकारी मिली कि वह 'एड्स' की बीमारी से पीड़ित है। उसकी केवल एक पुत्री जिनकी उम्र 11 वर्ष है वह अपनी नानी के पास शिकागों चली गई है। एडस की यह बीमारी उसे अपने प्रेमी द्वारा प्राप्त हुई है। वह पत्नी से मिलने अस्पताल जाता था उसी समय कांच में से अपनी पत्नी की दशा देखकर दुखी होता था। उसके बाद लेखिका उस व्यक्ति से कभी नहीं मिली। प्रस्तुत उपन्यास वैवाहिक जीवन की त्रासदी का वर्णन करता हुआ पति-पत्नी के दाम्पत्य संबंधों की समस्या को निरुपित करता है। प्रभाजी ने अधिक संवेदनशील होकर इस दाम्पत्य जीवन की कहानी को चित्रित करते हुए अमरीका में दाम्पत्य जीवन के टूटन एवं भारतीय नारी की व्यवसायी की व्यवसाय विषयक समस्याओं को भी निरुपित किया है।

'अपने-अपने चेहरे' प्रस्तुत उपन्यास सन 1996 में प्रकाशित हुआ। 'छिन्नमस्ता' उपन्यास की तरह यहाँ पर प्रभाजी की आत्मकथा का अधूरा अंश है। सारी कथा में रमाजी परिणित गोयनका से प्रेम करती है और 'दूसरी' होने के अंतर्द्वंद्व एपीड़ा की वेदना को चित्रित किया है। इस उपन्यास में मिण्गोयनका की पत्नी हमेशा पैसों की मांग करती है। अत: गोयनका आर्थिक दृष्टि से बहुत बेचौन रहतें हैं। उस पर दोनों पुत्र-पिता आर्थिक शोषण करते हैं। रमा की मेहनत के कारण ही मि. गोयनका स्वयं के व्यवसाय में सफलता हासिल करते है। रमा के साथ-साथ उनकी पुत्री रीतू और कुणाल दाम्पत्य के द्वारा नारी जीवन के पारिवारिक तवाव की संधर्ष गाथा को भी चित्रित किया गया है। लेखिका ने इस उपन्यास के द्वारा बताया है कि समाज में नारी की पूर्वनिर्धारित भूमिकाओं से अलग भी कोई भूमिका हो सकती है तो वह उसकी "अपनी पहचान" है। नारी के विषय में प्रभाजी का यह दृष्टिकोण निरुपित हुआ है कि विवाह पति और परिवार तथा संतान के सिवा भी उसका अपना अस्तित्व है। पुरुष रूपी खूँटे से बंधे रहना ही नारी जीवन का उद्देश्य नहीं है। इसलिए जाहिर है कि नारी का दमन सभी स्थानों पर हो रहा है, चाहे वह पारिवारिक क्षेत्र हो या सार्वजनिक। इसी वजह से उसे समझ लेना चाहिए कि मसीहा दूसरा कोई नहीं किन्तु वह स्वयं है। इसके लिए अपनी जमीन स्वयं तैयार करनी होगी। इस तरह यहाँ नारी के अस्तित्व की समस्या को चित्रित किया गया है।

"पीली आंधी" उसका प्रकाशन सन 1997 में हुआ। प्रस्तुत उपन्यास में प्रभाजी ने राजस्थान के मारवाड़ी समाज की दारुण कहानी को व्यक्त करते हुए पारंपरिक तथा आधुनिक मारवाड़ी नारियों की पीड़ा, शोषण, अन्याय तथा उसके संघर्ष एवं विद्रोह की समस्या को अंकित किया है। उपन्यास की नायिका 'सोमा' मातृत्व की चाह के कारण करोड़पति का घर छोड़कर प्रोफेसर सेन के साथ रहती है। नारी सोमा भाग्यहीन पढ़ी-लिखी आधुनिक नारी है अपने नपुंसक पति की पीड़ा का दंश पारिवारिक प्रतिष्ठा के लिए सहन करती है और अंत में परंपरागत 'नारी-संहिता' के नियमों को गलत बताते हुए संघर्ष कर नारी शक्ति का परिचय देती है। दूसरी तरफ 'पद्मावती' का जीवन भी त्रासदी से भरा है। उसका विवाह तेरह वर्ष की उम्र उससे दुगुनी आयु के पुरुष के साथ किया जाता है। संतान के न होने के कारण वह देवरानी के बच्चों का पालन-पोषण करके एक माँ का प्यार देती है। लेकिन उसे अपमान और पीड़ा सहन करनी पड़ती है। प्रभाजी ने बिना विवाह के साथ रहने तथा गौतम जैसे पुरुष पात्र के द्वारा समलैंगिक रिश्तों की समस्या का विश्लेषण किया है। इस उपन्यास में लेखिका ने मारवाड़ी समाज में नारी की वेदना की समस्या को भी निरुपित किया है।

'स्त्री पक्ष' यह उपन्यास सन 1999 में 'जनसत्ता सबरंग' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत उपन्यास की नायिका वृंदा 'स्त्री - स्वातंत्र्य' के नाम पर क्या चाहती है, इसका स्पष्टीकरण प्रभाजी नहीं कर सकी। वृंदा अपने छात्र जीवन में अपने मित्र के साथ नव वर्ष की पार्टी में शराब पीने से वह बदनाम हो जाती है। एक दूसरा बलात्कार का प्रयास करता है, किन्तु तीसरे मित्र द्वारा बचा ली जाती है। प्रभाजी ने यहाँ समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अन्या रूप में स्थापित नारी की तस्वीर तथा समाज द्वारा सुरक्षा का जूठा आश्वासन देने की समस्या को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है। माता-पिता के कहने पर वह विवाह कर लेती है, किन्तु सुमित के डॉक्टर बनते ही उसके स्वभाव में परिवर्तन आ जाता है परिणामस्वरूप तलाक हो जाता है। वृंदा आर्थिक समस्या से छूटने के लिए बुटिक शुरू करती है। उसके बाद उसके जीवन में आर्जव का आगमन होता है जो उससे सात वर्ष छोटा होता है, परिवार के सदस्य इस रिश्ते को नापसंद करते है क्योंकि वह बेरोजगार है। एक दिन आर्जव को मुंबई में काम मिलता है किन्तु वृंदा उसके साथ नहीं जाना चाहती। इस रचना में वृंदा का व्यवहार असामान्य जान पड़ता है। प्रभाजी ने वृंदा के द्वारा यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि नारी के आर्थिक स्वावलंबी हो जाने पर जीवन में किये जानेवाले समझौते उसे अखरने लगते है।

इस प्रकार उपरयुक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि 'नारी' प्रभा खेतान के चिंतन एवं साहित्य के केन्द्र में है। उन्होंने अपने उपन्यासों में नारी की नियति, शोषण, पीड़ा, अन्याय को गहरी संवेदनशीलता और मार्मिकता के साथ चित्रित कर नारी मुक्ति का जो संदेश दिया है वह मानव कल्याणकारी है।

सन्दर्भ-संकेत

1. समकालीन लेखन-स्त्री चिंतन की दिशाएँ, ओमप्रकाश शर्मा, पृ. 29-30
2. छिन्नमस्ता - प्रभा खेतान, पृ. 40
3. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य का अनुशीलन- डॉ. गोरक्ष थोरात, पृ. 13
4. अनन्यथीं प्रभाखेतान - महाश्वेता देवी, प. 17
5. अन्या से अनन्या - हंस अक्टूबर-2006, प्रभा खेतान - पृ. 54

अठ्ठारवीं सदी का कृषक

डॉ० आशारानी

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, कुमारी मायावती राजकीय महिला पीजी कॉलेज, बादलपुर, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश

भारत एक कृषि प्रधान देश है वर्तमान समय में भारत की अधिकांश आबादी कृषक कार्यों से अपना जीवनयापन करती है। महात्मा गाँधी जी ने कहा था कि ''भारत के विकास का रास्ता गाँवों से होकर जाता है।''[1]

गाँव भारत के विकास की जीवन रेखा रहे हैं और कृषक इस जीवन रेखा के प्राण तत्व है। अठ्ठारहवीं सदी के भारत के कृषक और भूमि का अनेक प्रकार से वर्गीकरण दिखायी पड़ता है।

कृषकों का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से है-

1. खुदकाश्त- जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि अपनी जमीन स्वयं मालिक या काश्तकार है और अपने परिवार के माध्यम से खेती करता है। ऐसे किसान को अपने काश्त को किसी अन्य को विक्रय एवं स्थानान्तरण का अधिकार था। खुदकाश्त कम राजस्व देने वाले कृषक थे। अत: आइन-ए-अकबरी अमलगुजार को इस बारे में आश्वस्त कराने का निर्देश देता है कि रैयत काश्त भूमि खुदकाश्त में बदली नहीं गई है।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि खुदकाश्त कृषक अपनी जमीन के मालिक थे और समृद्ध प्रतीत होते है। यद्यपि उनको नियमित राजस्व अदा करना पड़ता था।

2. पाहीकाश्त- पाहीकाश्त किसान की काश्त उसके निवास स्थल के पास न होकर दूसरे ग्राम में होती थी। डॉ0 हरिश्चन्द्र वर्मा का मानना है कि पाहीकाश्त किसान भी भूमि का मालिक होता था और भूमि पर स्वयं खेती करता था। उनके पास अपने हल और बैल थे। इन्हें भूमि के लगाने में छूट देकर पड़ोसी गाँवों से बुलाया जाता था ताकि वह नई भूमि को खेती करने योग्य बना सकें।[3]
3. मुजरियान- इस वर्ग का भूमि पर कोई अधिकार नही था और न ही वह कृषि हास ही प्रतीत होते हैं। मुजरियान भी दो प्रकार के दिखाई पड़ते हैं। अल्पकालीन ठेकेदार जो मूलत: अप्रवासी थे और दूसरे दीर्घकालीन ठेकेदारी जिनको दखल का अधिकार था और जो वहां स्थाई रूप से रहते थे। प्रोफेसर सतीश चन्द्र का मानना है कि मुजरियान गरीब किसान थे और ऊँची दरों से भू-राजस्व अदा करते थे।[4]

इसके अतिरिक्त भूमिहीन किसान और मजदूर जिन्हें कमीन कहा जाता है सामान्यत: अस्पृश्य जातियों के लोग होते थे। इसके साथ ही खेत के भी अनेक प्रकार थे जिन पर कृषक अपनी खेती करते थे।

1. पोलज-जिस भूमि पर हर वर्ष खेती होती हो।
2. परती- जब खेत में कुछ समय के लिए बुआई इसलिए नहीं की जाती थी ताकि खेत पुन: उर्वरता प्राप्त कर सके।
3. चाचर- जिसमें तीन-चार सालों तक बोआई नहीं की जाती थी ताकि वह कृषि हेतु अनुकूल हो सके।
4. बंजर- यह चार-पाँच वर्षों या उससे अधिक समय तक बिना बोये पड़ी रहती थी।

इसके साथ ही किसानों हेतु मुगल काल में खेतों के मापन हेतु अनेक गज दिखाई पड़ती है। अभी तक कई स्थानों पर सिकंदरी गज दिखाई पड़ती है परन्तु अठ्ठारहवीं शताब्दी के मुगल काल में इलाही गज ही दिखायी पड़ता है। यह सिकन्दरी गज के 39 अंगुल या 32 इंच की जगह पर 41 अंगुल या 331×2 इंच का दिखाई पड़ता है।

कृषकों की सुविधा हेतु फसल तैयार होने पर बंटाई की अनेक प्रथाएँ दिखाई पड़ती हैं।

1. जाब्ती- इसे जाब्ती-ए-दहसाला भी कहते हैं। भूमि की पैमाइश एवं किस्म पर आधारित 'कर प्रणाली' थी। यह प्रणाली बिहार, इलाहाबाद, मालवा, अवध, आगरा, दिल्ली, लाहौर एवं मुल्तान में लागू थी।
2. नस्क या कन्कूल- यह पिछले वर्षों की उपज और भुगतान का अनुमान लगाकर जमींदारों या भू स्वामियों से लगान की व्यवस्था की जाती थी। यह एक प्रकार की ठेकेदारी व्यवस्था थी। यह प्रणाली बंगाल, गुजरात और कठियावाड़ में प्रचलित थी।
3. आइन-ए-दहसाला-इस प्रणाली के अन्तर्गत अलग-अलग फसलों के पिछले दस वर्ष के उत्पादन और उसी समय के अनेक प्रचलित मूल्यों का औसत निकालकर उस औसत का 1/3 हिस्सा राजस्व के रूप में वसूला जाता था। इस प्रणाली के अंतर्गत कर की अदायगी नगद रूप में करना पड़ता था।
4. बंटाई अथवा गल्लाबक्शी- इसे 'भाओली- भी कहा जाता था। 18वीं शताब्दी में यह काफी प्रचलन में थी। इस प्रणाली क अंतर्गत फसल का किसान और राज्य के बीच एक निश्चित अनुपात में बंटवारा किया जाता था। इसमें भी उपज के 1/3 भाग पर राज्य का अधिकार होता था।

इसके अतिरिक्त विभिन्न भूमियों पर विभिन्न माप प्रणालियों के साथ जमींदार के रूप में भी दिखायी पड़ता है। जमींदार वह था जिसको अपनी व्यक्तिगत भूमि और गाँव की परती भूमि दोनों के दखल अधिकार को विनियमित करने का अधिकार था।

18वीं0 शताब्दी के उत्तरार्थ में जमींदार का यह कर्तव्य था कि वह कृषि भूमि की देखभाल करें तथा उसे कृषि के अन्तर्गत लाये। इसके अलावा इसके लिए वह पूरी तरह से बाध्य था कि राजस्व को अपने पास से या दूसरों से वसूल करके शाही खजाने में जमा कराए। इस प्रकार भारतीय ग्राम संरचना में जमींदार की महत्वपूर्ण भूमिका थी। इसी तरह दक्षिण भारत में वतनदार भी होते थे। साथ ही पटेल, कुलकर्णी जैसे अधिकारी होते थे।

इसके अतिरिक्त सुविधा के आधार पर किसानों की दो श्रेणियाँ दिखाई पड़ती हैं-

1. कालातुरान-इसके अंतर्गत विशेष सुविधा प्राप्त किसान आते थे।
2. रेजा रियाया-इसमें सामान्य व्यवहार वाले किसान थे। इस वर्ग में निम्न वर्ग के किसान थे।

18वीं शताब्दी के मुगल शासकों की शासन प्रणाली में कृषि योग्य भूमि को बिना कृषि के खाली छोड़ने की अनुमति नहीं थी। मूल काश्तकार की अनुपस्थिति या खेती करने की असमर्थता में ब्याज या खाली भूमि खेती के लिए किसी और समर्थ व्यक्ति को दे दी जाती थी परन्तु मालिक के लौटने पर उसे अपने अधिकार वापस मिल जाते थे। अठ्ठारहवी शताब्दी के उत्तरार्ध में जब भारत में कुछ भागों का प्रशासन अंग्रेजों के हाथ में आ गया तो उन्हें ऐसी कई प्रथाओं का सामना करना पड़ा जो उनकी अपनी परम्पराओं से भिन्न थी। उन्हें यहाँ पर पूर्णत: एक नयी प्रणाली देखने को मिली। भारतीय ग्राम समुदाय की अवधारणा की तरफ सबसे पहले ईस्ट इंडिया कम्पनी के राजस्व प्रशासकों ने अपना ध्यान केन्द्रित किया लेकिन उन्होनें ग्राम समुदाय के स्वरूप के बारे में अपने भिन्न-भिन्न विचार व्यक्त किये। जहाँ जेम्समिल, एल्फिंस्टन हेनरीमैन जैसे प्रारम्भिक लेखकों ने ग्राम समुदाय को एक निगम तथा नगर क्षेत्र के रूप में माना वही चार्ल्स मेटकॉफ ने इसे लघु गणराज्य के रूप में माना, जो विदेशी संबंधो के मामलों में लगभग स्वतंत्र होता था। विदेशी विद्वानों के अनुरूप भारतीय विद्वानों और राष्ट्रवादियों ने भी ग्राम समुदायों की गणराज्य, पंचायती, जातीय समिति, आत्मनिर्भरता जैसी कुछ विशेषताओं को स्वीकार किया है।

यद्यपि ग्राम समुदाय के बारे में लेखकों में कोई सहमति नहीं है फिर भी इरफान हबीब के अनुसार किसानों के जातिगत सामन्जस्य और श्रमिकों के वंशानुगत विभाजन से ग्राम की आत्मनिर्भरता जैसी आवश्यकताओं का जो अनुभव हुआ उससे ग्राम समुदाय की उत्पत्ति हुई। यद्यपि ग्राम शहरी बाजार के लिए माल उपलब्ध कराते थे परन्तु अपनी प्रतिदिन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ग्रामों को कुछ नहीं मिलता था। अत: ग्राम ने अपने को एक इकाई के रूप में संगठित किया। इसी प्रकार से किसानों के जातिगत सामान्जस्य ने भी एक संगठित संस्था के बनने में पर्याप्त मदद की। अत: ग्राम समुदाय की उत्पत्ति के लिए आर्थिक, भौगोलिक तथा प्राकृतिक आदि कई कारक उत्तरदायी थे।

अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तार्ध में भारत में ग्राम समुदाय के कई वर्ग विद्यमान थे। भूमि पट्टे और कृषकों एवं गैर कृषकों के बीच सम्बन्धों के आधार पर ग्राम समुदाय को अनेक वर्गों में बाँटा जा सकता है जैसे-असली ग्राम, दाखिली ग्राम, रग्माग्राम, रैंतीग्राम, तालुका ग्राम।

1. असली ग्राम-असली ग्राम का तात्पर्य उस ग्राम से था जो पूरी तरह से बसा होता था। अर्थात पुराना स्थापित ग्राम ही असली ग्राम था।
2. दाखिली ग्राम-दाखिली का अर्थ था नये तौर तरीके से विकसित ग्राम अर्थात एक ऐसा ग्राम जो पुराने ग्रामों को काटकर स्थापित किया गया है और जो एक बड़े असली ग्राम से जुड़ा है।
3. रम्मा ग्राम-जिन ग्रामों को 'मदद-, -मास' माफी के रूप में मालगुजारी मुक्त अनुदान दिये जाते थे उन्हें रम्मा ग्राम कहते थे।
4. रैती ग्राम- ये वे क्षेत्र थे जो ऐसे जमींदारों के ताल्लुकों के बाहर थे जो पेशकश का भुगतान करते थे या जिनके पास मुक्त भूमि थी। रैतीग्रामों के रैय्यत जमींदारों को मालगुजारी के हस्तांतरणीय अधिकार थे जो कि रियाया को नहीं थे।
5. ताल्लुका ग्राम-ताल्लुका ग्राम का अभिप्राय एक ऐसे समूह से था जो एक जमींदार के पास होता था और वह जमींदार पेशकश दिया करता था।

अट्ठारवी शताब्दी के उत्तरार्ध में ग्राम की संरचना वास्तव में ग्राम संरचना के मामले में भारत में विभिन्न क्षेत्रों एवं कालों की विविधिता में पाई जाती है फिर भी अट्ठारवी शताब्दी के उत्तरार्ध में भूमि पट्टे के आधार पर भारतीय ग्राम समुदायों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर सकते है:

इसके साथ ही बंगाल में नए शासन वर्ग अंग्रेजों का आगमन हो गया था। 1793ई0 में बंगाल के भू-राजस्व की नई प्रणाली स्थायी बन्दोवस्त लागू की गई जो इस्तकरारी या जमींदारी व्यवस्था भी कहलाती है। इसमें सरकार का हिस्सा 89% निश्चित किया गया तथा भू-स्वामी हेतु केवल 11% ही बचता था।

इसमें यद्यपि प्रारम्भ में इस व्यवस्था में समस्याएँ थीं जैसे समझौता किससे किया जाए किसान से या जमींदार से? राज्य को का कितना भाग लगान के रूप में प्राप्त होगा, यह समझौता कुछ वर्षों हेतु किया जाए या स्थाई? मगर बाद में समस्याएँ सुलझाकर यह समझौता किया गया और कुल क्षेत्रफल का 89% भाग का किसान इसके अंतर्गत आया। इसके माध्यम से जमींदार को भूमि का स्थायी मालिक बना दिया गया। उनका अधिकार पैतृक एवं हस्तांतरणीय था। उन्हें भूमि से तब तक पृथक नहीं कर सकते थे जब तक वह लगान देते रहें। किसानों से भूमि सम्बन्धी अधिकार छीन लिया गया। जमींदार भूमि के स्वामी थे अथवा वह जमीन को खरीद व बेच सकते थे। जमींदार अपनी जमींदारी वैध उत्तराधिकारी को दे सकते थे। जमींदारों से लगान अदा के लिए निश्चित कर लिय गया। सरकार का किसानों से कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं था कुल राजस्व का 10/11 भाग कंपनी के पास बाकी 1/11 भाग जमींदार के पास था।

कुल मिलाकर अठ्ठारवीं शताब्दी का कृषक एक संक्रमण काल से गुजर रहा था जहाँ मुगलों के कमजोर होते साम्राज्य और नवआगन्तुक अंग्रेजों के शोषण के मध्य संक्रमण के तल को खोजा सकता है। अत: स्पष्ट है कि प्रजा के प्रति राजा के दायित्व से पृथक शोषणकारी उपनिवेशवादी नीति का आगमन हो चुका था जिसने आगे चलकर पूरे भारत के कृषक समुदाय को सिर्फ अपने लाभ की पूर्ति का साधन बना लिया।

संदर्भ सूची

1. कुरूक्षेत्र विशेषांक 2011 आशुतोष शुक्ल, प्रकाशन विभाग, ग्रामीण विकास मंत्रालय, अक्टूबर 2011, आई0एस0एस0एन0 0971-8451 पृष्ठ संख्या-38 से 42
2. वर्मा हरिश्चन्द्र, मध्य कालीन भारत-भाग-2-2002, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ संख्या-375
3. वर्मा हरिश्चन्द्र, मध्यकालीन भारत-भाग-2002, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ संख्या-370
4. चन्द्र सतीश, मध्यकालीन भारत एन0सी0आर0टी0-2005, पृष्ठ संख्या-278

नारी की मुक्ति यात्रा की कथाः शेषयात्रा के संदर्भ में

डॉ० रश्मि कुमारी

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कुमारी मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बादलपुर, गौतम बुद्ध नगर

सारांश

शेषयात्रा उषा प्रियंवादा का महत्वपूर्ण उपन्यास है। हिन्दी कथा-साहित्य में इन्होंने नारी मन के भिन्न-भिन्न स्थितियों को अपने शिल्प के स्तर पर उकेरा है। इसी कारण यह आधुनिक कथाकारों में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। शेषयात्रा की 'अनु' अपने हृदय की कोमल भावनाओं के बावजूद अपने स्वाभिमान के लिए संघर्ष करती है और उपन्यास के अन्त में वह डॉ0 अनु के रूप में स्वयं की विशिष्ट पहचान बनाती है। उषा प्रियंवदा ने अपने इस उपन्यास में उच्च मध्यवर्गीय भारतीय समाज के अंतर्विरोध, कुंठा और अकेलेपन को बड़ी सहजता से पाठकों के समक्ष रखा है।

मुख्य शब्द- ऊब, संत्रास, घुटन, कुंठा, निराशा, अकेलापन आदि।

उषा प्रियंवदा का नाम आधुनिक कथाकारों में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। इन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से समाज के भिन्न-भिन्न पहलुओं को पाठकों के सामने रखा है। इन्होंने आधुनिक जीवन की ऊब, छटपटाहट, संत्रास और अकेलेपन की स्थिति को अनुभूति के स्तर पर पहचाना और व्यक्त किया है। यही कारण है कि पुराने संस्कार वाला पाठक वर्ग भी अपने को इनकी रचनाओं के साथ जुड़ा हुआ महसूस करता है। डॉ0 देवी शंकर अवस्थी के मतानुसार ''आधुनिक विचारों और रहन-सहन का जो नया संस्कार लेखिका के मूलतः भारतीय दृष्टिकोण पर पड़ा है, वह अधिक आकृषित करता है। कहानियों में तमाम रूढिघ परिस्थितियों और घटनाओं से गुजरते हुए भी वे अपने को रूढिघ निष्कर्षों से बचाती है। मानो जीना ही नहीं समझदारी से जीना ज्यादा जरूरी है।'' आधुनिक युग की भागदौड़ में मनुष्य ने स्वयं को इतना व्यस्त बना लिया है कि उसके पास रिश्तों के लिए परिवार के लिए यहाँ तक कि स्वयं का आत्मविश्लेषण करने का भी समय नहीं है। स्वार्थान्धता में बनाए गए रिश्तों का नतीजा अक्सर जिंदगी के एक ऐसे मोड़ पर आकर खत्म होता है, जहाँ से वापस आग तो नामुमकिन होता है ही आगे की यात्रा भी असंभव दिखाई पड़ती है।

उषा प्रियंवदा का सुविख्यात उपन्यास 'शेष यात्रा' एक ऐसी लड़की के त्रासद भरे जीवन को उद्घाटित करता है जो विदेश में पति द्वारा त्यागे जाने पर भी अपनी सामर्थ्यहीनता को अपनी पहचान नहीं बनने देती बल्कि जीवन को एक नए सिरे से गढ़कर अपनी एक अलग पहचान बनाती है। उपन्यास की नायिका 'अनु' अपने जीवन में आए ऊब, संत्रास, घुटन, कुंठा, निराशा अकेलेपन से जुझती है, किन्तु हार नहीं मानती। उषा प्रियवंदा अपने पात्रों को कभी हारने नहीं देती बल्कि वह उनको जीवन के प्रति आधुनिक दृष्टिकोण देती है, जिससे वह पहले से भी अधिक आनन्द से अपना जीवन व्यतीत कर सकें। 'शेषयात्रा' की अनु का सामाजिक और पारिवारिक शोषण होता है। जीवन से मिले अकेलेपन के कारण कुंठित हो जाती है। वह स्वयं से सवाल करती है, ''क्या किया जाए इस अनुका नाम की औरत का, जिन्दगी एक बेबुनियाद इमारत की तरह उसके अपने पैरों के पास ढ़ही पड़ी है। जिसकी पूर्णता, जिसका पत्नीत्व, स्त्रीत्व, सब कुछ नकार दिया गया है, जिसकी पूरी आइडेटिटी, पूरा अनु-पन एकदम झकझोर दिया गया है।'' अनु के माध्यम से लेखिका भारतीय परिवेश में पली-बढ़ी उन समस्त महिलाओं को प्रस्तुत करती हैं, जो अपने गुणों को केवल रसोई तक ही सीमित नहीं रखती है बल्कि समय आने पर स्वयं की एक पहचान बनाकर आत्मनिर्भर बनती है और अपने जीवन की यात्रा को पूरा करती है। अनु एक अनाथ लड़की है मामा-मामी के साथ रहती है। प्रणव कुमार विलायत में डॉ0 है, जो डौली को देखने आता है किन्तु अनु को पसन्द कर लेता है। अनु जब पहली बार ससुराल यानि विलायत जाती है तो उसे बहुत खुशी होती है क्योंकि उसके पास अपना कहने को कुछ है। अपना घर, अपने बर्तन, अपना पति। मामा-मामी के घर में पली बढी अनु ससुराल की हरेक चीज में अपनापन महसुस करती है यही तो हमारे परम्परागत भारतीय संस्कार है कि बेटी का अपना घर उसका ससुराल होता है पर यह किस मायने तक सच साबित हो पाता है सभी जानते हैं। प्रणव कुमार उससे कहता है कि वह उसे रानी बनाकर रखेगा। प्रणव हर चीज में नंबर वन बनना चहाता है। नंबर वन घर, नंबर वन गाड़ी। नंबर वन बनने के लिए आए दिन वह घर में बड़ी-बड़ी पार्टियाँ रखता है ताकि लोग उसका और उसकी अमीरी का गुणगान करें। अनु भारतीय संस्कारशील स्त्री होने के नाते अपने पति का पूरा सहयोग देती है और पूरा-पूरा दिन रसोई में रहकर वह पार्टी की तैयारियाँ करती है। इस सबसे वह बहुत खुश भी है लेकिन धीरे-धीरे उसके और प्रणव के बीच दूरी आने लगती है। एक दिन अनु को पता चलता है कि प्रणव उससे तलाक लेना चहाता है। तलाक के बाद अनु एकदम टुट जाती है। वह अपनी मित्र दिव्या के पास चली जाती है। अनु अपनी अधुरी पढ़ाई पूरी करती है। उसे एक मेडिकल कॉलेज में एडमिशन मिल जाता है और वह एक नोबल प्राइज विजेता की रिसर्च टीम में काम करती है। वहाँ उसकी मुलाकात दिपांकर से होती है। वह भी एक डॉक्टर है। अनु और दीपांकर का विवाह हो जाता है। तलाक के दस वर्षों बाद अनु की मुलाकात प्रणव के एक अस्पताल में होती है, जहाँ उसकी हार्ट सर्जरी होने वाली होती है। वह देखता है कि डॉक्टर बनने के बाद अनु अब पहले जैसी नहीं दिखती उसमें बहुत आत्मविश्वास और गर्व झलकता है। प्रतिकुल परिस्थितियों में अनु स्वयं को बहुत साहस के साथ संभालती है। वह प्रणव से कहती है, ''मुझे उन दिनों बहुत गुस्सा था आप पर, अपने पर, दोस्तों पर। यह बात मुझे हर वक्त कचोटती थी कि मैं एक व्यक्ति की हैसियत से कुछ भी नहीं कर रही, जो कुछ थी, वह श्रीमती कुमार की हैसियत से। बार-बार लगता है कि मैंने वो साल क्यों खो

दिए, बिरयानी और कबाब बनाने में।'' इस कथन के संदर्भ में प्रथा खेतान का मत उल्लेखनीय है। भगवान ने नहीं बल्कि कुछेक पुरूषों न यह निश्चय किया कि स्त्री की स्थिति कैसी होनी चाहिए, उसे कब और कितना मिलेगा। सत्ता के इस वर्ग के पास जर्बदस्त भौतिक आधार है। यह वर्ग समस्त बौद्धिक और वैचारिक शक्तियों शिक्षा, भाषा, साहित्य आदि को विकसित और नियंत्रित कर सकता है और इस प्रकार यह विशिष्ट पुरूष वर्ग समाज को शेष हिस्सों जिसमें स्त्री भी शामिल है, को एक विश्व दृष्टिकोण दे सकता है।'' हमारा यह समाज प्रणव जैसे मानसिकता से भरे पुरूषों का समाज है जो रिश्तों को उपयोगिता के पैमाने पर बनाते है। अनु जब प्रणव से पूछती है कि उसने अनु को क्यों पसंद किया। तब प्रणव कहता है, ''मुझे एक बेवकूफ लड़की जो चाहिए थी। तुम्हें देखकर ही जान गया कि तुम काफी मूर्ख हो।'' जिन भारतीय संस्कारों से एक स्त्री बंधी है, जिनके कारण वह अपने पति को परमेश्वर का दर्जा देती है, वही पति उसमें मूर्खता की श्रेणी में रखकर देखता है। प्रभा खेतान का मत इस संदर्भ में उल्लेखनीय है, ''स्त्री को दी जाने वाली शिक्षा दीक्षा उसके जीवन के विभिन्न पक्षों पर अभिव्यक्ति की प्रत्येक दिशा पर अपने नियंत्रण से पितृसत्ता स्त्री जीवन के समग्र मूल्यों पर नियंत्रण रखती है और इसी के अधीन स्त्री खुद को परिभाषित भी करती है। पुरूष वर्ग ने ऐसी गुलाम मानसिकता वाली स्त्रियों को पसंद किया तथा अधिकतर स्त्रियों ने भी इसी गुलामी को अपनी नियति कहकर स्वीकार किया।''

प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने उन तमाम रूढिघ्वादी मान्यताओं का खंडन किया है, जो उसे अबला बनाते है। आधुनिक सुशिक्षित भारतीय नारी अपने अधिकारों को जानती है। लेखिका दिव्या के माध्यम से कहते हैं, ''मैं? चाहे मुझे अन्दर से कितना दुख पहुँचे, मैं कहूँगी जाओं जयन्त, इफ आइ' म नॉट गुड़ एनफ फॉर यू, यू आर नॉट गुड एनफ फॉर मी' और मैं जयन्त को दिखा दूंगी कि मैं भी कुछ हूँ कि मैं उन पर निर्भर नहीं हूँ। मैं अपनी जिन्दगी से हर मायने में जयन्त को निकाल फेंकूंगी- पर शायद कहना आसान है।''

शिक्षा ही बस एक मात्र वह माध्यम है जिसके द्वारा एक स्त्री स्वयं की एक पहचान बना सकी है, पितृसत्ता से मुक्ति पा सकती है। शेष यात्रा अनु से अबला से सबला नारी बनने की यात्रा है। उषा जी अनु को कभी हारने नहीं देती। पुरूष द्वारा मानसिक संत्रास, अकेलापन, छटपटाहट दिए जाने पर भी अनु टुटती नहीं है वह अपने आगे की शेषयात्रा को कुशलता से सवारने की ठान लेती हैं। ''पर यह सच है कि अगर परिस्थितियों ने मुझे ऐसे ढकेला न होता तो आज मैं भी वह परम्परागत स्क्रिप्ट जीती रहती पूरी तरह से आप पर निर्भर, एक सफल डॉक्टर की निकम्मी बीवी की . . . जानते हैं, कचहरी में विदा लेते वक्त आपकी उस शार्क मछली सी वकील ने मुझसे क्या कहा था? . . . आपके भविष्य के लिए शुभकामनाएँ, तो मेरे मुँह से कड़वा वाक्य निकल गया, यह सहानुभूति आप अपने मुवक्किल को ही दीजिए- उस दिन के बाद मैं एक बार भी नहीं रोई। मालूम नहीं, मेरे अन्दर इतना तेज, इतना करेज कहाँ से आ गया! मुझे लगा मैं भी कुछ बन सकती हूँ . . .।'' अनु आत्मविश्वासी होने के साथ-साथ आत्मनिर्भर भी बनती है। वह एक आधुनिक शिक्षित स्त्री के पूर्ण रूप में स्वतन्त्र होकर अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेने में सक्षम होती है। यह उपन्यास त्रासद भरे जीवन की विभिन्न परिस्थितियों से जूझती हुए एक नारी की संघर्षगाथा को व्यक्त करता है।

निष्कर्ष- उपन्यास की नायिका अनु परिस्थतियों के आगे घुटने ने टेकती है। जीवन से मिलने वाली प्रत्येक चुनौती का डटकर सामना करती है। विदेश में परित्यागा, अकेले जीवन जीने को मजबूर अनु अपनी प्रतिभा और मेहनत के बलबूते पर अपने जीवन की सद्गति करती है और अपने जीवन की शेष यात्रा को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होकर व्यतीत करती है। प्रणव कुमार जो स्त्रियों को अपने इशारों पर चलाता है, जो उन्हें भोग की वस्तु समझता था, उसके जीवन में केवल अकेलापन बचता है। अब उसके पास न तो पैसा है, न कोई रूतबा, न घर, न चन्द्रिका और न ही अन्य कोई मित्र किन्तु जीवन की अस्त होती इस यात्रा में इसे अपनी गलतियों का एहसास होता है और वह अब किसी भी रिश्ते अथवा बंधन में बंधना नहीं चहाता। वह एक बार फिर अनु के जीवन से बिना कुछ बताए चला जाता है। इस प्रकार अनु अपना शेष यात्रा खुशी-खुशी अपने परिवार के साथ व्यतीत करती है और प्रणव की यात्रा शेष रह जाती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 देवी शंकर अवस्थी, विवेक के रंग, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-6, प्रथम संस्करण 1965, पृ0 378
2. उषा प्रियंवदा, शेष यात्रा, राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ0 9
3. वही, पृ0 118
4. प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री मुक्ति-कामना की दस वार्ताएँ, राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006, पृ0 84
5. उषा प्रियंवदा, शेष यात्रा, राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ0 36
6. प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री मुक्ति-कामना की दस वार्ताएँ, राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006, पृ0 68

शैक्षिक प्रबन्धन एवं प्रशासन में प्राचार्यों की भूमिका

रत्नेश कुमार जैन

शोधार्थी

शिक्षण के क्षेत्र में प्राचार्य एक नेता है। इस क्षेत्र में उसे छात्र-छात्र शिक्षक-छात्र, शिक्षक-शिक्षक, शिक्षक-निरीक्षक, शिक्षक अभिभावक आदि के सम्बन्धों को सन्तुलित एवं निरीक्षित करना पड़ता है। इन समस्त प्रकार के सम्बन्धों पर उसके व्यक्तित्व की अमिट छाप पड़ती है। प्राचार्य के शिक्षा सम्बन्धी ज्ञान के ऊपर ही सम्पूर्ण शैक्षिक कार्यक्रम की उन्नति एवं सफलता निर्भर है। यदि वह प्रचलित शिक्षा सम्बन्धी सिद्धान्तों एवं प्रयोगों से स्वयं को अवगत नहीं कराता है, अथवा उसे उनका व्यावहारिक ज्ञान नहीं है तो वह अपने शिक्षकों या साथियों का शिक्षण के क्षेत्र में नेतृत्व नहीं कर सकता है। इन सिद्धान्तों एवं प्रयोगों के ज्ञान से ही वह अपने महाविद्यालय में प्रदान किए जाने वाले शिक्षण को उन्नत बना सकता है तथा उन अभीष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकता है जिनके लिए महाविद्यालय का संगठन किया गया है।

आदर्श प्राचार्य के गुण

आदर्श प्राचार्य को मनुष्यों का निर्माता, राष्ट्र निर्माता शिक्षा पद्धति की आधारशिला समाज को गति प्रदान करने वाला आदि सब कुछ माना गया है। साधारणत: ऐसे शिक्षक में बालकों को समझने की शक्ति, उनके साथ उचित रूप से कार्य करने की क्षमता, शिक्षण योग्यता, कार्य करने की इच्छा शक्ति और सहकारिता आदि गुणों की अपेक्षा की जाती है। ऐसे गुण सामान्यत: न तो प्रत्येक शिक्षक में मिलते हैं और न शिक्षण प्रत्येक व्यक्ति का कार्य ही है। वस्तुत: यह कार्य वह व्यक्ति कर सकता है, जिसमें कुछ विशिष्ट शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, नैतिक एवं संवेगात्मक गुण हो। शिक्षण जगत की एक मानसी प्रक्रिया है, जिसमें मस्तिष्क का मस्तिष्क से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। इस सम्बन्ध की उपयुक्तता एवं अनुपयुक्तता बहुत कुछ शिक्षक के व्यक्तित्व पर निर्भर होती है। इस सम्बन्ध में समय-समय पर अध्ययन किए गये है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में डॉ. एफ. एल. क्लैप ने सन् 1913 में एक अध्ययन किया जिसके आधार पर उन्होंने अच्छे शिक्षक के व्यक्तित्व के अग्रांकित दस गुणों का उल्लेख किया है

प्राचार्य का एक गुण यह है कि उसका स्वास्थ्य उत्तम हो। परीक्षणों के आधार पर यह देखा गया कि स्वस्थ शरीर का स्वस्थ मस्तिष्क से उच्च प्रकार का सह-सम्बन्ध होता है। हरबर्ट स्पेन्सर का मत है- जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए अच्छा प्राणी होना आवश्यक है।"[1]

यदि प्राचार्य का स्वास्थ्य खराब है तो वह सफलतापूर्वक अध्ययन कार्य नहीं कर सकता क्योंकि शक्ति एवं स्फूर्ति शिक्षक के कार्य में आशावादिता, उत्साह एवं जीवन-शक्ति लाती है।

प्राचार्य को केवल शारीरिक रूप से हृष्ट-पुष्ट होना ही आवश्यक नहीं है, वरन् उसमें चेतनता का होना भी आवश्यक है। आर्थर बी. मौलमैन का कथन है- सफल शिक्षण के लिए जीवन-शक्ति का होना आवश्यक है। यह केवल इसलिए ही आवश्यक नहीं है कि इसका प्रभाव बालकों पर प्रतिबिम्बात्मक रूप में पड़ेगा परन्तु थकान से उत्पन्न हुई बाधाओं को कम करने के लिए भी यह आवश्यक है।

महाविद्यालय प्रबन्धन, संगठन तथा प्रशासन का अर्थ, आवश्यकता तथा महत्त्व भूमिका

साधारण भाषा तथा बोलचाल के अर्थ में महाविद्यालय प्रबन्धन और महाविद्यालय प्रशासन इन दोनों शब्दों में कोई अन्तर नहीं माना जाता। महाविद्यालय की व्यवस्था अनुशासन का पालन, समय चक्र का निर्माण, अध्यापकों को आदेश देना, शिक्षा विभाग के पत्रों का उत्तर देना तथा महाविद्यालय के रिकार्डो का ठीक रख-रखाव आदि सभी क्रियाओं का सम्बन्ध महाविद्यालय प्रबन्धन अथवा महाविद्यालय प्रशासन से माना जाता है किन्तु वास्तव में इन दोनों प्रक्रियाओं में अन्तर है। (वस्तुत: प्रशासन एक व्यापक क्रिया है और प्रबन्धन इसके अन्तर्गत आने वाला एक सीमित कार्य। अत: प्रबन्धन की क्रिया प्रशासन के अन्त: क्षेत्र में आती है।

प्रबन्धन में प्राचार्य के उत्तरदायित्व (Responsibilities of Principal in Management)

1. शैक्षिक नीतियों के निर्धारण में अध्यापकों, छात्रों, समाज के अन्य सदस्यों और अभिभावकों को भाग लेने के लिये प्रोत्साहित करना -
2. नीतियों के कार्यान्वयन में अध्यापकों, छात्रों और सभी लोगों के सहयोग को प्राप्त करना
3. शिक्षण विधियों में संशोधन लाना-
4. शिक्षोपयोगी सामग्री को संगठित करना -
5. परीक्षा तथा मूल्यांकन का कार्य -
6. अध्यापकों तथा अन्य कर्मचारियों के लिये कल्याण कार्य -

महाविद्यालय प्रबन्धन की प्रक्रिया (Process of College Management)

"शिक्षा का उद्देश्य प्रत्येक बालक को उसकी रूचि, भविष्य एवं क्षमता के अनुसार इस प्रकार की शिक्षा देना है कि वह अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास इस प्रकार करने में सहायता प्राप्त कर सके जिससे वह समाज में सही ढंग से समायोजित हो सके तो इस मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिये महाविद्यालय में पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिये। इसका तात्पर्य यह है कि सभी आवश्यक भौतिक एवं मानव संसाधन उपलब्ध कराने चाहिये, जिससे सभी प्रकार के शैक्षिक कार्यक्रम एवं सहगामी क्रियाओं का संचालन प्रभावी ढंग से किया जा सके।"[5] प्रबन्धन करते समय इस बात का अवश्य ध्यान रखा जाना चाहिये कि यह व्यवस्था उस महाविद्यालय विशेष की आवश्यकता एवं परिस्थितियों के अनुकूल हो।

किसी भी महाविद्यालय का प्रबन्धन करने वालों को उद्देश्यों के सम्बन्ध में बहुत स्पष्ट होना चाहिये, यह अवश्य सोचना चाहिये कि इस महाविद्यालय की स्थापना का उद्देश्य क्या है ? और जो प्रबन्ध किया जा रहा है वह इन उद्देश्यों की पूर्ति में कहाँ तक सहायक है ? तो इस प्रश्न पर विचार करें कि महाविद्यालय प्रबन्ध के क्या उद्देश्य होने चाहिये ?)

महाविद्यालय प्रबन्धन के उद्देश्य (Aims of College Management)

महाविद्यालय प्रबन्धन के उद्देश्य निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखकर निर्धारित किये जा सकते हैं

1. अध्ययन अध्यापन के लिये उचित वातावरण का निर्माण -
2. मानवीय तथा भौतिक साधनों का उचित प्रयोग -
3. शिक्षकों तथा अन्य कर्मचारियों में आत्म-विश्वास की भावना जागृत करना
4. जटिल शैक्षिक कार्य को सरल बनाना -
5. निरन्तर मूल्यांकन को प्रभावी बनाना -
6. प्रयोग तथा अनुसन्धान के लिये अवसर प्रदान करना -

शैक्षिक प्रशासन की आवश्यकता एवं महत्त्व

प्रशासन किसी भी संगठन अथवा संस्था को उसके आदर्शों, सफलता एवं उद्देश्यों तक पहुंचाने में सहायक होता है। उत्तम प्रशासन व्यवस्थित एवं श्रेष्ठ कार्य के लिये पूर्णत: उत्तरदायी है। शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा प्रशासन की सहायता से विभिन्न क्रियाओं को क्रमबद्ध रूप से नियोजित करके किसी विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति की जा सकती है, अत: महाविद्यालय के संचालकों को इसका महत्त्व समझना आवश्यक है। महाविद्यालय के समुचित प्रशासन में विभिन्न बातें निहित है, जैसेख्"महाविद्यालय भवन की योजना, शिक्षकों एवं कर्मचारियों का चयन, शिक्षकों एवं कर्मचारियों का वेतन-क्रम निर्धारित करना, शैक्षिक सामग्री एवं फर्नीचर आदि की आवश्यकतानुसार व्यवस्था करना, शैक्षिक एवं पाठ्य सहगामी क्रियाओं को व्यवस्था करना, छात्रों को निर्देशन प्रदान कर उनका मूल्यांकन करना, छात्रों का चारित्रिक निर्माण करना, महाविद्यालय सम्बन्धी अभिलेखों की स्थापना करना, महाविद्यालय बजट का निर्माण करना, महाविद्यालय संचालन के लिये धन प्राप्त करना एवं महाविद्यालय संगठन में योग्य नेतृत्व प्रदान करना आदि शिक्षा प्रशासन का प्रभाव उन लोगों पर भी पड़ता है, जो भावी नागरिक हैं। यदि राष्ट्र के नागरिकों के व्यक्तित्व का निर्माण उचित प्रकार से नहीं होगा तो उसका परिणाम राष्ट्र को भुगतना पड़ेगा। लगभग प्रति 5 वर्ष के पश्चात् छात्रों की संख्या दुगुनी हो जाती है। इस प्रकार शिक्षा के निकायों में वृद्धि का प्रभाव शिक्षा प्रशासन पर पड़ता है। प्रशासन की समस्याएँ जटिल होती जाती हैं। देश में शिक्षा की माँग के कारण नये महाविद्यालय खुलते जा रहे हैं। निरन्तर बढ़ती इस प्रवृत्ति के कारण बालकों के शिक्षा के स्तर पर भी विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। इन समस्त समस्याओं को ध्यान में रखते हुए अब यह नितान्त आवश्यक हो गया है कि शिक्षा के क्षेत्र में प्रशासकों का भी पूर्व प्रशिक्षण होना चाहिये, जिससे भावी प्रशासक पूर्ण योग्यता एवं दक्षता के साथ प्रशासनिक कठिनाइयों को समझ सकें एवं प्रशासन को सुचारू रूप से चला सकें। इसलिये शिक्षा प्रशासन की आवश्यकता तथा महत्त्व की आवश्यकता अनुभव की जाती है।"[7]

प्रशासन कला है अथवा विज्ञान? (Administration is Science or Art\ )

प्रश्न उठता है कि प्रशासन कला है अथवा विज्ञान ? कुछ लोग इसे व्यावहारिक कौशल मात्र मानते हैं, जो अनुभव मात्र से आ जाता है, जबकि अन्य लोग इसके लिये विकसित सिद्धान्त तथ्था इसके प्रभावीपन के लिये आवश्यक तकनीकी का प्रशिक्षण भी आवश्यक समझते हैं।

प्रशासन कला है अथवा विज्ञान ? इसे हम निम्नांकित व्याख्याओं के अनुसार भली प्रकार समझ सकते हैं

1. प्रशासन कला के रूप में - शिक्षाविद् श्री आर्डवेटेड ने प्रशासन को एक ललित कला माना है। इस विचारधारानुसार अन्य कलाओं की तरह प्रशासन भी एक कला है। प्रत्येक व्यक्ति योग्य प्रशासक नहीं बन सकता है जिस व्यक्ति में कुछ आवश्यक गुण तथा योग्यताएँ होती हैं, वहीं सफल प्रशासक बन सकता है। वैयक्तिक गुणों पर बल देने वाले सम्प्रदाय का मानना है कि अच्छे प्रशासक जन्मजात होते हैं, बनाये नहीं जाते परन्तु दूसरे लोग इसे परिस्थितिजन्य मानते हैं। उनका कहना है कि परिस्थितियाँ प्रशासक बना देती हैं। स्टोगडिल के विचारानुसार- "प्रशासनिक तकनीकों में आवश्यक प्रशिक्षण के बाद जन्मजात गुणों वाले प्रशासक और भी अधिक सफल प्रशासक बन सकते हैं।"[8]
2. प्रशासन विज्ञान के रूप में - प्रशासन को विज्ञान कहने वाले लोग इसे तकनीकी मानते हैं। वे प्रशासन को एक प्रकिया मानते हैं। उनका मानना है कि प्रशासनिक समस्याओं को सुलझाने के लिये प्रशासनिक सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाना आवश्यक है। वे कहते हैं कि प्रशासनिक नियमों पर चलकर प्रशासन को सुचारू रूप से चलाया जा सकता है।

वस्तुत: प्रशासन में दोनों का ही समावेश है। प्रशासन के निरन्तर जटिल होते जाने के कारण आज प्रशासनिक तकनीकों के प्रशिक्षण की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती है।

शैक्षिक प्रशासन की आधुनिक अवधारणा (Modern Concept of Educational Administration)

प्रशासन संगठन, मैनेजमेण्ट तथा पर्यवेक्षण आदि शब्दों को समानार्थी रूप में प्रयुक्त होता देख आज शिक्षा प्रशासन का विद्यार्थी दुविधा में पड़ जाता है। प्रारम्भ में धारणा थी कि औद्योगिक, व्यावसायिक एवं जन-प्रशासन के अनुभवों एवं सिद्धान्तों का रूपान्तरण शिक्षा प्रशासन में हुआ है परन्तु समय एवं आवश्यकताओं के आधार पर अब यह धारणा धीरे-धीरे बदल रही है।

आधुनिक अवधारणा के अन्तर्गत शिक्षा प्रशासन को ऐसी प्रक्रिया माना जाता है, जिसके अन्तर्गत शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये कुशल व्यक्ति सुव्यवस्थित रूप से उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम उपयोग करते हुए, सहयोग की भावना रखते हुए कार्य करता है। अत: शिक्षा प्रशासन, शिक्षा के क्षेत्र में लगे व्यक्तियों का विकास करते हुए संसाधनों के अधिकतम उपयोग द्वारा शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करना है।

शैक्षिक प्रशासन का अर्थ (Meaning of Educational Administration)

शिक्षा-प्रशासन पूर्णतया शिक्षा से सम्बन्धित है। शिक्षा का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, अत: शिक्षा प्रशासन का भी क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। सामान्यत: प्रशासन का अर्थ-व्यवस्था (Management) से लगाया जाता है। व्यवस्था वह साधन है, जिसके द्वारा किसी संगठन या संस्था का संचालन सुचारू रूप से किया जाता है। इस प्रकार प्रशासन का सम्बन्ध किसी भी संस्था या संगठन के अन्तर्गत प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से काम करने वाले व्यक्तियों तथा उनकी क्रियाओं के समन्वय से रहता है। शिक्षा प्रशासन की प्रक्रिया द्वारा कार्यकर्ताओं के प्रयासों में सामंजस्य स्थापित किया जाता है एवं उपयुक्त सामग्री का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है कि वह मानवीय गुणों के विकास में सहायक हो सके। यह प्रक्रिया केवल बालकों एवं नवयुवकों के विकास से ही सम्बन्धित नहीं है वरन् प्रौदों एवं समस्त कार्यकर्ताओं के विकास में भी सहायक होती है। शिक्षा संस्थाओं के प्रशासन के अन्तर्गत समस्त सम्बन्धित व्यक्तियों के कार्यों एवं विचारों में समन्वय स्थापित करती है, जिससे महाविद्यालय निर्धारित उद्देश्यों की अधिकतम पूर्ति करने में सफल हो सकें। शिक्षा प्रशासन शिक्षण तथा सीखने के कार्यक्रमों के विकास में प्रोत्साहन प्रदान करता है।

शिक्षा-प्रशासन का सम्बन्ध मानवीय तत्त्वों से ही नहीं वरन् महाविद्यालय के भौतिक तत्त्वों से भी रहता है। प्रशासन मानवीय और भौतिक तत्त्वों के मध्य समन्वय स्थापित करके शिक्षा-प्रक्रिया को भली-भाँति संचालित करता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इसका सम्बन्ध मानव की वैयक्तिक विभिन्नताओं, उसकी योग्यताओं, उसकी प्रतिभाओं, उसकी उपलब्धियों तथा उसको शैक्षिक समस्याओं आदि से अधिक रहता है।

इस प्रकार शिक्षा प्रशासन का अर्थ जानने के लिये यह समझना आवश्यक है कि इसका सम्बन्ध मुख्यत: तीन बातों से रहता है

(1) शिक्षा सम्बन्धी नीति-निर्धारण करना, शिक्षा का संचालन करके उसका प्रसार करना एवं शिक्षा की प्रगति हेतु योजनाएँ बनाना।

(2) शिक्षा से सम्बन्धित योजनाओं को कुशलतापूर्वक क्रियान्वित करना।

(3) क्रियान्वित की गयी योजनाओं का उचित मूल्यांकन करना।

डॉ. एस. एन. मुकर्जी ने अपनी पुस्तक श्सैकण्डरी महाविद्यालय एडमिनिस्ट्रेशन इट्स प्रिन्सिपल्स एण्ड फंक्शन्स इन इण्डियाश में शिक्षा प्रशासन की व्याख्या इस प्रकार की है, "शिक्षा प्रशासन सामग्री के साथ-साथ मानवीय सम्बन्धों की व्यवस्था से सम्बन्धित है अर्थात् व्यक्तियों को हिल-मिलकर उत्तम रूप में कार्य करने से है। यथार्थ में इसका सम्बन्ध मानव जाति से अधिक और अमानवीय वस्तुओं से कम है।"

प्रशासन की परिभाषाएँ (Definitions of Administration)

प्रशासन को परिभाषाएँ निम्नलिखित प्रकार हैं

(1) शैक्षिक अनुसन्धान के अनुसार शैक्षिक प्रशासन की आवश्यकता मात्र महाविद्यालय ही नहीं अपितु प्रत्येक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण है। इसमें सभी आयु वर्ग के व्यक्तियों की क्रियाओं को महत्त्व दिया जाता है। इसमें उपयोग में आने वाली सामग्री को इस प्रकार से प्रयोग में लाया जाता है जिससे मानवीय गुणों का उचित विकास हो सके।" - Educational Research

(2) एस. पी. सुखिया के अनुसार- प्रशासन का अर्थ किसी भी संगठन के अन्दर आने वाले व्यक्तियों तथा उससे सम्बन्धित क्रियाओं से है। चाहे वह संगठन सामुदायिक, शैक्षणिक अथवा औद्योगिक ही क्यों न हो ?"[9]

(3) गुलिक के अनुसार- प्रशासन का सम्बन्ध कार्यों को सम्पन्न करने से है। इसके साथ ही निर्धारित लक्ष्य भी पूरे हो सकें। है - गुलिक

(4) वाइट के अनुसार- प्रशासन किसी उद्देश्य या लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये व्यक्तियों को निर्देशित, सामंजन्स तथा नियन्त्रित करने की कला है।" - White

(5) बुक एडम्स के अनुसार- प्रशासन एक संगठन में अनेक सामाजिक संगठनों की प्रतिद्वन्द्विों में तालमेल लाने की योग्यता है ताकि वे एक इकाई बनकर कार्य करें। - Brook Adams

शैक्षिक प्रशासन के उद्देश्य (Aims of Educational Administration)

देश को स्थिति, आवश्यकता और शैक्षणिक विकास की दृष्टि से शिक्षा प्रशासन के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये जा सकते हैं

(1) शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों की सहायता करना।
(2) शिक्षा सम्बन्धी कार्यों को विधिवत् सम्पन्न कराना।
(3) समाज के बालकों के सर्वांगीण विकास के लिये आवश्यक उपलब्ध कराना।
(4) शिक्षा सम्बन्धी नीतियाँ निर्धारित करना, शिक्षा सम्बन्धी योजनाएँ बनाकर उन्हें साधन एवं सामग्री विधिवत् क्रियान्वित करना ।
(5) शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर शैक्षणिक कार्यक्रमों का सुचारू रूप से संचालन करना ।
(6) शिक्षा विभाग के कर्मचारियों की नियुक्ति, सेवा शर्तों का निर्धारण, एवं उनकी उन्नति आदि के लिये कार्यक्रम बनाना। उनके प्रशिक्षण
(7) शिक्षा विभाग के कर्मचारियों को स. प. समय पर महत्त्वपूर्ण परामर्श एवं निर्देशन प्रदान करना
(8) शिक्षा विभाग के कर्मचारियों के मध्य एवं शिक्षा के विभिन्न कार्यक्रमों में समायोजन स्थापित करना ।
(9) शिक्षा संस्थाओं का निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण करना।
(10) शैक्षणिक कार्यक्रमों के संचालन के लिये आवश्यक धन की व्यवस्था करना एवं शिक्षा से सम्बन्धित आय-व्यय का अभिलेख तैयार करना।
(11) शिक्षा के नवीन उद्देश्यों, मूल्यों तथा सिद्धान्तों आदि का निर्धारण करना।
(12) शिक्षा में व्याप्त अपव्यय अवरोधन को प्रत्येक स्तर पर रोकना।
(13) शिक्षा सम्बन्धी प्रत्येक संगठन के लिये अलग-अलग प्रशासनिक नेतृत्व प्रदान
(14) शिक्षा विभाग के प्रत्येक कर्मचारी एवं अधिकारी को अपने-अपने कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों आदि से अवगत कराना।
(15) शिक्षा की सहायता से जनतन्त्रीय व्यवस्था को सफलीभूत बनाने के लिये योग्य एवं कुशल नागरिक उत्पन्न करना।
(16) छात्रों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना, उनके दृष्टिकोणों को विकसित करना एवं उनके चरित्र का निर्माण करना।
(17) शिक्षा क्षेत्र में अधिकतम उपलब्धियां प्राप्त करने हेतु अनुकूल पर्यावरण उत्पन्न करना।

शैक्षिक प्रशासन के भेद (Kinds of Educational Administration)

सामान्यत: शिक्षा प्रशासन को दो भागों में विभाजित किया जाता है

1.बाह्य प्रशासन - भारत में शिक्षा के बाह्य प्रशासन का अर्थ है-शिक्षा विभाग द्वारा शासकीय नियन्त्रण यह उस प्रभाव एवं आदेश से सम्बन्धित होता है, जो उच्च स्तर की शक्ति द्वारा दिये जाते हैं। बाढ़ा प्रशासन के कार्य हैं

(1) नियमों का निर्माण करना
(2) पाठ्य पुस्तक एवं पाठ्यक्रम निर्धारित करना।
(3) महाविद्यालय भवनों का निर्माण करने में सहायता प्रदान करना।
(4) खेल के मैदानों की व्यवस्था में सहायता प्रदान करना
(5) वेतन, सेवा दशाओं तथा सत्र की अवधि निर्धारण आदि में अपना निर्णय देना!

2. आन्तरिक प्रशासन - आन्तरिक प्रशासन का अर्थ उस व्यवस्था से लगाया जाता है, जो महाविद्यालय का नेता अपने साथियों के सहयोग से महाविद्यालय के प्रतिदिन के कार्यक्रमों एवं क्रियाओं के संचालन हेतु स्थापित करता है एवं महाविद्यालय का नेता अपने शिक्षकों तथा छात्रों की सहायता से शिक्षा विभाग द्वारा निर्धारित सामान्य नियमों के अनुसार महाविद्यालय की व्यवस्था करता है। इस प्रकार प्रजातन्त्र की माँग है कि शैक्षिक विषयों में महाविद्यालय के नेताओं को स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिये। स्वतन्त्रता के बिना वे पहलकदमी का उपयोग करने में असमर्थ होंगे। अत: प्रशासन क्षेत्र में प्रशासक, शिक्षक एवं शिक्षामर्मज्ञों की ही नहीं, तरन छात्र वर्ग को श्री उत्तरदायी ठहराकर गतिविधियों में समन्वय स्थापित किया जाना चाहिये।

शैक्षिक प्रशासन के क्षेत्र (Fields of Educational Administration)

शिक्षा-प्रशासन यदि एक ओर मानवीय तत्त्वों से सम्बन्धित है तो दूसरी ओर उसका सम्बन्ध भौतिक तत्त्वों से भी है। अत: शिक्षा की प्रक्रिया से सम्बन्धित सभी बातें शिक्षा प्रशासन की सामग्री है। इस प्रकार शैक्षणिक प्रशासन के क्षेत्र में निम्नलिखित तथ्य सम्मिलित है

(1) नवीन शिक्षा नीति के अनुसार शिक्षा का स्वरूप तैयार करना एवं समय-समय पर उसका मूल्यांकन करना !
(2) शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन करके उनका उचित निराकरण करना।
(3) सम्पूर्ण शिक्षा की प्रक्रिया की सफलता के लिये कार्य करना एवं उनका मूल्यांकन करना।
(4) समस्त विद्यार्थियों के लिये समानता और स्वतन्त्रता के सिद्धान्त के आधार पर शैक्षिक कार्यक्रमों की योजनाएं बनाकर उन्हें क्रियान्वित करना।
(5) शिक्षा के उद्देश्यों मूल्यों तथा सिद्धान्तों आदि को छात्रों एवं समाज के हित में निर्धारित करना
(6) शिक्षा संस्थाओं में कार्यरत कर्मचारियों एवं उपलब्ध साधनों में समन्वय स्थापित
(7) शिक्षा संस्थाओं एवं समाज में शिक्षा के माध्यम से समन्वय स्थापित करना।

शैक्षिक प्रशासन के सिद्धान्त (Principles of Educational Administration)

शिक्षा के कुशल संचालन पर व्यक्ति एवं समाज दोनों का भविष्य निर्भर है। शिक्षा-प्रशासन एक विकासशील प्रक्रिया है। अत: यह आवश्यक है कि शिक्षा की व्यवस्था का दायित्व अनुभव एवं योग्य व्यक्तियों को सौंपा जाय। प्रजातन्त्र में शैक्षणिक प्रशासन के प्रमुख सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या निम्नवत् है-

1. स्वतन्त्रता का सिद्धान्त - शिक्षा प्रशासन नियन्त्रित होने के साथ-साथ स्वतन्त्र भी होना चाहिये। कर्मचारियों को कार्य करने की स्वतन्त्रता पर्याप्त मात्रा में होनी आवश्यक है। परन्तु प्रशासनिक कार्य सभी को सिद्धान्तों तथा नियमों के आधार पर बहुजन हितायश को ध्यान में रखकर ही करने चाहिये। स्वतन्त्र होकर कार्य करने से शिक्षा प्रशासन में सुगमता तथा व्यक्तियों की कार्य क्षमता दोनों में वृद्धि सम्भव है।
2. प्रचलित दार्शनिक तथा राजनीतिक विचारधारा - दर्शन शिक्षा के मुख्य उद्देश्यों को निर्धारित करके महाविद्यालय का मार्ग प्रदर्शन करता है। यह उपयुक्त वातावरण का निर्माण करके शिक्षा को निर्दिष्ट दिशा में अग्रसर करने में सहायक है। आदर्शवादी विचारधारानुसार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य, आत्मानुभूति है। अत: महाविद्यालय में ऐसा उपयुक्त सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण करना होता है, जिससे बालकों को उस उद्देश्य की प्राप्ति हो सके। अत: प्रचलित जीवन दर्शन को ध्यान में रखकर प्रशासन करना आवश्यक है।
3. समानता का सिद्धान्त - इस सिद्धान्त के अनुसार किसी एक व्यक्ति को अथवा किसी वर्ग विशेष को प्रशासनिक दृष्टि से महत्ता प्रदान नहीं की जाती है। उच्च अधिकारियों को अपने आधीन कार्य करने वाले कर्मचारियों को हीन न समझ कर उन्हें अपना सहयोगी अथवा मित्र समझना चाहिये। उन्हें प्रशासनिक दृष्टि से समान अधिकार देकर प्रशासन के कार्य में सहभागी बनाने के लिये अवसर प्रदान करने चाहिये। शिक्षा प्रशासन ऐसा होना चाहिये कि सभी को अपनी प्रतिभा और योग्यताओं को प्रदर्शित करने का समान अवसर मिल सके।
4. सहयोग का सिद्धान्त - प्रशासनिक सफलता तभी प्राप्त हो सकती है, तब सभी कर्मचारी मिल-जुलकर सहयोग की भावना से कार्य करें। वही प्रशासनिक निर्णय उपयोगी सिद्ध होते हैं, जिन्हें सभी स्तर के कर्मचारी सामूहिक रूप से विचार करके निर्धारित करते हैं। शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति तभी हो सकती है, जब प्रशासन की छोटी-से-छोटी और बड़ी से बड़ी इकाई में तालमेल हो। अत: शिक्षा प्रशासन की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये कि शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े प्रशासकों, शिक्षकों, कर्मचारियों तथा विद्यार्थियों के प्रयासों में समन्वय स्थापित हो सके एवं वे शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक उन्नति के लिये एकजुट होकर कार्य करें।
5. बालक का सर्वांगीण विकास सम्बन्धी सिद्धान्त - शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना है। अत: शिक्षा प्रशासन का भी मुख्य लक्ष्य शिक्षा के माध्यम से बालक का सर्वांगीण विकास करना है। शिक्षा-प्रशासन को शिक्षा की ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये, जिससे बालक का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, संवेगात्मक, नैतिक तथा चारित्रिक आदि सभी प्रकार का समुचित विकास हो सके। शिक्षा प्रशासन को बालक की स्वाभाविक प्रवृत्तियों, क्षमताओं, योग्यताओं, रुचियों तथा आवश्यकताओं आदि को ध्यान में रखकर ही शिक्षा की नीतियों, पाठ्यक्रम, पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं तथा शिक्षा के स्तर आदि का निर्धारण करना चाहिये तभी शिक्षा प्रशासन अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो सकेगा।
6. स्वास्थ्य, योग्यता तथा चरित्र पर आधारित सिद्धान्त - शिक्षा सम्बन्धी कार्यों की सफलता अच्छे स्वास्थ्य पर निर्भर करती है। स्वस्थ प्रशासक शिक्षा के क्षेत्र में जटिल समस्याओं का निराकरण तुरन्त कर सकता है। शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के साथ शिक्षा प्रशासक को योग्य होना भी आवश्यक है। योग्यता के अभाव में वह कोई भी कार्य पूर्ण करने में असमर्थ रहेगा। शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त कुरीतियों, अनियमितताओं तथा भ्रष्टाचार आदि को समाप्त करने के लिये हमें योग्य प्रशासकों के साथ चरित्रवान प्रशासकों की भी आवश्यकता होती है। अत: उच्च कोटि के चरित्र वाले प्रशासक ही शिक्षा नीति तथा अच्छे शैक्षिक कार्यक्रमों को सफल बनाने में सहायक होंगे
7. समाज का विकास करने का सिद्धान्त - बालक समाज का एक अभिन्न अंग है। हमें शिक्षा के माध्यम से अपने देश के भावी नागरिकों में सामाजिक कौशलता उत्पन्न करने की चेष्टा करनी चाहिये। समाज और बालक एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। अत: बालक शिक्षा प्राप्त करके समाज के एक उपयोगी नागरिक के रूप में विकसित होता है। इसलिए शिक्षा - प्रशासन को समाज के विकास करने के लक्ष्य की अवहेलना कदापि नहीं करनी चाहिये।
8. मूल्यों के सापेक्ष महत्व पर महत्वपूर्ण निर्णय लेने का सिद्धान्त - किसी भी प्रशासक को शिक्षा सम्बन्धी सभी महत्वपूर्ण निर्णय कार्यों, योजनाओं तथा समस्याओं पर विचार उनके सापेधिक महत्व के आधार पर ही करना चाहिये। शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न समस्याओं का सही निराकरण कुशल प्रशासन के माध्यम से ही सम्भव है। अत: शिक्षा के क्षेत्र में प्रशासक को समस्त निर्णय यथाशीघ्र लेने चाहिये, जिससे अधिक से अधिक व्यक्तियों का हित हो सके।
9. व्यावसायिक प्रगति करने का सिद्धान्त - शिक्षा प्रशासन को अपने कर्मचारियों, विशेषत: शिक्षकों को व्यावसायिक प्रगति के विभिन्न अवसर प्रदान करने चाहिये। तभी कर्मचारियों की कार्यक्षमता में वृद्धि होने की सम्भावना बनी रहती है। व्यावसायिक प्रगति के अवसर प्रेरणा के रूप में कार्य करते हैं।
10. भौतिक तत्वों का उचित उपयोग करने का सिद्धान्त - प्रशासन में भौतिक तत्वों की भी आवश्यकता रहती है। धन, भवन फर्नीचर एवं अन्य सामग्री का प्रभावशाली उपयोग प्रशासन में दोष उत्पन्न होने से बचाता है। भौतिक तत्त्वों का उचित उपयोग कर्मचारियों के समय, श्रम तथा शक्ति का समुचित लाभ उठाने की सम्भावना में सहायक होता है। अत: कुशल प्रशासक सतर्कता से कार्य करते हुए शिक्षा के क्षेत्र में उपलब्ध भौतिक तत्त्वों का उपयोग करते हुए अनेक समस्याओं का निराकरण बिना किसी कठिनाई के कर सकते हैं।

शैक्षिक प्रशासन की प्रक्रिया (Process of Educational Administration)

शिक्षा प्रशासन में एक विशिष्ट कला की आवश्यकता होती है। इसमें नियमानुसार निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण किया जाना चाहिये, जिससे विधिवत् अध्ययन करके महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। शिक्षा प्रशासन के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक ज्ञान के साथ-साथ जब तक उसको मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का ज्ञान न होगा तब तक हम प्रशासक के रूप में अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों का सफल निर्वाह नहीं कर सकते हैं। इस दृष्टि से शिक्षा प्रशासन की प्रक्रिया को जानना प्रत्येक प्रशासक के लिये नितान्त आवश्यक है।

प्रशासन की सम्पूर्ण प्रक्रिया एक विशिष्ट विधि तथा प्रणाली पर निर्भर रहती है। अत: शिक्षा प्रशासन की सत्ता का कार्य उपयोगी तथा आवश्यक प्रक्रिया को विकसित करके शिक्षा की गतिविधियों का उपयुक्त रूप से संचालन करना है। शिक्षा प्रशासन की प्रक्रिया का स्वरूप आज की स्थिति में लोकतन्त्रीय होना चाहिये। शिक्षा प्रशासन की प्रक्रिया तभी सफल होगी जब प्रशासकों में लोकतन्त्रीय भावना, नेतृत्त्व की क्षमता, कार्यकुशलता एवं निर्णयात्मक शक्ति तीव्र होगी ।

1. संगठन के लक्ष्यों की व्याख्या करना - शिक्षा प्रशासन की प्रक्रिया का प्रथम सोपान संगठन के लक्ष्यों की व्याख्या करना है। इसके लिये शैक्षिक उद्देश्यों के दार्शनिक, समाजशास्त्रीय, सांस्कृतिक, नैतिक तथा आर्थिक आधारों का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है।
2. नियोजन करना - प्रशासन को कुशल बनाने के लिये यह आवश्यक है कि उसकी स्पष्ट रूपरेखा बनाकर पूर्णत: नियोजन किया जाय किसी भी कार्य को रूप से क्रियान्वित करने हेतु सुनिश्चित योजना बनाना आवश्यक है। अत: शिक्षा के क्षेत्र में भी शिक्षा-प्रशासन की एक सुनिश्चित योजना बनाना और उसे क्रियान्वित करना शिक्षा के लिये सुचारू लाभप्रद होगा। शिक्षा प्रशासन की योजना बनाते समय हमें निर्धारित उद्देश्यों, कार्य, कार्य-विधियों, साधनों, उपलब्ध सामग्री, कार्यकर्ताओं, सहयोगियों, योग्यताओं, अनुभवों तथा कुशलताओं आदि ध्यान में रखना चाहिये। यदि किसी प्रकार का पूर्व निर्धारण नहीं किया जायेगा तो लक्ष्य तक पहुंचने में असुविधा अवश्य होगी। शैक्षिक नियोजन एक प्रगतिशील प्रक्रिया है। इसमें न केवल वर्तमान को ध्यान में रखना होता है वरन भविष्य को भी ध्यान में रखना पड़ता है, अत: योजनाओं का निर्माण परिस्थितियों के आधार पर करना चाहिये। योजनाएँ भूत के अनुभवों के आधार पर वर्तमान परिस्थितियों में भविष्य के लिये बनायी जाती हैं।
3. संगठन करना - जे. बी. सीयर्स के अनुसार, "यह कार्य करने के लिये एक यन्त्र है। यह मुख्यत: मनुष्यों, सामग्री, विचार, प्रत्यय प्रतीक रूप तथा सिद्धान्त आदि के संगठन पर आधारित है। यन्त्र स्वचालित भी हो सकता है अथवा मानव की इच्छा और संकल्प से भी संचालित हो सकता है।" संगठन के अन्तर्गत दो प्रकार की व्यवस्थाएँ निहित हैं-मानवीय तथा भौतिक । मानवीय संगठन में शिक्षा समितियों, शिक्षकों, कर्मचारियों विद्यार्थियों एवं अन्य मानवीय तत्त्वों का समावेश रहता है। भौतिक संगठन में महाविद्यालय भवन, पुस्तकालय, प्रयोगशालाएँ, क्रोडास्थल, शैक्षिक सामग्री तथा फर्नीचर आदि सम्मिलित हैं।
4. कर्मचारी वर्ग की नियुक्ति करना - शिक्षा प्रशासन की प्रक्रिया का एक सोपान कर्मचारी वर्ग का चयन, नियुक्ति पद का स्पष्टीकरण, उन्नति आदि भी है। प्रशासन को ये कार्य अत्यन्त सतर्कता के साथ करने चाहिये।
5. नैतिक स्तर का निर्माण करना - कर्मचारियों के कार्य-विभाजन के पश्चात् शिक्षा प्रशासन को उनको अधिकतम कार्य करने के लिये विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिये। साथ ही उन्हें कार्य सन्तुष्टि प्रदान करने की चेष्टा की जानी चाहिये, जिससे उनके नैतिक स्तर को ऊंचा उठाया जा सके।
6. संचालन करना - संचालन के अन्तर्गत कार्य करने वाले व्यक्तियों तथा विभागों को आवश्यक निर्देश प्रदान किये जाते हैं। प्रशासन के अन्तर्गत संचालन निर्णय को प्रभावित करता है। यह इस बात का भी संकेत देता है कि कार्य को किस प्रकार करना है ? कब प्रारम्भ एवं समाप्त करना है ? सफल संचालन के लिये मानवीय सम्बन्ध स्थापित करने की क्षमता का होना नित्तान्त आवश्यक है। यदि प्रशासक में इस गुण का अभाव है तो वह अपनी योजनाओं का संचालन सफलतापूर्वक नहीं कर पायेगा।
7. सामंजस्य स्थापित करना - सामंजस्य से तात्पर्य हैख़संगठन के तत्वों में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करना। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत शिक्षा नीति एवं कार्यक्रम में सहयोग बने रहना आवश्यक है। अत: प्रशासन प्रक्रिया में विभिन्न तत्वों, संगठनों, कर्मचारियों तथा व्यक्तियों आदि के मध्य सामंजस्य स्थापित होना नितान्त आवश्यक है। प्रशासन के माध्यम से विभिन्न कर्मचारियों के कार्य विभिन्न स्तरों पर विभाजित किये जाते हैं परन्तु सम्पूर्ण प्रशासन की कार्य प्रणाली में एकता तथा समरूपता लाने के लिये उनमें सामंजस्य स्थापित करना नितान्त आवश्यक है।
8. रिपोर्ट तैयार करना - शिक्षा प्रशासन प्रक्रिया में रिपोर्ट तैयार करने का भी महत्त्व है। शिक्षा प्रशासक द्वारा संगठित किये गये सम्पूर्ण कार्यों का अवलोकन करने के पश्चात् रिपोर्ट तैयार की जानी चाहिये।
9. बजट बनाना - बजट बनाने से तात्पर्य है-शैक्षिक आवश्यकताओं की सूची बनाकर तथा उन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कार्यक्रम तैयार करना एवं इन कार्यक्रमों को वित्तीय मदों में अनुवादित करना। अत: किसी भी शैक्षिक कार्यक्रम के लिये बजट बहुत ही ध्यानपूर्वक बनाया जाना चाहिये। प्रशासक को आय के विभिन्न स्रोतों तथा व्यय के विभिन्न मदों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये। बजट बनाने के पश्चात् उसका निरीक्षण करना चाहिये ।
10. मूल्यांकन करना - विद्यमान पद्धति में दोष, परिवर्तन के प्रभाव, उद्देश्य के विकास एवं प्रसार, नवीन पद्धतियों को लागू करने के लिये मूल्यांकन नितान्त आवश्यक है। मूल्यांकन विधि प्रशासन में सुधार लाने हेतु नितान्त आवश्यक है। कोई भी प्रशासनिक प्रक्रिया तब तक पूर्ण नहीं होती, जब तक उसके परिणामों का उचित मूल्यांकन न कर लिया गया हो। मूल्यांकन द्वारा कार्य की वैधता तथा औचित्य का बोध होता है। अत: मूल्यांकन प्रशासनिक प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण अंग है एवं प्रशासन के किसी स्तर पर अथवा किसी व्यक्ति के कार्य की प्रगति अथवा गति का सही मापन हम मूल्यांकन द्वारा ही कर सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. एफ. एल. क्लैप, अच्छे शिक्षक के व्यक्तित्व, शोध अध्धयन, 1913
2. आर ए शर्मा , महाविद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन आर.लाल.बुक डिपो प्रष्ठ 23
3. जेसी अग्रवाल 1972 महाविद्यालय प्रशासन आर्य बुक डिपो करोल बाग नई दिल्ली पृष्ठ संख्या 5
4. Panday .K. P (1968)Evaluation in Education Meenakshi Prakashan Merrut Page No 233
5. खान मोहम्मद शरीफ 1979 एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन आशीष पब्लिशिंग हाउस राजौरी गार्डन न्यू दिल्ली
6. एस एस माथुर 1960, महाविद्यालय संगठन ,रस्तोगी एंड कंपनी मेरठ प्रष्ठ 183
7. राय बन डब्ल्यूएम, 1955 महाविद्यालय संगठन, अपर इंडिया पब्लिशिंग हाउस लखनऊ प्रष्ठ 23
8. स्टोगडिल, शिक्षाविद्
9. जेसी अग्रवाल 1972 महाविद्यालय प्रशासन आर्य बुक डिपो करोल बाग नई दिल्ली पृष्ठ संख्या 9
10. राय बन डब्ल्यूएम 1955 महाविद्यालय संगठन अपार इंडिया पब्लिशिंग हाउस लखनऊ

मौर्य सम्राट् अशोक के अभिलेखों में वर्णित जनकल्याणकारी नीतिः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

कोमल तूनवाल

शोधार्थी (नेट-एस..आर.एफ), अहिंसा एवं शांति विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं, (जिला-नागौर) राजस्थान

प्रस्तावना

विश्व के अधिकांश राष्ट्रों में हर युग में कई शासक हुए है जिनमें से कुछ ने महान योद्धा के रूप में तो कुछ ने अहिंसावादी प्रणेता के रूप में अपने अस्तित्व को बनाए रखा। भारतीय इतिहास में कई ऐसे शासक हुए जो कहीं विशाल साम्राज्य निर्माता के रूप में तो कहीं धार्मिक व सन्यांसी के रूप में दृष्टिगत हुए। इन्ही में से एक बहुआयामी व्यक्तित्व का महान पुरूष सम्राट अशोक मौर्य था जिसने विश्व के राजनीतिक मंच पर राजनीतिक अहिंसा, विश्व बन्धुता, धार्मिक समन्वयता व मानवता का उद्घोष किया। अशोक के ये विचार, उसका सामाजिक दृष्टिकोण, दार्शनिक चिन्तन एवं राजनीतिक सूझ बूझ उसके अभिलेखों में स्पष्ट रूप से प्रकट होते है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन में अशोक के अभिलेखों में उल्लेखित जनकल्याणकारी, मानवतावादी एवं सर्वधर्म समभाव पर आधारित नीतियों का अध्ययन करना।
2. प्रस्तुत शोध अध्ययन में विश्वशांति एवं सद्भाव के संबंध में अशोक की नीतियों का अध्ययन करना।

उपकल्पना

1. अभिलेखों में उल्लेखित नैतिक आदेश व्यक्ति के हृदय परिवर्तन व मानव कल्याण में सहायक है।
2. मानव कल्याण हेतु अभिलेखों में उल्लेखित नैतिक आदेशों की पालना से मस्तिष्क की स्थिरता व शांति प्राप्त की जा सकती है।
3. विश्व के कई देशों में व्याप्त हिंसा के माहौल में मानवतावाद व शांति की स्थापना की जा सकती है।

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध कार्य को सम्पादित करने के लिए सामाजिक विज्ञान में उपयोग होने वाले अध्ययन पद्धति का सहारा लिया गया है। शोध प्रविधि मुख्यतः पुस्तकालीय अध्ययन पर आधारित है। इस शोधकार्य में आवश्यकतानुसार विवेचनात्मक, समालोचनात्मक पद्धति का आश्रय लिया गया है। इस अध्ययन के दौरान

विषय से सम्बन्धित सार्थक पुस्तकों, लेखों, इंटरनेट एवं अन्य स्त्रोतों की सहायता ली गई है।

साहित्यावलोकन

1. डॉ. राजबलि पाण्डेय[1] ने अपनी पुस्तक 'अशोक के अभिलेख' में सम्राट अशोक के चर्तुदश शिलालेखों को मूल भाषा एवं हिन्दी रूपान्तरण में प्रस्तुत किया है।
2. डी. आर. भण्डारकर[2] ने अपनी पुस्तक 'अशोक' में मौर्य सम्राट् अशोक के प्रारम्भिक जीवन से लेकर उसके साम्राज्य, प्रशासनिक व्यवस्था के साथ ही उसके द्वारा बौद्ध धर्म के प्रसार हेतु किए गए प्रयासों का उल्लेख किया है।
3. के.ए.नीलकंठ शास्त्री[3] द्वारा कृत पुस्तक 'नंद-मौर्य युगीन भारत' में मौर्य सम्राट् अशोक द्वारा बौद्धधर्म के प्रचार के लिए किए गए प्रयासो का वर्णन किया गया हैं।

प्राचीन हिन्दू राजधर्म का आदर्श वाक्य 'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवस नरक अधिकारी' को सम्राट् अशोक ने अपना ध्येय वाक्य मानते हुये प्रजा के कल्याण हेतु प्रयास किए।[4] अशोक सामान्यतः मनुष्यों का हितैषी था जिसका प्रमाण उसकी धम्म विजय की नीति में देखने को मिलता है। अशोक की धम्म-विजय की नीति एवं उसके अभिलेखों के कारण, विश्व के इतिहास में उसे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कलिंग युद्ध के पश्चात् अशोक ने अपनी साम्राज्य की शक्ति का उपयोग अन्य देशों को जीतने की अपेक्षा जन कल्याण हेतु किया। उसके अनुसार वास्तविक विजय शस्त्रों की बजाय धम्म के द्वारा

प्राप्त की जा सकती है, जो कि सभी के लिये हितकर एवं दीर्घकाल तक स्थिर होती है। कलिंग विजय में हुये भीषण जन-विनाश के पश्चात् अशोक ने शस्त्र विजय के स्थान पर धम्म विजय की नीति को अपनाया। सम्राट् अशोक द्वारा उत्कीर्ण लेखों में बारम्बार 'धम्म' के अभिप्राय को स्पष्ट किया गया है एवं विभिन्न प्रकार के धम्म की जो तुलना की गई उसका मुख्य उद्देश्य यही था कि जनता को उसकी धम्म-नीति से अवगत कराया जाये। इसके संबंध में किसी भी प्रचार-प्रसार के लिये वह प्रयत्नशील था। अशोक ने अपने अभिलेखों में धम्म के अभिप्राय के साथ ही अधम्म अर्थात् पाप के बारे में भी उल्लेख किया। इसके संबंध में उसने अपने एक लेख में वर्णन किया कि ''देवानां प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा - (मनुष्य स्वकृत) कल्याण को ही देखता हैं, 'मैनें यह कल्याणकारी कार्य किया'। उसे (स्वकृत) थोड़ा पाप भी दिखायी नहीं देता, 'मुझसे यह पाप किया गया, या यह कार्य आसीनव (पाप) है।' निसंदेह, पाप को देख सकना कठिन ही है। किंतु यह अवश्य देखना चाहिये कि ये सब पाप की ओर ले जाने वाले हैं, जैसे चण्डता, नैष्ठुर्य, क्रोध, अहंकार और ईर्ष्या; और इनके कारण मैं कहीं अपने को भ्रष्ट न कर दूं।''[5] इस इस अभिलेख के माध्यम से सम्राट् अशोक ने चण्डता, निष्ठुरता, क्रोध, अभिमान एवं ईर्ष्या को पाप (आसिनव) के रूप में वर्णन कर सभी मनुष्यों को इनसे मुक्त रहने का निर्देष दिया है।

अशोक ने जनकल्याण के प्रयोजन हेतु कार्य किए। लोककार्यों को उसने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' उक्ति को ध्यान में रखकर किया। इसके संदर्भ में उसने अनेकविध दानपुण्य, निर्माणकारी कार्य किए यथा - पेड़ लगाना, सड़कों का निर्माण करना, चिकित्सालयों की स्थापना इत्यादि। इनकी क्रियान्वति हेतु अशोक ने धर्ममहामात्रों व अन्य मुख्य अधिकारियों की नियुक्ति की। इसके साथ ही उसने अपनी पटरानी, अन्य रानियों और राजकुमारों को भी इस प्रयोजन के लिये प्रेरित किया कि वे दान-पुण्य करें और इस कार्य को वे धर्ममहामात्रों एवं अन्य मुख्य अधिकारियों के द्वारा संपन्न करायें। अशोक के द्वारा किये गये लोकहित कार्य का उल्लेख कालसी शिलालेख के द्वितीय अभिलेख में मिलता है- ''देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा द्वारा साम्राज्य में सर्वत्र तथा सीमांत राज्यों में यथा चोल, पाण्ड्य, सत्तियपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णी, अंतियोक नामक यवनराज तथा उस अंतियोक के जो पड़ौसी राजा हैं सर्वत्र देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी ने दो प्रकार की चिकित्सा - मनुष्यों की चिकित्सा और पशुओं के लिये उपयोगी औषधियां भी जहां-जहां नहीं थी मंगवाकर सर्वत्र रोप दी गयी हैं। इसी प्रकार जहां-जहां मूल और फल नहीं थे, मंगवाये गये और सर्वत्र रोपे गये। मार्गों में पशुओं और मनुष्यों के उपयोग के लिये वृक्ष लगाये गये हैं और कुएं खुदवायें गये हैं।''[6] इसके अतिरिक्त अपने सातवें स्तंभलेख में उसने कहा कि देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा कि मार्गों में मैनें वटवृक्ष रोपवा दिये हैं जो कि पशुओं के लिये छांव प्रदान करेंगे, आमों की वाटिकायें लगायी गई है। आधे-आधे कोस पर कुएं खुदवायें गये हैं एवं आराम-गृह बनवाये गये हैं। पशुओं एवं मनुष्यों के उपयोग के लिये बहुत से प्याऊ मेरे द्वारा चलाये गये हैं। परंतु यह सब प्रतिभोग बहुत थोड़े हैं क्योंकि विभिन्न प्रकार के सुख पहुंचाने वाले कार्य पहले के राजाओं द्वारा एवं मेरे द्वारा लोग सुखी बनाये गये। इस धर्म के आचरण का लोग अनुसरण करें इसलिये मैनें यह किया है।[7] यात्रा को आरामदायक बनाने हेतु उसके द्वारा सड़कों के दोनों किनारों पर वटवृक्ष एवं आम जैसे वृक्षों को लगवाकर आधे-आधे कोस की दूरी पर कुएं एवं सरायें बनवाई गई। पशुओं एवं मनुष्यों की चिकित्सा के हेतु औषधियों की समुचित -व्यवस्था की गई एवं विभिन्न चिकित्सालय खुलवायें गये। इसके लिये उसके द्वारा चिकित्सालयों में चिकित्सकों की समुचित व्यवस्था की गई तथा बहुत-सी जड़ी-बूटियों एवं फलों के पेड़ों को बाहर से मंगवाकर लगवायें गये। काठियावाड़ में गिरनार के रूद्रदामा के शिलालेख में वर्णित हैं कि अशोक मौर्य के आदेश से यवनराज तुशास्फ के द्वारा कृषकों के उपयोग के लिये सुदर्शन झील में से नहरें निकाली गई।[8] इसके अतिरिक्त उसने अपने राजकर्मचारियों को आदेश दिया कि वे जनता के कल्याण हेतु सतत् प्रयत्नशाील रहें, किसी को भी बिना कारण दंड न दे एवं किसी के साथ कठोरता का बर्ताव ना करें।

अशोक के अभिलेखों में वर्णित नैतिक शिक्षाओं से जनता के चरित्र में कुछ सुधार हुआ एवं अहिंसा का प्रसार भी संभव हुआ। सुधारक के रूप में सम्राट अशोक आत्मविश्वासी था। इस सन्दर्भ में उसके शिलालेख में वर्णन मिलता है-''अब महामहिम सम्राट के धर्मप्रेम के कारण युद्ध घोषणाओं की प्रतिध्वनि न्याय और नियम की प्रतिध्वनि के रूप में बदल गई है।..... जैसा कि पहले बहुत वर्षों से संभव न हो सका था, महामहिम सम्राट द्वारा धर्म राज्य की स्थापना के बाद जीवधारियों की हत्या और हिंसा बहुत कम हो गई है, संबंधियों के प्रति सम्यक् व्यवहार, ब्राह्मणों के प्रति सम्यक् व्यवहार और माता पिता के प्रति आदर की भावना में विकास हुआ है। इस प्रकार धर्मानुशासन में वृद्धि हुई है और सम्राट इस धर्म व्यवस्था को और अधिक विकसित करेंगे।.....सम्राट के पुत्र और प्रपौत्र सृष्टि के अन्त तक इस धर्म व्यवस्था को जारी रखेंगे।[9]'' अशोक ने संप्रदायों में परस्पर विद्यमान कटुता एवं विद्वेश को समाप्त करने के हेतु एवं सभी सम्प्रदायों का ध्यान धर्म के सारतत्व की ओर केन्द्रित करने हेतु धर्ममहामात्र के पद का सजृन किया। इस नवीन पद का सृजन अशोक ने अपने राज्याभिषेक के तेरहवें वर्ष में किया। इनकी नियुक्ति का मुख्य ध्येय था धर्म की वृद्धि हेतु उद्योग करना। सभी धर्म व सम्प्रदाय इनके अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आते थे एवं जिसका मुख्य कार्य था धर्म का प्रचार-प्रसार करना तथा जनता में नैतिक आचरण की स्थापना करना। इसके अतिरिक्त इन अधिकारियों का यह भी दायित्व था कि वे स्थिति एवं आवश्यकतानुरूप बंदियों को मुक्त करायें, उनकी सजा को कम करायें व उन्हें अनावश्यक यंत्रणा के द्वारा मुक्त करवाने का प्रयत्न करें। इन धर्ममहामात्रों की नियुक्ति मौर्य-साम्राज्य से लेकर सीमांतवर्ती स्वतंत्र राज्यों में भी नियत की गई थी। धम्म महामात्रों की नियुक्ति के संबंध में अशोक ने बताया कि ''बहुत समय बीता भूतकाल में धम्म महामात्र नामक (अधिकारी) नहीं थे। परन्तु (राज्याभिशेक) के तेरह वर्ष पश्चात, धम्म-महामात्र नियुक्ति किए गए। धर्म की स्थापना के लिए वे सब पाशण्डों (धार्मिक सम्प्रदायों) में व्याप्त है..... उने धर्मयुक्तों (धार्मिक कार्य करने वालों) का जो यवन, कम्बोज, गंधार, राष्ट्रीक, प्रतिष्ठानिक (अथवा पैत्रयणिक) ताथा अप्य अपरांतों (पश्चिमी सीमा प्रांतों में) भतृक (नौकर) तथा आर्य (स्वामी) में हिस-सुख के लिये और धर्मयुतों की लोभ से मुक्ति के लिए नियुक्त है। बंधन बद्ध (कैदी) की सहायता के लिए, बच्चों वाल, जादू-टोनों से आविष्ट स्थविरों (वृद्ध) में वे व्यस्त है। पाटलिपुत्र में बाहर के सब नगरों में जो भी अन्य जाति के लोग है (इन सबके) सर्वत्र वे नियुक्त है।''[10] अशोक के उपरोक्त लेख से स्पष्ट होता है कि अशोक द्वारा धर्ममहामात्र की नियुक्ति न केवल मौर्य साम्राज्य में अपितु उसके साम्राज्य की सीमा पर स्थित यवन, कंबोज व गांधार राज्य एवं अन्य अपरांत राज्यों तक की गई थी। ये धर्ममहामात्र सब संप्रदायों के मध्य इस प्रयोजन हेतु कार्य करते थे जिससे कि लोग धर्म के तत्व को महत्व दें, वाणी संयम देते हुये दूसरों की निंदा से बचे एवं परस्पर मेलजोल से रहते हुये सौहार्द्रपूर्ण जीवन व्यतीत करें। इस बात को स्पष्ट करते हुये अशोक ने चतुर्दश शिलालेख के 12वें लेख में वर्णित किया कि ''देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा सभी संप्रदायों, संन्यासियों को दान एवं विभिन्न प्रकार की सत्कार से पूजते (आदर करते) हैं। परंतु दान एवं पूजा को देवानांप्रिय उतना नहीं मानते जितना इस बात को कि सभी संप्रदायों में सार (तत्व) की वृद्धि हो। सार तत्व विभिन्न प्रकार से होते,

किंतु उसका मूल वाणी का संयम है। यह कैसे? क्योंकि बिना किसी प्रसंग के अपने संयम की प्रशंसा एवं दूसरे संप्रदाय की निंदा नहीं करनी चाहिये। प्रसंग होने पर भी (अपने संप्रदाय की प्रशंसा एवं दूसरे के संप्रदाय की निंदा) बहुत कम करनी चाहिये। जब कभी भी प्रसंग हो दूसरे संप्रदायों की पूजा (आदर) करनी चाहिये। ऐसा करने पर अपना संप्रदाय क्षीण होता हैं और दूसरे संप्रदायों का अपकार। जो कोई अपने संप्रदाय की पूजा (आदर) करता है और दूसरों के संप्रदाय की निंदा करता हैं, वह सब अपने संप्रदाय की भक्ति के कारण कि किस प्रकार अपने संप्रदाय को प्रकाशित किया जाय परंतु इस प्रकार करता हुआ (मनुष्य) अपने ही संप्रदाय को हानि पहुंचाता है। इसलिये समवाय (मेलजोल) साधु (अच्छा) हैं। कैसे? सब एक-दूसरे के धर्मो को सुनें और उसकी सेवा करें। ऐसी ही देवानांप्रिय की इच्छा है कि सब सम्प्रदाय बहुश्रुत और कल्याणगामी हो। सभी धर्म को माननेवालों को कहना चाहिये कि देवानांप्रिय राजा दान और पूजा को इतना नहीं मानता जितना कि सभी सम्प्रदायों के सार (तत्व) की वृद्धि को।''[11] उपरोक्त लेख से स्पष्ट है कि अशोक ने साम्प्रदायिक सौहार्द्र को अपनी जनकल्याणकारी नीति में प्रमुख स्थान दिया है। अशोक सदैव एवं सर्वत्र अपनी प्रजा के हित के लिए तत्पर रहता था। इस संदर्भ में उसके छठें अभिलेख में उल्लेख मिलता है कि महामात्र जनता के कार्यों के प्रति उसे अवगत कराते रहे, चाहे वह भोजन कर रहा हो, अन्तःपुर में हो, शयनगृह में हो या उद्यान में हो।[12] अशोक न केवल अपने साम्राज्य में अपितु विश्व के प्रत्येक भाग में हिंसा, पाप, अमानुशिकता, ईर्ष्या, द्वेष, पराभव इत्यादि के स्थान पर अहिंसा, प्रेम, पुण्य, मानवीयता, श्रद्धा व सहिष्णुता का बीजारोपण करना चाहता था। यहां यह बात ध्यातव्य है कि अशोक ने कभी अपने धर्म को किसी पर बलपूर्वक थोपना नही चाहा।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अशोक के द्वारा समस्त जीवधारियों के हितों के लिये एवं उनके जीवन को सुखमय बनाने के हेतु विभिन्न प्रसाधनों को एकत्रित करने का सफलतम प्रयास किया गया। उसकी निश्चायक घोषणा थी कि सम्पूर्ण प्रजा के कल्याण से अधिक महत्व का अन्य कोई कार्य नहीं। विशाल साम्राज्य के बाद भी वह स्वंय अपने साम्राज्य के प्रत्येक भाग एवं प्रत्येक वर्ग की जनता से स्वंय सम्पर्क स्थापित करने को महत्व देता था। उसके अभिलेखों से यह निश्चित रूप से स्पष्ट होता हैं कि सम्राट् एवं उसके अधिकारी सदैव अपनी प्रजा के कल्याण के लिये तत्पर रहते थे। अशोक के अभिलेखों में वर्णित नैतिक शिक्षाओं से जनता के चरित्र में कुछ सुधार हुआ एवं अहिंसा का प्रचार भी संभव हुआ। समाज में लोगों द्वारा मांस मदिरा के सेवन में कमी आयी। अशोक द्वारा अपनाई गई धर्मविजय की नीति के कारण युद्ध घोषणाएं न्याय और नियम का रूप ले चुकी थी। इसी के परिणामस्वरूप जीवधारियों की हत्या और हिंसा कम हुई एवं समाज में परस्पर सम्यक् व्यवहार व माता-पिता के प्रति आदर की भावना में वृद्धि हुई। अशोक ने इस व्यवस्था को जारी रखने का आदेष अपने उतराधिकारियों को भी दिया। किसी भी समाज, राष्ट्र में शांति व अहिंसा का वातावरण बनाये रखने हेतु आधुनिक मूल्यों यथा समाजवाद, प्रजातंत्र, सामाजिक न्याय, स्वतंत्रता एवं मानवीय संवेदनषीलता आवष्यक हैं। अशोक के अभिलेखों में उल्लेखित नैतिक आदेष अति सरल विशुद्ध व्यावहारिक और सर्वग्राही आचार तत्वों से समन्वित है जो आज के अषांत वातावरण में मानवतावाद के साथ शांति की स्थापना एवं प्रसार हेतु प्रांसगिक हैं।

सन्दर्भ

1. पाण्डेय राजबली, 'अशोक के अभिलेख' ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, संवत् 2022
2. भण्डारकर डी. आर. 'अशोक', एस चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 1960
3. शास्त्री नीलकंठ, 'नंद-मौर्य युगीन भारत', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1969
4. मेहता गंगाप्रसाद, 'प्राचीन भारत', काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 1966, पृ. सं. 137
5. पाण्डेय राजबली, पूर्वोक्त, पृं.सं 142
6. उपरोक्त, पृं.सं 23
7. उपरोक्त, पृ.सं. 150
8. मेहता गंगाप्रसाद, पूर्वोक्त, पृ.सं. 140
9. डूरेन्ट विल, 'सभ्यता की कहानीः भारत और उसके पड़ौसी देश, किताब महल प्राइवेट लिमिटेड, 1965 पृ.सं. 52
10. पाण्डेय राजबली, पूर्वोक्त, पृं.सं. 7-8
11. उपरोक्त, पृं.सं. 16
12. उपरोक्त, पृ.सं. 11

आर्थिक सुधार और क्षेत्रीय असमानता

नरेन्द्र कुमार जारवाल

शोधछात्र, राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान.

डॉ० मंजू यादव

एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान

सारांश

1990 के दशक की शुरुआत वो समय था, जब एक के बाद एक कमजोर सरकारों ने भारत को आर्थिक, राजनीतिक और सामरिक रूप से नेतृत्वविहीन बना दिया था। दुनिया में परिवर्तन की आंधी चल रही थी और भारत की अर्थव्यवस्था सूखे पत्ते की तरह कांप रही थी। अयोध्या का विवाद और जाति आधारित आरक्षण के मुद्दे पर देश के विभाजन खघ्तरा मंडरा रहा था।

1991 में भीषण आर्थिक संकट की वजह से भारत को अपना सोना गिरवी रखना पड़ा। तत्पश्चात नरसिंह राव और मनमोहन सिंह ने आर्थिक सुधारों की लंबी श्रंखला की शुरुआत, जिससे धीरे-धीरे भारत में विदेशी पूँजी निवेश बढ़ा और अमेरिका, भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक सहयोगी बना। 1991 के बाद से भारतीय अर्थव्यवस्था में मजबूती और स्थिरता का दौर आरम्भ हुआ, और इसमें हर साल लगभग 8% से अधिक की वृद्धि दर्ज हुई। फिर भी मूलभूत ढाँचे में अपेक्षित प्रगति न होने से एक समूह अभी भी नाखुश है, साथ ही आबादी का एक बड़ा हिस्सा इन सुधारों के लाभ से वंचित है।

आर्थिक विसमता, देश के विकास में बाधा उत्पन्न करती है। भले ही भारत की आर्थिक विकास दर तेज रही है, फिर भी बढ़ती आर्थिक असमानता की खाई कम नहीं हुई। सरकार की तमाम नीतियां इस आर्थिक असमानता को दूर करने में अब तक असफल रही हैं।

विगत कुछ सालों में वृद्धि, घाटा, व्यापार (निर्यात और आयात), निवेश, बचत, रोजगार आदि तमाम आर्थिक संकेतक नकारात्मक हो चुके हैं। एक मात्र कृषि है जो सरकारी उपेक्षा के बाद भी अर्थव्यवस्था को मजबूती से संभालने की कोशिश कर रही है।

मूल शब्दः आर्थिक सुधार, विकास, वृद्धि, घाटा, व्यापार, असमानता

परिचय

'आर्थिक सुधार' एक व्यापक अर्थ वाला शब्द है, जिसका उपयोग न्यूनतम सरकारी नियंत्रण, करों की दर, निजी कम्पनियों की अधिक भागीदारी आदि के सन्दर्भ में किया जाता है। 'आर्थिक सुधार' और उदारीकरण के पक्ष में मुख्यतः कार्य कुशलता और सबको ज्यादा लाभ का तर्क दिया जाता है।

उदारवादी आर्थिक संस्थायें (विश्व बैंक, आईएमएफ आदि) किसी देश को ऋण तभी देते हैं, जब वह उनकी तमाम शर्तों को मान ले। 1991 में अपनाया गया भारतीय आर्थिक सुधार इसका उदाहरण है। भारत से पहले 1982 में मैक्सिको भी इसी अनुभव से गुजर चुका है।

1991 के भारतीय आर्थिक सुधार इस दृष्टिभ से वृहद प्रयास थे कि, इनमें विदेश व्याकपार उदारीकरण, विघ्तीय उदारीकरण, कर सुधार और विदेशी निवेश के प्रति आग्रह शामिल था। इन उपायों ने भारतीय अर्थव्य वस्थाी को गति देने में मदद की। सकल स्वयदेशी उत्पौद की औसत वृद्धि दर (फैक्टोर लागत पर) जो 1951-91 के दौरान 4.34 प्रतिघ्शत थी, 1991-2011 के दौरान 6.24 प्रतिशत तक बढ़ गयी। 2015 में भारतीय अर्थव्यवस्था 2 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर से आगे निकल गयी।

क्षेत्रीय असमानता क्या है?

क्षेत्रीय असमानता का अर्थ है; देश के विभिन्न राज्यों की आर्थिक स्थिति तथा प्रति व्यक्ति आय में पाया जाने वाला अंतर। देश के कुछ राज्यों जैसे पंजाब, गोवा, हरियाणा, महाराष्ट्र, गुजरात आदि के आर्थिक विकास की दर एवम् प्रति व्यक्ति आय बहुत अधिक है। इसके विपरीत बिहार, उड़ीसा, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, असम आदि राज्यों की आर्थिक विकास दर एवम् प्रति व्यक्ति आय कम है।

वर्ष 2015-16 में, आंध्र प्रदेश की वृद्धि दर (10.99%), बिहार की (10.27%) और मध्य प्रदेश की (10.16%) रही जबकि महाराष्ट्र की (8%), उड़ीसा (6.16%) और पंजाब (5.96%) थी।

Table 1: Per Capita of Region wise (constant price)(Ten thousands)

Region's	1991-1995		1996-2000		2001-2005		2006-2010		2011-2015		2016-2018	
	Value	Rank	Value	Rank	Value	Rank	Value	Rank	Value	Rank	Value	Rank
Northern	2.9	2	8.1	2	15.3	2	20.3	3	40.4	3	33.3	2
Northeast	0.8	6	4.2	4	8.6	4	14.3	4	37.2	4	19.3	5
Central	1.5	4	3.8	5	6.7	5	11.3	5	27.1	5	20.4	4
Eastern	1.4	5	3.4	6	6.1	6	9.5	6	19.5	6	14.9	6
Western	3.7	1	9.7	1	15.8	1	29.6	1	65.2	1	41.2	1
Southern	1.9	3	5.2	3	10.7	3	20.7	2	44.6	2	31.8	3
All India	12.4		33.9		63.4		106.0		234.3		161.1	

Source:Handbook of Statistics in Indian States RBI Report, 2019.

बिहार राज्य की पूरी जीडीपी साल 2017-18 में उतनी ही थी, जितना वह साल 1990 में हुआ करती थी। लेकिन गुजरात की कुल जीडीपी बिहार और झारखंड से भी ज्यादा है। यही हाल दक्षिण के राज्यों के साथ है। उनकी प्रति व्यक्ति आय भारत के बीमारू राज्यों यानी कि बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा से ज्यादा है। आकार के लिहाज से साल 1990 में दुनिया में भारत की अर्थव्यवस्था का स्थान 12वां था, जो 2019 में बढ़कर छठवें स्थान पर पहुंच गया। लेकिन जब प्रति व्यक्ति आय के आधार पर देखा जाए तो भारत की अर्थव्यवस्था दुनिया के 176 देशों के बीच 133वें पायदान पर खड़ी मिलती है। इसका मतलब है कि बढती अर्थव्यवस्था से भी लोगों के जीवन स्तर में विशेष बदलाव नहीं आया है।

Table 2: Net State Domestic Product (constant price)(Millions)

Regions	1991-1995		1996-2000		2001-2005		2006-2010		2011-2015		2016-2018	
	Value	Rank	Value	Rank	Value	Rank	Value	Rank	Value	Rank	Value	Rank
Northern	3.9	5	11.5	5	22.9	5	39.8	5	95.2	5	69.1	5
Northeast	0.7	6	1.7	6	3.7	6	5.8	6	12.8	6	7.1	6
Central	8.7	2	20.8	2	37.5	3	61.6	3	142.4	3	108.2	3
Eastern	7.3	4	17.9	4	35.9	4	57.7	4	123.1	4	100.8	4
Western	14.1	1	35.2	1	62.9	1	128.1	1	284.7	1	216.2	1
Southern	7.8	3	20.1	3	39.5	2	73.1	2	180.0	2	148.7	2
All India	42.7		107.4		202.6		366.4		838.4		650.4	

Source: Handbook of Statistics in Indian States RBI Report, 2019

भारत में आर्थिक विकास न्यायसंगत नही है। अधिकांश निवेश दिल्ली, मुंबई जैसे महानगरों और विकसित राज्यों में होता है। जबकि बिहार, उत्तर प्रदेश, ओडिशा जैसे क्षेत्र कम निवेश के कारण पिछड़े बने हुए हैं।

आर्थिक असमानता के प्रकार

भारत में आर्थिक असमानता की गणना, उपभोग, वितरण और आयकर के आधार पर की जाती है।

भारत में आर्थिक असमानता के चार प्रकार हैं:-

1. आय में अंतर
2. लोगो के खर्च व व्यय में असामनता
3. संपत्ति में असमानता
4. क्षेत्रीय असमानता

भारत में आर्थिक असमानता ऐसी है कि देश की कुल कमाई का 90% हिस्सा 10% लोगो के पास है, बाकी 10% पूंजी पर 90% लोग गुजारा करते हैं।

उपभोग व व्यय में व्याप्त असमानता में जरूरतों पर खर्च बहुत कम तथा उपभोग की वस्तुओं पर बहुत अधिक खर्च किया जाता है। एक बहुत बड़े वर्ग को जीने के लिए भारी संघर्ष करना पड़ता है, इसके विपरित बहुत कम लोग है, जिन्हें विलासितापूर्ण उपभोक्तावादी जीवन मिलता है।

क्षेत्रीय असमानता के अध्ययन से पता चलता है कि, भारत के तटीय राज्य, देश को सबसे ज्यादा कमा के देते है और उत्तर तथा उत्तर-पूर्व के राज्य, केंद्र से लेते हैं। इससे भारत के राजकोशीय घाटे के साथ ही अमीर और गरीब राज्यों के बीच वैमनष्य लगातार बढता जा रहा है।

भारत में गरीबी

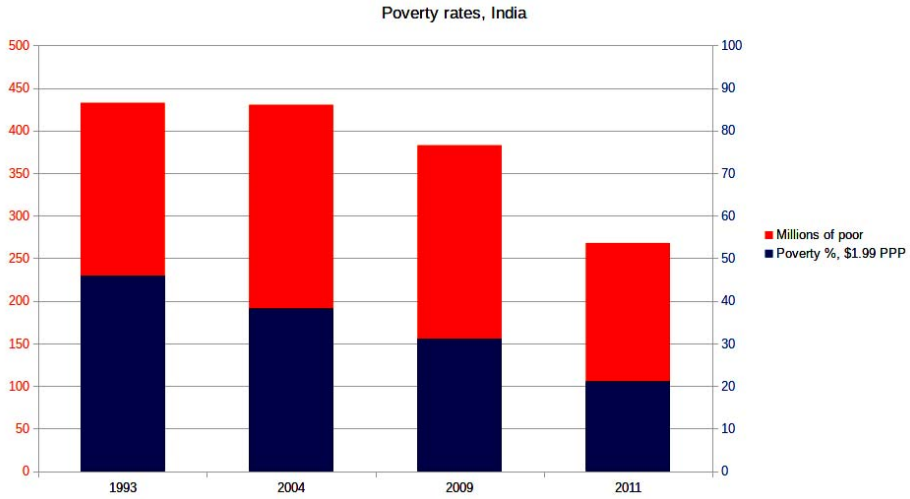

चित्रः भारत में निर्धनों की संख्या लगातार घट रही है।

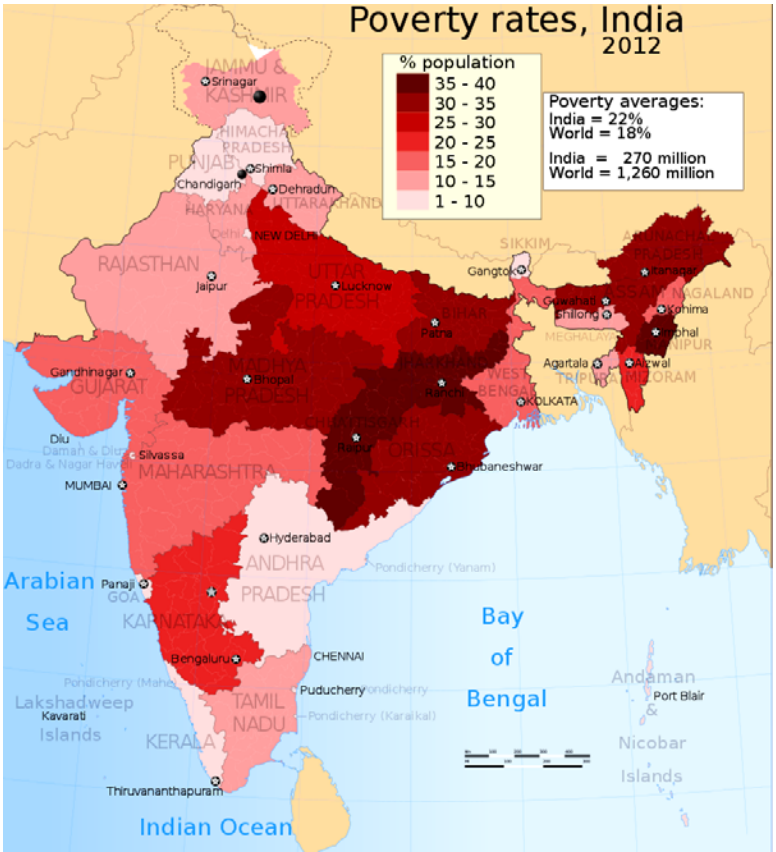

चित्रः भारत के विभिन्न क्षेत्रों में निर्धनता दर (सन २०१२ में)

भारत में गरीबी बहुत व्यापक है, किन्तु बहुत तेजी से कम भी हो रही है। अनुमान है कि विश्व की सम्पूर्ण गरीब आबादी का तीसरा हिस्सा भारत में बसता है। 2010 में विश्व बैंक ने सूचना दी कि भारत के 32.7% लोग रोजना की ₨ 1.25 की अंतर्राष्ट्रीय गरीबी रेखा के नीचे रहते हैं और 68.7% लोग रोजना की ₨ 2 से कम में गुजारा करते हैं।

योजना आयोग के साल 2009-2010 के आंकड़ों के अनुसार पिछले पांच सालों में देश के गरीबों की तादाद 37.2 फीसदी से घटकर 29.8 फीसदी पर आ गई है।

नए सरकारी फार्मूले के अनुसार अब शहरों में महीने में 859 रुपए 60 पैसे और ग्रामीण क्षेत्रों में 672 रुपए 80 पैसे से अधिक खर्च करने वाला व्यक्ति को गरीब नहीं माना गया है। 2011-2012 में गरीबी रेखा ग्रामीण क्षेत्र में 816 रुपये और शहर में 1000 रुपये निर्धारित की गई।

Table 3: Region's wise HDI(percent)

Regional's	1995		2000		2005		2010		2015		2018	
	Value	Rank	Value	Rank	Value	Rank	Value	Rank	Value	Rank	Value	Rank
Northern	0.54	2	0.57	2	0.61	2	0.64	2	0.69	1	0.70	1
Northeast	0.49	5	0.52	4	0.56	4	0.64	4	0.66	3	0.66	4
Central	0.49	4	0.52	5	0.55	5	0.56	5	0.59	5	0.61	5
Eastern	0.46	6	0.48	6	0.51	6	0.54	6	0.58	6	0.59	6
Western	0.49	3	0.53	3	0.58	3	0.63	3	0.66	4	0.67	3
Southern	0.54	1	0.58	1	0.63	1	0.66	1	0.69	2	0.70	2
All India	0.50		0.54		0.58		0.62		0.65		0.66	

Source:Sub National Human Development Index, 2019.

भारत में गरीबों की संख्या पर विभिन्न अनुमानों के आधार पर निकाली जाती हैं। आधिकारिक आंकड़ों पर भरोसा करें, तो भारत की 37 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा के नीचे है। जबकि एक दूसरे अनुमान के मुताबिक ये आंकड़ा 77 प्रतिशत हो सकता है। भारत में महंगाई दर में भी लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है।

कई विश्लेषकों का कहना है कि मासिक कमाई पर गरीबी रेखा के आंकड़ें तय करना सही नहीं है। साल 2011 की विश्व बैंक रिपोर्ट में सामने आया था कि गरीबी से लड़ने के लिए भारत सरकार के प्रयास पर्याप्त साबित नहीं हो पा रहे हैं।

आर्थिक सुधारों की असफलता

साल 1990 में खूब प्रचार-प्रसार किया गया कि आर्थिक सुधारों से भारत की अर्थव्यवस्था मजबूत होगी, आयात कम और निर्यात ज्यादा होगा। लेकिन साल 1990 में भारत की कुल जीडीपी में निर्यात की हिस्सेदारी जो तकरीबन 5.6 प्रतिशत थी, साल 2013-14 में बढ़कर तकरीबन 16 फीसदी के आसपास पहुंच गयी। लेकिन बाद में इसमें लगातार गिरावट आई।

2019-20 में भारत की कुल अर्थव्यवस्था में निर्यात की तुलना में आयात में खूब इजाफा हुआ। साल 1990 की कुल जीडीपी में आयात की हिस्सेदारी 7 फीसदी से बढ़कर अब 27 फीसदी हो चुकी है। यानी हमने दूसरे देशों से माल और सेवाएं ज्यादा खरीदी हैं और दूसरे देशों में अपने माल और सेवाएं कम बेचे हैं। इसका मतलब यह है कि हमारी वजह से दूसरे देशों को ज्यादा रोजगार मिला है और हमें कम। भ्रष्टाचार को लेकर 1990 के बाद से लेकर अब तक लोगों के मन में कोई खास परिवर्तन नहीं आया। पिछले 30 सालों में गरीबी की स्थिति पर कोई उल्लेखनीय डाटा उपलब्ध नहीं है। यदि पिछले 30 साल के आर्थिक सुधारों का आलोचनात्मक विश्लेषण किया जाए, तो यह साफ दिखाई देगा कि भारतीय अर्थव्यवस्था कुछ चुनिंदा धनकुबेरों की गिरफ्त में है। आज गरीब आदमी के कल्याण के लिए आर्थिक सुधारों के जरिए आर्थिक विकास की रणनीति को पुनः परिभाषित किए जाने की जरूरत है।

सफलता और विफलता

आर्थिक सुधारों के समर्थक. शेयर बाजार की तेजी और कंप्यूटर के प्रयोग से घोटालों में कमी का उदहारण देकर तरक्की साबित करते हैं। लेकिन हैरानी की बात है कि, आर्थिक सुधारों के एक साल बाद ही भारत के शेयर बाजार में प्रतिभूति जैसा बड़ा घोटाला हो गया।

वास्तव में आर्थिक सुधारों की इस प्रक्रिया में घोटाले निहित हैं। अगर आप आर्थिक गतिविधियों की निर्बाध छूट देंगे तो घोटाले होंगे, और अगर नहीं देंगे तो अर्थव्यवस्था तरक्की नहीं करेगी। अमेरिका का सब-प्राइम संकट लोगों को बिना गारंटी के मकान और कार के लिए कर्ज लेने की छूट देने का परिणाम था। उसके बाद मंदी आई और उससे उबरने के लिए पूंजीपतियों और बाजार को सरकारी खजाने की मदद लेनी पड़ी।

आर्थिक सुधारों के सिद्धांतकार और दुनिया के कई बौद्धिक यह मान चुके हैं कि, विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और डब्लूटीओ द्वारा संचालित आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया विफल हो चुकी है।

*Table 4: Average Daily Wage Rate of All Regions**

Region's	2004-05		2005-6		2007-8		2009-10		2011-12	
	Value	Rank	Value	Rank	Value	Rank	Value	Rank	Value	Rank
Northern	199.7	2	112.7	5	193.4	2	347.4	2	427.2	2
Northeast	224.6	1	171.6	1	238.2	1	355.3	1	515.3	1
Central	151.6	5	139.1	4	152.5	5	283.5	3	329.9	5
Eastern	185.6	3	146.1	3	159.2	4	280.9	5	349.9	3
Western	171.3	4	165.6	2	176.9	3	281.9	4	343.8	4
Southern	146.7	6	89.7	6	150.6	6	269	6	313.6	6
All India	179.9		137.4		178.4		303		379.9	

आर्थिक तरक्की और राजनीतिक स्वतंत्रता परस्पर विरोधी हैं। आर्थिक सुधार और वैश्वीकरण अगर दुनिया के एक हिस्से में समृद्धि लाते हैं, तो दूसरे हिस्से में आर्थिक संकट पैदा करते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि, आर्थिक प्रक्रिया के वैश्वीकरण का दावा करने वाली नीति ने दुनिया में राजनीतिक तथा आर्थिक राष्ट्रवाद को ज्यादा कट्टर बनाया है। आर्थिक सुधारों से मीडिया आक्रामक और लोकतंत्र कमजोर हुआ है। यह डिजिटल पूंजीवाद की मेहरबानी है, जो एक ओर लोगों को बेराजगार कर रहा है तो दूसरी ओर बैंकों से लेकर दूसरी संस्थाओं में तमाम घोटाले करवा रहा है। नोटबंदी से लेकर कोरोना काल में पैदा हुई बेरोजगारी और असमानता इसके उदाहरण हैं।

हर सरकार आर्थिक सुधार की प्रक्रिया को जारी रखने का दावा करती, लेकिन वह इस बात पर गौर नहीं करती कि हर घंटे कितने लोग बेरोजगार हो रहे हैं। और अरबपतियों की संपत्ति में बेतहासा बढ़ोतरी हो रही है।

भारत के आर्थिक सर्वेक्षण 2019-20 में मानव विकास

अधिकांश अर्थशास्त्री अब इस बात को बेहतर समझने लगे हैं कि अर्थशास्त्र के मूल में मानव विकास होता है। किसी भी देश में उत्पादन वहां के लोगों के स्वास्थ्य, शिक्षा, और क्षमताओं से भी जुड़ा होता है।

मानव विकास समय के साथ हो रहे सुधारों पर जोर देता है। 'मानव विकास सूचकांक' में सम्मिलित कुल 189 देशों में भारत की रेंकिंग 2018 में एक स्थान बढ़कर 129 हो गई, जबकि वर्ष 2017 में वह 130 थी।

राजस्थान में आर्थिक असमानता

उत्तर-पश्चिमी भारत में स्थित राजस्थान क्षेत्रफल के हिसाब से सबसे बड़ा राज्य है। गरीबी में राजस्थान देश में तेरहवें स्थान पर है। राजस्थान में गरीबी रेखा के नीचे के रहने वाले लोगो का प्रतिशत 14.71 है। गांवों में गरीबों की संख्या, शहरी गरीबों से अधिक है।

POVERTY DISTRIBUTION - District Level ***SPATIAL POVERTY INDEX***

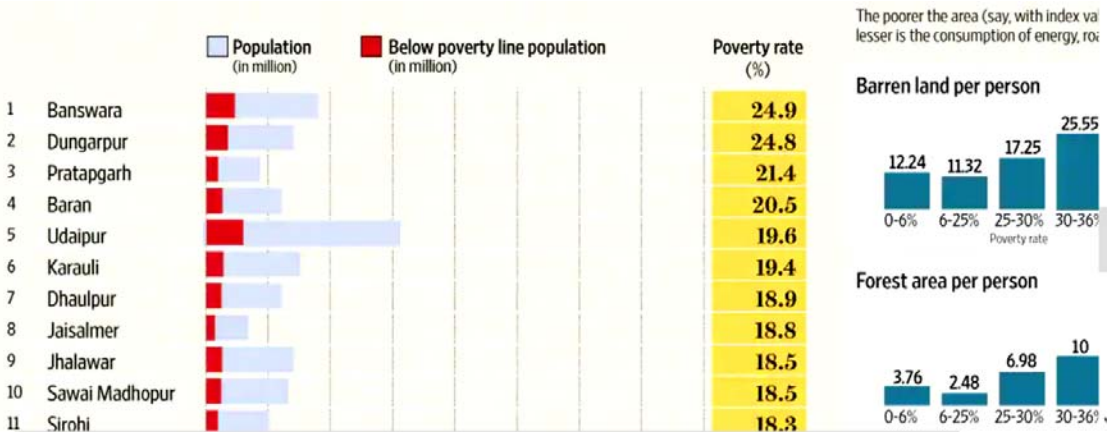

चित्र : जिला स्तर पर गरीबी

राज्य में अधिकांश सामाजिक-आर्थिक असमानताएं मुख्य रूप से पश्चिमी रेगिस्तानी जिलों और आदिवासी बहुल दक्षिणी जिलों में केंद्रित हैं।

निष्कर्ष

आर्थिक सुधार को हम दो तरीके से समझ सकते हैं। पहला नजरिया यह है कि 1991 के पहले देश आर्थिक रूप से गुलाम था और 24 जुलाई 1991 को भारत के वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के बजट के बाद उसे आर्थिक आजादी मिली।

देश में केवल एक सरकारी टीवी चौनल तथा एक ही सरकारी हवाई सेवा थी। कोटा परमिट राज होने के कारण लंबी कतारों में लगकर कार खरीदना, टेलीफोन लगवाना, गैस कनेक्शन लेना एक विशिष्ट वर्ग का अधिकार हुआ करता था। इसलिए आज देश और दुनिया में सुख और समृद्धि का की बाढ़ आई है, उसके पीछे आर्थिक सुधारों का प्रमुख योगदान है।

आर्थिक सुधार आने के बाद देश में प्रशासनिक पारदर्शिता आयी है। अब घोटालों पर रोक लगी है क्योंकि मीडिया सब कुछ दिखा देता है। जिस तरह से पूंजी को दुनिया में मुक्त प्रवाह मिला है, उसी तरह से लोगों में विश्व-बंधुत्व की भावना आई है और राष्ट्रवादी संकीर्णता कम हुई है।

दूसरा दृष्टिकोण यह है कि, आर्थिक सुधारों के तीस सालों के बाद दुनिया फिर एक चौराहे पर खड़ी है जहां आगे का रास्ता नजर नहीं रहा है। इन तीस सालों में आर्थिक तरक्की का जो दावा था न तो वह हासिल हुआ और न ही राजनीतिक आजादी सलामत रही।

आर्थिक सुधारों के समर्थकों का दावा था कि बंद अर्थव्यवस्था से काले धन की समस्या और घोटालों की घटनाएं होती हैं। अगर उसे खोल दिया जाएगा तो बाजार अपने आप तमाम गड़बड़ियों को ठीक कर लेगा। इसी के साथ प्रौद्योगिकी की प्रगति इतनी तीव्र होगी कि उससे मानवीय भूलों से जुड़ी कमजोरियां दूर हो जाएंगी। लेकिन परिणाम इसके विपरीत हुआ।

आज दुनिया में दो देशों के बीच तो असमानता बढ़ी ही है देशों के भीतर रहने वाली आबादी के भीतर भी गैर बराबरी का बोलबाला हुआ है।

आर्थिक सुधारों के कारण कहीं याराना पूंजीवाद पनपा तो कहीं महाघोटाले हुए। इसके चलते आर्थिक प्रक्रिया पर निगरानी की वे प्रक्रियाएं नाकाम हुई हैं जो पहले से थीं या जिन्हें सुधारों के साथ लागू किया जाना था। इन घोटालों और उससे उपजी मंदी के कारण अंतरराष्ट्रीयतावाद का सहारा लेने को आतुर पूंजी ने फिर राष्ट्रवाद का दामन थामा। क्योंकि देशों के दायरे में उसकी साख खत्म हो रही थी और जनता में उसके मनमानेपन के प्रति असंतोष पनप रहा था।

इस तरह राष्ट्रीय सरकारें जो पहले न्यूनतम नियंत्रण और अधिकतम विकास की बात कर रही थीं वे अब अधिकतम नियंत्रण और न्यूनतम विकास पर आ गई हैं। उदारीकरण के साथ जो सरकारें अपने नागरिकों को अधिकार संपन्न बना रही थीं वे उन्हीं अधिकारों की कटौती कर रही हैं। यानी सबका साथ और सबका विकास का आर्थिक सुधार से जुड़ा नारा भी बेमानी साबित हुआ है।

कुल मिलाकर आर्थिक सुधार सैद्धांतिक और व्यावहारिक तौर पर विफल रहा है, बल्कि इनसे नयी तरह की समस्याएं उभर आई हैं।

सन्दर्भ

- Nayyar, G. 2005. Growth and Poverty in Rural India: An Analysis of Inter-State Differences. *Economic and Political Weekly* XL. (16): 1631-1639.
- Nayyar, G. 2008. Economic Growth and Regional Inequality in India. *Economic and Political Weekly* XLIII. (6): 58-67.
- Noorbakhash, F. 2003. *Human Development and Regional Disparities in India*. Working Paper No. 12, Department of Economics. Glasgow, Glasgow University Press.
- Pal, P. and Ghosh, J. 2007. *Inequality in India: A survey of recent trends*. DESA Working Paper No. 45. July 2007. Department of Economic and Social Affairs. New York, United Nations.
- Planning Commission. 2008. Spatial Development and Regional Imbalances. In *Eleventh Five Year Plan: Inclusive Growth*, Planning Commission. New Delhi, Government of India, 137-164.
- Psacharopoulos, G. and Woodhall, M. 1985. *Education for Development: An Analysis of Investment Choices*. Washington DC, World Bank.
- Rangarajan, C. and Srivastava, D. K. 2008. Reforming India's Fiscal Transfer System: Resolving Vertical and Horizontal Imbalances. *Economic and Political Weekly* XLIII. (23): 47-60.
- Rao, M. G., Shand, R. T. and Kalirajan, K. P. 1999. Convergence of Incomes across Indian States-A Divergent View. *Economic and Political Weekly* XXXIV. (12): 769-778.
- Reddy, G. P. 2006. Twelfth Finance Commission and Backward States. *Economic and Political Weekly* XLI. (32): 3513-3520.
- Rothermund, D. and Saha, S. K. Eds. 1993. *Regional Disparities in India: Rural and Industrial Dimensions*. New Delhi, Manohar.
- Schultz, T. 1964. *Transforming Traditional Agriculture*. New Haven, Yale University Press.
- Sengupta, A., Kannan, K. P. and Ravenndran, G. 2008. India's Common People: Who Are They, How Many Are They and How Do They Live? *Economic and Political Weekly* XLIII. (11): 49-63.
- Shand, R. and Bhide, S. 2000. Sources of Economic Growth: Regional Dimensions of Reforms. *Economic and Political Weekly* XXXV. (42): 3747-3757.
- Singh, R. D. 2009. *Trends in Regional Disparities in India since Independence A Geographical Analysis*, PhD Thesis. Chandigarh, Panjab University.
- Singh, R. L. Ed. 1971. *India: A Regional Geography*. Varanasi, National Geographical Society of India.
- Singh, N. 1998. *Administration and Development in Indian States: Impact of Area Reorganization on Development Process*. New Delhi, Anmol Publications.
- Singh, N. D. 1988. Natural Resources and Disparities in Manipur. *The Deccan Geographer* XXVI. (1): 291-306.
- Singh, N., Bhandari, L., Chen, A. and Khare, A. 2003. Regional Inequality in India: A Fresh Look. *Economic and Political Weekly* XXXVIII. (11): 1069-1073.
- *Mohan, Rakesh. (2018). India Transformed : Twenty-Five Years of Economic Reforms. Washington, DC: Brookings Institution Press. pp. 44–49. ISBN 978-0-8157-3662-2.*

भारत में प्रवासी मजदूर का जीवन

डॉ० पुष्पराज गौतम

प्राचार्य, पी. एन. कॉलेज, परसा सारण, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सारांश

प्रवासी मजदूर वे लोग होते हैं जो अपने राज्य से बाहर किसी दूसरे राज्यों में काम करने के लिए जाते है। अपने राज्य में काम नहीं मिलने के कारण। अपने राज्य में काम नहीं मिलने के कारण जो मजदूर अपने राज्य/अपने घर को छोड़कर किसी और प्रदेश में काम करने जाते हैं, उन्हीं को प्रवासी मजदूर कहते हैं। जैसे बिहार , उत्तर प्रदेश के लोग दिल्ली या अन्य राज्यों में काम करने जाते है।

देश के तीव्र शहरीकरण के कारण काम-धंधे की तलाश में श्रमिक भारी संख्या में गाँवों से शहरों की ओर पलायन करने लगे और इस तरह एक बड़ी आबादी के स्थानांतरण की प्रक्रिया शुरू हो गई. कई लोगों को इस बात में संदेह है कि भारत के आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण कारण भूसांख्यिकीय स्थानांतरण है.

हाल ही में गुजरात के साबरकांठा जिले में भड़की हिंसा के पश्चात् उत्तरी गुजरात के औद्योगिक क्षेत्र से हजारों प्रवासी श्रमिक भाग गए। इसके चलते सानंद, साबरकांठा, पाटन और अरावली के आसपास के इलाकों में ऑटो, फार्मा, सिरेमिक, कपास ओटाई (ginning), उर्वरक और रसायन तथा निर्माण जैसे कई उद्योग प्रभावित हुए। प्रवासी श्रमिक भारतीय अर्थव्यवस्था का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं और कोई भी अर्थव्यवस्था जो प्रवासी श्रमिकों पर निर्भर हो वह इनकी अनुपस्थिति में बहुत अधिक विकास नहीं कर सकती।

2014 की बेजबरौह की रिपोर्ट में यह दर्शाया गया है कि उत्तरपूर्वी प्रवासियों को देश भर में शत्रुतापूर्ण व्यवहार का सामना करना पड़ा। हाल ही में मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश और अन्य अनेक राज्यों में स्थानीय लोगों की नौकरियों के संरक्षण के लिए कोटा लागू कर दिया गया, ताकि बाहरी लोगों को स्थानीय नौकरियों में आने से रोका जा सके।

भारत विश्व का सबसे ज्यादा प्रवासी मजदूर भेजने वाला देश है और यहां से करीब पौने दो करोड़ प्रवासी मजदूर दूसरे देशों में गए हैं, जिसमें से 90 लाख के करीब खाड़ी देशों में ही हैं।

मूल शब्द : प्रवासी मजदूर, पलायन, रोजगार, आर्थिक विकास, असंगठित क्षेत्र

परिचय

एक 'प्रवासी श्रमिक' वह व्यक्ति होता है जो असंगठित क्षेत्र में अपने देश के भीतर या इसके बाहर काम करने के लिये पलायन करता है। प्रवासी श्रमिक आमतौर पर अपने कार्यस्थल वाले देश या क्षेत्र में स्थायी रूप से बसने के इच्छुक नहीं होते हैं।

अपने देश के बाहर काम करने वाले प्रवासी मजदूरों को विदेशी श्रमिक भी कहा जाता है।

भारत का विशाल असंगठित क्षेत्र

- भारत का असंगठित क्षेत्र मूलत: ग्रामीण आबादी से विकसित हुआ है। इसमें अधिकांशत: वे लोग शामिल हैं जो गाँव में परंपरागत कार्य करते हैं और शहरों में अधिकतर खुदरा कारोबार, थोक कारोबार, विनिर्माण उद्योग, परिवहन, भंडारण और निर्माण उद्योग में कार्यरत हैं।
- इनमें अधिकतर ऐसे लोग है जो फसल की बुआई और कटाई के समय गाँवों में चले जाते हैं और बाकी समय शहरों-महानगरों में काम करने के लिये आजीविका तलाशते हैं।
- भारत में लगभग 50 करोड़ का कार्यबल है, जिसका 90% हिस्सा असंगठित क्षेत्र में काम करता है।
- इन उद्यमों में काम करने वाले श्रमिक वर्ष 1948 के फैक्टरी अधिनियम जैसे किसी कानून के अंतर्गत नहीं आते हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रवासन का महत्त्व

- प्रवासी श्रमिकों का होना भारतीय अर्थव्यवस्था के लिये अनिवार्य हैं। गुजरात जैसे कई अन्य राज्यों में विनिर्माण और निर्माण क्षेत्रों से संबंधित कई छोटे और मध्यम उद्यमों में सस्ते श्रम प्रदान करके ये प्रवासी श्रमिक राज्य के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- आर्थिक सर्वेक्षण (2016-17) प्रवासन पर एक पूरे अध्याय को शामिल करता है। इसके अनुसार, 2001 और 2011 के बीच सालाना औसत अंतर्राज्यीय श्रमिक प्रवासन 5-6 मिलियन था।

- भारत में आंतरिक प्रवासन के तहत एक इलाके से दूसरे इलाके में जाने वाले श्रमिकों की आय देश की जीडीपी की लगभग 6 प्रतिशत है।
- ये श्रमिक इसका एक तिहाई यानी जीडीपी का लगभग दो प्रतिशत घर भेजते हैं। मौजूदा जीडीपी के हिसाब से यह राशि 4 लाख करोड़ रुपए है।
- यह राशि मुख्य रूप से बिहार, उत्तर प्रदेश, ओडिशा, राजस्थान, मध्य प्रदेश और झारखंड जैसे राज्यों में भेजी जाती है।
- वर्ष 1991 से 2001 के बीच प्रवासन में 2.4 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर्ज की गई थी, तो वहीं वर्ष 2001 से 2011 के बीच इसकी वार्षिक वृद्धि दर 4.5 प्रतिशत तक पहुँच गई।
- श्रम गहन उद्योगों अर्थात ज्वैलरी, टेक्सटाइल, लेदर और ऑटोपार्ट्स सेक्टर में बड़ी तादाद में श्रमिक काम करते हैं।
- जब अर्थव्यवस्था में मांग बढ़ती है तो इन श्रमिकों को बोनस, इन्क्रिमेंट, मोबाइल फोन रिचार्ज, आने-जाने का किराया और कैंटीन जैसी सुविधाएँ देकर कंपनियाँ इन्हें अपने साथ जोड़कर रखना चाहती हैं।

लोग प्रवास क्यों करते हैं?

- ग्रामीण इलाकों का कृषि आधार वहाँ रहने वाले सभी लोगों को रोजगार प्रदान नहीं करता है। क्षेत्रीय विकास में असमानता लोगों को ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों में स्थानांतरित होने के लिये मजबूर करती है।
- शैक्षणिक सुविधाओं की कमी के कारण विशेष रूप से उच्च शिक्षा प्राप्त लोग इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये लिये ग्रामीण लोगों को शहरी क्षेत्रों में स्थानांतरित होने के लिये प्रेरित करते हैं।
- राजनीतिक अस्थिरता और अंतर-जातीय संघर्ष के कारण भी लोग अपने घरों से दूर चले जाते हैं। उदाहरण के लिये, पिछले कुछ वर्षों में अस्थिर परिस्थितियों के कारण जम्मू-कश्मीर और असम से बड़ी संख्या में लोग प्रवास कर चुके हैं।
- गरीबी और रोजगार के अवसरों की कमी लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिये प्रेरित करती है।
- बेहतर तृतीयक स्वास्थ्य और वित्तीय सेवाओं का लाभ उठाने के लिये लोग बेहतर चिकित्सा सुविधाओं की तलाश में अल्पावधि के आधार पर भी प्रवासन करते हैं।
- भोजन की कमी, जलवायु परिवर्तन, धार्मिक उत्पीड़न, गृहयुद्ध जैसे अन्य कारक भी लोगों को आंतरिक प्रवासन की ओर अग्रसर करते हैं।

कुछ सैद्धांतिक प्राथमिकताएँ

स्थानीय लोगों में बाहरी श्रमिकों के प्रति घृणा का मूल कारण, अज्ञात लोगों के प्रति नापसंदगी की मूल प्रवृत्ति है। स्थानीय लोग अपने शहरी समाज, जिसमें वे रहते हैं, उसके मौजूदा ढाँचे को बनाये रखना चाहते हैं; भारी मात्रा में प्रवासियों के आने से जातीय-सांस्कृतिक "विलयन" का खतरा मंडराने लगता है। इस के साथ आर्थिक चिंताओं का दबाव भी बाहरी लोगों के प्रति नकारात्मक भाव पैदा करता है। भारत में बेरोजगारी बहुत ज्यादा है जिससे लोगों में डर पैदा हो गया है कि अन्य प्रदेशों से सस्ते श्रमिकों के आने से स्थानीय श्रमिकों की मजदूरी कम हो जाएगी या उनके पास कोई काम-धंधा बंद हो जाएगा। प्रवासी श्रमिकों के आने से उन तमाम सुविधा और सेवाओं की खपत भी बढ़ जाती है, जिन पर पहले से ही बहुत दबाव होता है।

जैसा कि हम देखते हैं कि इन बातों का सचमुच असर तो होता है, लेकिन इससे पूरी तस्वीर सामने नहीं आती. आंतरिक प्रवासी कुछ खास मुद्दों पर अंतर्राष्ट्रीय आप्रवासियों से अलग होते हैं, जैसे, वे जहाँ भी जाते हैं, उनका संवैधानिक मताधिकार बना रहता है। भारत के जीवंत और प्रतिस्पर्धी लोकतंत्र में वोट बैंक के रूप में प्रवासियों की बड़ी भूमिका रहती है। यही कारण है कि यह वोट बैंक प्रवासियों के विलयन में या इसके पक्ष में या विरोध में काम करने के लिए नागरिकों और राजनैतिक आकाओं को बुनियादी तौर पर प्रोत्साहनों में संशोधन करने के लिए प्रेरित कर सकता है।

प्रवासियों से जुड़े मुद्दे

1. राजनीतिक मुद्दे

- राजनीतिक वर्ग प्रवासित श्रमिकों विशेष रूप से अंतर्राज्यीय प्रवासियों की समस्याओं को अनदेखा करता है क्योंकि उन्हें वोट बैंक के रूप में नहीं गिना जाता है।
- उनकी प्रवासन प्रकृति के कारण, उन्हें ट्रेड यूनियनों के घोषणापत्र में भी कोई जगह नहीं मिलती है।
- उचित दस्तावेजों की कमी उनकी स्थिति को और अधिक कमजोर बना देती है जिससे पुलिस और अन्य स्थानीय अधिकारियों द्वारा उनका उत्पीड़न किया जाता है।

2. सामाजिक-सांस्कृतिक मुद्दे

- लाखों अकुशल और प्रवासी श्रमिक अस्थायी झोपड़ियों (आमतौर पर टिन शीट से बने) या सड़कों पर अथवा नगर पालिकाओं द्वारा गैर-मान्यता प्राप्त झोपड़ियों और अवैध बस्तियों में रहते हैं।
- वे अपने घरों व अपनी परिस्थितियों में सुधार करने और उस स्थान पर आराम से रहने के लिये पर्याप्त बचत भी नहीं कर पाते हैं।
- सांस्कृतिक मतभेद, भाषा संबंधी बाधाएँ, समाज से अलगाव, मातृभाषा में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की कमी जैसे कुछ अन्य मुद्दों का भी सामना करना पड़ता है।

- बहुत कम प्रवासियों को उनके कानूनी और आर्थिक अधिकारों के बारे में पता होता है। साथ ही बहुमत वर्ग के नागरिक भी पीड़ितों की दुर्दशा के प्रति उदासीन रहते हैं।
- नौकरी के अवसरों को सीमित करने के कारण प्रवासियों को नाराजगी का शिकार होना पड़ता है, क्योंकि राज्य के लोग उनकी मौजूदगी को वर्तमान नौकरियों पर अतिक्रमण के रूप में देखते हैं।

3. आर्थिक मुद्दे

- मौसमी प्रवासियों को निर्माण, होटल, कपड़ा, विनिर्माण, परिवहन, सेवाएँ, घरेलू कार्य इत्यादि जैसी अनौपचारिक नौकरियाँ करने के लिये मजबूर होना पड़ता है। ये नौकरियाँ जोखिमपूर्ण और कम भुगतान वाली होती हैं।
- स्वास्थ्य सेवाओं तक प्रवासी श्रमिकों की उचित पहुँच न होने के कारण उन्हें प्रतिकूल स्वास्थ्य का सामना करना पड़ता है। चूँकि वे निजी अस्पतालों का खर्च नहीं उठा सकते हैं, इसलिये वे अक्सर बीमार पड़ने के बाद अपने गाँवों को वापस लौट जाते हैं। इससे उन्हें रोजगार के अवसर के साथ-साथ मजदूरी का भी नुकसान होता है।
- बड़ी संख्या में प्रवासियों को अकुशल मजदूरों के रूप में काम मिलता है क्योंकि वे बहुत कम उम्र में नौकरी के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं और अपने पूरे जीवन-काल के लिये सबसे अकुशल, कम भुगतान वाली और जोखिमपूर्ण नौकरियों में फँस जाते हैं।
- एक असंगठित और अराजक श्रम बाजार में प्रवासी श्रमिकों को नियमित रूप से कार्यस्थल पर विवादों का सामना पड़ता है।
- प्रवासी श्रमिकों द्वारा सामना किये जाने वाले आम मुद्दों में मजदूरी का भुगतान न किया जाना, शारीरिक दुर्व्यवहार और दुर्घटनाएँ शामिल हैं।

आगे की राह

- यदि राज्य से प्रवासी श्रमिकों को जाने के लिये मजबूर किया जाता है, तो उद्योग अपनी प्रतिस्पर्द्धात्मकता खो देंगे क्योंकि श्रम लागत में उल्लेखनीय वृद्धि होगी।
- राज्य को स्थानीय लोगों की उच्च भर्ती की बजाय रोजगार को अधिक प्रोत्साहन प्रदान करने के लिये एक और समग्र नीति का पालन करना होगा।
- कार्यस्थलों पर श्रम कानूनों का प्रवर्तन और व्यापक कानून का अधिनियमन किया जाना चाहिये, अंतर्राज्यीय प्रवासी श्रमिक अधिनियम समेत मौजूदा श्रम कानूनों का कठोर प्रवर्तन आवश्यक है।
- प्रवासी श्रमिकों के लिये पूरे भारत में श्रम बाजार को विभाजित किया जाना चाहिये और कार्यकाल की सुरक्षा के साथ एक अलग श्रम बाजार विकसित किया जाना चाहिये।
- प्रवासी श्रमिक आवश्यक बुनियादी सुविधाओं का लाभ उठा सकें इसके लिये सरकार द्वारा उन्हें पहचान-पत्र जारी किया किया जा सकता है।
- ग्रामीण-शहरी प्रवास को कम करने के लिये छोटे और मध्यम उद्योगों जैसे- ग्रामीण और कुटीर उद्योग, हथकरघा, हस्तशिल्प तथा खाद्य प्रसंस्करण एवं कृषि उद्योगों का विकास किया जाना चाहिये।
- बुनियादी अधिकार और सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करने पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिये। प्रवासित परिवारों को गंतव्य क्षेत्रों में नागरिक अधि कार मुहैया करा ये जाने के लिए नीति बनायीं जानी चाहिए ।
- प्रवासी मजदूरों की शिक्षा तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिये शिक्षा के अधिकार (त्ज्म्) अधिनियम के तहत विशेष नीति पर ध्यान केंद्रित करना चाहिये तथा उनके लिए कौशल विकास कार्यक्रम चलाये जाने चाहिये।
- पंचायतों को अपने क्षेत्र में रहने वाले प्रवासी श्रमिकों के लिये संसाधन पूल के रूप में उभरना चाहिये। उन्हें प्रवासी श्रमिकों का एक रजिस्टर बनाए रखना चाहिये और उन्हें पहचान-पत्र तथा पासबुक जारी करना चाहिये।
- प्रवासी श्रमिकों को उनके अधिकारों के बारे में जागरूक करना अधिकारियों का प्रथम कर्तव्य होना चाहिये।

प्रवासी श्रमिकों के समर्थन में कानून

- अंतर्राज्यीय प्रवासी श्रमिक (रोजगार और सेवा शर्त विनियमन) अधिनियम (1979)
- बाल श्रम (निषेध और विनियमन) अधिनियम (1986)
- भवन एवं अन्य संनिर्माण श्रमिक (रोजगार एवं सेवा शर्तों का विनियमन) अधिनियम (1996)
- असंगठित श्रमिक सामाजिक सुरक्षा अधिनियम (2008)
- अनुबंध श्रम (विनियमन एवं उन्मूलन) अधिनियम (1970)

संवैधानिक प्रावधान

- भारत का संविधान सभी नागरिकों के लिये आंदोलन की स्वतंत्रता की गारंटी देता है। मुक्त प्रवासन के आधारभूत सिद्धांत संविधान के अनुच्छेद 19(1) के खंड (क) और (म) में स्थापित हैं, जो सभी नागरिकों को पूरे भारत क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से आवागमन करने और किसी भी हिस्से में निवास करने का अधिकार देता है।
- अनुच्छेद 15 अन्य आधारों के साथ-साथ जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव को प्रतिबंधित करता है।

- जबकि अनुच्छेद 16 सार्वजनिक रोजगार के मामलों में सभी नागरिकों के लिये अवसर की समानता की गारंटी देता है और विशेष रूप से जन्म या निवास के स्थान पर सार्वजनिक रोजगार तक पहुँच से इनकार कर देता है।
- चारू खुराना बनाम भारतीय संघ और अन्य मामलों में सुप्रीम कोर्ट का निर्णय स्पष्ट रूप से रोजगार के प्रयोजनों के लिये निवास आधारित प्रतिबंधों को स्पष्ट रूप से असंवैधानिक करार देता है।

निष्कर्ष

पिछले दो दशकों में भारत के कृषि क्षेत्र में रोजगार कम हो गया है और भारतीय अर्थव्यवस्था शहरी औद्योगिक केन्द्रों में केन्द्रित हो चुकी है। 1980 के दशक के मध्य से शहरी आर्थिक केंद्रों के तीव्र विकास के सामानांतर, भारत ने छोटे शहरों की निवेश को आकर्षित करने की असमर्थता भी देखी है, जो इन क्षेत्रों के विकास को बढ़ावा देता। ग्रामीण और शहरी क्षेत्र की आर्थिक वृद्धि में असंतुलन से पलायन और प्रवासी मजदूरों की संख्या में वृद्धि हो रही है। इससे स्थानीय और प्रवासियों के बीच कटुता पूर्ण सम्बन्ध भी निर्मित हो रहे हैं।

विभिन्न समूहों के बीच विविधता और मुक्त बातचीत राज्यों और देश को आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से मजबूत बनाती है। चुनौतियाँ अभी भी जटिल हैं और प्रवासियों की मान्यता की कमी कि समस्या को पूरी तरह से हल किया जाना शेष है। जब तक हम प्रवासी श्रमिकों को एक बदलते भारत के गतिशील हिस्से के रूप में नहीं देखेंगे तब तक प्रवासित श्रमिकों की समस्या को हल करना संभव नहीं होगा ।

सन्दर्भ

1. An overview of migration in India, its impacts and key issues, Ravi Srivastava, S.K. Sasikumar.
2. Banerjee A, Raju S. Gendered mobility: women migrants and work in urban India. Econ Pol Wkly 2009; 54(28);115-23.
3. http://www.britannica.com/
4. Migrant Labour- A detailed Study, Ankit Kr Mishra 2011
6. Pai M, Zachariah A, Rose W, Satyajit S, Verghese S, Joseph A.
7. Malaria and migrant labourers: socio-epidemiological inquiry. Econ Pol Wkly. 997; 32(16); 839-42.
8. Raj A, Silverman JG. Violence against immigrant women the roles of culture, context, and legal immigrant status on intimate
9. partner violence. Violence Against Women. 2002; 8(3):367-98.
10. Rogaly B, Coppard D, Safique A, Rana K, Sengupta A, Biswas J. Seasonal migration and welfare/illfare in eastern India: a social analysis. J Dev Stud. 2002; 38(5):89-114. doi: 10.1080/00220380412331322521
11. Schenker MB. A global perspective of migration and occupational health. Am JInd Med. 2010 Apr; 53(4):329-37. doi: 10.1002/ajim.20834
12. Subrahmanya RKA. Social protection of the workers in the unorganized sector. Indian J Ind Relat. 2013; 48(3):460-70.
13. Jagori (2016). Migration, Trafficking and Sites of Work: Rights and Vulnerabilities—A Pilot Study: Report of Initial Findings in Rajasthan and Gujarat.
14. Jha, T (2016). "How can Jharkhand fight distress migration?" Down to Earth. 15 February 2016: http://www.downtoearth.org.in/news/distress-call-52702.

संस्कृत साहित्य में सांस्कृतिक सद्भावः एक अध्ययन

डॉ० ज्योति वर्मा

एसो० प्रो०/विभागाध्यक्ष (संस्कृत), बुन्देलखण्ड महाविद्यालय झाँसी

प्रस्तावना

भारत भूमि में विभिन्न संस्कृतियों, धर्मो, सम्प्रदायों, वर्गों का समागम होता रहा है। ईसा से लगभग, एक सौ वर्ष पूर्व यूची और शक जाति के लोग हिन्दुस्तान आये और इससे भी सौ वर्ष पूर्व आभीर जाति इस देश में आकर बसी। नीग्रो, औष्ट्रिक, द्रविड़, आर्य, मंगोल, यूनानी, हूंण और तुर्क सभी इस धरती पर आये, और बसे भी, किन्तु किसी का कोई अलग अस्तित्व नहीं रहा। सभी भारतीय संस्कृति में भली भांति पच-खप गये। विभिन्न संस्कृतियों के मेल से जो भारतीय संस्कृति रूपी प्रपाणक रस तैयार हुआ, उसमें यह पता लगाना मुश्किल था कि इस संस्कृति में किस जाति की संस्कृति का कितना अंश है। जिस प्रकार पान में कत्था चूना और लौंग, इलायची, पिपरमेंट आदि सब मिलकर अनोखा प्रपाणक रस तैयार करते है उसी प्रकार भारतीय संस्कृति में विभिन्न सम्प्रदायों और संस्कृतियों का अपना -अपना रंग दूध में मिश्री की तरह घुल गया। चूंकि पान लगाने का कार्य आर्यो ने किया, इसलिये, भारतीय संस्कृति पर आर्यो के नाम का बौद्धिक लेवल पढ़ा जा सकता है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार मिस्टर डाडवेल नें लिखा है कि ''भारतीय संस्कृति महासमुद्र के समान है, जिसमें अनेक नदियाँ आकर विलीन होती रहीं हैं।[1] भारतीय संस्कृति की पाचन शक्ति प्रचण्ड है। जो प्रत्येक नई संस्कृति को आत्मसात करके उसे अपना बना लेती है। यहां सभीं धर्मो और सम्प्रदायों को बराबर का दर्जा मिला हैं। हिन्दू धर्म के अलावा यहां जैन, बौद्ध और सिख ही नहीं यहूदी, ईसाई, इस्लाम, पारसी आदि सम्प्रदायों को भी हम आदर प्रदान करते हैं। आरम्भ से ही हमारे ऋषियों ने उदारवादी दृष्टिकोण अपनाया है। सत्य और अहिंसा हमारी संस्कृति के मूल स्वर है। हमारे मूल्य गइराई तक अपनी जड़घे से जुड़े हुये हैं।

सांस्कृतिक सद्भाव का क्रमिक अध्ययन

भारतीय संस्कृति का लिखित दस्तावेज हमें ऋग्वेद से प्राप्त होता है। ऋग्वेद की आर्य संस्कृति में देवों और यज्ञों का प्रधान्य था। यज्ञों के बिना देव कृपा प्राप्त करना संम्भव न थी। सभी प्रकार की समृद्धि, युद्ध में विजय, कृषि, धन-धान्य, राक्षसों पर विजय और भूत, प्रेत, पिशाचादि की बाधाओं के परिहार के लिये आर्य लोग देवों की कृपा पर आश्रित रहते थे। देवों की कृपा यज्ञों में दिये गये ह्विष और मत्रों में उच्चरित देवस्तुति पर निर्भर रहती थी। इन याज्ञिक अनुष्ठानों में जो वर्ग दक्ष था उसे समाज में शीर्ष स्थान मिलता था। बहुदेवतावाद वैदिक संस्कृति का आधार था। ऋग्वेद में अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरूण आदि देवताओं की स्तुति सूक्त मिलते हैं। सभी देव पूर्ण समर्थ एवं सर्व प्रभुत्व सम्पन्न वर्णित हैं। दूसरी ओर इसी ऋग्वेद में हम कुछ ऐसे मंत्रों को भी देखते हैं जिनमें इन देवताओं के पृथक पृथक अस्तित्व को न मानकर उन्हें एक ही महान देव के विभिन्न रूप कहा गया है।[2]

इन्द्रं मित्रं वरूणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरूत्मान
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

एक देवता का यह पृथक विचार सम्भवतः उन जातियों के संपर्क में आने से प्रादुर्भूत हुआ होगा, जिनमें बहुदेवोपासना न थी। एक ही देवता की उपासना की जाती थी। ऋग्वेद के दशम मण्डल के एक सूक्त में हमें उन दार्शनिक विचारों के बीज भी प्राप्त होते हैं, जिनमें पुराहितों की यज्ञ विधि तथा देव विषयक सर्वमान्य विश्वास में सन्देह व्यक्त किया गया है।[3] जिनका विस्तार हम बाद में उपनिषद् काल में पाते हैं। अथर्ववेद के दार्शनिक सूक्त इस संदेह को और भी पुष्ट करते हैं। ये ऋषि निश्चय ही उस पुरोहित वर्ग के न रहे होगें जो यज्ञ ओर देवस्तुतियों में संलग्न रहे थे।

इस प्रसंग में यह ध्यान देने की बात है कि तत्व चिन्तन के इस क्षेत्र में याज्ञवल्क्य आदि ब्राह्मणों के अतिरिक्त अश्वपति, जनक आदि राजाओं का योगदान भी रहा है। यहां तक कि मैत्रेयी, गार्गी आदि स्त्रियों तथा सत्काम जाबाल जैसे अज्ञात कुलशील व्यक्ति भी इसमें संलग्न मिलते हैं।

वेद के प्रवृत्तिमार्ग के विरोध में जो यह निवृत्तिपरक ज्ञानमार्ग सामने आया उसमें योग पद्धति के द्वारा अव्यक्त अचिन्त्य ब्रह्म को प्राप्त करने की बात कही गई है।[4] इस वैदिक यज्ञीय मार्ग के विरोधी वर्ग को समाज में स्थान देने की भावना से ही मनीषी चिन्तकों ने आश्रम व्यवस्था की कल्पना की होगी। जिसमें कर्ममार्ग तथा ज्ञानमार्ग, प्रवृत्ति और निवृत्ति, अभ्युदय और निःश्रेयस् सभी को जीवन में उचित स्थान प्राप्त हुआ। प्रारम्भिक उपनिषदों में हम देखते हैं कि ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ इन तीनों आश्रमों की ही चर्चा है। सन्यास आश्रम की बात, बाद के उपनिषदों, रामायण, महाभारत और धर्मशास्त्रों में मिलती है। ब्रह्मचारी, गृही और वानप्रस्थी इन तीन को ही पंच महायज्ञों से मुक्त नहीं किया गया है। परन्तु सन्यासी को यज्ञकर्म से मुक्त माना गया है।[5]

''अनग्निरनिकेतः स्यात्'' मनुस्मृति में उसे कर्म से भी निवृत्ति दी गई है।[6] यह बात इसी ओर संकेत करती है कि सन्यास की पद्धति आर्यों की न होकर आर्येतर किसी जाति की रही होगी, जिसमें यज्ञ की मान्यता न होगी और योग विधि से मोक्ष प्राप्ति पर बल दिया जाता होगा। विचारों की इन दो विरोधी शाखाओं का स्पष्ट निर्देश उपनिषदों में मिलता है। ईशावास्योपनिषद में विद्या और अविद्या , संभूति और असंभूति इन शब्दों से ज्ञान तथा कर्म मार्गो का निर्देश है।[7] इसी

भाव को कठोपनिषद् में विद्या और अविद्या के अतिरिक्त श्रेय तथा प्रेय मार्गों से भी अभिहित किया गया है। इन दोनों मार्गो की पृथकता का संकेत स्पष्ट रूप से किया गया है।[8] मुंडकोपनिषद् में तो स्पष्ट ही वेद और वेदांगों को अपराविद्या में गिना कर, श्रेष्ठ परा विद्या से पृथक कहा गया है।[9]

इस प्रकार हम देखते हैं कि संपूर्ण उपनिषद् काल में यज्ञ से स्वर्ग प्राप्ति की अपेक्षा तपस्या योग आदि के द्वारा ब्रह्मलोक की प्राप्ति पर बल दिया गया है। और इस लोक में होने वाले भोग, विलास तथा कामोपभोग की ओर से वितृष्णा दिखाई गई है। जो लोग प्रेय मार्ग के कामोपभोग में लिप्त हैं उन्हे बाल, मंन्द कहा गया है।[10] नचिकेता को ब्रह्म विद्या का अधिकारी इसीलिये समझा गया कि उसे कामोपभोग के साधनों नें नहीं लुभाया, उसने सभी कामनाओं का त्याग किया था।[11] श्रीमद्भगवद्गीता में भी हमें यही औपनिषदिक स्वर सुनाई देता है। श्रीकृष्ण अर्जुन को त्रैगुण्य रूप वेदों से हटाकर निस्त्रैगुण्य होने का उपदेश देते है[12] उपनिषद् काल में जहां यज्ञरूप नावों को अदृढ़ बताकर उनकी निंदा की गई है- प्लवा हयेते अदृढा यज्ञ रूपा: ''वहीं आगे चलकर महाभारत काल में हमें धार्मिक समन्वय की भावना दिखाई देती है। यहां अग्निचयन के अतिरिक्त अनेकों अन्य कर्म भी यज्ञ माने गये हैं। यहां यज्ञ की निन्दा न कर उसके अर्थ में विस्तार किया गया है। सभी यज्ञों में जप - यज्ञ को श्रेष्ठ बताकर आध्यात्मिक उन्नति में सहायक तत्वों को भी यज्ञ की संज्ञा दी गई है।[13]

यद्यपि वैदिक वाङगमय के चरम विकास के बाद औपनिषदिक विचार उसकी प्रतिक्रिया के रूप आये। किन्तु ये औपनिषदिक विचार जन सामान्य की चिन्तन सीमा से बाहर थे। इनकी चर्चा अरण्यवासी घ्ऋषि मुनि ब्रह्म संसदों में या जनकादि राजर्षि राजसंसदों में करते थे। यज्ञीय जटिलता और आध्यात्मिक सूक्ष्मता के चलते छठी शती ई0पू0 में नवीनतम विचारों का एक ऐसा क्रान्तिकारी प्रवाह आया जिससे अनेकानेक दर्शनों तथा धर्म सम्प्रदायों का जन्म हुआ, पर कालान्तर में इनमें से अधिकांश लुप्त हो गये और कुछ ही बच सके, जिन्होने भारतीय धर्म तथा संस्कृति पर गहरा प्रभाव डाला। इन संप्रदायों में से चार ही मुख्य हैं- जैंन, बौद्ध, वैष्णव, शैव। ये चारों वेद के विरोध में यद्यपि एक स्वर थे, तथापि अन्यान्य बातों में बहुत कुछ भिन्न भी थे। वैष्णव और शैव धर्म ईश्वरवादी थे। वैदिक काल के देव विष्णु और रूद्र इसके आराध्य देव हुये। इसके विपरीत जैन तथा बौद्ध धर्म अनीश्वरवादी थे। इन्होंने अपने धर्म के संस्थापक महावीर और गौतम को ही कालान्तर में देवत्व प्रदान कर दिया।

यद्धपि इन चारों धर्मो में ही प्रचलित वैदिक व्यवस्था से पर्याप्त भिन्नता थी, पर जैन तथा बौद्ध धर्म को मध्य देशीय ब्राह्मणोंघ नें उनकी नास्तिकता के कारण अधार्मिक माना। वैष्णव तथा शैव धर्मों को बदलती हुई परिस्थितियों के कारण वैदिक धर्म का ही एक परिष्कृत रूप समझा गया और इसी कारण इन दोनों के धर्म सिद्धान्तों का प्रतिपादन मध्य देश से ही कवियों द्वारा निर्मित रामायण महाभारत, वेदोत्तरकालीन उपनिषदों और पुराणों में मिलता है। वेद के प्रभावहीन हो जाने पर मध्य देश के इन्हीं ग्रंथो का प्रभाव हुआ और इन्हें वेद के स्थान पर धर्मग्रन्थ माना जाने लगा।[14] इतिहास और पुराणों के अध्ययन से वेद का मन्तव्य जाना जा सकता है, यह भावना भी बद्ध मूल होती गई- ''इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत''[15]।

जिस प्रकार बौद्ध और जैन धर्मों ने बहुत कुछ उपनिषदों से ग्रहण किया था उसी प्रकार वैष्णव धर्म नें भी। यह धर्म भी बौद्ध तथा जैन धर्मों के उद्भवकाल के आसपास ही पश्चिम के सात्वतों में उदित हुआ। ये सात्वत यादवों की ही एक शाखा थे तथा मथुरा और उसके समीपवर्ती प्रदेश में निवास करते थे। मूलत: ये एक देव परमात्मा को मानते थे और उसे देवाधिदेव हरि पुकारते थे तथा मोक्ष प्राप्ति के लिये यज्ञ और तपस्या के प्राचीन उपायों की अपेक्षा इसी हरि की भक्ति और पूजा पर बल देते थे। इस धर्म में यज्ञों और उसके प्रतिष्ठापक वेदों पर पूर्णत: अश्रद्धा व्यक्त नहीं की गई है, पर उन्हें कम महत्व का बताया गया है।[16] इसमें पशु, हिंसा, यज्ञीय कर्मकांड तथा उग्र तपस्या का विरोध, ये तत्व बौद्ध धर्म के समान हैं, पर ईश्वर हरि का श्रद्धा सहित भक्ति पूजन और आरण्यक उपनिषदों के सिद्धान्तों का मंडन, इस धर्म की अपनी विशेषतायें हैं। इस धार्मिक सुधार को वृष्णि गण के देवकी पुत्र वासुदेव कृष्ण से बड़ा प्ररेणात्मक बल प्राप्त हुआ। श्रीमद्भगवत्गीता में इस धर्म के दार्शनिक सिद्धान्तों की ऐसी सुन्दर स्थापना और व्याख्या की गई, कि इस धर्म को एक स्थिर रूप प्राप्त हो गया।

श्रीमदभगवद्गीता के व्याख्यान से यह एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय के रूप में विकसित हो चला और शीघ्र ही वासुदेव कृष्ण परमेश्वर के रूप में पूजे जाने लगे।[17] 'वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि।'' ''वासुदेव: सर्वमिति महात्मा सुदुर्लभ:''। इस सम्प्रदाय का मूल छान्दोग्य उपनिषद् में ऋषि धोरांगिरस द्वारा अपने शिष्य देवकी पुत्र कृष्ण को दिया गया उपदेश है। इसमें दान आर्जव, अहिंसा, सत्य, तप, ध्यान, योग पर बल दिया गया है तथा यज्ञ के प्रति अनास्था व्यक्त की गई है। श्रीमद्भगवद्गीता में दो बातें महत्वपूर्ण है- पहली यह कि यद्यपि सन्यास और कर्मयोग दोनों ही नि:श्रेयस् प्राप्ति कराने में समर्थ हैं तथापि सन्यास की अपेक्षा कर्मयोग श्रेष्ठ है[18]। समाज में रहते हुये वर्णाश्रम धर्म के अनुरूप कर्म करते रहना कर्म त्याग से अधिक उचित है। दूसरी यह कि इनमें मनुष्य के मन को ईश्वर भाव से रहित शुष्क नैतिक वाद से दूर रहने का उपदेश दिया गया है। उपनिषदों में ईश्वर विषयक विचार यत्र तत्र विखरे हुये थे गीताकार ने उन्हें एक सुसंबद्ध मोक्ष विषयक दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया, जो सभी के द्वारा सुग्राहय हो सका। इस भक्ति मार्ग के सभी अधिकारी हो सकते थे। ब्राह्मण क्षत्रियों का तो कहना ही क्या, यह ग्रन्थ वैश्यों शूद्रों, स्त्रियों यहां तक कि पापयोनियों के लिये भी यह परम गति प्राप्त कराने वाला था अर्थात वे भी भक्ति द्वारा मोक्ष पा सकते थे, जिन्हें वैदिक धर्म में कोई स्थान नहीं दिया गया था। इस प्रकार ब्राह्मण धर्म भागवत धर्म में समन्वित होकर नये रूप में प्रतिष्ठित हो गया।

शैव सम्प्रदाय की प्राचीनता के संबन्ध में कई विद्वानों का मत है कि यह सम्प्रदाय वैदिक युग से भी पूर्व आर्येतरों में विद्यमान था। ऋग्वेद में जिन लिंग पूजकों का निर्देश है और जिनके प्रति आर्यों की घृणा व्यक्त हुई है, वे निश्चय ही आर्येतर थें।[19] शिव के चरित्र में कई देवों का मिश्रण प्रतीत होता है। ऋग्वेद में रूद्र प्रकृति की दुष्ट तथा विनाशक शक्ति का प्रतिनिधित्व करने वाला देव है। उसका क्रोध प्रार्थना मंत्रों से शांत किया जाता हैं।[20] पर इस देव को ऋग्वेद में कोई महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त न था। बाद में यजुर्वेद के प्रसिद्ध सूक्त शतरूद्रीय में उसके दुष्ट स्वभाव के साथ-साथ उसका सौम्य चरित्र भी चित्रित किया गया। यही देव क्रमश: रूद्र से शंभू, शंकर या शिव बन जाता है। अथर्ववेद में रूद्र को ईश्वर का स्थान प्राप्त हो गया और यजुर्वेदीय श्वेताश्वर उपनिषद् में तो उसे परम ब्रह्म का ही समकक्ष बना दिया गया। इसके विषय में ''एको हि रूद्रो न द्वितीयाय तस्थु:'' कहा गया है। इस प्रकार शैव धर्म एक विशेष सम्प्रदाय के रूप में अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा था। परवर्ती काल में उसका प्रसार एक विशिष्ट सम्प्रदाय के रूप में हुआ। ईसवी सन के प्रारम्भ में यह धर्म अधिक व्यापक रूप धारण कर सका। 600 ई0 पू0 से 150 ई0 पू0 तक के युग में हमें चार शैव सम्प्रदाय मिलते है- पाशुपत , शैव, कापालिक और कालामुख।[21] कई विद्वानों का मत है कि शिव देवत्व तथा लिंग रूप में पूजन सिंधु घाटी की आर्येतर सभ्यता की वस्तु थी, जिसे आर्यो ने स्वीकार कर लिया।

निष्कर्षः- इस प्रकार हम देखते है कि भारतीय संस्कृति में वैदिक-काल से लेकर लौकिक संस्कृत साहित्य के बीच अनेक उत्थान पतन हुये। कई धर्म, दर्शन तथा नैतिक आदर्श सामने आये, किन्तु सभी का एक सुन्दर, प्रगतिशील समन्वय हुआ जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं। इसमें जीवन के प्रति दो मुख्य दृष्टियां प्रतिष्ठित हुई एक आस्तिकवादी और दूसरी नास्तिकवादी। आस्तिकवादी विचार धारा में उन सभी सम्प्रदायों का एक समन्वित रूप सामने आया जो किसी भी रूप में ईश्वर विश्वासी थे। आर्य और आर्येतर ईश्वर विश्वासी धर्मों का एक ऐसा सम्मिश्रण या समन्वय हुआ जिसमें प्रत्येक धर्म वाले को अपनी उपासना, पूजा, अर्चना, विधि, दर्शन, धर्मलिंग, रहन-सहन आदि की पूर्ण स्वतन्त्रता मिली। वैदिक संस्कृति के स्थान पर अब इन सभी धर्मों के समन्वय से जिस संस्कृति ने जन्म लिया, उसे भारतीय संस्कृति कहा जा सकता है। इसमें यज्ञ, पूजा, मूर्ति, वैदिक या अवैदिक देव, विभिन्न धर्म वालों के आचार-विचार आदि सभी का पारस्परिक घृणा द्वेष से रहित समन्वय हो गया। यज्ञ को महत्व देने वाले आर्यों ने यज्ञों के साथ-साथ आर्येतरों की पूजा विधि भी अपना ली। इस प्रकार आर्यों तथा आर्येतरों के बीच की सांस्कृतिक खाई पट चली और जो संयोजक सेतु निर्मित हुआ उसके निर्माण में विभिन्न संस्कृतियों ने ऐसा योगदान किया कि अब उन तत्वों को पृथक करना आर्य तथा आर्येतर तत्वों में विश्लेषित करना संभव नहीं रहा। नास्तिकवादी सम्प्रदायों को भी इस समन्वित हिन्दू संस्कृति में स्थान मिला। उनके प्रति भी किसी प्रकार का द्वेष व्यक्त नहीं किया गया। दोनों में भेद केवल ईश्वर के अस्तित्व के विषय में ही रह गया, अन्य और बातें जैसे आत्मा पुनर्जन्म, कर्म सिद्धान्त, देवी, देवता आदि में परस्पर गंभीर मत भेद न रहे तथा अद्यतन प्रवहणशील भारतीय संस्कृति का निर्माण हुआ।

हिन्दुत्व का स्वभाव है कि वह जितना ही परिवर्तित होता है, उतना ही अपने मूल स्वरूप के करीब पहँच जाता है। आज से तीन हजार वर्ष पूर्व भारतीय संस्कृति का जो रूप था, आज भी मूलतः वह वैसा ही है। मिस्त्र बेबीलोन और यूनान में भी प्राचीन सभ्यतायें उठी थी, किन्तु, काल नें उन्हें ध्वस्त कर दिया। केवल भारत ही एक ऐसा देश है। जिसका अतीत कभी मरा नहीं। वह उत्तरोत्तर परिवर्तित होता रहा। भारतीय संस्कृति की गूँज अपनी अतीत की गरिमा के साथ आज भी जीवित है और कदाचित आगे भी जीवित रहेगी।

1. संस्कृति के चार अध्याय-रामधारी सिंह दिनकर पृष्ठ 81।
2. ऋग्वेद - 1/134/46
3. नासदीय सूक्त ऋग्वेद 10/129
4. कठोपनिषद - 2/6/10-11
5. मनुस्मृति - 6/3-5
6. मनुस्मृति - 6/43
7. ईशा 9/12
8. कठो0 1/2/2-4
9. मुंडको0 1,5
10. कठो0 1/2-2
11. कठो0 1/2/11
12. श्रीमद्भागवत गीता - ''त्रैगुण्यविषयो वेदा निस्त्रैगुणयो भवार्जुन''
13. मुण्डकोपनिषद - 2/7
14. गीता 10/25
15. क. छान्दोग्योप. 7/1/2

ख. भारतं पंचमो वेदः। महाभारत किटिकलं एडीशन 1/1/205

16. महाभारत 01/01/204
17. श्रीमद्भगवतगीता 2/45
18. श्रीमद्भगवतगीता 10/37:7/19
19. ऋग्वेदः 7/21/59 10/99/5
20. ऋग्वेद 01/114
21. Ancient India, R.C. Majoomdar page no 175-176

भारतीय संस्कृति का आधुनिक स्वरूप (नियतत्व) एवं पर्यावरणीय परिवर्तनः एक अन्तःक्रियात्मक विवेचन

रेखा रानी

(शोधकर्त्री), षिक्षक षिक्षा एवं शोध विभाग, बैकुण्ठी देवी कन्या महाविद्यालय, आगरा (उ0प्र0)

डॉ0 सुनीता चौहान

(एसो0 प्रोफेसर), षिक्षक षिक्षा एवं शोध विभाग, बैकुण्ठी देवी कन्या महाविद्यालय, आगरा (उ0प्र0)

सारांष

किसी भी देश की दिशा और दशा उसकी मेधा तय करती है। भारत में भी श्रुति और स्मृति काल से लेकर उपनिषदों की व्याख्या तक राष्ट्र निर्माण की एक दिशा मिलती है। रामायण हो अथवा महाभारत इन महान ग्रंथों का संदेश मानवता के लिए अभिप्रेत है। ये जीवन मूल्य निर्माण के फ्रोत हैं। भारत की प्राणशक्ति उसका आध्यात्म है। विश्व भौतिकवादी जीवन का जिस तरह से आदी होकर विनाश के कगार पर खड़ा है उसमें यदि उसे मानवीयता के आधार पर सहिष्णुता समाज की स्थापना करनी है, लोकमंगल की कामना से विश्वबन्धुत्व तक जाना है तो उसका आधार केवल और केवल भारतीय संस्कृति है। प्रकृति में रची बसी यह लोक संस्कृति धीरे-धीरे विलुप्त हो रही है। हम प्रकृति से कोसों दूर ईट पत्थरों की दुनिया में प्रवेश कर गये हैं। आधुनिक समाज प्रकृति से प्रेम नहीं, उसका दोहन करना जानती है। कम्प्यूटर युग कहे जाने वाले आज के समय में हमारी संस्कृति प्राकृतिक से कृत्रिम हो गई है। विकास की दौड़ में हम पर्यावरण को शुद्ध रचाने वाली भारतीय संस्कृति के क्रिया-कलापों (हवन, यज्ञादि) से हटकर प्रकृति को दूषित करने वाली संस्कृति (प्लास्टिक को जलाना, नदियों में अपशिष्ट बहाना, पेट्रोल-डीजल चालित वाहनों का प्रयोग) को अपना रहे हैं। इस दौर में जब समूचा संसार मूल्यहीनता और अनास्था के चलते भटकाव का शिकार हो रहा है तब भारतीय संस्कृति की सनातन मूल्यवत्ता उसमें जीवन के प्रति स्वीकृति का भाव भर सकती है। उन्हें भौतिक और आत्मिक उन्नति के संतुलित मार्ग पर ले जा सकती है।

प्रस्तावनाः

पृथ्वी पर व्याप्त पर्यावरण प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ वरदान है। मनुष्य इसी पर्यावरण की सर्वोत्कृष्ट कृति है। प्रकृति और मनुष्य परस्पर पूरक हैं। मनुष्य जैसे प्राकृतिक परिवेष में रहता है, उसका व्यवहार, रहन-सहन, वेषभूषा, खानपान, भाषा इत्यादि उसी के अनुसार विकसित होती है। यथा-गर्म प्रदेश में रहने वाले मनुष्य सूती वस्त्र पहनते हैं, ये वस्त्र कपास से बनते हैं और कपास की खेती योग्य भूमि गर्म प्रान्तों में पाई जाती है। इसी प्रकार ठण्डे प्रदेशों के लोग ऊनी वस्त्र पहनते हैं। यह ऊन ठण्डे जलवायु के जानवरों (याक, भेंड़) के बालों से बनती है। तात्पर्य यह कि किसी भी देष की संस्कृति उसके पर्यावरण पर निर्भर करती है। यदि पंजाब प्रान्त में लोग गेहूँ अधिक खाते हैं तो उसका स्पष्ट कारण है कि वहाँ की भूमि गेहूँ की खेती के लिए सर्वथा उपयुक्त है। इसी प्रकार बंगाल में चावल की उपज अधिक होने के कारण बंगाली लोग चावल अधिक खाते हैं। यदि भाषा का व्याकरणिक अध्ययन किया जाए तो भाषा भूगोल के अनुसार अलग-अलग जलवायु के लोगों की भाषा भी भिन्न-भिन्न होती है।

21वीं सदी में भारतीय परिदृष्यः

'यदि आज 21वीं सदी में भारत महाशक्ति बनने की ओर अग्रसर है तथा धर्म के नाम पर, जो राष्ट्र बने व बँट गये अथवा विसंगतियों का षिकार होकर भटक गए तो उसके पीछे हमारे ऋषियों, मनीषियों की तपश्चर्या तथा भारतीय संस्कृति में विद्यमान आत्मविश्लेषण, बौद्धिक खुलापन तथा सर्वमंगलाषा जैसी अन्तवृत्तियाँ हैं। यदि हमारा समाज जाति-प्रथा की जकड़न से निजात पा लेता है, चाणक्य जैसे महामनीषी का नेतृत्व पा जाता है, भ्रष्टाचार को मर्यादित करने में सफल हो जाता है तथा शक्ति के बिखरे पड़े विद्युत्कणों एवं परमाणुओं को एकत्र कर लेता है तो वह भारत को विष्वगुरु की स्वाभाविक प्रतिष्ठा दिलवा सकता है। डॉ0 आम्बेडकर द्वारा प्रतिपादित 'संगठन' का अर्थ आतंरिक समता को चरितार्थ करके ही मनुष्य के भीतर निहित उदार रमणीय भाव को विश्व मंगल में रूपांतरित कर सकते हैं।

तभी हमारी संस्कृति एवं धर्म मठों, मन्दिरों, कर्मकाण्डों, संग्रहालयों, धर्मध्वजों तथा पोथियों की मर्यादा अक्षुण्ण रखते हुए समता एवं बन्धुत्व को अभ्यास एवं आचरण का अविच्छिन अंग बना देगा। जब हम वर्तमान संदर्भ में भारतीय संस्कृति के समक्ष विद्यमान चुनौतियों पर गहनतापूर्वक विचार करते हैं तो पाते है कि उसे पष्चिम की उपभोक्तावादी वैष्विक संस्कृति से अपनी अस्मिता को बचाना होगा।

भारतीय संस्कृति एवं पर्यावरण के मध्य अन्तःक्रियाः

हमारी भारतीय संस्कृति इन तथ्यों से भली-भाँति अवगत है। इसीलिए हमारी संस्कृति में प्राकृतिक शक्तियों को देवी-देवताओं का स्थान प्राप्त था और इनकी पूजा की जाती थी। मिट्टी को मातृ देवी, वायु को देवता और जल को पवित्र देवी, अग्नि को देवता कहा जाता था। भारतीय लोग संस्कृति तो पूर्णतः प्रकृति परक है। यहाँ का ग्राम्य जीवन प्रकृति से अत्यधिक प्रेम करता है। भारत गाँवों का देष है और भारतीय संस्कृति कृषक संस्कृति कहलाती है। यहाँ के किसान अपनी धरती से अत्यधिक लगाव रखते हैं। यहाँ की उपजाऊ भूमि में मौसम के अनुसार फसलें, फलों के वृक्ष, पुष्प् और उगाये जाते हैं। अर्थात् खेती पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर है। यहाँ ऋतु गीत गाये जाते हैं। रोग ग्रस्त होने पर पेड़-पौधे, वनस्पतियों से भाँति-भाँति औषधियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं। जैसे-खाँसी आने पर तुलसी दल का काढ़ा, चोट लगने पर हल्दी का लेप, चेचक होने पर नीम की पत्ती का रखना, दुग्ध पान कराने वाली माताओं को पीपर, सतावर खिलाना आदि।

"कपिला के दूध पिलायो, बाबुल नहलायों, झारी पिताम्बर ओढ़ायो, लाल के सो आयो।
लालक लुटुर-लुटुर बरवा बहुत नीक आगे, बहुत छवि लागे ए हो!
माइ नी गूंथे जसोमति मने मन बिहंसें.....।"

बदलते वैज्ञानिक युग में शनैः-शनैः हमारी संस्कृति का स्वरूप बदलता जा रहा है। गाँव नगरों में बदल रहे हैं, नये-नये कल-कारखाने, उद्योग, मिलें, फैक्ट्रियाँ स्थापित किये जा रहे हैं। वैज्ञानिक तकनीकों से वे मौसम कृत्रिम फसलें, फल आदि उगाये और पकाये जाने लगे हैं। पाष्चात्य आधुनिक संस्कृति प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूल रूप को बदल रही है। भारत विकास कर रहा है। यहाँ विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक उपकरण ऊँची-ऊँची इमारतें, बड़े-बड़े उद्योग ग्रामीण संस्कृति में प्रयुक्त छोटे-छोटे उपकरणों (खुरपी, कुदाल, हल) सनई से बने झोपड़ियों और हस्तषिल्प के छोटे-छोटे उद्योगों को विस्थापित कर रहे हैं। लोक गीतों के स्थान पर पाष्चात्य पॉप गायन, लोक नृत्य के स्थान पर डिस्को का प्रचलन बढ़ गया है। अब शायद ही कोई बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी या साइकिल से चलता हो, इनका स्थान पेट्रोल और डीजल से चलने वाली तेज रफ्तार गाड़ियों ने ले लिया है। इस प्रकार भारत विकासषील है किन्तु यह विकास जिसने हमारी संस्कृति को प्रभावित किया है, हमारे पर्यावरण को भी प्रभावित कर रहा है। ज्ञातव्य है कि भारतीय संस्कृति और पर्यावरण परस्पर आश्रित हैं। यहाँ का किसान ऋतुओं के अनुसार फसलें बोता, उगाता और काटता है। स्त्रियाँ बोवाई-कटाई के गीत गाती हैं।

"बादल बरसे बिजुरी चमके, जियरा ललचे मोर सखिया।
सइया घर ना अइले पानी बरसे लागल मोर सखिया।।"

यहाँ ऋतु सम्बन्धी गीत-कजली (सावन मास में), फगुआ (फागुन मास में), चौता (चैत्र मास में), और पावस ऋतु में बारहमासा गाये जाते हैं। वाद्य यंत्रों में बाँसुरी जो बाँस से निर्मित होती है, वीणा जो वृक्ष के तने से निर्मित होती है, आदि प्रमुख वाद्य यंत्र हैं। वस्तुतः भारतीय लोक संस्कृति में प्रकृति वैसे ही समाहित है, जैसे-शरीर में आत्मा। हरे-भरे खेतों में लोग काम करते हैं, आम के पेड़ों के नीचे बैठकर ये रखवाली करते हैं। महुआ के पेड़ से कोइना एकत्र कर अंधेरे में घर में प्रकाष का प्रबन्ध करते हैं। घर के आंगन में बोई गई जमिरिया की गछिया उन्हें आनन्द देती है। चन्दन का पेड़ सुगन्ध बिखेरता है। रावना और महुआ के फूल शीतला माता की पूजा के लिए खिले हुए दिखाई पड़ते हैं। तुलसी का पेड़ तो ग्रामीण स्त्रियों का चिर साथी है। हमारी संस्कृति में विवाहिता स्त्री को चन्दन और लवंग के वृक्षों की लकड़ी से बने पलंग, लोहे और स्टील से बने पलंग से अधिक सुहावने लगते हैं। वे गाती हैं-

"मोरे पिछुवरवा लवंगिया की बगिया, लवंगा फूले आधी राति रे।
तेहि तर उतरे दुलही दुलरवा, तरहिं लवंगिया के फूल रे।।"

प्रकृति में रची बसी यह लोक संस्कृति धीरे-धीरे विलुप्त हो रही है। हम प्रकृति से कोसों दूर ईंट पत्थरों की दुनिया में प्रवेश कर गये हैं। आधुनिक समाज प्रकृति से प्रेम नहीं, उसका दोहन करना जानती है। कम्प्यूटर युग कहे जाने वाले आज के समय में हमारी संस्कृति प्राकृतिक से कृत्रिम हो गई है। विकास की दौड़ में हम पर्यावरण को शुद्ध रचाने वाली भारतीय संस्कृति के क्रिया-कलापों (हवन, यज्ञादि) से हटकर प्रकृति को दूषित करने वाली संस्कृति (प्लास्टिक को जलाना, नदियों में अपषिष्ट बहाना, पेट्रोल-डीजल चालित वाहनों का प्रयोग) को अपना रहे हैं। प्रदूषण का अर्थ है-पर्यावरणीय असंतुलन और इस असंतुलन का कारण है हमारी बदलती संस्कृति। आधुनिक विकासषील भारत की उपभोक्तावादी संस्कृति में पर्यावरण प्रदूषण के निम्नलिखित कारण प्रमुख रूप से उल्लिखित हैं-

1. वनों को काटकर उनके स्थान पर फैक्ट्रियाँ, मिलें, औद्योगिक प्रतिष्ठानों का निर्माण तथा वृक्षों का समुचित मात्रा में पुनःरोपण न करने से वृक्षों की कमी हो रही है। इससे वायु मण्डल में वृक्षों से प्राप्त ऑक्सीजन की कमी, भूमि की उर्वरता में कमी, बाढ़ का खतरा और वर्षा की कमी जैसी स्थितियाँ उत्पन्न हो रही हैं।
2. तेज रफ्तार वाहनों से विकास की गति बढ़ी है, हम अगम्य सुदूर स्थानों तक बड़ी आसानी से कम समय में पहुँचने लगे हैं। देषों की दूरियाँ कम हुई हैं किन्तु दूसरी तरफ वाहनों में प्रयुक्त पेट्रोल-डीजल से निकलने वाला धुआँ पर्यावरण को प्रदूषित कर रहा है। इस धुएँ से लेड और कार्बन मोनोऑक्साइड जैसी हानिकारक गैसें हमारी त्वचा, नेत्र, फेफड़ों को विकारग्रस्त कर रही हैं। आकाश में उड़ने वाले हेलीकॉप्टर और हवाई जहाज एक

ओर हमें अतिषीघ्र अधिक दूरी तक पहुँचा देते हैं और समय की बचत, कार्य गति बढ़ती है तो दूसरी और इनके ईंधन से निकलता धुआँ आकाषीय वायुमण्डल को प्रदूषित कर देता है।

3. वातावरण को नियंत्रित करने वाले यंत्र रेफ्रीजरेटर, ए0सी0 आदि में क्लोरो फ्लोरो कार्बन नामक कृत्रिम गैस प्रयुक्त होती है। कारखानों (शीतगृह) में उपयोग के बाद इसका एक चौथाई भाग अपशिष्ट के रूप में वायुमण्डल में घुल जाता है और ओजोन गैस के क्षरण का कारण बनता है। ओजोन की परत सूर्य की हानिकारक किरणों को पृथ्वी तक आने से रोकती है। इनके क्षरण से ये किरणें पृथ्वी के जीव-जन्तुओं, पेड़-पौधों आदि को नुकसान पहुँचा सकती है। इसी कारण से पृथ्वी का तापमान भी बढ़ने लगा है।
4. आधुनिकतावादी संस्कृति में औद्योगिक कारखानों से निकलने वाले अपशिष्ट, भारी धात्विक पदार्थ (पारा, सीसा, जस्ता, तांबा आदि) का रासायनिक कचरा नदियों में बहाया जाता है। अपनी शारीरिक स्वच्छता के लिए उपयोग में लाये गये साबुन, डिटर्जेंट, घर की नालियों की साफ-सफाई में प्रयुक्त कीटनाशक, खेतों में प्रयुक्त उर्वरक, मलमूत्र, कचरा, मृत शरीर आदि का निष्कासन नदियों में किया जाता है, जिससे उसका जल प्रदूषित हो जाता है। जिस नदी को पवित्र कहकर हम तीज-त्यौहारों पर उसकी आरती पूजा करते हैं, उसी में साबुन, डिटर्जेंट, पॉलीथीन, फूल, बोतल आदि बहाकर क्या हम पाप के भागी नहीं बन रहे हैं?
5. वैज्ञानिक विकास ने प्लास्टिक की थैलियाँ, बोतल जैसे कभी नष्ट न होने वाले संसाधन तो उपलब्ध करा दिये किन्तु इनके कचरे से दुष्परिणामों पर विचार नहीं किया। मिट्टी में इक्ठा होकर ये नष्ट न होने वाले कचरे मृदा के सूक्ष्म जीवों (भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने वाले बैक्टीरिया) का विनाष कर रहे हैं। इन्हीं कारणों से भूमि का ताप और दाब बढ़ने लगा है। यह ज्वालामुखी विस्फोट तक का कारण बन सकता है।
6. नगर और कारखानों के प्रदूषित जल, अपषिष्ट, कूड़ा आदि खाली भूमि में बहा दिया जाता है इसमें निहित रसायन, धातु, ताप, विशैली गैसें आदि मृदा में प्रवेश कर जाती है और कृषि योग्य उर्वरा भूमि भी बंजर हो जाती है।
7. पाष्चात्य संस्कृति के प्रभाव से तीव्र ध्वनि से बनजे वाले वाद्य यंत्रों, चीखते स्वर में लाउड स्पीकर, माइक, इलैक्ट्रोनिक वूफर साउण्ड वाले बड़े-बड़े स्पीकर आदि संयंत्रों में गाये जाने वाले गीतों, वाहनों के हार्न आदि से ध्वनि प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। ध्वनि प्रदूषण से बहरापन, दिल का दौरा, दिमागी बीमारियाँ जैसे-माइग्रेन, अनिद्रा, कार्यक्षमता में ह्रास का खतरा बढ़ रहा है।

निष्कर्षः

इस प्रकार भारती लोक संस्कृति आधुनिक उपभोक्तावादी संस्कृति में परिवर्तित होकर पर्यावरण प्रदूषण का कारण बन गई है। अतः हमें उस अपसंस्कृति से बचना होगा जो प्रकृति को दोहन करना जानती है और उस भारतीय संस्कृति को विलुप्त होने से बचाना होगा जिसमें प्रकृति प्रेम कूट-कूट कर भरा है। यह तभी सम्भव है जब हम अपने पर्यावरण को स्वच्छ और संतुलित रखें। जितना हम विकास के लिए प्रकृति से लेते हैं, उतना ही हमें देना भी होगा। यदि हम वनों को काटकर औद्योगिक प्रतिष्ठान बना रहे हैं, तो उसी अनुपात में वृक्षारोपण भी करना होगा। वाहनों से निकलने वाले धुँओं को प्रदूषण मुक्त बनाना होगा। मृदा प्रदूषण को रोहने के लिए प्लास्टिक बैग, थैलों और बोतलों का प्रयोग बन्द करना होगा। कृत्रिम वर्षा, परमाणु बम आदि विस्फोटक हथियारों का निर्माण और प्रयोग रोकना होगा। वैज्ञानिक प्रयोगों में प्रकृति के साथ होने वाले खिलवाड़ को बन्द करना होगा।

संदर्भः

1. कृष्णदेव, उपाध्याय (2002), भोजपुरी ग्रामगीत, भाग-1 पृष्ठ सं0 334।
2. त्रिपाठी रामनरेश (1999), ग्रामगीत, पृष्ठ सं0 69।
3. सिंह, परमेष्वर (2001), प्रकृति मानव एवं पर्यावरण, पृष्ठ सं0 80।
4. प्रसाद, जयशंकर (1993) कामायनी, चिंता सर्ग, पृष्ठ सं0 17।
5. उपाध्याय, करूणाशंकर (2018), भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता, गगनांचल मार्च-अगस्त, 2018; संयुक्तांक

वेद एवं वैदिक परम्परा

सुनील कुमार

शोध छात्र, दर्शनशास्त्र विभाग, गुरुकुल कॉगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वेद एवं वैदिक परम्परा के विषय में प्रमुखत: ध्यातव्य बिन्दु यह है, कि वेद क्या है? तथा उसका स्वरुप कैसा है? अथवा वेदों का मौलिक स्वरूप कैसा है? तथा वेदों के परम्परायें क्या है,व उन वैदिक परम्पराओं का मुख्य प्रयोजन क्या है? इन समस्त मूलभूत प्रश्नों का यथेष्ठ समाधान व्याख्येय है। इसकें अतिरिक्त वेद का स्वरूप, उसका स्वत: प्रमाण, नित्यत्ता एवं अपौरूषेयत्ता के विषय में आचार्य सायण एवं महर्षि दयानन्द के मन्तव्य क्या है? इसका विवेचन यथा क्रमश: इस प्रकार समुपलब्ध होता है-

(क) भाष्यकार आचार्य सायण कें वक्तव्य के अनुरूप इष्ट की प्राप्ति एवं अनिष्ट के परिहार के अलौकिक उपाय को बतलाने वाला ग्रन्थ वेद कहलाता है-

''इष्टप्राप्ति. अनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेद:।''[1]

वेद के लक्षण में सम्प्राप्त होनेवाले अलौकिक पद से आचार्य सायण नें यह कथन किया है, कि अलौकिक पद के द्वारा प्रत्यक्ष एवं अनुमान प्रमाणों का व्यावर्तन होता है। अर्थात् जो प्रत्यक्ष अथवा अनुमान प्रमाणों के द्वारा भी विषय ज्ञात नही होता है, उसे भी वेद के द्वारा जान लिया जाता है, यही वेद की वेदत्ता हैं-

''प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते। एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदत्ता।।''[2]

इसके अतिरिक्त आचार्य सायण नें ऋग्वेदभाष्यभूमिका में वेद का लक्षण इस प्रकार किये है-''मन्त्रब्राह्मणात्मकत्वं तावददुष्टं लक्षणम्।''[3] अर्थात् मन्त्र एवं ब्राह्मणात्मक शब्द राशि को वेद कथन किया गया है। यह वेद का लक्षण समस्त दोषों से सर्वथा रहित हैं। इनके द्वारा वेद को ईश्वरीय ज्ञान के रूप में स्वीकार किया गया है-

''यस्य नि:श्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्। निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम्।।''[4]

उपरोक्त श्लोक में सायण नें वेदों को महेश्वर के नि:श्वास से जायमान कथन किया है। अत एव वेद ईश्वर के श्वास-प्रश्वास रूप है, यह इस वृहदारण्यक श्रुति से भी प्रामाणित होती है-

''अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यद् ऋग्वेदो यजुर्वेद: सामवेदोऽथर्वाङ्गिस:।''[5]

(ख) वेदों का स्वत: प्रमाणत्व एवं स्वप्रकाशकत्वम्-भाष्यकार आचार्य सायण का वक्तव्य यह है, कि वेद स्वत: प्रमाण व स्वप्रकाश स्वरूप है। यथा सामान्यत: लोक में यह अवलोकित होता है, कि घट पटादि द्रव्यों कें स्वप्रकाश नही होनें पर भी सूर्य चन्द्रादि का स्वप्रकाश होना निर्विरोध प्रतीत होता है-

''यथा घटपटादिद्रव्याणां स्वप्रकाशकत्वाभावेऽपि सूर्यचन्द्रादीनां स्वप्रकाशकत्वमविरूद्धम्।''[6]

इसका आशय यह है, कि यह सर्वविदित एवं सर्वमान्य तथ्य है, कि लोक में घट पट आदि समस्त द्रव्यों का स्वत: प्रकाश नही होता है, किन्तु सूर्य एवं चन्द्रादि के स्वत: प्रकाश में किसी प्रकार का विरोध भी नहीं होता है। वें अपनें ही प्रकाश से स्वयं प्रकाशित होता हैं, और अन्य दूसरे पदार्थ को भी प्रकाशित करता है। मनुष्यों का अपनें कन्धों पर आरोहण अर्थात् चढना असम्भव है,अर्थात् कदापि सम्भव नही हो सकता है। फिर भी अकुण्ठित शक्ति वाला वेद अन्य वस्तुओं के प्रतिपादक होने के साथ-साथ स्वयं का भी प्रतिपादक होता है-

''तथा मनुष्यादीनां स्वस्कन्धारोहासंभवेऽपि अकुण्ठितशक्तेर्वेदस्य, इतरवस्तुप्रतिपादकत्ववत् स्वप्रतिपादकत्वमप्यस्तु।''[7]

तात्पर्य यह है, कि यथा सामान्यत: लोक में यह अवलोकित होता है, कि मनुष्य स्वयं अपनें कन्धों पर चढना असम्भव है, तथापि अकुण्ठित शक्ति सम्पन्न वेद अन्य समस्त पदार्थो का प्रतिपादन करता हुआ, स्वयं अपनें को भी प्रतिपादन करता है। अत एव सम्प्रदायवेता लोग वेद को अकुण्ठित शक्ति वाला अभिकथन करतें है। वेद चोदना, भूत, वर्तमान, एवं भविष्य, सूक्ष्म, व्यवहित अर्थात् किसी व्यवधान से आवृत तथा अत्यन्त दूर की वस्तु का भी ज्ञान करा देता हैं-

''चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्मं व्यवहितं विप्रकृष्टमित्येवं जातीयकमर्थं शक्नोति अवगमयितुम्। तथा सति वेदमूलाया: स्मृतेस्तदुभयमूलाया लोकप्रसिद्धेश्च प्रामाण्यं दुर्वारम्।''[8]

इस प्रकार वेदों पर आधारित वेदमूलक स्मृत्यादि अर्थात् वेद एवं वेदमूलक स्मृति तथा इन दोनों पर आधारित लोक प्रसिद्धि का प्रामाण्य दुर्वार अर्थात् निवारण न किये जानेवाला हैं।

(ग) वेदों का नित्यत्ता-भाष्यकार आचार्य सायण नें वेदों के नित्यत्व के परिपेक्ष्य में यह अभिकथन किया है, कि वेद के शब्द, अर्थ व उसके सम्बन्ध नित्य है। वह सामान्य पुरूषगत भ्रान्ति से सर्वथा रहित है। अत एव उसके नित्यत्व होने से उसमें वक्तृदोष की आशंका का अभ्युदय ही नही होता है-

''तस्य नित्यत्वेन वक्तृदोषशङ्कानुदयात्।''[9]

इसके सन्दर्भ में महर्षि जैमिनि का सूत्र भी प्रमाण के रूप में मिलता है-''तत्प्रमाणं बादरायणस्यानपेक्षितत्वात्।''[10] इसके अतिरिक्त वेदों के नित्यता में यथा क्रमशः श्रुति एवं स्मृति का प्रमाण भी समुपलब्ध होता है, श्रुतिस्मृतिभ्यां नित्यत्वावगमात्-''वाचा विरूप नित्यया'' इति श्रुतेः।''[11] ''अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवाः' इति स्मृतेश्च।''[12]

महर्षि बादरायण ने भी देवता अधिकरण में वेदों के नित्यता के परिपेक्ष्य में सूत्र का समुल्लेख किया है-

''अत एव च नित्यत्वम्।''[13]

(घ) वेदों का अपौरूषेयत्ता-भाष्यकार सायण नें वेदों के अपौरूषेयता के परिपेक्ष्य में यथा क्रमशः प्रश्नोतर विधि के माध्यम से यह अभिकथन किया है, कि वेद वाक्य पौरुषेय है, अर्थात् पुरुषनिर्मित होने के कारण 'विप्रलम्भक वाक्य' अर्थात् ठगो के वाक्यों के समान अप्रामाण्य है-

''ननु एवमपि वेदस्य पौरुषेयत्वेन विप्रलम्भकवाक्यवत् अप्रामाण्यं स्यात्।''[14]

इसका आशय है, कि यथा सामान्यतः लोक में यह अवलोकित होता है,कि विप्रलम्भक वञ्चक अर्थात् ठगों का वाक्य अप्रामाणिक होता है। तत्सादृश्य वेद वाक्य भी अप्रामाण्य है। इस सन्दर्भ में महर्षि जैमिनि ने पूर्वमीमांसा के प्रथम पाद में वेद के पौरुषेयत्व को पूर्वपक्ष के रुप में इस प्रकार सूत्रित किया है-''वेदांश्चौके सन्निकर्ष पुरुषाख्या।''[15]

अर्थात् वेद के कर्ता के रुपमें पुरुषों के नामों का उल्लेख मिलता है। अत एव वेद सन्निकर्ष अर्थात् सामान्यतः वेद रचनायें आधुनिक है। वस्तुतः वेदों के विषय में किसी एक का यह भी अभिकथन है, कि यथा कालिदास के द्वारा विरचित काव्य रघुवंशादि ग्रन्थों के समान अद्ययुगीन है। इस महर्षि जैमिनि के सूत्रे में सम्प्राप्त 'च' पद से दृष्टान्त के रूप में अन्य उदाहरणों का भी समुच्चय यहा प्राप्त होता है। अतः वेद अनादि नही है, क्योंकि वेद के रचयिता के रुप में पुरुषों का आख्यान मिलता है-

''न तु वेदा अनादयः। अत एव वेदकर्तृत्वेन पुरुषा आख्यायन्ते।''[16]

यथा सामान्यतः ग्रन्थों में जिस प्रकार 'वैयासिकं भारतम्' 'वाल्मीकीयं रामायणम्' इन उदाहरण में जिस प्रकार क्रमशः महाभारत के कर्ता व्यास एवं रामायण के रचयिता वाल्मीकि आदि का नाम स्पष्ट उच्चरित है। उसी प्रकार काठक, कौथुम, व तैतिरीय संहिताओं के साथ तत्तत् काठकादि कर्ताओं का नाम दृष्टिगोचर होता है। अतः वेद पौरुषेय है। इसका आशय है, कि वेदों के कर्ता के रुप में पुरुषों के नामों का कथन किया गया है-

''एके वादिनो वेदान् प्रति सन्निकर्ष मन्यन्ते। कालिदासादिभिर्निर्मितानां रघुवंशादिग्रन्थानां समुच्चयार्थश्चकारः। ते ह्यत्र दृष्टान्ततया समुच्चीयन्ते, यथा रघुवंशादय इदानीन्तनास्तथा वेदा अपि। न तु वेदा अनादयः, अत एव वेदकर्तृत्वेन पुरुषा आख्यायन्ते। वैयासिकं भारतं वाल्मीकीयं रामायणमित्यत्र यथा भारतादि कर्तृत्वेन व्यासादय आख्यायन्ते तथा काठकं कोथुमं तैत्तिरीयमित्येवं तत्तद्वेदशाखाकर्तृत्वेन कठादीनामाख्यातत्वाद् वेदाः पौरूषेयाः।''[17]

इसके अनन्तर अब द्वितीय आक्षेप का भी कथन किया गया है, जो इस प्रकार है। किन्तु वेद तो नित्य ही है, फिर भी उपाध्याय के समान वेदों के विभिन्न सम्प्रदाय के रुप में काठक आदि के नामों का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार के शङ्का प्रस्तुत करके अन्य दूसरी युक्त भी देते है। इस युक्ति के सन्दर्भ में महर्षि जैमिनि के सूत्र को प्रमाण के रुपमें कथन किया गया है। यथा अनित्य पदार्थो के दर्शन होने से-''अनित्यदर्शनाच्च।''[18]

वस्तुतः मूलतः ध्यातव्य बिन्दु यह है, कि वेदों के भाष्यकार सायण नें ऋग्वेद भाष्यभूमिका में वेद का अपौरुषेयता के प्रतिपादन के विषय में सर्वप्रथम पूर्वपक्ष के रुप में वेद का पौरुषेयत्व को व्याख्यान करते हुये कहते है, कि वेद अपौरुषेय नही है। इससें सर्वथा पृथक् पौरुषेय ही है। इस विषय में वे दो मूल भूत आक्षेप उपस्थापित करते है-

(अ) प्रथम-जो क्रमशः इस प्रकार है, सर्वप्रथम यथा सामान्यतः लौकिक ग्रन्थों व शास्त्रों का कर्ता का नामो का उल्लेख प्राप्त होता है। यथा महाभारत का कर्ता व्यास, रामायण का वाल्मीकि तथा रघुवंशादि के कर्ता के रुप में कालिदास का नाम स्पष्टतः उल्लेखित होता है। तत् समान वेदों का कर्ता के रुप में पुरुष का सन्निकर्ष प्राप्त होता है। अतः वेद पौरुषेय है। इस प्रकार अपर व द्वितीय आशङ्का के रुप में यह कथन किया गया है, कि वेदों में जन्म मरण धर्म वाले अनित्य पुरूषों का उल्लेख प्राप्त होता है। वेद में अनित्य पदार्थों का दर्शन होने से इसमे जैमिनि सूत्र प्रमाण है-'अनित्यदर्शनाच्च' अर्थात् अनित्य जन्म मरण वाले सामान्य मानव का वेद में नाम बबर आदि का उल्लेख सम्प्राप्त होता है-''बबरः प्रावाहणिरकामयत।''[19] अर्थात् बबरः प्रावाहणिरकामयत इसका आशय है,कि प्रावाहण का पुत्र बबर ने कामना किया है। इससे भिन्न यह भी अभिकथन किया गया है, कि-''कुसुरुबिन्द औद्दालकिरकामयत।''[20]

अर्थात् उद्दालक के पुत्र कुसुरुबिन्द ने भी कामना किया है। अतः इन समस्त वृतान्तों से यह स्पष्टतः विदित होता है,कि प्रावाहण के पुत्र बबर और उद्दालक के पुत्र कुसुरुबिन्द से पूर्व में वेदों का अभाव होने से वेद अनित्य सिद्ध है। इसके विषय में अनुमान वाक्यों का भी प्रयोग सायण नें भाष्य भूमिका में इस प्रकार किया है, अनुमान वाक्य-

''विमतं वेदवाक्यं पौरुषेयं, वाक्यत्वात, कालिदासादिवाक्यवत्।''[21]

अर्थात् विवादास्पद वेदवाक्य पौरुषेय है। वाक्य होने से, यथा कालिदास आदि वाक्यों के समान। अतः ये अनुमान वाक्य भी वेद का पौरुषेयत्व को सिद्ध करने के लिए दिया गया है। अत एव इस अनुमान के समुच्चय के लिए सूत्र में 'च' पद का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार पूर्वपक्ष का अभिकथन है। मूलतः

ध्यातव्य बिन्दु यह है,कि आचार्य सायण ने पूर्वपक्ष के रुप में समुपस्थापित आक्षेप को प्रामाणित करने हेतु महर्षि जैमिनि के सूत्रों का समुल्लेख किया है। आचार्य सायण ने समस्त पूर्वपक्ष के रुप में समुपस्थापित आशङ्काओ का निवारण क्रमशः इस प्रकार किये है। वेद अपौरुषेय है। अतः सम्प्राप्त महर्षि जैमिन के इस सूत्र में ''उक्तं तु शब्दपूर्वत्वम।''[22] तु शब्द से वेद के अनित्यत्ता का निवारण किया गया है। पूर्व सूत्रों में यह अभिकथन किया जा चुका है, कि वेद काठकादि पुरुषो से पूर्ववर्ती एवं अनादि है-''औत्पतिकस्तु शब्दस्य अर्थेन सम्बन्ध।''[23]

इस सूत्र में महर्षि जैमिनि का स्पष्ट अभिकथन है, कि -'औत्पतिक' पद के द्वारा शब्द स्वरुप वेद, उसके अर्थ व सम्बन्ध के नित्यत्व की प्रतिज्ञा करके शब्दाधिकरण एवं वाक्याधिकरण के द्वारा वेद का नित्यता का प्रतिपादन किया गया है। 'तु' शब्दो वेदानामनित्यत्वं वारयति शब्दस्य वेदरुपस्य कठादिपुरुषेभ्यः पूर्ववत्वम् अनादित्वं प्राचीनैरेव सूत्रैरुक्तम। 'औत्पतिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धः' इत्यस्मिन् सूत्रे 'औत्पतिक' शब्देन सर्वेषां शब्दानां वेदानां तदर्थानां तदुभयसम्बन्धानां च नित्यत्वं प्रतिज्ञाय उत्तराभ्यां शब्दाधिकरणवाक्याधिकरणाभ्यामुपपादितत्वात्।''[24]

इसके अतिरिक्त वेद के साथ काठक आदि नामों का क्या समाधान व गति होगा? इसके उत्तर में यह कथन किया गया है,कि सम्प्रदाय का प्रर्वतन करने के कारण कठादि का नाम प्राप्त होता है। अतः इस प्रकार का समाख्या उत्पन्न होता है। इसकें ज्ञापन हेतु इस सूत्र का निर्माण किया गया है-

''आख्या प्रवचनात।''[25] इसका तात्पर्य है,कि आख्या प्रवचनात् इसके द्वारा काठक आदि नामों से प्रयुक्त होने के कारण यह है,कि इन लोगो नें वेदों की उन-उन शाखाओं का प्रवचन किया था। इस सूत्र के द्वारा समुपलब्ध होनेवालें काठक आदि नाम प्रवचनकर्ता होने से सम्बद्ध हो गया है-

''का तर्हि गति काठकाद्याख्याया गतिरित्याशङ्क्य सम्प्रदायप्रवर्तनात् सेयमुपपद्यते इत्युतरं सूत्रयति।''[26] 'आख्या प्रवचनात्' वस्तुतः तात्पर्य है, कि वेदों के प्रवचकर्ता के परम्पराओ में जिस किसी ऋषि ने शाखाविशेष का अध्ययन-अध्यापन कराये वें कालान्तर में तत् तत् शाखा उस ऋषि के नाम से व्यवहृत होने लगा। अर्थात् उस ऋषि के नामों के साथ उस-उस शाखा आबद्ध हो गया। आशय यह है,कि वें समस्त ऋषि उन-उन शाखाओं के अध्ययन-अध्यापन करानेवाले है। उसके रचयिता नही है। नामों के समाधान के अनन्तर पुन यह आशङ्का होती है, कि वेदों मे बबर आदि अनित्य पदार्थों का जो कथन प्राप्त होता है, उसका क्या समाधान होगा? इसके उतर में यह कथन किया गया है, कि यह जो वेदों में बबर आदि अनित्य पदार्थों का जो नामोल्लेख प्राप्त होता है, वह 'शब्दसामान्य मात्र' जानना चाहिए।

इसमें महर्षि जैमिनि सूत्र प्रमाण है-''परं तु श्रुतिसामान्यमात्रम्।''[27] इसका आशय है, कि दूसरे सूत्र में कथित बबर आदि अनित्य पदार्थों का नामोल्लेख जो मिलता है। वह शब्द की समानता मात्र है। वस्तुतः यहॉ बबर नाम आदि कतिपय पुरुष विशेष का विवक्षा न होकर उससे सर्वथा भिन्न बबर ध्वनि वाला तथा तीव्र गति से प्रवाहमान् वायु विवक्षित है-

''अस्तु इयमाख्याया गतिः। ततः परं बबराद्यनित्यदर्शनं यदुक्तं तस्य किमुतरमित्याशङ्घ्य उतरं सूत्रयति-'परं तु श्रुति सामान्यमात्रम्' यद् परं बैबरादिकं तच्छब्दसामान्यमेव। न तु मनुष्यो बबर नामकोऽत्र विवक्षितः। बबरध्वनियुक्तस्य प्रवहणस्वभावस्य वायोरत्र वक्तुं शक्यत्वात्।।[28]

पूर्वपक्ष के द्वारा जो वेद के पौरुषेयता को सिद्ध करने के लिए जो 'वाक्यत्व' रुप हेतु दिया था। उसका खण्डन इस सूत्र में 'च' पद इस आधार पर कर देता है। इसका आशय है,कि इस सूत्र में प्राप्त होने वाले 'च' पद से पूर्वपक्ष के द्वारा वेद का पौरुषेयता को प्रामाणित करने के लिए वाक्यत्व हेतु को च पद से निराकरण किया गया है। क्योकि वेद वाक्यो का कर्त्ता उपलब्ध नही होता है। इससे सर्वथा भिन्न रघुंशादि के वाक्यों का कर्ता कें रुप में कालिदासादि का नाम उपलब्ध होता है। अतः यह सुस्पष्टतः ज्ञात होता है, कि वेद पौरुषेय नही है। अर्थात् वेद का पौरुषेयता प्रामाणित नही होती है-'च' कारः पूर्वपक्षोक्तस्य वाक्यत्वहेतोः कर्त्रनुपलम्भेन पराहतिं समुच्चिनोति। तस्मात् नास्ति वेदस्य पौरुषेयत्वम। अस्तु, इसके विषय में दो श्लोको का संग्रह इस प्रकार सम्प्राप्त होता है-अत्रेतौ संग्रहश्लोकौ-

''पौरुषेयं न वा वेदवाक्यं स्यात् पौरुषेयता। काठकादिसमाख्यानाद् वाक्यत्वाच्चान्यवाक्यवत्।।
समाख्यानं प्रवचनाद् वाक्यत्वं तु पराहतम्। तत्कर्त्रनुपलम्भेन स्यात्ततोऽपौरुषेयत्ता।।[29]

इन दोनों श्लोकों में क्रमशः परस्पर पूर्वपक्ष के मन्तव्य अनुरुप प्रायशः यह प्रयास वेद का पौरुषेयत्व सिद्ध करना अभीष्ट है, तथा उतर पक्ष के मन्तव्य अनुरूप वेद का अपौरूषेयत्ता को सिद्ध करना अभीष्ट होता है।

(2) इसके अनन्तर महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्य अनुरूप वेद का स्वरूप, उसका स्वतः प्रमाण, नित्यत्ता एवं अपौरूषेयत्ता का प्रतिपादन करना अभीष्ट है। महर्षि दयानन्द नें वेदों के विषय में यह अभिकथन किया है, कि सत् चित् आनन्दादि लक्षण से पूर्ण पुरुष से अर्थात् सच्चिदानन्दादि लक्षणात, सत् जिसका कदापि नाश नहीं होता है। चित् जो सदैव ज्ञानस्वरुप हो, अर्थात् जिसमें कदापि अज्ञान का लेश मात्र भी न हो, एवं आनन्द अर्थात् जो नित्य सुखस्वरुप है, और अन्य को भी सुख प्रदाता है। इस प्रकार के लक्षणों से युक्त पूर्ण पुरुष से ही सर्वहुत-सर्वपूज्य, अर्थात् सबके उपास्य योग्य सर्वशक्ति सम्पन्न पर ब्रह्म परमात्मा से ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद प्रकाशित होता है-

''तस्मात् यज्ञात्सच्चिदानन्दादिलक्षणात्पूर्णात्पुरूषात्सर्वहुतात् सर्वपूज्यात् सर्वोपास्यात्सर्वशक्तिमतः परब्रह्मणः ऋग्वेदः यजुर्वेदः सामवेदः अथर्ववेदश्च चत्वारो वेदास्तेनैव प्रकाशिता इति वेद्यम।''[30]

(ख) वेदों का स्वतः प्रमाणत्व एवं स्वप्रकाशकत्वम्-वेदों के प्रामाण्य एवं स्वतः प्रकाश कें परिप्रेक्ष्य में महर्षि दयानन्द का यह स्पष्ट वक्तव्य है, कि जो ग्रन्थ ईश्वरोक्त है। वें समस्त स्वतः प्रामाण्य के योग्य है। इससे सर्वथा भिन्न जो ग्रन्थ जीवों के द्वारा कथित है। वें सभी ग्रन्थ परतः प्रमाण के योग्य है। ईश्वरोक्त से भिन्न समस्त ग्रन्थों की प्रामाणिकता को परतः प्रामाण्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। उदाहरणतः ईश्वरोक्त अर्थात् परमात्मा प्रोक्त चारो वेद स्वतः प्रमाण है, क्योंकि परमात्मा प्रोक्त ग्रन्थों में भ्रमादिदोषों का सर्वथा अभाव होता है। परमात्मा सर्वज्ञ है, सर्वविद्या से युक्त है, और सर्वशक्तिमान् है। अतः वेदो का स्वतः प्रामाण्य सिद्ध होता है-

''य ईश्वरोक्ता ग्रन्थास्ते स्वतः प्रमाणं कर्तु योग्याः सन्ति, ये जीवोक्तास्ते परतः प्रमाणार्हाश्च। ईश्वरोक्तात्वात् चत्वारो वेदाः स्वतः प्रमाणम्। कुतः? तदुक्तौ भ्रमादिदोषाभावात्, तस्य सर्वज्ञत्वात, सर्वविद्यावत्वात्, सर्वशक्तिमत्वाच्च।"[31]

इसकें अतिरिक्त वेदों के विषय में प्रमाण क्या है? इसका समुल्लेख करतें हुयें महर्षि दयानन्द ने कथन किया है, कि वेदो में वेदो को ही प्रामाण्य के रुप मे स्वीकार करना चाहिए। यथा सूर्यप्रदीप के समान अर्थात् सामान्यतः लोक में यह अवलोकित होता है, कि सूर्य चन्द्र एवं प्रदीप स्वयं के ही प्रकाश से प्रकाशित होता है, तथा अन्य समस्त क्रियावाले द्रव्यों घटपटादि पदार्थ को भी प्रकाशित करता है। उसी प्रकार वेदो का प्रामाण्य भी स्वतः ही है। अन्य ग्रन्थ भी उसके अनुकूल होने से ही प्रामाणित होते है। इसका आशय यह है, कि वेदों के प्रमाण के विषय में इसकी प्रामाणिकत्ता को सूर्य प्रदीप के समान जानना चाहिए। इससे भिन्न जो ग्रन्थ वेदो के विरोधि है। वे समस्त प्रमाण के योग्य नही है। वे प्रमाण के रुप में स्वीकार नही किये जा सकते है। किन्तु वेदो के प्रामाणिकता के विषय में यह भी ध्यातव्य है, कि वेदों का अन्य ग्रन्थो से विरोध होने पर भी वें अप्रामाणिक नहीं होता हैं। अप्रामाण्य के योग्य नही होता है। क्योकि वें स्वतः प्रमाण से ही प्रामाणित है-

''तत्र वेदेषु वेदानामेव प्रामाण्यं स्वीकार्यं, सूर्यप्रदीपवत। यथा सूर्यः प्रदीपश्च स्वप्रकाशेनैव प्रकाशितौ सन्तौ सर्वमूर्तद्रव्यप्रकाशकौ भवतः, तथैव वेदाः स्वप्रकाशेनैव प्रकाशिताः सन्तः सर्वानन्य विद्याग्रन्थान् प्रकाशयन्ति। ये ग्रन्था वेदविरोधिनो वर्तन्ते, नैव तेषां प्रामाण्यं स्वीकर्तुं योग्यमस्ति। वेदानां तु खलु अन्येभ्यो ग्रन्थेभ्यो विरोधादप्यप्रामाण्यं न भवति, तेषां स्वतः प्रमाण्यात्तद्भिन्नानां ग्रन्थानां वेदाधीनप्रामाण्याच्च।"[32]

(ग) वेदों का नित्यत्ता-महर्षि दयानन्द सरस्वती नें वेदों के नित्यत्ता के विषय में यह अभिकथन किया है, कि वेद ईश्वर से उत्पन्न है, अतः वे स्वतः नित्य स्वरुप ही है। क्योकि परमेश्वर का समस्त सामर्थ्य नित्य ही होता है-

''ईश्वरस्य सकाशाद् वेदानामुत्पत्तौ सत्यां स्वतो नित्यत्वमेव भवति, तस्य सर्वसामर्थ्यस्य नित्यत्वात्।"[33]

इसके अतिरिक्त वेद के नित्यत्ता के परिपेक्ष्य में पूर्वपक्ष के द्वारा यह आक्षेप किया गया है, कि वेदों का नित्यत्ता सम्भव नही हो सकता है, क्योकि यें शब्दमय है-

'अत्र केचिदाहुः-न वेदानां शब्दमयत्वान्नित्यत्वं सम्भवति। इसके विषय में अनुमान वाक्य का प्रयोग इस प्रकार किया गया है-'वेदानां न नित्यत्वं सम्भवति शब्दमयत्वात्, अर्थात् वेदों का अनित्यत्ता सम्भव है, क्योकि यें शब्दमय है। इस अनुमान वाक्य में वेदों को पक्ष के रुप में, अनित्यत्वं को साध्य के रुप में, तथा परिशेष शब्दमयत्वं को हेतु के रुप में कथन किया गया है, जो इस प्रकार परिलक्षित होता है-'शब्दोऽनित्यः कार्यत्वात् घटवत्।'

इस अनुमान वाक्य में क्रमशः शब्द को पक्ष, अनित्यत्वं को साध्य तथा कार्यत्व को हेतु के रुप में कथन किया गया है, और घटपटादि दृष्टान्त है। अत एव शब्दमय होने से वेद अनित्य है, क्योकि यह सामान्यतः अवलोकित होता है, कि शब्द अनित्य है, क्योकि वह कार्यरुप है अर्थात् उत्पन्न होता है। जो कार्य रुप है, वें समस्त अनित्य होते है। दृष्टान्त के रुप में घट पटादि कार्य होने से अनित्य है,उसी प्रकार शब्द भी नित्य नही है, क्योकि वह कार्यवर्ग के अन्तर्गत आता है। अतः जिस प्रकार घट कार्य है उसी प्रकार शब्द भी कार्य है। वस्तुतः शब्द अनित्य होने के कारण वेदों का भी अनित्यत्ता प्रामाणित होती है, क्योकि वें शब्दमय है-

''अत्र केचिदाहुः-न वेदानां शब्दमयत्वान्नित्यत्वं सम्भवति। शब्दोऽनित्यः कार्यत्वात् घटवत्। यथा घटः कृतोऽस्ति तथा शब्दोऽपि। तस्माच्छब्दानित्यत्वे वेदानामप्यनित्यत्वं स्वीकार्यम्।"[34]

इस प्रकार पूर्वोक्त पूर्वपक्ष के द्वारा कथित समस्त आक्षेपों के समाधान में महर्षि दयानन्द का यह वक्तत्य है, कि शब्द दो प्रकार के होता है, नित्य एव कार्य के भेद से अर्थात् शब्दों की प्रकारता द्विविध होता है। प्रथम नित्य शब्द एवं द्वितीय कार्यरुप शब्द। इन द्विविध शब्दो में से जो शब्द अर्थ एवं सम्बन्ध परमात्मा के ज्ञान में विद्यमान है, वें सब नित्य ही होता है। इससे सर्वथा भिन्न जो सामान्य जनों की कल्पना से जायमान् शब्द कार्य रुप होते है, क्योकि जिसका ज्ञान एव क्रिया उभयविध स्वभाव से सिद्ध तथा अनादि है। उसके सम्पूर्ण सामर्थ्य भी नित्य ही होता है-

''यस्य ज्ञानक्रिये नित्ये स्वभावसिद्धे अनादीस्तस्तस्य सर्वं सामर्थ्यमपि नित्यमेव भवितुमर्हति।"[35]

इस प्रकार वेद भी परमात्मा का विद्यास्वरुप होने के कारण नित्य ही है, क्योकि ईश्वर की विद्या कदापि अनित्य नही हो सकती है ख्र

''मैवं मन्यताम। शब्दो द्विविधो नित्यकार्यभेदात। ये परमात्मज्ञानस्थाः शब्दार्थसम्बन्धाःसन्ति ते नित्या भवितुमर्हन्ति। येऽस्मदादीनां वर्तन्ते ते तु कार्याश्च। कुतः? यस्य ज्ञानक्रिये नित्ये स्वभावसिद्धे अनादी स्तस्तस्यसर्वं सामर्थ्यमपि नित्यमेव भवितुमर्हति। तद्विद्यामयत्वाद् वेदानामनित्यत्वं नैव घटते।"[36]

(घ) वेदों का अपौरूषेयत्ता-वेदों के अपौरूषेयत्ता के परिप्रेक्ष्य में महर्षि दयानन्द का यह वक्तव्य है, कि वेद निरवयव परमेश्वर के द्वारा प्रादुर्भूत है। परमात्मा नें सर्गादौ में अग्न्यादि चार ऋषियों को वेद प्रकाशनाय निमित बनाया था। वेदों में शब्दार्थ-सम्बन्ध परमेश्वर से ही उत्पन्न हुआ है। अतः यह पूर्णविद्य है। वेद सामान्यतया किसी भी देहधारी मानव के द्वारा निर्मित नही होने के कारण, अपितु इससे सर्वथा पृथक् इसको श्रवण करने की परम्परा है। यह नित्य ज्ञान-स्वरूप वेद सामान्यतः किसी भी मानव के द्वारा विरचित नही होने के कारण वेदों की अपौरूषेयत्ता प्रामाणित होती है। अतः महर्षि दयानन्द नें वेदों को अपौरूषेय नित्य माना है, क्योकि शब्द नित्य होने पर वेदों का ज्ञान भी नित्य है।[37]

वैदिक परम्परा-वैदिक परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य में प्राचीनतम मन्तव्य है, कि वेद सर्गादि के प्रारम्भ में ईश्वर प्रदत ज्ञान है, जो ऋषियों के माध्यम से इसका अध्ययन व अध्यापन गुरू शिष्य परम्परा से होती है-

''वेदस्याऽध्ययनं सर्वं गुर्वध्ययनपूर्वकम्। वेदाध्ययनसामान्यादधुनाध्ययनं यथा।।"[38]

अर्थात् आशय यह है, कि इस मीमांसा शास्त्र में अनुमान वाक्य के माध्यम से वेद का अध्ययन एवं अध्यापन को प्रामाणित करने हेतु, प्रथमपाद-'वेदस्याऽध्ययनं सर्वम्' अर्थात् वेद व तत्सम्बधित समस्त वैदिक शाखाओं को पक्ष के रूप में, एवं द्वितीयपाद-'गुर्वध्ययनपूर्वकम्' अर्थात् गुरू अध्ययन पूर्वकत्वं को साध्य के रूप में, तथा तृतीयपाद-'वेदाध्ययनसामान्यात् अर्थात् वेदाध्ययनसामान्यत्वं को हेतु के रूप में, और परिशेष अन्तिम चतुर्थपाद-'अधुनाध्ययनं, यथा आधुनिक अध्ययन को दृष्टान्त के रूप में सूत्रित किया गया है। अत एव इसका आशय है, कि वेद एवं उससे सम्बन्धित सभी शाखाओं का अध्ययन एवं अध्यापन गुरू व आचार्यों के द्वारा सुसम्पन्न होता है। इसमें वेदाध्ययनत्व रूप हेतु के माध्यम से अखिल वैदिक शास्त्रों का अध्यापन कर्त्ता गुरू तथा अध्येत्ता शिष्य के रूप में सम्प्राप्त होते है। अतः सामान्यतः लोक में यह दृष्टान्त परिलक्षित होता है, कि आधुनिक काल में भी यथा शास्त्रों का अध्ययन व अध्यापन गुरू-शिष्य पूर्वक ही होता है। उसी प्रकार पुरातन काल में भी अखिल वैदिक शास्त्रों का पठन व पाठन परम्परा पूर्वक ही होता था। इन परम्पराओं का मूल उद्देश्य है, वेदों का संरक्षण, जो ऋषि प्रदत्त है।

श्रुति परम्परा से समुपलब्ध समस्त मूल वेद संहितायें व उसके मन्त्रों को पूर्णतः अपरिवर्तित एवं अक्षुण्ण रखने हेतु ऋषियों नें इसकी पाठ-विधियों का उपदेश किया है। अत एव यें समस्त पाठ विधि ऋषि प्रदत्त है, जिसका मुख्य प्रयोजन है। वेद के पदों एवं वर्णो की रक्षा के साथ-साथ मात्राओं को भी सुरक्षित रखना। ये समस्त पाठ विधि ऋषियों के द्वारा दृष्ट है। अत एव ये अपौरूषेय है। ये पाठविधि यथा क्रमशः-दो प्रकार का है-प्रथम-प्रकृति पाठ एवं अपर द्वितीय-विकृति पाठ।

पुनः प्रकृति पाठ क्रमशः संहितापाठ, पदपाठ व क्रमपाठ इन तीन भागों में विभाजित है। विकृति पाठ, क्रमशः-जटा, माला, शिखा, रेखा, ध्वज, दण्ड, रथ एवं घन, इन आठ भागों में विभाजित है-

"जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः। अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः।।"[89]

इन उभयविध पाठों के माध्यम से वेदों के पदों और वर्णों की रक्षा के साथ-साथ मात्रायें भी सुरक्षित रहती है।

निष्कर्षतः-इस प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से वेद के स्वरुप उसकी नित्यत्ता, अपौरुषेयत्ता तथा स्वतः प्रामाणिकत्ता एवं वैदिक परम्पराओं का मूल उद्देश्य उसके संरक्षण के विधियों का ज्ञान होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. आचार्य सायण, तैत्तिरीयसंहिताभाष्यभूमिका, वाराणसी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान प्रकाशक, संस्करण-द्वितीय, वि०संवत् 2०42, पृ. सं.2
2. आचार्य सायण, तैत्तिरीयसंहिताभाष्यभूमिका, वाराणसी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान प्रकाशक, संस्करण-द्वितीय, वि०संवत् 2०42, पृ. सं.2
3. आचार्य सायण, ऋग्वेदभाष्योपक्रमणिका, वाराणसी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान प्रकाशक, संस्करण-द्वितीय, वि०संवत् 2०42, पृ. सं.15
4. आचार्य सायण, तैत्तिरीयसंहिताभाष्यभूमिका, वाराणसी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान प्रकाशक, संस्करण-द्वितीय, वि०संवत् 2०42, पृ. सं.1
5. बृहदारण्यक उपनिषद्, अ. 4, ब्राह्मण-5, मंत्र.11, हरिद्वार, श्री त्यागमूर्ति जनकल्याण ट्रष्ट समिति प्रकाशक, संस्करण-प्रथम 2007, पृ. सं.120
6. आचार्य सायण, ऋग्वेदभाष्योपक्रमणिका, वाराणसी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान प्रकाशक, संस्करण-द्वितीय, वि0 संवत् 2042, पृ.सं.15
7. आचार्य सायण, ऋग्वेदभाष्योपक्रमणिका, वाराणसी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान प्रकाशक ,संस्करण-द्वितीय, वि0 संवत् 2042, पृ.सं.15
8. पूर्वमीमांसा-शाबर भाष्य, अ.-1, पा.-1, सू.-2
9. आचार्य सायण, तैत्तिरीयसंहिताभाष्यभूमिका, वाराणसी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान प्रकाशक, संस्करण-द्वितीय, वि०संवत् 2०42, पृ. सं.3
10. पूर्वमीमांसा-अ.-1,पा.-1, सू.-5
11. ऋग्वेद-मण्डल-8, सूक्त-75, मन्त्र-6
12. महाभारत शान्तिपर्व, 232 / 24
13. ब्रह्मसूत्र-अ.-1, पाद-3, सूत्र-29
14. आचार्य सायण, ऋग्वेदभाष्योपक्रमणिका, वाराणसी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान प्रकाशक, संस्करण-द्वितीय, वि0 संवत् 2042, पृ.सं.32
15. पूर्वमीमांसा-अ.-1,पा.-1, सू.-27
16. आचार्य सायण, ऋग्वेदभाष्योपक्रमणिका, वाराणसी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान प्रकाशक, संस्करण-द्वितीय, वि0 संवत् 2042, पृ.सं.32
17. आचार्य सायण, ऋग्वेदभाष्योपक्रमणिका, वाराणसी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान प्रकाशक, संस्करण-द्वितीय, वि0 संवत् 2042, पृ.सं.32
18. पूर्वमीमांसा-अ.-1,पा.-1, सू.-28
19. तै० स० 7/1/10/2
20. तै० स० 7/2/2/1
21. आचार्य सायण, ऋग्वेदभाष्योपक्रमणिका, वाराणसी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान प्रकाशक, संस्करण-द्वितीय, वि0 संवत् 2042, पृ.सं.33
22. पूर्वमीमांसा-अ.-1,पा.-1, सू.-29
23. पूर्वमीमांसा-अ.-1,पा.-1, सू.-5
24. आचार्य सायण, ऋग्वेदभाष्योपक्रमणिका, वाराणसी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान प्रकाशक, संस्करण-द्वितीय, वि0 संवत् 2042, पृ.सं.33
25. पूर्वमीमांसा-अ.-1,पा.-1, सू.-30
26. आचार्य सायण, ऋग्वेदभाष्योपक्रमणिका, वाराणसी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान प्रकाशक, संस्करण-द्वितीय, वि0 संवत् 2042, पृ.सं.33

27. पूर्वमीमांसा-अ.-1,पा.-1, सू.-31
28. आचार्य सायण, ऋग्वेदभाष्योपक्रमणिका, वाराणसी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान प्रकाशक, संस्करण-द्वितीय, वि0 संवत् 2042, पृ.सं.33
29. आचार्य माधव, जैमिनीयन्यायमाला, अ.-1, पा.-1, सू.-8, वाराणसी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन प्रकाशक, संस्करण-प्रथम 2013, पृ.सं.38
30. सरस्वती, महर्षि दयानन्द, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, दिल्ली, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रष्ट प्रकाशक, संस्करण -11वाँ, फरवरी 2012 पृ. सं.7
31. सरस्वती, महर्षि दयानन्द, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, दिल्ली, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रष्ट प्रकाशक, संस्करण -11वाँ, फरवरी 2012 पृ. सं.211
32. सरस्वती, महर्षि दयानन्द, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, दिल्ली, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रष्ट प्रकाशक, संस्करण -11वाँ, फरवरी 2012 पृ. सं.211
33. सरस्वती, महर्षि दयानन्द, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, दिल्ली, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रष्ट प्रकाशक, संस्करण -11वाँ, फरवरी 2012 पृ. सं.21
34. सरस्वती, महर्षि दयानन्द, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, दिल्ली, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रष्ट प्रकाशक, संस्करण -11वाँ, फरवरी 2012 पृ. सं.21
35. सरस्वती, महर्षि दयानन्द, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, दिल्ली, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रष्ट प्रकाशक, संस्करण -11वाँ, फरवरी 2012 पृ. सं.21
36. सरस्वती, महर्षि दयानन्द, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, दिल्ली, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रष्ट प्रकाशक, संस्करण -11वाँ, फरवरी 2012 पृ. सं.21
37. वर्णी, डॉ० रामप्रकाश, आचार्य सायण और स्वामी दयानन्द सरस्वती की वेदभाष्य भूमिकाएँ, दिल्ली, परिमल पब्लिकेशन्स प्रकाशक, संस्करण-प्रथम 2005, पृ.सं. 86
38. अपदेव, मीमांसा न्याय प्रकाश, वाराणसी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, संस्करण-चतुर्थ, वि० स० 2058, पृ.सं.3
39. उपाध्याय, आचार्य बलदेव, वैदिक साहित्य और संस्कृति, वाराणसी, शारदा संस्थान नगवा लंका प्रकाशक, सप्तम संस्करण-2015,पृ.सं.29

मैत्रेयी पुष्पा की 'ताला खुला है पापा' कहानी की समीक्षा

डॉ० जयश्री भण्डारी

शोध निर्देशक, पीएच०डी० (हिन्दी), एम०बी० रा०स्ना०, महाविद्यालय, हल्द्वानी

कु० मीना

शोधार्थी, एम०बी० रा०स्ना०, महाविद्यालय, हल्द्वानी

मैत्रेयी पुष्पा द्वारा रचित 'ताला खुला है पापा' एक ऐसी कहानी जो हृदय को द्रवीभूत कर दें। विवाह एक ऐसी संस्था है जो समाज द्वारा निर्धारित होती है समाज में रहकर प्रत्येक मनुष्य को उसका पालन करना होता है। ऐसे ही यह कहानी मैत्रेयी जी ने 'अंतर्जातीय विवाह' की समस्या को लेकर लिखी गई है।

जिसमें बिन्दों और अरविन्द को उनकी मर्जी के अनुसार विवाह नहीं करने दिया जाता तथा समाज तथा स्वयं बिन्दो के परिवार वाले बिन्दों को शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित करते है।

यह कहानी अरविन्द और बिन्दो जो अलग-अलग जाति के होने के कारण विवाह नहीं कर पाते है। बिन्दो एक ब्राह्मण कुल से सम्बन्धित है जबकि अरविन्द एक नाई जाति से सम्बन्धित है।

अरविन्द बिन्दो के घर में आता जाता है। उनके खेत-खलिहान देखता है तथा बिन्दों के पिताजी (जगदीश चौबे) का भी उनकी बीमारी में भी साथ देता है।

वैसे तो बिन्दों के माता-पिता अरविन्द की बहुत प्रशंसा करते है लेकिन जैसे ही वे बिन्दो का आकर्षण अरविन्द के प्रति देखते है उनके सोचने का दृष्टिकोण अरविन्द के लिए बदल जाता है। बिन्दो की अम्मा घुर्राकर बोलती है, 'जितना उसने किया हमने चुका दिया। दोनों बखत चराया हरामी को।[152] साथ ही बिन्दो के पापा भी अरविन्द को बोलते है-'साला, आस्तीन का साँप'।[152]

अरविन्द निश्छल हृदय का बिना माँ-बाप की संतान पढ़ने में होशियार हर कार्य में दक्ष लेकिन फिर भी कभी भी किसी के साथ मुँह नहीं चलाता था। उसका कसूर केवल ही था कि उसने निम्न जाति में जन्म लिया था।

बिन्दों उसके निश्छल स्वभाव के कारण ही उसे इतना प्रेम करती थी। किशोरावस्था का प्रेम दोनों की उम्र केवल लगभग 17 साल अभी तो वे केवल 12वीं कक्षा में ही पढ़ते थे। इस उम्र में किसी भी लड़के-लड़कियों का एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक प्रक्रिया है। अरविन्द और बिन्दो दोनों का क्या पता था? कि उनका प्रेम ही उनका दुश्मन बन जाएगा।

बिन्दो की माँ को अपनी पुत्री के प्रेम-प्रसंग का पता चलने के बाद भी वह उसे सिर्फ समझाने की जगह केवल प्रताड़नाएँ एवं उलाहनें देती है। यहाँ तक कि वह बिन्दों की खूब पिटाई भी करती है, माँ कहती है, 'रंडी, यही डर था हमें। उस नाऊ से ब्याह करेगी?'[151]

लड़की कहीं अरविन्द के साथ भाग न जाए इसलिए जगदीश चौबे उसको एक कोठरी में बंद करके रखते है। कोई अगर पूछता भी है तो वह कहते लड़की अपनी नानी के घर गई है या फिर इसी तरह के कोई न कोई बहाने अवश्य मारते।

जगदीश चौबे बड़ी बेटी के ब्याह के कारण कर्जे में डूबे हुए है लेकिन फिर भी उन्हें अपनी माने-प्रतिष्ठा बनाए रखनी है। उन्हें अपनी बेटी का विवाह उच्च कुल में ही करना है ताकि उनकी समाज में प्रतिष्ठा बनी रही।

माँ-बाप के डर से बिन्दो कभी अपने मन की बात नहीं कह पाई। कई बाते उसके मन में ही चलती है और वह इन सभी बातों को एक डायरी में अभिव्यक्त करती है।

बिन्दो के पिता जगदीश चौबे का भी अपने कॉलेज समय में एक बसंती नामक लड़की से प्रेम-प्रसंग चला था। दोनों की एक ही बिरादरी होने पर भी विवाह नहीं हो पाता। कारण था कि जगदीश चौबे गरीब थे और बसंती एक अफसर की बेटी थी। वे ऐसे हालात में कैसे एक गरीब लड़के के हाथ में बसंती का हाथ दे देते।

जगदीश चौबे भी अपने प्रेम प्रसंग के दिनों में बसंती से भागकर शादी करना चाहते थे लेकिन बसंती अपने पिता के नियमों के अनुरूप भागने से इंकार कर देती है। और जगदीश चौबे को पत्र लिखती है-'मैं तुम्हें दु:ख नहीं देना चाहती थी, इसलिए जबरदस्ती होने वाली शादी की बात नहीं बताई। मैं तुम्हारी अपराधिनी हूँ, क्योंकि तुम्हारी मर्जी के अनुसार घर से भागे जाना मेरे बस की बात नहीं था।'[154]

बेटी की डायरी में लिखे ये शब्द चौबे जी को नि:शब्द कर देते है।

उपसंहार:-

बिन्दो और अरविन्द इसलिए शादी नहीं कर पाते क्योंकि दोनों की एक जाति नहीं थी जबकि जगदीश चौबे बसंती से विवाह नहीं कर पाये क्योंकि चौबे जी एक गरीब घर से थे।

आधुनिक समाज में यह देखा जाता है कि हर कोई अपने बराबरी का ही जीवन साथी का चुनाव करता है।

अपने समय में भोगे गए प्रेम-पीड़ा के बावजूद भी जगदीश चौबे अरविन्द और बिन्दो की शादी नहीं होने देते क्योंकि उन्हें समाज में अपनी मान-प्रतिष्ठा बनाए रखना था। अपनी जाति में नाम न कट जाए इसलिए वह बिन्दो को कोठरी में बंद करके रखते उन्हें एहसास तो तब होता है जब पीछे से बिन्दो कहती है-'ताला खुला है पापा'।

अपने ऊपर जुल्मों के बाद भी बिन्दो अपनी आज्ञाकारी बेटी धर्म का पालन करती है। उसका परिचय वह अंत में उपरोक्त कथन से करती है।

माता-पिता को हमेशा अपने बच्चों से मित्रतापूर्वक व्यवहार करना चाहिए। बिन्दो की माता अगर बिन्दो को प्रेमपूर्वक समझाती तो शायद वह समझ जाती। माता-पिता को संतान के प्रति इस तरह की हिंसक प्रवृत्ति बच्चों के मनोमस्तिष्क को क्षीण करती है। बिना बिन्दो को सुने उसके पिताजी का उसको कोठरी में बंद करना उनकी रूढिबद्ध कुसमायोजित अवधारणा को दर्शाता है।

विवाह केवल जाति, समाज, अमीरी-गरीबी को देखकर ही नहीं लड़के-लड़कियों को उनके पसंद का सुयोग्य वर चुनने का भी पूर्णत: स्वतंत्रता होने चाहिए।

हमारे समाज में निरंतर न जाने कितनी घटनाएँ होती रहती है, जब दो लोगों को उनके मनपंसद का चुनाव नहीं करने दिया जाता। तो ऐसे में कुछ युवक-युवतियाँ या तो घर से भाग जाते है या फिर मृत्यु को अपनाना ही उचित समझते है। किशोरावस्था में अधिकतर ये सभी घटनाएँ आमतौर पर देखने को मिल जाती है।

इस अवस्था में माता-पिता को उन्हें गाइड करने की अतिआवश्यकता होती है। उनसे पहले ही लड़ाई-झगड़ा न करके आपस में बैठकर मिलजुलकर ही समस्या का समाधान किया जा सकता है।

आधुनिकता की इस दौड़ में भौतिक संसाधनों की सुविधा के लिए मनुष्य इतनी भागादौड़ी करता है कि वह चन्द पल अपने घर के सदस्यों के साथ नहीं बैठ पाता। किसके मन में क्या चल रहा है? यह समझना मुश्किल हो जाता है। बच्चों को उचित समय-समय पर परामर्श दिए जाने चाहिए। उनके साथ बैठकर उनकी समस्याओं को भी सुनना चाहिए ताकि बच्चे भी अपनी बात अपने माँ-बाप के सामने खुलकर कह पाये।

अगर समय-समय पर बच्चों को गाइड किया जाए तो शायद कोई भी बच्चा कभी गलत कदम नहीं उठा पायेगा।

जगदीश चौबे जी और उनकी पत्नी अगर अपनी पुत्री बिन्दो को किसी कमरे में बंद करने की बजाय उससे खुलकर बातें करते तो उन्हें अपनी बेटी को इस तरह प्रताड़ित न कर पड़ता।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. दस प्रतिनिधि कहानियाँ-मैत्रेयी पुष्पा किताबघर प्रकाशन 4855-56/24, अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली-110002

बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 के संदर्भ में प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के कर्तव्यों एवं उनके समक्ष आने वाली समस्याओं का अध्ययन

प्रभात कुमार

(शोधार्थी), (शिक्षा संकाय), कामताप्रसाद सुन्दरलाल साकेत स्नाकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या (उ0प्र0)

डॉ0 प्रतिभा राय

(एसोसिएट प्रोफेसर), विभागाध्यक्षा (शिक्षा संकाय), कामताप्रसाद सुन्दरलाल साकेत स्नाकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या (उ0प्र0)

सारांश

नीति निर्देशक सिद्धान्त के अनुच्छेद-45 के अनुसार ''राज्य इस संविधान के लागू होने के 10 साल की अवधि में सभी बच्चों के लिये जब तब कि वे 14 साल की आयु को प्राप्त नहीं कर लेते, नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने का प्रयास करेगा। शिक्षा की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी शिक्षक होता है और शिक्षा अधिकार अधिनियम की भी महत्वपूर्ण कड़ी शिक्षक ही है। इसलिये शिक्षक को शिक्षा का अधिकार अधिनियम में मुख्य योद्धा मानकर जिम्मेदारी सौंपी गयी हैं किन्तु शिक्षा अधिकार अधिनियम उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्राथमिक शिक्षा की महत्वपूर्ण कड़ी अर्थात शिक्षक के समक्ष आने वाली समस्याओं को भी समझने की आवश्यकता है और उनके समाधान के बाद भी शिक्षा अधिकार अधिनियम के उद्देश्यों की प्राप्ति सम्भव हो सकती है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 के संदर्भ में प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों द्वारा विभिन्न समस्याओं जैसे-शिक्षक से प्रबन्धक का कार्य लेना, शिक्षक से क्लर्क का कार्य लेना, शिक्षक से चतुर्थश्रेणी कर्मचारी के रूप में कार्य लेना, विद्यालय भवन निर्माण सम्बन्धी कार्य लेना, विद्यालय शिक्षक संसाधनों का अभाव, अवकाश के लिये शिक्षकों का शिक्षा कार्यालयों पर भटकना, प्रतिवर्ष शिक्षकों पर समायोजन रूप तलवार लटकना एवं शिक्षकों की वेतन सम्बन्धी समस्यायें प्रमुख है।

मुख्य शब्द (Key words) : शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009, शिक्षकों के कर्तव्य एवं समस्याऐं

प्रस्तावना

सम्पूर्ण ढांचे की नींव प्राथमिक स्तर की शिक्षा पर ही आधारित होती है। यदि वह कमजोर होती तो सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था ही कमजोर हो जायेगी और शिक्षा रूपी भवन गिर जायेगा इससे देश अवनति की ओर बढ़ेगा।

देश के शिखा कार्यक्रम में प्राथमिक स्तर की शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान हैं। प्राथमिक शिक्षा पर ही माध्यममिक तथा उच्च स्तर की शिक्षा निर्भर रहती है। प्राथमिक स्तर की शिक्षा एक पौधे की जड़ के समान होती है। जिसको प्राप्त कर वह भविष्य में विशाल रूप धारण कर फल और छाँव से देश की सेवा का माध्यम बन सकता है। इसी प्रकार एक बच्चें की जड़ अर्थात आधार प्राथमिक स्तर की शिक्षा होती है। जिसको ग्रहण कर बच्चा देश का भावी कुशल नागरिक बन देश के विकास में अहम भूमिका निभा सकता है।

बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 एक संक्षिप्त परिचिय-

नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर देश के अन्य सभी राज्यों में 01 अप्रैल 2010 में 6-14 वयवर्ग के बच्चों के लिये लागू हो चुका है। विश्व में ऐसे बहुत कम देश हैं, जहाँ बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने की राष्ट्रीय व्यवस्था लागू है। इस दृष्टि से यह अधिनियम भारत को प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने की आधार भूमि उपलब्ध करा रहा है।

इस अधिनियम में 6 से 14 वर्ष की आयु के हर एक बच्चें को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए विभिन्न एवं उन प्रावधानों को पूर्ण करने के लिये कर्तव्य एवं दायित्व निर्धारित है।

ऐतिहासिक दृष्टि से 1870 में ब्रिटेन में अनिवार्य शिक्षा अधिनियम पारित होने के उपरान्त सर्वप्रथम हर एक बच्चें को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की मांग ज्योतिबाफुले द्वारा 1882 में हंटर कमीशन से की गयी थी। 1906 में इम्पीरियल लेजिसलेटिव असेम्बली से श्री गोपाल कृष्ण गोखले द्वारा भारतीय बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार प्रदान करने की मांग की गयी, और कहा था किन्तु उन्हें भी सफलता प्राप्त नहीं हुयी। 1937 में महात्मा गांधी ने वर्धा में राष्ट्रीय शिक्षा परिषद् की बैठक में सभी बच्चों के लिये सार्वभौमिक शिक्षा का प्रस्ताव रखा गया किन्तु वित्तीय संसाधनों के अभाव का कारण बताकर बच्चों को यह अधिकार प्रदान नहीं किया गया। 1948-49 में संविधान सभा के समक्ष भी यह प्रश्न उत्पन्न हुआ किन्तु संविधान सभा की सलाहकार समिति ने इसे मौलिक अधिकार न मानते हुये नीति निर्देशक सिद्धान्त की सूची में स्वीकार किया गया। नीति निर्देशक सिद्धान्त के अनुच्छेद-45 के अनुसार ''राज्य इस संविधान के लागू होने के 10 साल की अवधि में सभी बच्चों के लिये जब तब कि वे 14 साल की आयु को प्राप्त नहीं कर लेते, नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने का प्रयास करेगा। किन्तु यह केवल राज्य के विवेक पर निर्भर था इसे लागू करें या नहीं।

सभी बच्चों के लिये शिक्षा की व्यवस्था के संबंध में उच्चतम न्यायालय द्वारा 1993 मं प्रदत्त निर्णय में यह कहा गया कि शिक्षा के बिना जीवन का अधिकार अपूर्ण है तथा 14 वर्ष तक के समस्त बच्चों को नि:शुल्क प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान करना राज्य का दायित्व है। इस निर्णय के उपरान्त 86वाँ संवैधानिक संशोधन, 2002 के अन्तर्गत मूल अधिकारों में अनुच्छेंद 21ए सम्मिलित किया गया जिसके अनुसार ''राज्य 6-14 वर्ष के आयु वर्ग वाले सभी बच्चों के लिये नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने का, ऐसी रीति में में जो राज्य विधि द्वारा अवधारित करें, उपबंध करेगा।

अन्तत: भारत के सभी बच्चों नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने की यात्रा लगभग एक शताब्दी के बाद 2010 में मंजिल प्राप्त सकी और 01 अप्रैल 2010 से शिक्षा का अधिकार अधिनियम लागू हो गया। शिक्षा का अधिकार अब 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए एक मौलिक अधिकार है तथा राज्य प्रत्येक बच्चें को कक्षा 8 तक की नि:शुल्क शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए पूर्णतया बाध्यकारी और उत्तरदायी है।

शिक्षक की भूमिका-

शिक्षक के बिना शिक्षा की बात करना ही बेईमानी है। शिक्षक के बिना शिक्षा निर्रथक है। शिक्षा व्यवस्था के प्रसरण के लिए शिक्षक एक महत्वपूर्ण इकाई है। जॉन डी0वी0 ने भी शिक्षा के तीन अंग बतायें हैं-

1. शिक्षक
2. छात्र
3. पाठयक्रम

और इन सभी में शिक्षक को महत्वपूर्ण माना गया है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार-शिक्षक एक दार्शनिक मित्र और पथप्रदर्शक होता है जो बालक को अपने ढंग से अग्रसर होने के लिए प्रेरित करता है।

अरविन्दों-''शिक्षक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते हैं।''

अत: स्पष्ट है कि शिक्षक वो दीया होता है जो स्वयं जलकर जग को रोशनी प्रदान करता है।

बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम-2009 के तहत शिक्षक के कर्तव्य-

एक शैक्षिक वर्ष में शिक्षक के कार्यदिवसों/अनुदेशन घण्टों की न्यूनतम संख्या-

- प्राथमिक स्तर-200 कार्यदिवस प्रतिवर्ष 800 अनुदेशन घंटे प्रति शैक्षिक वर्ष।
- उच्च प्राथमिक स्तर-220 कार्य दिवस प्रतिवर्ष, 1000 अनुदेशन घण्टे प्रति शैक्षिक वर्ष।
- शिक्षक के लिये प्रति सप्ताह कार्य करने के घण्टों की न्यूनतम संख्या-तैयारी समेत अध्यापन के 45 घण्टे।

इन कार्यदिवसों में शिक्षक को निम्न कार्य करने हैं-

- विद्यालय में नियमित रूप से उपस्थित होना।
- विद्यालय की समय-सारिणी का अनुपालन सुनिश्चित करना।
- बाल अनूकूल और बालकेन्द्रित रीति में क्रियाकलापों, प्रकटीकरण और खोज के द्वारा शिक्षण करना।
- पाठयक्रम संचालित करना और उसे पूरा करना।
- निर्धारित समय के अन्दर सम्पूर्ण पाठ्यक्रम पूरा करना।
- प्रत्येक बच्चे की सीखने की क्षमता का सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन करना।
- मूल्यांकन के आधार पर बच्चे को अपेक्षित अतिरिक्त शिक्षण प्रदान करना।
- बच्चे के माता-पिता और अभिभावकों के साथ नियमित बैठकें करना और बच्चें की उपस्थिति में नियमितता, शिक्षा ग्रहण करने की सामर्थ्य, शिक्षण में की गयी प्रगति के बारे में उन्हें अवगत करना।
- प्राइवेट ट्यूशन या प्राइवेट शिक्षण के क्रियाकलाप में संलिप्त न होना।
- बच्चे को भय, मानसिक अभिघात और चिन्तामुक्त बनाना और बच्चें को स्वतंत्र रूप से मत व्यक्त करने में सहायता करना।

कक्षा-प्रबंधन सम्बन्धी-

- बच्चों की प्रोफाइल तैयार करना।
- सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में पीछे रह गये बच्चों के साथ अतिरिक्त कार्य।
- विशेष प्रशिक्षण के लिये चुने गये बच्चों के साथ कार्य।
- किसी छात्र विशेष को सीखने-सिखाने की तैयारी।
- टी0एल0एम0/अभ्यास पत्रक का निर्माण।
- स्थानीय परिवेष से शैक्षिक सामग्रियों का एकत्रीकरण एवं उपयोग हेतु रणनीतियों का निर्धारण।
- सांस्कृतिक कार्यक्रम, अन्य प्रतियोगिताओं के लिये तैयारियाँ।
- बच्चों के सीखने की प्रगति तथा उसके व्यक्तित्व के अन्य पक्षों में विकास को बच्चों की प्रोफाइल में अंकित करना, विश्लेषण करना एवं उनके आध ार पर शिक्षण की योजना बनाना।

विद्यालय-प्रबंधन सम्बन्धी-

- विद्यालय पर रखेज जाने वाले महत्वपूर्ण अभिलेखों को निर्धारित प्रक्रियानुसार अध्यावधिक पूर्ण करना।
- विद्यालय में बालसभा/छात्र समितियों का गठन करवाना एवं उन्हें सक्रिय रखना।
- शैक्षिक नवाचारों एवं सूचनाओं को संकलन और आदान-प्रदान करना।
- समय-समय पर प्राप्त होने वाले अनुदानों को निर्देशों के अनुरूप उपयोग सुनिश्चित करना एवं उपभोग प्रमाण पत्र प्रेषित करना।
- अभिभावकों/समुदाय को कक्षा-शिक्षण से जोड़ना।
- मध्याहन पोषाहार संबंधी कार्य।
- शिक्षण तैयारी हेतु विद्यालय स्तरीय शिक्षकों की बैठक।
- पुस्तकालय, खेल-कूद, पठन सामग्री, अन्य विद्यालयी उपस्कर उपकरण का रखरखाव संबंधी कार्य।

शिक्षकों के समक्ष उत्पन्न होने वाली समस्याऐं-

शिक्षा अधिकार अधिकार अधिनियम में शिक्षकों के कर्तव्यों का वर्णन किया गया है और शिक्षक को प्रमुख मानकर अत्याधिक अपेक्षाऐं शिक्षक से की गयी हैं किन्तु शिक्षकों की समस्याओं की ओर इतना ध्यान नहीं दिया गया है। अत: शिक्षकों की समस्याओं को समझना अनिवार्य है। शिक्षकों के समक्ष उत्पन्न होने वाली प्रमुख समस्याऐं निम्नवत् है-

- प्राथमिक विद्यालयों में पुस्तकों का वितरण समय से न होना-जिस कारण शिक्षक पाठयक्रम को समयानुसार संचालित नहीं कर पाता। निर्धारित समय के अन्तर्गत पाठयक्रम को पूरा करने की जिम्मेदारी शिक्षा अधिकार अधिनियम में शिक्षक पर सौंपी गयी हैं किन्तु समय पर पुस्तकों का वितरण न होने से पाठयक्रम को पूरा करने की समस्या शिक्षक के समक्ष रहती है।
- बच्चों के प्रति अभिभावकों की उदासीनता तथा लापरवाही का सामना भी शिक्षक को ही करना पड़ता है।

शिक्षक से प्रबन्धक का कार्य लेना-

- विद्यालय प्रबन्ध समिति अभिभावक समिति ग्राम शिक्षा समिति आदि का गठन समय-समय पर बैठकों को बुलाना आदि का कार्य शिक्षक ही करता है। शिक्षक अभिभावकों के साथ किसी प्रकार बैठक करें। जबकि अभिभावक तो शिक्षक अथवा विद्यालय को समय ही नहीं दे पाते।

शिक्षक से क्लर्क का कार्य लेना-

- शिक्षक पर शिक्षण के अतिरिक्त क्लर्क का भी दायित्व होता है। विभिन्न प्रकार के रजिस्टर शिक्षक को तैयार करने पड़ते हैं। जैसे उपभोग रजिस्टर, ग्राम शिक्षा समिति रजिस्टर, विद्यालय प्रबन्ध समिति रजिस्टर, मध्यहान भोजन योजना रजिस्टर, विद्यालय प्रगति रजिस्टर, छात्र प्रोफाईल रजिस्टर आदि। ऐसा लगता है कि प्राथमिक शिक्षक, शिक्षक न होकर क्लर्क बनकर रह गया है।

शिक्षक एक चतुर्थश्रेणी कर्मचारी के रूप में-

- विद्यालय की साफ-सफाई की व्यवस्था, विद्यालय में पेड़ पौधे लगाना तथा उनकी देखभाल एवं विद्यालय के सौन्द्रर्यकरण का कार्य शिक्षक को ही करने की जिम्मेदारी है।

विद्यालय भवन निर्माण सम्बन्धी कार्य-

- शिक्षक को विद्यालय में भवन आदि निर्माण का कार्य भी करना पड़ता है। इसके लिये मैटेरियल का प्रबन्ध करना और सही प्रकार से विद्यालय भवन का निर्माण करना शिक्षक की ही जिम्मेदारी है।

विद्यालय शिक्षक संसाधनों का अभाव-

- शिक्षा अधिकार अधिनियम के अनुसार पुस्तकालय, खेल सामग्री आदि शैक्षिक उपकरण प्राथमिक विद्यालय में अनिवार्य है। किन्तु वास्तविकता के ध रातल पर प्राथमिक विद्यालयों में इनका अभाव है। प्राथमिक शिक्षक के समक्ष इन संसाधनों के अभाव में समस्या उत्पन्न होती है कि वह बच्चों को कैसे शिक्षण दें।
- शिक्षक से बी0आर0सी0, शिक्षा कार्यालयों में अतिरिक्त कार्य लिया जाना।

शिक्षक रसोईयें के रूप में-

- प्राथमिक विद्यालय में मध्याहन भोजन की जिम्मेदारी शिक्षक को दी गयी है। इसके लिये शासन द्वारा समय पर धन न आना, क्नवर्जन कोस्ट का अपेक्षाकृत कम होना एवं इसके कारण शिक्षण में बाधा आना। शिक्षक की महत्वपूर्ण समस्यायें हैं। ऐसे में शिक्षक इसका प्रबन्ध किस प्रकार करें।
- शिक्षण अधिगम सामग्री हेतु शिक्षक को अनुदान ना मिलना।

अवकाश के लिये शिक्षकों का शिक्षा कार्यालयों पर भटकना-

- प्राथमिक शिक्षक को चाईल्ड केयर लीव, मेटरनटि लीव, मेडिकल लीव, अर्जित अवकाश आदि के लिये शिक्षा अधिकारियों और शिक्षा कार्यालयों के चक्कर काटने पढ़ते हैं। कई बार तो शिक्षकों का इन अवकाश को लेने के लिये आर्थिक शोषण भी होता है।

प्रतिवर्ष शिक्षकों पर समायोजन रूप तलवार लटकना-

शिक्षकों की वेतन सम्बन्धी समस्यायें-

- प्राथमिक शिक्षक से जहाँ इतना कार्य लिया जाता है वहीं दूसरी ओर उसको वेतन तक समय से नही मिल पाता। जिसके अभाव में उसके परिवार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा वेतन सम्बन्धी विसंगति का दंश भी शिक्षक को झेलना पड़ता है। परिणाम स्वरूप कई बार इस शोषण के कारण शिक्षकों को आंदोल की राह पकड़नी पड़ती है।
- इसके अतिरिक्त बाल गणना, पशु गणना, जनगणना, आर्थिक गणना, जाति जनगणना, चुनाव सम्बन्धी कार्य, बी0एल0ओ0 का कार्य करना, हाउस होल्ड सर्वे करना इत्यादि कार्यों की जिम्मेदारी प्राथमिक शिक्षक को सौंपी गयी हैं। एक प्राथमिक शिक्षक वर्षभर इन कार्यों में लगा रहता है जिसके कारण विद्यालय का शिक्षण कार्य पूर्ण रूप से प्रभावित होता है।

सुझाव-

शिक्षा अधिकार अधिनियम को प्राथमिक विद्यालयों में लागू करने में शिक्षक के समक्ष जो समस्याऐं आ रही हैं जिनका वर्णन ऊपर किया गया है। इन समस्याओं के निर्माण हेतु सुझाव निम्नवत हैं-

- पुस्तकों का वितरण प्राथमिक विद्यालयों में शैक्षिक सत्र प्रारम्भ होने से पूर्व ही किया जाना सुनिश्चित किया जाये। जिससे शिक्षक समय से पाठ्यक्रम संचालित कर उसे पूरा कर सकें।
- अभिभावकों को शिक्षा के प्रति जागरूक किया जाये और उन्हें शिक्षा का महत्व समझाया जायें। जन आन्दोलन, मीडिया और जनसंचार आदि के माध्यम से यह कार्य किया जा सकता है। इससे बच्चों के रजिस्ट्रेशन, नामांकन और अशिक्षा जैसी समस्याओं का समाधान हो सकता है और शिक्षक का तनाव भी कम होगा।
- शिक्षक से शिक्षण के अतिरिक्त अन्य कार्य बिल्कुल न लिये जाये। शिक्षक को शिक्षक ही बने रहने देना चाहिये। उससे क्लर्क, चपरासी, रसोईया, प्रबन्धक आदि का कार्य नहीं लिया जाना चाहिये। इन कार्यों के लिये शासन को प्रत्येक ग्राम में शिक्षण प्रशासनिक सहायक मित्रों की नियुक्ति करनी चाहिये। इससे बेरोजगारी की भी समस्या दूर होगी और विद्यालय का शिक्षण कार्य भी प्रभावित नहीं होगा और शिक्षक अपने दायित्वों की पूर्ति इमानदारी पूर्वक कर पायेंगे।
- शिक्षण अधिगम सामग्री, पुस्तकालय, खेल सामग्री आदि विद्यालय के संसाधनों हेतु अनुदान शासन द्वारा सही समय पर दिया जाना सुनिश्चित किया जाये। संसाधनों के अभाव में प्राथमिक विद्यालय और शिक्षा समस्याओं से जुझ रहे हैं। इसका निराकरण जरूरी हैं।

समस्त प्राथमिक विद्यालयों को इन्टरनेट की माध्यम से ऑनलाईन किया जाये। जिससे शैक्षिक नवाचारों और सुचनाओं का संकलन एवं अदान प्रदान सही समय पर हो सके और शिक्षक का सीधा संवाद शासन से हो सके-

- शिक्षको के अवकाश सम्बन्धी प्रार्थना-पत्र पर एक निश्चित समय में कार्यवाही शिक्षा अधिकारियों द्वारा सुनिश्चित की जाये। जिससे शिक्षकों को समय पर अवकाश मिल सके।
- प्राथमिक शिक्षक की वेतन विसंगती एवं अन्य भत्तों सम्बन्धी समस्याओं का समाधान किया जाये और समय पर उनको वेतन दिया जाना सुनिश्चित किया जाये। इसके अलावा देहात क्षेत्र में कार्यरत शिक्षकों का मकान भत्ता, शहरी शिक्षकों के समान किया जाना चाहिये।
- शिक्षक को शासन प्रशासन द्वारा उचित सम्मान दिया जाये।

निष्कर्ष

शिक्षा अधिकार अधिनियम की विवेचना और अध्ययन से स्पष्ट है कि यह अधिनियम प्राथमिक शिक्षा के लिये एक मील का पत्थर साबित हो सकता है। योजनाऐं कोई भी गलत नहीं होती व शर्त है कि उसको ईमानदारी पूर्वक लागू किया जाये। शिक्षा की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी शिक्षक होता है और शिक्षा अधिकार अधिनियम की भी महत्वपूर्ण कड़ी शिक्षक ही है। इसलिये शिक्षक को शिक्षा का अधिकार अधिनियम में मुख्य योद्धा मानकर जिम्मेदारी सौंपी गयी हैं किन्तु शिक्षक युद्ध में जाने वाले उस सेनापति जैसा है जिसके पास अस्त्र शस्त्र नहीं हैं। सेना नहीं हैं। संसाधन नहीं हैं। परन्तु शर्त यह है कि उसे अशिक्षा रूपी युद्ध में विजय हांसिल करनी हैं। शिक्षा अधिकार अधिनियम उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्राथमिक शिक्षा की महत्वपूर्ण कड़ी अर्थात शिक्षक के समक्ष आने वाली समस्याओं को भी समझने की आवश्यकता है और उनके समाधान के बाद भी शिक्षा अधिकार अधिनियम के उद्देश्यों की प्राप्ति सम्भव हो सकती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गगनदीप, के (1986) विभिन्न स्कूलों के किशोरों द्वारा प्रयुक्त सुरक्षा प्रणाली का अध्ययन तथा इसका उनके घर एवं परिवार में समायोजन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन, फोर्थ सर्वे ऑफ
2. उत्तर प्रदेश राज्य परियोजना निदेशालय, सर्व शिक्षा अभियान (संवाद)-2011 लखनऊ।
3. यूनेस्को (2000) डकार फ्रेमवर्क फॉर एक्शन, एडॉप्टेड बॉय वर्ल्ड एज्यूकेशन फोरम् www.nuesco.org पर उपलब्ध।
4. उजाला तृतीय (2006) 5 दिवसीय शिक्षक प्रशिक्षण संदर्शिका, बिहार शिक्षा परियोजना परिषद् पटना।
5. यूनेस्को (2006) इन्क्लूसिव एज्यूकेशन, www.nuesco.org पर उपलब्ध।
6. Kothari, D.S. (1964). Report of Kothari Commission Ministry of Education, Govt. of India, New Delhi.
7. Vyas,S. (2011),A Study on theAwarenessamong Elementary School Teachersin the National Capital Region on "The Right of Children to Free and Compulsary EducationAct, 2009" (Right to EducationAct).
8. Right of Children to Free and Compulsory EducationAct.
9. http://www.ncse.in/uploads/I/ncse_inclusion.pdf
10. Soni. R.B.L. (2013), Status of Implementation of RTEAct-2009 in context of disadvantaged Children at Elementary Stage, Dept. of Elementary Education, NCERT.

श्रीलाल शुक्ल द्वारा रचित, दरबारी उपन्यास में राजनीतिक चित्रण

इन्दु

शोधार्थी, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

शोधपत्र सार:

साहित्य, समाज और राजनीति का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। साहित्य हमारे समाज एवं राजनीतिक व्यवस्था का दर्पण कहा जाता है क्योंकि एक साहित्यकार अपने समाज और देश की राजनीति से प्रभावित होकर ही अपने साहित्य की रचना करता है। समाज और राजनीति में जो कुछ घटित होता है साहित्यक उससे प्रभावित होकर अपने साहित्य में उसका यथार्थ चित्रण करता है। जिस प्रकार से दर्पण के सामने खड़े होने पर हमें सब कुछ दिखाई देता है, ठीक उसी प्रकार से साहित्य का अध्ययन करने से पाठक वर्ग को अपने समाज एवं राजनीतिक व्यवस्था का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगता है। हिंदी साहित्य जगत में प्रारंभिक उपन्यास मनोरंजन के लिए लिखे जाते थे, परंतु बाद में सामाजिक, ऐतिहासिक, आंचलिक एवं राजनैतिक प्रधान उपन्यास लिखने का भी प्रचलन शुरू हो गया। हिंदी साहित्य जगत में 'प्रेमचन्द' को प्रथम राजनैतिक उपन्यासकार माना जाता है जिन्होंने राजनीतिक पृष्ठभूमि पर उपन्यासों का सृजन किया है। प्रेमचंद का प्रथम राजनैतिक उपन्यास 'प्रेमाश्रम' है। प्रेमचंद युग में हिंदी उपन्यास में राजनीति का प्रवेश होना आरंभ हो गया था, इसलिए उनके उपन्यासों में तत्कालीन राजनीति का वर्णन दिखाई देता है, परंतु बाद में अत्यधिक मात्रा में राजनैतिक उपन्यास लिखे गए। कुछ प्रमुख राजनीतिक उपन्यास इस प्रकार है-दादा कामरेड, देशद्रोही, पार्टी कामरेड, मनुष्य के रूप, झूठा सच (यशपाल), विषाद मठ, हुजूर, सीधा-साधा रास्ता (रांगेय राघव), चढ़ती की धूप, नई इमारत, (अँचल), राग दरबारी (श्रीलाल शुक्ल) आदि। साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा उपन्यास का क्षेत्र अधिक विस्तृत होता है, इसलिए राजनीति जीवन का आंकलन भी उपन्यासों में किया जाने लगा है। साहित्य एवं राजनीति को पृथक नहीं किया जा सकता है। इन दोनों को पृथक करने का अर्थ है जीवन को एकांगी बनाना। अर्थात् जीवन के एक पक्ष को पूर्ण रूप से नकार देना।

साहित्य और राजनीति का संबंध कुछ इस प्रकार का है, जैसे पानी में नमक मिला देने पर उनको पृथक नहीं किया जा सकता, ठीक उसी प्रकार से वर्तमान राजनीतिक और साहित्य आपस में घुल मिल गए हैं। इस संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा का एक कथन बिल्कुल सटीक लगता है-''राजनीति का प्रश्न जनता के जीवन की तमाम समस्याओं में घुल मिल जाता है। साम्राज्यवाद एक आर्थिक और राजनीतिक शक्ति है। देश में अपने पैर जमाए रखने के लिए उसने फौज, पुलिस, कचहरी, शिक्षालय, जमींदार, मुनाफाखोरी आदि-आदि वर्गों और संस्थाओं द्वारा तमाम समाज को जकड़ रखा है। समाज की काया सांस लेते ही लोहे के सांचे की शक्ति का अनुभव करती है। पग-पग पर इसकी कठोरता का परिचय मिलता रहता है। उस मनुष्य को हृदय हीन होना चाहिए जो इस पराधीनता का अनुभव न कर सके। कवि या साहित्यकार समाज का सबसे भावुक, विचारशील और सहृदय प्राणी होता है। वह अपने साहित्य में इस प्रकार प्रतिक्रिया को व्यक्त किए बिना कैसे रह सकता है? लेखक और जनता या लेखक और राजनीति की समस्या स्पष्टत: यही है।''[1]

राजनीति का शाब्दिक अर्थ:

राजनीति (सं) (सं-स्त्री) 1. सत्ता चलाने का व्यवहार; राज्य की सुरक्षा तथा शासन को सुदृढ़ करने का उपाय बताने नीति, 2. राजपद्धति; राज्यविद्या[2]

राजनीति-संज्ञा, स्त्री. यौ. (सं.) कानून, राजा का शासन-नियम, धर्मशास्त्र।[3]

उपरोक्त शब्दकोश के आधार पर कहा जा सकता है कि किसी राष्ट्रीय राज्य की सुरक्षा के लिए तथा शासन को सुदृढ़ करने के लिए बनाए गए नियम अथवा नीति ही राजनीति कहलाती है।

राजनीति की परिभाषा:

'राजनीति' की परिभाषा देते हुए 'प्रदीप पंत' ने कहा है कि-''हममें से कोई भी न तो राजनीति से बच सकता है और न ही राजनीति बुरी चीज है। लेकिन राजनीति का इस्तेमाल व्यापक मानवीय हितों के लिए न करके निजी स्वार्थों जोड़-तोड़ सांप्रदायिकता का जहर फैलाने और सत्ता के दुरुपयोग के लिए करना बुरी बात है या सिद्धांतहीन और अब अमानवीय राजनीति है।''[4]

वर्तमान समय में राजनीति का भ्रष्ट रूप दिखाई देता है। इसी भ्रष्ट राजनीति के विषय में राजेंद्र कुमार ने अपने विचारों को कुछ इस प्रकार से प्रकट किया है-''चुनाव की राजनीति वेश्या की नीति हो गई है। वेश्या जिस प्रकार धन के बिना नहीं चल सकती, वैसे ही चुनाव की राजनीति जाति के बिना नहीं चल सकती। चुनाव के समय साम, दाम, दण्ड, भेद आदि का उपयोग किया जाता है। चुनावों में अनैतिकता, धूर्तता, बर्बरता, आवश्यक अंग बन गई है। डकैतों और लठैतों का प्रयोग खुलकर होने लगा है।''[5]

उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि वर्तमान राजनीति में पूर्ण रूप से भ्रष्टाचार व्याप्त हो चुका है। राजनेताओं के भ्रष्टाचार पूर्ण क्रियाकलापों के कारण राजनीति व्यवस्था खोखली होती जा रही है। दिनोंदिन राजनीति का मूल्य घटता जा रहा है। वर्तमान राजनीति स्वार्थपरता, अर्थ, लोलुपता एवं अधिकारों का दुरुपयोग करने की राजनीति बनकर रह गई है। वर्तमान राजनीति में जातीयता एवं सांप्रदायिकता की भावना बढ़ती जा रही है। विभिन्न राजनीतिक दल जाति के आधार पर लोगों को बांट कर देश में सांप्रदायिकता को फैलाने का कार्य करते हैं और जाति को आधार बनाकर ही वोट बैंक की राजनीति चलाते हैं। हमारे देश की राजनीति की यही सच्चाई है कि उसका हर राजनीतिक दल जातीयता के प्रति बहुत ही सतर्क रहता है। देश के अंदर अलग-अलग राजनीतिक पार्टियाँ अपना-अपना प्रभुत्व जमाए रखने के लिए गंदी राजनीति का प्रयोग कर रहे हैं। वर्तमान राजनीति आज अपने स्वार्थ सिद्धि और आत्म कल्याण को प्रथम उद्देश्य मानकर की जाती है।

पहले केवल शहरों के पढ़े-लिखे लोग ही देश की राजनीति में रुचि दिखाते थे परंतु अब शहरों के लोगों के साथ-साथ गांव देहात के लोग भी राजनीति में बढ़-चढ़कर अपनी रुचि दिखाने लगे है, इसलिए कहा जा सकता है कि देश की जनता अब राजनीति में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने लगी है।

श्रीलाल शुक्ल द्वारा रचित 'राग दरबारी' उपन्यास एक राजनीतिक उपन्यास जिसमें लेखक ने देश की राजनीति व्यवस्था के यथार्थ एवं नग्न चित्रण प्रस्तुत किया है। देश को आजाद हुए लगभग दो दशक हो चुके थे परंतु देश की राजनीतिक व्यवस्था बद से बदतर होती जा रही थी। इसी का वर्णन श्रीलाल शुक्ल ने 'राग दरबारी' उपन्यास में किया है। शुक्ल जी ने तत्कालीन देश की राजनीतिक व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य किया है जो 'शिवपालगंज' कि उत्तर प्रदेश का एक छोटा सा गांव है, उसे केंद्र में रखकर 'राग दरबारी' उपन्यास की कथावस्तु लिखी गई है। शिवपाल गंज शहर से कुछ दूरी पर बसा हुआ है, जहाँ पर कुछ गिने चुने लोग अपने स्वार्थपूर्ति हेतु अपनी शक्तियों का तथा अपने पद का दुरुपयोग करने से भी परहेज नहीं करते हैं। उपन्यास में वैद्यनाथ नाम का एक ऐसा ही पात्र हमारे सामने आता है जो अपने निजीस्वार्थों के लिए तथा राजनीतिक शक्तियाँ पाने के लिए कई प्रकार के दाव-पेंच लगाता हुआ दिखाई देता है। 'राग दरबारी' उपन्यास में लेखक ने राजनीति का सजीव चित्रण किया है।

राजनीति में भाषण:

भारतीय राजनीति में नेताओं के भाषण का विशेष महत्व होता है। भाषण देना राजनेताओं का जन्मसिद्ध अधिकार होता है। लोगों के द्वारा ही देश की भोली-भाली जनता को उल्लू बनाते हैं, जिसे देश की भोली-भाली जनता अपना बहुमूल्य वोट देकर विजयी बनाती है। उसे यह नेता अपने झूठे भाषणों में झूठे वादे करके बेवकूफ बनाती है। भारतीय राजनीति में नेताओं को भाषण देने में बहुत ही सिद्धि की प्राप्त हुई है, देश में जब भी चुनाव का मौसम होता है तो वह नेता लोग रैलियों का आयोजन करते हैं और देश की जनता के सामने अपना उच्चकोटि का भाषण देते हैं तथा उनसे वादे करते हैं ताकि जनता का अधिक से अधिक रुझान उनकी और हो जाए। भाषण बाजी के माध्यम से नेता जनता का वोट बैंक हासिल करना चाहते हैं। भाषण देने का उनका मुख्य उद्देश्य यही होता है कि किसी न किसी तरह से जनता के वोट उनके खाते में आ सके।

चुनाव के कुछ समय पूर्व नेता लोग अपने-अपने चुनाव क्षेत्र में जाकर कुछ एक कार्य करवाते हैं जैसे टूटी सड़कें व गली बनवाना, साफ सफाई की व्यवस्था करना आदि। इन कार्यों के आधार पर वह जनता के सामने अपने आपको कर्तव्यनिष्ठ, ईमानदार, जनता का हितैषी आदि के रूप में दिखाने की कोशिश करते हैं तथा जनता को अपने भाषणों के माध्यम से विश्वास जीतने की कोशिश करते हैं। श्रीलाल शुक्ल में 'राग दरबारी' उपन्यास में चुनाव से पहले का एक ऐसा ही दृश्य चित्रित किया है। ''चमराही और ऊँची जात वाले की बस्ती के बीच बने हुए गांधी चबूतरे पर आज कुत्ते नहीं, आदमी बोल रहे थे। चुनाव के पहले रामाधीन के भैया ने उस स्थान का सुधार करवाया था क्योंकि शायद चुनाव कानून में लिखा हो या पता नहीं क्यों सभी बड़े नेता चुनाव के कुछ महीने पहले अपने-अपने चुनाव क्षेत्र का सुधार कराते हैं। कोई नए पुल बनवाता है कोई सड़के भी बिछवाता है, कोई गरीबों को अन्न और कंबल का दान करता है, उसी हिसाब से रामाधीन के भैया ने चबूतरे के आसपास का नक्शा बदलने की कोशिश की थी।''[6]

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान समय की राजनीति में नेता केवल चुनाव के कुछ समय पूर्व ही जनता के बीच भाषणबाजी करने आते हैं तथा चुनाव क्षेत्र में कुछ सुधार कार्य करके भाषण देते हैं ताकि जनता उनके कार्यों से प्रभावित होकर उन्हें अपना वोट दें और उन्हें अपना प्रतिनिधि के रूप में चुने। परन्तु जब वह चुनाव जीत जाते हैं तो जनता से किए वादों को पूरा करने के लिए दोबारा जनता के बीच में नहीं आते हैं। यही वर्तमान राजनीति की सच्चाई है।

राजनीति में भ्रष्टाचार:

राजनीतिक व्यवस्था में भ्रष्टाचार इतना अधिक बढ़ गया है कि किसी भी पार्टी के राजनेता को देख लो प्रत्येक पर कोई ना कोई भ्रष्टाचार का आरोप लगा हुआ अवश्य मिलता है। कई राजनीतिक पार्टियों के नेताओं को तो भ्रष्टाचार घोटाले के मामले में जेल तक की सजा भुगतनी पड़ी है। हमारे देश की राजनीति का यह दुर्भाग्य है कि जिस देश की जनता नेताओं को अपना वोट देकर संसद में अपना प्रतिनिधि चुनकर भेजती है वही नेता उनके विश्वास को

तोड़ते हैं। जनता के साथ खिलवाड़ करते हैं। जो नेता अपने आपको जनसेवक बताकर जनता से वोट मांगते हैं वहीं जनता के चुने जाने पर भ्रष्टाचार में लिप्त हो जाते हैं और अपने स्वार्थपूर्ति में इतने व्यस्त हो जाते हैं कि उन्हें जनता का ख्याल तक नहीं आता है। श्रीलाल शुक्ल ने 'राग दरबारी' उपन्यास में इसी राजनीतिक भ्रष्टाचार के नग्न रूप समाज के सामने उजागर किया है। उपन्यास में वैद्यनाथ राजनीति व्यवस्था में एक भ्रष्ट नेता का प्रतिनिधित्व करता हुआ दिखाई देता है जो अपने पद का दुरुपयोग करता है और केवल अपनी जरूरतों को पूरा करता है और जनता की ओर उसका कोई ध्यान नहीं होता है तथा देश के विकास की ओर भी उसका ध्यान नहीं होता है।

नेता लोग सत्ता का दुरुपयोग किस प्रकार से करते हैं इसका भी वर्णन लेखक ने किया है। राजनेता अपने पद का दुरुपयोग कर अपने सगे संबंधियों को व्यापार करने का लाइसेंस दिलवाते हैं तथा अपने पद के माध्यम से परिवारजनों को लाभ पहुँचाने में भी कोई कमी नहीं छोड़ते हैं। राजनेता भ्रष्टाचार में इतने लिप्त हो जाते हैं कि उन्हें पकड़े जाने का भी भय नहीं होता है यदि उन पर किसी ने भ्रष्टाचार का आरोप लगा भी दिया तो वह अपने आपको किसी न किसी प्रकार से बचा ही लेते हैं। भ्रष्टाचार के आरोप का एक प्रसंग 'राग दरबारी' उपन्यास में भी वर्णित है-''इसकी जाँच करवाना चाहते हो? करा लो पर पहले यह तय कर लो कि भ्रष्टाचार कहते किसे ?''[7]

जो कभी नेताओं को अपने पकड़े जाने का संदेह होता है तो वह कुछ इसी प्रकार के प्रश्न करते हैं और अपने आप को बिल्कुल ईमानदार नेता साबित करने के लिए कोई न कोई रास्ता निकाल ही लेते हैं। अपने आप को सही साबित करने के लिए दूसरी राजनीतिक पार्टी के ऊपर आरोप लगाने लगते हैं कि यह सब विपक्षी पार्टी के नेताओं की चाल है। परंतु सत्य यही है कि वर्तमान राजनीति में भ्रष्टाचार इतना अधिक फैल गया है कि कुछ भ्रष्ट नेताओं के कारण जो वास्तव में ईमानदार नेता है उन पर भी देश की जनता विश्वास करने में संदेह करती है एवं सभी नेताओं को भ्रष्ट नेताओं की श्रेणी में ही रखती है।

वोट बैंक की राजनीतिः

वोट बैंक की राजनीति वर्तमान समय में बहुत अधिक देखने को मिलती है क्योंकि सभी राजनीतिक दल अपना अपना वोट बैंक बनाना चाहते हैं। देश की जनता से तरह-तरह के लुभावने वादे करके उनका बहुमूल्य वोट अपने खाते में लाने का प्रयत्न करते हैं। चुनाव से पहले नेता लोग जनता के बीच जाकर उन्हें मुफ्त में पानी, बिजली तथा अन्य सुविधाएं देने के वादा करते हैं। हाथ जोड़कर उनसे विनम्रता से प्रार्थना करते हैं कि अपना वोट मतदान के दिन में उसकी पार्टी को ही दे। यह कटु सत्य है कि नेता हाथ जोड़कर चुनाव से पूर्व जनता के बीच जाकर उनका वोट मांगने जाते हैं परंतु विजयी होने पर उसकी जनता की खबर भी नहीं लेते हैं। श्रीलाल शुक्ल ने इस पर तीखा व्यंग किया है। उपन्यास में वैद्यनाथ का नौकर सनीचर भी चुनाव से पहले लोगों के सामने हाथ जोड़कर वोट मांगने जाता है। इस घटना का वर्णन लेखक ने कुछ इस प्रकार से किया है-''वोट की भिक्षा बड़े-बड़े नेताओं तक को भी विनम्र बना देती है। सनीचर तो सनीचर था। यह सुनते ही उसकी हैकड़ी ढीली पड़ गई और खीसें निकल आई। बोला अरे भाई हम तो नाम भर के प्रधान होंगे। असली प्रधान तो तुम वैद्य महाराज को समझो, बस यही जानकर चलो तुम अपना वोट वैद्य जी को दे रहे हो। समझ लो कि खुद वैद्य जी तुम से वोट की भीख मांग रहे हैं।''[8]

वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था में भी हमें यही सब देखने को मिलता है। नेता लोग चुनाव से पहले रेलियाँ निकालते और जनता के सामने भाषण देते हैं तथा हाथ जोड़कर विनम्रता पूर्वक देश की जनता से वोट मांगते हैं।

राजनीति में चुनावी धांधलीः

भारत में चुनाव प्रक्रिया के माध्यम से नेताओं को चुना जाता है। जनता अपना बहुमूल्य वोट देकर अपने प्रतिनिधि को चुनती है और उन प्रतिनिधियों को संसद तक पहुँचाती है ताकि उनके द्वारा चुने गए प्रतिनिधि उनकी समस्याओं का समाधान कर सके और देश की जनता के लिए विकास योजनाएं बनाकर उनको सुचारु रुप से लागू कर सके। जिससे राष्ट्र का विकास हो सके हमारे भारतीय संविधान में लोकतंत्र का यह स्वरूप बताया गया है कि जनता के प्रतिनिधि अपनी सरकार बनाकर देश की जनता की सेवा और राष्ट्र के विकास का कार्य कर सकें।

चुनाव चाहे किसी भी स्तर के क्यों न हो, प्रत्येक चुनाव में कुछ ना को धांधलेबाजी अवश्य ही होती है। वह चुनाव चाहे कॉलेज कोऑपरेटिव यूनियन के हो या ग्राम पंचायत या फिर देश के आम चुनाव हों सभी सर के चुनाव में धांधली देखने को मिलता है। शिवपाल गंज के छंगामल कॉलेज में गुंडागर्दी, लाठी, रूपेय आदि के बल पर चुनाव जीता जाता है। इसका वर्णन उपन्यास में किया गया है-''श्रीमान, अभी कुछ दिन हुए उस कॉलेज के मैनेजर का चुनाव हुआ था और उसमें पिस्तौल के जोर से वैद्य महाराज चुने गए।''[9]

इस प्रकार से हमारे देश में भी चुनाव होते हैं। चुनाव के दिन तो बहुत से चुनाव केंद्रों पर गोलियाँ तक चल जाती है जिसके कारण बेकसूर लोग की हत्या तक हो जाती है। वर्तमान राजनीति पर यह कहावत बिल्कुल सटीक बैठती है-''जिसकी लाठी उसकी भैंस'' क्योंकि आज कल चुनाव में धांधलीबाजी बहुत होती है। बिना धोखाधड़ी के कोई भी चुनाव पूर्ण रूप से संपन्न नहीं हो जाता है। चुनावी प्रक्रिया के विषय में डॉ. सियाराम तिवारी ने लिखा है-''स्वाधीनता के बाद भारत ने ग्राम्य जीवन को उन्नत करने के लिए जो हुए उन्होंने उसको तोड़ दिया है। सबसे अधिक थोड़ा चुनाव में लोकसभा विधानसभा चुनाव ग्राम पंचायत का चुनाव। जहाँ-जहाँ प्रजातांत्रिक पद्धति का प्रवेश वहाँ-वहाँ उसने विष बीज बोया। फलस्वरुप राजनीति के दांवपेच ने गांव के जीवन में घुसकर उसे भी विषाक्त बना दिया है।''[10]

उपरोक्त सभी कारणों की वजह से देश की जनता को चुनाव प्रक्रिया पर पूर्ण रुप से विश्वास नहीं करती है। जनता का चुनाव पर से विश्वास खत्म होता जा रहा है। यही कारण है कि अब चुनाव के दिन चुनाव केन्द्र पर मतदान करने वालों की संख्या दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है क्योंकि उनके मन में कहीं न कहीं आशंका पहले से ही घर कर लेती है कि चुनाव में किसी प्रकार की धांधली अवश्य ही होगी, इसलिए वह मतदान के दिन अपने घरों में ही रहकर टी.वी. पर खबरों के माध्यम से चुनाव का हाल चाल लेते हैं और मतदान दिवस की अवकाश या छुट्टी का दिन समझकर अपने मनोरंजन के लिए कहीं बाहर घूमने चले जाते हैं या फिर घर के अन्य कार्यों को पूरा करने में व्यस्त हो जाते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सुषमा शर्मा, उपन्यास को राजनीति, पृष्ठ 26
2. डॉ. महेंद्र कुमार मिश्र, हिंदू विश्वकोश, पृष्ठ 994
3. डॉ. महेंद्र कुमार मिश्र, हिंदू विश्वकोश भाग 4, पृष्ठ 1660
4. केशव देव शर्मा, आधुनिक हिंदी उपन्यास और वर्ग संघर्ष, पृष्ठ 190
5. डॉ. राजेंद्र कुमार, स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी कहानी में ग्राम जीवन और संस्कृति, पृष्ठ
6. श्रीलाल शुक्ल, राग दरबारी उपन्यास, पृष्ठ 202
7. श्रीलाल शुक्ल, राग दरबारी उपन्यास, पृष्ठ 269
8. श्रीलाल शुक्ल, राग दरबारी उपन्यास, पृष्ठ 200
9. श्रीलाल शुक्ल, राग दरबारी उपन्यास, पृष्ठ 229
10. श्रीलाल शुक्ल, राग दरबारी उपन्यास, पृष्ठ 92

'गिलिगडु' उपन्यास में चित्रित वृद्धजनों की समस्याएँ

मनीषा

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

मानव जीवन की उम्र औसत काल के समीप या उससे अधिक हो जाती है तो उस अवस्था को 'बुढ़ापा' कहते हैं। वृद्धावस्था में अस्वस्थ रहने की संभावना ज्यादा होती है। बुढ़ापा धीरे-धीरे आने वाली अवस्था है, जो स्वभाविक तथा प्राकृतिक घटना है।

साधारण शब्दों में वृद्ध का शाब्दिक अर्थ है-बढ़ा हुआ, पका हुआ या परिपक्व। जीवन के पैंसठ वर्ष से मृत्यु तक यह कालखंड रहता है।

वृद्धावस्था में वृद्धों के सामने अनेक समस्याएँ आती हैं। शरीर में कमजोरी आ जाती है। रोग प्रतिरोधक क्षमता शिथिल हो जाती है। समय के साथ समाज परिवर्तित हो रहा है। मानव मूल्यों, नैतिकता और मर्यादाओं में भी निरंतर परिवर्तन जारी है। जो रिश्ते पहले प्यार, विश्वास और अपनत्व पर टिके हुए थे, आज वे औपचारिकता की बुनियाद पर टिके हुए नजर आते हैं। संबंधों की परिभाषा बदल रही है। नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच फासला बढ़ता जा रहा है। कई बार हम देखते हैं कि युवा बुजुर्गों का उचित सम्मान और देखभाल नहीं करते।

आधुनिकरण और बढ़ते सुखवाद की वजह से वृद्धों की दिनचर्या गंभीर हो गई है। उपभोक्तावादी संस्कृति और महानगरीय परिवेश में सामाजिक मूल्यों, नई पीढ़ी की सोच में परिवर्तन, महँगाई के बढ़ने और व्यक्ति के अपने बच्चों और पत्नी तक सीमित हो जाने की प्रवृत्ति के कारण बड़े बुजुर्गों के सामने अनेक समस्या खड़ी हुई है। संयुक्त परिवारों के विघटन और नगरों की ओर तेजी से पलायन करती युवा पीढ़ी की अपने बुजुर्गों के प्रति उदासीनता ने आज हमारे समाज में गंभीर समस्या उत्पन्न कर दी है। वृद्धों की समस्याओं को केंद्र में रखकर पर्याप्त साहित्य लिखा जा रहा है। अनेक कहानी, उपन्यासों में हमें बुजुर्गों की समस्याएँ देखने को मिल जाती है। चित्रा मुद्गल द्वारा लिखित 'गिलिगडु' उपन्यास में भी वृद्धों की समस्याओं पर मुख्य रूप से प्रकाश डाला गया है। आलोच्य उपन्यास में युवा पीढ़ी अपनी स्वार्थपरता तथा व्यक्तिवाद को ज्यादा महत्व देती है। उपन्यास में बुजुर्गों को उपेक्षित और तिरस्कृत दिखाया गया है। अपने ही घर में अपने बहू-बेटों द्वारा उपेक्षित होते बुजुर्गों की असहाय स्थिति, उनके साथ हो रहे अमानवीय व्यवहार व उनकी शारीरिक व मानसिक पीड़ा का यथार्थ चित्रण लेखिका ने कई प्रसंगों के माध्यम से गहरी संवेदना के साथ किया है।

इस उपन्यास में लेखिका ने सेवानिवृत और विधुर हो चुके दो बुजुर्गों की जीवन शैली के उद्घाटन के साथ ही बदलते जीवन मूल्यों को भी हमारे सामने रखा है। उपन्यास में बुजुर्गों की तीन श्रेणियों को दर्शाया गया है। एक श्रेणी में बाबू जसवंत सिंह है जो परिवार में रहते हुए भी अकेले, तिरस्कृत और उपेक्षित हैं, दूसरी श्रेणी में वृद्ध पात्र कर्नल स्वामी है जो भरे पूरे परिवार में अकेले रहने को बाध्य किए गए हैं। तीसरी श्रेणी में कर्नल स्वामी के पड़ोसी मिस्टर और मिसेज श्रीवास्तव है, जिनका परिवार नहीं है, इसलिए वे भी अकेले रहने के लिए अभिशप्त है। मिस्टर और मिसेज श्रीवास्तव की कोई औलाद नहीं है, परंतु बाबू जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी की दयनीय दशा को देखकर उनको अपने निपूता होने का कोई दुख नहीं है। मिसेज श्रीवास्तव कहती हैं-''ऐसी कसाई औलादों से तो आदमी नहीं निपूता भला। हमें इस बात का कोई गम नहीं है कि हमारी कोई औलाद नहीं...।[1]

बाबू जसवंत सिंह के साथ बेटा नरेंद्र और बहू सुनयना अच्छा बर्ताव नहीं करते। वे बात-बात पर उनको अपमानित करते हैं। पत्नी के देहांत के बाद बाबू जसवंत सिंह बीमार रहने लगते हैं। इसलिए वे कानपुर छोड़कर बहू-बेटे के पास दिल्ली आ गए। वहाँ उनके रहने की व्यवस्था बालकनी में की जाती है। साथ ही कुत्ता टॉमी भी वहीं रहता है। बालकनी में घर का फालतू सामान रखा हुआ जैसे-कूलर, जाला झाड़ने का झाड़ू और ऐसा सामान भी बहुत सारा है, जिसका प्रयोग नहीं होता। कबाड़ के बीच में खुद को देखकर बाबू जसवंत सिंह दुखी हो जाते है। वे सोचने लगते हैं-''जैसे उसे एकाएक कबाड़ के अंबार के ऊपर बेमुरव्व्त सा उठाकर फेंक दिया गया है।''[2]

बाबू जसवंत सिंह को दिल्ली में अकेलापन महसूस होता है। परिवार के किसी सदस्य के पास उनके पास कुछ देर बैठने की फुर्सत नहीं है। बेटा नरेंद्र अपने काम में व्यस्त रहता है। वह भौतिक सुख-सुविधाओं को जुटाने और सोसायटी में खुद को श्रेष्ठ साबित करने की कोशिश में लगा हुआ है। वह मुहल्ले का सबसे अमीर आदमी बनना चाहता है। इन सब कामों में वह इतना व्यस्त है कि पिता का कुशल क्षेम भी नहीं पूछ पाता। बहु सुनयना भी अपने ससुर का सम्मान नहीं करती। वह मृत सास के गहने और साड़ियाँ लेने की फिराक में है। इसलिए कभी-कभी बाबू जसवंत के पास चाय रख जाती है। उसकी सास के गहने और साड़ी उसके ससुर के पास नहीं होते तो शायद वह बाबू जसवंत सिंह को अपने घर की बालकनी में भी शरण नहीं देती। बच्चों के मन में भी दादा के प्रति आत्मीयता नहीं है। उन्हें सिर्फ अपने काम तक सीमित रहना सिखाया जा रहा है। यहाँ लेखिका कहती है-''बुद्धि विकास की आड़ में बड़ी खुश खूबसूरती से बच्चों को संवेदनाच्युत किया जा रहा है। इतना कि बच्चे कभी परिवार न लौट सके न कभी अपना कोई परिवार गढ़ सके।''[3]

बाबू जसवंत सिंह अपने पोते का जन्मदिन 'मैकडॉनल्ड्स' में मनाना चाहते हैं। वे सारा खर्च खुद उठाने को तैयार है। बाबू जसवंत सिंह चाहते हैं कि इसी बहाने बच्चों को करीब लाया जा सकता है। स्कूल से आने के बाद बच्चे गृह कार्य में व्यस्त हो जाते हैं। उसके बाद इंटरनेट में लगे रहते हैं। बच्चे बुजुर्गों से दूर हो गए हैं। बाबू जसवंत सिंह अपने पोतों से बात करने को तरस जाते हैं। लाख कोशिशों के बावजूद भी पोतों के साथ समय बिताने में असफल रहते हैं। बाबू जसवंत सिंह अपने पोते को यह बताते हैं कि वे उसका जन्मदिन 'मैकडोनल्ड' में मनाने के बारे में सोच रहे हैं तो पोता बताता है कि मम्मी-पापा से इस बाबत बात पहले ही हो चुकी है। वह उनको साथ ले जाने से साफ मना कर देता है, कहता है-''उसका यह कार्यक्रम उसके दोस्तों के साथ है। घरवाले इसमें शामिल नहीं होंगे। अपने साथ हम किसी भी बड़े को नहीं ले जाएँगे। पार्टी बोरिंग हो जाएगी।''[4]

पोते के इस जवाब से बाबू जसवंत सिंह अवाक् रह गए। अपने ही घर में अपने बहू बेटों के साथ रहते हुए बाबू जसवंत सिंह अकेलेपन का दंश तो झेल ही रहे हैं। उनके साथ अपरिचितों जैसा बर्ताव भी किया जाता है। उन्हें समय पर खाना तक भी नहीं दिया जाता। बवासीर के रोगी होने के बावजूद भी बहू सुनयना उनके लिए अलग से खाना न बनाकर बर्गर, पिज्जा, नूडल्स आदि विदेशी व्यंजन देती है। बाबू जसवंत सिंह की पसंद और जरूरत का खाना बनाना सुनयना फालतू काम समझती है।

यह समस्या केवल बाबू जसवंत सिंह की ही नहीं है बल्कि हमारे समाज में लगभग हर वृद्ध पात्र के साथ ऐसा हो रहा है। आज की पीढ़ी के ज्यादातर युवा बुजुर्गों को फालतू और निठल्ले समझने लगे हैं। वे अपने बुजुर्गों की इज्जत नहीं करते। कई तो अपने माता-पिता को घर में भी नहीं रखते, वृद्धाश्रम भेज देते हैं। कोई घर में रह भी लेने देता हैं तो बुरा बुजुर्गों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता।

बाबू जसवंत सिंह को बहू और बेटे अपमानित करते रहते हैं। बहू कभी खाने को लेकर उनको सुना देती है तो बेटा लिफ्ट का दरवाजा बंद नहीं करने पर उनके साथ अभद्रता करता है।

ऐसा व्यवहार होने पर हमारे बुजुर्गों को अकेलेपन के दंश को झेलना पड़ रहा है। शरीर कमजोर होने और अस्वस्थ होने की दशा में वे अपने कार्य भी खुद नहीं कर पाते। बाबू जसवंत भी पाइल्स के मरीज हैं। वे अपने हर रोज के काम बड़ी मुश्किल से कर पाते हैं। फिर भी टॉमी को घुमाने ले जाते हैं। वह उनको बहुत परेशान कर देता है। बहू सुनयना फिर भी उनको अपमानित करने से नहीं चूकती। पाइल्स के मरीज होने के कारण उनके पायजामे में खून लग जाता है तो बहू सुनयना उन्हें धमकाते हुए कहती है-''उनके पायजामे में लगे खून के धब्बे वाशिंग मशीन में नहीं छूटते। उनके बाथरूम में रिन की बट्टी रख दी गई है। कपड़े धोने डालने से पहले वे स्वयं धब्बों को तनिक रगड़ दिया करें।''[5]

बहू उनकी मदद करने की बजाय ताने देती रहती है। बाबू जसवंत सिंह को वहाँ परायापन महसूस होता रहता है। वे अकेलेपन का शिकार हो गए हैं। बाबू जसवंत सिंह के इस अकेलेपन को कर्नल स्वामी कुछ हद तक कम करते हैं। वे कभी उन्हें पाइल्स की गोलियां भेंट स्वरूप प्रदान करते हैं तो कभी टॉमी को टहलाने के जोखिम भरे रास्तों पर जूते देकर और पहनाकर उनकी परिवार में उपेक्षित, तिरस्कृत अवस्था को बिना कहे ही समझ जाते हैं। कर्नल स्वामी के इस आत्मीयता भरे व्यवहार से जसवंत सिंह भावुक हो जाते हैं और बेटे नरेंद्र के बारे में सोचने लगते हैं-''नरेंद्र की नजर भी उनकी चप्पलों पर पड़ी होगी। यह भी जानता है यह टॉमी जैसे उत्पाती के साथ हल्ला कम जोखिम भरा नहीं। जूते दिलाने की सुध नहीं आई उसे? आती तो क्या वे पाँव की बढ़ी हड्डी की टीस ओढ़े, बैठे रहते।''[6]

आज के भौतिक युग में सब कुछ औपचारिक हो गया। बुजुर्गों को अपने बहू-बेटों से भय रहता है कि कहीं उनके हाथ से बच्चों की गृहस्थी का कोई नुकसान हो जाए। वे घर की वस्तुओं को बहुत ही सावधानी से उठाते हैं। उन्हें डर रहता है कि हाथ से छूट जाने पर बहू-बेटे अपमानित करने में कोई कसर नहीं छोड़ेंगे। फिर ऐसे में अपने किसी मित्र को तो घर पर बुलाने की हिम्मत ही कैसे जुटा सकते हैं। बाबू जसवंत सिंह भी अपने दोस्त कर्नल स्वामी को कॉफी पर बुलाने के लिए हिचक जाते हैं-''गेट के निकट पहुँच कर बाबू जसवंत सिंह की इच्छा हुई कि अजनबी को घर चल कर एक कप कॉफी पीने का न्यौता दे। लेकिन न्यौता देने का साहस नहीं जुटा। ... कानपुर से दिल्ली आए उन्हें अरसा हो गया। घर की चौखट में दाखिल होते ही वे स्वयं को अपरिचितों की भांति प्रवेश करता हुआ अनुभव करते हैं।''[7]

हद तो तब हो जाती है जब बाबू जसवंत पर अश्लील आरोप लगाया जाता है कि वे आसपास की किशोरियों पर बुरी नजर रखते हैं। इस विषय पर पड़ोसी बहू को शिकायत करते हैं। बहू ने बाबू जसवंत से इस विषय में बात किए बिना ही उन्हें अपराधी घोषित कर दिया। बेटा भी अपनी पत्नी की बात मानकर बाबूजी को अपराधी मान बैठा। उसने भी अपने पिताजी से इस बाबत बात करने की जरूरत नहीं समझी। जसवंत बाबू अपने ऊपर लगे इस आरोप से भौंचक्के रह गए। बहू और बेटे ने भी पड़ोसियों की बात पर भरोसा कर लिया। अपने पिता की बात पर नहीं। बहू सुनयना उनके कड़वे स्वर में कहती है-''बाबूजी इस संभ्रांत सोसायटी में उनकी इज्जत खाक में मिलाने पर क्यों उतारू हैं ? अपनी उम्र का लिहाज किया होता। अभी जवानी का जोश बाकी हो तो दिक्कत कैसी? चले जाया करें रेड लाइट एरिया।''[8]

बाबू जसवंत सिंह इसी तरह प्रतिदिन बहू बेटे से अपमानित होते रहते हैं। उन्हें किसी न किसी बात के लिए हर रोज टोका जाता है। वे किसी तरह दिन काट रहे थे लेकिन एक दिन बेटी के साथ हुई उनकी बातचीत उनको झकझोर गई। बेटी ने बताया कि नरेंद्र अमेरिका जाने से पहले बाबू जसवंत सिंह को किसी वृद्धाश्रम में छोड़ जाएंगे। बेटे की इस बात से बहुत दुखी हुए। वे सोचने लगे उन्होंने बेटी की परवरिश भी तो नरेंद्र की तरह ही की थी। नरेंद्र जब उन्हें घर नहीं रख सकता तो वह अपने पास बुला सकती थी। वह भी भाई की बातों से कैसे सहमत हो गई। यह सारी बातें सोचकर वे बहुत डर जाते हैं और बीमार हो जाते हैं।

कई दिन से कर्नल स्वामी सैर पर नहीं आ रहे थे। उनके घर का फोन भी कोई उठा नहीं रहा था। एक दिन बाबू जसवंत कर्नल स्वामी के घर पहुँच गए। पड़ोसियों से जब कर्नल स्वामी की मौत का पता लगा तो बाबू जसवंत स्तब्ध रह गए। वे लड़खड़ा कर गिरने को हो गए। कर्नल स्वामी की मौत के बाद बाबू जसवंत सिंह को जिस कठोर सच्चाई का पता चला, उसी से बाबू जसवंत सिंह की जिंदगी ने नया मोड़ ले लिया। उन्होंने नरेंद्र से अपने संबंधों को खत्म कर अपनी वसीयत बदलकर सुनगुनिया (नौकर) के नाम करने का फैसला लिया। वे नरेंद्र के व्यवहार से इतने आहत हो गए कि उनकी मौत पर मुखाग्नि भी सुनगुनिया के पुत्र से दिलवाना चाहते हैं। इसी संकल्प के साथ बाबू जसवंत सिंह कानपुर सुनगुनिया के पास लौट गए।

बाबू जसवंत सिंह के इस फैसले से जीजिविषा संपन्न संदेश मिला है। यह जरूरी नहीं कि वृद्धावस्था में बच्चे अपने माता-पिता की सेवा नहीं करें तो वे उनसे अपमानित होते रहें। लेखिका ने उस जगह को त्यागने का सुझाव दिया है, जहाँ पर आदर सत्कार नहीं हो और व्यक्ति को परायापन महसूस होता हो।

बाबू जसवंत सिंह को कर्नल स्वामी की मौत की खबर ने बहुत दुखी कर दिया। कर्नल स्वामी बाबू जसवंत सिंह के मित्र तो थे ही वे उनके सच्चे शुभचिंतक भी थे। वे बाबू जसवंत सिंह को हमेशा खुश रखने की कोशिश करते थे। उन्होंने अपने बच्चों के अनुचित व्यवहार को कभी बाबू जसवंत सिंह को नहीं बताया। वे हमेशा उनको यह जताने का प्रयास करते थे कि परिवार में उन्हें भरपूर प्यार आदर और सम्मान मिलता है, लेकिन कहानी बिल्कुल इसके विपरीत थी। बारह दिन तक जब कर्नल स्वामी सैर पर नहीं आते तो बाबू जसवंत सिंह उनके घर पहुँच गए। वहाँ पर पड़ोसियों ने उनकी मौत के बारे में बताया। कर्नल स्वामी जिस परिवार की बात करते थे उस परिवार से उन्हें कभी सम्मान नहीं मिला। पत्नी की मृत्यु के बाद आठ वर्षों से वे अकेले रह रहे थे। उनके तीनों बेटे उनको अकेला छोड़कर दूसरी जगह अपने परिवार के साथ रहते हैं। उनके बेटे चाहते हैं कि कर्नल स्वामी जिस घर में रहते हैं उसको बेचकर तीनो भाई आपस में बाँट लें। पिता को कोई भी अपने साथ रखने के लिए तैयार नहीं। बेटों की इस बात को जब वे नहीं मानते तो उनका बेटा उनके साथ मारपीट करके बात मनवाना चाहता है।

कर्नल स्वामी अकेले रहना नहीं चाहते। वे अपने पतियों से मिलने के लिए भी तरस जाते थे। परिवार से नजरे चुराकर वे पोतियों से हॉस्टल में मिलने के लिए जाते थे। श्रीवास्तव दंपति ने जसवंत सिंह को यह भी बताया कि कर्नल स्वामी अपनी आय का आधा हिस्सा मलिन बस्ती के बच्चों के लिए खर्च करते थे। वे उनको अपने हाथ से खाना बनाकर भी खिलाते थे।

लेखिका ने कर्नल स्वामी के माध्यम से हमें दिखाया है कि वे अंदर से कितने दुखी थे, फिर भी सारा दुख छिपाकर खुश रहने की कोशिश करते थे।

'गिलिगडु' उपन्यास में लेखिका ने हमारे समाज में बुजुर्गों की दयनीय स्थिति को दिखाया है। हमारे बुजुर्ग और युवा पीढ़ी से ज्यादा कुछ नहीं चाहते। वे थोड़े से अपनत्व और स्नेह की चाह रखते हैं। यही अपनापन जब उन्हें घर में नहीं मिलता तो कहीं बाहर इसकी तलाश करना शुरू कर देते हैं। बाबू जसवंत सिंह कर्नल के माध्यम से लेखिका ने सभी बुजुर्गों की समस्याओं को हमारे सामने रखने का सफल प्रयास किया।

इसी तरह ज्ञान चतुर्वेदी ने भी 'पागलखाना' उपन्यास में बुजुर्गों की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण किया है। लेखक ने दिखाया है कि पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से खंडित होते संयुक्त परिवार शहरीकरण, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण हमारे समाज में बुजुर्गों की अहमियत कम हो गई है। युवा पीढ़ी उनके अस्तित्व को नकारने लगी है। 'पागलखाना' उपन्यास में कई पात्रों के माध्यम से लेखक ने दिखाया है जो माता-पिता जिंदगी भर अपने बच्चों के लिए सुविधाएँ जुटाने में व्यस्त रहते हैं, बुढ़ापे में उनकी संतान उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करती। उपन्यास में हम अनेक जगह बुजुर्गों को संतान के हाथों अपमानित होते और पिटते हुए देखते हैं। जिससे हमारी सहानुभूति सहज ही वृद्ध पात्रों के साथ जुड़ जाती है। फैंटेसी के माध्यम से लेखक ने पात्रों से रूबरू करवाया है। बाजार के बढ़ते वर्चस्व एक पात्र बहुत घबरा जाता है। वह अपने बेटे से कहता है कि हमें अपनी धनसंपदा को बाजार से बचाना चाहिए। बेटा बाप की इस बात से सहमत नहीं होता। फिर वह बुजुर्ग अपने पैसे को कही सुरक्षित जगह छिपा देता है और जब बेटे को इस बात का पता चला तो वह आग बबूला हो गया और अपने पिता के साथ बदतमीजी करने लगा। इसके साथ ही उनको पीट कर घर से बाहर निकाल दिया-''उसने जोर का एक झापड़ उनके गाल पर मारा तो वे पलंग से नीचे जा गिरे। लड़के ने हाथ पकड़कर उनको दरवाजे की तरफ घसीटा और निकल जाने को कहा। वह बेडरूम से बाहर निकलने लगे तभी पीछे से बेटा आया और उसने जोर से एक धक्का देकर उन्हें बाहर धकेल दिया। वह लड़खडाते हुए बरामदे में गिर गए और दरवाजे उनके पीछे धीरे-धीरे बंद हो गया।''[8]

इसी तरह एक बुजुर्ग अपने परिवार को बताते हैं कि बाजार का इतना विस्तार हो रहा है, आने वाले समय में हमें अपने घरों से बेदखल करके यहाँ बाजार को स्थापित किया जा सकता है। सरकार और कानून भी इसमें कुछ नहीं कर पाएँगे। वे भी बस बाजार के साथ मिल गए हैं। वे संविधान में संशोधन करवा देंगे और हमें बेदखल करना कानून सम्मत मान लिया जाएगा। हमें बेदखल करके मुआवजा थमा देंगे। कानून कुछ नहीं कर पाएगा। कोर्ट में शिकायत करेंगे तो कोर्ट भी बाजार की तरफदारी करते हुए कहेगा कि तुम्हें मुआवजा तो मिल चुका है दूसरी जगह चले जाओ। उनके बेटे को उनकी यह बातें बेतुकी लगती हैं और उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता। वह अपने पिता को पागल मानने लगता है।

उपन्यास में ज्ञान चतुर्वेदी जी ने अनेक ऐसे पात्रों से मिलवाया है जो उम्र भर बच्चों को सुविधा मुहैया करवाते रहे और बुढ़ापे में अपने ही परिवार द्वारा उपेक्षित हो रहे हैं।

भूमंडलीकरण पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण, भौतिकता का बढ़ता प्रभाव और त्याग तथा प्रेम का अभाव मनुष्य को मनुष्यता से दूर कर रहा है। सेवानिवृत्ति के बाद हमारे बुजुर्गों के लिए घर में जगह नहीं होती। साधन संपन्न होने पर भी बहू बेटे कई बार वृद्धाश्रम में भेज देते हैं। उपन्यास के दोनों पात्र

भी यदि आर्थिक रूप से सशक्त नहीं होते तो निसंदेह उनको भी वृद्धाश्रम में रहना पड़ता। बाबू जसवंत सिंह को कभी कानपुर से दिल्ली नहीं लाया जाता। आर्थिक रूप से कमजोर होते तो वे सीधे वृद्धाश्रम भेजे जाते। वे दिल्ली छोड़कर कानपुर वापिस जाने का निर्णय तो कभी नहीं ले पाते। इसी प्रकार कर्नल स्वामी के पास भी आर्थिक समृद्धि नहीं होती तो वे भी बेटों का प्रतिकार नहीं कर पाते। उन्हें भी नोएडा वाले मकान से बाहर निकाल कर सीधा वृद्धाश्रम भेज दिया जाता।

'गिलिगडु' उपन्यास में चित्रा मुद्गल जी ने बुजुर्गों की अवहेलना के माध्यम से हमारी संस्कृति की बिगड़ती तस्वीर को भी हमारे सामने रखा है। भूमंडलीकरण के प्रभाव से हमारा समाज बिखर रहा है, व्यक्ति परिवार से टूट रहा है। ज्यादा से ज्यादा पैसा कमाने की ललक ने व्यक्ति को परिवार और समाज से दूर कर दिया है। सामाजिक रिश्तो को निभाने का समय ही नहीं मिल पाता। इसका सबसे ज्यादा प्रभाव हमारे बुजुर्गों पर पड़ा है। वे सेवानिवृत्ति के बाद अपने परिवार के साथ समय बिताना चाहते हैं लेकिन परिवार उनको न तो घर में जगह देता है और न ही दिल में।

ज्ञान चतुर्वेदी और चित्रा मुदगल के अलावा भी अनेक साहित्यकार वृद्धों की समस्याओं को अपने साहित्य में स्थान दे रहे हैं। 'अंतिम अरण्य' में निर्मल वर्मा ने, 'दौड़' उपन्यास में ममता कालिया ने, 'रेहन पर रग्घू' में काशीनाथ सिंह ने, 'समय सरगम' में कृष्णा सोबती ने तथा 'अपने-अपने अजनबी' में अज्ञेय जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से वृद्धों की समस्याओं को हमारे सामने रखा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. चित्रा मुद्गल, 'गिलिगडु' उपन्यास, पृ. 138
2. वहीं, पृ. 138
3. वहीं, पृ. 34
4. वहीं, पृ. 34
5. वहीं, पृ. 71
6. वहीं, पृ. 19
7. वहीं, पृ. 14
8. वहीं, पृ. 59
9. ज्ञान चतुर्वेदी, 'पागलखाना', पृ. 249

मलारी गाँव के श्रीचन्द्र एवं गोपी चन्द्र थोकदारी मालगुजारी एवं जागीरदारी का इतिहास

रणजीत सिंह

शोधार्थी कुमाऊ विष्वविद्यालय नैनीताल

सारांश

मलारी गॉव नीति घाटी क्षेत्र का सबसे बड़ा गॉव है, इस गॉव की कुछ विषेशता है, उत्तराखण्ड में पाए जाने वाले लोक गीतो जागरो गीतो तथा घड़ियाल गीतो में मलारी का प्रचुर मात्रा में गुनगाण किया गया हैं। इससे इस गॉव की एतिहासिक प्राचीनता तथा घोतन होता है, यहॉ की मिट्टी यहॉ के वृक्ष देवताओ की तांसिक पूजाओ में आज दूर-दूर तक के क्षेत्रो के लोग आते है।

मलारी गढ़वाल की मल्ल पेनखण्डा पट्टी में एक गॉव है, यह गॉव 300-410-5011 अंक्षाश और 790-531 551 देषान्तर पूर्व में जोशीमठ से नीति दरे से तीस मील दक्षिण में है, जो जोशीमठ तहसील से 63k.m पर पड़ती है, मलारी गॉव नीति घाटी का सबसे प्राचीन गॉव है, मलारी गॉव नीति घाटी क्षेत्र का केन्द्रीय स्थल रहा हैं, इस क्षेत्र का भूमियाल अथवा थोकदार यही रहा करते थे। जिन्हें ठाकुर के नाम से जाना जाता था ये लोग अपने क्षेत्र के लोगो से भूमिकर आदि करो को लेते थे। इस वर्ग के लोग बूठा जाति के लोग थे। इन थोकदारो ने गोर्खा युद्व के समय बड़ी सक्रिय भूमिका निभाई थी।

मलारी गॉव में प्रतिश्ठित श्रीचन्द्र एवं गोपी चन्द्र जागीरदारी मालगुजारी एवं थोकदारी दो भाई रहते थे। इनकी माता जौहार क्षेत्र पिथोरागढ़ जनपद के जौहार क्षेत्र की थोकदार की कन्या थी। मलारी के थोकदारो की सम्पति का दूर-दूर तक प्रचार था। गोरखा लोग मलारी गॉव में लगातार आक्रमण करने आते थे। श्रीचन्द्र काफी अध्यात्मिक प्रवृति के थे गोरखाओं ने श्रीचन्द्र के मामा को जौहार में बन्दी बना लिया था। और उसे जबरन श्रीचन्द्र की सम्पति लूटने के लिए बाध्य किया गोर्खाओं ने श्रीचन्द्र के मामा को साथ लेकर मलारी गॉव पॅहुचे उस समय धनवान लोग अपने धन को कही गुप्त स्थान में गाड देते थे। और उस स्थान का सोकेतिक मानचित्र अपने पास रखते थे। जिन संकतो को उनके विष्वसनीय जनो के अतरिक्त अन्य कोई नही समक्ष समता था। ऐसी ही व्यवस्था मलारी के थोकदारी ने अपने सम्पति की रक्षा के लिए की थी। एक दिन श्रीचन्द्र नित्य कर्म की पूजा कर रहे थे।

मलारी गॉव में गोर्खओ का ढाल वाला तलवार

मलारी गॉव में ठाकुर सिंह राणा श्रीचन्द्र के दोनो मामाओं के मुर्ति के साथ

तभी ठकुराईन ने श्रीचन्द्र को खोली में गोर्खाओं का आगमन हो चुका था। और वे खोली तोड़कर श्री चन्द्र के आगन में पहुॅच ही गए थे। श्रीचन्द्र पूजा-पाठ समाप्त कर पाखोली का तकता तोड़कर खजाना का लेजर को लेकर पीछे के रास्ते से भाग गए। और गोर्खाओ ने उनका पीछा किया गोर्खा लोग सताणा घेर नामक स्थान पर चले गए। जैसे ही श्रीचन्द्र सताणा घेर में लेजर दवाकर नदी में छलांग लगाते तो सुंरग में घुसते ही श्रीचन्द्र मे मामा आवाज लगाई श्रीचन्द्र अपने मामा की आवाज सुनकर रूक गए। उसी समय गोरखा लोग लेजर लेकर मालगुजारनी को बन्दूक की ताक से उससे खजोन के बारे में पूछा मालगुरजारनी ने श्रीचन्द्र के सारे खजाने को गोर्खा बता दिया खजाने की खुदाई करके गोर्खा लोग लूट पाट कर वापास चले गए। लेकिन जन जागीरदार (श्रीचन्द्र) के प्राण निकल रहें थे। उस समय उन्होने मामा को श्राप दिया जौहार पर श्राप लगने पर उन्होने दोनो मामाओं की मूर्ति बनवायी एवं उसे लोग पर चठा दिया (जो एक प्रकार की लम्बी लकड़ी टांग देते है) जौहारी पर दोश लगने पर जौहार के लोग मालारी गॉव आए एवं दोनो तॉबे की मूर्ति पर जौहार ले गए एवं उन मूर्तियों पर सोना की परत चढाई उस समय पूरे पेनखण्डा में दो बड़े थोकदार थे।

1 मलारी गॉव के थोकदार गोपीचन्द्र एवं सलूड़ गॉव के थोकदार में कर वसूली का इनका क्षेत्र तिब्बत था। तब तिब्बत एव व्यापारिक केन्द्र हुआ करता था। वाकी छोटे-छोटे क्षेत्र थे। कर वसूली में दोनो भाईयों का सामाज्यस्य था। लेकिन कुछ समय पश्चात कर वसूली में दोनो थोकादारो का विवाद हो गया एवं उस विवाद में मलारी के एवं सलूड़ गांव के दोनो थोकदार मारे गए। गोपीचन्द्र एवं श्रीचन्द्र के बंभज

हरकू मरवाल थे एवं इसके बाद इनके दो वंशज पीढ़ी तक सन्तान पेदा नही हुए। इन्होने इसी मलारी गॉव में (राणा) राणा परिवार से युवक पुत्री को घरजवाई रख दिया। और जिनमें हरकू मरवाल का देहान्त हो गया, हरकू मरवाल के वंशज देवसिंह इसकी पत्नी मालगुजारनी मांगी पदानी हुयी। मांगी पदानी बहुत शक्तिशाली वींरागना थी, वह महिला होते हुए।सात साल तक मालगुजारनी और पदानचारी चलाई गॉव में रूढिवाढी ने सर उठाया, इस गॉव मालगुजारनी एवं पदानचारी से वेदखल कर दिया, किन्तु मांगी पदानी न मानी तब तक गढ़वाल में ब्रिटिश सरकार का आगमन हो चुका था। मलारी गॉव की मालगुजारनी मांग पदानि पारी गयी एवं मालगुजारनी से बेदखल रखा किन्तु जागरीदारी से सम्पति मकान एवं खेत खलिहान उसने फिर से अपने पास रखा इसी रूढिवाढीता के चलते मलाारी गॉव में सरकारी एवं छंपर वाला मकान है। जिसमें छंपरवाला मकान के वारीयस बच्चन सिंह ठाकुर सिंह छंपर मालगुजार एवं जागीरदार-एवं सरकारी मकान छंपर वाला गॉव के पट्टी थाल पाट्टी वाले के पास है।मलारी गॉव में मालगुजारी जागीरदारी एवं थोकदारी एवं सम्पति को लेकर बटवारा हुआ जिसमे पहला छंपर वाला मकान जिसमे मुख्य प्रशासन चलता था। इनका वारीयस बच्चन सिंह ठाकुर सिंह इनके पास मालगुजारी एवं जागीरदारी मिली और इसकी और जिसमें मलारी गॉव का सचिवालय (सरकारी) छंपर वाला मकान गॉव की पट्टी वालो को मिला जिसमे गॉव के सभी जाति भाईयों में बटवारा हुआ मलारी गॉव में एक छंपर वाला मकान ठाकुर सिंह राणा एवं उनके परिवार बच्चन सिंह राणा के पास हैं और दुसरा छंपर वाला मकान सरकारी पटटी गॉव वालो सभी भाई जातियों के पास है।

श्रीचन्द्र के छंपर वाला मकान जो वर्तमान में मलारी गॉव में ठाकुर सिंह राणा के पास है

1 गणा:-वित मंत्रालय (गणा जाति के लोगो पट्टी वाले लेखा जोखा का हिसाब रखते थे। इनका मुख्य पशासन सरकारी छंपर वाला मकान पर चलता था। सभी पट्टीयॉ वालो को एक-एक कमरा इस सरकारी मकान पर मिला जिससे मुख्य पट्टी 1 गणा, वुरेरी, वुलया, नीलवाडा, करर्णा, लम्बतवाल, कोटया, वोंगचा, धनपुती, धस्सया, जिसके दस्या-विजवाल वंश खत्म हो गया और दस्या पट्टी की सम्पति सगरामी देवी नीलवाडा के पास है। इस सरकारी मकान पर जितने पट्टी के लोग है। उत्तने ही इस पर कमरे भी है। यह विरासत मलारी गॉव में आज भी दो छंपर वाले मकान का जूंद हैं।

सन्दर्भ सूची

1. श्री ठाकुर सिंह मलारी गॉव अपनी विरासत की ऐतिहासिक साक्षात्कार
2. लघु केलाश महावीर प्रसाद सकलान चहम-154 प्रकाशक संजीवानी शिखर औली हिमालय
3. हिमालय गजेटिमर एडविन टी एटकिंसन ग्रन्थ तीन भाग 2 चंर-557

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 और सारण जिला लोक अदालत

मंकेश पाण्डेय

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सारांश:

1976 में जब स्वतंत्र भारत के संविधान के अध्याय IV' "राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त" की धारा 39 में संविधान के 42वें संशोधन द्वारा एक नई धारा 39। की प्रविष्टि करा दी गई तब यह राज्य का दायित्व बन गया कि वह ऐसी न्यायिक व्यवस्था को बहाल करे कि देश का कोई भी नागरिक संसाधनों की कमी या अन्य किसी तरह की निर्योग्यता के कारण न्याय पाने के समान अवसर से वंचित न रह जाय। राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों के साथ इस नई धारा 39A को समाविष्ट कर दिए जाने के कारण धारा में उल्लिखित वादों और प्रतिज्ञाओं के पीछे न्यायालयों की शक्तियाँ तो नहीं रही मगर राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों की भाँति ही राज्य के ऊपर यह दबाव आ गया कि वह इस धारा (39A) को लागू करने और सभी नागरिकों को समान रूप से न्याय पाने के अवसर की गारंटी करावे।

इस दायित्व को पूरा करने के लिए जब 1987 में विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम पारित किया गया और 1994 एवं 2002 में इसमें संशोधन कर इसमें व्याप्त त्रुटियों को दूर किया गया तब इसकी धारा 19 से 22 में दिए गए लोक अदालतों के प्रावधानों के आलोक में कई स्थानों पर समितियों और प्राधिकरणों के निर्माण की व्यवस्था की गई। 1990-91 में नव उदारवादी नीति को भारत द्वारा अपनाएँ जाने के बाद विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियिम में संशोधन करके विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम में ऐसा प्रावधान कर दिया गया कि न्यायपालिका का चरित्रिक विभाजन हो गया-नियमित अदालते सम्पन्न वर्गों के लिए और लोक अदालतें विपन्न वर्गों की अदालतों में बँट गई। प्रस्तुत लेख इसी संदर्भ में छपरा जिला में लोक अदालतों की क्रिया और प्रभाव का मूल्यांकन है।

धुरीन शब्द (Keywords) : संज्ञान, पक्षकार, अनुतोष, अधिकारिता, प्राधिकार, विधिक, तथा लम्बित।

भूमिका

एक लम्बी ऐतिहासिक परम्परा वाले छपरा (सारण) जिला में लोक अदालतों की प्रासांगिकता, उनका कृत्य और प्रभाव के आकलन को जिले की परम्परा और भारत के विधान की धारा 39।ए जिसे 1976 में संविधान में किए गए संशोधन के परिणाम स्वारूप संविधान को राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों में रखा गया है' कि पारस्परिक सम्बन्धों के आधार पर ही मूल्यांकन किया जाना चाहिए। सारण जिला की आर्थिक स्थिति में कृषि की प्रधानता और सामाजिक स्थिति में गरीबी, अनौद्योगिकीकरण, बेरोजगारी और आबादी की सघनता ऐसे कारक है जो नागरिकों को वर्त्तमान संवैधानिक प्रावधानों के लाभों से वंचित करते है। यह बात न्यायिक प्रक्रिया में समान रूप से सबों को न्याय दिलाने से भी वंचित करती है। न्याय प्रक्रिया का खर्चीला होना, मुकदमों का लम्बी अवधि तक चलना और उस पर आने वाले वित्तीय खर्चो का वहन करना गरीब आबादी को जिस तरह से कुप्रभावित कर रहे है उससे संविधान की धारा 39। की समीचीनतम ही समाप्त हो जाती है-यह समीचीनता समाप्त हो जाती है कि राज्य की यह कोशिश होनी चाहिए कि कोई भी नागरिक संसाधनों की कमी या अन्य किसी तरह की निर्योग्यता के कारण समान रूप से न्याय पाने से वंचित न रहें।[1] संविधान में इस धारा की प्रवृष्टि हो जाने के बाद सारण जिला में भी इसी धारा के प्रावधानों के अनुसार न्याय सुलभ करने के लिए एक न्यायिक प्रणाली को विकसित किए जाने का दायित्य आया।

संविधान में इस प्रावधान की प्रवृष्टि के बाद जब यह जरूरी हो गया कि राज्य के सबसे ऊपरी फलक से लेकर नीचे, प्रखण्ड स्तर तक, इन प्रावधान को लागू करना सरकार का दायित्व हो गया। इस अनिर्वायता के साथ यह भी अनिवार्यता बन गई कि इस प्रावधान को लागू करने और कराने के साथ सारण जिला की आर्थिक राजनीतिक शैक्षणिक स्थिति के साथ विकास की इस प्रक्रिया को लागू कराया जाय। इस धारा (39A) ने सभी राज्यों, जिलों आदि में इस प्रावधान के अन्दर सबों को समान रूप से न्याय कि उपलब्धि कराने के लिए प्रशासन के प्रत्येक स्तर: राज्य, जिला, तालूक, आदि में इसकी गारंटी कराने के लिए सभी स्तरों पर संवैधानिक विधिक सेवा प्राधिकरण की स्थापना को जरूरी माना गया। इन प्रावधानों के अन्दर केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा किए जा रहे वित्त पोषण के जरिए सारण जिला में भी मुफ्त कानूनी सहायता पहुँचाई जाती है।[2] इसी बीच जल्दी से कम लागत और मध्यस्थता के द्वारा विभिन्न स्थानों पर लोक अदालतों की स्थापना की गई है और जो काफी कारगर साबित हुई है, जिस कारण लोगों द्वारा इसकी स्थापना की माँग की जा रही है। लोक अदालते किसी मामलों में निर्णय के लिए किसी वैधानिक सहयोग की व्यवस्था करने के लिए माँग की जा रही है। समझा जा रहा है कि सहयोग की ऐसी व्यवस्था न सिर्फ अदालतों पर केसों के बढ़ रहे बोझ को ही न सिर्फ हल्का करेगी, बल्कि कमजोर लोगों के मामले में कम खर्च पर न्याय उपलब्ध कराने

में कारगर रूप में मददगार भी होगा।[3] विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम में 1987, संशोधन अधिनियम 37 वर्ष 2002 में संशोधन करके यह सुनिश्चित किया गया कि लोक अदालतों के निर्माण का काम अवसर के आधार पर हो और विधिक सेवा प्राधिकरण के लिए एक कानून का निर्माण किया जाय। इन्ही प्रावधानों के परिणाम स्वरूप सारण जिला में भी लोक अदालतों का निर्माण किया गया है। यह संशोधित अधिनियम की कुछ विशेषताएँ है, जैसे-

1. स्थाई लोक अदालतों के गठन का प्रबंध करना जिसका अध्यक्ष वह व्यक्ति होगा जो जिला न्यायाधीश हो या रह चुका हो, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश हो या रह चुका हो या जिला न्यायधीश के उस रैंज में उच्चतर न्यायिक अधिकारी हो। इसके अलावा लोक उपयागिता में रूचि और अनुभव रखने वाले हो, अन्य पदाधिकारी रखे जाऐंगे।
2. स्थाई लोक अदालतें इस तरह के लोक उपयोगी विषयों में से एक या अधिक सेवाओं के सम्बन्ध में अधिकारिता प्राप्त करेगी जैसे-सड़क, जल और वायुमार्ग द्वारा यात्रियों या मालों का परिवहन, पोस्टल टेलीग्राफ या टेलीफोन आदि सेवाएँ, किसी जगह से पानी, बिजली आदि की आपूर्ति लोक संरक्षण, लोक संरक्षण अस्पताल, डिस्पेन्सरी सेवाएँ और स्वच्छता।
3. ऐसे लोक अदालतों की वित्तीय अधिकारिता कुल 10 लाख रुपये की होगी जो केन्द्र और राज्य सरकार देगी और उसमें जरूरत के मुताबिक घटोतरी-बढ़ोतरी हो सकती है।
4. जिन अपराधिक मामलों में कानून में समझौता का प्रावधान नहीं है उन पर स्थाई लोक अदालतों की कोई अधिकारिता नहीं होगी।
5. किसी मामलें को न्यायालय के समक्ष लाने के पहले भी कोई पक्षकार असमझौता के लिए स्थाई लोक अदालत में आवेदन कर सकता है।
6. अगर स्थाई लोक अदालत को यह जानकारी हो कि मामले के निपटारे के लिए कुछ तत्व विद्यमान है जो पक्षकारों पर लागू हो सकते है तब लोक अदालत निपटारे के लिए शर्तों को विनियंत्रित करेगी और पक्षकारों को टिप्पणी के लिए भेज देगी। अगर पक्षकार कोई समझौता करते है तब उनकी शर्तों में एक चाट जारी करेंगी, अगर कोई समझौता नहीं होता है तो लोक अदालत मामलें के गुणा-न-गुण के आधार पर फैसला करेगी।
7. स्थाई लोक अदालत का पंचाट अन्तिम होगा और स्थाई अदालत गठित करने वालों के बहुमत के आधार पर होगा।[4]

सारण जिला लोक अदालतः आँकड़ों का विश्लेषण

1994 और 2002 में जब विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 में व्यापक संशोधन इस नाम पर किया गया कि इस अधिनियम में बहुत सारी त्रुटियाँ है, उन्हें ठीक करना है, तब इसकी धारा 19 से 22 तक लोक अदालतों के प्रावधानों के आलोक में अनेक स्तरों पर समितियों और प्राधिकरणों के गठन का प्रावधान किया गया। इनमें राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण, राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण, जिला विधिक सेवा प्राधिकरण, उच्चतम न्यायालय विधिक सेवा समिति, उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति, ताल्लूक विधिक सेवा समिति आदि का गठन किया गया। इसका सम्बन्ध संविधान की धारा 39A से है जो राज्य को निर्देशित करता है कि राज्य को यह सुनिश्चित कराना है कि कोई भी नागरिक संसाधनों की कमी या अन्य किसी तरह की निर्योग्यता के कारण न्याय पाने से वंचित न रह जाय।[5] इसी प्रावधान के तहत सारण जिला विधिक सेवा प्राधिकारण का गठन किया गया। कोई भी गरीब आदमी राज्य या जिला प्राधिकरण के सामने मुफ्त न्यायिक मदद की मांग कर सकता है, इसी प्रावधान के तहत सारण जिला में भी सारण जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के सम्मुख सारण जिला लोक अदालत की कार्रवाई की जाती है।

वास्तव में 1990-91 में जब भारत ने नव-उदारवादी विकास नीति को स्वीकार कर उसे विकास की मुख्य रणनीति के रूप में स्वीकार कर भारत की आर्थिक-सामाजिक संरचना को साम्राज्यवादी देशों की विकास नीति से सम्बद्ध कर दिया जब भारत को भी अपनी न्यायिक प्रणाली को बदल कर साम्राज्यवादी देशों के नक्से-कदम पर लाना जरूरी हो गया। इस कारण भारत की न्यायिक प्रणाली को वर्गीय रूप देने के प्रयास में यह कदम उठाया गया। इसका परिणाम है कि गरीब जनता को मुफ्त कानूनी मदद के नाम पर नियमित अदालतों द्वारा न्याय पाने के अवसर को बन्द कर दिया गया और उनके लिए लोक अदालतों को स्वरूप में ला दिया गया। अब धनी आदमी के लिए नियमित अदालतें और गरीबों के लिए लोक अदालतें, दो न्यायिक संरचनाओं को स्वरूप दे दिया गया हैं इस तरह न्यायपालिका का भी वर्गीय विभागजन कर दिया गया है।

सारण जिला लोक अदालत का गठन

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 के मुताबिक जिलों में लोक अदालत के गठन की एक प्रक्रिया अपनाई गई है जिसमें शामिल होने वाले लोग हैं:

1. कार्यरत या अवकाश प्राप्त न्यायिक पदाधिकारी
2. अन्य लोग।

किसी क्षेत्र में लोक अदालत का गठन करने वाले राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण या जिला प्राधिकरण या उच्चतम न्यायालय विधिक सेवा समिति या उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति या ताल्लुक विधिक सेवा समिति द्वारा अनिर्दिष्ट किया जाय।

उच्चतम न्यायालय विधिक सेवा समिति द्वारा निर्दिष्ट लोक अदालत के लिए उप-धारा (2) के खण्ड (ख) में निर्दिष्ट अन्य व्यक्तियों की योग्यता और अनुभव वे होंगे जो केन्द्र सरकार द्वारा भारत के मुख्य न्यायाधीश की राय से तय की जाएगी।

उप धारा (3) के अलावा लोक अदालत के लिए उप-धारा (2) के खण्ड (ख) में निर्दिष्ट अन्य व्यक्तियों के लिए अनुभव और योग्यताएँ वे ही होगी जो भारत सरकार द्वारा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की राय से तय किया जाय।

लोक अदालत के पास पक्षकारों के बीच समझौता कराने या वादों का निपटारा कराने या निर्धारित कराने की अधिकारिता का अधिकार होगा जो नीचे लिखे अनुसार होगा-

क. किसी न्यायालय के समक्ष लम्बित मामला

ख. कोई मामला जो किसी न्यायालय की अधिकारिता में आता हो मगर किसी न्यायालय के सामने न लाया गया हो जिसके लिए लोक अदालत गठित किया गया है।

मगर किसी विधि के अन्दर मामले में जब अशमनीय अपराध से सम्बन्धित मामले में लोक अदालत की अधिकारिता नहीं होगी।[6]

स्थाई और अस्थाई लोक अदालतें

सारण जिला में भी स्थाई और अस्थाई दोनों तरह की लोक अदालतें स्तित्वमान है। धारा 19 के अधीन गठित लोक अदालतें तथा धारा 22(बी) के अधीन गठित स्थाई लोक अदालतों को ऐसे मामलों में जो किसी विधि के अधीन नमनीय नहीं है, उनसे सम्बन्धित मामलों में कोई अधिकारिता नहीं है।

लोक अदालतों को कोई न्यायिक शक्ति नहीं है, बस वे पक्षकारों के द्वारा सुलह को प्रोत्साहित करा समझौता कराने का है। जहाँ सुलह का प्रावधान नहीं है वहाँ मामले को विधि के अनुसार नियमित अदालतें को पहुँचा देना है।[7] पक्षकारों द्वारा सही रूप में हस्ताक्षरित हो जाने के बाद समझौता न्यायालय की एक डिक्री का रूप ले लेता है जिसके खिलाफ कहीं अपील का प्रावधान नहीं है।

समझौता के खिलाफ किसी पक्षकार को धारा 226 और 227 के अन्दर किसी पक्षकार को उच्च न्यायालय के पास जाने का एक विकल्प है जो समझौता पक्ष कपट को आधार पर करा दिया गया हो तब। चूंकि उच्च न्यायालय खोजबीन या अन्वेषण नहीं करता इस कारण पक्षकार को समझौता में अनुतोष का दावा करने वाला पक्षकार सिविल न्यायालय की पूर्ण अधिकारिता का सहारा ही ले सकता है।

समझौता के बाद निष्पादन आदेश तैयार करना प्रशासनिक कार्य है यह तर्क अमान्य है कि लोक अदालत ऐसे मामलों का संज्ञान नहीं ले सकती जो किसी न्यायालय के समक्ष लम्बित न हो।[8] धारा 19 के अधीन गठित लोक अदालतों को निर्णयकारी अधिकार नहीं है, वे मात्र समझौता करा सकती है मगर धारा 22बी(1) के अदर गठित लोक अदालतें स्थाई अदालतें हैं जिन्हें समझौता और फैसला दोनों का अधिकार है। कुछ राज्यों में इसके अपवाद भी है। धारा-19 के तहत गठित लोक अदालतों का उन मामलों में अधिकारिता नहीं है जो किसी न्यायालय में लम्बित नहीं है। सेन्ट्रल बैंक बनाम याची का मामला[9] इसका प्रमाण है।

यों तो सभी जिलों के लिए लोक अदालत के गठन का मोटा मोटी यही ढाँचा है मगर कुछ प्रान्तों में कुछ अपवाद भी है जैसे धारा-19 के अन्दर गठित लोक अदालतों के विषय में। मगर सारण जिला में लोक अदालतों का गठन विधिक सेवा प्राधिकार अनिनियम 1987 के प्रावधानों और उसमें हुए संशोधनों के परिप्रेक्ष्य में ही गठित किया गया है, अपवाद स्वरूप कुछ भी नहीं है। अबतक बहुत सारे मामलों का निपटारा भी इन अदालतों से हुआ है।

मगर इन अदालतों की विडम्बना है कि इनके गठन और ढाँचा का स्वरूप जरा भी जनवादी नहीं है, बल्कि नौकरशाही के नमूने पर गठित है जिसमें समझौता के पक्षकारों और समझौता कराने वाली एजेन्सियों के मेम्बरों के बीच का वर्ग विभेद इतना न चौड़ा है कि पक्षकार अपनी आर्थिक और सामाजिक स्थितियों के कमजोर होने के कारण इनके सामने दबे रहते हैं और सदस्य अपने मन के मुताबिक समझौता करवाने में सफल हो जाते हैं। जरूरत है इन अदालतों को जनवादी बनाने की।

संदर्भ सूची:

1. भारत का संविधान धारा-39वीं (राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों में 1976 के 42वें संविधान संशोधन द्वारा शामिल किया गया।

   Equal justice and free legal aid: The State shall secure that the operation of the legal system promotes justice, on the basis of equal opportunity and shall in particular provide free aid by suitable legislation or schme or in any other way to ensure that the opportunities for securing justice are not denied to any citizen by reason of economic or other disabilities." (42nd Amendment Act 1976)
2. विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987, प्रस्तावित विधान की मुख्य विशेषतायें, 1998 धारा 1 और 2
3. उपरोक्त
4. विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987, धारा 19 द्वारा उद्धृत मैनुअल ऑफ लिगल सर्विस अथोरिटी, प्रीतम लॉ हाउस प्रा. लि., हाई कोर्ट कैम्पस, पटना 800028, हिन्दी पृ.-15.
5. भारत का संविधान, धारा 39 । पूर्वोद्धृत.
6. विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987, धारा 19.
7. उर्मिला मोसमात बनाम बिहार राज्य (2017 (3) (BLJ) 98 (PHC)2017, BLJR, 871.
8. पन्ना लाल प्रसाद बनाम मनोज कुमार गुप्ता, 2012 (3) पी.एल.जे.आर., 579.
9. निलम्बर महंथा बनाम सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, 211(2) बी.एल.जे. 36 (पी.एच.सी.).

भारत में अनुसूचित जाति की स्त्रियां एवं मनरेगा

डॉ० दिनेश कुमार यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर (समाजशास्त्र विभाग), सन्त गणिनाथ राजकीय पीजी कॉलेज, मोहम्मदाबाद, गोहना, मऊ, उत्तर प्रदेश

दयानंद

शोध छात्र, सन्त गणिनाथ राजकीय पीजी कॉलेज, मोहम्मदाबाद, गोहना, मऊ, उत्तर प्रदेश

सार

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) फरवरी 2006 में शुरू किया गया था। यह एक भारतीय कानून है जिसका उद्देश्य 'काम के अधिकार' की गारंटी देना और कम से कम 100 दिन रोजगार प्रदान करके ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका सुरक्षा सुनिश्चित करना है। प्रत्येक परिवार को जिसके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक कार्य करने के लिए स्वेच्छा से काम करते हैं। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005, (मनरेगा) को 7 सितंबर 2005 को "कम से कम एक सौ दिनों की गारंटी मजदूरी प्रदान करके देश के ग्रामीण क्षेत्रों में परिवारों की आजीविका सुरक्षा बढ़ाने के लिए एक अधिनियम" के रूप में अधिनियमित किया गया था। हर वित्तीय वर्ष में ''हर घर को रोजगार'' वास्तव में अनुसूचित जाति की महिलाएं अपनी खुद की मजदूरी इकट्ठा करते हैं, अपनी पसंद और क्षमताओं को विस्तृत करते हैं। बढ़ी हुई आय को बच्चों की उच्च शिक्षा, परिवारों के स्वास्थ्य और पोषण, विशेषकर महिलाओं पर निवेश किया गया। क्रय शक्ति में वृद्धि के परिणामस्वरूप आत्मविश्वास और सतत् विकास हुआ। इस पत्र के माध्यम से भारत में अनुसूचित जाति की स्त्रियां एवं मनरेगा पर विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्दः अनुसूचित जाति; महिलाएं; आजीविका; ग्रामीण परिक्षेत्र; अधिकारिता; सशक्तिकरण।

परिचय

समुदायिक जीवन के दो पक्ष होते हैं- ग्रामीण एवं नगरीय। ग्राम एवं नगर दोनों की परिस्थितियां भिन्न - भिन्न होी है। इन दोनो का सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन एक दूसरे से भिन्न होता है। ग्राम सहवासी जीवन को प्रदर्शित करता है। इस विशेषता के कारण इसका दूसरे समुदायों से भिन्नता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। भारत में जनसंख्या का अधिकांश भाग गांवों में निवास करती है। अतः देश की प्रगति की दिशा में किए गए समस्त प्रयास उस समय तक सार्थक प्रतीत नहीं होती जब तब गांव में निवास करने वाले समाज के विभिन्न वर्गों को लाभान्वित नही किया जाता है। अतः ग्रामीण लोगों की दशा में विकास आवश्यक होता है।

स्त्रियां मूलतः प्रत्येक समाज के निर्माण में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। प्राचीन समय में भारतीय गांव आर्थिक, सामाजिक रूप से अत्यन्त पिछड़े हुए थे। गरीबी और बेकारी झोपडिघ्यों में कराह रही थी। व्यक्ति को दो समय का भोजन नसीब नहीं हो पाता था उसके रहने के लिए खुला आकाश और भूमि थी, न उसके पास घर था और न ही खाने के लिए दो समय का भोजन। इस निर्धन समाज में स्ित्रयों की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। आधुनिक काल के प्रारंभ में भी भारतीय ग्रामीण समाज की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ क्योंकि इस समय में भी अधिकाधिक ग्रामीण लोग प्राचीन समय की तरह ही समस्याओं में जूझते रहे हैं। इस समय में भी निर्धनों के समाज में स्त्रियों की स्थिति अत्यंत दयनीय और सोचनीय रही है। ग्रामीण समाज की स्त्रियों को अपने अधिकारों के प्रति जो जागरूकता होनी चाहिए वह नही के बराबर देखने को मिलती रही है। भारतीय ग्रामीण समाज की स्त्रियों की दयनीय स्थिति को देखते हुए भारत सरकार ने स्त्रियों की स्थिति में सुधार के लिए अनेक योजनाओं का प्रतिपादन किया।[1]

विकास एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसका संबंध समाज के आर्थिक, सामाजिक पहलू से होता है। विकास के द्वारा मनुष्य अनेक उपलब्धियों को प्राप्त करता है। विकास की प्रक्रिया अनन्त है, इसलिए मापन भी असंभव होता है। हम केवल विकास की उन पहलुओं को मानते हैं जिनका संबंध भौतिक एवं आर्थिक जीवन से होता है मापने के संबंध में अनेक मापदण्ड अपनाए जाते हैं। जिनमें से मात्रा में वृद्धि, आपसी सहयोग में वृद्धि मानवीय स्वतंत्रता में वृद्धि, समानता में वृद्धि, स्त्रियों की स्थिति में सुधार एवं कल्याण वृद्धि आदि प्रमुख मापदण्ड माने गए हैं।

स्वतंत्रता के पूर्व भारत सरकार द्वारा ग्रामीण समुदाय के लोगों विशेषतः निर्धन एवं अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति की महिलाओं एवं पुरूषों के विकास के लिए भारत सरकार द्वारा अनेक कार्यक्रम चलाये गए, परन्तु इन योजनाओं का ग्रामीण समुदाय पर तथा यहां की अनुसूचित जाति की महिलाओं पर कोई सकारात्मक प्रभाव नहीं दिखाई दिया। यदि हम 50 वर्षों का मूल्यांकन करें तो पाएंगे कि ये सभी योजनाएं अपने निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति नहीं कर पायी हैं

और लोगों के जीवन का स्तर काफी नीचा है। निश्चित ही देश के विकास के साथ-साथ गरीबी में कुछ कमी आयी है। प्रति व्यक्ति आय बढ़ी है, उत्पादन बढ़ा है, रहन - सहन का स्तर बढ़ा है, लेकिन ग्रामीण समुदाय के लोगों चाहे अन्य पिछड़ी जाति के हों या अनुसूचित जातियों के हों, इनकी स्थिति जस की तस बनी हुई थी। इनकी स्थिति को ध्यान में रखकर भारत सरकार ने 2 फरबरी 2006 को राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना को लागू किया ताकि ग्रामीण समुदाय के निर्धन विशेषत: अनुसूचित जाति के लोगों को सवैतनिक रोजगार मिल सके और वे अपनी मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति कर सके। जिसके लिए वे गांव छोड़कर शहरों की ओर पलायन कर रहे थे, इसमें कमी आ सके।[2]

ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा कार्यान्वित राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम सरकार का प्रमुंख कार्यक्रम है जो गरीबों की जिंदगी से सीधे तौर पर जुड़ा हुआ है और जो व्यापक विकास को प्रोत्साहन देता है। इस योजना का उद्देश्य है ग्रामीण क्षेत्रों के परिवारों की आजीविका सुरक्षा को बढ़ाना। इसके तहत हर घर पर के एक वयस्क सदस्य को एक वित्त वर्ष में कम - से - कम सौ दिनों का रोजगार दिए जाने की गारंटी है। यह रोजगार शारीरिक श्रम के संदर्भ में है और उस वयस्क व्यक्ति को प्रदान किया जाता है जो इसके लिए राजी हो। इस अधिनियम का दूसरा लक्ष्य यह है कि इसके तहत टिकाउ परिसम्पत्तियों का सृजन किया जाए और ग्रामीण निर्धनों की आजीविका के आचार को मजबूत बनाया जाए। इस अधिनियम का मकसद सूखे, जंगलों के कटान, मृदा संरक्षण जैसे कारणों से पैदा होने वाली निर्धनता की समस्या से निपटना है ताकि रोजगार के अवसर लगातार पैदा होते रहे।[3]

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा) को तैयार करना और उसे कार्यान्वित करना एक महत्वपूर्ण कदम के तौर पर देखा गया है। अधिनियम के बेजोड़ पहलुओं में समयबद्ध रोजगार गारंटी और 15 दिन के भीतर मजदूरी का भुगतान आदि शामिल है। इसके अन्तर्गत राज्य सरकारों को प्रोत्साहित किया जाता है कि वे राजगोर प्रदान करने में कोताही न बरतें क्योंकि रोजगार प्रदान करने के खर्च का 90 प्रतिशत हिसा केन्द्र सरकार वहन करती है। इसके अलावा इस बात पर भी जोर दिया जाता है कि रोजगार शारीरिक श्रम पर आधारित हों जिसमें ठेकेदारों और मशीनों को कोई दखल नहीं हो। अधिनियम में महिलाओं की 33 प्रतिशत भागीदारी को भी सुनिश्चित किया गया है। मनरेगा के तहत दिए गए काम में अनुसूचित जाति तथा अनूसूचित जनजाति के लोगों की भागीदारी क्रमश: 20 प्रतिशत एवं 17 प्रतिशत रही है। वर्तमान में विभिन्न राज्यों के प्रति लाभार्थी मिलने वाली औसत मजदूरी जो वर्ष 2006 में प्रति श्रम दिवस 65 रू0 थी, वर्ष 2014-15 में बढ़कर 150रू0 से अधिक हो गई। समस्त कार्यों में लगभग 65 प्रतिशत कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों में हुआ।[4]

2 अक्टूबर 2009 को नरेगा का नाम परिवर्तित कर ''महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (मनरेगा)'' कर दिया गया। राष्ट्रपति द्वारा नरेगा को 5 सितंबर 2005 को स्वीकृति प्रदान की गई थी। मनरेगा रोजगार की वैधानिक गारंटी प्रदान करता है जो योजनाओं की तुलना में इसे विशेष बना देता है।

ग्रामीण समाज के सभी समुदायों सामान्य वर्ग, पिछड़ा वर्ग तथा अनुसूचित वर्ग सभी वर्ग के लोग नगरीय अंचल की अपेक्षा पिछड़े हुए हैं। जिसमें अत्यधिक निम्न स्तर दलित वर्ग अर्थात् अनुसूचित जाति की स्थिति देखने को मिलती है। भारत सरकार ने इन ग्रामीण समाज के लोगों की स्थिति अत्यन्त दयनीय देखी और इनकी स्थिति को सुधारने के लिए अनेक योजनाएं चलायी जिससे ग्रामीण समाज के अनुसूचित जाति की स्त्रियों को इसका विशेष लाभ प्राप्त हो रहा है। अनुसूचित जाति की स्त्रियों पर मनरेगा योजना का विशेष प्रभाव है।

भारतीय जनगणना 2011 के अनुसार भारत की जनसंख्या में लगभग 16.6 प्रतिशत या 20.14 करोड़ आबादी अनुसूचित जातियों की है। ग्रामीण क्षेत्र के अनुसूचित वर्ग के स्त्रियों की सुख सुविधाओं एवं अधिकारों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है चाहे यह क्षेत्र राजनीति का हो, शिक्षा का हो, नौकरी का हो या कृषि का हो।

ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जाति की स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। यहां की स्त्रियों को खेतों में अथक परिश्रम करना पड़ता है लेकिन उनके परिश्रम की मजदूरी बहुत कम मिल पाती है। परिवार में भी उनके प्रति भेदभाव किया जाता है। खेतों में काम करके घर लौटने के पश्चात् उन्हें घर की सारी जिम्मेदारी का भी वहन करना पड़ता हे।

इस संदर्भ में ग्रामीण समाज के अनुसूचित जाति की स्त्रियों की स्थिति का उल्लेख करना आवश्यक है जिन्हें जन्म के समय से ही भेदभाव एवं पूर्वाग्रहों का सामना करना पड़ता है। ग्रामीण समाज में भी अनुसूचित जाति के ग्रामीण क्षेत्र के पुरूष समाज की भी आवश्यकता की पूर्ति पूर्णत: पुरूषों पर ही आधारित होती है। परन्तु भारत सरकार ने मनरेगा योजना के अन्तर्गत अनुसूचित जाति की स्त्रियों का भी जॉब कार्ड बनाकर उन्हें 1 वर्ष (365) दिनों में 100 दिन का रोजगार देने की गारंटी दी है। जिसके तहत इनकी स्थितियों में अत्यधिक सुधार होगा।[5]

मनरेगा योजना के अन्तर्गत कुल श्रमिकों का 33 प्रतिशत भाग स्त्री श्रमिकों का भाग सुनिश्चित किया गया है, जिससे स्त्री समाज का विकास हो सके तथा कुल श्रमिकों का 20 प्रतिशत भाग अनुसूचित जाति की स्त्रियों का निश्चित किया गया है। जिससे इनका विकास सुदृढ़ हो सके। इस योजना से अनुसूचित जाति की स्त्रियों प्रभावशाली सिद्ध हो रही है अर्थात् उनके जीवन में अनेक विकासात्मक परिवर्तन हो रहे हैं। इस प्रकार ग्रामीण समाज में 'मनरेगा' का अनुसूचित जाति की स्त्रियों पर विशेष विकासात्मक प्रभाव पड़ा है।

मनरेगा और अधिकारिता

ए- अधिकारिता

सशक्तिकरण से तात्पर्य व्यक्तियों और समुदायों की आध्यात्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षिक, लिंग या आर्थिक शक्ति को बढ़ाने से है। यह एक बहुआयामी प्रक्रिया है, जो व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को जीवन के सभी क्षेत्रों में अपनी पूर्ण पहचान और शक्तियों का एहसास कराने में सक्षम बनाती है। इसमें ज्ञान और संसाधनों तक अधिक पहुंच, निर्णय लेने में अधिक स्वायत्तता शामिल है ताकि उन्हें अपने जीवन की योजना बनाने की अधिक क्षमता हो, या उन परिस्थितियों पर अधिक नियंत्रण हो जो उनके जीवन को प्रभावित करती हैं और उन्हें प्रथा, विश्वास द्वारा उन पर लगाए गए बंधनों से मुक्त करती हैं।

इसलिए यह व्यक्तियों या समूहों की विकल्प बनाने और उन विकल्पों को वांछित कार्यों और परिणामों में बदलने की क्षमता को बढ़ाने की भी एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के केंद्र में वे क्रियाएं हैं जो व्यक्तिगत और सामूहिक संपत्ति दोनों का निर्माण करती हैं, और इन परिसंपत्तियों के उपयोग को नियंत्रित करने वाले संगठनात्मक और संस्थागत संदर्भ की दक्षता और निष्पक्षता में सुधार करती हैं।

बी- सामाजिक अधिकारिता

सामाजिक सशक्तिकरण को स्वायत्तता और आत्मविश्वास की भावना विकसित करने की प्रक्रिया के रूप में समझा जाता है, और व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से सामाजिक संबंधों और संस्थानों और प्रवचनों को बदलने के लिए कार्य करता है जो गरीब लोगों को गरीबी से बाहर करते हैं। गरीब लोगों का सशक्तिकरण, और दूसरों को जवाब देने की उनकी क्षमता, उनकी व्यक्तिगत संपत्ति (जैसे भूमि, आवास, पशुधन, बचत) और सभी प्रकार की क्षमताओं से बहुत प्रभावित होती है:।

सी- आर्थिक सशक्तिकरण

यह माना जाता है कि आर्थिक सशक्तिकरण गरीब लोगों को तत्काल दैनिक अस्तित्व से परे सोचने और अपने संसाधनों और जीवन विकल्पों दोनों पर अधिक नियंत्रण रखने की अनुमति देता है। उदाहरण के लिए, यह परिवारों को स्वास्थ्य और शिक्षा में निवेश करने और अपनी आय बढ़ाने के लिए जोखिम लेने के बारे में अपने निर्णय लेने में सक्षम बनाता है।

डी- महिला सशक्तिकरण

महात्मा गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन भारतीय महिलाओं को घरेलू जीवन के प्रतिबंधित दायरे से पुरुषों के समान भूमिका में लाने के पहले प्रयासों में से एक था। 1918 में 'यंग इंडिया' में लिखते हुए, गांधीजी ने कहा, महिलाएं समान मानसिक क्षमताओं वाले पुरुष की साथी हैं। उसे मनुष्य की गतिविधियों के सूक्ष्मतम विवरण में भाग लेने का अधिकार है। उसे स्वतंत्रता का उतना ही अधिकार है जितना कि पुरूष को। दसवीं योजना (2002-07) के दृष्टिकोण का उद्देश्य महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए राष्ट्रीय नीति को क्रियान्वित करने और अधिकार आधारित दृष्टिकोण के माध्यम से महिलाओं और बच्चों के अस्तित्व, संरक्षण और विकास को सुनिश्चित करने के माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाना है।[6]

महिला सशक्तिकरण का अर्थ महिलाओं को समान दर्जा देना भी है। महिलाओं को उनके अधिकारों और कर्तव्यों के बारे में जागरूकता के साथ-साथ संसाधनों तक पहुंच के माध्यम से सामाजिक-आर्थिक रूप से सशक्त बनाना उनके लिए अधिक सुरक्षा की दिशा में एक निर्णायक कदम है। सशक्तिकरण में महिलाओं के लिए उच्च साक्षरता स्तर और शिक्षा, महिलाओं और बच्चों के लिए बेहतर स्वास्थ्य देखभाल, उत्पादक संसाधनों का समान स्वामित्व, आर्थिक और वाणिज्यिक क्षेत्रों में भागीदारी में वृद्धि, उनके अधिकारों और जिम्मेदारियों के बारे में जागरूकता, जीवन स्तर में सुधार और आत्मनिर्भरता प्राप्त करना शामिल हैं। सबसे सरल शब्दों में यह मूल रूप से एक ऐसे वातावरण का निर्माण है जहां महिलाएं अपने व्यक्तिगत विकास के साथ-साथ समाज में समान रूप से उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र निर्णय ले सकती हैं। महिलाएं चाहती हैं कि उनके साथ इतना समान व्यवहार किया जाए कि यदि कोई महिला अपने क्षेत्र में शीर्ष पर पहुंचती है तो यह एक सामान्य स्थान होना चाहिए यह तभी हो सकता है जब महिला सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त हो।[7]

महिला सशक्तिकरण के पांच घटक हैं:

- आत्म-मूल्य की भावना
- विकल्प चुनने का अधिकार
- अवसरों और संसाधनों तक पहुंच का अधिकार
- अपने स्वयं के जीवन को नियंत्रित करने की शक्ति प्राप्त करने का अधिकार, घर के भीतर और बाहर दोनों जगह
- राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अधिक न्यायसंगत सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था बनाने के लिए सामाजिक परिवर्तन की दिशा को प्रभावित करने की क्षमता

इ- मनरेगा में महिला सशक्तिकरण के मुद्दे

(i) मनरेगा अधिनियम की अनुसूची प्प् पैरा 6 में अधिनियम के तहत रोजगार गारंटी में महिलाओं की भागीदारी का प्रावधान है । यह विशेष रूप से प्रदान करता है कि कम से कम 33 प्रतिशत महिलाओं को चाहिए उसे रोजगार उपलब्ध कराया जाए।

(ii) गैर-सरकारी सदस्यों के एक तिहाई से कम नहीं, केंद्रीय रोजगार गारंटी परिषद (सीईजीसी) में महिलाएं होंगी।

(iii) यदि किसी स्थल पर काम करने वाली महिलाओं के साथ छह साल से कम उम्र के बच्चों की संख्या पांच या अधिक है, तो ऐसे बच्चों की देखभाल के लिए ऐसी महिला कार्यकर्ता में से एक को नियुक्त करने का प्रावधान किया जाएगा।

(iv) पुरुषों और महिलाओं दोनों को समान वेतन दिया जाएगा।

(v) यदि कुछ आवेदकों को 5 किमी से अधिक कार्य के लिए रिपोर्ट करने के लिए निर्देशित किया जाना है। महिलाओं (विशेषकर अविवाहित महिलाओं) और वृद्ध व्यक्तियों को उनके निवास के निकट कार्यस्थलों पर काम करने के लिए प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

(vi) साथी (साइट पर्यवेक्षक) का चयन निष्पक्ष, पारदर्शी और भागीदारी प्रक्रिया के माध्यम से किया जाना चाहिए। कार्य के पर्यवेक्षण और कार्यस्थलों की उपस्थिति दर्ज करने के लिए साथियों के बीच महिलाओं का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

मनरेगा के कारण ही अनुसूचित जाति की महिलाओं का सशक्तिकरण हुआ है। नीति में आर्थिक सुरक्षा में वृद्धि, लैंगिक समानता को बढ़ावा देना और वंचित समूहों के लिए समान अवसर और गरीबों की सौदेबाजी की शक्ति में वृद्धि की परिकल्पना की गई है। तथ्यात्मक रूप से अधिकांश अनुसूचित जाति की महिलाएं अपना वेतन स्वयं एकत्र करती हैं, अपनी पसंद और क्षमताओं को विस्तृत करती हैं। बढ़ी हुई आय को बच्चों की उच्च शिक्षा, परिवारों के स्वास्थ्य और पोषण, विशेषकर महिलाओं पर निवेश किया गया। सौदेबाजी तक पहुंच और क्रय शक्ति में वृद्धि के परिणामस्वरूप आत्मविश्वास और सतत विकास हुआ। मनरेगा के कारण मूर्त और अमूर्त दोनों तरह के लाभ हुए।

संदर्भ

1. देव, महेंद्र, 2011. नरेगा और बाल कल्याण पर वर्किंग पेपर, आईएचडी - यूनिसेफ वर्किंग पेपर सीरीज चिल्ड्रन ऑफ इंडिया: राइट्स एंड अपॉर्चुनिटीज। मानव विकास संस्थान और संयुक्त राष्ट्र बाल कोष, भारत।
2. धीरज.सी, माधुरी, एन.वी. और अंतरिपा दैमारी 2013. महात्मा गांधी नरेगा में महिलाओं की भागीदारी को सुगम बनाने वाले कारकों पर शोध अध्ययन राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार राजेंद्रनगर, हैदराबाद
3. भारत सरकार और संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी), 2010. विकास नीति के रूप में अधिकार आधारित कानूनी गारंटी पर चर्चा पत्र: महात्मा गांधी नरेगा।
4. कर स्पंदिता, 2013. मनरेगा के माध्यम से महिलाओं का सशक्तिकरण: मुद्दे और चुनौतियां, ओडिशा समीक्षा, फरवरी-मार्च।
5. ओझा पति गण, 2012. लैंगिक समानता के लिए संयुक्त राष्ट्र महिला कोष, लैंगिक समानता आर्थिक और राजनीतिक अधिकारिता के लिए संयुक्त राष्ट्र महिला कोष के मूल्यांकन पर अंतिम रिपोर्ट उत्प्रेरक अनुदान कार्यक्रम: "दलित महिला आजीविका जवाबदेही पहल" भारत के साथ साझेदारी में काम पर लिंग द्वारा निष्पादित मित्र सेवा सोसायटी के माध्यम से दलित स्त्री शक्ति।
6. पंकज अशोक और रुक्मिणी तन्खा, 2010. "महिला श्रमिकों पर नरेगा के सशक्तिकरण प्रभाव: चार राज्यों में एक अध्ययन", मानव विकास संस्थान, दिल्ली।
7. शर्मा आशा, 2012. अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति रोजगार गारंटी: ग्रामीण भारत में मनरेगा द्वारा महिला सशक्तिकरण, मानव विकास और प्रबंधन विज्ञान के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल वॉल्यूम 1 नंबर 1.

उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता का उनके पारिवारिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में अध्ययन

बबीता खाती

शोधार्थी, शिक्षा संकाय, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

शोध संक्षेप- प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत विद्यार्थियों की समस्या समाधान योग्यता का उनके पारिवारिक पृष्ठभूमि जैसे- जाति, लिंग, आवास, स्थान, सामाजिक-आर्थिक स्तर के आधार पर अध्ययन करना है। शोध हेतु उत्तराखण्ड राज्य के अल्मोड़ा जिले के 3 उच्च माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत 100 विद्यार्थियों का चयन याद्वच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा किया गया। विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता का मापन करने के लिए प्रो0 एल0एन0 दूबे द्वारा निर्मित समस्या-समाधान योग्यता परीक्षण का प्रयोग एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि हेतु शोद्यार्थी द्वारा स्वःनिर्मित व्यक्तिगत सूचना प्रपत्र का निर्माण किया गया। आँकड़ों के विश्लेषण करने के पश्चात विद्यार्थियों में समस्या-समाधान योग्यता का उनके लैंगिक परिप्रेक्ष्य, निवास स्थान, परिवार का स्वरूप, सामाजिक-आर्थिक संचेतना के सन्दर्भ में अध्ययन करने पर सार्थक अंतर पाया गया।

की वर्ड- समस्या समाधान योग्यता व पारिवारिक पृष्ठभूमि।

प्रस्तावना- शिक्षा समाज की एक ऐसी प्रक्रिया होती है जिसकी आवश्यकता प्रत्येक मनुष्य को होती है। शिक्षा के माध्यम से ही मनुष्य का शारीरिक, मानसिक तथा संवेगात्मक विकास होता है। बालक जब जन्म लेता है तो वह अबोध होता है। वह न बोलना जानता है, न ही चलना-फिरना, उसका न कोई मित्र होता है न शत्रु। उसे समाज के रीति-रिवाजों व परम्पराओं का भी ज्ञान नही होता है। वैसे-वैसे उस पर शिक्षा के औपचारिक तथा अनौपचारिक साधनों का प्रभाव पड़ने लगता है। शिक्षा से एक ओर जहाँ व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक व संवेगात्मक विकास होता है, वहीं दूसरी ओर उसमें सामाजिक भावना भी विकसित होती जाती है। शिक्षा का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान होता है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना होता है। जिसके माध्यम से वह जीवन में आने वाली प्रत्येक समस्या का समाधान सरलता से कर सके। समस्या-समाधान मनुष्यों में पायी जाने वाली प्राकृतिक प्रक्रिया है किन्तु विशेष प्रयास तथा अभ्यास के द्वारा समस्या-समाधान योग्यता में वृद्दि किया जा सकता है। समस्या उस समय उत्पन्न होती है, जब व्यक्ति किसी निश्चित लक्ष्य तक पहुँचना चाहता है किन्तु किसी कठिनाई के कारण नहीं पहुँच पाता है। यदि व्यक्ति कठिनाई पर विजय प्राप्त कर अपने लक्ष्य तक पहुँच जाता है, तो व्यक्ति अपनी समस्याओं का समाधान कर लेता है। इस प्रकार समस्या किसी लक्ष्य की प्राप्ति में बाधा डालती प्रतीत होती है।

व्यक्ति के सामने किसी न किसी रूप में अनगिनत समस्याऐं रहती है। इन समस्याओं का समाधान करने के लिए विशेष मानसिक योग्यता की आवश्यकता होती है। जिसे समस्या-समाधान योग्यता कहते है जो व्यक्ति इन समस्याओं पर जितना जल्दी विजय प्राप्त कर लेता है वही सबसे बुद्विमान माना जाता है।

जे0 स्टेनली ग्रे के अनुसार- "समस्या-समाधान वह ढाँचा या पैटर्न है जिसके भीतर सृजनात्मक, चिन्तन और तर्क होता है अपूरित इच्छाओं से उत्पन्न तनाव व्यक्ति को अधिकतम प्रयत्न करने और अपनी सर्वोळाम भाषा तकनीकों, अवलोकन, पूर्व कथन और अनुमान का प्रयोग करने और उसकी पूर्ति में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए प्रणोदित करता है''।

प्रस्तुत शोध कार्य में "उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या- समाधान योग्यता का उनके पारिवारिक परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में अध्ययन'' के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि वास्तव में उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता पर उनके पारिवारिक पृष्ठभूमि का प्रभाव पड़ता है।

अध्ययन की आवश्यकता- उच्च माध्यमिक स्तर का विद्यार्थी किशोरावस्था की आयु में होता है और कही न कहीं उसके सामने अनेक समस्याऐ आती है जिसका समाधान न करने पर उसका व्यवहार प्रभावित होता है और सामाजिक, संवेगात्मक रूप से स्वंय को अकेला महसूस करता है, उस समय उसे उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है और बालक के उचित मार्गदर्शन में परिवार की मुख्य भूमिका होती है। परिवार अपनी क्षमता, वातावरण आदि के अनुरूप कार्य कर पाता है। इसलिए पारिवारिक पृष्ठभूमि का लाभ उन बालकों को अधिक मिलता है जिनका परिवार शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होता है। परिवार की पृष्ठभूमि में नकारात्मक तत्व होने पर उसका प्रभाव भी बालकों के व्यवहार पर आता है।

इस सन्दर्भ में रेमान्ट ने लिखा है कि- "दो बालक एक ही स्कूल में भले ही पढ़ते हों, एक ही शिक्षकों से प्रभावित होते हों, एक साथ अध्ययन करते हों, फिर भी सामान्य ज्ञान, रूचियों, भाषा व्यवहार, समस्या-समाधान योग्यता में अपने-अपने पारिवारिक वातावरण के कारण जहॉ से आते है, पूर्णतः भिन्न होते हैं''।

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी उस आयु स्तर के होते हैं, जिन्हे हम न तो छोटा कह सकते है और न ही पूर्ण परिपक्व। इस प्रकार की अवस्था में उनके द्वारा निर्धारित किये गये लक्ष्य एवं उद्देश्य के रास्ते से भटकने का संदेह बना रहता है। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

समस्या कथन- ''उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या- समाधान योग्यता का उनके पारिवारिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में अध्ययन''

समस्या का परिभाषीकरण

उच्च माध्यमिक स्तर- प्रस्तुत शोध पत्र में उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों से तात्पर्य कक्षा-11वी व 12वी में अध्ययनरत् विद्यार्थियों से है।

समस्या-समाधान योग्यता- समस्या-समाधान वह ढाँचा या पैटर्न है जिसके भीतर सृजनात्मक चिन्तन व तर्क होता है। जिसके माध्यम से व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं के समक्ष उत्पन्न होने वाली समस्याओं का समाधान करता है।

पारिवारिक पृष्ठभूमि- बालक की पारिवारिक पृष्ठभूमि से तात्पर्य व्यक्ति के जाति, स्थान, परिवार का स्वरूप, सामाजिक-आर्थिक स्तर व लिंग से है, जिस परिवार में वह निवास करता है।

अध्ययन के उद्देश्य-

1. उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के समस्या-समाधान योग्यता का उनके लैंगिक परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में अध्ययन।
2. उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता का उनके निवास स्थान या क्षेत्र के सन्दर्भ में अध्ययन।
3. उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता का उनके परिवार के स्वरूप के सन्दर्भ में अध्ययन।
4. उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता का उनके सामाजिक-आर्थिक संचेतना के सन्दर्भ में अध्ययन।
5. उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता का उनके जाति के सन्दर्भ में अध्ययन।

शोध परिकल्पना

1. उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता में उनके लैंगिक परिप्रेक्ष्य के आधार पर कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
2. उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता में उनके निवास स्थान या क्षेत्र के आधार पर कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
3. उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता में उनके परिवार के स्वरूप के आधार पर कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
4. उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता में उनके सामाजिक आर्थिक संचेतना के आधार पर कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
5. उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता में उनके जाति के आधार पर कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

अध्ययन का सीमांकन

1. प्रस्तुत अध्ययन में अल्मोड़ा क्षेत्र के शहरी व ग्रामीण क्षेत्र के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों को शामिल किया गया है।
2. अध्ययन में राजकीय इण्टर कॉलेज एवं राजकीय बालिका इण्टर कॉलेज में अध्ययनरत् कक्षा 11वी एवं 12वी बालक एवं बालिकाओं को सम्मिलित किया गया है।
3. अध्ययन हेतु केवल 100 विद्यार्थियों को लिया गया है।
4. अध्ययन हेतु केवल 3 उच्च माध्यमिक विद्यालयों का चयन किया गया है।

शोध विधि- प्रस्तुत शोध कार्य में ऑकड़ों के संकलन हेतु प्रतिदर्श सर्वेक्षण पद्वति का प्रयोग किया गया है।

समष्टि- प्रस्तुत अध्ययन हेतु शोधार्थी ने जनसंख्या के रूप में उळाराखण्ड राज्य के अल्मोड़ा क्षेत्र के 3 उच्च माध्यमिक विद्यालय राजकीय बालिका इण्टर कॉलेज अल्मोड़ा, राजकीय इण्टर कॉलेज अल्मोड़ा, राजकीय इण्टर कॉलेज लोधियाँ में अध्ययनरत् 11वी व 12वी कक्षा के विद्यार्थियों का लिया गया है।

न्यादर्श व न्यादर्श विधि- प्रस्तुत शोध अध्ययन में उत्तराखण्ड राज्य के अल्मोड़ा क्षेत्र के 3 उच्च माध्यमिक विद्यालय के 50 बालकों एवं 50 बालिकाओं को समस्या- समाधान योग्यता का उनके पारिवारिक परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में अध्ययन करने के लिए स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा न्यादर्श के रूप में चयनित किया गया है।

अनुसंधान हेतु प्रयुक्त उपकरण- प्रस्तुत अध्ययन हेतु शोधार्थी द्वारा उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता का मापन करने हेतु प्रो0 एल0एन0 दूबे द्वारा निर्मित समस्या-समाधान योग्यता परीक्षण एवं शोधार्थी द्वारा स्वनिर्मित व्यक्तिगत सूचना प्रपत्र, पारिवारिक पृष्ठभूमि हेतु प्रयोग किया गया है।

प्रयुक्त सांख्यिकीय प्रविधियाँ- प्राप्त ऑकड़ों की सार्थकता स्पष्ट करने हेतु मध्यमान, प्रमाणिक विचलन एवं टी-अनुपात का प्रयोग किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण तथा विवेचना

तालिका-01: उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता में उनके लैंगिक परिप्रेक्ष्य के आधार पर कोई सार्थक अंतर नहीं होता है।

लिंग	*संख्या(N)*	*मध्यमान(M)*	*मानक विचलन(SD)*	*टी-मान(t)*	*परिणाम*
छात्र	50	11.16	2.236	2.692	सार्थक
छात्राऐं	50	9.68	3.114		

उपरोक्त तालिका मे उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता का उनके लैंगिक परिप्रेक्ष्य पर आधारित अंकों का मध्यमान क्रमशः 11.16 व 9.68 मानक विचलन 2.326 व 3.114 तथा टी-मान की गणना करने पर 2.692 आया। टी का यह मान 0.05 व 0.01 सार्थकता स्तर पर तालिका मान से अधिक है अर्थात छात्र एवं छात्राओं की समस्या समाधान योग्यता के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया। अतः शोध परिकल्पना अस्वीकृत होती है। इससे स्पष्ट होता है कि छात्रों की समस्या-समाधान योग्यता छात्राओं की अपेक्षा अधिक होती है।

तालिका-2: उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता में उनके निवास स्थान के आधार पर कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

निवास स्थान	*संख्या(N)*	*मध्यमान(M)*	*मानक विचलन(SD)*	*टी-मान(t)*	*परिणाम*
शहरीय	50	12.24	3.499	5.5700	सार्थक
ग्रामीण	50	8.64	2.940		

उपरोक्त तालिका में उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या- समाधान योग्यता का उनके आवास स्थान या क्षेत्र पर आधारित अंको का मध्यमान क्रमशः 11.16 व 9.68, मानक विचलन क्रमशः 2.326 व 3.114 तथा टी-मान की गणना करने पर 5.5700 आया। टी-मान 0.05 व 0.01 सार्थकता स्तर तालिका मान से अधिक है अर्थात शहरीय तथा ग्रामीण छात्रों की समस्या-समाधान योग्यता के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया। ग्रामीण परिवेश में रहने वाले विद्यार्थियों की अपेक्षा शहरीय परिवेश में रहने वाले विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता अधिक होती है। अतः शोध परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

तालिका-3: उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता में उनके परिवार के स्वरूप के आधार पर कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

परिवार का स्वरूप	*संख्या(N)*	*मध्यमान(M)*	*मानक विचलन(SD)*	*टी-मान(t)*	*परिणाम*
एकल	62	10.46	2.938	0.0679	असार्थक
बहुल	38	10.42	2.720		

उपरोक्त तालिका में उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या- समाधान योग्यता का उनके परिवार के स्वरूप पर आधारित अंको का मध्यमान क्रमशः 10.46 व 10.42, मानक विचलन 2.938 व 2.720 तथा टी-मान 0.05 व 0.01 सार्थकता स्तर पर तालिका मान से कम है। अतः एकल एवं संयुक्त परिवारों की समस्या-समाधान योग्यता के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया गया, साथ ही शोध परिकल्पना स्वीकृत होती है।

तालिका-4: उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता में उनके सामाजिक-आर्थिक संचेतना के आधार पर कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

समाजिक- आर्थिक स्तर	*संख्या(N)*	*मध्यमान(M)*	*मानक विचलन(SD)*	*टी-मान(t)*	*परिणाम*
मध्यम	72	10.305	3.025	0.812	असार्थक
निम्न	28	10.821	2.330		

उपरोक्त तालिका में उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या- समाधान योग्यता का उनके सामाजिक-आर्थिक संचेतना के आधार पर आधारित अंको का मध्यमान क्रमशः 10.305 व 10.821, मानक विचलन क्रमशः 3.025 व 2.330 तथा टी-मान की गणना करने पर 0.812 आया। टी-मान

0.05 व 0.01 सार्थकता स्तर तालिका मान से कम है अत: इसके बीच सार्थक अन्तर नही पाया गया और शोध परिकल्पना स्वीकार की जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि विद्यार्थी के सामाजिक-आर्थिक स्तर का उसके समस्या-समाधान योग्यता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

तालिका-5: उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता में उनके जाति के आधार पर कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

जाति	*संख्या(N)*	*मध्यमान(M)*	*मानक विचलन(SD)*	*टी-मान(t)*	*परिणाम*
सामान्य	57	10.92	2.77	1.962	असार्थक
आरक्षित	43	9.81	2.84		

उपरोक्त तालिका में उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या- समाधान योग्यता का उनके जाति पर आधारित अंको का मध्यमान क्रमश: 10.92 व 9.81, मानक विचलन क्रमश: 2.77 व 2.84 तथा टी-मान की गणना करने पर 1.962 आया। टी-मान 0.05 व 0.01 सार्थकता स्तर तालिका मान से कम है अर्थात इनके मध्य सार्थक अन्तर नही पाया गया। इससे स्पष्ट होता है कि सामान्य जाति और आरक्षित जाति की समस्या-समाधान योग्यता एक समान होती है। विद्यार्थी की जाति का उसके समस्या-समाधान योग्यता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इस प्रकार शोध परिकल्पना स्वीकार की जाती है।

अध्ययन के निष्कर्ष

1. उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता में उसके लैंगिक परिप्रेक्ष्य के आधार पर सार्थक अन्तर पाया गया और छात्रों की समस्या-समाधान योग्यता, छात्राओं की समस्या-समाधान योग्यता से अधिक होती है।
2. उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता में उनके निवास स्थान के आधार पर सार्थक अन्तर पाया गया जिससे स्पष्ट होता है कि शहरीय परिवेश में रहने वाले विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता ग्रामीण परिवेश में रहने वाले विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक होती है।
3. उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता में उनके परिवार के स्वरूप के आधार पर कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया अर्थात संयुक्त परिवार और एकल परिवार दोनो की समस्या-समाधान योग्यता एक समान होती है।
4. उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता उनके सामाजिक आर्थिक संचेतना के आधार पर सार्थक अन्तर नही पाया गया। इससे स्पष्ट होता है कि विद्यार्थी चाहे मध्यम वर्ग का हो या फिर निम्न वर्ग का, उसके स्तर का विद्यार्थी की समस्या-समाधान योग्यता पर कोई प्रभाव नही पड़ता है।
5. उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की समस्या-समाधान योग्यता का उनके जाति के आधार पर कोई सार्थक अन्तर नही पाया गया। विद्यार्थी चाहे सामान्य जाति का हो या आरक्षित जाति का, उसकी जाति का समस्या- समाधान योग्यता पर कोई प्रभाव नही पड़ता है। दोनों की समस्या-समाधान योग्यता एक समान होती है।

शैक्षिक निहितार्थ- सामान्यत: यह माना जाता है कि एक विद्यार्थी के व्यक्तित्व पर उसके शिक्षक का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। इसलिए शिक्षक को प्रशिक्षण के दौरान समस्या-समाधान व अन्य चरों के मापन के साथ-साथ उसकी उपयोगिता का भी अध्ययन कराया जाए ताकि ये शिक्षक अपने शिक्षण को ज्ञानात्मक स्तर तक रखे बल्कि इस योग्य बनाये कि वह ज्ञान बालकों में समस्या-समाधान योग्यता को विकसित करने में समर्थ हो सके। शिक्षा आयोग (1964-66) के अनुसार शिक्षक को राष्ट्र निर्माता कहा गया है। आयोग के इस कथन से यह चरितार्थ होता है कि शिक्षक, शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में मुख्य भूमिका निभाता है। अत: शिक्षक शोध के दौरान अपनी शिक्षण सामग्री व विधि का चयन इस प्रकार करे जो बालकों में समस्या योग्यता विकसित कर सके।

सन्दर्भ

- आइजेक (1972): डी0एन0 श्रीवास्तव, मनोवैज्ञानिक प्रक्रियायें, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 2012, पृष्ठ सं0 297।
- जॉन्सन (1972): आर0एन0 सिंह, एस0एस0 भारद्वाज, उच्च प्रायोगिक मनोविज्ञान, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा पृष्ठ सं0 519।
- कौल, लोकेश (1998): रिसर्च मैथडोलॉजी ऑफ एजुकेशन, अल्फा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
- राय, पारसनाथ (2002): अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा-3।
- बैरन तथा सैन्ट्राक (2005): आर0एस0 सिंह, एस0एस0 भारद्वाज, उच्च प्रायोगिक मनोविज्ञान, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा पृष्ठ सं0 521।
- सिंह, डी0आर0 (2005): एनसाइक्लोपीडिया डिक्शनरी ऑफ एजुकेशन, कामनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
- सिंह, एस0 (2005): डिक्शनरी ऑफ साइकोलॉजी, मोहित पब्लिकेशन, दिल्ली।
- गुप्ता, एस0पी0 (2010): उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- भार्गव, महेश (2010): आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन, एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- काई एवं ग्लेंसर (2011): आर0एन0 सिंह, एस0एस0 भारद्वाज, उच्च प्रायोगिक मनोविज्ञान, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ सं0 519।

कविता की वापसी

डॉ० विश्वनाथ द्विवेदी

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, रमाबाई राजकीय महिला पी.जी. कॉलेज, अकबरपुर, अम्बेडकर नगर, उ.प्र.

हिन्दी कविता के समक्ष बहुत बड़ा संकट यह है कि उसकी पाठकीयता एवं श्रवणीयता लगभग शून्य हो गयी है। पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः कविता ''फीडर'' के रूप में छापी जाती है। इन छपी हुई कविताओं को भी देखते ही लोग पन्ना पलट देते हैं और जहाँ गोष्ठी या कविता वाचन शुरू होता दिखाई देता है। उस स्थान से किसी-न-किसी बहाने भाग खड़े होते हैं। केवल कवि ही नहीं श्रोता बनते हैं और काव्य वाचन का अवसर आने पर परिस्थिति का भरपूर दोहन करते हैं। पाठ्यक्रम में भी कविता की पढ़ाई बहुत गौण हो गयी है। रेडियो, दूरदर्शन से प्रसारित कवितायें भी उपेक्षा की शिकार हैं। यों तो पाठकीयता की समस्या साहित्य की हर विधा के समक्ष है, देश-विदेश में वह सर्वत्र पायी जा रही है, फिर भी अपेक्षाकृत कविता ज्यादा संकट ग्रस्त है। इसका दोष और दायित्व मात्र पाठकों और श्रोताओं पर ही नहीं है, बल्कि देशकाल और उससे प्रभावित आज के रचनाकार भी इसके उत्तरदायी हैं। इस स्थिति को झेलते हुए लोग बड़बड़ा तो रहे हैं, किन्तु इसका विधेयात्मक विकल्प नहीं खोज पा रहे हैं। आवश्यकता है कि पहले इसका निदान खोजा जाये और फिर समाधान।

युग-युग से कविता के 3 प्रयोजन रहे हैं - (1) वह सम्पूर्ण ज्ञान का अनुशासन रही है। वह शास्त्रबद्ध पद्धति से जीवन जगत का बोध कराती रही है और विश्व ज्ञान कोष रूप में प्रतिष्ठित रही है। महाभारत के लिए कहा गया था- ''यन्न भारते तन्नभारते''। मानस के लिए भी इसी प्रकार के उद्‌गार व्यक्त किये गये हैं, किन्तु अब वे कविमनीषी रहे नहीं और दूसरी ओर ज्ञान के नये-नये स्रोत आविष्कृत हो गये हैं। सूचना विस्फोट के इस युग में एक बटन दबाते ही जितना ज्ञान परदे पर उतर आता है, उतना अब शत-सहस्र महाकाव्यों के पारायण से भी संचित नहीं किया जा सकता। तात्पर्य यह है कि शास्त्र ज्ञान के क्षेत्र में अब कविता गौण हो गयी है।

(2) कविता द्वारा जनरंजन, स्वान्तः सुख काव्यानंद या लोकोत्तर ब्रह्मानन्द प्राप्त होता था। आज इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, विशेषतः दूरदर्शन शब्द के साथ-साथ सचित्र प्रस्तुतियों द्वारा जनसामान्य को इतना आनन्द दे देता है कि काव्यानन्द अब अपरिहार्य नहीं रह गया है।

(3) काव्य द्वारा सूरसिक जन युग प्रबोधन, जीवन मूल्यों का संदेश अथवा निर्माण की प्रेरणा प्राप्त करते थे। अब इन सबकी आवश्यकता इस उपभोक्तावादी व्यवस्था में नहीं रह गयी है।

तात्पर्य यह है कि काव्य के ये तीनों प्रयोजन लगभग निष्प्रभावी हो गये हैं इसीलिए कविता रोजमर्रा की चीज नहीं रह गयी है। इसके विपरीत विगत 5-6 दशकों में कविता ने स्वयं को सत्साहित्य की अपेक्षा लोकप्रिय व्यायवसायिक साहित्य के रूप में ढाल लिया है। उसका एक रूप फिल्मी कविता में ढल गया है, दूसरा मंचीय कविता में। फिल्मी गीत, संगीत का सहारा लेकर चलाता है। उसने चूंकि स्वयं को दैनिक जीवन से बेतहाशा जोड़ और इसीलिए वह जन-जन का कंठहार बन गया। मंचीय कविता ने समकालीन राजनीतिक दुर्वस्था को लक्ष्य बनाया और हास्य व्यंग्य तथा नाटकीयता के सहारे वह सर्वसामान्य (असाहित्यिक) श्रोताओं के बीच असामान्य रूप से लोकप्रिय हो गयी।

जिन परिस्थितियों में कविता का यह रूपान्तरण हो रहा था, हमारे सुकवि लगभग अर्द्धसचेत भाव से अपने अन्तर्मुखी लेखन में खोये हुए थे। छायावादी कवियों में मात्र निराला ही थे, जो जनता के लिए जन साहित्य रच रहे थे। वे मंचों पर भी गा रहे थे और श्रोताओं को रिझा रहे थे। शेष कवि कल्पना लोक में खोये हुए थे। वे या तो भविष्य की बड़ी ऊँची उड़ान पर थे या भविष्यत से अनजान मात्र अतीत में खोये हुए थे। द्विवेदी युग में मैथिलीशरण गुप्त ने जिस वाचिक कविता की अगुवाई की थी, उसे इस दौर में इति वृत्तात्मक कहकर नकार दिया गया था। प्रगतिवादी युग में जनकविता का नारा तो दिया गया, अगिया बैताल (डॉ0 राम विलास शर्मा), केदारनाथ अग्रवाल, दिनकर, सुमन आदि ने कुछ जनप्रिय गीत लिखे भी, किन्तु अन्ततः प्रगतिशील लेखक संघ के अतिवाद के कारण दलीय मतवाद कविता पर हावी हो गया और यह कविता जन के बजाय अभिजन में केन्द्रित हो गयी। प्रगतिवादियों ने राष्ट्रीय प्रगति से जुड़े राम विलास नागार्जुन तक को निकाल दिया केवल पार्टीजन को अपनाया। आखिर मार्क्स का ढांचा टूट गया। सनेही मण्डल तक मंचों की व्यवस्था धूमधाम से चलती रही, किन्तु धीरे-धीरे साहित्य समीक्षकों द्वारा उसे भी गैर साहित्यिक करार दे दिया गया। साथ ही मंच पेशेवर विदूषकों को सौंप दिये गये। पहले जहाँ रंगजी, नेपाली, श्यामनारायण पाण्डेय, नीरज, शम्भुनाथ सिंह, चकोरी, कोकिल सुमित्रा कुमारी आदि श्रेष्ठ कलाकार मंच की शोभा बढ़ाते थे। वहाँ ऐसे हंसोडिघ्ये मंच पर छा गये, जिनकी कविता को सचमुच कविता कहना विडम्बना पूर्ण लगता है।

इस अवधि में फिल्मों की ओर भी कुछ अच्छे कवि मुड़े थे। पंतजी, नरेन्द्र शर्मा, भगवतीचरण वर्मा, नीरज, साहिर लुधियानवी, भरत व्यास, प्रदीप आदि कवि भी अच्छे थे और सिने गीतकार भी। किन्तु धीरे धीरे ये भी सिने जगत को छोड़कर पुस्तकों में सिमट गये।

विचारणीय बिंदु यह है कि कविता मुख्यतः श्रुतिकाव्य है। जब से वह अक्षरों में छपने लग गयी उसका कवितापन और सम्प्रेश्रण बहुत कम हो गया। इस तथ्य को समझ लेने पर ही पठनीय और श्रवणीय कविता का नया रूप विन्यास किया जा सकता है। आज आवश्यकता यह है कि कविता के सृजन, वाचन और प्रचलन का यह दस सूत्री कार्यक्रय युद्ध स्तर पर उतारा जाये -

(1) काव्य सृजन का प्रशिक्षण: काव्य रचना भले ही ईश्वरीय देन हो, किंतु वह एक अभ्यास साध्य कला भी है। इसके लिए आवश्यकता है- स्वाध्याय अर्थात पूर्वरचित कविताओं का अधिकाधिक पठन-पाठन। दूसरी आवश्यकता है पिंगल छंद (शास्त्र) का अभ्यास अर्थात् वर्ण, मात्रा, यति, गति, स्वर, लय आदि के विधान का सही संज्ञान। तीसरी आवश्यकता है- विषय की सही जानकारी, पर्याप्त होमवर्क और देशकाल की आवश्यकता के अनुरूप प्रतिपाद्य विषयों का संयोजन। चौथी आवश्यकता है- काव्य भाषा का संस्कार। इन सबके लिए प्रशिक्षण तथा सत्संग की आवश्यकता है। यदि अनुभवी रचनाकारों के निर्देशन में काव्य रचना का विधिवत् औपचारिक/अनौपचारिक पाठ्यक्रम या अभ्यासक्रम बनाकर इसका समयबद्ध व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाये तो जनोपयोगी और सुरुचिग्राह्य कविता का बेहतर सृजन हो सकता है।

(2) वाचनकाल: सृजन से कहीं ज्यादा जरूरी है कविता का वाचन। मंचीय कविता तो विशेष प्रकार की वाचिक कला ही है, जिसके सहारे देह भाषा (हावभाव) का भी सामंजस्य रहता है। कविता पढ़ते हुए कहाँ बलाघात या स्वराघात करना है, किस शब्द पर जोर देना है, विषयानुसार किस कविता को किस स्वर संगीत में ढालना है? यह वाचन कला का क्षेत्र है। इसके वाचिक अभिनय के व्यवस्थित प्रशिक्षण के बिना मंचीय कविता को अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकती। वाचनकला की पहली शर्त है कि डायरी देखकर कविता न पढ़ी जाय।

(3) कविताओं का नियमित प्रकाशन: सम्प्रति काव्य कृतियों का प्रकाशन न सरकारी संस्थाएं कर रही हैं, न व्यावसायिक प्रकाशक। प्राय: रचयिता को ही स्ववित्तपोषित प्रकाशन और लोकार्पण करना होता है। सरकारी थोक खरीद उत्कोच, लालफीताशाही और दलीय भेदभाव से ग्रस्त है। जनसामान्य पाठक जब पुस्तकें ही नहीं पढ़ता तो कविता खरीदकर क्यों पढ़े। यत्र-तत्र कविजन समूहबद्ध होकर कविता की किताबों एवं लघु पत्रिकायें निकालते हैं, पर वे व्यावसायिकता तथा आइडियोलॉजी से प्राय: रुग्ण दिखायी देती हैं और इसीलिए अल्पायु बनकर रह जाती है। आवश्यकता है कि रचनाकार स्वयं अपने सहकारी प्रकाशन शुरू करे, यथाशक्ति पूँजी निवेश करें। जूरी मंडल द्वारा जंचवाकर श्रेष्ठ पुस्तकों का प्रकाशन करें और बाजार का ध्यान रखते हुए सस्ते, सुन्दर काव्यग्रंथ एवं संकलन प्रसारित करे। यह भी आवश्यकता है कि आज की विपणन नीति के अनुसार इन प्रकाशनों का अधि काधिक विज्ञापन करें, अधिकाधिक छूट दें और विभिन्न प्रलोभन देकर ग्राहकों को अपनी ओर आकृष्ट करें। सस्ती और सुन्दर काव्य कृतियाँ अंतत: जनजीवन में अपना स्थान बना लेंगी, किन्तु इसके लिए सुनियोजित प्रयास की आवश्यकता है।

(4) काव्य मंचों का सुव्यवस्थित संचालन: इन दिनों रचनाकारों का तो अभाव नहीं है, बल्कि छपास और भड़ास उत्तरोत्तर बढ़ती हुई दिखाई दे रही है। हाँ, श्रेष्ठ मंचीय कवियों की कमी प्राय: सर्वत्र खटकती है। मंचों पर ठेकेदारी की प्रथा चल पड़ी है। मठाधीशों के अपने-अपने अखाड़े हैं। इन्हें तोड़े बिना अच्छी कवि प्रतिभायें सामने नहीं आयेगीं। आवश्यकता यह है कि इनकी अधिकतम दक्षिणा-राशि निर्धारित की जाये और इन्हें बाध्य किया जाये कि पुरानी 'हिट' कविताओं के टेप बजाकर अपनी नवरचित कवितायें पढ़ें। टिकट के आधार पर आयोजित होने वाले कवि सम्मेलनों को अधि क प्रश्रय न दिया जाये। सरकारी मंचों जैसे लालकिला, रेडियो, दूरदर्शन आदि का लोभ संवरण किया जाय, तथा सरकारी विभागों के प्रचार-प्रसार में काव्य प्रतिभाओं का अधिक दुरुपयोग न किया जाये। यह भी आवश्यक है कि कविता के नाम पर लिखे जा रहे- गद्य को मंचों पर न पढ़ने दिया जाये। संगीत कविता का प्राण है, इसलिए गीत, गजल, धनाक्षरी और लोकधुनों पर आधारित छन्दों को अधिकाधिक उतारा जाये। इससे श्रोता समाज में कविता के प्रति पुन: लगाव पैदा होगा और कविता की नयी वापसी सुनिश्चित होगी।

(5) काव्य शिविरों का आयोजन: अकविता के इस युग में कुएँ को प्यासे के पास जाना होगा। अर्थात् जो सुनने को उत्सुक नहीं हैं, उन्हें एक बार आग्रहपूर्वक सुनाना होगा। अच्छी कविता को सुनकर कभी-न-कभी उनके भीतर भी काव्यास्वाद जाग्रत होगा। इसके लिए आवश्यकता है कि हम अलग-अलग मुहल्लों में और कस्बों में स्थित विद्यालयों तथा संस्थाओं में मासिक काव्य गोष्ठियों का आयोजन करें। उसमें पहले से 'रिहर्सल' करवाकर, नये-नये विषयों पर कविता लिखवाकर हम नयी प्रतिभाओं को उतारें। दस कवियों की प्रस्तुति उबाऊ या प्राणखाऊ नहीं होती। इनका चयन योग्यतानुसार क्रमानुसार किया जा सकता है। आरम्भ में इन्हें दक्षिणा का लोभ छोड़कर ऐसे मंचों पर पहुंचना होगा और जनाधार बनाना होगा। फिल्मी संगीत और मंचीय भँडैघ्ती सुन-सुनकर लोग पीडिघ्त हो चले हैं। वे अच्छी कविता की तलाश में हैं। यदि हम अच्छे पाठकों/श्रोताओं की तलाश कर लें तो कविता की वापसी काफी कुछ सुनिश्चित हो सकती है।

(6) कविताओं के श्रव्य, दृश्य कैसेट: वर्तमान व्यवस्था में हमारा समाज 'आडियोवीजुअल' का अभ्यस्त हो गया है। सर्वत्र फिल्मी धुनें बजती रहती हैं। विष को विष द्वारा ही मारा जा सकता है, यानी इन फिल्मी गीतों को अच्छे साहित्यिक गीतों के कैसेटों द्वारा ही पिछाड़ा जा सकता है। बशर्ते उन्हें अच्छी गायकों द्वारा सुमधुर वाद्यों के साथ फैला दिये जाये। इस दिशा में पहल करते हुए बेहतर होगा कि हम देव, पद्माकर, मतिराम, रसखान आदि के सुन्दर छन्दों के कैसेट तैयार करा लें। उन्हे सुनकर निश्चय ही बीमार समाज का बद्जायका खत्म होगा और नया काव्य रस उनके भीतर पैदा होगा। इसी क्रम में नवरचित कविताओं को सुनने का सिलसिला शुरू हो जायेगा।

(7) प्रोत्साहन कार्यक्रम: काव्य रचना, मंच संयोजन, पत्रिका प्रकाशन, कैसेट निर्माण आदि के लिए विशेष प्रोत्साहन एवं संरक्षण की आवश्यकता है। इसके लिए शासन पर दबाव डालना होगा। जनसाधारण से अपील करना होगी। विज्ञापन का सहारा लेना होगा। पुरस्कार, अनुदान, प्रतियोगिता आदि का विधान करना होगा, जिससे कि कविताई उपहास का विषय न बनकर गर्व और कलात्मक संतोष का विषय बने।

(8) जनसर्वेक्षण: हमारे समाज में श्रोताओं/पाठकों के अनेक आयुवर्ग और आयवर्ग हैं। सबकी अलग-अलग अपेक्षायें होती हैं। रचना के पूर्व यह निर्णय करना आवश्यक है कि वह किसको सम्बोधित है। प्राय: देखा जाता है कि एक कवि कभी बालगीत लिखता है तो कभी ओजस्वी रचनायें करने लगता है और वही प्रेमगीत तथा भक्तिपरक रचनायें करने लगता है। विशेषीकरण के इस युग में कवियों को अपने सर्वोत्तम प्रदेय के अनुसार अपनी एक छाप स्थिर करनी होगी। हमें पाठकों/श्रोताओं की अभिरुचि अर्थात् उनके बदलते तापमान का भी ध्यान रखना होगा। न दैनिक अखबारी घटनाओं तक ही सीमित रहकर कविता जीवित रहेगी और न मात्र पुराख्यानों को प्रबंधकाव्यों द्वारा दुहाराते हुए तथा सप्रयास लोकोत्तर स्तर पर पहुँचकर ही हमारी कविता आज प्रयोजनीय सिद्ध हो पायेगी। आवश्यकता है इन दोनों के समन्वय की। इसके लिए समय-समय पर कविता की व्यावहारिक समीक्षा करनी-करानी होगी। इसका पूरा विवरण कम्प्यूटर साधित भी हो सकता है।

(9) संस्थाबद्ध संचालन: कविता की अस्तित्वरक्षा किसी एक के वश की बात नहीं है। इसके लिए संस्थाबद्ध प्रयास की आवश्यकता है, जो विभिन्न मंचों पर पढ़ी जाने योग्य कविताओं और उनके विषयों का चयन करे। साथ है ही उनके उपयुक्त कवियों की संस्तुति करे, मंच के संचालन की व्यवस्था करे और अनुदान पुरस्कार, समीक्षा तथा पाठ्यक्रम में प्रवेश दिलाने की दिशा में निरन्तर चौकसी बरते। यह कवियों के रजिस्ट्रेशन की भी व्यवस्था कर सकती है और समय-समय पर कविता की कार्यशालायें आयोजित करके उसके बनते-बदलते स्वरूप का नियमन कर सकती है।

(10) शब्द और कर्म का अन्त:सम्बन्ध: आज की कविता को जन-जन के लिए उपजीव्य बनाने के उद्देश्य से उसे सर्वांग सम्पन्न बनाना होगा। सभी रसों के साथ उसमें नाटकीयता भरनी होगी। उसे संगीत में ढालना होगा तथा उसमें लोकधुनों का समावेश करना होगा। उसे सच्ची जनसंवेदना के साथ अर्थात वर्ण्य विषय को मन, वचन, कर्म से आत्मसात् करके, उसे जी करके व्यक्त करना होगा। शब्द और कर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जो स्वयं भ्रष्टाचार के अंग हैं, वे भ्रष्टाचार के विरुद्ध आग उगलते हए शब्दों द्वारा चाहे जितना फिचकुद निकालें, उनकी कविता मात्र कलाबाजी बनकर रह जायेगी। भावों का सही सम्प्रेषण तब होता है, जब उसके संदेश को हम कथनी के बजाय करनी में भी ढाल लेते हैं। इसलिए कवि बनना एक बहुत बड़ी चुनौती है, वह केवल ''मैं-मैं'' की मिमियाहट या मसीहाई उद्‌बोधन नहीं है। वह भोगा हुआ सत्य है।

इन शर्तों पर रची गयी कविता नि:सन्देह सहृदय संवेद्य होगी। आवश्यकता है, कविता को सही रूप में आत्मसात् करने की और फिर प्रबंधन विज्ञान के अनुसार उसको जन-जन तक विस्तारित करने की। ये सूत्र आरम्भ में अतिकल्पित एवं आदर्शवादी लगेंगे, किन्तु सत्यनिष्ठा के साथ इन्हें चरितार्थ कर ले जाना असंभव नहीं है। इसके लिए चाहिए विधेयात्मक विकल्प बुद्धि।

ग्रन्थ सूची-

(1) चिन्तामणि - आचार्य शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन।

(2) हिन्दी काव्य - डॉ0 विवेक प्रकाशन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।

(3) भारतीय काव्यशास्त्र - दिशा अग्रवाल, जेनरिक प्रकाशन।

(4) पाश्चात्य काव्यास्त्र - डॉ0 भगीरथ मिश्र, राजकमल प्रकाशन।

(5) भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - डॉ0 त्रिलोकीनाथ श्रीवास्तव, साहित्य सरोवर।

विष्णु पुराण में जाति-व्यवस्था

डॉ० श्रीमती अर्चना

एसोसिएट प्रोफेसर- संस्कृत, डॉ० अम्बेडकर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ऊँचाहार, रायबरेली

प्राचीनकाल के भारत में जितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों, आरण्यक ग्रंथों, उपनिषदों एवं महाकाव्यों आदि की है उतनी ही महत्त्वपूर्ण भूमिका पुराणों की भी है। पुराणों में प्राचीन भारत के धर्म, इतिहास, आख्यान, विज्ञान, समाज आदि का वर्णन किया गया है। यदि पुराणों से अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन को हटा दिया जाय तो यह तत्कालीन समाज के विषय में महत्त्वपूर्ण जानकारी देते हैं।

प्राचीन भारतीय सामाजिक जीवन के बारे में साहित्यिक साक्ष्यों के अन्तर्गत पुराणों का वर्णन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। पुराणों की संख्या 18 है- (1) ब्रह्म पुराण (2) पद्म पुराण (3) विष्णु पुराण (4) शिव पुराण (5) भागवत पुराण (6) नारदीय पुराण (7) मार्कण्डेय पुराण (8) अग्नि पुराण (9) भविष्य पुराण (10) ब्रह्मवैवर्त पुराण (11) लिंग पुराण (12) वराह पुराण (13) स्कन्द पुराण (14) वामन पुराण (15) कर्म पुराण (16) मत्स्य पुराण (17) गरुण पुराण (18) ब्रह्माण्ड पुराण। विष्णु पुराण को प्राचीन पुराणों की श्रेणी में रखा जाता है जिसका रचना काल 300 ई0 से 600 ई0 के बीच माना गया है विष्णु पुराण में सामाजिक जीवन में होने वाले परिवर्तन को सहज रूप से वर्णित किया गया है।

जाति का उदय वर्णों कें विकास का अगला चरण था जिससे भारतीय समाज प्रभावित हुआ। जाति शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'जन' धातु से हुई थी जिसका अर्थ 'प्रजाति' 'जन्म' अथवा 'भेद' से लिया जाता है। भारतीय जाति व्यवस्था में कुटुम्ब एवं कुटुम्बों के समूहों का समन्वित रूप था जिसमें नाम के साथ काल्पनिक पूर्वज, मनुष्य या देवता एक सामान्य वंश परम्परा अथवा उसके उद्भव का दावा किया जाता था। एक ही परम्परागत व्यवसाय को करने पर बल दिया जाता था जो सजातीय वर्ग करता था। जाति प्रथा का विकास प्रजातीय विभेदों के कारण हुआ था। इस विचार में ''जाति'' तथा ''गोत्र'' को मिला दिया गया है क्योंकि जाति परम्परा में पूर्वज से, वंश परम्परा की बात गोत्र के लोग स्वीकार करते थे, जाति के लोग नहीं।

जाति का समुदाय के रूप में प्रयोग उचित नहीं क्योंकि समुदाय के लोग एक भौगोलिक क्षेत्र में निवास करते थे। जबकि एक जाति के लोग कई अन्य स्थानों में भी निवास करते थे।[1]

भारतीय जाति प्रथा में सजातीय विवाह को ही मान्यता दी गयी थी। सामाजिक मेल मिलाप पर नियंत्रण था यह प्रथा सामान्य परम्परागत व्यवसाय अथवा सामान्य उत्पत्ति पर बल देते हुए असाधारण रूप से एक समुदाय बनाती थी।[2]

सांस्कृतिक प्रणाली के अन्तर्गत अनेक जातियों तथा वर्गों के मिश्रण का परिणाम जाति है। स्पष्ट रूप से जातियों के उदय का मूल ज्ञात करना प्रारम्भिक स्त्रोतों से कठिन है। वर्ण से जातियों का विकास नहीं माना जा सकता क्योंकि जाति का विकास चारों वर्णों के बाद हुआ है। प्राचीनकाल में चारों वर्णों के उपविभाजन थे, गोत्र एवं जातियों में अंतर है क्योंकि गोत्रों के अन्तर्गत एक गोत्र से दूसरे गोत्र के लोगों के विवाह किये जाते थे, जातियों के मध्य इस प्रकार विवाह नहीं सम्पादित किये जाते थे।[3]

वैदिक साहित्य में जाति का उल्लेख नहीं हुआ, धर्म सूत्रों से 'जाति' का प्रयोग मिश्रित वर्णों के लिए किया गया था इन मिश्रित जातियों को वर्णों से अलग रखा गया तथा चतुर्थ वर्ण में स्थान दिया गया। उत्तरोत्तर साहित्य में 'कृष्ण जातीय' तथा 'ब्राह्मण जातीय' शब्दों का प्रयोग किया गया। सूत्र साहित्य में 'जाति धर्म' की चर्चा की गई है। प्रत्येक जाति के दायित्व एवं कार्यों तथा व्यवसाय का उल्लेख मिलता है।

आरम्भ में जाति वर्ण के मिश्रण से बनी तथा वर्णों में स्थापित गतिशीलता जातियों में जटिल होती थी या न के बराबर होती थी इनमें आपस में कई प्रतिबन्ध होते थे जैसे खान-पान, व्यवसाय, विवाह आदि। जातियों के व्यवसाय निश्चित होते थे इनका उदय ही एक वर्ग के द्वारा किसी एक व्यवसाय को लगातार करते रहते हुए जिसमें बाद में परिवर्तन न के बराबर होता था। यही जातियों के उदय में व्यवसायगत व्यवस्था मुख्य रूप से उत्तरदायी मानी गई है।[4]

भारतीय समाज में एक अलौकिक जटिल सामाजिक रूपरेखा को विकसित किया गया था जिसका विकास कबीलों तथा व्यवसायिक समूहों से हुआ तथा बाद में जातियों के रूप में सामने आया। जाति व्यवस्था को तीन स्तरों पर रखकर देखा जा सकता है पहले स्तर पर चार प्रमुख मान्यता प्राप्त वर्ण, यह अनुवांशिक है तथा इनकी स्थिति लगभग समान है। इसके बाद मध्य वर्ग के जाति समूह है जिनमें अंतर्विवाही जातियों में उपविभाजित है। अंतिम स्तर पर अंतर्विवाही जातियां है जो न केवल वर्गीकृत है वरन् इनकी अलग अनुष्ठानिक क्रियाएं है। यह वर्ग समाज को प्रभावित करते हुए, अपने कार्यों के द्वारा अहम भूमिका निभाते हैं।[5] जाति-प्रथा कई समाजों के साथ विभिन्न वर्गों में बंटी रही होगी, जो विरोधी भी होती थी। इसलिए रक्तसंकरता और व्यावसायिक परिवर्तन स्वीकार नहीं किया गया था। साथ ही इसमें नये सदस्यों को स्वीकार नहीं किया जाता था।[6] विभिन्न जातियां अलग-अलग रहा करती थी। जाति-व्यवस्था में जन्म को प्रमुखता दी जाती थी तथा व्यवसाय, रक्त विवाह आदि की अपनी विशेषतायें होती थीं। जातियों को जन्म से ही कुछ विशेषाधिकार प्राप्त होते थे जिसके कारण उनमें ऊँच-नीच की भावना उत्पन्न हुई।[7] भारत की जाति-प्रथा विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं भौगोलिक तत्वों के पारस्परिक प्रभावों का स्वाभाविक परिणाम है जो अन्यत्र कहीं भी एक साथ नहीं मिलते हैं।[8]

वैदिक काल में 'जाति' शब्द का व्यवहार जनसमुदाय के लिए किया गया था। जाति शब्द का उल्लेख पहली बार कृष्ण जाति के संदर्भ में हुआ था।[9] उपनिषदों में भी 'जाति' का संदर्भ मिलता है। वृहदारण्यकोपनिषद् में वैश्य के लिए 'जाति' शब्द का प्रयोग किया गया था।[10] पाणिनी ने शब्दोत्पत्ति में 'जाति' शब्द का वर्णन किया। अष्टाध्यायी में 'वर्ण' शब्द के साथ 'जाति' शब्द का भी निवेशन है, जो निश्चय ही 'वर्ण' के स्थान पर प्रयोग होता है।[11]

गौतम और आपस्तम्ब धर्मसूत्रों में न केवल जाति शब्द का उल्लेख है बल्कि उसका स्वरूप भी वर्णित है। मनु ने जाति शब्द का प्रयोग 'द्विजाति' और हीनजाति से किया है।[12] उन्होंने ब्राह्मण के लिए भी जाति शब्द का प्रयोग किया।[13] विष्णु पुराण में निम्नलिखित प्रमुख जातियों का वर्णन मिलता है:

अम्बष्ठ:- बौधायन के अनुसार ब्राह्मण पुरुष और वैश्य स्त्री से उत्पन्न सन्तान को अम्बष्ठ कहा गया। स्मृतियों[14] के अनुसार भी अम्बष्ठ की उत्पत्ति ब्राह्मण पुरुष तथा वैश्य स्त्री के संयोग से हुई थी। हेमचन्द्र ने भी अम्बष्ठ की उत्पत्ति ब्राह्मण पुरुष तथा वैश्य स्त्री से बताई थी। विष्णु पुराण[15] में नदी तट की निवासी जाति के संदर्भ में इसका वर्णन है। अम्बष्ठ प्रादेशिक नाम का प्रतीक है जो अनार्यों का क्षेत्र था। इसका मुख्य काम चिकित्सा करना था।

निषाद:- बौधायन के अनुसार ब्राह्मण तथा शूद्र स्त्री से निषाद की उत्पत्ति हुई थी। जबकि गौतम के मतानुसार ब्राह्मण पुरुष और वैश्य स्त्री से निषाद उत्पन्न हुए। बौद्धग्रंथों में ऐसे नाविकों या नेषाद (निषाद) का उल्लेख हुआ है।[16] महाभारत में इसकी उत्पत्ति ब्राह्मण पुरुष तथा शूद्र स्त्री से बताई गई है। रामायण से हमें ज्ञात होता है कि निषाद राज गुह ने राम को नदी के पार उतारा था। मनु ने भी निषाद जाति का उल्लेख किया है। निषाद जाति अत्यन्त निम्न जाति थी जो नाविक का कार्य करती थी। विष्णु पुराण[17] में इसे विन्ध्य शैल का निवासी और पाप कर्मा कहा गया है। निषाद अत्यन्त निम्न जाति थी जो नाविक का कार्य करती थी ये लोग मछली पकड़ने तथा जंगलों आदि में आखेट करने का भी कार्य करते थे। निषाद को बसायी गई आदिवासी जाति भी माना जाता है।[18]

मागध:- गौतम धर्म सूत्र के अनुसार वैश्य पुरुष तथा ब्राह्मण स्त्री से इनकी उत्पत्ति हुई। इसके विपरीत बौधायन ने इस जाति की उत्पत्ति शूद्र पुरुष तथा वैश्य स्त्री से मानी। महाभारत में वैश्य पुरुष तथा क्षत्रिय स्त्री से इसकी उत्पत्ति बताई गई है। मनु एवं याज्ञवल्क्य के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति वैश्य पुरुष तथा क्षत्रिय स्त्री से हुई थी।[19] इनका मुख्य कार्य वणिक पथ अर्थात स्थल मार्ग से व्यापार करना होता था। आरम्भ में इनकी स्थिति वैश्य की श्रेणी में थी बाद में निम्न वर्ग में आ गयी।[20]

विष्णु पुराण में मागध जाति का उल्लेख नदी तट की जातियों के रूप में हुआ है।[21] राजा पृथु ने उत्पन्न होते ही पैतामह यज्ञ किया था जिससे सोमाभिषत के दिन सूति (सोमभिषव) भूमि से सूत की उत्पत्ति हुई उसी यज्ञ से बुद्धिमान मागधों का भी जन्म हुआ था।[22] अन्य पुराणों में भी इसके उल्लेख प्राप्य है।[23] इन्हें शाकद्वीपी क्षत्रिय माना गया है।[24]

कारुष:- कारुष जाति भी संस्पृक्तता से बनी थी इसकी उत्पत्ति व्रात्य वैश्य और वैश्य स्त्री के संयोग से हुई थी।[25] विष्णु पुराण के अनुसार यह जाति भी नदी के किनारे ही निवास करती थी।[26] ये लोग आपस में मिलजुल कर रहते थे और अपने लोग जाति के लोगों के बीच ही खान-पान का संबंध रखते थे।

स्वर्णकार:- सोने का आभूषण बनाने वाला समूह स्वर्णकार जाति के अन्तर्गत आता था इसका उल्लेख वैदिक काल से ही मिलता है।[27] यह जाति अनेकानेक आभूषणों का निर्माण करती थी जो कालांतर में आकर अत्यधिक संघटित हो गई।[28] विष्णु पुराण में उल्लेख है कि 'बृहस्पति की बहिन वरस्त्री जो ब्रह्मचारिणी और सिद्धयोगिनी थी तथा अनासक्त भाव से समस्त भूमण्डल में विचरती थी, आठवे वसु प्रभास की भार्या हुई। उससे सहस्रों शिल्पों (कारीगारियों) के कर्ता और देवताओं का जन्म हुआ। जो समस्त शिल्पकारों में श्रेष्ठ और सब प्रकार के आभूषण बनाने वाले हुए तथा जिन्होंने देवताओं के सम्पूर्ण बिमानों की रचना की और जिन महात्माओं की शिल्प विद्या के आश्रय से बहुत से मनुष्य जीवन निर्वाह करते हैं।[29] अन्य पुराणों से भी उसके द्वारा अलंकरण निर्माण का पता चलता है जिसका सम्बन्ध प्रजापति विश्वकर्मा से माना गया है।[30]

आभीर:- मनु ने आभीर को ब्राह्मण पुरुष तथा अम्बष्ठ जाति से उत्पन्न बताया है।[31] विष्णु पुराण के अनुसार यह जाति नगर और ग्राम से दूर नदी तट पर निवास करती थी। अन्य पुराणों में भी इसके विवरण प्राप्य हैं। हेमचन्द्र ने इसे 'महाशूद्र' जाति के अंतर्गत रखा है।[32]

चाण्डाल:- प्रारम्भ से ही धर्मसूत्रों में शूद्र पुरुष और ब्राह्मण स्त्री से उत्पन्न संतान को चण्डाल कहा गया, मनु और याज्ञवल्क्य ने भी इसका समर्थन किया। उत्तरवैदिक काल में यह जाति समाज में अवस्थित हो चुकी थी और तभी से यह अत्यंत निम्न एवं अस्पृश्य मानी जाती थी जो ग्राम अथवा नगर की सीमा के बाहर रहती थी इसकी स्थिति खान और सूकर जैसी थी। गौतम ने चाण्डाल को कुत्ते और कौए की कोटि में रखा। आपस्तब की दृष्टि में चाण्डाल को न केवल स्पर्श करना पाप था बल्कि उसके दर्शन करना तथा उससे बात करना भी पाप था। इसके लिए उन्होंने प्रायश्चित का भी विधान किया।[33] उन्होंने यह भी कहा कि जिस गांव में चण्डाल रहा है वहां अध्ययन नहीं करना चाहिए।[34] मनु ने तो सर्व धर्म बहिष्कृत होने के कारण उसके देखते रहने पर भोजन ही बंद कर देने का निर्देश दिया।[35]

मनु के अनुसार भी चाण्डाल को गांव से बाहर रहना चाहिए और रात्रि के समय भी नगर में प्रवेश वर्जित था तथा राजाज्ञा का विशेष चिन्ह धारण करते थे, बन्धव रहित शव को श्मशान तक ले जाता था।[36] कुत्ते तथा गधे ही उसकी पशु सम्पत्ति तथा कफन को उसका वस्त्र मनु ने बताया है। चाण्डाल प्राण दण्ड प्राप्त व्यक्ति का वध करता था।[37]

विष्णु पुराण में भी चाण्डाल के प्रति अमानवीय भावना व्यक्त की गई है उसे पतित बताकर कुत्ते एवं पक्षियों की श्रेणी में रखा गया है।[38] विष्णु पुराण के अनुसार देवता तथा पितृगण अपना भाग इसकी दृष्टि पड़ जाने से त्याग देते थे।[39] चाण्डाल स्त्री के संसर्ग से वह व्यक्ति भी पतित हो जाता था।[40] उसका स्पर्श व्यक्ति को पाप की श्रेणी में कर देता था, जिसके लिए उसे प्रायश्चित करना पड़ता था।[41]

सामान्यत: 'चाण्डाल' शब्द अनेक अछूत वर्ग के लिए प्रयोग किया जाता था। चाण्डालों को नगर के बाहर एक विशेष प्रकार के स्थान पर निवास करना होता था। सैद्धान्तिक रूप से चाण्डालों के जीविकोपार्जन का साधन मृत शरीर को ले जाना होता था जबकि वे अन्य साधनों से भी जीविकोपार्जन करते थे।[42] इन्हें नगरों की सीमा से बाहर निवास करना होता था तथा नगर में प्रवेश करने से पूर्व छड़ी की ध्वनि जमीन में पटक करनी होती थी।[43]

क्लेच्छः-समाज में क्लेच्छ जाति अत्यन्त हीन थी। इसकी उत्पत्ति वैश्य पुरुष और ब्राह्मण स्त्री के संयोग से हुई थी।[44] विवेच्य पुराण में इनका निवास स्थान हिमालय बताया गया है।[45] वायु पुराण में भी यही मत व्यक्त किया गया है।[46]

किरातः- किरात जाति को म्लेच्छों की ही एक शाखा माना गया था। यह जाति हिमालय के तटवर्ती प्रदेश में निवास करती थी। किन्तु पुराणों में इसे नदी के किनारे रहने वाली जाति बताया गया है। पूर्वी भारत भी इसका निवास स्थान माना गया है। पर्जिटर ने निषाद, पुलिन्द, दैत्य, राक्षस, नाग, दस्यु, पिशाच और मलेच्छ आदि जातियों को आदिवासी, असभ्य, अशिक्षित और उदण्ड एवं शक्तिशाली जाति के रूप में बताया है। स्मृतिकारों ने धोबियो, चमारो, नृतको, वरूडो, मछुआरों, भीलों आदि की गणना अत्यंजों में की। कुवलयमाला में चण्डालों, भीलों, डोमों, सूअर पालने वालों सभी को अत्यंज माना है। इनमें सभी जातियों का वर्णन स्कन्दपुराण में भी आया है। जहाँ उत्तम, अद्यम और अत्यंज तीनों प्रकारों को मिलाकर 18 उपजातियों का उल्लेख हुआ है। विष्णु पुराण में दस्यु आभीर और मलेच्छों की चर्चा लुटेरों के रूप में की गई है। अर्जुन के साथ ये लोग नीयमापि द्वारिकावासी वृष्णी और अन्धकवंश की स्त्रियों को लेकर चले गये थे।[47]

व्यावसायिक जातियों के रूप में औरभ्रक, कुलाल, तैलपीड, कैवर्त (मछुआ या मल्लाह), रजक (धोबी) मालाकार, हस्तिप[48] (महावत) आदि का उल्लेख पुराण में हुआ है। पाणिनी ने औरभ्रक का प्रयोग मेष समूह के लिये किया था। पाणिनी के समय में भी औरभ्रक जाति व्यवसायिक वर्ग के रूप में विद्यमान थी। रजक, कुलाल जाति उस समय शिल्पी वर्ग के अन्तर्गत थी, कुललजाति मिट्टी के बर्तन बनाकर अपना जीविकोपार्जन करती थी। कैवर्त के लिए केवट शब्द का मत्स्यजीवी (मछुआ) जाति के अर्थ में प्रयोग किया जाता था।

संदर्भ सूचीः

1. मिश्र, जयशंकर, भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 144
2. ब्लण्ट, सोशल सर्विस इन इण्डिया, पृ0 49-50
3. बाशम, ए0 ल0 अद्भुत भारत, पृ0 149
4. नेसफील्ड- ब्रीफ व्यू ऑफ द कास्ट सिस्टम, पृ0 7
5. दुबे श्यामाचरण भारतीय समाज, पृ0 48
6. डूमा और पोपाक, कन्ट्रिव्यूशन टू इण्डिया सोशियोलॉजी, पृ0 8-7
7. डूमा और पोपाक, कन्ट्रिब्यूशन टू इण्डियन सोशियोलॉजी, पृ0 10, 12, 8
8. हट्टन, जे0एच0 कास्ट इन इण्डिया, पृ0 111
9. 12.13, अग्निं चिः वा न रामामुपेयात्।
   रामा रमणायोपेयते न धर्माय कृष्णजातीया।। 12.13 निरुक्त
10. स नैव व्यभवत्स विषमसृजत यान्येतानि
    देवजातानि गणश आख्यायन्ते वसवो रूद्राः
    आदित्य विश्वेदेवा मरुत इति। 1.4.12 वृह0उ0
11. अष्टाध्यायी 5.4.9, महाभाष्य 5.3.55
12. हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः। मनु0 3.15
13. जातिमात्रोपजीव वा कामं स्याद् ब्राह्मणब्रवः। मनु0 8.20, 10.4
    समोडन कृष्टजातिस्तु दद्योच्छेयास्तु तच्छनै।। मनु0 8.177
14. ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायाम्बष्ठो नाम जायते। याज्ञ0 1.91, मनु0 10.8
15. माद्रारामास्थाम्बाष्ठाः .....।'' विष्णु पु0 2.3.15-17
16. जातक पृ0 292, मज्झिमनिकाय, 2 पृ0 152, 183, 184
17. मथ्यमानात्समुत्तस्थौ तस्योरोः पुरुषः किल।
    दग्धस्यूपाप्रतीकाशः खर्व्वाटास्योऽति हास्वकः।।
    किं करोमीति तान्सर्वान्ससविप्रानाह चातुरः।
    निषीदेति तमूचुस्ते निषादस्तेन सोऽभवत्।। विष्णु पु0 1.13.33-36
18. मैक्डॉनल और कीथ, वैदिक इण्डेक्स 1/512-513
19. क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सृतो भवति जातिनः।
    वैश्यान्मागधवैदेहौ राजविप्रांगनासूतौ।। मनु0 10.11
20. क्षत्रिया मागधं वैश्याच्छूदात क्षत्रारमेत तुः। - याज्ञ0 1.94
21. पुण्ड्राः कलिंगाः मगधादक्षिणाद्याश्च सर्वशः।
    तथापरान्ताः सौराष्ट्राः शूराभीरास्तथार्बुदाः।। विष्णु पु0 2.3.16
    मर्यादाव्युत्क्रमो नापि तेषु देशेषु सप्तसु।
    वंगाश्च मागधाश्चौत मानसा मन्दगास्तथा।। विष्णु पु0 2.4.6-9

22. तस्य वै जातमात्रस्य यज्ञे पैतामहे शुभे।
सूतः सूत्यां समुत्पन्नः सौत्येडहीन महामति।।
तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः। विष्णु पु0 1.13.51-52
23. अत ऊर्द प्रपक्ष्यामि मागधेयान्तृहद्रवान।
जरासंघस्य ये वंशे सहदेवान्वये नृपाः।। वायु 61.15.4 एवं ब्राह्मण पु0 2.36.163
24. मिश्र, जयशंकर प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 173
25. वैश्यात्रु जायते व्रात्यात्सुधन्वाचार्य एवं च।
कारुपश्च विजन्सा च मैत्रः सात्वत एव च।। मनु0 10.23
26. कारुषा मालताश्चौव पारियात्रनिवासिनः।
सौवीराः सैन्धवा हूणाः साल्वा कोशलवासिनः
माद्रारामास्तथाम्बष्ठाः पारसीकादयस्तथा।। विष्णु पु0 2.3.11 मत्स्य 114.48
27. ऋ0 1.122.14, 10.85.8, 6.138.3, अथर्व 5.2.58,श0ब्रा0 13.83.11 तै0सं0 1.7.13, 2.2.9.7
28. मैक्समूलर, एफ0 सैक्रेड बुकस ऑफ दि ईस्ट 3, पृ0 340
29. बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी।
योगसिद्धा जगत्कृत्सन्मसक्ता विचरत्युत।
प्रभासस्य तु सा भार्या वसूनामष्टमस्य तु।। विष्णु पु0 118
विश्वकर्मा महाभागस्तस्यां जुज्ञे प्रजापतिः।
कर्ता शिल्पसहक्षाणां त्रिदशानां च वर्द्धकी।। विष्णु पु0 119
भूषणानां च सर्वेषां कर्ता शिल्पवर्ता वरः।
यः सवेषां विमानानि देवतानां चकार ह।
मनुष्याशोच्यजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः।। विष्णु पु0 120
30. मत्स्य पुराण 5.28, वायु 66.28
31. अभिधानचिंतामणि 3.896
32. शब्दानुशासन 2.4.54
33. चाण्डालोस्पर्शनै सम्भाषायां दर्शने च दोषस्तत्र प्रायश्चिनम्। -आप0ध0सू0 2.18
34. आप0 ध0सू0 13.5, गोतम धर्म सूत्र 16.19
35. मनु0 3.239 एवं चाण्डालो सर्व धर्म बहिष्कृतः। -याज्ञ0 1.93
36. मनु0 10.15, 10.54.55
37. मनु0 10.52, 53. 56
38. श्वचाण्डालविहङगना भुवि दद्यान्नरश्वेर ये चान्ये पतिताः...। विष्णु पु0 3.11.57
39. उदक्यासूतकाशौचिमृतहारैश्च वीक्षते।
किल्विषैः पूर्णदेहाश्च प्रकृष्टैः पातकैस्तथा।। विष्णु पु0 3.16.13
40. मत्स्य पु0 227.54
41. ब्राह्मण पु0 3.14.78, वायु पु0 78.67
42. अद्भुत भारत- 145
43. ओम प्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक और आर्थिक इतिहास- खण्ड-1, पृ0 63-64
44. चाण्डालेन तु सोपाको मूलव्यसनवृत्तिमान।
पुक्कस्यां जायते पापः सदा सज्जनगर्हितः।। मनु0 10.38
45. सिन्धु तटदाविकोर्वीचन्द्रभागा काश्मीरविषयांश्च व्रात्यम्लेच्छशूद्राढयो भोक्ष्यन्ति।
विष्णु पु0 4.24.69 विष्णु पु0 5.38.28
46. वायु पुराण 41.46
47. विष्णु पुराण 5.3.8
48. विष्णु पुराण 5.20.22 इत्यादिश्य स तौ मल्लौ ततश्चाटूय हस्तिपम्।

भारतीय राजनीति में जातिवाद

डॉ० शकुन्तला

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, डॉ० भीमराॅव आम्बेडकर राजकीय महिला स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, फतेहपुर (उ0प्र0)

सारांश

भारतीय में प्राचीन काल से ही जाति और राजनीति का अटूट सम्बन्ध रहा है। राजनीति तथा सामाजिक जीवन का विश्लेषण करते समय जाति की भूमिका को उपेक्षित नहीं किया जा सकता। भारत की राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था पर आज भी जातिवाद का प्रभाव विद्यमान है।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया आरम्भ होने के पश्चात् यह धारणा विकसित हुई कि पश्चिमी राजनीतिक तन्त्र और जनतन्त्रात्मक मूल्यों को अपनाने के फलस्वरूप भारतीय समाज से जातिवाद का अन्त हो जायेगा परन्तु ऐसा नहीं हुआ बल्कि जाति का प्रभाव निरन्तर बढ़ता ही गया। हमारे राजनीतिज्ञ एक ओर तो जातिगत भेदभाव मिटाने की बात करते हैं। वहीं दूसरी ओर जातिगत आधार पर वोट लेने की कला के निपुणता हासिल करना चाहते हैं।

जहाँ तक बात जातिवादी की समाप्ति की है तो हम कह सकते है कि भारत में यह आसान नहीं होगा। हाँ जैसे-जैसे देश का आर्थिक विकास होगा, शिक्षा का स्तर बढ़ेगा और लोगों में जागरूकता आयेगी वैसे-वैसे लोगों की सोच में परिवर्तन होगा और जातिगत प्रतिस्पर्धा कम होगी। आवश्यकता इस बात कि जाति के नकारात्मक स्वरूप की जगह पर उसके सकारात्मक स्वरूप की स्थापना की जाय।

मुख्य शब्द-जाति, राजनीति, शिक्षा, आर्थिक विकास, जातिवाद का उन्मूलन।

भूमिका-भारत में प्राचीन काल से ही जाति और राजनीति का अटूट संबंध रहा है। हमारी सामाजिक व्यवस्था ही जातीयता पर आधारित है और राजनीति का विकास समाज से ही होता है। राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन का विश्लेषण करते समय जाति की भूमिका को उपेक्षित नहीं किया जा सकता।

डॉ0 आर0 गाडगिल के अनुसार ''क्षेत्रीय दबावों से कहीं ज्यादा खतरनाक बात यह है कि वर्तमान काल में जाति व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बांधने में बाधक सिद्ध हुई है।''

ए0एच0 हेन्सन तथा जेनेट डगलस ने India"s Democracy में लिखा है ''जाति की अवधारणा को ध्यान में न रखकर किया हुआ कोई भी अध्ययन अपूर्ण सिद्ध होगा।''

हमारे देश में समाज का विभाजन तीन वर्गों में किया जाता रहा है-

- उच्च वर्ग
- मध्यम वर्ग
- निम्न वर्ग

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व और स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् के आरम्भिक वर्षों तक उच्च एवं मध्यम वर्ग ही राजनीति में सक्रिय रहा और नेतृत्व भी उसी के हाथ में रहा। निम्न वर्ग के लोगों ने कभी भी नेतृत्व प्राप्ति की कोशिश नहीं की परन्तु अँग्रेजों ने अपने शासन काल में भारत में राजनीति में सभी वर्गों की समानता का तर्क प्रस्तुत कर निम्न वर्ग को भी राजनीति में आने के लिए प्रोरित किया। विगत 60 वर्षों से राजनीति संस्थाओं की कार्यप्रणाली और सामान्य राजनीतिक जीवन के अनुभव से यह पता चलता है कि भारत की राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था पर आज भी जातिवाद का प्रभाव विधमान है।

विश्लेषण-आधुनिक प्रभावों के फलस्वरूप वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन आरम्भ हुए और जातिगत संस्थाएं एकाएक महत्वपूर्ण बन गई। क्योंकि उनके पास भारी संख्या में मत थे और लोकतन्त्र में इनमें मतों के बिना सत्ता पर नहीं पहुँचा जा सकता था। शायद यही वजह थी कि जयप्रकाश नारायण सरीखे व्यक्ति ने एक बार कहा कि, ''भारत में मौजूद सभी दलों की तुलना में जाति नाम का दल सबसे महत्वपूर्ण हो गया है।''

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया आरम्भ होने के पश्चात् यह धारणा विकसित हुई कि पश्चिमी राजनीतिक तन्त्र और जनतन्त्रात्मक मूल्यों को अपनाने के फलस्वरूप भारतीय समाज से जातिवाद का अन्त हो जाएगा इसीलिए यह प्रश्न बराबर उठता रहा कि क्या जातिवाद का लोप हो रहा है? किन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् से भारत की राजनीति में जाति का प्रभाव निरन्तर बढ़ता ही गया है। हमारे राजनीतिज्ञ एक ओर तो जातिगत भेदभाव मिटाने की बात करते है। वहीं दूसरी ओर जातिगत आधार पर वोट लेने की कला में निपुणता हासिल करना चाहते हैं।

अमेरिकी लेखकगण लाएड रूडाल्फ तथा सूजन रूडाल्फ ने यह विचार दिया है कि भारतीय समाज से जाति का विनाश नहीं हो सकता जाति का स्वरूप अवश्य बदलता रहेगा। एक परम्परावादी व्यवस्था ने आधुनिकीकरण के मूल्यों के अनुरूप परिवर्तित होने को ही उन्होंने 'परम्पराओं की आधुनिकता' का नाम दिया है।

रजनी कोठारी का मत है कि भारतीय राजनीति और जाति व्यवस्था के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में यह आशा करना कि जनतन्त्रीय व्यवस्थाओं की स्थापना के बाद जाति व्यवस्था का लोप हो जाना चाहिए एक भ्रामक और त्रुटिपूर्ण विचार है। उनका यह दावा है कि कोई भी सामाजिकतन्त्र कभी भी पूर्णतया समाप्त नहीं हो सकता। अत: यह प्रश्न करना कि क्या भारत में जाति का लोप हो रहा है व्यर्थ है।

सामाजिक और राजनीतिक जीवन एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। इसीलिए रजनी कोठारी का कहना है ''आधुनिक राजनीति के प्रभाव में जाति व्यवस्था किस प्रकार का रूप धारण कर रही है और एक जाति-अभिमुख समाज में राजनीति क्या स्वरूप अपना रही है? उनका यह भी कहना है कि ''वे लोग जो भारतीय राजनीति में जातिवाद के विद्यमान होने की शिकायत करते है वह एक ऐसी राजनीति की कल्पना करते है जो समाज में सम्भव नहीं है। वास्तव में जिसे राजनीति में जातिवाद कहा जाता है, वह जातियों के राजनीतिकरण से अधिक और कुछ नहीं है।''

जाति व्यवस्था पर राजनीति का प्रभाव-राजनीति एक प्रतिस्पर्धात्मक प्रक्रिया है जिसका लक्ष्य निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राजनीतिक सत्ता को प्राप्त करना है और राजनीतिक सत्ता बिना बहुमत के प्राप्त करना सम्भव नहीं है। वहाँ हर वह वर्ग जो सत्ता प्राप्त करना चाहता है उसे दूसरे समूह का सहयोग आवश्यक है।

भारत में राजनीतिक संस्थाओं के प्रतिनिधिक स्वभाव के कारण अनेक राजनीतिक दलों का निर्माण का निर्माण हुआ और विभिन्न जातियों के लोग अपने लक्ष्यों और हितों को दृष्टि में रखते हुए इन राजनीतिक दलों में शामिल होने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि लगभग सभी राजनीतिक दलों में विभिन्न जातियों के लोग शामिल हुए और इस प्रकार राजनीतिक उद्देश्यों ने ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों (उच्च जाति) से लेकर वैश्य एवं शूद्र (मध्यम एवं निम्न जाति) तक सभी जातियों को एक ही राजनीतिक मंच पर स्थापित कर दिया।

वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था ने विभिन्न जातियों के बीच इस प्रकार की अन्योन्याश्रित स्थिति उत्पन्न कर दी है कि अब कोई भी जाति समूह बिना दूसरी जातियों की सहायता और समर्थन के राजनीतिक सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। आज राजनीतिक दल चुनाव के समय अपने-अपने उम्मीदवारों का चयन करते समय उनकी योग्यता से ज्यादा सम्बन्धित निर्वाचन क्षेत्रों में विभिन्न जातियों की जनसंख्या को ध्यान में रखते है और जातिवाद को साधन बनाकर ही चुनाव लड़े एवं जीते जाते है। न सिर्फ चुनाव लड़े जाते है बल्कि मतदाताओं के अन्दर जातिवाद की भावना को उकसाया जाता है ताकि वे जाति के आधार पर संगठित होकर मतदान करें चूँकि जनता ज्यादा शिक्षित जागरूक एवं समझदार नहीं होती है इसलिए वह नेताओं की बातों में आ जाती है। तत्पश्चात् जाति के समीकरण को देखकर ही सांसदों एवं विधायकों को मन्त्रिपरिषद् में स्थान मिलता है। योग्यता कहीं भी राजनीति में स्थान नहीं रखती या ये कहें कि जाति सबसे ऊपर हो जाती है। जातिवाद भारतीय राजनीति में इस तरह प्रवेश कर चुकी है कि उसने लोकतन्त्र के स्वरूप को विकृति कर दिया है। जाति का राजनीतिकरण कर दिया गया है।

राष्ट्रीय स्तर से ज्यादा राज्यों में जातिवाद का प्रभाव राजनीति पर दिखाई देता है। राज्यों की राजनीति पर जो प्रभाव है उसको देखते हुए टिंकर जैसे विद्वान ने ''राज्यो की राजनीति को जातियों की राजनीति'' कहा है। इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि भारतीय राजनीति में जातिवाद का प्रभाव विद्यमान है और रूडाल्फ का यह कहना काफी हद तक सही है कि ''(भारत के) नए राजनीतिक तन्त्र के परिपेक्ष्य के अन्तर्गत जाति भारतीय समाज का एक केन्द्रीय तत्व है, यद्यपि इसने जनतन्त्रीय राजनीति के मूल्यों और उपायों तथा साधनों को ग्रहण किया है।'' ऐसा लगता है कि राजनीति में जातिवाद को एक साधन ने रूप में अपनाया गया है, क्योंकि इसके माध्यम से राजनीतिक समर्थन प्राप्त करने और अन्ततोगत्वा राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

भारत में जातिवाद के परम्परावादी स्वरूप को संस्कृतीकरण, पश्चिमीकरण और राजनीतिक आधुनिकीकरण ने मिलकर परिवर्तित किया है।

अमरीकी राजनीतिशास्त्री रूडाल्फ ने कहा कि ''भारत में जातिवाद का पूर्ण उन्मूलन किसी भी परिस्थिति में सम्भव नहीं है। हाँ राजनीतिक व्यवस्था के अनुरूप जाति व्यवस्था का स्वरूप भी परिवर्तित होता रहेगा।

राजनीतिक व्यवस्था पर जाति व्यस्था का प्रभाव-भारत में जातिवाद का प्रभाव राजनीतिक दलो, निर्वाचनों और राजनीतिक लाभों के वितरण में हमकों समान रूप दिखायी देता है। हेरल्ड गोल्ड के शब्दों में ''राजनीति का आधार होने के बजाय जाति उसको प्रभावित करने वाला एक तत्व है।'' जिसको हम निम्न तरीके से समझ सकते हैं-

1) निर्णय प्रक्रिया में जाति की भूमिका-जातियाँ संगठित होकर अपने हितों के अनुसार निर्णय की प्रक्रिया को प्रभावित करती है अर्थात् जातियाँ दबाव ग्रुप का काम करती है।
2) राजनीतिक दलों में जातिगत आधार पर निर्णय-भारत के सभी राजनीतिक दल किसी भी चुनाव क्षेत्र में प्रत्याशी मनोनीत करते समय प्रत्याशी की योग्यता नहीं देखते है वे सिर्फ जातिगत गणित का विश्लेषण करते है ताकि उनके प्रत्याशी उस क्षेत्र से जीत सके।
3) जातिगत आधार पर मतदान व्यवहार-भारत में चुनाव अभियान में जातिवाद को साधन के रूप में अपनाया जाता है। आम मतदाता न तो इतना जागरूक और न ही इतना शिक्षित होता है कि राजनीतिक दलों के इस व्यवहार को समझ सकें। अत: वह चुनाव में अपने ही जाति के व्यक्ति को अपना वोट देता है चाहे वह व्यक्ति कितना ही अयोग्य क्यों न हो।

   मोरिस जोन्स ने लिखा है कि ''चोंटी के नेता भले जाति रहित समाज को अपना लक्ष्य घोशित करे परन्तु ग्रामीण जनता जिसे मताधिकार प्राप्त किए हुए अधिक दिन नहीं हुए केवल राजनीति की परम्परागत भाषा को समझती है जो जाति के इर्द-गिर्द घूमती है।''
4) मन्त्रिमण्डलों के निर्माण में जातिगत प्रतिनिधित्व-राजनीति में जातीयता इस ढ़ंग से समा चुकी है कि मन्त्रिमण्डल में प्रत्येक जाति का मन्त्री होना चाहिए यह सिद्धान्त केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल से लेकर राज्यों एवं स्थानीय स्तर तक के चुनावों पर लागू होता है।

5) जाति दबाव समूह की भूमिका में-मेयर के अनुसार ''जातीय संगठन राजनीतिक महत्व के दबाव समूह के रूप में प्रवृत है।'' इसका उदाहरण आरक्षण का क्रियान्वयन है।

6) जाति एवं प्रशासन-भारत में प्रतिनिधि संस्थाओं के अलावा प्रशासन में भी जातिगत आरक्षण की व्यवस्था की गई है।

7) जाति पर आधारित राजनीतिक दलों का विकास-भारत में राजनीति के अन्तर्गत सफलता प्राप्त करने के लिए जाति प्रधान राजनीतिक दलों का विकास हो रहा है। नेता जनता के अन्दर जातिगत भावनाओं को उभारते है ताकि उसका लाभ वोट के रूप में लेकर सत्ता तक पहुँच सके।

माइकर बेवर के अनुसार ''अखिल भारतीय राजनीति की अपेक्षा राज्य स्तर की राजनीति पर जातिवाद का प्रभाव अधिक है।''

निषकर्ष-इस प्रकार कह सकते है कि भारत का कोई भी हिस्सा नहीं है, जहाँ राजनीति जातिवाद से अछूती है। जाति हर जगह विधमान है जो कि लोकतान्त्रिक मूल्यों के विरूद्ध है। हमको यदि स्वस्थ भारत का निर्माण करना है तो राजनीति से जातिवाद को निकालना होगा। निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि 'भारत में जाति का राजनीतिकरण और राजनीति का जातिकरण हो गया है।

बाबू जगजीवन राम के शब्दों में 'जाति भारतीय राजनीति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण सत्यता है' एक सामान्य भारतीय अपना जब कुछ त्याग सकता है परन्तु जाति व्यवस्था में अपने विश्वास की तिलांजलि नहीं दे सकता है। जाति प्रथा भारतीय हिन्दू समाज की प्रमुख विशेषताएं है।'

रूडाल्फ ने कहा कि ''भारत के नए राजनीतिक तन्त्र परिप्रेक्ष्य में जाति भारतीय समाज का एक केन्द्रीय तत्व है यद्यपि इसने जनतन्त्रीय राजनीति के मूल्यों और उपायों तथा साधनों को ग्रहण किया है।''

राजनीति में जाति को सिर्फ एक साधन के रूप में नेताओं ने इस्तेमाल किया है। जिससे लोगों के अन्दर पृथकतावाद की भावना जागृत होने लगती है। वे स्वयं को जाति के ऊपर नहीं उठा पाते है। जातिगत हित ही उनके लिए सर्वोपरि होते है।

इस देश में इतनी जातियाँ और सहजातियाँ पैदा हो गई है कि वे एक-दूसरे से पृथक रहने में ही अपने अस्तित्व को सुरक्षित समझती है। यह पृथकतावादी दृष्टिकोण राष्ट्रीय एकता के लिए धावक है। अत: भारत में सच्चा लोकतन्त्र स्थापित करने तथा भारत की एकता तथा अखण्डता को सुदृढ़ करने के लिए राजनीति में जाति के दखल को कम करना होगा।

जहाँ तक बात जातिवाद की समाप्ति की है तो हम वर्तमान को देखते हुए कह सकते है कि भारत में यह आसान नहीं होगा। हाँ जैसे-जैसे देश का आर्थिक विकास होगा, शिक्षा का स्तर बढ़ेगा और लोगों में जागरूकता आयेगी, वैसे-वैसे लोगों की सोच में परिवर्तन होगा और जातिगत प्रतिस्पर्धा कम होगी। आवश्यकता इस बात की है कि जाति के नकारात्मक स्वरूप की जगह पर उसके सकारात्मक स्वरूप की स्थापना की जाए।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-

1. रजनी कोठारी: कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स (ओरियंट लांगमैन, दिल्ली 1970)
2. मोरिस जोंस: गवर्नमेन्ट ऐंड पालिटिक्स ऑफ इण्डिया (हंचिसन ऐंड कं0, लन्दन 1967)
3. एम0एन0 श्रीनिवास: सोशल पेंस इन मार्डन इंडिया (एलायड पब्लिशर्स, दिल्ली 1966)
4. ए0जे0 दस्तूर: दि पैटर्न ऑफ महाराष्ट्र पोलिटक्स, इकबाल नारायण (सं0)-स्टेट पोलिटक्स इन इंडिया (मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1967)
5. लयड आई0 रूडाल्फ ऐंड एस हाबर रूडाल्फ: दि माडर्निटी ऑफ टेडीशन (ओरियंट लांगमैन 1969)
6. डी0आर0 गाडगिल: इंडिया-दि मोस्ट डेंजरस डिकेटस।
7. एस0एम0 सईद: भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेन्टर लखनऊ।

भारतीय दर्शन, शिक्षा एवं संस्कृति के प्रकाश स्तम्भ : डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन

डॉ० नम्रता जैन

सहा० प्राध्यापिका, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद

डॉ० राधाकृष्णन भारतीय दर्शन एवं संस्कृति के कितने प्रबल पक्षधर थे, इसका आभास सभी को उसी समय से होने लगा जब उन्होंने एक विद्यार्थी के रूप में एम०ए० कक्षा के अपने शोध-प्रबन्ध 'Ethics of Vedanta' में उन अनेक पाश्चात्य विचारकों को मुँहतोड़ जवाब दिया जो भारतीय दर्शन की निरन्तर आलोचना करते थे और भारतीय दर्शन के ऊपर पाश्चात्य दर्शन की श्रेष्ठता को स्पष्ट करते थे। बाद में उन्होंने एक शिक्षक एवं लेखक के रूप में अपने विभिन्न ग्रन्थों, लेखों एवं व्याख्यानों के माध्यम से भारतीय दर्शन एवं संस्कृति की महानता को विश्व के सामने सफलता पूर्वक रखा भारतीय दर्शन के ऊपर उनके द्वारा दो खण्डों (1923 एवं 1927) में लिखित 'Indian Philosophy' नामक ग्रन्थ बड़ी मौलिक रचना मानी जाती है।

डॉ० राधाकृष्णन के भारतीय संस्कृति के प्रति इस लगाव की प्रशंसा करते हुए प्रसिद्ध ब्रिटिश दार्शनिक बरट्रेन्ड रसेल ने कहा था कि डॉ० राधाकृष्णन उन व्यक्तियों में से थे "जिन्होंने अपनी सेवा से भारतीय संस्कृति को एक गौरवशाली मानवीय उपलब्धि के रूप में प्रतिष्ठित किया।" 14 स्वामी विवेकानन्द के बाद डॉ० राधाकृष्णन ही ऐसे भारतीय थे जिन्होंने पश्चिमी विश्व के सामने भारतीय दर्शन एवं संस्कृति को उनके सही परिवेश में प्रस्तुत किया। एक शिक्षक, राजनयिक, भारत के उपराष्ट्रपति एवं राष्ट्रपति के रूप में, डॉ० राधाकृष्णन प्राय: विदेश जाया करते थे किन्तु वह सदैव भारतीय एव भारतीयता के प्रतिनिधि हो रहे।

वर्तमान परिवेश में भारतीय समाज के लिये डॉ० राधाकृष्णन के व्यक्तित्व के इस पक्ष का बहुत महत्व है। भारतीय संस्कृति एवं उसकी आध्यात्मिकता हमारे देश को अमूल्य धरोहर रही है। आज देश में पाश्चात्य संस्कृति का अतिक्रमण किसी से छिपा नहीं है। अनेक लोग विदेशी रहन-सहन का अन्धानुकरण करके अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं और आधुनिक होने का झूठा दम्भ पालते हैं। वे भले ही आन्तरिक रूप से अशान्त रहते हों। इस भौतिकता के युग में आत्मिक शांति के लिये भारतीय संस्कृति को अपनाना ही श्रेयस्कर है। हमें अपनी सामाजिक और आर्थिक प्रगति अवश्य ही करनी है किन्तु अपनी संस्कृति को भी संजोये रखना है।

भारतीय एवं पाश्चात्य दार्शनिक विचारों में समन्वय

यद्यपि यह सत्य है कि विदेशों में डॉ० राधाकृष्णन अपने समय के भारतीय दर्शन एवं संस्कृति के बहुत बड़े प्रतिनिधि के रूप में माने जाते थे किन्तु इसके साथ ही वह पाश्चात्य दर्शन के भी बहुत बड़े ज्ञाता थे और उन्होंने इन दोनों दिशाओं की दाशनिक विचारधाराओं में समन्वय स्थापित करने का भी महती प्रयास किया जिसके सबसे बड़े प्रमाण उनके द्वारा लिखित 'East and West in Religion (1933)' तथा 'Eastern Re_igion and Western Thought (1939)' जैसे ग्रन्थ है। इस सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुये पाश्चात्य दाशनिक प्रो० एच०एन० म्यूरहेड ने कहा है कि "डॉ० राधाकृष्णन की यह दुर्लभ विशेषता है कि उन्हें महान, यूरोपीय एवं एशियाई परम्पराओं का समान रूप से ज्ञान है जिसके कारण संसार का आध्यात्मिक ज्ञान पारस्परिक रूप से आबद्ध हो जाता है।

वर्तमान समय के लिय डॉ० राधाकृष्णन के व्यक्तित्व की इस विशेषता का भी महत्व है। हमें अपनी संस्कृति से हमेशा जुड़े रहना चाहिये। यह बात बहुत आवश्यक है। साथ ही यह भी ध्यान रखने की आवश्यकता है कि ज्ञान की कोई भौगोलिक सीमा नहीं होती है और न ही उसके आधार पर मानव समाज में कोई टकराव होना चाहिये। अन्य संस्कृतियों के ज्ञान एवं उनकी अच्छी बातों की प्रशंसा करने एवं उन्हें स्वीकार करने में कोई हानि नहीं है। सकारात्मक ज्ञान के क्षेत्र में बन्धनमुक्त ग्राह्यता होनी चाहिये।

विद्वता, उच्च पद एवं सरलता का अद्वितीय संयोग

डॉ० राधाकृष्णन की गणना बीसवीं शताब्दी के महान दार्शनिकों में की जाती है। वह एक ख्यातिप्राप्त शिक्षक, कई विश्वविद्यालयों के कुलपति, भारत के राजदूत, देश के उपराष्ट्रपति तथा राष्ट्रपति पद पर रहे। इतने बड़े विद्वान होते हुये और इतने ऊँचे पदों को सुशोभित करते हुये उनके जीवन में रहन-सहन की सरलता सदैव बनी रही। उनकी वेश-भूषा विशुद्ध रूप से भारतीय ही थी। वह बन्द गले का लम्बा कोट, धोती और पगड़ी धारण करते थे। "वह सादा जीवन, उच्च विचार ओर प्रतिभाशाली बौद्धिक उपलब्धियों वाले व्यक्ति थे। राधाकृष्णन ने हमारे राष्ट्रीय जीवन पर एक अमिट छाप छोड़ी है। उन्होंने अनेक ऊँचे पदों को श्रेष्ठता के साथ सुशोभित करते हुये, गरिमा और कांति प्रदान की।

डॉ० राधाकृष्णन के जीवन का यह गुण भी वर्तमान भारतीय समाज में अनेक लोगों के लिये एक सीख देता है। ऐसे व्यक्तियों की संख्या दुर्लभ नहीं है जबकि कोई भी महत्व का पद और अनक साथ जुड़ी थोड़ी सी भी प्रसिद्धि पाने के बाद उनके रहन-सहन में एकायक परिवर्तन आ जाता है और वे चकाचौंध कर देने वाली तड़क-भड़क के पीछे पड़ जाते हैं। इस प्रकार वे ऐसी भौतिकता के जाल में फँस जाते हैं जो उस मृगतृष्णा के समान है जो कभी भी तुष्टि नहीं देती है। ऐसे लोगों के लिये डॉ० राधाकृष्णन का जीवन एक उदाहरण है।

सार्वजनिक जीवन में ईमानदारी

सार्वजनिक जीवन में रहते हुए डा० राधाकृष्णन ने ईमानदारी और जनसेवा में शुद्धता के ऊँचे मानक स्थापित किये। "भारत के उपराष्ट्रपति के अपने समूचे कार्यकाल में, उन्होंने अपने निजी कार्यकाल में कर्मचारियों के नाम पर केवल दो व्यक्ति रखे थे; एक राज्य सभा सचिवालय से आशुलिपिक (Stenographer) तथा दूसरा उपराष्ट्रपति कार्यालय से सहायक निजी सचिव/अपने व्यक्तिगत कार्य के लिए वह सदैव निजी कार का उपयोग करते थे, सरकारी कार का नहीं। सरकारी यात्रा में विदेशों को जाने पर वह कभी भी अपने परिवार के किसी सदस्य को अपने साथ नहीं ले जाते थे। वह लगातार सफलतापूर्वक दो कार्य-कालों में भारत के उपराष्ट्रपति रहे।

सार्वजनिक जीवन की शुद्धता एवं जनसेवा का यह ऊँचा मापदण्ड तब भी बना रहा जब डॉ० राधाकृष्णन ने देश के राष्ट्रपति के रूप में कार्य-भार संभाला। आज का राष्ट्रपति भवन ब्रिटिश काल में वाइसराय के निवास के लिये बनवाई गई भव्य इमारत है किन्तु उसमें रहते हुये डॉ० राधाकृष्णन की जीवन-शैली पूर्ववत् ही सरल बनी रही। "वह विभिन्न व्यवसायों एवं पदों पर कार्यरत व्यक्तियों, सरकारी अधिकारियों एवं राजनेताओं से मिलने के लिये सुलभ बन रहे। विदेशी एवं भारतीय विद्वान एवं विद्यार्थी उनसे मिलने आया करते थे और कभी-कभी अपनी पुस्तकों पर उनका परामर्श एवं उनकी आख्या पाने की इच्छा व्यक्त करते थे।[8] जनता की समस्याओं से अवगत होने एवं उनके समाधान के लिये वह राष्ट्रपति भवन में खुला दरबार भो लगाते थे जिसमें कोई भी नागरिक अपनी समस्या बता सकता था और अपना प्रार्थना पत्र दे सकता था जिसे सम्बन्धित विभाग और मंत्रालय को आवश्यक कार्यवाही के लिये भेज दिया जाता था। इससे डॉ० राधाकृष्णन की जनहित की भावना का आभास होता है। वह भ्रष्टाचार के बड़ विरोधी थे। उनका कहना था कि "हम चारों ओर व्याप्त अक्षमता एवं अपने संसाधनों के अधिकाधिक कुप्रबन्ध को कभी क्षमा नहीं कर सकते हैं।[9]

वर्तमान समय के भारतीय सामाजिक परिवेश में जबकि सार्वजनिक जीवन में आये दिन बेईमानी और भ्रष्टाचार से सम्बन्धित बड-बड़े घोटालों की सूचनायें मिलती रहती हैं। डॉ० राधाकृष्णन के द्वारा जन-जीवन में अपनाई गई ईमानदारी ओर सुचिता सर्वथा अनुकरणीय है।

सभी धर्मों की आधारभूत एकता

डॉ० राधाकृष्णन, मानते थे कि सभी धर्मों की मौलिक विशेषतायें एक ही प्रकार की हैं। सभी में पारस्परिक प्रेम, आपसी भाईचारा, दया तथा क्षमा जैसे सद्गुणों को अपनाने की बात कही गई है। धर्म, बाह्य आडम्बर एवं अन्ध विश्वासों में निहित नहीं है। उनका मानना था कि "सच्चा धर्म वहीं है जो इस बात की पुष्टि करता है कि ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रत्येक व्यक्ति में है चाहे वह जिस जाति का हो।[10] वह मानवता को ही सबसे बड़ा धर्म मानते थे और प्राचीन भारत के सांस्कृतिक आदर्श श्वसुधैव कुटुम्बकमश अर्थात् (समस्त संसार एक परिवार है), में विश्वास करते थे।

भारत एक बहुधर्मी देश है। यहाँ पर हिन्दू, मुस्लिम, इसाई जैसे अनेक धर्म पाये जाते थे। कभी-कभी धार्मिक उन्माद के कारण और धर्मों की मौलिक एकता की जानकारी न होने के कारण सामाजिक तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिससे सामाजिक समरसता को बड़ी क्षति पहुँचती है। ऐसी परिस्थिति में डा० राधाकृष्णन के धर्म के सम्बन्ध में विचारों की बहुत बड़ी उपयोगिता है।

डॉ० राधाकृष्णन के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता

डॉ० राधाकृष्णन ने 1909 में श्मद्रास प्रान्तीय शिक्षा सेवाश में प्रवेश किया और 1948 में वह 'विश्वविद्यालय शिक्षा आयोगश के अध्यक्ष बनाये गये। इस बीच के लगभग 40 वर्षों के समय में वह एक योग्य शिक्षक, ख्यातिप्राप्त कुलपति एवं कुशल शैक्षिक प्रशासक के रूप में शिक्षा जगत से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े रहे। अत: देश की शिक्षा सम्बन्धी स्थिति का उन्हें लम्बा अनुभव था। यह स्वाभाविक है कि उनके शिक्षा-दर्शन के ऊपर इस दीर्घ कालीन शैक्षिक अनुभव की छाप पड़ी है और इसी कारण से देश के वर्तमान शैक्षिक परिवेश में डॉ० राधाकृष्णन के शैक्षिक विचारों का कई दृष्टिकोणों से बहुत महत्व है।

शिक्षा की अवधारणा का महत्व

शिक्षा के अर्थ को स्पष्ट करते हुये डॉ० राधाकृष्णन ने कहा कि पूर्ण शिक्षा वही है जो मानवोचित (Humane) हो। शिक्षा वह है जो न केवल बुद्धि (Intellect) का प्रशिक्षण करें वरन् हृदय (Heart) को अनुशासित करें। डॉ० राधाकृष्णन के शब्दों में, 'यदि आप अपने को सही अर्थों में शिक्षित व्यक्ति कहलाना चाहते हैं तो आपको अपने अन्दर की पशुता पर विजय प्राप्त करना होगा। शिक्षा के सम्बन्ध में डॉ० राधाकृष्णन का दृष्टिकोण मानव के सही निर्माण का है।

आज के समय में शिक्षा मुख्यत: ऐसे लोग बनाती है जो किसी नौकरी के योग्य हो जाय जिससे समाज में एक चिन्तनीय स्थिति उत्पन्न हो गई हैं। अत: यह आवश्यक है कि ऐसी शिक्षा नीति अपनाई जाय जो बौद्धिक प्रशिक्षण की तुलना में मानव-निर्माण के ऊपर अधिक बल दे। वर्तमान समय में जबकि मूल्यों का संकट (value crisis) चल रहा है, डा० राधाकृष्णन का मानव निर्माण सम्बन्धी शिक्षा का दृष्टिकोण नितान्त सार्थक है।

'शिक्षा के उद्देश्यश से सम्बन्धित विचारों की उपयोगिता

डॉ० राधाकृष्णन ने शिक्षा के कई उद्देश्य बताये हैं। इन सभी उद्देश्यों की उपयोगिता का अनुभव आज के समय में किया जा रहा है।

(i) डॉ० राधाकृष्णन के मतानुसार श्चरित्र निर्माणश किया जाना शिक्षा का मूल उद्देश्य होना चाहिये क्योंकि चरित्र को आवश्यकता जीवन के हर क्षेत्र में होती है।

(ii) डॉ० राधाकृष्णन मानते थे कि शिक्षा का एक उद्देश्य यह भी है कि वह एक देश का सांस्कृतिक विकास करे। शिक्षा ही एक ओर अतीत की सांस्कृतिक विरासत को संजोती है और दूसरी ओर नये विचारों के माध्यम से उसका विकास भी करती है।

(iii) शिक्षा के द्वारा एक व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास भी होना चाहिये इसे भी डॉ० राधाकृष्णन शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य मानते थे। उनके अनुसार एक व्यक्ति शरीर (body), मस्तिष्क (mind) तथा आत्मा (spirit) का ही सम्मिलित स्वरूप होता है। इनमें आत्मा

(iv) डॉ० राधाकृष्णन यह मानते थे कि शिक्षा के द्वारा विद्यार्थियों की व्यावसायिक कार्यकुशलता की वृद्धि की जानी चाहिये, जिससे वे अपनी आजीविका के लिये आत्मनिर्भर बन सकें।

(v) भारत की वर्तमान समय की शिक्षा व्यवस्था ऐसी नहीं है जो सभी युवाओं को रोजगार के अवसर प्रदान कर सके। देश में शिक्षित बेरोजगारों की बढ़ती हुई संख्या इस तथ्य का प्रमाण है। (VI) राष्ट्रीय एकता को डॉ० राधाकृष्णन् ने शिक्षा का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य माना है। शिक्षा, राष्ट्रीयता की भावना को उत्पन्न करने के लिये है।

(vi) वैश्विक समुदाय की भावना का विकास करना, डॉ० राधाकृष्णन के मतानुसार शिक्षा का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य होना चाहिये।

शिक्षण विधियों से सम्बन्धित बिन्दुओं की समसामयिकता

डॉ० राधाकृष्णन इस अर्थ में एक उदारवादी शिक्षाशास्त्री कहे जा सकते हैं कि उन्होंने पाठ्यक्रम को पढ़ाये जाने के लिये किसी विशेष शिक्षण विधि को अपनाये जाने का सुझाव नहीं दिया है। एक शिक्षक तथा शैक्षिक प्रबन्धक के रूप में वह शिक्षा के क्षेत्र में लम्बे समय तक जुड़े रहे। इसी बड़े अनुभव के आधार पर उन्होंने शिक्षण विधियों के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं। कब कौन सी शिक्षण विधि अपनाई जाये, इसे निर्धारित करने के प्रश्न को उन्होंने सम्बन्धित विषय के शिक्षक के ऊपर छोड़ दिया है। डॉ० राधाकृष्णन इस बात में विश्वास करते थे कि शिक्षण कार्य इस प्रकार से किया जाना चाहिये कि उससे शिक्षार्थियों की स्वाभाविक प्रतिभा का पूर्णत: विकास हो सके। उनके शब्दों में, "किसी भी विषय के सम्बन्ध में जो सर्वोत्तम सोचा और कहा गया है, हमें विद्यार्थियों के समक्ष उसे स्पष्ट कर देना चाहिये और फिर विद्यार्थियों को उस पर विचार करने और निर्णय लेने देना चाहिये।श फिर भी उन्होंने अच्छे पठन-पाठन के दृष्टिकोण से कुछ शिक्षण-विधियों जैसे पारस्परिक विचार-विमर्श, चिन्तन-मनन, पाठ्य-पुस्तकों का अध्ययन तथा विचार गोष्ठियों एवं शिक्षकीय अनुवर्गों (Seminars&Tutorial) को महत्वपूर्ण बताया है।

वर्तमान समय की स्थिति यह है कि यद्यपि शिक्षक अपनी इच्छानुसार ही अपने अध्यापन कार्य की विधि अपनाते हैं किन्तु फिर भी कुछ ऐसे उदाहरण है जिनमें शिक्षक, पाठ्यक्रम का ज्ञान प्राप्त करने का समस्त दायित्व मुख्यत: विद्यार्थियों के ऊपर ही छोड़ देते हैं और स्वयं उस निष्ठा का परिचय नहीं देते हैं जिसके अनुसार डॉ० राधाकृष्णन ने शिक्षक को स्वयं अपनी शिक्षण विधि अपनाकर विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम में निहित ज्ञान की जानकारी देने की बात कही। शिक्षक को शिक्षण विधि भी अपनाने की छूट देने में डॉ० राधाकृष्णन का यह भाव निहित था कि शिक्षक निष्ठापूर्वक विद्यार्थियों को ज्ञान देने के लिये कोई शिक्षण विधि अवश्य अपनायेगा न कि यह था कि पाठ्यक्रम का अध्ययन करने का पूरा दायित्व विद्यार्थी के ऊपर ही छोड़ दिया जाय। इस दृष्टिकोण से शिक्षण-विधियों से सम्बन्धित डॉ० राधाकृष्णन के विचार आज के लिये प्रासंगिक हैं।

अनुशासन से सम्बन्धित विचारों की उपयोगिता

डॉ० राधाकृष्णन ने विद्यार्थियों में अनुशासन की भावना लाने के लिये पाठ्यक्रम से सम्बन्धित क्रियाओं एवं पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं को माध्यम बनाने पर बल दिया है। वह जनतांत्रिक प्रशासन एव दबाव रहित अनुशासन में विश्वास करते थे और विद्यार्थियों को शारीरिक दण्ड दिये जाने के विरूद्ध थे। उनका यह भी मत था कि आध्यापक को प्रत्येक विद्यार्थी की गतिविधियों पर दृष्टि रखनी चाहिये। इसके लिये उन्होंने शिक्षकीय अनुवर्ग व्यवस्था (Tutorial System) को लागू किये जाने का सुझाव दिया था ताकि शिक्षक स्वयं प्रत्येक विद्यार्थी की पठन-पाठन से सम्बन्धित समस्याओं की जानकारी कर सके और उनका निराकरण भी करें। विद्यार्थियों को अपने व्यक्तित्व के विकास के पूरे अवसर मिलने चाहिये।

यह खेद का विषय है कि आज देश में अनेक शिक्षण संस्थाओं में विशेष रूप से उच्च शिक्षा से सम्बन्धित शिक्षण संस्थाओं में अनुशासनहीनता की घटनायें प्राय: सुनने को मिलती है। इसका एक मुख्य कारण यह है कि विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में आने वाले अनेक विद्यार्थी शिक्षा के उपलब्ध अवसरों का लाभ नहीं उठाते हैं एवं गैर-शैक्षिक गतिविधियों म अपनी ऊर्जा बरबाद करते हैं। इसके कारण शैक्षिक परिसरों में अनुशासनहीनता का वातावरण उत्पन्न होता है। ऐसे विद्यार्थियों के लिये डॉ० राधाकृष्णन का यह परामर्श बहुत उपयोगी है, "यदि आप विद्यार्थी हैंश तो आप एक आराम का जीवन नहीं बिता सकते हैं, सुखार्थिनों कुतोविद्या, विद्यार्थिनों कुत: सुखमश जो व्यक्ति सुख भोगी हैं, वह विद्यार्जन नहीं कर पायेगा। यदि कोई भी व्यक्ति सच्चे अर्थों में विद्यार्थी बनना चाहता है तो उसे कठिन परिश्रमी और अनुशासित जीवन बिताना होगा।

इसलिये शैक्षिक परिसरों में अनुशासन स्थापित करने के लिये डॉ० राधाकृष्णन के सुझाव शैक्षिक प्रबन्धकों, अध्यापकों एंव विद्यार्थियों के दायित्वों से सम्बन्धित है जो आज के शैक्षिक वातावरण के लिये बहुत उपयोगी है।

शिक्षण संस्थाओं की गुणवत्ता से सम्बन्धित विचारों का महत्व

शिक्षण संस्थाओं की श्रेष्ठता को डॉ० राधाकृष्णन ने बहुत महत्वपूर्ण माना है। यदि शिक्षण संस्थायें अच्छी होगी तो उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थी भी अच्छे होंगे जो भविष्य में देश के अच्छे नागरिक बनेंगे। इसीलिये शिक्षा के ऊपर किये जाने वाले व्यय को विनियोग माना जाना चाहिये जिससे देश की मानव पूँजी (Human Capital) की वृद्धि होती है। शिक्षण संस्थाओं की गुणवत्ता को निर्धारित करने वाले तीन महत्वपूर्ण तत्व होते हैं :-

(i) अच्छा परिसर, अच्छा पुस्तकालय, अच्छी प्रयोगशालायें तथा अच्छे उपकरण

(ii) योग्य शिक्षक

(iii) कुशल प्रबन्धन।

डॉ० राधाकृष्णन की यह मान्यता थी कि एक देश का निर्माण उसकी शिक्षण संस्थाओं में होता है। वह शिक्षण संस्थाओं और शिक्षा की गुणवत्ता से किसी भी प्रकार का समझौता किये जाने के पक्ष में नहीं थे। उन्हीं के शब्दों में "हम जो शिक्षा देते हैं, उसकी गुणवत्ता को हमें सबसे अधिक महत्व देना चाहिये।. .. यदि आप इसमें समझौता करते हैं तो जैसा दिन प्रतिदिन दिखाई देता है, परिणाम भयावह होंगें। इसलिये गुणवत्ता से छेड़छाड़ मत करिये, शिक्षा के मापदण्ड को मत गिराइये।

शिक्षण संस्थानों एवं शिक्षा की गुणवत्ता के विषय में डॉ० राधाकृष्णन के उक्त विचारों के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि देश में धीरे-धीरे शिक्षा का विस्तार अवश्य हो रहा है किन्तु यह भी देखा जा रहा है कि माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा तथा इन्जिनियरिंग, चिकित्सा शिक्षण प्रशिक्षण एवं प्रबन्धन से सम्बन्धित विभिन्न शिक्षण संस्थाओं के स्तरों पर जो स्ववित्त पोषित इकाईयाँ खुली हैं, जिनमें विभिन्न शिक्षण सुविधाओं का अभाव हैं, उनमें शिक्षा का व्यावसायीकरण आरम्भ हो गया है और ये संस्थायें धन कमाने का साधन बन गई हैं। इससे शिक्षा की गुणवत्ता बहुत कम हुई है। अत: शिक्षा में गुणवत्ता बनाये रखने का डॉ० राधाकृष्णन का विचार आज की परिस्थितियों में बहुत सार्थक है!

शिक्षक की भूमिका से सम्बन्धित विचारों की प्रासंगिकता

एक सर्वप्रतिष्ठित शिक्षक के रूप में डॉ० राधाकृष्णन का लम्बा अनुभव था। वह शिक्षक को सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया की आधारशिला मानते थे। शैक्षिक कार्य की सफलता बहुत कुछ शिक्षक की गतिविधियों के ऊपर निर्भर है। उनके मतानुसार शिक्षक को कर्तव्यनिष्ठ एवं अपने विषय का अच्छा ज्ञाता होना चाहिये। साथ ही एक शिक्षक को स्वयं भी निरन्तर अपने ज्ञान में वृद्धि करते रहना चाहिए। उसे न्यायप्रिय, विनम्र एंव त्रुटियों के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण वाला होना चाहिये। डॉ० राधाकृष्णन के शब्दों में "उसे (शिक्षक को) एक समर्पित व्यक्ति होना चाहिये; ऐसा समर्पित व्यक्ति जो भविष्य में आस्था रखता हो, जो इस देश और संसार के भविष्य के प्रति आस्थावान हो। उसे मानवता की शक्ति में निहित आत्मविश्वास को लेकर कार्य करना चाहिए।" अत: डॉ० राधाकृष्णन के अनुसार शिक्षक का पद गरिमामय होने के साथ ही नितान्त दायित्वपूर्ण भी हैं।

यदि देश की इस समय की परिस्थतियों के सन्दर्भ में शिक्षक की भूमिका के विषय में डॉ० राधाकृष्णन् के द्वारा व्यक्त किये गये विचारों का आकलन किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, योग्य, कर्मठ, निष्ठावान एवं देशभक्त नागरिक बनाकर एक शिक्षक राष्ट्र निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। अत: इस व्याख्या के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि गाँधी जी की ही भाँति डॉ० राधाकृष्णन के शिक्षा-दर्शन के अनेक ऐसे बिन्दु हैं जो वर्तमान भारतीय शिक्षा के परिवेश में बहुत प्रासंगिक है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- वर्मा, वी०पी० (2002). आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ० 367.
- लाल, रमन बिहारी (2001-2002). शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ, पृ० 179.
- Goel, Vijay (2009). Quoted in *Dr. S. Radhakrishnan;* as translated here into Hindi from original in English, Compiled and Published by Vijay Goel, Naveen Sahadara, Delhi, p. 79.
- Ibid, as translated here into Hindi from original in English, p. 133.
- Choudhary, Sarojakanta (2006). *Educational Philosophy of Dr. Sarvepalli Radhakrishnan;* as translated here into Hindi from original in English, Deep and Deep Publications Pvt. Ltd., New Delhi, p. 18.
- Murty, K.S. &A. Vohra (1989). *Radhakrishnan: His Life and Ideas;* as translated here into Hindi from original in English,Ajanta Publications, New Delhi, p. 190.
- Goel, Vijay (2009). Quoted in *Dr. S. Radhakrishnan,* as translated here into Hindi from original in English, op. cit, p. 137.
- Pandey, Ram Shakal, Uma Ram Sharma (2008). S*ocial and Educatinal Ideas of Radhakrishnan;* as translated here into Hindi from original in English, Anubhav Publishing House,Allahabad, p. 56.

भारत में पर्यावरणीय मुद्दे: एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ० अरविंद कुमार सिंह

एसोसिएट प्रोफेसरए भूगोल विभाग, शिवपति स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शोहरतगढ़, सिद्धार्थनगर

सार

"पर्यावरण" शब्द का प्रयोग आमतौर पर "प्राकृतिक" पर्यावरण का वर्णन करने के लिए किया जाता है और इसका अर्थ है सभी जीवित और निर्जीव चीजों का योग जो किसी जीव, या जीवों के समूह को घेरते हैं। पर्यावरण में वे सभी तत्व, कारक और स्थितियां शामिल हैं जिनका कुछ प्रभाव पड़ता है। भारत में पर्यावरण के मुद्दे हर दिन और अधिक गंभीर हो जाते हैं और वह इस मोर्चे पर थोड़ी गड़बड़ हो रही है, भारत में प्रमुख पर्यावरणीय मुद्दे तेजी से बढ़ती जनसंख्या और आर्थिक विकास भारत में कई पर्यावरणीय मुद्दों को जन्म दे रहा है। यह अनुमान है कि आने वाले समय में देश की जनसंख्या बढ़कर काफी अधिक हो जाएगी। इस पत्र में भारत में पर्यावरणीय मुद्दे पर विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्द: पर्यावरण, शिक्षा की कमी, जनसंख्या, गरीबी, उद्योग, वनों की कटाई, सरकारी कानून, भ्रष्टाचार, ग्लोबल वार्मिंग, प्रदूषण।

परिचय

संपूर्ण दक्षिण एशियाई क्षेत्र प्राकृतिक आपदाओं की चपेट में जलवायु परिवर्तन से संकट में है। 2018 विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार, औसत मौसम की स्थिति में बदलाव 'हॉटस्पॉट' बनाएगा: पूरे क्षेत्र (विशेषकर अंतर्देशीय) जो जीवन स्तर और सकल घरेलू उत्पाद पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। दक्षिण एशिया दुनिया के चार सबसे अधिक वायु-प्रदूषित देशों का भी घर है: बांग्लादेश, पाकिस्तान, भारत और अफगानिस्तान। जलवायु परिवर्तन न केवल आंतरिक क्षेत्रों को प्रभावित करेगा; पर्वतीय क्षेत्रों में, जलवायु परिवर्तन संभावित रूप से प्राकृतिक आपदाओं की आवृत्ति को प्रभावित करेगा। इसमें भूस्खलन जैसी घटनाओं की संभावना में वृद्धि शामिल है, लेकिन हिमालय में हिमनदों का पीछे हटना भी शामिल है। दूसरी ओर, बढ़ते समुद्र का स्तर दक्षिण एशिया में कई तटीय क्षेत्रों के लिए एक संभावित खतरे का प्रतिनिधित्व करता है: न केवल उष्णकटिबंधीय तूफानों की बढ़ती गंभीरता के कारण, बल्कि इसलिए कि तट का बड़ा बांग्लादेशी हिस्सा और अधिकांश मालदीव 21वीं सदी के अंत से पहले गायब हो सकते हैं।[1]

पर्यावरण की स्थिति

भारत इस प्रवृत्ति के केंद्र में है: देश के दक्षिण में तापमान पहले ही औसत से ऊपर बढ़ चुका है और उत्तरी आंतरिक क्षेत्रों में भी इसी तरह की वृद्धि का खतरा है। भारत 14वें सबसे कमजोर देश के रूप में रैंक करता है। यह पिछले दो वर्षों में एक सुधार है, फिर भी भारत चरम मौसम से संबंधित हताहतों की संख्या से सबसे अधिक प्रभावित के रूप में दूसरे स्थान पर है।

भारतीय शहरों में हवा की गुणवत्ता तेजी से बिगड़ रही है और आज चीन के हालात से भी बदतर है। जनवरी 2017 में, ग्रीनपीस ने भारतीय शहरों में वायु प्रदूषण का आकलन करते हुए एक रिपोर्ट 'एयरपोकैलिप्स' जारी की। 2018 विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) के वैश्विक परिवेशी वायु गुणवत्ता डेटाबेस में, छोटे कणों के उच्चतम स्तर वाले 12 शहरों में से 11 - पीएम2.5 - भारत में स्थित हैं। AirVisual की 2018 की विश्व वायु गुणवत्ता रिपोर्ट के अनुसार, PM 2.5 को मापने वाले, दुनिया के शीर्ष 30 सबसे प्रदूषित शहरों में से 22 भारत में हैं। भारत की राजधानी दिल्ली का एक उपनगर गुरुग्राम दुनिया का सबसे प्रदूषित शहर है। नवंबर, दिसंबर और जनवरी में स्थिति विशेष रूप से गंभीर होती है, क्योंकि ग्रामीण इलाकों में फसल अवशेषों से छुटकारा पाने के लिए सर्दियों में उलटा और मानसून के बाद बायोमास (स्टबल) जलाने सहित वायुमंडलीय और मानवीय कारकों के संयोजन के कारण स्थिति गंभीर होती है। उत्तरी भारतीय गंगा के मैदान के निवासियों पर स्वास्थ्य प्रभाव महत्वपूर्ण है: शिकागो विश्वविद्यालय द्वारा वायु गुणवत्ता जीवन सूचकांक (एक्यूएलआई) पर किए गए एक अध्ययन के अनुसार, 2016 में दिल्ली में प्रदूषण की सघनता ने जीवन प्रत्याशा को 10 वर्षों से अधिक कम कर दिया।[2]

वायु प्रदूषण गरीबी के साथ-साथ चलता है: 2016 में अनुमानित 790 मिलियन लोग (भारतीय आबादी का लगभग 60 प्रतिशत) अभी भी खाना पकाने के लिए बायोमास (लकड़ी, लकड़ी का कोयला या जानवरों के गोबर) पर निर्भर थे। ग्रामीण इलाकों में यह विशेष रूप से मामला था - भारतीय आबादी का दो-तिहाई हिस्सा ग्रामीण इलाकों में रहता है - जहां बायोमास जलाने से हानिकारक धुएं लोगों के स्वास्थ्य को खतरा पैदा करते हैं और बाल मृत्यु दर में वृद्धि करते हैं। कोयले पर भारत की निर्भरता - जीवाश्म ईंधन का सबसे अधिक प्रदूषण - केवल मामूली गिरावट के लिए तैयार है, बिजली क्षेत्र के भीतर कोयले की खपत में वृद्धि से प्रेरित है, जैसा कि तेल और गैस बहुराष्ट्रीय बीपी के 'एनर्जी आउटलुक' 2019 में बताया गया है।

भारत में वनों की कटाई एक और चिंता का विषय है। फरवरी 2019 को इंडिया स्टेट ऑफ फॉरेस्ट रिपोर्ट 2017 के प्रकाशन के बाद, विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर भारतीय संसदीय स्थायी समिति ने देश में, विशेष रूप से उत्तर-पूर्वी राज्यों में वन क्षरण पर चिंता व्यक्त की। इसने टिप्पणी की कि वनों में पेड़ों की अवैध कटाई का मुकाबला करने के लिए पर्यावरण और वन मंत्रालय द्वारा कोई कार्य योजना नहीं अपनाई गई थी।

वन और कृषि भूमि क्षरण

वन और कृषि भूमि क्षरण अनुमानित 60 प्रतिशत खेती योग्य भूमि मिट्टी के कटाव, जल जमाव और लवणता से ग्रस्त है। यह भी अनुमान है कि मिट्टी के कटाव से सालाना 4.7 और 12 अरब टन के बीच ऊपरी मिट्टी का नुकसान होता है। 1947 से 2002 तक, औसत वार्षिक प्रति व्यक्ति पानी की उपलब्धता लगभग 70 प्रतिशत घटकर 1,822 क्यूबिक मीटर हो गई, भूजल का अत्यधिक दोहन हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश के राज्यों में समस्याग्रस्त है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने अनुमान लगाया है कि तापमान में 3 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि से वार्षिक गेहूं की पैदावार में 15 से 20 प्रतिशत की कमी आएगी। इतनी बड़ी आबादी वाले देश के लिए प्राथमिक संसाधनों की उत्पादकता पर निर्भर करती है और जिसका आर्थिक विकास औद्योगिक विकास पर बहुत अधिक निर्भर करता है। वन क्षेत्र भारत के भौगोलिक क्षेत्र का 18.34 प्रतिशत (637000 वर्ग किमी) शामिल है। देश का लगभग आधा वन क्षेत्र मध्य प्रदेश (20. 7 प्रतिशत) और पूर्वोत्तर के सात राज्यों (25.7 प्रतिशत) में पाया जाता है; उत्तरार्द्ध शुद्ध वन हानि का सामना कर रहा है ईंधन की लकड़ी के लिए कटाई और कृषि भूमि के विस्तार के कारण वन आवरण घट रहा है। औद्योगिक और मोटर वाहन प्रदूषण उत्पादन में वृद्धि के साथ इन प्रवृत्तियों ने वायुमंडलीय तापमान में वृद्धि की है, जिससे वर्षा के पैटर्न में बदलाव आया है।[3]

प्रदूषण

वायु प्रदूषण

भारतीय शहर वाहनों और उद्योग उत्सर्जन से प्रदूषित हैं। वाहनों के कारण सड़क की धूल भी वायु प्रदूषण में 33 प्रतिशत तक का योगदान करती है बैंगलोर जैसे शहरों में लगभग 50 प्रतिशत बच्चे अस्थमा से पीडिघ्त हैं, भारत में वायु प्रदूषण के सबसे बड़े कारणों में से एक परिवहन प्रणाली है। यह भी सामने आया कि अत्यधिक प्रदूषण का ताजमहल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा था। एक अदालत के फैसले के बाद क्षेत्र में सभी औद्योगिक कारखानों को बंद करने के तुरंत बाद क्षेत्र में सभी परिवहन बंद कर दिया गया था। बड़े शहरों में वायु प्रदूषण इस हद तक बढ़ रहा है कि यह विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा अनुशंसित मात्रा से 2.3 अधिक है। सकारात्मक पक्ष पर, ऐसा लगता है कि सरकार ने अपने लोगों के लिए इस बड़ी समस्या और इससे जुड़े स्वास्थ्य जोखिमों पर ध्यान दिया है और धीरे-धीरे लेकिन निश्चित रूप से कदम उठा रही है। जिनमें से पहला 2001 में था जब उसने फैसला सुनाया कि ट्रेनों को छोड़कर इसकी पूरी सार्वजनिक परिवहन प्रणाली को डीजल से संपीडिघ्त गैस (सीपीजी) में परिवर्तित कर दिया जाएगा।

जल प्रदूषण

जल प्रदूषण भारत के 3,119 कस्बों और शहरों में से, केवल 209 में आंशिक उपचार सुविधाएं हैं, और केवल 8 में पूर्ण अपशिष्ट जल उपचार सुविधाएं हैं 114 शहर अनुपचारित सीवेज और आंशिक रूप से अंतिम संस्कार किए गए शवों को सीधे गंगा नदी में फेंक देते हैं। डाउनस्ट्रीम, अनुपचारित पानी का उपयोग पीने, नहाने और धोने के लिए किया जाता है। यह स्थिति भारत के साथ-साथ अन्य विकासशील देशों की कई नदियों की विशेषता है।[4]

ध्वनि प्रदूषण

ध्वनि प्रदूषण भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने 2005 में ध्वनि प्रदूषण पर एक महत्वपूर्ण फैसला दिया। वाहनों का अनावश्यक हॉर्निंग शहरों में उच्च डेसिबल स्तर का शोर बनाता है। राजनीतिक उद्देश्यों के लिए और मंदिरों और मस्जिदों द्वारा लाउडस्पीकरों के उपयोग से आवासीय क्षेत्रों में ध्वनि प्रदूषण होता है। हाल ही में भारत सरकार ने शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में अनुमेय ध्वनि स्तरों के मानदंड स्थापित किए हैं। उनकी निगरानी और कार्यान्वयन कैसे किया जाएगा, यह अभी भी निश्चित नहीं है।

भूमि प्रदूषण

भारत में भूमि प्रदूषण कीटनाशकों और उर्वरकों के साथ-साथ क्षरण के कारण होता है। मार्च 2009 में, पंजाब में यूरेनियम विषाक्तता का मुद्दा प्रकाश में आया, जो थर्मल पावर स्टेशनों के फ्लाई ऐश तालाबों के कारण हुआ, जो कथित तौर पर पंजाब के फरीदकोट और भटिंडा जिलों में बच्चों में गंभीर जन्म दोष पैदा करते हैं, हालांकि अंग्रेजों ने भारत में वनों की कटाई शुरू कर दी थी, 1947 के विभाजन के बाद से आधुनिकीकरण के दबावों ने केवल वनों की कटाई की दरों में वृद्धि की है, जिससे मिट्टी का क्षरण होता है जिससे भूमि प्रदूषण होता है।

भारत में जैव विविधता संरक्षण

भारत में जैव विविधता संरक्षण इंडोमालय इकोजोन के भीतर स्थित भारत, महत्वपूर्ण जैव विविधता की मेजबानी करता है। यह सभी स्तनधारियों का 7. 6 प्रतिशत, एवियन का 12.6 प्रतिशत, सरीसृप का 6.2 प्रतिशत और फूलों के पौधों की 6.0 प्रतिशत प्रजातियों का घर है। हाल के दशकों में, मानव अतिक्रमण ने भारत के वन्यजीवों के लिए खतरा पैदा कर दिया है, प्रतिक्रिया में, पहली बार 1935 में स्थापित राष्ट्रीय उद्यानों और संरक्षित क्षेत्रों की प्रणाली का काफी विस्तार किया गया था। 1972 में, भारत ने महत्वपूर्ण आवास की सुरक्षा के लिए वन्यजीव संरक्षण अधिनियम और प्रोजेक्ट टाइगर अधिनियमित किया; 1980 के दशक में और अधिक संघीय सुरक्षा को प्रख्यापित किया गया। 500 से अधिक वन्यजीव अभयारण्यों के साथ, भारत अब 14 बायोस्फीयर रिजर्व की मेजबानी करता है, जिनमें से चार बायोस्फीयर रिजर्व के विश्व नेटवर्क का हिस्सा हैं। रामसर कन्वेंशन के तहत 25 आर्द्रभूमि पंजीकृत हैं।[5]

पर्यावरण के संबंध में भारत के नागरिकों के मौलिक कर्तव्य

पर्यावरण के संबंध में भारत के नागरिकों के मौलिक कर्तव्य अनुच्छेद 51 ए 2 (जी) 1 खंड (जी) के खंड (जी) में यह प्रावधान है कि यह भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होगा - प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा और सुधार करना शामिल है, वनों, झीलों, नदियों और वन्य जीवन, और जीवित प्राणियों

के लिए करुणा रखने के लिए। खंड 2(जी)4 में प्रावधान है कि- पृथ्वी मनुष्य और जानवरों की साझी विरासत है। हमें उनके क्षेत्र या प्राकृतिक आवास से जंगली निवासियों का सफाया करने या उन्हें दूर भगाने का कोई अधिकार नहीं है। प्राचीन भारतीय विचार सर्वशम शांति भवतु (सभी जीवों और संपूर्ण पर्यावरण के लिए शांति) या अहिंसा परमोधर्म की बात करते हैं। अहिंसा परमो तप: (अहिंसा सबसे बड़ा कर्तव्य है और सबसे बड़ी तपस्या खंड 2(जी)5 प्रावधान करता है कि - पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986, उस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। इसके प्रावधानों की सीमा और दूर- अधिनियम के तहत जारी किए जा सकने वाले वैधानिक नियमों और आदेशों के माध्यम से किए जा सकने वाले उपायों तक पहुँचने से पता चलता है कि प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा और सुधार के कर्तव्य को हमारे कानून में काफी विस्तृत रूप से वर्णित किया गया है।[6]

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 का उद्देश्य पर्यावरण की सुरक्षा और सुधार प्रदान करना है। पर्यावरण प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए नियम बनाना; विभिन्न क्षेत्रों और उद्देश्यों के लिए वायु, जल और मिट्टी के प्रदूषकों के मानकों और अधिकतम सीमाओं को अधिसूचित करना; खतरनाक पदार्थों के संचालन पर प्रतिबंध और प्रतिबंध, और उद्योगों के स्थान या जुर्माने के साथ, जो कोई भी व्यक्ति प्रदूषण का कारण पाया जाता है, वह पांच साल से लेकर एक लाख रुपये या दोनों तक की सजा के लिए उत्तरदायी हो सकता है। (धारा 15, 16, 17) अनुपालन न करने पर रुपये का जुर्माना। 5000 प्रति दिन अतिरिक्त, फिर भी यदि एक वर्ष से अधिक समय तक अनुपालन नहीं किया जाता है, तो कारावास 7 वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है।[7]

वन और वन्यजीव संरक्षण अधिनियम

वन और वन्यजीव संरक्षण अधिनियम। 1927 - भारतीय वन अधिनियम और संशोधन 1984; 1972 - वन्यजीव संरक्षण अधिनियम नियम 1973 और संशोधन 1991 1980 - वन (संरक्षण) अधिनियम और नियम, 1981

जल 1882 - सुगमता अधिनियम। 1897 - भारतीय मात्स्यिकी अधिनियम। 1956 - नदी बोर्ड अधिनियम। 1970 - मर्चेंट शिपिंग एक्ट। 1974 - जल (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम। 1991 - तटीय विनियमन क्षेत्र अधिसूचना।

वायु (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम

वायु (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम 1987 में कारखाना अधिनियम और संशोधन 1981 - वायु (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम 1982 - वायु (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) नियम 1982 - परमाणु ऊर्जा अधिनियम 1987 - वायु (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) संशोधन अधिनियम 1988-मोटर वाहन।

भोपाल गैस त्रासदी भोपाल गैस त्रासदी भोपाल आपदा दुनिया की सबसे भीषण औद्योगिक आपदा है। यह 2-3 दिसंबर, 1984 की रात को भोपाल, मध्य प्रदेश में यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड (यूसीआईएल) कीटनाशक संयंत्र में हुआ। संयंत्र से मिथाइल आइसोसाइनेट गैस और अन्य रसायनों के रिसाव के परिणामस्वरूप सैकड़ों हजारों लोग प्रभावित हुए। 2006 में एक सरकारी हलफनामे में कहा गया था कि रिसाव से 558,125 चोटें आईं, जिनमें 38,478 अस्थायी आंशिक और लगभग 3,900 गंभीर रूप से और स्थायी रूप से अक्षम करने वाली चोटें थीं और अनुमानित मृत्यु 15,000 थी।

भोपाल गैस त्रासदी के बाद पर्यावरण पुनर्वास। 1985-1986 में जब फैक्ट्री को बंद किया गया तो पाइप, ड्रम और टैंकों की सफाई की गई और उन्हें बेचा गया। संयंत्र के आसपास के क्षेत्र को खतरनाक रसायनों के लिए डंपिंग क्षेत्र के रूप में इस्तेमाल किया गया था। रिपोर्ट किए गए प्रदूषणकारी यौगिकों में नेफ्थॉल, नेफथलीन, सेविन, क्रोमियम, लेड, हेक्साक्लोरोइथेन, हेक्साक्लोरोबुटाडीन शामिल हैं। यूसीसी फैक्ट्री के आसपास की आबादी को सुरक्षित पेयजल उपलब्ध कराने के लिए जलापूर्ति में सुधार की योजना है। दिसंबर 2008 में, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने फैसला किया कि गुजरात के अंकलेश्वर में जहरीले कचरे को जलाया जाना चाहिए।

लवासा- एक पहाड़ी शहर या एक विवादास्पद शहर? लवासा शहर, लवासा आजादी के बाद से भारत का पहला पहाड़ी शहर है। पहला विवादास्पद मुद्दा पर्यावरणीय प्रभाव के बारे में है। राज्य सरकार ने इस परियोजना को मंजूरी दे दी है जिससे जैव विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और जो पर्यावरण कानूनों का उल्लंघन है। अगर वरसगांव बांध के पानी को लवासा की ओर मोड़ दिया जाता है, तो इससे पुणे शहर को पानी की आपूर्ति में समस्या होगी। 19 जनवरी, 2011 को, भारतीय पर्यावरण और वन मंत्रालय ने पर्यावरणीय मुद्दों के कारण लवासा पहाड़ी-शहर को अवैध करार दिया। यह पुणे और मुंबई के बहुत करीब है। यह पुणे से 50 किमी और मुंबई से 180 किमी दूर है

यहां शामिल दूसरा मुद्दा है - 2002-2004 की अवधि के दौरान लवासा कॉर्पोरेशन को उनकी बेटी, दामाद और शरद पवार के करीबी सहयोगियों के शेयरों की वजह से मिली मंजूरी। लवासा परियोजना का मुद्दा गंदी राजनीति का स्पष्ट उदाहरण है। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि कुछ राजनेताओं को पर्यावरण, लोगों और देश की कोई चिंता नहीं है; वे केवल लाभ या धन के बारे में चिंतित हैं।

निष्कर्ष

भारत में प्रमुख पर्यावरणीय मुद्दे वन और कृषि भूमि क्षरण हैं। संसाधनों की कमी (पानी, खनिज, जंगल, रेत, चट्टानें आदि) पर्यावरण का क्षरण, सार्वजनिक स्वास्थ्य, जैव विविधता के नुकसान, गरीबों के लिए आजीविका सुरक्षा, जनसंख्या जन्म, मृत्यु, प्रवास और आप्रवास के बुनियादी जनसांख्यिकीय कारक जनसंख्या के आकार, संरचना, वितरण में परिवर्तन उत्पन्न करते हैं और ये परिवर्तन कारण और प्रभाव के कई महत्वपूर्ण प्रश्न उठाते हैं। जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास भारत में कई गंभीर पर्यावरणीय आपदाओं में योगदान दे रहे हैं। इनमें भूमि क्षरण, वन, आवास विनाश और जैव विविधता के नुकसान पर

भारी दबाव शामिल हैं। खपत पैटर्न में बदलाव के कारण ऊर्जा की मांग बढ़ रही है। इसके अंतिम परिणाम वायु प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग, जलवायु परिवर्तन, पानी की कमी और जल प्रदूषण हैं। वास्तव में, सरकारी कानूनों द्वारा पर्यावरण की रक्षा करने में कोई कमी नहीं है लेकिन दुर्भाग्य से यह सत्ता के खुले तौर पर दुरुपयोग, भ्रष्टाचार और संसाधनों की कमी के कारण कभी भी लागू नहीं होता है। महत्वपूर्ण पारिस्थितिक समस्याओं में से एक ग्लोबल वार्मिंग है जिसके कारण दुनिया भर में कारों, हवाई जहाजों, कपड़ों द्वारा वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड का बड़ा उत्सर्जन होता है।

संदर्भ

1. कपास, एंड्रयू; जेन ओली; और मंसूर, अली, (1999), "पब्लिक सेक्टर डिलीवरी ऑफ वेस्ट मैनेजमेंट सर्विसेज: केस फ्रॉम द इंडियन सब-कॉन्टिनेंट," हैबिटेट इंटरनेशनल, 23, नंबर 4: 495।
2. दुबे, रेजिना; वैशाली, नंदन; और श्वेता, दुआ, (2014), "शहरी भारत के लिए अपशिष्ट भस्मीकरण: स्थायी एमएसडब्ल्यूएम में मूल्यवान योगदान या आजीविका और सार्वजनिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले अनुचित उच्च तकनीक समाधान?" पर्यावरण प्रौद्योगिकी और प्रबंधन के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, 17, 2-4: 199-214।
3. वही, पृ. 215
4. गिलिस, जस्टिन और सोमिनी सेनगुप्ता, (2015), "सीमित प्रगति देखी गई और भी अधिक देशों ने जलवायु पर कदम बढ़ाया" न्यूयॉर्क टाइम्स, (28 सितंबर, 2015): 1.
5. ग्रीनस्टोन, माइकल और रेमा हैना, (2014), "पर्यावरण नियम, वायु और जल प्रदूषण, और भारत में शिशु मृत्यु दर," अमेरिकी आर्थिक समीक्षा, 104, 10: 3038-3072।
6. जोहान्सडॉटिर, लारा; ब्रायनहिल्डुर, डेविड्सडॉटिर; माइकल ई. गुडसाइट; और स्नजोलफुर, ओलाफसन, (2014), "बीमाकर्ताओं की भूमिका पर्यावरण की दृष्टि से ध्वनि प्रौद्योगिकियों के विकास और उपयोग को बढ़ाने में: नॉर्डिक बीमाकर्ताओं का एक केस स्टडी," जर्नल ऑफ क्लीनर प्रोडक्शन, 65, (फरवरी): 526-538।
7. वही, पृ. 539

आतंकवाद प्रतिशमन व सार्क के प्रयास

अभिषेक वर्मा

(UGC-SRF) Research Scholar, Department of Western History, Lucknow University

शोध सारांश-

सार्क के लगभग सभी सदस्य राष्टôों में आतंकवादी गतिविधियाँ विभिन्न स्वरूपों में संचालित की जा रही हैं। मादक पदार्थों की तस्करी, हथियारों की तस्करी, जातीय व धार्मिक असंतोष, विरोधी गुटों की प्रतिक्रियात्मक कार्यवाही, धार्मिक व जातीय हिंसा आदि विभिन्न स्वरूप लिए सदस्य देशों में विद्यमान है। ये आतंकवाद सदस्य देशों के क्षेत्रीय सहयोग के विकास में बाधक भी बना हुआ है। एक संगठन के रूप में सार्क ने आतंकवाद पर नियन्त्रण की दिशा में कई महत्वपूर्ण घोषणाएं व कानून पारित किये हैं। हालाँकि सभी संगठन अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पाये पर प्रयास अनवरत जारी है। असफलता का मुख्य कारण सदस्य राष्टôों के मध्य आतंकवाद की परिभाषा को लेकर मतभेद रहा है। फिर भी सार्क के आतंकवाद प्रतिशमन के प्रयास निरन्तर जारी है।

प्रमुख शब्दावली-

प्रतिक्रियात्मक कार्यवाही, प्रतिशमन, उन्मादपूर्ण हिंसा, उग्रवाद, जनतांत्रिक व्यवस्था, अहमान्यता, फिराकपरस्त, राजनीतिक आतंकवाद, धार्मिक आतंकवाद, गुरिल्ला युद्ध विधिक सहयोग तंत्र, अन्तर्राष्टôीय आतंकवाद।

आतंकवाद उस उन्मादपूर्ण हिंसा का परिणाम है, जो कुछ राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयुक्त की जाती है, जिनके आगे सभी मानवीय और नैतिक विश्वासों की बलि चढ़ा दी जाती है।

स्पष्ट है कि आतंकवाद एक ऐसा शब्द है, जिसकी परिभाषा स्थान, समय, परिवेश व उद्देश्य से बंधी हुई है और तद्नुरूप बदलती रहती है। एक देश, वर्ग, समूह या जाति, जिसे अपना न्यायोचित अधिकार प्राप्त करने या क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए किया जाने वाला 'संघर्ष' वाला मानता है, दूसरा पक्ष उसे 'आतंकवाद' की कार्यवाही कहकर निंदित करता है।

दक्षिण एशिया में आतंकवाद के कारण -

दक्षिण एशिया के लगभग सभी देशों में आतंकवादी गतिविधियां संचालित हो रही हैं। कहीं जातीय, धार्मिक असन्तोष व कहीं विरोधी गुटों (जो कि राष्ट्रीय सीमाओं से भी ऊपर उठ गए हैं) की प्रतिक्रियात्मक कार्यवाही के कारण भारत, श्रीलंका व पाकिस्तान जैसे देशों में आतंकवाद का खतरा बहुत अधिक बढ़ गया है, जिससे आज ये सभी राष्ट्र पीड़ित हैं। दक्षिण एशिया में आतंकवाद के निम्न कारण हैं।-

अल्पमत समुदायों में तादात्म्य संकट व आक्रोश

आतंकवाद का एक प्रमुख कारण इन सब दशों में जातीय-धार्मिक विविधता एवं कतिपय अल्पमत समुदायों में शासकीय प्रक्रियाओं के प्रति असंतोष एवं तीव्र आक्रोश है। इन समुदायों में आंतरिक एकता व आत्मबोध की भावना प्रबल होती है। आवश्यक नहीं है कि यह असंतोष सभी अल्पमत समुदायों में हो अथवा सभी में समान रूप से तीव्रता हो। भारत में मुस्लिम वर्ग की अपेक्षा ईसाई, श्रीलंका में ईसाइयों की (उप समूह वर्ग, रोमन केथोलिक्स सहित) अपेक्षा तमिल समूह व पाकिस्तान में बहुमत इस्लाम धर्म में ही शिया उप सम्प्रदाय या पख्तून, बलूची, मुहाजिर समुदाय अधिक असंतुष्ट हैं। दूसरे यह प्रवृति भी देखी जाती है कि असंतुष्ट वर्ग किन्हीं सही-सही कारणों से मतभेदों से असंतुष्ट हों, ऐसा सदैव नहीं होता, कभी-कभी अपेक्षाकृत लाभान्वित समुदाय भी अपने को पीड़ित या उपेक्षित मान लेते हैं और उग्रवादी या हिंसात्मक तरीकों से 'न्यायोचित' साधनों से अपने हिस्से की मांग करते हैं।

राजनीतिकरण एवं संरक्षण -

उग्रवादिता यदा-कदा आतंकवाद को प्रोत्साहित करती है। कभी-कभी महत्वाकांक्षी राजनीतिक समूह जनतांत्रिक व्यवस्था में स्वच्छ निर्वाचन के माध्यम से अपने विरोधियों को आगे बढ़ने से रोकने के लिए उग्रवादी तत्वों को संरक्षण व आर्थिक सहायता तक देते हैं। बाद में ये ही तत्व अधिक संगठित होकर अपने संरक्षकों के नियंत्रण से बाहर निकलकर क्षेत्र विशेष में अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए सचेष्ट हो जाते हैं।

आर्थिक शोषण व दमन -

विश्व के अन्य देषों की तरह दक्षिण एशिया में भी कुछ वर्गों में उग्रवाद व आतंकवादी साधनों के प्रचलन का कारण आंतरिक परिवेश में कतिपय वर्गों या स्वयं शासक वर्ग द्वारा कतिपय अन्य वर्गों का आर्थिक शोषण व दमन रहा है। 1971 से पूर्व अविभाजित पाकिस्तान पूर्वी बंगाल वासियों की प्रषासन में नौकरी, औद्योगिकीकरण आदि विभिन्न स्तरों पर उपेक्षा व शोषण की शिकायतें होती थीं।

श्रीलंका में अल्पमत तमिल समुदाय में असंतोष व उग्रवाद के विकास तथा आतंककारी गतिविधियों के अपनाए जाने के पीछे नागरिकता सम्बन्धी भेदभाव आदि कारण रहे हैं। भारत में पूर्वोत्तर क्षेत्र में आतंकवाद के पीछे आर्थिक शोषण की शिकायतें हैं। परंतु इसके साथ-साथ एक अन्य कारण वहाँ केन्द्रीय शासन द्वारा नागा उग्रवादी तत्वों के प्रति सहानुभूति व किसी रूप में उदार सहायता का निष्क्रिय पड़ोसी समुदायों (जैसे-खांसी, बोडो, मिजो आदि) भी प्रभाव पड़ा व उन्होंने भी नागाओं के उदाहरण को अपनाते हुए राज्य के अधिक आर्थिक मदद या स्वतंत्रता हेतु वैसे ही आंदोलन चलाऐ।

सीमापारीय समर्थन

दक्षिण एशिया में उपरोक्त कारणों के अलावा जो अन्य कारण आतंकवादी गतिविधियों के प्रचंड रूप के लिए उत्तरदायी है, उनमें सीमापारीय समर्थन है। भारत की विशेषकर पाकिस्तान से ऐसी विशेष शिकायतें रही हैं। निश्चित प्रमाणों सहित भारत की ओर से कहा गया कि पाकिस्तान की जासूसी संस्था आईएसआई ने पंजाब व कश्मीर में आतंककारी गतिविधियों को तीव्रतर करने के लिए विभिन्न स्थानों पर प्रषिक्षण कैम्प खोले एवं प्रशिक्षण के बाद शस्त्रास्त्र आदि की सहायता देता रहा है। ऐसे ही बांग्लादेश में पूर्वोत्तर भारत के बोडो उल्फा आदि उग्रवादियों के शरण पाने के समाचार रहे हैं, जिसकी चरम परिणति उल्फा नेताओं के बांग्लादेश में पाए जाने के समाचारों के साथ हुई, जिनके निष्क्रमण हेतु भारत को विशेष चेष्टा करनी पड़ी।

भारत के प्रति भी पड़ोसी देशों जैसे-बांग्लादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका आदि की ऐसी ही शिकायतें रही हैं। इसके अलावा आतंकवादी गतिविधियों को प्रोत्साहन देने में अमेरिका, यूरोप व पश्चिम एशिया में कई एक संगठनों द्वारा भी आतंकवादियों के लिए साधन जुटाए जाने के समाचार हैं।

यह स्पष्ट है कि बाह्य सहायता से उग्रवादी संगठन बढ़ते हैं, और उनका आत्मविश्वास व गतिविधियां अधिक संहारक हो जाती हैं, परंतु सारी परिस्थितियों, कारणों आदि पर विचार करने से स्पष्ट है कि आतंकवाद के मूल में आंतरिक परिवेश एवं घटनाक्रम विशेष रूप से उत्तरदायी है। वस्तुतः आतंकवाद का जन्म किसी समुदाय या क्षेत्र विशेषकर के लोगों में शोषण व उत्पीड़न की भावना अथवा अपने हितों या प्रभुत्व के बारे में अधिक महत्वाकांक्षी हो जाना प्रमुख कारण है। इनका सबका मिला-जुला रूप होने पर यह अधिक भीषण व खतरनाक हो जाता है।

भारत में आतंकवाद

नागा उपद्रव के रूप में आतंकवादी गतिविधियाँ वैसे तो स्वतंत्रता के बाद से ही देखने को मिलती हैं। पाकिस्तान द्वारा भी समय-समय पर कश्मीर में आतंकवादी गतिविधियों के संचालन का प्रयास किया जाता रहा है। लेकिन स्वतंत्रता के प्रथम तीन दशकों में पंजाब व अन्य राज्यों में भाषाई या अन्य क्षेत्रीय आधारों पर उग्र आन्दोलनों के बावजूद आतंकवाद एक समस्यात्मक प्रवृति के रूप में नहीं उभरा।[2]

कश्मीर में आतंकवाद

भारत के इस राज्य में आतंकवाद का बीजारोपण आजादी के साथ ही शुरू हो गया था, जबकि कश्मीर को हथियाने के लिये पाकिस्तान ने राज्य में कबाइलियों को भेजकर आतंकवादी गतिविधियों की शुरूआत की, जिन्हें भारतीय सेना द्वारा खदेड़ दिया गया। पाकिस्तान भारत के साथ इस मुद्दे पर 1947, 1965, 1972 व 1999 में चार युद्ध भी लड़ चुका है। इनमें पराजय के बाद उसने आतंकवादियों के माध्यम से छद्म युद्ध का कुचक्र रचा। कश्मीर के आतंकवादियों को पाकिस्तान सरकार द्वारा नैतिक, आर्थिक, शस्त्रास्त्र सहायता, आतंकवादियों को अपने यहाँ प्रशिक्षण इत्यादि खुलेआम दिया जा रहा है।[3]

आसाम व पूर्वोत्तर भारत के अन्य राज्य

भारत के इन राज्यों में भी आतंकवाद की समस्या प्रबल रूप में 1980 के दशक में देखने को मिली है, हालांकि इससे पहले भी वहां उग्र आन्दोलन होते रहे हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि स्वतंत्रता के समय असम एक बड़ा राज्य था। समय-समय पर इससे कतिपय हिस्से पृथक कर दिये गये, जैसे-नागालैण्ड, मेघालय, मिजोरम, अरूणाचल प्रदेश आदि। समृद्ध प्राकृतिक परिवेश में पले आसामियों की अहमान्यता या स्वाभिमान को ठेस पहुँचना स्वाभाविक था।[4]

पाकिस्तान में आतंकवाद

भारत में हिंसा व आतंकवाद को बढ़ावा देने वाला पाकिस्तान स्वयं आतंरिक आतंकवाद का शिकार हो रहा है। अनेक आतंकवादी संगठनों ने पाकिस्तान में ही हिंसात्मक अभियान छेड़ रखा है एवं हजारों निर्दोष लोगों को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी है। जेहाद व मजहबी जंग के नाम पर युवकों को भर्ती कर ये संगठन फिरकापरस्त गतिविधियों के लिए सैन्य प्रशिक्षण दे रहे थे।

वस्तुतः अपने स्वतंत्र अस्तित्व में अधिकांश समय सैनिक अधिनायकवाद होना, नागरिक व राजनीतिक अधिकारों पर अंकुश तथा मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का वैकल्पिक माध्यम न होना ये सभी तत्व पाकिस्तान में आतंकवाद को बढ़ावा देने में सहायक रहे हैं। पाकिस्तान में राजनीतिक आतंकवाद की समस्या मोटे तौर पर भुट्टो को फांसी के बाद शुरू हुई, भुट्टो के एक पुत्र ने अल जुल्फकार नामक आतंकवादी संगठन बनाया, जो कि सैनिक शाही से प्रतिरोध के राजनीतिक उद्देश्य से प्रेरित था। बाद में अन्य उद्देश्यों वाले निहित स्वार्थ भी उसमें आ गये तो अल जुल्फिकार, उससे अलग हो गया। विभिन्न आतंकवादी गुटों में प्रतिस्पर्द्धा होने लगी।[5]

भूटान में आतंकवाद

दक्षेस संघ का सदस्य राष्ट्र भूटान आतंकवाद की समस्या से ग्रसित होने वाला दक्षिण एशिया का नवीनतम राष्ट्र है। इस तरह की समस्या 1990 से देखने को मिलती है, जबकि नेपाल, बांग्लादेश एवं पाकिस्तान में संचालित जनतांत्रिक आन्दोलन की शैली पर भूटान में भी कतिपय सामाजिक तत्वों ने राजतंत्र के खिलाफ जनतांत्रिक आन्दोलन चलाने का प्रयास किया।

भूटान में एक और समस्या भारत के पूर्वोत्तर राज्यों से शरणस्थली की खोज में भागकर गये बोड़ो व उल्फा आतंकवादियों से सम्बन्धित है। इन्होंने भी दक्षिणी सीमा को अपना शरण स्थान बना रखा है, जहाँ इन आतंकवादियों ने दुकानें तक खोल ली हैं। यहीं जंगलों से ये गुरिल्ला युद्ध की गतिविधियों का संचालन करते हैं।[6]

श्रीलंका में आतंकवाद

दक्षिण एशिया में श्रीलंका आतंकवाद से अति पीड़ित देश है। राष्ट्रीय अस्मिता को खतरे की दृष्टि से यह भारत से भी अधिक खतरनाक स्थिति में है, क्योंकि आकार के हिसाब से भारत की तुलना में श्रीलंका के पास कम विकल्प हैं और आतंकवादियों को समुदायों का समर्थन प्राप्त है। यहाँ सिंहली बहुसंख्यक हैं, ये बौद्ध हैं तथा स्वयं को आर्य नस्ल का मानते हैं। एक अन्य समुदाय तमिल अल्पसंख्यकों का है, लेकिन शुरू से ही राजनीति और शिक्षा में ये वर्ग आगे रहा है, तथा आर्थिक गतिविधियों में भी इनकी अच्छी पैठ है।

तमिल आतंकवाद

श्रीलंका में लगभग 17 प्रतिशत मूल तमिल हैं, जो सदियों से वहाँ रह रहे हैं और 5-6 प्रतिशत अंग्रेजों के द्वारा चाय बागानों में काम करने हेतु ले जाए गए तमिल हैं। ये सिंहलियों से बराबरी की मांग करते रहे हैं। ये भाषा व धर्म का विकास भी अपनी इच्छानुसार करने की मांग उठाते रहे हैं। विभिन्न शासकीय संस्थाओं में अपेक्षित प्रतिनिधित्व दिया जाए तथा स्वायत्तता प्रदान किये जाने की मांग करते रहे हैं।

सिंहली आतंकवाद

श्रीलंका में बहुसंख्यक सिंहली भी बेकारी, निर्धनता आदि समस्याओं से संत्रस्त होकर व उग्र मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव में उग्र या आतंकवादी कार्यवाहियों में लिप्त रहे हैं। 'जनता विमुक्ति पेरामुना' (श्रण्टण्च्ण्द्ध नाम से गठित यह मुख्यत: सिंहलियों का संगठन है जो कि पिछड़े व निम्न वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में शासन संचालन चाहते हैं।

नेपाल में आतंकवाद

हिमालय की गोद में बसे छोटे से राज्य नेपाल में आतंकवाद की विशेष समस्या नहीं है। कुछ छोटे-छोटे क्षेत्रों में उग्र माओवादी, तथा स्थानीय गतिविधियों को प्रभावित करते हैं। परन्तु राष्ट्रीय दृष्टि से उतना महत्व नहीं है। अन्य कोई बड़ा आतंकवादी संगठन नहीं है। लेकिन भारत के साथ खुली सीमा होने के कारण पाकिस्तान की खुफिया एजेन्सी आई.एस.आई के एजेन्टों ने अपनी गतिविधियों के कुछ केन्द्र यहाँ भी बना लिए हैं, जो भारत को निशाना बनाते हैं। तथा 1990 से यह समस्या बढ़ी है। आई.एस.आई. द्वारा प्रशिक्षित आतंकवादी संगठन अपनी हिंसात्मक कार्यवाहियों को पड़ोस में भारत के विभिन्न राज्यों-कश्मीर, उत्तर प्रदेश, दिल्ली आदि में समय-समय पर बम विस्फोट, हिंसा, मादक पदार्थों की तस्करी इत्यादि कार्यवाहियाँ करते हैं।

बांग्लादेश में आतंकवाद

भाषा, क्षेत्र एवं संस्कृति की दृष्टि से भारत के पड़ोसी राष्ट्र में काफी एकरूपता पाई जाती है। परन्तु यहाँ चकमा जनजाति के असंतोष ने आतंकवादी गतिविधियों को जन्म दिया है। स्वायत्तता के लिये इनका संघर्ष जारी है। चकमा लोग मूलत: बौद्ध हैं व इनमें कुछ ईसाई भी हैं। चटगाँव पहाड़ी क्षेत्र में बांध बनाने व मुस्लिम कृषकों के चटगाँव में कृषि योग्य भूमि हथियाने से काफी चकमा लोक बेघरबार व बेकार हो गए। चकमाओं द्वारा इसका विरोध किया गया। असफल रहने पर उग्र आन्दोलन भी हुआ, जिसे सरकार द्वारा समय-समय पर दबाया गया।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि आतंकवाद से न्यूनाधिक दक्षेस संघ के सभी देश पीड़ित रहे हैं। इनमें श्रीलंका के लिए जहाँ अखंडता एवं अस्मिता की रक्षा का प्रश्न खड़ा हो जाता है, वहीं पश्चिमोत्तर एवं पूर्वोत्तर दोनों भागों में आतंकवाद की भीषणता भारत के लिए भी एक सीमा तक सही हैं। कुल मिलाकर जन-धन की व्यापक हानि के अलावा तथ्य यह है कि इससे राज्य की शक्ति और साधनों को अनुत्पादक कार्यों की ओर मोड़ना पड़ता है। विश्व के अन्य भागों में भी यह समस्या बनी हुई है, तथा सर्बिया (पूर्व यूगोस्लाविया), पश्चिम एशिया में इजराइल व लैटिन अमेरिका में कई देशों की अलग-अलग शैलियां रही हैं। दक्षेस ने विविध शिखर सम्मेलनों में आतंकवाद उन्मूलन के प्रयास किए हैं।[7] यथा -

शिखर सम्मेलनों की घोषणाओं में आतंकवाद

सबसे पहले शिखर सम्मेलन (ढाका, 1985 के दिसंबर में) की घोषणा में इस मुद्दे को साझा संवाददाता सम्मेलन में उठाया गया। सदस्य देशों ने इस बात का अनुमोदन किया कि आतंकवाद की समस्या की जाँच के लिए स्थाई समिति को अध्ययन समूह गठित करना चाहिए क्योंकि इससे दक्षेस के सदस्य देषों की सुरक्षा और स्थिरता प्रभावित होती है। उन्होंने मंत्रिपरिषद को इस अध्ययन समूह की रिपोर्ट पर विचार करके यह सिफारिश देने के लिए भी आदेशित किया कि इसे हल करने के लिए सदस्य देश आपस में किस प्रकार सर्वोत्तम सहयोग कर सकते हैं। उन्होंने नशीली दवाओं की तस्करी और उसके दुरुपयोग की समस्या पर भी ऐसी ही कार्यवाई करने के प्रस्ताव का अनुमोदन किया।[8]

दूसरे शिखर सम्मेलन (बेंगलुरू, 1986 में नवंबर में) राष्ट्र और सरकार के मुखियाओं ने इस बात पर सहमति जताई कि यदि क्षेत्र में आतंकवाद को रोकना और उसे जड़ से उखाड़ना है तो दक्षेस के सदस्य देशों को आपस में सहयोग करना ही पड़ेगा। उन्होंने संयुक्त राष्ट्र प्रस्ताव संख्या 2625 में निर्धारित सिद्धान्तों के महत्व को स्वीकार किया, जिसमें अन्य बातों के अलावा यह आवश्यक है कि हरेक देश को किसी भी दूसरे देश में सामाजिक अशांति फैलाने अथवा आतंकवादी हरकतों को संगठित करने, बढ़ावा देने, सहायता करने अथवा उन्हें अंजाम देने अथवा ऐसी हरकतों के लिए अपनी सीमा के भीतर संगठित कार्यवाई होने देने से बचना होगा।[9]

तीसरे शिखर सम्मेलन में (कांठमांडू में 1987 में नवंबर में) राष्ट्राध्यक्षों और सरकार प्रमुखों ने आतंकवाद की रोकथाम पर दक्षेस क्षेत्रीय घोषणा के अनुमोदन पर खुशी जताई। उन्होंने इस उपलब्धि को क्षेत्र में से आतंकवाद के उन्मूलन और उसकी रोकथाम के लिए ऐतिहासिक शुरूआत बताया।

चौथे शिखर सम्मेलन (इस्लामाबाद में 1998 में नवंबर में) राष्ट्राध्यक्षों और सरकार प्रमुखों ने इस बात पर संतोष जताया कि आतंकवाद की रोकथाम संबंधी दक्षेस घोषणा अनुमोदन के बाद 1988 में 22 अगस्त से लागू हो चुकी है। उससे सदस्य देशों की दक्षिण एशियाई क्षेत्र से आतंकवाद के अभिशाप को उखाड़ फेंकने के लिए सार्थक सहयोग की दृढ़ इच्छाशक्ति जाहिर होती है। उन्होंने सदस्य देशों से घोषणा को जल्द से जल्द लागू करने के लिए समुचित व्यवस्था करने की अपील की।

पांचवें शिखर सम्मेलन (माले में 1990 में नवंबर में) राष्ट्राध्यक्षों और सरकार प्रमुखों ने इस बात पर चिंता जताई कि सदस्य देशों को अपने सीमित संसाधन आतंकवाद के मुकाबले के लिए खर्च करने पड़ रहे हैं। उन्होंने आतंकवाद की रोकथाम के लिए दक्षेस क्षेत्रीय घोषणा को लागू करने के लिए देशों में जल्द से जल्द समुचित व्यवस्था करने की अपील की। राष्ट्राध्यक्षों और सरकार प्रमुखों ने नशीली दवाओं की तस्करी और उसके दुरुपयोग से निपटने के लिए बढ़ते क्षेत्रीय सहयोग पर संतोष जताया। उन्होंने नशीली दवाओं की तस्करी और हथियारों की अन्तरराष्ट्रीय तस्करी तथा आतंकवादी गतिविधियों के बीच बढ़ते संबंधों पर भी गंभीर चिंता जताई।

छठे शिखर सम्मेलन में राष्ट्राध्यक्षों और सरकार प्रमुखों ने (कोलंबो में 1991 में दिसंबर में) क्षेत्र में आतंकवाद के पांव पसारने और उससे सभी सदस्य देशों की सुरक्षा और स्थिरता पर असर पड़ने पर चिंता दोहराई। उन्होंने यह स्वीकार किया कि यदि क्षेत्र में से आतंकवाद का उन्मूलन और रोकथाम करना है तो दक्षेस के सदस्य देशों को आपस में सहयोग करना ही पड़ेगा। इस बारे में उन्होंने सदस्य देशों से आतंकवाद की रोकथाम के लिए दक्षेस क्षेत्रीय घोषणा को लागू करने के लिए उसके तहत अपने सभी दायित्वों को पूरा करने संबंधी सभी आवश्यक कार्यवाई पूरी करने का आह्वान किया।

सातवें शिखर सम्मेलन (कोलंबो में 1993 कें अप्रैल में) राष्ट्राध्यक्षों और सरकार प्रमुखों ने इस मुद्दे पर अपनी चिंता दोहराई तथा आतंकवाद के खराब परिणामों की कड़ी निंदा की। यह मानते हुए कि सलाह-मशविरे और सूचना के आदान-प्रदान का सिलसिला शुरू हो चुका है, उन्होंने इन क्षेत्रों में सहयोग और बढ़ाने तथा समन्वित कार्यवाही की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने कोलंबो शिखर सम्मेलन के अपने फैसले के अनुरूप इस बारे में सहयोग बढ़ाए जाने संबंधी सिफारिशों पर तेजी से अमल करने भी जरूरत बताई। इतना ही नहीं, राष्ट्राध्यक्षों और सरकार प्रमुखों ने क्षेत्र में नशीली दवाओं की तस्करी के बढ़ते अभिशाप तथा दक्षिण एशिया की आबादी, विशेषकर युवाओं में नशे की लत बढ़ने पर भी गहरी चिंता दोहराई।

आठवें शिखर सम्मेलन (नई दिल्ली 1995 की मई में) राष्ट्राध्यक्षों और सरकार प्रमुखों ने क्षेत्र के भीतर तथा उसके बाहर भी आतंकवाद के पैर पसारने पर गंभीर चिंता जताई और सभी प्रकार की आतंकवाद कार्यवाई, हथकंडों तथा व्यवहारों की घोर निंदा करते हुए उसे आपराधिक ठहराया। उन्होंने फिर इस बात पर जोर दिया कि आतंकवाद की रोकथाम पर दक्षेस क्षेत्रीय घोषणा को लागू करने के लिए राष्टठीय स्तर पर सहायक कानून बनाने को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

माले में 1997 में आयोजित नवें शिखर सम्मेलन में राष्ट्राध्यक्षों और सरकार प्रमुखों ने अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद के उन्मूलन के उपायों संबंधी 1996 की संयुक्त राष्ट्र की घोषणा के अनुमोदन को याद किया और सभी सदस्य देशों से उसे लागू करने के प्रयास करने की अपील की। उन्होंने शरणार्थियों संबंधी घोषणाओं का दुरुपयोग रोकने और दक्षिण एशिया में अपनी गतिविधियों के लिए पैसा जमा करने में मददगार आतंकवादियों की कारगुजारियां रोकने के लिए अंतरराष्ट्रीय कार्यवाई की मांग की।

कोलंबो में 1998 की जुलाई में आयोजित दसवें शिखर सम्मेलन में राष्ट्राध्यक्षों और सरकार प्रमुखों ने यह स्वीकार किया कि दक्षिण एशिया के लोगों पर आतंकवाद और नशीली दवाओं को गंभीर खतरा अपने हरेक रूप और रंग में लगातार मंडरा रहा है। उन्होंने क्षेत्र में ऐसी तमाम गतिविधियों के भरपूर मुकाबले की अपनी स्पष्ट प्रतिबद्धता दोहराई। उन्होंने फिर इस बात पर जोर दिया कि आतंकवाद की रोगथाम पर दक्षेस घोषणा और नशीली दवाओं तथा मनोविचलन पदार्थों पर घोषणा को लागू करने लिए राष्ट्रीय स्तर पर सहायक कानून बनाने को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

काठमांडू में 2002 की जनवरी में आयोजित ग्यारहवें शिखर सम्मेलन में राष्ट्राध्यक्षों और सरकार प्रमुखों ने इस बात पर आम सहमति जताई कि आतंकवाद अपने हरेक रूप-रंग में सभी देशों और सारी मानवता के लिए खतरा है और वैचारिक, राजनीतिक, धार्मिक, अथवा किसी अन्य बहाने से कतई भी सही नहीं ठहराया जा सकता है। नेता इस बारे में सहमत थे कि आतंकवाद से दरअसल संयुक्त राष्ट्र के बुनियादी मूल्यों ओर दक्षेस घोषणा पत्र के प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन होता है। साथ ही इक्कीसवीं सदी में आतंकवाद अंतराष्ट्रीय शांति एवं स्थिरता के लिए सबसे बड़ा खतरा है। राष्ट्राध्यक्षों और सरकार प्रमुखों ने 2001 में अपनाए गए 28 सितंबर के संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव 1373 के प्रति समर्थन दोहराया। साथ ही आतंकवाद को हरेक रूप-रंग में सामूहिक रूप में एवं अलग-अलग रहकर भी समाप्त करने एवं कुचलने और अधिक प्रयास करने की प्रतिबद्धता भी जताई।[10]

राष्ट्राध्यक्षों और सरकार प्रमुखों ने आतंकवाद की रोकथाम पर दक्षेस क्षेत्रीय घोषणा के लिए प्रतिबद्धता दोहराई, जिसके तहत अन्य बातों के अलावा आतंकवाद की समस्या की गंभीरता को भी स्वीकार किया गया है क्योंकि उससे क्षेत्र की सुरक्षा, स्थिरता और विकास में बाधा होती है। उन्होंने घोषणा को आमूल-चूल निश्चित समय सीमा में लागू करने के लिए सहायक कानून बनाने की प्रक्रिया तेज करने का दृढ़ संकल्प भी दोहराया।

इस्लामाबाद में 2004 की जनवरी में आयोजित बारहवें शिखर सम्मेलन में सदस्यों ने आतंकवाद के मुकाबले के लिए अपनी प्रतिबद्धता दोहराते हुए कहा कि दक्षिण एशिया की जनता आतंकवाद के गंभीर संकट से ग्रस्त है। उन्होंने कहा कि आतंकवाद की वित्तीय मदद के सरंजाम से असरदार रूप में निपटने

के लिए आतंकवाद की रोकथाम पर दक्षेस घोषणा की परिपूरक घोषणा का अनुमोदन दक्षिण एशियाई देशों में आतंकवाद उन्मूलन की प्रतिबद्धता का फिर से इजहार है। ढाका में 2005 के नवंबर में आयोजित तेरहवें शिखर सम्मेलन में राष्ट्राध्यक्षों और सरकार प्रमुखों ने आतंकवाद की रोकथाम पर दक्षेस क्षेत्रीय घोषणा की परिपूरक घोषणा के सभी सदस्य देशों द्वारा अनुमोदन पर संतोष जताया और प्रावधानों को लागू करने की उपयुक्त व्यवस्था करने का अनुरोध भी किया। उन्होंने आतंकवाद हिंसा के सभी रंग-रूपों की निंदा और इस बात पर सहमति जताई कि आतंकवाद सभी देशों के लिए चुनौती तथा पूरी मानवता के लिए खतरनाक है। उसे किसी आधार पर न्यायपूर्ण नहीं ठहराया जा सकता। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि आतंकवाद के मुकाबले की मुहिम में कहीं भी दोगलापन नहीं अपनाया जाना चाहिए। क्षेत्र में लगातार हो रही ताजा आतंकवादी वारदातों और सुरक्षा, आर्थिक स्थिरता तथा सामाजिक विकास पर उसके असर के मद्देनजर उन्होंने आतंकवाद की रोकथाम तथा उसके उन्मूलन के लिए साझे प्रयास करने का संकल्प किया।[11]

नई दिल्ली में 2007 के अप्रैल में आयोजित चौदहवें दक्षेस शिखर सम्मेलन में राष्ट्राध्यक्षों और सरकार प्रमुखों ने अपनी चिंता दोहराते हुए नागरिकों की योजनाबद्ध हत्या और आतंकवादी हिंसा की उसके सभी रंग-रूपों सहित निंदा की भले ही वह कहीं भी और किसी के भी खिलाफ की गई हो। राष्ट्राध्यक्षों और सरकार प्रमुखों का मत था कि आतंकवाद दरअसल संयुक्त राष्ट्र और दक्षेस के घोषणा पत्रों के सिद्धान्तों का उल्लंघन है और अंतरराष्ट्रीय शांति और स्थिरता के लिए स्पष्ट एवं वर्तमान खतरा है उन्होंने आतंकवाद के मुकाबले के लिए उससे संबंधित उन सभी अंतरराष्ट्रीय घोषणाओं के अनुपालन की प्रतिबद्धता जताई, जिनका अनुमोदन दक्षेस के सदस्य देशों ने कर रखा है। इनमें आतंकवाद की रोकथाम पर दक्षेस घोषणा की परिपूरक घोषणा भी शामिल है, जिसमें आतंकवाद से निपटने के लिए वित्तीय सहायता की रोकथाम और उन्मूलन का प्रवधान है।

राष्ट्राध्यक्षों और सरकार प्रमुखों ने आतंकवाद, नशीली दवाओं और मनोविचलन पदार्थों और महिलाओं एवं बच्चों की तस्करी तथा अन्य बहुराष्ट्रीय अपराधों के मुकाबले के लिए दक्षेस की वर्तमान घोषणाओं के प्रावधानों को लागू करने की प्रक्रिया तय करने पर सहमति जताई। उन्होंने विशेषकर आतंकवादी वारदातों के लिए पैसा जुटाने की कोशिश, ऐसे कामों के लिए चंदा जमा करने, भले ही वो बेमानी संगठनों के मार्फत हो, को आपराधिक कार्यवाई घोषित करके उसकी रोकथाम के लिए सभी जरूरी उपाय करने की प्रतिबद्धता जताई।[12] थिम्पू घोषणा पत्र में भी भारत व पाक ने आतंकवाद पर गहरी चिन्ता जताई, और 17वें सम्मेलन नवम्बर 2011 में अद्दु घोषणा पत्र अंगीकार किया गया और उसमें कहा गया था कि यह समूह आतंकवाद के सभी हथकण्डों में मौजूद होने के जोखिम से गहन चिंतित है। आतंकवाद से मुकाबला तथाा उसे जड़ से उखाड़ने के लिए सम्मेलन ने अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद पर आपसी सहयोग पर दक्षेस घोषणा पत्र को शीघ्र अनुमोदित करने की अपील की। नवम्बर, 2014 के काठमांडू घोषणा पत्र में भी कहा गया कि आतंकवाद उन्मूलन के पश्चात ही दक्षेस देशों में व्यापार की स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा हो सकती है। दक्षेस के आर्थिक व्यवहार की कुछ नवीन प्रवृतियां उभरकर सामने आ रही हैं जो कि दक्षेस को आशान्वित करती हैं। बस आवश्यकता है कि दक्षेस क्षेत्र शान्तिपरक क्षेत्र रहे।[13]

निष्कर्ष-

आतंकवाद की समस्या जिसे समाज व राज व्यवस्था को खतरा माना जा सकता है, से निपटने के लिये दक्षेस राज्यों में आपसी सहयोग को निम्न रूपों में निर्देशित किया जाये।

1. सदस्य राष्ट्रों के मध्य आतंकवादी कृत्यों की अवधारणा व रूप ताकि उनके लिए दंड व्यवस्था के सन्दर्भ में कानूनों में समानता होनी चाहिये।
2. सदस्य राष्ट्रों के मध्य आतंकवादी गतिविधियाँ जो अन्तर्राष्ट्रीय तत्वों की वजह से उत्पन्न हो रही हैं, के सन्दर्भ में कोई 'विधिक सहयोग तंत्र' विकसित किया जाना चाहिये।
3. दक्षेस देशों के मध्य एक से अधिक देशों में सामान्य अपराध हेतु 'क्षेत्रीय अपराध न्याय व्यवस्था' होनी चाहिये, जोकि 'दक्षेस अपराध न्यायालय' के रूप में कार्य करें या फिर अस्थायी न्यायालय या किसी अन्य अधिकरण के अधीन कार्य करे जिनकी स्थापना आतंकवाद से सम्बन्धित अपराधों के निपटारे हेतु की जाये।
4. आतंकवादी कृत्यों के लिये कठोर दण्ड के प्रावधान की व्यवस्था की जानी चाहिये (लम्बी अवधि का कारावास या फिर मृत्यु दण्ड आदि) तथा सदस्य देश इस मामले में संकीर्ण लाभ की दृष्टि से न सोचें।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. सहगल, वी.पी.(स.), ग्लोबल टैरिरिज्मः सोशियो, पालिटिको एण्ड लीगल डाइमेंशन, दीप एण्ड दीप, नई दिल्ली 1995, पृ. 142-143
2. सिंह, डा0 हरबीर, दक्षेस संघ, लक्ष्य एवं उपलब्धियाँ, पृ. 251
3. सहगल, वी.पी. (उपरोक्त)
4. राय, एम.पी.एण्ड जैन शशि के., भारतीय सरकार एवं राजनीति 1992
5. सिंह, डा0 हरबीर, (उपरोक्त), पृ. 261-262
6. कमलजीत, 'भूटान फेसिंग ट्रबल्स' वर्ल्ड फोकस, नई दिल्ली, 1991, पृ.76-78
7. सिंह, डा0 हरबीर, (उपरोक्त), पृ. 265-266
8. हिन्दुस्तान टाइम्स (नई दिल्ली), दिसम्बर 9, 1985
9. 'द हिन्दू', (नई दिल्ली), नवम्बर 19, 1986
10. शर्मा, भावनाः नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था व दक्षिण एशियाई देश, पृ. 274-277
11. इण्डियन एक्सप्रेस (नई दिल्ली), नवम्बर 14, 2005
12. पदमजा मूर्ति 'सार्क में आतंकवाद का मुकाबला', वर्ल्ड फोकस, नवम्बर 11, 2012
13. डा. स्मृति, एस. पटनायक 'सार्क और दक्षिण एशिया में सुरक्षा के मुद्दे', वर्ल्ड फोकस, नवम्बर 2012, पृ. 87

अभिनेयता की कसौटी पर लहरों के राजहंस

डॉ० सुनीता

एसोसिएट प्रोफेसर, आर.जी (पी.जी.) कॉलेज, मेरठ

हिन्दी नाटक यद्यपि संस्कृत की गौरवमयी विरासत से सम्पन्न था, तथापि वह अपने समृद्ध अतीत के अनुरूप विकास को प्राप्त नहीं कर सका। हिन्दी नाट्य-साहित्य के इस पिछड़ेपन का कारण नाट्यानुकूल रंगमंच का अभाव ही है। चूँकि नाटक का सम्बन्ध रंगमंच से होता है और वास्तविकता यह है कि नाटक अभिनय के माध्यम से रंगमंच पर ही अपनी पूर्ण अर्थवत्ता को प्राप्त करता है, अत: यदि अभिनय और रंगमंच को नाटक की मूल अर्थवत्ता से जोड़ दिया जाये तो कोई अत्युक्ति न होगी, लेकिन हिन्दी नाटक को आरम्भ से ही 'रंगमंचीय साहित्यिक विधा' न मानकर केवल 'साहित्यिक विधा' के रूप में देखा गया और नाट्य-विधा के साथ हुई इस नासमझी में नाटककार का भी उतना ही हाथ है, जितना कि नाट्य समीक्षकों का। हिन्दी नाट्य जगत में 'भारतेन्दु' के पश्चात् 'प्रसाद' तक जितना भी नाट्य लेखन हुआ उसमें नाटक की रंगमंचीयता की पूरी तरह उपेक्षा की गयी है, और इस उपेक्षा ने नाटक और रंगमंच तथा रंगमंच और अभिनेयता के अपरिहार्य सम्बन्ध को विच्छिन्न ही नहीं किया अपितु नाटकों से उनकी 'विशिष्ट कलात्मक अभिव्यक्ति' को भी छीना है। हिन्दी नाट्य-जगत में एक लम्बे अंतराल के बाद मोहन राकेश के रूप में एक ऐसा नाट्य व्यक्तित्व सामने आया जिसने 'नाटक और रंगमंच' का मुहावरा देते हुए नाटक के लिए रंगमंच की अनिवार्यता को स्वीकारा ही नहीं अपितु अपने नाटकों के द्वारा प्रेक्षक की नाटकीय समझ में अभिवृद्धि और रंगमंच में आवश्यक व उचित परिवर्तन भी किये। मोहन राकेश देशकालातीत जिज्ञासाओं व प्रश्नों को आत्मिक अनुभूतियों के आधार पर गहन-आत्ममंथन के पश्चात् नाट्याभिव्यक्ति देने वाले ऐसे नाटककार थे जो समाज अथवा साहित्य के किसी भी क्षेत्र में किसी भी वाद विशेष से नहीं बंधे थे, इसी कारण इनकी निजी जिन्दगी को देखें अथवा साहित्य सर्जना को, सर्वत्र एक नवीनता का आग्रह दिखाई देता है। नाटककार मोहन राकेश सम्भवतया ऐसे पहले नाटककार थे जिन्होंने सर्वप्रथम अनुभव किया कि नाट्य-साहित्य की रूढ़ मान्यताएँ नाट्य-साहित्य शैली के वैविध्य को संभालने में निरन्तर अक्षम होती जा रही है और इनकी यह अक्षमता रूढ़ मान्यताओं में सर्वतोन्मुखी परिष्कार की अपेक्षा करती है। नाट्य-साहित्य की इस अपेक्षा के अनुरूप ही राकेश के नाटकों में भाषा-शैली हो अथवा संवाद, अभिनय हो अथवा रंगमंच प्रत्येक स्तर पर एक नवीन उद्भावना के दर्शन होते हैं।

नाटककार मोहन राकेश का 'आरम्भ' की दृष्टि से प्रथम और प्रकाशन की दृष्टि से द्वितीय 'लहरों के राजहंस' एक ऐसा नाटक है जो हिन्दी रंगमंच व अभिनय की दृष्टि से यह नाटक न तो परम्परित भारतीय रंगमंच व अभिनय के अनुकूल पड़ता है और न ही पश्चिमी रंगमंच की नकल की अपेक्षा करता है बल्कि इनसे पृथक् इनसे कहीं अधिक सार्थक नवीन रंगमंच पर अभिनय के नये आयामों को उद्घाटित करता है। 'लहरों के राजहंस' नाटक पर प्रथम दृष्टिपात से ही स्पष्ट हो जाता है कि इस नाटक में अभिनय के पर्याप्त अवसर हैं। अभिनेयता की दृष्टि से कोई भी नाटक आकार की लघुता, पात्रों की सीमित संख्या, समय व स्थान की अन्विति, संक्षिप्त व सशक्त अभिव्यक्ति क्षमता से समन्वित संवाद, सूच्य व दृश्य घटनाओं का उचित तालमेल, गहन वैचारिकता का अभाव तथा रंगमंच सज्जा विषयक उचित निर्देशों की अपेक्षा करता है।

कथानक की संक्षिप्तता इस कारण से आवश्यक मानी जाती है कि दर्शक वर्ग प्रसंगों के अनावश्यक विस्तार से ऊब व नीरसता का अनुभव करने लगता है। 'लहरों के राजहंस' नाटक का कथानक संक्षिप्त, सुगठित व आकर्षक है। आधुनिक यथार्थवादी नाटकों की भाँति इसका कथानक तीन अंकों में विभक्त है और प्रत्येक अंक क्रमश: आरम्भ, विकास और चरम परिणति पर समाप्त होता है। प्रथम अंक में नन्द और सुन्दरी की कथा के माध्यम से संकेत किया गया है कि नन्द का मन बौद्ध धर्म के प्रति आकर्षित है, कामोत्सव के उल्लासमय वातावरण के मध्य मृत-मृग के प्रसंग का समायोजन नाटककार ने आगामी अंक के सम्भाव्य की ओर संकेत के लिए ही किया है। प्रथम अंक में जहाँ एक ओर नन्द के मन में स्थित पत्नी प्रेम व बुद्धत्व के प्रति आकर्षण का संकेत मिलता है वहीं दूसरी ओर सुन्दरी के प्रेमाहंकार व रूप गर्व की भी झलक मिलती है। द्वितीय अंक में कथानक के इन संकेतों का विकास होता है। बुद्धत्व के प्रति आकर्षित नन्द बुद्धागमन व उनके निराश प्रत्यागमन को जानकर नदी तट पर उनसे क्षमा याचना हेतु जाते हैं और दूसरी ओर सुन्दरी का रूप दर्प व प्रेम गर्व भी उतना बढ़ जाता है कि वह स्वयं नन्द के न चाहने पर भी उन्हें नदी तट पर भेज देती है। तृतीय अंक में प्रथम अंक के संकेत विकास के पश्चात् चरम परिणति पर पहुँच जाते हैं, यहाँ नन्द के मन का द्वन्द्व निरन्तर बढ़ते हुए एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाता है जहाँ सुन्दरी के प्रति प्रेम व बुद्धत्व के प्रति आकर्षण दोनों भाव समान प्राबाल्य से नन्द को अपनी-अपनी ओर आकर्षित करते हैं, इसी दुविधाग्रस्त स्थिति में नन्द को बलात् दीक्षित कर दिया जाता है किन्तु इस बलात् आरोपित दीक्षा से अनायास ही सुन्दरी का प्रभाव बुद्ध प्रभाव पर पुन: भारी पड़ता है और सुन्दरी के प्रभाव की यह प्रबलता नन्द को पुन: राजमहल में ले आती है, लेकिन यहाँ आकर दोनों (नन्द और सुन्दरी) एक दूसरे को न समझते हुए एक दूसरे के द्वारा न समझे जाने की शिकायत करते हैं। नाटक के मूलकथ्य 'द्वन्द्व' व अन्तहीन तलाश की चरम परिणति पर नाटक का अन्त हो जाता है। अत: 'लहरों के राजहंस' नाटक का जो कथानक तीन अंकों में विभक्त है ''वह पूरी तरह शृंखलित और पुष्ट है। नाटक का आकार संक्षिप्त है.....उसमें छोटे-छोटे तीन अंक हैं और हरेक अंक में एक ही दृश्यबंध पर नाटक की कथा घटित होती है और यथार्थवादी नाट्य-रचना पद्धति में एक दृश्य-बंध और तीन अंकों वाले नाटकों का विकास आधुनिक रंगमंच के स्वरूप और प्रदर्शन की परिस्थितियों तथा साधनों के कारण हुआ है और उसके पीछे एक शिल्पगत अनिवार्यता है।''[1]

अभिनय और रंगमंचीय सफलता की दृष्टि से नाटक के पात्रों की संख्या का विशेष महत्व है। यदि नाटक में अधिक पात्र होंगे तो जहाँ नाटक के मंचन के लिए अधिक अभिनेताओं की आवश्यकता होगी, वहीं प्रेक्षक के लिए पात्रों के नाम याद रखना व अधिक पात्रों के मध्य मूल कथा वृत्त से सम्पर्क बनाये रखना भी कठिन हो जायेगा। 'लहरों के राजहंस' नाटक में पात्रों की संख्या सीमित है, प्रमुख पात्र मात्र दो ही हैं- नन्द और सुन्दरी। इनके अतिरिक्त श्वेतांग, श्यामांग, अलका, निहारिका तथा भिक्षु आनन्द की भी नाटक में संक्षिप्त, अर्थयुक्त भूमिकाएं हैं। कुछ पात्रों का मात्र नामोल्लेख ही है, यथा- यशोधरा, लोहिताक्ष, नीलवर्मा, अग्निवर्मा आदि इन पात्रों के अतिरिक्त मंच से अलग किन्तु मंच पर निरन्तर अपना आभास कराने वाले पात्र हैं- गौतम बुद्ध। छोटी-बड़ी सभी भूमिकाओं में मात्र ये ही गिने-चुने पात्र मंच पर आते हैं, स्पष्ट है कि पात्रों की संख्या की दृष्टि से यह नाटक पूर्ण अभिनेय है और रंगमंचीय अपेक्षाओं पर खरा उतरता है।

रंगमंचीय दृष्टि से नाटक में स्थान व समय की अन्विति का निर्वाह अत्यधिक आवश्यक माना जाता है। समय की अन्विति से तात्पर्य है कि नाटक में कम-से-कम समय तथा कम-से-कम स्थानों पर घटित घटनाओं का समावेश होना चाहिए। समय की अन्विति इसलिए आवश्यक है कि यदि नाटक के पात्रों के जीवन के विभिन्न कालों (युवावस्था, वृद्धावस्था) का चित्रण नाटक में किया जायेगा तो उनके अभिनय में स्वाभाविकता का निर्वाह नहीं हो सकेगा और यदि अनेक स्थानों पर घटित घटनाएँ नाटक में दिखायी जाये तो बार-बार रंगमंच के दृश्य में परिवर्तन करना होगा जिससे नाटक के मंचन में व्यवधान पड़ेगा व दर्शकों की एकाग्रता भंग होने से रस का भी ह्रास होगा। 'लहरों के राजहंस' नाटक में समय व स्थान की अन्विति का निर्वाह एक सीमा से आगे तक किया गया है। समय की दृष्टि से 'लहरों के राजहंस' नाटक अरस्तु के नाट्य सिद्धान्त के अनुसार मात्र 24 घण्टे की घटनाओं को प्रस्तुत करता है- नाटक का आरम्भ संध्या के पश्चात् होता है और फिर दूसरी संध्या के पश्चात् नाटक का अन्त हो जाता है। स्थान एक्य की दृष्टि से नाटक की घटनाएँ नन्द और सुन्दरी के भवन के बाहर नहीं जाती। नाटक की जो घटनाएँ (नन्द का नदी तट पर जाना, केश काटना, तथागत द्वारा उपदेश देना आदि) नन्द के कक्ष से बाहर नदी तट पर घटित होती हैं वे सूच्य रूप में सामने आयी हैं। अत: स्पष्ट है कि- ''एक ही स्थान पर नाटक की सभी घटनाएँ दिखाकर नाटककार ने स्थान अन्विति का पूरी तरह पालन किया है। स्थान अन्विति के साथ-साथ इस नाटक में काल और व्यापार की अन्वितियों का भी पालन किया गया है।''[2]

'लहरों के राजहंस' नाटक के संवाद संक्षिप्त होने के साथ-साथ नाटककार के उद्देश्य, पात्रों के चरित्र व मन:स्थितियों के उद्घाटन में भी सहायक सिद्ध हुए हैं यद्यपि इस नाटक में नन्द के एकालाप कुछ लम्बे हो गए हैं, लेकिन वे भाषा के नुकीलेपन व भावों की अजस्र धारा से समन्वित होकर ऊबाउ होने से बच गये हैं। रंगमंचीय दृष्टि से राकेश ने संवादों के अतिरिक्त शब्दों के अंतराल में आये शून्य का जो प्रयोग किया है वह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। राकेश की नाट्य शैली की विशिष्टता यद्यपि नये नाट्य शब्दों की खोज में थी, तथापि शब्दों का अतिरिक्त मोह उनके नाटकों में कहीं दिखाई नहीं देता, बल्कि 'मूक अभिनय का सुन्दर व विशिष्ट प्रयोग ही उनके नाटकों को रंगमंचीय दृष्टि से अधिक सफल बनाता है- ''नाटकीय रंगमंच के अन्तर्गत मूक अभिनय भी लम्बी नि:शब्दता की तरह शब्दों के बीच एक कड़ी है। शब्दों से उद्भूत बिम्ब में से एक बिम्ब यह भी हो सकता है, होता है। हमारा भाषा संस्कार इस बात का प्रमाण है कि शब्दों की यात्रा में बहुत-बार, बहुत-कुछ अनकहे शब्दों द्वारा कहा जाता है। ये अनकहे शब्द बिम्ब के साथ-साथ यात्रा करते हुए बिना ध्वनियों के भी अपना अर्थ ध्वनित कर देते हैं।''[3] यह कथन नाटक के आदि, मध्य व अन्त, सर्वत्र खरा उतरता दिखाई देता है। आरम्भ में श्यामांग पत्तियों को सुलझाता है, लेकिन वे उलझती व टूटती जाती हैं और पत्तियों की इस उलझन व टूटन से जुड़कर ही श्यामांग की आन्तरिक उलझन शब्दों के अभाव में भी अधिक सार्थक ढंग से स्पष्ट हो जाती है। कामोत्सव की असफलता के पश्चात् रात्रि में नन्द का जागते रहना, कभी मंच पर बुझे दीपकों को जलाना, कभी सुन्दरी को देखना और कभी श्यामांग के प्रलाप से विचलित होकर घूमना, उनके आन्तरिक द्वन्द्व को मूक अभिव्यक्ति देता है। इसी प्रकार नाटक के अन्त में भी शब्द जो कुछ नहीं कह पाते, उसे नन्द का स्तब्ध होकर आहत भाव से चले जाना और सुन्दरी का सिसकते रह जाना ही स्पष्ट करता है। मौन के इस रंगमंचीय प्रयोग के माध्यम से भी राकेश ने अपने नाटकों को सफल रंगमंचीयता का अधिकारी बनाया है।

नाटक चूँकि एक 'दृश्य-श्रव्य' विधा है, अत: इसमें किसी गहन दार्शनिक तथ्य की अभिव्यक्ति इसकी सम्प्रेषणीयता में बाधा पहुँचाती है। नाटक में अभिव्यक्त तथ्यों को प्रेक्षक को उस 'सूक्ष्म कण' में ग्रहण करना होता है, जिसमें कि वे अभिव्यक्त हुए हैं। यहाँ प्रेक्षक के पास चिन्तन-मनन के लिए समय नहीं होता, जबकि दार्शनिक तथ्यों अथवा गहन वैचारिकता को ग्रहण करने के लिए चिन्तन-मनन की अपेक्षा होती है। इस तथ्य को समझते हुए भी यदि नाटककार नाटक में दार्शनिक तथ्यों की अभिव्यक्ति का मोह रखता है तो इससे नाटकीयता की क्षति होगी, यह निश्चित ही है। 'लहरों के राजहंस' नाटक में यद्यपि दार्शनिक तथ्य की अभिव्यक्ति की गई है लेकिन यहाँ अभिव्यक्त दर्शन, दर्शन के जटिल सिद्धान्तों में उलझा हुआ नहीं अपितु भोग-अभोग, प्रवृत्ति-निवृत्ति, लौकिक-अलौकिक, नश्वर-अनश्वर के शाश्वत द्वन्द्व के माध्यम से सहज रूप में सामने आया है फिर भी दर्शन के इस प्रभाव से नाटक का तीसरा अंक कुछ बोझिल हो गया है। इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता, लेकिन यहाँ अभिव्यक्त दर्शन नाटक के घिरे हुए तनाव सम्बन्धों के बिखराव व नन्द-सुन्दरी की आपसी उत्तेजनापूर्ण टकराहट के कारण नीरसता व बौद्धिकता से किंचित् उबर गया है और इसी से प्रेक्षक इस दर्शन को 'अब क्या होगा?' की उत्सुकता के मध्य सहजता से स्वीकार कर लेता है।

नाटक में दृश्य व सूच्य क्रिया व्यापारों का यदि उचित तालमेल न हो तो नाटक अपनी अपेक्षित प्रभाव-क्षमता से वंचित रह जाता है। 'लहरों के राजहंस' में यद्यपि नन्द की दीक्षा का महत्त्वपूर्ण प्रसंग सूच्य रूप में रखा गया है और इससे नाटकीयता की किंचित् क्षति भी होती है लेकिन यदि इस प्रसंग को मंच पर अभिनीत दिखाया गया है तो दृश्यबन्ध के परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती जिससे नाट्याभिनय में और अधिक बाधा पहुँचती। साथ ही धार्मिक रूढ़ियों से ग्रस्त पूर्वाग्रही भारतीय दर्शक व समीक्षक अपने भगवान स्वरूप गौतम बुद्ध द्वारा नन्द की बलात् दीक्षा को कभी न स्वीकार पाता। डॉ0 गोविन्द चातक ने समीक्षकों की इस ओढ़ी हुई नैतिकता पर प्रहार करते हुए लिखा है- ''नैतिकतावादी बनकर नाटकीय पात्रों के चरित्र-चित्रण में खासकर ऐतिहासिक पात्रों के चरित्र-चित्रण में चारित्रिक विघटन को बर्दाश्त नहीं कर पाता।''[4]

रंगमंचीय दृष्टि से 'लहरों के राजहंस' में नेपथ्य का प्रयोग बड़ा सार्थक सिद्ध हुआ है। यहाँ नेपथ्य से आता श्यामांग का स्वर- ''कहाँ हूँ मैं? क्यों हूँ यहाँ?---मेरा स्वर, पानी की लहरों का स्वर, सब कुछ एक आवर्त में घूम रहा है।---एक चील---एक चील सब-कुछ झपटकर लिये जा रही है। इसे रोको।

इसे रोको---दर्शक की चेतना को झकझोरता ही नहीं अपितु उसे पात्रों की आन्तरिकता के साथ-साथ उसकी अपनी वास्तविकता से जोड़ता हुआ रंगमंच को विस्तार भी देता है।''[5]

'लहरों के राजहंस' नाटक में राकेश ने स्थान-स्थान पर जो रंगमंचीय निर्देश दिये हैं, वे निर्देशकों की सहायता ही नहीं अपितु नाटक को उसकी मूल अर्थवत्ता के साथ एक ऐसी विशिष्ट अभिव्यक्ति देते हैं, जिसकी तलाश में यह नाटक बार-बार काँट-छाँट को बर्दाश्त करते हुए 20 वर्षों के संघर्ष के बाद पूर्णता को प्राप्त कर सका। नाट्य-रचना का यह 20 वर्ष का संघर्ष यद्यपि रचनाकार के लिए उलझन का विषय रहा होगा लेकिन इस बीस वर्ष की साधना ने ही इस नाटक को सर्वथा नवीन, व्यापक व सहज रंगमंचीयता प्रदान की। वास्तव में राकेश ने रंगमंच की नाट्याभिव्यक्ति का एक माध्यम नहीं, अपितु नाटक का एक अंग माना और यही कारण है कि 'लहरों के राजहंस' को पढ़ते समय उसका दृश्य स्वत: ही मस्तिष्क में उभरता जाता है। इस नाटक के आरम्भ में राकेश ने उस मूल बिम्ब को रंग-निर्देश के रूप में प्रस्तुत किया है जो एक लम्बे समय से उनके मन में विद्यमान था- ''आगे और पीछे दो अलग-अलग भागों में दो दीपाधार। एक के शिखर पर पुरुष-मूर्ति बाँहें फैली हुई तथा आँखें आकाश की ओर उठी हुई। दूसरे के शिखर पर नारी-मूर्ति-बाँहें सिमटी हुई तथा आँखें धरती की ओर झुकी हुई।''[6] आरम्भ के इस रंग निर्देश के साथ ही 'असन्तुष्ट भाव से सिर हिलाकर चले जाना, अनमने भाव से चले जाना, चारों ओर देखकर माथे को उंगली से मलकर, कुछ असहाय सा, आँखें झपकाकर अपने को सहेजने का यत्न करता है, उद्भ्रान्त सा आसन से उठती हुई, मदिरा कोष्ठ की ओर बढ़ता हुआ श्यामांग जैसे बहुत प्रयत्न से बाद में अभिवादन करता है, आदि के द्वारा पात्रों की मन:स्थितियों से उनकी आंगिक चेष्टाओं को जोड़कर प्रस्तुत करने की सार्थक व सफल प्रयास किया है- ''नाटक में घटना-स्थलों तथा पात्रों की मनोदशाओं व परिचय देने वाले रंग-निर्देश भी यथार्थवादी नाट्य-पद्धति और शिल्प-विधान के अनुसार एक सुगठित और तर्कसंगत रूप-बन्ध का निर्माण करते हैं।''[7] नाटक के अन्त में नन्द और सुन्दरी दोनों के ही वाक् प्रहार जब 'चुक' जाते हैं तब 'क्या होगा' की स्थिति को हल्के अंधकार से घिरा रंग-निर्देश ही व्यक्त करता है- ''नन्द कुछ पल स्तब्ध-सा खड़ा उसे देखता रहता है। फिर आहत भाव से सामने के द्वार से चला जाता है। सुन्दरी उसके जाने तक किसी तरह अपने को सँभाले रहती है, परन्तु उसके जाते ही सिसकती हुई हथेलियों पर औंधी हो जाती है।''[8]

'लहरों के राजहंस' नाटक की अपूर्व अभिनेयता व रंगमंच सम्बन्धी नवीन सशक्त उद्भावनाओं को देखते हुए भी यदि इस नाटक के अभिनेय पक्ष में समीक्षक कोई दोष देखते हैं तो उनके द्वारा इंगित दोषों के परिहार के लिए नाटक का विभिन्न स्थलों पर सफल मंचन प्रमाण है-

1. प्रयाग रंमंच, इलाहाबाद (1963) निर्देशक- डॉ. सत्यव्रत सिन्हा।
2. अनामिका, कलकत्ता (1967) निर्देशक- श्यामानन्द जालान।
3. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, दिल्ली (1967) निर्देशक- ओम शिवपुरी।
4. रूपान्तर, गोरखपुर, (1969) निर्देशक- डॉ. श्रीमति गिरीश रस्तौगी व परमानन्द श्रीवास्तव
5. इन्द्रप्रस्थ कॉलेज, नाट्य संघ दिल्ली, (1970) निर्देशिका- सुनयना राव।
6. दिशान्तर, दिल्ली (1973) निर्देशक- राजिन्दर नाथ।
7. कमला राजा महाविद्यालय, ग्वालियर, मध्य प्रदेश (1968)

मोहन राकेश की वैविध्यपूर्ण नाट्य क्षमता को लेकर नाट्य जगत के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि ''पिछले लगभग डेढ़-दो दशक में ऐसा कुछ विशेष हुआ और नाट्य-तंत्रीय अभिनय रंगमंच की प्रगति की दिशा में नए-नए प्रयोगों का पक्ष भी उजागर हुआ। हिन्दी नाट्य-सृजन में इन प्रयोगों का पहला बिन्दू रखा तरुण नाटककार मोहन राकेश ने। किसी कुण्ठा अथवा पूर्वाग्रह से मुक्त होकर कहें कि अपनी शक्ति भर मोहन राकेश ने गत डेढ़ दशकों में अभिनय तन्त्र के नए प्रयोग करने की दिशा में जो कुछ कदम उठाए उनसे हिन्दी नाटकों के अभिनय और रंगमंच का क्षेत्र कुछ समृद्ध और उन्नत हुआ है।---नए तरुण नाटककारों में मोहन राकेश ने हिन्दी नाट्य-सृष्टि में प्रयोगधर्मी क्रान्ति पैदा की और अभिनय रंगमंच के विकास की प्रेरणा के लिए सृजनधर्मी एक कीर्तिमान भी कायम किया।''

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. मोहन राकेश, व्यक्तित्व और कृतित्व, सुषमा अग्रवाल, पृष्ठ 124
2. डॉ. सुरेश अवस्थी के लेख विवके के रंग में संकलित, पृष्ठ 406
3. साहित्य और संस्कृति: मोहन राकेश, पृष्ठ 80-81
4. रंगमंच, कला और दृष्टि, गोविन्द चातक, पृष्ठ 209
5. लहरों के राजहंस, मोहन राकेश, द्वितीय अंक, पृष्ठ 69
6. लहरों के राजहंस, मोहन राकेश, तृतीय अंक, अंतिम रंग निर्देश, पृष्ठ 120
7. डॉ. सुरेश अवस्थी के लेख विवके के रंग में संकलित, पृष्ठ 406
8. लहरों के राजहंस, मोहन राकेश, तृतीय अंक, अंतिम रंग निर्देश, पृष्ठ 120
9. नाटककार मोहन राकेश, जीवन प्रकाश जोशी, पृष्ठ 16

''व्यंग्य यात्रा' पत्रिका में आधुनिक व्यंग्यकारों की व्यंग्य दृष्टि''

नेहा जोशी

शोधार्थी, पीएच0डी0 (हिन्दी), एम0बी0 रा0स्ना0, महाविद्यालय हल्द्वानी

व्यंग्य आधुनिक काल में एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में उभरकर आयी है जो समाज में व्याप्त विसंगतियों को उजागर करने में सशक्त भूमिका निभा रही है। समाज की जटिल संरचना के साथ आज व्यंग्य की सामाजिक, प्रासंगिकता और उपादेयता और बढ़ गयी है। व्यंग्य आज एक धारदार हथियार के रूप में उन सभी विसंगतियों पर प्रहार कर रहा है जो कहीं न कहीं समाज के विकास में अवरोधक है। व्यंग्य मानव जीवन को समाज से जोड़ने में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहा है व्यंग्य के माध्यम से ही एक व्यंग्यकार प्रत्येक विसंगतियों का प्रतिकार करने को सदैव तत्पर रहता है। व्यंग्य सदैव मानवीय अच्छाईयों व आम-आदमी की समस्याओं को उजागर करता है और निर्भीकतापूर्वक विसंगतियों पर प्रहार करता है। व्यंग्य का प्रमुख दायित्व, झूठ व सत्य की पहचान कर विसंगतियों की पहचान करना है।

व्यंग्य की समाज में महत्वपूर्ण भूमिका के सन्दर्भ में नीलकंठ पारटकर कहते है-''जीवन में व्यंग्य ताजे हवा के झोकें की तरह है। व्यंग्य आज हमारे समाज की आवश्यकता है।''[1] भारतीय समाज आज भी सामाजिक, राजनीतिक, विसंगतियों से घिरा हुआ है। कोई भी सजग व चेतना सम्पन्न व्यंग्यकार अपनी व्यंग्य रचनाओं के माध्यम से इसे उजागर करने से अछुता नहीं रह सकता। समाज में व्याप्त विडम्बनात्मक स्थिति से संघर्ष करने के लिए साहित्यकार भी व्यंग्य को एक हथियार के रूप में प्रयोग करने लगा है।

आधुनिक समाज में व्याप्त विसंगतियों में राजनीतिक विसंगतियाँ सर्वाधिक है सत्तालोलुप राजनेता व सिद्धान्त विहीन राजनीति ने विसंगतियों, विद्रपताओं को और अधिक बढ़ावा दिया है। ऐसे सत्तालोलुप नेता न तो समाज को अच्छा शासन ही दे पाते है और न ही आम जनता की समस्याओं का ही समाधान कर पाते है, बल्कि ये तो बेइमानी झूठ, फरेब, घूसखोरी, पाखण्ड से राजनीति को और भी भ्रष्ट बनाते जा रहे है। ऐसे स्वार्थी व मौकापस्त लोग देश हित को भूलकर केवल सत्ता प्राप्त करना अपना परम कर्तव्य समझते है। आधुनिक व्यंग्यकार जयवर्धन, ने अपने नाटक 'खैरातीलाल का कुर्सीतंत्र' में आधुनिक राजनीतिक विसंगतियों व राजनेताओं की सत्तालोलुपता को उजागर करते हुए व्यंग्यात्मक प्रहार किया है-''आज से कुर्सी ही तुम्हारा कर्म होना चाहिए। कुर्सी ही तुम्हारा धर्म होना चाहिए। कुर्सी के मर्म को व्यक्त करते हुए कहते है-कुर्सी है तो ठाट है, है रूतवे का खेल बड़े-बड़े कुर्सी बिना, गली में बेचे तेल।''[2]

सत्तासीन राजनेताओं का उत्तरादायित्व है कि वह देश में फैले भ्रष्टाचार, अराजकता अंधेरगर्दी व धाँधली की जड़ से मिटाकर लोक कल्याण की नींव को सुदृढ़ करें, परन्तु सत्तारूढ़ होते ही राजनेता इसके विपरीत आचरण करने लगते है। स्वयं के स्वार्थी की पूर्ति के लिए वह देश के हित को भी ताक पर रखते हैं। ''हमारी भलाई देश के आगे बढ़ने में है न कि जनता के आगे बढ़ने में है जनता आगे बढ़ जायेगी तो हम पीछे छूट जायेगें।''[3]

राजनेता जनता को हमेशा गुमराह करते रहना चाहते है क्योंकि अगर जनता सचेत हो गई तो वह देश की सत्ता से ऐसे भ्रष्टाचारी राजनेताओं को बाहर फैंक देगी।

वर्तमान में भी राजनीति में ऐसी अधेरगर्दी का बोलबाला है जहां भ्रष्टाचार की जड़े इतनी सुदृड़ हो गई है कि कोई भी आम व्यक्ति बिना रिश्वत के कोई भी कार्य नहीं करवा पाता। रिश्वतखोरी प्रलोभन, अवसरवादिता तथा अनैतिकता ने भी भ्रष्टाचार को बढ़ने के सर्वाधिक अवसर प्रदान किये है। भ्रष्टाचार व काले धन्धों से प्राप्त पैसे को नेताओं द्वारा स्वयं की स्वार्थों की पूर्ति की जाती है। आधुनिक व्यंग्यकार यज्ञ शर्मा ने अपनी रचना 'हाय पैसा' में राजनीति की विसंगतियों व राजनीति में पैंसे के दुरूप्रयोग पर अपनी व्यंग्यात्मक दृष्टि डाली है-''एक धन्धा है राजनीति, झंडे का रंग कैसा भी हो राजनीति का रंग सफेद ही होता है। होगा क्यों नहीं। सब दूध से नहा कर जो आते हैं। खुद दूध में नहाते है और पैसे को भी दूध से धोते हैं। इसलिए तो राजनीति में काला पैसा नहीं होता। बिलकुल नहीं होता, क्योंकि जहां काला पैसा होता है। वहां छापा मारा जाता है। नेताओं के घर में कभी छापा पड़ता है क्या?[4]

प्रशासनिक क्षेत्र के कर्मचारियों में भी गैरजिम्मेदारी व अकर्मण्यता व्याप्त है। जनता की रक्षा व सहायता करना ही पुलिस का परम कर्तव्य है परन्तु जनता की रक्षक ही आज रिश्वतखोरी व भ्रष्टाचार का पर्याय बन गयी है। पुलिस का जनता के साथ अशिष्ट व्यवहार के कारण जनता पुलिस से डरती है। पुलिस का कार्य कानून का पालन करवाकर न्याय व्यवस्था को सुदृढ़ करना होता है और कानून तोड़ने वालों को सजा देना। परन्तुं आधुनिक पुलिस अधिकारी न्याय व्यवस्था को ताक पर रखकर अपने स्वार्थो की पूर्ति करते है। प्रेमजनमेयजय ने अपने नाटक 'क्यों चुप तेरी महफिल में है' पुलिस व न्यायव्यवस्था की विसंगतियों पर कटाक्ष करते है-''पुलिसवाला-हाँ प्यारे न्याय मिलता नहीं खरीदता पड़ता है। नटी-किससे? पुलिसवाला-मँहगे वकील से मँहगे ग्वाह से और हम जैसे एक एफ0आई0आर0 दर्ज करने वाले पुलिसवाले से। न्याय तो घृतराष्ट्र है और वो वहीं देखता है जो हम जैसे संजय दिखाते है।''[5]

व्यंग्य साहित्य सृजन की एक कला है और व्यंग्यकार एक ऐसा साहित्यकार है जो सीधे समस्या पर चोट करता है वह व्याख्या पर जोर न देकर बेबाकी व स्पष्टता पर अधिक जोर देतो है। व्यंग्य गंभीरता से लिखी जाने वाली सहज सामग्री है। जिससे पाठकों में समस्या के प्रति बैचेनी उत्पन्न हो जाए। आधुनिक व्यंग्यकारों के व्यंग्य साहित्य में व्यंग्यात्मकता की कमी के सन्दर्भ में यज्ञ शर्मा कहते है-''कि अगर आपके स्वभाव में व्यंजना नहीं है तो आपके लिए व्यंग्य लिखना आसान नहीं है।''[6] व्यंग्य एक ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम है। जो व्यक्ति या समाज की कमजोरियों पर पूर्णतया सपाट शब्दों में प्रहार करती है। यह अगंभीरता में भी गंभीरता का पुट लिए होती है। समाज में व्याप्त विसंगतियों की समझ के लिए उस परिवेश को बहुत गहरे से जीना-समझना व परखना आवश्यक है। इसके लिए व्यंग्यकार को पर्याप्त अनुभव व अध्ययन की आवश्यकता होती है। व्यंग्य में व्यंग्यकार आम आदमी की समस्याओं को स्वर ही नहीं देता बल्कि उसके लिए जिम्मेदार व्यक्तियों व संस्थाओं से मुठभेड़ कर उन्हें बेनकाब कर दण्डित करने का साहस भी रखता है। व्यंग्यकार स्वयं दुखी हो यह आवश्यक नहीं है बल्कि व्यंग्यकार को दूसरों के दुखों का एहसास होना आवश्यक है जो एहसास उसे विद्रुपताओं व अत्याचारों पर प्रहार करने में आनन्द व संतुष्ठि प्रदान करता है।

व्यंग्य चाहे समाज में व्याप्त विसंगतियों के प्रति आक्रोश से उत्पन्न होता हो परन्तु केवल आक्रोश को अभिव्यक्ति शब्दों से सुसज्जित बाणों से करनी होती है जिसमें कभी अन्योक्ति का सहारा लिया जाता है तो कहीं वक्रोक्ति का। कहीं अतिशोक्ति के साथ भी शब्दों को तोड़ा मरोड़ा जाता है। व्यंग्यकार द्वारा व्यंग्य रचना में केवल लक्ष्य पर प्रहार किया जाता है। आधुनिक व्यंग्यकार सुरेश कान्त ने अपनी व्यंग्य रचना 'जॉब बची सो' में अफसर व कर्मचारी सम्बन्धों पर कटाक्ष किया है। जिसमें एक निजी कम्पनी के माध्यम से आधुनिक समाज में प्रतिष्ठित मुनाफाखोर कम्पनियों के यथार्थ को उजागर किया है। जो अपनी दिखावे की चमक-दमक के साथ भी कम्पनी का मुनाफा बनायें रखना चाहते है-''बॉस कर्मचारी सम्बन्ध को जन्म-जन्मातर का संबंध कहा जा सकता है क्यों कि अफसर व कर्मचारी दोनों को ही लगता रहता है कि उन्हें पिछले जन्म के दुष्कर्म की वजह से ही ऐसा बॉस या कर्मचारी मिला है। इस प्रकार किसी का बॉस या कर्मचारी बनते ही आदमी नास्तिक से आस्तिक बन जाता है और प्रारम्ब पर भरोसा करने लगता है। यह इतना भरोसेमंद संबंध है कि इसमें बॉस और कर्मचारी दोनों इस बात पर पक्का भरोसा करते है दूसरा बिल्कुल भी भरोसे के लायक नहीं है।''[6]

आधुनिक साहित्य के अर्न्तगत नवलेखन का जो दौर प्रारम्भ हुआ है। उसमें अनेक विसंगतियों व गलत फैमियाँ फैलती जा रही है। कुछ साहित्यकार स्वयं को सभी साहित्यकारों में श्रेष्ठ मानते है। ऐसे लोग नयी कविता पर हाथ आजमाने के मोह से स्वयं को रोक नहीं पाते। अजय जोशी ने अपनी व्यंग्य रचना 'मुझसे अच्छा न कोय' में साहित्यकारों की इसी प्रवृत्ति पर कटाक्ष किया है जब लेखक साहित्य के क्षेत्र में कविता, कहानी, या उपन्यासकारों में किसी श्रेष्ठ लेखक का नाम बताने के लिए साहित्यकार से कहते है तो वह स्वयं को ही सर्वश्रेष्ठ कविताकार, कहानीकार व उपन्यासकार बताते है। इसके अतिरिक्त वह श्रेष्ठ व्यंग्यकार भी स्वयं को ही कहते है-''यदि हरिशंकर परसाई जिंदा होते तो उनको भले ही सर्वश्रेष्ठ मानते लेकिन वो तो है नहीं इसलिए यहां तुम हमें उनकी जगह मान लो। हमारे अलावा जो कुछ लिखा जा रहा है उसको व्यंग्य मानों ही मत।''[7]

अन्य समारोहों की तरह ही अभिनन्दन समारोह भी आज मात्र प्रदर्शन का हिस्सा बनकर रह गये है। आज अभिनन्दन समारोह व पद व पदवियों का व्यवसायिकरण हो चुका है। जहां आज किसी भी सम्मान को प्राप्त करने के लिए किसी प्रतिभा की आवश्यकता नहीं है। समारोहों में पैसे देकर आसानी से उच्च पद व सम्मान पत्र प्राप्त किये जाते है। आधुनिक व्यंग्यकार कृष्ण कुमार 'आशु' ने अपनी व्यंग्य रचना 'मैं भी हो गया राष्ट्र रत्न' के माध्यम से आधुनिक साहित्यकारों की इसी दुर्दशा पर व्यंग्यात्मक दृष्टि डाली है। साहित्यिक संगठनों द्वारा समारोहों को आयोजन किया जाता है। जहां सम्मानित करने के नाम पर लेखकों से मोटी रकम वसूली जाती है और साहित्यकारों द्वारा भी स्वयं की पहचान बनाने व प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिए ऐसे अवसरों को अपना लिया जाता है। ''भई सम्मानित होने के लिए गाँठ का पैसा तो खर्च करना ही पड़ता है। मैं हर महीनें हजारों लुटाता हूँ, तो साल में बारह पुरूस्कार पाता हूँ। अभी इक्वाइन हजार देकर आया हूँ, साथ ही शताब्दी रत्न लाया हूँ।''[8]

व्यंग्यकार का मूल कर्तव्य समकालीन यथार्थ को समझना होता है। जहां यथार्थ परिस्थिति युग व परिवेश के आधार पर बदलते रहते है। वही व्यंग्यकार की भी चौकस रहकर अपने परिवेश व परिस्थितियों का गम्भीरता व गहनता से अध्ययन करना होता है जिससे विसंगतियों दृष्टिगत होती है और व्यंग्यकार के भीतर असत्य से सत्य को तथा अन्याय से न्याय को पृथक करने की समझ उत्पन्न होती है इसी समझ से नैतिक व यथार्थवादी दृष्टिकोण को भी बढ़ावा मिलता है।

सन्दर्भ ग्रन्थः-

1. व्यंग्य यात्राः अक्टूबर-दिसम्बर 2018 पृष्ठ 84
2. वही: 2018 पृष्ठ-7
3. वही: पृष्ठ-10
4. व्यंग्य यात्राः अक्टूबर-दिसम्बर-2015 पृष्ठ 34
5. व्यंग्य यात्राः अक्टूबर-दिसम्बर-2018 पृष्ठ 48
6. वही: अक्टूबर-दिसम्बर-2015 पृष्ठ 56
7. व्यंग्य यात्राः जनवरी-जून-2019 पृष्ठ 88
8. वही: अक्टूबर-दिसम्बर 2016 पृष्ठ-64

आसपुर देवसरा ब्लाक के सरकारी व गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के नामांकन, उपस्थिति एवं ड्रापआउट का तुलनात्मक अध्ययन

बृजेन्द्र कुमार यादव

शोध छात्र (शिक्षक-शिक्षा विभाग) राजा हरपाल सिंह पी0जी0 कालेज, सिंगरामऊ, जौनपुर, उ0प्र0 (वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर)

डॉ० नरेन्द्र कुमार सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, (शिक्षक-शिक्षा विभाग), राजा हरपाल सिंह पी0जी0 कालेज, सिंगरामऊ, जौनपुर, उ0प्र0 (वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर)

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन में प्रतापगढ़ के आसपुर देवसरा ब्लाक के 20 सरकारी व 20 गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के नामांकन, उपस्थिति एवं ड्रापआउट की स्थिति का, पिछले पाँच वर्षों (2014 से 2019) तक की अवधि को आधार मानते हुये तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन के अन्तर्गत सरकारी व गैर-सरकारी विद्यालयों में पंजीकृत विद्यार्थियों की पिछले 5 वर्षों के नामांकन, उपस्थिति तथा ड्रापआउट का औसत निकालते हुये 2014 से 2019 तक के इनमें हुए विकास का अध्ययन किया गया। यह अध्ययन पूर्णत: द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित था तथा इसमें प्रतिशत विधि तथा दण्ड आरेख का प्रयोग किया गया है। अध्ययन का प्रमुख निष्कर्ष यह आया है कि इन पाँच वर्षों में गैर-सरकारी विद्यालयों की स्थिति सरकारी विद्यालयों की अपेक्षा बेहतर रही है जिसके कारणों को समझने की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द- तुलनात्मक, नामांकन, उपस्थिति, ड्रापआउट।

प्रस्तावना

प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में प्राथमिक शिक्षा-प्रथम प्राथमिकता की वस्तु है, यह पहली सीढ़ी है जिसे सफलतापूर्वक पार करके ही कोई राष्ट्र अपने अभिष्ट लक्ष्य तक पहुँचता है। राष्ट्रीय जीवन के साथ जितना घनिष्ठ सम्बन्ध प्राथमिक शिक्षा का है, उतना माध्यमिक या उच्च शिक्षा का नही है। राष्ट्रीय विचारधारा एवं चरित्र का निर्माण करने में जितना महत्वपूर्ण स्थान इसका है उतना किसी दूसरी सामाजिक, राजनीतिक या शैक्षणिक गतिविधि का नही है। इसका सम्बन्ध किसी विशेष व्यक्ति या वर्ग से न होकर देश की पूरी जनसंख्या से होता है। इसका हर कदम हर व्यक्ति के जीवन से सम्पर्क होता है।

प्राथमिक शब्द का सामान्य अर्थ- प्राथमिक या मुख्य है। इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा का अर्थ हुआ-प्राथमिक शिक्षा, मुख्य शिक्षा, प्रारम्भिक शिक्षा, इसलिये यह बच्चों को प्रारम्भ में दी जाती है और मुख्य शिक्षा इसलिये की यह आगे की शिक्षा की नींव होती है। इस प्राथमिक शब्द के पीछे एक भाव और छिपा है और वह यह कि इसके इसके द्वारा बच्चों की शिक्षा प्रक्रिया की प्रथम आवश्यक सम्प्रेषण के माध्यम से भाषा की शिक्षा दी जाती है और उन्हें सामाजिक जीवन जीने की प्राथमिक क्रियाओं में प्रशिक्षित किया जाता है परन्तु प्राथमिक शिक्षा बच्चों की किस उम्र से किस उम्र तक चले या किस कक्षा से कक्षा तक चले और इसकी क्या पाठ्यचर्चा हो इस विषय में भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न निर्णय है।

हमारे देश में 1937 में प्रान्तों में स्वायत्त शासन स्थापित हुआ। उसी वर्ष गाँधी जी ने राष्ट्रीय शिक्षा योजना प्रस्तुत की जिससे 7 से 14 वर्ष के बच्चों की कक्षा-1 से कक्षा-5 तक की शिक्षा को अनिवार्य एवं नि:शुल्क करने का प्रस्ताव किया। गाँधी जी ने इसके लिए मातृभाषा एवं हस्त कौशल प्रधान पाठ्यचर्या तैयार की और इसका सम्बन्ध जीवन से जोड़ा, बस तभी से हमारे देश में प्राथमिक शिक्षा से अर्थ कक्षा-1 से कक्षा-8 तक की आधारभूत शिक्षा से लिया जाने लगा। हमारे संविधान लागू होने के समय से 10 वर्ष की अवधि के अन्दर 14 वर्ष तक के बच्चों को अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त

किया जायेगा। इसका आशय कक्षा-1 से कक्षा-8 तक की शिक्षा से ही है अत: संविधान के निर्देश में कक्षा-1 से कक्षा-8 तक की शिक्षा प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत ही आती है।

शोध की आवश्यकता तथा महत्व

प्राथमिक शिक्षा का मानव जीवन में वही महत्व है जो एक दृढ़ एवं स्थायी भवन के निर्माण में उसके नींव का होता है। राष्ट्रीय विचारधारा एवं चरित्र निर्माण में जितना महत्वपूर्ण स्थान प्राथमिक शिक्षा का है, उतना किसी दूसरी आर्थिक, राजनीतिक अथवा शैक्षिक गतिविधि का नहीं है। इसका सम्बन्ध किसी व्यक्ति विशेष से न होकर अपितु देश की सम्पूर्ण जनसंख्या से होता है।

केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (CBSE) के सदस्य और शिक्षाविद् विनोद रैना के अनुसार 2000 से लेकर आज तक विद्यालयों में नामांकन बढ़ा है लेकिन आज भी अधिकांश बच्चों का नामांकन महज रजिस्टरों पर अंकित है। प्राथमिक शिक्षा में हुई प्रगति का मूल्यांकन तीन मानकों-नामांकन की दर, विद्यालयों में बच्चों की उपस्थिति और उनके ड्रापआउट दर के आधार पर होना चाहिए। वर्तमान में विद्यालयों में बच्चों की उपस्थिति दर 70 प्रतिशत जरूर है, लेकिन विद्यालय छोड़ने की दर भी 40 प्रतिशत बनी हुई है। इस रिपोर्ट और सम्बन्धित शोध कार्यों की समीक्षा करने पर यह स्पष्ट होता है कि 'प्राथमिक शिक्षा के विकास का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर अभी तक शोध अध्ययन नहीं हुआ है, जिसके कारण प्राथमिक शिखा का समग्र रूप से अवलोकन नहीं किया जा सका।

समस्या कथन

प्राथमिक शिक्षा की उपरोक्त दिशा एवं दशाओं का अवलोकन करने के पश्चात यह स्पष्ट होता है कि प्राथमिक शिक्षा के समक्ष अनेक चुनौतियां विद्यमान है। अत: शोधकर्ता ने शोध विषय की आवश्यकता एवं उसकी उपयोगिकता को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तावित समस्या को अपने शोध विषय के रूप में चयनित किया जो इस प्रकार है-

''आसपुर देवसरा ब्लाक के सरकारी व गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के नामांकन व उपस्थिति एवं ड्रापआउट का तुलनात्मक अध्ययन''।

तकनीकी शब्दों की क्रियात्मक परिभाषा

प्राथमिक शिक्षा व प्राथमिक विद्यालय- प्रस्तुत शोध में प्राथमिक विद्यालय से तात्पर्य कक्षा-1 से 5 तक की शिक्षा प्रणाली से है तथा उक्त शिक्षा देने वाले बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित विद्यालयों को प्राथमिक विद्यालय के रूप में सम्मिलित किया गया है।

प्राथमिक शिक्षा का विकास- वर्ष 2014-15 से 2018-19 के मध्य आसपुर देवसरा ब्लाक में प्राथमिक शिक्षा के विकास को प्राथमिक शिक्षा के विकास के रूप में ग्रहण किया गया।

सरकारी एवं गैर सरकारी- बेसिक शिक्षा परिषद के द्वारा जिन प्राथमिक विद्यालयों को सरकार द्वारा नियमित सहायता या अनुदान दिया जाता है उन्हें सरकारी प्राथमिक तथा जिन विद्यालयों में सरकार द्वारा कोई अनुदान नहीं दिया जाता है परन्तु बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा स्थायी अथवा अस्थायी मान्यता प्रदान की गई है उसे गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालय के रूप में प्रस्तुत शोध में सम्मिलित किया गया।

नामांकन स्थिति- प्राथमिक विद्यालयों की नामांकन पंजिका में उल्लिखित विद्यार्थियों के नामों को नामांकन की स्थिति माना गया।

उपस्थिति- प्रस्तुत शोध में उपस्थिति में तात्पर्य प्राथमिक विद्यालयों की उपस्थिति पंजिका में उल्लिखित विद्यार्थियों की उपस्थिति विवरण से है।

ड्रापआउट- कक्षा-1 में नामांकित सभी विद्यार्थियों में से वे विद्यार्थी जो लगातार कक्षा-5 तक शिक्षा पूर्ण करने के पूर्व ही विद्यालय छोड़ देने वाले विद्यार्थियों को ड्रापआउट के रूप में ग्रहण किया गया।

शोध उद्देश्य-

शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 के परिपेक्ष्य में वर्ष 2014-15 से वर्ष 2018-19 के मध्य प्राथमिक शिक्षा के विकास के संदर्भ में शोध के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये-

1. आसपुर देवसरा ब्लाक के सरकारी एवं गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों के नामांकन की स्थिति का अध्ययन करना।
2. आसपुर देवसरा ब्लाक के सरकारी एवं गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों की उपस्थिति का अध्ययन करना।
3. आसपुर देवसरा ब्लाक के सरकारी एवं गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों की ड्रापआउट की स्थिति का अध्ययन करना।

परिसीमन

शोध अनुसंधान को सफलतापूर्व सम्पन्न करने हेतु प्रस्तुत शोध समस्या से सम्बंधित अध्ययन क्षेत्र का सीमांकन न किया जाये तो अध्ययन का क्षेत्र काफी विस्तृत हो जाता है और उसमें अधिक धन, समय और परिश्रम की आवश्यकता बढ़ जाती है। साथ-ही-साथ शोधकर्ता व्यर्थ के आंकड़ें सूचनाएं एवं अध्ययन सामग्रियों का भी संकलन लेता है। अत: प्रत्येक शोधकर्ता की अनुसंधान कार्य की योजना निर्मित करते समय इस सम्बन्ध में विचार करने के पश्चात ही अध्ययन क्षेत्र का सीमांकन किया जाना चाहिए, जिससे वह अनुसंधान अध्ययन क्षेत्र से आवश्यक आंकड़े सूचनाएं एवं अध्ययन सामग्री का ही संकलन करें और अनावश्यक भाग-दौड़ समय, धन एवं परिश्रम की बर्बादी से बच सके।

अत: उपरोक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुये शोधकर्ता ने प्रस्तुत अनुसंधान का सीमांकन किया जो निम्नलिखित इस प्रकार है-

1. प्रस्तुत अध्ययन वर्ष 2014-15 से 2018-19 के बीच प्रतापगढ़ जनपद के आसपुर देवसरा ब्लाक के प्राथमिक शिक्षा के विकास के अध्ययन तक परिसीमित है।
2. प्रस्तुत शोध में बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित आसपुर देवसरा ब्लाक के सरकारी एवं गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के अध्ययन तक परिसीमित है।
3. प्रस्तुत शोध में केवल प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के नामांकन, उपस्थिति एवं ड्रापआउट की स्थिति के अध्ययन तक परिसीमित है।

शोध अभिकल्प

1. जनसंख्या- आसपुर देवसरा ब्लाक के सरकारी एवं गैर-सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थी तथा कार्यरत अध्यापकों को प्रस्तुत शोध की जनसंख्या के रूप में परिभाषित किया गया है।
2. न्यादर्श- आसपुर देवसरा ब्लाक, प्रतापगढ़ जनपद में आता है। इस ब्लाक में अवस्थित विभिन्न सरकारी एवं गैर-सरकारी विद्यालयों में से बीस सरकारी व बीस गैर-सरकारी विद्यालयों का चयन लॉटरी विधि से किया गया है। इसके अतिरिक्त ब्लाक के ही चयनित विद्यालयों में से चार सौ विद्यार्थियों का चयन द्विस्तरी यादृच्छिक प्रतिचयन विधि के द्वारा किया जिनमें से 200 विद्यार्थी सरकारी प्राथमिक विद्यालयों से तथा 200 विद्यार्थी गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में चयनित किये गये जोकि सम्पूर्ण जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं। अध्यापकों का चयन अकस्मिक विधि से किया गया है जिसके अनुसार जो अध्यापक प्राथमिक विद्यालयों में न्यादर्श संकलित करते समय उपस्थित थे उन सभी को न्यादर्श मानते हैं और मापन के उपकरण दिये गये।
3. शोध विधि- प्रस्तुत समस्या के अध्ययन हेतु विवरणात्मक अनुसंधान विधि के अन्तर्गत आने वाली सर्वेक्षणात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया है। सर्वेक्षण का तात्पर्य अनुसंधान की ऐसी विधि से है जिसमें अनुसंधानकर्ता घटना स्थल पर जाकर किसी विशेष घटना, वैज्ञानिक निरीक्षण करता है तथा इसके सम्बन्ध में खोज करता है जैसे स्कूलों का सर्वेक्षण करलिंगर के शब्दों में 'सर्वेक्षण अनुसंधान सामाजिक, वैज्ञानिक अन्वेषण की तरह शाखा है जिसके अन्तर्गत व्यापक तथा कम आकार वाली जनसंख्याओं तथा समाजिकता का अध्ययन उनमें से चयन किये गये प्रतिदर्शों के आधार पर इस आशा से किया जाता है ताकि उसमें व्याप्त सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक चरों के घटना क्रमों, विवरणों तथा पारस्परिक अन्त: सम्बन्धों का ज्ञान उपलब्ध हो सके।
4. शोध उपकरण- प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्यों के अनुसार द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है जिसमें आसपुर देवसरा ब्लाक के 40 विद्यालयों के नामांकन, उपस्थिति तथा ड्रापआउट से सम्बन्धित पिछले 5 वर्षों के द्वितीय आंकड़ों को एकत्रित किया गया है।

सांख्यिकी विधि

एकत्रित आंकड़ों के उद्देश्यानुसार तुलना करने के लिये प्रतिशत विधि का प्रयोग किया गया है।

विश्लेषण तथा व्याख्या

प्रतापगढ़ जनपद के आसपुर देवसरा ब्लाक में अवस्थित सरकारी एवं गैर-सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों का नामांकन, उपस्थिति एवं ड्रापआउट संख्या का विवरण सत्र 2014-15 से 2018-19 तक के आंकड़ों का विश्लेषण उद्देश्यानुसार किया गया जो इस प्रकार है-

प्रथम उद्देश्य- आसपुर देवसरा ब्लाक के सरकारी व गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के नामांकन का तुलनात्मक अध्ययन करना।

तालिका-1:

सत्र	सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों का औसत नामांकन (संख्या में)	गैर–सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों का औसत नामांकन (संख्या में)
2014–15	225	270
2015–16	275	290
2016–17	280	285
2017–18	250	300
2018–19	235	300

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि सत्र 2014-15 में जहाँ सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों का औसत नामांकन 225 था वही गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों का औसत नामांकन 270 रहा जो कि लगभग 20 प्रतिशत का अन्तर पाया गया।

इसी प्रकार आगे के वर्षो में भी गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों का नामांकन सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के नामांकन पर से अधिक रहा। जिसका सम्भावित कारण शिक्षा की गुणवत्ता, प्रदान की जा रही सुविधाएं, शिक्षकों की मानक के अनुसार संख्या में कमी हो सकता है।

द्वितीयक उद्देश्य- आसपुर देवसरा ब्लाक के सरकारी व गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों का और उपस्थिति (प्रतिशत में)।

तालिका-2

सत्र	सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों की औसत उपस्थिति (प्रतिशत में)	गैर–सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों की औसत उपस्थिति (प्रतिशत में)
2014–15	60	90
2015–16	62	85
2016–17	55	88
2017–18	65	80
2018–19	70	92

उपरोक्त तालिका-2 को देखने से स्पष्ट हो रहा है कि सरकारी प्राथमिक विद्यालय की अपेक्षा गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालय में उपस्थित प्रतिशत दर प्रत्येक सत्र में अधिक है। जिसका सम्भावित कारण अध्यापकों का अभाव, सरकारी विद्यालय के प्रति अभिभावकों का नकारात्मक दृष्टिकोण, सरकारी विद्यालयों में शैक्षिक वातावरण का अभाव हो सकता है।

तृतीय उद्देश्य- आसपुर देवसरा ब्लाक के सरकारी व गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की औसत ड्रापआउट का अध्ययन।

तालिका-3

सरकारी प्राथमिक विद्यालय		गैर–सरकारी प्राथमिक विद्यालय	
कक्षा–1 में नामांकित विद्यार्थियों की संख्या	ड्रापआउट विद्यार्थियों की संख्या	कक्षा–1 में नामांकित विद्यार्थियों की संख्या	ड्रापआउट विद्यार्थियों की संख्या
50	30	60	12
35	19	65	18
37	18	50	15
37	20	60	2
51	10	70	15
M= 210	**D = 87**	**N = 305**	**D = 62**

सरकारी प्राथमिक विद्यालय में विद्यार्थियों की औसत ड्रापआउट- 41.42 प्रतिशत

गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालय में विद्यार्थियों की औसत ड्रापआउट- 20.32 प्रतिशत

उपरोक्त तालिका का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट हो रहा है कि सरकारी प्राथमिक विद्यालय की औसत ड्रापआउट प्रतिशत 41.42 है और गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालय में औसत ड्रापआउट प्रतिशत 20.32 है। अत: उपरोक्त विवरण का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि सरकारी प्राथमिक विद्यालय में ड्रापआउट प्रतिशत, गैर सरकारी प्राथमिक विद्यालय में अधिक है। जिसका सम्भावित कारण अभिभावकों का शिक्षा के प्रति जागरूकता न होना, बच्चों की स्कूली शिक्षा के दौरान उन्हें काम में लगाना, शिक्षक व अभिभावक के मध्य समय-समय पर चर्चा-परिचर्चा का न होना हो सकता है।

निष्कर्ष

उपरोक्त तीनों तालिकाओं में दिये गये आंकड़ो के विश्लेषण से जो मुख्य निष्कर्ष प्राप्त हुआ है वह यह है कि आसपुर देवसरा ब्लाक के सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में पाया जाने वाली नामांकन दर व उपस्थिति दर गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के मुकाबले बहुत कम है जिसका संभावित कारण सरकारी विद्यालयों में अध्यापकों की कमी होना, अभिभावकों की उदासीनता सरकारी योजनाओं के उचित क्रियान्वयन का अभाव इत्यादि हो सकता है। एक अन्य प्रमुख निष्कर्ष के अनुसार सरकारी प्राथमिक विद्यालय की ड्रापआउट दर, गैर-सरकारी विद्यालयों के मुकाबले अधिक है जिसके संभावित कारण अभिभावकों की निरक्षरता, शिक्षा के प्रति उदासीनता तथा शिक्षा के महत्व के बारे में जागरूकता की कमी इत्यादि हो सकते हैं।

शिक्षक शिक्षा क्षेत्र से जुड़े होने के नाते शोधकर्ता ने इन कारणों की सत्यता की जाँचने के लिये शोध आरम्भ कर दिया है तथा अन्य शोधार्थियों को यह सुझाव दिया जाता है कि वे अपने-अपने ब्लाक, तहसील व जिला स्तर पर प्राथमिक विद्यालयों में पायी जाने वाली अनियमितताओं के संदर्भ में अनुसंधान करे व प्राप्त परिणामों को उचित शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित करवाये।

संदर्भ-

1. अदावल, एस0वी0 तथा उनियाल एम0 (1975) : भारतीय शिक्षा का इतिहास तथा प्रवृत्तियाँ, लखनऊः उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
2. चौबे, डॉ0 सरयू प्रसाद (1976): भारत में शिक्षा और उसकी समस्याएँ, आगरा पब्लिकेशन विनोद पुस्तक मंदिर, राधेय राघव मार्ग।
3. देवी, के0जी0 (1983): 'पराब्लम्स ऑफ ड्रापआउट्स इन प्राइमरी स्कूल्स ऑफ मणिपुर विथ स्पेशल रिफरेन्स टू इम्फाल टाउन (1963-70)', पी-एच0डी0, एजुकेशन, गोवाहाटी युनिवर्सिटी, इनएफ0एस0आर0ई0, एन0सी0ई0आर0टी0, न्यू देलही।
4. आचार्य, ए0ए0 (1984): 'कम्पल्सरी प्राइमरी एजुकेशन इन आन्ध्र प्रदेश, ए पालिशी, एनालिसिस,' पी-एच0डी0, एजुकेशन, आसाम युनिवर्सिटी इन-एफ0एस0आर0ई0, एन0सी0ई0 आर0टी0, न्यू देलही।
5. आचार्य एस0सी0 (1984): प्री-प्राइमरी एण्ड प्राइमरी एजुकेशन इन त्रिपुरा कछार डेवलपमेंट एण्ड प्राब्लम्स पी-एच0डी0, एजुकेशन, गोवाहाटी यूनिवर्सिटी इनएफ0एस0आर0ई0, एन0सी0ई0आर0टी0, न्यू देलही।
6. गुप्ता, डी0 (1992) ऑफ मैटेरियल्स सप्लायड अण्डर द आपरेशन ब्लैकबोर्ड स्कीम (ए रिपोर्ट ऑफ द फस्ट फेज) इनडिपेन्डेन्ट स्टडी, न्यू देलही', नेशनल काउन्सिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग इन-एफ0एस0 आर0ई0, एन0सी0ई0आर0टी0, न्यू देलही।
7. दत्ता, मधु (1992) 'ग्रामीण दक्षिणी त्रिपुरा जिले में स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त प्राथमिक शिक्षा के विकास का अध्ययन', पी-एच0डी0, प्रकाशित शोध ग्रन्थ, शिक्षाशास्त्र विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
8. कपिल, एच0के0 (2001): अनुसंधान विधियां, आगरा, हर प्रसाद भार्गव, बुक हाउस, कचहरी घाट।
9. उत्तर प्रदेश निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार नियमावली (2011): उत्तर प्रदेश शासन शिक्षा अनुभाग-5, अधिसूचना जुलाई 2011।
10. गुप्ता, एस0पी0 व गुप्ता, अलका (2005): भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ, इलाहाबादः शारदा पुस्तक भवन, युनिवर्सिटी रोड।
11. जायसवाल, सीताराम (2006): भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्याएँ, लखनऊः प्रकाशन केन्द्र पब्लिसर्स।
12. पचौरी एवं शर्मा (2006): 'प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरणः समस्याएं एवं सुझाव', शोध-पत्र, राष्ट्रीय संगोष्ठी, शिक्षाशास्त्र विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
13. पाण्डेय, सीमा (2007): 'उत्तर प्रदेश में आरक्षण एवं अन्य सुविधाओं का प्राथमिक शिक्षा में नामांकन एवं शैक्षिक वातावरण पर प्रभाव का अध्ययन', प्रकाशित शोध ग्रंथ, शिक्षाशास्त्र विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।
14. गुप्ता, आदित्य नारायण (2011): 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का उ0प्र0 में प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण पर प्रभाव का अध्ययन', पी0-एच0डी0, प्रकाशित शोध ग्रंथ, शिक्षाशास्त्र विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।

तेजेन्द्र शर्मा की कहानियाँ और मानवता

विकास कुमार

शोध - छात्र, हिन्दी विभाग, अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ

ब्रिटेन के विद्वानों का हिंदी के प्रति पुराना अनुराग रहा है, जिनमें पिंकाट, हार्नली, ग्रियर्सन और मैकग्रेगर प्रमुख हैं। हरिवंशराय बच्चन के समय में ही सन् 1951 ई. में 'हिंदी परिषद् लंदन' की स्थापना ब्रिटेन में हुई। यहाँ नरेश भारतीय द्वारा 'चेतक' पत्रिका सन् 1967 ई. से लगातार प्रकाशित हो रही है। यहीं से 'प्रवासिनी' और 'अमरदीप' जैसी महत्वपूर्ण पत्रिकाओं का प्रकाशन भी हो रहा है। इसके साथ ही एक ओर ब्रिटेन में 'प्रवासी टुडे', 'लंदन टाइम्स' प्रकाशित हो रही हैं, दूसरी ओर तेजेन्द्र शर्मा द्वारा 'पुरवाई' (1997) पत्रिका प्रकाशित हो रही हैं। 'पुरवाई' पत्रिका का कथा साहित्य के प्रचार-प्रसार में विशेष योगदान है। साहित्य-रचना की मात्रा की बात करें, तो कविता के बाद कहानी विधा में ही ब्रिटेन के साहित्य में अधिक रचना-कर्म हुआ है। ब्रिटेन में हिंदी कहानी की शुरुआत को देखा जाए तो इसकी शुरुआत के पीछे भी पंजाब के जगराँव में 21 अक्टूबर 1952 ई. में जन्मे तेजेन्द्र शर्मा का विशेष योगदान है। तेजेन्द्र शर्मा अपने पिता श्री नन्द गोपाल मोहला और दिवंगत पत्नी इंदु को अपने लेखन का श्रेय देते हैं। वे डॉ. सुमन सिंह से हुई बातचीत में स्वीकार करते हैं कि 'इन्दु ने उनकी सोच को परिष्कृत किया और हिन्दी की महत्त्वपूर्ण कृतियों से परिचित करवाया। उनके शुरूआती हिन्दी साहित्यिक जीवन पर नरेन्द्र कोहली का बहुत असर रहा। मगर लेखन शुरू करने के बाद सब छंटता गया। इन्दु उनकी रचनाओं की पहली पाठक और आलोचक होती। उनकी पहली करीब बीस से अधिक कहानियों की भाशा और व्याकरण इन्दु जी ने ही सही की। सच तो यह है कि यदि इन्दु जी ना होती तो तेजेन्द्र हिन्दी का लेखक ना होता। जब वे बाते हैं कि इन्दुजी ने 'देह की कीमत' कहानी पढ़ी, तो बोली, 'अब मैं आसानी से मर सकती हूँ। अब आपको अपनी कहानी मुझ से ठीक करवाने की जरूरत नहीं।'

तेजेन्द्र शर्मा ने एक लेख 'इक्कीसवीं सदी की प्रवासी कहानी...' में इस बात की पुष्टि की है, ''मैं दिसंबर 1998 में लंदन में बसने आया था। मुझे याद है कि 1999 तक ब्रिटेन के किसी भी हिंदी लेखक का अपना कहानी संकलन प्रकाशित नहीं हुआ था। ब्रिटेन का पहला संकलित कहानी- संग्रह 'मिट्टी की सुगंध' (संपादक उशा राजे सक्सेना) का प्रकाशन 1999 में हुआ। हमने इस संग्रह में पहली पीढ़ी के प्रवासी हिंदी लेखकों की कहानियों को एकत्रित किया है। मगर वहीं हमने इस बात का ख्याल भी रखा है कि यह कहानियाँ उनके भारत प्रेम या नॉस्टैल्जिया की अभिव्यक्ति मात्र ना हो।''[1] इस संकलन की भूमिका में रामदरश मिश्र मानते हैं कि इस में 'विशिष्ट भूमि पर सामान्य कहानियाँ भी हैं, सामान्य भूमि पर विशिष्ट कहानियाँ भी हैं, और विशिष्ट भूमि पर कुछ विशिष्ट कहानियाँ भी हैं।"[2]

जिस प्रकार अमेरिका में उषा प्रियंवदा और सुषम बेदी स्थापित कथाकार हैं, उसी प्रकार ब्रिटेन में कीर्ति चौधरी, उषा राजे सक्सेना, दिव्या माथुर, गौतम सचदेव, उषा वर्मा, महेंद्र देवसर 'दीपक' और तेजेन्द्र शर्मा की सक्रियता उल्लेख्य है। इन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से भारत और ब्रिटेन के साथ ही विश्व में हिंदी को पहचान दिलाई है। समकालीन हिंदी के कहानीकार तेजेन्द्र शर्मा की ब्रिटेन के अग्रणी लेखकों में गिनती होती है। ये मूलत: पंजाबी भाषी हैं, लेकिन इनकी रचनाओं का माध्यम हिंदी ही है। कॉलेज की पत्रिका 'वेस्पर' में पहली कविता अंग्रेजी में सृजित की थी और विश्वविद्यालय की पत्रिका 'वन टाइम' में अंग्रेजी में एक कहानी 'दि यूनिवर्सल लाफ्टर' लिखी अर्थात् आपका शुरुआती लेखन अंग्रेजी में हुआ।''[3] कहानी साहित्य के अलावा आप कविता और गजल भी लिखते रहे हैं।

जब ये ब्रिटेन गए, तब इनके तीन कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके थे। वे अपने आपको मूलत: कहानीकार मानते हैं। उन्होंने लिखा है 'कहानी हर विधा की माँ होती है। साहित्यकार कलम उठाता है क्योंकि वह अपनी कहानी चाहता है विधा कोई भी हो सकती है नाटक कविता कहानी या उपन्यास लिखने को तो मैंने गजलें कविताएं एवं लेख भी लिखे हैं। ...मगर मैं एक कहानीकार की तरह सोचता हूँ और हाँ, मैंने कहानी-पाठ को भी एक विधा की तरह विकसित करने का प्रयास किया है।' इनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह अग्रलिखित हैं- काला सागर 1990, ढिबरी टाईट 1994, देह की कीमत 1999, यह क्या हो गया 2003, बेघर आँखें 2007, सीधी रेखा की परतें 2009, कब्र का मुनाफा 2010 दीवार में रास्ता आदि प्रमुख हैं। ''तेजेन्द्र शर्मा की कुछ कहानियाँ प्रमुख भारतीय विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में भी सम्मिलित हैं। उनके लेखन पर अनेक शोध कार्य और पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं। वे दूरदर्शन और फिल्मों से भी लेखक बतौर अभिनेता जुड़े रहे हैं। बीबीसी लंदन और ऑल इंडिया रेडियो से भी इन्होंने कार्यक्रमों की प्रस्तुतियां दी हैं।"[4] ''केंद्रीय हिंदी संस्थान से पुरस्कृत विदेशी हिंदी विद्वान एवं आप्रवासी भारतीय विद्वान 1998-99 में ब्रिटेन माइग्रेंट तेजेन्द्र शर्मा अपने साथ तीन कहानी-संग्रह लेकर आए। 'देह की कीमत' ने ब्रिटेन की कथा साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया।''[5]

आज ब्रिटेन में मात्र नॉस्टैल्जिक के साथ-साथ, यथार्थवादी लेखन भी हो रहा है। ब्रिटिश जीवन संघर्ष, जीवन-शैली के बीच द्वंद्व वैसा नहीं है, जैसा भारत में सोचा जाता है। ब्रिटेन के जन-जीवन को लेकर बुनी गई कहानियों की वास्तविकता की आलोचना या समीक्षा के लिए ब्रिटेन की मानसिक और सामाजिक बनावट को समझने और समझाने की आवश्यकता है। तेजेन्द्र शर्मा का 'क़ब्र का मुनाफा' ब्रिटिश समाज की बुनावट को लेकर लिखी गई कहानियों की पुस्तक है। यहाँ तक कि लोग क़ब्र में भी मुनाफा देखने लगे हैं। आज का समय भूमण्डलीकरण का है। कहानीकार ने वैश्वीकरण के प्रभाव को भी अपनी कई

कहानियों में चित्रित किया है। ऐसी कहानियों में 'क़ब्र का मुनाफा' एक बेहतरीन कहानी है जिसमें एक स्त्री की उपेक्षा को दर्शाया गया हो। इस कहानी का एक अंश यहाँ प्रस्तुत है, ''ख़लील, आप जिंदगी भर तो इनसान को पैसों से तौलते रहे। क्या मरने के बाद भी आप नहीं बदलेंगे। मरने के बाद तो शरीर मिट्टी ही है, फिर उस मिट्टी का नाम चाहे अब्दुल हो नादिरा या फिर ख़लील।... देखो नादिरा अब शुरू मत हो जाना।''[6] इसके साथ ही इसमें मानव की भोग लिप्सा के प्रदर्शन का यथार्थ चित्रण किया है।

युवा पीढ़ी के साथ संवाद में विश्वास रखने वाले कथाकार है तेजेन्द्र शर्मा। प्रवासी कहानीकार प्रवासी हिंदी कहानियों में विश्व के अलग-अलग देशों के सामाजिक मूल्यों का पाठक वर्ग को परिचय दे रहे हैं। समाज किस दिशा में जा रहा है, यह कहानीकार हमें परिचित करा रहे हैं जिससे पाठक समाज को परिवार स्त्री-पुरुष और बच्चों में होने वाले परिवर्तनों से परिचित कराया जा सके। ब्रिटेन के प्रवासी कहानीकार तेजेन्द्र शर्मा को भारतीय परंपरा रची-पची हैं। इनके भारतीय समाज के अपने अनुभव रहे हैं। विदेश प्रवास के दौरान इन्होंने जीवन की बहुत कुछ अनुभूतियाँ पायी हैं जिनका सम्मिलित वर्णन इनकी कहानियों में मिलता है, भारत के समाज के नारी-जीवन को लेकर इनकी कई कहानियाँ मिलती हैं। 'सिलवटें' कहानी की नायिका सुलक्षणा के साथ हॉस्टल में बलात्कार की घटना होती है जिसको वह पुलिस को सार्वजनिक करना चाहती है लेकिन उसकी अध्यापिका उसको समाज का हवाला देकर उस घटना को भूलने की सलाह देती है।

नारी समाज में घुट-घुट कर जीने के लिए ही विवश है। ऐसा लगता है कि नारी और घुट-घुटकर जीना समानार्थी हों। मौलवी की कहानी की नायिका मौलवी की मालकिन की नायिका प्रियदर्शनी के द्वारा तेजेन्द्र शर्मा ने दिखाया है कि स्त्री के लिए समाज घर ससुराल में कुछ भी स्थायी नहीं है। समाज से अपने अस्तित्व और अस्मिता को बचाना स्त्री की नियति बन जाती है। प्रियदर्शनी के पिता के घर का एक दृश्य देखें, 'लड़की यदि अधिक पढ़-लिख गई तो लड़का कहाँ से मिलेगा, अपनी बिरादरी में तो पढ़े-लिखे लड़के ढूँढे से नहीं मिलते... इंसान न भी मिले क्या फर्क पड़ता है ? ...जो भी मिले उसी के पल्ले बांध।' सास-ससुर भी ताने देते हैं तो पति भी रौब दिखाता है। इनकी जैसे अभिव्यक्ति की आजादी छिन गई हो, ''ओए तुम जनानियों को मर्द की बातों में दखल नहीं देना चाहिए। ...तुम अपना घर संभालो... बस पैसे कमाना हम मर्दों का काम है।''[7]

तेजेन्द्र शर्मा की कहानी 'देह की कीमत' में पात्र हरदीप शादी के तुरंत बाद रोजगार की खोज में जापान जापान प्रवास पर जाता है, वहीं उसकी मृत्यु हो जाती है, क्योंकि वह जापान में अवैध रूप से प्रवास कर रहा होता है, इसलिए उसके मित्र उसे स्वदेश नहीं भेज पाते, जबकि वे लोग मृत देह को स्वदेश भेजने हेतु तीन लाख रुपये का चंदा कर चुके थे। हरदीप की पत्नी पम्मी को अपने पति के अंतिम दर्शन भी सुलभ न हो पाने की विवशता को कहानीकार ने इस प्रकार दर्शाया है, ''अस्थियाँ और बैंक ड्राफ्ट आ पहुँचे हैं। बाहर बीजी का प्रलाप जारी है, दार जी दुखी हैं और अंदर कमरे में पम्मी अपनी सूजी आँखों कलश को देख रही है।... उसने तीन लाख रुपये का ड्राफ्ट उठाया।... उसे समझ नहीं आ रहा था कि यह उसके पति की देह की कीमत है या उसके साथ बिताए पाँच महीनों की कीमत।''[8] वस्तुत: यह कहानी किसी परिस्थिति में परिवार के सदस्यों की बदली मानसिकता प्रदर्शित करती है। दारजी या तो वीर जी की लाश लेने हम दोनों भाइयों में से कोई जाएगा..... या फिर....। ...ओए, हरदीप की मौत से भी तुमने कोई सबक नहीं लिया ? चलो जी हम एक मिनट के लिए मान भी जाएँ कि काके दा क्रियाकर्म जापान में हो जाए, तो सारे पैसे कल दी आई कुड़ी को क्यों मिलें ?''[9]

तेजेन्द्र शर्मा ने 'चरमराहट' कहानी में धर्म के राजनीतिकरण पर साहसपूर्ण टिप्पणी की है, ''उसकी नौकरी की नींव इस पुरानी बिल्डिंग से कहीं अधिक कमजोर थी। एक ही झटके में उसकी नौकरी हवा मे उड़ गई थी। सारे माहौल को देखकर हिंदुस्तानी को महसूस हुआ कि केवल एक ढांचा नहीं चरमराया, बल्कि उसके साथ बहुत कुछ चरमरा गया है, लोगों का विश्वास, प्यार, भाईचारा, समाज की नींव, सब चरमरा गया है।''[10] तेजेन्द्र शर्मा स्पष्ट लिखते कहते हैं, ''मैं यदि आम आदमी के बारे में लिखना चाहता हूँ तो जरूरी नहीं कि मैं अपनी आँखों पर किसी ना किसी राजनीतिक दल का चश्मा पहनूँ।''[11]

तेजेन्द्र शर्मा की कहानी 'पासपोर्ट के रंग' में पंडित गोपालदास की उस मन:स्थिति का चित्रण है, जो मानसिकता दोहरी नागरिकता प्राप्त करने के लिए ऑफिस के चक्कर लगा-लगाकर बनी है, ''उसकी आँखों में से पानी बहने लगा। वे तय नहीं कर पा रहे थे कि यह पानी नमकीन है या बस पानी है। मन में एक पल के लिए आया कि इस पुल से नीचे छलांग लगाकर इस टंटे को खत्म ही कर दें।... उनके दाएँ हाथ में लाल रंग का ब्रिटिश पासपोर्ट था और बाएँ हाथ में नीले रंग का भारतीय पासपोर्ट। उन्होंने ऐसे देश की नागरिकता ले ली थी जहाँ के लिए इन पासपोर्टों की जरूरत नहीं थी।''[12] इस प्रकार वह ऐसे देश की नागरिकता ले लेता है, जहाँ जाने के लिए भारतीय पासपोर्ट और ब्रिटिश पासपोर्ट की जरूरत नहीं होती। इन संदर्भों के बीच से मृत्यु की विविध छवियों की अनुभूति पूरी कहानी में तैर जाती है।

'तेजेन्द्र शर्मा का कहानी संसार: सामाजिक सरोकार' लेख में मनप्रीत कौर तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों के बारे में यह निष्कर्ष देती हैं, ''तेजेन्द्र शर्मा की कहानियाँ समाज से जीवंत साक्षात्कार करवाती हैं। सामाजिक प्रतिबद्धता के फलस्वरूप वह सामाजिक समस्याओं के चित्रण में विशेश रुचि लेते हैं। विक्रय मूल्य परिवर्तन मूल्य टूटने का दर्द संबंधों का दबाव आदि विशय इनकी कहानियों में उभर कर आए हैं, अजीत राय इनकी कहानियों को लोकल और ग्लोबल एक साथ मानते हैं। इनकी कहानियाँ दो संस्कृतियों का संगम हैं।''[13] इन पंक्तियों का लेखक की भी यह मान्यता रही है, "तेजेन्द्र शर्मा की कहानियाँ अपने समाज के यथार्थ के मानवीय सरोकारों को पाठक के सामने जीवंत करती हैं, जिससे इनकी कहानियाँ लोकल और ग्लोबल दोनों एक साथ बन पड़ती हैं।''[14] मैत्रेयी पुष्पा की समझ में लेखक का फलसफा यह है, "जिंदगी का हुनर इंसानियत कमा लेने में होता है।''[15]

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि ब्रिटेन के हिंदी कहानीकार तेजेन्द्र शर्मा की कहानियाँ लोकल और ग्लोबल दोनों को संवेदना के तार में पिरोकर मानवता को स्पर्श करती हैं। इन सदंर्भो को वे जीवन-संवेदन के कार्य-कारण संबंध को पकड़ने के काम लाते हैं जिससे लेखक की कहानियाँ आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक दिखते हुए भी अधिकतर मानवीय संदर्भो को ही उभारने वाली हैं। ये कहानियाँ मानवता की समृद्धि करती हैं।

संदर्भ सूची -

1. तेजेन्द्र शर्मा, 'इक्कीसवीं सदी की प्रवासी कहानी...', डॉ. मनप्रीत कौर (संपा.), भारतीय और प्रवासी हिंदी कथा साहित्य: वर्तमान परिदृश्य, अनभै प्रकाशन, मुम्बई, प्रथम संस्करण: जनवरी 2016, पृ. 11
2. वही, पृ. 11
3. प्रदीप श्रीधर (प्रधान संपा.), प्रवासी हिंदी साहित्य: दशा एवं दिशा, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2018, पृ. 117
4. पाण्डेय, प्रो. नन्द किशोर (प्रधान संपा.), प्रवासी जगत, त्रैमासिक पत्रिका, जुलाई-सितंबर 2018, प्रधान संपादक की कलम से...
5. वही, पृ. 86
6. तेजेन्द्र शर्मा, 'तेजेन्द्र शर्मा: श्रेष्ठ कहानियाँ', राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृ. 252
7. वही, पृ. 208
8. वही, पृ. 214
9. वही, पृ. 213
10. वही, पृ. 86
11. पाण्डेय, प्रो. नन्द किशोर (प्रधान संपा.), डॉ. पुष्पलता द्वारा तेजेन्द्र शर्मा का लिए गए साक्षात्कार से, प्रवासी जगत, त्रैमासिक पत्रिका, अप्रैल-जून 2018, पृ. 118
12. तेजेन्द्र शर्मा, 'तेजेन्द्र शर्मा: श्रेष्ठ कहानियाँ', पूर्वोक्त, पृ. 190
13. डॉ. मनप्रीत कौर, संपा. भारतीय और प्रवासी हिंदी कथा साहित्य: वर्तमान परिदृश्य (संपा.), पूर्वोक्त, पृ. 42
14. प्रदीप श्रीधर (प्रधान संपा.), प्रवासी हिंदी साहित्य: दशा एवं दिशा, पूर्वोक्त, पृ. 448
15. तेजेन्द्र शर्मा, 'तेजेन्द्र शर्मा: श्रेष्ठ कहानियाँ', भूमिका, पूर्वोक्त, पृ. ग्यारह

भारत विभाजन और शरणार्थियों की समस्या

प्रीति देवी मौर्या

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय

डॉ० अचला पाण्डेय

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय

शरणार्थी एक ऐसा व्यक्ति होता है जो अपने देश की राष्ट्रीयता के बाहर है, और जुल्म के भय से अपने देश वापस नहीं जा रहा है। उन पर यह जुल्म उनके धर्म राष्ट्रीयता जाति या किसी सामाजिक समूह के सदस्य अथवा राजनैतिक मत के कारण हो सकता है। शरणार्थी मतलब बेसहारा, लाचार, असहाय तथा रक्षा की उम्मीद करने वाले लोगों का समूह होता है अंग्रेजी मैं इन्हें त्मनिहमम कहा जाता है। इस प्रकार वह व्यक्ति विशेष अथवा उनका पूरा जत्था जो किसी भी कारणवश अपना राष्ट्र छोड़कर अन्य के शरण में चला जाता है। भारत में शरणार्थियों का इतिहास बहुत पुराना है भारत में बसे कानूनी और गैर कानूनी शरणार्थियों की संख्या बहुत है। भारत और पाकिस्तान के विभाजन के समय बहुत से लोग पाकिस्तान से भारत आए और यहां से भी लोग पाकिस्तान गए। परंतु कानून के अनुसार वे वहां के नागरिक हो गये।

'कुरुक्षेत्र जैसे शरणार्थी शिविर तो महज तात्कालिक व्यवस्था थी। शरणार्थियों के लिए स्थाई आवास उनके लिए रोजगार की व्यवस्था करना सरकार के लिए बड़ा सिरदर्द था। दिसंबर 1947 में शहर का दौरा करने वाले पत्रकार ने इस भीड़ को अपने आप में एक शहर के संज्ञा दी और लिखा कि श्वहां करीब 300000 लोग तंबूओं और विशाल मैदानों में पागलों की तरह, बिना हिले डुले, बिना किसी काम के बैठे हुए हैंश उसने लिखा कि उनके मन में एक ही विचार आ रहा है कि

'हमें कुछ जमीन दे दो, उस पर हम अन्न उपजा लेंगे।श्श उन्होंने मांग भी की। जमीन के भूखे इन किसानों ने हमें बताया कि उन्हें इस बात की चिंता नहीं की जमीन कहां दी जा रही है, बस वह जमीन खेती के लायक होनी चाहिए। जमीन के लिए उनकी भूख बड़ी स्वाभाविक लग रही थी।'[1]

देखा जाए तो भारत विभाजन की नींव 1920 से 1932 तक के समय में पड़ी । 3 जून 1947 को माउंटबेटन योजना में भारत की स्वतंत्रता तथा विभाजन दो प्रमुख बिंदु थे।

'पाकिस्तान का आह्वान पहली बार औपचारिक रूप से मुस्लिम लीग के द्वारा मार्च 1940 में किया गया वित्तीय विश्वयुद्ध ने पाकिस्तान की मांग को तात्कालिक रूप से रोक कर रखा था युद्ध के बाद इंग्लैंड में लेबर पार्टी की सरकार सत्ता में आई।'[2]

15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। एक तरफ स्वतंत्रता की खुशियां मनाई जा रही थी वहीं दूसरी तरफ विभाजन के कारण शरणार्थियों को विस्थापन की समस्याओं से जूझना पड़ रहा था जिसके कारण लोग हिंसा पर उतर आए थे। और एक दूसरे को धर्म संप्रदाय के नाम पर मार रहे थे। माउंटबेटन के जीवनी कार फिलिप जीगलर ने उनके फैसले को यह कहते हुए सही ठहराया - 'एक बार सिद्धांत के तौर पर जब मुल्क का बंटवारा स्वीकार कर लिया गया तो यह अनिवार्य था कि सांप्रदायिक भावना बड़ी तेजी से फैलती सत्ता हस्तांतरण में जितना ज्यादा वक्त लगता, उतना ही ज्यादा तनाव और उतना ही ज्यादा हिंसा फैलती।'[3]

'पाकिस्तानी लोगों ने वहां के हिंदुओं को वहां से जबरदस्ती खदेड़ना शुरू किया। उनकी धन- दौलत, जमीन-जायदाद लूटना आरंभ किया भारत के कुछ मुसलमानों के साथ भी ऐसा ही बर्ताव किया गया परंतु भारत में बहुत बड़ी संख्या में शरणार्थी आने लगे उन्हें बस आने की समस्या बिकट हो गई।'[4]

पाकिस्तान निर्माण के बाद शरणार्थियों की समस्या प्रमुख समस्या थी। जगह-जगह पर दंगा हो रहे थे। हजारों - लाखों लोग मारे गए। लाखों लोग शरणार्थी बने। उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकारों ने शरणार्थियों की समस्याओं का सजीव अंकन किया है । यशपाल ने झूठा सच उपन्यास में प्रकाश डाला है कि कैंप में शरणार्थियों को अनाज के लिए लाइन लगानी पड़ती है। शरणार्थियों को अनाज पर्याप्त रूप से नहीं मिलता। वे लोग भूख से बिलखते हैं। एक शरणार्थी अनाज बांटने वाले से कहता है - 'भाई हम चार आदमी, दो बच्चे भी हैं । डेढ़ पाव आटा, छटाक भर दाल से हमारा क्या बनेगा? भाई सेर भर आटा तो दो।'[5]

कुछ शरणार्थियों को जब स्थाई कर दिया जाता है और कुछ को रोजगार दे दिया जाता है तो कैंप को उजाड़ा जाने लगता है। परंतु कुछ लोगों को घर और रोजगार नसीब नहीं होता। नेहरू जी जब इस कैंप में शरणार्थियों से मिलने जाते हैं तो एक वृद्ध व्यक्ति उनसे दैन्य भाव में कहता है-'महाराज जी, तुम्हारा राज बरकरार रहे। हमें जबरदस्ती हमारे पक्के मकानों से उठा लाए हो। यहां कोई कच्ची कोठरी ही दे दो। नहीं दे सकते तो इस झोपड़ी से क्यों निकाल रहे हो?'[6]

इसी प्रकार द्रोणवीर कोहली का 'वाह कैंप' उपन्यास में पाकिस्तान से आए हिंदुओं को 'वाह' नामक कैंप में रखा गया है 'वाह' कैंप में पहले तो राशन आता था लोगों में बटता था। कुछ समय बाद राशन आना बंद हो जाता है। लोग भुखमरी से मरने लगते हैं। कुछ कमजोर होकर भयानक बीमारी से जूझ रहे होते हैं। कुछ दिन बाद हवाई जहाज से रोटी का पैकेट बंटने के लिए आता है, जिसे पाने के लिए लोग इस प्रकार दौड़ते हैं – 'बड़ा पैकेट धड़ाके के साथ हमारे निकट गिरा था और उस पर भीड़ टूट पड़ी थी जैसे आकाश से गिरी लोथ पर चील – कौवे- गिद्ध पिल पड़ते हैं और उसकी बोटी – बोटी नोच डालते हैं।'[7]

जो लोग भूख से मरते थे उनको वहीं पास में जला दिया जाता था। जिससे भयंकर बीमारियां फैल रही थी ।अस्पताल में डॉक्टर पर्याप्त नहीं थे। कोहली जी स्वास्थ्य समस्या पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं – 'अस्पताल में न तो पर्याप्त डॉक्टर थे ना आवश्यक दवाइयां कोई दिन खाली नहीं जाता था जब मरे-अधमरे लोगों से भरी लारिया और ट्रक कैंप में ना आते हों। जो लोग किसी तरह जान बचाकर पहुंचते थे उनमें से कोई तत्काल चिकित्सा के अभाव में अस्पताल की देहरी पर ही दम तोड़ देते थे। लाशें बारिक के बाहर बारिश में पड़ी भीगती रहती। फिर कैंप में हैजा का भी अंदेशा हो गया था। हैजे के जितने टीके चाहिए थे उतने सुलभ नहीं थे।'[8]

फणीश्वर नाथ रेणु कृत 'जुलूस' में शरणार्थियों की समस्या का वर्णन इस प्रकार किया गया है – पाकिस्तान से आए शरणार्थियों को यहां रहने वाले स्थानीय लोग विभाजन का जिम्मेदार मानते हैं वह लोग जहां रहते हैं उसे पाकिस्तानी टोला कह कर बुलाते हैं। पवित्रा नाम की महिला जब शरणार्थियों से मेल-जोल की कोशिश करती है तो उसे सख्त रूप से मना कर दिया जाता है। इस प्रकार वहां के स्थानीय लोग शरणार्थियों को अलग नजर से देखते हैं। इस प्रकार पाकिस्तान से आए हिंदू स्वयं को उपेक्षित अपने मूल से कटा हुआ महसूस करते हैं। यहां के स्थाई हिंदुस्तानी लोग शरणार्थियों को भी विभाजन का कारण मानते हैं।

इसी प्रकार श्काले कोसश (बलवंत सिंह) उपन्यास में शरणार्थियों को आवागमन की समस्या का वर्णन किया गया है। हिंदुस्तान आने के लिए हिंदू शरणार्थी कैंप में रेलगाड़ी का इंतजार करते रहते हैं। जब रेल आती है चालीस लोगों की सीट पर सैकड़ों लोग बैठते हैं। जो ताकतवर हैं कमजोर लोगों को धकेल कर चढ़ जाते हैं। कमजोर व्यक्ति झुंझलाकर गाली-गलौज करने लगते हैं बलवंत सिंह कहते हैं- 'वास्तव में आदमी पर आदमी सवार थे। कुछ लोग खिड़कियों और दरवाजों के साथ लटक गए तो कुछ ने डिब्बों की छतों पर डेरे जमा दिए। पगड़िंया उतार कर एक सिरा अपनी कमर में बांध डाला , जिसमें कि गाड़ी के चलने पर पर ढालू छत पर इधर उधर ना लुढ़क जाएं।'[9]

जगदीश चंद्र के उपन्यास मुट्ठी भर काकर में शरणार्थियों के विषम परिस्थितियों का वर्णन किया गया है शरणार्थियों से बुरा भला व्यवहार किया जाता है एक सरदार के माध्यम से दर्शाया गया है जो अपने परिवार सहित कपड़ा बेचने का कार्य करता है उसको लोग पसंद नहीं करते हैं और शरणार्थी होने के कारण उसका तिरस्कार करते हैं तो जवाब में सरदार जी कहते हैं –'लाला हम तो कैंप में भी नहीं रहे, मजदूरी के सिर पर सब्जी का टोकरा उठाकर गली – गली घूमे हमने किसी मां की खसम के आगे हाथ नहीं फैलाया।'[10]

इस प्रकार अपने स्थाई जगह पर जो बड़े से बड़े लोग थे अमीर से अमीर लोग थे वह शरणार्थी बनकर बद से बदतर जिंदगी जीने को मजबूर हुए।

श्देश की हत्याश उपन्यास में कैंप के शरणार्थियों का बहुत ही मार्मिक दयनीय स्थिति का अंकन किया गया है कैंप में जगह ना होने से लोग पेड़ के नीचे बसर करते हैं। अनाज तो अनाज पानी भी नहीं मिलता है। लोग आपस में लड़ते झगड़ते हैं। कैंप के चारों ओर गंदगी फैल जाती हैं शरणार्थियों में स्वास्थ्य की समस्याएं आने लगते हैं लोगों को डॉक्टर और दवा का इंतजाम नहीं हो पाता है देश की हत्या उपन्यास के लेखक गुरुदत्त कहते हैं – 'वाह कैंप में शरण लेने वालों की संख्या इतनी बढ़ गई थी कि राशन और कपड़ों का टोटा होने लगा था। लाहौर और रावलपिंडी की सहायता बंद हो गई थी । दोनों नगर प्रायः उजड़ चुके थे।'[11]

इस प्रकार शरणार्थियों को पाकिस्तान से हिंदुस्तान लाने का प्रश्न भी महत्वपूर्ण था, लेकिन अत्यंत ही कठिन था। रास्ते में लूटपाट बहुत हो रहा था। रेलगाड़ियां लूट ली जा रही थी। खून – खराबे हो रहे थे। अक्सर रेलगाड़ियां जब अपने गंतव्य तक पहुंचते तो वह लाशों से भरी हुई होती थी। इस हिंसा का शिकार विशेष रूप से महिलाएं हुई, उनका शरीर अपने अपने समुदाय के सम्मान का प्रतीक बन गया। विरोधी समुदाय के पुरुषों ने दूसरे पक्ष के महिलाओं को अपहरण कर उनका बलात्कार किया ।कुछ परिवार अपनी इज्जत बचाने के लिए अपने घर की बहू बेटियों को अपने हाथों से मार डाला। शरणार्थियों को मानसिक, शारीरिक, आर्थिक, हर प्रकार के कठोर मुसीबत झेलनी पड़ी जिसमें से कुछ लोग काल के गाल में भी समा गए।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. रामचंद्र गुहा, भारत गांधी के बाद पृष्ठ 106
2. रामचंद्र गुहा, भारत गांधी के बाद पृष्ठ 28
3. रामचंद्र गुहा, भारत गांधी के बाद पृष्ठ 39
4. डॉ. शहनाज सैय्यद, भारत विभाजन और हिंदी उपन्यास पृष्ठ संख्या 189
5. यशपाल, झूठा सच पृष्ठ 221
6. यशपाल , झूठा सच पृष्ठ संख्या 262
7. द्रोणवीर कोहली, वाह कैंप पृष्ठ 17
8. द्रोणवीर कोहली, वाह कैंप पृष्ठ 115
9. बलवंत सिंह, काले कोस पृष्ठ 307
10. जगदीश चंद्र, मुट्ठी भर कांकर पृष्ठ 20
11. गुरुदत्त , देश की हत्या 175

बुलंदशहर के विशेष संदर्भ में कृषि में महिलाओं की भागीदारी पर अध्ययन

पवन कुमार

(Research Scholar), Dept. of Sociology, Shri Venkateshwara University, Gajraula, UP

डॉ० करन सिंह चौहान

Associate Professor, Dept. of Sociology, Shri Venkateshwara University, Gajraula, UP

सार

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का विकास काफी हद तक उसके कृषि विकास पर निर्भर करता है। औद्योगिक विकास के लिए एक मजबूत और सुविकसित कृषि आधार की आवश्यकता होती है। उद्योगों को कच्चे माल की आवश्यकता होती है। इसकी आपूर्ति कृषि और संबद्ध श्रेणियों से प्राप्त होती है। आधुनिकीकरण और मशीनीकरण के अभाव में कृषि क्षेत्र की प्रगति संभव नहीं है। कृषि और औद्योगिक विकास एक दूसरे पर निर्भर हैं। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य कृषि में महिलाओं की भागीदारी को जानना है। इस अध्ययन के लिए कुल 100 उत्तरदाताओं को चुना गया है और उनसे पूछे गए बुनियादी लेकिन प्रारंभिक प्रश्न इस अध्ययन को मान्य करते हैं। निष्कर्ष में विस्तारित किया गया है कि ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएं कृषि प्रक्रिया में सबसे अधिक सक्रिय रूप से भाग लेती हैं।

कीवर्डः कृषि, विकास, भागीदारी।

परिचय

"लोगों को जगाने के लिए महिलाओं को ही जगाना पड़ता है। एक बार वह चलती है तो परिवार चलता है, गांव चलता है, राष्ट्र चलता है।" पंडित जवाहरलाल नेहरू

वैदिक और उत्तर-वैदिक काल में भारत में महिलाओं की स्थिति बहुत उन्नत थी। इसलिए शास्त्रों में कहा गया है कि - "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" अर्थात् जहाँ नारी की पूजा की जाती है, वहाँ देवताओं का वास होता है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता में नारी को शक्ति कहकर सर्वोच्च स्थान दिया गया। समय के साथ, पुरुष उनके अधिकार छीनते रहे और समाज में महिलाओं की स्थिति में गिरावट जारी रही। मध्य युग में उनकी स्थिति बहुत दयनीय हो गई थी और समाज द्वारा उन पर कई तरह की अक्षमताएं थोपी गईं। 19वीं शताब्दी में महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए व्यापक प्रयास किए गए और यह महसूस किया गया कि किसी भी समाज की प्रगति और उत्थान के लिए यह आवश्यक है कि महिलाओं को पुरुषों के समान सम्मान और समान अधिकार दिया जाए। समय बीतने के साथ, महिलाओं के प्रति पुरुषों के दृष्टिकोण में बदलाव आया और धीरे-धीरे महिलाओं को सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में कई अधिकार प्राप्त हुए। लेकिन आज भी भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति पुरुषों की तुलना में दयनीय है, भारतीय समाज अभी भी महिलाओं को समान सम्मान देने में भेदभाव करता है और सामाजिक व्यवहार के मानदंडों को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण सामाजिक और आर्थिक तत्वों का पूर्ण अभाव है। इसलिए आज भारतीय महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय स्तर पर लैंगिक भेदभाव की समस्या का समाधान किया जाए और ग्रामीण और शहरी क्षेत्र की महिलाओं को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ना जरूरी है।

कृषि पहली सभ्यता है जिसे मनुष्य ने आय के स्रोत के रूप में उपयोग करना सीखा। यह हर अर्थव्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है, चाहे वह विकसित हो या विकासशील। कृषि भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, और यह एक पारिवारिक व्यवसाय है जो ग्रामीण विकास और गरीबी में कमी का एक प्रमुख चालक है। कृषि भारत में रोजगार का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है, खासकर ग्रामीण महिलाओं के लिए, और यह आर्थिक सुरक्षा के लिए काफी हद तक इस पर निर्भर है। भारत के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में कृषि उत्पादन का हिस्सा लगभग 17-18 प्रतिशत है। 2012 के आंकड़ों के अनुसार, भारत के पास दुनिया का चौथा सबसे बड़ा कृषि क्षेत्र है। इसमें अनुमानित 180 मिलियन हेक्टेयर कृषि भूमि है, जिसमें से 140 मिलियन लगातार लगाए और खेती की जाती है। भारत में, महिलाएं समाज की रीढ़ हैं और कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण संसाधन हैं। वे कृषि विकास के साथ-साथ संबद्ध और घरेलू गतिविधियों में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं, और वे विभिन्न आजीविका विकल्पों का अनुसरण करते हैं। कृषि फसलें पैदा करना, जानवरों की सफाई

करना, खाना पकाना, ग्रामीण उद्यमों में काम करना, व्यापार और विपणन में संलग्न होना, परिवार के सदस्यों की देखभाल करना और उनके आवास को बनाए रखना इन कार्यों के सभी उदाहरण हैं।

कृषि में सभी आर्थिक रूप से सक्रिय पुरुषों में से 63 प्रतिशत और सभी आर्थिक रूप से सक्रिय महिलाओं में से 78 प्रतिशत कार्यरत हैं। किसानों, सह-किसानों, दिहाड़ी मजदूरों और खेत प्रबंधकों के रूप में सेवा करते हुए महिलाओं की पारंपरिक रूप से कृषि में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वे परंपरागत रूप से बीज से लेकर थाली तक खाद्य उत्पादक रहे हैं। खाद्य उत्पादन में महिलाएं पुरुषों की तुलना में अधिक श्रम करती हैं, फिर भी वे लैंगिक भेदभाव के परिणामस्वरूप कम पैसा कमाती हैं। महिलाओं की विविध भूमिकाओं के परिणामस्वरूप वास्तविक रूप में उत्पादक प्रणाली में एक बड़ा योगदान होता है।

हालांकि, एक पुरुष-प्रधान संस्कृति में, उसकी नौकरी को पर्याप्त रूप से मान्यता नहीं दी जाती है, और उसका योगदान उचित रूप से योग्य नहीं है। विकास की प्रक्रिया में उनका प्रतिनिधित्व कम किया गया है। इस तथ्य के बावजूद कि भारत में अधिकांश कार्यबल महिलाएं हैं, उन्हें मजदूरी, संपत्ति के अधिकार और स्थानीय किसान संगठनों में प्रतिनिधित्व के मामले में महत्वपूर्ण नुकसान का सामना करना पड़ रहा है। इसके अलावा, उत्पादक संसाधनों तक सीमित पहुंच के कारण महिलाओं को कृषि उत्पादन में कई समस्याएं हैं, जो उन्हें अपनी उत्पादकता बढ़ाने से रोकती हैं।

महिलाएं दुनिया की आधी आबादी और सभी कामकाजी घंटों का दो-तिहाई हिस्सा हैं। यह वैश्विक आय का केवल एक तिहाई कमाता है और वैश्विक संसाधनों के दसवें हिस्से से भी कम को नियंत्रित करता है। यह दर्शाता है कि महिलाओं की आर्थिक स्थिति भयानक है, खासकर भारत जैसे देशों में।

सशक्तिकरण किसी व्यक्ति या समूह की निर्णय लेने और उन निर्णयों को वांछित कार्यों और परिणामों में बदलने की क्षमता को बढ़ाने की प्रक्रिया है। सशक्त लोगों में निर्णय लेने और कार्रवाई करने की क्षमता होती है। यह, बदले में, व्यक्तियों को उनके जीवन की दिशा और उन्हें प्रभावित करने वाले निर्णयों पर अधिक नियंत्रण रखने में सहायता करता है। यह शक्ति, उपलब्धि, सफलता और वापस देने के बारे में आम भ्रांतियों को दूर करता है। सशक्तिकरण एक अवधारणा है जिसे विभिन्न क्षेत्रों में पाया जा सकता है, जिसमें सामुदायिक विकास, मनोविज्ञान, शिक्षा, अर्थशास्त्र और सामाजिक आंदोलनों और संगठनों का अध्ययन शामिल है। परिवर्तन की भ्रामक कमी नहीं, बल्कि परिवर्तन की एक पारदर्शी, पूर्वानुमेय, व्यावहारिक और कुशल प्रक्रिया की स्वीकृति जो आश्वासन और स्थिरता लाएगी।

आज के वैश्वीकरण की दुनिया में सतत विकास प्राप्त करने के लिए लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण महत्वपूर्ण तत्व हैं। महिलाओं को सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में सशक्त बनाया जाना चाहिए। यह उन्हें न केवल उनके निजी जीवन में, बल्कि उनके सामाजिक और राजनीतिक जीवन में भी समान भागीदार बना देगा।

महिलाएं पूर्वी एशिया, दक्षिण एशिया, उप-सहारा अफ्रीका, मध्य पूर्व और उत्तरी अफ्रीका में पुरुषों की तुलना में उच्च दर पर कृषि में काम करती हैं। अंत में, विकासशील देशों का एक बड़ा हिस्सा है। कृषि में महिलाएं, सामान्य तौर पर, निर्णय लेने में खराब होती हैं और उनके प्रयासों के लिए उन्हें कम आंका जाता है और उन्हें कम भुगतान किया जाता है। सभ्य भूमि, ऋण, प्रशिक्षण और बाजारों तक पहुंच उनके लिए पुरूषों की तुलना में अधिक कठिन थी। युद्धों और सशुल्क काम के लिए पुरुषों के प्रवास के साथ-साथ एचआईवी/एड्स मृत्यु दर में वृद्धि के परिणामस्वरूप महिला-प्रधान परिवारों की संख्या में वृद्धि हुई है, विशेष रूप से विकासशील-विश्व ग्रामीण क्षेत्रों में। यदि इन चिंताओं का नेतृत्व और समाधान किया जाए, तो महिलाओं को सशक्त बनाया जा सकता है।

महिलाएं ग्रामीण अर्थव्यवस्था में किसानों, वेतनभोगी और उद्यमियों के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वे अपने परिवार के सदस्यों की भलाई के लिए भी जिम्मेदारी लेते हैं, जिसमें भोजन की व्यवस्था और बच्चों और बुजुर्गों की देखभाल शामिल है। ग्रामीण महिलाओं के अवैतनिक कार्य, विशेष रूप से गरीब घरों में, अक्सर लकड़ी और पानी इकट्ठा करना शामिल होता है। स्वदेशी और जमीनी समुदायों की महिलाएं अक्सर पारंपरिक ज्ञान की संरक्षक भी होती हैं, जो उनके समुदायों की आजीविका, लचीलापन और संस्कृति के लिए महत्वपूर्ण है। फिर भी, ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को लिंग आधारित भेदभाव और सामाजिक मानदंडों, अवैतनिक काम में अनुपातहीन भागीदारी और शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, संपत्ति और वित्तीय और अन्य सेवाओं तक असमान पहुंच के कारण आर्थिक गतिविधियों में शामिल होने में बाधाओं का सामना करना पड़ता है। वे पर्यावरणीय आपदाओं और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के प्रति भी अनुपातहीन रूप से संवेदनशील हैं। लैंगिक समानता को बढ़ावा देना और सुनिश्चित करना, और सभ्य काम और उत्पादक रोजगार के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाना, न केवल समावेशी और टिकाऊ आर्थिक विकास में योगदान देता है, बल्कि गरीबी में कमी और खाद्य सुरक्षा पहलों के साथ-साथ जलवायु परिवर्तन शमन और अनुकूलन प्रयासों की प्रभावशीलता को भी बढ़ाता है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (प्स्व) का डिसेंट वर्क एजेंडा ग्रामीण महिला सशक्तिकरण के लिए एक एकीकृत ढांचा प्रदान करता है, जो अंतर्राष्ट्रीय श्रम मानकों, सामाजिक संवाद और इस मान्यता पर आधारित है कि ग्रामीण महिलाएं जलवायु कार्रवाई में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

ग्रामीण महिलाएं विकास की प्रमुख अभिकर्ता हैं। वे सतत विकास के लिए आवश्यक परिवर्तनकारी आर्थिक, पर्यावरणीय और सामाजिक परिवर्तनों की उपलब्धि की दिशा में एक उत्प्रेरक भूमिका निभाते हैं। लेकिन क्रेडिट, स्वास्थ्य देखभाल और शिक्षा तक सीमित पहुंच उनके सामने कई चुनौतियों में से एक है। ये वैश्विक खाद्य, आर्थिक संकट और जलवायु परिवर्तन से और बढ़ गए हैं। न केवल व्यक्तियों, परिवारों और ग्रामीण समुदायों की भलाई के लिए, बल्कि समग्र आर्थिक उत्पादकता के लिए भी उन्हें सशक्त बनाना आवश्यक है, क्योंकि दुनिया भर में कृषि कार्यबल में महिलाओं की बड़ी उपस्थिति है।

संयुक्त राष्ट्र महिला उन सभी मुद्दों पर कानूनों, नीतियों और कार्यक्रमों को आकार देने में ग्रामीण महिलाओं के नेतृत्व और भागीदारी का समर्थन करती है जो उनके जीवन को प्रभावित करते हैं, जिसमें बेहतर खाद्य और पोषण सुरक्षा और बेहतर ग्रामीण आजीविका शामिल है। प्रशिक्षण उन्हें नई आजीविका

का पीछा करने और उनकी जरूरतों के लिए प्रौद्योगिकी को अनुकूलित करने के लिए कौशल से लैस करता है। महिलाएं खाद्य उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और विश्व स्तर पर कृषि कार्य बल का एक बड़ा हिस्सा बनाती हैं।

मर्दानगी के विकास के इतिहास में महिलाओं की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। परिवार और कृषि गतिविधियों में उनके योगदान के माध्यम से, महिलाएं अर्थव्यवस्था के दीर्घकालिक विकास में एक बहुआयामी भूमिका निभाती हैं (सिंह, एट अल, 2012)। वे जमीन तैयार करने से लेकर फसल कटाई तक कृषि के हर पहलू में मदद करते हैं। वे डेयरी मवेशी, चारा संग्रह, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, बकरी पालन और मुर्गी पालन जैसी सहायक गतिविधियों की भी देखरेख करते हैं। वे तुरंत पारिवारिक आय उत्पन्न करने में योगदान करते हैं, इसलिए अपने परिवार की सामाजिक स्थिति में सुधार करने में सहायता करते हैं (शाही, एट अल।, 2018)। एक घर के जीवन स्तर की डिग्री और उस स्तर को प्राप्त करने के साधन समझने के लिए महत्वपूर्ण उपाय हैं। आय, व्यय और संपत्ति के साथ, आय में अस्थिरता की विशेषताओं को प्रकट करती है और असमानता के माप को जोड़ती है (मीना एट अल।, 2017, मीना एट अल।, 2018)। मैनुअल कृषि कार्यों से लेकर कृषि-प्रसंस्करण से लेकर गृह निर्माण तक, महिलाएं पारंपरिक खेती में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं (मजूमदार और शाह 2017)। महिलाओं ने कई बार समकालीन कृषि उपकरणों का उपयोग करके खेतों के आधुनिकीकरण की अपनी क्षमता का प्रदर्शन किया है, लेकिन उनके योगदान की सराहना नहीं की गई है (शाही, एट अल।, 2018)। वर्तमान अध्ययन कृषि में महिलाओं के उत्पादक और सकारात्मक जुड़ाव को ध्यान में रखने के लिए आयोजित किया गया था। कृषि में कामकाजी महिला श्रम की प्रवृत्तियों को निर्धारित करने के लिए कई व्यवस्थित शोध किए गए हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोध कार्य का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण विकास में महिलाओं की भूमिका के बारे में जानना है।

कार्यप्रणाली

इस अध्ययन के आंकड़ों को महिला श्रमिकों की संख्या पर एकत्र किया गया था और गैर-कामकाजी महिलाओं को बाहर रखा गया था। इस अध्ययन के आंकड़ों को यादृच्छिक चयन पद्धति पर एकत्र किया गया था जिसके माध्यम से अध्ययन क्षेत्र में 100 कामकाजी महिलाओं को सरल यादृच्छिक नमूनाकरण के माध्यम से एकत्र किया गया था। इस शोध के संचालन के लिए व्याख्यात्मक और वर्णनात्मक अनुसंधान डिजाइन दोनों का उपयोग किया गया था। कृषि क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका का विश्लेषण करने के लिए खोजपूर्ण डिजाइन का उपयोग किया गया था और नमूना उत्तरदाताओं के प्रोफाइल विश्लेषण के लिए वर्णनात्मक डिजाइन का उपयोग किया गया था।

आयु, कार्य के प्रकार, शैक्षिक स्थिति, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, जाति, धर्म, फसलों के प्रकार, खेत में काम करने के समय बिताने का कारण, कार्य करने वाला संसाधक, में लागू विधि के बारे में जानकारी शामिल करने के लिए साक्षात्कार शेड्यूलिंग और अवलोकन के माध्यम से डेटा एकत्र किया गया था। इस अध्ययन के लिए डेटा संचय करने के लिए क्षेत्र और मजदूरी, प्राथमिक और माध्यमिक विधियों का उपयोग किया गया था। डेटा एकत्र करने के बाद एसपीएसएस ;ैच्द्ध की मदद से सारणीबद्ध रूप में इसका विश्लेषण किया गया और कुछ डेटा को ग्राफ पर दर्शाया गया जो एक्सेल शीट की मदद से तैयार किए गए हैं।

तालिका 1 चयनित गांव और इस अध्ययन में उत्तरदाताओं की संख्या

क्र.सं.	*गांवों*	*उत्तरदाताओं की कुल संख्या*
1.	विकासखंड	35
2.	स्याना	20
3.	घनसुरपुर	23
4.	सराय	22
	कुल	100

उत्तरदाताओं का नमूना

उपरोक्त तालिका में सचित्र सूची स्पष्ट करती है कि इस अध्ययन की आगे की व्याख्या के लिए चुने गए उत्तरदाताओं की कुल संख्या यादृच्छिक नमूना तकनीक का उपयोग करके 100 है।

पायलट अध्ययन

अनुसंधान उपकरण के निर्माण से पहले और प्रतिवादी के नमूने के प्रकार के खनन को रोकने के लिए सेटिंग का एक पायलट अध्ययन किया गया था। इस अध्ययन से संबंधित महत्वपूर्ण अनुसूची और प्रश्नावलियों की पहले ग्रामीण लोगों और अध्ययन क्षेत्र के अन्य स्रोतों की मदद से जांच की गई और बाद में उनके द्वारा दिए गए सुझावों के आलोक में संशोधित किया गया। व्यक्तिगत साक्षात्कार की संरचना का पहला मसौदा अध्ययन में शामिल उत्तरदाताओं के नमूने पर प्रति परीक्षण के लिए उपयोग करने के लिए तैयार किया गया था। इस प्रकार प्राप्त प्रेक्षणों को सारणीबद्ध और विश्लेषित किया गया। इन प्रेक्षणों के आधार पर उपकरणों में उनके डेटा संग्रह के अंतिम उपयोग के लिए अंतिम रूप दिया गया था।

आगे की प्रक्रिया में, शोधकर्ता द्वारा विकसित किए गए और इस अध्ययन में उपयोग किए गए सभी पैमानों और उपकरणों को उनके अंतिम उपयोग किए गए संपादन उपयोग संपादन और संशोधन से पहले सावधानीपूर्वक सूचीबद्ध किया गया था, जब और जब आवश्यक हो। इन संशोधित और संपादित अनुसूचियों और प्रश्नावली पर एक बार फिर महत्वपूर्ण जानकारी के साथ चर्चा की गई ताकि प्रतिक्रियाओं की विश्वसनीयता सुनिश्चित की जा सके।

डेटा विश्लेषण और व्याख्या

इस अध्ययन के आंकड़ों का विश्लेषण इस प्रक्रिया में भाग लेने वाले 100 प्रतिभागियों के सर्वेक्षण किए गए प्रश्नावली के आधार पर किया गया है। जो व्यक्ति इस सर्वेक्षण में लगे हुए हैं और अध्ययन के उत्तरदाता हैं, वे राज्य के जाने-माने सदस्य हैं। इस अध्ययन के आंकड़ों को यादृच्छिक चयन पद्धति पर एकत्र किया गया था जिसके माध्यम से अध्ययन क्षेत्र में 100 कामकाजी महिलाओं को सरल यादृच्छिक नमूनाकरण के माध्यम से एकत्र किया गया था।

तालिका 2 सामाजिक-आर्थिक चर

सामाजिक-आर्थिक चर	*श्रेणी*	*आवृत्ति*	*आवृति वितरण*
उम्र			
	20-30	10	10:
	31-40	68	68:
	41-50	22	22:
वैवाहिक स्थिति			
	विवाहित	84	84:
	निबंधित	6	6:
	तलाक	-	-
	विधवा	10	10:
सामाजिक श्रेणी			
	आम	12	12:
	अन्य पिछड़ा वर्ग	7	7:
	अनुसूचित जाति	35	35:
	अनुसूचित जनजाति	46	46:
धर्म			
	हिंदू	90	90:
	मुसलमान	10	10:
	ईसाई	-	-
	कोई दूसरा	-	-
शिक्षा का स्तर			
	निरक्षर	44	44:
	प्राथमिक स्कूल	45	45:
	उच्च विद्यालय	11	11:
	ऊपर	-	-
आर्थिक श्रेणी			
	गरीबी रेखा से नीचे	58	58:
	एपीएल	42	42:
	अन्य	-	-
पति का पेशा			
	किसान	35	35:
	दैनिक श्रम	69	65:
	सरकार काम	-	-
	निजी नौकरी	-	-
पारिवारिक पृष्ठभूमि			
	ग्रामीण	100	100:
	शहरी	-	-
परिवार के प्रकार	नाभिकीय	25	25:
	संयुक्त	72	72:
	विस्तारित	3	3:

तालिका 1 उत्तरदाताओं की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती है। तालिका के अनुसार सर्वाधिक 31-40 वर्ष की आयु की महिलाओं के बाद 41-50 वर्ष की आयु वर्ग की महिलाओं का नंबर आता है। उत्तरदाता ग्रामीण पृष्ठभूमि से हैं और प्रमुख रूप से हिंदू समुदाय से हैं। सबसे अधिक संख्या में परिवार में संयुक्त परिवार प्रणाली है और परिवार की अर्थव्यवस्था अभी भी कम थी। तो उनमें से ज्यादातर के पास बीपीएल कार्ड हैं।

उत्तरदाताओं में शिक्षा का स्तर 45% प्राथमिक विद्यालय तक, 11% हाई स्कूल तक और 44% विवाहित हैं जो सामान्य 12% ओबीसी 7% अनुसूचित जाति 35% एसटी 46% सामाजिक श्रेणी से संबंधित हैं। ऐसा लगता है कि कृषि क्षेत्र में काम करने वाली एससी और एसटी महिलाओं की संख्या अधिक थी।

तालिका 3 कार्य के प्रकार

काम के प्रकार	*उत्तरदाताओं की संख्या*	*अर्थ*
बोवाई	15	15%
फसल काटने वाले	25	25%
निराई	35	35%
उत्पादों का परिवहन	15	15%
कुल	100	100%

ग्राफ 1 कार्य के प्रकार

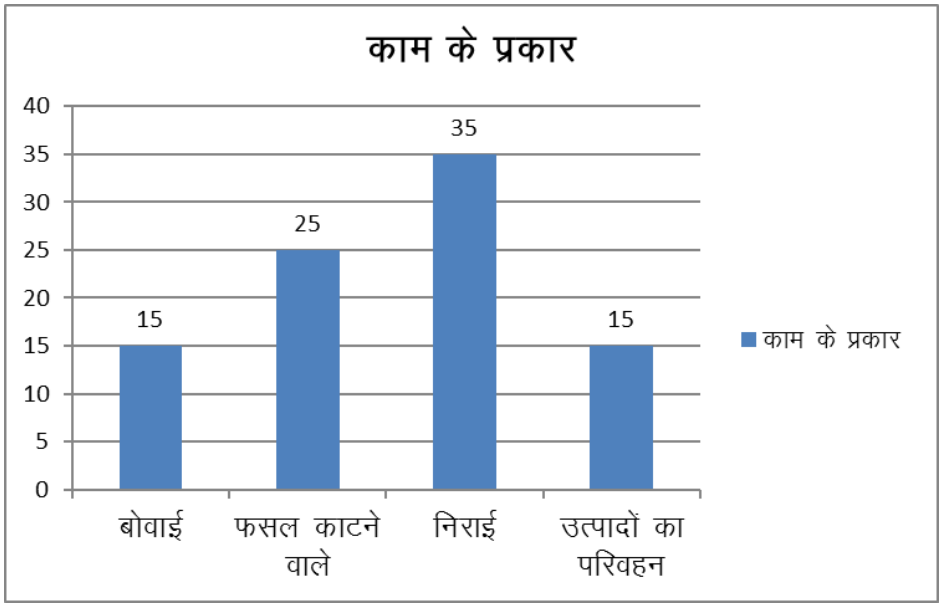

नीचे दी गई तालिका का ग्राफ कृषि क्षेत्र में महिलाओं द्वारा किए गए कार्य के प्रकार को दर्शाता है। उत्पादों की बुवाई, कटाई, निराई और परिवहन जैसे कार्य जैसे 15%, 25%, 35% और 15% महिलाओं द्वारा किए जाते हैं। अध्ययन क्षेत्र में मूल रूप से चावल, सूरजमुखी, सब्जी उत्पादन अधिकतर पाया जाता है। इसलिए, महिलाएं इस प्रकार के कार्यों को अपने क्षेत्र में और मजदूर के रूप में काम दोनों में शामिल कर रही हैं।

उनमें से अधिकांश चावल उत्पादन में एक मजदूर के रूप में शामिल हैं और साथ ही वे अपने ही खेत में सब्जियों का उत्पादन करते हैं। नकदी फसलों के रूप में चना और सूरजमुखी, वे अपने स्वयं के खेत की खेती करते हैं जिससे उन्हें अपने आर्थिक स्तर में सुधार करने में मदद मिलती है। कृषि क्षेत्र में कार्यों के साथ-साथ महिलाएं अन्य कृषि उत्पादन जैसे सूअर, बकरी और भेड़, मुर्गी आदि में शामिल होती हैं, जिसमें उन्हें अपने परिवार को चलाने के लिए अधिक अतिरिक्त आय प्राप्त होती है।

तालिका 4 विभिन्न प्रकार की पशुधन संबंधी गतिविधियाँ

गतिविधियां	*उत्तरदाताओं की संख्या*	*मीन स्कोर*	*प्रतिशत*
खिलाना	15	0.15	15%
जानवरों की सफाई	15	0.15	15%
पानी	20	0.2	20%
दूध दुहना	15	0.15	15%

चराई	15	0.15	15%
उपज का विपणन	5	0.5	5%
घी की तैयारी	15	0.15	15%
कुल	100	1.00	

ग्राफ 2 नई आर्थिक नीतियों के बारे में जागरूकता

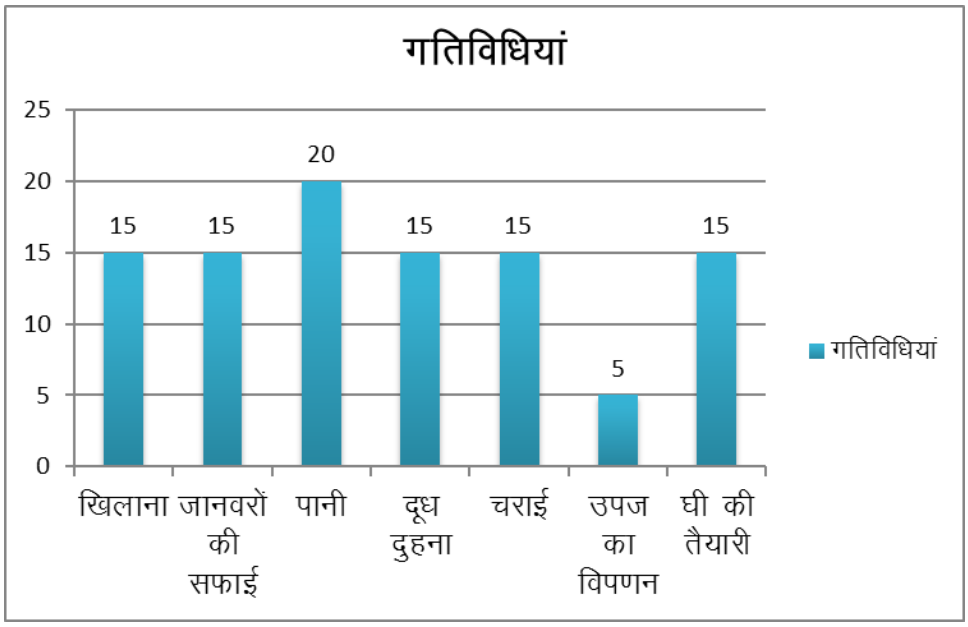

ग्राफ उन गतिविधियों की सूची प्रस्तुत करता है जिनमें महिलाएं इस क्षेत्र में भाग लेना पसंद करती हैं। उपरोक्त विश्लेषण के परिणाम सामने आए कि क्षेत्र की ग्रामीण महिलाएं सभी पशुधन गतिविधियों में अधिक भाग लेती हैं। अध्ययन क्षेत्र की ग्रामीण महिलाओं की अधिकांश गतिविधियों में उनकी भागीदारी महत्वपूर्ण है। वस्तुओं की खेती में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है क्योंकि यह देखा जाता है कि वे जिन गतिविधियों में भाग लेती थीं, वे हैं खिलाना, जानवरों की सफाई, पानी देना, दूध देना, चराई और बहुत कुछ। जैसा कि ऐसा लगता है कि औसत स्कोर 0.5 से कम है। उनमें से अधिक उत्तरदाता ज्यादातर पानी देने की प्रक्रिया में लगे हुए हैं और विपणन प्रक्रिया में कम।

निष्कर्ष

वर्तमान अध्ययन कृषि गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी की जांच करने के लिए आयोजित किया जाता है। इस अध्ययन के लिए अध्ययन से संबंधित प्रत्येक चर से संबंधित हर एक पहलू पर चर्चा की गई है। अध्ययन में कहा गया है कि अध्ययन के इस क्षेत्र में महिलाएं पत्नियों और माताओं के रूप में अपनी वैध भूमिकाओं के अलावा कृषि गतिविधियों में अधिक शामिल हैं। ऐसा लगता है कि इस क्षेत्र में महिला किसानों को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है जैसे कि वे इस प्रक्रिया को कायम रख सकें और विकास की प्रक्रिया में मदद कर सकें।

प्रतिक्रिया दें संदर्भ

- फाउंडेशन ऑन फ्यूचर फर्मिंग (2020), "वुमेन इन एग्रीकल्चरष्, अप्रैल, यूआरएल: https://www.globalagriculture.org/report-topics/women-in-agriculture.html
- ठाकुर रुचि, एट अल, 2018। "मल्टी - कृषि में ग्रामीण महिलाओं की आयामी भूमिका: एक समीक्षा", शुद्ध और अनुप्रयुक्त बायोसाइंस के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, खंड 6, अंक 5, पीपी 510-515
- सोमसुंदरम थिरुचेंदुरन, 2016। "कृषि विकास के लिए महिला किसानों का सशक्तिकरण", इंपीरियल जर्नल ऑफ इंटरडिसिप्लिनरी रिसर्च, वॉल्यूम 2, अंक 8, पीपी 990-992
- ख्याले वीबी और ख्याले एसवी, 2016। "कृषि में भारतीय महिलाएं", विज्ञान और प्रौद्योगिकी के लिए अंतर्राष्ट्रीय शैक्षणिक संस्थान, खंड 3, अंक 2, पीपी 1-8
- सिंह दिव्य और विनय दीपा 2013। "भारतीय कृषि में लिंग भागीदारी: खेत और संबद्ध गतिविधियों के व्यावसायिक खतरे का एक एर्गोनिक मूल्यांकनरू कृषि, पर्यावरण और जैव प्रौद्योगिकी के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, वॉल्यूम। 6, अंक 1, पीपी 157
- डॉस चेरिल और SOFA टीम। 2011. "कृषि में महिलाओं की भूमिका", कृषि विकास अर्थशास्त्र, खाद्य और कृषि संगठन, वियाल डेले टर्मे डि काराकॉल, 00153 रोम, इटली
- रोशन लाल और खुराना अशोक, 2011। "लिंग मुद्दे: कृषि क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका", जेनिथ इंटरनेशनल जर्नल ऑफ बिजनेस इकोनॉमिक्स एंड मैनेजमेंट रिसर्च, वॉल्यूम। 1, अंक 1, पीपी 32-33

चाणक्य का जल प्रबंधन

महेश कुमार सहगल

शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

सारांशिका- चाणक्य एक ऐसा नाम है जो कई नामों से जाना जाता है जैसे ''विष्णुगुप्त'', ''चाणक्य'' और ''कौटिल्य''। कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र विद्वानों के अनुसार, मौर्य काल का इतिहास जानने का एक मुख्य साधन है। इस अर्थशास्त्र में कुल 15 अधिकरण और उनमें 6000 श्लोक हैं। नालन्दा महाविश्वविद्यालय के आचार्य चाणक्य मुख्यत: अर्थशास्त्र और राजनीति के क्षेत्र में विश्व विख्यात हैं। चाणक्य का नाम लेते ही विद्वानों के मस्तिष्क में कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र की ओर ध्यान आकर्षित होना स्वाभाविक है। वस्तुत: स्वयं चाणक्य और अधिकांशत: विद्वानों के अनुसार, अर्थशास्त्र एक ऐसा विषय है जिसमें तत्कालीन समाज के अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, संविधान, कृषिविज्ञान, और विज्ञान आदि अनेक प्रज्ञा विषय समाहित हैं। कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में उक्त विषयों की विस्तृत गूढ़ जानकारियां मिलती हैं। चाणक्य ने स्वच्छ जल और जल प्रबंधन की आवश्यकता एवं विकास पर बल दिया है। इन्हीं जानकारियों के आधार पर हम तत्कालीन समाज में जल प्रबंधन का अध्ययन करेगें।

महत्व

जल प्रबंधन की चाणक्य कालीन जानकारियों की उपलब्धता, उनका विस्तृत विवरण, प्रबन्धन की तकनीकि, समाज में उस समय जल संचित करने के साधन, वे साधन कृत्रिम थे या प्राकृतिक, कृत्रिम साधनों का अर्थ प्रबन्धन और वृहत स्तर की परियोजनाएं या निम्नस्तरीय लघु जल संसाधन आदि सब विधाओं की तत्कालीन सम्पूर्ण जानकारियां हमें चाणक्य के अर्थशास्त्र एवं इसके अनेक प्रकरणों में लिखित श्लोकों के माध्यम से मिलती हैं। तत्कालीन सम्पूर्ण समाज एवं राजकीय समन्वय से कैसे जल प्रबंधन का कार्य निष्पादित किया जाता था; इसका महत्वपूर्ण ज्ञान भी हमें चाणक्य के अर्थशास्त्र से ही प्राप्य है।[1]

स्वसेतुभ्यो हस्तप्रावर्त्तितममुदकं भागं पंचम दद्यु:।

स्कन्दप्रावर्त्तिमं चतुर्थम्। स्त्रोतोयन्त्रप्रावर्तिमं च तृतीयम।[2]

यह श्लोक अर्थशास्त्र के सीताध्यक्ष प्रकरण से लिया गया है जिसमें जल प्रबंधन विषय का स्पष्ट चित्रण है।

अर्थात् यदि नदी, झील एवं कुओं पर रहट लगाकर सिंचाई करें तो ऊपज का चौथा भाग कर के रूप में राजा को देना चाहिए।

मौर्य काल में जल प्रबंधन के विषय में कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में लिखा है कि जल प्रबंधन का कार्य करना राजा का परम कर्तव्य था। राजा को चाहिए कि वह वर्षा के जल संग्रहण करने के लिए नदियों पर बांध और विशाल जलाशय बनवायें।

''दसकुलीवाट कूपस्यानम्''[3]

कौटिल्य के अनुसार, बीस हलों की जुताई वाली भूमि में अवष्य ही जल प्रबंधन के लिए कुएं की व्यवस्था थी। अन्य दैनिक उपभोग पेय जल, पशुपालन और कृषि की सिंचाई के लिये उचित एवं पर्याप्त मात्रा में जल प्रबन्धन हेतू कुओं, तालाबों या नदियों आदि का होना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त, दूरस्थ एवं शुष्क क्षेत्रों में बैल गाड़ी, ऊंट, गधे इत्यादि द्वारा भी पानी पहुंचा कर जलापूर्ति सम्पन्न की जाती थी। कंधों पर चमड़े के मसक या बडेघ बडेघ पात्रों में भी जल लाने का प्रावधान था। छोटे नालों, नहरों के द्वारा भी जल की पर्याप्त मात्रा में पूर्ति करने, जलाशयों और झीलों के द्वारा भी जल प्रबंधन करने के उल्लेख मिलते हैं।[4]

मौर्यकाल में कौटिल्य के अनुसार, कृषि कार्यो के लिए तालाबों या अन्य प्राकृतिक एवं कृत्रिम जल स्रोतों से जल प्रबंधन की आवश्यकताओं की जल आपूर्ति के लिए जनता को सुरक्षा, समृद्धि, सुदृढ़ता, एवं राजकीय सहयोग की प्रतिपूर्ति हेतू जनता को ऊपज का पांचवा हिस्सा राजकीय कोश में देना होता था। अन्य अधिक व्यय वाले कृष्त्रिम स्रोतों जैसे नहरों एवं नालियों से जल प्रबंधन हेतू राजकीय कोश में कुल पैदावार का तीसरा भाग अपनी स्वेच्छा से देय था। इस से स्पष्ट होता है कि मौर्य काल में जल प्रबंधन की प्रगति पर कृषकों की स्वेच्छा से फसल का तीसरा भाग देना स्वीकारीय था ताकि जल प्रबंधन का कार्य नहरों, छोटी कुलियॉ, तालाबों आदि कृत्रिम स्रोतों के माध्यम से सदैव निर्बाध चलता रहे।

राजपथों व अन्य रास्तों के किनारों पर मौर्यकाल में वृक्ष लगवाने और कुएं खुदवाने के भी उल्लेख मिलते हैं। वनों चरागाहों के निकट, जंगलों और शुष्क क्षेत्रों में भी जहां पेय जल की व्यवस्था नहीं थी; वहां राजकीय स्तर पर जल प्रबंधन का कार्य किया जाता था।[5]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार, वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में शालि धान, ब्रीहि धान कोड़व कोढ़ी का धान प्रियडगु (कंगनी का चावल) दारक दाल एवं तरक मोठ बोए जाने चाहिए थे। इसके अर्न्तगत ही मौर्य काल में कृषि की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए एवं कृषि कार्यों में सहायता हेतू अनेकों प्रकार के कर्मार होते थे, इनमें कुओं को खोदने वालों को 'मेदक' कहते थे एवं प्रत्येक गांव में मेदक होते थे। वर्षा के जल को मापने हेतु एक ऐसा कुण्ड बनाया जाता था जिसके मुंह का घेरा एक अरन्नि (24 अंगुल) हो।[6]

उक्त कुण्ड में जल संग्रहण के आधार पर वर्षा के जल का मापन होता था जिससे तत्कालीन वर्ष में या समय विशेष में कितनी वर्षा हुई है, आदि का निर्धारण किया जा सकता था। मापन को व्यक्त करने के लिए भी द्रोणपानी नामक यंत्र था और 23 द्रोणी पानी की वर्षा नहरी प्रवरों के लिए पर्याप्त थी।[7]

प्रोफेसर रामशरण वर्मा के अनुसार, राज्य में जल प्रबंधन एवं जल संरक्षण का दायित्व स्वयं राजा अपने संरक्षण में करवाता था। यह जल प्रबंधन का कार्य पेय जल के साथ-साथ कृषि कार्यों में सिंचाई के लिए भी किया जाता था।[8] कौटिल्य के अनुसार, वही देश या राज्य अच्छा है जहां पर्याप्त मात्रा में जल, वन, एवं कृषि योग्य भूमि हो। पर्याप्त मात्रा में प्राकृतिक स्रोतों का होना ही राजा की शक्ति होती है।[9]

मौर्यकाल में जल प्रबंधन हेतू प्राकृतिक स्रोतों के अतिरिक्त कृत्रिम स्रोतों के भी पर्याप्त उल्लेख मिलते हैं। इनमें नहर, नदियां, सर, तड़ाग, कूप, झील, बांध आदि का प्रमुख स्थान है। अधिकांशत: बडेघ्-बडेघ् सेतु, बंध और बांधों ने तत्कालीन समाज में जल प्रबंधन के क्षेत्र में घरेलू कार्यो, पशुपालन, और कृषि कार्यो में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।[10]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ईक्सठवां प्रक्रण गृह वास्तु का है; जिसके प्रथम श्लोक में लिखा है:

समान्प्रत्यया वास्तुविवादा:।

अर्थात वास्तु विषयक विवादों झगडों का निर्णय सामन्त (गांव का मुखिया) करें।11

आगामी श्लोकों में

गृहं क्षेत्रमाराम: सेतुबन्धस्तटाकमाधारो वा वास्तु:।[12]

अर्थात घर खेत, बाग, सीमाबन्ध, तालाब और जल रोकने के लिए बनायें हुए बन्ध आदि सबको सेतू कहते हैं।

अवस्करभ्रममुदपानं पानग्रहोचितमन्यत्र सूतिकाकूपादानिर्दषाद्वादिति।।[13]

अर्थात अस्थायी मकानों को छोड़कर स्थायी मकानों में कूपादि अर्थात मकानों के नीचे जल संग्रहण हेतू पक्की संरचना करनी चाहिएं।

तेनेन्धनावघातनकृतं कल्याणाकृत्येष्वाचामोदककमार्गाक्ष्व व्याख्यात:।।[14]

गढप्रसृतमुदकमार्ग प्रस्त्रवणात्रं प्रघातं प्रस्त्रवणां प्रघातं वा कारयेत।।[15]

तस्यातिक्रमे चतुष्पत्राषत्पणो दण्ड।।[16]

उक्त तीनों श्लोकों के अनुसार, विवाह या अन्य उत्सवों में उपभोग के बाद जल निकासी के कुल्ले (लोगों द्वारा प्रयोग में लाने के पश्चात् गन्दा पानी) के लिए नालियों का प्रबंधन होना अति आवश्यक था। खाना बनाने के लिए भट्टी आदि के लिए उचित स्थान का प्रबंधन भी मकानों में प्रत्येक परिवार को करना होता था। यह नाली तीन पद या डेढ अरत्नी (लगभग 1.5 फुट) गहरी खुब चिकनी थी। साफ दीवार के साथ पानी बहाने के लिए परनाला बनवाऐं अर्थात अलग से गिरने वाला परनाला लगवा दें। इस नियम का उल्लंघन करने वाले को 45 पण का दंड दिया जाता था।

मंत्र संख्या 12, 13 में भी घर के बाहर की ओर चार खम्बों का अग्नि का स्थान (यज्ञशाला) बनवायें, जिसमें एक पद या एक अरत्नी गहरा पानी निकालने का स्थान अवश्य होना चाहिए।17 मंत्र संख्या 1, 2, 7, 9, 10, 11, 12, 13 का संबंध भी जल प्रबंधन से है जो पेय जल, घर की अन्य आवश्यकताओं और पशुपालन हेतू जल की आवश्यकता की आपूर्ति करते थें।[18]

खातसोपानप्रणालीनिश्रेण्यवस्करभागैर्वहिबाधियां भगोनिग्रहे च परकुड्मुदकेनोप९तो द्वादश्पवो दण्ड:।।[19]

अर्थात् जो लोग, गढ्ढा (पानी) सीढ़ी (जीना) नाली, लकड़ी की सीढ़ी (नसेनी) और पाखाना निर्माण आदि से बाहर के पड़ोसियों को कष्ट पहुंचावें, सहन को रोकें, तथा पानी निकालने का ठीक प्रबंधन न रखने के कारण दूसरे की दीवार को हानि पहुंचावे, उसे 12 पण दंड दिया जावें। आगामी 26 वें मंत्र में वर्षा ऋतु में हर नाली खुली होनी चाहिए; ताकि कुड़ा करकट इकठ्ठा हो जाने से नाली बंद न हो जाएं। ऐसा नही करने पर 12 पण का दण्ड् का भागीदारी होगा।[20]

नौवें अध्याय के प्रकरण ईक्सठ के वास्तु विक्रय में, तीसरे मंत्र के आलेख के अनुसार, गांव के मुखिया तथा अन्य वृद्ध पुरूषों के सामने ही गांव, खेत, बाग, तालाब, हौज, आदि मूल्य के आधार पर तीन बार आवाज लगाई जावें एवं खरीदने वाला बोली बोले।[21] इस से यह विदित होता है कि उस समय कुओं हौज एवं अन्य कृत्रिम जल प्रबंधन के क्षेत्र में कुओं हौजों एवं अन्य कृत्रिम जल प्रबंधन के स्रोत जैसे तालाब आदि का सामाजिक महत्व एवं मूल्य अत्याधिक महत्वपूर्ण था। इस प्रकार जल प्रबंधन हेतू तत्कालीन समाज के लोग ऊंचें से ऊंचा मूल्य देकर भी उस पर अपना स्वामित्व रखना चाहते थे और उसका उपभोग करते थे। आगामी समय में उन्हें जल की कमी का सामना नही करना पड़ता था तथा उनके जल प्रबंधन का कार्य सुचारू रूप से चलता रहता था।

नौवें अध्याय के ईक्सठवें प्रकरण के अर्न्तगत वास्तु प्रसंग में, पैंतिसवें व छत्तिसवें मंत्र के अनुसार, यदि किसी तालाब का जल निकलवा दिया जाएं या सूख जाएं और लगातार पांच वर्षों तक कोई भी जलादी बेकार रहें तो उस पर उसके स्वामी का स्वामित्व नहीं रहता था। कृत्रिम जल स्रोतों में भी यदि कोई व्यक्ति जल प्रबंधन का ध्यान नहीं रखता था तो स्वत: ही वह सम्पत्ति राजस्व की हो जाती थी।[22] इस प्रकार सभी नागरिकों को जल प्रबंधन के स्रोतों की उपयुक्त रूप सें देखरेख करना अनिवार्य था। इससे जल स्रोतों की देखरेख सदैव ही होती रहती थी। वस्तुत: मौर्य काल में जल प्रबंधन सामाजिक जीवन का एक अभिन्न अंग था और इससे जल प्रबंधन के स्रोतों की अनदेखी होना या दूषित होने या नष्ट होने की संभावनाएं नही रहती थीं। अत: यह जल प्रबंधन का एक सटीक एवं उपयोगी आयाम था।

तटाकसेतु बन्धानां नवप्रर्वतने पोचवर्षिक: परिहार।।[23]

''यदि कोई व्यक्ति पानी पर नवीन सीमा या छोटे बांध बंधवाये, या तालाब बनवाएं तो उस पर पांच वर्ष तक सरकारी टैक्स नही लगाया जायेगा।''

अर्थात नवीन कार्यों के लिए सरकार की ओर से जल प्रबंधन में सरकारी टैक्स माफ करके बढ़ावा दिया जाता था जिससे आम जनता अधिकाधिक जल प्रबंधन के कार्यों के प्रति अग्रसर रहे।

भग्नोत्सृष्टानां चातुर्वर्षिक:।[24]

"यदि कोई व्यक्ति जल स्रोतों की टूट-फूट की मरम्मत या उनकी साफ सफाई करवाता है तो चार वर्षों तक उसको टैक्स में छूट दी जायेगी।"

आगामी श्लोक के अनुसार, ऐसे तालाब जिनमें नदी का पानी नही आता हो, उनमें वायु से चलने वाले रहट लगाकर किसान अपने खेतों बगीचों, फसलों आदि में सिंचाई करते थे। उन पर राजा को नग्न्य कर लगाना चाहिए।

पुण्यस्थानदेवगृहचित्रलेख्यसंज्ञाभिर्वा चार मुपलभेत।।[25]

इस प्रकार, तत्कालीन समाज में नदी के तट, तीर्थ आदि स्थानों, देवालयों, घर के चित्रलेखों को पवित्र लौकिक एवं तीर्थ स्थान माना गया है। इसीलिए नदियों को किसी भी प्रकार की हानि या प्रदूषित नहीं करते थे एवं वे जल प्रबंधन कर नदियों के जल का भरपूर उपयोग करते थे।[26]

सहोदकमाहार्योदकं वा सेतुं बन्धयते।।[27]

अन्येषां वा बाध्नतां भूमि मार्गवृक्षोपकरणानुग्रहं कुर्यात्।।[28]

इन मंत्रों में बताया गया है कि नदियां या नहरें जिनमें वर्ष भर जल बहे या ना बहे किन्तु वर्षो तक जल की उपलब्धता के लिए बांध बनवाने चाहिए ताकि जल प्रबंधन हेतू पर्याप्त मात्रा में जल मिलता रहे। जन कल्याण हेतू प्रजाजन के लिए कार्य करने चाहिए। जलाशयों, नहरों व तालाबों के लिए अन्न धन एवं अपनी भूमि तक श्रमदान में देने के लिए अग्रणीय रहना चाहिए क्योंकि जल एक ऐसा प्राकृतिक जीवन रक्षक पदार्थ है जिसकी तुलना विश्व के अन्य बहुमुल्य रत्न सोने, चांदी, हीरे, माणिक, मोती या किसी से भी नही की जा सकती। पर्याप्त जल प्रबंधन से सर्व जीव जन्तु के जीवन संचालन हेतू पेय जल, घरेलू आवश्यकताओं के लिए, पशुपालन, कृषि एवं पर्यावरण में समुचित सामजस्य आदि की निरन्तर पूर्ति होती है।

संभूय सेतूबन्धादपक्रामत: कर्मकरवलीवर्दा: कर्भ कुर्यु:।[29]

चाणक्य ने यहां जल प्रबंधन के लिये प्रत्येक घर के लिए उचित एवं अपनी आर्थिक स्थिती के अनुसार सहयोग करने के निर्देश दिये गये हैं। उपरोक्त मंत्र के अनुसार, यदि राजा जल प्रबंधन हेतू नवीन बांध या नहर का निर्माण करवाता है तो घर का सदस्य कार्य करवाने हेतू निर्माण हेतू अवश्य जाए। यदि किसी कारण से वह स्वयं उपस्थित ना हो पावे तो नौकर, कोई सहयोगी या बैल अवश्य भेजें। ऐसा भी करने में असमर्थ है तो उचित रूप से धन तो अवश्य ही देना चाहिए।

जल प्रबंधन के विषयों में कृत्रिम स्रोतों में नहरें, बावड़ी, या पुष्पकरणी के विषय में उल्लेख आते हैं कि वह कैसे बनानी चाहिए एवं उसके लिए क्या, खास बातें ध्यान देने योग्य हैं। उनमें दरवाजें कैसे हों, उनमें पानी कैसे भरें, जल निकासी की क्या व्यवस्था होनी चाहिए एवं वहीं पर जल का सदुपयोग कैसे करें; आदि विशेष बातों को ध्यान में रखकर कार्य करना चाहिए।[30]

त्रिभागाधिकायामा भाण्डवाहिनी: कुल्या: कारयेत्।।[31]

अर्थात इस श्लोक के अनुसार सामान्यत: नहरों की चौड़ाई अधिक होनी चाहिए ताकि जल प्रबंधन के साथ-साथ यातायात के साधनों की भी व्यवस्था हो सकें।

स्वसेतुभ्य: हस्तप्रावर्तिममुदकभागं पंचम दद्यु:।।[32]

स्वयं का धन एवं परिश्रम करके बनायें हुए तालाब आदि कृत्रिम स्रोतों से कृषि की ऊपज का पांचवां हिस्सा राजा को देना चाहिए ।

आगामी श्लोकों के अनुसार भी नहरों व नालियों के द्वारा कृषि कार्यो के लिए उपयोग किये गये जल की ऊपज का हिस्सा राजा को देना चाहिए।[33]

चतुर्थ नदीसरस्तटाककूपोद्घाटम।[34]

अपना धन खर्च करके और अपने परिश्रम से बनाएं गये तालाबों के अतिरिक्त सर, झील, कुएं रहट, कुलिया आदि द्वारा की गई कृषि का एक चौथाई भाग राजा को देना चाहिए।

वर्षावग्रहे शचीनाथगंगापर्वत महाकच्छपूजा: कारयेत्।।[35]

वर्षा के बन्द हो जाने पर इन्द्र, गंगा, पहाड़ और वरूण या समुद्र की पूजा करवायें। इस मंत्र से यह ज्ञात होता है कि उस समय अति वृष्टि को रोकने के भी उपाय किये जाते थे। आगामी मंत्र संख्या 78/20 में वर्णित है कि संक्रमक फैलने वाली महामारियों के बचाव के लिए गंगा में स्नान करना चाहिए। वरूण और समुद्र की पूजा और गाय के दूध का दोहन करना चाहिए।[36]

अध्याय चौदहवें के प्रकरण 118 में हीन शक्ति परण का संदर्भ है। इसके अर्न्तगत चाणक्य कहते हैं:

सेतुबन्ध: सस्यानां योनि:।।[37]

नित्यानुषक्तो हि वर्षगुणालभ: सेतुवापेषु।।[38]

सेतू बन्ध अर्थात बड़े-बड़े बांध लगाकर बनाये हुए जलाशय अन्न एवं उन्नति का प्रधान कारण होती हैं। अन्न एवं अन्य फसलों के लिये वृष्टि तो मौसम के अनुसार कभी कभी ही होती है किन्तु विशाल कृत्रिम निर्माण किये हुए जलाशयों से बोई गई फसलों में सिंचाई से सदैव ही अच्छी पैदावार होती है; जिसका लाभ हम प्रत्येक ऋतु में उठा सकते हैं।

खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख भुवनेश्वर के निकट है। इसकी भाषा प्राकृत, लिपि ब्राह्मी है और यह ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी का है।

कलिंग महाराजा महावेघवाहन श्री खारवेल की तीसरी पीढ़ी में महाराज ने अभिषेक प्राप्त किया और कलिंग की राजधानी खिबीर से आदेश दिया कि शीतल तालाबों की पालें बंधवायें। नन्द राज के द्वारा तीन सौ वर्ष पुरानी निर्मित नहर का जिर्णोद्धार करवाया।[39] इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि महापदनंद द्वारा उक्त अभिलेख के सौ वर्ष पूर्व निर्मित की गई नहर जल प्रबंधन के लिए कितनी महत्वपूर्ण थी जिसके बिना खारवेल नरेश भी प्रभावित हुआ और इसकी मरम्मत हेतू नरेश ने अपने राजकीय कोश से धन खर्च करके नहर को ठीक करवाया। यह कृत्रिम जल प्रबंधन का श्रोत है। इसी अभिलेख के द्वारा यह भी ज्ञात होता है कि उक्त समय जल प्रबंधन हेतू भारी स्तर पर नवीन तालाबों को पक्का बनवाया गया और प्राचीन तालाबों की पालों को बंधवाया, जिससे पर्याप्त मात्रा मे जल की प्राप्ती हो सके।

मौर्य साम्राज्य में अशोक के सातवें स्तम्भ लेख से भी हमें जल प्रबंधन की सटीक जानकारियां प्राप्त होती हैं। यह स्तम्भ लेख भारत के टोपरा, जिला अम्बाला, हरियाणा में स्थित है, इसकी भाषा प्राकृत और लिपि ब्राह्मी है। यह तीसरी सदी ई0पू0 का है।

इसके अनुसार, तेहरवीं पंक्ति में सम्राट अशोक आदेश देते हुए कहते थे कि जनता के लिए उन्होंने धर्मस्तम्भ बनवाएं और महामात्यों की नियुक्ति की। महामात्य प्रत्येक पांच वर्ष में जनता के बीच जाते थे और यह देखते थें कि जनता राजा के आदेश का पालन कर रही है अथवा नहीं और वो लोग धर्मलीन हैं। देवों के प्रसिद्ध राजा प्रियदर्शी अशोक कहता थे कि मार्गो में उनके आदेश द्वारा वट वृक्ष रोपे जाएं अर्थात रास्तों पर बरगद के पेड़ लगाएं जाएं। प्रत्येक आठ आठ कोस की दूरी में रास्तों पर जल प्रबंधन हेतू कुएं खुदवाएं।

अगले आदेश में फिर से जल प्रबंधन हेतू प्रियदर्शी राजा अशोक कहता था कि मार्गो पर जल प्रबंधन हेतू थोड़ी थोड़ी दूरी पर स्थित प्याऊं खुलवाऐं और सर्व मानव इस प्रकार से धर्माचरण का अनुसरण करें।

जल प्रबंधन का यह साक्ष्य प्रत्यक्ष रूप में मिलता है और सीधे-सीधे जन सामान्य से जुड़ा हुआ है। तत्कालीन लोग जानते थें कि यह वही राजा था जिसने कलिंग (उड़ीसा) में पालतु जानवर जैसे कुत्तें, बिल्ली, मवेशी, जनता, बच्चें और बुर्जुगों को जान से मार दिया था। हृदय परिवर्तन के बाद अब वही हमें आदेश दें रहा है कि प्रत्येक आठ-आठ कोस पर कुएं खोदे जाएं, थोड़ी-थोड़ी दूरी पर प्याऊं खोले जाएं। तत्कालीन लोग अशोक को धर्मलीन व्यक्ति के साथ-साथ एक क्रुरूर राजा के रूप में भी जानते थें। इसलिए उसके आदेशों का पालन धर्मलीन होने और क्रुरूर होने जैसे दोनों ही रूपों से मानते थे। अर्थात या तो राजा के आदेश का पालन करो अन्यथा कलिंग की भांति ही जान से मारे जा सकते हैं। यह जल प्रबंधन का एक ठोस उदाहरण था।

उषावदात का नासिक गुहा लेख इसकी भाषा प्राकृत, लिपि ब्राह्मी और यह द्वितीय शताब्दी का है। इसमें इसे द्वितीय पंक्ती में नवीन कुओं और तालाबों का निर्माता कहा गया है। अगली पंक्ती में प्रपा अर्थात प्याऊ लगवाने वाला कहा गया है।[40]

निष्कर्ष - चाणक्य कालीन जल प्रबंधन में कुलीन वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग आदि सम्पूर्ण जनसंख्या के लिए जल प्रबंधन का संपूर्ण दायित्व राजा का होता था। यह जल प्रबंधन शुद्ध पेय जल, घरेलू कार्यो, पशुपालन एवं कृषि कार्यो हेतू कृत्रिम स्रोतों एवं प्राकृतिक स्रोतों के माध्यम से सर्व जन के लिए किया जाता था। इनमें समय समय पर नवीन तकनीकियों का प्रयोग और समावेश भी किया जाता रहता था।

समस्त जल प्रबंधन कार्यो में स्वयं राजा के उत्तरदायी होने के कारण आचार संहिता भी कड़ी और असरदार थी जिसके कारण लोग जल को दूषित करने का दुश्साहस नही करते थे। वर्षा के जल को संचरण और संरक्षित करना, कृत्रिम नवीन जल स्रोतों का निर्माण करना तथा राजकीय कोश से तत्कालीन व्यक्तियों की सहायता करके प्रोत्साहित करना आदि जल प्रबंधन के ही अभिन्न अंग थे। नहरों और कुलियों के माध्यम से दूरस्थ स्थानों पर जल ले जाना, सरकार और सामूहिक रूप से आपसी समन्वय और सहयोग से किया जाता था । चाणक्य काल में जल का सर्वाधिक महत्व था जो सोने, चांदी एवं समस्त बहुमुल्य रत्नों से बहुत अधिक माना जाता था। जल प्रबंधन में जल को मानव के जीवन, स्वास्थ और धर्म से जोड़ा गया था। जैसे धार्मिक मान्यताओं के अनुसार, बीमार व्यक्ति को गंगा में स्नान कराने से रोगों के नष्ट होने के साथ उसका पुण्य इस लोक में ही नही अपितु परलोक में भी मिलता है। जल प्रबंधन में नदियों से नहरों को जोड़कर दूरस्थ स्थानों पर पानी की आपूर्ति की जाती है। अन्ततः कहा जा सकता है कि कौटल्य काल में जल प्रबंधन का कार्य कृत्रिम स्रोतों, प्राकृतिक स्रोतों, धार्मिक रूप से और आचार संहिताओं के माध्यम से भी किया जाता था जिससे तत्कालीन जल प्रबंधन सर्वोच्च शिखर पर था।

संदर्भ-दर्शिका

1 अर्थशास्त्र 2/1
2 अर्थशास्त्र 2/2
3 अर्थशास्त्र 2/4
4 अर्थशास्त्र 2/24
5 अर्थशास्त्र 2/29
6 अर्थशास्त्र 2/25
7 मिश्रा श्याम मनोहर, प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन पृ0 सं0 11 प्रमाणिक पब्लिकेशन, इलाहाबाद,1997
8 शर्मा राम शरण, पृ0 सं0 66, प्रारम्भिक भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, दिल्ली, 1992
9 अर्थशास्त्र 6/1
10 अर्थशास्त्र 7/14
11 अर्थशास्त्र 61/1
12 अर्थशास्त्र 61/2

13 अर्थशास्त्र भाग 3, 61/7
14 अर्थशास्त्र, भाग 3, 61/9
15 अर्थशास्त्र, भाग 3, 61/10
16 अर्थशास्त्र, भाग 3, 61/11
17 अर्थशास्त्र, भाग 3, 61/11
18 अर्थशास्त्र, भाग 3, 61/1, 2, 7, 9, 10, 11, 12, 13
19 अध्याय 8/24
20 अध्याय 8/28
21 अध्याय 9/61/3
22 अर्थशास्त्र 61/35, 36
23 अर्थशास्त्र 61/37
24 अर्थशास्त्र 161/38
25 अर्थशास्त्र प्रकरण 12/अध्याय 16/29
26 अर्थशास्त्र प्रकरण 12/अध्याय 16/29, 30
27 अर्थशास्त्र कौटिल्य अर्थषास्त्र, शास्त्री उदयवीर, पृथम भाग, 2001, पृ0 सं0 94, अध्याय 1 का प्रकरण 19/22 मुद्रक कैम्बिगज प्रेस, दिल्ली
28 अर्थशास्त्र 19/23, 24
29 अर्थशास्त्र 19/25
30 अर्थशास्त्र 21/37, 38 पृष्ठ सं0 108
31 अर्थशास्त्र 21/37, 39 पृष्ठ सं0 108
32 अर्थशास्त्र 41/42
33 अर्थशास्त्र 41/24
34 अर्थशास्त्र 41/25
35 अर्थशास्त्र 78/16
36 अर्थशास्त्र 78/20
37 अर्थशास्त्र 118/35
38 अर्थशास्त्र 118/36
39 प्राचीन भारतीय अभिलेख, बी. एल. राजपुरोहित, 2007, शिवालिक प्रकाशन, दिल्लीी पृ0 सं0 24
40 प्राचीन भारतीय अभिलेख, बी. एल. राजपुरोहित, 2007, शिवालिक प्रकाशन, दिल्लीी पृ0 सं0 24

इण्टरनेट का समस्यात्मक उपयोग: मानसिक विकारों को आमंत्रण

आनन्द कुमार त्रिपाठी

असिस्टेंट प्रोफेसर (मनोविज्ञान), राजकीय महिला महाविद्यालय, डी.एल.डब्ल्यू., वाराणसी

सारांश-

उद्देश्य:-इस शोध पत्र का सर्वप्रथम उद्देश्य वर्तमान समाज में सार्वभौमिक रूप से व्यवहृत और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी सार्थक पहुँच बना चुके इण्टरनेट एवं इसके इस्तेमाल किये जाने के तरीकों का व्यक्ति के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभावोकी समीक्षा करना है। इसमें इण्टरनेट, स्मार्टफोन तथा सोशल मीडिया पर हमारी निर्भरता एवं सक्रियता के समस्यात्मक पहलू का विस्तृत विश्लेषण शामिल है।

विधि एवं सामग्री

इस शोधपत्र हेतु विभिन्न शोधपत्रों (1995-2016 ई. तक प्रकाशित) तथा उनके निष्कर्षों को सूचना के स्रोत के रूप में प्रयोग किया गया है। विभिन्न सर्च इन्जनों जैसे एक्प्लोरर, गूगल क्रोम, मोजिला आदि में 'इण्टरनेट', 'इण्टरनेट के दुष्प्रभाव' जैसे की वर्ड का इस्तेमाल कर सूचनायें प्राप्त की गई है। मीडिया सरकारी ऑकड़ों का विश्लेषण भी इसमें शामिल है।

निष्कर्ष: इण्टरनेट और इसके उपयोग में क्रान्ति के साथ ही समाज में इसकी अप्रत्याशित स्वीकार्यता बढ़ी है। निश्चित रूप से समस्यात्मक इण्टरनेट उपयोग व्यक्ति को शारीरिक मानसिक और सामाजिक रूप से क्षति पहुचाता है। कई मानसिक समस्याओं की उत्पत्ति और उनके कारण के रूप में 'इण्टरनेट व्यसन' की पहचान की गई है।

Key Word:-'इण्टरनेट एडिक्सन', 'प्रोब्लमेटिक इण्टरनेट यूजं, मानसिक स्वास्थ्य व इण्टरनेट, इण्टरनेट स्टैटिस्टिक।

प्रस्तावना

वर्तमान शताब्दी का विगत दो दशक तथा पिछली शताब्दी का अन्तिम दशक सूचना, प्रसारण और इलेक्ट्रॉनिक प्लेटफार्मों के क्षेत्र में सार्वभौमिक क्रान्ति का समय रहा है। इण्टरनेटर के प्रसार और निरन्तर इसकी व्यापकता में वृद्धि ने हमारे जीवन के हर क्षेत्र में अपनी सार्थकता प्रमाणित की है। इसकी सार्थकता ने इण्टरनेट और स्मार्टफोन को व्यापक स्वीकार्यता जनमानस में प्रदान की है। अविवादित रूप से इण्टरनेट के इस्तेमाल ने जीवन को आसान बनाया है। विश्व के हर कोने की सूचना तक हमारी पहुँच, हर समय अपनों से जुड़े होने का भाव, अध्ययन-अध्यापन, मनोरंजन व्यवसाय, चिकित्सा, शासन प्रशासन और सेवा जैसे सभी क्षेत्र इसमें समाहित है।

विश्व इण्टरनेट प्रयोग और जनसंख्या सांख्यिकी-2021 के आँकड़ों के अनुसार-

विश्व के क्षेत्र	इण्टरनेट प्रयोग प्रतिशत	वृद्धि प्रतिशत 2000-21 के अन्तराल में
एशिया	63.2 प्रतिशत	2316.5 प्रतिशत
यूरोप	88.2 प्रतिशत	6013 प्रतिशत
अफ्रीका	43.2 प्रतिशत	13058 प्रतिशत
उत्तरी अमरीका	93.9 प्रतिशत	221 प्रतिशत
दक्षिण अमरीका	75.6 प्रतिशत	2658 प्रतिशत
मध्य एशिया	74.9 प्रतिशत	5953 प्रतिशत
ओशनिया	69.9 प्रतिशत	298 प्रतिशत
विश्व	65.6 प्रतिशत	1331.9 प्रतिशत

तालिका विश्व के विभिन्न क्षेत्रों के इण्टरनेट प्रयोग की प्रवृत्ति और विगत दो दशकों में पूरे विश्व में आये विस्फोटात्मक उछाल को दर्शाता है। 1331. 9 प्रतिशत की वृद्धि मात्र 20 सालों में होना इण्टरनेट के महत्व को स्वत: अभिव्यक्त करता है। वृहद स्तर पर यह जीवन के हर क्षेत्र में उपयोग किया जा रहा है। परन्तु जब यह उपयोग सामान्यता की सीमा को पार करके दुरुपयोग के स्तर तक बढ़ने लगता है तो व्यक्ति को व्यक्तिगत, सामाजिक, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक जीवन क्षेत्रों से मूल्य चुकाने पड़ते हैं। व्यक्ति का सामंजस्य नकारात्मक रूप से जब प्रभावित होने लगे तो जिस अवस्था की उत्पत्ति होती है उसे 'समस्यात्मक इण्टरनेट उपयोग' और 'इण्टरेनट व्यसन' जैसे पदों से अभिव्यक्त किया जाता है।

''इण्टरनेट एडिक्सन'' पद का सर्वप्रथम प्रयोग इवान गोल्डवर्ग (1995) ने किया। कमीवेश इसी समय इसी सम्प्रत्यय को डेविस वे (1996) ने ''प्रोब्लेमेटिक यूज ऑफ इण्टरनेट'' पद के रूप में इस ओर ध्यान आकृष्ट करना प्रारम्भ किया। के.एस. यंग (1998) ने 'इण्टरनेट एडिक्सन द इमर्जेस ऑफ ए न्यू क्लिनिकल डिसओर्डर'' में इण्टरनेट के अत्यधिक इस्तेमाल और समस्यात्मक रूप में इस्तेमाल को सम्बन्धित करते हुये इसके कई रूपों का विस्तृत तरीके से विवरण प्रस्तुत किया।

ग्रीनफील्र्ड (1999) ने इण्टरनेट इस्तेमाल करने वाली सामान्य जनसंख्या में से 6 प्रतिशत लोगों को 'समस्यात्मक इण्टरनेट उपयोग' की समस्या से ग्रस्त पाया। उन्होंने यह भी निष्कर्ष प्राप्त किया कि इण्टरनेट व्यसनी लोगों का प्रति सप्ताह औसत इण्टरनेट उपयोग 38.5 घण्टा जबकि सामान्य व्यक्तियों का 4. 9 घण्टा था।

स्पष्ट है जैसे-जैसे इण्टरनेट के प्रयोग की तीव्रता बढ़ी इसका समस्यात्मक स्वरूप और व्यसनात्मक पक्ष भी कुछ प्रतिशत लोगों में दिखाई पड़ने लगा।

इण्टरनेट एडिम्सन का स्वरूप-

'इण्टरनेट व्यसन' एक मनोवैज्ञानिक निर्भरता की अवस्था के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। जिसमें व्यक्ति इण्टरनेट से वंचित रहने पर चिंतित, बेचैन, अव्यवस्थित, तनावग्रस्त, उदास और कुसमायोजित महसूस करता है। ग्रीनफील्ड (1999) के अनुसार इसके लिये 'इण्टरनेट एडिक्सन डिसओर्डर', 'डिजीटल मीडिया एडिक्सन', 'पैथोलाजिकल इण्टरनेट यूज' और 'वर्चुअल एडिक्सन' जैसे पदों का समानार्थी रूप में प्रयोग किया जाने लगा। इसके बाद मनोवैज्ञानिकों और मनोचिकित्सकों का ध्यान तेजी से इस ओर आकृष्ट हुआ। ब्लाक (2007) ने इसकी गंभीरता को स्वीकार करते हुये इसे ए.पी.ए. (अमरिकन मनोवैज्ञिानिक संघ) द्वारा स्थापित वर्गीकरण तंत्र डी.एस.एम. (डयग्नोस्टिक एण्ड स्टैटिस्टिकल मैनुअल ऑफ मेंटल डिसओर्डर) में शामिल करने का सुझाव दिया। भारत में भी मोबाइन फोन और इण्टरनेट के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन 2014 के बाद घटित हुआ जब सभी प्रमुख इण्टरनेट सेवा प्रदाता कम्पनियों ने डाटा पैक के दाम काफी कम कर दिये। तथा भारत में इसके इस्तेमाल में तीव्र वृद्धि हुई। जिससे यहाँ भी इण्टरनेट के समस्यात्मक इस्तेमाल पर बहस और अध्ययन प्रारम्भ हुये। इसकी गंभीरता और वास्तविकता को सर्वमान्य स्वीकृति अब प्राप्त हो चुकी है। ए.पी.ए. ने अपने मानसिक रोगों के वर्गीकरण तंत्र के नवीन संस्करण डी.एस.एम.-ट के अपेन्डिक्स टप् में 'इण्टरनेट गेमिंग डिसआर्डर' के रूप में स्थान दिया है।

ब्यूरोवा (2000) ने इण्टरनेट की लत को शराब, तम्बाकू और गेमिंग से भी जल्दी विकसित होने वाला बताया।

मेन्डेल्विच, 2013 ने इसके नये स्वरूप सोशल नेटवर्किंग के प्रति व्यसन की ओर ध्यान आकृष्ट कराया जिसमें लोग महत्वपूर्ण दिखने, दूसरे, हेतु रूचिकर लगने, कमेंट प्राप्त करने और पसन्द किये जाने के लिए लालायित होते है।

इण्टरनेट एडिक्सन के प्रकार-

वर्तमान समय में लोग अपने वास्तविक सम्बन्धों और कार्यो के स्थान पर अपने वर्चुअल सम्बन्धों और वर्चुअल मित्रों को अधिक महत्व देने लगे है। इण्टरनेट लैपटॉप, कम्प्यूटर मोबाइलफोन आदि के इस्तेमाल ने इण्टरनेट एडिक्सन के कई रूपों को उत्पन्न किया है।

इण्टरनेट के समस्यात्मक इस्तेमाल के निम्नलिखित संभावित रूप हो सकते है। (यंग 1998, ग्रीफीथ 2012)

(i) इण्टरनेट पर लम्बे समय तक सर्फिंग की लत
(ii) सोशल मीडिया के इस्तेमाल का व्यसन
(iii) ऑनलाइन और ऑफलाइन गेमिंग की लत
(iv) र्वचुअल मित्रता और चौटिंग की लत
(v) इलेक्टॉनिक गैम्बलिंग की लत
(vi) साइबर सेक्स और साइबर पोर्न की लत (ग्रीफीथ 2012)

इन सभी प्रमुख प्रकारों में एक सामान्य बात यह देखी गई है कि मनुष्य चाह कर भी अपने आपको इसके इस्तेमाल से रोक पाने में खुद को असहाय महसूस करता है। यह अवस्था किसी नशीले पदार्थ अथवा शराब आदि के व्यसन के बाद होने वाले कुप्रभाव की तरह ही होती है।

'इण्टरनेट एडिक्सन' अथवा 'समस्यात्मक इण्टरनेट उपयोग' के निदान की प्रमुख कसौटियाँ-

ए.पी.ए. द्वारा प्रस्तुत मानसिक रोगों के वर्गीकरण के नवीन संस्करण डी.एस.एम.-ट में इसके निदान हेतु कुछ कसौटियाँ प्रस्तुत की गई है। (डी.एस.एम. -ट 2013)

- अत्यधिक, समय इण्टरनेट पर व्यतीत करना
- योजना बनाने की योग्यता में गिरावट
- अपने आपको नियंत्रित करने में अक्षम
- जीवन के अनेक क्षेत्रों में व्यक्ति की क्रियाशीलता प्रभावित होना

(ग्रीनफील्ड 2009) ने एडिक्सन या व्यसन के निदान की एक सरल कसौटी बताई (डी आई ए आर) 'डियर' जिसमें 'डी' से तात्पर्य कार्य रोकने की इच्छा से है। 'आई' से तात्पर्य 'इनेबिलिटी' या अक्षमता है जब व्यक्ति चाहकर भी नेट का इस्तेमाल नहीं रोक पाता। 'ए' से तात्पर्य 'अटेमप्ट' या प्रयास से है जो व्यक्ति इण्टरनेट उपयोग रोकने हेतु करता है और 'आर' 'रिलेप्स' या दुबारा उत्पन्न हो जाने की अवस्था है। जब यह चारों स्थिति व्यक्ति में दिखाई दे तो उसे 'एडिक्ट' माना जा सकता है।

इण्टरनेट व्यसन के प्रभाव

अनेक शोधों से स्पष्ट है कि इण्टरनेट के समस्यात्मक प्रयोग के अनेक शारीरिक मानसिक कुप्रभाव दिखाई देते है। (यंग 1998, ब्लैक 2008, ग्रीनफील्ड 1999)

- चिन्ता बेचैनी और अत्यधिक तनाव महसूस होना।
- कोधी, आक्रामक और आवेगी व्यवहार।
- निद्रा वंचन तथा अल्प निद्रा रोग।
- अवसाद व निम्न स्व क्षमता का अहसास।
- कुसमायोजित जीवन शैली।
- जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सार्थक ह्रास दिखाई पड़ना।
- सामाजिक व शैक्षिक क्रियशीलता में कमी।

ये सभी अथवा कुछ एक प्रभाव समस्यात्मक इण्टरनेट इस्तेमाल करने वाले व्यक्तियों में देखे जाते है। डेल बेन (2007) ने 411 छात्रों पर अध्ययन में पाया कि इण्टरनेट पर निर्भरता अवसाद और आमने-सामने की अर्न्तक्रिया में कमी का परिणाम होती है। टोनिओनी, एलसैंइस, मार्टिनेली (2012) ने पाया कि इण्टरनेट का अनियंत्रित और अत्यधिक उपयोग का व्यापक और नकारात्मक प्रभाव व्यक्तिगत और पारिवारिक क्रियाशीलता पर पड़ता है।

रोकथाम और उपचार के प्रमुख उपाय-

इण्टरनेट के समस्यात्मक उपयोग से ग्रस्त व्यक्ति में एक या एक से अधिक उपरोक्त लक्षण दिखाई देते है जिससे बचने या जिसका उपचार करने के कुछ प्रभावी तरीकों को खोजा गया है जिसमें-

मनोविश्लेषणात्मक उपचार प्रविधि-

सिगमंड फ्रायड और उनके शिष्यों ने मनोचिकित्सा की जो विधि विकसित की उसे मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा कहते ही डेल बेन (2007) ने इण्टरनेट एडिक्सन को अवसाद व वास्तविक अर्न्तक्रिया में कमी से जुड़ा पाया। अगर व्यक्ति के तनाव, द्वन्द का उचित समाधान हो तो इसकी तीव्रता को कम कर सकते है।

संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक चिकित्सा प्रविधि-

व्यक्ति को इच्छा शक्ति तथा उसके स्व-प्रत्यय को अनेक संज्ञानात्मक और व्यावहारिक विधियों से पुष्ट करके उसके जीवन को पुनः समायोजित किया जा सकता है।

व्यावहारिक अभ्यास इसमे महत्वपूर्ण होते है बेक और अल्बर्ट एलिस द्वारा सुझाई गई चिकित्सा प्रविधि एवं तकनीक इसमें महत्वपूर्ण है।

योग ध्यान आधारित सम्मिलित चिकित्सा-

योग और ध्यान को व्यसन के उपचार में प्रभावी पाया गया है। खन्ना और ग्रिसन (2013) ने इसके महत्व को व्यसन के उपचार में स्वीकार किया है। योग से श्वास दर सामान्य, ध्यान को केन्द्रित करने में सहायता, सीरोटोनिन के स्तर में वृद्धि और कार्टिसोल के स्तर में कमी आती है। (माहले जी 2006, मैम्काल टी 2007 0189)

निष्कर्ष-

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि इण्टरनेट का जितनी तीव्रता से जीवन में प्रभाव बढ़ा है उसी क्रम में हमारी उस पर निर्भरता भी बढी है, और यह प्रभाव कुछ लोगों को समस्याग्रस्त और कुसमायोजित भी करता है।

अध्ययनों से स्पष्ट है कि अत्यधिक और रोगात्मक उपयोग से व्यक्तिगत और सामाजिक क्रियशीलता पर व्यापक नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अवसाद, सामाजिक एकाकीपन और निम्न स्व क्षमता इसके महत्वपूर्ण प्रभाव है। (येन जे, चेन 2008, टियोनिओनी एफ 2012)

इसके निदान और उपचार में मनोवैाानिक और यौगिक उपायों को महत्वपूर्ण पाया गया है। जो व्यक्ति को इण्टरनेट व्यसन के लक्षणों को नियंत्रित करने तथा पुनः जीवन में समायोजन स्थापित करने में सहायक होता है। अध्ययन में समन्वित चिकित्सा विधि को अधिक प्रभावी पाया गया है। जिसमे कई विधियों का आवश्यकता अनुसार सम्मिलित प्रयोग करने है।

सन्दर्भ सूची

1. इण्टरनेट वर्ल्ड स्टैटिस्टिक. 2017.
2. गोल्डबर्ग एल. इण्टरनेट एडिक्सन 1998.
3. डेविस आर.ए. बिहैबरल एण्ड काग्निटिव मॉडल ऑफ इण्टनरेट एडिक्सन. 2001; 17: 187-195.
4. ग्रीनफील्ड, डिसइन्हिबिसन एक्सिलिरेटेड इन्टिमेसी एण्ड अदर थियोरेटिकल कन्सीडरेशन. पेपर प्रजेन्टेड इन 107 एनुअल ए पी ए मीटिंग, अगस्त 22, 1999.
5. यंग के एसः इण्टरने एडिक्सनः द इमर्जेस ऑफ ए न्यू क्लिनिकल डिसआर्डर. साइबर साइकोलॉजी बिहेवियर 2009; 1: 327-244.
6. को, सी एच; इण्टरनेट गेमिंग डिर्साडर. करेन्ट एडिम्सन 2014; 1: 177-185.
7. ब्लाक, जे जे.; इश्यू फार डी एस एम-V: इण्टरनेट एडिक्सन. एम जे साग्किएट्री 2008; 165; 306-307.
8. लिन एक्स, डानग् जी, वोग क्यू, ड्यू एक्सः एबनार्मल ग्रे मैटर एण्ड व्हाइट मैटर वाल्यूम इन इण्टरनेट गेमिंग एडिक्ट. एडिक्ट बिहैभ 2015; 40: 137-143.
9. ग्रीफीथ एम (2012); इण्टरनेट सेम्स एडिक्सनः ए रिव्यू ऑफ इम्पिरिकल रिसर्च. एडिक्सन रिसर्च एण्ड थियरी 20: 111-124.
10. टियोनिओनी एफ, डी एलेसेन्ड्रिस एल, लाई सी एट ऑल. (2012) इण्टरनेट एडिक्सनः आवर्स स्पेन्ट आनलाइन बिहैभियर एण्ड साइकोलाजिकल सिम्पटम. जनरल हास्पिटल साइकिएट्री 34: 80-87
11. खन्ना एस, ग्रेसन जे एमः ए नरेटिव रिव्यू ऑफ योग एण्ड माइन्डफुलनेस एज कम्प्लीमेन्ट्री थिरैपी ऑफ एडिक्सन. 2015; 21: 244-252.
12. पीटर, जे., बल्केनवर्ग, पी. (2005). डेवलपिग ए मॉडल ऑफ एडोलसेंट फ्रेंडशिप फार्मेशन ऑन द इण्टरनेट. साइबर साइकोलॉजी एण्ड बिहैभियर, 8 (5), 423-431.
13. व्यूरोवा, वी.ए. (2000). इण्टरनेट एडिम्सन पैथोलॉजी ऑफ XXI सेन्चुरी? साइंटिफिक प्रैक्टिकल जर्नल. इश्यू ऑफ मेन्टल मेडेसिन एण्ड इकोलॉजी, 1 (6), 11-13.
14. मेन्डलेविच, बी.डी. (2013). फीचर ऑफ डविएन्ट बिहैभियर इन द इण्टरनेट स्पेस. प्रेक्टिकल मेडसिन, 1, 143-146
15. माहले, जीः अष्टांग योगः प्रैक्टिस एण्ड फिलासाफी. अनलो सिटी, कैवल्य पब्लीकेशन, 2006.
16. मैक्काल, टीः योग एज ए मेडेसिन. न्यू यार्क, बान्टाम डेल, रैन्डम हाऊस, 2007.

ऋतुकालीन रागों में मल्हार के प्रचलित प्रकारों का विशेष महत्त्व

चाँदनी

संगीत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

डॉ० लोकेश शर्मा

शोध निर्देशक, असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत विभाग, राजकीय कन्या महाविद्यालय, गुरूग्राम, हरियाणा

सार संक्षेपः

संगीत प्रभु से मिलन का एक पवित्र माध्यम माना जाता है। संगीत एक आकर्षण के रूप में है जो पृथ्वी के प्रत्येक प्राणी को अपनी तरफ खींचता है। इसी हिन्दुस्तानी संगीत में रागों का अथाह समुद्र है। जहाँ स्वरों को इस प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है कि प्रत्येक राग कहीं न कहीं अपनी छाप छोड़ ही जाता है। लेकिन यदि हम संगीत को और गहराई से जानेंगे तो हमें पता चलेगा कि सभी रागों के गायन का समय अलग-अलग होता है एवं यदि रागों को उनके समयानुसार प्रस्तुत किया जाए तो उनका आकर्षण अति प्रभावशाली प्रतीत होता है। संगीत के समय सिद्धांत की तरह राग एवं ऋतुओं का संबंध भी प्राचीनकाल से ही देखने को मिलता है। जिसे ऋतु-सिद्धांत कहा जाता है। हिन्दुस्तानी संगीत में विभिन्न राग ऐसे है जो ऋतुओं के अनुसार अपना प्रभाव अवश्य छोड़ते है। जैसेः-मल्हार राग। जो विशेषतः वर्षा ऋतुकाल में ही गाया जाता हैं। मल्हार के गीत तो वर्षा में ही सुहावने लगते है। बारिश के समय मल्हार राग की छटा चारों ओर बिखर सी जाती है और मौसम बहुत सुहावना हो जाता है मयूर नृत्य करने लगते है। ग्रीष्म ऋतु, शरद ऋतु, शिशिर ऋतु आदि। इस प्रकार से जो राग जिस ऋतु का हो उसी ऋतु में गाया जाए तो अपना अधिक प्रभाव छोड़ता है। अतः इसी विषय में हम आगे शोध पत्र में विस्तृत रूप में जानेंगे।

मल्हार शब्द का अर्थः

'मल्हार' का शाब्दिक अर्थ साधारण रूप से वर्षा ऋतु में गाए जाने वाले राग के रूप में ही प्रचलित है। कुछ लोगों का मत है कि 'मलरूह' शब्द के अपभ्रंश से मल्हार नाम पड़ा है। किसी ग्रन्थ में 'मल्हार' व किसी में 'मलार' इस राग के नाम दिखाई देते है।

मल्हार राग का महत्त्वः

आधुनिक उत्तर भारतीय संगीत के अन्तर्गत मल्हार अत्यंत लोकप्रिय राग है। प्राचीनकाल से मल्हार राग का वर्षा ऋतु से घनिष्ठ संबंध चला आया है। सभी दृष्टिकोण से वर्षा एवं मल्हार एक दूसरे के अभिन्न अंग है। इसी कारण मल्हार एवं वज्जन्य राग प्रकारों का वर्षा ऋतु में गायन वादन होता है।

मल्हार तथा वर्षा की अभिन्नता के संबंध में एक मनोरंजक जनधारण है कि जिस प्रकार हिन्दुस्तानी संगीत के व्यवहृत होने वाले दीपक के संबंध में प्रवाद है कि दीपक राग को नियमपूर्वक गाने से बुझे दीपक प्रज्ज्वलित हो उठते है, ठीक उसी प्रकार मल्हार के विषय में धारणा है कि उस राग की सिद्धि उपलब्ध होने के पश्चात् यदि उसका शुद्ध रीति से गायन किया जाए तो आकाश से जलवृष्टि होना संभव है। राग वर्षा एवं शीतलता का प्रतीक माना जाता है। यही नहिं अपितु जनसाधारण के मतानुसार दीपक राग द्वारा उत्पन्न प्रभाव को नष्ट कर देने की क्षमता केवल मल्हार राग में ही है। राग जगत् जब हम मल्हार राग के स्थान की खोज करते है तो हम पाते हैं कि मल्हार राग का उल्लेख मल्हार, मलारी, मल्हारी तथा मल्लार राग के रूप में मिलता है।[1] प्रसिद्ध मल्हार राग एक रागांग कोटि का राग है तथा अन्य समस्त मल्हार प्रकारों का घटक अवयव है। इस संबंध में ''मारिफुन्नगमात्'' संगीत ग्रन्थ के रचयिता राजा नवाबअली ने भी ऐसा ही कहा है -

''असली मल्हार यही है जिसका मिश्रण करके।
उस्तादो ने मल्हारों की कई जातियाँ बनाई है।''

अर्थात् इसी मल्हार के सहारे अन्य समस्त मल्हार गाये-बजाये जाते हैं।

सभी संगीत विद्वान इसका गायन समय वर्षा ऋतु ही मानते हैं। क्योंकि मल्हार राग तथा मल्हार के अन्य समस्त प्रकारों में जो भी गीत गाये जाते है लगभग सभी में वर्षा ऋतु का वर्णन होता है।

मल्हार के कुछ प्रचलित एवं अप्रचलित प्रकार -

प्रचलित प्रकार-राग मेघ मल्हार

सुप्रसिद्ध राग मेघ मल्हार प्रचार में बहुत तरह से गाया बजाया जाता है। राग मेघ मल्हार काफी थाट जन्य राग हे। इसमें निषाद् कोमल और अन्य स्वर शुद्ध लगते है। गंधार और धैवत वर्जित होने के कारण इसकी जाति औड़व है। इसका वादी स्वर मध्यम संवादी स्वर षड्ज है। रिषभ पंचम की संगति व रिषभ का आंदोलन इस राग को और अधिक स्पष्ट करता है। इसका समप्रकृत राग मधमाद सारंग तथा वृन्दावनी सारंग है। राग मेघ मल्लहार का विस्तार तीनों सप्तकों में होता है। यह गमक और मींड से युक्त गम्भीर प्रकृति का पूर्वांग प्रधान राग है। शुद्ध मल्हार और मेघ राग का गायन समय वर्षा ऋतु है यथा-

''गानि हीनोपि मल्लारो वर्षासु सुखदायकः।।''

तथा

''यतो वर्षासु गेयोऽयं मेघ इत्यादि कीर्तितः।।''

वर्षाऋतु के इन दोनों रागों का मिश्रण होने से तथा इस राग की बन्दिशों में वर्षा ऋतु का वर्णन होने से इसका गायन समय विद्वानों ने वर्षा ऋतु माना है। जो उचित व विवादरहित है प्रस्तुत राग मेघ मल्हार को लेकर अनेक प्रश्न उठते है जैसे -

प्र..1. राग मेघ-मल्हार काफी थाट जन्य ही क्यों, खमाज थाट क्यों नहीं?

उत्तर. इस प्रथम प्रश्न का अभिप्राय यह है कि मेघ मल्हार में सारेमपनिसां स्वर समूह प्रयुक्त होता है तो इस राग को काफी थाट जन्य ही क्यों माना जाता है। खमाज थाट में भी तो इस प्रकार गंधार धैवत वर्जित प्रकार हो सकते है। धैवत का स्वरूप दोनों रागों में समान है। केवल गंधार का स्वरूप भिन्न है। चूँकि मेघ-मल्हार में गंधार और धैवत वर्जित है। इस कारण यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। इस प्रश्न का समाधान करने के लिए हमें यह देखना होगा कि प्रस्तुत राग में किस राग का अंग प्रबल है।

राग मेघ मल्हार का समप्रकृतिक राग

मेघ मल्हार का समप्रकृति राग मधमाध सारंग है। इन दोनों में समान स्वर प्रयुक्त होते हैं। किन्तु सभी नियम दोनों रागों के भिन्न है। मेघमल्हार, मल्हार अंग का राग है और मधमाध सारंग, सारंग अंग का राग है। मेघमल्हार में मध्यम षड्ज वादी संवादी है और मधमाध में रिषभ पंचमवादी संवादी है। मधमाध सारंग का गायन समय दोपहर है। किंतु मेघमल्हार केवल वर्षा ऋतु में या अन्य ऋतुओं में केवल वर्षा के समय ही गाया-बजाया जाता है। मेघ मल्हार में षड्ज, मध्यम व पंचम पर न्यास करते है तथा रिषभ व निषाद स्वर आंदोलित है। इसके विपरित मधमाध सारंग में षड्ज, रिषभ व पंचम न्याय के स्वर है व मेघमल्हार की भांति किसी भी स्वर पर आंदोलन नहीं होता। मेघ मल्हार गमक, मींड प्रधान तथा वीर रस प्रधान राग है। मधमाध सारंग चंचल प्रकृति का राग है और गमक मींड रहित है। जहाँ मेघ मल्हार की बंदिशों में वर्षा ऋतु का वर्णन होता है। वहाँ मधमाध सारंग में दोपहर दिन के ताप तपन इत्यादि का वर्णन इस राग की बंदिशों में दृष्टिगोचर होता है।

मेघ मल्हार का मुख्य चलन इस प्रकार है -

सानि सानि सा, मरे मरे मरेम, मरे मरे मरे प, रेम, म रे मरे मरे सानि सानि सा

इसके विपरित मधमाध सारंग का मुख्य चलन इस प्रकार है -

सा, नि सा रे रे, सा, रे म प म रे, म प नि म प रे म प म रे, म रे नि सा।

जिस प्रकार वर्षा ऋतु में मेघ जल की वर्षा कर पृथ्वी के मल को हरण कर स्वच्छता प्रदान करता है, उसी प्रकार यह मेघ मल्हार राग संगीत प्रेमियों के मन का मेल हरण कर पवित्रता का अनुभव करता है।

आरोह - सा मरे म प, सांनि सां।

अवरोह - सां पनि प, म रे म, रे सा।

मुख्य स्वर - मरे मरे म रे म, मरे मरे सानि, सानि सा।

स्वरों का प्रयोग एवं महत्वः

षड्ज के महत्व में कहना ही क्या है? इसके बिना तो राग की सृष्टि ही नहीं हो सकती। षड्ज के अतिरिक्त इस राग में रिषभ एक महत्वपूर्ण स्वर है। यह स्वर आरोह तथा अवरोह दोनों में प्रयुक्त होता है। रिषभ स्वर इस राग में हमेशा आंदोलित रहता है और इसका उच्चारण मध्यम के सहारे होता है। जैसे-सा मरे मरे, म रे रे, नि सा। मेघ मल्हार का रिषभ विकट परिस्थिति में है। यदि यह स्थिर रहता है तो सारंग का रिषभ कहलाता है। यदि मेघ मल्हार का हो तो इसे हमेशा मध्यम का सहारा लेना पड़ता है। जिस कारण बेचारे का अपना अस्तित्व नहीं बन पाता, हमेशा हिलता डुलता रहता है। इस प्रकार वादी संवादी

के अतिरिक्त प्रस्तुत राग में रिषभ का ही स्थान आता है। जो राग का मुख्य स्वर है। मध्यम का प्रयोग प्रस्तुत राग में आंशिक न्यास बहुत्व का है। जिस तरह मेघ मल्हार राग रूपी शरीर में रिषभ मुख का कार्य निभाता है। उसी भांति मध्यम प्राण स्वर होकर राग के अस्तित्व को बनाए रखता है। मल्हार का शांत रस और मधुर स्वभाव वाला सरस मध्यम अपने प्रभाव से आकर्षित कर मल्हार के प्रकार की सत्यता को सुरक्षित रखने में पूर्ण सहयोग करता रहता है। प्रस्तुत राग में पंचम स्वर अनुवादी होते हुए भी इसे पूर्ण न्यास का स्थान प्राप्त है। क्योंकि आरोहात्मक-अवरोहात्मक दोनों ही न्यास इस स्वर पर किया जाता है। यथा मरे मरे प, म रे म, मप नि सां नि प नि नि पम रे म, म प आदि प्रयोग से इस स्वर की पूर्णता स्पष्ट हो जाती है। निषाद् स्वर मेघ मल्हार में रिषभ की भांति आंदोलित रहता है। जिसके कारण इसे तार षड्ज का सहारा लेना पड़ता है। यथा सांनि सांनि सां। निषाद को आरोह में षड्ज तथा अवरोह में पंचम का सहारा लेना पड़ता है। जैसे-सां पनि प।

राग मियाँ मल्हार:

विद्वानों का कथन है कि राग मियाँ मल्हार की रचना संगीत सम्राट तानसेन ने की थी। परंतु इस संबंध में हमें कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है। इस कारण कतिपय विद्वान इसे मल्हार के नाम से पुकारते हैं। सर्वाधिक लोकप्रिय राग मियाँ मल्हार काफी थाट जन्य मल्हार अंग का राग है। इसमें कोमल गंधार के अतिरिक्त दोनों निषाद तथा अन्य स्वर शुद्ध लगते हैं। प्रस्तुत राग की जाति सम्पूर्ण-षाडव है। इस राग का वादी स्वर षड्ज तथा संवादी स्वर पंचम है। प्रस्तुत राग के गीतों में वर्षा ऋतु का वर्णन अधिक रहता है। अत: वर्षा ऋतु में किसी भी समय इस राग को गाया-बजाया जा सकता है। साधारणत: वर्षा ऋतु के अतिरिक्त प्रस्तुत राग का गायन समय रात्रि का द्वितीय प्रहर माना गया है। इस राग का विस्तार साधारणत: तीनों सप्तकों में होता है। परंतु मंद्र और मध्यम सप्तक में इसका सौन्दर्य अधिक निखर आता है क्योंकि यह एक पूर्वांग प्रधान राग है, अत: ऐसा होना स्वाभाविक ही है। प्रस्तुत राग की रचना मल्हार और कान्हड़ा के मिश्रण से हुई है। इसमें 'निप मप ग म रे सा' यह कान्हड़ा और मरे रे प यह मल्हार का स्वर समूह है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत राग के रचयिता ने कुछ विशेष स्वर संगतियों का प्रयोग किया है तथा सा नि निध निध ध निध निध सा। 'प, नि नि ध नि सा' स्वर संगीत मियाँ मल्हार राग में इतना अधिक प्रसिद्ध है कि जहाँ भी यह स्वर समूह कानों में पडा तो तुरंत मियाँ कल्हार राग का स्मरण हो जाता है। इस राग का मुख्य स्वरूप इस प्रकार है यथा-

'सा नि नि नि ध नि नि सा ध नि म प, म प नि ध नि ध, नि नि सा रे रे सा, म रे, म रे प, प मग मग म रे रे सा।' इत्यादि। प्रस्तुत राग की मुख्य विशेषता यह है कि दोनों निषाद् का इसके आलाप में अधिकतर एक के पश्चात् दूसरे का प्रयोग होता है। जिससे राग का सौंदर्य अत्यधिक आकर्षक हो जाता है परंतु निषाद के प्रयोग का यह कृत्य गुरूमुख से सुनकर सीखना ही अधिक श्रेयस्कर है। प्रस्तुत राग में रे प, म रे, नि प, सां ध, नि म प इत्यादि स्वरों की संगतियाँ बार-बार प्रयुक्त होती हैं।

समप्रकृति राग बहार:

प्रस्तुत राग का समप्रकृति राग बहार है क्योंकि कुछ स्वर-संगतियाँ दोनों रागों में समान रूप से आती है यथा-निप मप, ग म रे सा परन्तु अंतर यह है कि मियाँ-मल्हार के गंधार में आंदोलन अधिक रहता है किन्तु बहार में ऐसा नहीं होता। इसके अतिरिक्त मियाँ-मल्हार में मध्यम को गौण स्थान प्राप्त है, इसका तात्पर्य यह है कि मध्यम को खुले रूप में नहीं प्रयोग करते हैं परन्तु राग बहार में इसका वादित्व प्रदान किया गया है और यह बहार का प्राण स्वर है, बहार में यत्र-तत्र मध्यम का ही साम्राज्य परिलक्षित होता है। राग बहार में मध्यम का प्रयोग मुक्त रूप से और स्वतंत्रतापूर्वक किया जाता है। अत: दोनों रागों में मध्यम व गंधार के भिन्न प्रयोग के कारण दोनों रागों में पर्याप्त अन्तर दृष्टिगोचर होता है।

मियाँ-मल्हार का अपना एक स्वंतत्र स्वरूप है। अत: मल्हार अन्य प्रकार इससे काफी पृथक है। गौड़ मल्हार का 'म रे प, म प ध नि सां'। यह स्वर समूह मियाँ-मल्हार में भी प्रयुक्त होता है। प्रस्तुत राग को कुछ विद्वान मल्हार अंग का प्रमुख राग अर्थात् रागांग राग मानते है परन्तु मैं इस मत से सहमत नहीं हूँ क्योंकि मियाँ-मल्हार में म रे रेप यह स्वर समूह शुद्ध मल्हार का है, यदि मल्हार के इस स्वर समूह को हटा लिया जाए तो इसमें मल्हार अंग ही समाप्त हो जायेगा। अत: इन तथ्यों के प्रकाश में यह स्पष्ट होता है कि राग मियाँ-मल्हार का प्रकार तथा शुद्ध मल्हार का रागांग राग मानना अधिक उचित एवं न्यायपूर्ण है।

स्वरों का प्रयोग एवं महत्व:

षड्ज तो सभी रागों का सर्वस्व होता ही है इस राग में आंशिक न्यास बहुत्व का स्थान प्राप्त है। ऋषभ का इस राग में अनाभ्यास अल्पत्व है। मध्यम का इस राग में 'रेप' स्वर संगति मेंल धन हो जाता है परन्तु तान करने में सीधा प्रयोग होता है। पंचम का प्रस्तुत राग में पूर्ण न्यास बहुत्व है क्योंकि आरोह-अवरोह दोनों ही में इस स्वर पर न्यास होता है। धैवत का प्रस्तुत राग के आरोह में म प नि ध नि सां' व म प ध नि सां इस प्रकार अलंधन बहुत्व दृष्टिगोचर होता है। कोमल निषाद को इस राग में अनाभ्यास अल्पत्व का स्थान प्राप्त है। शुद्ध निषाद प्रस्तुत राग में न्यास बहुत्व का स्वर है।

प्रस्तुत राग की लोकप्रियता का अत्यंत ज्वलन्त प्रमाण यह है कि साधारण से साधारण श्रोता भी इसके नाम से भलीभांति अवगत है। प्रस्तुत राग मियाँ मल्हार जितना सरल है उतना ही क्लिष्ट भी।[2] इसमें दोनों निषाद और कोमल गंधार प्रयुक्त होते हैं। शेष स्वर शुद्ध। यह दरबारी और मल्हार को मिलाने से बनता है। दरबारी में शुद्ध धैवत लेकर नि ध नि स लगा दें और आरोह में रेन या रेप ले लें और गंधार को अवरोह में वक्र करके ग म रे स की भांति लें तो यह राग तुरंत स्पष्ट हो जाता है। 'मल्हार' का अंग म रे प, ग म रे सा, नि ध नि, स को 'दरबारी' में जोड़ दें, जैसे सा रे ग, म प, नि ध नि सां या म रे प, नि ध नि सां ले लें तो 'मियाँ मल्हार' बन जाता है। गायन समय वर्षा ऋतु है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है-

आरोह - सा रे, म रे, प, नि ध नि, सां

अवरोह - सां नि प, म प, म रे सा।

स्वरूप - म रे प, ग म रे स, नि ध नि सा।

राग गौड़ मल्हार -

राग गौड़ मल्हार प्राचीन होने के कारण इसके संबंध में संगीत ग्रंथ तथा संगीत समाज में अनेक मत दिखाई पड़ना स्वाभाविक ही है। खास तौर पर पुराने रागों के विषय में मत-मतान्तर होना नवीनता की खोज की प्रवृति का परिणाम है। जो संगीत तथा संगीत समाज के लिए महान् हितकर है।

कुछ ग्रन्थकार प्रस्तुत राग को खमाज थाट का राग मानते है। इसमें दोनों निषाद् तथा शेष स्वर शुद्ध लगाते है। शुद्ध मल्हार का स्वयप रे प, म प ध सं ध प म है तथा उसमें म प मग, रे ग रे म ग रे सा 'गौड़ सारंग' का अंग जोड़ देने से इसकी रचना हो जाती है। वादी मध्यम व संवादी षड्ज है। मध्यम पर न्यास राग को अधिक मधुर बनाता है। इसके आरोह में निषाद को अल्प रखते है। जाति सम्पूर्ण-सम्पूर्ण है। गायन समय वर्षा ऋतु है।[3] कुछ ग्रन्थकार काफी थाट जन्य मानते है तो कुछ बिलावल थाट जन्य मानकर शुद्ध गंधार तथा दोनों निषाद् प्रयोग करते है। काफी थाट का गौड़ मल्हार अधिक प्राचीन है क्योंकि इसे ध्रुवपद का आश्रय प्राप्त है अर्थात् यह ध्रुपद अंग का प्रकार है। खमाज थाट का गौड़ मल्हार को प्राचीन ग्रन्थकार नहीं प्राप्त है केवल भातखण्डे जी ने शुद्ध गंधार वाले प्रकार को खमाज थाट के अंतर्गत माना है।

गौड़ मल्हार रागश्च शंकराभरण मेलजः।
सम्पूर्णः सग्रहन्यासो वर्षास्वेषः प्रगीयते।।

इसी प्रकार कल्पद्रमांकुरे, संगीत सुधाकरे, चन्द्रिकायाम् और चन्द्रिकासार इत्यादि अप्राचीन ग्रन्थों में गौड़ मल्हार का वर्णन आया है।

मुख्य रूप से इस राग का समप्राकृतिक राग नट मल्हार है, परन्तु इन दोनों में थाट, स्वर, जाति, वादी-संवादी और स्वरसंगतियों की समानता होने पर भी ये दोनों राग भिन्न दिखते हैं क्योंकि नटमल्हार नट और मल्हार के मिश्रण से बना है।

स्वरों का प्रयोग तथा स्थानः

सर्वश्रेष्ठ स्वर षड्ज के अतिरिक्त रिषभ प्रस्तुत राग में इस प्रकार आरोह-अवरोह में प्रयोग होता है तथा-सा, रेगम मगरे, गऽसा, रेगरेगम, प (म) ग, मगरेगरे (स) गरेगम। इस राग में जब रेगरेगम (म) ग, धधपमप म, (म) ग, गरेगम, इस प्रकार का स्वरविस्तार करते है तो गंधार का दीर्घ व बार-बार प्रयोग तथा अवरोह में प (म) ग, रेगम धधपमप, (म) ग मरेग, सांधपम, (म) ग, रेगम इस प्रकार गंधार पर अभ्यास या अपन्यास करना अभ्यास बहुत्व का चिन्ह है। इसके विपरीत मरेप स्वर संगति में लंघनमूलक अल्पत्व तथा रेगमरेस व प (म) गमरेस स्वर स्मूह में गंधार का वक्र प्रयोग अल्पत्व भी दृष्टिगोचर होता है। वादी स्वर होने के कारण मध्यम का इस राग में आंशिक न्यास बहुत्व का स्थान है। धपम, मप, पध, धनिपम इस भाँति यह स्वर पूरे राग विस्तार में स्वतंत्र रूप से प्रयोग होता रहता है। प्रस्तुत राग में पंचम स्वर का पूर्ण न्यास बहुत्व का स्थान है तथा राग में इस प्रकार प्रयोग होता है। यथा मरेप, धधपमपम, गमरेप, पधधनिप, मपधसां, धनिप आदि। धैवत का इस राग में अलंघन बहुत्व का स्थान है क्योंकि आरोह-अवरोह में कभी भी इस स्वर का लंघन नहीं करते है। कोमल निषाद इस राग में विवादी स्वर है। गौड़ मल्हार में कोमल निषाद् के संबंध में विशेष बात यह है कि इस राग में लंघन तथा अनाभ्यासमूलक अल्पत्व है। यथा मपधसां धपम, इस स्वर समूह में लंघन तथा मपधनिसां स्वर समूह में अनाभ्यास मूलक अल्पत्व दिखता है।

आरोह - सा रे ग म, रे प म प ध नि सां

अवरोह - सां ध नि प, म, ग म रे सा

मुख्य स्वर समूह-रेग रेमग रेसा, रेग, मरे मरेप[4]

राग सूरमल्हार

''सुप्रसिद्ध राग सूरमल्हार काफी थाट का राग है। आरोह में गंधार व धैवत स्वर वर्जित हैं। अवरोह में केवल गंधार वर्जित है अतः जाति ऑडव-षाडव है। इसमें दोनों निषाद प्रयुक्त होते है। नि प और रे प स्वर संगतियाँ इस राग को 'सोरठ' से अलग कर देती हैं। इसलिए अवरोह में नि मप या नि धप लेते है। कभी-कभी मरे प नि नि सां भी लेते हैं। वादी मध्यम व संवादी षड्ज है। वर्षा ऋतु में हर समय इस राग को गाया जाता है।''[5] इस राग की रचना महान संगीतज्ञ सूरदास जी के द्वारा हुई है ऐसा विद्वानों का कथन है। इसको सूरदासी मल्हार भी कहते हैं।

निर्मितः सूरदासेन मध्यमादिस रूपकः।

संगीत सुधारकः

संगीत मर्मज्ञों के मतानुसार प्रस्तुत राग की रचना मल्हार और सारंग के मिश्रण से हुई है।

स्वरों का प्रयोग तथा महत्वः

सूरमल्हार में ॐऋषभ का आरोह अवरोह दोनों ही में अलंघन बहुत्व है ऋषभ का प्रयोग इस प्रकार करते है तथा सा रे म एंव प म रे म म रे नि सा। रे की पुनरावृत्ति रे मरे मप। मध्यम का इस राग में आंशिक न्यास बहुत्व है। पंचम का प्रस्तुत राग में सम्पूर्ण न्यास बहुत्व है क्योंकि आरोह, अवरोह दोनों ही तरफ से इस पर न्यास किया जाता है यथा रे म, म प नि प म प, नि ध म प नि ध प राग सूर मल्हार में धैवत का लंघन तथा अनाभ्यास दोनों ही प्रकार का अल्पत्व है। सं नि ध म प नि ध करते है तो धैवत का प्रयोग करते है तो धैवत का अनाभ्यास अल्पत्व हो जाता है क्योंकि नि के बाद धैवत पर बिल्कुल

न रूककर सीधे मध्यम पर चले जाते है या नि ध के पश्चात् कभी पंचम पर रूक जाते है परन्तु पंचम पर विश्रान्ति करने के पश्चात् नि म प रे म ऐसा स्वर समूह गाना आवश्यक हो जाता है, जिससे देश राग का भ्रम दूर हो जाये। शुद्ध निषाद् का आरोह में तथा कोमल निषाद अवरोह में सामान्य रूप से प्रयुक्त होता है। कभी भी इस स्वर को छोड़ते नहीं अत: निषाद् का इस राग में अलंघन बहुत्व कह सकते है।

आरोह-सा रे म, प नि सं।

अवरोह-सं, नि ध म प नि ध प म रे म, रे नि सा।

मुख्य स्वर-सं नि ध म प नि ध प, नि म प मरे म, रे रे प, रे नि सा।

राग रामदासी मल्हार:

राग रामदासी, मल्हार का एक प्रकार है। किवंदन्ती के अनुसार इस राग के रचयिता महात्मा रामदास जी है। प्रस्तुत राग, प्रचार में बहुत तरह से गाया एवं बजाया जाता है। कुछ गुणीजन मियां मल्हार ही में रे ग म इस प्रकार शुद्ध गंधार प्रयोग कर पूर्णरूप से मियां मल्हार के स्वर समूह तथा नियमों का प्रयोग करते है। कुछ लोग उपर्युक्त प्रकार में ही म प ध नि ध प म ग म इस स्वर समूह का प्रयोग करके रामदासी मल्हार गाते है। ''रामदासी मल्हार काफी थाट से उत्पन्न यह संपूर्ण जाति का राग हैं। इसमें दोनों गंधार और दोनों निषाद लगते है-आरोह में तीव्र एंव अवरोह में कोमल। मध्यम वादी और षड्ज संवादी है तथा समय वर्षाकाल हैं। कहते है इसे 'रामदास नायक' ने बनाया हैं। दोनों गंधार स्पष्ट लगने से 'मल्हार' के अन्य सब प्रकार इससे अलग हो जाते है। 'म रे व रे प' संगतियाँ रक्तिदायक है। इसमें शहाना व गौड़ इन रागों का संयोग है। कुछ लोग इसे केवल 'कोमल गंधार' से गाना पसन्द करते हैं। प्रस्तुत राग में रे प, म नि प, ध नि प, नि म प आदि स्वर संगतियाँ मुख्य रूप से आती है।'' राग रामदासी मल्हार का समप्रकृतिक राग मियाँ मल्हार तथा कान्हड़ा है। उत्तरांग में जब म प नि प नि सं तथा सं प नि प आदि स्वर समूह गाते है तो कान्हड़ा का अंग झलकने लगता है पूर्वांग में मल्हार और कान्हड़ा के विपरीत प्रभाव को दूर करने के लिए रे म ग, गौड़ राग के इस स्वर समूह का प्रयोग करते रहना चाहिए। प्रस्तुत राग में जब नि प मग मग म, इस प्रकार का स्वर समूह लेकर न्यास करते हैं तो किंचित बहार राग का आभास मिलता है। परन्तु यह शंका म रे मरे प, इस समूह के लगते ही तत्काल दूर हो जाती है। मिश्र व संकीर्ण रागों में इस प्रकार कई रागों का आभास होता है।

स्वरों का स्थान तथा महत्व:

षड्ज का तो सभी रागों में पूर्ण प्रभुत्व होता ही है, रामदासी मल्हार में भी षड्ज को यही स्थान प्राप्त है। रिषभ का स्थान आरोह तथा दोनों मे ही अलंघन बहुत्व का है। वादी तथा संवादी स्वर न होते हुए भी रिषभ का इस राग में विलक्षण स्थान है। आरोह मे जब मरे मरे तथा अवरोह में प मग मग म म रे इस प्रकार रिषभ् स्वर का प्रयोग करते हैं तो यह मल्हार अंग का रिषभ है। कोमल गंधार हमेशा अवरोह में कान्हड़ा अंग से आन्दोलित तथा दीर्घ प्रयोग किया जाता है प मग मग म सरे सा इसी भाँति प्रयोग होता है। जब इस पर पंचम से गंधार पर उतरेंगे तो स्वाभाविक ही मध्यम स्वर मींड या कण में लग जाता है। यह वक्र प्रयोग कान्हडा अंग का।तक है। शुद्ध गंधार का स्थान इस राग में अल्पत्व का है तथा इसे एक निश्चित स्थान पर ही प्रयोग किया जाता है। शुद्ध गंधार गौड राग का।तक है। सा रे ग म गौड़ राग का अंग हैं। इस राग में मध्यम आंशिक न्यास बहुत्व का स्वर हैं। रामदासी मलहार में अपेक्षाकृत शुद्ध मध्यम का प्रयोग कुछ अधिक तथा न्यासयुक्त है। इस राग की सारी सुन्दरता मध्यम के उचित लगाव पर निर्भर है। मध्यम पर न्यास की क्रिया इस प्रकार है-मरे मरे प, प ग ग म, नि नि प म प नि गम मग म रे प ग ग म, मप ध नि सं नि प म ग म, मरे मरे प मग मग म, म यरे मरे प ध नि ध नि प स रे ग म(प) मग मग म, म सरे, स। पंचम स्वर का इस राग में सर्वांग न्यास बहुत्व है अर्थात स म परे, परे प, ग ग म स रे स, रे ग म (प) ग ग म रे, रे प, म, प ध नि सं। इस पंचम को प्रस्तुत राग में पूर्ण न्यास का स्थान प्राप्त है। धैवत का प्रयोग राग में आरोह में म प ध नि सं इस षड्ज की ओर जाते हुए किया जाता है। अवरोह में स प नि प इस प्रकार से। प्रस्तुत राग में शहाना राग का अंग दिखाते हैं तो म प, ध, ध नि पर इस भाँति धैवत को थोडा दीर्घ कर दिया करते हैं।

रामदासी मल्हार में कोमल निषाद भिन्न स्वरों के साथ प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ-म प नि ध नि सं, या म प नि प नि सं अथवा सं ध नि प, सं नि म प, सं प नि प, या नि ध नि प और कभी-कभी रे ग म, म नि प। शुद्ध निषाद का प्रयोग आरोह में म प प ध नि सं तथा म प नि प नि सां इस प्रकार होता हैं। इस प्रकार संकीर्ण होते हुए भी रामदासी मल्हार अत्यन्त मधुर तथा चित्त को रंजन करने में पूर्ण समर्थ है-

आरोह-सा रे ग म, प ग म रे प, प ध नि सां।

अवरोह-सां नि ध नि प, ग म रे सा।

मुख्य स्वर समूह-सा नि धध नि स, रे ग म, प ग म रे प, ध नि प, ग ग म, नि प, ग म, स रे स।'

मल्हार के कुछ अप्रचलित प्रकार भी होते है जैसे:-

- राग नट मल्हार
- राग जयंत मल्हार
- राग धूलिया मल्हार
- राग चरजू की मल्हार
- राग देस मल्हार

निष्कर्षः

इस प्रकार यथासंभव प्रयत्न करके प्रचलित तथा अप्रचलित मल्हारों के प्रकार की खोज करके जो संशोधित स्वरूप शास्त्र नियम के साथ प्रस्तुत किया गया है आशा है इससे विद्वज्जन सहमत होंगे तथा मल्हार अंग के रागों के लिए जो अब तक व्यवस्थित विवेचन तथा शास्त्र व व्यवहार दोनों के सामंजस्य से मल्हारो का एक सुदृढ़ स्वरूप और प्रचलित व अप्रचलित मलहार के प्रकारो का अभाव था वह इस कार्य से दूर होगा और भविष्य के संगीत ज्ञिज्ञासु लाभान्वित होंगे।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूचीः

1. हिन्दुस्तानी संगीत में सारंग, मल्हार और कान्हड़ा, डॉ. प्रेमलता नाहर, प्रथम संस्करण-2002, द्वितीय संस्करण-2008, कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, अंसारा रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली-110002, पृ.सं.-16-17
2. मल्हार दर्शन, डा0 गीता बनर्जी, संगीत श्री प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2014, विकास नगर, कानपुर-208002, पृ.सं.-58-95
3. संगीत विशारद, वसन्त, सम्पादक डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ. प्र.), पृ. सं.-280-311
4. मल्हार दर्शन, डॉ. गीता बनर्जी, संगीत श्री प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2014, विकास नगर कानपुर-208002, पृ. सं. 96-100
5. संगीत विशारद, वसन्त, सम्पादक डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ. प्र.), पृ. सं. 321
6. मल्हार दर्शन, डॉ. गीता बनर्जी, संगीत श्री प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2014, विकास नगर, कानपुर-208002, पृ. सं. 151-158

प्रयाग में कुम्भ का महात्मय

डॉ० प्रत्यंचा पाण्डेय

(असि० प्रोफेसर प्राचीन इतिहास विभाग), काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही

कुम्भ घट का पर्याय है और घट शरीर का जिसमें घट-घट व्यापी आत्मा का अमृत रस व्याप्त रहता है। अतः कुम्भदर्शन तत्वतः आत्मदर्शन है। कुम्भ का स्वरुप दो श्लोकों में वर्णित हैं, उसमें त्रिदेवों, सप्तसागरों, सप्तद्वीपों, चारों वेदों को उस कलश के विभिन्न अंगों में निवासित कहा गया है। देवताओं के साथ ही कुम्भ प्रार्थना के मंत्र में सब तीर्थों और सब देवों एवं समस्त भूतों का उल्लेख मिलता है।

देव दानव संवादे मध्यमाने महोदधौ।
उत्पन्नोसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयंम।'
त्वंत्तोये सर्व तीर्थानि देवाः सर्वे त्वमि स्थिताः।
त्वयि त्रिष्ठतिं भूतिनि, त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः।।[1]'

प्रयाग कुम्भ रहस्य में कुम्भ की व्युत्पति की बात कही गयी है। कु शब्द पृथ्वीवाचक है इससे कुंज शब्द बनता है जो मंगल का।तक है। पूर्णघट भारतीय दृष्टि से मंगलकारी (शुभ) माना गया है। इसी आधार पर अर्धकुम्भ और पूर्णकुम्भ की महता निर्धारित की गयी है।[2]

वेदों में भी कुम्भ शब्द कई जगह प्रयुक्त हुआ है। जल प्रवाह से उसका संबंध निर्दिष्ट किया गया है। प्रयाग कुम्भ में जाने वाला मनुष्य स्वंय अपने में फलरूप को प्राप्त होने वाले दान एवं अपने पूर्व संचित कर्मो से प्राप्त हुए शारीरिक पापों को नष्ट करता है। 'कुम्भों, और कुम्भी का अर्थ स्त्री पुरूष के संबंध से भी निर्देशित किया गया है। कुम्भ पर्व सत्कर्म के द्वारा मनुष्य के इहलोक में शारीरिक सुख देने वाला और जन्मान्तरों में उत्कृष्ट सुखों को देने वाला है। अथर्ववेदों के दो मन्त्रों में भी कुम्भ शब्द आता है। कुम्भ उस समय को कहते हैं जो महान आकाश में ग्रह राशि आदि के योग से होता है। प्रयाग स्थित संगम स्थल को सर्वोपरि महत्ता दी गयी है। प्रयाग में गंगा, यमुना, सरस्वती अन्ततः संगम तीर्थ नाम का उद्घोष किया गया है।[3]

अमृत मंथन से कुम्भ का महत्व बढ जाता है और प्राचीनता भी सिद्ध होती है। अमृत मंथन में ब्रह्मा, विष्णु, महेश की एकता और देवताओं की प्रसन्नता अभिष्ट रही है। प्रयाग कुम्भ का अपना विशिष्ट स्थान है। कितने सम्प्रदाय, कितने अखाड़े, मठ-मठाधीश, विभिन्न वेशों और मुद्राओं में आये कितने साधु संत देश-विदेश से आये कितने स्नानार्थी एवं दर्शनार्थी सारे नगर को एक जीवन्त लघु भारत बना देते हैं। जिसकी विराय्ता दिखाई पड़ती है। सारे तीर्थों, सारी नदियों और सारे जलाशयों का आशय कुम्भ में सिमट कर उसे महाकुम्भ बना देता है। भारतवर्ष मूलतः आस्थाशील लोगों का देश है। उदारता, सहनशीलता और सौन्दर्यप्रियता उसकी सांस्कृतिक एवं धार्मिक भावना के अभिन्न अंग रहे हैं।[4]

प्रयागस्थ वट-वृक्ष इसी आस्था का प्रतीक है। कुम्भ स्थल में आस्था का ऐसा विशाल, आकाशव्यापी, अनन्त विराट वृक्ष निरन्तर प्रेरणादायी हैं। त्रिवेणी, मृत और अमृत दोनों तत्वों के समीकरण से उत्पन्न ऐसी धारणा है, जो मृत्यु पर मानसिक रुप से विजय प्राप्त करके जीवन में व्याप्त अमृततत्व को सर्वसुलभ बनाने का संकल्प करती है। धार्मिक दृष्टि मूलतः सांस्कृतिक दृष्टि है। कुम्भ के समस्त स्थलों में तीर्थराज प्रयाग सर्वोपरि महत्ता रखता है। कुम्भ सबसे पहले यही से आरम्भ हुआ।[5]

प्रयाग का कुम्भ कई कारणों से विशेष-महत्व रखता है। गंगा, यमुना जैसी नदियाँ देश के हृदय स्थल पर स्थित एकात्म भाव से संपूजित रही है। यह विशेषता अक्षयवट द्वारा और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। महर्षि भारद्वाज और रामायणकार वाल्मीकि दोनों का आर्शीवाद इस प्रयाग परिक्षेत्र को प्राप्त हुआ। देश का स्वस्तिक प्रयाग में केन्द्रित होकर चतुर्दिक शक्ति संतुलन बनाये रहता है। प्रयाग सांस्कृतिक केन्द्र है। 11 कुम्भों के बाद आने वाला कुम्भ महाकुम्भ माना जाता है। 11 वर्ष, 11 महीने और 27 दिन में सूर्य अपना राशि चक्र पूरा कर पाता है अतः उसी के कारण कुम्भ का निश्चय योग से 12 वर्ष के अन्दर होता है।[6]

प्रयाग ग्रह योग मेष राशि में बृहस्पति, चन्द्रमा और सूर्य दोनों मकर राशि में संगम तट पर अक्षयवट के समीप विख्यात कुम्भ स्नान प्रयाग में दोनों के साथ चन्द्रमा का योग और संक्रान्ति की स्थिति मानी जाती है। माघ-मास की परम्परा कुम्भ को और अधिक गरिमा प्रदान करती है। भारतीय संदर्भ में ज्योतिष मनुष्यों को कितना सक्रिय बना देती है यह कुम्भ और अन्य पर्वों से ज्ञात होता है कि तुलसीदास ने अपने काव्य में मकर के माघ स्नान का स्पष्ट उल्लेख किया है। प्रयाग के स्नानार्थी उसी को कुम्भ की प्रेरणा मान लेते हैं।

माघ मकरगत रवि जब होई।
तीरथपतिहि आव सब कोई।।[7]

पर्व स्नान भारतीय संस्कृति का विशेष परिचायक माना जाता है। संगम राष्ट्रीयता का संवाहक रहा है। जहाँ दो या दो से अधिक प्रवाह एक साथ मिलकर बहने लगते हैं वही प्रयाग हो जाता है। प्रयाग मनुष्यों का ही संगम नहीं कराता वरन् वह भाषाओं का संगम भी बन जाता है जिसमें संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी तथा देश की समस्त भाषाएँ सम्मिलित हो जाती है। प्रयाग को यज्ञ पुरुष के मस्तक के रुप में भी जाना जाता है। प्राचीन काल में प्रयाग को प्रधान एवं प्रकृष्ट यज्ञ भूमि के रुप में ब्रह्मपुराण में वर्णन है। प्रयाग के कंठ-भाग में तीर्थ समूह का निवास है। अग्नि पुराण एवं कूर्म पुराण में उसे पृथ्वी की जंघा बताया गया। जघन्य पापों से मुक्ति देने वाली भूमि की इस काव्यात्मक कल्पना में आन्तरिक संगति दिखाई देती है। अनेक सम्राट एवं राजाओं द्वारा असंख्य अश्वमेध यज्ञ किए गये इसका विवरण पुराणों में मिलता है। प्रयाग को वैसी ही प्रयागराज की पदवी मिली जैसे तीर्थों के बीच उसे तीर्थराज का पद प्राप्त हुआ। प्रयाग शब्द नदी संगम का विशिष्ट अर्थ है, जिसमें विष्णु प्रयाग, देवप्रयाग, रुद्रप्रयाग आदि का वर्णन है।[8]

प्रयाग सांस्कृतिक केन्द्र के रुप में सात्विकता का प्रतीक है। प्रयाग विन्ध्यांचल की दृढ़ता के साथ हिमालय के शिखरों की ऊँचाइयाँ छूने की भावना रखता है। गंगासागर की तरह जल को खारे पानी में बदलने की कल्पना वह नहीं करता। समुद्र में जाते ही नदियाँ समाप्त नहीं हो जाती वरन उनका वेग उन्हें बहुत दूर तक अस्तित्ववान बनाये रखता है। प्रयाग महाकाव्य सौ अध्याय की शताध्यायी के नाम से विख्यात है। तीर्थों में प्रयाग श्रेष्ठतम् है। तीर्थ दो प्रकार के होते हैं, एक कामना पूर्ण करने वाले दूसरे मुक्ति देने वाले। जिस तीर्थ में सब प्रकार की शक्ति सामर्थ्य हो और सबके मनोरथों को पूरा कर सके वह एक मात्र प्रयागराज है।

अथोच्यते तीर्थराज प्रयाग सर्वतोधिकः

तस्य श्रृष्वन्तु माहात्म्यं मुनयः सनकादयः।।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सारे फलों की प्राप्ति प्रयाग में ही संभव हैं। प्रयाग में दारागंज में ही अनेक साधु संगठन शताब्दियों पूर्व की परम्परा का गौरव प्रदर्शित करते हैं। जिसमें निरंजनी अखाड़ा और निर्वाणी अखाड़ा विशेष प्रसिद्ध है।[9]

कुम्भ तथा महाकुम्भ की सार्थकता प्रयाग की सांस्कृतिक दृष्टि का आत्मसात करती है। भारतीय संस्कृति भारत से सम्बद्ध होकर विश्वव्यापी होने की क्षमता रखता है। ज्योतिष परक "अमृतांश कला का उल्लेख कुम्भ के ज्योतिष परक संदर्भ में अमृत योग भारतीय संस्कृति का परिचायक है।"[10]

कुम्भ का सबसे प्राचीन वर्णन महाराजा हर्षवर्धन के समय का मिलता है। एक विदेशी यात्री ने लगभग 700 ई0 में इस मेले का आँखों देखा वर्णन किया। हर्षवर्धन अपने परिवार के साथ त्रिवेणी आया। संगम स्नान तथा पूजा-पाठ के पश्चात् अपना सर्वस्व दान कर दिया। सर्वप्रथम उसने बुद्ध की मूर्ति बनवायी और बहुमूल्य जवाहरात बुद्धदेव को समर्पित कर दिये। दूसरे दिन सूर्य और विष्णु की उपासना के लिए मूर्ति स्थापित की जाती थी। तीसरे दिन शिव की मूर्ति रखी जाती थी। चौथा दिन दान के लिए होता था। लगभग बीस दिन तक ब्रह्मणों एवं सन्तों को भेट दी जाती थी। उनके अगले दस दिन धार्मिक पुरुषों को दान दिया जाता था। अगले दस दिन नागाओं को दान किया जाता था। उसके बाद तीस दिन तक गरीबों और अनाथों को दान मिलता था इस प्रकार यह पर्व पचहत्तर दिनों तक चलता था। हर्षवर्धन के शासनकाल में प्रयागराज की कीर्ति पताका सारे विश्व में लहरायी थी। कहते हैं कि महाराजा हर्षवर्धन ने ही दो महाकुम्भों पर्वो के बीच छठवें वर्ष पर कुम्भ पर्व आयोजित कराने की परम्परा का सूत्रपात किया था। सम्राट अशोक के शिलालेख स्तम्भ प्रयाग में आज भी सुरक्षित है। मध्यकालीन इतिहास में अकबर के दरबारी अबुल-फजल ने आइने अकबरी में लिखा है कि हिन्दू लोग प्रयाग को तीर्थराज कहते हैं। यही पर गंगा, यमुना और सरस्वती तीनों का संगम है।[11]

प्रयागराज क्षेत्र वैदिक और पौराणिक काल में समादृत रहा है लेकिन ऐतिहासिक काल में भी इनके महत्व की चर्चा अनेक इतिहासकार ने की है। जैन धर्म की श्रमण परम्परा में तीर्थंकर आदिनाथ का अक्षयवट के नीचे कैवल्य प्राप्त करना और बौद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध का धर्म-प्रचार हेतु यहाँ आना इसकी महत्ता का परिचायक है। प्रयागराज के प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान-झूँसी), वत्सदेश (कौशाम्बी), अलर्कपुर (अरैल) प्राचीन राज्यों में रहे हैं। प्रतिष्ठानपुर की समकालीनता अयोध्या के सूर्यवंशी नरेश इक्ष्वाकू से मानी गयी है। कहा जाता है कि उस समय यहाँ के राजा इला थे। महाराजा उदयन का वर्णन भी अनेक ग्रंथों में वर्णन है।[12]

प्रयाग क्षेत्र में आठ नायकों का भी उल्लेख मिलता हैं-

त्रिवेणी माधवं सोम भारद्वाज च वासुकिम्।

वन्देऽक्षयवटं शेषं प्रयागं तीर्थनायकम्।।

प्रयाग के अत्यन्त प्राचीन और पौराणिक स्थलों में नागवासुकी का प्रमाण मिलता है। वर्तमान समय में नागवासुकी का मन्दिर दारागंज (बक्शी) मुहल्ले में स्थित है। वासुकि मध्य में प्रतिष्ठित है। उनके दोनों ओर नाग-नागिनियों के चार जोड़े कामदशाओं में वर्णित है। मन्दिर के गर्भ-गृह में नाग-नागिनी की पूरानी मूर्ति है। मन्दिर में विध्न नाशक गणेश जी की प्रतिमा है।[13]

प्रयाग की ललितापीठ के अलोपशंकरी देवी का अत्यधिक महत्व है। अलोपीबाग मुहल्ले में महानिवार्णी पंचायती अखाड़े के अधीन देवी-अलोपशंकरी का मन्दिर स्थित है। मंदिर में कोई प्रतिमा नहीं है। एक कुण्ड है जिसमें जल भरा हुआ है। मंदिर में इसी झूले और कुण्ड की पूजा की जाती है। तीर्थराज प्रयाग स्थित ललिता पीठ अत्यन्त प्राचीन है जिसका वर्णन पुराणों में मिलता है। 51 शक्तिपीठों में वर्णित ललिता पीठ के सम्बन्ध में सती की उँगलियों के गिरने वाली एक कथा वर्णन पुराणों में वर्णित है। प्रयागराज के मीरापुर मुहल्ले में यह मन्दिर स्थित है। मत्स्य पुराण के 108 वें अध्याय में कल्याणी देवी का वर्णन पाया जाता है। प्रयाग महात्म्य के अनुसार कल्यांणी और ललिता एक ही है, परन्तु कहीं-कहीं यहाँ पृथक अस्तित्व पाया जाता है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने प्रयागराज में भगवती की अराधना करके माँ कल्याणी देवी की ३२ अंगुल की प्रतिमा की स्थापना की है। यह मंदिर कल्याणी देवी मोहल्ले में स्थित है।[14]

प्रयागराज में भारद्वाज के विषय में जानकारी राम के वनगमन के समय मिलती है। राम चरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है-"भारद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा।" वर्तमान में महर्षि भारद्वाज का आश्रम कर्नलगंज मुहल्ले में आनन्द भवन के समीप स्थित है। भारद्वाजेश्वर शिवलिंग एवं सहस्र फणधारी शेषनाग की मूर्ति है। ऐसी मान्यता है कि जो प्रयागराज आने पर भारद्वाज आश्रम नहीं जाता उसे यात्रा का फल नहीं मिलता।[15]

प्रयागराज में गंगा के दक्षिणीतट पर स्थित तीर्थ को कोटितीर्थ कहा जाता है। पदम् पुराण के अनुसार यहाँ कोटि-कोटि-तीर्थों का निवास है। इस कोटितीर्थ के देवता को कोटि तीर्थेश्वर भगवान शिव कहे गये हैं। इसी स्थान के उत्तर में भार्गव, गालब और चामर तीर्थों का उल्लेख तीर्थयात्रियों, पर्यटकों व नगर निवासियों की श्रद्धा के केन्द्र श्री हनुमत निकेतन के संस्थापक श्री रामलोचन ब्रह्मचारी जी थे, जिन्होंने बल, बुद्धि, विद्या, व ब्रह्मचर्य के प्रतीक श्री हनुमान जी के दक्षिण भाग में श्रीराम, लक्ष्मण व जानकी और उत्तर भाग में सिंह वाहिनी दुर्गा की मूर्ति वाले इस मन्दिर को राष्ट्र को समर्पित कर दिया था। संगम क्षेत्र में किले के अन्दर सरस्वती कूप स्थित है। सरस्वती नदी यहाँ इस कूप में दृश्य है। इसी प्रकार झूँसी प्रतिष्ठानपुर में हंसकूप या हंसतीर्थ स्थित है। इस कूप के निकट एक शिलालेख खुदा हुआ है इसका तात्पर्य है कि हंसरुपी बावली में स्नान करने तथा इसका जल पीने से हंसगति अर्थात मोक्ष प्राप्त होता है।[16]

हंसकूप के दक्षिण की ओर निकट ही एक और कुँआ है। जिसका नाम समुद्रकूप है यह समुद्रगुप्त ने बनवाया था। पद्मपुराण में उल्लिखित अक्षयवट की अमूल्य निधियों का सर्वाधिक महत्व है इसे श्यामवट भी कहते हैं। श्यामवट यानी अक्षयवट अपनी श्यामल छाया से मुनष्यों को दिव्य सत्व गुण प्रदान करता है। अक्षयवट का वर्णन ऋग्वेद में मिलता है। प्रयागराज के प्रमुख तीर्थों में मनकामेश्वर भगवान शिव का मंदिर है। ऐसी मान्यता है कि महादेव के स्मरण और पूजन से मनोकामनाएँ पूर्ण होती है।[17]

प्रयागराज नगर से 35 किलोमीटर पूर्व की ओर गंगातट पर श्रृंगवेरपुर स्थित है। इस स्थान का पौराणिक महत्व है। श्रृंगीऋषि के नाम पर इस स्थान का नाम श्रृंगवेरपुर पड़ा। वे महान तेजस्वी और तपस्वी महात्मा थे। वाल्मीकि कृत रामायण में और रामचरित मानस में श्री राम के वनगमन, केवट संवाद के विषय में वर्णन आया है कि यह स्थान महत्वपूर्ण है। श्रृंगवेरपुर में गंगा के पाँच घाट है-गऊघाट, मौनीघाट, श्रृंगवेर घाट, रामचौराघाट, कुईई घाट। इस प्रकार प्रयाग का सांस्कृतिक धार्मिक एवं ऐतिहासिक महत्व अतुलनीय है।[18]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जगदीश गुप्ता-कुम्भ दर्शन, पृष्ठ 10-11
2. ऋग्वेद-10/89/7
3. अथर्ववेद-19/53/3
4. तीर्थांक-पृष्ठ, 364
5. जगदीश गुप्त-कुम्भ दर्शन, पृष्ठ-14, 15
6. वही
7. राम चरित मानस-बालकाण्ड, पृष्ठ-22-23
8. ब्रह्मपुराण।
9. मासिक पत्रिका-उ0प्र0, पृष्ठ 28
10. शताध्यायी-अध्याय, 10-11
11. श्रीराम गोयल प्राचीन भारत, पृष्ठ 225
12. पुराण-भारतीय संस्कृति के स्रोत पृष्ठ-14
13. सौर अनुष्ठान-सेंगर अनीता, पृ0 201-203
14. वही, पृष्ठ 204, 205
15. कुम्भदर्शन जगदीशगुप्त, पृष्ठ-27-28
16. शतपथ-ब्राह्मण, 10/2/6/19
17. वही।
18. संग्रहालय पुरातत्व पत्रिका, पाण्डेय, सी0डी0 अंक 27, 28

अलवर के संत दुर्बलनाथ और समाज उत्थान

श्रीमती अंगूरी सैनी

सहायक आचार्य (इतिहास), बाबूशोभाराम राज. कला. महा. अलवर (राजस्थान)

भारतीय समाज में पुरातनकाल से ही धार्मिक एवं सामाजिक रूढ़ियाँ विद्यमान रही है। समाज में व्याप्त इन रूढ़ियों व कुरीतियों को दूर करने के लिए समय-समय पर अनेक संतों व महापुरूषों का जन्म हुआ है। इन्होंने समाज में व्याप्त बुराइयों पर चोट की। ऐसे ही संतों में अलवर रियासत के संत दुर्बलनाथ का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। संत दुर्बलनाथ राजस्थान में वेदान्त दर्शन के प्रचारक थे। उनका जन्म 1861ई. में अलवर जिले के लक्ष्मणगढ़ तहसील के बिचगाँव में हुआ था। ये खटीक जाति के थे। उस समय यहाँ की स्थिति जातिवाद, छुआछूत के कारण शोचनीय थी। इनका जन्म इनके माता-पिता (श्री फट्टूराम जी व रूपा देवी) द्वारा लम्बे समय से प्रार्थना के फलस्वरूप हुआ। उन्होंने बच्चे का नाम कल्याण रखा था, जो दूसरे बच्चों से काफी अलग था।

वे गायों को जंगल में चराने के लिए ले जाते समय वहाँ योग मुद्रा में बैठ जाया करते थे। इन्हें संत ब्रह्मनाथ की संगति में रहना भी पसंद था जो रोजाना देर रात तक सत्संग किया करते थे।

समाज में संतों की भूमिका

आदिकाल से ही मानव समाज में संत महात्माओं का आविर्भाव मानव व अन्य सभी प्राणधारियों के उत्थान के लिए होता आया है, क्योंकि जब भी समाज पर आपदा आती है तो ये संत-महात्मा ही इनसे लड़ने के लिए पृष्ठभूमि तैयार करते हैं और मानव जाति को कल्याण के मार्ग पर अग्रसर करते हैं। जैसे कि कहा है -

''आग लगी संसार में झिड़-झिड़ गिरे अंगार,
साधु न होत जगत में, तो जल मरता संसार।''

मध्यकालीन समाज में जब जाति व्यवस्था मजबूत हुई तो सवर्ण वर्ग के लोग अनुसूचित जाति में शामिल लोगों से छुआछूत व भेदभाव करने लगे। उनका मंदिरों में प्रवेश रोक दिया गया, इस कारण निम्न जाति के लोग अपने घरों में ही मूर्तियाँ लगाकर पूजा करने लगे। आज भी इसी वजह से अनुसूचित जाति के घरों में मन्दिर पाये जाते हैं।

सामाजिक दृष्टि से अनुसूचित जाति वर्ग में सम्मिलित जातियों में अशिक्षा तथा लेखन व साहित्य से वंचित पाई गई है। इनमें अंधविश्वास व पुरानी घटनाएँ प्रचलित रही साथ ही इनमें सामाजिक कुप्रथाओं का भी बोलबाला रहा है। इनमें अशिक्षा, बाल विवाह, पशुबलि जैसी कुप्रथाएँ प्रचलित रही है।

समाज का यह निम्न वर्ग सामाजिक पतन के रास्ते पर था साथ ही सामाजिक बुराइयों के कारण समाज में उपेक्षित था। मध्यकाल में जाति व्यवस्था कठोरता लिए हुए थी, लेकिन ब्रिटिशकाल में जातिप्रथा के रूढ़िवादी नियम कमजोर पड़ने लगे। इसी समय अनुसूचित जाति वर्ग के खटीक परिवार में महान संत दुर्बलनाथ का आविर्भाव हुआ।

संत दुर्बलनाथ और सामाजिक चेतना व जनजागृति

इस समय सामाजिक रूढ़ियों व कुरीतियों से ग्रसित समाज में संत दुर्बलनाथ का आविर्भाव हुआ। इस समय अनुसूचित जाति के लोगों को सामाजिक व राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति नहीं हुई थी। उच्च जाति के लोग इनको मन्दिरों, सार्वजनिक कुओं विद्यालयों आदि में नहीं जाने देते थे। अस्पृश्यता की भावना के कारण निम्न जाति के लोगों को भगवान के दर्शन दूर से ही करने पड़ते थे। तत्कालीन समाज ने जाति व वर्ण व्यवस्था की कठोरता के कारण बालक कल्याण (बाद में दुर्बलनाथ) जिसे कल्या भी कहा जाता था, को पूरी तरह स्कूल से दूर रहना पड़ा तथा अपना पैतृक कार्य-भेड़बकरी संभालना पड़ा। वे घने जंगलों में गाय व बकरी के साथ जाते और कदम्ब के पेड़ की छाया में आसन लगाकर ध्यान लगाते थे। इसी ध्यान पद्धति के कारण इन्हें आत्मानुभूति प्राप्त हुई। बालक कल्याण का आध्यात्मिक रूझान देखकर इनके पिता फट्टूराम ने इनका विवाह अलवर की एक स्वजातीय कन्या मानवती से सम्पन्न किया। सांसारिक जीवन में इनको तीन पुत्र व तीन पुत्रियों की प्राप्ति हुई।

संत दुर्बलनाथ के चमत्कार पूर्ण कार्य

आरम्भ से ही दुर्बलनाथ की भगवान की भक्ति और सत्संग में रूचि थी। वे घण्टों ईश्वर ध्यान में लीन रहते थे। उस समय समाज में जातिपाति व छुआछूत का बोलबाला था। उच्च जाति के लोग इन्हें ढोंगी कहने लगे। अत: संत दुर्बलनाथ ने कुछ चमत्कारिक कारनामें दिखाए, जिससे लोगों पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा और वे उनके शिष्य बन गए।

एक बार गाँव में ठाकुर भूराचन्द द्वारा दुर्बलनाथ से अपने खेत में बेगार लेने व इनके पैर में फावड़ा लग जाने पर खून की जगह दूध जैसी धारा निकली। यह चमत्कार देखकर ठाकुर इनके पैरों में गिर गया। इसी श्रृंखला में एक बार बिचगाँव में लीली टोड़ा पहाड़ी पर सत्संग के दौरान उच्च वर्ग के लोगों ने संत दुर्बलनाथ का अपमान किया। इसके बदले में दुर्बलनाथ ने अपनी दिव्य शक्ति से भगवा रंग में चोला रंग दिया। इस चमत्कार को देखकर लोग इनके भक्त बन गए।

इसी प्रकार एक दिन संत दुर्बलनाथ सच्चे गुरू की खोज में निकले तो इन्होंने अपनी योग साधना से यह जान लिया कि शामदा गाँव अलवर के संत गरीबनाथ उनके गुरू बनने लायक हैं। जब दुर्बलनाथ अपने गुरू से मिलने पहुँचे तो एक कोस की दूरी रहने पर गरीबनाथ ने अपने तपोबल से जान लिया कि दुर्बलनाथ उनके पास शिष्य बनने आ रहे हैं। इस पर गरीबनाथ ने सिद्ध रूप धारण किया और दुर्बलनाथ के समक्ष उपस्थित हुए। दुर्बलनाथ ने भी गाय का रूप धारण करके गुरू के समक्ष अपना सिर झुका दिया। इन्हीं गुरू से कार्तिक सुदी पूर्णिमा को दुर्बलनाथ को ज्ञान की प्राप्ति हुई।

इसी कड़ी में एक बार गाँव बिचगाँव में कृष्ण जन्माष्टमी पर गाँव के सरोवर रामवेद पर झांकी सजायी गई। इस कार्यक्रम में अनुसूचित जाति को शामिल नहीं किया गया। इसका समाधान करने के लिए दुर्बलनाथ ने फिर से चमत्कार दिखाया। उन्होंने पत्थर की कुण्डली में सोटे को वस्त्र पहनाकर तालाब के चारों ओर पानी में चक्कर लगवाया। इससे सभी लोग बहुत प्रभावित हुए और फिर यहाँ जातिप्रथा और छुआछूत नियंत्रित हुआ। यह सरोवर बिचगाँव में आज भी है, और यही पर संत दुर्बलनाथ का भव्य आश्रम है, जिसे इनके शिष्य संभालते हैं।

एक बार करौली जिला सवाईमाधोपुर में यहाँ के राजा भँवरपाल ने एक सत्संग करवाया। वह घमण्डी था, अत: उसके अभिमान को तोड़ने के लिए संत दुर्बलनाथ ने पानी में शिला तैराकर सबको आश्चर्य में डाल दिया। इस घटना से दुर्बलनाथ की प्रसिद्धि व सम्मान में अभूतपूर्व वृद्धि हुई।

संत दुर्बलनाथ का निर्वाण

संत दुर्बलनाथ ने बाँदीकुई (दौसा) में एक सत्संग समारोह में अपने निर्वाण यानि शरीर त्यागने की घोषणा कर दी थी। इस पर इनके भक्त यहाँ पर इक्ट्ठे होने लगे। संत दुर्बलनाथ ने चौत्र सुदी पूर्णिमा 1929ई. को अपना शरीर त्याग दिया। यहाँ पर इनकी भव्य समाधि बनाई गई, जो खटीक समाज का प्रमुख गुरूद्वारा है। यहाँ पर प्रतिवर्ष कार्ति सुदी पूर्णिमा को मेला लगता है और संत दुर्बलनाथ की शोभायात्रा निकाली जाती है।

संत दुर्बलनाथ के उपदेश एवं शिक्षाएँ

संतों के जीवन का उद्देश्य सदैव मानव कल्याण व सद्भाव का प्रचार रहा है। इन्होंने समाज में लिप्त न रहते हुए समाज सुधार के अनेक कार्य किए हैं तथा समाज के दलित, शोषित व पिछड़े वर्गो के उत्थान के लिए अपने जीवन को समर्पित कर दिया। संत दुर्बलनाथ भी ऐसे ही संत थे। इन्होंने अपने आध्यात्मिक विचारों से अनुसूचित जाति में चेतना जागृत की तथा समाज में व्याप्त अनैतिक रूढ़ियों व धार्मिक आडम्बरों को दूर करने का प्रयास किया। इन्होंने सत्संग व भजन तथा चमत्कारिक कार्यो से समाज के उपेक्षित वर्ग को सम्मानपूर्ण स्थान दिलाया।

संत दुर्बलनाथ ने गुरू महिमा का गुणगान करते हुए गुरू से स्थिति व स्थान के अनुसार ज्ञान प्राप्ति पर बल दिया और मानव समाज को सद्मार्ग पर चलने का रास्ता सुझाया। इनका कहना था कि ईश्वर की प्राप्ति मात्र शास्त्रीय ज्ञान से नहीं वरन् दृढ़ लग्न व भक्ति से ही संभव है। समाज को नई दिशा देने के लिए संतों द्वारा कुछ परम्पराओं का निर्माण किया गया और वे परम्पराएँ आज तक उनके शिष्यों द्वारा आगे बढ़ाई जा रही है। संत दुर्बलनाथ जी ने अपने शिष्यों को माया के प्रति सचेत रहने, जाति-पांति का विरोध, रूढ़ियों व आडम्बरों का विरोध, गुरू की महिमा का बखान व गुरू को उच्च स्थान देना, प्रेमानुभूति का प्रयत्न आदि प्रमुख परम्पराओं की ओर ध्यान दिलाया गया। संत दुर्बलनाथ द्वारा गुरू महिमा का वर्णन इस तरह किया गया:-

''ज्ञान उजाला गुरू को, भव सागर से पार,
साँचा सतगुरू मिल गया, दिया नाम निज सार,
गरीबनाथ दयाल गुरू नैनन पलक विराज,
दुर्बलनाथ गुरू न मिलते तो क्या गत होती आज,
गुरू समान दाता नहीं गुरू समान नहीं दयाल,
दुर्बलनाथ सत में कहे, गुरू पल में करें निहाल,
मनुष्य देह, नुगरा रहे, सूकर श्वान समान,
साँचा सतगुरू कीजिए, गुरू बिन मिले न ज्ञान।

इस प्रकार संत दुर्बलनाथ जी ने गुरू की महिमा का बखान कर लोगों के गलत आचरण पर प्रतिबंध लगाया।

धार्मिक व सामाजिक रूढ़ियों तथा आडम्बरों का विरोध

संतों ने प्राचीन धार्मिक व सामाजिक रूढ़ियों का विरोध किया। संत दुर्बलनाथ ने बाँदीकुई रियासत (दौसा) में सत्संग के दौरान कहा कि ''यह संसार सांसारिक जाल है, इसमें मनुष्य जन्म लेता है, मरता है, परन्तु उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है।'' अतः मनुष्य को दया, धर्म, शील और संतोष को शरीर में धारण करना चाहिए, जिससे कि वह चौरासी के चक्कर से मुक्त हो जाए। संत दुर्बलनाथ ने उपदेश देते हुए कहा–

''सत मानो संतो, सब घट पूरण वो ही,
जिनकू खबर पड़ी आपा की, दूजो न दीखों कोई,
नहावे धोवे खाक रमावे, वो साधु मन मोही,
तिलक लगावे जटा बढ़ावे, वो साधु मन मोही,
धूनी घोले करे तपस्या वे भी साधु मन मोही,
जल में बैठे करे तपस्या वे भी साधु मन मोही,
बेटा देवे भय दिखावे, वे भी साधु मन मोही।
नाटक चेटक, उड़ान गुटखा इनकू परे हटा ही,
सब खटका को परे हटावे, ब्रह्मा लखै सो सोही।

माया के प्रति चेतना

संत परम्परा में माया के दो रूपों की कल्पना की गई। एक सांसारिक मोह माया जो कि झूठी है, दूसरी सत्य स्वरूप माया जो कि ईश्वर की प्राप्ति में सहायक है। संत दुर्बलनाथ ने अपने भजनों व सत्संग में कहा:–

मन माया ने सब जग जीता, सबके घट अभिमान रे,
ऋषिमुनि महात्मा को नहीं करने दे ज्ञान रे,
योगीयती की सिद्धि समाधि, नहीं लगने दे ध्यान रे,
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कह, रखो हमारी शान रे,
राजा रंक सभी गए, लोध कोध गलतान रे,
मनसा पाप भया दुतिया, सदा झूठे स्थान रे,
मोह काम विषय में खीचें, कभी ना हो कल्याण रे,
दया गरीबी, समता, शील, संतोष में करे स्नान रे,
दुर्बलनाथ सतगुरू कृपा से, पाया निज धाम रे।

जाति पाति के भेदभाव का प्रतिरोध

संत दुर्बलनाथ जाति पाति के भेदभावों का घोर विरोध किया। वे स्वयं एक निम्न जाति में पैदा हुए थे और अनेक बार वे सवर्णो द्वारा अपमानित किए गए थे। लेकिन इन्होंने हार नहीं मानी। इन्होंने इसके विरूद्ध जनचेतना जागृत की तथा सत्कर्मो पर जोर दिया। उन्होंने सत्संग के दौरान अनेक चमत्कारिक कारनामे दिखाए जिससे जाति पाति का भेदभाव कम हुआ और समानता की भावना बढ़ी। इसके परिणामस्वरूप उच्च जाति के लोग भी इनका सम्मान करने लगे।

संत दुर्बलनाथ के आश्रम व जनजागृति

संत दुर्बलनाथ ने उन बुराईयों का विरोध किया और उनके खिलाफ आवाज उठायी जिनसे समाज में असमानता, जातिवाद व छुआछूत फैल रहा था। जैसे उन्होंने कहा:–

''मांस खावे और दारू पिवे, लगी रही वही आस,
जन्म-जन्म छूटे नहीं, नर्क कुण्ड को वास,
परतिरिया से संगम करे, करे निगम की बात,
उन घट नहीं चाँदना, घोर अंधेरी रात।

संत दुर्बलनाथ ने मेरठ, पंजाब, थली, दिल्ली, अम्बाला, बाँदीकुई आदि शहरों में घूम-घूम कर लोगों ने जनचेतना जागृत की और यहाँ पर अपने आश्रमों की स्थापना की। ये आश्रम अनुसूचित जाति की एकता व संगठन के प्रतीक माने जाते हैं। संत दुर्बलनाथ के प्रथम शिष्य श्री आदिनाथ थे, जिन्होंने थली में अपना आश्रम बनवाया और अंतिम साँस तक समाज उत्थान के कार्यो को करते रहे। संत दुर्बलनाथ के बाँदीकुई आश्रम का संचालन इनके शिष्य बिच्छूनाथ ने 1954 ई. तक किया तथा समाज में नवजागृति फैलायी।

धार्मिक सहिष्णुता व सामाजिक समानता की भावना पैदा करना

19वीं शताब्दी में समाज में उच्च वर्ग का प्रभाव था। ब्राह्मण समाज में सर्वेसर्वा थे। ये अनुसूचित जाति के साथ छुआछूत व भेदभाव करते थे। संत दुर्बलनाथ ने इनके समक्ष अनेक चमत्कार दिखाए, जिससे इन्होंने इनकी भक्ति को स्वीकार किया। इसके फलस्वरूप समाज में सौहाद्र की भावना का प्रसार हुआ। जातिप्रथा की सबसे बड़ी सजा अनुसूचित जातियों को मिलती थी। इसके लिए दुर्बलनाथ ने समाज में समानता की भावना का प्रसार किया व उच्च वर्ग के लोगों को अपना शिष्य बनाया। इससे सवर्ण व निम्न वर्ण के बीच की खाई को काफी सीमा तक पाटने में मदद मिली।

सद्कर्मो व शुद्ध आचरणों पर जोर

अनुसूचित जाति के धार्मिक संतों ने आत्मा-परमात्मा, पाप-पुण्य आदि की महत्ता को समझा और आत्मशुद्धि पर बल दिया। ईश्वर भक्ति की भावना के प्रचार के कारण व्यक्ति अपने कर्त्तव्य व दूसरों के अधिकारों को समझने लगा। इससे समाज में व्यक्तियों का आचरण शुद्ध हुआ। उन्हें, लोभ, मोह, काम, स्वार्थ आदि से घृणा होने लगी और इनको पाप माना जाने लगा।

शिक्षा के महत्व तथा व्यवसायों की पवित्रता पर जोर देना

तत्कालीन समाज में अनुसूचित जाति के लोग ऐसे व्यवसायों से अपनी जीविका चलाते थे, जिनको अपवित्र माना जाता था। इसी कारण उच्च जाति के लोग इनसे घृणा करते थे। ऐसे माहौल में संत दुर्बलनाथ ने समाज सुधारक के रूप में कार्य किया। उन्होंने अनुसूचित जाति के लोगों को बताया कि हिंसा करना पाप है, तथा स्नान, ध्यान से अपने को हमेशा पवित्र रखना चाहिए। इसके फलस्वरूप अनेक लोगों ने हिंसात्मक कार्यो को छोड़कर अपने लिए दूसरे व्यवसायों को अपनाया। संत दुर्बलनाथ ने अपने सत्संगों में हिंसा से बचने व व्यवसाय की पवित्रता पर जोर दिया। इससे मांस, मदिरा, सेवन मे कमी आई।

संतो ने अनुभव किया कि समाज के पिछड़े होने का एक कारण समाज में शिक्षा का निम्न स्तर होना है। अत: उन्होंने लोगों को शिक्षा का महत्व समझाया और बताया कि शिक्षा व्यक्ति के जीवन का मुख्य उद्देश्य है। शिक्षा से नैतिक विचारों का विकास होता है तथा यह अन्तत: व्यक्ति के बौद्धिक व सामाजिक विकास में योगदान देती है। शिक्षा ही व्यक्ति पर सामाजिक नियंत्रण स्थापित करती है तथा उस ज्ञान में अभिवृद्धि करती है, जिससे व्यक्ति अच्छे-बुरे, उचित-अनुचित की पहचान कर सके। यह शिक्षा ही है, जो व्यक्ति को तार्किक बनाती है।

इन सबका परिणाम यह हुआ कि अनेक क्षेत्रों में दुर्बलनाथ के मन्दिर, छात्रावास व विद्यालय स्थापित हुए। इसी श्रृंखला में अलवर में श्री खटीक छात्रावास, अलवर स्थापित हुआ। इसमें छात्रों से मृत्युभोज आयोजित नहीं करने का संकल्प पत्र भरवाया जाता है।

संत दुर्बलनाथ की गुरू-शिष्य परम्परा व सामाजिक सुधार

संत दुर्बलनाथ द्वारा स्थापित गुरू शिष्य परम्परा ने तत्कालीन समाज की बुराइयों को दूर कर लोगों को सद्आचरण का उपदेश दिया। संत दुर्बलनाथ के शिष्यों ने अपने गुरू के उपदेशों व शिक्षाओं को आगे बढ़ाया इससे समाज की सुधारात्मक प्रवृत्ति में निरन्तरता आई। संत दुर्बलनाथ नाथ सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे। इनके उत्साह व प्रेरणा से अनुसूचित जाति के लोग अनेक सम्प्रदायों जैसे कबीरपंथी, रामस्नेही, निरंजनी आदि से जुड़े और समाज की बुराईयों को दूर कर एक प्रगतिशील समाज का निर्माण किया।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि संत दुर्बलनाथ के प्रयासों के फलस्वरूप सामाजिक व धार्मिक रूढ़ियों, छुआछूत आदि में कमी आयी तथा अनुसूचित जाति वर्ग का समाज नवीन चेतना व जागृति से अभिभूत हुआ, इसमें नैतिकता का विकास हुआ और समाज में महिलाओं को सम्मानपूर्ण स्थान मिला।

संदर्भ सूची

1. अनुभव आतम प्रकाश ग्रंथ, संत दुर्बलनाथ प्रचार समिति, बाँदीकुई
2. दाधीच, डॉ. रामप्रसाद, राजस्थान संत साहित्य
3. खेड़िया, मामचन्द, महात्मा दुर्बलनाथ जी का जीवन चरित
4. शाश्वत, खटीक भक्ति सागर, भिवानी (हरियाणा) से प्रकाशित (सम्पादक) रामकुमार तंवर।
5. श्री खटीक छात्रावास अलवर के मूल रजिस्टर रिकॉर्ड से प्राप्त जानकारी
6. अरूण प्रभात मासिक पत्रिका, वाराणसी से प्रकाशित, विशेष अंक
7. संत श्री परमानंद भारती अनुभव विलास
8. पवनदूत एक्सप्रेस समाचार पत्र, जिला टोंक से प्रकाशित, जून 2002 अंक
9. सामाजिक उत्थान पत्रिका, विशेष अंक, दिल्ली द्वारा प्रकाशित

चंद्रकांता के उपन्यास 'ऐलान गली जिन्दा है' में यथार्थ बोध

पिंकी देवी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

शोध का सार:

यथार्थ साहित्य में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाता है। वह पूर्वाग्रह से सदैव दूर रहता है और समाज के उसी रूप को हमारे सामने प्रस्तुत करता है, जिसका वह अनुभव करता है। यथार्थ की रचना में मानव, उसकी भावना और समाज का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। जो यथार्थवादी साहित्यकार होता है वह सदैव सत्य के प्रति जागरूक रहता है, वह सत्य को छोड़कर कल्पना में विचरण नहीं करता। यथार्थ साहित्यकार का उद्देश्य है कि वह जीवन के वास्तविक रूप को हमारे सामने प्रस्तुत करें अर्थात् यथार्थ जीवन की वास्तविक अनुभूति है।

परिचय:

आज का साहित्यकार अपने जीवन में घटित घटनाओं, परिस्थितियों और जीवन के अनुभवों को पूरी सहजता, स्पष्टता और ईमानदारी के साथ साहित्य में प्रस्तुत करता है वो न केवल अपने मन की भावनाओं को अभिव्यक्त करता है बल्कि इन्हें अभिव्यक्त करना अपना कर्तव्य समझता है।

यथार्थ शब्द यथा + अर्थ से मिलकर बना है अर्थात् यथावत प्रस्तुत करना। हिंदी में यथार्थ का कोशगत अर्थ-''ठीक, उचित, वाजिब, सत्य, वास्तविक, असली, सच्चा, सही, यथातथ्य आदि मिलता है।''[1] अत: इन अर्थों के आधार पर हम कह सकते हैं कि जो वास्तविक और उचित है वही यथार्थ है।

भगवती चरण वर्मा के अनुसार-''यथार्थ वह सब है जो इस विश्व में स्वाभाविक रूप से घटित होता रहता है, जहाँ बुद्धि का अनुशासन नहीं है, यथार्थ मूल रूप से मानव के अस्तित्व का सत्य है।''[2] इस परिभाषा के आधार पर हम कह सकते हैं कि इस संसार में वास्तविक रूप से जो घटता है जिसका संबंध मानव के अस्तित्व के सत्य से होता है वही यथार्थ है।

बोध शब्द का कोशगत अर्थ है-जानकारी, समझ। ''बोध शब्द संस्कृत की 'बुध' धातु से बना है जिसका अर्थ है-जानना। अंग्रेजी में बोध का पर्याय है -Awareness, conciousness तथा sensibility. बोध शब्द से तात्पर्य किसी वस्तु, विषय, धारा, व्यवहार का ज्ञान माना जाता है।''[3] अत: किसी विषय, वस्तु को जानना तथा मूल्यांकन करने की कुशलता का नाम ही बोध है।

साहित्य और यथार्थ का आपस में गहरा संबंध है यदि कोई साहित्यकार यथार्थ के बिना साहित्य की रचना करता है, तो उसकी रचना केवल कोरी कल्पना ही मानी जाएगी। साहित्य समाज का दर्पण होता है। इसलिए यथार्थ के अभाव में साहित्य का सृजन संभव नहीं है, क्योंकि साहित्य में समाज की गतिविधियों के बारे में बताया जाता है। यदि साहित्य में यथार्थ का अभाव होगा तो हमारे लिए उस समाज को समझना असंभव होगा। हमारे जीवन में जो सत्य है, वही साहित्य में यथार्थ है। अत: साहित्य को सत्य के माध्यम से जानना ही उसका यथार्थ बोध है।

चंद्रकांता जी एक ऐसी रचनाकार है जिन्होंने अपने साहित्य के द्वारा समाज के यथार्थ रूप को हमारे सामने रखा है, इनकी अनुभूतियों का क्षेत्र व्यापक रहा है, इन्होंने कई विधाओं में अपनी लेखनी को चलाया है लेकिन कहानी और उपन्यास में इन्हें विशेष स्थान प्राप्त है। लेखिका ने अपने उपन्यासों में जम्मू-कश्मीर, उड़ीसा और जहाँ पर भी वो रही वहाँ की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक स्थितियों को यथार्थ रूप से प्रस्तुत किया है। 'ऐलान गली जिन्दा है' उपन्यास में यह जम्मू कश्मीर के यथार्थ रूप को प्रस्तुत करती है। इस उपन्यास में इन्होंने परिवारिक संबंधों से लेकर आतंकवाद जैसी बड़ी समस्या जो न केवल भारत की है बल्कि विश्व की समस्या है उस पर अपनी लेखनी चलाई है, जम्मू कश्मीर को पृथ्वी का स्वर्ग कहा जाता है, आज इस स्वर्ग की केसर की क्यारियाँ लहूलुहान पड़ी है। यहाँ के लोगों को जीवन यापन करने के लिए अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

परिवार समाज की प्रथम इकाई है। परिवार में रहकर ही मनुष्य में प्रेम, त्याग, विनम्रता और सहयोग जैसे मानवीय गुणों का विकास होता है। वर्तमान समाज में हमें परिवार के दो रूप देखने को मिलते हैं। एकल परिवार और संयुक्त परिवार। एकल परिवार वह होता है, जिसमें माता-पिता और उनके अविवाहित बच्चे रहते हैं। इस परिवार का आकार छोटा होता है। संयुक्त परिवार वह परिवार होता है, जिसमें दादा-दादी, माता-पिता, ताऊ-ताई, चाचा चाची और उनके बच्चे आदि एक साथ रहते हैं। इस परिवार का आकार बड़ा होता है। आज की पीढ़ी पुरानी पीढ़ी से सामंजस्य नहीं बिठा पाती, जिसकी वजह से एकल परिवार

बन रहे हैं। चंद्रकांता जी ने अपने उपन्यास के माध्यम से पारिवारिक संबंधों के बारे में विस्तारपूर्वक चर्चा की है कि किस प्रकार बेटा और बहू विवाह के पश्चात अलग रहना चाहते हैं अर्थात् वे अपनी एक अलग गृहस्थी बनाना चाहते हैं, वे माता-पिता को माता-पिता न समझकर उन्हें एक जिम्मेदारी समझते हैं। लेखिका ने 'ऐलान गली जिन्दा है' में इन्हीं संबंधों के बनते-बिगड़ते स्वरूप को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। संसार चंद और अरुन्धती बुढ़ापे में सोचते हैं कि अब गृहस्थी की जिम्मेदारी बेटों को सौंप दी जाए। लेकिन इनके बेटे और बहुएँ एक साथ एक छत के नीचे नहीं रहना चाहते हैं। इसलिए दोनों बेटे जवा व मखना अपने माता-पिता को समझाते हुए कहते हैं कि-''वे छह-छह महीने दोनों बेटों के पास बारी-बारी से जाया करें। अलग पकाने की जरूरत नहीं। आखिर दोनों का फर्ज है जब अवतारा ब्याह करेगा फिर चार-चार महीने कर देंगे।''[4]

समाज के बिना मानव जीवन की कल्पना करना ही व्यर्थ है। समाज में रहकर ही मनुष्य को उचित और अनुचित की समझ होती है। चंद्रकांता जी ने अपने उपन्यास में सामाजिक संबंधों पर भी चर्चा की है। लोगों का एक-दूसरे से सौहार्दपूर्ण संबंध ही इस उपन्यास का आधार माना गया है। ''अरे भाई जगह जमीन की औट देकर वो बैठे जो एक दूसरे से छिपाना चाहे, इधर तो हाल यह है कि आमने-सामने खिड़की न हुई तो एक मकान की चौके की दीवार में चार-छः ईंटें निकाल दूसरे मकान में झांकने का रास्ता निकाल लो, ऐसा ना हो तो पकवानों का आदान-प्रदान कैसे हो ? हारी बीमारी में मुंह घुसा आवाज भर दो तो मजाल है कि घर के तमाम लोग मुसीबतों में दौड़-धूप करने को हाजिर न हो जाए।''[5] इस आधार पर हम कह सकते हैं कि इस गली के लोग सुख और दुख में सदैव एक दूसरे के साथ रहते हैं। इस गली में हिंदू, मुस्लिम और सिख सभी मिलजुल कर रहते हैं, इनकी यही एकता सौहार्द का प्रतीक है। यहाँ के लोग सभी त्योहार चाहे वह ईद हो या जन्माष्टमी सभी मिलजुल कर मनाते हैं। लच्छी काकी के प्रसंग में हम देख सकते हैं कि सभी गली वाले किस प्रकार दुख के समय एकत्रित हो जाते हैं। ''खबर पाकर मोहल्ले वाले मिनटों में जुट गए थे। गली वालों का भाईचारा यो भी बेमिसाल था। फिर यह तो मौत की दुर्घटना थी। सबके साथ एक न एक दिन घटने वाली अनिवार्य घटना।''[6]

प्राकृतिक स्थलों की खूबसूरती के कारण ही कश्मीर को पृथ्वी का स्वर्ग कहा जाता है। यह सैलानियों के लिए सदैव आकर्षण का केंद्र रहा है। जहाँगीर ने जम्मू कश्मीर की झील, हिमआच्छादित चोटी, चिनार आदि के कारण ही इसे पृथ्वी का स्वर्ग कहा था। लेकिन लेखिका अपने इस उपन्यास के माध्यम से उन सभी पहलुओं को भी प्रस्तुत करती है जो लोगों की नजरों से ओझल रहे हैं। हर सिक्के के दो पहलू होते हैं। आज तक हम कश्मीर के एक ही पहलू को देखते आए हैं। लेखिका ने अपने उपन्यास के माध्यम से दूसरे पहलू को दिखाने का प्रयास किया है अर्थात् वे जम्मू-कश्मीर के वास्तविक जीवन को हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं कि यहाँ के लोग किस प्रकार अपना जीवन यापन करते हैं। दिन में भी उनके घर अंधेरे से भरे रहते हैं।

उपन्यास की भूमिका में लेखिका ने बताया है-''जहाँ अगर हरियाली थी तो मंगलू के आंगन में बड़े शहतूत के पेड़ पर और झील का विस्तार लोगों के दिलों में। जहाँ दिन ढले ही इतना अंधेरा छा जाता, लगता ज्यों अंधेरे के भूत बसते हों, जिस अंधेरे में रात को बापू के साथ मंदिर से लौटते अवतारे को हर मोड़ पर काले कंबल वाले चोर दुबके हुए नजर आते, जहाँ कचरा है, सीलन है, कीचड़ है।''[7]

यहाँ के लोग स्वर्ग के हाशिए पर रह रहे हैं। स्वर्ग के साथ नरकीय स्थिति भी हमें देखने को मिलती है। जिस प्रकार सिक्के के पहलू अलग-अलग होते हुए भी एक साथ जुड़े होते हैं वही स्थिति यहाँ के लोगों की है।

'ऐलान गली जिन्दा है' उपन्यास में अवतारा, चंदन, रूपा, कुंदन, तेजा, शुभी, सलाने आदि युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए दिखाई देते हैं। इन सबके माध्यम से लेखिका ने युवा पीढ़ी की बदलती मानसिकता को दर्शाया है। बेरोजगारी की समस्या हमें हर प्रदेश में दिखाई देती है किसी में कम, किसी में ज्यादा। कश्मीर में यह समस्या बड़े स्तर पर फैली हुई है। कश्मीर की सरकार ने कई योजनाएं चलाई हुई हैं जैसे कि फ्री एजुकेशन। इस योजना के तहत सभी को फ्री में शिक्षा दी जाती है। जिसके कारण बड़े स्तर पर कश्मीर में अनेक युवक व युवतियां बी.ए., एम.ए., डॉक्टर और इंजीनियर आदि की डिग्री के लिए हुए है। लेकिन वादी में अधिक रोजगार न होने के कारण उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, उन्हें अपनी स्थिति खानाबदोशों जैसी दिखाई देती है। इस कथन की पुष्टि लोके के कथन द्वारा ही की जा सकती है।

''दरअसल हमारी हालत खानाबदोशों की सी हो गई है। आजादी के वक्त देश के विभाजन में पाकिस्तान बनते समय जो लोग बेघर हो गए, उन पर तो कम से कम तरस दिखाया जाता है, लेकिन हम पर तो रोष ही बसाया जाता है। हर साल ढेर-ढेर इंजीनियर, डॉक्टर डिग्रियाँ लेकर निकलते हैं, पर घाटी में कितनों को काम मिल सकता है? नौकरियों के लिए तो हमें देश-विदेश में भटकना पड़ता है न?''[8]

इस उपन्यास में यह भी दिखाया गया है कि जो युवक दूसरे शहरों या प्रदेशों में जाकर नौकरी करते हैं वहाँ पर वे लाखों की भीड़ में भी अपने आपको अधूरा महसूस करते हैं। जिसकी वजह से उन्हें अपने घर, अपने प्रदेश की याद सताती है। लेखिका ने उन युवकों के दर्द को कुछ इस प्रकार उकेरा है।

''जहाज के पंछी शायद अवतारा, लोका, तेजा आदि युवक भी थे जो नौकरी या व्यवसाय के कारण दूरदराज पड़े थे। रोजी-रोटी के सवाल ने उन्हें यायावरी पर मजबूर कर दिया था, पर मन जिसका जब तक गली के आसपास ही मंडराया करता था।''[9]

लेखिका ने अपने उपन्यास के माध्यम से स्त्री के यथार्थ रूप को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। कश्मीर समाज में भी स्त्री की लगभग वही स्थिति है जो पूरे भारत में हमें दिखाई पड़ती है। इस उपन्यास की स्त्री पात्र काफी प्रभावशाली है, प्रमुख रूप से और अरून्धती, रत्नी, रूपा और दिव्या आदि। रत्नी को गली में सब बुरे चरित्र वाली व मुंहफट मानते हैं, लेकिन पहले रत्नी ऐसी नहीं थी, परिस्थितियों वश ही वह ऐसी बनी। इसकी शुरुआत तब हुई जब टायफस जैसी महामारी के कारण उसके परिवार के एक के बाद एक करके चार लोग मर गए। दो मौतों तक तो मोहल्ले वालों ने मोहल्लेदारी निभाई। जब धीरे-धीरे उसके परिवार का हर सदस्य जाने लगा तो सभी मोहल्ले वाले डर गए कि कहीं यह बीमारी हमें भी ना हो जाए। इसलिए जब रत्नी का पति मरा

तो गली में से कोई भी उसके अंतिम संस्कार के लिए नहीं गया। तब रत्नी ने लोक लाज छोड़कर चिल्लाकर गली वालों से कहा-''मोहल्ले के शरीफ लोगों मैं अपने घरवाले की अंतिम क्रिया के लिए चमारों को बुला रही हूँ। तुम भी सुनो कहीं तुम्हारा धर्म तुम्हें धिक्कार न दे और कल को तुम लोग मोहल्ले में मेरा रहना मुश्किल न कर दो।''[10] उसी समय से रत्नी ने दबी, कुचली नारी के रूप को छोड़कर दबंग नारी का रूप धारण कर लिया था।

निष्कर्ष:

चंद्रकांता जी का साहित्य सृजन उनके स्वयं के अनुभवों पर आधारित है। जिन स्थितियों को उन्होंने अपने जीवन में देखा उन्ही को हमारे सामने प्रस्तुत किया है, इन्होंने समय और परिवेश के अनुरूप ही अपना कर्तव्य निभाया है। उन्होंने मानव जीवन से संबंधित समाज के हर एक वर्ग से पात्रों को लेकर जन सामान्य तक उनकी समस्याओं को पहुँचाने का कार्य किया है। 'ऐलान गली जिन्दा है' उपन्यास में लेखिका ने कश्मीर की परिवार व्यवस्था, युवा पीढ़ी की मानसिकता, स्वर्ग के हाशिए पर रह रहे लोगों के जीवन का वास्तविक रूप उजागर किया है। अत: लेखिका ने आम आदमी की विसंगतियों और समस्याओं को अपने साहित्य सृजन का विषय बनाया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. चंद्रकांता, 'ऐलान गली जिन्दा है', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 2015
2. भगवती चरण वर्मा, साहित्य के सिद्धांत तथा रूप, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
3. डॉ. मंजुलता सिंह, हिंदी कहानी में युगबोध, पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1994
4. डॉ. हरदेव बाहरी, मानक हिंदी पर्याय कोश, विद्या प्रकाशन मंदिर, नई दिल्ली, 1989

रतलाम जिले में रेशम तथा गेहूँ उत्पादन के लागत - लाभ का तुलनात्मक विश्लेषण

दीपिका शर्मा

शोधार्थी, स्वामी विवेकानन्द वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)

डॉ० लक्ष्मण परवाल

प्राध्यापक, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, भारत

सारांश

सेरीकल्चर अर्थात् रेशम उत्पादन कृषि आधारित ऐसी प्रक्रिया है जिसमें की रेशम के कीडों का पालन - पोषण एवं उनके आहार हेतु पत्तियों का उत्पादन करके रेशम (ककून) का उत्पादन किया जाता है। वर्तमान में सेरीकल्चर देश के ग्रामीण जनजीवन के लिए आय तथा रोजगार का एक नवीन स्त्रोत बन चुका है। प्रस्तुत शोध में मध्यप्रदेश के रतलाम जिले में रेशम उत्पादन तथा गेहूँ उत्पादन में लागत और लाभ का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत है। रतलाम जिला में रेशम उत्पादन के क्षेत्र में पंजीकृत 50 हितग्राहियों से यादृच्छिक रूप से समंको का संकलन किया गया है। ये वे हितग्राही है जो कि रेशम उत्पादन के साथ-साथ गेहूँ उत्पादन का भी उत्पादन करते है। ऑकडों के विश्लेषण से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट होता हैं कि कुल लागत गणना के आधार पर रेशम तथा गेहूँ दोनों के उत्पादन में हितग्राही को क्रमशः 55025 रू तथा 18101 रू की हानि होती है जबकि ओ.पी.सी. गणना के आधार रेशम उत्पादन में हितग्राही को 2749 रू का लाभ प्राप्त होता है जबकि गेहूँ के उत्पादन में हितग्राही को 7400 रू की हानी होती है।

प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था कथित तौर पर ग्रामीण गरीबी, बेरोजगारी और अल्प रोजगारी से ग्रसीत है। ग्रामीण गरीबी के उन्मूलन के लिए उपयुक्त नीतिगत हस्तक्षेप और तकनीकी विकल्प की आवश्यकता है जो प्राकृतिक संसाधनो पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना कृषि उत्पादन क्षमता को बढा सके[1]। केवल कृषि विकास ग्रामीणों की गरीबी, बेरोजगारी और उनके शहर की ओर होने वाले पलायन को रोकने का साधन मात्र नहीं है[2]। इसके अतिरिक्त कुछ पिछडें ग्रामीण क्षेत्रों के ग्रामीण बहुत निम्न स्तर पर जीवन व्यतित करते है। इनके पास उत्पादन क्षमता को बढाने के लिए कर्ज लेने तथा निवेश करने तक की क्षमता का अभाव है[3]। ऐसी परिस्थिति में सेरीकल्चर का प्रादुर्भाव भारत में ग्रामीणों के लिए आशाजनक गतिविधि बन गई है। सेरीकल्चर, रेशम के कीडों का पालन - पोषण तथा उनसे रेशम के तंतुओं का उत्पादन करने की प्रक्रिया है[4]। इस गतिविधि में न्यूनतम पूंजी का निवेश अल्प समय के लिए करके अधिकतम आय प्राप्त की जा सकती है। इस व्यवसाय ने ग्रामीण क्षेत्रों से बेरोजगारी के कारण होने वाले पलायन पर रोक लगा दी है[5]। सेरीकल्चर शब्द ग्रीक भाषा के शब्द सेरिकोस से बना है जिसका अर्थ है रेशम और अंग्रेजी शब्द कल्चर का अर्थ है पालन-पोषण। रेशम के उत्पादन हेतु रेशम के कीडों का वृहद स्तर पर पालन - पोषण किया जाता है[6]। रेशम उत्पादन एक अत्यधिक श्रम प्रधान उद्योग है, जो कमजोर वर्ग के लोगों को रोजगार तथा अतिरिक्त आय प्रदान करने का सहज स्त्रोत है[7]। रेशम उत्पादन को प्रायः दो वर्गो में विभाजित किया गया है - कृषि एवं उद्योग। कृषि क्षेत्र में रेशम के कीडों के लिए खाद्य सामग्री का उत्पादन करना, रेशम कीट के अंडों का पालन करके ककून उत्पादन करना तथा रेशम कीट के अंडों का उत्पादन किया जाता है। इसके औधोगिक क्षेत्र में कच्चे रेशम की रीलिंग, ट्वीस्टिंग, रंगाई, छपाई तथा रेशमी वस्त्रों के निर्माण आदि गतिविधियां सम्पन्न की जाती है[8]। प्रस्तुत शोध पत्र में शोधार्थी के द्वारा मध्य प्रदेश राज्य के रतलाम जिले में रेशम तथा गेहूँ के उत्पादन के लागत - लाभ का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

अध्ययन का क्षेत्र तथा विधि

प्रस्तुत शोध कार्य मध्यप्रदेश के रतलाम जिले में रेशम तथा गेहूँ उत्पादन के लागत - लाभ विश्लेषण को प्रस्तुत करता है। शोधार्थी द्वारा रतलाम जिले के ग्रामीण क्षेत्रों (भदवासा, बडोदिया, बोरखेडा, खारवाखुर्द, लंगरखेडी, काण्डरवासा, रेवासा, सुजलाना, पलाश, ईसरथुनी, ईमलीपाडा, रानीसिंग आदि) से यादृच्छिक रूप से 50 हितग्राहियों को चुना गया है तथा इनसे रेशम एवं गेहूँ उत्पादन संबंधित समंको का संकलन किया गया है। समंको का संग्रहण शोधार्थी स्वयं के द्वारा बनाई गई अनुसूची के आधार पर व्यक्तिगत पूछताछ के द्वारा किया गया है। रतलाम जिले में रेशम तथा गेहूँ उत्पादन का तुलनात्मक विश्लेषण

हेतु शोधार्थी द्वारा कुल लागत विधि एवं ओ.पी.सी. लागत (अर्थात जेब के बाहर की लागत) विधि का उपयोग किया गया है। इन दो विधियों से प्राप्त ऑकडों का विश्लेषण करके लागत और लाभ को इस शोध पत्र में प्रस्तुत किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. रतलाम जिले में रेशम उत्पादन की समग्र लागत एवं लाभ का विश्लेषण करना।
2. रतलाम जिले में गेहूँ उत्पादन की समग्र लागत एवं लाभ का विश्लेषण करना।
3. रतलाम जिले में रेशम तथा गेहूँ उत्पादन की समग्र लागत एवं लाभ का तुलनात्मक विश्लेषण करना।

परिणाम एवं विवेचना

रेशम उत्पादन की प्रक्रिया तीन चरण में सम्पूर्ण होती है। अत: प्रस्तुत शोध पत्र में इन तीन चरणों (1) शहतूत के उद्यान की स्थापना, (2) शहतूत की पत्तियों तथा (3) ककून के उत्पादन को गणना में सम्मिलित किया गया है।

(1) रतलाम जिले में शहतूत उद्यान की स्थापना में लागत: रेशम उत्पादन हेतु सर्वप्रथम शहतूत के उद्यान की स्थापना की जाती है क्योंकि शहतूत की पत्तियॉ ही रेशम के कीडों का मुख्य आहार होती है। शोधार्थी द्वारा मानव श्रम, पशु श्रम, मशीन श्रम, खाद, रासायनिक उर्वरक, सिंचाई, अन्य व्यय, भू-राजस्व तथा कार्यशील पूंजी पर ब्याज के आधार पर प्रति एकड में शहतूत उद्यान की स्थापना की लागत की गणना की गई है। शहतूत के उद्यान की स्थापना में लागत का विवरण निम्न तालिका क्रमांक 1 में वर्णित है।

तालिका क्रमांक 1 - रतलाम जिले में शहतूत उद्यान की स्थापना लागत का विवरण (प्रति एकड)

क.	विवरण	इकाई	मात्रा	कुल लागत (टी. सी.) (रू)	कुल लागत में अंश (%)	ओ.पी.सी. लागत (रू)	ओ.पी.सी. लागत में अंश (%)
1	मानव श्रम	मा.दि.	171	30000	73.16	–	–
2	पशु श्रम	घण्टे	08	1107	2.69	1107	15.38
3	मशीन श्रम	घण्टे	04	1880	4.58	1880	26.13
4	खाद	मी.टन	1.5	1160	2.82	1160	16.12
5	रासायनिक उर्वरक	किग्रा.	77	1846	4.50	1846	25.66
6	सिंचाई (बिजली)	–	–	–	–	–	–
7	अन्य	रू		1100	2.68	1100	15.29
8	भू–राजस्व	रू		100	0.24	100	1.39
9	कार्यशील पूंजी पर ब्याज 10.25 %	रू		3812	9.29	–	–
	कुल			41005	100	7193	100

स्त्रोत - सर्वेक्षण के आधार पर प्राप्त समंको के आधार पर

शोधार्थी द्वारा लागत की गणना हेतु दो विधियो को प्रयोग में लाया गया है।

(1) कुल लागत विधि - कुल लागत (टी.सी. लागत) से तात्पर्य उस लागत से है जिसमें हितग्राही द्वारा किये गये सम्पूर्ण व्यय को गणना में सम्मिलित किया जाता है।

(2) जेब से बाहर की लागत या नकद लागत विधि - जेब से बाहर की लागत (ओ.पी.सी. लागत) से तात्पर्य उस लागत से है जिसमें हितग्राही द्वारा किये गए नकदी व्ययो को ही गणना में सम्मिलित किया जाता है।

तालिका क्रमांक 1 से स्पष्ट है कि कुल लागत के आधार पर जिले में शहतूत उद्यान की स्थापना में 41005 रू प्रति एकड की लागत आती है, जबकि ओ.पी.सी. लागत के आधार पर शहतूत उद्यान की स्थापना में 7193 रू प्रति वर्ष प्रति एकड की लागत आई।

(2) रतलाम जिले में शहतूत की पत्तियों तथा ककून के उत्पादन में समग्र लागत: शहतूत उद्यान की स्थापना के बाद द्वितीय चरण में शहतूत की पत्तियों तथा तृतीय चरण में ककून का उत्पादन किया जाता है। शहतूत उद्यान को एक बार स्थापित करने के बाद उद्यान से लगभग 15 वर्षो तक शहतूत की पत्तियाँ ली जा सकती है। रतलाम जिले में शहतूत की पत्तियों तथा ककून के उत्पादन में आई लागत का समग्र विवरण निम्न तालिका क्रमांक 2 में वर्णित है।

तालिका क्रमांक 2 - रतलाम जिले में रेशम तथा गेहूँ उत्पादन लागत

रेशम उत्पादन की लागत				गेहूँ उत्पादन की लागत	
क.	विवरण	टी.सी. लागत (रू)	ओ.पी.सी. लागत (रू)	टी.सी. लागत (रू)	ओ.पी.सी. लागत (रू)
1	शहतूत उद्यान की स्थापना कुल लागत	41005	7193	–	–
2	स्थायी लागत (अ) (प्रति एकड शहतूत उद्यान की स्थापना में अंश)	2733	479	–	–
	शहतूत पत्तियों तथा ककून उत्पादन की परिवर्तनशील लागत			गेहूँ उत्पादन की परिवर्तनशील लागत	
	मानव श्रम	41280 (69.13%)	–	8,000 (26.95%)	–
	मशीन श्रम	–	–	2,700 (9.1%)	2,700 (14.49%)
	पशु श्रम	3322 (5.56%)	3322 (25.78%)	2,080 (7.00%)	2,080 (11.16%)
	खाद	2320 (3.88%)	2320 (18.00%)	2,040 (6.87%)	2,040 (10.95%)
	रासायनिक उर्वरक	5540 (9.27%)	5540 (43.00%)	4,550 (15.33%)	4,550 (24.43%)
	सिंचाई (बिजली)	–	–	–	–
	अन्य	1600 (2.67%)	1600 (12.42%)	7,160 (24.12%)	7,160 (38.43%)
	भू–राजस्व	100 (0.16%)	100 (0.77%)	100 (0.35%)	100 (0.54%)
	कार्यशील पूंजी पर ब्याज 10.25 %	5551 (9.29%)	–	2,729 (9.2%)	–
3	परिवर्तनशील लागत (ब)	59713 (100%)	12882 (100%)	29,359 (98.92%)	18,630 (100%)
	ककून उत्पादन की स्थायी लागत				
4	कृमिपालन भवन तथा उपकरण (मूल्यहास)	8125	00.00	301	00
5	स्थायी पूंजी पर ब्याज @ 6.95 % प्रति वर्ष	564	00.00	21	00
6	ककून की कुल स्थायी लागत (स)	8689	00.00	322	00
7	शहतूत पत्तियों तथा ककून उत्पादन की कुल उत्पादन लागत (द = अ + ब)	62446	13361	29,359	18,630
8	उत्पादन की कुल लागत (स+द)	71135	13361	29,681	18,630

स्त्रोत - सर्वेक्षण के आधार पर प्राप्त समंको के आधार पर

नोट - स्थापना की कुल लागत की गणना 15 वर्षो में विभाजित की गई है।

चित्र क्रमांक 1 - रतलाम जिले में रेशम तथा गेहूँ की कुल लागत की तुलना

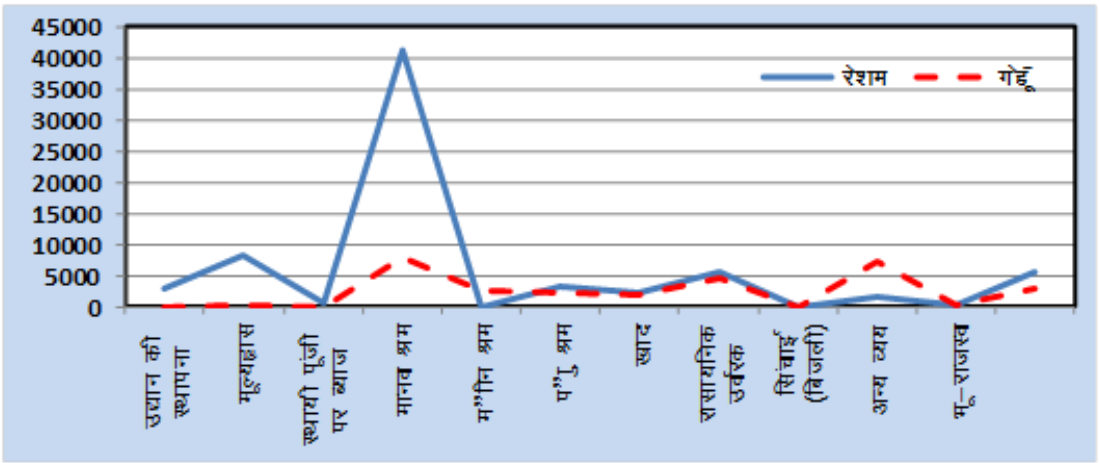

चित्र क्रमांक 2 - रतलाम जिले में रेशम तथा गेहूँ की ओ.पी.सी. लागत की तुलना

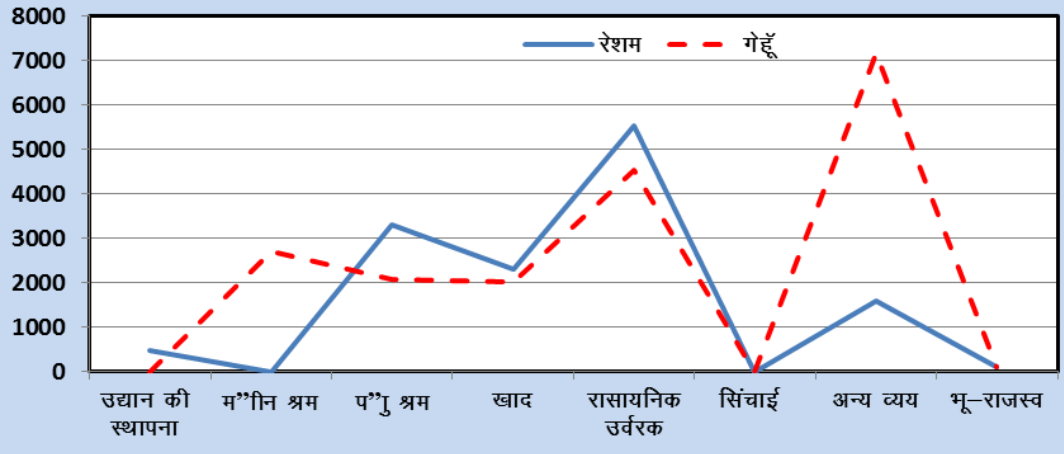

तालिका क्रमांक 2 में कुल लागत एवं ओ.पी.सी. लागत विधि के आधार पर शहतूत की पत्तियों तथा ककून उत्पादन की कुल लागत प्रदर्शित है। शहतूत की पत्तियों तथा ककून के उत्पादन में कुल परिवर्तनशील लागत 59713 रू दर्ज की गई। इस लागत का सर्वाधिक व्यय मानव श्रम पर 41280 रू (69.13%) किया गया। जबकि ओ.पी.सी. लागत विधि के आधार पर शहतूत की पत्तियों तथा ककून के उत्पादन में 12882 रू की लागत आई। इस लागत का सर्वाधिक व्यय 5540 रू (43.00%) रासायनिक उर्वरक तथा 3322 रू (25.78%) पशु श्रम पर वहन किया गया।

उपरोक्त तालिका क्रमांक 2 में कुल लागत विधि के आधार पर जिले में रेशम उत्पादन पर कुल लागत 71,135 रू (प्रतिवर्ष प्रति एकड़) दर्ज की गई, जबकि गेहूँ पर कुल लागत 29,681 रू (प्रतिवर्ष प्रति एकड़) दर्ज की गई। जिले में रेशम उत्पादन पर स्थायी लगात 11,422 रू तथा परिवर्तनशील लागत 59,713 रू दर्ज की गई है, जबकि गेहूँ उत्पादन पर स्थायी लागत 322 रू तथा परिवर्तनशील लागत 29,359 रू दर्ज की गई है । स्पष्ट है कि, रेशम उत्पादन में गेहूँ के उत्पादन की तुलना में परिवर्तनशील लागत पर अधिक व्यय होता है। तालिका में वर्णित आंकड़ों की तुलना से स्पष्ट होता है कि जिले में रेशम उत्पादन और गेहूँ के उत्पादन दोनों में सर्वाधिक व्यय मानव श्रम पर क्रमश: 41,280 रू (58.0%) तथा 8,000 रू (26.95%) का किया गया।

उपरोक्त तालिका क्रमांक 2 में रेशम तथा गेहूँ के उत्पादन की ओ.पी.सी. लागत के आधार पर रेशम उत्पादन पर कुल ओ.पी.सी. लागत 13,361 रू (प्रतिवर्ष प्रति एकड़) दर्ज की गई, जबकि गेहूँ के उत्पादन पर कुल ओ.पी.सी. लागत 18,630 रू (प्रतिवर्ष प्रति एकड़) दर्ज की गई। जिले में रेशम उत्पादन पर स्थायी लागत 479 रू तथा परिवर्तनशील लागत 12,882 रू दर्ज की गई है, जबकि गेहूँ के उत्पादन पर स्थायी लागत शून्य तथा परिवर्तनशील लागत 18,630 रू दर्ज की गई है। गेहूँ के उत्पादन में कुल परिवर्तनशील लागत रेशम उत्पादन में कुल परिवर्तनशील लागत से लगभग 39.43% अधिक है। स्पष्ट है कि, रेशम उत्पादन में गेहूँ की तुलना में परिवर्तनशील लागत पर अधिक व्यय होता है। जिले में रेशम उत्पादन में सर्वाधिक व्यय रासायनिक उर्वरक पर 5,540 रू (41.46%) का किया गया जबकि गेहूँ उत्पादन में सर्वाधिक व्यय अन्य व्यय के रूप में 7,160 रू (38.43%) का किया गया।

(3) रतलाम जिले में रेशम तथा गेहूँ उत्पादन की समग्र लागत एवं लाभ का विवरण: रेशम उत्पादन की सम्पूर्ण प्रक्रिया शहतूत के उद्यान की स्थापना, उद्यान से पत्तियों का उत्पादन तथा कृमिपालन का सम्मिश्रण है। अत: शोधार्थी द्वारा रेशम तथा गेहूँ उत्पादन के प्रत्येक भाग का अलग-अलग विश्लेषण करने के पश्चात समग्र लागत एवं लाभ का तुलनात्मक विश्लेषण किया जो कि निम्न तालिका क्रमांक 3 में वर्णित है।

तालिका क्रमांक 3 - रतलाम जिले में रेशम तथा गेहूँ उत्पादन की समग्र लागत एवं लाभ का तुलनात्मक विवरण

क.	विवरण	रेशम उत्पादन		गेहूँ उत्पादन	
		टी. सी. राशि	ओ.पी. सी. राशि	टी. सी. राशि	ओ.पी.सी. राशि
1	भूमि का औसत क्षैत्रफल	01	01	01	01
2	औसतन उत्पादन (प्रति एकड प्रति वर्ष)	139	139	825	825
3	औसतन फसलों की संख्या (प्रति एकड प्रति वर्ष)	03	03	01	01
4	औसत लागत (प्रति एकड प्रति वर्ष)	71135	13361	29,681	18,630
5	औसत लागत (प्रति किलो ग्राम)	511.76	96.12	35.97	22.58
	सकल आय (प्रति एकड प्रति वर्ष)				
6	उत्पादन से प्राप्त औसत आय (अ)	16110	16110	14,130	14,130
7	उत्पादन की औसत लागत (प्रति एकड प्रति वर्ष)	71135	13361	29141	18630
8	शुध्द लाभ / हानि	– 55025	2749	– 15,551	– 4,500
9	लागत–लाभ अनुपात	1 : 0.22	1 : 1.20	1 : 0.47	1 : 0.75

स्त्रोत - सर्वेक्षण के आधार पर प्राप्त समंको के आधार पर

तालिका क्रमांक 3 में गणना के आधार पर प्राप्त आँकडों से स्पष्ट है कि जिले में हितग्राहियों के द्वारा रेशम (ककून) की औसतन 3 फसल (प्रति वर्ष प्रति एकड) ली जाती है। जबकि गेहूँ की मात्र 1 फसल (प्रति वर्ष प्रति एकड) का उत्पादन किया जाता है। जिले में औसतन 139 किलोग्राम (प्रति वर्ष प्रति एकड) ककून का उत्पादन होता है। जबकि गेहूँ का औसतन 825 किलोग्राम (प्रति वर्ष प्रति एकड) उत्पादन होता है।

कुल लागत विधि से जिले के हितग्राहियों को रेशम (ककून) उत्पादन से औसतन 16110 रू की सकल आय होती है और इस उत्पादन में 71135 रू (प्रति वर्ष प्रति एकड) की औसतन लागत दर्ज की गई है। इस आधार पर प्रति किलो ककून की औसतन लागत 511.76 रू है। जबकि कुल लागत विधि से जिले के हितग्राही को गेहूँ के उत्पादन से 14130 रू की सकल आय हुई है और इसके उत्पादन में 29141 रू (प्रति वर्ष प्रति एकड) की औसतन लागत दर्ज की गई है। इस आधार पर प्रति किलो गेहूँ की औसतन लागत 35.97 रू है।

तालिका क्रमांक 3 में ओ.पी.सी. लागत विधि के आधार पर प्राप्त आँकडों से स्पष्ट है कि जिले के हितग्राही को रेशम (ककून) उत्पादन से औसतन 16110 रू (प्रति वर्ष प्रति एकड) की सकल आय हुई है और इस उत्पादन में औसतन 13361 रू (प्रति वर्ष प्रति एकड) की लागत दर्ज की गई है। इस आधार पर प्रति किलो ककून की औसतन लागत 96.12 रू है। जबकि ओ.पी.सी. लागत विधि के आधार पर जिले के हितग्राही को गेहूँ के उत्पादन से औसतन 14130 रू (प्रति वर्ष प्रति एकड) की सकल आय हुई है और इस उत्पादन में औसतन 18630 रू (प्रति वर्ष प्रति एकड) की लागत दर्ज की गई है। इस आधार पर प्रति किलो गेहूँ की औसतन लागत 22.58 रू है।

निष्कर्ष

रतलाम जिले में प्रति एकड प्रति वर्ष रेशम (ककून) तथा गेहूँ के उत्पादन के तुलनात्मक अध्ययन की गणना से स्पष्ट है कि कुल लागत विधि से गणना के आधार पर हितग्राही को रेशम उत्पादन में 55025 रू (प्रति वर्ष प्रति एकड) की हानि का वहन करना पडता है किन्तु ओ.पी.सी लागत विधि से गणना के आधार पर हितग्राही को रेशम उत्पादन में 2749 रू (प्रति वर्ष प्रति एकड) की शुध्द आय प्राप्त होती है। इस प्रकार कुल लागत विधि से गणना के आधार पर जिले में रेशम उत्पादन में लागत - लाभ अनुपात 1: 0.22 प्राप्त होता है जो कि 1 रू पर 22 पैसे की आय को व्यक्त करता है। जबकि ओ. पी.सी लागत विधि से गणना के आधार पर जिले में रेशम उत्पादन में लागत - लाभ अनुपात 1: 1.20 प्राप्त होता है जो यह दर्शाता है कि हितग्राही को 1 रू पर 1 रू 20 पैसे की आय प्राप्त होती है।

वही दूसरी ओर कुल लागत विधि से गणना के आधार पर हितग्राही को गेहूँ उत्पादन में 15551 रू (प्रति वर्ष प्रति एकड) की हानि का वहन करना पडता है जबकि ओ.पी.सी लागत विधि से गणना के आधार पर 4500 रू (प्रति वर्ष प्रति एकड) की हानी होती है। इस प्रकार कुल लागत विधि से गणना के आधार पर जिले में गेहूँ उत्पादन में लागत - लाभ अनुपात 1: 0.47 प्राप्त होता है जो कि 1 रू पर मात्र 47 पैसे की आय को व्यक्त करता है। जबकि ओ.पी.सी लागत विधि से गणना के आधार पर जिले में गेहूँ उत्पादन में लागत - लाभ अनुपात 1: 0.75 प्राप्त होता है जो यह दर्शाता है कि हितग्राही को 1 रू पर 75 पैसे की आय होती है।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि रतलाम जिले के हितग्राहियों को गेहूँ की तुलना में रेशम उत्पादन से अधिक लाभ प्राप्त होता है। जहॉ हितग्राही मौसम के अनुसार वर्ष में गेहूँ की मात्र एक फसल ही ले पाता है। वही हितग्राही रेशम उत्पादन को अपनाकर वर्ष में रेशम (ककून) की 3 या उससे अधिक फसल ले सकता है और गेहूँ की तुलना में अधिक आय प्राप्त कर सकता है। रतलाम जिले के हितग्राही रेशम उत्पादन को अपनाकर अपनी आमदनी में वृध्दि कर अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार कर सकते है। इस प्रकार रेशम उत्पादन जिले के हितग्राहियों के लिए एक वरदान स्वरूप आय एवं रोजगार का स्त्रोत है।

References

1. Dewangan, S.K et. al. 2011 Socio economic upliftment of Tribal through Tasar sericulture- a study of Tamnar block of Raigarh district, C.G, India. World Academy of Science, Engineering and Technology, (72) p p: 481-492.
2. Chadha, G. K 1993. Non- farm employment for rural households in india; Evidence and prognosis. Indian Journal of Labour Economics, 36(3); 296-327.
3. Sreedevi TK., Shiferaw. B and Wani S. P 2004. Adarsha Watershed in Kothapally Understanding the Drivers of Higher Impact. Global Theme on Agro ecosystems Report no.10. India: International Crops Research Institute for the Semi-Arid Tropics.24 pp.
4. Gan Kasi, Eswarappa 2000. Development and Change Due to Sericulture: A Village Study in Chittoor District. Hyderabad: University of Hyderabadga,
5. G. and Chetty, J. Sulochana 1991. An Introduction to Sericulture. Oxford and New Delhi: IBH Publishing Company.
6. Vijaykumar,P; Phaniraj. H.S; Anantharaman,K.V; and Amarnath.S, 2007. Human Resource Development in Sericulture through Distance Education mode.
7. Best, M. L., & Maier, S. G. 2007. Gender, culture and ICT use in rural South India. Gender Technology and Development, 11, 137-155.
8. Shrivastav, P.K.et.al. 2005 Sericulture activities provide a perfect choice for the women. Sericulture and seri-biodiversity.

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता - एक विश्लेषण

मोना वर्मा

पी एच डी शोधार्थी, राजनिति विज्ञान विभाग, कला संकाय, श्री रावतपुरा सरकार विश्वविद्यालय, रायपुर, छ.ग.

डॉ० सत्यभामा सौरज

निर्देशक, राजनिति विज्ञान विभाग, कला संकाय, श्री रावतपुरा सरकार विश्वविद्यालय, रायपुर, छ.ग.

नारी केवल मांस पिण्ड की संज्ञा नहीं है मानव ने जिस व्यतित्व चेतना और हृदय का विकास किया है उसी का पर्याय नारी है। – महादेवी वर्मा

राष्ट्र का निर्माण समाज अंर समाज का निर्माण संस्कारों से होता हैं नारी इन संस्कारों की जनक होती हैं इसलिए हमें नारी के रूप मे ं माँ को उतना ही सम्मान देना चाहिए जितना हम राष्ट्र को देना चाहते हैं। – स्वामी विवेकानंद

प्रस्तावना

राजनीति में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने का प्रश्न आज राष्ट्रीय महत्व का है। अन्य समस्याओं को छोड़कर जनजातियों के राजनीतिकीकरण एवं सामाजिक सत्ता का निर्माण प्रक्रिया के केन्द्र में पहुँचने जैसे अहम प्रश्नों पर सम्पूर्ण देश में बहस छिड़ी है। विश्व की आधी जनसंख्या महिलाओं की होने के बावजूद निर्वाचित पदों पर उनकी संख्या नगण्य है। राजनीति में महिलाओं की नगण्य भागीदारी उनके दोयम दर्जे और शक्तिहीनता का परिचायक है। अशिक्षा, आर्थिक आत्म निर्भरता का अभाव, सामाजिक रीति-रिवाज, परंपराएँ एंव पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण महिलाओं की राजतिक निष्क्रियता के प्रमुख आधारभूत कारक है। महिलायें विश्व में दो तिहाई कार्यों का निष्पादन करती हैं। परन्तु वे मात्र 10% आय और 1% उत्पादन के साधनों की अधिकारी बनती हैं।

पंचायतों में महिलाओं की सहभागिता

भारत के ग्रामीण विकास को एक प्रक्रिया या व्यूह रचना तक ही सीमित कर देना भारतीय जनजीवन के ताने-बाने को सतही धरातल तक ही सीमित रखना माना जा सकता है। ग्रामीण विकास आदिकाल से भारतीय लोकजीवन का अंग रहा है। प्राचीन ऐतिहासिक युगों का अध्ययन इस बात का संकेत करता है कि पूरी की पूरी प्रशासकीय व्यवस्था ग्रामीण स्तर से उपर की ओर जाती थी। चाहे वह कौटिल्य के समय का लोकतंत्र हो या पाश्चात्यकालीन राजतंत्र। सबमें उनके समग्र विकास पर ही बल दिया गया था। भारत की तीन चौथाई आबादी गांव में रहती है और कृषि ही अर्थव्यवस्था का आधार है। अत: ग्रामीण विकास के बिना राष्ट्र के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। यही कारण है कि योजनाबद्ध विकास की प्रक्रिया के प्रथम सोपान अर्थात् प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही ग्रामीण विकास सरकार की मुख्य प्राथमिकताओं में शामिल रहा है। पिछड़े क्षेत्रों में जितनी भी राजनीतिक जागरूकता है उसके धुरी में ग्रामीण विकास है। जिसके अंतर्गत गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, बीमारी, भूमि एवं अन्य संसाधनों का असामान्य बंटवारा आदि सम्मिलित है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान एवं इसमें हुए संशोधनों में इस तथ्य को अत्यधिक महत्व दिया गया है कि महिलाओं की भागीदारी सार्वजनिक क्षेत्रों में बढाना आवश्यक है।

महिलाओं में जन जागरूकता तथा सामाजिक व राजनीतिक स्थिति सामान्यत: समुदायों में भी किन्तु जब जन्म लेता है तब वो न तो सामाजिक होता है न ही असामाजिक और न ही गैर सामाजिक। वह हाड़-मांस का एक पिण्ड मात्र होता है जिसे सामाजिक सीख द्वारा सामाजिक राजनीतिक प्राणी बनाया जाता है। जिन प्रक्रियाओं के द्वारा प्राणी शास्त्रीय व्यक्ति एक सामाजिक व्यक्ति में बदल जाता है उसे सामाजीकरण कहते है। समाजीकरण का दूसरा चरण राजनीतिकरण है जिसमें बच्चे को सामाजिक प्राणी से राजनीतिक प्राणी में बदल दिया जाता है। जनजातीय समुदायों में सामाजीकरण एवं राजनीतिकरण के बीच कोई गहरी विभाजक रेखा नहीं होती और प्राय: समाजीकरण और राजनीतिकरण की प्रक्रिया साथ-साथ चलती है। समाजीकरण में जहाँ परिवार, मित्र-मण्डली, पड़ोस, खेल-समूह, शिक्षण- संस्थाएँ और द्वितीयक समूह जैसे कार्य-स्थल, व्यवसायिक क्षेत्र, आर्थिक- सामाजिक संस्थाएँ आदि महत्वपूर्ण अभिकरणों का कार्य करती है। वहीं राजनीतिक सामाजीकरण में परिवार, गोत्र संबंधी, शिक्षण संस्थाएँ, राजनीतिक दल और शासन-प्रशासन के क्षेत्र प्रमुख अभिकरणों की भूमिका निभाते है। महिलाओं में राजनीतिक जागरूकता मात्र उनके समूह संगठन में ही पाई जाती है जो कि उच्च स्तर की है। वे न केवल समूह संगठनों के पदाधिकारियों से परिचित होती है। अपितु उनके कार्यों की भी उन्हें जानकारी होती है। गांव की सामूहिक संस्कृति उन्हें ग्रामीण गतिविधियों से पृथक नहीं करती, किंतु कार्य विभाजन की संस्कृति होने के कारण पुरूषों और महिलाओं के कार्य अलग-अलग हो जाते हैं, जिसमें पारिवारिक दायित्व

महिलाओं का और राजनीतिक क्षेत्र पुरूषों का माना जाता हैं। राजनीतिक गतिविधियों से अपनी गौण स्थिति के बावजूद महिलाओं ने यह भी स्वीकार किया है कि इसका उन्हें कोई अफसोस नहीं होता और वे इस पर अधिक विचार भी नहीं करती । बचपन से ही उन्हे ं घरेलू और कृषि कार्य सिखाये जाते हैं। जिसे वे आजन्म निभाती रहती हैं । महिलाएं तो यह भी मानती है कि उनके विवाह की प्रमुख शर्त उनका श्रम साध्य शरीर होना हैं, जो महिला कठिन श्रम नहीं कर सकती उसका विवाह भी मुश्किल से हो पाता है, शारीरिक सौंदर्य कोई मायने नहीं रखता। ग्राम-दरबार के सभी पदाधिकारी वंशानुगत एंव गोत्रीय संबंधों से आते हैं। अत: परिवार के बुजुर्ग अपने उत्तराधिकारियों को इस योग्य बनाने की पहल उनके बचपन से ही करना प्रारंभ कर देते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है जहाँ महिलाएँ सामाजिक धरातल पर राजनीतिक जागरूकता रखती है वहीं पुरूष सक्रिय राजनीतिक भूमिकाएँ निभाते हैं।

महिला नेतृत्व की प्रमुख समस्याऐं

महिलाओं की कमजोर आर्थिक स्थिति ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकतर महिलाएं कृषि मजदूर के रूप में काम करती है । इनमें से कुछ खेती बाड़ी के उद्देश्य से खेतों में काम करती है तो कुछ घरों में पशुओं की देखभाल करती है, घरों के जरूरी कामकाजों को भी निपटाती है जैसे चूल्हा आदि जलाने के लिए लकड़ी एकत्र करना, पशुओं के लिये चारे की व्यवस्था करना और पीने के लिये पानी लाना। बच्चों को जन्म देकर इनके पालन पोषण की समस्त जिम्मेदारियाँ पूर्णतया इन्हीं के कंधों पर होती है। लगभग 90 प्रतिशत उत्पादन महिलाएं गैर-संगठित क्षेत्र में कार्यरत् है जैसे खेतीबाड़ी, पशुपालन दुग्ध उत्पादन, मुर्गीपालन, मछलीपालन, रेशम उत्पादन, हाथकरघा हस्तशिल्प वानिकी, लघु व्यवसाय एवं छोटे-मोटे वस्तुओं आदि की बिक्री। इसके अतिरिक्त, ये खेती निर्माण स्थलों एवं फैक्टरियों आदि में अकुशल मजदूरी आदि का काम भी करती है। इसी तरह कपड़ों या बर्तनों की धुलाई सफाई और देखभाल संबंधी कार्य महिलाएं ही करती है। सामाजिक दृष्टि से ये परिवार में पत्नि, माँ, गृहिणी और रसोइये आदि जैसे भिन्न-भिन्न भूमिकाएं निभाती है। इन कामकाजो में अधिकतर ऐसे हैं जिनके लिये इन्हें कोई पारिश्रमिक नहीं मिलता। ये अपने-अपने परिवार के लिय आमदनी का स्त्रोंत है और इस तरह राष्ट्रीय आय में भी अपना योगदान देती है इन सभी कार्यों के फलस्वरूप इनका अपना जीवन बेहद कठिन बन जाता है।

निष्कर्ष

स्वतंतर्ता के बाद भारत की राजनीतिक व्यवस्था में राज्यों का पुनर्गठन किया गया अंर केन्द्र राज्य संबंधों की सूचियों को संविधान की भावना के अनुकूल विभाजित किया गया जिसमें केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाते हुए राष्ट्रीय एकता को अक्षुण्य बनाये रखने के लिए उसे असीम अधिकार प्रदान निष्कर्ष एंव सुझाव किये गये अंर कार्यपालिका, व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका तीन शासन के प्रमुख स्तंभों में न्यायपालिका को सर्वोच्च स्थान दिया गया । शक्ति के विकेन्द्रीकरण की दिशा में अनेक संवैधानिक संशोधन अंर अधिनियम लागू किये गये जैसे जैसे प्रशासनिक समस्याऐं आती गई उनका निराकरण भी संविधान की सीमा में रहकर किया गया । छत्तीसगढ़ में महिलाओं की जनसंख्या, राज्य की कुल जनसंख्या का 51.76 प्रतिशत है। इस दृष्टि से छत्तीसगढ़ महिलाओं की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जा सकता है। यहां लिंगानुसार भी 989 है। छत्तीसगढ़ में तो महिलाओं का लिंगानुपात पुरूषों से भी अधिक है। जनसंख्यात्मक संरचना में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका के बावजूद राजनीतिक क्षेत्र में उनकी भूमिका गौण मानी जाती है। दूसरी ओर पारंपरिक राजनीतिक व्यवस्था में एकरूप नियमों का अभाव, संकुचित दृष्टि, प्रशासनिक कुशलता का अभाव, जाति एवं गोत्र के प्रभाव एवं उसके पितृसत्तात्मक ढांचे ने भी महिलाओं को राजनीतिक क्षेत्रों से दूर किया है। इन सब का प्रभाव महिलाओं की राजनीतिक जागरूकता पर पड़ा है। महिलाएं स्वतंत्र एवं स्वेच्छा से पंचायत एवं ग्रामीण विकास का कार्य करने में असमर्थ प्रतीत होती हैं, परन्तु वे यह विश्वास करती है कि आरक्षण से एक मौन क्रांति का प्रारंभ हो गया है जो महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता को बढ़ाने में बहुत सहायक सिद्ध हो रही है।

सुझाव

1. भारतीय संविधान में महिलाओं के नेतृत्व एवं राजनीतिक सहभागिता के लिए विशेष प्रबंध किये गए हैं। राजनीतिक सहभागिता व जागरूकता के लिए संविधानिक संशेधन से पंचायतों में एक तिहाई स्थान में महिलाओं के लिए आरक्षित किए गए हैं। अनके प्रयासों के बाद भी महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है किन्तु राजनीतिक सहभागिता के लिए और भी प्रभावी कदम स्थानीय ग्रामीण स्तर पर उठाये जाने की आवश्यकता है।
2. महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता बढाने के लिए गहन प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने की व्यवस्था की जाए।
3. महिलाओं को अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए कानूनी प्रावधान की सहायता लेने के लिए सक्षम बनाया जाए
4. महिलाओं को सशक्त करने के लिए प्राथमिक स्कूलों से महाविद्यालयों तक उनके दाखिले का प्रतिशत बढाना होगा तथा स्वास्थ्य एवं पौष्टिक आहार की मात्रा भी बढानी होगी।
5. महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता की दिशा में महिलाओं के प्रति बढते अपराध एवं असुरक्षा की भावना एक गंभीर चुनौती बन कर खड़े हुए है जिन पर प्रभावी नियंतर्ण रखने की आवश्यकता है।
6. शासन द्वारा महिलाओं को समाज में उनके वास्तविक हक को दिलाने के लिए कठोर नियमों का निर्माण करना आवश्यक हैं जिसमें उनके शारीरिक शोषण एवं उनके साथ होने वाले भेदभाव से मुक्त किया जाना चाहिए।
7. संविधान संशोधन द्वारा महिलाओं अधिकार संपन्न तो बना दिया गया है। किन्तु उनकी अधिकार संपन्नता के परिणाम तभी दृष्टिगोचर होंगे जब उन्हें ग्रामीण विकास पर महिला विकास के प्रति जागरूक बनाये जाए।
8. शासन द्वारा संचालित स्व सहायता समूह जैसे अन्य योजनाओं व कार्यक्रमों को अंर अधिक महत्व देने की आवश्यकता हैं ।
9. महिलाओं को सशक्त व क्षमतावान नेतृत्व प्रदान करने के लिए उन्हें वैधानिक रूप से पूरा संरक्षण प्राप्त होना चाहिए जैसे न्यायपालिका द्वारा समय सीमा व त्वरित न्याय की नीति को लागू करना आवश्यक हैं ।
10. देश के सामाजिक आर्थिक राजनीतिक जीवन में भागीदारी और निर्णय करने हेतु समान सुविधाएं मुहैया करवाना चाहिए। इसके लिए महिलाओं को नि:शुल्क प्रशासनिक प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

प्रसाद काव्य में बिम्ब और अर्थ

डॉ० मीरा कश्यप

एसोसिएट प्रोफेसर, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, के0जी0के0 महाविद्यालय, मुरादाबाद

सारांश-बिंब शब्द अंग्रेजी के शब्द 'इमेज' का पर्याय है, जिसका अर्थ प्रतिच्छाया या अक्स होता है। बिंब के द्वारा कवि भावों का आश्रय ग्रहण करके अपनी अनुभूति को सशक्तता से अभिव्यक्ति देता है। वस्तुत: वह शब्द चित्र है जो कवि के भावों और अनुभूति का पाठकों तक संप्रेषण करने का कार्य करते हैं। बिम्बों की सहायता से कवि सूक्ष्म भावों, मन, स्थितियों और अनुभूतियों का अभिव्यक्त करने में समर्थ होता है। प्रसाद की कविताओं में प्रकृति के सचेतन द्यरूप् के साथ-साथ मानव के लौकिक एवं पारलौकिक जीवन की जैसी रमणीय झांकी अंकित है, वैसी अन्यत्र किसी कवि की कविता में दृष्टिगोचर नहीं होती। वास्तव में अर्थ बिंब के माध्यम तो शब्द ही है, उसके अभाव में कवि कर्म असम्भव प्रतीत होता है। प्रसाद के काव्य के बिंब-विधान के अन्तर्गत अर्थव्याद्वि और बिम्ब मानवीय क्रिया कलापों, प्रकृति के विविध रूपों, पशु-पक्षियों के बहुविध गतिविधियों एवं विपुल घटनाओं का स्वाभाविक अर्थ बिम्ब उनकी रचनाओं में सर्वत्र व्याप्त है। प्रसाद जी की दृष्टि में भाव काव्य बिम्ब का अनिवार्य तत्व ही नहीं वरन उसकी आत्मशक्ति है, प्रसाद जी का सम्पूर्ण काव्य बिम्बों की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। प्रसाद चित्रमयता को कविता का स्वाभिक्त लक्षण मानते हैं।

प्रसाद का काव्य चित्रों का गुलदस्ता है, तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगा, क्योंकि उनके चित्र सायास बिंबात्मक नहीं, अपितु स्वाभाविक रूप से आए हुए बिंब है, यही कारण है कि उनके काव्य में बिंब-विधान एवं अर्थ संयोजन एवं अर्थाभिव्यक्ति का सफल प्रयोग है। छायावादी कवि कल्पना-संपन्न, भाषा के धनी और सौन्दर्य प्रेमी थे, अत: उनके यहाँ बिंब-निर्माण का सफल होना स्वाभाविक था। ''छायावाद के चित्र अधिकांश कवि के भाव-जगत और ऐन्द्रिक अनुभूति से सम्बन्ध रखते हैं, प्रेम, वेदना, करुणा आदि भावों का जब मूर्तिकरण हुआ है, तब उसमें नारी, प्रकृति तथा पुरुष आदि की श्रेणी के उपादानों की सहायता ली गयी है, अर्थात इच्छा के आरोप, वेदना करुणा आदि भावों को नारी, प्रकृति, मूर्ति आदि भावों का रूप दिया गया है, तथा नारी, प्रकृति आदि पूर्व विषयों को वेदना, करुणा आदि भावनाओं तथा कवि की रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि ऐन्द्रिक संवेदनाओं से समाहित करके चित्रित किया गया है।''[1] (डॉ0 बलवीर सिंह रत्न-हिंन्दी की छायावादी कविता का कला-विधान, पृ0 194) जय शंकर प्रसाद के काव्य में भी अमूर्तभावों का बिंब प्रस्तुत करने में मूर्त वस्तुओं और पूर्व वस्तु का बिंब प्रस्तुत करने में अपूर्व भावनाओं की सहायता लेकर बिंब को प्रभावशाली बनाने की प्रवृत्ति एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है- ''उज्वल वरदान चेतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं/जिसमें अनंत अभिलाषा के सपने सब जगते हैं/मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ, मैं शालीनता सिखाती हूँ/मतवाली सुंदरता पग मे नुपुर सी लिपट मनाती हूँ।''[2] (जयशंकर प्रसाद-कामायनी लज्जा सर्ग) यहाँ पर अमूर्त भावना लज्जा के बिंब ग्रहण के लिए मूर्त वस्तु और क्रियाओं का आश्रय लिया गया है। भावों को चित्रित करने के लिए या भाव बिंबों के निर्माण के लिए अन्य छायावादी कवियों की भाँति प्रसाद ने भी प्रकृति और मानव-जीवन से सहायता ली है- ''ओ चिन्ता की पहली रेखा अरी विश्व वन की व्याली/ज्वालामुखी स्फोट के भीषण प्रथम कंप सी मतवाली।''[3] (जयशंकर प्रसाद-कामायनी चिंता सर्ग) प्रसाद प्रकृति बिंबों के चित्रण में भी महारत रखते हैं-उदित कुमुदिनी नाथ हुए प्राची में ऐसे/सुधा-कलश रत्नाकर का उठता हो जैसे/धीरे-धीरे उठी नई आशा-सी मन में/क्रीड़ा करने लगे स्वच्छ स्वच्छंद गगन में।''[4] (जयशंकर प्रसाद-कानन-कुसुम, पृ0-101) यहाँ चन्द्रोदय का सरल दृश्य-बिंब उपस्थित किया गया है। धीरे-धीरे शब्दों से, चन्द्रमा के आकाश में चलने की मंद क्रिया की विवेचना की गई है। बादलों के लिए आशा (अभूर्त भाव) को अप्रस्तुत रूप में लाया गया है। प्रसाद ने बिंब निर्माण के लिए इतिहास, पुराण, धर्म, दर्शन आदि के क्षेत्र भी चुने हैं। कामायनी के आशा सर्ग का रात्रि-वर्णन प्रकृति-चित्रण के गत्यात्मक और मिश्र बिंबो का मनोहर उदाहरण है- ''जब कामना सिंधु तट आयी, ले सन्ध्या का तारादीप/फाड़ सुनहली साड़ी उसकी तू हंसती क्यों अरी प्रतीप/फट हुआ था नील वसन क्या वह यौवन की मतवाली/देख अंकिचन जगत लूटता तेरी छवि भोली-भाली।''[5] (जयशंकर प्रसाद, कामायनी आशा सर्ग पृ0 447, 450 प्रसाद ग्रन्थावली) प्रकृति के अतिरिक्त नारी और पुरुष चित्रों का सौन्दर्य-बिंब भी प्रसाद काव्य में दिखाई पड़ता है- ''हिमगिरी के उत्तुंग शिखर पर बैठ शिला की शीतल छाँह/एक पुरुष भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय-प्रवाह।''[6] (जयशंकर प्रसाद-कामायनी, चिंता सर्ग) इस उदाहरण में चित्रों की स्पष्टता और सजीवता दर्शनीय है, ये पंक्तियाँ सरल और दृश्य-बिंबों का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। पुरुष सौन्दर्य विषयक बिंबो के अतिरिक्त नारी सौन्दर्य विषयक बिंब प्रसाद काव्य में सहजता से मिल जाते हैं- ''नील परिधान बीच सुकुमार/खुल रहा मृदुल अधखुला अंग/खिला हो ज्यों बिजली का फूल/मेघवन बीच गुलाबी रंग।''[7] (जयशंकर प्रसाद-कामायनी, श्रद्वा सर्ग) उपर्युक्त उदाहरण में मूर्त उपमाओ को अभूर्त भावों के बिंब के रूप में प्रस्तुत करके कवि ने अपनी वर्ण्य चेतना का सुंदर दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। हर कवि चित्रकार होता है, चित्र गढ़ता भी है तथा उसके गढ़ने में अनेक रंग-रेखाओं से भी काम लेता है, प्रसाद इस कला के विशिष्ट प्रयोग धर्मी है, बिंब-निर्माण उनकी प्रमुख विशेषता है। रूप का कवि बिंब विधायक होगा ही, कवि सौन्दर्य की अनुभूति करता है और उस सौन्दर्य को और भी ग्राहय बनाकर व्यक्त करना चाहता है, बिंब ऐसी चित्रकारिता है जो केवल चक्षु-दृश्य न होकर संवेद्यय भी होती है, मनु की भाषा में कहते हैं- ''काली आँखों की तारा में/मैं देखु अपना चित्र धन्य/मेरे मानस का मुकुर रहे। प्रतिबिंबित तुमसे थे अनन्य।''[9] (जयशंकर प्रसाद-कामायनी, चिंता सर्ग) संपूर्ण कामायनी में प्रसाद ऐसा ही मानस-दर्पण तैयार करते हैं, जिसमें चित्र प्रतिबिंबित हो, आँसू और कामायनी दोनों में अनेक स्थल पर बिंबो के सुन्दर उदाहरण देखने को मिल जाते हैं, कई रचनात्मक बिंब इनमें दिखाई पड़ते है, लहर के बिंब में गति, स्वर और उठान है, लहरें नाचती

हैं, उठती हैं, गिरती हैं, रेखाएँ बनती हैं।''[10] (प्रसाद ग्रंथावली-लहर, पृ0 335) 'बीती विभावरी कविता' में घड़ा डूबोने और पक्षियों के बोलने का ध्वनि चित्र दृष्टव्य है- ''अंबर पनघट में डूबो रही ताराघट ऊषा नागरी/खग कुल कुल-कुल-सा बोल रहा, किसलय का अंचल डोल रहा।''[11] (लहर, प्रसाद ग्रथावली, पृ0 345) प्रातः पनघट पर पक्षियों की आवाज और बगीचों में कोमल किसलयों के मनोरम चित्र को डुबोना और कुल-कुल शब्द और भी प्रभावशाली बनाते हैं, डुबोने में घडेघ को पानी में डुबोते समय की ध्वनि है, कुल-कुल पनघट की ध्वनि है, पक्षियों की ध्वनि तो स्पष्ट ही है, किसलय का अंचल पनिहारियों के लाल आंचल है। पनिहारिन है ऊषा, नागरी ऊषा, गंवार नहीं, ऊषा में पाँव की ललाई और नव-वधू की चटक है, यौवन एक जागरण है, इसलिए ऊषा है।''[12] (डॉ0 युगेश्वर-प्रसाद काव्य का नया मूल्यांकन पृ0-187) प्रसाद को यह मालूम है कि बिजली चित्र खींचती है, इस चित्र का पट नील मेघ होता है, इसमें जीवन स्मृति के चित्र उभरते हैं। ''मेरी जीवन स्मृति के जिसमें, खिल उठते वे रूप मधुर थे।''[13] (जयशंकर प्रसाद-लहर)

'मेघ वन बीच गुलाबी रंग' या 'नील परिधान बीच सुकुमार', 'खिला हो ज्यों बिजली का फूल' आरंभिक कविताओं में चित्रण की अपेक्षा वर्णन का तत्व प्रमुख है, चित्रकार को रुकना होता है, अधिकतर चित्र तो रंग-रेखाओं वाले होते हैं, रेखाचित्रों में भी तूलिका की गंभीरता होती है, जल्दी नहीं, रेखायें इस प्रकार उभारी हैं जो दर्शक की इंद्रियों को रमा सकें। प्रसाद की आरंभिक कविताओं को लिया जा सकता है- ''आकाश संपन्न था नव नीरदों से था घिरा/संध्या मनोहर खेलती थी नील पटतम गिरा/ज्यों वीर वरि वारिधि की प्रभामय रत्नावली मेखला।''[15] (जयशंकर प्रसाद-कानन-कुसुम, पृ0 181)

आकाश का श्री संपन्न होना सूचना है, जैसे यह कहना कि वह धनी है, संपन्नता रंगो-रेखाओं से व्यक्त होनी चाहिए थी, आरोपण अधिक है, पूर्वापर के क्रम में भी वह अकेला पड़ गया, क्योंकि आगे संध्या मनोहर खेलती में खेलना क्रिया से चित्र नहीं बना, मनोहर संध्या को सुन्दर बनाने की अपेक्षा अपनी सुन्दरता में लगा है। नीलपट तक गिरा चित्र के काफी निकट है। गिरा क्रिया की जगह फैलने वाली क्रिया होती है, गिरा झटका है, यह जाने का चित्र तो बना सकता था, आने के चित्र को झटका वाले शब्दों की जरूरत नहीं पड़ती, यहाँ तो श्यामा रजनी को धीरे-धीरे उतरना है, चलना है, बढ़ना है और फैलना है। चंचला चपला में कहने की जरूरत नहीं थी, वीर वारिधि की प्रभामय उपमान ने चित्र को कुछ संवार दिया है, ऐसा लगता है कि कवि चित्र बनाना सीख रहा है, कुछ-कुछ संभाल लेता है।''[16] (डॉ0 युगेश्वर-प्रसाद काव्य का नया मूल्यांकन, पृ0 188) आँसू काव्य का एक उदाहरण जहाँ लगता है प्रसाद चित्र को पूरी तैयारी में बनाये गये लगते हैं- ''घन में सुन्दर बिजली सी/बिजली में चपल चमक सी/आँखों में काली पुतली/पुतली में श्याम झलक सी/बादलों की घनी कालिमा में बिजली-विरोधी रंगों का जमाव है, काले पर गहरा पीला अधिक चमकता है, गहरा पीला कुछ-कुछ लाल होता है। बिजली की चपला रंग के बाद गति है, नीला और मद से आरक्त नेत्रों में काली पुतली और पुतली में श्याम झलक काले रंग से एक-दूसरे रंग की सूचना है खाली पुतली में जड़ता था, श्याम झलक कहना उसकी दीप्ती को सूचित करता है, झलक पुतली को जीवंत कर रही है। यह तो है चक्षु बिंब का उदाहरण, किन्तु यह सामान्य स्थूल रंग अधिक चौंध पैदा करने वाला रंग है, यह प्रतिभा को सजीव करने की कला है, प्रतिभा में सजीवता-सी बस गई सुछवि आँखो में।''[17] (आँसू प्रसाद ग्रन्थावली, पृ0 308)

आँसू में बहुत से ऐसे स्थान है जहाँ प्रसाद ने चित्र बनाने की कोशिश की है, पूरे चित्र कम ही बनाये हैं, भावाभिव्यक्ति के अति-आग्रह से चित्र छूट जाते हैं, और भाव बीच में आ जाते हैं, ललित पद-योजना की पूर्ति होते ही कवि चित्र का काम छोड़ देता है, अनुगूँज से जो रागात्मकता उत्पन्न होती है, उसे ही सब मानकर आगे बढ़ जाता है। बिहारी ने आँखों का कज्जाकी करते बताया है, (करत कज्जाकी नैन) प्रसाद आँखों की अंजन रेखा को काला-पानी कहते हैं- ''तिर रही अतृप्ति जलधि से नीलभ की नाव निराली/काला पानी बेला-सी, है अंजन रेखा काली।''[18] (डॉ0 युगेश्वर प्रसाद काव्य का नया मूल्यांकन, पृ0 190) यहाँ अतृप्ति एक भाव है, जो आँखों में तो देखा जा सकता है, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति शब्द से ही संभव है क्या? कल्पना पर थोड़ा जोर देने से अतृप्त जलधि का बिंब उपस्थित होता है। इस तरह की कल्पनाएँ दुरारूढ़, किन्तु प्रभावी हैं। काला-पानी काले सागर के रूप में गंभीर हो जाता है, आँखें मन के भावों का दर्पण हैं, अतृप्ति तो असल में मन में है, आँखें तो हृदय की अतृप्ति व्यक्त करने का साधन मात्र है। कामायनी का आरंभ चित्र से होता है, हिमालय की ऊँची चोटी, शिला की छाया, एक पुरुष का बैठा रहना, उसकी आँखों का गीलापन, और गीली आँखों से प्रलय प्रवाह देखना। सादा, किन्तु स्पष्ट चित्र है- ''हिमगिरी के उत्तुंग शिखर पर/बैठ शिला की शीतल छाँह/एक पुरुष भीगे नयनों से/देख रहा है प्रलय प्रवाह।''[19] (जयशंकर प्रसाद कामायनी, चिंता सर्ग) सृष्टि प्रलय के साथ-साथ व्यक्ति के भीतर भी एक प्रलय लहरा रही है। चिंता सर्ग में इस प्रकार के अनेक सर्ग हैं, कुछ-कुछ चित्ररेखा जैसे, रंग भरने में कहीं-कहीं चित्र नहीं बन पाता- ''चिंता कातर वदन हो रहा पौरुष जिसमें ओत-प्रोत।'' यहाँ चिंता कातर के साथ पौरुष का मेल नहीं है। चित्र जल्दी बदलने से प्रभाव कम हो जाता है, किन्तु यहाँ चित्र को गूँथकर चित्र-प्रभाव पैदा किया गया है- ''जब न कपोलों की छाया सी/पड़ती मुख की सुरभित माप/भुजमूलों में शिथिल वसन की/व्यस्त न होती अब माप।'' पहली दो पंक्तियाँ रति कालीन हैं, रति श्रांता की। सुरत और सुरतांत के साथ-साथ गालों पर चुंबन के कारण वाष्पछाया-सी पड़ती है, यहाँ गालों का चुम्बन, वाष्प की छाया का वर्णन है। रति श्रांता का दूसरा चित्र है, धरती सिंधु की सेज पर बैठी थी- ''सिंधु सेज पर धरा-वधू अब/तनिक संकुचित बैठी सी/प्रलय निशा की हलचल स्मृति में/मान किए-सी ऐठी-सी।''[20] (डॉ0 युगेश्वर-प्रसाद काव्य का नया मूल्यांकन, पृ0 191) भोली और कमसिन नायिका से नायक ने निष्ठुरता की, इसी निष्ठुरता के कारण नायिका मान किए बैठी है, ऐठना उसकी मजबूरी और मान दोनों है। प्रलय गहराया, प्रभाव भी लंबा हुआ, धरती की सिकुड़न भी उसी अनुपात में है, प्रलय के बाद भी सिकुड़न समाप्त नहीं हो रही है, इसे दीर्घ मान कहेंगें। नायिका के साथ नायक की निठुराई का वर्णन निराला भी कहते हैं, किंतु निराला के चित्र में नायक का उत्पात है, जबकी प्रसाद के इस चित्र में प्रथम मिलन की कठोरता मात्र है। प्रसाद के बिंब-विधान का चमत्कार है कि वे नारी रूप में रीतिकालीन कवियों-सा अंग नहीं गिनाते, सभी अंगो का वर्णन भी नहीं करते, एक ही अंग का वर्णन जमकर करते हैं। ऐसा कि अंग अंगी बन जाए, नीला और हल्का पीला विपरीत रंग हैं, एक उदाहरण दृष्टव्य है- ''नील परिधान बीच सुकुमार/खुल रहा मृदुल अधखुला अंग/खिला हो ज्यों बिजली का फूल/मेघ-वन बीच गुलाबी रंग।'' यहाँ सुकुमार शरीर बिजली है। नहीं, देह तो फूल सी कोमल, सुगन्धी और चमकीली है बिजली कहने से बात दूसरी होती, बिजली में चमक है, तड़पन है, वह चंचला है, यहाँ बिजली का फूल खिला है, बादलों के बीच गुलाबी शरीर। बिजली के साथ 'फूल' शब्द के प्रयोग ने देह को और कोमल बना दिया है। मेघ-वन में गुलाबी ऐसी ज्योति है, जिसमें मृदुता के साथ पवित्रता और सहज सौन्दर्य है, उत्प्रेक्षा ने रूप को और भी गंभीर बना दिया है। प्रसाद चित्र के द्वारा भाव जगाते हैं- ''और

उस मुख पर वह मुस्कान/रक्त किसलय पर ले विश्राम/अरुण की एक किरण अम्लान/अधिक अलसाई हो अभिराम।'' मुख पर मुस्कान है। कैसा है मुख? रक्त किसलय है, मुस्कान अरुण सूर्य की स्वच्छ पवित्र किरण है। मुख जड़ नहीं है, मुस्कान जड़ नहीं है, उपमान ही क्यों जड़ हो किरण या मुस्कान का व्यक्तित्वीकरण है, किरण न केवल मुख किसलय पर पड़ी है, बल्कि अलसाकर पड़ी है। स्वशब्द वाच्यत्व के कारण विश्व की करुण कामना-मूर्ति में चित्र नहीं बना, प्रसाद के अनेक चित्र उलझे और अपूर्ण भी होते हैं- ''ऊषा की पहली लेखा कांत/माधुरी से भीगी भर मोद/मदभरी जैसे उठे सलज्ज/भोर की तारक धुति की गोद।'' यहाँ प्रथम दो पंक्तियों का चित्र स्पष्ट है, तीसरी पंक्ति भी ठीक है किन्तु चौथी पंक्ति में तारक की धुति का चित्र कष्ट कल्पना से बनता है, जब तक मानस पर भार दीजिए, चित्र बिखर जाता है, सहजता खत्म हो जाती है। श्रद्धा सर्ग में अनेक रूप चित्र हैं, बालों से घिरे मुख की उपमा अनेक कवियों ने दी है, कोई नया नहीं, प्रसाद उसे नया करते हैं- ''या कि नव इन्द्रनील लघु श्रृंग/फोड़कर धधक रही हो कांत/एक लघु ज्वालामुखी अचेत/माधवी रजनी में अश्रांत।'' काले बाल नील लघु श्रृंग और अश्रांत रजनी है, देदीव्यमान रूप कांत ज्वालामुखी है, जो अचेत मुख की शान्ति और भोलापन व्यक्त करता है, माधवी रजनी किशोरावस्था है, जहाँ यौवन का ज्वालामुखी फूटता है। ज्वालामुखी में कोई विस्फोट या कोई हलचल नहीं है। यौवन अभी नादान है। वह भीतर के आग का संकेत मात्र है। रीतिकालीन कवि केवल इतना सोच सकता है कि नायिका के बोलने से मधु चूता है, या हँसकर बोलने में छवि फूलों की वर्षा हो जाती है, भाव शरीर को ही सौन्दर्य मानने वाले रीतिकालीन कवि को क्या पता कि नायिका का शरीर सामान्य स्त्री के शरीर से भिन्न है, वह केवल उसके रूप का दर्शी है, छायावादी कवि रीतिवादी कवि से अधिक रचनात्मक है, वह स्त्री की मानसी सृष्टि करता है, क्योंकि स्त्री उसके मन की साध है- ''कुसुम-कानन अंचल में मंद/पवन-प्रेरित सौरभ साकर/रचित परमाणु पराग शरीर/खड़ा हो ले मधु का आकार।'' पराग परमाणु मधु का आधार लेकर खड़े हैं, पराग, धूल और मधु दोनों का अच्छा योग है। श्रद्धा का शरीर बिल्कुल फूल है, फूल से भी विशिष्ट सौरभ और पराग फूल की विशिष्टता है। यह सृष्टि कल्पना मूलक है। सौन्दर्य की अति चेतना का परिणाम है। सूक्ष्म तत्वों द्वारा सौन्दर्य का निर्माण हुआ है। अपनी चित्रकला संबंधी प्रसाद की दृष्टि निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त हुई है- ''केतकी के गर्भ सा पीला मुँह/आँखों में आलस भरा स्नेह/कुछ कृशता नई लजीली थी/कंपित लतिका-सी लिए देह।'' ऊपर से देखने में यह सब सीधा है, गर्भजन्य कृशता नयी लजीली थी, लज्जा नहीं लजीली है, दोनों में भेद है, कृशता के साथ लजीलापन गर्भवती के चित्र को कोमल, मार्मिक और ममत्व वाला बनाता है, यह लजीलापन नया है, उस लज्जा से बिल्कुल भिन्न जिसका वर्णन प्रसाद लज्जा सर्ग में करते हैं। निराला ने भी रूप के भार से थरथराने का वर्णन किया है, अनेक कवियों ने किया है, इस कंपित में है भूत की कामानुभूति, वर्तमान की पीड़ा और भविष्य का संतान सुख, इसीलिए देह का भारीपन व्यक्त हुआ है। मनु वासना के आवेग में है, अपनी सुध-बुध भूल गये हैं, उत्तेजना गहरी है, इस मानसिक स्थिति का चित्र कठिन है, कुछ शाब्दिक संकेत दिए जा सकते हैं- ''छूटती चिंगारियाँ उत्तेजना उद्भ्रान्त/धधकती ज्वाला, मधुर था वक्ष विकल अशांत/वात चक्र समान कुछ था बांधता आवेश/धैर्य का कुछ भी न मनु के हृदय में था लेश।'' इन शब्दों द्वारा एक वासना विकल आदमी का चित्र बनता है, जिसे कल्पना दृष्टि में ही समझा जा सकता है, पुरुष रतीच्छा का जो प्रत्यक्ष चित्र नहीं बन सका, वही स्त्री रतीच्छा में प्रत्यक्ष हो उठा है- ''गिर रहीं पलकें, झुकी थी नासिका की नोक/मूलता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक/सपर्श करने लगी लज्जा, ललित कर्ण कपोल/खिल पुलक कदंब का सा भरा गद्‌गद् बोल।'' यहाँ स्पष्ट संकेत है कि नारी पुरुष की इच्छा के सामने झुक गयी, रति का अनुभव कर वह लज्जित हो गयी, पुरुष की रति इच्छा का चित्र भाव या संकेत चित्र था, किंतु स्त्री चित्र साकार है। प्रसाद इन चित्रों द्वारा अतीत को प्रत्यक्ष भी करते हैं। हिमालय किसी भी कलाकार का प्रेरणा श्रोत है, चाहे कितना ही ताजा और टटके चित्र बनायें, भव्य, दिव्य और उत्फुल्ल। हिमालय के बिंब के पीछे आकर्षण और जिज्ञासा है, भारतियों के लिए एक संदेश भी है- ''मधुरिमा में अपनी ही मौन/एक सोया संदेश महान।'' हिमालय का योगी रूप और भी निखरा, प्रसाद का हिमालय एक योगी है, मधुर योगी, रूक्ष और विरस नहीं, जिसके पास महान संदेश है- ''देखे मैंने वे शैल श्रृंग/जो अचल हिमानी से रंजित/उन्मुक्त उपेक्षा-भरे तुंग/अपने जड़ गौरव के प्रतीक/वसुधा का कर अभियान भंग/अपनी समाधि में रहे सुखी/बह जाती हैं नदियाँ अबोध/कुछ स्वेद-बिन्दु उसके लेकर/वह स्तमित नमन गत शोक क्रोध।''

इस बिंब के द्वारा पूरा हिमालय आँखो में आ गया है, जो ऐसे असंभव था। इतना ही नही, हिमालय से रागात्मकता का भी मेल हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद काव्य में बिंबों के रूप चाक्षुस ही नहीं, अपितु मानसी अनुभूतियों को उद्वेलित करने के साथ विचाारों की श्रृंखला में संवेध बन गये हैं, इनके द्वारा श्रोता या पाठक के मन में एक सार्थक चित्र स्वत: दिखाई पड़ता है। इन बिंबों के माध्यम से भावों की अर्थवत्ता मानस में अपना रूप बनाकर हमारी संवेदनाओं में एकमेव हो जाती है, प्रसाद की अर्थाभिव्यक्ति का यही चमत्कार है।

तुलनात्मक साहित्य : आधार एवं दिशाएं

श्रीमति मंगला जटगोंडा

(शोधार्थी)

प्रो. नामदेव एम. गौड़ा

शोध निर्देशक, कर्नाटक राज्य अक्कमहादेवी महिला विश्वविद्यालय, विजयपुर

तुलना मानव की सहज प्रवृत्ति है और किसी भी विषय को लेकर चिंतन करना भी तुलनात्मक विषय ही होता है। मूल्यांकन भी तुलना के आधार पर ही होता है। पाश्चात्य और भारतीय संदर्भ में तुलना करना बहुत ही पुरानी बात है। आज तुलना की अधिक विकास पाश्चात्य देशों में हुआ है वहां विविध रूपों एवं वैचारिकता को लेकर है। भाषा संस्कृति की पहचान तभी संभव है जब विभिन्न भाषा साहित्य की तुलना की जा सकती है। इस रूप में तुलनात्मक साहित्य या तुलनात्मक अध्ययन 'वसुदेव कुटुंबकम' की भावना को पैदा करने वाली अत्युत्तम प्रक्रिया है।

तुलनात्मक अध्ययन की परंपरा

तुलनात्मक साहित्य अंग्रेजी के 'कंपैरेटिव' लिटरेचर का हिंदी अनुवाद है। इस पद का प्रथम प्रयोग अंग्रेजी के मैथ्यू आर्नल्ड ने 1848 में अपने एक पत्र में किया था। (तुलनात्मक साहित्य की भूमिका इंद्रनाथ चौधरी पृष्ठ संख्या 1) साहित्य हो कला हो या भाषा हो हर एक की अपनी एक शैली होती है, कलाकार की साहित्यकार की सृजनशीलता की अभिव्यक्ति होती है तो फिर तुलना कैसे की जा सकती है? इस तरह का वाद विवाद 'तुलनात्मक' शब्द की उत्पत्ति से ही शुरू हुआ था। 'ऐतिहासिक अर्थविज्ञान' के सहारे रेने वेलक ने इस समस्या को हल करने का प्रयास किया। उनके अनुसार "तुलनात्मक शब्द में तुलना करने की प्रक्रिया जुड़ी हुई है और तुलना में वस्तुओं को कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है, जिससे उनमें साम्या विश्व में का पता लग सके।"[1]

वैसे तो अंग्रेजी में तुलनात्मक शब्द का प्रयोग लगभग सन 1598 ई से प्रारंभ माना गया है। तदोपरांत सन 1886 ई में सर्वप्रथम 'एच. एम.पासनेट' ने अपनी किताब का शीर्षक कंपैरेटिव लिटरेचर रखकर इस विधा को स्थायित्व प्रदान करने का प्रयास किया था। आगे चलकर बीसवीं सदी में यह 'कंपैरेटिव लिटरेचर' पद से प्रयोग व विकास प्रारंभ हुआ। इस प्रकार आज विश्व के सभी देशों में तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन प्रारंभ हुआ है।

पाश्चात्य देशों में तुलनात्मक अध्ययन

आज स्कूलों में भी इसका अध्ययन होता है जैसे अमेरिकी स्कूल, पैरिस स्कूल तथा रूसी स्कूल। 'कंपैरेटिव लिटरेचर' अमरीकी स्कूल का मूल ग्रंथ है जिसका प्रकाशन सन 1886 मे हुआ था। पेरिस व जर्मन स्कूल में तत्व एवं दस्तावेजों की तुलनात्मक अध्ययन किया गया। इस स्कूल की स्थापना जर्मन विद्वान गोइथे ने 19वीं शती में किया था। इस स्कूल के विद्वान तुलनात्मक साहित्य को साहित्योतिहास का भाग मानते हैं। आधुनिक काल में विद्वान पीश्वाज तथा रूसो तुलनात्मक साहित्य के क्षेत्र में साम्य या वैशम्यमूलक तुलना तथा प्रभाव के सूत्रों के अध्ययन का प्रसार करते हुए संश्लेषणात्मक दृष्टि को महत्व दिया। साथ ही बहुभाषी तुलनात्मक अध्ययन को भी बढ़ावा दिया गया। तुलनात्मक अध्ययन अंतरराष्ट्रीय संबंधों का इतिहास भी है। रूसी स्कूल के अनुसार तुलनात्मक साहित्य एक सार्वदेशिक संवृति का सार- संग्रह है। इन्होंने साहित्यिक विधाओं, आन्दोलनों, प्रकारों तथा साहित्यिक के अध्ययन को महत्व दिया है। इस तरह पाश्चात्य देशों में तुलनात्मक अध्ययन संबंधी विचारों एवं अभी मतों को देखने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलनात्मक साहित्य और स्वतंत्र विषय है यही विश्वव्यापी लोगों की मानवीय संवेदना की जमा पूंजी है।

भारत मे तुलनात्मक अध्ययन

भारत में तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया काफी पुराना है। संस्कृत साहित्य के कालिदास, दंडी तथा भारवी जैसे अनेक कवियों के साहित्यिक तुलनात्मक अध्ययन काफी प्राचीन काल से चलते आ रहा है। मध्य युग में सूर, तुलसी, कवि बिहारी देव आदि के संदर्भ में भी अध्ययन हुआ है। भारत में आधुनिक काल में तुलनात्मक अध्ययन का विकास हुआ है। विश्वविद्यालय के स्तर पर अध्ययन का प्रारंभ इसी काल में हुआ। भारत में तुलनात्मक अध्ययन पर अंग्रेजी साहित्य का भी प्रभाव रहा है। आरंभ में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य को लेकर तुलनात्मक अध्ययन अंग्रेजी साहित्य के साथ किया गया। भारतीय कवियों के काव्य साहित्य और रोमांटिक कवि कीट्स, वडर्सवर्थ आदी के साथ तुलनात्मक अध्ययन इसी समय की प्रारंभ हुआ। स्वतंत्रता के बाद कई विश्वविद्यालयों में तुलनात्मक अध्ययन के पीठों की स्थापना की गयी। यहीं से भारत के विविध भाषाओं के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन प्रारंभ हुआ।

भारत में तुलनात्मक साहित्य का परंपरा का प्रारंभ 17 वीं - 18वीं सदी से माना गया है। इस संबंध में ए. बी. साई प्रसाद लिखते हैं - "बीसवीं सदी से ही हम तुलना शब्द को कंपारिटिव शब्द का पर्यायवाची शब्द इस्तेमाल करते आ रहे हैं। इसके पहले यह शब्द भारत में प्रचलित नहीं था।"[2] रविंद्र नाथ टैगोर जी ने 1907 में तुलनात्मक साहित्य के लिए 'विश्व साहित्य' शब्द का प्रयोग किया था। उनके तर्क के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को उसकी संपूर्ण इकाई में देखना चाहिए क्योंकि संपूर्ण इकाई या मनुष्य की शाश्वत सृजनशीलता की पहचान विश्व साहित्य के द्वारा ही हो सकती है।

हिंदी में भक्ति एवं रीतिकालीन कवि तुलसी, सूर, बिहारी, केशव ने अपने कवी रूप के संबंध में जो अनूठी उक्तियाँ कहीं है उनमें हिंदी के तुलनात्मक अनुसंधान के बीज निहित है। मैक्स मूलर विलियम जोन्स जैसे विद्वानों ने भारतीय साहित्य का अनुवाद यूरोपीय भाषाओं में किया, जिससे तुलनात्मक साहित्य की प्रवृत्ति को एक नया मोड़ मिला। 1753 में रॉबर्ट लाउथ ने 'ऑक्सफोर्ड लेक्चर्स ऑफ पोएट्री' में हिब्रु कविता के साथ यूनानी साहित्य की विधा को बल मिला। 19 वीं शताब्दी तक तुलनात्मक साहित्य की प्रवृत्ति को बल मिलने लगा था। माईकल मधुसूदन दत्त ने वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, होमर, वर्जिल, दांते, टेसो, मिल्टन... आदि साहित्यकारों को एक दूसरे के समान्तर रख कर देखा है। आगे चलकर 1773 ई. में बंकिम चंद्र चटर्जी ने 'शकुंतला', 'मिरांडा', तथा 'डेसडोमना', शीर्षक एक निबंध लिखा। बंकिम ने एक ओर जहां शेक्सपियर व कालिदास की तुलना की वहीं दूसरी ओर वायरन, शैली की कविताओं की तुलना वैदिक गीतों से...। इसी क्रम में आपने भवभूति और शेक्सपियर की तथा कुमारसंभव तथा पैराडाइज लास्ट की तुलना की। इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए वारेन हेस्टिंग्स ने गीता व ईसाई मुक्ति भावना की तुलना की। उसने गीतावली इलियड, ओडेसी तथा पैराडाइज लास्ट की भी तुलना की।

तुलनात्मक साहित्य के 19वीं शताब्दी के प्रमुख कार्य निम्नलिखित है-

- चार्ल्स ई. ग्रोवर - 'द फोक सौंग्स ऑफ सदर्न इंडिया (1871) तमिल साहित्य के साथ कन्नड़, तेलुगू, मलयालम तथा कूर्ग भाषाओं के गीतों का तुलनात्मक अध्ययन।
- जी0 यू0 पोप कुरल के अनुवाद- तमिल कविता व यूनानी कविता का अंतर
- प्रियरंजन सेन - इन्फ्लुएंस ऑफ वेस्टर्न लिटरेचर इन द डेवलपमेंट ऑफ बंगाली नावेल (1932)
- आलब्रेस बेवर- 'द हिस्ट्री ऑफ आफ इंडियन लिटरेचर(1852)- संस्कृत नाटक /यूनानी नाटक की तुलना
- मैक्स मूलर - ए हिस्ट्री ऑफ एन्शेंट संस्कृत लिटरेचर (1859) संस्कृत यूनानी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
- अल्बर्ट स्वाइटसर- इंडियन थॉट एंड इट्स डेवलपमेंट- भारतीय आर्य/ ईरानी यूरोपीय संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन
- ए0 बी. कीथ- द संस्कृत ड्रामा(1924) कालिदास व संस्कृत नाटककारों की तुलना यूरोपीय नाटक एवं नाटककारों से

तुलनात्मक साहित्य अध्ययन की आवश्यकता

तुलनात्मक साहित्य अध्ययन की आवश्यकता कई कारणों से महत्वपूर्ण है। इस पद्धति में दो विषय या कहे दो वस्तु या कहे दो व्यक्ति का होना अनिवार्य है। इस तरह के अध्ययन में या शोध में दो या अधिक स्रोतों को इकट्ठा किया जाता है और अनेक पद्धतियों के द्वारा इसका अध्ययन होता है। डॉ पी.आर डोडिया का कहना है- "तुलनात्मक अध्ययन से विशेष लाभ यह होता है कि इसमें अनुसंधान की दृष्टि सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होकर अधिक गहराई में स्थित काव्य की अंतरात्मा का स्पर्श कर लेती है। परिणाम स्वरूप बहुत अमूल्य निष्कर्ष की प्राप्ति होती है। ज्ञान की परिभाषा एवं संपुष्टि के लिए तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।"[2] तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में विशेष अध्ययन करने वाले आचार्य विजयपाल सिंह ने तुलनात्मक अध्ययन के प्रयोजनों को इस सूची में बद्ध किया है-

1. तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा ऐसी विशेषताएं उजागर होती है जो सामान्य अध्ययन से संभव रहे हैं।
2. नवीन संदर्भ नवीन रूप में प्रकट होते हैं।
3. भाषा और साहित्य का गहन संबंध स्थापित होता है।
4. इसके द्वारा मशीन ट्रांसलेशन में सहायता मिलती है।
5. पारस्परिक आदान-प्रदान द्वारा भाषाओं और साहित्यों के विस्तृत होते हैं।
6. तुलनात्मक अध्ययन पूर्वाग्रहों से मुक्ति दिलाता है।
7. एक ही देश की विभिन्न इकाइयों को परस्पर निकट आने को प्रोत्साहन मिलता है। पाश्चात्य विद्वान मैक्स मूलर इस संदर्भ में कहते हैं- सभी उच्चतर ज्ञान की प्राप्ति तुलना से हुई है और वह तुलना पर ही आधारित है।ष4 भारत अनेक भाषाएं, संस्कृतियाँ, बोलियां, धर्मों का संगम स्थल है। भारत विविधता में एकता को संदेश देती है । शोध कार्य के माध्यम से विभिन्न संस्कृति की मूलभूत एकता को पुनः स्थापित किया जा सकता है। विभिन्न भाषाओं के भाषा साहित्य के अध्ययन के माध्यम से उनके बीच की आदान-प्रदान की भावना बढ़ेगी और भाषा साहित्य नवीन व समृद्ध बनेगी। विशेषकर हिंदी में तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से राष्ट्रीय स्तर पर विशेष हनुमान मिलेगा हिंदी का राष्ट्रीय गौरव भी बढ़ेगा।

तुलनात्मक अध्ययन से हमे एक साहित्य से दूसरे साहित्य का साम्य रखता है या वैषम्य है या स्तरीय है स्तरहीन अच्छा है या बुरा, श्रेष्ठ है या कनिष्ठ, दोनों की परिस्थितियां परिवेश एक सी है या नही सब कुछ पता चलता है।

डॉ विजय पाल सिंह लिखते हैं- तुलनात्मक अध्ययन द्वारा ऐसी विशेषताएं उजागर होती है जो सामान्य अध्ययन से संभव नहीं। इससे नवीन संदर्भ नवीन रूप में प्रकट होते हैं। भाषा और साहित्य का गहन संबंध स्थापित होता है। इसके द्वारा मशीन ट्रांसलेशन में सहायता मिलती है। पारस्परिक आदान-प्रदान द्वारा भाषाओं और साहित्यकों के क्षितिज विस्तृत होते हैं। तुलनात्मक अध्ययन पूर्वाग्रह से मुक्ति दिलाता है। एक ही देश की विभिन्न इकाइयों को परस्पर निकट लाने का प्रोत्साहन मिलता है।[5] डॉ मनोरमा शर्मा जी के अनुसार- "तुलना के बिना अनुसंधान पूर्ण नहीं हो पाता, तुलनात्मक अनुसंधान द्वारा कृति या कृतिकार

में सत्यान्वेषण करके निष्कर्षों का नवीनतम निकाला जाता है। अत: तुलनात्मक अध्ययन मनुष्य के विचारों, भावों और सामाजिक चेतना का दर्पण है। साहित्य के सम्यक अनुशीलन में तुलनात्मक दृष्टि महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।[6] (वही)

विभिन्न प्रांतों एवं देशों की साहित्य में अंकित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियां, परिवेशों आदि के अध्ययन के माध्यम से मानव मन मस्तिष्क में समानता, अखंडता का बीज बोया जा सकता है। प्रेम, विश्वास, भाईचारे के संबंधों को स्थापित कर सकते हैं। आपसी वैमनस्यता को मिटाया जा सकता है। विविध भाषाओं के साहित्य अध्ययन के माध्यम से संस्कृति, साहित्य एवं शब्द संपदा के उत्तमोत्तम रूप को हिंदी में लाने से हिंदी साहित्य और भी समृद्ध होगा और उसकी शब्द संपदा भी बढ़ेगी।

तुलनात्मक साहित्य अध्ययन की दिशाएं

तुलनात्मक साहित्य अध्ययन में कई दिशाओं का के माध्यम से अध्ययन किया जा सकता है जैसे- साहित्य की प्रकृति, उद्देश्य, परिस्थितियां, परिवेश, भाषा-बोली आदि विशेष रुप से तुलनात्मक अध्ययन के दिशा के चार भेद माने गए हैं ।

1. प्रकारात्मक अध्ययन दिशा
2. प्रयोगात्मक अध्ययन दिशा
3. संरचनात्मक अध्ययन दिशा
4. बोली वैज्ञानिक अध्ययन दिशा

उपरोक्त चारों दिशाओं को नजर में रखते हुए दो विभिन्न भाषा साहित्यकार, दो विभिन्न विधाएं, दो विभिन्न भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन होता है।

- प्रकारात्मक अध्ययन : इसमें दो विभिन्न भाषाओं की संरचनात्मक समानताओं व विषमताओं को रेखांकित किया जाता है।
- प्रयोगात्मक अध्ययन : प्रयोगात्मक अध्ययन में किसी भाषा विशेष को बोलने वालों से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित किया जाता है और वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा उनके मुख से उत्पन्न ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है। पर साहित्यिक तुलनात्मक अध्ययन में इसका बहुत कम प्रयोग किया जाता है।
- संरचनात्मक अध्ययन : इसके अंतर्गत ध्वनि-ग्रामों, रूप -ग्रामों और वाक्य विश्लेषण का अध्ययन किया जाता है। यह दिशा केवल समान भाषा अध्ययन में है उपयोग होता है।
- बोली वैज्ञानिक अध्ययन : इस अध्ययन दिशा के अंतर्गत भाषा के विभिन्न रूपों उनके क्षेत्रों तथा उनकी सीमाओं का अध्ययन किया जाता है ।
- तुलनात्मक साहित्य अध्ययन में वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, ऐतिहासिक, समीक्षात्मक आदि दिशाओं से अधययन किया जाता है।
- तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन के आधार :

काल या समय के आधार पर

अगर दो भिन्न भाषाओं के साहित्य का अध्ययन करना है तो किसी विशिष्ट कालखंड, परिस्थितियां, परिवेश , कवि, लेखक का साहित्य आदि मे समानता का होना अनिवार्य है। जिससे तुलनात्मक अध्ययन सही क्रम मे हो। जैसे -'साठोत्तरी हिंदी कन्नड़ नाट्य साहित्य।'

विषय के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन

दो विभिन्न भाषाओं में या किसी एक भाषा में एक ही विषय पर लिखने वाले साहित्यकारों की कृतियों को लेकर तुलना की जाती है। ऐसे समय पर दोनों साहित्यकारों के विषय वस्तु में समानता का होना अनिवार्य है।

वातावरण के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन

विभिन्न भाषाएं अथवा एक ही भाषा, एक ही भाषा के लेखकों के साहित्य में चित्रित किसी विशिष्ट वातावरण को लक्ष्य बनाकर तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। जैसे हिंदी एवं कन्नड़ दलित आत्मकथाएं, कबीर और बसवण्णा के साहित्य में सामाजिक चेतना, मीराबाई और अक्कामहादेवी का भक्ति साहित्य इस तरह एक ही समय के दो अलग लेखक, कवि, के साहित्य में चित्रित वातावरण का तुलनात्मक अध्ययन होता है।

भाव के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन

इस देश के सभी साहित्यकारों की मानसिक स्थिति एक जैसी है। साहित्य का मुख्य तत्व है - भाव तत्व। इसलिए एक ही समय के दो लेखक के समान भाव को लेकर तुलनात्मक अध्ययन होता है। जैसे- हिंदी एवं कन्नड़ काव्य साहित्य में नारी विमर्श।

कथ्य के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन

दो अलग भाषाओं के लेखकों के विषय वस्तु कभी-कभी एक जैसी होती है भले ही भाषा अलग हो, पर सोचने की विधि, शैली एक जैसी होती है। जैसे किसान समस्या, वृद्ध समस्या, पानी की समस्या इस तरह एक विषय को अलग-अलग भाषा के साहित्यकारों ने किस तरह चित्रित किया है इसका तुलनात्मक अध्ययन होता है।

विचार के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन

साहित्यकार किसी भी भाषा का हो पर उनका उद्देश्य एक होता है समाज का हित करना। ऐसे ही समान विचार या उद्देश्यों को लेकर लिखने वाले भिन्न भाषा भाषी लेखकों का उनके कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन हो सकता है। सामाजिक समस्याएं, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, शोषण, शिक्षा, दलित समाज आदि विषयों को लेकर अलग-अलग भाषाओं में जैसे हिंदी, कन्नड़, मराठी, गुजराती, बांग्ला, तमिल के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन होता है।

शिल्प के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन

लेखक अपनी रचना को विशिष्ट आकर्षक बनाने के लिए नये-नये प्रयोग करता है। अलग-अलग बोली, भाषा का, शिल्प शैली का प्रयोग अपने साहित्य मे प्रयोग करता है। इन्हीं को लेकर तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। जैसे हिंदी और कन्नड़ उपन्यासों में शिल्प विधान।

जहां तक बात हिंदी और कन्नड़ साहित्य की तुलनात्मक अध्ययन की है, ऊपरोक्त सभी आधारों को ध्यान में रखकर दोनों भाषाओं के साहित्य का अध्ययन किया जाएगा।

संदर्भ संकेत

1. तुलनात्मक साहित्य की भूमिका इंद्रनाथ चौधरी, पृष्ठ. संख्या ख्र 1
2. तुलनात्मक अनुसंधान एवं उसके आयाम, सं. गुलाम रसूल, पृ. सं -10
3. समकालीन भारतीय साहित्य में आधुनिक बोध, डॉ सुशीला धर्माणि - पृ.सं 267
4. साहित्यिक अनुसंधान के आयाम, डॉ रविंद्र कुमार जैन, पृ. सं 48
5. तुलनात्मक अध्ययन -स्वरूप एवं पद्धतियों का विवेचन ,डॉ अलका निकम वागदरे, पृष्ठ संख्या 5
6. तुलनात्मक अध्ययन -स्वरूप एवं पद्धतियों का विवेचन, डॉ अलका निकम वागदरे, पृष्ठ संख्या 5

संदर्भ ग्रंथ

1. उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय मानविकी विद्या शाखा तुलनात्मक एवं भारतीय साहित्य)
2. तुलनात्मक साहित्य: भारतीय परिप्रेक्ष्य, इंद्रनाथ चौधरी ,वाणी प्रकाशन (2010)
3. तुलनात्मक अध्ययन: निकष एवं निरूपण , प्रो.आई.एन.चंद्रशेखर रेड्डी, प्रकाशन संस्थान, नईदिल्ली(2009)

अमरकांत का रजुआ वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

डॉ० ज्योति श्रीवास्तव

एसोसिएट प्रोफेसर, साबरमती यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद, गुजरात

हिन्दी साहित्य जगत के प्रमुख साहित्यकार अमरकांत जी को बहुत ज्यादा तो नहीं पढा है फिर भी उनकी कुछ कहानियों ने हम सब को यह सोचने पर विवश कर दिया है कि क्या हम वास्तव में इन्सान कहलाने के योग्य है या नहीं ए इसी क्रम में मुझे जिन्दगी और जोंक कहानी ने बहुत प्रभावित किया और सोचने पर भी मजबूर किया है। लेख बहुत ही साधारण तरीके से मध्यम एवं सभ्य समाज को सचेत करने का प्रयास किया है जिसकी धुरी के रूप में रजुआ को सामने लाया है। वर्तमान सामाजिक परिदृश्यों ने मुझे यह लेख लिखने के लिए मजबूर किया आए दिन जब हम समाचार पत्रों के माध्यम से जानते हैं कि औरतों एवं देश की बच्चियों के साथ क्या क्या हो रहा है तब ऐसा लगता है कि काश पूरा समाज रजुआ जैसा नासमझ होता ए कम से कम थोडी तो संवेदनाएं रहतीं। अमरकांत जी ने रजुआ जैसे इंसान जिसको कि वास्तविक नाम गोपाल भी पुकारे जाने का अधिकार नहीं था उसे एक महत्वपूर्ण स्थान दे दिया है। आजकल के सामाजिक घटनाओं पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो हमारा ध्यान हिन्दी जगत के मूर्धन्य साहित्यकार अमरकांत जी द्वारा रचित कहानी जिन्दगी और जोंक की तरफ खींचा चला जाता है पूरी कहानी का गहन अध्ययन करने पर लगता है कि आज के पढे लिखे एवं सभ्य कहे जाने वाले इन्सानों से लाख गुना बेहतर हमारा रजुआ है जिसके अंदर कम से कम मानवता है, भावनाएं हैं वो बहुत सलीकेदार एवं सभ्य तो कभी नहीं रहा पर पूरे कहानी की एक छोटी सी घटना ने हम जैसे सभ्य लोगों को यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि क्या हम वास्तव में मानव हैं। अमरकांत जी ने बडे ही सहज एवं सरल सलीके से मध्यमवर्ग एवं सभ्य वर्ग पर कटाक्ष किया है एवं अपने आपको बहुत महान कहे जान वालों पर करारा तमाचा मारने का प्रयास किया है। अमरकांत जी की विशेषता रही है कि उन्होंने समाज के मध्यम ही नहीं बल्कि निम्न मध्यमवर्ग को भी अपनी रचनाओं में मुख्य पात्र एवं मुख्य विषय के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, चाहे वह दोपहर का भोजन में अपने पुत्रों एवं पति को भरपेट भोजन करा खुद भूखी रह जाने वाली मां हो या फिर हम सबका रजुआ हो, कहने को तो सब उसे परेशान करते रहते हैं मजाक उड़ाते रहते हैं लेकिन उसके अंदर जो एक सभ्य एवं महान इंसान छिपा हुआ है वह किसीको नहीं दिखाई देता। एक तरफ अपने को सभ्य कहने वाला इंसान उसका मजाक उडाता फिरता है तो दूसरी तरफ हम देखते हैं कि पगली के प्रति उसके सोच ने पूरे सभ्य समाज को सोचने पर मजबूर कर दिया है। जिस पगली को हमारा सभ्य इंसान भोग की वस्तु समझता है उसी पगली के लिए रजुआ को यह चिन्ता है कि उसके तन को कैसे ढका जाए एवं उसके खाने की व्यवस्था कैसे को जाए इतना ही नहीं वह उसके लिए खाने की भी व्यवस्था करता है। रजुआ उस पगली को छत पर छोड़ नरसिंह बाबू के यहां काम करने लगा। नरसिंह बाबू की स्त्री बताती हैं कि वह उस दिन बडा गंभीर था और काम करते करते चहककर जैसे किलकारी मारता है वैसे नहीं करता था। नरसिंह बाबू की स्त्री ने जब उसे खाना दिया तो उसने वहां भेजन नहीं किया बल्कि खाने को एक कागज में लपेटकर अपने साथ लेता गया, उसने वहां थोडा खाया और छत पर ले गया, रात के करीब ग्यारह बजे की बात है रजुआ जब ऊपर पहुंचा तो देखा कि पगली के पास कोई दुसरा सोया है, उसने आपत्ति की तो उसको लफंगों ने खूब पीटा और वह पगली को लेकर दूसरी जगह चला गया। मेरा मानना है कि पूरी कहानी में यह घटना दिखाकर कहानीकार ने जैसे एक जोरदार तमाचा हम जैसे तमीजदारों पर मारने का प्रयास किया है। इतना ही नहीं जिस इंसान पर चोरी का इल्जाम लगाया जाता है, पागल कह कर पुकारा जाता है वही इंसान आम आदमी से कई गुना ऊपर उठ जाता है रजुआ एक ऐसे जीते जागते आम आदमी का उदाहरण है जो हर पल जीने की जीजिविषा को जिन्दा रखता है। प्रस्तुत कहानी में रजुआ जो कि बरई एवं भीखमंगे के नाम से चारों तरफ विख्यात है, लेकिन इसी बरई के जीने की जीजिविषा एवं उसके क्रांतिकारी कदमों एवं हरकतों ने समान्य मनुष्यों को यह सबक देने का प्रयासकिया है कि सब कुछ सफेदपोशों के पोशाक में नहीं होतीं भावनाएं एवं इन्सानियत तो हर एक ऐसे मानव में भी जीवित होती है जिसके पास भले ही बहुत महंगे कपडे पहनने को नही है या फिर उनका पूंजीपतिवर्ग से संबंध होना जरूरी नहीं। यह भी जरूरी नहीं कि वह हमेशा एक सभ्य घराने या फिर पूजीपति वर्ग से संबंध रखता हो। समाज का हर एक वर्ग उसको भिखारी या पागल कहकर पुकारता है, उसके ऊपर कोई भी इलजाम लगा दिये जाते हैं, लेकिन यह सभ्य समाज यह नहीं सोचता कि जिस इन्सान को खुद के खाने पीने पहनने की चिन्ता नहीं है वो दूसरों के सामान में क्या रूचि लेगा। जिन्दगी और जोंक कहानी में लेखक ने बड़े ही सहजता के साथ यह बात रखने का प्रयास किया है कि किस प्रकार हम जैसे सभ्य इन्सान अपने कर्तव्यों एवं भावनाओं से भाग रहे हैं, एक पागल एवं भीख मांगने वाला बावला सा इन्सान हम सबके लिए एक उदाहरण पेश करता है। इसके पूर्व महात्मा गांधी की मृत्यु का ऐसा दिलचस्प किस्सा मैंने कभी नहीं सुना था, यद्दपि गांधी की हत्या हुए चार वर्ष गुजर गए थे। उसकी दाढी जैसे जैसे बढ़ती गई रजुआ के धर्म प्ररसेम का समाचार भी फैलता गया। निचले तबके के लोगों में अब वह रज्जू भगत के नाम से पुकारा जाने लगा। और दूसरी तरफ हम देखते हैं कि हम आप जैसे साधारण इन्सान रजुआ के बीमारी के समय भी काम नहीं आते वहीं रजुआ पगली को जिसको वो जानता भी नहीं है उसकी परवाह करता है साथ ही समाज के कुतसत सोच रखने वाले इन्सानों से उसकी रक्षा करता है। सवयं लेखक की पत्नी कहती है .... "आपके पैरों पडती हूँ उसको छुइयेगा नहीं और झटपट चले आइएगा" लेखक ने स्वयं लिखा है कि "जब मैं खंडहर में पहुंचा तो दो तीन व्यक्ति सड़क के किनारे खड़े रजुआ को निहार रहे थे। वे मुहल्ले के नहीं बल्कि रास्ते

चलते मुसाफिर थे, जो रजुआ की दशा देखकर अकर्मण्य दया एवं उत्सुकता से वहां खड़े हो गए थे।" रजुआ के अंदर जो संवेदनाएं एवं भावनाएं हैं एवं बार बार भारत माता की जै, गांधी बाबा की जै बोलना यह दिखाता है कि उसके अंदर भी राष्ट्र भक्ति जीवित है शायद इन्हीं संवेदनाओं के कारण उसके अंदर जीने की लालसा भी है, और यही जीने की लालसा उसे आम आदमी से ऊपर उठाता मेरी राय में रजआ को अमरकांत जी ने एक ऐसे पात्र के रूप में उतारा है जो हम सभी समान्य जन के लिए एक जीता जागता उदाहरण बनकर प्रस्तुत हुआ है। जिस रजुआ को रजुआ साला सभ्य समाज कहकर पुकारता था वही पूरे समाज के लिए एक उदाहरण के रूप में प्रसतुत होता है। पूरी कहानी पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि रजुआ के माध्यम से लेखक ने खुद के अंदर चल रहे सामाजिक विभिन्नता के प्रति, छुआछूत के प्रति जो अंतद्वंद छिपा हो उसको प्रकट करना चाह रहे हो क्योंकि वो चाहकर भी नहीं कर पाते। रजुआ का चरित्र लेखक ने ऐसे प्रस्तुत किया है कि एक बार कहानी अध्ययन करने के बाद मानस पटल पर छाया रहेगा। अमरकांत जी ने रजुआ के माध्यम से हम जैसे सभ्य सामाजिक प्राणियों को सोचने पर विवश कर दिया है कि क्या हम वास्तव में इन्सान कहलाने के योग्य हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कालिया, रवींद्र, संपादक अमरकांत की संपूर्ण कहानियां भग १ भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली प्रथम संस्करण
2. हिन्दुस्तान दैनिक समाचार पत्र डाँ काशीनाथ सिंह १८ फरवरी २०१४ प स ०७
3. गुप्त, भैरव प्रसाद, जिंदगी और जोंक भुमिका से उद्धृत प स ६
4. कुमार, डॉ संजय अमरकांत से साक्षात्कार ५ अमरकांत के कथा साहित्य में मध्यमवर्ग से उद्धृत नमन प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण २०११

राजस्थानी साहित्य एवं संस्कृति में पर्यावरण चेतना

महेन्द्र सिंह

शोधार्थी, प्राकृत एवं संस्कृत विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, (मान्य विश्वविद्यालय) लाडनूं-राजस्थान

जलवायु में होती उथल पुथल, बढ़ता तापान्तर, जल संकट और वायु प्रदुषण के बढ़ते प्रकोप ने बौद्धिक जगत् को पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूक किया है। औद्योगिक सभ्यता ने पेड़ों सहित प्रकृति में जो कुछ भी है उसे व्यापार की वस्तु बना दिया और हर वस्तु की कीमत उससे मिलने वाले भौतिक लाभ से आंकी जाती है। इसी का परिणाम है कि पूरी दुनिया में वनों को निर्दयता से काटा जा रहा है। जैसे जैसे आर्थिक वृद्धि के ऊपर आधारित विकास की गति बढ़ती जा रही है, उसके साथ-साथ वनों के विनाश की गति भी तीव्र होती जा रही है। इसके कारण प्राणीमात्र के अस्तित्व के लिए ही खतरा पैदा हो गया है।

भारत की अरण्य संस्कृति ने पेड़ों के प्रति पूजा की भावना के संस्कार दिये है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि वृक्षों में, मैं पीपल हूँ। महाभारत के शांति पर्व में वेदव्यास ने बहुत स्पष्ट ढंग से कहा है कि-पेड़ हमारी तरह सांस लेते हैं, इन्हें भूख और प्यास लगती है, वे बीमार पड़ते हैं, वे संवेदनशील होते हैं। इसको प्रो. जगदीश चन्द्र बसु ने अपने वैज्ञानिक प्रयोगों से इस शताब्दी के प्रारम्भ में ही सिद्ध कर दिया है। इस सत्य को विज्ञान का अगुवा होने का ढिंढोरा पीटने वाला पश्चिम जगत् भी अब महसूस करने लगा है।

प्रत्येक जाति, समाज और कबीले की कुछ निजी विशेषताएं व खासियते रही है, जिससे उसकी अनुठी आंचलिक पहचान कायम रहती है। इसी पहचान के आधार पर पूरे विश्व में राजस्थान की अलग ही छवि है। वैसे तो भारत की अरण्य संस्कृति सहस्त्र वर्षों से सामाजिक समरसता और मनुष्य व प्रकृति के आपसी तालमेल की सूचक रही है, परन्तु इस दृष्टि से राजस्थानी लोकजगत भी अपना अद्वितीय व विशिष्ट स्थान रखता है।

यह लोक जगत् युगों युगों से पर्यावरण के प्रति अति सचेत, जागरूक और संवेदनशील रहा है। पर्यावरण की शुद्धता व सुचिता हेतु सदियों पूर्व स्थापित अवधारणाएं आज भी लोक में स्थिर कायम है।

राजस्थानी साहित्य एवं संस्कृति में पर्यावरण चेतना विषय पर चिंतन करते हैं तो दो स्थितियां दृष्टिगत होती है। पहली ऐसी कौन-कौन-सी सामाजिक अवधारणाएं है जो लोक संस्कृति में पर्यावरण चेतना और जागरूकता को उजागर करती है तथा दूसरी ये कि कौन-कौनसे लोकगीतों, लोक कहावतों व लोक साहित्य में वहां की प्रकृति की भांति-भांति की छवि दर्शाते हुए पर्यावरण संरक्षण का संदेश दिया गया है।

राजस्थानी लोक में पर्यावरण चेतना की जिन तीन प्रमुख अवधारणाओं का वृहत योगदान रहा है वो है-1. ओरण, 2. आगोर और 3. गोचर।

1. ओरण: इस प्रदेश का कोई गांव ऐसा नहीं होगा जिसमें ग्रामदेवता, लोक देवता या पौराणिक देवता के मंदिर के आसपास ओरण ना हो। ओरण एक तरह से आरक्षित वन खंड ही होता है। जिस तरह आज पर्यावरण संरक्षण हेतु देश-विदेश में सामाजिक वानिकी के विकास और रक्षार्थ भांति-भांति के संगठन सक्रिय है, उसी भांति हमारे यहां की युगों प्राचीन ओरण की अवधारणा उसी सामाजिक वानिकी का स्वरूप मानी जा सकती है। इस ओरण की परिधि में से पेड़ काटना वर्जित माना जाता है। लोक चेतना में यह दृढ़ धारणा रही है कि जो कोई ओरण के पेड़ों की लकड़ी काटेगा तो वो देव कोप का भागी बनेगा। ओरण और वहां के वृक्षों के प्रति लोक चेतना में सदा पूज्य भाव रहा है और श्रद्धा भाव ही पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ओरण शब्द संभवत: 'अरण्य' का तद्भव रूप है।
2. आगोर: गांव में नदी या तालाब के जल संग्रहण क्षेत्र को 'आगोर' कहा जाता है। पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से गांव में सभी लोग आगोर की सुचित के प्रति विशेष रूप से सावधान व जागरूक रहते हैं। बच्चों से लेकर बुढ़ों तक किसी भी परिस्थिति में आगोर की सीमा में मल-मूत्र त्याग नहीं करते क्योंकि इस से जल प्रदुषण काखतरा रहता है। सभी लोग इस अलिखित कानून की पालना करते हैं।
3. गोचर: ओरण की तरह प्रत्येक गांव में पशुओं के चारागाह और रक्षण स्वरूप आरक्षित वनखण्ड को गोचर कहा जाता है। गोचर भूमि का अतिक्रमण धार्मिक दृष्टि से पाप व सामाजिक दृष्टि से निदंनीय अपराध माना जाता है।

इन प्रमुख अवधारणाओं से इतर भी पर्यावरण संरक्षण के जतन और वृक्षों के प्रति श्रृद्धा भाव लोक जगत में पाया जाता है। यहां के लोग पीपल, वट, खेजड़ी और तुलसी आदि की पूजा करते है और उसे काटना पाप समझा जाता है। यहां वट वृक्ष में वसुदेव, पीपल में विष्णु और आक में महादेव का वास माना जाता है। यहां औरते लोकगीतों में गाती है-

पीपल पूजण म्हैं गई, कुळ आपणै री लाज।
पीपळ पूज्यां हर मिल्यों, एक पंथ दो काज।।

वैसे तो पर्यावरण संरक्षण को लेकर राजस्थान के लोक जगत में परम्परा से जागृति थी लेकिन 1451 में जन्में गुरू जांभौजी ने पर्यावरण चेतना को नई दिशा दी।[1] गुरू जांभौजी को प्रथम पर्यावरण वैज्ञानिक कह दें तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। उन्होंने सन् 1485 ई. में विश्नोई पंथ की स्थापना की जिसके 29 धार्मिक नियम है और उनमें अधिकांश पर्यावरण संरक्षण से संबंधित है जैसे कि हरे वृक्ष नहीं काटना, जीवों पर दया करना, मांस भक्षण नहीं करना, पानी और दूध छान कर पीना, ईंधन को झाड़ कर काम में लेना आदि।[2]

गुरू जांभोजी के पर्यावरण आंदोलन को विश्नोई पंथ ने आगे बढ़ाया। आज भी वो पेड़ और पशुओं की रक्षा अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं। अपने गांव और आसपास की भूमि में पेड़ों को काटने और पशुओं को मारने नहीं देते हैं।[3] विश्नोइयों ने पेड़ों की अन्ध श्रद्धा से पूजा ही नहीं की, पेड़ों की रक्षा के लिए शीश भी कटवाए हैं। जोधुपर के निकट खेजड़ली गांव में विश्नोई अमृता देवी और उसके 362 साथियों का 1730 में हुआ बलिदान मानव जाति के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है।[4] 70 के दशक में उत्तराखण्ड में जन्मा 'चिपको आंदोलन' इसका बीसवीं सदी का संस्करण है। कुल्हाडिघ्यों का वार सहने से पूर्व अमृता देवी ने कहा था कि-'सिर साटे भी रूंख रहे तो भी सस्तो जाण'। अर्थात् सिर के बदले भी वृक्ष बचता है तो भी महंगा नहीं है।

इन अवधारणाओं व आंदोलनों के अलावा भी राजस्थानी लोक साहित्य की विविध विधाओं में पर्यावरण व प्रकृति से संबंधित दृष्टांत मिलते हैं। 'गांव-गांव खेजड़ी अर गांव-गांव गोगो' जैसी लोक कहावतों से यहां के लोगों का प्रकृति के प्रति लगाव दृष्टिगत होता है। ये लोक चेतना का प्रभाव ही है कि आक जैसे साधारण वृक्ष को भी बिना काम घाव लगाना वर्जित माना जाता है।

आक न अहळोकाटिये, नीम न घालो घाव।
जो रोहिड़ो बाढ़सी, दरगा होसी न्याव।।

अर्थात् किसी भी वृक्ष को काटने का न्याय भगवान् के दरबार में होगा। वृक्ष रक्षा हेतु यहां के आधुनिक कवि पुष्पेन्द्र जी जुगतावत ने भी लिखा है कि-

परम आसरो पामियो, अठे नित पंथिये,
चरम त्रिप्ती थई पूर्ण इंछा।
बावळा नरम नाजुक घड़ी विचारो,
रूंख रिछपाल री करो रिच्छा।
इये ने राखियों टळै दर आपदा,
सदा चाकर रहै पवन वरसा।
प्राणदा हरित ने पोखजो प्राणियों,
कुदिन निवड़े हुवे सुखी करसा।।[5]

इसी तरह वृक्षों के प्रति आदरभाव रखने संबंधी एक दोहे में कवि लक्ष्मणदान जी कविया ने लिखा है कि-

पग पग परघै पूजती, उर में राख उमाव।
मनु हीयै रै मायने, बिरछां आदर भाव।।[6]

वृक्ष रक्षा के साथ-साथ जल संरक्षण को लेकर भी राजस्थान का लोक मानस अति सचेत रहा है। क्योंकि साल दर साल पड़ते अकालों से जूझते मरूस्थल के मानव से ज्यादा जल संरक्षण की महत्ता कौन समझ सकता है? यहां का लोक प्रचलित दोहा है कि-

पाणी बूंद न जावजो, भलै लोही जावजो लक्ख।
सिर सगळो ही जावजो, पण नाक न जाजो नक्ख।।

अर्थात् सिर भले ही कट जाय परन्तु मर्यादा का प्रतीक नाक नहीं कटना चाहिए वैसे ही रक्त बहे तो बहे पर पानी व्यर्थ नहीं बहना चाहिए। इसी भावना को आधुनिक कवि विरेन्द्र जी लखावत ने अपने शब्दों में व्यक्त करते हुए लिखा है कि-

आप बचाय लहो इतरो जत्त, जा सूं बचौ सब री जिंदगाणी।
नेह सू मेह रो नीर घरै संचय करणा री सबै समझाणी।
पालर पानी री एक एक बूंद रो लेखो लिया ही बचौला पाणी।
होद बणा हर एक ही आंगण, मांगण री मत राख मचाणी।।[7]

सार संक्षपे यह है कि राजस्थानी लोक साहित्य पर्यावरण चेतना तथा प्रकृति के संदेशों से अटा पड़ा है। पर्यावरण की पीड़ा व चेतना को लेकर यहां का साहित्यकार भी सदैव सजग रहा है। पर्यावरण की चिंता करने के साथ उसको सुधारने का चिंतन भी किया है। प्रकृति के साथ आत्मीयता से जुड़कर उसका पोषण करने की सीख दी है तो शोषण करने वालों को दुत्कारा भी है।

संदर्भः

1 महोश्वरी, हीरालाल,, जांभोजी, विश्नोई संप्रदाय और साहित्य, प्रथम भाग, पृ. 238
2 महोश्वरी, हीरालाल,, जांभोजी, विश्नोई संप्रदाय और साहित्य, प्रथम भाग, पृ. 238
3 चारण, रामनाथ रत्नु, इतिहास राजस्थान, 1829 ई., पृ. 11,
4 स्वामी सच्चिदानंद, श्री जंभगीता, पृ. 47
5 Net.Ref.charans.org
6 Net.Ref.charans.org
7 Net.Ref.charans.org

विजयसिंह पथिक की भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन में भूमिका

डॉ० किशोर कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास, कु. मा. राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बादलपुर, ग्रेटर नॉएडा, गौतमबुद्ध नगर उतर प्रदेश

भूपेन्द्र सिंह

शोधकर्ता, विभाग इतिहास, कु. मा. राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बादलपुर, ग्रेटर नॉएडा, गौतमबुद्ध नगर उतर प्रदेश

राजस्थान में बिजौलिया किसान आन्दोलन के सफल प्रणेता और रियासती राज्यों के कृषकों और मजदूरों की समस्याओं को राष्ट्रीय फलक पर ले जाने में विजयसिंह पथिक की विशिष्ट भूमिका थी। पथिक का बचपन का नाम भूपसिंह राठी गुर्जर था। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में उनका प्रवेश एक क्रान्तिकारी के रूप में हुआ था। विजयसिंह पथिक विचार, कार्यान्वयन और नेतृत्व गुणों से सम्पन्न थे। उनका क्रान्तिकारी जीवन शचीन्द्र नाथ सान्याल और रास बिहारी बोस के नेतृत्व में आरम्भ हुआ। उन्होंने अनुशीलन समिति के सदस्य के रूप में विधिवत् रूप से क्रान्तिकारी जीवन की शुरुआत की। शचीन्द्र नाथ सान्याल के अखिल भारतीय स्तर पर एक साथ सशस्त्र क्रान्ति फैलाने के लिए, राजस्थान से हथियारों को एकत्रित करना, निर्माण करना और मरम्मत करने का जिम्मा विजयसिंह पथिक का ही था। इस कार्य हेतु पथिक ने 1911 तक राजस्थान में वीर भारत तथा अनुशीलन भारत नामक दो क्रान्तिकारी संगठनों के लिए विभिन्न शाखाएं बनाई थी। ब्रिटिश शासन को सूचना मिल जाने के कारण क्रन्तिकारी आन्दोलन का विशिष्ट प्रयास विफल रहा। इसके उपरांत विजयसिंह पथिक ने आजादी के लिए दूसरी योजनाओं पर कार्य करना प्रारंभ किया, समाज में जागरूकता लाने और सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए प्रेस, शिक्षा, सत्याग्रह तथा रियासतों के किसानों की समस्याओं के निवारण के लिए जीवन भर संघर्ष किया। प्रस्तुत लघु शोध पत्र में राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, राजस्थान राजकीय अभिलेखागार, बीकानेर से प्राप्त मौलिक शोध सामग्री, डॉण्पदम सिंह वर्मा की कृति 'विजय सिंह पथिक', प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, एण्आरण् देसाई की किताब 'भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि', डाण्गोपीनाथ शर्मा द्वारा बीकानेर अभिलेख से प्राप्त सामग्री, राजकीय मुद्रणालय, बीकानेर, सुमनेश जोशी की पुस्तक 'राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी', ग्रन्थागार जयपुर, फोरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट सीक्रेट, डॉ. कन्हैयालाल राजपुरोहित की किताब 'स्वाधीनता संग्राम में राजस्थान की आहूतियाँ' के अवलोकन में विजय सिंह पथिक की क्रान्तिकारी गतिविधियों को प्रस्तुत करने का प्रयास है।

मुख्य शब्द- क्रान्तिकारी आन्दोलन, पथिक, भूपसिंह, राजस्थान, बंगाल, ब्रिटिश शासन, रियासती राज्य

प्रस्तावना

विजय सिंह पथिक (1882-1954) का जन्म गुलावठी, जिला बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश, भारत में एक गरीब गुर्जर परिवार में हुआ था। विजयसिंह पथिक के पिता हमीरसिंह ने भी 1857 के विद्रोह में सक्रिय भाग लिया था। विजयसिंह पथिक का असली नाम भूपसिंह राठी गुर्जर था, लेकिन 1915 में लाहौर षड्यंत्र मामले में भूपसिंह का नाम आने के बाद उन्होंने नाम बदल कर विजयसिंह पथिक कर लिया था। बुलंदशहर जिले में 1857 के संघर्ष में अपने दादा के बलिदान, ताऊ और पिता के 1857 के सिपाही विद्रोह में योगदान ने पथिक को देश की आजादी में योगदान देने के लिए प्रभावित किया और पथिक किशोरावस्था में ही क्रांतिकारी संगठन में शामिल हो गए। भारत में ब्रिटिश शासन के खिलाफ सक्रिय भाग लिया। और राजस्थान में स्वतंत्रता आंदोलन को नयी दिशा देने में विशेष भूमिका का निर्वहन किया। उनकी प्रारंभिक शिक्षा उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर जिला के सिकंदराबाद परगना के पालगढ़ के प्राइमरी स्कूल में हुई। कालेज या स्कूल में पढ़ने का अवसर शायद उन्हें नहीं मिला। प्रारंभिक शिक्षा के पश्चात वे अपनी बड़ी बहन के पास इंदौर चले गए। सन् 1905 में इन्दौर में ही भूपसिंह की भेंट प्रसिद्ध क्रान्तिकारी शचीन्द्र नाथ सान्याल से एक फुटबॉल मैच के दौरान हुई।[1] और जल्द ही 'पथिक' शचीन्द्र नाथ सान्याल के क्रांतिकारी संगठन में शामिल हो गए।[2]

क्रांतिकारी संगठन 'अनुशीलन समिति' के नेता अपने क्रान्तिकारी सदस्यों में बौद्धिक चेतना जागृत करने के लिये उनमें अध्ययनशीलता को बढ़ावा देने पर बल देते थे। भारत की संस्कृति, साहित्य, दर्शन, भावनाएं, इतिहास एवं राजनीति इत्यादि का अध्ययन करने पर बल देते थे। यह बहुत सम्भव है कि शचीन्द्र सान्याल तथा रास बिहारी के सम्पर्क में आने पर तथा क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो जाने पर भूपसिंह को अध्ययन की सुविधा मिली हो। जो भी हो भूपसिंह को यद्यपि विधिवत किसी कालेज में शिक्षा प्राप्त नहीं हुई परन्तु उनका अध्ययन बहुत विस्तृत और गम्भीर था।[3]

बंगाल में श्री अरविंद घोष के छोटे भाई वारीन्द्र घोष का माणिकतल्ला में एक उद्यान था। इस उद्यान में क्रान्तिकारी दल ने बम बनाने तथा अस्त्र-शस्त्र रखने का केन्द्र स्थापित किया था। इस दल के कुछ लोग तो प्रसिद्ध क्रान्तिकारी पत्र "युगान्तर निकालते थे। यहीं पर भूपसिंह को अखबारों के छपने की तकनीक और बारीकियों को समझने का अवसर भी मिला था। उनकी तीक्षण बुद्धि ने इसे अल्प समय में सीख लिया, जिसे उन्होंने अपने द्वारा पांच अखबारों के सम्पादन के दौरान इस्तेमाल या सदुपयोग किया था। भूपसिंह की इसी स्थान पर कुछ शिक्षा-दीक्षा हुई होगी। ये सब क्रान्तिकारी अनुशीलन समिति के सदस्य थे। अनुशीलन समिति का उद्देश्य ब्रिटिश शासन को सशस्त्र क्रान्ति द्वारा उखाड़ फेंकना था।[4]

भारतीय क्रन्तिकारी आन्दोलन के लिए सान्याल और रासबिहारी बोस 'अभिनव भारत समिति' द्वारा देश में सशस्त्र क्रांति की योजना में लगे थे। विजयसिंह 'पथिक' ने राजस्थान में 'वीर भारत सभा' नामक गुप्त संगठन की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन की थी। इसी समय राजस्थान में किसान आंदोलन भी हो रहे थे। मेवाड़ में बिजौलिया नामक गांव में किसान आंदोलन का सूत्रपात हुआ। पथिक के संज्ञान में किसानों की समस्याएं आई तो वे बिजौलिया आ गए। यहाँ आकर किसानों की समस्याओं के निवारण के लिए पथिक ने 'विद्या प्रचारिणी सभा' की स्थापना की। कृषकों को जागरूक करने के लिए विशेष कार्य किये, जिससे कृषक संगठित हो गए और एक संगठित आंदोलन के लिए प्रेरित हो गए। इस जागरूकता के अंतर्गत पथिक ने किसानों की समस्याओं को समाचार पत्रों के माध्यम से छपवाना आरम्भ किया, जिसमें वे स्वयं भी कृषक समस्याओं पर लिखते थे। इस तरह उनके पत्रकारीय जीवन की शुरूआत हुई। उन्होंने पत्रकार के रूप में गणेश शंकर विधार्थी के साथ भी कार्य किया।

क्रांतिकारी आन्दोलन के तहत सन् 1905 में इन्दौर में ही प्रसिद्ध क्रान्तिकारी शचीन्द्र नाथ सान्याल से भूपसिंह की भेंट हुई।[5] भूपसिंह के चाचा बलदेव सह महू केम्प में सूबेदार थे। बलदेवसिंह खुद एक महान देशभक्त थे और अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह को भड़काने की कोशिश कर रहे थे।[6] शचीन्द्र नाथ सान्याल ने उनकी भेंट रासबिहारी बोस से कराई और भूपसिंह अनुशीलन समिति के क्रान्तिकारी सदस्य बन गए। सन् 1907 में क्रान्तिकारी कार्यों के प्रशिक्षण के लिए ढाका भी गए। वहीं से युगान्तर अखबार में काम करना सिखा और उनके मुख्य सम्पादकों में से एक बन गए[7]। क्रान्तिकारी सरकारी मशीनरी को नुकसान पहुँचाते थे। क्रान्तिकारियों द्वारा ब्रिटिश राज्य का तख्ता पलटने के लिए बहुसूत्री कार्यक्रम संचालित किये गए, जिसके अंतर्गत-

1. मीडिया के माध्यम से लगातार प्रचार करना और शिक्षित वर्ग में ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध एकता की भावना सृजित किया जाना।
2. जुलूस, हड़ताल, सामाजिक जागरूकता के कार्यक्रम आयोजित किये जाना।
3. क्रन्तिकारी गतिविधियों के लिए आवश्यक हथियार की व्यवस्था करना।
4. शहीदों के बलिदान और त्याग को जलसे और नाटक के माध्यम से लोगों के समक्ष प्रस्तुत करके देशभक्ति जगाना।
5. चंदे और डकैती के जरिए पैसा इकट्ठा करना।
6. युवकों को सैनिक शिक्षा, व्यायाम, धार्मिक कार्यक्रमों के लिए तैयार करना।

भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन में दो विचारधाराएँ थीं। प्रथम-कुछ क्रान्तिकारी अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र आन्दोलन करने के लिए भारतीय सेना की और यदि सम्भव हो तो अंग्रेजों के विदेशी शत्रुओं से भी सहायता लेने का प्रयास करते थे। जबकि दूसरी विचारधारा के क्रान्तिकारी देश में हिंसात्मक कार्यक्रम जैसे कि ब्रिटिश अफसरों, पुलिस और क्रान्तिकारी नेताओं के विरुद्ध सूचना देने वाले मुखबिरों को अपने रास्तें से हटाने की गतिविधियों में संलग्न थे। क्रान्तिकारियों का विश्वास वन्दे मातरम् में छपे इस लेख से स्पष्ट है-"हिन्दुस्तानी और अंग्रेज हर तरह के सरकारी अधिकारी को आतंकित किये रहा और तब अत्याचार के समूचे तंत्र का विनाश समीप होगा.....अलग-अलग हत्याओं का तरीका अफसरशाही को क्रियाहीन और लोगों को जगाने का सबसे कारगर सम्भव तरीका है।[8] क्रान्तिकारी अंग्रेजों से धन लूटते थे और उन अधिकरियों की हत्या पर विशेष ध्यान देते थे, जो गरीब भारतीयों का दमन करते थे। क्रान्तिकारियों की सूची में ऐसे ही अधिकारी बंगाल का लार्ड फ्रेजर' तथा कलकत्ता जिलाधीश किंग्सफोर्ड थे। लार्ड फ्रेजर' की स्पेशल रेलगाड़ी को बम से उड़ाने का असफल प्रयास किया। जिसमें बम से रेलगाड़ी पलटी नहीं वरन् पटरी से उतर गई। इस कार्य में भूपसिंह मुख्य भूमिका में थे।[9] स्थानान्तरण के बाद मुजफ्फरपुर (बिहार) में गए किंग्सफोर्ड की हत्या का काम खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी को सौंपा गया। 30 अप्रैल 1908 को किंग्सफोर्ड के बंगले से आती फुल्टन कार को निशाना बनाया गया जिसमें दो अंग्रेज महिला मारी गई। अनुमान लगाया गया था कि उस गाड़ी में किंग्सफोर्ड है,क्योंकि उनकी कार भी वैसी ही थी। इसके प्रतिक्रियास्वरूप सरकार ने तलाशी अभियान तेज कर दिया और 1908 को बारीन्द्र घोष के मणिकतल्ला बाग पर छापा मारा, जो क्रान्तिकारियों का प्रशिक्षण केन्द्र के साथ-साथ शस्त्र भण्डार का केन्द्र भी था। भारी गोला-बारुद और हथियारों सहित 36 क्रान्तिकारी पकड़े गए। इनमें भूपसिंह भी एक थे।[10] इनमें कुछ को फाँसी दे दी, कुछ को कालेपानी की सजा भेज दिया गया और कुछ जमानत पर छूट गए। भूप सिंह पर कोई अपराध सिद्ध नहीं हो सका और वे छूट गए। इस केस में नरेन्द्रनाथ गोस्वामी सरकारी गवाह बन गए। क्रान्तिकारी आन्दोलन में धोखा देने वाले गद्दार के लिए मरना ही उपचार समझा जाता था। नरेन्द्रनाथ गोस्वामी के मामले को अलीपुर जेल में बन्द सतेन्द्र कुमार तथा कन्हाई लाल को सौंपा गया। भूपसिंह बिहारी मजदूर के रूप में फिर से जेल गए और दोनों को रिवाल्वर उपलबध कराई।[11] नरेन्द्र नाथ गोस्वामी की हत्या कर दी गई। सतेन्द्र कुमार को उसकी सजा में फाँसी लगाकर उसका शव जेल में ही फूँक दिया गया। क्रान्तिकारियों में विद्रोह की लहर दौड़ पड़ी, विरोधस्वरूप विभिन्न स्थानों पर बम फेंककर सरकार को आतंकित किया गया। ग्रेस्ट्रीट (कलकत्ता) में भूपसिंह ने बम फेंका, 2 जून 1908 को कलकत्ता में बैंक डकैती डाली गई। भूपसिंह ने पहरेदार सहित चार लोगों को गोली से मार दिया। अलीपुर जेल के सरकारी वकील विश्वास को 10 फरवरी 1909 में बसु तथा भूपसिंह ने गोली मार दी, बसु पकड़े गए परन्तु भूपसिंह भागने में सफल रहे। इसके बाद डिप्टी सुपरिटेन्डेंट, जो इस मुकद्मे की पैरवी कर रहा था, को भूपसिंह ने गोली से मार दी।[13]

भूपसिंह बम बनाने, हथियार चलाने, आतंकित क्रान्ति की सैद्धान्तिक और प्रायोगिक शिक्षा लकर एक सम्पूर्ण क्रान्तिकारी बन गए थे। धन संचय के लिए सरकारी डांके, राजनीतिक हत्याएँ, सरकार के दमन का प्रतिशोध तथा हथियारों को जिस विधि से प्राप्त किया जा सके उनके लक्ष्य बन गए थे। शचीन्द्र नाथ सान्याल अखिल भारतीय स्तर पर क्रान्तिकारी संगठनों के कार्य में संलग्न थे, उन्होंने राजस्थान में इसका जिम्मा भूपसिंह को सौंपा।[14] 1911 तक भूपसिंह ने राजस्थान में वीर भारत समाज तथा अभिनव भारत नामक दो क्रान्तिकारी संगठनों की शाखाएँ स्थापित कर ली थी।

जब ब्रिटिश सेना में तोड़ेदार बन्दूकों के स्थान पर दूसरी बन्दूकें आ गई। तो पुरानी बंदूकों की उपयोगिता कम हो गई। जिससे धीरे-धीरे उनके कारतूस भी मिलने बन्द हो गए जिससे उनकी कीमत और कम हो गई। क्रान्तिकारियों की आवश्यकता हथियार प्राप्त करना ही था। देशी रियासतों में ब्रिटिश भारत की तुलना में हथियार खरीदना या प्राप्त करना आसान था। भूप सिंह को राजस्थान उसी उद्देश्य के लिए भेजा गया ताकि वह तलवार, भाले, करछी और बन्दूक आदि एकत्रित करके क्रान्तिकारियों के पास भेज सके।[15] अपनी गतिविधियों को अंजाम देने के लिए भूप सिंह ने अजमेर में रेलवे वर्कशॉप में नौकरी कर ली। वहीं पर रहकर पुरानी तोड़ीदार बन्दूकों की मरम्मत करनी सीख ली तथा उसके खाली कारतूसों को भरना भी सीख लिया तथा वर्कशॉप में कार्य करने वाले एक व्यक्ति सुखदीन मिस्त्री को अपने प्रभाव में लेकर क्रान्तिकारी दल का सदस्य बना लिया।[16] इस तरह पथिक क्रन्तिकारी गतिविधियों में तीव्रता लाने के लिए राजस्थान में एक अस्त्र-शस्त्रों का एक कारखाना खोलना चाहते थे। ताकि क्रन्तिकारी गतिविधियों के लिए हथियारों की आवश्यकता की पूर्ति निर्बाध रूप से पूरी की जा सके।[17]

रास बिहारी बोस राजस्थान के कई देशी राजाओं के सम्पर्क में थे और क्रान्ति में उनकी सहायता प्राप्त करना चाहते थे। उन्होंने इसी कार्य के लिए पथिक को चुना था। उन्होंने इस कार्य के लिए कई राज्यों के राजाओं से सम्पर्क किया और उनसे सम्बन्ध बनाये। इसी क्रम में पथिक खुद खारवा ठाकुर गोपाल सिंह के निजी सचिव हो गए और उनका सहयोग प्राप्त करके क्रान्तिकारी गतिविधियों में अपना विशेष योगदान दिया।[18]

1911 में कलकत्ता से राजधानी को दिल्ली स्थान्तरित किया जाना तय हुआ तो दिल्ली के चांदनी चौक में औपचारिक उद्घाटन समारोह का आयोजन किया जाना प्रस्तावित था, जिसमें भारत के वायसराय का जुलूस निकाला जाना था। इसी जुलुस को क्रान्तिकारियों ने निशाना बनाकर आक्रमण करने की योजना बनायीं। दिसम्बर 1912 में वायसराय के जुलूस के चांदनी चौक से निकलने के दौरान रास बिहारी बोस, शचीन्द्र नाथ सान्याल, यशपाल, विश्वास, बसन्त कुमार, प्रताप सिंह, अमीचन्द्र तथा भूपसिंह ने वायसराय के ऊपर बम फेंका। अफरातफरी के माहौल में क्रांतिकारी वहां से निकल गए पर वायसराय बच गए, लेकिन उनका अंगरक्षक मारा गया। इस तरह इस केस को दिल्ली षड़यंत्र के नाम से जाना गया, जिसमें कुछ क्रान्तिकारी जेल गए तथा न्यायालय ने आरोपी क्रांतिकारियों को सख्त से सख्त सजा सुनाई गई। इस मामले में पथिक साफ बचकर निकल गए।[19]

दिसम्बर 1914 में भारत के समस्त क्रान्तिकारियों का सम्मेलन बनारस में प्रस्तावित किया गया। जिसे बनारस योजना के नाम से जाना जाता है। भारत के महान क्रन्तिकारी रासबिहारी बोस ने भारतीय सेना के कुछ अधिकारीयों से मिलकर उत्तर भारत में एक साथ क्रान्ति की योजना पर काम करना शुरू किया। उस समय वर्तमान के पाकिस्तान के फिरोजपुर, लाहौर और रावलपिण्डी में सेना के बड़े शस्त्रागार थे, उन पर कब्जा करके क्रान्ति के आरम्भ की योजना बनाई गई।[20] योजना की तिथि 21 फरवरी 1915 तय की गई। 31 जनवरी तक सारी तैयारी पूरी कर ली गई।

1915 में रास बिहारी बोस के नेतृत्व में लाहौर में क्रान्तिकारियों ने निर्णय लिया कि 21 फरवरी को देश के विभिन्न स्थानों में 1857 की क्रान्ति की तर्ज पर सशस्त्र विद्रोह किया जाए। भारतीय इतिहास में इसे गदर आन्दोलन कहते हैं। योजना यह थी कि एक तरफ तो भारतीय ब्रिटिश सेना को विद्रोह के लिए उकसाया जाए और दूसरी तरफ देशी राजाओं की सेनाओं का विद्रोह में सहयोग प्राप्त किया जाए। राजस्थान में इस क्रान्ति को संचालित करने का दायित्व भूपसिंह (विजयसिंह पथिक) को सौंपा गया। क्रान्तिकारी भूपसिंह को बयावर और नसीराबाद की छावनियों पर आक्रमण का जिम्मा सौंपा गया।[21] उस समय भूपसिंह फिरोजपुर षड़यंत्र केस के सिलसिले में फरार चल रहे थे और खरवा (राजस्थान) में गोपाल सिंह के पास रह रहे थे। दोनों ने मिलकर दो हजार युवकों का दल तैयार किया और तीस हजार से अधिक बन्दूकें एकत्र कीं। 3000 से ज्यादा बन्दूक और बहुत-सा गोला बारुद एवं अनेक क्रान्तिकारी भूपसिंह ने एकत्रित कर लिए। दुर्भाग्य से 21 फरवरी को होने वाली क्रान्ति मुखबिर द्वारा सरकार को सूचना देने के कारण असफल हो गई। अंग्रेजी सरकार पर क्रान्तिकारियों की देशव्यापी योजना का भेद खुल गयाए तो देश भर में क्रान्तिकारियों को समय से पूर्व पकड़ लिया गया। भूपसिंह और गोपाल सिंह ने गोला बारूद भूमिगत कर दिया और सैनिकों को बिखेर दिया गया। किसी अगली कार्यवाही से सावधान भूपसिंह ने क्रान्ति असफल होते ही एकत्र अस्त्र-शस्त्र और क्रान्तिकारियों को व्यवस्थित किया और अन्य अस्त्र-शस्त्रों को तथा गोला-बारुद को गुप्त स्थानों पर छिपा दिया और क्रान्तिकारी सैनिकों को बिखर जाने का आदेश दिया।[22] कुछ ही दिनों बाद अजमेर के अंग्रेज कमिश्नर ने पाँच सौ सैनिकों के साथ पथिक और गोपाल सिंह को खरवा के जंगलों से गिरफ्तार कर लिया और टाडगढ़ के किले में नजरबंद कर दिया। इसी समय लाहौर षड़यंत्र केस में पथिक का नाम उभरा और उन्हें लाहौर ले जाने के आदेश हुए[23]। आशानुरूप उन्हें ब्रितानी सेना गिरफ्तार करने आ गई। भूपसिंह एवं ठाकुर गोपाल सिंह को गिरफ्तारी की सूचना पहले ही मिल गई थी। बन्दी बनकर रहने या फांसी पर लटककर मरने से बेहतर है कि अंग्रेजों से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हों, का प्रस्ताव भूपसिंह ने साथियों के समक्ष रखा, जिसे सब साथियों ने स्वीकार कर लिया। सब साथियों को हटा दिया गया तथा भूपसिंह, ठाकुर गोपाल सिंह, मोठ सिंह, रलिया राम और सवाई सिंह पांचों ने बहुत से हथियार और खाने-पीने की चीजें लेकर खारवा के गढ़ से निकलकर रातों-रात दूर जंगल में अपना ओंहदी (शिकारी बुर्ज) बनाकर वहाँ मोर्चाबन्दी की।[24] पीछा करते हुए अंग्रेज कमिश्नर 500 सैनिकों की टुकड़ी के साथ शिकारी बुर्ज पर आ धमका। उसने यथासंभव उनको आत्समर्पण का प्रयास किया। परन्तु असफल रहा और आक्रमण भी न कर सका। उसे स्थानीय जनता के विरोध का भय था, साथ ही साथ क्रान्ति के विस्तार का भय सता रहा था और उसे किसी भी कीमत पर गोली चलाने की अनुमति न थी।[25] अन्त में सम्मानजनक समझौता 25 जून 1915 दोनों पक्षों के बीच हो गया,[26] जिसमें भूपसिंह और उसके साथियों को टाटगढ़ के किले में नजरबंद कर दिया गया। उनको आवश्यक हथियार रखने तथ शिकार खेलने की छूट मिल गई तथा 3 मील तक कोई सैनिक या फौज नहीं रहेगी। तहसीलदार की निगरानी में उनको रखा गया[27]। इस समझौते के कुछ दिन बाद ही सोमदत्त नामक मुखबिर की सूचना पर भूपसिंह का नाम प्रथम लाहौर षड़यंत्र केस में आ गया। लाहौर से तुरन्त भूपसिंह को गिरफ्तार करने का वारंट टाटगढ़ आ गया। इसके टाटगढ़ आने के पूर्व ही भूपसिंह को उसकी सूचना मिल गई और भूपसिंह वेश बदलकर पहरेदारों से छिपकर घने जंगल में जा छिपे। घटना 10 जुलाई 1915 की है।[28] लम्बी थकान और जंगली जानवर से घायल भूपसिंह ने अपने चार साथियों को टाटगढ़ के किले से नजरबंदी से बाहर निकालने का सफल प्रयास किया। सरकारी भय से कोई देशी राजा सहायता को तैयार न हुआ। टाटगढ़ के राजा से बलपूर्वक संसाधन जुटाकर अन्य साथियों को नजरबंदी से मुक्त कराया और सब अलग-अलग जगह चले गए।[29] क्रान्ति की असफलता के बाद उनके क्रान्ति के साथी बिछड़ गए थे। रास बिहारी बोस विदेश चले गए। कुछ को कालेपानी तथा लम्बी जेल की सजा हो गई। देशी राजा अंग्रेजों के भय के कारण उनको सहायता नहीं दे रहे थे। संसाधन और हथियार भी इधर-उधर हो गए थे। अब क्रान्ति को पुर्नसंगठित करना संभव न

था। अब वे नये मार्ग की खोज में थे।[30] इस समय तक भूपसिंह राजस्थान में बहुचर्चित हो गए थे। ब्रिटिश सरकार उनको हर कीमत पर गिरफ्तार करना चाहती थी। अपने मूल नाम और वेशभूषा में किसी भी समय गिरफ्तारी का भय बना हुआ था। देशभक्त और कभी न थकने वाला युद्ध अंग्रेजों की सत्ता और देशी जनता के शोषण का विरोधी बन गया। अब वह गुमनाम जीवन नहीं बिता सकता था। अत: गिरफ्तारी न हो और साम्राज्यवाद और शोषण से भयभीत जनता को मुक्त कराने के महायज्ञ के लिए भूपसिंह ने अपनी दाढ़ी बढ़ा ली, साधु का वेश धारण कर लिया और नाम बदलकर विजयसिंह पथिक रख लिया।[31] क्रन्तिकारी गतिविधियों के साथ-साथ पथिक देश के शोषित वर्ग के लिए भी निरंतर कार्य करते रहे, इस क्रम में पथिक राजस्थान में महात्मा गाँधी के सत्याग्रह आन्दोलन से बहुत पहले ही बिजौलिया किसान सत्याग्रह आन्दोलन के नाम से किसानों में स्वतंत्रता के प्रति अलख जगाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया था।

पथिक विषम से विषम परिस्थितियों में में लड़ने वाले योद्धा थे। उनके आत्म संस्मरण से प्राप्त साक्ष्य के अनुसार वे टाटगढ़ से निकलकर जंगल में भटक गए। दिन भर तेजी से चलने और भोजन न मिलने के कारण सघन वन में आराम करते समय सो गए। उसी दौरान उन पर एक जंगली जानवर ने हमला कर दिया था, भूपसिंह ने उससे अपनी प्राण रक्षा की और उसे गोली से मार गिराया, परन्तु जंगली जानवर के द्वारा घायल हो गए थे और उनको भारी पीड़ा हो रही थी। प्रात: वह आश्रय की तलाश में जंगल में एक वृद्धा की कुटिया में पहुँचे। अनुमान के आधार पर ही उस वृद्धा ने भूपसिंह को पहचान लिया था। उसे भोजन कराया और घाव की मरहम-पट्टी की और अपने सीमित संसाधनों से एक घोड़ा उपलब्ध कराया। ब्रिटिश सरकार भूपसिंह को गिरफ्तारी करने के लिए अथक प्रयास कर रही थी परन्तु सफलता नहीं मिली। देशी राजा भी अंग्रेजों के भयवश भूपसिंह से दूरी बनाए हुए थे। आश्रय की तलाश में भूपसिंह गुरला गाँव पहुँचे। गुरला के जमींदार ने उनको आश्रम दिया और अपने रनिवास में उनको छिपाकर रखा तथा स्वस्थ होने तक वहीं रहे। इसके बाद कुछ समय तक भिनाय में एक साधु के रूप में रहे। साधु के वेश में पथिक की गतिविधियों से आसपास के लोग आकर्षित होने लगे और उस क्षेत्र के प्रतिष्ठित लोग भी सम्पर्क में आने लगे। बढ़ती ख्याति से नये साधु (विजयसिंह पथिक) की चर्चा घर-घर में होने लगी। साधु वेशधारी पथिक को संदेह हो गया कि ब्रिटिश सरकार ने उन्हें पहचान लिया है, इसलिए उन्होंने भिनाय की साधु की कुटिया का त्याग कर दिया। वहाँ से मेगंटिया गए तथा फिर कांकरौली गए, जहाँ उनको एक छोटा-सा क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं का समूह मिल गया। इन क्रान्तिकारियों के आग्रह पर वे कंकरोली के पास भाणा गाँव पहुँचे।[32] भाणा में विजयसिंह पथिक ने एक पाठशाला की स्थापना की। भाणा में रहते हुए ही उनकी मोही के ठाकुर डूंगर सिंह भाटी और मेगंटिया निवासी ईश्वरदास आसिया से घनिष्ठता बढ़ी, जिन्होंने उनका आन्दोलन के समय महत्वपूर्ण सहयोग किया। विजयसिंह पथिक के मार्गदर्शन में कांकरोली में बढ़ती सरकार विरोधी गतिविधियों के कारण गुप्तचरों का भाणा गांव आना-जाना ज्यादा हो गया तो पथिक को कांकरोली छोड़कर मोही जाना पड़ा। वहाँ भी एक पाठशाला की स्थापना की। यह स्थान भी सुरक्षित सिद्ध नहीं हुआ। अत: वहाँ से चित्तौड़ चले गए। चित्तौड़ से ओछड़ी गाँव आकर रहने लगे तथा लगभग सवा साल तक अज्ञातवास यहीं बिताया। चित्तौड़गढ़ में विजयसिंह पथिक ने विद्या प्रचारिणी सभा की स्थापना की, जिसके माध्यम से आम भारतीयों के बीच जागरूकता का कार्य किया। विद्या प्रचारिणी सभा से प्रेरणा पाकर अन्य जागरूक लोगों ने भी ऐसी ही सामाजिक संस्थाओं का निर्माण किया। जिससे आम लोगों में जागरूकता का प्रसार हुआ।

1920 में विजयसिंह पथिक अपने साथियों के साथ नागपुर अधिवेशन में शामिल हुए और बिजौलिया के किसानों की दुर्दशा और देशी राजाओं की निरंकुशता को दर्शाती हुई एक प्रदर्शनी का आयोजन किया। गाँधी, पथिक के बिजौलिया आन्दोलन से प्रभावित तो हुए, परन्तु उनका रुख देशी राजाओं और सामन्तों के प्रति नरम ही बना रहा। कांग्रेस और गाँधी यह समझने में असफल रहे कि सामन्तवाद, साम्राज्यवाद का ही एक स्तम्भ है और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विनाश के लिए साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के साथ-साथ सामन्तवाद विरोधी संघर्ष आवश्यक है। गाँधी ने अहमदाबाद अधिवेशन में बिजौलिया के किसानों को हिजरत (क्षेत्र छोड़ देने) की सलाह दी। पथिक ने इसे अपनाने से इनकार कर दिया। सन 1921 के आते-आते पथिक ने अपने द्वारा स्थापित विशिष्ट संगठन राजस्थान सेवा संघ (आरएसएस) के माध्यम से बेगू, पारसोली, भिन्डर, बासी और उदयपुर में शक्तिशाली कृषक आन्दोलन आरम्भ किए। बिजौलिया कृषक सत्याग्रह आन्दोलन की महान सफलता राजस्थान की देशी रियासतों के अन्य क्षेत्रों के किसानों के लिए भी प्रेरणा स्रोत बन गयी थी। उस समय राजस्थान में किसान आन्दोलन सामान्य हो गए। इससे ब्रिटिश सरकार को चिंता हुई और कृषक आन्दोलनों को बोल्शेविक क्रांति के समान मानने लगी थी। इसी समय 1920 में कांग्रेस द्वारा असहयोग आन्दोलन आरम्भ करने के कारण सरकार दवाब की स्थिति में आने लगी, जिससे स्थिति और भी बिगड़ने का डर था। अत: ब्रिटिश सरकार ने राजस्थान के ए.जी.जी. हालैण्ड को बिजौलिया किसान पंचायत बोर्ड और राजस्थान सेवा संघ से बातचीत करने के लिए नियुक्त किया। शीघ्र ही दोनो पक्षों में समझौता हो गया। किसानों की अनेक माँगें मान ली गईं। ब्रिटिश सरकार द्वारा थोपी गयी चौरासी में से पैंतीस लागतें माफ कर दी गईं और भ्रष्ट कर्मचारी बर्खास्त कर दिए गए। इस तरह किसानों की विजय हुई। इस आंदोलन के कारण विजयसिंह पथिक के पीछे ब्रिटिश सरकार लग गयी। जिसके परिणामस्वरूप उन पर धारा 124 के तहत राजद्रोह का अभियोग लगाकर 1924 में गिरफ्तार कर लिया गया।[33] सन 1927 के अंत तक पथिक को जेल में रहना पड़ा।

विजयसिंह पथिक ने भारतीय क्रन्तिकारी आन्दोलन में अपनी विशिष्ट भूमिका का प्रतिपादन किया था। जो आजादी के आन्दोलन में अपनी महत्ता रखा था। पथिक के क्रन्तिकारी जीवन का यह दौर 1915 तक रहा। इसके उपरांत उन्होंने क्रांतिकारिता छोड़ कर सत्याग्रह को संघर्ष का साधन बनाया था। उन्होंने बिजौलिया कृषक आन्दोलन में गाँधी और पटेल से पहले सत्याग्रह का सफल प्रयोग करके दिखाया था।

संदर्भ सूची

1. Indian Revolutionary-A camprative sudy 1757-1961 VOL-2 sri kripa saral ISBN 81-87100-17-7 PAGE 277
2. राज. रा. अभि. बीकानेर 1972, फाइल नं. 5, भाग नं. 2
3. स्वामी, शिवलखनदास, आधुनिक राजस्थान के निर्माता विजय सिंह 'पथिक', पृष्ठ संख्या-29
4. सक्सेना, शंकर सहाय, राजस्थान केसरी विजय सिंह पथिक की जीवनी मुक्तवाणी प्रकाशन मॉर्डन मार्किट, बीकानेर 1963, पृष्ठ संख्या-85
5. Indian Revolutionary-A camprative sudy 1757-1961 VOL-2 sri kripa saral ISBN 81-87100-17-7 PAGE 277

6. राज. रा. अभि. बीकानेर 1972, फाइल नं. 5, भाग नं. 2
7. वर्मा, डॉ. पदम सिंह, विजय सिंह पथिक, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली 1992
8. देसाई, एण्आर, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली 2009 से उद्धृत।
9. वर्मा, डॉ. पदम सिंह, विजय सिंह पथिक, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली 1992, पृष्ठ संख्या-11
10. वहीं, पृष्ठ संख्या-10
11. वहीं, पृष्ठ संख्या-10
12. वहीं, पृष्ठ संख्या-11
13. वहीं, पृष्ठ संख्या-11
14. Indian Revolutionary-A camprative sudy 1757-1961, VOL-2, Sri Kripa Saral, P-279
15. शर्मा, डॉ. गोपीनाथ, बीकानेर अभिलेख, राजकीय मुद्रणालय, बीकानेर, 1987, पृष्ठ संख्या-182
16. वर्मा, डॉण् पदम सिंह, विजय सिंह पथिक, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली 1992 पृष्ठ संख्या-182
17. जोशी, सुमनेश, राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, ग्रन्थागार जयपुर पृष्ठ संख्या-23
18. राज. रा. अभि. बीकानेर, कॉन्फीडेन्शियल आर्मस्ट्राँग रिपोर्ट 15/04/1914 राज. रा. अभि. राजपूताना एजेन्सी रिपोर्ट फाइल नं. 51, भाग नं. 1
19. शर्मा, डॉ. बीके. राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आन्दोलन, राजण् हिण् अण् जयपुर 2001 पृ.सं. 61 रा. अभि. नई दिल्ली, होम पो. जुलाई 1915 फ. नं. 515-29
20. शर्मा, डॉ. बीके. राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आन्दोलन, राज. हि. अ. जयपुर 2001 पृ.सं. 61 रा. अभि. नई दिल्ली, होम पो. जुलाई 1915 फ. नं. 515-29-पृष्ठ संख्या-61
21. राज. रा. अभि. बीकानेर 1973 सब्बरवाल का बयान कॉन्फीड़ेंसीयल रिकॉर्ड फाइल न. 4
22. रा. अभि. नई दिल्ली, फोरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट सीक्रेट, 1 मार्च 1917 फाइल नं. 29
23. सक्सेना शंकर-पॉलिटिकल मूवमेंट एण्ड एवेकिंग इन राजस्थान पृष्ठ संख्या-138, रा. अभि. नई दिल्ली, फोरेन एण्ड पॉलिटिकल सीक्रेट मार्च 1917, फाइल नं. 1-29
24. रा. अभि. नई दिल्ली, फोरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट सीक्रेट,1 मार्च 1917 फाइल नं. 1-29
25. शर्मा डॉ. गोपीनाथ, बीकानेर अभिलेख, राजकीय मुद्रणालय, बीकानेर, 1987, पृष्ठ संख्या-184
26. सक्सेना एवं शर्मा, बिजौलिया किसान आन्दोलन का इतिहास, राजस्थान साइन्टिफिक पब्लिशर्स जयपुर पृष्ठ संख्या-61
27. सक्सेना, शंकर-पॉलिटिकल मूवमेंट एण्ड एवेकिंग इन राजस्थान पृष्ठ संख्या-138, राण् अभि. नई दिल्ली, फोरेन एण्ड पॉलिटिकल सीक्रेट मार्च 1917, फाइल नं. 1/29
28. वर्मा, डॉ. पदम सिंह, विजय सिंह पथिक, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली 1992 पृष्ठ संख्या-17
29. जोशी, सुमनेश, राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, ग्रन्थागार जयपुर, पृष्ठ संख्या-21
30. वहीं, पृष्ठ संख्या-26,
31. सक्सेना एवं शर्मा बिजौलिया किसान आन्दोलन का इतिहास, राजस्थान साइन्टिफिक पब्लिशर्स जयपुर पृष्ठ संख्या-62
32. राजपुरोहित डॉ. कन्हैयालाल, स्वाधीनता, संग्राम में राजस्थान की आहूतियाँ, 1803-1941 साइन्टिफिक पब्लिशर्स, जयपुर, 1993 पृष्ठ संख्या-193,
33. राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली, फॉरेन एंड पोलटिकल डिपार्टमेंट, फाइल नंबर-74पी, 1924-25

व्यापार की सामाजिक जिम्मेदारी

डॉ० रोमी अरोड़ा

सह - प्राध्यापक, एस.आर. सरकार महाविद्यालय, अमृतसर 143001

व्यापार का मुख्य उद्देश्य लाभ (profit) कमाना है परन्तु यह व्यापार का इक्लौता उद्देश्य नही है। जैसे कि हमस ब समाज का एक अभिन्न अंग है वैसे ही समाज के लिए भी हमारी जिम्मेदारी झुठलाई नही जा सकती। व्यापार को भी समाज के अन्दर रह कर ही उन्नति करनी होती है। व्यापार के साथ बहुत से लोग जुड़े होते हैं जैसे कि मालिक, निवेशक, कर्मचारी, उपभेक्ता और सरकार इत्यादि। इसी लिए हर एक व्यापार की सामाजिक जिम्मेदारी बनती है कि वह इन सबके उत्थान के लिए यथा संम्भव कार्य करें।

शोध पत्र का उद्देश्य :- क्या व्यापार की सामाजिक जिम्मेदारी होनी चाहिए या नहीं। ये बात बिल्कुल सच है कि हर व्यापार का प्राथमिक उद्देश्य तो लाभ कमाना ही है परन्तु जैसे कि हम सब सामाजिक प्राणी है और समाज के बहुत से वर्ग और लोग इस व्यापार को उन्नत करने में अपना योगदान देते है इस लिए व्यपार को भी अपनी सामाजिक जिम्मेदारी को समझना होगा। उदाहरण के तौर पर अगर कोई वस्तु बनाने का कार्य चल रहा है तो उसकी गुणवता इस प्रकार निर्धारित की जाए कि वो हर एक के लिए उतम साबित हो अर्थात मिलावट की कोई भी गुंजाइश न हो । इस वस्तु के उपयोग से समाज के अन्दर किसी की सेहत का कोई नुक्सान न हो।

समाजिक जिम्मेदारी का उद्देश्य :-

1. पहला उद्देश्य है कि हर व्यापार को अपनी सामाजिक जिम्मेदारी का पता हो। लाभ कमाने के साथ साथ वो समाज की भलाई करने का उद्देश्य अपने मन में स्थिर रखें। जहां भी संम्भव हो भलाई का कार्य करें।
2. जिस समाज में व्यापार पनप रहा है उस समाज को यथा योग्य स्थान दें और उसके लिए अपनी जिम्मेदारी को कभी भी न भुलाएं।
3. समाज के प्रति जिम्मेदारी को ईमानदारी और खुशी से निभाए और हो सके तो बाकिओ के लिए एक उदाहरण स्वरूप पेश करे ताकि आस पास के और व्यापारी भी आप का अनुसरण करना चाहें। इस तरह से सामाजिक जिम्मेदारी को निभाने वाले लोगों की गिनती बढ़ेगी।
4. जिस तरह से लाभ कमाना हर व्यापार का प्राथमिक उद्देश्य है उसी प्रकार सामाजिक जिम्मेदारी को भी प्राथमिकता मिले और सभी लोग इस को निभाने में अपना योगदान प्रसन्नता पूर्वक दें।
5. व्यापार के कर्मचारी भी ये कहते है कि तन्खाह के इलावा भी रहने को घर, अपने जाने की सुविधा, शिक्षा और शिक्षण जैसी सुविधाएं उपलब्ध करवाई जाए। व्यापार को उनकी उम्मीदो पर खरा उतरने की जरूरत है। ये तभी हो सकता है अहर वो लाभ का कुछ हिस्सा कर्मचारिओं की भलाई पर खर्च करे। जैसे कि अगर कर्मचारिओं को शिक्षण मिलती है तो वो ज्यादा होनहार तरीके से कार्य करते हुए ज्यादा लाभ कमाने में मदद कर सकते हैं।

समाजिक जिम्मेदारी क्यों होनी चाहिए :-

बहुत समय से ये एक विवदास्पद विषय बना रहा कि व्यापार की सब जिम्मेदारी क्यों होनी चाहिए या नही। यहां पर हम इसके समर्थन के बारे में बात करेंगे।

1. स. जि. निभाने से हर व्यापार की जनता में छवि अच्छी बनती है। आज कल स.कि. निभाने वाली कम्पनियां को रहते हुए उनको ज्यादा लाभ कमाने के अवसर में रहते हुए उनको ज्यादा लाभ कमाने के अवसर मिल जाते है।
2. व्यापार करने के दौरान कई तरह के फैसले लेने पड़ते है। इन फैसलो का समाज के उपर गहरा प्रभाव पड़ता है। समाज का ख्याल रखते हुए, व्यापारी को स.जि. निभानी जरूरी है।
3. व्यापार में बहुत से लोगों के आय संपर्क भी रखना पड़ता है। जैसे कि शेयरधारक, निवेशक इत्यादि और उन सब की व्यापार में भी होती है । स. जि. निभाते हुए व्यापार अपने ही लाभ को भी बढ़ा सकते है।
4. हर व्यापार अकेले ही जिदा नही रह सकता । उसको सीधे और असीधे तारे पर समाज पर निर्भर होना ही पड़ता है। इस के इलावा हर व्यापार समाज को जवाब देह भी बन जाता है। व्यापार को समाज के नियम भी निभाने पड़ते है। जैसे ही समाज में कोई बदलाव आता है । व्यापार के मायने भी बदलने पड़ते है । क्योंकि व्यापार समाज का अभिन्न अंग है।
5. स. जि. को अपने आप समझने और निभाने वालो को सरकार की तरफ से भी कम दखल अंदाजी सहनी पड़ती है।

6. समाज में सब पढे लिखे और तंदरूस्त होंगे तो सामाजिक वातावरण बढिघ्या बनेगा। व्यापार स.जि. निभाते हुए ज्यादा से ज्यादा लोगों को पढ़ाने में भी मदद कर सकते है।
7. व्यापार में स. जि. निभाने से सरकार को अधिक नियम बनाने और अधिक प्रतिबंध लगाने की जिम्मेवारी से भी काफी हद तक छुटकारा मिलेगा क्योंकि व्यापारी खुद ही अपनी जि. को समय भी रहें हैं। और निभा भी रहे है।
8. हम सभी इस बात को समझते है कि व्यापारी ओर कंपनियां ही बहुत सारी सामाजिक मुश्किलो की जननी है जैसे कि गंदा वातावरण ;चवससनजपवदद्धए ;जतर्पिबद्ध अत्याधिक यातायात की समस्या इत्यादि ।
9. हमारे पास प्राकृतिक साधन का भंडार भी सीमित मात्रा है और हमारा जीवन तो उन ही के उपर निर्भर करता है। इनका सदुपयोग करना भी एक बहुत बड़ी समाजिक जि. है। प्राकृतिक साधन को सही तरीके से उपयोग न करके कई कंपनिया इनकी बहुत बड़ी मात्रा को दुरूपयोग कर रही है उदाहरण के तौर पर यानी को ही ले ले। इसकी लिए हमें लिए बहुत मूल्य चुकाना पडेगा क्योकि उपभोक्ता बहुत दुरूपयोग कर चुके है और कई तो अभी भी कर रहे है।
10. शुरू में कोई भी स. जि. निभाने का मूल्य बहुत अधिक होता है परन्तु धीरे धीरे ये अधिक लाभ में परिवर्तित हो जाता है ओर कपनियां जो इसे निभा रही हैं उनकी उत्पादन शुल्क पहले से कम होती पाई गई है।

कपंनिया जो स. जि. को निभा रही है।

1. टाटा ग्रुप
2. बिरला ग्रुप
3. गोदरेज ग्रुप
4. बजाज ग्रुप

संदर्भ

1. कैफीगी जीजी 2017, सामाजिक जिम्मेदारी
2. जमशेद 2020, सामाजिक जिम्मेदारी की महत्ता
3- https : //www.investopedia.com
4- BBA Mantra / IN : ARTICLES
5- https : //asq.org/quality –resources.

स्वतंत्रता आन्दोलन में हिंदी कविता का योगदान

डॉ० कल्पना सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, एस एस वी कॉलेज, हापुड़

सारांश

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ होते ही जब राष्ट्रवादी विचार उभरने लगे और विभिन्न भारतीय भाषाओं का साहित्य अपने आधुनिक युग में प्रवेश करने लगा, तब अधिकतर साहित्यकार साहित्य को देशभक्ति पूर्ण उद्देश्यों के लिए प्रयोग में लाने लगे। दरअसल इनमें से अधिकांश साहित्यकारों का यह विश्वास था कि एक गुलाम देश के नागरिक होने की वजह से यह उनका कर्तव्य है कि वे इस प्रकार के साहित्य का सृजन करें, जो कि उनके समाज के जागरण और पुनरुत्थान में अपना योगदान देते हुए राष्ट्रीय विमुक्ति का मार्ग प्रशस्त करे।

भारत के स्वतंत्रता के आन्दोलन में हिदी कवियों के ओजस्वी शब्दों तथा उनसे मिली प्रेरणा ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आजादी के गीत, नगमें और कविताएं गाने वाले कवि अंग्रेजों की प्रताड़ना का शिकार भी हुए। लेकिन जब तक उनकी कलम चली, तब तक वे देशभक्ति को भी अपनी कविताओं में शामिल करते रहे।

अकबर इलाहाबादी का शेर है... खींचो न कमानों को न तलवार निकालो/ जब तोप मुकघबिल हो तो अख़बार निकालो। यानी लेखनी का महत्व हर दौर में रहा है और आजादी के आंदोलन में भला भारतीय साहित्यकार उस पीड़ा, दुर्दशा, प्रताड़पना से कैसे अछूते रह सकते थे। उस दौर के कवियों ने अपनी लेखनी के माध्यम से उस दौर की पीड़ा तो व्यक्त किया ही है, साथ ही युवाओं को उद्वेलित करने और उनमें जोश भरने का काम भी किया प्रस्तुत लेख स्वतंत्रता संग्राम में कवियों के योगदान की समीक्षा करने का एक प्रयास है।

मूलशब्द : स्वतंत्रता आन्दोलन, हिंदी, कवि, कविता, प्रेरणा

परिचय

भारत के स्वतंत्रता के आन्दोलन में हिदी कवियों की लहू में उबाल लाने वाले ओजस्वी उद्गारों तथा उनसे मिली प्रेरणा ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसे कभी भुलाया जा सकता। आधुनिक खड़ी बोली हिदी कविता के प्रवर्तक बाबू हरिश्चंद्र ने गुलाम भारत की दुर्दशा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है –

अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।।
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हा ! हा ! भारत दुर्दशा देखी ना जाई ।।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अपनी राष्ट्रवादी रचनाओं के कारण भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय अत्यंत लोकप्रिय रहे। उनकी 'भारत-भारती' की तान सम्पूर्ण भारतवर्ष में गूंज उठी थी, जिससे अनेक स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों ने विशेष प्रेरणा प्राप्त की। गुप्तजी को अपनी ओजस्वी कृतियों के लिए जेल भी जाना पड़ा। उन्होंने स्वतंत्रता आन्दोलन में व्यक्तिगत रूप से सक्रीय भूमिका निभाने के साथ अपनी प्रेरक कविताओं से बहुत से भारतीयों को स्वतंत्रता के लिए अपना तन-मन- धन न्योछावर करने के लिए प्रेरित किया।

प० माखन लाल चतुर्वेदी ने भी अपनी कविताओं से स्वतंत्रता सेनानियों के हृदय में राष्ट्र-प्रेम की भावना जगाई । 'एक फूल की चाह; शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ-

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊं /
चाह नहीं प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊं /
चाह नहीं सम्राटों के सर पर हे हरि ! डाला जाऊं /
चाह नहीं देवों के सिरपर चढ़ूं, भाग्य पर इठलाऊं /
मुझे तोड़ लेना बनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक /
मातृभूमि पर शीश चढाने जिस पथ जावें वीर अनेक।

प० रामनरेश त्रिपाठी ने भी अनेक स्वाधीनतापरक काव्य रचनाएँ की, जिन्हें पढ़कर पाठकों के हृदय में स्वतंत्रता के प्रति सहज अनुराग उत्पन्न हुआ। 'पथिक' खंड-काव्य में परवशता और स्वतंत्रता का प्रतिपादन इस प्रकार किया गया है -

एक घड़ी की भी परवशता, कोटि नरक के सम है,
पल पर की भी स्वतंत्रता, सौ स्वर्गों से उत्तम है।

महाकवि जयशंकर प्रसाद द्वारा प्रस्तुत 'प्रयाण गीत' ने आजादी के दीवानों को स्वतंत्रता के लिए आगे बढ़ने की प्रेरणा दी थी -

हिमाद्रि तुंगश्रृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती,
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला, स्वतंत्रता पुकारती,
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ प्रतिज्ञा सोच लो।।
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढे चलो बढे चलो।
अराति सैन्य सिन्धु में , सुबाडवाग्नी से जलो।
प्रवीर हो जयी बनो, बढे चलो, बढे चलो।।

श्री जगदम्बा प्रसाद मिश्र "हितैषी" की ये पंक्तियाँ आज भी लोगों के द्वारा बड़े गर्व से गायी जाती हैं -

शहीदों के मजारों पे लगेगे हर बरस मेले
वतन पे मरने वालों का यही बाकी निशाँ होगा।

कविवर श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' का झंडा गीत स्वतंत्रता सेनानियों के लिए शस्त्र ही बन गया था-

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

सुभद्रा कुमारी चौहान की "झांसी की रानी" कविता को कोई कैसे भूल सकता है, जिसने अंग्रेजों की जड़ें हिला कर रख दी। वीर सैनिकों में देशप्रेम का अगाध संचार कर जोश भरने वाली उनकी यह अनूठी कृति आज भी प्रासंगिक है-

"सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढेघ् भारत में भी आई, फिर से नई जवानी थी,
गुमी हुई आजादी की, कीमत सबने पहिचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी,
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी की रानी थी"।

प० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने स्वतंत्रता संघर्ष में सक्रिय रूप से भाग लिया। साथ ही उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से भी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से बहुत से लोगों को जोड़कर महती भूमिका निभाई।

कवि पं० सोहनलाल द्विवेदी एक प्रमुख गांधीवादी थे। उनकी अनेक रचनाओं का उपयोग स्वतंत्रता आन्दोलन की प्रभात फेरियों में किया जाता था।

कविवर रामधारी सिंह दिनकर भी चुप नहीं बैठे। मातृभूमि के लिए हंसते-हंसते प्राणोत्सर्ग करने वाले बहादुर वीरों व रणबांकुरों की शान में उन्होंने लिखा है :-

"कमल आज उनकी जय बोल जला अस्थियां बारी-बारी
छिटकाई जिसने चिंगारी जो चढ़ गए पुण्य-वेदी पर
लिए बिना गर्दन का मोल
कलम आज उनकी जय बोल।"

उपरोक्त कवियों के अलावा और भी अनेक कवियों ने भी अपनी कविता के माध्यम से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अपनी भूमिका का निर्वाह किया है। इसमें बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' प्रताप नारायण मिश्र आदि अनेक नाम शामिल हैं जो अपनी कविताओं के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम की अलख जगाये रखनें में अपना योगदान देते रहे।

हिन्दी के अलावा बंगाली, मराठी, गुजराती, पंजाबी, तमिल व अन्य भाषाओं में भी माइकेल मधुसूदन, नर्मद, चिपलुन ठाकर, भारती आदि कवियों व साहित्यकारों ने राष्ट्र-प्रेम की भावनाएं जागृत की और जनमानस को आंदोलित किया। कवि गोपालदास नीरज का राष्ट्रप्रेम भी उनकी रचनाओं में साफ साफ दिखाई देता है। जुल्मों-सितम के आगे घुटने न टेकने की प्रेरणा उनकी रचनाओं से प्राप्त होती रही। उन्होंने लोगों को उत्साहित करते हुए लिखा है - "देखना है जुल्म की रफ्तार बढ़ती है कहां तक, देखना है बम की बौछार है कहां तक।"

आजादी के बाद के हालातों को स्पष्ट करते हुए भी नीरज ने कई कवितायें और गीत लिखे हैं।

"चंद मछेरों ने मिलकर, सागर की संपदा चुरा ली
कांटों ने माली से मिलकर, फूलों की कुर्की करवा ली
खुशियों की हड़ताल हुई है, सुख की तालाबंदी हुई
आने को आई आजादी, मगर उजाला बंदी है।"

आज श्यामलाल गुप्त पार्षद का यह गीत- 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊंचा रहे हमारा', और इकबाल की यह नज्म - 'सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा भले हम गुनगुना रहे हैं। परन्तु देश की मौजूदा परिस्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। आज के समय में भी वैसी ही धारदार रचनाओं की जरूरत है, जो जन-जन को आंदोलित कर सके, उनमें जागृति ला सके। भ्रष्टाचार व अराजकता को दूर कर, हर हृदय में भारतीय-गौरव-बोध एवं मानवीय-मूल्यों का संचार कर सके।

निष्कर्ष

स्वतंत्रता आंदोलन, भारतीय इतिहास का वह काल है जो पीड़ा, कड़वाहट, दंभ, आत्मसम्मान, गर्व, गौरव तथा सबसे अधिक शहीदों के रक्त को समेटे है। स्वतंत्रता के इस महायज्ञ में समाज के प्रत्येक वर्ग ने अपने-अपने तरीके से बलिदान दिए। इस स्वतंत्रता के युग में साहित्यकार और लेखकों ने भी अपना यथाशक्ति योगदान दिया। अंग्रेजों को भगाने में कलमकारों ने अपनी भूमिका बखूबी निभाई। क्रांतिकारियों से लेकर देश के आम लोगों तक के मन में लेखकों ने अपने शब्दों से जोश भरा।

उनकी गौरव गाथा हमें प्रेरणा देती है कि, हम स्वतंत्रता के मूल्य को बनाये रखने के लिए कृत संकल्पित रहें।

प्रेमचंद की 'रंगभूमि, कर्मभूमि' उपन्यास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का 'भारत -दर्शन' नाटक, जयशंकर प्रसाद का 'चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त' नाटक आज भी उठाकर पढ़े जाएँ तो वे देशप्रेम की भावना जगाने के लिए बड़े कारगर सिद्ध होंगे। पंडित नेहरू की 'भारत एक खोज' हो या फिर शरद बाबू का उपन्यास 'पथ के दावेदार', जिसने भी इन्हें पढ़ा, उसे घर-परिवार की चिन्ता छोड़ देश की खातिर अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिए स्वतंत्रता के महासमर में कूदते देर नहीं लगी।

श्रीमति सुभद्रा कुमारी चौहान की झांसी की रानी, रचना का भी स्वाधीनता आन्दोलन में विशिष्ठ योगदान रहा है।

देशप्रेम की भावना जगाने के लिए जयशंकर प्रसाद ने "अरुण यह मधुमय देश हमारा"। सुमित्रानंदन पंत ने "ज्योति भूमि, जय भारत देश।"

निराला ने "भारती! जय विजय करे। स्वर्ग सस्य कमल धरे।।" कामता प्रसाद गुप्त ने "प्राण क्या हैं देश के लिए के लिए। देश खोकर जो जिए तो क्या जिए।।"

लिखे तो इकबाल ने "सारे जहाँ से अच्छा हिदोस्ताँ हमारा" तो बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने 'विप्लव गान' में

''कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाये
एक हिलोर इधर से आये, एक हिलोर उधर को जाये
नाश ! नाश! हाँ महानाश! ! ! की
प्रलयंकारी आंख खुल जाये।"

लिख और गाकर रणबांकुरों में नई चेतना का संचार किया। इसी श्रृंखला में शिवमंगल सिंह 'सुमन', रामनरेश त्रिपाठी, रामधारी सिंह 'दिनकर', राधाचरण गोस्वामी, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन, राधाकृष्ण दास, श्रीधर पाठक, माधव प्रसाद शुक्ल, नाथूराम शर्मा शंकर, गया प्रसाद शुक्ल स्नेही (त्रिशूल), माखनलाल चतुर्वेदी, सियाराम शरण गुप्त, अज्ञेय जैसे अगणित कवियों के साथ ही बंकिम चन्द्र चटर्जी का देशप्रेम से ओत-प्रोत "वन्दे मातरम्" गीत-जो आज हमारा राष्ट्रीय गीत है लिखा -

"वन्दे मातरम्!
सुजलां सुफलां मलयज शीतलां
शस्य श्यामलां मातरम्! वन्दे मातरम्!"

इन कविताओं और गीतों में निहित श्रद्धा, भक्ति व स्वाभिमान की प्रेरणा से लाखों युवक हंसते-हंसते देश की खातिर फांसी के फंदे पर झूल गये। वहीं हमारे राष्ट्रगान "जनगण मन अधिनायक" के रचयिता रवीन्द्र नाथ ठाकुर का योगदान अद्वितीय व अविस्मरणीय है।

सन्दर्भ

- Sushma Narain (1966). Bharatiya rsshmravada ke vikasa ki Hindi-sahitya me abhivyakti. Hindi Sihitya Sansara. पृ. 170.
- Visvamitra Upadhyaya (1989). Bharatiya krantikari andolana aura Hindi sahitya. Pragatisila Jana Prakasana.
- भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका (गूगल बुक्स)
- मिश्र अनुरोध, रामेश्वरनाथ (जुलाई २००४). राष्ट्रभाषा भारती. कोलकाता: निर्मल प्रकाशन. पृ. २०.
- "सुभद्रा कुमारी चौहान" (एचटीएम) (अंग्रेजी में). इंडियन हीरोज. मूल से 12 मई 2008 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि ९ जून २००८.
- "स्वराज पुस्तक माला" (एचटीएम). स्वराज संस्थान संचालनालय. मूल से 5 नवंबर 2011 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि ९ जून २००८.

ग्रामीण बेरोजगारी दूर करने में मनरेगा की भूमिका: बिहार के संदर्भ में एक अध्ययन

डॉ० विजया कुमारी

सहायक प्राध्यापिका, अर्थशास्त्र विभाग, टी० पी० कॉलेज, मधेपुरा, भू० ना० मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा

सार-संक्षेप

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारा देश अनेक आर्थिक-सामाजिक समस्याओं से जूझ रहा था। हमारे नीति-निर्माताओं ने इन समस्याओं के समाधान हेतु पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत ग्राम विकास कार्यक्रम के माध्यम से टपकन प्रभाव के द्वारा गरीबी एवं वेरोजगारी के समस्या का समाधान पर विश्वास जताया था। किंतु वास्तविकता इससे कोसों दूर रही। फलतः भारत सरकार ने पुनः अपनी रणनीति में परिवर्तन करते हुए ग्रामीण क्षेत्र में बुनियादी आधारिक संरचना का निर्माण एवं पर्याप्त गुणवतापूर्ण रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने हेतु समय-समय पर स्वरोजगार एवं मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों को लागू करवाया, जैसे - एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना, स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना, संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना इत्यादि, परंतु जन जागरूकता व जन सहयोग के अभाव एवं भ्रष्टाचार के कारण ये योजनायें पूर्ण रूप से सफल न हो सकी।

इसी क्रम में काम के अधिकार को वैधानिक रूप देते हुए महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम को भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा 2 फरवरी 2006 को प्रथम चरणों में देश के 200 जिलों में आरंभ किया गया, जिसमें बिहार के 23 जिले शामिल थे। बिहार में व्यापक रूप से व्याप्त ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए मनरेगा सर्वथा उपयुक्त है क्योंकि बिहार में श्रमबल अधिकांशतः असंगठित हैं जो ज्यादातर कृषि एवं कृषि संबंधित गतिविधियों में लगे हुए हैं। यह कार्यक्रम इच्छुक अकुशल श्रमिकों को 100 दिनों का गारंटीशुदा रोजगार उपलब्ध कराता है।

अतः प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से बिहार मे मनरेगा के रोजगार सृजन की प्रगति पर प्रकाश डाला गया है।

प्रमुख शब्दावली: टपकन प्रभाव, स्वरोजगार कार्यक्रम, मजदूरी रोजगार कार्यक्रम

परिचय: स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही ग्रामीण बेराजगारी उन्मुलन हमारे नीति-निर्माताओं के योजनाओं के केंद्र बिंदु रहा, किन्तु 1950 के दशक तक 'टपकन प्रभाव' की गलत रणनीति ने इस संदर्भ में उस समय पर्याप्त सफलता नहीं दिलायी। फिर तत्कालीन परिस्थितियों एवं देश में अनाज की कमी को देखते हुए 1960 के दशक में कृषि विकास पर ही सारा ध्यान केन्द्रित किया गया फलस्वरूप देश में हरित क्रान्ति आयी परंतु छोटे और सीमांत किसानों एवं कृषि श्रमिकों को इससे कोई खास फायदा नहीं हुआ, उल्टे खेतो में मशीनों के प्रयोग के कारण बेरोजगारी काफी बढ़ गयी। तब 1970 के दशक में भारत सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में प्रायोगिक तौर पर कुछ विशेष क्षेत्रों में स्वरोजगार एवं मजदूरी रोजगार योजना का आरंभ किया। फिर 1980 से देश में वृहत् स्तर पर गुणवत्तापूर्ण रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के लिए समय-समय पर अनेक रोजगार कार्यक्रम चलाये गये, जैसे- एकीकृत ग्रामविकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार, कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन राजगार गारंटी कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना, संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना, टाइसेम, इवाकरा, स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना इत्यादि। परंतु जन-जागरूकता व जन-सहयोग के अभाव, लाभार्थी चयन की समस्या, बहिष्करण एवं समावेशन एवं भ्रष्टाचार इत्यादि दोषों के कारण योजनायें पूर्ण रूप से सफल न हो सकी।

मनरेगा के पूर्व देश में मजदूरी रोजगार योजना का संक्षिप्त इतिहास

भारत देश में गरीबी-उन्मूलन एवं रोजगार सृजन कार्यक्रम पर सावधानीपूर्वक समीक्षा करने पर यह पता लगता है कि योजनाकारों ने सभी गरीब एवं बेरोजगारों को समजातीय श्रेणी में माना। परंतु इंदिरा हीरावे (1985) ने इन्हें दो श्रेणी में बाँटा है- (i) कुशल बेरोजगार एवं (ii) अकुशल बेरोजगार। हालाँकि देश में स्वरोजगार एवं मजदूरी रोजगार योजना के कार्यान्वयन को लेकर इंदिरा हीरावे एवं दाँतवाला(1985) और नीलकंठ रथ (1985) में गहरे मतभेद थे। परंतु यह एक सर्वजात तथ्य है कि देश में ग्रामीण क्षेत्र में असंगठित अकुशल श्रमिकों की संख्या अधिक हैं। अतः भारत सरकार ने सर्वप्रथम 1969 में 'क्रैश ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (सी0आर0ई0पी0)' और फिर 1973-74 में 'पायलट ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (पी0आइं0आर0ई0पी0)' प्रायोगिक तौर पर कृषि बहुल क्षेत्रों (जिलों) में मजदूरी रोजगार योजना के रूप में शुरू किया गया। फिर 1978-79 में इन दोनों कार्यक्रमों को मिलाकर काम के बदले अनाज कार्यक्रम

(एफ0एफ0डब्लू0पी0) शुरू किया गया। उसके बाद इस कार्यक्रम को पुर्नगठित कर अक्टूबर 1980 से 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन0आर0ई0पी0)' देश के सभी जिलों में शुरू किया गया। इसके अलावा देश में अतिरिक्त रोजगार प्रदान करने के लिए 'भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (आर0एल0ई0जी0पी0)' आरंभ किया गया। कालांतर में 28 अप्रैल 1989 में संसद में एक योजना की घोषणा की गयी, जिसे एन0आर0ई0पी0 और आर0एल0ई0जी0पी0 को मिलाकर बनाया गया। इसे 'जवाहर रोजगार योजना' (जे0आर0वाई) के नाम से जाना जाता है। इसके पूर्व ऐसा अनुमान लगाया गया था कि पिछले कई वर्षों के दौरान ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम देश के केवल 55 प्रतिशत ग्राम पंचायतों तक ही पहुँच सका। अत: जवाहर रोजगार योजना का उद्देश्य देश के प्रत्येक अथवा शत-प्रतिशत पंचायतों को अपने अंतर्गत लाना है। इसके अलावा सूखा आशंकित क्षेत्रों तथा पर्वतीय भागों में 'रोजगार आश्वासन योजना' (ई0ए0एस0) चलाया गया।

1 अप्रैल 1999 को शुरू की गयी 'जवाहर ग्राम समृद्धि योजना' (एस0जी0एस0वाई0) पूर्ववर्ती जवाहर रोजगार योजना को पुर्नगठित, सुव्यवस्थित और व्यापक संस्करण हैं। फिर भारत सरकार ने ग्रामीण गरीबों को लाभकारी रोजगार और भोजन प्रदान करने के लिए 25 सितंबर 2001 को 'संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना' पूर्ववर्ती ई0ए0एस0 एवं एस0जी0एस0वाई0 योजनाओं को मिलाकर बनाया गया। परंतु उदारीकरण के इस दौर में जहाँ रोजगार और अधोसंरचना विकास का अंधाधुध निजीकरण किया जा रहा था, सामाजिक आंदोलनों और जनपक्षीय राजनीति के दबाव के चलते भारत सरकार ने 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी (नरेगा) पारित किया। इसके अंतर्गत सभी ग्रामीण परिवारों को 100 दिन के काम का वैधानिक अधिकार दिया।

अन्य रोजगार कार्यक्रमों की तुलना में मनरेगा में कई अनूठी विशेषताएँ हैं, जैसे- इसका स्वयं चयन-तंत्र होना। इसके फलस्वरूप इस कार्यक्रम ने पूर्व के सभी कार्यक्रमों की दो बड़ी समस्याओं - (क) लक्ष्यीकरण एवं (ख) बहिष्करण एवं समावेशन का समाधान कर दिया है। इसके अतिरिक्त अधिकार आधारित व माँग प्रेरित दृष्टिकोण के साथ समयबद्ध रोजगार गारंटी और 15 दिन के भीतर मजदूरी भुगतान इत्यादि अनूठी विशेषताएँ मनरेगा को अन्य पूर्व में संचालित मजदूरी रोजगार योजनाओं से पृथक् करता है। इस अधिनियम के महत्व को स्वीकार करते हुए अंर्तराष्ट्रीय श्रम संगठन ने भी कहा है कि 'रोजगार गारंटी बिल' सिर्फ भारत के लिए ही ऐतिहासिक नहीं है वरन् यह पूरे विश्व के लिए अनूठा बिल है।

बिहार में मनरेगा की प्रगति की समीक्षा

2011 की जनगणना के अनुसार बिहार में कुल श्रमशक्ति का लगभग 70 प्रतिशत कृषि एवं संबंधित कार्य में लगे हुए हैं जबकि संपूर्ण भारत स्तर पर यह केवल 50.2 प्रतिशत हैं। नरेगा जो कि प्रथम चरण में 200 जिलों में लागू किया गया, उसमें से 23 जिले बिहार के शामिल थे। 1 अप्रैल 2008 से इसे देश के समस्त जिलों में लागू कर दिया गया है। इस प्रकार मनरेगा द्वारा अब बिहार की लगभग 90 प्रतिशत जनसंख्या आच्छादित हैं, जो देश में सर्वाधिक हैं। बिहार में बढ़ती ग्रामीण बेरोजगारी का मूल कारण ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक जनसंख्या असमान भूमि वितरण, कृषि पर जनसंख्या की अत्यधिक निर्भरता, (छिपी हुई) अदृश्य एवं मौसमी बेरोजगारी हैं।

राज्य में इस योजना का आरंभ से ही प्रभावी क्रियान्वयन किया जा रहा है। तालिका 1 एवं 2 में विगत वर्षो के दौरान मनरेगा की प्रगति दर्शाई गयी हैं। तालिका से स्पष्ट है कि परिवारों को जारी किए गए जॉबकार्डो की संख्या में लगातार वृद्धि देखी गयी है। वर्ष 2007-08 में इनकी संख्या जहाँ मात्र 81. 24 लाख, 2008-09 में 102.99 लाख थी, वही 2019-20 में 169.8 लाख हो गयी।

इसी प्रकार 2019-20 में 33.8 लाख परिवारों को रोजगार उपलब्ध कराया गया जबकि 2015-16 में इनकी संख्या मात्र 14.8 लाख थी परंतु 2009-10 में 41.27 लाख परिवारों को तथा 2008-09 में 38.42 लाख परिवारों को रोजगार उपलब्ध कराया गया। वर्ष 2008-09 में रोजगार पाने वाले कार्डधारियों में 2.6 प्रतिशत परिवारों को ही 100 दिन का रोजगार मिला, 2009-10 में इनकी संख्या बढ़कर 7.0 प्रतिशत हो गयी जबकि 2013-14 में 6.0 प्रतिशत रह गयी लेकिन 2019-20 में घटकर मात्र 0.5 प्रतिशत परिवारों को ही 100 दिनों का रोजगार मिला, जो गंभीर चिारणीय विषय हैं।

मनरेगा योजना के तहत पूरे हुए कार्यो की संख्या 2007-8 में जहाँ 46436 थी, वहीं 2009-10 में 70491 एवं 2013-14 में 104832 थी, वहीं 2015-16 में 1.1 लाख से 2019-20 में 4.6 लाख हो गयी। 2019-20 में मनरेगा योजना के तहत पूरे किए गए कार्यो में व्यक्तिगत जमीन पर काम, ग्रामीण पथसंपर्क और भूमि विकास का संयुक्त रूप से 95 प्रतिशत से भी अधिक हिस्सा था।

मनरेगा द्वारा वर्ष 2008-09 में 25.8, 2009-10 में 27.6, 2014-15 में 34.1, 2015-16 में 45.2 तथा 2019-20 में 42.0 प्रति परिवार औसत रोजगार (व्यक्ति दिवस) उपलब्ध कराया गया। रोजगार सृजन के क्षेत्र में 2008-09 में 991.22 लाख व्यक्तिदिवस रोजगार सृजन हुआ था जो 2009-10 में इनकी संख्या 1137.53 लाख हो गयी वहीं 2015-16 में कुल 668.2 लाख व्यक्तिदिवस रोजगार सृजन हुआ था जो 2019-20 में 1418.9 लाख व्यक्तिदिवस पहुँच गया। वही सृजित रोजगार में महिलाओं का हिस्सा 2007-08 में 27.3 प्रतिशत, 2008-09 में 29.8 प्रतिशत, 2013-14 में 34.97 प्रतिशत हो गया, वही 2015-16 में 40.9 प्रतिशत से बढ़कर 2019-20 में 55.9 प्रतिशत हो गयी है, जो इस क्षेत्र में निरंतर वृद्धि दर्शा रहा है।

इसके अतिरिक्त वित्तीय समावेशन के संदर्भ में इस कार्यक्रम के तहत मजदूरी भुगतान के लिए बिहार में 2008-09 में जहाँ 48.78 लाख बैंक तथा डाकघर खाता खोले गए, 2011-12 में इनकी संख्या 107.55 लाख हो गयी, वही 2019-20 में 98.6 लाख खाते खोले गए ।

तालिका 1: मनरेगा का प्रदर्शन

वर्ष	2008–9	2009–10	2010–11	2011–12	2012–13	2013–14
जारी जॉबकार्ड की संख्या (लाख)	102.99	124.06	130.45	133.82	133.49	131.87
श्रोजकार पाने वाले परिवारों की संख्या (लाख)	38.42 (37.3)	41.27 (33.3)	46.85 (35.9)	26.80 (20.1)	24.66 (18.5)	20.59 (15.6)
100 दिन रोजगार पाले वाले परिवारों की संख्या	100891 (2.6)	287019 (7.0)	260919 (5.6)	137649 (5.1)	156935 (6.3)	123447 (6.0)
रोजगार सृजन (लाख व्यक्ति–दिवस)	991.22	1137.53	1597.49	866.38	965.412	862.21
कुल सृजित रोजगार में महिलाओं का प्रतिशत हिस्सा	29.8	30.0	29.6	28.20	29.94	34.97
प्रति परिवार औसत रोजगार (व्यक्ति–दिवस)	25.8	27.6	34.1	32.3	39.15	41.88
पूरे हुए कार्यो की संख्या	53939	70491	83593	54589	64846	104832
धनराशि का उपयोग (प्रतिशत)	60	75.8	82.7	65.02	82.90	81.75
खुले खातों की संख्या (लाख)	48.78	84.91	102.57	107.55	110.70	110.98

टिप्पणी: कोष्ठकों में दिए गए आंकड़े कुल जारी जॉबकार्ड के लिहाज से प्रतिशत दर्शाते हैं।

स्त्रोत: ग्रामीण विकास विभाग, बिहार सरकार

तलिका 2: मनरेगा योजना का प्रदर्शन (2015-16 से 2019-20)

वर्ष	2015–16	2016–17	2017–18	2018–19	0219–20
परिवारों को जारी जॉबकार्ड की संख्या (लाख)	135.3	145.3	156.2	158.7	169.8
रोजगार पाने वाले परिवारों की संख्या (लाख)	14.8	22.9	22.5	29.2	33.8
100 दिन रोजगार पाने वाले परिवारों की संख्या (लाख)	0.6	0.14	0.16	0.25	0.2
रोजगार सृजन (लाख व्यक्ति–दिवस	668.2	854.4	817.2	1233.6	1418.9
कुल सृजित रोजगार में महिलाओं का प्रतिशत हिस्सा	40.9	43.7	46.6	51.8	55.9
प्रति परिवार औसत रोजगार (व्यक्ति–दिवस)	45.2	37.4	36.4	42.2	42.0
पूरे हुए कार्यो की संख्या (लाख)	1.1	0.8	1.1	1.9	4.6
एमआइएस के अनुसार धनराशि का उपयोग (प्रतिशत)	81.2	111.4	91.2	98.2	102.2
खुले खातों की संख्या (लाख)	69.1	52.3	67.0	82.0	98.6

स्त्रोत: ग्रामीण विकास विभाग, बिहार सरकार

राज्य के मनरेगा के क्रियान्वयन में जिलावार प्रगति

तालिका 3 एवं 4 में मनरेगा योजना के बारे में जिलावार विवरण प्रस्तुत हैं। जैसा कि हम तालिका में देख सकते हैं कि मनरेगा योजना के तहत जारी किए गए जॉबकार्डो की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है, वर्ष 2019-20 में सर्वाधिक 7.9 लाख जॉबकार्ड पूर्वी चंपारण में जारी किए जिसके बाद

7.3 लाख मुजफ्फरपुर में 7.2 लाख समस्तीपुर में किए गए। वही 2019-20 में सबसे कम 1.1 लाख शिवहर एवं शेखपुरा जिलों में जबकि 1.3 लाख अरवल जिलों में जारी किए गए।

रोजगार माँगनेवाले जॉबकार्डधारी परिवारों की संख्या भी गत तीन वर्षो में लगातार बढ़ी है। वर्ष 2017-18 में 19.6 लाख जॉबकार्डधारी परिवारों ने रोजगार की माँग की थी जिनकी संख्या में 24.7 लाख हो गयी। सबसे अधिक अरवल में 41.1 प्रतिशत जॉबकार्डधारी परिवारों ने रोजगार की माँग की, जिसके बाद सहरसा में 37.8 प्रतिशत तथा 36.0 प्रतिशत मधेपुरा एवं बॉका में रोजगार की माँग की। दूसरी तरफ, 2019-20 में रोजगार माँगनेवाले जॉबकार्डधारी परिवारों का सबसे कम 15.3 प्रतिशत हिस्सा पटना में था, उसके बाद 16.2 प्रतिशत सीवान तथा 16.8 प्रतिशत नालन्दा का स्थान आता है।

अनुसूचित जाति के लिए जारी जॉबकार्डो की संख्या में 2019-20 में थोड़ी गिरावट आयी और जॉबकार्डधारी परिवारों में उनका हिस्सा 2017-18 के 24.6 प्रतिशत से 22.2 प्रतिशत रह गया। जॉबकार्डधारी परिवारों में अनुसूचित जाति का सर्वाधिक 51.1 प्रतिशत गया में था जिसके बाद 38.6 प्रतिशत औरंगाबाद में एवं 35.3 प्रतिशत नालन्दा में था। दूसरी ओर 2019-20 में उनका सबसे कम 8.6 प्रतिशत किशनगंज में था।

रोजगार माँगनेवाले परिवारों में से 100 दिनों का रोजगार पानेवाले परिवारों के प्रतिशत में उतार-चढ़ाव होता रहा है -2017-18 में उनकी संख्या 70 प्रतिशत और 2018-19 में 80 प्रतिशत थी जो 2019-20 में 60 प्रतिशत रह गयी। पश्चिम चंपारण, दरभंगा और खगडिया में मात्र 0.1 प्रतिशत परिवारों 2019-20 में 100 दिनों का रोजगार मिला था जबकि सर्वाधिक 2.4 प्रतिशत को सारण में और उसके बाद 1.9 प्रतिशत को औरंगाबाद।

तालिका 3: मनरेगा योजना के तहत जिलावार प्रगति (जारी)

जिला	*रोजगार-प्राप्त परिवारों में 100 दिन रोजगार-प्राप्त परिवारों का प्रतिशत*			*सृजित रोजगार (लाख व्यक्ति-दिवस)*			*कुल सृजित रोजगार में महिलाओं का प्रतिशत हिस्सा*		
	2017-18	*2018-19*	*2019-20*	*2017-18*	*2018-19*	*2019-20*	*2017-18*	*2018-19*	*2019-20*
पटना	0.1	1.1	0.6	17.4	28.2	33.5	47.6	52.0	55.2
नालंदा	0.6	1.2	1.3	19.6	28.2	34.4	51.6	58.7	59.1
भोजपुर	0.2	0.4	0.3	13.1	17.9	19.8	39.4	43.6	46.2
बक्सर	0.6	0.6	0.5	19.4	20.4	17.0	35.6	39.4	40.1
रोहतास	0.2	0.5	0.2	14.0	23.6	23.0	34.3	40.2	45.0
कैमूर	1.3	1.3	0.6	12.5	21.2	21.3	37.4	42.4	48.0
गया	0.2	0.6	0.5	26.0	39.9	47.2	55.1	59.0	58.4
जहानाबाद	2.1	2.6	1.3	20.4	26.2	25.3	45.1	46.9	47.4
अरवल	0.4	0.7	0.3	14.4	20.9	19.0	43.0	44.8	46.8
नवादा	0.9	1.6	1.0	25.8	47.3	36.0	54.6	56.0	53.6
औरंगाबाद	2.9	3.3	1.9	32.2	48.3	52.3	38.2	43.2	47.6
सारण	2.8	3.1	2.4	34.9	57.5	64.2	34.8	41.9	48.8
सीवान	1.2	1.0	0.8	11.5	17.7	19.0	37.1	46.9	47.6
गोपालगंज	0.6	0.4	0.2	18.2	22.3	19.1	34.7	41.9	45.2
पश्चिम चंपारण		0.3	0.1	0.1	22.0	24.1	28.8	39.8	66.7 60.7
पूर्व चंपारण	0.5	0.7	0.5	33.9	56.9	62.4	39.0	45.4	57.7
मुजफ्फरपुर	0.5	0.6	0.4	21.1	32.2	43.4	44.6	49.6	54.4
सीतामढ़ी	0.4	0.3	0.2	31.3	39.6	40.2	47.1	49.6	56.9
शिवहर	0.1	0.4	0.2	7.4	13.3	13.9	46.1	51.1	53.7
वैशाली	0.5	0.6	0.2	29.0	49.2	47.5	46.7	52.7	66.1
दरभंगा	0.1	0.2	0.1	30.3	51.0	63.4	51.0	57.5	61.3
मधुबनी	0.3	0.3	0.3	18.6	34.6	49.9	52.3	58.1	65.5
समस्तीपुर	2.0	1.2	0.6	41.9	66.5	79.9	51.3	57.9	59.7
बेगुसराय	1.4	1.0	0.2	16.3	23.0	31.6	55.6	58.4	62.8
मुंगेर	0.3	1.0	0.6	14.8	25.6	23.1	47.8	50.8	53.1
शेखपुरा	0.4	0.4	0.9	6.7	8.3	8.9	51.4	56.6	50.9

लखीसराय	0.2	1.0	0.4	17.1	25.5	20.4	50.7	54.0	56.1
जमुई	0.4	0.7	1.0	23.8	33.7	45.9	50.3	53.6	56.1
खगड़िया	0.2	0.1	0.1	7.8	8.9	12.5	59.3	65.1	69.4
भागलपुर	0.9	1.1	0.8	21.8	36.6	44.9	40.9	45.4	49.2
बांका	0.3	0.2	0.5	20.8	26.6	46.4	49.3	52.0	55.5
सहरसा	0.1	0.3	0.5	34.2	51.3	67.4	52.8	56.0	58.1
सुपौल	0.3	0.5	0.3	16.0	27.6	33.6	49.6	53.4	59.4
मधेपुरा	0.9	0.2	0.8	36.8	40.4	57.9	51.6	53.3	54.2
पूर्णिया	0.4	0.7	0.4	26.6	47.8	46.2	53.5	56.8	62.9
किशनगंज	0.8	0.7	1.8	19.0	24.5	30.7	46.3	53.0	53.6
अररिया	0.1	0.2	0.2	15.9	31.7	46.0	47.9	52.5	53.2
कटिहार	0.1	0.1	0.3	24.9	35.4	43.2	50.1	55.9	61.7
बिहार	**0.7**	**0.8**	**0.6**	**817.2**	**1233.6**	**1418.9**	**46.6**	**51.8**	**55.9**

स्त्रोत: ग्रामीण विकास विभाग, बिहार सरकार

तालिका 4: मनरेगा योजना के तहत जिलावार प्रगति (2017-18 से 2019-20)

जिला	*जॉबकार्ड पाने वाले परिवारों की संख्या (लाख)*			*जॉबकार्ड-प्राप्त परिवारों में अजा परिवारों का प्रतिशत हिस्सा*			*रोजगार मांगने वाले जॉबकार्ड प्राप्त परिवारों का प्रतिशत*			
	2017-18	2018-19	2019-20	2017-18	2018-19	2019-20	2017-18	2018-19	2019-20	
पटना	5.7	5.9	6.4	25.4	25.1	23.8	12.0	13.1	15.3	
नालंदा	4.4	4.5	4.7	36.7	36.2	35.3	15.1	16.3	16.8	
भोजपुर	3.6	3.8	4.1	32.5	31.5	29.2	16.6	16.2	17.6	
बक्सर	2.8	2.8	2.9	29.4	28.9	28.2	24.9	22.6	18.4	
रोहतास	3.7	3.9	4.1	30.9	30.1	29.5	17.4	19.7	17.9	
कैमूर	2.3	2.4	2.5	36.6	35.2	34.0	18.8	24.3	23.3	
गया	6.0	6.4	6.9	54.6	53.3	51.1	18.1	18.4	20.3	
जहानाबाद	1.5	1.6	1.7	30.5	29.3	28.3	33.6	37.2	34.0	
अरवल	1.1	1.2	1.3	24.9	22.6	20.8	42.5	44.8	41.1	
नवादा	4.5	4.6	4.8	31.4	30.4	29.6	19.3	25.0	20.9	
औरंगाबाद	3.8	4.0	4.2	41.1	40.0	38.6	23.4	29.7	28.6	
सारण	5.4	5.9	6.4	24.4	22.7	21.3	17.3	22.9	23.6	
सीवान	3.1	3.3	3.4	18.6	18.2	17.6	13.9	16.2	16.2	
गोपालगंज	3.4	3.5	3.6	18.9	18.5	17.8	16.7	18.9	19.3	
पश्चिम चंपारण		5.1	5.3	5.7	17.7	17.2	16.2	18.9	11.3	17.1
पूर्व चंपारण	6.8	7.3	7.9	18.2	17.1	15.9	14.6	21.6	23.3	
मुजफ्फरपुर	6.4	6.9	7.3	22.2	20.8	19.8	12.9	15.7	21.4	
सीतामढ़ी	5.0	5.4	5.8	20.1	18.6	17.5	25.3	27.3	26.3	
शिवहर	0.9	1.0	1.1	18.6	16.8	15.2	26.7	35.9	35.5	
वैशाली	6.0	6.5	6.9	31.0	29.1	27.7	18.1	24.6	19.9	
दरभंगा	5.7	6.3	7.0	24.0	21.9	19.9	19.3	29.6	29.4	
मधुबनी	5.6	6.1	6.6	20.8	19.3	18.0	13.4	17.9	23.7	
समस्तीपुर	5.8	6.4	7.2	28.1	25.8	23.0	20.6	31.1	33.2	

बेगुसराय	3.5	3.8	4.2	21.4	20.0	18.2	17.2	18.3	21.9
मुंगेर	2.1	2.2	2.4	16.0	15.4	14.8	23.4	29.0	26.9
शेखपुरा	1.0	1.0	1.1	36.2	35.5	33.9	21.4	19.8	19.0
लखीसराय	1.8	2.0	2.0	23.0	22.4	22.0	26.8	31.0	28.9
जमुई	3.0	3.2	3.4	23.8	22.6	21.5	27.2	29.9	33.9
खगड़िया	2.1	2.3	2.6	23.7	21.8	19.9	16.6	17.0	22.1
भागलपुर	4.3	4.7	5.0	12.6	11.9	11.3	17.5	22.7	26.0
बांका	3.2	3.5	3.9	15.6	15.1	14.2	23.7	24.3	36.0
सहरसा	4.0	4.2	4.5	20.4	19.4	18.6	30.1	34.7	37.8
सुपौल	3.4	3.6	3.9	25.0	24.3	23.2	19.4	24.2	25.7
मधेपुरा	3.8	4.0	4.3	22.8	21.2	20.1	29.4	33.6	36.0
पूर्णिया	5.0	5.5	5.7	16.8	15.8	15.2	20.6	25.1	25.2
किशनगंज	2.7	2.8	3.0	9.3	9.1	8.6	25.7	24.1	27.0
अररिया	4.8	5.2	5.6	16.4	16.9	15.8	20.0	26.2	31.8
कटिहार	5.3	5.6	6.0	14.5	13.8	13.0	20.2	22.4	23.7
बिहार	**148.3**	**158.7**	**169.8**	**24.6**	**23.5**	**22.2**	**19.6**	**21.1**	**24.7**

स्त्रोत: ग्रामीण विकास विभाग, बिहार सरकार

घटी है लेकिन सृजित व्यकित दिवसों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है जो 2017-18 के 817.2 लाख व्यक्तिदिवस से 2019-20 में 1418.9 लाख व्यक्तिदिवस हो गयी। वर्ष 2019-20 में सबसे अधिक 79.9 लाख व्यक्तिदिवस समस्तीपुर में मिला जिसके बाद 67.4 लाख व्यक्तिदिवस सहरसा में और 64.2 लाख व्यक्तिदिवस सारण में रोजगार प्राप्त हूआ। वही, सबसे कम 8.9 लाख व्यक्तिदिवस रोजगार शेखपुरा में और 12.5 लाख व्यक्तिदिवस रोजगार खगड़िया में मिला। कुल सृजित रोजगार में महिलाओं का भाग में भी वृद्धि की निरंतरता रही है और 2017-18 के 46.6 प्रतिशत से 2019-20 में यह 55.9 प्रतिशत हो गया। अनेक जिलों में इसका हिस्सा कुल सृजित रोजगार के 60 प्रतिशत से भी अधिक था।

वित्तीय आबंटन और धनराशि का उपयोग किसी योजना के कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण सूचक होता है। धनराशि का आबंटन योजना के महत्व को दर्शाता है जबकि धनराशि का उपयोग योजना के क्रियान्वयन की सफलता को दर्शाता है। मनरेगा योजना के लिए धनराशि का आबंटन 2018-19 से 2019-20 के बीच बढ़ा है जो 3181.83 करोड़ रु0 से बढ़कर 3425.06 करोड़ रु0 हो गयी और इन वर्षो में धनराशि का औसत उपयोग 91.6 प्रतिशत है।

इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में मनरेगा द्वारा रोजगार सुनिश्चित करने के साथ-साथ उत्पादक संपदाओं का निर्माण करने पर्यावरण की रक्षा करने, ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण, वित्तीय समावेशन, ग्राम से शहरों की ओर होनेवाले पलायन पर अंकुश लगाने और सामाजिक समानता सुनिश्चित करने में सहायता मिली हैं और इसके सफल क्रियान्वयन पर ही इन क्षेत्रों में सफलता निर्भर करेगी।

एक सशक्त लोकतंत्र के लिए यह बुनियादी बातें हैं कि हर हाथ को काम दो और काम का दाम दो। मनरेगा देश के संविधान के अनुच्छेद 16, 21, 41 और 43 एवं 46 को लागू करने हेतु लाया गया है। मनरेगा में फिलहाल 13.87 करोड़ जॉबकार्ड जारी हुए हैं और भारत का लगभग 55 प्रतिशत परिवार जॉबकार्डधारी हैं बिहार में 1.86 करोड़ परिवारों के पास जॉबकार्ड है। बिहार में सबसे ज्यादा श्रम-पलायन होता है वहाँ 1.86 करोड़ जॉब कार्डधारी परिवारों में से केवल 54.12 लाख (29.1 प्रतिशत) ही सक्रिय हैं। ग्रामीण मजदूरी भी नाटकीय रूप से बढ़ी हैं। एक अनुमान के अनुसार बिहार में मनरेगा के द्वारा रोजगारकार्ड परिवारों के कुल वार्षिक आय में लगभग 8 प्रतिशत की वृद्धि हुई हैं।

मनरेगा में विसंगतियाँ - मनरेगा के कुछ प्रावधानों और इनके क्रियान्वयन में बहुत सरी विसंगतियाँ हैं। पिछले 14 वर्षों की स्थिति यह रही हैं कि इन परिवारों को 300 दिन में से अन्य स्त्रोतों से 75 या 100 दिन का ही रोजगार प्राप्त हो पाता है, ऐसी स्थिति में उन्हें 200 दिन के रोजगार की आवश्यकता के बदले मनरेगा द्वारा भी केवल 100 दिन के रोजगार देने के प्रावधान के कारण पूरा विश्वास स्थापित नही कर पाया है, फलत: आज भी बिहार से श्रम-पलायन जारी हैं। इसके अलावा आज भी मजदूरों को अपने काम के लिए सरकार पर निर्भर रहना पड़ता है, जैसा कि ऑकड़ों से स्पष्ट है कि इस कार्यक्रम द्वारा 100 दिन रोजगार प्राप्त करनेवाले परिवारों का प्रतिशत किसी भी वर्ष में 8 प्रतिशत से अधिक नहीं हो पाया है, जो अभी इस दिशा में और प्रयास की आवश्यकता दिखाता है।

दूसरी सबसे बड़ी विसंगति है मनरेगा की मजदूरी। भारत की न्यूनतम मजदूरी की दर से मनरेगा की मजदूरी वर्ष 2019-20 तक लगभग 18 से 20 प्रतिशत कम रही हैं। तीसरी विसंगति मजदूरों को 6 से 12 महीनों की देरी से मजदूरी का भुगतान होना है। भ्रष्टाचार सोशल ऑडिट का न होना, मशीनो से काम कराया जाना, बेरोजगारी भत्ता का न दिया जाना आदि भी इसकी कमजोरियाँ हैं।

निष्कर्ष:- वैश्विक धरातल में भारत के अलावा शायद ही कोई ऐसा देश है जिसने गरीबी निवारण एवं रोजगार सृजन में इतना अधिक समय एवं संसाधन निरंतर लगाया परंतु प्राप्त उपलब्धि बहुत कम है। मनरेगा द्वारा देशभर टिकाऊ, व्यक्तिगत और सामुदायिक संपत्ति के निर्माण के ऐसे अनेकों उदाहरण

हैं, हालाँकि 'गढ़े खोदने' की आलोचना बिना आधार की नहीं है। इसके अतिरिक्त मनरेगा ने कृषि संकट को और गहरा कर दिया है और कृषि के मौसम में मजदूरों की कमी की समस्या उत्पन्न हुई हैं। साथ ही ग्रामीण इलाकों में वर्क एथिक का ह्रास हुआ है ।जहाँ औसत कार्य का समय 8 घंटे पूर्व में था, अब काफी कम हो गया है।

अपने सभी कमियों के बावजूद मनरेगा की प्रासंगिकता आज उसके आरंभ होने के चौदह साल बाद भी बना हुआ है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नरेगा रोजगार अधिकार को साकार करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। इस कानून के माध्यम से ग्रामीण इलाकों आर्थिक एवं सामाजिक बुनियादीढ़ाँचा विकसित किया गया है, जिससे लोगों को रोजगार के नियमित अवसर उपलब्ध हो रहे हैं। हालाँकि बिहार में यह बहुत कम हैं, जिस पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

साथ ही इसके अंतर्गत अब भी बिहार में मुख्य रूप से सूखा अवरोधन, वनों का विकास, भूमि कटाव जैसी समस्याओं को संबंधित किया गया है, जिसके कारण बड़े पैमाने पर रोजगार का सृजन नहीं हो पा रहा है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि इस योजना का द्वितीय संस्करण लाया जाए। अब मनरेगा द्वारा विपणन, कोल्ड स्टोरेज, सिंचाई परियोजनाएँ आदि पर ध्यान दिया जाना चाहिए न कि बुनियादी कार्यो पर जो योजना के शुरूआती दिनों में किए गए थे, ताकि मनरेगा द्वारा रोजगार, सामुदायिक संपत्ति सृजन के द्वारा गाँवों का विकास हो।

संदर्भ स्रोतः

1. डॉ0 एच. हेराल्ड, 2004 एप्लीकेशन आफ इन्वेस्टीगेशन इन प्योर रिसर्च, न्यूयार्क, पृष्ठ-102
2. प्रो0 सी0 एस0 मोजर 2011, अनुसंधान में निरीक्षण का महत्व, आगरा, पृष्ठ-10।
3. ग्रामीण विकास विभाग, बिहार सरकार, पटना का वार्षिक रिपोर्ट, वर्ष 2018-19।
4. बिहार सरकार, वित विभाग आर्थिक सर्वेक्षण 2014-15, पृष्ठ-224।
5. बिहार सरकार, वित विभाग आर्थिक सर्वेक्षण 2012-13।
6. बिहार सरकार, वित विभाग आर्थिक सर्वेक्षण 2019-20।
7. जयकांत तिवारी 1994, 'रूरल ट्रांसफोरमेशन इन इण्डिया' रिलायंस पब्लिशिंग हाउस पेज न0-67-68।
8. महात्मा गाँधी नेशनल रूरल इम्पलायमेंट गारंटी एक्ट 2005 (2010): रिर्पोट टू द पीपुल 2006-10, मिनिस्टी रूरल डेवलपमेंट, गर्वनमेंट ऑफ इण्डिया ।
9. अनिल एवं भूमाली 2004, रिलवेंस ऑफ एम0 के0 गाँधी आइडल आफ सेल्फ सफिशिएंट विलेज, इकॉनामी इन द 21 सेंचुरी, सर्वोदयः 1(5)।
10. नीलकंठ रथ (1985), गरीबी हटाओः कैन प्क्च् डू इटघ् इकॉनामिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, 9 फरवरी 1985, पेज-245।
11. रूरल डेवलपमेंट- सम फैक्टस,एडिशन एन0 आई0 आर0 डी0 हैदराबाद।
12. फिफ्टी फाइव ईयरस ऑफ रूरल डेवलपमेंट इन इण्डिया, एडिशन एन0 आई0 आर डी0, हैदराबाद,1998।

आवाज के लगाव में भिन्नता : आगरा घराना और किराना घराना

पारुल शर्मा

शोधार्थी(यूजीसी नेट), संगीत एवं नृत्य विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

सारांश

संगीत वह कला है जो बिना किसी परंपरा विशेष के प्राप्त होना कठिन है। पुराने समय में आज की तरह संगीत विद्यालय नहीं थे और ना ही ध्वनि मुद्रिका आदि साधन थे प्रत्येक गुरु अपने शिष्य को समक्ष बैठा कर संगीत की शिक्षा देता था इससे घराने की कल्पना अनजाने में दृढ़ हो गई इस प्रकार की महान परंपरा के कारण महान गायकी का प्रारंभ हो सका। और अनेक घरानों का जन्म हुआ। भारत में घरानों की यह परंपरा आज तक जीवित है हर घराने की अपनी एक शैली रही है एक विशिष्टता रही है जिसमें कुशलता एवं प्रवीणता प्राप्त करना ही उस घराने के कलाकारों का परम लक्ष्य होता है भारतीय शास्त्रीय संगीत की ख्याल गायन शैली के अनेक घराने प्रचार में है जैसे दिल्ली, ग्वालियर, किराना, आगरा, पटियाला, जयपुर, हर घराने की अपनी-अपनी गायकी की विशेषताएं होती है और हर घराने की आवाज या स्वर लगाने की एक पद्धति होती है जिसके आधार पर यह पता चलता है कि कौन सा कलाकार किस घराने का है उक्त घरानो में आगरा घराने में खुली और बुलंद आवाज लगाने का प्रचलन हैं इसके विपरीत किराना घराने में जोरदार आवाज में गाने का प्रचलन नहीं है इस घराने के कलाकार अपने गायन को अत्यधिक मधुर और सुरीला बनाने के अथक प्रयास में रहते हैं इसी को ध्यान में रखकर किराना घराने ने अपनी स्वयं की आवाज लगाने की पद्धति निर्मित की। इस प्रकार दोनों घरानों की आवाज अर्थात स्वरों को लगाने का एक विशेष तरीका है। जिसमें काफी अंतर देखने को मिलता है। दोनों ही घराने अपने-अपने आवाज का लगाव के ढंग को लेकर विशेष लोकप्रिय तथा प्रचार में है अत: दोनों घरानों की गायकी का आकर्षण आज भी बना हुआ है। दोनों घरानों की गायकी को आज भी संगीत के विद्यार्थी पसंद करते हैं वर्तमान समय के कई ऐसे कलाकार है, जिन्होंने दोनों घरानों की गायकी का समन्वित गायन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है उदाहरणत: प्रभा अत्रे, माणिक वर्मा। आशा है कि इसी प्रकार भविष्य में नई पीढ़ी के कलाकार एवं संगीत विद्यार्थी किसी एक घराने की गायकी पर निर्भर ना रहकर अपनी गायकी में विभिन्न घरानों के सौंदर्य तत्वों का समुचित मिश्रण करके अलग-अलग प्रकार की बनाएंगे। यही मेरे उक्त शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य है।

मुख्य बिंदु :-आवाज का लगाव, आगरा घराना, किराना घराना, अनुनासिक, खुलापन, बनावटीपन, मधुरता।

संगीत जनमानस को ईश्वर से प्राप्त एक वरदान है, और इस ईश्वर से प्राप्त वस्तु को अपनी कल्पना और बुद्धि के आधार पर बड़ाकर की गई संगीत की अभिजात आकृति है शास्त्रीय संगीत। भारतीय शास्त्रीय संगीत में संगीत के मूल तत्व आलाप, स्वर, तान आदि का समुचित मिश्रण होते हुए भी, जब घराना परंपरा से अपना नाता जोड़ने लगता है, तो उसमें आवाज या स्वर का विशिष्ट लगाव, तान का वैशिष्ट्य पूर्ण ढंग, बंदिशों का अलग-अलग रखरखाव और समूचे गायन के प्रस्तुत करने का अपना अलग-अलग अर्थ स्पष्ट होता है। इसी कारण संगीत में गायन शैली के आधार पर आगरा और किराना घराना भिन्न-भिन्न घरानों में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए हैं।

आगरा घराना (आवाज का लगाव):-

आगरा घराना भारतीय संगीत के प्रसिद्ध एवं प्राचीन घरानो में से एक है यह मूलत: ध्रुपद और धमार गायकों का घराना रहा है इसलिए इसकी ख्याल गायकी पर नोम्-तोम् आलापचारी और लयकारी का विशेष प्रभाव देखा जा सकता है इस घराने के प्रवर्तक नौहार वाणी के प्रणेताहाजी सुजान खान को माना जाता है लेकिन इस घराने की गायकी को प्रचारित-प्रसारित करने और उसे समृद्ध बनाने का श्रेय घग्गे खुदाबख्श को जाता है खुली और दमदार आवाज में गाना इस घराने की मुख्य विशेषता हैं।आगरा घराने में आवाज लगाने की पद्धति अनुनासिक, कुछ खुरदरी तथा स्वर व लय के पेंच दार काम से युक्त है। इस घराने की गायकी में सरलता,गौरव और संयम दिखाई पड़ता है आगरा घराने में भी अन्य घरानों की तरह सबसे पहले षडज साधने की शिक्षा विद्यार्थियों को दी जाती है क्योंकि हमारे बुजुर्ग नियम के बड़े पक्के होते थे, जब तक एक बात कंठ में नहीं बैठती थी तब तक आगे की शिक्षा नहीं देते थे। षडज साधने के पश्चात नोम्-तोम् के द्वारा आलाप करने की शिक्षा दी जाती है, क्योंकि हमारी गायकी ध्रुपद अंग से प्रभावित है। अत:इनकी स्वर लगाव की पद्धति स्वतंत्र है और आवाज खोलकर गाने की विशेषता इस घराने के सब कलाकारों में पाई जाती है।

पंडित यशपॉल शर्मा के अनुसार :-आगरा घराने की पहली पहचान कम ऊंचाई का स्वरे है जिसको ढाला स्वर के नाम से भी पुकारा जाता है इस घराने की साधना परिश्रम पूर्ण होने के कारण इतनी कम ऊंचाई के स्वर में भी मंद्र सप्तक की हरकतें स्पष्ट सुनाई देती है जब गायक निबद्ध गान शुरू करता है तो सबसे पहले नोम्-तोम् का आलाप किया जाता है आगरा घराने में अधिकतर सभी कलाकारों के स्वरोंच्चारण साधारण होते हैं स्वरोंच्चारण का यह ढंग आगरा घराने की गायकी में एक विशिष्ट अंग बन गया है।

किराना घराना (आवाज का लगाव):-

किराना घराना का संबंध प्रसिद्ध बीनकार स्व. बंदे अली खां से माना गया है इस घराने के प्रतिनिधि कलाकार स्वर्गीय अब्दुल करीम खां तथा अब्दुल वहीद खां थे। किराना घराने में आवाज लगाने का एक विशिष्ट तरीका है जो सीधे अंतर को स्पर्श करता है। आवाज का महत्व ध्यान में रखकर किराना घराने ने स्वयं की स्वर उच्चारण की पद्धति निर्मित की। भवानुकूल गायकी इस घराने की लोकप्रियता का प्रमुख कारण है इस घराने के कलाकारों की आवाज में मधुरता होने के कारण किराना घराने के स्वर में अत्यंत सुरीलापन व कोमलता सुनाई देती है। स्वर की शुद्धता पर अधिक ध्यान दिया जाता है। सुर गया तो सिर गया, ताल गया तो बाल गया इस प्रकार इस घराने की गायकी की प्रतिज्ञा है। हर प्रकार की ताने, पलटे और हरकतों को अपने कंठ से निकाल सके, ऐसा लोचदार गला तैयार होना चाहिए। इस घराने तथा अन्य घरानों के दिग्गज कलाकारों ने किराना घराने की आवाज के लगाव को लेकर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं:-

पंडित सुरेश गोपाल श्रीखंडे के अनुसार :-किराना घराने की गायकी में स्वर या आवाज का लगाव में थोड़ा सा बनावटीपन है इसके कारण इस घराने पर थोड़ा सा अपवाद है और कुछ संगीतज्ञ द्वारा माना जाता है कि किराना घराने का स्वर का लगाव या आवाज का लगाव थोड़ा सा अनुनासिक है इसीलिए इसमें खुलापन कम है इस घराने के कलाकार अपना गायन अधिकतर मधुरता की तरफ ले जाने की अथक प्रयास में रहते हैं।

पंडित गणेश प्रसाद शर्मा के अनुसार:-किराना घराने की आवाज का लगाव गोली आवाज में गाना अर्थात् प्रकृति आवाज में गाना है। इस घराने का स्वर बेहद नाजुक, कोमल प्रवृत्ति का रेशम सा मुलायम तथा मधुर है इसके विपरीत आगरा घराने में स्वर या आवाज का लगाव खुली आवाज (मर्दाना आवाज) में लगाते हैं यही इन दोनों घरानों का मुख्य अंतर है।

अत: उक्त दोनों घरानों की आवाज के लगाव का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि आगरा घराने में गले को संकुचित ना करके खुली आवाज में अर्थात बुलंद आवाज में गाने का प्रचलन है इसके विपरीत किराना घराने में गले को थोड़ा संकुचित करके स्वरों को नाजुक तथा कोमल प्रवृत्ति में लगाने का प्रचलन है यही इन दोनों घरानों की मुख्य विशेषता है जिसके कारण इन दोनों घरानों को अन्य घरानों से अधिक महत्व प्राप्त है।

निष्कर्ष :-उपरोक्त विवेचन से जो बातें उजागर होती हैं उनके आधार पर संक्षेप में कहा जा सकता है कि किराना घराने की आवाज लगाने की पद्धति गले को संकुचित करके और थोड़ी नाक से ध्वनि उत्पन्न करने की है इसके विपरीत आगरा घराने में स्वर थोड़ा नाक से लगाते हैं परंतु गला अधिक खुला करके गाते हैं या यूं भी कह सकते हैं की बुलंद आवाज में गाते है। अर्थात् दोनों ही घरानों के स्वर के लगाव की पद्धति कृत्रिम परंतु एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न है। अंत में आगरा और किराना इन दोनों घरानों की आवाज का लगाव अथार्थ स्वरों के लगाव का अलग-अलग अध्ययन करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि दोनों घरानों के स्वरों के लगाव में अंतर अधिक है और समानता का कम है लेकिन यह दोनों ही घराने अपनी गायकी की दृष्टि से परिपूर्ण है। दोनों घरानों की गायकी मधुर, रंजक, हृदयस्पर्शी है यही वजह है कि आज भी आगरा और किराना इन दोनों घरानों की गायकी को संगीत के विद्यार्थी अपना रहे हैं।

संदर्भ:-

1. डॉ प्रभा अत्रे, स्वरमयी, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, रविंद्र नाथ ठाकुर मार्ग, भोपाल, प्रथम संस्करण-1996
2. डॉ मधुबाला सक्सेना, ख्याल शैली का विकास, वी. के. अरोड़ा, विशाल पब्लिकेशंस यूनिवर्सिटी केंपस, कुरुक्षेत्र-132119
3. शन्नो खुराना, ख्याल गायकी में विविध घराने, सिद्धार्थ पब्लिकेशंस 10, आंखला इंडस्ट्रियल एरिया फेज-2, नई दिल्ली-110020
4. जयती मैत्रा, उस्ताद विलायत हुसैन खां : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली 110002
5. डॉ सुरेश गोपाल श्रीखंडे, हिंदुस्तानी शास्त्रीय गायन की शिक्षा प्रणाली, अभिषेक पब्लिकेशंस, सेक्टर-17सी, चंडीगढ़-17
6. डॉ सुशील कुमार चौबे, संगीत के घरानों की चर्चा, उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ-1977
7. पंडित गणेश प्रसाद शर्मा, साक्षात्कार, दिनांक-10.06.2011
8. पंडित यशपॉल शर्मा, साक्षात्कार, दिनांक-12.06.11

भारतीय संस्कृति के पोषक स्वामी दयानन्द सरस्वती

डॉ0 बृजेश कुमार पाण्डेय

एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, संत विनोबा पी0जी0 कालेज, देवरिया, उ0प्र0

स्वामी दयानन्द सरस्वती भारतीय समाज की अलौकिक विभूति थे। आपका प्रादुर्भाव उस समय हुआ, जब भारतीय संस्कृति विदेशी प्रभाव से आक्रांत थी। शिक्षित वर्ग पाश्चात्य सभ्यता के चकाचौंध से अपना स्वाभिमान, आत्म गौरव और अपनी प्राचीन गरिमा को भूल रहा था। हिन्दू धर्म को जड़ता तथा परम्परागत विचारधाराओं से मुक्त करने के निमित्त आपने 1875 ई0 में बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज के माध्यम से आपने अपने आन्दोलन को एक सुव्यवस्थित दिशा और गति प्रदान की।

स्वामी दयानन्द सरस्वती भारतीय संस्कृति के पूर्ण पोषक थे। उन्हें प्राचीन भारतीय आदर्श सर्वथा मान्य था। प्राचीन मान्यताओं को अपनाने में ऋषियों, मुनियों एवं अपने पूर्वजों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के समर्थन में ही वे भारतीय जनता का कल्याण देखते थे। उनका नारा था-'वेदों की ओर लौटो' इस एक सिद्धान्त मात्र में ही उनका समस्त जीवन दर्शन छिपा हुआ है। वे क्या चहाते थे और किन मान्यताओं एव आदर्शों को अपनाने मे भारत के सभी वर्गों का कल्याण है, इसका आभास 'वेदों की ओर लौटो' से स्पष्ट हो जाता है। वे सच्चे अर्थ में आदर्शवादी थे। जीवन के समस्त पहलू में उनका आदर्श था। महात्मा गांधी जी का कहना था 'गाँवों की ओर लौटो'। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री रुसो ने भी 'प्रकृति की ओर लौटो' का नारा दिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती वैदिक संस्कृति के महान पोषक थे। प्राचीन वैदिक परम्परा में शिक्षा वह है, जिससे विद्या मिलती है। स्वामी दयानन्द के अनुसार शिक्षा उसे कहते हैं, जिसमें विद्या, सभ्यता, धर्मात्मायन और जितेन्द्रियता आदि सद्गुणों का प्रस्फुटन हो तथा अविद्या का नाश हो। उनके अनुसार दर्शन के आधार चार वेद हैं। इनको वो ब्रह्मवाक्य मानते थे। इनके अतिरिक्त वे किसी और आधार को विश्वसनीय नहीं समझते थे। धर्म, मन, वचन और कर्म से सत्य और न्याय का पालन करने वाला होता है। धर्म के अन्तर्गत उन्होंने भक्ति को भी महत्त्व सप्रदान किया। उनके अनुसार ईश्वर भक्ति के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। स्वामी दयानन्द का दर्शन पूर्णत: वेदों पर आधारित था। उन्होंने उन वैदिक उपदेशों को अपने ज्ञान के प्रकाश से आलोकित करके उन्हें सर्वसाधारण के लिए सुलभ बनाते हुए उनके महत्त्व को प्रकाशित करने का प्रयास किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती भारतीय संस्कृति के पूर्ण पोषक होने के ही कारण स्वामी जी सादा जीवन, उच्च विचार के सिद्धान्तों को अपनाते हैं और प्रत्येक बालक, शिक्षक, अभिभावक, माता-पिता को भी अपने जीवन में इस परम उज्ज्वल आदर्श को अपनाने पर बल देते हैं। शिक्षा का आदर्श वे मानते हैं सादा जीवन उच्च विचार के संस्कार का निर्माण। भारतीय संस्कृति की रक्षा का उपाय वे इसी आदर्श को स्वीकार करने में देखते थे। उन्होंने बड़े स्पष्ट रूप में कहा है 'मानव जीवन का कल्याण और प्रगति इसी में है।' उनका कहना अक्षरश: सत्य है। आज भारतीय समाज में यह आदर्श लुप्त होता जा रहा है। चूँकि समाज में इस आदर्श का लोप हो रहा है, अत: विद्यालयों में भी इसका ह्रास स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है। विद्यालय अथवा विश्वविद्यालय स्तर के किसी भी युवक का जीवन अब प्राय: न तो सादा और न उच्च भावना से ओत-प्रोत है। आदर्शवाद का सर्वथा ह्रास हो गया है। आज पूरा देश अनुशासन की समस्या से चिंतित है। इसका मूल कारण यह भी है कि आज के विद्यार्थियों में ही नहीं, अपितु शिक्षकों एवं अभिभावकों में भी कृत्रिमता की भावना जड़ जमाती जा रही है। हमारे समक्ष ऊँचा आदर्श नहीं है और हमारा जीवन आडम्बरपूर्ण हो गया है। इस सामाजिक और मनोवैज्ञानिक मन:स्थिति में आमूल परिवर्तन करना ही पड़ेगा। विश्व में जितने महान पुरुष हुए हैं, सभी के सामने महान लक्ष्य और उच्च विचार थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती का व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त सरल और पवित्र था। उच्च आदर्श के कारण ही उन्होंने करोड़ों भारतीय जनता का कल्याण किया और आज भी उनकी संस्था ''आर्य समाज'' हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति के रक्षा तथा पुनरुद्धार में अनवरत संलग्न है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिक्षा-दर्शन में आदर्शवाद, प्रकृतिवाद और यथार्थवाद का सफल समन्वय परिलक्षित होता हैं वे सच्चे अर्थों में मानवतावदी थे। वे मात्र स्वदेश का ही नहीं, बल्कि समस्त विश्व का कल्याण चाहते थे। मानव-कल्याणार्थ ही उन्होंने अपना जीवन त्याग दिया। सत्तर वर्ष की अवस्था में यूनान के महान् चिंतक महात्मा सुकरात ने भावी युग के सत्य और ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करने के लिए अविचलित और निर्विकार भाव मुद्रा में अदालत की कठोर आज्ञा को अंगीकार करते हुए जहर का प्याला चूमा था और उसे गले के नीचे उतार मृत्यु का सहर्ष स्वागत किया था। ठीक उसी प्रकार भारत के तपस्वी स्वामी दयानन्द ने भी उनसठ वर्ष की अवस्था में जनकल्याणार्थ अपने को उत्सर्ग कर दिया और मृत्यु का आलिंगन करते हुए कहा-''ईश्वर तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।'' वे विस्तुत: भारतीयों को सर्वप्रकारेण उन्नत और सुखी देखना चाहते थे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती प्राचीन भारत में प्रचलित गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के आदर्श को अपनाने पर बल देते हैं। शिक्षा-प्रणाली के क्षेत्र में उन्होंने गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली के आदर्श को सर्वश्रेष्ठ ठहराया है। प्राचीन भारतीय गुरुकुल के आदर्शमय जीवन को ही भारतीय समाज के लिए आदर्श मानते हैं। गुरुकुल शिक्षा

प्रणाली में मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रकाशवान बनाने के लिए शिक्षा का विधान किया गया था। प्राचीन भारत का निर्माण धार्मिक तत्वों के आधार पर हुआ था। प्राचीन भारतीयों का धार्मिक और नैतिक जीवन जगत प्रसिद्ध है। धार्मिक जीवन के कारण उनका दृष्टिकोण भी सर्वथा धार्मिक एवं आध्यात्मिक होता था। अत: शिक्षा का उद्देश्य भी धर्म से पूर्णत: प्रभावित होता था। विद्यार्थी के अन्दर धार्मिक प्रवृत्ति को जाग्रत करना ही शिक्षा का सर्वप्रथम उद्देश्य था। विद्यार्थियों का गुरुकुल जीवन धार्मिक एवं आध्यात्मिक आधार पर इस प्रकार गठित था कि अपने भावी जीन में आध्यात्मवाद, आत्मनिग्रह एवं आत्म संयम आदि सद्गुणों की ओर से स्वत: प्रवृत्ति होते थे।

स्वामी दयानन्द ने मन, वचन और कर्म से भारतवासियों का उत्थान चाहा। उन्होंने अखण्ड ब्रह्मचारी रहकर अपना समस्त जीवन अपने समाज के कल्याणार्थ व्यतीत किया। समाज में प्रत्येक पहलू को उन्होंने अपनी अलौकिक दृष्टि से देखा ओर कल्याणार्थ मार्ग प्रशस्त किया। भारतीय बालक-बालिकाओं के कमजोर स्वास्थ्य को देख उन्हें बहुत दु:ख होता था। प्लेटो चाहते थे कि आदर्श समाज के नागरिक स्वस्थ हो, अस्वस्थ होना वे लज्जाजनक समझते थे। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि आदर्श समाज के लिए स्वस्थ व्यक्तियों का होना अनिवार्य है। अत: शिक्षा की प्रारम्भिक अवस्था में ही शारीरिक विकास की ओर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। रूसो बालकों को शारीरिक सुदृढ़ता प्रदान करना चाहते हैं। रूसो अपनी पुस्तक एमिल में लिखते हैं-''दुर्बलता ही दुष्टता का जन्मदायिनी शक्ति है। बालक निर्बल होने के कारण ही अनैतिक होता है। उसे पुष्ट बनाओ, देखो वह बुराई छोड़ देगा। जो सब कुछ करने में समर्थ है, वह बुरा नहीं होता है।''

प्राचीन भारत में सुन्दर, पुष्ट और बलवान शरीर तथा स्वास्थ्य की शिक्षा को अत्यधिक महत्त्व दिया गया था। उनका विश्वास था कि व्यक्ति का मानसिक, शारीरिक तथा नैतिक विकास एक दूसरे से इस प्रकार सम्बद्ध है कि उन्हें विलग नहीं किया जा सकता है। शरीर को स्वस्थ रखने की पवित्र दृढ़ भावना एक ऐसा केन्द्र बिन्दु है जिसकी परिधि के अन्तर्गत अन्य गुण मड़राते हैं।

स्वामी दयानन्द के अनुसार शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य उच्च चरित्र का निर्माण करना है। मनुष्य का चरित्र उसके विभिन्न कार्यों और इच्छाओं की समष्टि, उसके मान के समस्त झुकाओं का योग है। सुख और दु:ख उसकी आत्मा होकर क्रमश: जिस प्रकार धारावाहित होते हैं वे उसका अपनी द्वारा तथा संस्कार अपना छोड़ जाते हैं। शिक्षा का उद्देश्य मानव को नैतिक गुणों से सम्पन्न करना है। मानवीय गुणों की सम्पन्नता ही नैतिकता है। नैतिकता में सत्य, शिवम, सुन्दरम तथा धर्म की प्राप्ति के भाव निहित हैं।

विद्यार्थियों को उच्च आदर्शों की प्राप्ति तभी होगी, जब वे सरल जीवन व्यतीत करेंगे। रुसो, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और महात्मा गांधी के समान ही स्वामी दयानन्द ने भी बालक-बालिकाओं में मिथ्याडम्बर को अशोभनीय बतलाया है। विद्यार्थी जीवन को पवित्र और आदर्श रखने के लिए दिखावटीपन अथवा अन्य सजावट को त्यागना पड़ेगा। सादे जीवन और उच्च विचार का प्रभाव बहुत सूक्ष्म तथा स्थायी होता है। स्वामी जी ने विद्यालय वातावरण को भी सरल एवं पवित्र बनाने पर बल दिया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने विद्यार्थियों के खान-पान, आचार-विचार, वेश-भूषा सभी जगह सादगी के सिद्धान्त को अपनाने को बतलाते हैं। उनका विचार था कि प्रत्येक विद्यार्थी को एक समान भोजन, वस्त्र और आवास की सुविधा दी जाए और यह तभी सम्भव होगा, जब हमारा रहन-सहन सादा एवं पवित्र बनेगा। उन्होंने शिक्षकों को सम्बोधित करते हुए मनुस्मृति के उस उद्देश्य को धारण करने को कहा, जिसमें बतलाया गया है कि गुरु अपने शिष्यों के मस्तिष्क में यह भावना उत्पन्न करें कि धन और सांसारिक सुखों से विमुख हुए बिना वास्तविक धर्म का ज्ञान सम्भव नहीं है।

विद्यार्थी को विद्यालय में आते ही गायत्री मंत्र का उपदेश करके संध्योपासन, स्नान, आचमन एवं प्राणायान आदि क्रियायें सिखायी जानी चाहिए। स्नान से शरीर के बाहरी अवयवयों की शुद्धि होती है। स्नान भोजन के पूर्व करना चाहिए। प्राणायाम से आन्तरिक शुद्धि होती है और ज्ञान का प्रकाश बढ़ता है। इससे मन आदि इंद्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं। केवल पुरुषों को ही नहीं, बल्कि स्त्रियों को भी योगाभ्यास करना चाहिए। संध्योपासन को ब्रह्म यज्ञ भी कहते हैं। आचमन में जल को हथेली में लेकर सके मूल और मध्य देश में ओष्ठ लगाकर वह जल ओष्ठ के नीचे हृदय तक पहुँचाया जाता है, जिससे कंठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति होती है। इसके पश्चात् मार्जन, अर्थात् मध्यमा और अनामिका उगली के अग्रभाग से नेत्र आदि अंगों पर जल छिड़कने से आलस्य दूर होता है। इसके बाद प्राणायाम, मनसा परिक्रमण, उपस्थान, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना की रीति समझनी चाहिए।

वैदिककालीन शिक्षा के समान ब्राह्मण युग में भी गुरु और शिष्य का आत्मिक, आध्यात्मिक एवं सुमधुर सम्बन्ध बना रहा। पिता-पुत्र के समान, गुरु-शिष्य का यह पवित्र धामिक सम्बन्ध अत्यन्त मधुर था। गुरु-सेवा में किसी प्रकार की भी त्रुटि उसकी कर्तव्यहीनता का सूचक थी। वैदिककालीन शिक्षा प्रणाली में आचार्य देवों भव की पवित्र भावना आज भी वतमान बनी रही है। गुरु गृह का समस्त कार्यभार सम्भालना ब्रह्मचारी का दायित्व था। साथ ही उसको गुरु की आज्ञा का अक्षरश: पालन करना पड़ता था। शिष्य गुरु का कभी विरोध नहीं कर सकता था। उसे गुरु की पत्नी और पुत्रों का भी आदर करना होता था।

वैदिक युग के समान शिक्षण पद्धति मौखिक थी। विषयों को कंठस्थ करा दिया जाता था, क्योंकि तब भी ग्रंथ लिखित रूप में नहीं थे। इस प्रकार शिक्षा एक पीढ़ी से दूरी पीढ़ी को मौखिक रूप से हस्तान्तरित होती थी। ब्राह्मण काल में सूत्र-पद्धति, प्रश्नोत्तर-पद्धति और शास्तार्थ पद्धति भी पठन-पाठन की प्रमुख विधियां थीं। शिक्षा प्रणाली वयक्तिगत थी। प्रत्येक शिष्य को अलग-अलग शिक्षा दी जाती थी, परन्तु सामूहिक रूप में भी समय-समय पर उन्हें विषय रटाया और समझाया जाता था। प्राचीन गुरुकुल आश्रम का शिक्षक-शिष्य सम्बन्ध धार्मिक, नैतिक, सहयोग, विनय तथा शील के उच्च आदर्श पर अवस्थित होने के फलस्वरूप श्रेष्ठ कोटि का माना जाता था। ऐसी स्थिति में विद्यार्थियों को दण्डित करने की समस्या ही नहीं उपस्थित होती थी, क्योंकि छात्रों में अनुशासनहीनता और आचरणहीनता नहीं के बराबर थी। ये सादा जीवन एवं उच्च विचार के सिद्धान्त को अपनाते थे। आधुनिक शिक्षा का यह मनोवैज्ञानिक तत्व भारतीयों

को उसी युग में मान्य था। गुरुकुल में विद्यार्थियों की संख्या कम होती थी। अतः शिक्षक उन पर व्यक्तिगत ध्यान देकर उनका व्यक्तिगत विकास कर पाते थे।

वर्तमान काल में प्रचलित योजना पद्धति ;च्तवरमबज डमजीवकद्ध उस काल में भी प्रचलित थी। गुरु अपने गुरुकुल में अपने शिष्यों द्वारा कुछ न कुछ आवश्यक योजना सम्पादित कराते थे। यज्ञ की तैयारी में वेदी के लिए ईंट बनाना, वेदी की लम्बाई-चौड़ाई के आधार पर आकृति निश्चित करना, विभिन्न आवश्यक सामग्रियों को इकट्ठा करना, हवन के लिए लकड़ी लाना तथा यज्ञ शाला की सजावट आदि की व्यवस्था शिष्यों को ही करनी पड़ती थी। विद्यार्थी आश्रम का मकान भी बनाते थे। शिक्षा का रूप सामूहिक था।

प्राचीन गुरुकुलों में हमें उन कतिपय मनोवैज्ञानिक तत्वों का दर्शन होता है, जिनकी महत्ता का प्रतिपादन वर्तमान शिक्षा-मनोवैज्ञानिक करते हैं, कितने आश्चर्य की बात है कि ई0पू0 2000 वर्ष पहले भारतीय समाज मनोवैज्ञानिक की आधुनिक महत्ता से अवगत कराया था। तभी अपनी शिक्षण संस्थाओं में उसका सफल प्रयोग करता था। महर्षि दयानन्द इस आदर्श के पोषक थे।

स्वामी दयानन्द स्त्री शिक्षा के पक्ष में थे। उन्होंने कहा था कि वेदों में कहीं पर ऐसा निर्देश नहीं है कि नारियों वेदों के अध्ययन के लिए अनुपयुक्त हैं। अतः स्त्री और पुरुष दोनों को समान रूप में शिक्षा प्राप्त करने का समान अधिकार है। जिस प्रकार पुरुष व्याकरण, धर्म और अपने व्यवसाय सम्बन्धी ज्ञान प्राप्ते हैं, उसी प्रकार स्त्रियों के लिए भी व्याकरण, धर्म, चिकित्सा, गणित, अर्थशास्त्र आदि का अध्ययन करना आवश्यक है। इस प्रकार अध्ययन द्वारा वे सत्य, उचित व्यवहार, अपने पति के प्रति सद्व्यवहार, अपने बच्चों को पालने तथा उनकी व्यावहारिक शिक्षा-दीक्षा के निरीक्षण और गृह कार्य की कुशलता का ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती भारतीय संस्कृति के पूर्ण पोषक थे। आपका सबसे बड़ा योगदान हिन्दू जनता को सशक्त और सप्राण बनाया। सदियों के आक्रमण से कमजोर बनी हुई जनता को उन्होंने पुनः शक्ति का संदेश दिया। स्वामी दयानन्द जन जागरण के अग्रदूत थे और प्राचीन आदर्शों को जनजीवन की भीत बनाना उनका कार्यक्रम था। नैतिक आदर्शों से युक्त होने पर सामाजिक और राजनैतिक समृद्धि प्राप्त होगी, ऐसा उनका विश्वास था। इस प्रकार वे सर्वविध लौकिक, नैतिक और सामाजिक अभ्युदय के प्रबल उद्घोषक थे।

सन्दर्भः

1. विद्या वाचस्पति, इन्द्रः भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास।
2. वर्मा, वी0एन0 प्रसादः विश्व के महान शिक्षाशास्त्री, पटना बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
3. वर्मा, वी0पी0: आधुनिक भारतीय राजनैतिक चिन्तन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
4. चौधरी, एस0सी0 रायः आधुनिक भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक एव आर्थिक इतिहास, सरजीत पब्लिकेशन्स
5. अवस्थी, अवस्थीः आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनैतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।
6. सिंह, अयोध्याः भारत का मुक्ति संग्राम, दि मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली।
7. पाण्डेय, आर0एस0, उदयीमान भारतीय समाज में शिक्षक, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन।
8. चौबे, एस0पी0: भारतीय शिक्षा दर्शन, दि मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली।
9. दाधीच, कमालमिया, एम0के0: महात्मा गांधी विश्वकोश, नई दिल्ली, अर्जुन पब्लिशिंग हाउऊ, नई दिल्ली।
10. गांधी के शैक्षिक विचार, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्।
11. मिश्रा एम0के0 और अन्य, गांधी और शिक्षा, नई दिल्ली, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।

मुगलकालीन ग्रामीण प्रशासन में जमींदार वर्ग की भूमिका

शीतल देवी

शोधार्थी, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

दीर्धजीवी साम्राज्य के लिए एक सृदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था का होना सबसे आवश्यक शर्त होती है, इसलिए प्रत्येक कुशल शासक सिंहासन्रोहण के बाद केन्द्र से लेकर ग्रामीण स्तर तक की शासन व्यवस्था को सुदुढ़ करने का प्रयास करता है। केन्द्र से लेकर ग्राम स्तर तक, सामान्य और आर्थिक प्रशासन की सुविधा के लिए साम्राज्य विभिन्न इकाईयों में बंटा होता था जिसे प्राचीन काल से लेकर मुगल काल तक अलग-अलग समय में अलग-अलग नामों से जाना जाता था।

16वीं व 17वीं शताब्दी में गांव की सुरक्षा व्यवस्था कहां तक थी, इसका अनुमान आधुनिक इतिहासकारों के कथनों से ही लगाया जा सकता है। उनसे जो भी जानकारी प्राप्त होती है, वह पूरी तो नहीं कही जा सकती लेकिन उसके आधार पर इतना कहा जा सकता है कि अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग समयों में सुरक्षा कर स्थिति भिन्न होती थी। मुगलों की शासन प्रणाली का मुलाधार उनके द्वारा राज्य का अनेक सूबों या जिलों में विभाजन था और केन्द्र द्वारा दिए गए आदेशों का पालन करने के लिए प्रत्येक सूबे या जिले में अधिकारियों की नियुक्ति करना था। गांव लोगों के लिए परम्परागत परम्पराओं और अन्य गतिविधियों को संचालित करते थे। सरकार इनके काम में कोई दखलअंदाजी नहीं करती थी लेकिन इसका मतलब यह नहीं था कि मुगल बादशाह गांव के प्रशासन की अनदेखी करते थे, बल्कि ये बादशाह गांव की जमीन को जोतने योग्य बनाने के लिए बड़े पैमाने पर धन वहन करते और भूमि के उपजाऊपन को बढ़ाने के लिए लोगों को अनेक प्रकार सुविधाएं भी प्रदान करते थे।[1] बादशाहों ने गांवों के सामूहिक जीवन में दखलअन्दाजी करने की कोई चेष्टा नहीं की और उनकी प्रारम्भ से चली आ रही प्रथाओं में भी कोई हस्तक्षेप नहीं किया। परिणामस्वरुप गांवों की स्वायत्ता अक्षुण्ण बनी रही और आज भी सारे देश में ग्राम सभाएं ही गांव के प्रशासनिक, वित्तीय और न्याय से सम्बन्धित कार्यों का संचालन कर रही है।[2]

ग्रामीण व्यवस्था के अन्तर्गत जमींदार

जमींदार शब्द का अर्थ है- भू-स्वामी। जमींदार फारसी भाषा का शब्द है।[3] भारत में चौदहवीं सदी के प्रारम्भ में इस शब्द को मर्जबान के पर्याय के रुप में प्रयुक्त किया जाता था, जिसका अर्थ था राज्य का अध्यक्ष या निरीक्षक।[4] इतिहासकार अफीफ और जियाऊदीन बरनी ने दिल्ली सल्तनत के बाहर अथवा अन्तर्गत पाये जाने वाले किसी भी स्वायत्त सरदार के लिए जमींदार शब्द का प्रयोग किया है।[5] सल्तनत कालीन इतिहासकार इसामी जमींदार शब्द का प्रयोग इक्ता धारक के लिए करता है।[6] लेकिन मुगलकाल में इस शब्द का अर्थ केवल सरदार या सामन्त नहीं था बल्कि इसे व्यापक अर्थ के रुप में देखा गया।

प्रो. नुरुल हसन ने मुगलों के अधीन जमींदार नामक अपने लेख में कहा है कि वास्तव में जमींदार शब्द का प्रचलन मुगल काल में हुआ। इसका प्रयोग शक्तिशाली स्वतन्त्र और स्वायत्त सरदारों से लेकर ग्रामीण स्तर के छोटे-मोटे मध्यस्थों तक, विभिन्न प्रकार के पुश्तैनी हितों के अधिकारियों को निर्दिष्ट करने के लिए होता था। मुगलों से पहले इन सरदारों को राजा, राय, ठाकुर और इसी प्रकार के अन्य नामों से जाना जाता था, जबकि छोटे मध्यस्थ लोग चौधरी, मुकद्दम आदि कहलाते थे लेकिन मुगल काल में सबके लिए जमींदार शब्द का प्रयोग किया गया।[7] जमींदार खेत नहीं जोतता था लेकिन उन्हें पैदावार में हिस्सा पाने का अधिकार होता था। जमींदार एक ऐसा अधिकार था जो किसानों से श्रेष्ठ स्तर के ग्रामीण वर्गों के पास होता था। इसे अनेक नामों से जाना जाता था। अबुल फजल जमींदार के लिए बूमि शब्द का प्रयोग करता है।[8] मनूची भी अपनी भारत यात्रा वृतान्त में जमींदार के लिए भू-स्वामी शब्द का प्रयोग करता है और कहता है कि वह अपने क्षेत्र का सबसे शक्तिशाली व्यक्ति होता था।[9] मुगल समय में शासन के अधिकारियों में जमींदार छोटे दर्जे का अधिकारी होता था। ग्रामीण समाज में बहुत सी अलग-अलग जातियों और समुदाय के लोग रहते थे और इस पूरे भू-भाग पर जमींदार का अधिकार होता था।[10] नूरुल हसन कहते हैं कि जमींदारी प्रथा जाति-प्रथा की ही देन है। किसी क्षेत्र पर अपने बाहुबल से अधिकार करने के परिणामस्वरुप उक्त जाति का मुखिया या सरदार उस क्षेत्र का जमींदार हो जाता था।[11] प्रो0 नोमान अहमद सिद्दकी ने राजस्व भुगतान के स्वरुप के आधार पर जमींदार को दो श्रेणियों में पेशकशी या उपहार देने वाले जमींदार और मालवाजिब या भू-राजस्व देने वाले जमींदार में बाँटा है जबकि नुरुल हसन ने जमींदारी अधिकारों के आधार पर जमींदारों की तीन श्रेणियां बतायी हैं- स्वायत्त सरदार, मध्यस्थ जमींदार और प्राथमिक जमींदार।[12]

सरदार अपने क्षेत्रों के पुश्तैनी स्वायत्त शासक होते थे और व्यवहारिक रुप से सत्ता का उपयोग करते थे। अकबर से पहले मुगल साम्राज्य के बड़े भाग पर इस तरह के स्वायत्त सरदारों का प्रभाव स्थापित हो चुका था। उनके पास राजनीतिक अधिकार थे। ये लोग जमींदार इसलिए कहे जाने लगे थे क्योंकि मुगलों ने उनको अपने अधीन कर लिया था। स्वायत्त सरदारों की मुख्य श्रेणियां थी- प्रथम श्रेणी के स्वायत्त सरदारों में कुछ ऐसे थे जिन्होने मुगलों के अधिपत्य को स्वीकार कर लिया था लेकिन उनको सैनिक या वित्तीय दायित्वों से मुक्त रखा गया और दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत वे सरदार थे जो मुगल बादशाहों की

अधीनता स्वीकारते हुए निश्चित पेशकश देते थे या फिर प्रान्त के नाजिम की सैनिक सेवा करने की शर्त पर अपने क्षेत्र पर अधिकार रखने की आज्ञा प्राप्त कर लेते थे। वास्तविक रुप से अकबर और उसके बाद के मुगल बादशाहों ने सरदारों से अपना अधीपत्य स्वीकार करवाने, कर वसूल करने और सैनिक सहायता प्राप्त करने की नीति को जारी रखा। मुगल बादशाहों ने अनेक कुटनीतिक उपायों के द्वारा इन स्वायत्त सरदारों को अपने अधीन रखने का प्रयास किया।[13]

मध्यस्थ जमींदार

मध्यस्थ जमींदार के अन्तर्गत वे जमींदार आते थे जो प्राथमिक जमींदरों से मालगुजारी लेकर शाही खजाने में या जागीरदारों या सरदारों को दे दिया करते थे या कुछ स्थितियों में अपने पास ही रख लेते थे। देशमुख, देशपाण्डे, चौधरी, मुकद्दम, कानूनगो, इजारेदारों के कुछ प्रकार और जमींदारों का वह वर्ग जो किसी विशेष क्षेत्र की मालगुजारी वसूल करने के लिए राज्य से अनुबंधन करता था और जो सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में तालुकदार के जातीय नाम से जाना जाने लगा था, मध्यस्थों के अन्तर्गत आते थे।[14] ये मध्यस्थ जमींदार मालगुजारी प्रशासन की रीढ़ के समान थे, और साथ ही साथ कानून व्यवस्था बनाए रखने का काम भी इन्हीं का होता था। अधिकांश जमींदारों को पैतृक उत्तराधिकार प्राप्त थे, जबकि कुछ जमींदार थोड़े समय के अनुबन्ध पर भी इस पद पर कार्य किया करते थे।[15] अपनी सेवाओं के बदले जमींदारों को अनेक प्रकार के अनुलाभ प्राप्त होते थे जैसे कमीशन, रियायतें, कर मुक्त भूमि, उपकर आदि। साधारणत: मालगुजारी में उनका हिस्सा 2.5 से 10 प्रतिशत के बीच होता था।[16] इस श्रेणी के जमीदारों में से अधिकतर लोगों को मालगुजारी निर्धारण का ब्यौरा बना कर राज्य के अवलोकन के लिए प्रस्तुत करना पड़ता था, कृषि विस्तार को प्रोत्साहन व भू राजस्व वसूल करने में सहायता करनी पड़ती थी, शान्ति व्यवस्था बनाए रखने में शाही अधिकारियों की मदद और साथ ही साथ निश्चित मात्रा में सैन्य टुकडिघ्यों की आपूर्ति करनी पड़ती थी। फिर भी ये केन्द्रिय सत्ता के कमजोर होने की स्थिति में विद्रोह करने लगते और सामान्य परिस्थितियों में भी ये जमींदार अपने अधिकारों में वृद्धि और राजस्व में अधिक से अधिक हिस्सा प्राप्त करने के लिए निरन्तर संघर्ष करते रहते थे।[17]

प्राथमिक जमींदार

जमींदारों का तीसरा वर्ग प्राथमिक जमींदार कहलाता था। इस वर्ग के जमींदार को व्यवहारिक रुप से कृषि योग्य और निवास योग्य दोनों प्रकार की भूमि पर स्वामित्व का अधिकार प्राप्त था। इस वर्ग में किराए के मजदूरों से खेती करने वाले कृषक स्वामी ही नहीं बल्कि एक या अधिक गाँवों के स्वामी भी आते थे। सारी कृषि योग्य भूमि इन प्राथमिक जमींदारों के अधिकार में थी। इसके अधिकार वंशानुगत भी होते थे और हस्तांतरणीय भी।[18] मुगल बादशाहों ने इन जमींदारों के अधिकारों की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझा और इनके लिए प्रयास भी किए। कृषि योग्य भूमि को बढ़ाने के लिए मुगल बादशाहों ने ऐसे लोगों को मुक्त हाथों से जमींदारी अधिकार प्रदान किए, जिनके पास जमींदारी अधिकार वंशानुगत या फिर खरीदे हुए नहीं थे। जब प्राथमिक जमींदार मालगुजारी का भुगतान समय पर नहीं करते थे तब जमींदारों का लगभग 10 प्रतिशत मालिकाना छोड़कर किसानों से सीधा इसे इकट्ठा कर लिया जाता था। यह प्रतिशत जमींदार का सामान्य हिस्सा दर्शाता है। साथ ही साथ ये जमींदार अनेक प्रकार के उपकर लेने के लिए भी अधिकृत थे।[19] लेकिन नुरुल हसन लिखते हैं कि जमींदारों की तीन श्रेणियां किसी भी तरह से अनन्य नहीं थी। स्वायत सरदारों द्वारा नियन्त्रित क्षेत्रों में अधीनस्थ अर्ध स्वायत जमींदार भी होते थे। एक सरदार अपने अधीकार क्षेत्र में राज्य सत्ता का उपभोग करने के साथ-साथ कुछ भूमि पर प्राथमिक अधिकारों और मध्यस्थ अधिकारों का प्रयोग भी कर सकता था।[20]

जमींदारों को गांवों से मालगुजारी की वसूली का पुश्तैनी अधिकार प्राप्त था इसे उसका ताल्लुका या उसकी पुश्तैनी कहा जाता था। जमींदार अपनी जमींदारी में आने वाली सारी जमीन का स्वामी नहीं होता था, वास्तव में खेती करने वाले किसान जब तक मालगुजारी देते रहते थे, वे बेदखल नहीं किए जाते थे। इस तरह जमीन पर जमींदार और किसान दोनों के अपने-अपने वंशानुगत अधिकार थे।[21] जमींदारों के पास घुड़सवार और पैदल सिपाहियों के रुप में शस्त्र सेना भी होती थी और इतिहासकार इरफान हबीब तो जमींदारों के पास किले होने की बात की भी पुष्टि करता है।[22] मनुची भी इस बात को स्वीकारता है कि जमींदारों के पास खुद की सेना होती थी। जब भी किसान कर नहीं देते थे या जंगलों में भाग जाते थे तब जमींदार अपनी सेना का प्रयोग करके इन किसानों को पकड़ता था।[23]

किसान और सरकार का सीधा सम्बन्ध नहीं होता था बल्कि जमींदार वर्ग इन दोनों के बीच कड़ी का काम करता था।[24] जमींदार मालगुजारी के रुप में सरकार को एक पूर्व निश्चित रकम अदा करता था और उसी के अनुपात में किसानों से लगान वसूल करता था। जमींदार को लगान दर बढ़ाने का अधिकार नहीं था। वह विवाह, पैदाइश, गृहकर आदि अन्य कर वसूल करता था जो सरकार से स्वीकृत नहीं होते थे। लगान लेने वाले जमींदार का यह कर्तव्य होता था कि वह अपने क्षेत्र में जोती जाने वाली भूमि की देखरेख व निगरानी करें ताकि वहाँ पर लगातार खेती होती रहे। इसके लिए जमींदार किसानों को प्रोत्साहित करता रहता था।[25] जमींदार को क्षेत्र की सारी भूमि और भूमि की उत्पादकता से सम्बन्धित सारी स्थानीय जानकारी होती थी।[26] मुगल समय में गाँव के प्राथमिक जमींदारों को मनसब नहीं दिए जाते थे लेकिन उन्हें भू-कर लगातार मिलता रहता था। मुगल दस्तावेजों से हमें ज्ञात होता है कि उत्तरी भारत में जमींदार बेकार भूमि को जोतने लायक बनाकर उस पर कर लगाते थे।[27]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एच. सी. रायचौधरी, हिस्ट्री ऑफ द मुगल्स, खण्ड-4, सुरजीत पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण, दिल्ली, 1984, पृ. सं. 910-11
2. इक्ने हसन, मुगल साम्राज्य का केन्द्रिय ढांचा, अनु. कृपालचंद्र यादव, ग्रन्थ शिल्पी प्रा. लि., नई दिल्ली, प्रथम हिन्दी संस्करण, 1997, पृ. सं. 61
3. इरफान हबीब, द एग्रेरियन सिस्टम, ऑफ मुगल इंडिया (1556-1707)ए खण्ड-2, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1999, पृ. सं. 138
4. उपरोक्त, पृ. सं. 169
5. तपनराय चौधरी एवं इरफान हबीब, द कैम्ब्रिज इकोनॉमिक, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (1200-1750), खण्ड-1, ओरिएण्ट ब्लैकस्तान प्रा0 लि0, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 2009, पृ. सं. 244

6. मौरलैण्ड, द एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इण्डिया, लौ प्राईस पब्लिकेशन, दिल्ली, पुनर्मुद्रित, 2003, पृ. सं. 169
7. नुरुल हसन, मुगलो के अधीन जमींदार , उद्वल प्रो0 इरफान हबीब द्वारा सम्पदित, मध्यकालीन भारत, अंक-1, पृ. सं. 45
8. इरफान हबीब, द एग्रेरियन, स्पेरियो-डो- मोगोर (1653-1708), अनु. इवेलियम इराविन, खण्ड-2, इंडिशनस इंडियन, कलकत्ता, पुनर्मुद्रित 1965-67, पृ. सं. 172
9. मनूची, खण्ड-11, पूर्वोक्त, पृ. सं. 417
10. के. के. त्रिवेदी, आगरा इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल प्रोफाइल ऑफ ए मुगल सूबा (1530-1707) रवीश पब्लिशर्स, पुणे, प्रथम संस्करण, 1998, पृ. सं. 118-119
11. सौयद नुरुल हसन, थॉट ऑफ एग्रेरियन रिलेशन इन मुगल इंडिया पीप्ल, एस पब्लिशिंग हाऊस, पटना, पुनर्मुद्रित, 2007, पृ. सं. 32-33
12. नुरुल हसन, मुगलों के अधीन, जमींदार, उद्वत प्रो0 इरफान हबीब द्वारा सम्पादित मध्यकालीन भारत, अंक-1, पृ. सं. 45
13. उपरोक्त, पृ. सं. 46
14. उपरोक्त, पृ. सं. 60
15. बी. आर. ग्रोवर, नेचर ऑफ लण्ड राईट्स इन मुगल इण्डिया, इण्डियन इकोनॉमिक एण्ड सोसल हिस्ट्री रिव्यू-1, पृ. सं. 1-23 (विभिन्न प्रकार के भूमि अधिकारों के विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए)
16. नुरुल हसन, मुगलों के अधीन, पूर्वोक्त, पृ. सं. 50
17. उपरोक्त, पृ. सं. 50-51
18. नोमान अहमद सिद्धकी, लैण्ड रिवन्यू एडमिनिस्ट्रेशन अण्डर द मुगल्स, मुंशीराम, मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 1989, पृ. सं. 29
19. नुरुल हसन, पूर्वोक्त, पृ. सं. 52-53
20. उपरोक्त, पृ. सं. 45, 46
21. सतीश चन्द्र, मध्यकालीन भारत, राजनाति, समाज और संस्कृति (8-17वीं शताब्दी तक), अनु. नरेश नदीम, ओरियन्ट ब्लैकस्वान प्रा0 लि0, 2010, पृ. सं. 297-297
22. इरफान हबीब , भारतीय इतिहास में मध्यकाल, सं. और अनु. रमेश रावत, ग्रन्थ शिल्पी प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 2002, पृ. सं. 47
23. मनूची, खण्ड-2, पूर्वोक्त, पृ. सं. 417
24. एन. ए. सिद्दकी, लैंड रिवन्यू एडामिनिस्ट्रेशन अंडर द मुगल्स (1700-1752), मुशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रा0 लि0, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रित, 1989, पृ. सं. 16
25. एच. एस. श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, द मैकमिलन कम्पनी ऑफ इंडिया लि., प्रथम संसकरण, 1978, नई दिल्ली, पृ. सं. 159-60
26. सतीश चन्द्र, मध्यकालीन भारत, पूर्वोक्त, पृ. सं. 298
27. बी. आर. ग्रोवर, लैंड राईटस, लैडैड हायरार्की, लैंड राईट्स, लैंटेड हायरार्की एंड विलेन कम्यूनिटी ड्यूरिंग द मुगल एज, खण्ड-1, सं. अम्रीता ग्रोवर, अंजू ग्रोवर चौधरी, के. सी. दुआ, लो प्राईस पब्लिकेशन, दिल्ली, 2005, पृ. सं. 103

राष्ट्र और समाज के प्रकाश-स्तंभ थे स्वामी दयानन्द

गुरजीत सिंह

सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, गंगा डिग्री कॉलेज, खनोरी, पटियाला, पंजाब

सार

स्वामी दयानंद सरस्वती, जिन्हें बचपन में मूलशंकर के नाम से जाना जाता था, का जन्म 1824 में एक रूढ़िवादी ब्राह्मण परिवार में गुजरात के काठियावाड़ के एक छोटे से शहर टंकरा में हुआ था। अपने परिवार से प्रारंभिक शिक्षा लेने के बाद, वह एक महान वैदिक विद्वान के रूप में उभरे। उन्होंने सांसारिक जीवन को त्याग दिया और ज्ञान और सत्य की खोज में भारत के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में चले गए। दयानंद सरस्वती, एक दार्शनिक, सामाजिक नेता और आर्य समाज के संस्थापक। स्वामी दयानंद सरस्वती ने 1875 में आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज ने अंधविश्वासों, प्रतिगामी प्रथाओं को चुनौती देने और जरूरतमंदों की सहायता करने में सराहनीय कार्य किया। वह 1876 में स्वराज के लिए 'भारतीयों के लिए भारत' के रूप में आह्वान करने वाले पहले व्यक्ति थे, जिसे बाद में लोकमान्य तिलक ने उठाया था। दयानंद ने छात्रों को आर्य समाज की शिक्षाओं का अनुकरण करने और उन्हें आत्मसात करने के लिए प्रोत्साहित किया, जो वेदों पर टिप्पणी के साथ-साथ महिलाओं के समान अधिकारों, शिक्षा के अधिकार के लिए एक महत्वपूर्ण और महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। उन्होंने जातियों की बहुलता का विरोध किया। इसके अलावा, उन्होंने सोचा कि जाति की बहुलता निचली जातियों के ईसाई और इस्लाम में धर्मांतरण का मुख्य कारण है। इस शोध पत्र में आधुनिक भारत में दयानन्द की भूमिका का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्दः आर्य समाज, हिंदू, धर्म, वेदों, मूर्तिपूजा

भूमिका

स्वामी दयानंद सरस्वती (1824-1883), केवल एक धार्मिक नेता से अधिक थे। हिंदू सुधार संगठन आर्य समाज के संस्थापक, उन्होंने भारतीय समाज और धर्म की अवधारणा पर गहरा प्रभाव छोड़ा उनके धार्मिक विश्वासों के तार्किक, वैज्ञानिक और महत्वपूर्ण विश्लेषण के लिए और देवत्व की धारणा में क्रांति लाने के लिए, उन्हें महर्षि की उपाधि दी गई और उन्हें 'आधुनिक भारत के निर्माताओं में से एक' माना जाता है। दयानंद सरस्वती अध्यात्म के क्षेत्र में पहले नेता थे जिन्होंने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रगति की पक्षधर थी। दयानंद सरस्वती का जन्म 1824 में गुजरात के मोरवी में एक ब्राह्मण परिवार में मूल शंकर के रूप में हुआ था। 21 साल की उम्र में, उन्होंने शादी के बंधन से बचने और अपनी आत्मा की उथल-पुथल और हलचल को शांत करने के लिए घर छोड़ दिया। 15 साल तक उन्होंने ज्ञान की तलाश में भटकते हुए विद्वान का जीवन व्यतीत किया। अंत में, उन्होंने मथुरा में एक अंधे संत विद्वान स्वामी विरजानंद के शिष्य के रूप में ढाई साल बिताए, जिन्होंने उन्हें वेदों की दार्शनिक व्याख्या सिखाई और फिर उन पर हिंदू धर्म को उसके सभी कुरूप अभिवृद्धि और विपथन से शुद्ध करने का आरोप लगाया।

स्वामी दयानंद सरस्वती (1824-1883) ने बंबई, भारत में एक हिंदू धार्मिक और सामाजिक सुधार आंदोलन की स्थापना की। आर्य समाज के रूप में जाना जाता है, समाज वैदिक शास्त्र और मूल्यों को बढ़ावा देता है, विशेष रूप से यज्ञ (बलिदान) पर प्रदर्शन, जो निस्वार्थता और देने को प्रोत्साहित करता है। आर्य समाज 19 वीं शताब्दी में स्थापित कई मध्यम-वर्गीय हिंदू संगठनों में से एक है जो स्थानीय समुदायों के लिए स्कूलों और अस्पतालों का निर्माण करता है। आर्य समाज, इस प्रकार हिंदू धर्म का कट्टर समर्थक बन गया और उग्र हिंदू धर्म का अंग बन गया। इस तरह की उग्रवाद के कारण, बाद में अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की तह में चरमपंथ का विकास संभव हो गया। आर्य समाज ने सांस्कृतिक महत्व बनाए रखने के लिए ईसाई मिशनरियों का विरोध भी किया था।

राष्ट्र और समाज के प्रकाश-स्तंभ थे स्वामी दयानन्द :

स्वामी दयानंद ने हिंदू धर्म की श्रेष्ठता पर जोर देते हुए कहा, आर्य समाज इस्लामी और ईसाई प्रचार को चुनौती दे सकता है। दयानंद ने 'शुद्धि आंदोलन' की शुरुआत अन्य धर्मों के लोगों को हिंदू धर्म में परिवर्तित करने की प्रक्रिया के रूप में की और साथ ही उन लोगों को फिर से जोड़ने के लिए जिन्होंने हिंदू धर्म से दूसरे धर्मों में परिवर्तन किया है। इस आंदोलन ने निम्न जाति के हिंदुओं को ईसाई या इस्लाम में परिवर्तित होने से रोक दिया। शुद्धि आंदोलन ने उन ईसाई मिशनरियों को चुनौती दी जिन्होंने हिंदुओं के अशिक्षित, गरीब और दबे-कुचले वर्गों को बदलने की कोशिश की। स्वामी दयानंद सरस्वती ने ईसाइयत और इस्लाम के साथ-साथ जैन धर्म, बौद्ध और सिख धर्मों के प्रति उनके तार्किक, वैज्ञानिक और महत्वपूर्ण विश्लेषण ने कई लोगों की आँखें खोल दीं। उन्होंने मूर्तिपूजा के खिलाफ अपनी राय और खाली कर्मकांड पर व्यर्थ जोर देने के लिए आवाज उठाई, और जन्म से जातिवाचक तानाशाही के खिलाफ खड़े रहे और वेद पढ़ने से महिला-बहिष्कार किया। वेदों ने उस स्रोत के रूप में कार्य किया जिसमें उनके लिए विज्ञान का बीज है, और वेद गतिशील यथार्थवाद

के दर्शन की वकालत करते हैं। स्वामी दयानंद ने भरत के लिए स्वराज्य की घोषणा की थी। उन्होंने अपनी पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश के माध्यम से स्वतंत्रता सेनानियों को प्रेरित किया। दयानंद ने पंथ में कर्म, कर्मवाद के सिद्धांत की वकालत की और ब्रह्मचर्य के आदर्शों पर जोर दिया। थियोसोफिकल सोसायटी और आर्य समाज ने मिलकर समाज सुधार के लिए काम किया था।

स्वामी दयानंद ने वेदों पर जोर दिया। उन्होंने बिना किसी अनिश्चित शब्दों के वेदों की संस्कृति की प्रशंसा की। उन्होंने नारा दिया- ष्वेदों की ओर लौटोष। उन्होंने बताया कि वेदों में समानता, समानता और कई सुधारों का संदेश था। वेदों में वैज्ञानिक ज्ञान, कई सुधार, दर्शन और नैतिकता के सिद्धांत शामिल हैं। उन्होंने किसी भी भारतीय राष्ट्रीय नेता के विचार से पहले वैदिक सिद्धांतों पर स्थापित होने के लिए श्स्वराजश शब्द का इस्तेमाल किया।

दयानंद ने जाति व्यवस्था और छुआछूत के खिलाफ अपने धर्मयुद्ध का नेतृत्व किया। उन्होंने वेद में वर्णित वर्ण व्यवस्था को फिर से व्याख्यायित किया। स्वामीजी को हिंदुओं के दबे-कुचले वर्ग, जिन्हें दलित, बहिष्कृत या अछूत कहा जाता है, के प्रति रूढ़िवादी ब्राह्मणों के रवैये से गहरा धक्का लगा। उन्हें हिंदू मंदिरों, घरों और ब्राह्मण अनुष्ठानों में प्रवेश करने की अनुमति नहीं थी। उन्हें गाँव के कुओं से पानी लाने की मनाही थी। उनके बच्चों को अन्य बच्चों के साथ गाँव के स्कूल में पढ़ने की अनुमति नहीं थी। स्वामीजी को पहली बार निचली जाति के लिए समान अधिकार, शिक्षा का अधिकार, वेद मंत्रों का पाठ करने का अधिकार, हस्तक्षेप करने का अधिकार, विवाह का अधिकार और पानी लाने का अधिकार देना था। स्वामी दयानंद ने अपना पूरा जीवन निम्न वर्ग के उत्थान के लिए लगा दिया । प्राचीन समय में, कुछ प्रच्छन्न कारणों से जाति व्यवस्था को मजबूत किया गया था। यह समाज में व्यावसायिक उद्देश्य के लिए था। गुना, कर्म और स्वाभाव के सिद्धांत के अनुसार, समाज को ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और सूद्रों की तरह अलग-अलग वर्णों में विभाजित किया गया था जैसे कि पूजा, व्यवसाय की रक्षा करना, देश की रक्षा करना, व्यापार और वाणिज्य करना और अन्य तीन जातियों की सेवा करना। । यह व्यवसाय विनिमेय था। उन्होंने समाज के इस विभाजन की राजनीतिक आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने महिलाओं के साथ अन्याय का विरोध किया और महिलाओं की शिक्षा के लिए काम किया। उन्होंने बाल-विवाह, बहुविवाह, ष्पुरदाहष और ष्सतीष आदि प्रथा का विरोध किया। अंतर-जातीय विवाह और अंतर्जातीय विवाह आर्य समाज के सदस्यों द्वारा किए गए थे।

आर्य समाज ने 1890 के दशक की शुरुआत में स्कूलों के माध्यम से महिला शिक्षा के लिए काम किया। इसके अलावा, स्वामी दयानंद सरस्वती ने विधवाओं के पुनर्विवाह को प्रोत्साहित किया और इस सामाजिक कलंक के खिलाफ आवाज उठाई। संगठन ने ऐसे विवाहों के समर्थन और अभ्यास के लिए समाजों का शुभारंभ किया। परिणामस्वरूप, 19 वीं शताब्दी के अंत में कुंवारी विधवाओं के पुनर्विवाह को अधिकांश पंजाबी हिंदुओं ने स्वीकार कर लिया। स्वामी जी का धन्यवाद कि 1950 में, भारतीय संविधान ने दलितों या हरिजनों को समान सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक अधिकार प्रदान करने के लिए अपनाया।

निष्कर्ष

वह सामाजिक-धार्मिक बुराइयों जैसे पशु बलि, धार्मिक तीर्थयात्रा, श्राद्धों के माध्यम से मृतकों को भोजन कराना, जादू-टोना आदि का खंडन करते हैं। उन्होंने हिंदी भाषा और साहित्य को प्रोत्साहन दिया। हिंदी भाषा में ग्रंथों की रचना कर इन्होंने राष्ट्रीय गौरव बढ़ाया। इनके पूर्व भारतीय समाज में स्त्री शिक्षा की कोई भी व्यवस्था नहीं थी। इन्होंने स्त्रियों को शिक्षित बनाने पर बल दिया और वेद-पाठ करने की आज्ञा दी। संस्कृत भाषा के महत्त्व को पुनः स्थापित किया गया। इन्होनें ब्रह्मचर्य और चरित्र-निर्माण की दृष्टि से प्राचीन गुरुकुल प्रणाली के द्वारा छात्रों को शिक्षित करने की प्रथा शुरू की। स्वामी दयानंद के अनुसार, ये बुराइयाँ वेदों की शिक्षा की अज्ञानता के कारण समाज में मौजूद हैं।दयानंद के योगदानों में उनका महिलाओं के लिए समान अधिकारों को बढ़ावा देना था, जैसे कि शिक्षा का अधिकार और भारतीय शास्त्रों को पढ़ना। इस प्रकार स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज के माध्यम से न केवल हिन्दू धर्म को नया रूप देने की चेष्टा की बल्कि समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों को दूर कर उसे शिक्षित तथा सभी बनाने का प्रयास भी किया।

संदर्भग्रंथ सूची

दुबे, अभय कुमार हिंदू-एकता बनम ज्ञान की राजनीति। वॉल्यूम-1.वाणी प्रकाशन, 2019.

नगर, पुरुषोत्तम. लाला लाजपत रायःआदमी और उनके विचार। प्रभात प्रकाशन,1977.

उज्जवल, मदालसा. "स्वामी दयानंद सरस्वती के राजनीतिक विचार–. द इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस. (2008): 965-974.

सरस्वती, दयानंद और कृपाल चंद्र यादव. 'दयानन्द सरस्वती की आत्मकथा'. 1978.

सिंह, छज्जू. स्वामी दयानंद सरस्वती का जीवन और उपदेश. नई दिल्ली: जन ज्ञान प्रकाशन, 1971.

मल, बहादुर. 'दयानन्द-हिन्दू धर्म में एक अध्ययन'. विश्वेश्वरानंद वैदिक अनुसंधान संस्थान प्रकाशन. (1962) .

सिंह, छज्जू. आर्य समाज की शिक्षा. पंजाब प्रिंटिंग वर्क्स, 1903.

निगम,जोरावर सिंह. 'वैदिक धर्म और उसके प्रतिपादक स्वामी दयानन्द'. 1914.

मेहरा, लाल चंद. आर्य समाज एक शैक्षिक आंदोलन के रूप में. कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले, 1925.

भान, सूरज. दयानंद, उनका जीवन और कार्य. इंडियन प्रेस,1934.

भारतीय इतिहास लेखन प्राचीन से मध्यकाल के संदर्भ में

राहुल कुमार झा

एम0 ए0: इतिहास स्वर्ण पदक, शोधार्थीः पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

सारांशः भारतीय इतिहास लेखन में समय-समय पर अनेक बड़े बदलाव दिखाई पड़ता है। भारतीय इतिहास लेखन में प्राचीन भारतीय इतिहास का अध्ययन सरल नहीं है। हमारे पास जो उपलब्ध प्रमाण है यह प्रकट करता है कि भारतवासियों के प्रत्येक पहलुओं का उल्लेख अपने लेखन में किया है। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में अनेक समस्याएँ थीं फिर भी प्राचीन भारतीय इतिहास लेखकों ने इस दिशा में निरन्तर प्रयास जारी रखा। भारतवर्ष में मुस्लिम शासन के आगमन के बाद भारतीय इतिहास लेखन में एक बड़ा परिवर्तन हुआ। मुगल के शासनकाल में इतिहास लेखन में बहुत अधिक विकसित हुआ। मुगल इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषता मुगल के समय प्रत्येक कार्य क्षेत्र में विकास हुआ। मुगल इतिहास लेखन के कारण एक व्यापक साकारात्मक परिवर्तन का सुत्रपात हुआ। मुगलकालिन लेखन प्रणाली प्राचीन और सल्तनत काल से उत्तम लेखन प्रणाली था।

कुंजीभूत शब्दः- वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, उपनिषद्, महाभारत, रामायण, पिटक, जातक, निकाय, दीपवंश, महावंश, राजतरंगिणी, अकबरनामा, बाबरनामा, शाहजहाँनामा।

भारतीय इतिहास सही मायने में सत्यम्, शिवम, सुन्दरम् का एक सुंदर समन्वय है। अनके भारतीय इतिहासकारों ने समसामयिक विशेष वर्ग के लिए कुछ ऐसे अतीत के तथ्यों के आधार पर इतिहास की रचना समाज के बीच विषाक्त वातावरण के सृजन हेतु किया। अतः प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन को सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् कहना यथोचित प्रतीत होता है।

भारतीय सभ्यता विश्व की सर्वाधिक पुरानी सभ्यताओं में से एक है। प्राचीन समय से भारत को कई बार उत्थान और पतन का सामना करना पड़ा इसलिए प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में कई बड़े अन्तराल दिखाई पड़ता है। हमारे पास समस्त उपलब्ध साक्ष्य यह इंगित करता है कि भारतवासियों ने इतिहास के प्रत्येक पहलू का उल्लेख अपने लेखन में किया।

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में अनेक समस्याएँ थी फिर भी प्राचीन भारतीय इतिहास लेखकों ने निरन्तर प्रयास जारी रखें।

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के अध्ययन के समय अनेक कठिनाईयाँ सामने आयीं। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में सर्वप्रथम समस्या लिपी के ज्ञान की समस्या अत्यन्त महत्वपुर्ण समस्या थी। उपलब्ध सामग्री को भाषा ज्ञान नहीं होने के कारण पढ़ा नहीं जा सकता जिसके फलस्वरूप उपलब्ध सामग्री का कोई उपयोग नहीं किया जा सका उदाहरणस्वरूप हड़प्पा लिपि। अभी भी वर्तमान समय में कुछ प्राचीन कालीन मुहरों, ताम्रपत्रों और स्तम्भों की लिखावट को पढ़ा नहीं जा सका है। जिसके कारण आज भी प्राचीन भारतीय सामग्री का प्रयोग इतिहास लेखन में सम्भव नहीं है। प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन की एक गम्भीर समस्या है उपलब्ध सामग्री का संग्रह सुनियोजित ढंग से ना हो पाया। प्राचीन भारतीय इतिहासकारों ने ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन अपने ग्रंथों में किया है। कुछ दरबारी इतिहासकारों ने भी इस दिशा में महत्वपुर्ण लेखन कार्य कियें परन्तु ऐतिहासिक सामग्री का विकास सुनियोजित ढंग से ना हो पाना और अधिकांश ऐतिहासिक सामग्री नष्ट हो गयी, अन्ततः इतिहास लेखन में विद्वानों को अनेक कठिनाईयों से जुझना पड़ा। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में बाधक बना। जिसके कारण प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में अत्यधिक समय के साथ श्रम व्यय होने के साथ ही घटना की पूरी व्याख्या भी सम्भव नहीं हो पाती थी।

प्राचीन भारतीतय इतिहास लेखन में एक महत्वपूर्ण समस्या है निश्चित कालक्रम का अभाव। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के मध्य लम्बे अन्तराल पाये जाते है, जिसके कारण प्राचीन भारतीय इतिहास के कालक्रम को निर्धारण करना अत्यन्त ही कठिन हो जाता है। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में एक समस्या कल्पना एवं वंशों की समस्या भी है। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की एक अन्य समस्या स्थलों की पहचान की समस्या भी है। स्थलों की समुचित पहचान करना एक अन्य समस्या है जो इतिहास लेखन में बहुत बड़ी बाधक है। प्राचीन भारतीय इतिहासकारों ने एक ही घटनाओं का विभिन्न पद्धतियों से वर्णन किया है। इसके कारण विद्वान सत्य को जानने में सफल नहीं हो पाते और इतिहास लेखन में बाधक बनती।

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की अनेक विशेषता भी है, जिसके कारण प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में सहायता मिला। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषता धार्मिक दर्शन के रूप में प्राचीन भारत के विद्वानों ने प्रयाप्त साहित्य रचना की है। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की विशेषता धर्म, धार्मिक प्रथाओं, कर्म और धार्मिक क्रिया विधियों के सन्दर्भ में अनेक लेखन कार्य किया गया। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की विशेषता शाही संरक्षण में इतिहास लेखन। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की एक अन्य विशेषता आध्यात्मिक दृष्टिकोण से लिखित साहित्य। प्राचीन भारतीय लेखकों मुख्य रूप से इतिहास लेखन में आत्मा की शुद्धता, चरित्र और नैतिक मूल्यों के सन्दर्भ में लिखने पर विशेष बल दिया। प्राचीन भारतीय इतिहासकारों में आलोचनात्मक और विश्लेषणात्मक गुणों का अभाव था जिसके कारण उनके द्वारा इतिहास लिखा जाना कथात्मक कहा जा सकता है।

प्राचीन भारतीय इतिहासकारों को शासकों का संरक्षण व आश्रय प्राप्त था जो समय-समय पर उन्हें आर्थिक सहायता भी प्रदान करते थे जिसके कारण उनके वर्णन का प्रमुख विषय अधिकतर शाही दरबार ही होता था। प्राचीन भारतीय इतिहासकारों ने अपने लेखन में युद्ध में प्रयोग किया जाने वाला आयुधों एवं युद्ध कला का भी उल्लेख किया। अन्ततः संरक्षण प्राप्त लेखकों ने अपना ध्यान शाही दरबार की और आकर्षित किया। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन से जो हमें सामग्री उपलब्ध है उससे यह पूर्णरूपेण प्रदर्शित होता है कि विद्वानों ने आदर्शवाद के सिद्धान्तों को मान्यता प्रदान की थी।

प्राचीन भारतीय विद्वानों ने इतिहास लेखन के क्षेत्र में साहित्यिक एवं धार्मिक ग्रंथों के रूप में पर्याप्त साक्ष्य की रचना की है। प्राचीन भारतीय इतिहासकारों का इतिहास लेखन में उनकी कृतियों में इतिहास की दार्शनिक अवधारणा पूरी तरह से स्पष्ट है। इतिहास लेखन में उनकी कृतियाँ में इतिहास की दार्शनिक अवधारणा पूरी तरह से स्पष्ट है। प्राचीन भारतीय इतिहासकारों ने इतिहास लेखन के द्वारा इतिहास की दार्शनिक अवधारणा पूरी तरह से स्पष्ट है। इतिहास लेखन के द्वारा प्राचीन भारतीय इतिहासकारों ने तात्कालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं पर पूर्ण प्रकाश डाला गया।

प्राचीन भारत के इतिहास लेखन में धार्मिक ग्रंथों का अत्यधिक महत्व है जिसमें प्रमुख धार्मिक ग्रंथ है-'वेद'। हमारे पूर्वजों की आध्यात्मवाद में अत्यधिक रूचि थी। इसलिए इस समय काल में धार्मिक साहित्य के रूप में लिखी गई कृतियों में बेदों का स्थान सबसे अधिक उल्लेखनीय है। यद्यपि इतिहास लेखन का उद्देश्य धार्मिक ही था परन्तु इसमें भारत की वैदिक कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक दशा का भी विस्तार से वर्णन किया गया। वेद से हमें प्राचीन प्रशासन व्यवस्था के साथ-साथ युद्ध कला का भी जानकारी मिलती है। 'वेद' को प्राचीन भारत की अद्‌भूत खजाना कहा जाता है।

वेदों के बाद ब्राह्मण ग्रंथ व उपनिषद का भी ऐतिहासिक साक्ष्यों के रूप में अत्यन्त ही महत्वपुर्ण स्थान है। धार्मिक ग्रंथों के रूप में बेदांग और सुत्र साहित्य का भी अधिक महत्व है। प्राचीन धार्मिक ग्रंथों में रामायण महाकाव्य व महाभारत महाकाव्य का वर्णन भी मिलता है। एक तरफ रामायण में जहाँ हमें वर्णव्यवस्था का वर्णन है तो दूसरी तरफ महाभारत विश्व का सबसे अधिक विस्तृत महाकाव्य है। रामायण की भाँति महाभारत का भी ऐतिहासिक महत्व है। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के द्वारा पुराणों से हमें प्राचीन राजवंशों का वर्णन है। पुराण का शाब्दिक अर्थ होता है प्राचीन आख्यान। पुराण को हम धार्मिक उपन्यास के नाम से जानते है। पुराण में कलयुग के राजाओं के साथ-साथ शिशुनाग, नन्द, मौर्य, गुप्त, शुंग, कण्व आदि वंशावलियों भी वर्णित है।

प्राचीन भारत में इतिहास लेखन की परम्परा की जानकारी की अन्य महत्वपुर्ण साक्ष्य ''बौद्ध और जैन साहित्य'' स्वीकार किया जाता है। बौद्ध साहित्य के तीन मुख्य अंग है- पिटक, जातक और निकाय। पिटको में विनय पिटक, सुत्त पिटक और अभिधम्म पिटक है। जातकों में महात्मा बुद्ध के पूर्व जन्मों की व्याख्या मिलता है। साथ ही बौद्ध ग्रंथ दीपवंश, महावंश और मिलिन्दपन्हों के वर्णन से भी तात्कालीन इतिहास को जानने की पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। जैन ग्रन्थों के साथ-साथ अंग व उपांग की जैन साहित्य भी इतिहास को जानने के प्रमुख साक्ष्य है। बौद्ध और जैन ग्रंथ केवल धार्मिक ग्रंथ ही नहीं है। इनमें इतिहास की दार्शनिक विचारधारा का स्पष्ट दिग्दर्शन है तथा महत्वपुर्ण ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध होती है। प्राचीन इतिहास लेखन की परम्परा में इन ग्रंथों का योगदान अविस्मरणीय है।

प्राचीन भारतीय इतिहास में महत्वपुर्ण योगदान प्रदान किया उसमें सबसे प्रमुख था बाणभट्ट। बाणभट्ट प्राचीन भारत का महत्वपुर्ण एवं प्रसिद्ध लेखक था। वाणभट्ट की 'हर्षचरित्र' प्राचीन भारत का महत्वपुर्ण ग्रंथ है। इसमें वाणभट्ट ने सम्राट हर्ष का सम्पुर्ण जीवनवृत का वर्णन किया है। इसमें वाणभट्ट ने तथ्य और कल्पना का सुन्दर वर्णन किया है।

प्राचीन भारतीय लेखन की परम्परा का एक प्रसिद्ध विद्वानों में विल्हण का नाम आता है। विल्हण ने 'कंस सुन्दरी नामक नाटक लिखा। विल्हण का एक अन्य ग्रंथ 'विक्रमांकदेव चरित' है। प्राचीन भारतीय इतिहासकारों में जयानक की गणना की जाती है। जयानक ने 'पृथ्वीराज विजय' का लिपिबद्ध किया। कौटिल्य। चाणक्य, विष्णुगुप्त और वात्सायन के नाम सक भी जाना जाता है। कौटिल्य ने अपनी प्रसिद्ध ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में मौर्यकाल की प्रशासनिक व्यवस्था, राजनीतिक स्थिति, आर्थिक व सामाजिक दशा का ही वर्णन नहीं किया अपितु राजतन्त्र, गणतन्त्र, राजद्रोह, शांति व सन्धि, शासकों व मंत्रिपरिषद के अधिकारों का भी विस्तृत वर्णन किया। कल्हण प्राचीन भारत का एक प्रसिद्ध इतिहासकार है। जिसने प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में महत्वपुर्ण योगदान दिया। कल्हण का प्रसिद्ध रचना 'राजतरंगिणी' है। कल्हण अपने समय का सर्वाधिक उल्लेखनीय इतिहासकार है। उसने अपने ग्रंथ में समस्त तात्कालीन साक्ष्यों, अभिलेखों, सिक्कों, प्राचीन स्मारकों का प्रयोग किया है। कल्हण प्राचीन भारत इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषता यह है कि उसने किसी भी परम्परा को प्रचलन के रूप में स्वीकार नहीं किया।

प्राचीन भारतीय इतिहासकारों में लेखन प्रणाली प्राचीन यूनानियों, रोमनों और चीनीयों की अपेक्षा भारत में इतिहासकार नहीं है और न ही उस समय प्राचीन भारतीय इतिहासकारों को पूर्णत: इतिहास बोध था। प्राचीन भारतीय इतिहासकारों में कालक्रम के अनुसार व्यवस्थित करने की कला का अभाव था। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में अनेक समस्याएँ थी, फिर भी प्राचीन भारतीय इतिहास लेखकों ने इस दिशा में निरन्तर प्रयास किया। प्राचीन भारत के लोग इतिहास के प्रति जागरूक थे।

भारतवर्ष में मुस्लिम शासन के आगमन के साथ इतिहास लेखन में एक बड़ा परिवर्तन आया। भारतवर्ष में इस्लाम के आगमन के बाद मुस्लिम घटनाओं के क्रमबद्ध लेखों ने, पूर्व में वास्तव में क्या घटित हुआ उसका, जागरूक हित के साथ सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की व्यावहारिक शैली को परिचित कराया। यूरोप के तरह ही सल्तनत के समय में मुस्लिम लेखों को साधुओं द्वारा नहीं लिखा गया था लेकिन इस दौरान विद्वानों तथा प्रशासकों, जो कि घटनाओं के चश्मदीद गवाह थे, ने दस्तावेजों को सृजित किया। वस्तुत: मुस्लिम इतिहासकारों ने अरबी तथा फारसी इतिहासकारों के लिखने की शैलि का अनुकरण, किया। मध्ययुगीन इतिहासकारों ने अपने लेखन प्रणाली के प्रति गम्भीरता से लिया और इतिहास के उच्च विचार को बनाए रखा।

मध्यकालीन इतिहास लेखन में अमीर खुसरों का योगदान सराहनीय है। नि:संदेह अमीर खुसरों एक कवि था लेकिन उसने इतिहास में अपना महान योगदान दिया। अमीर खुसरों के प्रमुख साहित्यिक ग्रंथ है- पाँच दीवान ये दीवान अमीर खुसरों की कविताओं का संकलन है। अमीर खुसरों का अन्य रचना 'खम्सा' है। अमीर खुसरों का ऐतिहासिक ग्रंथ है

किरात-उस-सादैन, मिफताह-उल-फुतुह, आशिका या देवल रानी तथा खिज्र खाँ, नूह सिपेहर, तुगलकनामा, खजाइन-उल-फुतुह या तारीख-ए-इलाही।

मिनहाज के कथानानुसार ''इतिहास उन घटनाओं का सिलसिला है जिसमें मुस्लिम समाज के शक्तिशाली तथा शासन पर विराजमान सदस्य तथा उनके मूर्तिपूजक दुश्मन (हिन्दू) सम्माहित है।

इतिहासकारों वरनी का ग्रंथ तारीख-ए-फिरोजशाही शिक्षात्मक इतिहास का एक स्पष्ट उदाहरण है। इसमें सुल्तान बलबन से लेकर मुहम्मद बिन तुगलक तक के दिल्ली सल्तनत के बादशाहों के शासन का लेखा-जोखा है। इसमें विद्वान इतिहासकारों ने तात्कालीन सामाजिक संस्थाओं, प्रशासन, आर्थिक जीवन आदि का भी उल्लेख किया है। अपने इतिहास दर्शन के आधार पर बरनी ने सुल्तानों के कर्तव्यों को समझाने का प्रयास किया है। कल्हण और उनकी राजतरंगिणी संस्कृत कवि कल्हण ने अपने ऐतिहासिक काव्य राजतरंगिणी में कश्मीर के राजाओं का इति-वृत्तात्मक वर्णन प्रस्तुत किया।

इतिहास लेखन के कलात्मक रूप में तीन मुस्लिम विद्वानों हसन निजामी, अमीर खुसरो, इसामी ने अपने कृतियों को पूर्ण करने में काव्य तथा काव्य ग्रंथ का प्रयोग किया।

उत्तर भारत में मुस्लिम इतिहास लेखन ने मुस्लिम बौद्धिक जीवन में अधीनस्थ भूमिका रही। सल्तनतकाल में भारत के मुस्लिम इतिहासकारों ने घटनाओं, उपलब्धियाँ, सैनिक अभियानों और शासकों की विजयों को उल्लेखित किया। इब्नबतूता का 'रहेला' न केवल भारत की भौगोलिक स्थिति के बारे में बताता बल्कि यह भारत के लोगों को सामाजिक हालतों तथा रोजमर्रा की जिन्दगीयों पर भी प्रकाश डालता है।

प्राचीन तथा सल्तनत कालीन इतिहास लेखन मुगलकालीन लेखन से अलग है। मुगलकालीन लेखन प्रणाली में एक स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। सल्तनतकालीन लेखन की अपेक्षा मुगलकालीन लेखन अधिक वस्तुपरक तथा परिपक्व था। वास्तव में मुगलकालीन इतिहास लेखकों ने इतिहास के राजनीतिक पहलू पर अत्यधिक ध्यान दिया, आर्थिक पहलू पर सबसे कम। सामाजिक तथा धार्मिक पहलू अपने ढंग व्यक्तिगत तौर पर था।

मुगल इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषता मुगल के समय प्रत्येक कार्य-क्षेत्र में विकास का युग था। मुगल के समय इतिहास लेखन में भी परिपक्व तथा शालीन तत्व पाते है। मुगल कालीन इतिहास लेखन में इतिहास के नाकारात्मक पहलू पर अधिक ध्यान दिया गया। मुगल के समय इतिहास लेखन बहुत अधिक विकसित हुई।

मुगल इतिहास-लेखन की एक प्रसिद्ध विशेषता यह है कि मुगल शासक न केवल विद्वानों के संरक्षक थे बल्कि उन्होंने स्वयं अपने वृतांतो को लिखा और अपने समय की घटनाओं को अभिलेखित किया। उन्होंने हिन्दूस्तान के लोगों के प्रति भी प्रकाश डाला। तुजुक-ए-बाबरी यह प्रमाणित करता है कि पहले वह विद्वान था बाद में एक शासक। अपने संस्मरण में, बाबर ने जमीन, ऋतुएँ, फल-फूल, व्यापार आदि के साथ देश की सामाजिक तथा राजनीतिक दशाओं पर प्रकाश डालते हुए विवरण दिया है। बाबर हिन्दुस्तान के बारे में लिखता है, यह (भारत) एक आकर्षक उत्तम देश है। अन्य देशों की तुलना में 'भारत' बिल्कुल अलग है।

ख्वान्दा मीर 'ग्यासुद्धीन मुहम्मद' के नाम से जग प्रसिद्ध था। इनकी कुल बारह कृतियाँ लिखी। हुमायूँनामा की रचना गुलबदन बेगम ने की इसमें बाबर तथा हुमायूँ के जीवन वृतांत का वर्णन है। गुलबदन बेगम ने हुमायूँ के शासन के सारे विवरण वर्णित किये है।

मुगलकालीन अन्य प्रमुख इतिहासकार मिर्जा हैदर दुगलत, जौहर आफताबची, अब्बास खान सखानी, नियामतुल्लाह है। मुगलकालीन प्रमुख इतिहासकारों में अबुल फजल प्रमुख इतिहासकार है। अबुल फजल एक महान इतिहासकार और विद्वान था। अबुल फजल का प्रमुख कृति 'अकबरनामा'। आइन-ए-अकबरी, अकबरनामा की तीसरी जिल्द है, भारतीय सामाज की ऐतिहासिक तथा भौगोलिक विवरण की विस्तृत विवरण से सम्बन्धित। बदायूँनी ने बहुत सी पुस्तक लिखी। किताब-उल-अहदीश, तारीख-ए-अल्फी, बहर-उल-असमर, नजात-उल-राशिद, तर्जुमाह-ए-महाभारत, तर्जुमाह-ए- सिंहासन बतीसी, मुन्तख-उल-तवारीख कृति बदायूँनी की है।

इनायत खॉ ने शाहजहाँनामा लिखा। इनायत खॉ को बादशाह के साथ अंतरंग व मित्रवत सम्बन्ध था। मुगल दरबार का नौकर होने के कारण वह सूचना के विश्वसनीय तथा प्रमाणिक स्त्रोतों को ढूँढने में समर्थ रहा। अब्दुल हमीद लहौरी के द्वारा ऐतिहासिक महत्व की अच्छी कृत्रियाँ मुगल शासकों के समय लिखी गई। उसने अपनी कृति पादशाहनामा लिखी जो अबुल फजल के अकबरनामा के तर्ज पर लिखी गयी थी। यह पुस्तक शाहजाँ के शासनकाल का प्रमाणिक विवरण देती है।

आरम्भिक इंडो-मुस्लिम इतिहास लेखन का सबसे बड़ा दोष इसकी प्रकृति का विद्वता रहित, प्रभाववादी होना था। सल्तनत काल में इतिहास-लेखन विषय क्षेत्र की दृष्टि से अधिक संकीर्ण था। आरंम्भिक इंडो-मुस्लिम इतिहासकारों ने इतिहास के केन्द्र में महान धार्मिक व्यक्तियों, शासकों और संतों को रखा। गरीब निम्न या कुल के दीन-हीन ग्राम लोगों के जीवन तथा स्थितियाँ पर इतिहास द्वारा कभी प्रकाश नहीं डाला गया।

मुगल इतिहास लेखन के कारण एक व्यापक साकारात्मक परिवर्तन का सूत्रपात हुआ और वह था आध्यात्मिक धर्मतंत्रीय बंधनों से इसका मुक्त होना। मुगल इतिहास लेखन ने शोध पद्धति विकसित करने की दिशा में भी प्रगति की।

संदर्भ ग्रन्थः-

1. इतिहास- दर्शन, डॉ0 झारखण्डे चौबे, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 2008
2. इतिहास चिंतन, डॉ0 रामाकान्त शर्मा, डॉ0 शिवेश कुमार, साद पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2018।
3. इतिहास-लेख, एक पाठ्य पुस्तक, ई0 श्रीधरन, ओरियन्ट ब्लैकस्वॉन प्राईवेट लिमिटेड, हैदराबाद, 2011 ।
4. इतिहास-लेखन धारणाएँ तथा पद्धतियाँ, डॉ0 के0 एल0 खुराना, डॉ0 आर0 के0 बंसल, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2009।
5. प्राचीन भारत, एस0 के0 पाण्डे, प्रयाग एकेडमी पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूसन, 2014 ।
6. मध्यकालीन भारत, एस0 के0 मिश्रा, पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूसन प्रयाग एकेडमी, 2010-11 ।
7. भारतीय इतिहास, बी0 के0 अग्निहोत्री, ऍलाइड पब्लिकेशन।
8. इतिहास शिक्षण, गुरसरन दास त्यागी, अग्रवाल पब्लिकेशन, 2015 ।

बुद्धकालीन राजगृह का अवलोकन

किशोर कुमार

शोधार्थी, इतिहास विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना, बिहार

परिचय: राजगृह, प्राचीन काल में मगध की राजधानी थी। भगवान बुद्ध के समकालीन आर्यावर्त सोलह महाजनपदों में विभाजित था, जिसमें मगध सर्वश्रेष्ठ और महाशक्तिशाली महाजनपद था। राजगृह में बौद्ध और जैन मतावलम्बी के अलावे पॉच और मतावलम्बी थे।[1] इसे दीर्घ निकाय के सामञ्ञफलसुत्त में वर्णन किया गया है। भगवान बुद्ध के समकालीन बिम्बिसार और उसके पुत्र अजातशत्रु मगध के सम्राट थे। छः प्रारंभिक महानगर में, पाली ग्रंथ दीघ निकाय[2] में इसे प्रतिष्ठित स्थान मिला था। यह सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन का मूल रूप से प्रतिनिधित्व करता था(घोष, 1973; शर्मा, 1983; ठाकुर, 1981; झा, 1998)।

प्राचीन काल में मगध साम्राज्य की सीमा पूर्व में चम्पा नदी, पश्चिम में सोन नदी, उत्तर में गंगा नदी के पार तक, दक्षिण में विंध्य पर्वत के भू-भागों तक फैली हुई थी। शहर में 32 बड़े द्वार और 64 छोटे द्वार थे। अजातशत्रु ने पंडित महागोंविद नामक वास्तुकार से राजगीर की भव्यता को आकार दिलवाया था (ला, 1938; 24,42,44: सिन्हा, 2000; 140-42)।

राजगीर के अनेक नामों का वर्णन पालि-साहित्य में तथा श्री मिथिलाशरण पाण्डेय ने अपनी पुस्तक 'दी हिस्टोरिकल ज्योग्राफी एण्ड टोपोग्राफी ऑफ बिहार' में बताया है कि पंचपहाड़ियों से घिरे रहने से यह नगर गिरिव्रज कहलाता था। बिम्बिसार ने पहाड़ियों से बाहर एक नया नगर बिम्बिसारपुरी नाम से बसाया था। रामायण में बताया गया है कि ब्रह्मा के पुत्र वसु के नाम पर इस नगर का नाम वसुमती पड़ा। महाभारत में राजा ब्राहद्रर्थ ने सर्वप्रथम इस नगर में अपनी राजधानी बसायी थी। इस कारण से, इस नगर को ब्राहद्रर्थ कहा जाता था। राजा कुशाग्र ने अपनी राजधानी राजगृह को नया नाम कुशाग्रपुरी रखा था। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसांग ने अपनी यात्रा-वृतांत में राजगीर को कुशाग्रपुरी[3] के नाम से भी सम्बोधित किया है (बील, 1884, III: 149)।

राजगीर के भौगोलिक स्थिति: राजगीर बिहार शरीफ से 21 कि0 मी0 दूर दक्षिण-पश्चिम दिशा में, तथा पटना से 107 कि0 मी0 दूर दक्षिण दिशा में अवस्थित है। आर्कियोलॉजिकल गजेटियर ऑफ नालंदा डिस्ट्रिक्ट के अनुसार अक्षांश और देशांतर $25^0 2'15''$ उत्तर और $85^0 24'30''$ - $85^0 27'$ पूर्व में अवस्थित है। यहॉ का तापमान ग्रीष्म ऋतु में अधिकतम 400 तथा न्यूनतम 200 सेल्सियस, शीत ऋतु में अधिकतम 280 तथा न्यूनतम 60 सेल्सियस रहता है। सबसे उपयुक्त मौसम अक्टूबर से अप्रैल माना जाता है (चौधरी 2015:173)।

प्राचीन सुरक्षा प्राचीर (साईक्लोपियन वाल): यह अनियमित पेंटागन के रूप में (एक लंबी भुजा और चार लगभग बराबर भुजाओं के साथ) 14,200 फीट लंबी मापी गई, जो 3 मील (2.7 मील) लगभग 4.3 किलोमीटर था (कनिंघम, 1861-62: 23; 1924:535-36)। जबकि बुकानन ने वास्तव में इसे 13,000 फीट जो ढ़ाई मील (2.46 मील) अर्थात् लगभग 4 किलोमीटर (3.93 किमी) थी। प्राचीर की चौड़ाई 100 फीट (30.5 मीटर) से अधिक प्रतीत होती थी (1811-12:129)।

बुद्धकालीन राजगृह के प्रमुख व्यक्ति

बिम्बिसार (546 - 494 ई0 पू0): बिम्बिसार हर्यक राजवंश से संबंधित था, इसका राज्याभिषेक 546 ई0 पू0 में पंद्रह वर्ष की अवस्था में ही हो गया था। मगध साम्राज्य का विस्तार करने के लिए इसने पड़ोसी राजकुमारियों से विवाह किया, वज्जीसंघ के प्रधान चेतक की पुत्री चेलना, कौशल नरेश महाकोशल की पुत्री कोशल देवी, जिससे दहेज स्वरूप काशी का राज्य प्राप्त हुआ। विदेह नरेश की पुत्री वासवी से भी विवाह किया। बिम्बिसार का साम्राज्य पूर्व में चम्पा नदी तक, दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक, पश्चिम में सोन नदी तक, तथा उत्तर में गंगा नदी तक फैला था। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान बुद्धघोष ने राजगृह को ही 'बिम्बिसारपुरी' कहे थे। बिम्बिसार बुद्ध से दीक्षा येष्ठिवन (जेठियन) में ग्रहण किया साथ ही वेणुवन में एक बौद्ध विहार का निर्माण करवाया और उसे बौद्ध संघ को दान कर दिया। अजातशत्रु के द्वारा बंदीगृह में बंद कर दिया गया तथा उसी में प्राणांत हो गया।

अजातशत्रु (492-460 ई0 पू0): अजातशत्रु बिम्बिसार का पुत्र था। इसका शासन काल 492 - 460 ई0 पू0 तक था। अपने पिता के शासनकाल में वो अंग प्रदेश का प्रशासक था। अपने पिता को मृत्यु काल तक बंदीगृह में बंदी बना कर रखा। जिससे क्षुब्ध होकर कोशल नरेश प्रसेनजित उससे काशी राज्य वापस ले लिया जो उसने अपने बहन को विवाह के समय दहेज स्वरूप राजा बिम्बिसार को प्रदान किया था। इससे अजातशत्रु की शत्रुता कोशल नरेश प्रसेनजित से बढ़ती गई अंततः राजा प्रसेनजित अपनी पुत्री वजिरा का विवाह अजातशत्रु से कर दिया।

सम्राट अजातशत्रु आधुनिक पाटलिपुत्र अथवा पटना का जन्मदाता था।[4] वज्जियों के आक्रमण से बचने के लिए अजातशत्रु ने गंगा नदी के किनारे एक किला का निर्माण करवाया था।[5] यह भी अनुमान था कि अजातशत्रु ने अपनी राजधानी में किलेबंदी की दीवारें अवंती की आक्रमकता के भय से खड़ी की

थी (रायचौधरी, 1997:190)। किले के निर्माण काल में ही बुद्ध का आगमन पाटलिपुत्र में हुआ था तो उन्होंने पाटलिपुत्र के अवनति के बारे में तीन भविष्यवाणियॉ की थी कि, पहला आग, दूसरा पानी और तीसरा आपस की फूट। बाद में ये भविष्यवाणियॉ सत्य साबित हुई। जब भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण कुशीनारा में हुआ तो अजातशत्रु ने अपने दूत को मल्लों के पास ये कह कर भेजा कि - ''भगवान भी क्षत्रिय थे, मैं भी क्षत्रिय हूँ, भगवान के अस्थि अवशेष पर मेरा भी हक है। मैं भी भगवान के अस्थि अवशेष पर स्तूप बनवाऊँगा और पूजा करूँगा।''[6] अजातशत्रु के शासनकाल में बुद्ध के प्रधान शिष्य महाकाश्यप के व्यवस्था के आधार पर बौद्धों की प्रथम संगीति राजगृह के वैभार पर्वत की सप्तपर्णी गुफा में हुई। इस संगीति में सुत्तपिटक और विनयपिटक में वर्णित उपदेशों का संकलन किया गया और भिक्षुओं ने सम्मिलित रूप से इसका संगायन किया। अजातशत्रु की यह सहायता बौद्धसंघ के लिए बड़ी कल्याणकारिणी सिद्ध हुई।

जीवक: बिम्बिसार के राजदरबार में जीवक राजवैद्य के रूप में था। राजगृह की राजनर्तकी 'शालवती' का पुत्र माना जाता है। जीवक राजवैद्य होने के साथ-साथ बौद्धसंघ का भी वैद्य था। कई बार जीवक बुद्ध भगवान का भी उपचार किया था।[7] अवंति के राजा चंडप्रद्योत पांडुरोग से पीड़ित थे, उसने राजा बिम्बिसार से जीवक को अवंति भेजने का आग्रह किया उसके उपरांत जीवक ने उज्जैन (अवंति की राजधानी) जाकर चंडप्रद्योत के रोग को ठीक किया। अजातशत्रु के अनुरोध करने पर बुद्ध ने उसे जीवकाम्बवन में ही सामे्फलसुत्त का उपदेश दिया था।

वर्षकार: अजातशत्रु के दरबार में वर्षकार महामंत्री और कुशल राजनीतिज्ञ के साथ-साथ कूटनीतिज्ञ भी था।[7] वर्षकार की कुशल कूटनीतिज्ञ के कारण वैशाली पर मगध का साम्राज्य स्थापित हो गया।

धर्माचार्य: बुद्धकालीन राजगृह में बौद्धधर्म के अतिरिक्त अन्य छ: सम्प्रदाय अथवा धर्म भी फैले हुए थे। उनके नाम और मत इस प्रकार हैं:-

1. मक्खलिगोसाल: मक्खलिगोसाल देववाद अथवा नियतिवाद के मानने वाले आचार्य थे। इनके अनुयायी आजीवक कहे जाते थे।
2. अजित केशकम्बल: अजित केशकम्बल जड़वाद तथा उच्छेदवाद के आचार्य थे। ये सदाचार का पालन करते थे और दान, यक्ष, तप और होम आदि का विरोध करते थे।
3. पूर्णकाश्यप: पूर्णकाश्यप अक्रियावाद के आचार्य थे। व्रत, समाधि और तप में इनकी आस्था थी, पर ये पाप-पुण्य की बात को नहीं मानते थे।
4. प्रक्रुध कात्यायन: प्रक्रुध कात्यायन अकृतंतावाद के आचार्य थे। इनके विचार से पृथ्वी, आप, तेज, वायु, सुख, दु:ख और जीवन ये सात कार्य अथवा पदार्थ है।
5. संजय वेलट्ठिपुत्त: संजय वेलट्ठिपुत्त अनिश्चितावाद के आचार्य थे।[8]
6. निगण्ठनाथपुत्त: पालि-साहित्य में जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर को ही निगण्ठनाथपुत्त कहा गया है।[9]

बौद्ध भिक्षु: राजगृह की भूमि पर बौद्ध-धर्म में प्रव्रजित होनेवाले वे तीन महान् व्यक्ति थे - सारिपुत्त, मोग्गलान तथा महाकाश्यप।

1. सारिपुत्त: सारिपुत्त का पूर्व नाम उपतिष्य था।10 सारिपुत्त की मुलाकात बुद्ध भगवान से बौद्धभिक्षु अश्वजित ने करवाया था। बुद्ध के शिष्यों में सबसे उँचा स्थान सारिपुत्त का ही था। बौद्ध-संघ में सारिपुत्त को 'धर्म सेनापति' कहा जाता था।
2. मोग्गलान: मोग्गलान का पूर्व नाम था कोलित। मोग्गलान की ही विद्वता तथा नीतिकुशलता का प्रभाव था जिसके कारण उस बौद्ध-संघ में फूट पैदा नहीं हो सकी और कुटिल-देवदत्त की चेष्टाएँ असफल सिद्ध हुई।
3. महाकाश्यप: महाकाश्यप, राजगृह में प्रव्रजित होने वाले तीसरे प्रसिद्ध भिक्षु थे। यदि भगवान बुद्ध को बौद्ध-धर्म का जन्मदाता कहा जाय तो बौद्ध-ध र्म को स्थिरता प्रदान करनेवालों में महाकाश्यप का नाम आता है।[11] इनका विवाह भद्रा कापिलयानी से हुआ, जो बाद में प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षुणी हुई। महाकाश्यप को बुद्ध भगवान ने बहुपुत्रक नामक स्थान[12] पर बरगद के पेड़ के नीचे प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा दी। बुद्ध के महापरिनिर्वाण के समय बौद्ध-संघ में सबसे प्रधान शिष्य थे। भगवान बुद्ध की अंत्येष्टि-क्रिया करने के बाद उन्होंने राजगृह के वैभार पर्वत की सप्तपर्णी गुफा में चुने हुए पॉच सौ बौद्ध-अर्हतों की एक सभा करायी। यह सभा बौद्धों की प्रथम संगीति के नाम से प्रसिद्ध है। महाकाश्यप इस संगीति के अध्यक्ष चुने गये।[13] इस संगीति में सुत्तपिटक और विनयपिटक में वर्णित उपदेशों का संकलन किया गया और सभी उपस्थित अर्हतों ने सम्मिलित रूप से संगायन किया।

बौद्धभिक्षुणियॉ:-

1. धर्मदिन्ना: धर्मदिन्ना राजगृह निवासी एक वैश्य सेठ की पुत्री थी। धर्मदिन्ना थोड़े ही काल में बौद्धधर्म की परम पंडिता हो गई। बौद्धधर्म का प्रचार करनेवाली भिक्षुणियों में इसका स्थान प्रथम था। इसकी वक्तृत्व-शक्ति अपूर्व थी।
2. मैत्रिका: मैत्रिका राजगृह के एक धनी ब्राह्मण की लड़की थी। यह बुद्धशासन की तीनों विद्याओं[14] की पंडिता हुई।
3. दन्तिका: दन्तिका श्रावस्ती की थी लेकिन राजगृह में बस गई थी। यह राजगृह को बौद्धधर्म का तीर्थ मानती थी।
4. भद्रा कुण्डलकेशा: भद्रा कुण्डलकेशा राजगृह के एक बड़े सेठ की पुत्री थी।[15] जब सारिपुत्र से शास्त्रार्थ में पराजित हो गई तब ये बौद्धधर्म में भिक्षुणी बन गई। बौद्धधर्म में बौद्धधर्म की महोपदेशिका हुई।
5. शुभा: शुभा राजगृह निवासी एक सुवर्णकार श्रेष्ठी की कन्या थी। यह महाप्रजापति गौतमी के पास चली गई और वहीं उसके द्वारा बताये गये उद्योगों के अनुसार धर्म-साधना करने लगी। बाद में, इसने विधिसत् गौतमी से प्रव्रज्या ले ली।

राजगृह की पहाड़ियॉं: पालि-साहित्य में अधिकतर स्थानों पर राजगृह की पंचपहाड़ियों के वर्णन आये हैं। ये हैं - गृद्धकूट, वैभार, विपुलाचल, रत्नागिरि (पांडवगिरि) और इसीगिल्ली।

1. गृद्धकूट: गृद्धकूट पहाड़ी का वर्णन बौद्ध-ग्रंथों तथा इतिहास में अनेक बार आया है। बुद्ध को सबसे अधिक प्रिय गृद्धकूट पर्वत[16] था। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसांग ने यात्रा-विवरण में बताया है कि भगवान बुद्ध और उनके शिष्यों को नगर से गृद्धकूट तक आने में असुविधा न हो- इस कारण बिम्बिसार ने एक सड़क का निर्माण करा दिया था।
2. वैभार: पालि साहित्य में बताया गया है कि वैभार पहाड़ी गर्म झरने के पास से लेकर प्राचीन गिरिव्रज तक फैली हुई है। विनयपिटक और सुत्तपिटक में भी कई स्थलों पर वैभार का वर्णन किया गया है और बताया गया है कि सप्तपर्णी गुफा[17] वैभार पहाड़ के ही अन्तर्गत थी।
3. विपुलाचल: खुद्दक निकाय के एक ग्रंथ में बताया गया है कि विपुलाचल पहाड़ी गृद्धकूट की उत्तर दिशा में अवस्थित है। राजगृह की पहाड़ियों में यह सबसे ऊँची पहाड़ी है। संयुक्त निकाय में इसकी विशालता का वर्णन इस वाक्य में किया गया है - ''अक्खतो वेपुलो पब्बतो महा।''
4. इसीगिली: राजगृह की पॉंचों पहाड़ियों में इसीगिली का प्राकृतिक सौंदर्य सबसे अधिक माना गया है। हिन्दु धर्म-ग्रंथों में इसे ऋषिगिरि भी कहा गया है। इस पहाड़ी के ऑंचल में एक काला शिलाखंड था जो बौद्ध-ग्रंथों में कालशिला[18] के नाम से प्रसिद्ध था।

राजगृह की गुफाओं के नाम: सप्तपर्णी गुफा, पिप्पली गुफा, इंद्रसाल गुफा, कपोत कंदरा, गौतम कंदरा, तिन्दुक कंदरा तथा तपोद कंदरा थी। वैभारगिरि पहाड़ी पर दो आदिनाथ की गुफा है (मार्शल, 2002:98)।

सप्तपर्णी गुफा: पालि साहित्य के विनयपिटक के चुल्लवग्ग में वर्णन किया गया है कि भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद बौद्ध-अर्हतों की प्रसिद्ध ऐतिहासिक संगीति सप्तपर्णी गुफा में ही हुई थी। लंका के बौद्ध ग्रंथ महावंस में भी इस बात की पुष्टि की गई है। यहॉं प्रथम संगीति महास्थविर महाकाश्यप की अध्यक्षता में हुई थी जिसमें प्रथम बार सुत्तपिटक और विनयपिटक को संकलित किया गया था और सम्मिलित रूप से इनका संगायन संगीति में भाग लेनेवाले पॉंच सौ अर्हतों ने किया था।[19]

राजगृह की वाटिकाएँ:-

वेणुवन: मगध -साम्राज्य में बौद्ध-धर्म का जो व्यापक प्रचार होने लगा था, उसे प्रारम्भ करने का श्रेय वेणुवन को ही प्राप्त था। बिम्बिसार ने वेणुवन में एक विहार का निर्माण करवाया तथा उस विहार को बुद्ध और उनके संघ को समर्पित किया (वॉल्यूम-।:39 (ओल्डेनबर्ग); सेन, 1918:122-23)। वेणुवन को ही करंदा वन भी कहा जाता है। हुएनसांग के अनुसार, परिसर का नाम करंदा, एक अमीर गृहस्वामी के नाम पर रखा गया था जिसने यहां एक विहार बनवा कर उसे बुद्ध को उपहार स्वरूप भेंट किया था (बील,1844,।।:160)। वेणुवन के अन्तर्गत ही कलन्दकनिवाप[20] नामक तालाब भी था।

जीवकाम्बवन: जीवकाम्बवन का अर्थ है राजवैद्य जीवक का आम्रवन। जीवकाम्बवन में बुद्ध ने प्रसिद्ध सामञ्ञयफलसुत्त का उपदेश अजातशत्रु को दिया।

अम्बलट्ठिकावन: तत्कालीन राजगृह और नालंदा के मार्ग में अम्बलट्ठिकावन नामक वाटिका थी। यहीं भगवान बुद्ध ने पालि साहित्य के प्रसिद्ध ब्रह्मजालसुत्त का उपदेश भिक्षुओं को दिया।

राजगृह का बौद्ध-विहार

वेणुवन विहार: बिम्बिसार ने वेणुवन में एक बौद्ध-विहार का निर्माण करवाया और श्रद्धासहित उसे तथागत एवं बौद्धसंघ को समर्पित कर दिया। वास्तव में, वेणुवन में विहार की स्थापना से ही बौद्ध-विहारों के निर्माण का श्रीगणेश हो गया, फिर तो सोलहों जनपदों में अनेक बौद्ध-विहार निर्मित किए जाने लगे।[21]

जीवकाराम: जीवकाराम[22] शब्द का अर्थ है जीवक द्वारा बनवाया गया 'आराम' अथवा बौद्ध-विहार। जीवक ने अपनी आम्र-वाटिका में एक बौद्ध-विहार का निर्माण करवाया और उसे तथागत तथा बौद्ध-संघ को श्रद्धासहित दानस्वरूप अर्पित कर दिया(सेन, 1918: 118-19, 132-135)। हुएन त्सांग के अनुसार, बुद्ध के उपचार के समय जीवक ने एक उपदेश कक्ष का निर्माण किया था और फूलों और फलों के पेड़ लगवाए थे (बील, 1884: 151-152)।

तपोदराम: 'तपोद' अथवा गर्म पानी के झरने के पास एक दूसरा बौद्ध-विहार था, जिसे तपोदाराम कहा जाता था। भगवान बुद्ध ने 'समीद्धि सुत्त' का उपदेश यहीं दिये थे। घोष, मानते थे कि धारा के पार स्थित उद्यान क्षेत्र एक अन्य मठ (आराम/विहार) का प्रतिनिधित्व करता था, जिसका नाम तपोदराम था, जो बौद्ध पाली ग्रंथों में इसकी चर्चा की गई है (सेन, 1918:123-25; लॉ, 1938/1999:44)।

उदम्बरिकाराम: उदम्बरिकाराम नामक बौद्ध-विहार[23] राजगृह के मोरनिवाप से थोड़ी दूर पर स्थित था। इसका व्यवहार बाहर से आये परिव्राजकों के ठहरने के लिए किया जाता था।

निष्कर्ष: बुद्धकालीन राजगृह के रूप में विश्व में एक विशेष स्थान रखता है। राजगृह के प्राचीर, गढ़, स्तूप, बौद्ध विहार, गुहा बौद्ध काल में लोकप्रियता के चरम शिखर पर था। जैसा कि उपरोक्त में उल्लेख किया गया है कि बुद्धकालीन राजगृह का पुरातात्विक शोध का इतिहास लगभग दो सौ वर्षों से भी ज्यादा पुराना है। कई पुरातत्ववेत्ताओं में कई स्थानों और साक्ष्यों में मतांतर है। अजातशत्रु का स्तूप का अवस्थित होना, बिम्बिसार का जेल के बारे में विस्तृत जानकारी, मनियार मठ का निर्माण कब और किसने किया, छोटी-छोटी वाटिकाओं का खोज, गौतम कंदरा या गुफा का सही स्थान, तिन्दुक कंदरा की सही जानकारी तथा पंच पहाडिघ्यों से घिरी दो नगरों का स्थान के बारे में पता लगाना अभी शोधार्थियों के लिए खोज का विषय बना हुआ है। अत: कहा जा सकता है कि अभी भी पुरातत्ववेत्ताओं तथा इतिहास के शोधार्थियों के लिए बहुत कुछ खोज करना बाकी है।

ग्रंथ सूची

1. घोष, अमलानंद, 1973, सिटीज इन एनसिएंट इंडिया, शिमला, इन्सिच्यूट ऑफ अडभांस स्टडी.
2. शर्मा, आर0 एस0, 1983, मेटेरियल कल्चर एण्ड सोशल फोरमेशन इन एनसीएंट इंडिया, दिल्ली: मैकमिलन इंडिया प्रा0 लि0.
3. ठाकुर, भी0 के0, 1981, अर्बनाईजेशन इन एनसिएंट इंडिया, न्यू दिल्ली: अभिनव पब्लिकेशन.
4. झा, सत्येन्द्र कुमार, 1998, बीगनिंग ऑफ अर्बनाईजेशन इन अर्ली हिस्टोरिक इंडिया, पटना: नोवेल्टी एण्ड को.
5. लॉ, बी0 सी0, 1938 (रिप्रिंट 1999), राजगृह इन एनसिएंट लिटरेचर, मासी (मेमोरेस ऑफ आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया), न0 58.
6. सिन्हा, बी0 पी0, 2000, डायरेक्ट्री ऑफ बिहार आर्कियोलॉजी, पटना: बिहार पुराविद परिषद.
7. बील, समुएल, 1884 (रिप्रिंट 1969), वोल्यूम. प्प् एण्ड प्प्प् , सि-यू-कि, बुद्धिस्ट रिकॉर्डस ऑफ द वेस्टर्न वर्ल्ड, न्यू दिल्ली: मुंशीराम मनोहरलाल.
8. कनिंघम, ए0, 1861-62, आर्कियोलॉजिकल रिपोर्ट, (ए0एस0 आई), वोल्यूम.।.
9. बुकानन, फ्रांसिस, 1811-12 (1925), जर्नल ऑफ फ्रांसिस बुकानन: पटना एण्ड गया इन 1811-12, (एडिटेड, जैक्सन, भी0 के0), पटना: सुर्पिटेंडेंट ऑफ गर्वनर प्रिटिंग, बिहार एण्ड ओडिघ्सा.
10. बुकानन फ्रांसिस, 1811-12, ए0, (रिप्रिंट, 1986), एन एकाउंट ऑफ द डिस्ट्रिक्स ऑफ बिहार एण्ड पटना इन 1811-1812, वोल्यूम, ए, 1934, पटना: बिहार एण्ड ओडिघ्सा रिसर्च सोसाईटी, रिप्रिंटेट इन दिल्ली: उषा पब्लिकेशन.
11. बुकानन फ्रांसिस, 1811-12, बी0, (रिप्रिंट, 1986), एन एकाउंट ऑफ द डिस्ट्रिक्स ऑफ बिहार एण्ड पटना इन 1811-1812, वोल्यूम, प्प, 1934, पटना: बिहार एण्ड ओडिघ्सा रिसर्च सोसाईटी, रिप्रिंटेट इन दिल्ली: उषा पब्लिकेशन.
12. रायचौधरी, हेमचन्द्र, 1997, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एनसिएंट इंडिया (वीथ कोमेन्ट्री बाई बी0 एन0 मुखर्जी), दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
13. सेन, डी0 एन0, 1918, साईट्स इन राजगीर एसोसिएटेड वीथ बुद्धा एण्ड डिस्पल्स, पटना: जर्नल ऑफ बिहार एण्ड ओडिघ्सा रिसर्च सोसाईटी, वोल्यूम. प्ट, पार्ट. प्प्.
14. चौधरी, विजय कुमार, 2015, आर्कियोलॉजिकल गजेटियर ऑफ नालंदा डिस्ट्रिकट, पटना: के0 पी0 जायसवाल रिसर्च इंस्टिच्यूट.
15. मार्शल, जे0 एच0, 2002 रिप्रिंट, राजगीर एण्ड इट्स रिमेन्स, एनुएल रिपोर्ट (ए0 एस0 आई0).
16. मार्शल, जॉन, 1905-06, राजगीर एण्ड इट्स रिमेन्स, एनुएल रिपोर्ट (ए0 एस0 आई0).
17. मार्शल, जॉन, 1905-06, ए0, एक्सप्लोरेशन एण्ड रिसर्च, एनुएल रिपोर्ट (ए0 एस0 आई0).
18. जैक्सन, भी0 एच0, 1913-14, नोट्स ऑन ओल्ड राजगृह, एनुएल रिपोर्ट (ए0 एस0 आई0).
19. पाटिल, डी0 आर0, 1963, द एन्टिक्यूरियन रिमेन्स ऑफ बिहार, पटना: के0 पी0 जंयसवाल रिसर्च इन्सिच्यूट.
20. पाण्डेय, एम0 एस0, 1963, दी हिस्टोरिकल ज्योग्राफी एंड टोपोग्राफी ऑफ बिहार, दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.

फुटनोट

1. पूर्णकाश्यप अक्रियावाद के आचार्य, मक्खलिगोसाल दैववाद के आचार्य, अजित केशकम्बल जड़वाद, निगण्ठनाथ पुत्त चातुर्याम संवर के आचार्य तथा संजय वेलट्ठिपुत्त अनिश्चिततावाद के आचार्य थे।
2. दीघ निकाय का महापरिनिब्बानसुत्त, बौद्ध पिटक साहित्य का एक हिस्सा है जिसमें छ: महान महानगरों को संदर्भित करता है। राजगृह के अलावा, चंपा, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी और काशी था।
3. हुएनसांग 637 ई0 में अपनी यात्रा विवरण में कुशाग्रपुरी का वर्णन किया था।
4. ऐसा वर्णन पालि-साहित्य के दीर्घ निकाय के महपरिनिब्बानसुत्त में किया गया है।
5. उत्कल राजा खारवेल ने हाथीगुम्फा शिलालेख में अजातशत्रु द्वारा किले का निर्माण करवाया गया था, इसका विवरण दिया गया है।
6. पालि साहित्य के दीर्घ निकाय के महापरिनिब्बान सुत्त में इस घटना का विशद् वर्णन किया गया है।
7. जीवक, अपने आम्रवन में एक सुन्दर विहार का निर्माण कराया, उसे बुद्ध तथा उनके संघ को दान कर दिया था।
8. पालि-साहित्य के दीर्धनिकाय के महापरिनिब्बानसुत्त के अनुसार, बुद्ध से जानकारी प्राप्त हुई कि वज्जीसंघ को कोई भी पराजित नहीं कर सकता है।
9. बौद्धधर्म के दो अग्र-श्रावक सारिपुत्त और महामोग्गलान पहले आचार्य संजय के ही शिष्य थे। बाद में ये संजय के सम्प्रदाय को छोड़कर बौद्धधर्म में प्रव्रजित हो गये थे।
10. निगण्ठनाथपुत्त भगवान बुद्ध के समकालीन थे और जैन-धर्म के प्रचार-कार्य में लगे हुए थे।
11. ये राजगृह से लगभग आठ मील दूर नालकग्राम (वर्तमान, ग्राम-सरीचक) के निवासी थे।
12. इनका बचपन का नाम माणवक था। वे महातिथ्य अथवा महातीर्थ ग्राम के निवासी थे।
13. वर्तमान सिलाव के पासए उस समय बुद्ध वेणुवन महाविहार की गंधकुटी में अपने शिष्यों के साथ थे।
14. बौद्ध की प्रथम संगिति का सरक्षण मगध सम्राट अजातशत्रु ने किया था।
15. पूर्वजन्म का स्मरण ज्ञान, जन्म-मृत्यु का ज्ञान और आम्रवों के क्षय का ज्ञान- इनके ज्ञानी 'त्रैविद्य' कहलाते हैं।

16. अपने पति सत्युक की हत्या करने के बाद ये जैनधर्म अपना ली थी।
17. कारागार की जिस कोठरी में पदच्युत सम्राट बिम्बिसार बन्दी थे, उसकी एक खिड़की गृद्धकूट पहाड़ी की ओर खुलती थी। बिम्बिसार खिड़की से झाँककर दूर से ही अपने आराध्य भगवान के दर्शन करते और संतोष पाते।
18. इसी सप्तपर्णी गुफा में भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद बौद्ध अर्हतों की प्रथम ऐतिहासिक संगीति महास्थविर महाकाश्यप की अध्यक्षता में हुई थी जिसमें पाँच सौ चुने हुए अर्हतों ने भाग लिया था। इसी वैभार पहाड़ी की सप्तपर्णी गुफा में सुत्तपिटक और विनयपिटक की स्थिरता प्रदान की गयी थी और संगायन किया गया था।
19. मगध-सम्राट् की ओर से जिन्हें प्राणदंड की आज्ञा दी जाती थी, वे सैनिकों से घिरे हुए यहीं लाये जाते थे और प्राणदंड की आज्ञा कार्यान्वित की जाती थी। चीनी यात्री हुएनसांग और फाहियान ने भी इसीगिली पहाड़ी और कालशिला का वर्णन अपने यात्रा-विवरण में किया है।
20. श्री एम0 एस0 पाण्डेय के अनुसार, सप्तपर्णी गुफा वैभार पहाड़ी के उत्तर-पूर्व चढ़ाई के पास कहीं स्थित थी।
21. ह्वेन त्सांग ने कलंदा निवापा को संदर्भित किया है जो पर्वतीय शहर के उत्तरी द्वार से एक ली की दूरी पर स्थित है, जो एक बांस का पार्क था। कुछ संस्करणों में यह बांस का पार्क राजा बिंम्बिसार की संपत्ति थी और उन्होंने इसे बुद्ध को दिया था। विनय पिटक में थेरा भिक्षु कभी-कभी कलंद निवापा के तट पर मिलते थे। यह वेणुवन विहार के उत्तर में 200 कदम की दूरी पर स्थित है।
22. राजगृह तो बौद्ध-धर्म का एक प्रकार से केन्द्र स्थल ही हो गया था।
23. बताया जाता है कि 'जीवकाराम' का निर्माण बड़े ही वृहद् रूप में किया गया था और इसकी विशालता तथा भव्यता की बराबरी करनेवाला 'विहार' उस समय राजगृह में दूसरा नहीं था।
24. यह विहार राजगृह नगरी और गृधकूट पर्वत के बीच रास्ते में पड़ता था।

चम्पारण दुर्दशा गांधीजी के सहयोगी गणेश शंकर विद्यार्थी के ऐतिहासिक योगदान का पुनर्मूल्यांकन

धीरज कुमार

शोधार्थी, इतिहास विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय पटना

सार

चंपारण सत्याग्रह को भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना माना जाता है। बिहार के चंपारण जिले में काश्तकारों के साथ हुए अन्याय के विरोध में महात्मा गांधी द्वारा शुरू किया गया यह भारत का पहला सविनय अवज्ञा आंदोलन था। गणेश शंकर विद्यार्थी भारतीय पत्रकारिता की दुनिया में एक लोकप्रिय नाम है। वह उन कुछ स्वतंत्रता सेनानियों में से हैं जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम आंदोलनों में अपनी कलम और लेखन कौशल को अंग्रेजों के खिलाफ हथियार के रूप में इस्तेमाल किया। ब्रिटिश शासकों के खिलाफ अपने क्रांतिकारी लेखन की मदद से युवा और गतिशील पत्रकार को कई बार जेल भेजा गया था। लेकिन इसने उसे नहीं रोका। अपने तीखे शब्दों की मदद से उन्होंने हमेशा ब्रिटिश नीति पर प्रहार किया। इस पत्र में बिहार के चम्पारण जिला में किसानों के साथ हो रहे दुर्दशा पर गांधीजी के सहयोगी गणेश शंकर विद्यार्थी के ऐतिहासिक योगदान का पूर्वमूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्द: चम्पारण दुर्दशा; पत्रकार; करियर; स्वतंत्रता संग्राम।

परिचय

गणेश शंकर विद्यार्थी का जन्म 26 अक्टूबर, 1890 को इलाहाबाद के निकट फतेहपुर के हठगाम नामक गांव में हुआ था। वह जय नारायण और गोमती देवी के पुत्र थे। उनके पिता मध्य प्रदेश के ग्वालियर के एक मिडिल स्कूल में शिक्षक थे। उनके पिता की उर्दू और फारसी भाषा में गहरी रुचि थी। उनके पिता के उच्च आदर्शों ने छोटे गणेश को बहुत प्रभावित किया। उनकी प्रारंभिक शिक्षा उनके पिता के मार्गदर्शन में हुई। इसलिए, उन्होंने भी उर्दू और फारसी भाषा में रुचि विकसित की। 1907 में, वह निजी तौर पर हाई स्कूल की परीक्षा में शामिल हुए और पूरे उत्साह के साथ उत्तीर्ण हुए। लेकिन आर्थिक तंगी के कारण आगे की पढ़ाई नहीं कर पाए। लेकिन, उनका स्वाध्याय कभी नहीं रुका। पत्रकारिता में रुचि होने के कारण वे कलम की शक्ति को भली-भांति समझते थे।[1]

गणेश शंकर विद्यार्थी का करियर

1907 में, गणेश शंकर विद्यार्थी इलाहाबाद के एक स्कूल कायस्थ पाठशाला में शामिल हो गए। लेकिन, खराब आर्थिक स्थिति के कारण उन्हें नौकरी छोड़नी पड़ी। फिर, वह कानपुर में एक क्लर्क के रूप में मुद्रा कार्यालय में शामिल हो गए। लेकिन, ब्रिटिश कर्मचारियों के साथ विचारों में मतभेद के कारण उन्हें नौकरी छोड़नी पड़ी। इसके बाद, उन्होंने एक शिक्षक के रूप में कानपुर के एक हाई स्कूल में प्रवेश लिया। लेकिन, पत्रकारिता के प्रति उनका रुझान कभी कम नहीं हुआ। वह लोकप्रिय क्रांतिकारी हिंदी और उर्दू पत्रिकाओं - कर्मयोगी और स्वराज्य में अपने लेखों का योगदान करते थे। वे ज्ञान के साधक 'विद्यार्थी' नाम से लेख लिखते थे। पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी, हिंदी पत्रकारिता का एक प्रमुख नाम, उनके काम से बहुत प्रभावित थे। वर्ष 1911 में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें हिंदी मासिक संपादकीय 'सरस्वती' में उप-संपादक की नौकरी की पेशकश की। बाद में, वह समसामयिक मामलों और राजनीति में रुचि विकसित होने के कारण, हिंदी राजनीतिक पत्रिका "अभ्युदय" में शामिल हो गए।[2]

1913 में गणेश शंकर कानपुर लौट आए। उन्होंने 9 नवंबर, 1913 को 'प्रताप' के नाम से एक क्रांतिकारी साप्ताहिक शुरू किया। इस साप्ताहिक पत्रिका की मदद से, वे सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परिवर्तन के लिए एक जोरदार अभियान में भाग लेते थे। अपने संपादकीय की मदद से वे किसानों और किसानों की आवाज बने। उन्होंने चंपारण नील बागानों में काम करने वाले किसानों, कानपुर के मिल-मजदूरों और विदेशी उपनिवेशों में कुली प्रवासियों की वकालत की। अपने विस्फोटक लेखों के कारण, उन्हें उच्च जुर्माना से दंडित किया गया और उन्हें पांच बार जेल भेजा गया। लेकिन, यह उन्हें जमींदारों और अंग्रेजों की क्रूरता के खिलाफ आवाज उठाने से नहीं रोक सका।

राष्ट्रीय आंदोलनों में प्रवेश

चंपारण सत्याग्रह संविधानेतर संघर्ष के तत्वों के साथ-साथ एक विरोधी के खिलाफ नैतिक बल के नियोजन का संयोजन था, जो कानून के शासन का एक उदाहरण था; और एक जुआ के रूप में समझौता का उपयोग। इसे बिहार के चंपारण जिले में काश्तकारों के साथ हुए अन्याय के विरोध में महात्मा गांधी द्वारा शुरू किए गए भारत के पहले सविनय अवज्ञा आंदोलन के रूप में चिह्नित किया गया है।

चंपारण जिला स्थायी बंदोबस्त क्षेत्र का हिस्सा था जिसमें अमीर और प्रभावशाली जमींदारों के अधीन बड़ी जमींदारी सम्पदा शामिल थी। अधिकांश गाँव जमींदारों द्वारा ठिकादारों को पट्टे पर दिए गए थे, जिनमें से सबसे प्रभावशाली यूरोपीय इंडिगो प्लांटर्स थे। हालांकि बागान मालिक अस्थायी काश्तकार थे, फिर भी वे न केवल किसानों से लगान वसूलते थे बल्कि दीवानी और फौजदारी क्षेत्राधिकार का भी प्रयोग करते थे।[3]

चंपारण सत्याग्रह की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

चंपारण सत्याग्रह से पहले, चंपारण के किसान "पंचकठिया" प्रणाली का पालन करते थे, जिसके तहत एक बीघा में पांच कट्टे जमीन नील के साथ लगाई जाती थी। स्थानीय आंदोलनकारियों और शेख गुलाब, हरबंस सहाय, पीर मोहम्मद मुन्सी, संत रावत और लोमराह सिंह जैसे नेताओं ने "पंचकठिया" प्रणाली के खिलाफ आंदोलन किया और कुछ रियायत लेने में कामयाब रहे और जो प्रणाली लागू की गई वह थी "तिंकठिया" प्रणाली (तीन , पांच के बजाय, नील के साथ भूमि के कट्टे लगाए जाने थे)।[4]

राज कुमार शुक्ल रियायत से खुश नहीं थे और चंपारण में प्रचलित कृषि श्रमिकों की अप्रिय व्यवस्था को बदलना चाहते थे। वे अपने लिए आवश्यक भोजन नहीं उगा सकते थे, न ही उन्हें नील के लिए पर्याप्त भुगतान प्राप्त होता था। यह गणेश विद्यार्थी ही थे जिन्होंने शुक्ल से अफ्रीका में गांधी के कार्यों का उल्लेख किया था। ब्रजकिशोर प्रसाद और राजेंद्र प्रसाद, जो पटना के सहानुभूतिपूर्ण वकील थे, ने उन्हें मोहनदास करमचंद गांधी से मिलने का सुझाव दिया, जो लखनऊ में कांग्रेस के 31 वें सत्र (26 और 30 दिसंबर, 1916 के बीच आयोजित) में भाग ले रहे थे। इसलिए, राजकुमार शुक्ल और संत राउत ने गांधी को चंपारण जाने के लिए राजी किया और इस तरह चंपारण सत्याग्रह शुरू हुआ। गांधी 10 अप्रैल 1917 को चंपारण पहुंचे और प्रख्यात वकीलों की एक टीम के साथ अमोलवा गांव में संत राउत के घर पर रहे: ब्रजकिशोर प्रसाद, राजेंद्र प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिन्हा रामनवमी प्रसाद, और अन्य में जेबी कृपलानी शामिल हैं।[5]

गांधीजी 1917 में राज कुमार शुक्ल के साथ चंपारण पहुंचे। उनके आगमन पर, जिला मजिस्ट्रेट ने उन्हें यह कहते हुए नोटिस दिया कि उन्हें चंपारण जिले में नहीं रहना है, लेकिन पहले उपलब्ध ट्रेन से जगह छोड़नी होगी। गांधी ने इस आदेश की अवहेलना की। उन्हें कोर्ट में पेश होने के लिए तलब किया गया था। मजिस्ट्रेट ने कहा, 'यदि आप अभी जिला छोड़ दें और वापस न आने का वादा करें, तो आपके खिलाफ मुकदमा वापस ले लिया जाएगा।'

'यह नहीं हो सकता।' गांधी ने उत्तर दिया। 'मैं यहां मानवीय और राष्ट्रीय सेवा करने आया हूं। मैं चंपारण को अपना घर बनाऊंगा और पीडिघ्त लोगों के लिए काम करूंगा।' गांधी के करिश्माई गुणों का अंदाजा तब लगाया जा सकता है जब वे भीड़ के सामने आए और कहा, 'आपको चुप रहकर मुझ पर और मेरे काम में अपना विश्वास दिखाना चाहिए। मजिस्ट्रेट को मुझे गिरफ्तार करने का अधिकार था क्योंकि मैंने उसके आदेश की अवज्ञा की थी। अगर मुझे जेल भेजा जाता है, तो आपको इसे न्यायसंगत मानना चाहिए। हमें शांति से काम लेना चाहिए। और एक हिंसक कार्य हमारे कारण को नुकसान पहुंचाएगा।'[6]

1916 में गणेश शंकर विद्यार्थी लखनऊ में महात्मा गांधी के संपर्क में आए। वे गांधीजी के अहिंसा के विचारों से बहुत प्रभावित थे। और, वह स्वतंत्रता संग्राम आंदोलनों में शामिल हो गए। 1917-18 के होमरूल आंदोलन में उन्होंने मोर्चे से नेतृत्व किया। उन्होंने कानपुर में कपड़ा श्रमिकों की पहली हड़ताल का भी नेतृत्व किया। 1920 में, उन्होंने 'प्रताप' के दैनिक संस्करण का शुभारंभ किया। एक लेख में उन्होंने रायबरेली के किसानों के लिए अपनी आवाज का समर्थन किया. इस वजह से उन्हें दो साल जेल की सजा सुनाई गई थी। वर्ष 1922 में जेल से रिहा होने के बाद उन्हें प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। फतेहगढ़ में उन्होंने विद्रोही भाषण दिया और उन्हें फिर से दो साल के कारावास की सजा सुनाई गई। 1924 में उन्हें रिहा कर दिया गया। उनका स्वास्थ्य बिगड़ रहा था, लेकिन फिर भी उन्होंने 1925 में कानपुर में कांग्रेस के अधिवेशन की तैयारी शुरू कर दी।[7]

1925 में, कांग्रेस ने प्रांतीय विधान परिषदों के चुनाव लड़ने का फैसला किया। उन्होंने स्वराज पार्टी का गठन किया। गणेश शंकर विद्यार्थी कानपुर से जीते और यूपी विधान परिषद (1926-29) के सदस्य बने। कांग्रेस पार्टी के आदेश पर उन्होंने पद से इस्तीफा दे दिया। 1929 में, उन्हें फर्रुखाबाद में आयोजित यूपी राजनीतिक सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में चुना गया था। उसी वर्ष, उन्हें यूपी कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया गया। उन्हें उत्तर प्रदेश में सत्याग्रह आंदोलन का नेतृत्व करने का अधिकार दिया गया था। वर्ष 1930 में, उन्हें फिर से गिरफ्तार कर लिया गया, लेकिन मार्च 1931 में गांधी-इरविन समझौते के तहत रिहा कर दिया गया।

मार्च 1931 में, कानपुर के चौबेगोला में सांप्रदायिक दंगे हुए। गणेश शंकर विद्यार्थी ने सांप्रदायिक शांति और सद्भाव बहाल करने की पूरी कोशिश की। लेकिन कुछ भी नहीं निकला। अंत में वह हजारों निर्दोष लोगों की जान बचाने के लिए दंगों के बीच कूद गया। 25 मार्च 1931 को, 40 वर्ष की आयु में, जब वह दंगा प्रभावित क्षेत्र में से एक का दौरा करने के लिए निकले थे, तो भीड़ ने उन्हें मार डाला।[8]

गणेश शंकर विद्यार्थी की मृत्यु स्वतंत्रता संग्राम आंदोलनों में एक भारी क्षति थी। अपनी सरल लेखन शैली, सशक्त और स्पष्ट भाषण की मदद से, वह स्वतंत्रता संग्राम आंदोलनों में कूदने के लिए बड़ी संख्या में लोगों को प्रभावित करने में सक्षम थे। साधन संपन्न लेखक ने हमारे देश में पश्चिमी सभ्यता के शक्तिशाली प्रभाव का विरोध किया क्योंकि भारतीय बुद्धिजीवियों को विदेशी संस्कृति का गुलाम बना दिया गया था।

भारतीयों को 1750 में वर्तमान बिहार और यूपी में जबरदस्ती नील (नील) उगाने के लिए मजबूर किया गया था। नकदी फसल होने के कारण इसे उच्च मात्रा में पानी की आवश्यकता होती थी और जिससे मिट्टी बंजर हो जाती थी, स्थानीय किसानों ने आमतौर पर इसकी खेती का विरोध किया, बजाय दैनिक जरूरत की फसलों को उगाना पसंद किया। जैसे चावल और दालें। इसलिए ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने किसानों को खरपतवार उगाने के लिए मजबूर किया, अक्सर इसे ऋण प्रदान करने की स्थिति बनाकर, और स्थानीय राजाओं, नवाबों और जमींदारों की मिलीभगत से ऐसा किया। व्यापार आकर्षक था और कई एशियाई और यूरोपीय व्यापारियों और कंपनियों की किस्मत का नेतृत्व किया। चूंकि 1900 की शुरुआत में चीन के लिए खरपतवार व्यापार को अवैध बना दिया गया था और 1910 में संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रतिबंधित कर दिया गया था, इसलिए खरपतवार व्यापारियों ने उत्पादन बढ़ाने के लिए खरपतवार बोने वालों पर बल लगाना शुरू कर दिया। कई किरायेदारों ने आरोप लगाया कि जमींदारों ने अवैध उपकरों को ठीक करने और उन्हें अन्य तरीकों से निकालने के लिए मजबूत हाथों की रणनीति का इस्तेमाल किया था। इस मुद्दे को कई वकीलों/राजनेताओं ने उजागर किया था और एक जांच आयोग भी बना था। गणेश शंकर विद्यार्थी और पीर मुनीश ने अपने प्रकाशनों में चंपारण की स्थिति प्रकाशित की जिसके कारण उनकी नौकरी चली गई। राज कुमार शुक्ल और साहूकार संत राउत, जिनके पास कुछ जमीन थी, ने गांधीजी को चंपारण जाने के लिए राजी किया और इस तरह वे आए और चंपारण सत्याग्रह का नेतृत्व किया।

भारत के उत्पीडिघ्तों के एक महान समर्थक, शंकर एक अपरंपरागत पत्रकार थे, जिन्होंने घटना की रिपोर्ट करने के बजाय लोगों की मदद करने के लिए दंगा प्रभावित कानपुर में प्रवेश किया। उत्तर प्रदेश के कानपुर में मेस्टन रोड पर बीच वाला मंदिर का दौरा करने वाले किसी भी पर्यटक को इलाके के सांप्रदायिक इतिहास पर संदेह नहीं होगा। अभी भी कम संभावना है, यह विचार होगा कि यहां एक खूनी सांप्रदायिक दंगा हुआ, जिसके परिणामस्वरूप एक प्रसिद्ध हिंदी पत्रकार की मृत्यु हो गई। और फिर भी, इतिहास के रिकॉर्ड पर एक सरसरी नजर 25 मार्च, 1931 को उस दिन के रूप में चिह्नित करेगी जब 40 वर्षीय गणेश शंकर विद्यार्थी की कानपुर में निर्दोष लोगों की जान बचाने की कोशिश में मृत्यु हो गई थी।

कार्यकर्ता, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता और पत्रकार, शंकर एक दुर्लभ व्यक्तित्व थे, जिन्होंने अन्य लोगों द्वारा उन्हें उपाधियों से सम्मानित करने की प्रतीक्षा करने के बजाय उनके नाम के अंत में "विद्यार्थी" (ज्ञान का साधक) शब्द अपनाया। अपने बीस के दशक की शुरुआत में, शंकर ने एक साप्ताहिक प्रकाशन 'प्रताप' की स्थापना की, जो हर जगह, उत्पीडिघ्तों को आवाज देने का प्रयास करता था। रायबरेली के किसानों की त्रासदी को उजागर करने के लिए शंकर ने प्रकाशन की पहुंच का इस्तेमाल किया (1916 तक प्रसार 600 पर था), जिनमें से 13 पुलिस फायरिंग के दौरान मारे गए थे।

1931 के उस घातक दिन पर, शंकर दंगा प्रभावित इलाकों में फंसे हजारों लोगों, मुसलमानों और हिंदुओं को सुरक्षित निकालने के लिए कानपुर की सड़कों में घुस गए। वेबदुनिया के लिए लिखते हुए आर्की के मुताबिक, "विद्यार्थी... निर्दोषों की जान बचाने के लिए दिन भर दंगा प्रभावित इलाकों में घूमते रहे. .. क्योंकि उस वक्त पत्रकारिता की नहीं मानवता की जरूरत थी।" हालाँकि, यह मानवता शंकर को बहुत महंगी पड़ी। एक हिंसक भीड़ ने उसे मार डाला, जिसने उसे जीवित बचे लोगों को भागने में मदद करते देखा। कुछ दिनों बाद, उसके शरीर की पहचान बुरी तरह से विकृत चेहरे से नहीं, बल्कि उसके केश, कपड़े और उसकी जेब में रखे सामान से हुई।[9]

शंकर की मृत्यु पर महात्मा गांधी द्वारा विशेष रूप से शोक व्यक्त किया गया था, जिनसे वे 1916 में लखनऊ में मिले थे। उनके सम्मान में, गांधी ने 'यंग इंडिया' में निम्नलिखित श्रद्धांजलि लिखी:

"गणेश शंकर विद्यार्थी की मृत्यु हम सभी को ईर्ष्या करने वाली थी। उनका खून वह सीमेंट है जो अंततः दो समुदायों को बांधेगा। कोई समझौता हमारे दिलों को नहीं बांधेगा। लेकिन गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे वीरता ने अंत में पत्थर के दिलों को पिघलाने के लिए बाध्य किया, उन्हें एक में पिघला दिया। जहर इतना गहरा गया है कि इतने महान, इतने आत्म-बलिदान और इतने बहादुर गणेश शंकर विद्यार्थी का खून भी आज हमें इसे धोने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है। इस नेक उदाहरण को हम सभी को इसी तरह के प्रयास के लिए प्रोत्साहित करें यदि अवसर फिर से आए।"[11]

उनकी मृत्यु के अलावा, शंकर के जीवन ने 1917-18 के होमरूल आंदोलन के साथ-साथ कानपुर में कपड़ा श्रमिकों की पहली हड़ताल का नेतृत्व करने का दावा किया। अपने तत्कालीन दैनिक प्रकाशन (1920) प्रताप में रायबरेली के किसानों के लिए उनके समर्थन ने उन्हें दो साल के कठोर कारावास की सजा दिलाई। फिर 1922 में शंकर को फतेहगढ़ में प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में एक देशद्रोही भाषण के लिए जेल की सजा सुनाई गई थी।

उनके कई लिखित कार्यों में से दो उद्धरण लोगों द्वारा व्यापक रूप से स्वागत किया जाता है। पहला 11 जनवरी, 1915 को लिखा गया था जिसमें कहा गया था कि "... लोकतांत्रिक शासन वास्तव में जनमत का नियम है।"[10] दूसरा उसी वर्ष 31 मई को लिखा गया था जिसमें कहा गया था, "बहुत तिरस्कृत किसान हमारे सच्चे अन्नदाता हैं।" उनके योगदान के सम्मान में, भारत के राष्ट्रपति 1989 से हर साल प्रसिद्ध पत्रकारों को गणेश शंकर विद्यार्थी पुरस्कार से सम्मानित करते हैं।

निष्कर्ष

गणेश शंकर विद्यार्थी चम्पारण के किसानों के हित की बात को देखते हुए, साथ ही भारत में विदेशियों द्वारा यहां के किसानों पर हो रहे अत्याचार के विरोध में उठ खड़े हुए। उन्होंने इसके लिए एक साहसिक एवं सार्थक प्रयास करते हुए महात्मा गांधी का सहयोग लिया। अपनी लेखनी द्वारा शंकर ने भारतीयों पर जगह - जगह हो रहे अत्याचारों को उजागर किया। जहां तक संभव हो सका, उन्होंने उन स्वतंत्रता आंदोलनों में भाग लेकर अंग्रेजों के दमन का विरोध किया। उन्हीं के सफल प्रयास से चम्पारण में महात्मा गांधी के सहयोग से सत्याग्रह का प्रयोग सफल साबित हुआ और अंग्रेजी सरकार को अपने आदेश को वापस लेना पड़ा।

संदर्भ

1. गुप्तु, नंदिनी (2001), अर्ली ट्वेंटीथ सेंचुरी इंडिया में शहरी गरीबों की राजनीति, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पीपी. 90-376.
2. पांडे, ज्ञानेंद्र (2002), उत्तर प्रदेश में कांग्रेस का दबदबा। गान प्रेस. पीपी. 37-77.
3. साइमन, शेरी; सेंट पियरे, पॉल (2000), शर्तें बदलना: उत्तर औपनिवेशिक युग में अनुवाद, ओटावा प्रेस विश्वविद्यालय, पृ. 89.
4. जम्प अप टू:ए बी ब्रास, पॉल आर. (1965), भारतीय राज्य में गुटीय राजनीति: उत्तर प्रदेश में कांग्रेस पार्टी, कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय प्रेस, पीपी. 169-196।
5. गोल्ड, विलियम (15 अप्रैल 2004), हिंदू राष्ट्रवाद और देर से औपनिवेशिक भारत में राजनीति की भाषा, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पीपी 61-100।
6. नीरज शुक्ला, गणेश शंकर विद्यार्थी सामाजिक चेतना के सारथी, लोकवाणी प्रकाशन दिल्ली, पृ. 25.
7. बख्शी, एस.आर. (2001), प्रारंभिक आर्यों से स्वराज तक, सरूप एंड संस. पीपी. 302-304।
8. मैसी, रेजिनाल्ड (2014), शहीद भगत सिंह और भूले-बिसरे भारतीय शहीद, अभिनव प्रकाशन, पृ. 177.
9. सिंह राणा, भवन (2005), चंद्रशेखर आजाद (भारत के एक अमर क्रांतिकारी), डायमंड पॉकेट बुक्स, पीपी. 53-57
10. कोठारी, रीटा (1998), आधुनिक गुजराती कविता: एक चयन, साहित्य अकादमी, पृ. 48.
11. वही, पृ. 49

तन्त्री वाद्यों की आकृति एवं रूप

सुरेन्द्र कुमार

पीएच.डी. शोधार्थी, संगीत एवं नृत्य विभाग, कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र

प्रो० (डॉ०) आरती श्योकन्द

शोध निर्देशिका, विभागाध्यक्ष, संगीत एवं नृत्य विभाग, कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र

तन्त्री वाद्यों की आकृति एवम् रूप

तन्त्री वाद्यों की बनावट की बात करें तो इसमें उनकी आकृति एवम् रूप का अपना विशेष महत्व रहता है। तन्त्री वाद्यों में वीणा वाद्य का प्राचीन काल से ही वर्णन मिलता है। प्राचीन काल से ही अनेक प्रकार की वीणाओं का वर्णन मिलता है। जिनका अध्ययन करने से पता चलता है कि सितार, सुरबहार, सुरसिंगार, रबाब, सारंगी, सरोद, वॉयलिन, संतूर, तानपुरा, स्वरमंडल, इसराज एवम् दिलरुबा जैसे आधुनिक प्रचलित तन्त्री वाद्यों का जन्म कहीं ना कहीं प्राचीन कालीन वीणाओं से ही मिलता है। प्राचीन काल से ही मध्य काल एवम् मध्य काल से आधुनिक काल तक इन सभी तन्त्री वाद्यों की आकृति एवम् रूप अथवा बनावट में निरंतर समयानुसार परिवर्तन होते रहे और इनकी आकृति, रूप बदलते रहे।

आधुनिक तन्त्री वाद्यों की बनावट इस प्रकार है।

तन्त्री वाद्य रूद्रवीणा की बनावट

तन्त्री वाद्य रूद्रवीणा की ड़ाण्ड़, बाँस या आबनूस की लकड़ी की होती है किंतु आधुनिक समय में बाँस की जगह लकड़ी का भी प्रयोग देखने को मिलता है। रूद्रवीणा की लम्बाई लगभग तीन फीट एवम् छः इंच होती है एवम् इसकी चौड़ाई दो से ढाई इंच होती है। तुम्बों का व्यास चौदह इंच का होता है। दोनों तुम्बों के बीच की लम्बाई दो फीट दस इंच से लेकर तीन फीट के मध्य तक होती है।

रूद्रवीणा में अठ्ठारह पर्दे होते हैं थे। इस वीणा में पके बाँस की छाल की या ओरा की जवारी लगानी चाहिए।

विचित्र्र वीणा की आकृति एवम् रूप

प्राचीन काल में ''ब्रह्म वीणा, घोषिका, घोषकर्ता, एक तंत्री वीणा इत्यादि थी। उसी को आज 'विचित्र्र वीणा' अथवा 'बट्टा बीन' कहा जाता है।

विचित्र्र वीणा की ड़ाण्ड़ः

इस वीणा की ड़ाण्ड़ लगभग पचास इंच लम्बी, चार से पाँच इंच चौड़ी और ढाई इंच अंदर से खोखली होती है। इसकी ड़ाण्ड़ के तीन भाग होते है। पहले भाग में छः बड़ी खूँटियों की व्यवस्था होती हैं।यह ड़ाण्ड़ का दूसरा भाग है जिसकी लम्बाई लगभग 36 इंच होती है। इसकी तीन चिकारी की खूँटियाँ दक्षिण भाग में और दो चिकारी की खूँटियाँ में पार्श्व में होती है। इसमें तरब की तारों की संख्या ग्यारह से पन्द्रह होती है जोकि सितार वाद्य की तरह ही होती है।

ड़ाण्ड़ का तीसरा मुख्य भाग ड़ाण्ड़ के ऊपर की पट्टी है, जिसे ड़ाण्ड़ को खोखला करके ड़ाण्ड के साथ जोड़ दिया जाता है।

1. विचित्र्र वीणा का तुम्बा
2. तारगहन
3. तार
4. बट्टा एवम् मिजराब

तन्त्री वाद्य सुरबहार की बनावट

सुरबहार वाद्य का निर्माण टीक वुड, तुन, देवदार या चीड़ की लकड़ी से किया जाता है। सुरबहार वाद्य का तुम्बा पीछे से चपटा रखा जाता है।

सुरबहार में वह तुम्बा जिस पर घुड़च टिकी होती है, वह ड़ाण्ड़ से अलग नहीं किया जा सकता। इसमें घुड़च वाला तुम्बा चपटा होता है एवम् खूँटियों की ओर वाला तुम्बा अपेक्षाकृत छोटा होता है। अगर सुरबहार को सामने की ओर खड़ा किया जाए तो देखने में दाएं हाथ की ओर बाज का तार होगा। सुरबहार में चिकारी की सभी तार एक तरफ ही होती है। सुरबहार में ग्यारह तरह की तारें होती है। सुरबहार में तारें मोटी होने के कारण एवम् इसकी ड़ाण्ड़ चोड़ी होने के कारण इसकी ध्वनि गंभीर होती है एवम् ड़ाण्ड़ चौड़ी होने के कारण मीण्ड़ बजाने के लिए तार को काफी हद तक खींचा जा सकता है।

तन्त्री वाद्य रबाब आकृति एवम् बनावट

तन्त्री वाद्य रबाब का निर्माण शाल, टीक, तुन एवम् देवदार की लकड़ी से किया जाता है। इस वाद्य का आकार रूद्रवीणा जैसे वाद्य के समान सरल नहीं होता। इस वाद्य के निर्माण के लिए एक ही लकड़ी को अंदर से खोखला करके उसमें तुम्बा और ड़ाण्ड़ बनाते है। तुम्बे की तरफ से एक यह वाद्य चौड़ा होता है एवम् खूँटियों की ओर जाते हुए इसकी चौड़ाई कम हो जाती है और पतली हो जाती है। तुम्बे की परिधि एक फीट के लगभग होती है। तुम्बे के ऊपर भेड़ अथवा गाय की पतली खाल से मढा जाता है। जिसे 'मान्द' कहते है। इस वाद्य में चिकारी की तार नहीं होती। तारों को बाएँ हाथ से दबाया जाता है जिसे 'स्थान' कहा जाता है। इस वाद्य में दो से अढाई सप्तक के स्वरों को बजाया जा सकता है।

तन्त्री वाद्य सितार की बनावट

सितार वाद्य दो प्रकार के माने जाते हैं।।

1. सादा सितार
2. तरबदार सितार

सितार वाद्य के अंग:

1. सितार की डाण्ड
2. तबली
3. तुम्बा
4. गुल्लू
5. खूँटियाँ
6. घुड़च (ब्रिज)
7. पर्दे
8. तार

तन्त्री वाद्य सरोद की आकृति एवम् रूप

सरोद वाद्य का समस्त ढाँचा मुख्य खूँटियों को छोड़कर एक लकड़ी से बनाया जाता है। सरोद के निर्माण के लिए सांगवान की लकडी को उपयुक्त माना जाता है, इसी लकड़ी से ही इस वाद्य का निर्माण किया जाता है। इस वाद्य को बनावट के आधार पर तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1. ढाँचे का ऊपरी भाग
2. सरोद के ढाँचे का मध्य भाग
3. जवा

तन्त्री वाद्य वॉयलिन (बेला) की आकृति एवम् बनावट

वॉयलिन अथवा बेला एक ही लकड़ी का बना होता है। वॉयलिन के ऊपर और नीचे दो अलग-अलग भाग होते हैं।

वॉयलिन के पैरों के नीचे एक काली लकड़ी का टुकड़ा लगाया जाता है जिसे 'फिंगरबोर्ड' कहा जाता है।

1. टेलपीस
2. साउंड होल (Sound Hole)
3. गज
4. तार

तन्त्री वाद्य सारंगी की बनावट

सारंगी को एक लकड़ी के टुकड़े को खोखला करके बनाया जाता है तथा इसके निचले भाग पर बकरी की खाल के चमड़े को मढ़ा जाता है।

सारंगी में 35 खूँटियाँ होती हैं।, जिनमें ग्यारह खूँटियाँ सामने होती है। एवम् 24 खूँटियाँ दक्षिण भाग में होती हैं। इन खूँटियों में कुछ तार पीतल के तथा कुछ लोहे की तार होती हैं।

सारंगी के अंगो का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है:-

1. छाती
2. मगज
3. आड़

4. ब्रिज
5. तार

तन्त्री वाद्य इसराज की आकृति एवम् रूप

इसराज वाद्य की ड़ाण्ड की आकृति एवम् बनावट सितार के समान ही प्रतीत होती है। ड़ाण्ड़ के नीचे वाले भाग पर खाल मढ़कर तबली बनाई जाती है। इसमें चार मुख्य तारों के अतिरिक्त पन्द्रह तरब की तारें होती है एवम् इसमें 19 पर्दों की व्यवस्था होती हैं। इस वाद्य को गज की सहायता से बजाया जाता है, जिसमें घोड़े की पूँछ के बाल लगे होते है।

दिलरुबा की बनावट

इस वाद्य में मुख्य चार तार होती है एवम् पाँच तरब की तारें होती हैं। इन तारों की व्यवस्था भी मुख्य तारों के साथ ही की होती है। तरब की तारों को रागानुसार मिलाते है। दिलरुबा में 19 पर्दों की व्यवस्था होती है जिन्हें सरकाया जा सकता है।

दिलरुबा वाद्य का घुड़च इसराज की अपेक्षाकृत बड़ा होता है। बाकी सभी इसराज की भाँति समान होते है। इस वाद्य की ध्वनि इसराज की तुलना में गंभीर और अधिक गूँज वाली होती है।

तन्त्री वाद्य संतूर की बनावट

संतूर वाद्य का आकार विशेष चौखट्टी पेटी के समानांतर होता है। इसकी लम्बाई सवा दो फीट होती है। मंद्र सप्तक और तार सप्तक की ओर चौड़ाई क्रमशः दो फीट और एक फीट होती है। संतूर के ढाँचे की ऊँचाई लगभग तीन से चार इंच रखते है। वादक की दाहिनी ओर लोहे की कीलनुमा खूँटियों का प्रयोग किया जाता है। इसके बाँईं ओर एक पट्टी में एक तार की कुंडली बनाकर अटका देते है। ऊपर की ओर वाली लकड़ी में दोनों तरह ब्रिज लगाए जाते हैं।, जो कि शतरंज की 'पैदल' के समान दिखता है।

संतूर वाद्य में तारों की संख्या 100 होती है। इसमें चार-चार तारें एक-एक घुड़च पर टिकी होती है।

तन्त्री वाद्य तानपुरे की बनावट

तानपुरा वाद्य उळार भारतीय एवम् दक्षिण भारतीय शास्त्रीय संगीत दोनों में ही महत्वपूर्ण वाद्य यंत्र है। उळार भारत में तुम्बे को ड़ाण्ड़ के साथ जोड़ा जाता है लेकिन दक्षिण भारत में यह एक ही लकड़ी का होता है। इस वाद्य की लकड़ी तुन की होती है और तुम्बा लौकी का होता है। तुम्बा एवम् ड़ाण्ड दोनों अंदर से खोखले होते है। इसका ब्रिज साँबर सींग, अब्रुस और खेर की लकड़ी का बना होता है। जो कि चार इंच लम्बा एवम् दो इंच चौड़ा होता है। इसकी ऊँचाई डेढ़ से दो इंच होती है। खूँटियों के लिए अब्रुस, खेर और शीशम के अतिरिक्त अखरोट की लकड़ी का प्रयोग करते है। तानपुरे का तारगहन साँबर के सींग का बना होता है। इसमें चार तारों का प्रयोग किया जाता है जो कि अलग-अलग धातु के बने होते हैं।

तानपुरा वाद्य के मुख्य रूप से छः अंग होते हैं

1. तुम्बा
2. तबली
3. घुड़च (ब्रिज)
4. कील अथवा लंगोट
5. मनका
6. धागा

तन्त्री वाद्य स्वरमंडल की आकृति एवम् रूप

स्वर मंडल वाद्य पहले तीन फीट लम्बा एवम् डेढ़ फीट चौड़ा होता था। इसके अतिरिक्त स्वरमंडल सात इंच ऊँचा भी होता था। आजकल गायक इसका प्रयोग गोद में रखकर करते है। इस वजह से इसका आकार छोटा हो गया है। आज के समय में स्वरमंडल अलग-अलग आकार में देखने को मिलता है।

तन्त्री वाद्य रूद्रवीणा का स्वरूप एवम् पैमाना

रूद्रवीणा की डाण्ड एक बाँस अथवा आबनूस की उस लकड़ी की होती है जो कि अंदर से खोखली होती है। समय परिवर्तन के साथ आधुनिक काल में इस वाद्य में बाँस की जगह लकड़ी का प्रयोग भी रूद्रवीणा की ड़ाण्ड के निर्माण के लिए होता है।

ऊपर वाले भाग और मेरू के बीच में पाँच खूँटियाँ लगाई जाती हैं। चार खूँटियों में मुख्य तारों की एवम् एक खूँटी में पार्श्व की तार की व्यवस्था होती है। इसके अतिरिक्त अन्य दो तारें चिकारी के लिए मेरू से कुछ-कुछ दूरी पर दो अन्य खूँटिया स्थापित की जाती हैं।

विचित्र्र वीणा

विचित्र्र वीणा और रूद्रवीणा को देखने में सामान्यतः थोड़ा ही अंतर मालूम पड़ता है। लगता है कि रूद्रवीणा से पर्दे निकाल दिए गए हो। बाकी सभी कुछ समान लगता है लेकिन वास्तविकता में दोनों में काफी अंतर है

विचित्र्र वीणा के छः प्रमुख अंग है

1. डाण्ड
2. तुम्बा
3. तारगहन
4. तार
5. बट्टा
6. मिजराब

सितार वाद्य का निर्माण स्वरूप एवम् पैमाना

1.	डाण्ड	2.	तुम्बा	3.	तबली
4.	गुल्लू	5.	कील	6.	तारगहन
7.	अटी	8.	घुड़च अथवा ब्रिज	9.	पर्दे
10.	तार	11.	तरब की तार	12.	खूँटियाँ
13.	मनका	14.	मिजराब		

लकड़ी का चयन

सजावट

रबाब की आकृति पैमाना

यह वाद्य टीक, तुन या देवदार की लकड़ी के एक ही टुकड़े से बना होता था। यह अंदर से बिल्कुल खोखला होता है। इसकी लम्बाई तीन फीट से साढ़े तीन फीट तक होती है। इसका अनु नादक गोलाकार का एवम् लगभग बारह इंच के घेरे का होता है। इसके ऊपर बकरी की खाल चढ़ाई जाती है। इसकी डाण्ड लगभग एक से डेढ़ फीट लम्बी होती है और यह खूँटियों की ओर जाते हुए संकरा हो जाता है। इसमें खूँटियों की संख्या छः है।

सरोद वाद्य की आकृति एवम् पैमाना

इसकी लम्बाई 54 इंच, मोटाई आठ इंच एवम् चौड़ाई चौदह इंच होती है।

1. चमड़ा
2. डाण्ड
3. खूँटियाँ
4. सरोद का माथा
5. तुम्बा
6. तार
7. जवा

सारंगी वाद्य की आकृति एवम् पैमाना

सारंगी औसतन दो से ढाई फुट और चौड़ाई छः इंच, मोटाई 4.5 इंच होती है। यह दो किलोग्राम वजन की होती है।

तन्त्री वाद्य इजराज की आकृति एवम् पैमाना

इसराज के दो मुख्य भाग हैं - डाण्ड और कुंडी

1.	कुंडी	2.	डाण्ड	3.	खूँटियाँ
4.	ब्रिज	5.	पर्दे	6.	सजावट
7.	गज	8.	डाण्ड	9.	खूँटियाँ
10.	तारगहन	11.	तार	12.	ब्रिज
13.	सूत				

तंत्री वाद्य के निर्माता एवं निर्माण स्थान

संगीत कलाकारों की भाँति तंत्री वाद्य निर्माताओं का भी संगीत कला को सुरक्षित रखने और इसके संवर्धन करने में महत्वपूर्ण स्थान एवं योगदान रहा है। पश्चिम बंगाल (कोलकाता), दिल्ली, उत्तर प्रदेश (बनारस) एवं महाराष्ट्र (मिरज) अथवा अन्य कई प्रमुख केंद्र हैं, जहाँ तंत्री वाद्य निर्माता रहते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के तन्त्री वाद्यों में परिवर्तन एवं प्रवृत्तियाँ, डॉ. योगिता शर्मा
- सितार मार्ग, श्रीपद बन्दोपाधाय
- भारत का संगीत-सिद्धान्त, आचार्य कैलाश चन्द्रदेव, बृहस्पति
- भारतीय संगीत का इतिहास, डॉ. शरतचन्द्र श्रीधर पराजपे
- भारतीय संगीत के तन्त्री वाद्य, डॉ प्रकाश महाडिघ्क
- भारतीय संगीत वाद्य, डॉ. लालमणी मिश्र
- भारतीय तन्त्र वाद्यों की उत्पत्ति एवं विकास, डॉ. रेखा सेठ
- उत्तर भारतीय संगीत में तन्त्र वाद्यों को स्थान एवं उपयोगिता, डॉ. संगीता सिंह
- उत्तर भारतीय तन्त्र वाद्य एवं वाद्य शैली का विकास, डॉ. विभा चतुर्वेदी
- Classical musical instruments, Dr. Suneera Kasliwal
- Musical Instruments of India, S. Bandoupadhyay

बी. एड. प्रशिक्षार्थियों का प्रशिक्षण के प्रति शैक्षिक अभिवृत्ति का अध्ययन

वैशाली प्रकाश ग्वारले

प्राची अनर्थ, पी. एच. डी. शोधार्थी, श्री. रावतपुरा सरकार विश्वविद्यालय, रायपुर

प्रस्तुत अध्ययन शासकीय महाविद्यालय एवं अशासकीय महाविद्यालय में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे सत्र 2019-2020 के बी. एड. प्रशिक्षार्थियों के प्रशिक्षण के प्रति शैक्षिक अभिवृत्ति से संबंधित है। अध्ययन हेतु 100 विद्यार्थियों (50 विद्यार्थी शासकीय महाविद्यालय से एवं 50 विद्यार्थी अशासकीय महाविद्यालय से) का चयन किया गया है। आँकड़ों के संकलन हेतु स्वनिर्मित प्रशिक्षार्थी अभिवृत्ति मापनी का निर्माण किया गया है। परिणाम में पाया गया कि शासकीय महाविद्यालय एवं अशासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों की शैक्षिक अभिवृत्ति में सार्थक अंतर है।

प्रस्तावना

आज के आधुनिक भूमंडलीय युग में किसी भी राष्ट्र के लिए उसके भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का अत्यंत महत्त्व है। वस्तुत: भौतिक एवं मानवीय संसाधन ही किसी राष्ट्र को अग्रणी राष्ट्रों की कतार में खड़ा होने के लिए सक्षम बनाते हैं। नि:संदेह किसी भी राष्ट्र अथवा समाज के विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन मानव है, तथा मानव जाति के विकास का आधार शिक्षा प्रणाली ही है। प्रत्येक मनुष्य के अंदर कुछ जन्मजात शक्तियाँ निहित होती हैं तथा इन शक्तियों के प्रस्फुटन से ही व्यक्ति का विकास होता है। यदि इन शक्तियों को प्रस्फुटित होने के पर्याप्त अवसर नहीं प्राप्त होते हैं तो मानव का विकास अधूरा रह जाता है। विकास के आधुनिक युग में राष्ट्र की बौद्धिक सम्पदा को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। नि:संदेह शिक्षा प्रणाली मानव की योग्यताओं के अधिकतम विकास की सर्वाधिक सरल, व्यवस्थित एवं प्रभावी विधि है। शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य को मानव बनाना तथा जीवन को प्रगतिशील, संस्कारित एवं सभ्य बनाना है। यह व्यक्ति तथा समाज के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। शिक्षा द्वारा ही मनुष्य अपनी विचार शक्ति एवं तर्क शक्ति, समस्या समाधन एवं बौ्किता, प्रतिभा और रुझान, धनात्मक भावुकता तथा कुशलता, अच्छे मूल्यों तथा रुचियों को विकसित करता है। इसी के द्वारा ही वह मानवीय, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक प्राणी में परिवर्तित हो जाता है। मनुष्य प्रतिक्षण एवं प्रतिदिन कुछ न कुछ सीखता है। इसका समस्त जीवन ही शैक्षिक प्रक्रिया के अधीन है। अत: शिक्षा एक निरंतर तथा गतिशील प्रक्रिया है, इसका संबंध सदा विकसित होने वाले मानव तथा समाज के साथ है। यद्यपि व्यक्ति समाज के विभिन्न उपादानों एवं अभिकरणों से सीखता है तथापि मानव मात्रा को शिक्षित करने का दायित्व अध्यापक वर्ग पर ही है। विद्यालय को समाज का लघु रूप कहा जाता है। विद्यालय में अध्यापन कार्य करने वाला व्यक्ति भी समाज का ही एक अंग है, किंतु वह जन सामान्य से भिन्न इसलिए है कि उसने कुछ विशिष्ट विधियों, कौशलों एवं युक्तियों का ज्ञान अर्जित किया है। अध्यापन पेशे में आने वाले विद्यार्थी को विशेष प्रशिक्षण लेना पड़ता है। माध्यमिक स्तर के शिक्षक तैयार करने के लिए हमारे देश में विभिन्न अवधि के प्रशिक्षण कार्यक्रम चल रहे हैं, जैसे-चार वर्षीय बी.एड./बी.एस.सी. बी.एड कार्यक्रम (जो एन.सी.ई.आर.टी. के क्षेत्रीय शिक्षा संस्थानों में चलाए जा रहे हैं।) परंतु अधिकतर शासकीय महाविद्यालयों व अशासकीय कॉलेजों द्वारा दो वर्ष की अवधि का बी.एड. कार्यक्रम चलाया जा रहा है। अन्य प्रशिक्षण कार्यक्रमों के साथ यह दो वर्षीय बी.एड. कार्यक्रम भी राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (National Council of Teacher Education) के निर्देशन में संचालित किया जाता है। परिषद ने कुछ मानकों का निर्धारण किया है, जिसके दायरे में विद्यार्थी को प्रशिक्षण लेना पड़ता है। विद्यार्थी इस प्रशिक्षण को प्राप्त करने के उपरांत अध्यापक बनकर समाज एवं राष्ट्र की सेवा करने की इच्छा रखते हैं। प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में प्रशिक्षण प्राप्त करके विद्यार्थी अध्यापन पेशे में आते हैं। इन प्रशिक्षुओं की प्रशिक्षण के प्रति क्या अभिवृत्ति है? वर्तमान अध्ययन में इसी बिंदु को सम्मिलित किया गया है तथा यह भी जानने का प्रयास किया गया है कि विद्यार्थी इस पेशे को प्राथमिकता के रूप में चयनित करते हैं या विकल्प के रूप में।

उद्देश्य

1. शासकीय महाविद्यालय एवं अशासकीय महाविद्यालय प्रशिक्षार्थियों के अभ्यास शिक्षण से पूर्व शैक्षिक अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
2. शासकीय महाविद्यालय एवं अशासकीय महाविद्यालय प्रशिक्षार्थियों के अभ्यास शिक्षण के पश्चात् शैक्षिक अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
3. शासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों के अभ्यास शिक्षण से पूर्व एवं अभ्यास शिक्षण के पश्चात् शैक्षिक अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
4. अशासकीय महाविद्यालय प्रशिक्षार्थियों के अभ्यास शिक्षण से पूर्व एवं अभ्यास शिक्षण के पश्चात् शैक्षिक अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

5. शासकीय महाविद्यालय एवं अशासकीय महाविद्यालय प्रशिक्षार्थियों के अभ्यास शिक्षण से पूर्व शिक्षण व्यवसाय के प्रति शैक्षिक अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

अध्ययन के उपकरण (Tool of study)-प्रस्तुत अध्ययन हेतु स्वनिर्मित प्रशिक्षार्थी अभिवृत्ति मापनी का प्रयोग किया गया है।

उपकरण की विश्वसनीयता एवं वैधता-उपर्युक्त उपकरण की विश्वसनीयता परीक्षण-पुर्नपरीक्षण विधि द्वारा ज्ञात की गयी है। प्रशिक्षार्थी अभिवृत्ति मापनी की विश्वसनीयता का मान 0.71 ज्ञात हुआ। उपकरण की रूप वैधता (Face Validity) संबंधित विषय विशेषज्ञों के परामर्श एवं समालोचना द्वारा निर्धरित की गयी।

आँकड़ों का संकलन-आँकड़ों के संकलन हेतु सन् 2019-20 में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे बी. एड. के 100 विद्यार्थियों (50 प्रशिक्षार्थी शासकीय महाविद्यालय एवं 50 प्रशिक्षार्थी अशासकीय महाविद्यालय) को सम्मिलित किया गया है।

सांख्यिकी विश्लेषण-आँकड़ों के विश्लेषण हेतु वर्णनात्मक सांख्यिकी का प्रयोग किया गया है, जिसमें माध्य (Mean) तथा मानक विचलन (Standerd Deviation) ज्ञात किया गया है। इसके अतिरिक्त दो चरों के मध्य अंतर का विश्लेषण करने हेतु टी-परीक्षण (T-test) का उपयोग किया गया है। चरों के मध्य अंतर की सार्थकता को 0.01 विश्वसनीयता स्तर पर परीक्षित किया गया है।

उद्देश्य 1-शासकीय महाविद्यालय एवं अशासकीय महाविद्यालय प्रशिक्षार्थियों के अभ्यास शिक्षण से पूर्व शैक्षिक अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

सारणी 1

शासकीय महाविद्यालय एवं अशासकीय महाविद्यालय प्रशिक्षार्थियों के अभ्यास शिक्षण से पूर्व शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य टी-परीक्षण का सारांश

प्रशिक्षार्थी	*N*	*Mean*	*Sd.*	*T-Value*
शासकीय महाविद्यालय	50	85.37	30.32	3.67*
अशासकीय महाविद्यालय	50	71.47	8.92	

*0.01 स्तर पर सार्थक

सारणी 1 से स्पष्ट है कि शासकीय महाविद्यालय एवं अशासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों में अभ्यास शिक्षण से पूर्व शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य 0. 01 स्तर पर सार्थक अंतर है। मध्यमानों के आधार पर शासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों (85.37) की अपेक्षा अशासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों (71.47) का मध्यमान कम है। अत: कहा जा सकता है कि शासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों अभ्यास शिक्षण से पूर्व अशासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों से अधिक जागरूक थे।

उद्देश्य 2-शासकीय महाविद्यालय एवं अशासकीय महाविद्यालय प्रशिक्षार्थियों के अभ्यास शिक्षण के पश्चात् शैक्षिक अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

सारणी 2

शासकीय महाविद्यालय एवं अशासकीय महाविद्यालय प्रशिक्षार्थियों के अभ्यास शिक्षण के पश्चात् शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य टी-परीक्षण का सारांश

प्रशिक्षार्थी	*N*	*Mean*	*Sd.*	*T-Value*
शासकीय महाविद्यालय	50	96.00	6.53	16.29*
अशासकीय महाविद्यालय	50	75.29	8.38	

*0.01 स्तर पर सार्थक

सारणी 2 से स्पष्ट है कि शासकीय महाविद्यालय एवं अशासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों में अभ्यास शिक्षण के पश्चात् शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य 0.01 स्तर पर सार्थक अंतर है। मध्यमानों के आधार पर शासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों (96.00) की अपेक्षा निजी महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों (75. 29) का मध्यमान कम है। अत: कहा जा सकता है कि शासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों ने अभ्यास शिक्षण के पश्चात निजी महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों से अधिक रुचि ली।

उद्देश्य 3-शासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों के अभ्यास शिक्षण से पूर्व एवं अभ्यास शिक्षण के पश्चात् शैक्षिक अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

सारणी 3

शासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों के अभ्यास शिक्षण से पूर्व एवं अभ्यास शिक्षण के पश्चात् शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य टी-परीक्षण का सारांश

प्रशिक्षार्थी	*N*	*Mean*	*Sd.*	*T-Value*
अभ्यास शिक्षण से पूर्व	50	85.37	30.32	3.05*
अभ्यास शिक्षण के पश्चात्	50	96.00	6.53	

*0.01 स्तर पर सार्थक

सारणी 3 से स्पष्ट है कि शासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों में अभ्यास शिक्षण के पूर्व एवं अभ्यास शिक्षण के पश्चात् शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य 0.01 स्तर पर सार्थक अंतर है। मध्यमानों के आधार पर शासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों का अभ्यास शिक्षण से पूर्व (85.37) की अपेक्षा अभ्यास शिक्षण के पश्चात (96.00) का मध्यमान अधिक है। अत: कहा जा सकता है कि शासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों में अभ्यास शिक्षण के पश्चात् शिक्षण कार्य के प्रति उनके दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन आया।

उद्देश्य 4-अशासकीय महाविद्यालय प्रशिक्षार्थियों के अभ्यास शिक्षण से पूर्व एवं अभ्यास शिक्षण के पश्चात् शैक्षिक अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

सारणी 4

अशासकीय महाविद्यालय प्रशिक्षार्थियों के अभ्यास शिक्षण से पूर्व एवं अभ्यास शिक्षण के पश्चात् शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य टी-परीक्षण का सारांश

प्रशिक्षार्थी	*N*	*Mean*	*Sd.*	*T-Value*
अभ्यास शिक्षण से पूर्व	50	71.47	8.92	2.60*
अभ्यास शिक्षण के पश्चात्	50	75.29	8.38	

*0.01 स्तर पर सार्थक

सारणी 4 से स्पष्ट है कि अशासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों में अभ्यास शिक्षण के पूर्व एवं अभ्यास शिक्षण के पश्चात् शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य 0.01 स्तर पर सार्थक अंतर है। मध्यमानों के आधार पर अशासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों का अभ्यास शिक्षण से पूर्व (71.47) की अपेक्षा अभ्यास शिक्षण के पश्चात् (75.29) का मध्यमान अधिक है। अत: कहा जा सकता है कि अशासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों में अभ्यास शिक्षण के पश्चात् शिक्षण कार्य के प्रति उनके दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन आया।

उद्देश्य 5-शासकीय महाविद्यालय एवं अशासकीय महाविद्यालय प्रशिक्षार्थियों के अभ्यास शिक्षण से पूर्व शिक्षण व्यवसाय के प्रति शैक्षिक अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

सारणी 5

शासकीय महाविद्यालय एवं अशासकीय महाविद्यालय प्रशिक्षार्थियों के अभ्यास शिक्षण से पूर्व शिक्षण व्यवसाय के प्रति शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य टी-परीक्षण का सारांश

प्रशिक्षार्थी	*N*	*Mean*	*Sd.*	*T-Value*
शासकीय महाविद्यालय अभ्यास शिक्षण से पूर्व	50	27.50	2.64	13.30*
निजी महाविद्यालय अभ्यास शिक्षण के पश्चात्	50	20.45	3.54	

*0.01 स्तर पर सार्थक

सारणी 5 से स्पष्ट है कि शासकीय महाविद्यालय एवं अशासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों में अभ्यास शिक्षण से पूर्व शिक्षण व्यवसाय के मध्य 0.

01 स्तर पर सार्थक अंतर है। मध्यमानों के आधार पर शासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों (27.50) की अपेक्षा अशासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों ;20.45द्ध का मध्यमान कम है। अत: कहा जा सकता है कि शासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों शिक्षण व्यवसाय के प्रति पहले से ही जागरूक थे।

परिणाम-

अध्ययन के परिणाम में पाया गया कि शासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों की शैक्षिक अभिवृत्ति का मध्यमान महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों से अधिक है। शासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों ने अभ्यास शिक्षण से पूर्व एवं अभ्यास शिक्षण के पश्चात् भी सभी विमाओं (शिक्षण व्यवसाय, शिक्षण कौशल, अनुशासन तथा पाठ्य सहगामी क्रियाओं) पर अशासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों से अच्छा प्रदर्शन किया। सभी विमाओं पर दोनों समूहों की शैक्षिक अभिवृत्ति के

मध्य 0.01 तथा 0.05 स्तर पर सार्थक अंतर भी पाया गया।

निष्कर्ष-

प्रस्तुत अध्ययन के परिणाम से स्पष्ट है कि शासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों की शैक्षिक अभिवृत्ति महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों से अच्छी है। जबकि दोनों अध्यापक बनने हेतु ही प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं और कल यही देश के भविष्य निर्माण में योगदान देंगे। अशासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों द्वारा शैक्षिक अभिवृत्ति के प्रति लचर प्रदर्शन सोचनीय है। इस विशाल देश में विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करने हेतु बहुतायत मात्रा में शिक्षकों की आवश्यकता होती है और ऐसे संस्थान कम हैं जो सुविधा संपन्न हों। जिन प्रशिक्षार्थियों ने अच्छा प्रदर्शन किया है वे शासकीय महाविद्यालय स्तर पर प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले हैं, जहाँ उचित शैक्षिक वातावरण एवं सभी विषयों के अध्यापक एवं विषय विशेषज्ञ उपलब्ध थे। प्रशिक्षार्थियों को बैठने की समुचित व्यवस्था, अच्छी लाइब्रेरी, समय पर विशिष्ट व्यक्तियों के व्याख्यान का आयोजन होता रहता है। शिक्षणेत्तर क्रियाकलाप (शैक्षिक भ्रमण, स्काउट-गाइड प्रशिक्षण, एस. यू. पी. डब्ल्यू. एवं शैक्षिक गोष्ठी जैसे कार्यक्रमों का आयोजन) संपन्न होते रहते हैं। वहीं अशासकीय महाविद्यालय स्तर पर इन सभी का आंशिक अथवा पूर्णतया अभाव पाया जाता है। निजी महाविद्यालय स्तर पर शिक्षक-प्रशिक्षकों से भी संबंधित समस्या है। अशासकीय संस्थाओं में प्रशिक्षकों के वेतन, अवकाश तथा अन्य सुविधाओं को लेकर टकराव होते रहते हैं। नौकरी की अनिश्चितता भी प्रशिक्षकों को पूर्ण मनोयोग से कार्य करने में बाधा उत्पन्न करती है।

शैक्षिक निहितार्थ-

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट है कि यदि अशासकीय महाविद्यालय स्तर पर भी शासकीय महाविद्यालय जैसी सुविधाएँ एवं अवसर उपलब्ध कराये जाएँ तो निजी महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों की भी शैक्षिक अभिवृत्ति में शिक्षण व्यवसाय के प्रति सकारात्मक परिवर्तन लाया जा सकता है तथा अनुशासन को बढ़ाया जा सकता है।

संदर्भ

- करलिंगर, एफ.एन. 2010.फाउंडेशन ऑफ बिहेवियरल रिसर्च. सुरजीत पब्लिकेशन, नयी दिल्ली
- गुप्ता, एस. पी. 2017. व्यवहारपरक विज्ञानों में सांख्यिकीय विधियाँ. शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद. 2018.
- आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन. शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- गुप्ता, एस. पी. और गुप्ता, ए. 2007. उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान. शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- मंगल, एस. के. 2010. शिक्षा मनोविज्ञान. फाई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली
- सिंह, ए. के. 2005. मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ. भारती भवन, पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, पटना. 2018.
- उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिकेशन, नयी दिल्ली

माध्यमिक स्तर पर दिव्यांग बालकों की सृजनात्मकता एवं समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन

प्रीति उपाध्याय

शोधार्थी, समाजशास्त्र

सृजनात्मकता एक अनिवार्य रूप से नवीन वस्तु का उत्पादन, कल्पना का रचनात्मक प्रयोग, जहां कठोर रूप से विचारों और प्रतिभाओं का एक नवीन संयोजन बनाया गया है, जो कि स्वयं प्रारम्भ किया गया है और अनुकरण नहीं किया गया है, विचारों का समन्वय जहां कि मानसिक उत्पादक एक योगमात्र नहीं है। सृजनात्मकता के कारकों का वर्णन साहचर्य और विचारात्मक प्रवाह मौलिकता, समायोजित एवं स्वाभाविक नमनीयता के रूप में की जाती है। व्यक्ति को जीवन कीचुनौतियों का अपनी योग्यताओं और वातावरण के सन्दर्भ में सामना करना होता है। कभी समझौता करना होता है तो कभी उसके साथ समन्वय बैठाना होता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया व उपलब्धि को समायोजन कहा जाता है। दिव्यांग बालकों में कहीं न कहीं सृजनात्मकता का रूप प्रतीत होता है, परन्तु क्यासृजनात्मकता एवं समायोजन का कोई संबंध है यही ज्ञात करने हेतु प्रस्तुत अध्ययन है।

प्रस्तावना:-

सृजनात्मकता:-सृजनात्मकता शब्द अंग्रेजी के क्रियेटिविटी के पर्याय के रुप में प्रयुक्त होता है। सके समानान्तर, उत्पादन शब्द का प्रयोग होता है। उत्पादकता में प्रोडक्टीविटी का बोध होता है। रघुवीर क्रियेटिव का अर्थ सृजन करना, उत्पन्न करना, सर्जित करना, बनाना कहा है। सृजन में विद्यमान में से नवीनता की मौलिकता की सृष्टि करनी पड़ती है। कामिलबुल्के ने क्रियेटिव शब्द के समानान्तरण अर्थ सृजनात्मकता, रचनात्मक, सर्जक बताये है। भारत सरकार के तकनीकी कोष ने क्रियेटिविटी को सृजनात्मकता, रचनात्मक, सर्जक बताये है। भारत सरकार के तकनीकी कोष ने क्रियेटिविटी को सृजनशीलता कहा है। रघुवीर ने क्रियेटिव के अर्थ सृजन, उत्पन्न करना, सर्जित करना, बनाना कहा है। सृजनात्मकता मानव के क्रियाकलापों एवं निष्पति के लिए आवश्यक है सृजनात्मकता का अर्थ वैज्ञानिक के कायाकल्प से नहीं है। यह किसी भी क्रिया में पायी जाती है। किसी कार्य या व्यवसाय में सृजनात्मकता के दर्शन होते है। समाज में कार्य करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के कार्य में सृजनात्मकता होती है। जैसे-नवीन सम्बन्धों को जानना और उन्हें अभिव्यक्त करना है। प्रत्येक कार्य में हम अपने पुराने सम्बन्धों में नये सम्बन्ध जोड़ते है, पुराने आकारों की स्थापना करते है और नवीन आकारों को निर्मित करते है सृजनात्मकता बनने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति अज्ञात व अपरिचित विचारों का स्वागत करे और आविष्कार करे। व्यक्ति के प्रत्येक कार्य में सृजनात्मकता कम व ज्यादा हो सकती है। इस प्रकार बालक को उपयुक्त वातावरण व सुविधाएं उपलब्ध हो तो उनमें भी सृजनात्मकता का विकास हो जाता है।

समायोजन:-समायोजन, तालमेल तथा अनुक ूलन को एक अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। जन्म लेते ही बालक को अपने भौतिक वातावरण के साथ अनुकूलन करना पड़ता है। जीवन के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक भी है। कुछ समय के उपरान्त बालक को अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण के साथ जीवनपर्यन्त समायोजन करना पड़ता है। आज विश्व को ''विश्व गाँव'' की संज्ञा दी गई है। सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण के साथ बालक हो या प्रौढ़ समायोजन करना आसान नहीं है। विश्व में तीव्र परिवर्तनों की लहर के साथ सन्तुष्ट होने का प्रयास प्रत्येक व्यक्ति कर रहा है। भौतिक, सामाजिक वातावरण से अलग एक और वातावरण है जो प्रत्येक व्यक्ति के अर्न्त:मन से स बन्धित है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी इच्छाएँ, रूचियाँ व संज्ञानात्मक योग्यताएँ विभिन्न प्रकार से भिन्न-भिन्न स्तरों पर समायोजन को प्रभावित करती है। व्यक्ति को जीवन की चुनौतियों का अपनी योग्यताओं और वातावरण के सन्दर्भ में सामना करना होता है। कभी समझौता करना होता है तो कभी उसके साथ समन्वय बैठाना होता है।

इस सम्पूर्ण प्रक्रिया व उपलब्धि को समायोजन कहा जाता है।

शोध सम्बंधित साहित्य का अध्ययन:-

स्टेने के अनुसार-जब किसी कार्य का परिणाम उत्तम हो जो किसी निश्चित समय पर अपनी स्वीकृत किया जावे, वह सृजनात्मक कार्य कहलाता है।

बैरन के अनुसार-पहले से विद्यमान तत्वों या पदार्थो को मिलाकर नया योग बनाने की क्षमता ही सृजनशील है।

वैकल तथा फोगन के अनुसार-सृजनात्मकता प्रासंगिकता के किसी मानदेय के अनुरूप अनेक अनोखे संज्ञात्मक सहचारियों का निर्माण करने या उन्हें उत्पन्न करने की योग्यता है।

गैस्टाल्टवाद के अनुसार-सृजनात्मक वह विचार है जो किसी में विस्तृत सांतव्य का निर्माण करता है।

जैम्स ड्रेवर के अनुसार-सृजनशील नई वस्तु का सृजन करने की योग्यता है व्यापक अर्थो में सृजनशील से तात्पर्य नये विचारों का संश्लेषण हो और जहाँ मानसिक कार्य केवल दूसरों के विचारों का योग न हो।

आइजनेक के अनुसार-सृजनात्मकता वह योग्यता है जिसके द्वारा नये संबंधों का ज्ञान होता है।

स्किनर के अनुसार-सृजनात्मकता वह व्यक्ति है जो खोज करता है, नये आविष्कार करता है, नई भविष्यवाणी करता है, जो नये क्षेत्रों में है तथा नये परिणाम निकालता है।

गिलफोर्ड के अनुसार-सृजनात्मकता, कभी सृजनात्मक योग्यता, कभी सृजनात्मक उत्पादन और कभी सृजनात्मक उत्पादकता को व्यक्त करती है।

बोंरिग व वेल्ड के अनुसार-समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्राणी अपनी आवश्यकताओं तथा आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में सन्तुलन रखता है।

कोलमैन के अनुसार-समायोजन अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने तथा खिंचावों से निपटने के लिए व्यक्ति द्वारा किये गये प्रयासों का परिणाम है।''

शैफर के अनुसार-समायोजन एक प्रक्रिया है जिसमें प्राणी अपनी आवश्यकताओं परिस्थितियों और उन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि को प्रभावित करता है।

समस्या का औचित्यः-

रायपुर शहर के शासकीय व अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत सामान्य बालकों एवं दिव्यांग बालकों की सृजनात्मकता एंव समायोजन में क्या अन्तर पाया जाता है माध्यमिक स्तर के कक्षा 10 के दिव्यांग बालकों की अध्ययन आदतों एंव समायोजन को ज्ञात करने हेतु शोधकर्ता के द्वारा प्रस्तुत शोधकार्य माध्यमिक स्तर की कक्षा नवमी एवं दसवीं का चयन किया गया है। सृजनात्मकता एवं समायोजन से संबंधित पृथक पृथक अनेकों अनुसंधान कार्य किये जा चुके है। परन्तु यह सभी चर एक साथ दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता एवं समायोजन को किस प्रकार प्रभावित करते है, इस संबंध में किये गये अध्ययनों का अभाव है। अतः दिव्यांग विद्यार्थियों की समायोजन का अध्ययन उनकी सृजनात्मकता के संदर्भ में करने की आवश्यकता को बल मिला है। किसी भी कार्य को करने से पहले उसका औचित्य ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है। कार्य व कारण एक दूसरे के पूरक होते है। शैक्षिक क्षैत्र में जब भी कोई अनुसंधान कार्य किया जाता है। तो उस अध्ययन की उपादेयता, महत्व, प्रकृति आदि का औचित्य स्पष्ट करना इसलिए आवश्यक होता है कि हम इसके द्वारा यह सिद्ध कर सके इस अनुसंधान के परिणाम व निष्कर्ष शैक्षिक जगत् को किस प्रकार प्रभावित करेंगें तथ इसके अतिरिक्त यह समस्या शैक्षिक समाज की उपादेयता सिद्ध करने में भी सहायक होती है। प्रस्तुत अध्ययन इस सैद्धान्तिक अवधारणा पर आधारित है कि विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों एवं समायोजन का उनपर निश्चित रुप से सार्थक प्रभाव पड़ता है। तथा यह उनके भविष्य को निर्धारित करनें में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है दिव्यांगावस्था मानव जीवन की एक महत्वपूर्ण दुखद अवस्था है। इस स्तर पर विद्यार्थी विभिन्न विषय लेकर शैक्षिक एवं व्यवसायिक क्षेत्रों में प्रवेश एवं प्रगति का आधार अध्ययन आदतों तथा समायोजन का पता लगाकर उसका संबंध ज्ञात करने हेतु इस विषय का चयन किया गया है।

शोध में प्रयुक्त तकनीकी शब्दों का परिभाषिकरणः-

1. दिव्यांगः-किसी व्यक्ति के लिए कोई गतिविधि को करने के सामान्य तरीके या क्षमता से कम हो, यह आंकलन प्रायः व्यक्ति के अपने स्तर से ही किया जाता है।
2. दिव्यांगताः-किसी व्यक्ति के कार्य करने की क्षमता के परिणामों की ओर इंगित करती है जैसे कि ऑखों की रेटीना की क्षति के कारण व्यक्ति उन कार्यों को नहीं कर पाएगा जिसमें दृष्टि की आवश्यकता पड़ती है।
3. बाधाः-जो उसे सामान्य कार्य करने से रोकती है या उसकी क्षमताओं को सीमित करती है।
4. हानि या क्षतिः-ICIDH के अनुसार हानि का अर्थ किसी भी मनोवैज्ञानिक, शारीरिक या शरीर संरचनात्मक कार्यो की क्षति या असामान्यता है।

दिव्यांगता के प्रकारः-

दिव्यांगता तीन प्रकार की होती है।

1. शारीरिक दिव्यांगता
2. मानसिक दिव्यांगता
3. दृष्टि-श्रृव्य दिव्यांगता

दिव्यांगता के विभिन्न प्रकार निम्न है-

1. लूले-लगड़ें, हथकटे
2. एक या इससे अधिक अंगों में लकवा

3. पॉवफिरा
4. मेरुदण्ड का वक्र
5. प्रमस्तिष्कीय पक्षाघात
6. विकृत नितम्ब
7. मेरुदण्डीय द्विशाखी
8. मांस पेशीय डायसट्रोफी

शोध के उद्देश्यः-

1. शासकीय विद्यालयों के दिव्यांग बालकों का सृजनात्मकता एवं समायोजन का अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाः-

1. रायपुर शहर में लिंग-भेद (बालक व बालिकाएँ) के आधार पर माध्यमिक स्तर के दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता एवं समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
2. रायपुर शहर में विद्यालय की प्रकृति (शासकीय व अशासकीय) के आधार पर माध्यमिक स्तर के दिव्यांग बालकों की सृजनात्मकता एवं समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

अध्ययन में प्रयुक्त शोध विधिः-प्रस्तावित शोध में शोधकर्ता द्वारा निम्नवर्ती उपकरणों का प्रयोग किया गया है। अध्ययन आदतों एवं समायोजन के मापन हेतु प्रयोग किये जाने वाले उपकरण निम्नलिखित हैः-

अध्ययन आदतों का उपकरणः-

डॉ. एस.पी. कुलश्रेष्ठ नेशनल सायकोलॉजिकल कॉरपोरेशन

यू.जी.-1 निर्मल हाईट्स, आगरा 282007 (भारत)

अध्ययन में प्रयुक्त न्यादर्शः-

प्रस्तावित शोध अध्ययन सर्वेक्षण विधि पर आधारित है जिसमें वर्णात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। अतः सम्पूर्ण रायपुर शहर के विद्यालयों में अध्ययनरत दिव्यांग बालक बालिकाओं को ही लिया गया है। न्यादर्श में रायपुर शहर के कक्षा नवमी एवं दसवीं में अध्ययनरत चयनित तहसीलों के दिव्यांग बालक बालिकाओं को सम्मिलित किया गया है। इन बालक बालिकाओं का चयन शासकीय एवं अशासकीय दोनों प्रकार के विद्यालयों में से किया गया है। शोध छात्र का प्रयास रहा है कि इस न्यादर्श में रायपुर शहर के सभी चयनित तहसीलों के शासकीय व अशासकीय विद्यालयों को सम्मिलित किया जा सकें।

शोध के चरः-

1. स्वतंत्र चरः-दिव्यांग बालक बालिकाएँ
2. आश्रित चरः-अध्ययन आदत, समायोजन।

शोध का परिसीमांकनः-

1. प्रस्तावित शोध अध्ययन रायपुर शहर तक ही सीमित है।
2. न्यादर्श में केवल माध्यमिक स्तर के कक्षा नवमी एवं दसवीं के दिव्यांग बालक-बालिकाओं को लिया गया है।
3. अध्ययन में रायपुर शहर के शासकीय व अशासकीय दोनों प्रकार के विद्यालय को लिया गया है।
4. उन विद्यालयों का ही चयन किया गया है जहॉ दिव्यांग विद्यार्थी उपलब्ध है।

सृजनात्मकताः-

सारणी संख्या-1

विद्यार्थी वर्ग	*N*	*M*	*SD*	*t -test*	*Significance Level*
शासकीय विद्यालय	100	16.28	2.29	0.583	सार्थक
निजी विद्यालय	100	18.80	2.73		

सार्थक स्तर = 0.05 सार्थक स्तर =0.01

प्रस्तुत सारणी 1 से प्राप्त ज प्राप्तांक 0.583 दोनों स्तरों पर 0.05 एवं 0.01 स्तर से सारणी के मान से कम है (क्थ्त्र198द्ध अत: यहा निष्कर्ष निकलता है कि शासकीय विद्यालयों एवं निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों में सृजनात्मकता में कोई सार्थक अंतर नहीं है। यहॉ परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। 15.0

समायोजनः-

सारणी संख्या-2

विद्यार्थी वर्ग	*N*	*M*	*SD*	*t -test*	*Significance Level*
शासकीय विद्यालय	100	32.91	6.01	5.63	सार्थक
निजी विद्यालय	100	6.85	6.23		
सार्थक स्तर = 0.05					सार्थक स्तर =0.01

प्रस्तुत सारणी 2 से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि ज मान 5.63 (क्थ्त्र198द्ध पर सार्थक अंतर 0.05 एवं 0.01 के सारणी के ज मान से बड़ा है। अत: यहॉ निष्कर्ष प्राप्त होता है कि शासकीय विद्यालयों एवं निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों के समायोजन क्षमता में कोई सार्थक अंतर नहीं है। अत: परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। (दोनों स्तर पर)

शोध का निष्कर्षः-

- रायपुर शहर के विभिन्न विद्यालयों (शासकीय/निजी) के दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में समानता नहीं पाई गई। माध्यमिक स्तर के दिव्यांग विद्यार्थी वस्तुओं के नये एवं असाधारण प्रयोग करने, नये सम्बन्धों का पता लगाने व वस्तुओं का मनोरंजक एवं विचित्र बनाने में अन्य विद्यार्थियों की तुलना में अधिक सृजनशील पाये गये।
- रायपुर शहर के विभिन्न विद्यालयों (शासकीय/निजी) के दिव्यांग विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में समानता नही पाई गई। माध्यमिक स्तर के दिव्यांग विद्यार्थी अन्य विद्यार्थियों की तुलना में अच्छी आदते पाई गई। जैसे-पुस्तके पढ घ्ने, अनुशासन में रहना, समय पर विद्यालय आना आदि।
- रायपुर शहर के विभिन्न विद्यालयों (शासकीय/निजी) के दिव्यांग विद्यार्थियों की समायोजन में समानता नहीं पाई गई। माध्यमिक स्तर के दिव्यांग विद्यार्थी हर प्रकार के क्रिया-कलाप एवं साथी विद्यार्थियों के साथ समायोजित होने की क्षमता पायी जाती है। शोधार्थी को यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि शासकीय विद्यालयों एवं निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों क समायोजन में अंतर है इसके लिए विद्यालय पर्यावरण, शिक्षक तथा विद्यालय के प्रकार स्वंय जिम्मेदार है।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः-

1. बेस्ट जे. डब्लयू, 1950, शिक्षा में शोध कार्य, नई दिल्ली, प्रिन्टाइस हॉल ऑफ इण्डिया प्रा0 लि0
2. बेस्ट जे. डब्लयू, 1963, शिक्षा में शोध कार्य, नई दिल्ली, प्रिन्टाइस हॉल ऑफ इण्डिया प्रा0 लि0 हरीनारायण पालीवाल
3. एकोफ आर. एल. 1953, सामाजिक शोध के प्रकारों, शिकागों, विश्वविद्यालय प्रेस
4. बी. शेखर 1989-92, राजस्थान में शिक्षा अनुसंधान, बिकानेर, शिक्षा विभाग,
5. बसन्त बहादुर सिंह 2013, शिक्षा शास्त्रे, आगरा, उपकार प्रकाशन
6. भार्गव उशा 1987, किशोर मनोविज्ञान, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
7. भटनागर आर. पी. 1955, शिक्षा में अनुसंधान एवं विश्लेषण, आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर
8. भटनागर, कुमार, प्रभूदयाल शर्मा, 2008, ''शिक्षक-शिक्षा में शिक्षण एवं नवाचार'', लाडनूं, जैन विश्व भारती संस्थान
9. दैनिक भास्कर (अप्रैल 2016) ''निश्क्त जनों को दिव्यांग कहेंगे''।
10. दैनिक नवज्योति (अप्रेल 2016) ''अब निश्क्त जनो को कहेंगे दिव्यांग जन''।
11. भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, वर्ष 21, अंक जनवरी-जून 2002
12. भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, वर्ष 23, अंक जुलाई-दिसम्बर 2004
13. http:// www.indiacensus2011.org/National-Reports/I
14. http:// www.Narcissi.org s
15. http:// www.icevi.org./Publication/Education/June-03/artical24 html
16. http:// www.raj.shiksha.govt.in
17. http:// www.educationnrianet.com
18. Buch M.B. 1972.78 Survey of Research in Education
19. Buch M.B. 1983.88 Survey of Research in Education
20. Estifence J.M. 1956 Educational Psychology the original nature of main New york.
21. Jain Gopal Lal 2003 Research Methology, Mathod Tools and Tecniques, Mangal Deep Publishing, Jaipur.

शेखर जोशी की कहानियों में पहाड़ी परिवेश और जीवन

डॉ० राम पाण्डेय

सहायक आचार्य, हिन्दी, लालबहादुर शास्त्री स्मारक पी.जी. कालेज, आनन्दनगर, महराजगंज

आजादी के बाद समाज में तमाम तरह के परिवर्तन आए। उन परिवर्तनों का साहित्य पर भी व्यापक असर पड़ा। हिंदी कहानी में तो युवा कहानीकारों की एक पूरी पीढ़ी सामने आयी जिसने समाज में घटित होने वाले परिवर्तनों को अपनी कहानियों में विषय बनाया। नयी कहानी ने उन विषयों से पाठकों को रू-ब-रू कराया जिससे वे अभी तक अनभिज्ञ थे। नयी कहानी आंदोलन के कहानीकारों ने जहॉ एक ओर निम्नवर्गीय आम आदमी की स्थिति को रेखांकित किया है वहीं दूसरी ओर स्त्री-पुरूष के सम्बन्धों को बड़ी बारीकी से व्यक्त किया है। प्रसिद्ध कहानी लेखिका नमिता सिंह कहतीं हैं कि-'' नयी कहानी के दौर में ये लोग केवल रचनाधर्मी ही नही थे बल्कि नयी कहानी की बदली हुई संवेदना, शिल्प और विषयों को अग्रसारित करते हुए उसे एक आंदोलन का रूप भी दे रहे थे।''[1] नयी कहानी आंदोलन के दौर मे शेखर जोशी एक मात्र ऐसे कहानीकार हैं जिन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से अलग पहचान बनायी। शेखर जोशी ने समाज के प्राय: सभी विषयों पर कहानियां लिखीं हैं। पहाड़ी जीवन और वहां के परिवेश को उन्होंने अपनी कहानियों में ज्यादा स्थान दिया है। हिन्दी कथा-क्षेत्र में पहाड़ी जीवन को अपनी कहानियों में स्थान देने वाले एक मात्र कथाकार कहे जा सकते हैं। ''शेखर जोशी हिन्दी के उन दुर्लभ कहानीकारों में हैं जो आजादी के बाद के भारतीय समाज, खासतौर पर पहाड़ी जन-जीवन को अपनी कथाओं के माध्यम से गहराई से स्पर्श किया है।''[2]

'कोसी का घटवार' शेखर जोशी की बहुत चर्चित कहानी है। इस कहानी में गुसॉई सिंह और लछमा के असफल प्रेम को व्यक्त किया गया है और दूसरे स्तर पर आधुनिकतावादी मुहावरे से लैस नयी कहानी की तर्ज पर 'अकेलेपन' और 'खालीपन' को को दर्शाया गया है। गुसॉई लछमा से प्रेम करता है और उससे विवाह करना चाहता है किन्तु लछमा के पिता इसकी इजाजत नहीं देते हैं। गुसॉई अपना दाखिला फौज में करा लेता है और जब वह रिटायर होकर आता है तो गांव में गेहूँ पीसने की चक्की लगाता हे। एक दिन लछमा उसकी आटा-चक्की पर गेहूँ पिसाने आती है तो गुसॉई के हृदय में उसके लिए संवेदनाएँ पुन: जाग जाती हैं। उसे विवाह के पहले लछमा की वह बात याद आ जाती है जिसमें उसने कहा था कि-''गंगानाथ ज्यू की कसम, जैसा तुम कहोगे मै वैसा ही करूंगी।''[3] वह विधवा होने के बाद अपने बच्चों के साथ अपना जीवन व्यतीत कर रही है और इसी कारण वह गुसॉई से कोई मदद नही लेना चाहती है। गुसॉई प्रेमवश उसके आंटे में थोड़ा सा आंटा और मिला देता है। कहानीकार कहता है कि-''लछमा उस ओर पीठ किए बैठी थी। उसने (गुसॉई) जल्दी-जल्दी अपने निजी आंटे की टिन से दो-ढ़ाई सेर के करीब आंटा निकालकर लछमा के आंटे में मिला दिया और संतोष की एक सांस लेकर हाथ झाड़ता हुआ बाहर आकर बांध की ओर देखने लगा।''[4] लछमा के जाने के बाद वह उसे उस कसम की याद दिलाता है। कहानी में दोनों के एकाकी जीवन को बड़ी सहजता के साथ रेखांकित किया गया है। अंत में भी दोनों के एकाकी जीवन को कहानीकार जोशी जी ने इन शब्दों में व्यक्त किया है-''घट के अंदर काठ की चिड़िया अब भी किट-किट की आवाज कर रही थी, चक्की का पाट खिस्सर वल रहा था और मयानी की पानी काटने की आवाज आ रही थी, और कहीं कोई स्वर नहीं, सब सूनसान निस्तब्ध।''[5]

इस प्रकार कहानी में ऑचलिक जीवन के वर्णन के साथ ही प्रेम के अधूरेपन को व्यक्त किया गया हे। लछमा का ऐसी स्थिति में देखने के बाद भी गुसॉई सामाजिक भय के चलते उससे अपने दिल की बात नहीं कह पाता, किन्तु झिझकते हुए इतना ही कहता है कि-''कभी चार पैसे जुड़ जायें तो गंगानाथ का जागर लगाकर भूल-चूक की माफी मॉग लेना। पूत-परिवार को देवी-देवता के कोप से बचा रहना चाहिए।''[6]

शेखर जोशी की कहानी 'बदबू' कारखाने में काम करने वाले लोगों के जीवन पर आधारित है। जब मास्टर इस कारखाने में काम करता है तो सभी मजदूरों की भांति उसे भी अपने हाथों से बदबू आती है। वह अपने हाथों को जब सूंघता है तो घासी को एक बात की याद आ जाती है और उसी बात के सर्मथन में वह मजदूरों से कहता है-''ये भाई भी अभी हाथ नाक पै ले जा-जा के सूंघ रहे थे तभी किस्सा याद आया। पहले पहल हम भी ऐसे ही सूँघा करते थे। पर अब तो ससुरा पता ही नही लगता। कितनी बार तो साबुन नहीं मिलता, ऐसे ही पोंछ-पांछ के खाने बैठ जाते हैं।''[7] कारखाने में काम करने वाले हर मजदूर को उस बदबू भरे माहौल में रहने की आदत सी पड़ गयी है और इसी कारण बदबू होने के बावजूद भी उन्हें उसका अहसास नही होता है। कारखाने में मजदूरो के साथ जो दुर्व्यवहार होता है उसे उन मजदूरो को अनायास ही सहना पड़ता है। क्योंकि विरोध करने पर उनका ताबादला या तो दूसरी जगह करा दिया जाता है या फिर नौकरी से निकाल दिया जाता है। पूँजीपति वर्ग का निम्नवर्ग के प्रति ऐसा दृष्टिकोण आज भी दिखाई पड़ता है। 'अल्बर्ट आइन्सटीन' ने कहा था कि-''दुनिया उन लोगों द्वारा नहीं नष्ट होगी जो बुराई करते हैं, ब्ल्कि उन लोगों द्वारा जा बिना कुछ किए उसे देखते रहते हैं।''[8]

'बदबू' कहानी ऐसे बदहाल मजदूरों के जीवन की वास्तविकता को उजागर करती है जो बिल्कुल सत्य है।'' आज के समय में 'बदबू' की प्रासंगिकता उनके सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति का परिणाम है। इस आधार पर देखें तो 'बदबू' अपने समय की धारा को भी अतिक्रमित करती है।''[9] शेखर जोशी ने इस कहानी

में मुख्यतया उन दलित मजदूरों के जीवन की वास्तविकता को इस कहानी में बड़ी ही बारीकी के साथ शब्दबद्ध किया है। कथाकार जोशी की यह कहानी पचासवें दसक के पश्चात आम आदमी की वास्तविकता को उजागर करती है।

शेखर जोशी की एक अत्यंत छोटी कहानी 'दाज्यू' में एक बच्चे की मासूमियत को बड़ी ही सुन्दरता के साथ अभिव्यक्त किया गया है। इसमें मानवीय संबंधों को झुठलाते हुए दिखाया गया है और साथ ही मध्यवर्गीय दंभ पर अत्यंत मार्मिकता के साथ व्यंग्य प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी में मदन आठ-दस साल का एक छोटा सा बालक है, जो पहाड़ी रहन-सहन के मध्य एक होटल में काम करता है। वहीं पर उसकी मुलाकात जगदीश बाबू से होती है जो कि एक शहर में अपने ओप को अकेला महसूस करते हैं। मदन भी उसी एकाकीपन से जूझ रहा रहा है किन्तु जगदीश से मिलने के बाद उसका यह एकाकीपन दो-चार दिन के लिए दूर हो जाता है और वह उन्हें दाज्यू कहने लगता है। जिससे दोनों के बीच अजनबीपन की खाई दूर हो जाती है। टेबल पर बैठते ही मदन का स्वर सुनाई देता ''दाज्यू, जैहिन्न.....। दाज्यू, आज तो बहुत ठंड है; दाज्यू...।''[10] मदन को जगदीश बाबू में दाज्यू अर्थात बड़े भाई की छाया दिखती है, किन्तु कुछ समय बाद जगदीश को मदन का दाज्यू कहना अच्छा नही लगता। एक दिन वह मदन पर रूखेपन के साथ चिल्लाकर कहता है-''चाय नहीं, लेकिन यह दाज्यू-दाज्यू क्या चिल्लाते रहते हो दिन-रात। किसी के प्रेस्टिज का ख्याल भी नही है तुम्हें।''[11] जगदीश अपने और मदन के अपनत्व को एक पल में भूलकर पुनः अपरिचित सा हो जाता है। मदन का रिश्तों पर से पूरी तरह विश्वास उठ जाता है। कहानीकार ने इस कहानी में एक ऐसे बालक के जीवन को दर्शाया है जो बचपन से ही अपनों से दूर परायों के बीच रह रहा है। इस छोटी सी उम्र में अपना पेट भरने के लिए होटल पर काम करता है। ''शेखर जोशी इस कहानी के माध्यम से महज एक बालक के दुख की कथा नही रच रहे हैं बल्कि वे मध्यवर्गीय दम्भ व उसकी अमानवीयता का तीव्र विरोध भी रच रहे हैं''।[12] इस प्रकार एक बालक की मनोदशा को दर्शाने वाली जोशी एक श्रेष्ठ कहानी है।

इस प्रकार शेखर जोशी ने अपनी कहानियों में आधुनिक समस्याओं को लेकर नये संदर्भों को चित्रित करने का प्रयास किया है। उन्होंने अपनी कहानियों को केवल पहाड़ी जीवन तक ही सीमित नही रखा अपितु प्रत्येक विषयों के बारे में गंभीरता से अध्ययन कर अपनी कहानियों मे प्रस्तुत किया है।

संदर्भः

1. सं0-सस्या, कथा-15, नमिता सिंह-नयी कहानी का दौर और मारकण्डेय (लेख), पृष्ठ-313
2. सं0- संतोष कुमार चतुर्वेदी, अनहद-4, वैभव सिंह-गांव, जाति और जनजीवन (लेख), पृष्ठ-198
3. शेखर जोशी-संकलित कहानियां, पृष्ठ-71
4. वही, पृष्ठ-79
5. वही, पृष्ठ-79
6. वही, पृष्ठ-79
7. वही, पृष्ठ-140
8. सं0-संतोष कुमार चतुर्वेदी, अनहद-4, नील रंजन सिंह-नयी कहानी आंदोलन और शेखर जोशी की कहानियां (लेख), पृष्ठ-276
9. वही, पृष्ठ-276
10. शेखर जोशी- संकलित कहानियां, पृष्ठ-53
11. वही, पृष्ठ-54
12. सं0-संतोष कुमार चतुर्वेदी, अनहद-4, कैलाश वनवासी-वाह उस्ताद, वाह! (लेख), पृष्ठ-155

महाकवि सूरदास का वात्सल्य-वर्णन

डॉ० अजायब सिंह

सह-आचार्य, हिन्दी-विभाग, मुकन्द लाल नेशनल कॉलेज, रादौर (यमुनानगर)

हिन्दी के किसी कवि ने ठीक ही कहा है-

सूर-सूर तुलसी शशि, उडगन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकाश।।

वस्तुतः सूरदास हिन्दी साहित्याकाश के सूर्य हैं जो सम्पूर्ण हिन्दी जगत् को आलोकित करता है। महाकवि सूरदास हिन्दी साहित्य के शिरोमणि हैं। उनका नाम मध्यकालीन युग से आज तक स्वर्ण अक्षरों में अमृतवाहिनी साहित्य गंगा में प्रवाहित होता चला आ रहा है और आने वाले युगों में भी जब तक सूर्य, चंद्र, आकाश, पृथ्वी रहेंगे तब तक सूरदास इस मृत्यु लोक में अमर रहेंगे। महाकवि सूरदास की रचनाओं में पाँच नाम मिलते हैं- सूर, सूरदास, सूरजदास, सूरज और सूर श्याम। डॉ. मुंशीराम शर्मा ने उक्त पाँच नामों को सूरदास का ही माना है।[1]

सूरदास के उक्त नामों में उनकी रचनाओं में 'सूर' और 'सूरदास'- इन दो नामों की सर्वाधिक आवृत्ति हुई है। सूरदास की जन्म-तिथि का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। पुष्टि सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार सूरदास जी श्री वल्लभाचार्य जी से आयु में दस दिन छोटे थे। आचार्य जी का जन्म संवत् 1535 की बैशाख कृष्णा दस उपरांत ग्यारह रविवार निश्चित है। इसलिए सूरदास की जन्मतिथि संवत् 1535 की शुक्ल पक्ष वार मंगलवार को हुई। हिन्दी के अधिकांश विद्वानों ने सूरदास का जन्म प्रायः संवत् 1540 माना है और सभी इतिहासकरों ने इसी को दोहराया है।[2] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी सूरदास का जन्म-काल संवत् 1540 स्वीकार किया है।[3] मिश्रबंधुओं ने भी इसे ही स्वीकार किया है।

सूरदास की जन्मभूमि के सम्बन्ध में अनेक मत प्रचलित हैं। सूरदास की जन्मभूमि के सम्बन्ध में निम्नलिखित स्थानों की चर्चा हुई है- गोपाचल (ग्वालियर), मथुरा प्रांत का कोई ग्राम, रुनकता (आगरा), सीही (वल्लभगढ़), सीही (आगरा) पारसौली आदि। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' श्री हरिराय कृत 'भाव प्रकाश' में सूरदास का जन्म स्थान दिल्ली के पास 'सीही' नामक ग्राम को स्वीकार किया गया है।[4] यहाँ पुष्टिमार्गीय हरिराय जी के मत को प्रस्तुत करना उचित होगा। यथा- ''दिल्ली के पास चार कोस उरे में एक सीही ग्राम है, जहाँ परीक्षित के बेटा जन्मेजय ने सर्प-यज्ञ किया था।[5] दीनदयालु गुप्त, सत्येन्द्र, द्वारकादास पारीख और प्रभुदयाल मित्तल, हरवंशलाल शर्मा प्रभृति विद्वानों ने 'सीही' ग्राम को ही जन्म-स्थान स्वीकार किया है। यह ग्राम वल्लभगढ़ (हरियाणा) के अन्तर्गत आता है।''

सूरदास के अंधत्व के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं। हरिराय ने 'भाव-प्रकाश' में सूर की जन्मांधता का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है - ''सो सूरदास को जन्म ही सों नेत्र नाहीं हैं।''[6]

प्राणनाथ ने भी सूर की जन्मांधता स्वीकार किया है-

बाहर नैन-विहीन सो, भीतर नैन विलास।
जिन्हें न जग कछु देखियो, लखि हरि रूप निहाल।।[7]
वस्तुतः सूरदास जन्मांध थे।

सूरदास के गोलोकवास के सम्बन्ध में भी विद्वान् एकमत नहीं हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सूरदास का देहावसान संवत् 1620 माना है। रामकुमार वर्मा सूर का देहावसान संवत् 1642 माना है। प्रभुदयाल मित्तल व दीनदयाल गुप्त दोनों विद्वान् सूर का निधनकाल संवत् 1640 मानते हैं। सूरदास के तीन प्रमुख ग्रंथ हैं- सूरसागर, सूर सारावली, साहित्य लहरी।

'वात्सल्य' से तात्पर्य

'वृहत् हिन्दी कोश' के अनुसार, 'वात्सल्य' के कई अर्थ हैं, जैसे 'प्रेम', स्नेह, संतान के प्रति माता-पिता का स्नेह, एक भाव। कुछ आचार्य 'वात्सल्य रस' को दसवाँ रस मानते हैं।[8]

'हिन्दी साहित्यकोश (भाग-एक)' के अनुसार, ''वात्सल्य शब्द 'वत्स' से व्युत्पन्न और पुत्रादिविषयक रति का पर्याय है। प्राचीन आचार्यों ने 'वात्सल्य रस' न लिखकर 'वत्सल रस' लिखा है और वात्सल्य को इसका स्थायी भाव माना है।[9]

आचार्य विश्वनाथ ने वात्सल्य का लक्षण देते हुए कहा है- ''स्फुटं चमत्कारितया वात्सलं च रसं विदुः। स्थायी वत्सलास्नेहः पुत्रालम्बनं मतम्'' अर्थात् प्रकट चमत्कार होने के कारण वत्सल को भी रस माना है। वात्सल्य स्नेह इसका स्थायी भाव होता है तथा पुत्रादि आलम्बन। बाल-सुलभ चेष्टाओं के साथ-साथ उसकी विद्या, शौर्य, दया आदि विशेषताएँ उद्दीपन हैं। आलिंगन, अंग स्पर्श, शिर का चूमना, देखना, रोमांच, आनंदाश्रु आदि अनुभाव हैं। अनिष्ट की आशंका, हर्ष, गर्व आदि संचारी भाव माने जाते हैं।[10]

आचार्य भोजराज के अनुसार, रसराज सिद्ध करने के प्रसंग में अन्य रसों की गणना करते हुए उनकी संख्या 'वत्सल रस' को मिलाकर दस मानी जा सकती है।[11] इससे ज्ञात होता है कि उनके समय तक नौ रसों के समकक्ष वत्सल को भी मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। अभिनव गुप्त के मतानुसार वात्सल्य भाव मात्र है और उसकी रस रूप में स्वतंत्र सत्ता नहीं मानी जानी चाहिए।[12] आचार्य मम्मट के अनुसार- ''जिस रस का स्थायी भाव स्नेह हो उसकी प्रेयांस कहते हैं और इसी का नाम वात्सल्य है।''[13]

सूरदास द्वारा इस वात्सल्य भाव का इतना विस्तार दिया गया है कि 'सूरसागर' को दृष्टि में रखते हुए वात्सल्य को रस न मानना विडम्बना-सा प्रतीत होता है। 'हरिऔध' ने मूलत: इसी आधार पर वात्सल्य को रस सिद्ध किया है। कृष्ण लीला के अन्तर्गत सूर का वात्सल्य वर्णन रसत्व प्राप्ति के लिए अपेक्षित सभी अंगोपांगों को अपने में समाविष्ट किये हैं। 'सूरसागर' में नंद यशोदा तथा अन्य वयस्क गोपियों का बाल कृष्ण के प्रति प्रेम, आकर्षण, खीझ, व्यंग्य, उपालंभ आदि सब कुछ वात्सल्य रस की ही सामग्री है। कृष्ण का सौन्दर्य वर्णन तथा बाल-क्रीड़ाओं का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण भी इसी के अन्तर्गत आता है। शृंगार रस की तरह वात्सल्य के भी संयोग और वियोग के आधार पर दो भेद किये हैं।

यदि गंभीरता से देखा जाए तो जीवन का मूलाधार प्रेम है। यह प्रेम संसार में पशु, पक्षी, मानव आदि सभी प्राणियों में पाया जाता है और इसके विभिन्न रूप दृष्टिगोचर होते हैं। कहीं यह समवयस्कों में मैत्री या सखा भाव के रूप में दिखाई देता है तो कहीं पति और पत्नी के मध्य दाम्पत्य-भाव के रूप में दिखाई देता है। इसी तरह वात्सल्य भाव प्रेम का एक वह प्रकार है, जिसमें किसी छोटे व्यक्ति के प्रति निश्छल एवं निष्कपट प्रेम की भावना रहती है। वात्सल्य ही प्रेम की अत्यंत निर्मल एवं पवित्र दशा है। इसमें सहज, सुकुमार बालक की सामाजिक चेष्टाओं, कौतुक क्रीड़ाओं एवं अटपटे कार्यों का प्राधान्य रहता है। परिजन एंव पुरजन बालक की चेष्टाओं, क्रीड़ाओं, कौतुकों को देख-देखकर आनंद विभोर हो जाते हैं और अपने आपको भूल जाते हैं।

महाकवि सूरदास ने वात्सल्य भाव का वर्णन अत्यंत माघ्मकता एवं गंभीरता से किया है। उनके इस वर्णन में कवि की गहन अनुभूति दिखाई देती है। पाश्चात्य क्रोंचे के अनुसार 'अनुभूति ही अभिव्यक्ति है और अभिव्यक्ति ही काव्य है।' हिन्दी विद्वानों के अनुसार सूर का वात्सल्य-वर्णन हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में सर्वथा अनुपम एवं अद्वितीय है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार- ''सूरदास बाल-हृदय का कोना-कोना झांक आए हैं।'' उन्होंने अपनी बंद आँखों से जो वात्सल्य वर्णन किया है। वह अद्वितीय है। आगे आने वाले कवियों की शृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठन-सी जान पड़ती हैं।[14] डॉ. रामकुमार वर्मा ने बाल-कृष्ण के शैशव में, श्रीकृष्ण के मचलने में, माँ यशोदा के दुलार में हम विश्वव्यापी माता-पुत्र का प्रेम देख सकते हैं।[15] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- ''यशोदा के बहाने सूरदास ने मातृ-हृदय का ऐसा स्वाभाविक, सरल और हृदयग्राही चित्र खींचा है कि आश्चर्य होता है।''[16]

डॉ. हरवंश लाल शर्मा के अनुसार, ''सूर का वात्सल्य भाव विश्व-साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है।''[17] डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार, ''इसमें कोई संदेह नहीं कि सूर ने श्रीकृष्ण की बाल-सुलभ चेष्टाओं, मनोहारिणी लीलाओं एवं रमणीय बाल क्रीड़ाओं का ऐसा हृदयग्राही एवं प्रभावशाली वर्णन किया है, जिसे पढकर एवं सुनकर हृदय हठात् उस ओर आकृष्ट हो जाता है।''[18] वे आगे लिखते हैं- ''वास्तव में बाल-सुलभ चेष्टाओं के मनोमुग्धकारी चित्रों का जितना बड़ा भंडार सूर-सागर में विद्यमान है, उतना अन्यत्र कहीं भी दिखाई नहीं देता। सूर के इन चित्रों में विविधता है। आकर्षण है, रमणीयता है और स्वाभाविकता है, जिसके फलस्वरूप कोई भी अन्य कवि सूर के वात्सल्य-वर्णन की समानता नहीं कर सका है।''[19]

सूरदास का वात्सल्य-वर्णन अत्यंत विशद् एवं गंभीर है। इसका सम्यक् अध्ययन करने के लिए इसे दो भागों में विभक्त किया जा सकता है- 1. वात्सल्य का संयोग पक्ष 2. वात्सल्य का वियोग पक्ष।

वात्सल्य का संयोग पक्ष

वास्तव में सूरदास बाल-मनोविज्ञान के इतने बड़े पारखी थे कि उनके बाल-वर्णन में बाल-स्वभाव की एक भी बात छूटने नहीं पाई है। उन्होंने कृष्ण की बाल-लीलाओं की जैसी मनोहर झांकी प्रस्तुत की है, वैसी झांकी विश्व-साहित्य की किसी भी भाषा में मिलनी संभव नहीं है। इसीलिए बाल-वर्णन के लिए विश्व में अद्वितीय कवि सिद्ध हुए हें। चक्षुविहीन सूर ने बालक कृष्ण की जिन सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोवृत्तियों के दर्शन किए हैं तथा हूबहू उनके चित्र अपने पदों में अंकित किए हैं, वह एक कुशल चित्रकार के द्वारा भी संभव नहीं है। बालक कृष्ण की लीलाओं का उन्होंने ऐसा कलापूर्ण चित्रण किया है कि उसे पढकर सहृदय पाठक झूम उठता है। 'सूरसागर' में लगभग सात सौ पद इसी संदर्भ में रचे गये हैं। सूर ने बालकों की सहज मनोवृत्तियाँ के स्वाभाविक चित्र अंकित करते हुए वात्सल्य के संयोग पक्ष का बड़ा ही मार्मिक एवं मनोहारी वर्णन किया है, जो इस प्रकार है-

1. स्वभाविक वेशभूषा का वर्णन

सूरदास ने बालक कृष्ण की रूप माधुरी की दिव्य एवं अलौकिक चित्रों द्वारा बड़ी ही सजीवता के साथ अंकित किया है। बालक कृष्ण की वेशभूषा बड़ी सरस, स्वाभाविक एवं चित्ताकर्षक है। यथा-

हरिजू की बाल-छवि कहौं बरनि।
सकल सुख की सींव कोटि मनोज सोभा हरनि।

सोभा कहत नहीं आवै।
अंचवत अति आतुर लोचन-पुट मन न तृप्ति कौ पावै।।[20]

वास्तव में कृष्ण की बाल-छवि अनुपम एवं अद्वितीय है। 'देख री देख आनंद-कंद', 'सखि री नदनंदन देखु', 'वरनो बाल-वेष मुरारि' आदि पदों में सूर ने कृष्ण के अलौकिक एवं अद्‌भुत रूप की रमणीय झाँकी अंकित की है।

2. बालोचित चेष्टाओं एवं क्रीड़ाओं का वर्णन

सूरदास ने श्रीकृष्ण की बाल-सुलभ चेष्टाओं एवं विविध क्रीड़ाओं के अत्यंत स्वाभाविक एवं मनोमुग्धकारी चित्र अंकित किये हैं, जिनमें कहीं कृष्ण घुटनों के बल आँगन में चल रहे हैं, कहीं मुख पर दधि लेपकर दौड़ रहे हैं, कहीं अपने प्रतिबिम्ब को मणि-खंभों में निहार रहे हैं, कहीं अपने पैर का अंगूठा चूस रहे हैं तो कहीं हँसते हुए किलकारी भर रहे हैं। बालक कृष्ण अपना हाथ माता को पकड़ाते हैं तथा डगमगाते हुए पैर आगे बढ़ाते हैं। यथा-

सिखवत चलन जसोदा मैया।
अरबराई कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरै पैया।।[21]

बालक कृष्ण मक्खन खाते हुए तथा धूल में घुटनों के बल चलते हुए बड़े सुंदर दिखाई देते हैं-

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटरुनि चलत रेनु-तन मंडित मुख दधि लेप किए।
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन, तिलक दिए।।[22]

सूर ने बाल-कृष्ण की बाल-सुलभ क्रीड़ाओं के अनेक चित्र अंकित किए हैं। पालने में शयन करते समय बालक कृष्ण की स्वाभाविक बाल-चेष्टाएँ द्रष्टव्य हें-

कर पग गहि, अंगूठा मुख मेलत।
प्रभु पौढ़े पालने अकेले, हरषि हरषि अपने रंग खेलत।।[23]

बालक कृष्ण की किलकारी भरी हँसी एवं मणि-जटित आँगन में अपने प्रतिबिम्ब को पकडने के लिए दौड़ते समय का चित्र भी बड़ा ही हृदयग्राही बन पड़ा है-

किलकत कान्ह छुटुरुवनि धावत।
मनिमय कनक नंद के आँगन बिम्ब पकरिबे धावत।।[24]

3. बाल मनोभावों एवं अन्त : प्रकृति का चित्रण

सूर ने बाल-कृष्ण के हृदयस्थ मनोभावों, बुद्धि-चातुर्य, स्पर्धा, खीझ, अपराध करके उसे छिपाने तथा उसके बारे में कुशलता के साथ सफाई देने की प्रवृत्ति आदि के बड़े मनोहारी चित्र अंकित किये हैं। बालक कृष्ण दूध पीने में आनाकानी करते हैं और माता यशोदा उसे फुसलाकर दूध पिलाने का प्रयत्न करती है। माता यशोदा उसे कहती है कि तुम दूध पी लो, बलराम की तरह तुम्हारी चोटी भी बढ़ जाएगी। दूध पीते हुए बाल-कृष्ण कहते हैं-

मैया कबहि बढ़ेगी चोटी।

किती बार मोहि दूध पिवत भई, यह अजहूँ है छोटी।।
तू जो कहति बल की बैनी ज्यों, हवै है लांबी मोटी।।
काँचो दूध पिवावत पचि-पचि देत न माखन रोटी।।[25]

दूसरा चित्र बाल-कृष्ण की बात-सलभ सफाई का है। कृष्ण ने मक्खन चुराकर खा लिया है और वे रंगे हाथों पकड़े भी गए हैं, क्योंकि उनके मुख पर मक्खन लगा हुआ है। माता यशोदा के डाँटने पर बालकृष्ण मधुर सफाई देते हुए कहते हैं-

मैया मैं नहिं माखन खायो।
ख्याल परै ये सखा सबै मिली मेरे मुख लपटायौ।।
देखि तु ही सींके पै भाजन ऊँचे धरि लटकायौ।।
तुही निरख नान्हे कर अपने मैं कैसे करि पायो।।[26]

सूर ने बाल-सुलभ खीझ का भी चित्रण किया है। बलराम ने कृष्ण को चिढ़ा दिया है कि तू नंद और यशोदा का पुत्र नहीं है, तुझे तो मोल खरीदा गया है, क्योंकि नंद-यशोदा तो गोरे हैं और तू काला है। इस बात पर कृष्ण के हृदय में खीझ उत्पन्न होती हे, उसका चित्ताकर्षक वर्णन सूर ने इस प्रकार किया है-

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो।
मो सो कहत मोल को लीनो, तोहि जसुमति कब जायो।।
कहा कहौं एहि रिस के मारे, खेलन हौं नहिं जातु।।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तुम्हारे तातु।।
गोरे नंद जसोदा गोरी, तुम कत स्याम सरीर।।
चुटकी दै दै हँसते ग्वाल सब, सिखै देत बलवीर।।[27]

4. बालकों के संस्कार, उत्सवों एवं समारोहों का वर्णन

सूर ने बालकों से सम्बन्धित संस्कारों, उत्सवों एवं समारोहों का वर्णन करते हुए वात्सल्य भाव की अभिव्यक्ति की है। नकछेदन, नामकरण, वर्षगांठ आदि अवसरों पर माता-पिता के हृदय में जो सहज उत्साह एवं स्वाभाविक प्रेम उमडने लगता है। कृष्ण की वर्षगाँठ के अवसर पर माता- यशोदा कितनी प्रसन्न होकर अपनी सखियों के साथ मंगलगान कराती हैं, आँगन में मोतियों का चौक पुरवाती है तथा अन्य तैयारी कराती हैं-

अरी मेरे लालन की आजु वरष गाँठ सबै,
साखिन कौं बुलाइ मंगल-गान करावौं।
चंदन आँगन लिपाई मुतियन चौके पुराई,
उमंग अंगनि आनंद सौं तूर बजाओ।।[28]

5. गो-दोहन तथा गोचारण का वर्णन

बालक कृष्ण का गो-दोहन के लिए मचलना, गौओं को दुहने, गोचारण के लिए वन में जाने की हठ करने, वन में माता द्वारा छाक भिजवाने आदि का वर्णन करके वात्सल्य भाव की सुंदर अभिव्यक्ति की है। गो-दोहन क लिए हठ करते हुए बालक-कृष्ण का वर्णन द्रष्टव्य है-

तनक तनक मोय दोहिनी दै दै री मैया।
तात दुहन सीखन कह्यौ मोहि धोरी गैया।।
अटपटे आसन बैठिकै गोधन कर लीनो।
धार अनत ही देखि कै ब्रजपति हँस दीनो।।
घर घर तै आई सबै देखनु ब्रज नारी।
चितै चोरचित हरिलियो हँसी गोप-बिहारी।।[29]

जब बालक कृष्ण गो-चारण के लिए वन में जाने लगे हैं, तब उनके लिए 'छाक' की तैयारी करती हुई माता यशोदा का प्रेम कितना उमडने लगता है-

जोरति छाक प्रेम सों भैया।
ग्वालनि बोलि लए अधजेंवत उठि धाय छोउ भैया।।
भूखे गए आजु दोउ मैया आपहि बोलि मंगाई।
सब माखन साजो दधि मीठो मधु मेवा पकवान।।
'सूर' स्याम को छाक पठावति कहति ग्वाल सों जान।।[30]

वात्सल्य का वियोग-पक्ष

सूर ने शृंगार रस की भाँति वात्सल्य के वियोग पक्ष का भी अत्यंत हृदयद्रावक चित्रण किया है। यथा-

1. श्रीकृष्ण के मथुरा-गमन पर -

वियोग वात्सल्य की सबसे सुंदर झलक श्रीकृष्ण के मथुरा-गमन पर अंकित की गई है। श्रीकृष्ण के मथुरा जाने का समाचार पाते ही माता यशोदा के हृदय में वात्सल्य का स्त्रोत इस तरह उमड़ पड़ता है और माता का रोम-रोम यह पुकार उठता है-

है कोई ब्रज में हितु हमारो, चलत गोपालहि राखै।
कहा करे मेरे छगन मगन को, नृप मधुपुरी बुलायौ।
सुफलक सुत मेरे प्राण हनन को काल रूप होई आयौ।।[31]

2. मथुरा से नंद के अकेले लौटने पर -

सूर ने यशोदा के मातृ-हृदय की वात्सल्यमयी झाँकी तन्मयता के साथ अंकित की है, जिस समय नंद अकेले ही मथुरा से लौटते हैं और माता यशोदा उन्हें द्वार पर अकेला खड़ा देखकर क्षोभ के मारे आकुल हो उठती है। उस क्षण माता यशोदा का हृदय से वात्सल्य रस फूट पड़ता है। वे अपने प्रिय पुत्र के अभाव में एक सहज टीस, स्वाभाविक व्याकुलता तथा व्यथा से परिपूर्ण होकर अपने पति नंद को फटकार उठती है-

जसुदा कान्हा कान्ह के बूझै।
फूटि न गई तुम्हारी चारों कैसे मारग सूझै।।
छांडि स्नेह चले मथुरा, कत दौरिन चीर गह्यौ।
फाटि न गई वज्र की छाती, कत यह सूल सह्यौ।।[32]

3. श्रीकृष्ण के मथुरा में ही निवास करने पर

वियोग वात्सल्य की हृदयद्रावक झाँकी सूर ने उस समय अंकित की है, जिस समय श्रीकृष्ण अनेक बुलावा भेजने पर भी मथुरा से गोकुल नहीं आते और माता अपने पुत्र के योग्य रुचिकर वस्तुओं को नित्य अपने सामने रखी हुई देखती है। उस समय माता के हृदय में कितनी पीड़ा होती है, कितनी टीस उठती है और उसके उद्‌गारों में वियोग वात्सल्य उमड़ता दिखाई देता है-

जद्यपि मन समुझावत लोग।
सूल होत नवनीत देखि, मेरे मोहन के मुख जोग।।

माता-यशोदा रात-दिन पागल-सी रहती है। उसे ब्रज काटने को दौड़ता है। उसे नित्य प्रति अपने लड़ेते लाल के खान-पान, रहन-सहन आदि की चिंता सताती है। यथा-

निसि बासर छतियाँ ले लाऊँ, बालक लीला गाऊँ।
वैसे भाग बहुरि कब ह्वै हैं, मोहन गोद खिलाऊँ।।[33]

अपनी वियोगपूर्ण वात्सल्य पीड़ा से व्याकुल होकर देवकी से कहती है-

संदेसों देवकी सौं कहियौ।
हौं तो धाय तुम्हारे सुत की, दया करत ही रहियौ।
प्रात होत मेरे लाल लडैते, माखन रोटी भावै।
जोई जोई मांगत सोई सोई देती, क्रम क्रम करि कै हाते।
सूर पथिक सुनि मोहि रैन-दिन बढ्यो रहत उर सोच।।[34]

इस प्रकार वात्सल्य का बड़ा ही हृदयहारी वर्णन सूर ने किया है जिसमें बालोचित चेष्टाओं एवं क्रीड़ाओं के अतिरिक्त मातृ-हृदय की भावुकता की मनोरम अभिव्यक्ति हुई है। वस्तुत: सूरदास के उक्त वात्सल्य वर्णन में तन्मयता है, स्वाभाविकता है, मनोवैज्ञानिकता है, सहज आकर्षण है। वास्तव में सूरदास बाल-प्रकृति एवं बाल मनोवृत्तियों के कुशल चितेरे हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि सूरदास वात्सल्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।

संदर्भ

1. मुंशीराम शर्मा, सूर सौरभ (द्वितीय भाग), पृ. 50
2. हरवंशलाल शर्मा, सूरदास, राधाकृष्ण मूल्यांकन माल, पृ. 15
3. रामचन्द्र शुक्ल, सूरदास, सं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ. 108
4. चौरासी वैष्णवन की वार्ता में, अष्टसखन की वार्ता, पृ. 2
5. हरवंशलाल शर्मा, 'सूरदास-राधाकृष्ण मूल्यांकन माला', पृ. 14
6. हरिराय, भावप्रकाश, पृ. 70
7. हरवंशलाल शर्मा, सूरदास-राधा कृष्ण मूल्यांकन माला, पृ. 17
8. कालिका प्रसाद, 'वृहत् हिन्दी कोश', पृ. 1234
9. 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग एक), पृ. 769
10. हिन्दी साहित्य कोश (भाग एक), पृ. 769
11. सूरसागर, पृ. 769
12. वही, पृ. 769
13. वही, पृ. 769
14. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ. 165
15. रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 537
16. हजारी प्रसाद द्विवेदी, सूर-साहित्य, पृ. 129
17. हरवंश लाल शर्मा, सूर और उनका साहित्य, पृ. 243
18. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, पृ. 184
19. सूरसागर, पृ. 184
20. वही, पृ. 195
21. वही, पृ. 162
22. वही, पृ. 717
23. वही, पृ. 715
24. वही, पृ. 798
25. वही, पृ. 793
26. वही, पृ. 952
27. वही, पृ. 833
28. वही, पृ. 857
29. वही, पृ. 869
30. वही, पृ. 867
31. वही, पृ. 896
32. वही, पृ. 898
33. वही, पृ. 894
34. वही, पृ. 379

शिक्षा और समाज का संबंध

अमित कौर

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर

प्रस्तावना : शिक्षा और समाज दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। शिक्षा के बिना समाज अधूरा है और समाज के बिना शिक्षा। मुनुष्य सामाजिक प्राणी है वह समाज में रहता है और समाज अपने क्रियाकलापों का निर्वाह करता है। समाज में धार्मिक, सांस्कृतिक,राजनैतिक, आर्थिक रूप से मानव का संबंध स्थापित होता है। इस संबंध को मजबूत तथा सुदृढ़ बनाने के लिए शिक्षा की आवश्यकता होती हैद्य शिक्षा के अभाव में मुनुष्य पशु के समान प्रतीत होता है। शिक्षा ही एक बलशाली समाज का आधार है। मुनुष्य समाज में रह कर ही कर्तव्य व विचारों का आदान-प्रदान शिक्षा के माध्यम से ही संभव है। समाज पर शिक्षा का प्रभाव पड़ता है। जहाँ शिक्षा होती है। वह समाज शिक्षित तथा सभ्यता की ओर अग्रसर होता है। शिक्षा के अभाव में व्यक्ति अपनी शक्तियों का दुरूपयोग करता है, जिससे समाज का अहित होता है।

शिक्षा मानव समाज की आधारशिला है। वह समाज का निर्माण करती है, उसमें परिवर्तन करती है, और उसका विकास करती है। शिक्षा के द्वारा ही मुनुष्य अपने समाज के, संसार के तथा इस सम्पूर्ण सृष्टि के बारे में जानकारी प्राप्त करता है। मुनुष्य इस ज्ञान के आधार पर ही अपने जीवन के उद्देश्य को सुनिश्चित करता है तथा इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु वह पृथक-पृथक समाजों का निर्माण करता है। शिक्षा समय के साथ-साथ अपने उद्देश्यों में परिवर्तन करती रहती है। जैसा समाज होता है, उसी के अनुरूप शिक्षा होती है। आदिकाल में शिक्षा वंशानुक्रम पर आधारित थी जैसे ब्राहमण का बालक ब्राहमण बनने की शिक्षा-दीक्षा लिया करता था तथा क्षत्रिय युद्ध, रण कौशल आदि की शिक्षा ग्रहण करता था। मध्यकाल के अंतर्गत शिक्षा का उद्देश्य धार्मिक रीति-रिवाजों आदि के प्रचार-प्रसार के रूप में परिवर्तित हो गया है। शिक्षा समाज की आवश्यकता के अनुसार निरंतर अपने स्वरूप में परिवर्तित करती रहती हैद्य शिक्षा एक ऐसा सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य की विचारधाराओं में भिन्नता आती है, तथा उसके ज्ञान में वृद्धि होती है, उसके आचरण में परिवर्तन आता है, शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य अच्छे-बुरे, ऊच- नीच, धर्म-अधर्म आदि में भेद कर सकता है।

शिक्षा व्यक्ति के आर्थिक उददेशों की पूर्ति करता है। एक शिक्षित व्यक्ति अपने ही देश में नहीं बल्कि विदेश में जा कर भी अपनी आर्थिक स्थिति का मूल आधार है। आज समाज व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार किसी भी व्यवसाय में निपुण करने का प्रयत्न करते है। शिक्षा मनुष्य तथा समाज में राष्ट्रभक्ति और कर्तव्यों का निर्वाह करने के लिए प्रेरित करता है। शिक्षा विहीन मनुष्य अपनी राजनीतिक स्थिति को सही तरीके से नहीं समझ पाता जिसके परिणामस्वरूप वह केवल अंध भक्त बन कर अपना जीवन व्यतीत करता है एक जागरूक नागरिक नहीं बन पाता।

एक प्रकार से यदि यह बात सत्य है कि समाज शिक्षा में परिवर्तन करता है किन्तु यह भी सर्वमान्य उचित है कि शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तन होते हैं। मनुष्य समाज में रहकर नवीन अनुभव प्राप्त करता है तथा समाज की आवश्यकताओं एवं समस्याओं से अवगत होता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु तथा समस्याओं के निराकरण के संबंध में विचार-विमर्श करके उनका समाधान खोजता है। अत: यह कहना अनुचित न होगा कि एक व्यक्ति कभी-कभी सम्पूर्ण समाज में बदलाव करता है।; "एक ही समाज की शिक्षा भी समाज में परिवर्तन आ जाने पर कालांतर में बदल जाएगी। इन परिवर्तनों का लेख रखना शिक्षा के इतिहास का क्षेत्र है। समाज के शौक्षिक परिवर्तनों के कारण सामाजिक गतिशीलता है और इनका अध्ययन ऐतिहासिक तथा समाजशास्त्रीय दोनों दृष्टियों से हो सकता है।"[1]

समाज के सम्पूर्ण अध्ययन की दृष्टि से शिक्षा का ताना-बाना बुना जाता है। विषयों का विभाजन तथा उसके अंतर्गत समाविष्ट सामग्री समाज से जुड़ी हुई होती है। इस सामग्री के अध्ययन से व्यक्ति, समाज तथा शिक्षा का संबंध प्रस्थापित होता है। "सामाजिक हित की पारंपरिक अवधारणा तीन विषयों की मिश्रण की है–इतिहास, भूगोल और नागरिकशास्त्र निश्चय ही यह तीनों समाज के सम्यक अध्ययन में मदद देने वाले विषय है, किन्तु केवल जब-जब इन्हें एक-दूसरे से संबंधित करके पढ़ा जाए।"[2]

व्यक्ति और समाज के मध्य समन्वय की आवश्यकता है। इसकी पूर्ति शिक्षा के माध्यम से की जा सकती है। व्यक्ति और समाज भिन्न मानकर या किसी एक को महत्व देकर शिक्षा का आयोजन आगामी भविष्य को अंधकारमय बनाता है। समाज के प्रति कर्तव्यों का एहसास, जागृति पैदा करने की क्षमता शिक्षा में होनी चाहिए। "आज व्यक्ति का समाज के साथ संयोग और सुसंवाद निर्माण करना ही शिक्षा का कार्य समझा जाता है।"[3] शिक्षा में जो नए विचार प्रत्यक्ष रूप से हमारे समक्ष आए है उनमें व्यक्तिवादी एवं व्यक्तिवादी उद्देश्यों में तालमेल बिठाने का प्रयास किया जा रहा है। जब व्यक्ति जन्म लेता है तब उसका मस्तिष्क पूर्ण रूप से खाली होता है। आस-पास के परिवेश, परिवार तथा समाज में निहित सभी वस्तुओं का समय-समय पर उसके साथ संबंध स्थापित होता रहता है। इन्हीं संबंधों के जुड़ने से उसे शिक्षा मिलती है तथा शिक्षा के माध्यम से उसके व्यक्तिव का विकास होता है। शिक्षा और समाज का संबंध केवल करीबी नहीं है बल्कि समाज पर आधारित शिक्षा का निर्माण होता है। समाज एक ऐसी व्यवस्था है जो समय तथा काल के अनुसार परिवर्तित होती है।

निष्कर्ष : हम कह सकते हैं कि शिक्षा और समाज का आपस में अटूट संबंध है। दोनों एक दूसरे के पूरक है। शिक्षा के अभाव में समाज अधूरा है तथा समाज के बिना शिक्षा। शिक्षा के अभाव में मनुष्य पशु के समान प्रतीत होता है। एक व्यक्ति का शिक्षित होना अति आवश्यक है क्योंकि शिक्षा के माध्यम से वह समाज में आपने आप को प्रतिष्ठित रख सकता है। समाज का कल्याण एवं उसका विकास तभी संभव है जब समाज के सभी व्यक्ति शिक्षित हो। किसी समाज की सामाजिक, भोगोलिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा आर्थिक स्थिति होती है वैसी ही उसकी शिक्षा होती है। परंतु किसी समाज में सामाजिक परिवर्तनों के साथ-साथ उसकी शिक्षा में भी परिवर्तन होते रहते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ए. के. सी आटवे, शिक्षा और समाज, पृ. 14
2. कृष्णा कुमार राज, समाज और शिक्षा, पृ. 61
3. ग. वि अकोलकर, शैक्षणिक तत्व ज्ञानची रूपरेखा, पृ. 54

मुक्तिबोध के रचनात्मक साहित्य पर उनके समीक्षा सिद्धान्तों का प्रभाव

डॉ० ऋतम्भरा

एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी), ए.एन.डी. नगर निगम महिला महाविद्यालय, कानपुर

मुक्तिबोध का व्यक्तित्व, साहित्य और साहित्य समीक्षा एक-दूसरे में अन्त:सम्बन्धित और सम्पृक्त हैं। इसमें यह भ्रम हो सकता है कि उनके कृति व्यक्तित्व ने साहित्य समीक्षा में और उनके समीक्षक- व्यक्तित्व ने साहित्य क्षेत्र में अवैध प्रवेश किया हो या अवांछनीय दखल दिया हो पर ऐसा भ्रम निर्मूल्य ही है क्यों कि ऐसा कहने के लिये समुचित आधार नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि उनकी समीक्षाएँ मूल रूप में, एक कवि की -रचनाकार की समीक्षाएँ हैं। जिसने अपने व्यक्तित्व में वाह्य यथार्थ की आभ्यन्तरीकरण प्रक्रिया की राह पर चलते हुए हर मोड़ को देखा, समझा और परखा है। ''अपनी काव्य-जीवन की यात्रा में उन्हें जो चिन्तन करना पड़ा, उसी से उनकी समीक्षाएँ अनुप्रेरित हैं। यही कारण है कि यहाँ साहित्य-सम्बन्धी सिद्धान्तों और प्रश्नों का जड़ीभूत शास्त्रीय विवेचन-विश्लेषण नहीं है। उनका समीक्षक व्यक्तित्व, रचनाकार- व्यक्तित्व से अलगाया नहीं जा सकता। ये दोनों उनके व्यक्तित्व में, सृजनात्मक स्तर पर, एक दूसरे से सहज रूप में जुड़े हुए हैं। ये एक-दूसरे को प्रभावित ही नयी, अन्त:स्पन्दित और रूपान्तरित भी करते हैं।''[1] इसका अर्थ यह नहीं लिया जाना चाहिए कि उनकी समीक्षा दृष्टि- कवि कर्म की उपज है। उनकी समीक्षाओं के (और कविताओं के भी) पीछे स्रष्टा के साथ-साथ एक प्रौढ़ और प्रबुद्ध चिन्तक भी बैठा है जो जीवनानुभूतियों की प्रखर ओर निर्मम व्याख्या और मीमांसा करता चलता है। उनकी समीक्षाएँ निश्चय ही एक पुष्ट वैचारिक आधार लिये हुये हैं। 'संवेदना' और 'ज्ञान' 'कविता' और 'जीवन समीक्षा उनके अलग-अलग 'खाने' नहीं हैं। समीक्षा में (कविता में) संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना पर उनके जोर देने का यही मुख्य कारण है।

मुक्तिबोध ने मार्क्स-दर्शन का गहन अध्ययन और मनन किया था इस दर्शन ने उनकी-जगत् सम्बन्धी धारणाओं को निर्धारित और सुनिश्चित किया था। उनके कवि मानस पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा था पर जीवनानुभवों की विविधता और व्यापकता जैसे-जैसे उनके सामने प्रत्यक्ष होती गई, मार्क्स-दर्शन से पैदा हुई वैचारिक जकड़ ढीली होती गयी। उनकी दृष्टि इस दर्शन की एकांगिकता और सीमा को पहचान पाने में उत्तरोत्तर समर्थ हुई। इस पहचान के बाद वे इस दर्शन के प्रभाव-बिम्ब से बाहर आने की बराबर कोशिश करते रहे। इस कोशिश में वे कुछ हद तक सफल भी हुए, पर मार्क्सवाद के सिद्धान्तों और विचारों ने उनके दिल -दिमाग में जो 'कन्डीशनिंग' पैदा कर दी थी, उसकी जड़े बहुत गहरी थीं और जूझने के बावजूद वे उससे उबर न पाये थे। उन्होंने सही माने में खुद से लड़ाई की थी, आत्मसंघर्ष किया था। इस लड़ाई या 'संघर्ष' को एक साथ दो स्तरों पर देखा जा सकता है-"रचना स्तर पर और विचार स्तर पर। इस आत्मसंघर्ष ने ही उन्हें अपने समूचे व्यक्तित्व (कृति और निजी) को शोधने की दिशा में प्रवृत किया। इस शोधन-प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप, उनकी मार्क्सीय सामाजिक दृष्टि का संस्कार हो सका और वह अपेक्षया अधिक व्यापक, सहज और साहित्यिक सन्दर्भ में सार्थक हो सकी।''[2] अत: साहित्य-समीक्षा के मूलाधार के रूप में सामाजिक और आर्थिक प्रक्रियाओं पर उनका बल देना कोरा 'एकेडमिक' नही है सिर्फ मार्क्सीय नहीं है, उनकी समीक्षाओं में उनका सम्पूर्ण, द्वन्द्वपूर्ण व्यक्तित्व (इन्वॉल्वड़) है। उन्होंने साहित्य की विशिष्ट प्रकृति और उसकी सृजनशील प्रक्रियाओं के परिपेक्ष्य में सामजिक और आर्थिक भूमिकाओं का निरूपण करने का प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न कितना प्रामाणिक और वस्तुपरक है, यह एक अलग प्रश्न है।

मुक्तिबोध ने सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार की समीक्षाएँ लिखी हैं। उनके आलोचनात्मक निबन्धों के संग्रह 'आत्मसंघर्ष' तथा अन्य निबन्ध' में तेरह निबन्ध हैं। जिनमें से अधिकांस सैद्धान्तिक विषयों पर हैं जैसे-काव्य की रचना-प्रक्रिया', 'सौन्दर्य -प्रतीति और सामाजिक दृष्टि', नवीन समीक्षा का आधार आदि। इस संग्रह में कई निबन्ध ऐसे हैं जिनमें नयी काव्य-प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में कतिपय महत्वपूर्ण मौलिक प्रश्न उठाए गये हैं और उनका सैद्धान्तिक विवेचन-विश्लेषण किया गया है। कुछेक निबन्ध इसमें ऐसे भी हैं जिनको उनकी व्यावहारिक समीक्षा-दृष्टि का पता चलता है जैसे- 'शमशेर मेरी दृष्टि में और सुमित्रानन्दन पन्त: एक विश्लेषण'। उनकी व्यावहारिक समीक्षा का मेरूदण्ड तो उनका ग्रन्थ 'कामायनी: एक पुनर्विचार' ही है। जिसमें फैन्टेसी की दृष्टि से 'कामायनी' पर विचार किया गया है। साहित्य सम्बन्धी ऐसे ही बुनियादी प्रश्न उठाए गये है, डायरी विधा के अनौपचारिक सहज माध्यम से उनकी पुस्तक 'एक साहित्यिक की डायरी में' इन तीनों पुस्तकों के सम्बन्ध में यह बात उल्लेख-योग्य है। इनमें एक मूलभूत केन्द्रीय दृष्टि लक्षित की जा सकती है जिसके 'फोकस' में वे हर साहित्य-विषय को देखते है। इससे विवेचन-विश्लेषण में जड़ता सा या एक जैसा पन आ जाने का खतरा रहता है, पर समीक्ष्य विषयों को विभिन्न कोणों से और विविध आयामों में प्रस्तुत करने में मुक्तिबोध को कोई कठिनाई नहीं हुई है।''[3] मुक्तिबोध की समीक्षा दृष्टि का यह केन्द्र क्या है? निश्चय ही यह उनके वास्तविक जीवन-जगत् उसके तथ्यों और अनुभवों से बना है। जीवन-जगत के विविध और व्यापक जीवनानुभवों को वे समीक्षा के आधार पर स्वीकार करते हैं। उनका मत है साहित्य -समीक्षा के मूल में वास्तविक जीवन में तजुर्बो के बतौर उपलब्ध होने वाले ज्ञान संवेदन और संवेदन ज्ञान में ही। वे तो यहाँ तक कहते हैं कि वास्तविक जीवन की संवेदनात्मक समीक्षा शक्ति के अभाव में, साहित्य के क्षेत्र की समीक्षा शक्ति थोथी होती है। वास्तविक जीवन के संवेदनात्मक ज्ञान को वे साहित्य -समीक्षा की मूल-दृष्टि या मूल्य के रूप में इसलिये भी स्वीकार करते हैं कि वास्तविक जीवन का संवेदनात्मक ज्ञान 'न केवल लेखक और समीक्षक में होता है, वरन् पाठक में भी होता है।''[4] (आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध) वे जीवन सत्य को ही सिद्धान्तों का नियामक मानते हैं। साहित्य में प्रकट सत्व की सत्यत: की जाँच की कसौटी मानते हैं। संक्षेप में कहें तो वे जीवन -मूल्य और कलात्मक साहित्यिक मूल्य

में आवयविक सम्बन्ध मानते हैं। उनकी समीक्षा-दृष्टि मानव-वास्तविकता और वास्तविक जीवन के व्यापक और विविध जीवनानुभवों, जीवन मूल्यों, आन्दोलनों, आकांक्षाओं, की बृहत्तर पीठिका पर खड़ी है। इस समीक्षा दृष्टि को जीवन सापेक्ष्य, मूल्य सम्पृक्त और समाज प्रतिबद्ध दृष्टि कहा जा सकता है। मुक्तिबोध की समीक्षा-दृष्टि का यह केन्द्रिय तत्व, उनकी रचना-दृष्टि और कवि-कर्म सम्बन्धी धारणाओं से पर्याप्त प्रभावित है। उनके अनुसार कवि अपने अन्तर में व्याप्त जीवन-जगत् को प्रकट करता है। उनका विचार है-''काव्य-रचना केवल व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया नहीं, वह एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है और फिर भी वह एक आत्मिक प्रयास है।''[5] काव्य रचना को सांस्कृतिक प्रक्रिया मानने के मूल में उनका तर्क यह है कि 'उसमें जो सांस्कृतिक मूल्य परिलक्षित होते हैं, वे व्यक्ति की अपनी देन नहीं, समाज या वर्ग की देन है। इसमें सन्देह नहीं कि काव्य-रचना के पीछे सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव संस्कार रहते है और कवि के व्यक्तित्व के मूल स्वभाव के अनुरूप और सृजन प्रक्रिया के दौरान से प्रभाव-संस्कार कोरमकोर बदल जाते हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भ रचनाकार की मनो-भूमिका निर्मित कर सकते हैं। रचना के प्रेरक तत्व बन सकते हैं, रचना-प्रक्रिया में भी सक्रिय रह सकते हैं, पर इस सबसे काव्य-रचना 'सांस्कृतिक प्रक्रिया' सिद्ध नहीं की जा सकती। इस व्यापार में कृति-व्यक्तित्व और कलात्मक तत्वों का एक बहुत बड़ा रोल होता है। इस रोल के महत्व को मुक्तिबोध न जानते हो, ऐसी बात नहीं, उन्होंने इस बात को रेखांकित भी किया है यह कहकर कि काव्य-रचना एक आत्मिक प्रयास है, काल के तीन क्षणो को जिस रूप में उन्होने उद्घाटन किया है वह भी इस बात की गवाही देता है कि काव्य रचना, अपने मूल रूप में आत्मिक और वैयक्तिक प्रक्रिया है- सांस्कृतिक तत्व भले ही इसे संवारते हों या रूपायित करने में सहायक हों।

"वैचारिक दृष्टिकोण से मुक्तिबोध मानव वास्तविकता और समाज के प्रति-प्रतिबद्धता के कायल हैं। इसी दृष्टि से काव्य में 'सौन्दर्य' की प्रतिष्ठा और परख करने पर बल देते हैं। दूसरी ओर, रचना स्तर पर उन्हें कलात्मक प्रतिक्रियाओं की पूरी जानकारी है, अतः वे सौन्दर्य-प्रतीति का अविच्छिन्न सम्बंध सृजन-प्रक्रिया के साथ जोड़ते हैं। एक ओर तो वे सामाजिक दृष्टि के बिना सौन्दर्य-प्रतीति असम्भव मानते हैं, (आत्म-संघर्ष तथा अन्य निबन्ध) तो दूसरी ओर उनकी धारणा है कि सृजन-प्रक्रिया से हटकर सौन्दर्य -प्रतीति असम्भव हो जाती है (एक साहित्यिक की डायरी) दूसरे शब्दों में कहना चाहें तो उनके विचार से सामाजिक दृष्टि और सौन्दर्य-प्रतीति में गुणात्मक रीति से, कोई अन्तर नहीं है। उन्होंने एक ओर तो सौन्दर्य-प्रतीति को तो गहरे स्तरों पर उठाया ही है, सामाजिक दृष्टि को भी गहरी अर्थक्ता से संयुक्त किया ही है, हाँ यह बात अवश्य खटकती है कि उन्होंने सौन्दर्यानुभूति को कलाकृति की जमीन से उभरे कलात्मक या सौन्दर्यात्मक तत्वों के सन्दर्भ में नही उठाया। कलाकृति के कलात्मक सौन्दर्य को महत्व नहीं देते। इस सम्बन्ध में उनके अपने शब्द ही प्रमाण माने जा सकते हैं- 'पाठक का यह आदि कर्तव्य और प्रथम धर्म है कि वह कलात्मक सौन्दर्य को आत्मसात् करते हुये कृति के मर्म में प्रवेश करे। कलात्मक-सौन्दर्य तो वह सिंहद्वार है जिसमें से गुजरकर ही कृति के मर्म क्षेत्र में विचरण किया जा सकता है, अन्यथा नहीं।' स्पष्ट है कि मुक्तिबोध कलाकृति के कलात्मक महत्व को स्वीकारते तो हैं-पर मानते उसे प्रवेशद्वार ही हैं, कृति का अन्तर्वर्ती तत्व नहीं। अन्तर्वर्ती तत्व तो उनकी दृष्टि में जीवन ही है, सौन्दर्य नहीं।

सैद्धान्तिक और तात्विक विवेचनों के साथ-साथ मुक्तिबोध ने अपने समय की समीक्षा-शैलियों और दृष्टियों की भी गम्भीर मीमांसा की है। इनके मूल्य, महत्व और सीमा को उन्होंने अपनी समीक्षा-दृष्टि के केन्द्र में रखकर आंका है। ऐसा उन्होंने नयी काव्य-प्रवृत्तियों के संन्दर्भ में किया है। प्रगतिवादी समीक्षा और समीक्षकों की उन्होंने अच्छी खबर ली है। वे यह मानते हैं कि "आज किसी भी व्यवस्थाबद्ध जैसी विचारधारा का समाज में प्रभाव नहीं- इतना व्यापक सर्वांगीण और सघन प्रभाव नहीं कि लेखक सामाजिक वातावरण में से उसे खींचकर आत्मगति कर सके।"[6]

इस मूल आधार को ग्रहण करके व प्रगतिवादी और आदर्शवादी समालोचकों पर आरोप लगाते हैं कि-वे बनते हुये साहित्य की जीवन भूमि से असंपृक्त रह कर साहित्यांकित जीवन और साहित्य सृजन की वास्तविक मानव भूमि इन दोनों के घनिष्ठ परस्पर संबंधों के स्वरूप का इन दोनों के अपने-अपने विशिष्ट स्वरूप का आकलन न करते हुये छिछली दृष्टि से उनका आकलन करते हुये न्याय निर्णय प्रदान करते हैं। वास्तविक और विविध और विविध नवीन साहित्य कृतियों का मार्मिक विश्लेषण तथा मूल्यांकन करना उन्हें अभीष्ट नहीं। मुक्तिबोध का यह विवेचन अत्यन्त सटीक है और उनकी गहन सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है। उन्होंने प्रगतिवाद की भीतरी न्यूनताओं को उघाड़कर सामने रखा है पर इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्होंने नयी कविता के समीक्षा सिद्धान्तों और दृष्टियों की वकालत की है। अपनी मौलिक समीक्षा दृष्टि द्वारा उन्होंने नयी कविता की मूल प्रकृति को समझने और उसका विवेचन विश्लेषण करने का प्रयास तो किया है पर नयी कविता की हसोन्मुखी प्रवृत्तियों और मूल्यांकन के सिद्धान्तो का उन्होंने तीव्र और जबरदस्त विरोध भी किया है नयी कविता के निर्विकल्प सौन्दर्य सिद्धान्त, व्यक्ति-स्वातंत्रय के सिद्धान्त, लघु मानव के सिद्धान्त और तथाकथित आधुनिक भाव बोध का उन्होंने आवेशपूर्ण खण्डन किया है। इस विरोध और खण्डन के पीछे समाज प्रतिबद्ध मूल्य-संपृक्त दृष्टि काम नहीं कर रही है। इस दृष्टि से पूरी तरह सहमत नहीं हुआ जा सकता। आधुनिक बोध के सम्बन्ध में उनकी इस धारणा को (जो इस दृष्टि में प्रभावित है) को मान्यता नहीं दी जा सकती-'अन्याय के खिलाफ आवाज बुलन्द करना आधुनिक भाव-बोध के अन्तर्गत है। आधुनिक भाव-बोध के अन्तर्गत यह भी है कि मानवता के भविष्य निर्माण के संघर्ष में हम और भी अधिक दन्तचित्त हो तथा वर्तमान स्थिति को सुधारें, नैतिक हास जो था मनुष्य के साथ एकान्त होकर उसकी मुक्ति का उपाय करें। यह मान्यता आधुनिक भाव-बोध पहचान नहीं कराती। इसमें केवल प्रगतिवादी आवेश है।

मुक्तिबोध ने काव्य-सृजन प्रक्रिया का एक रचनाकार की हैसियत से विवेचन करने की कोशिश की है। उनके अनुसार कला के तीन क्षण होते है। पहला है जीवन का उत्कृष्ट अनुभव क्षण, दूसरा है इस अनुभव का अपने कसकते-दुखते हुये मूल्यों से पृथक हो जाना और एक ऐसी फैन्टेसी का रूप धारण कर लेना मानों वह फैन्टेसी अपनी आँखों के सामने खड़ी हो। तीसरा और अन्तिम क्षण है इस फैन्टेसी के शब्द बद्ध होने की प्रक्रिया का आरम्भ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमयता।' मुक्तिबोध की मान्यता है कि शब्द-बद्ध होने की प्रक्रिया के भीतर जो प्रवाह बहता रहता है, वह समस्त व्यक्तित्व और जीवन का प्रवाह होता है। मुक्तिबोध ने सृजन-प्रक्रिया के दौरान तीन महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं -

''काव्य फैन्टेसी का प्रश्न, भाषा का प्रश्न, सौन्दर्य प्रतीति और सामाजिक प्रतिबद्धता का प्रश्न मुक्तिबोध ने फैन्टेसी प्रश्न को काव्य सृजन प्रक्रिया के बुनियादी महत्व के प्रश्न के रूप में उठाया है। यहीं से अन्य प्रश्नों पर भी दृष्टिपात किया है। फैन्टेसी का जैसा विवेचन उन्होंने किया है वह अत्यन्त गहन और तात्विक है। ऐसा लगता है मुक्तिबोध ने कविता के भीतरी उन तत्वों के पारस्परिक संघात और प्रक्रिया द्वारा फैंटेसी के वरूप की मौलिक परिकल्प ना की है, पर जहाँ वे उसका सम्बन्ध साहित्य रचना के सामाजिक संदर्भो से जोडकर, फैंटेसी के आधार पर किसी कृति की व्याख्या करने की कोशिश करते

हैं। वही उनकी दृष्टि में पूर्वाग्रह हाबी हो जाते हैं। रचना प्रक्रिया के दौरान फैन्टेसी कैसे जन्मती और विकसित होती है - उसकी निर्माण प्रक्रिया में रचनाकार का रचना-व्यक्तित्व, रचना बाह्य व्यक्तित्व, बाह्य परिवेश जीवन के तथ्यों और अनुभवों का बचा योगदान रहता है। इसे समझा जा सकता है। 'कामायनी' की उनकी व्याख्या-विश्लेषण और मूल्यांकन दृष्टि से परिचित होकर।''[7] वे 'कामायनी' की कथा को एक फैन्टेसी मानते हैं। उनकी मान्यता है कि जिस प्रकार एक फैन्टेसी में मन की निगूढ़ वृत्तियों को, अनुभूत जीवन- समस्याओं का, इच्छित जीवन- स्थितियों का प्रक्षेप होता है, उसी प्रकार 'कामायनी' में भी हुआ है।

'कामायनी' की फैन्टेसी का स्वरूप बचा है, वह मानव समस्या के साथ किस रूप में सम्बद्ध है, प्रसाद के व्यक्तित्व के किन मूलभूत अन्तर्तत्वों से वह प्रेरित हैं। उसकी रूप रचना और उसकी समग्र गहन संवेदना पात्रों के जरिये किस रूप में (कलात्मक-अकलात्मक) अभिव्यक्ति हुई है। इन सब प्रश्नों पर उन्होंने विचार किया है। पर लगता है इन प्रश्नों पर उनकी दृष्टि पूर्वग्रहों से मुक्त नहीं है। यह दृष्टि मूलत: मार्क्सवादी चेतना के प्रभाव के परिणाम स्वरूप बनी है। इस चेतना के कारण उनके कुछ 'आग्रह' हैं। जिनसे उनका मूल्यांकनशील मन ग्रसित है इन आग्रहों की गिरफ्त में पड़कर वे यदि 'कामायनी' में फैन्टेसी जैसे कलात्मक तत्व या सौन्दर्य तत्व का विश्लेषण करते-करते समाजशास्त्रीय या मार्क्सवादी सूत्रों की व्याख्याओं में उलझ गये तो कोई आश्चर्य नहीं।

मुक्तिबोध ने नि:सन्देह, सृजन-प्रक्रिया और उसके दौरान उपलब्ध फैन्टेसी जैसे सौन्दर्य तत्वों का मौलिक और प्रमाणिक निरूपण किया है। यह जरूरी है कि कुछेक स्थलों पर उनके निष्कर्ष उनके विवेचनों के सहज परिणाम प्रतीत नहीं होते। उनकी समीक्षा दृष्टि का यह बुनियादी द्वन्द्व है। जिसे उनकी समीक्षाओं में अनेक स्तरों पर देखा जा सकता है।

(क) मुक्तिबोध के काव्य पर उनके समीक्षा सिद्धान्तों का प्रभाव

आज की नयी. कविता के भीतर जो मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया लक्षित होती है, वह नि:सन्देह छायावादी या प्रगतिवादी या उसके पूर्व की काव्य प्रक्रिया से बिल्कुल भिन्न है। रोमांटिक कवियों की भांति आवेशयुक्त होकर आज की कवि भावों के अनायास, स्वच्छन्द, अप्रतिहत प्रवाह में नहीं बहता। इसके विपरीत वह किन्ही अनुभूति मानसिक प्रतिक्रियाओं को ही व्यक्त करता है। वह कभी इन प्रतिक्रियाओं की मानसिक रूप रेखा प्रस्तुत करता है, कभी वह उस रूप रेखा में रंग भर देता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह आवेश का अनुभव नहीं करता। होता यह है कि वह अपने आवेश को बांधकर, नियन्त्रित कर, ऊपर उठा कर उसे ज्ञानात्मक संवेदन के रूप में या संवेदनात्मक ज्ञान के रूप में प्रस्तुत कर देता है। यह सबके अनुभव का विषय है कि मानसिक प्रतिक्रिया हमारे अभ्यन्तर में गद्य भाषा को लेकर उतरती है, कृतिम ललित काव्य भाषा में नहीं। फलत: नयी कविता का पूरा विन्यास गद्य भाषा के निकट है।''[8]

आज की नयी कविता में तनाव का वातावरण है। ऐसा बहुत थोड़ी काव्य रचना है जिसमें ऐसा न हो। प्रकृति के कोमल दृश्य, हल्की प्रेममयी व्यंजना तथा कहीं कहीं वासना के चित्र भी देखने को मिलते हैं। किन्तु यदा कदाचित हमें वहां भी तनाव ही दृष्टिगोचर होता है। हाँ वहाँ यह तनाव विविध रूपों में गहरे हल्के ढंग से प्रकट होता है। आज हमारा जो व्यक्ति जीवन है- साधारण मध्यवर्गीय लोगों का व्यक्ति जीवन- उसके अच्छे या बुरे, ऊंचे या नीचे, उथले और गहरे क्षणों की झाँकी हमें प्राप्त होती है। मुख्य बात यह है कि-''आज का कवि अपनी बाह्य स्थिति परिस्थितियों और अपनी मन:स्थितियों से न केवल परिचित है वरन् अपने भीतर वह उस तनाव का अनुभव करता है जो बाह्य पक्ष और आत्म पक्ष के द्वन्द्व की उपज है, हाँ यह सही है कि यह तनाव विभिन्न क्षेत्रों को जैसे - प्रणय जीवन को, आपूर्तिग्रस्त व्यक्ति मानस को, तो कभी-कभी सामाजिक पक्ष को लेकर उत्पन्न होता है। कवि के आस पास जो जीवन लहराइत और तरंगाइत है, उसे अनुभव कर और उसके भीतर अपनी स्थिति को लेकर वह विशेष सुख अनुभव नहीं कर पाता। यह तनाव कभी-कभी आत्मलोचन के स्वर में फूट पड़ता है, तो कभी प्रकृति के रमणीय दृश्य में उदास भावों का आरोप करता सा प्रतीत होता है, कभी वह आत्मविश्वास से विलुप्त होकर गरज उठता है, तो कभी वह मात्र नपुंसक अहंकार का विस्फोट बनकर प्रकट होता है। कभी वह आस्था और प्रेम की बात करने लगता है।''[9]

संक्षेप में नयी कविता वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्मचेतन व्यक्ति की संवेदनात्मक प्रतिक्रिया है। चूंकि आज का वैविध्यमय जीवन विषय है, आज की सभ्यता हासग्रस्त है, इस लिये आज की कविता में तनाव होना स्वाभाविक ही है। किसी भी युग का काव्य अपने परिवेश से या द्वन्द्व रूप में स्थित है या सामंजस्य के रूप में नई कविता अधिकतर द्वन्द्वरूप में स्थित है। इसका अर्थ यह नहीं है कि नयी कविता में हृदय का सहज रस या रमणीयता नहीं है। नयी कविता के निक्रिष्ट उदाहरणों को चुनकर उस पर दोषारोपण करना व्यर्थ है। उसके श्रेष्ट उदाहरणों को लेकर ही उसके विषय में कुछ कहा जा सकता है। नयी कविता में नये विषय, नयी उपमाएं, नयी प्रतीक योजना, नयी भाव पद्धति प्रदान की है। लेकिन ये सब बाते मैं सिर्फ इसलिये कह रहा हूँ कि हम लोग इसकी उपलब्धियों को सबसे पहले पहचान लें । नयी कविता का स्वर एक नहीं है, विविध है। एक ओर यदि उसमें सुकोमल तीव्र गीतात्मक स्वर है तो दूसरी ओर तीव्र आलोचना का स्वर भी। यह स्वर कभी आत्मालोचन का रूप धारण कर लेता है तो कभी समाजोन्मुख आलोचन भी करता है। प्रकृति के कोमल रमणीय दृश्यों से लेकर तो हृदय की रसात्मक अनुभूतियों तक के मार्मिक चित्र नई कविता में कम नहीं हैं। सच तो यह है कि नई कविता के भीतर कई स्वर हैं, कई शैलियाँ हैं, कई शिल्प हैं और कई भाव पद्धतियाँ। नई कविता एक काव्य प्रकार का नाम है। उस काव्य के भीतर अनेकानेक व्यक्तिगत शैलियाँ, शिल्प रचना- विधान और जीवन दृष्टियाँ है। मुक्तिबोध कहते हैं कि -

''युग परिवर्तन के साथ भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले कवि सामने आते हैं। उन कवियों के विषय भिन्न होते हैं और काव्यशिल्प भी भिन्न होते हैं। छायावादी कवि और रीतिकालीन कवि के अपने-अपने स्वभाव में बहुत भेद है। नयी कविता का स्वभाव भी पहले के कवि स्वभावों से भिन्न है सबसे पहली बात तो यह है कि नया कवि बाह्य के प्रति संवेदनशील है। इस संवेदना को वह आत्मपरख रूप में प्रकट करता है। किन्तु छायावादियों और प्रगतिवादियों की भाँति कोई दार्शनिक विचारधारा उनके पास नही है। यह बात मैं नई कविता के बारे में कह रहा हूँ। हाँ यह अवश्य है कि कुछ विशिष्ट कवियों के पास अपने विशिष्ट दृष्टिकोण सर्वांगीण विचारधाराएँ हो सकती हैं।''[10] किन्तु सबके साथ यह बात सच नहीं है। हाँ कुछ में कुछ विशेष वैचारिक प्रवृत्तियाँ हो सकती हैं। बाकी में बिलकुल नहीं। अधिक से अधिक वे लोग मानवता में अपनी आस्था प्रकट करते हैं। यदि बौद्धिक विचारों की जांच की जाय तो आप पायेंगे कि मानवता की उनकी कल्पना अमूर्त और मानवीय है। फिर भी इनमें से बहुतेरे लोग व्यक्तिगत भावना के धरातल पर समाज के शोषकों और उत्पीडितों के विरूद्ध है।

इस कारण आज का कवि असामान्य युग में रह रहा है। वह एक ऐसे युग में है, जहाँ मानव सभ्यता सम्बन्धी प्रश्न महत्वपूर्ण हो उठे हैं। समाज भयानक रूप से विषमता ग्रस्त हो गया है। चारों ओर नैतिक ह्रास के दृश्य दिखाई दे रहे है। शोषण उत्पीड़न पहले से बहुत अधिक बढ़ गया है। नोच खसोट अवसरवाद भ्रष्टाचार का बाजार गर्म है। कल के मसीहा आज उत्पीड़क हो उठे हैं।

आध्यात्मवादी विचारक, जनता से दूर जा बैठे हैं। अधिकांश समीक्षकों का जीवन से कोई संबन्ध नहीं रहा। वे जीवन के कलात्मक साहित्यिक बिम्बो की तो व्याख्या करेगें, किन्तु जीवन से दूर रहेगे। सर्वत्र क्षोभ, कष्ट, अन्याय और उत्पीड़न के दृश्य दिखाई दे रहे हैं। समाज के भीतर विभिन्न वर्गों की खाइयाँ और भी चौड़ी हो गयी हैं। यहाँ तक कि मध्यम वर्ग में भी दो श्रेणियाँ पैदा होकर अपनी परस्पर दूरी खतरनाक तरीके से गहरी और चौड़ी कर रही हैं। जनपद स्कूल के शिक्षक और युनिवर्सिटी- प्रोफेसर के बीच, गरीब जनता और खादीधारी नेता के बीच, किसान मजदूर और पूँजीपति-जमींदार के बीच खाइयाँ मुँह फाड़े खड़ी हैं। इनके बीच मानव सम्बन्ध तक टूट फूट गये हैं। समाज में शोषकों, उत्पीड़तो और उनके साथियों का जोर बढ़ गया है। नयी कविता के क्षेत्र में भी दो दल तैयार हो रहे हैं। एक दल वह है जो उच्च मध्यमवर्ग का अंग है, दूसरे वे हैं जो निचले गरीब मध्यम वर्ग से सम्बन्धित हैं। उनकी वर्गीय प्रवृत्तियाँ न केवल उनके काव्य में वरन् साहित्य सम्बन्धी उनके सिद्धान्तों में, परिलक्षित होती हैं। मुक्तिबोध कहते हैं कि -

''ध्यान में रखने की बात है कि नयी कविता के अभ्युदय और प्रभाव के विस्तार के साथ ही काव्य सौन्दर्य के सम्बन्ध में प्रश्न उठाये गये हैं। ऐसा हमेशा होता आया है कि नयी काव्य प्रवृत्ति के उदय के साथ ही काव्यात्मक प्रभाव के सिद्धान्तों, साहित्य सिद्धान्तों की पुनर्व्याख्या हो। किन्तु नयी कविता वालों ने काव्य-सौन्दर्य सम्बन्धी जो व्याख्या की, वह भले ही चाहे जितनी लचीली बना ली जाय, उन सिद्धान्तों का प्रयोग करते समय ऐसी विशेष भावनाओं और उनकी अभिव्यक्ति को असुन्दर समझा गया, जिनका सम्बन्ध हासग्रस्त सभ्यता के विरोध से है। संक्षेप में कह सकते हैं कि काव्याभिरूचि का औचित्य-स्थापना के लिये सिद्धान्त लाये गये है। ''दूसरे शब्दों में, अपनी काट की कविता - अपने फ्रेम में फिट होने वाली कविता को तो कविता माना गया चाहे वह महत्वहीन गद्य ही क्यों न हो, पर उसके विपरीत, राजनैतिक आवेश से सम्पन्न काव्य विद्रूप करार दिया गया या उसकी जान बूझकर उपेक्षा की गयी। जहाँ भी ऐसा प्रतीत हुआ कि अन्य की जीवन दृष्टि उत्पीड़ित जनता का पक्ष ले रही है, वहीं नाक-भौं सिकोड़े जाने लगे। ये सौन्दर्यवादी लोग यह भूल गये कि बंजर काले स्याह पहाड़ में भी एक अजीब वीरान भव्यता होती है। गली के अन्धेरे में उगे छोटे से जंगली पौधे में भी एक विचित्र संकेत होता है। विशाल व्यापक मानव-जीवन में पाये जाने वाले भयानक संघर्ष के रौद्र रूप तो उनकी सौन्दर्याभिरूचि के फ्रेम के बाहर थे। आप मुझे क्षमा करेगें यदि मैं यह कहूँ कि नयी कविता में आवेश के पंख काट दिये गये, कल्पना को अपने पिंजरे में पालकर रखा गया। उसे मानव जीवन को मूर्त और साक्षात् करने वाली रचनात्मक शक्ति के रूप में उपस्थित नहीं किया गया। क्योंकि वह एक विशेष प्रकार की भद्रजनोचित सौन्दर्याभिरूचि के फ्रेम में खिलाफ बैठती है। व्यक्ति मन की बात करके आत्मा की महान, दुर्गम, विप्लवकारी ज्ञानमूलक शक्ति को भुला दिया गया। 'लघु मानव' के सिद्धान्त का प्रचार किया गया।

आधुनिक भाव बोध को हम इस प्रकार से भी कह सकते हैं। कि अपनी खुद की जिन्दगी और दोस्तों की जिन्दगी के तजुर्बे से बता सकता हूँ कि अन्याय के खिलाफ आवाज बुलन्द करना आधुनिक भाव-बोध के अन्तर्गत हैं। आधुनिक भाव-बोध के अन्तर्गत यह भी है कि मानवता के भविष्य निर्माण के संघर्ष में हम और भी अधिक दन्तचित्त हों, वर्तमान परिस्थिति को सुधारें, नैतिक ह्रास को थामें, उत्पीड़ित मनुष्य के साथ एकात्म होकर उसकी मुक्ति की उपाय-योजना करें। क्या यह आधुनिक भाव-बोध के अन्तर्गत नही है कि मैं अपनी लेखनी द्वारा किसी विशेष लोकादर्श के लिये कविताएँ लिखूँ ? क्या जब बंगाल में अकाल पड़ा तब महादेवी से लेकर बच्चन तक ने, मैथिलीशरण गुप्त से लेकर मेरे जैसे तुच्छ कवि ने, कविताएँ नहीं लिखी थी ? क्या यह बात किसी से छिपी है कि कैसी श्रेष्ठ कविताओं का संकलन निकला और उसके पैसे अकाल फण्ड में गये ? यह सभी आधुनिक भाव-बोध के अन्तर्गत ही आयेगें।''[12]

मुक्तिबोध जी सन् 1937 से कविताएं लिख रहे हैं। कविता में कहाँ फ्राड़ होता है, यह वे जानते थे। फ्राड को आप कौशल भी कह सकते हैं। नयी कविता का कवि बहुत सचेत है, वह काफी फ्राड करता है। दूसरे शब्दों में यह आवश्यक नहीं है कि काव्य की वास्तविक रचना क्षण युगपत्-रूप से, हृदय के द्रवण का, चित्त की रसात्मकता का, भी क्षण हो, हृदय में संचित प्रतिक्रियाएँ, अनुभव , आवेशमय अनुरोध, अतृप्त स्वप्नराशियाँ, जो दृश्य में संचित हैं उत्थित, तरंगित और प्रवाहित होकर संवेदनात्मक उद्देश्यों की दिशा में जब उमड़ने लगती हैं, और साथ ही जीवन-दृष्टि से ज्योतित होकर अन्तनेत्रों के सम्मुख दृश्यमान होने लगती है तब वस्तुत: हमें एस्थेटिक इमोशन प्राप्त होता है। ऐसे एस्थेटिक इमोशन्स हमें लिखते वक्त ही नहीं, सड़क पर चलते हुए भी प्राप्त होते हैं। माँ से, मित्रों से बातचीत करते समय जुलूस में जाते समय, किसी फूल या पत्ते को देखकर किसी सुन्दर गाँव का दर्शन कर, किसी श्रद्धेय व्यक्ति का दर्शन पाकर हमें प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे एस्थेटिक इमोशन केवल लेखक में ही नहीं होते, साधारण जन में भी आते-जाते हैं। जनता स्वयं एस्थेटक इमोशन का भण्डार है। फिर हमीं क्यों कवि हो जाते हैं, वे क्यों नहीं होते? यह इसलिये नहीं हो पाता कि वे भावों की व्यक्तिबद्ध दशा से हटकर, ऊपर उठकर, सामान्य और उच्चतर रस दशा में चले जाते हैं फिर भी कभी-कभी वे उनका ऐट्रैक्शन-विलगीकरण-नहीं कर पाते। किन्तु बहुत बार वे लोग बातचीत के दौरान वे वैसा कर जाते हैं। तब उनकी बात का प्रभाव रसात्मक होता है और वाणी द्वारा प्रस्फुटित उनकी अभिव्यक्ति की अपनी शैली होती है। जिसमें प्रभावोत्पादक शब्द योजना रहती है।

संक्षेप में नये कवियों को यह बताया गया है कि वे तथाकथित एस्थेटिक इमोशन तक ही सीमित रहें। हृदय में संचित वास्तविक जीवनानुभवों को यदि वे एस्थेटिक इमोशन के क्षण में बहकर नहीं आते तो यह कहना गलत होगा। यह एक सिद्धान्त है, जिसके पीछे न केवल विशेष सौन्दर्यानुरूचि है वरन् विशेष प्रकार के विषय-संकलन का आग्रह भी है। यह सिद्धान्त का मुख्य हेतु व्यक्ति को व्यक्तिबद्ध बनाया जाय। यह सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अनुचित और व्यावहारिक दृष्टि से प्रतिक्रियावादी है। नयी कविता के आचार्यो की कविता में कितना एस्थेटिक इमोशन है। इसे एक कवि ही ज्ञात कर सकता है।

सौन्दर्याभिरूचि के अपने सेंसर्स होते हैं। इन भीतरी थानेदारों के हाथ में पड़कर, हृदय में संचित महत्वपूर्ण वास्तविक अनुभव संवेदनाएँ स्वतन्त्र नहीं रहतीं, दबा दी जाती हैं। कभी-कभी वे अनुभव-संवेदनाएँ जाग उठती हैं, लेखक उन्हें व्यक्त करने का प्रयत्न करता है। किन्तु सक्षम सुन्दर अभिव्यक्ति तो अविरत साधना और श्रम के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। उन भावों से सम्बन्धित अभिव्यक्ति को साधना तो उसने कभी की नहीं, इस लिये उसकी वह अभिव्यक्ति अधूरी और पंगु दोनों हो जाती है। मुक्तिबोध कहते हैं- ''यदि आज का लेखक ईमानदार है तो अपने प्रति और अपने युग के प्रति अधिक उत्तरदायी होना होगा। उसे अपनी सौन्दर्याभिरूचि के सेंसर्स जरा ढीले करने होगें, विषय-संकलन को स्वानुभूत विवेक के विश्व-चेतस् हाथों में सौंपना होगा। अभिव्यक्ति क्षमता बढ़ाने के लिये अथक प्रयास करना होगा। अधिक साहस और ज्यादा हिम्मत से काम लेना जरूरी है।''[13]

मैं यह नहीं कहता हूँ कि अपने अन्तर्जीवन के विविध पक्षों के चित्रण में सौन्दर्य नहीं है या आत्मपरकता गलत है। मैं यह कह रहा हूँ कि अपने अन्त:करण में स्थित जीवनानुभवों को उनके सम्पूर्ण वाह्य सन्दर्भो के साथ उपरिथत करना आवश्यक है। हम अपने आपकों यदि काट देगें, जैसा कि सौन्दर्याभिरूचि के नाम पर हम अपने आप को काट रहे हैं, तो फिर कुछ नहीं बचेगा। इसलिये आवश्यक है कि हम अपने आपको सम्पूर्ण रूप में देखें। प्रगतिवाद मनुष्य जीवन का केवल राजनैतिक पक्ष उठाया, उसने सम्पूर्ण मनुष्य को अपना काव्य का विषय नहीं बनाया। यदि इसी प्रकार नयी कविता (भिन्न-प्रकार से) एकांगी हो जाती है। उसके लिये यह कल्याण कर सिद्ध नहीं होगा। काव्य-रचना केवल व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया नहीं, वह एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है। उसमें जो सांस्कृतिक मूल्य परिलक्षित होते हैं, वे व्यक्ति की अपनी देन नहीं, समाज या वर्ग की देने हैं। यह ध्यान रखने की बात है कि नयी कविता वर्तमान ह्रासगस्त, अध:पतनशील सभ्यता की असलियत को जब तक पहचानती नहीं, सभ्यता के मूलभूत प्रश्नों से अपने को जब तक जोड़ नहीं लेती, मानवता के भविष्य निर्माण के संघर्ष को संयोजित नहीं कर पाती, जब तक उसमें उत्पीड़ित और शोषित मुखों के बिम्ब दिखाई नहीं देते, उनके हृदयों का आलोक नहीं दिखाई देता तब तक हमारा कार्य अधूरा रहेगा।

आज का कवि तब-तक अपनी चेतना का संस्कार नहीं कर सकता जब तक वह आत्मचेतस नहीं हो जाता। इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि कवि हृदया आज के जगत् के मूल द्वन्दों का अध्ययन करें अर्थात अपनी सम्पूर्ण चेतना द्वारा आज की वास्तविकता की तह में धंसे और ऐसी विश्व दृष्टि का विकास करें, जिससे व्यापक जीवन-जगत् की व्याख्या हो सके, और अन्तर्जगत के महत्वपूर्ण आन्दोलन का बोध हो। तभी उसका विषय-संकलन सम्बन्धी विवेक भी अधिक पुष्ट होगा। आज के विकासमान कवि को तीन क्षेत्रों में एक साथ संघर्ष करना है-1-तत्व के लिये संघर्ष, 2 अभिव्यक्ति सक्षम बनाने के लिये संघर्ष, 3- दृष्टि-विकास के लिये संघर्ष। तत्व के लिये संघर्ष का अर्थ अपने वास्तविक जीवनानुभव को सन्दर्भ-सहित व्यक्त करने के लिये उचित विषय-संकलन के विवेक से सम्बन्धित है। हमें अपने ही युग के ऐसे सारभूत बिम्बों और मूल प्रवृत्तियों को उठाना और चित्रित करना होगा, जिससे कि हम अपना युग वस्तुत: जी सके और हम सच्चे अर्थों में समसामयिक हो पायें । विषय संकलन का विवेक हमारी अपनी अनुभूतिजन्य मार्मिक ज्ञान-दृष्टि से उत्पन्न होगा। इसीलिये यह आवश्यक है कि हमारा ध्यान दृष्टि विकास की ओर जायें और हम आज के तनाव भरे जगत् की मूल गति और दिशा को अच्छी तरह समझा सके।

(ख) मुक्तिबोध के कथा साहित्य पर उनके समीक्षा सिद्धान्तों का प्रभाव

मुक्तिबोध का व्यक्तित्व, साहित्य, और साहित्य समीक्षा एक दूसरे से गहरे में अन्त:सम्बन्धित और सम्पृक्त हैं। इससे यह भ्रम हो सकता है कि उसमें कृति व्यक्तित्व ने साहित्य-समीक्षा में और उनके समीक्षक व्यक्तित्व ने साहित्य-क्षेत्र में अवैध प्रवेश किया हो पर ऐसा भ्रम निमूल्य ही है क्योंकि ऐसा कहने से कोई समुचित आधार तैयार नहीं होता। इसमें सन्देह नहीं कि उनकी समीक्षाएँ मूल रूप में एक कवि की, रचनाकार की समीक्षाएँ हैं। जिसमें अपने व्यक्तित्व में वाह्य यथार्थ की आभ्यन्तरीकरण-प्रक्रिया को घटित होते देखा है और सृजन प्रक्रिया की राह पर चलते हुये हर मोड़ को देखा, समझा और परखा। ''अपनी काव्य जीवन की यात्रा में उन्हें जो चिन्तन करना पड़ा, उसी से उनकी समीक्षाएँ अनुप्रेरित हैं। यही कारण है कि यहाँ साहित्य सम्बंधित सिद्धान्तों और प्रश्नों का जड़ीभूत शास्त्रीय विवेचन-विश्लेषण नहीं है। उनका समीक्षक व्यक्तित्व, रचनाकार व्यक्तित्व से अलगाया नहीं जा सकता। ये दोनों उनके व्यक्तित्व में सृजनात्मक स्तर पर एक दूसरे से सहज रूप में जुड़े हुए हैं।''[14]

मुक्तिबोध ने मार्क्स-दर्शन का गहन अध्ययन और मनन किया था। इस दर्शन ने उनकी जीवन-जगत् सम्बन्धी धारणाओं को निर्धारित और सुनिश्चित किया था। उनके कथा साहित्य पर इनका गहरा प्रभाव पड़ा था। पर, जीवनानुभवों की विविधता और व्यापकता जैसे उनके सामने प्रत्यक्ष होती गई, मार्क्स-दर्शन से पैदा हुई वैचारिक जकड़ ढीली होती गई। उनकी दृष्टि इस दर्शन की एकांगिकता और सीमा को पहचान पाने में उत्तरोत्तर समर्थ हुई। इस 'पहचान' के बाद वे इस दर्शन के प्रभाव बिम्ब से बाहर आने की बराबर कोशिश करते रहे। इस कोशिश में वे कुछ हद तक सफल हुये भी, पर मार्क्सवाद के सिद्धान्तों और विचारों ने उनके दिल-दिमाग में जो 'कन्डीशनिंग' पैदा कर दी थी, उसकी जड़े बहुत गहरी थीं ओर जूझने के बावजूद, वे उससे उबर न पाए थे। उन्होंने सही मायने में खुद से लड़ाई की थी, आत्मसंघर्ष किया था । इस लड़ाई को दो स्तरों पर विभक्त कर सकते हैं- रचना स्तर पर और विचार स्तर पर। इस आत्मसंघर्ष ने ही उन्हें अपने समूचे व्यक्तित्व को शोधने की दिशा में प्रवृत किया। इस शोधन-प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप, उनकी मार्क्सीय सामाजिक दृष्टि का संस्कार हो सका और वह अपेक्षत्या अधिक व्यापक, सहज और साहित्यिक-समीक्षा के मूलाधार के रूप में सार्थक हो सकी। अत: साहित्यिक समीक्षा के मूलाधार के रूप में सामाजिक और आर्थिक प्रक्रियाओं पर उनका बल देना कोरा 'एकेडमिक' नहीं है। सिर्फ मार्क्सीय नहीं है। ''उनकी समीक्षाओं में उनका सम्पूर्ण द्वन्दपूर्ण व्यक्तित्व 'इन्वाल्वड्' है। उन्होंने साहित्य की विशिष्ट प्रकृति की सृजनशील प्रक्रियाओं के परिपेक्ष्य में सामाजिक और आर्थिक भूमिकाओं का निरूपण करने का प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न कितना सामाजिक, प्रमाणिक और वस्तु है।''[15]

मुक्तिबोध ने सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार की समीक्षाएँ लिखी हैं। उनके आलोचनात्मक निबन्धों के संग्रह-'आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध' में तेरह निबन्ध हैं। जिनमें से अधिकांश सैद्धान्तिक विषयों पर है, 'काव्य की रचना प्रक्रिया' 'सौन्दर्य प्रतीति और सामाजिक दृष्टि' 'नवीन समीक्षा का आधार' 'साहित्य और जिज्ञासा' 'अन्तरात्मा और पक्षधरता' और 'समीक्षा की समस्याएँ' आदि। इस संग्रह में कई निबन्ध ऐसे है, जिनमें नयी काव्य प्रवृत्यिों के संदर्भ में कतिपय महत्वपूर्ण मौलिक प्रश्न उठाये गये हैं और उनका सैद्धान्तिक विवेचन, विश्लेषण किया गया है। कुछेक निबन्ध इसमें ऐसे भी हैं जिनसे उनकी व्यावहारिक समीक्षा -दृष्टि का पता चलता है जैसे: शमशेर मेरी दृष्टि में' और 'सुमित्रानन्दन पंत' एक विश्लेषण 'उनकी व्यावहारिक समीक्षा मेरूदण्ड तो उनका ग्रन्थ 'कामायनी एक पुनर्विचार' ही है। जिसमें फैन्टेसी की दृष्टि से 'कायामनी' पर विचार किया गया है। साहित्य सम्बन्धी ऐसे ही बुनियादी प्रश्न उठाए गये हैं। डायरी विधा के अनौपचारिक सहज माध्यम से उनकी पुस्तक 'एक साहित्यिक की डायरी' में इन तीनों पुस्तकों के सम्बन्ध में यह बात उल्लेख योग्य है कि-"इन तीनों में मान्यताओं, स्थापनाओं और मूल विचारों के धरातल पर कोई विरोध या अंसगति नही है। इनमें एक मूलभूत केन्द्रिय दृष्टि लक्षित की जा सकती है, जिसमें वे हर, साहित्य विषय को देखते हैं। इससे विवेचन-विश्लेषण में जड़ता या एक जैसा पन आ जाने का खतरा रहता है, पर समीक्ष्य विषयों को विभिन्न कोणों से और विविध आयामों में प्रस्तुत करने में मुक्तिबोध को कोई कठिनाई नहीं हुई।"[16]

मुक्तिबोध की समीक्षा दृष्टि का यह केन्द्रीय तत्व उनकी रचना-दृष्टि और कवि कर्म सम्बन्धी धारणाओं से पर्याप्त प्रभावित है। उनके अनुसार रचनाकार अपने अन्तर में व्याप्त जीवन-जगत को प्रकट करता है। उनका विचार है-''काव्य रचना केवल व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया नहीं, वह एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है और फिर भी वह एक आत्मिक प्रयास है।"[17] काव्य रचना को सांस्कृतिक प्रक्रिया मानने के मूल में उनका तर्क यह है कि उसमें जो सांस्कृतिक मूल्य परिलक्षित होते हैं, वे व्यक्ति की अपनी देन नहीं समाज या वर्ग की देन है। इसमें सन्देह नहीं है कि काव्य रचना के पीछे सामाजिक, सांस्कृतिक प्रभाव संस्कार रहते हैं और कवि के व्यक्तित्व के मूल स्वभाव के अनुरूप और सृजन-प्रक्रिया के दौरान ये प्रभाव संस्कार कोरमकोर बदल जाते हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भ रचनाकार की मनोभूमि को निर्मित कर सकते हैं। रचना के प्रेरक तत्व बन जाते हैं।

''वैचारिक दृष्टि से मुक्तिबोध मानव वास्तविकता और समाज के प्रति प्रतिबद्धता के कायल हैं, और इसी दृष्टि से काव्य में सौन्दर्य की प्रतिष्ठा और परख पर बल देते हैं। दूसरी ओर कथा साहित्य के रचना स्तर पर उन्हें कलात्मक प्रतिक्रियाओं की पूरी जानकारी है, अतः वे सौन्दर्य प्रतीति का अविछिन्न संबंध रचना प्रक्रिया के साथ जोड़ते हैं। एक ओर तो वे सामाजिक दृष्टि के बिना सौन्दर्य- प्रतीति असम्भव मानते हैं (आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध) तो दूसरी ओर उनकी धारणा है कि सृजन प्रक्रिया से हटकर सौन्दर्य प्रतीति असम्भव हो जाती है।"[18] (एक साहित्यिक की डायरी) दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि सामाजिक दृष्टि और सौन्दर्य प्रतीति में गुणात्मक रीति से कोई अन्तर नहीं है। उन्होंने एक ओर तो सौन्दर्य प्रतीति को सामाजिक दृष्टि से सम्बद्ध किया है तो दूसरी ओर सृजन प्रक्रिया से। ऐसा करके उन्होंने सौन्दर्य प्रतीति को गहरे स्तरों पर उठाया ही है, सामाजिक दृष्टि को भी गहरी अर्थक्ता से संयुक्त किया है।"[19]

सैद्धान्तिक और तात्विक विवेचनों के साथ साथ, मुक्तिबोध ने अपने समय की समीक्षा शैलियों और दृष्टियों की भी गम्भीर मीमांसा की है। इनके मूल्य महत्व और सीमा को उन्होंने अपनी समीक्षा दृष्टि के केन्द्र में रखकर आंका है। प्रगतिवादी समीक्षा और समीक्षकों की उन्होंने अच्छी खबर ली है। वे मानते हैं कि आज किसी भी व्यवस्थाबद्ध जैसी विचारधारा का समाज में प्रभाव नहीं, इतना व्यापक सर्वांगीण और सघन प्रभाव नहीं कि लेखक सामाजिक वातावरण में से उसे खींच कर आत्मगति कर सके। इस मूल आधार को ग्रहण कर वे प्रगतिवादी और आदर्शवादी समालोचकों पर आरोप लगाते हैं कि वे बनते हुये साहित्य की जीवन भूमि से आसंपृक्त रह कर साहित्यिक जीवन और साहित्य सृजन की वास्तविक मानव भूमि इन दोनों के घनिष्ठ परस्पर सम्बन्धों के स्वरूप का इन दोनों के अपने-अपने विशिष्ट स्वरूप का आकलन करते हुये न्याय निर्णय प्रदान करते हैं। वास्तविक और विविध, नवीन साहित्यिक कृतियों का मार्मिक विश्लेषण तथा मूल्यांकन करना उन्हें अभीष्ट नहीं है। मुक्तिबोध का यह कथन अत्यन्त सटीक है और गहन सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक भी है।

मुक्तिबोध ने कथा साहित्य की सृजन प्रक्रिया का एक रचनाकार की हैसियत से विवेचन करने की कोशिश की है। उनके अनुसार कला के तीन क्षण होते हैं- जीवन का उत्कृष्ट क्षण, इस अनुभव का अपने कसकते-दुखते हुये मूल्यों से पृथक हो जाना और एक फैन्टेसी का रूप धारण कर लेना मानो वह फैन्टेसी अपनी आँखों के सामने खड़ी हो, इस फैन्टेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया के भीतर जो प्रवाह बहता रहता है वह समस्त व्यक्तित्व और जीवन का प्रवाह होता है। मुक्तिबोध ने सृजन प्रक्रिया के दौरान तीन महत्वपूर्ण प्रश्न उठाये हैं-"काव्य फैन्टेसी का प्रश्न, भाषा का प्रश्न, सौन्दर्य-प्रतीति और सामाजिक प्रतिबद्धता का प्रश्न।''[20] मुक्तिबोध ने फैन्टेसी प्रश्न को काव्य सृजन प्रक्रिया के बुनियादी महत्व के प्रश्न के रूप में उठाया है। और यहीं से अन्य प्रश्नों पर भी दृष्टिपात किया है। फैन्टेसी का जैसा विवेचन उन्होंने किया है, वह अत्यन्त गम्भीर है। मुक्तिबोध ने निःसन्देह सृजन प्रक्रिया और उसके दौरान उपलब्ध फैन्टेसी जैसे सौन्दर्य तत्वों का मौलिक और प्रामाणिक निरूपण किया है। यह जरूर है कि कुछेक स्थलों पर उनके निष्कर्ष उनके विवेचनों के सहज परिणाम प्रतीत नहीं होते। उनकी समीक्षा दृष्टि का यह बुनियादी द्वन्द्व है। जिसे उनकी समीक्षाओं में अनेक स्तरों पर देखा जा सकता है।

संदर्भ

1. सं. डॉ. लक्ष्मणदत्त गौतम, गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ. 76
2. सं. नेमिचन्द्र जैन, मुक्तिबोध रचनावली भाग-5, पृ. 232
3. सं. डॉ. लक्ष्मणदत्त गौतम, गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ. 77
4. मुक्तिबोध, आत्म संघर्ष तथा अन्य निबन्ध, पृ. 66
5. मुक्तिबोध, आत्म संघर्ण तथा अन्य निबन्ध, पृ. 99
6. सं. डॉ.लक्ष्मणदत्त गौतम, गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ. 80-81
7. सं. डॉ. लक्ष्मणदत्त गौतम, गजानन माधव मुक्तिबोध पृ. 82-83
8. सं. नामचन्द्र जैन, मुक्तिबोध रचनावली भाग-5, पृ. 186
9. सं.नेमिचन्द्र जैन, मुक्तिबोध रचनावली भाग-5, पृ. 160
10. सं. नेमिचन्द्र जैन, मुक्तिबोध रचनावली भाग-5, पृ. 160
11. सं. डॉ. लक्ष्मणदत्त गौतम, गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ. 213
12. सं. डॉ.लक्ष्मणदत्त गौतम, गजानन माधव मुक्तिबोध पृ. 213
13. सं. नेमिचन्द्र जैन, मुक्तिबोध रचनावली भाग-5, पृ. 160
14. सं. डॉ. लक्ष्मणदत्त गौतम, गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ. 76
15. सं. नेमिचन्द्र जैन, मुक्तिबोध रचनावली भाग-5, पृ. 164
16. सं. डॉ. लक्ष्मणदत्त गौतम, गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ. ७८
17. सं. नेमिचन्द्र जैन, मुक्तिबोध रचनावली भाग-5, पृ. १९५
18. सं. डॉ. लक्ष्मणदत्त गौतम, गजानन माधव मुक्तिबोध पृ. 81
19. सं. डॉ.लक्ष्मणदत्त गौतम, गजानन माधव मुक्तिबोध पृ. 82
20. सं. नेमिचन्द्र जैन, मुक्तिबोध रचनावली भाग-5, पृ. 212

"सामाजिक न्याय व्यवस्था में नारी के अधिकार''- संस्कृत महाकाव्यों के परिप्रेक्ष्य में

डॉ० पूजा श्रीवास्तव

असि० प्रो०-संस्कृत विभाग, महिला महाविद्यालय कानपुर

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है यह पूर्णत: सत्य है। मनुष्य किसी भी परिवार में जन्म लें उसका प्रारम्भ समाज के एक सदस्य के रूप में होता है। समाज में विभिन्न प्रवृत्तियों के लोग होते है, उनके बीच एक ओर तो सद्भाव होता है वो दूसरी ओर वाद-विवाद । फिर भी मनुष्य एक दूसरे के सहयोग के बिना आगे नहीं बढ़ सकता। मनुष्य और समाज को व्यवस्थित करने में राज्य का अपना व्यापक योगदान होता है। अत: समाज एवं राज्य का प्रमुख लक्ष्य अपनी सीमाओं के अर्न्तगत न्याय की स्थापना और रख-रखाव है। न्याय के बिना कोई भी समाज समृद्ध नहीं हो सकता और न ही कोई राज्य कल्याणकारी बन सकता है।

वस्तुत: न्याय की धारणा सम्यक् सामाजिक सम्बन्धों का एक रूप होती है। न्याय स्वयं में अमूर्त रूप है। उसकी अभिव्यक्ति सामाजिक न्याय के व्यवहार में ही सम्भव है। न्याय समाज व्यवस्था का एक चिन्तन मात्र है जबकि सामाजिक न्याय उसका व्यवहार। सामान्यत: सामाजिक न्याय का अभिप्राय है सम्पूर्ण समाज में न्याय की परिकल्पना। यह व्यक्ति एवं समूह की गरिमा को स्वीकार करने, धर्म, जाति, वंश, रंग, लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव को न मानने तथा समाज के हित में सभी को न्यायोचित भागीदारी के विचार पर आधारित है जोकि समाज में सभी को आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक रूप से समान सिद्ध करता है। इसके अन्तर्गत नागरिक अधिकार, समानाधिकार, एवं मानवाधिकार सभी सन्निहित है।

व्यक्ति को अपने समग्र विकास एवं अपने विचारों को प्रकट करने के लिए अधिकारों की आवश्यकता पड़ती है। अधिकार ही मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रबलता प्रदान करता है। नारी अधिकार इसी क्रम की एक सीढ़ी है जिसके योगदान से होकर नारी अबला से सबला तक सफर तय करती है। नारी समाज की वह आधारशिला है जिस पर सम्पूर्ण समाज की उन्नति व अवनति आधारित होती है।

भारतीय इतिहास के विभिन्न कालों में नारी की उन्नति, अवनति व उनके अधिकार का इतिहास सर्वथा भिन्न है। वैदिक काल पर दृष्टिपात करें तो हमें ज्ञात होता है कि उस समय नारी को अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था। विकास की कोई भी ऐसी श्रृंखला न थी जिस पर नारी अपने चरण रखने से वंचित रह सकी हो।

प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में-'यत्र नार्युस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।[1]

कहकर नारी समाज के प्रति सर्वाधिक सम्मान को प्रदर्शित किया गया है। संस्कृत महाकाव्यों में भी नारी अत्यन्त गौरवपूर्ण रूप में चित्रित हुई है। क्योंकि अधिकांश महाकाव्य ऐतिहासिक इतिवृत्त को आधार बनकर लिखे गये है। महाकाव्यों की कथावस्तु में वर्णित नारी की तत्कालीन सामाजिक, शैक्षिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक अधिकारों से सम्बन्धित जानकारी यत्र-तत्र उपलब्ध होती है। नारी को एक योग्य व्यक्तित्व से परिपूर्ण करने के लिए शिक्षा का महत्व प्रारम्भिक काल से ही रहा है। क्योंकि जीवन के सर्वांगीण विकास का माध्यम ही शिक्षा होती है। वैदिक युग की तरफ दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि उस समय नारीयां शिक्षित हुआ करती थी। वेद पढ़ने का स्त्रियों को समान अधिकार प्राप्त था। मन्त्रदृष्टा ऋषियों के समान ही बहुत सारी मन्त्रदृष्टी नारियां अदिति, आपाला, इन्द्राणी, लोपामुद्रा आदि ने ऋग्वैदिक मन्त्रों की रचना की। वेद अध्ययन हेतु उपनयन के अधिकार से भी नारियां वंचित नही थी। उपनिषद काल में भी कई दार्शनिक स्त्रियों की उच्चकोटि की विद्वता का परिचय मिलता है केवल शिक्षा ही नहीं नारी जीवन के सभी क्षेत्रों में सुख और शान्ति का आलोक बिखरा हुआ था, परन्तु धीरे-धीरे समय व परिवर्तन के साथ नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय होती गई एवं नारी शिक्षा का पतन होने लगा। लेकिन महाकाव्यों में कहीं भी नारी शिक्षा के पतन का उदाहरण परिलक्षित नही होता है अपित कुछ एक उदाहरण को छोड़कर महाकाव्यों में नारियां शिक्षित प्रतीत होती थी। महाभारत में वर्णित उच्च कुलों की नारियां विविध प्रकार के विधाओं में निष्णात होती थी। महाभारत के शान्तिपर्व में एक सम्पूर्ण अध्याय सुलभा की दार्शनिक विषय में विद्वता का परिचायक है। जिसमें सुलभा द्वारा योग, समाधि, मोक्ष, जैसे गूढ विषयों पर राजा जनक के साथ शास्त्रार्थ हुआ और वाणी की विशेषता बताते हुए मोक्ष की दीक्षा प्राप्त की।

इदं पूर्वमिदं पश्चाद् वक्तव्यं यद् विवक्षितम्।
क्रमयोगं तमप्याहुर्वाक्यं वाक्यविदो जना:।।[3]

अर्थात् परिगणित गुणों और दोषों में से अमुक गुण या दोष पहले करना चाहिए और अमुक को पीछे कहना अभीष्ट है इस प्रकार जो पूर्वापर के कम का विचार होता है उसका नाम क्रम है और जिस वाक्य में ऐसा क्रम हो, उस वाक्य को वाक्य वेत्ता विद्वान कम युक्त कहते हैं।

इसी प्रकार सभा पर्व में जब द्रोपदी को पाण्डवों द्वारा द्यूतक्रीड़ा में हार जाने के पश्चात् दु:शासन सभा में घसीटकर लाता है तो वह वहाँ उपस्थित गुरूजनों

से धर्म विषयक प्रश्न करती है और धिक्कारती है।4 इससे पता चलता है कि वह एक उच्च शिक्षित विदुषी युवती थी जिसे धर्मविषयक गूढ़ बातों का ज्ञान था। शिक्षित होने के कारण ही नारी अपनी सन्तान के प्रति सर्वश्रेष्ठ गुरू के रूप में मानी गई है।5

संस्कृत महाकाव्यों में राजनीति का क्षेत्र भी नारियों से अछूता नही था। किरातार्जुनीयम् महाकाव्य में युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरित करती हुई द्रोपदी ने अनेक युक्तियाँ दी है –

विहाय शान्ति नृप धाम तत्पुनः प्रसीदसन्धेहि वधाय विद्विषाम् ।
व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहाः शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः ।।
पुरः सराधामवतां यशोधनाः सुदुःसहं प्राप्य निकारमीदृशम् ।
भवादृशावेदधिकुर्वते रतिं निराश्रया हन्त हता मनस्विता।।[6]

अर्थात् हे राजन् शान्ति को त्याग कर उस जगत् प्रसिद्ध तेज को शत्रुओं के विनाश के लिए पुनः धारण करें, निस्पृह मुनिजन (कामादि) अन्तःशत्रुओं को जीतकर शान्ति से सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं राजा लोग नहीं, वे तो पराक्रम से ही सिद्धि को प्राप्त करते हैं। तेजस्वियों के अग्रेसर आप के सदृश यशोधन इस प्रकार के असहा अपमान को प्राप्त कर यदि सन्तोष कर बैठेंगे तो खेद की बात है, मानिता निराधार होकर नष्ट हो जायेगी।

रामायण महाकाव्य में अयोध्याकाण्ड के अवें सर्ग में एक स्थान पर राम के वन गमन पर सीता को राजमुकुट देने का प्रस्ताव रखसे हुए यह कहना कि–

आत्मा हि दाराः सर्वेषां दारसंग्रहवर्तिनाम्।
आत्मेयमिति रामस्य पालयिष्यति मेदिनीम्।।[7]

अर्थात् 'सम्पूर्ण गृहस्थो की पत्नियां उनका आधा अंग है। इस तरह सीता देवी भी श्रीराम की आत्मा है अतः उनकी जगह ये ही राज्य का पालन करेंगी। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय के समाज में राजा के आसन पर स्त्री को आरूढ़ किये जाने पर कोई आपत्ति नही थी।

महाभारत महाकाव्य में अनेको विदुषी महिलायें थी। वन पर्व में युधिष्ठिर के साथ राजनीतिक तर्क-वितर्क करती हुई द्रोपदी में क्षत्रिय की महाशक्ति का परिचय मिलता है।

द्रोपदी ने एक गृहशिक्षक से वृहस्पति राजनीति की शिक्षा प्राप्त की थी। पंडिता, पतिव्रता, धर्मज्ञा, धर्मदर्शिनी आदि विशेषणों से उनके पांडित्य का अंदाजा लगाया जा सकता है –

प्रिया च दर्शनीया च पंडिता च पतिव्रता।[9]

महर्षि वसिष्ठ की पत्नी अरुन्धती उन्हीं के समान शील और विदुषी थी –

समानशीलां वीर्येण वसिष्ठस्य महात्मनः।''[10]

ऋषि देवता तथा पितृगण शास्त्रतत्व के बारे में उनसे उपदेश सुना करते थे। सब शास्त्रों पर उनका पूर्ण अधिकार था।'' वेद-वेदान्त आदि विषयों में भी किसी-किसी नारी को असाधारण पांडित्य प्राप्त था। शिवा नाम की एक नारी ने वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करके तपस्या में अमरता प्राप्त की थी।[12]

नैषधीय महाकाव्य में नारी को राजनीति का ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार था इस बात का अनुमान दमयन्ती की सखियों द्वारा दमयन्ती को कहे हुए इस वक्तव्य से लगाया जा सकता है। हे नीतिशास्त्र की पंडिता, अपनी इन रहस्यज्ञाता दोनों सखियों की अब और उपेक्षा मत करना।

ता बहिर्भूय वैदर्भीमूचुर्नीतावधीतिनि।
उपेक्षते ते पुनः सख्यौ मर्मज्ञो नाधुनाऽप्यम।।''[13]

रघुवंश के उन्नीसवें सर्ग में राजकुमार के अनुपस्थिति में राजा के देहान्त होने पर उसकी पटरानी को सिंहासन पर बैठाने का उल्लेख प्राप्त होता है।''[14]

तैः कृत प्रकृति मुख्य संग्रहैराशु तस्य सह धर्म चारिणी।
साधु दृष्टशुभगर्भ लक्षणा प्रत्यपद्यत नराधिपश्रियम्।।
तस्यास्तथाविधनरेन्द्रविपक्तिशोका
दुष्णैर्विलोचन जलैः प्रथमाभितप्ता:
निर्वापितः कनककुम्भमुखोज्झितेन
वंशामिषेकविधिना शिशिरेण गर्भः।।

अर्थात् मन्त्रियों ने प्रधान नागरिकों को इकट्ठा किया और उनकी सहमति से राजा की पटरानी को सिंहासन पर बैठा दिया जिसमें गर्भ लक्षण दिखाई देते थे। राजा की गर्भवती रानी का अभिषेक हो जाने के पश्चात् विश्वासपात्र एवं मन्त्रियों की सम्मति के अनुसार विधिपूर्वक अपने पति के राज्य का काम किया।

महाभारत महाकाव्य में दासियां भी चौसठ कलाओं में निपुण थी ऐसा वर्णन प्राप्त होता है।

चतुः षष्ठि विशारदाः।।[15]

राजतरंगिणी में अनेक स्त्री शासिकाओं का उल्लेख प्राप्त होता है जिन्होंने राज्य संचालन में बड़े साहस का परिचय दिया था कश्मीर की रानी सूर्यमती ने देश में निरूपद्रव व्यवस्था संचालन में अद्वितीय श्रेय प्राप्त किया था। वह स्वयं राज्य के कार्यो को देखती थी। क्षमवर्तन की विधवा पत्नी दिद्दा ने तो अपने विरूद्ध चल रहे षड्यन्त से अपने राज्य की सुरक्षा की थी। रानियाँ शासन संचालन में मन्त्रीमण्डल से परामर्श लेती थी।

ततः समाश्रितैकांगा स्वयं स्वंत्सरदृयम्।

सुगंधा विदधे राज्यं स मित्रत्वेन तंत्रिणाम्।।''[17]

कदाचित् प्रजा भी रामियों को शासक नियुक्त करती थी। कश्मीर की प्रजा ने सुगन्धा को शासक बनाया था और उसने अपने नाम से सुगन्धा नगर बसाया था।[18]

उपर्युक्त प्रसंगों से यह ज्ञात होता है कि स्त्रियां राज्य व्यवस्था में भाग लेने की अधिकारिणी थी और अपने इस अधिकार का समुचित प्रयोग करते हुए नारियों अपनी योग्यता का प्रदर्शन करती थी।

नैषधीय महाकाव्य में नारी की ललित एवं नाट्यकलाओं में स्पष्ट भागीदारी दृष्टिगोचर होती है। विरह व्याकुल दमयन्ती के मनोविनोद के लिए उसकी सखियां नल एवं दमयन्ती का कृत्रिम रूप धारण करके उसका मनोविनोद करती थी।

यत्रकयाल किनलीकृतालीकण्ठे मृषामीममवीभवन्त्या।

तदृक्पथे दौहदिकोपनीता शालीन माधायि मधूकमाला।।''[19]

महाकाव्यों में ललितकलाओं में संगीत को सर्वोच्च स्थान दिया गया था जिसके अन्तर्गत गायन, वादन, एवं नर्तन का समावेश होता था नैषधीय महाकाव्य में राजा नल स्वयं एक निपुण गायक के रूप में चित्रित है तो राजकुमारी दमयन्ती भी उच्चकोटि की कलाविद् थी तथा गन्धर्व राजकुमारियों उनकी शिष्यायें हुआ करती थी –

शिष्याः कलाविधिषु भीमभुवो वयस्या वीणामृदुक्वणनकर्मणि याः प्रवीणाः।

आसीनमेनमुपवीणयितुं ययुस्ता गन्धर्वराजतनुजा मनुजाधिराजम्।।[20]

बुद्धचरितम् महाकाव्य में वर्णित नारी श्री ललित कला की शिक्षा में बहुत आगे थी। उच्च कुलों में इस शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जाता था। इतिहास प्रसिद्ध नृत्यांगना आम्रपाली को विधिवत् उपदेश करके महात्मा बुद्ध का उस पर सन्तुष्ट होने का वर्णन प्राप्त होता है –

बीजं विनिक्षिप्य यथा सुकाले. क्षेते कृति तुष्यति भूमि धारी।

तथा आम्रपाली विधिनोपदिश्य तुतोष तस्यां स च कालवेता।''[21]

इससे ध्वनित होता है कि उस समय राज दरबारों में नृत्य आदि ललित कलाओं का विशेष स्थान था। कन्याओं को नृत्य सीखने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था और आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण करने का भी। समाज में नृत्यांगनाओं को विशेष स्थान प्राप्त हुआ करता था।

महाभारत महाकाव्य में अस्त्र-शस्त्र शिक्षा के अतिरिक्त संगीत कला का भी अच्छा प्रचार था। नरेश भी संगीतानुरागी हुआ करते थे। राजघराने की महिलाओं तथा राजकुमारियों के लिए संगीतज्ञों की नियुक्ति का वर्णन प्राप्त होता है। विराटराज की आज्ञा से बृहन्नला रूपी अर्जुन ने उत्तरा को गीत, वादित्र तथा नृत्य की शिक्षा दी थी।[22]

महाकाव्यों में चित्रकला भी अपने विकास के चरम बिन्दु का स्पर्श करती थी। चित्रकार इतने प्रवीण हुआ करते थे कि वे तदनुरूप भाव से चित्र रचना कर देते थे। पुरूषों के अतिरिक्त स्त्रियां भी चित्रकला में अत्यन्त प्रवीण हुआ करती थी। नैषधीयचरितम् महाकाव्य में दमयन्ती की एक सखी ने उसके हस्तस्थित कमल को तत्काल चित्रित कर दिया था –

विलेखितुं भीममुवो लिपीषु सख्याऽतिविख्यातिभृतापि यत्र।

अशाकि लीलाकमलं न पाणिमपारि कर्णोत्पलमक्षि नैव।।[23]

महारानी दमयन्ती स्वयं एक कुशल चित्रकार थी। उन्होंने अपना एवं महाराज नल का एक संश्लिष्ट चित्र बनाया था –

वेत्थ मानेऽपि मत्त्यागदूना स्वं मात्रच तन्मिथः।

मददृष्टालिख्य पश्यन्ती व्यवधा रेखयाऽन्तरा।[24]

धार्मिक दृष्टि से स्त्री को समाज में उचित स्थान प्राप्त था। भारतीय समाज पुरूष प्रधान रहते हुए भी धार्मिक कृत्यों के सम्पादन में नारी की प्रधानता पुरूष के समकक्ष मानता रहा है। पत्नी रूप में स्त्री ही धार्मिक कार्यों की मूल कारण कहीं गयी है।[25]

तदर्शनादभूच्छम्भोभूयान् दारार्थमादरः।

क्रियाणां खलु धाणां सत पन्यो मूल कारणम्।।

क्योंकि समाज में गृहस्थियों द्वारा याज्ञिक अनुष्ठानों का विधान अनिवार्य था। विशेषकर पंच महायज्ञ भूत, नृ, देव, पितृ और ब्रह्म प्रत्येक यज्ञ गृहिणी द्वारा प्रतिदिन सम्पादित किये जाते थे। यह प्राचीन परम्परा आज के युग में भी दृष्टिगत होती है। संस्कृत महाकाव्यों में इसके महत्व का यत्र-तत्र वर्णन प्राप्त होता है। कालिदास के महाकाव्यों में कतिपय स्थानों पर यज्ञ सम्पादन का वर्णन प्राप्त होता है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार, पुरूष यज्ञ आदि में भाग तभी ले सकता था जब उसके साथ धर्मपत्नी भी हो-अयज्ञियो वा एव सोऽपत्नीकः। अष्टाध्यायी के अनुसार पत्नी शब्द, यज्ञों में स्त्री का उसके पति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध का सूचक है-पत्यु! याज्ञ संयोगे।'' याज्ञिक अनुष्ठान में पत्नी का पति के साथ बैठना उसका अधिकार है और इस तरह धार्मिक अनुष्ठानों में सहयोग देकर पत्नी पति को देव ऋण से मुक्त करती है। रामायण महाकाव्य में कतिपय स्थलों पर स्त्रियों द्वारा यज्ञ सम्पादन करना इस बात को प्रमाणित करता है कि स्त्रियों को धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। कुमार संभवम् में कालिदास के अनुसार धार्मिक क्रियाओं में पतिव्रता स्त्री ही मुख्य साधन कही गयी है। रावण की वन्दिनी बनाये जाने पर भी सीता द्वारा अशोक वाटिका में सन्ध्यावन्दन का उल्लेख –

संध्याकालमना: श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।

नदी चेमा शुभजला संध्यार्थे वरवर्णिनी।।'[29]

अर्थात् "यह प्रात: काम की संध्या (उपासना) का समय है, इसमें मन लगाने वाली और सदा सोलह वर्ष की-सी अवस्था में रहने वाली अक्षय यौवना जनक कुमारी सुन्दरी सीता संध्या कालिक उपासना के लिए पुण्यसलिला नदी तट पर अवश्य आयेगी।" यह सिद्ध करता है कि किसी भी स्थिति में स्त्रियाँ नित्य कर्मों का त्याग नहीं करती थीं। तत्कालीन समाज में ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं जहाँ पत्नी ने विपत्तियों में घिरे पति की रक्षा के लिए या उनके मनोरथ की सिद्धि के लिए स्वतन्त्र रूप से यज्ञानुष्ठान कर प्रार्थनाएँ की है। संस्कृत महाकाव्यों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में स्वयंवर प्रथा का प्रचलन था। कन्या को वर चयन की पूर्ण स्वतंत्रता थी, वह जिसे चाहती उसे वरण कर सकती थी किन्तु वह अपने योग्य वर का ही वरण करती थी जो उसके कुल की मर्यादा के अनुरूप होता था। वर चयन में कन्या की सहायता करने हेतु पिता द्वारा वर समारोह का आयोजन किया जाता था जिसे स्वयंवर का नाम दिया गया। महाकाव्यों में कुछ एक महाकाव्य को छोड़कर अन्य सभी महाकाव्यों में स्वयंवर का वर्णन प्राप्त होता है। नैषध महाकाव्य में वर्णित स्वयंवर समारोह में उपस्थित एक-एक राजा का वर्णन सरस्वती नामक स्त्री द्वारा दमयंती के समक्ष किया जाता है ताकि वह अपने इच्छित वर को वरण कर लें। द्रोपदी स्वयंवर में वर की योग्यता तक निर्धारित की गयी कि जो मछली का अक्षि-छेदन करेगा, द्रौपदी उसी का वरण करेगी -

इदं सज्यं धनु: कृत्वा सज्जैरेभिश्च सायकै:।

अतीत्य लक्ष्यं यो वेद्धा स लथा मत्सुतामिति।।'[31]

तथा रामायण महाकाव्य में सीता स्वयंवर में शिव धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाने की कठिन प्रतियोगिता रखी गयी-

इदं च धनुरूद्यम्य सज्यं य: कुरुते नर:।

तस्य में दुहिता भार्या भविष्यति न संशय:।।[32]

रघुवंश महाकाव्य में इन्दुमती स्वयंवर का अत्यन्त रमणीय वर्णन प्रस्तुत किया गया है। कुमारसंभव में इच्छित वर पाने के लिए पार्वती द्वारा पिता हिमालय की आज्ञा से तपस्या करने का उल्लेख मिलता है।

इयं महेन्द्रप्रभृतीन धिश्रियश्चतुर्दिगीशानवमत्य मानिनी।

अरूपहार्य मदनस्य निग्रहात पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति।।'[34]

नैषधीय महाकाव्य में मल को वर रूप में चाहने वाली दमयती ने पिता द्वारा अन्वेषित् वर को अस्वीकार कर देने का वर्णन प्राप्त होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि राज घरानों की कन्याएँ पिता द्वारा अन्वेषित वर को अस्वीकार कर देती थी तो साधारण परिवारों की कन्याओं पर वर चयन के अधिकार पर कोई प्रतिबन्ध नही होगा अर्थात् उन्हें भी वर चयन का पूर्ण अधिकार प्राप्त होगा, क्योंकि प्रजा में राजपरिवारों का अनुसरण करना तो सामान्य ही होता है। नारी को वर चयन की स्वतंत्रता का अधिकार समाज में श्रेष्ठ स्थिति का परिचायक है। परन्तु जिस समय महाकाव्यों की रचना हुई यह जरूरी नहीं कि उस समय स्वयंवर प्रथा ही प्रचलित थी क्योंकि लगभग सभी महाकाव्यों का मूल स्रोत रामायण व महाभारत ही रहे है कोई ऐसा महाकाव्य नही जो कवि की काल्पनिक शक्ति में धूला हुआ तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्ब हो।

आज के समाज के समान भारतीय संविधान में नारी को साम्पत्तिक विभाजन में पुत्र के समान भाग प्राप्त हुआ है। पर पुत्री अथवा पत्नी को पुत्रों के रहते सम्पत्ति विभाजन के समय उससे सलाह ली जाती है या उसे भी उसके भाग की सम्पत्ति दी जाती है इसका उल्लेख आज के साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में नही किया है, उसी प्रकार संस्कृत महाकाव्यों में भी रचनाकारों ने अपने महाकाव्यों में कहीं भी इस बात का उल्लेख नही किया परन्तु तत्कालीन समय में विधि निर्माताओं, व्यवस्थाकारों आदि ने कन्या को आर्थिक अधिकार अवश्य दिलवायें होंगे जिसका वर्णन प्राप्त नहीं होता है। किन्तु यह अवश्य है कि महाकाव्यों में नारी सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत चित्रित की गई है। यहाँ तक कि दासियाँ भी सुन्दर वस्त्राभूषण पहनती थी। जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि नारी के पास सम्पत्ति के रूप में जमीन जायदाद न सही, किन्तु कुछ न कुछ तो अवश्य था जिसकी वह अधिकारिणी थी।

वैदिक युग में कन्यायें उच्च शिक्षा ग्रहण करती थी और कई अवस्थाओं में अविवाहित रहती थी। इनकी स्थिति विवाहित कन्याओं से विपरीत होती थी। क्योंकि विवाहित कन्याओं को पाणिग्रहण के समय पिता से पर्याप्त सम्पत्ति प्राप्त होती थी, एवं विवाहोपरान्त पतिगृह में भी स्त्रीधन की अधिकारिणी होती थी। किन्तु आजीवन अविवाहित कन्या को दहेज या पति से मिलने वाला धन प्राप्त नहीं होता था। अत: पिता की सम्पत्ति में उनके द्वारा अपना अंश माँगना स्वाभाविक था। अविवाहित द्वारा पिता की सम्पत्ति से भाग प्राप्त करने का उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है। महाभारत महाकाव्य में भी कुंवारी कन्या के सम्पत्तिक अधिकारों में बराबर की भागीदारी का समर्थन किया गया ऐसा प्रतीत होता है।36

नारी को सम्पक्ति सम्बन्धी अधिकारों के विषय पर नही परन्तु विवादोस्पद समय दिये जाने वाले दहेज रूपी चल अथवा अचल सम्पक्ति का विवेचन महाकाव्यों में अवश्य प्राप्त होता है।

भर्तापि तावत्क्रथ कैशिकाना मनुष्ठितानन्तरजाविवाह:।

सत्वानुरूपाहरणीकृत श्री: प्रास्थपयद्राधवमन्वगाच्च।।'[37]

अर्थात अपनी छोटी बहन इन्दुमती का विवाह कर देने के बाद विदर्भ नरेश भोज ने अपनी सम्पत्ति के अनुसार दहेज देकर अज को विदा किया।

नैषधीय चरितम् में दमयन्ती एवं नव के विवाह के समय भीमराज के द्वारा दहेज में विविध सामग्री व सम्पक्ति देने का वर्णन प्राप्त होता है। विवाह में दी गई वस्तुएँ परिमाण में इतनी अधिक थी कि कोई उनकी गणना नहीं कर सकता था। अनेक गज-तुरंग स्थादि वाहन, सोने से परिपूर्ण स्वर्णकुम्भ, मतवाले गजराज, असंख्य रत्नों के पुंज। आशय यह है कि राजा भीम ने जामाता नल को प्रचुरतम यौतक दिया।[38]

रामायण महाकाव्य के समस्त काण्ड में महिला के आर्थिक अधिकारों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। नारी की सांस्कृतिक वर्चस्व, प्रभुत्व प्रगतिशीलता, सहभागिता रामायण का केन्द्र बिन्दू है जो स्वयं ही नारी के आर्थिक अधिकारिता सुनिश्चित करता है। बाल्मीकि रामायण में भी नारी के आर्थिक अधिकारों को मजबूत करने के लिए उसे व्यक्तिगत सम्पत्ति से परिपूर्ण किया गया है। इसी क्रम में विवाह के पश्चात् नए परिवेश में प्रवेश करने पर नारी के अर्थ (धन) से सशक्त किया गया है।

अथ राजा विदेहानां ददौ कन्याधनं बहु।
गवां शत सहस्राणि बहूनि मिथिलेश्वरः ।।
कम्बलानां च मुख्यानां दौमान् कोटयम्बराणि च।
हस्त्याप्ररथ पादति दिव्यरूपं स्वलंकृतम्।।[39]

अर्थात् विदेहराज जनक ने अपनी कन्याओं को निमित्त दहेज में बहुत अधिक धन दिया। उन मिथिला नरेश ने कई लाख गौएं, कितनी ही अच्छी-अच्छी कालीने तथा करोड़ों की संख्या में रेशमी और सूती वस्त्र दियें, भांति-भांति के गहनों से सजे हुए बहुत से दिव्य हाथी, घोड़े, स्थ और पैदल सैनिक भेंट कियें। अपनी पुत्रियों के लिए सहेली के रूप में उन्होंने सौ-सौ कन्याएँ तथा उत्तम दास-दासियां अर्पित की। इन सबके अतिरिक्त राजा ने उन सबके लिए एक करोड़ स्वर्ण मुद्रा रजत मुद्रा, मोती तथा मूंगे भी दिये। इस प्रकार राजा जनक ने बड़े हर्ष के साथ उत्तमोतम कन्याधन (दहेज) दिया।

जो न सिर्फ उसे सम्पति से सम्पन्न नारी का स्वरूप देता है बल्कि निर्णय लेने की शक्ति भी प्रदान करता है।

त्वरिताः शीघ्रमागत्य कौसल्यायै न्यवेदयन्।
सा हिरण्यं च गाढव रत्नानि विविधानि च।।
व्याददेश प्रियाख्येभ्यः कौसल्या प्रमदोत्तमा।

अर्थात् राम के राज्याभिषेक की तैयारी की बात सुनकर रामचन्द्र जी का प्रिय करने वाले सुहृदो ने तुरंत माता कौसल्या के पास जाकर उन्हे यह शुभ समाचार निवेदन किया। नारियों में श्रेष्ठ कौसल्या ने वह प्रिय संवाद सुनाने वाले उन सुहृदों को तरह-तरह के रत्न, सुवर्ण और गौएं पुरस्कार रूप में दी। इससे यह प्रकट होता है कि स्त्री अपनी सम्पत्ति की स्वयं स्वामिनी होती थी।

रामायण की रचना तत्कालीन समाज का प्रतिनिधित्व करती है। नारी के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक सभी अधिकारों का समागम है। नारी के आर्थिक अधिकारों को संकीर्णता के भंवर में न रखकर पूर्णता की ओर अग्रसर किया गया है। राजनीति, धर्म, कर्म, यज्ञ सर्वत्र नारी की सहभागिता सुनिश्चित की गई है। नारी के आर्थिक अधिकारों को मात्र भौतिक सम्पत्ति तक ही केन्द्रित नही किया गया, अपितु सम्पत्ति की अवधारणा के आधार पर सम्पूर्ण मानवीय अधिकारों को समाहित किया गया है।

निषकर्षतः यह कहा जा सकता है कि जिस समय महाकाव्यों की रचना हुई उस समय के समाज में नारी को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था क्योंकि कालिदास, भारवि, माद्य, हर्ष आदि महाकाव्यकारों की कृतियों का कथानक भले ही रामायण, महाभारत से लिया गया हो, किन्तु अपने समय के अनुकूल कथानक में परिवर्तन कर रचनाकारों द्वारा उसे एक नये रूप में प्रस्तुत किया गया जिनके अनुशीलन से हम तत्कालीन समाज की नारी की स्थिति व अधिकारों का अनुमान लगा सकते है।

अधिकारों के प्रति जैसी सजगता आज की नारी में देखी जा सकती है वैसी सजगता आज से वर्षों पूर्व की नारी में नहीं थी, किन्तु इतना होते हुए भी उस समय नारी को युगानुकूल अधिकार प्राप्त थे कन्या के रूप में, पत्नी के रूप में तथा माता के रूप में भी। उस समय की नारी अपने अधिकारों को मनवाने की अपेक्षा कर्त्तव्यों का निर्वाह करने में अधिक निष्ठावती रहती थी। महाकाव्यों में मध्यम वर्ग की गृहणियों का उल्लेख क्वचित् ही मिलता है। इनमें अधिकतर कथावस्तु राजपरिवारों के सदस्यों से सम्बद्ध है और राजपरिवारों के सदस्यों को आम जनता से अपेक्षाकृत अधिक सुख-सुविधायें व अधिकार प्राप्त होते है। परन्तु इस बात से भी विमुख नही हुआ जा सकता कि प्रजा राजा का अनुसरण करती है। अतः यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जैसी स्थिति राजकुल की नारियों की रही है। कुछ अन्तर के साथ वैसी ही स्थिति सामान्य नारियों की भी रही होगी। साम्पत्तिक विभाजन, धार्मिक क्षेत्र, शिक्षा के क्षेत्र, राजनीति के क्षेत्र में नारी को पुरूष के बराबर तो नहीं किन्तु न्यूनाधिक रूप में अधिकार अवश्य प्राप्त थे।

सन्दर्भ सूची

1. मनुस्मृति-अध्याय 3, श्लोक 56
2. महाभारत-12वाँ पर्व (शान्ति पर्व) 320
3. महाभारत-शान्ति पर्व 320.83
4. महाभारत-सभापर्व अध्याय - 69
5. महाभारत-1.196.16
6. किरातार्जुनीयम्-प्रथम सर्ग श्लोक 42, 43
7. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-प्रथम खण्ड 2.37.24
8. महाभारत-वनपर्व-28/12-36
9. महाभारत-वनपर्व-27/2

10. महाभारत-अनुशासन पर्व - 130/2
11. महाभारत-अनुशासन पर्व - 130/3-12
12. महाभारत-अनुशासन पर्व-130/3-12
13. नैषधीयचरितम्-20/132
14. रघुवंश महाकाव्यम्-19/55-57
15. महाभारत-2.61.9
16. राजतरंगिनी-7.200
17. राजतरंगिनी-5.249
18. राजतरंगिनी-5.244
19. नैषधीय चरितम्-6/61
20. नैषधीय चरितम्-21/110
21. बुद्ध चरितम्-22/55
22. महाभारत-विराट पर्व-2.131
23. नैषधीय चरितम्-6/64
24. नैषधीयचरितम्-20/77
25. कुमारसंभवम्-6/13
26. शतपथब्राह्मण-5.1.6
27. अष्टाध्यायी-4.1.33
28. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-अयोध्याकाण्ड, सर्ग-20, श्लोक 15,16,17, 18
29. श्रीमद्वाल्मीकीय सुन्दरकाण्ड सर्ग 14 श्लोक 49
30. नैषधीय चरितम्-12.86
31. महाभारत-आदिपर्व, 184/11
32. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-अयोध्याकाण्ड, 118/42
33. रघुवंशमहाकाव्यम्-षष्ठ सर्ग, 1-80
34. कुमारसंभवम्-53
35. नैषधीयचरितम्-3.79
36. महाभारत-13.45
37. रघुवंशमहाकाव्य-7.32
38. नैषधीयचरितम्-16/16-34
39. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-बालकाण्ड, 74 सर्ग:, 3-7

पतंजलि योग सूत्र में पर्यावरणीय चिन्तन

जितेन्द्र चौधरी

असिस्टेंट प्रोफेसर, आर.एस.एम. पी.जी. कॉलेज, धामपुर, बिजनौर, उ0प्र0

योग एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है, जिसमें शरीर, मन और आत्मा को एक साथ लाने का काम होता है। योगसूत्रों की रचना 3000 साल पहले पतंजलि ने की । पतंजलि के अनुसार चित्त की वृत्तियों को चंचल होने से रोकना ही योग है अर्थात् मन को इधर-उधर भटकने न देना, केवल एक ही वस्तु में स्थिर रखना ही योग है। योगश्चित्तवृत्ति निरोधः अर्थात् चित्त वृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं। चित्त की चंचलता पर्यावरण को असन्तुलित करती है तथा इसके निरोध से पर्यावरण सन्तुलित हो जाता है। पतंजलि योगसूत्र में चित्त की वृत्ति के निरोध हेतु एक साधना पद्धति विद्यमान है जिसे अष्टांग योग कहते है। अष्टांगयोग के सतत् एवं दीर्घकालीन साधना से चित्त निर्मल हो जाता है। चित्त वृत्तियों के निर्मल होने पर वाह्य प्रपंच, काम, क्रोध, मद, लोभ सभी शान्त हो जाते हैं तथा इस अवस्था में जगत के समस्त अवयव, वनस्पतियां, जीव जन्तु, पर्यावरण, पंचमहाभूत आदि संतुलित रहते है।

भारतीय दर्शनों में प्रायः किसी न किसी रूप में पर्यावरण विचार व उसके महत्व का निश्चित रूप से प्रत्यक्षतः या परोक्षतः चिन्तन दृष्टिगत है। भारतीय दर्शन की आधारभूत मान्यताओं में ही पर्यावरण-संरक्षण सम्बर्धन सम्बन्धी विचार विद्यमान है। वैदिक काल से लेकर उपनिषद, श्रीमद्भगवदगीता, नास्तिक दर्शन, आस्तिक दर्शन तथा समकालीन भारतीय दर्शन में पर्यावरण संरक्षण व सम्बर्धन की भावना निहित है। इसी परम्परा का निर्वाह पतंजलि योगसूत्र में देखने को मिलता है। पतंजलि योगसूत्र में पर्यावरण चिन्तन व संरक्षण का महत्व प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से विद्यमान है।

योगदर्शन भारतीय परम्परागत षट्दर्शनों में से एक है। पतंजलि ने योग के दार्शनिक सिद्धान्त को योगसूत्र में संग्रहीत, विभाजित एवं क्रमबद्ध किया है। योगसूछ्त्र चार पादों में विभक्त है। ये चार पाद है समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद एवं कैवल्यपाद। समाधिपाद में योग के स्वरूप, उद्देश्य, लक्षण एवं उसके साधन का विवेचन है। साधनपाद में कर्म, क्लेश और कर्म का वर्णन किया गया है। विभूतिपाद में योग के अंगों एवं योगाभ्यासों से प्राप्त होने वाली सिद्धियों की बात की गई है तथा कैवल्यपाद में कैवल्य के स्वरूप को निरूपित किया गया है।

योग शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'युज्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ होता है, युक्त करना, जोड़ना या मिलना, परन्तु पतंजलि योगसूत्र में योग को साधना के रूप में बताया गया है। इस साधना में अपनी चित्तवृत्ति का निरोध कर आत्मसंयम के द्वारा चित्त की वृत्ति शून्य कर देना ही 'योग' है। पतंजलि के अनुसार योग 'चित्तवृत्तियों का निरोध' है। चित्त की चंचल वृत्ति का निरोध करने पर ही एकाग्रता आती है। योग दर्शन में चित्त केन्द्रीय अवधारणा है, योग दर्शन में चित्त को अन्तःकरण माना गया है जो कि बुद्धि का उपलक्षक है। सर्वप्रथम प्रकृति से महत् तत्व का आविर्भाव होता है। महत् अभ्यान्तर दृष्टि से बुद्धि कहलाता है। अतः योग दर्शन का लक्ष्य चित्तवृत्ति निरोध को दृष्टिगत रखते हुए बुद्धि, मन एवं अहंकार इन तीनों को अन्तःकरण मानते हुए चित्त पद से अभिप्रेत माना गया है।

योगदर्शन की केन्द्रिय अवधारणा चित्त है। चित्त प्रकाशशील, चेष्टाशील एवं स्थैर्यशील होने से त्रिगुणात्मक है। प्रकाशशील चित्तसत्व, रजोगुण और तमोगुण से लब्धसंसर्ग होकर विषयों और ऐश्वर्य के प्रति आर्कषित हो जाता है। जब चित्तसत्व तमोगुण से काफी बिंध जाता है तो अधर्म, अज्ञान, अनैश्वर्य एवं अवैराग्य में मग्न हो जाता है तथा काम, क्रोध मद व लोभी हो जाता है। ऐसा चित्त सदैव विध्वसंक कार्यों में लगा रहता है तथा शारीरिक भौतिक सुख को ही शुभ समझता है। तमोगुण एवं रजोगुण वाले चित्त अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए प्रकृति का दोहन करते है क्योंकि उनके लिए उचित अनुचित, अच्छे बुरे का भान ही नहीं रहता है।

वर्तमान में प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन तथा पर्यावरण प्रदूषण का प्रत्यक्ष व परोक्ष कारण राजसिक व तामसिक वृत्तियों से ग्रसित मनुष्य का चित्त ही है जैसे-जैसे भौतिकता का विकास हो रहा है, वैसे वैसे ही पर्यावरण प्रदूषण की मात्रा बढ़ी जा रही है तथा इसे बढ़ाने में मनुष्य की क्रियाकलाप और उसकी जीवन शैली काफी हद तक जिम्मेवार है। अशान्त चित्त व भौतिक उन्नति पाने की होड़ में मनुष्य ने अपने जीवन में नये-नये आविष्कारों से न जाने किसी उपलब्धियाँ हासिल कर ली। अशान्त चित्त का मनुष्य यह समझता है कि समस्त प्राकृतिक संपदा पर सिर्फ उसी का आधिपत्य है, वह जैसा चाहे इसका उपभोग कर सकता है। इसी भोगवादी प्रकृति के कारण प्रकृति का अत्याधिक हद तक शोषण कर लिया और अब हमारा अस्तित्व ही संकट में पड़ने लगा है। भोगवादी-प्रवृत्ति ने न सिर्फ प्राकृतिक प्रदूषण उत्पन्न किया है अपितु सांस्कृतिक प्रदूषण का भी एक महत्वपूर्ण कारण यही है।

पातंज्जल योग सूत्र में चित्त की वृत्ति के निरोध हेतु एक साधना पद्धति विद्यमान है जिसे अष्टांग योग कहते है। अष्टांग योग की सतत् एवं दीर्घकालीन साधना से उत्तरोत्तर चित्त निर्मल हो जाता है।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंघ्गानि।

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि योग के आठ अंग है तथा प्रत्येक अंग में ही पर्यावरण संरक्षण की चेतना विद्यमान है। यम नैतिक शिष्टाचार है। ये उपदेश समाज और व्यक्ति के लिए नैतिक नियम है जिनका यदि पालन नहीं किया गया है तो हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार और लोभ के विप्लव उपास्थित होते है पतंजलि ने यम के पांच सिद्धान्तों द्वारा मनुष्य के विचारों की दिशा बदलकर इन पांचों बुराईयों के मूल पर आधात किया है।

पर्यावरण के अन्तर्गत हम सभी एक दूसरे पर आश्रित है तथा जीवन चक्र से जुड़े है। यम का अहिंसा का शाब्दिक अर्थ हिंसा न करना है अपितु इसके मूल में प्रेम की भावना निहित है। यह प्रेम सारी सृष्टि को अंगीकृत करता है तथा जड़ एवं चेतन की एकता के सूत्र में बाँधता है। योगी का विश्वास है कि प्रकृति का विनाश करना अथवा अत्याधिक दोहन करना उसके निर्माता अर्थात् सृष्टिकर्ता का अपमान है। पतंजलि का अहिंसा का सिद्ध योगी को प्रकृति के प्रत्येक कण-से कण से प्रेम करना सिखलाता है, साथ ही साथ शाकाहार को भी बढ़ावा देता है क्योंकि योग दर्शन में किसी भी जीव की हत्या करना वर्जित है। यह अहिंसा के सिद्धान्त के विरूद्ध है। मांसाहार भी वैश्विक पर्यावरण प्रदूषण की समस्या का एक बहुत बड़ा कारण है तथा इसका निवारण अहिंसा सिद्धान्त में ही निहित है। अहिंसा का व्रत हमें यह सिखलाता है कि प्रत्येक प्राणी जो जीने का उतना ही अधिकार है जितना की हमें एवं यह घरती, यह प्रकृति सभी की है तथा योगी प्रेममयी दृष्टि से सृष्टि को देखता है।

यम के अन्य अंग सत्य, अस्तेय व ब्रह्मचर्य भी मनुष्य को संयमी बनाते है तथा पर्यावरण संरक्षण का संदेश देते है। यम के अपरिग्रह कासीधा सम्बन्ध पर्यावरण से है। प्रकृति में विकार आना अपरिग्रह के सिद्धान्त को न अपनाने के कारण ही है। अपरिग्रह सिद्धान्त को अपनाने से भौतिक विषय के प्रति मोहभंग हो जाता है। जैसे संग्रह करने में दोष, उसकी रक्षा का संघर्ष होने का दोष तथा हिंसा दोष आदि जब देखता तब मनुष्य का मन विषयों से हटना शुरू हो जाता है तथा भौतिक सुख साधनों की दौड़ से हट जाता है।

अष्टांग योग का द्वितीय अंग 'नियम' है। चरित्र सम्बन्धी विधान को नियम कहते जो व्यक्तिगत अनुशासन के लिए लागू होता है। पतंजलि ने पांच नियम बतलाए है, शौच संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान है, नियम के शौच, संतोष व स्वाध्याय का प्रत्यक्षसम्बन्ध पर्यावरण संरक्षण के साथ जुड़ा हुआ है। शौच में स्वच्छता का संदेश है। मनुष्य को अपने शरीर के साथ-साथ अपने वातावरण को भी स्वच्छ रखना चाहिये। अस्वच्छता अनेक प्रकार के रोगों को जन्म देती है अत: योगी के लिए स्वच्छता अनिवार्य मानी गयी है। योगी को शरीर, योग के स्थान अपने आस-पास के वातावरण को सदैव स्वच्छ बनाये रखना अति आवश्यक है जो एक तरह से प्रदूषण की समस्या को हल करता है। मनुष्य अनैतिक जीवन चर्या के कारण पर्यावरण को प्रदूषित करता जा रहा है जिसका निवारण पतंजलि के शौच नियम में दिया गया है। 'मनुष्य प्राकृतिक संसाधनों का अत्याधिक दोहन असंतोष के कारण करता है क्योंकि इसके पास जो कुछ है वह सदैव उससे अधिक प्राप्त करने की चाह रखता है, यही अतृप्त इच्छाएं मनुष्य को अनैतिक कार्य करने के लिए मजबूर करती है परन्तु पंतजलि योगसूत्र के 'संतोष' के नियम को अपनाकर मनुष्य भौतिक विषयों की अंधी दौड़ से अपने आप को मुक्त कर पाता है तथा वह जानलेता है जो कुछ भी प्रकृति ने उपहार स्वरूप प्रदान किया है उस पर सभी का अधिकार है तथा प्राकृतिक संसाधनों को हमें उतना ही उपयोग करना चाहिए जितना की जीवन यापन के लिए आवश्यक हो। इस हेतु 'संतोष' को सभी धनों में सर्वश्रेष्ठ धन बताया गया है। इसी प्रकार से ईश्वर प्राणिधान के द्वारा मनुष्य के चित्त से 'मैं' तथा 'मेरा' की भावना नष्ट हो जाती है एवं वह सम्पूर्ण प्रकृति को ईश्वर की अनमोल धरोहर मान कर उसके प्रति साहचर्य का भाव रखता है।

अष्टांगयोग का तीसरा अंग आसन है। योगसूत्र में अनेक प्रकार के आसानों का वर्णन मिलता है जैसे- पर्वतासन, गोमुखासन, मकरासन, सर्पासन, उष्ट्रासन, मण्डूकासन, मर्जार आसन, व्याध्रासन, ताड़ासन, मत्स्याासन, सिंहासन, सूर्यनमस्कार, चंद्र नमस्कार आदि यह सभी आसन पेड़-पौधों, पर्वतों, वृक्षों, जीव-जन्तुओं व ग्रहों के नाम पर आधारित है जो कि मनुष्य को पर्यावरण संरक्षण का सन्देश देते है तथा मनुष्य व प्रकृति का संयोजन कराते है।

इसके साथ ही साथ सूर्य व चन्द्र नमस्कार के द्वारा हम अपने पर्यावरण को आदर, सम्मान प्रदान करते है कि वह हमारे लिए कितने अधिक मूल्यावान है। मनुष्य जाति का अस्तित्व पर्यावरण पर ही निर्भर है तथा मनुष्य ही पूर्णरूपेण पर्यावरण प्रदूषण के प्रति उत्तरदायी है।

प्राणायाम अष्टांगयोग का चौथा अंग है। प्राण का अर्थ- वायु, ऊर्जा या शक्ति। हमारा शरीर ब्रह्मांड की अभिव्यक्ति है। जो ऊर्जा, वायु व शक्ति ब्रह्मांड का निर्माण करती है। वहां हमारे शरीर, मस्तिष्क और सूक्ष्म शरीर का भी निर्माण करती है। वस्तु आवश्यकता दोनों के बीच लय स्थापित करने में है जो कि प्राणायाम के द्वारा होता है। प्राणायाम के माध्यम से हम प्राण वायु को सन्तुलित करके उसका सम्बन्ध ब्रह्माड की ऊर्जा के मध्य करते है। शक्ति में अत्यंत सूक्ष्म रूपों में से एक वायु है। योग में पांच प्रकार की वायु बताई गई है-प्राण, अपान, समान, वदान एवं ध्यान। यह पांचों जीवन के लिए अति आवश्यक है। बिना वायु के जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। वायु प्राण है इसलिए प्राण वायु पर जीवन की निर्भरता मानी जाती है, इस प्रकार पतंजलि ने प्राण वायु के महत्व को स्वीकार करते हुए विधिपूर्वक साधना का संदेश दिया है। जो कि पर्यावरण संरक्षण का ही प्रयास है।

प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि के माध्यम से मनुष्य का चित्त अंर्तमुखी हो जाता है तथा योग के अत्यन्त सूक्ष्म विषयों के द्वारा सूक्ष्म प्रकृति से सम्बन्ध स्थापित कर अत्यन्त सूक्ष्म तत्व आत्मा को जानने तथा साक्षात्कार की ओर अग्रसर होता है हुआ परम सूक्ष्म तत्व परमात्मा के साक्षात्कार की ओर गति करता है। उस स्थिति भोग तथा अनैतिक कार्य करने की प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है। मनुष्य जितना अंर्तमुखी होता जाता है वह भौतिक जगत का उपभोग कम करके प्रकृति के समीप हो जाता है। ध्यान व समाधि आदि शान्त व स्वच्छ वातावरण में ही संभव हो पाते है इसी हेतु ऋषि मुनि जंगल में, प्रकृति की गोद में ध्यान लगाते थे तथा पर्यावरण संरक्षण का संदेश देते थे।

अत: वर्तमान में पतंजलि योगसूत्र में निहित पर्यावरण संरक्षण की भावना को अपनाकर पर्यावरण को संरक्षित किया जा सकता है। पतंजलि का अष्टांग योग केवल शरीर और श्वांस का योग नहीं है, अपितु इसमें विश्व की सभी समस्याओं का समाधान समाहित है। अगर हम यदि पतंजलि के अष्टांग योग के केवल दो सूत्र यम और नियम को ही जीवन में धारण कर लें तो पर्यावरण प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सकता है। तथा इस समस्या का समाधान भी प्राप्त कर सकते है। इस तरह हम एक योगी की जीवन पद्धति अपनाते हुए अपनी धरती को संरक्षित कर सकते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, तंत्र, क्रिया और योगविद्या, योग पब्लिकेसन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार, 1993
2. पतंजलि योगसूत्र 1/2
3. डॉ0 सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, पातंजलयोगदर्शनम्, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2016, पृ0 10
4. पतंजलि योगसूत्र 2/29
5. बी के एस आयंगार, योगदीपिका, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लीमिटेड, हिमायतनगर हैदराबाद, संस्करण-2009, पृ0 18
6. पतंजलि योगसूत्र, 2/32
7. राजीव जैन "त्रिलोक", सम्पूर्ण योग विद्या, मंजुल पब्लिशिंग हाउस, संस्करण-2017, पृ0 46

माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि और मानसिक स्वास्थ्य में संबंध का अध्ययन

डॉ० रूचि दूबे

असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

समाज के वास्तविक शिल्पकार के रूप में एक शिक्षक का दायित्व एवं कर्तव्य है कि वह अपने सभी छात्रों को इस प्रकार से संवारे कि उनके व्यक्ति्व का विकास हो सके एवं वे 'विश्व का प्रकाश' बनकर सारे विश्व को अपनी रोशनी से प्रकाशित कर सकें। भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक गुणों से ओत-प्रोत शिक्षकों के द्वारा ही समाज में व्याप्त बुराइयों को समाप्त करके एक सुन्दर, सभ्य एवं सुसंस्कारित समाज का निर्माण किया जा सकता है। वर्तमान शिक्षा के बाल केन्द्रित होने के कारण बालकों का सर्वांगीण विकास ही शिक्षा का मुख्य लक्ष्य है।

शिक्षकों को शिक्षण के दौरान, विद्यालय में अथवा अपने निजी जीवन में अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं के कारण शिक्षक को मानसिक तनाव व असंतुलन जैसी स्थिति भी झेलनी पड़ती है। कुछ शिक्षक इन समस्याओं से जाते है एवं समाजयोजन कर लेते है वही दूसरी ओर कुछ शिक्षक ऐसे भी होते हैं जो विपरीत परिस्थितियों का सामना नहीं कर पाते हैं।

विभिन्न शारीरिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक गुणों तथा क्षमताओं की दृष्टि से व्यक्तियों में अन्तर देखे जाते हैं। कुछ इसी प्रकार के सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक गुणों के अन्तर शिक्षकों के भी विभिन्न व्यवहारों तथा क्रियाकलापों में परिलक्षित होते हैं।एक शिक्षक अपने कार्य को प्रभावी रूप से सम्पन्न करने में अपने ज्ञान, बोध, कौशल इत्यादि गुणों का अधिकाधिक उपयोग करता है और स्वयं पर सांवेगिक नियन्त्रण रखकर विषम परिस्थितियों में भी समायोजन करने का प्रयास करता है। शिक्षकों के द्वारा संवेगों का सही, उपयोगी व प्रभावी ढंग से प्रबन्धन एवं नियंत्रण करने की योग्यता को संवेगात्मक बुद्धि कहा जाता है। इसी संवेगात्मक बुद्धि का उच्च स्तर व्यक्ति को सुसमायोजन में सहायता करता है जो कि अच्छे मानसिक स्वास्थ्य का परिचयायक है। मानसिक स्वास्थ्य का तात्पर्य व्यक्ति की उस मनोस्थिति से है जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में सामाजिक तथा व्यक्तिगत समायोजन करने में समर्थ होता है। गोलमैन के अनुसार- ''संवेगात्मक बुद्धि वह क्षमता है जिसके माध्यम से हम अपनी तथा अन्य व्यक्तियों की भावनाओं को पहचानते हैं, हम स्वयं को अभिप्रेरित करते हैं तथा अपने एवं स्वयं के सम्बन्धों में पाये जाने वाले संवेगों को भली प्रकार प्रतिबन्धित कर लेते है।" सैलोवे व मेयर (1997) के अनुसार चिन्तन को सुगम बनाने हेतु संवेगों के प्रत्यक्ष अवबोध, प्रबन्धन व प्रयोग की योग्यता संवेगात्मक बुद्धि है। बार-आन (2005) का विचार यह है कि संवेगात्मक सामाजिक बुद्धि स्वयं को समझने अपने सब एवं दुर्बल पक्ष समझने तथा अपनी भावनाओं और चिन्तन को गैर हानिप्रद रूप में व्यक्त करने की अन्त: वैयक्तिक योग्यता पर आधारित है। अन्तरवैयक्तिक स्तर पर सर्वेगात्मक एवं सामाजिक दृष्टि से बुद्धिमान होने में दूसरों के संवेगों, भावनाओं व आवश्यकताओं से परिचित होने तथा सहयोगात्मक, निर्माणकारी और परस्पर सन्तोषजनक सम्बन्ध स्थापित करने व उन्हें कायम रखने की योग्यता निहित है। क्रेवित्ज व शुबर्ट (2004) का मानना है कि संवेगात्मक बुद्धिअधिगम, दैनिक जीवन, व दूसरों से सम्बन्ध बनाने में सम्बन्धित अपेक्षाओं का सामना करने के लिये अपने संवेगोंको समझने व व्यक्त करने की योग्यता है। इसमें पांच कौशल निहित है-स्वबोध कौशल,सामाजिक कौशल,आशावाद,संवेगात्मकनियन्त्रण एवं लचीलापन कौशल।

मेयर व सैलोव (1997) के अनुसार संवेगात्मक बुद्धि में चार अवयव बताये है- संवेगों का प्रत्यक्षीकरण, मूल्य निर्धारण एवं अभिव्यक्ति, चिन्तन का संवेगात्मक सरलीकरण, संवेगात्मक ज्ञान का प्रयोग कर संवेगों का अवबोध व विश्लेषण एवं संवेगात्मक व बौद्धिक वृद्धि को प्रोत्साहित करने हेतु संवेगों का विर्मशक नियमन।

शिक्षकों को अपने कार्यों में सफलता प्राप्त करने के लिये सामान्य बुद्ध ही पर्याप्त नहीं होती है बल्कि इसके साथ-साथ सामाजिक व संवेगात्मक चपलता तथा समायोजन योग्यता की भी जरूरत होती है। मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करने वाली संवेगात्मक बुद्धि शिक्षकों का तनाव दूर करने, द्वन्द्वो व दुविधाओं से निपटने, सामाजिक समायोजन करने तथा चुनौतियों का समाना करने में अत्यधिक सार्थक भूमिका निभाती है। संवेगात्मक बुद्धि शिक्षकों के कार्य निष्पादन, तनाव प्रबंधन, मानसिक स्वास्थ्य एवं सामाजिक सम्बन्ध एवं समायोजन को अत्यधिक प्रभावित करती है।

शिक्षकों के अपने कार्य निष्पादन में जहां एक ओर संवेगात्मक बुद्धि का महत्वपूर्ण योगदान है वहीं दूसरी ओर उनका मानसिक स्वास्थ्य भी उनके शिक्षण एवं अन्य कार्यों को गहराई से प्रभावित करता है। मानसिक स्वास्थ्य से तात्पर्य व्यक्ति की उस मनो स्थिति से है जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में सामाजिक तथा व्यक्तिगत समोजन करने में समर्थ होता है। नेशनल एशोसियेसन ऑफ मेन्टल हेल्थ के अनुसार-'मानसिक स्वास्थ्य का सम्बन्ध उस तरीके से है जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छायें, महत्वकांक्षाएं, विचार और भावनाएं अपनी आत्मा से समन्वित करता है। ताकि वह अपनी जीवन की उन मांगों को पूरा कर सके जो उसके सामने आती है।' मानसिक स्वास्थ्य व्यक्ति के द्वारा समायोजन करने की योग्यता का परिणाम होता है। जब व्यक्ति अपनी इच्छाओं, महत्वकांक्षाओं, आदर्शो आदि को जीवन की वास्तविकताओं के अनुरूप ढालकर अपने तथा वातारण के मध्य एक सन्तोषजनक सम्बन्ध स्थापित कर लेता है तब उसे समायोजित व्यक्ति कहा जा सकता है। यह व्यक्ति के देखने, सोचने एवं करने के बीच एकीकरण का परिणाम होता है।

ऐसा देखा जाता है कि जिन शिक्षकों के अन्दर विनम्रता, निष्पक्षता, सतर्कता सहनशीलता एवं आत्म मूल्यंकन जैसे गुण होते हैं वे अपनी समस्याओं से जल्दी ही उबर जाते हैं और अपना मानसिक स्वास्थ्य अच्छा बनाये रखनें में सफल रहते हैं। जिन शिक्षकों में ऐसे गुण पाये जाते हैं उनमें संवेगात्मक बुद्धि का विकास बेहतर होता है और परिणामत: मानसिक स्वास्थ्य भी उनका अच्छा होता है।

शिक्षकों की समस्याओं पर अनेक शोध किये हैं जिनमें संवेगात्मक बुद्धि का विकास एवं मानसिक स्वास्थ्य जैसे विषय भी शामिल है। मेयर व सैलोवे (1990) के द्वारा किये गये अध्ययनों के अनुसार संवेगात्मक बुद्धि, सफलता के लिये अति आवश्यक है। जार्ज (2000) के अनुसार भावनायें अर्थात मनोभाव एवं संवेग नेतृत्व प्रक्रिया में केन्द्रीय भूमिका अदा करते हैं। संगठन क्षमता में नेतृत्व के लिये संवेगात्मक बुद्धि महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। टेलर (2002) के अनुसार उच्च संवेगात्मक बुद्धि वाले व्यक्ति ऐसे कौशलों से युक्त होते हैं जो जीवन के सभी क्षेत्रों में सफलता प्राप्ति में सहायक होते हैं। इसी प्रकार बाबू एवं जाधव (2012) ने अपने अध्ययन में निष्कर्ष प्राप्त किया कि अपने कार्य से संतुष्ट रहने वाले शिक्षकों का मानसिक स्वास्थ्य ज्यादा अच्छा रहता है। अबिदुल्ला, समरीन एवं असलम (2020) ने अपने अध्ययन में पाया की शिक्षकों में औसत स्तर की संवेगात्मक बुद्धि होती है एवं वे अपने विद्यार्थियों को सक्रीय रूप से कक्षा में सहभागी रखते है। डेनिस्व्वेस्की (2013) ने अपने रिपोर्ट में सिद्ध किया है कि शिक्षकों का अनुभव, विद्यालय का वातावरण आदि भी शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि पर किये गये अध्ययन दर्शाते है कि महिला शिक्षकों की अपेक्षा, पुरूष शिक्षकों को संवेगात्मक बुद्धि कम होती है (दुबे 2010) कम व्यवसायिक तनाव वाले शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि अधिक होती है (दूबे, 2011, मेहता, 2013) उच्च संवेगात्मक बुद्धि के शिक्षक आशावादी, लचीले, आत्मनियंत्रक, विभिन्न कौशलों से युक्त एवं कम नकरात्मक होते है (पाण्डेय, 2014)। शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि उनके निष्पादन से भी सम्बन्धित होती है (नक्वी, इकबाल एवं अखतर, 2016; नील एवं अन्य, 2011; इस्माइल एवं इदरिस, 2009) गलगोत्रा (2013) के अनुसार शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य एवं कार्य संतुष्टि में सकरात्मक सम्बन्ध होता है।

उपर्युक्त अध्ययनों के विश्लेषण सेयह स्पष्ट है कि शिक्षकों कीसंवेगात्मक बुद्धि और मानसिक स्वास्थ्य क. बीच संबंध तथा इन दोनों विषयों पर अलग-अलग भी अनेक अध्ययन हो चुके हैं। किन्तु माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि एवं मानसिक स्वास्थ्य के मध्य क्या सम्बन्ध है? क्या माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि उनके मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है? अथवा शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि और मानसिक स्वास्थ्य में सकारात्मक सहसम्बन्ध है यानकारात्मक सहसम्बन्ध है? इन्हीं प्रश्नों ने शोधकर्ती को ष्माध्यमिक स्तर के शिक्षकों कीसंवेगात्मक बुद्धि और मानसिक स्वास्थ्य में संबंध का अध्ययनष् करने के लिये आकृष्ट किया।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत लघु शोध में निम्न उद्देश्यों को समाहित किया गया है -

1. माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि और मानसिक स्वास्थ्य में संबंधका अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तर के महिला शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि और मानसिक स्वास्थ्य मेंसंबंध का अध्ययन करना।
3. माध्यमिक स्तर के पुरूष शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि और मानसिक स्वास्थ्य मेंसंबंध का अध्ययन करना।
4. माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि और मानसिकस्वास्थ्य में संबंध का अध्ययन करना।
5. माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के शिक्षकों कीसंवेगात्मक बुद्धि और मानसिकंस्वास्थ्य में संबंध का अध्ययन करना।

परिकल्पनायें

उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये निम्न शून्य परिकल्पनायें बनायी गयीं -

1. माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि और मानसिक स्वास्थ्य के मध्यकोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।
2. माध्यमिक स्तर के महिला शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि और मानसिक स्वास्थ्य केमध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।
3. माध्यमिक स्तर के पुरूष शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि और मानसिक स्वास्थ्य केमध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।
4. माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि और मानसिकस्वास्थ्य के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।
5. माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि और मानसिकस्वास्थ्य के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

अध्ययन विधि

अध्ययन के लिये वर्णनात्मक शोध की सहसम्बन्धात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में संवेगात्मक बुद्धि एवं मानसिक स्वास्थ्य को क्रमश: स्वतन्त्रचर एवं आक्षित चर के रूप में लिया गया है।अध्ययन हेतु इलाहाबाद क्षेत्र के माध्यमिक स्तर के शिक्षकों को सम्मिलित किया गया विभिन्न विद्यालयों से यादृच्छिक ढंग से 100 शिक्षकों का चयन किया गया है।इनमें 50 शिक्षक पुरूष हैं जबकि 50 शिक्षक महिला है। 50 पुरूष शिक्षकों में 25 शिक्षक विज्ञान वर्ग के एवं 25 शिक्षक कला वर्ग के हैं। इसी प्रकार 50 महिला शिक्षकों में 25 शिक्षिकायें विज्ञान वर्ग की है एवं अन्य 25 शिक्षिकायें कला वर्ग की है। प्रदत्त संकलन हेतु के0एस0 मिश्र द्वारा निर्मित 'संवेगात्मक बुद्धि परीक्षण (शिक्षक प्रारूप)' तथा एस0पी0 गुप्ता एवं सुजीत कुमार द्वारा निर्मित मानसिक स्वास्थ्य मापनी का प्रयोग किया गया है। आंकड़ो के विश्लेषण हेतु पियरसन गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणांक का प्रयोग किया गया है।

परिणाम एवं विवेचना

तालिका-1

माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि एवं मानसिक स्वास्थ्य के मध्य संबंध-

समूह	N	सहसंबंध गुणांक (r) का मान
माध्यमिक स्तर के शिक्षक	100	0.455'

*.01 स्तर पर सार्थक

तालिका 1 दर्शाती है कि संवेगात्मक बुद्धि एवं मानसिक स्वास्थ्य के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान 0.455 है जो 0.01 का स्तर पर सार्थक। अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जा सकती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि और मानसिक स्वास्थ्य में सकारात्मक सहसम्बन्ध है। अत: यह कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की संवेगतात्मक बुद्धि में वृद्धि होने के साथ-साथ उनका मानसिक स्वास्थ्य भी अधिक अच्छा होता जाता है।

तालिका-2

माध्यमिक स्तर के पुरूष एवं महिला शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि एवं मानसिक स्वास्थ्य में संबंध-

समूह	N	सहसंबंध गुणांक (r) का मान
माध्यमिक स्तर के पुरूष शिक्षक	50	0.456'
माध्यमिक स्तर के पुरूष शिक्षक	50	0.451'

*.05 स्तर पर सार्थक

तालिका-2 दर्शाती है कि पुरूष एवं महिला शिक्षकों की संवेगतात्मक बुद्धि एवं मानसिक स्वास्थ्य के मध्य सहसंबंध गुणांक का मान क्रमश: 0.456 एवं 0.451 है जो .05 स्तर पर सार्थक है। अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जा सकती है। एवं यह कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के पुरूष एवं महिला शिक्षको की संवेगात्मक बुद्धि एवं मानसिक स्वास्थ्य में सकारात्मक सहसंबंध है।

तालिका-3

माध्यमिक स्तर के कला वर्ग एवं विज्ञान के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि एवं मानसिक स्वास्थ्य में संबंध-

समूह	N	सहसंबंध गुणांक (r) का मान
माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के शिक्षक	50	0.643'
माध्यमिक स्तर के विज्ञान के शिक्षक	50	0.309

*.01 स्तर पर सार्थक

तालिका 3 दर्शाती है कि कला वर्ग के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि एवं मानसिक स्वास्थ्य के मध्य सहसंबंध गुणांक का मान 0.643 है जो 0.01 स्तर पर सार्थक है अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जा सकती है। इसमें यह निष्कर्ष निकलता है कि माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि एवं मानसिक स्वास्थ्य में सकारात्मक सहसंबंध है। तालिका 3 से परिलक्षित है कि विज्ञान वर्ग के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि एवं मानसिक स्वास्थ्य के मध्य सहसंबंध गुणांक का मान 0.309 है जो 0.05 स्तर का सार्थक नहीं है। अत: शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जा सकती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि एवं मानसिक स्वास्थ्य में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं है।

प्रदत्त विश्लेषण से यह विदित हुआ कि माध्यमिक स्तर के पुरूष शिक्षकों,महिला शिक्षकों तथा कला वर्ग के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि और मानसिक स्वास्थ्य में सकारात्मक सहसम्बन्ध है। तामिनी, खान एवं अली (2009), प्रतिमा (2013), डेनीज (2013) ने भी विभिन्न स्तरों के शिक्षको की संवेगात्मक बुद्धि एवं मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन किया तथा अपने निष्कर्ष में पाया कि संवेगात्मकबुद्धि एवं मानसिक स्वास्थ्य में सकारात्मक सहसंबंध है, जो शोधकर्ता के अध्ययन को प्रमाणित करते हैं। कौर 2019 ने भी अपने अध्ययन में स्पष्ट किया कि संवेगात्मक बुद्धि एवं मानसिक स्वास्थ्य में सकरात्मक सम्बन्ध होता है। जबकि वेइजी (2011) ने ईरानी शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि औरमानसिक स्वास्थ्य में सम्बन्ध का अध्ययन करने पर अपने निष्कर्ष में पाया कि संवेगात्मकबुद्धि और मानसिक स्वास्थ्य में नकारात्मक सहसंबंध है।इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि अर्थात संवेगों कोसमझने एवं उन्हें नियन्त्रित करने की क्षमता, उनके मानसिक स्वास्थ्य से सकारात्मकरूप से सम्बन्धित होती है। अर्थात उच्च संवेगात्मक बुद्धि से युक्त शिक्षक अपनामानसिक स्वास्थ्य अच्छा बनाये रखने में सफल रहते है। प्रस्तुत अध्ययन में माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि एवं मानसिक स्वास्थ्य में कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं पाया गया। जब एक शिक्षक अपने संवेगों को समझने व तदनुरूप कार्य करने में असमर्थ रहता है तब उसकी मनोस्थिति में हानिकारक ढंग से उतार-चढ़ाव आते है। इस प्रकार विद्यालय में दृढ़ अथवा स्थायी सामाजिक सम्बन्ध बनाने में असफल शिक्षकों में अकेलेपन व अलगाव की भावना पनपने लगती है। परन्तुउच्च संवेगात्मक बुद्धि से युक्त शिक्षक अपने तनाव को कम करके, संवेगों पर नियंत्रण रखकर इन नकारात्मक सम्भावनाओं को कम कर देते है और अपना मानसिक स्वास्थ्य सुदृढ़ रख पाते हैं।

शैक्षिक निहितार्थ-चूँकि उच्च संवेगात्मक बुद्धि, अच्छे मानसिक स्वास्थ्य को बनाने में मदद करती है अत: विद्यालयों का वातावरण इस प्रकार होना चाहिये कि शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि का विकास हो सके। शिक्षकों को प्रशिक्षित किये जाने वाले संस्थानों में संवेगात्मक बुद्धि को बढ़ाने वाले क्रियाकलाप करवाये जाने चाहिए जिससे कि नये शिक्षक संवेगात्मक रूप से समृद्ध बुद्धि स्तर के है। प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा शिक्षकों की आत्मभिज्ञता, आत्म प्रबन्धन, आत्म अभिप्रेरणा, तद्नुभूति व सामाजिक दक्षताओं का संवर्धन किया जा सकता है। इनके द्वारा संवेगात्मक बुद्धि को बढ़ाने में मदद मिलती है। शिक्षकों पर अनावश्यक रूप से अतिरिक्त दबाव नहीं डाला जाना चाहिए यह शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।शिक्षकों को स्वयं भी अपने संवेगात्मक बुद्धि में सुधार करने के लिए आत्म चिन्तन करना चाहिए। शिक्षकों को काल्पनिक रूप से छद्म परिस्थितियों का निर्माण करना चाहिए तथा उनसे उबरने का रास्ता खोजना चाहिए, जिससे वह समस्या समाधान कर सकें। विद्यालयों में शिक्षक सहायता सेवा का आयोजन किया जाना चाहिये ताकि शिक्षकों की समस्याओं को समझने एवं दूर करने में सहायता मिल सके। समुदाय एवं समाज में शिक्षकों को उचित तथा सम्मानपूर्ण स्थान देते हुये उनकी सेवा को सराहा जाना चाहिये जिससे उनका मनोबल ऊँचा हो सके। विद्यालय में समय-समय पर शैक्षिक गोष्ठियों का आयोजन किया जाना चाहिये जिनमें प्रबन्धकों, शिक्षकों तथा शिक्षार्थियों के बीच विचारों को खुले ढंग से आदान-प्रदान का अवसर प्रदान किया जाना चाहिये, जिससे वे एक -दूसरे की समस्याओ व परिस्थितियों को समझ सकें एवं स्वयं का समायोजन बना सकें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- अबिदुल्लाह, एस., समरीन, डी. एवं असलम, एस. (2020). इमोशनल इनटेलीजेन्स एज अ प्रिडिक्टर ऑफ टीचर इंगेजमेंट इन क्लासरूम, बुलेटिन ऑफ एडूकेशन एंड रिर्सच, 42(1), 127-140
- डेनीज, एसण् (2013). द रिलेशनशिप बिटविन इमोशनल इन्टेलीजेन्स एण्ड मेन्टल हेल्थ. एकेडेमिक जर्नल्स, 8 (24), 2339-2345
- दुबे, आर. (2010). इमोशनल इन्टेलीजेन्स अमंग टीचर्स: इम्प्लीकेशन फॉर बेटर टीचर परफार्मेस. एजेकेशनल ट्रेन्ड्स, 1 (1), 55-57
- दुबे, आर. (2011). ऑक्यूपेशनल स्ट्रेस अमंग टीचर्स. एजूकेशनल क्वेस्ट 2 (2), 227-230
- गलगोत्रा, एम. (2013). मेन्टल हेल्थ ऑफ हाईस्कूल टीचर इन रिलेशन टू देयर सेक्स एण्ड जॉब सैटिसँफैक्सन. इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ हयूमैनिटीस एण्ड सोशल साइंस,2 (1) 20-23
- गोलमैन, डी. (1990). इमोशनल इन्टेलीजेन्स. व्हाई इट मैटर मोर दैन आई0 क्यूव. न्यूयार्क: बैनटम बुक्स
- कौर, आरण् (2019)ण् रिलेशनशिप ऑफ इमोशनल इनटेलीजेन्स विथ मेन्टल हेल्थ अमंग ऐम्पलाइज। वॉइस ऑफ रिसर्च, 32(1).
- मेयर, जे. डी.ए कैरूसो, डी. एवं सैलोव, पी. (1998). कॉम्पीटिंग मॉडल्स ऑफ इमोशनल इन्टैलीजेन्स. हैण्डबुक ऑफ हयूमन इन्टेलीजेन्स , न्यूयार्क: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
- मेहता, एण् (2013). अ स्टडी ऑफ हाऊ इमोशनल इन्टेलीजेन्स रिड्यूसेस अकुपेशनल स्ट्रेस अमंग टीचर्स इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन मैनेजमेन्ट एण्ड टेक्नोलॉजी, 2, 19-28
- मिश्रा, केण् एस. (2013). संवेगात्मक बुद्धि. शिक्षा मनोविज्ञान के नये क्षितिज. इलाहाबाद: अनुभव पब्लिशिंग हाउस।
- मिश्रा, केण्एस. (2010). संवेगात्मक बुद्धि. मैनुअल फॉर टेस्ट ऑफ इमोशनल इन्टेलीजेन्स फॉर स्कूल टीचर्स. आगरा: आर0एस0ए0 इण्टरनेशनल.
- नकवी, ईण्एचण, इकबाल, एमण् एवं अखतर, एसण्एनण् (2016)ण् द रिलेशनशीप बीटबीन इमोशनल इनटेलीजेन्श एण्ड परफारमेन्स ऑफ सेकेण्ड्री स्कूल टीचरबुलेटिन ऑफ एजूकेशन एण्ड रिर्सच 38, 1, 209-224.
- नील, एस., स्पेन्सर-आरनेल, एलण्ए एवं विलसन, एल. (2011)ण् इमोशनल इन्टेलीजेन्स कोचिंग इमप्रोनिंग परफारमेन्स फार लीडरस कोच एण्ड द इनडिविजुएल कोगन पेज।
- पाण्डेय, जेण् (2014). इमोशनल इन्टेलीजेन्स एण्ड टीचर्स एजूकेशन ,स्कॉलर्ली रिसर्च जर्नल, 5 (3), 25-28
- प्रतिमा, एचण् पीण् (2013). रिलेशनशिप बिटविन इमोशनल इन्टेलीजेन्स एण्ड मेन्टल हेल्थ. इण्डियन जर्नल ऑफ रिसर्च , 2 (11), 60- 62
- स्माइल, एन. एण्ड इनद्रीस, केण्एनण् (2009). द इफेक्ट ऑफ क्लॉसरूम कौम्मुनिकेशन ऑन स्टूडेन्टस एकेडमीक परफारमेन्स एट द इन्टरनेशनल स्लामिक यूनिर्वसीटी मलेशिया। यूनिटर ई-जरनल 5 (1), 37

जनचेतना और उद्या देवी: 1857 के विद्रोह के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण

बबली कुमारी

शोध छात्रा, इतिहास विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय पटना, बिहार

सार

जब अंग्रेजों से आजादी की मांग को इतिहास में महिलाओं की सबसे शक्तिशाली आवाजों में से कुछ के नेतृत्व में हो रही थी, तब उनमें उद्या देवी एक योद्धा थीं, जो 19वीं शताब्दी के भारत में सबसे उग्र थीं। दलित इतिहास को चिह्नित करते हुए, हम सभी उद्या देवी के जीवन और समय को दलित प्रभाव और महिला प्रेरणा के प्रतीक के रूप में देखते हैं। जब 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम या तो ऐतिहासिक स्मृति में या प्रवचनों के आदान-प्रदान मांग सामने आया, तो झांसी की रानी लक्ष्मीबाई का नाम सबसे अधिक उछाला गया। लेकिन उद्या देवी जैसे नेता, जिनका प्रतिरोध में योगदान अद्वितीय है, इतिहास और सार्वजनिक चेतना दोनों में समान स्थान, उत्सव और मान्यता के पात्र हैं। इस पत्र में उद्या देवी की वीर कथा को 1857 के परिप्रेक्ष्य में दलित महिलाओं की जनचेतना को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्द: 1857 का विद्रोह; जनचेतना; वीरांगना; समकालीन प्रभाव।

परिचय

भारतीय इतिहास अक्सर भूली-बिसरी, बहादुर महिलाओं से भरा पड़ा है, जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में एक अभिन्न भूमिका निभाई है। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में शहीद हुई योद्धा उद्या देवी ऐसी ही एक बहादुर महिला हैं। उत्तर प्रदेश के लखनऊ के उजिरियाओ गाँव में जन्मी, उद्या देवी भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के अपने दृढ़ संकल्प के कारण बेगम हजरत महल से जुड़ीं। बेगम, जो नवाब वाजिद अली शाह की पत्नी थीं, अवध में आंदोलन का नेतृत्व कर रही थीं। उनकी मदद से, उद्या देवी ने गोमती नदी पर तैनात ब्रिटिश रेजिमेंट से लड़ने के लिए एक महिला बटालियन का गठन किया, जिसमें बड़े पैमाने पर दलित समुदाय के सदस्य शामिल थे। इस बटालियन की महिलाओं को 'वीरांगिनी' कहा जाता था, जिसका अर्थ है बहादुर नायिकाएं।1

उद्या देवी के पति मक्का पासी चिनहट की लड़ाई में शहीद हो गए थे। अपने दु:ख से प्रेरित होकर, उद्या देवी ने यह सुनिश्चित करने के लिए बहादुरी से अपनी जान जोखिम में डाल दी किन्तु ब्रिटिश रेजिमेंट महिला बटालियन को तोड़कर सुदृढीकरण तक नहीं पहुंच सके। जबकि लड़ाई की बारीकियों के बारे में बहुत कुछ नहीं लिखा गया है, उनकी मृत्यु की परिस्थितियों को ब्रिटिश कमांडर कैंपबेल और डब्ल्यू. गॉर्डन-अलेक्जेंडर ने आंदोलन के अपने खातों में दर्ज किया है। उनके अनुसार, उद्या देवी एक पीपल के पेड़ पर चढ़ गई और ब्रिटिश सैनिकों पर फायरिंग शुरू कर दी। कथित तौर पर उसे देखे जाने से पहले उसने 32 से 36 सैनिकों को मार गिराया। देखते ही देखते उसकी तुरंत गोली मारकर हत्या कर दी गई। हालाँकि, जब वह जमीन पर गिरी तो सैनिकों ने उसे एक महिला के रूप में पाया। ऐसा कहा जाता है कि कैंपबेल उनकी बहादुरी से प्रभावित हुए और सम्मान में उन्हें नमन किया।[2]

उद्या देवी उन सभी को प्रेरित करती रहती हैं जो उनके साहस और उनके बलिदान के बारे में जानते हैं। लखनऊ के सिकंदर बाग में उनकी एक मूर्ति है। उनकी कहानी उस भूमिका की याद दिलाती है, जो महिलाओं, विशेष रूप से वंचित वर्ग की महिलाओं द्वारा आज हम जिस स्वतंत्रता का आनंद ले रहे हैं, उसे प्राप्त करने में निभाई हैं। जब हम 1857 में महिलाओं की भूमिकाओं के बारे में बात करते हैं, तो हम तुरंत रानी लक्ष्मीबाई और बेगम हजरत महल के बारे में सोचते हैं। लेकिन क्या ये अकेली महिलाएं थीं जिन्होंने संघर्ष में योगदान दिया? गैर-प्रमुख जातियों में से कई ऐसी थीं जो स्वतंत्रता संग्राम के लिए महत्वपूर्ण थीं जिनके बारे में शायद ही कभी बात की जाती है। क्या इसलिए कि वे समाज में हाशिए के समूहों से ताल्लुक रखते थे और इसलिए उनके बलिदानों को ध्यान में नहीं रखा गया और किसी ने उनके साहस के इतिहास का प्रचार करने की परवाह नहीं की? या उनकी "अनुपस्थिति" का कारण यह है कि पारंपरिक पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं को योद्धा के रूप में नहीं देखा जाता था? विजेताओं ने अपने सवर्ण हितों के अनुरूप 1857 के बाद के इतिहास को फिर से लिखा। इस प्रकार, दुश्मन के खिलाफ विद्रोह में भाग लेने वाले गैर-प्रमुख जाति के लोगों की स्तुति या महिमामंडन एजेंडे में नहीं था।[3]

1857 के विद्रोह में भूमिका

लखनऊ में सिकंदर बाग के बाहर एक चौराहे के केंद्र में, एक पेटीना से ढकी हुई, अस्पष्ट आकृति की एक मूर्ति खड़ी है, जिसमें एक राइफल है और एक दृढ़ चकाचौंध के साथ आगे बढ़ रहा है। प्रतिमा के आधार पर शिलालेख में 1857 के विद्रोह की नायिका उद्या देवी पासी का नाम दिया गया है। 1857

के पतन में, उत्तरी भारत आभासी अराजकता की स्थिति में था। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के बढ़ते आधिपत्य के खिलाफ एक सामान्य विद्रोह ने दिल्ली, झांसी और कानपुर के शहरों को खा लिया। लखनऊ में, गोमती नदी के तट पर रेजीडेंसी में एक छोटा ब्रिटिश गैरीसन जीवन से जुड़ा हुआ था। विद्रोहियों से घिरे और पर्याप्त आपूर्ति की कमी के कारण, ब्रिटिश सैनिकों, वफादार भारतीय सिपाहियों और गैर-लड़ाकों की घटती टुकड़ी 1857 की गर्मियों में विनाश के कगार पर थी। ब्रिटिश सैनिकों का एक राहत स्तंभ सितंबर में टूट गया, लेकिन गोलीबारी जारी थी।[4]

नवंबर में, जनरल कॉलिन कैंपबेल ने विद्रोही लाइनों को बीच से तोड़ दिया और अंततः फंसे हुए गैरीसन को बचाया। इस 'लखनऊ की दूसरी राहत' के दौरान, कैंपबेल की 93वीं हाईलैंड रेजिमेंट गोमती के दक्षिणी किनारे पर तब तक आगे बढ़ी जब तक वे सिकंदरबाग के महल तक नहीं पहुँच गए। ब्रिटिश सेना को विद्रोहियों के हताश प्रतिरोध का सामना करना पड़ा जिन्होंने स्थिति को मजबूत किया था। इसके बाद की लड़ाई में, 2,000 से अधिक विद्रोहियों और कई सैनिकों ने आमने-सामने की लड़ाई में अपनी जान गंवा दी।[5]

समकालीन प्रभाव

आज उद्या देवी गैर-प्रमुख जातियों की महिलाओं के लिए एक प्रेरणा हैं। हर साल, 16 नवंबर को, पासी जाति के सदस्य उसकी अंतिम डुबकी को देखते हुए इकट्ठा होते हैं और उसे एक साम्राज्यवाद-विरोधी विद्रोही के रूप में मनाते हैं, जिसने परंपरा का उल्लंघन किया और भारतीय स्वतंत्रता के बीज के कारण को झटका दिया। वे पूरे पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश और बिहार से उद्या देवी पासी की छवि पर आहुति देने आते हैं। कई दूरदराज के गांवों की महिलाएं हैं जो भाग लेने के लिए लंबी दूरी तय करती हैं। पारंपरिक रूप से सुअर चराने वालों और ताड़ी काटने वालों की एक जाति पासियों के लिए, उद्या देवी शहादत दिवस पर अपने पूर्वजों की बहादुरी और युद्ध की भावना का आनंद लेने और उद्या देवी अमर रहे! और उद्या देवी जिंदाबाद! के उत्साही नारे लगाते हैं। उन्हें शहीद हुए एक सदी से अधिक का समय हो गया है। फिर भी, उद्या देवी के बलिदान की स्मृति को दलित समुदायों द्वारा जीवित रखा जाता है, जो उन्हें निडर दलित नारीत्व के एक मॉडल के रूप में संजोते हैं।

पासी जाति का वास्तविक इतिहास पूरी तरह से दुनिया के लिए खो गया है। उन्होंने जो भी योगदान दिया वह बिना रिकॉर्ड के पारित हो गया। पासी, भारत की कई अन्य गैर-प्रमुख जातियों की तरह, सवर्णों के साथ-साथ अंग्रेजों द्वारा उन्हें इतिहास का हिस्सा बनने से रोकने के निरंतर प्रयासों के माध्यम से सहस्राब्दियों से अस्तित्व में हैं।[6]

जब कमांडर कॉलिन कैंपबेल के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना ने लखनऊ के सिकंदरबाग पर हमला किया, तो सेना को हजारों दलित महिलाओं की दीवार का सामना करना पड़ा। उस दौरान कई कविताएँ लिखी गई जो युद्ध के महत्वपूर्ण क्षणों पर प्रकाश डालती हैं। ऐसी ही एक कविता इस प्रकार है:

कोई उनको हब्सिन कहता, कोई कहता नीच अच्छा।

अबला कोई उन्हें बतलाये, कोई कहे उन्हे मजबूत।

हरम की रखवाली के लिए कई अफ्रीकी महिलाओं को अवध के नवाबों के दरबार में नियुक्त किया गया था। वे भी 1857 के दौरान लखनऊ की लड़ाई में मारे गए।

महान विद्रोह की एक महत्वपूर्ण विशेषता भागीदारी थी। न केवल शाही और कुलीन पृष्ठभूमि की महिलाओं ने बल्कि कमजोर समुदायों की महिलाओं ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हालाँकि स्वतंत्रता सभी के लिए लड़ी गई थी, लेकिन यह केवल कुछ को ही दी गई थी। अंग्रेजों के खिलाफ 1857 के भारतीय विद्रोह के दौरान हम सभी ने अध्ययन किया है। इसे प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के रूप में जाना जाता था। हालाँकि, विद्रोह को बंद कर दिया गया था, लेकिन इसने लोगों के मन में स्वतंत्रता की आशा जगा दी। जबकि कई लड़ाके थे, उद्या देवी का नाम अंग्रेजों के खिलाफ लखनऊ में उनकी साहसी लड़ाई के कारण विशेष है। अंग्रेजों के सिकंदरबाग पर कब्जा करने के बाद, एक अधिकारी ने नोट किया कि कई ब्रिटिश हताहतों को गोली के घाव थे जो एक तेज, नीचे की ओर प्रक्षेपवक्र का संकेत देते थे। यह संदेह करते हुए कि एक स्नाइपर पास के पीपल के पेड़ में छिपा हुआ है, ब्रिटिश अधिकारियों ने पेड़ पर गोली चलाई और एक विद्रोही को उखाड़ फेंका, जो जमीन पर मृत गिर गया था। आगे की जांच से पता चला कि विद्रोही वास्तव में उदय देवी पासी नाम की एक गैर-प्रमुख जाति की महिला थी, जिसने विद्रोह में भाग लेने के लिए पुरुषों के कपड़े पहने थे।[7]

उन्हें शहीद हुए एक सदी से अधिक का समय हो गया है। फिर भी, उदा देवी के बलिदान की स्मृति को दलित समुदायों द्वारा जीवित रखा जाता है, जो उन्हें निडर दलित नारीत्व के एक मॉडल के रूप में संजोते हैं। पासी जाति का वास्तविक इतिहास पूरी तरह से दुनिया के लिए खो गया है। उन्होंने जो भी योगदान दिया वह बिना रिकॉर्ड के पारित हो गया। पासी, भारत की कई अन्य गैर-प्रमुख जातियों की तरह, सवर्णों के साथ-साथ अंग्रेजों द्वारा उन्हें इतिहास का हिस्सा बनने से रोकने के निरंतर प्रयासों के माध्यम से सहस्राब्दियों से अस्तित्व में हैं।

उद्या देवी प्रमुख 'दलित वीरांगनाओं' में से एक थीं, जिन्होंने ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के खिलाफ 1857 के विद्रोह में भाग लिया और लखनऊ में एक भीषण लड़ाई का नेतृत्व किया, जिसे सिकंदर बाग में लड़ाई कहा गया। 16 नवंबर, 1857 को युद्ध के मैदान में मरने से पहले उसने अकेले ही 32 ब्रिटिश सैनिकों को मार डाला था। 150 से अधिक साल पहले उनका निधन हो गया था, लेकिन उनकी बहादुरी और साहस अभी भी कई लोगों के लिए प्रेरणा है। ब्रिटिश शासन के खिलाफ 1857 के भारतीय विद्रोह ने देश भर में लड़ी गई सबसे क्रूर लड़ाइयों में से कुछ को देखा। सैनिक साहसी थे और दांत और नाखून से लड़ते थे। जबकि विद्रोह सफल नहीं हुआ, यह इतिहास में एक धर्मी संघर्ष के रूप में नीचे चला गया।

अवध, उत्तर प्रदेश में एक दलित परिवार में जन्मी, उदा देवी ने कम उम्र में ही ब्रिटिश राज के खिलाफ स्थानीय लोगों द्वारा दिखाए गए असंतोष को पहचाना। उसने इस कारण में योगदान करने का फैसला किया, और अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई की तैयारी के लिए बेगम हजरत महल से मदद लेने के लिए संपर्क किया। बेगम हजरत महल दयालु थीं और उन्होंने उद्या देवी को एक महिला बटालियन बनाने में मदद की, जिसका नेतृत्व बाद में खुद करेंगी। इस प्रकार, जब अवध पर अंग्रेजों ने हमला किया, तो उद्या देवी और उनके पति सशस्त्र प्रतिरोध का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गए।

उद्या देवी उत्तर प्रदेश प्रांतीय सशस्त्र कांस्टेबुलरी की एक सर्व-महिला बटालियन के पीछे प्रेरणाओं में से एक हैं। सरकार इन बटालियनों में ओबीसी और दलित समुदायों की महिलाओं को भर्ती करने की इच्छुक है। महिला पीएसी बटालियन भीड़ नियंत्रण में सरकार की मदद करेगी, और आंदोलन के दौरान जहां प्रतिभागी ज्यादातर महिलाएं हैं। सरकार वर्तमान में उत्तर प्रदेश में भूमि की पहचान कर रही है, जहां इन महिला पुलिसकर्मियों के प्रशिक्षण के लिए केंद्र बनाए जा सकते हैं। महिला पीएसी बटालियनों की स्थापना समाज के कमजोर वर्गों की महिलाओं को सशक्त बनाने की दिशा में एक उत्कृष्ट कदम है, और यह केवल उपयुक्त है, कि यूनिट में से एक का नाम उद्या देवी जैसे 'दलित वीरांगना' से लिया गया है।[8]

अभिलेखों में, पासी जाति - जिसे मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश में मौजूद दलित समुदाय के सदस्यों के रूप में पहचाना जाता है - ने दिवंगत आइकन की विरासत को जीवित रखने के लिए प्रतिबद्धता व्यक्त की है। 16 नवंबर को उनकी पुण्यतिथि के रूप में चिह्नित किया जाता है, जो उदा देवी के दमन और पितृसत्ता के प्रतिरोध को याद करने और याद करने का दिन है। लखनऊ के सिकंदर बाग में उदय देवी की एक मूर्ति ऊंची है, जहां योद्धा प्रतीक शहर को युद्ध में शामिल होने के लिए तैयार एक रुख और हथियार के साथ देखता है।

2018 में, सत्तारूढ़ भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) ने कथित तौर पर उदा देवी की 100 फीट ऊंची प्रतिमा के निर्माण का प्रस्ताव रखा था। हालांकि, राजनीतिक विशेषज्ञों ने टिप्पणी की है कि इस कदम का उद्देश्य ऐतिहासिक पुनरुत्थान और दलित महिलाओं की मान्यता कम और मतदाता तुष्टिकरण पर अधिक था।

निष्कर्ष

यह कहा जा सकता है कि उस सबसे बड़ी चुनौती का अंत हुआ, जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद को भारत में झेलनी पड़ी। चूंकि विद्रोहियों को सफलता नहीं मिली, इसलिए इसके बारे में सिर्फ अनुमान ही किया जा सकता है कि अगर वे सफल हो जाते, तो इतिहास की दिशा क्या होती। क्या होता यदि उन्होंने इतिहास की धारा को विपरीत दिशा में मोड़ दिया होता और पुरानी सामंती व्यवस्था को एक नई ताकत के साथ पुन: स्थापित किया होता? यहां इस पर विचार करने की जरूरत नहीं है, हालांकि इतना तो कहा ही जा सकता है कि उनकी तमाम सीमाओं और दुर्बलताओं के बावजूद उनके सामने एकमात्र विकल्प यही नहीं था। विदेशी शासन से राष्ट्र को मुक्त कराने की उद्या देवी की कोशिश एक देशभक्तिपूर्ण और इसलिए प्रगतिशील कार्रवाई थी। यदि किसी ऐतिहासिक घटना का महत्व उसकी तात्कालिक उपलब्धियों तक सीमित नहीं होता, तो 1857 का विद्रोह भी महज एक ऐतिहासिक ट्रेजडी नहीं थी। अपनी विफलता में भी इसने एक महान उद्देश्य की पूर्त्ति की। यह राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का प्रेरणास्रोत बन गया, जिसने वह हासिल कर दिखाया, जो विद्रोह हासिल नहीं कर सका।

इसमें कोई संदेह नहीं कि राष्ट्रीय आंदोलन पूरी तरह से जनांदोलन था जो उपनिवेशवाद के विरूद्ध छेड़ा गया था। फलत: इस आंदोलन में भारतीय समाज के सभी वर्ग शामिल थे। इस संदर्भ में यह गौरतलब है कि यद्यपि सभी भारतीय उपनिवेशवाद के विरूद्ध संघर्ष में ऐक्यबद्ध थे, पर साथ ही वे विभिन्न सामाजिक वर्गों में बंटे हुए भी थे। इस सामाजिक वर्गों के अपने अंतर्विरोध थे। इसके साथ ही विभिन्न वर्गों तथा समूहों का उपनिवेशवाद से अलग-अलग स्तर पर तथा अलग-अलग हद तक टकराव था और साम्राज्यवाद - विरोधी संघर्ष में उनकी हिस्सेदारी का स्वरूप भी अलग - अलग था। अत: इस संघर्ष के परिणामस्वरूप जो समाज स्थापित होता, वह वर्गीय दृष्टिकोण से कई तरह का हो सकता था। साम्राज्य से भारतीय जनता का जो केंद्रीय अंतर्विरोध था, उसके मुकाबले पर यानी आजादी हासिल होने पर भारत समाजवादी देश भी हो सकता था और मूलत: पूंजीवादी पर समाजवादी ढंग का देश भी।

संदर्भ

1. बेट्स, क्रिस्पिन; कार्टर, मरीना (2 जनवरी 2017), हाशिये पर विद्रोह: 1857 के भारतीय विद्रोह पर नए परिप्रेक्ष्य: भारतीय विद्रोह के दस्तावेज। सेज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 44
2. गुप्ता, चारु (18 अप्रैल 2016), जाति का लिंग: प्रिंट में दलितों का प्रतिनिधित्व। वाशिंगटन विश्वविद्यालय प्रेस, पृ0 91
3. नारायण, बद्री (2006), उत्तर भारत में महिला नायक और दलित अभिकथन: संस्कृति, पहचान और राजनीति। सेज प्रकाशन, नई दिल्लीख् पृ0 132
4. गुप्ता, चारु (2007), "दलित 'वीरांगना' और 1857 का पुनर्निवेश"। आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक। 42 (19): 1739-1745।
5. नारायण, बद्री (7 नवंबर 2006), उत्तर भारत में महिला नायक और दलित अभिकथन: संस्कृति, पहचान और राजनीति, सेज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 83
6. वर्मा, आर.डी (1996)। वीरांगना उदय देवी। महिंद्रा प्रिंटिंग प्रेस, नई दिल्ली, पृ0 62
7. सफवी, राणा (7 अप्रैल 2016), "1857 की भूली हुई महिला"। द वायर-जीबी.
8. "दलित समूह ने अपनी 1857 की शहीद उदा देवी को याद किया", टाइम्स ऑफ इंडिया-जीबी, 16 नवंबर 2015।

पुष्प विलापम खंड काव्य में स्त्री विमर्श

डॉ० एम्० यसोदा देवी

हिंदी विभाग, एन एस पी आर. सरकारी डिग्री महिला कलाशाला, हिंदूपुर, अनंतपुर जिला

प्रस्तावना

पुष्प विलापम तेलुगु में सुप्रसिद्ध खंड काव्य हैं, जो "करुणाश्री" नाम से मशहूर ष्श्री जांद्याला पापयया शास्त्रीष की रचना है। इसमें कवि की सुन्दर पद्य शैली, भावुकता, करुणा रसात्मकता आदि के समन्वय अभिनिवेशन हैं। ये कविता के पद्यों को अमरगायक श्री घंटशाला वेंकटेस्वर राव ने अपने करुणामय कंठ ध्वनि से सारे आँध्रप्रदेश में जनप्रिय बनाये है। हम इस कविता में कई विषयों के दर्शन करेंगे।

कविता परिचय

कवि करुणाश्री ने भगवान की पूजा खुद करने, सुबह ही उठ कर, गंगा में स्नानकर, स्वेत वस्त्र पहनकर, फूल केलिए फुलवाड़ी जाते है, वहां के किलकिल लहराते हुए फुलो को देख कर खुशी के साथ उनके पास जाते है, और फूलों से लदे हुए एक शाखा को पकड़कर, उसे झुकाकर, फूल तोड़ने केलिए अपने नख रखते ही अचानक ये फूल बालिकावों जैसे डरके नाते रोते हुए, विनती करती हैं कि रुको, हमें मत तोड़ो, तुम निर्दय होकर हमारे प्राणों को मत निकालो। तब कवि ने अचरज से उनको तोडना छोड़ दिए। उसके मन में एक भाव पैदा होगये, और उनके मन में पुष्पविलापं नामक एक कविता का जन्म हुआ ।

विरिकन्याए कहती है कि हम अपनी लता माता की सुकुमार एवं सुखदायक गोद में झूला झुलेंगें। ऐसे हमें आप लोग तोड़ कर अपनी टोकरियों में दबाकर बेच देंगें। अपने मोक्ष केलिए करने वाली पूजा में इतना क्रूरकृत्य से करनेवाली क्रिया से क्या भगवान संतुष्ट हो जाता है क्या ? हम मुर्ख हैं, तुम ज्ञानवान हो, तुम्हें बुद्धि और भाव समृद्धि भी है, फिर तेरे मन में पत्तर सा कठिनाई क्यों? भगवान की पूजा केलिए अपने ह्रदय में फूल नहीं विक्सित होते है क्या?

आगे बताते हुए ये फूल कहती है कि हमारे जीवन काल बहुत कम हैं, इतनी छोटी सी जिंदगानी में हम अपनी माता की जातीयता को निखार करेंगे, उनके हाथो मे सुख से जुझेंगें, हमारे आयु की पूर्ति होते ही अपनी मात के पैरों पर गिर कर मुरझाएंगी। आगे बताते हुए ये पूबालाये, अपने सुगंध देकर हवा को गौरव करेंगी, अपने पास आये मधुकर को शहद देकर उनको दावत देदेंगी , आप जैसे मानव के नेत्रपर्व करेंगी। हम स्वतंत्र हैं, रुको, तुम, अपने स्वार्थ बुद्धि से हमें मत तोड़ो, हम माँ बच्चों को अलग मत करो। अपने सुख केलिए दूसरों के गले तोड़ कर, कमानेवाला पुण्य से तुझे मोक्ष कैसे मिलेगा ? खून से भीगे हाथों से किये जाने वाली पूजा को भगवान कैसे स्वीकार करेगा ? सकल चराचर चक्रवर्ती वह भगवान हमारी जैसी नादान की प्रार्थना नहीं सुनते क्या? अपने बीच आपस में यह झगड़ा क्यों? हमे छोड़ दो। ये फूल कन्याये और दयनीय कंठ से मुझे तिरस्कार करते हुए कहती हैं कि, हे निर्दयी, धागों से हमारे गले को फांसी देते हैं, हमारे ह्रदय से सुई चुभाकर मालाये बनाती है और अपने जुटे में सजाती है अपनी महिलाये, अरे, कितने दयाहीन है ये लोग ? अपने दिल में थोडीसी करुणा न होने से हमें तेल में डालकर पकाकर, मलतेहुए हम से सुवासन द्रव्य बनाकर, हमारे अवशिष्ट रुधिर को अपने बदबू भरे देहों को लगाते हैं। हायरे, चारों तरफ ये मानव रूपी आराम से रहने वाले भैंस रहते हैं, ये सभी हमें अपने शैय्याओं पर डालकर, अपने कठोर पैरों से, हमारे मुलायम देहों को मसलते हुए, अपने पर रात भर ढुलते रहते है। बाद प्रातः होते ही, मुरझाये, पख गिरे हुए, प्राण खोये हुए हमें बहार फेंकते हैं। अपने अमूल्य मुग्ध, सुकुमार, सौगन्धित एवं मकरंद भरित हमारे मधुरु जीवन को, आप जैसे नरों के लिए त्याज्य करके, शोषित होकर, नाश होनेवाली हमारे याव्वन को लूट कर बाद में झाड्रू से निकालकर हमें किसी कूड़े करकट में फेंकते हैं। आप नर जाति को कोई निति है क्या? बुद्ध भगवान जहाँ जन्म लिया था व्ही भूमि पर तेरे भी जन्म हुआ, फिर अपने दिल की प्रेम भावना मर गया है क्या ? सुंदरता की हत्या करनेवाले हांतक हो तुम, तेरा मानव जन्म ही मलिन होगया है। पूजा न करने से क्या होता है ? तुम्हे पुण्य आएगा, रुको, हमें मत तोड़ो, हमारे मासूम गले को मत काटो, अय्यो, अपने हाथो से खून करके, आप पानेवाला यह महा भाग्य क्या है ? इस तरह सारे फूल मुझे धिक्कार करके गालिया दिए हैं। मेरे हाथ अटक गए, मैं फूल तोड़ने में असफल हो गया हूँ। कुछ भी न सूझने पर, आप से बताने केलिए, खली हाथो से आपके सामने पहुँच गया हूँ। इस तरह कवि अपने मनोभावों को भगवान के सामने निवेदन करते है ।

निष्कर्ष

इस कविता में हम कवि की बातों से यह जानना है कि, सभी सृष्टि बहुत सुन्दर है, सुंदरता के साथ साथ जीवंत भी है, ऐसे प्रकृति का ध्वंस करना मानव जाती केलिए अनर्थदायक है। जैसे जगदीश चंद्र बॉस ने कहे थे, कि पौधों को भी प्राण है, ये भी स्वास लेते है, यह विषय को करुणाश्री ने हमारे सामने लाते है, जैसे फूलों को पुबालाये कहकर वे अपने प्राण न निकलने की प्रार्थना करती है। अपनी माँ से दूर करने कि चेस्टा मत करने की याचना करती है। अल्प समय मात्र रहनेवाले अपने जीवन में क्या क्या अच्छे काम करती है, उनके बारे में भी कहती है। सहजता की बात यह है कि अपने सगंध से चारों ओर आह्लादित करती है, अपने पास आने वाले भृंगों को मकरंद देती हैं, देखनेवालों के आंखों को पसंद करती है, उनके ह्रदय को रंजीत करते है, ऐसे सुन्दर,

सुकुमार, स्निग्ध कुसुमों को मानव मृग जैसा , उनको फाड़कर , तोड़कर , नाश कर रहे है. भगवान कि पूजा केलिए, अपने घर -बार सजाने केलिए, अपने श्रृंगार केलिए कई तरह से फूलों को विनिमय कर रहे है, कई तरह के ओषधीय गुण होने से भी कई दवाईयों में विशेष रूप से इस्तेमाल करते है, सौंदर्य साधनों में , गुलकन , सुगंध द्रव्य आदि बनाने में भी फूल की जरुरत है . अत्यंत प्रमुख बात यह है कि आजकल समाज में होनेवाले अत्याचारों के प्रतिक सा भी हम इस कविता को मानना है, क्योंकि मानव समाज में पहले से भी नादान महिलावों पर अत्याचार करना अधिक हो गया, स्त्री को एक विलास की वस्तु मानकर अपने दुष्कामनावौं की पूर्ति केलिए महिलावों को सताते रहे है, छोटी नन्हे बालिकाओ को भी वे छोड़ते नहीं हैं, भोले भाले फूल जैसे नारियों को सभी प्रकार से नाश करके आखिर प्राण को भी निकाल रहे है. इस विषय केलिए कई प्रकार के उदहारण हमारे सामने है. तब भी मृगप्राय पुरुषों में कोई बदलावटी नहीं आ रही है. उनके अमानवीय कृत्यों को आज तक कोई अंत नहीं है। यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते , रमन्ते तत्र देवता: , यह आर्योक्ति हैं। प्रकृति और स्त्री का अभेद कहते है, जब हम अपनी प्रकृति की रक्षा करते है, तभी हम सुरक्ष रह सकते है, वैसे ही अपनी स्त्री जाती की रक्षा करने पर ही स्वस्थ समाज कि रूपकल्पना होगी। वह समाज धन्य होगा ।

उपसंहार

इस कविता में श्री करुणाश्री जी ने जो भाव व्यक्त किया इसमें ऊपर से देखने केलिए सिर्फ नन्हे फूलों की वेदना ही दीखती है, और कवि की अद्भुत रचना वैशिस्ट देखने को मिलती है, कवी की मूर्तिमंत वाग्वैदग्ध को दर्शा सकते है। किन्तु आज की स्त्री विवक्षा की दृस्टि से देखे तो इस कविता सिर्फ फूलों की वेदना को नहीं, बल्कि सारी स्त्री जाती की वेदना को अभिव्यंजित कर रही है। इस में पहले पद्य से लेकर आखिर तक जितने पद्य है, इन सभी में आज समाज में जो अमानवीय अत्याचार महिलावों पर जारी हो रहे है, उन सभी के बारे में आवाज दे रही है। फूल अपन को मत तोड़ने का, अपनी माता की गोद से दूर न करने की विनती करती है, रोती है। बाद में अपनी माँ के साथ रहते समय वे कितना प्रसन्न रहते है और अपनी सुंदरता से, अपनी माधुर्यता से कितनों को मनोरंजन करती है, सभी को कितना प्यारा लगती है, उन विषयों के बारे बार बार कहती है, ऐसे सुन्दर, सुकोमल, मधुर जीवनवाले नन्हे फूलों को कितनी कठोरता के साथ तोड़-मरोड़ कर टोकरियों में लादकर बेचना, उन्हें भैंस जैसे लोग अपने शैय्याओं पर डालकर, अपने कर्कश पैरों से मलना, उन पर लेटकर मुरझाने तक ढुलना, बाद में मुरझाये, प्राणहीन अवशेषों को निर्दयता से बहार फेंकना, ये सभी महिलावों पर, ये नन्हे बालिका हो या वृद्ध महिला हो, सारी स्त्री जाती के साथ मृग जैसे पुरुष लोग के करतूत का दर्पण सा है। ये फूल कहते है, हमारी सारे गुण, क्रियाये आप केलिए ही अर्पित कर रहे है, फिर भी आप लोग हमें शोषण कर रहे है, नाश करके प्राण निकाल रहे है, निर्दयी होकर हमें झाड़ू करके कूड़े में डाल रहे है. यह पद्य में समाज में स्त्री की दु:स्थिति कैसी है, उन पर पुरुष का दमन कैसी है मालूम होती है। अहिंसा का प्रतीक और भगवान बुद्ध की जन्मा भूमि में पैदा होकर भी मृदुल और सुन्दर फूलों को माला बनाने केलिए, अपने को श्रृंगार करने को स्त्रीया भी उन फुलो को धागे से बांधती है, उनके दिलों में सुई से चुभ कर माला सा जमा करती है, अपनी चोटी में सजती है. मानो कुछ नारी जन भी अपनी स्त्री जाती के बारे में निरंकुश प्रवृत्ति दिखाती है, उनसे नीच काम करवाना, अपने घर-बार की क्लिष्ट काम करवाना, दुष्ट भावना से स्वजाती को नाश करना हम देख रहे है। अर्थात, इस मानव समाज में स्त्री की सुरक्षा कहाँ है? आखिर अपने घर में भी अनुमानास्पद हो गया। बाहार चले तो ठीक से घर पहुंचना मुश्किल हो रहा है, किसी नौकरी करने वाली स्त्री पर पशु तुल्य पुरुषों के लैंगिक अत्याचार साधारण बन गए है। गर्भस्ता शिशु बालिका हो तो भ्रूण हत्या करना, अगर पैदा हो तो जनम लेते ही मारना, बच्चियों को बेचना, पैसो केलिए बूढ़े आदमी से बाल्य विवाह करना, दहेज की मामले में होनेवाले पाशविक षड्यंत्र, शादी के नाम से अरब देशों को सौंपना, प्रेम के नाम से द्रोह करके कही छोड़ देना या भेचना निरंतर कही न कही घटित हो रहे है। सोचिये, हम कहाँ है, मानवीय मूल्य से भरा हुआ भूमि पर, या मुगप्राय भक्षक लोक में. अपनी जिंदगी को स्वर्गतुल्य बनानेवाली स्त्रीजाति की सम्मान हम कैसे कर रहे है। यह घर घर की कहानी है। हर घर की व्यथा है। इसे सौंदर्य नंदन बनाने की आवश्यकता सभी का है। सभी के हाथ में है। इस केलिए सभी मानव प्राणी अपने कमर कसने की जरुरत है। अपनी स्त्री जाती की रक्षा केलिए कंकण बद्ध होने का अवसर है।

परिवर्तन के समय में रूसी राजनीति

शैलेन्द्र कुमार

सहायक प्राध्यापक, सेलेक्शन ग्रेड, राजनीति विज्ञान विभाग, जे पी कालेज, नारायणपुर, तिलकामांझी भागलपुरए विश्वविद्यालय भागलपुर

सार

2014 के पहले कुछ महीनों में विश्व मंच पर रूसी संघ की छवि का अभूतपूर्व पतन हुआ, जो शीत युद्ध की समाप्ति के बाद से सबसे खराब था। यूक्रेन की घटनाओं और अंतरराष्ट्रीय समुदाय में बड़ी संख्या में देशों द्वारा उन पर प्रतिक्रिया ने रूस को उन देशों के समूह के लिए जल्दी से पदावनत कर दिया, जिनकी विदेश नीति कठोर निंदा को उकसाती है। इन प्रतिबंधों का उद्देश्य अभिजात वर्ग पर दबाव डालना है, जो कुछ विदेश नीति निर्णयों को लागू करने के लिए जिम्मेदार हैं। कई विशेषज्ञों के लिए, घटनाएँ रूस की विदेश नीति में एक नए परिवर्तन से जुड़ी हैं। हालाँकि, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिम के साथ संबंधों को ठंडा करने का वर्तमान चरण उस तरीके का तार्किक परिणाम है जिसमें हाल के वर्षों में रूसी राज्य का निर्माण किया गया था। यह लेख रूस की विदेश नीति को आकार देने वाले तंत्र और तर्क के बारे में लेखक के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है, जो पिछले तीन वर्षों में कई पुनरावृत्तियों के माध्यम से विकसित हुआ है। प्रस्तुत पत्र के माध्यम से परिवर्तन के समय रूसी राजनीति पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्दः रूस में परिवर्तन; कारक; रूसी राजनीति; अभिजात वर्ग; विदेश नीति।

परिचय

व्लादिमीर पुतिन का नया राष्ट्रपति कार्यकाल, जो 2012 में शुरू हुआ था, रूस की विदेश नीति के एक महत्वपूर्ण परिवर्तन के रूप में, दोनों पड़ोसी राज्यों और सामान्य रूप से विश्व राजनीति के संबंध में था। अधिकांश पंडित इस परिवर्तन को रूस में ही घरेलू, सामाजिक प्रक्रियाओं, एक तेजी से सक्रिय जनता और रूसी अभिजात वर्ग के गुणात्मक परिवर्तन से जोड़ते हैं। हालाँकि, हम मानते हैं कि रूस की वर्तमान विदेश नीति की अवधारणा तीन कारकों का एक जटिल संयोजन है, जो विदेशी और घरेलू दोनों हैं:

अ. पिछले 3-5 वर्षों में रूसी अभिजात वर्ग के भीतर विभिन्न समूहों के बीच प्रतिस्पर्धा के परिणामस्वरूप हुई राजनीतिक व्यवस्था का विकास। इन प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप, रूस के राजनीतिक स्पेक्ट्रम में एक जटिल संरचना है, जिसमें उदार-आर्थिक, रूढिध्वादी-राजनीतिक और कुलीन तत्व शामिल हैं। रूस की वर्तमान विदेश नीति के जटिल चरित्र के पीछे इन समूहों के बीच प्रतिस्पर्धा एक प्रमुख कारक है।

ब. यूरेशियन आर्थिक और राजनीतिक एकीकरण परियोजना, जो रूसी नेताओं की मानसिकता में, 21वीं सदी में रूसी विकास की कुंजी है। सोवियत काल के बाद के स्थान को फिर से एकीकृत करने के लिए आवश्यक विशाल कदमों को लागू करने में सफलता या विफलता को आज रूसी राजनीतिक प्रणाली की प्रभावशीलता और इसकी विदेश-नीति रणनीतियों के मुख्य संकेतक के रूप में देखा जाता है।

स. अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा स्थिति, जिसमें मध्य और सुदूर पूर्व के साथ-साथ मध्य एशिया और अफगानिस्तान में अनिश्चितताओं और खतरों की एक विस्तृत श्रृंखला है।

हम यह विश्लेषण करना महत्वपूर्ण समझते हैं कि उपरोक्त कारक वर्तमान रूसी विदेश नीति को कितना प्रभावित करते हैं, या फिर प्रत्येक कारक नीतियों को कितना प्रभावित कर सकता है। यह विश्लेषण आज के रूस में विदेश नीति निर्णय लेने में प्रमुख कारकों के बारे में प्रमुख मुद्दों के उत्तर प्रदान करेगा, उदाहरणस्वरूप नीति-निर्माण प्रतिक्रियाशील है या सक्रिय, और अगले कुछ वर्षों में क्या परिवर्तन लाएंगे।

रूसी अभिजात वर्ग

उठाए गए सवालों का जवाब देने के लिए, हमें पहले आज के रूसी अभिजात वर्ग की संरचना का निर्धारण करना चाहिए। इस स्तर को नाममात्र रूप से दो में विभाजित किया जा सकता है। पहला एक पदानुक्रम है: एक शासक वर्ग के भीतर आर्थिक और वित्तीय प्रभाव और हितों का वितरण जो राष्ट्रपति पुतिन के पहले राष्ट्रपति कार्यकाल के दौरान आकार लिया। दूसरा देश की राजनीतिक शासन प्रणाली पर कब्जा करने वाले अभिजात वर्ग के सदस्यों के मूल्य हैं। रूसी अभिजात वर्ग, सामान्य रूप से लिया जाता है, काफी अच्छी तरह से समझा जाता है। 2000 और 2010 के बीच, रूस में प्रभाव के चार मुख्य समूह उभरे। पहले में पुतिन के तथाकथित "इनर सर्कल", सेंट पीटर्सबर्ग के मित्र और सहकर्मी और वर्दीधारी सेवाएं शामिल थीं। इन सभी व्यक्तियों ने, एक डिग्री या किसी अन्य, ने राज्य की सबसे बड़ी औद्योगिक संपत्ति और आकर्षक ऊर्जा क्षेत्र सहित बुनियादी वस्तुओं पर नियंत्रण प्राप्त कर लिया। रूस के आधुनिक अभिजात वर्ग के इस समूह का विशेषज्ञों और विश्लेषकों द्वारा काफी अच्छी तरह से अध्ययन किया गया है, और इसमें परिवार और कबीले-प्रकार के बंधनों

की एक जटिल प्रणाली शामिल है, जिसके परिणामस्वरूप ऊर्जा निष्कर्षण और भारी उद्योग जैसे प्रमुख आर्थिक क्षेत्रों पर नियंत्रण होता है, जो राज्य के बजट का मुख्य आधार हैं। ये आंकड़े संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोपीय संघ की प्रतिबंध सूची में सबसे पहले लक्षित किए गए थे।

आधुनिक राजनीतिक अभिजात वर्ग का एक बड़ा हिस्सा रूसी राज्य प्रणाली में वर्दीधारी सेवाओं से बना है। इसमें रक्षा मंत्रालय, एफएसबी और आंतरिक मंत्रालय के प्रतिनिधि शामिल हैं, जो पुतिन के आंतरिक सर्कल के साथ मजबूत संबंध बनाए रखते हैं, लेकिन जिनका पूंजी प्रवाह पर कोई सीधा प्रभाव नहीं पड़ता है। बल्कि, वे राजनीतिक स्थिरता सहित देश में आर्थिक प्रभाव और राज्य सत्ता के वितरण के लिए नई प्रणाली के लिए अधिक स्थिरता प्रदान करते हैं। जवाब में, राज्य इस समूह को व्यापक प्राधिकरणों और अवसरों की गारंटी देता है, जिसमें प्राथमिकताओं की एक बहु-परत प्रणाली, वित्तीय सहायता और राज्य प्रायोजन के अन्य रूपों के माध्यम से इन क्षेत्रों पर बढ़े हुए खर्च शामिल हैं। उल्लेखनीय है कि बड़ी संख्या में नौकरशाहों और सिविल सेवकों के पास सेना, नौसेना और विशेष सेवाओं में अधिकारियों के रूप में अनुभव है; यह सीधे तौर पर यूएसएसआर के पतन और सेना के पुनर्गठन और विशेष सेवाओं से संबंधित है, जब लगभग 300,000 पूर्व अधिकारियों को नागरिक भूमिकाओं में फिर से एकीकृत किया गया था। ओल्गा क्रिस्टानोव्स्काया के सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ द एलीट्स के शोध के अनुसार, 2003 तक संघीय और क्षेत्रीय एजेंसियों में नियुक्त किए गए पूर्व अधिकारियों का हिस्सा लगभग 35 प्रतिशत था। पुतिन के राष्ट्रपति पद के दौरान इस अनुपात को और बढ़ाया गया था। देश में महत्वपूर्ण आर्थिक हितों का दावा करने वाला तीसरा समूह "पहली लहर" के प्रमुख रूसी कुलीन वर्गों का है, जिसमें बड़े व्यवसाय के मालिक भी शामिल हैं, जिन्होंने 1990 के दशक की शुरुआत में निजीकरण के माध्यम से अपनी कंपनियों को प्राप्त किया था। इस समूह को बड़े पैमाने पर विभिन्न प्रकार के राजनीतिक दबावों का उपयोग करके राज्य के नियंत्रण में रखा गया था। युकोस और मिखाइल खोदोरकोव्स्की के भाग्य के खिलाफ आपराधिक आरोप स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करते हैं कि जो कुलीन वर्ग नई राजनीतिक वास्तविकताओं द्वारा लगाई गई सीमाओं को स्वीकार नहीं करते हैं, वे अपनी राजधानी के साथ गायब हो जाते हैं। हालांकि, इस तथ्य के बावजूद कि अधिकांश रूसी कुलीन वर्ग रूस की वर्तमान राज्य प्रणाली में एकीकृत हैं, वे एक काफी शक्तिशाली और स्वतंत्र लॉबी समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो घरेलू और आर्थिक नीति के कुछ क्षेत्रों में अधिकारियों को दृढ़ता से प्रभावित कर सकता है।[1]

एक अन्य उल्लेखनीय समूह उदार-आर्थिक हितों का प्रतिनिधित्व करता है। इस समूह का उदय राष्ट्रपति दिमित्री मेदवेदेव के उदार टेक्नोक्रेट की एक युवा पीढ़ी को अभिजात वर्ग में शामिल करने के फैसले से जुड़ा है। इस समूह में मंत्रियों के मंत्रिमंडल के आर्थिक और वित्तीय कर्मचारी, सेंट्रल बैंक का नेतृत्व, रूसी वैज्ञानिक अभिजात वर्ग के कुछ हिस्से, रूसी विज्ञान अकादमी और देश के प्रमुख विश्वविद्यालयों के नेतृत्व शामिल हैं। हालांकि, रूसी अभिजात वर्ग के इस उपखंड का विदेश-नीति निर्णय लेने पर सीमित प्रभाव है, और उच्च स्तर पर लगाए गए कुछ सीमाओं के भीतर काम करने के लिए बाध्य है। फिर भी, इस समूह की भूमिका महत्वपूर्ण है क्योंकि, विरोधाभासी रूप से, रूसी आर्थिक मॉडल मौलिक रूप से उदार है, और इसलिए ऐसे सिद्धांतों के अनुसार शासित होना चाहिए। एक नियम के रूप में, इस उदार मॉडल में एक सामाजिक राज्य के तत्वों को पेश करने के लिए राष्ट्रपति के प्रशासन द्वारा सभी प्रयास उदार-आर्थिक ब्लॉक के प्रतिरोध के साथ मिलते हैं, जहां यह अच्छी तरह से समझा जाता है कि उच्च सामाजिक प्रतिबद्धता वर्तमान रूसी अर्थव्यवस्था के प्रदर्शन को कमजोर कर देगी। और आर्थिक विकास को धीमा कर देगा। इसलिए, पुतिन और उनके प्रशासन को अक्सर सरकार के उदार-आर्थिक ब्लॉक की सिफारिशों पर ध्यान देने के लिए मजबूर किया जाता है। निस्संदेह, क्षेत्रीय नेताओं में प्रभावशाली राजनीतिक हस्तियां काफी बड़ी संख्या में हैं; हालांकि देश की विदेश नीति के निर्धारण में उनकी भूमिका को ध्यान में न रखने के कारण हैं। 1990 के दशक में रूसी राज्य की स्थापना के दौरान, जैसे-जैसे केंद्रीय अधिकारियों का प्रभाव कम होता गया, रूस में राजनीतिक शासन के निर्माण में संबंधों का प्रमुख मॉडल क्षेत्रीय, ग्राहक संबंधों का था, जो एक नियम के रूप में, एक सत्तावादी सहजीवन थे। कई मायनों में, ऐसा मॉडल सोवियत, पार्टी-आधारित शासन प्रणाली का परिणाम था। एक वैचारिक कारक की अनुपस्थिति में और 1991-1998 में अनुबंधित क्षेत्रों पर मास्को के प्रभाव के कारण, केंद्र और परिधि के बीच संबंध कम अच्छी तरह से परिभाषित हो गए। हालाँकि, जब राष्ट्रपति येल्तसिन ने सत्ता छोड़ी, तो यह प्रवृत्ति उलट गई। राज्य शासन के तत्वों को एक "शक्ति के ऊर्ध्वाधर" में सुदृढ़ करना, पुतिन ने अनिवार्य रूप से रूस की विदेश नीति के मार्गदर्शन में क्षेत्रीय अभिजात वर्ग को किसी भी ठोस भूमिका से वंचित कर दिया।

दिलचस्प बात यह है कि क्षेत्रीय अभिजात वर्ग को संघीय राजनीतिक स्थान से बाहर करने की प्रक्रिया में अपेक्षाकृत कम समय लगा। जैसा कि रूसी विज्ञान अकादमी के समाजशास्त्र संस्थान द्वारा किए गए अध्ययनों से पता चला है, 2004 में, "ऊर्ध्वाधर सत्ता" का निर्माण गवर्नर चुनावों को रद्द करने और क्षेत्रीय प्रक्रियाओं पर मास्को से प्रबलित नियंत्रण के साथ शुरू हुआ, क्षेत्रों के राजनेताओं ने असंतोष व्यक्त किया , संघ के घटक सदस्यों के केंद्र के बीच बढ़ते संघर्ष का हवाला देते हुए। 2006 तक, हालांकि, उसी संस्थान द्वारा किए गए सर्वेक्षणों और अध्ययनों से पता चलता है कि क्षेत्रीय अभिजात वर्ग के मूड में अचानक बदलाव आया था। क्षेत्रीय नेताओं के पूर्ण बहुमत ने क्रेमलिन की पहल का समर्थन किया और "ऊर्ध्वाधर शक्ति" को सुदृढ़ करने की आवश्यकता की वकालत की - उन्होंने अधिकारियों को वितरित करने की नई प्रणाली से आर्थिक और राजनीतिक लाभ प्राप्त करना सीख लिया था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संघीय केंद्र की केंद्रित नीतियों को देखते हुए, रूसी राजनीतिक अभिजात वर्ग के चरित्र और संरचना को बदलने के लिए केवल 2-3 वर्षों की आवश्यकता है। 2012 में शुरू हुए रूसी अभिजात वर्ग के पुनः स्वरूपण की तुलना में इस तथ्य को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है। यह बाद की प्रक्रिया करीब से विश्लेषण के योग्य है।[2]

रूसी राष्ट्रीय अभिजात वर्ग के विभिन्न हिस्सों के अलग-अलग सदस्यों के बारे में विस्तार से बताए बिना, हम इस महत्वपूर्ण तथ्य को स्थापित कर सकते हैं कि पुतिन के सत्ता में रहने के दौरान, इस अभिजात वर्ग का विस्तार हुआ है, राजनीतिक दलों में अपने स्वयं के स्वतंत्र हितों और ग्राहकों को प्राप्त कर रहा है, व्यापार और वाणिज्य के विभिन्न स्तरों के साथ-साथ समाज, और अब अंतर्विरोधों, हितों और प्रभाव की एक जटिल प्रणाली बन गई है। इस प्रणाली के भीतर, टकराव और हितों के टकराव कभी-कभी उत्पन्न हो सकते हैं। एक नियम के रूप में, इन्हें प्रणाली में एकल, केंद्रीय व्यक्ति के स्तर पर हल किया

जाता है। अभिजात वर्ग के राजनीतिक और आर्थिक हितों की जटिल प्रणाली में एक मध्यस्थ के रूप में पुतिन की स्थिति उन्हें दोहरी भूमिका देती है। एक ओर, राष्ट्रपति किसी एक खिलाड़ी या समूह को राजनीतिक खेल के मैदान पर हावी होने के लिए अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने की अनुमति दिए बिना, राज्य के अंदर की प्रक्रियाओं को नियंत्रित करने में सक्षम है। दूसरी ओर, उन्हें घरेलू और विदेश नीति दोनों के लिए निर्णय लेने में डगमगाने और बुनने के लिए मजबूर किया जाता है, जो उन्हें बहुत कठिन विकल्प बनाने के लिए मजबूर कर सकता है। दूसरे शब्दों में, राष्ट्रपति उस राजनीतिक व्यवस्था का बंधक है जिसे बनाने में उन्होंने कई साल लगाए हैं। अभिजात वर्ग के निरंतर विस्तार ने बड़े विखंडन और विभाजन को खंडों और हितों के समूहों में बदल दिया है। साथ ही, समाज और अभिजात वर्ग के बीच एक बढ़ता संघर्ष है, जो स्पष्ट रूप से रूसी राजनीति, 2011-2012 में विपक्षी ताकतों में जनहित की लहर में प्रदर्शित किया गया था। विपक्ष द्वारा सामूहिक बैठकों का परिणाम, जिसके नेता, क्रेमलिन को मानते हैं, पश्चिम के साथ कुछ संबंध थे, अंततः, रूसी राजनीतिक नेतृत्व का मार्गदर्शन करने के लिए राजनीतिक विचारों और मूल्यों के चयन के पीछे निर्णायक कारक था। हमारी राय में, विपक्षी संगठनों और राजनीतिक संघों के सबसे सक्रिय सदस्यों को दबाने वाली कठोर प्रतिक्रिया, रूस की विदेश नीति के पाठ्यक्रम के पीछे व्यापक सिद्धांत को बदलने की दिशा में पहला कदम था। रूसी अधिकारियों के लिए, इस संकेत ने दो नई प्रक्रियाएं शुरू कीं: बदनाम, जन चेतना में, एक उदार विपक्ष के विचार की, और "अभिजात वर्ग का राष्ट्रीयकरण।"[3]

विपक्ष पर रूसी अधिकारियों द्वारा लगाए गए दबाव को राज्य के भीतर सामाजिक और राजनीतिक स्थिरता के एक निश्चित स्तर को सुरक्षित करने के प्रयास के रूप में समझाया जा सकता है। यह प्रवृत्ति हमेशा सोवियत और रूसी राजनीतिक प्रणालियों के लिए विशिष्ट थी। राजनीतिक संस्थानों और पार्टियों के लिए एक सीमित स्थान तैयार करना, जिसमें सिस्टम को घरेलू खतरों का सामना नहीं करना पड़ता है, रूस में लंबे समय से वास्तविकता रही है, जिसमें यूएसएसआर के पतन के बाद भी शामिल है। क्षेत्रों पर नियंत्रण के गिरते स्तर के बावजूद "ऊर्ध्वाधर शक्ति" का सुदृढीकरण, मास्को द्वारा बोरिस येल्तसिन के राष्ट्रपति पद के अंत के बाद से उल्लेखनीय उपलब्धियों में से एक के रूप में देखा जाता है। सोवियत के बाद के कई गणराज्यों में "रंग क्रांतियों" ने रूसी शासक वर्ग को आश्वस्त किया कि रूस में राजनीतिक प्रक्रिया पर नियंत्रण समाज में सामाजिक उथल-पुथल के खिलाफ कुछ हद तक प्रतिरक्षा की गारंटी देगा। वास्तविक राजनीतिक प्रतिस्पर्धा की अनुपस्थिति और चुनावों की पूर्वानुमेयता को रूसी राजनीतिक अंतरिक्ष में कुछ सबसे महत्वपूर्ण तत्वों के रूप में माना जाता है। यह तथ्य आज के रूस के नागरिकों द्वारा नागरिक समाज संस्थानों के धीमे विकास और कम राजनीतिक गतिविधि की व्याख्या करता है। यही कारण है कि हम रूसी समाज पर नहीं, बल्कि एक संकीर्ण राजनीतिक स्तर पर ध्यान केंद्रित करते हैं जिसने रूस में राजनीतिक स्थान पर एकाधिकार कर लिया है।

इस निर्माण में "अभिजात वर्ग का राष्ट्रीयकरण" एक नया तत्व है जो रूसी विदेश नीति के चरित्र को निर्धारित करता है और इसके लिए अधिक विस्तृत विश्लेषण की आवश्यकता होती है। राष्ट्रीयकरण का यह रूप 2012 और 2013 में राज्य ड्यूमा द्वारा अपनाए गए कानूनों के एक समूह को संदर्भित करता है, जिसने सिविल सेवकों को अन्य देशों में वित्तीय संपत्ति या अचल संपत्ति रखने पर प्रतिबंध लगा दिया। यह आंदोलन नाममात्र रूप से भ्रष्टाचार से लड़ने के एक कार्यक्रम से जुड़ा था, लेकिन वास्तव में इसका अत्यधिक राजनीतिक महत्व था। मैग्निट्स्की मामला, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोपीय संघ और रूस के बीच बिगड़ते संबंधों ने बड़ी संख्या में रणनीतिक जोखिमों को उजागर किया, जो बड़ी संख्या में रूसी सिविल सेवकों के यूरोप और अमेरिका की आर्थिक प्रणालियों में गहरे एकीकरण से बह रहे थे। इस तथ्य ने न केवल आबादी के बीच असंतोष को प्रेरित किया, बल्कि, पुतिन की टीम के दृष्टिकोण से, रूसी राजनीतिक वर्ग को संभावित रूप से कमजोर बना दिया। रूसी राज्य प्रणाली के इर्द-गिर्द शासक वर्ग को मजबूत करने के इस प्रयास का एक अन्य कारण 2012 के राष्ट्रपति चुनावों का परिणाम था। यह कोई रहस्य नहीं है कि राष्ट्रपति के रूप में पुतिन की सत्ता में वापसी ने पश्चिमी राजनेताओं और पर्यवेक्षकों के एक बड़े बहुमत के बीच नकारात्मक भावनाओं को उकसाया। इसे समझते हुए, पुतिन ने पश्चिम में अपने आर्थिक और वित्तीय हितों के माध्यम से रूसी अभिजात वर्ग के माध्यम से उस पर दबाव डालने की किसी भी संभावना को कम करने के लिए कदम उठाए। खुद पुतिन के विचारों को ध्यान में रखते हुए, और उनके सर्कल में कई आंकड़ों के विश्वास को ध्यान में रखते हुए कि सोवियत अंतरिक्ष के बाद के किसी भी अतीत या संभावित भविष्य के राजनीतिक परिवर्तन वास्तव में पश्चिम द्वारा कुछ हद तक वित्त पोषित किए गए थे। इसके अलावा, दिसंबर 2012 की संघीय सभा को दिए अपने बयान में, व्लादिमीर पुतिन ने विशेष रूप से देश के आर्थिक अभिजात वर्ग को अपतटीय क्षेत्रों से रूसी अधिकार क्षेत्र में वापस करने की आवश्यकता को रेखांकित किया। इस प्रकार, रूस के आर्थिक अभिजात वर्ग के राष्ट्रीयकरण की समानांतर प्रक्रिया भी देखी जा सकती है। यह साइप्रस में आर्थिक संकट के आसपास की घटनाओं के साथ-साथ रूसी राज्य के बजट के स्वास्थ्य में अचानक गिरावट से शुरू हुआ था। किसी भी कारण से, रूसी पूंजी के प्रत्यावर्तन को प्रोत्साहित करना क्रेमलिन द्वारा बढ़ते बाहरी दबाव से जुड़े संभावित भू-राजनीतिक जोखिमों को कम करने के तरीके के रूप में देखा गया था।[4]

स्वाभाविक रूप से, अभिजात वर्ग का ऐसा राष्ट्रीयकरण रातोंरात नहीं हो सकता। फिर भी, 2012 के बाद से बनने वाले रुझान भारी रूप से सुझाव देते हैं कि रूस अपने और पश्चिम के बीच राजनीतिक और आर्थिक संघर्षों को गहरा करने से उत्पन्न संभावित चुनौतियों से बचने की तैयारी कर रहा है। निश्चित रूप से, रूस विश्व अर्थव्यवस्था के साथ अपने दूरगामी बंधनों में कटौती करने या जीवाश्म ईंधन के सबसे बड़े निर्यातकों में से एक के रूप में अपनी भूमिका को समाप्त करने में असमर्थ होगा। यूरोपीय संघ रूस का प्रमुख आर्थिक भागीदार भी बना रहेगा, हालांकि बाहरी दुनिया के साथ सीधे आर्थिक संपर्क से अभिजात वर्ग को वापस लेने की प्रक्रिया को क्रेमलिन के भीतर प्रत्यक्ष दबाव के खिलाफ एक प्रकार की बीमा पॉलिसी के रूप में देखा जाता है। यह 2004 में शुरू होने वाले संघीय सुधार और "ऊर्ध्वाधर सत्ता" के निर्माण के उदाहरण को भी याद रखने योग्य है, जिसमें मॉस्को में केंद्रीय अधिकारियों को क्षेत्रों के पदानुक्रमित अधीनता का एक पूर्ण ओवरहाल शामिल था। एक लक्षित नीति को देखते हुए, क्रेमलिन उसी 2-3 वर्षों में पूरी तरह से राजनीतिक व्यवस्था का पुनर्निर्माण कर सकता है। दूसरे शब्दों में, 2014-2015 में हम शायद रूसी अभिजात वर्ग के एक नए आकार को पूरा करते हुए देखेंगे, जिसके परिणामस्वरूप एक नई रूसी विदेश नीति होगी। देश में घरेलू प्रक्रियाओं के एक कार्य के रूप में रूस की वर्तमान विदेश नीति का यह सरलीकृत दृष्टिकोण

नीति को रक्षा तंत्र के रूप में चित्रित करता है। इस तरह की रक्षात्मक प्रतिक्रिया के पीछे का तर्क पूर्व और पश्चिम के बीच तनाव की परंपरा का अनुसरण करता है। रूसी शासक वर्ग के भीतर परंपरावादियों/सांख्यिकीविदों की मजबूत स्थिति, और उस समूह के राष्ट्रीयकरण से, पश्चिम के साथ गहरे टकराव से उत्पन्न होने वाले भू-राजनीतिक जोखिमों को कम करना चाहिए - एक टकराव जो 2012 के अंत से स्पष्ट रूप से गहरा हुआ है। 2012 में पश्चिम और रूस के बीच टकराव को अमेरिकी कांग्रेस और कुछ यूरोपीय राज्यों द्वारा मैग्निट्स्की अधिनियम को अपनाने के साथ-साथ प्रतिशोध में रूसी राज्य ड्यूमा द्वारा अपनाए गए कानूनों को भी माना जा सकता है। सामान्यतया, यह वह क्षण है जब पश्चिम के साथ संबंधों के लिए "नए" सामाजिक मूल्यों की नींव उत्पन्न करने के लिए वास्तव में प्रणालीगत नीतियों को लागू करना शुरू हुआ। इसने रूसी राजनीतिक व्यवस्था को यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ राजनीतिक संबंधों के संभावित बिगड़ने के लिए धीरे-धीरे तैयार करने के लिए प्रेरित किया।[5]

सोवियत संघ के बाद के राज्यों ने जिस तरह से यूएसएसआर के पतन के बाद विकसित किया और 1990 के दशक की शुरुआत में आर्थिक और राजनीतिक विघटन के दौरान शक्तिशाली हलकों के बीच एक विशेष प्रकार का मनोवैज्ञानिक परिसर उत्पन्न किया। यह मानसिकता पिछले दो दशकों में रूस में विकसित हुई संप्रभुता पर बाहरी हमलों की निरंतर आशंकाओं में से एक है। यह पृष्ठभूमि रूसी विदेश नीति में एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया के लिए लॉन्च पैड थी: रूस की राष्ट्रीय मूल्यों की प्रणाली का तेजी से समायोजन। 2012 में रूस में शुरू हुए राजनीतिक परिवर्तनों के दो परिणामों की पहचान की जा सकती है। सबसे पहले, शासक वर्ग का राष्ट्रीयकरण - राजनीतिक व्यवस्था के प्रति अधिकतम वफादारी पर जोर देने के साथ - और रूसी अभिजात वर्ग के उदारवादी विंग पर एक परंपरावादी, राज्य समर्थक समूह की जीत। दूसरा, राष्ट्रीय मूल्यों के मार्गदर्शक के एक नए सेट को आकार देना। रूढिघ्वादी मूल्यों की एक नई प्रणाली अंतत: स्थापित हुई, और सक्रिय रूप से जन चेतना में संचालित होने लगी। इसे "नए रूसी रूढिघ्वाद" के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। रूसी रूढिघ्वाद के मुख्य सिद्धांतों को व्लादिमीर पुतिन द्वारा कई भाषणों में तैयार किया गया था, जिसमें अमेरिकन एसोसिएटेड प्रेस को दिया गया एक साक्षात्कार भी शामिल था, जहां उन्होंने खुद को "व्यावहारिक रूढिघ्वादी" कहा था, और 2013 के दिसंबर में फेडरल असेंबली को एक बयान दिया था। वह है-

''अधिक से अधिक लोग जो पारंपरिक मूल्यों की रक्षा करने की हमारी स्थिति का समर्थन करते हैं, जो हजारों वर्षों से हर लोगों की सभ्यता का आध्यात्मिक और नैतिक आधार रहा है: पारंपरिक परिवारों के मूल्य, एक धार्मिक जीवन सहित एक उचित मानव जीवन, न केवल एक भौतिक जीवन, लेकिन आध्यात्मिक भी, दुनिया में मानवतावाद और विविधता के मूल्य। बेशक, यह एक रूढिघ्वादी स्थिति है। लेकिन, निकोलाई बर्डेव की शर्तों का उपयोग करते हुए, "रूढिघ्वाद का सार यह नहीं है कि यह ऊपर और आगे की गति में बाधा डालता है, बल्कि यह कि यह नीचे और पीछे की ओर, अराजकता और अंधेरे की ओर, आदिम अस्तित्व की वापसी को रोकता है।''[6]

यह उल्लेखनीय है कि रूसी रूढिघ्वाद का आज का संस्करण रूसी नेताओं द्वारा दी गई व्याख्याओं में अत्यधिक सारगर्भित है। सार्वभौमिक मूल्यों (समानता, न्याय, परिवार और आध्यात्मिकता) पर बहुत अधिक जोर दिया जाता है, जिसे रूस में हमेशा रूढिघ्वादी माना जाता है, हालांकि वे लगभग किसी भी आधुनिक विचारधारा में निहित हैं। हालांकि, सबसे सामान्य शब्दों में, "नए रूसी रूढिघ्वाद" के सार को देशभक्ति और परंपरावाद के संयोजन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, साथ ही आधुनिक रूस और रूसी राज्य की ऐतिहासिक जड़ों (जारिस्ट साम्राज्य) के बीच अटूट निरंतरता का समर्थन किया जा सकता है। इस अवधारणा में सोवियत संघ के बाद के अंतरिक्ष में एक नेता के रूप में अपनी स्थिति हासिल करने और यूरेशिया में अपने सैन्य / राजनीतिक और आर्थिक प्रभाव के सुदृढीकरण द्वारा विश्व मंच पर एक स्वतंत्र खिलाड़ी के रूप में अपनी स्थिति हासिल करने की महत्वाकांक्षा भी शामिल है। इस प्रकार, रूसी रूढिघ्वाद का रूढिघ्वाद की अवधारणा से बहुत कम संबंध है।

नए रूसी रूढिघ्वाद की एक महत्वपूर्ण विशेषता विस्तारवाद और अलगाववाद का असाधारण संयोजन है। दुनिया का पश्चिम और पूर्व में द्वैतवादी विभाजन नए वैचारिक सिद्धांत के प्रमुख घटकों में से एक है। इस बीच, वर्तमान रूसी अभिजात वर्ग पारंपरिक रूप से यूरेशियन अंतरिक्ष में पश्चिम की मूल्य प्रणाली को रोकने और पश्चिमी मूल्यों के विनाशकारी प्रभाव से खुद को अलग करने के अपने इरादे को प्रदर्शित करने के नए तरीकों की तलाश कर रहा है। साथ ही, निकटवर्ती राज्यों में मालिकाना मूल्यों और वैचारिक निर्माणों को बढ़ावा देना विदेश नीति का एक अभिन्न अंग है।

मूल्यों और विचारधारा का यह नया निर्माण जन चेतना में प्रवेश कर रहा है, लेकिन इसे और गहरा करने के लिए, शक्तिशाली रूस की घरेलू जानकारी और सामाजिक स्थान को सुधारने के लिए दर्द उठा रहे हैं। उदाहरण के लिए, मास मीडिया पर नियंत्रण को मजबूत करने के लिए ठोस कदम उठाए गए हैं। कई स्वतंत्र मीडिया आउटलेट्स पर दबाव की पृष्ठभूमि के खिलाफ, आरआईए-नोवोस्ती समाचार एजेंसी में सुधार किया गया, फिर अंतर्राष्ट्रीय सूचना एजेंसी रूस टुडे द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। नए कानून गैर सरकारी संगठनों, सार्वजनिक आंदोलनों और नागरिक समाज संस्थानों की स्वतंत्रता को कम करते हैं, जबकि "विदेशी एजेंटों" की अवधारणा को भी स्थापित करते हैं। सत्ता में बैठे लोगों का मानना है कि इस तरह के कदम रूसियों के बहुमत के विश्वदृष्टि में पहले से स्वीकृत मूल्यों और वैचारिक निर्माणों को गहराई से इंजेक्ट करने में सक्षम एक सूचना स्थान तैयार करेंगे।

निष्कर्ष

आज के रूस की विदेश नीति को प्रभावित करने वाली घरेलू नीति को संक्षेप में प्रस्तुत करने के लिए, हमें कई प्रमुख मुद्दों को रेखांकित करना चाहिए। सबसे पहले, रूसी अभिजात वर्ग का पुन: स्वरूपण और मूल्यों और विचारधारा का एक नया मंच तैयार करना दो समानांतर प्रक्रियाएं हैं, जो 2011 के अंत में शुरू हुई, क्योंकि सत्तारूढ़ अभिजात वर्ग सत्ता पर अपनी पकड़ मजबूत करने में व्यस्त था। रूस की विदेश नीति का सिद्धांत मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था को बाहरी प्रभाव से बचाने की मौलिक महत्वाकांक्षा से प्रेरित है। दूसरे शब्दों में, रूसी अभिजात वर्ग की प्रमुख प्रेरणाओं में से एक प्रणाली के बाहर एजेंटों के कार्यों से सुरक्षा है, जो राज्य की शक्ति को कम कर सकते हैं या अन्यथा राजनीतिक व्यवस्था को कमजोर कर सकते हैं। यह घटना हाल के रूसी इतिहास

के लिए नई नहीं है; इसी तरह के रुझान 2004-2007 में देखे जा सकते थे, सोवियत-बाद के राज्यों की श्रृंखला के बाद, जिन्होंने राजनीतिक शासन परिवर्तन का अनुभव किया। इस सबसे हालिया पुनरावृत्ति में वैचारिक और राजनीतिक दोनों पहलू शामिल हैं। इस बीच, बाहरी दुनिया के साथ रूस के संबंधों के पीछे तर्क विकसित हो गया है, और सत्तारूढ़ अभिजात वर्ग के आसपास रूसी समाज को मजबूत करना अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। यूक्रेनी संकट, लोकप्रिय राय के विपरीत, रूसी नीतियों को मौलिक रूप से प्रभावित नहीं किया है - इसने केवल त्वरित और प्रबलित प्रवृत्तियों को संकट के टूटने से बहुत पहले पहचाना था।

संदर्भ

1. टीओडोर लुसियन मोगा और डेनिस अलेक्सेव, ''रूस और यूरोपीय संघ के बीच सोवियत के बाद के राज्य: भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्धा को पुनर्जीवित करना'' ए डुअल पर्सपेक्टिव," कनेक्शन्स: द क्वार्टरली जर्नल 13:1 (2013): 41-51,
2. वही, पृ. 53
3. व्ही, पृ. 54
4. जेफरी मैनकॉफ, "व्हाट ए यूरेशियन यूनियन मीन्स फॉर वाशिंगटन," द नेशनल इंटरेस्ट, 19 अप्रैल 2012।
5. याना मिल्युकोवा, पेट्र नेत्रेबा, और यूलिया जबाविना, "रूस क्रेडिट जारी करने और कर्ज माफ करने वाले सहयोगियों की वफादारी खरीदता है," आरबीके दैनिक, 12 अगस्त 2014,
6. यूरी फेडोरोव, "द स्टेट आर्मामेंट्स प्रोग्राम-2020: पावर एंड इंडस्ट्री," सुरक्षा सूचकांक 19:4(107) (2013)

पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा में चित्रित किन्नर समस्याएँ

पूजा

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

भूमिका

किन्नर वर्ग समाज द्वारा बहिष्कृत एक ऐसा वर्ग है जो कि समाज में प्रत्येक प्रकार के शोषण का शिकार है। इनकी स्थिति अत्यंत दयनीय है। लोग इन्हें नकारात्मक एवं हेय दृष्टि से देखते हैं और इनसे घृणा करते हैं। क्योंकि हमारा संपूर्ण समाज दो ध्रुवों पर टिका हुआ है- पुरुष एवं नारी। समाज में इनकी स्थिति सम्मानजनक मानी जाती है, क्योंकि यह दोनों वर्ग आपसी सहयोग से वंश-परंपरा और मानव जाति को आगे बढ़ाने का कार्य करते हैं और सुख-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते हैं लेकिन विकास के इस दौर में लैंगिक विकलांगता का दंश झेलता किन्नर वर्ग आज भी समाज में हाशिए पर खड़ा है, इन्हें समाज में केवल मुख्यधारा से ही अलग नहीं किया गया बल्कि लोगों में भी इनके प्रति गलत धारणाओं को भरा गया। परिणामस्वरूप समाज में किन्नर वर्ग अलगावपूर्ण जीवन जीने पर मजबूर रहते हैं। इन्हें सभी नागरिक अधिकारों से वंचित रखा जाता है और जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

किन्नर वर्ग को समाज में थर्ड जेंडर यानि ट्रांसजेंडर के नाम से भी जाना जाता है और इन्हें L.G.B.T. (Lesbian, gay, bisexual and transgender) समुदाय के एक वर्ग से भी जाना जाता है। 'किन्नर' शब्द को विभिन्न भाषाओं में विभिन्न नामों से जाना जाता है, जैसे हिंदी में किन्नर, पंजाबी में खुसरा, तेलुगू में नपुंसुक्डू, उर्दू में हिजड़ा, अंग्रेजी में Eunuch, गुजराती में पवैय्या कन्नड़ में जोगप्पा आदि। इनके अलावा इन्हें वृहन्ना, शिखंडी, मौगा, छक्का और खोज्जा नाम से भी जाना जाता है। लेकिन सर्वमान्य प्रचलित शब्द थर्डजेंडर अथवा ट्रांसजेंडर ही है। जिनकी न कोई पहचान है, न शिक्षा और न ही कोई रोजगार। इन्हें समाज में अस्तित्वविहीन प्राणी माना जाता है और हेय दृष्टि से देखा जाता है। भूमंडलीकरण के इस दौर में किन्नर समस्या भारतीय समाज और साहित्य में एक सामाजिक समस्या के रूप में उभरकर सामने आई है। फलस्वरुप इनका इतिहास काफी प्राचीन है लेकिन इन पर ध्यान न दिए जाने पर सदैव इन्हें उपेक्षित समझा गया। वर्तमान समय में किन्नर वर्ग को केंद्र में रखकर साहित्य जगत में विभिन्न कृतियों की रचनाएँ की जा रही हैं और इन्हें समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास भी किया जा रहा है।

सुप्रतिष्ठित लेखिका चित्रा मुद्गल जी ने समाज द्वारा उपेक्षित, तिरस्कृत, अपमानित जीवन जीने पर विवश किन्नर-वर्ग के दुख-दर्द को महसूस कर और उन्हें समाज की मुख्यधारा में शामिल किए जाने की कोशिश करते हुए 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा' नामक उपन्यास की रचना की। इस उपन्यास की रचना लेखिका ने सन 2016 में की थी और इनका यह उपन्यास साहित्य जगत में इतना प्रसिद्ध हुआ कि दो साल बाद ही इससे सन 2018 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत/सम्मानित किया गया। लेखिका चित्रा मुदगल जी साहित्य जगत में अपनी विशिष्ट पहचान रखती हैं और समाज की विभिन्न समस्याओं को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त कर समाज में जागरूकता लाने का कार्य करती है।

'नालासोपारा' उपन्यास में लेखिका ने किन्नर जीवन की विडंबना और उनके सपनों को परखते हुए, अपने परिवार से बिछड़ने का दर्द, आत्मनिर्भर होने की चाहत समाज के प्रति सोच अर्थात् समाज की बर्बरता आदि को इन्होंने बहुत ही बारीकी से प्रस्तुत किया है। उपन्यास की घटना मुंबई के नालासोपारा में रहने वाले विनोद नायक किन्नर की है जिसे किन्नर होने के चलते उसे स्वयं के घर से निकाल दिया जाता है और उसकी यह दर्दनाक पीड़ा अपनी बा को लिखे पत्रों में इतनी गहराई से उभर कर सामने आती है कि पाठक स्वयं यह सोचने पर विवश हो जाता है कि क्या मात्र शब्द बदल देने से ही समाज से अवमानना समाप्त हो सकती है? अर्थात गलियों की गाली हिजड़ा को किन्नर कह देने भर से क्या देश के नासूर छिटक सकते हैं और अपने ही परिवार से छिटककर नारकीय जीवन जीने को विवश ये 'बीच के लोग' आखिर मनुष्य क्यों नहीं माने जाते। सिर्फ एक शारीरिक विकलांगता के कारण इन्हें अपने परिवार के विस्थापन का दंश झेलना पड़ता है। लेखिका ने अपने उपन्यास में विनोद उर्फ बिमली के माध्यम से किन्नरों के पारिवारिक विस्थापन व उससे बालक के आगमन पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव व पीड़ा का अत्यंत जीवंत चित्रण प्रस्तुत किया है कि किस प्रकार अपने ही परिवार के लोग अपनी कुल-मर्यादा के लिए अपने बच्चे को किन्नर समुदाय को सौंप देते हैं और उन्हें उनके भाग्य के सहारे छोड़ देते हैं। कई बार तो इन्हें किन्नर समुदाय को सौंपकर मरा हुआ भी समझ लिया जाता है। उपन्यास में विनोद उर्फ बिमलीकिन्नर के रूप में ऐसा ही पात्र है जो कि सातवीं कक्षा तक अपने ही परिवार में पल-बढ़कर बड़ा होता है लेकिन उसके बाद वह किन्नर समुदाय को सौंप दिया जाता है और उसके पिताजी द्वारा उसे अपने रिश्तेदारों में मरा हुआ घोषित किया जाता है ताकि परिवार की बदनामी न हो और यह भी पता न चले कि उसके घर किन्नर का जन्म हुआ है और जब विनोद को अपने किसी दोस्त से इस बात का पता चलता है कि तू जिंदा है तो यह सुन वह एकदम अचंम्भित रह जाता है। ''मेरी आवाज सुनकर ईशान इस कदर चौंका था जैसे उसने सामने भूत खड़ा देख लिया हो। बुरी तरह हकलाया था वह तू ऽऽऽ जिंदा है, विनोद? तू जिंदा कैसे हो सकता है? स्कूल में तेरे पप्पा ने खबर दी थी। तू अब इस दुनिया में नहीं रहा। तेरे गाँव में एक भयानक दुर्घटना में तेरी मृत्यु हो चुकी है।''[1] विनोद यह सब सुनकर बौखला जाता है और अपने दुर्भाग्य पर रोता रहता है लेकिन

वह कभी भी अपने परिवार को भूल नहीं पाता है। वह अपनी बा को पत्र के माध्यम से अपनी मर्मांतक पीड़ा व मनोभावों से अवगत कराते हुए लिखता है कि "तूने मेरी बा तूने और पप्पा ने मिलकर मुझे कसाईयों के हाथों मासूम बकरी सा सौंप दिया, मेरी सुरक्षा के लिए कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की? मनसुख भाई जैसे पुलिस अध्यक्ष पप्पा के गहरे दोस्त के रहते हुए? .... मेरे आंगिक दोष की बात पप्पा ने उससे बांटी जो नहीं होगी वरना वह मुझे बचाने जरूर आते।"[2] "जिस नर्क में तूने और पप्पा ने धकेला है मुझे वह एक अंधा कुआं है, जिसमें केवल साँप-बिच्छू रहते हैं। साँप बिच्छू बनकर वह पैदा नहीं हुए होंगे बस। इस कुएंने उन्हें आदमी नहीं रहने दिया।"[3] परिवार से विस्थापन होने पर वह सदैव अकेलापन महसूस करता है। वह मानसिक विकारों से ग्रस्त हो जाता है उसे सदैव अपने परिवार की चिंता बनी रहती है वह अपने घर पर रहकर अपने माता-पिता की सेवा करना चाहता था। अपनी इस चाहत को उसने इस प्रकार शब्दबद्ध किया है- "तेरे पाँव अब भी सूजते होंगे न बा मैं उनकी उंगलियों को कैसे चटखाऊँ। कैसे दूर करूं उनकी थकान। थककर डबल रोटी से सूज जाने वाले तेरे उन पाँवों को मैं चूमना चाहता हूँ। हफ्ता भर। नहीं दररोज। नहीं महीनों। नहीं पूरे वर्ष। संचित कर लेना चाहता हूँ ताउम्र की नींद। जितनी भी मिल जाए।"[4] इस प्रकार एक किन्नर को सदैव पारिवारिक विस्थापन का दंश झेलना पड़ता है और वह चाहकर भी अपने परिवार से मिलने नहीं आ सकता क्योंकि उसका परिवार भी उसे इसकी अनुमति नहीं देता। एक और पारिवारिक विस्थापन तो दूसरी और नए समुदाय में आकर बसना और उन्हीं की जीवनशैली को अपनाना उनके लिए बेहद कष्टकारी होता है। कई बार तो ऐसा लगता है कि समाज में किन्नरों के लिए कोई जगह ही न हो क्योंकि एक आम आदमी भी इन्हें मनुष्य की नजर से नहीं देखता अपितु इन्हें परिवार से, समाज से बहिष्कृत समझता है, इन्हें तिरस्कार की भावना से देखता है यहाँ तक कि मनुष्य उनके साथ खाना-पीना, उठना-बैठना, बोलना-चलना पसंद नहीं करता। समाज इन्हें इनकी यौन विकलांगता के कारण हीन व तुच्छ समझता है जबकि इनमें उनका कोई दोष नहीं होता। ये भी ईश्वर की ही रचना है, इन्हें भी समाज में सम्मान पूर्वक जीवन जीने का अधिकार होना चाहिए। लेकिन समाज का रवैया किन्नरों के प्रति उचित नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि समाज इन्हें संदेह व शक की दृष्टि से देखता आया है। समाज इनकी समस्या और परिस्थितियों को जानने-समझने की कोशिश करना तो दूर इन्हें शारीरिक और मानसिक यातनाएं देने पर आतुर है। जो समाज एक तरफ मानवता की बात करता है वहीं दूसरी तरफ जानवरों सा घृणित व्यवहार भी करता है। किन्नरों को समाज से सदैव एक ही शिकायत रहती है कि यदि समाज उन्हें आदर व सम्मान नहीं दे सकता तो उसे उनका निरादर/अपमान करने का भी कोई अधिकार नहीं है। ये ताउम्र अपने मन में समाज की दर्दनाक पीड़ा को भोगते रहते हैं और लोगों की खुशियों में शरीक/शामिल होते रहते हैं लेकिन समाज की सबसे बड़ी विडंबना यही है कि जो समाज उन्हें नारकीय जीवन जीने को विवश करता है वही किन्नर लोग समाज की खुशियों के लिए सदैव आशीष देते आए हैं। 'किन्नर कथा' उपन्यास की मुख्य पात्र 'तारा' अपनी मर्मांतक पीड़ा की अभिव्यक्ति करते हुए कहती है कि - "भगवान ने मेरे साथ ऐसा अन्याय क्यों किया? मैं हिजड़ा हूँ तो इसमें मेरा क्या कसूर? मुझे निर्दोष को किस बात की सजा मिल रही है? मेरा अपना कौन है? घर बार, मां-बाप, भाई-बहन, बच्चे कोई नहीं है मेरा, जिसे मैं अपना कह सकूँ। सब कुछ होते हुए भी कोई मुझसे रिश्ता नहीं रखना चाहता, कोई मुझे अपनाने को तैयार नहीं है। बचपन से आज तक बस अपने आपमें ही दर्द पीते हैं। दूसरों को हंसाते आए हैं, उनकी खुशियों में शरीक होते हैं। आशीष के सिवा कभी किसी को कुछ नहीं दिया, ईश्वर से बस एक शिकायत है। आखिर क्यों उसने ऐसा बनाया? क्यों हिजड़ा होने का दंड दिया? काश हम भी औरों की तरह स्त्री या पुरुष होते, हिजड़ा होना कितनी बड़ी सजा है, यह कोई हिजड़ा ही समझ सकता है, दूसरा कोई नहीं, कभी नहीं।"[5] इस प्रकार यहाँकिन्नर की असीम पीड़ा परिलक्षित होती है। इसी प्रकार विनोद भी अपनी बा को कहता है कि - "तूने मुझे जन्म देते ही क्यों नहीं मार दिया तब मुझे इस नारकीय जीवन का सामना नहीं करना पड़ता। तूने मेरे जन्मते ही मनुष्य के इस तीसरे रूप को देख लिया न बा उसी समय खत्म कर देना था न बा मुझे। तू किस मोह में पड़ गई थी बोल?"6 इस प्रकार वह निरंतर अपनी बा से शिकायत करता रहता है कि किन्नरों को न तो परिवार में कोई स्थान मिल पाता है और न ही समाज में। कोई यह भी नहीं सोचता कि परिवार और समाज दोनों बहिष्कृत किए जाने पर यह लोग कहाँ रहते होंगे? कैसे अपना जीवन यापन करते होंगे? क्योंकि इनके पास आए का भी कोई साधन नहीं होता। किसी के घर शादी ब्याह का माहौल होता है या फिर घर में लड़का पैदा होता है तभी इन्हें बधाई देने के लिए लोग अपने घरों में बुलाते हैं और ये उन्हें तालियाँ पीट-पीटकर बधाइयाँ देते हैं। इसके बदले उन्हें जो भी प्राप्त होता है उसी से अपना जीवन यापन करते हैं लेकिन मात्र बधाई से प्राप्त धन से इनका बसेरा नहीं हो सकता। इस प्रकार लेखिका ने नालासोपारा उपन्यास के माध्यम से समाज में उपेक्षित किन्नर वर्ग की दुर्दशा का अत्यन्त दर्दनाक व मर्मांतक चित्रण किया है कि किस प्रकार परिवार में किन्नर का जन्म होने पर उसका अपने ही परिवार से विस्थापन, किसी करीबी का साथ न होना, समाज द्वारा बहिष्कृत, उपेक्षित, तिरस्कृत, अपमानित तथा उस पर क्रूरतापूर्ण किया गया व्यवहार, उसकी वजह से होने वाली मानसिक व शारीरिक पीड़ा, जीवन यापन के लिए आय के साधन का न होना,शैक्षिक क्षेत्र से वंचित, मेडिकल सुविधाओं का न मिलना, अपनी ही संतान का मरा हुआ घोषित करना तथा समाज की मुख्यधारा में स्थान न देना आदि से अवगत कराने का प्रयास किया है। इसी के साथ ही लेखिका चित्रा मुदगल के समकालीन रचनाकारों ने भीअपनी रचनाओं में पायल, किन्नर कथा, तीसरी ताली, गुलाम मंडी, यमदीपआदि के माध्यम से किन्नर समाज के समस्त समस्याओं एवं पीड़ाओं को विभिन्न पक्षों की दृष्टि से विश्लेषित कर समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का एक सराहनीय प्रयास किया है ताकि ये लोग भी समाज में अपना गरिमापूर्ण जीवन यापन कर सकें लेकिन समाज की विडंबना है कि यह वर्ग अभी तक अभावपूर्ण जीवन जीने पर विवश है। इसे मुख्यधारा में लाने के लिए आंदोलन रूपी प्रगति की आवश्यकता है और इसके लिए मनुष्य को अपनी पारंपरिक सोच में बदलाव लाना होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ० सुरेन्द्र प्रसादशाह, उपन्यास का समाजशास्त्र, पृ० 31
2. वही, पृ० 11
3. वही, पृ० 11
4. वही, पृ० 8
5. महेन्द्र भीष्म, किन्नर कथा, प० 64
6. चित्रा मुद्गल, पोस्ट बाक्स नं० 203 नाला सोपारा, पृ० 25

समावेशी विकास में डिजिटल प्रौद्योगिकी का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० बृजेन्द्र सिंह बौद्ध

वरिष्ठ प्रवक्ता, अर्थशास्त्र विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झांसी

सारांश:

आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में सतत् तकनीक और प्रौद्योगिकी का उपयोग हो रहा है। जिन-जिन देशों ने तकनीक और प्रौद्योगिकी का अपनी आवश्यकताओं के अनुसार प्रयोग किया है, उन देशों ने उन्नति की और बढ़ते कदम रखें है। प्रौद्योगिकी के प्रयोग से बहुत कार्य आसान हुयें है। डिजिटल इंडिया भारत सरकार की एक पहल है, जिसके द्वारा सरकारी विभागों को देश की जनता से जोड़ना है। डिजिटल इंडिया के तीन कोर घटक है -

1. डिजिटल इन्फ्रास्ट्रक्चर का निर्माण करना।
2. शासन और सेवा की जनता तक पहुंच सुनिश्चित करना।
3. डिजिटल साक्षरता (सशक्तीकरण) ।

डिजिटल इंडिया के 09 स्तंभ के जरिये आम जन-मानस तक पहुंच स्थापित करने का प्रयास है। डिजिटल प्रौद्योगिकी के जरिये से समावेशी विकास में वृद्धि द्योतक है। डिजिटल प्रौद्योगिकी से लोगों के बीच में भाईचारा, अवसरों में समानता, सरकारी और निजी सहभागिता, रोजगार के अवसर में वृद्धि, वित्तीय समावेशन, मोबाइल बैकिंग का विकास सम्भव हो सका है। प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान भी ग्रामवासीयों को साक्षर बनाकर समावेशी विकास में सहायक भूमिका रही है।

प्रस्तावना:

हम 21वीं सदी के इस दशक में आगे की ओर बढ़ रहे हैं, वहां सूचना और साइबर क्षेत्र सर्वाधिक रणनीतिक बनेगा, जो समावेशी विकास के मार्ग को प्रशस्त्र करेगा। ऐसे में यह अति आवश्यक है कि इस क्षेत्र को अधिक प्रतियोगी एवं समृद्धशाली बनाया जाना चाहिए। भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी जनित सेवाओं के इतिहास में एक परिवर्तक बिन्दु की तरह देखा जा सकता है। इस समय तक भारत दुनियां में 'साफ्ट पॉवर' के रूप में अपनी साख स्थापित करने में सफल हो चुका है। प्रौद्योगिकी क्षेत्र ने असाधारण संपत्ति के सृजन के साथ-साथ निर्यात एवं रोजगार के ढेरों अवसर प्रदान किये और देश में अति कुशल एवं योग्य टेक्नोक्रैटस भी तैयार किए। भारतीय आर्थिक नीतियों के उदारीकरण, प्रमुख क्षेत्रों से प्रतिबंधों का समापन और विश्व अर्थव्यवस्था से देश की संबद्धता आईटी क्षेत्र में आशातीत सफलता प्रदान की। देश की सरकार ने इस क्षेत्र के संवर्धन के लिए जो प्रयास किए उसके चलते ही भारत की आईटी इंडस्ट्री को विश्व के प्रमुख 'सोर्स हब' बनने का अवसर प्राप्त हुआ। डिजिटल प्रौद्योगिकी के प्रयोग ने भारत में योजनाओं को बनाने, उन्हें कार्यान्वित करने, उन पर निगरानी और नियंत्रण रखने तथा नवोन्मेष लाने में महत्वपूर्ण भूमिका की है। प्रौद्योगिकी के कारण ही बहुत भारी-भरकम कार्य आसान हुयें है। इससे लागत में भी कमी आई है। ये भी सत्य है कि प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल के कुछ जोखिम भी हैं, पर धीरे-धीरे उन पर भी अंकुश लगाया जा रहा है। यह भी सत्य है कि प्रौद्यागिकी के प्रयास से बेरोजगारी में वृद्धि होती है क्योंकि हाथ से किये जाने वाले जिन कार्यों में बहुत अधिक लोगों को रोजगार मिल सकता है वहीं मशीनों एवं कम्प्यूटरों से किए जाने वाले कार्यों में उतने लोगों की आवश्यकता नहीं होती है अर्थात बेरोजगारी में वृद्धि होती है। इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि प्रौद्योगिकी के कारण नए प्रकार के रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि हुई है। प्रौद्योगिकी हेतु शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था करके लोगों को बड़ी संख्या में रोजगार का सृजन किया जा सकता है। इस संबंध में लांग-चेन, निदेशक, लोहान एकेडेमी: डावोस में आयोजित 26वें वर्ल्ड इकॉनामिक फोरम के सम्मेलन में प्रस्तुत पेपर के अनुसार - ''प्रौद्योगिकी उन्नयन से समावेशी विकास को आगे ले जाने के लिए बहुत महत्वपूर्ण अवसर उत्पन्न हुए हैं। चीन और अन्य उभरते बाजारों के अनुभवों ने यह सिद्ध किया है कि इससे संवृद्धि के लिए नए रास्ते खुले हैं, जिनसे विकास को अधिक समावेशी और धारणीय बनाया जा सकता है। सरकारी-निजी संयुक्त प्रयासों तथा सही नीतियों के साथ प्रौद्योगिकी युग उभरते बाजारों के लिए ऐसे नए अवसर प्रदान करता है जो पहले उपलब्ध नहीं थे।''[1] यहां पर माइकल स्पेंस का लेख भी अतिमहत्वपूर्ण है जिसका शीर्षक -''दि डिजिटल की टू इन्क्लुसिव ग्रोथ"। माइकल स्पेंस लिखते हैं कि -''ऐसा लगता है कि डिजिटल अर्थव्यवस्था ने विकसित देशों में आय और जॉब के ध्रुव्रीकरण की अभिरचना में पहले ही अपना योगदान देना शुरू कर दिया है। तथापि, डिजिटल प्रौद्योगिकी, विशेष रूप से विकासशील देशों के समावेशी विकास की अभिरचना में तेजी लाने में शक्तिशाली भूमिका निभा सकती है।"[2] प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान को 08 फरवरी 2017, को प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में केन्द्रीय मंत्रीमण्डल की बैठक में मंजूरी दी गई। इस अभियान में ग्रामीण परिवारों को डिजिटल रूप से साक्षर बनाना है। इस योजना से ग्रामीणवासी को कम्प्यूटर, स्मार्टफोन और टेबलेट जैसे डिजिटल

उपकरणों के उपयोग के बारे में प्रशिक्षण देकर ग्रामीण भारत को डिजिटल साक्षर बनाने में मदद मिली। ''वर्ष 2017 में 25 लाख लोगों को प्रशिक्षित किया जाएगा जबकि 2018 में इसके तहत् 2.75 करोड़ लोगों को प्रशिक्षित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।"[3] डिजिटल इंडिया मिशन के अन्तर्गत डिजिटल लॉकर प्रणाली, स्वच्छ भारत मिशन, आधार प्रमाणिता, ई-हॉस्पिटल एप्लीकेशन, राष्ट्रीय छात्रवृत्ति पोर्टल, डिजिटलाइज इंडिया प्लेटफार्म अर्थात रिकॉर्डस को डिजिटलाइज करना, भारत नेट अर्थात देश की ढाई लाख ग्राम पंचायतों को डिजिटल हाइवे, नेक्सट जनरेशन नेटवर्क, वाई-फाई-हॉट-स्पोट्स आदि ने समावेशी विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

उद्देश्यः

1. बिना कागज के इस्तेमाल के सरकारी सेवाएं इलेक्ट्रॉनिक रूप से जनता तक पहुंच सकें।
2. डिजिटल प्रौद्योगिकी से रोजगार के नए अवसरों का सृजन।
3. देश के ग्रामीण क्षेत्र के परिवारों में डिजिटल जागरूकता व शिक्षा को बढ़ावा।
4. नागरिकों का डिजिटल सशक्तीकरण करना।
5. ई-शासन एवं मांग के अनुरूप सेवाओं की आपूर्ति करना।

डिजिटल भारत मिशनः

भारत सॉफ्टवेयर क्षेत्र में अग्रणी देश है लेकिन भारतवासी को डिजिटल सेवाओं की गांग के अनुरूप उपलब्धता कम है। ''भारत को डिजिटल समाज व ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था के उद्देश्य से प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में, मंत्रिमण्डल द्वारा 20 अगस्त 2014 को 'डिजिटल भारत कार्यक्रम' को स्वीकृति प्रदान की गई।"[4] एसोचौम की रिपोर्ट के अनुसार ''देश के विभिन्न राज्यों के बीच टेली घनत्व में भारी अंतर है जो कि बडे पैमाने पर डिजिटल विभाजन का इशारा करता है। टेलीघनत्व के मामले में जहां दिल्ली 238 प्रतिशत के साथ सबसे आगे है वहीं बिहार और असम करीब 55 प्रतिशत के साथ पीछे है। बिहार, असम, मध्य-प्रदेश तथा उत्तर-प्रदेश में आबादी का बड़ा हिस्सा महत्वपूर्ण संचार सुविधा से वंचित है। इसमें कहा गया है कि सरकार के डिजिटल इंडिया कार्यक्रम के लिए बेहतर टेली घनत्व तथा गुणवत्ता सेवा महत्वपूर्ण है।"[5] संचार साधनों में ही नहीं बल्कि प्रसारण सेवाओं के डिजिटलीकरण की प्रक्रिया में भी शहरों में डिवाइड को बढ़ावा दिया है। शहरों में गरीब बस्तियों के परिवार जो डिजिटल केबल टीवी का महंगा खर्च नहीं उठा सकते, वे अभी किसी तरह दूरदर्शन देख पा रहे हैं। दूरदर्शन को भी डिजिटल करने की योजना है ऐसी स्थिति में गरीब परिवारों को शायद सूचनाओं और मनोरंजन के सभी स्त्रोत से वंचित होना पड़े। नगरों में केबल और डीटीएच के रूप में डिजिटल टेलीविजन के दो विकल्प उपलब्ध है तो गांव में केवल डीटीएच ही आम आदमी का एकमात्र विकल्प है। गरीबी रेखा से नीचे गुजर-बसर करने वाले परिवारों के लिए निजी डीटीएच सेवाओं के लिए प्रतिमाह कंपनियों द्वारा निर्धारित शुल्क महंगा विकल्प है। यह फांसला नगरों एवं गांवों के बीच असल में सूचना और अभिव्यक्ति के मौलिक अधिकार का हनन है। जो संविधान का अनुच्छेद-19 भारत के नागरिकों को विशिष्ट रूप से छह बुनियादी स्वतंत्रताओं की गारन्टी देता है, जो निम्नलिखित है -''वाक-स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता"[6] के तहत देश के प्रत्येक नागरिक को समान रूप से प्राप्त है। डिजिटल प्रौद्योगिकी और समावेशी विकास के संबंध में ''दि चेंजिग नेचर ऑफ वर्क 2019 वर्ल्ड डेवलमेंट रिपोर्ट एवं चार्टिंग पाथवेज फॉर इंक्लुसिव ग्रोथपाथवेज फॉर प्रोस्पेरिटी कमीशन की रिपोर्ट पर विश्व बैंक के वरिष्ठ निदेशक श्री शांता देवराजन ने कहा कि -''उक्त दोनों ही रिपोर्टें विकासशील देशों पर डिजिटल प्रौद्योगिकी के विकास के सकारात्मक प्रभावों को उद्घाटित करती है। इस आशावाद के दोनों ही रिपोर्टों में भिन्न कारण दिए गए हैं। तथापि, ये विरोधाभासी न होकर परस्पर पूरक हैं। इन दोनों के अनुसार समावेशी विकास के लिए प्रौद्योगिकी की शक्ति का बेहतर और सशक्त प्रयोग किये जाने की जरूरत है। पाथवेज रिपोर्ट यह दर्शाती है कि प्रौद्योगिकी के माध्यम से प्राप्त ज्ञान और कार्यदक्षता किसानों जैसे समाज के गरीब और कमजोर वर्गों को काफी लाभान्वित कर सकते हैं। वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट कहती है कि डिजिटल प्रौद्योगिकी द्वारा प्रोद्भूत परिवर्तनों के लिए सरकारों को अपने सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों में सुधार लाना होगा और उन्हें सार्वभौम रूप देते हुए आधुनिक विश्व के अनुरूप ढालना होगा।"[7] नास्कॉम के अनुसार ''12 फरवरी 2020 में आईटी सेवा क्षेत्र ने 97 बिलियन अमरीकी डालर 6.7 प्रतिशत की वृद्धि का उच्चतम राजस्व प्राप्त किया जबकि ई कॉमर्स में यह 54 बिलियन अमरीकी डालर 25.6 प्रतिशत रहा। इस क्षेत्र ने वित्तीय वर्ष 2020 में राजस्व में 147 बिलियन अमरीकी डालर से अधिक का निर्यात किया, जो पिछले वर्ष की तुलना में 8.1 प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है।"[8] डिजिटल प्रौद्योगिकी और समावेशी विकास के संबंध में भुगतान बैंक का भी कार्य सराहनीय रहा है जिसमें ''मोबाइल वॉलेट्स के रूप में संचालित कंपनियों के भुगतान बैंक एक बड़ा कदम है, क्योंकि यह जमा धनराशि सीमा बढ़ाता है और जमाराशि पर ब्याज का भुगतान करने की अनुमति देता है, जो इसे उपयोगकर्ताओं को अपना संग्रह करने के लिए और अधिक आकर्षक बना देता है।"[9] दुनियां में भारत की डाक नेटवर्क सेवा सबसे व्यापक रूप में है, जैसे 1,55,015 डाकघर हैं। ''155015 डाकघरों के साथ औसतन एक डाकघर 21.22 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र और 8221 लोगों की आबादी में कार्य करता है। लगभग 90 प्रतिशत डाकघर ग्रामीण इलाकों में हैं।"[10] डाकघर नेटवर्क की विशाल पहुंच को पहचानते हुए भारत डाक भुगतान बैंक आईपीपीबी लान्च किया गया है जो भुगतान बैंक की सेवाएं प्रदान करेगी। आईपीपीबी डाकघर बचत बैंक के 17 करोड़ से अधिक सक्रिय खाताधारकों को अतः प्रचालनीय डिजिटल भुगतान करने के लिए भी सक्षम करेगा।"[11] रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की वार्षिक रिपोर्ट 2017-18 के अनुसार -''मोबाइल बैंकिंग सेवाओं में मार्च 2018 के अंत में पंजीकृत ग्राहकों की संख्या 54 प्रतिशत से बढ़कर 251 मिलियन हो गई, जो मार्च 2017 के अंत में 163 मिलियन थी।"[12] रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के हवाले से कहा गया है कि -''डिजिटल भुगतान की सीमा का प्रभावी ढंग से आकलन करने के लिये एक डिजिटल भुगतान सूचकांक प्रारम्भ करने की घोषणा की गई है।"[13] आर0 बी0 आई0 द्वारा दिये विकासात्मक एवं विनियामक नीति संबंधी वक्तव्य के अनुसार -''भारत में डिजिटल भुगतान तेजी से बढ रहा है। आरबीआई समय-समय पर भुगतान के डिजिटलीकरण की सीमा का प्रभावी ढंग से आकलन करने के लिए एक समग्र 'डिजिटल भुगतान सूचकांक' का निर्माण करेगा।"[14]

प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान:

वैसे देखा जाए तो डिजिटल प्रौद्योगिकी की आधारशिला 1980 के दशक में सैम पित्रोदा ने रख दी थी। सैम पित्रोदा की सहायता से ''भारत वैश्विक डिजिटल डिवाइड को पाटने की मजबूत कोशिश कर पाया।"[15] इसी कड़ी में माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी की अध्यक्षता में 08 फरवरी 2017 को ग्रामीण डिजिटल साक्षरता कार्यक्रम की शुरूआत हुई। इस योजना के अन्तर्गत उम्मीदवारों को कम्प्यूटर, स्मार्टफोन और टेबलेट जैसे डिजिटल उपकरणों के उपयोग के बारे में प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई जिससे भारत के ग्रामीण लोगों को डिजिटल साक्षर बनाने की कोशिश की गई है। इस योजना की देखरेख इलेक्ट्रानिक्स और सूचना तकनीक, मंत्रालय नई दिल्ली की होगी।

प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल अभियान में पंजीकृत लाभार्थियों की संख्या:

वर्ष	पंजीकृत लाभार्थियों की संख्या	प्रशिक्षित लाभार्थियों की संख्या
जुलाई – 2017	2830653	
अगस्त –2017	4869570	
अक्टुवर –2017	7064511	
नवम्बर–2017	9879335	
जनवरी –2018	10690406	10525140
मार्च –2018	11926341	11698794
अप्रैल –2018	12343083	12321098
मई –2019	22599712	22448431
जून –2019	23097324	13491306

उपर्युक्त तालिका के विवेचन से स्पष्ट है कि ''जुलाई –2017 में पंजीकृत लाभार्थियों की संख्या 2830653 थी, जो बढ़कर नवम्बर –2017 में 9879335 हो गई।"[16] ''जनवरी 2018 में पंजीकृत लाभार्थियों की संख्या: 10690406 एवं प्रशिक्षित लाभार्थियों की संख्या: 10525140 थी, जो बढ़कर अप्रैल 2018 में पंजीकृत लाभार्थियों की संख्या: 12343083 एवं प्रशिक्षित लाभार्थियों की संख्या: 12321098 हो गई।"[17] मई –2019 में पंजीकृत लाभार्थियों की संख्या: 22599712 एवं प्रशिक्षित लाभार्थियों की संख्या 22448431 थी जो बढ़कर जून 2019 में पंजीकृत लाभार्थियों की संख्या 23097324 हो गई एवं प्रशिक्षित लाभार्थियों की संख्या 13491306 रह गई।"[18] प्रधानमंत्री ग्रामीण साक्षरता अभियान के अन्तर्गत वर्ष 2017 से वर्ष 2019 तक पंजीकृत लाभार्थियों की संख्या में वृद्धि देखने को मिलती है।

डिजिटल इंडिया पर वक्तव्य:

1. माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी का वक्तव्य – ''डिजिटल इंडिया राष्ट्र के लिए हमारा सपना है, जब मैं 'डिजिटल इंडिया' कहता हूं तो यह अमीरों के लिए नहीं बल्कि उनके लिए है, जो गरीब हैं।"[19]
2. श्री रविशंकर प्रसाद, मंत्री, इलैक्ट्रानिक्स और सूचना तकनीक का वक्तव्य: ''ग्रामीण डिजिटल साक्षरता योजना का उद्देश्य ग्रामीण नागरिकों को सूचना, ज्ञान और कौशल के साथ सशक्त बनाना और उन्हें शासन में सक्रिय रूप से भाग लेने में सक्षम बनाना है।"[20]
3. श्री पी0 पी0 चौधरी, राज्यमंत्री, विधि एवं न्याय, भारत सरकार का वक्तव्य – ''ग्रामीण डिजिटल साक्षरता योजना विशेष रूप से ग्रामीण आबादी पर लक्षित है, जिसमें समाज के हाशिए पर रहने वाला वर्ग भी शामिल है और इसका उद्देश्य डिजिटल विभाजन को संबोधित करना है।"[21]
4. श्री के0 जे0 अल्फोन्स, राज्यमंत्री, इलेक्ट्रानिक्स और सूचना तकनीक, भारत सरकार, का वक्तव्य – ''डिजिटल इंडिया कार्यक्रम भारत को डिजिटल रूप से सशक्त समाज में बदलने की एक महत्वाकांक्षी द्रष्टिकोण है और देश भर में विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल साक्षरता इस पहल की सफलता के लिए एक आवश्यक तत्व है।"[22]
5. असीम चौहान, अध्यक्ष और कुलाधिपति, एमिटि यूनिवर्सिटी कहते है कि –''टेक्नोलॉजी के इस्तेमाल और स्व-निर्देशित अध्ययन के जरिये बुनियादी ढांचे पर दबाव कम किया जा सकता है। मिलीजुली पढ़ाई के मॉडल टेक्नोलॉजी के जरिए पढ़ाई, मूल्यांकन और छात्रों क मदद आसान है। इससे जगह के बेहतर उपयोग और दूरी बनाए रखने में मदद मिलेगी।"[23]
6. एम. जगदीश कुमार, कुलपति, जेएनयू कहते है कि – ''आर्टिफिशल इंटेजिजेंस का उपयोग करते हुए ऑटो प्रॉक्टरिंग धांधली रहित ऑनलाइन परीक्षा आयोजित करने के लिए विश्वसनीय और अच्छा द्रष्टिकोण है, भारत में इस तरह के ऑनलाइन परीक्षा उपकरण विकसित करने की तकनीकी क्षमता और उत्साह है।"[24]
7. सुनील गलगोटिया, कुलपति, गलगोटियाज यूनिवर्सिटी का कहना है कि – ''मेरा मानना है कि कलम और कागज परीक्षाएं आयोजित कराने के पारंपरिक तरीके की जगज जल्द ही ऑनलाइन मूल्यांकन उपकरण ले लेगें। यह न केवल परीक्षा हॉल में छात्रों के संपर्क को कम करेगा बल्कि फैकल्टी को किसी भी स्थान से छात्रों का ऑनलाइन आंकलन करने में मदद मिलेगी।"[25]
8. जस्टिस नांबियार कहते हैं ''वर्चुअल कोर्ट लॉकडाउन के बाद भी जारी रहेंगे, यह बदलाव महज माइंडसेट का मामला है कि हम इसे कब अपनाते है।"[26]

9. वीडियो कॉन्फेंसिंग के मामले में जजों और वकीलों की सुविधाओं में भी बहुत फर्क है। जस्टिस जावेरी कहते है, ''जजों को यह सुविधा है कि वे इंजीनियर को बुलाएं और अपनी तकनीकी परेशानी दूर करा लें, लेकिन वकील अपने दफ्तर में इंजीनियर नहीं रख सकते। तालुका स्तर के अनेक वकील तो कम्प्यूटर भी नहीं खरीद सकते हैं। वर्चुअल कोर्ट सिस्टम चरणबद्ध तरीके से योजना बनाकर ही लागू किया जा सकता है।''[27]

निष्कर्ष: डिजिटल लिट्रेसी ऑकडेष्ठ चाहे जो हों पर गॉव-गॉव से लोग टिक-टॉक पर वीडियो डाल रहे हैं और वीडियो कॉल भी कर रहे हैं। वर्चुअल कोर्ट के माध्यम से फैसले हुये है। प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान के अन्तर्गत बड़ी संख्या में लोग प्रशिक्षित हुयें हैं। डिजिटल इंडिया मिशन के अन्तर्गत बॉडवैण्ड हाइवे, मोबाइल कनेक्टिविटी, ई-शासन, ई-भुगतान, सेवाओं में लोगों की पहुंच हुई है साथ ही साथ डिजिटल प्रौद्योगिकी से अवसरों में समानता, रोजगार के अवसरों के नए अवसर में सृजन, भुगतान बैंक, मोबाइल बैकिंग सुविधाओं में इजाफा हुआ। काफी हद तक डिजिटल प्रौद्योगिकी के उपयोग से समावेशी विकास में सहायता मिली है। डिजिटल प्रौद्योगिकी के कारण काफी हद तक कागज के इस्तेमाल में कमी आई है।इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल साक्षरता में वृद्धि एवं ऑनलाइन शिक्षा का भी विस्तार हुआ है।

सन्दर्भित ग्रन्थ सूची:

1. समाावेशी विकास और नया भारत, डॉ. रमाकांत शर्मा, यश पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, भारत, वर्ष-2020, पृष्ठ संख्या: 67
2. ..... वही पृष्ठ संख्या -68
3. प्रतियोगिता दर्पण, अतिरिक्तांक, भारतीय अर्थव्यवस्था, 2020, पृष्ठ संख्या: 149
4. सम-सामयिक, घटना चक्र, राष्ट्रीय सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य, नीतियां, योजनाएं एवं कार्यक्रम, वर्ष 2017, प्रकाशक - एलनगंज, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या: 77
5. भारत, कल, आज और कल, रहीस सिंह, Mc Graw Hill Education (india) private limited, Chenni, वर्ष -2010, पृष्ठ संख्या: 8.8
6. संविधान एवं राजव्यवस्था, शीलवंत सिंह, Mc Graw Hill Education (india) private limited, New Delhi, वर्ष -2010, पृष्ठ संख्या: 7.6
7. समावेशी विकास और नया भारत, डॉ. रमाकांत शर्मा, यश पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, वर्ष -2020, पृष्ठ संख्या: 72
8. Nasscom Report, 2020
9. अर्थशास्त्र, 2019, cengage Learing India Pvt.Ltd., Delhi, पृष्ठ संख्या- 284,
10. वही, पृष्ठ संख्या - 285
11. वही, पृष्ठ संख्या -285
12. economics times.com
13. दृष्टि, दि विजन, करेन्ट अफेयर्स टुडे, अप्रैल 2020, दिल्ली -9, पृष्ठ संख्या: 38
14. वही पृष्ठ संख्या -38
15. दृष्टि दि विजन, कला एवं संस्कृति, नवम्बर -2018, दृष्टि पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पृष्ठ संख्या: 319
16. www.pmgdisha.in
17. वही
18. वही
19. वही
20. वही
21. वही
22. वही
23. इंडिया टुडे, जून 2020, पृष्ठ संख्या: 51
24. वही - 51
25. वही - 51
26. इंडिया टुडे, मई 2020, पृष्ठ संख्या: 29
27. वही - 29

अनुसूचित जाति की महिलाऐं एवं उनका सशक्तिकरण (बिलासपुर जिलें पर आधारित एक समाजकार्य अध्ययन)

नीमा पाठक

पी. एच. डी. समाजकार्य, रावतपुरा सरकार विश्वविधालय, रायपुर

आजादी से पूर्व एवं आजादी के बाद भारतीय समाज में अनुसूचित जाति की महिलाओं की जो स्थिति थी उसमें अशंत: परिवर्तन हुआ है। हालांकि महिला सशक्तिकरण की अवधारणा भारत के स्वतंत्रता से पूर्व ही विश्वव्यापी हो चुकी थी। परन्तु भारत में महिला सशक्तिकरण का रूप अथवा प्रभाव हमें 80 अथवा 90 के दशक से कुछ हद तक दिखाई पड़ता है। यह सशक्तिकरण भी समाज के उच्च वर्ण की महिलाओं में था जो शिक्षा प्राप्त कर सकती थी और आधुनिक दुनिया के फैशन एवं परम्पराओं को अपने मे समाहित कर रही थी। परन्तु वही पर जब हम समाज के इस निम्न वर्ण के अनुसूचित जाति की महिलाओं पर नजर डालते है तो ज्ञात होता है कि यह महिलाएं शिक्षा से दूर अन्धकारमय जीवन जीने को मजबूर है। आधुनिक दुनिया के रंगिनियों से कोषों दूर अपने आस्तीत्व से अनभिज्ञ यह जीवन एवं परिवार से जद्दो जहद कर समाज में एक मूकबधिर जीव के समान जीवन जीने को विवश है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का मूल उद्देश्य अनुसूचित जाति की महिलाएं एवं उनका सशक्तिकरण का अध्ययन किया गया है। भारतीय समाज में सदैव से अनुसूचित जाति के लोगों की दयनीय दशा रही है। अब बात महिलाओं की हो जो कि ऐसे दबे-कुचले शोषित समाज से आती हो जहाँ पुरूषों की दशा ही निम्न हो तो महिलाओं की दशा क्या होगी यह कल्पना से परे है। वास्तविकता भी यही है कि अनुसूचित जाति जो की एक सामाजिक रूप से बहिष्कृत जातियों का वर्ग है उस वर्ग की महिलाओं का जीवन अत्यन्त दु:खद व विचारणीय है। भारतीय समाज की यह एक कटु सत्य है प्रत्येक दिन अनुसूचित जाति की महिलाऐं चाहे वो किसी भी आयु सीमा की है बलात्कार, यौन शोषण, घरेलू हिंसा, सामाजिक हिंसा, छुआछूत आदि का शिकार होती है। समाचार पत्रों में आये दिन अस्पृश्य महिलाओं से सम्बन्धित समाचार पढ़ने को मिलते है जिसकी प्रशासन के किसी भी स्तर पर सुनवाई नहीं होती है या होती भी है तो उसमें इतने अधिक समय व्यतीत हो जाता है कि पिडिघ्ता को उससे कोई लाभ नहीं होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि समग्र रूप से अनुसूचित जाति की महिलाऐं में आज भी समाज के उच्च वर्ग के द्वारा शोषण का शिकार है।

खपरी गाँव, तहसील तखतपुर, जिला बिलासपुर के अनुसूचित जाति की महिलाओं की सामाजिक जीवन रहन सहन का अवलोकन करने उनके साक्षात्कार एवं प्राप्त आंकड़ों के गहन अध्ययन के पश्चात मैं यह कह सकती हूँ कि भट्ठी गाँव की इन महिलाओं पर सशक्तिकरण का प्रभाव नगण्य है। ये महिलायें परिवार पर आश्रित हो उनके ही दिशा निर्देशों में समस्त जीवन व्यतीत कर देती है। महिला को सशक्त करने का प्रमुख औजार शिक्षा है और वे इससे ही वंचित है।

अध्ययन का उद्देश्य-

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य अनुसूचित जाति की महिलाएं एवं उनका सशक्तिकरण की जानकारी प्राप्त करना है। प्रस्तुत शोध अध्ययन से सम्बन्धित निम्नलिखित उद्देदश्य है-

1. अनुसूचित जाति की महिलाओं का परिचयात्मक एवं ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करना।
2. महिला सशक्तिकरण की अवधारण एवं प्रकृति का विश्लेषण करना।
3. चयनित क्षेत्र में उत्तरदात्रियों की समसामयिक पारिवारिक एवं सामाजिक- आर्थिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।
4. अनुसूचित जाति की महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण का अध्ययन करना।
5. अनुसूचित जाति की महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण का विश्लेषण करना।
6. अनुसूचित जाति की महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण का पता लगाना।

परिकल्पनाएँ-

प्रस्तुत शोध अध्ययन को वैज्ञानिक आधार पर निर्देशित दिशा की ओर ले जाने हेतु कुछ उपकल्पनाओं का निर्माण किया गया है। प्रस्तुत शोध की मुख्य परिकल्पनायें निम्न है-

1. अनुसूचित जाति की महिलाओं के सशक्तिकरण में संवैधानिक प्रावधानों ने सकारात्मक भूमिका अदा की है।
2. अनुसूचित जाति की महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सकारात्मक बदलाव हुआ है।

3. अनुसूचित जाति की महिलाओं की आर्थिक स्थिति समुन्नत हुई है।
4. अनुसूचित जाति की महिलाओं की राजनीतिक स्थिति में सकारात्मक बदलाव हुआ है।
5. अनुसूचित जाति की महिलाओं के साथ समाज में भेदभाव अपेक्षाकृत पहले से कम हुआ है।

तथ्य संकलन की प्रविधि-

तथ्य संकलन शोध कार्य के लिए एक महत्वपूर्ण अंग है, तथ्य संकलन के बिना शोध कार्य पूर्ण नहीं हो सकता है। वर्तमान अध्ययन प्राथमिक तथा द्वितीयक स्त्रोतों पर आधारित है। सशक्तिकरण सम्बन्धित जानकारी प्राप्त किया गया है। साक्षात्कार अनुसूची में प्रयुक्त प्रश्नों की प्रकृति संरचित मुख्य एवं बहुवैकल्पिक एवं अनौपचारीक वार्तालाप का प्रयोग किया गया है।

1. प्राथमिक स्रोत- तथ्य संकलन के लिए अवलोकन की चेतना का होना आवश्यक है, प्रस्तुत शोध अध्ययन की आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए, साक्षत्कार अनुसूची को मुख्य अध्ययन स्रोत के रूप में प्रयोग किया गया है क्योंकि यह अध्ययन अनुसूचित महिलाओं के सशक्तिकरण से सम्बंधित है, जोकि प्राय: अशिक्षित या अल्पशिक्षित है। इन लोगों से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित कर अन्त: क्रिया के माध्यम से ही पूर्ण विस्तृत एवं गहन सूचनाओं की प्राप्ति करना सम्भव था। इसमें उत्तरदात्रिओं के उत्तर मानकीकृत होंगे तथा साथ ही उत्तरदात्रिओं की विभिन्न परिस्थितियों का अवलोकन करने का मौका भी मिला। साक्षात्कार अनुसूची को मुख्य अनुसंधान कार्य में प्रयोग करने से पूर्व परीक्षण किया गया है। यह पूर्व परीक्षण भट्ठी गाँव में रह रही अनुसूचित जाति की महिलाओं पर किया गया है। पूर्व परिक्षण के पश्चात साक्षात्कार अनुसूची में जो कमियां ज्ञात हुई उसके आधार पर साक्षात्कार अनुसूची में आवश्यक संशोधन किये गये है, सशोधन के पश्चात ही इसे अंकित कराकर शोध कार्य में प्रयोग किया गया है। साक्षात्कार अनुसूची की एक प्रति परिशिष्ट में लगाई गयी है।

2. द्वितीयक स्रोत- शोध से सम्बन्धित द्वितीयक स्रोतों का संकलन विभिन्न ग्रन्थालयों, सरकारी एवं गैर सरकारी स्रोतों से प्राप्त दस्तावेज एवं अभिलेखों, जनगणना रिर्पोट, रिकार्ड, आत्मकथा, पत्र, कम्प्यूटर, सी.डी, समाचार पत्र, पत्रिकाओं, शोध परीवेदनों, योजनाओं, इण्टरनेट, पुस्तकों, प्रकाशनों, शोध पत्र, सूचना जनसम्पर्क कार्यालय, रेडियों, विकास खण्ड कार्यालय तथा डायरी आदि से प्राप्त सूचनाओं द्वारा प्राप्त किया गया है। द्वितीयक तथ्यों की उल्लेखनीय विशेषता यह होती है कि ये तथ्य, सूचनाएँ या आकड़ें स्वयं अनुसन्धानकर्त्ता अपने कार्य में उपयोग करने के लिए एकत्रित कर लेता है। इसका तात्पर्य यह है कि द्वैतीयक तथ्य पहले से ही उपलब्ध होते है जिनका उपयोग कोई शोधकर्त्ता या संगठन अपने विषय की आवश्यकतानुसार करता है।

तथ्यों का वर्गीकरण, सारणीयन एवं विश्लेषण-

शोध अध्ययन से प्राप्त तथ्यों का व्यवस्थीकरण एवं वर्गीकरण एक महत्वपूर्ण चरण होता है क्योंकि सर्वेक्षण कार्य के दौरान शोध कार्य हेतु संकलित तथ्य बहुत बिखरी हुई दशा में होता है तथा तथ्यों से अर्थपूर्ण परिणाम व सम्बन्ध का आंकलन करने हेतु तथ्यों को समजातीय समूह में वर्गीकरण के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। संकलित तथ्यों को व्यवस्थित सारणी में प्रदर्शित करने के साथ-साथ यथासंभव आरेखों का भी प्रयोग किया गया है। इस प्रकार से प्राप्त तथ्यों की सार्थकता तथा विभिन्न चरों के मध्य संबंध स्पष्ट करने के लिए सांख्यिकीय पद्धति का प्रयोग किया गया है। सांख्यिकीय कार्य के सम्पादन हेतु संबधित सॉफ्टवेयर, माइक्रोसॉफ्ट एक्सल एवं चार्ट आदि का प्रयोग किया गया है। सांख्यिकीय पद्धति के सहसंबंध प्रविधि के माध्यम से आंकड़ों की सार्थकता की जांच के लिए स्वतंत्र चर के रूप में (आयु, शिक्षा एवं परिवार की मासिक आय) व आश्रित चर के रूप में जाति की स्थिति में सुधार, सामाजिक मान्यताएं, महिलाओं का प्रधान होना, सरकारी योजनाओं की जानकारी एवं महिलाओं द्वारा सरकारी योजनाओं से लाभ उठाने का स्तर का चयन किया गया है। सर्वप्रथम शोध अध्ययन के उद्देश्यों के अनुकूल तथ्यों को व्यवस्थित एवं वर्गीकृत किया गया है उसके बाद तथ्यों को सामान्य एवं सहसंम्बन्धात्मक सारणीयों द्वारा प्रस्तुत किया गया है सम्पूर्ण तथ्यों को प्रतिशत के आधार पर विवेचित किया गया है इस प्रकार प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर अध्ययन के समाजवैज्ञानिक निहितर्थ को उजागर किया गया है। अध्ययन से प्राप्त तथ्यों को उनकी विशेषताओं के अनुरूप विभिन्न वर्गों, श्रेणियों तथा समूहों में विभाजित करके सारणियों में प्रस्तुत किया गया है। सारणीयों में तथ्यों की आकृति एवं प्रतिशत को दर्शाया गया है। तथ्यों का विश्लेषण गुणात्मक और परीणात्मक दोनों ही प्रकार से किया गया है। जिसके आधार पर तथ्यों का विश्लेषण करना संभव हो पाता है। क्रमबद्ध विश्लेंषण का कार्य एक ठोस बौद्धिक भवन का निर्माण करना है जो कि एकत्रित तथ्यों को उनके उचित स्थान तथा संबंधों में प्रस्थापित करने में सहायक हो ताकि उनसे सामान्य निष्कर्षों को निकाला जा सके। तथ्य विश्लेषण की प्रक्रिया में ही सांख्यिकीय वितरण को ज्ञात करना, आरेख, विभिन्न मापों जैसे प्रतिशत, सहसंबंध आदि के परिकलन माप को भी सम्मिलित किया गया है।

उत्तरदात्रियों के वैयक्तिक एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि -

आयु वर्ग के आधार पर विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 38.00 प्रतिशत उत्तरदात्रियां 26 से 35 वर्ष आयु समुह की है, न्यूनतम 12.00 प्रतिशत उत्तरदात्रियां 46 से अधिक वर्ष आयु समूह की है। सभी उत्तरदात्रियां सतनामी जाति की है परन्तु कुछ उत्तरदात्रियों ने हिन्दू धर्म को मानने वाली है उनका विवरण इस प्रकार है- हिन्दू धर्म को मानने वाली 88.00 प्रतिशत उत्तरदात्रियां है, इसाई धर्म को मानने वाली 5.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियां है, बौद्ध धर्म को मानने वाली 2.67 प्रतिशत उत्तरदात्रियां है, मुस्लीम धर्म को मानने वाली 4.00 प्रतिशत उत्तरदात्रियां है। शिक्षा के आधार पर तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक 71.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियां अशिक्षित है, न्यूनतम 2.67 प्रतिशत उत्तरदात्रियां स्नातक एवं स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त है। विवाह के आधार पर विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 76.67 प्रतिशत उत्तरदात्रियां विवाहित है, 2.00 प्रतिशत उत्तरदात्रियां विधवा है। व्यवसाय के आधार पर विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 43.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियां मजदूरी करने वाली तथा सबसे कम 3.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियां नौकरी/सफाई कर्मी है। परिवार के स्वरूप के आंकड़ों से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 56.67 प्रतिशत उत्तरदात्रियां एकांकी परिवार से है, न्यूनतम 43.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियां संयुक्त परिवार में निवास करते है।

इससे यह पता चलता है कि एकांकी परिवार की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। आवास के आधार पर विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 66.67 प्रतिशत उत्तरदात्रियों के पास कच्चा आवास है। आय के आधार पर विश्लेषण से स्पष्ट है कि 36.67 प्रतिशत उत्तरदात्रियों की मासिक आय 4000-5500 तक है।

सामाजिक सशक्तिकरण-

अनुसूचित जाति की महिलाओं सामाजिक स्थिति के अध्ययन को प्रस्तुत किया गया है। अनुसूचित जाति की महिलाओं का सामाजिक स्तर एवं उनका सशक्तिकरण हुआ है या नहीं को प्रस्तुत किया गया है। उत्तरदात्रियों से सशक्तिकरण के माध्यम से आये परिवर्तन में परिवार के मुखिया, घर में शौचालय के आधार पर, घरों में पुरूषों की महिलाओं के प्रति व्यवहार के आधार पर, व्यवहार खराब होने के आधार पर, महिलाओं को पुरूषों के समान ही अधिकार प्राप्त है के आधार पर, परिवार में स्वयं के लिए निर्णय लेने की स्वतंत्रता के आधार पर, परिवार व समाज के निर्णय थोंपे जाने के आधार पर, संविधान में महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान किये गये के आधार, पिता के संपत्ति में बराबरी का अधिकार, संविधान में लड़के और लड़कियों के विवाह का उम्र 21 व 18 निर्धारित किया गया है, 18 वर्ष के उम्र के बाद लड़कियों को अपने जीवन साथी चुनने, अनुसूचित जाति की बालिकाओं के लिए 12वी तक की सरकारी स्कूलों में शिक्षा मुफ्त है की जानकारी, लड़की-औरत होने के नाते पढ़ाई पर रोक लगाया जाता है, लड़की-औरत होने के नाते घर से बाहर निकलने में पाबन्दी, लड़कियों के लिए अलग नियम बनाये जाने के आधार पर, अनुसूचित जाति की महिला की सामाजिक स्थिति सवर्ण महिलाओं के अपेक्षा कैसी है के आधार पर, महिलाओं को तलाक का अधिकार है, घरेलू हिंसा अधिनियम 2005 की जानकारी के आधार पर, बालविवाह करना कानूनन अपराध है की जानकारी के आधार पर, छुआछूत अस्पृश्यता (17) करना कानूनन अपराध माना गया है, विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार है, दहेज प्रथा का कानून की जानकारी के आधार, सामाजिक क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति सुधार के लिए महिलाओं की भागीदारी, महिलाएं पहले से ज्यादा सुरक्षित है या नहीं की जानकारी आदि में अनुसूचित जाति की महिलाओं के सशक्तिकरण के तथ्यों को संकलित तथा विश्लेषित किया गया है। सर्वाधिक 83.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियों के परिवार में पुरूष मुखिया है। सर्वाधिक 76.67 प्रतिशत उत्तरदात्रियों के पास शौचालय की सुविधा उपलब्ध नहीं है। सर्वाधिक 53.33 उत्तरदात्रियों के परिवार में उनके महिला होने के कारण (लैंगिक कुंठा) खराब व्यवहार किया जाता है। सर्वाधिक 80.00 प्रतिशत उत्तरदात्रियों को उनके परिवार में पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त नहीं है। सर्वाधिक 33.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियों के पास टी0 वी0 एवं बचत खाता की सुविधा उपलब्ध है। सर्वाधिक 86.00 प्रतिशत उत्तरदात्रियां समाचार पत्र नहीं पढ़ती है। सर्वाधिक 79.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियों को अपने लिए स्वयं निर्णय लेने की स्वतंत्रता नहीं है। सर्वाधिक 71.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियों पर पारिवारिक निर्णय थोपें जाते है। सर्वाधिक 70.00 प्रतिशत उत्तरदात्रियों को महिलाओं को दिये जाने वाले विशेष अधिकारों की कोई जानकारी नहीं है। सर्वाधिक 81.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियां सम्पत्ति अधिकार अधिनियम से अनभिज्ञ है। सर्वाधिक 69.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियां विवाह के वैधानिक उम्र से अवगत नहीं है। सर्वाधिक 88.00 प्रतिशत उत्तरदात्रियां इस जीवन साथी चुनने के अधिकार से बिल्कुल भी अवगत नहीं है। सर्वाधिक 81.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियों को स्कूल पढ़ाई करने जाने पर रोक लगाया जाता है। सर्वाधिक 68.67 प्रतिशत उत्तरदात्रियों के उनके परिवार में पुरूष-महिलाओं के लिए अलग नियम सामाजिक तौर पर व्याप्त है। सर्वाधिक 84.67 प्रतिशत उत्तरदात्रियों ने उत्तर दिया की उनकी स्थिति ऊँची जाति की महिलाओं के अपेक्षाकृत बहुत खराब है। सर्वाधिक 84. 67 प्रतिशत उत्तरदात्रियों को इस घरेलू हिंसा अधिनियम की कोई जानकारी नहीं है। सर्वाधिक 60.00 प्रतिशत उत्तरदात्रियां तलाक के प्रावधान से अवगत नहीं है। सर्वाधिक 83.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियों के साथ आज भी छुआछूत का व्यवहार किया जाता है। सर्वाधिक 80.67 प्रतिशत उत्तरदात्रियां इस अधिकार (विधवा पूनर्विवाह) से अवगत नहीं है। सर्वाधिक 58.00 प्रतिशत उत्तरदात्रियों ने महिलाएँ आज भी सुरक्षित नहीं इस बात को स्वीकार किया है। सर्वाधिक 60.00 प्रतिशत उत्तरदात्रियां इस (दहेज प्रथा कानून 1961) से अवगत नहीं है। सर्वाधिक 80.67 प्रतिशत उत्तरदात्रियों के परिवारों के अधिकांश पुरूष मदिरा का सेवन करते है। सर्वाधिक 86.00 प्रतिशत उत्तरदात्रियों ने सामाजिक स्थिति में सुधार के लिए उनके सहयोग को महत्व दिया है।

आर्थिक सशक्तिकरण-

अनुसूचित जाति की महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण को अभिव्यक्त करने के लिए परिवार में आमदनी के स्रोत के आधार पर, परिवार के खर्च में पुरूषों के सहयोग के आधार पर, बाल श्रम कानूनन अपराध के आधार पर, महिलाओं के काम करने का समय निर्धारण, प्रसूति लाभ अधिनियम 1961 से अवगत, कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव अपराध है, समान कार्य समान वेतन का प्रावधान संविधान में दिया गया है से अवगत, कार्यस्थल पर महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार करना अपराध है से अवगत, सुरक्षित कार्यस्थल एवं स्वतंत्रता का अधिकार महिलाओं को संविधान द्वारा प्रदत्त है से अवगत, राष्ट्रीय महिला कोष 1993 की स्थापना का मुख्य उद्देश्य से अवगत, बन्धुआ मजदूरी से आप क्या समझती है, अपने परिवार के जीविकोपार्जन के लिए लघु उद्योग में संलग्न रही है, परिवार में आर्थिक संतुलन के लिए परिवार नियोजन की आवश्यकता, परिवार के आय कमाने और काम करने वालों की संख्या के आधार पर, आपने ऋण लिया है तो किस कारणवश के आधार पर, आर्थिक विकास सामाजिक विकास को किस तरह से प्रभावित करता है, आर्थिक क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए महिलाओं की भागीदारी आवश्यक है के आधार पर आदि तथ्यों को संकलित तथा विश्लेषित किया गया है। अधिकांश 94.6 प्रतिशत उत्तरदात्रियां मजदूरी का कार्य करती है। सर्वाधिक 92.00 प्रतिशत उत्तरदात्रियों के परिवार में पुरूष ही घर के खर्च का भार उठाते है। अधिकांश 71.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियां बालश्रम निरोधक अधिनियम 1986 से अवगत है। सर्वाधिक 60.00 प्रतिशत उत्तरदात्रियां काम करने के निर्धारित समय को (12घण्टा) मानती है। अधिकांश 82.67 प्रतिशत उत्तरदात्रियां (प्रसूती लाभ अधिनियम 1961) से अवगत नहीं है एवं सर्वाधिक 80.67 प्रतिशत उत्तरदात्रियां इस (कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव 2013) प्रावधान से अवगत नहीं है। अधिकांश 73.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियां इस (समान कार्य समान वेतन 1976) प्रावधान से अनभिज्ञ है तथा सर्वाधिक 68.67 प्रतिशत उत्तरदात्रियां इस प्रावधान (राष्ट्रीय महिला कोष 1993) से अनभिज्ञ है। सर्वाधिक 64.67 प्रतिशत उत्तरदात्रियां बंधुआ मजदूरी उन्मूलन 1976 अधिनियम से अवगत है। अधिकाशं 68.67 प्रतिशत उत्तरदात्रियां अपने जीविकोपार्जन के लिए लघु उद्योग के कार्यों में संलग्न है एवं सर्वाधिक 67. 33 प्रतिशत उत्तरदात्रियां परिवार नियोजन कार्यक्रम से अवगत नहीं है। अधिकाशं 71.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियों के परिवार वालों ने ऋण लिया है जिसमें सबसे ज्यादा 30.00 प्रतिशत ऋण बीमारी व 27.67 प्रतिशत ऋण विवाह खर्च के लिए लिया गया है। सर्वाधिक 71.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियां आर्थिक विकास से

सामाजिक विकास किस तरह प्रभावित होता है से अवगत नहीं है एवं अधिकाशं 84.00 प्रतिशत उत्तरदात्रियों ने आर्थिक क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए महिलाओं की भागीदारी की आवश्यकता नहीं है इस बात को स्वीकार किया है।

राजनीतिक सशक्तिकरण-

अनुसूचित जाति की महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण को अभिव्यक्त करने के लिए, राजनीति में दिलचस्पी लेती है के आधार पर, राजनीतिक दल के समर्थन के आधार पर, संविधान द्वारा दिये गये संवैधानिक प्रावधानों से अवगत होने के आधार पर, हिन्दु कोड बिल के बारे में जानती है, अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिए ग्राम पंचायतों में 33 प्रतिशत आरक्षण दिया गया है से अवगत, राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन से अवगत, पसंदिदा महिला नेता कौन है जिसकी तरह आप भी बनना चाहती है, 73वें संविधान संसोधन अधिनियम 1992 में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की महिलाओं का ग्राम पंचायतों में भागीदारी, राजनीतिक क्षेत्रों में महिलाओं की सहभागिता नगण्य, महिला नेताओं के सम्मान, महिलाएं देश की राजनीति को नया मोड़ दे सकती, आपने कभी मतदान किया है, संवैधानिक अधिकारों से अवगत, उनके मर्जी से मतदान करने के लिए स्वतंत्रता, महिला उत्थान हेतु चलाये जा रहे किसी कार्यक्रम की सक्रिय सदस्य, राजनीतिक क्षेत्रों में सुधार हेतु महिलाओं की भागीदारी आवश्यक है, महिला सशक्तिकरण में बाधा उत्पन्न करने वाले कारकों, महिला सशक्तिकरण में भूमिका, आर्थिक निर्भरता के कारण महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन, आप किसे वोट देना पसन्द करेंगी, आरक्षण के द्वारा महिलाओं की स्थिति में कुछ सुधार हुआ, सामाजिक विकास ने महिला सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, महिला सशक्तिकरण हेतु केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा चलाई जाने वाली योजनाओं आदि के तथ्यों को संकलित तथा विश्लेषित किया गया है।

सर्वाधिक 62.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियां राजनीति में दिलचस्पी नहीं लेती है तथा अधिकाशं 72.67 प्रतिशत उत्तरदात्रियां संवैधानिक प्रावधानों से अवगत नहीं है। सर्वाधिक 84.00 प्रतिशत उत्तरदात्रियां हिन्दू कोड बिल कानून से अवगत नहीं है एवं अधिकाशं 73.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियां राष्ट्रीय महिला आयोग से अवगत नहीं है। सर्वाधिक 89.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियां 73वें संविधान संशोधन में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के अधिकार के प्रावधानों से अवगत नहीं है एवं अधिकाशं 58.00 प्रतिशत उत्तरदात्रियां श्री बहनकुमारी मायावती बहुजन नेता के रूप में पसंद करती है। सर्वाधिक 31.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियों ने चार-तिहाई सीटें पंचायती राज व्यवस्था में है तथा अधिकाशं 73.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियों ने बताया कि महिलायें देश की राजनीति को नया मोड़ नहीं दे सकती है। सर्वाधिक 84.00 प्रतिशत उत्तरदात्रियां ने उत्तर दिया की महिला नेताओं को राजनीति में थोड़ा भी सम्मान नहीं मिलता है एवं अधिकाशं 63.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियां ने अनुसूचित जाति की महिलाओं की राजनीति में संख्या नगण्य होने के लिए सभी कारणों जैसें राजनीति में आपराधिक वातावरण, महिला शोषण का घर, महिलाओं में राजनीतिक अनभिज्ञता तथा अशिक्षा को दोषी माना है। सर्वाधिक 92.67 प्रतिशत उत्तरदात्रिया मतदान करने जाती है एवं 87.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियों को अपने मर्जी से मतदान करने की स्वतत्रंता नहीं है। सर्वाधिक 98.00 प्रतिशत उत्तरदात्रियां महिलाओं के उथान हेतु चलाये जा रहे किसी भी कार्यक्रम की सक्रिय सदस्य नहीं रही है एवं अधिकाशं 94.00 प्रतिशत उत्तरदात्रियों ने राजनीतिक क्षेत्रों में सुधार हेतु महिलाओं की भागीदारी की आवश्यकता है को लिए स्वीकार किया है। अधिकांश 62.67 प्रतिशत उत्तरदात्रियां अनुसूचित जाति की महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए संवैधानिक अधिकारों की जानकारी से अनभिज्ञ है।

अत: कहा जा सकता है कि संविधान में महिला सम्बन्धी प्रावधान होने के बावजूद भी समाज में उनकी स्थिति हॉशिये पर है। वर्तमान समाज में कई प्रकार के महिला वर्ग है कृषक महिला, गरीब महिला, आदिवासी महिला, अनुसूचित महिला, आदि सभी को ध्यान में रखकर कार्य करने की आवश्यकता है। महिला सुधार कार्यक्रम, योजनायें और संगठन सभी केवल नाममात्र ही है। आज का पूँजीवादी समाज महिलाओं के शोषण के नये-नये माध्यम उभार रहे है। अब इन शोषण से अनुसूचित जाति की महिलाओं को मुक्त करने के लिए नये माध्यम तलाशने होंगे।

परिकल्पना का परिक्षण-

1. पहली परिकल्पना है कि अनुसूचित जाति की महिलाओं के सशक्तिकरण में संवैधानिक प्रावधानों ने सकारात्मक भूमिका अदा की है। सर्वाधिक 62.67 प्रतिशत उत्तरदात्रियों को ने सशक्तिकरण में संवैधानिक प्रावधानों में सकारात्मक भूमिका अदा की है को स्वीकार नहीं किया है, तथा 32. 67 प्रतिशत उत्तरदात्रियों ने सशक्तिकरण में संवैधानिक प्रावधानों ने सकारात्मक भूमिका अदा की है को सन्तोषजनक मानती है।

   अत: अनुसूचित जाति की महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए संवैधानिक प्रावधानों व अधिकारों द्वारा प्रयास केवल कागजी तौर पर किया गया है एवं आज भी अनुसूचित जाति की महिलाएं पूर्णरूप से लाभान्वित नहीं हुई है अत: संवैधानिक प्रावधानों को और भी सख्ती से लागू किये जाने की आवश्यकता है।

2. दूसरी परिकल्पना यह है कि अनुसूचित जाति की महिलाओं के सामाजिक स्थिति में सकारात्मक बदलाव हुआ है। अधिकांश उत्तरदात्रियों ने (76. 67 प्रतिशत) यह स्वीकार किया कि उनकी सामाजिक स्थिति के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

   अत: अनुसूचित जाति की महिलाओं के सामाजिक स्वरूप में नाममात्र का ही परिवर्तन हुआ है। जिसके लिए सरकार को इनके ऊपर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। जिससे इन्हें समाज की मुख्य धारा से जोड़ा जा सकें एवं इनका विकास हो सकें।

3. तीसरी परिकल्पना यह है कि अनुसूचित जाति की महिलाओं की आर्थिक स्थिति अपेक्षाकृत समुन्नत हुई है। अधिकांशत: (86.67 प्रतिशत) उत्तरदात्रियों ने यह स्वीकार किया है कि उनकी आर्थिक स्थिति के स्वरूप में कोई सकारात्मक परिवर्तन नहीं हुआ है।

   अत: अनुसूचित जाति की महिलाओं की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनिय एवं पिछड़ा हुआ है। जिसके लिए सरकार को इनके आर्थिक विकास के ऊपर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। जिससे ये आर्थिक रूप से सशक्त हो सकें एवं परिवार, समाज व राष्ट्र निमार्ण में जनसंख्या का आधा हिस्सा होने के नाते सहयोग कर सकें।

4. चौथी परीकल्पना यह है कि अनुसूचित जाति की महिलाओं की राजनीतिक स्थिति में सकारात्मक बदलाव हुआ है। अधिकांशत: (84.00 प्रतिशत) उत्तरदात्रियों ने यह स्वीकार किया है कि उनकी राजनीतिक स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

   अत: अनुसूचित जाति की महिलाओं की राजनीतिक स्वरूप में नाममात्र का ही परिवर्तन हुआ है। जिसके लिए सरकार को इनके राजनीतिक स्थिति पर विशेष ध्यान देने एवं प्रोत्साहित करने की विशेष जरूरत है। जससे इन्हें समाज की मुख्य धारा से जोड़ा जा सकें एवं इनका सर्वांगिण विकास हो सकें।

5. पांचवी परिकल्पना है कि अनुसूचित जाति की महिलाओं के साथ समाज में भेदभाव अपेक्षाकृत पहले से कम हुआ है। अधिकांश उत्तरदात्रियां (68. 67 प्रतिशत) ने यह स्वीकार किया है कि पारिवारिक तौर पर आज भी लड़का-लड़की में भेदभाव किया जाता है तथा अधिकांश (83.33 प्रतिशत) उत्तरदात्रियों ने यह स्वीकार किया कि उनके साथ समाज के उच्च जाति के लोगों द्वारा आज भी भेदभाव किया जाता है।

   अत: अनुसूचित जाति की महिलाओं के साथ पारिवारिक एवं सामाजिक तौर पर भेदभाव आज भी किया जाता है।

संदर्भ ग्रंथ

- कोठारी, रजनी 1970. कॉस्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स. नई दिल्लीकोर,
- धनंजय 1974. महात्मा ज्योतिराव फूले फादर ऑफ इंडियन सोशल रिवोल्युशन. बोम्बे: पोपुलर प्रकाशन.
- गुप्ता, एम.एल. तथा शर्मा डी.डी. 2007. समाज कल्याण एवं सामाजिक विधान. आगरा: साहित्य
- भवन पब्लिकेशन्स
- भगत 1986. ए गलीमपस ऑफ द शेडयूल्ड कास्ट एण्ड देयर सोशियो इकॉनामी. नई दिल्ली: ओमसन पब्लिकेशन

महिलाओं के सहदायिकी संपत्ति में अधिकार: एक विधिक अवलोकन

मरयम इशरत बेग

सह आचार्य, मणिपाल युनिवर्सिटी, जयपुर

संपत्ति एवं साम्पत्तिक अधिकार सदैव से ही मुनष्य के लिये स्वाभाविक आवश्यकता एवं आकर्षण रहा है। संपत्ति का अधिकार व्यक्ति को स्वतंत्रता एवं विकास की ओर प्रगतिषील बनाता है। यह साम्पत्तिक अधिकार एवं स्वत्व कोई भी व्यक्ति या तो स्वयं अर्जित करता है या विरासत में प्राप्त करता है। भारत में हिन्दु उत्तराधिकार अधिनियम 1956 इस संबंद्ध में उत्तराधिकार से संबंधित विधि का नियमन करता है। इस अधिनियम के पारित होने के पर्वू विभिन्न शास्त्रांगत एवं प्रथागत के माध्यम से, विधियों से उत्तराधिकार निर्धारित किया जाता था, जो कि जाति, क्षेत्र एवं धर्म तथा अन्य कई कारकों पर निर्भर होता था। उदाहरणस्वरूप दायभाग बंगाल व समीपवर्ती स्थानों में मयूख बम्बई, कोंकण और गुजरात में एवं मिताक्षरा अधिकतर भारतवर्ष में।

प्राचीन समय से ही एक स्त्री के सांपत्तिक अधिकार को महत्वपूर्ण नहीं माना गया और ना ही उसके इस अधिकार को मान्यता दी गई। विशेषत: पैतृक संपत्ति में सहादायिक रूप में पुत्र के समकक्ष स्थान नहीं दिया गया। हिन्दु स्त्री के सहायिकी में अधिकार को समझने के लिये सर्वप्रथम हिन्दु संयुक्त परिवार, सहदायिकी और संपत्ति का न्यागमन की पद्धति की मूल संरचना को समझना अत्यंत आवश्यक है।

शास्त्रीय हिन्दु विधि में दो मुख्यत: शाखा रही है: -

1. दायभाग 2. मिताक्षरा

1. **दायभाग:**- इस शाखा का विस्तार मुख्यत: बंगाल एवं उसके समीपवर्ती स्थानों पर था। इस शाखा में यद्यपी संयुक्त परिवार एव संयुक्त संपत्ति की अवधारणा थी। लेकिन न तो पुत्र को न ही पुत्री को जन्म से या उत्तरजीविता के आधार पर संपत्ति में कोई अधिकार था। सपंत्ति का न्यागमन उत्तराधि कार से ही होता है चाहे संपत्ति पैतृक हो या सवर्जित या विभाजित हो या अविभाजित और यह उत्तराधिकार पिता की मृत्युपरांत ही प्राप्त होता है। पुत्री का भी पुत्र की ही भांति उत्तराधिकार में समान अंश का दिया जाना।
2. **मिताक्षरा शाखा:**- इस शाखा का प्रवर्तन अधिकतर भारतवर्ष में था और सहदायिकी इस शाखा की प्रमुख विशेषता थी।

सहदायिकी संपत्ति अर्थ: एक हिन्दु संयुक्त परिवार में सभी सदस्य एक सामान्य पूर्वज के वंशज होते है, जिसमें एक पुरूष प्रमुख, उसके वंशज, उनकी पत्नियां और अविवाहित बहन एव पुत्री सम्मिलित होती है। सहदायिकी इस संयुक्त परिवार के अन्तर्गत एक छोटी इकाई है, जिसमें एक पुरूष एवं उसके तीन वंशज पुत्र, पौत्र, एवं प्रपौत्र सम्मिलित होते हैं। सहदायिकी एवं सहदायिक संपत्ति की विशेषता - स्वत्व हित और कब्जे का संयुक्त होना है, जो कि सहदायिकी के सदस्य समान रूप से रखते हैं। मिताक्षरा हिन्दु विधि पद्धती में, जो कि भारत के अधिकांश भागों में प्रचलित है, एक सहदायिकी के सदस्य केवल तीन डिग्री तक पुरूष वंशज ही हो सकते हैं अर्थात एक सामान्य पूर्वज एवं उसके निम्नतर तीन पुरूष वंशज मिलकर एक सहदायिकी का निर्माण करते है।

इस विधि के अनुसार मात्र पुरूष ही सहदायिक हो सकते हैं। हिन्दु उत्तराधिकार अधिनियम लागू हुआ, धारा 6 में की गई व्यवस्था के अनुसार अगर किसी हिन्दु पुरूष की मृत्यु, इस अधिनियम के लागू होने के बाद होती है तो उसकी संपत्ति उत्तरजीवित सहादयिकियां को जाएगी, न कि इस अधिनियम के अनुसार प्रदत्त होंगी। एक परंतुक के द्वारा यह व्यवस्था भी डाली गई कि ''यदि मृतक के वर्ग प्रथम की स्त्री वंशज (पुत्री, विधवा, या माँ) जीवित हैं या कोई पुरूष वंषज जो कि उपरोक्त स्त्री वंषज के माध्यम से संपत्ति में हित रखता है, तो मृतक का सांपत्तिक हित वसीयत के द्वारा या निवर्सियती के उत्तराधिकार विधि के अनुरूप में न्यागत होगा न कि उत्तरजीविता के आधार पर।

उत्तरजीविता के आधार पर सहदायिकी में सदस्यों का अंश घटता बढ़ता रहता है। यदि किसी पुरूष वंशज का जन्म निर्धारित तीन डिग्री के मध्य होता है, तो पूर्व में जीवित सहदायिकों का अंश घट जाता है और किसी वर्तमान सहदायिक की मृत्यु होने पर अंशा बढ़ जाता है। सहदायिकी एक अप्रतिबंध दाय है। (Unobstructed Heritage) अर्थात इस संपत्ति में अंशधारी होने के लिये मात्र निर्धारित डिग्री में जन्म लेना ही आवश्यक है।

हिन्दु स्त्री का सहदायिकी संपत्ति में अधिकार सदैव से ही विवादित विषय रहा है। हिन्दु स्त्री के साम्पत्तिक अधिकारों को सुरक्षित करने का प्रयास हिन्दु स्त्री संपत्ति अधिनियम1937 के द्वारा भी किया गया था, इस अधिनियम ने एक हिन्दु विधवा को उसके मृत पति के स्थान पर संयुक्त परिवार में स्थान दिया और उसके अंश को विधवा स्त्री में न्यायगत होने की व्यवस्था निर्धारित की अर्थात् एक हिन्दु विधवा को उसके मृतक पति के साम्पत्तिक अंश को प्राप्त करने का अधिकारी बना दिया गया। किन्तु इस प्रदत्त अधिकार के द्वारा भी उसे सहदायिक का दर्जा नहीं दिया गया था। ''एक हिन्दु विधवा मात्र अपने पति के हित की अधिकारिणी है, किन्तु उसे पति के समान अधिकार सहदायिक के रूप में प्राप्त नहीं होंगे। वह सहदायिक हित तो रखती है लेकिन सहदायिक नहीं है।''[1] अत: उसके हित सीमित हित बनाकर इस अधिनियम के द्वारा जीवनहित प्रदान किया गया। अर्थात् उस स्त्री की मृत्यु के पश्चात् संपत्ति पुन: पति

के वंशजों को प्रवर्तित (Revert) हो जाएगी।मिताक्षरा शाखा में यह नितांत स्पष्ट है कि एक स्त्री सहदायिक नहीं हो सकती है।[2] यद्यपी एक पत्नी के रूप में वह पति की संपत्ति से भरणपोषण की हकदार है, किन्तु पति के साथ सहदायिक नहीं है।[3] ना ही एक माता पुत्रों के साथ सहदायिक है।[4]

हिन्दु उत्तराधिकार अधिनियम 1956 के अधिनियम ने सर्वप्रथम पैतृक संपत्तियों के उत्तराधिकार संबंधित विधि को व्यवस्थित एवं अधिनियमित करने का कार्य किया। किन्तु इस अधिनियम ने भी एक महिला को सहदायिकी का सदस्य नहीं मानकर उसे पैतृक संपत्ति में सहदायिक के रूप में स्वीकार नहीं किया।

हिन्दु उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 6 ने हिन्दु स्त्री के सहादायिकी संपत्ति में अधिकार को मान्यता तो दी, किन्तु उसे एक पुरूष वंशज के समान सहादायिक नहीं माना गया, न ही उसे सहादायिकी संपत्ति में एक पुरूष वंशज के समान उसका अंश प्राधिकृत किया गया। पैतृक संपत्ति में सहादायिक के रूप में पुरूष वंशज को ही संहिताबद्ध विधि में स्थान दिया गया एवं लिंग के आधार पर महिलाओं के समानता के अधिकार को इस अधिनियम मे महत्व नहीं दिया गया।

सामान्यत: हिन्दु उत्तराधिकार अधिनियम की उपरोक्त धारा 6 को महिलाओं के प्रति भेदभावपूर्ण मानते हुए, इसे लैंगिक असामानता एवं स्त्रीयों के प्रति भेदभाव पूर्ण विधि मानकर इसमें समय समय पर संशोधन की मांग की जाती रही है। अत: भारतीय संविधान अनुच्छेद 14 के परिप्रेक्ष्य में 9 सितंबर 2005 में हिन्दु उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम 2005 के द्वारा उपरोक्त धारा 6 संशोधित कर दिया गया। 174वें विधि आयोग की रिपोर्ट में भी हिंदू उत्तराधिकार कानून में इस सुधार की सिफारिश की गई थी। 2005 के संशोधन से पहले भी आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और तमिलनाडु ने कानून में यह बदलाव किया थ। इस संशोधन अधिनियम 2005 के उद्देश्य एवं कारण में बताया गया है कि ''मिताक्षरा सहदायिकी संपत्ति को महिलाओं को इसमें शामिल किये बिना बनाये रखने का मतलब यह है कि महिलाएं पैतृक संपत्ति में अपने पुरूष समकक्षों के रूप में प्राप्त नहीं कर सकती हैं। एक पुत्री को सहदायिकी स्वामित्व में भाग लेने से बाहर करने के कानून ने न केवल लिंग के आधार पर उनके साथ भेदभाव में योगदान दिया है, बल्कि इससे अत्याचार बढ़ा है और संविधान द्वारा गारंटीकृत समानता के उसके मौलिक अधिकार की अवहेलना हुई है।

पैतृक संपत्ति में लैंगिक समानता की आवश्यकता को पूर्ण करते हुए संशोधित धारा 6 में यह प्रावधान किया गया कि ..... इस (संशोधन अधिनियम) 2055 के प्रारंभ से ही मिताक्षरा विधि द्वारा शासित किसी संयुक्त हिन्दु कुटुम्ब में किसी सहादायिक की पुत्री –

(क) जन्म से ही अपने स्वयं के अधिकार से उसी रीति से सहदायिक बन जाएगी, जैसे पुत्र होता है,

(ख) सहादायिकी संपत्ति में उसे वही अधिकार प्राप्त होंगे, जो उसे तब प्राप्त हुए होते, जब वह पुत्र होती

(ग) दायित्व

इस संशोधन अधिनियम ने हिन्दु सहायिकी की पूर्व व्यवस्था में निम्नलिखित परिवर्तन किये: –

1. एक सहदायिकी की पुत्री, उसी तरह से सहदायिक होगी, जैसे की एक पुत्र
2. किसी सहदायिक की मृत्यु होने पुत्री को भी पुत्र की भांति सदायिकी संपत्ति में अंश मिलेगा।
3. हिन्दु अविभाजित परिवार में, पुत्री को भी विभाजन की मांग करने का अधिकार दिया गया।
4. चूंकि प्रत्येक सहदायिक को विभाजन की मांग करने का अधिकार है अत: इस धारा की शाब्दिक व्याख्या कर पूर्व में हुए विभाजनों को पुन: खुलवा सकती थी, अत: इस समस्या के समाधान हेतु इस अधिनियम के द्वारा यह व्यवस्था की गई कि यह धारा ऐसे विभाजन पर लागू नहीं होगी जो कि 20 दिसम्बर 2004 से पूर्व किये गये हों।

यद्यपी इस संसोधन अधिनियम ने महिलाओं को सहायिकी अधिकार प्रदान किये, किन्तु इस संशोधन ने कई अस्पष्टताओं को जन्म दिया। इस संशोधन की प्रयोज्यता की माननीय उच्चतम न्यायालय की विभिन्न पीठों द्वारा अलग-अलग व्याख्या की गई थी और परस्पर विरोधी निर्णय दिए गए थे।

प्रकाश एवं अन्य बनाम फूलवती एवं अन्य5: – के निर्णय में माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा कि ''संशोधन अधिनियम 2005 के अन्तर्गत सहदायिकी अधिकार, 9 सितम्बर 2005 को जीवित सहायक की जीवित पुत्री को ही मिलेगा। अर्थात् यदि सहदायिक की मृत्यु 9 सितम्बर 2005 के पूर्व ही हो गई है, तो उसकी सहदायिक संपत्ति में कोई अधिकार नहीं होगा। इसी प्रकार न्यायालय ने यह व्यवस्था दी कि इस अधिनियम के लागू होने के पूर्व सहदायिक की मृत्यु होने पर, उत्तरजीविता का नियम लागू होगा।

दन्ममा बनाम अमर सिंह के निर्णय[6]:- में उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा कि धारा 6 भूतलक्ष्मी (Retrospective) प्रभाव के साथ लागू होगी और एक पुत्री जन्म से ही सहदायिक होगी। यह निर्णय फूलवती के निर्णय से बिल्कुल विपरीत था और इसने असमंजसता की स्थिति को उत्पन्न कर दिया।

अन्तत: विनीता शर्मा बनाम राकेश शर्मा 7 के निर्णय ने उपरोक्त परस्पर विरोधी निर्णयों से उपजी अस्पष्टता को दूर कर धारा 6 की उद्देश्य परक व्याख्या की। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि पुत्र की

तरह पुत्री को सहदायिक संपत्ति में वारिस होने का जन्मसिद्ध अधिकार है उच्चतम न्यायालय ने निर्णय में कहा कि बेटों की तरह बेटियों को संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति का वारिस होने का समान जन्मसिद्ध अधिकार है। अदालत ने फैसला किया कि संशोधित हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम जो बेटियों को पैतृक संपत्ति के समान अधिकार देता है का पूर्वव्यापी प्रभाव होगा। एक बेटी हमेशा एक प्यारी बेटी बनी रहती है। एक बेटा एक बेटा है जब तक कि उसे एक पत्नी नहीं मिलती है। एक बेटी अपने पूरे जीवन में एक बेटी है। न्यायमूर्ति अरूण मिश्रा जो तीन न्यायाधीशों की पीठ का नेतृत्व कर रहे हैं ने फैसले को लिखा। फैसले में वरिष्ठ अधिवक्ता बिश्वजीत भट्टाचार्य द्वारा दिए गए प्रमुख तर्कों से सहमति व्यक्त की गई कि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 की प्रतिस्थापित धारा 6 संशोधन से पहले या बाद में पैदा हुई पुत्री को पुत्र के समान ही सहदायिक का दर्जा देती है। सहदायिक एक ऐसा व्यक्ति है जिसके पास माता-पिता की संपत्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने 122 पेज के निर्णय में कई अस्पष्टताओं को दूर किया।

1. माननीय न्यायालय ने स्पष्ट किया कि सहादयिकी के संबद्ध में महिलाएं पुरातन काल से अन्याय को सह रही है और अब उन्हें यह अधिकार – भविष्य लक्ष्मी या भूतलक्ष्मी प्रवर्तन के प्रश्न के बिना दे दिया जाना चाहिये।
2. धारा 6 (।) (क) एक सहदायिक के जन्म के अधिकार को मान्यता देती है जो कि उसे अबाधित पैतृक विरासत में मिताक्षरा विधि के अन्तर्गत प्राप्त है। चूंकि सहदायिक का जन्म से पैतृक सहदायिक सम्पत्ति में अधिकार है। अत: पिता का इस संशोधन अधिनियम के लागू होने के दिन जीवित होना आवश्यक नहीं है। फूलवती के बाद में दिये निर्णय को पलट दिया।

   अबाधित पैतृक विरासत का अर्थ – उस सम्पत्ति से होता है, जिसके प्राप्त होने में कोई बाधा न हो। एक सहदायिक मात्र जन्म लेने से ही न केवल सहदायिकी बनता है, अपितु उस सम्पत्ति में भी अपना अंश रखता है। बिना किसी अवरोध के इसीलिये सहादायिकी संपत्ति अबाधित पैतृक विरासत है।
3. माननीय उच्चतम न्यायालय ने संशोधित धारा 6 को पूर्वव्यापी प्रभाव ;त्मजतवेचमबजपअम ळिमबजद्ध के साथ लागू किया। पूर्वव्यापी प्रभाव का अर्थ स्पष्ट करते हुए न्यायालय ने कहा कि यह अधिनियम महिला को उसके जन्म के आधार पर उत्तराधिकारी बनने योग्य बनाता है। अर्थात् जन्म यद्यपी इस संशोधन अधिनियम के पारित होने के पूर्व हुआ है। उसे इसी आधार पर इस अधिनियम का लाभ दिया जाना चाहिये।
4. एक पुत्री को उसी प्रकार से सहदायिकी संपत्ति में अधिकार है जैसे कि पुत्र का, भले ही पिता की मृत्यु हिन्दु उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम 2005 से पूर्व हो गई हो।
5. यह भी निर्धारित किया गया कि इस संशोधन अधिनियम के प्रावधान 9 सितम्बर 2005 को जीवित सहदायिक एवं उनकी जीवित पुत्रियों पर भी लागू होते हैं, चाहे उनकी जन्मतिथि कुछ भी हो।

   अर्थ स्पष्टतया उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जहां भविष्यलक्ष्मी प्रभाव में अधिनियम अपने प्रवर्तन की तिथि से ही प्रारंभ होता तथा भूतलक्षी विधि प्रवर्तन तिथि के पूर्व से ही लागू हो जाती है और कारणवश वर्तमान विधि में प्राप्त कुछ अधिकारों को या तो न्यून कर देती है या क्षीण कर देती है। इसके विपरीत पूर्वव्यापी विधि भविष्य में काम करती है। यद्यपी भविष्यलक्षी है किन्तु इसका प्रवर्तन किसी भूतकालीन घटना या स्थिती पर निर्भर होता है। यह घटना पुत्री का सहदायिकी में जन्म लेना है।
6. उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि 2005 के संशोधन के पश्चात सहदायिकी संपत्ति मे हित जन्मत: या दत्तक अनुमत डिग्रीयों के अन्तर्गत ही प्राप्त होंगे अन्यथा नहीं।
7. विधिक कल्पना के प्रभाव को अस्वीकृति देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने सपष्ट किया कि धारा 6 के परंतुक में वर्णित विधिक कल्पनीय विभाजन का उद्येश्य मात्र मृतक सहदायिक के अंश को निर्धारित करना है। विभाजन के लिये कोई वाद दायर करना या किसी प्रारंभिक डिग्री का पारित हो जाना वास्तविक सहदायिकी का विभाजन नहीं माना जाएगा। और अन्तिम डिग्री मिलने तक जो भी विधि मे पिरवर्तन हुए हैं या संशोधन हुए हैं अन्तिम डिक्री उनके अध्यधीन होगी।
8. सहायिकी में पुत्रीयों के हिस्से को सुरक्षित करने के उद्देश्य से उच्चतक न्यायालय ने कहा कि धारा 6 (5) में जो स्पष्टीकरण दिया गया है, उसके अन्तर्गत मौखिक विभाजन की याचिका को त्वरित रूप से प्रभावी नहीं माना जाना चाहिये। इस प्रकार का मौखिक विभाजन या तो किसी पंजीकृत प्रमाणन या न्यायालय की विभाजन डिक्री द्वारा ही प्राप्त किया जाना होगा। इसी के साथ विभाज्य अंशों का एवं विभाज्य आय-व्यय का ब्यौरा दिया जाना भी आवश्यक है यदि मौखिक रूप से कोई विभाजन हुआ था।

अन्तत: निष्कर्ष के रूप में यह संक्षेपित किया जा सकता है कि विनीता शर्मा बनाम राकेश शर्मा के निर्णय ने संशोधित धारा 6 (संशोधन अधिनियम 2005) में प्रदत्त पुत्री के सहदायिकी के अधिकार को पूर्णता प्रदान करते हुए, इस संबंध में पूर्व के निर्णयों से पनपी असमंजसता एवं अस्पष्टता का समाधान किया।

उपरोक्त संशोधन अधिनियम भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 में वर्णित समानता के अधिकार को सुरक्षित करता है। नि:संदेह इस निर्णय ने लैंगिक न्याय एवं लैंगिक समानता का मार्ग प्रशस्त किया हैं।

संदर्भ

1. CED V. Alladi kuppuswamy (1977) 3SCC385
2. CIT V. Mills, AIR 1966 SC 240
3. Punna Bibee V. Radha Kissen AIR 1904 31 Cal.476
4. hira Singh V. Mangla, AIR1928 13 Pat.359
5. Prakash & Oth. V. Phulvati & Oth. (2015) SCC Online SC114
6. Danamma V. amar Singh (2018) 3 SCC 343
7. Vineta Sharma V. Rakesh Sharma (2020) SCC Online SC 641

'मैत्रेयी पुष्पा' के कथा-साहित्य में वर्णित स्त्रियों की विविध समस्यायें

डॉ० माधुरी यादव

एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी), ए.पी.सेन मेमोरियल गर्ल्स कालेज, लखनऊ

मैत्रेयी पुष्पा उपन्यास-साहित्य में उदीयमान होते हुए साहित्य के क्षितिज पर ध्रुव तारे की भांति जगमगाई। मैत्रेयी के लेखनी के आगे अन्य लेखकों की लेखनीयों की चमक धूमिल पड़ गई। वे साठोत्तरी हिन्दी की सशक्त महिला उपन्यासकार के रूप में उभरी। उनका लेखन निश्चित ही बुन्देलखण्ड के लिए एक अमिट दस्तावेज साबित हुआ है। मैत्रेयी के लेखन की मूलसंरचना ग्रामीण परिवेश ही है। उनका जन्म अलीगढ़ जिले के सिकुरा गाँव में एक मध्यमवर्गीय साधारण परिवार में हुआ था। उनकी कृतियों में ग्रामीण स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार और शोषण के बहुत से दृश्य सामने आते हैं।

स्त्री सम्पूर्ण मानवीय सौन्दर्य एवं चेतना की सर्वोतम रचना है। साहित्य की सभी विधाओं में स्त्री हृदय की अनुरक्ति एवं जीवन प्रदायिनी उष्मा रही है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य एवं सर्जन में स्त्री की महत्वपूर्ण भूमिका को चित्रित किया है-

''पुरूष स्वभावत: नि:संग व तटस्थ होता है, नारी ही उसमें आसक्ति उत्पन्न कर उसे नव निर्माण के प्रति उन्मुख करती है। पुरूष अपनी प्रकृति के कारण सदैव द्वन्द्वरहित हो सकता है लेकिन नारी अतिशय भावुकता के कारण सदैव द्वन्द्वोमुखी रहती है, इसलिए पुरूष मुक्त है और नारी बद्ध।''

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर हम दृष्टि डालते हैं तो यह सत्य प्रतीत होता है कि जिस काल में स्त्री को समान समानता और सम्मान मिला वह काल उन्नति की उँचाइयों पर पहुँच गया तथा जिस काल में स्त्री का शोषण व उसके साथ दुर्व्यवहार हुआ वह काल अवनति के गर्त में समा गया। स्त्री से ही सृष्टि की रचना होती है और जब सृजनकर्ता ही शोषित हो तो सृष्टि का विकास कैसे संभव होगा। स्वामी विवेकानन्द जी ने 1893 ई0 में शिकागो विश्व धर्म सम्मेलन में कहा था-''किसी भी राष्ट्र की प्रगति का सर्वोततम थर्मामीटर वहां की महिलाओं के साथ होने वाला व्यवहार है जब नारी अपने ऊपर थोपी जाने वाली बेडिघ्यों एवं कडिघ्यों को तोड़ने लगेगी तो विश्व की कोई शक्ति उसे रोक नहीं सकेगी।''

महिला कथा लेखिकाओं में मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी रचनाओं की ताजगी और उष्मा से सहसा हिन्दी-साहित्य जगत का ध्यान आकृष्ट किया है। मैत्रेयी जी ने ग्रामीण अंचल को ध्यान में रखकर ही अपने साहित्य को नवीन स्फूर्ति व नई ऊर्जा दी है। आपके अब तक बारह उपन्यास प्रकाशित हुए हैं- स्मृतिदंश (1990ई0) बेतवा बहती रही (1993ई0), इदन्नमम (1994 ई0), चाक (997ई0), झूलानट (1999ई0), अल्मा कबूतरी (2000ई0), अगन पाखी (2001ई0), विजन (2002ई0), कर्ह इसरी फाग (2004ई0), त्रियाहठ (2005ई0), गुनाह-बेगुनाह (2011ई0), फरिश्ते निकले (2014ई0) इत्यादि।

अल्मा कबूतरी तथा चाक जैसे उपन्यासों के माध्यम से हिन्दी साहित्य में अपने हिस्से की जमीन तलाशने वाली मैत्रेयी पुष्पा जी ने निम्नलिखित कहानी संग्रह को लिखकर अपनी ख्याति अर्जित की है-

चिन्हार, (1998ई0), ललमनियां तथा अन्य कहानियां (1996 ई0), गोमा हँसती है (1998ई0), पियरी का सपना, प्रतिनिधि कहानियाँ, समग्र कहानियाँ इत्यादि कहानी संग्रह को प्रकाशित कराया। जिससे मैत्रेयी पुष्पा जी के अद्‌भुत कथा-सृजन की क्षमता की झलक मिलती है।

मैत्रेयी के कथा साहित्य में समकालीन जीवन यथार्थ के विविध परिदृश्य उभरते हैं और हम संक्रमण-कालीन समाज के अर्न्तविरोधों का साक्षात्कार करते हैं। मूलत: आपने अपना ध्यान सदियों के गहन अंधेरे को चीरकर रोशनी की तलाश में आगे बढ़ी हुई स्त्रियों के जीवन पर ही केन्द्रित किया है। चिन्हार की 'सरज' सेंध की 'कलावती', गोमा हँसती है कि 'गोमती' ललमनियां की 'मौहरों', सिस्टर की 'डरोथी' अब फूल नहीं खिलते की 'झरना' फैसला की 'बसुमती' ये सभी नायिकाएं हमें अपनी ओर आकृष्ट तथा प्रभावित करती हैं। कोई अदम्य साहस जिजीविषा और विवेक से तो कोई अपनी तेजस्विता से तो कोई अपनी पीड़ा को भीतर ही भीतर पी जाने वाली अपनी सहनशीलता से तो कोई अपनी सुलभ तिरक्षी मुस्कान से।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समस्त स्त्रियों की कमजोरियों, परतंत्रता तथा असहाय स्थिति को बड़ी ही ईमानदारी से हमारे बीच लाने का प्रयास किया है। मैत्रेयी में सामाजिकता के प्रति गहरा आक्रोश है। राजनीतिक छदम की परतों को उधेड़कर सच्चाई को उजागर करने का प्रयत्न किया है। किन्तु उनकी वास्तविक रचना शक्ति स्त्रियों की पहचान के लिए छोड़े गये उनके अतिशय संघर्ष में ही लक्षित है।

मैत्रेयी पुष्पा का प्रथम उपन्यास स्मृतिदंश है। लेकिन इनके दूसरे उपन्यास 'बेतवा बहती रही' से हिन्दी जगत में पहचान मिली। जिसमें बहुत ही कम पढ़ी-लिखी स्त्री 'उर्वशी' की संघर्ष कथा है। उर्वशी का ब्याह 'सर्वदमन' से हो जाता है। किन्तु कुछ साल बाद वह विधवा हो जाती है। उर्वशी का भाई पैसों का लोभी है वह दस बीघा जमीन लेकर उसकी शादी नर-राक्षस 'बरजोर सिंह से करा देता है। तमाम अत्याचारों को सहती व झेलती हुई उर्वशी अपना मुंह तब खोलती है जब उसका पति अपने बड़े बेटे की मृत्यु के एक साल बाद उसके दूसरे बेटे 'उदय की शादी उसकी मर्जी के बिना दहेज लेकर करना चाहते हैं। उर्वशी कहती है-''उदय की शादी के लिए जो लोग आए हैं, पइसा वाले हैं अपनी बिटिया की शादी के लिए आसानी से उदय जैसा वर खोज लेंगे, लेकिन

हमारे विजय की बहू कहां जायेगी वह? कौन ब्वाहने आयेगा उसे ? तुमने कबहूँ सोंची ये बात। ''

उर्वशी के स्त्री होने की सजा उसे तब मिलती है जब वह विजय की बहू का विवाह उदय के साथ सम्पन्न करवा देती है। तब बरजोर सिंह उर्वशी के डॉ0 से मिलकर धीमी गति से असर करने वाला जहर दिलवा देता है और उर्वशी की जीवनलीला समाप्त हो जाती है। सदियों से गाय की तरह जड़ता खूँटे से बंधी असहाय नारी अब पुरूष वर्चस्व को चुनौती देने के लिए कदम बढ़ा चुकी है।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास मे मैत्रेयी कहती है कि स्त्री के आंसू को स्त्री ही पहचान सकती है। उसकी भावनाएं उसके दुख तकलीफ से वाकिफ हो सकती है। जब 'राणा' अल्मा को छोड़कर 'कदम बाई के पास आ जाता है तो वह इतनी दूर रहकर भी अल्मा के दु:ख को समझने की कोशिश करती है-''मर्द किसी औरत के रोने का मतलब नहीं समझ सकते, उनके रहते रोना कुत्ते के रोटी उठा ले जाने जैसा होता है, तभी तो राणा उसे छोड़ आया है, वह भी तो मर्द ही है मेरा बेटा है तो क्या हुआ।''

अल्मा कबूतरी जाति की कथा ही नहीं है, वह समकालीन राजनीति की दिशाहीनता, अपराधीकरण, सत्ता-संघर्ष, बेरोजगारी तथा जीवन मूल्यों के घोर पतन की यथार्थ गाथा है।

झूला नट अपेक्षाकृत छोटा उपन्यास ही है। जिसमें स्त्री के शोषण, विवशता तथा परित्यक्ता स्त्री के संघर्ष की कथा है। शीलो के पति उसको छोड़कर शहर नौकरी करने चला जाता है, वहीं दूसरी पत्नी रख लेता है। शीलो काली तथा अनपढ़ स्त्री हैं वह उसकी सास की सहमति से उसके दूसरे बेटे बालकिशन जो एक किसान है, के साथ रहने लगती है। लेकिन बाद में जब वह अपनी बछिया कराने से मना कर देती है तो गाँव भर के बीच में उसे अग्नि परीक्षा जैसी तमाम यातनाओं को सहना पड़ता है। पुरूष द्वारा स्त्रियों पर हाथ उठाया जाना सदियों से चला आ रहा है। लोग देख रहें है तब भी किसी को छुड़ाने का अधिकार नहीं है। झूलानट में एक नारी शोषण का एक दृश्य-''सुमिरन बहू को पीट रहा था। अम्मा गली से जा रही थी, बहू मिमियाती बकरी सी छूट भागी पति के हाथों से और अम्मा से लिपट गई-बचा लो काकी। सुमिरन दोनों हाथ भांजता हुआ आ गया गली में अम्मा को ऐसे देखा ज्यों चला जायेगा। उमर से बड़ी अम्मा से कहे क्या? बस इतना बोला-हमारे बीच में न पड़ो काकी। मैं कहता हूँ छोड़ दो इस रण्डी को। सुमिरन का गुस्सा फुफकारते नाग जैसे अम्मा की बांहों से बहू को खींच लिया चल साली।

मैत्रेयी अपनी पुस्तक 'कस्तूरी कुण्डल बसै' के बारे में कहती है कि '' सामर्थ्य औरत और मर्द में अलग-अलग नही होती जो जुटा ले उसी की हो जाती है।'' इसकी नायिका कस्तूरी है जिसका भाई जमींदार का लगान नहीं अदा कर पाता तब उसे हीरालाल के हाथों 800 सिक्कों में बेंच दिया जाता है। जहां उसे इस प्रकार पुकारा जाता है- ''ओ 800 की छोरी तू मुंह नहीं दिखाती तेरी यह मजाल। हम तो सोच रहे थे नई छोरी की तरह शरमा रही है, पर तू अजय रही है, तेरे भैया ने खनखनाते चांदी के मलदार वसूले हैं, मुफ्त में नहीं आयी जो नखरे पसार रही है।''

मैत्रेयी पुष्पा अपने उपन्यासों के समस्त स्त्री पात्रों के माध्यम से वर्षों से चली आ रही सामाजिक और सांस्कृतिक रूढिघ्यों एवं परम्पराओं को तोड़कर स्त्री जागरण का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है। अल्मा नायिका कबूतरी जनजाति के कबीले में जाकर राजनीतिक रास्ते के द्वारा उच्च पद को प्राप्त करती है तथा अपनी जनजाति की सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूढ़ियों को तोड़कर उसमें नये विचारों एवं उसके स्तर को सुधारती है। अपने बप्पा की हत्या का बदला लेती है। मैत्रेयी के उपन्यासों में आये सभी स्त्री पात्र समाज के प्रत्येक वर्ग से संघर्ष करते हैं एवं अपने विचारो को नवीनता प्रदान करते हुए समाज में चेतना जागृत करने की कोशिश में प्रयासरत हैं

सन्दर्भ-सूची:-

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी-बाणभट्ट की आत्मकथा, पृष्ठ-110

(2) अखण्ड ज्योति दिसम्बर 2002, पृष्ठ-23

(3) मैत्रेयी पुष्पा, बेतवा बहती रही, पृष्ठ सं0 62 किताबहार प्रकाशन, नई दिल्ली सन् 2006

(4) मैत्रेयी पुष्पा-अल्मा कबूतरी, पृष्ठ सं0-244 से, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली सन् 2000-2001

(5) मैत्रेयी पुष्पा-झूलानट, पृष्ठ सं0-80, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली सन् 1999

(6) मैत्रेयी पुष्पा-कस्तूरी कुण्डल बसै-पृष्ठ सं0 37, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली सन्-2002।

खुली श्रेणी की महिलाओं की शिक्षा में भागीदारी का विश्लेषण- धुले (महाराष्ट्र) जनपद एक भौगोलिक अध्ययन

संजय बी० घोडसे

सहायक प्राध्यापक, भूगोल विभाग, श्री. शि. वि. प्र. संस्था का
भाऊसाहेब ना. स. पाटील साहित्य एवं मु. फि. मु. अ. वाणिज्य महाविद्यालय, धुले (महाराष्ट्र)

Abstract

देश के प्रगती में पुरुषों के साथ साथ महिलाओं की भागीदारी आवश्यक है। जनगणना 2011 के अनुसार भारत मे महिलाओं की कुल आबादी 50 प्रतिशत है। इतनी बडी आबादी होने के बावजूद यह समुदाय राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक रुप से काफी पिछडा है। महिलाओ के मुल्यांकन हेतु उनका सामाजिक रुपरेखा का अध्ययन करना आवश्यक है। सामाजिक संरचनाए, सांस्कृतिक प्रतिमान एवं मुल्य प्रणालीयों का प्रभाव पुरुषो एवं महिलाओं के व्यवहार संबंधी प्रत्याशाओ पर पडता है। मानवी विकास हेतु महत्वपुर्ण शर्त यह है की प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं की समान सहभागिता हो, इस से केवल महिला का विकास होगा वरन् समाज भी प्रगती की ओर अग्रसर होगा। चूंकी खुली श्रेणी कीमहिलाएं सामाजिक पिछडेपण के कारण ही समाज के मुख्य धारा से पीछे रह गयी है। इसी दृष्टी से यह आवश्यक है की खुली श्रेणी कीमहिला के शिक्षा मे सहभागिता इस विषय पर भौगोलिक विश्लेषण एवं अध्ययन हो।

शहरी बस्तियों मे ग्रामिण बस्तियो के अनुपात मे 94.44 प्रतिशत खुली श्रेणी कीमहिलाए प्राथमिक शिक्षा में सहभागिता ले रही है। शहरी बस्तिया मानवी विकास के लिए अनुकुल एवं केंद्रबिंदु माने जाते है ऐसे क्षेत्र में 94.44 प्रतिशत महिला प्राथमिक शिक्षामे सहभागिता दिखाई देती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि शहरी बस्तियों मे स्कुलों मे खुली श्रेणी कीमहिला का दाखिला, स्कुल की उपलब्धता, आर्थिक एवं सामाजिक स्थिती, शिक्षा का महत्व के संदर्भ मे जागृतता स्तर समाधान कारक स्थिति मे है। ग्रामिण बस्तियो मे खुली श्रेणी की महिला की सहभागिता का औसत 90.14 प्रतिशत है, जो की शहरी बस्तियों की खुली श्रेणी की महिला की सहभागिता औसत से कम है। ग्रामिण बस्तियों के मैदानी बस्तियों मे खुली श्रेणी की महिला का प्राथमिक शिक्षा में सहभागिता का औसत सबसे अधिक 100 प्रतिशत है। इससे यह स्पष्ट है की यहां के अभिभावक शिक्षा के संदर्भ मे जागृत है।

1. प्रस्तावना (Introduction)

भारत की लगभग आधी आबादी महिला कवर करती है। भारत देश का पूरी तरह से विकास करने के लिए महिला शिक्षा बहुत महत्वपुर्ण है। भारत के लिए महिला शिक्षा सामाजिक और आर्थिक रुप से विकसित होने का एक बडा अवसर है। एक शिक्षित महिला मे अपने घर और पेशेवर जीवन को संभालने की क्षमता रखती है। भौगोलिक प्रदेश का सांस्कृतिक भूदृश्य वहॉ के मानवीय क्रियाओ का प्रतिफल होता है। केवल मनुष्य है जो संसाधनो का नियामक व मानव कल्याण हेतु उनका उपयोग करता है। इस प्रकार विविध क्षेत्रों में क्रियान्वयन के परिणामस्वरुप मनुष्य स्वयं किसी प्रदेश का एक महत्वपूर्ण संसाधन है। भारत जैसे विकासोन्मुख देश में जहां प्रादेशिक स्तर पर मानव संख्या में तिव्रगति से वृध्दि हो रही है, संख्या सम्बन्धी भौगोलिक अनुसन्धान का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

विश्व मे वर्तमान समय में अणु युध्द, अत्याधिक जनसंख्या दबाव, अमीर-गरीब की खाई, बेरोजगारी, दहशतवाद, विश्वतापमान, शिक्षा सुविधाए आदी समस्याए है जो मानवीय सभ्यता के सम्मुख महत्वपुर्ण चुनौती के रुप में स्थित है। भारत मे प्राचीन काल से परंपरागत तरह से विविध जाती-धर्म जनसंख्या का एक समान सामाजिक एवं आर्थिक विकास यह भी एक समस्या है। प्रस्तुत शोधपत्र में धुले जनपद के खुली श्रेणी की महिलाओं की शिक्षा में भागीदारी का भौगोलिक विश्लेषणएवं उनकी स्थिति का अध्ययन किया गया है। वर्तमान समय मे खुली श्रेणी की महिलाओं की सामाजिक स्थिति मे सुधार के आशाओं के अनुरुप परिलक्षित नही हुए है। इन समस्याओं से निजात पाने के लिए यह आवश्यक है कि इस क्षेत्र की समस्याओं का सिलसिलेवार विवरण के साथ-साथ तार्किक समाधान प्रस्तुत किया जाए। इन समस्याओं से छुटकारा पाने के प्रयास में विश्व स्तर पर किसी न किसी रुप में निति निर्माता एवं शिक्षाविदों व्दारा एकैडेमिक बहस जारी है। उसी बहस में एकैडेमिक साहित्य का निर्माण करने का इस शोध पत्र का एक छोटासा प्रयत्न है।

2. अभ्यास क्षेत्र (Study Area) –

धुले उत्तरी महाराष्ट्र का मध्यप्रदेश एवं गुजरात राज्य के सीमा से सटीक एक महत्वपुर्ण जनपद है। ब्रिटीश कालीन पश्चिम खानदेश का धुले जनपद मुख्यालय रहा है। धुले जनपद महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश एवं गुजरात तीनो राज्यों का एक महत्वपुर्ण जंक्शन है, जहां से राष्ट्रीय महामार्ग 3 मुंबई-आग्रा, 6 सुरत-नागपूर एवं 211 धुले-सोलापूर आदी महामार्ग जाते है। धुले जनपद का त्रिकोणी आकार अपने आपको और भौगोलिक क्षेत्र से अलग प्रस्तुत करता है। जनपद का विस्तार 2028 'उत्तरी अक्षांश से 2161' उत्तरी अक्षांश एवं 7350 'पूर्व से 7511' पूर्व देशांतर तक है। धुले जनपद का भौगोलिक क्षेत्रफल 8063 वर्ग कि. मी. है जों कि महाराष्ट्र राज्य का 2.6 प्रतिशत है। जनपद के उत्तर मे सतपुडा पर्वत, आग्नेय दिशा में सह्याद्री पर्वत के उप शाखाओं (Spurs) से ढका हुआ है। जनपद का सेन्टर पार्ट तापी नदी के संचयन से बनी सुपिक जमीन से ढका हुआ है, जिसके चलते यहा कृषी व्यवसाय किया जाता है। जनपद भौगोलिक क्षेत्र शुष्क पर्णपाती जलवायु रिजन में समाविष्ट होता है। इसी कारण यहां 674 मिलिमीटर तक मान्सून की वर्षा होती है। जनवरी महिना सबसे जादा शीत होता है, इस समय यहां का तापमान 16.2 सेल्शिएस तक निचे आ जाता है। फरवरी के मध्य से तापमान में धीरे-धीरे बढोत्तरी शुरु होकर मई में सरासरी कमाल तापमान 40.7 सेल्शिएस तक बढ जाता है।

3. उद्देश (Objective) -

इस शोध परीयोजना का प्रमुख उद्देश धुले जनपद की खुली श्रेणी की महिलाओं की जनसंख्या का शिक्षा में सहभागिता का भौगोलिक अध्ययन प्रस्तुत करना है। राष्ट्र एवं प्रदेश स्तर पर तीव्र गति से बढती जनसंख्या एवं उनके लिए उपलब्ध शिक्षा सुविधाओं की उचित पूर्ति के लिए क्षेत्रीय स्तर पर खुली श्रेणी की महिलाओं का शिक्षा में सहभागिता के भौगोलिक विश्लेषण की महती आवश्यकता है। मुख्यत: शोध परीयोजना से सम्बन्धित उद्देश निम्न लिखित है-

1) खुली श्रेणी की महिलाओं का शिक्षा सहभागिता का अध्ययन करना।
2) खुली श्रेणी की महिलाओं की भौतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक विशेषताओं का अध्ययन करना।
3) खुली श्रेणी की महिलाओं के सन्तुलित विकास के लिए योजनाओं का निर्माण करना।

4. परिकल्पानाएं (Hypothesis) –

धुले जनपद अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत खुली श्रेणी की महिलाओं शिक्षा सहभागीता एवं सुविधा के विविध आयोमों के अध्ययन के समय जिन मुख्य परिकल्पनाओं का निरीक्षण किया गया है वे निम्नलिखित है-

1) खुली श्रेणी की महिलाओं का शिक्षा सहभागिता का विशिष्ट रुप एवं औसत उपस्थित है।
2) खुली श्रेणी की महिलाओं की शिक्षा औसत भौतिक एवं सामाजिक कारको व्दारा प्रभावित होता है।

5. संशोधन पध्दती (Research Methodology) -

धुले जनपद में जनसंख्या अनुपात विविध जाति के अनुसार विविध रुप में पाया जाता है। धुले जनपद के भौगोलिक विशेषताओं के अनुरुप खुली श्रेणी की महिलाओं की जनसंख्या का वितरण, विकास एवं सामाजिक स्तर बना हुआ है। उपर लिखित उद्देश के अनुसार अध्ययन करने हेतु धुले जनपद के प्राथमिक एवं व्दितीय जनसंख्या सामग्री जैसे कि क्षेत्र सर्व्हे, डिस्ट्रीक्ट सामाजिक एवं आर्थिक समालोचन का आधार लिया गया है। इस के साथ-साथ संदर्भ ग्रंथ एवं शोध पत्रिकाओं का आधार लिया गया है।

6. निष्कर्ष (Conclusion) -

देश के प्रगती में पुरुषों के साथ साथ महिलाओं की भागीदारी आवश्यक है। जनगणना 2011 के अनुसार भारत मे खुली श्रेणी की कुल आबादी 50 प्रतिशत है। खुली श्रेणी की महिलाओंके मुल्यांकन हेतु उनका सामाजिक रुपरेखा का अध्ययन करना आवश्यक है। सामाजिक संरचनाए, सांस्कृतिक प्रतिमान एवं मुल्य प्रणालीयों का प्रभाव पुरुषो एवं महिलाओं के व्यवहार संबंधी प्रत्याशाओ पर पडता है। मानवी विकास हेतु महत्वपुर्ण शर्त यह है की प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं की समान सहभागिता हो, इस से केवल महिला का विकास होगा वरन् समाज भी प्रगती की ओर अग्रसर होगा। चूंकी खुली श्रेणी की महिलाएं सामाजिक पिछडेपण के कारण ही समाज के मुख्य धारा से पीछे रह गयी है। इसी दृष्टी से यह आवश्यक है की खुली श्रेणी की महिला के शिक्षा मे सहभागिता इस विषय पर भौगोलिक विश्लेषण एवं अध्ययन हो।

धुले जनपद आबादी का 27.91 प्रतिशत संख्या शहरी एवं 72.09 प्रतिशत संख्या ग्रामिण बस्तीयों में निवास करती है। इसलिए इस शोध निबंध के सर्वेक्षण हेतु खुली श्रेणी की महिला का कुल 66.36 प्रतिशत नमूना ग्रामिण बस्तियों से लिया गया है। नमूना में बस्तीयों के प्रतिरुप के अनुसार शहरी, ग्रामिण- सडक के किनारी बस्तियॉ, पहाडों से सटीक बस्तियॉ एवं मैदानी बस्तियॉ का समावेश किया गया है।

तालिका क्रमांक – 1 खुली श्रेणी कीमहिला नमूना संख्या					
भौगोलिक क्षेत्र	शहरी बस्तियाँ	ग्रामिण बस्तियाँ			कुल नमूना संख्या
		सडक किनारी बस्तियाँ	पहाडों से सटीक बस्तियाँ	मैदानी बस्तियाँ	
खुली श्रेणी की महिलाकुल नमूना संख्या	36	42	06	23	98
प्राथमिक शिक्षा प्राप्त खुली श्रेणी की महिलासंख्या	34	36	05	23	09

उगमस्त्रोत- क्षेत्र कार्य – (जनवरी-फरवरी-2015)

सर्वेक्षण हेतु लिए गए शहरी बस्ती की खुली श्रेणी की महिला नमूना 36 संख्या के 94.44 प्रतिशत (34) महिला शिक्षित है एवं 05.56 प्रतिशत महिला (02) निरक्षर है। इस संख्या से यह स्पष्ट होता है की शहरी बस्तियों मे खुली श्रेणी की महिलाओं की प्राथमिक शिक्षा मे सहभागिता समाधान कारक से बहोत जादा है। सडक के किनारो के सटीक बस्तीयो में कुल 42 खुली श्रेणी की महिलाओं का सर्वेक्षण नमूना के तौर पर किया गया। इनमे से 85.71प्रतिशत महिलाओं (36) ने प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की है एवं बाकी की 14.29 प्रतिशत महिला (06) प्राथमिक शिक्षा से वंचित रही है। सडक के किनारो के सटीक बस्तीयो मेंखुली श्रेणी की महिला का शिक्षा में सहभागिता का औसत बहुत अच्छा दिखाई देता है। पहाडो से सटीक बस्तीयो की खुली श्रेणी की महिला नमूना की कुल संख्या 06ली गयी थी। नमूना की कुल संख्या के 83.31 प्रतिशत महिलाओंने (05) प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की है। बाकी 17.69 प्रतिशत महिलाएं (01) प्राथमिक शिक्षा प्राप्त नही कर पाई। मैदानी प्रदेश के बस्तीयो में से कुल 23 नमूना संख्या का चयन किया गया था। नमूना संख्या के 100 प्रतिशत महिलाओं (23) ने प्राथमिक शिक्षा का लाभ लिया है। धुले पूर्ण जनपद के लिए खुली श्रेणी की महिला नमूना संख्या 107 के सर्वेक्षण के बाद मिली संख्या का विश्लेषण अनुसार 91.58 प्रतिशत महिला (98) प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की है, जबकी 18.42 प्रतिशत खुली श्रेणी की महिला (09) प्राथमिक शिक्षा से वंचित है।

खुली श्रेणी की महिला शिक्षा सहभागिता अध्ययन से यह स्पष्ट होता है की

1. शहरी बस्तियों मे ग्रामिण बस्तियो के अनुपात मे 94.44 प्रतिशत खुली श्रेणी की महिलाए प्राथमिक शिक्षा में सहभागिता ले पा रही है जो की ग्रामिण बस्तियों से अधिक है।
2. शहरी बस्तिया मानवी विकास के लिए अनुकुल एवं केंद्रबिंदु माने जाते है इसीलिए शहरी बस्तिया क्षेत्र में 94.44 प्रतिशत महिला प्राथमिक शिक्षा में सहभागिता लेते दिखाई देती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि शहरी बस्तियों मे स्कुलों मे खुली श्रेणी की महिला का दाखिला, स्कुल की उपलब्ध ता, आर्थिक एवं सामाजिक स्थिती, शिक्षा का महत्व के संदर्भ मे जागृतता स्तर अधिक समाधान कारक स्थिति मे है।
3. ग्रामिण बस्तियो मे खुली श्रेणी कीमहिला की सहभागिता का औसत 90.14 प्रतिशत है, जो की शहरी बस्तियों की खुली श्रेणी कीमहिला की सहभागिता औसत सेकम है लेकीन समाधान कारक है।
4. ग्रामिण बस्तियों के मैदानी बस्तियों मे खुली श्रेणी की महिला का प्राथमिक शिक्षा में सहभागिता का औसत सबसे अधिक 100 प्रतिशत है। इससे यह स्पष्ट है की यहां के अभिभावक शिक्षा के संदर्भ मे अधिक जागृत है।
5. खुली श्रेणी कीमहिला का प्राथमिक शिक्षा में सहभागिता का औसत को भौतिक सुविधा अर्थात आर्थिक (इनकम) स्थिती, स्कुल अंतर, सामाजिक संरचना एवं सांस्कृतिक कारको द्वारा बहुत अधिक प्रभावित नही होता है, क्योकी खुली श्रेणी की महिलाओं की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पार्श्वभूमी अपने आप में अच्छी होती ही है।
6. खुली श्रेणी की महिलाओं की शिक्षा मे सहभागिता औसत से यह सुनिश्चि हो जाता है की उनकी प्रगती का स्तर अधिक समाधान कारक है। फिर भी खुली श्रेणी की महिलाओं के जनजीवन के सामाजिक उत्थान या विकास की संभावनाएं कुछ हद तक सुनिश्चित करनी चाहिए।
7. खुली श्रेणी की महिलाओं के पुर्ण विकास के लिए जरुरी है की, समाज और पुरुष अपने विचारों एवं अपनी मानसिकता में बदलाव लाएं और महिलाओं का सहयोग करें।
8. ग्रामिण क्षेत्र मेंखुली श्रेणी की महिलाओं के लिए शिक्षा संस्थाओं की संख्या बढानी होगी।
9. पुरुषों की भांति महिलाओं की शिक्षा का महत्व समजना होगा।
10. राष्ट्रीय साक्षरता, शिक्षा का अधिकार अधिनियम शिक्षा कार्यक्रम को ग्रामिण क्षेत्रों मे अधिक बलपूर्वक फैलाना होगा।

महिला शिक्षा द्वारा ही राष्ट्र एवं समाज का विकास परिलक्षित होता है। समाज के विकास मे महिला शिक्षा की अहम् भूमिका होती है। इसलिए महिलाओं को समाज की रचनात्मक शक्ति कहा जाता है।

अध्ययन के समय जिन मुख्य परिकल्पनाओं का निरीक्षण किया गया है वे निम्नलिखित है–

1) खुली श्रेणी कीमहिला शिक्षा सहभागिता (91.58 प्रतिशत) का खास रुप में एवं औसत उपस्थित है। यह परीकल्पना सत्य है उपरोक्त विश्लेषण के बाद यह परिकल्पना स्विकृत है।

2) खुली श्रेणी की महिला की शिक्षा औसत भौतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक कारको व्दारा प्रभावित है यह परीकल्पना सत्य है उपरोक्त विश्लेषण के बाद यह परिकल्पना स्विकृत है।

7) References –

1. R. S. Tripathi, J. P. Vishwakarma (1986). Urban Impact of the Literacy and Occupational structure of Scheduled Caste Population in Bundelkhand region in UP. *The Geographical Observer*, Vol No. XXII, 46-55.
2. Ray. J. (1992, December). The Problem of Girls Education in Dhankenal District- Orissa. *Centre for Education Studies-Indian Institute of Education,* Kothrud-Pune. Pune Maharashtra, India.
3. Satardu Sikdar, Mukharji Anit N. (2012). Enrolment and Dropout Rate in School Education. *Economic and Political weekly, pp.27-31*
4. AIU. (1999). *Education and Women Empowerment*. New Delhi: Association of Indian Universities, Combred Indrajeet Marg New Delhi.
5. Anita. (2009) Education Attainment and Occupation of Women in Hariyana- A Geographical Analysis. Unpublished Ph. D. thesis. Jawarharlal Nehru University, Delhi.
6. Azita Rajabi, Kariman Bostani. (2009). Social Justice and Education Opportunities in Zahedn-Iran. The Deccan Geographer, Vol.48 No.2
7. https://censusindia.gov.in/2011census/population_enumeration.html
8. https://mahades.maharashtra.gov.in/home.do?lang=en
9. https://dhule.gov.in/mr/
10. https://dhule.nic.in/
11. http://yojana.gov.in/Recent_archive_English_2015.asp

पुराने गया जिले के जहानाबाद एवं अरवल क्षेत्र में नक्सलवादी गतिविधि और हिंसा: एक संक्षिप्त अवलोकन

सचिन कुमार

शोधार्थी, इतिहास विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

सार

पुराने गया जिले के जहानाबाद एवं अरवल क्षेत्र में नक्सलवादी आंदोलन आंतरिक सुरक्षा का सबसे गंभीर समस्या बनाता जा रहा है। इसका भौगोलिक विस्तार बहुत बड़े भाग में हो चुका है और इसकी जड़े सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों से जुड़ी है। इसलिए यह समस्या और विषम होती जा रही है। ऐसा लगता है कि अब नक्सलियों का आत्मविश्वास और उनका दुस्साहस दिनों-दिन बढ़ता ही चला जा रहा है। अब वे बड़े पैमाने पर सौ-दो सौ से लेकर हजार की संख्या में एकत्र होकर हमला कर रहे है। यदि 4-5 वर्षो की घटनाओं पर एक दृष्टि डाले तो इस बात की पुष्टि हो जाती है। नक्सलवादियों का कहना है कि क्रांति के माध्यम से राज्य में सत्ता हासिल करना उनका प्रमुख राजनीतिज्ञ लक्ष्य है। इस पत्र के अंतर्गत पुराने गया जिले के जहानाबाद एवं अरवल क्षेत्र में नक्सलवादी गतिविधि और हिंसा पर एक संक्षिप्त अवलोकन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्द: नक्सल; हिंसा; वर्चस्व; राजनीति; क्षेत्राधिकार।

परिचय

भारतीय इतिहास में नक्सलवादी आन्दोलन का एक प्रमुख स्थान है। यह आन्दोलन किसानों से जुड़ा हुआ एक विशिष्ट आन्दोलन है। यह एक ऐसा आन्दोलन था जिसके अन्तर्गत बिहार के आर्थिक रूप से पिछड़े एवं निर्बल कृषकों के साथ भूमिहीन कृषि श्रमिकों ने भी भाग लिया और अत्यधिक सीमा तक इस आन्दोलन को प्रभावी बनाने में अपना-अपना योगदान दिया। मार्क्स, लेनिन एवं माओ-त्से-तुंग के विचारों के प्रभावित होकर पश्चिमी बंगाल के सिलीगुड़ी सब-डिवीजन के नक्सलवाड़ी नामक स्थान पर मई 1967 में इस आन्दोलन की शुरूआत की गई थी। नक्सलवाद से प्रभावित होकर भारत के बिहार राज्य से पहला किसान विद्रोह मुजफ्फरपुर के मुसहरी प्रखण्ड में हुआ था लेकिन प्रशासनिक कार्यवाही और जय प्रकाश नारायण के प्रयत्नों से यह वहीं दब गया।[1]

भाकपा (माले) लिबरेशन 28 जुलाई 1974 को अस्तित्व में आया। कुछ ही वर्षो के अन्दर इसने पटना, नालंदा, गया, औरंगाबाद आदि जिलों में अपनी गहरी पैठ बना ली। गया जिले के जहानाबाद क्षेत्र में इसकी गतिविधियाँ सर्वाधिक थीं। इसलिए 1986 में इसे स्वतन्त्र जिला बनाया गया। उस समय इसमें सात प्रखण्ड थे - जहानाबाद, मखदुमपुर, कुर्था, करपी, अरवल, काको और घोसी। आज अरवल स्वयं में एक स्वतन्त्र जिला है।[2] जहानाबाद कभी उद्योग प्रधान जिला था। एक समय यह सूत बुनाई का प्रमुख केन्द्र था और सोलहवीं सदी में यहां का बना कपड़ा ''पटना क्लॉथ'' के नाम से लाहौर तक प्रसिद्ध था, परन्तु अंग्रेजों के मैनचेस्टर ने यहां की कारीगरी को लील लिया। आज बिहार के 22 जिलों में नक्सलवाद पैर पसार चुका है, ये जिलें हैं - अरवल, औरंगाबाद, भोजपुर, पूर्वी चम्पारण, गया, जमुई, जहानाबाद, कैमूर, मुंगेर, नालंदा, नवादा, पटना, रोहतास, सीतामढ़ी, पश्चिम चम्पारण, मुजफ्फरपुर, शिवहर, वैशाली, बांका, लखीसराय, बेगुसराय और खगड़िया।[3]

यद्यपि बिहार में नक्सली पहले से ही सक्रिय थे लेकिन उनकी गतिविधियों में 1980 के दशक में तेजी आयी। 1980 के आस-पास यादव और एक अगड़ी जाति के बीच तनाव बढ़ना प्रारम्भ हो गया था। अत्यन्त पिछड़े दोनों तरफ से पिसने लगे। यही जातिगत तनाव आगे चलकर विस्फोटक हुआ और नक्सलियों और जमींदारों की सेना के संघर्ष का कारण बना। सन् 1980 में माओवादी कम्युनिस्ट सेंटर (एम.सी.सी.) और पीपुल्स वार ग्रुप (पी.डब्लू.जी.) उभरकर सामने आए। एम.सी.सी प्रमोद मिश्र और संजय दुसाध तथा पी. डब्लू. जी. कोंडापल्ली सीतारमैया के नेतृत्व में उभरा। दोनों संगठनों ने सशस्त्र क्रांति के प्रति अपनी प्रतिबद्धता की घोषणा की। दक्षिण बिहार में एम0सी0सी0 ने औरंगाबाद, पलामू और हजारीबाग में अपनी गतिविधियाँ बढ़ा दी, जिसके कारण सन् 1986 में नक्सलियों का सामना करने के लिए तत्कालीन मुख्यमंत्री बिंदेश्वरी दूबे ने जमींदारों को हथियार देने का फैसला किया।[4]

बंदूकों के हजारों लाइसेंस जारी कर दिए गए। इस बीच कुछ दलितों की हत्या के विरोध में एम0सी0सी0 ने औरंगाबाद में 54 राजपूतों की हत्या कर दी। इसके साथ ही जाति के आधार पर सेनाओं के गठन में तेजी आने लगी। भूमिहारों ने 'ब्रह्मा ऋषि' सेना बना ली तो पठानों ने उनसे साथ मिलकर 'सनलाइट' सेना गठित की। उसकी वजह यह थी कि एम0सी0सी0 लगातार भूमिहारों व पठानों को अपना निशाना बना रही थी। कुर्मियों ने 'भूमि सेना' और यादवों ने

'लोरक सेना' बनाई। भोजपुर के ठाकुरों ने 'कुँवर सेना' बनाने का ऐलान किया तो ब्राह्मणों ने 'गंगा सेना' बना ली। वे एक पार्टी विशेष (कांग्रेस) के समर्थक थे।

बिहार में पहले तीन नक्सली समूह काम कर रहे थे - भाकपा (माले) लिबरेशन, पार्टी यूनिटी (पीपुल्स वार ग्रुप) तथा माओवादी कम्युनिस्ट सेन्टर (एमसीसी)। भाकपा (माले) लिबरेशन कुछ समय तक इंडियन पीपुल्स फ्रंट (आईपीएफ) के नाम से सक्रिय थी। आईपीएफ अब प्रत्यक्ष संघर्ष का रास्ता छोड़कर मुख्यधारा में शामिल हो गयी है। चुनावों में सक्रिय भागीदारी है और सभी बिहार के वामपंथी दलों में सबसे कद्दावर है। पार्टी यूनिटी को 20 अगस्त 1986 तथा एमसीसी को 03 जून 1987 को प्रतिबंधित कर दिया गया था। मण्डल प्रकरण के बाद नक्सली समस्या के साथ राजनीति भी जुड़ गई। मण्डल आयोग की रपट लागू कर देने के कारण जो सामाजिक तनाव पैदा हुआ, उससे लालू यादव को लगा कि सवर्ण भाजपा की ओर जा रहा है। लिहाजा सवर्णों पर होने वाले हमलों का उन्हें राजनीतिक लाभ मिलना तय था। जब ऐसे हमले तेज हुए तो उनसे बचने के लिए जमींदार लालू यादव की शरण में आ गए। लोकसभा चुनाव में पीरो व पालीगंज से कांति सिंह व चंद्रदेव प्रसाद वर्मा की जीत इसका जीता-जागता उदाहरण थी। वे दोनों केन्द्र की पहली यूपीए सरकार में मंत्री बनें। उनका पार्टी यूनिटी के चुनाव में समर्थन किया था, ताकि वह लिबरेशन गुट पर नजर रख सके। एम0सी0सी0 भले ही चुनाव व्यवस्था में विश्वास न रखने की बात करता रहा हो, पर वह यादवों और कुर्मियों का समर्थन करने लगा। उसने गया के चुनाव में राजद के उम्मीदवार उदय नारायण यादव का खुलकर समर्थन किया। उनकी जीत सुनिश्चित करने के लिए भाजपा के दलित उम्मीदवार की हत्या कर दी गई। इस संगठन ने चुनाव में, जहाँ राजद के उम्मीदवार कमजोर थे, चुनावी बहिष्कार का ऐलान किया, जिससे दूसरी पार्टी के पक्ष में कम मतदान हुआ। बाद में नक्सली भी कुर्मी और यादव के आधार पर बँट गए।

वर्ष 1990 में जब बिहार की सत्ता में लालू प्रसाद आए तो उन्होंने खुलेआम विवादास्पद बयान दिया, ''भूरा बाल साफ करो।'' इस चार शब्द के वाक्यांश ने बिहार के जातीय संघर्ष को नई दिशा दे दी। हिंसक वामपंथी उर्वरता पाकर पहले ही नक्सलवादी आन्दोलन बड़ी तेजी से फल-फूल रहा था, वहीं लालू के बयान ने तो जैसे आग में घी डालने का काम कर दिया। हालांकि अनेक अवसरों पर लालू ने यह स्वीकार किया कि उन्होंने यह बयान नहीं दिया है और मीडिया ने तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया है। वहीं कई अवसरों पर उन्होंने यह भी कहा है कि ऐसा उन्होंने वंचित तबके को राजनीतिक और सामाजिक रूप से जागरूक होने के लिए कहा था।[5]

राज्य में जातिवाद की जड़ें कितनी गहरी जम चुकी थी, इसका उदाहरण तब मिला, जब जाति-विहीन समाज की पैरवी करते आए वामंपथी दल व नक्सली संगठन भी जाति के आधार पर विभाजित हो गए। मण्डल आयोग के सुर्खियों में आने के बाद लालू यादव ने जातिगत आधार पर भाकपा को तोड़ा। यही स्थिति भोजपुर में सी0पी0आई0 (एम0एल0) की हुई। इसके बावजूद जब राजद ने वामपंथी दलों के साथ सन् 1989 से 1996 तक राजनीतिक गठबंधन किया तो उससे वैचारिक भ्रम पैदा हुआ। वामपंथियों और नक्सलियों के समर्थक व कैडर जाति के आधार पर बंट गए। लालू यादव का खुलकर समर्थन करने वाले अपने सात विधायकों को भाकपा को पार्टी से निकालना पड़ा और वे राजद में शामिल हो गए। लालू के सामाजिक न्याय के आगे वामपंथी ताकतें दम तोड़ने लगीं, जिन दलितों और पिछड़ों के कंधे पर वे बन्दूक रखकर अपनी दुकानदारी चला रहे थे, उन लोगों ने लालू को एक नये मसीहा के रूप में महसूस किया। वामपंथी आन्दोलन जो जमीनी स्तर पर जनसमर्थन मिला करता था, वह खत्म होने लगा था। ब्रह्मेश्वर मुखिया ने इसी मौके का फायदा उठाया। उन्हीं दिनों उसने अपने पूर्व के किसान संगठन (जो उसने वर्ष 1974 के आसपास खड़ा किया था) को रणवीर सेना की संज्ञा दी। व्यापक पैमाने पर उसने मध्य बिहार और विशेषकर जहानाबाद और अरवल के कई इलाकों में दलितों और पिछड़ों को गाजर-मूली की तरह काट डाला। रणवीर सेना द्वारा किए गए हर आपरेशन इसकी नृंशसता की गवाही देते हैं।

जहानाबाद और अरवल में नरसंहार निम्न है:

- 31 जनवरी 1997 माछिल, मखदुमपुर, जहानाबाद 4
- 28 मार्च 1997 आकोपुर, अरवल, जहानाबाद 3
- 02 सितम्बर 1997 खड़ासिन, करपी, जहानाबाद 8
- 23 नवम्बर 1997 कटेसर, करपी, जहानाबाद 6
- 31 दिसम्बर 1997 लक्ष्मणपुर बाथे, अरवल, जहानाबाद 59
- 25 जुलाई 1998 ऐयारा, रामपुर, करपी, जहानाबाद 3
- 25 जनवरी 1999 शंकरबिगहा, अरवल, जहानाबाद 23
- 10 फरवरी 1999 नारायणपुर, मखदुमपुर, जहानाबाद 12

सत्तर के दशक के नक्सलवादियों और वर्तमान के माओवादियों में जमीन आसमान का अन्तर नजर आता है जिनमें से कुछ का वर्णन पहले किया गया है फिर भी नक्सलवाद का यह फलसफा वर्ग विषमता व अन्याय के विरूद्ध तो है ही। इनको किसानों, भूमिहीन कृषकों व श्रमिकों का पक्षधर भी प्रचारित किया जाता है। जिसके कारण सरकार के सामने नक्सलवाद को लेकर हमेषा ही यह दुविधा रही है कि इसे कानून एवं व्यवस्था की समस्या माना जाए अथवा एक सामाजिक-आर्थिक समस्या ? सरकार ने नक्सलवादी आंदोलन को दबाने के जो भी प्रयास किए उससे नक्सलवाद के रूझान में तो कोई कमी नहीं आई, उल्टे नक्सलवादी हिंसक गतिविधियों मे वृद्धि, जरूर हो गई। ऐसा लगता है कि पिछले दो दषकों में गरीबों, बेरोजगारों, भूमिहीन कृषकों की संख्या में वृद्धि, भूमि वितरण में असमानता तथा आदिवासियों के स्थानीय अधिकारों से बेदखली के मामले जैसे-जैसे बढ़ रहे है उसी अनुपात में नक्सलवाद का दायरा भी बढ़ रहा है। इस संदर्भ में इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि नक्सलवादियों का आंदोलन उल्फा व बोडो की तरह न तो कोई पृथकतावादी आंदोलन है और न ही जाति, धर्म व अर्थपरक, परन्तु यह बात भी गौर करने वाली है कि नक्सली संगठनों को स्थानीय स्तर पर पृथकतावादी संगठनों से भी अधिक

समर्थन प्राप्त है।[6] नि:संदेह इनकी माओवादी विचारधारा को कदापि जायज नहीं ठहराया जा सकता परन्तु उन कारकों पर विचार करना समय की माग है कि आखिर यह विचारधारा क्यों लोगों में अपनी पैठ दिन प्रतिदिन बनाती ही जा रही है।

सातवें दशक के पूर्वोर्द्ध में देश की आर्थिक समस्याए अधिक संगीन थी जब प्रति व्यक्ति आय तथा खुराक की खपत में कमी हुई। औद्योगिक विकास रूक गया और लगातार कई बुरी फसलों के कारण अर्थव्यवस्था अमेरिकी आयात पर निर्भर हो गयी थी। 1967 ई0 में बिहार में पड़े अकाल के साथ यह दौर अपने चरम बिन्दु पर पहुँच गया। सरकार की सहायता के लिए भारत का नाम गरीबी और भूखमरी का पर्यायवाची बन गया। शुरू-षुरू के वर्षो में योजना, समाजवाद, वेतन में असमानता तथा बेरोजगारी की समस्याओं के समाधान के बारे में सरकारी प्रचार की पृष्ठभूमि में आम जनता की निराषा बढ़ गई थी। हालांकि छठे दशक में सरकार ने आत्मनिर्भरता, गुटनिरपेक्षता, स्वतन्त्र विदेश नीति तथा विदेशी निजी व्यापार की वृद्धि पर अंकुश लगाए, लेकिन सातवें दशक में सब कुछ बदल गया। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को विदेशी हितों के ऊपर निर्भर कर दिया गया। तीसरी योजना के बजट में विदेशी सहायता का अंष एक तिहाई से अधिक था तथा लाखों हिन्दुस्तानियों को जीवित रखने के लिए पी0 एल0 480 के अन्तर्गत लगभग एक करोड़ टन अनाज आयात किया गया। विदेशी हितों पर आर्थिक निर्भरता का सरकार की अर्थ-नीतियों में प्रतिविम्बित होना स्वभाविक ही था। अत: अमेरिकी साहूकारों को संतुष्ट करने के लिए 1966 ई0 में रूपयें का अवमूल्यन किया गया, आयात में ढील दी गई तथा भारतीय उद्योगो में विदेषी निजी व्यापार में काम-काज पर से बंदिषे हटाई गई।7 देश में काले धन में लगातार वृद्धि होती रही वही खेतिहर उत्पादन और औद्योगिक उत्पादन में गिरावट जारी रही। मंहगाई, बेरोजगारी में वृद्धि हुई, साथ ही रोजगार के अवसर घटते रहे और गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों की संख्या में काफी वृद्धि हुई थी।[8] जिससे यह पता चलता है कि 1967 के दौर में नक्सलवादी आंदोलन के जन्म के पीछे भारत सरकार की नीतिया ही मुख्य रूप से उत्तरदायी थी।

21 अप्रैल 1999 को गया जिले के सेंदानी गांव में 12 लोगों की मौत हो गई थी। 20 फरवरी 1999 को जहानाबाद जिले के नारायणपुर गांव में 11 लोगों की हत्या कर दी गई थी। 25 जनवरी 1999 को जहानाबाद जिले के शंकरबीघा गांव में 23 लोगों की हत्या कर दी गई थी। 1 दिसंबर 1997 को जहानाबाद जिले के लक्ष्मणपुर-बाथे गांव में 58 लोगों की हत्या कर दी गई थी। 10 अप्रैल 1997 को जहानाबाद के एकबारी गांव में 10 लोगों की हत्या कर दी गई थी। जबकि वर्तमान समय में बिहार के कई इलाकों में नक्सलियों ने अपना पूरा प्रभुत्व स्थापित कर लिया है। नक्सल प्रभावित इलाकों में नक्सलियों की समानांतर सरकार चलती है। ये लोग कानून व्यवस्था के लिए अपने नए-नए नियम-कायदे जारी करते रहते हैं। आदिवासी इलाकों में नक्सली जन-अदालतें लगाते हैं जिनमें वे रोजमर्रा के मामलों में अपने फैसले सुनाते हैं। नक्सलियों के अपने खर्चे हैं, उन्हें गोला-बारूद, हथियारों और वाहनों की जरूरत पड़ती है। इन सबमें काफी पैसा खर्च होता है। सवाल है कि नक्सलियों के पास पैसा आता कहां से है?

नक्सलियों की आय का प्रमुख साधन है व्यापारियों तथा उद्योगपतियों से की गयी अवैध और जबरन उगाही। एक अनुमान के मुताबिक नक्सलियों का वार्षिक टर्नओवर करोड़ रूपयों को भी पार कर जाता है। यह टर्नओवर 15 प्रतिशत वार्षिक की दर से बढ़ता जा रहा है। नक्सल प्रभावित इलाकों में आलू-प्याज की हरेक बोरी पर, माल ला-ले जा रहे प्रत्येक ट्रक पर, हर खनन में, सरकारी कर्मचारीयों की हर तनख्वाह पर और उद्योगपतियों की हरेक 'डील' में नक्सलियों का हिस्सा तय होता है। पहले से तय रकम नक्सलियों तक पहुंचाते रहो तो कोई दिक्कत नहीं लेकिन अगर ऐसा नहीं किया गया तो क्षेत्र में काम करना मुष्किल है। और तो और सरकारी कर्मचारियों अधिकारियों को भी अपनी तनख्वाह का एक हिस्सा नक्सलियों को देना पड़ता है। एक रिपोर्ट के मुताबिक झारखंड में अफीम की प्रति एकड़ खेती पर एक करोड़ रूपये, सब्जी की एक बोरी पर 5 रूपये और सरकारी कर्मचारियों की तनख्वाह पर एक प्रतिषत का नक्सली टैक्स देना पड़ता है। नक्सलियों का वार्षिक टर्नओवर एक्साइड एंव हिंदुस्तान मोटर्स जैसे कंपनियों के टर्नओवर से भी अधिक है। खुफिया सूत्रों के मुताबिक बिहार, झारखण्ड, छत्तीसगढ़ एंव आंध्र प्रदेष का राजस्व योगदान लगभग 40 प्रतिशत है। दरअसल प्रत्येक व्यापारिक घराने को क्षेत्र में एक निष्चित धनराशि नक्सलियों को देनी पड़ती है ताकि वे आराम से अपनी व्यापारिक गतिविधियां चला सकें। नक्सली इन व्यापारिक प्रतिष्ठानों पर तभी हमला करते हैं जब ये लोग नक्सलियों तक पैसा पहुंचाना बंद कर देते हैं अथवा बढ़ी हुयी मांग को पूरा नहीं करते हैं। मात्र इस एक तथ्य से ही नक्सलियों की पूरी अर्थव्यवस्था समझ में आ जाती है।[9]

नक्सली क्षेत्रों में वसूली का नेटवर्क समाज के प्रत्येक तबके तक जाता है। समाज के हर वर्ग और हर तबके के लोगों को नक्सलियों तक पैसा पहुंचाना पड़ता है। वसूली के कहर से कोई भी बचा नहीं है। अंतर सिर्फ इतना है कि कोई अपनी मर्जी से नक्सलियों को पैसा पहुंचाता है तो कोई जबरन इस वसूली का शिकार बनता है। स्थानीय सूत्रों के मुताबिक नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में प्रत्येक संगठन एंव प्रत्येक व्यक्ति का अलग से एक 'कोटा' निर्धारित रहता है। कोटा वह धनराषि होती है जो उस संगठन अथवा व्यक्ति द्वारा नक्सलियों को दी जानी होती है। नक्सली समर्थक ठेकेदारों के लिए यह कोटा-राषि, परियोजना की कुल लागत का लगभग 6 प्रतिशत होती है जबकि अन्य ठेकेदारों की कुल परियोजना लागत का 15 प्रतिशत तक 'कोटा' देना पड़ता है। वैसे अलग-अलग राज्यों तथा अलग-अलग क्षेत्रों में कोटे की यह राषि अलग-अलग होती है।[10]

बिहार में 'कोटे' को 'लेवी' कहा जाता है। यहां सामान्य सिविल ठेकों में लेवी की दर 5 से 10 प्रतिशत तक है जबकि प्रत्येक ट्रक से झारखंड में 50 रूपये प्रतिदिन के हिसाब से वसूले जाते हैं। यहां ट्रक तथा बस मालिकों को 1,000 से लेकर 5,000 रूपये तक प्रतिमाह 'लेवी' का भुगतान करना पड़ता है। केन्द्रीय स्तर पर इस ढांचे में एक केन्द्रीय समिति होती है और सबसे निचले स्तर पर इसमें गुरिल्ला-दस्ता होता है। हर स्तर पर नक्सली पदाधिकारी होते हैं जो हर प्रकार के खाते तैयार करते हैं। पदाधिकारियों की यह जिम्मेदारी है कि वे आय-व्यय का पूरा हिसाब रखें। सूत्रों के मुताबिक नक्सली अपनी आय का लगभग आधा हिस्सा, हथियारों तथा गोला-बारूद की खरीद पर खर्च करते हैं। नक्सली कैडर के लडाघ्कों को बाकायदा वेतन दिया जाता है जो 2500 रूपये से 3000 रूपये प्रतिमाह तक हो सकता है। घर से कामकाज करने वाले नक्सली काडर को कुछ भी नगद भुगतान नहीं किया जाता है। किस काडर को कहां से कितनी उगाही करनी है, इस संबंध में एक नीति है और नक्सली इस नीति का कड़ाई से पालन करते हैं। कुल उगाही का एक बडाघ हिस्सा, केन्द्रीय समिति को भेजना अनिवार्य होता है। गुरिल्ला काडर को उगाही का एक छोटा हिस्सा ही खर्च करने का अधिकार होता है। हालांकि नक्सली नेता अपने लड़ाकों को सादा जीवन जीने का निर्देष देते हैं लेकिन सभी नक्सली सादी जीवनषैली में विष्वास नहीं करते हैं। कुल उगाही का एक बडाघ हिस्सा, केन्द्रीय समिति को भेजे जाने का नियम है लेकिन सभी नक्सली हर बार ऐसा नहीं करते हैं।[11]

निष्कर्ष

इन सभी तथ्यों से स्पष्ट है कि नक्सली अपने आंदोलन को गति प्रदान करने के लिए आर्थिक स्रोतों की व्यवस्था करने के साथ-साथ सरकार ज्यादा आयोजित विकास परियोजनाओं को ध्वस्त करने के प्रयास में रहते है। नक्सलवादियों द्वारा की गयी कार्यवाहियों से यह बात स्पष्ट हो जाती है जिनमें विकास योजना, सड़को, पुलों, रेल की पटरियों, बिजली आपूर्ति व्यवस्था तथा औद्योगिक इकाईयो को निशाना बनाया जाता है।

संदर्भ

1. सक्सेना, विवेक, सुशील राजेश, नक्सली आतंकवाद, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ0 135
2. लालगढ़ में लोगों को मारना गलती थी: नक्सल संगठन, नवभारत टाइम्स, 19 अगस्त 2015
3. लाल क्रांति के आगे ठण्डा पड़ा सरकार का खून, आज तक ब्यूरो, 29 मई 2013
4. सक्सेना, विवेक, सुशील राजेश, नक्सली आतंकवाद, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ0 147
5. तिवारी, राजीव रंजन, भयावह होता नक्सलवाद का नासूर, दैनिक ट्रिब्यून, 23 फरवरी 2011
6. कुमार, संजीव, पांचजन्य, नक्सलियों का सच, 27 नवम्बर 2005
7. लाल क्रांति के आगे ठंडा पड़ा सरकार का खून, आज तक ब्यूरो, 29 मई 2013
8. सक्सेना, विवेक एवं सुशील राजेश, नक्सली आतंकवाद, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ0 166
9. तो ये है बिहार में जातीय नरसंहारों की सच्चाई, आईबीएन खबर, 23 सितम्बर 2015, 12:18 पीएम आईएसटी
10. मिश्रा, राजीव मिश्रा, बिहार में नक्सल टैक्स, एनडीटीवी, 18 मई 2015, 07:20 पीएम आईएसटी
11. ठाकुर, मणिकान्त, बिहार: माओवादियों ने पांच की हत्या की, बीबीसी हिन्दी डॉट कॉम, 22 मई 2010

मूल्य निर्धारण में गणित शिक्षण की प्रासंगिकता

डॉ० डोरी लाल

सहायक प्राध्यापक, शिक्षक प्रशिक्षण और अनौपचारिक शिक्षा विभाग (आई0ए0एस0ई0), शिक्षा संकाय
जामिया मिलिया इस्लामियॉ (केंद्रीय विश्वविद्यालय)- नई दिल्ली

सारांश

किसी व्यक्ति के व्यवहार को जानने में सीखना एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। संतुलित वातावरण में सीखना एक औपचारिक शिक्षा का अभिन्न अंग है। सीखना अगर मूल्य आधारित, गुणकारी और व्यवहारिक हो तो यह लोकतांत्रिक समाज के विकास में महती भूमिका निभा सकता है। गणित वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का अनिवार्य अंग है। एक लोकतंत्रवादी व्यक्ति में जितने गुण होने चाहिए इनमें से अधिकांश गुण गणित विषय के अध्ययन से विकसित हो सकते हैं। गणित के अध्ययन से बच्चों में स्वच्छता, यथार्थता, समय की पाबंदी, सच्चाई, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, आत्म निर्भरता, आत्मविश्वास, नियमों पर अडिग रहने की शक्ति, दूसरों की बात को सुनना एवं सम्मान देना, अच्छा बुरा सोचने की शक्ति जैसे गुणों का विकास स्वत: ही हो जाता है। इसी प्रकार गणित के अध्ययन से चरित्र निर्माण तथा नैतिक उत्थान में भी सहायता मिलती है। शिक्षा मानव दक्षता को प्राप्त करने, एक लोकतांत्रिक न्यायसंगत, समतामूलक, बंधुत्व प्रिय समाज और राष्ट्रीय विकास को बढावा देने के लिए एक आवश्यक साधन है। अत: गणित शिक्षण द्वारा छात्रों में मानवीय सामाजिक और लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास संभव है।

प्रस्तावना

शिक्षा का व्यापक उद्देश्य एक ऐसे समाज एवं राज्य की रचना करना है, जिसमें मानवीय मूल्यों को सर्वोपरि रखा जाये। शिक्षा का एकमात्र मकसद व्यक्ति को शिक्षित करना ही नहीं होता, बल्कि शिक्षा के कई अन्य मकसद भी होते हैं। इस बात को गांधी जी ने बहुत ही सुंदर शब्दों में कहा है कि शिक्षा के माध्यम से ही बच्चे का शारीरिक, मानसिक, नैतिक, चारित्रिक, बौद्धिक विकास संभव है अगर शिक्षा यह सब करने में सक्षम हो जाती है तो वह बच्चे के जीविकोपार्जन में महती भूमिका निभा सकती है। वही जॉन ड्यूवी शिक्षा से व्यापकता को इस प्रकार देखते हैं- शिक्षा व्यक्ति के उन सभी भीतरी शक्तियों का विकास करती है जिससे वह अपने वातावरण पर नियंत्रण रख कर अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर सकें। साथ ही समाज के नागरिक के रूप में अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाहन करते हुए और दूसरे व्यक्तियों, धर्मो और संस्कृतियों का सम्मान करना सीखना है।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964-66)- "शिक्षा राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक विकास का शक्तिशाली साधन है। शिक्षा राष्ट्रीय संपन्नता एवं राष्ट्र कल्याण की कुंजी है।" राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) के अनुसार, शिक्षा के व्यापक लक्ष्य छात्रों में विचार और कर्म की स्वतंत्रता विकसित करना, दूसरों के कल्याण और उनकी भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता पैदा करना, और साथ ही बच्चों को नई परिस्थितियों के प्रति लचीला और मौलिक ढंग से पेश आने में मदद करना। शिक्षा का मुख्य कार्य है कि छात्रों में लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं का सम्मान और उनमें सहभागिता, मौलिकता की अभिव्यक्ति, तथा सौन्दर्यबोध की समझ विकसित हो। और साथ ही आर्थिक प्रक्रियाओं व सामाजिक बदलाव की दिशा में कार्य करने व उसमें अपना योगदान देने की क्षमता भी विकसित हो सके।

भारतीय शिक्षा प्रणाली का मुख्य उद्देश्य भारत को एक ज्ञानोदय महाशक्ति बनाना है, जिससे कि मानवीय सभ्यता और संस्कृति में वांछनीय बदलाव ला सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु समय-समय पर विभिन्न आयोगों और समितियों ने बच्चों को उच्च स्तरीय गुणवत्ता पूर्वक शिक्षा उपलब्ध कराने की सिफारिश की है। इसके अलावा बच्चों को लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति समर्पित बनाना भी है। जिससे बेहतर समाज के निर्माण हेतु सुशिक्षित, कर्तव्य परायण, जिम्मेदार, राष्ट्रभक्त, और प्रगतिशील नागरिकों का निर्माण हो सके। लोकतंत्रवादी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्रों को प्रबुद्ध नागरिक बनाने और लोकतान्त्रिक जड़ो को गहरा करना है। स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व, न्याय एवं राष्ट्र की अखंडता भारतीय लोकतंत्र के मुख्य सिद्धांत संविधान की प्रस्तावना में जड़े हुए हीरे हैं। इन्हें राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक के अंदर समायोजित करने हेतु शिक्षा आवश्यक उपकरण है। जिससे देश का प्रत्येक नागरिक देश के विकास में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सके। ऐसे में शिक्षा के महत्त्व को देखते हुए शिक्षा को जन-जन तक फैलाने के लिए तीव्रगामी प्रयासों की सदैव ही आवश्यकता है। इक्कीसवीं सदी में भारत का हर नागरिक सुशिक्षित, समर्पित और संगठित हो, इसके लिए सभी जरूरी कदम अनवरत उठाने होंगे तभी हमारा देश पूर्ण रूप से सुशिक्षित राष्ट्र कहलाएगा।

मूल्य आधारित शिक्षण और गणित

गणित छात्र जीवन का एक अहम किरदार है इसके बिना पूर्ण शिक्षा की कल्पना असंभव है। छात्र गणित को विद्यारंभ से ही पढ़ना प्रारम्भ कर देते हैं। गणित एक ऐसा विषय है जो वैयक्तिक चेतना, तार्किकता, बुद्धिमत्ता और मानसिक जागरूकता की मांग करता है। गणित व्यक्ति में अमूर्त चिंतन, तार्किकता तथा परिकल्पनाएँ बनाने की योग्यता विकसित करने का सरल साधन है। गणितीय चिंतन और मनन एक दूसरे की भावनाओं को समझने, व्यक्त करने और उनका आदर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जिनका उपयोग विश्लेषणात्मक उद्देश्यों और व्यावहारिक अनुप्रयोगों दोनों के लिए किया जाता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (2005) ने गणित शिक्षण का मुख्य उद्देश्य बच्चों में गणितीय क्षमता और गणितीयकरण का विकास के साथ आत्मअभिव्यक्ति की क्षमता विकसित करना बताया है। हालांकि कुछेक शिक्षक गणित को सक्रिय रूप से छात्रों को शक्तिहीन करने का साधन समझते हैं । जबकि गणित शिक्षा का व्यापक उद्देश्य छात्रों को सशक्त बनाना है। शिक्षा को लोकतान्त्रिक भागीदारी और सामाजिक समानता का साधन मानते हुए गणित के लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण को अपनाने से इस लक्ष्य को और बढ़ने में मदद मिल सकती है। लोकतान्त्रिक गणितीय शिक्षा में गणित को ऐसे पढ़ाया जाना चाहिए जिससे छात्रों को लगे कि गणित मानवीय जांच के रूप में विकसित हुआ है ना कि बाहर से तैयार कर के पढ़ने के लिए दिया गया है। इसके साथ ही गणित को और अधिक लोकतान्त्रिक तरीके से प्रस्तुत करने के लिए छात्रों को गणितीय प्रक्रियाओं में संलगन होना सिखाया जाना चाहिए, जिससे वे गणित को अपनी दैनिक जीवन और आस-पास की समस्याओं को हल करने के साधन के रूप में इस्तेमाल कर सकें।

गणित बच्चों की मानसिक शक्तियों को प्रशिक्षित करने के साथ-साथ उन्हें नियंत्रित करना सिखाता है। और उनके व्यक्तित्व को गंभीर, विवेकपूर्ण एवं चिंतन जैसे गुण भी प्रदान करता है। गणित शिक्षण बच्चों में आत्म-अनुशासन, कर्तव्य बोध, ईमानदारी, समानता, ईर्ष्या आदि गुणों को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जिससे गणित पढ़ने वाला बच्चा कोई भी निर्णय लेने से पूर्व अपनी तर्क शक्ति, विवेक, धैर्य एवं आत्मविश्वास का उचित उपयोग कर लाभ-हानि के बारे में भली-भांति सोच लेता है। गणित छात्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी विकसित करता है। गणित ही ऐसा विषय है जिसके अध्ययन से बच्चे में कठिन परिश्रम एवं सुचारू रूप से कार्य करने की आदत का निर्माण होता है। इस संबंध में लॉक महोदय का मत है कि गणित एक ऐसा मार्ग है, जिससे तर्क की आदत स्थाई होती है। गणित विषय का ज्ञान यथार्थवाद तथा शुद्ध है, जो बच्चों के अंदर एक विशेष प्रकार का अनुशासन विकसित करता है। इससे बच्चों में अपने द्वारा प्राप्त किए गए ज्ञान को प्रयोग में लाने की योग्यता विकसित होती है। किसी सीखे हुए ज्ञान को प्रयोग में लाने की योग्यता भी एक प्रकार की का अनुशासन ही है। लोकतान्त्रिक समाज में जागरूक नागरिक के रूप में अनुशासन अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है, जो गणित शिक्षा के द्वारा छात्रों में आसानी से रोपित किया जा सकता है साथ ही अन्य मानवीय और लोकतांत्रिक मूल्यों को गणित की सहायता से छात्रों में विकसित किया जा सकता है ।

गणित सामाजिकता के निकटस्थ विषयों में अग्रणीय है। वास्तविक रूप से गणित विषय को इतना अधिक महत्व देने, अनिवार्य विषय बनाने का प्रमुख कारण है कि इस विषय के अध्ययन से बच्चों को विभिन्न लाभ होते हैं, जिनको हम गणित शिक्षण के मूल्य कहते हैं। अर्थात बच्चों को गणित पढ़ाए जाने से होने वाले लाभ का अध्ययन गणित शिक्षण के मूल्यों में किया जाता है। गणितीय संप्रत्ययों के शिक्षण-अधिगम से छात्रों में मानवीय मूल्यों की स्थापना की जा सकती है। एक गणित शिक्षक की जिम्मेदारी है कि वह केवल गणित की संक्रियाएं ही न सिखाते हुए बल्कि गणित को दैनिक जीवन के क्रियाकलापों से जोड़कर छात्रों में मूल्यों को स्थापित किया जाए। एक अच्छे गणित शिक्षक की योग्यता इस बात से तय की जा सकती है कि उसके द्वारा पढ़ाए गए संप्रत्यय छात्र में व्यवहारिक मूल्यों को किस प्रकार स्थापित किया गया है। गणित में जब श्रम विभाजन वाले प्रश्नों पर चर्चा हो तो आसानी यहाँ से बताया जा सकता है कि गणित कभी भी किसी एक विशेष वर्ग को अधिक कम करने तथा दुसरे वर्ग को कम कामकरने की पैरवी नहीं करता बल्कि श्रम विभाजन के दौरान सबको एक ही दृष्टि से देखा जाता है। यहाँ समानता सर्वोपरी रहती है। यदि गणितीय संप्रत्ययों को सावधानी और तर्कशक्ति के साथ उपयोग में लाया जाये तो यह मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपयोगी होगा। गणित तर्क के साथ ही मानवीय मूल्यों जैसे शिष्टता, समस्या समाधान और आत्म-अनुशासन के पुर्नद्धार के लिए आवश्यक हो सकता हैं।

एथ्नोमाथेमैटिक्स शाखा में छात्र अपने जीवन यापन के लिए महत्वपूर्ण योग्यताओ के साथ साथ रचनात्मकता तथा संस्कृति के सम्मान को सुदृढ करते है और व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते है। प्रतिदिन की घटनाओं से जोड़कर जब बच्चे गणित पढ़ते हैं तब वे मनुष्य और प्रकृति के मध्य अनुकूल व्यवहार करना सीखते हैं। गणित उपक्रम में विचारो की स्पष्टता और तर्क शक्ति का प्रयोग कर किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए पूर्वानुमान लगाए जा सकते हैं। किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए कई तरीके हो सकते है, यह केवल छात्र के विवेक पर निर्भर करता है कि वह कौन से तरीके का इस्तेमाल कर समस्या समाधान करता है। इस तरह कि योग्यता केवल गणित के द्वारा ही छात्रों में पैदा की जा सकती है। उदहारण के तौर पर देखे तो दो चारो वाले रेखीय समीकरणो को हल करने के चार तरीके सिखाये जाते हैं। जैसे- आलेखीय विधि,उन्मूलन विधि, प्रतिस्थापन तथा क्रॉस गुणन विधि इसी प्रकार द्विघात समीकरणो को हल करने के लिए आलेखीय विधि, मध्य पद को विभाजित करके, गुणनखंडों द्वारा तथा पूर्ण वर्ग बनाकर हल किया जा सकता है। अतः गणित छात्रों में किसी समस्या को हल करने की अभिव्यक्ति और उसे सुव्यवस्थित ढंग से हल करने की योग्यता विकसित करता है।

लोकतान्त्रिक मूल्यों प्राप्ति में गणित का योगदान

शिक्षक के रूप में अगर आप गणित पढ़ाते हैं तो आपके मन में एक बात जरूर आती होगी कि शिक्षा का यह जो ताना-बाना हमने इंसानियत, भाईचारा, सबके लिए न्याय, समतामूलक समाज, प्रेम और सौहार्द जैसे मूल्यों के लिए खड़ा किया गया है। इनको प्रतिस्थापित करने में गणित शिक्षक की क्या भूमिका है, विषय पढ़ाते हुए इन मूल्यों का समावेश कितना मुश्किल है और इन्हें हम कक्षा गत क्रियाकलापों के माध्यम से किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं। यह सभी मूल्य केवल गणितीय संप्रत्ययों को समझाने तक ही सीमित नहीं है। अपितु कक्षा में शिक्षक का व्यवहार उसके द्वारा गणितीय संप्रत्ययों उसकी भाषा शैली और उसके आदर्श सभी की बराबर भागीदारी मूल्यों के प्राप्त करने और उनके अनुपालन करने में है।

स्वतंत्रता- स्वतंत्रता लोकतंत्र का मूलघ है। एक लोकतांत्रिक राष्ट्र के लिए आवश्यक है कि वहां प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता सुनिश्चित हो सके और वह कोई भी दूसरें कि स्वतंत्रता का अतिक्रमण न कर सके, और ऐसा केवल शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव है। गणित का ज्ञान भी इस दिशा में सहभागी भूमिका निभा सकता है। यदि हम गणितीय शिक्षण-अधिगम में देखें तो पाएंगे कि गणित ऐसा विषय है जो इस सिद्धांत पर शत-प्रतिशत खरा उतरता है। यहां प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता, योग्यता, गति और तरीके के अनुसार गणितीय समस्याओं को हल करने की पूर्ण आजादी होती है। समस्या को चाहे किसी भी विधि से हल किया गया हो अंत में सभी एक ही उत्तर पर पहुंचते हैं। कोई भी अमुक विधि दूसरी विधि के क्रियान्वयन में बाधक नहीं होती। अत: गणित में छात्र समस्याओं को अपने विवेक और क्षमता के अनुसार हल करने के लिए स्वतंत्र है।

समता एवं समानता- सामाजिक सन्दर्भों में समानता का अर्थ किसी समाज की उस स्थिति से है जिसमें उस समाज के सभी लोग समान (अलग-अलग नहीं) अधिकार या प्रतिष्ठा रखते हैं। वहीं समतावाद का दर्शन ऐसी व्यवस्था का समर्थन करता है जिसमें सम्पन्न और समर्थ व्यक्तियों के साथ-साथ निर्बल, निर्धन और वंचित व्यक्तियों को भी आत्मविकास के लिए उपयुक्त अवसर और अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त हो सकें। छात्र जीवन में इन बिंदुओं पर किसी न किसी रूप में वैचारिक मतभेद होना आम बात है। परन्तु गणित इन मतभेद मिटाकर एक साथ काम करने (अपनी पहचान को स्थापित रखते हुए) की प्रेरणा देता है। गणित की सार्वभौमिकता समानता के इस विचार को मजबूत करती है। गणित एक ऐसा विषय है जिसके नियम, सूत्र, सिद्धांत, प्रतीक कभी भी देश की सीमाओं में नहीं बांधे जा सकते हैं। मापन के विभिन्न प्रकार के उपकरणों के मान पर समय, काल और परिस्थिति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात उनका मूल्य (धारिता) हर परिस्थिति में समान होता है। गणित में समस्याओं को हल करते समय किसी व्यक्ति विशेष का कोई प्रभाव उन पर नहीं पड़ता। क्षेत्रमिति, ज्यामितीय निर्माण, युगपत समीकरण और त्रिकोणमिति जैसे अध्याय छात्रों में समता एवं समानता की भावना विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। जैसे: $\mathrm{Sin}2\theta + \mathrm{Cos}\,2\theta = 1$ और $3x + 5 = 8$ समीकरण में दो पक्ष हैं- बायां पक्ष और दायाँ पक्ष। यह दोनों ही पक्ष मिलकर सामाजिक संतुलन, समानता बनाए रखने का संदेश देते हैं। गणित बच्चे को अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखने का अभ्यास कराता है तथा उच्च प्रशिक्षण प्रदान करता है।

सामाजिक न्याय- सामाजिक न्याय का विचार लोकतंत्र का एक महत्वपूर्ण स्तंभ है। लोकतान्त्रिक समाज की जिम्मेदारी है, कि वह प्रत्येक व्यक्ति को बिना भेदभाव के न्याय मिले। सामुदायिक वातावरण में गणित पढ़ने से छात्रों में समाजिक मुद्दों को सीखने समझने में मदद मिलती है। जब छात्र सामुदायिक शिक्षण प्रशिक्षण शिविर में भाग लेते है, तब उनमें सामाजिक मुद्दों को समझने की अच्छी समझ पैदा होती है और छात्र स्वयं को सामाजिक मुद्दों से जुड़ा हुआ महसूस करते हैं और साथ ही उनके समाधान में योगदान करने की क्षमता विकसित होती है। गणित शिक्षण का एक उद्देश्य यह भी है कि छात्रों को इस बात की अनुभूति कराए कि गणित और सांख्यिकी सामाजिक बदलाव लाने के लिए महत्वपूर्ण तंत्र है। और साथ ही छात्रों में यह भावना पैदा की जाए की वे इस सामाजिक भागीदारी में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। गणित विषय का प्रयोग समस्याओं के समाधान खोजने, व्यक्ति में विश्लेषण-संश्लेषण एवं मूल्यांकन की योग्यता भी विकसित करता है, जिससे व्यक्ति में सही और गलत, उचित और अनुचित को सिद्ध करने की क्षमता विकसित होती है। इस प्रकार छात्रों में सामाजिक न्याय की इस संकल्पना को स्थापित किया जा सकता है।

बंधुत्व- सामान्यत: बंधुत्व का तात्पर्य व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह में भाईचारे की भावना, मैत्रीपूर्ण व्यवहार एवं एक दूसरे से परस्पर सहयोग की भावना से है। हालांकि यदि भारतीय संविधान की प्रस्तावना के संदर्भ में बंधुत्व का अर्थ समझा जाए तो यह राष्ट्र की एकता और अखंडता तथा व्यक्ति की गरिमा को सुनिश्चित करने से है। जिस प्रकार बंधुत्व समाज के प्रत्येक नागरिक को जोडने में सहायक है, उसी प्रकार गणित का काम एक विषय को दूसरे विषय के साथ जोड़ना है। गणित का ज्ञान विभिन्न विषयों के लिए बुनियाद का पत्थर की तरह है। विज्ञान, ड्राइंग, एग्रीकल्चर, ज्योतिष शास्त्र, वाणिज्य, सैन्य विज्ञान, कंप्यूटर, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, सांख्यिकी, खगोल शास्त्र, इंजीनियरिंग, मेडिकल, अर्थशास्त्र इत्यादि के लिए आवश्यक है कि बच्चे को गणित की बुनियादी जानकारी हो। गणित इन सभी विषयों के लिए आधार का काम करता है। गणित के संप्रत्ययों में यदि हम समानता देखें तो सभी संप्रत्यय एक दूसरे पर आश्रित है अर्थात सभी एक कड़ी में बंधे हैं गणित अध्यापक कक्षा में इस प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत कर या छात्रों को समूह क्रियाकलाप करा कर उनमें बंधुत्व की भावना पैदा कर सकता है। जिससे समाज में आपसी तालमेल तथा भाईचारे की भावना विकसित करने में मदद मिलती है।

निष्कर्ष

आदर्श शिक्षा वही है जो कि बालक को प्रारंभ से ही समाज के लिए योग्य नागरिक बनाने में सहायता प्रदान करती है। नेपोलियन ने गणित शिक्षण के सामाजिक महत्व को स्वीकार करते हुए स्पष्ट किया कि गणित की उन्नति तथा वृद्धि देश की संपन्नता से संबंधित है। इस प्रकार समाज की उन्नति को उचित ढंग से समझने के लिए ही नहीं बल्कि समाज को आगे बढ़ाने के लिए भी गणित की प्रमुख भूमिका रही है। जिस प्रकार लोकतांत्रिक आदर्शों एवं विचारों को मानव जीवन में लाने के लिए शिक्षा की आवश्यकता है उतनी ही आवश्यकता गणित शिक्षा की भी है। गणित शिक्षण का उद्देश्य छात्रों में गणितीय कौशल के साथ-साथ लोकतान्त्रिक आदर्शो को उपजाना होना चाहिए। जिससे वे लोकतंत्र के निर्माण में सहयोग करने वाले आदर्श नागरिक बनें। वास्तविक रूप में गणित के संबंध में हमें दो बातों को समझना चाहिए। पहली यह कि सभी छात्र गणित सीख सकते हैं और दूसरी सभी को गणित सीखने की जरूरत है। अत: कक्षा गत गणित ऐसा होना चाहिए कि जो छात्रों में रचनात्मकता समालोचकता और चिंतनशीलता पैदा कर उन्हें एक बेहतर नागरिक बनाने की दिशा में प्रयास करें साथ ही उनमें बदलते परिवेश के अनुरूप विवेचनात्मक फैसले लेने की क्षमता भी। वर्तमान में हमारी सामाजिक संरचना इतनी वैज्ञानिक एवं सुव्यवस्थित नजर आती है जिसका श्रेय भी गणित को ही जाता है। गणित के ज्ञान के अभाव में हमारी सामाजिक संरचना और व्यवस्था का स्वरूप विखंडित हो सकता है। अत: गणित शिक्षक यह जिम्मेदारी है कि वह अपने ज्ञान और आचरण से गणितीय संकल्पना के साथ-साथ छात्रों में सामाजिक और लोकतांत्रिक आदर्शो को पैदा करने की दिशा में आवश्यक कदम उठाता रहे।

सन्दर्भ सूची

1. एगुइलर, एम.एस., और जवलेटा, जे.जी.एम. (2012). ऑन द लिंक्स बिटवीन मैथमेटिक्स एजुकेशन एंड डेमोक्रेसी: अ लिटरेचर रिव्यु. पाइथागोरस, 33(2), 1-15.
2. स्टेमहेगन, के। (2011). डेमोक्रेसी एंड स्कूल मैथ रू टीचर बिलीफ-प्रैक्टिस टेंशन्स एंड द प्रॉब्लम ऑफ एम्पिरिकल रिसर्च ऑन एजुकेशनल ऐम्स. डेमोक्रेसी एंड एजुकेशन, 19 (2), अनुच्छेद 4।
3. विट्रुल, आर. (2012). गणित शिक्षा, लोकतंत्र और विकास: संबंधों की खोज, पाइथागोरस, 33(2), 1-14.
4. डीश्अम्ब्रोसियो, यू. (1990). द रोल ऑफ मैथमेटिक्स एजुकेशन इन बिल्डिंग ए डेमोक्रेटिक एंड जस्ट सोसाइटी. फॉर द लर्निंग ऑफ मैथमेटिक्स, 10(3), 20-23।
5. एम0 एच0 आर0 डी0 (2016). राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रारुप. मानव संसाधन विकास मंत्रालय. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार।
6. एम0 एच0 आर0 डी0 (1986). नई शिक्षा नीति. मानव संसाधन विकास मंत्रालय. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार।
7. एन0सी0ई0आर0टी0 (2005). राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।
8. एन0सी0ई0आर0टी0 (2005). राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।
9. एन0सी0ई0आर0टी0 (2005). राष्ट्रीय फोकस समूह का आधर पत्र-गणित शिक्षण. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।

भारतीय जीवन बीमा निगम - एक अध्ययन

डॉ० विजय ग्रेवाल

सहायक प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय महाविद्यालय राणापुर जिला झाबुआ

दीपिका यादव

सहायक प्राध्यापक, वाणिज्य, श्री नीलकण्ठेश्वर शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खण्डवा

प्रस्तावना-मानव जीवन अनिश्चित है तथा हर व्यक्ति भविष्य के प्रति चिंतनशील रहता है। भविष्य के गर्भ में अनेकों आर्थिक, पारिवारिक एवं सामाजिक घटनाओं के घटित होने की संभावना बनी रहती है ऐसी आकस्मिक घटनाओं का भय किसी भी व्यक्ति को चिंतित करता रहता है। भविष्य में होने वाली इन्हीं आर्थिक घटनाओं से स्वयं एवं परिवार को सुरक्षा प्रदान करने के लिए मनुष्य द्वारा धन को संचित करके रखा जाता है। जीवन की सुरक्षा, आकस्मिकता का निपटान एवं निवेश के अवसर इन तीनों ही बातों को पूरा करने में जीवन बीमा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। जीवन बीमा एक ऐसा वित्तीय उत्पाद है, जो बीमित व्यक्ति को जीवन के साथ तथा जीवन के बाद भी वित्तीय सुरक्षा का आश्वासन प्रदान करता है। विभिन्न बीमा कंपनियों द्वारा संचालित जीवन बीमा पॉलिसियाँ न केवल जीवन की सुरक्षा का आश्वासन देती है, बल्कि ये पॉलिसियाँ लोगों में बचत एवं निवेश की आदत को प्रोत्साहन देने में भी अपना अमूल्य योगदान देती है। वर्तमान में भारत में अनेकों बीमा कंपनियाँ अपना व्यवसाय संचालित कर रही है जिनमें से भारतीय जीवन बीमा निगम सर्वाधिक प्राचीन एवं लोकप्रिय नाम है। जीवन बीमा के क्षेत्र में इस बीमा कंपनी ने अपना खास मुकाम हासिल किया है। भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा अपने ग्राहकों के लिए हमेशा ही एक से बढ़कर एक वित्तीय उत्पादों को प्रस्तुत किया जाता रहा है, जो उन्हें बेहतर प्रत्याय, जीवन एवं भविष्य की सुरक्षा, वित्तीय सुदृढ़ता एवं कर बचत के लाभों को भी प्रदान करते है। भारतीय जीवन बीमा निगम अपनी प्रतिस्पर्धी कंपनियों की तुलना में कहीं अधिक लोकप्रिय एवं विश्वसनीय जीवन बीमा कंपनी है जो अपने ग्राहकों की आशाओं एवं अपेक्षाओं को पूरा करने हेतु निरंतर प्रयत्नशील है।

शोध के उद्देश्यः- प्रस्तुत शोध पत्र निम्न उद्देश्यों पर आधारित रहा -

- भारतीय जीवन बीमा निगम का परिचय प्रस्तुत करना।
- निगम द्वारा संचालित विभिन्न वित्तीय उत्पादों का अध्ययन करना ।
- विभिन्न बीमा योजनाओं के गुण एवं दोषों का अध्ययन करना ।

शोध की विधि- प्रस्तुत शोध की प्रकृति विवरणात्मक है तथा यह शोध पूर्णतः द्वितीयक समंकों पर आधारित रहा है। समंकों के संग्रहण हेतु विषय से संबंधित पुस्तकों पत्र-पत्रिकाओं, शोध-पत्रों, शोध आलेखों एवं भारतीय जीवन बीमा निगम के वार्षिक प्रतिवेदनों से प्राप्त जानकारियों का प्रयोग किया गया है।

भारतीय जीवन बीमा निगम का संक्षिप्त परिचय- भारतीय जीवन बीमा निगम भारत की सबसे बड़ी जीवन बीमा कंपनी है जिसकी स्थापना 1 सितम्बर 1956 को की गयी थी। यह निगम पूर्णतः भारत सरकार के स्वामित्व में है। निगम का मुख्यालय मुंबई में स्थित है। निगम द्वारा विभिन्न प्रकार के वित्तीय उत्पादों को ग्राहकों को उपलब्ध कराया जाता है, इनमें जीवन बीमा, स्वास्थ्य बीमा, निवेश प्रबंधन, म्यूचुअल फण्ड आदि प्रमुख है। भारतीय जीवन बीमा की संरचना को संक्षिप्त रूप में निम्न सारणी के माध्यम में समझा जा सकता है:-

सारणी क्रमांक- 1 भारतीय जीवन बीमा निगम का संक्षिप्त परिचय

	विवरण
उद्योग	बीमा एवं वित्तीय सुविधाएँ
स्थापना	1 सितम्बर 1956
मुख्यालय	मुम्बई, भारत
कर्मचारी	1,14,498 (31 मार्च 2020)
एजेण्टों की संख्या	12,08,826 (31 मार्च 2020)
कार्यालय एवं षाखा कार्यालयों की संख्या	8 जोनल कार्यालय, 113 डिवीजनल कार्यालय, 2048 शाखा कार्यालय एवं 1 मुख्यालय
उत्पाद	जीवन बीमा, स्वास्थ्य बीमा, निवेश प्रबंधन एवं म्यूचुअल फण्ड

स्वामित्व	वित्त मंत्रालय, भारत सरकार
राजस्व	56,078,439 लाख (2019)
निवल आय	270,348 लाख (2019)
कुल संपत्ति	31,11,847 करोड़ (2019)
सहायक कंपनियाँ	एलआईसी हाऊसिंग फायनेन्स, एलआईसी इंटरनेशनल लिमिटेड, एलआईसी म्यूचुअल फण्ड लिमिटेड, एलआईसी पेंशन फण्ड लिमिटेड, आईडीबीआई बैंक,
वेबसाईट	www.licindia.in

स्त्रोत:–भारतीय जीवन बीमा निगम को वार्षिक प्रतिवेदनों से प्राप्त जानकारी के अनुसार

भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा संचालित विभिन्न वित्तीय उत्पाद – भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा निम्न वित्तीय उत्पादों को ग्राहकों के लिए संचालित किया जाता है–

जीवन बीमा:– निगम द्वारा संचालित यह बीमा ग्राहकों को बीमा एवं निवेश दोनों के ही लाभ उपलब्ध कराता है। जोखिम एवं निवेश दोनों तत्व मौजूद होने के कारण जीवन बीमा योजनाएँ ग्राहकों के मध्य अत्यंत लोकप्रिय बीमा योजनाएँ है। जीवन बीमा बीमाकर्ता एवं बीमित व्यक्ति के मध्य किया गया एक अनुबंध होता है जिसके अंतर्गत एक निश्चित समयावधि के लिए, निश्चित धनराशि का प्रीमियम के रूप में बीमा कंपनी को भुगतान किया जाता है। बीमा अवधि की समाप्ति पर बीमा कंपनी द्वारा बीमित राशि का बोनस सहित भुगतान बीमाधारक अथवा मृत्यु की दशा में नामित व्यक्ति को कर दिया जाता है। भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा विभिन्न प्रकार की जीवन बीमा योजनाओं का संचालन किया जाता है जिनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है। –

1) बंदोबस्ती जीवन बीमा:– बंदोबस्ती जीवन बीमा पॉलिसी, जीवन बीमा की पारंपरिक योजना है। इस बीमा पॉलिसी के अंतर्गत एक निश्चित समयावधि के लिए रिस्क कवर प्रदान किया जाता है तथा उस अवधि की समाप्ति पर बीमित राशि का बोनस सहित भुगतान कर दिया जाता है।
2) मनी बैक बीमा पॉलिसी:– ये पॉलिसी भी एक तरह की बंदोबस्ती जीवन बीमा पॉलिसी होती है परंतु इस पॉलिसी के अंतर्गत बीमाधारक को बीमित राशि का बोनस सहित किश्तों में भुगतान किया जाता है। अंतिम किश्त का भुगतान पॉलिसी की समाप्ति पर किया जाता है।
3) टर्म बीमा पॉलिसी:– यह बीमा पॉलिसी एक निश्चित समयावधि के लिए संचालित जीवन बीमा है जिसे सामान्यत: 10 वर्ष, 20 वर्ष एवं 30 वर्ष की दीर्घकालीन अवधि के लिए क्रय किया जा सकता है। टर्म बीमा के अंतर्गत परिपक्वता लाभ प्रदान नहीं किया जाता है बल्कि यह पॉलिसी लाभ एवं बचत तत्व से रहित होती है। टर्म बीमा में बीमा अवधि के दौरान बीमाधारक की मृत्यु हो जाने पर तय धनराशि का नामिति को भुगतान किया जाता है।
4) संपूर्ण जीवन बीमा:– इस बीमा पॉलिसी की कोई परिपक्वता अवधि नहीं होती है। अर्थात् यह पॉलिसी बीमाधारक को जीवन पर्यंत रिस्क कवर प्रदान करती है। चूँकि यह पॉलिसी व्यक्ति को जीवन पर्यंत रिस्क कवर प्रदान करती है इसलिए इसकी प्रीमियम अन्य पॉलिसियों की अपेक्षा अधिक होती है। संपूर्ण जीवन बीमा के अंतर्गत बीमाधारक आवश्यकता होने पर आंशिक धन निकासी भी कर सकता है।
5) वार्षिकी बीमा पॉलिसी:– वार्षिकी बीमा योजना पेंशन प्लान योजनाएँ होती है जो भविष्य में सेवानिवृत्ति पर वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करती है। ये पॉलिसी भी एक निवेश उपकरण है जो पेंशन के रूप में नियमित आय का भुगतान करती है।
6) यूनिट लिंक्ड बीमा पॉलिसी:– यूलिप बीमा पॉलिसी ऐसी बीमा पॉलिसी है जो बीमाधारक को बाजार निवेश एवं बीमा दोनों के ही लाभ प्रदान करती है। यूलिप योजनाओं में भुगतान किया गया प्रीमियम आंशिकरूप से जोखिम कवर के रूप में उपयोग किया जाता है तथा शेष राशि को फण्ड में निवेशित किया जाता है जिससे पॉलिसीधारक को बाजार संबंधी लाभ भी प्राप्त होते है।
7) समूह बीमा योजना:– समूह बीमा योजना में एक ही प्लान के अंतर्गत एक पूर्व निर्धारित समूह का बीमा किया जाता है। ऐसी पॉलिसी में समूह के सभी सदस्यों को एक समान रिस्क कवर प्रदान किया जाता है। समूह बीमा योजना में समूह के प्रत्येक सदस्य को अलग से बीमा पॉलिसी लेने की आवश्यकता नहीं होती है।
8) अन्य जीवन बीमा:–उपरोक्त के अतिरिक्त निगम द्वारा चाइल्ड इंश्योरेन्स प्लान, बचत एवं निवेश संबंधी जीवन बीमा आदि का भी संचालन किया जाता है।

सारणी क्रमांक 2:– भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा संचालित कुछ प्रमुख जीवन बीमा योजनाएँ

क्र.सं.	*जीवन बीमा के प्रकार*	*पॉलिसी के नाम*
1	बंदोबस्ती जीवन बीमा	एलआईसी बीमा ज्योति, एलआईसी बचत प्लस, एलआईसी जीवन लक्ष्य, एलआईसी न्यू जीवन आनंद, एलआईसी न्यू एण्डोमेन्ट प्लान,
2	मनी बैक जीवन बीमा	एलआईसी धन रेखा, एलआईसी न्यू बीमा बचत, एलआईसी न्यू मनी बैक प्लान – 20 वर्षीय एवं 25 वर्षीय,एलआईसी जीवन उमंग, एलआईसी जीवन तरूण,
3	टर्म–बीमा पॉलिसी	एलआईसी टेक टर्म, एलआईसी जीवन अमर, एलआईसी सरल जीवन बीमा,
4	संपूर्ण जीवन बीमा	एलआईसी जीवन उमंग,

5	वार्षिक बीमा पॉलिसी	एलआईसी जीवन अक्षय-टप्प, एलआईसी न्यू जीवन शांति, एलआईसी सरल पेंशन,
6	यूनिट लिंक्ड बीमा पॉलिसी	एलआईसी निवेष प्लस, एलआईसी सिप ;प्प्द्ध, एलआईसी न्यू एण्डोमेन्ट प्लस,
7	अन्य जीवन बीमा	एलआईसी न्यू चिल्ड्रन मनी बैक प्लान, एलआईसी लिंक्ड एक्सीडेन्टल डेथ बेनिफिट राइडर,

(स्त्रोत -https:www.licindia.in)

स्वास्थ्य बीमा:- निगम द्वारा संचालित यह बीमा बीमाधारक एवं उसके आश्रितों को स्वास्थ्य समस्या, दुर्घटना एवं मृत्यु आदि की दशा में आर्थिक सहायता प्रदान करता है। स्वास्थ्य बीमा पॉलिसी मूलत: अचानक होने वाले चिकित्सीय व्ययों से बीमाधारक को बचाने के लिए तैयार की गयी है। निगम द्वारा वर्तमान में एफएक्यू अण्डर एलआईसी हेल्थ प्रोटेक्शन प्लस, एलआईसी कैंसर कवर एवं एलआईसी आरोग्य रक्षक आदि स्वास्थ्य बीमा पॉलिसियों का संचालन किया जा रहा है।

म्यूचुअल फण्ड:- भारतीय जीवन बीमा निगम के द्वारा म्यूचुअल फण्ड योजनाओं का भी संचालन किया जाता है। निगम द्वारा म्यूचुअल फण्ड योजनाओं का संचालन इसकी सहायक कंपनी स्प्ब् डन्ज्नस् थ्न्छक् के माध्यम से किया जाता है। एलआईसी की म्यूचुअल फण्ड की योजनाएँ निवेशकों के मध्य काफी लोकप्रिय है क्योंकि इन योजनाओं में किए गए निवेश पर निवेशकों को 17 फीसदी से लेकर 19 फीसदी तक रिटर्न प्राप्त हुआ है, जो कि बैंक सावधि जमाओं पर प्राप्त प्रत्याय से कहीं अधिक है। एलआईसी द्वारा वर्तमान में एलआईसी-एमएफ लार्ज एंड मिड कैप फण्ड, एलआईसी - एम एफ लार्ज कैप फण्ड, एलआईसी - एमएफ टैक्स प्लान एवं एलआईसी- एम.एफ. इंडेक्स - निफ्टी प्लान आदि म्यूचुअल फण्ड योजनाओं का संचालन किया जाता है। इनके अतिरिक्त निगम डेट एवं हाईब्रिड म्यूचुअल फण्ड का भी संचालन करता है।

निगम द्वारा संचालित विभिन्न बीमा योजनाओं की विशेषताएँ:-निगम द्वारा संचालित विभिन्न बीमा योजनाएँ अनेक विशेषताओं से युक्त होती है। इन विषेषताओं का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है-

1) निगम द्वारा संचालित विभिन्न जीवन बीमा पॉलिसियाँ जोखिम कवर का आश्वासन प्रदान करती है अर्थात् ये पॉलिसियाँ आकस्मिक दुर्घटनाओं के घटित होने पर निवेशक एवं उसके परिवार को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करती है।
2) विभिन्न बीमा पॉलिसियों पर निवेशक को सुनिश्चित प्रत्याय प्रदान किया जाता है अत: प्रत्याय की सुनिश्चितता भी इनकी महत्वपूर्ण विषेषता होती है।
3) बीमा पॉलिसियों में संपत्ति निर्माण अथवा पूँजी निर्माण का गुण भी विद्यमान होता है।
4) बीमा पॉलिसियों के अंतर्गत निवेशक द्वारा एक सुनिश्चित प्रीमियम का भुगतान किया जाता है जो मासिक, तिमाही, छ:माही अथवा वार्षिक आधार पर भुगतान की जाती है। निवेशक प्रीमियम के भुगतान की अवधि का चयन अपनी सुविधा के अनुसार कर सकता है।
5) निगम द्वारा संचालित बीमा पॉलिसियाँ सामान्यत: दीर्घकाल के लिए संचालित की जाती है अत: इनमें दीर्घकालीन निवेश का गुण भी विद्यमान होता है।
6) जीवन बीमा पॉलिसियाँ बचत के गुण को भी समाहित किए हुए होती है। ऐसे निवेशक जो जीवन की सुरक्षा के साथ बचत भी करना चाहते है, उन्हें ये पॉलिसियाँ बचत एवं निवेश करने हेतु प्रोत्साहित करती है।
7) निगम द्वारा संचालित विभिन्न योजनाओं की एक प्रमुख विषेषता कर बचत भी है क्योंकि जीवन बीमा एवं स्वास्थ्य बीमा हेतु चुकाई गई प्रीमियम पर आयकर अधिनियम 1961 के अंतर्गत कर की छूट भी प्राप्त होती है।

विभिन्न बीमा पॉलिसियों के दोष:- कोई भी निवेश उपकरण पूर्णत: दोषरहित नहीं होता है। हर निवेश योजना में कुछ विशेषताएँ होती है तो कुछ दोष भी विद्यमान होते है। निगम द्वारा संचालित विभिन्न बीमा पॉलिसियों के भी कुछ दोष है जो निम्न प्रकार है-

1) निगम द्वारा संचालित विभिन्न बीमा योजनाओं में निवेशक अपनी सुविधानुसार प्रीमियम की राशि का चुनाव कर सकता है किंतु वृद्ध बीमाधारक की दशा में प्रीमियम की राषि नवयुवकों की अपेक्षा अधिक होती है अर्थात् वृद्ध निवेशकों को उच्च प्रीमियम चुकाने हेतु बाध्य होना पड़ता है।
2) निगम द्वारा संचालित बीमा पॉलिसयों पर प्राप्त प्रत्याय की गणना को समझना एक सामान्य व्यक्ति लिए अत्यंत ही जटिल कार्य होता है।
3) बीमा पॉलिसी के क्रय के समय अनेक ऐसे छिपे हुए क्लॉज होते है जिन्हें निवेशक के समक्ष उजागर नहीं किया जाता है ऐसे में जब किसी आकस्मिक घटना के घटित होने पर बीमाधारक अथवा उसके नामिति द्वारा भुगतान हेतु क्लेम किया जाता है, तो कंपनी इन नियम एवं शर्तों का हवाला देकर भुगतान देने से असमर्थता व्यक्त कर देती है।

निगम द्वारा संचालित जीवन बीमा पॉलिसियॉ निवेशक को जोखिम कवर का आश्वसान प्रदान करती है परंतु निम्न दशाओं में जोखिम कवर नहीं प्रदान किया जाता है -

1) यदि बीमाधारक की मृत्यु होती है परंतु उसकी मृत्यु का कारण आत्महत्या अथवा कैंसर जैसी गंभीर बीमारी है तो ऐसी दशा में बीमाधारक के नामिति को जोखिम कवर प्रदान नहीं किया जाता है।
2) यदि बीमाधारक द्वारा नशीली दवाओं, शराब आदि का सेवन किया जाता है और उस वजह से दुर्घटना अथवा बीमारी होने से उसकी मृत्यु बीमा अवधि की समाप्ति के पूर्व हो जाती है तो ऐसी दशा में भी बीमा कंपनी द्वारा बीमा लाभ प्रदान नहीं किया जाता है।

निष्कर्ष:- प्रस्तुत शोध पत्र के अध्ययन के पश्चात् निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए -

1) भारत में वर्तमान में अनेक बीमा कंपनियाँ अपना व्यापार संचालित कर रही है। जिनमें से भारतीय जीवन बीमा निगम सर्वाधिक प्राचीन, लोकप्रिय एवं विश्वसनीय बीमा कंपनी है।

2) निगम के द्वारा विभिन्न वित्तीय उत्पादों जैसे बीमा, निवेश प्रबंधन एवं म्यूचुअल फण्ड आदि का विक्रय किया जाता है।

3) निगम के द्वारा सामान्यतः जीवन बीमा, स्वास्थ्य बीमा, सामूहिक बीमा एवं संपत्ति बीमा आदि का संचालन किया जाता है।

4) निगम द्वारा संचालित बीमा पॉलिसी रिस्क कवर के साथ बचत एवं निवेश के अवसर भी प्रदान करती है।

5) ये बीमा पॉलिसी विभिन्न गुणों जैसे जीवन की सुरक्षा, वित्तीय सुदृढ़ता, प्रत्याय की सुनिश्चितता, दीर्घकालीन निवेश के अवसर जोखिम का प्रबंधन, एवं कर बचत आदि से परिपूर्ण होती है।

उपसंहारः- भारतीय जीवन बीमा निगम बीमा के क्षेत्र में सर्वाधिक लोकप्रिय एवं विश्वसनीय बीमा कंपनी है। निगम द्वारा अपनी स्थापना से लेकर वर्तमान समय तक निरंतर प्रगति की गई है। भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा विभिन्न वित्तीय उत्पादों जैसे जीवन बीमा, स्वास्थ्य बीमा एवं म्यूचुअल फण्ड योजनाओं का संचालन किया जाता है जिनमें निवेश कर एक सामान्य व्यक्ति बीमा लाभ के साथ बचत एवं निवेश के लाभों को भी प्राप्त कर सकता है। निगम द्वारा संचालित योजनाएँ अनेक विशेषताओं जैसे जोखिम से सुरक्षा, पूँजी निर्माण, बचत एवं निवेश तत्व की विद्यमानता, सुनिश्चित प्रत्याय, दीर्घकालीन निवेश एवं कर बचत आदि से परिपूर्ण होती है। भारतीय जीवन बीमा निगम देश के आर्थिक विकास को भी प्रोत्साहन देता है क्योंकि निगम द्वारा विभिन्न पॉलिसियों से प्राप्त धनराशि को देश के पूँजी निर्माण, अधोसंरचनात्मक विकास एवं नवीन उद्योग धंधों की स्थापना के लिए ऋण के रूप में प्रदान किया जाता है, जिसके फलस्वरूप राष्ट्र का आर्थिक विकास संभव हो पाता है। अंत में सारांश के रूप यह कहा जा सकता है कि भारतीय जीवन बीमा निगम न केवल बीमा के क्षेत्र में अपितु निवेश के क्षेत्र में भी अपना वर्चस्व स्थापित कर रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

- Anmeti, uskana, 2013, "The importance and characteristics of life Insurance", Research Journal of finance and Accounting, vol.4, No.19, page 188-189
- Dhar, pranam, 2018, "Growth of life Insurance Business in India: A study", International Journal of Applied science and Engineering, June, 6(1) Page No.19-35.
- Dr. Pranam, Hiral, 2018, "A study of operating performance of LIC of India," Zenith International Journal of multidisciplinary research, october, vol.8(10), Page No. 1-7
- Natrajan, R.R. and Dr. Sundararaman, R, 2018, "Performance Evaluation of (LIC) of India in Tiruchirappalli District", GJRA – Global Journal for Research analysis, October, Vol-4, Issue 10, Page No. 58-60.
- Agrawal, Shilpa and mishra A.k., 2017, "Life Insurance Industry of India – Past, Present & Future"' SSRG International Journal of Economics and Management studies, April, Vol.4, Issue – 4 Page No. 42-45.
- Reddy, V.V.N. and Reddy, S.M., 2019, "Performance of life Insurance corporation of India: A post deregulation experience, "International Journal of management, Technology And Engineering, February, Vol.IX, Issue II, Page No 1782 – 1791.
- https://www.tomorrowmakers.com
- https://www.hindivyakran.com
- https://www.licindia.in
- https://www.policyx.com
- https://www.ilearnlot.com
- https://www.policybazaar.com
- भारतीय जीवन बीमा निगम के वार्षिक प्रतिवेदन

छायावाद युगीन प्रमुख जीवनी 'सुमित्रानन्दन पन्त जीवन और साहित्य' का समीक्षात्मक अध्ययन

रीनू यादव

शोध छात्रा, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सुमित्रानन्दन पन्त हिन्दी साहित्य में छायावादी काव्यधारा के प्रमुख उन्नायकों में से हैं। नन्ददुलारे बाजपेयी, रामचन्द शुक्ल आदि समीक्षकों ने उन्हें छायावाद का प्रवर्तक और सर्वप्रमुख कवि के रूप में मान्यता दी है। उनकी प्रसिद्ध रचना 'पल्लव' में लिखी गई उसकी भूमिका को विद्वानों ने 'छायावाद का मेनोफेस्टो' घोषित किया है। ऐसे महत्वपूर्ण साहित्य मनीषियों का जीवन परिचय लिखना जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही चुनौतीपूर्ण भी है। शान्ति जोशी ने 'सुमित्रानन्दन पन्त' जीवन और साहित्य' शीर्षक से दो खण्डों में उनकी विस्तृत जीवनी लिखकर एक अभाव की पूर्ति की है। इस जीवनी का प्रथम खण्ड 1970 में और दूसरा खण्ड 1977 में प्रकाशित हुआ। दोनों ही खण्ड राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुए हैं। इस महत्त्वपूर्ण जीवनी के तथ्यों की दृष्टि से समीक्षात्मक अनुशीलन निम्नवत् प्रस्तुत है:-

वर्ण्य विषय- शान्ति जोशी ने पन्त जी के जीवन से संबंधित भौतिक घटनाओं और साहित्यिक गतिविधियों का बहुत विस्तार से वर्णन किया है। पन्त जी का काव्य और उनका जीवन दोनों इतने एक रूप हैं कि उन्हें भिन्न-भिन्न करके नहीं देखा जा सकता है। हरिवंशराय बच्चन ने उनके बारे में ठीक ही लिखा था कि ''जो उनकी कविता है वही उनका जीवन है और जो उनका जीवन है वही उनकी कविता है।''[1]

सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म कैसानी के सुन्दर सुरम्य प्राकृतिक परिवेश में हुआ था। इस परिवेश में इनके अन्दर प्रकृति के प्रति आत्यन्तिक अनुराग भाव भरा और धीरे-धीरे यह अनुराग भाव शब्दों के रूप में मुखरित होने लगा। बहुत छोटी अवस्था में ही वे तुकबन्दियां करने लगे थे। काव्य प्रतिभा जन्मजात होती है परन्तु अध्ययन और अभ्यास उसमें निखार लाते हैं। पन्त जी की काव्य प्रतिभा भी लगातार अभ्यास से निखरती गई। रगरिय प्रकृति ने उन्हें काव्य की प्रेरणा प्रदान की जैसा कि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। ''कविता लिखने की प्रेरणा सबसे पहले मुझे प्रकृति से मिली, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि पूर्वांचल प्रदेश को है''।[2]

पन्त जी की आत्मस्वीकृति के अनुसार उन्होंने तेरह-चौदह वर्ष की अवस्था से ठीक से लिखना शुरू कर दिया था और सोलह वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते वे नियमित रूप से लिखने लगे थे। इनकी कई शुरुआती रचनायें श्यामाचरण दत्त पन्त द्वारा सम्पादित मासिक पत्र 'सुधाकर' में प्रकाशित हुई थीं।

सुमित्रानन्दन पन्त की काव्य साधना तो अनवरत चलती रही परन्तु डिग्री न होने के कारण इन्हें कोई नौकरी नहीं मिल पाई। सन् 1926 में उनके भाई रघुवर दत्त पन्त की मृत्यु हो गई। उनके पिता को व्यापार में काफी हानि हुई और जायदाद का काफी हिस्सा बेच कर ऋण चुकाना पड़ा। 1927 में उनके पिता भी स्वर्ग सिधार गए। ये सब घटनायें पन्त जी के लिए अत्यन्त पीड़ादायक थी हीं, उन्हें आर्थिक रूप से विपन्न बनाने वाली रहीं। इस दौरान उन्हें इतना अधिक कष्ट रहा कि उनकी स्मृति गड़बड़ हो गई। वे जो कार्य करते, वही करे रह जाते। ऐसी स्थिति में इनके सहयोगी बने कुंवर सुरेश, जो काला कांकर (प्रतापगढ़) के राजा श्री अवधेश सिंह के छोटे भाई थे। पन्त जी से परिचय होने पर वे उन्हें विश्राम और उपचार के लिए कालाकांकर ले आए। पन्त जी सन् 1931 से 1941 तक कालाकांकर में रहे। कालाकांकर में निवास की यह अवधि पन्त जी के साहित्यिक जीवन के लिए बहुत महत्वपूर्ण थी। यहीं उनके छायावादी कवि रूप का उत्कर्ष काल था। स्वयं पन्त जी ने इस अवधि का मूल्यांकन इन शब्दों में किया है-''जिस प्रेरणा ने मुझे कालाकांकर भेजा वह वहाँ फलीभूत होती दिखाई दी। मेरे मन को वहाँ के स्वच्छ, एकान्त वातावरण, सान्त्वना तथा शक्ति मिली मैं वहाँ सब मिलाकर आठ-दस साल रहा। कालाकांकर में पूरी युवावस्था थी। सर्वश्रेष्ठ वर्ष सन् तीस से चालीस तक वानप्रस्थ स्थित में ज्ञान साधना पशु-पक्षियों के साथ व्यतीत हुए। आर्थिक परिस्थितियों के अतिरिक्त भी मेरे भीतर तब तब एकान्त का इतना उर्वर बोझ तथा मानसिक द्वन्द रहा कि मुझे तरूव्य की प्रल्य भावना को सुनहले विष को पी जाना पड़ा।''[3]

इस अवधि में उन्होंने गुन्जन ज्योत्स्ना, युग वाणी, ग्राम्या आदि रचनायें की। वहीं रहते हुए उन्होंने कुँवर सुरेश सिंह के सहयोग से 'रूपान्य' नामक मासिक पत्र का सम्पादन भी किया (सन् 1937-38 ई0)। नरेन्द्र शर्मा इसके सहायक सम्पादक थे। यद्यपि ये पत्र सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना को जनन्जन तक फैलाने के उद्देश्य से निकाला गया था परन्तु कतिपय समस्याओं के कारण यह अधिक समय तक न चल पाया। कालाकांकर का प्रवास काल जहाँ एक ओर उनके लिए वरदान स्वरूप रहा। वहीं उनकी विकासशील प्रगति चेतना के लिए बहुत उतार-चढ़ाव वाली परिस्थितियों का भी एक रहा। शान्ति जोशी जी ने लिखा है-''विकास चाहे वह किसी प्रकार का हो, एक अज्ञात प्रेरणा, अकुलता, असंतोष एवं संघर्ष की अपेक्षा रखता है। पन्त का विकासशील एवं प्रगतिकामी मानस 'ग्राम्या' के प्रणयन के बाद नि:स्पंद न रह सका। उसने वैचारिक करवट ली। यथार्थ का बाहरी-भीतरी तल खोजने एवं इतिहास, मनोविज्ञान, जीवशास्त्र,

समाजशास्त्र, नेतृत्वशास्त्र और मार्क्सवाद में अवगाहन करने तथा जीवन की विषमताओं, असामान्यताओं, आर्थिक अन्याय, नैतिक निर्धनता एवं जनजीवन की उस परम्परा को समझने के पश्चात् जिसने जीवन को उसके प्रगतिशील तत्वों से विमुक्त कर दिया है। उनका मन विद्रोही हो गया है। वह वितृष्णा और दु:ख से व्याप्त होकर कराह उठा। 'यह तो मानो लोक नहीं रे'।''[4]

अक्टूबर सन् 1949 में पन्त जी प्रयाग में अपनी ममेरी बहन के साथ रहने लगे जो प्रयाग विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग में निमित्व हो गई थी। प्रयाग से पंत जी को इतना लगाव हो चुका था कि जब आचार्य नरेन्द्र देव हिन्दू विश्वविद्यालय काशी के उप कुलपति बने तो उन्होंने पंत जी को हिन्दू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध होने तथा बनारस आकर रहने का प्रस्ताव भेजा। परन्तु पंत जी ने उनके इस प्रस्ताव को धन्यवाद सहित अस्वीकार कर दिया। इसीलिए उन्हें आकाशवाणी में हिन्दी सलाहकार पद पर कार्य करने के लिए प्रस्ताव मिला, यद्यपि पन्त जी इसे स्वीकार नहीं करना चाहते थे परन्तु साहित्यिक बन्धु के विशेष आग्रह से उन्होंने इसे स्वीकार किया। सन् 1950 से 1957 तक वे आकाशवाणी के चीफ प्रोड्यूसर के रूप में काम करते रहे और इसके बाद आनरेरी एडवाइजर के रूप में काम करते रहे। जुलाई, 1967 में उन्होंने इस पद से भी अवकाश ग्रहण कर लिया। आकाशवाणी में काम करते हुए उनका ध्यान साहित्य की एक नई विधा 'रेडियोरूपक' की ओर उनका ध्यान गया और वे रूपकों के लेखन में दत्तचित्त हो गए, उन्होंने श्रव्यकाव्य की एक नई विधा ''काव्यरूपकों द्वारा पन्त ने न केवल अपने काव्याभिव्यक्ति के लिए एक नवीन मार्ग खोजा वरन् साहित्य और संस्कृति के विकास, प्रचार तथा प्रसार को भी ध्यान में रखा। साथ ही उन्हें लगा कि किस सांस्कृतिक कार्य को 'लोकायन' साकार रूप नहीं दे सका। उसे वे आकाशवाणी द्वारा प्रसारित काव्य रूपकों द्वारा मूर्तकर सकेंगे''।[5] 'रजतशिखर', शिल्पी', 'सैवर्ण' आदि काव्य रूपक इसी अवधि में रचे गए। इन रूपकों में पन्त जी की मानवतावादी दृष्टि परिलक्षित हुई। 1950 में पंत जी ने अपने दो दांत उखड़वाये थे। यह उनके लिए एक दु:खद घटना थी। इससे वे इतने अस्वस्थ हो गए कि काफी समय तक इनका लिखना-पढ़ना बन्द रहा। 20 अप्रैल, 1955 को उनके भाई देवी दत्त का निधन हो गया। यह भी उनके लिए बहुत बड़ी दु:खद घटना थी। इन सभी परिस्थितियों से जूझते हुए वे काव्य सृजन में लगे रहे। सन् 1959 में उनकी प्रसिद्ध रचना 'कला' और 'बूढ़ा चाँद' प्रकाशित हुई। इस पर उन्हें 1960 में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसी समय उनकी 'चिदम्बरा' का भी प्रकाशन हुआ जिस पर उन्हें 1968 में ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ। अप्रैल, 1964 में 'लोकायतन' छपा। उसका विमोचन मैथिलीशरण गुप्त जी ने किया। सन् 1907 में पन्त जी के साठ वर्ष पूर्ण होने पर बहुत धूमधाम से उनकी 'षष्टि पूर्ति' मनाई गई। यह एक विशिष्ट आयोजन था जिसमें उस समय के प्राय: सभी नामचीन साहित्यकार, सम्पादक, राजनीतिज्ञ, समाजसेवी आदि उपस्थित थे। ''इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी साहित्य जगत में अतना सुन्दर, उल्लासपूर्ण उत्सव अभी और नहीं है। इस समारोह की स्वच्छता, निर्मलता दर्शनीय थी। मात्र स्निग्ध प्रेम का प्रदर्शन था-संयोजकों ने अपने उत्साह साहित्यिक अभिरुचि तथा लगन का अभूतपूर्व परिचय दिया था। जिन्होंने भी उस उत्सव में एवं उसके कार्यक्रमों को देखा वे प्रशंसा करते हुए नहीं थकते थे। इसके साहित्यिक, कलात्मक पक्ष से सभी प्रभावित थे। पन्त की हीरक जयंती साहित्यिक मिलन तीर्थ का माध्यम बन गए।''[6]

सन् 1964 से 1975 तक पंत जी की साहित्यिक कृतियां अनवरत रूप से प्रकाशित होती रहीं, उन्हें सम्मान भी प्राप्त होते रहे। 1967 में विक्रम विश्वविद्यालय में उन्हें मानद-डीलिट की उपाधि दी। 1971 में गोरखपुर विश्वविद्यालय ने, 1976 में कलकत्ता विश्वविद्यालय और राजस्थान विश्वविद्यालय ने मानद उपाधियां प्रदान कीं, 1976 में कानपुर विश्वविद्यालय ने साहित्य वारिधि की उपाधि प्रदान की। श्रीमती शान्ति जोशी द्वारा लिखित सुमित्रानन्दन पन्त की जीवनी यही पर पूर्ण हो गई है। वर्ण्य विषय के रूप में ऊपर पंत जी का जीवन परिचय एक सरल रेखा में प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त इस जीवनी में उनसे प्रत्यक्षत: और परोक्षत: बहुत सारे प्रसंगों का वर्णन आया है।

चरित्र-चित्रण - 'सुमित्रानन्दन पन्त जीवन और साहित्य' में चरित्रनायक की चारित्रिक विशेषताओं को तटस्थ भाव से दर्शाया गया है। यद्यपि लेखिका इनके निकट सम्पर्क में रही है परन्तु जीवनी लेखन में संबंधों का दबाव कहीं नहीं दिखाई पड़ता। उन्होंने पन्त जी के गुणों का निदर्शन जितनी तत्परता से किया है उतनी ही ईमानदारी से उनकी चारित्रिक दुर्बलताओं को भी दिखाया है, यह बात अलग है कि उनकी चारित्रक दुर्बलतायें भी किसी सीमा तक उनके गुणों का ही अति विस्तृत स्वरूप थीं। जीवनी में वर्णित गुण-दोषों को क्रमिक रूप में संक्षेप में इस प्रकार देखा जा सकता है-सुमित्रानन्दन पन्त का व्यक्तित्त्व अत्यन्त सुदर्शन था। उनके लम्बे रेशमी बाल, विशुद्ध गौरवर्ण, सुन्दर नासिका, सुन्दर नेत्र और सामान्य लम्बाई का शरीर विन्यास इन्हें सुदर्शन व्यक्तित्त्व का अधिकारी बनाते थे। बचपन से ही ये स्वावलम्बी थे। लेखिका ने इनके स्वावलम्बी स्वभाव की झांकी इस प्रकार प्रस्तुत की है-''जहाँ तक पन्त का अपना निजी काम है वे पूर्ण स्वावलंबी हैं। सुई-डोरा, कैंची, गज, बटन, सुतली, सुआ, जूते का ब्रश-पालिश आदि सभी उनके कमरे में रखे मिलेंगे और अपनी इन चीजों को वह प्रसन्नतापूर्वक दे ही नहीं सकते थे। अपना काम करके जब तक लौटा न दो, उन्हें चौन नहीं पड़ता। बच्चे की तरह वहीं पर मंडराते रहेंगे। उन्होंने देखा कि सुई का काम करने के बाद मैंने सुई मेज पर रखी कि वे उसे तत्काल उठाकर रील में लगाते हुए अपने कमरे की ओर बढ़ने लगते हैं, ''मैं सम्हाल देता हूँ, कहीं खो जाएगी, तुम्हें जरूरत पड़ने पर दिक्कत होगी। अपने जूतों को पालिश वे स्वयं ही करते हैं....कमरे में जाओ तो जमीन पर पलथी मार कर बैठे अपने काम में दत्तचित्त हो गुनगुनाते मिलते हैं। देखते ही कहते हैं-''देखो कितना अच्छा पालिश किया।''[7] पन्त जीघर के सभी काम करने में विशेष रुचि थी। घर के छोटे से छोटे और बड़े से बड़े से बड़े काम वे प्रसन्तापूर्वक करते थे। बगीचे के लिए क्यारी बनाना, लग्गी बनाना, लताओं के लिए लोहे की हुडों को लुहार से विभिन्न आकार दिलवाना आदि वे बड़े उत्साह से करते थे। सफाई उन्हें अत्यन्त ही प्रिय थी। घर में प्याले, प्लेट, पतीली, थाली, गिलास, यहाँ तक कि वाशबेसिन आदि वे स्वयं ही धोया करते थे। जीवनी लेखिका ने लिखा है ''बरतन वे जितना साफ धोते हैं, कम ही लोग धोते होंगे। नौकर के धोये हुए गिलास और प्याले-प्लेटों को वे जब तक स्वयं नहीं धो लेते हैं, उपयोग में नहीं लाते हैं। कम से कम गरम पानी से तो वे प्याले अवश्य ही धोते हैं।''[8]

पन्त जी सामाजिक भेदभाव को स्वीकार नहीं करते थे। उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि छुआछूत अथवा दूसरे को अपने से छोटा-नीचा मानना पाप है, यह सृष्टिकर्ता का अपमान भी है। कभी भी उन्होंने अपनी ओर से किसी की भी जाति नहीं पूछी। यहाँ तक कि घर में काम करने वाले नौकरों तक की भी।

नौकरों को भी वे अपने घर का सदस्य मानते थे। एक बार किसी नौकर ने कुछ अभद्रता कर दी जिस पर उन्होंने उसके कंधों को थपथपाते हुए समझाया, ''देखो, तुम हमारे भाई जैसे हो। भाई की तरह रहो, तुम जो चाहोगे हम कर देंगे। बदतमीजी मत किया करो।''[9]

पन्त जी प्राय: गृहकार्य में दक्ष थे, चाय बनाना, भोजन बनाना, कपड़े धुलना, फटे कपड़ों को सिल देना, पायजामे की काट करना, क्यारी बनाना आदि जैसे कार्य वे मन लगाकर किया करते थे।

उन्हें वस्तुओं का संकलन करने की भी आदत थी। इस संबंध में इनकी जीवनी लेखिका के शब्द दृष्टव्य हैं-''पन्त की अटैची भानुमती का पिटारा है। दुनिया भर की चीजेघ उसमें मिल जायेंगी। पुराना पैसा, छेदवाला पैसा, नया पैसार, नेहरू रुपया, गाँधी जी वाला दस रुपया, नई चमकीली मुद्रायें, दवाई की शीशियों के साथ मिले रंगीन प्लास्टिक के कटोरे, गिलास, बहुत छोटे ताले, बच्चों के कपड़ों में लगाने वाली बिल्ली, चमकीला पत्थर, भभूत, फूल, बिजली का बिल, चेक, जरूरी कागज, रुमाल, फाउन्टेनपेन, फूल बना पत्थर, छोटी डिबियें, अपटिन, बिस्किट की डिबियें, थैलानुमा रबर, विनेका चार्म्स के कछुआ-बन्दर आदि अर्थात जो कुछ भी छोटी चीज दिख जाती है वह उनकी अटैंची में चुपचाप पहुँच जाती है।''[10]

शान्ति जोशी जी ने पंत जी के विशेष स्वभाव का बहुत विस्तार से उल्लेख किया है। वह है अपनी रचनाओं को प्रकाशन के पहले किसी को भी न पढ़ने देना, कोई उनका कितना भी आत्मीय क्यों न रहा हो, उन्होंने अपनी किसी नई रचना की पाण्डुलिपि को किसी को पढ़ने के लिए नहीं दिया। सम्भवत: इसके पीछे उनके मन में बैठा कोई अन्धविश्वास या मनोवैज्ञानिक ग्रन्थि काम कर रही थी। जब पंत जी लोकायतन लिख रहे थे तो कुछ अंश लिखने के पश्चात् वे अस्वस्थ्य हो गए और लेखन कार्य स्थगित हो गया। उस समय वे शान्ति जोशी जी के घर में रह रहे थे। शान्ति जोशी जी ने लिखा है-इसी बीच मैंने उनके काव्य के कुछ पृष्ठ बिना उनसे पूछे पढ़ लिए, पढ़ने के पश्चात् उन्हें बताया तो वे खिन्न हो गए, ''जब तक मैं अपनी पुस्तक पूरी नहीं कर लेता कोई पढ़ लेता है तो मैं फिर लिख नहीं पाता हूँ। उस पर दूसरे की मनोवृत्ति छा जाती है।'' पन्त ने अपने लिखे पृष्ठ फाड़ डाले। उसकी प्रारंम्भिक स्तुति मुझे बहुत अच्छी लगी थी पर पन्त का स्वभाव निर्मम सृजनकर्ता मुझे बुरा लगा तो कहने लगे-मैं मासिक पत्रिकाओं में कभी नई रचना नहीं देता हूँ। जब तक पाण्डुलिपि प्रेस में न दे दूँ मुझे उस संकलन की कविता सुनाना भी प्रिय नहीं है।''[11]

पन्त जी आजीवन अविवाहित रहे, इसके प्रति इनकी अपनी अलग धारणा थी। वे किसी के प्रेमपाश में नहीं बँध पाए, किसी को प्यार नहीं कर पाए। वे जिस प्रेम के आकांक्षी थे वह प्रेम पृथ्वी पर है ही नहीं क्योंकि उनकी दृष्टि में जगत केवल आदान-प्रदान का विषय है। ''पन्त को प्रेम नहीं मिला किन्तु इससे वे दु:खी नहीं हो पाए। 'प्यार' उनके मन की एक मात्र साध नहीं ही रही है। स्वभावत: विचारशील होने के कारण वासनाओं के ज्वार में बहने के विपरीत उन्होंने अपनी भावनाओं एवं मन को समझा लिया कि इस जन-भू पर प्यार करने वाला हृदय नहीं है और फिर वे अपनी सम्पूर्णता में कविता कामिनी पर न्यौछावर हो गए। कविता-कामिनी का सा अद्वितीय आकर्षण, सुषमा और सौरभ उन्हें और कहीं नहीं मिला, वह उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व में छा गई।''[12]

अपने परिचितों के सुख-दु:ख में सम्मिलित होना पंत जी का स्वभाव था। वे स्वयं भले ही अस्वस्थ रहे हों परन्तु संकट में पड़े हुए समस्याग्रस्त या अस्वस्थ हुए परिचितों से मिलने जाना उनका निश्चित कार्य रहता था। उनके मित्र सुरेश सिंह अल्मोड़ा में नजरबन्द कर लिए गए थे। उस समय पन्त जी अल्मोड़ा में थे। पन्त जी नियमित रूप से उनसे मिलने दो ढाई मील पैदल चल कर जाते थे।

पंत जी को प्रकृति से अनन्य प्रेम था, उनका यह स्वभाव जगत विख्यात है। उन्हें काव्य की प्रेरणा भी प्रकृति से ही प्राप्त हुई थी। उनकी जीवनी में बहुत विस्तार से उनके प्रकृति प्रेम की चर्चा की गई है। अत्यन्त चर्चित और सर्वविदित होने के कारण इस विषय में यहाँ विस्तार से इस पर प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है।

पन्त जी के स्वभाव के उपरोक्त सकारात्मक पक्षों के साथ कुछ नकारात्मक पक्ष भी जीवनी में उल्लिखित है। जैसे कि यदि कोई उसे किसी प्रकार का सहयोग मांगने आता था तो सहयोग में समर्थ होने पर वे उसके औचित्य-अनौचित्य पर विचार नहीं करते थे, भले ही सहयोग करने की बात उन्हें स्वयं ही क्यों न पछताना पड़े। शान्ति जोशी जी ने लिखा है कि कई बार ऐसा हुआ जब उन्होंने (पंत जी ने) किसी को ज्योतिष का या चिकित्सा का प्रशंसा पत्र दे दिया और उस व्यक्ति ने उस प्रशंसा पत्र का दुरुपयोग किया। एक बार एक लड़का उनके पास आया और उसने कहा कि उसने ज्योतिष सीखने के लिए सन्यास ले लिया है और उनका आशीर्वाद चाहता है। आशीर्वाद के रूप में उसने पन्त जी से एक प्रशंसा पत्र लिखवाया जिसमें लिखा था कि ''ये बड़े सुज्ञ ज्योतिषी हैं, निश्प्रह और त्यागी हैं, इन्हें धन लालसा बिल्कुल नहीं है।''[13]

बाद में पता चला कि उस लड़के ने उस पत्र के सहारे पन्त जी के ही एक बहुत परिचित सज्जन को अनिष्ट की आशंका का भय दिखाकर पूजा पाठ करवाने के निमित्त काफी पैसे ले लिए। इसी प्रकार का एक प्रसंग कादम्बिनी के सम्पादक रामानन्द जोशी को प्रशस्ति पत्र देने और डा. भोपाल रेड्डी को हिन्दी सेवक बताने से जुड़ा हुआ है। कई बार उन्होंने किसी अपरिचित साहित्यकार के आग्रह करने पर भूमिका के रूप में वही लिखकर दे दिया जो उसने उनसे बोल कर लिखवा लिया।[14] मानव-जीवन गुण दोषों का समन्वित प्रतिरूप है। पन्त जी भी इस प्राकृतिक प्रपंच से परे नहीं थे। परन्तु उनमें कोई ऐसा दोष नहीं था जिसे वास्तव में दोष माना जाय। उनकी सरलता, सज्जनता और उदारता की अतिशयता ही यदाकदा उनसे कुछ ऐसे कार्य करवा लेती थी जो परिणाम की दृष्टि से सही नहीं होते थे। निष्कर्ष रूप में उनका व्यक्तित्त्व आदर्श लोक कल्याणकारी महामनीषी का था जो अपनी लोक कल्याण कामना की सत्त् प्रवाहमान धार में यदाकदा कुछ मलिता भी बहाए चलती थी। हाँ इसकी मुख्यधारा जगत में शिवत्व की स्थापना का भाव ही था।

देशकाल वातावरण - देशकाल और वातावरण का प्रसंगानुकूल चित्रण विषयवस्तु को यथार्थता और प्रमाणिकता प्रदान करता है, सुमित्रानन्दन पन्त की जीवनी में लेखिका ने विभिन्न प्रसंगों के वर्णन में देश, काल और वातावरण का पूरा ध्यान रखाा है। अधिकांश में यह वर्णन चरित्र नायक की रचनाओं के विवेचन में पृष्ठ भूमि के रूप में आया है। अपने चारों ओर के परिवेश से कवि ने जो प्रभाव और प्रेरणा ग्रहण की है उसे लेखिका ने बोधगम्य ढंग से प्रस्तुत किया है। पन्त के काव्य में प्रकृति का प्रस्फुटन किन कारणों से होता है-इस पर विचार करते हुए लेखिका ने परिवेश की महत्त्वता इस प्रकार निरूपित किया

है- ''यदि प्रकृति को निहारें, फूल के प्रस्फुटन और झरने को देखें तो एक स्वाभाविक विकास दिखेगा। वास्तव में फूल सृजन शक्ति की सहजता एवं स्वत:प्रवर्तित्ता पर प्रकाश डालता है। बाह्य बोध भी इसी प्रकार की रचना है जो अधखिली कली के रूपक के माध्यम से जन्म और मृत्यु, खिलने और मुरझाने को विकास क्रम के स्वाभाविक स्थितियाँ मानते हुए उनके आन्तरिक सत्य की शाश्वत्ता एवं अक्षरता का बोध प्रदान करती है।''[15]

पन्त जी ने मध्ययुगीन चेतना को प्रश्रय नहीं दिया है। यही कारण है कि इनकी रचनाओं में मध्ययुगीन परिवेश का अन्तर नहीं हुआ है, लेखिका ने यह स्पष्ट कर दिया है कि प्रत्येक युग, देश और काल का साहित्यकार उन सब का ऋणी है जो उसके पूर्व थे अथवा जो समकालीन हैं। एक प्रबुद्ध व्यक्ति को सम्पूर्ण व्यक्ति विश्व जीवन शिक्षित करता है किन्तु वह भी इस विश्व जीवन साहित्य, चिन्तन और विचार को अपनी दृष्टि प्रदान करता है। पन्त के इस जीवनी में अधिकांश वर्णन वर्तमान काल में हुए हैं, अत: वर्तमानकालिक प्रसंगों के चित्रण में तात्कालिक स्थिति-प्रास्थिति का उल्लेख होता चलता है और यह सब भी देशकाल के चित्रण के रूप में ही आता है उनका घर में काम करना, किसी कार्य के बारे में किसी को समझाना या निर्देशित करना आदि सभी वर्तमान परिवेश के चित्रण के साथ प्रस्तुत किए गए हैं।

भाषा-शैली - 'सुमित्रानन्दन पन्त-जीवन और साहित्य' परिनिष्ठित हिन्दी में लिखा गया गद्य है। इसकी भाषा में पन्त की अपनी काव्य भाषा के अनुरूप ही लालित्य और माधुर्य है। लेखिका ने भाषा की सहजता और बोध गम्यता का विशेष ध्यान दिया है। घटनाओं के क्रम के वर्णन में भाषा बहुत सरल, सहज और प्रसंग को पूर्णत: स्पष्ट करने वाली है। ऐसे प्रसंगों में छोटी-छोटी बातों और सरल से सरल शब्दों का प्रयोग किया गया है, तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी आदि सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया गया है परन्तु बोधगम्यता पर विशेष ध्यान रखा गया है। उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियां दृष्टव्य हैं- ''अचार डालने में पन्त बहुत रुचि लेते थे। अचार का बर्तन मैं धूप में रखना भूल सकती हूँ पर वे नहीं भूल सकते। अचार के मसाले तो वह मुँह में स्वाद ले-ले कर बताते हैं, यह मसाला नहीं डाला, वह नहीं डाला, ऐसे कहीं अचार पड़ता है। किन्तु जब खाने की बात होती है, वे आठ-दस दिन से अधिक नहीं खा सकते। कहते हैं ताजे अचार का स्वाद भी विशेष होता है। तेल की खुशबू होती है, अचार की ताजगी''।[16]

कविताओं की विवेचनों में और विभिन्न वादों की सैद्धान्तिक भूमिकाओं के निरूपण में शांति जोशी जी की भाषा को अपेक्षाकृत तत्सम् शब्दावली से लुप्त हो गई है। पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग के कारण कहीं-कहीं भाषा किंचित क्लिष्ट हो गई है परन्तु अर्थबोधन की दृष्टि से उसमें दुरुहता नहीं आने पाई। छायावाद के संदर्भ में उनकी इस प्रकार की भाषा का एक नमूना यहाँ दृष्टव्य है-''छायावाद केवल अभिव्यंजनापरक ही नहीं नवीन मूल्यपरक काव्य है। उसका कला बोध महार्ध इसलिए है कि उसका भाव बोध तथा मूल्य चौतन्य नए युग के लिए अत्यन्त बहुमूल्य अथवा अमूल्य है। छायावाद को एक ओर व्यक्तिवादी अथवा व्यक्ति या आत्मनिष्ठ काव्य बतलाया गया है दूसरी ओर सर्वात्मवादी, जिसकी असंगति स्वयं स्पष्ट है। उसका व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोण वास्तव में मूल्य-केन्द्रिक होने के कारण छायावाद में सामूहिक जीवन संचरण को बहिर्मुखी अर्थ में ग्रहण ना कर उसे उसके वैश्य-मूल्य या अन्तस्मूल्य के अर्थ में ग्रहण किया।''[17]

कहीं-कहीं जीवनी की भाषा अत्यन्त दार्शनिक भी हो गई है, परन्तु ऐसा उन्हीं स्थानों पर हुआ है जहाँ लेखिका ने कवि की किसी विशेष रचना का दार्शनिक मूल्यांकन किया है, आस परिभाष के प्रसंगों में हल्की-फुल्की चलताऊ किस्म की भाषा का प्रयोग भी मिलता है जिसमें हँसी-मजाक के शब्द भी आ गए हैं। कुल मिलाकर उनकी भाषाशैली प्रसंगानुकूल और भावानुकूल हैं।

उद्देश्य - पन्त की जीवनी लेखिका शांति जोशी जी ने एक व्यापक उद्देश्य रखा है इसमें उन्होंने पन्त जी के भौतिक जीवन का विस्तृत वर्णन करते हुए उनकी अच्छाइयां और दुर्बलताओं को विस्तार से और रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। पन्त की चारित्रिक दुर्बलतायें वास्तव में किसी प्रकार की बुराइयां न होकर उनकी अतिशय और बच्चों जैसी सत्यता का अव्यवहारिक रूप रही है जैसे कि उनका मानना था कि यदि कोई चीज मंहगी है तो वह अच्छी होगी ही। अब भले ही कोई उनकी इस मान्यता का फायदा उठाकर किसी रद्दी चीज की बहुत अधिक कीमत बताकर उन्हें ठग ले। इसी प्रकार यदि वस्तु किसी साधारण जगह पर बिक रही है तो वे उसे गुणवत्ता के मामले में संदेह की दृष्टि से ही देखते थे। गंगा के किनारे लगे मेले में बिकते कपड़े को देखकर उनकी टिप्पणी थी कि ''कपड़ा अवश्य ही बुरा होगा यदि अच्छा होता तो चोर की भांति गंगा किनारे इतना सस्ता क्यों बेचा जाता। किसी अच्छी जगह अच्छे दाम पर बिकता।''[18]

लेखिका ने पन्त जी के इस बचकाने स्वभाव से उत्पन्न विभिन्न भ्रान्तियों के निराकरण का भी उद्देश्य रखा है। इस जीवनी का एक दूसरा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य हिन्दी के विभिन्न साहित्यिक 'वादों' की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हुए छायावाद का विकास और उसमें पन्त जी के योगदान को रेखांकित करना भी रहा। इसके लिए जीवनी में इन्होंने 'छायावाद को पन्त की देन' शीर्षक से अलग अनुच्छेद ही रखा है। लेखिका ने विस्तार से पन्त की छायावादी रचनाओं का विवेचन करते हुए निष्कर्ष रूप में लिखा है-''जनवरी सन् 1922 में पन्त का 'उच्छवास' प्रकाशित हुआ और इसके प्रकाशन में द्विवेदी युगीन इतिवृत्तातमक्ता तथा छायावादी काव्य सौष्ठव एवं भावबोध के अन्तर को स्पष्ट कर हिन्दी जगत में पर्याप्त हलचल मचा दी।''[19]

लोकमंगल की कामना से पन्त जी के द्वारा बनाई गई योजनाओं और उनके सम्भव क्रियान्वयन के विषय में विस्तृत जानकारी देना ही जीवनीकार का उद्देश्य है। लोकायतन नामक केन्द्र की स्थापना की विस्तृत योजना, उसकी रूपरेखा और उसके द्वारा किए जाने वाले कार्यों का विस्तारपूर्वक किया गया वर्णन इसी उद्देश्य की पूर्ति के रूप में देखा जा सकता है।

पन्त जी की महत्त्वपूर्ण रचनाओं में निहित भावरूप एवं अंत:सौन्दर्य का निरूपण भी विदुषी जीवनीकार का उद्देश्य रहा है। ग्रन्थारम्भ से लेकर ग्रन्थ के अन्त तक पन्त जी की कृतियों का अलग-अलग स्वतंत्र अनुच्छेदों के रूप में किया गया मूल्यांकन जीवनीकार के उद्देश्य को दर्शाता है। इस प्रकार शांति जोशी पन्त जी के जीवन और साहित्य को रचनात्मकता के लिए विभिन्न दृष्टिकोणों से परखते हुए प्रस्तुत किया है। उनके जीवन के भौतिक विकास के साथ-साथ उनकी रचनाधर्मिता और विचारधारा का क्रमिक परन्तु विस्तृत विवेचन बहुत ही सरल, सहज, बोधगम्य एवं व्यवस्थित ढंग से इस जीवनी में प्रस्तुत किया गया।

संदर्भ सूची-

1 हरिवंश राय बच्चन-कवियों में सैम्यसम्य.....सुमित्रा नन्दन पन्त, पृष्ठ-19, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, द्वितीय संस्करण
2 वही, पृ0 82
3 वही, पृष्ठ-265
4 शान्ति जोशी, सुमित्रानन्दन पन्तः जीवन और साहित्य पृष्ठ-02, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय खण्ड प्रथम संस्करण - 1977
5 वही, पृष्ठ-154
6 वही, पृष्ठ-476
7 वही, पृष्ठ-643
8 वही, पृष्ठ-645
9 वही, पृष्ठ-648
10 वही, पृष्ठ-654
11 वही, पृष्ठ-475
12 वही, पृष्ठ-313
13 वही, पृष्ठ-327
14 वही, पृष्ठ-514
15 वही, पृष्ठ-363
16 वही, पृष्ठ-647
17 वही, पृष्ठ-404
18 वही, पृष्ठ-279
19 वही, पृष्ठ-404

प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा का स्वरूप और दावेदारी

डॉ० मनस्विनी श्रीवास्तव

इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सार: नारीवादी विद्वानों ने प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा के स्वरूप पर गहन अध्ययन किया है। इसमें उमा चक्रवर्ती, कुमकुम रॉय, कुमकुम संगारी.... ने जेन्डरीकरण की दृष्टि से स्त्रियों की स्थिति का विश्लेषण किया और पूर्व के इतिहासकारों जैसे ए.एस. अल्टेकर, राध कुमुद मुखर्जी के परम्परागत विचारों का खंडन किया है।

ऋग्वेद में एक हजार से ज्यादा सूक्त हैं। इनमें से महिला मनीषियों द्वारा दिए गए पूर्णत: या आंशिक रुप से संबंधित श्लोकों की संख्या महज 12-15 से ज्यादा नहीं है। यानी तकरीबन सिर्फ एक प्रतिशत। इतनी ही महत्वपूर्ण बात यह है कि चर्चा मिलती है और वहीं 'याज्ञवलक्य' द्वारा गार्गी को शांत होकर बैठ जाने की चेतावनी के प्रमाण भी मिलते हैं। इस बात के भी बहुत थोड़े प्रमाण मिलते हैं कि शिक्षा प्रसार के औपचारिक संस्थानों में बतौर छात्रा या शिक्षिका, महिलाएँ भी उपस्थित थी। इस स्थिति को व्यवस्थित करने के लिए एक प्रयास मनुस्मृति में (11-67) किया गया है। यहाँ स्त्रियों को उपनयन में शामिल होने से रोक दिया गया है। उपनयन संस्कार पवित्र ज्ञान प्राप्ति का प्रारंभ बिन्दु था। इसे और गहरे स्थापित करने के लिए कई विकल्प भी सुझाए गए हैं, स्त्रियों के लिए विवाह करना पुरूषों के उपनयन के समकक्ष है, पति की सेवा करना छात्र होने के समान है और घर के कामों को सम्पन्न करना पवित्र अग्नि की पूजा अर्चना के समान बताया गया (मनुस्मृति, 11-67)। ऐसे निर्देशों को स्वीकार कर लेने का मतलब होता कि कोई भी गैर घरेलू काम को नारीत्वहीन और गैर पत्नी कार्य माना जाता।

Key words : उपनयन, नारीत्वहीन, जेन्डरीकरण।

परिचय: वैदिक देवकुल में देवता ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वैदिक देवकुल में देवियां हैं जरुर परन्तु उनकी भूमिका दोयम स्तर की ही रही हैं। वैदिक ऋचाएं भी पुजारी बुद्धिजीवियों के धर्म का ही प्रतिनिधित्व करती हैं। जन्म, विवाह, मृत्यु आदि के माध्यम से स्त्री-समाज में पितृसत्ता की पकड़ तथा स्त्री की समाज में स्थिति भी दर्शाई जाती है।स्त्री की मुख्य भूमिका पुत्र पैदा करना, उनकी परवरिश करना तथा पति की सेवा करना ही रह गया।

ऋग्वेद (10-85-36) में पति अपनी पत्नी से कहता है कि देवताओं ने तुमको मुझे इसलिए दिया है कि इससे गृहपति के कर्तव्यों का संपादन हो। अथर्ववेद (14-1-50, 51) में भी इसी विचार को दोहराया गया है। गृहिणी के रुप में स्त्री के कर्तव्य भी परिभाषित हैं- बड़े बूढ़ों की सेवा करना, सवतों (सौत) के साथ प्यारी सखी की तरह व्यवहार करना, पति के रूखे व्यवहार पर भी क्रोध नहीं करना, आश्रितों के साथ अनुग्रहपूर्वक व्यवहार करना, इत्यादि-इत्यादि। संयुक्त परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी निभाने के साथ-साथ गृहिणी उत्पादन में भी पुरूष का हाथ बंटाती थी। ऋग्वेद के काल से ही स्त्री के सूत कातने तथा वस्त्र बनाने के कुटीर उद्योगों में भागीदारी के साक्ष्य मिलें हैं। समय के विकास के साथ स्त्री की प्रतिष्ठा और स्तर गिरते गए। उस पर लगने वाले नियंत्रण बढ़ते गए। जाति के अनुसार स्त्री पर पितृसत्तात्मक अवधरणा और अध्कि जकड़ती गई। सारे अधिकारों के साथ-साथ शिक्षा के अध्किार भी छिन लिए गए, कुछ जातियों की शिक्षा के अध्किार दिए भी गए तो विषयों को सीमित करते हुए स्त्रियों की एक पूर्ण रुप से एक आदर्श स्त्री, गृहपत्नी, माता बनाने की पूरजोर कोशिश की गई। स्त्रियों को दोयम दर्जे का नागरिक बनाने में सबसे महत्वपूर्ण योगदान वेदों, उपनिषदों संहिताओं और स्मृतियों का रहा है। इन्हीं के कर्मकाण्डों और परंपराओं ने जेंडर आधरित असमानता को जन्म दिया।

शोध उद्देश्य: प्रस्तावित शोध का उद्देश्य नारीवादी दृष्टिकोण से शिक्षा के क्षेत्र में स्त्री-पुरुष का विभेद, स्त्रियों पर तरह-तरह के प्रतिबंध और उनका प्रभाव एवं इसके बावजूद स्त्रियों के द्वारा की गयी दावेदारी को प्रकाशित करना है। शोध का एक अन्य उद्देश्य प्राचीन भारत में शिक्षा के स्वरूप को भी चिन्हित करना है।

शोध परिकल्पना

शोध के जरिये प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा के स्वरूप के नारीवादी दृष्टिकोण यानि पितृसत्ता और उसके प्रभावों को सामने लाना है। वैदिक काल से भारत में स्त्री शिक्षा को स्त्रैण (Feminine) और पृथक बनाने के बिन्दुओं, स्थापनाओं और कथनों को चिन्हित करके उस प्रस्थापना से जोड़ना है, जिसके अन्तर्गत आज के नारीवादी विद्वान कार्यरत है।

शोध की परिकल्पना का एक बड़ा हिस्सा उन महिलाओं को सामने लाना है जिन्होंने उस पितृसत्तात्मक ब्राहमणवादी सोपानात्मक व्यवस्था में भी अपने ज्ञान का वर्ध्न किया, योग्यता हासिल की और ख्याति भी प्राप्त की। यही नहीं उन्होंने प्रतिरोध् भी किया।

शोध पद्धति: प्रस्तावित शोध के लिये संस्कृत, पफारसी, अंग्रेजी के मौलिक ग्रन्थों का अध्ययन किया जायेगा। शोध पद्धति का दूसरा भाग क्षेत्रीय भाषाओं के नारीवादी साहित्य का अध्ययन रहेगा।

उपलब्ध साहित्य की समीक्षा

भारतीय महिलाओं पर सबसे पहला ग्रन्थ ए. एस. अल्तेकर ने 'दि पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन' 1959 दिल्ली, लिखा जो महिलाओं के विषय में किये गये अध्ययनों में सर्वाधिक चर्चित और प्रमाणिक माना जाता है। इसे राष्ट्रवादी समझ से ओत-प्रोत माना जाता है और औपनिवेशिक विद्वानों की श्रेष्ठतावादी और उपयोगितावादी प्रस्थापना का प्रत्युत्तर थी। परन्तु नारीवादी लेखकों ने 'जेन्डर' की दृष्टि से जब अध्ययन प्रारम्भ किया तो अल्तेकेरियन अवधरणा को परम्परागत दृष्टिकोण से ओतप्रोत पाया और उसका खंडन किया। इसी तरह की पुस्तकें हैं अश. अल्तेकर की 'प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्वति' बनारस 1955, राध कुमुद मुखर्जी की 'एनशियंट इंडियन एजूकेशन' दिल्ली 1969.

ये सभी पुस्तकें स्त्री विमर्श के पैमानों पर अधूरी दिखती हैं। आधुनिक नारीवादी और उनमें जेन्डर विभेद और उसके प्रभावों को समझने के लिए बहुत सी पुस्तकें लिखी गयीं-जैसे गर्डा लरनर' क्रियेशन ऑपफ पैट्रियार्की', न्यूयार्क,1986, कुमकुम संगारी और सुदेश वैद की 'रीकास्टिंग वीमेन ऐसेज इन कोलोनियल हिस्ट्री' काली फॉर वीमेन 1989, सुसी थारू और उमा चक्रवर्ती की 'रीराइटिंग हिस्ट्री: द लाइपफ एन्ड टाइम्स ऑपफ पंडिता रामाबाई, नयी दिल्ली 1998, कुमकुम राय की 'वीमेन इन अर्ली इन्डियन सोसायटीज, नई दिल्ली, 1999, कमला भसीन की 'व्हाट इज पैट्रियार्की, काली पफार वीमेन, 2000, सीमोन द बउआ की 'स्त्री उपेक्षिता' (द सेकेन्ड सेक्स) अनुवाद प्रभा खेतान, उमा चक्रवर्ती की अन्य पुस्तक 'जेन्डरिंग कास्ट': थ्रु द पेफमिनिस्ट लेन्स, कोलकाता 2003, निवेदिता मेनन, साध्ना आर्य जिनी लोकनीता, 'नारीवादी राजनीति: संघर्ष एवं मुद्दे, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2005, गोपा जोशी 'भारत में स्त्री असमानता: एक विमर्श', हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन दिल्ली विश्वविद्यालय, 2006,। लेकिन फिर भी शिक्षा के जेन्डरीकरण और महिलाओं की दावेदारी जैसे विषय पर एक भी सम्पूर्ण पुस्तक नहीं है, क्योंकि नारीवादी अध्ययन का अभी लम्बा दौर बाकी है।

ऋग्वेद दो वर्गो का उल्लेख करता है, जो आर्य एवं दस्यु के नाम से जाने जाते हैं। दस्यु वर्ग की महिलाओं को अनिवार्य रूप से सैन्य शिक्षा में प्रशिक्षित होना पड़ता था और संभवत: युद्व में भाग लेने के लिए उनकी एक नियमित सेना होती थी। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि युद्व के समय में दुस्यु स्त्रियों को शस्त्र के रूप में उपयोग किया जाता था। संभवत: ऐसा माना जाता था कि आर्यो की सेना द्वारा स्त्रियों को कोई चोट नहीं पहुँचाया जायेगा, इसी कारणवश स्त्रियों को सैन्य शिक्षा प्रदान की जाती थी। जिसके पीछे भी पितृसत्तात्मक भावना सामने आती है। सैन्य शिक्षा स्त्रियों की उपलब्धि् बढ़ाने हेतु नहीं थी। महिलाओं द्वारा श्लोकों की रचना के कुछ साक्ष्य मिलते हैं। संभवत: ये श्लोक उनके द्वारा कविता के रूप में पाठ किये गये हैं। यद्यपि ऋग्वैदिक काल (1500 ई.पू. से 1000 ई.पू.) में नारी याज्ञिक कर्मकाण्डों में पुरूषों को सहयोग प्रदान करती थी और बालकों के समान बालिकाओं की भी शिक्षा प्राप्ति हेतु उपनयन संस्कार होता था। अथर्ववेद में वर्णित है । कुछ ऐसे भी साक्ष्य प्राप्त हुए हैं जहाँ स्त्रियों को वैदिक मंत्रों की रचयिता भी कहा गया है,ऋग्वेद में 24 और अथर्ववेद में 5 वैदिक विदुषियों का उल्लेख है,ऋग्वेद में इनके द्वारा 422 मंत्रों की रचना की गई हैं।

उपनिषद् काल में महिला छात्राओं के दो प्रकार उल्लेखनीय हैं- 1. सद्योगद्वाहा तथा 2. ब्राह्मवादिनी। सद्योद्वाहा वे स्त्रियाँ होती थी, जो ब्रह्मचर्य आश्रम में अनंतर गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होती थी तथा उस आश्रम के नियमों का पालन करती हुयी मातृत्व के महनीय पद पर प्रतिष्ठित होती थी। वे उन समग्र विधओं का शिक्षण प्राप्त करती थीं, जो उन्हें सदगृहिणी बनाने में पर्याप्त सहायक होती थीं संगीत की शिक्षा भी उन्हें दी जाती थी। गौरतलब है कि कुछ स्त्रियों के नाम ही विदुषियों के रूप में बार-बार दोहराये जाते हैं। इस विदुषियों की सूचि में वैसी ही स्त्रियों के नाम आते है जो उच्च कुल या उच्च वर्ग से संबंध रखती हो। जाति और वर्ग के बीच के संबंध और अवधरणा या विचारधरा और उत्पादन-संबंधें के बीच के संबंध को निर्धरित करने वाले या बरकरार रखने वाले तत्वों में से एक महत्वपूर्ण तत्व हैं ज्ञान पर ब्राह्मणों का एकाधिकार और निम्न जातियों पर ज्ञान प्राप्त करने की कड़ी पाबंदी। उल्लंघन करने की स्थिति में शूद्रों और 'अछूतों' को ब्राह्मणवादी शास्त्रों में बताये गए प्रावधानों के अनुसार कड़ी सजा भुगतनी होती थी। स्त्रियों पर ज्ञान, खासकर धर्मिक/शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करने की पाबंदी थी। जबकि निम्न जातियाँ ही थीं जो श्रम करती थीं। उन्होंने ही कृषि, वनस्पतियों, जानवरों, पशुओं, मौसम, भूमि, कृषि और उसे संरक्षित रखा। प्राचीन वैदिक युग में स्त्रियों की शिक्षा का मुख्य उऋेश्य था उन्हें सद्गृहिणी बनाना।

एक बार महान दार्शनिक याज्ञवल्क्य ने ये सुनिश्चित करने के लिए कि सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी कौन है अपने समय के अन्य विद्वानों को शास्त्रार्थ की चुनौती दी। उनसे भिड़ने के लिए जो छह विद्वान इकट्ठे हुए उनमें गार्गी को छोड़कर बाकी सब पुरूष थे। एक-एक कर वे सब याज्ञवलक्य से पराजित होते गए। अंत में गार्गी की बारी आई। एक दार्शनिक पिता की पुत्री गार्गी बड़ी कुशलता के साथ बहस करने लगी। उसके प्रश्नों की धर तेज होती गई तो मुकाबला निर्णायक स्थिति में पहुँच गया। जब गार्गी ने तीर जैसे भेदते दो प्रश्न छोड़े तब हार से बचने के लिए याज्ञवलक्य ने ब्राह्मणवादी पुरूषोत्व का सहारा लेते हुए उसे धमकी दी, गार्गी, बहस को इतना आगे न ले जाओ कि तुम्हारा सिर फट जाए। उसके बाद गार्गी चुप हो गई। ध्यान देने की बात है कि जहाँ सभी पुरूष विद्वान हारकर चुप हुए वहीं गार्गी ने अच्छी-खासी टक्कर दी तो उसे ध्मकी देकर चुप कराया गया। यहाँ यह बात भी महत्वपूर्ण है कि किसी पुरूष को अधीनता की स्थिति में लाना हो तो उसके विरोध को दबाने के लिए अथवा उसे चुप कराने के लिए जहाँ वास्तव में हिंसा का रास्ता अपनाना पड़ता है वहीं स्त्री के मामले में हिंसा की धमकी से ही काम चल जाता है।

दलित नारीवादी लेखिका कुमुद पावड़े का मानना है कि गार्गी के विद्रोही प्रश्न ही थे जो ब्राह्मण सहित सभी स्त्रियों के लिए शास्त्रज्ञान के द्वार बंद होने के कारण उनके प्रश्न अंतत: उनके अपने ही पुरूषों की विचारधरा द्वारा दबा दिये गए। वही एक और साक्ष्य यह भी मिलता है कि महान विख्यात दार्शनिका याज्ञवलक्य की पत्नी मैत्रेयी ने ज्ञान प्राप्ति हेतु अपने पति की संपति में अपने अधिकार को अपने पति याज्ञवलक्य की दूसरी पत्नी के हित में त्यागकर केवल ज्ञान प्राप्त करने की याचना की थी। उत्तरवैदिक कालीन आते-आते स्त्रियों पर नियंत्रण स्थापित करने की प्रक्रिया और तीव्र होती गई। ऐतरेय ब्राह्मण में पुत्री को कृपण कहा गया, पुत्री का जन्म अभिशाप माना जाने लगा। यहाँ तक कि स्त्रियों का पैतृक संपति से भी अधिकार छिन लिया गया तथा सभा नामक संगठन में भी प्रवेश वर्जित हो गयी। शिक्षा के अवरूद्व करने हेतु उपनयन संस्कार को स्त्रियों के लिए बंद कर दिया गया। उत्तरवैदिक काल में स्त्रियों के लिए एकमात्र

व्यवहारिक शिक्षा ही थी जो एक स्त्री को आदर्श गृहपत्नी बना सके। पितृसत्तात्मक समाज में भिक्षुणी का अकेले विचरना उसके स्वयं के लिए भी असुरक्षित समझा गया। बुद्व की आपत्तियों के बावजूद बहुत बड़ी संख्या में हर समाज और वर्ग की स्त्रियों ने बौद्व धर्म अपनाया। इस प्रकार चाहे-अनचाहे, बौद्व धर्म ने घर की चारदीवारी के बाहर स्त्री के लिए एक नई भूमिका बनाई।

यूँ तो बौद्व संघ में स्त्रियों की प्रवेश की अनुमति गौतम बुद्व द्वारा अपनी सौतेली माँ गौतमी और प्रिय शिष्य आनंद के आग्रह के कारण दी परन्तु आज्ञा देते हुए गौतम बुद्व ने कहा जो संघ हजार वर्षो तक रहने वाला था अब स्त्रियों के प्रवेश से 500 वर्ष ही जीवित रह पायेगा। संघ में प्रवेश के साथ यह मान लिया गया कि बौद्व युग में स्त्रियाँ प्राय: शिक्षित और विद्वान हुआ करती थी। परन्तु यह तथ्य सभी स्त्रियों पर लागू नहीं हो सके। बौद्व आगमों की शिक्षिकाओं के रूप में भी स्त्रियों ने ख्याति प्राप्त की थी। थेरीगाथा की कवीयत्रियों में 32 आजीवन ब्रह्मचारिणी और 18 विवाहित भिक्षुणियाँ थीं। भिक्षुणी खेमा उस युग की उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्री थी, जिसकी ख्याति दूर-दूर तक पैफली थी।अपने द्वारा हो रहे भेदभाव से मुक्त होने और गृहकार्यो और उनके कारण उत्पन्न दु:खों से मुक्त होने के लिए कई स्त्रियों ने बौद्व संघ में प्रवेश लिया। थेरीगाथाओं में 73 भिक्षुणियों की 522 गाथाओं का संग्रह किया गया है, जो 16 भागों में विभक्त हैं। एक भिक्षुणी द्वारा लिखी गई कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं - अहो मैं मुक्त नारी हूँ! मेरी मुक्ति कितनी धन्य है! पहले मैं मूसल लेकर धन कूटा करती थी, आज मै। उससे मुक्त हो गई हूँ। मेरी दरिद्रावस्था के वे छोटे-छोटे भांडे-बरतन, जिनके बीच मैं मैली-कुचौली सी बैठती थी और मेरा निर्लज्ज पति मुझे उन छातों से भी तुच्छ समझता था, जिन्हें वे अपनी जीविका के लिए बनाता था। वैसे तो संघ में प्रवेश के लिए स्त्रियों को बुद्व के घोर स्त्री विरोधी रूख का सामना करना पड़ा था और संघ के भीतर भी उन्हें पुरूष भिक्षुओं के अधीन रखा गया, पिफर भी एक बार प्रवेश पा लेने के बाद उन्होंने संघ में अपने लिए जगह बनाया। पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था ने स्त्रियों को जिन सीमित भूमिकाओं में बाँध रखा था उनकी समझ उन्हें थी। इसकी आरंभिक अभिव्यक्ति बौद्व भिक्षुणियों की कविताओं में हुई है जो थेरीगाथा के रूप में संकलित हैं। इन कविताओं में स्त्रियों ने रसोई के कैदखाने और पतियों के क्रूर व्यवहार से मुक्ति का उल्लास व्यक्त किया है। इसके साथ-साथ उन्होंने संघ में प्रवेश के उपरांत मिले अवसरों और आत्म बोध् का भी जिक्र किया है। उदाहरण के लिए, एक भिक्षुणी का मरा नामक भिक्षु को दिया गया जवाब। ध्यान का अभ्यास कर रही भिक्षुणी का उपहास उड़ाते हुए जब मरा नामक भिक्षु कहता है कि 'उसे द्विअंगुल ज्ञान' (जिसका मतलब है पक रहे चावल के दाने को दो उंगलियों के बीच रखकर यह पता करने के लिए दबाना कि चावल पका है या नहीं), के ज्ञान तक ही सीमित रहना चाहिए, इससे ज्यादा या उच्च ज्ञान प्राप्त करने पर तो भिक्षुओं (पुरूषों) का विशेषाधिकार है, यह स्त्रियों के वश की बात नहीं...।'

भिक्षुणी इन शब्दों में इसका मुँहतोड़ जवाब देती हैं जिसने ठान लिया हो उसे कौन रोक सकता है, ज्ञान की राह पर चल पड़ी मैं कौन हूँ पुरूष अथवा स्त्री मुझे आकाश (जगह) चाहिए स्त्रियों की शिक्षा में जाति और वर्ग के आधर पर अंतर के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। शिक्षा के विषय भी स्त्रियों के लिए सीमित थी और उनका मुख्य लक्ष्य एक स्त्री को कुशल पत्नी बनने तक ही रह गया था। शिक्षा का मुख्य उद्येश्य उन्हें एक औरत बनाना तथा घर तक ही सीमित रखने का प्रयास किया गया। उन्हें ललित कला जैसे नृत्य, संगीत, चित्रकला और अपनी बगीचों में ऐसे पौधें को लगाना जो लाभप्रद हो जैसे- साग-सब्जी, पफल-पूफल साथ ही औषधीय पौधे की पहचान और रोपण की कला स्त्रियों के मुख्य विषय रह गए। पाकशास्त्र काटना, पीसना, दासों के वेतन और भुगतान आदि के साथ-साथ घरेलु पशुओं की देखभाल आदि जैसे कार्यो में दक्षता हासिल करना ही स्त्रियों को शिक्षित होना माना जाने लगा। वात्सयायन सूत्र में चौसठ (64) ऐसी कलाओं का वर्णन है जिसमें स्त्रियों को दक्षता प्राप्त करनी होती थी उपयुक्त विषयों के साथ-साथ स्त्रियों को औषधी निर्माण, स्वप्न ज्ञान, विभिन्न देशों के भाषाओं का ज्ञान, शारीरिक विकास हेतु व्यायाम का ज्ञान आदि की जानकारी मिलती है।

निष्कर्ष: स्त्रियों की शिक्षा का एकमात्र मूल उद्येश्य एक आदर्श पत्नी होना मात्र था। परिवार में पत्नी के अलावा और औरतों को हाशिए पर रखे जाने और परिवार के बाहर स्त्री की कोई पहचान न होने, जिससे पत्नीत्व के विचार को और दृढ़ता मिलती थी, के कारण स्त्रियों के लिए उपलब्ध जायज विकल्प और भी कम हो गए। ऐसे विकल्पों के अभाव या सीमित होने के चलते महिलाओं के लिए घर से बाहर के दायरे में सक्रिय होना लगातार कठिन होता गया। घरेलू दायरे की भीतर भी जिस एकमात्र विकल्प को सम्मान का दर्जा मिलता था वह खुशी-खुशी अधीनता स्वीकार कर लेने का था।

संदर्भ-सूची

1. डॉ. गोपा जोशी, भारत में स्त्री असमानता एक विर्मश, हिंदी माध्यम निदेशालय, दिल्ली, 2006।
2. साधना आर्य, निवेदिता मेनन, लोकनीता जिनी, नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुत्रे, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2013
3. प्रभा सहाय, वूमेन इन अर्ली इंडियन सोसाइटी, जानकी प्रकाशन, पटना।
4. जे.सी. अग्रवाल, भारत में नारी शिक्षा, प्रभात प्रकाशन, 2009।
5. ए.एस. अल्टेकर, दी पोजीशन ऑपफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1962।
6. आचार्य बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी, 1998।
7. वात्सयायन, वात्सयायन सूत्र, वाराणसी, 1929।
8. आ.ई.बी. हार्नर, वीमेन अंडर प्रिमिटिव बुद्विज्म, दिल्ली, 1975
9. उमा चक्रवर्ती, जाति समाज में पितृसत्ता, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) लिमिटेड, दिल्ली, 2011
10. प्रेफडरिक ऐंगिल्स, दी ऑरिजिन ऑपफ दी पैफमिली प्राइवेट प्रापर्टी एण्ड स्टेट, ऐसिस्टेन्स बुक्स, 2004
11. राध कुमुद मुखर्जी, एनसीएन्ट इंडियन एडुकेशन, दिल्ली, 1969 (चौथा संस्करण)।
12. ए.एस. अल्टेकर, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्वति, नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्श, बनारस, 1955

लोकगीतों और लोकसंगीत का भारतीय संगीत में महत्व

विष्णु कुमार

गांव डॉ० खजूरी जाटी, जिला फतेहाबाद, हरियाणा

सार

भारतीय उपमहाद्वीप में कई प्रकार के संगीत प्रचलित हैं जो विभिन्न लोकगीतों और श्रेणियों से संबंधित हैं। लोक संगीतए स्थापित शास्त्रीय संगीत के विपरीतए आम लोगों का संगीत है। जिसका अर्थ है लोग-संगीत। लोक संगीत एक पारंपरिक शैली के रूप में शुरू हुआ, जो स्थानीय क्षेत्र की लोककथाओं से जुड़ा हैं। भारत के प्रत्येक राज्य की अपनी सांस्कृतिक संरचना के आधार पर लोकगीतों और लोकसंगीत का अपना रूप है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा रहा है कि शास्त्रीय संगीत के विपरीत लोकगीत और लोक-संगीत नियमों और विनियमों के किसी भी संरचना का पालन नहीं करता है। वे मुख्य रूप से विभिन्न सांस्कृतिक विषयों और लय पर आधारित होता हैं। पारंपरिक लोक-संगीत और लोकगीत लोक जीवन की अनंतता को दर्शाते हैं। हमारे देश की संस्कृति और प्रकृति बहुत ही अनोखी है। इस संस्कृति की गोद में असंख्य दुर्लभ वस्तुओं का संग्रह है। कई प्रकार के त्योहारों का जुलूस होता है और इन त्योहारों में अपने.अपने प्रांतों में अपनी.अपनी भाषा में गाए जाने वाले गीतों को लोकगीतों की श्रेणी में रखा जाता है। इस बात से कोई इंकार नहीं है कि लोक-संगीत अक्सर महत्वपूर्ण सूचनाओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाता है। वे जीवन के ऐसे किस्से सुनाते हैं जो या तो भुला दिए जाते हैं या समाप्त होने के कगार पर होते हैं। इन लोकगीतों से लगभग हर कोई खुद को जोड़ सकता है। इस शोध पत्र में लेखक ने लोकगीतों और लोकसंगीत का भारतीय संगीत में महत्व पर शोध करने का प्रयास किया है।

मुख्य शब्दः लोकगीतों, लोकसंगीत, भारतीय संगीत।

भूमिका

इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा रहा है कि लोकगीतों और लोक.संगीत में प्राचीन हिंदू परंपरा, वैदिक दर्शन और फारसी परंपरा के तत्व भी शामिल होते हैं। लोकगीत और लोक-संगीत अरब, फारसी और अफगान तत्वों जैसे विभिन्न तत्वों से प्रभावित रहा है जिन्होंने हिंदुस्तानी संगीत में एक नया आयाम जोड़ा है। भारत विविध संस्कृतियों और परंपराओं का देश है। लोक कला लोगों के समूह और किसी विशेष इलाके की सामान्य पहचान है। धर्म के प्रवर्तकों की पहचान भुला दी जाती है, लेकिन लोकसंगीत शैली युगों तक संरक्षित रहती है। लोक संगीत मुख्य रूप से विविध विषयों पर आधारित है और तेज लय पर आधारित है। वे नृत्य-उन्मुख होने के लिए धड़कने के लिए भी तैयार हैं। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा रहा है कि एक विशिष्ट राज्य से जुड़े विभिन्न प्रकार के लोक संगीत हैं। यह भरोसेमंद तथ्य है कि लोक-संगीत स्थापित शास्त्रीय संगीत के विपरीत आम लोगों का संगीत है। लोक-संगीत एक पारंपरिक शैली के रूप में शुरू हुआ जो क्षेत्र की लोक-कथाओं से जुड़ा था। हालांकि फिल्म के आगमन और बाद में पॉप संगीत के आगमन के परिणामस्वरूप लोकगीतों और लोकसंगीत को बहुत नुकसान हुआ है लोकगीत और लोकसंगीत अभी भी जीवित है क्योंकि शायद इसलिए कि फिल्म और पॉपसंगीत के संगीतकार बार-बार प्रेरणा के लिए लोकसंगीत की ओर देखते हैं[1]।

लोकगीत किसी भी क्षेत्र में रुचिकर होते हैं। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा रहा है कि लोकगीतों की रचना ग्रामीण परिवेश में की गई है। लोकगीतों की दुनिया बड़ी दिलचस्प होती है। जिनका जनता से सीधा संबंध है। यह भरोसेमंद तथ्य है कि लोकगीत संस्कृति के प्रतीक हैं। अपनी-अपनी बोली के लोकगीत सभी को पसंद आते हैं। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा रहा है कि लोक गीतों में परंपराए रीति-रिवाज, सामाजिक और धार्मिक संबंध होते हैं। यह वास्तविक है कि क्षेत्रीय बोली-उप-बोली में क्षेत्र के लोगों द्वारा रचित गीत, जिन्हें समाज और क्षेत्र के लोगों द्वारा अपनाया जाता है लोक-गीत कहलाते हैं। यह भरोसेमंद तथ्य है कि भारत के कई अन्य पहलुओं की तरह लोक संगीत भी अपनी सांस्कृतिक विविधता के कारण विविध है। जबकि इसकी उत्पत्ति और उपयोग की विधि कमोबेश पूरे भारत में समान है जिस शैली में इसे गाया जाता है और जिस तरह से इसे माना जाता है वह विभिन्न भारतीय राज्यों की संस्कृति के आधार पर भिन्न होता है। इनमें से कई लोक गीतों की रचना देश के विभिन्न हिस्सों के महान कवियों और लेखकों ने की थी। उदाहरण के लिए, लोक गीतों ने भी दक्षिण भारत के कई हिस्सों में सामाजिक-धार्मिक सुधारों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है[2]।

लोक-गीत समुदाय, जाति, धर्म और विशिष्ट स्थान के अनुसार भिन्न हो सकते हैं तो इसका मतलब है कि प्रत्येक समुदाय या धर्म के अपने और अलग-अलग लोक-गीत होते हैं जो विशिष्ट समुदाय या धर्म को दर्शाते हैं। इस प्रकार लोकगीत हमारी मौलिक पहचान है। लोक गीत संगीत के लिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे संगीत में शामिल लोगों का एक संक्षिप्त इतिहास देते हैं। लोक गीत अक्सर पीढ़ी से पीढ़ी तक महत्वपूर्ण जानकारी भी देते हैं। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा रहा है कि संगीत हमेशा से भारतीय जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है और अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विविधता के साथ इसने

दुनिया को विभिन्न प्रकार के लोक संगीत प्रदान किए हैं। जबकि भारतीय शास्त्रीय संगीत संगीत की कला को प्रदर्शित करता हैए भारत का लोक संगीत भारतीय समाज में जीवन के तरीके को दर्शाता है। वे क्षेत्र, त्योहारों, व्यवसायों और यहां तक कि मौसमों जैसी कई चीजों से प्रभावित होते हैं। भले ही लोक संगीत ने नए उभरते संगीत रूपों के खिलाफ अपनी चमक खो दी होए लेकिन आज भी पारंपरिक कार्यक्रम उनके बिना अधूरे हैं। यहां लोक संगीत के कुछ रूपों की सूची दी गई है जो भारतीय संस्कृति को दर्शाते हैं[3]। भारतीय परंपरागत संगीत जिस तरह सिखाया जाता है, उस तरह से लोक-संगीत नहीं पढ़ाया जाता है। भारतीय लोक-संगीत की कोई औपचारिक अवधि नहीं होती है। भारतीय लोक-संगीत के छात्र अपना पूरा जीवन लोक-संगीत सीखने में लगाते हैं। ग्रामीण जीवन का लोक-संगीत संगीत गतिविधि करने की अनुमति देता है।

लोकगीतों और लोकसंगीत का भारतीय संगीत में महत्वः

भारत में लोकसंगीत संगीत का एक रूप है। शास्त्रीय संगीत की विशेषता यह है कि यह ध्वनि प्रधान होता है शब्द प्रधान नहीं। इसमें शब्द या गीत के अर्थ की अपेक्षा ध्वनि या संगीत को अधिक महत्व दिया जाता है। भारत में लोकसंगीत का इतिहास वैदिक काल से प्रारंभ होता है। सामवेद लोक.संगीत पर विश्व का पहला ग्रंथ है। इसके बाद भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में लोकसंगीत का वर्णन है। भारत दुनिया में सबसे विविध संस्कृतियों और परंपराओं का देश है। यह वास्तविक तथ्य है कि भारत में लोकगीतों और लोकसंगीत की एक विस्तृत श्रृंखला है। भारत में बोली लगभग 100 किमी के बाद बदल जाती है, इसलिए लोकगीतों और लोकसंगीत शैली भी बदल जाती हैं। लोकगीतों हमेशा अलग-अलग कारणों से व्यक्तियों, समाजों और संस्कृतियों के लिए महत्वपूर्ण रहा है। दुनिया भर में संगीत की सभी शैलियों में लोक संगीत समाज और संस्कृति में सबसे महत्वपूर्ण रूप है। जैसा कि नाम से पता चलता है, लोक लोगों का संगीत है और फिर लोकसंगीत अपने गीतों और लय से लोगों और अपनी संस्कृति को कभी समाप्त नहीं करता है। लोकसंगीत लोगों को उनके अतीत और उनकी संस्कृति से जोड़े रखता है। हमारे पास भी लोकगीत और लोकसंगीत अभिव्यक्ति का एक रूप है, जो समाज के सुखए दुख और विभिन्न मनोदशाओं को दर्शाने के लिए प्रयोग किया जाता है। ये लोकगीत और लोकसंगीत पिछले कुछ वर्षों में विकसित हुए हैं और पिछले कुछ वर्षों में भारतीय संगीत बन गए हैं, जो भारतीय संस्कृति में विशिष्टता और नवीनता लाते हैं[4]।

भारत में लगभग हर क्षेत्र का अपना लोक संगीत है जो स्थानीय संस्कृतियों और जीवन शैली को दर्शाता है। लोक-गीत संगीत के लिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे संगीत में शामिल लोगों का संक्षिप्त परिचय देते हैं। लोक गीत भी अक्सर दुसरी एक पीढ़ी से दुसरी पीढ़ी तक महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा रहा है कि लोक संगीत ने भी शास्त्रीय संगीत के स्रोत के रूप में एक बड़ी भूमिका निभाई है जिसमें कई राग स्पष्ट रूप से लोक रागों से निकले हैं। हालांकि दक्षिण एशिया के लोक-संगीत का एक बड़ा हिस्सा लोकगीतों और लोकसंगीत से जुड़ा हुआ है कई लोक गीत आमतौर पर विषयगत रूप से पहचाने जाते हैं - जो केवल गायन के लिए डिजाइन किए गए हैं। पंजाबी लोक ढोल द्वारा उच्चारित लोकगीतों की अपनी आकर्षक लय की विशेषता है जिसे ढोल के नाम से जाना जाता है। पंजाबी लोक संगीत के कई अन्य ज्ञात रूप भी हैं जिनमें से कई आध्यात्मिक विषयों से संबंधित हैं, जिन्हें हीर-रांझा या सोहनी-महिवाल जैसे दुर्भाग्यपूर्ण प्रेमियों की किंवदंतियों के रूप में दर्शाया गया है भारतीय संगीत के इतिहास में जो की सही है[5]।

लोक-गीत महत्वपूर्ण पारंपरिक गीत हैं क्योंकि ये लोगों के बीच उत्पन्न होते हैं। लोक-गीत एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाते हैं। लोक-गीत हमारी पहचान और गौरव हैं। लोक-गीत समकालीन समाज का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। लोक संगीत इस मायने में भी महत्वपूर्ण है कि यह अक्सर उत्पीड़ित लोगों को आवाज देता है प् लोकगीत और लोकसंगीत लोगों को सांस्कृतिक और राजनीतिक विचारों से अवगत कराता है। लोक गीत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे विभिन्न देशों की ऐतिहासिक संस्कृति के संगीतमय प्रतिनिधित्व हैं। मूल रूप सेए भारतीय लोकगीत और आदिवासी नृत्य सरल होते हैं और मौसमए प्रसवए शादियों और त्योहारों के आगमन के दौरान खुशी व्यक्त करने के लिए गायन किए जाते हैं। लोकगीत और लोकसंगीत लोगों के समूह या किसी विशेष इलाके की खासियत है। इस बात से कोई इंकार नहीं है कि लोकगीतों और लोकसंगीत का बहुत विशाल क्षेत्र है। जिसे शब्दों के माध्यम से व्यक्त करना असंभव है। आधुनिक युग में भी लोग इन पारंपरिक गीतों और नृत्यों में समान रूप से रुचि रखते हैं क्योंकि लोकगीत और लोकसंगीत जीवन दर्शन और मूल्यों को व्यक्त करते हैं[6]। इस बात से कोई इंकार नहीं है कि भारतीय राज्य उत्तराखंड के लोक-गीत मुख्य रूप से हिमालय की तलहटी में कुमाऊं और गढ़वाल क्षेत्रों के पारंपरिक और समकालीन लोकगीतों का उल्लेख करते हैं। अक्सर त्योहारों और धार्मिक समारोहों के दौरान उत्तराखंड के लोक-गीत का प्रदर्शन किया जाता है। इस बात से कोई इंकार नहीं है कि लोकगीत क्षेत्र में प्रकृति की सुंदरता और ऐतिहासिक पात्रों और लोककथाओं की बहादुरी को व्यक्त करते हैं। उपरोक्त के अलावा भारत में कई अन्य लोक.संगीत रूप पाए जाते हैं जैसे पश्चिम बंगाल के नाविकों द्वारा गाया गया भटियाली, महाराष्ट्र के मछुआरों द्वारा गाया गया कोली, पंजाब से भांगड़ा, राजस्थान से मांड और मध्य और दक्षिण-पूर्व भारतीय राज्यों में पंडवानी लोक-संगीत पाए जाते हैं।

निष्कर्षः

भारत में लगभग हर क्षेत्र का अपना लोक संगीत है जो स्थानीय संस्कृतियों और जीवन शैली को दर्शाता है। भारत में लोकप्रिय लोक द्वारा रचित और संरक्षित गीत लोकगीत कहलाते हैं। लोक-गीतों के रचयिता अपना लेखन लोगों को समर्पित करते हैं। लोक-गीत किसी एक व्यक्ति के नहीं पूरे समाज के होते हैं। शास्त्रों के किसी नियम की कोई बाध्यता नहीं है, भारत में मनुष्य के सुख-दुःख की लहर में सहजता से उत्पन्न होने वाली वाणी ही लोकगीत कहा जाता है। भारत में लोक-संगीत राज्यों, जातियों और जनजातियों के अनुसार बदलता रहता है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न लोक गीतों का विकास हुआ है। भारत में लोक संगीत बहुत प्राचीन है। लोकगीत संगीत के लिए महत्वपूर्ण हैं और किसी भी लोक समुदाय द्वारा गाए जाने वाले पारंपरिक गीतों को लोक गीत कहा जाता है। भारत में समाज इन लोक गीतों में अपनी आकांक्षाओं और इच्छाओं की झलक देखता हैए इन लोक गीतों में भावनाओं को जगाने की अपार क्षमता होती है। लोकगीत मुखर और सरल वाक्यों से भरे हुए होते हैं और इसमें लय को अधिक महत्व दिया जाता है।

संदर्भ सूची:

1. एस के. ठाकुर, अभिनेष सुराना और संगीत रंगारी. "छत्तीसगढ़ी लोकगीतों में शांत रस. "इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिव्यूज एंड रिसर्च इन सोशल साइंसेज. 7.2. (2019): 441.443।
2. विद्या चौहान. लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि: भोजपुरी और अवधी के संदर्भ में., प्रगति प्रकाशन, 1972।
3. सुरेश डूडवे. साहित्य की सामाजिक भूमिका : आदिवासी लोकगीतों के विशेष सन्दर्भ में. हिंदी विभाग. लघु शोध-निबंध. महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविदयालय, वर्धा, 2015।
4. श्रीमुखी देवी, लोकगीत कैन्यिका, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1992।
5. हरि देवनाम, सिंधी लोक नाय्य नाट्य परम्परा, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर, 2004।
6. विद्या चौहान, लोकगीत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि: भोजपुरी और अवधी के संस्करण में. प्रगति प्रकाशन, 1972।
7 सुभाष चंद्रण् हिंदी लोकगीतों मेंश्कजरीश्गीत का काव्य.सौंदर्यण् महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविदयालयए वर्धाए 2016।

बाल साहित्य की जादुई दुनिया

डॉ० दीपा रस्तोगी

व्याख्यता अँग्रेजी, स्कूल शिक्षा विभाग, जीवाजी विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश

बाल साहित्य की एक अपनी ही दुनिया और अपने ही रंग हैं। जिन्हें इस दुनिया में दाखिल होने और इन रंगों से सराबोर होने के अवसर मिले हैं उन्होंने इससे मिलने वाले आनंद का भरपूर आस्वादन किया हैं। बाल साहित्य अपने माध्यम से बच्चों को अपनी कल्पनाओं को एक विस्तृत आकाश देने, एक विस्तृत अनुभव संसार का दरवाजा खोलने और अपनी भाषा रचने-गढ़ने का अवसर देता है जब किसी बच्चे के हाथ में कहानी या कविता की या कोई चित्रात्मक किताब आती है, तो वह उसके पन्ने-दर-पन्ने पलटते हुए अपने अनुभव-संसार का विस्तार करता है। संसार के बारे में अनेक अवधारणाएँ श्बनतीश और श्बिगड़तीश हैं, श्नया रूप और आकारश पाती हैं। एक अनुभव संसार वह है, जो बच्चों के सामने है, प्रत्यक्ष है, जिससे रोज उनका आमना-सामना होता है- शाला के रास्ते में आने वाले पेड़, गली का कुत्ता, किसी के घर से बाहर जाती या दबे पाँव किसी घर में भीतर जाती बिल्ली, दादाजी की छड़ी, दादीजी का चश्मा, माँ की साड़ी का आंचल जिसमें अकसर छुपन छुपाई खेलते हैं या किसी की डाँट से बचने की ओट के रूप में पाते हैं, नल से बहते पानी को ऊपर उछालना और श्बारिशश लाना, कई-कई घंटों पानी के लिए लाइन में लगना या पानी की टंकी का इंतजार करना, रोटी के गोल आकार के लिए अपने आस-पास रूपक खोजना आदि। वह सब कुछ जो बच्चों के आस-पास है, उनकी अवधारणाओं का आधार है; लेकिन जैसे ही वे बाल साहित्य की दुनिया में दाखिल होते हैं, उनके अनुभव-संसार का और अधिक विस्तार होने लगता है। उन्हें यह ज्ञात होता है कि उनके घर के पास वाला, शाला में लगा हुआ या अलग-अलग रास्तों में लगे हुए पेड़ इस किताब के पेड़ से कुछ अलग है या वैसा-सा ही है, वे अलग-अलग तरह की छड़ियों का अवलोकन करते हैं और पाते हैं कि छड़ी का इस्तेमाल सिर्फ चलने में सहारे के लिए ही नहीं होता बल्कि इससे पेड़ के आम तोड़े जा सकते हैं, दूध चट करने वाली बिल्ली भगाई जा सकती है, रोटी कितनी बड़ी और बेहद पतली भी हो सकती है, पानी सिर्फ नल में ही नहीं होता, वह तो नदी, नालों, समुद्र, नहर, तालाब, कुओं में भी होता है, कौआ सिर्फ पेड़ पर ही नहीं बैठता, वह तो गाय-भैंस की पीठ पर भी बैठता है, जब हाथी को हिचकी आती है तो क्या-क्या होता है, उसकी हिचकी बंद कैसे होती है, आधी गोलाकृति हमारे आस-पास कहाँ-कहाँ हैद्य बाल साहित्य की इस चामत्कारिक दुनिया का जादू बच्चों को स्वत: ही अपने सम्मोहन-पाश में बाँध लेता है।

हमारी शिक्षा व्यवस्था में ऐसे बाल साहित्य के लिए न तो कोई स्थान नजर आता है और न ही ऐसा बाल साहित्य जो सम्मोहन का जादू जानता हो। ऐसे अनेक बच्चे हैं जो शिक्षा व्यवस्था की श्दुर्व्यवस्था के कारण इस जादू से अछूते हैं। जिसका सबसे बड़ा उदाहरण है पाठ्य पुस्तक संस्कृति क्या कोई पाठ्य पुस्तक बाल साहित्य जैसा जादू उत्पन्न करने में समर्थ है? क्या वह बाल साहित्य जैसा चमत्कार कर पाती है कि हाथ और नजरों से किताब छूटे ही ना! संभवत: नहीं पाठ्य पुस्तक की अपनी एक विशिष्ट और विचित्र सीश संस्कृति जो कहीं न कहीं परीक्षा के भय को अपने भीतर समेटे हुए है या यूं कहिए कि वह स्वयं परीक्षा से भयाक्रांत है। पाठ्य पुस्तक परीक्षा के दायरे में बँधी हुई है और एक तयशुदा दिशा में चलती है। पहले पहला पाठ पढ़ाया जाएगा, फिर दूसरा, फिर तीसरा और फिर चौथा पाठ-दर-पाठ पढ़ानेश के एक निश्चित अंतराल पर परीक्षा होगी जो उन पाठों पर ही आधरित होगी परीक्षा के आधार पर बच्चों की प्रगति का लेखा-जोखा रखा जाएगा। तो फिर दूसरी किताब यानी बालसाहित्य की कोई किताब क्यों पढ़ी जाए? लिहाजा बालसाहित्य शाला या कक्षा के बाहर ही अपनी उपस्थिति दर्ज करता है। इसका मतलब यह है कि किन्हीं नीतियों के तहत अगर बाल साहित्य खरीद भी लिया जाए, तो वह किसी अलमारी या किसी संदूक में बंद हो जाता है। प्राथमिक स्तर पर और विशेष रूप से कक्षा एक और दो के बच्चों के लिए बाल साहित्य जैसी किसी श्चीजश को निषेध मान लिया जाता है, क्योंकि शिक्षकों एवं शशिक्षा अधिकारियों के मध्य यही अवधारणा व्याप्त है कि पहली दूसरी के बच्चे पढ़ना तो जानते नहीं हैं, फिर इन्हें बाल साहित्य देने से क्या फायदा? ये भला कहीं पढ़ पाएँगे? किताब और फाड़ देंगे। फिर पड़ जाएँगे लेने के देने! यही कारण है कि बच्चों की शिक्षा केवल पाठ्य पुस्तक तक ही सीमित होकर रह जाती है जिसका सरोकार केवल परीक्षा से है। हम यह भूल जाते हैं कि शिक्षा परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होना नहीं है।श्भारतीय समाज की बाहुल्यवादी और विविध प्रकृति निश्चित रूप से यह माँग करती है कि न केवल विविध प्रकार की पाठ्य पुस्तकें छापी जाएँ बल्कि अन्य सामग्री भी तैयार की जाए ताकि बच्चों की रचनात्मकता, सहभागिता और रुचियों का इस तरह विकास हो सके कि उनके अधिगम में बढ़ोतरी हो। कोई एक पाठ्य पुस्तक विविध समूह के बच्चों की विस्तृत आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकती। ... शिक्षण की सहायक सामग्री तथा अन्य पुस्तकें, खिलौने आदि स्कूल को बच्चों के लिए रुचिकर बना देते हैं ... शिक्षकों को विभिन्न प्रकार की आधार सामग्री जुटानी चाहिए, जिनसे ऐसी सहायक सामग्री बनाई जा सके, जिसका साल दर साल इस्तेमाल हो सके। इस संदर्भ में यह आवश्यक हो जाता है कि बच्चों को पाठ्य पुस्तक के अतिरिक्त ऐसी सामग्री उपलब्ध कराई जाए, जो उनके सीखने में मदद कर सके। पढ़ना सीखने के संदर्भ में तो यह विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है और अनिवार्य भी।

शाला के शुरूआती सालों में बच्चों की पढ़कर समझने की क्षमता का विकास करने का शिक्षा शास्त्र इस बिंदु पर बल देता है कि बच्चों को विविध प्रकार का बाल साहित्य उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इससे वे पढ़ने का आनंद भी ले सकेंगे। बाल साहित्य का अपना एक अलग कलेवर और भाषायी छटा होती है। किताब को हाथ में उठाकर पकड़ने और उसे छूने का अहसास एक अलग ही मजा देता है और खास तरह की उपलब्धि का अहसास भी कराता

पढ़ने का यह आनंद, यह उपलब्धि न तो केवल कार्ड ही दे सकते हैं और न ही केवल चार्टी हमारी शालाओं में सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में पाठ्य पुस्तकों को ही एकमात्र साधन मान लिया जाता है और पूरी प्रक्रिया उसी पर केंद्रित होकर रह जाती है। कई बार तो ऐसा होता है कि बच्चों के पास पढ़ने के नाम पर पाठ्य पुस्तक के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। अनेक बार तो वह भी समय से उपलब्ध नहीं हो पाती प्रारंभिक साक्षरता पर हुए शोध हमें बताते हैं कि कहानियों की किताथों से परिचय और उनसे जुड़ाव होना बच्चों के लिए इस रूप में लाभदायक होता है कि वे लिखित या प्रिंट पढ़ने, अर्थ निकालने आदि के बारे में अनेक महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं का निर्माण करते है। ऐसे अनेक बच्चे हैं; जिन्हें घर पर इस प्रकार का लिखित समृद्ध परिवेश नहीं मिलता, तो शाला की यह और भी जिम्मेदारी हो जाती है कि वह बच्चों को इस प्रकार का समृद्ध परिवेश उपलब्ध कराए। इस दिशा में बाल साहित्य की विशेष भूमिका है। बच्चों में स्थायी साक्षरता कौशलों के साथ-साथ आलोचनात्मक चिंतन, कल्पनाशीलता और सृजनात्मकता का विकास करने के लिए विविध प्रकार की कहानियों की किताबों से उनका परिचय करवाया जाना बहुत महत्वपूर्ण है। कक्षा में पढ़ने का कोना श और / या विद्यालय में एक जीवंत पुस्तकालय की उपस्थिति बच्चों को विविध प्रकार की पठन सामग्री से परिचित करवाने और उन्हें सक्रिय श्पाठकश के रूप में तैयार करने में मदद मिलती है। इस दिशा में सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत शाला पुस्तकालयों को जीवंत बनाने और पुस्तकालय में पुस्तकें / बाल साहित्य खरीदने के लिए राज्यों को अनुदान राशि भी प्रदान की गई। बाल साहित्य चयन प्रक्रिया बच्चों को स्वतंत्र पाठक बनाने के संदर्भ में यह बिंदु भी महत्वपूर्ण है कि पुस्तकालयों में बाल साहित्य का चयन ध्यानपूर्वक किया जाना चाहिए। किताबें ऐसी हों जो बच्चों के विभिन्न आयु वर्गों, विभिन्न प्रकार की पठन क्षमताओं वाले और विविध प्रकार की रुचियों वाले बच्चों के लिए उपयुक्त हों। इस संदर्भ में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने श्प्रारंभिक साक्षरता कार्यक्रम के अंतर्गत 2007-08 से प्राथमिक कक्षाओं के लिए हिंदी, अंग्रेजी और अब उर्दू (2014-15) में बाल साहित्य की समीक्षा करने और एक प्रस्तावित सूची का निर्माण करने का कार्य प्रारम्भ किया जिससे बच्चों, शिक्षकों, अभिभावकों, विद्यालयों, राजकीय बोर्ड और शिक्षा से सरोकार रखने वाले अन्य कर्मियों के लिए अच्छा बाल साहित्य उपलब्ध हो सके। इस सूची का निर्माण दो स्तरों पर किया गया है

स्तर एक कक्षा एक और दो के लिए है तथा स्तर दो कक्षा तीन से पाँच के बच्चों के लिए है। बाल साहित्य के चयन के लिए जो प्रक्रिया अपनाई गई, वह इस प्रकार है- विभिन्न प्रकाशकों से बाल साहित्य का आमंत्रणविभिन्न प्रकाशकों से बाल साहित्य को आमंत्रित करने के लिए समाचार पत्र सहित एनसीईआरटी की वेबसाइट पर एक विज्ञापन प्रकाशित किया गया। जिसमें देश भर के प्रकाशकों से प्राथमिक स्तर के लिए उपयोगी बाल साहित्य भेजने के लिए कहा गया 2007-08 में विदेशी प्रकाशकों से भी पुस्तकें आमंत्रित की गई थीं। परिषद् की वेबसाइट पर दिया गया विज्ञापन विस्तृत था जिसमें इन बिंदुओं का उल्लेख था कि किस प्रकार का बाल साहित्य अपेक्षित है। जो बाल साहित्य वे भेज रहे हैं उनके सम्बन्ध में यह स्पष्टत: उल्लेख हो कि वे किस स्तर स्तर एक या दो के लिए हैं। दूसरी बार दिए गए विज्ञापनों में यह विशेष अनुरोध किया गया कि प्रकाशक वे किताबें न भेजें, जो वे पिछले वर्ष भेज चुके हैं। यह इसलिए था कि उन किताबों की एक बार समीक्षा हो ही चुकी है और उनकी पुन: समीक्षा करने में समय लगाना उचित नहीं था। साथ ही यह भी अनुरोध किया गया कि पाठ्य पुस्तकों और अभ्यास पुस्तकों को सूची में शामिल न करें। इस तरह देश भर से हजारों किताबें प्राप्त हुई और भाषा (हिंदी, अंग्रेजी और उर्दू, उनके स्तर) स्तर एक या दो, प्रकाशकों और शीर्षकों की संख्या के अनुसार किताबों की 'कोडिंग' की गई ताकि समीक्षा करने में और सूची को तैयार करने में सहूलियत हो सके।

हमारी शिक्षा व्यवस्था में ऐसे बाल साहित्य के लिए न तो कोई स्थान नजर आता है और न ही ऐसा बाल साहित्य जो सम्मोहन का जादू जानता हो। ऐसे अनेक बच्चे हैं जो शिक्षा व्यवस्था की श्दुर्व्यवस्था के कारण इस जादू से अछूते हैं। जिसका सबसे बड़ा उदाहरण है पाठ्य पुस्तक संस्कृति क्या कोई पाठ्य पुस्तक बाल साहित्य जैसा जादू उत्पन्न करने में समर्थ है? क्या वह बाल साहित्य जैसा चमत्कार कर पाती है कि हाथ और नजरों से किताब छूटे ही ना! संभवत: नहीं पाठ्य पुस्तक की अपनी एक विशिष्ट और विचित्र सीश संस्कृति जो कहीं न कहीं परीक्षा के भय को अपने भीतर समेटे हुए है या यूं कहिए कि वह स्वयं परीक्षा से भयाक्रांत है। पाठ्य पुस्तक परीक्षा के दायरे में बँधी हुई है और एक तयशुदा दिशा में चलती है। पहले पहला पाठ पढ़ाया जाएगा, फिर दूसरा, फिर तीसरा और फिर चौथा पाठ-दर-पाठ पढ़ानेश के एक निश्चित अंतराल पर परीक्षा होगी जो उन पाठों पर ही आधरित होगी परीक्षा के आधार पर बच्चों की प्रगति का लेखा-जोखा रखा जाएगा। तो फिर दूसरीश किताब यानी बालसाहित्य की कोई किताब क्यों पढ़ी जाए? लिहाजा बालसाहित्य शाला या कक्षा के बाहर ही अपनी उपस्थिति दर्ज करता है। इसका मतलब यह है कि किन्हीं नीतियों के तहत अगर बाल साहित्य खरीद भी लिया जाए, तो वह किसी अलमारी या किसी संदूक में बंद हो जाता है। प्राथमिक स्तर पर और विशेष रूप से कक्षा एक और दो के बच्चों के लिए बाल साहित्य जैसी किसी श्चीजश को निषेध मान लिया जाता है, क्योंकि शिक्षकों एवं 'शिक्षा अधिकारियों के मध्य यही अवधारणा व्याप्त है कि पहली दूसरी के बच्चे पढ़ना तो जानते नहीं हैं, फिर इन्हें बाल साहित्य देने से क्या फायदा? ये भला कहीं पढ़ पाएँगे? किताब और फाड़ देंगे। फिर पड़ जाएँगे लेने के देने! यही कारण है कि बच्चों की शिक्षा केवल पाठ्य पुस्तक तक ही सीमित होकर रह जाती है जिसका सरोकार केवल परीक्षा से है। हम यह भूल जाते हैं कि शिक्षा परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होना नहीं है।

बाल साहित्य की 'कुछ' किताबों ने 'बहुत' समय लिया। हालांकि एक-एक किताब को तीन-तीन विषय विशेषज्ञों द्वारा समीक्षित किया गया था और सर्वसहमति से किताब को अनुमोदन देने या न देने का निर्णय लिया गया था, लेकिन कुछ किताबों के मामले में तो मानो 'सुई' अटक ही गई हो। बारिश का एक दिन, जूँ और हूँ, काँच का पेड़, मुकुंद और रियाज, नन्हे खरगोश की बुद्धिमानी, मेंढक का नाश्ता, भेड़िए को दुष्ट क्यों कहते हैं, बाबूजी का दबंग दस्ता आदि। इनमें से विशेष रूप से मुकुंद और रियाज का जिक्र करना रोचक बिंदुओं को से उजागर करेगा। नीना सबनानी द्वारा लिखी और चित्रित कहानी में दो दोस्तों मुकुंद और रियाज के मधुर रिश्तों को दिखाया गया है। दोनों पड़ोसियों में बेहद आत्मीयता और समझदारी है। वे एक-दूसरे के त्योहारों को मिलकर मनाते हैं, एक-दूसरे के घर जाते हैं। कहानी का कथ्य अनेक संवेदनाओं को समेटे हुए हैं; लेकिन कहानी में 'जिन्ना टोपी, भारत पाकिस्तान के विभाजन' का जिक्र है। चयन समिति में अलग-अलग तर्क प्रस्तुत किए गए। कुछ कथ्य, संवेदना, विशिष्ट चित्रांकन के आधार पर इस कहानी को रखने के पक्ष में थे, तो कुछ श्जिन्ना टोपी और भारत पाकिस्तान के विभाजन के उल्लेख के कारण न रखे जाने का अपना पक्ष रख रहे थे। संवाद और गहन विमर्श के बाद यह निर्णय लिया गया कि यह कहानी उच्च स्तर के लिए अनुमोदित की जा सकती है; लेकिन प्राथमिक स्तर के बच्चों के लिए 'जिन्ना टोपी और भारत

पाकिस्तान के विभाजन के पूरे परिप्रेक्ष्य को समझना कठिन हो जाएगा। बाल साहित्य स्वतंत्र पठन को प्रोत्साहित करने के लिए है, फिर चाहे वह कक्षा हो, विद्यालय हो या घर! बाल साहित्य शिक्षक द्वारा ही पढ़ाया जाए ऐसा भी नहीं है। अत: इस कहानी को फिलहाल यहाँ न रखा जाए। इसी तरह किताबों के कथ्य, उनकी प्रामाणिकता, उनके चित्रांकन, उनमें छिपे अप्रत्यक्ष संदेश आदि के कारण कुछ कहानियों को सूची में शामिल नहीं किया गया और कुछ को इसी बहस चर्चा, गहन विमर्श और सटीक तर्क बाद शामिल कर लिया गया। बाल साहित्य में अनुवाद की समस्या काफी है। अनेक बार अनुवाद इतना बोझिल और यांत्रिक होता है कि वह पढ़ने का मजा नहीं दे पाता। भाषायी संरचना में 'टूटन' साफ-साफ नजर आती है। इतना ही नहीं कुछ किताबों को कक्षा में भी इस्तेमाल करते हुए बच्चों की प्रतिक्रियाओं का गहन अवलोकन किया गया, उनकी पसंद-नापसंद के बारे में पूछा गया और जब निर्णय लिये गए, बच्चों के साथ निरंतर काम करते हुए बाल साहित्य की समझ और चयन प्रक्रिया बेहतर बनती चली गई। हम बड़े़श जिस तरह से चीजों को देखते हैं, संभवत: बच्चे उस तरह से चीजों को नहीं देखते। उनका अपना ही अलग 'अंदाज' होता है।

इस प्रकार से हम बता सकते हैं कि बच्चे अपने आस-पास जो चीज देखते हैं, महसूस करते हैं उनका उनके व्यक्तित्व पर प्रभाव अवश्य पड़ता है। कविता तथा कहानियों में वह शक्ति होती है जो बच्चों के भावनात्मक विकास में सहायक हो सकती है।

संदर्भ -सूची :-

1. राष्ट्रीय पाठ्य चर्या की रूप रेखा - 2005 पृ. 106-107
2. हाथी की हिचकी .जेम्स प्रेलर -पृ. 15

हिंदी उपन्यासों में दलित चेतना का यथार्थ चित्रण

राजेश कुमार गुप्ता

शोधार्थी हिंदी विभाग, कुटीर पी.जी कॉलेज चक्के जौनपुर (वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर)

'दलित' शब्द का अर्थ होता है- 'कुचला हुआ, दबाया हुआ (जैसे दलित वर्ग) नष्ट किया हुआ (जैसे-दलितजाती) 'दलित' शब्द का शाब्दिक अर्थ है-दलन किया हुआ होता है। दलित अंग्रेजी शब्द डिप्रेस्ड क्लास का हिन्दी अनुवाद है। भारत में वर्तमान समय में 'दलित' शब्द का कई अर्थों में प्रयोग होता है। वैसे तो इसकी कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं हो सकती, लेकिन मोटे तौर पर उन वर्गों को दलित कहा जाता है जो वर्तमान में अनुसूचित जाति के अन्तर्गत आते हैं। दलित शब्द का अर्थ पीड़ित, शोषित, 'दबाया हुआ' एंव 'जिनका हक छीना गया हो' होता है। इस अर्थ में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी धर्मों में दलित वर्ग मौजूद है। वर्तमान समय में जिनको दलित समझा जाता है उनमें से अनेक वर्गों को पहले 'अछूत' या 'अस्पृश्य' माना जाता था। उनका अनेक प्रकार से शोषण हुआ। भारत की जनगणना २०११ के अनुसार भारत की जनसंख्या में लगभग 16.6 प्रतिशत या 20.14 करोड़ आबादी दलितों की है। अपने जीवन संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित विमर्श उनकी उसी अभिव्यक्ति का विमर्श है। यह कला के लिए कला नहीं बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का विमर्श है। दलित चेतना का पूरा चित्रण दलित साहित्य में समाहित है। इसका सम्बन्ध सांस्कृतिक, संस्कारों एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से है। मूलत: भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था के आधार पर जो जातिगत बंटवारा हुआ है। यह पूर्णत: असमानता, वर्चस्व और शोषण पर आधारित है। दलित कोई एक रूपीय समाज नहीं है। इसकी अनेक परते है। दलित साहित्य के पीछे दलित चेतना की प्रमुख भूमिका है क्योंकि दलित चेतना से ही दलित स्वाभिमान जागता है। दलित अस्मिता की भावना बढ़ती है। इस साहित्य को सबसे पहले डॉ भीमराव अंबेडकर ने दलित साहित्य का नाम दिया था। इनकी अद्‌भुत सोच व चेतना का ही परिणाम है कि दलित साहित्य एक प्रमुख धारा बन चुका है। आधुनिक शब्दों में साहित्य समाज का अल्ट्रासाउण्ड है। सामाजिक मुद्दों को उजागर करना साहित्य का ही काम है। दलित साहित्य उतना ही प्राचीन है जितना हिन्दी साहित्य। दलित साहित्यकारों ने इसी छुआछुत को मिटाने के लिए समाज और अपनी स्थिति की उपस्थिति दर्ज करने के लिए साहित्य का सृजन करना प्रारम्भ किया।

हिन्दी के दलित उपन्यासों में चित्रित यथार्थवादी चेतना

साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध है। उपन्यास वर्तमान युग की प्रचलित विधा है। उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है। उपन्यास की कहानी को पढ़कर लगता है कि इसमें हमारे ही जीवन की कथा है।

इस प्रकार हिन्दी भाषा में उपन्यास लेखन की परम्परा सौ साल से भी अधिक पुरानी है। हिन्दी में उपन्यास लेखन की परम्परा में सामाजिक, धार्मिक, आदर्शवादी, मार्क्सवादी, आँचलिक, यथार्थवादी प्रकृतवाद आदि से सम्बद्ध उपन्यास लिखे गये हैं और लिखे जा रहे हैं। इन सब धाराओं के अलावा कई पक्ष, पहलु मुद्दे हैं जो चर्चा के विषय हैं, उन पर बात कर उन पहलुओं, मुद्दों और उनसे जुड़े लोगों की समस्याओं कठिनाइयों एवं सच्चाईयों को सबके सामने लाना एवं उनको दूर करने का प्रयास किया जाना अति आवश्यक है। वे लोग, उनकी समस्याएँ मुद्दे आज भी हासिए पर है, उनकी ओर किसी का ध्यान नहीं है। आज इसी हासिए की अवधारणा ने हिन्दी में कई साहित्यिक विमर्शों को जन्म दिया है। हजारों वर्षों के शोषण एवं भेदभाव के विरूद्ध इनके संघर्ष का परिणाम है कि आजादी के बाद इन पर अधिक ध्यान दिया गया। आज की जरूरत इन्हें दिये गये विधिक अधिकारों की मूल भावना को समाज के यथार्थ में परिवर्तित करना है। इन बिमशों की सबसे बड़ी सामाजिक उपयोगिता है जिसके चलते वर्तमान साहित्यिक परिदृश्य में ये विमर्श हाशिए पर नहीं, वरन् केन्द्रीय स्थान रखते हैं। हिन्दी महात्मा ज्योतिबा फुले और बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर के विचारों एवं संघर्ष से आन्दोलित दलित लेखन एवं पश्चिमी नारीवाद की छाया में विकसित स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श से प्रभावित लेखन उत्कृष्ट रूप में हमारे सामने है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर के जीवन दर्शन को जाने बिना हिन्दी दलित साहित्य को समझने की चेष्टा करना बेमानी लगता है। डॉ. अम्बेडकर हिन्दी दलित साहित्य के प्रेरणापुज हैं। उन्होंने दलित जातियों को षिशक्षित बनो, संगठित रहो, और संघर्ष करोष् का मूलमंत्र दिया। साहित्यकार सूरजपाल चौहान ने दलितों के जीवन और दलित साहित्य पर डॉ. अम्बेडकर के गहरे प्रभाव को स्वीकार किया है। यह प्रभाव दलित समाज को सामाजिक बराबरी के साथ-साथ आर्थिक समानता और सत्ता में बराबर भागीदारी के लिये भी प्रेरित करता है। हाशिए के समाज में अब किसान-मजदूर, अल्पसंख्यक, वृद्ध, नि:शक्तजन एवं किन्नर आदि भी सम्मिलित हैं। उल्लेखनीय है कि इनसे सम्बन्धित विमर्श न केवल साहित्य की प्राय: सभी विधाओं को समृद्ध करते हैं, बल्कि रचना, आलोचना, समीक्षा के परम्परागत प्रतिमानों से अलग साहित्य के नये सौन्दर्यशास्त्र की वकालत भी करते हैं।

दलित साहित्य की जब भी चर्चा होती है, उसे हिन्दी साहित्य से काटकर देखने की माँग होती है। खासकर, अनेक दलित साहित्यकार मानते हैं कि हिन्दी में लिखित दलित साहित्य एक स्वतन्त्र साहित्य है। यह हिन्दी साहित्य अलग किया जाना चाहिए। परन्तु प्रत्येक भाषा की एक सामाजिक अस्मिता होती है और उस सामाजिक अस्मिता से ही भाषा की अस्मिता भी तय होती है। जैसा कि यूरोप के समाजों की पहचान उनकी अलग-अलग भाषाओं से होती है। चाहे वह रूसी जाति हो, या फ्रांसीसी या अंग्रेज जाति हो। इन समाजों की अस्मिता की निर्मिति उनकी भाषाओं से अलग करके नहीं देखी जा सकती है।

हिन्दी में डॉ. रामविलास शर्मा जिस षहिन्दी जाति की बात करते हैं, उसकी सामाजिक अस्मिता इसी ष्जातीय भाषाष् से निर्मित होती है। उनकी दृष्टि में भाषा का यह जातीय स्वरूप ही षहिन्दी समाज को निर्मित करता है। दलित समाज इसी भारतीय (हिन्दू) समाज का एक हिस्सा है। अथवा यों कहें कि - भारतीय वर्ण-व्यवस्था या जातिव्यवस्था में इस समाज का अस्तित्व हिन्दु धर्म की धार्मिक और नैतिक मान्यताओं से निर्धारित होता रहा है और इसी समाज में सवर्ण हिन्दुओं द्वारा 'अस्पृश्य' समझा जाने के कारण दलित समाज उनका विरोध करता रहा है। इसीलिये सवर्ण समाज से तमाम भिन्नताओं के बावजूद यदि दलित समाज का रचनात्मक लेखन हिन्दी भाषा में आता है तो जाहिर है कि उसे हिन्दी साहित्य की मुख्यधारा के समानांतर हिन्दी में लिखित हिन्दी का एक नया साहित्य माना जाना चाहिये।

यदि हम हिन्दी में लिखित दलित उपन्यासों को देखें तो ये बातें अपने आप स्पष्ट हो जायेगी। यद्यपि हिन्दी में दलित उपन्यास कम ही है और आज जिसे दलित साहित्य कहा जाता है उसमें गिनकर तीन-चार उपन्यास ही ऐसे हैं, जो दलित लेखकों द्वारा लिखे गये हैं। ये उपन्यास है रामजीलाल सहायक का बंधन मुक्त (1954), जयप्रकाश कर्दम का छप्पर (1994). डी. पी. वरूण का अमर ज्योति (1980), प्रेम कपाड़िया का मिट्टी की सौगन्ध (1995). सत्य प्रकाश का जस तस भई सबर (1998), लोकप्रिय दलित लेखकों में के नाथ का श्पलायनश (2006) और अजय नावरिया का उधर के लोग (2008). परदेशी राम वर्मा का श्प्रस्थान गुरुचरण सिंह का डूब जाती है नदी, शरण कुमार लिम्बाले का श्नरवानर और मोहनदास नैमिशराय का मुक्तिपर्व आदि। इन उपन्यासों में रामजीलाल सहायक का उपन्यास बन्धन मुक्कत उपलब्ध नहीं है। इस उपन्यास में लेखक ने बाबा अम्बेडकर से प्रभावित होकर भारतीय समाज की जाति व्यवस्था में दलितों की मुक्ति के सवाल को गुरु उठाया गया है और औपन्यासिक संरचना की दृष्टि से डी. पी. वरूण का उपन्यास श्अमर ज्योति एक साम उपन्यास भी कुछ इसी प्रकार के हैं।

वास्तवमें हिन्दी में लिखित दलित उपन्यासों के साथ सबसे बड़ी दिक्कत उनकी औपन्यासिक संरचना तथा विराम को लेकर है। यह दिक्कत अन्य विधाओं में लिखित दलित साहित्य के साथ भी है जैसे की क कृति श्दोहरा अभिशापश का ढाँचा तो औपन्यासिक है, परन्तु वे छपी है आत्मकथा अथवा आत्मकथात्मक उपन्यास रूप में हिन्दी में जो दलित उपन्यास उपलब्ध है, उनमें जयप्रकाश कर्दम कृत-उपन्यासश छप्परश की चर्चा एक अच्छे दलित उपन्यास कारण दलित समाज उनका विरोध करता रहा है। इसीलिये सवर्ण समाज तमाम भिन्नताओं के बावजूद यदि दलित समाज का रचनात्मक लेखन हिन्दी भाषा में आता है तो जाहिर है कि उसे हिन्दी साहित्य की मुख्यधारा के समानांतर हिन्दी में लिखित हिन्दी का एक नया साहित्य माना जाना चाहिए।

माँगे?..... गाँव में होते तो दो चार टैम का पास-पड़ौस से माँग लेते, लेकिन यहाँ कौन देगा?

तू ठीक कहता है रमिया हम बिल्कुल अकेले है यहाँ और यही हमारी सबसे बड़ी समस्या है। गाँव में पूरी बिरादरी में चाहे कार कितना भी मजबूर और परेशान रहा हो, लेकिन भूख से मरते नहीं देखा कभी किसी को गाँव में तो बिना माँगे ही मदद करते हैं लोग एक-दूसरे की। हम भी गाँव में होते यदि तो और चाहे जो होता हमारा, लेकिन कम से कम भूखे तो नहीं मरते हम। स्पष्टत: रमिया और सुक्खा यहाँ जिस ग्रामीण संस्कृति की बात कर रहे हैं, यह वही ष्अस्मिता है जो दलित समाज के अन्दर भी एक खास प्रकार की जातीय अस्मिता का बोध कराती है। कहना न होगा कि उनकी यह जातीय अस्मिता पारम्परिक ग्रामीण समाज में सामाजिक परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया के तहत सामाजिक अस्मिता का रूप अख्तियार कर लेती है।

'जस तस भई सर्वर' उपन्यास की भूमिका लिखते हुये डॉ. कुसुम वियोगी ने लिखा है कि -"यह देश अशिक्षा के कारण मिथ्या आडम्बरों में फंसा हुआ है, जिसके कारण आए दिन नर बलि, पशु बलि पुजारी या तांत्रिक - ओझाओं द्वारा उत्पीड़ित नर-नारी आए दिन आत्महत्या कर लेते हैं।" आगे उन्होंने बधुआ मजदूरी के उदय के कारणों में इन धार्मिक अन्धविश्वासों और अशिक्षा की चर्चा करते हुये लिखा है कि जिसकी परिणति बधुआ मजदूरी से शुरू होती है और अमिक शोषण से गुजरती हुई उसकी त्रासदी दैनिक शोषण पर जाकर भी नहीं रुकती, बल्कि गाँव की जमीन-जायदाद तक से बेदखल हो चुके आकाश के नीचे शरण लेकर समाप्त होती है। उन्हीं बेलाग सच्चाइयों के आईने को प्रस्तुत करता यह उपन्यास दलितों के सामाजिक, आर्थिक उत्पीड़न को उजागर करता है जो अशिक्षित दलित समाज की व्यथा-कथा भी हैं। उपन्यास में आया रूपलाल जैसा पात्र मंगल पहलवान के साथ बात-विचार की प्रक्रिया में इस सत्य का उद्घाटन करता है कि व्यवस्था के दोष, खासकर अज्ञानता के कारण दलित श्रमिक (वर्ग) चौधरी जैसे सामन्त और भगत जैसे पुरोहित जाल में फंसता है और जिन्दगी भर उनकी गुलामी सहने को विवश होता है. भगत धार्मिक आडम्बरों के लिए प्रेरित करता है और चौधरी इसके लिए कर्ज देता है। दोनों का उद्देश्य शोषण करना है। फिर दोनों अपनी बुद्धि, बल और धन बल के बल पर भारे होने से पूर्व कमेरे (काम करने वाले) वर्ग का सवेरा छीन लेते हैं और फिर शुरू होता है उन्हें अंधकार में धकेलने का कार्य जिसमें कमेरा वर्ग भटकता ही रह जाता है, जबकि उनमें से एक (ब्राह्मण पुरोहित) समाज पर बोझ बनकर खाली पड़े मौज मारता है, दूसरा (सामन्त क्षत्रिय) कर्ज के बदले पीढ़ी-पीढ़ी तक बेगार करवाता है और जब मेहनतकश पूरी तरह उनके जाल फंस जाता है तो दोनों मिलकर तुम्हारी औरत का यौन शोषण करते हैं।

असल में औपनिवेशिक भारत और उससे मुक्ति आन्दोलन के दौरान डॉ. अम्बेडकर के जीवन दर्शन और विचारधारा ने जिस अज्ञानता, अशिक्षा को दलित समाज के शोषण, दमन और उपेक्षा का वास्तविक कारण घोषित किया था, उसे हिन्दी में प्रकाशित दलित उपन्यासों ने कथा का मुख्य आधार बनाया है। जयप्रकाश कर्दम श्छप्पर उपन्यास में इसी अज्ञानता को दलित समाज के पिछडेपन का कारण मानते हैं। इसीलिये कथानायक चन्दर अपने परिवार और समाज की आकांक्षा और यथार्थ से टकराते हुये दलितों के बीच "ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार को अपनी जिन्दगी का सबसे बड़ा और पहला लक्ष्य घोषित करता है। संघर्ष करते हुये ये पात्र महाभारत की एकलव्य तरह अपना अंगूठा नहीं गंवाते परम्परा और आधुनिकता से टकराते, संवाद करते तथा संघर्ष करते हुये आगे बढ़ना चाहते हैं। इतना ही नहीं, वे अपनी तथा समाज की जिन्दगी को करते हुये भारतीय समाज में एक मुकम्मल जगह चाहते हैं, जिससे कि उनकी एक सामाजिक अस्मिता बन सके। इसीलिये यहाँ आदर्शवाद नहीं, बल्कि यथार्थवाद उनके विचारों को मजबूती प्रदान करता है और इस यथार्थवाद से निकला सत्य पारम्परिक को नए सिरे से संयोजित से सवाद की धार्मिक और नैतिक मान्यताओं को जड़ से खत्म करना चाहता है। जाहिर है. यह श्यथार्थश वह प्रचलित यथार्थ नहीं है जो प्रेमचन्द के गोदान अथवा फणीश्वरनाथ रेणु के मैला आचल में समाजवादी यथार्थ से प्रभावित दिखलाई पड़ता है बल्कि अब तक के दलित उपन्यासों में वर्णित यथार्थ में उस नई परम्परा और इतिहास की सृष्टि दिखलाई पड़ती है। जहां जिन्दगी की वास्तविक सच्चाई का बयान ही यथार्थ है। न

कम न अधिक, और यह सत्य है कि कोरायथार्थ का मूल्यांकन प्रचलित साहित्यिक मूल्यों के आधार संभव नहीं है। इस प्रकार प्रस्तुत शोध लेख में यथार्थवादी दृष्टि का मूल्यांकन किया गया हैद्य

संदर्भ-सूचीः-

1. The Times of india से मार्च2019 को पुरा लेखित अधिगमन तिथि 1.मार्च-2019
2. मनुष्या नन्द. पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र-पृ.128
3. गोदान-प्रेमचंद-पृ.261
4. आलोचना-अंकजनवरी1983 -पृ.96
5. निराला का गद्य साहित्य-प्रेमप्रकाश-पृ.60
6. हिंदीउपन्यास-डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव-पृ.281
7. छप्पर-जयप्रकाशकदम-पृ.52
8. वही
9. जसत समईसवेर. डॉ. कुसुम वियोगी-पृ.8
10. वही.पृ.123

संस्कृतसाहित्ये उपलभ्यमानमल्लयुद्धस्य विज्ञानम्

मनु आर्या

(संस्कृत विभाग) कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

शोधालेखसारः- मल्लयुद्धो बाहुयुद्धकारके नियोद्धरि[1] वर्तते। वाशिष्ठधनुर्वेदे सप्तयुद्धेषु अन्तिमं बाहुयुद्धमुक्तम्। 'सप्तमं बाहुयुद्धं स्यात्'।[2] यदा युद्ध्यमानयोद्धृणां सर्वायुधानि समाप्यन्ते स्म तदा अन्यसाधनानामभावे मुष्टियुद्धमाश्रीयते स्म। 'आयुधक्षयमासाद्य मुष्टियुद्धानि चक्रिरे'[3]। प्राचीनकाले यदा शारीरिकबलद्वन्द्वयुद्धयोः प्रचलनमासीत् तदा सर्वे योद्धार इमम् अभ्यस्यन्ति स्म। एतत् नियुद्धबाहुयुद्धमुष्टियुद्धनामभिर्ज्ञायते। अद्यत्वे प्रचलितौ 'जूड़ो-कराटे' इति फ्रीस्टाइल कुश्ती च इत्यस्यैव भेदौ। एतस्मिन् शोधपत्रे मल्लयुद्धस्य स्वरूपं भेदाः मल्लानां प्रकृतयः नियुद्धानुसारं मल्लानां भेदाः रंगभूमिः मल्लयुद्धस्य विज्ञानम् इत्येते विषयाः विस्तरेण वर्णिष्यन्ते।

मुख्यशब्दाः - मल्लयुद्धं, धरणिपातः, रंगसिद्धिः, भविष्णुः, आषाढकः, नियुद्धम्।

एतस्य मूलं वेदे उपलभ्यते नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै[4]। अग्निपुराणे नियुद्धस्य षट्त्रिंशत् विज्ञानानां गणना वर्तते।[5] शुक्रनीतिकारो लिलेख यत् नृपः स्वसैनिकान् समानबलवद्भिर्नियुद्धे कुशलयोद्धृभिः सह योधयेत्। विविधव्यायामैर्भोजनादिभिश्च तेषां शारीरिकबलं वर्धयेत्।

समैर्नियुद्धकुशलैर्व्यायामैर्नीतिभिस्तथा।
वर्धयेद्बाहुयुद्धार्थं भोज्यैः शारीरिकं बलम्।।[6]

पाणिनिमुनेः समयेऽपि एतत् युद्धकीडारूपे प्रचलितमासीत्।[7]

मल्लयुद्धस्य भेदाः -

नियुद्धस्य चत्वारो भेदाः सन्ति। (1) धरणिपातं (2) आसुरयुद्धं (3) नारयुद्धं मारयुद्धम् वा (4) धर्मयुद्धं।

आद्यं धरणिपातं च आसुरं च द्वितीयकम्।
तृतीयं नारमित्युक्तं युद्धं पुनश्चतुर्थकम्।।[8]

(1) धरणिपातः -

एतस्मिन् युद्धे विपक्षेभूमिपातनं भवति। युद्धस्य कूटोपायान् प्रयुज्य स्वयं वा भूमौ पतित्वा प्रतिपक्षिनं भूमौ पातनं धरणिपातः कथ्यते। एषः पञ्चविधो भवति। प्रथमः तलप्रहारः, द्वितीयः करप्रहारः, तृतीयः भूमौ स्वयं पतित्वा परपातनं, चतुर्थं पातितस्य स्फुटं हारः, पञ्चमः पातितस्य निरुद्धे सति विजयो भवति।[9] यथा युद्धे योद्धा शस्त्रादिना सिद्धिं प्राप्नोति तथैव रंगभूमौ (अखाड़े) प्रतिपक्षिमल्लं भूमौ पातनमात्रेण मल्लो विजयं प्राप्नोति।[10]

बलवतश्च क्रियातश्च बाहुयुद्धविधिर्युधि।
निपातानन्तरं किञ्चिन्न कर्त्तव्यं विजानता ।।
शास्त्रसिद्धिस्तु योद्धानां संग्रामे शस्त्रयोधिनाम्।
रद्धसिद्धिस्तु मल्लानां प्रतिमल्लनिपातजा।

यः कोऽपि मल्लो दर्पेण अन्यं मल्लं मारयति अंगभंगं वा करोति स दोषी भवति।

2. आसुरयुद्धम् -

अस्मिन् प्रतिमल्लस्य बन्धादिं कृत्वा केषाकर्षणपीडा कर्णस्फोटनं नासिकास्फोटनं मुखे पाशुनिपातनम्, नखैर्विदारणम्, ग्रीवाग्रहणकं, करांगुष्ठमोडनमित्यादिभिः अंगभंगकरणं प्रायो भवति। मल्लपुराणे एतस्य द्वात्रिंशद्भेदाः[11] कथिताः सन्ति।

3. नारयुद्धम्/मारयुद्धम् वा -

अस्मिन् मर्मस्थलेषु प्रहृत्य प्रतिमल्लस्य मृत्यु एव प्रयोजनम्।

मारेण च प्रहारेण विज्ञानेन पुनस्तथा।
बालकेन प्रकारेण मारयुद्धमथापि च।।
प्राणेन चौजसा चौव तथा वहणिनापि च।
येन केन प्रकारेण मारयुद्धं समागताः।।[12]

येन केन प्रकारेण मारणोद्देश्यकारणाद् एषः मार इति कथ्यते। युद्धदृष्ट्या महत्त्वपूर्णा अन्यानि युद्धानि एतस्य सहायकानि भवितुमर्हन्ति।

(4) धर्मयुद्धम् -

चतुर्थयुद्धं धर्मयुद्धनाम्ना ज्ञायते। प्रदर्शनमधिकृत्य एतत् क्रियते। 'प्रकाशयन् धर्मयुद्धं यशोहर्षविवर्धनम्'[13] अस्मिन् निषिद्धक्रियाः न क्रियन्ते। आसुरयुद्धे यत् हस्तत्रोटनादिः क्रियतेऽत्र तत्सर्वं न कर्त्तव्यम्।

नियुद्धस्य सामान्यपरिचयोपरान्तं मल्लानां प्रकृतिः विविधश्रमः, रंगभूमिः, तेषां दिनचर्यादीनुल्लिख्य मल्लयुद्धस्य विज्ञानं वर्णिष्यते।

मल्लानां प्रकृतयः -

मल्लपुराणानुसारं मल्लानां अष्टभेदाः सन्ति। युवा, प्राणवान्, ज्येष्ठी, अन्तरज्येष्ठी, गोपकुलः, भविष्यः, बालः, वृद्धः इति। शत्रोरभिभवकारणाद् एतेषां चत्वारो भेदा भवन्ति-गजः सिंहो वृषो मृग इति।

भवन्त्यष्टविधा मल्लाः कथयामि यथा तथा।
युवा च प्राणवांश्चौव ज्येष्ठी चौव तथा परः
अपरश्चान्तरज्येष्ठी तथा गोपकुलोऽपि च।
भविष्यो बालवृद्धौ च कथिताश्चाष्टधा इमे।।
चतुर्भेदैश्च भिन्नास्ते शत्रोर्जयगुणोदयैः।
गजः सिंहो वृषश्चौव मृगोऽपि च तथा परः।।[14]

शरीरानुसारं भेदाः[15] शरीरानुसारं मल्लानां पञ्चभेदाः सन्ति। अस्थिसारः, मांससारः, मेदसारः, अस्थिमांससारः, अस्थिमेदसार इति।

वयोऽनुसारं मल्लानां भेदाः[16] -

वयोऽनुसारं मल्लानां त्रयो भेदा भवन्ति।

(1) भविष्णुः - आविंशतेर्वत्सरेभ्यो भविष्णुर्मल्ल उच्यते।

(2) प्ररूढः - विंशतितः त्रिंशदब्दात् यावत् प्ररूढः कथ्यते।

(3) हीनः - तदनन्तरं परं हीयमानत्वाद् नियुद्धे अक्षमो भवति।

नियुद्धानुसारं मल्लानां भेदाः[17] -

नियुद्धानुसारं मल्लानां द्वादशभेदाः सन्ति।

(1) भारी-महाकायो मल्लो भारी कथ्यते।

(2) प्राणी- बलाढयः प्राणीः कथ्यते (3) ऊर्जलः- सुशिक्षितः ऊर्जलो भवति।

(4) संस्थानविरतः- सुस्थिरासनो मल्लः संस्थाननिरतो ज्ञेयः

(5) बहुयोधी - यो युद्धे श्रमं न याति स बहुयोधी उच्यते।

(6) सम्बद्धः - विज्ञानेन गृहीतोऽपि यो मल्लः प्रतिपक्षिनं न त्यजति न भाषते हस्तेन नास्फालयति पतित्वा भूमिं गृह्णति स सम्बद्धो ज्ञेयः।

(7) बलनम् - स्वबलेन अन्यस्य बलं सहति स बलनम्।

(8) रक्षणकः - यो विज्ञानेन आत्मानं रक्षति।

(9) ढकणः - प्रतिपक्षिना विज्ञाने आशुप्रयुक्ते यः तदपाये शीघ्रकारी भवति स ढकणो ज्ञेयः।

(10) दर्शनः - परप्रयुक्तविज्ञानं पररन्ध्राणि च झटिति गृह्णाति स दर्शन उच्यते।

(11) लगनः - उत्प्लुत्य यः कण्ठे लगेत् स लगनो भवति।

(12) नियतः - युद्धस्य मर्यादां यः पालयति स नियतो भवति।

रंगभूमिः/आषाढकः -

प्रतिदिनं मल्लयुद्धस्याभ्यासायोपयुक्ता भूः रंगभूमिः कथ्यते। एषा आषाढकनाम्नाऽपि प्रसिद्धा वर्तते।[18] निम्नोन्नतसमत्वेन भूमिः त्रिविधा भवति। तत्र निम्नोन्नतां परित्यज्य समतलभूमिरुपयोक्तव्या। मल्लयुद्धस्य एकविंशतिर्हस्तप्रमाणा वर्तुलाकारा हस्तोन्नता आर्द्रमृत्तिकोपेता दर्शनीया बीजवपनक्षेत्रमिव कोमला भूरभ्यासाय प्रशंसा मन्यते।

प्रपूज्यां सदृशां चौव सुवर्तुलाममां नवाम्।
एकविंशतिहस्तैश्च विस्तीर्णां च प्रमाणतः।।
हस्तेनोच्चामनीरूक्षामतिमन्द्रामनिन्दिताम्।
बीजपातक्षेत्रमिव कोमलां च मनोरमाम्।।[19]

ततः कण्टककर्करलौहकाष्ठादीनां खण्डाः प्रयत्नेनापनीयाः। यतोहि मल्लान् रोगव्रणादयोऽतीव पीडयन्ति।

श्रमस्य भेदाः -

मल्लयुद्धाय शरीरस्य सामर्थ्यं वर्धितुं षोडशप्रकारकाः श्रमः कथितः[20] येषामभ्यासेन लोके सर्वत्र विजयमवाप्नोति। तेषां नामानि अधोलिखितानि -

1. रंगश्रमः - आषाढके युद्धाभ्यासः
2. स्तम्भश्रमः - मल्लखम्भस्य अभ्यासः
3. भ्रमणिकाश्रमः - धावनम्।
4. श्वासप्रेरणिकाभ्यासः - प्राणायामः
5. स्थापितश्रमः - स्थैर्यप्रदायकं दण्डोपवेशनं भारोत्तोलनञ्च
6. ऊहापोहश्रमः - मल्लयुद्धस्य विज्ञानानां चिन्तनमभ्यासश्च।
7. गुरुगोणितकश्रमः - अधिकभारयुक्तायाः गोण्या उद्वहनम्।
8. लघुगोणितकश्रमः - लघुगोण्या उत्थापनम्।
9. प्रगदाश्रमः - गदामुद्गरादीनां चालनम्।
10. आर्मदकीश्रमः - तैलमर्दनम्।
11. आस्थादनकश्रमः - दण्डोपवेशनम्
12. कुण्डकर्षणश्रमः - लेजियमादीनामभ्यासः
13. अन्यकृत्कारश्रमः - अन्योन्यस्य सहाय्येन विधेयः श्रमः
14. जलश्रमः - जले तरणम्
15. पानारोहणश्रमः - स्तूपनिर्माणम्, अन्यं स्वपृष्ठे आरुह्यसोपानारोहणम्।
16. भोजनोर्ध्वभ्रमणिका- भोजनोपरान्तभ्रमणं।

मल्लयुद्धस्य विज्ञानम् -

नियुद्धे हस्तपादजानुकफोणिशिरोभिः प्रहृत्य प्रतिपक्षिनं युक्त्या नीचौः पातनं, नियन्त्रणार्थं बन्धयोजनं मर्मस्थानेष्वाघातः इत्यादीनि अस्मिन् सम्मिल्यन्ते। मल्लपुराणे प्रोक्तानि आसुरमारयुद्धे एतस्मिन् अन्विताः सन्ति। एताः युक्तयः/विज्ञानानि अग्रे वर्ण्यन्ते-

(1) चित्रहस्तादिकम्[21] - अतिवेगेन हस्तस्याकुञ्चनप्रसारणोपर्यधश्चालन- मुष्टीकरणानि, तथैव पादेन करणम् चित्रहस्तम् भवति।
(2) कक्षाबन्धम् - परस्परं कक्षायां हस्तौ कृत्वा बन्धनम्।
(3) गलगण्डम् - प्रतिपक्षिनः ग्रीवायां शिरसि प्रहारः।
(4) बाहुपाशः चरणपाशः - हस्तपादाभ्यामन्योन्यं गृहीत्वा शिरसः स्नायवो अवपीडनम्।
(5) उरोहस्तम् - उरसि चपेटाप्रहारम्।
(6) पूर्णकुम्भौ - ग्रथितांगुलिभ्यां हस्ताभ्यां परशिरसः पीडनं पूर्णकुम्भो भवति।
(7) उदरम् - स्वबाहुभिः शत्रोः पृष्ठमावृत्योदरमादाय स्वजत्रुदेशे प्रक्षेपणम्।
(8) अधोहस्तम् - उरः अधस्ताद् हस्तं कृत्वा हस्ताभ्यां परस्योदरमावेष्ट्य स्वकठोरः समीपे आनीय आक्षिपेतम्।
(9) पृष्ठभंगम् - शत्रुं भूमौ पृष्ठबलेन पातयित्वा मेरुदण्डत्रोटनम्।
(10) सम्पूर्णमूर्च्छा - बाहुभ्यामुदरादीनामत्यधिकनिपीडनेन मूर्च्छायाः आनयनम् (मूर्च्छितकरणम्)।
(11) तृणपीडम् - तृणमिव बाहोर्व्यावर्तनम् (पीडनम्)
(12) पूर्णयोगः - सततं मुष्टिप्रहारः अन्यत्रमुष्टिप्रहारं दर्शयित्वा छलेन अन्यत्र ताडनम्।
(13) निग्रहः - शत्रोः ग्रीवां कन्धराकर्षणेन अधोमुखी करणम्।
(14) प्रग्रहः - शत्रोः उत्तानपातनार्थं पादाकर्षणम्
(15) प्रकर्षणम् - प्रतिपक्षिनमाकृष्य क्रोडीकरणं प्रकर्षणम्। (अवाङ्मुखमनुपातयितुम् इतरोनुकर्षणम्)।
(16) आकर्षम् - लीलापूर्वकं सम्मुखीकरणम् आकर्षम् अवाक्करणम्।
(17) प्रमाथः - प्रतिपक्षिनं भूमौ निपात्य पेषणं प्रमाथ इति कथ्यते।
(18) उन्मथनम् - उत्थाय प्रतिपक्षेः अतमथनमुन्मथनमुच्यते।
(19) क्षेपणं - स्वस्थानात् बलात् प्रच्यावनं क्षेपणं कथ्यते।
(20) मुष्टिः - उभयोर्भुजयोर्मुष्टिर्विधाय शत्रोः ऊरोमध्ये निपातनम्
(21) सम्प्रहारः - तर्जन्यङ्गुष्ठमध्येन प्रसारितकरेण यो चपेटं प्रदीयते स सम्प्रहारः।
(22) प्रसृष्टा - यदा तु तस्यामेव स्थितौ अतुल्यः प्रसृताः (पृथक्-2) भवन्ति ताः प्रसृष्टाः कथ्यन्ते।

(23) विकर्षणम् – पुरः पश्चात् पार्श्वयोश्चाभ्याकर्ष्य भ्रामयित्वा वेगाद् पश्चात्प्रपातनं विकर्षणम् भवति।[22]

(24) बाहुकण्टकम्[23] बाहुकण्टकं केतकपत्रं भवति। तद्वत् बलिना दुर्बलपुरुषं भूमौ पातयित्वा एकपादेन तस्य एकां जङ्घामाक्रम्य, द्वितीयपादं स्वहस्तेनोद्यम्य केतकीपत्रसदृशं तस्य शरीरं पाट्यते तद् बाहुकण्टकं कथ्यते।

एवं एतस्मिन् पत्रे प्राच्यमल्लविद्यायाः स्वरूपं तस्य भेदाः विज्ञानं च सुस्पष्टतया समुल्लिखितम्। लंकाधिपतिः रावणः, सुग्रीवबालिनौ, श्रीकृष्णः, चाण्डूरश्च एतस्यां विद्यायां सुनिष्णाताः आसन्। अद्यत्वे एषा अविद्या क्रीडारूपे विद्यमाना अस्ति परं एषा भारतस्यैका पारम्परिका युद्धकला आसीत्।

1 सृजन झा निर्मिते शब्दकल्पद्रुममिति app मध्ये
2 वा० ध० श्लोक/9
3 वि० ध० पु० 1/260/60, 1/260/85 (नियुद्धं चक्रतुर्वीरौ)।
4 (क) ऋ० 1/8/2, अथर्व०, 20/60/18, युष्मदेति मुष्टिहा बाहूजूतः ऋ० 5/58/4
5 अ० पु०, 252/24-30
6 शु० नी०, 4/7/15
7 अष्टा०, 4/2/57, 1
8 मल्लपु०, पृ० 72, 15/1,2
9 मल्लपुराण 15/2-4
तेषां धरणिपातस्य भेदः पञ्चविधो भवेत्।
ततप्रहारः प्रथमः करप्रहार एव च।
निपत्य चात्मना भूमौ परं पातयति ध्रुवम्।।
पातितस्य स्फुटं हार निरुद्धे विजयो भवेत्।
ज्ञात्वैवं बलबुद्धिभ्यां युद्धमेतत्समाचरेत्।।
10 हरिवंशपुराण विष्णुपर्व अ० 30/13-16
11 मल्लपुराण 15/5
12 मल्लपुराण 15/10, 11
13 तदेव, 15/18
14 तदेव, 5/1-3
15 तदेव, 11/2-3
16 मा० उ० खण्ड 2, अ० 1, विंशति 4, अ० 1, वि० 4, श्लोक 81-82
17 मा० उ०, भाग 2 अ० 6 वि० 4, श्लोक 56-62
18 मल्लपु०, अ० 6/15
19 मल्लपु०, अ० 6/35-37
20 मल्लपु०, 10/1
21 महाभारत सभापर्व, भारतभावदीपटीका, पृ० 44 (23/13-23)
22 महाभारत विराटपर्व अ० 13, भा० भा० दीप० पृ० 20
23 महा० शान्ति० अ० 6, श्लोक प, भा० भा० दी० पृ० 7

आधुनिक साहित्य में पारिवारिक रिश्ते

ममता कालिया (हिन्दी) एवं गुजराती साहित्य - वर्षा अडालजा (गुजराती) की प्रातिनिधिक कहानियों के आलोक में

डा० श्रीधर हेगडे

शोध निदेशक, विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, फील्ड मार्षल के.एम. कार्यप्पा कालेज , मंगलूर विश्वविद्यालय की इकाई- मडिकेरी, कोडगु, कर्नाटक.

श्रीमति भैरवी पण्ड्या

शोध छात्रा, पि.पि.सी महाविद्यालय, उडुपी, द. कन्नड. कर्नाटक

आज के मेरे प्रस्तुतीकरण में हिन्दी साहित्य की लेखिका ममता कालिया का रचित निर्मोही कहानी संग्रह की उडान एवं गुजराती साहित्य में वर्षा अडालजा रचित यस, लाइफ इझ ब्यूटिफूल के संदर्भ में चर्चा की जाएगी।

ममता कालिया हिन्दी साहित्य की एक आधुनिक विचारधारा की रचनाकार है। आपने साहित्य की अन्य विधाओं में कार्य किया है परंतु कहानीकार के रूप में ज्यादा प्रसिद्धि मिलि है। आपने नारी अस्मिता का प्रस्तुतिकरण एवम नारी अस्मिता को भंग करनेवाली परिस्थितियों का वर्णन किया है। ममता जी द्वारा लिखा गया अन्य साहित्य जैसे कि उपन्यास, कविता, नाटक, बालसाहित्य आदि है। वर्षा अडालजा गुजराती साहित्य की महिला रचनाकार है। हिन्दी साहित्य में ममता जी का जो प्रदान है उसी तरह गुजराती साहित्य में वर्षा जी का प्रदान है।

आज की कहानी ने काल्पनिक्ता को त्यागकर 'सत्य' को अपना विषय बनाया है। यह सत्य हमारी परंपराओ तथा रीतिरिवाजों और रुढियों के मूल्यों से जुडा है। टूट्ते हुए पारिवारिक संबंध, बनते हुए नए संबंध में नारी अपनी आर्थिक और सामाजिक संघर्ष की प्राचीन भूमिका में से निकलकर अपने अस्तित्व का प्रश्न और उसमे परिवर्तन के कुछ आयाम जो इन कहानी साहित्य में अभिव्यक्त हुए हैं।

संतान और माता-पिता के संबंध मानवीय संबंधों के आयाम है परंतु आज जो जीवन-मूल्य बदलते जा रहे हैं- आज की पीढी को अपने जीवन के लिए चुने हुए रास्तों पर चलते हुए कोई पछतावा नहीं है। उल्टे पति-पत्नी बात करते है कि उन्होंने जो रास्ता चुना है वही सही है। जिसमे व्यक्ति को सुख मिले वही करना उपयुक्त है। उनके लिए जो पारिवारिक व्यवस्था के सामान्य गुण माने जाने वाले-सद्भाव, पारिवारिक प्रेम, सह्योग आज दिखावटी मूल्य बन गये हैं। आधुनिक युग में आर्थिक सफलता और लौकिक आनंद ही जीवन में सत्यम्, शिवम् और सुंदरम् बन गए हैं।

'उडान' कहानी ममता कालिया रचित 'निर्मोही' कहानी संग्रह से ली गई है। कहानी का आरंभ ही बेटा और बहू छुट्टियों में घर आये हैं और हो सके उतना जल्दी जाना चाहते हैं। साकी कहता है, "पापा, मेरी सीट कन्फर्म नहीं है, वेटिंग लिस्ट में ग्यारह-बारह नंबर है।"[1] मिश्रा जी का परिवार सुखी और आधुनिक विचारोंवाला है। उनके पास न तो अच्छी नौकरी थी और न ही मकान। परंतु उन्हें लगता था कि वे संसार के सबसे सुखी पिता है।साकी अपनी शादी से पहले अपने माता-पिता को बेस्ट मानता था और सौ फीट की उनकी कटींग बनाना चाहता था। साकी की बातों से मिश्रा जी की तबियत फूल जाती थी। साकी बचपन से ही शाम को पिता सात बजे जब व्हीस्की की बोतल खोलते तो बेटा बर्फ की ट्रे और काँच के ग्लास टेबिल पर लगा देता था इसिलिए मिश्रा जी उसे 'साकी' कहकर पुकरते है।

साकी पढाई के लिए दिल्ही जाता है और उसके खर्च के भुगतान के लिए मिश्रा जी अपनी व्हीस्की की आदत छोड देते है। पैसों की जरुरत पडने पर अपना मॉपेड भी बेच देते हैं।आदर्श पिता बनने में जान की बाजी लडा दी और बेटे को सेकेन्ड हेन्ड स्कूटर ले दिया। छुट्टियों में साकी जब घर आता है तो माँ से रहा नहीं जाता और जब स्कूटर की बात छेडकर पिता की कुरबानी के बारे में बताना चाहती है तो साकी बताता है कि 'ठीक तो है पर पेट्रोल बहुत खाता है'[2]। लेखिका ने यहाँ बताया है कि आज के संतान माता-पिता की भावना की कोई कद्र नहीं करते। मटिरियल लाईफ को ज्यादा महत्व देते हैं। माँ जब कहती है कि बेटा तुम्हारे स्कूटर के लिए पति ने शराब छोड दी और मॉपेड बेच डाला तो साकी को न तो दु:खी

होता है और ऊपर से बताता है कि अच्छा हुआ पिता की इस तरह से बुरी आदत छूट गई और उम्र दस साल बढ गई। पाँच साल में ही कंपनी में दो बडी पदोन्नति पाकर आगे बढ गया। साकी एक दिन बताता है कि उसका ब्रेड्मास्टर्स में इन्टरव्यु है। पिता जब उससे पूछते है कि इस नौकरी से उसे क्या शिकायत है तो वह बताता है कि, 'वह क्या है पापा, इस कंपनी में जितनी डोर थी वह सारी की सारी मैं अपनी उडान में इस्तमाल कर चुका हूँ। अब यहाँ मेरे ऊँचे चढने की गुंजाईश खत्म है।' आज की पीढी बहुत ऊपर उडना चाहती है। उनके लिए अनंत फैला आकाश है। साकी आगे बढ गया। चम्मी साकी

की पत्नी थी जो कैनेडा से थी और इन्टरनेट की दोस्ती ने उसे पति-पत्नी बना दिया। माँ को चिंता रहती थी कि बेटा महिने में पंद्रह दिन बाहर रहता था और घर पे रहे तो भी कान फोन पर और आँखें मॉनिटर पर! माँ-बेटे की बातों से तंग आ कर साकी अपने कमरे में आकर अपनी विदेशी पत्नी से कहता है कि तुम्हे यहाँ आना था अब अगली छुट्टियों में हम घर नहीं आयेंगे। पापा-मम्मी से बहस करना उलझना मुझे पसंद नहीं है। साकी माता-पिता की बहस से इतना थक जाता है जो वह उसकी छत्तीस घंटघ की नौकरी में नहीं थकता। इस छोटी-सी कहानी के अंत में साकी अपने पिता से जीवन के बदलते मूल्यों को बताता है 'पापा आपके जमाने में इमानदारी बहुत बडा गुण माना जाता था। मेरे जमाने में समजदारी इससे भी बडा गुण है। वफादारी, इमानदारी इन्सान की नहीं कुत्तों की खासियतें है और मैं किसी कंपनी का वफादार कुत्ता कहलाना कभी पसंद नहीं करुंगा।'

ममता जी ने यहाँ बताया है कि आधुनिक युग में जीवन-मूल्य बदल रहे हैं। आज के युग में 'पैसा मेरा परमेश्वर, मैं पैसों का दास'- उनका जीवन मंत्र बन गया है। शादी-ब्याह, परिवार आज टूट रहे हैं। आज साहित्य की धाराएँ बदल रही है-फेस्बुक फिक्शन, व्होट्स एप मेसेज, ई-मेल, मोबाईल ने पृथ्वी के दो छोर को मिला दिया है।

एक समय था, माता-पिता की सेवा -देवता की उपासना से भी श्रेष्ठ मानी जाती थी। परंतु वर्तमान युग में परंपरागत संबंधों में दरार की प्रक्रिया प्रारंभ हुई है। आज के अर्थवाद-युग में माता-पिता और पुत्र के रिश्तों की नींव अर्थहीन नजर आती है सामाजिक परिदृश्य ही अर्थ से संचालित होता है। अपनेपन की डोर टूटकर रिश्ते अर्थाश्रित हुए हैं। शहर या विदेश में रहनेवाला बेटा माँ-बाप को पैसा भेजकर अपने कर्तव्य का इति करता है।

यस, लाइफ इझ ब्यूटिफूल

गुजराती साहित्य की वर्षा अडालजा रचित 'यस, लाइफ इझ ब्यूटिफूल' -हरिकथा अनंता नामक कहानी संग्रह से ली गई है। कहानी का आरंभ मध्य वयस्क दंपति की मीठी तकरार से हुआ है। नयना और सुधीर भाई कहानी के मुख्य पात्र है। इन दोनों के प्रेम फल-स्वरूप बेटा विनीत और बेटी वैशाली की प्राप्ति हुई हैं। विनीत पढाई के लिए अमेरिका गया था जो अब उसी मिट्टी का बनकर रह गया है। नयना और सुधीर ने आरंभ में तो अकेलेपन से दु:खी थे परंतु समय ने उन्हें जीना सिखा दिया। एक दूसरे के सहारे खडे हो गए और आगे बढना शुरू कर दिया। नयना अपनी किट्टी पार्टी, ड्रामा ग्रुप की सदस्या बन गई। सुधीर भी अपने सिनियर सिटिझन ग्रुप के सदस्य बन गए। अगर उनके स्वास्थ्य में कुछ आगे-पीछे हो जाए तो गार्डन-ग्रुप के व्होट्स एप ग्रुप में मेसेज संदेश भेजने से कोई न कोई अपनी कार लेकर उन्हें डॉक्टर के यहाँ ले जाता। आज के ऑनलाईन शोपिंग और हॉम डिलिवरी की सुविधा ने उनके जीवन को और आसान बना दिया था। अपने दोस्तों के साथ वे खुश थे। एक बार ट्रेझर-हन्ट की स्पर्धा में पुरस्कृत होकर गोवा घूमकर आये थे। अब उन्हें अकेलापन सजा न मानकर हमउम्र दोस्तों के साथ अच्छा लगता था। बेटी की शादी अमृत्सर के पंजाबी परिवार में हो गई थी जो साल में एकबार आकर मिलकर चली जाती थी। अब उन्होंने रिश्ते-नाते, रीति-रिवाज के दायरे से बाहर निकल गए थे।

एक बार विनीत ने अमेरिका घूमने बुलाया था। दोनों घूमने गए थे। यहाँ-वहाँ घूमे फिरे, थोडी शोपिंग की और थोडे ही दिनों में वापस आ गए थे। ई-मेल पर बेटे से बातचीत होती थी। एक दिन अचानक मोबाईल स्क्रीन पर बेटे के साथ स्वीट्झरलेन्ड के बर्फीले पर्वत पर एक अमेरिकन लडकी स्टेसी की तस्वीर दिखाई दी। विनीत ने स्टेसी से शादी कर ली थी। विनीत स्टेसी की प्रशंसा किया करता और उसकी वजह से वह घर का कामकाज भ्री सिक गया था। नयना उसी तस्वीर को देखती रहती और सोचती कि अब बेटा हाथों से गया। बेटा अब हमें भूल जाएगा। अब उसके लिए हमारी सोच भी वहाँ के वातावरण और लोगों की तरह विरुद्ध रहेगी। हमारे रात-दिन वहाँ के दिन-रात। सुधीर ने नयना के हाथों से मोबाईल ले लिया और समजाने की कोशिश की कि सिर्फ हमारा बेटा अमेरिका नहीं गया कई माता-पिता ने अपने बच्चों को वहाँ भेजा है।उतने में ही वैशाली का फोन आया और माता-पिता को समजाया कि 'आप नाराज मत होना। दुनिया अब ग्लोबल विलेज हो गई है।'[3] बेटे ने एक बार बुलाया परंतु सुधीर का स्वास्थ्य ठीक न रहने की वजह से नही जा पाए। फेसबुक और व्होट्स एप द्वारा अपने पुराने दोस्तों को ढूँढकर रीयुनियन गेटटुगेधर किया। दोनो पति-पत्नी अपनी दुनिया में खुश थे।

एक दिन अचानक बेटे का पत्र आया और शुभ समाचार दिया कि स्टेसी माँ बनने वाली है। माता-पिता को बुलाया था और लिखा था कि वापस जाने की जल्दी मत कीजिएगा। सुधीर जाने के लिए तैयार हो जाता है लेकिन नयना मना कर देती है और अपनी अमेरिक्न बहू में टी.वी. में आनेवाली धारावही कथा की बहू से करती है। उसे डर है कि वहाँ जाकर बहू-बेटा हमें कामवालों की दृष्टि से रखेंगे। मि. अवस्थी ने पोजिटिव थिंकींग का भाषण दिया था- यस, लाइफ इझ ब्युटिफूल। बार-बार बेटे के ई-मेल आते रहते थे। स्टेसी अभी मेटर्नीटी लीव पर थी। बेटे की जिद के सामने दोनों अमेरिका पहुँचते हैं। स्टेसी भारतीय बहू के तरह अपने सास-ससुर को प्रणाम करती है और उनकी हर जरूरत का खयाल रखती है। वह अपना घर दिखाती है और बहुत ही आदरपूर्ण व्यवहार करती है। सुधीर भाई तो बहू के साथ खुश है लेकिन नयना बहन को लगता है कि एक दिन बहू अपना स्वभाव अवश्य दिखाएगी। बेटा भी उनके आने से खुश है। एक दिन बहू सास-ससुर को घुमाने ले जाती है और पारंपरिक साउथ-इन्डियन रेस्टोरां में ले जाती है। अब धीरे-धीरे नयना बहन के वर्तन में भी बदलाव आने लगा। एक दिन उन्होंने बेटे के कमरे में से कुछ बातें सुनी जिसमें घर... मम्मी-पापा... सेल ध हाउस.... जैसे शब्द सुनाई दे रहे थे। सुधीर भाई और विनीत बाहर गए थे उसी मौके का फायदा उठाकर नयना बहन ने मन में सोच लिया था कि मै उसे एक भी घर नहीं दूँगी। लेकिन स्टेसी बताती है कि आप को जितना यहाँ रहना है रह सकते है। विनीत की इच्छा है कि आप सब कुछ बेचकर यहाँ आ जाइए। परंतु आपकी जैसी मरजी! मैं यहाँ ऐसी कई इन्डियन मधर्स को देखती हूँ। उनकी इच्छा न होने पर भी रहना पडता है। परंतु मेरी इच्छा है कि आप जहाँ रहे अपना जीवन एन्जोय कीजिए। मैंने बचपन में ही देखा था कि मेरे मम्मी-डेडी अलग हो गए थे। माँ आल्कोहोलिक! विनीत से मैंने आप सब की

बातें सुनी है। विनीत आपको वहाँ का घर बेचकर यहाँ आने के लिए बता रहे हैं परंतु मैं आपको बंधन में नहीं डालना चाहती हूँ। नयना ने स्टेसी को दिल से लगाकर कहा, हाँ बेटा आई एम योर मम्मा.....

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते है कि आज समय बदल गया है। अपनी समस्या का हल हमें ही ढूँढना है। हम किसी पर आश्रीत नहीं जी सकते। आज के बदलते मूल्यों पर प्रकाश डाला गया है। हमारी युवा पीढी आज विदेश तो जा रही है लेकिन पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण कर रही है। विदेशी प्रजा हमारी संस्कृति से प्रभावित है।

आधार ग्रंथ :

ममता कालिया की श्रेष्ठ कहानियाँ- ममता कालिया, किताब घर, दिल्ली

"ममता कालिया- व्यक्तित्व एवं कृतित्व" डॉ.फैमिदा बीजापुरे, विनय प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, २००४

"वर्षा अडालजा रचित 'हरिकथा अनंता', आर.आर. शेठ एन्ड कंपनी, अहमदाबाद, प्रथम संस्करण

महिलाओं में शैक्षणिक सशक्तिकरण: एक दार्शनिक अध्ययन

प्रिया कुमारी तिवारी

पी-एच.डी. शोध छात्रा, दर्शनशास्त्र विभाग, पटना विश्वविद्यालय

सारांश:

महिलाओं में सशक्तिकरण का मूलभूत साधन शिक्षा की प्रक्रिया है, जो जीवन की एक आवश्यकता भी है। शिक्षा वह उपकरण है, जिससे समाज में महिला सशक्त होकर समान क्षमता, कौशल व ज्ञान का विकास अर्जित करती है। शैक्षणिक सशक्तिकरण का तात्पर्य विषमता, स्तरण, सोपानक्रम, अधीनता, हिंसा, अस्पृश्यता तथा अभाव को मिटाने वाली एक सामाजिक प्रक्रिया है।

आलेख - शिक्षा को सामान्यत: एक सामाजिक सेवा के रूप में माना जाता है ''विद्या मनुष्य का भूषण है।'' शिक्षा सुसंस्कृत जीवन का आधार है, उसी से जीवन की गुणवत्ता निर्धारित होती है। प्राचीन भारतीय व्यवस्था में शिक्षा को ऊँचा स्थान दिया है। एक आदर्श एवं स्वस्थ समाज में कार्यों तथा कर्त्तव्यों कास विभाजन केवल वर्ण के अनुसार नहीं होता, बल्कि स्त्री-पुरूष की अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार भी होता है। उनका कहना था कि पुरूष तथा नारी में आत्मा तो एक ही है, अत: दोनों में समानता है, कोई किसी से श्रेष्ठ नहीं। अत: किसी के द्वारा किए गए कार्य किसी अन्य के द्वारा किये गए कार्य से न श्रेष्ठतर है न निम्नतर।

गाँधीजी ने अपने शिक्षा संबंधी लेखों तथा भाषणों में स्त्री-पुरूषों को अत्यन्त महत्वपूर्ण बतलाया है। बाल्यावस्था से ही बालिकाओं की शिक्षा का विधान किया है। गाँधी का विचार था 'एक पुरूष को शिक्षित करके एक व्यक्ति को ही शिक्षित किया जाता है, परन्तु एक बालिका को शिक्षित करने का तात्पर्य है- पूरे परिवार को शिक्षित करना।'

परिवार, समाज, और राष्ट्र निर्माण में स्त्री शिक्षा का इतना महत्वपूर्ण स्थान होते हुए भी आधुनिक भारत की अधिकांश स्त्रियाँ शिक्षित हैं। स्त्री-शिक्षा की इस दु:खद स्थिति के मुख कारणों का उल्लेख इस प्रकार है -

1. आर्थिक समस्या:

भारत की आर्थिक अवस्था दयनीय है। आर्थिक कमी के कारण ही समाज अथवा स्वत: सरकार भी लड़कियों के लिए विद्यालय की व्यवस्था नहीं कर पाती अथवा जो विद्यालय खुले भी हैं, वे अव्यवस्थित होते हैं।

2. पाठ्यक्रम:

विद्यालयों का वर्तमान पाठ्यक्रम स्त्रियों के लिए नीरस और अनुपयोगी है। लड़कियों के पाठ्यक्रम में जीवनोपयोगी विषयों का ही समावेश किया जाए।

3. निरक्षरता:

भारत की अधिकांश जनता निरक्षर है, जो शिक्षा के सांस्कृतिक महत्व से सर्वाीा अनभिज्ञ है। उनके दृष्टिकोण में स्त्री-शिक्षा का कोई विशेष महत्व नहीं है।

4. विचारों की संकीर्णता:

विचारों की संकीर्णता भी स्त्री-शिक्षा की प्रगति में बहुत बड़ा रोड़ा है। देश की अधिकांश परिवार में विशेषकर ग्रामों, स्त्रियों का घर से बाहर जाना सम्मान की दृष्टि से बुरा माना जाता है।

5. पर्दा प्रथा:

पर्दा-प्रथा के कारण स्त्री शिक्षा की प्रगति नहीं हो सकी। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही पर्दा-प्रथा के शिकार रहे हैं।

6. बाल-विवाह:

बाल-विवाह स्त्रियों की शिक्षा में बहुत बड़ा अवरोधक रहा है। बाल-विवाह के कारण लड़कियों की शादी बहुत कम उम्र में हो जाया करती है तथा वे गृहस्थी के झंझटों में इस प्रकार फंस जाती है कि पढ़ने-लिखने का विचार मात्र भी उन्हें स्पर्श नहीं कर पाता।

7. प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव:

बलिका विद्यालयों तथा प्रशिक्षित स्त्री-शिक्षिका की नितान्त कमी है, जिसके कारण भी देश में अधिकांश बालिकाओं की शिक्षा उनके माता-पिता या अन्य अभिभावक के पढ़ाने की प्रबल इच्छा के बावजूद अधूरी रह जाती है।

स्त्रियों की स्थिति में सुधार के कार्य:

19वीं, 20वीं शताब्दी के प्रथम चरण से ही नारियों की गिरती हुई स्थिति को ठीक करने के लिए अत्यधिक प्रयत्न किए गए। इस क्षेत्र में राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, केशवचन्द्र, दयानंद सरस्वती, ज्योतिबा फूले, पंडितरमा बाई आदि ने नारियों को विभिन्न बंधनों से मुक्त करने के लिए महत्वपूर्ण कार्य किए। समाज सुधारकों के प्रयत्नों से विधवा विवाह, बाल-विवाह का निषेध, सती प्रथा आदि उन्मूलन हो सका और नारियों में पर्याप्त जागृति फैली नारियों ने अपने अधिकारों को समझा। शिक्षा के क्षेत्र में, राजनीति के क्षेत्र में तथा राष्ट्रीय आन्दोलनों में उन्होंने भाग लेना शुरू कर दिया। इस दिशा में महात्मा गाँधी, एनी बेसेंट, सरोजिनी नायडू तथा जवाहर लाल नेहरू ने स्वतंत्रता संग्राम में भारतीय नारियों को सम्मिलित करने के लिए भरपूर प्रयास किया।

नारियों के शिक्षा के लिए जनता में रूचि उत्पन्न हुई। एनी बेसेंट के द्वारा 1904 में हिन्दू गर्ल्स कॉलेज की स्थापना वाराणसी में की गई। 1916 में लड़कियों के लिए प्रथम मंडिकल कॉलेज, 'लेडी हार्डिंग कॉलेज' की स्थापना की गई।

1917 में एनी बेसेंट की अध्यक्षता में 'वीमेंस इण्डियन एसोसिएशन' की स्थापना की गई। 1925 में 'नेशनल काउंसिल ऑफ वीमेंस' की स्थापना की गई। जिसने 1927 में प्रथम शिक्षा सम्मेलन आयोजित किया गया। 1926-27 तक समस्त ब्रिटिश भारत में लड़कियों के लिए 3198 विद्यालय थे। 1947-48 में लड़कियों के स्कूलों की संख्या 16,951 थी। अधिनियम, 1955 द्वारा पुरूष स्त्री के वैवाहक तथा दाम्पत्य अधिकारों में पूरी समानता दी गई। 'हिन्दू उत्तराधिकार कानून 1956' द्वारा पुत्रा-पुत्री के अधिकारों को समान माना गया है उनके बीच विषमता को समाप्त कर दिया गया है।

'दहेज निरोधक कानून, 1961' द्वारा दहेज के लेन-देन को एक अलग जुल्म ठहराया गया। इस कानून के तहत दहेज की मांग करना या दहेज देना अपराध है। इस कानून में 1984, 1985 तथा 1986 में संशोधन कर इसे और सख्त बनाया गया। इन संशोधनों द्वारा दहेज-संबंधी अपराध के लिए सजा की अवधि पाँच वर्ष और पुरानु जुर्माने की राशि पंद्रह हजार रुपये कर दी गई।

महिला शिक्षा के विकास और निरक्षरता के उन्मूलन के लिए व्यापक नीतिगत संरचना 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986' को निर्धारित की गई।

महात्मा गाँधी एक भविष्यद्रष्टा थे। उनका सर्वप्रमुख उद्देश्य था, 'भारत की भावी गरीबी को दूर करना।' भारतवासियों को भोजन, वस्त्र और आवास की सुविधा मिल जाए, इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने पूरी चेष्टा की। उन्होंने बुनियादी शिक्षा की कल्पना की और उसे साकार रूप दिया, वह बहुत ही व्यवहारिक तथा मनोवैज्ञानिक हैं, साथ ही भारतीय समाज के सर्वथा अनुकूल भी है।

व्यवसायिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है कि वह बालिकाओं को शान्ति एवं सफलतापूर्वक जीवन-यापन करने की क्षमता प्रदान करे, उन्हें इस योग्य बनावें कि वे जीविकोपार्जन की समस्या को अपने व्यावहारिक ज्ञान के माध्यम से सुगमतापूर्वक सुलझा सकें तथा अपने विद्यालय जीवन की समाप्ति के बाद उन्हें मात्र नौकरी के आधार पर वे अपनी रोजी-रोटी की समस्या स्वयं निकाल सके।

महिलाओं का शैक्षणिक सशक्तिकरण द्वारा होने वाले प्रभावों को प्रत्यक्ष रूप से समझन के लिए 100 महिलाओं का सर्वेक्षण कार्य किया गया।

सरणी -1

महिलाओं में शैक्षणिक स्थिति के आधार पर वर्गीकरण

सर्वेक्षण की गई महिला उत्तरदाताओं की संख्या	शैक्षणिक स्थिति								
	प्रतिशत	स्नातक		10+2		मध्यमिक		पूर्व माध्यमिक	
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
	100	15	15	20	20	30	20	35	35

सारणी-1 में कुल 100 सहभागी महिला उत्तरदाताओं का शैक्षणिक स्थिति के आधार पर वर्गीकरण किया गया है जिसमें 100 महिलाओं में 15 प्रतिशत महिलाएँ स्नातक स्तर की थीं, 20 प्रतिशत महिलाएँ 10+2 30 प्रतिशत, माध्यमिक स्तर की एवं 35 प्रतिशत महिलाएँ पूर्व माध्यमिक शिक्षा प्राप्त पाई गई।

सारणी-2

जाति के आधार पर वर्गीकरण

सर्वेक्षण क गई महिला उत्तरदाताओं की संख्या	उच्च जाति (ब्राह्मण, कायस्थ)			निम्न जाति (यादव, कुशवाहा, मुसहर, नाई)	
	संख्या	प्रतिशत	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
100	100	35	35	65	65

सारणी-2 में कुल सहभागी महिला प्रतिभागियों में जाति के आधार पर उच्च जातियों में क्रमशः ब्राह्मण, कायस्थ महिलाओं की संख्या करीब 35 प्रतिशत तथा निम्न जातियों में यादव, कुशवाहा, मुसहर व नाई जातियों की महिलाओं की संख्या करीब 65 प्रतिशत पाई गई। उपर्युक्त सारणी के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि उच्च जाति की महिलाओं के साथ-साथ निम्न जातियों की महिलाओं में भी शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है।

सारणी-3

आरक्षण के आधार पर वर्गीकरण

सर्वेक्षण क गई महिला उत्तरदाताओं की संख्या	आरक्षण के स्तर पर				
	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
100	100	80	80	20	20

सारणी-3 में कुल 100 सहभागी महिला उत्तरदाताओं में आरक्षण के स्तर पर अध्ययन के दौरान 80 प्रतिशत महिलाओं का यह मानना है कि शिक्षा में आरक्षण नहीं होना चाहिए। जबकि 20 प्रतिशत महिलाएँ विशिष्ट शिक्षण संस्थान में प्रवेश के लिए आरक्षण से सहमत मिली। प्रस्तुत सारणी के आधार पर यह स्पष्ट है कि शिक्षित होकर महिलाए, सामाजिक शैक्षणिक दृष्टि से अपने स्वयं को व्यक्तित्व के प्रति अधिक उत्तरदायी भूमिका निभा रही है।

प्राप्त सारणियों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महिलाओं में बढ़ती शिक्षा का अनुपात एवं आधुनिक प्रौद्योगिक शिक्षा ने महिलाओं को संस्कृत, उपसंस्कृति, उदारीकरण, पाश्चात्य संस्कृति, भूमण्डलीकरण, व्यवसायीकरण, अहमवादिता के रूप में प्रभावित किया है। भारतीय शिक्षा नीति में मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाया गया है। महिला साक्षरता अनुपात पुरूषों के अनुपात में (पुरूष साक्षर 7.5 प्रतिशत - महिला साक्षर 53.7 प्रतिशत = 21. 7 प्रतिशत) कम होने के बावजूद भी पुरूषों द्वारा महिलाओं के हर कदम पर उनके सकारात्मक दृष्टिकोण को नकारा नहीं जा सकता। अतः आज आवश्यकता है, महिलाओं में अध्ययन एवं ग्रहणशीलता के सवाल पर शैक्षणिक सकारात्मक आत्मनिर्भरता को स्वीकार करने की।

सभी नारियों को शिक्षित करने के लिए जनता और सरकार दोनों को पूर्णतः सचेष्ट होना चाहिए। गणतंत्र की आधारशिला शिक्षित जनता पर ही अवस्थित होती है। अपने देश में स्त्रियों को पुरूषों के समान ही मताधिकार का अधिकार प्राप्त है। ऐसी अवस्था में स्त्री समाज को अशिक्षित छोड़ हमलोग कदापि आगे नहीं बढ़ सकते। नारी समाज को सब प्रकार से शिक्षित बनाना हमारा प्रमुख कर्तव्य ही नहीं, आवश्यक धर्म भी है।

नारी-शिक्षा की प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि हमलोग सर्वप्रथम उन कारणों को समूल नष्ट करें, जो इसके मार्ग में अवरोध है। देश में नारियों की शहर और देहात के क्षेत्र में पर्याप्त विद्यालयों की स्थापना हो। बालिकाओं के साथ-साथ प्रौढ़ नारियों को शिक्षित करने की योजना अनिवार्य और आवश्यक है।

उपरोक्त कथनों के आधार पर हम निष्कर्षतः कह सकते हैं कि महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति को सशक्त करने में पुरूषों की सहभागिता के साथ-साथ प्रशासकों, शासकों, समाज सुधारकों तथा आम लोगों को भी देश की इन महान् आवश्यकता की पूर्ति में अपनी संकीर्णता, भेद-भाव तथा कट्टरपन को भूलकर काम करना होगा, ताकि शैक्षणिक विकास का कार्य बाधित न होकर ऐच्छिक एवं स्वाभाविक बनाया जा सके। जिससे कि उपेक्षित महिला भी धीरे-धीरे व्यवहारिक तौर पर अपने अधिकार एवं सुविधाओं को प्राप्त कर सकेंगी। तभी भारत का नैतिक और सांस्कृतिक उत्थान होगा।

सन्दर्भ

1. डॉ० ब्रह्मदेव शर्मा, शिक्षा, समाज और व्यवस्था, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृ०-123
2. प्रो० सत्यमूर्ति, 2011, महात्मा गाँधी का शिक्षा दर्शन, अरूण प्रकाशन, दिल्ली, पृ०-109-115
3. बसन्त कुमार लाला, 2001, समाकलीन भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, पृ०-183
4. बीरेन्द्र कुमार सिंह, 2002, सुगम नागरिकशास्त्र, पृ०-73-74

राजस्थान सेवा संघ एवं विजय सिंह पथिक

डॉ० संजय कुमार सिंह

(एसोसिएट प्रोफेसर), इतिहास विभाग, एम.एम.एच. कॉलिज, गाजियाबाद

अमित कुमार

(शोध छात्र), इतिहास विभाग, एम.एम.एच. कॉलिज, गाजियाबाद

शोध सार:- विजय सिंह पथिक की जन्म स्थली उत्तर प्रदेश थी परन्तु उन्होंने अपनी कर्मस्थली राजस्थान को चुना था। जहाँ उन्होंने राजस्थान में जनजागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। क्रांतिकारी गतिविधियों में सक्रिय भूमिका अदा की। किसानों के मसीहा बनकर उनका नेतृत्व करते हुए उनकी समस्याओं का निराकरण किया। समस्याओं के निराकरण के लिए 'राजस्थान सेवा संघ' की स्थापना की और इस संघ के माध्यम से आन्दोलन का नेतृत्व कर राजस्थान में जनजागरण के सूत्रपात में सराहनीय योगदान दिया।

1915 के बाद राजस्थान में चर्चित नेताओं में एक नाम ओर जुड गया वह था विजय सिंह पथिक (भूप सिंह गुर्जर)। 1919 में विजय सिंह पथिक, रामनारायण चौधरी, हरिभाई किंकर वर्धा में गांधी जी से मिली प्रेरणा के फलस्वरूप वर्धा में, 1919 ई0 में राजस्थान सेवा संघ की स्थापना की गयी। राजस्थान सेवा संघ की स्थापना में अर्जुनलाल सेठी, केसरी सिंह बारहठ, विजय सिंह पथिक के सहसंस्थापक सदस्य रहे।[1] पथिक जी महात्मा गांधी से मिलने 1919ई0 में बम्बई गये और उनको अपने राज्य की समस्याओं से अवगत कराया। महात्मा गांधी ने समस्याओं से अवगत होकर अपने सचिव महादेव देसाई को पथिक जी के साथ राजस्थान जाकर परिस्थितियों का अवलोकन करने को कहा। पथिक जी बम्बई यात्रा के समय यह निश्चय किया गया था कि पथिक जी के सम्पादकत्व में वर्धा में 'राजस्थान केसरी' नामक पत्र निकाला जाये।

पत्र के सहसम्पादक श्री रामनारायण चौधरी और ईश्वरदानजी आसिया एवं व्यवस्थापक श्री हरिभाई किंकर तथा कन्हैयालाल कलयंत्री नियुक्त किये गये।[2] पत्र की आर्थिक जिम्मेदारी सेठ जमनालाल जी ने उठाई। विजय सिंह पथिक ने पत्र का बखूबी से संचालन किया और इसके माध्यम से जनता की समस्याओं को राष्ट्रीय पटल पर उद्घोषित किया। 1920 में यह पत्र वर्धा से अजमेर स्थानांतरित किया गया। पथिक जी ने अब अजमेर को अपनी प्रवृत्तियों का केन्द्र बनाया।[3] वहां से उन्होंने एक नया पत्र 'नवीन राजस्थान' नामक समाचार पत्र निकालना शुरु किया। बाद में इस पत्र का नाम 'तरूण राजस्थान' रख दिया क्योंकि ब्रिटिश सरकार द्वारा नवीन राजस्थान पत्र पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इस पत्र के सम्पादन में जयनारायण व्यास, रामनारायण चौधरी, शोभालाल गुप्ता आदि नेताओं ने सराहनीय योगदान दिया।[4]

राजस्थान सेवा संघ का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थे-

1. जनता की समस्याओं का निवारण करना था।
2. जागीरदारों और राजाओं का अपनी प्रजा के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करवाना था।
3. उपरोक्त समस्याओं के निराकरण हेतू विजय सिंह पथिक जी ने अपने पत्रों के साथ-साथ कानपुर से प्रकाशित होने वाला 'प्रताप' पत्र जिसे गणेश शंकर विद्यार्थी सम्पादित करते थे उसकी सहायता प्राप्त की। प्रयाग से 'अभ्युदय', कलकत्ता से 'भारत मित्र', पूना से लोकमान्य तिलक का 'मराठा' पत्रों ने भी समस्याओं को अपने पत्रों में जगह दी[5] और ब्रिटिश सरकार पर दबाव बनाने का प्रयत्न किया।

इस संघ के माध्यम से राजस्थान में राजनीतिक चेतना का प्रसार हुआ। धीरे-धीरे बूंदी, जयपुर, जोधपुर, सीकर, खेतड़ी, कोटा आदि स्थानों पर संघ की शाखाएं खोली गई। 'राजस्थान सेवा संघ' ने बिजौलिया और बेगूँ में किसान आन्दोलन, सिरोही और उदयपुर में भील आन्दोलन का मार्गदर्शन किया था।[6] ब्रिटिश सरकार सेवा संघ की गतिविधियों से सशंकित थी। मार्च 1924 में रामनारायण चौधरी और शोभालाल गुप्ता को 'तरूण राजस्थान' में देशद्रोहात्मक सामग्री प्रकाशित करने के अपराध में गिरफ्तार कर लिया गया। न्यायालय ने रामनारायण को तो मुक्त कर दिया। परन्तु गुप्त को दो वर्षों के कठोर कारावास की सजा मिली। 1924 में मेवाड़ सरकार ने पथिक जी को गिरफ्तार कर लिया और उन्हें पाँच वर्ष की सजा सुना दी गई। लम्बे अरसे की कैद के बाद पथिक जी अप्रैल, 1927 में रिहा हुए। पथिक को कैद किये जाने के बाद से सेवा-संघ के पदाधिकारियों व सदस्यों में परस्पर मतभेद शुरु हो गये। शनैःशनैः मतभेद की खाई चौड़ी होती गई। परिणामस्वरूप 1928-29 तक राजस्थान सेवा संघ पूर्णतया प्रभावहीन हो गया।[7]

स्वतंत्रता संग्राम के प्रथम चरण में राजस्थान में क्रांतिकारियों और राष्ट्रवादियों का काफी जोर रहा था। क्रांतिकारियों की राजद्रोहात्मक कार्यवाहियाँ विफल रहीं, परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि प्रदेश में अंग्रेज विरोधी जनमत को तैयार करने में उनका बड़ा महत्वपूर्ण योगदान रहा। क्रांतिकारियों ने देश की स्वतंत्रता

के लिए सर्वस्व बलिदान करने का उज्ज्वल उदाहरण जनता के समक्ष प्रस्तुत किया था। बलिदान की यह भावना आगे चलकर अहिंसात्मक आन्दोलन की सफलता के लिए उत्तरदायी बनी। उनके आदर्श आने वाली पीढ़ी को सदैव प्रेरणा प्रदान करते रहे। बिजौलिया बेगूँ, बून्दी आदि स्थानों पर हुए किसान आंदोलनों से प्रदेश में राजनीतिक चेतना व सरगर्मी का विशद् वातावरण तैयार हुआ।

सन्दर्भ सूची

1. बी0एल0 पानगडिया - राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम
2. डॉ0 राम प्रसाद व्यास - आधुनिक राजस्थान का वृहत इतिहास, खण्ड- 2
3. डॉ0 बृजकिशोर शर्मा - राजस्थान में किसान व आदिवासी आन्दोलन
4. डॉ0 के0एस0 सक्सेना - राजस्थान में राजनैतिक जनजागरण
5. उपरोक्त - डॉ0 रामप्रसाद व्यास
6. रामनारायण चौधरी - बीसवीं सदी का राजस्थान
7. एस0एस0 जैन - आधुनिक राजस्थान का इतिहास

बाड़मेर जिले में बदलते भू-उपयोग प्रतिरूप का कृषि पारिस्थितिकी पर प्रभाव

डॉ० चन्दन मल शर्मा

सहायक आचार्य, भूगोल विभाग, राजकीय महाविद्यालय, टोडाभीम, करौली, (राजस्थान)

डॉ० गौरव कुमार जैन

(मूल व संवादी लेखक) सहायक आचार्य, भूगोल विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

शोध सारांश-

किसी भी क्षेत्र का प्राकृतिक वातावरण आर्थिक एवं मानवीय पहलू वहाँ के भूमि उपयोग प्रतिरूप को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं। प्राकृतिक वातावरण के अंतर्गत मिट्टी के प्रकार उच्चावच मिट्टी की गुणवत्ता जलापूर्ति आदि कारक सम्मिलित किए जाते हैं। मानवीय कारको में जनसंख्या, कार्यशील जनसंख्या, जनसंख्या घनत्व, कृषि पर आश्रित जनसंख्या आदि को सम्मिलित किया जाता है। वहीं आर्थिक कारकों में कृषकों की आर्थिक स्थिति, कृषि में काम लिए जाने वाले उपकरण एवं तकनीकी साधन आदि को प्रमुख स्थान दिया जाता है। मानव अपने बुद्धि विवेक एवं उस समय के ज्ञात तकनीकी साधनों द्वारा प्रकृति प्रदत्त भौतिक अनुपजाऊ भूमि को उपजाऊ, उपजाऊ या अनुपजाऊ भूमि को बाग-बगीचों में या एक फसली क्षेत्र को बहुफसली क्षेत्रों में परिवर्तित करता है। जिससे वहाँ का प्राकृतिक दृश्य परिवर्तित होकर एक नई भू-दृश्य व पारिस्थितिकी तंत्र का जन्म लेता है। बाड़मेर जिले में पिछले तीन-चार दशक से जलवायु के तत्वों में कुछ परिवर्तन नजर आने लगे हैं। जबसे शुष्क एवं मरुस्थली भूभाग में इंदिरा गांधी एवं नर्मदा नहर का जल मिलने लगा है। तब से यहाँ जलवायु एवं पारिस्थितिकी तंत्र में परिवर्तन के लक्षण दिखाई देने लगे हैं। जिससे यहाँ के भूमि उपयोग प्रतिरूप में भी परिवर्तन दिखाई देने लगे है।

अध्ययन क्षेत्र के वन एवं बागवानी कृषि के अतिरिक्त काम ली गई भूमि, पड़त भूमि, वास्तविक बोया गया क्षेत्र, एक बार से अधिक बोया गया क्षेत्र एवं समस्त बोए गए क्षेत्रों में लगातार वृद्धि हो रही है। वही ऊसर एवं कृषि उपयोग भूमि, स्थाई चरागाह एवं गोचर भूमि व बंजर भूमि की कमी होती जा रही है। जो इस मरुस्थली क्षेत्र के लिए सकारात्मक संकेत है। यह सब यहाँ जलवायु के सूक्ष्म तत्वों में परिवर्तन व कटर मशीन, सीड ड्रिल, डिस्क प्लाऊ जैसे नवीन कृषि उपकरण एवं मोटर, पम्पसेट, फव्वारा सिस्टम एवं बूंद-बूंद सिंचाई जैसी नवीन विधियों को कृषि में काम लेने से संभव हो रहा है। जो यहाँ के परंपरागत कृषि पद्धति को नवीन कृषि की ओर ले जा रहे हैं। जिससे यहाँ के किसानों की सामाजिक एवं आर्थिक मजबूती होने लगी है।

मूल बिंदु-कृषि विकास, उच्चावच, पारिस्थितिकी तंत्र, पड़त भूमि, सीड ड्रिल, डिस्क प्लाऊ, ऊसर एवं बंजर भूमि, फव्वारा सिस्टम।

अध्ययन क्षेत्र-

बाड़मेर जिला राजस्थान में थार मरुभूमि के दक्षिण पश्चिम भाग में 24°58' मिनट से 26°32' उत्तरी अक्षांश एवं 70°58' से 72°5' पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। जिसका भौगोलिक क्षेत्रफल 28,378.8 वर्ग किलोमीटर है। यह ग्रेट पेलियो-आर्कटिक थार मरुस्थल का सबसे घना बसा एवं उपजाऊ भूमि वाला क्षेत्र है। विश्व के किसी भी मरुभूमि पर इतनी जनसंख्या एवं पशुधन नहीं पायी जाती। यहाँ मानव को प्रकृति के साथ जीवन-यापन के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ता है। क्योंकि यहाँ की भौतिक दशाऐं कठोर है। यह देश का सर्वोच्च तापमान एवं तापांतर वाला क्षेत्र है। अत्यधिक सर्दी, दूर-दूर तक रेत के टीले ही टीले, अल्प मरू वनस्पति, न्यून जलापूर्ति, न्यून वर्षा, न्यून आर्द्रता एवं न्यून मानवीय क्रियाएं पूर्ण रूप से प्रकृति पर आश्रित रहने के लिए मजबूर करती हैं। यहाँ उत्तर पश्चिम भाग में कटीली वनस्पति एवं कृषि क्षेत्र का विस्तार पाया जाता है। यहाँ सिवाना, पचपदरा, बाड़मेर, चौहटन, बालोतरा, बायतु, सिणधरी आदि तहसीलों की कृषि भूमि रेत के स्थानांतरण से बड़े-बड़े धोरों के नीचे दब जाती है। अपवाह-तंत्र के रूप में मात्र एक लूनी नदी है, जो मौसमी प्रकार की नदी है। यहाँ मिश्रित प्रकार की कृषि की जाती है। जिसमें कृषि के साथ-साथ पशुपालन, मुर्गी पालन आदि को प्रमुखता दी जाती है।

यहाँ की शुष्क वनस्पति-खेजड़ी, सांगरी, कैर, कूमट, खीप, रोहिड़ा आदि यहाँ के पारिस्थितिकी का प्रमुख अंग हैं। यहाँ यातायात एवं जीवकोपार्जन हेतु पशुओं को प्रमुखता दी जाती है। वर्तमान परिवेश में उन्नत कृषि एवं पशुपालन, तकनीकी ज्ञान, यातायात के साधन, कृषि यंत्र, शिक्षा के विकास एवं खनिज तेल भंडारों आदि पारिस्थितिकी में परिवर्तन लाने लगे हैं, जो यहाँ के भू-दृश्य एवं भूमि उपयोग प्रतिरूप को परिवर्तित करने में महती भूमिका निभाऐंगे।

दृष्टिकोण

उद्देश्य-

- बाड़मेर के बदलते भूमि-उपयोग प्रतिरूप का अध्ययन करना।
- अध्ययन क्षेत्र की कृषि पारिस्थितिकी पर भूमि उपयोग प्रतिरूप के बदलाव के प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पना-

- बाड़मेर के भूमि उपयोग प्रतिरूप में परिवर्तन से कृषि पारिस्थितिकी में परिवर्तन हुआ है।

विधि तंत्र-

शोध पत्र में भूमि उपयोग प्रतिरूप के आंकड़ों को आधार बनाया गया है। प्राथमिक आंकड़ों में प्रत्यक्ष अवलोकन एवं अधिकांश शोध-पत्र में द्वितीयक आंकड़ों को आधार बनाया गया है। जो कृषि विभाग जयपुर, जिला दर्शन बाड़मेर से प्राप्त आंकड़ों को सारणी बनाकर गणना की गई है। द्वितीयक आंकड़ों के द्वारा ही आरेख एवं मानचित्र का निर्माण किया गया है।

कृषि पारिस्थितिकी-

कृषि जलवायु खण्ड के अनुसार बाड़मेर जिला राजस्थान के शुष्क मैदानी पश्चिमी क्षेत्र (खंड-1ए) के अंतर्गत अवस्थित है। बाड़मेर के अधिकांश भाग को रेतीले टीले, लवणीय एवं मरुस्थली मृदाओं ने घेर रखा है। यहाँ की मृदा, बलुई, बारीक दोमट मिट्टी से मोटी रहती है। यहाँ मुख्य व्यवसाय कृषि है। यहाँ कृषि को विस्तृत अर्थों में लिया जा रहा है। जिसमें कृषि के साथ पशुपालन, मुर्गी एवं मधुमक्खी पालन, वन विकास एवं बागवानी भी समाहित किया गया है। यहाँ खरीफ की फसल ही प्रमुख फसल है। साथ ही अत्यल्प क्षेत्र में रवी एवं जायद की फसलें भी पैदा की जाती है। खरीफ की प्रमुख फसलों में बाजरा, मक्का, मूंग, मोठ, अरहर, तिलहन आदि उपजाया जाता है। जबकि रवि की फसलों में गेहूं, जौ एवं राई प्रमुख फसल है। वही जायद में तरबूज, खरबूजा, खीरा, ककड़ी, रंजका एवं चारे की प्रमुखता रहती है। महत्व की दृष्टि से इन फसलों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

- खाद्यान फसलें-इसमें बाजरा, मक्का, गेहूं, जौ, चना, ज्वार एवं दाल प्रमुख है।
- व्यापारिक फसलें-इसमें ईसबगोल, जीरा, चना, मूंग, मोठ, तिल, सरसों, मूंगफली एवं तंबाकू प्रमुख है।

मानचित्र-1

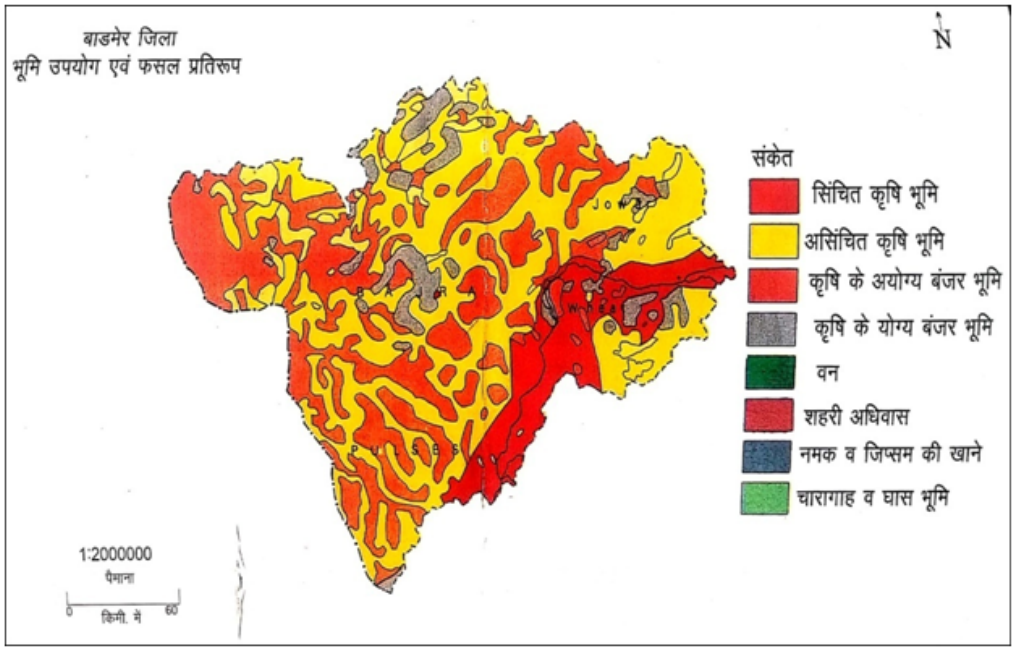

भूमि उपयोग प्रतिरूप में परिवर्तन-

भूमि उपयोग प्रतिरूप को प्रभावित करने वाले कारकों में भौतिक, सामाजिक, आर्थिक, माननीय एवं राजनैतिक कारकों का प्रमुख योगदान रहता है। भौतिक कारकों में तापमान, वर्षा, तापीय दक्षता, प्रकाश संश्लेषण, वायु की दिशा एवं गति व दबाव सर्वाधिक उत्तरदायी कारक होते हैं। अत: जलवायु के सूक्ष्म तत्वों में परिवर्तन से कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता प्रभावित होना, वनस्पति आवरण में परिवर्तन आदि प्रभाव दिखाई देने लगते है।

मनुष्य अपनी विवेक, शक्ति एवं तकनीकी ज्ञान द्वारा अनुपजाऊ भूमि को उपजाऊ, अल्प उपजाऊ को बृहद उपजाऊ और एक फसली क्षेत्र को बहुफसली क्षेत्र में परिवर्तित कर देता है। जिससे उस भू-भाग के मूल स्वरूप में परिवर्तन होकर नए भविष्य का निर्माण हो जाता है। जिस कारण वहाँ मूल पारिस्थितिकी

से अलग पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण होता है। यहाँ कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 2817332 हेक्टेयर है। जिसे अध्ययन के लिए 2817 हजार हेक्टेयर माना गया है। यहाँ भूमि-उपयोग वर्गीकरण के लिए "टेक्निकल कमेटी ऑन कंडीशन ऑफ एग्रीकल्चर स्टेटिक्स" 1949 को आधार मानकर वर्गीकरण किया गया है। इसमें प्राकृतिक वातावरण, मानवीय एवं आर्थिक पहलू, भूमि उपयोग प्रतिरूप को निर्धारित करते हैं। जिसमें उच्चावच, मिट्टियों के प्रकार, जलापूर्ति, जनसंख्या, जनसंख्या घनत्व, कार्यशील जनसंख्या, आर्थिक स्थिति, कृषि में काम लिए जाने वाले तकनीकी साधन आदि को प्रमुखता दी जाती है। वर्ष 1980-81 एवं 2012-2013 के मध्य अध्ययन क्षेत्र के भूमि उपयोग प्रतिरूप में परिवर्तन को तालिका 1.1 के द्वारा दर्शाया गया है। बाड़मेर जिले का भौगोलिक क्षेत्रफल 2817 हजार हेक्टेयर है। जिसे 100 प्रतिशत माना गया है। वर्ष 1980-81 में वन भूमि 16000 हेक्टेयर थी जो 2012-13 में बढ़कर 32.4 हजार हेक्टेयर हो गई। कृषि उपयोग भूमि को दो भागों में बांट कर अध्ययन किया गया है। जिसके अनुसार 1980-81 में कृषि के अतिरिक्त काम में ली गई भूमि 62000 हेक्टेयर थी जो वर्ष 2012-13 में बढ़कर 95.2 हजार हेक्टेयर हो गई है। वहीं ऊसर एवं कृषि योग्य भूमि वर्ष 1980-81 के 135000 हेक्टेयर क्षेत्र से घटकर 103 हजार हेक्टेयर ही रह गई है।

तालिका 1.1 : बाडमेर का भूमि उपयोग प्रतिरुप 1980-81 से 2012-13 (क्षेत्रफल हजार हेक्टेयर में)

वर्ष	कुल क्षेत्र	वन भूमि	कृषि अयोग्य भूमि		जोत रहित भूमि (पडत भूमि के अतिरिक्त)			पडत भूमि		वास्तविक बोया गया क्षेत्रफल	एक बार से अधिक बोया गया क्षेत्रफल	समस्त बोया गया क्षेत्रफल
			कृषि के अतिरिक्त काम में ली गई भूमि	ऊसर एवं कृषि अयोग्य भूमि	स्थायी चारागाह एवं अन्य गोचर भूमि	वृक्षों के झुण्ड एवं बाग-बगीचे	बंजर भूमि	अन्य पडत भूमि	चालु पडत भूमि			
1980-81	2817	16	62	135	215	0	335	344	218	1492	24	1516
1991-92	2817	24	73	125	208	1	244	330	173	1673	51	1688
2001-02	2817	30	73.2	126	202	3.2	217	330	186	1649	105	1755
2012-13	2817	32.4	95.2	103	203	7.5	203	392	296	1554	154	1708

स्त्रोत- 1. आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय, राजस्थान जयपुर। 2. कार्यालय उपनिदेशक कृषि, जिला परिषद, बाडमेर। 3. राजस्थान जिला गजेटियर, बाडमेर।

पड़त भूमि के अतिरिक्त जोत रहित भूमि को तीन भागों में बांट कर अध्ययन किया गया है। जिसमें स्थाई चारागाह एवं गोचर भूमि 1980-81 की तुलना में 215000 हेक्टेयर से घटकर 203000 हेक्टेयर ही रह गई है। वहीं वृक्षों के झुंड एवं बाग बगीचे 0 (शून्य) से बढ़कर 7.5 हजार हेक्टेयर हो गई एवं बंजर भूमि घटकर 335 हजार हेक्टेयर से घटकर मात्र 203000 हेक्टेयर ही रह गई है। अन्य पड़त भूमि 344 हजार हेक्टेयर से बढ़कर 392 हजार हेक्टेयर हो गई है। वहीं चालू पड़त भूमि 218 हजार हेक्टेयर से बढ़कर 296 हजार हेक्टेयर हो गई है। अध्ययन क्षेत्र का वास्तविक बोए गए क्षेत्र इन 30 वर्षों में 1492 हजार हेक्टेयर से बढ़कर 1554 हजार हेक्टेयर हो गई, वहीं एक बार से अधिक बोया गया क्षेत्र 24000 हेक्टेयर से 154 हजार हेक्टेयर हो गया और समस्त बोया गया क्षेत्र 1516 हजार हेक्टेयर से बढ़कर 1708 हजार हेक्टेयर हो गया है।

तालिका 1.2 में क्षेत्र का 1982-83 के मध्य तहसीलवार भूमि उपयोग प्रतिरूप को दर्शाया गया है। इस अध्ययन में बाड़मेर, शिव, चौहटन, सिवाना, पचपदरा एवं गुडामालानी तहसीलों को अध्ययन का विषय बनाया गया है।

तालिका 1.2 : बाडमेर में तहसील वार भूमि उपयोग प्रतिरुप 1982-83

तहसील	कुल क्षेत्र		वन भूमि		कृषि अयोग्य भूमि		स्थायी चारागाह एवं गोचर भूमि		समस्त बोया गया क्षेत्रफल		एक बार से अधिक बोया गया क्षेत्रफल	
	क्षेत्रफल	प्रतिशत	क्षेत्रफल	प्रतिशत	क्षेत्रफल	प्रतिशत	क्षेत्रफल	प्रतिशत	क्षेत्रफल	प्रतिशत	क्षेत्रफल	प्रतिशत
बाडमेर	628758	22.31	831	0.13	40410	6.42	25181	4	356113	56.63	820	0.13
शिव	661632	23.48	10793	1.63	45294	6.84	123980	18.73	195017	29.48	21	0.003
चोहटन	469211	16.65	746	0.15	21793	4.64	24037	5.12	291279	62.07	1165	0.24
सिवाना	204515	7.25	2467	1.2	39237	19.21	10528	5.14	116121	56.77	8077	3.94
पचपदरा	345827	12.27	241	0.06	30247	8.74	13656	3.94	208233	60.21	2962	0.85
गुडामलानी	507373	18	907	0.17	21247	4.18	17095	3.36	333331	65.69	7923	1.56

स्त्रोत- कार्यालय कृषि विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर।

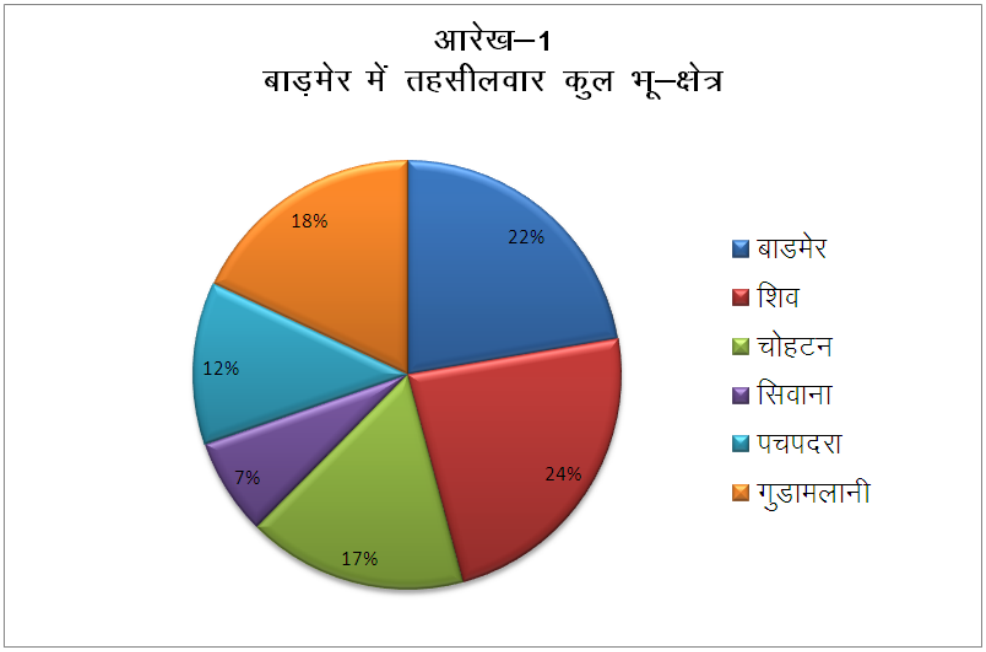

तालिका 1.3 में क्षेत्र का 2012–13 के मध्य तहसीलवार भूमि उपयोग प्रतिरूप को दर्शाया गया है। जिसमें बाड़मेर, रामसर, बायतु, शिव, चौहटन, गुडामालानी, सिवाना एवं पचपदरा तहसीलों को सम्मिलित किया गया है।

तालिका 1.3 : बाडमेर में तहसीलवार भूमि उपयोग प्रतिरुप 2012–13

तहसील	कुल क्षेत्र		समस्त बोया गया क्षेत्र		वन क्षेत्र		चारागाह क्षेत्र		कृषि अयोग्य भूमि	
	क्षेत्रफल	प्रतिशत	क्षेत्रफल	प्रतिशत	क्षेत्रफल	प्रतिशत	क्षेत्रफल	प्रतिशत	क्षेत्रफल	प्रतिशत
बाडमेर	289387	10.27	67052	57.72	4449	1.53	10668	3.68	13004	4.49
रामसर	144637	5.13	96602	66.78	470	0.32	9024	6.23	4178	2.88
बायतु	304542	10.8	203788	66.9	52	0.017	6266	2.05	5931	1.94
शिव	661632	23.48	815770	47.72	13327	2.01	116281	17.57	14640	2.21
चौहटन	469211	16.65	315483	67.23	2413	0.51	24355	5.19	10170	2.16
गुढ़ामलानी	397581	14.11	279602	78.32	5231	1.31	13133	3.3	9273	2.33
सिवाना	204515	7.25	115629	56.53	4235	2.07	9770	4.77	6961	3.4
पचपदरा	345827	12.27	214990	62.16	1857	0.53	14055	4.06	10633	3.07
	2817332	100	1708916	60.65	32034	1.13	203552	7.22	74790	2.65

स्त्रोत– कार्यालय कृषि विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर।

भूमि उपयोग प्रतिरूप में परिवर्तन का कृषि पारिस्थितिकी पर प्रभाव–

वर्ष 1980–81 से 2012–13 के मध्य वन क्षेत्र में लगभग दोगुनी वृद्धि देखने को मिली है। जो इस मरुस्थलीय क्षेत्र के लिए सकारात्मक संकेत है। वन क्षेत्रों की वृद्धि से आर्द्रता एवं वर्षा में वृद्धि होने लगी है। जिससे रेतीली भूमि पर कृषि किया जाना संभव होने लगा है। जलस्तर बढ़ने, नवीन तकनीकी उपकरणों से सिंचाई का कार्य, मरुस्थल में संभव होने लगा है। रेत के धोरे अब स्थिर होने लगे हैं। जिससे कृषि भूमि रेत के टीलों के नीचे दबने से बच जाती है। पशुओं को चारा एवं घरेलू कार्य के लिए लकडिघ्यों की उपलब्धता बढ़ने लगी है। कृषि के अतिरिक्त काम में ली गई भूमि का क्षेत्र 62 हजार हेक्टेयर से बढ़कर 95.2 हजार हेक्टेयर हो गया, जो यह दर्शाता है कि कृषि से संबंधित क्रियाओं का तकनीकी विकास हो रहा है। ऊसर तथा कृषि योग्य भूमि का घटना, क्षेत्र में कृषि दक्षता एवं कृषि विस्तार को दर्शा रहा है। कृषि योग्य भूमि के क्षेत्र का विस्तार हो रहा है।

क्षेत्र में बाग-बगीचे एवं बागवानी व कृषि में लगातार वृद्धि देखने को मिल रही है। यहाँ पिंडखजूर, खजूर, बेर, आंवला, अनार आदि के बागों से किसानों की आमदनी बढ़ने लगी है। बंजर भूमि का क्षेत्र लगभग आधा रह गया है, जो यह साबित करता है कि क्षेत्र में कृषि हेतु अनुपजाऊ भूमि को उपजाऊ बनाकर कृषि के काम में लिया जा रहा है। बाड़मेर के वास्तविक बोए गए क्षेत्र में इन 30-35 वर्षों में लगभग 100 हजार हेक्टेयर भूमि की वृद्धि देखने को मिली है। जिसमें एक बार से अधिक बोया गया क्षेत्र भी 125 हजार हेक्टेयर हो गया है, जो यह साबित करता है कि क्षेत्र में केवल खरीफ के स्थान पर रवी एवं जायद की फसलें भी प्रचुर मात्रा में की जाने लगी है।

क्षेत्र के समस्त बोए गए क्षेत्र में 1980-81 से 2012-13 के मध्य लगभग 200 हजार हेक्टेयर की वृद्धि हुई है, जो बाड़मेर में कृषि के प्रति किसानों के बढ़ते सकारात्मक रुझान को इंगित कर रहा है। क्षेत्र में स्वतंत्रता से पूर्व तक परंपरागत कृषि पद्धति को काम में लिया जाता था। जिसमें कृषक पूर्णरूपेण प्रकृति पर आश्रित रहता था। वर्ष 1980 से पूर्व के जलवायु तत्वों के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि यहाँ अत्यल्प वर्षा, आर्द्रता में कमी, उच्च तापमान के साथ उच्च तापान्तर पाया जाता रहा है। वर्ष 1980 के दशक के उपरांत यहाँ वर्षा एवं आर्द्रता में वृद्धि, तापमान के स्तरीकरण के साथ-साथ तापांतर में भी कमी आई है। जिससे क्षेत्र में केवल खरीफ की फसल के साथ-साथ रवी व जायद की फसल भी किसानों की पैदावार बढ़ा रही है।

क्षेत्र की श्रम-शक्ति में पशु व मानव के साथ-साथ तकनीकी साधनों का प्रचलन बढ़ने लगा है। जिसमें ट्रैक्टर, ट्रॉली, थ्रेसर, कटर मशीन, सीड ड्रिल, डिस्क प्लाऊ, लेबर सीड कम फर्टिलाइजर, ड्रिल मशीन आदि का प्रचलन बढ़ने लगा है। प्राचीन काल में यहाँ कृषि एवं वनस्पति पारिस्थितिकी का अभिन्न अंग थी जिनमें खेजड़ी, सांगरी, कैर, कूमट को सब्जी के काम लिया जाता था, रोहिड़ा मजबूती एवं फर्नीचर के काम आने के कारण यहाँ सागवान के नाम से जाना जाता है। खेजड़ी की पत्ती चारे के रूप में काम ली जाती थी। अब लोहे व प्लास्टिक के फर्नीचर एवं सामानों से इनका महत्व कम होने लगा है। प्राचीन काल से सिंचाई के साधनों में ऊंट, बैलों, गधों द्वारा लाव, चड़स से पानी खींचा जाता था। वर्तमान में 80 प्रतिशत सिंचाई ट्यूबवैलों से फव्वारा पद्धति द्वारा की जा रही है। जिससे उबड़-खाबड़ व ऊंचे-नीचे रेत के टीलों पर भी सिंचाई किया जाना संभव हो रहा है।

पहले उर्वरक के रूप में जहां गोबर की खाद ही काम ली जाती थी, वहीं अब तीनों फसलों में रासायनिक खाद व पेस्टिसाइड्स का उपयोग बढ़ने लगा है। खरीफ की फसलों में बाजरा व मक्का का उत्पादन क्षेत्र तो घट रहा है। परंतु उत्पादन एवं उत्पादकता में बढ़ोतरी संभव हुई है। मूंग, मोठ, अरंडी, ज्वार, धान व मिर्च के उत्पादन, उत्पादकता एवं उत्पादन क्षेत्र तीनों में बढ़ोतरी दर्ज की जा रही है। रवी की फसल जीरा, इसबगोल, सरसों, तारामीरा, अलसी, मेथी, लहसुन, तंबाकू, व सौंप के उत्पादन, उत्पादकता एवं उत्पादन क्षेत्र तीनों में वृद्धि संभव हुई है। वहीं चना व जौ का उत्पादन, उत्पादकता व उत्पादन क्षेत्र लगातार घट रहे हैं। किंतु गेहूं की फसल का क्षेत्रफल व उत्पादन बढ़ रहा है और उत्पादकता घट रही है। क्षेत्र की शस्य गहनता में वृद्धि दिखाई देने लगी है। जिससे यहाँ किसान जीवकोपार्जन कृषि के स्थान पर मुद्रा दायिनी एवं बागवानी कृषि को महत्व देने लगे हैं।

निष्कर्ष-

क्षेत्र के बदलते भूमि उपयोग प्रतिरूप का यहाँ की कृषि पारिस्थितिकी पर स्पष्ट प्रभाव दिखाई देने लगा है। यहाँ एक बार से अधिक बोया गया क्षेत्र संपूर्ण बोया गया क्षेत्र एवं वन क्षेत्र में अत्यधिक वृद्धि देखने को मिल रही है। साथ ही वर्षा की बढ़ती मात्रा, सिंचाई के साधनों का विकास एवं बागवानी से यहाँ की आबोहवा बदलने लगी है। किन्तु रासायनिक खादों का अत्यधिक प्रयोग एवं मशीनीकरण से यहाँ का पारिस्थितिकी तंत्र डगमगा सकता है। यहाँ के शुष्क पारिस्थितिकी तंत्र में अब वर्षा की मात्रा बढ़ने से बदलाव संभव होने लगा है, जो इस मरुभूमि के अनुकूल होंगे या प्रतिकूल यह भविष्य के गर्भ में छिपा है। क्षेत्र में वर्षा, आर्द्रता, वन एवं बाग बगीचों की वृद्धि यहाँ के वातावरण को अनुकूल बना रहे हैं। जिससे रेत के धोरे स्थिर होने लगे हैं। धूल भरी आंधियों की संख्या में कमी आई है, एवं मरुस्थलीकरण की गति नियंत्रित होने लगी है।

क्षेत्र में बाल श्रमिकों का पलायन बहुत बड़ी समस्या रही है। जो कृषि के विस्तार एवं मुद्रा दायिनी फसलों के उत्पादन से कम होने लगा है। वर्तमान में यहाँ पढ़े-लिखे युवा विभिन्न प्रकार के कृषि उपकरण एवं तकनीकी साधनों द्वारा कृषि की उन्नत विधियों को अपना कर कृषि को अपने विकास का साधन बनाने में लगे हैं। जो यहाँ के पलायन को तो रोकेगा ही साथ ही साथ क्षेत्र के चहुँमुखी विकास को गति प्रदान करने वाला साबित होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

- भण्डारी, एम. एम., (1978): "फ्लोरा ऑफ दा इण्डियन डेजर्ट, साईंटिफिक पब्लिसर्स, जोधपुर।
- गुप्ता, जे.पी., (1986): "वाइड इरोजन एण्ड इट्स कंट्रोल इन डेजर्ट एनवायरमेंट'' काजरी, जोधपुर।
- गुप्ता, एन.एल., (1999): "राजस्थान में कृषि विकास'' राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
- गुर्जर, आर.के., (2003): "इरीग्रेशन फार एंग्रीकल्चर मॉर्डनाइजेशन'' साइन्टिफिक पब्लिसर्स, जोधपुर।
- कपूर, सुदर्शन कुमार, (2009): "भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था'' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- मल्होत्रा, एस.पी., (1978): "सोसियो इकनोमिक स्ट्रकचर ऑफ पापुलेशन इन एरिड राजस्थान'' काजरी, जोधपुर।
- मीणा, बी.पी., (2000): "डेजर्ट इकोलोजी'' पोईन्टर पब्लिशर्स, जयपुर।
- प्रकाश, आई., (1977): "दा इमेजिंग लाइफ इन दा इण्डियन डेजर्टस'' जोधपुर।
- तिवारी, ए.के., (2008): "राजस्थान का प्रादेशिक भूगोल'' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- तिवारी. आर.सी.सिंह, बी.एन., (2006): "कृषि भूगोल'' प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद।
- शंकरनारायण, के.ए., (1988) "इकोलोजिकल डिग्रिडेशन ऑफ दा थार डेजर्ट एण्ड इको-रीजनरेशन'' साइंटिफिक पब्लिसर्स, जोधपुर।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में श्रम संघ की भूमिका

डॉ० सीमा पटेल

शोध निर्देशक, एसोसिएट प्राफेसर, इतिहास विभाग, सरदार वल्लभ भाई पटेल कॉलेज, भभुआ, वीर कुँवर सिंह विष्वविद्यालय, आरा (बिहार)

नीतू कुमारी

शोधकर्ती

कोई आंदोलन यों ही नहीं उठा खड़ा होता। लोग जब चाहे तब कोई आंदोलन शुरू नहीं कर सकते। हर आंदोलन अपनी विशेष ऐतिहासिक स्थिति की उपज होता है। ऐतिहासिक स्थिति या ऐतिहासिक संदर्भ ही संबद्ध आंदोलन को जन्म देता है। इसीलिए मात्र व्यक्तिगत या राजनैतिक त्रुटियों के संदर्भ में किसी आंदोलन का अध्ययन करना गलत होगा। यदि हम सही ढंग से किसी आंदोलन का मूल्यांकन करना चाहते हैं तो हमें उस ऐतिहासिक स्थिति की सही समझ से शुरूआत करनी होगी जिसके हित वह आंदोलन उत्पन्न और विकसित होता है। साथ ही हमें उन शक्तियों को भी पहचानना होगा जो उसमें हिस्सा लेती है।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान ट्रेड यूनियन तथा किसान आंदोलन एवं संगठनों की भूमिका उतनी सीधी-सरल नहीं हैं जितनी की कोई लोग सोचते है। वास्तव में, इस विषय में आज भी कई गलत धारणाएँ प्रचलित हैं। यह एक आम प्रथा हो गई है कि किसानों और मजदूरों को राष्ट्रीय आंदोलन से एकाकार करके देखा जाता है और भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस को उनकी स्वतंत्रता का अग्रदूत माना जाता है। इसका मूल कारण शायद यह आम प्रवृति है कि हम भ्रमवश नेताओं को ही जन-सामान्य समझ लेते है और जो आंदोलन नेताओं की पहल (या भड़काने) से शुरू होता है उसे गलती से जन-आंदोलन मान बैठते हैं, भले ही उसका उद्देश्य कुछ भी क्यों न रहा हो। ऐसे उदाहरणों में सच पूछा जाए तो 'जन' शब्द की धारणा को ही एकदम विकृत कर दिया गया है। ऐसी विकृतियों से बचने के लिए यह बहुत जरूरी है कि हम भारत के राष्ट्रीय आंदोलन को सही ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रखकर देखें और इसमें ट्रेड यूनियनों तथा किसानों की क्या भूमिका रही, इसपर नए सिरे से विचार करें। इस लेख में इस प्रकार की जाँच-पड़ताल की कोशिश की जाएगी।

यहाँ हम ट्रेड यूनियनों को लेते हैं। "भारत में श्रमिक आंदोलन की शुरूआत पचास वर्ष हले हुई, किंतु एक संगठित आंदोलन के रूप में इसका क्रमबद्ध इतिहास प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद से शुरू होता है। 1850 व 1859 के बीच का दशक 'भारत की औद्योगिक क्रांति के चरण को प्रकट करता है। इस दशक के दोरान भारत में जो तब तक एक कृषि-प्रधान देश था-पहले तो रेल आई, फिर बंगाल तथा बंबई राज्यों में अन्य सहायक उद्योगों का आविर्भाव हुआ, जैसे कोयला उत्खनन, जूट और सूती कपड़ा। भारत में जो उद्योगीकरण हो रहा था उसके पीछे औपनिवेशिक शक्ति का यह षड्यंत्र था कि वह भारत के संसाधनों का अधिक-से-अधिक शोषण कर सके। इसके मूल में मानव-प्रेम या लोकोपकार की भावना नहीं थी जैसा कि कुछ लोग सोचते है। ब्रिटेन एक पूँजीवादी देश था और एक पूँजीवादी देश होने के नाते जेसा कि स्वाभाविक ही है, उसे अपनी अतिरिक्त मूल्य-आधारित (Surplus Value Oriented) उत्पादन-प्रक्रिया के लिए सस्ते कच्चे माल की जरूरत थी। भारत जैसे देश के संदर्भ में, जो कच्चे माल और तरह-तरह के संसाधनों की दृष्टि से काफी संपन्न था, यह बहुत जरूरी था कि कच्चे माल की अधिकता वाले केंद्रों को आपस में जोड़ा जाए। इसी वजह से रेले चलाई गई और कोयला-खनन उद्योग का विकास किया गया। अत: उद्योगीकरण की पहली लहर के साथ जो उद्योग आए उनकी स्थापना हमारे देशवासियों ने नहीं की थी। वास्तव में उस समय का भारत मूलत: एक ग्राम-आधारित तथा कृषि प्रधान समाज था, अत: अब तक उसका अपना पूँजीपति वर्ग विकसित नहीं हो पाया था। औपनिवेशिक शोषण के दबाव से प्राचीन परंपरागत ग्राम-आधारित प्रणाली धीरे-धीरे टूट रही थी और नवीन समाजिक प्रणाली (जो आज भी जारी है) अभी अस्तित्व में नहीं आई थी। हमारे यहाँ व्यापारी और साहूकार तो थे किंतु पूँजीपति नहीं। इसी वजह से भारत में मजदूर वर्ग जैसी कोई चीज नहीं थी (क्योंकि उद्योग नहीं थे), किंतु उद्योगीकरण की दिशा में जो औपनिवेशिक प्रयास हुए उसी की प्रक्रिया में विविध उद्योगों (जिनका हम पहले उल्लेख कर चुके हैं) का उदय हुआ और उनके साथ ही, जैसा कि स्वाभाविक है, औद्योगिक श्रमिक शक्ति (Working Force) भी विकसित हुई। लगभग 60 वर्षों तक उद्योगीकरण कुछ प्रमुख क्षेत्रों तक ही सीमित रहा, जैसे रेलवे, कोयला-खनन, जूट, कपड़ा इत्यादि। किंतु इस सीमित क्षेत्र में उद्योगों का जो विकास हुआ वह उल्लेखनीय था। उद्योगों के विस्तार के साथ-साथ श्रमिक-संख्या में भी तेजी से वृद्धि हुई किंतु भारत की कुल जनसंख्या के सामने इस संख्या का विशेष महत्त्व नहीं था। वास्तव प्रथम विश्वयुद्ध के अंत होने से पहले तक भारतीय जनता की कोई उल्लेखनीय प्रतिशत मजदूर वर्ग के अंतर्गत नहीं आ पाया था। बहरहाल, संख्या की दृष्टि से मजदूर वर्ग की इस नगण्यता के बावजूद, उनका उदय ही अपने आप में एक सामाजिक क्रांति थी। पहली बार अनेक व्यक्ति एक ही छत के नीचे इकट्ठे हुए, अनेक हाथ एक ही मशीन को चलाने के लिए प्रवृत हुए। इसी प्रकार एक बात और हुई जो अब तक अनजान थे और वह यह कि लोग एक ही तरह के अनुभव-रूपों में सहभागी हुए। 'मेरी भूमि-मेरा बटाईदार' (My land-My tenant) का जमाना अब बीत रहा था। अब एकांकी किसान का युग बीत रहा था और उसके

स्थान पर ऐसे मनुष्यों का युग आ रहा था जिन्हें साथ-साथ, इकट्ठे, मिल-जुल कर रहना पसंद था। 'सामूहिक अनुभव के अभाव' का स्थान 'अभाव के सामूहिक अनुभव' ने ले लिया था। यह वास्तव में एक बड़ा ही प्रगतिशील कदम था क्योंकि अब गरीबी या शोषण की चक्की में आत्मसमर्पण करने की जरूरत नहीं थी और न ही सहायता के लिए किसी काल्पनिक सत्ता को पुकारने की जरूरत थी। अब कामगारों की एकता ही उनकी शक्ति थी। अब वास्तव में जो चीज बाकी रह गई थी वह थी अपनी शक्ति का अहसास।

शुरू-शुरू में भारतीय मजदूर वर्ग, ग्रामीण बेरोजगारों और गाँव में रहने वाले गरीब तबके के लोगों से मिलकर बना था। ये लोग औपनिवेशिक विस्तार के दबाव से बेरोजगार हो गए थे। नवीन सामाजिक प्रणाली ने उन्हें बेकार कर दिया था। काम की तलाश में बहुत से लोग पहले ही सड़क पर थे। नवीन कृषि प्रणाली उन्हें आश्रय देने में असमर्थ थी, अत: नए-नए उद्योगों में इन लोगों को पूरी तरह से सुनिश्चित भविष्य दिखाई दिया। फलत: लोग गाँव छोड़कर कस्बों और शहरों की तरफ भागने लगे, किंतु वहाँ भी उनके लिए अवसर सीमित मात्रा में ही थे।

चूँकि प्राप्य श्रमिक संख्या जरूरत से ज्यादा थी, अत: श्रम की मांग सस्ती होनी ही थी। कॉलोनाइजरों को इस बात की पूरी जानकारी थी कि अपनी जमीन से 'उखड़े हुए लोगो' के हाथों में किसी तरह का सौदा करने की शक्ति नहीं थी। मुनाफाखोरी की प्रवृत्ति वस्तुत: पूँजीवाद का आधार है। पूँजी में फैलाव की प्रवृत्ति होती है। संपत्ति (Property) और पूँजी (Capital) में अंतर यह है कि जहाँ संपत्ति समांतर अनुपात में बढ़ती है वहाँ पूँजी गुणोत्तर अनुपात में। एक आम संपत्तिवाला (उधार, किराए आदि पर देकर) अपनी संपत्ति में थोड़ा-सा विस्तार करके संतुष्ट हो जाएगा, किंतु एक पूँजीपति इतने से संतुष्ट नहीं हो सकता क्योंकि वह चाहता है कि संपत्ति अपने-आपको पुनरूत्पादित करे अर्थात् और अधिक संपत्ति को जन्म दे। यह पुनरूत्पादन (reproduction) केवल निवेश तथा पुनर्निवेश द्वारा ही संभव है किंतु यह पुनर्निवेश तब तक संभव नहीं हो सकता जब तक पहले का निवेश कुछ अधिशेष (surplus) उत्पन्न न करे। अत: बेशी उत्पादन (Surplus generation) का अर्थ यह हुआ कि उत्पादन की लागत कम हो। चूँकि श्रम उत्पादन का सबसे महत्त्वपूर्ण कारक है, अत: किसी भी हालत में श्रम का मूल्य अधिक नहीं होना चाहिए। इसे सस्ता-से-सस्ता होना चाहिए। अत: बेशी उत्पादन मूलत: और अनिवार्यत: श्रम में से बेशी (surplus) निकालता है। इस तरह पूँजी और श्रम परस्पर संबद्ध हैं। एक शोषण करता है और दूसरे का शोषण किया जाता है। भारत के संदर्भ में भी यह स्थिति भिन्न नहीं हो सकती थी चाहे इस क्षेत्र में नया-नया कदम रखने वालों की आशाएँ कुछ भी क्यों न रही हों।

भारत में मजदूर वर्ग के असंतोष के प्रारंभिक संकेत:-

ट्रेड यूनियन आंदोलन के अंतर्गत मजदूर वर्ग के असंतोष के पहले चिह्न 1870 से शुरू होने वाले दशक के मध्य में दिखाई दिए। अपने नियोजकों (employers) के खिलाफ हड़ताल के रूप में मजदूरों की कार्रवाई का पहला उल्लेख 1877 में मिलता है जब उन्होंने नागपुर की एम्प्रेस मिल में हड़ताल की। केवल 1882 और 1890 के बीच मद्रास और बंबई प्रेसीडेंसियों में 25 हड़तालें दर्ज की गई। बहरहाल, ये सारी हड़ताले संयोगवश ही हुई थीं। दूसरे शब्दों में उनके पीछे कोई व्यवस्थित योजना नहीं थी क्योंकि "मजदूर विनम्र और असंगठित थेय ज्यादातर गाँव से आए थे और कुछ समय के लिए उद्योग में लगकर उन्होंने अपनी स्थिति सुधारने की कोशिश की थी। और यदि स्थिति ज्यादा बिगड़ गई तो संबद्ध मजदूर इसका उपचार हड़ताल से नहीं करते थे, वरन् वे संबद्ध मिल या उद्योग को ही छोड़कर चले जाते थे।

ये हड़ताले इसलिए भी असंगठित थीं कि मजदूर अपनी ग्रामीण पृष्ठभूमि के कारण अपने साथ बहुत-से ग्रामीण निषेध तथा विशेषक (taboosAnd traits) लेते आए थे, जिनकी वजह से वे अपने-आप को संगठित करने में असमर्थ थे। पूर्ण एकता की चेतना के अभाव में संगठन असंभव है किंतु इस चेतना का आना सरल नहीं था। वंशानुपात सामाजिक फूट के साथ-साथ अनेक परंपरागत बाधाएँ इस कार्य को और भी ज्यादा कठिन बना रही थीं।

भारत में श्रमिक संघों का उदय:-

यही वजह है कि भारत में मजदूरों के संगठन की शुरूआत एक बाहर के मानव-प्रेमी (Philanthropist) एन. एम. लोखंडी (N.M. Lokhandy) के हाथों से हुई। सिंतबर 1884 में लोखंडी ने काम करने की परिस्थितियों के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए बंबई की कपड़ा मिलों में काम करने वाले मजदूरों की एक सभा की। पाँच हजार मजदूरों ने एक याचिका या पिटीशन (जिसे लोखंडी ने काम करने की परिस्थितियों के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए बंबई की कपड़ा मिलों में को फैक्ट्री कमीशन के प्रेसीडेंट को दे दिया गया। इस आयोग की नियुक्ति फैक्ट्री अधिनियम (FactoriesAct) की जाँच के लिए की गई थी। लोखंडी ने अपने आपको बंबई मिल-मजदूर संघ का अध्यक्ष (President) बताया था। इस संघ का प्राय: भारत में गठित पहले मजदूर संगठन के रूप में उल्लेख किया जाता है। बहरहाल, यह एक अतिशयोक्ति है क्योंकि लोखंडी द्वारा गठित संघ, मजदूर संघ के बजाय, मजदूर कल्याण संगठन के अधिक नजदीक था। वास्तव में इसमें ट्रेड यूनियन गतिविधियाँ प्राय: नगण्य थीं। इसका मुख्य उद्देश्य था सरकार के माध्यम से नियोक्ताओं से मजदूरों के लिए कुछ छूटे प्राप्त करना। रजनी पाम दत्त ने ठीक ही कहा है, ''लोखंडी श्रम विधान (labour legislation) और मजदूर कल्याण के परोपकारी किस्म के समर्थक थे, मजदूर संगठन या मजदूर संघर्ष के पथप्रदर्शक नहीं। इसके बाद इस तरह की अनेक श्रमिक यूनियनें बनीं, जैसे 'ऐमल्गमेटिड सोसायटी ऑफ रेलवे सर्वेंट्स ऑफ इंडिया एंड बर्मा' (Amalgamated Society of Railway Servants of IndiaAnd Burma), जिसमें प्रमुखत: ऐग्लों-एंडियन तथा यूरोपीय कर्मचारी शामिल थे, 1905 में कोलकत्ता की 'प्रिंटर्स यूनियन', 1907 में बंबई की 'पोस्टल यूनियन' आदि। इनमें से किसी यूनियन ने, बल्कि सच पूछा जाए तो प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति से पहले की किसी भी यूनियन ने, मजदूरों के संघर्ष को स्पष्ट तौर पर व्यक्त नहीं किया। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना 1885 में हुई। किंतु इस संगठन ने, जो तीन दशक बाद अपनी सभी उद्घोषणाओं में अपने आपको सर्वसाधारण का प्रतिनिधि मानने जा रही थी, इस दौरान मजदूरों के संघर्ष की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। काँग्रेस की स्थापना मूलत: शिक्षित मध्य वर्ग को एक मंच प्रदान करने के उद्देश्य से की गई थी। अत: इसकी दिलचस्पी का केंद्र मध्य वर्ग का हित था, मजदूर वर्ग का हित नहीं।

बहरहाल, संगठन की इस कमी के बावजूद मजदूर निष्क्रिय नहीं रहा। आरंभिक वर्षों की जड़ता- 'जो स्वाभाविक प्रतीत होती है के बाद वे एकता की दिशा में तेजी से अग्रसर हो रहे थे। उदाहरण के लिए, 1895 की बजबज जूट मिल की हड़ताल, जिसकी वजह से मिल लगभग छह सप्ताह के लिए बंद हो गई थी, और उसी वर्ष अहमदाबाद मिल मालिक संघ (Ahmedabad Mill Owner'sAssociation) के खिलाफ अहमदाबाद के 8,000 बुनकरों की हड़ताल से स्पष्ट प्रकट होता है कि मजदूरों की कार्रवाई में एकता तथा बुनियादी चेतना का विकास हो रहा था। डी. एच. बुकानन के अनुसार आयोगों के सामने इस विषय में व्यापक प्रमाण मिलने के बावजूद 1880 और 1908 के बीच वास्तविक यूनियनों का अस्तित्व नहीं था, कई लोगों का यह कहना था कि किसी खास मिल में मजदूर प्राय: एकता की भावना से प्रेरित होकर कार्रवाई करते थे और एक समूह के रूप में वे एकदम स्वतंत्र थे। मि. बिरूचा (जो काफी बाद तक बंबई प्रेसीडेंसी के उद्योग निदेशक थे) के शब्दों में "मजदूर अपने मालिकों के विरूद्ध काफी शक्तिशाली थे'', और "परस्पर एकजुट हो सकते थे हालाँकि उनकी कोई ट्रेड यूनियन नहीं थी।'' यदि इन कथनों में थोड़ी अतिशयोक्ति दिखाई दे तो वर्धा के अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर ने जो शब्द कहे वे तो ऊपर के सभी कथनों को पीछे छोड़ जाते हैं, "मजदूर स्थिति के मालिक थे, और मिल मालिकों को सुरक्षा की जितनी जरूरत थी उतनी मजदूरों को नहीं।

ऊपर के कथन से यह संकेत नहीं ग्रहण करना चाहिए कि मजदूरों में बड़ी तेजी से वर्गचेतना का विकास हो रहा था। वास्तव में, मजदूरों की स्थिति का अधिक सही मूल्यांकन यह होगा कि उनकी स्थिति कमोबेश एक प्रकार की 'उत्तेजित भीड़ जैसी थी किंतु यह जरूरी नहीं है कि कार्रवाई में एकता के लिए वर्गचेतना पहले से होनी चाहिए। कार्रवाई में एकरूपता के लिए माँग में एकरूपता होनी चाहिए। और कहने की आवश्यकता नहीं की माँग में यह एकरूपता थी। इसमें संदेह नहीं कि स्थिति काफी गंभीर थी, किंतु इसे क्रांतिकारी स्थिति नहीं माना जा सकता। बहरहाल, मजदूर-विद्रोहों का सामना करना पड़ा। अंग्रेजों के लिए यह कोई सुखद चीज निश्चय ही नहीं थी क्योंकि उद्योगीकरण में संलग्र किसी समाज में औद्योगिक श्रम-शक्ति की बड़ी ही महत्त्वपूर्ण स्थिति होती है। महत्त्वपूर्ण इसलिए कि यह श्रम-शक्ति हड़ताल आदि के जरिए उद्योगीकरण की प्रक्रिया को ठप कर सकती है। इसलिए बुकानन (Buchanan) के कथन में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे मिथ्या या कल्पित कहकर उपेक्षित कर दिया जाए।

हड़तालों का जुझारू तेवर:-

अब तक जिन हड़तालों की चर्चा की गई है, उनमें उतने जुझारूपन की प्रवृत्ति नहीं थी। 1905 के पहले तक भारतीय मजदूर में लड़ाई का रास्ता अपनाने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचन नहीं होती। 1905-1906 के दौरान स्थिति बदल गई। राष्ट्रीय आंदोलन लड़ाई के मार्ग की ओर अग्रसर होता जा रहा था। अंग्रेजों ने बंगाल विभाजन जैसी कार्रवाईयों से मध्यवर्गीय संगठन काँग्रेस को अपना विरोधी बना दिया था। उग्रवादी काँग्रेसियों के नेतृत्व में साम्राज्यवाद को भारतीयों के शत्रु के रूप में पेश किया जा रहा था। भारतीय मजदूरों में भी इस हलचल की प्रतिध्वनि हुई। बंबई की कपड़ा मिलों में (काम के घंटे बढ़ाने के खिलाफ), रेलवे में, विशेष रूप से पूर्वी बंगाल राज्य रेलवे (Eastern Bangal State Railway) में और कलकत्ता के गवर्नमेंट प्रेस में गंभीर हड़ताले हुइ। इसका चरम बिंदु तब आया जब 1908 में तिलक को छह वर्ष की कारावास की सजा के विरोध में छह दिन की राजनीतिक जन-हड़ताल हुई। प्रथम विश्वयुद्ध शुरू होने तक रेलवे, सूती मिलों तथा जूट उद्योगों का दूर-दूर तक विस्तार हो चुका था और उनमें आरंभ में जितने लोग काम करते थे उससे कई गुने लोग काम पर लग चुके थे। 1914 में भारत के अंदर 264 कपड़ा मिले कार्यरत थीं जिनमें लगभग 2,60,000 कर्मचारी नियोजित थे। बंगाल में जूट उद्योग का भी विकास हुआ जिससे 1912 तक वहाँ 60 मिलें थीं जिनमें 2,00,000 मजदूर काम करते थे। 1914 तक रेलवे में लगभग 6,00,000 लोग काम पर लगे हुए थे। टाटा का लोहा तथा स्टील (इस्पात) उद्योग 1911 में स्थापित हो गया था, हालाँकि आरंभिक वर्षों में उसमें नियोजित मजदूरों की संख्या अधिक नहीं थी। इसलिए प्रथम विश्वयुद्ध तक जो उद्योग ट्रेड यूनियन संगठन के लिए जिम्मेदार रहे वे थे जूट व कपड़ा उद्योग और रेलवे''। अत: प्रथम विश्वयुद्ध के बाद से उद्योग अतिशय महत्त्वपूर्ण और व्यापक हड़ताल आंदोलन के घटना-स्थल बनने वाले थे।

प्रथम विश्वयुद्ध का प्रभाव:-

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारत ने राजनीतिक तथा आर्थिक हालातों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आए। राजनीतिक दृष्टि से साम्राज्यवादियों ने भारतीय पूँजीपति वर्ग के साथ विश्वासघात किया था। इस पूँजीपति वर्ग का राजनीतिक संगठन (भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस) सरकार से वे छूटें प्राप्त करने में असमर्थ रहा जिनकी उसने युद्ध के दौरान सहायता के बदले प्राप्त करने की आशा की थी। और भी खराब बात यह थी कि देशी पूँजीपतियों को युद्ध के दौरान अर्थव्यवस्था के विविधीकरण में थोड़ा-सा हिस्सा देने के बाद सरकार फिर असंतुलन की उसी पूर्ववर्ती स्थिति में लौट आई थी। वर्साई (Versailles) में मित्र देशों के हाथों तुर्की का जो उपहास हुआ था उससे मुसलमान क्षुब्ध थे। असंतोष की इन विभिन्न धाराओं ने मिलकर काँग्रेस और लीग के पुनर्मिलन का वातावरण तैयार किया जो तत्काल स्वशासन के कार्यक्रम पर आधारित था।

राजनीतिक क्षेत्र में जहाँ जनसामान्य अपने को उपेक्षित महसूस कर रहा था, वहाँ आर्थिक मोर्चे पर युद्ध से मजदूर वर्ग को सबसे ज्यादा आघात पहुँचा। युद्ध के दौरान वस्तुओं की कीमते दुगुनी हो गई, किंतु इस महँगाई के अनुरूप मजदूरों के वेतन में वृद्धि नहीं हुई। इसके विपरित नियोक्ता (employers) अनाप-शनाप मुनाफा बटोर रहे थे। इस महँगाई की वजह से औद्योगिक कामगार को सबसे ज्यादा कष्ट भोगना पड़ा। मध्य वर्ग ने इस असंतुष्ट और पिसते हुए मजदूर वर्ग का बड़ी चतुराई से अपने राजनीतिक एवं आर्थिक स्वार्थों के लिए उपयोग करने की कोशिश की। इसके परिणामस्वरूप एक भारी हड़ताल आंदोलन चलाया गया जिसने अपनी गतिविधि के दौरान भारतीय श्रमिक आंदोलन की शक्ल ही बदल दी। पिछले कई दशकों से श्रमिक-असंतोष की जो भावना इकट्ठी होती चली आ रही थी उसे पहली बार नियोजित तथा व्यवस्थित रूप में व्यक्त होने का मौका मिला। ट्रेड यूनियन आंदोलन अब एक निश्चित आकार ग्रहण करता जा रहा था। किंतु यह स्थिति एक अन्य दृष्टि से भी महत्वपूर्ण थी। इसने भारतीय ट्रेड यूनियनो पर मध्य वर्ग के जबरदस्त प्रभाव के नवीन युग का सूत्रपात किया, एक ऐसा प्रभाव जिसे अभी तक खत्म नहीं किया जा सका है। यह प्रभाव ही वस्तुत: भारतीय मजदूर वर्ग की आर्थिक दुर्दशा का प्रतीक था क्योंकि इस महत्वपूर्ण बिंदू पर जो लोग उनका नेतृत्व करने आए और आगे तक नेतृत्व करते रहे, उनमें से कुछ का मजदूर वर्ग से कोई खास सरोकार

नहीं था। उनके लिए तो यह वर्ग अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति का साधन पर था। "1918 में जो हड़तालों का दौर शुरू हुआ और लगभग तीन वर्ष तक चलता रहा उसका क्षेत्र बहुत व्यापक था और उसकी तीव्रता को दबाया नहीं जा सकता था। 1918 के अंत में पहली बड़ी हड़ताल हुई जिसने कपड़ा मिलों के एक प्रमुख केंद्र बंबई में पूरे-के-पूरे उद्योग को प्रभावित किया। जनवरी 1919 तक सभी मिलों में लगभग 1,25,000 मजदूर हड़ताल पर थे। 1919 के बसंत में रॉलेट एक्ट के खिलाफ देशव्यापी हड़ताल के प्रतिक्रियास्वरूप मजदूरों ने जगह-जगह हड़तालें कीं। शीघ्र ही हड़तालों की यह लहर अपने शिखर पर पहुँच गई। केवल छह महीने की अवधि में लगभग 200 हड़तालें हुई जिनमें लगभग 25 लाख मजदूर शामिल हुए। निम्नलिखित आँकड़ों से इस आंदोलन की व्याप्ति और तीव्रता का कुछ अंदाज लगाया जा सकता है।

''4 नवंबर से 2 दिसंबर तक, ऊनी कपड़ा मिल, कानपुर के 17,000 लोग हड़ताल परय 17 दिसंबर, 1919 से 9 जनवरी, 1920 तक, जूट मिल, कलकत्ता के 35,000 लोग हड़ताल पर; 31 जनवरी को ब्रिटिश इंडिया नेविगेशन कंपनी के 10,000 लोग हड़ताल पर; 24 फरवरी से 20 मार्च तक, टाटा आयरन एंड स्टील वर्क्स के 40,000 लोग हड़ताल पर; 9 मार्च को मिल ओनर्स, बंबई के 60,000 लोग हड़ताल पर; 20-26 मार्च, मिल मजदूर, मद्रास के 17,000 लोग हड़ताल पर; मिल मजदूर, अहमदाबाद के 25,000 लोग हड़ताल पर।''

संदर्भ सूची

1. R.P. Dutt, India Today.
2. Bulletin of the Department of IndustriesAnd Labour, quoted by V.B. Kamik, Indian Trade Unions :A Survey (1960).
3. R.P. Dutt, India Today.
4. D.H. Buchanan, The Development of Capitalist Enterprise in India, quoted in Harold Crouch, Trade UnionsAnd Politics in India.
5. डी.मोरिस ने 1920 से पहले बंबई कपड़ा उद्योग में श्रमिक शक्ति को चित्रित किया है। देखिये .D. Moris, Labour Discipline in Trade Unions.
6. Harold Crouch, Trade UnionsAnd Politics in India.
7. R.P. Dutt, India Today.
8. R.K. Das, The Labour Movement in India, pp. 36-37.
9. Harold Crouch, op. cit.
10. V.B. Kantik, op. cit.

महाकवि कल्हण कृत राजतरंगिणी में वीभत्स एवं अद्भुत रस का चिन्तन

डॉ० शालिनी अग्रवाल

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर, उ0प्र0

संस्कृत साहित्योद्यान को सौरभ से आप्लावित करने में जिन विविध ललित ग्रन्थ-प्रसूनों का विशेष योगदान रहा है उनमें महाकवि कल्हण विरचित 'राजतरंगिणी' का भी विशिष्ट महत्व है। यह ग्रन्थ और ग्रन्थकार दोनों ही संस्कृत साहित्य के अमूल्य धरोहर हैं। यह ग्रन्थ भारतीय संस्कृति के समन्वयात्मक स्वरूप का परिचायक है। यह एक ओर ललित साहित्य के अन्तर्गत विशिष्ट काव्यानन्द का साधन तो है ही, दूसरी ओर, एक इतिहास ग्रन्थ के रूप में भी इसकी महत्ता अक्षुण्ण है। यह ग्रन्थ महाकवि कल्हण की अक्षयकीर्ति का विमल आधार है।

वीभत्स रस काव्य में मान्य नव रसों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इसकी स्थिति दु:खात्मक रसों में मानी जाती है। इस दृष्टि से करुण, भयानक तथा रौद्र, ये तीन रस इसके सहयोगी या सहचर सिद्ध होते हैं। शान्त रस से भी इसकी निकटता मान्य है, क्योंकि बहुधा वीभत्सता का दर्शन वैराग्य की प्रेरणा देता है और अन्तत: शान्त रस के स्थायी भाव शम का पोषण करता है।

भरत के 'नाट्यशास्त्र' में वीभत्स रस को चार मुख्य उत्पत्ति-हेतुक रसों में माना गया है- 'बीभत्साच्च भयानक:'[1]। इसके अनुसार वीभत्स रस भयानक रस का उत्पादक है। वीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा है, जो भयानक रस के स्थायी भय का प्रेरक रहता है।[2] भय यद्यपि आतंक आदि अनेक कारणों से भी उत्पन्न हो सकता है, पर सूक्ष्म दृष्टि से भयजनित पलायन के मूल में ऐसी किसी-न-किसी स्थिति की कल्पना अवश्य निहित प्रतीत होती है, जो भीतर से घृणा या जुगुप्सा का भाव जगाती है। धनंजय ने रसों में कार्य कारण-सम्बन्ध मानने का विरोध किया है। वे उक्त हेतु भाव को 'सभेद' की अपेक्षा द्वारा सिद्ध मानते हैं (दश04, 44-45)। वीभत्स रस शृंगार रस का विरोधी समझा जाता है, क्योंकि जुगुप्सा उत्पन्न करने वाले प्रसंग के आ जाने से शृंगार रस में रसाभास की स्थिति आ जाती है। शृंगार 'हृद्य' है और वीभत्स 'अहृद्य' अर्थात् हृदय द्वारा अग्राह्य। वीभत्स रस का परिचय देते हुए भरत ने उसकी उत्पत्ति अहृद्य, अप्रियावेक्ष, अनिष्ट-श्रवण, अनिष्ट-दर्शन तथा अनिष्ट-परिकीर्तन आदि विभावों से बतायी है। सर्वांगहार, अर्थात् सब अंगों की निष्क्रियता, मुख-नेत्र-विघूर्णन, अर्थात् मुख-नेत्र का संकुचित होना, वमन, कम्पन आदि को अनुभाव माना गया है। संचारी या व्यभिचारियों में अपस्मार, वेग, मोह, व्याधि, मरण आदि की गणना की गयी है। पुन: अनभिहितदर्शन, रसगंधस्पर्श-शब्ददोष, उद्वेजन आदि से भी वीभत्स की उत्पत्ति निर्दिष्ट की गयी है तथा नयननासाप्रच्छादन, अवनमित मुख होने पर एवं अव्यक्त-पादपतन के द्वारा उसके अभिनय का आदेश दिया गया है।[3]

'नाट्यशास्त्र' में ही वीभत्स रस का देवता महाकाल तथा वर्ण नील माना गया है। शैली की दृष्टि से उसके वर्णन में गुरु अक्षरों का प्रयोग उचित बताया गया है। करुण रस में भी यही विधान है।

करुण रस की तरह वीभत्स रस को लेकर भी आनन्दोपलब्धि की समस्या उठायी गयी है। आधुनिक मराठी लेखकों में वाटवे का मत तो यह है कि 'स्वतन्त्र आस्वादन के अभाव' में इसे रस-व्यवस्था से निकाल ही देना चाहिए। द0 के0 केलकर ने भी लगभग इसका समर्थन किया है। दि0 के0 बेडेकर की धारणा है कि यह बात वीभत्स रस को आधुनिक मनोविज्ञान की कसौटी पर तौलने और भरत-प्रणीत रस-व्यवस्था का मूल आधार न समझने के कारण ही हुई है। भरत ने रसों की कल्पना द्वन्द्व रूप में की है और इस प्रकार वीभत्स रस शृंगार रस के साथ मिलकर एक अविच्छेद्य 'द्वन्द्व' की सृष्टि करता है।

अपने 'नाट्यशास्त्र' में भरत ने वीभत्स रस के विभाजन की भी व्यवस्था कर दी है, यथा-- ''वीभत्स: क्षोभज: शुद्ध: उद्वेगी स्यात्तृतीयक:। विष्ठाकृमिभिरुद्वेगी क्षोभजो रुधिरादिज:''[4]। इस कथन के अनुसार वीभत्स रस के तीन भेद होते हैं- 1. क्षोभज, 2. शुद्ध, 3. उद्वेगी। 'क्षोभज' की उत्पत्ति रुधिरादि के देखने से मन में क्षोभ का संचार होने पर होती है और 'उद्वेगी' विष्ठा तथा कृमि के सम्पर्क द्वारा उद्भूत होता है। 'शुद्ध' वीभत्स की व्याख्या भरत के इस विभाजन में नहीं मिलती। जुगुप्सा का सामान्य भाव ही कदाचित् उसका उत्पादक है, जिसमें किसी तात्कालिक स्थूल वस्तु की अपेक्षा नहीं रहती। 'भावप्रकाश' नामक संस्कृत ग्रन्थ के रचयिता शारदातनय ने उक्त भेदों में से केवल 'क्षोभज' और 'उद्वेगी' को ही मान्यता प्रदान की है। 'शुद्ध' उन्हें मान्य नहीं हुआ। धनंजय ने 'दशरूपक' में भरत के तीनों भेदों को यथावत् स्वीकार कर लिया है। भानुदत्त ने 'रस-तरंगिणी' में करुण रस की तरह वीभत्स रस के भी 'स्वनिष्ठ' और 'परनिष्ठ' दो रूप माने हैं। साहित्य-दर्पणकार विश्वनाथ ने भरत द्वारा निर्दिष्ट बातों को तो ज्यों-का-त्यों वीभत्स रस के लक्षण में समाविष्ट कर लिया है, पर उसके भेदों का कोई उल्लेख नही किया है।

वीभत्स रस के स्थायी भाव जुगुप्सा की उत्पत्ति दो कारणों से मानी गयी है, एक विवेक और दूसरा अवस्थाभेद। पहले को 'विवेकजा' और द्वितीय को 'प्रायकी' संज्ञा दी जाती है। विवेकजा जुगुप्सा से शुद्ध वीभत्स तथा प्रायकी से क्षोभज और उद्वेगी वीभत्स को सम्बद्ध किया जा सकता है।[5]

सर्वमान्य नौ रसों में अद्भुत रस का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अद्भुत रस का स्थायी भाव 'विस्मय' है। कोई विस्मयकारी दृश्य (व्यक्ति, वस्तु आदि) इस रस का भाव और आश्चर्य से समृद्ध हो जाना आदि अनुभाव हैं। जड़ता, दैन्य, आवेग, चपलता, औत्सुक्य आदि इसके संचारी भाव होते हैं।

अद्‌भुत रस के स्वरूप का चिंतन भरत के 'नाट्यशास्त्र' में भी मिलता है। भरत ने वीर रस से अद्‌भुत रस की उत्पत्ति बतायी है। उनके अनुसार अद्‌भुत रस का वर्ण पीला एवं उसके देवता ब्रह्मा हैं। अद्‌भुत रस की यह परिभाषा परवर्ती आचार्यों ने अपने-अपने ढंग से प्रस्तुत की है, आचार्य विश्वनाथ ने अद्‌भुत रस को विशेष महत्त्व दिया है, उन्होंने अद्‌भुत रस को सर्वव्यापक स्वीकार किया है। उनके प्रपितामह नारायण पंडित ने यह स्थापना की थी कि 'सर्वत्राप्यद्‌भुतोरसः' अर्थात् अद्‌भुत ही मूल रस है जो सब जगह प्रतीत होता है। विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' के रस प्रसंग में अपने पूर्ववर्त्ती विद्वान धर्मदत्त के आधार पर यह सूचना दी है-

तदाह धर्मदत्तः स्वग्रन्थे-

रसे सारसचमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते।
तत्चमत्कारसारत्वे सर्वत्रप्यद्‌भुतोरसः।
तस्मादभुतमेवाह कृती नारायणो रसम्।।[6]

अर्थात् सब रसों में चमत्कार सार रूप से प्रतीत होता है और चमत्कार (विस्मय) के साररूप (स्थायी) होने से सब जगह अद्‌भुत रस ही प्रतीत होता है, अतः पंडित नारायण केवल एक अद्‌भुत रस ही मानते हैं।

चमत्कार शब्द विस्मय का पर्यायवाची माना गया है। भारतीय काव्यशास्त्र में चमत्कारपूर्ण विस्मय दोनों शब्दों को विस्तार से विवेचित किया गया है। विस्मय की परिभाषा 'सरस्वती कण्ठाभरण' में इस प्रकार दी गयी है- 'विस्मयश्चचित्तविस्तारः पदार्थतिशयादिभिः' अर्थात् किसी अलौकिक पदार्थ के गोचरीकरण से उत्पन्न चित्त का विस्तार विस्मय है।

आचार्य भरत का कथन है कि विस्मय, माया, इन्द्रजाल, असाधारण काम तथा अन्य कलाकृतियों आदि विभावों द्वारा उत्पन्न होता है।[7] भानुदत्त ने विस्मय उत्पन्न करने वाले विभावों अथवा कारणों को चमत्कार शब्द में समाहित कर दिया है उनके अनुसार, चमत्कार के दर्शन, स्पर्शन अथवा श्रवण से उत्पन्न मनोविकार विस्मय है।[8] आचार्य विश्वनाथ ने विस्मय को और अधिक व्यवस्थित ढंग से परिभाषित करते हुए लिखा है कि-

विविधेषु पदार्थेषु लोकसीमातिवर्तिषु।
विस्फारश्चेतसोयस्तु स विस्मय उदाहुतः।।[9]

अर्थात् लोक की सीमा से अतिक्रान्ति अलौकिक सामर्थ्य से युक्त किसी वस्तु के दर्शन आदि से उत्पन्न चित्त के विस्तार को विस्मय कहते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने विस्मय को चमत्कार का पर्याय बताया है-

चमत्कारश्चित्त विस्तारूपो विस्मयापर पर्यायः।

अतएव चित्त की वह चमत्कृत अवस्था, जिसमें वह सम्भाव्य की परिधि से बाहर उठकर विस्तार प्राप्त करता है, विस्मय कहलाएगा। वास्तव में यह विस्मय या चमत्कार प्रत्येक गहरी अनुभूति का आवश्यक अंग है और इसीलिए प्रत्येक रस की प्रतीति में वर्तमान रहता है। आचार्य विश्वनाथ रसास्वाद के प्रसाद को समझाते हुए कहते है कि रस का प्राण लोकोत्तर चमत्कार है और इस प्रकार सर्वत्र सम्पूर्ण रस गर्भित स्थानों में अद्‌भुत रस माना जाना चाहिए।

मनोविज्ञानियों ने भी विस्मय को प्रधान भावों में गृहीत किया है तथा उसकी प्रवृत्ति 'जिज्ञासा' से बतायी है। वास्तव में आदिम मानव को प्रकृति की क्रीड़ास्थली के संसर्ग में भय एवं आश्चर्य अथवा विस्मय, इन दो भावों की ही मुख्यतया प्रतीति हुई होगी। कला एवं काव्य के आकर्षण में विस्मय की भावना सर्वाधिक महत्त्व रखती है। कवि एवं कलाकार जिस वस्तु का सौन्दर्य चित्रित करना चाहते हैं, उसमें कोई लोक को अतिक्रान्त करने वाला तत्त्व वर्तमान रहता है, जो अपनी असाधारणता से भावक को अभिभूत कर लेता है। अँग्रेजी साहित्य के रोमांटिक कवियों ने काव्य की आत्मा विस्मय को ही स्वीकार किया है। अतएव, अद्‌भुत रस का महत्त्व स्वयंसिद्ध है। साहित्यशास्त्रियों ने रसों के विरोध एवं अविरोध का व्याख्यान किया है। पण्डितराज ने अद्‌भुत रस को शृंगार एवं वीर का अविरोधी बताया है, अर्थात् उनके मतानुसार शृंगार तथा वीर के साथ अद्‌भुत की अवस्थिति हो सकती है। विश्वनाथ ने सम्बद्ध प्रसंग में अद्‌भुत के विरोध या अविरोध के विषय में कोई उल्लेख नहीं किया है। वास्तव में उन्होंने रसास्वाद के निरूपण के प्रकरण में, जैसा पहले ही कहा गया है, अपने प्रपितामह की सम्मति उद्धृत करते हुए अपना मत भी व्यक्त कर दिया है कि अद्‌भुत रस की पहुँच सर्वत्र सम्पूर्ण रसों में हो सकती है। भानुदत्त ने अत्युक्ति, भ्रमोक्ति, चित्रोक्ति, विरोधाभास इत्यादि को अद्‌भुत रस में ही अन्तर्भूत कर दिया है। सामान्यतया अद्‌भुत एवं हास्य रस में आपाततः साम्य लक्षित होता है, क्योंकि दोनों में लोक से वैपरीत्य का भाव वर्तमान रहता है। लेकिन, अन्तर यह है कि हास्य में यह वैपरीत्य साधारण होता है और उसका कारण भी यत्किंचित् ज्ञान रहता है, जब कि अद्‌भुत में वैपरीत्य का परिमाण अपेक्षाकृत अधिक होता है और उसका कारण भी अज्ञात रहता है। वस्तुतः दो विपरीत वस्तुओं के संयोग पर विचार करना ही विस्मय का मूल है।[10]

अलौकिकता से युक्त वाक्य, शील, कर्म एवं रूप अद्‌भुत रस के आलम्बन विभाव हैं, अलौकिकता के गुणों का वर्णन उद्दीपन विभाव है, आँखें फाड़ना, टकटकी लगाकर देखना, रोमांच, आँसू, स्वेद, हर्ष, साधुवाद देना, उपहार-दान, हा-हा करना, अंगों का घुमाना, कम्पित होना, गद्‌गद वचन बोलना, उत्कण्ठित होना, इत्यादि इसके अनुभाव है और वितर्क, आवेग, हर्ष, भ्रान्ति, चिन्ता, चपलता, जड़ता, औत्सुक्य प्रभृति व्यभिचारी भाव हैं।[11]

आचार्य भरत के अनुसार अद्‌भुत रस दो प्रकार का होता है- दिव्य और आनन्दादि दैविक चमत्कार से उत्पन्न अद्‌भुत रस दिव्य के अन्तर्गत आता है जबकि मनोरथ की सिद्धि करने वाले अप्रत्याशित घटनाओं से उत्पन्न अद्‌भुत रस को आनन्दज माना गया है। परवर्ती आचार्यों ने अद्‌भुत रस के भेद-प्रभेदों पर अधिक विचार न करके इसके इन भेदों को परम्परा प्रसिद्ध रूप में स्वीकार कर लिया है।

राजतरंगिणी काव्यग्रन्थ में वीभत्स रस की स्थिति- राजतरंगिणी में युद्धों के वर्णन की बहुलता है जिससे इसमें वीभत्स रस के लिए पर्याप्त प्रसंगों का अवकाश रहा है। इस प्रकार के कतिपय प्रसंग द्रष्टव्य हैं-

दग्धप्राण्यग्विगलद्वसासृक्स्नेहवाहिनी।

मयूरचन्द्रकाटेव बितस्ता समपद्यत।।[12]

अर्थात्, उसकी विषाग्नि से जले हुए प्राणियों के शरीर से निकले रक्त, मज्जा, वसा तथा मांसादि बहाती हुई बितस्ता नदी मोरपंख के समान रंगीन दिखाई देने लगी। इस प्रसंग में जुगुप्सा (घृणा) योग वस्तुओं रक्त, मज्जा, वसा आदि के वर्णन से बीभत्स रस की सृष्टि हुई है। इसी प्रकार का वर्णन निम्न उदाहरण में भी द्रष्टव्य है-

सांनिध्यं यस्य सैन्यान्तर्हन्यमानाशनोत्सुकान्।

अजानन्गृध्रकाकादीन्दृष्टवाग्रे धावतो जनाः।।

दिवारात्रं हतप्राणिसहस्र परिवारितः।

योऽभूद्भूपालवेतालो विलासभवनेष्वपि।।[13]

अर्थात् राजा मिहिरकुल के सैनिकों द्वारा मारे गये शत्रुओं की लाशों के मांस को उत्कंठापूर्वक खाते तथा उड़ते हुए काक-गृद्धादि पक्षियों को देखकर लोग उस राजा को अपने नगर के समीप आया हुआ समझ लेते थे। रात-दिन मरे हुए हजारों मनुष्यों के शवों से परिवेष्टित वह राजा अपने अन्तःपुर में भी पिशाच के समान भयटर दीखता था।

अमर्यादित आचरण, मर्यादा के प्रतिकूल वर्णन, देवमूर्तियों एवं मंदिरों को अपवित्र करने आदि जैसे प्रसंगों में भी चित्त में क्षोभ उत्पन्न होता है अतः ऐसे प्रसंगों में भी, वीभत्स रस की स्थिति मानी गयी है। राजतरंगिणी में इस प्रकार के वर्णन भी कई स्थलों पर आए हैं जिनमें से कुछ प्रसंग यहाँ उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है-

पत्युः कोपे कृतावज्ञा भ्रूनेत्रचिबुकोचनैः।

तदप्रियं भाषमाणे सस्मितं न्यस्तलोचना।।

तत्तुल्यगुणनिर्विण्णा तद्विपक्षस्तुतौ रता।

रिरंसां तस्य संलक्ष्य सखीभिर्बद्धसंकथा।।

तच्चुम्बने भुग्नकण्ठी तदाश्लेषेऽसहाग्का।

तत्संभोगे त्यक्तहर्षा तत्तल्पे व्याजनिद्रिता।।[14]

वह यदि कभी पति को कुपित देखती तो उसकी अवहेलना कर देती थी। कभी-कभी पति की ओर ताकती हुई आँखों, भौंहों तथा होंठों से बिचकाने लगती थी। यदि क्रोध में आकर पति कुछ भला-बुरा कहने लगता तो वह ठठाकर हँस पड़ती थी। पति के समान गुणी लोगों से वह कतराती थी, उसके प्रतिद्वन्द्वियों की प्रशंसा को बड़े चाव से सुनती थी और पति के रमण करने की इच्छा देखकर उधर से ध्यान हटाती हुई सखियों से बात करने लग जाती थी। पति जब चुम्बन करना चाहता था, तब वह मुँह फेर लेती थी। वह आलिग्न करता तो अपने शरीर को शिथिल कर देती थी। समागम के समय अनमनी हो जाती और उसकी शय्या पर जाकर नींद का बहाना करने लगती थी।

ये दीर्घजागरा रात्रौ भूरिभोजनसेविनः।

अजीर्णपिशितोद्गारनित्यदुर्गन्धकन्धराः।।

अवस्करप्रणालाभाः पृष्ठे क्षिप्तमधःपथैः।

शौचपाथ इव क्षिप्रमुच्छ्वन्ति मधुनिर्झरम्।।

नक्तमातोद्यवाद्यज्ञैस्तैः सार्धं कृतसेवनः।

चारणो वेणुवाद्यज्ञो योषितां धर्षयन्हठात्।।[15]

(वंशी बजाने में निपुण चमक नाम का एक चारण (भाँट) था। वह बलात् भले घरों की स्त्रियों को चरित्र भ्रष्ट करने में दक्ष था। रात में देर तक जागने वाले, अत्यधिक भोजन करने वाले पेटू, जिनके कण्ठ से अजीर्ण मांस की दुर्गन्धित डकारें आती रहती थीं और मोरी या परनाले में बहने वाले शौच के गन्दे पानी के समान बद्बूदार मदिरा पीने वाले गायकों और वादकों के साथ वह सदा रहता था।)

वदनेषु स नग्नाटैः शीर्णघ्राणाङ्घ्रिपाणिभिः।

मूर्तिनाशाय देवानां शकृन्मूत्राद्यपातयत्।।

स्वर्णरूप्यादिघटिता गीर्वाणाकृतयोऽलुठन्।

अध्वस्विन्धनगण्डाल्य इव सावस्करेष्वपि।।[16]

दुष्ट उदयराज देवप्रतिमाओं को भ्रष्ट करने के लिए ऐसे नंगे भिखारियों के द्वारा उन मन्दिरों में मल-मूत्र छिड़कवाता था, जिनके नाक-कान और हाथ-पैर रक्त विकार से सड़े रहते थे। सोने-चाँदी आदि धातुओं की बनी देवमूर्तियाँ जलावन की लकडिघ्यों के समान कूड़ा-कर्कट भरे और एकदम गन्दे रास्तों पर घसीटी जाती थीं।

राजतरग्णिी में अद्भुत रस की स्थिति- राजतरग्णिी में ऐसे बहुत से प्रसंगों की उद्भावना हुई है जिनसे अद्भुत रस की सृष्टि होती है, इन प्रसंगों में अलौकिक चमत्कार वाले प्रसंग भी है तथा किसी कार्य की अप्रत्याशित सिद्ध से होने वाले विस्मयकारी प्रसंग भी हैं। ऐसे कतिपय प्रसंग उदाहरणार्थ अवलोकनीय हैं-

भालं वह्निशिखाटितं दधदधिश्रोत्रं-
वहन्संभृतक्रीडत्कुण्डलिजृम्भितं जलधिजच्छायाच्छकण्ठच्छविः।
वक्षो बिभ्रदहीनकञ्चुकचितं बद्धाग्नार्धस्य-
वो भागः पुंगवलक्ष्मणोस्तु यशसे वामोऽथ वा दक्षिणः।।[17]

तृतीय नेत्र में स्थित अग्नि की लपटों तथा केसर के तिलक से सुशोभित ललाटयुक्त एवं केलि करते हुए सर्पों के चपलमुख तथा झूलते हुए कुण्डलों से शोभायमान कानोंवाला, समुद्र से उत्पन्न अथवा शंख की दीप्ति से निर्मल कण्ठ की शोभा से सम्पन्न, वृष के चिह्न से चिह्नित, उत्तम कंचुकी से आवृत वक्षःस्थल एवं आधी देह से नर और आधी से नारी का वेष धारण किये हुए शिवजी का दाहिना अथवा बामभाग आप लोगों का कल्याण करे। इस प्रसंग में शिव जी का विस्मयकारी वेष विन्यास अद्भुत रस की सृष्टि करता है।

विजयेश्वरनन्दीशक्षेत्रज्येष्ठेशपूजने ।
तस्य सत्यगिरो राज्ञः प्रतिज्ञा सर्वदाऽभवत्।।
ग्रामे ग्रामे स्थितैश्वैर्धावनं प्रतिषिद्धवान्।
स्वेनावहत्तं सततं नागः कोऽपि सुहृत्तया।।[18]

वह सत्यवादी राजा प्रतिदिन नियम से नन्दीश क्षेत्र में स्वयंभू श्रीज्येष्ठेश्वर नाम के शंकर जी की पूजा किया करता था। पूजन के लिये उतनी दूर जाने में उसका मित्र एक नाग प्रतिदिन भक्तिपूर्वक उसकी सहायता करता था। अतएव उसको प्रत्येक ग्राम में अश्व का प्रबन्ध करने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी।

उत्तिष्ठ व्रतिनामभ्य कक् विपर्येति मद्वचः।
प्रजापाल प्रजानां ते नास्त्येव क्षुत्कृतं भयम्।।
इति संरम्भतः प्रोक्ते तयाऽनुध्याय देवताः।
प्रतिगेहं गतप्राणः कपोतनिवहोऽपतत्।।[19]

हे व्रतियों में अग्रणी ! आप उठिए। क्या कभी मेरी बात मिथ्या हुई है? हे प्रजापालक ! अब आपकी प्रजा को क्षुधाजनित संकट का भय नहीं होगा। देवताओं का स्मरण करके रानी वाक्पुष्टा ने बड़े विश्वास के साथ ये वचन कहे थे। अतएव तत्काल प्रजाजनों के प्रत्येक घर में बहुतेरे मरे हुए कबूतर आकाश से आ गिरे। प्रातःकाल के समय राजा ने यह घटना घटित देखकर प्राण त्यागने का विचार छोड़ दिया। उधर प्रजाजन भी नित्य आकाश से गिरे कबूतरों को खाकर जीवन यापन करने लगे। इस प्रसंग में दैवी कृपा से अप्रत्याशित रूप से कार्य सिद्ध हो जाने के कारण अद्भुत रस की निष्पत्ति हुई है।

भूमेर्जलादुद्धरणं द्विजक्षेत्रे तथार्पणम्।
सेतुबन्धोऽश्मभिस्तोये यमनं कालियस्य च।।
चतुर्षु सिद्धमिति यद्विष्णोः सत्कर्मजन्मसु।
सुय्यस्य तत्पुण्यराशेरेकस्मिन्नेव जन्मनि।।[20]

भूमि का जल से उद्धार, द्विज क्षेत्र में अर्पण, जल में पाषाण सेतु का निर्माण और कालियनाग का दमन, इन चार कामों को पूर्ण करने के लिए विष्णु भगवान् को वराह, परशुराम, राम और कृष्ण ये चार अवतार लेने पड़े थे। परन्तु उस महान् पुण्यात्मा सुय्य ने एक ही जन्म में ये चारों काम सम्पन्न कर डाले।

सौवर्णामलसाराद्या राजधान्यो धरापतेः।
सुब्रह्मडोऽभ्रलिहगृहा भ्रेजिरे भुवनाद्भुताः।।
तदीये नन्दनवने द्रुमेभ्यो नो व्यधुः स्थितिम्।
त्यागिना निर्जितास्तेन केवलं कल्पपादपाः।।[20]

राजा हर्षदेव की अनेक राजधानियों में बहुतेरे गगनचुम्बी एवं पर्वतीय प्रदेश में सुवर्णकलशों से विभूषित राजप्रासाद दर्शकों के हृदय में विस्मयभाव जागृत कर देते थे और वे विश्व के प्रमुख वस्तु समझे जाते थे। उस राजा के द्वारा लगवाये हुए उपवन नन्दनवन से होड़ करते थे। वहाँ के वृक्ष अपनी उदारता से कल्पवृक्ष को भी लज्जित करते थे। इसी कारण उन उपवनों में अन्य वृक्षों के रहते हुए भी कल्पवृक्ष नहीं थे।

उपर्युक्त सभी उदाहरणों में चामत्कारिक कार्यों की उद्भावना के कारण विस्मय नामक स्थायी भाव अद्भुत रस के रूप में पल्लवित होकर आस्वाद्य बना है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'राजतरग्णिी' में बीभत्स और अद्भुत रसों का अवसरानुकूल समावेश हुआ है। यद्यपि ऐसे प्रसंग प्रचुर परिमाण में नहीं है, परन्तु जो प्रसंग इन रसों से युक्त होकर ग्रन्थ में आए हैं वे पर्याप्त प्रभावोत्पादक है और महाकाव्य की रस योजना के सर्वथा अनुकूल हैं।

संदर्भ सूची-

1. नाट्यशास्त्र 6/39
2. नाट्यशास्त्र 6/41
3. नाट्यशास्त्र 6/73-74
4. नाट्यशास्त्र 6/81
5. हिन्दी साहित्य कोश भाग-1, पृ0 433-434
6. साहित्य दर्पण - विमला टीका, पृ0 49
7. नाट्यशास्त्र 7/25
8. रस तरंगिणी
9. साहित्य दर्पण 3/180
10. हिन्दी साहित्य कोश भाग-1, पृ0 15
11. वही
12. राजतरग्णिी- 1/260
13. राजतरग्णिी- 1/291-292
14. राजतरग्णिी- 3/502-504
15. राजतरग्णिी- 7/285-287
16. राजतरग्णिी- 7/1092-1093
17. राजतरग्णिी- 1/2
18. राजतरग्णिी- 1/113-114
19. राजतरग्णिी- 2/49-50
20. राजतरग्णिी- 5/114-115
21. राजतरग्णिी - 7/938-939

समाज के सर्वांगीण विकास में संगीत का योगदान

डॉ० संगीता गोरंग

एसोसियेट प्रोफेसर, संगीत विभागाध्यक्षा, के.वी.ए. डी.ए.वी. कॉलेज फार वूमन, करनाल

सारांश

संगीत का समाज से घनिष्ठ संबंध है। संगीत से सुधार अत्यन्त सुगम हो जाता है। संगीत कलाकार अपने कला के सृजन द्वारा समाज में मानवता व सभ्यता की प्रतिस्थापना करता है और व्यक्तिगत जीवन को उत्कृष्ट बनाकर सामाजिक जीवन को भी सफल बना देता है। संगीत मानव समाज की सांगीतिक-सांस्कृतिक परम्पराओं का मूल प्रतीक है। यह कला प्राचीन काल से जन जीवन के आत्मिक आनन्द, उल्लास की अनुभूति का मधुरतम माध्यम रही है। भारतीय शास्त्रीय संगीत के ग्रन्थों के अनुसार-"गीतम् वाद्यम् तथा नृत्यम् त्रयं संगीतमुच्चते" अर्थात् गायन, वादन तथा नर्तन की त्रिवेणी का संगम ही संगीत है।

प्रस्तावना

वर्तमान समय में समाज के बदलते सामाजिक मूल्यों के साथ संगीत पर भी प्रभाव पड़ा है। आज टेक्नोलॉजी का बहुत विकास हुआ है। जिससे समाज में चारों ओर युवा वर्ग को प्रलोभन देने वाली प्रवृत्तियाँ पनप रही है। साथ ही वह टी.वी. आदि की तरफ खिंचा जा रहा है। व्यावसायिक मानसिकता बढ़ जाने से सम्पूर्ण सांगीतिक वातावरण दूषित हो रहा है। आज का मानव समाज जिन परिस्थितियों से गुजर रहा है, उनमें मानव मात्र के अस्तित्व पर प्रश्न लग गया है। संगीत प्रचार के माध्यम के रूप में व्यापकता के साथ अपनाया जा सकता है। जिससे स्वस्थ समाज का निर्माण हो। संगीत सामूहिकता के साथ-साथ अनुशासन भी प्रदान करता है। यह अनुशासन संगीत को अपूर्व लय प्रदान करता है और यही लय स्वर से घुल मिलकर हृदयों में संवाद पैदा कर देता है। केवल 'जन-गण-मन' का सामूहिक गान लाखों भारतीयों में देश के प्रति गर्व की भावना पैदा करता है। लोक संगीत का प्रयोग भी इस दृष्टि से अत्यधिक प्रयोग किया जा सकता है क्योंकि लोक संगीत मन के भावों को स्वच्छंद एवं सामूहिक रूप से व्यक्त करने का यह सरलतम माध्यम है।

समाज से अभिप्राय

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा समाज की सबसे छोटी एवं महत्त्वपूर्ण इकाई है। वह जो कुछ भी सीखता है अनुभव करता है या प्राप्त करता है, उसका आधार समाज ही होता है। मनुष्य समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग है या यह कह सकते हैं कि "समाज यदि जननी है तो व्यक्ति उसका बालक" ठीक जिस तरह से एक छोटा सा शिशु अपने माता-पिता के गुण-दोषों को संचित कर विकसित होता है उसी तरह मनुष्य समाज के गुण व दोषों को अपने जीवन में संचित कर अपना भविष्य बनाता है।

संगीत कला एवं संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है संगीत और समाज के संदर्भ में हमारे प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद जी के अनुसार "भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टियों से संगीत मनुष्य के लिए साधना का विषय है भौतिक जीवन में संगीत मनोरंजन का उतना ही बड़ा साधन है जितना कि वह आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रेरणा का स्त्रोत है। आज ही नहीं सदियों से हमारे देश में संगीत और भगवत् भक्त का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है इसलिए मैं समझाता हूँ कि संगीत में जो प्रभाव और शक्ति है उसका प्रयोग मानव कल्याण के लिए होना चाहिए। साधारण मनोरंजन से लेकर आध्यात्मिक उड़ान तक सभी कुछ मानव कल्याण की परीधि में आता है।'' इनके ये विचार प्रदर्शित करते हैं कि प्राचीन समय से ही संगीत की परम्परा समाज में धर्म, दर्शन, संस्कृति का आधार स्तर रही हे।

संगीत के माध्यम से मनुष्य परमानंद को प्राप्त करता आया है और इस परमानंद में मनुष्य को शान्ति का अनुभव होता है तथा साथ ही साथ उसकी मानसिक शक्ति का भी पोषण होता है। संगीत कला मानव जीवन के हर रंग को अपने रंग में रंग लेती है। संगीत कला मनुष्य के हृदय की भाषा है जिस कारण संगीत का अन्य किसी भी कला की तुलना में शीघ्र एवं अधिक प्रभाव समाज पर पड़ता है। हर देश व प्रदेश के संगीत में भावनात्मक क्षमता को व्यक्त करने की कला विद्यमान रहती है। ऐसी क्षमता अन्य किसी कला में देखने को नहीं मिलती है।

यदि संगीत का आध्यात्मिक दृष्टि से अवलोकन किया जाए की संगीत की समाज में धार्मिक पक्ष में क्या भूमिका है तो यह बात स्पष्ट होती है कि संगीत मोक्ष प्राप्ति का सबसे सीधा, सरल व उत्तम साधन है। आत्मा से परमात्मा के मिलन के लिए संगीत को सबसे उत्तम माध्यम माना गया है। समाज में विद्यमान प्रत्येक धर्मों के अनुयायी संगीत के माध्यम से अपने ईष्ट की उपासना करते हैं चाहे वह मंदिर हो, मस्जिद हो, चर्च हो या गुरुद्वारा हो, इस बात से यह स्पष्ट होता है कि समाज और संगीत का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है।

संगीत के व्यापक क्षेत्र को देखने पर यह ज्ञात होता है कि प्रत्येक काल में संगीत ने समाज को प्रभावित किया है या यह भी कह सकते हैं कि समाज से संगीत प्रभावित हुआ है। संगीत हर मनुष्य के जीवन का बहुत आवश्यक अंग है। संगीत मनुष्य के साथ जन्म से लेकर मृत्यु तक बना रहता है। कोई पर्व

हो कोई त्यौहार हो या संस्कार ऐसा नहीं है जिसमें संगीत न हो और घर ही नहीं वरन खेतों पर काम करने वाले किसान, चक्की चलाने वाले लोग और धान कूटने वाली ग्रामीण महिलाएँ भी लोक संगीत गाती रहती हैं जिस से उनका काम सहज रूप से पूर्ण हो जाता हे। समाज में प्रचलित परम्परायें एवं प्रथायें संगीत के बिना पूर्ण नहीं हो सकती हैं। संगीत मनुष्य के जीवन में नीरसता को दूर करके नवीन स्फूर्ति भरता है और समाज को उन्नति की ओर अग्रसर करता है।

आज समाज बदला है, उसके साथ ही मूल्य भी बदले हैं, ऐसी स्थिति में संगीत एक ऐसा साधन है, जिससे देश का उत्थान हो सकता है। बच्चों को संगीत द्वारा अनुशासन प्राप्त होता है। अगर वह मंच पर प्रदर्शन करता है तो वह सम्मान करना, कल्पनाशीलता आदि के बारे में सीखता है, साथ ही आत्मविश्वास बढ़ाने में मदद करता है। संगीत का प्रभाव व्यक्ति के मन, शरीर, बुद्धि तथा आत्मा सभी पर होता है, ऐसी स्थिति में यदि बाल्यावस्था से ही संगीत के स्वरों का संस्कार डालना प्रारंभ कर दिया जाये तो उनमें हिसंक प्रवृत्तियों के पनपने की संभावना कम होगी एवं उनका मानसिक विकास संतुलित रूप से होगा। वैसे भी बच्चों को कविता तथा गिनती आदि गाकर सिखाया जाये तो शीघ्र स्मरण हो जाता है। इसलिए अधिकांश शिक्षा शास्त्रियों तथा मनोवैज्ञानिकों ने सामान्य शिक्षा के अन्तर्गत संगीत शिक्षा को शिक्षा का आवश्यक अंग माना जाता है। प्रसिद्ध दार्शनिक (प्लेटो के अनुसार) "संगीत आत्मा के चरित्र का निर्माण करता है। उत्कृष्ट संगीत एक सुव्यवस्थित समाज का गठन करता है, जबकि निम्न स्तर का संगीत राष्ट्र के लिए विनाशकारी सिद्ध हो सकता है। संगीत का राजकीय नियंत्रण समाज के लिए आवश्यक है।"

संगीत मानव व्यवहार को अनुशासित ही नहीं करता वरन् विपरीत परिस्थितियों में भी व्यक्ति के स्वभाव, भाव को सहज बनाये रखता है। आज समाज के बदलते परिवेश में संगीत से व्यक्तियों की मनोवृत्ति में परिवर्तन करने एवं राष्ट्रीय एकता बनाने में सहायक है। समाज में अपराधी प्रवृत्ति के व्यक्तियों को शास्त्रीय संगीत के राग, रागिनियों के प्रयोग के माध्यम से सामान्य नागरिक बनाकर जीवन यापन करने योग्य बनाने का प्रयास किया जा रहा है। इस क्षेत्र में देश की महिला पुलिस अधिकारी किरण बेदी ने दिल्ली के तिहाड़ जेल के कई हिंसक व अपराधी कैदियों के जीवन को संगीत माध्यम से सुधारा है। यह समाज को संगीत का सबसे बड़ा योगदान है।

सामूहिक गीत गाने से लोगों के बीच में एक भावनात्मक संबंध स्थापित हो जाता है। जब मंदिरों में घंटियों की ध्वनि गूंजने लगती है, आरती की स्वर लहरियाँ प्रारंभ होती है तो मन उल्लासित हो जाता है एवं श्रद्धा भाव से भर जाता है। भजन सुनते है तब मन संगीत की स्वर लहरियों में एकाग्र हो जाता है। ग्रामीण समाज में तो संगीत सामाजिक जीवन में और भी नजदीक जुड़ा हुआ पाते हैं। दिन भर खेतो में काम करने के बाद में सामूहिक रूप से गाते-बजाते है तब उनका उल्लास देखते ही बनता है।

फसलों की बुआई से लेकर कटाई तक के कार्यो को सम्पन्न कराने में ग्रामीण समाज ने संगीत को अपने जीवन में स्थान दिया है। लोक उत्सवों के रूप में ग्रामीण समाज में होली, संजा, गणगौर आदि अवसर सूचक गीत गाये जाते है। शहर की अपेक्षा ग्रामीणों ने समाज में संगीत को अधिक अपनाया है।

प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक अश्वघोष बुद्ध के तत्व ज्ञान को समाज में सम्प्रेषित करने के लिए अश्वघोष गायकों की टोलियाँ बनाकर स्थान-स्थान पर घूमते थे और गायन वादन द्वारा अपना लक्ष्य पूर्ण करते थे।

पोलेण्ड के गायक "पेडेरस्की" ने संगीत के माध्यम से ही जन-जन में, समाज में राष्ट्रीय चेतना जगा दी थी।

समाज में प्रचलित संस्कार गीत, विवाह गीत, जन्म के समय गाये जाने वाले गीत, ऋतु गीत-बसंत-वर्षा, ऋतु मल्हार से सम्बन्धित गीतों के माध्यम से हर समय सामाजिक जीवन में मनुष्य के आस-पास संगीत विघ्मान रहता है।

निष्कर्ष

इससे यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक आयोजन संगीत के बिना परिपूर्ण नहीं हो सकते हैं। संगीत समाज के आंतरिक और बाह्य पक्ष को पोषित कर आंनदमय बनाता है। संगीत कला अपने आप में ऐसी विशेषताएँ लिये हुए है जिस से मनुष्य समाज के लिये भावनाओं से पूर्ण होकर मानवता के विकास में सहायक हो जाता है। इसलिए संगीत समाज में बहुत महत्त्वूपर्ण भूमिका निभाता है और समाज के विकास के साथ ही साथ संगीत भी विकसित होता है। आज के बदलते सामाजिक मूल्यों एवं परिवेश में संगीत की सामूहिकता के साथ मनुष्य अनुशासन में भी रहता है। यह अनुशासन संगीत के अपूर्व लय प्रदान करता है और यही लय स्वर से घुलमिलकर हृदयों में संवाद पैदा करती है। केवल जन-गण-मन का सामूहिक गान लाखों भारतीयों में देश के प्रति गर्व की भावना पैदा करता है। इसी प्रकार ऐसे कितने ही देश भक्ति के गीत है, उदाहरण के लिए-हम होंगे कामयाब, मेरे वतन के लोगों, इतनी शक्ति हमें देना दाता आदि गीतों के द्वारा अर्थात् संगीत ही तो है जो व्यक्ति को सामाजिक बनाने का एक महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली घटक है यह प्रामाणिक सत्य है। संगीत से मनोरंजन तो होता ही है लेकिन मनोरंजन से अधिक महत्वपूर्ण कार्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास अर्थात् समाज का विकास जिसमें संगीत के प्रचार-प्रसार के माध्यमों का प्रयोग द्वारा ही संभव हो सकता है। यह अनुभव किया जा चुका है। इसे प्रभावशाली माध्यम के रूप में व्यापकता के साथ अपनाया जा सकता है, जिसमें समाज का कल्याण हो।

संदर्भ सूची

1. डा. सत्यवती शर्मा, संगीत का समाजशास्त्र, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1995
2. डॉ. मृदुला पुरी, संगीत मीमांसा, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007
3. प्रो. हरिश्चन्द्र श्रीवास्त, संगीत निबंध संग्रह, संगीत सदन प्रकाशन इलाहाबाद, 2011
4. डॉ. राजेन्द्र कुमार शर्मा, समाज मनोविज्ञान।
5. डॉ. लालमणि मिश्रा, संगीत एवं समाज।
6. डॉ. पुष्पा बसु, संगीत निबंध कुंज।

वैश्विक आतंकवाद: उदभव एवं विकास

स्नेहलता यादव

शोधार्थी (राजनीति विज्ञान), राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर

रॉबोट फीडलैण्डर के अनुसार ''आतंकवाद'' शब्द फ्रांस की क्रांति और जैकोविन तानाशाही से संबंधित है। जहाँ राजनीतिक दमन और सामाजिक नियंत्रण के आतंकवाद का राज्य स्थापित किया गया था। रूसी क्रान्ति से आतंकवाद को प्रमुखता मिली। अमेरिका में भी 1850 से आतंकवाद को प्रमुखता मिली। अमेरिका में नाल्सी , फासिस्ट एवं सामाजिक साम्राज्यवादियों तथा नक्सलवादियों द्वारा आतंकवाद के आरोपों को अपनाया जाता रहा है। आतंकवाद शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ब्रुसेल्स में दण्डविधान को समेकित करने के लिए सन 1931 में आयोजित तृतीय सम्मेलन में किया गया था, जिसके अनुसार आतंकवाद का अभिप्राय ''जीवन, भौतिक अखण्डता अथवा मानव स्वास्थ्य को खतरे में डालने वाला या बड़े पैमाने पर संपत्ति को हानि पहुँचाने वाला कार्य करके जानबूझकर भय का वातावरण उत्पन्न करना है। साधारणतया आतंकवाद वह प्रणाली या पद्धति है जिसे एक उपकरण के रूप में अंगीकार कर कोई भी राज्य, राजनीतिक संगठन, स्वतंत्रतावादी समूह, अलगाववादी संगठन, जातीय या धार्मिक उन्मादी समूह अपने उद्देश्य की पूर्ति करना चाहते हैं।

आतंकवाद के दो प्रमुख स्वरूप रहे हैं- धार्मिक तथा अधार्मिक। धार्मिक आतंकवाद के अन्तर्गत इस्लामिक आतंकवाद सर्वप्रमुख एवं सर्वप्राचीन है। ऐसे आतंकवाद को मध्य पूर्व एवं यूरोप की धरती ने बहुत ही करीब से देखा है। धार्मिक आतंकवाद की स्थापना सन् 1920 में इजराइल के एक संगठन 'हागानाह' नाम से इजराइल के उदय से पूर्व हुई थी। इस संगठन को आधुनिक धार्मिक आतंकवाद का पितृ संगठन माना जाता है। 'हागानाह' ने ही धार्मिक आतंकवाद की मूल विचारधारा और उसके व्यावहारिक क्रियाकलापों की मूलभूत रूपरेखा निर्धारित की थी। जो आज भी आधुनिक इस्लामी कट्टरपंथ का मूलाधार है। 'हागानाह' का संस्थापक एक कट्टरपंथी यहूदी 'जिबोलिस्की' था, जिसने धार्मिक आतंकवाद के पाँच मूलभूत सूत्र सिद्धांत रूप में प्रतिपादित किए थे, जिसे आज दुनिया का प्रत्येक आतंकवादी संगठन मूलमन्त्र मानकर इसका प्रयोग करता है। चाहे वह भिण्डरावाले द्वारा शुरू किया गया आतंकवाद हो या 'धर्मयुद्ध' की अवधारणा से संचालित हो रहा कश्मीर का इस्लामिक आतंकवाद, या फिर चाहे धर्म और जातीय पहचान के लिए मिश्रित स्वरूप वाला श्रीलंका का तमिल-सिंघली संघर्ष हो।

आज दुनिया में धार्मिक आतंकवाद की तीन श्रेणियाँ विद्यमान हैं- एक राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने के लक्ष्य से दूसरा कुछ धार्मिक सम्प्रदायों और धर्म गुरुओं की व्यक्तिगत कुंठाओं से निर्धारित है, तीसरा लक्ष्य आर्थिक है, जिससे धर्मगुरु जासूसी एवं हथियारों की दलाली करते हैं। इस प्रकार देखा जाए तो धर्म एवं ' आतंकवाद' के रिश्ते व्यापक जटिल एवं चौकाने वाले हैं। धार्मिक आतंकवाद का उद्देश्य धर्म-विस्तार नहीं होता, बल्कि ऐसे आतंकवाद के कर्त्ताधर्त्ता धर्म के लगभग विपरीत रिश्ते रखने वाले हैं, ये लोग केवल अपने हितों के लिए ढाल के रूप में ही प्रयोग करते हैं।[1]

आज इस्लाम धर्म को आतंकवाद के लिए गलत ढंग से प्रयोग किया जा रहा है। आतंकवाद का इस्लामीकरण कर दिया गया है। इस्लाम धर्म के अभिन्न अंग नामज, रोजा, जकात व हज की तरह ही जेहाद भी इस्लामी महजब का अभिन्न अंग है, जिससे ' दारुल इस्लाम ' (इस्लामी देशों), ' दारुल हर्ब ' (शत्रु देशों) और जेहाद (धर्मयुद्ध) जैसी इस्लामिक शब्दावलियों की गलत ढंग से व्याख्या कर आतंकवाद के लिए एक हथियार के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। इस्लाम के विरोधियों के विरुद्ध युद्ध के नाम पर मुस्लिम आतंकवादी संगठन अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिए कार्य कर रहे हैं। वस्तुत: इन संगठनों का आधार इस्लाम नहीं है। यह उन लोगों के संगठन है जो धर्म से तो मुस्लिम हैं, लेकिन उनके लक्ष्य राजनीतिक है। फिलिस्तीन कश्मीर, चेचन्या आदि में सक्रिय आतंकवादी संगठन इसी कोटि में आते हैं। यह संगठन इस्लाम के नाम से जुड़ना चाहते हैं। इस्लाम के नाम पर मुस्लिम राष्ट्रों से धन सहानुभूति एवं विश्व के सभी मुसलमानों से भावनात्मक सहानुभूति चाहते हैं। यह आतंकवादी संगठन धार्मिक जुनून उत्पन्न कर बेरोजगार उत्साही मुस्लिम युवकों को आकर्षित करते हैं। इस्लामी जुनून में यह नवयुग धर्म के नाम पर सच्चे और अच्छे आतंकवादी सिद्ध होते हैं और जिहाद के लिए कुर्बानी देना अपना पवित्र कर्तव्य समझते हैं।[2]

आज सम्पूर्ण विश्व आतंकवाद की ज्वाला में झुलस रहा है। कोई ऐसा देश नहीं है जो आतंकवाद से त्रस्त न हो। यह विश्वव्यापी आतंकवाद मानवीय मूल्यों, संस्कृति तथा आधुनिक सदी की सभ्यता के लिए एक नया संकट बन गया है। विश्व की तस्वीर आने वाले दिनों में कैसी होगी? इसका समाधान क्या और कैसे हो सकता है ? आज संपूर्ण विश्व के समक्ष यह एक अपरिहार्य चिन्तन का विषय बन चुका है। विश्व के विभिन्न देशों में कहीं यह धार्मिक संगठन की हिंसक गतिविधियों के रूप में, कहीं राजनैतिक विचारधाराओं के बीच हथियारबन्द संघर्ष के रुप में, कहीं क्षेत्रीय समस्याओं को लेकर मुखर हुए हिंसक गिरोहों के रूप में, कहीं सांस्कृतिक, आर्थिक एवं भाषायी विषमताओं की प्रक्रिया स्वरूप उभरे संगठनों के रूप में तो, कहीं धार्मिक अल्पसंख्यकों द्वारा अपने उचित, अनुचित अधिकारों की लड़ाई के रूप में विश्वव्यापी होकर अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा, समृद्धि स्थिरता के लिए एक बड़ी चुनौती बन गया है।

वैश्विक आतंकवाद के खौफ से आज दुनिया का कोई भी शक्तिशाली देश वंचित नहीं है। चाहे वह रूस में चेचन्या के मुस्लिम उग्रवादियों का आतंक हो, चाहे वह संयुक्त राज्य अमेरिका में 11 सितंबर 2001 को वर्ल्ड ट्रेड सेंटर और पैन्टागन पर विमानों से हमला हो, ये सभी आतंकवादियों की बेखौफ मंसूबों के ही परिणाम हैं। आतंकवाद इजरायल, फिलिस्तीन, चीन, केन्या, श्रीलंका एवं भारत आदि देशों को प्रभावित कर चुका है। भारत में जम्मू कश्मीर, दिल्ली, अहमदाबाद, जयपुर, बेंगलुरु, बम्बई और वाराणसी आदि के धमाके यह सिद्ध करते हैं कि आतंकवाद समूचे देश में अपनी जड़ें फैला चुका है।

आतंकवाद के इतिहास पर यदि दृष्टिपात किया जाये तो यह ज्ञात होता है कि आतंकवाद की समस्या सदियों पुरानी है। महाभारत काल में कंस के नेतृत्व में चाणूर मुष्टिक, शक्टासुर, बकासुर और पूतना आदि ने आतंक फैलाकर सामान्य जन-जीवन को त्रस्त कर दिया था। रामायण काल में रावण के नेतृत्व में खरदूषण, मारीच, सुबाहु और ताड़का जैसी आतंकिनियों ने सम्पूर्ण भारत को पीड़ित कर रखा था।[3]

कई बार आतंकवाद की चर्चा करते समय राष्ट्रीय आन्दोलनों को भी इसी धारा में जोड़ दिया जाता है जबकि हर विस्फोट को या सैनिक शक्ति से विवादों को निपटाने के प्रयत्नों को आतंकवाद नहीं कहा जा सकता, क्योंकि पूरी 19वीं तथा 20वीं शताब्दी तक कई राष्ट्र औपनिवेशिक शासकों के खिलाफ लड़ाई लड़ते रहे। कई संगठनों ने इन आंदोलनों के दौरान हिंसात्मक गतिविधियों का भी सहारा लिया। उदाहरण के लिए 1950 से लेकर 1970 के दशक में के मध्य विश्व के अनेक हिस्सों में कई हिंसात्मक घटनाएं हुई, जिसमें अफ्रीका में पहले माओ फिर अंगोला मुजामदिक में लगभग गृहयुद्ध की स्थिति वर्षों बनी रही। दक्षिण पूर्व एशिया में वियतनाम का स्वाधीनता संग्राम जनवादी लगभग तीन दशक तक चला। इस परिप्रेक्ष्य में हो ची मिन्ह ने जनवादी चीन की माओवादी रणनीति को अपनाया।[4] इन सबको आतंकवाद या या इन क्रियाकलापों को आतंकवादी घटना नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि इस तरह की हिंसा के निशाने पर उत्पीड़क या अत्याचारी सरकार के अधिकारी और सैनिक रहे, जनता को हताहत करने की रणनीति कभी भी नहीं रही। हालांकि वियतनाम युद्ध में तेजी आने के साथ जैसे-जैसे छापामारी का मुकाबला करने में अमेरिकी सैनिक असमर्थ प्रमाणित होते गए, मुक्ति सैनिकों का राक्षसीकरण आरम्भ हो गया और 1960 के दशक के मध्य में अमेरिकी सरकार ने विशेषकर उसकी गुप्तचर संस्था सी.आई.एन.ए. ने वियतनाम को आतंकवादियों के रूप में पेश करने की कोशिश की। कुछ ऐसा ही औपनिवेशिक शासन काल में भारत की लड़ाई के लिए जिन आदर्शवादी नौजवानों ने हिंसा का रास्ता अपनाया उन्हें ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार आतंकवादी कहती थी। इस प्रकार क्रान्तिकारी आचरण की कोई तुलना अलकायदा जैसे संगठनों या लिट्टे के मुक्ति चीतों से नहीं की जा सकती है।[5]

संयुक्त राज्य अमेरिका पर अलकायदा के 9/11 वाले हमले के बाद अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद वाली बहस ज्यादा से गरम हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवाद का आधुनिक समकालीन चेहरा सबसे पहले मध्य पूर्व में देखने को मिला। 1968 में म्यूनिरव ओलम्पिक खेलों के दौरान फिलीस्तीनी मुक्ति मोर्चे की छत्रछाया में काम करने वाले एक आतंकवादी संगठन ने बहुत ही नृशस तरीके से इजराइली खिलाड़ियों की हत्या कर दी। पूरे अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय ने इसकी निन्दा की। फिलीस्तीनियों के सामने कोई दूसरा विकल्प नहीं बचा था। अनेक आतंकवादी तत्व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत हैं व उनकी गतिविधियाँ अनेक राज्यों में संचालित होती है।[6]

आज के दौर में अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद का चेहरा पूरी तरह से धर्मआधारित और बेहद जटिल है। आतंकवादी गुट एक एक देश को निशाना बनाते हैं और दूसरे में निर्भय शरण लेते हैं। साथ ही आर्थिक व सैनिक सहायता जुटाने के लिए व प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अन्य देशों में सक्रिय रहते हैं। इतना ही नहीं आतंकवादी अपनी मदद के लिए संगठित अपराधियों के साथ या किसी देश-विदेश की गुप्तचर सेवा के साथ गठबंधन कर लेते हैं।[7] लंका में कई दशकों तक चला तमिल आतंकवाद इसका महळ्वपूर्ण उदाहरण है। हालांकि तमिल आंदोलन अपने शुरुआती दौर में हिंसात्मक नहीं था। तमिलों का यह विरोध पूरे तमिल समाज के सम्मान की लड़ाई थी।

भारतीय संदर्भ में यदि आतंकवाद को देखा जाए तो भी हमें यह नजर आयेगा कि आज भारत में सक्रिय सभी आतंकवादी समूहों या संगठनों को संचालित करने में राष्ट्रों, राज्यों में बड़ी शक्तियों का हाथ था।

ऐतिहासिक तथ्यों से यह सर्वविदित है कि उत्तरी बंगाल में विशेष रुप से मिदनापुर का ठाकुरगंज उपसम्भाग, जलपाईगुड़ी, रंगपुर, मालदा क्षेत्र, मैमन सिंह में सितंबर 1946 से प्रारंभ हुए, सशस्त्र तिभागा आन्दोलन को कम्युनिष्टों का समर्थन प्राप्त हुआ, परंतु अपनी शुरुआत में यह आन्दोलन ब्रिटिश सरकार और उनके एजेन्टों के विरुद्ध था।[8] इस कारण इस आन्दोलन को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ने वैधता प्रदान की परंतु 1960 के दशक में चीन समर्थन से चारू मजूमदार के नेतृळ्व में प्रारम्भ हुआ नक्सलवादी आंदोलन तिभागा सशस्त्र आन्दोलन की श्रृंखला में ही प्रारम्भ हुआ, भटका हुआ साम्यवादी आन्दोलन था।

श्रीलंका के आतंकवादी संगठन लिबरेशन टाइगर्स ऑफ तमिल ईलम (लिट्टे) को केवल श्रीलंका व भारत के लिए नहीं बल्कि पूरे विश्व के लोग मानवता के शत्रु के रूप में देखते रहे हैं। इसने श्रीलंका के एक प्रधानमंत्री सहित अनेक वरिष्ठ राजनीतिज्ञों, जिनमें भारत के प्रधानमंत्री राजीव गाँधी की हत्या की है।

जम्मू कश्मीर में हिंसा व विनाश लीला का तांडव मचाने वाला आतंकवाद का सबसे खतरनाक और अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप इस्लामी इस्लामिक आतंकवाद है। वैसे तो आतंकवादी संगठनों का जाल पूरे देश में फैला है और विशेषरूप से वे जम्मू कश्मीर में आतंक का कहर बरसा रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के सरगना ओसामा बिन लादेन का कुख्यात आतंकवादी संगठन अलकायदा के अतिरिक्त लश्कर-ए-तोएबा, जैश-ए-मौहम्मद, हिजबुल मुजाहिद्दीन आदि संगठन इस राज्य में सक्रिय हैं, हालांकि अलकायदा की उपस्थिति भारत के बड़े पैमाने पर दर्ज नहीं की गई है फिर भी वह अपने पैर फैला रहा है। इसलिए केन्द्र सरकार ने ओसामा बिन लादेन के अलकायदा संगठन को आतंकवादी संगठन घोषित करते हुए प्रतिबन्धित कर दिया है।[9]

इस प्रकार वर्तमान आतंकवाद को विद्वानों, विचारधाराओं को राष्ट्रीयताओं ने अपने नजरिये से देखने की कोशिश की है और उसी के अनुसार आतंकवाद की व्याख्या की है। आज आतंकवाद को लेकर इसी कारण पूरी दुनिया में भ्रांति फैली हुई है और अच्छे और बुरे आतंकवाद की बात की जा रही है। एक जमाने में अमेरिका द्वारा पालित-पोषित इस्लामिक मुजाहिद्दीन आज पूरी दुनिया के लिए खतरा बन गए हैं और उन्होंने अलग-अलग नामों से अपना संगठन बनाकर पूरी दुनिया में आतंकवाद का एक ऐसा जाल बिछा दिया है जिससे निपटने में आज दुनिया अपने आप को असमर्थ महसूस कर रही है। किसी भी आतंकवादी आंदोलन का इतिहास देखा जाए तो हमें यही नजर आयेगा कि इन आन्दोलनों की जड़ों को खींचने में कहीं राष्ट्रों का योगदान रहा है। ये आतंकवादी आन्दोलन स्वत: स्फूर्त नहीं रहे हैं। राष्ट्रों ने आतंकवाद को अपनी विदेश नीति का प्रमुख हिस्सा बनाया है और अपने शत्रुओं से निपटने में आतंकवाद को एक सस्ते अस्त्र की तरह इस्तेमाल किया है।

सत्तर के दशक में कम्युनिस्ट सोवियत सेनाओं के अफगानिस्तान के सैन्य अभियान के विरोध में जब मुस्लिम जगत से आवाज उठनी शुरू हुई तो अमेरिका नीति निर्माताओं को यह आभास हो गया कि अपने चिर शत्रु साम्यवादी सोवियत संघ को पराजित करने हेतु एक अच्छा मौका मिल गया है। उसके पश्चात राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन की सरकार ने अपनी गुप्तचर संस्था सी.आई.ए. से मुस्लिम कट्टरपंथियों को सैन्य प्रशिक्षण दिलवाया तथा सोवियत सेनाओं के विरुद्ध उन्हें युद्ध में झोंकने की जो रणनीति अपनायी उसका परिणाम पूरा विश्व इस्लामिक जेहादी आतंकवाद के रूप में देख रहा है।

आज भी संयुक्त राज्य अमेरिका की नजर में विश्व में सक्रिय कई आतंकवादी गुट, आतंकवादी नहीं अपितु स्वतंत्रता संग्राम सेनानी हैं। इसी प्रकार यूरोपियन यूनियन और यूनाइटेड किंगडम कामत विभिन्न आतंकवादियों के प्रति भिन्न-भिन्न है। ब्रिटेन के पूर्व प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर की सरकार फिलीस्तीनियों द्वारा इजराइल पर किये गए आत्मघाती हमलों पर यह मत रखती थी क्योंकि ये फिलीस्तीनी युवा आत्मघाती हमलों में खुद को नष्ट कर दे रहे हैं।

वस्तुतः ब्रिटेन का यह मत पश्चिम एशिया के मुस्लिम राष्ट्रों से उसके व्यापार में तेल की राजनीति से जुड़े हुए होने के कारण था और ऐसा मत रखने वाले यह भूल जाते हैं कि जिस हिंसा का वह किसी भी कारण समर्थन कर रहे हैं वह हिंसा उन्हें ही नुकसान पहुँचायेगी, जबकि 2000 वर्ष पूर्व नष्ट हो चुके इजराइली राष्ट्र को स्थापित करने का श्रेय ब्रिटेन की नीति निर्माताओं को ही जाता है। मुस्लिमों को नियन्त्रित करने हेतु मुस्लिमों के पवित्र स्थलों के इर्द-गिर्द 2000 वर्ष पूर्व नष्ट हो चुके इजराइली राष्ट्र को पुनः जीवित करने की नीति 20 वीं सदी के पहले दशक के आरम्भ में ही ब्रिटेन व अमेरिका ने शुरू कर दी थी। मुस्लिम सामन्तों व शासकों को 1948 में इजराइली राष्ट्र के जन्म के बाद यह पता चला कि उनसे कितनी बड़ी गलती हो गई है। इस प्रकार उपरोक्त विश्लेषण से यह समझा जा सकता है कि इस्लामी आतंकवाद, यूरोपियन और अमेरिकी शक्तियों के मध्य चले युद्ध शीत युद्ध के नतीजे के रूप में सामने आयी।

दक्षिण एशिया में आतंकवाद को यदि बेहतर ढंग से समझने की कोशिश करें तो नजर आता है कि पूरे क्षेत्र में पाकिस्तान और अफगानिस्तान वैश्विक आतंकवाद के केन्द्र समझे जाते हैं। पिछले कई दशकों से वहाँ का समाज आतंकवादी घटनाओं से दुनिया का सर्वाधिक पीडिघ्त समाज है। फिर भी पाकिस्तान की सरकार ने आतंकवाद को लेकर जो नीति बनाई उसमें स्पष्टता का अभाव है और भारत के विरुद्ध लड़ने वाले आतंकवादियों को पाकिस्तानी सरकार इस्लामिक स्वतंत्रता सेनानी मानती है।

दरअसल भारत सरकार द्वारा 1971 में बांग्लादेश (पूर्व पूर्वी पाकिस्तान) के निर्माण में भारतीय सेनाओं ने जो भूमिका निभाई थी और स्वतंत्र राष्ट्र बांग्लादेश का उदय हुआ था, उस हार का बदला लेने और भारतीय समाज को पीडिघ्त करने के उद्देश्य से ही पाकिस्तानी नीति निर्माताओं मुख्य रूप से जनरल जिया उल हक ने सम्पूर्ण युद्ध की जगह सस्ते युद्ध के रूप में भारत में आतंकवाद प्रारम्भ करवाया।[10]

संदर्भ ग्रंथ

1. यादव, वीरेंद्र सिंहः नई स्हस्त्राब्दी का आतंकवादः संघर्ष के बदलते प्रतिमान, आमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2010, पृष्ठ 53-54
2. उपर्युक्त , पृष्ठ 55
3. उपर्युक्त, पृष्ठ 52
4. पंत, पुष्पेशः अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1992-93 पृष्ठ 537
5. उपर्युक्त, पृष्ठ 538
6. उपर्युक्त, पृष्ठ 539
7. उपर्युक्त, पृष्ठ 540-41
8. सरकार, सुमितः आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009 पृष्ठ 490
9. यादव, वीरेंद्र सिंहःउपयुक्त,पृष्ठ 184
10. उपर्युक्त, पृष्ठ 185
11. सिंह, अशोकः राष्ट्रीय सुरक्षा प्रकाश बुक डिपो, बरेली, 1996-97, पृष्ठ 362
12. उपर्युक्त, पृष्ठ 366-367
13. रत्तू, कृष्ण कुमारः दक्षिण एशिया आतंक का साया और सार्क घोषणाएँ, बुक एन्क्लेव, जयपुर 2005, पृष्ठ 86
14. कहीं भी सिर उठा सकता है आतंकवाद (संपादक) अमर उजाला, कानपुर, 22 सितंबर 2001, पृष्ठ 16
15. फड़िया,बी.एल.ः अंतरराष्ट्रीय राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2001, पृष्ठ 342
16. फड़िया,बी.एल.ः अंतरराष्ट्रीय राजनीति (लेख), इंडिया टुडे, 15 अगस्त 1987, पृष्ठ 83

भारतीय लोकतंत्र में राजनीतिक दलों की भूमिका के बदलते आयाम: एक अध्ययन

डॉ० यतेन्द्र सिंह

एसोसियेट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, श्री चित्रगुप्त पी. जी. कॉलेज, मैनपुरी, उ०प्र०

सारांश

एक लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था में एक केंद्रीय अवधारणा के रूप में राजनीतिक दलों का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। राजनीतिक दल सत्ता के वितरण और एक सामाजिक व्यवस्था में सत्ता के इच्छुक व्यक्तियों और समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे परस्पर विरोधी हितों के सारणीकरण, अनुशासन और मेल-मिलाप के मुख्य साधन रहे हैं।

संसदीय लोकतंत्र की विशेषता सत्तारूढ़ दल और विपक्षी दल की पारस्परिक जवाबदेही की प्रणाली और एक बहुत ही महत्वपूर्ण विचार-विमर्श की प्रक्रिया में प्रकट होती है।

संसदीय विपक्ष लोकतंत्र के वास्तविक सार को संरक्षित करने और लोगों की आकांक्षाओं और अपेक्षाओं को प्रकट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

लेकिन, वर्तमान में भारत का संसदीय विपक्ष न केवल खंडित है, बल्कि अव्यवस्था या अव्यवस्था का शिकार भी होता दिख रहा है। ऐसा लगता है कि हमारे पास शायद ही कोई विपक्षी दल हो, जिसके पास अपने संस्थागत कामकाज के लिए या समग्र रूप से श्विपक्षश के प्रतिनिधित्व के लिए कोई दृष्टि या रणनीति हो।

दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में, भारत के संसदीय विपक्ष को पुनर्जीवित करना और सशक्त बनाना अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है, विशेष रूप से लोकतंत्र का मूल्यांकन करने वाले विभिन्न सूचकांकों में इसकी वैश्विक रैंकिंग में गिरावट जारी है।

मूलशब्द

भारतीय लोकतंत्र, राजनीतिक दल, भूमिका, जनता, सरकार

परिचय

संसदीय लोकतंत्र के लिए विभिन्न राजनीतिक दल आवश्यक हैं। राजनीतिक दल नागरिकों के संगठित समूह हैं जो एक समान विचारधारा साझा करते हैं। वे अपनी नीतियों और कार्यक्रमों के लिए प्रतिबद्ध हैं। राजनीतिक दल एक शक्ति के रूप में कार्य करते हैं और हमेशा सत्ता हासिल करने और इसे बनाए रखने की कोशिश करते हैं। राजनीतिक दलों की कुछ सामान्य विशेषताएं होती हैं।

हमारा देश भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। जनता चुनाव के माध्यम से अपना प्रतिनिधि चुनती है, उपलब्ध विकल्पों में से किसी एक को चुनने के लिए स्वतंत्र। इसमें जनता की इच्छा के अनुसार जो राजनीतिक दल (या गठबंधन) बहुमत में आता है, यानी कुल निर्वाचित सीटों का दो-तिहाई, वह प्रतिनिधि के रूप में 5 साल (सामान्य परिस्थितियों में) के लिए सत्ता में होना चाहिए। लोगों की और अपने दायित्वों का निर्वहन। है। चुनी हुई सरकार के अलावा, संसद में एक या एक से अधिक दल ऐसे भी होते हैं जिन्हें चुनाव में उस वर्ग का समर्थन/वोट मिला होता है जो शासक वर्ग को नहीं मिल पाता है। निश्चित रूप से उस दल या दल के सदस्यों की संख्या सदन में अल्पमत में है। उन दलों में, चुनाव आयोग द्वारा निर्धारित मानदंडों को पूरा करने वाली पार्टी को सदन में श्मुख्य विपक्षी दलश और उसके द्वारा चुने गए नेता को श्विपक्ष के नेताश के रूप में मान्यता दी जाती है।

राजनीतिक दलों की भूमिका

राजनीतिक दलों की भूमिका को निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

राजनीतिक दल लोकतंत्र के पहिये हैं और लोकतांत्रिक व्यवस्था के तहत लोगों की भावनाओं को निर्धारित करने और व्यक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों की भूमिका इस प्रकार है:

1. फॉर्म पब्लिक ओपिनियन

पार्टियों द्वारा समाज के विभिन्न और परस्पर विरोधी विचारों का आयोजन किया जाता है। वे तितर-बितर और अस्पष्ट और संगठित होते हैं और जनमत के निर्माण में योगदान करते हैं। वे सामाजिक जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं में से प्रमुख समस्याओं को जनता के सामने प्रस्तुत करते हैं।

2. राजनीतिक शिक्षा प्रदान करता है

दल लोगों को राजनीतिक शिक्षा और प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। लोवेल के अनुसार, ष्पार्टियाँ विचारों की दलाल होती हैं। विभिन्न राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं के संबंध में पक्ष में विचार प्रस्तुत किए जाते हैं और प्रत्येक दल के खिलाफ, अपने स्वयं के कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं, चुनाव में जनसभाएं आयोजित की जाती हैं। राजनीतिक शिक्षा और चेतना लोगों में फैली हुई है। जनता हमेशा सतर्क और जागरूक रहती है।

3. चुनाव में सहायता प्रदान करता है

पार्टियों की वजह से वोटरों को वोट डालने में काफी सहूलियत होती है. चुनाव में पार्टियों ने अपने उम्मीदवार उतारे हैं। उनके पक्ष में प्रचार करें, वित्तीय सहायता प्रदान करें। सत्ता पर सरकार का अधिकार होता है। दरअसल, लोकतांत्रिक राज्यों में राजनीतिक दलों के बिना चुनाव लड़ना और जीतना एक मुश्किल काम है।

4. सरकार के संचालन में सहायता प्रदान करता है

चुनाव में बहुमत प्राप्त कर राजनीतिक दल सरकार बनाते हैं। संसदीय और राष्ट्रपति दोनों प्रणालियों में, सरकार बनती है और शासन राजनीतिक दलों के आधार पर चलाया जाता है।

5. सरकार को नियंत्रित करता है

विपक्षी दलों का उद्देश्य सरकारी नीतियों की स्वस्थ आलोचना करके जनता की राय अपने पक्ष में करना है। विपक्ष की गतिविधियों से जनता को पता चलता है कि शासन-नीति का ढांचा क्या है? जब जनता शासन की वैकल्पिक नीति का समर्थन करने लगती है, तब विपक्षी दल सरकार की बागडोर अपने हाथ में लेने में सक्षम हो जाता है।

6. जनता और सरकार के बीच सेतु का काम करता है

सत्ता पक्ष और विपक्षी दलों के बीच संपर्क जनता से निरंतर बना रहता है, विपक्षी दल जनता की कठिनाइयों और मांगों को सरकार के सामने रखते हैं। एक राजनीतिक दल का मुख्य कार्य संचार और विचारों के आदान-प्रदान के तरीके को खुला रखना है। इस तरह सरकार लोक कल्याण के लिए और जनमत के अनुसार चलती है।

7. सरकार के विभिन्न अंगों के बीच समन्वय बनाए रखता है

राजनीतिक दल सरकार के विभिन्न अंगों में तालमेल बिठाते हैं। सरकार की संसदीय प्रणाली में, पार्टी अनुशासन और कार्यक्रम के परिणामस्वरूप कार्यपालिका और विधायिका का एक अभिन्न संबंध होता है। दलीय व्यवस्था के कारण ही संवैधानिक कठोरता वांछित लचीलेपन में बदल जाती है।

राजनीतिक दलों का महत्व

राजनीतिक दल आधुनिक समय में जीवन की आवश्यकता बन गया है। अप्रत्यक्ष लोकतंत्र में जहां केवल जनता के प्रतिनिधि ही शासन की बागडोर संभालते हैं, वहां राजनीतिक दल के बिना कोई काम नहीं हो सकता। निरंकुश तानाशाही में राजनीतिक दल का महत्व और भी बढ़ जाता है। साम्यवादी राज्यों में जहां पार्टी और शासन के बीच कोई अंतर नहीं है, राजनीतिक दल प्रमुख शक्ति हैं। लोकतंत्र की स्थिति कुछ भी हो, राजनीतिक दल जीवन रक्त के समान होते हैं। राजनीतिक दलों को सरकार का चौथा अंग कहा जा सकता है।

हावूर के शब्दों में, ''राजनीतिक दल लोकतांत्रिक मशीन को चलाने में ईंधन की तरह हैं।''

मुनरो के अनुसार, "लोकतांत्रिक सरकार दलीय शासन का दूसरा रूप है। विश्व इतिहास में कभी भी एक राजनीतिक दल के अस्तित्व के बिना एक स्वतंत्र सरकार नहीं रही है।''

ब्राइस का मत है, ''राजनीतिक दल आवश्यक है। कोई भी बड़ा देश इसके बिना नहीं रह सकता। किसी ने यह नहीं दिखाया कि इसके बिना लोकतंत्र कैसे चल सकता है।''

आज के दौर में राजनीतिक दल का हर देश में बहुत महत्व है, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, राजशाही हो या तानाशाही। हर राज्य में सरकार किसी न किसी दल की होती है।

राजनीतिक दलों के महत्व या उपयोगिता को निम्न प्रकार से समझाया जा सकता है-

1. लोकतांत्रिक सरकार के कामकाज के लिए राजनीतिक दल अपरिहार्य है।

   एडमंड बर्क के अनुसार, ''दलीय व्यवस्था, चाहे वह विशुद्ध रूप से अच्छे के लिए हो या बुराई के लिए, एक लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के लिए आवश्यक है।''

   राजनीतिक दल राष्ट्रीय हित को व्यवस्थित और तर्कसंगत नीति के रूप में प्रस्तुत करते हैं, अपने पक्ष में जनमत बनाते हैं, लोकतांत्रिक चुनावी प्रणाली को मूर्त रूप देते हैं और शासन के संचालन और लोकतांत्रिक स्वतंत्रता, अधिकारों के साथ-साथ इसकी निरंकुशता को नियंत्रित करते हैं। और मूल्यों की रक्षा करें।

2. मैकाइवर का कहना है कि, ''पार्टी संगठन के बिना, किसी भी सिद्धांत का कोई व्यवस्थित और एकीकृत प्रकाशन नहीं हो सकता है, किसी नीति का कोई व्यवस्थित विकास नहीं हो सकता है, संसदीय चुनावों की कोई वैज्ञानिक प्रणाली नहीं हो सकती है और ऐसी मान्यता प्राप्त प्रणाली नहीं है। संस्थान।'' जिससे कोई भी दल शांति प्राप्त कर उसे स्थिर रखता है।''

3. सरकारी प्रणाली चाहे संसदीय हो या राष्ट्रपति, राजनीतिक दलों की अनुपस्थिति में सरकार का कुशल संचालन नहीं हो सकता है। विपक्षी दलों के रूप में भी दलों का बहुत महत्व है क्योंकि विपक्षी दल सरकार की नीतियों और कार्यों को नियंत्रित करता है और उसे निरंकुश और निरंकुश बनने से रोकता है। इस तरह, प्रतिनिधि सरकार केवल राजनीतिक दलों के माध्यम से ही सफलता के साथ चल सकती है।
4. केवल राजनीतिक दल ही स्वस्थ और जागरूक राजनीतिक वातावरण का निर्माण कर सकते हैं। राजनीतिक दल जनमत के निर्माण में मदद करते हैं। लावेल का कहना है कि ''राजनीतिक दल किसी प्रश्न पर जनमत तैयार करने के लिए कुछ सिद्धांत या प्रश्न प्रस्तुत करते हैं''।
5. लोकतांत्रिक व्यवस्था जनमत पर आधारित होती है और जनमत का निर्माण मुख्यत: राजनीतिक दलों द्वारा किया जाता है। पार्टियों के अपने निश्चित सिद्धांत होते हैं। इन्हीं सिद्धांतों के आधार पर मतदाता अपने उम्मीदवारों को चुनाव में पराजित या विजयी बनाते हैं।

   राजनीतिक दल न केवल बहुमत प्राप्त करके सरकार बनाते हैं, बल्कि विपक्ष की भूमिका निभाकर राजनीतिक दल सरकार के अनुचित और मनमाने कार्यों को भी रोकते हैं।
6. लॉर्ड ब्रायस कहते हैं कि, ''राजनीतिक दल आवश्यक हैं और कोई भी महान स्वतंत्र देश उनके बिना नहीं रह सकता है। किसी ने यह नहीं बताया कि उनके बिना लोकतंत्र कैसे चल सकता है। यह मतदाताओं के एक समूह की अराजकता में है।'' पार्टियां अगर कुछ बुराइयां पैदा करती हैं, तो वे दूसरी बुराइयों को भी दूर कर देती हैं। इस प्रकार राजनीतिक दल आधुनिक राजनीति और शासन प्रणाली का एक अनिवार्य हिस्सा हैं।

राष्ट्रीय पार्टी और क्षेत्रीय पार्टी

भारत में दो प्रकार की पार्टियां हैं - राष्ट्रीय दल और क्षेत्रीय दल। राष्ट्रीय दल वे होते हैं जिनका प्रभाव पूरे देश में होता है। यह आवश्यक नहीं है कि सभी राज्यों में राष्ट्रीय दल समान रूप से शक्तिशाली हों। चुनाव आयोग एक निश्चित मानक के आधार पर एक पार्टी को राष्ट्रीय पार्टी के रूप में मान्यता देता है। एक राजनीतिक दल जिसने पिछले आम चुनावों में कम से कम चार राज्यों में डाले गए कुल वैध मतों के 6 प्रतिशत से अधिक हासिल किया है, उसे राष्ट्रीय पार्टी का दर्जा दिया जाता है।

राष्ट्रीय दलों की संख्या बदल रही है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी वर्ष 2006 में; मार्क्सवादी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, बहुजन समाज पार्टी और राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी राष्ट्रीय दल थे।

इन राष्ट्रीय दलों के अलावा, भारत में कुछ अन्य दल भी हैं जिनका राष्ट्रीय स्तर पर कोई प्रभाव नहीं है। उनकी गतिविधियाँ और प्रभाव विशेष राज्यों या क्षेत्रों तक सीमित हैं। कभी-कभी इन दलों का गठन किसी विशेष क्षेत्र की मांगों को उठाने के लिए किया जाता है। यह पार्टी न तो कमजोर है और न ही अल्पकालिक। कई बार ये अपने क्षेत्र में काफी ताकतवर साबित होते हैं। इन्हें क्षेत्रीय दल कहा जाता है। तमिलनाडु में एआई ए.डी.एम.के. और द्रमुक, आंध्र प्रदेश में तेलुगु देशम, पंजाब में अकाली दल, जम्मू और कश्मीर में नेशनल कॉन्फ्रेंस, झारखंड में झारखंड मुक्ति मोर्चा, असम में असम गण परिषद, महाराष्ट्र में राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी और शिवसेना प्रमुख क्षेत्रीय दल हैं।

दल प्रणाली

- एक दलीय शासन - जब सरकार बनाने और चलाने के लिए केवल एक दल को अनुमति दी जाती है, तो इसे एक दलीय व्यवस्था कहा जाता है। चीन में केवल कम्युनिस्ट पार्टी को शासन चलाने की अनुमति है।
- दो दलीय शासन प्रणाली - वह राजनीतिक व्यवस्था जिसमें बहुमत पाने और सरकार चलाने के लिए केवल दो दल प्रबल दावेदार हों, अमेरिका और ब्रिटेन में समान दो दलीय व्यवस्थाएं हैं।
- बहुदलीय प्रणाली - जब कई दल सत्ता के लिए प्रतिस्पर्धा में हों और दो से अधिक दलों के पास अपने दम पर या दूसरों के साथ गठबंधन में सत्ता में आने का अच्छा मौका हो, तो इसे बहुदलीय प्रणाली कहा जाता है। भारत में भी ऐसी ही बहुदलीय व्यवस्था है, इस व्यवस्था में कई दल गठबंधन बनाकर सरकार बना सकते हैं। बहुदलीय व्यवस्था में जब कई दल चुनाव लड़ने और सत्ता में आने के लिए हाथ मिलाते हैं तो इसे गठबंधन या मोर्चा कहा जाता है। 2004 के संसदीय चुनावों में भारत में तीन प्रमुख गठबंधन थे।
    1. राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन भाजपा और सहयोगी दलों
    2. संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन कांग्रेस और सहयोगी
    3. वाम मोर्चा, माकपा, भाकपा जैसी कम्युनिस्ट पार्टियां

राजनीतिक दलों के लिए चुनौतियां

1. पार्टी के भीतर आंतरिक लोकतंत्र का अभाव
2. वंशवाद की चुनौती
3. धन और आपराधिक तत्वों की बढ़ती घुसपैठ
4. पार्टियों के बीच चुनाव की स्थिति होती है। सार्थक चुनाव का अर्थ है कि विभिन्न दलों की नीतियों और कार्यक्रमों में महत्वपूर्ण अंतर होना चाहिए। हाल के वर्षों में, पार्टियों के बीच वैचारिक अंतर कम हुआ है और यह प्रवृत्ति दुनिया भर में दिखाई दे रही है।

राजनीतिक दलों और नेताओं में सुधार के प्रयास

दलबदल कानून

भारत में 52वें संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से सांसदों और विधायकों की जीत के बाद एक राजनीतिक दल से दूसरे दल में दलबदल को रोकने का प्रावधान किया गया है।

किसी दल विशेष से निर्वाचित प्रतिनिधि का दल-बदल करके उस दल को दूसरी दल में छोड़ देना दलबदल कहलाता है। इस कानून से दलबदल में कमी आई है।

लेकिन इससे पार्टी में विरोध की आवाज उठाना और भी मुश्किल हो जाता है. पार्टी नेतृत्व जो भी फैसला करता है, सांसद और विधायक को उसका पालन करना होता है।

शपथ पत्र देना अनिवार्य

पैसे और अपराधियों के प्रभाव को कम करने के लिए, सुप्रीम कोर्ट ने चुनाव लड़ने वाले प्रत्येक उम्मीदवार के लिए एक हलफनामे के माध्यम से अपनी संपत्ति और उसके खिलाफ आपराधिक मामलों का विवरण देना अनिवार्य कर दिया है।

संगठनात्मक चुनाव कराना और आयकर रिटर्न दाखिल करना अनिवार्य है

राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए, चुनाव आयोग ने सभी दलों के लिए संगठनात्मक चुनाव कराना और एक आदेश के माध्यम से आयकर रिटर्न दाखिल करना अनिवार्य कर दिया है।

लोकतंत्र में विपक्ष की भूमिका

विपक्ष दिन-प्रतिदिन के आधार पर, मीडिया और जनता में, संसद के अंदर और बाहर और उसकी समितियों पर सरकार के कामकाज का जवाब देता है, सवाल करता है और उसकी निगरानी करता है। विपक्ष की भूमिका यह सुनिश्चित करना है कि सरकार संवैधानिक सुरक्षा बनाए रखे। सरकार हर कदम एक नीतिगत उपाय के रूप में उठाती है और एक कानून निर्माता के रूप में, विपक्ष अनिवार्य रूप से इसे आलोचनात्मक दृष्टिकोण से देखता है।

इसके अलावा, विपक्ष संसद में सरकार के कामकाज पर नजर रखने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि विभिन्न संसदीय उपकरणों का उपयोग करके अपने निर्वाचन क्षेत्रों की विशिष्ट आवश्यकताओं, संशोधनों और आश्वासनों के संबंध में मांग और अपील भी करता है। है।

निष्कर्ष

भारत में बहुदलीय व्यवस्था है। भारतीय राजनीति में कई राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दलों का वर्चस्व है। ऐसे देश भी हैं जहाँ एक दलीय व्यवस्था या द्विदलीय व्यवस्था है।

राजनीतिक दल सरकार बनाते हैं चाहे वह सरकार बहुमत की हो या अल्पसंख्यक की कोई पार्टी सरकार का गठन तभी होता है जब राजनीतिक दल को लोगों का समर्थन मिलता है, यह जन समर्थन जनमत के रूप में कई माध्यमों से प्राप्त होता है, जो कि बहुमत होता है।

यदि सरकार बहुमत के स्थान पर अल्पमत है तो यह अधिक समय तक नहीं टिकेगी और अपने कार्यकाल (सीमा) से पहले समाप्त होने के लिए मजबूर हो जाएगी। जिससे यह स्पष्ट होता है कि जनता के बीच संपर्क बनाने से ही सरकार बनती है और जनता और सरकार के बीच सामंजस्य स्थापित होता है।

यह कार्य राजनीतिक दलों द्वारा ही किया जाता है, जिसके कारण राजनीतिक दल को सरकार और जनता के बीच एक कड़ी के रूप में देखा जाता है।

जहां हमारी राजनीति 'फर्स्ट पास्ट द पोस्ट' प्रणाली का पालन करती है, वहां विपक्ष की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत के लिए एक सच्चे लोकतंत्र के रूप में कार्य करने के लिए, एक संसदीय विपक्ष-राष्ट्र की अंतरात्मा को बनाए रखना महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ

1. डॉ. अशोक कुमार, UGC नेट/जे. आर.एफ. राजनीति विज्ञान, तृतीय प्रश्न पत्र उपकार प्रकाशन आगरा।
2. गेना सी.बी., तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थायें विकास पब्लिसिंग हाउस प्रा.लि.।
3. सिंहल सुरेश चन्द्र, तुलनात्मक राजनीतिक, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा।
4. विप्लव, नरेश 2012: लोकतत्र के प्रमुख स्तम्भ, राहुल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ
5. सेंगर शैलेन्द्र 2015: भारतीय प्रशासन बदलते आयाम, कविता बुकसैंटर, दिल्ली
6. सक्सेना, हरिशरण 2009: संसदीय प्रजातंत्र में विपक्ष की भूमिका, पल्लवी पब्लिकेशन्स, हरियाणा
7. सुध, खुशबू 1999: धर्म राजनीति एवं मूल्यहीनता, पोइंटर पब्लिशर्स, जयपुर
8. पाण्डेय, अरूण 2000: हमारा लोकतंत्र और जानने का अधिकार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
9. दुबे, एम.पी. : धर्मनिरपेक्षवाद और भारतीय प्रजातंत्र, नेशनल पब्लिकेशन शिन हाउस, नई दिल्ली
10. सिंह, महेश्वर 2000: भारतीय लोकतंत्र समस्याएं व समाधान, साहित्यगार, जयपुर
11. जैन, कमलेश 2001: न्यायपालिका कसौटी पर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
12. कश्यप, सुभाष 2010: हमारी संसद, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली
13. टंडन, बिशन 2009: जनतंत्र और प्रशासन, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली

भारत मे महिलाओं की बदलती स्थिती और भारतीय समाज

प्रा. डॉ० एल. जी. पाटील

सहयोगी प्राध्यापक समाजशास्त्र विभाग प्रमुख, सी.गो पाटील काळ, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय साक्री, महाराष्ट्र

प्रस्तावना:

भारत में महिलाओं की बदलती स्थिति भारतीय समाज एक पितृसत्तात्मक समाज है। भारत की कुल जनसंख्या में लगभग आधी महिलाएँ हैं। लेकिन समाज का इतना बड़ा वर्ग हमेशा उपेक्षित, वंचित और शोषित रहा है। वास्तव में भारतीय समाज में महिलाओं को पुरुषों की तुलना में नीचा दर्जा और दर्जा दिया जाता है। वास्तव में नारी को संस्कृति की रक्षक और पालनकर्ता माना जाता है। संस्कृति का उच्चतम स्तर नारी है। भारतीय संस्कृति को अक्षुण्ण रखने का कार्य भारतीय महिलाओं ने किया है। एक पुरुष को पुरुष बनाना, उसे प्यार, स्नेह, प्यार और स्नेह सिखाना और उसे एक पारिवारिक पुरुष बनाना महिला का काम है। उसके स्थान पर स्त्रीत्व ने यही किया है। फिर भी भारतीय समाज में महिलाओं का स्थान गौण या निम्न माना जाता है। समाज में नारी को हमेशा से 'अबला' के रूप में देखा गया है। किसी विशेष अश्वेत समाज में व्यक्ति का जो स्थान होता है उसे हैसियत कहते हैं। मुख्य रूप से स्थिति जन्म या लिंग के आधार पर प्राप्त की जाती है। भारतीय समाज में, पुरुषों और महिलाओं के साथ भेदभाव किया जाता है और पुरुषों और महिलाओं को असमान दर्जा दिया जाता है क्योंकि वे जन्म के समय केवल पुरुष या महिला लिंग के साथ पैदा होते हैं। महिलाओं को पुरुषों की तुलना में अधिक नाजुक, कोमल, भावुक माना जाता है। जैविक नियमों के अनुसार उन्हें कुछ नैसर्गिक दायित्वों का निर्वाह करना होता है। यही कारण है कि भारतीय समाज में महिलाओं को हमेशा नीची दृष्टि से देखा जाता है और हाशिए पर रखा जाता है।

जैसे-जैसे समय बदलता है, वैसे-वैसे संस्कृति भी बदलती है। समाज में संस्कृति के आदर्श, मूल्य बदल रहे हैं। भारतीय समाज कोई अपवाद नहीं है। भारत में सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ पुरुषों और महिलाओं के आदर्श और कार्य भी बदल गए। उनका रिश्ता भी बदल गया। वास्तव में, भारतीय महिलाओं का अतीत में सम्मान और सम्मान किया जाता था। यद्यपि पुरुषों के काम और महिलाओं के काम के बीच एक प्राकृतिक अंतर है,दोनोमे बद है और उसे अर्धांगिनी कहलाती है। या उसके मातृत्व को सम्मानजनक माना जाता था। तो उन्हें वास्तव में लक्ष्मी, सरस्वती या दुर्गा के रूप में माना जाता था। यह पाया गया है कि कई हिंदू देवी-देवता महिलाएं हैं। विशेष रूप से भारत को 'भारतमाता' भी कहा जाता है। यह भी देखा गया है कि भारतीय समाज में नारी का स्थान बहुत गौरव और आदर्श का है।

लेकिन आज बदलते सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक रुझानों के साथ नारीत्व बदल रहा है। उसकी सामाजिक स्थिति और स्थिति बदल रही है। कई समाजशास्त्रियों ने महिलाओं की बदलती स्थिति का विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन किया है। इसमें चंद्रकला हेट, ए.एस. आल्टेकर, रमन्नाम्मा, नीरा देसाई, राम आहूजा, डॉ. एम। एन। श्रीनिवास। महिलाओं की स्थिति का अध्ययन करते समय ऐसा लगता है कि ये विद्वान मुख्य रूप से दो दृष्टिकोणों से सोचते हैं। एक महिलाओं के लिए विशेष कानूनों और विवाह, विरासत, रोजगार आदि में महिलाओं को दिए गए अधिकारों, अधिकारों और सुरक्षा पर जोर है। दूसरी ओर महिलाओं की स्थिति, प्रचलित सामाजिक व्यवस्था, समाज के मूल्यों, असमानता, महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण: पितृसत्ता, उनके संदर्भ में प्रतिकूल मानदंड, रीति-रिवाजों और परंपराओं पर विचार करते समय, महिलाओं के साथ किया गया अन्याय, महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण और भारतीय समाज में महिलाओं का स्थान समग्र रूप से इस बात पर जोर दिया जाता है कि यह कितना गौण है। भारतीय समाज पर विदेशियों द्वारा बार-बार आक्रमण और शासन किया गया है। परिणामस्वरूप, महिलाओं की स्थिति और भूमिका लगातार बदल रही है। वर्तमान में महिलाओं की शिक्षा के बढ़ते प्रसार, महिलाओं के लिए आरक्षित सीटें, विभिन्न नौकरियों और व्यवसायों में अवसरों के साथ महिलाओं के लिए विभिन्न कानून बनाए गए हैं, लेकिन समाज के हर हिस्से में उन्हें एक श्महिलाश के रूप में माना जाता है। कि वह केवल 'स्त्री' है। आज, लैंगिक समानता लाने के प्रयासों के बावजूद, भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति पहले जैसी नहीं है। आदिवासी ग्रामीण समाज में आज भी महिलाओं के साथ हीन भावना और अवमानना का व्यवहार किया जाता है। भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति में आए परिवर्तनों की संक्षिप्त समीक्षा की जा सकती है। महिलाओं की स्थिति अलग-अलग समय पर अलग-अलग रूपों में दिखाई देती है। भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति का प्रतिनिधित्व करने वाले विभिन्न कालखंडों को निम्नानुसार वर्णित किया जा सकता है। 240 भारतीय सामाजिक संरचना और परिवर्तन

2) प्राचीन काल में महिलाओं की स्थिति:

मुख्य रूप से ऋग्वेद, ब्राह्मण ग्रंथ और उपनिषद, धर्मसूत्र, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति आदि में दिए गए भाष्य से प्राचीन काल में महिलाओं के बारे में अलग-अलग और विरोधाभासी धाराएं अलग-अलग रूप में प्रस्तुत की गई हैं। भारतीय समाज में और स्मृतिग्रन्थ में शास्त्र। इसलिए प्राचीन काल में महिलाओं की स्थिति के बारे में दृढ़ता से सोचना मुश्किल था।प्राचीन काल में महिलाओं की स्थिति के संबंध में दो अलग-अलग विचारधाराएं थीं।

उनमें से एक यह उल्लेख करने के संदर्भ में विभिन्न शास्त्रों के छंदों या छंदों का हवाला देता है कि वे पुरुषों के बराबर हैं। इस संबंध में कहा जाता है कि यदि कोई महिला सड़क पर चल रही है तो सभी को उसका इंतजार करना चाहिए, जिसका अर्थ है कि उस समय महिलाओं के प्रति आदर्शवाद की भावना थी। मनुस्मृति में महिलाओं के बारे में बताते हुए मनु भी कहते हैं, श्अगर महिला वर्ग खुश है, तो परिवार समृद्ध होता है। वहीं दूसरी ओर दुखी होने पर परिवार बर्बाद हो जाता है। जहां नारी का सम्मान होता है वहां भगवान की कृपा होती है। लेकिन इसके विपरीत यदि स्त्री संतुष्ट नहीं है, यदि उनका सम्मान नहीं किया जाता है, तो किसी भी पवित्र या धार्मिक संस्कार का फल प्राप्त नहीं होता है। याज्ञवल्क्य के अनुसार, पृथ्वी पर सभी गुणों की मूर्ति स्त्री है और सोम ने उस पर पवित्रता की वर्षा की है, गंधवन ने उसे मीठा किया है और अनी ने उसकी चमक की वर्षा की है। यह इन सभी गुणों को आकर्षक या लुभावना बनाता है। प्राचीन वद्या में स्त्रियों के स्वभाव, उदारता, सौन्दर्य और कूटनीति के अनेक प्रसंग सामने आए हैं, जिनसे प्राचीन काल में स्त्रियों को पुरुषों के समान दर्जा दिया जाता था। इस बात के भी प्रमाण हैं कि वह कितनी अच्छी और आदर्श थीं।

ए) वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति:

वैदिक काल को महिलाओं की स्थिति के मामले में स्वर्ण युग माना जाता है। इस काल में स्त्रियों को पुरुषों के समान दर्जा दिया गया। महिलाओं को आत्म-विकास, शिक्षा, विवाह, धन के मामले में पुरुषों के समान दर्जा प्राप्त था। उन दिनों पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था के बावजूद महिलाओं के प्रति महत्वपूर्ण स्थान था। महिलाओं को विभिन्न क्षेत्रों में स्वतंत्रता है। महिलाओं को स्वतंत्रता है, खासकर जब शिक्षा और विवाह की बात आती है। विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति थी। महिलाओं के लिए विवाह एक आवश्यक और पवित्र संस्कार था। एक गृहिणी के रूप में, परिवार में उनका सम्मान किया जाता था। एक कुंवारी के रूप में, वह अपने पिता के अधीन थी, और अपने पिता की मृत्यु के बाद, वह अपने भाइयों के अधीन थी। उसकी शादी सही दूल्हे से हो रही थी। शादी के मौके पर दूल्हे को उचित दहेज देकर दुल्हन की शादी कराई जा रही थी। पत्नी के बिना कोई भी धार्मिक संस्कार नहीं किया जाता था। कभी-कभी लड़कियां अविवाहित रह जाती थीं और उसे श्पुत्रिकाश कहकर बुलाती थीं। बेटियों के पास बेटों के सारे अधिकार थे। साथ ही महिलाओं को वेदों के अध्ययन का अधिकार दिया गया। अपला और दोष जैसी महिलाओं ने वैदिक सूक्तों की रचना की है। बहुविवाह और विधवापन की अनुमति थी।

ब) वैदिक काल के बाद:

यह इ. स पूर्व 600 ई.पू. से ई.पू 300 ईसा पूर्व तक की अवधि को शामिल किया गया था। इस काल में महिलाओं की स्थिति में गिरावट आई थी। इस काल में बाल विवाह की प्रथा प्रचलित थी। महिलाओं के सभी प्रकार के अधिकार छीन लिए गए। विशेष रूप से शिक्षा और धार्मिक संस्कारों में भागीदारी पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। उनके सामाजिक अधिकारों को कम कर दिया गया और शिक्षा के स्तर में गिरावट के कारण वे शिक्षा से वंचित हो गए। ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में पुत्र के जन्म को विशेष महत्व प्राप्त हुआ है। इसलिए, लड़की को हीन माना जाता था। साथ ही अविवाहित महिलाओं की स्थिति भी काफी खराब हो गई। महिलाओं को वेदों से वंचित कर दिया गया था। वास्तव में, उन्हें शूद्र माना जाने लगा। विधवा विवाह नियंत्रण में आ गया और बहुविवाह की प्रथा शुरू हो गई। शुद्धता को महिलाओं का कर्तव्य माना जाने लगा। कुल मिलाकर महिलाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई।

क) स्मृतिकाल:

यह काल स्मृति, रामायण, महाभारत का काल है। इस काल में नारी की स्थिति और भी दयनीय हो गई। महिलाओं को पुरुषों के अधीन रहना चाहिए और घर के कामकाज और पत्नीपन का ध्यान रखना चाहिए। वह उसका कर्तव्य था। बचपन में पिता को अपना रक्षक माना जाता था, युवावस्था में पति और बुढ़ापे में बच्चे उसके रक्षक बन जाते थे। बाल विवाह की प्रथा का जन्म हुआ। महिलाओं की शिक्षा पर प्रतिबंध, संपत्ति के अधिकारों से इनकार। महिलाएं मानसिक रूप से पुरुषों से कमतर होती हैं। वह धारणा थी। पति की सेवा उसका कर्तव्य है एसिसोच समाज कि बनी ठी ।

प्राचीन काल में स्त्रियों को पुरुषों के समान दर्जा प्राप्त नहीं था। दूसरी ओर, उसकी पाबंदियों के कारण उसकी हालत दयनीय थी। जाहिर है, महिलाओं की स्थिति पुरुषों के बराबर नहीं थी, लेकिन इसे पुरुषों की तुलना में गौण या हीन माना जाता था। महिलाएं केवल पुत्रों को जन्म देने के लिए होती हैं इसलिए वे उपभोग्य बन जाती हैं। ऐसा याज्ञवल्क्य स्मृति ने कहा है। केवल जन्म से ही नहीं बल्कि जन्म से पहले भी भारतीय समाज में महिलाओं को नीची दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति है। ''अष्टपुत्र सौभाग्यवती'' की कृपा से ही पुत्र प्राप्ति की अभिलाषा प्रतीत होती है। स्त्रियों की आर्थिक स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं थी। और असुर विवाह के रूप में लड़कियों को बेचा जाता था, इसलिए उन्हें संपत्ति का कोई अधिकार नहीं था। इस प्रकार वहाँ हैं वैदिक और उत्तर-वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति के संबंध में दो परस्पर विरोधी मत हैं।

2) मध्यकालीन भारत में महिलाओं की स्थिती:

मध्यकालअवधि काकालखंड ११ वि शताब्दी से १८ वि शताब्दी को जाणा जाता है, ई स. ७१२ से 1600 ई स तक माना जाता है, जिसके दौरान महिलाओं की स्थिति बिगड़ती गई आगे और वास्तव में और बिगड़ गया। यह राजनीतिक उथल-पुथल का दौर था। बाद में,इ.स. ७१२ मे मोहम्मद बिनकासिमने भारत पर आक्रमण किया बादमे 11वीं शताब्दी में भारत पर मोहम्मद गझनीने शासन किया। समाज में अराजकता और अस्थिरता थी। जैसे-जैसे मुस्लिम शासक भारतीय समाज में अधिक स्थिर होते गए, हिंदू समाज ने बहुत से सामाजिक और धार्मिक प्रतिबंध लगाए। महिलाओं को मुस्लिम कायरता से बचाने के लिए

उन्हें एक घर में बंद कर दिया गया था। इस डर से कि मुस्लिम सैनिक उनकी शील भंग कर देंगे, हिंदू महिलाओं ने अपना चेहरा ढंकना शुरू कर दिया। मुसलमानों के बीच घूंघट व्यवस्था हिंदुओं के बीच आम हो गई। महिलाओं का घर से बाहर निकलना नामुमकिन सा हो गया था। मुसलमानों के डर से लड़कियों की शादी कम उम्र में ही होने लगी थी। अपने पति की मृत्यु के बाद, उच्च जाति की महिलाएं सती के लिए जाती थीं। इस काल में महिलाओं को संपत्ति के अधिकार से वंचित कर दिया गयाथा। महिलाएं पूरी तरह से पुरुषों पर निर्भर थीं। मुगल साम्राज्य ने भारतीय समाज में अराजकता पैदा कर दी। प्रवासन, आर्थिक मंदी, पारंपरिक राजनीतिक नेतृत्व की चुनौती ने भी सामाजिक संस्थाओं को नष्ट कर दिया है और समाज में निराशा और असुरक्षा की भावना पैदा की है। इसके चलते महिलाओं की स्थिति खराब होती जा रही थी। स्त्री शिक्षा की सीमाएँ थीं। महिलाओं के चरित्र, शील को अधिक महत्व देने के परिणामस्वरूप लड़कियों की उम्र से पहले ही शादी होने लगी। स्वाभाविक रूप से, इस अवधि के दौरान बाल विवाह एक सख्त सामाजिक मानदंड बन गया। विधवाओं की स्थिति भी अत्यंत दयनीय हो गई। महिलाओं पर हज्जाम की दुकान लगाना, सती होना, भोग न लगाना, सार्वजनिक समारोहों में भाग न लेना जैसे सख्त प्रतिबंध लगाए गए थे, इसलिए उनकी स्थिति दयनीय हो गई।

इस अवधि के दौरान भारत मुस्लिम शासन के अधीन था। वेश्यालय में महिलाओं की स्थिति कालसुत्री गुड़िया जैसी थी जहाँ राजा अपनी विलासिता के लिए वेश्यालय चलाते थे। हालाँकि, इस अवधि के दौरान, पृथ्वीराज की पत्नी संयोगिता, चित्तौड़ की रानी पद्मिनी, रजिया सुल्ताना, चांदबीबी, चतरामा, मुक्ताबाई, जनाबाई, संत मीराबाई विभिन्न क्षेत्रों में प्रसिद्ध महिला बन गईं।

इसी काल के विभिन्न संतों जैसे चौतन्य, नानक, संत कबीर, रामदास, संत तुकाराम, तुलसीदास आदि ने भक्ति और धार्मिक गतिविधियों में उनकी भागीदारी के माध्यम से महिलाओं की स्वतंत्रता को पुरस्कृत किया। इसलिए, महिलाओं के लिए कहानियों, कितने, प्रवचनों में भाग लेना सामान्य माना जाता था। स्क्रीन सिस्टम भी बंद कर दिया गया।महिलाओं ने शास्त्र और किताबें पढ़ना शुरू कर दिया और उनकी स्थिति में धीरे-धीरे सुधार हो रहा था। फिर भी मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति में ज्यादा बदलाव नहीं आया। बाल विवाह पर प्रतिबंध, विधवा पुनर्विवाह, हज्जामखघना, स्त्री शिक्षा पर प्रतिबंध, सती प्रथा, जौहर आदि पर प्रतिबंध के रूप में महिलाओं पर प्रतिबंध अधिक दमनकारी थे। मराठा शासन के दौरान भी, जीजाबाई, गोपिकाबाई, अहिल्याबाई होल्कर, आनंदीबाई पेशवा, हिरकानी, रमाबाई जैसी कुछ महिलाओं को छोड़कर, सामान्य महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में ज्यादा बदलाव नहीं आया। महिलाओं के काम का दायरा बच्चों और पोते-पोतियों, गृहकार्य, पति भगवान, गरिमा तक सीमित था। महादेवराव पेशवा की पत्नी रमाबाई सती का उदाहरण सर्वविदित है।

3) ब्रिटिश राज में महिलाओं की स्थिति:

19वीं शताब्दी अंग्रेजी शासन की शुरुआत है, अंग्रेज व्यापार के लिए भारत आए और शासक बने। लगभग (एक सौ पचास वर्ष) उसने भारत पर शासन किया। उन्होंने अपने पैरों को मजबूत रखने के लिए यातायात का जाल बुना। इसने उद्योगों को भी गति दी और शिक्षा के द्वार खोले। इस अवधि के दौरान, समाज सुधारकों ने विभिन्न सुधार आंदोलन शुरू किए। इन सबका असर महिलाओं की स्थिति पर पड़ा है। जैसे ही

औद्योगिक क्रांति ने भारतीय समाज को प्रभावित किया, कारखाना उत्पादन प्रणाली विकसित होने लगी। उद्योग और कारखाने के उत्पादन में वृद्धि के कारण भारत में पारंपरिक घरेलू उद्योग ठप हो गए। इसका महिलाओं और पुरुषों की आर्थिक, पेशेवर, भौगोलिक गतिशीलता पर प्रभाव पड़ा है। पारंपरिक जाति संस्थाओं और जाति के पारंपरिक व्यवसायों, बालूतारी व्यवस्था आदि पर हमला किया गया। लेकिन उद्योग के उदय के साथ, महिलाओं को शिक्षा के साथ-साथ नौकरी के अवसर भी दिए गए हैं।

ब्रिटिश शासन के दौरान ईसाई मिशनरियों ने महिलाओं की शिक्षा का प्रसार करना शुरू कर दिया। पहला स्कूल 1824 में मुंबई में शुरू हुआ था। 1842 में महात्मा ज्योतिबा फुले ने भिडेवाड़ा में पिछड़े वर्ग की महिलाओं के लिए पहला स्कूल शुरू किया। उन्होंने 1852 में सभी के लिए एक स्कूल और 1855 में लड़कियों के लिए एक रात का स्कूल शुरू किया और महिलाओं को शिक्षित करने का कार्य किया। 1882 के बाद, महिलाओं के लिए उच्च शिक्षा के द्वार खोले गए, जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं में साक्षरता दर 1901 में 0.6% से बढ़कर 1991 में 39.42% हो गई। महिला साक्षरता ने उन्हें आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने का अवसर दिया। स्वाभाविक रूप से, महिलाओं की स्थिति में अपेक्षा के अनुरूप सुधार होने लगा। वहीं तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए कुछ कानून बनाए।

1929 का हिंदू विरासत अधिनियम, 1939 का हिंदू महिला अधिकार अधिनियम और 1929 का सती निषेध अधिनियम अधिनियमित किया गया था। 1856 के अधिनियम के तहत, महिलाएं अपने मृत पति की संपत्ति की हकदार थीं।

विवाह संस्था में परिवर्तन लाने में अनेक कानूनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनमें 1929 का बाल विवाह निवारण अधिनियम, 1946 का हिंदू विवाह वैधता अधिनियम, 1950 का हिंदू विवाह अधिनियम और हिंदू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856, दहेज निषेध अधिनियम 1961 आदि महत्वपूर्ण हो गए।

भारत में सामाजिक आंदोलन का योगदान और महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए समाज सुधारकों द्वारा किए गए विशेष प्रयास भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं। भारतीय समाज में महिलाओं के संबंध में कई अवांछनीय मानदंड और प्रथाएं थीं। स्वाभाविक रूप से, महिलाओं की स्थिति में गिरावट आई थी। उस समय के समाज में बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबंध, सती प्रथा, हज्जामखघना, स्त्री शिक्षा पर प्रतिबंध प्रचलित थे। उन्नीसवीं सदी में कई समाज सुधारकों ने आवाज उठाई और इस अवांछनीय परंपरा के खिलाफ आंदोलन शुरू किया। राजाराम मोहनराय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानाडे, महर्षि धोंडो केशव कर्वे, स्वामी दयानंद सरस्वती, महात्मा ज्योतिबा फुले, सयाजीराव गायकवाड़, छत्रपति शाहू महाराज, डॉ. समाज सुधारक जैसे बाबासाहेब अम्बेडकर, एनी बेसेंट आदि। इन सुधारकों के विभिन्न आंदोलनों के कारण, यह विचार स्वीकार किया गया कि महिलाओं को पुरुषों के समान दर्जा और पुरुषों के साथ स्वतंत्रता होनी चाहिए। और महिलाओं के प्रति समाज की मानसिकता और महिलाओं के प्रति समाज का नजरिया बदल गया।

साथ ही महिलाओं की स्थिति में बदलाव लाने के लिए विभिन्न महिला संगठनों का गठन और महिलाओं के मुद्दों पर विभिन्न आंदोलन भी महत्वपूर्ण हो गए। राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न महिला संगठनों का गठन किया गया है। इसमें मुख्य रूप से महिला संगठन जैसे 1904 में भारत महिला परिषद, 1990 में भारत स्त्री महामंडल, ऐनी बेजेंट की महिला भारतीय संघ और अखिल भारतीय महिला सम्मेलन शामिल हैं।

उन महिला संगठनों ने बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबंध लगाने के साथ-साथ महिलाओं की समग्र स्थिति में सुधार लाने और उन्हें पुरुषों के समान दर्जा और स्थान देने के लिए विशेष प्रयास किए हैं। फलस्वरूप महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है।

4) स्वतंत्रता के बाद की अवधि में महिलाओं की स्थिति:

भारत की स्वतंत्रता के बाद, जीवन के सभी क्षेत्रों में आमूल-चूल परिवर्तन हुए। महिलाएं कोई अपवाद नहीं हैं। आजादी के बाद महिलाओं की स्थिति हर तरह से तेजी से बदल रही है। शिक्षा के बढ़ते प्रसार के कारण महिलाओं ने पुराने रीति-रिवाजों, परंपराओं को त्याग दिया है। बदलती परिस्थितियों में महिलाओं की स्थिति और भूमिका भी बदल रही है। कुल 246 भारतीय सामाजिक संरचनाएं और परिवर्तन

महिलाओं के प्रति समाज के पारंपरिक, एकतरफा रवैये, सख्त जाति बंधन, संयुक्त परिवार व्यवस्था, बाल विवाह आदि के कारण, समग्र रूप से महिलाओं की स्थिति हीन या हीन प्रतीत होती है। वास्तव में आज भी पश्चिमी महिलाओं की तुलना में भारतीय महिलाएं कई मायनों में पीछे और अलग हैं। भारतीय नारी आज भी महत्वपूर्ण सांस्कृतिक मूल्यों को कायम रखती है, वही तस्वीर आज उभर कर सामने आती है। लेकिन इतना तय है कि बदलती सामाजिक परिस्थितियों में महिलाओं की स्थिति में बदलाव हो रहा है। स्वतंत्रता के बाद, भारतीय समाज ने व्यापक सामाजिक हित में कुछ महत्वाकांक्षी नीतियों को लागू करना शुरू किया। यह स्वाभाविक है कि यह महिलाओं की स्थिति को प्रभावित करता है। स्वतंत्रता के बाद 26 जनवरी 1950 को स्वतंत्र भारत का संविधान अस्तित्व में आया। भारतीय संविधान महिलाओं के साथ-साथ पुरुषों को कुछ महत्वपूर्ण मौलिक अधिकार और विशेषाधिकार प्रदान करता है। इससे महिलाओं की स्थिति को ऊपर उठाने में मदद मिली। साथ ही भारतीय महिलाओं के जीवन में कई क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। भारतीय समाज ने लैंगिक समानता के सिद्धांत को अपनाया और महिलाओं को जीवन के हर क्षेत्र, सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक आदि में स्वतंत्रता दी और उन्हें पुरुषों के बंधन से मुक्त किया।

निष्कर्ष:

स्वतंत्रता के बाद की अवधि में, महिलाओं की समग्र सामाजिक स्थिति और लैंगिक समानता के लिए बहुत प्रयास किए गए। अतीत की तुलना में आज महिलाओं की स्थिति निश्चित रूप से बदल गई है। लेकिन ऐसा नहीं दिखता है। हालांकि भारतीय समाज में लैंगिक असमानता में अंतर कम हुआ है, लेकिन यह पूरी तरह से गायब नहीं हुआ है।

आज भी भारतीय समाज में महिलाओं पर हो रहे अत्याचार कम नहीं हुए हैं। यह सच है कि घरेलू हिंसा, मारपीट और महिलाओं का द्वैतवाद आज भी कायम है। आज भी असंगठित क्षेत्र में लैंगिक भेदभाव देखा जाता है। वास्तव में आज भी परिवार, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक निर्णय लेने की प्रक्रिया में महिलाओं का कोई स्थान नहीं है। 70% महिलाएं अभी भी गरीबी रेखा से नीचे हैं। आज भी समाज में मर्दाना मानसिकता देखने को मिलती है। नारी मन में पुरुष प्रधान संस्कृति की संस्कृति और प्रभुत्व आज भीनष्ट नहीं हुआ है। विश्व स्तर पर, मानव विकास में लिंग आधारित विकास सूचकांक की नई अवधारणा अस्तित्व में आई है और भारत में 136 देशों में 99 का लिंग आधारित विकास सूचकांक है। यह भारत में महिलाओं की स्थिति और स्थिति का एक विचार देता है

References:

- Meynaud, Jean, Social Change and Economic Development, UNESCO Publi- cation, 1963.
- Moore, Wilbert, "Social Aspects of Economic Development" in Robert Faris (Ed.),
- Novack, David, "Sociological Approach to Economic Development" in Novack David (Ed.), Development and Society: The Dynamics of Economic Change, 1964.
- माने माणिक, 'भारतीय समाज' विद्या प्रकाशन नागपूर.
- भोईटे उत्तम, बोबडे प्रकाश, 'सामाजिक संस्था' पिंपळापुरे प्रकाशन नागपूर.
- पाटे सुमन, 'समाजशास्त्राची रूपरेखा' पायल प्रकाशन नागपूर.

पितृसत्तात्मक व्यवस्था की संरचनात्मक पड़ताल

रश्मि

एम०फिल०, नेट (हिन्दी)

जहाँ तक पितृसत्तात्मक व्यवस्था की संरचनात्मक पड़ताल की बात है- यह पड़ताल स्त्री विमर्श के बिना अधूरी है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था का केंद्र बिन्दु पुरुष नहीं, स्त्री है। यह व्यवस्था स्त्री पर बेबुनियाद आक्षेप लगाती है, उसे जकड़ती है। जबकि जहाँ दो व्यक्तियों की बात आती है तो वहाँ भी बिना विचार-विमर्श किए, बिना वास्तविकता का पता लगाए, कोई भी निर्णय नहीं लिया जाता। तथ्यों को निष्पक्ष रूप में सबके सामने प्रस्तुत करना चाहिए, जबकि पितृसत्तात्मक व्यवस्था के रक्षक स्वयं को स्त्री का स्वामी बताते हैं, क्योंकि उनके अनुसार स्त्री कमजोर, बुद्धिहीन, गँवार है, वह नारी है जो पुरुष पर आश्रित रहने लायक है। एक स्वामी होने के नाते पुरुष को उदार, क्षमाशील, धैर्यवान, स्त्री के अधिकारों का रक्षक होना चाहिए, जबकि वह स्वयं भक्षक बनकर बैठा हुआ है।

पुरुषों की तरह एक स्त्री की कभी कोई निजी जिंदगी नहीं होती। कभी वह भाई और पिता की बनाई व्यवस्था की पीड़ा झेलती है तो कभी पति के शोषण का शिकार बनती है। जबकि पुरुष जन्म से ही पुरुष बना दिया जाता है और ताउम्र पुरुष बनकर ही जीता है। स्त्री को इन रक्षकों का शिकार होना ही पड़ता है- स्वेच्छा से नहीं तो जबरन। आखिर एक स्त्री इन भक्षकों से चाहती ही क्या है- एक मनुष्य के रूप में "आदर!"

भारतीय दमनकारी पुरुषों ने स्त्री को मुख्य रूप से चार संस्थाओं में जकड़ा हुआ है-

1. परिवार संस्था
2. विवाह संस्था
3. धर्म संस्था
4. न्याय संस्था

1. परिवार संस्था- पितृसत्तात्मक व्यवस्था के चलते परिवार में मुखिया पुरुष ही है। परिवार यूं तो मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं- एकल तथा संयुक्त। लेकिन यहाँ मुद्दा परिवार के छोटे या बड़े होने का नहीं है। परिवार का दायरा कितना भी क्यों ना हो, इसमें कुलपति बुजुर्ग नर ही होता है। दुनिया में सबसे बड़ी जंग कहीं और नहीं है, यहा परिवार में ही होती है। स्त्री-पुरुष के बीज बोने की प्रक्रिया- एक छोटा लड़का फर्श गंदा करता जाएगा, फर्श साफ करने का कार्य उसकी बहन को करना होगा। घर के पुरुष पहले भोजन करेंगे, औरतें बाद में। भाई-बहन की लड़ाई होगी भाई की गलती होने पर भी बहन को ही डाँटा जाएगा। 'मान' भी लड़की को दिया जाएगा, हर उत्सव में। लड़का माँगे तो तो उसे डाँटा जाएगा कि लड़के तो मान देते हैं, लेते नहीं।

   ऐसे धीरे-धीरे करके पुरुषों ने अपनी पितृसत्तात्मक व्यवस्था के बीज परिवार से ही बोने शुरू किए थे। परिवार पूर्ण रूप से दमन और उत्पीड़न की विषमतामूलक अवधारणा पर टिका हुआ है। पश्चिमी देशों के परिवार हों या भारतीय परिवार, स्त्री परिवार में रहकर भी कई बार सुरक्षित महसूस नहीं करती। उसे बहुत बार यौन-शोषण का शिकार बनाया जाता है। हिंसा, अपमान, अनैतिकता के साथ यौन-शोषण भी किया जाता है। पहले पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रहरी ऐसी बातों को नीचे ही दबा दिया करते थे, लेकिन अब धीरे-धीरे महिलाएँ आवाज उठाने लगी हैं। आए दिन अखबार ऐसी खबरों से भरे पड़े रहते हैं। पितृसत्ता के रक्षक अवैध को वैध, पाप को पुण्य, अश्लील को शील बनाकर दबा देते हैं।

2. विवाह संस्था- विवाह रूपी पवित्र बंधन को पितृसत्ता के रक्षक दलालों ने कोढ़ का रूप दे दिया। विवाह स्त्री-पुरुष के बीच का ऐसा रिश्ता, बंध न होता है जो उनके बीच समानता और प्रेम से बनता है। यह स्त्री-पुरुष को जोड़े रखने वाला बंधन है, जबकि पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने इसे स्त्री को बांधने वाला बंधन बना दिया। स्त्री को जकड़े रखने के लिए उसे अनेक आभूषणों से लाद दिया जाने लगा। जैसे- मंगल टीका, मटरमाला, मंगलसूत्र, कुंडल, नथ, लौंग, बाजूबंद, करधनी, चूड़ी, अँगूठी, हँसुली, पायल, बिछिया इत्यादि। पाँच-छह वर्ष की बच्ची का विवाह अस्सी वर्ष के पुरुष से कर दिया जाता था। स्त्रियों को आश्रितों की कोटी में रखा जाता था। विवाह से पहले हो या बाद में प्रत्येक स्त्री को विभिन्न परिस्थितियों में पितृसत्ता का शासन झेलना ही पड़ता है।

3. धर्म संस्था- धर्म शब्द 'धृ' धातु में 'मन' प्रत्यय के योग से बना है। इसके अर्थ को हम कुछ परिभाषाओं द्वारा समझेंगे- "जो दूसरों द्वारा धारण किया जाए वही धर्म है।"(1)

   साने गुरु जी के अनुसार, "धर्म का अर्थ है चौबीसों घंटे होने वाले कर्म, जन्मभर होने वाले कर्म, धर्म सब जगह है। जिस प्रकार हमें प्रत्येक स्थान पर हवा की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार धर्म की आवश्यकता हर स्थान पर होती है। रसोई घर, कारखानों, सभा-स्थलों, सभी जगह किए गए कार्य धर्ममय होने चाहिए। बुद्धि और हृदय की एकरूपता से उपजे महान विचार ही धर्म होते हैं जिसमें यह एकरूपता होती है, वही धर्म संस्थापक होता है।"(2)

स्वामी रामदेव के अनुसार, "अहिंसा, सत्य, प्रेम, करुणा, वात्सल्य, सेवा, संयम व सदाचार आदि जीवन का श्रेष्ठ आचरण ही धर्म है और वे सभी आचरणात्मक गुण, सभी धर्मों में हैं। अत: धर्म में परिवर्तन जैसा कुछ नहीं। धर्म तो धारण करने योग्य जीवन की श्रेष्ठ मर्यादाएँ हैं।"(3)

प्रत्येक भारतीय व्यक्ति किसी ना किसी धर्म से जुड़ा हुआ है। धर्म ही उन्हें उचित-अनुचित की राह दिखाने का कार्य करता है। धर्म लोगों को आपस में बाँधे रखता है। लोगों में आस्था का भाव इसी से जगता है। लेकिन कुछ पितृसत्ता के रखवाले इसमें श्रद्धा के साथ भय को जोड़कर पूरे समूह को अलग ही मार्ग पर खींच ले जाते हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य हो या पाश्चात्य, स्त्रियों की दशा लगभग वही है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था जितने मर्जी किले बना ले, स्त्रियाँ इन्हें तोड़कर ही दम लेंगी। "हिन्दू धर्मग्रन्थों, कुरान एवं बाइबिल द्वारा स्त्री को हेय मानने का जो संस्कार सदियों से दिया जाता रहा है, उसे तमाम वैचारिक क्रांतियों के बाद आज भी खारिज करना कठिन प्रतीत होता है।"(4) पितृसत्ता के पहरेदार लोगों को धर्म के नाम पर भटकाते हैं। वे लोगों को उनके धार्मिक ग्रंथों के नाम पर उन्हें पाखंडी, पलायनवादी तथा भाग्यवादी बनाते हैं।

4. न्याय संस्था- 26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान बनकर तैयार हुआ। संविधान में प्रत्येक भारतीय नागरिक को प्राप्त मौलिक अधिकारों के अंतर्गत अनुच्छेद (14-18) में समानता का अधिकार दिया गया है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के चलते तथा भारतीय न्याय-व्यवस्था के मद्देनजर स्त्रियों को अपने कुछ मौलिक अधिकारों का ज्ञान होना अति आवश्यक है।

"बकौल वर्जीनिया वुल्फ 'नेपोलियन और मुसोलिनी औरतों की हीनता पर इतना जोर देते हैं, क्योंकि अगर वे हीन नहीं होंगी तो वे बड़ा नहीं बना पाएँगी।"(5) स्त्रियों को पुरुषों के सामने सदैव मजबूत, सशक्त बनना होगा। उनके पुरुषत्व से डरने, घबराने की बजाए परिस्थितियों को संभाल कर आगे बढ़ना होगा। पुरुष तो यही चाहता है कि स्त्री हमेशा उसके सामने नारी बनकर रहे। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने इन सब संस्थाओं पर कब्जा करके अपने हिसाब से हवा का रुख तय किया है।

इसके साथ ही न्याय संस्था के संदर्भ में "हिन्दू कोड बिल" का जिक्र करना काफी महत्त्वपूर्ण है। यह बिल स्वतंत्रता के बाद आने वाले अनेक बिलों में से एक है। इस बिल के लिए डॉ० भीमराव अंबेडकर जी ने कैबिनेट से अपना इस्तीफा तक दिया था। अगर इनको कहा जाए कि- "ये अपने आप में संविधान थे।" तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इनका मानना था कि महिलाओं को बराबरी का दर्जा प्राप्त हो। इस बिल में उन्होंने स्त्री को संपत्ति में अधिकार देने की बात कही। पिता की संपत्ति में पुत्री को समान अधिकार, महिला को तलाक देने का हक, शादीशुदा पुरुष को एक पत्नी रखने का हक हो। प्रत्येक भारतीय महिला को अंबेडकर जी ने यह सौगात प्रदान की, जिसे किसी भी महिला को भूलना नहीं चाहिए तथा अपनी स्वतंत्रता के आड़े नहीं आने देना चाहिए।

"नब्बे प्रतिशत यौन हिंसा या बलात्कार के मामले परिवार की प्रतिष्ठा के कारण थाने में दर्ज नहीं कराए जाते। जो दर्ज होते हैं, उनमें से अधिकांश (96%) बलात्कारिणीच्ची अदालतों द्वारा बाइज्जत बरी कर दिए जाते हैं।"(6) हम सब यह जानते हैं कि भारत की न्याय व्यवस्था संसार की प्राचीन प्रणालियों में से एक है। हमारा देश भारत 15 अगस्त, 1947 को आजाद हो चुका है। लेकिन फिर भी आज तक महिलाओं को उनकी स्वतंत्रता हासिल नहीं हुई है। बचपन से ही उनके साथ बलात्कार होता आ रहा है। इसके कुछ उदाहरण हम इस प्रकार देखेंगे-

"जुम्मन खान नामक व्यक्ति ने छह वर्षीय बच्ची (सकीना) के साथ बलात्कार के बाद हत्या कर एक जघन्य और अमानवतापूर्ण कार्य किया है।"(7)

"हरचेत सिंह (उम्र 29 साल) ने मल्हार नामक बच्ची (2 वर्षीय) के साथ रेप के बाद हत्या कर दी। जिसे कोर्ट ने 'दुर्लभतम में दुर्लभ' की श्रेणी में न मानकर उसे मृत्यु दंड ना देकर सिर्फ उम्र कैद की सजा दी।" (8)

"ऐसा ही एक और केस दिल्ली से आया था- पन्नालाल नमक व्यक्ति ने 2 वर्षीय बच्ची नीतू के साथ बलात्कार और हत्या रूपी जघन्य अपराध किया। इसे भी मृत्यु दंड ना देकर उम्रकैद की सजा दी गई।"(9)

ऐसे घृणित और जघन्य अपराधों के बदले उम्रकैद कुछ मायने नहीं रखती। हमारे बच्चे ही देश का भविष्य हैं आज हम देखें तो हमारा "आने वाला कल" ही सुरक्षित नहीं है। हवस के इन दरिंदों को हमें मृत्यु दंड ही देना चाहिए। जब एक औरत से उसकी आत्मा छीन ली जाती है, उसे मलील दिया जाता है तो वह एक जिंदा लाश के सिवा कुछ नहीं रहती। अभी हाल ही में हुए हैदराबाद रेप केस का मामला सामने आया था। एक महिला पशु चिकित्सक डॉ० रेड्डी का चार आरोपियों ने बेरहमी से बलात्कार किया और उसे जिंदा जला डाला। कुछ दिन बाद पुलिस ने उन आरोपियों को उसी रेप वाली जगह ले जाकर उनका एनकाउंटर कर दिया। आज के भारत को ऐसा ही न्याय चाहिए, ना कि अपराधियों को दो-चार-दस वर्ष की कैद। ऐसे अपराधियों के लिए एक ही सजा है- मौत। एल लंबे संघर्ष के बाद स्त्री को भले ही शिक्षा तथा संपत्ति के लिए बराबर अधिकार प्राप्त हुए हैं, लेकिन पितृसत्तात्मक व्यवस्था पूरी तरह खत्म नहीं हुई है। एक स्त्री चाहती ही क्या है- स्वतंत्रतापूर्वक खुली हवा में सांस लेना। "अपनी अखंडता और संपूर्णता में नारी दुर्जेय और अजेय है। वह एक ऐसी शक्ति है जो स्वतंत्र और स्वच्छंद है, बनैली और स्वैरिणी- इसलिए आदमी ने उसे ही तोड़ा है। तोड़कर ही किसी को कमजोर और पालतू बनाया जा सकता है।"(10) तभी बोउवा कहती हैं कि "औरत पैदा नहीं होती, बनाई जाती है।" स्त्री विमर्श का लक्ष्य कुछ पल की संतुष्टि, संतोष, आनंद नहीं है। महिलाएँ सिर्फ न्याय चाहती हैं।

हालाँकि नारी पर सदियों से जो शोषण होता रहा है, वर्तमान समय में उसमें काफी बदलाव आया है। आज के आधुनिक युग की नारी अब शोषण के खिलाफ आवाज उठाने लगी है। अब वह चुप रहकर शोषण का शिकार नहीं बनती, वह इसके लिए कोर्ट के दरवाजे खटखटाती है। स्त्रियों के जीवन की पीड़ाओं को समझकर, उन पर व्यंग्य और कटाक्ष ना करते हुए उसको न्याय देना होगा।

उपरोक्त विवेचन के बाद निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं की पितृसत्तात्मक व्यवस्था रूपी दीमक हमारे घरों, समाज, जीवन शैली को निरंतर खोखला बनाता जा रहा है। हम सभी ईश्वर की संतानें हैं। हर प्रकार की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर हमें साथ मिलकर चलना होगा। पुरुष हो या स्त्री सबको एक समान जीवन जीने का अधिकार है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था वह व्यवस्था है जो पितृवंश का आधार लेकर पीढ़ी दर पीढ़ी चलती आई है। रूढ़िवादी परम्पराएं इसे और मजबूत बनाती हैं। किसी को भी स्त्री को हीं या दोयम दर्जे का नहीं मानना चाहिए। न्याय व्यवस्था ने मानवेत्तर प्राणियों के लिए भी प्रावधानों का

निर्माण किया है, तो क्या स्त्री को किसी भी तरह जकड़ना ठीक है। हमें पाप से घृणा करनी चाहिए, पापी से नहीं। अतः आज जिस प्रकार समाज में बदलाव आ रहा है, हमें न्याय व्यवस्था द्वारा स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा हो रही है, स्त्रियाँ आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने का प्रयास कर रही हैं। हमें इसी दिशा में निरंतर चलकर अपने राष्ट्र को उन्नति के मार्ग पर मिलकर अग्रसर करना है।

पितृसत्ता की उन सभी कैबिनेट मीटिंगों को बंद करना होगा जो स्त्रियों को भौतिक समृद्धि देने के नाम पर इस्तेमाल करते हैं। स्त्रियों को अपने 'इस्तेमाल करने के बाद फेंक देने' वाले मर्दों से चौकन्ना रहना होगा।

संदर्भ

1. सं० द्वारकाप्रसाद शर्मा, संस्कृत यथार्थ कौस्तुभ, पृ० 49
2. साने गुरु जी, भारतीय संस्कृति, पृ० 38
3. स्वामी रामदेव, जीवन दर्शन, पृ० 12
4. डॉ० रोहिणी अग्रवाल, साहित्य की जमीन और स्त्री मन के उच्छवास, पृ० 20
5. डॉ० रोहिणी अग्रवाल, साहित्य की जमीन और स्त्री मन के उच्छवास, पृ० 120
6. राजेन्द्र यादवः अर्चना वर्मा 'अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य': यौन हिंसा और न्याय की भाषाः अरविंद जैन, पृ० 229
7. वही, पृ० 247
8. वही, पृ० 248
9. वही, पृ० 249
10. राजेन्द्र यादव, आदमी की निगाह में औरत, पृ० 15
11. वही, पृ० 15

आधुनिक विश्व में हानिकारक अपशिष्टों का व्यापार

डॉ० शीशराम यादव

सह आचार्य रसायन शास्त्र, लाल बहादुर शास्त्री राजकीय महाविद्यालय, कोटपूतली (जयपुर) राजस्थान

डॉ० ललिता यादव

सह आचार्य अर्थशास्त्र, लाल बहादुर शास्त्री राजकीय महाविद्यालय, कोटपूतली (जयपुर) राजस्थान

1980 के दशक के उत्तरार्द्ध में विश्व के समाचारों मे यह खबर सुर्खियों पर थी कि विकसित देश विकासशील देशों को हानिकारक पदार्थ भेज रहे हैं, कहीं वे सहायता के रूप में तो कहीं अतिकम मूल्य पर। अनेक बार जब विकसित देशों में प्रचलित वस्तुओं, कीटनाशकों, दवाइयों आदि के सम्बन्ध में यह ज्ञात होता है कि वे हानिकारक हैं तो वहाँ उन पर रोक लगा दी जाती है, वे ही वस्तुएँ एवं अपशिष्ट पदार्थ विकासशील देशों को निर्यात कर दी जाती हैं, इनमें अधिकांश पर्यावरण को प्रदूषित करने वाली एवं स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली सामग्री होती है। इसके प्रति जागरूकता के फलस्वरूप यह मुद्दा अन्तराष्ट्रीय मंचों पर उठने लगा तथा संयुक्त राष्ट संघ पर्यावरण कार्यक्रम के अन्तर्गत इसे नियमित करने पर चर्चा हुई। इस दिशा में 1989 में हुए बेसल सम्मेलन में 'पूर्व सूचना पद्धति' का विचार आया। इस पर मार्च, 1989 में सहमति हुई तथा यह मई, 1992 में लागू किया गया। इसे मार्च, 1994 में और सुधारा गया और यदि सम्बन्धित पक्ष नहीं चाहे तो हानिकारक पदार्थों को जहाज पर लदान न किया जाये।

हानिकारक अपशिष्ट पदार्थ वे पदार्थ हैं जो मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण को हानि पहुँचाते हैं। इसमें रेडियो धर्मिय पदार्थ, कीटनाशक, विषैले रसायन, पोलिक्लोरीनेटेड बाइफिनाइल, जैविक विलायक आदि होते हैं। एक अनुमान के अनुसार 90 प्रतिशत हानिकारक अपशिष्ट औद्योगिक देशों से उद्भूत होते हैं। अकेले संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में विश्व का 80 प्रतिशत अपशिष्ट जन्म लेता है। इसके निर्यातकों में अमेरिका के अतिरिक्त यूरोप के देश जैसे फ्रान्स, नीदरलैण्ड, बैल्जियम, इटली और जर्मनी हैं। यह निर्यात विकासशील देशों को होता है जिनके पास तकनीकी स्तर इतना नहीं है कि वे इस अपशिष्ट से हानिकारक तत्वों को समाप्त कर सके, केवल कम मूल्य में इनकी प्राप्ति की मुख्य आकर्षण है।

इस सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय विचार से इसके नियन्त्रण की भूमिका बनी है, किन्तु अभी भी इसमें कमी नहीं हुई हे। बेसल समझौते के प्रमुख तथ्य हैं-

हानिकारक अपशिष्टों के उत्पादन को न्यूनतम स्तर पर रखा जाय।

अन्य देशों को भेजे जाने वाले हानिकारक पदार्थों के सम्बन्ध में यह सुनिश्चित किया जाये कि वे पर्यावरण को हानि नहीं पहुँचायेगे।

कोई भी देश इनके आयात पर रोक लगा सकता है।

विकासशील देशों को अपशिष्ट पदार्थों के उचित निस्तारण हेतु तकनीकी एवं वैज्ञानिक सहायता दी जानी चाहिये।

जैव विविधता

विश्व पर्यावरण समस्याओं में जैव विविधता और इसी के साथ जुड़ी प्रजातियों के विलुप्त होने की समस्या आज गम्भीर रूप में विद्यमान है। जैव विविधता से तात्पर्य पृथ्वी पर व्याप्त जीवन की जैविक विविधता से है। इसके अन्तर्गत तीन प्रकार की विविधताएँ होती हैं। आनुवांशिक विविधता, प्रजातीय विविधता, पारिस्थितिकी विविधता।

आनुवांशिक विविधता के फलस्वरूप ही विभिन्न प्रजातियों का जन्म होता है। जबकि प्रजातीय विविधता से तात्पर्य एक प्रदेश में पाई जाने वाली विभिन्न प्रजातियाँ। जबकि पारिस्थितिकी विविधता में विविध पारिस्थितिकी में प्रजातियों की संख्या एवं वितरण पर बल दिया जाता है। वर्तमान में जैव विविधता पर प्रमुख रूप ध्यान दिये जाने का कारण अनेक प्रजतियों का वायु, जल, भूमि आदि प्रदूषण एवं वनोन्मूलन एवं अन्य विकास कार्यों के कारण पारिस्थितिकी-तन्त्र में परिवर्तन एवं प्रजातियों पर प्रतिकूल प्रभाव है।

विश्व में लगभग 14 लाख जीव एवं पौधों को पहचाना गया है, किन्तु वैज्ञानिक इस पर एकमत नहीं हैं और कुछ का विश्वास है कि यह संख्या एक से आठ करोड़ तक है। प्रत्येक प्रजाति, पारिस्थितिकी-तन्त्र का अभिन्न अंग होती है तथा उसमें हो रहे परिवर्तनों का इन पर सीधा प्रभाव होता है तथा जब संतुलन बिगड़ जाता है तो प्रजातियाँ विलुप्त होने लगती हैं। वर्तमान में जैवे विविधता से सम्बन्धित प्रमुख चिन्ता आनुवांशिक समूहों का सिकुड़ना है। यह अनुमान लगाया गया है कि उष्ण कटिबन्धीय वनों में कम से कम 50 प्रतिशत एवं अधिकतम 90 प्रतिशत प्रजातियाँ हैं। एक अन्य अनुमान के अनुसार प्रतिदिन 20 से 75 प्रजातियाँ विलुप्त होती जा रही हैं जो चिन्ता का कारण है।

वास्तव में यह विश्व की सांझा सम्पदा है और इसको बचाना विश्व समुदाय का उत्तरदायित्व है। किन्तु इस सम्पदा का वितरण अत्यधिक असमान है। विश्व की अधिकांश जैविक सम्पदा उष्ण कटिबन्धीय वनों में है जो तृतीय विश्व में स्थित है, उनका शोषण एक और विकसित देश, तो दूसरी और स्थानीय लोग कर रहे हैं। जैव विविधता के नष्ट होने का पर्यावरण एवं अन्य क्रियाओं पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। इसका कृषि पर प्रभाव होता है। खाद्य संसाधनों के उपयोग में आने वाली प्रजातियों की संख्या में कमी आ रही है। ऐसा माना जाता है कि मानव इतिहास के प्रारम्भ से लगभग 3000 वनस्पतियों को खाद्य पदार्थ के उपयोग में लिया जाता था, किन्तु वर्तमान में मुख्तया 20 का उपयोग होता है। इस सन्दर्भ में 'पेटेन्ट कानून' का विश्व व्यापार संगठन में बनना एक विवाद का विषय बना हुआ है। वे विकासशील देश जो सदियों से अनेक वस्तुओं का उपयोग कर रहे हैं उन पर इसके अन्तर्गत प्रतिबन्ध से अनेक समस्याओं का जन्म होगा।

गेट के युरग्वे वार्ता के पश्चात् सम्पूर्ण बौद्धिक सम्पदा का पेटेन्ट करना आवश्यक हो गया है। इसी के अन्तर्गत 'नीम', 'बासमती चावल', 'हल्दी' आदि के विदेशों में पेटेन्ट हो जाने से यह समस्या जटिल होती जा रही है, क्योंकि भारत में इन वस्तुओं का अति प्राचीन काल से उत्पादन, उपयोग एवं उपभोग हो रहा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की मानव पर्यावरण की कार्ययोजना में वनों एवं वन्य जीवों के संरक्षण पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। स्टाकहोम से रियो विश्व पर्यावरण सम्मेलन के काल के मध्य इस दिशा में विश्व के देशों के मध्य पर्याप्त चेतना आई है और उन्होंने अपने-अपने देशों मंभ जैव विविधता की सुरक्षा हेतु कानून बनाये हैं। इस सम्बन्ध में अनेक सम्मेलन जैसे- के अतिरिक्त मई, 1992 में नेरोबी में, जून, 1992 में किये गये। दिसम्बर, 1993 में जैव विविधता से सम्बन्धित महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये जिनमें प्रमुख हैं-

जैव विविधता सम्बन्धी राष्ट्रीय जानकारी एवं प्रजातियों की पहचान एवं उन पर संरक्षण के दृष्टिकोण से नजर रखना।

राष्ट्रीय जैव विविधता के संरक्षण के समुचित उपाय करना।

जैव विविधता को प्रभावित करने वाली परियोजनाओं का मूल्यांकन।

जैव विविधता के संरक्षण हेतु राष्ट्रीय नीति तैयार करना।

नियमित रूप से जैव विविधता पर राष्ट्रीय प्रतिवेदन तैयार कर उनका प्रभावशाली रूप में क्रियान्वयन करना।

वास्तव में जैव विविधता की सुरक्षा एक राष्ट्रीय कार्य है जिसे अन्तर्राष्ट्रीय कार्ययोजना के रूप में पूर्ण किया जाना आवश्यक है। एक बार यदि प्रजातियों का विनाश हो जाता है तो उनका पुनर्जीवन सम्भव नहीं है। इसके लिये विश्व के सभी देशों को मिलकर प्रयत्न करने की आवश्यकता है। पारिस्थितिकी सन्तुमन को बनाये रखने हेतु जैव विविधता की रक्षा आवश्यक है।

कीटनाशकों का विपरीत प्रभाव

वर्तमान विश्व में रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग में अतिशय वृद्धि हुई है जिसका प्रभाव पर्यावरण अवकर्षण एवं मानव स्वास्थ्य पर अत्यधिक हो रहा है और आज सम्पूर्ण विश्व में इनके प्रयोग पर चिन्ता व्याप्त है। कृषि उपजों में अनेक प्रकार की बीमारियों का प्रकोप विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं एवं कीटों से होता है और कभी-कभी इनका प्रकोप इतना अधिक होता है कि सम्पूर्ण फसल नष्ट हो जाती है। इसी कारण कृषि उपजों की रक्षा हेतु विभिन्न प्रकार के कीटनाशकों का विकास हुआ और कृषि विज्ञान तथा रसायन विज्ञान की प्रगति के साथ नये-नये कीटनाशक विकसित होने लगे और आज सम्पूर्ण विश्व में इनका प्रचलन है। इसी के साथ यह विवाद भी सामने आया कि कीटनाशकों का प्रयोग न केवल पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करता है अपितु उससे पारिस्थितिकी तन्त्र भी विकृत हो जाता है। इस सम्बन्ध में वैज्ञानिकों के दो मत हैं- कुछ वैज्ञानिकों का विचार हे कि केवल कीटनाशकों के प्रयोग से ही फसलों को बचाया जा सकता है और उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है, जबकि अन्य का कहना है कि रासायनिक कीटनाशक अनेक प्रकार के पर्यावरणीय समस्याओं को जन्म देते हैं तथा इनसे कीटों की समस्या पूर्णतया हल नहीं होती।

वर्तमान कीटनाशकों के प्रयोग का प्रचलन 1940 के पश्चात् हुआ जब डी.डी.टी. नाम के सस्ते और प्रभावशाली कीटनाशक का पता चला और शीघ्र ही सम्पूर्ण विश्व में इसका प्रचलन हो गया। किन्तु इसके प्रयोग के 20-25 वर्ष पश्चात् ही इसके विपरीत प्रभावों का ज्ञान होने लगा और अमेरिका जहाँ इसका सर्वाधिक प्रचलन था और यह विश्व का प्रमुख निर्यातक था वहाँ एक जनवरी, 1973 को इसके उत्पादन और बिक्री पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इसी प्रकार एल्ड्रिन, डियलड्रिन आदि अनेक कीटनाशकों पर भ्झी प्रतिबन्ध लगाये गये। वास्तव में अधिकांश कीटनाशक तेज विषैले होते हैं तथा उनसे सम्पूर्ण पारिस्थितिकी-तन्त्र असंतुलित हो जाता है। डी.डी. टी. एवं एल्ड्रिन जैसे कीटनाशक मिट्ट में 15 वर्षो तक बने रहते हैं तथा ये खाद्य पदार्थों में प्रवेश कर मानव शरीर में पहुँच कर उसके स्वास्थ्य पर अत्यधिक हानिकारक प्रभाव डालते हैं तथा अनेक बीमारियों का कारण बनते हैं। सभी प्रकार के कीटनाशकों का छिड़काव (स्प्रे) किया जाता है जिससे सम्पूर्ण वायुमण्डल प्रदूषित हो जाता हैं

यद्यपि डी.डी.टी. एवं अन्य विषैले कीटनाशकों पर अनेक देशों में प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। किन्तु इनका उत्पादन एवं प्रयोग आज भी हो रहा है। विकसित देश तृतीय विश्व के देशों को इन कीटनाशकों को स्वच्छन्द रूप से भेज रहे हैं। इससे सम्पूर्ण विश्व के पर्यावरण का प्रदूषित होने का खतरा है। आवश्यकता यह है कि जैव उर्वरकों का प्रयोग किया जाय तथा विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं द्वारा ही हानिकारक कृमि पर नियन्त्रण किया जाय क्योंकि कीटनाशकों के प्रयोग से उपयोगी जीव भी नष्ट हो जाते है। इसके लिये एक उपयुक्त प्रबन्धन व्यवस्था की आवश्यकता है जो वैज्ञानिक विधियों से हानिकारक कीटों को नष्ट कर सके, कृषि उत्पादन में वृद्धि हो तथा पर्यावरण पर भी प्रतिकूल प्रभाव न हो।

महासागरीय प्रदूषण

सामान्यतया महासागरों के सम्बन्ध में यह मान्यता रही है कि ये विशाल जल से युक्त हैं और इसमें जो भी पदार्थ समाहित होते हैं वे उसमें विलीन हो जाते हैं तथा उनका किसी प्रकार का प्रतिकूल प्रभाव नहीं होता। किन्तु यह मान्यता पूर्णतया भ्रामक है क्योंकि सामुद्रिक जल पर भी प्रदूषण उतना ही प्रभावी होता है जितना अन्य पर तथा उसका जल जीवों एवं सामुद्रिक पारिस्थितिकी पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। विगत तीन-चार दशकों में यह विचार प्रबल होता जा रहा है कि महासागर अपशिष्ट पदार्थों को प्रवाहित करने के स्थल नहीं हैं। महासागरों में डाले जाने वाले अपशिष्टों की मात्रा इतनी अधिक हो गई है कि उनका प्रभाव विश्वव्यापी हो सकता है। यही नहीं, अपितु महासागरों से आज अनेक प्रकार के खनिज प्राप्त किये जा रहे हैं जिनमें खनिज तेल प्रमुख हैं, तो दूसरी ओर परमाणु बमों का विस्फोट महासागरों को प्रदूषित कर रहा है।

महासागरों में तेल फैलना एक प्रमुख समस्या है, क्योंकि सागरीय मार्गो से ही तेल ढोया जाता है। वर्ष 1969 और 1983 के मध्य 500 से भी अधिक तेल टेंकरों की दुर्घटना हुई जिसके फलस्वरूप दस लाख टन से भी अधिक तेल फैल गया। खाड़ी युद्ध के समय तेल टेंकरों पर हुए आक्रमणों से फैले तेल से विस्तृत क्षेत्र में सामुद्रिक जीव-जन्तुओं का विनाश हो गया और क्षेत्रीय पर्यावरण पर अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। टेंकरों से तेल का रिसाव होता रहता है, यदि यह कम होता है तो उसका प्रभाव विशेष नहीं होता किन्तु यदि अधिक होता है तो विस्तृत क्षेत्र में तेल फैल जाता है जैस कि अक्टूबर, 1997 में सिंगापुर के निकट भारी तेल का रिसाव हुआ। यही नहीं अपितु जहाज के कप्तान चिकनाई आदि की सफाई कर सम्पूर्ण गन्दगी को सागर में डाल देते हैं, यह भी हानिकारक होती है।

तटों के निकट पैट्रोलियम की खुदाई भी तेल प्रवाह का कारण बनती है। इस प्रकार का सर्वाधिक तेल प्रवाह जून, 1979 में मैक्सिको राष्ट्रीय आयल कम्पनी 'पेमेक्स' द्वारा तटीय तेल के कुओं से हुआ। इस प्रकार की खुदाई अनेक देशों के तटों पर हो रही है और इससे विशाल मात्रा में तेल सागरीय जल में चला जाता है।

अनेके विषैले रसायन युक्त अपशिष्ट पदार्थ जिसमें रासायनिक युद्ध में काम आने वाले पदार्थ, कीटनाशकों के अपशिष्ट, रेडियो एक्टिव पदार्थों के अपशिष्ट आदि महासागरों में डाल दिये जाते है। यही नहीं, अपितु महासागरों और सागरों के तटों पर बसे नगरों की सम्पूर्ण गन्दगी को एकत्र कर वहाँ के जल में प्रवाहित कर देने से अत्यधिक विपरीत प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार से वर्तमान में महासागरों के प्रदूषण में अत्यधिक वृद्धि होती जा रही है जिससे सागरीय पारिस्थितिकी संतुलन पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। वर्ष 1972 के स्टाकहोम में हुए सम्मेलन में एक अध्ययन प्रकाशित किया गया, जिसने सम्पूर्ण विश्व के देशों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। किन्तु इस दिशा में अभी तक कोई विशेष प्रगति नहीं हुई है। परमाणु बमों के परीक्षण विस्फोटों से महासागरीय पर्यावरण अत्यधिक प्रभावित होता है, इस पर तुरन्त प्रभाव से प्रतिबन्ध आवश्यक है। वास्तव में विकसित देश इस समस्या के प्रति उदासीन हैं इसी कारण यह समस्या अधिक होती जा रही है।

पर्यावरणीय युद्ध

आज वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान-विज्ञान का इतना विकास हो गया है कि पर्यावरण के कतिपय पक्षों का युद्ध में उपयोग होने लगा है, इसका उदाहरण खाड़ी युद्ध में भी सामने आया। संयुक्त राज्य अमेरिका ने इण्डोचीन युद्ध (1967-72) में सर्वप्रथम मौसम परिवर्तन को युद्ध के हथियार के रूप में काम लिया। उन्होंने इस प्रकार की परिस्थितियाँ तैयार की कि मानसून का प्रकोप सामान्य से अधिक हो गया। वियतनाम युद्ध में पर्यावरण को हथियार के रूप में प्रयुक्त करने का सर्वप्रथम प्रयोग किया गया। हवाओं की दिशा में परिवर्तन, तेज हवायें, सामुद्रिक ज्वार उत्पन्न करना, बर्फीली वर्षा, कृत्रिम भूकम्प, नदियों के प्रवाह में परिवर्तन, कोहरा, धुन्ध आदि अनेक क्रियाओं को अप्राकृतिक रूप में उत्पन्न कर उनका प्रयोग शत्रु की विफलता हेतु किया जाता है।

इसी प्रकार रसायन हथियारों का प्रयोग पर्यावरण को अत्यधिक हानि पहुँचाता है। वर्तमान में जैविक हथियार भी तेयार किये गये हैं जो अत्यधिक हानिकारक हैं। विभिन्न प्रकार की मिसाइलों जैसे क्रूज, बैलास्टिक आदि से सम्पूर्ण क्षेत्रीय वायुमण्डल प्रदूषित हो जाता है। 1990 के खाड़ी युद्ध में लाखों बेरल तेज का समुद्र में प्रवाहित होना सम्पूर्ण पारिस्थितिकी का संकट बन गया था जिसका प्रभाव अनेक वर्षो पश्चात् आज भी देखा जा सकता है। सैनिक विशेषज्ञों का मानना है कि प्रत्येक देश की कुछ वातावरण सम्बन्धी अथवा भू-भौतिकी कमजोरी होती है उसका दूसरा देश लाभ उठाना चाहता है किन्तु इस पर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से पूर्ण नियन्त्रण की आवश्यकता है।

उपर्युक्त वर्णित प्रमुख विश्व पर्यावरणीय समस्याओं के अतिरिक्त अनेक समस्याओं जैसे-पेय जल संकट, सूखा, बाढ़, भू-जल स्तर का गिरता जाना, ऊर्जा संकट, बंजर भूमि का विस्तार, वन्य जीवों का ह्रस, भूमि कटाव, उपग्रह प्रक्षेपण से प्रदूषण आदि के कारण आज पृथ्वी का 'बायोम' संकटग्रस्त हो रहा है। अनेक समस्यायें जो पहले क्षेत्रीय रूप में विद्यमान थीं अब अन्तर-क्षेत्रीय एवं विश्वव्यापी रूप लेती जा रही है। यह नहीं है कि विश्व जनमत, वैज्ञानिक एवं सरकारें इसके मूक दर्शक हैं अपितु इस दिशा मं। विगत तीन दशकों में पर्याप्त कदम उठाये गये हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक समझौते एवं कानून बनाये गये हैं और विश्व संगठनों के प्रत्येक मंच पर पर्यावरण का मुद्दा प्रमुखता से उभर रहा है। किन्तु स्वार्थ की राजनीति एवं व्यापारीकरण की प्रवृत्ति इसमें सर्वाधिक बाधक है। पर्यावरण विश्व की सांझी विरासत है और इसकी रक्षा करना सभी का उत्तरदायित्व है, इसके लिये एक विस्तृत कार्ययोजना तैयार करना आवश्यक है, साथ ही इस योजना का क्रियान्वयन भी प्रभावी एवं समयबद्ध रूप में होगा तभी विश्व पर्यावरण की रक्षा सम्भव हो सकेगी।

प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. अरूण रघुवंशी और चन्द्रलेखा रघुवंशी पर्यावरण तथा प्रदूषण, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल 1987
2. हरिशचन्द्र व्यास (सं.) जनसंख्या प्रदूषण एवं पर्यावरण विद्याविहार, नई दिल्ली 1989
3. शुकदेव प्रसाद (सं.) पर्यावरण और हम, प्रभात प्रकाशत, दिल्ली 1989
4. वी.के. श्रीवास्तव एवं राव पर्यावरण और पारिस्थितिकी, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर 1991
5. पी.एस.नेगी पारिस्थितिकी विकास एवं पर्यावरण भूगोल, रस्तोगी, मेरठ 1990
6. अहमद, जेड़ चेंजिंग पैटर्न्स आफ दि ज्वाइंट फैमिली सिस्टम', लखनऊ यूनिवर्सिटी जर्नल आफ सोशल वर्क, वालूम 4, दिसंबर 1968
7. अव्वासी, एम.एफ. ऐंड उपाध्याय, डी.पी. सुपरवाइजर्स गाइड-सुपरवाइजर्स जाब, नेशनल प्रोडक्टविटी काउंसिल, न्यू डेलही 1970
8. इवांस, एम.जी. सुपरवाइजर्स एटीट्यूड्स ऐंड डिपार्टमेंट परफारेमैस, जर्नल ऑफ मैजमेंट स्टडीज मई 1965
9. ऐंडरसन, डी.एस. वी लेट सुपरवाइजर्स सेट अवर क्लैरिकल नार्मस, एडवांस्ड मैनेजमेंट बालूम 10, अक्टूबर, 1970
10. कारनिक बी.बी. समरी आफ लेक्चर्स आन ट्रेड यूनियेस ऐंड पालिटिक्स, बाम्बे लेवर जर्नल, बालूम 6, 1964
11. किस्ट्र पू.जे.एच. ह्रर्ड गवर्नमेंट ईप्लाईज ज्वाइन यूनियन सरसोनेल ऐडमिनिस्ट्रेशन, वालूम 29, संख्या 5, 1966
12. कुलकर्नी, आर.एस. प्रोडक्टिविटी ऐंड रेपिड नेशनल इकनामिक डेवलपमेंट, बाम्बे लेवर जर्नल, वालूम 7, दिसंबर, 1967
13. जान्सन, जी.आर. सुपरविजन टूवे स्ट्रीट नम ह्रयर, पर सोनैल जर्नल, वालूम 50, नवंबर, 9, दिसंबर, 1971
14. जैन.एच.सी. सुपरवाइजरी कम्युनिकेशन इफेक्टिवनेस ऐड पर फार्मेस इन टू अरबन हास्पिटल्स, परसोनेल जनैल, वालू 50, मई, 1971
15. डेसामी, के.जी. ए स्टडी आफ वर्क्स इक्स्पेक्टेशंस, फ्राम सुपर-वाइजर्स ऐंड मैनेजमेंट इंडियन जनर्ल आफ सोशल वर्क, वालूम नवम्बर 2 जुलाई, 1969

भारत में बढ़ती घरेलू हिंसाः कारण, प्रभाव एवं समाधान

नितिन कुमार

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, कलिंगा विश्वविद्यालय, रायपुर (छतीसगढ़)

डॉ० संध्या तिवारी

(शोध निर्देशक), सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, कलिंगा विश्वविद्यालय, रायपुर (छतीसगढ़)

शोधालेख सारः- घरेलू हिंसा अधिनियम के द्वारा महिला के साथ हो रहे गलत व्यवहार के लिए जिम्मेदार पुरुष को दंडित किया जाना तथा अगर एक महिला तलाकशुदा है तो उसे उसके पूर्व पति से सुरक्षा प्रदान करना भी इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य है। जानकारी के तहत परिवार के अंदर महिलाएं अधिक शोषण का शिकार होती हैं। महिला के विरुद्ध हो रहे अपराधों में महिला के पति तथा उसके रिश्तेदारों द्वारा की जाने वाली क्रूरता शीर्ष पर है। महिलाओं के विरुद्ध किए जा रहे अपराधों में से घरेलू हिंसा के मामले 26: है। घरेलू हिंसा महिलाओं के साथ हो रहे अपराधों में शीर्ष पर है।

वस्तुतः हमारे देश में महिलाओं के साथ हो रही घरेलू हिंसा को रोकने तथा महिलाओं के सरंक्षण के लिए भारतीय दंड सहिता में घरेलू हिंसा से महिलाओं को बचाने के लिए अधिनियम 2005 का निर्माण किया गया। इस अधिनियम का एकमात्र लक्ष्य महिलाओं को उनके विरुद्ध हो रहे अत्याचारों से बचाना तथा उनके अधिकारों का सरंक्षण करना है। इस अधिनियम के अंतर्गत अगर कोई पुरुष किसी प्रकार का शारीरिक या सामाजिक बल लगाकर महिला को घर से निकाल देता है तो महिला वापिस घर में जाकर रह सकती है। तलाकशुदा महिला को जीवन यापन के लिए मासिक खर्चे का प्रावधान भी इस अधिनियम के तहत है।

मूल शब्दः- घरेलू हिसां, भारतीय दंड सहिता, अधिकारों का सरंक्षण।

भूमिकाः- इस अधिनियम का उद्देश्य महिलाओं को उनके हकों से अवगत करने के साथ साथ कानूनी प्रक्रिया की द्वारा उनके हक लेने से भी है। भारतीय संविधान के अनुसार घरेलू हिंसा के विभिन्न रूप हैं। किसी महिला को शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक रूप से प्रताड़ित करने के साथ साथ गली गलौच देना, महिला को समाज तथा परिवार की नजरों में गिराना, किसी भी प्रकार से महिला का अपमान करना, उसके चरित्र पर ऊँगली उठाना, बच्ची की शादी उसकी इच्छा के विरुद्ध करना, आदि। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो की रिपोर्ट के अनुसार भारत वर्ष में दो तिहाई महिलाएं घरेलू हिंसा का शिकार होती हैं। भारत वर्ष में 14 से 50 वर्ष तक के आयु वर्ग में लगभग 72% महिलाएं घरेलू हिंसा का शिकार होती हैं।

महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा के कारण

1. घरेलू हिंसा का सबसे मुख्य कारण मूर्खतापूर्ण मानसिकता होती है। पुरुषों के द्वारा यह माना जाता है कि महिलाएं उनकी अपेक्षा शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक तौर पर कमजोर होती हैं। इसी कारण वह महिलाओं को घरेलू हिंसा का शिकार बनाते हैं।
2. विवाह के उपरांत अपने पति के अलावा किसी और के साथ किसी प्रकार का नाजायज संबंध रखना, अपने ससुराल वालों के साथ अच्छा व्यवहार ना करना, उनकी देखभाल न करना, कुछ मामलों में महिलाएं अपने बांझपन के कारण ही परिवार के अन्य सदस्यों की उपेक्षा सहन करती है।
3. प्राप्त दहेज से संतुष्ट ना होना, साथी के साथ बहस करना तथा उसकी बात ना मानना, साथी के साथ यौन संबंध बनाने में आनाकानी करना, अच्छा भोजन ना पकाना, परिवार वालों के साथ अच्छा व्यवहार न करना तथा साथी की इजाजत के बिना घर से बाहर निकलना आदि घरेलू हिंसा के कारणों में सम्मिलित हैं।
4. शहरी क्षेत्र में यदि महिला कार्यशील है तथा वह अपने पति से अधिक आय कमाती है तो ससुराल वाले तथा अन्य रिश्तेदार उसके प्रति द्वेष का भाव रखने शुरू कर देते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं को इसलिए भी घरेलू हिंसा का शिकार होना पड़ता है क्योंकि या तो वह घर पर ही रहती है या फिर अगर नौकरी को लेकर इसीलिए तो उनकी आय पुरुष की तुलना में काफी कम होती है अक्सर उन्हें अपनी जरूरतों के लिए पुरुष पर निर्भर रहना पड़ता है। इसलिए भी परिवार के द्वारा उन्हें दबा के रखा जाता है। इसके लिए हिंसा का प्रयोग भी किया जाता है।

घरेलू हिंसा के प्रभावः

जब भी कोई व्यक्ति किसी प्रकार की घरेलू हिंसा का शिकार होता है भले ही वह मानसिक, शारीरिक, भावनात्मक या आर्थिक रूप में ही क्यों न हो, उस व्यक्ति के ऊपर नकारात्मकता हावी हो जाती है तथा उस व्यक्ति को इस स्थिति से निकलने में बहुत अधिक वक्त लग जाता है। वह अपनी नकारात्मकता से निकल नहीं पाता इस कारण वह अपनी जिंदगी का एक बहुत बड़ा हिस्सा नकारात्मकता से मुख्यधारा की तरफ लौटने में लगा देता है।

घरेलू हिंसा के दौरान अगर व्यक्ति मानसिक रूप से किसी बात का आघात अपने ऊपर ले लेता है तो उसका मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है तथा वह मानसिक असंतुलन का शिकार हो जाता है। यह मानसिक अवसाद उसकी जिंदगी बर्बाद कर देता है।

घरेलू हिंसा सबसे पीड़ादायक इसलिए होती है क्योंकि घरेलू हिंसा के दौरान आपके ऊपर हिंसा करने वाला आपका अपना तथा आप का सबसे भरोसेमंद इंसान ही होता है। जब एक औरत के साथ घरेलू हिंसा जैसा जघन्य अपराध होता है तो इस मामले में उसके माता-पिता, उसका पति, उसका भाई यह सब सम्मिलित होते हैं। वही जब एक पुरुष घरेलू हिंसा का शिकार होता है तो उस उसे उसकी माता-पिता तथा उसकी पत्नी या उसके छोटे या बड़े भाई बहन के द्वारा प्रताडिघ्त किया जाता है। वहीं दूसरी तरफ जब एक बच्चे या किशोर पर इस प्रकार का हिंसात्मक उत्पीड़न होता है तो उस पर उत्पीड़न करने वाले उसके माता-पिता तथा उसके परिवार के सदस्य ही होते हैं।

जब भी एक बच्चा अपने परिवार में अपने साथ इस प्रकार का व्यवहार देखता है तो वह अपने पिता की तरह गुस्सैल तथा आक्रामक व्यवहार का हो जाता है। ऐसे बच्चे अपने हिंसात्मक सोच को अन्य कमजोर बच्चों तथा जानवरों के ऊपर निकालते हैं।

बालिकाओं पर घरेलू हिंसा के मामले अलग तरह से असर करते हैं। ऐसी स्थिति में वे चुपचाप रहना शुरू कर देती हैं। वह परिस्थितियों से दूर भागने लग जाती है तथा वह दब्बू बन जाती हैं।

इस प्रकार घरेलू हिंसा हर इंसान की जिंदगी को प्रभावित करती है भले ही वह इंसान सिर्फ उस चीज को अपने घर में घटित होते हुए देख रहा हो। बल्कि उसके साथ घरेलू हिंसा का व्यवहार ना हो रहा हो। परंतु जब वह अपने परिवार में इस प्रकार का कोई कृत्य देखता है तो उसकी मानसिकता पर प्रतिकूल असर पड़ता है।

घरेलू हिंसा से समाधान के उपायः

राष्ट्रीय महिला आयोग के द्वारा किए गए शोध के अनुसार, अगर एक व्यक्ति जिसके ऊपर घरेलू हिंसा जैसा कृत्य हुआ है वह हमेशा आक्रामक व्यवहार का नहीं होता। उसे अगर थोड़े से अच्छे वातावरण में रखा जाए तो उसके ऊपर से घरेलू हिंसा के प्रभाव कम हो जाता है और वह अपने इस मानसिक विकार से बाहर निकल सकता है।

भारतवर्ष में घरेलू हिंसा को सिर्फ पति-पत्नी आए परिवार के बीच हो रहे बातचीत का मुद्दा समझ कर छोड़ दिया जाता है। इसी कारण भारतवर्ष में घरेलू हिंसा के पीछे चल रही मानसिकता के ऊपर बहुत ही कम अध्ययन किया गया है। कई विशेषज्ञों के द्वारा इन मुद्दों पर कहा गया है कि महिलाओं तथा बच्चों के साथ हो रही हिंसा को समाप्त करने के लिए सिर्फ पुरुषों को ही अपनी सोच नहीं बदलनी होगी अभी तो इस मामले में समाज को भी यह समझना होगा कि घरेलू हिंसा सिर्फ शारीरिक तौर पर ही एक व्यक्ति को नुकसान नहीं पहुंचाती अपितु वे उसे भावनात्मक तथा मानसिक तौर पर भी तोड़ देती है।

घरेलू हिंसा के मामलों में समाधान के लिए सर्वप्रथम पुरुष को अपनी पुरुष वादी मानसिकता तथा अपनी मर्दानगी वाली मानसिकता से थोड़ा ऊपर उठकर महिलाओं को अपने समान सम्मान देने की जरूरत है।

घरेलू हिंसा के लिए आईपीसी की धारा- 498 (ए) घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 महिला के पति तथा महिला की किसी रिश्तेदार के द्वारा की जाने वाली क्रूरता से संबंधित है।

भारतीय संविधान तथा भारतीय कानून प्रणाली के अनुसार महिलाओं को बहुत सी सुविधाएं उपलब्ध करवाने के कड़े प्रयास किए जा रहे हैं। इसके अलावा महिलाओं की सुरक्षा के लिए एक राष्ट्रीय मिशन स्थापित करने की आवश्यकता है।

घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 महिलाओं तथा बच्चों को घरेलू हिंसा के विरुद्ध संरक्षण देने के लिए है। यदि आप एक महिला या बच्चा है और आपके ऊपर किसी प्रकार के परिवार का सदस्य या कोई रिश्तेदार आप को प्रताड़ित कर रहा है तो आप इस अधिनियम के तहत पीड़ित हैं।

सारांशः यदि हम भारत को घरेलू हिंसा से मुक्त बनाना चाहते हैं तो अब वक्त आ चुका है कि हमें व्यापक तौर पर इकट्ठा होकर राष्ट्रीय समूह के तौर पर खड़ा होकर इस के विरुद्ध आवाज उठाने की जरूरत है। सबसे अच्छा तरीका यह है कि इसके विरुद्ध सामाजिक अभियान की शुरुआत करें। जब समाज इसके विषय में खुलकर बात करेगा तभी इस समस्या का समाधान हो सकता है अन्यथा नहीं। महिलाओं को प्रेरित करें कि वे अपने विरुद्ध हो रहे हिंसा के मामलों को अधिक से अधिक दर्ज करवाने के लिए आगे आए ताकि वे एक रोल मॉडल बन सके और उन महिलाओं उनके विरूद्व हो रही हिंसा के प्रति जागरूक किया जा सके।

संदर्भ सूची:

- अली रिज्वी एवं सैयद फरजन्द, महिला अधिकार और कानून, दॉ ब्राइट बुक्स हाउस, दिल्ली, 2002.
- अशोक श्रीवास्तव, महिलाओं का उत्थान एवं गैर सरकारी संगठन, इण्डिया पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2001.
- आशा सिंह, महिलाओं के विरुद्ध घरेलू हिंसा का विभिन्न जातियों में प्रभाव, जनता प्रकाशन, मुंबई, 2003.
- आर.पी. जोशी, मानव अधिकारों की सुरक्षा, अभिनव पब्लिशर्स, अजमेर, 2000.
- आर.पी. पायल, मानव अधिकार, कॉमनवैल्थ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006.
- जी.एल. शर्मा, सामाजिक मुद्दे, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2015.
- वंदना सक्सेना, महिलाओं के विरुद्ध अपराध, शोषण एवं निवारण, मनीषा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2001.
- डी.पी. तिवारी, भारतीय नारी: वर्तमान समस्यायें और भावी समाधान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2000.
- सुनीता यादव, घरेलू हिंसा कानून, सार पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007.
- रवि प्रकाश यादव, महिलाओं एवं बालकों के विरुद्ध हिंसा, कोकिला पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1998.
- बसंती लाल बाबेल, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, 2015.

सिनेमा जगत और मनोरंजन के क्षेत्र में भाषा का योगदान

डॉ० स्वाति शर्मा

विभागाध्यक्षा, संगीत गायन, के०वी०डी०ए०वी० वुमन कॉलेज, करनाल (हरियाणा)

शोध-आलेख सार

भारतीय चित्रपट संगीत भी समय के साथ-साथ होने वाले परिवर्तन में बहता चला गया है। जिस तरह आज भारतीय समाज पाश्चात्य रहन सहन की ओर अग्रसर है, उसी तरह भारतीय सीने जगत का भी पाश्चात्यीकरण हो चुका है। संगीत वाद्य, संगीत धुनें तथा भाषा भी अंग्रेजी प्रधान हो गयी है। जहां तक संख्या का प्रश्न है, आज के समय में क्षेत्रीय भाषाओं की फिल्मों की बाढ़ भी आ गयी है परन्तु उनमें संगीत व भाषा का स्तर निम्न होता जा रहा है। भाषा के स्तर को उठाने के लिए निरंतर प्रयास की आवश्यकता है। यदि हम शास्त्रीय संगीत की बात करें तो हम देखते है कि स्पर्धा के इस युग में अपना स्थान बनाये रखने के लिए कुछ नवीन करने की प्रवृत्ति आज के कलाकारों का और अधिक ग्रहणशील बना रही है। बदलती रूचियों परिस्थितियों व सामाजिक परिवेश के कारण कलाकार को अपनी कला में भी निरंतर परिवर्तन करने पड़ रहे है।

मुख्य-शब्दः कल्पना, चित्रपट संगीत।

भाषा अभिव्यक्ति का साधन है और ज्ञान ग्रहण करने का माध्यम भी। भाषा का ज्ञान व्यक्तिगत विकास की प्रथम सीढ़ी है। भाषा विचारों की जननी है और विचारों का सही सम्प्रेषण भाषा के माध्यम से ही हो सकती है। इस प्रकार भाषा और विचारों का सीधा सम्बन्ध है। विचार के अभाव में भाषा मूल ही और निर्थक है। मनुष्य के विचारों तथा भाषा का ही मूल्य और महत्त्व होता है। मनुष्य के अलावा अन्य प्राणियों की अपनी भाषा होती है परन्तु विचारों के अभाव में उसका उतना मूल्य नहीं रह जाता। इस तरह मानव-भाषा की अपनी अनूठी विशेषता होती है कि वह विचार शून्य न होकर विचारयुक्त होती है। विचार का सामान्य अर्थ 'कल्पना' से लिया जा सकता है। संगीत का मूल आधार भी कल्पना ही है। सभी सांगीतिक प्रस्तुतियां कल्पना पर आधारित है। संगीत के माध्यम से ही कलाकार अपनी कल्पना शक्ति को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए भाषा का सहारा लेता है। भाषा का अपने समाज की सभ्यता और संस्कृति से अटूट सम्बन्ध रहता है। संगीतकार की रचना अपने चारों ओर के वातावरण पर निर्भर करती है जोकि मूलतः उसकी सामाजिक परिस्थिति से जुड़ा होता है। मानव का आचरण तथा व्यवहार को भाषा ही मूर्तरूप प्रदान करती है। भाव चाहे कोई भी हो उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम स्वर लय के साथ-साथ शब्द भी होते हैं। अतः किसी भी प्रदेश के संगीत में वहां के लोक जीवन की झलक मिल जाती है। इसी तरह भाषा भी किसी भी समाज का दर्पण होती है। हरियाणवी जहां हरियाणा प्रदेश की संस्कृति व सभ्यता का दर्शाती है। वहीं भोजपुरी उत्तर प्रदेश के लोक जीवन व सभ्यता की ओर मुखरित करती है।

प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही मनोरंजन प्रिय रहा है। अतः मनोरंजन के नित नये साधन वह अपने लिए सदा खोजता रहता है। मनोरंजन के अनेक साधनों में चित्रपट एक सस्ता, सुलभ तथा अति मनोरंजक साधन है। भारतीय चित्रपट ने अपने उद्‌गम से ऐसा विकास किया है जो अब हमारे जीवन का अंश ही बन गया है।

आज हम जो चित्रपट देखते है वह हमारे सामने चित्रपट का प्रत्येक प्रकार से विकसित और परिष्कृत रूप है परन्तु ये रूप जो आज हमारे सामने है यह कोई दिन महीनों और वर्षों में होने वाले विकास का परिणाम बल्कि यह शताब्दियों की मेहनत और लगन का फल था। जिसको बाद में एक ऐसे व्यवसाय के रूप में बनाया गया जिसमें मनोरंजन था। लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष पुरानी बात है। पूर्वी जर्मनी का एक युवा गणितज्ञ गणित के किसी प्रश्न को हल कर रहा था, वह कुर्सी पर बैठा हुआ था और सामने मेज पर एक लैम्प जल रहा था सोचते, सोचते उसकी नजर दीवार की ओर गई वहाँ से उसे अपनी टोपी की छाया दिखाई दी, जिसे देखकर उसे घोड़े पर सवार मनुष्य का आभास हुआ।[1] जिसे देखकर युवक को आश्चर्य हुआ और अच्छा भी लगा । वह तेजी से सिर हिलाने लगा, ऐसा लग रहा था कि घुड़सवार भी तेजी से दौड़ रहा है। बस यहीं से चित्रपट बनाने की कल्पना और कहानी आरंभ होती गई। उस गणितज्ञ का नाम था "एथेनासिमस किर्चर"। सन् 1945 में उसने एक लालटेन बनाई, जिसे उसने 'जादुई लालटेन' कहा।

भारतीय चित्रपट निर्माताओं ने इन सभी बातों का विशेष ध्यान रखा।[2] चित्रपट में ऐसा संगीत दिया जाने लगा जो जन-मानस को अपनी ओर आकर्षित करता है। निर्माताओं ने भारतीय जन-मानस में रूची एवं पौराणिक कथाओं, ऐतिहासिक तथ्यों और पात्रों को ध्यान में रखकर चित्रपट निर्माण किए अर्थात् इसके लिए संगीत भी अपनी पारम्परिक शैलियों को मुखरित करता हुआ चुना गया तथा लेखन तथा भाषा सरल हो विशेष ध्यान रखा गया और ऐसे संगीत को वाद्यवृन्दों द्वारा और कलाकारों की मधुर आवाजों द्वारा सजा-संवारकर ही चित्रपटों के साथ-साथ जोड़ा गया ताकि संगीत और चित्रपट आपस में घुल-मिल जाए। यह संगीत खूब प्रचलित, प्रसारित हुआ और धीरे-धीरे भारतीय जनमानस में जहाँ लोक संगीत की मधुरता; सादगी थी वही सुगम संगीत की कल्पनाप्रियता और आकर्षकता थी।[3] शास्त्रीय संगीत की गंभीरता विद्यमान थी तो गले की विस्मयकारी रोमांचित करती अठखेलियाँ भी तान तरंगों के रूप में उपलब्ध थी।

विभिन्न शब्दों और रसों के अनुकूल भावपूर्ण स्वरावलियाँ थी तो नि:शब्द परन्तु अर्थ पूर्ण वाद्य संगीत की ध्वनि तरंगे भी थी।[4]

भारतीय चित्रपट संगीत भी समय के साथ-साथ होने वाले परिवर्तन में बहता चला गया है। जिस तरह आज भारतीय समाज पाश्चात्य रहन सहन की ओर अग्रसर है, उसी तरह भारतीय सीने जगत का भी पाश्चात्यीकरण हो चुका है। संगीत वाद्य, संगीत धुनें तथा भाषा भी अंग्रेजी प्रधान हो गयी है। जहां तक संख्या का प्रश्न है, आज के समय में क्षेत्रीय भाषाओं की फिल्मों की बाढ़ भी आ गयी है परन्तु उनमें संगीत व भाषा का स्तर निम्न होता जा रहा है। भाषा के स्तर को उठाने के लिए निरंतर प्रयास की आवश्यकता है। यदि हम शास्त्रीय संगीत की बात करें तो हम देखते है कि स्पर्धा के इस युग में अपना स्थान बनाये रखने के लिए कुछ नवीन करने की प्रवृत्ति आज के कलाकारों का और अधिक ग्रहणशील बना रही है। बदलती रूचियों परिस्थितियों व सामाजिक परिवेश के कारण कलाकार को अपनी कला में भी निरंतर परिवर्तन करने पड़ रहे है। इस परिवर्तनों के साथ-साथ हमारे कलाकारों को भारतीय संगीत की मूल भावना को विलुप्त होने से हमारे कलाकारों को भारतीय संगीत की मूल भावना को विलुप्त होने से बचाना होगा । क्योंकि संगीत का भारतीय समाज पर तथा युवा पीढ़ी पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। चित्रपट संगीत में कई वर्षों से समाज का मनोरंजन करता रहा है। प्रत्येक गीत के बोल या शब्द का प्रभाव आम जन मानस पर होता रहा है और हमेशा होता रहेगा। भाषा सभ्य होगी तो ऐसा संगीत समाज के लिए तथा युवा पीढिघ्यों के लिए लाभकारी होगा ।

संदर्भ

1. डॉ० उमा गर्ग, संगीत का सौन्दर्य बोध, (फिल्म संगीत में), पृ० 2
2. बच्चन श्रीवास्तव, भारतीय फिल्मों की कहानी, पृ० 40
3. फिरोज रंगूनवाला, भारतीय चित्रपट का इतिहास, पृ० 113
4. डॉ० विमल, हिन्दी चित्रपट एवं संगीत का इतिहास, पृ० 65

रेडियो नाटक का शिल्प विधान

डॉ० ओमवती देवी

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, दिगम्बर जैन कॉलिज, बडौत (बागपत)

रेडियो-नाटक नाटकीय विधा का वह रूप है जो मुख्यतया प्रसारणार्थ ही प्रणीत होता है अथवा अल्प परिवर्तनोपरान्त जिसे प्रसारित किया जा सके। रेडियों का मूलाधार ध्वनि है तथा इसी आधार पर प्रणीत नाटक रंगमंचीय नाटकों से भिन्न हो एक स्वतन्त्र विधा के अन्तर्गत अभिहित होते हैं। रेडियों नाटक पूर्णतया श्रव्य होने के कारण शब्द-प्रधान होते हैं तथा शब्द ही उनकी साहित्यिकता का निष्कर्ष है। चिरंजीत के शब्दों में, ''शब्द-प्रधान होने के कारण रेडियो-नाटक पूर्णतया एक स्वतन्त्र साहित्यिक विद्या है।''[1] रेडियो नाटक के प्रारम्भिक काल में इसे साहित्यिकता की कोटि में नहीं रखा जाता था, किन्तु आज रेडियो नाटक विकास के सोपानों को पार करता हुआ निरन्तर विकासोन्मुख हो रहा है तथा शिल्प एवं कथ्य, दोनो ही दृष्टि से परिपूर्णता को प्राप्त करने में समर्थ है। कुल मिलाकर ''रेडियो नाटक ने 1947 के बाद से न केवल अपने को हिन्दी साहित्य की जनोपयोगी स्वतन्त्र सशक्त एवं विकासशील विद्या के रूप में प्रतिष्ठित किया है, बल्कि हिन्दी के नाटक साहित्य की अन्य-विद्याओं को भी भाव, भाषा एवं शिल्पगत सौष्ठव की दृष्टि से प्रभावित तथा प्रेरित किया है। रेडियो नाटक स्वातंत्र्योत्तरकालीन हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।''[2]

शिल्प विधान की दृष्टि से देखें तो -

रेडियो-नाटक पूर्णतया श्रव्य है। अत: भावाभिव्यक्ति का सशक्त साधन ध्वनि ही इसका मूलाधार है। रेडियों नाटककार चित्रकार की भांति ही नाटक में ध्वनि-संयोजन द्वारा उन रंगों को बिखेरता है जोकि एक सुन्दर चित्र हेतु अपेक्षित हैं। रेडियो नाटक में ध्वनि का उपयोग तीन रूपों में होता है- भाषा, ध्वनि-प्रभाव एवं संगीत। रेडियो नाटक के यही तीन साधन रेडियो नाटक के महान त्रयी कहे जाते हैं।[3]

भाषा

भाषा रेडियों-नाटक का प्राण है। इसके अभाव में नाट्य-स्वरूप एक पल के लिए भी खड़ा नही हो सकता। रेडियो-नाटकों का भवन शब्दो पर खड़ा होता है।[4] भाषा के अन्तर्गत रेडियो नाटक के तीन तत्व कथानक, चरित्र चित्रण, सम्वाद समाहित हो जाते हैं। रेडियो नाटक में भाषा का विशेष महत्व है, क्योंकि मानस चक्षुओं की शब्दों के माध्यम से ही मंचीय अभाव-पूर्ति की जाती है। नाटककार को शब्दों के श्रव्य रूप पर ही दृष्टि केन्द्रित करनी पडती है पठित पर नहीं। अत: रेडियों की भाशा के लिए नाटककार का अनिवार्य धर्म हो जाता है कि वह शब्दों की शक्ति एवं वाक्यों के श्रोता पर पड़ने वाले समग्र प्रभाव का भली भाँति परीक्षण कर ले अन्यथा नाटक रेडियों की दृष्टि से असफल होगा। इसीलिए, रेडियो की भाषा नाटक की भाषा से भिन्न हो जाती है। तात्पर्य यह है कि रेडियों में केवल उन्ही शब्दों और वाक्यों का मूल्य है जो सरलता से बोले जा सकें और श्रोता भी जिनका अर्थ ग्रहण शीघ्र ही बिना किसी आयास के कर लें।[5] अर्थात भाषा में सापेक्षिक अर्थ श्रोता- सम्वेद्य-शक्ति का होना नितान्त आवश्यक है। रेडियो नाटक में भाषा का व्यवहार दो रूपो में स्पष्टतया दृष्टिगत होता है- (1) कथोपकथन अथवा संलाप के रूप में, (2) प्रवक्ता के नियोजित कथन अथवा नेरेशन के रूप में। भाषा के अन्तर्गत नाटकीय तत्व कथा, चरित्र चित्रण का समाहार स्वत: ही हो जाता है क्योंकि रेडियो नाटक शब्द के साथ ही इन गौण तत्वों का रूप स्पष्ट हो जाता है। अत: रेडियो नाट्य शिल्प के अन्तर्गत इन्हीं सब तत्वों का विवेचन अपेक्षित हो जाता है।

कथानक

कथानक नाट्य-भित्ति का वह आधार है जिस पर नाट्य-शरीर अवस्थित होता है। रेडियो नाटक की कथा ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक एवं काल्पनिक किसी भी प्रकार की हो सकती है। रेडियो नाटक की कथा संक्षिप्त, सरल एवं स्वाभाविक होती है तथा वहां नाटकीय क्रिया कलापों में क्षिप्रता, जिज्ञासा एवं रोचकता का होना नितान्त अनिवार्य है क्योंकि रेडियो नाटक का प्रेक्षक श्रोता है। अत: आवश्यक है कि मानवीय अनूभूतियाँ एवं मानवीय भावनाएँ ही नाटकीय विशय-वस्तु का निर्माण करें। रेडियो नाटक ही नहीं प्रत्युत रंगमंचीय नाटक की सफलता भी मानवीय सम्वेदनाओं के सम्प्रेशण में ही है। रेडियों की कथा संयोजित एवं संतुलित होनी चाहिए जिसमें स्थिति परिवर्तन के अनुरूप ही क्रिया कलापों में क्षिप्र गत्यात्मकता, प्रभाव गहनता तथा संघर्श निरन्तर बढ़ता जाए क्योंकि संघर्ष ही नाटकीय क्रिया-तत्व को विकास देता है। हरिश्चन्द्र खन्ना के शब्दों में, ''प्रभावजनक स्थिति का निर्माण इसमें अन्तर्निहित संघर्ष के विकास के बिना सम्भव नहीं और किसी भी संघर्ष का प्रकटीकरण उचित और ठोस चरित्रों की रचना के बगैर नहीं हो सकता क्योंकि एक नाटक की विविध घटनाएँ, उसकी महत्वपूर्ण स्थितियाँ, चरित्रों की समस्याओं से अविभूर्ति होती हैं।'' 'प्रस्तुत विचारों से स्पष्ट है कि संघर्ष ही नाटक की वह मूल क्रिया है जिसका अधिकाधिक प्रकटीकरण एवं मूर्तता प्रदत्त करना ही नाटककार का धर्म है। रेडियों नाटक में भी कथा में प्रारम्भ, मध्य और अन्त की स्थिति का निर्वाह करना पड़ता है। प्रारम्भ में मुख्य प्रतिपाद्य सेपरिचय, मध्य में प्रतिपाध का विकास एवं अन्त तक चर्मोत्कर्ष की स्थिति का स्पर्ष करना ही नाटककार का उद्देश्य होता

है। इसी के साथ रेडियों-नाटक समय की सीमा के परिबद्ध होता है। अत: कथा सूत्रों का विकास समय को दृष्टिगत करके ही किया जाता है। रेडियो नाटक की कथा में कुछ अंश ऐसे भी होते हैं जो शब्द की दृष्टि से मूक होते हुए भी ध्वनि एवं संगीत के माध्यम से स्पष्ट अर्थ द्योतन में समर्थ होते हैं। इन अंशों का शिल्प एवं प्रभाव की दृष्टि से बहुत महत्व होता है और रेडियो नाटककार के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह नाट्य-कथा में यथासम्भव निर्देष दे, क्योंकि यह ध्वनि-संकेत ही नाटकीय कथानक को गत्यात्मक को जीव संचरण करते हैं तथा श्रोता तक एक अर्थपूर्ण प्रभाव का सम्प्रेशण भी। ''प्रभाव की परिपूर्णता की दृश्टि से केवल ध्वनि-संगत घटनाओं तथा संकेतों का संकलन नही वांछनीय है।''[7] निष्कर्षत: नाटक का घटनाक्रम सुसंबद्ध हो, उसमें कहीं ढीलापन न हो। उपन्यास कहानी और रंगमंच- नाटक में कुछ ढीलापन रहे, तब भी काम चल सकता है, पर रेडियों नाटक में नहीं। इसकी अवधि सीमित होती है, पात्र अदृष्य होते हैं, इसलिए इसका कथानक इतना श्रृंखलाबद्ध होना चाहिए कि इसका प्रभाव तीर की तरह हो। कथानक का एक केन्द्र बिन्दु होना चाहिए जो श्रोताओं के मर्म पर आघात कर सके। यह तभी सम्भव है जब घटनाएं इधर-उधर न बिखरें, सीधी गति से चलें, स्पष्ट शब्दों में, रेडियो नाटक में अप्रासंगिक कथानक एवं घटनाओं के लिए कोई स्थान नहीं है। इसमें कोई भी घटना ऐसी नही आनी चाहिए जो मूल घटना की गति को आगे न बढाये, उसकी सहायता न करें।[8] मूलत: रेडियो-नाट्य कथानक का प्राण गति एवं प्रभाव है।

चरित्र-चित्रण

चरित्र-चित्रण रेडियो नाटक का महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि चरित्र ही कथा के उत्कर्ष एव अपकर्ष प्रदर्शन द्वारा अभीष्ट की प्राप्ति हेतु क्रियाशील एवं अग्रसरित होते है। इसीलिए चरित्र और कथानक एक दूसरे के कार्य-कारण रूप में ग्राह्य किए जाते हैं। चरित्र द्वारा ही समस्या प्रस्थापन, संघर्ष का प्रादुर्भाव तथा द्वन्द्वात्मक स्थिति का निर्माण होता है। इसी भाव को दृष्टिगत कर नाटककार दो प्रकार के पात्रों की सृजना करता है- मुख्य तथा गौण। रेडियो नाटक के सन्दर्भ में नाटककार की दृष्टि मुख्य पात्रों की ओर ही अधिक होती है क्योंकि अवधि के प्रश्न के कारण किसी भी समस्या का पाक्षिक स्पर्श ही सम्भव है। अत: नाटककार पात्रों की संख्या एवं पात्र निर्माण में नाटक महत उद्देश्य-सम्वाहन तथा श्रोता के औत्सुक्य एवं रूचि को दृष्टिगत कर ही चरित्रांकन करता है। रेडियों नाटक ध्वनि प्रधान होने के कारण अपेक्षाकृत पात्रों की अल्प संख्यता की ही अपेक्षा करता है क्योंकि पात्रों की पहचान स्वर-विभेद द्वारा ही सम्भव होती है तथा अधिक पात्रों के कारण किसी भी पात्र का पूर्ण व्यक्तित्व मुखर नहीं हो सकता जब कि किसी भी सफल नाटक के लिए उसके प्रतिपाद्य-पोषण हेतु आवश्यक है कि चरित्र अधिकाधिक स्पष्ट एवं मुखरित हो। मनोवैज्ञानिक आधार पर पात्र में स्वाभाविकता, सजीवता एवं क्षिप्र-कार्यक्षमता की अपेक्षा होती है क्योंकि रेडियो-नाटककार इन्हीं का अवलम्ब ग्रहण करके श्रोता को प्रभावित कर सकता है। डा0 सिद्धनाथ ने इसी तथ्य पर बल देते हुए कहा है कि ''पात्रों द्वारा रेडियो नाटककार श्रोताओं को प्रभावित करता है। पात्रों के विषय में पहली बात यह है कि उन पर एक सहज ही विश्वास कर सकें। वे पात्र हाड़-मास के सजीव मनुष्य हों जिनमें विश्वास-सृष्टि की पर्याप्त शक्ति हो।''[9] रेडियो नाटक में चरित्रांकन हेतु सर्वाधिक सतर्कता एक चरित्र तथा दूसरे के मध्य विभाज्य रेखांकन में है और यह तभी सम्भव हो सकता है जब कि प्रत्येक पात्र अपनी व्यक्तित्व रेखाओं का स्पष्टांकन कर सके तथा श्रोता को ध्वनि स्वर-भेद द्वारा पूर्ण रूप से उसके व्यक्तित्व का बोध सम्भव हो सके। अत: सफल चरित्रांकन के लिए अपेक्षित है कि ''पात्रों के चरित्र की रेखाएं साफ-साफ उभरी हुई होनी चाहिए। प्रत्येक पात्र की अपनी व्यक्तिगत विशेषताएँ प्रदर्शित की जायेंगी, तभी रेडियों नाटक सफल होगा।''[10]

सम्वाद

सम्वाद नाटक की वह षक्ति है जिसका अवलम्ब ग्रहण कर वह अनेक सोपानों के मध्य से होता हुआ फलागम की स्थिति को प्राप्त होता हैं रेडियो नाटक मूलत: ध्वन्यात्मक होने के कारण शब्दों एवं सम्वादों पर ही अवलम्बित होता है। रंगमंचीय नाटकों में अभिनय एवं पात्रों के हाव-भाव द्वारा अनेक भावनाएं उद्भासित हो पाती हैं जबकि रेडियो नाटक में इनकी अभावपूर्ति सम्वादों एवं षब्दो के माध्यम से ही सम्भव हो पाती है। अत: रेडियों नाटक में सम्वाद का विशिष्ट महत्व है। रेडियो नाटक में सम्वादों में सरलता, संक्षिप्तता, संगठना एवं गीत आदि गुणों का होना नितान्त अपेक्षित है। सम्वाद उत्तर प्रत्युत्तर रूप में नाटक को विकास देता है तथा विशेषकर रेडियो-नाटक में इसका दायित्व पात्र परिचय भी होता है क्योंकि श्रोता को इसका बोध सम्वाद द्वारा सम्भव हो पाता है। इसी के साथ रेडियो नाटक में दृश्य तत्वों का सम्वाहन भी संवाद को ही करना पडता है। इस दृष्टि से रेडियो नाटक का एक सम्वाद दर्षनीय है --

रेखा- रात बीत रही है माधव।

माधव- मेरी आंखो में नींद नहीं है।

रेखा- मैं कहती हूँ, अब सो जाओ।

माधव- नहीं रेखा, अभी नहीं सो सकता।.....11

प्रस्तुत उदाहरण में पात्र परिचय एवं वातावरण का उपयुक्त निर्माण हुआ है तथा सम्वाद में श्रोता को औत्सुक्य-वर्द्धन एवं रूचि का भी विशेष ध्यान रखा गया है। रेडियो नाटक में गतिशीलता या गागर में सागर की क्षमता अनिवार्य है क्योंकि ये नाटक समय की सीमा में परिबद्ध होते हैं। इस सन्दर्भ में श्री खन्ना का विचार है कि ''रेडियो शैली में वह शब्दावली अपेक्षणीय है जिस का अर्थ बिल्कुल स्पष्ट हो और वे शब्द ऐसे होने चाहिए जिनकी सहायता से श्रोता सम्पूर्ण सम्वेद्य ग्रहण कर सके। अगर रेडियों नाटककार ऐसी शब्दावली का उपयाग करेगा जो सम्वेदन-संकेत में सम्पन्न है तो श्रोता निश्चय ही अनुभूति रंजित होकर उसकी कलाकृति से आन्दित होगा। ऐसे शब्द जो ध्वनिमात्र से अर्थ का प्रकटीकरण करते हों या ध्वनि का लय से उचित वातावरण पैदा कर सकते हों, अधिक से अधिक प्रयुक्त होने चाहिए।[12] इसी के साथ सम्वाद में स्वाभाविकता तथा पात्रानुरूप भाषा का निर्वाह भी नितान्त आवश्यक है क्योंकि मानव को वही वस्तु प्रिय है जो मानव जीवन एवं स्वभाव से नैक्ट्य स्थापन में सक्षम हो। रेडियो-नाटक के सम्वादों में स्वर के आरोह-अवरोह के प्रति भी नाटककार

को सर्तक होना अनिवार्य है। हाँ, सम्वाद की इस स्थिति के प्रति कलाकार एवं निर्देशक की पर्याप्त सतर्कता भी अपेक्षित है क्योंकि नाटक की नियति अन्ततोगत्वा इन्हीं के कौशल में केन्द्रित है। सम्वाद में एकरूपता का होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इसके अभाव में नाटक का प्रभाव नगण्य ही होगा जोकि नाटक को न केवल असफलता प्रदान करेगा प्रत्युत श्रोता के मन के विकर्षण का केन्द्र भी।

रेडियो-नाटक में सम्वादों के अन्तर्गत स्वगत भाषण का भी विशेष महत्व है। प्राय: पात्र के मनोवैज्ञानिक एवं मानव मन में अवस्थित कुंठाओं तथा जटिल मनोभावों के प्रस्तुतीकरण हेतु यह रूप बहुत ही सहायक एवं सफल रहा है। स्वगत भाषण जहां रंगमंचीय नाटक पर विचित्र एवं अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं, वही दूसरी ओर रेडियो नाटक में मानव मन के अन्तर्द्वन्द्व, बाह्य तथा अंत:संघर्ष, चेतन-अवचेतन के द्वन्द्व का बहुत साकार, स्पष्ट एवं सजीव रूप प्रस्तुत करने में सफल रहे हैं। सम्वादों का रूप यहाँ दीर्घ होते हुए भी खलता नहीं प्रत्युत रूचिकर प्रतीत होता है। इस कथ्य का सबल प्रमाण आकाशवाणी से प्रसारित वे नाटक हैं जहाँ प्रणय एवं सामाजिक कुरीतियों का वस्तुरूप में चयन किया गया है।

नेरेशन

''नेरेशन से तात्पर्य नाटक के उस अंश से है, जिसमें कोई पात्र नाटक के क्रिया-कलापों का वातावरण निर्मित करता है, आवश्यक विवरण देता है, घटनाओं की श्रृंखला जोड़ता है, अथवा घटनाओं की आलोचना करता है।''[13] ऐसे पात्र को नेरेटर, सूत्रधार, प्रवक्ता, वाचक, वाचिका, पुरूष-स्वर, स्त्री-स्वर, कथाकार, आलोचक, उद्घोषक आदि अनेक नाम दिए जाते हैं। ऐसे पात्र का काम नाटक की उन बातों को कहना होता है जो कथोपकथन के अन्तर्गत नहीं आ पाती।[14] प्रथम बार इसका उपयोग सन् 1930 में बी0बी0सी0 से प्रसारित 'लार्ड जिन' के रेडियो रूपान्तर में हुआ था।[15] नेरेशन का प्रयोग अधिकतर ऐतिहासिक-पौराणिक नाटकों में अथवा 'रूपक' रेडियो-रूपान्तर आदि में उपयोगी सिद्ध हुआ है। प्रारम्भ में सामान्य धारणा यही थी कि नेरेटर का उपयोग केवल रूपकों में ही होता है, नाटकों में नहीं। उदयशंकर भट्ट ने इसी सन्दर्भ में लिखा है - ''रेडियो के नाटक और रूपक दो भिन्न वस्तुएँ है, और रूपक तो स्पष्टतया रेडियो की ही देन है। रूपक में घटनाओं का संकलन एवं विकास 'सूत्रधार' या नेरेटर के द्वारा होता है।''[16] वस्तुत: बात नहीं है, रूपक और नाटक में केवल नेरेटर का ही अन्तर नहीं प्रत्युत कुछ और भी है, इस सन्दर्भ में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि नाटक में भी नेरेटर का बहुत ही सफल उपयोग हो सकता है तथा होता है। मनोवैज्ञानिक नाटकों के विषय में कुछ विद्वानों की धारणा है कि 'नेरेटर' द्वारा गति में अवरोध होता है किन्तु आकाशवाणी से प्रसारित नाटक 'मेरी भी सुनो' के श्रवणोपरान्त कहा जा सकता है कि नेरेटर का उपयोग मनोवैज्ञानिक नाटकों में भी गति-अवरूद्ध नहीं करता यदि नेरेटर का उपयोग उपयुक्त हो। प्रस्तुत नाटक में दो पुरूष पात्र कुलभूषण एवं सुशील अपनी प्रणय-भावना को नेरेट करते हैं तथा पार्श्व में मूल दृश्यों द्वारा नाटकीय विकास होता है।[17]

नेरेटर दो प्रकार के होते हैं - (1) प्रथम वे नेरेटर जिनका व्यक्तिगत रूप में नाटकीय क्रियाकलापों से कोई सम्बन्ध नहीं होता, प्रत्युत वे नाटकीय क्रियाकलाप में तटस्थ दर्शक एवं प्रवक्ता मात्र होते हैं। (2) दूसरे वे नेरेटर जो नाटकीय पात्र होंते है तथा नाटकीय घटनाएं उनके जीवन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखती हैं।

पहले प्रकार के नेरेटर के वार्तालाप से भासित होगा कि वह नाटक की समग्र घटनाओं से अवगत है अर्थात् सर्वज्ञ हैं तथा प्रत्येक रहस्य के उद्घाटन में समर्थ हैं। स्थान-स्थान पर नाटककार की आवष्यकताओं की पूर्ति तो इसके माध्यम से सम्भव हो जाती है, पर कभी-कभी घटनाओं की गति में अवरोध उत्पन्न हो जाने के कारण उसकी उपस्थिति खलती है, सम्भवत: इसी को दृश्टिगत कर इसकी निहिति रूपक में ही अधिक उपयुक्त मानी गई।

नेरेशन की उपयोगिता एवं प्रयोग नाटककार की कुशलता एवं सर्तकता पर निर्भर है क्योंकि श्रोता से पूर्व वही उसके उपयोग एवं प्रयोग का निर्णायक है। वस्तुत: नेरेशन का औचित्य एवं अनौचित्य नाटक की अनिवार्य स्थिति पर ही निर्भर करता है।

ध्वनि प्रभाव-

ध्वनि-प्रभाव रेडियो नाटक की अपनी विशिष्टता है क्योंकि यहीं वह माध्यम है जिसके द्वारा दृष्य-तत्वों के अभाव की पूर्ति होती है। ध्वनि प्रभाव से तात्पर्य रेलगाडी, मोटर, बंदूक, मशीनगन, आंधी तूफान, वर्षा, बिजली की गड़गड़ाहट, दरवाजा खटकाना, हास्य, रूदन, टेलीफोन आदि की ध्वनियों से हैं। इन ध्वनि-प्रभावों को रेडियों स्टेशन में रखे रिकार्डो द्वारा प्रसारित किया जाता है तथा नाटककार जहां-जहां नाटक में निर्देष देता है, वहां-वहां इनका यथा संयोजन कर दिया जाता है। यों प्रत्येक नाटक के प्रस्तुतीकरण हेतु ध्वनि-संयोजक की व्यवस्था भी की जाती है, परन्तु नाटककार के लिए अपेक्षित है कि वह इस सम्बन्ध में यथा सम्भव निर्देष कर दे। ध्वनि-प्रभाव रेडियों नाटक में वातावरण एवं चरित्र-निर्माण में बहुत ही सहायक होते हैं। श्री सिद्धनाथ कुमार के शब्दों में, ''परिपार्श्व-निर्माण में ध्वनि प्रभावों से बहुत सहायता मिलती है। रंगमंच-नाटकों में यवनिका पर अंकित दृष्यादि परिपार्श्व का काम करते हैं, पर रेडियों नाटक में वैसा कोई परिपार्श्व नहीं होता। रेडियों नाटक में ध्वनि प्रभाव ही वह काम करते हैं। उनसे दृश्यों मे एक प्रकार की घनता आती है, जिससे ज्ञात होता है कि पात्रों का अभिनय षून्य में एक होकर ठोस पृष्ठभूमि पर हो रहा है।''[18] रेडियो-नाटक में वातावरण सृजन हेतु ध्वनि प्रभावों का महत्व बहुत अधिक है। रेडियों नाटक द्वारा कोई चाक्षुश चित्र का निर्माण नही होता प्रत्युत ध्वनि प्रभाव एवं शब्द चित्रों के सम्मिलनोपरान्त एक स्पष्ट चित्र मानस पर अंकित हो जाता है। इस प्रक्रिया में श्रोता की कल्पना शक्ति के अस्तित्व को भी नकारा नहीं जा सकता। कल्पना-शक्ति के माध्यम से ही रेडियो-प्रेक्षक (श्रोता) नाटक में घटित क्रियाकलापों को ग्रहण करता है। टेलीफोन की घंटी का बजना तथा कागज की खडखडाहट द्वारा एकदम आफिस का दृश्य प्रस्तुत हो जाता है। इन ध्वनि संकेतों में कल्पना की केवल पुट मात्र ही होती है क्योंकि यह सभी हमारे मुक्त जीवन से गृहीत होते हैं। इसी कारण कदाचित् रेडियो नाटक कला को संकेत की कला कहा गया है।..... ''रेडियो नाटक की कला संकेत की कला है। इसलिए उसमें केवल संकेत ही होना चाहिए, पूर्ण विवरण देने का प्रयत्न करना उचित नहीं। नाटककार की कुशलता कम से कम किन्तु प्रभावशाली ध्वनि प्रभाव के चुनाव में है।-''[19] इस सन्दर्भ में यह कथ्य अनुपयुक्त न होगा

कि ''ध्वनि प्रभाव तो केवल साधन है, साध्य है नाटक द्वारा श्रोताओं को प्रभावित करना। इसलिए ध्वनि प्रभावों को व्यवहार वहीं तक होना चाहिए, जहाँ तक वे रेडियों नाटक के प्रभाव में सहायक हो सकें।[20]

संगीत

संगीत से तात्पर्य वाद्य संगीत से है। यह प्राचीन काल से ही नाट्य कला का एक आवश्यक अंग रहा है। संगीत स्वयं एक ललित कला है, और इसके प्रभाव की तीव्रता सभी कलाओं से अधिक है। इसे कोई अस्वीकार नहीं करता।[21] नाटक की भांति ही रेडियो नाटक में संगीत का विशिष्ट स्थान है। रेडियो नाटक में संगीत का व्यवहार दो रूपों में होता है। (1) स्वतन्त्र प्रकार से, (2) संलाप की पृष्ठभूमि के रूप में।

संगीत का स्वतन्त्र रूप से व्यवहार नाटक के प्रारम्भ एवं अन्त में होता है। प्रारम्भ के संगीत से नाटक की भावात्मक विषयवस्तु, प्रकृति इत्यादि का ज्ञान होता है। प्रारम्भ के संगीत द्वारा श्रोता के मन में नाटक के प्रति औत्सुक्य एवं आकर्षण के भाव को जाग्रत करना भी होता है। नाटक के अन्त में संगीत का व्यवहार नाटक की पूर्णता एवं समाप्ति की घोषणा हेतु होता है। श्री खन्ना के अनुसार ''अगर आमुख (Opening) नाटक की भावकथा का प्रतीक है तो अन्तिम (Closing) उसकी समीक्षा है। आमुख प्राय: श्रोता को उत्तेजित करता है, उसके ध्यान को वातावरण के अन्य आकर्षणों से हटाकर नाट्य स्थिति पर केन्द्रित करता है। अन्तिम उत्तेजा को शांत करता है। अन्तिम पूर्णता का अनुभव होना चाहिए- एक शान्तिमय अन्त का।[22] संगीत द्वारा ही एक दृश्य के अन्त तथा दूसरे दृश्य के प्रारम्भ के बीच अन्तराल की भी सूचना मिलती है। दृश्य-परिवर्तन के लिए रंगमंचीय-नाटक में पर्दे को गिराना होता है, परन्तु रेडियो-नाटक में दृश्यान्त में संगीत द्वारा ही दृश्य परिवर्तित हो जाता है। इसी के साथ दृश्य परिवर्तन का दूसरा ढंग है कुछ क्षणों के लिए शांति का द्योतन। संगीत ही नाटकीय घटनाओं की श्रृंखलाओं को भी जोड़ता है। ''स्थान-स्थान पर प्रतीकात्मक संगीत का भी प्रयोग किया जा सकता है। प्रतीकात्मक संगीत से तात्पर्य है उस संगीत से, जो किसी विशेष भावना, विशेष व्यक्ति, अथवा विशेष स्थान को सूचित कर सके।''[23]

पृष्ठभूमि संगीत के माध्यम से भी अनेक प्रयोजनों की सिद्धि होती है। संगीत की भावोद्दीपक अद्‌भुत सत्ता सर्व स्वीकार्य है। संलाप के पार्श्व में भावानुरूप संगीत योजना द्वारा संलाप को अधिक प्रभावशाली एवं तीव्र बनाया जा सकता है। परन्तु संगीत का औचित्य एवं अनौचित्य नाटकीय स्थिति की अनुरूपता पर ही निर्भर करता है। भावोद्दीपन के साथ-साथ भाव परिवर्तन का कार्य भी संगीत द्वारा ही किया जाता है। पात्र के मन में दो अर्न्तविरोधी धाराओं का संघर्ष भी इसके माध्यम से अधिकाधिक मूर्त एवं स्पष्ट किया जा सकता है।

संगीत के उपयोग द्वारा ऐतिहासिक काल क्रम का निर्देष भी सुगमता से हो सकता है क्योंकि प्रत्येक युग का विशेष संगीत होता है। आधुनिक युग के संगीत एवं मुगलकालीन संगीत में पर्याप्त अन्तर है। उसी प्रकार प्राचीन काल का युद्ध संगीत आधुनिक काल के युद्ध संगीत से सर्वथा भिन्न है।

इस प्रकार संगीत रेडियो नाट्य कला का महत्वपूर्ण अंग है, परन्तु इसका उपयोग एवं व्यवहार नाट्य स्थिति के अनुरूप एवं औचित्य अनौचित्य को दृष्टिगत करके ही होना चाहिए। ''सफल रेडियो-नाटक के लिए आवश्यक है कि संगीत जहां तक नाटक में कोई प्रयोजन सिद्ध कर, वहीं तक उसका व्यवहार होना चाहिए।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि रेडियो नाट्य शिल्प विवेचन के अन्तर्गत इसकी प्रकृतिगत विशेषताओं का सम्यक् विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। रेडियो नाटकों का समय प्राय: उनके आकार को दृष्टिगत कर निर्धारित किया जाता है। प्राय: यह समय एक घंटे से अधिक का नहीं होता। विषय-वस्तु की दृष्टि से सामान्य नाटकों की भांति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से वस्तु-चयन होता है परन्तु इसी के विपरीत विषय-निर्धारण की सीमा भी है। विवादग्रस्त विषयों, धर्म, दलगत एवं साम्प्रदायिक विवादों, किसी संस्था आदि के प्रचारार्थ किसी रचना आदि पर आधृत विरोधी विषयों को लेकर रेडियो नाटक का प्रणयन नहीं किया जा सकता। यह केवल रेडियो-नाटक के सम्बन्ध में ही नहीं, प्रत्युत रेडियों के समग्र प्रसारणों पर चरितार्थ होती है। रोचक, जिज्ञासायुक्त, सशक्त कथानक, स्पष्टता एवं प्रभावान्विति, भव्य-मंच गुण सम्पन्नता, स्वाभाविक एवं सजीव चरित्रांकन, संक्षिप्त, अर्थपूर्ण एवं क्षिप्र गत्यात्मक सम्वाद एवं औत्सुक्य-प्रजनन शक्ति युक्त आकर्षक शीर्षक आदि रेडियों नाटक के महत्वपूर्ण तत्व हैं तथा इनके अभाव में कोई भी रेडियो-नाटक सफल नहीं हो सकता।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आलोचना- अंकन 35, जनवरी 69, पृ0 24 (स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी एकांकी तथा रेडियो नाटक) (चिरंजीत)
2. आलोचना - अंक 35, भाग 3, पृ0 35 (चिरंजीत)
3. A Guide to Radio n` TV Writing n` Campbell & others, p.k~ 264.
4. रेडियो नाट्य-शिल्प - डा0 सिद्धनाथ कुमार, पृ0 33-34
5. रेडियो नाट्य-शिल्प- डा0 सिद्धनाथ कुमार, पृ0 35
6. रेडियो नाटक - हरिश्चन्द्र खन्ना, पृ0 81
7. रेडियो नाटक - हरिश्चन्द्र खन्ना, पृ0 89
8. रेडियो नाट्य-शिल्प - सिद्धनाथ कुमार, पृ0 64
9. रेडियो नाट्य-शिल्प - सिद्धनाथ कुमार, पृ0 66
10. रेडियो नाट्य-शिल्प - सिद्धनाथ कुमार, पृ0 66
11. रेडियो नाट्य-शिल्प - सिद्धनाथ कुमार, पृ0 38-39

12. रेडियो नाटक - हरिश्चन्द्र खन्ना, पृ0 135
13. रेडियो नाट्य-शिल्प - सिद्धनाथ कुमार, पृ0 38
14. हिन्दी एकांकी की शिल्पविधि का विकास - सिद्धनाथ कुमार, पृ0 213
15. British Radio ÙkQama n` Val Gulgud, p.k~ 23.
16. कालिदास - उदयशंकर भट्ट, भूमिका
17. मेरी भी सुनो - उग्रसैन नारंग (आकाशवाणी दिल्ली से दिनांक 07.02.1969 को 'नाट्य-वेला' में प्रसारित)
18. रेडियो-नाट्य-शिल्प - सिद्धनाथ कुमार, पृ0 54
19. रेडियो नाट्य-शिल्प - सिद्धनाथ कुमार, पृ0 55
20. रेडियो नाट्य-शिल्प - सिद्धनाथ कुमार, पृ0 56
21. रेडियो नाट्य-शिल्प - सिद्धनाथ कुमार, पृ0 56
22. रेडियो-नाटक, हरिश्चन्द्र खन्ना, पृ0 156
23. रेडियो नाट्य-शिल्प - सिद्धनाथ कुमार, पृ0 57

वर्तमान भारतीय विधि में शिक्षा के अधिकार का नया आयामः ऑनलाइन शिक्षा

अरविन्द कुमार गुप्ता[1]

सारांश

शिक्षा मानव जीवन की आधारशिला है तथा यह मूलभूत मानव अधिकार है। प्रौद्योगिकी के विकास ने शिक्षा के क्षेत्र को भी प्रभावित किया है। ऑनलाइन शिक्षा की अवधारणा प्रौद्योगिकी के विकास का परिणाम है। यह दूरस्थ शिक्षा का आधुनिक रूप है। न्यायालयों ने परिवर्तित सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप ऑनलाइन शिक्षा को शिक्षा के अधिकार के रूप में सम्मिलित किया है लेकिन ऑनलाइन शिक्षा के समक्ष अनेक चुनौतियाँ भी हैं जिनका समाधान आवश्यक है। इस शोध पत्र का उद्देश्य भारतीय विधि में ऑनलाइन शिक्षा के अधिकार की चर्चा करना है। इस शोध पत्र में ऑनलाइन शिक्षा के अधिकार के संबंध में कुछ सुझाव भी दिए गए हैं जो इसके सुधार में सहायक हो सकते हैं।

परिचय

शिक्षा मानव जीवन की आधारशिला है। यह मूलभूत मानव अधिकार है तथा अन्य सभी मानव अधिकारों के उपयोग के लिए आवश्यक है।[2] अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय विधि के अन्तर्गत शिक्षा के अधिकार को मूल अधिकार का स्तर प्रदान किया गया है। मानव समाज एक विकासशील समाज है, जिसमें समय और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। प्रौद्योगिकी का विकास मानव की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

प्रौद्योगिकी के विकास ने मानव जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। शिक्षा का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा है। ऑनलाइन शिक्षा की अवधारणा भी इसी प्रौद्योगिकी के विकास का परिणाम है। ऑनलाइन शिक्षा से तात्पर्य एक ऐसी शिक्षा पद्धति से है जिसमें शिक्षार्थी इंटरनेट तथा कम्प्यूटर, लैपटॉप, स्मार्टफोन आदि के माध्यम से रियल टाइम अथवा रिकॉर्डिड व्याख्यान एवं डिजिटल शिक्षा सामग्री की सहायता से शिक्षा प्राप्त करते हैं। इस शिक्षा पद्धति में समय, स्थान तथा दूरी का बंधन नहीं होता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में ऑनलाइन शिक्षा के सम्बन्ध में व्यवस्था की गई है जिसमें यह कहा गया है कि नवीन परिस्थितियों और वास्तविकताओं के लिए नवीन पहलें अपेक्षित हैं। संक्रामक रोगों और वैश्विक महामारियों में वृद्धि को दृष्टिगत रखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि जब भी और जहाँ भी शिक्षा के पारम्परिक और विशेष साधन संभव ना हो वहाँ हम गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के वैकल्पिक साधनों के साथ तैयार हों। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में प्रौद्योगिकी की संभावित चुनौतियों को स्वीकार करते हुए ऑनलाइन शिक्षा की हानियों को कम करते हुए इससे मिलने वाले लाभों के महत्व पर ध्यान केन्द्रित करने की बात कही गई है।[3]

अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अन्तर्गत ऑनलाइन शिक्षा का अधिकार

संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा 1948 ने शिक्षा को एक मूलभूत मानव अधिकार घोषित किया है[4] यद्यपि सार्वभौमिक घोषणा न तो अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय है और न ही अन्तर्राष्ट्रीय अनुबन्ध। यह मात्र सिद्धान्तों की एक घोषणा है जो राज्यों पर कोई विधिक बाध्यता अधिरोपित नहीं करती है[5] लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अन्तर्गत ऐसी अनेक बाध्यकारी सन्धियों में ऑनलाइन शिक्षा के अधिकार की पुष्टि की गई है। आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा 1966[6] के अनुच्छेद 13 में शिक्षा के अधिकार को मान्यता प्रदान की गई है जिसमें यह व्यवस्था है कि राज्य पक्षकार प्रत्येक व्यक्ति को उचित साधनों द्वारा शिक्षा उपलब्ध कराएंगे। इस प्रसंविदा के अनुच्छे 2 के परिच्छेद 1 में यह कहा गया है कि प्रत्येक राज्य पक्षकार व्यक्तिगत रूप से तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहायता एवं सहयोग के माध्यम से इस प्रसंविदा में वर्णित अधिकारों को उपलब्ध कराएंगे।[7] भारत ने इस प्रसंविदा का अनुसमर्थन 27 मई 1979 को किया है।[8] इस प्रसंविदा के सभी प्रावधान भारत पर बाध्यकारी होंगे। मात्र उन प्रावधानों के अतिरिक्त जिसके सम्बन्ध में अंगीकार पत्र में निर्बन्धन कर दिया गया है।[9]

भारत अनेक मानवाधिकार अभिसमयों का पक्षकार है[10] जो कि उस पर शिक्षा के सम्बन्ध में विधिक बाध्यता अधिरोपित करते हैं। सभी प्रकार के नस्लीय भेदभाव की समाप्ति हेतु अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय 1965,[11] महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समाप्ति पर अभिसमय 1979,[12] शिशुओं के अधिकार पर अभिसमय 1989।[13] इंचियोन घोषणा 2015 ने शिक्षा को प्रभावी बनाने के लिए सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों (आई सी टी) का उपयोग किए जाने की पुष्टि की है।[14] इसमें शिक्षा तक पहुँच एवं समानता लाने के लिए प्रौद्योगिकी द्वारा समर्थित एक सुस्थापित शिक्षा प्रणाली के सम्बन्ध में व्यवस्था करने की बात कही गई है।[15] ये सभी उपबन्ध इस ओर संकेत करते है कि शिक्षा के अधिकार में ऑनलाइन शिक्षा सम्मिलित है।

भारतीय विधि के अन्तर्गत ऑनलाइन शिक्षा का अधिकार

भारतीय संविधान शिक्षा के अधिकार के सम्बन्ध में त्रिवेणी संगम की व्यवस्था करता है जिसमें व्यक्ति का अधिकार, नागरिकों के कर्तव्य तथा राज्य का दायित्व सम्मिलित है।[16] भारतीय संविधान निर्माताओं ने संविधान में शिक्षा के अधिकार को स्पष्ट रूप से मूल अधिकार का स्तर प्रदान नहीं किया था लेकिन सन् 2002 में 86 वाँ संविधान संशोधन अधिनियम पारित करके संविधान के भाग 03 में एक नया अनुच्छेद 21 A स्थापित किया गया, जिसमे यह व्यवस्था की गयी कि राज्य 06 वर्ष से 14 वर्ष तक की आयु वाले सभी बालकों के लिये नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का ऐसी रीति में, जो राज्य विधि द्वारा, अवधारित करे, उपबन्ध करेगा। इसके अतिरिक्त इसी संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान के भाग 04 में एक नया अनुच्छेद 51A(k) जोड़ा गया जिसमें माता-पिता और संरक्षक का यह कर्तव्य निर्धारित किया गया कि वे 06 वर्ष से 14 वर्ष तक की आयु वाले अपने यथास्थिति बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करें। शिक्षा के अधिकार को यथार्थ रूप से क्रियान्वित करने के लिए संसद ने दिनांक 26 अगस्त 2009 को बालकों का नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 अधिनियमित किया[17] तथा यह अधिनियम दिनांक 1 अप्रैल 2010 से प्रभावी हुआ।[18]

ऑनलाइन शिक्षा के अधिकार के सम्बन्ध में न्यायिक दृष्टिकोण

कुमारी मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य तथा अन्य[19] के मामले में न्यायालय ने कहा है कि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास तब तक नहीं हो सकता है जब तक कि वह शिक्षित ना हो।[20] शिक्षा का अधिकार प्राण के अधिकार से प्रत्यक्ष रूप से प्रवाहित होता है। अनुच्छेद 21 के अधीन प्राण का अधिकार तथा किसी व्यक्ति की गरिमा तब तक सुनिश्चित नहीं की जा सकती है जब तक कि यह शिक्षा के अधिकार के साथ ना हो। राज्य सरकार अपने नागरिकों को सभी स्तरों पर शैक्षिक सुविधाएं प्रदान करने के प्रयास के लिए कर्तव्यबद्ध है। भारत के संविधान के भाग 03 में वर्णित मूल अधिकारों का मूल्यांकन तथा पूर्ण रूप से उनका उपयोग तब तक नहीं किया जा सकता है जब तक कि कोई नागरिक शिक्षित नहीं हो जाता है। शिक्षा का अधिकार मूल अधिकारों का सहवर्ती (आनुषंगिक) है।[21] उन्नी कृष्णन जे०पी० तथा अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य तथा अन्य[22] के मामले में न्यायालय ने कहा है कि इस देश के प्रत्येक बच्चे / नागरिक को 14 वर्ष की आयु पूर्ण करने तक नि:शुल्क शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है।[23] संपूर्ण विश्व में एक व्यक्ति के जीवन में शिक्षा के अधिकार को श्रेष्ठ माना जाता है। इस देश के नागरिकों को शिक्षा प्रदान किए बिना संविधान की उद्देशिका में निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता है।[24]

फहीमा शिरीन आर०के० बनाम केरल राज्य[25] के मामले में न्यायालय ने कहा है कि इंटरनेट का उपयोग ज्ञान प्राप्त करने की सुविधाओं को बढ़ाएगा, जिसके आधार पर छात्र शिक्षा की गुणवत्ता तथा उसके स्तर में वृद्धि कर सकते हैं।[26] संयुक्त राष्ट्र महासभा ने अपने प्रस्ताव में यह स्वीकार किया है कि इंटरनेट पर सूचना तक पहुँच को महत्व देना, वैश्विक स्तर पर सस्ती तथा समावेशी शिक्षा के लिए व्यापक अवसरों की सुविधा प्रदान करता है, यह शिक्षा के अधिकार को बढ़ावा देने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण हो सकता है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा विश्व में एक निर्णायक भूमिका निभाती है। डिजिटल साक्षरता एवं इंटरनेट पर सूचना तक पहुँच, शिक्षा के अधिकार को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।[27] इंटरनेट का उपयोग करने का अधिकार, शिक्षा के अधिकार के साथ-साथ भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत निजता के अधिकार का भाग है।[28] जब संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद ने इंटरनेट तक पहुँच को मूलभूत स्वतंत्रता तथा शिक्षा का अधिकार सुनिश्चित करने का एक उपकरण माना है तो ऐसे में छात्रों के उक्त अधिकार के विरुद्ध अनुमति नहीं दी जा सकती है।[29]

जस्टिस फॉर ऑल बनाम गवर्नमेंट ऑफ एन सी टी ऑफ दिल्ली तथा अन्य[30] के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय ने कहा है कि सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा एक संवैधानिक लक्ष्य तथा एक प्रवर्तनीय दायित्व के रूप में महत्वपूर्ण सिद्धांत है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 एक बाल केंद्रित विधि है और इसकी व्याख्या करते समय अनुच्छेद 21-A मार्गदर्शक सिद्धांत होना चाहिए।[31] शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 एक जीवित तथा गतिशील प्रलेख है। इसकी विधायिका के आशय तथा समाज की उभर्ती हुई आवश्यकताओं के अनुरूप व्यावहारिक व्याख्या की जानी चाहिए। शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 में 'शिक्षा' शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है।[32] शिक्षा एक गतिशील अवधारणा है, जो समय और परिस्थितियों के अनुसार विकसित हुई है।[33] शिक्षा एक व्यापक शब्द है, जिसकी विस्तृत एवं गतिशील व्याख्या की जानी चाहिए विशेष रूप से तब जबकि शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 में संसद द्वारा 'शिक्षा' शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है। शिक्षा प्रदान करने की विधि नम्न है, इसीलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 केवल औपचारिक भौतिक शिक्षा तक ही सीमित है।[34] षशिक्षाष शब्द में सिंक्रोनस फेस टू फेस रियल टाइम ऑनलाइन शिक्षा सम्मिलित है।[35]

भारत में ऑनलाइन शिक्षा के समक्ष चुनौतियाँ

1. अविकसित इंटरनेट व्यवस्था :-

भारत में ऑनलाइन शिक्षा के लिए इंटरनेट व्यवस्था पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हुई है। इंटरनेट कनेक्टिविटी का अभाव तथा इंटरनेट की धीमी गति ऑनलाइन शिक्षा के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा है जिसके कारण ऑनलाइन कक्षा का समुचित रूप से संचालन नहीं हो पाता है। इसके अतिरिक्त ऑनलाइन कक्षा कभी-कभी उपहास का पात्र भी बन जाती है।

2. डिजिटली प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव :-

भारत में शिक्षकों को प्रशिक्षण पारंपरिक रूप से शिक्षा प्रदान करने के लिए दिया गया है जिस कारण यह शिक्षक ऑनलाइन शिक्षा प्रदान करने में स्वयं को असमर्थ अनुभव करते हैं।

3. आधारभूत संसाधनों का अभाव :-

ऑनलाइन शिक्षा के मार्ग में आधारभूत संसाधनों का अभाव भी एक बहुत बड़ी चुनौती है। अधिकांश बालकों के पास कम्प्यूटर, लैपटॉप, स्मार्ट मोबाइल फोन, इंटरनेट आदि की व्यवस्था नहीं है। भारत के मात्र 23.8 प्रतिशत घरों में इंटरनेट तथा 10.7 प्रतिशत घरों में कम्प्यूटर की व्यवस्था है।[36]

निष्कर्ष

ऑनलाइन शिक्षा, दूरस्थ शिक्षा का आधुनिक रूप है। यह वर्तमान समय की वास्तविकता है। भारत में ऑनलाइन शिक्षा का विकास अपने प्रारंभिक चरण में है। बालकों का नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 स्पष्ट रूप से ऑनलाइन शिक्षा के अधिकार के संबंध में कोई व्यवस्था नहीं करता है लेकिन भारतीय न्यायालयों ने न्यायिक व्याख्या के माध्यम से ऑनलाइन शिक्षा को, शिक्षा के अधिकार के रूप में सम्मिलित किया है।

ऑनलाइन शिक्षा में सुधार हेतु सुझाव

ऑनलाइन शिक्षा के अधिकार के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु व्यापक सुधार की आवश्यकता है जिसके लिए कुछ सुधार निम्नलिखित हैं :-

1. ऑनलाइन शिक्षा के संबंध में विधिक प्रावधान -

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के अंतर्गत ऑनलाइन शिक्षा को विनियमित किया जाना चाहिए ताकि इसका समुचित प्रभावी क्रियान्वयन किया जा सके।

2. विकसित इंटरनेट व्यवस्था -

तीव्र गति की इंटरनेट व्यवस्था को विकसित किया जाना चाहिए तथा इंटरनेट कनेक्टिविटी में पर्याप्त सुधार किया जाना चाहिए।

3. शिक्षकों का प्रशिक्षण -

ऑनलाइन शिक्षा प्रदान करने के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

4. आधारभूत संसाधनों की व्यवस्था -

बालकों की ऑनलाइन शिक्षा के लिए आधारभूत संसाधनों जैसे कम्प्यूटर, लैपटॉप, स्मार्ट मोबाइल फोन, इंटरनेट आदि की नि:शुल्क या न्यूनतम मूल्य पर व्यवस्था की जानी चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

पुस्तकें

1. डॉ० एच० ओ० अग्रवाल: अन्तर्राष्ट्रीय विधि एवं मानव अधिकार

आलेख

1. Dr. Harpreet Kaur : Government Policy on Right to Education : A Critique
2. Prof. C.M. Jariwala : Right To Free and Compulsory Primary Education : Myth or Reality

प्रतिवेदन

1. National Sample Survey Report July 2017 - June 2018

इन्टरनेट वेबसाइट :-

1- https://www.google.com
2- https://indiankanoon.org
3- https://www.education.gov.in
4- https://m.jagran.com
5- https://www.un.org/
6- https://www.ohchr.org
7- https://legislative.gov.in/

फुटनोट

1 शोधार्थी (विधि) सोबन सिंह जीना परिसर (विधि संकाय) अल्मोड़ा, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड

2 See : Dr. Harpreet Kaur, Government Policy on Right to Education : A Critique, AIR September 2017, Vol 104, Part 1245, Jour P.147, Translation from English.

3 देखें: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, पृ०सं० 96-97, Available at : https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_final_HINDI_0.pdf, Visited on 20/08/2020, Time 11:00,

4 See : Art. 26, Available at : https://www.un.org/en/about-us/universal-declaration-of-human-rights , Visited on 26/08/2020, Time 16:00, Translation From English.

5 देखें: डॉ० एच० ओ० अग्रवाल, अन्तर्राष्ट्रीय विधि एवं मानव अधिकार, दसवाँ संस्करण 2008, पृ०सं० 655, प्रकाशक सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, प्रयागराज, उ०प्र०

6 See : https://www.ohchr.org/en/professionalinterest/pages/cescr.aspx , Visited on 01/08/2020, Time 07:00, Translation From English,

7 देखें: पूर्वोक्त सं०05, पृ०सं०809-810,

8 देखें: पूर्वोक्त सं०05, पृ०सं०785,

9 देखें: पूर्वोक्त सं०05, पृ०सं०813,

10 देखें: पूर्वोक्त सं०05, पृ०सं०815,

11 See : Part 1, Art 5(e)(v), Available at : https://www.ohchr.org/en/instruments-mechanisms/instruments/international-convention-elimination-all-forms-racial , Visited on 03/08/2020, Time 07:00, Translation From English,

12 See : Part 3, Art 10, Available at : https://www.ohchr.org/en/instruments-mechanisms/instruments/convention-elimination-all-forms-discrimination-against-women , Visited on 03/08/2020, Time 07:00, Translation From English,

13 See : Art 28, Available at : https://www.ohchr.org/en/professionalinterest/pages/crc.aspx , Visited on 03/08/2020, Time 07:00, Translation From English,

14 See : Incheon Declaration 2015, Para 10, P.06, Available at : https://www.right-to-education.org/sites/right-to-education.org/files/resource-attachments/Education_2030_Incheon_Declaration_and_Framework_For_Action_2015_En.pdf , Visited on 03/08/2020, Time 07:00, Translation From English,

15 देखें : पूर्वोक्त, परिच्छेद सं० 43, पृ०सं०24,

16 See : Prof. C.M. Jariwala : Right To Free and Compulsory Primary Education : Myth or Reality, Nyaya Deep, The official Journal of NALSA, Volume 14, Issue 3 & 4, July 2013 & October 2013, P.14, Translation From English,

17 See : https://legislative.gov.in/sites/default/files/H200935.pdf , Visited on 09/02/2020, Time 09:00,

18 See : https://mhrd.gov.in/rte , P.01, Visited on 09/02/2020, Time 08:00, Translation From English,

19 See : 1992 AIR 1858, Available at : https://indiankanoon.org/doc/40715/ , Visited on 07/08/2020, Time 10:50,

20 देखें: पूर्वोक्त पृ०सं० 09, अंग्रेजी से अनुवाद,

21 देखें: पूर्वोक्त पृ०सं० 10, अंग्रेजी से अनुवाद,

22 See : 1993 AIR 2178, Available at : https://indiankanoon.org/doc/1775396/ , Visited on 07/08/2020, Time 10:50,

23 देखें: पूर्वोक्त पृ०सं० 08, अंग्रेजी से अनुवाद,

24 देखें: पूर्वोक्त पृ०सं० 09, अंग्रेजी से अनुवाद,

25 See : Case No. : Writ Petition (c) No. 19716/2019-L, Date of Judgement 19/09/2019, Available at : https://indiankanoon.org/doc/188439981/ , Visited on 05/08/2020, Time 06:30,

26 देखें: पूर्वोक्त पृ०सं० 08-09, अंग्रेजी से अनुवाद,

27 देखें: पूर्वोक्त पृ०सं० 10, अंग्रेजी से अनुवाद,

28 देखें: पूर्वोक्त पृ०सं० 11, अंग्रेजी से अनुवाद,

29 देखें: पूर्वोक्त पृ०सं० 13, अंग्रेजी से अनुवाद,

30 See : Writ Petition (c) No.3004/2020, Date of Decision 18/09/2020, Available at : https://indiankanoon.org/doc/68322878/ , Visited on 20/09/2020, Time 07:00,

31 देखें: पूर्वोक्त पृ०सं० 49, अंग्रेजी से अनुवाद,

32 देखें: पूर्वोक्त पृ०सं० 38, अंग्रेजी से अनुवाद,

33 देखें: पूर्वोक्त पृ०सं० 39, अंग्रेजी से अनुवाद,

34 देखें: पूर्वोक्त पृ०सं० 49, अंग्रेजी से अनुवाद,

35 देखें: पूर्वोक्त पृ०सं० 41, अंग्रेजी से अनुवाद,

36 See : National Sample Survey Report July 2017 - June 2018, P.59, Available at : https://www.thehinducentre.com/resources/article30980071.ece/binary/KI_Education_75th_Final_compressed.pdf , Visited on 23/08/2020, Time 04:00, Translation from English,

भारतीय संविधान निर्माण के ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः एक अध्ययन

राकेश कुमार

शोधार्थी, एम0 ए0 (इतिहास), न्ळब् दृछम्न्ए श्रत्थ, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

प्रो० (डॉ०) रण विजय कुमार

पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग, पटना विश्विद्यालय, पटना

भारतीय संविधान की रचना एक सतत् प्रक्रिया का परिणाम था। हमारे देश में व्याप्त हजारों साल प्राचीन परंपरा इसका आधार है। किसी भी देश के संविधान को समझने के लिए उनके अतीत को समझना आवश्यक है। देश के अतीत की नींव पर ही संविधानों के प्रासाद खड़े होते हैं। भारत के संविधान का विशेषतः क्रमिक विकास हुआ। उसकी पृष्ठभूमि में सदियों का इतिहास है। इस प्राचीन देश में सभ्यता और संस्कृति की एक पुरानी और अटूट परम्परा रही है। यह देश अनेक मुसीबतों से गुजरा है, गिर-गिरकर उठा है, बदला है, पर कुछ बात है कि कभी भी टूटा नहीं। इसके चरित्र में कुछ ऐसी प्रान्तरिक दृढ़ता, सहज लोच और प्राणवत्त है, कुछ ऐसी शक्ति है जो बड़े से बड़े झटकों को सहकर भी कहानी का सिलसिला टूटने नहीं देती।

अब तक की खोजों से जितना पता चल सका है उसके अनुसार कहानी लगभग चार-पांच हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ होती है। भारत में शासनतन्त्र और संविधान के प्रथम सूत्र मिलते हैं वेद, पुराण, स्मृति, महाभारत, रामायण और फिर बौद्ध और जैन साहित्य में, कौटिल्य के अर्थशास्त्र में, तथा शुक्रनीति जैसे ग्रन्थों में।

कहा जाता है कि ब्रिटिश शासन ने पहली बार भारत को एकता के सूत्र में बॉधा, उसे एक इकाई बनाया और एकता की भावना दी। किन्तु, वस्तुतः भारतीय एकता की चेतना और संकल्पना उतनी पुरानी है जितना विश्व का इतिहास। इस एकता के प्रथम स्वर प्रस्फुटित हुए संसार के प्राचीनतम साहित्य ऋग्वेद के रचयिता ऋषियों की वाणी से। इसमें संदेह नहीं कि प्राचीन काल में समूचे भारत की राज-नीतिक एकता स्थापित करने के प्रयास प्रायः असफल रहे और भारतीय एकता की चेतना प्रधानतः भौगोलिक और सांस्कृतिक ही रही। महात्मा गॉधी ''हिन्द स्वराज'' में अंग्रेजों द्वारा फैलाये जा रहे प्रपंच एंव उनके विचारों का विरोध करते हुए 'सभ्यता के दर्शन' में लिखते हैं कि भारत प्राचीन काल से ही एक राष्ट्र के रूप में एक सूत्र में बॅधा रहा है। उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम लोग तीर्थ यात्राओं पर जाते थे, उस समय कोई रेलगाड़ी नहीं था, फिर भी लोग यात्रा करते थे, सभी स्थानों की भाषा अलग-अलग थी फिर भी लोग एक-दूसरे को समझते थे और सहयोग करते थे। भारत हमेशा से ही सांस्कृतिक एकता के सूत्र में जुड़ा रहा है।''[1] किन्तु, जैसा अपनी 'हिन्दुस्तान की कहानी' में पंडित नेहरू ने लिखा हैः

'इतिहास की व्यापक जांच से यह पता चलेगा कि लम्बे वक्तों तक यहॉ जो व्यवस्था और शांति की जिंदगी रही है, वैसी यूरोप में नहीं रही है। और यह बात तुर्की और अफगानों के बाद की सदियों के बारे में भी सही उतरती है, ठीक उस वक्त, जब मुगल साम्राज्य टूटता है। यह खयाल कि अंग्रेजों ने पहले-पहल हिन्दुस्तान में अमन कायम किया, एक बड़ा ही अनोखा और धोखे का खयाल है। यह सही है कि जब अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान में अपनी हुकूमत कायम की, उस वक्त यह मुल्क बड़ी पस्ती की हालत में था और राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था टूट गई थी। दर असल यही वजह थी कि वह राज्य इस देश में कायम हो सका।''[2]

यहां यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जिस राष्ट्रीय एकता अथवा राष्ट्रवाद के अर्थों में आज राजनीतिक एकता की बात की जाती है वह संसार में सर्वत्र एक नितान्त आधुनिक संकल्पना है। यूरोप में भी राष्ट्र के आधार पर राज्यों का संगठन कोई पुरानी बात नहीं। ऐसी स्थिति में विदेशी आक्रांताओं के शासन से, अर्थात् लगभग एक हजार वर्ष और उससे भी अधिक पहले, भारत में राजनीतिक एकता के अभाव की बात करना भ्रामक और निरर्थक है।[3]

लोकतन्त्र भी भारत के लिए कोई नई बात नहीं। प्राचीन भारत में राजतन्त्र के साथ-साथ गणराज्यों की भी सुदीर्घ परम्परा थी। संसार के सबसे पुराने गणराज्य भारत में ही जन्में और पनपे। काशी प्रसाद जयसवाल ने 'हिन्दू पॉलिटी' में यह सिद्ध किया है कि भारत में अनेक गणराज्य थे। जिसमें वज्जि गणराज्य प्रमुख था। राजतंत्रात्मक व्यवस्था भी सीमित राजतंत्रात्मक था।[4] महाभारत में 'गणराज्य' शब्द उस राज्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जिसमें शासन सभा के द्वारा संचालित होता हो। प्राचीन साहित्य में हमें कितना ही जनपदों, सभाओं और समितियों के विशद प्रक्रिया-संबंधी नियम मिलते हैं। महाभारत, कौटिल्य के अर्थशास्त्र और बौद्ध साहित्य में गणशासन के उत्थान-पतन तथा क्रिया-विधि का सविस्तार विवेचन किया गया है। प्राचीन राज्यतन्त्र में भी राजा की शक्तिया निरंकुश नहीं, नियंत्रित होती थीं। उसे स्वामी नहीं, प्रजा का सेवक माना जाता था। निर्वाचन के द्वारा भी राजा बनाये जाते थे और ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जब राजाओं को अपने कर्तव्यों से विमुख होने के अपराध में पदच्युत कर दिया जाता था।[5] राज्याभिषेक के समय राजा को सौगन्ध लेनी होती थी कि ''यदि मैं अपनी

प्रजा को सताऊँ तो ईश्वर मुझे जीवन और सन्तान से वंचित कर दे।'' वह प्रण करता था कि वह भरसक अपनी प्रजा की सेवा करेगा तथा प्रजा के हित को प्राथमिकता देगा, अपने निजी सुख को नहीं क्योंकि ''राजा का वास्तविक सुख उसकी प्रजा के सुख में हैं। जो राजा को स्वयं अच्छा लगे वह अच्छा नहीं, अच्छा वहीं है जो प्रजा को अच्छा लगे।'' ''जनहित के कार्य राजा के अवकाश की प्रतीक्षा नहीं कर सकते, उसे अनके लिए हर समय तैयार रहना चाहिए।'' ''अगर राजा अन्याय करे, तो प्रजा को यह अधिकार है कि उसे हटाकर दूसरे व्यक्ति को गद्दी पर बैठा दे।'' 'संसद' भी पुराने संस्कृत साहित्य का शब्द है। प्राचीन काल में राजा को परामर्श देने वाली सभा को संसद कहते थे और राजा में इतना साहस और शक्ति नहीं होती थी कि वह अपनी संसद द्वारा दिये गये परामर्श को ठुकराकर अन्यथा आचरण कर सके। बौद्ध भिक्षु-संघ भी बहुत कुछ संसद की तरह थे। बौद्व भिक्षु संघ में संघ की परिकल्पना वज्जि गण संघ से लिया गया प्रतीत होता है।[6] माक्विस ऑफ जैटलैण्ड के शब्दों में ''यह जानकर आश्चर्य होता है कि भारत में, दो हजार या इससे भी अधिक वर्ष पहले बौद्धों की सभाओं के संसदीय प्रक्रिया सम्बन्धी नियम कितने अधिक विकसित और परिपक्व थे। इन नियमों में बैठने के क्रम, संकल्प, प्रस्ताव, गणपूर्ति, मत-गणना, मतपत्र द्वारा मतदान, अविश्वास प्रस्ताव, आदि से संबंधित नियम थे।'' मौर्य काल में पाटलिपुत्र में जनता द्वारा चुनी हुई नगरपालिका का विवरण मिलता है। नगरपालिका के 30 सदस्य होते थे और वे पॉच-पॉच सदस्यों की 6 समितियों में बंटे हुए थे। प्रत्येक समिति को कुछ विशेष विभाग सुपुर्द थे।[7] नगरपालिका का कार्यक्षेत्र बहुत कुछ आज की नगरपालिकाओं से मिलता-जुलता था। सफाई, पानी, सार्वजनिक इमारतें, बाग-बगीचों की देखभाल, जीवन-मरण का लेखा आदि काम नगरपालिका को सुपुर्द थे। लोकतान्त्रिक संस्थाएँ हमारे देश में, किसी न किसी रूप में, कम या ज्यादा, बराबर चलती ही रही। ग्राम पंचायतें तो हमारे जन-जीवन का अभिन्न अंग ही रही हैं। तुर्की और अफगान हमलों से पहले, दसवीं सदी में लिखी गई शुक्राचार्य की पुस्तक 'नीतिसार' के अनुसार गांवों की पंचायत एक निर्वाचित प्रतिनिधि सभा होती थी जिसे न्याय और व्यवस्था दोनों ही क्षेत्रों में व्यापक अधिकार प्राप्त थे और इन पंचायतों अथवा सभाओं के सदस्यों का राज्याधिकारियों की नजर में बड़ा आदर था। यही पंचायतें भूमि का बंटवारा करती थी, कर वसूल करती थीं और गांव की ओर से सरकार को उसका कर अंश देती थी। कहीं-कहीं कई ग्राम पंचायतों के ऊपर एक बड़ी पंचायत भी होती थी जो उन पर निगरानी और नियंत्रण रखती थी। कुछ पुराने शिलालेख यह भी बताते है कि ग्राम पंचायतों के सदस्य किस प्रकार निर्वाचित किये जाते थे, सदस्य बनने के लिए आवश्यक गुण क्या थे, तथा किस प्राकर वार्षिक निर्वाचनों के द्वारा समितियॉ बनाई जाती थीं। निर्वाचनों में भाग लेने का महिलाओं को भी पूरा अधिकार था। अच्छा आचरण न करने पर अथवा सार्वजनिक पैसे का ठीक-ठीक हिसाब न दे पाने पर कोई भी सदस्य पदच्युत किया जा सकता था। सार्वजनिक पदों पर किसी भी सदस्य का कोई निकट संबंधी नियुक्त नहीं किया जा सकता था। राजाज्ञा के बिना कोई सिपाही गांव में नहीं घुस सकता था। अगर किसी पदाधिकारी के विरूद्ध बहुत शिकायतें हो तो शुक्रनीति के अनुसार राजा को चाहिए कि उस पदाधिकारी को निकाल दे क्योंकि ''पद से कौन उन्मत्त नहीं हो जाता?'' और राजा का तो कर्तव्य यही है कि जनता के बहुमत के अनुरूप काम करे। ''लोकमत राजा की तुलना में ज्यादा मजबूत होता है, जिस तरह कि बहुत से तारों की बटी हुई रस्सी शेर को भी खीच लाती है।''[8]

मध्य युग में आकर हमारी लोकतन्त्रात्मक संस्थाओं का विकास अवरूद्ध हो गया। इसके बाद सैकड़ों वर्षों तक हम आपसी लड़ाइयों और विदेशी शासन की गुलामी में जकड़े रहे। शासक बदलते रहे, सेनाओं के बीच युद्ध होते रहे, सेनाएं हारती-जीतती रहीं, किन्तु इन सबके बीच भी राष्ट्र का जीवन, आम लोगों का रहन-सहन लगभग ज्यों का त्यों चलता रहा, देश के एक कोने से दूसरे कोने तक -सिन्ध और राजस्थान में असम तक, और काश्मीर से कन्याकुमारी तक - इस देश की पुरानी सभ्यता और परम्परा का सिलसिला अटूट बना रहा, सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन की मूल धारा अवरूद्ध न हो सकी। मध्यकाल में युद्ध और अराजकता का दौर तो था परन्तु स्थानीय स्वशासन अनवरत चल रहा था। जिसका उदाहरण दक्षिणभारत के मंदिरों आदि में देखा जा सकता है। और, जब 1946 और 1949 के बीच, स्वाधीन भारत का संविधान बनाने के लिए, भारतवासी अपनी संविधान सभा में एकत्रित हुए तो उनके पीछे एक महान सभ्यता और गौरवमयी संस्कृति का तथा स्वाधीनता की लड़ाई का लम्बा इतिहास था, लम्बी कहानी थी और उनके सामने थी उससे भी अधिक महान् और गौरवपूर्ण भविष्य का निर्माण करने की आकांक्षा। अत: यह स्वाभाविक था कि संविधान सभा ने भारत के संविधान के द्वारा गत हजारों वर्षों की संस्कृति में पनपे सामाजिक-सांस्कृतिक आदर्शों-आस्थाओं को तथा वर्तमान राजनीतिक-आर्थिक जीवन की अनेक आशाओं-आकांक्षाओं को वाणी देने का प्रयास किया। सांविधानिक व्यवस्था और संरचना की दृष्टि से भी ऐसा नहीं था कि संविधान सभा अथवा उसकी प्रारूप-समिति ने देश के लिए एकदम एक नया सांविधान बनाकर तैयार कर दिया हो। यह संविधान तो स्वाधीनता संघर्षों और सांविधानिक सुधारों की लम्बी कहानी के बीच बराबर बनता रहा था।[9]

26 जनवरी, 1950 को देश एक पूर्ण प्रभुता-सम्पन्न लोकतान्त्रिक गणराज्य घोषित किया गया। इसी दिन की यादगार में हर वर्ष 26 जनवरी को हम बड़ी धूमधाम से गणतन्त्र दिवस की खुशियाँ मनाते हैं, उत्सव करते हैं। यही वह दिन है जब हमारे देश में हमारा अपना संविधान, हमने स्वयं अपने ऊपर लागू किया। पर, यह मंगल-मुहूर्त यों ही नहीं आ गया। हमारी स्वतंत्रता हमारे पूर्वजों के महान् त्याग और बलिदान के कारण प्राप्त हुई है। 1857 का व्यापक सिपाही विद्रोह अंग्रेजी राज के विरूद्ध भारतीयों का प्रथम स्वाधीनता संग्राम था।[10] विद्रोह को निर्दयता से कुचल दिया गया परन्तु देश में चेतना आ गयी। 1857 की क्रांति के फलस्वरूप कंपनी का अंत एवं ब्रिटिश ताज का शासन आरंभ हुआ।[11] इसके बाद समय-समय पर अंग्रेजी शासकों ने शासन-व्यवस्था में कुछ सुधार किये और शासन के कार्य में थोड़ा-थोड़ा भारतीयों का सहयोग लेना आरम्भ किया। किन्तु सुधारों की गति बहुत धीमी थी और राष्ट्रवाद की भावना बहुत तेजी से बढ़ रही थी।[12] इसी समय उपनिवेशों में बसे भारतीयों तथा अन्य काले लोगों के साथ गोरे लोग जो अमानवीय व्यवहार कर रहे थे उसके प्रति भी देश में भारी रोष था। शीघ्र ही कांग्रेस ब्रिटिश शासन के विरूद्ध सक्रिय विरोध का माध्यम बन गई और देश भर में लोकमान्य तिलक का नारा गूंज उठा। 'स्वतन्त्रता हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर रहेंगे'। इस नारे में देश की स्वाधीनता ही नहीं उसके भावी संविधान का भी बीज था। एक ओर विदेशी बहिष्कार और स्वदेशी आन्दोलनों ने और दूसरी ओर उग्र क्रान्तिकारियों ने देश में नयी जागृति पैदा की और स्वाधीनता-संग्राम को नई शक्ति दी। क्रांतिकारियों ने देश के अन्दर ही नहीं बल्कि देश के बाहर अन्य देशों की भूमि से भी भारत की स्वाधीनता की लड़ाई में सक्रिय योगदान दिया।[13]

अंग्रेजी राज के विरूद्ध बढ़ते हुए राष्ट्रीय आन्दोलन की गति और शक्ति को क्षीण करने के लिए ब्रिटिश शासकों ने देश में साम्प्रदायिक झगड़ों का बीज

बोया तथा 'फूट डालो', आपस में लड़ाओं और राज करो' की नीति अपनाई। इस नीति पर चलकर आगे 1909 में मॉर्ले-मिण्टो सुधारों के अन्तर्गत पृथक सांप्रदायिक निर्वाचनों की व्यवस्था हुई[14] और आखिर में देश के विभाजन की माँग को बल मिला।

प्रथम महायुद्ध के बाद राष्ट्रीयता की लहर बहुत जोर पकड़ी। 1919 के मौंटफोर्ड सुधारों से जनता में घोर असंतोष था। इसी समय 'रौलेट एक्ट' नामक काला कानून लागू किया गया। इसने राष्ट्रीय आन्दोलन की आग में घी का काम किया। इन्हीं दिनों महात्मा गांधी भारतीय राजनीति में सक्रिय रूप से सम्मिलित हो गये। सरकार की दमन नीति ने उन्हें राजद्रोही बना दिया और उन्होंने 'रौलट एक्ट' के विरूद्ध सत्याग्रह आरम्भ कर दिया। जनरल डायर द्वारा 13 अप्रैल, 1919 को पंजाब में प्रसिद्ध जालियाँवाला काण्ड हुआ, जहॉ एक्ट के विरोध में हो रही एक शान्तिपूर्ण सभा में बैठे, सैकड़ों नर-नारियों और बच्चों को तीन ओर से बन्द अहाते में घेरकर गोलियों से भून दिया गया। इस हत्याकांड से सारे देश में सनसनी फैल गई और 1921 में गांधीजी ने अपना असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया।[15] उन्होंने स्वाधीनता आन्दोलन को क्रांति का स्वर दिया, अंहिसा का नया हथियार दिया और उसे गांवों और कस्बों में आम आदमियों तक पहुँचाया।[16]

अंग्रेजों का भारत के संबंध में हीन भावना थी, इसलिए सांविधानिक सुधारों पर विचार करने के लिए अंग्रेजों ने साइमन कमीशन को भेजते समय ब्रिटिश शासकों ने कहा था कि भारतीयों में अपने साम्प्रदायिक मतभेदों के कारण अपने लिए संविधान बनाने की क्षमता नहीं है। राष्ट्रीय नेताओं ने चुनौती को तुरन्त स्वीकार किया। एक सर्वदलीय सम्मेलन हुआ जिसने पं. मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व में एक समिति बनाई।[17] 1928 की नेहरू रिपोर्ट इसी समिति के परिश्रम और सूझ-बूझ का फल थी। यह स्वयं भारतीयों द्वारा किया गया भारत के लिए एक पूरा नया संविधान बनाने का पहला प्रयास था।[18] नेहरू रिपोर्ट में और बातों के साथ-साथ राज्य के जिस ढाँचे की तथा व्यक्ति के लिए जिन मूलभूत अधिकारों की संकल्पनाएँ की गई थीं, आगे चलकर स्वाधीन भारत के संविधान में प्रायः उन सबका समावेश हुआ।[19]

नेहरू रिपोर्ट में केवल डोमिनियन स्टेटस की मॉग की गई थी, किन्तु 1928 की कलकत्ता कांग्रेस ने यह घोषणा की कि यदि एक वर्ष के भीतर अंग्रेजी सरकार ने यह माँग नहीं मानी तो फिर पूर्ण स्वाधीनता से कम पर सौदा न हो सकेगा। अगले वर्ष 31 दिसम्बर, 1929 को रावी के तट पर पं0 जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता का लक्ष्य अपनाया और निर्णय किया कि हर वर्ष 26 जनवरी के दिन को स्वाधीनता-दिवस के रूप में मनाया जाये। पहला स्वाधीनता-दिवस 26 जनवरी, 1930 को मनाया गया।[20] उसी वर्ष नमक-कर लगाने वाले कानून को तोड़ने के लिए गांधीजी ने प्रसिद्ध दांडी-यात्रा की और उसके साथ ही अपने सविनय अवज्ञा आन्दोलन का सूत्रपात किया।[21] ज्यों-ज्यों आन्दोलन का दमन किया गया वह तीव्र होता गया। इसी बीच देश को 'इंकलाब जिन्दावाद' का नारा देने वाले भगतसिंह और उनके साथी देशभक्त क्रांतिकारियों को फाँसी पर चढ़ा दिया गया।

1930 और 1932 के बीच भारतीय सांविधानिक स्थिति पर विचार करने के लिए लन्दन में तीन गोलमेज-सम्मेलन किये गये। यद्यपि उनका कोई सर्वमान्य नतीजा न निकल सका फिर भी उनके तथा ब्रिटिश संसद की संयुक्त समिति के प्रतिवेदन के फलस्वरूप हमें 1935 का भारतीय शासन अधिनियम मिला जिसके अन्तर्गत 1937 में प्रान्तीय विधानसभाओं के लिए चुनाव हुए।[22] अधिकांश राज्यों में कांग्रेस को बहुमत मिला और कांग्रेस की सरकारें बनीं। 1939 में अंग्रेजी सरकार की युद्ध-नीति और जनता के प्रतिनिधियों की राय लिये बिना भारत को द्वितीय महायुद्ध की आग में झोंकने की नीति के विरोध में कांग्रेसी सरकारों ने इस्तीफा दे दिया।[23] 1940 में गांधीजी के सीमित व्यक्तिगत सत्याग्रह और 1941 में असफल क्रिप्स मिशन के बाद, भारत में अराजक स्थिति हो गयी थी। आखिर में, अगस्त 1942 में गांधी जी और कांग्रेस के चोटी के नेताओं ने देश की जनता के कानों में 'करो या मरो' का नारा दिया।[24] अंग्रेजो! भारत छोड़ो' के नारे से देश का कोना-कोना गूँज उठा। सरकार का दमन-चक्र चला और आन्दोलन को निर्दयतापूर्वक कुचला गया। पर कुछ ही समय बाद भारत की पूर्वी सीमाओं से नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की आजाद हिन्द फौज का कौमी नारा 'जय हिन्द' उठा। अंग्रेजी शासकों के पैर उखड़ गये। 1945 में विश्व-युद्ध समाप्त हुआ और अगले ही वर्ष ब्रिटिश सरकार ने यह निश्चय कर लिया कि अब भारत को और अधिक दिन गुलाम नहीं रखा जा सकता। अन्ततः मंत्रिमंडल मिशन की योजना के अन्तर्गत संविधान-सभा समवेत हुई, अन्तरिम सरकार बनी और फिर माउंटबेटेन योजना और भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम के अधीन देश का विभाजन और स्वाधीनता का अरूणोदय हुआ।[25]

संविधान सभा के सामने अनेक गम्भीर समस्याएं थी और प्रश्न था इस महान् और विशाल राष्ट्र के लिए, स्वाधीन भारत के लिए, एक नया संविधान बनाने का। संविधान सभा सच्चे अर्थों में सारे भारत के लोगों का प्रतिनिधित्व करती थीः उसमें सभी प्रमुख दलों और हितों के नेता, विधिशास्त्री, और विद्वान और प्रान्तों के मुख्यमंत्री आदि मौजूद थे। कह सकते हैं कि उस समय की देश की अधिकांश महानतम विभूतिया संविधान सभा में विराजमान थीं।[26]

सरदार पटेल की सूझ-बूझ और नीति-कौशल ने शीघ्र ही लगभग 600 देशी रियासतों को राष्ट्र की वेणी में गूँथकर भारत की एकता को एक नया रूप-रंग और अर्थ दिया। राजेन्द्र प्रसाद संविधान सभा (या विधान परिषद्) के सभापति निर्वाचित होते ही संविधान सभा को स्वतंत्र घोषित किया एवं यह संपूर्ण भारत के लोगों का प्रतिनीधि है, इसपर किसी भी प्रकार के बाह्यरी अंकुश से मुक्ति की घोषणा की।27 देश का संविधान बनाने की दिशा में सबसे पहला काम था भावी संविधान के उद्देश्यों का निरूपण। यह काम पं0 नेहरू ने संविधान सभा के सामने एक उद्देश्य प्रस्ताव रखकर पूरा किया। इसमें मोटे तौर पर बतलाया गया था कि भावी संविधान का स्वरूप और ढाँचा क्या होगा तथा उसके आधारभूत मूल्य क्या होंगे।

उद्देश्य प्रस्ताव की स्वीकृति के बाद संविधान सभा ने संविधान निर्माण के विभिन्न पहलुओं पर अनेक समितियाँ गठित की। इनमें से कुछ समितियों की सिफारिशों पर संविधान सभा ने विचार किया। कुछ मूल सिद्धान्त निश्चित हो गये जिनके आधार पर सभा के सांविधानिक परामर्शदाता ने संविधान का एक प्रारूप तैयार किया। इस प्रारूप पर तथा कुछ समितियों की सिफारिशों पर एक प्रारूप समिति अथवा ड्राफ्टिंग कमेटी ने विचार किया। प्रारूप समिति ने जो ड्राफ्ट बनाया उसे जनता का मत जानने के लिए प्रकाशित और प्रचारित किया गया। संविधान सभा के सचिवालय को जो असंख्य आलोचनाएँ, टिप्पणियाँ और सुझाव जनता से, विभिन्न संगठनों अथवा व्यक्तियों से प्राप्त हुए उन सब पर एक-एक करके प्रारूप समिति के द्वारा विचार किया गया। विदेशों में रहने वाले भारतीयों ने भी बहुत से सुझाव और ज्ञापन भेजे थे। संविधान सभा के अध्यक्ष ने एक उच्चस्तरीय विशेष समिति भी नियुक्त की जिसका काम इन सब अलोचनाओं पर और उनके संबंध में की गई प्रारूप समिति की सिफारिशों पर विचार करना था। धारावार विचार होने के बाद 26 नवम्बर, 1949 को ''अपनी

संविधान सभा में समवेत भारत के लोगों ने अपने लिए एक सर्वप्रभुत्वसंपन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य का संविधान अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित किया''।[28] संविधान-निर्माण का यह महान् यज्ञ 2 दो वर्ष 11 माह और 18 दिन में कुल 166 दिन में बैठक के समय में पूरा कर लिया गया। यह कोई साधारण काम नहीं था कि इतने विशाल क्षेत्र और वैविध्यपूर्ण जनसंख्या के इस समूचे देश को संविधान सभा एक राष्ट्रध्वज और एक ऐसा संविधान दे सकी, जो कितनी ही प्राकृतिक, आर्थिक और राजनीतिक विविधताओं के बीच एकता का प्राचीन स्वर्ण-सूत्र ढूँढ निकालने में सफल हो।[29]

भारतीय संविधान के निर्माण का अपना एक ऐतिहासिक क्रम रहा है। प्राचीनकाल से अबतक के सफर में हमलोग अंग्रेजों से सत्ता स्थापित होने के बाद से ही प्रमुख रूप से अध्ययन को केन्द्रित करते हैं।

संदर्भ

1. महात्मा गाँधी, हिंद स्वराज, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1969, पृ0 50
2. जवाहर लाल नहेरू, हिंदुस्तान की खोज
3. रविन्द्र नाथ टैगोर, भारतीय राष्ट्रवाद
4. हिन्दू पॉलिटी
5. वहीं
6. वही
7. के0सी0 श्रीवास्तव, भारत का इतिहास एवं संस्कृति प्रयाग बुक डिपो, इलाहाबाद, 2005 पृ
8. वही
9. वही
10. सावरकर
11. रामलखन शुक्ल, आधुनिक भारत का इतिहास, हि0मा0 का निदे0, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 1989 पृ0
12. विपन चन्द्र
13. सुभाष कश्यप
14. यशपाल एवं ग्रोवर, पूर्वोक्त
15. रामलखन शुक्ल पूर्वोक्त
16. वही
17. वही
18. विपन चन्द्र पूर्वोक्त
19. सुभाष कश्यप पूर्वोक्त
20. विपन चन्द्र पूर्वोक्त
21. वही
22. वही
23. रामलखन शुक्ल पूर्वोक्त
24. ताराचंद पूर्वोक्त
25. सुभाष कश्यप पूर्वोक्त
26. वही
27. 11 दिसंबर 1946 का वाद-विवाद भाषण
28. प्रस्तावना
29. सुभाष कश्यप

रेणु के उपन्यासों में आंचलिकता और लोक संस्कृति

डॉ० संजू कुमारी

विभागाध्यक्ष, सिद्धार्थ महिला कॉलेज, पटना, पाटलीपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

आधुनिक हिन्दी साहित्य में आंचलिक उपन्यास के प्रणेता, कांतिकारी विचारों के संवाहक, मेला आचल, 'परती परिकथा', 'जूलूस', 'दीर्घतपा', 'कितने चौराहे', 'पलटू बाबू रोड आदि उपन्यासों के रचयिता फणीश्वर नाथ रेणु का जन्म (तात्कालीन) पूर्णिया (समकालीन) अररिया जिले के औराही हिगना नामक गाँव मे 4 मार्च 1921 ई० को हुआ था। हिन्दी कथा साहित्य में आंचलिकता का श्री गणेश करनेवाले रेणु की समस्त रचनाओं में आंचलिकता व लोक संस्कृति की मीठी सुगंध पाठकों के मन मस्तिस्क को आनन्दत तो करती ही है साथ ही उनकी शब्द योजना विशेशत: गहरा प्रभाव छोड़ती है। सच तो यह है फणीश्वर नाथ रेणु हिन्दी कथ साहित्य में लोकसंस्कृति के सर्वश्रेश्ठ अराधक सिद्ध हुए हैं। यदि देखा जाए तो सम्पूर्ण साहित्य ऐन-केन-प्रकारेन लोक संस्कृति में डूबा हुआ है। लोक से तात्पर्य दुनिया, संसार, जगत, सृश्टि आदि में है और संस्कृति का संबंध संस्कार से है, जो आंतरिक अनुभूतियों से संबंधित होता है। संस्कृति जीवन जीने की विधि है। जिसमें हम सोचते हैं, कार्य करते हैं, व अनेक गतिविधियों को पूरा करते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मानव जीवन की प्रत्येक गतिविधियाँ, रहन-सहन, आचार-विचार, व्यावहार, कला, संगीत कला, नृत्य कला, धर्म, वस्तु कला, विज्ञान सभी संस्कृति के अन्तर्गत आते हैं। लोक समुदाय का मिला जुला रूप लोक कहलाता है, इन सबकी मिली-जुली संस्कृति लोक संस्कृति लोक संस्कृति के संबंध में बदरीनाथ ने कहा है- ''लोकयतन (व्यापक संस्कृति) समूहोन्मुख एवं परंपरा आधारित वह संस्कृति है जो समुदाय के लोगों की रचना एवं उनकी इच्छाओं एवं आकांक्षाओं की संवाहिका तथा उनकी सांस्कृतिक अस्मिता की परिछाया भी हैं। इसके मुल्य एवं मानक मौखिक रूप से प्रवाहित होते हैं। भाशा, साहित्य संगीत, नृत्य, खेल, कर्मकाण्ड, वस्तु कृति एवं अन्य कलाएँ इसके रूप होते हैं।''

लोक संस्कृति के परिचय के उपरान्त यदि हम आंचलिकता पर विचार करें तो पारिमाशिक तौर पर आंचलिकता का तात्पर्य किसी अंचल, क्षेत्र विशेश का रहन-सहन और सांस्कृतिक विशेशताएँ आदि से है, जिसको साहित्य में स्थान दिया फणीश्वर नाथ रेणु ने। रेणु जी का सर्वाधिक चर्चित उपन्यास मैला आँचल की भूमिका में उन्होंने लिखा- ''यह है मैला आँचल, एक आंचलिक उपन्यास।''[2] सच तो यह है ''आंचलिक उपन्यासों में आँचल विशेश की माटी की सोंधी, महक, प्रकृति के निर्बंध प्रसार, लोकसंस्कृति के छद तथा लोकभाशा की ताजगी की मोहक छवियों को कथा -बिंबों में इस ढंग से उमारा जाता है कि पूरा अंचल अपनी समग्रता में चित्रित हो उठता है। अमूर्त अंचल का साभिप्राय संमूर्तन इसकी विशेशेता है।''[3] यों तो आंचलिक उपन्यास की शुरूआत को लेकर साहित्यकारों में विवाद रहा है। कुछ शिवपूजन सहाय के देहाती दुनिया को मानते हैं तो कुछ नागार्जुन के 'बलचनमा' को। इस विशय पर डॉ० बच्चन सिंह के शब्दों में - ''फणीश्वर नाथ रेणु के 'मैला आँचल' (54) के प्रकाशन के साथ हिन्दी में आंचलिक उपन्यासों की शुरूआत होती है। यह दूसरी बात है कि इसकी ऊँचाई को लाँघ पाना किसी अन्य आंचलिक उपन्यास के लिए संभव नहीं हो सका।''[4]

आंचलिक उपन्यासों का महत्वपूर्ण तत्व है यथार्थवादी चित्रण द्य यह सर्वविदित है कि प्रेमचंद के साथ हिन्दी उपन्यास में एक नया युग प्रारम्भ होता है। प्रेमचंद ने अपने काल में सामाजिक परिवर्तन के संघर्शो को स्वर दिया। हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में आंचलिकता का उद्भव प्रेमचंद युग, से भी माना जाता है। प्रेमचंद के 'गोदान' में लोकजीवन का परिप्रेक्ष्य वृहत रूप में चित्रित है। लोक संस्कृति इस उपन्यास की आत्मा में रची-बसी है तथापि 1954 में, फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' के साथ आंचलिक उपन्यासों की सशक्त परम्परा की शुरूआत हुई। इसकी सबसे बड़ी विशेशता यह है कि इसमें कोई नायक विशेश न होकर पूरा परिवेश पूरा अंचल ही इसका नायक है। ऐसा कहा जाता है कि ''फणीश्वरनाथ रेणु हिन्दी कथा साहित्य के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। आँचलिक उपन्यास साहित्य के तो वो जनक ही थे। उनके छ उपन्यास है- 'मैला आँचल', 'परती परिकथा', 'कलंकमुक्ति', 'जुलूस', 'कितने चोराहे' और पल्टू बाबू रोड इनमें पाँच आंचलिक उपन्यास है और कितने चौराहे सामान्य उपन्यास है। इनके उपन्यास जन जीवन से जुड़े हुए है। इसलिए आँचलिकता का भरपूर निर्वहन इनके उपन्यासों में हुआ है। यूँ तो सम्पूर्ण विश्व की संस्कृति मानव मूलक ही है, जिसमें मानव के जीवन का उद्देश्य उसके व्यवहार एवं किया-कलापों का निर्देश और संग्रह होता है। मानव के व्यवहार में ही परिलक्षित होती है वहाँ की संस्कृति इस बात को नकारा नहीं जा सकता अंचल एक जीवन्त व्यक्तित्व है तो लोकसंस्कृति एक अविच्छिन जीवन धारा आंचलिकता का संबंध विभिन्न विशिष्ट स्थितियों से समन्वित, विशिष्ट लोक संस्कृति से पोशित और विशिष्ट समस्याओं, आस्थाओं और संस्कारों से ग्रस्त एक विशिष्ट अंचल के जन-जीवन से होता है तो लोक संस्कृति किसी देश के क्षेत्र विशेश के जनसाधारण की संस्कृति है। वह क्षेत्र विशेष गाँव हो सकता है, अंचल या जनपद हो सकता है। आंचलिकता के अन्तर्गत लोक संस्कृति के सहज अकृत्रिम स्वरूपों का समावेश होता है अर्थात् आंचलिक उपन्यासों में लोक सांस्कृतिक तत्वों का निरूपण एक आवश्यक अंग है।

रेणु के उपन्यासों में इन दोनों तत्वों का समावेश है। आचलिकता इनकी स्थापत्यगत विशेषता है. तो लोक संस्कृति महत्वपूर्ण अंग । 'मैला आँचल', 'परती परिकथा' तथा 'जुलूस' में ग्रामीण संस्कृति का चित्रण है तो 'कलंक मुक्ति', 'कितने चौराहे तथा 'पल्टूबाबू रोड' में शहर की संस्कृति साथ ही 'दीर्घतपा' में नगर-जीवन का चित्रण। 'मैला आंचल' में मेरीगंज की लोक संस्कृति का चित्रण इस व्यापकता के साथ हुआ है कि इसे वहाँ की संस्कृति का पृष्ठ कहा जा सकता है। इतना ही नहीं 'मैला आँचल' में रामनगर, मेला, सतुआनी एवं अनंत पर्व, 'परती परिकथा' में सोनपुर का मेला, पूर्णिया के समारोह, 'जुलूस'

में मुहर्रम, 'कितने चौराहे' में मुण्डन उत्सव, सरस्वती पूजा आदि का वर्णन रेणु के उपन्यासों की आंचलिकता और लोक संस्कृति को स्वमेव दर्शाती हैं। परती परिकथा''की यह पंक्तियाँ-'' ऑ- ऑ-रे ए ए

रेशमी पठोर मैया फाड़ि फेंकाउली-ई-ई, सोना के गहनवा मैया गाँव में बँटाउली-ई-ई. आँ- आँ-रे-ए- ए. रू-उ-पा के जे सोरह मन के चू-उ-उर रगड़ि कैलक धू-उ-र जी-ई-ई!''

उपन्यासकार ने अपने उपन्यासों में लोक विश्वास, रीति-रिवाज, पर्व-त्योहार, खान-पान, रहन-सहन, तीर्थ- मेले आदि के समावेश के साथ-साथ लोक-गीत, लोक-कथा, लोक नृत्य एवं लोक कथाओं का चित्रण भी विशेष रूप से किया है। मेरीगंज अंचल के लोक अंधविश्वासी हैं। जन-साधारण की यह संस्कृति है कि वह जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, डायन- जोगीन, ओझा-गुनी में विश्वास करते हैं। इन सबका चित्रण इन्होंने अपने उपन्यासों में किया है। यथा (क) 'जंगल की ओर दो पूड़ियाँ फैंक देते हैं, जंगल के देवी-देवता और भूत-पिशाच के लिए।'

मैला आँचल

(ख) 'सिन्दूर लगाते समय जिस लड़की की नाक पर सिन्दूर झड़कर गिरता है, वह अपने पति की बड़ी दुलारी होती है।'

मैला आँचल

(ग) पुल आदि बाँधने से पहले आदमी की बलि देते हैं।

परती परिकथा

(घ) 'साधु-सन्यासी लोगों से तनिक दूर रहना । उन लोगों का क्या ? कोई ऐसा मंतर पढ़कर फेंक दे कि

हम लोगों को पहचानेंगे ही नहीं

कितने चौराहे

निष्कर्ष- कहा जा सकता है, रेणु के आंचलिक उपन्यासों में प्रयुक्त लोक-संस्कृति सिर्फ भारतीय आंचलिक परिवेश में पलने वाली परम्पराएँ, रीती-रिवाज, मान्यताएँ और अंधविश्वास का ही प्रस्तुतिकरण नहीं करती बल्कि जीवन सत्य को उद्घाटित भी करती है।

संदर्भ सूची-

(1) लोक संस्कृति और इतिहास', बद्री नारायण, लोकमारती प्रकाशन, पहला संशोधित संस्करण 2010 पृश्ठ सं० 88

(2) 'मैला आँचल फणीश्वर नाथ रेणु राजकमल प्रकाशन, पाँचवा पुनर्मुद्रण, 1999, प्रथम संस्करण की भूमिका से।

(3) आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ० बच्चन सिंह, लोकगारती प्रकाशन, संस्करण 2016, पृष्ठ,संख्या 346

(4) वही, पृश्ठ संख्या 346

(5) शैली विज्ञान और रेणू के उपन्यास, डॉ० शिवशंकर मंडल, सारस्वत प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2014. पृष्ठ सं०- 143 (6) परती परिकथा, फणीश्वरनाथ रेणु राजकमल प्रकाशन, चौथा संस्करण 2009, तीसरी आवृति 2014, पृष्ठ संख्या -14आधुनिक भारतीय परिवेश में हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में चित्रित ग्राम-जीवन

कमलेश्वर के उपन्यास कितने पाकिस्तान में यथार्थबोध

डॉ० शिखा श्रीधर

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, श्रीमती बी0डी0 जैन गर्ल्स पी0जी0 कॉलेज, आगरा

सार संक्षेप-

साहित्य अकादमी से पुरस्कृत कमलेश्वर का यह उपन्यास मानवता के दरवाजे पर इतिहास और समय की एक दस्तक है। इस उम्मीद के साथ कि भारत ही नहीं, दुनिया भर में एक के बाद एक-दूसरे पाकिस्तान बनाने की लहू से लथपथ यह परम्परा अब खत्म हो। एक नया पाकिस्तान बना देना समस्या का अन्त नहीं है बल्कि समस्या के कारणों का समाधान खोजना समस्या मिटाने का कारगर तरीका होगा।

मूल लेख-

'कितने पाकिस्तान' कमलेश्वर का सबसे चर्चित उपन्यास हैं जिस पर उन्हें 2003 में साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया था। उपन्यास में बड़े फलक पर चीजों को उठाया गया है। लेखक के लिए पाकिस्तान एक देश नहीं है बल्कि एक मानसिक स्थिति है। यह उपन्यास भारत-पाकिस्तान के विभाजन पर केन्द्रित है, किन्तु इसके सूत्र विभाजन के हर बुनियादी पहलू से जुड़ते जाते हैं। ''क्या एक के जीवित रहने के लिए दूसरे की मौत जरूरी है? मौत! सारे युद्ध-महायुद्ध यही तो बताते हैं कि मौत के योगफल के आधार पर ही हार जीत तय हो सकती है।''[1]

लेखक भारत-पाकिस्तान के विभाजन के झगड़े को धार्मिक उन्माद के तौर पर नहीं देखता बल्कि उसके सरोकारों को उद्घाटित करता है। भौगोलिक नक्शे पर पाकिस्तान भले ही 1947 में उभरा हो, लेकिन विभाजन की प्रक्रिया तो उसी समय शुरू हो गई थी जब साम्प्रदायिक शक्तियों ने नफरत के बीज बोने शुरू कर दिए थे। जब तक धर्म, नस्ल, जाति, सत्ता आदि प्राप्त करने का जुनून लोगों में नशा की तरह छाया रहेगा, ऐसे ही हर पाकिस्तान के बाद एक और पाकिस्तान बनता रहेगा, जैसे भारत से पाकिस्तान बना और फिर पाकिस्तान से एक और पाकिस्तान बांग्लादेश बना है। यह धर्म, जाति, सम्प्रदाय का नफरत एक के बाद एक पाकिस्तान बनाने पर भी खत्म नहीं होगा। ''हमें मृत्यु के बदले जीवन को तलाशना होगा अदीब! और इसी तलाश के लिए मुझे तुम्हारे आंसुओं की जरूरत है। आंसू ही जीवन को जीवित रख सकते हैं।''[2]

गैर-जरूरी मौत से निजात पाने के लिए जिन्दगी की सार्थक तलाश में किसी न किसी को तो निकलना ही पड़ेगा। किसी न किसी को तो समस्याओं के कारणों पर मंथन करके उसके समूल को नष्ट करना ही होगा। विकास के विभिन्न सोपानों तथा पिरामिडों के इतिहास से भी ज्यादा पुराना है मनुष्य के प्रेम का इतिहास। ''हिन्दुस्तान पाकिस्तान की लकीर खिंच गई तो खिंच जाए.... लेकिन हिन्दू-मुसलमान के नाम पर औरत की इज्जत का बँटवारा तो नहीं हो सकता।''[3] कमलेश्वर इस उपन्यास में बार-बार यह उद्घोषणा करते हैं कि समाज में जब-जब अत्याचार होते हैं तब-तब मनुष्य की चेतना जाग्रत होती है, जो एक आक्रोश को जन्म देती है- ''जब-जब अन्याय, अत्याचार और अनाचार होता है तब-तब मनुष्य की चेतना और आत्मा को यह प्रलयकारी झंझावत झकझोरते हैं और काली आंधियां चलती हैं।''[4] जिन्ना इतिहास में एक खलनायक की तरह दर्ज है। यह सही है कि भारत-पाकिस्तान विभाजन में उसकी जाने-अनजाने में महत्वपूर्ण भूमिका थी, लेकिन उपन्यास में इस तथ्य को मजबूती से उभारा गया है कि ब्रिटिश साम्राज्य इस कुकृत्य के लिए वास्तव में जिम्मेदार है। जिन्ना तो उसके शतरंज की चाल के मोहरे बन गए।

''यही मोहम्मद अली जिन्ना की विडम्बना और त्रासदी है। उन्होंने एक बार सार्वजनिक तौर पर इंडिया का विभाजन माँग लिया तो फिर उनका मन चाहे जितना पछताता रहे, पर वे उस माँग से पीछे नहीं हट सकते...हटेगे तो अपना नेतृत्व खो देगें।.... एडविन! मैं गवाह हूँ...यही जिन्ना के साथ हुआ है! उन्होंने बड़ी शिद्दत से पाकिस्तान माँगा और जब तमाम विकल्पों को तलाशने और खारिज करने की मुश्किल प्रक्रिया से गुजरने के बाद मैंने उनके सामने पाकिस्तान और विभाजन का प्रस्ताव रखा तो वे खामोश और उदास थे.... उन्होनें न हाँ किया, न ना किया।''[5]

समय और इतिहास ही इस उपन्यास के नायक हैं। लेखक ने मानव-सभ्यता के लम्बे इतिहास की गहरी पड़ताल करते हुए अनुभव किया है कि इतिहास के प्रत्येक काल-खण्ड में नफरत और घृणा ने इंसान को दो फाँको में बाँटा है और पाकिस्तान बनते आ रहे हैं। आज भी यह सिलसिला बदस्तूर जारी है। इसी की परिणति है देश का विभाजन और पाकिस्तान की सृष्टि। उपन्यास में अदीब के सामने वक्त खुद इजहार करता है- ''अदीबे आला! वक्त न हिन्दू है, न मुसलमान....इतिहास गवाह है कि रजवाड़ों और सल्तनतों के लोग हिन्दू या मुसलमान तो थे लेकिन इनके स्वार्थों और महत्वाकांक्षाओं ने ही इन लोगों को और ज्यादा हिन्दू या मुसलमान बनाया था।''

''स्वार्थ और नफरत जमीन को टुकड़ों में बाँट सकती है, लेकिन तहजीब तो नहीं बंट सकती। अदीबों की बिरादरी ने मानवीय सभ्यता और तहजीब को बचाए रखा है। आज भी कबीर की आत्मा प्रेम, संवेदना और करूणा के बोधिवृक्ष की जड़ों को बचाए उसे नफरत की भूमि में रोपने के लिए प्रयत्नशील हैं।''[6] संस्कृति के निर्माण में सबसे महत्वपूर्ण तत्व है श्रम, श्रम के बिना संस्कृति और सभ्यता की कल्पना भी नहीं किया जा सकता। देवता श्रम नहीं करते इसलिए वे किसी संस्कृति का निर्माण भी नहीं कर सकते। देवताओं (शासकों) ने अपने अस्तित्व और वर्चस्व के लिए युद्ध का अविष्कार किया, लेकिन मनुष्य श्रम के साथ कर्म और शांति जैसे महत्वपूर्ण जीवन मूल्यों को खोजकर उन्हें विकसित किया।

पाकिस्तान का निर्माण सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक सभी दृष्टिकोण से एक गलत फैसला था। इतिहास इस बात का साक्षी है कि गलत निर्णय अनेक विद्रूपताओं को जन्म देता है। गलत निर्णय से ही उपजती है हिंसा, अपसंस्कृतियां और रक्तपात। उपन्यास में इतिहास और संस्कृति का गहन परीक्षण किया गया है। भारतीय इतिहास के महत्वपूर्ण पक्ष शाहजहाँ का समय और उसके पश्चात सत्ता के लिए उत्पन्न होने वाले संघर्ष का जीवन्त एवं कलात्मक चित्रण है। यह वही कालखण्ड है जिसके परिणामस्वरूप भारत को दु:खद परिणाम झेलने पड़े। शाहजहाँ का शासनकाल अन्तर्विरोधी खिंचावों का दौर था, जहाँ कट्टर धर्मान्ध भी थे और उदार तथा न्यायवादी-जनवादी भी।

उपन्यास में यथार्थबोध और भारतीय इतिहास के अनेकों पहलू उपस्थित हैं। आखिर दाराशिकोह को शाहजहां क्यों उत्तराधिकार सौंपना चाहता था? तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसके दिमाग में सत्ता हस्तांतरण की भारतीय परम्परा रही होगी जिसमें ज्येष्ठ पुत्र को उत्तराधिकारी घोषित किया जाता है और यह स्वाभाविक भी है क्योंकि उस समय तक मुगल सत्ता को भारत में स्थापित हुए सौ साल से अधिक हो गए थे, वे भारतीय संस्कृति, समाज, रीति-रिवाजों से परिचित एवं उसमें रच-बस गए थे। हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे से सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों का आदान-प्रदान कर रहे थे। औरंगजेब और दाराशिकोह के मध्य सत्ता संघर्ष के लिए। काफी सीमा तक शाहजहाँ भी जिम्मेदार है कि वह अपने पुत्रों को सही मार्गदर्शन नही उपलब्ध करा पाया। सही दिशा के अभाव में अनेक भटकाव आते हैं जो अनेक त्रासदियों को जन्म देते हैं।

''समझ में नहीं आता। इस सल्तनत की किस्मत में क्या लिखा हुआ है.... गलती मेरी है बादशाह बेगम.... मैंने अपने बेटों को अच्छी और इल्मी तालीम नहीं दी।''[7]

अलगाव विद्वेष और घृणा के माध्यम से कोई समाज मुल्क और संस्कृति तरक्की नहीं कर सकते। एक-दूसरे के लिए कुछ त्याग और बलिदान करके ही साझी संस्कृति विकसित की जा सकती है। दाराशिकोह के विचार इसी साझी संस्कृति के द्योतक हैं। ''मोअज्जज वजीरे आला वह दौर और था....अब हिन्दुस्तान की यह सरजमीं हमारा मुल्क भी है और मादरे वतन भी। हम यहीं पैदा हुए हैं और यहीं दफन होगें।''[8]

एक बड़ा सवाल हमारे सामने उपन्यासकार यह प्रस्तुत करता है कि क्या विदेशियों को बिना किसी सुदृढ़ नियंत्रण के खुली छूट दे देनी चाहिए? क्या यह व्यापार और मुनाफा हमारी राजनीति को प्रभावित नहीं करेगा? लेखक यह सवाल जहाँगीर के द्वारा अंग्रेज व्यापारियों को सूरत में व्यापार करने की छूट से शुरू करता है। आज के संदर्भ में अगर देखा जाए तो यह बहुत महत्वपूर्ण है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ विशेष रूप से अमरीका की कम्पनियों के माध्यम से आज के इस परिदृश्य को समझना बहुत आवश्यक है। इनरॉन के संदर्भ में अमेरिकी राजदूत रिचर्ड की धमकी के बाद केन्द्रीय सरकार ने महाराष्ट्र सरकार के विरोध और देश की प्रभुसत्ता की परवाह न करके उसकी तमाम शर्त स्वीकार कर लीं। देश में तीन गुने भाव पर यह कम्पनी उपभोक्ताओं को विद्युत सप्लाई करेगी। आर्थिक गुलामी के रास्ते से ही राजनैतिक गुलामी आती है।

''मलिका नूरजहाँ के जरिए जहाँगीर का इजाजनामा पाकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने एक तरफ तो अपनी जड़े मजबूत करनी शुरू कर दी, दूसरी तरफ वे हिन्दुस्तानी हुकूमत की जड़े खोदने के तरीके तलाशने लगे।... मालगोदामों की चौकीदारी के नाम पर फौज खड़ी कर ली।''[9]

इक्कीसवीं सदी में इसके कुछ और नाम हो सकते हैं। विकासशील देशों से ये कच्चा माल प्राप्त करते हैं और भारी मुनाफे पर उन्हीं देशों को बेंच देते हैं। इनकी बाजार व्यवस्था विषमता की खाई को गहरा और चौड़ा कर रही है। हमारी नई पीढ़ी को विचारहीन बनाकर कृत्रिम उल्लास और उत्सव के रंग में रंगने का प्रयास कर रही है। हमारे देश में 60 प्रतिशत आबादी के पास स्वच्छ पीने का पानी नहीं है वहाँ पेप्सी और कोकाकोला अपनी धूम मचा रही है, करोड़ों के लाभ में मिनरल वॉटर बिक रहा है। शराब पान की दुकानों में सस्ते में उपलब्ध कराई जा रही है। इस महँगाई के बीच शराब सस्ती होती जा रही है। भारतीय संस्कृति के आड़ में विदेशी संस्कृति का खुलेआम समर्थन हो रहा है, इस व्यवस्था को संतो, महंतो और धर्म के ठेकेदारों का पूरा समर्थन प्राप्त है। प्रचार माध्यम एक चकाचौंध फैला रहें हैं, ताकि क्रियाकलापों पर सुनहरा पर्दा डाल सके। यह उपन्यास विकासशील देशों में घट रहे इन दुष्चक्रों और षड़यंत्रों को कहीं विस्तार से तो कहीं संकेतों से हमारे सामने प्रस्तुत करता है।

उपन्यास उन बिन्दुओं को भी रेखांकित करता है जो एकता के केन्द्र में रहे। चाहे 1857 का पहला स्वाधीनता संग्राम हो या बीसवीं शताब्दी का मुक्ति संग्राम। जिसमें सभी जाति-धर्म मिलकर स्वाधीनता के लिए लड़े। लेखक का यह विश्वास है कि बड़े उद्देश्यों के लिए किए गए संघर्ष लोगों को जोड़ते हैं तथा सत्ता प्राप्त के लिए किए गए प्रयास लोगों को तोड़ते हैं जिसकी परिणति एक नए पाकिस्तान के रूप में होती है। देश दीन और धर्म से ऊपर है। जब धर्म बड़ा हो जाता है तो देश-छोटा हो जाता है और यही विद्वेष का कारण होता है।

निष्कर्ष-

उपन्यास का फलक बहुत विस्तृत है। विश्व की पांच हजार वर्ष पुरानी सभ्यताओं एवं संस्कृतियों को समेटने का प्रयास किया गया है फिर भी उपन्यास की रोचकता पर कोई प्रभाव नही पड़ा है। वर्तमान धार्मिक उन्माद, वैमनस्य, विवेकहीनता, युद्ध लोलुपता, सारे मानव मूल्यों को व्यापार बनाने का प्रयास आदि पर उपन्यासकार प्रश्न उठाता है। मैत्री, शांति और सद्भाव के आशा भरे संदेश के साथ उपन्यास समाप्त होता है।

संदर्भ सूची-

1. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, उन्नीसवां संस्करण-2019, राजपाल एण्ड सन्ज, काश्मीरी गेट दिल्ली, पृ0-18
2. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, उन्नीसवां संस्करण-2019, राजपाल एण्ड सन्ज, काश्मीरी गेट दिल्ली, पृ0-23
3. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, उन्नीसवां संस्करण-2019, राजपाल एण्ड सन्ज, काश्मीरी गेट दिल्ली, पृ0-38
4. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, उन्नीसवां संस्करण-2019, राजपाल एण्ड सन्ज, काश्मीरी गेट दिल्ली, पृ0-21
5. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, उन्नीसवां संस्करण-2019, राजपाल एण्ड सन्ज, काश्मीरी गेट दिल्ली, पृ0-53-54
6. डा0 रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य-साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, एकादश संस्करण-2016, पृ0-280
7. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, उन्नीसवाँ, संस्करण-2019, राजपाल एण्ड सन्ज, काश्मीरी गेट दिल्ली, पृ0-190
8. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, उन्नीसवाँ, संस्करण-2019, राजपाल एण्ड सन्ज, काश्मीरी गेट दिल्ली, पृ0-193
9. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, उन्नीसवाँ, संस्करण-2019, राजपाल एण्ड सन्ज, काश्मीरी गेट दिल्ली, पृ0-287-288

जयनंदन की कहानियों में नारी-शोषण

डॉ० मधुलता बारा

निर्देशक, सहा. प्राध्यापक, साहित्य एवं भाषा-अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल वि.वि., रायपुर (छ.ग.)

बरातू राम ध्रुव

शोधार्थी

सार

आधुनिक एवं स्वतंत्र भारत में स्त्रियों के साथ तरह-तरह के अत्याचार किए जा रहे हैं, जिससे स्त्री-शोषण एवं उत्पीड़न से घिरी हुई दिखाई देती है। इस आधुनिकीकरण, प्रगतिशील और भूमंडलीकरण के दौर में हम कितने संकीर्ण हो गए हैं कि स्त्रियों को आज भी अपनी दासी ही समझते हैं।

जयनंदन ने अपनी कहानियों में नारी-शोषण की समस्याओं को प्रमुखता से चित्रित किया है। उनकी कहानियों में ऐसे कई नारी-पात्र हैं जो विभिन्न प्रकार की शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक शोषण का शिकार होते हुए चित्रित हैं। उनकी कुछ प्रमुख कहानियाँ हैं, जैसे- 'मरे घोड़का नाल', 'झुनझुना', 'गिद्ध-झपट्टा', छुट्टा साँड़', 'बॉडीगॉर्ड', 'गोजर सिंह अमर रहे', 'हिरोशिमा और नागासाकी', 'चितामन चा का नरक', 'स्वतंत्रता सेनानी की बेटी', 'कस्तूरी पहचानो, वत्स' और 'ठेंगा' इत्यादि कहानियों में नारी-पात्रों पर घटित अमानवीय व्यवहार का चित्रण किया गया है। इस शोध-पत्र में मैंने 'मरे घोड़े की नाल', 'गिद्ध झपट्टा', 'छुट्टा साँड़' तथा 'चितामन चा का नरक' कहानी की प्रमुख स्त्री-पात्रों पर हुए शोषण के कुछ प्रमुख अंशों को प्रस्तुत किया है।

प्रस्तावना

जब हमें किसी कार्य या बातचीत के द्वारा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, शारीरिक या मानसिक दु:ख, कष्ट आघात पहुँचता है, उसे शोषण कहते हैं। शोषण मुख्यत: मानसिक, शारीरिक, सामाजिक एवं आर्थिक आदि श्रेणी के हो सकते हैं। पीड़ामय, मानसिक कष्ट एवं अनुचित कार्य होने के कारण यह अपराध की श्रेणी में आता है। अपराध की श्रेणी में होने के बावजूद अपने स्वार्थ, ईर्ष्या-द्वेश, लोलुपता, अभिलाशा, घृणा, अहं, अहंकार, क्रोध-आक्रोश एवं आवेश आदि मानसिक विकृतियों के कारण यह उपजते हैं। शोषण एक मनोविकृति एवं नकारात्मक मानसिकता द्वारा उपजी विकृतियाँ हैं। माानसिक शोषण, डराना-धमकाना, गाली देना, अपमान करना, बेइज्जत करना, व्यंग्य कसना, द्विअर्थी बात कहना, दबाव डालना, पीटना, उपेक्षा, आरोप मढ़ना, दोषारोपण करना, चरित्र हनन, आलोचना करना है। शारीरिक शोषण के अंतर्गत मारना-पीटना, दम घोंटना, जहर देना, धक्का-मुक्की करना, जलाना, गिराना, चोट, आघात आदि कई तरह के कष्ट पहुँचाना तथा शारीरिक पीड़ा, यौन-शोषण इत्यादि आता है।

पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत महिलाओं को हमेशा नीचले स्तर पर रखा गया है और यह विरोधाभास दीर्घकाल से भारतीय सामाजिक व्यवस्था में विद्यमान रहा है। इस विषय पर हिंदी के प्रसिद्ध कवि मैथिलीशरण गुप्त की अपनी रचना 'यशोधरा' में कहा गया कथन नारी की स्थिति को सार्थक व चरितार्थ करती है- ''अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी आँचल में है दूध और आँखों में पानी।''[1]

अर्थात् महिलाओं की करुण स्थिति का मार्मिक चित्रण किया गया है। इस प्रकार आज न जाने कितनी महिलाएँ अपने तन-मन और आत्मा की पीड़ा को अपने अंदर समेटे सारी जिघ्ंदगी अपमानित सी घुट-घुट कर काट लेती हैं। इसका यथार्थ चित्रण हिंदी साहित्य में हुआ है।

सामाजिक शोषण के अंतर्गत केवल एक व्यक्ति ही नहीं बल्कि पूरे परिवार और समूह को शिकार होना पड़ता है। कई बार हम सामाजिक शोषण को पहचाने में चूक कर जाते हैं, इस कारण उसको सह लेते हैं और सहन करते ही जाते हैं। इस कारण यह शोषण अप्रत्यक्ष रूप से प्रत्यक्ष प्रहार करते जाता है, जिसका परिणाम कई बार जानलेवा भी साबित होता है। आर्थिक शोषण में दूसरे के श्रम का अनुचित लाभ लेना, झूठ, फरेब, जालसाजी, धोखाधड़ी करना अर्थात् दुर्बल या अधिनस्थ सहयोगी का आर्थिक रूप से किया जाने वाला शोषण होता है।

नारी-शोषण

भारत पुरुष प्रधान देश रहा है, इस कारण महिलाओं को लेकर नारी सशक्तिकरण पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है और बहुत कुछ लिखा जा रहा है। नारी की स्थिति को लेकर आज भी कई सवाल हैं, जिसका उळार समाज से अपेक्षित है। भारत एवं विश्व के अन्य देशों में महिलाओं पर होने वाले उत्पीड़न,

जैसे- यौन-अपराध, बलात्कार, छेड़खानी, अपहरण, हत्या, दहेज के नाम पर प्रताड़ित करना, शारीरिक एवं मानसिक प्रताड़ना तथा घरेलू हिंसा आदि पर देश-विदेश, सामाजिक एवं विधिक शोध-कर्ताओं, लेखकों, विद्वानों तथा शोध- संस्थाओं द्वारा निरंतर अनेक अध्ययन व सर्वेक्षण किया जा रहा है, फिर भी भारत में यह घटनाएँ घटने के बजाए दिनों-दिन बढ़ती जा रही हैं, जो चिंता का विषय है।

ऐसा कोई दिन नहीं जिस दिन ऐसी घटनाएँ घटित न होती हों, प्रतिदिन प्रतिपल महिलाओं के साथ थप्पड़ों, लातों से पिटाई, धमकियाँ, अपमान, यौन-शोषण तथा अनेक तरह के हिंसात्मक घटनाओं को अंजाम दिया जाता है। यहाँ तक कि उनके जीवन-साथी या उनके परिवार के सदस्यों द्वारा उनकी हत्या तक की जाती है। इन घटनाओं का एक कारण यह भी है कि पीड़ित महिलाओं द्वारा इस प्रकार की हिंसात्मक कार्यवाही का प्रतिरोध न कर पाने के साथ इन घटनाओं के बारे में खुलकर चर्चा करने से घबराना, डरना व झिझक होना भी है, जिसके कारण आस-पास के लोगों को पता ही नहीं चलता, जिससे वे इस तरह की घटनाओं को रोक पाने में अपना योगदान दे सकें।

स्वतंत्र भारत में स्त्रियों की स्थिति को लेकर समाजशास्त्री लेखक संतोश सिंह ने लिखा है- ''ये तो प्रत्येक युग में भिन्न-भिन्न कारणों से भारतीय स्त्री ने व्यक्ति, परिवार तथा समाज के हिंसात्मक व्यवहार को झेला है, भुगता है, किन्तु आज स्थिति थोड़ी-सी भिन्न है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो हिंसात्मक आचरण एक सामाजिक व्यवहार बन चुका है। यह हिंसात्मक व्यवहार कैसा भी हो सकता है- व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति, समूह का समूह के प्रति, शक्तिशाली का कमजोर के प्रति, धनवान का निर्धन के प्रति, एक वर्ग विशेष का दूसरे वर्ग विशेष के प्रति और पुरुष का नारी के प्रति। इस पूरे चक्रव्यूह में सर्वाधिक दयनीय स्थिति उन कन्याओं की है, जो अपने ही लोगों के मध्य सुरक्षा कवच रूपी आचरण के पीछे अत्यन्त ही असुरक्षित जीवन जीने को बाध्य हैं।''[2] स्वतंत्रता के पूर्व और बाद में भारतीय स्त्रियों की स्थितियों पर विचार व्यक्त किया गया है।

भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति सदियों से कितनी दयनीय और सोचनीय रही है तथा वर्षों-वर्षों तक उसका स्वरूप स्त्री के रूप में दासी की तरह रहा है। इस संदर्भ में सामाजिक चिंतक शम्सुल इस्लाम ने लिखा है- ''भारतीय समाज में औरत ही एक ऐसी हस्ती है, जिसका नसीब संस्कृतियों, क्षेत्रों, वर्गों और धर्मों में व्यापक अंतर और भेद के होने के बावजूद हर जगह एक जैसा ही रहता है। लगातार तिरस्कार और अपमान जैसे उनकी नियति है। औरत की अकल उसकी ऐड़ी में होती है, औरत झगड़े का सबसे बड़ा कारण होती है और औरत की असल दवा पिटाई है, औरत के बारे में इस तरह की सोच केवल गंवार कहे जाने वालों की ही बपौती नहीं है। भारतीय संसद में कई बार ऐसा हुआ है कि सत्ताधारी पक्ष को शर्म दिलाने के लिए चूड़ियाँ पेश की गई। जाहिर है कि चूड़ियाँ पेश करने का मकसद यह जतलाना रहा है कि आप औरत की तरह नालायक हैं।''[3] इस तरह औरत के प्रति भारतीय मानसिकता को विभिन्न उदाहरणों से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

कहानियों में नारी-शोषण

जयनंदन की कहानियों की पृष्ठभूमि का प्रमुख आधार बिहार व उससे अलग हुए राज्य झारखंड है। कहानियों में गाँव से लेकर शहरी औद्योगिकी जीवन, जंगल मे निवास करने वाले भोले-भोले आदिवासी महिलाओं के साथ निम्न एवं उच्च जाति की महिलाओं के साथ घटित हुए शारीरिक एवं मानसिक शोषण का यथार्थ चित्रण किया है। आधुनिक भारत में स्त्रियों के साथ तरह-तरह के अत्याचार किए जा रहे हैं।

'मरे घोड़े का नाल' कहानी में कथा प्रमुख रंभा पर हुई अमानवीय व्यवहार का चित्रण किया गया है। मास्टर सेवक सिंह दहेज की लालच में अपने बीमार मरणासन्न छोटे बेटे गजेन्द्र की शादी एक सेठ धनराज की बेटी रंभा के साथ कर देते हैं और शादी के कुछ ही महीनों बाद गजेन्द्र की मृत्यु हो जाती है। तब गजेन्द्र की माँ तथा रंभा की सास नैनादेवी गजेन्द्र की मौत का दोष रंभा पर मढ़कर उसके साथ बहुत ही बुरा बर्ताव करती है- ''रंभा पर कोई असर नहीं... उसी तरह बुत-बदहवास सी। नैना लपककर उठी और उसके बाल पकड़कर झकझोरने लगी- 'अरी निर्लज्ज, कलमुंही... मैं भी आज तेरा गला घोंट दूंगी।''[4] रंभा पति गजेन्द्र की मौत हो जाने पर अपने होशो-हवास खोकर कमरे में ही पति के शव के पास बैठी थी, उसी समय उसकी सास नैनादेवी आत-ताव देखे बगैर ही अपनी नई नवेली बहू के साथ दुर्व्यवहार करने पर उतारू हो जाती है।

गजेन्द्र की मौत के बाद दहेज वापस न लौटाना पड़े इसके लिए मास्टर सेवक सिंह के निर्देषानुसार नैनादेवी रंभा को पति के साथ सती हो जाने के लिए धमकाते हुए कहती है- ''रंभा को छल-बल, तिरिया चरित्र से बरगलाने लगी, 'ध्यान से सुनो मेरी बात। तुम्हारे इस जन्म के भाग्य बहुत खोटे हैं। आठ महिनों में ही पति को तेरी आँख लग गयी। तुम्हें सब मनहूस समझेंगे। गाँव भर के लोग तुम्हारे चेहरे से घिन करेंगे। बोल, कैसे सहेगी तू इतनी हिकारत।''[5] नैनादेवी रंभा को विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से उसे सती होने के लिए मजबूर करती हुई चित्रित है।

नैनादेवी बात बनते व मानते न देख रंभा पर पूरा जोर लगाकर उसे सती होने का लाभ बताते हुए कहती है- ''सबका कहना मान। सती हो जा।' नैनादेवी ने अंतिम जोर लगाया 'देश-दुनिया में तुम्हारी जय जयकार होगी। खुद तो बैकुण्ठ जायेगी ही, दोनों कुल की सात पुश्तों का भी उद्धार हो जायेगा। मरकर जो पुण्य कमायेगी तू वह जीकर कोई क्या पायेगा। तेरे नाम से मन्दिर बनेंगे..युग-युग तक अमर रहेगी तू। गजेन्द्र बेटा तेरी राह देख रहा होगा। उसकी दूसरी काया धारण करने पर भी तो उसका जोड़ आखिर तुझे ही बनना है। जाओ... यहाँ बरसों तक तिल-तिल जलने से क्या फायदा ? दूसरी काया धारण करो। अब यह चारों ओर फैल गया है कि तू स्वेच्छा से सती हो रही है। ना करेगी तो बहुत थू-थू करेंगे लोग और वे मानेंगे भी नहीं। देखो तो तुम्हारे सतीत्व को देखने कितने लोग आ गये हैं... कितनी भाग्यशाली है तू... मैं हाँ कह देती हूँ सबसे...' नैना ने अब बाहर के लोगों को सुनाते हुए कहा- 'चलो, तैयारी करो, लाख समझाने पर भी बहू नहीं मान रही... कहती है मैं सती होकर रहूँगी।''[6] इस तरह सेवक सिंह, उसके मित्र एवं नैनादेवी के साथ साजिश रचते हुए झूठी अफवाह फैलाकर एक जिंदा व्यक्ति को राख में तब्दील करने की प्रक्रिया को अंजाम देता है।

'गिद्ध झपट्टा' कहानी में कथा-नायक हिरदेव की बहनों पर दहेज के नाम से हुई मानसिक-शारीरिक शोषण का उल्लेख हिरदेव की पिता के माध्यम से बेटियों की दयनीय स्थितियों का चित्रण किया गया है। ''हिरदेव की तीन बहनें थीं। तीनों को ब्याहा था उन्होंने। हालाँकि दो के ब्याह में ही उनकी कमर झुक गयी थी। बहुत सारे खेत और पत्नी के गहने बिक गये थे। तीसरी ब्याह में इसीलिए काफी कोर-कसर रह गयी थी। उनके लिए यही जीवन का सबसे

बड़ा मलाल था। दहेज का वादा करके भी उन्हें मजबूरीवश ऐन शादी के वक्त मुकर जाना पड़ा था। कह सुनके और हाथ-गोड़ धरके शादी तो खैर किसी तरह हो गयी थी मगर उसका खामियाजा लल्ली को आज तक भुगतना पड़ रहा था। ससुराल वाले उसे तनिक जी में नहीं लगाते थे। बात-बात में मार-पीटकर घर से उसे बाहर कर देते थे। एक सप्ताह भी लल्ली को वहाँ टिकना मुश्किल हो जाता था। धीरे-धीरे वह इस तरह टूट रही थी जीवन से, जैसे दीमक कुतरता जा रहा हो पेड़ की जड़ को। इसे देखकर बदरीनाथ की छाती सूखी धरती की तरह दरार से चाक-चाक होती रहती थी।''[7] यह स्थिति हिरदेव के पिता बदरीनाथ जैसे अनेक गरीब मध्यम परिवार की है, जिसके द्वारा उचित दहेज नहीं दे पाने के कारण उनकी बेटियों की ससुराल में कोई मूल्य नहीं रह जाता है तथा आए दिन दहेज के नाम से प्रताड़ित होने पर मजबूर होना पड़ता है।

'छुट्टा साँड़' कहानी में कथा-नायिका नेपुरनी चाची के साथ घटित अमानवीय व्यवहार का यथार्थ चित्रण किया गया है। नेपुरनी चाची अपनी इज्जत लूटने पर उतारू गाँव का एकक्षत्र जमींदार शौकत मियां के चंगुल से चतुराई पूर्वक चकमा देकर छूटते हुए अपने विवाह वाली चप्पल से उसके गालों को तड़ातड़ देकर निकल आती है। उसके बाद इस तमाचे के बदले सबक सिखाने के लिए शौकत मियां अपने वफादार तथा चाची के ससुर भण्डारी जी को बुलाकर आदेश फरमान कर देते हैं कि उसे कड़ी-से-कड़ी सजा दी जाए। लिहाजा अपने ही बेटे-बहू के प्रति भण्डारी जी के मन में न जाने कब से ही गाँठ पड़ी थी। इस कारण शौकत मियां का जालिम हुक्म भी भण्डारी जी को ममनाफिक लगा और आदेश का पालन करते हुए- ''उन्होंने अपने दोनों बड़े और मँझले बेटे की मदद से सम्पत-चा को एक कोठरी में बन्द कर दिया। फिर चाची को रस्सी से जकड़ डाला। आँगन में एक लहलहाती भट्टी तैयार करवायी और लोहे की सींक को लाल करने तक छिपाने लगे। चाची बलि होने वाले बेबस पशु की तरह बिलबिलाने लगी। चाचा भी पिंजड़े में फँसे शोर की तरह हड़बोग मचाते रहे।''[8] यह जुल्म तथा शोषण की तैयारी एक ससुर की है, जो गाँव के जमींदार का एक अंधभक्त गुलाम होने के कारण उन्हें यह तक सऊर नहीं रह जाता कि वह जिसका आदेश मान रहा है वह उसकी सगी छोटी बहू की इज्जत लुटने पर उतारू था। इस तरह जिसे वास्तविक में सजा मिलनी थी उसकी तरफदारी और जिसका पीठ थपथपाना चाहिए था उसके ऊपर जुल्म हो रहा था।

'चितामन चा का नरक' कहानी में कथा-नायक एक अभागिन महिला सुपौली पर उसके शराबी पति सौखी द्वारा किए गए मानसिक, शारीरिक यातना तथा अत्याचार का यथार्थ चित्रण किया गया है- ''बहू जब घर आयी तो वे देखकर सन्न रह गए। वह बहुत सुंदर थी... प्यारी थी... आत्मीय थी... शिष्ट थी। उन्हें खुश होना चाहिए या दुखी तुरंत कुछ समझ में नहीं आया था। लेकिन चार-पाँच दिन बाद ही नियति के लक्षण उन्हें दिखायी पड़ गये थे। आधी रात को पीकर धुत लौटे सौखी से जब बहू ने जरा कम पीने और जल्दी आने की प्रार्थना की तो उसने उसके मुंह पर एक झापड़ रख दिया और गरजकर कहा कि खबरदार जो तूने फिर कभी मुझे नसीहत दी। अगले दिन वह ज्यादा देर से ज्यादा पीकर लौटा। इंतजार करते-करते वह सो गयी थी। बहुत देर तक उसे दरवाजा खटखटाना पड़ा था। इस बात पर वह फिर बहू पर टूट पड़ा। जमीन पर उसे पटक दिया और बेतहाशा लात-घूंसे चलाने लगा। इसे बचाने के चक्कर में चितमन चा को भी कुछ प्रहार झेलने पड़े।'' इस तरह चितामन चा द्वारा अपने शराबी बेटे सौखी द्वारा बहू पर किए गए निर्मम अत्याचार का चित्रण किया है।

निष्कर्ष

जयनंदन ने अपनी कहानियों में तीनों वर्ग की महिलाओं- उच्च, निम्न व मध्यम तथा शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों में निवास कर रही महिलाओं पर प्रतिदिन हो रही अमानवीय शोषण का यथार्थ चित्रण किया है। उनकी कथा-क्षेत्र का केंद्र बिंदू बिहार और झारखण्ड होने के कारण वहाँ की सामान्य महिलाओं पर हुए जुल्म का मार्मिक चित्रण हुआ है, जैसे- 'मरे घोड़े का नाल' कहानी में दहेज तथा सती होने के नाम पर कथा-प्रमुख रंभा को जिंध्दा जला दिया जाता है। 'गिद्ध झपट्टा' में कथा-नायक हिरदेव की बहनों को दहेज के नाम पर प्रतिदिन शोषित, लज्जित व अपमानित होना पड़ता है। 'चितामन चा का नरक' कहानी में एक शराबी पति के अत्याचार व शोषण से प्रताड़ित पत्नी सुपौली पर घटित हृदयविदारक अमानवीय घटनाओं का चित्रण हुआ है। इस प्रकार जयनंदन ने विभिन्न प्रकार की नारियों पर हुए बर्बर घटनाओं का यथार्थ चित्रण करने का प्रयास किया है।

संदर्भ-सूची

1. गुप्त, मैथिलीशरण. यशोधरा. झाँसी: साहित्य-मुद्रण चिरगाँव, वि.सं. 2030, पृ. 69.
2. सिंह, एन.वी., सिंह, जनमेय. आधुनिकता एवं नारी सशक्तिकरण. जयपुर: रावत पब्लिकेशंस, प्रथम संस्करण 2010, पृ. 192.
3. जयनंदन. सन्नाटा भंग. दिल्ली: दिशा प्रकाशन, 138/16, त्रिनगर, प्रथम संस्करण, पृ. 107.
4. वही, पृ. 114.
5. वही, पृ. 115.
6. वही, पृ. 115.
7. जयनंदन. विश्व बाजार का ऊंट. दिल्ली: दिशा प्रकाशन, दिशा प्रकाशन, 138/16, त्रिनगर, प्रथम संस्करण, पृ. 57.
8. वही, पृ. 66.
9. जयनंदन.दाल नहीं गलेगी अब. नई दिल्ली: पुस्तक भवन, आर.जेड. 35 बी, गली नं. 1ए, कैलाशपुरी एक्सटेंशन, पृ. 39.

माध्यमिक दर्शन में सर्वज्ञ का स्वरूप

नरेन्द्र कुमार

सुपुत्र श्री जय सिंह, गांव पाढ़ा, जिला करनाल, तहसील असन्ध

भूमिका:

भगवान् बुद्ध (गौतम, सिद्धार्थ, तथागत) के महापरिनिर्वाण के बाद बौद्ध-धर्म में अनेक बौद्धाचार्य हुए, जिसका परिणाम यह हुआ कि बौद्ध-धर्म में तीस से अधिक सम्प्रदाय विकसित हुए। बौद्ध-धर्म के अनेकों शाखाओं में से चार शाखा या सम्प्रदाय प्रमुख हैं, जैसे- (क) वैभाषिक - बाह्यार्थप्रत्यक्षवादी, (ख) सौत्रान्तिक- बाह्यार्थानुमेयवादी, (ग) योगाचार-विज्ञानवाद, (घ) माध्यमिक-शून्यवाद। प्रस्तुत चार सम्प्रदायों में से वैभाषिक तथा सौत्रान्तिक हीनयान से सम्बन्धित हैं। योगाचार-विज्ञानवाद तथा माध्यमिक-शून्यवाद महायान से सम्बन्धित है।[1]

भगवान् बुद्ध के उपदेश ही बौद्ध-धर्म के ज्ञान का स्रोत है। भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद अनेक बौद्धाचार्यों ने बौद्ध-धर्म एवं दर्शन का गहन अध्ययन किया।

माध्यमिक अथवा शून्यवाद सम्प्रदाय में कई बौद्धाचार्य हुए हैं। माध्यमिक सम्प्रदाय के प्रमुख बौद्धाचार्य है - आचार्य नागार्जुन, आर्यदेव, बुद्धपालित, स्थविर, भावविवेक, चन्द्रकीर्ति, शान्तिदेव और शान्तरक्षित।[2]

इन समस्त बौद्धाचार्यों ने माध्यमिक अथवा शून्यवाद दर्शन को पल्लवित एवं पुष्पित किया है।

शून्यवाद अथवा माध्यमिक महायान का एक प्रमुख सम्प्रदाय है। माध्यमिक आचार्यों का मत है कि इस प्रत्यक्ष जगत से परे पारमार्थिक सत्ता है, परन्तु वह अवर्णनीय है उस पारमार्थिक सत्ता या 'परमतत्त्व' को ही माध्यमिक दार्शनिक 'शून्य' कहते है।[3]

सर्वज्ञ की सामान्य अवधारणा:

भारतीय चिन्तनधारा की सबसे मुख्य विशेषता यह है कि सर्वज्ञ के बारे में सभी दार्शनिकों का भिन्न-भिन्न मत है। बौद्धदर्शन सर्वज्ञता प्राप्ति का समर्थन करता है। सर्वज्ञ से बौद्ध का अभिप्राय है कि जिसके तत्त्वज्ञान के आवरण, राग आदि नष्ट हो जाते है ऐसा यह सर्वज्ञ समस्त विश्व को हाथ पर रक्खे हुए आंवले के समान पूर्णतया साक्षात् देखता है तथा शास्त्र प्रतिपादित कल्याण के मार्ग को साक्षात् अनुभव करता है। यह सभी प्राणियों के हित की कामना करने वाला होता है।[4] अत: बौद्धदर्शन में महात्मा बुद्ध को ही सर्वज्ञ स्वीकार किया गया है।

जैन दर्शन में चौबीस तीर्थकरों का वर्णन है पार्श्वनाथ तेइसवें तीर्थंकर थें। चौबीसवें तीर्थकर भगवान महावीर छठी शती ईसा पूर्व गौतम बुद्ध के समकालीन थे। इसका प्रमाण 'बौद्ध निकाय' में मिलता है जिसमें वर्धमान भगवान् महावीर को 'निगण्ठ नातपुत्र' कहा गया है। ज्ञातृ इनका कुल सभी कर्मबन्धन की ग्रन्थि खोलने के कारण इन्हें निर्ग्रन्थातपुत्र कहा गया है।[5] अत: जैन लोग इन्हें ही सर्वज्ञ के रूप में स्वीकार करते है।

सांख्य दर्शन का स्थान षड्दर्शनों में विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है। सांख्य के प्रवर्तक कपिलमुनि कहे जाते हैं। गीता में सांख्य शब्द का प्रयोग जगह-जगह हुआ है वहाँ वह ज्ञान निष्ठा का वाचक है। गीता के ही अनुसार सिद्धों में कपिल मुनि भगवान् (सर्वज्ञ) की विभूति है। भागवत पुराण में कपिल मुनि को चौबीस अवतारों में गिना गया है।[6] अत: इन्हीं को सर्वज्ञ माना है।

माध्यमिक दर्शन का परिचय:

बौद्धमत माध्यमिक का नामकरण वस्तुत: भगवान् बुद्ध की मध्यमप्रतिपदा पर आधारित है। वाराणसी में सर्वप्रथम भगवान् बुद्ध ने धर्मोपदेश दिया था, जो कि मध्यम मार्ग कहलाता है। वह मार्ग न तो आत्मपीड़न का मार्ग था और न ही इंद्रिय-सुख विलास का मार्ग था। मध्यम मार्ग का अर्थ है- अस्तित्व और अनस्तित्व, चिरंतनता और अचिरंतनता आदि के विषय में दोनों ही मतों को न मानना।[7]

माध्यमिक मत भगवान् बुद्ध के मध्यम-मार्ग अर्थात् बीच के मार्ग को स्वीकार करने के कारण ही इस मत को माध्यमिक मत कहते है। माध्यमिक सम्प्रदाय 'शून्यवाद' के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि 'शून्य' को परमार्थ मानने से 'शून्यवादी' कहलाता है।[8] अत: माध्यमिक सम्प्रदाय 'सर्वशून्यवादी' है।

आचार्य नागार्जुन ही माध्यमिक सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य थे। आचार्य नागार्जुन भारतीय बौद्ध-भिक्षु दार्शनिक और माध्यमिक मत अर्थात् मध्यम-मार्ग के संस्थापक माने जाते है। आचार्य नागार्जुन दक्षिण भारत में एक ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे । अत: आचार्य नागार्जुन आंध्र राजा गौतमी-पुत्र यज्ञश्री (166-199 ई०) के समकालीन माने जाते थे।[9]

शून्यवादः

शून्यवाद में एकान्तिक मतों को कोई स्थान प्राप्त नहीं हैं । अतः शून्यवाद को इसके आधार पर भी मध्यम मार्ग कहा गया है । यह वस्तुओं को न पूरा निरपेक्ष मानता है और न उसे आकारहीन मानता है। बल्कि यह मानता है कि वस्तुओं का अस्तित्व दूसरे पर निर्भर रहता है।[10] अतएव इसी के कारण ही वस्तुओं का स्वरूप अवर्णनीय माना गया है। यह नहीं कहा जा सकता कि वह सत्य है अथवा असत्य । अतएव यह प्रतीत्यसमुत्पाद से उत्पन्न सिद्धान्त है इसलिए इसको माध्यमिक भी कहा गया है। ये माध्यमिक वस्तु जगत के साथ ही साथ पारमार्थिक सत्ता पर भी विचार करते हैं। प्रतीत्यसमुत्पाद का नियम तो केवल व्यवहारिक जगत् के लिए ही स्वीकार किया गया है। अतः इन्द्रियों द्वारा दीखने वाला जगत् का ज्ञान प्राप्त होता है। यह प्राप्त ज्ञान अनुभूति कहा गया है। अनुभूति को ही शून्यवाद में पारमार्थिक कहा गया है। आचार्य नागार्जुन अपने ग्रन्थ के मंगलाचरण में ही अपने प्रसिद्ध 'अष्ट निषेध' प्रस्तुत करते हैं (पारमार्थिक दृष्टि से) जैसे कि - न निरोध है, न उत्पत्ति है, न अनित्य है, न नित्य, न एक है न अनेक है, न आना है, और न जाना है।[11] यह माध्यमिक का प्रसिद्ध मध्यम मार्ग है जिसके अनुसार एकान्तिक सत्य कोई नहीं है।

अतएव हम देखते है कि माध्यमिकवादी सापेक्ष-निरपेक्ष, नित्य तथा अनित्य दोनों सत्यों को स्वीकार करते हैं। इसलिए आचार्य नागार्जुन का मानना है कि सत्य दो प्रकार के हैं जिन पर भगवान् बुद्ध के धर्म सम्बन्धी उपदेश निर्भर है- (1) प्रथम संवृत्ति सत्य है जो कि सांसारिक एवं साधारण वस्तुओं के लिए प्रयुक्त हुआ हैं। (2) द्वितीय पारमार्थिक सत्य- जो कि बुद्धि से परे अवर्णनीय एवं निःस्वभाव है।[12]

1. संवृत्तिसत्य - माध्यमिकों के अनुसार "संवृत्ति सत्य" का अभिप्राय लोक व्यवहार की ओर है।[13] इस सत्य के अन्तर्गत सम्पूर्ण व्यावहारिक जगत् का जिसमें अभिधान-अभिधेय, ज्ञान-ज्ञेय आदि भेद को माना जाता है अथवा इनका समावेश किया जाता है। अतः माध्यमिक दर्शन में "अज्ञान" को व्यावहारिक जगत् का एक मात्र कारण माना जाता है। इसलिए "संवृत्ति सत्य" को "अज्ञान मात्र स्थापित" सत्य भी कहा गया है। अतः जानने योग्य सम्पूर्ण जगत् को "संवृत्ति सत्य" के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है।

2. पारमार्थिक सत्य - पारमार्थिक सत्य बुद्धि से परे, अवर्णनीय एवं निःस्वभाव माना गया है। इस अवस्था में ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय आदि के भेद का पूर्ण लोप रहता है जिसके कारण उसे शब्द से, अवर्णनीय माना गया है। यह एक ऐसी काल्पनिक अवस्था है जिसका कोई पूर्व कारण नहीं है, जिसमें भेद का कोई स्थान नहीं है। यह प्रपंचरहित, शान्त एवं कल्याणकारी रूप है- प्रपंचोपशमं शिवं।[14]

इसलिए वास्तव में पारमार्थिक सत्य निर्वाण रूप ही है। इस सत्य को माध्यमिक दर्शन में "शून्यता", "तथता", "भूतिकोटि", "धर्मधातु" आदि भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित किया गया है। नागार्जुन के अनुसार बिना व्यवहार सहायता के परमार्थ का ज्ञान असम्भव है । निर्वाण की प्राप्ति केवल पारमार्थिक सत्य के ज्ञान से ही होती है। आचार्य नागार्जुन ने स्पष्ट कहा है -

व्यवहारमनाश्रित्य परमार्थो न देश्यते।
परमार्थमनागम्य निर्वाणं नाधिगम्यते।।

अर्थात् व्यवहार का सहारा लिए बिना परमार्थ का उपदेश नहीं दिया जा सकता है। परमार्थ को न समझने पर निर्वाण नहीं प्राप्त हो सकता है।

नागार्जुन ने कई नकारात्मक शब्दों के द्वारा निर्वाण का वर्णन किया है जैसे कि - जो अज्ञात है, जिसका विनाश नहीं होता है, जो नित्य भी नहीं है, जो विरुद्ध भी नहीं हैं, जो उत्पन्न भी नहीं है, उसका नाम निर्वाण है। निर्वाण के तथास्थित स्वरूप को जानने वाले का नाम तथागत कहा गया है। इस तथागत के स्वरूप का वर्णन करना बौद्ध धर्म में असम्भव माना गया है। आचार्य नागार्जुन ने कहा है कि "शून्यता प्रतीत्यसमुत्पाद है। यह सापेक्ष-वाद का सिद्धान्त है। यह मध्यम-मार्ग है जो भाव और अभाव दोनों के बीच है तथा दोनों से परे भी।[15]

आचार्य नागार्जुन के शून्यवाद में "शून्य" ही एकमात्र तत्त्व माना गया है। इसी के विषय में कहा है कि वह न सत् है, न असत है, न सत् और सत् दोनों हैं, न दोनों से भिन्न ही है। इस प्रकार इन चारों सम्भावित कोटियों से विलक्षण ही एक तत्व है जिसे माध्यमिकों ने अपना परमतत्त्व कहा है।

सर्वज्ञ का स्वरूपः

आचार्य नागार्जुन एक सर्वश्रेठ यथार्थता के अस्तित्व को स्वीकार करता है यद्यपि उपनिषदों के समान वह उसे अनुभव का पदार्थ नहीं मानता। जिसे "आँख नहीं देखती, न मन ही उसका विचार करता है, यह उच्चतर श्रेणी का सत्य है जिसमें मनुष्यों का प्रवेश नहीं। ऐसे क्षेत्र को जहाँ पर सब पदार्थो की पूर्ण छवि तुरन्त प्राप्त होती है, बुद्ध ने 'परमार्थ' कहा है। अर्थात् निरपेक्ष सत्य। जिसका वाणी के द्वारा प्रचार नहीं किया जा सकता।" इसे न तो शून्य कह सकते है और न ही अशून्य ही, दोनों भी नहीं कह सकते और न ही दोनों में से एक कह सकते हैं, लेकिन केवल उसका संकेत करने को शून्य (रिक्त) कहा जाता है।[16]

जगत् के समस्त पदार्थों के पीछे कोई भी नित्य वस्तु (जैसे आत्मा, द्रव्य) विद्यमान नहीं है, अतः वे निरावलम्ब तथा निःस्वभाव है- इस प्रकार का ज्ञान शून्यता का ज्ञान है । मानव जीवन में इस तथ्य का ज्ञान अत्यन्त ही उपयोगी है। हीनयानियों के मत के अनुसार मोक्ष कर्म तथा क्लेश के क्षय से सम्पन्न होता है, परन्तु मोक्ष-उपयोगी साधनों की खोज में यहीं विराम करना उचित नहीं है। कर्म तथा क्लेशों की सत्ता संकल्पों के कारण है। इसलिए शुभ संकल्प से 'राग' का, अशुभ संकल्प से द्वेष का, तथा विपर्यास के संकल्प से मोह का उदय होता है। इसलिए सूत्र में भगवान् बुद्ध की गाथा है कि हे काम! मैं तुम्हारे मूल को जानता हूँ। तुम्हारा मूल संकल्प है। अब मैं तुम्हारा संकल्प ही न करूंगा जिससे तुम्हारी उत्पत्ति न होगी। संकल्प का कारण प्रपञ्च है । प्रपञ्च का अर्थ है- ज्ञान-ज्ञेय, वाच्य-वाचक, घट-पट, स्त्री-पुरुष, लाभ-हानि, सुख-दुःख आदि विचार । अतः इस प्रपञ्च का निरोध शून्यता-सर्वधर्म नैरात्म ज्ञान में होता है। अतः शून्यता मोक्षोपयोगिनी है।[17]

शून्यवादी बौद्ध तथागत को सर्वज्ञ रूप में स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार समस्त विषयों का ज्ञाता सर्वत्र कहलाता हैं। शान्तरक्षित कहते है कि अति-इन्द्रिय विषयों के ज्ञाता की सिद्धि के लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।[18]

इसी सर्वज्ञ की देशना सभी पापों को नष्ट करने और निर्वाण प्राप्ति की कारक कही गई है।[19]

आचार्य चन्द्रकीर्ति कहते है कि तथागत प्रकृति से शान्त, निःस्वभाव एवं प्रपंचातीत है, किन्तु लोग अपनी बुद्धि मन्तव्य के कारण उनके संबंध में शाश्वत-अशाश्वत, नित्य-अनित्य, शून्य-अशून्य, सर्वज्ञता-असर्वज्ञता आदि की कल्पनाएँ करते हैं। किन्तु वे लोग यह नहीं समझते कि ये सभी प्रपंच वस्तुमूलक होते हैं, किन्तु तथागत अवस्तु हैं, ऐसी मिथ्या कल्पनाओं के कारण लोग तथागत-ज्ञान से वंचित होते हैं और अपना नाश कर लेते हैं।[20]

आचार्य चन्द्रकीर्ति कहते है कि जैसे सत्व-लोक निःस्वभाव है, वैसे जगत् भी निःस्वभाव है, जिस स्वभाव का तथागत होता है, उसी स्वभाव का यह जगत् भी होता है क्योंकि तथागत निःस्वभाव है, अतः जगत् भी निःस्वभाव है।[21] इस प्रकार सर्वज्ञ रूप में तथागत-प्रमाता स्वीकृत है। अतः शून्यवादी इसी को सर्वज्ञ के रूप में देखते है जो कि सम्पूर्ण ज्ञानमय और आनन्दमय है अतः जो कि निःस्वभाव या अवर्णनीय है।

संदर्भ

1. बौद्धदर्शन में शून्यवाद, भूमिका, पृ० 9
2. बौद्धदर्शन मीमांसा, पृ० 242
3. बौद्धदर्शन में शून्यवाद, पृ० 34
4. बौद्धदर्शन का विवेचन, पृ० 252
5. भारतीय दर्शन, पृ० 91
6. भारतीय दर्शन, पृ० 170
7. भारतीय दर्शन, पृ० 162
8. बौद्ध-दर्शन-मीमांसा, पृ० 235
9. बौद्ध-दर्शन-मीमांसा, पृ० 236
10. प्राचीन भारतीय धर्म एवं दर्शन, पृ० 241
11. अनिरोधमनुत्पादमनुच्छेदमशाश्वतम्।
    अनेकार्थमनानार्थमनागममनिर्गमम्। माध्यमिक-कारिका, (मङ्गलाचरण)
12. प्राचीन भारतीय धर्म एवं दर्शन, पृ० 240
13. भारतीय दर्शन, पृ० 81
14. प्राचीन भारतीय धर्म एवं दर्शन, पृ० 241
15. प्राचीन भारतीय धर्म एवं दर्शन, पृ० 242
16. भारतीय दर्शन, पृ० 543
17. बौद्ध-दर्शन का उद्भव एवं विकास, पृ० 183
18. तत्त्वसंग्रहः, 3123
19. तत्त्वसंग्रहः, 3642
20. प्रपञ्चयन्ति ये बुद्धं प्रपञ्चातीतमव्ययम्।
    ते प्रपञ्चहताः सर्वे न पश्यन्ति तथागतम्।। माध्यमकारिका, 22.15
21. तथागतो यत्स्वभावस्तत्स्वभावमिदं जगद्।
    तथागतो निःस्वभावो निःस्वभावमिदं जगत्।। माध्यमिककारिका, 22.16

वैश्वीकरण के परिदृश्य में गांधी जी के आर्थिक विचारों की प्रासंगिकता

डॉ० पूनम

एसि० प्रोफेसर (इतिहास विभाग), रघुनाथ गर्ल्स पी जी कालेज, मेरठ

सदियों के बाद विश्व में एक महामानव अवतरित हुआ। जिस महामानव ने पीड़ित, दलित, शोषित, दुखी समाज की स्थिति का अनुभव कि या और उसके उद्धार के लिए वह कृत-संकल्प हो उद्दारक प्रवृत्तियों में संलग्न हो गया। जीवन भर वे इन्हीं कार्यों में प्रवृत्त रहे कि मानव सम्मानपूर्वक आत्मनिर्भर हो जीवन जी सके।

आर्थिक आत्मनिर्भरता का विचार गाँधी जी के आर्थिक विचारों का महत्वपूर्ण अंग रहा है। चूँकि उपनिवेशवादी शासन ने स्वतन्त्रता के पूर्व देश को पूरी तरह आर्थिक पिछड़ेपन और विनिर्माण के आयात पर आधारित कर दिया था। नव स्वतन्त्र देशों के राजनैतिक प्रतिनिधियों ने आर्थिक आत्मनिर्भरता को आजादी का आवश्यक अंग भी प्रतिपादित किया है। वे परम्परावादी उत्पादन प्रणाली से उत्पादन करने वाले भारतीय उत्पाद को आधुनिक उत्पादन पद्धति के दुष्प्रभावों को दूर करने के हमेशा पक्षधर रहे। देश का आर्थिक विकास जिस पथ से होकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करें उसमें-

1. ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय रूप से आत्मनिर्भरता होनी चाहिए इससे गाँवों को आर्थिक स्वायत्तता मिलेगी।
2. अति तीव्र आर्थिक विकास की दर के स्थान पर रोजगारपरक आर्थिक विकास भले ही वह धीमा क्यों न हो ज्यादा प्रभावशाली अस्त्र है। इसके लिए उन्होंने पूँजी प्रधान तकनीकों, जो कि श्रम को विस्थापित कर देती है, का हमेशा विरोध किया।
3. लोगों की जीवन शैली सरल व भौतिकतावाद से रहित होनी चाहिऐ। इसलिए उन्होंने दास का हमेशा विरोध किया। चूँकि भौतिकता की दौड़ में लोग पूँजी के गुलाम होते जा रहे हैं। अत: पूँजी आवश्यकता के अनुसार होनी चाहिए।
4. आत्मनिर्भरता पर्यावरण की स्थिति को यथावत बनाये रखकर ही स्थापित की जानी चाहिए।
5. वैश्वीकरण के इस युग में गाँधी जी के काल की आर्थिक प्रणाली की तुलना सर्वथा भिन्न है। यह प्रश्न सोचनीय है कि क्या महात्मा गांधी के आर्थिक विचार वर्तमान परिपेक्ष्य में प्रासंगिक है। यहाँ हमें यह ध्यान में रखना होगा कि यद्यपि गाँधीजी के आर्थिक विचारों को आज अमली जामा प्राप्त नहीं हुआ है, परन्तु उनके द्वारा तत्कालीन परिस्थितियों में उठायी गई सामाजिक चिंताएँ आज भी प्रासंगिक है। उनके द्वारा उठायी गयी आर्थिक समस्याऐं यथा गरीबी, बेरोजगारी आय की असमानता, और पर्यावरण का क्षरण आज भी ज्वलंत समस्याऐं हैं। जिनके निदान का रास्ता गांधी जी के आर्थिक विचारों में देख सकते हैं।

उन्नत राष्ट्रों में भी अधिकतम उपभोग की अवस्था प्राप्त होने के बाद भी वहाँ के नागरिक मानवीय प्रसन्नता प्राप्त नहीं कर सके हैं। आज जब इतने लम्बे समय के बाद भी उपरोक्त आर्थिक विषमताऐं और समस्याऐं विद्यमान हैं। तब गाँधी जी के द्वारा हमारी आर्थिक प्रणालियों की मौलिक कमियों, जिनकी ओर गांधी जी ने ध्यान आकृष्ट कराया था, पर पुर्नविचार करने की आवश्यकता है। विश्व की आर्थिक परिस्थितियाँ आज बदल गयी हैं। सबसे उल्लेखनीय परिवर्तन विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्थाओं, बाजार व्यवस्था, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों, और वैश्विक उत्पादन श्रंखलाओं के जरिये दिखायी पड़ रहे हैं।

आज वैश्वीकरण एक गंभीर संकट से गुजर रहा है। पिछले वर्षों के आर्थिक अवसाद ने विश्वव्यापी वित्तीय बाजार पर जनता के विश्वास को पूरी तरह हिला कर रख दिया है। हमारा स्पष्ट अभिमत है कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण का ढाँचा पूरी तरह मजबूत है और आर्थिक वृद्धि के लिए उचित साधनों को उपलब्ध कराने के लिए सक्षम भी हैं। वर्तमान स्थितियों में गाँधी जी के आर्थिक विचारों की प्रासंगिकता का मूल्यांकन करते समय हमें स्वीकार करना होगा कि गाँधी जी का स्थानीय ग्राम स्तर पर आत्मनिर्भरता का विचार और उचित व देशी तक नील का इस्तेमाल जैसे आर्थिक विचार निकट भविष्य में अपने मूल स्वरूप में स्वीकार नहीं किये जा सकते। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि वे प्रासंगिक अथवा महत्वपूर्ण नहीं है। गांधी जी ने किसी आर्थिक सिद्धान्त का मॉडल के रूप में निर्माण कर हमारे समक्ष प्रस्तुत नहीं किया और न ही वे अर्थशास्त्री थे। अत: यह स्पष्ट है कि आर्थिक विकास को अलग से कोई गाँधीवादी मॉडल नहीं है।

गाँधी जी की अर्थतन्त्र को सबसे बड़ी देन विकास के बारे में उनका योगदान है। विकास के लिए उन्होंने निम्न तत्वों पर प्रकाश डाला-

1. स्वदेशी का विचार यह स्थानीय आत्मनिर्भरता का विचार था।
2. सर्वोदय का विचार- जनकल्याण के लिए दृढ़ संकल्प लेना।
3. अपरिग्रह का विचार- वस्तुओं के संग्रह पर नियन्त्रण।

विकास के बाद जो दूसरा सिद्धान्त उन्होंने बताया वह उपभोग के प्रति उनके दृष्टिकोण को दर्शाता है। गाँधी जी के अनुसार लोगों को उपभोग केवल सीमित मात्र में करना चाहिए अर्थात् उपभोग में आत्म अनुशासन रखना चाहिए। गाँधी जी का स्पष्ट मत था कि यदि कोई व्यक्ति अपनी आवश्यकता से अधिक उपभोग करता है जो वह दूसरे किसी जरूरतमंद व्यक्ति के हिस्से की वस्तु को छीन रहा है।

गाँधीजी की आर्थिक विचारधारा का अगला महत्वपूर्ण बिन्दु उत्पादक की प्रेरणाऐं एवं उनके दायित्व पर उनका दृष्टिकोण है। गाँधी जी के विचार में उत्पादन की तकनीक पूरी तरह श्रम प्रधान होनी चाहिए, तथा उसका पर्यावरण के अनुकूल होना नितान्त आवश्यक है। मुद्रा का अर्जन उत्पादन एवं व्यवसाय हेतु प्रेरणा का एकमात्र कारण नहीं होना चाहिए बल्कि इसका आधार जनता का अधिकतम हित होना चाहिए।

गाँधीजी आधुनिकीकरण की दौड़ में अंधे मशीनीकरण के प्रबल विरोधी थे। वे मानते थे कि मशीनें मनुष्य को गुलाम बना देती है, इससे दस्तकारों के हाथ का हुनर छिन जाता है, और कुछ पूँजीपतियों के हाथ में ही पूरी अर्थव्यवस्था का नियन्त्रण हो जाता है। स्वतन्त्रता के बाद आर्थिक क्षेत्र में काफी तेजी के साथ वृद्धि हुई है किन्तु साथ ही हमारी समस्याऐं व दायित्व कहीं अधिक गम्भीर और खतरनाक हो गये हैं। अर्थव्यवस्था निष्क्रियता तथा मुद्रा स्फीति के लंबे दौर से गुजर रही है। समाज के नैतिक मूल्यों की धज्जियाँ उड़ गई है। बढ़ते औद्योगिकरण ने गाँवों को खाली कर दिया है। इस संबंध में गाँधीजी ने लिखा था, ''अगर गाँवों का नाश होता है तो भारत का भी नाश हो जायेगा और उस हालत में भारत, भारत नहीं रहेगा। दुनिया को उसे जो संदेश देना है उस संदेश को वह खो देगा।''

यह सर्वविदित है कि भारतीय औद्योगिक विकास में गाँधीवादी चिंतन की हर स्तर पर उपेक्षा की गई जिसके परिणामस्वरूप देश की स्वतन्त्रता के 73 वर्षों के बाद भी असमानता, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, अराजकता आदि विद्यमान है, यदि प्रारंभिक दशकों में ही इसका पालन कर लिया जाता तो अर्थव्यवस्था विरोधी समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ता।

गाँधीजी के आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन के विचार आज भी सार्थक एवं प्रासंगिक है। आर्थिक विचारों को पुनः निर्देशित करना वैश्विक परिप्रेक्ष्य में आज ज्यादा आवश्यक है। गाँधीजी की अहिंसावादी वैचारिक सोच आज की जटिल आर्थिक समस्याओं को समाधान एवं दिशा प्रदान करने में मील का पत्थर सिद्ध होगी।

संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ0 ए0डी0एन0 वाजपेयी (1998): गाँधी का आर्थिक चिंतन मानव तत्व और आर्थिक क्षमता के विशेष संदर्भ में- कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
2. दीपांशु अग्रवाल (2011): महात्मा गांधी के आर्थिक विचारों की सार्थकता, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
3. डॉ0 एम0के0 मिश्रा, डॉ0 कमल दाधीज (2011): गाँधी का आर्थिक चिंतन, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
4. डॉ0 ओंकार नाथ मिश्र (2011): बदलते संदर्भ और महात्मा गांधी, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
5. बालकृष्ण कुमावत: गाँधीजी का ग्रामस्वराज्य, योजना अक्टूबर 1995
6. डॉ0 मोहन चन्द्र पांडेय: गाँधीवादी चिंतन और औद्योगिक विकास (आलेख) योजना, अक्टूबर 1995
7. डॉ0 रामरतन शर्मा: गाँधी जी का आर्थिक चिंतन एवं उसकी प्रासंगिकता योजना, अक्टूबर, 1995
8. डॉ0 आर0एन0 सिंह: इक्कीसवीं सदी की आर्थिक समस्या और गाँधी के विचार की उपादेयता, खादी ग्रामोद्योग, ग्रामीण अर्थ विषयक पत्रिका अगस्त 1995
9. डॉ0 तिलक नारायण हजेला: आर्थिक विचारों का इतिहास।
10. डॉ0 आर0एन0 सिंह, डॉ0 चन्द्रिका नाथवानी 2013, वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में गाँधी एवं जे0के0 मेहता के विचारों की उपादेयता एण्ड हिस्ट्री ब्यूटसी।

मनीषा कुलश्रेष्ठ के 'शिगाफ' उपन्यास में नारी

कुमारी पूनम चौहान

हिमाचल प्रदेश विष्वविद्यालय, समरहिल, शिमला

प्राचीन काल में नारी किसी न किसी रूप में चिन्तन का विषय रही है। समाज और संस्कृति में नारी सम्बन्धी अनेक प्रकार की धारणाएं प्रचलित रही हैं। इसीलिए उसे अलग-अलग रूपों में देखा गया है। एक ओर नारी की देवी रूप में पूजा की जाती है, तो दूसरी ओर उसे भोग की वस्तु समझा जाता है। प्राचीन काल से आज तक नारी सम्बन्धी अवधारणाएं पुरुष द्वारा निर्मित हैं। नारी के सम्बन्ध में शीला रजवार का मत है, ''परम्परागत मानसिकता ने नारी को देवी और दानवी दो छोरों में बाँट दिया है। कहीं उसे देवी गुणों से पुष्ट मान देवी कहकर पूजा की जाती है और कहीं राक्षसी गुणों को लिखकर दानवी कहकर भर्त्सना की है। किन्तु वास्तविकता यह है कि न तो वह देवी है न दानवी। वह मानवी है उसमें दया, ममता, विश्वास है। वह क्रूर, कठोर, विश्वासघातिनी भी है।..... वह मानवधर्मिणी मानवी है।''[1]

मानवता के विकास क्रम में स्त्री अधिक मानवीय है और मानवीय सभ्यता तथा संस्कृति के विकास में उसका स्थान पुरुष से ऊँचा है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सृष्टि के आदिकाल में ही नारी का गौरवमय स्थान रहा है। वह पुरुष की पूरक तथा समकक्ष सहयोगी है। नारी विहीन संसार की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसके बिना संसार की सृष्टि हो नहीं सकती है परन्तु फिर भी पुरुष सत्तात्मक समाज सदैव नारी को अपने अधीन तथा आधिपत्य रखना चाहते हैं।

लेखिका मनीषा कुलश्रेष्ठ ने 'शिगाफ' उपन्यास में नारी के व्याधिग्रस्त जीवन को अभिव्यक्त किया है। लेखिका ने अमिता, नसीम, यास्मीन, नौशाबा, जुलेखा, नज्म आदि विभिन्न नारी पात्रों के माध्यम से कश्मीरी हिन्दू तथा मुस्लिम नारियों के जीवन के दु:खों तथा हालातों का विवरण मार्मिक एवं सहज रूप में किया है। उपन्यास की नायिका अमिता भट्ट एक विस्थापित कश्मीरी हिन्दू है तथा वह विस्थापन के दर्द को लेकर बड़ी हुई है। अमिता आधुनिक नारी है, वह अपने विस्थापन की त्रासदी को दुनिया के सामने प्रस्तुत करना चाहती है। इसके लिए वह आधुनिक जनसंचार-माध्यम के ब्लॉग के माध्यम से संसार को अपना दु:ख बताती है, ''मेरा नाम अमिता है। मैं भारतीय हूँ। एक विस्थापित कश्मीरी हिन्दू परिवार से हूँ। मुझे स्पेन आए हुए एक साल बीत चुका है। आने के बाद ही से मैं यहाँ बसे, स्पेन के उत्तर में पाम्पलोना के निकट बसे एक छोटे से शहर सैनसबैस्टियन में रह रही हूँ।''[2] अत: कहा जा सकता है कि ब्लॉग के माध्यम से अमिता अपने जीवन के संघर्ष को दूसरों के समक्ष प्रस्तुत करती है। विस्थापन के कारण अमिता को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जब कश्मीर से लोगों का विस्थापन हुआ, तब बहुत से विस्थापित शरणार्थी शिविरों में चले गए और कुछ किराये के घरों में रहने लगे। अमिता के परिवार वाले भी जम्मू में किराये के मकान में रहने लगे परन्तु उस घर का मकान मालिक अमिता के साथ दुर्व्यवहार का प्रयास करता है। वह कहती है, ''मैं बाथरूम में नहा रही थी, बल्कि नहा चुकी थी और अपने कपड़े पहन रही थी। कुर्त्ता आधा मेरी बाँह में था, आधा गर्दन में और मुँह ढका हुआ था कि अचानक मुझे अपनी छातियों पर गुनगुने हाथ महसूस हुए..... मैं दम लगाकर चीखी। कुर्त्ता हटाया तो मकान मालिक सामने था। उसने मेरा मुँह दबोच दिया था।''[3] स्पष्टत: लेखिका ने नारी के शोषण को अभिव्यक्त किया है, जो सदैव पुरुष की कामुक वृत्ति का शिकार होती है।

लेखिका ने उपन्यास में स्पष्ट किया है न केवल कश्मीरी हिन्दू नारी बल्कि मुस्लिम नारी भी शोषित हुई है। एक अन्य पात्र नसीम के माध्यम से पुरुष द्वारा नारी का शारीरिक शोषण को व्यक्त किया है। नसीम अमिता से कहती है, ''मैं अपने पहले पति समेत बाकी मर्दों और इससे भी कुछ ज्यादा ही अच्छा पेश आई हूँ। मैं उनकी सनकों को हँसकर टालती रही हूँ। उनकी जिस्मानी ज्यादतियाँ भी।''[4] अत: कहा जा सकता है कि नारी सदैव ही पुरुष के अधीन रही है और सदैव पुरुष के अत्याचारों को मुस्कराते हुए उसने स्वीकार किया है। लेखिका ने उपन्यास में कश्मीरी हिन्दू तथा मुस्लिम नारी के जीवन को अभिव्यक्त किया है। कश्मीरी हिन्दू तथा मुस्लिम तो विस्थापित होकर दूसरे शहरों में बस गई तथा उन्हें अपने जीवन यापन के लिए अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है बल्कि मुस्लिम नारियाँ भी कश्मीर से नसीम की भांति विस्थापन कर रही है तथा जो वहाँ है वे सदैव ही आतंकवाद तथा शोषण का शिकार हो रही हैं। लेखिका ने अमिता के ब्लॉग के माध्यम से कश्मीरी नारियों की स्थिति स्पष्ट करती है। अमिता लिखती है, ''सोचती हूँ, बिना जलावतन हुए भी यह कैसी बेदर्द जलावतनी थी नसीम की। और जो वहीं रह रही हैं..... उनकी हर रोज जिस्म से रूह की जलावतनी। कौन जयादा दुख में है- हम, जो वहाँ से भगा दी गई....., मार दी गई..... जला दी गई..... या तो वहाँ लगातार भाग रही हैं अपने वर्तमान से रोज मर रही है? पता नहीं।''[5]

लेखिका ने उपन्यास में प्रोफेसर आएशा के विचारों के माध्यम से भी कश्मीरी नारी की स्थिति का चित्रण किया है, ''हमारा हर दिन नई समस्याओं को जन्म देते हुए उगता है कश्मीर में। हर दिन विधवाओं की नई फसल तैयार हो जाती है। फौज और उग्रवादियों ने मिल-जुलकर ग्यारह हजार जवान विधवाओं की फसल तैयार की है, जिसे न समाज से कोई आसरा है न सरकार से। वे अपने होंठ सिये घातक मानसिक रोगों तथा हताशाओं का शिकार होती जा रही है।''[6] स्पष्टत: कश्मीर में आतंकवाद के कारण विधवा स्त्रियों की संख्या बढ़ रही है। इन स्त्रियों को समाज में किसी से भी सहारा प्राप्त नहीं है। कश्मीर

में न केवल स्त्रियाँ बल्कि छोटी-छोटी बच्चियाँ भी आतंकवाद का शिकार हो रही है। उन बच्चियों का विवाह जल्दी करा दिया जा रहा है तथा उन्हें शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रखा जा रहा है। लेखिका कहती है, ''छोटी-छोटी लड़कियों की मंगनियाँ तय हो रही हैं, तय मंगनियाँ, शादियों में बदल रही हैं।''[7] अत: कहा जा सकता है कि आतंकवाद के भय के कारण माता-पिता अपनी लड़कियों का शीघ्र विवाह करते हैं। उपन्यास में यास्मीन एक ऐसा पात्र है जो अपनी शिक्षा जारी रखना चाहती है परन्तु कट्टरपंथियों के कारण उसका यह स्वप्न पूर्ण नहीं होता तथा माता-पिता उसका विवाह कराना चाहते हैं। यास्मीन कहती है, ''अब्बू ने बहुत पहले मुझे बी.ए. का प्राईवेट इम्तिहान दिलाने का वादा किया था मगर वह अब बस मेरी शादी कर देना चाहते हैं। कैसे भी, किसी से भी।''[8] स्पष्टत: लेखिका ने आतंकवाद के कारण नारी की दबती हुई इच्छाओं का चित्रण किया है।

लेखिका ने प्रेम के नाम पर बलिदान देने वाली नारी का चित्रण जुलेखा के माध्यम से किया है। जुलेखा गाँव की अनपढ़ तथा सीधी-साधी लड़की है। वह एक आतंकवादी सगीर से प्यार करती है। सगीर जुलेखा का इस्तेमाल अपने मकसद पूर्ण करने के लिए करता है क्योंकि आतंकवादी लड़कियों को प्रेमजाल में फंसाकर उनसे गैर कानूनी काम करवाते हैं। शान्तनु अमिता से कहता है, ''ये लोग गाँव की लड़कियों को विस्फोटक लाने ले जाने के लिए इस्तेमाल करते हैं क्योंकि लड़कियाँ चौक पोस्ट से आराम से निकल जाती है।''[9] स्पष्टत: आतंकवादी नारी की भावनाओं से छल करते हैं तथा उनका प्रयोग देशविरोधी घटनाओं के लिए करते हैं। जुलेखा भी एक ऐसी नारी है, जो अपने आतंकवादी प्रेमी के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाती है। जुलेखा सगीर से कहती है, ''मेरी जन्नत तो तुम्हारी मोहब्बत है। जेहाद तो पता नहीं, मगर मैं तुम्हारे राज, तुम्हारी खुशबू के लिए, वफा के लिए सदियों की नींद में गुम हो जाना चाहती हूँ।''[10]

लेखिका ने परित्यकता नारी का चित्रण नसीम के माध्यम से किया है। नसीम का तलाक हो चुका है तथा उसके माता-पिता ने उसे अपने साथ रखने से मना कर दिया है। नसीम का एक बेटा है, वह अपने बेटे के सुरक्षित भविष्य के लिए कश्मीर को छोड़कर दिल्ली आ जाती है और वहाँ एक अधेड़ व्यापारी से शादी कर लेती है। नसीम कश्मीर वापिस नहीं लौटती। वह कहती है, ''मेरा क्या है वहाँ न शौहर न माँ-बाप। वहाँ काम भी कुछ नहीं है। आए दिन की जान की आफत। मंहगाई इतनी की बस..... नौकरी नहीं मिलती, उस पर परदेदारी अलग से।''[11] स्पष्टत: नसीम का कश्मीर में कोई सहारा नहीं था। परित्यकता नारी को स्वयं अकेले ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

लेखिका ने उपन्यास में कश्मीरी नारी के शोषण को दर्शाया है। कश्मीरी औरतें फौज, अलगाववादी, पुलिस, राजनेता के द्वारा मानसिक और शारीरिक शोषण का शिकार हो रही हैं। लेखिका ने उपन्यास में जमान नामक पत्रकार के माध्यम से नारी की स्थिति पर प्रकाश डाला है। जमान अमीता से कहता है, ''मैं कश्मीर की औरतों को करीब से बहुत सालों से देख रहा हूँ। बेशक, बुरी तरह शोषित हुए भी। अपनी रिपोर्टिंग के दौरान बहुत-सी औरतों से मिला हूँ जो मानसिक और शारीरिक शोषण का शिकार हुई हैं। सेना या पुलिस के जवानों और पाकिस्तानी और कश्मीरी मिलिटेंट्स के हाथों भी। सबसे करीब जाएं तो हाल ही का कुख्यात सेक्स स्कैंडल देखें, जिसमें बहुत-सी कमसिन लड़कियाँ और जवान औरतों को ब्लैकमेल किया गया। उन मजलूम औरतों को नौकरी दिलाने के बहाने राजनेताओं, ब्यूरोक्रेटस और पुलिस अधिकारियों के सामने कम्फर्ट वुमन बनाकर पेश किया। बहुत से बड़े नामचीन लोग बेनकाब हुए लेकिन किसी औरत ने यह रास्ता अख्तियार नहीं किया बदले या किसी गुस्से में; बल्कि उन्होंने नौकरियों से इस्तीफे दिए या फिर जिन्दगी बनाने की कोशिश में जुट गई।''[12]

लेखिका ने उपन्यास में दर्शाया है कि बदलते समय के साथ-साथ नारी के जीवन तथा विचार में भी बदलाव आ रहा है। नारी अब घर की चारदीवारी से बाहर निकल रही है। एक समय था, जब कश्मीरी नारी आतंक के चलते घर की चारदीवारी में अपने आप को सुरक्षित मानती थी परन्तु अब नारी घर से बाहर निकल अपनी आवाज को बुलन्द कर रही है। नज्म अमीता से कहती है, ''सच में, एक वक्त था 'बुरका' या 'एसिड' का फरमान शहर की मस्जिदों की दीवारों पर लगे पोस्टरों पर छपा था..... डरकर हरेक ने वह फरमान माना था..... नौशाबा ही है जिन्होंने पहली बार बुरके के फरमान के खिलाफ अपनी मैगजीन में लिखकर एक मिसाल कायम की है।''[13] स्पष्टत: नौशाबा ने कट्टरपंथियों के विचारों का विरोध किया।

लेखिका ने नौशाबा और नज्म के माध्यम से आधुनिक नारी का चित्रण किया है। नौशाबा एक स्वावलम्बी तथा आत्मनिर्भर स्त्री है जो समाज में व्याप्त रूढिघ्यों का विरोध करती है। वह स्वतंत्र नारी है, जो कश्मीर की पहली फीमेल मैगजीन 'ग्रेस' निकालती है। इसमें कश्मीरी औरतों के सभी पहलुओं पर बात की जाती है। नज्म अमिता से कहती है, ''इसमें वह सब कुछ था जो एक ऐसी मैगजीन में होना चाहिए। फैशन, फिक्शन, किचन, हैल्थ, एजुकेशन और पर्सनैलटी-ऑफकोर्स सैल्फ अवेयरनैस।..... सोसायटी और कश्मीरी औरत की आजादी की बात से पहले क्यों न हम कश्मीरी औरत के डिप्रेशन की बात करें। हम भी सेक्स पर बात कर सकती हैं..... मगर जरूरत क्या है? इस्लाम की खिलाफत किए बिना भी हम आजाद होना भीतर महसूस कर सकती हैं क्योंकि असल आजादी भीतर की है।''[14] अत: कहा जा सकता है कि कश्मीरी औरत भी अपने से जुड़ी शारीरिक, मानसिक आदि समस्याओं पर खुलकर बात करना चाहती है।

उपन्यास में एक अन्य पात्र नज्म भी नौशाबा की तरह आधुनिक तथा स्वतंत्र विचारों वाली नारी है जो पत्रकारिता पढ़ रही है। नौशाबा के साथ मिलकर 'ग्रेस' पत्रिका में काम कर रही है। लेखिका कहती है, ''नज्म को तो किसी की परवाह नहीं। वह उस युवा कश्मीरी पीढ़ी की भी जिन्हें जीने और खुलकर जीने से कुछ भी रोक नहीं सकता था। आतंक, कट्टरपन्न भी नहीं।''[15]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि लेखिका ने उपन्यास में कश्मीरी नारी के विभिन्न पहलुओं को विभिन्न पात्रों के माध्यम से स्पष्ट किया है। कश्मीर में नारी यौन शोषण तथा प्रताड़ना का शिकार हो रही है तथा जो नारियाँ कश्मीर को छोड़कर अन्य क्षेत्र में चली गई हैं उन्हें भी आजीविका को अर्जित करने के लिए अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। लेखिका ने उपन्यास में नौशाबा और नज्म के माध्यम से कश्मीरी नारियों के विचारों में परिवर्तन आने का वर्णन किया है। वे आत्मनिर्भर तथा स्वावलम्बी बन रही हैं तथा समाज की रूढिघ्यों का खुलकर विरोध कर रही हैं।

सन्दर्भ सूची

1. सौमंगल कप्पीकेरे, साठोत्तरी हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी, पृ. 15
2. मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ, पृ. 13
3. वही, पृ. 69
4. वही, पृ. 78
5. वही, पृ. 79
6. वही, पृ. 86-87
7. वही, पृ. 104
8. वही, पृ. 111
9. वही, पृ. 180
10. वही, पृ. 193
11. वही, पृ. 78
12. वही, पृ. 198
13. वही, पृ. 131-132
14. वही, पृ. 133
15. वही, पृ. 209

महाराजा सूरजमलः एक विराट व्यक्तित्व

डॉ० उर्मिला शर्मा

सह आचार्य-हिन्दी, महारानी श्री जया कॉलेज, भरतपुर (राज0)

कविता नाहरवाल

शोधार्थी-हिन्दी, महाराजा सूरजमल बृज विश्वविद्यालय भरतपुर (राज0)

"तोप चले बंदूक चले, जाके रायफल चले इशारे ते।
अबकै जान बचाइले अल्लाह, या जाट भरतपुर वारे ते।।"

ये पंक्तियाँ आज भी दिल्ली के राजमहलों की प्राचीरों में अनुगुंजित हैं तथा महाराजा सूरजमल के राज्य भरतपुर में ये शान व गर्व से कही जाती है। जो महाराजा सूरजमल के साहस, वीरता, प्रतिष्ठा व अजेयता का प्रमाण है। इनका जन्म 13 फरवरी 1707 ई. में डीग के राजप्रासादों में महारानी देवकी के गर्भ से हुआ। जब ये गर्भस्थ ही थे तभी राजगुरू प्रीतमदास ने यह घोषणा कर दी थी कि यह बालक असाधारण, शौर्यवान एवं विराट व्यक्तित्व का धनी होगा। यह अपने तेज, ओज एवं शौर्य से शत्रुओं का दमन करेगा तथा न्यायप्रियता से शेर और गाय को एक ही घाट पर पानी पिला देगा। यह धर्म और मानवता की रक्षा के लिए ही प्राणोत्सर्ग करके इतिहास में अमरत्व प्राप्त करेगा, और हुआ भी ऐसा ही। जिस दौर में राजपूत शासक टूट चुके थे और मुगलों से अपनी रियासत बचाने का हर संभव प्रयास कर रहे थे उसी दौर में यह बहादुर जाट राजा अकेला ही मुगल शासकों से लोहा ले रहा था।

ये वही सूरजमल हैं जिन्होंने दिल्ली के बादशाहों को एक महीने तक दिल्ली में कैद कर दिया था। यूँ ही नहीं इन्हें जाटों का अफलातून कहा जाता है। ये ब्रज के ऐसे पहले शासक थे जिन्होंने मुगलों को अपनी शर्तें मानने को मजबूर कर दिया। महाराजा सूरजमल नर के रूप में सिंह थे। युद्ध में वे दुश्मन के काल बन जाते थे। इनके जन्म के संबंध में ये पंक्तियाँ प्रसिद्ध हैं-

"नहीं जाटनी ने सही व्यर्थ प्रसव की पीर।
जब जन्मा उनके गर्भ से सूरजमल सा वीर।।"

राजा बदनसिंह डीग, कुम्हेर तथा वैर को तो अपना बना चुके थे लेकिन अब उनकी दृष्टि भरतपुर पर थी जो सोगरियों के अधिकार में था, उस समय इसका नाम फतहगढ था। आज्ञा पाते ही सूरजमल ने विद्युत गति से फतहगढ़ को जीत लिया तथा 1733 ई. बसंत पंचमी के दिन भरतपुर राज्य की नींव डाल दी। रेत का डंडा, खाई, सुदृढ़ प्राचीर, दस दरवाजे तथा आठ बुर्जों पर तोप आदि के कारण इसका लोहागढ नाम सार्थक हो गया। रेत का डंडा होने के कारण यह किला तोप से भी अभेद्य था तो गहरी व चौडी खाई होने के कारण दुश्मन इस पर चढ भी नहीं सकते थे।

मुगलों का सेनापति बख्शीमीर सलावत जब जाट राज्य में लूटपाट करने लगा तो महाराजा सूरजमल ने पहले उसे दूत भेज कर समझाना चाहा लेकिन दर्पवश उसने महाराजा से वार्ता करना उचित न समझा और सराय शोभा चंद में डेरा डाल वहीं से लूट-पाट करने लगा। सूरजमल की संधि वार्ता को अस्वीकृत करके उसने सूरजमल के क्रोध को बढा दिया। अविलम्ब ही सूरजमल ने बख्शीमीर सलावत पर चढाई कर दी तथा बख्शी के हाथी पर अपना घोडा चढा दिया। बख्शी के द्वारा दिल्ली से अतिरिक्त सेना मँगवाने के बावजूद उसको मुँह की खानी पडी। औंधे मुँह गिरने के बाद मीर बख्शी ने आत्मसमर्पण किया तथा कुँवर जवाहर सिंह को संधि वार्ता हेतु आंमत्रित किया। बख्शी को महाराजा की सभी शर्तें स्वीकार करनी पडी।

सूरजमल के शासनकाल में मराठों का काम चौथ वसूलना था। सारे राजपूत राजा भी उनके सामने हार मान चुके थे। जयपुर से कर लेकर मराठे भरतपुर की ओर बढे। उन्होंने सूरजमल से 2 करोड की माँग रखी लेकिन सूरजमल ने उनको चौथ देने से साफ इंकार कर दिया। इसके प्रतिफल मराठों ने कुम्हेर का घेरा डाल दिया तथा सभी रास्ते बंद कर दिये। खाँडेराव, रघुनाथ राव, मल्हार राव तथा गाजी उद्दीन इमादुल मुल्क सभी मोर्चा लगाकर कुम्हेर को जीतने का प्रयास करने लगे लेकिन सूरजमल जैसा वीर कब किसी का लोहा मानने वाला था। मल्हार राव होल्कर का पुत्र खाँडेराव चुपचाप पालकी में बैठकर निकल गया और किले की खाई के पानी को नापने लगा जिससे सूरजमल के गढ़ में छुपकर प्रवेश कर सके लेकिन उससे पहले ही सूरजमल की बंदूक ने उस पर निशाना साधा और खाँडेराव तत्काल ही मृत्यु को प्राप्त हो गया। जब यह समाचार राव होल्कर ने सुना तो अचेतन होकर जमीन पर गिर पडा। खाँडेराव होल्कर की नौ विधवाएँ सती हो गई। एक रानी अहल्याबाई जो कि गर्भवती थी वो सती नहीं हुई। उसके लिए आज भी ये पंक्तियाँ भरतपुर में प्रचलित हैं-

"मै आई कछु और कूँ, ह्याँ है गई कछु और।
लहंगा फट्यौ गाठिको देख चली पेंघौर।।"

उन दिनां अहमद शाह अब्दाली भारत में आकर लूट-मार मचा रहा था उसने महाराजा को भी एक संदेश भेजा कि सूरजमल उसे कर दे, यदि वह कर नहीं देगा तो उसका परिणाम बहुत भयंकर होगा। उसका राज्य तहस-नहस कर दिया जाएगा। डीग, कुम्हेर तथा भरतपुर के किले मिट्टी में मिला दिये जायेंगे। प्रतिवाद में सूरजमल ने अब्दाली को जो पत्र भेजा वह कूटनीतिपूर्ण था। उसमें लिखा था कि हिन्दुस्तान के साम्राज्य में मेरे राज्य की स्थिति मामूली सी है। मैं तो रेगिस्तान का एक जमींदार हूँ इसलिए इस काल के किसी भी बादशाह ने मेरे राज्य में दखल देना अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं समझा है। अगर आप मुझ पर आक्रमण करते हैं तो इससे मेरी स्थिति ऊँची समझी जाएगी और मेरे लिए भी यह अभिमान की बात होगी। दुनिया कहेगी कि ईरान के महान बादशाह ने एक तुच्छ जमींदार पर चढाई कर दी। यदि इतनी सेना और ताकत के साथ आप मुझ पर चढाई करके जीत भी जायेंगे तो लोग कहेंगे कि इस बेचारे की तो हैसियत ही क्या थी। मैंने तो अपनी उम्र के 50 सोपान पार कर चुका हूँ यदि अब मैं मारा भी जाता हूँ तो यह मेरे लिए वरदान ही सिद्ध होगा। परन्तु यदि भगवान की इच्छा से परिणाम इसके उलट आया तो आपकी सारी शक्ति, प्रभुत्व और साम्राज्य जो आपने ग्यारह वर्षों में जुटाया है वह धूल में मिल जाएगा। बडे ही विस्मय की बात है कि इस कूटनीतिक पत्र को पढ़कर अब्दाली अपनी पूरी सेना व लाब-लश्कर के साथ दिल्ली लौट गया। उस समय उसकी सेना में हैजा भी फैल चुका था।

पानीपत के तृतीय युद्ध में महाराजा सूरजमल ने सदाशिव राव भाऊ को स्त्रियों को साथ में न ले जाकर भरतपुर में छोडने की सलाह दी। जिससे युद्ध में उनके मान-सम्मान व इज्जत की कोई फिक्र नहीं होगी साथ ही महिलाओं की संख्या घट जाने से सैनिकों के लिए रसद सामग्री भी अधिक दिन चलेगी और युद्ध का परिणाम अपने पक्ष में आ सकेगा। लेकिन सदाशिव राव भाऊ ने महाराजा की एक भी बात न सुनी और उनको अपमानित भी किया, लिहाजा सूरजमल इस युद्ध से अलग हो गये। परिणामत: 14 जनवरी 1761 ई. को भाऊ अपनी पूरी सेना सहित हार गए। भाऊ से हुए वैचारिक मतभेदों के बाद भी सूरजमल उनकी हारी हुई सेना और स्त्रियों को अपने राज्य में सुरक्षित लाये। वहाँ पर लाकर बीमारों का इलाज कराया और नारियों का भी समुचित ध्यान रखा गया। परमोदार महाराजा सूरजमल की सहायता से ही भाऊ के हजारों सैनिक मौत के मुँह से वापस आ सके और स्त्रियाँ भी सुरक्षित रह सकीं। इन सभी व्यवस्थाओं पर महाराजा ने धन को द्रव्य की तरह बहाया और 10 लाख रूपये खर्च किये। यही नहीं महाराजा ने प्रत्येक व्यक्ति को विदा में एक रूपया, एक सेर अनाज और कुछ कपडे भी दिए जिससे उन्हें रास्ते मे कोई परेशानी न हो।

महाराजा सूरजमल की मृत्यु के विषय में इतिहासकारों के भिन्न-भिन्न मत रहे हैं। ऐसे वीर, गम्भीर, दूरदर्शी, सतर्क और चतुर पुरूष को सामने से मारना किसी के वश में न था। ऐसे वीर पुरुष को छल-कपट से ही मारा जा सकता है। 25 दिसम्बर 1963 ई. का हिंडन नदी के तट पर शान्त मुद्रा में बैठे हुए थे तभी मुगल सेना द्वारा घात लगाकर उनकी हत्या कर दी गई। अंतिम संस्कार के लिए महाराजा सूरजमल का शव भी प्राप्त न हो सका। महारानी किशोरी ने उनका वृद्धावस्था में गिरा हुआ दाँत संभाल के रख रखा था उसी दाँत से उनका अंतिम संस्कार किया गया।

अस्तु महाराजा सूरजमल को युग-पुरुष कहना कोई अत्युक्ति नहीं है। मेल-मिलाप, सह-अस्तित्व तथा समावेशी सोच को आत्मसात करने वाली भारतीयता के वे सच्चे प्रतीक थे। वे अठारहवीं शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ वीर पुरुष, धर्मरक्षक, गम्भीर, दूरदर्शी, भारतीय संस्कृति के पुरोधा, ब्रजभाषी, महान एवं आदर्श शासक, राजनीतिक मर्मज्ञ, अप्रतिम कूटनीतिज्ञ एवं साम्प्रदायिक सद्भाव आदि के सुखद संगम थे। इनमें श्रेष्ठ शासक एवं श्रेष्ठ मानव दोनों ही गुणों का अच्छा समन्वय था। वे विश्वस्त मित्र तथा शत्रुओं के लिए साक्षात यम थे। वे सच्चे अर्थों में ब्रज संस्कृति के पुरोधा थे। ऐसे युगपुरुष पर पूरे देश को गर्व है।

भारत में राज्यों के पुनर्गठन का औचित्य - भाषायी राज्यों के विशेष संदर्भ में

डॉ० हरबीर सिंह डागुर

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, महारानी श्री जया राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर (राज0)

शोध सारांश

राज्यों के पुनर्गठन की मांग को अकसर भाषायी प्रांतों के निर्माण की मांग मान लिया जाता है। इसलिए कि ब्रिटिश भारतीय प्रांतों के पुनर्वितरण का आंदोलन एक बड़ी सीमा तक 19 वीं सदी में क्षेत्रीय भाषाओं के अभूतपूर्व विकास का प्रत्यक्ष परिणाम था। जिसके चलते विभिन्न भाषायी समूहों का भावात्मक एकीकरण हुआ उनमें सुस्पष्ट सांस्कृतिक इकाईयां होने की चेतना का विकास हुआ। इसलिए जब भारत में प्रगतिशील जनमत प्रशासनिक इकाईयों के युक्तीकरण के पक्ष में जागा तो इस उद्देश्य को भाषायी दृष्टि से समरस इकाइयों के रूप में समझने और पाने का प्रयास किया गया। लेकिन भाषायी सिद्धान्त पर दिए जाने वाले जोर में हाल के वर्षों में कुछ परिवर्तन आया है तथा उसे ऐसे दूसरे कारकों से संतुलित करने की आवश्यकता का एहसास बढ़ा है जो भारत के राजनीतिक भूगोल की पुनर्रचना के लिए प्रासंगिक हों, जैसे राष्ट्रीय एकता संबंधी तथा प्रशासनिक आर्थिक और अन्य विचार। प्रस्तुत शोध लेख में भाषायी राज्यों की धारणा के विशेष संदर्भ में राज्यों के पुनर्गठन के औचित्य और उद्देश्यों संबंधी चिंतन के विकास का क्रम प्रस्तुत किया जाएगा।

प्रस्तावना

ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने भी समय समय पर प्रांतों के क्षेत्रों के पुनर्वितरण की वांछनीयता को स्वीकार किया था। बहुत पहले, मई 1903 में ही, तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन ने इस कार्य के लिए अपने समय को उपयुक्त माना था।[1] कारण ये थे:

1. इस विषय पर राजनीतिक जोश का अभाव।
2. पुनर्वितरण के पक्ष में शिक्षित जनमत की तत्परता और
3. ऐसे अनुभवी प्रशासकों की मौजूदगी जिनको संबंधित क्षेत्रों का विशेष ज्ञान था।
4. लेकिन बंगाल का पहला विभाजन इस दिशा में लार्ड कर्जन की पहल का पहला परिणाम था।

मांटेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट ने एक आम पुनर्वितरण की आवश्यकता को स्वीकार किया, पर समय को ऐसे परिवर्तनों के लिए उपयुक्त नहीं माना क्योंकि उसकी राय में एक ही साथ संविधान का संशोधन और देश के राजनीतिक भूगोल का संशोधन बुद्धिमता का काम नहीं था। उसने यह विचार व्यक्त किया कि पुनर्वितरण किसी भी हालत में संवैधानिक सुधार से पहले या उसके साथ नहीं बल्कि उसके बाद होना चाहिए। इसलिए उसका सुझाव था कि तमाम सुधार युक्त प्रांतीय सरकारों के लिए इस लक्ष्य के लिए बनी योजनाओं पर प्रांतीय जनमत को रखने को उनके सबसे आरंभिक कर्तव्यों में एक माना जाना चाहिए।

भारतीय विधायी आयोग ने भी प्रांतीय सीमाओं में फेरबदल की सिफारिश की, खासकर शक्तियों के एक अच्छे खासे विकेंद्रीकरण के बाद और प्रांत जिस संघ की इकाईयों बनेंगे उसकी अंतत: स्थापना होने के बाद उनकी स्थिति में आने वाले परिवर्तन के मद्दे नजर। यह आयोग पुनर्वितरण की राह में मौजूद बहुत भारी कठिनाइयों के प्रति सजग था, पर उसका आग्रह था कि जिन मुख्य दृष्टांतों में प्रांतीय फेरबदल आवश्यक दिखाई देता था, उनकी जांच भारत सरकार द्वारा स्थापित एक सीमा आयोग से करायी जाए। पर ऐसा कोई आयोग गठित ही नहीं हुआ और इस सिफारिश के बाद जो एकमात्र परिवर्तन किए गए वे अप्रैल 1936 में अलग सिंध और उड़ीसा प्रांतों का गठन थे।[2] 1936 और 1947 के बीच के काल में सरकार का ध्यान बड़े राजनीतिक और सवैधानिक मुद्दों में तथा युद्ध लड़ने की व्यवस्था में उलझा रहा। राज्यों के पुनर्गठन को लेकर फिर कुछ नहीं सुना गया। भारत में सत्ता के हस्तांतरण के बाद संविधान सभा के भाषायी प्रांत आयोग ने जुलाई दिसंबर 1948 में इस प्रश्न की छानबीन की, और कांग्रेस द्वारा गठित जेवीपी समिति ने भी जिसने अप्रैल 1949 में अपनी राय दी। इन दोनों निकायों का सरोकार कुछेक भाषायी प्रांतों के गठन को टालने का सुझाव ऐसे आधारों पर दिया जो एक बडी सीमा तक राज्यों के पुनर्गठन के सामान्य प्रश्न पर भी लागू होते थे। दर आयोग ने सिफारिश की कि फिलहाल कोई नया प्रांत न बनाया जाए और यह सवाल तब उठाया जाए जबकि भारत का भौतिक और भावात्मक एकीकरण हो चुका हो, भारतीय राज्यों की समस्या हल हो चुकी हो, राष्ट्रीय भावना मजबूत हो चुकी हो तथा अन्य परिस्थितियों अनुकूल हों। उसके बताए हुए आधार ये थे:

1. भारत का सामना प्रांतों के पुनर्वितरण की समस्या से कहीं अधिक फौरी समस्याओं से था, जैसे कि प्रतिरक्षा, खाद्य, शरणार्थी मुद्रास्फीति और उत्पादन की समस्याओं से,

2. सीमाओं के पुनर्निधारण से तथा बंबई और मद्रास जैसे राजधानी नगरों के हस्तांतरण से जो गर्मी, विवाद और कड़वाहट पैदा होंगी, भारत उनको अपनी चिंताओं में जोडने का जोखिम नहीं उठा सकता।
3. अनेक नए प्रांतों में मौजूदा प्रांतो के विभाजन के आर्थिक परिणामों पर बहुत कुछ अध्ययन, तैयारी और योजनबंदी की आवश्यकता थी।
4. उन दिनों मौजूद प्रशासनकर्मी नई सरकारों को चलाने के अतिरिक्त बोझ के लिए अपर्याप्त थे।

जेवीपी (जवाहर लाल नेहरू, सरदार पटेल, पट्टाभिसीतारमैया) समिति सामान्यत: इस विचार से सहमत थी, पर उसने पुनर्गठन के लिए समय को मुनासिब नहीं माना, क्योंकि इससे निम्न बातें भी संभव थी।

1. अधिक महत्वपूर्ण विषयों से ध्यान हट जाता।
2. राष्ट्र की उपलब्धियों को ठोस बनाने की प्रक्रिया धीमी पड़ जाती।
3. देश का प्रशासनिक, आर्थिक और वित्तीय ढ़ांचा बेवजह हो जाता तथा हमारी आर्थिक और राजनीतिक कठिनाइयों के उत्तरोत्तर समाधान में
4. अभी हम जबकि आरंभिक चरण में हैं, तोड़फोड़ और विघटन की शक्तियां मुक्त हो उठती।

फिर भी समिति ने माना कि जनभावना अगर आग्रहशील है तो समिति इसे कुल मिलाकर भारत के हित में कुछ सीमाओं के अंदर और उसके द्वारा निर्धारित दूसरी शर्तों के साथ स्वीकार करेगी। ऐसी ही राय 7 जुलाई 1952 को भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के संबंध में लोक सभा में बोलते हुए प्रधानमंत्री ने व्यक्त की उन्होंने जोर देकर कहा कि हमें भारत में एकता की भावना के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी होगी और इस एकता की राह में जो कुछ भी आए उसे कुछ समय तक टाला जा सकता है। उन्होंने आगे कहा कि दुनिया जब एक संकट के कगार पर खड़ी थी तब एक सैद्धांतिक दृष्टिकोण या भाषायी विभाजन के लिए भारत को अस्थिर बनाना असाधारण बुद्धिहीनता होगी। इस आयोग के गठन के बाद अब यह समस्या फिर से देश के सामने आन खड़ी हुई है और मौजूदा ढांचे में भारी फेरबदल के लिए समय की उपयुक्तता पर जनमत विभाजित है।[3]

पुनर्गठन के विरोधियों के तर्क ये हैं

1. आंतरिक या बाहा दृष्टि से स्थिति में ऐसा कोई स्पष्ट परिवर्तन नहीं आया है जो इस राय को सही ठहराए कि 1948 और 1952 में जिन तत्वों के कारण राज्यों के पुनर्गठन के किसी भी प्रस्ताव पर विचार करना मुनासिब नहीं था। वे तत्व अब मौजूद नहीं हैं।
2. कश्मीर की जटिल समस्या समेत विभाजन से पैदा समस्याओं का हल निकालना अभी बाकी रहता है।
3. अंतर्राष्ट्रीय स्थिति और सीमा पार की घटनाएं राष्ट्रीय ऊर्जा और संसाधनों की किसी भी बरबादी की इजाजत नहीं देतीं।
4. देश का आर्थिक विकास सबसे अधिक प्राथमिकता का तकाजा करता है और
5. मौजूदा ढांचे में कोई भी बड़ा परिवर्तन लाजिमी तौर पर प्रांतीय भावनाएं पैदा करेगा और राष्ट्रीय एकजुटता को नुकसान पहुंचाएगा।

इसी आधार पर पुनर्गठन के विरोधियों ने कम से कम 20 या 35 साल तक के लिए इस पूरे मुद्दे को टाल देने का सुझाव दिया है ताकि देश में एक सही वातावरण बन सके, और हम इस बीच जीवंत राष्ट्रीय महत्व की दूसरी बातों पर अपना ध्यान केंद्रित कर सकें।[4]

इसमें शक नहीं कि आंतरिक और बाहरी दोनों दृष्टियों से स्थिति स्वतंत्रता प्राप्ति के फौरन बाद की स्थिति से अधिक सहज है । फिर भी एक लापरवाही का रूख अपनाने की इजाजत न तो अंतर्राष्ट्रीय स्थिति देती है और न देश के सामने मौजूद आर्थिक और अन्य समस्याएं देती हैं। यह भी सही है कि बड़े पैमाने पर राज्यों के किसी भी पुनर्गठन से देश के संसाधनों पर एक भारी वित्तीय और प्रशासनिक बोझ पडेगा। लेकिन इस तर्क की जगह अब हमें स्थिति की वास्तविकताओं को देखना होगा जिनके कारण इस प्रश्न को अब और टालना अव्यावहारिक हो गया है। पुनर्गठन की समस्या अब तात्कालिक बन चुकी है क्योंकि भारत को बडे पैमाने के नियोजन कार्यक्रम के कारण अब टिकाऊ राजनीतिक इकाइयों के आधार पर सोचना पडेगा। अनिश्चय की मौजूदा स्थिति का एक प्रत्यक्ष और दुखद परिणाम यह हुआ है कि विवादित क्षेत्रों में धन के निवेश में आम हिचक पैदा हुई है। पुनर्गठन की राह की प्रमुख बाधाओं में एक बाधा यह भी है कि ब्रिटिश काल में भी और सत्ता के हस्तांतरण के फौरन बाद के काल में भी भूतपूर्व भारतीय रियासतों को एक सीमा तक क्षेत्रीय अखंडता का लाभ प्राप्त था। पर इन राज्यों के एकीकरण से यह बाधा दूर हो चुकी है और समस्या के प्रति एक बुद्धिसंगत दृष्टिकोण अपनाने का रास्ता खुला है।[5] इस सिलसिले में यह बात याद की जा सकती है कि भारतीय विधायी आयोग की राय में बेहद अहम बात यह थी कि प्रांतीय सीमाओं में फेरबदल और समुचित प्रांतीय क्षेत्रों के निर्माण का काम नई प्रक्रिया के बहुत आगे जाने से पहले ही हो जाना चाहिए। एक बार सांचा तैयार हो गया हो तो किसी भी कुवितरण को दूर करना और भी कठिन हो जाएगा। यह बात और भी बड़ी हद तक कुछ भूतपूर्व भारतीय रियासतों के क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाली इकाईयों पर लागू होती है जिनके भविष्य पर विचार किया जाना चाहिए। पेशतर इसके कि निहित स्वार्थ बहुत गहरी जडें जमा लें और बुद्धि संगत हल निकालना कठिन हो जाएं।

स्वयं इस आयोग के गठन ने आशाएं जगाई हैं और देश को राज्यों के क्षेत्रों में फेरबदल के लिए मानसिक रूप से तैयार किया है। समिति को जनमत के प्रमुख नेताओं के विचार जानने का लाभ मिला है और पुनर्गठन के विभिन्न पक्षों पर मूल्यवान सामग्री मिली है। अब अगर एक रचनात्मक दृष्टिकोण नहीं अपनाया जाता तो कुंठा की भावना और उससे जुड़ी तमाम बुराइयों का जन्म होगा।[6]

राज्यों के पुनर्गठन विरोधी तर्कों का एक अच्छा खासा भाग इस मान्यता से ग्रस्त है कि पुनर्गठन से राज्यों का भाषायी पुनर्वितरण होना चाहिए। लेकिन भाषायी राज्यों के निर्माण को पुनर्गठन का पर्याय समझने वाली यह प्रवृत्ति अगर न होती तो मौजूदा इकाइयों के युक्तीकरण की वांछनीयता पर अच्छी खासी सहमति पैदा हो जाती। मिसाल के लिए प्रबुद्ध जनमत इस बात पर सहमत है कि तीन श्रेणियों में राज्यों के वर्गीकरण को अब उचित ठहराया नहीं जा सकता, और यह कि मौजूदा छोटी इकाईयों का दर्जा भाग अ के राज्यों के बराबर लाने या साथ लगी बडी इकाइयों में उनको मिला देने के दो विकल्पों में से दूसरा विकल्प अधिक व्यावहारिक है। इस प्रक्रिया को कुछ समय तक टालना शायद संभव भी होता लेकिन आंध्र राज्य के गठन के फैसले और उसके पीछे मौजूद

कारणों ने अब कोई विकल्प नहीं छोड़ा है। यह फैसला न भी होता तो भी जब तक राजनीतिक दल पुनर्गठन की नीति से प्रतिबद्ध रहेंगे, एक आम पुनर्गठन को और अधिक टालने से और भी असंतोष पैदा होगा।[7]

इसलिए किसी भी अनावश्यक देरी के बिना भारत का राजनीतिक मानचित्र नए सिरे से तैयार करने का काम अब इस आशा के साथ आरंभ और पूरा किया जाना चाहिए कि जो भी परिवर्तन होंगे वे भारतीय जनता के खासे बडे बहुमत के लिए संतोषजनक होंगे।

परिवर्तन की लागत

हालांकि इस आयोग का गठन करने वाला प्रस्ताव इसे पुनर्गठन से संबंधित किसी भी प्रस्वाव या सिद्धान्त पर विचार करने का पूरा अधिकार देता है, फिर भी भारत सरकार ने कुछ ऐसे सिद्धान्त तय किए हैं जिनको इस समस्या पर विचार करते समय ध्यान ने रखना होगा। इस प्रस्ताव के प्रासंगिक भाग को नीचे उद्धृत किया जा रहा है।[8]

किसी क्षेत्र की भाषा और संस्कृति का असंदिग्ध महत्व होता है क्योंकि वे उस क्षेत्र की साझी जीवनशैली का प्रतिनिधित्व करती है। मगर राज्यों के पुनर्गठन पर विचार करते समय कुछ दूसरे महत्वपूर्ण तत्व भी ध्यान में रखे जाने चाहिए। पहला मूल विचार भारत की एकता और सुरक्षा को बनाए रखना और मजबूत करना है, न सिर्फ हर राज्य बल्कि पूरे राष्ट्र के दृष्टिकोण से भी। वित्तीय आर्थिक और प्रशासनिक विचार भी लगभग उतने ही महत्वपूर्ण हैं। भारत अपनी आर्थिक सांस्कृतिक और नैतिक प्रगति के लिए एक महान सुव्यवस्थित योजना का आरंभ कर चुका है। ऐसी किसी राष्ट्रीय योजना के सफल क्रियान्वयन में हस्तक्षेप करने वाले परिवर्तन राष्ट्रीय हित के लिए हानिकारक होंगे।

इससे पैदा होने वाले सिद्धान्त नीचे दर्ज किए जाते है:-

1. भारत की एकता और सुरक्षा को बनाए रखना और मजबूत बनाना।
2. भाषायी और सांस्कृतिक समरसता।
3. वित्तीय, आर्थिक और प्रशासनिक विचार।
4. राष्ट्रीय योजना का सफल क्रियान्वयन।

संविधान की धारा 3 और 4 के अनुरूप पुनर्गठन की किसी भी योजना को लागू करने वाले किसी भी संसदीय विधान के लिए काफी प्रयास और समय का व्यय आवश्यक है। मौजूदा तनावों के आधार पर हम परखें तो संसदीय विधान से पहले राज्यों की विधानसभाओं की कार्रवाईयों लंबी खिंच सकती और जबरदस्त भावनाओं को जन्म दे सकती हैं। बुद्धिसंगत आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के लिए अनेक संविधान संशोधन भी आवश्यक हो सकते हैं। जो पुनर्गठन के प्रस्तावों से संबंधित विधेयक लाने की परेशानी और भी बढा सकते हैं।

आवश्यक विधेयक के पारित होने से संक्रमणकालीन समस्याओं किसी भी तरह समाप्त नहीं होंगी। पहली बात तो यह है कि जिन क्षेत्रों को आपस में जोड़ा जाएगा उनमें मौजूद कानूनों के एकीकरण का कठिन प्रश्न उठेगा। भौगोलिक संलग्नता वाले राज्यों समेत मौजूदा प्रशासनिक इकाइयों में मौजूद कानून एक समान नहीं हैं। इनमें पट्टेदारी कृषि सुधारों और शराबबंदी जैसे अहम विषयों से संबंधित कानून भी शामिल हैं। हाल में जब कभी विलय हुए हैं तो एक प्रधान क्षेत्र के नियम कायदों को दूसरे राज्य पर सीधे-सीधे लागू करने का कोई समरूप प्रयास नहीं किया गया है। कुछ राज्यों को इस सिद्धान्त को छोड़ना पड़ा है क्योंकि उन क्षेत्रों में मौजूद सामाजिक और आर्थिक दशाएं कानूनों में विषमता को उचित ठहराती थी। कुछ राज्यों में पुराने कानून अभी भी लागू हैं क्योंकि कानूनों के एकीकरण की प्रक्रिया पूरी करने में देर हो रही है।

परिसीमन आयोग के काम में विघ्न संभवत: पुनर्गठन का एक और प्रमुख परिणाम होगा। चुनाव क्षेत्रों के परिसीमन का काफी काम नए सिरे से करना होगा, और जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1950 में स्पष्ट है कि भारी संशोधन आवश्यक होंगे।

साल 1928 और 1947 के बीच कांग्रेस ने तीन अवसरों पर भाषायी सिद्वान्त से अपनी प्रतिबद्धता की पुष्टि की।

1. 1 अक्टूबर 1937 में आयोजित कलकत्ता सत्र में उसने भाषायी प्रांतों की नीति दोहराई तथा आंध्र और कर्नाटक प्रांतों के गठन की सिफारिश की।
2. 2 जुलाई 1938 में वर्धा में पारित एक प्रस्ताव में वर्किंग कमेटी ने आंध्र कर्नाटक और केरल के प्रतिनिधिमंडलों को आश्वासन किया कि कांग्रेस का जैसे ही बस चलेगा। प्रांतों का भाषायी पुनर्वितरण किया जाएगा।
3. 1945 -46 के चुनाव घोषणापत्र में उसने इस विचार को दोहराया कि जहां तक संभव हो, प्रशासनिक इकाइयों का गठन भाषायी और सांस्कृतिक आधार पर किया जाएगा।

कांग्रेस के 1945-46 के जिस चुनाव घोषणापत्र ने जनता को यह आश्वासन दिया था कि प्रांतों का पुनर्गठन भाषायी और सांस्कृतिक आधारों पर तो किया जाएगा लेकिन हर मिसाल में नहीं बल्कि किसी मिसाल में ठोस परिस्थितियों में वह, जहां तक संभव होगा वहां तक, भाषायी सिद्धान्त को मर्यादित करने का पहला प्रयास दिखाई देता है। लेकिन विभाजन और स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद इस विषय पर कांग्रेस नेताओं के दृष्टिकोण में एक गोचर परिवर्तन दिखाई देता है। इनके साथ अकल्पनीय समस्याएं आईं और इस बारे में गंभीर शंकाएं पैदा हुईं कि क्या नई दशकों में पुराने संकल्पों पर अमल किया जाएगा। विभाजन के कुछ ही समय बाद संविधान सभा में 27 नवंबर 1947 को बोलते हुए प्रधानमंत्री ने भाषायी सिद्धान्त को स्वीकार करके भी यह कहा पहला काम पहले होना चाहिए और पहला काम भारत की सुरक्षा और स्थिरता है। इसके बाद संविधान सभा की मुसिव्बदा समिति की सिफारिश पर एक भाषायी प्रांत आयोग का गठन किया गया। जिसे दर आयोग कहा जाता है। इसका काम आंध्र, कर्नाटक, केरल और महाराष्ट्र के प्रस्तावित प्रांतों में से किसी के भी गठन की वांछनीयता या अन्यथा की जांच करके अपनी रिपोर्ट देना, उनकी सीमाएं तय करना और उन प्रांतों और उनसे सटे भारतीय क्षेत्रों में इसके वित्तीय, आर्थिक, प्रशासनिक और अन्य परिणामों का आकलन करना था। इस आयोग के विचारणीय विषयों से जाहिर है कि केवल भाषायी आधार पर प्रांतों के पुनर्गठन को एक अटल सत्य नहीं माना जा रहा था।[9]

आयोग ने दिसंबर 1948 में संविधान सभा को अपनी रिपोर्ट दी। उसने मौजूदा हालात में किसी भी पुनर्गठन के खिलाफ अपनी जोरदार राय दी, पर यह भी कहा कि केवल, यहां तक कि मुख्यत: भी भाषायी आधारों पर प्रांतों का गठन अंवाछित होगा। आयोग की सोच थी कि प्रांतों के गठन में जोर मुख्यत: प्रशासनिक सुविधा पर होना चाहिए। भाषा की समरसता पर विचार केवल प्रशासनिक सुविधा पर होना चाहिए। भाषा की समरसता पर विचार केवल प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से किया जाना चाहिए। आयोग ने जोर देकर कहा कि वह सब कुछ आगे बढ़ना चाहिए जो राष्ट्रवाद को प्रखर बनाए और जो कुछ उसमें बाधक हो वह अस्वीकार किया जाना या किनारे पड़ा होना चाहिए। जिन बहुत से दूसरे तत्वों को महत्व दिया जाना चाहिए। उनमें आयोग ने इतिहास, भूगोल, अर्थव्यवस्था और संस्कृति का जिक्र किया। आयोग की राय में इन सभी तत्वों पर ध्यान देने के बाद अगर नए बने राज्यों में भाषायी समरसता भी हो तो वह एक अतिरिक्त लाभ होगा। दर आयोग ने कुछ आम तौर पर स्वीकृत मानदंडों का जिक्र किया कि एक प्रांत बनने से पहले एक भाषायी क्षेत्र को इन पर खरा उतरना चाहिए। ये इस प्रकार थे।

क. भौगोलिक संलग्नता, कोटरों और गलियारों का अभाव

ख. वित्तीय स्वावलंबन

ग. प्रशासनिक सुविधा

घ. भावी विकास की क्षमता और

ड. उसकी सीमाओं के अंदर और एक ही भाषा बोलने वाली जनता के बीच उसके गठन पर भारी सहमति, जिसमें इस बात का ध्यान रखा जाए कि नया प्रांत बहुसंख्यकों द्वारा उसी भाषा को बोलने वाले, अच्छी खासी संख्या वाले अल्पसंख्यकों पर लादा न जाए।

दर आयोग की रिपोर्ट आने के कुछ ही समय बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने दिसंबर 1948 में जयपुर में आयोजित सत्र में भाषायी प्रांतों के सवाल पर विचार करने के लिए तथा दर आयोग की रिपोर्ट की तथा स्वतंत्रता के बाद पैदा हुई नई समस्याओं की रोशनी में स्थिति की समीक्षा करने के लिए एक समिति का गठन किया । इसे जेवीपी समिति कहा गया तथा इसके सदस्य जवाहरलाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल और डा. पट्टाभि सीतारामैय थे। यह कांग्रेस की पहली निकाय थी जिसने भाषायी सिद्धान्त के खिलाफ चेतावनी दी। इसने कहा कि :

अ. कांग्रेस ने जब भाषायी प्रांतों के आम सिद्धान्त पर अपनी सहमति की मुहर लगाई थी तब इसका सामना इस सिद्धान्त के व्यावहारिक प्रयोग से नहीं हुआ था और इसलिए उसने इस व्यावहारिक उपयोग से पैदा हुए सभी निहितार्थों और परिणामों पर विचार नहीं किया था।

ब पहला विचार भारत की सुरक्षा, एकता और आर्थिक समृद्धि का होना चाहिए, और हर अलगाववादी और विघटनकारी प्रवृत्ति को जबरदस्त हतोस्ताहित किया जाना चाहिए।

स. भाषा सिर्फ जोड़ने वाली नहीं बल्कि, अलग करने वाली एक शक्ति भी है और भाषायी प्रांत बनाने की पुरानी कांग्रेसी नीति हरेक अलग मिसाल में गहरे सोच विचार के बाद ही तथा ऐसे गंभीर प्रशासनिक विस्थापन या आपसी टकराव पैदा किए बिना ही, लागू की जा सकती है, जो देश की राजनीतिक और सामाजिक स्थिरता को खतरे में डाल सकते हैं।

समिति ने माना कि अगर जनभावना आग्रहशील और जोरदार है तो तमाम निहितार्थों और परिणामों के साथ जनता ही मांग पूरा कर सकने की व्यावहारिकता की जांच की जानी चाहिए। पर ऐसी किसी मांग की संभावित स्वीकृति पर उसने दो सीमाएं लगाई।[10]

1. कम से कम आरंभ में यह सिद्धान्त केवल उन सुस्पष्ट क्षेत्रों पर लागू किया जाए जिनके बारे में आपसी सहमति हो।
2. जिनमें कुछ दम खम हैं ऐसे सभी प्रस्ताव एक ही साथ लागू नहीं किए जा सकते है।

कांग्रेस वकिंग कमेटी ने अप्रैल 1949 में जेवीपी कमेटी की रिपोर्ट स्वीकार की। तब से कांग्रेस मोटे तौर पर इस रिपोर्ट में व्यक्त विचारों पर ही टिकी रही है। यह बात 1951 में कांग्रेस द्वारा जारी चुनाव घोषणापत्र से और 1949 के बाद उसके द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों से स्पष्ट हैं।

घोषणापत्र ने ऐलान किया कि राज्यों के पुनर्गठन संबंधी निर्णय अंतत: संबंधित जनता की इच्छा पर निर्भर होगा, पर उसने यह राय भी व्यक्त की कि जहां भाषायी कारण महत्वपूर्ण थे वहीं आर्थिक, प्रशासनिक और वित्तीय सोच जैसे दूसरे तत्व भी जिनको ध्यान में रखना आवश्यक था। एक व्यावहारिक उदाहरण के रूप में कांग्रेस आंध्र राज्य के गठन पर सहमत थी क्योंकि आंध्र प्रांतीय कांग्रेस, तमिलनाडु कांग्रेस और मद्रास सरकार इस बार सहमति दे चुकी थीं। पर उसने कर्नाटक राज्य कके गठन के प्रस्ताव पर अपना समर्थन रोके रखा क्योंकि मैसूर राज्य की जनता समेत जनता का भारी बहुमत इस पर सहमत नहीं था।[11]

एक प्रश्न 1951 के बाद महत्वपूर्ण हो उठा, यह पंचवर्षीय योजना के क्रियान्वयन का प्रश्न था। जनवरी 1953 में हैदराबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के प्रस्ताव ने इसका खास तौर पर जिक्र किया था।

इस सवाल पर कांग्रेस का नवीनतम रूख जनवरी 1953 में हैदराबाद सत्र में घोषित किया गया, मई 1953 में वर्किंग कमेटी के प्रस्ताव में इसे दोहराया गया और जनवरी 1953 में कल्याणी में इसकी फिर से पुष्टि की गई। वह रूख यह था कि राज्यों के पुनर्गठन पनर विचार करते समय सभी महत्वपूर्ण तत्वों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। जैसे कि भारत की एकता, राष्ट्रीय सुरक्षा और प्रतिरक्षा, सांस्कृतिक और भाषायी संबद्धताओं, प्रशासनिक सुविधा, वित् तीय विचारों और राज्यों के तथा पूरे राष्ट्र की आर्थिक प्रगति को। ध्यान रखें कि हैदराबाद और कल्याणी, दोनों जगहों पर जोर भारत की एकता और राष्ट्रीय सुरक्षा पर था जिसे जैसा कि कल्याणी प्रस्ताव में कहा गया था, पहली प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

अन्य दलों के विचार

दूसरे राजनीतिक दलों के चुनाव घोषणापत्र में भी राज्यों के भाषायी पुनर्वितरण को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ। सोशलिस्ट पार्टी ने भाषायी संलग्नता और आर्थिक व्यावहारिकता के साथ सुसंगति रखकर भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्वितरण के पक्ष में अपना मत व्यक्त किया। कम्यूनिस्ट पार्टी ऐसे राष्ट्रीय राज्यों

के पक्ष में थी जिनको आत्मनिर्णय के अधिकार समेत व्यापक शक्तियों प्राप्त हों। किसान मजदूर प्रजा पार्टी ने द्विभाषी सीमावर्ती क्षेत्रों के प्रश्न समेत राज्यों के पुनर्वितरण के पूरे प्रश्न पर विचार करने के लिए एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति के गठन की पैरवी की। हिंदू महासभा भाषायी आधार पर प्रांतों के गठन की नीति में विश्वास तो रखती थी पर उसकी राय थी कि प्रतिरक्षा की समस्या और क्षेत्रफल व आर्थिक स्थिरता जैसे अन्य तत्वों का समुचित ध्यान रखा जाना चाहिए।[12]

निष्कर्ष

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि एक प्रारंभिक मगर अनिवार्य बात यह है कि कोई भी ऐसा परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए जो मौजूदा स्थिति में स्पष्ट सुधार न लाए और जब तक हर घटक इकाई की और पूरे राष्ट्र की जनता के कल्याण में वृद्धि के रूप में जोकि भारत सरकार द्वारा इस आयोग के लिए तय किया हुआ एक उद्देश्य है- उससे मिलने वाले लाभ इतने अधिक न हों कि उस भारी बोझ की भरपाई न कर सकें जोकि मौजूदा इकाईयों के पुनर्गठन के कारण देश के प्रशासनिक और वित्तीय संसाधनों पर पडेगा। राज्यों का पुनर्गठन स्वयं में एक लक्ष्य नहीं बल्कि एक लक्ष्य का साधन समझा जाना चाहिए। ऐसी स्थिति जब हो तो इस पर विचार करना एकदम वैध है कि क्या किसी परिवर्तन से कुल मिलाकर लाभ का पलड़ा भारी रहेगा।

सन्दर्भ

1. आर.सी मजूमदार - हिस्ट्री आफ द फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया।
2. रामगोपाल - भारतीय राजनीति, पृ. 37 ।
3. ए.आर. देसाई - सोशियल बैकग्राउण्ड आफ इण्डियन नेशनलिज्म, पी. 210।
4. रजनी पामदत्त - इण्डिया टूडे , पी. 283।
5. जी.एन सिंह - लैण्डमार्कस् इन इण्डियन कन्स्टीट्यूसनल एण्ड नेशनल डेवलपमेन्ट, पी. 109।
6. सुन्दरलाल - भारत में अंग्रेजी राज, पृ. 60
7. जे.सी. जौहरी - इंडियाज गवन्मेन्ट एण्ड पालिटिक्स पृ. 67
8. वसंत चटर्जी - दि कांग्रेस स्प्लिट पृ. 33-34
9. के.सी.व्हेयर - फेडेरल गवर्नमेन्ट पृ 48।
10. सर आइवर जेनिग्स - सम कैरेक्टरस्टिक्स् आफ दि इंडियन कांस्टीट्यूशन पृ. 13-14।
11. सुभाष कश्यप - लोकतंत्र समीक्षा, अप्रैल-जून 1969, पृ. 103।
12. जे.आर.सिवाच - डाएनेमिक्स आफ इंडियन गवर्नमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स पृ. 19।

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन की उत्पत्ति, उद्देश्य एवं सिद्धांत

मनीषा

स्नातकोत्तर एवं राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा पास (राजनीति विज्ञान), गाँव व डाकखाना-बुसाना, जिला-सोनीपत, (हरियाणा)

शोधालेख सार

वास्तव में दक्षिणी एशिया विश्व राजनीति की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इस क्षेत्र के सात देशों (वर्तमान में आठ) ने सार्क नाम का एक क्षेत्रीय संगठन का निर्माण करके दक्षिण एशिया में आपसी सहयोग की दिशा में एक नए युग की शुरूआत की। इस संगठन का नाम है - सार्क, जिसका पूरा नाम है 'साउथ एशियन एसोसिएशन फॉर रीजनल कोपरेशन' अर्थात् दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (दक्षेस)। यह संगठन शुरूआत में सात देशों और अब आठ देशों को शामिल करके दक्षिण एशिया में आपसी सहयोग के लिए निरन्तर प्रयासरत है। इसके सदस्य देश हैं - भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, बंगलादेश, नेपाल, भूटान, मालद्वीव और अफगानिस्तान, जिन्होने आपसी सहयोग के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय सम्बंधो में अपने अस्तित्व का आभास कराया है। वस्तुतः वर्ष 1985 में सार्क की स्थापना के अवसर पर दक्षिण एशिया के सभी नेताओं ने जो भाषण दिये, उनमें आपसी सहयोग बढ़ाने और तनाव समाप्त करने पर जोर दिया गया। उन्होंने यह भी कहा कि इस नये संगठन की उत्पत्ति से सदस्य राष्ट्रों के बीच सद्भावना, भाई-चारा और सहयोग का नया युग शुरु होगा। उन्होंने सार्क के जन्म को 'युगान्तरकारी घटना', 'नये युग का शुभारंभ' तथा 'सामूहिक सूझबूझ और राजनीतिक इच्छाशक्ति की अभिव्यक्ति' बताया। प्रस्तुतः शोध पत्र का उद्देश्य सार्क संगठन की उत्पत्ति, उद्देश्य एवं सिद्धांतो पर प्रकाश डालना है।

मूल शब्दः- दक्षिण एशिया, विश्व राजनीति, सार्क, क्षेत्रीय सहयोग।

भूमिका

वस्तुतः 1980 का दशक दक्षिण एशियाई देशों में सहयोग के नए अध्याय के रूप में जाना गया। इस समय इस क्षेत्र के कुछ देशों ने क्षेत्रीय सहयोग को बढाने पर बल दिया। इस दिशा में सहयोग की प्रवृति का जन्म उस समय हुआ जब सार्क या दक्षेस की उत्पत्ति को लेकर जिया उर रहमान के वर्ष 1977 के उस प्रस्ताव को महत्वपूर्ण माना गया जिसे उन्होंने मई 1980 में एक बार फिर से इस क्षेत्र के आर्थिक सहयोग हेतु सभी देशों के राजनेताओं का एक सम्मेलन बुलाने की इच्छा व्यक्त की गई। यद्यपि इस प्रस्ताव पर पहली प्रक्रिया सन्देह की थी, परन्तु धीरे-धीरे इसे आपसी सहयोग हेतू उपयोगी माना गया और इस प्रस्ताव को कोलम्बो में होने वाले पहले आधिकारिक सम्मेलन में अप्रैल 1981 में रखा गया। इस तरह यह कदम इस सम्मेलन की गतिविधियों एवं वार्ताओं का मुख्य आधार बना। इस सम्मेलन में सहयोग के विभिन्न क्षेत्रों की जाँच की गई और अंततः इन सहयोगों के आधार पर विदेश मन्त्रियों के अगस्त 1983 के सम्मेलन में 'दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन' की स्थापना की गई, जिसे ढ़ाका में वर्ष 1985 में सम्पन्न हुए सात देशों के राजनेताओं के शिखर सम्मेलन में औपचारिक रूप दे दिया गया और इसे 'दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन' का नाम दिया गया। इस तरह सार्क का जन्म 8 दिसम्बर, 1985 को ढाका में प्रथम शिखर सम्मेलन में हुआ। इस दौरान यह भी सुनिश्चित किया गया कि इसका मुख्यालय काठमांडू (नेपाल) में होगा।

सार्क की स्थापना के कारण

हम इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं कि इस संगठन की (दक्षेस) की स्थापना में क्षेत्रीय सहयोग की मूल भावना निहित है और इसी बात को लेकर दक्षिण एशिया के प्रमुख आठ देशों ने आपस में इस तरह से संगठित किया है कि वर्तमान में यह संगठन आर्थिक मुद्दों को लेकर सापटा और साफटा तक का सफर तय कर चुका है। अतः सार्क की स्थापना के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार से हैं:-

- दक्षिण एशिया में विभिन्न प्रकार की कल्याणकारी योजनाओं को प्रोत्साहन देना तथा गरीबी व अज्ञानता को मिटाकर लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाना।
- आपसी मतभेद भुलाकर आर्थिक सहयोग के लक्ष्य को लेकर आपसी व्यापार को उच्च प्राथमिकता देना।
- सार्क संगठन की मजबूती के लिए सार्क देशों के अंतर्राष्ट्रीय हित से संबंधित सभी मामलों में सहयोग करना।
- अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना तथा विश्व व्यापार असंतुलन को दूर करने के लिए तटकर व व्यापार समझौते के द्वारा आपसी सहयोग को बढ़ावा देना।
- आतंकवाद, तस्करी आदि क्षेत्रीय समस्याओं पर विचार के लिए वर्ष में एक बार शिखर सम्मेलन कर आयोजन करना।

सार्क का घोषणा पत्र

वर्ष 1985 तथा 8 दिसम्बर के दिन दक्षिण एशिया के सात प्रमुख देशों ने (बंगलादेश, भूटान, भारत, मालद्वीप, नेपाल, पाकिस्तान और श्रीलंका) घोषणा की कि सार्क के सभी सदस्य देश संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर और असंलग्नता के सिद्धांतों (विशेषकर राष्ट्रों की संप्रभुता, समानता, भौगोलिक एकता, राष्ट्रीय स्वतंत्रता, शक्ति का प्रयोग न करना, अन्य राज्यों के आंतरिक मामलों में अहस्तक्षेप और पारस्परिक विवादों का शांतिमय ढंग से निपटारा) के अनुसार आचरण करेंगे। इन राष्ट्रों के शासनाध्यक्षों ने कहा कि हम इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं कि आज की दुनिया परस्पर सहयोग पर निर्भर करती है, इसलिए यह बात दक्षिण एशिया के राज्यों पर भी लागू होती है। ऐसी स्थिति में शांति, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय, आर्थिक उन्नति की पूर्ति, पारस्परिक सहमति, समझदारी और अच्छे पड़ोसियों की भांति रहने से ही हो सकती है, क्योंकि सार्क के ये सभी देश इतिहास और संस्कृति के बंधनों से एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

चूंकि दक्षिण एशिया के इन प्रमुख राष्ट्रों की अपनी आर्थिक, राजनैतिक व्यवस्था और सांस्कृतिक परम्परा है तथा ये राष्ट्र इस बात की जानकारी रखते हैं कि उनकी कतिपय सामान्य समस्याएं हैं, उनके कुछ सामान्य हित हैं एवं लोगों की कुछ सामान्य आकांक्षाएं हैं। इसी कारण से वे सभी देश इस बात से सहमत हैं कि सार्क (दक्षेस) देशों की आपसी सहयोग उनके स्वयं के लिए आवश्यक, लाभदायक और वांछनीय है और ऐसा करके ही वे अपना कल्याण और हित साधन कर सकते हैं तथा लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठा सकते हैं। वे इस बात को भी अच्छा तरह समझते हैं कि इन देशों में परस्पर तकनीकी आदान-प्रदान तथा आर्थिक एवं सामाजिक सहयोग से ही आत्मनिर्भरता के नए युग की शुरूआत हो सकती है। 2 अगस्त, 1983 ई. को इनके विदेश मंत्रियों ने जिस घोषणा पर अपने हस्ताक्षर किए थे और उसके बाद जो प्रगति हुई उसकी समीक्षा करते हुए ये राष्ट्र एक संस्था के ढांचे के अंतर्गत ऊपर उल्लेखित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दृढ़ प्रतिज्ञाबद्ध हैं। अंततः दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) के चार्टर में निम्न बातों को समाहित करते हुए, इनका पालन करना सभी सदस्य देशों के लिये अनिवार्य किया गया जो निम्नवत है:-

- सार्क देशों द्वारा इस संगठन के अंतर्गत संयुक्त राष्ट्र संघ और गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के घोषणा-पत्रों का पूर्ण रूप से पालन करते हुये इस क्षेत्र में शान्ति, स्थिरता, सद्भावना और प्रगति को प्रोत्साहित करना तथा सार्वभौमिक समानता, संघीय एकात्मकता, राष्ट्रीय एकात्मकता, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, सैन्य शक्ति का अनुप्रयोग, एक-दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना एवं विवादों को शान्तिपूर्ण तरीके से निपटाना भी शामिल है।
- दक्षिण एशियाई लोगों की समस्याओं की जानकारी, उनकी राजनीतिक, आर्थिक पद्धतियों तथा सांस्कृतिक परम्पराओं के लिये संयुक्त कार्यवाही तथा पूर्ण सहयोग की आवश्यकता पर बल देना।
- बदलते वैश्विक परिवेश में पूर्ण रूप से अन्योन्याश्रिता के सिद्धांत के सम्बंध में यह बात महसूस करना कि शक्ति, स्वतन्त्रता, सामाजिक, न्याय और आर्थिक समृद्धि के उद्देश्यों को पारस्परिक पड़ौसी सम्बन्ध एवं दक्षिण एशियाई देशों में प्रभावपूर्ण सम्पर्क से प्राप्त किया जा सकता है।
- सार्क संगठन द्वारा इस बात पर भी बल दिया गया कि इसके उद्देश्यों में क्षेत्रीय जनता के जीवन स्तर को सुधारने तथा उनके कल्याण हेतु इस बात पर विश्वास है कि सार्क देशों में सहयोग परस्पर लाभकारी, वांछनीय एवं आवश्यक है।
- इस बात में विश्वास रखना कि सार्क देशों में आर्थिक, सामाजिक तथा तकनीकी सहयोग महत्वपूर्ण ढंग से राष्ट्रीय एवं सामाजिक आत्मविश्वास को सहयोग देगा।
- इस बात को समझना कि क्षेत्रीय देशों में बढ़ा हुआ सहयोग, सम्बन्ध और आदान-प्रदान उन लोगों की मित्रता और आपसी सूझ-बूझ को बढ़ाने में सहयोग देगा।
- सार्क के विदेश मंत्रियों द्वारा अगस्त 1983 को नई दिल्ली में हस्तान्तरित घोषणाओं को पुनः दोहराना एवं क्षेत्रीय सहयोग में प्राप्त प्रगति का मूल्यांकन करना।
- एक संस्थागत प्रारूप में ऐसे सहयोग को बढ़ाने के लिये किये गये उनके निर्णयों को निश्चित करना ताकि दक्षिण एशिया के सभी देशों में आपसी सहयोग हेतू प्रयास जारी रहे।

इस तरह सार्क संगठन के चार्टर की प्रस्तावना के आधार पर सभी सदस्य राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर एवं गुट निरपेक्षता के सिद्धान्तों में अटूट आस्था रखते हुए इस क्षेत्र में शान्ति, स्थिरता, मित्रता तथा प्रगति को बढ़घवा देने के लिए इच्छुक हैं। वे सम्प्रभुता में समानता, प्रादेशिक अखण्डता, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, शक्ति के गैर-प्रयोग एवं आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने से सम्बन्धित सिद्धान्तों का आदर करते हैं तथा वे सभी के विवादों को शांतिपूर्ण तरीकों से हल करने के पक्षधर हैं। वे इस बात के लिए भी सचेत हैं कि शांति, स्वतन्त्रता, न्याय तथा आर्थिक समृद्धि से सम्बन्धित लक्ष्यों को आपसी सूझ-बूझ, अच्छे पड़ोसी सम्बन्धों एवं सार्थक सहयोग के आधार पर प्राप्त किया जाना चाहिए। वे दक्षिण एशिया की जनता की सामान्य समस्याओं, अभिरूचियों एवं आकांक्षाओं तथा अपने सापेक्षिक राजनीतिक एवं आर्थिक पद्धतियों एवं सांस्कृतिक परम्पराओं के दायरे में रहते हुए संयुक्त कार्यवाही और आपसी सहयोग को बढ़ाने की आवश्यकता के प्रति भी सचेत हैं। उन्हें यह विश्वास है कि दक्षिण एशिया के देशों के बीच आर्थिक, सामाजिक एवं तकनीकी सहयोग से राष्ट्रीय और सामूहिक आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर होने में महत्वपूर्ण योगदान प्राप्त किया जा सकता है। वे इस तथ्य को भी स्वीकार करते हैं कि इस क्षेत्र के देशों में बीच सहयोग, सम्पर्क एवं विनियम में वृद्धि के सहारे आपसी सूझ-बूझ तथा मित्रता को बढ़ावा मिलेगा। वे 2 अगस्त, 1983 को नयी दिल्ली में इस क्षेत्र के देशों के विदेश मंत्रियों की घोषणा पर किये जाने वाले हस्ताक्षर को भी याद करते हैं तथा प्रादेशिक सहयोग की दिशा में की जाने वाली प्रगति को भी स्वीकार करते हैं। इसके अतिरिक्त वे संस्थागत ढांचे के तहत इस प्रकार के सहयोग को बढ़ावा देने के अपने इरादे को पुनः सुनिश्चित करते हैं।

सार्क के उद्देश्य

वस्तुतः सार्क के चार्टर के अनुच्छेद-1 में इसके निम्न मुख्य उद्देश्य बताए गए हैं-

- दक्षिण एशिया के सभी लोगों के विकास एवं कल्याण हेतू उनके जीवन स्तर को सुधारना।

- दक्षिण एशियाई क्षेत्र के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास द्वारा लोगों को सम्मान के साथ जीने के अवसर प्रदान करना।
- दक्षिण एशिया के सभी देशों के मध्य सामूहिक आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देना।
- सार्क संगठन के सदस्य देशों द्वारा एक दूसरे की समस्याओं के बारे में परस्पर विश्वास, समझबूझ एंव समर्थन देना।
- आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, तकनीकी एवं वैज्ञानिक क्षेत्रों में सक्रिय सहयोग तथा परस्पर सहायता प्रदान करना।
- दूसरे विकासशील देशों के साथ सहयोग बढ़ाना।
- समान हित के विषयों पर अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर सहयोग बढ़ाना।
- समान उद्देश्यों वाले अन्तर्राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय संगठनों के साथ सहयोग बढ़ाना।

सार्क के सिद्धान्त

सार्क के चार्टर के अनुच्छेद - 2 में कुछ सिद्धांतों का उल्लेख है, जिनके आधार पर इस संगठन का संचालन किया जाना सुनिश्चित है और इसके प्रमुख सिद्धांत निम्न प्रकार से हैं:-

- सार्क संगठन में सहयोग की प्रक्रिया सभी राष्ट्रों की संप्रभु समानता, क्षेत्रीय अखंडता, राजनीतिक स्वतंन्त्रता, आंतरिक मामलों में अहस्तक्षेप तथा पारस्परिक लाभ के सिद्धांतों पर आधारित होगी।
- इस प्रकार का क्षेत्रीय सहयोग अन्य द्विपक्षीय तथा बहुपक्षीय का विकल्प न होकर उसका एक पूरक होगा। इसका तात्पर्य यह है कि सार्क द्वारा चलाई जा रही है सहयोग की प्रक्रिया के साथ-साथ अन्य स्तरों पर भी सहयोग को आगे बढ़ाया जायेगा।
- सार्क द्वारा किया जाने वाला सहयोग सदस्यों के अन्य द्विपक्षीय और बहुपक्षीय उत्तरदायित्वों को बाधित नहीं करेगा।
- अंतत: सभी सदस्य देश सार्क के मंच पर द्विपक्षीय विवादों तथा राजनीतिक मुद्दों को नहीं उठायेंगे।
- सार्क के सभी निर्णय आम सहमति के आधार पर लिये जायेंगे।

निष्कर्ष

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जब कुछ पड़ोसी देश, जो किसी विशेष भूखंड पर निवास करते हों तो सभी प्रकार के पारस्परिक लाभ हेतू क्षेत्रीय संगठन का निर्माण किया जाता हैं और इसके पीछे क्षेत्रीय सहयोग और क्षेत्रीय एकीकरण की भावना विद्यमान रहती है। वस्तुत: जिस तरह यूरोपीयन यूनियन यूरोप के लिए, आसियन दक्षिण पूर्वी देशों के लिए और अफ्रीकन यूनियन अफ्रीका के लिए है, उसी तरह सार्क दक्षिण एशिया के लिए है। यद्यपि दक्षिण एशियाई सहयोग के लिए सार्क किसी रोल मॉडल की भूमिका में तो नहीं है लेकिन आसियन और सार्क में कुछ ऐसी समानताएँ हैं जिन्हें सार्क क्षेत्रीय सहयोग की प्रक्रिया में लागू कर सकता है। वास्तव में यह संगठन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की एक ऐसी प्रमुख व्यवस्था है जो सदस्य देशों में आपसी सहयोग की प्रक्रिया को गति देता आया है और सभी सदस्य देशों ने सार्क के चार्टर में दिये गये उद्देश्य व सिद्धांतो का पालन करते हुए क्षेत्रीय सहयोग का नया इतिहास लिखा है। फिर भी हम इस तथ्य को नहीं नकार सकते कि पाकिस्तान जैसे देश बार-बार क्षेत्रीय सहयोग को बाधित करते हैं। इसी कारण से आज सार्क की उपयोगिता एवं प्रासंगिकता का प्रश्न पैदा हो गया है और कई बार इस संगठन की प्रभावशीलता में कमी नजर आती है। लेकिन हम इस बात को नहीं नकार सकते कि क्षेत्रीय सहयोग की दिशा में कुछ प्रगति अवश्य हुई है और सार्क ने सापटा से लेकर साफटा तक का सफर तय कर लिया है।

संदर्भ सूची

- अर्चना उपाध्याय, भारतीय विदेश नीति और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005.
- आर. एस. यादव, भारत की विदेश नीति: एक विश्लेषण, किताब महल, इलाहाबाद, 2004.
- लल्लनजी सिंह, राष्ट्रीय रक्षा और सुरक्षा, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, 2006.
- जे. एम. श्रीवास्तव, राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा, चन्द्र प्रकाश एण्ड कं., हापुड़, 2007.
- एम. एच. सैयद, एनसाईकलोपीडिया ऑफ सार्क नेशन्ज, वाल्यूम-1, कल्पाज पब्लिकेशन्ज, दिल्ली, 2002.
- सुधीर कुमार सिंह, (सम्पादित), हैण्डबुक ऑफ सार्क, पेंटागन प्रैस, नई दिल्ली, 2012.
- सुधीर पटनायक, इंडियाज फॉरन पॉलिसी: बेसिक स्ट्रकचर एण्ड पालिटिकल ऐटीट्युड, अराईज पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2008.

भारत की प्रमुख प्राकृतिक आपदाएं एवं प्रबंधन

संदीप सेन

स्नातकोत्तर एवं एम0 फिल0 (भूगोल), मकान संख्या-164, वार्ड-07, नजदीक रेलवे स्टेशन, लोहारू, जिला- भिवानी (हरियाणा)-127201

शोध आलेख सार:- वस्तुत: विश्व के सभी भागों में समय-समय पर अलग-अलग प्रकार की प्राकृतिक आपदाएं आती रहती हैं। वास्तव में धरती के जिस भाग पर बार-बार सूखे पड़ते हैं और बाढ आती हैं, वही पर विश्व की अधिकांश आबादी रहती है जो भूख और गरीबी से त्रस्त है। भूवेताओं ने स्पष्ट किया है कि बदलते पर्यावरण एवं जलवायु परिवर्तन से यह स्थिति और भी गम्भीर हो सकती है। इसलिए इस बात की महती आवश्यकता है कि प्राकृतिक आपदाओं के निवारण, शमन और प्रबन्धन के लिए प्रभावशाली और व्यापक कदम उठाए जायें और उन स्थलों की पहचान की जाए, जहां से आपदाएं अक्सर आती हैं। यदि भारत के संदर्भ में बात की जाए तो हर वर्ष किसी न किसी भाग में बाढ, समुन्द्री तूफान और सूखे जैसी प्राकृतिक आपदाएं आती रहती हैं। इसी तरह भूकम्प, ओलावृष्टि, बर्फीले तूफान और भू-स्खलन भारत के कुछ भागों में आते रहते हैं, लेकिन इनसे होने वाली तबाही इस बात पर निर्भर करती है कि भारत के पास प्राकृतिक अपादाओं से निपटने के लिए महत्वपूर्ण योजना और तन्त्र किस प्रकार का है। प्रस्तुत: शोध पत्र में भारत की धरती पर आने वाली प्राकृतिक आपदाओं, उनके प्रभाव तथा उनसे होने वाली हानि की मात्रा को कम करने के उपाय सुझाए गए हैं।

प्रमुख शब्द:- प्राकृतिक आपदा, बाढ़, सूखा, चक्रवात, भूकम्प, ओलावृष्टि, जलवायु परिवर्तन।

प्रस्तावना:- ऐसी कोई भी अचानक होने वाली विध्वंस्कारी घटना जिस से व्यापक भौतिक क्षति अर्थात जान-माल का व्यापक नुकसान होता है, प्राकृतिक आपदा कहलाता है। आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 की धारा (2डी) के अनुसार आपदा का अर्थ है- किसी भी क्षेत्र में प्राकृतिक या मानव निर्मित कारणों से होने वाली दुर्घटना, घटना, आपदा या गंभीर घटना या दुर्घटना या लापरवाही से है, जिसके परिणामस्वरूप मानव पीड़ा, संपत्ति का विनाश या क्षति या पर्यावरण का क्षरण होता है तथा वह घटना ऐसी प्रकृति और परिणाम की हो जिससे उबर पाना प्रभावित क्षेत्रों के समुदाय की क्षमता से परे हो। वास्तव: में यह एक ऐसी प्रतिकूल स्थिति है जो मानवीय भौतिक, पर्यावरण एवं सामाजिक कार्यक्रम को व्यापक तौर पर प्रभावित करती है।

आपदाओं के प्रकार

प्राकृतिक आपदा:- इसके कुछ उदाहरण हैं चक्रवात, बवंडर व तूफान, ओलावृष्टि बादल फटना व शीतलहर, हिमस्खलन, सूखा, समुद्रंरक्षण, मेघ गर्जन व बिजली का कड़कना, भूस्खलन एवं कीचड़ का बहाव और भूकंप इत्यादि

मानव जनित आपदा:- इसके कुछ उदाहरण हैं, बांध का टूटना, खदान में आग, शहरों में आग लगना, खदानों में पानी भरना, तेल का फैलाव, प्रमुख इमारतों का ढहना, एक साथ कई बम विस्फोट, बिजली से आग लगना, हवाई, सड़क एवं रेल दुर्घटना इत्यादि।

भारत में प्राकृतिक आपदा प्रवृत्ति: - एक लम्बे समय से भारत परम्परागत तौर पर भू-जल, वायु परिस्थितियों के कारण प्राकृतिक आपदाओं के प्रति संवेदनशील रहा है और इस क्षेत्र में बाढ़, सूखा, चक्रवात, भूकंप तथा भूस्खलन की घटनाएं आम बात हैं। भारत के लगभग 60 प्रतिशत भू-भाग में विभिन्न प्रबलताओं के भूकंपों का खतरा बना रहता है। 40 मिलियन हेक्टेयर से अधिक क्षेत्र में बारंबार बाढ़ आती है। कुल 7516 कि.मी. लंबी तटरेखा में से 5700 कि:मी. में चक्रवात का खतरा बना रहता है। खेती योग्य क्षेत्र का लगभग 68 प्रतिशत भाग सूखे के प्रति संवेदनशील है। अंडमान-निकोबार द्वीप समूह और पूर्वी व पश्चिम भाग के इलाकों में सुनामी का संकट बना रहता है। देश के कई भागों में पतझड़ व शुष्क पतझड़ वनों में आग लगना आम बात है। हिमालयी क्षेत्र तथा पूर्वी व पश्चिम भाग के इलाकों में अक्सर भूस्खलन का खतरा रहता है। इसी तरह की खतरनाक स्थिति भारत के अन्य भागों मे भी पायी जाती है।

प्राकृतिक आपदाओं के प्रकार

1. भूकंप:- यह एक ऐसी प्राकृतिक आपदा है जो अपनी भूप्राकृतिक गतिविधियों के कारण पृथ्वी के भूपटल में उत्पन्न तनाव का, उसकी सतह पर अचानक मुक्त होने से पृथ्वी की सतह के हिलने या कांपने के रूप में प्रकट होती है। वास्तव में सभी तरह की भूगर्भिक हलचलों के कारण भूपटल तथा उसकी शैलों में संपीडन एवं तनाव होने से शैलों में उथल-पुथल होती है जिससे भूकंप उत्पन्न होते हैं। भूकंप मुख्यत: प्राकृतिक कारणों से ही आते हैं लेकिन कई बार मानवीय गतिविधियों के कारण भी भूकंप आ सकते हैं। विश्व में आने वाले भूकपों में कम गहराई वाले भूकपों का प्रतिशत सर्वाधिक है। भूकंप का कम्पन अपने अधिकेन्द्र पर प्रबलतम होता है और जैसे जैसे वहां से दूरी बढ़ती जाती है उसकी प्रबलता क्रमश: कम होती जाती है। भूकंपीय तरंगे तीन प्रकार की होती हैं प्राथमिक, द्वितीयक एवं धरातलीय भूकंप में सर्वाधिक नुकसान धरातलीय तरंगों के. कारण होता है।

भारतीय उपमहाद्वीप में भूकंप का खतरा हर जगह अलग-अलग हैं। भारत को भूकंप के क्षेत्र के आधार पर चार हिस्सों जोन-2, जोन-3, जोन-4 तथा जोन-5 में बांटा गया है (पहले यह -विभाजन 5 हिस्सों में था। जोन 1 से जोन 5 तक)। जोन 2 सबसे कम खतरे वाला वाला जोन है तथा जोन-5 को सर्वाधिक खतरे वाला जोन माना जाता है। उत्तर-पूर्व के सभी राज्य, जम्मू-कश्मीर, उत्तराखंड तथा हिमाचल प्रदेश के कुछ हिस्से जोन-5 में ही आते हैं। उत्तराखंड के कम ऊंचाई वाले हिस्सों से लेकर उत्तर प्रदेश के ज्यादातर हिस्से तथा दिल्ली जोन-4 में आते हैं। मंध्य भारंत अपेक्षाकृत कम खतरे वाले जोन-3 में आता है, जबकि दक्षिण के ज्यादातर हिस्से सीमित खतरे वाले जोन-2 में आते हैं। हालांकि राजधानी दिल्ली में ऐसे कई इलाके हैं जो जोन-5 की तरह खतरे वाले हो सकते हैं। इस प्रकार दक्षिण राज्यों में कई स्थान ऐसे हो सकते हैं जो जोन-4 या जोन-5 जैसे खतरें वाले हो सकते हैं। दूसरे जोन-5 में भी कुछ इलाके हो सकते हैं जहां भूकंप का खतरा बहुत कम हो और वे जोन-2 की तरह कम खतरे वाले हों। भारत में लातूर (महाराष्ट्र), कच्छ (गुजरात), जम्मू-कश्मीर में बेहद भयानक भूंकंप आ चुके हैं। कच्छ में 26 जनवरी, 2001 को आया भूकंप 8.1 तीव्रता का था। इसके कारण 20 लाख लोग प्रभांवित हुए थे और लगभग 30000 लोग मारे गए थे। भूकंप विशेषज्ञों का मानना है कि यह भूकंप अल्लाह बंद भ्रंश के खिसकने के कारण आया था। नेपाल में 25 अप्रैल, 2015 को आया भूकंप 7.9 तीव्रता का था और इसका पश्चवर्ती आघात 7.3 तीव्रता का था जो 12 मई को आया था। इसका कारण प्लेट विवर्तनिकी था।

प्रबंधन उपायः-भूकंप के प्रबंधन में कई बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। भूकंप को लेकर सबसे महत्वपूर्ण बात यह हैं कि सामान्य तौर पर इसके आने की पूर्व सूचना के लिए तंत्र विकसित करना बहुत मुश्किल है। प्राकृतिक रूप से इसके कुछ उदाहरण हैं जैसे पूर्वघात, जानवरों एवं पक्षियों का व्यवहार इत्यादि। अतः इसके लिए इससे होने वाली हानि को न्यून करने एवं भूंकंप के बाद सही प्रकार से लोगों को सुविधा उपलब्ध कराने की व्यवस्था आवश्यक है।

2. बाढ़ः- विश्वभर में सर्वाधिक बाढ़ के खतरों का सामना कर रहे देशों में भारत का भी नाम आता है। भारत की लगभग सभी नदी बेसिनों में बाढ़ आती हैं। सामान्यतः बाढ़ का. अर्थ होता है नदी या समुद्र के जल का अपने किनारों को पार कर आसपास की भूमि कों जलमग्न कर देना। देश के 36 राज्यों व केंद्र शासित प्रदेशों में से 22 में बाढ़ आती है। इस कारण 40 मिलियन - हेक्टेयर इलाके अर्थात देश के भोगोलिक क्षेत्रफल के लगभग आठवें भाग में बाढ़ का खतरा बना रहता हैं। सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र हैं गंगा, ब्रह्मपुत्र का मैदान। बाढ़ का मुख्य प्रकोप उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, असम एवं उड़ीसा में देखा जाता हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत में वर्षा सालों भर नहीं होती बल्कि इसका 90 प्रतिशत भाग सीमित कुछ महीनों (जून से सितम्बर) तक ही सीमित रहता है। ऐसी स्थिति में नदियों में जल की मात्रा उनके वहन क्षमता से ज्यादा हों जाती है और वह जल आसपास फैल जाता है। भारत के बहुत बड़े हिस्से में बाढ़ के साथ लोगों ने तारतम्य बना लिया है। बाढ़ का जल अपने साथ उर्वर मृदा भी लाता है तथा यह धान की खेती के लिए भी आवश्यक है। लेकिन इसके बाद में बाढ़ की विभीषिका से प्रतिवर्ष लाखों लोग प्रभावित होते हैं और बहुत बड़ी संपत्ति विशेषकर कृषि का नुकसान होता है।

बाढ़ के कारण-

- अत्यधिक वर्षा
- वृष्टि प्रस्फोट
- चक्रवात
- भूस्खलन
- हिमनद झीलों का निर्माण एवं उनका टूटना
- वन विनाश
- दोषपूर्ण कृषि पद्धति
- दोषपूर्ण सिंचाई प्रणाली

बाढ़ नियंत्रणः- वस्तुतः भारत में वर्ष 1976 में राष्ट्रीय बाढ नियंत्रण आयोग बना और तत्पश्चात देश में आने वाली बाढों से होने वाली हानि को कम करने के लिए लोगों को जागरुक करना, शिक्षित करना, प्रशिक्षित करना, स्थानीय राहत केंद्रों की स्थापना, बाढ़ आने की स्थिति में मंनुष्यों एवं जंतुओं के लिए आश्रय स्थली का चयन इत्यादि उपाय किये गये। बाढ़ आने पर बचाव राहत एवं रिक्तीकरण (इलाके को खाली कराना) कार्यवाही की जाती है। खाद्य एवं पेयजल की उपलब्धता सुनिश्चित की जाती है एवं स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध करायी जाती हैं। जबकि बाढ़ की विभीषिका समाप्त होने के बाद महामारी रोकने एवं लोगों के पुनर्वास की व्यवस्था की जाती है। बाढ से केवल हानि ही नहीं हैं, बाढ से लाभ भी हैं जिनमे मुख्यतः हैं कृषि योग्य भूमि को नयी उपंजाऊ मृदा मिलना, भूमिगत जलस्तर में बढ़ोत्तरी इत्यादि। अतः बाढ़ प्रबंधन की दिशा में निम्न उपाय करना आवश्यक हैः-

- वृक्षारोपण करना एवं वन विनाश पर रोक लगाना
- प्रवाह में कमी लाना
- बांध बनाना एवं पुराने बांधों का पुनरूद्धार
- भूमिगत जल के उपयोग में परिवर्तन

3. सूखा- सूखा वह प्राकृतिक अवस्था है जब किसी क्षेत्र में वर्षा सामान्य से कम और कुल वाष्पीकरण से भी कम हो, सूखा कहलाता है। यह मौसम की वह असामान्य अवस्था है जहां दीर्घ काल से वर्षा न होने या कम होने के कारण शुष्कता की स्थिति बनी रहती है। भारतीय मौसम विज्ञान विभाग के अनुसार सूखा उस स्थिति को कहते हैं जब किसी भौगोलिक क्षेत्र में वास्तविक वर्षा सामान्य वर्षा से 75 प्रतिशत से कम हो जाती है। सूखे और वर्षा की मात्रा का अध्ययन करने के लिए वर्षा के विचरण गुणांक का उपयोग होता है। भारत में यह 25-30 प्रतिशत के मध्य आता है। उच्च विचरण वाले क्षेत्रों में राजस्थान तथा गुजरात हैं जहां यह मात्रा 80 प्रतिशत तक हो सकती हैं जिसके कारण इन क्षेत्रों में सूखा एक सामान्य परिघटना हैं। आंतरिक प्रायद्वीपीय भारत तथा वृष्टि छाया वाले क्षेत्रों, विशेषकर पश्चिमी घाट के वृष्टि छाया वाले क्षेत्रों में यह 50 प्रतिशत तक हों सकता है जिसके कारण महाराष्ट्र एवं कर्नाटक में सूखे की स्थिति आती रहती है। वर्षा ने होने के कारण जो सूखा पड़ता हैं उसे मौसमी सूखा कहते हैं। इसके परिणामस्वरूप मृदा में नमी इतनी कम हो जाती है कि खेती संभव नहीं हो पाती। इसे कृषि सूखा कहते हैं। मौसमी सूखें के कारण जब झीलों, तालाबों इत्यादि का जल सूख जाता है और जलचक्र पर उसका विपरीत प्रभाव पड़ता है तो उसे हाईड्रोलॉजिकल सूखा कहते है। जब सूखे के कारण किसी परितंत्र की उत्पादकता घट जाए, तो उसे पारिस्थितिकी सूखा कहते हैं।

सूखे का प्रबंधनः- भारत में सूखे के प्रमुख कारण हैं- मानसून में कमी या उसका देर से आना, वर्षा के वितरण में असमानता का बढ़ना, तापमान में परिवर्तन, वनोन्यूलन इत्यादि। इस परिस्थिति में सूखे से निबटने की तैयारी पहले से प्रारंभ होनी चाहिए। सूखे से निबटने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका वृक्षों की है। वृक्ष न केवल जलचंक्र को नियंत्रित करते हैं, बल्कि नमी बनाये रखने में भी सहायता करते हैं, लेकिन वनरोपण करते समय स्थानीय वातावरण का भी ध्यान रखना जरूरी है और वृक्षारोपण में स्थानिक प्रजातियों को वरीयता दी जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त लोगों को वर्षा जल संचयन के लिए उत्साहित और शिक्षित करना चाहिए। जल विभाजक प्रबंधन भी सूखे की रोकथाम के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पुराने जलाशयों को भरम्मत उनकों पुनरोद्धार एवं नए का निर्माण भी होना चाहिए। कृषि में विविधता, फसल चक्र एवं नदियाँ को आपस में जोड़ने से भी इस समस्या के संधान और रोक में मदद मिल सकती है।

4. चक्रवातः- हमारा देश प्राकृतिक रूप से ऐसी जगह पर स्थित है जहाँ मुख्यतः उष्ण कटिंबधीय चक्रवात आते हैं। वर्ष 2014 में हुदहुद चक्रवात ने भारत के पूर्वी तट पर तबाही मचायी थी और इसके कारण लगभग 1.63 बिलियन डालर का नुकसान हुआ था। मई 2016 में रोआनू चक्रवात श्रीलंका और भारत से होते हुए बांग्लादेश में पहुंचा, जिसके कारण बांग्लादेश के कई तटीय इलाकों में बाढ़ के हालात बन गए तथा कई इलाकों में जमीनें धंस गयीं। दुनिया में चक्रवातों से संर्वाधिक प्रभावित होने चाले देशों में भारत भी है। विशेषकर भारत का पूर्वी तट लगातार इनकी विभीषिका का शिकार होता रहता है। उष्ण कटिबंधीय चक्रवात एक तूफान प्रणाली है, जो एक विशाल निम्न दबाब केंद्र और भारी तडित-झंझावातों द्वारा निर्मित होती है और जो तीव्र हवाओं और घनघोरं वर्षा को उत्पन्न करती हैं। उष्ण कटिबंधीय चक्रवात की उत्पत्ति तब होती है जब नम हवा के ऊंपर उठने से गर्मी पैदा होतीं है, जिसके फलस्वरूप नम हवा में निहित जलवाष्प का संघनन होता हैं। अपने स्थान और शक्ति के आधार पर, एक उष्ण कटिबंधीय चक्रवात को अलग-अलग नामों से जाना जाता है, जैसे हरिकेन, टाइफून, ट्रोपिकल स्टॉर्म , साइकलोनिक ट्रॉर्म , ट्रॉपिकल डिप्रेशन, और कंवल साइक्लोन। इसकी चौड़ाई सौ मीटर हो सकती है। उष्ण कटिबंधीय चक्रवात के केंद्र में वायु भार सबसे कम होता है। इस भाग को चक्रवात की आंख कहते हैं। इसका व्यास 5 से 50 किमी तक होता हैं। इसके केंद्र में मामूली हवा चलती हें या वातावरण शांत रहता है।

चक्रवात प्रबंधनः-चूंकि इनके निर्माण समुद्र में. होता है और वहां से ये भूमि की तरफ बढ़ते हैं तो इनके आगमन की पूर्व सूचना आसानी से उपलब्ध करायी जा सकती हैं, और ज्यादा प्रभावित होने वाले इलाकों को जीवन को क्षति से बचाया जा सकता हैं। चक्रवातों के लिए चक्रवात आश्रय का निर्माण होना चाहिए, ऐसे मकानों का निर्माण करना चाहिए जो तीव्र हवाओं और वर्षा से सुरक्षित हों। बाढ़ के सही प्रबंधन के लिए चक्रवात प्रभावित क्षेत्रों में वाहिकाओं के निर्माण होने चाहिए तटवर्ती क्षेत्रों में गहरी जड़ों वाले और सुई के सामान पत्तियों वाले पेड़ों की कतार लगाना भी लाभप्रद है इसके अतिरिक्त ज्वारीय वन वृक्ष भी लगाएं जा सकते हैं, इन्हें तटवर्ती आश्रय पट्टी कहा जातां है। चक्रवात के बाद बाढ़ और महामारी की समस्या से निबंटने के उपाय किए जा सकते हैं। भारतीय मौसम विज्ञान विभाग ने आपदा चेतावनी प्रणाली का विकास किया है। यह उपग्रहों के द्वारा चक्रवातों पर चेतावनी देता है।

5. बादल फटनाः- एक सीमित क्षेत्र में बहुत तीव्रता से होने वाली वर्षा बादल फटना कहलाती है। इसमें सीमित समय में बहुत अधिक मात्रा में वर्षा होती हैं। कुछ वर्ष पहले लेह ने इस विभीषिका का सामना किया था। इसके कारण मैदानी एवं पहाड़ी दोनों क्षेत्र प्रभावित होते हैं। इसके कारण अचानक बाढ़, वृहद् भूस्खलन, इत्यादि घटनाएं होती हैं। यह नदियों के जलाशयों के बांधों में दरार पैदा कर सकता है या उसे तोड़ सकता है। इस प्रकार बंडे पैमाने पर तबाही का कारण बन संकता है। इसके अतिरिक्त जहां भी यह घटना होती है वहां वर्षा के तीव्र वेग और वर्षा जल के तीव्र बहाव के कारण संपत्ति एवं जीवन दोनों को नुकसान उठाना पड़ता है। इसका भी पूर्वानुमान आसान नहीं है अतः इसके लिए भी लोगों को शिक्षित करना आवश्यक है कि बादल फटना की स्थिति में पूर्वानुमान आसान नहीं है। अतः इसके लिए भी लोगों को शिक्षित करना आवश्यक है कि मेघ प्रस्फोट की स्थिति में क्या करना चाहिए? साथ हीं इसके बाद लोगों को त्वरित सहायता उपलब्ध करायी जानी चाहिए।

मूल्यांकनः- इस प्रकार भारत में कई बार जमीन खिसकने, भूकम्प, बाढ़, सुनामी, चक्रवात से लाखों लोग प्रभावित हुए हैं वह बहुत ही दुखदायी है। इसलिए सही समय पर आपदा वाले स्थान पर पहुँच कर लोगों की जान व माल की रक्षा करना आवश्यक है। इसमें खतरे से निपटने, दुर्घटना होने के बाद जान-माल की हिफाजत कैसे की जाए इन बातों की समझ होनी जरूरी है। प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के लिए केन्द्र सरकार और राज्य सरकारें जरूरी धन उपलब्ध कराती हैं। गृह मंत्रालय इसमें बड़ी भूमिका निभाता है। वह आपदा के समय आपदा प्रबंधन का कार्य संभालता है। कृषि एवं सहकारिता मंत्रालय सूखे और बाढ़ के समय अपनी जिम्मेदारी निभाता है तो हवाई दुर्घटनाओं के समय सिविल एविएशन और रेल दुर्घटनाओं के समय रेल मंत्रालय की महत्वपूर्ण भूमिका

होती है। इसके साथ-साथ अगर राष्ट्रीय, राज्य, जिला, नगरपालिका और पंचायत स्तरों पर प्रभावशाली तन्त्र मौजूद हों तो बड़े पैमाने पर जान-माल का बचाव हो सकता है और नुकसान कम किया जा सकता है।

संदर्भ सूची:-

- आपदा प्रबन्धन राष्ट्रीय नीति-2005, भारत सरकार।
- नेगी, पी.एस. (2006-07) पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण भूगोल।
- बर्णवाल, महेश कुमार, भूगोल: एक समग्र अध्ययन, कॉसमॉस पब्लिकेशन्स,2012।
- सिंह,सविंद्र आपदा प्रबंधन, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 2014।
- लाल, डी0एस0, जलवायु विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2016।
- कौशिक ए, कौशिक सी.पी (2014), पर्सपेक्टिव इन इंवायरमेंटल स्टडीज।
- चौहान, ज्ञानेन्द्र सिंह एवं पाहवा, एस.के., भारत में आपदा प्रबन्धन, रिसर्च जनरल ऑफ आर्टस, मैनेजमेंट एंड सोशल साइंसेज, 2003।

व्याकरण शास्त्र की विकास परम्परा एवं धातुपाठ

डॉ० योगेन्द्र कुमार धामा

सह-आचार्य, संस्कृत, राजकीय महाविद्यालय, बामनवास, सवाई माधोपुर, राजस्थान

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्व यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थ भावेन प्रया जगतो यत:।।[1]

शब्द ब्रह्म की आराधना एवं विवेचना की भारतीय परम्परा अति प्राचीन है। यह कब प्रारंभ हुई और इसने कब विकसित होकर एक व्यवस्थित शास्त्र का रूप धारण कर लिया, इस संबंध में केवल कल्पना ही की जा सकती है। बाह्य साक्ष्यों के आधार पर हम मात्र एक क्रमिक परम्परा की खोज ही कर सकते हैं। महर्षि भर्तृहरि वैदिकऋषियों को प्राप्त ईश्वरीय वेदज्ञान को स्वप्नकालीन अवबोध के समान ही मानते हैं।[2] बाद में जिन्हें भाव तत्त्वों के अनुसार षडंग में विभक्त कर स्मृति व्याकरण की परंपरा प्रारंभ हुई। इतना तो स्पष्ट है कि वेदज्ञान मनुष्य जाति का प्राचीनतम ज्ञान है। सम्भवत: जिन्हें साक्षात् वेदज्ञान प्राप्त हुआ, उन्हें उस भाषा के व्याकृत रूप की आवश्यकता नहीं रही हो और कालान्तर में उस ज्ञान के व्याकृत रूप का अनुसंधान किया गया हो। परन्तु इसके साथ यह भी सत्य है कि उनके उस अविभक्त ज्ञान में अनेकऐसे तत्व थे, जिन्हें हम सामान्यत: व्याकरण सिद्धान्तों के अन्तर्गत परिगणित कर सकते है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने इन स्थलों की ओर संकेत किया है तथा मन्त्रों में व्याकरण के कतिपय सिद्धान्तों को दर्शाया है।[3] अव्याकृत भाषा को व्याकृत करने की परम्परा की ओर भी महाभाष्य के पस्पशाह्निक में महर्षि पतंजलि ने ध्यान आकृष्ट किया है।[4] इसी प्रकार का मन्तव्य हमें तैत्तिरीय संहिता में भी प्राप्त होता है।[5] इस प्रकार अव्याकृत भाषा को व्याकृत करने का लम्बा अन्तराल रहा होगा। भाषा के व्याकृत या विश्लेषित रूप को व्यवस्थित करने हेतु जिन सिद्धान्तों का प्रणयन हुआ या किया गया वे 'व्याकरण शास्त्र' के नाम से अभिहित हुए। स्वाभाविक है कि ये सिद्धान्त दुरुह वैदिकभाषा के स्पष्टीकरण हेतु अत्यन्त आवश्यक थे, इसीलिए इस शास्त्र को प्रमुख वेदाङ्ग के रूप में स्वीकार किया गया।[6]

व्याकरण शास्त्र की विकास परम्परा -

व्याकरण शास्त्र के विकास की परम्परा ब्राह्मण ग्रन्थों से प्रारम्भ होती है। जिस रूप (प्रकृति, प्रत्ययादि) में आज हम व्याकरण पाते हैं, या व्याकरण- (व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते साधु शब्दा: अनेनेति) पद से जिस अभिधार्थ का हम ग्रहण करते हैं, उसके सर्वप्रथम दर्शन हमें गोपथ ब्राह्मण में होते हैं। जहां ओंकार के विषय में जिज्ञासा करते हुए धातु, प्रातिपदिक, आख्यात, लिङ्ग, वचन, विभक्ति, प्रत्यय, स्वर, उपसर्ग, निपात आदि संज्ञाओं के बारे में नामोल्लेख पूर्वकपूछा गया है।[7] जिन्हें प्राय: सभी वैयाकरणों ने विसर्ग, मात्रा या विभक्ति भेद से स्वीकार किया है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में ही षड् वेदाङ्गों का नामोल्लेख मिलता है। मैत्रायणी संहिता में 'तस्मात् षड् विभक्तय:'[8] कह कर विभक्ति संज्ञा एवं ऐतरेय ब्राह्मण में 'सप्तधा वै वागवदत्'[9] वाक्य से विभक्ति रूप में सप्तधा विभक्त वाणी का वर्णन मिलता है। जिस पुष्पित एवं पल्लवित निर्वचन पद्धति को यास्कने निरूक्त में दर्शाया है उसके मूल स्रोत हमें शतपथ ब्राह्मण में ही मिलते हैं।[10] इतना अवश्य है कि निरूक्त का उद्देश्य ही निरूक्ति का कथन है जबकि शतपथ ब्राह्मण में इसका उल्लेख निर्वचन प्रसंग में किया गया है।

प्रातिशाख्य और व्याकरण

वैदिकमंत्रों की भाषा के व्याकृत रूप को व्यवस्थित स्वरूप देने हेतु ऋषियों ने वेद की प्रत्येकशाखा से सम्बन्धित नियमों का ग्रन्थन किया, जिन्हें प्रातिशाख्य के नाम से जाना जाता है। यद्यपि इनकी रचना प्रमुखतया तत्तत् शाखा के मंत्रों के उच्चारण के नियमन के लिए की गयी थी, किन्तु पद विकारों एवं ध्वनि परिवर्तन के नियमों का वर्णन करते हुए इनमें कतिपय लौकिकव्याकरण के नियम भी वर्णित हैं। विषय की एकाङ्गिता के कारण इन्हें व्याकरण तो नहीं माना जाता है, लेकिन वे व्याकरण की तरह वेदाङ्ग का एकअङ्ग अवश्य है।

डा. सत्यकाम वर्मा के अनुसार 'यह प्रकृति-प्रत्यय-विभाग न होने का कारण ज्ञान की कमी न होकर, प्रातिशाख्य व्याकरण की वह वृत्ति विशेष है जिसे हम 'अविभाग व्याकरण' कह सकते हैं।[11]

निरूक्त और व्याकरण

वैदिकव्याकरण की शृंखला में निरुक्त एकसशक्त कड़ी है। निर्वचन एवं निरुक्त की परम्परा संभवत: वेद ज्ञान के साथ ही प्रारम्भ हो गयी होगी। जिनमें मंत्रों में पठित शब्दों को निरुक्तियों से स्पष्ट किया गया है। इस परम्परा को हम शतपथ ब्राह्मण में भी पाते हैं। परम्परा से प्राप्त सभी निरूक्त सिद्धान्तों का समन्वय कर महर्षि यास्कने 'निरुक्त'की एकप्रौढ़ रचना प्रस्तुत की। काशिकाकारने निरुक्त की परिभाषा देते हुए कहा है-

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्।।[12]

अर्थात्-वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्णविकार, वर्णलोप और धातु के अर्थ का विस्तार, इन पांचों का शब्दों में निर्देशपूर्वक उल्लेख निरुक्त कहलाता है।

निरुक्तकार यास्कने वैदिकमंत्रों के दुरुह शब्दों का निर्वचन प्रस्तुत किया है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से निरुक्त की निर्वचन शैली ने एकक्रांतिकारी परम्परा का सूत्रपात किया। शब्दों के निर्माण में उनकी मूल धातु की उपादेयता की सशक्त शास्त्रीय प्रस्तुति इनकी शब्द शास्त्र को अनुपम देन है। यद्यपि यह सत्य है कि शब्द निर्माण में धातु की भूमिका की खोज बहुत पहले की जा चुकी थी, किन्तु निर्वचन पद्धति की बहु प्रकारता से उसे प्रचारित करने का श्रेय यास्कको ही है। यास्कके इस निरुक्त का व्याकरण के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। विशेषकर गार्ग्य एवं शाकटायन के शब्दों के अधातुज एवं धातुज मानने के विवाद में शाकटायन के 'सर्वाणि नामानि आख्यातजानि' मत को शास्त्रीय सम्पुष्टि प्रदान की है।

आख्यात के प्रथम द्रष्टा-भारद्वाज

प्रारम्भ में चर्चा की जा चुकी है कि देवताओं के गुरु बृहस्पति ने सर्वप्रथम प्रतिपद पाठ का उपदेश इन्द्र को दिया। उन्होंने उस वाणी (प्रतिपदपाठ) को मध्य से व्याकृत किया और उसका उपदेश अपने शिष्य भारद्वाज को दिया। प्राय: व्याकरण शास्त्र के सभी इतिहासज्ञों ने महर्षि भारद्वाज को आख्यात का प्रथम द्रष्टा स्वीकार किया है।[13] इन्द्र की व्याकृत वाणी से इन्होंने सर्वप्रथम धातु एवं प्रत्यय की कल्पना की, किन्तु यह प्रारम्भ था। अत एव इस प्रयास ने अपने आगे आने वाली पीढ़ी के लिए मार्ग तो दर्शाया, परन्तु वह अपना व्यापकप्रभाव नहीं छोड़ सका। संभव है इन्होंने किसी प्रारम्भिकधातु पाठ की रचना भी की हो, किन्तु उसके प्रमाण हमें आज अप्राप्त ही हैं। परवर्ती साहित्य में उनके मतों का उल्लेख कहीं भी उपलब्ध नहीं होता है।

शाकटायन

आख्यात स्वरूप के अन्वेषण में आचार्य शाकटायन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने धातु के मूल स्वरूप को खोजकर उसे उसके मूलार्थ के साथ जोड़ा। शाकटायन की 'सर्वाणि नामानि-आख्यातजानि'[14] इस घोषणा ने व्याकरण जगत् को सुस्पष्ट दिशा प्रदान की। इनके प्रणीत किसी धातु पाठ का उल्लेख तो प्राप्त नही है। यदि इनका रचित कोई धातु पाठ रहा भी है तो उसका परवर्ती साहित्य पर नगण्य ही प्रभाव रहा। तथापि धातु प्रक्रिया को व्यापकबनाने तथा धातु को शब्द का मूल घोषित कर उसे सैद्धान्तिकधरातल प्रदान करने में आचार्य शाकटायन का सर्वाधिकयोगदान रहा है।

इनके अतिरिक्त व्याकरण शास्त्रेतिहास मर्मज्ञ पं. युधिष्ठिर मीमांसकने पाणिनि से पूर्ववर्ती तीन आचार्यों का उल्लेख किया है जिनका धातु पाठ एवं धात्वर्थ सम्बन्धित मतों की चर्चा व्याकरण शास्त्र में अनेकत्र विकीर्ण रुप में प्राप्त होती है, ये हैं- भागुरि, काशकृत्स्न और आपिशलि।

भागुरि

आचार्य भागुरि ऐसे सर्वप्रथम आचार्य हैं जिनकी मूल धातुओं का उल्लेख हमें परवर्ती साहित्य में मिलता है। मीमांसकजी ने भाषावृत्ति शब्दशक्ति प्रकाशिका एवं भाषाव्याख्या प्रपञ्च आदि ग्रन्थों में भागुरि के नाम से उल्लेखित धातुओं के उद्धरण प्रस्तुत किए। जिनमें चार उद्धरणों में साक्षात् धातुओं का परिगणन किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि भागुरि ने किसी 'धातुपाठ' का प्रणयन अवश्य किया होगा। डा. सत्यकाम वर्मा ने इन चारों उद्धरणों को अपनी पुस्तक 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का उद्भव और विकास' में उद्धृत कर यह आशंका व्यक्त की है, कि हो सकता है भागुरि के नाम से संकलित ये कारिकायें किसी भागुरि स्मृति से उद्धृत की गयी हों। उनका मानना है कि चर्चित कारिकाओं के पूर्वापर विवेचन से वे किसी धातु पाठ की प्रक्रियाएँ प्रतीत नही होती, क्योंकि इनमें 'रूप-रचना-प्रक्रिया' का वर्णन है।[15] फिर भी इतना तो माना ही जा सकता है कि इनके समक्ष 'धातुपाठ' जैसी कोई कृति अवश्य थी, जो अपने मूल रूप में आज अनुपलब्ध ही है।

काशकृत्स्न

संस्कृत व्याकरण का सर्वप्रथम धातु पाठ 'काशकृत्स्न' धातु व्याख्यान के रूप में उपलब्ध होता है। वैयाकरण समुदाय काशकृत्स्न के व्याकरण को प्रकाश में लाने के लिए पं. युधिष्ठिर मीमांसकका चिर-कृतज्ञ रहेगा, जिन्होंने अपने व्यक्तिगत प्रयत्नों से अत्यन्त श्रम पूर्वकविकीर्ण एवं खंडित 'काशकृत्स्न व्याकरण' तथा मूल 'काशकृत्स्न धातु व्याख्यान' को कन्नड़ भाषा से संस्कृत भाषा में अनुदित कर प्रस्तुत किया।

काशकृत्स्न के धातु व्याख्यान की उपलब्धि ने व्याकरण शास्त्र के कई रहस्यों का उद्घाटन किया। इसकी उपलब्धि से पहले कातन्त्र एवं चान्द्र व्याकरण की उत्स परम्परा का ज्ञान ही नहीं था, किन्तु इसके प्राप्त हो जाने पर इसका परवर्ती व्याकरण पर पड़ा प्रभाव भी स्पष्ट हो गया। डा. सत्यकाम वर्मा ने माना है कि काशकृत्स्न ऐन्द्र या प्राच्य परम्परा के महान् प्रवर्तकप्रतीत होते हैं।

आपिशलि

आचार्य आपिशलि एवं पाणिनि की परम्परा व समय में अधिकभेद प्रतीत नहीं होता है। पाणिनि द्वारा स्मृत आचार्यों में आपिशलि का नाम प्रमुख है। शिक्षा एवम् उणादि विषयकचिन्तन की दृष्टि से हम आपिशलि को पाणिनि का अग्रज मान सकते हैं। व्याकरण इतिहासज्ञों का मानना है कि कदाचित् इन्होंने ही पञ्चाङ्ग व्याकरण की नींव रखी हो। क्योंकि इनके सूत्रपाठ, धातुपाठ एवं उणादिपाठ के उपलब्ध होने के पुष्ट प्रमाण हमें मिलते ही हैं।

1. स्कन्द स्वामी ने स्वनिरुक्त व्याख्या में आपिशलि आचार्य की धातुओं का उल्लेख किया है।[16]
2. काशिकाकार ने 7.1.10 में अनिट् कारिका की व्याख्या करते हुए रिह् लिह् धातु के धातुपाठ में अनुल्लेख की चर्चा की है, जिसे न्यासकार जिनेन्द्र बुद्धि ने आपिशलि आचार्य द्वारा पठित स्वीकार किया है।[17] इसी प्रसंग में काशिकाकार द्वारा 'तन्त्रान्तर'द्वारा अभिहित सिद्धान्तों को न्यासकार ने 'आपिशले- व्याकरणम्' के रूप में कहा है।[18]
3. मैत्रेयरक्षित ने अपने धातुप्रदीप में 'तु' धातु के सम्बन्ध में लिखा है- 'छान्दसोऽयमित्यापिशले:'

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर श्री मीमांसकने कतिपय निष्कर्ष स्थापित किये हैं-

1. आपिशलि ने धातुपाठ की रचना अवश्य की होगी, जो न्यासकार एवं मैत्रयरक्षित के समय उपलब्ध रहा होगा।
2. यह धातुपाठ पाणिनि से भिन्न था। अतः स्वाभाविक है कि इनकी व्याकरण प्रक्रिया भी भिन्न रही होगी।
3. इसमें छान्दस् धातुओं का समावेश था।
4. पाणिनीय धातुपाठ की तुलना में इसमें धातुओं की संख्या अधिकरही होगी तथा उनका स्वरूप भी भिन्न रहा होगा।

पाणिनीय धातुपाठ

धातु अन्वेषण की एकलम्बी यात्रा के पश्चात् एकप्रौढ़ धातु संकलन सामने आया, जो अपनी सूत्रबद्धता एवं व्यापकप्रभाव के कारण आज भी सर्वाधिकलोकप्रिय है। पाणिनि के अन्य पाठों की तरह धातुपाठ का प्रणयन भी सूत्रप्रणाली में हुआ है। सूत्रबद्ध होने के कारण सूत्रप्रणाली की अन्य विशेषताएं भी इनमें दृष्टिगोचर होती हैं। शब्दानुशासन निर्माण में पाणिनि ने जिस प्रणाली[19] का आश्रय लिया है, वह धातुपाठ में भी समान ही है। जिसे हम एकएकउदाहरण से स्पष्ट करेंगे- भू सत्तायाम्[20] (विधि), न काम्यमिचमाम्[21] (निषेध), राधोऽकर्मकाद् वृद्धावेव[22] (नियम), स्वादयः ओदितः[23] (अतिदेश), घटादयो मितः[24] (संज्ञा), अदन्ताः[25] (अधिकार)। शब्दानुशासन में आश्रित अनुवृत्ति प्रक्रिया के दर्शन भी यहाँ दिखाई देते हैं। कतिपय स्थलों पर अनुवृत्ति अनुकर्षण के लिए 'च' का प्रयोग किया गया है।[26] इसी प्रकार विकल्प प्रदर्शन के लिए भी 'वा'[27] तथा 'विभाषा' या 'विभाषित'[28] आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।

पाणिनीय धातु पाठ में कुल 1905 धातुएं है। ये धातुएं दस गणों में विभाजित हैं तथा गणों का नामकरण गण में सर्वप्रथम पठित धातु के आधार पर किया गया है।

पाणिनीय धातुपाठ की एकअन्यतम विशेषता है- धातु का सानुबन्ध पाठ। प्रायः धातुओं में अनुबन्ध का प्रयोग हमें देखने को मिलता है जो सोद्देश्य है। धातुओं से सम्बद्ध प्रत्येकअनुबन्ध का धातु की रूप प्रक्रिया पर व्यापकप्रभाव देखा जा सकता है।

कातन्त्र धातुपाठ

कातन्त्र धातुपाठ में 1858 धातुएँ हैं। काशकृत्स्न धातुपाठ की तरह कातन्त्र धातुपाठ में भी धातुएँ 9 गणों में विभाजित हैं। जुहोत्यादिगण अदादिगण के अन्तर्गत है। इस धातुपाठ में धातुक्रम भी काशकृत्स्न धातुपाठ की तरह ही है।

घटादि सूत्रोंकी शब्दानुपूर्वी में भी काशकृत्स्न धातुपाठ और कातन्त्र धातुपाठ में साम्य है- ज्वलह्वलह्वलनमामप्रमादीनां वा, ग्लास्नावनुवमश्वनकम्यमिचमः (काशकृत्स्न, कातन्त्र), ग्लास्नावनुवमां च, कम्यचिमाम् (चान्द्र,पाणिनीय धातुपाठ)।

काशकृत्स्न और कातन्त्र धातुपाठ में अव धातु[29] पालन अर्थ में पढ़ी गई है, जबकि अन्य[30] अव धातु को 19 अर्थों में पढ़ते हैं। चर धातु काशकृत्स्न और कातन्त्र धातुपाठ में 'असंशये' अर्थ में[31] पढ़ी गयी है, जबकि अन्य[32] वैयाकरण 'संशय' अर्थ में पढ़ते हैं। मन्द धातु[33] दोनों धातुपाठों में 'सौख्ये' अर्थ में निर्दिष्ट है, जबकि अन्य[34] धातुपाठों में 'सुखे' अर्थ में पढ़ी गई है।

काशकृत्स्न धातुपाठ में अधिकपढ़ी गई धातुओं के वर्ग को छोड़ दिया जाये, तो काशकृत्स्न धातुपाठ और कातन्त्र में कोई अन्तर नहीं रह जाता। काशकृत्स्न व्याकरण में प्रयुक्त कई पारिभाषिकसंज्ञाएं कातन्त्र व्याकरण में उपलब्ध हैं, यथा- नामिन्, सन्ध्यक्षर आदि।[35] सूत्र यथा- पः पिबः, वृद्धिरादौ सणे, ध्यो ध्मः, प्नो प्नः, क्रो जिघ्रः[36] आदि।

इस प्रकार कातन्त्र धातुपाठ काशकृत्स्न धातुपाठ का संक्षेप है। काशकृत्स्न धातुपाठ में अधिकपढ़ी गई धातुओं के वर्ग को छोड़ दिया जाये, तो कातन्त्र धातुपाठ इस धातुपाठ का ही पुनः संशोधित पाठ प्रतीत होता है।

चान्द्र धातुपाठ

यह धातुपाठ पाणिनीय धातुपाठ की अपेक्षा अल्प आकार वाला है। इस धातुपाठ में कुल 1575 धातुएं हैं। इसमें पाणिनीय धातुपाठ से 350 धातुएं कम पढ़ी गयी हैं। चान्द्र धातुपाठ में अधिकांश धातुएं एकार्थी हैं, केवल 17 स्थल ऐसे हैं, जहाँ धातुएँ अनेकार्थी हैं।

चान्द्र धातुपाठ में प्रयुक्त अतङाना, तङानिन् और विभाषिताः शब्द[37] पाणिनि द्वारा प्रयुक्त परस्मैपद, आत्मनेपद और उभयपद के द्योतकहैं। धातुओं के क्रम की दृष्टि से भी पाणिनीय धातुपाठ और चान्द्र धातुपाठ में अन्तर है। 1 से 305 सूत्र तकधातुएं परस्मैपदी और 306 से 522 तकआत्मनेपदी हैं। सौत्र धातुओं का पाठ परस्मैपदी, आत्मनेपदी और उभयपदी वर्ग के अन्तर्गत किया गया है।

चुरादिगण में पाणिनीय धातुपाठ में जहाँ 380 धातुएं पढ़ी गई हैं, चान्द्र धातुपाठ में वहाँ केवल 112 धातुएं हैं। चान्द्र धातुपाठ में भाषार्थकधातुओं का वर्ग लुप्त है। इसके अतिरिक्त आकुस्मीय, आश्वदीय, आधृषीय और कथादि अन्तर्गण भी नहीं पढ़े गये। चान्द्र धातुपाठ में पाणिनीय त्रि अनुबन्ध का प्रयोग नहीं किया गया है।

जैनेन्द्र धातुपाठ

यह धातुपाठ चान्द्र धातुपाठ से भी लघु आकार वाला है। इसमें कुल 1478 धातुएँ हैं। पाणिनीय धातुपाठ से 427 और चान्द्र धातुपाठ से 27 धातुएँ कम हैं। पाणिनीय परस्मैपद, आत्मनेपद तथा उभयपद संज्ञाओं के लिए जैनेन्द्र धातुपाठ में भवन्ता, ङेदित् और जित् संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है। भू धातु के बाद पहले आत्मनेपदी फिर परस्मैपदी और उभयपदी धातुओं का पाठ किया गया है।

जुहोत्यादिगण अदादिगण से पूर्व पठित है। 'ऐ' और 'औ' दो नये अनुबन्धों का प्रयोग किया गया है। 'ऐ' अनुबन्ध आत्मनेपदी धातुओं के लिए किया है, और 'औ' अनिट् धातुओं का द्योतकहै।

छान्दस् धातुएँ जैनेन्द्र धातुपाठ में नहीं पढ़ी गयी हैं। जैनेन्द्र धातुपाठ में कुछ धातुएँ ऐसी हैं जिनके अर्थ पाणिनि निर्दिष्ट धात्वर्थों से एकदम भिन्न हैं। उदाहरणार्थ - क्षुभ सञ्चलने पा. 1.4.86 सक्षोभे जै. 1.4.91, सार कृप श्रथ- दौर्बल्ये पा. 10.257, शैथिल्ये जै. 10.504।

हैम धातुपाठ

इस धातुपाठ में 1980 धातुएं हैं। धातुएं अकारादि क्रम से पठित हैं। अन्तर्गणीय धातुएं भी अकारादि क्रम से रखी गयी हैं।

काशकृत्स्न और कातन्त्र धातुपाठ की तरह हैम धातुपाठ में जुहोत्यादिगण अदादिगण के अन्तर्गत है।

'क्ष' वर्ण को स्वतन्त्र वर्ण मानकर अकारान्त धातुओं को हकारान्त धातुओं के बाद पढ़ा गया है।

प्रत्येकगण किसी एकविशेष अनुबन्ध में समाप्त होता है। उस गण की प्रत्येकधातु उस अनुबन्ध से युक्त है, जिससे धातु किस गण की है, जानने में अत्यन्त सुविधा होती है।

हैम धातुपाठ में अनिट् धातुओं को द्योतित करने के लिए अनुस्वार का प्रयोग किया गया है।

कविकल्पद्रुम धातुपाठ

यह धातुपाठ पद्यात्मकहै। पद्य अनुष्टुप छन्द में हैं और धातु के अन्तर्गत वर्ण के आधार पर बनाये गये हैं। एकविशेष अनुबन्ध का प्रयोग कर प्रत्येकगण का द्योतन किया गया है। प्रथम पद्य में आदित्य को नमस्कार किया गया है, और उसके बाद जिन जिन आचार्यों के धातुपाठों का अध्ययन किया गया है, उन उन आचार्यों का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार 15वें पद्य से धातुपाठ का प्रारम्भ होता है।

कविकल्पद्रुम धातुपाठ में 2358 धातुएं हैं। काशकृत्स्न धातुपाठ के बाद कविकल्पद्रुम धातुपाठ है, जिसमें सबसे अधिकधातुएँ पढ़ी गयी हैं।

कविकल्पद्रुमधातुपाठ क्षीरतरंगिणी और हैम धातुपाठ से अधिकप्रभावित है, केवल क्षीरतरंगिणी में पढ़ी गई धातुएँ भी वोपदेव ने ली है, जैसे- कुपि, च्युस, टिप, तिघ, दबि, दाय, प्युस, प्लक्ष आदि।[38]

केवल हैम धातुपाठ में पढ़ी गई धातुओं का भी कविकल्पद्रुम धातुपाठ में सन्निवेश किया गया है, उदाहरणार्थ- रवु, रिबु, कूणिण्, पसुण्।[39] किन्तु कहीं कहीं उन्होंने क्षीरस्वामी एवं हेमचन्द्रसूरि पठित धातुओं का निराकरण भी किया है, यथा- क्षीरतरगिणी में पठित- ऋह, इव, क्रज, बेर्दि, व्युन्द आदि।[40] हैम धातुपाठ में पठित् -पल्यूलण्।[41]

कविकल्पद्रुम धातुपाठ के 43 अनुबन्धों का प्रयोग किया गया है, इनमें से 17 अनुबन्ध पाणिनि के हैं, और औ अनुबन्ध जैनेन्द्र धातुपाठ से लिया गया है। अन्य सब अनुबन्ध इनकी अपनी मौलिकरचना है।

धातुपाठ परम्परा का यह ऐतिहासिक विश्लेषण भारतीय मनीषा की शब्द शास्त्र के प्रति गहरी रुचि और उसके प्राचीन अन्वेषण परंपरा को प्रकट करती है। वस्तुतः संपूर्ण संस्कृत शब्द शास्त्र धातुओं के आधार पर ही स्थित है। जिसका विवेचन आलोचना शोध की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

संदर्भ

1. वाक्यपदीय - 1.1
2. वाक्यपदीय - 1.146
3. चत्वारिशृंगा त्रयोऽस्य पादा, द्वे शीर्षे सप्तहस्तासोऽस्य।
   त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति, महो देवो मर्त्या आ विवेश ।।
   ऋ. 4.58.3, महाभाष्य पस्पशा.
4. बृहस्पतिरिन्द्रायदिव्यं वर्षसहस्रम् प्रतिपदोक्तानाम् शब्दानाम् शब्दपारायणम् प्रोवाच ।। महाभाष्य पस्पशा.
5. वागवैपराच्यव्याकृतावदत् । ते देवा इंद्रमब्रुवन्, इमाम् नो वाचम् व्याकुर्विति -------- तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्यव्याकरोत् तै सं 6.4.7
6. वाक्यपदीय - 1.11
7. ओंकारं पृच्छामः, को धातुः, किं प्रातिपदिकं, किं नामाख्यातं, किं लिङ्गं, किं वचनं, का विभक्तिः, कः प्रत्ययः, कः स्वरः उपसर्गो निपातः, किं वै व्याकरणं, को विकारः, को विकारी, कति मात्रा, कति वर्णाः, कत्यक्षरः, कति पदाः, कः संयोगः, किं स्थाननादानुप्रदानानुकरणं - गो . ब्रा. 1.24
8. 1.7.3
9. 7.7
10. संस्कृत व्याकरण की रूपरेखा - पृ. 3
11. संस्कृत व्याकरण का उद्भव एवं विकास - पृ. 42
12. पाणिनीय अष्टाध्यायी 6.3.109
13. संस्कृत व्याकरण का उद्भव एवं विकास - पृ. 402
14. निरुक्त

15. संस्कृत व्याकरण का उद्भव एवं विकास - पृ. 403
16. उषिजिघर्तीछान्दसौ धातू ------- आपिशलादौ स्मरणात् । निरुक्त 2.2
17. वा. - इतरौ (रिहिलिही) तु धातुषु न पठ्येते, कैश्चिदभ्युपगम्येते - काशिका, न्यास: - कैश्चिदिति आपिशलि प्रभृतिभिरिति ।।
18. संस्कृत व्याकरण का उद्भव एवं विकास - पृ. 407
19. विधि, निषेध, नियम, अतिदेश, संज्ञा, अधिकार ।
20. पाणिनीय धातुपाठ 1.1
21. पाणिनीय धातुपाठ 1.563
22. पाणिनीय धातुपाठ 4.69
23. पाणिनीय धातुपाठ 4.31
24. पाणिनीय धातुपाठ 1.559
25. पाणिनीय धातुपाठ 10.278
26. पाणिनीय धातुपाठ 1.171, 1.166 आर्ष
27. पाणिनीय धातुपाठ 10.230
28. पाणिनीय धातुपाठ 4.76
29. काशकृत्स्न धातुपाठ 1.271कातन्त्र धातुपाठ 1.202
30. पा. धातु. - 1.384, जै. धातु. - 1.496, शाक. धातु. - 1.802, हैम धातु. - 1.489, कविकल्पद्रुम धातुपाठ - 286, चान्द्र धातुपाठ अपवाद रूप है।
31. काशकृत्स्न धातुपाठ 9.175कातन्त्र धातुपाठ 9.1205
32. पाणिनीय धातुपाठ - 10.180 , शाकटायन धातुपाठ - 10.1588,
33. काशकृत्स्न धातुपाठ 1.381, कातन्त्र धातुपाठ 1.300
34. पा.धातु. - 1.12, जै.धातु. - 1.489, शाक.धातु. - 1.11, हैम धातु. - 1.722
35. काशकृत्स्न व्याकरण कातन्त्र व्याकरण

    22 1.1.7

    26 1.1.8
36. काशकृत्स्न व्याकरण कातन्त्र व्याकरण

    30 3.6.71

    32 3.6.73

    34 3.6.75
37. तङानना , विभाषिता: , पारिभाषिक संज्ञाओं के सम्बन्ध में चन्द्रगोमी पाणिनि के ऋणी हैं। इन संज्ञाओं का उल्लेख पाणिनि के इन सूत्रों से मिलता है - तङानावात्मनेपदम् 1.4.100

    शक विभाषितो मर्षणे 4.83 टेक्नीकल टर्म्स - पृ . 102 - 3
38. 10.103, 10.184, 10.121, 5.25, 1.621, 4.6, 1.631
39. 1.366, 367, 9.257, 9.141
40. 6.27, 1.88, 1.144, 1.615, 10.84
41. 9.348

ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन

प्रोफेसर रमाकांत साहू

IASE, बिलासपुर

संक्षेपीकरण (Abstract):- सामाजिक बुद्धि को प्रभावित करने वाले कारकों में व्यक्तिगत कारक वातावरण संबंधी कारक और मनोवैज्ञानिक कारक सम्मिलित हैं। परिवार बच्चे को मानव का सर्वप्रथम सम्पर्क प्रदान करता है। उसके व्यक्तित्व प्रतिमान को स्वरूप देने में परिवार प्रमुख भूमिका निभाता है। अच्छे परिवार सुसमायोजित व्यक्ति उत्पन्न करते हैं। बच्चे के व्यक्तित्व में स्कूल, समाज, परिवार, आस-पड़ोस का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। संक्षेप में सामाजिक रूप से बुद्धिशाली दूसरों को सहयोग देकर, दूसरों को अपना मित्र बनाकर अच्छी परिष्कृत रूचियों और शिष्टाचार का प्रदर्शन करके तथा अपने संवेगों पर नियंत्रण करके सामाजिक बुद्धि का परिचय देता है। सामाजिक बुद्धि से तात्पर्य व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति तथा समाज के साथ व्यवहार तथा सामाजिक संबंधों के निर्वाहन से है।

महत्वपूर्ण शब्द (Key Words):- ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र, विद्यार्थी, सामाजिक बुद्धि।

1. परिचय (Introduction):- सामाजिक बुद्धि, बुद्धि का एक प्रकार है जो किसी व्यक्ति में अन्य व्यक्तियों एवं सामाजिक संबंधों के प्रति व्यवहार में निहित होता है। सामाजिक परिपक्वता के अंतर्गत सहयोग एक आवश्यक कारक है। सामाजिक परिपक्व व्यक्ति सदा सहयोग प्रवृत्ति का होगा। दूसरों के साथ मिलजुल कर कार्य करने की इच्छा उसमें सदा रहती है और वह इस कार्य में प्रसन्नता का अनुभव करता है। बच्चे का सामाजिक विकास का एक आवश्यक तत्व है, अत: जो व्यक्तित्व या बालक जितना अधिक बुद्धिमान होगा उतना ही अधि कवह सामाजिक रूप से विकसित होगा। सामाजिक विकास में विभिन्न धार्मिक संस्थायें विशेष योगदान करती है। सामाजिक विकास में मनोरंजन तथा सूचना प्रदान करने वाले साधनों का भी महत्व होता है। सांवेगिक असंतुलन और चिंता आदि भी मानसिक विकास को प्रभावित करते हैं।

2. संबंधित साहित्य की समीक्षा (Review Related Literature):-

- प्रहलाद (1982), भारद्वाज (1986), शर्मा (1986) ने, विभिन्न प्रकार के कॉलेजों के छात्रों की सामाजिक बुद्धि का अध्ययन किया। कला व विज्ञान व वाणिज्य, कला व वाणिज्य के छात्रों की सामाजिक बुद्धि में अंतर पाया गया।
- गिर व शर्मा (2006) ने 9-12 वर्ष के ग्रामीण क्षेत्र के छात्र एवं छात्राओं की सामाजिक परिपक्वता की तुलना की। उन्होंने पाया, कि इस वर्ष के सभी विद्यार्थियों में सामान्य स्तर की सामाजिक परिपक्वता पाई गई। इस कार्य हेतु चुने गए छात्रों में छात्राओं की अपेक्षा उच्च सामाजिक परिपक्वता पाई गई।
- किरिंग (1978) ने अपने अध्ययन में यह पाया कि सामाजिक बुद्धि एवं संवेदना के मध्य संबंध या उच्च स्तर के शैक्षिक मूल्यों एवं सामाजिक योग्यता के मध्य अधिक समानता पायी गई।

3. उद्देश्य एवं परिकल्पना (Objective And Hypothesis):-

अध्ययन का उद्देश्य (Objective of the Study):-

- ग्रामीण एवं शहरी क्षत्र के वाणिज्य संकाय के विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि का मापन करना।
- शहरी क्षेत्र के विज्ञान एवं वाणिज्य संकाय के विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि का मापन करना।
- ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विज्ञान संकाय एवं वाणिज्य संकाय के विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि का मापन करना।

अध्ययन की परिकल्पना (Hypothesis of the Study):-

H_1 - ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के वाणिज्य संकाय के विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

H_2 - शहरी क्षेत्र के विज्ञान एवं वाणिज्य संकाय के विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

H_3 - ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विज्ञान संकाय एवं वाणिज्य संकाय के विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

4. प्रणाली एवं प्रक्रिया (Methodology And Procedure):-

विधि (Method):- प्रस्तुत शोध अध्ययन में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के विद्यार्थियों का चयन उद्देशीय न्यादर्श विधि द्वारा किया गया है।

जनसंख्या (Population):- प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए शोधकर्त्ता ने दुर्ग-भिलाई शहर के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों का चयन किया है।

न्यादर्श (Sampling):- प्रस्तुत लघु शोध में उद्देशीय न्यादर्श विधि द्वारा 80 ग्रामीण एवं 80 शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों का चयन किया गया है।

विस्तार एवं सीमांकन (Scope And Delimitation):- इसमें दुर्ग-भिलाई शहर के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है। यह अध्ययन में सामाजिक बुद्धि के मापन हेतु सामाजिक बुद्धि मापनी का प्रयोग किया गया है।

उपकरण (Tools):- इस शोध अध्ययन में विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि को जानने हेतु डॉ. एन.के. चड्ढा द्वारा निर्मित सामाजिक बुद्धि मापनी का प्रयोग किया गया है।

सांख्यिकीय प्रविधि (Statistical Techniques):- इस शोध अध्ययन में मध्यमान, प्रमाणिक विचलन एवं 'टी' मूल्य का प्रयोग किया गया है।

5. विश्लेषण एवं चर्चा (Analysis and Discussion):-

प्रमाणित कल्पनाएँ (Verification of Hypothesis):-

H_1 - ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के वाणिज्य संकाय के विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

उपरोक्त परिकल्पना के परीक्षण हेतु ग्रामीण क्षेत्र के 40 तथा शहरी क्षेत्र के 40 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में चयनित किया गया एवं सामाजिक बुद्धि मापनी की सहायता से प्राप्त मूल प्राप्तांकों का मध्यमान, प्रमाणिक विचलन तथा 'टी' मूल्य की गणना की गयी है। जिसका विवरण अग्रलिखित तालिका में दिया गया है -

क्र.	*तुलनात्मक समूह*	*प्रदत्तों की संख्या*	*मध्यमान*	*प्रमाणिक विचलन*	*'टी'-मूल्य*
1	ग्रामीण क्षेत्र के वाणिज्य संकाय के विद्यार्थी	40	103.88	14.22	0ण्94
2	शहरी क्षेत्र के वाणिज्य संकाय के विद्यार्थी	40	107.02	15.74	

Df = 78, P > 0.05 सार्थक अंतर नहीं है।

उपरोक्त सारणी से यह स्पष्ट है कि वाणिज्य संकाय के विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि के अंतर्गत ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि का मध्यमान 103.88 व 107.02 है तथा प्रमाणिक विचलन 14.22 व 15.74 प्राप्त हुआ तथा दोनों के मध्य 'टी' मूल्य का मान 0.94 प्राप्त हुआ। जो कि स्वतंत्रता की कोटि 78 पर सार्थकता पर 0.05 पर सार्थक अंतर नहीं है, जो यह प्रदर्शित करता है कि हमारी परिकल्पना स्वीकृत है।

H_2 - शहरी क्षेत्र के विज्ञान एवं वाणिज्य संकाय के विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

उपरोक्त परिकल्पना के परीक्षण हेतु शहरी क्षेत्र के विज्ञान संकाय के 40 तथा वाणिज्य संकाय के 40 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में चयनित किया गया एवं सामाजिक बुद्धि मापनी की सहायता से प्राप्त मूल प्राप्तांकों का मध्यमान, प्रमाणिक विचलन तथा 'टी' मूल्य की गणना की गयी है। जिसका विवरण अग्रलिखित तालिका में दिया गया है -

क्र.	*तुलनात्मक समूह*	*प्रदत्तों की संख्या*	*मध्यमान*	*प्रमाणिक विचलन*	*'टी'-मूल्य*
1	शहरी क्षेत्र के विज्ञान संकाय के विद्यार्थी	40	106.90	14.30	0ण्04
2	शहरी क्षेत्र के वाणिज्य संकाय के विद्यार्थी	40	107.02	15.74	

Df = 78, P > 0.05 सार्थक अंतर नहीं है।

उपरोक्त सारणी से यह स्पष्ट है कि विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि के अंतर्गत शहरी क्षेत्र के विज्ञान एवं वाणिज्य संकाय के विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि का मध्यमान 106.90 व 107.02 एवं प्रमाणिक विचलन 14.40 व 15.74 प्राप्त हुआ तथा दोनों के मध्य 'टी' मूल्य का मान 0.94 प्राप्त हुआ। जो कि स्वतंत्रता की कोटि 78 सार्थकता स्तर पर 0.05 स्तर पर सार्थक अंतर नहीं है, जो यह प्रदर्शित करता है कि हमारी परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि शहरी क्षेत्रों के विज्ञान एवं वाणिज्य संकाय के विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

H_3 - ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के विज्ञान एवं वाणिज्य संकाय के विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

उपरोक्त परिकल्पना के परीक्षण हेतु ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के विज्ञान संकाय के 80 एवं वाणिज्य संकाय के 80 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में चयनित किया गया एवं सामाजिक बुद्धि मापनी की सहायता से प्राप्त मूल प्राप्तांकों का मध्यमान, प्रमाणिक विचलन तथा 'टी' मूल्य की गणना की गयी है। जिसका विवरण अग्रलिखित तालिका में दिया गया है -

क्र.	*तुलनात्मक समूह*	*प्रदत्तों की संख्या*	*मध्यमान*	*प्रमाणिक विचलन*	*'टी'-मूल्य*
1	ग्रामीण क्षेत्र के विज्ञान संकाय के विद्यार्थी	80	85.47	15.12	0.54
2	शहरी क्षेत्र के वाणिज्य संकाय के विद्यार्थी	80	84.80	15.07	

Df = 158, P > 0.05 सार्थक अंतर नहीं है।

उपरोक्त सारणी से यह स्पष्ट है कि विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि के अंतर्गत ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के विज्ञान संकाय एवं वाणिज्य संकाय के विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि का मध्यमान 85.47 व 84.30 है तथा प्रमाणिक विचलन 15.12 व 15.07 प्राप्त हुआ तथा दोनों के मध्य 'टी' मूल्य का मान 0.54 प्राप्त हुआ। जो कि स्वतंत्रता की कोटि 158 सार्थकता स्तर पर 0.05 स्तर पर सार्थक अंतर नहीं है, जो यह प्रदर्शित करता है कि हमारी परिकल्पना स्वीकृत है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के विज्ञान एवं वाणिज्य संकाय के विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाएगा।

संदर्भित ग्रन्थ (References)

1. जैन प्रभा व पटेल (2003) - ए कम्परेटिव स्टडी ऑफ सोशियल मेच्यूरिटि ऑफ टीचिंग एप्टीट्यूट ऑन जॉब सेटिस्फेक्शन ऑफ साइकोमेट्रिक एण्ड एजुकेशन, जनवरी, 2001, वाल्यूम-32।
2. भटनागर, सुरेश (2005) - शिक्षा मनोविज्ञान।
3. शर्मा, आ.ए. - शिक्षा अनुसंधान।
4. सिंधु, बी.एस. एवं शेरगिल - इफेक्ट ऑफ सोशियल मेच्यूरिटि एण्ड टीचिंग एप्टीट्यूड ऑन जॉब सेटिस्फेक्शन ऑफ साइकोमेट्रिक एण्ड एजुकेशन, जनवरी, 2001, वाल्यूम-32।
5. शर्मा श्वेता एवं गिर सोफिया (2006) - सेक्स डिफरेन्स इन सोशियल मेच्यूरिटी साइकोलिंग्वा, वाल्यूम-36।

शिकागो सम्मेलन में स्वामी विवेकानन्द का भाषण: संचारीय परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन

डॉ० जुगल किशोर दाधीच

सह आचार्य, गाँधी एवं शान्ति अध्ययन विभाग, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी (बिहार)

रविन्द्र सिंह

शोधार्थी, अहिंसा एवं शांति विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूँ, राजस्थान

सारांश: स्वामी विवेकानन्द का 11 सितम्बर, 1893 को शिकागो के धर्म सम्मेलन में दिया गया भाषण भारतीय इतिहास में एक अमूल्य दस्तावेज के रूप में संग्रहित है। उनके उस एक भाषण ने जहां भारतीय समाज में सुषुप्त अवस्था में पहुंच चुके स्वाभिमान और गौरव की भावना को जगाने का दुष्कर कार्य कर दिखाया, वहीं विदेश में भारत के खिलाफ गढ़े गये नेरेटिव को भी ध्वस्त कर डाला। चूंकि भारत और भारतीयता के समर्थन में गूंजे ये कोई पहले शब्द नहीं थे। इससे पहले भी भारत को इसके मूल एवं वास्तविक स्वरूप के रेखांकन में कई व्याख्यायें की गई, मगर वे अपना अपेक्षित प्रभाव नहीं छोड़ पाई। स्वामी विवेकानन्द की अनूठी संचार नीति के कारण उन्हें अपार सफलता मिल सकी। प्रस्तुत शोध-पत्र में स्वामी विवेकानन्द के शिकागो सम्मेलन का संचारीय परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया जायेगा।

शब्द संकेत: स्वामी विवेकानन्द, शिकागो-सम्मेलन, सन्देश, भारतीयता, स्वधर्म इत्यदि।

प्रस्तावना: स्वामी विवेकानन्द के समय में विभिन्न कारणों से उपजी भारतीय समाज में आत्महीनता की ग्रन्थियां काफी जटिल रूप धारण कर चुकी थीं। एक तरफ जहां भारतीय समाज आत्मगौरव की भावना से शून्य हो चुका था, वहीं कर्म के प्रति उदासीनता से निराशा के अन्धेरे और भी घने होते जा रहे थे। तिस पर पहले मुस्लिम और बाद में यूरोपीय शक्तियों के रूप में ईसाई हमलों और उनकी पराधीनता ने जड़ता जैसी स्थिति उत्पन्न कर दी थी। दुनिया भर में सनातन भारतीय संस्कृति का प्रभाव कमजोर पड़ रहा था। उसके उलट यूरोपीय देशों ने भारतीय संस्कृति को नकारात्मक रूप में चित्रित करते हुए बनावटी विमर्शों के सहारे भारतीय संस्कृति के प्रति भारतीयों में भी आत्महीनता की भावना भरनी शुरू कर दी थी। चारों और अशुभ का वातावरण व्याप्त था। शुभ आशाओं की कहीं से कोई किरण नजर नहीं आ रही थी। उस कालखण्ड की उन तमाम तामसिक परिस्थितियों ने उन्हें झकझोकर कर रख दिया था।

सम्भवतय: इन्हीं विपरीत परिस्थितियों ने उन्हें भारतीय समाज में पुन: प्राण ऊर्जा फूंकने के साथ-साथ समूचे विश्व में मां भारती के खोये हुए स्वाभिमान को पुन: प्रतिष्ठित करने के लिए व्याकुल कर दिया था। मां भारती को पुन: वही प्रतिष्ठा लौटाने के निमित्त शिकागो धर्म संसद से बढ़कर मंच उन्हें शायद ही कहीं मिल सकता था। इसी परम उद्देश्य के साथ स्वामी विवेकानन्द को शिकागो धर्म संसद में भारत मां के प्रतिनिधि के रूप में जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस प्रकार पूरे विश्व के समक्ष भारतीय संस्कृति को उसके खोया सम्मान लौटाने के साथ-साथ हिन्दू धर्म की वास्तविक पहचान करवाना उनके शिकागो जाने का उद्देश्य बना।

अभारतीय दृष्टि का विकृत चित्रण

वास्तव में भारत के गौरवशाली इतिहास के बावजूद उस समय के समाज को कई अवगुणों ने घेर लिया था। वे तमाम रोग भारत को उन्नति एवं प्रगति के पथ पर आगे नहीं बढ़ने दे रहे थे। ऊपर से यूरोपीयों ने भारतीय स्थिति को और भी दयनीय अवस्था में दिखाने का हरसम्भव कुत्सित प्रयास किया। इस सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द ने स्वयं कहा था, 'तीस कोटि मानवाकार जीव-बहु शताब्दियों से स्वजाति-विजाति, विधर्मी दबाव से निपीडिघ्तप्राण, दाससुलभ परिश्रमसहिष्णु, दासवत् उद्यमहीन, आशाहीन, अतीतहीन, भविष्यविहीन, वर्तमान में किसी तरह केवल 'जीवित' रहने के इच्छुक, दासोचित ईर्ष्यापरायण, स्वजनोन्नति असहिष्णु, हताशवत् श्रद्धाहीन, विश्वासहीन, शृगालवत् नीच-प्रतारणा-कुशल, स्वार्थपरता से परिपूर्ण, बलवानों के पद चूमने वाले, अपने से दुर्बल के लिए यमस्वरूप, बलहीनों तथा आशाहीनों के समस्त क्षुद्र भीषण कुसंस्कारों से पूर्ण, नैतिक मेरुदण्डहीन, सड़े मांस में बिलबिलाने वाले कीड़ों की तरह भारतीय शरीर में परिव्याप्त अंग्रेजी सरकारी कर्मचारियों की दृष्टि में हमारा यही चित्र है।'[1]

धर्म महासभा में स्वामी विवेकानन्द का सन्देश

स्वामी विवेकानन्द का शिकागो धर्म-महासभा में जाकर भारतीयता को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करना स्वामी विवेकानन्द के जीवन की सबसे बड़ी घटना के रूप में हम सब के समक्ष आती है। 1893 में स्वामी विवेकानन्द जब शिकागो धर्मसभा को सम्बोधित कर रहे थे, तो समूचे विश्व, खासकर पश्चिमी जगत

को भारत का सन्देश सुनाया। इस हेतु अद्वैत आश्रम कोलकाता की ओर से 2012 में प्रकाशित विवेकानन्द साहित्य के प्रकाशित अंशों को आधार बनाकर स्वामी विवेकानन्द के विश्व को दिए सन्देश का अध्ययन किया जाएगा।

स्वागत का उत्तर

11 सितम्बर, 1893 के दिन स्वामी विवेकानन्द ने अपनी ओजस्वी वाणी में शिकागो धर्म सम्मेलन में जो भाषण दिया, वह सदा-सदा के लिए विश्व इतिहास के पन्नों में स्वर्ण अक्षरों में अंकित हो गया है। इस भाषण में वह वास्तव में धर्म-महासभा में स्वागत का उत्तर देते हैं। वास्तव में 11 सितम्बर को दिया वही भाषण युवा नरेन्द्र को वैश्विक फलक पर स्वामी विवेकानन्द के रूप में विराट पहचान देता है। उनका वह भाषण इस प्रकार से है-

अमेरिका वासी बहनो तथा भाइयो,

आपने जिस सौहार्द और स्नेह के साथ हम लोगों का स्वागत किया है, उसके प्रति आभार प्रकट करने के निमित्त खड़े होते समय मेरा हृदय अवर्णनीय हर्ष से पूर्ण हो रहा है। संसार में संन्यासियों की सबसे प्राचीन परम्परा की ओर से मैं आपको धन्यवाद देता हूँ; धर्मों की माता की ओर से धन्यवाद देता हूँ; और सभी सम्प्रदायों एवं मतों के कोटि कोटि हिन्दुओं की ओर से भी धन्यवाद देता हूँ।

मैं इस मंच पर से बोलने वाले उन कतिपय वक्ताओं के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने प्राची के प्रतिनिधियों का उल्लेख करते समय आपको यह बतलाया है कि सुदूर देशों के ये लोग सहिष्णुता का भाव विविध देशों में प्रसारित करने के गौरव का दावा कर सकते हैं। मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति, दोनों की ही शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, वरन् समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं। मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मों और देशों के उत्पीडिघ्तों और शरणार्थियों को आश्रय दिया है। मुझे आपको यह बतलाते हुए गर्व होता है कि हमने अपने वक्ष में यहूदियों के विशुद्धतम अवशिष्ट अंश को स्थान दिया था, जिन्होंने दक्षिण भारत आकर उसी वर्ष शरण ली थी, जिस वर्ष उनका पवित्र मंदिर रोमन जाति के अत्याचार से धूल में मिला दिया गया था। ऐसे धर्म का अनुयायी होने में मैं गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने महान् जरथुष्ट्र जाति के अवशिष्ट अंश को शरण दी और जिसका पालन वह अब तक कर रहा है। भाइयो, मैं आप लोगों को एक स्तोत्र की कुछ पंक्तियाँ सुनाता हूँ, जिसकी आवृत्ति मैं अपने बचपन से करता रहा हूँ और जिसकी आवृत्ति प्रतिदिन लाखों मनुष्य किया करते हैं।

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम् ।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

जैसे विभिन्न नदियां भिन्न भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो ! भिन्न भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जाने वाले लोग अन्त में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।

यह सभा, जो अभी तक आयोजित सर्वश्रेष्ठ पवित्र सम्मेलनों में से एक है, स्वत: ही गीता के इस अद्‌भुत उपदेश का प्रतिपादन एवं जगत् के प्रति उसकी घोषणा है -

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्मानुवर्तन्ते मनुष्या: पार्थ सर्वश:।

जो कोई मेरी ओर आता है - चाहे किसी प्रकार से हो - मैं उसको प्राप्त होता हूँ। लोग भिन्न भिन्न मार्ग द्वारा प्रयत्न करते हुए अंत में मेरी ही ओर आते हैं। साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता और उनकी वीभत्स वंशधर धर्मान्धता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुकी हैं। वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही हैं, उसको बारम्बार मानवता के रक्त से नहलाती रही हैं, सभ्यताओं को विध्वस्त करती और पूरे पूरे देशों को निराशा के गर्त में डालती रही हैं। यदि ये वीभत्स दानवी न होतीं, तो मानव समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता। पर अब उनका समय आ गया है, और मैं आंतरिक रूप से आशा करता हूँ कि आज सुबह इस सभा के सम्मान में जो घंटा-ध्वनि हुई है, वह समस्त धर्मान्धता का, तलवार या लेखनी के द्वारा होने वाले सभी उत्पीड़नों का, तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले मानवों की पारस्परिक कटुताओं का मृत्यु-निनाद सिद्ध हो।'

स्वामी विवेकानन्द के शिकागो सम्मेलन की सफलता और महत्ता को समझने के लिए व्यक्तिगत आग्रह के बजाय उस समय की महत्त्वपूर्ण प्रतिक्रियाओं को आधार बनाना समुचित होगा। शिकागो धर्म-महासभा में जो कुछ भी सफलता स्वामी विवेकानन्द को प्राप्त हुई, उसका उल्लेख तत्कालीन समाचार-पत्रों, पत्राचार के ऐतिहासिक दस्तावेजों और आगे चलकर उन पर शोध कर प्रामाणिक पुस्तकें लिखने वालों की व्याख्या के आधार पर समझने का प्रयास किया जायेगा।

विद्वानों एवं शिष्यों द्वारा चित्रण

स्वामी विवेकानन्द की परम शिष्य भगिनी निवेदिता स्वामी विवेकानन्द के शिकागो धर्म-महासभा में दिए भाषण के महत्त्व को रेखांकित करते हुए लिखती हैं, 'स्वामी विवेकानन्द के अधरों से जो शब्द उच्चरित हुए, वे स्वयं उनके अनुभवजनित नहीं थे। न उन्होंने अपने गुरुदेव की कथा सुनाने के निमित्त ही इस अवसर का उपयोग किया। इन दोनों के स्थान पर, भारत की धार्मिक चेतना-सम्पूर्ण अतीत द्वारा निर्धारित उनके समग्र देशवासियों का संदेश ही उनके माध्यम से मुखर हुआ था।'[2]

स्वामी विवेकानन्द के उस ऐतिहासिक एवं ओजस्वी भाषण ने पूरी दुनिया को भारत की सच्ची बात ध्यान से सुनने के लिए बाध्य कर दिया। अपने स्वागत भाषण में भी स्वामी विवेकानन्द ने श्रोताओं को उनके साथ पूरी संवेदना के साथ जुड़ने के लिए तैयार कर लिया था। इसके बाद वह भारतीय संस्कृति का

पूरी दुनिया के सामने धारा-प्रवाह में सच्चा बखान करते चले गए और दुनिया के मन में पल-बढ़ रहे मिथकों को ध्वस्त करते गये। स्वामी विवेकानन्द पर तथ्यपूर्ण किताब लिखने वाले रोमां रोलां ने उनकी शिकागो सम्मेलन की सफलता और उसके प्रभाव का विस्तृत रूप में आकलन किया है। इस बारे में रोमां रोलां लिखते हैं, 'जब वे बोले तो उनकी वाणी एक ज्वलंत मशाल की तरह थी। शुष्क निबंध पाठों के बाद इसने श्रोताओं को झकझोर कर रख दिया। 'अमरीका के बहनो और भाइयों' मुश्किल से वे ये सरल प्रारंभिक शब्द कह पाये थे कि सैकड़ों लोग अपने स्थानों पर खड़े होकर करतल ध्वनि करने लगे। उन्हें आश्चर्य हुआ, क्या वे वास्तव में उनका अभिनन्दन कर रहे हैं ? वे सचमुच पहले व्यक्ति थे जिसने सम्मेलन की औपचारिकता तोड़ फेंकी और जनता से उनकी भाषा में बात की जिसकी वह प्रतीक्षा कर रही थी। फिर मौन छा गया। उन्होंने धर्मों में सबसे पुरातन वैदिक संन्यासी धर्म की ओर से राष्ट्रों में तरुणतम राष्ट्र का अभिनन्दन किया।'[3]

वह आगे लिखते हैं, 'तीस वर्ष का यह नवयुवक जब सितंबर 1893 में कार्डिनल गिबंस द्वारा उद्घाटित शिकागो में सर्वधर्म सम्मेलन में प्रकट हुआ तब उसके भव्य व्यक्तित्व के सामने अन्य सब प्रतिनिधि भुला दिए गए। अमरीकी ऐंग्लो-सैक्सन का बृहत् समूह जो उनके रंग के कारण उनके प्रतिकूल था, उनके पुष्ट और सुंदर शरीर, उनकी प्रभावशाली आकृति, उनकी भव्य भंगिमा, उनकी काली आंखों की चमक से उनके भाषण के शुरू होते ही उनकी गहरी समृद्ध आवाज के शानदार संगीत में बह गया। भारत के इस क्षत्रिय प्रवक्ता ने अमरीका की विचारधारा पर गहरी छाप छोड़ी।'[4]

हिंमाशु शेखर स्वामी विवेकानन्द की अपार सफलता पर उन्हें पश्चिमी जगत में भारतीय संस्कृति के महान राजदूत बताते हुए लिखते हैं, 'भारतीय व पश्चिमी संस्कृति में एक सेतु बांधना स्वामी विवेकानन्द का एक महान योगदान था। उन्होंने हिन्दू ग्रन्थों, दार्शनिकता और जीवन शैली को ऐसे ढंग से पश्चिमी लोगों को बताया जिसे वे समझ सकें। उन्होंने पश्चिमवासियों को यह अहसास दिलाया कि भारतीय आध्यात्मिकता उनके लिए कितनी लाभदायक है। उन्होंने लोगों को यह दिखाया कि गरीबी और पिछड़ेपन के बावजूद भारत के पास दुनिया की संस्कृति को देने के लिए बहुत कुछ है। इस प्रकार उन्होंने अलग थलग पड़ी भारतीय संस्कृति की पहचान पूरी दुनिया में स्थापित की। वे पश्चिमी जगत में भारतीय संस्कृति के पहले महान राजदूत थे।'[5]

स्वामी विवेकानन्द भारतीय समाज में घर कर चुकी कुरीतियों के प्रति भलीभान्ति सजग थे। इसके बावजूद आज के कथित लिबरल बुद्धिजीवियों के उलट वे भारत की जरूरत से अधिक आलोचना करने से बचे। इस बारे में हंसराज रहबर लिखते हैं, 'अपनी कमियों को समझे और दूसरों से सीखे बिना आगे बढ़ना सम्भव नहीं लेकिन आत्मालोचना अपनों ही के सम्मुख की जाती है, शत्रुओं के विरुद्ध सम्पूर्ण व्यक्तित्व के साथ लड़ना सिर्फ लड़ना होता है। विवेकानन्द ने ठीक यही कार्यनीति अपनाई। शत्रुओं के सम्मुख उन्होंने मूर्ति पूजा तक की दार्शनिक व्याख्या की और अपनों के सम्मुख कलेजा निकालकर रख दिया और खून के आंसू रोए। परिणाम यह कि उदार बुर्जुआ और उनके बुद्धिजीवियों ने विवेकानन्द को प्यार किया, सर आंखों पर बिठाया और उन्हें अपना धार्मिक तथा सांस्कृतिक नेता मान लिया और आज तक माने हुए हैं। अतएव स्वदेश लौटने पर वे जहां भी गए वहीं उनका भव्य स्वागत हुआ।'[6]

कोलम्बोवासियों का पत्र

सेवा में

श्रीमत् स्वामी विवेकानन्द जी,

पूज्य स्वामीजी,

कोलम्बो नगर के हिन्दू निवासियों की एक सार्वजनिक सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसार आज हम लोग इस द्वीप में आपका हृदय से स्वागत करते हैं। हमें इस बात का गर्व है कि आपके पाश्चात्य देशों में उस महान् धर्मप्रचार-कार्य के बाद आपके स्वदेश वापस आने पर हम लोगों को ही आपका सर्वप्रथम स्वागत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

ईश्वर की कृपा से आपको उस महान् धर्मप्रचार कार्य में जो सफलता प्राप्त हुई है, उसे देखकर हम सब बड़े कृतकृत्य तथा प्रफुल्लित हुए हैं। आपने योरोपीय तथा अमेरिकन राष्ट्रों को यह भलीभाँति समझा दिया है कि हिन्दू जाति की दृष्टि में सार्वभौम धर्म वही है, जिसमें सब प्रकार के सम्प्रदायों का सुन्दर सामञ्जस्य हो, जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आवश्यकतानुसार आध्यात्मिकता प्राप्त हो सके तथा जो स्नेहपूर्वक प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर से एकरूप कर सके। आपने उस महान् सत्य का प्रचार किया है तथा उसका मार्ग सिखाया है जिसकी शिक्षा हमें आदि काल से हमारे यहाँ के महर्षि देते आए हैं। इन्हीं महर्षियों की चरण-धुलि से भारतवर्ष की भूमि सदैव पवित्र हुई है तथा उन्हीं के कल्याणप्रद चरित्र एवं प्रेरणा से यही भारतवर्ष अनेकानेक परिवर्तनों के बीच गुजरता हुआ भी सदैव संसार का प्रदीप बना रहा है।

श्रीरामकृष्ण परमहंस देव जैसे सद्गुरु की अनुप्रेरणा तथा आपके त्यागमय सेवाव्रत द्वारा पाश्चात्य राष्ट्रों को भारतवर्ष के एक आध्यात्मिक गुरुवर्य के. प्रत्यक्ष साक्षात्कार का सौभाग्य प्राप्त होने का वरदान मिला है। और साथ ही पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध से विमूढ़ित अनेक भारतवासी भी आपके द्वारा कृतकृत्य हुए हैं, क्योंकि उन्हें आपने ही अपने देश की महान् संस्कृति का बोध कराया है।

आपने अपने स्वयं के उदात्त उदाहरण तथा कर्म द्वारा मानव जाति का वह उपकार किया है जिसका बदला चुकाना उसके लिए सम्भव नहीं। हमारी इस मातृभूमि को भी आपने एक नया तेज दिया है। हमारी यही प्रार्थना है कि ईश्वर की कृपा से आपकी तथा आपके सत्कार्य की उत्तरोत्तर उन्नति होती रहे।

कोलम्बो निवासी हिन्दुओं की ओर से हम हैं आपके विनम्र,

पी० कुमार स्वामी, स्वागताध्यक्ष तथा मेम्बर, लेजिस्लेटिव कौंसिल, सीलोन,

तथा ए० कुलवीरसिंहम्, मंत्री।[7]

निष्कर्ष: पहले मुस्लिमों और बाद में यूरोपीय शक्तियों की पराधीनता और इस दौरान हुये साँस्कृतिक हमलों ने भारतीय समाज के गौरव और आत्म-स्वाभिमान की भावना को विनष्ट कर दिया था। उस समय की पीढ़ी अपने इतिहास और पूर्वजों में गर्व करने के बजाय उनमें हीनता की भावना का

बढ़ावा देना शुरू कर दिया था। वहीं, भारतीय संस्कृति एवं समाज के प्रति आधी-अधूरी समझ या कई बार तो एक विशेष किस्म की कुण्ठा से पीडिघ्त होकर विदेशी विद्वानों की ओर से भारत और भारतीयता को नकारात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा था। ऐसे वातावरण में स्वामी विवेकानन्द ने अपने ओजस्वी भाषण के बलबूते शिकागो सम्मेलन में भारत की परम्पराओं और मूल्यों की मूल और गौरवमयी प्रस्तुति दी। अपनी प्रभावशाली संचार नीति के कारण ही उन्हें वह अपार सफलता मिली थी। संचार के परिप्रेक्ष्य में स्वामी विवेकानन्द का शिकागो सम्मेलन में दिया भाषण हमेशा-हमेशा के लिये भारती और विश्व के इतिहास के पन्नों में स्वर्णिम अक्षरों में अंकित हो गया।

सन्दर्भ

1 विवेकानन्द, स्वामी, विवेकानन्द साहित्य, खंड-10, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2012, पृष्ठ-47-48

2 विवेकानन्द साहित्य, प्रथम खंड, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2012 पृष्ठ-324-325

3 रोलां, रोमां, विवेकानन्द की जीवनी, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2013, पृष्ठ-32

4 रोलां, रोमां, विवेकानन्द की जीवनी, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2013, पृष्ठ-8

5 शेखर, हिमांशु, स्वामी विवेकानन्द के सपनों का भारत, डायमंड प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, (ई-बुक संस्करण)

6 रहबर, हंसराज, योद्धा संन्यासी विवेकानन्द, साक्षी पेपरबैक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015, पृष्ठ-103

7 विवेकानन्द, स्वामी, भारत में विवेकानन्द, श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर, 1950, पृष्ठ-1-3

भर्तृहरि के नीतिशतकम् की शिक्षाएँ और वर्तमान समाज को सन्देश

डॉ० बृजेन्द्र सिंह गुर्जर

प्राचार्य, नीरज मेमोरियल कॉलेज, गंगापुर सिटी, सवाई माधोपुर (राज0)

सारांश – नीतिशतक भर्तृहरि विरचित नीतिपरक श्लोकों का संग्रह है, जिसमें नीति से सम्बन्धित मुक्तक पद्य हैं। इसमें निबद्ध श्लोकों के द्वारा भर्तृहरि ने मानव के लिए कुछ ऐसे नैतिक सिद्धान्तों को अभिव्यक्त किया है, जो सदैव मानव के लिए उपादेय हैं और उसका पथप्रदर्शन करते हैं। शतक के माध्यम से दी गई शिक्षाएँ केवल व्यक्ति विशेष के लिए नहीं, वरन् सार्वभौमिक मानव के लिए महत्व रखती हैं; क्योंकि वे व्यक्ति के जीवन, समाज और संसार के सत्य से जुड़ी हैं। कवि ने समाज में जो देखा और अनुभूत किया, वही सत्य उन्होंने इस संकलन के रूप में उजागर कर दिया। अत: इसमें वह यथार्थ सामग्री मिलती है, जिसका हर युग में मानव को ज्ञान होना जरूरी है। साथ ही वरणीय तथा करणीय की अनुपालना और हेय व निषिद्ध का त्याग जरूरी है। वर्तमान में भी नीतिशतक में निबद्ध ज्ञान व शिक्षाएँ मानव के लिए अतिउपयोगी होने से इसका जन-जन में प्रसार व परिज्ञान जरूरी है।

शब्द-बोध –

मुक्त पद्य – एक-दूसरे से मुक्त या स्वतंत्र पद्य अर्थात् जो पद्य दूसरे पद्य की अपेक्षा के बिना अर्थाभिव्यक्ति में सक्षम हो।

पिशुनता – चुगली करना

सत्संगति – अच्छे लोगों का साथ/संगति करना

मुक्ताकार – मोती का रूप/आकार

शोधालेख – नीतिशतक का सम्बन्ध मानव-जीवन के व्यावहारिक विषयों से है। इसमें प्रतिपादित सामग्री व शिक्षा सार्वभौमिक मानव के लिए कल्याणकारी है। क्योंकि इसमें निबद्ध विचार और विषय सीधे-सीधे प्रत्येक मानव और मानव- समाज से सम्बन्ध रखते हैं। अत: मानव के लिए हितकर उस शिक्षा का प्रकटीकरण कवि भर्तृहरि ने नीतिशतक में किया है, जो सदैव हर मानव को अपने जीवन में आत्मसात् करनी चाहिए। एक प्रकार से इस रचना के विभिन्न पद्यों में कही गई बातें मानव के समक्ष उच्चादर्शों का दृष्टान्त बन चुकी हैं। इसीलिए कोई भी ऐसी बात, जो मानव के लिए नीतिसंगत है, उसके निर्वचन हेतु नीतिशतक के पद्यों को निदर्शनस्वरूप अथवा प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किया जाता है। इनसे मानव को शिक्षा, सद्संदेश एवं प्रेरणा प्राप्त होती है और वह तदनुसार आचरण-व्यवहार तथा कार्य करता है। संक्षेप में नीतिशतक की शिक्षाओं को देखें, तो कुछ महत्वपूर्ण विषय एवं उनसे सम्बन्धित ज्ञान-शिक्षाएँ इस प्रकार हैं-

विद्या – नीतिशतक में प्रत्येक मनुष्य को विद्यावान् होना अर्थात् विद्या प्राप्त करना परमावश्यक कहाँ है- येषां न विद्या न तपो न दानम्...
..... मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।[1]

इस प्रकार विद्याहीन मनुष्य को पशुओं के समान बतलाया है। वास्तव में विद्या अथवा ज्ञान ही तो है, जो मनुष्य को अन्य जीवों से श्रेष्ठ, विवेकी और ज्ञानवान् बनाता है। विद्या एक ऐसा धन है, जिसे यदि मनुष्य ने प्राप्त कर लिया तो फिर उसे अन्य किसी भौतिक धन-सम्पदा की आवश्यकता नहीं; क्योंकि विद्या से ही वह समस्त सुखों, समृद्धताओं और उन्नति को पा लेता है। अतैव कहा गया है- "सद्विद्या यदि किं धनै:"[2] एवं "किमु धनैर्विद्याऽनवद्या यदि"।[3] इस धन को न तो कोई चुरा सकता है और न ही यह कभी नष्ट होता है तथा बाँटने पर और अधिक बढ़ता ही है-

'हर्तुयाति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा.....।[4]

ऐसे ही अनेक लाभ विद्या के बताऐ हैं, जिससे इसकी प्राप्ति के लिए मानव स्वत: ही प्रेरित होता है। यथा-

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यश: सुखकरी विद्या गुरूणां गुरु:।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीन: पुश:।।[5]

विद्वानों का सदैव आदर-सम्मान करने और उनसे स्पर्द्धा न करने की शिक्षा कवि ने दी है, फिर चाहे वह राजा ही क्यों न हो- येषा तान्प्रति मानमुज्झत नृपा: कस्तै: सह स्पर्द्धते।।[6]

सत्पुरुषाचरण – नीतिशतक के द्वारा कवि ने सत्पुरुषों के आचरण को अभिव्यक्त करते हुए उसकी महत्ता बतलाई है;[7] जिससे मनुष्य इस ओर प्रेरित होता है।

महात्मा अथवा सज्जन पुरुष सदैव सद्आचरण करते हैं और वे सभी को सुख, शान्ति व प्रसन्नता प्रदान करते हैं; साथ ही सत्पुरुष सदैव सफलता प्राप्त करता है। विपत्ति के समय धैर्य से काम लेना, उन्नतिकाल में सहनशील बने रहना तथा अन्यान्य विविध ऐसे कार्य एवं स्वभाव महात्मा सज्जन पुरुषों में देखे गए हैं, जो उनके सदाचारी व संतपुरुष होने का प्रमाण हैं; यथा–

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरूचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम।।[8]

हालाँकि, सद्पुरुषों का आचरण तलवार की धार के समान कठोर नियमों की अपेक्षा रखता है; इसीलिए कवि ने इसे "विषममसि धाराव्रतमिदम्"[9] कहा है। परन्तु यही कल्याण का मार्ग भी है; जिसने इस कठोर व्रत का पालन कर लिया, वह लोक में जन-जन के समक्ष आदर्श प्रस्तुत कर जाता है और यश का पात्र बनता है। शास्त्रविहित सत्य, क्षमा, दया, धैर्य, शौच, शम, दमादि सभी सदाचार है और यही धर्म भी है,[10] जिसका सदैव पालन व आचरण संत-महात्मा अथवा सज्जन पुरुष करते हैं और इसीलिए वे सत्पुरुष अथवा सदाचारी होते हैं। जबकि इसके विपरीत दुष्ट लोग सदैव दुराचार में प्रवृत्त रहते हैं और दूसरों के दुःख का, सामाजिक प्रदूषण का तथा सदाचरण पतन का निकृष्ट कार्य कर निन्दा का पात्र बनते रहते हैं। निर्दयता, लालच, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, चोरी, पिशुनता, अकारण लड़ाई-झगड़ादि करना तथा विभिन्न दुर्गुण दुर्जनों में होते हैं, जो स्व एवं पर –सभी के दुःख का कारण बनते हैं; अतः दुष्ट व्यक्तियों का परित्याग करने के निर्देश ग्रन्थ में प्राप्त होते हैं; क्योंकि दुष्ट व्यक्ति भयंकर सर्प के समान हानिकारक ही सिद्ध होते हैं– "किं सर्पैर्यदि दुर्जनाः";[11] अतैव कहा गया है–

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलंकृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः।।[12]

सुजन और दुर्जन के लक्षण, स्वभाव तथा सद्गुणों[13] व दुर्गुणों[14] को बतलाते हुए कवि ने सदाचार व दुराचार के क्रमशः वरण एवं त्याग की शिक्षा ग्रन्थ के माध्यम से मानव को दी है।

सत्संगति – नीतिशतक के विभिन्न श्लोकों में सत्संगति का निरूपण मिलता है; जिनके अध्ययन से सत्संगति के महत्व व लाभों का परिज्ञान होता है। अतः मानव को सत्संगति में रहने और दुःसंगति से दूर रहने अथवा उसका त्याग करने की शिक्षा प्राप्त होती है; क्योंकि संगति के आधार पर ही व्यक्ति की श्रेणी, चरित्र, व्यक्तित्व व स्वभाव बनता है। व्यक्ति को श्रेष्ठ, मध्यम एवं अधम बनाने में संगति बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अतैव नीतिकार ने कहा है–

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते।
स्वात्यां सागर शुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते।[15]

अर्थात् पानी की बूँद गर्म लोहे पर गिरे तो भाप, कमलपत्र पर मुक्ताकार एवं स्वाति नक्षत्र पर मोती बन जाती है; इसी प्रकार व्यक्ति भी संगत के अनुसार अधम-मध्यम-उत्तम गुणों वाला बनता है। सत्संगति के अनेक लाभ कवि ने बताए हैं–

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम्
सत्संगति कथय किं न करोति पुंसाम्।।[16]

इस प्रकार सत्संगति में वह सामर्थ्य है कि वह सब कुछ अर्थात् श्रेष्ठ सर्वस्व कर सकती है। मनुष्य तो क्या, वृक्षादि भी संगत से प्रभावित होते हैं। इसके लिए कवि ने दृष्टान्त प्रस्तुत किया है कि मलयगिरि पर विद्यमान अन्य वृक्ष चंदन वृक्ष के सम्पर्क से उसके समान सुगन्धित हो जाते हैं–

मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण
कङ्कोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनाः स्युः।।[17]

परोपकार – वैसे तो परोपकार सज्जनों के आचरण अथवा सदाचार से भिन्न नहीं; जैसा कि कहा गया है– 'परोपकार सतां विभूतयः।' फिर भी कवि ने इसे सर्वजनहिताय अतिमहत्वपूर्ण मानते हुए तथा सम्पूर्ण सृष्टिचक्र और प्रकृति का स्वभाव मानते हुए परोपकार की महिमा तथा लोकव्यापकता की अभिव्यक्ति की है। जिससे मानव को परोपकारी बनाने की शिक्षा प्राप्त होती है। प्रकृति में किस प्रकार परोपकार का गुण व स्वभाव निहित है, यह बतलाते हुए नीतिकार कहता है–

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै-
र्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।।[18]

इस प्रकार परोपकार करने वाले लोग दूसरों का सदैव भला ही करते हैं और इसीलिए वे परोपकारी एवं सत्पुरुष कहे जाते हैं- "एते सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये।"[19] वास्तव में परोपकार मनुष्य का आभूषण स्वरूप है और इसी से वह शोभा पाता है, अन्य कृत्रिम आभूषणों या सौन्दर्य प्रसाधनों से नहीं। यथोक्तम्- "विभाति कायः करुणापराणां परोपकरैर्न चन्दनेन।"[20] इस प्रकार विभिन्न पद्यों में परोपकार विषयक सुन्दर भाव व्यक्त कर कवि ने मानव को परोपकार करने की शिक्षा दी है, जो हर युग में सार्वभौमिक मानव के लिए अत्यावश्यक व उपयोगी है। क्योंकि यह पूरा ब्रह्माण्ड व सृष्टिचक्र भी परोपकार से ही चलता है; सभी अपना-अपना कार्य बिना किसी स्वार्थ व लाभ की कामना के करते हैं। जैसा कि कवि ने कहा है-

पद्माकरं दिनकरो विकची करोति
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति
सन्तः स्वयं परहिते विहिताभियोगाः।।[21]

धन - लोक में रहकर स्वजीविका-निर्वाह हेतु मनुष्य को धन की अपरिहार्य आवश्यकता होती है तथा धन के कारण ही व्यक्ति को पर्याप्त मान-सम्मान भी मिलता है; इसलिए कवि ने धन को भी आवश्यक माना है और इसकी महिमा व प्रभाव बतलाए हैं कि धनवान व्यक्ति मात्र एक धन के बल पर क्या-क्या बन सकता है-

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः सः पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति।।[22]

प्रायः लोक का यह स्वभाव है कि यदि व्यक्ति विभिन्न गुणों का धनी है और उसके पास धन नहीं है, तो उसे कोई नहीं पूछता। कुछ देर पहले तक जो व्यक्ति धनवान था, यदि वह कंगाल हो जाए तो लोग अचानक से उनके प्रति अपना व्यवहार बदल देते हैं- यह बात कवि को बड़ी विचित्र प्रतीत होती है; अतैव कवि ने कहा है-

अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः क्षणेन।
सोऽप्यन्य एव भवतीति विचित्रमेतत्।।[23]

यही लोक की सच्चाई है, अतैव धन अवश्य कमाना चाहिए। परन्तु जो धन कमाया है, उसका उचित भोगोपभोग भी करना चाहिए। धन के सदुपयोग हेतु भी कवि ने मार्ग दिखाया है, जहाँ उन्होंने -

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति।[24]

इस प्रकार धन की ये तीन गतियाँ बतलाई हैं। अर्थात् कमाए गए धन का दान भी करना चाहिए और स्वयं उपभोग भी, जो ऐसा नहीं करता उसका धन नाश को प्राप्त होता है। इसी प्रकार नीतिशतक में मानव-जीवन तथा लोक व्यवहार से सम्बन्धित अनेक उपयोगी बातों को अभिव्यक्त कर कवि ने मानव को शिक्षा व संदेश दिये हैं। यथा- आत्मसम्मान अथवा स्वाभिमानी होने की शिक्षा दी है। इस सन्दर्भ में मनस्वी व्यक्ति के गुण व स्वभाव, लक्षणादि को उजागर किया है।[25] भाग्य को कवि ने प्रबल माना है और कहा है कि भाग्य से जो प्राप्त होना है, वह अवश्य होता ही है- नाभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कृतः।[26] कवि की भाग्य विषयक मान्यता कर्म एवं पुनर्जन्म की अवधारणा के कारण ही है। क्योंकि कर्म व पुनर्जन्म को मानने वाला व्यक्ति ही प्रारब्ध- भाग्य को मानता है। अतैव कवि ने कर्म, पुरुषार्थ व उद्यम को भी अत्यावश्यक माना है और कहा है-

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कुर्वाणो नावसीदति।[27]

इस प्रकार परिश्रम व उद्योग को सबसे बड़ा बन्धु और सहायक बतलाकर मनुष्य को कर्मशील व उद्यमी होने की शिक्षा दी है।

सेवाधर्म को परम गहन अर्थात् अतिगम्भीर व कठिन बतलाते हुए कल्याणकारी बतलाया है- 'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।'[28] इसी प्रकार 'क्षीयन्ते खुल भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्।'[29] एवं 'मुखे सत्यावाणी'[30] कहकर वाणी की सत्यता, मृदुता और श्रेष्ठता को सर्वोत्तम और सतत् रहने वाला आभूषण कहा गया है। यह मनुष्य को मृदुभाषी होने और उत्तम वचन बोलने की शिक्षा देता है। उत्तम शील की महिमा व्यक्त करते हुए इसकी प्रशंसा की गई है- 'सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम्।'[31] इसके अतिरिक्त धीर पुरुष, सन्मित्र, मूर्ख व्यक्ति, राजा के गुण-कार्यादि विभिन्न विषयों पर कवि ने अपना चिंतन व्यक्त किया है; जिससे स्वतः ही इन विषयों का उपयोगी ज्ञान व शिक्षा प्राप्त होती है।

उपसंहार - नीतिकार भर्तृहरि ने नीतिशतक के विभिन्न पद्यों के द्वारा कुछ ऐसे विशेष नैतिक सिद्धान्त प्रस्तुत किए हैं, जो मनुष्य के स्व के लिए भी उपयोगी हैं तथा दूसरों के लिए भी। इनके द्वारा प्रदत्त सिद्धान्तों व शिक्षाओं से पथ-प्रदर्शन होता है, जिससे जीवन की राह आसान हो जाती है। व्यक्ति मान-सम्मान व स्वाभिमान से जीता है तथा दूसरों के सुख व कल्याण को भी सिद्ध करता है। मानवता के श्रेष्ठ मानदण्डों को कवि ने नीतिपरक श्लोकों द्वारा अभिव्यक्त कर मानव को इनसे सराबोर होने की शिक्षा दी है, जो सदैव आवश्यक व प्रासंगिक बनी रहने वाली हैं; क्योंकि उनसे मानव, समाज और जगत् का यथार्थ जुड़ा हुआ है। देश, कालादि का भेदभाव अथवा सीमा इन शिक्षाओं में नहीं बनती; ये बिना किसी भेदभाव के समग्र विश्व के लिए जरूरी हैं। अतः नीतिशतक में निबद्ध नैतिक सिद्धान्तों और शिक्षाओं को जीवन में उतारकर, उन्हें आत्मसात् व चरितार्थ कर मानवीय धर्म की श्रेष्ठता और सभ्य सामाजिकता का आदर्श प्रस्तुत किया जा सकता है। क्योंकि नैतिकता और आदर्शों का अविनाभाव सम्बन्ध है। वे समस्त मानवीय वृत्तियाँ और सद्गुण, जो व्यष्टि-समष्टि के हित व कल्याण के लिए जरूरी हैं, उनकी प्रशंसा व समर्थन किया गया है और जो प्रवृत्तियाँ लोकस्वभावरूप हैं, उनमें श्रेष्ठ एवं हितकर का वरण तथा निकृष्ट व हानिकर का त्याग करने की शिक्षा नीतिशतक से प्राप्त होती है; जो हर युग में प्रत्येक क्षेत्र में आदर्शों की स्थापना करने वाली है।

सन्दर्भ स्थल एवं सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1 नीतिशतकम: डॉ. रामनारायण झा एवं रणजीत कुमार झा, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, संस्करण-2015, पद्य-18 एवं अन्य स्थल पद्य-20
2 वही, पद्य-55
3 वही, पद्य-21
4 वही, पद्य-16
5 वही, पद्य-20
6 वही, पद्य-16
7 वही, पद्य-62 एवं अन्य स्थल पद्य-26,28,78,79,83
8 वही, पद्य-63 एवं तुलनीय पद्य-66
9 वही, पद्य-64
10 मनुस्मृति: टीकाकार - पण्डित श्री हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्भा प्रकाशन, 2/12 एवं 6/92
11 नीतिशतकम्, पद्य-21
12 वही, पद्य-53
13 वही, पद्य-62, 65, 70, 78-79
14 वही, पद्य-54-55, 60-61
15 वही, पद्य-67
16 वही, पद्य-23
17 वही, पद्य-80
18 वही, पद्य-71
19 वही, पद्य-75
20 वही, पद्य-72
21 वही, पद्य-74
22 वही, पद्य-41
23 वही, पद्य-40
24 वही, पद्य-43
25 वही, पद्य-33, 37, 82
26 वही, पद्य-101 एवं अन्य स्थल पद्य-49, 85, 88-91, 93, 96
27 वही, पद्य-86 एवं अन्य स्थल पद्य-94 "फलं कर्मायत्तं"।
28 वही, पद्य-58
29 वही, पद्य-19
30 वही, पद्य-65
31 वही, पद्य-83 एवं 108

श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य साहित्य में शिक्षा-व्यवस्था पर व्यंग्य

डॉ० भरतभाई ऐ पटेल

मार्गदर्शकश्री, आर्ट्स कोलेज विजयनगर, हिन्दी विभाग, हेम.ऊ.गु.युनि. पाटण

कमलेश बी० पटेल

पीएच.डी. शोधार्थी, हिन्दी विभाग, हेम.ऊ.गु.युनि. पाटण

समकालीन कथा साहित्य में उद्देश्यपूर्ण व्यंग्य रचनाओं के लिए प्रख्यात एवं व्यंग्यकार के रूप में प्रतिष्ठित लेखक श्रीलाल शुक्ल का योगदान रहा है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य को समृद्ध करने वाले शुक्ल जी का जन्म ३१ दिसम्बर १९२५ को लखनऊ के मोहनलाल कसबे के निकटवर्ती गाँव अतरौली में हुआ था। श्रीलाल शुक्ल जी का व्यक्तित्व इतना अच्छा था कि वह हंमेशा सबका स्वागत मुस्कुराकर करते थे। उन्हों ने सरकारी सेवा में उच्च स्थान पर रहते हुए भी हिन्दी व्यंग्य साहित्य को 'रागदरबारी' जैसी रचना दी, जो कि व्यवस्थाओं पर करारी चोट करने वाली रचना है। उनमे सहजता, सतर्कता, विनोदप्रियता, विद्वता और अनुशासन के सभी गुण थे। अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत, और हिन्दी भाषा में महारत प्राप्त शुक्ल जी संगीत के शास्त्रीय एवं सुगम दोनों पक्षों के रसिक-मर्मज्ञ भी थे।

भ्रष्टाचार, बेईमानी केवल राजनीति और प्रशासन में ही नही है। शिक्षा के क्षेत्र में भी इसकी विविध घटनाएँ दिखाई देती है। नए नए स्कूल कोलेज खूल रहे है। सरकार की ओर से इन्हें कोई सहायता मिले न मिले इन्हें कोई कठिनाई नहीं होती। बच्चो को स्कूल में दाखिला करवाना माँ-बाप के लिए बहुत बड़ी समस्या बन गई है। 'डोनेशन' के रूप में इन समस्या पीडितो को खूब लूटा जा रहा है। इसके बावजूद बच्चो को अच्छी शिक्षा प्राप्त होगी यह भी तो निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। आज कई लोग बीना पढ़ाई किए पैसों के बल पर डिग्रियाँ हासिल कर लेते है। इस पर शुक्ल जी ने अपनी व्यंग्य रचना 'झोला छाप' में लिखा है - "कोलेज यानी एक कोठरी का दफ्तर जहाँ कुछ रजिस्टर, रसीद बुके, फार्म, रबर की मोहरे, और छपे प्रमाणपत्र भर होने चाहिए। वहाँ दो चार हजार रुपये देकर एक डाक्टरी डिग्री ली जा सकती है। पूरे देश में इसी कोठरियां चारसो से ऊपर है।"[1] इस तरह रुपयों के बल पर डिग्रियाँ पाकर पैसा कमाने वालों की कमी नहीं है। आधुनिक युग में ज्ञान के लिए कम पढ़ते है और कमाने के लिए ज्यादा। आज तो शिक्षा एक व्यवसाय बन गया है।

शिक्षा-व्यवस्था और खास तौर पर 'बुद्धिजीवी' कहे जाने वाले प्राणियों से सबंधित 'रागदरबारी' उपन्यास में वर्णित एक प्रसंग दृष्टव्य है जिसमे 'वैदयजी' द्वारा संचालित एक महाविद्यालय के प्राचार्य द्वारा कहलवाया गया है - "और सच पुछो तो मुझे यूनिवर्सिटी में लेक्चरार न होने का कोई गम नही है। वहाँ तो और भी नरक है, पूरा कुम्भीपाक ! दिन रात चापलूसी। कोई सरकारी बोर्ड दस रुपल्ली की ग्रांट देता है और फिर कान पकड़कर जैसी चाहे वैसी थीसिस लिखा लेता है। जिसे देखो, कोई न कोई रिसर्च-प्रोजेक्ट हथिआए है। कहते है रिसर्च कर रहे है - हाँ हाँ याद आया ख्र बुद्धिजीवी। तो हालत यह है कि है तो बुद्धिजीवी, पर विलायत का एक चक्कर लगाने के लिए यह साबित करना पड़ जाए की हम अपने बाप की औलाद नही है, तो साबित कर देंगे। चौराहे पर दस जूते मार लों पर एक बार अमरीका भेज दो - ये है बुद्धिजीवी।"[2]

उपर्युक्त संदर्भ से गुजरते हुए याद आते है प्रेमचंद, जिन्होंने अपने जमाने के शिक्षित मध्यवर्ग के बारे में 'पशु से मनुष्य ' कहानी में लिखा था कि - "इन महान पुरुषो में से प्रत्येक व्यक्ति सैकड़ो नही, हजारो-लाखो की जीविका हड़प जाते है और फिर भी उन्हें जाति के भक्त बनाने का दावा है। पैदा दूसरे करे, पसीना दूसरे बहाएँ- खाना और मूछो पर ताव देना इनका काम है। मै समस्त शिक्षित समुदाय को निकम्मा ही नहीं, अनर्थकारी भी समझता हूँ।"

आज की शिक्षा पद्धति में कितने भी सुधार क्यों न लाए, विधयार्थीओ में नकल करना रुकता नहीं है। हमारी सरकार परीक्षाओं को चलाते समय नकल को रोकने के लिए नई-नई तकनीक अपनाती है,नकल करनेवाले हमारे छात्र भी नई तकनीक निकाल लेते है और इसमे कभी कभी कुछ मास्टर भी सहायता करते है। नकल करने की व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए श्रीलाल शुक्ल जी ने ' जीती-जागती सरकार का एक हसीन सपना ' व्यंग्य में लिखते है कि - "केंद्र-व्यवस्थापक दौरा करते हुए कमरा नं-७ में आते है, दो चार लडके किताबों से सीइधे नकल कर रहे है। 'यह क्या हो रहा है मास्टर साहब ? जवाब में कक्षा-नियंत्रक कहता है, नरक है सर! पाँच बार सबके पास से कागज निकलवाकर जला चुका हू , फिर भी किसी-न-किसी के पास कुछ न कुछ निकलता ही रहता है।"[3] एस तरह आज की सिक्षा पद्धति की स्थिति बन गई है, जो नकल किए बिना कुछ विधार्थी परीक्षाओं में अनुतीर्ण नहीं होंगे।शिक्षा जगत की वर्तमान परीक्षा प्रणाली एवं अध्यापको के नैतिक पतन पर चोट करते हुए वे कहते है की "आज की परीक्षाएँ छात्रों के लिए भले ही बेकार हो, मास्टरों के लिए बड़े काम की है।"[4]

वर्तमान की शिक्षा पद्धति में बहुत सारी कमियाँ दिखाई देती है। हर पाँच-छः सालो में पाठयक्रम बदला जाता है। पाठयक्रम बदलने के लिए जिस कमिटी को नियुक्त किया जाता है वे जो पाठयक्रम तय करते है वही अंतिम निर्णय है। इसलिए इसमे बहुत सारी कठिनाइयाँ दिखाई देती है। और ऊपर से अंग्रेजी जबरजस्ती बच्चों पर लादी जा रही है। इससे अमीर बच्चे ही ज्यादातर स्कूल जा रहे है और गरीब बच्चे थोड़े दिनों के लिए स्कूल जाते है,पर बाद में वे भैस चराने या खेतो में घास काटने चले जाते है। हमारा मानवसंसाधन मंत्रालय यह घोषणा कर रहा है कि सबको साक्षर बनायेंगे। लेकिन फिर भी आजादी के इतने सालो के बाद भी हमारे देश में बहुत सारे निरक्षर पड़े है। इसीलिए श्रीलाल शुक्ल वार्तमान शिक्षा पद्धति के बारे में लिखते है कि -

"वर्तमान शिक्षा-पद्धति रास्ते में पड़ी हुई कुतिया है,जिसे कोई भी लात मार सकता है।"[5]

देश के अनेक सरकारी स्कूलों की स्थिति दयनीय है। उनके पास अच्छा भवन तक नहीं है। कहीं कहीं तो तंबुओं में कक्षाएँ चलाती हैं, अर्थात न्यूनतम सुविधाओं का भी अभाव है। श्रीलाल शुक्ल इस पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि ख्र ष्यही हाल 'राग दरबारी' के छंगामल विद्यालय इंटरमीडियेट कॉलेज का भी है, जहाँ से इंटरमीडियेट पास करने वाले लड़के सिर्फ इमारत के आधार पर कह सकते हैं, सैनिटरी फिटिंग किस चिड़िया का नाम है। हमने विलायती तालीम तक देशी परंपरा में पाई है और इसीलिए हमें देखो, हम आज भी उतने ही प्राकृत हैं, हमारे इतना पढ़ लेने पर भी हमारा पेशाब पेड़ के तने पर ही उतरता है।"[6]

शुक्लजी ने शिक्षा के नाम पर चल रहे चक्रव्यूह का पर्दाफाश अपने व्यंग्य में किया है। विधा को जहाँ लोग माँ सरस्वती का दूसरा रूप मानते है, वही आज विधा का व्यापार चल रहा है। डिग्रियाँ बिक्री हो रही है। शिक्षा और अशिक्षा में कोई असमानता नहीं रह गई है। शिक्षा अब रिश्वत देकर प्राप्त होती है। श्रीलाल जी के व्यंग्य 'जीती जागती सरकार का एक हसीन सपना' में परीक्षा केन्द्र में चलने वाले नकल पर से पर्दा हटाने का जबरजस्त प्रयास किया गया है। जहाँ दिखाया गया है की किस प्रकार शिक्षा मंत्री से परीक्षा निर्देशक, दरोगा, अध्यापक, उपशिक्षा निर्देशक, जिल्ला विधालय निरीक्षक या बेसिक शिक्षा अधिकारी तक शामिल है छात्रो को नकल करवाने में। इस विषय पर विचार व्यक्त करते हुए शुक्ल जी लिखते है - "नजारा देखने के पहले नकलची सम्प्रदाय की बोली समझ लीजिए- 1. वार्ड या कंडीडेट अर्थात व लड़का या लड़की जिसे परीक्षा केंद्र में ड्यूटी पर तैनात कोई होमगार्ड, दरोगा, अध्यापक, नेता या गुंडा खास दिलचस्पी दिखाकर नकल कराकर पास करना चाहता हो। 2. मैटर अर्थात कोई किताब उसका फटा हुआ पन्ना, कोई कागज या कोई और सामग्री जिससे प्रश्नपत्र के उत्तर नकल करके उतारा जा सकता है।"[7] प्रस्तुत व्यंग्यात्मक निबंध में शिक्षा परिषद् के खिलाप जबरजस्त आरोप किया गया है और बताया गया है की किस तरह शिक्षा परिषद् के तहत शिक्षामंत्री, होमगार्ड, व्यक्ति, सिपाही, दरोगा, अध्यापक, नेता और गुंडा खास दिलचस्पी लेकर केंद्र व्यवस्थापक या कक्ष-नियंत्रक की मदद से परीक्षा दे रहे लडके या लड़कियों को नकल कराके पास कराने की प्रुवृति को बढ़ावा दे रहे है। इस व्यंग्य में इस बात पर बल दिया गया है की शिक्षा अब ज्ञान का नहीं बल्कि व्यवसाय का केंद्र बन चुका है और छात्र-छात्रा को ये सफेद नकाबपोश अपने भविष्य से खिलवाड़ करने का मौका प्रदान करते है।

विडंबना यह है कि आज कल अध्यापक भी अध्यपन के अलावा सब कुछ करते हैं। 'राग दरबारी' के मास्टर मोतीराम की तरह वे कक्षा में पढ़ाते कम हैं और ज्यादा समय अपनी आटे की चक्ष्की को समर्पित करते हैं। ज्यादातर शिक्षक मोतीराम ही हैं, नाम भले ही कुछ भी हो। ट्यूशन लेते हैं, दुकान चलाते हैं और तरह तरह के निजी धंधे करते हैं। छात्रों को देने के लिए उनके पास समय कहाँ बचता है? निष्कर्षत: कह शकते है की श्रीलाल शुक्ल जी ने अपनी रचनाओं के जरिये राजनीतिक, सामजिक, आर्थिक एवं शिक्षा आदी की विसंगतियों को अपने व्यंग्य का आधार बनाया है।

संदर्भ

1. श्रीलाल शुक्ल, जहालत के पचास साल: पृ.सं.:१०७
2. रागदरबारी, राजकमल पेपराबेक्स, पृ-१९१
3. श्रीलाल शुक्ल-जहालत के पचास साल, पृ.सं.१८०
4. श्रीलाल शुक्ल, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, पृ.१०८,१९७८
5. श्रीलाल शुक्ल- रागदरबारी, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण १९८३, पृ-१२
6. श्रीलाल शुक्ल- रागदरबारी, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण १९८३
7. श्रीलाल शुक्ल कुछ जमी पर कुछ हवा में, राजकमल प्रकाशन, १९९० पृ- ४०

‘डार से बिछड़ी’ उपन्यास में पाशो की मनः स्थिति

दक्षा बहन पी० सोलंकी

शोधार्थी (हिन्दी विभाग), हेम.उ.गु.युनि. पाटण

कृष्णा सोबती का कथा – साहित्य ज्यादातर नारी केंद्रित रहा है। उनके सभी उपन्यासों में मुख्य पात्र नारी ही है। कृष्णा सोबती नारी मन की गांठ को खोल कर रखती है। नारी की स्थिति को समझ कर उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से नारी की यथार्थ स्थिति का चित्रण किया है।

कृष्णा सोबती के लेखन का आरंभ ‘डार से बिछड़ी’ लघु उपन्यास से होता है। इस उपन्यास की नायिका पाशो है। जो नारी जीवन की असहाय और दयनीय स्थिति का प्रमाण देती है। जिसमें आदि से अंत तक पशो की करुण कथा का दस्तावेज है।

‘डार से बिछड़ी’ उपन्यास की कथा का मूलात्मा नानी का उचाव ‘‘संभलकर री ! एक बार का थिरका पांव जिंदगानी धूल में मिला देगा।’’[१] में निहित है जो पाशो की नियति बन जाता है।पाशो का जीवन इस उपन्यास का धरातल है।अपने परिवार से बिछड़ने वाली पाशो जीवन पर्यंत दर-दर की ठोकरें खाती है, और अंत में अपने परिवार से मिलती हैं। इस यात्रा में उसका सब कुछ लुट जाता है, उसका मान – सम्मान, सुख – सुहाग, सब – कुछ।

“कृष्णा सोबतीजी ने यहाँ पर बतलाया है, कि किस प्रकार एक अकेली औरत को समाज भटकाता है उसको सार्वजनिक संपत्ति समझकर हर कोई इस्तेमाल करना चाहता है। एक अकेली औरत को समाज एक चीज वस्तु, एक खिलौना बनाकर रख देता है। जिसे वह जब चाहे खेल सकता है और फिर ऊब जाने पर किसी और को बेच देता है। यही पाशो का दु:ख है ,यही पाशो कि विडंबना है, समस्या भी कि वह केवल मर्दों के हाथों की वस्तु बनकर रह गई है।”[२]

‘डार से बिछड़े’ की कथा पशो के इर्द-गिर्द घूमती रहती है। पाशो पाठक के दिल में करुणा जगा देती है। अपनी मां के कर्मों की सजा पाशो को मिलती है। मां के बारे में पूछने पर उससे कहा जाता है – “अरी कुएँ में डूब मरी थी तेरा बीज डालनेवाली ! अब तूर्संभलकर सांस भर ...”[३] पाशो किशोरी थी तब फतेहअली के बेटे करीमू के साथ उसके संबंध के बारे में उसके मामाओं को आभास हो जाता है। परिवार की इज्जत बचाने के लिए मामाओं द्वारा पाशो को मार डालने की योजना बनाई जाती है, जिसका पता पाशो को लग जाता है और वह घर छोड़कर शेखजी की हवेली पहुँच जाती है। यहीं से पाशो का जीवन बदल जाता है। इसी मोड़ पर पाशो का विवाह बुढे दीवानजी से हो जाता है। विवाह के बाद उसके जीवन में परिवर्तन होता है जहाँ उसे लाड – प्यार और दुलार मिलता है। जिंदगी के दिन बड़ी खुशहाली से बीत रहे थे। तभी दीवान पाशो की गोद में सुंदरलालकोडालकर संसार से विदा हो गए। पाशो निराश्रित हो जाती है। बरकत दीवान उसे लाला के घर बेच देता है।

पाशो का सौंदर्य सभी के आकर्षण का केंद्र था। लाला के घर चार पुत्रों की रखैल बनकर रहती है। वह अपने पुत्र से भी बिछुड़ जाती है ,वह एक खिलौना बन जाती है – “मैं भी चरखड़ी पर चढ़ी लज हूँ। कभी इस गागर, कभी उस गागर।”[४] लाला का मंझला बेटा पाशो की मर्जी विरुद्ध अपनी पत्नी बनाकर घर से भगाकर अपने साथ लड़ाई पर ले जाता है। अंग्रेजों की लड़ाई में मंझला मारा जाता है। पाशो फिर से विधवा बन जाती है।

सचमुच “पाशो तूफानी दरिया में भटकते तिनके सी कभी यहाँ कभी वहाँ। आज दीवानजी के घर तो कल मंझले के। पाशो मानो व्यक्ति नहीं, चीज है, पशु है, जहाँ है वहाँ उसका घर संभाल, उसका बिस्तर गर्म करें और वंश चलाने के लिए संतान दे... और पाशो है कि पिछले को छाती से चिपकाये जहां है वहीं की खैर मनाती है।”[५]

पाशो सोचती है – “ये सब मेरी लिखियों के हीलेख है। जहाँपांव रखती हूँ वही बुरा बरत जाता है। क्या पता था जिस घर शरण आऊंगी उसी कर की दुर्दशा भी देख लूँगी।”[६]

ष्शेखजी का लड़का पशो को पहचान कर घर वापस लाता है। पाशोफिर से डार से मिल जाती है। जीवन भर दर-दर ठोकरें खाई, मान – मर्यादा को खोया, उसके यौवन को न जाने कौन-कौन लूटे, उसे कितने लोगों ने हवस का शिकार बनाया, उसे नित्य नए जाल में ढकेलते रहे, वह एक पत्थर की अहिल्या बन चुकी थी। अंत में अपने परिवार से मिलकर पाशो खुश हो जाती है।”[७]

आरंभ से अंत तक पाशो का जीवन कई मोड़ो से गुजरता है। पाशो भारतीय आदर्शवादी नारी का प्रतिनिधित्व करती है। वह किसी से प्रतिरोध नहीं करती, वक्त के साथ समझौता कर लेती है। जो होता है उसे किस्मत का खेल समझती है। पाशो जीवन की अनेक कठिनाइर्या और निरंतर संघर्षों का सामना करती है।

कृष्णाजी के ‘डार से बिछड़ी’ की पाशो उन सभी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती हैं जो प्रतिरोध नहीं करती, जिस माहौल में जाती है, उसमें खुद को ढाल देती है।

संदर्भ सूची:

(१) कृष्णा सोबती, डार से बिछड़ी, पृष्ठ ९१
(२) डॉ. शेहनाज जाफर बासमेह, कृष्णा सोबती का कथा साहित्य एवं नारी समस्याएं, पृष्ठ १९२
(३) कृष्णा सोबती, डार से बिछड़ी, पृष्ठ १७
(४) वहीं, पृष्ठ ८३
(५) डॉ. शेहनाज जाफर बासमेह, कृष्णा सोबती का कथा साहित्य एवं नारी समस्याएं, पृष्ठ १९५
(६) कृष्णा सोबती, डार से बिछड़ी, पृष्ठ ११५
(७) डॉ. शंकर ए राठोड़, कृष्णा सोबती का व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ ६३

कबीर कालीन हिन्दु और मुस्लिम समाज

अरुण एन० पटेल

पीएच.डी. स्कोलर

H. N. G. University, Patan

कबीरकालीन युग बड़ा अशान्ति का युग था। कबीर का जीवनकाल भी महान अंधकारपूर्ण था और चारों ओर निराशा का साम्राज्य छाया हुआ था। प्रजा शासक वर्ग से त्राहिमाम हो गई थी। अनाचार, आचरण भ्रष्टता, अत्याचार, अशांति, निराशा और क्लाति का देश के कोने-कोने में बोलबाला था।

महाकवि कबीर का जीवनका सं. १४५५ से सं. १५७५ तक निश्चित किया है। यह समय लगभग चौदहवीं शताब्दी के मध्यकाल से पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्यकाल तक ठहरता है। मोहम्मद तुगलक का समय (३२५-५३) का था। जिसमें देश की राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक स्थिति बहुत खराब हो चुकी थी। तुगलक के समय में देश का वातावरण एकदम अशान्ति और क्रान्ति का साम्राज्य बन गया था। तुगलक के बाद देश का शासन फिरोजशाह तुगलक के हाथों में आया। फिरोजशाह तुगलक के समय में देश की परिस्थिति ओर भी खराब हो गई। इसीको लेकर यज्ञदत्त शर्मा लिखते हैं शफिरोजशाह तुगलक के समय में देश की परिस्थिति ओर भी खराब हो गई और उसकी धर्मान्धता ने देश में त्राहि-त्राहि मचा दी। ब्राह्मर्गो पर पॉल-टैक्स लगाया गया और उनते अपने धर्म को श्रेष्ठ कहने का भी अधिकार छीन लिया गया। इस काल में अनेकों हिन्दुओं को तलवार के घाट उतारा गया और कहा जाता है कि कुछ लोगों को जीवित ही जला दिया गया। फिरोजशाह के पश्चात भी कोई न्यायप्रिय शासक गद्दी पर नहीं बैठा। जो सुलतान सिंहासनारूढ हुए वह सभी क्रूर तथा धर्म के पक्षपातों और विलासी थे। इसी अशांति के समय में तैमूर ने आक्रमण करके हिन्दुओं पर जो जुल्म ढाया वह इतिहास के पन्नों पर उन धृणित अक्षरों से लिखा हुआ है कि जिन्हें मानवता सम्भवत: कभी भी धोकर साफ नहीं कर सकेगी।

इससे स्पष्ट पता चलता है कि कबीरकालीन समाज में शासक वर्ग मुसलमान थे। उनके कई अत्याचार हिन्दु प्रजा सहन कर रही थी। शासक वर्ग भोग-विलास में आकण्ठ मग्न था। उनके लिए पर धन और पर स्त्री का अपहरण आम बात बन गई थी। परिणाम स्वरूप शोषक और शोषितवर्ग के रहन-सहन में आकाश पाताल का अंतर हो गया था। ये तथाकथित स्वामी समाज के कमजोर वर्ग पर नाना प्रकार के अत्याचार करते रहते थे। ऊँच और नीच के बीच की खाई ओर भी गहरी हो गई थी। गाँव के ढाँचे पर समाज के उपरी हिस्से के समृद्ध लोगों का अधिकाधिक प्रभाव बढ़ गया था। किसानों की हाला अधिकाधिक दयनीय हो गई थी। इसलिए काबीरदास ने तथा कथित स्वामी और शोषक वर्ग को निन्दा करते हुए कहा है।

"इही उदर के कारण जग चाँच्यौ निस जाम।
स्वामी पणौ जो सिरि चदयाँ, सरयौ ने को काम।।"

ऐसी दुर्दशा के समय में शासन की बागडोरें तुगलक वंश के हाथों से छिनकर लोदी वंश के हाथों में आ गई। इस बदली हुई स्थित का सिधा असर समाज पर पड़ा। सिकन्दर लोदी का समय हिन्दुओं के लिए ओर भी भयानक आया। इसीको लेकर यज्ञदत्त शर्मा लिखते है - 'इस काल में हिन्दुओं को गाजर-मूली की तरह काटकर फेंक दिया गया। एक एक दिन में उसने १५०० हिन्दुओं को मौत के मुँह में पहुँचा कर अपनी इस्लामी लिप्सा को शांत किया। यहां तक कि उसने लोगों का यमुना में स्नान करना भी बन्द कर दिया था। मंदिरों को तुड़वाकर उनके स्थान पर, सराएँ बनवाई गई और इस प्रकार हिन्दु धर्म पर कुठाराघात हुआ।

इस तरह हिन्दु प्रजा, मुस्लिम शासक वर्ग की बड़ी यातनाएँ सहन कर रही थी। समाज की दशा अत्यंत विषम और सोचनीय थीं। लोदी के शासनकाल में शासन और उनके दरबारी अधिकार मद में डूबे हो रहते थे। शासनतन्त्र से संबंध निचले स्तर के कर्मचारी भी सामान्य जनता के शोषण के पीछे लगे रहते थे। ये स्वेरधाचारी कर्मचारी मनमाने ढंग से जनता से धन की उगाही करते थे, उसका कुछ अंश बादशाहों तथा सामन्तों को भैट चढाते थे, शेष का स्वयं भोग करते थे। सामान्यजन पर होनेवाले ये इत्याचारों की कही भी सुनवाई नहीं होती थी।

इस युग में संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था जातिगत आचार विचार, वंशगत ऐश्वर्य-मद एवं ऊँच-नीच की भावना पर आधारित थी। आचार विचार भी रूढिगत मान्यताओं, अंधविश्वासों, बाह्याचार और पाखण्डों से पर्यवसित हो गया था। फलत: मानवजीवन की सार्थकता कर स्त्रोत अवरूढ हो गया था। सारा समाज एक प्रकार की जड़ता और मूल्य हीनता की स्थिति को पहुंच चुका था। असत्य को हो सत्य माना जाता था। सारा समाज वर्ण आश्रय, वेदशास्त्र, तप, तीर्थ, व्रतपूजा, दान-पुण्य, माया- उ - मोह, धन- यौवन के मद से ग्रस्त था। राजारंक, योगी-जती, काजी - मुल्ला, स्त्री-पुरुष, देवी-देवता, पीर-पेगम्बर सभी विषय वासना से ग्रस्त थे। कोई भी प्रजा को सही मार्ग पर ले जानेवाला नहीं था।

समाज में रक्षक ही भक्षक बन गये थे। प्रजा की गाढ़ी कमाई का अधिकांश भाग बादशाहों की विलास सामग्री जुटाने में व्यय हो जाता था। किसान अन्य पैदा करके भी भूखे रहते थे। वयनजीवी कपड़ा बुनकर भी नग्न रहते थे। दूसरी और बादशाहों के लिए विशालकाय महल बनते थे। उनकी सजावट पर करोडों

रूपए खर्च होते थे। ये महल सहस्त्रों रूपवती बेगमों, रक्षिताओं, वेश्याओं और सेविकाओं से भरे रहते थे। उनके वस्ताभूषण चकाचौध पैदा करते थे और सुवासित द्रव्यों से महल सराबोर रहते थे। धर्म के नाम पर पाखण्ड और मिथ्याचार को बढ़ावा मिल रहा था। कयनी-करनी में कोई साम्य नहीं था, छल और धूर्तता का साम्राज्य था। तथाकथिक साधुओं को भोड़ चतुर्दिक दिखाई पडती थी, जिनकी वेशभूषा संतों जैसी थी लेकिन आचरणनिम्न कोटि का था। छल-प्रपंच, झूठ- परेब, पाखण्ड और धूर्तता आदि इनकी जीवन चर्या थी। देश में प्रमुख रूप से दों धर्मो की बोलबाला थी हिन्दु धर्म और मुस्लिम धर्म।

(अ) हिन्दू समाज

(१) ब्राह्मण :

कबीरकालीन समाज में ब्राह्मण सर्वोपरि माने जाते थे। उनका कार्य सामान्यत: वेद पढना - पढना, यज्ञ करना कराना तथा दान लेला देना होता था। फिर भी ब्राह्मणों को राजग्रहों से भी धन मिलता था। इसके अतिरिक्त वे ब्याज के माध्यम से भी धनार्जन करते थे। पूजा-पाठ का कार्य केवल ब्राह्मणों तक ही सीमित नहीं में कुछ ओर लोग भी इस व्यवसाय में घुस गये थे। फिर भी मन्दिरों में अधिकांश पुजारी ब्राह्मण ही थे।

कबीरकालीन समाज के बाहामणों के व्यवसाय मर्यादित ही नहीं थे लेकिन कई ब्राह्मणों ने अन्य अनेक व्यवसाय अपना लिये थे। कुछ ऐतिहासिक संकेतों के आधार पर उस समय के कई ब्राह्मण लोग खेतीबाड़ी भी करने लगे थे। खेतों के अलावा भी अन्य सामान्य कहे जानेवाले काम-धंधे उन्होंने अपना लिये थे। डॉ. के. श्रीलता के शब्दों में श्आजीविका के लिए रसोइये के रूप में अथवा हरकारे के रूप में जहाँ कई ब्राह्मण काम करने लगे थे तो कई चिकित्सक और ज्योतिषी बनकर अथवा तीर्थस्थानों में पाण्डेपुजारी बनकर अपनी रोजी कमाने लग गये थे, किन्तु फिर भी अधिकरत ब्राह्मण दैत्यस्थिति में ही रहे थे। इस अवस्था में भी वे अपने कल्पित जन्मजात गुणों और विरासतो, विशेषाधिकारों को बनाये रखने के लिए पुराने धर्म ग्रंथों और रूढ़ आचारों की आड़ में सचेष्ट दिखलाई दे रहे थे।

कबीरकालीन समाज में बाह्याडम्बर और पाखण्ड फूले पले थे, इसका ऐतिहास भी गवाह है। परिणामस्वरूप समाज में ब्राह्मण वे कहे जाते थे जो ब्रह्म को जानते तक नहीं, केवल यज्ञ में प्राप्त धन से अपना पेठ पालते थे वे स्त्रष्टा को पहचानते तक नहीं और कर्मधर्म की बातें करते थे। सूर्य-चन्द्र में ग्रहण लगने पर और अमावस्या, द्वितीयाजीदि तिथियों पर वे दान लेते थे और अपने स्वार्थ के लिए शांतिपाठ तथा पूजा अर्चना, आराधना आदि करते थे। ऐसे ब्राह्मणों का जीवन श्राद्ध आदि से प्राप्त अन्य के द्वारा चलता था और उनके भीतर वासना व्याप्त रहती थी। वेयह बराबर आशा लगाये रहते थे कि होम कब होगा ? उसकी पूर्णाहूति कब होगी ? वे मृतक के श्राद्ध आदि उदाचि कर्म सम्पन्न कराकर भोजन करते थे। वे स्वयं तो जूठा खाते ही थे, दान में प्राप्त अपवित्र सामग्री को पुत्र व स्त्री को भी खिलाते थे। किन्तु वे वास्तव में प्रभु के भक्त नहीं थे, वे बाह्याडम्बर से अपने को पवित्र मानते थे, किन्तु सच्चे विष्णुभक्तों से द्वेष करते थे। इसलिए कबीरदास ने तथाकथित ब्राह्मणों को जन्मजात श्रेष्ठता और कर्महीनता तथा बाडडम्बरों की ओर निर्देश करते हुए कहा है , -

'तुनहुसमन मिलि विप्रमती सो, हरि बिनु बूडी नाव भरोसी।
ब्राह्मण होके ब्रह्म न जाने, घर में जज्ञ प्रतिगृह आने।
जे सिरजा तेहि नहिं पहचानें, कर्म, धर्म मति बैठि बखानै।
गृहत अमावसन ओर दुईजा, सोती पाँति प्रयोजन पूजा।
प्रेम कनक मुख अंतर बाता, आहुति सहित होम की आसा।
कुल उत्तम जग माहि कहावै, फिर फिर मध्यम कर्म करावै।
कर्म असोच उरिछष्टै खाई, मति भ्रष्ट जम लोक सिधाई।
सुत दारा मिलि जूडो खाई, हरि भक्तिन को छूति लगाई।

(२) क्षत्रिय :

क्षत्रियों का रूढ़ व्यवसाय या कर्तव्य समाज या देशकी रक्षा करना होता है। कबीर के शब्द में क्षत्रिय वह है जो युद्धकर, अपने प्राणों का होमकर, दात या घात से प्रजा की रक्षा। हिंसक या घातक दो प्रकार के होते हैं -

(१) आधिभीतिक, जैसे सिंह, भेड़िया आदि हिंसक पशु तथा दुराचारी व्यक्ति।

(२) आध्यात्मिक, जैसे काम, क्रोध आदि।

लेकिन वास्तविक क्षत्रिय वही है जो निम्न प्रवृत्तियों को नष्टकर अपने वास्तविक श्स्वश की करे रक्षा करता है।

"क्षत्री करे क्षत्रिया धर्मा। वाके बढ़े सवाई कर्मा।
क्षत्री सो जो कुटुंब हि बूझे। पाँचों मेरी एक के बूझे।
जीवहिमारि जीव प्रति पालै देखन जन्म आपनो घालै।"

इस तरह कबीरदास ने भी क्षत्रियों का गुणगान किया है, क्योंकि वे अपना सारा जन्म प्रजा की रक्षा करने में ही गँवा देते थे।

कबीरकालीन युगम क्षत्रिय भूपाल या राजा होते थे और वे राजा, राव, राणा, छत्रपति आदि नामों से जाने जाते थे। कुछ का उपयोग देश के रक्षा कार्यों में किया जाता था। क्षत्रियों में अधिकांश वीर सैनिक होते थे, किन्तु देश में मुस्लिम शासन की प्रस्थापना से सेना में क्षत्रियों के अतिरिक्त इधर हिन्दुओं और

मुसलमानों को भी स्थान मिलना प्रारंभ हो गया था। हिन्दु राज्यों में क्षत्रिय को अब भी वही सम्मान मिला हुआ था, किन्तु मुस्लिम शाककों ने सेना के ऊँचे पद पर प्राय: मुसलमानों के लिए ही सुरक्षित कर लिये थे। परिणामस्वरूप क्षत्रिय क्षीण हो गये थे। उनका भी कई तरह से कहीं ना कहीं शोषण अव्यय होता रह्या था। आतकी मुस्लिम प्रजा के साथ कई बार क्षत्रियों के युद्ध भी हो जाया करते थे। इस युद्ध का मूल कारण या तो जमीन जायदाद होती थी, या क्षत्रियों को बहु-बेटियाँ, क्योंकि तत्कालीन समाज के शासक भोग-विलास में आकंठ डूबे हुए रहते थे। अपने भोगविलास के लिए वो जो चीज इस्तेमाल करना चाहे वो पसंद आने पर समाज में से उठा लेते थे। इसके जिए उनको कोई रोक-टोक भी नहीं थी, या ना उनके प्रति कोई फरियाद सुनने वाला भी था।

परिणामस्वरूप क्षत्रियों के रूढ़ व्यवसाय में परिवर्तन आ गया था। कई क्षत्रियों ने खेतीबाड़ी आदि का व्यवसाय भी अपना लिया था।

(३) वैश्य :

वेश्यों, का व्यवसाय कृषि और व्यापार होता है। इसके अतिरिक्त क्रय-विक्रय आयातनिर्यात एवंवस्तु विनिमय के अतिरिक्त लेन-देन का व्यवसाय वे करते हैं। कबीरकालीन समाज में क्रय-विक्रय करनेवाले लोग बनिये कहलाते थे। जो लोग बाहर जा जाकर वस्तुएँ बेचते थे वेबनजारे कहलाते थे। बड़े पेमाने पर आयात विकास करनेवाले लोग सेठ कहलाते थे, तथा लेन-देन करनेवाले शाह या साहूकार कहलाते थे। कबीरकालीन समाज में ये लोग बड़े धनी हुआ करते थे।

(४) शूद्र :

कबीरकालीन समाज में शूद्रों की हालात बड़ी दयनीय थी। उनका कार्य उच्चवर्णो की सेवा चाकरी करना होता था। ये निम्न कार्य करनेवाले ही शूद्र माने जाते थे। येनिम्नकार्य करनेवालों में कई लोगों का समावेश किया जाता है। ये निम्न लोगों में शराब बनानेवाले, स्वर्णकार, जुलाहै, पनवाडी, कसेरे, गड़रिये, ग्वाले, बढ़ई, लुहार, माट, जहीर कायस्य, रंगरेज, माली, कपड़ा चित्रित करनेवाले नाई, तेली बाजीगर, बहुरूपिये, संगीतकार और अन्य लोग भी सम्मिलित ये जो निम्न कार्य करते थे।

ये शूद्रजाति के लोग उच्चवर्ग के लोगों के कई अत्याचार, पीड़ा एवम् यातनाएँ सहते रहते थे, लेकिन उनकी सुननेवाला कोई नहीं था। ब्राह्मणों द्वारा भी उन पर कई अत्याचार किये जाते थे। समाज में उनकी ऊँचा स्थान नहीं दिया जाता था। उनकी छाया भी हेय मानी जाती थी। वे सवर्णो के मंदिरों ओर कुओं पर भी नहीं जा सकते थे। वे सड़क पर थँक नहीं सकते थे। महाराष्ट्र प्रदेश में शुद्रों को अपने गले में थुंकयानी लटकाकर चलना पड़ता था। राजपथ पर चलते समय झाडू से अपने पदचिन्हों को मिटाना उनके लिए आवश्यक था। अगर ऐसा नहीं किया जाता तो उनको उचित दंड की व्यवस्था थी। सवर्ण लोग उन पर कहीं पर भी रोक-टोक एवं उनके साथ बिभत्स वर्तन कर सकते थे और ये दलित लोग इतने नीचे गिर गये थे कि अपने इस आत्मसम्मान को ठेस पहुंचानेवालों के सामने दे फरियाद भी नहीं कर सकते थे। क्योंकि फरियाद भी करें तो किसे करें ? कोई सुननेवाला ही नहीं था। रक्षक ही भक्षक बन बैठे थे। अगर रास्ते में कोई ब्राह्मण मिल पाये तो उन्हें साष्टांग प्रणाम भी करने पड़ते थे।

पंजाब में भी ये छुआछूत की समस्या ज्यादा बल पर थीं। इसीको लेकर डॉ. सरनामसिंह श्रमा लिखते हैं। श्पंजाब में जहाँ छूआछूत के विचार को प्रखरता कम नहीं थी, वहाँ भी मंगियों को हाथ में झाडूलेकर जोर-जोर से श्हटो-चढ़ोश चिल्लाते हुए चलना पड़ता था, जिससे उनसे असावयानी के कारण कोई छऊ न पाये।

इस तरह शूद्रों को स्थिति दयनीय तो थी हो लेकिन विदेशियों के जमने पर इस में थोड़ा थोड़ा सुधार आया था। परिणामस्वरूप कबीरकालीन समाज के कई शूदोंने खेती-बाड़ी के अतिरिक्त यथाशक्ति वाणिज्य को भी अपनाया था।

(आ) मुस्लिम समाज :

मुसलमान समाज विजेताओं का समाज था। इसलिए शासकवर्ग अर्थात् सुलतान उमरा, उलेमा एवं विविध सरकारी पद जो उच्च पद माने जाते थे, उस पर मुसलमान लोग ही बिराजमान थे।

मुसलमान समाज में अधिकतर लोग ऐसे थे जो पहले हिन्दू थे और बाद में धर्मान्तरण से मुसलमान बने हुए थे। इसलिए विजेताओं का समाज होते हुए भी उनकी दशा हिन्दु समाज से किसी भी तरह अच्छी नहीं थी। बड़े-बड़े सामंत योद्धा और पराक्रमी न रहकर केवल आचरणभ्रष्ट अमीर और ऐशपसंद साधारण व्यक्तिमात्र रह गये थे। भोग-विलास मेंरत रहने केकारण समाज दुर्बल पड़ गया था। परिणामस्वरूप देश का शासन अस्त-व्यस्त हो गया था।

शासक वर्ग अपने भोग-विलास के लिए कई तरह के अत्याचार करते रहते थे। इसके लिए बड़े-बड़े युद्ध छिड़ जाते थे। युद्ध में जो राजा हार जा ता था उसे पकड़ के कैद किया जाता था और बन्दी बनाकर बलपूर्वक धर्मपरिवर्तन करा दिया जाता था। इस तरह धर्मपरिव्रतन किए हुए लोग दापस हिन्दु धर्म स्वीकार नहीं कर सकते थे, क्योंकि हिन्दु धर्म के नियम बड़े थे। धर्मान्तरण से पहले यदि उनकी जाति हिन्दुओं में स्तरीय ही क्यों न रही ही तो भी एक बार मुसलमान जाने पर हिन्दु उउनहें जातिभ्रष्ट हो मानते थे। परिणामस्वरूप मुस्लिम समाज में दासप्रथा चलती थी। दासों में ऐसे कई धर्मपरिवर्तित हिन्दु हो थे। इन दासों की स्थिति बड़ी दारूण थी। उनका क्रय-विक्रय होता था। मालिक जैसा चाहता था ऐसा उनको करना पड़ता था। मालिक उसे जब चाहे तब कहीं भी, किसी भी हालात में बेच सकता था। मालिक का पूरा अधिकार उस पर रहता था। कबीर की रचनाओं में भी कहीं-कहीं इसकी झांकी होती है

"कबीर करत है बीनती, भी सागर के नाँई
बँदै ऊपरि जोर होत है, जॅम हूँ बरिज गुलाई।।"

इस प्रकार अधिकांश मुस्लिम समाज भी जर्जर, क्षीण, शक्तिहीन और दिशाहीन हो चुका था। मुठ्ठीभर शक्तिशाली राजा और सामंत अधिकांश प्रजा पर अत्याचार और अत्याचार ही करते थे।

संदर्भ सूचि :

(१) कबीर साहित्य के आधार स्तंभ : डॉ. यग्नदत शर्मा
(२) कबीर ग्रंथावली : डॉ. भगवतस्वरूप मिश्र
(३) भक्ति साहित्य के आधार स्तंभ : डॉ. यग्नदत शर्मा
(४) कबीर कवि और युग : डॉ. के. श्रीलता
(५) कबीर बीजक : शुकदेवसिंह
(६) कबीर ग्रंथावली : डॉ. श्यामसुन्दरदास
(७) कबीर : डॉ. सरनामसिंह

पंचायती राज एवं नगरीय संस्थाओं में महिला आरक्षण तथा महिला सशक्तिकरण

सुनील कुमार रावत

शोधार्थी- राजनीति विज्ञान, राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य, विश्वविद्यालय, अलवर (राज.)

सुशासन तब तक सफल नहीं हो सकता है जब तक आधी आबादी को समुचित प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त हो जाता है। इस दिशा में पंचायती राज व्यवस्था कारगर और सार्थक भूमिका अदा कर सकती है। महिला सशक्तिकरण में पंचायती राज की विशेष भूमिका है, क्योंकि इसके माध्यम से सामाजिक सशक्तिकरण लाने का प्रयास किया जा रहा है। महिला सशक्तिकरण की दृष्टि से पंचायती राज मील का पत्थर साबित हो रहा है।

महिला सशक्तिकरण एक बहुआयामी एवं सतत प्रक्रिया

महिला सशक्तिकरण का अभिप्राय महिलाओं को पुरूषों के बराबर वैधानिक, राजनीतिक, मानसिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में निर्णय लेने की स्वतंत्रता से है। उनमें इस प्रकार की क्षमता का विकास करना जिससे वे अपने जीवन का निर्वाह इच्छानुसार कर सकें एवं उनके अन्दर आत्मविश्वास और स्वाभिमान जागृत हो। महिला सशक्तिकरण एक बहुआयामी एवं सतत चलने वाली प्रक्रिया है। इसका उद्देश्य एक न्यायपूर्ण एवं सम-समाज की स्थापना करना है क्योंकि लैंगिक समता को सुशासन की कुंजी कहा जाता है। सुशासन तब तक सफल नहीं हो सकता है जब तक आधी आबादी को समुचित प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त हो जाता है। इस दिशा में पंचायती राज व्यवस्था कारगर और सार्थक भूमिका अदा कर सकती है। महिला सशक्तिकरण में पंचायती राज की विशेष भूमिका है, क्योंकि इसके माध्यम से सामाजिक एवं संस्थागत स्तर पर बदलाव आया है तथा राजनीतिक सशक्तिकरण के माध्यम से सामाजिक सशक्तिकरण लाने का प्रयास किया जा रहा है। कई अध्येता इसे नारीवादी क्रान्ति का नाम देते हैं क्योंकि इसका परिप्रेक्ष्य बहुत व्यापक है।

पंचायती राज लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का एक रूप

स्वायत्तशासी संस्थायें लोकतंत्र का मूल आधार है। सच्चे लोकतंत्र की स्थापना तभी मानी जाती है जबकि देश के निचले स्तरों तक लोकतांत्रिक संस्थाओं का प्रसार किया जाये एवं उन्हें स्थानीय विषयों का प्रशासन चलाने में स्वतन्त्रता प्राप्त हो। वस्तुतः ये संस्थायें ही लोकतंत्र की सर्वश्रेष्ठ पाठशाला एवं लोकतंत्र की सर्वश्रेष्ठ प्रत्याभूति हैं। स्थानीय संस्थायें सरकार के दूसरे अंगों से बढ़कर जनता को लोकतंत्र की सुरक्षा देती है। पंचायती राज, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का एक रूप है, जिसमें लोगों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करके पूर्व-निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये प्रयास किये जाते है। अच्छी शासन-व्यवस्था के मुख्य लक्ष्यों के अन्तर्गत व्यवस्था को अधिकाधिक क्षमतावान बनाने हेतु जन आवश्यकताओं को पूर्ण करना, जनसमस्याओं का निराकरण, तीव्र आर्थिक प्रगति, सामाजिक सुधारों की निरन्तरता, वितरणात्मक न्याय एवं मानवीय संसाधनों का विकास आदि शामिल हैं। पंचायती राज की स्थापना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण जीवन का सर्वांगीण विकास करना है। इसके अतिरिक्त कृषिउत्पादन में वृद्धि ग्रामीण उद्योगों का विकास, परिवार कल्याण कार्यक्रम, सामाजिक वानिकी एवं वृक्षारोपण कार्यक्रम, पशु संरक्षण, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य, शिक्षा व्यवस्था आदि का उचित प्रबन्धन कर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ता प्रदान करना भी पंचायती राज का मौलिक उद्देश्य है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में उदारवादी लोकतन्त्र अपनाया। भारतीय लोकतन्त्र पूर्णतः ब्रिटिश संसदीय मॉडल पर आधारित है, किन्तु इसमें कुछ भारतीय मूल्यों का भी समावेश किया गया है। प्राचीन काल में जिस पंचायती राज की व्यवस्था का विकास हुआ था, उसका स्वरूप राजनीतिक कम, सामाजिक अधिक था। ग्राम पंचायतें गाँवों के सम्पूर्ण जीवन को दिशा देती थीं तथा भारतीय ग्रामीण जीवन स्वावलम्बी था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् संविधान निर्माताओं ने गाँवों में पंचायतों को पाश्चात्य लोकतांत्रिक प्रणाली के आधार पर गठित करने की संविधान में व्यवस्था की।

संविधान में एक निर्देश समाविष्ट किया गया, ''राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठायेगा और उनको ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिये आवश्यक हों'' इस अनुच्छेद का उद्देश्य ग्राम पंचायतों के संगठन हेतु राज्यों की निर्देशित करना हैं, भारत के उच्चतम न्यायालय ने भी राज्य को स्थानीय परिषद के स्तर पर लोकतंत्रा की स्थापना की सलाह दी एवं यह संप्रीक्षित किया कि-''हम भारत के लोग'' शब्द मात्रा एक संवैधानिक मंत्र ही नहीं है, वरन् इसका तात्पर्य पंचायत स्तर से प्रारम्भ होकर उपरी स्तर तक के उन लोगों से है जो ''भारत की शक्ति के धारक है।''

आरम्भ में गाँवों एवं नगरों के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास में इन संस्थाओं की सक्रिय भूमिका रही, लेकिन कालांतर में ये संस्थायें निष्क्रिय होती चली गईं, एक समय ऐसा आया कि ये संस्थायें मृत प्रायः सी हो गई। एक तरफ लंबे समय तक इन संस्थाओं के चुनाव नहीं हुए तो दूसरी तरफ महिलाओं एवं पिछड़े वर्गों को सत्ता में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाया, इसका मुख्य कारण राज्यों में छिन्न-भिन्न कानून होना और उन पर केन्द्र का नियन्त्रण न होना रहा। संविधान के अन्तर्गत ग्राम पंचायतों के गठन का नीति-निर्देशक तत्व सुनिश्चित होते हुए भी ये संस्थायें उपेक्षित सी रहीं। अतएव इन्हें संवैधानिक दर्जा देने की आवश्यकता अनुभव की गई, इसके लिए सन् 1989 में 64वें संविधान संशोधन के रूप में पंचायती राज विधेयक लाया गया पर वह पारित नहीं

हो सका। अंतत: संविधान के 73 वें संशोधन अधिनियम द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। पंचायती राज की स्थापना के उद्देश्य एवं भारतीय सन्दर्भ में इसके विकास के संक्षिप्त विवरण के साथ-साथ पंचायतीराज में महिलाओं की भूमिका के विश्लेषण का महत्वपूर्ण स्थान हैं। विश्व आज सहस्राब्दिक परिवर्तनों की ऐसी दहलीज पर खड़ा है, जहाँ उसे चयन और चुनौतियों की व्यूह-रचना का सामना करना पड़ रहा हैं। विश्व को आज मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों प्रकार के परिवर्तनों का सामना करना पड़ रहा हैं। मात्रात्मक परिवर्तनों का सम्बन्ध आर्थिक और तकनीकी विकास के साथ है, जबकि गुणात्मक परिवर्तनों का सम्बन्ध भिन्न मूल्यों और लोकाचार से अनुशासित नये समाज के प्रतिमान के साथ है, जहाँ मनुष्य 'परभक्षी', प्रदूषक और उपभोक्ता की बजाय संरक्षक तथा उत्पादक की भूमिका का निर्वाह करें इन परिस्थितियों में, महिलाओं से इस शताब्दी के अन्तिम दौर में एक विशेष प्रकार की भूमिका की अपेक्षा की जा रही हैं। महिलाओं के बारे में अध्ययनों और आंदोलनों का केन्द्र बिन्दु अब मानव हित में 'नारी-मुक्ति' से हटकर महिलाओं को अधिकार देने पर केंद्रित हो गया हैं। विकास और आधुनिकीकरण के साथ-साथ लिंग समानता की अवधारणा को सामाजिक परिवर्तन का सर्वप्रमुख मुद्दा माना जा रहा हैं। महिलाओं को न केवल आर्थिक विकास में समान भागीदारी बनाने पर बल दिया जा रहा है,अपितु इन्हें प्रत्येक मोर्चे पर समान समझने की आवश्यकता महसूस की जा रही हैं। इसके साथ-साथ महिलाओं की पुरूषों के समान राजनीतिक सहभागिता का प्रश्न भी विश्व की आधुनिक सभ्यता का सर्वप्रिय चर्चित विषय हैं।

महिलाओं को समान अधिकार

महिलाओं को अधिकार देने की अवधारणा विकासशील समुदायों में भी अधिक लोकप्रिय हैं। विकासशील देशों का नारी आन्दोलन मुख्य रूप से सामाजिक-आर्थिक मुद्दों पर आधारित हैं। भारत भी इसका अपवाद नहीं हैं। भारत में संविधान लागू होते ही महिलाओं कोसमान राजनीतिक अधिकार एवं नागरिक स्वतन्त्रता मिल गई। हमारे संविधान में न केवल कानून के सामने समानता और समानकानूनी संरक्षण की गारण्टी दी गई है, बल्कि राज्य को ऐसेअधिकार भी दिये गये हैं कि वह भारत में महिलाओं के हितों को बढ़ावा देने के लिये रचनात्मक उपाय करें। संविधान में इस बात की गारंटी भी दी गई है कि सार्वजनिक नियुक्तियों में समानताबरती जायेगी और साथ ही प्रत्येक नागरिक का यह मूलभूत कर्तव्य बताया गया है कि वह महिलाओं की गरिमा के प्रतिकूल पंक्तियों का त्याग करें। संवैधानिक आदेश को पूरा करने के लिये भारतीय संसद ने अपने सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय दिलाने, चिन्तन, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था और पूजा की स्वतन्त्रता प्रदान करने, सामाजिक स्तर और अवसर की समानता देने और सभी नागरिकों के बीच भाईचारे को बढ़ावा देने, व्यक्ति की गरिमा तथा राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने के लिये समय-समय पर विभिन्न कानून बनाये हैं। संसद ने महिलाओं के साथ सामाजिक भेदभाव दूर करने और उन पर अत्याचार एवं हिंसा की रोकथाम के विरूद्ध विधायी प्रस्ताव भी पारित किये हैं। कानून के ढाँचे में महिलाओं और उनकी विशेषताओं, आवश्यकताओं का पर्याप्त ध्यान रखा गया है। इस प्रकार भारत का संविधान नारी हितों की दिशा में एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

पंचवर्षीय योजनाओं में महिलाएँ

भारत में सरकार का बुनियादी दृष्टिकोण, सामाजिक क्षेत्रों में कल्याण नीतियों के तहत महिलाओं को लक्ष्य बनाने का रहा है। 1974 तक की पंचवर्षीय योजनाओं में महिलाएँ सम्बन्धी मुद्दों में कल्याणोन्मुखी पहलू पर बल दिया गया। पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान महिलाओं के कल्याण की बजाय उनके विकास पर बल दिया जाने लगा। छठी पंचवर्षीय योजना में, महिलाओं के विकास के बारे में पृथक अध्याय जोड़ा गया, जिसमें उनके स्वास्थ्य, शिक्षा और रोजगार के उपाय किये गये। सातवीं पंचवर्षीय योजना में महिलाओं के आर्थिक और सामाजिक स्तर को उँचा उठाने तथा उन्हें राष्ट्रीय विकास की मुख्य धारा में शामिल करने का लक्ष्य रखा गया। आठवीं पंचवर्षीय योजना के तहत विशेष कार्यक्रम तैयार करने की आवश्यकता महसूस की गई, ताकि विभिन्न क्षेत्रों में हो रहे विकास के लाभ से महिलायें वंचित न रहें। इस प्रकार विकास की बजाय महिलाओं को अधिकार प्रदान करने पर बल दिया गया।सरकार द्वारा कई विशेष नीतियाँ महिलाओं के लिये अपनाई गई, योजनागत खर्च में भी उत्तरोत्तर बढ़ोतरी की गई। प्रथम पंचवर्षीय योजना में महिलाओं के लिये चार करोड़ रूपये का प्रावधान किया गया था, जो आठवीं पंचवर्षीय योजना में बढ़कर लगभग 20 अरब रूपये हो गया। सरकार द्वारा नियोजन के अतिरिक्त किये गये प्रयासों द्वारा भी महिलाओं के उत्थान, विकास एवं समस्याओं के निस्तारण के प्रयास किये गये। भारत में प्रचलित सांस्कृतिक मूल्यों, संसाधन एवं अधिकार वितरण पंक्तियों और श्रेणीबद्ध समानीकरण की प्रक्रिया के बारे में कुछ बुनियादी मुद्दे उठाये, स्वतन्त्र रूप से महिला और बाल विकास विभाग की स्थापना की गई, महिलाएँ सम्बन्ध राष्ट्रीय परिदृश्य योजना तैयार की गई। महिलाओं को प्रदत्त संवैधनिक एवं कानूनी अधिकारों से सम्बंधित मामलों पर निगरानी रखने हेतु राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना की गई, जो महिलाओं के लिए सबसे शानदार उपलब्धि है। 73वाँ एवं 74वाँ संविधान संशोधन विधेयक, जिनके माध्यम से सभी ग्रामीण और शहरी निकायों में महिलाओं के लिये स्थान सुरक्षित कर दिये गये हैं।

संविधान का 73वाँ संशोधन एवं महिला सशक्तिकरण

सौभाग्य की बात है कि भारत में पंचायतों के तीसरे चरण का महत्वपूर्ण उद्देश्य महिलाओं को अधिकार प्रदान करना हैं। 73वें संविधान संशोधन के अनुसार कम से कम एक तिहाई महिलायेंसभी स्थानीय स्व-शासकीय निकायों तथा पंचायतों के स्तर पर निर्वाचित होंगी, जिनमें पंच, सरपंच, प्रधान, प्रमुख जिला परिषद् - सभी स्तर शामिल हैं। इस आरक्षण में अनुसूचित जाति, जनजाति तथा पिछड़े वर्ग की महिलाओं को भी आरक्षण दिया गया हैं। किसी पंचायती राज संस्था में जितनेसदस्य इस वर्ग के होंगे, उनका एक तिहाई महिलाओं के लिये आरक्षित किया गया हैं। उदाहरणार्थ यदि किसी पंचायत में अनसूचित जाति और जनजाति के सदस्यों की संख्या 9 है तो, 3 स्थान उस वर्ग की महिलाओं के लिये आरक्षित रहेंगे, लेकिन ये आरक्षित पद महिलाओं के कुल आरक्षित पदों में सम्मिलित माने जायेंगे। इस प्रकार यह विधेयक राज संस्थाओं में महिलाओं के आरक्षण की व्यवस्था कर सत्ता में इस वर्ग की भागीदारी को सुनिश्चित करता है।

पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की सहभागिता न सिर्फ उनकी राजनीतिक सहभागिता को लोकतांत्रिक प्रक्रिया में सुनिश्चित करने की है, बल्कि उनके विकास सम्बंधी उद्देश्यों को कार्यान्वित करने की भी है। महिलाएं पंचायती राज संस्थाओं में निम्न रूपों में सहभागी हो सकती है-

1. महिला मतदाता के रूप में,
2. राजनीतिक दलों के सदस्य के रूप में,
3. प्रत्याशियों के रूप में,
4. पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचित सदस्य के रूप में और
5. महिला मंडली के सदस्यों तथा स्वयंसेवी संस्थाओं के साथसाझेदारी के रूप में

अत: 73वें संविधान संशोधन में महिलाओं को अधिकार प्रदान करने की घोषणा एक मील के पत्थर के समान है, इससे पंचायतों में महिलाओं की सहभागिता अनिवार्य हो गई है।

73वें संविधान संशोधन ने पंचायतों के चुनाव प्रत्येक पाँच वर्ष के बाद कराना अनिवार्य किया। अधिनियम में प्रावधान था कि जो पंचायतें इस अधिनियम के बनने से तुरन्त पहले गठित हुई वे अपना कार्यकाल पूरा कर सकती है। इस श्रेणी में अरूणाचल प्रदेश, पश्चिम बंगाल, सिक्किम आदि राज्य आते थे, शेष राज्यों को 23 अप्रैल, 1994 के तुरन्त बाद चुनाव करा लेने चाहिये थे, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। मध्यप्रदेश, हरियाणा और त्रिपुरा ही ऐसे राज्य थे, जिन्होंने 1994 में पंचायतों के चुनाव करायें, अन्य राज्यों ने पंचायतों के चुनाव 1995 के अन्त में ओर 1996 के दौरान कराये। उड़ीसा जैसे राज्य में चुनाव 1997 में हुए। पंचायतों के मतदान का प्रतिशत 80 से 90 था। यह राजस्थान में 66 प्रतिशत, पंजाब में ग्राम पंचायत स्तर पर 2 प्रतिशत तथा पंचायत समिति और जिला परिषद स्तर पर 64 प्रतिशत रहा। उत्तरप्रदेश में मतदान प्रतिशत 60 प्रतिशत था।

उल्लेखनीय है कि महिलाओं के लिये पंचायतों में आरक्षण की घोषणा की प्रारम्भिक प्रतिक्रिया सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही थी।देश में पंचायतों के तीनों स्तरों पर सदस्य तथा अध्यक्ष के रूप में लगभग 10 लाख महिलायें चुन कर आई, जिनमें से कुछ राज्यों में महिला सरपंचों का प्रतिशत निम्न रहा –

राज्य	*महिला सरपंचों का प्रतिषत*
राजस्थान	33.36
पश्चिम बंगाल	35.23
त्रिपुरा	33.37
हरियाणा	33.33
मध्यप्रदेश	35.72

राजस्थान सरकार ने पंचायतीराज से सम्बन्धित पूर्व के दोनों अधिनियमों पंचायत राज अधिनियम 1953 एवं पंचायत समिति तथा जिला परिषद् अधिनियम, 1959 को निरस्त कर 73वें संविधान संशोधन अधिनियम 1992 के परिप्रेक्ष्य में नया पंचायतीराज अधिनियम, 1994 तैयार कर 23 अप्रैल 1994 से राज्य में लागू कर दिया है। अब राज्य की सम्पूर्ण पंचायती राज व्यवस्था, जिसमें 9,187 ग्राम पंचायतें, 237 पंचायत समितियाँ तथा 32 जिला परिषदें शामिल हैं, इसी अधिनियम के प्रावधनों, नियमों एवं उपनियमों के अनुसार लागू किये गए, जिनके अनुरूप वर्ष 1994 के अन्तिम माह में पंचायती राज व्यवस्था के तीनों स्तरों की सभी संस्थाओं के चुनाव कराये गये। पंचायतीराज संस्थाओं के चुनाव के बाद राज्य में कुल 1,19,419 जन-प्रतिनिधि निर्वाचित होकर आये, जिनमें से 38,791 महिलायें लगभग 15 हजार अन्य पिछड़े वर्ग के, 20,712 अनुसूचित जाति एवं लगभग 18 हजार अनुसूचित जन-जनजाति के जन-प्रतिनिधि है। राजस्थान के पंचायती राज इतिहास में प्रथम बार इतनी अधिक मात्रा में समाज के इन कमजोर वर्ग के लोगों एवं महिलाओं की राज्य के ग्रामीण विकास में तीनों ही स्तरों पर सहभागिता सुनिश्चित हुई।

राजस्थान के साथ-साथ अन्य राज्यों में कई स्थितियों में चुनावी परिणाम महिलाओं की सहभागिता के सम्बंध में, बहुत आशाप्रद रहे है। 1993 से पहले भी कर्नाटक, पश्चिम बंगाल और उड़ीसा के चुनावों में महिलायें, उम्मीदवार के रूप में काफी संख्या में भाग लेती थी। आरक्षण ने स्थानीय स्तर पर राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं की सहभागिता को प्रभावकारी बनाने में मदद की, इसी तरह पश्चिम बंगाल में भी शुरू से 15-25 प्रतिशत सीटें महिलाओं के लिये निर्धारित की गई थी। उड़ीसा में वहाँ के मुख्यमंत्री श्री बीजू पटनायक ने 73वें संशोधन के पारित होने से बहुत पहले ही पंचायत के चुनाव करा लिये थे और साथ ही महिलाओं के लिये पंचायतों में 25 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था भी कर दी थी। महिलाओं ने न केवल आरक्षित चुनाव क्षेत्रों में बल्कि आम चुनाव क्षेत्रों में भी बहुत विश्वास के साथ चुनाव लड़ा। बहुत से मामलों में तो निर्वाचित होकर अपने वाली महिलाओं का प्रतिशत कोटे को पार कर गया। हाल ही में हुए पंचायत चुनाव में कर्नाटक में 43 प्रतिशत, मध्यप्रदेश में 38 प्रतिशत और पश्चिमी बंगाल में 35 प्रतिशत निर्वाचित स्थानों पर महिलायें हैं।

देश में उड़ीसा पहला राज्य है, जिसने पंचायत में महिलाओं के लिये 33 प्रतिशत सीटों पर आरक्षण उस समय लागू किया था, जब केन्द्र सरकार इस विषय पर विचार-विमर्श कर रही थी। 11 से 25 जनवरी, 1977 को हुए उड़ीसा के पंचायत चुनावों में जो 5,262 ग्राम पंचायतों, 314 पंचायत समितियाँ तथा 30 जिला परिषदों के लिये सम्पन्न कराये गये, महिलाओं के लिये आरक्षित सीटों पर बहुकोणीय मुकाबला दिखाई दिया। इस चुनाव के परिणामस्वरूप लगभग 30,000 महिलायें निर्वाचित हुई, इस राज्य में महिलाओं के कम साक्षरता स्तर के बावजूद यह उपलब्धि बहुत शानदार बन जाती है।

पश्चिम बंगाल में जहाँ पंचायत निकायों के अंतिम चुनाव 1993 में हुए थे, वहाँ 24,799 महिलायें, पंचायत के विभिन्न स्तरों पर निर्वाचित हुई थी, उनमें से 8 जिला परिषदों की, 91 पंचायत समितियों की और 191 ग्राम पंचायतों की अध्यक्ष थी।

हिमाचल प्रदेश में 2,877 ग्राम पंचायतों के चुनाव 1995 में हुए, जिनमें 970 महिलायें प्रधान/चौयरमैन के रूप में चुनकर आई। हरियाणा में पहली बार महिलाओं द्वारा बड़ी संख्या में विभिन्न पदों को प्राप्त किया गया। यह संख्या पंचों की 17,918, सरपंच 1978, पंचायत समिति सदस्य 806, पंचायत के चौयरमैन 37, सदस्य जिला परिद् 103 और जिला परिषद के चौयरमैन 5रही।

कर्नाटक में हुए चुनावों में 640 ग्राम पंचायतों में 80,627 सीटों में महिलाओं का प्रतिशत 43.77 रहा। इस प्रकार से कुल मिलाकर सभी राज्यों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व उत्साहजनक रहा।

महिलाओं की सहभागिता एवं समस्यायें

पूरे देश में पंचायतों में महिलाओं की सहभागिता अनिवार्य हो गई है, किन्तु यह तर्क भी ध्यान देने योग्य है कि विधानमात्रा से बदलाव नहीं लाया जाता है। भारतीय समाज का ढाँचा इस प्रकार का है कि महिलाओं को हमेशा से दबाकर रखा गया था, अत: निरक्षरता, गरीबी तथा परम्परा के बंधनों को तोड़ना मुश्किल होते हुए भी जरूरी था। नवीन पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका एवं योगदान में क्रियान्वयन के स्तर पर कई समस्यायें उजागर हुई है, इनका विश्लेपण निम्न रूपों में किया जा सकता हैं।

हर्ष की बात है कि बिहार राज्य में श्री नीतीश कुमार के नेतृत्व में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण दिया गया है। बिहार में महिलाओं की भारी भागीदारी पंचायतीराज संस्थाओं में देखने को मिलता है। वर्तमान में उत्तराखंड, बिहार, मध्यप्रदेश, हिमाचलप्रदेश, राजस्थान, गुजरात सहित करीब 14 राज्यों में शहरी निकायों में तथा करीब 17 राज्यों में पंचायतीराज में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत स्थानों के आरक्षण का प्रावधन किया गया है। यह सही है कि उनके मार्ग में पूरे देश में जटिल समस्यायें हैं, जो निम्नलिखित हैं-

1. शिक्षा का अभाव
2. प्रशिक्षण का अभाव
3. स्थानीय दलालों की भूमिका
4. महिला प्रतिनिधियों के प्रति होने वाली हिंसा
5. सामाजिक समस्याएँ
6. पारिवारिक समस्यायें
7. जाति व्यवस्था
8. वित्तीय समस्या

महिलाओं की भागीदारी को कारगर बनाने के प्रयास एवं सुझाव

1. पंचायत प्रतिनिधियों, विशेषकर महिला प्रतिनिधियों को अपनेकाम को प्रभावपूर्ण तरीके से सम्पन्न कराने के लिये उनके शिक्षण-प्रशिक्षण के कार्यक्रम और सघन तरीके से चलाये जायें। कानूनों, नियमों और ग्रामीणकार्यक्रमों की जानकारियाँ तो दी ही जायें, महिलाओं के लिये विशिष्ट प्रशिक्षण शिविर चलाये जाने चाहिये, ताकि उनकी अपनी विशिष्ट समस्याओं को वे मुखर होकर उठाये और उनका समाधन किया जाना चाहियें। प्रशिक्षण कार्यक्रम सैद्धांतिक कम और व्यावहारिक मुद्दों पर अधिक आधारित होने चाहिये। प्रशिक्षण के दौरान महिलाओं की दिन-प्रतिदिन की समस्याओं को सहानुभूतिपूर्वक सुना जाये और उनका सामूहिक हल खोजा जायें अच्छा हो,कुछ ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रम रखे जाये जो केवल महिलाओं के लिये ही होंताकि वे आपस में अपने अनुभव बाँट सकें।
2. पंचायत के कार्य में स्त्रियों की विशेष भूमिका चिन्हित कीजाये, ताकि दूसरों का दखल उसमें न हों।
3. प्रारम्भ में महिला प्रतिनिधियों को वही कार्य अधिक दिये जायें, जिनमें उनकी नैसर्गिक रूचि हो और जिन्हें वे आसानीसे पूरा कर सकें।
4. ऐसी कुरीतियों को दूर करने की पहल की जाये, जिनकासीधा सम्बन्ध महिलाओं से हो, ताकि उनकी भागीदारी अधिक निर्बाध गति से हो सकें, बाद में तो महिलायें ऐसी कुप्रथाओं को स्वयं दूर करने की पहल कर लेंगीं।
5. आज के इस तीव्रगति से बदलते युग में सूचना का आदान-प्रदान शीघ्र और अनिवार्य रूप से होना चाहिये। पंचायत के प्रतिनिधियों और अधिकारियों को पंचायत से सम्बन्धित सभी प्रकार की महत्वपूर्ण जानकारी पहुँचानी चाहिए, ताकि जरूरतमंद लोगों को समय पर वे उपलब्ध हो सकें। महिला प्रतिनिधियों के लिये यह और भी आवश्यक है, क्योंकि उनकी गतिशीलता और बाहरी जनसम्पर्क पुरूषों की अपेक्षाकम ही हो पाता है।
6. पंचायत के कार्यों में महिला शिक्षा को सबसे अधिक महत्ता दी जानी चाहिए, ताकि निरक्षरता के कारण आ रही बाधाओं को वे आसानी से पार करसकें।धीरे-धीरे महिलाओं को अन्य जटिल कार्य जैसे वित्त-योजना, सतर्कता रक्षा आदि में शामिल करना चाहियें, इससे वे अनिवार्य रूप से इन कामों से जुड़ेगी और समाज की बेहतरी के लिये कार्य कर सकेगी।
7. पंचायतों में महिलाओं के शामिल होने से लड़ाई-झगड़े होने की सम्भावनायें क्षीण होने लगी हैं, इसलिये विलम्ब और अविश्वास से बचने के लिये सरकारी नौकरशाही के तरीके से कार्य करने की अपेक्षा आपसी मेल-जोल, प्रेम और समन्वय का मार्ग अपनाना चाहिये।
8. 73वाँ संविधान संशोधन दिवस को प्रतिवर्ष प्रत्येक पंचायत में महिला सशक्तिकरण दिवस के रूप में चाहे छोटे स्तर पर ही हो, अवश्य मनाना चाहिये, इससे अब तक का लेखा-जोखा सामने आयेगा, महिलाओं के समक्ष आ रही कठिनाइयों को उजागर किया जायेगा, उनका समाधान खोजा जायेगा और भविष्य में कार्य योजना का भी प्रारूप बना लिया जायेगा। इसतरह का आयोजन एक नई स्फूर्तिऔर नवीनीकरण लाते हैं, अधिसंख्य लोगों को आपस में मिलाते हैं तथा सौहार्द को बढ़ावा देते हैं, इससे महिलासशक्तिकरण को गति मिलेगी।
9. महिलाओं के सामने आने से पूरा परिदृश्य बदलने लगा हैं। अब आवश्यकता है पुरूपों को भी इस बदले हुए माहौल में कार्य करने का प्रशिक्षण देने की। पुरूषों को चाहिये कि वे महिलाओं के प्रति संवेदनशील होकर बर्ताव करें, सामुदायिक सम्पत्तियों पर फैसले करने में भी स्त्रियों की पूरी भागीदारीहोनी चाहियें।

10. महिलाओं को ग्रामीण स्तर पर भी प्रशिक्षण देना जरूरी है,ताकि वे सुविधाओं का ठीक से लाभ उठा सकें।
11. एक-एक ग्राम पंचायत मजबूत होगी, आर्थिक दृष्टि सेआत्मनिर्भर होगी तो उसमें बैठी महिला भी मजबूत होगी।

सबसे मुख्य आशंका जो महिलाओं के सशक्तिकरण के सम्बन्ध में शुरू से अब तक प्रकट की जा रही है, वह है उनके पद का लाभ, उनके परिवार के पुरूप सदस्य उठायेंगे और उन्हें मात्र कठपुतली बनाकर पूरा नियन्त्रण स्वयं रखेंगें। जहाँ तक निर्णय लेने में स्वतन्त्रता का प्रश्न है, क्या यह पूर्ण रूप से कहा जा सकता है कि पुरूषों के निर्णय लेने में किसी और का नियंत्रण नहीं होता? वे भी कई दफा अन्य लोगों से नियन्त्रित होते हैं, तो फिर ऐसा कहा जाना कहाँ तक संगत है कि चूंकि कुछ महिलायें चंद लोगों के नियंत्राण में रहेंगी, इसलिये उन्हें पद न दिया जायें, बल्कि उनमें आत्मविश्वास के साथ निर्णय लेने की क्षमता का विकास सतत् करते रहना होगा और इस सम्बन्ध में पुरूषों को भी नई व्यवस्था के अनुरूप अपने को ढ़ालने का प्रयास करना होगा।नवीन पंचायती राज अधिनियम के कारण आज बिहार समेत पूरे देश में लाखों महिलायें विजयी होकर पंचायतों में नेतृत्व हेतु मैदान में आ गई हैं, परिणामस्वरूप एक ओर पंचायतीराज व्यवस्था को देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था के तृतीय सोपान के रूप में संवैधानिक स्वीकृति प्राप्त हुई है, वहीं दूसरी ओर महिलाओं के अस्तित्व और अधिकार को भी स्वीकार किया गया है। सच तो यह है कि संविधान के नये प्रावधान से महिलाओं में छिपी शक्ति को उजागर करने का सुनहरा और सार्थक कदम साबित हुआ है। जाहिर है कि नवीन कानून के फलस्वरूप बिहार समेत पूरे भारतवर्ष में जो पंचायत राज चुनाव हुए उसमें लगभग 30 लाख महिलाओं ने भाग लिया। विश्व के किसी अन्य देश में पंचायत चुनावों में महिलाओं के लिये 33 प्रतिशत आरक्षण नहीं किया गया।

निष्कर्ष

पंचायती राज की नयी व्यवस्था के बाद देश के पारम्परिक पुरूष-प्रधान निर्णय लेने वाले समाज में अब निर्णय की प्रक्रिया में महिलाओं का भी समावेश होने लगा हैं, लेकिन समाज की मानसिकता के चलते अभी भी इस रास्ते में महिलाओं के सामने अनेक कठिनाइयाँ है। यह सत्य है कि हमारा सामाजिक ढाँचा और उनकी मानसिकता समूचे देश में एक समान नहीं है, किन्तु यह कहना भी गलत नहीं होगा कि महिलाओं के प्रति सोच में देश के विभिन्न भागों में काफी समानतायें हैं। तात्पर्य यह है कि वे अब भी राजनीतिक रूप से काफी पिछड़ी हैं, पर तेजी से जागरूक हो रही हैं और आगे आ रही हैं नई व्यवस्था 50 प्रतिशत ने उन्हें और प्रेरित किया है।

संदर्भ सूची:

1. सीताराम सिंह, 'बिहार में ग्राम पंचायत एवं सुशासन', बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2012
2. ललिता सोलंकी, 'महिला आर्थिक सशक्तिकरण एवं पंचायतीराज, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2015
3. विश्वनाथ गुप्त, 'भारत में पंचायती राज' सुरभि प्रकाशन, दिल्ली, 2015
4. प्रमोद कुमार अग्रवाल,'भारत में पंचायती राज', ज्ञान गंगा,दिल्ली , 2015
5. कुमारी ममता, 'पंचायती राज: महिला सशक्तिकरण यथार्थ के आइने में, भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका, अंकद्वितीय, जुलाई- दिसम्बर, 2018
6. जोरावर सिंह राणावत, 'सतत ग्रामीण विकास का सशक्त माध्यम बनती महिला सरपंच', कुरूक्षेत्र, सितम्बर 2018
7. स्वनिल सारस्वत एवं निशांत सिंह: समाज, राजनीति और महिलाएँ', राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2004

दिनकर कृत उर्वशी का अनुभूति पक्ष

प्रो० प्रदीप श्रीधर

आचार्य एवं अध्यक्ष,हिंदी विभाग तथा निदेशक, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, डॉ० भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

उर्वशी वर्तमान युग की अनुपम कृति है। कवि दिनकर ने कुरुक्षेत्र काव्य में अपने मनन-चिंतन का जो प्रौढ़ रूप दर्शाया है, उसकी परिणिति उर्वशी काव्य में गूढ़ रहस्यों के उद्घाटन में हुई। जिस तरह कवि युद्ध की समस्या के समाधान में कुरुक्षेत्र में उतरा था, उसी तरह उर्वशी काव्य में काम समस्या को लेकर वह चिंतनशील दिखाई पड़ता है। कवि ने परंपरागत प्रेम के आवरण को उतार फेंका है। वह मस्तिष्क में उमड़ने वाले काम संबंधी भावों और विचारों को प्रौढ़ता और प्रांजलता के साथ अभिव्यक्त करने में समर्थ हुआ है। उर्वशी में कवि की उच्चकोटि की अभिव्यक्ति विद्यमान है। उर्वशी के अनुभूति पक्ष को निम्नलिखित शीर्षकों में विभक्त कर समझने में सुगमता होगीख़ कथानुभूति, चरित्रानुभूति, सौंदर्यानुभूति, भावानुभूति, रसानुभूति, युगानुभूति।

कथानुभूति- वैसे तो उर्वशी की कथा पौराणिक है। कविवर प्रसाद ने भी चम्पू काव्य लिखकर इस कथा का निरूपण किया है। यह कथा वेदों से लेकर कालिदास के 'विक्रमोर्वशीयम्' तक अंकित है। कवि दिनकर ने अपनी प्रयोजन सिद्धि के लिए इस कथा में कई मौलिक परिवर्तन भी किए हैं। कवि ने पुरानी कथा को तो काव्य की आधार भूमि के लिए ग्रहण किया है, क्योंकि इस कथा के माध्यम से ही यौवन के उद्दाम कामवेग और भोगलिप्सा को अंकित किया जा सकता था। कामेच्छा और भोगलिप्सा का जीता-जागता चित्र इस काव्य में चित्रित किया गया है। भूमिका में दिनकर जी लिखते भी हैं, "नारी नर को छूकर तृप्त नहीं होती, न नर नारी के आलिंगन में संतोष मानता है। कोई शक्ति है, जो नारी को नर से तथा नर को नारी से अलग रहने नहीं देती और जब वे मिल जाते हैं तब भी, उनके भीतर किसी ऐसी तृषा का संचार करती है जिसकी तृप्ति शरीर के धरातल पर अनुपलब्ध है।"[1] उर्वशी शब्द का कवि ने भूमिका भाग में अर्थ किया है, "उर्वशी का कोषगत अर्थ होगा उत्कट अभिलाषा, इच्छा अथवा कामना। और पुरुरवा शब्द का अर्थ है वह व्यक्ति जो नाना प्रकार का रव करे, नाना ध्वनियों से आक्रांत हो।"[2] अत: काव्य में एक ऐसे शाश्वत युवक एवं शाश्वत युवती की कथा दी गई है जिनमें यौवनागम के साथ ही उत्कट कामना, उद्दाम भोगलिप्सा अनायास जागृत होती हो। जिस प्रकार कामलिप्सा के वशीभूत होकर एक पुरुष कुछ भी करने को तैयार रहता है, उसी प्रकार एक युवती कामभावना की तृप्ति के लिए प्रिय से प्रिय व्यक्ति को त्यागकर कुछ भी करने को तत्पर हो जाती है। जैसे पुरुष एक यौवना को कामसंतप्त होकर अपने आगोश में लेकर भोगना चाहता है। युवा जीवन की इन्हीं कामभावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए कवि ने उर्वशी और पुरुरवा की कथा का आश्रय लिया है। यहां पुरुरवा अनिंद्य सुंदरी उर्वशी को देखकर काम आसक्त है-

भू नभ का सब संगीत नाद
मेरे निस्सीम प्रणय का है

सारी कविता का जयगान एक मेरी त्रयलोक विजय का है प्रिय मुझे प्रखर कामना कलित संतप्त, व्यग्र, चंचल चुंबन

प्रिय मुझे रसोदधि में निमग्न उच्छल हिल्लोल निरत जीवन[3]

उधर उर्वशी भी धरती के नाना कष्टों को सहन करने के लिए उद्यत होकर अपनी कामलिप्सा को तृप्त करना चाहती है। पुरुरवा की अंकशायिनी बनती है, प्रसव पीड़ा सहती है परंतु कामवासना से उद्वेलित यह शाश्वत नारी उद्दाम वासना को रोकने में असमर्थ रहती है। जीवन का यह काम पक्ष शाश्वत है जिसका अपलाप नहीं किया जा सकता है। यह कथा नर-नारी के आकर्षण को समझाती है और देहातीत संपूर्ण व्याप्ति का समर्थन करती है।

चरित्रानुभूति- उर्वशी काव्य में दो प्रमुख चरित्र हैंख़ एक पुरुरवा और द्वितीय उर्वशी। पुरुरवा प्रतिष्ठानपुर का चंद्रवंशीय युगपुरुष नृप है। वह पुरुषार्थी एवं वीर है। यही कारण है कि संकट के समय देवराज इन्द्र भी उसे निमंत्रण भेजते रहते हैं।वह प्रबल पराक्रमी है और दीनों और दुखी मनुष्यों का पोषक और संरक्षक भी है। वह अपने राजधर्म को तन्मयता से निभाता है। वह स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी की रक्षा एक दैत्य से करता है। वह एक युवा राजा है जिसके हृदय में कामलिप्सा राज करती है। इसी कारण वह स्वर्ग की युवती उर्वशी को अपना हृदय दे बैठता है। यह कामना ही स्त्री-पुरुष के मध्य आकर्षण का कारण है। सूत्रधार का कथन है-

जो कामना खींचकर नर को सुरपुर ले जाती है
वही खींच लाती है मिट्टी पर अम्बर वालों को[4]

कवि रूपसौंदर्य के मोहक चित्र ही नहीं उपस्थित करता है अपितु प्रकृति सुंदरी की भी अलौकिक छवियां अंकित करता है-

धुली चांदनी में शोभा मिट्टी की भी जगती है
कभी-कभी यह धरती भी कितनी सुंदर लगती है
जी करता है यहीं रहें, हम फूलों में बस जाएँ

भावानुभूति- उर्वशी काव्य के चित्रपट पर विभिन्न भावों के चित्र अंकित हैं। आरंभ से अंत तक भावों की मार्मिक छटा देखने को मिलती है। आरंभ में ही परियों के गान में 'हर्ष' मनोभाव की सुंदर छटा देखने को मिलती है-

फूलों की नाव बहाओ री यह रात रुपहली आई

फूटी सुधा-सलिल की धारा डूबा नभ का कूल किनारा सजल चांदनी की सुंदर लहरों में तैर नहाओ री[6]

इसी प्रकार चित्रलेखा के द्वारा राजा पुरुरवा के इस कथन में 'वृथा लौट आया उस दिन उज्ज्वल मेघों के वन से लेकर' या फिर 'देह छोड़ मैं ही मिलने आऊंगा मन से' तक की पंक्तियों में उन्माद, वितर्क, विषाद, चपलता, स्मृति, आवेग आदि मनोभावों के साथ-साथ रति की अत्यंत मधुर व्यंजना हुई है। रंभा का कथन है-

रोग शोक संताप जरा सब आते ही रहते हैं

पृथ्वी के प्राणी विषाद नित पाते ही रहते हैं[7]

रसानुभूति-उर्वशी में श्रृंगार रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। कवि का उद्देश्य काम भावना के उत्कट भाव को भावित करना है, इसीलिए उसमें श्रृंगार रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। इसमें संभोग श्रृंगार तृतीय अंक में अपने पूर्ण वैभव और अंगों के साथ विद्यमान है। उर्वशी और पुरुरवा की उक्तियां अधिक मनोरंजक हैं। जैसे-

वही धन्य जो मानमयी प्रणयी के बाहु बलय में

खिंची नहीं विक्रम तरंग पर चढ़ी हुई आती है[8]

और भी-

तन से मुझको कसे हुए अपने दृढ़ आलिंगन में

मन से किन्तु विषण्ण दूर तुम कहां चले जाते हो[9]

पुरुरवा भी रूप-रस में छका हुआ रहता है।वह उर्वशी रूपी चंद्रमा को आलिंगनबद्ध कर रससिक्त हो निचोड़ लेना चाहता है-

रूप का रसमय निमंत्रण

या कि मेरे ही रुधिर की वह्नि मुझे शांति से जीने न देती

हर घड़ी कहती उठो

इस चंद्रमा को हाथ से धरकर निचोड़ो[10]

युगानुभूति- आज के संसार की सबसे बड़ी समस्या काम समस्या है, जो समग्र संसार के मानवों के मन को मथ रही है। हमारे भारत में संभवत: इसे मनोज कहा गया है। मन पर नियंत्रण हो, तभी इससे युद्ध किया जा सकता है, परंतु ऐसे मनुष्य हैं कितने? काम दर्शन के दो पहलू हैंस्त्री-पुरुष दोनों के आकर्षण की एकांतिकता और काम की सफलता और असफलता की देहातीत संपूर्ण व्यक्तित्व में व्याप्ति। दिनकर ने उर्वशी काव्य में इन दोनों पहलुओं को बहुत ही सुंदरता से अभिव्यक्त किया है। काम इतना प्रबल और बलवान है कि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी इसे नहीं जीत सके।विश्वामित्र भी मेनका के आगे नतमस्तक थे। इससे भागने की जितनी चेष्टा की जाती है, उतने ही प्रबल वेग से यह दर दबोचता है। आज के युग में समग्र विश्व में चाहे कोई कितना भी बाह्यरूप से इससे दूर रहने की चेष्टा करे पर मन सदा इससे ग्रस्त रहता है। नारी के लिए पातिव्रत्य धर्म एक दिखावा बनकर रह गया है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि काम भावना से कोई अछूता नहीं रहा। आधुनिक युग की उद्दाम कामना और वासना का चित्र ही उर्वशी काव्य में चित्रित किया गया है। पुरुरवा के रूप में आधुनिक मानव की चिरन्तन कामवासना साकार हुई है।

सन्दर्भ सूची-

1. रामधारी सिंह दिनकर, उर्वशी (उदयाचल प्रकाशन, पटना, सं 2018) भूमिका, पृ.8
2. वही, पृ. 8
3. उर्वशी, पृ.97
4. वही, प्रथम अंक, पृ.23
5. वही, पृ.23
6. वही, पृ.23
7. वही, पृ.30
8. वही, पृ.55
9. वही, पृ.55
10. वही, पृ.56

वैदिक कालीन ग्रन्थों में कन्या की अवस्थिति एक अध्ययन

दीपक कुमार शर्मा

शोध छात्र (इतिहास विभाग), पी0के0 वि0वि0, शिवपुरी (म0प्र0)

डॉ० निधि तिवारी

शोध-निर्देषिका (इतिहास विभाग), पी0के0वि0वि0, शिवपुरी (म0प्र0)

शोध-सार

कन्या जो कि स्त्री की प्रारिम्भक अवस्था है, इस अवस्था में वह अपने पिता के घर पर रहकर ही अपने जीवन के प्रारम्भिक समय को व्यतीत करती है। इस अवस्था में उसके द्वारा किये गये अथवा सीखे गये सभी कार्य कन्या के भावी जीवन पर प्रभाव डालते है, चूंकि एक कन्या बाद में एक स्त्री का रूप धारण करती है और अपने परिवार की सबसे महत्व पूर्ण सदस्य होती है इसीलिये एक स्त्री को अपने प्रारम्भिक जीवन अर्थात कन्या के रूप में ही सभी महत्वपूर्ण कार्यों की समझ रखने की अपेक्षा की जाती है, जोकि सामान्यता: कन्याओं ने भलि प्रकार किया।

वैदिक संहिताओं में कन्या के लिये उच्च स्थान प्रदान किया गया है कन्याओं को परिवार की नींव माना गया है। उनके लिये योग्य वर की ईश्वर से प्रार्थना भी की गई हैं एक स्थान पर अथर्ववेद में कहा गया है-ष्हे अग्ने! हमारा इस बुद्धिमती कुमारी कन्या को ऐश्वर्य के साथ सर्वगुण सम्पन्न वर प्राप्त हो हमारी कन्या बड़ो के बीच में प्रिय तथा समान विचार वालों मनोरम है। इसे पति के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हो।ष्[1] इस प्रकार कन्या के लिये इस मन्त्र द्वारा अग्नि से सुयोग्य वर व सौभाग्य की प्राप्ति के लिये प्रार्थना की गई है, जो कि तत्कालीन समाज में कन्या की उच्च स्थिति को दर्शाता है। चूंकि वैदिक काल में अग्नि एक महत्वूर्ण देवता थे तो उनसे कन्या के उज्जवल भविष्य की कामना की गई है।

कन्या के महत्व का वैदिक ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर वर्णन किया गया है, और अनेक स्थानों पर देवी देवताओं की पुत्रियों से कन्याओं की तुलना की गई है ऐसा इसलिये किया गया है क्योंकि वैदिक युगीन कन्याओं ने अनेक प्रकार से अपने गुणों को प्रमाणित किया था। ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है- "कि जिस प्रकार आकाश की पुत्री उषा मनुष्यों द्वारा नित्य यौवन श्वेतवसना, तमोनिवासिनी एंव समस्त सम्पत्ति की अधिश्वरी के रूप में देखी गई है, हे शोभामान धन सम्पन्न उषा तुम आज यहाँ अँधकार नष्ट करो।"[2] इस मन्त्र के द्वारा हम तत्कालीन कन्याओं का समन्वय देवताओं की पुत्रियों से किया जाना देखते है ऐसा अवश्य ही कन्याओं के पुत्री रूप में किये गये अच्छे कार्यों से ही हुआ होगा। इन गुणों को पाने के लिये कन्याओं को शिक्षा की परम आवश्यकता रही होगी इसीलिये कन्याओं का उस समय उपनयन संस्कार होता था जिसमें वे वेदों का गहन अध्ययन करती थी और अनेक वैदिक मन्त्रों की भी रचना उन्होने की थी अथर्ववेद में कहा गया है कि "कन्याओं का उपनयन संस्कार होता था, और वे वैदिक मन्त्रों का पठन-पाठन करती थीं पुरूषों की तुलना में वह किसी प्रकार भी निम्न और अनुन्नता नहीं थी। उनका ब्रहमचर्य अवस्था पूर्ण होने के बाद ही विवाह किया जाता था।"[3]

इस प्रकार इस प्रकार हम वैदिक काल में कन्याओं का शिक्षा के प्रति भी महत्वपूर्ण रूझान को देख पाते है, और तत्कालीन समाज में कन्याओं के स्थान का भी पता लगा पाते हैं।

पुत्री के लिये दुहिता शब्द वैदिक काल में ही आया है। यह नाम उनका गायों को दूहने से बना है, क्योंकि गायों को दूहना कन्याओं का कार्य समझा जाता था और अधिकांशत: कन्याएँ ही इस कार्य को करती थी तो उनका एक अन्य नाम दुहिता पड़ गया यह कार्य अर्थ से जुड़ा हुआ था जो कि परिवार के पालन-पोषण से भी संबंधित था। तो इस कार्य ने भी कन्याओं के महत्व को और अधिक बढ़ा दिया एक स्थान पर ऋग्वेव में कहा गया है- "सूर्य की दूहिता के रूप में ये दिन और रात भी हमारे जीवन को पवित्र बनाने वाली है। इनमें हम प्रभु का स्तवन करें व स्वाध्याय द्वारा ज्ञान का वर्धन करें।"[4] उपरोक्त मन्त्र में हम दिन वरात को सूर्य की पुत्री के रूप में पाते है जो कि तत्कालीन समय में कन्या के उच्च स्थान को दर्शाता है। इसी प्रकार वैदिक ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर कन्याओं के द्वारा किये गये योगदान का वर्णन मिलता है। एक स्थान पर कहा गया है कि "कन्याएँ हमारे जीवनों का शोधन करने वाली हैं वे हमारे जीवनों को दीप्त करने वाली है।"[5] इस प्रकार हम कन्याओं का महत्व सिद्ध हो जाता है, कन्याओं के द्वारा जीवन शोधन की बात कही गयी है। जिससे किसी भी जीव के जीवन का निर्माण होता है और इसी प्रकार कन्याओं द्वारा जीवन को प्रकाशित करना भी दर्शाया गया है। जो कि समाज में अति महत्व का कार्य है। इस प्रकार वैदिक काल में कन्याओं की स्थिति के बारे में पता चलता है।

वैदिक ग्रन्थों में कन्याओं को अनेक नामों से पुकारा गया है जिसका कारण उनके विभिन्न गुणों को माना जा सकता है, इस युग में कन्याओं ने विभिन्न प्रकार के कार्यों में अपनी निपुणता को सिद्ध किया था और इसी कारण उन्हे समाज में उच्च स्थान प्राप्त था, वैदिक सहिताओं में कन्या को गौरी के नाम से जाना गया है ष्ऋक सहिता 9/12/3 में "सोमो गौररी अधिश्रित" कहा गया है, जिससे स्पष्ट है कि उस समय विवाह के पूर्व कौमार अवस्था में सोम का पाचन गौरी कन्या के शरीर में होता था।"[6] वैदिक ग्रन्थों में सोम का वर्णन अमृत के रूप में किया गया है, इससे सिद्ध होता है कि कन्याएँ अपने आहार में श्रेष्ठ सामग्री का चयन करती थी।

इस काल में कन्याओं की विद्वता का गुणगान ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर किया गया है, जिस प्रकार समाज ने कन्याओं ने भी अपनी विद्वता से सिद्ध कर दिया कि वे इस अधिकार की योग्यता भी रखती थी यजुर्वेद में एक स्थान पर एक कन्या यजुर्वेद के पाठ करने वाले अध्वर्यु से कहती है- "हे अध्वर्यु! आपका बोलने को आतुर मुख शकुन्तक पक्षी की तरह सत्त शब्द कर रहा है आप निर्थक बातचीत न करें केवल यज्ञीय संदर्भ में अपनी वाणी का प्रयोग करें।"[7] इस प्रकार हम कन्याओं की प्रखर बुद्धि की झलक पाते हैं जो इन्हे समाज में अपना उचित स्थान दिलाने में सहयोग करती है। और समाज ने भी कन्याओं को इनके गुणी स्वभाव के अनुकूल ही स्थान प्रदान किया।

इस काल खण्ड में कन्याओं की योग्यता को देखते हुये उनकी तुलना अनेक देवी, देवताओं से की गयी है ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है- "जैसे प्रातः समय की बेला सभी दिशाओं में व्याप्त है, वैसे ही कन्या विधाओं में व्याप्त होंवें, जैसे उषा अपनी कान्ति से शोभायमान रहती है। वैसे ही कन्याएँ अपने शील आदि गुणों और सुन्दर रूप से प्रकाशवान हो, जैसे उषा अन्धकार का निवारण करती है, कन्याएँ जन मूर्खता आदि का निवारण करे।"[8] उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हम वैदिक काल में कन्याओं की अवस्थिति का अवलोकन कर सकते हैं, इस युग में कन्याओं की तुलना देवताओं से की गई है जो कि कन्याओं की उच्च स्थिति को दर्शाती है। कन्या को आर्थिक महत्व के कार्यों में भी वरीयता दी गई है जो कि उनकी निपुणता को प्रदर्शित करती है। इस प्रकार हम कन्याओं के सभी गुणों का विस्तार से अवलोकन कर पाते हैं। किन्तु वैदिक काल के बाद कन्याओं की सामाजिक स्थिति में गिरावट दर्ज की गई है, क्योंकि समाज की मानसिकता लगातार दूषित होती चली गई कन्या के जन्म को अशुभ माना जाने लगा किन्तु अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये शुभ कार्यों की शुरूआत में कन्याओं की उपस्थिति को शुभ मान लिया।

सन्दर्भ-सूची

1. अथर्ववेद काण्ड-2 सूक्त-36 मन्त्र-1 हिन्दी अनुवाद पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य पृ0-29
2. ऋग्वेद मण्डल-1 सूक्त 113 मन्त्र-7 हिन्दी टीका डॉ0 गंगा सहाय शर्मा पृ0 348
3. डॉ इन्दु शर्मा 'महिला सशक्तिकरण के नवीन आयाम' पृ0 180
4. ऋग्वेद मण्डल-6 सूक्त-49 मन्त्र-3 हिन्दी भाष्य पं0 हरिशरण सिद्धान्तालंकार पृ0 497
5. ऋग्वेद मण्डल-6 सूक्त-49 मन्त्र-7 हिन्दी भाष्य पं0 हरिशरण सिद्धान्तालंकार पृ0 498
6. डॉ मालती शर्मा 'वैदिक संहिताओं में नारी' पृ0 41
7. यजुर्वेद अध्याय-23 सूक्त-4-23 हिन्दी अनुवाद गीता प्रेस गोरखपुर पृ0 260
8. ऋग्वेद मण्डल-1, सूक्त-113, मन्त्र-14 हिन्दी भाष्य महर्षि दयानन्द सरस्वती पृ0 579

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल

निरंजन सहाय

जिस भाषा में हमारा जन्म,विकास और निर्माण होता है उसे मातृभाषा कहते हैं। अर्जित भाषा और मातृभाषा में बुनियादी फर्क यह है कि हमारी मौलिकता और अस्मिता का निर्माण अपनी भाषा यानी मातृभाषा में होता है जबकि अर्जित भाषा में हम प्रवासी की तरह आते हैं और कुछ देर ठहरकर फिर अपनी भाषा के आँगन में लौट आते हैं। हिंदी को आधुनिकता के प्रवेश द्वार में रूपांतरित करने वाले युगप्रवर्तक साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने ठीक पहचाना कि अपनी भाषा की उन्नति में ही सारी उन्नति है, अपनी जबान के बिना कोई अपने दिल के दर्द का भी बयान नहीं कर सकताद्य स्वयम उन्हीं के शब्दों में

जाहिर है वह समर्थ अभिव्यक्ति जिसमें जन आकांक्षाओं की तपिश है वह किसी समाज की समग्र चिंताओं और सपनों में निर्णायक भूमिका अदा करती है। हिन्दी भाषा ने भी भारतीय संदर्भ में आजादी की लड़ाई के दौरान अपनी इस भूमिका का बखूबी निर्वहन किया। आजादी के बाद विराट जन समूह की भाषा हिन्दी ने कई सोपानों का सफर तय किया। आज हिन्दी, चीनी के बाद विश्व में सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है। भारत के अलावा फिजी, मॉरिशस, गयाना, सूरीनाम जैसे देशों में रहने वाले तकरीबन साठ करोड लोगों की भाषा हिन्दी है। हिन्दी की वह विकास गाथा जो साम्राज्यवादी मंसूबों से संघर्ष की अभिव्यक्ति भाषा के रूप में परवान चढ़ी, वह आज विश्वभाषा बनने की ओर अग्रसर है। इस यशस्वी यात्रा के साथ ही उन चुनौतियों को भी हम नहीं भूल सकते जो हिन्दी के सामने विभिन्न रूपों में मौजूद हैं। हिन्दी भाषा के विभिन्न संदर्भों के बारे में जब हम विचार करते हैं तो कई सवाल सहसा हमारी आँखों के सामने उभरने लगते हैं, जैसे-'कैसे स्वाधीनता की लड़ाई के आरंभिक दौर में ही भारत के राष्ट्रवादी नेताओं और विचारकों के मन में यह बात आयी कि हम अपने अन्तः प्रान्तीय सम्पर्क के लिए हिन्दी को चुनें। स्वाधीनता के बाद कैसे राष्ट्रभाषा हिन्दी राजभाषा के रूप में स्वीकृत हुई और फिर विभिन्न चुनौतियों से भी घिरी। कि कैसे समय की जरूरतों औए नये तरह के अस्मिताबोध के आलोक में हिन्दी के विविध रूप सामने आये।अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी का कैसा फलक बना।ज्ञान की भाषा के रूप में हिन्दी की स्वीकार्यता की क्या स्थिति बनी। हिन्दी पढ़ने-पढ़ाने की कौन-सी चुनौतियाँ उभरीं और उनका निदान क्या है।'

2001 की जनगणना रिपोर्ट के मुताबिक भारत के 28 राज्यों और 7 केन्द्रशासित प्रदेशों में चार भाषा परिवारों (भारोपीय, द्रविड़, मुंडा या आस्ट्रिक और तिब्बती चीनी परिवार) की 234 मातृभाषाएँ, 100 वर्गीकृत भाषाएँ और 10 लिपियाँ हैं। ऐसे बहुभाषिक देश में निश्चित तौर पर भाषायी अस्मिता का सवाल बेहद संश्लिष्ट है। भाषायी अस्मिता का मतलब है-भाषा बोलने वालों की अपनी पहचान। भाषा की यही पहचान सत्ता के नियामक-तन्त्र से भी जुडी है। भाषा के माध्यम से राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान के लिए जब एक भारतीय भाषा को प्रतीक रूप में स्वीकारने-पहचानने का गंभीर मसला सामने आया, तब अहिन्दी भाषी क्षेत्रों से हिन्दी के पक्ष में आवाजें मुखर हुईं और स्वाधीनता संघर्ष के दौरान हिन्दी राष्ट्रीय अस्मिता की भाषा के रूप में उभरी। स्वाधीनता संग्राम की भाषा के रूप में हिन्दी की सांस्कृतिक परंपरा और राष्ट्रीय अस्मिता ने ब्रितानी शासन के खिलाफ उसे राष्ट्र-निर्माण की आकांक्षा से जोडा। स्वाधीनता के बाद हिन्दी की विकास यात्रा अतीत की गौरवशाली उपलब्धियों, नये राष्ट्र की शासकीय भाषा, अन्य भारतीय भाषाओं के बीच उसकी उपस्थिति, अंग्रेजी के यथार्थ, ज्ञानार्जन की भाषा, भूमंडलीकृत बाजार व्यवस्था के अनुरूप भाषा और जन आंदोलनों की भाषा के साथ हिन्दी अध्ययन-अध्यापन से जुडे सरोकारों के साथ आगे बढी। इन सबके बीच हिन्दी के अनेक रूपों की मुखर उपलब्धियाँ हमारे सामने आयीं। संविधान की आँठवी अनुसूची में उल्लेखित भाषाओं (असमिया, बांग्ला, बोडो, डोगरी, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, काश्मीरी, कोंकणी, मैथली, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, संथाली, सिन्धी, तमिल, तेलुगु, उर्दू) के बीच हिन्दी केन्द्रीय महत्त्व की भाषा है। वह विस्तार की दृष्टि से देश के सबसे बडे भूभाग की भाषा है। भारत के ग्यारह प्रदेशों (उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, हरियाणा, राजस्थान, बिहार, झारखंड, हिमाचल प्रदेश,दिल्ली तथा अंडमान-निकोबार द्वीप-समूह) की प्रधान भाषा होने का गौरव हिन्दी को प्राप्त है। अबादी का 42. 88 प्रतिशत हिस्सा हिन्दी जनसंख्या है। हिन्दी को राष्ट्रव्यापीभाषा, राजभाषा और संपर्क भाषा बनने का गौरव मिला। व्यापार, जनसंचार एवं राजनीति की दृष्टि से वह देश की संपर्क भाषा है। उल्लिखित सभी संदर्भों में हिन्दी को देखना-समझना बेहद विचारोत्तेजक और दिलचस्प अनुभव है।

स्वतंत्रता के पहले की हिन्दी

यह एक दिलचस्प और उल्लेखनीय सचाई है कि हिन्दी के विकास में केन्द्रीय भूमिका हिन्दीतर क्षेत्रों ने निभायी। मध्यकाल में यह केन्द्र हैदराबाद था तो औपनिवेशिक काल में यह केन्द्र कोलकाता बना। वहीं आजादी के बाद यह केन्द्र बनने का अवसर मुम्बई को मिला। मुगल शासन के उत्तरार्द्ध में शासन के प्रभाव में खड़ी बोली गद्य को फारसी रंग में ढालने के बहुतेरे प्रयास किए गये। खड़ी बोली की उर्दू शैली के विकास के पीछे ऐसी ही परिस्थितियाँ मौजूद थीं। कहना न होगा उर्दू के पीछे कोई धार्मिक कारक मौजूद नहीं थे बल्कि इसके पीछे सांस्कृतिक और प्रशासनिक कारक थे। ब्रितानी हुकूमत के दौरान शासन के राज-काज की भाषा अंग्रेजी हो गयी। फारसी और अंग्रेजी दोनों से भारत की बहुसंख्यक जनता को अपनापन महसूस नहीं होता था। साथ ही संस्कृत भी अपने आभिजात्यवादी रूप के कारण जनता को दुख-दर्द, आकांक्षा और प्रतिरोध की भाषा नहीं लगती थी। इन सबके बीच ब्रितानी हुकूमत के खिलाफ भारतियों में स्वाधीनता की चेतना उभरनी शुरू हुई। भारतीय स्वाधीनता संग्राम के मनीषियों में जब नवजागरण की चेतना प्रतिरोध की संस्कृति में रूपांतरित

होने लगी, तब ऐसी संपर्क भाषा की जरूरत महसूस हुई, जो न केवल पूरे भारत की संवाद भाषा की सामर्थ्य रखती हो बल्कि जो विदेशी भाषा के समानान्तर देशज भाषा की अस्मिता से भी संपन्न हो। यह सुखद संयोग था कि हिन्दी के इस रूप को सबसे पहले जिन मनीषियों ने पहचाना वे हिन्दीतर क्षेत्र के थे।

अखिल भारतीय संपर्क-भाषा की ऐतिहासिक जरूरत और हिन्दी

यह एक तथ्यात्मक सचाई है कि हिन्दी के विकास में राज्याश्रय का कोई योगदान नहीं रहा। इसके विपरीत हिन्दी सर्वाधिक मुखर रूप में उस समय बलशाली होकर प्रकट हुई जब वह साम्राज्यवादी मंसूबों के खिलाफ उठी। राजनीतिक रूप से राष्ट्रीयता की अवधारणा के साथ ही हिन्दी का राष्ट्रभाषा रूप सामने आया। 1857 के स्वाधीनता संघर्ष के बाद यह धारणा और बलवती हुई कि राष्ट्रीय सम्मान और राजनैतिक अभियान की दृष्टि से राष्ट्रभाषा के रूप में किसी एक भाषा को आपसी संवाद की भाषा का दर्जा दिया जाय। भावनात्मक एकता के लिए राज्याश्रय की अंग्रेजी के समानान्तर अपनी सार्वभौमिकता, व्यापकता, सरलता और सर्वप्रियता के कारण हिन्दी ने अखिल भारतीय संपर्क-भाषा की ऐतिहासिक जरूरत को पूरा किया। राष्ट्रीय चेतना का जैसे सबसे पहले विकास बंगाल में हुआ, वैसे ही हिन्दी के अखिल भरतीय संपर्क रूप की भी सबसे पहले पहचान बंगाल मे ही हुई। हिन्दी के सबसे पहले पत्र की शुरुआत भी कलकत्ता(कोलकाता) में ही हुई कानपुर के पं.युगल किशोर शुक्ल ने 1826 में कोलकाता से 'उदंत मार्तड' नामक पत्र निकाला। प्रसंगवश हिन्दी के सबसे पहले छापेखाने की शुरुआत कलकत्ता में हुई और सबसे पहले हिन्दी को एम.ए.के लिए एक स्वतंत्र विषय का दर्जा भी कलकत्ता विश्वविद्यालय में ही मिला। ब्रह्म समाज के केशवचन्द्र सेन ने 1875 में 'सुलभ समाचार' में राष्ट्रीय एकता के उपाय की चर्चा करते हुए लिखा '....उपाय है सारे भारत में एक ही भाषा का व्यवहार, अभी जितनी भाषाएँ भारत में प्रचलित हैं उनमें हिन्दी भाषा लगभग सभी जगह प्रचलित है। इस हिन्दी को अगर भारतवर्ष की एकमात्र भाषा बनाया जाय, तो यह काम सहज ही और शीघ्र संपन्न हो सकता है।' उसी तरह 'बंदेमातरम' के रचनाकार बंकिमचन्द्र चटर्जी ने 'बंगदर्शन' में लिखा 'हिन्दी भाषा की सहायता से भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों के मध्य में जो एक्य-बंधन संस्थापन करने में समर्थ होंगे, वही सच्चे 'भारत बन्धु' पुकारे जाने के योग्य हैं।' इस क्रम में उन विचारकों की लंबी फेहरिश्त बनायी जा सकती है, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं थी, जैसे-श्री अरविंद, आचार्य क्षितिमोहन सेन, डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी, शिक्षाविद टी. विजयराघवाचार्य, डॉ. भण्डारकर, कन्हैयालाल मुंशी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गाँधी, दयानंद सरस्वती, सुभाषचन्द्र बोस इत्यादि। दिनकर ने इस सिलसिले में बेहद मूल्यवान टिप्पणी की, उन्होंने कहा 'वास्तव में स्थिति यह है कि भाषा के क्षेत्र में भारतीय एकता का जो महल तैयार हो रहा है, उसमें ईंट और पत्थर ढोने से लेकर गारा और चूना पहुँचाने तक का सारा कार्य अहिन्दी भाषी लोग कर रहे हैं।' इस तरह हिन्दी की जनोन्मुखता की शक्ति को पहचानते हुए 19 वीं सदी में ही उसे संपर्क-भाषा के रूप में भारतीय मनीषा ने व्यापक रूप में स्वीकार कर लिया।

साम्राज्यवादी दमन बनाम प्रतिरोध की भाषा

महात्मा गाँधी ने असहयोग आँदोलन के पहले ही राष्ट्र्भाषा हिन्दी, स्वतंत्रता और सामान्य जन की अवधारणा को अभिन्न करार दिया और कहा 'मेरे लिए हिन्दी का प्रश्न स्वराज का प्रश्न है।' साम्राज्यवादी दमन के खिलाफ हिन्दी ने प्रतिरोध की भाषा की भूमिका को बखूबी निभाया। इसके पहले ही भारतेन्दु युग में हिन्दी साहित्य से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने एक नया भावबोध जोड़ा। यह भावबोध देशप्रेम था जो देश के यथार्थबोध पर आधारित था। भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध सहित्यकारों ने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी की जनोन्मुख राष्ट्रीयता को विशिष्ट ढंग से प्रकट किया। हिन्दी भाषा की चेतना के विकास में शुरुआती पत्र-पत्रिकाओं ने बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। स्वयं भारतेन्दु ने 'कविवचन सुधा', हरिश्चन्द्र मैगजीन, 'बाला बोधिनी' जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी की प्रतिरोधी चेतना का विकास किया। राष्ट्रीय आंदोलन के लगभग सभी महानायक किसी-न-किसी पत्र-पत्रिका से जरूर संबद्ध रहे। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हिन्दी पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता की कहानी है। इस अर्थ में हम गाँधी को समकालीन भारत का सबसे बड़ा और यशस्वी पत्रकार कह सकते हैं। साम्राज्यवादी प्रतिरोध के इस हिन्दी स्वरूप को हम गणेश शंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी, महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाबूराव विष्णुराव पराड़कर, प्रताप नारायण मिश्र, शिवपूजन सहाय, प्रेमचन्द, रामवृक्ष बेनीपुरी के सरोकारों में बखूबी पहचान सकते हैं। उस समय की उल्लेखनीय पत्र-पत्रिकाओं में 'स्वतन्त्र' (कलकत्ता), आज, सुधाकर, हंस (बनारस), प्रताप (कानपुर), कर्मवीर (खण्डवा), सैनिक, प्रजा हितैषी (आगरा), केसरी (पूना), जागरण (झाँसी), सरस्वती (इलाहाबाद) इत्यादि शामिल हैं।

हिन्दी के राष्ट्र्भाषा रूप के विकास में कतिपय संस्थाओं ने अविस्मरणीय योगदान दिया। इन संस्थाओं में काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार समिति, हिन्दी प्रचार सभा,मद्रास, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार स्वाधीनता आन्दोलन के समानान्तर हिन्दी पहले संपर्क भाषा और फिर संपूर्ण राष्ट्र की भाषा के रूप में विकसित-संवर्द्धित होती रही। कालान्तर में 14 सितंबर1949 को भारतीय संविधान सभा ने संघ की राजभाषा रूप में हिन्दी को मान्यता दी। यह हिन्दी की राष्ट्रीय छवि का ही कमाल था कि एक अहिन्दी भाषी क्षेत्र के मनीषी श्री गोपाल स्वामी आयंगर ने यह प्रस्ताव रखा था।

स्वतंत्रता के बाद की हिन्दी

स्वाधीनता के बाद की हिन्दी की विकास-यात्रा की अनेक तस्वीरें हैं। जहाँ संविधान सभा ने उसे राजभाषा स्वीकार करने का निर्णय लिया। भारत में केवल एक परिवार की ही नहीं, बल्कि चार विश्वभाषा परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं। ये भाषा-परिवार आपस में इतने अलग हैं कि उनकी संरचना तक साफ तौर पर एक दूसरे से अलग नजर आती है। संविधान की आँठवीं अनुसूची की संकल्पना द्वारा भाषाओं के सहअस्तित्वपूर्ण विकास की संकल्पना की गयी। ज्ञान की भाषा के रूप में हिन्दी विकसित हो इसके लिए अनेक प्रयास हुए। एक सचाई यह भी है कि हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों के जब निर्माण हुए और तत्समबहुल भाषा को नियामक भाषा के रूप में प्रयोग किया जाने लगा तब हिन्दी के उस रूप के प्रति एक अविश्वास का भी माहौल बनने लगा जिसकी अनदेखी नहीं की जा सकती। कहना न होगा हिन्दी के इस सृजन-परिदृश्य में हिन्दी के उस रूप का ध्यान नहीं रखा गया जिस रूप का स्वाभावत: आजादी की लड़ाई के दौरान व्यापक भारतियों द्वारा प्रयोग हुआ था या जिस हिन्दी का प्रयोग गाँधी जैसे राष्ट्रनायकों एवं भारतेन्दु और प्रेमचंद जैसे रचनाकारों-विचारकों ने किया था। जिसे हिन्दुस्तानी भी कहा जाता था। यहीं यह याद कर लेना प्रासंगिक होगा कि इस हिन्दी के प्रति अविश्वास का एक बड़ा कारण परिधि में सीमित वह हिन्दी रूप है जो आम आदमी की भाषा और संवेदना से दूर है। कृष्ण कुमार ने हिन्दी के इस रूप के निहितार्थों और फलश्रुतियों का सटीक

विश्लेषण 1990 में अपने शोध 'हिन्दू रिवाइवलिज्म एंड एजुकेशन इन नॉर्थ सेंट्रल इंडिया' में बखूबी किया। इसी क्रम में आलोक राय की बहुउद्धृत पुस्तक 'हिन्दी नैशनलिज्म' कहना न होगा हिन्दी के प्रति अंग्रेजी का एक विमर्श संस्कृतनिष्ठता के आलोक में हिन्दी की छवि ग्रहण करता है। अब स्थितियों में व्यापक बदलाव आया है जहाँ हिन्दी की मौजूदा स्थिति में वही स्वरूप मुख्यधारा के विमर्श का है जो संस्कृत के प्रभाव से मुक्त है। इस कामयाबी के सबूत के रूप में हम हिन्दी साहित्य और पत्रकारिता की स्थापित और समाजविज्ञान की बनती हुई भाषा को ले सकते हैं।

हिन्दी-अंग्रेजी संबंध

हिन्दी की इस यात्रा को और स्पष्ट रूप से समझने के लिए जरूरी है कि हिन्दी-अंग्रेजी के संश्लिष्ट रिश्ते पर भी एक नजर डाली जाय। एन.सी.ई.आर.टी. ने 200 8-2010 के दौरान एक राष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन देश के विभिन्न हिस्सों में किया, जिसका विषय था-'समझ का माध्यम'। इस दौरान जो अध्ययन और विश्लेषणजनित अनुभव हासिल हुए उनसे अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य प्राप्त हुए। उनके आलोक में हिन्दी-अंग्रेजी संबंधों को परखना मौजू होगा। आजादी के पहले तक अंग्रेजों की खिलाफत तो हुई पर अंग्रेजी की नहीं। महात्मा गांधी, नेहरू, अंबेडकर, भगत सिंह अंग्रेजों की खिलाफत करते रहे पर अंग्रेजी की खिलाफत कभी नहीं की। अजादी के संघर्ष के दौरान सक्रिय स्वाधीनता सेनानी हिन्दी और आजादी दोनों के प्रति समर्पित थे। उनके मन में अपनी भाषा के प्रति प्रेम था, जिसके लिए वे अनेक तरह से सक्रिय थे। पर वे अंग्रेजी से नफरत नहीं करते थे। इस दरमियान अनेक वैज्ञानिकों ने अपनी भाषा में रचना की। उदाहरण के लिए जगदीशचन्द्र बसु ने अपनी भाषा बांग्ला में अनेक पुस्तकें लिखीं। पर आजादी के बाद स्थितियों में बदलाव आया। अधिकांश समाजवैज्ञानिकों, इतिहासकारों और वैज्ञानिकों ने अपनी मातृभाषा के स्थान पर अंग्रेजी में लेखन किया। 1967 के बाद हिन्दी-अंग्रेजी रिश्ते में एक बड़े बदलाव को घटित होते देखा गया। अंग्रेजी के प्रति जबरदस्त घृणा का माहौल बना। बिहार और उत्तर प्रदेश में अंग्रेजी के खिलाफ आंदोलन चलाये गये। विद्यालयी शिक्षा में पहली से पाँचवी तक अंग्रेजी शामिल नहीं थी। इस दौर में समाज दो वर्गों में विभक्त हो गया। एक वर्ग अंग्रेजी में काम करने वाला और दूसरा वर्ग इसकी मुखालफत करने वाला। यह दौर तकरीबन बीस वर्षों तक चला।

1987 के बाद एक अलग दौर की शुरुआत हुई। इलेक्ट्रॉनिक और नयी मीडिया की दुनिया का जनता पर जबर्दस्त असर दिखा। लोगों को ऐसा लगने लगा कि अंग्रेजी के बिना उनके बच्चे पिछड़ जायेंगे। बच्चे अंग्रेजी गलत बोलें या सही पर फर्राटेदार बोलें। ऐसा लोगों को विश्वास हो गया कि बिना अंग्रेजी के जीवन में आर्थिक-सामाजिक हैसियत पाना संभव नहीं। यह दौर अभी भी जारी है। पर असली सवाल यह है कि जो सामाजिक-आर्थिक संरचना तैयार हो रही है, उससे गुजरकर रोजी-रोटी के लक्ष्य तो हासिल हो जायेंगे, पर समझ कैसे बन पायेगी? यह शोध का विषय हो सकता है कि भारत ने आजादी के बाद कितने वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री या समाजशास्त्री दिये। विशेषज्ञों की राय है कि ऐसा इसलिए हुआ कि शुरुआती दौर में मातृभाषा में शिक्षा नहीं दी गयी। अंग्रेजी-हिन्दी के संश्लिष्ट संबंधों के विश्लेषण क्रम में कुछ ध्यान देने लायक बातें जरूर याद रखना चाहिये। एक तो यह कि दुनिया में अनेक ऐसे देश हैं, जिन्होंने अपनी भाषा के प्रति सम्मानपूर्ण दृष्टि रखते हुए विकास की दौड़ में अपनी सार्थकता साबित की। दूसरे यह कि अपनी भाषा से प्रेम का यह अर्थ नहीं है कि दूसरे की भाषा के प्रति द्रोह रखा जाय। साथ ही यह भी कि दूसरी भाषाओं से संपर्क के क्रम में नये शब्द गढ़ने की रचनात्मकता बरकरार रखी जाय। जैसे अंग्रेजी के ऑफिसर से हिन्दी का अफसर बना या रिपोर्ट से रपट। पिछले कुछ दशकों से इस आत्मविश्वास में लगातार कमी आ रही है। उदाहरणस्वरूप अंग्रेजी के रशिया को रूस या केनेडा को कनाडा लिखने-कहने का चलन कम हो रहा है।

हिन्दी एवं सहभाषाओं का संबंध

हिन्दी भाषा और साहित्य के सागर में अनेक सहभाषाओं की नदियाँ मिलती हैं। जैसे हिन्दी के निर्माण में खड़ी बोली, कौरवी के साथ-साथ ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मगही, मैथली, राजस्थानी आदि भाषाओं का योगदान अविस्मरणीय है। मध्यकाल की साहित्यिक विरासत में अवधी, ब्रजभाषा और आधुनिक काल की विरासत में खड़ी बोली या कौरवी की मौजूदगी को हम हिन्दी एवं सहभाषाओं के संबधों के आलोक में देख सकते हैं। हिन्दी की विरासत में सहभाषाओं से उसका रिश्ता द्वन्वात्मक कहा जा सकता है।

हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का संबंध

अन्य भारतीय भाषाओं से हिन्दी के रिश्ते को हम अनेक संदर्भों में देख सकते हैं। अनेक भारतीय भाषाओं की लिपि और हिन्दी की लिपि एक ही लिपि है। यानी हिन्दी समेत संस्कृत, मराठी, नेपाली, मैथिली, गुजराती की लिपि देवनागरी लिपि है। उसी तरह हिन्दी समेत अनेक भारतीय भाषाओं में संस्कृत से आये शब्दों की थाती है। मलयालम, तेलुगु, बांग्ला, कन्नड़, मराठी आदि भाषाओं में व्यवहृत होने वाले शब्दों का बड़ा भंडार संस्कृत से आया है। आरंभिक हिन्दी पत्रकारिता में विष्णु सखाराम खांडेकर (मराठी) का योगदान मील का पत्थर है, उसी तरह बांग्लाभाषी क्षेत्र कोलकाता से ही हिन्दी का पहला अखबार 'उदंत मार्तंड' प्रकाशित हुआ था। अन्य भारतीय भाषाओं और हिन्दी के संबंध पर इस अध्याय में विभिन्न प्रसंगों में अन्य स्थानों पर भी चर्चा की गयी है।

हिन्दी की संवैधानिक स्थिति के क्रियान्वयन का सवाल

भारतीय संविधान के सत्रहवें भाग के धारा 343 से 351 तक एवं 8 वीं अनुसूची के आलोक में हम हिन्दी की संवैधानिक स्थिति के क्रियान्वयन के सवाल को आसानी से समझ सकते हैं। धारा 343 (1) के अनुसार, 'भारत की राजभाषा देवनागरी लिपि में हिन्दी होगी।' साथ ही हिन्दी के सन्दर्भ में विकास के दिशा निर्देश का उल्लेख किया गया है 'हिन्दी भाषा का इस तरह विकास और प्रोत्साहन दिया जाय ताकि यह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्त्वों को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाला माध्यम बन सके।' संविधान की धारा 343 (2) के अनुसार सभी कार्यालयी कार्यों के संपादन हेतु अंग्रेजी के पंद्रह वर्षों तक प्रयोग की बात की गयी। 1965 में इसे सहायक कार्यालयी भाषा का दर्जा मिला। संविधान में यह भी प्रावधान किया गया कि उच्च न्यायालय, सर्वोच्च न्यायालय और संसद के अधिनियम की भाषा अंग्रेजी ही रहेगी। संविधान यह भी स्वतंत्रता देता है कि कोई भी नागरिक अपनी भाषा में राज्य को संबोधित कर सकता है। अपनी भाषा का तात्पर्य 8 वीं अनुसूची में उल्लेखित भाषाएँ हैं जिनका इस अध्याय के आरंभ में जिक्र किया गया है। (यहाँ बॉक्स बन कर आँठवीं अनुसूची की भाषा)।

भारत जैसे बहुभाषी समाज में भाषाओं के संदर्भ में जनतंत्र की अपनी माँग है, जिसकी अनदेखी संभव नहीं। दूसरी तरफ जनतंत्र के लंबे सफर में अंग्रेजी के प्रति अब वैसी धारणा नहीं रही जो उसके औपनिवेशिक दौर में थी। रोजगार और अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य के आलोक में अंग्रेजी की महत्ता बढी है, दूसरी तरफ हिन्दी का विस्तार भी तेजी से बढ रहा है। इन्ही परिस्थितियों में 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति का 'त्रिभाषा सूत्र' आया जिसके विभिन्न गुण-दोषों की चर्चा हुई। समय के साथ हिन्दी का स्वरूप भी बदलता गया है। हिन्दी का वह नया रूप जो पत्रकारिता, मनोरंजन और ज्ञान के विभिन्न अनुशासनों के संदर्भों में उभरा है वह तथाकथित शुद्धताऊ प्रयोगों से मुक्त है। यह बिल्कुल स्वाभाविक भी है कि बदलते हुए संदर्भों में हिन्दी के उस रूप की पहचान की जाय जो नित नये-नये प्रयोगों के साथ आगे बढ़ रही है।

हिन्दी का सच

सच तो यह है कि आज की हिन्दी की पहुँच बहुत तेजी से बढ़ रही है। रामशरण जोशी ने लिखा है, 'यह हिन्दी के उत्सव का समय है। बाजार ने हिन्दी की व्याप्ति बढायी है। इसकी उपलब्धियाँ हैं समस्याएँ भी हैं। हिन्दी प्रिंट मीडिया में विस्फोट है। नयी पीढ़ी हिन्दी मीडिया में अपना प्रतिबिम्ब देखना चाहती है। यह सिर्फ हिन्दी पट्टी की भाषा नहीं रह गयी है। इसका अपना एक स्वतंत्र गणतंत्र बन चुका है। हिन्दी एक उत्सव का नाम है।' वे खुद को हिन्दीकर्मी कहते हैं। कहना न होगा आत्मविश्वास से संपन्न इस हिन्दी का स्वरूप पुरानी हिन्दी से अलग है। दिनोंदिन ऐसे कर्मियों की संख्या बढ रही है। यह हिन्दी विस्तार का नया दौर है, जिसमें अनेक तथ्यात्मक सचाइयाँ शामिल हैं-देश के दस चोटी के दैनिकों में ऊपर के चार हिन्दी के हैं। राजस्थान पत्रिका जैसे हिन्दी अखबार अहिन्दी भाषी क्षेत्रों जैसे-चेन्नई, बंगलौर, कोलकाता से निकल रहे हैं। उसी तरह हिन्दी के अनेक दैनिकों के अन्तरराष्ट्रीय संस्करण भी निकल रहे हैं। देश में सर्वाधिक समाचार और मनोरंजन चौनल हिन्दी के ही हैं। हिन्दी फिल्मों की व्यापक लोकप्रियता का बढ़ता फैलाव हिन्दी के एक अन्य सच का अख्यान है। हिन्दी के केरल के मलयालम मनोरमा जैसे संस्थान हिन्दी में अपनी वार्षिकी प्रकाशित कर रहें हैं। आज का एक सच यह भी है कि किसी भी साहित्यिक और अन्य अनुशासन की गैर हिन्दी रचनाएँ जबतक हिन्दी में अनूदित होकर नहीं छपती हैं, तबतक उनकी अखिल भारतीय पहचान नहीं बन पाती। तात्पर्य यह है कि तमाम चुनौतियों के बावजूद हिन्दी के विकास की अनेक सम्भावनाएँ तेजी से विकसित होती नजर आ रही हैं।

हिन्दी के विविध रूप

हिन्दी बहुरूपी है। संपर्क भाषा, राजभाषा, प्रयोजनमूलक भाषा, शिक्षायी हिन्दी, अंतरराष्ट्रीय भाषा, ज्ञान की भाषा वाणिज्य-व्यवसाय की भाषा के रूप जैसे संदर्भों में हम हिन्दी की पहचान बखूबी कर सकते हैं। हिन्दी अन्य भारतीय भाषाओं के संपर्क में विभिन्न रूपों में विकसित हुई जो एक अर्थ में जनतान्त्रिक विकास की विशिष्ट कसौटी कही जा सकती है। बांग्ला, असमिया, उड़िया के संपर्क में विकसित होने वाली हिन्दी का स्वरूप अलग है तो पंजाबी, डोगरी जैसी पश्चिमोत्तर भाषाओं के संपर्क की हिन्दी का रूप अन्य ढंग से विशिष्ट है। उसी तरह द्रविण भाषाओं जैसे तेलुगु के संपर्क की हिन्दी और सुदूर पश्चिम की मराठी, कोंकणी के संपर्क की हिन्दी का रूप अलग तरह की सुंदरता धरण किये हुए है। कुल मिलाकर हिन्दी के मोटे तौर पर चार या पाँच रूप ऐसे हैं जो अन्य भारतीय भाषाओं के संपर्क में बने संवरे।

संपर्क भाषा वह भाषा होती है जो समाज के विभिन्न तबकों के बीच संपर्क के लिए प्रयोग में लायी जाती है। हिन्दी इस लिहाज से हिन्दी प्रदेशों के अतिरिक्त भारत के अन्य प्रदेशों में बतौर संपर्क भाषा व्यवहार में लायी जाती है। संपर्क भाषा का एक अन्य अर्थ में भी प्रयोग होता है। शासन के विभिन्न अंगों के बीच आपसी संवाद के लिए जिस राजभाषा का प्रयोग किया जाता है वह भी संपर्क भाषा ही है। हिन्दी इस रूप में भी व्यवहार में लायी जाती है। हम यह जानते हैं कि हिन्दी औपचारिक रूप में बतौर राजभाषा प्रयोग में लायी जाती है। फिलहाल अनौपचारिक संदर्भ में हिन्दी के संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग पर एक नजर डालना मुनासिब होगा। भारत के सार्वजनिक जीवन में प्राय: हिन्दी या अंग्रेजी ही बतौर संपर्क भाषा प्रयोग में लायी जाती है। इसके पीछे दरअसल वह विरासत मौजूद है जिसकी शुरुआत बीती शताब्दी के आरंभिक दशकों में हुई थी। स्वैच्छिक हिन्दी संस्थानों और स्कूली शिक्षा के माध्यम से देश के विभिन्न भागों में हिन्दी के व्यापक प्रशिक्षण दिये गये। बड़ी संख्या में लोगों ने हिन्दी सीखी और हिन्दी भाषा का व्यापक प्रसार हुआ। हिन्दी के संपर्क भाषा के रूप में विकसित होने में हिन्दी से संबंधित विभिन्न स्रोतों जैसे सिनेमा, धारावाहिकों का भी बहुत बड़ा योगदान रहा। वस्तुत: हिन्दी भारत के सामूहिक मन की सशक्त अभिव्यक्ति है जैसा की संविधान के अनुच्छेद 351 में लक्षित किया गया था-'हिन्दी देश की सामासिक संस्कृति की वाहक है।'

हिन्दी के राजभाषा रूप पर अनेक राय प्रकट किये गये। फिलहाल इन चर्चाओं से अलग कुछ बुनियादी बातों को जान लेना आवश्यक होगा। संविधान के अनुसार हिन्दी भारतीय गणराज्य की राजभाषा है। इस भूमिका में वह केन्द्र सरकार के कार्यालयों की भाषा है, देश के कानून की भाषा है और उच्च न्यायलयों तथा उच्चतम न्यायलय को अभिलेखों के स्तर पर जोड़ने वाली भाषा है। यही कारण है कि संघ शासन के इन तीनों अंगों से जुड़े हुए व्यक्तियों से यह उम्मीद की जाती है कि वे इस भाषायी रूप से परिचित हों और उसके माध्यम से यथासंभव काम करें। राजभाषा के रूप में हिन्दी को विकसित करने के लिए केन्द्र सरकार ने अनेक योजनाएँ चलायी। विधि, विज्ञान, प्रशासन तथा अन्य सरकारी उपक्रमों से जुड़े संदर्भों के लिए विभिन्न अनुवाद आधारित पुस्तकें-पुस्तिकाएँ तथा निर्देश तैयार हुए। हिन्दी के इस नये स्वरूप के प्रति लोगों के मन में सहज ही अपरिचय का बोध हुआ, लोगों को लगा कि यह बोलचाल की भाषा से अलग कोई भाषा है। इस कथन में संभव है सचाई भी हो, पर यहाँ यह समझ लेना जरूरी है कि प्रयोग के प्रति यदि संजीदा हुआ जाय तो एक हद तक समस्याएँ दूर होंगी और विकल्प के अवसर भी सुगमता से साथ निभाएँगे।

प्रयोजनमूलक भाषा का तात्पर्य हुआ हिन्दी का वह रूप जिनसे विशेष प्रयोजन हल होते हैं। इसके लिए कई बार 'कामकाजी हिन्दी' या 'व्यावहारिक हिन्दी' जैसे पदों का प्रयोग भी किया जाता है। अब हिन्दी केवल साहित्यिक भाषा नहीं रही। वह रोजगार के अनेक अवसरों के लिए दक्ष बनाने वाली भाषा भी है। इस उद्देश्य को साधने के लिए ही हिन्दी का प्रयोजनमूलक रूप उभरा। प्रयोजनमूलक हिन्दी के अनेक क्षेत्र हैं-प्रशासनिक हिन्दी, कार्यालयी हिन्दी, जनसंचार माध्यमों की हिन्दी, विज्ञापनी हिन्दी, तकनीकी हिन्दी, वैज्ञानिक हिन्दी, वाणिज्यिक हिन्दी, विधिक हिन्दी इत्यादि। विभिन्न शिक्षा संस्थानों में प्रयोजनमूलक हिन्दी के लोकप्रिय पाठ्यक्रम इस बात के गवाह हैं कि पिछले कुछ दशकों में हिन्दी में रोजगार के अवसर बढ़े हैं। यह साफ तौर पर महसूस किया जा सकता है कि बाजार की भाषा के रूप में भी हिन्दी की स्वीकार्यता के नये क्षितिज उभरे हैं। टेलीविजन के विज्ञापन, खबरिया चौनलों की तेजी से बढ़ती लोकप्रियता, धारावाहिकों का बढ़ता दायरा जैसे अनेक क्षेत्रों में रोजगार की संभावनाओं के नये अवसरों ने हिन्दी पठन-पाठन के सर्वथा नये संदर्भों का सृजन किया है।

वर्तमान शैक्षिक भाषा के रूप में हिन्दी के बनने संवरने की एक लंबी कहानी है। जिसे विस्तार से समझने की जरूरत है। आधुनिक ढंग की भारतीय शिक्षा के मसले पर ब्रिटिश हुक्मरानों ने 19 वीं सदी के उत्तरार्ध में सक्रिय हस्तक्षेप किया। हालाँकि इसके पहले पढ़ने-पढ़ाने के मुद्दे पर ब्रिटिश सरकार ने 1813 में एक चार्टर जारी किया था। इस चार्टर को स्थायी पहचान 1854 के वुड्स डिस्पैच से मिली। यहाँ यह याद कर लेना लाजमी होगा कि वुड्स डिस्पैच के पहले इसाई मिशनरियों ने शिक्षा प्रसार के लिए सरल हिन्दी को अपना माध्यम बना लिया था। इन्हीं के द्वारा 1817 में कलकत्ता बुक सोसायटी और इस प्रकार की अन्य संस्थाएँ आगरा बुक सोसायटी, नॉर्दन टेक्स्ट बुक सोसायटी (इलाहाबाद) की स्थापना की गयी थी। 1854 के वुड्स डिस्पैच के बाद सभी प्रांतों में अलग से शिक्षा विभाग बने। प्रारंभिक इतिहास से पता चलता है कि हिन्दी के पाठ्यपुस्तकों के निर्माणकर्ता प्रय: शिक्षा विभाग के कर्मचारी ही रहे। सुप्रसिद्ध हिन्दीसेवी राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द इसी विभाग में इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल थे। 19 वीं सदी के अंतिम वर्ष में देवनागरी को पश्चिमोत्तर प्रांत की कचहरी भाषा बनने का अवसर मिला। 1900 ई. में 'सरस्वती' के प्रकाशन से हिन्दी भाषा और साहित्य को एक नयी दिशा मिली। आर्य समाज ने हिन्दी के लिए आर्य भाषा पदबंध का प्रओग किया। हिन्दी का संस्कृतनिष्ठ रूप आर्य समाज की सांस्कृतिक अस्मिता का अनिवार्य रूप था। इस बीच 1905 के बंग-भंग विभाजन के विरोध में उठे 'स्वदेशी' की भावना ने 'राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली' की जरूरत को शिद्दत से महसूस किया। इसी कालखंड में मौजूदा हिन्दी सर्वाधिक विश्वसनीय रूप में उभरी। इन परिस्थितियों में शिक्षायी हिन्दी का जो रूप उभरा, उसे ही शिक्षायी हिन्दी का पहला व्यवस्थित रूप माना जा सकता है। उभरते हुए राष्ट्र की भाषा के रूप में हिन्दी की पहचान तो कर ली गयी, लेकिन शिक्षायी हिन्दी के विकास पर अंग्रेजी का प्रभाव रहा। 1920 के बाद का समय शिक्षायी हिन्दी के लिए इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण है कि इसी दौर में राष्ट्रीय आन्दोलन की राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को मान्यता मिली। 1921 में जब ब्रितानी हुकूमत के खिलाफ भारतीय जनता द्वारा असहयोग आँदोलन चलाया गया तब तत्कालीन सरकारी स्कूलों के समानांतर राष्ट्रीय विद्यापीठों (काशी, बिहार और गुजरात) की स्थापना की गयी तब प्राथमिक, एवं माध्यमिक स्तर पर हिन्दी विषय अनिवार्य कर दिया गया। (भूदेव मुखर्जी- बिहार)1923 में पहली बार काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर स्तर पर हिन्दी की पढ़ाई आरंभ हुई। पर हिन्दी का यह रूप कैसा था, इस पर एक नजर डालना जरूरी है। महात्मा गाँधी ने काशी विद्यापीठ के स्थापना दिवस के अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा 'हमारी राष्ट्रीय भाषा हिन्दुस्तानी है जिसे 21 करोड़ आदमी बोलते हैं।...हमें उर्दू और देवनागरी दोनों लिपि सीखना चाहिए। हमें वही हिन्दी चलाना है, जिसमें संस्कृत और उर्दू मिली हो।' (काशी विद्यापीठ पंचांग, 1922 ई.) इस दिशा में वर्ष 1932 एक निर्णायक मोड़ है, जिसका सिरा तत्कालीन सांस्कृतिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से संबद्ध है। 1932 के पहले तक हिन्दी और उर्दू एक ही रीडर से पढ़ायी जाती थी। पाठों के विषयवस्तु और प्रस्तुति एक जैसे होते थे, केवल लिपि अलग-अलग हुआ करती थी। आगे चलकर ब्रितानी हुकूमत ने सहज ही उर्दू के अलग रीडर की माँग को स्वीकार कर लिया। इसी समय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी की अलग पाठ्य-पुस्तकें तैयार की। पढ़ाई की पहले से चली आ रही परिपाटियों में परिष्कार किया गया, जिनपर तत्कालीन सांस्कृतिक संदर्भों और विचारधारा का प्रभाव पड़ा।

अंतरराष्ट्रीय भाषा या विश्वभाषा किसे माना जाय, इसका कोई मान्य आधार नहीं है। एक विचार यह है कि जो भाषा संयुक्त राष्ट्र संघ में मान्य हो, उसे विश्वभाषा कहें। लेकिन यदि इतिहास की तरफ नजर डालें तो हम पाते हैं कि अनेक ऐसी भाषाएँ जिन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ ने बहुत बाद में मान्यता दी उन्हें आरंभिक दौर में महज इसलिए विश्वभाषा का दर्जा नहीं दिया गया क्योंकि वे पराजित राष्ट्रों की भाषाएँ थीं। इस क्रम में हम जर्मन, जापानी जैसी भाषाओं को याद कर सकते हैं। एकदम आरंभिक दौर में जिन पाँच भाषाओं को संयुक्त राष्ट्रसंघ ने मान्यता दी वे विजयी राष्ट्रों की भाषाएँ थीं। वे अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, फ्रांस और चीन की राजभाषाएँ थीं। यहाँ यह याद कर लेना भी जरूरी है कि इन देशों ने अपनी भाषाओं को संयुक्त राष्ट्र संघ में मान्यता दिलाने के लिए व्यापक प्रयास भी किया। पर हिन्दी के साथ ऐसी इच्छाशक्ति का प्राय: अभाव रहा। नागपुर से सुरीनाम और सुरीनाम से लंदन और लंदन से न्यूयार्क तक कुल आठ विश्व हिन्दी सम्मेलनों के बावजूद हिन्दी अभी भी संयुक्त राष्ट्रसंघ की मान्य भाषा का दर्जा नहीं पा पायी। हाँ सभी विश्व हिन्दी सम्मेलनों में यह बात जरूर उठायी गयी कि हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की मान्य भाषा का दर्जा दिलाने के लिए प्रयास किए जाएँ।

यह समझने की कोशिश की जाय कि क्या हिन्दी में विश्वभाषा के गुण समाहित हैं? भारत के अतिरिक्त फीजी, मॉरिशस,त्रिनिदाद, सूरीनाम, गुयाना जैसे लगभग आधा दर्जन देशों में हिन्दी भाषी बहुसंख्यक हैं। खाड़ी देशों में तीस लाख भारतीय हैं जिनकी नागरिकता भारत की है, उनमें अधिकांश लोगों की संवाद भाषा हिन्दी ही है। भारत के विभिन्न पड़ोसी देशो में तकरीबन बीस करोड़ लोग हिन्दी समझते हैं और उनमें अधिकांश लोग बोल भी लेते हैं। दुनिया के लगभग पचास देशों में दो करोड़ से भी ज्यादा भारतीय रहते हैं। भले ही उनकी जबान अन्य भारतीय भाषाएँ हों, पर उन्हें आपस में जोड़ने वाली भाषा हिन्दी ही है। इस तरह संख्या बल के आधार पर हिन्दी दुनिया की महत्त्वपूर्ण भाषाओं में शुमार की जा सकती है। मौजूदा दौर वैश्वीकरण का दौर कहा जाता है। यद्यपि प्रशासन और समाज में ऐसी राय रखने वाले बड़ी संख्या में हैं जो यह कहते नहीं अघाते कि हिन्दी अपनी लड़ाई हार गयी। बावजूद इसके यह एक महत्त्वपूर्ण सचाई है कि किसी भी समाज निर्माण की एक प्रक्रिया होती है, जिसकी अनदेखी संभव नहीं। यह निर्मम सचाई है कि यदि अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी या मलेशिया की कोई बहुराष्ट्रीय कंपनी अपने उत्पाद भारतीय बाजार में बेचना चाहती है तो उसे अपने उत्पाद के बारे में विज्ञापन या समझ बनाने के लिए भारतीय भाषा पर ही आश्रित रहना होगा। यह अकारण नहीं है कि अमेरिका, जापान जैसे देशों के विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। बेशक उसके पीछे बाजार की सक्रिय भूमिका है। आज हिन्दी चौनल अंग्रेजी चौनलों के मुकाबले अधिक लोकप्रिय और व्यवसायिक रूप से सफल हैं। एक दौर में यह भी लगा कि चौनलों के द्वारा जो हिन्दी परोसी जा रही है वह भाषा संस्कार को क्षति पहुँचा रही है। उस भाषा के लिए 'हिंग्लिश' जैसी संज्ञा का प्रयोग किया गया। पर वह भाषा चली नहीं। मौजूदा दौर के हिन्दी समाचार चौनलों की भाषा हिन्दी के नये दौर की वह सशक्त भाषा है जिससे हिन्दी मन को अभिव्यक्त करना न केवल आसान है बल्कि सटीक भी। अंग्रेजी के समाचार पत्रों में महज दस साल पहले हिन्दी के वाक्यांशों के प्रयोग की बात कोई सोच भी नहीं सकता था, पर अब अंग्रेजी के समाचारपत्रों में हिन्दी शब्दों और वाक्यांशों का प्रयोग कोई अनोखी घटना नहीं रही। पर यह भी सही है कि अभी भी हिन्दी में ज्ञान-विज्ञान की भाषा बनने की दिशा में गंभीर प्रयासों की जरूरत है। यह काम नामुमकिन तो नहीं पर मुश्किल जरूर है। हिन्दी के विश्वभाषा स्वरूप पर विचार करने के पहले इन सभी पहलुओं से बाखब्बर होना जरूरी है।

अशोक का गिरनार अभिलेख

जानी मेहुल कुमार नवीनचंद्र

पीएच.डी स्टूडेंट, पाटन, नॉर्थ गुजरात

इतिहास लेखन के लिए अभिलेख एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इस तरह के चित्रों ने प्राचीन भारत के इतिहास के लेखन में बहुत योगदान दिया है। इसलिए उनके शिलालेख अशोक के राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास के लिए बहुत महत्वपूर्ण प्रमाण हैं। अशोक के संपूर्ण अभिलेखों का पहला संग्रह कनिंघहाम नामक एक विद्वान ने1877 मे प्रकाशित किया था। इसने एक उन्नत संस्करण जारी किया। डॉ. राजबली पाण्डेय हिन्दी भाषा में इन परिघटनाओं का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया है। अशोक के शिलालेख पूरे भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान और नेपाल में पाए गए हैं। भारत के अन्य राज्यों में और गुजरात में गिरनार के पास एक शिलालेख संरक्षित है।

गिरनार उपरोक्त अभिलेखों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अशोक ने इसमें कुल चौदह लेख लिखे हैं। इन चौदह लेखों की प्रतियां भारत के मुख्य क्षेत्रों में भी हैं। गिरनार में जिस पत्थर पर यह लेख उकेरा गया है। इसका आकार त्रिभुजाकार है। ठाठ एक ग्रेनाइट पत्थर है। अशोक ने उत्तर की ओर समतल भाग पर खड़े होकर अपने कुल चौदह लेखों को दो भागों में उकेरा है। शेष भाग में दो अन्य महान सम्राटों, रुद्रदामन और स्कंदगुप्त के लेखन शामिल हैं।

पढ़ने का प्रयास

इस लेख को सबसे पहले जेम्स प्रिंसेपने जूनागढ़ का दौरा किए बिना निपटाया था। प्रारंभ में कैप्टन बोगमन विद्वान जूनागढ़ आए और कपड़े पर यह छाप छोड़ी और दुनिया भर के कुछ प्राचीन सिक्कों की मदद से जेम्स प्रिंसेप इसे सुलझाने में सफल रहे। इसके बाद डॉ.विल्सन कैप्टन लॉग, लेफ्टिनेंट पोस्टन्स, कैप्टन जैकब, प्रो.पादरी गार्ड, नॉरिसन बटलर आदि ने इसकी छाप देखी और गिरनार के इस लेख पर सफलतापूर्वक काम किया और चौदह लेखों का पहला संस्करण शनि के खंड 'इंस्क्रिप्शन पाइदारशी' में प्रकाशित हुआ। बुहलरने इस लेख को वियना ओरिएंटल जर्नल में भी प्रकाशित किया था। इस प्रकार अशोक की गिरनार शिला पर चौदह लेख हल हुए।

लिपि-भाषा:

गिरनार शिलालेखकी लिपि ब्राह्मी है। जिससे देवनागरी और गुजराती लिपियों की उत्पत्ति हुई है। यह लिपि दाएँ से बाएँ लिखी जाती है। ऐसा माना जाता है कि इस लिपि में सबसे पहले वेद लिखे गए थे। ब्राह्मणों ने इसका सबसे अधिक उपयोग किया, इसलिए माना जाता है कि इसका नाम ब्राह्मी पड़ा। अशोक के गिरनार पाठ की भाषा को पश्चिमी श्रेणी में रखा गया है। इस भाषा को पाली का सबसे करीबी मान सकते है।

लेख का विषय :

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा अर्थात सम्राट अशोक ने उनकी रचनाओं को श्धर्मलिपिश अर्थात शास्त्र कहा है क्योंकि इन लेखों का विषय मुख्य रूप से मानव धर्म से संबंधित है।

गिरनार के अशोक के इन चौदह लेखों का संक्षेप इस प्रकार है।

प्रथम क्रम के लेख में यह बताया गया है कि कुछ कर्मकांडों और संस्कारों के संबंध में कुछ चीजें निषिद्ध हैं। इस दिशा के अनुसार यज्ञ में चूंकि सभी शिलालेख पत्थर पर खुदे हुए हैं, इसलिए उन्हें शिलालेख कहा जाता है। एक बड़ी चट्टान पर खुदी हुई एक वस्तु को शैल लेख के रूप में जाना जाता है। जूनागढ़ का लेख इस प्रकार का है।

अशोक का गिरनार अभिलेख :

उपरोक्त लेखों में गिरनार अभिलेख बहुत महत्वपूर्ण है अशोक ने इसमें चौदह लेख अंकित किए हैं। इन चौदह लेखों की प्रतियां भारत के मुख्य क्षेत्रों में भी उकेरी गई हैं। यह लेख गिरनार में ही एक पत्थर पर खुदा हुआ है। इसका आकार त्रिभुजाकार है। शिला ग्रेनाइट पत्थर से बनी है। अशोक ने उत्तर की ओर समतल भाग पर खड़े होकर अपने कुल चौदह लेखों को दो भागों में उकेरा है। शेष भाग में दो अन्य महान सम्राटों, रुद्रदामन और स्कंदगुप्त के लेखन शामिल हैं।

इस लेख को सबसे पहले जेम्स प्रिंसेप ने जूनागढ़ का दौरा किए बिना निपटाया था। शुरू में कैप्टन बोग्यू नाम का एक वैज्ञानिक जूनागढ़ आया और उसने इस प्रिंट को कपड़े पर ले लिया और दुनिया भर के कुछ प्राचीन सिक्कों की मदद से जेम्स प्रिंसेप ने इसे हल करने में कामयाबी हासिल की। फिर डॉ. विल्सन,

कैप्टन लॉग, लेफ्टिनेंट पोस्टेंस, कैप्टन जैकब, प्रो. पादरी गार्ड नॉरिसन, बहलर आदि ने इसका प्रभाव देखा और गिरनार के लेख पर सफलतापूर्वक काम किया और चौदह लेखों का पहला संस्करण शनि के ग्रंथ 'inscription the priydarshi' में प्रकाशित हुआ। बुहलर ने इस लेख को वियना ओरिएंटल जर्नल में भी प्रकाशित किया था। इस प्रकार अशोक की गिरनार शिला पर चौदह लेख हल हुए। तीसरे लेख में, अशोक ने कहा है कि ये लेख उनके राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष में लिखे गए थे। मंत्रिपरिषद द्वारा यह अनुरोध किया गया है कि इस क्षेत्र का दौरा करने के लिए युक्तोस, रज्जुकोस और क्षेत्रीय अधिकारियों जैसे अधिकारियों से जानकारी एकत्र करें। पशु बलि और सदाश सभाओं पर प्रतिबंध लगाने का अनुरोध किया गया है। इस आदेश का पालन शाही रसोई से शुरू किया गया था और भोजन के लिए सैकड़ों जानवरों का वध करने के बजाय, केवल दो मोर और एक हिरण का वध किया जाता है जब यह लेख लिखा गया था। बाद में ये तीनों जानवर भी नहीं मारे जाएंगे। दूसरे लेख में सम्राट अशोक के पुरधर्म का उल्लेख है। सम्राट अशोक के पास अपने राज्य के साथ-साथ पड़ोसी स्वतंत्र राज्यों में मनुष्यों और जानवरों के लिए अलग-अलग उपचार सुविधाएं थीं। इसके अलावा जानवरों और मनुष्यों दोनों के लिए सड़कों पर कुएं खोदे गए और खान पान के लिए सड़क के दोनों ओर पेड़ लगाए गए। इस आशा में रूपांतरण पर जोर दिया जाता है। लेख के ही शब्दों में, ष्जानवरों की हत्या, भूतों की चोट, ब्राह्मणों-श्रमणों के प्रति अजीब व्यवहार आदि सैकड़ों वर्षों से बढ़े हैं। अब प्रियदर्शी राजा का धर्म भैरी घोष द्वारा घोषित किया गया है और उनका धार्मिक शासन गैर है -पशु-हिंसा, भूतों की चोट न लगना, ब्राह्मणों-श्रमणों के प्रति अच्छा व्यवहार, माता-पिता की सेवा आदि धर्मचक्र मे गुना वृद्धि हुई है और वृद्धि होगी। राजा आदि के पुत्रों और पौत्रों ने भी धर्म परिवर्तन किया सातवें लेख में, अशोक कहते हैं, प्रियदर्शी हर जगह हैं, सभी संप्रदाय रहते हैं, हर कोई सद्भाव और भवधि क्यों चाहता है। लेकिन लोगों के अलग-अलग हित हैं। वह सब या उसका कुछ भाग करेगा "आठवें लेख में अशोक ने अपनी तीर्थयात्रा का उल्लेख किया है। लिखावट के शब्दों में, ष्लंबे समय से प्रिय (राजा) तीर्थ यात्रा पर जाते थे, जो सुंदर थे और ऐसी अन्य चीजें होती थीं। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने अभिषेक के दस वर्ष बाद सम्बोधित किया, इसलिए तीर्थ हुआ। इसमें दर्शन, दान, धर्म आदि किए जाते हैं। राजा को यह बहुत प्रिय है। नौवें लेख में अशोक ने लोगों को धर्ममंगल करने का निर्देश दिया है। इस आज्ञा का सार है, ष्लोग विभिन्न मंगल (मांगलिक क्रियाएं) करते हैं, इसलिए माताएं हैं (महिलाएं। मंगल कम है, लेकिन यह निष्फल है। धर्ममंगल महालदायी है। इसमें दासों और नौकरों के प्रति अच्छा व्यवहार, जानवरों के प्रति संयम, ब्राह्मणों को दान आदि पिता और पुत्र, भाई स्वामी आदि द्वारा उपदेश या धर्ममंगल करने के समान है, क्योंकि अगर यह इस दुनिया में फलदायी नहीं है, तो यह अनंत पुण्य पैदा करता है अगली दुनिया, जबकि अन्य मंगल फलदायी हो या न हो। साथ ही यह इस लोगों से संबंधित है यह कामना की जाती है कि सभी संप्रदायों के पास समृद्ध शिक्षाएं और अच्छे सिद्धांत हों, सभी संप्रदायों की समृद्धि के लिए धर्म महामार्ग, महिलाओं की देखभाल करने वाले महामात्र, व्रजभूमि अध्यक्ष आदि नियुक्त किए गए हैं। इसलिए किसी के संप्रदाय की वृद्धि और धर्म की प्रतिभा। तेरहवें लेख में कलिंग की लड़ाई के कारण अशोक के हृदय परिवर्तन का उल्लेख है। इसमें कहा गया है कि, ष्अभिषेक के एक साल बाद, देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने कलिंग देश को जीत लिया। डेढ़ लाख लोगों को पकड़कर ले जाया गया, एक लाख वहां मारे गए और कई और मारे गए। फिर अब कलिंग की भूमि मिलने के बाद, देवताओं के प्रिय में तीव्र भक्ति, धर्म के प्रति प्रेम और धार्मिक अनुशासन है। देवताओं के प्रिय मृत्यु, मृत्यु या जीत के अपवाद के लिए बहुत दर्द में हैं। ष्कलिंग देश की विजय में मारे गए, मारे गए या मारे गए पुरुषों की संख्या, यहां तक कि इसका सौवां या हजारवां हिस्सा भी देवताओं के प्रिय को बहुत अच्छा लगता है। जो कोई भी गलत करता है उसे उतना ही क्षमा किया जाएगा जितना प्रियतम देवताओं की क्षमा हो जाती है।धर्मविजय मुख्य विजय है। इससे मिलने वाली जीत संतुष्टिदायक होनी चाहिए। यह धर्मलिपि इसलिए लिखी गई है क्योंकि देवताओं का प्रिय प्रेम नहीं बल्कि दिव्य सुख मानता है। ताकि कन्या पात्र आदि नई जीत को हासिल न समझें और धार्मिक जीत को जीत मानें। चौदहवां और अंतिम लेख लगभग इस पूरे शैल लेख के निष्कर्ष जैसा है। जैसा कि इसमें कहा गया है, ष्यह धर्म लिपि देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा द्वारा लिखी गई है। यह संक्षिप्त रूप में, मध्यम रूप से, व्यापक रूप से है। उसने सारी जमीन का इस्तेमाल नहीं किया है, क्योंकि राज्य बहुत बड़ा है। मैंने बहुत कुछ लिखा है और आगे भी लिखूंगा। इसमें वह बिंदु की मिठास के लिए इसे दोहराते हैं। ताकि लोग ऐसा व्यवहार करें।

हो सकता है कि इसमें लिखावट की गलती के कारण क्षेत्र या संक्षिप्त नाम के कारण कुछ अधूरा लिखा हो। रुद्रदामन के गिरनार अभिलेख का परिच यह भगीरथ का काम था। कोई नहीं कर सका। इसलिए रुद्र दमन ने सुविशाख को ऐसा करने का आदेश दिया। सम्राट को उन पर पूर्ण विश्वास था। इसलिए लेख में लिखा है कि, शुविशाख बलवान और परोपकारी थे। अचपाल का मतलब स्थिर, बेशर्म और रिश्वत स्वीकार नहीं करता है। लेख में आगे कहा गया है कि सुविशाख ने लगातार अर्थ और धर्म का अभ्यास दिखाया।

सुदर्शन झील का इतिहास :- इस लेख में दिया गया सुदर्शन झील का इतिहास अद्भुत है क्योंकि इसे पहली बार मोर्योस के समय में बनाया गया था, इसके निर्माण के 450 साल बाद इसे शुविशाख द्वारा फिर से बनाया गया था लेकिन इसके इतिहास को भुलाया नहीं जा सका है।

सरोवर समरव्यू:- इस लेख में आगे कहा गया है कि इस झील का निर्माण मौर्य पा चंद्रगुप्त के राष्ट्रीय (सुबा) वैश्य पुष्पगुप्त ने करवाया था, अशोक मौर्य के सूबा वनराज तुषगे ने इसका जीर्णोद्धार कराया और किसानों के कल्याण के लिए इसे एक नहर से जोड़ा। कोई अतिरिक्त कर का बोझ नहीं! लेख में कहा गया है कि देघमन ने यह सब बनाने के लिए नगरवासियों और ग्रामीणों से किसी प्रकार का कोई कर या श्रद्धांजलि नहीं ली। लेकिन अपनी निजी बचत से सुविशाख ने बचाया है। अशोकने नया बांध बनवाया था, यह भगीरथ कार्य बारिश का महीना आने से पहले पूरा हो गया था। नया बांध तीन गुना चौड़ा, तीन गुना लंबा और पहले से ज्यादा मजबूत बनाया गया है। लेख के पिछले हिस्से में कहा गया है कि सभी तटबंध लंबाई और ऊंचाई में पत्थर से इस तरह बनाए गए हैं कि वह टूटे नहीं।

विष्णु मंडीहुं बोव वाव चक्रपालिन के दूसरे भाग में एक विष्णु मंदिर बनाने का उल्लेख है। बेशक इस भाग का लेख टक है। क्योंकि कुछ हिस्से टूट कर अलग हो गए हैं, लेकिन बचे हुए लेख से यह मंदिर रोजी गूसर 138 यानि है। एस। 457 ईस्वी में निर्मित, मंदिर के पास 'भूत विक्षत्रिह' शब्द का

प्रयोग किया जाता है। यह गिरिनगर के सिर पर था, यानी सभी पहाड़ों से ऊंचा। जैसे गिरनार की चोटियों से प्रकट होता है, लेख में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मंदिर ऐसा था राजसी कि इसने आकाश के पक्षियों का मार्ग अवरुद्ध कर दिया। पक्षी इसकी एक चोटियों पर आराम करने के लिए रुकते थे। विद्वानों में मतभेद हैं कि क्या अविष्णु मंदिर दामोदर कुंड पर दामोदर राय का वही मंदिर है या कहीं और यदि त्रिपक्रमाजी की वर्तमान प्रतिमा भी प्राचीन है और गुप्तकाल में स्थापित की जा सकती है, क्योंकि इसके मुख का किनारा और पत्थर पर लकीरों से यह विश्वास हो जाता है कि साथ में छोटी मूर्ति और रुक्मणी की मूर्ति भी ऐसी ही हो सकती है पुराना।

इस प्रकार गिरनार-जूनागढ़ का यह पत्थर भारत के प्राचीन इतिहास को जानने के लिए एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। लेख में इतिहास संरक्षित है। लेकिन खे शिक्षा का इतिहास भी दिलचस्प है। इन चट्टानों ने घटनाओं को उनकी शाश्वत स्मृति में संरक्षित किया है। वे घटनाएँ किसी भी राजनीतिक घटना से अधिक महत्वपूर्ण होती हैं। एक आम आदमी सोचता है कि समरवन के लिए एक सरोवर को ऐसा लेख लिखने की जरूरत है - बैनर पीटने की क्या जरूरत है? लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि मानव जीवन में पानी एक अनिवार्य साथी है। यह जिंदगी है। तो संस्कृत भाषा में पानी के लिए एक और शब्द ष्जीवनष है जिसके कारण मानव जाति ने पहले ही नदियों के किनारे अपनी बस्तियां बना ली हैं। लेकिन हर जगह नदी नहीं हो सकती? कुछ नदियाँ बहुत छोटी होती हैं। साथ ही, बारिश के आधार पर कोई तीन सौ पैंसठ दिनों तक नहीं बैठ सकता। जिस देश में ऐसी स्थिति होती है, जल निकाय, चाहे प्राकृतिक हो या कृत्रिम, अपरिहार्य हो जाते हैं। जहां कोई प्राकृतिक जल निकाय नहीं हैं, वहां मनुष्य कुट्रिम गुजरात के समान स्तर पर हैं। तो मानव प्रयास से गुजरात में जल निकायों का निर्माण होता है।

उपर्युक्त कार्य एवं धर्म के कार्य में सम्राट अशोक ने जो भगीरथ कार्य पूर्ण किया है उसकी वजह से उन्हें महान का दर्जा दिया गया है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. डॉ. हरिप्रसाद जी शास्त्री, 'प्राचीन भारत का इतिहास', पार्ट -1, यूनिवर्सिटी ग्रंथ निर्माण बोर्ड, गुजरात, 2017.
2. डी.आर भंडारकर, 'अशोक चरित', प्रथम आवृत्ति,1998.
3. V. V. Mirashi," studies in indology", vol. 2 1986.
4. ईश्वर पाडवी, 'गुजरात का संपूर्ण इतिहास', प्रथम आवृत्ति 2014.
5. एम एम चंद्रा, 'महानायक सम्राट अशोक', प्रथम आवृत्ति, मुंबई,1996.
6. गोविंद आप्टे, 'महान अशोक' मुंबई प्रकाशन, 1987.

दक्षिण गुजरात के प्राकृतिक पर्यटन स्थल

पटेल प्रितीबेन शंकरलाल

पीएच.डी छात्रा (इतिहास), हेम.उ.गु. युनिवर्सिटी, पाटन

अंग्रेजी शब्द 'दरिल्म' का सम्बंध 'हर' से है जो कि लेटीन भाषा से लिया गया है. हरिनोस क अर्थ औझार से है। जो एक पहिये कि भाति गोल होता है। यात्रि किसी खास स्थान पर जाकर खोज करता है।

शब्द के अनुसार पर्यटक शब्द कि परिभाषा ईस प्रकार है। "एक द्रश्य देखने वाला व्यक्ति जो यात्रा करता है. युनिवर्सिती शब्ध कोष के अनुसार पर्यटक वह व्यक्ति है, जो कि जानकारी हासिल करने तथा मनोरंजन करने के लिए यात्रा करता है।

प्राकृतिक एवं ऐतिहसिक दर्घष्टि से भारत विश्व के देशो में पर्यटन हेतु एक महत्व पूर्ण स्थान रखता है। यह देश पर्यटकों को भिन्न-भिन्न पर्वत श्रेणियों, पहाड़ियों, उत्व श्रुखलाओ, समुद्र किनारों, प्राकृतिक दृष्श्य, दर्शनीय सौंदर्य आदी वस्तुओ से आकर्षित करता है।

गुजरात के अंदर दक्षिण गुजरात मै वलसाड, डांग, नवसारी, नर्मदा, तापी आदि जिल्लो मैं विभाजित है। यहां पर इन जिल्लो के विभिन्न प्राकृतिक पर्यटन स्थल को बहार लाने का प्रयास किया है।[1]

सुलंतानाबाद - सुरत

सुरत के पश्चिम भाग मे १६ किलोमीटर के अंतर में दरिया किनारे में स्थित यह स्थान है। यह सुलतानबाद गांव नवाबि शाशन तले था यानि कि यह "शुब" के नाम से पहचाना जाता था। इस गांव का नाम नवाब सुलतान आबाद सुलतानाबाद रखा. इस स्थल के रास्ते के दोनों साइड मै बाग देखने को मिलते है। नवाबी शाशन काल सैं ही यहां पैडो कि हारमालाए थी यहां पेड़ों पर रहनेवाले मौर पक्षी, कोयल, बुलबुल सभी पक्षी अपनी आवाज से यहां की सौंदर्यधाम की सुंदरता में अधिक महत्वपूर्ण बनाते है। यहां का मनोरम्य वतावरन अधिक सुंदर लगता है। नवाबी के शाशनकाल में इस सुलतानबाद मे एरोड्राम था, जो पाँच रुपिये में विमान में बैठकर चक्कर लगता है।

कनैयालाल मुनशी और लालवती मुनशी की यह भूमि प्रेमभूमि रही है। ख्रिस्ती समुदाय का यह पर मिशन कम्पाउंड है इसके अलावा इस गांव में कृष्ण्ण मंदिर, शिवमंदिर, मझिद आदि देखनेलायक स्थल है।[2]

शंकरधोध (वलसाड)

वलसाड़ जिल्ले मैं धरमपूर में स्थित यह शंकरधोध का सौंदर्य बरसात की ऋतु में बारिश की वजह से अधिक सौदंर्यमय लगता है। ईस वोटरफोल के जलयप्रात से ही यह इस जिले का पर्यटक स्थल बन जाता है। इस कुदरती सौंदर्य का आनंद लेने के लिए गुजरात से कहीं लोग आते है।

पर्यटक स्थल के रुप मे यह शंकरधोध प्रवासिओ के लिए आकर्षक केंद्र बन जाता है।

बिलपुडी धोध (वलसाड)

बिलपुडी धोध वलसाड़ का एक सुंदर जलप्रयास हैं। यह जलप्रयास धरमपूर के पास बिलपुड़ी गांव में स्थित है. यह वोटरफोल बहुत ही सुंदर है। इस वोटरफोल तक जाने के लिए पैडल ट्रैकिंग करनी पड़ती है। यह वोटरफोल पहाड़ियों से गिरता है। जो बहुत ही सुंदर लगत है। यहां पर चारों तरफ जंगल और पहाड़ों का सुंदर दृश्य भी देखने को मिलता है. यह वलसाड़ का पिकनिक स्पॉट है। इस वोटरफोल को 'जोडियां वोटरफोल" भी कहते है। इस वोटरफोल के पास भाउली माताजी का मन्दिर है। इस जगह से जहां-जहां नजर डालो वहां प्रकृति का सौंदर्य देखने को मिलता है।[3]

किलाद प्रकृति प्रवासन केंद्र (डांग)

किलाद प्रकृति प्रवासन केंद्र भारत देश के पस्चिम, भाग में गुजरात के नवसारी जिले के बासंदा तालुक की डांग जिल्ले के उतरी सीमा पर बिलिमोरा और सापुतारा को जुड़ता हुआ राज्य धोरीमार्ग से बासंदा से ९६ कि.मी के अंतर मे यह नैसर्गिक स्थल है।

अंबिका नदी पे स्थित यह स्थल को गुजरात राज्य के वनविभाग द्वारा विकसित किया हुआ है। यहां आनेवाले प्रवासिओ को रहने के लिए बांस कि लकडीओ मे से बनाई गई झोपड़ीओ देखने को मिलती है। ईस के अलावा यहां वनों की जंगली संपति का और वनस्पति की जानकारी मिले इसलिए प्रदर्शनों की व्यवस्था भी देखने को मिलती है।[4]

गीराधोध (डांग)

सापुतारा के पहाड़ों मे से निकलती हुई सापुतारा बॉटनीकल गार्डन के पीछे से बहती हुइ अंबिका नदी पर यह वोटरफोल स्थित है. "गिरा और गिरी" यानि की नर-मादा के रुप में पति-पत्नि के रुप में गिरा-गीरी का अनोखा स्थान है। इस धोध के स्थान पे ही निचे कुंड देखने को मिलता है। जो करीब १५ फुट का है। यह स्थल प्रवासीओ के लिए आकर्षण क केंद्र है।[5]

जानकी वन (नवसारी)

नवसारी जिल्ले के वासंदा तालुके में गुजरात राज्य के भिनार गांव मे यह जानकारी वन स्थित है। इस पार्क को पर्यावरण संरक्षण, यानिकी संरक्षण के पोशण, प्रजनन, पर्यटन स्थल और जंगली जड़ी बुटियों आदि के लिए विकसित किया गया है। इस पार्क को वृक्षरोपण क्षेत्रों को अशोक वन, पंचवटी वन, उमरावन, चंदनवन, राशि नक्षत्र के नाम से जाना जाता है। इसे नवग्रह वन, देशमूल वन, बिली वन और औषधिवन आदि कहां जाता है। जानकी वन का उद्घाटन २ अगस्त, २०१६ को भूतपूर्व मुख्यमंत्री आनंदीबेन पटेल द्वारा किया गया था।[6]

जरवाणी धोध (नर्मदा)

जरवाली वोटरफोल गुजरात राज्य के नर्मदा जिल्ले में है। प्रकृति के सौंदर्य से हरे-भरे वोटरफोल में बहुत तेजी से पहाड़ियों से पानी बहता है। बारिश की घ्तु में इसे देएखने का मजा कुछ और होता है। ईस वोटरफोल वन में होने के कारण इसकी आसपास कै पैड और वनस्पतियां, पक्षीओ की मधुर आवाज से पर्यटक का मन प्रफुलित कर देता है। इस जगह पर पहोंचने के लिए पेंदल जाना पड़ता है। गरमी और दिवाली की छुटियों में यहां पर्यटक बहुत ज्यादा मात्रा में आते है।[7]

पदमडुंगरी ईको टुरिझम (तापी)

पदमदुंगरी इको टुरिझम साइट तापी जिल्ले में घुमने वाली मुख्य जगह है। यहां पर सह्यादि पर्वत श्रुंख्ला देखने को मिलती है। जो बहुत ही सुंदर है। यहां पर अंबिका नदी बहती है। राफ्टिंग और फ्लोटिंग का मजा ले सकते हैं। यहां पर विभिन्न प्रकार के पेड़ पोंधे और जानवर भी देखने को मिलते है। इस जगह चांद सुर्यमंदिर, गुस्माई मंदिर, वांसदा नेशनल पार्क आदि देखने को मिलता है। यहां पर वॉच टावर है जिसमे आप उपर से सारे पूरे जंगल का सुंदर द्रश्य देख शकते है यह जगह धार्मिक और प्राकृतिक रुप से प्रसिद्ध है।[8]

आंबापानी इको टुरिझम (तापी)

आंबापानी इको टुरिझम तापी का मुख्य पर्यटन स्थल है। यहां पर चारो और जंगल का दृष्श्य देखने को मिलता है। यहां पर पूर्ण नदी बहती है. जहां पर नाव की सवारी का मजा ले शकते है। यहां पर बच्चो के लिए प्ले एरिया बना हुआ है। यह पर्यटक स्थल प्रकृति द्रश्य से भरपूर है।[9]

संदर्भ सुची :-

१. डॉ० कैनैयालाल नायक "भारतीय पर्यटन नीति एवं विकास" हर्ष बूक एजंन्सी अहमदाबाद-२०१७, पृ.१-३
२. पटेल धीरूभाई "सौंदर्यधाम सुलतानबाद" भक्तिधाम डुमश, जि. सुरत. पृ-१
३. दिव्य भास्कर वर्तमान पत्र -२९/०७/२०१८
४. गुजरात एट ग्लांस, गुजारत राज्य माहीती विभाग, गांधीनगर- २०१८, पृ-११२
५. पुर्वोक्ति (क्रमांक-४)
६. तापी जिल्ला "साप्ताहीक अख्बार"
७. Mihir Patel inside vadodra, 21-Feb-2018.
८. District handbook Tapi 'Director of Census Operation Gujarat Years- 2011.
९. https://inplacedigger.com

भारत के संसदीय लोकतंत्र में चुनावी राजनीति एवं मतदान व्यवहार: एक अध्ययन

मेहर सिंह

शोधार्थी राजनीति विज्ञान, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

डॉ० मंजीत

सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान एवं लोकप्रशासन विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

शोधालेख सार:- वस्तुत: भारत का संसदीय लोकतत्र काफी पुराना है, फिर भी वर्ष 1989 के बाद क्षेत्रीय दलों की पीत राजनीति ने हमारी संसदीय परम्पराओं का काफी नुकसान किया है। आज बदलते राजनीतिक मूल्यों के संदर्भ में आधुनिक राजनीतिक विज्ञान में मतदान व्यवहार से सम्बंधित तथ्यों को जानने की जिज्ञासा राजनीतिज्ञों में बहुत अधिक रहती है, क्योंकि मतदान व्यवहार द्वारा निमित जनादेश लोग देश का प्राण तत्व हैं तथा लोकतंत्र को जीवित रखना मतदान व्यवहार पर निर्भर करता है। मतदान व्यवहार राजनीतिक व्यवस्था के लिए वह आधारभूमि प्रस्तुत करता है, जहाँ यह सत्ताधारी पार्टी के विरोध या समर्थन पर आधारित मतदाताओं का व्यक्तिगत निर्णय होता है, जिसकी सामूहिक परिणीति जनादेश रूप में होती है। इस जनादेश के अनुरूप ही शासक वर्ग से नीति निर्धारित एवं शासन वर्ग से राजनैतिक व्यवस्था के संचालन की अपेक्षा की जाती है। मतदान व्यवहार उन प्रतिनिधियों में दायित्व बोध उत्पन्न करता है। राजनीतिक दलों की सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित करता है। शान्तिपूर्ण सत्ता परिवर्तन का मुख्य साधन मत व्यवहार होता है। मतदान व्यवहार इस बात से भी निश्चित होता है कि कोई दल कितना बड़ा है। इसी तरह चुनाव से पहले सभी राजनीतिक दल लोकमत को अपने पार्टी के पक्ष में करने के लिए घोषणा पत्र तैयार करते हैं। अत: चुनावी घोषणा पत्रों का भी मतदान व्यवहार पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

मूल शब्द:- राजनीतिक दल, लोकमत, चुनावी घोषणा पत्र, मतदान व्यवहार।

भूमिका:- चूंकि मतदान व्यवहार किसी एक तत्व विशेष से सम्बन्धित नहीं होता है। इस पर अनेक तत्वों तथा परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। मतदान व्यवहार का सीधा सा अर्थ है - 'मतदाता का मतदान करते समय व्यवहार'। यद्यपि कोई भी मतदाता अपना मत देते समय कई तत्वों से प्रभावित होता है और ये तत्व चुनाव क्षेत्र तथा चुनाव की प्रकृति के अनुसार बदलते रहते हैं। इसमें उम्मीदवार का व्यक्तित्व, उसका सामाजिक प्रभाव, जाति, धर्म, भाषा, प्रचार-अभियान, क्षेत्रीयता, धन-बल, शराब, सोशल मीडिया, सम-सामयिक मुद्दे, राजनैतिक विचारधारा व कार्यक्रम, चुनावी घोषणा पत्र, उम्मीदवार के जीतने की संभावना, आदि की महत्वपूर्ण भूमिका को अनेक शोध अध्ययनों ने स्पष्ट किया है। अंतत: मतदान व्यवहार एक जटिल प्रक्रिया है। अब तक भारत में संसदीय जनादेश प्राप्त करने के लिए 17 लोकसभा के चुनावों के संदर्भ में मतदान व्यवहार का विश्लेषण करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

वस्तुत: मतदान व्यवहार का अध्ययन 20वीं सदी की प्रक्रिया है फिर भी अधिकांश समाजशास्त्री और राजनैतिक विद्वान इस बात से सहमत हैं कि आधुनिक राजनीतिक शास्त्र के क्षेत्र में मतदान व्यवहार का अध्ययन सबसे पहले चार्ल्स मेरियम तथा हेरोल्ड गोसबिल ने अपनी पुस्तक 'Non Voting' में किया है। फ्रांस में सन् 1913 में मतदान व्यवहार का अध्ययन किया था। इसके बाद अमेरिका में और ब्रिटेन में महायुद्ध के बाद इसका अध्ययन किया गया। लेखक आस्टिन रेमी ने मतदान के व्यवहार के आयाम को प्रकट किया है। जो आम चुनाव में मतदान व्यवहार को प्रभावित करता है: राजनैतिक दलों के मतदान करने के दौरान वरीयता देने में तथा अपनी वरीयता को विशेष रूप से प्रकट करने के लिए।

मतदाता व्यवहार का अध्ययन का केन्द्र बिन्दु व प्रमुख उद्देश्य मतदाता वोट देते समय किस तथ्य से सर्वाधिक प्रभावित होता है जो आम मतदाता को अपना मत देने के लिए प्रेरित करती है। मतदान व्यवहार किसी देश अथवा राज्य में लोकतंत्र के मूल्य समता, स्वतंत्रता, समानता, विधि के शासन तथा संविधानवाद की स्थिति का परिचायक है। मतदाताओं का आचरण इस बात को स्पष्ट करता है कि नागरिकों की सामाजिक व राजनैतिक चेतना का स्तर क्या है? मतदान व्यवहार का अभिप्राय: यह है कि मतदाता अपने मत के प्रयोग के समय किन तत्वों से प्रभावित होता है। इसमें यह भी समाहित है कि कौन सी मूल प्रवृति उसे मतदान हेतु प्रेरित और कौन सी निरूत्साहित करती है। इसके माध्यम से यह जानने का भी प्रयास किया जाता है कि मतदाता एक विशेष प्रत्याशी या राजनैतिक दल की ओर क्यों आकृष्ट होता है?

इस तरह अधिकांश राजनैतिक विद्वान मतदान आचरण का अध्ययन करते समय कई बातों का ध्यान रखते हैं, फिर भी सामान्य रूप से मतदान व्यवहार से हमारा अभिप्राय: मतदाता अपने मत का प्रयोग करते समय किन-किन तत्वों से प्रभावित होता है? ये सभी तत्व सभी समय और स्थान पर एक स्थान नहीं होते। इसलिए विभिन्न परिस्थितियों में मतदान व्यवहार एक समान नहीं होता। अत: मतदान व्यवहार का क्षेत्र काफी विस्तृत हो गया है। भारत जैसे एक विशाल

देश में इसका अध्ययन करना बहुत अधिक कठिन लगता है। हम मतदान व्यवहार का अध्ययन करते समय मतदान करने वाले लोगों का ही अध्ययन नहीं करते बल्कि उन लोगों का भी अध्ययन करते हैं जो चुनाव में अपनी वोट का प्रयोग नहीं करते। इसके अन्तर्गत चुनाव से पहले और बाद में विभिन्न क्षेत्रों में मतदाताओं से सम्पर्क स्थापित करके और उनसे मिलकर प्रश्न पूछ कर मतदान व्यवहार के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकालने का प्रयास करते हैं।

यहाँ हम इस बात को नकार नहीं सकते कि संसदीय लोकतंत्र में मतदान व्यवहार का विश्लेषण करना कठिन है क्योंकि मतदान व्यवहार का अध्ययन करते समय मतदाता प्रश्नों का उत्तर सही नहीं देते और अपने दलीय सम्बन्धों को स्पष्ट रूप से बताने में संकोच करते हैं। भारत में राष्ट्रीय एवं राज्यों के स्तर पर मतदान आचरण एवं चुनावों पर अध्ययन किए हैं। परन्तु स्पष्ट से हमारे सामने नहीं आया है। कुछ क्षेत्रों के मतदाताओं के उत्तर भी अनेक कारणों से अनुकूल तथा प्रतिकूल रूप से प्रभावित होते हैं। यहां अनेक मतदाता प्रश्नों के उत्तर सही नहीं देते। हमारे देश में मतदाताओं की संख्या अधिक है, जो साक्षात्कारों को सरकारी प्रतिनिधि मानकर सही उत्तर देने में हिचकिचाते हैं। यही कारण है कि भारत में मतदाताओं के व्यवहार का अध्ययन देश की निर्वाचन सम्बन्धी खामियों को सुधारने के लिए आवश्यक है। इसी दृष्टि में मतदान व्यवहार का अध्ययन काफी उपयोगी है। अत: यह स्पष्ट है कि मतदान के समय भारत में लोकतंत्रीय शासन प्रणाली होने के कारण यह भी समझना आवश्यक है कि भारत का सामाजिक व राजनीतिक परिवेश किस प्रकार निर्वाचन प्रक्रिया को प्रभावित करता है। यह देखना पड़ता है कि किस प्रकार मताधिकार प्राप्त नागरिक अपने शासकों के चयन हेतु निर्णय लेते हैं और निश्चित प्रक्रिया और विधि द्वारा उम्मीदवारों को पसंद करते हैं। इसलिए राजनीतिक चुनाव विशेषकर लोकतंत्र में उसकी आत्मा का काम करते हैं और मतदाता के लिए एक राजनीतिक भूमि तैयार करते हैं।

जब हमारे देश में 16वीं लोकसभा के चुनाव हुए और उनका परिणाम 16 मई 2014 को घोषित किया गया था, उसने भारत की राजनीति में परिवर्तन ला दिया। लोकसभा चुनाव 2014 में मुख्य विपक्षी दल भारतीय जनता पार्टी ने 543 लोकसभा सीटों में से 282 पर विजय प्राप्त की। भाजपा के नेतृत्व में राजग (राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन) को लोकसभा की कुल सीटों में से 336 सीटें प्राप्त हुई, वहीं दूसरी ओर यू.पी.ए. 59 सीटें प्राप्त कर पाई। वंशवादी राजनीति, भ्रष्टाचार, सत्ता विरोधी लहर, एक प्रधानमंत्री जो भारत में लोगों के साथ संचार करने में विफल रहा, मुद्रा स्फीति, महिला के अपराध की बढती भूमिका और उपयुक्त शासन का अभाव, 2014 में लोकसभा और विधानसभा चुनाव में मतदाता के व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक थे। इसी तरह भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) ने हरियाणा में राज्य विधानसभा चुनाव 2014 में बहुमत हासिल किया। भारत के निर्वाचन आयोग द्वारा चुनाव के परिणामों की घोषणा 19 अक्तूबर 2014 को की गई। हरियाणा विधानसभा चुनावों में 47 सीटें प्राप्त करके भाजपा को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ व सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभर कर कुल 90 विधानसभा सीटों के लिए मतदान 15 अक्तूबर 2014 को कराया गया था। हरियाणा में पहली बार 64.54 प्रतिशत अपने उच्चतम स्तर का मतदान दर्ज किया गया।

भारतीय जनता पार्टी की जीत का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण योगदान श्री नरेन्द्र मोदी जी की प्रभावशीलता को बताया जा रहा है, जिससे हरियाणा भी अछूता नहीं रहा है। वर्ष 1951-52 के आम चुनावों में मतदाताओं की संख्या 17,32,12,343 थी जो 2014 में बढकर 81,45,91,184 हो गई थी। इसके बाद वर्ष 2019 में हुए लोकसभा के चुनावी जनादेश ने एक बार फिर से श्री नरेन्द्र मोदी जी के पक्ष में सरकार बनाने का अवसर प्रदान किया।

चुनावी घोषणा पत्र एवं मतदान व्यवहार:- चुनाव में उतरने से पहले सभी राजनीतिक दल अपने चुनावी घोषणा पत्र जारी करते हैं। जिसमें चुनावी घोषणा में सभी नीतियां, कार्यक्रम होते हैं जो चुनाव के बाद वह सभी वादों को पूरा करेगें। सभी पार्टी अपने घोषणा पत्र द्वारा जनता को लुभाने की कोशिश करता है ताकि वोट प्राप्त हो सके। लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से वह अपनी बातों पर खरा नहीं उतरते। वस्तुत: घोषणापत्र इटालियन भाषा के 'मैनिफेस्टो' शब्द का हिन्दी रूप है। यह शब्द लैटिन भाषा के 'मैनिफोस्टम' से इटालियन भाषा में आया है। वास्तव में यह राजनीतिक सिद्धान्तों तथा वायदों की सार्वजनिक घोषणा है। प्रत्येक प्रकार की शासन प्रणाली में निर्वाचन या चुनाव की राजनीति का विशेष महत्व होता है और इसमें राजनैतिक दलों की सहभागिता सुनिश्चित होती है। इसी कारण दलीय लोकतंत्र को अमली जामा पहनाने के लिए सभी राजनैतिक दलों द्वारा कुछ अपनी घोषणाऐं, नीतियां, कार्यक्रम व चुनावी वायदे किए जाते हैं जो उनको शासन में भागीदार बनाने में कारगर सिद्ध हो सकते हैं, बशर्ते मतदाताओं द्वारा उनको पसन्द किया जाए।

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। लोकतांत्रिक राज्यों में इसे सबसे स्थिर लोकतंत्रों में शुमार किया जाता है। लक्ष्मी चरण सेन व अन्य बनाम ए. के.एम. हसनुज्जमा और अन्य ए. आई. आर 1985, एस.सी 1233 के मामले में उच्चतम न्यायालय के कथानुसार ''भारत तो लोकतंत्र का नखलिस्तान है, समसामयिक इतिहास की सच्चाई''। चुनाव व्यवस्था लोकतान्त्रिक व्यवस्था का प्राण ही प्रत्येक शासन व्यवस्था में चुनाव के महत्व को स्वीकार किया गया है। चुनाव लोकतंत्र व्यवस्था का पहलू है लेकिन यह बात जरूरी है कि चुनाव किस प्रकार होते हैं, क्या वह निश्चित होते हैं और हमारी चुनाव व्यवस्था को संचालन करने में जो अभिकरण अपनाए गए हैं। वह कितनी निष्पक्ष है और जनता वह चुनाव की ईमानदारी में कितना विश्वास जरूरी रखती है।

संविधान के अनुच्छेद 324 से 329 में निर्वाचन तन्त्र की सम्पूर्ण व्यवस्था की गई है। इसमें निर्वाचन का निरीक्षण निर्देशन और नियंत्रण करने के लिए निर्वाचन आयोग की स्थापना की गई है। वस्तुत: चुनाव आयोग का मुख्य कार्य राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, लोकसभा, राज्यसभा के सदस्य एवं राज्य विधानसभाओं के सदस्यों का निर्वाचन सम्पन्न कराना है। प्रारंभ निर्वाचन आयोग एक सदस्यीय था जिसमें मुख्य निवार्चन आयुक्त थे। वर्ष 1989 में निर्वाचन आयोग को दो सदस्यीय बना दिया गया। वर्ष 1991 में निवार्चन आयोग को फिर से एक सदस्यीय कर दिया गया। वर्ष 1993 से निर्वाचन आयोग को फिर से तीन सदस्यीय कर दिया गया।

चुनाव आयोग की ताकत- वस्तुत: चुनाव आयोग एक ऐसी प्रशासनिक मशीनरी है जो देश में पंचायती राज संस्थाओं से लेकर राष्ट्रपति के चुनाव तक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इसकी ताकत का एहसास निम्नलिखित बातों से होता है:-

- धारा 13(C) के अनुसार चुनाव आयोग को अधिकतम सरकारी कर्मचारियों को अपने अधीन लेने का अधिकार है तथा सारे कर्मचारी आयोग के निर्देश मानने को बाध्य हैं। धारा 28(A) के अनुसार आयोग को सरकारी कर्मचारी को अपनी प्रतिनियुक्ति पा लेने का अधिकार है तथा समस्त कर्मचारी आयोग का निर्देश मानने को बाध्य हैं।

- धारा 160 के अनुसार चुनाव आयोग को चुनाव संपन्न करवाने के लिए कोई भी परिसर, वाहन, यान आदि अपने कब्जे में लेने का अधिकार है।

वस्तुतः दल प्रणाली के अभाव में हमारी लोकतन्त्र शासन प्रणाली कार्य नहीं कर सकती। हमारे शासन का रूप वह संसदीय या अध्यक्षात्मक हो क्योंकि किसी भी शासन को चलाने के लिए दल का होना जरूरी है। ये दल हमारे व्यक्तियों के समूह से ही होते हैं। जो विभिन्न समस्याओं के रूप को और उनके समाधान के विकल्प निकालने के लिए एकमत होते हैं तथा अपने सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वैधानिक ढंग से काम करने का निश्चय करते हैं। ये दल विभिन्न कार्य करते हैं- जैसे सार्वजनिक नीतियों का निर्धारण, शासन का संचालन, शासन की आलोचना, चुनावों का संचालन, लोकमत का निर्माण, शासन तथा जनता के बीच मध्यस्थ कार्य, राजनीतिक प्रशिक्षण, सामाजिक और सांस्कृतिक कार्य, दलीय कार्य आदि।

देश के अब तक के राजनैतिक इतिहास में अब तक ऐसी कोई पार्टी नहीं बनी है, जिसमें टूट न हुई हो। इन पाटियों में टूट के बाद इनके दो या दो से अधिक दल बन चुके हैं। आज हर नेता अपनी पार्टी बनाने के लिए तैयार रहता है। आम चुनाव के दौरान में कुल 72 राजनैतिक दल थे जिनमें 14 राष्ट्रीय और 58 क्षेत्रीय दल थे। चुनाव की संख्या बढती गई है। साल 2004 के आम चुनाव में संख्या 230 हो गई थी जिनमें केवल 6 राष्ट्रीय दल व 224 क्षेत्रीय दल थे।

सारांशः- यदि अब तक वें 17 लोकसभा चुनावों के जनादेश एवं मतदान व्यवहार का अध्ययन किया जाए तो यह हमारे संसदीय लोकतन्त्र की विडम्बना रही है कि समय-समय पर राजनैतिक दलों ने जनता से झूठे वायदे किए हैं। यही कारण है कि कई बार राजनैतिक उदासीनता के कारण मतदाताओं द्वारा मतदान भी नहीं किया जाता और मतदान का प्रतिशत काफी कम रह जाता है। परिणामस्वरूप अल्पमतों वाला उम्मीदवार भी साधारण से बहुमत से जीतकर सत्ताधारी बन जाता है। जनता की इस उदासीता के कारण कई बार अयोग्य उम्मीदवार भी अपनी राजनैतिक आंकाक्षाओं को पूरा करने में सफल रहते हैं और जनता स्वयं को ठगा सा महसूस करती है। अतः संसदीय लोकतंत्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि मतदाताओं की जागरूकता का स्तर कितना है? इसलिए हर चुनाव के समय सभी राजनीतिक दल अपने चुनावी वायदों के साथ जनता के बीच में जाते है और अपनी-अपनी पार्टी के पक्ष में मतदान की अपील करते है।

संदर्भ सूचीः-

- जितेन्द्र कुमार, ''भारतीय निर्वाचन प्रक्रिया में मतदाताओं का मतदान आचरण'', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांसड, रिसर्च एण्ड डेवेल्पमेंट, वॉल्यूम-3, अंक-2, मार्च 2018।
- अमिता कुमारी, दिल्ली विधानसभा चुनाव 2013 के सन्दर्भ में मतदान व्यवहार का विशलेषणात्मक अध्ययन, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक में प्रस्तुत अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, 2016।
- रामसकल सिंह, भारतीय शासन एवं राजनीति, अर्पण पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2018।
- घनश्याम चौहान, भारतीय राजनीति और सरकार, सुमित एन्टरप्राईजिज, नई दिल्ली, 2005।
- एन. राजा, 'पॉलिटिकल मैनिफेस्टोः रिएलटीज एण्ड एक्सपेटेशन्ज', थर्ड कॉन्सेप्ट, वॉल्यूम-24, नं. 283, सितम्बर-2010।
- एन.डी. पामर, इलैक्शन एण्ड पॉलिटिकल डेवेल्पमेंट, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1976।
- जगबीर कुण्डू एवं ब्रह्मप्रकाश, ''हरियाणा विधानसभा चुनाव-2014 के जनादेश का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन'', यूनिवर्सल रिसर्च रिपोर्ट, वॉल्यूम-1, अंक-4, अक्तूबर-दिसम्बर 2014।
- दैनिक भास्कर, रोहतक, 20 अक्तूबर, 2014, पृ0 1.
- दैनिक भास्कर, रोहतक, 24 मई, 2019, पृ0 1.

बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक अध्ययन

रविन्द्र प्रताप सिंह

शोधार्थी - इतिहास विभाग, पं0 जवाहार लाल नेहरू कॉलेज, बाँदा (उ0 प्र0)

डॉ० श्रीमती आरती पाण्डेय

विभागाध्यक्ष - इतिहास विभाग, पं0 जवाहार लाल नेहरू कॉलेज, बाँदा (उ0 प्र0)

किसी भी राष्ट्र की सस्कृति में उसका धर्म, दर्शन, साहित्य, कला तथा राजनीतिक विचारों सभी का समिश्रण पाया जाता है। वास्तव में संस्कृति वह प्रतीक होती है, जो कि समाज एवं राष्ट्र की भावनाओं को अनुप्राणित करने का कार्य करती है। भारतीय संस्कृति अनेक तत्वों के मिश्रण से निर्मित है, जिसमें प्राचीन परम्परा के साथ साथ नवीन तत्वों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। अविच्छिन्न रूप से चलने वाली भारतीय संस्कृति समन्वय की उस भावना पर आधारित है, जिसके कारण इसके स्वरूप में परिवर्तन होता रहा, परन्तु वह कभी भी समाप्त नही हुई। वास्तव में समाज एवं संस्कृति दोनों ही एक दूसरे के पूरक माने जाते है। समाज को यदि सामाजिक मूल्यों, परम्परा, प्रथाओं का जमा माना जाए तो संस्कृति उसका एक क्रियात्मक रूप होता है। संस्कृति को जनजीवन पद्धति के रूप में देखा जाता है तथा समाज उसी का अनुसरण करने वाले व्यक्तियों का समूह माना जा सकता है। भारत की संस्कृति आध्यात्म भावना पर आश्रित है, यहॉ भौतिकवाद की अपेक्षा अध्यात्मवाद पर अधिक जोर दिया जाता था। बुन्देली शब्द स्वत: पॉच सौ से एक हजार वर्षो की विशिष्ट संस्कृति को अपने आप में समेटे हुए है।

बुन्देला संस्कृति से पूर्व इस क्षेत्र में चंदेल संस्कृति का प्रचलन मिलता है। इन दोनों कालखण्ड़ों के मध्य एक संधिकाल मिलता है, जिसकी संस्कृति एवं समाज का चित्रण साहित्य के माध्यम से किया गया है। इस दौरान जगनिक की आल्हा एवं विष्णुदास की रामायन कथा तथा महाभारत कथा में इनका प्रतिनिधित्व दिखाई देता है। इस दौरान इस क्षेत्र में राजनीतिक स्थिरता नही थी, परन्तु धार्मिक एंव सांस्कृतिक परिवेश कठोर नैतिक नियमों से अनुशासित हो रहे थे। समाज का नियंत्रण स्मृतियों के आधार पर किया जा रहा था, जिसके कारण धार्मिक क्षेत्र में कट्टरता दिखाई देती है। इसके साथ ही जातियों एवं उपजातियों की संख्या में भी वृद्धि हो रही थी। चंदेलों के काल में धर्म का जो स्वरूप प्रचलित था, उसमें किसी प्रकार का लक्षणीय अन्तर दिखाई नही देता है।[1]

परवर्ती काल में शासन का संचालन संर्कीणतापूर्ण, पक्षपात तथा साम्प्रदायिकता के आधार पर होने लगा। समाज में दास प्रथा का प्रचलन बढ़ रहा था तथा रूढ़िवाद एवं अंधविश्वासों में तीव्रता से वृद्धि हो रही थी। वर्णाश्रम धर्म में सर्कीणता इतनी अधिक हो गई कि एक उपजाति का व्यक्ति दूसरे उपजाति के यहॉ खान पान एव विवाह सम्बन्धों से परहेज करने लगा। विदेशी आक्रमणकारियों से जब ईश्वर जनता की रक्षा न कर सका, तो धर्महीनता की स्थिति उत्पन्न होने लगी। बुन्देलखण्ड़ी समाज पूर्ण रूप से धर्म, संस्कृति एंव सामाजिक व्यवस्थाओं के क्षेत्र में शासको के विचारो पर चलने लगा। राजा के निर्देश कवियो की वाणी में अभिव्यक्त होने लगे। आल्हा परम्परा में लोकोत्ति मिलती है कि -

बारा बरस ले कूकुर जीवे, औ तेरा लौं जिए सियार।
बरस अठारा छत्री जीवों, आँगे जीये तो धिक्कार।।[2]

इस परम्परा से यह आभास होता है कि चंदेल काल में शासकों को युद्धरत रहना होता था। समाज का स्थान राज्य के बाद आता था। अत: राज्य के लिए मरना जन समाज का धर्म माना जाने लगा। राजा की कल्पना ईश्वर के अंश के रूप में की गई। इसका परिणाम यह हुआ कि राजा के द्वारा किए जाने वाले कार्यो पर किसी प्रकार का अंकुश नही था।

बुन्देली समाज का प्रतिनिधित्व बारहवीं शताब्दी में महोबा के द्वारा, पन्द्रहवी शताब्दी में ग्वालियर के द्वारा तथा उसके पश्चात के कालखण्ड में ओरछा एवं पन्ना के द्वारा किया गया। जब बुन्देली समाज का सम्बन्ध गौड़ों एवं मराठों से हुआ तो बुन्देली समाज में अनेक प्रकार की विविधिता दिखाई देती है। इसी प्रकार मुगलों का प्रभाव भी बुन्देली समाज पर देखने को मिलता है। ओरछा राज्य की स्थापना एवं शासन बुन्देली समृद्धि एवं प्रभुत्व का परिचायक है। ओरछा राज्य की मुद्रा पर बिन्दु दो दुर्गमेश उनकी शासन पद्धति का परिचायक था। राजपरिवार की एकमात्र कुलदेवी विन्ध्यवासिनी को माना जाता था। उनके ध्वज में में सूर्य वंश का प्रतीक काला एवं स्लेटी तथा हरा एवं मिश्रित रंग होता था। इसके साथ उस पर शमी की शाखाएँ बनी होती थी।3 बुन्देलों के गोत्र काश्यप, शाखा जाबालि, वत्स, अरा, सूत्र कात्यान गायत्री सावित्री, पक्ष सरयू एवं गरूड़, वृक्ष पीपल तथा वैष्णव संप्रदाय से जुडेध् होते थे।

महोबा बारहवीं शताब्दी के बुंदेलखण्ड का सर्वाधिक महत्वपूर्ण केन्द्र माना जाता था। चन्द्रबरदाई कृत महोबा खण्ड़ एवं जगनिक कृत आल्हाखण्ड में महोबा की सामाजिक, सांस्कृतिक दशाओं का वर्णन बिस्तार से किया गया है। चन्देल साम्राज्य का अन्त परमाल की मृत्यु एवं कलिं तथा महोबा पर मुसलमानों के

अधिग्रहण से हो जाता है। इसके पश्चात सोलहवीं शताब्दी तक यह क्षेत्र प्रभावहीन अवस्था में रहा। महोबा के शासक बहुत ही कायर एवं कमजोर थे, परन्तु उनके दो वीरों के माध्यम से इनकों विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई। इसके साथ ही समाज में स्मृतियों के शासन का आभास भी प्राप्त होता है। वर्णाश्रम, राजा के प्रति जनसाधारण के कर्त्तव्य, वीरो द्वारा अपनी जान देकर भी राजा की रक्षा करना इस समय की सामाजिक विशेषताएँ थी।[3] इस काल में कुलीनता का विचार अपने अतिवादी स्वरूप में दिखाई देता है। ब्राह्मणों का जप तप वाला रूप समाप्त हो गया था तथा वे मंदिरों के वेतनभोगी पुजारी तथा विद्यालयों के शिक्षक के रूप में कार्य करने लगे थे। क्षत्रिय बल एवं स्वाभिमान का प्रतीक माने जाते थे, परन्तु जिहि की बिटिया सुन्दर देखी, तिहि पै जाय धरे तरवार की वृत्ति भी हो गई थी।[4]

बुंदेला शासन के दौरान हिन्दू धर्म में पुनरूत्थान के स्वर दिखाई देते है, यद्यपि इनकी गति बहुत धीमी थी। राजपूत काल में राजपूतों ने स्वयं को अर्ध दैवी स्वरूप प्रदान कर स्वयं को शेष समाज से अलग कर लिया था। इस प्रकार एक अभिमानी सैनिक अभिजात वर्ग का निर्माण हुआ। चारणों के द्वारा उनका महिमामंडन किया गया, जिनके कारण राजपूतों में अपने को श्रेष्ठ समझने की प्रवृत्ति और अधिक विकसित हुई। सम्पूर्ण समाज विभिन्न प्रकार के कटघरों में रहकर सामन्तों का मुखापेक्षी हो गया। ओरछा में पहले विष्णु की पूजा होती थी, परन्तु बाद में राम मंदिर का निर्माण हुआ तथा उनके साथ हनुमान, सीता, लक्ष्मण इत्यादि की मूर्तियॉ स्थापित की गई। शिवपूजा इस क्षेत्र में पूर्व काल से चली आ रही थी। मधुकरशाह तथा वीरसिंह देव के काल में भगवान राम का मंदिर तथा जहॉगीर महल का निर्माण करवाया गया।[5] इसी दौरान त्यागी एवं ईमानदार हरदौल को विषपान करके अपने प्राण त्यागनें पड़े। यह इनकी आपसी कटुता का प्रतीक माना जाता है। वर्तमान समय में भी ग्राम देवता के रूप में बुन्देलखण्ड के क्षेत्र में हरदौल की पूजा की जाती है। इनके सम्बन्ध में किवदन्ती प्रचलित है कि

महाराजा हरदौल बुन्देला नगर ओरछा म्यान।
जियत किए बहु पुन्य मरै पै जगत में आन।।[6]

बुन्देला राजाओं की राष्ट्र की स्वाधीनता के प्रति संघर्षशीलता एवं मुगल बादशाहों की अधीनता में युद्धों में सहायता से समाज में वीरता, त्याग, बलिदान, धर्मपरायणता एवं सांस्कृतिक उत्सवों का बोलबाला रहा है। सांस्कृतिक दृष्टि से एक हिन्दु राष्ट्र की परिकल्पना ने इसकों एक उत्कृष्ट स्वरूप प्रदान करने का कार्य किया। बुन्देला क्षेत्र में स्थित छोटे छोटे क्षेत्रों में संगीत एवं धर्म की समृद्धि होती रही तथा इस क्षेत्र में मुसलमानों का प्रभाव बहुत ही न्यून मात्रा में दिखाई देता है। इसका परिणाम यह हुआ कि इस क्षेत्र की संस्कृति खांटी भारतीय स्वरूप में दिखाई देती है।

ओरछा के पश्चात बुन्देला संस्कृति का केन्द्र पन्ना हुआ, जिसके शीर्ष नेता महाराज छत्रसाल को माना जाता है। छत्रसाल मधुकरशाह के भाई उदोतसिंह के पौत्र चम्पतराय के पुत्र थे। चम्पतराय के द्वारा औरंगजेब के शासनकाल में अपनी पहली राजधानी महोबा के पास कलिं (महेवा) में स्थापित की थी, बाद में उसकों पन्ना में स्थानतंरित कर दिया। इस समय तक बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मुसलमानों की संख्या में वृद्धि होने लगी थी। छत्रसाल ने वैष्णव धर्म को प्रश्रय दिया, इसके साथ ही प्राणनाथ संप्रदाय को इस काल में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त होने लगी। इस समय राज दरबार में वैष्णव तथा प्राणनाथ संप्रदाय की भक्ति से सम्बन्धित काव्य रचनाएँ प्राप्त होती है। कुछ कबीरपंथी धर्म के वाह्य स्वरूप तथा कर्मकाण्ड का खण्डन करने का कार्य कर रहे थे। छत्रसाल का शासन काल राष्ट्रीय विचारधारा के विकास का काल माना जाता है। लाल कवि के द्वारा छत्रसाल के जीवन की घटनाओं का चित्रण अपने काव्य में करते रहे थे। जिस प्रकार भूषण शिवाजी के प्रशस्ति में काव्य रचना कर रहे थे, उसी समय लाल कवि के द्वारा छत्रसाल का यशोगान किया जा रहा था।[7] सांस्कृतिक दृष्टि से यह काल उन्मेष का काल माना जाता है। सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से एक विशिष्ट संस्कृति इस कालखण्ड में दिखाई देती है। हिन्दु संस्कृति एवं समाज दोनों में ही प्राचीन कालीन नियमों एंव विधि विधानों का पालन किया जाता था। छत्रसाल के वैभव एवं शौर्य का प्रदर्शन शिवा जी के समानन्तर किया जाता रहा है। इस काल में जाति प्रथा का रूढ़ स्वरूप दिखाई देता है, जिसका कारण इस क्षेत्र में मुसलमानों की बढ़ती संख्या को माना जाता है।

छत्रसाल के समय में बुन्देलखण्ड की सीमाओं का बिस्तार देखने को मिलता है। इस दौरान जनश्रुतियों के रूप में इसका वर्णन किया गया है –

इत जमना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टौंस।
छत्रसाल सौं लरन की, रही न काहूं हौंस।

इसी प्रकार की एक और जनश्रुति प्रचलित है, जो कि बुन्देलखण्ड की सीमाओं का विश्लेषण करती है।

भैंस बंधी है, ओरछा, पग हुंसगाबाद।
लगवैया है सागरे, चपिया रेवा पार।।

छत्रसाल के शासनकाल में ही बुन्देंलखण्ड क्षेत्र में मराठों का प्रवेश देखने को मिलता है। इसी समय से बुंदेला शासकों के द्वारा गौडवाना के शासकों की कन्याओं से विवाह करने करने का विवरण प्राप्त होता है। छत्रसाल के राज्य का तीसरा हिस्सा बाजीराव पेशवा को सहायता के बदले पुरस्कार स्वरूप प्रदान किया गया था –

जो गति ग्राह गजेन्द्र की, सो गति भई है आय।
बाजी जात बुन्देल की, राखौ बाजीराय।।[8]

छत्रसाल वीर योद्धा होने के साथ कवि, कलाप्रेमी एवं भक्त के रूप में भी प्रसिद्ध थे। धुवेला महल इनकी भवन निर्माण कला की स्मृति स्वरूप देखा जा सकता है। बुन्देलखण्ड् की शीर्ष उन्नति इनके काल में ही दिखाई देती है। धार्मिक एवं सांस्कृतिक दोनों ही स्तरों पर यह काल बुन्देलखण्ड के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है।

मध्ययुग में इस्लामी राज्य की स्थापना के पश्चात धर्म के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इसका प्रभाव बुन्देलखण्ड में दिखाई देने लगा था। बुन्देलखण्ड के शासकों में इस कालखण्ड में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ दिखाई देती है। प्रथम प्रवृत्ति में मुगल बादशाहों के साथ उनका कृपापात्र बनने की थी।

दूसरी प्रवृत्ति आत्मसम्मान की रक्षा हेतु स्वयं की बलि देने की थी। वीरसिंह, जुझारसिंह, चम्पतराय, छत्रसाल, मानवती, सुमेरसिंह, मर्दन सिंह, हरदौल सिंह, अमानसिंह, मथुरावली का सम्बन्ध दूसरी प्रकार की प्रवृत्ति से था।[9] अपने आपकों उत्सर्ग करने वालों को बुन्देलखण्डी समाज में देवता का दर्जा प्रदान किया गया। इस दौरान समाज में सामाजिक, धार्मिक कट्टरता का प्रभाव अधिक दिखाई देने लगा। अंधविश्वास, जाति से बड़ी जात, आनुवंशिक कुलीनता, धार्मिक अन्धश्रद्धा के कारण धार्मिक उपसनाओं एंव सामाजिक क्षेत्र में विविधता दिखाई देती है। राम, कृष्ण के रसिक उपासनाओं पर जोर देने से इसका अतिवादी स्वरूप दिखाई देने लगता है।[10] बुन्देली समाज में धर्म एंव संस्कृति के क्षेत्र में शाखाओं एवं प्रशाखाओं के रूप में इनका बिस्तार देखने को मिलता है।

वर्णाश्रम व्यवस्था की पूर्वकालीन परम्परा सामान्य रूप से अपदस्थ हो गई। इस काल में उत्तर भारतीय ब्राह्मणों के लिए पंचगौड तथा दक्षिण भारतीय ब्राह्मणों के लिए पंच द्रविड़ शब्दो का प्रयोग मिलता है। इनकी विभाजन रेखा नर्मदा नदी को माना जाता था। पंचगौड के अन्तर्गत अनेक उपजातियों का विकास हुआ, जिनमें एक दूसरे के प्रति श्रेष्ठता की प्रतिर्स्पद्धा की भावना बनी रही। बुन्देलखण्ड़ क्षेत्र में अधिकांशत: जिझौतिया ब्राह्मण पाए जाते थे। इसके अतिरिक्त कान्यकुब्ज, सरयूपरीण एवं अन्य ब्राह्मण वर्ग भी इस क्षेत्र में पाए जाते है। इस वर्ग के ब्राह्मणों को शासको की तरफ से जागीर एवं सनदें प्रदान की गई। ब्राह्मणों को मूल स्थान के नाम पर संज्ञाएं प्रदान की गई। बुन्देलखण्ड में ब्राह्मणों की उपजातियों के रूप में अहिवासी, जिझोतिया, कनौजिया, खेड़ावाल, मालवी, नागर, नार्मदेव, सरबरिया एवं उत्कल पाए जाते थे।[11]

ब्राह्मण वर्ण के पश्चात क्षत्रिय वर्ण को महत्वपूर्ण माना जाता था, जिनकी लगभग 36 उपजातियॉ पाई जाती थी। इनमें अधिकांशत: परमार, बिसेन, बुंदेला, बनाफर, चन्देल, कछवाहा, तोमर, चौहान थे। इनके अतिरिक्त दांगी, लोधी तथा कुरमी भी ठाकुर कहे जाते थे। मध्ययुग में वह कृषि कार्य करते थे। शासक वर्ग से सम्बन्धित होने वाले के कारण इनमें बहुविवाह, बालविवाह, तथा मांस मंदिरा का प्रचलन था। दांगी की संख्या सागर में अधिक होने के कारण इसे दांगीपाडा के नाम से भी जाना जाता था।[12] वैश्य वर्ण को वणिक, सेठ, साहूकार इत्यादि नामों से जाना जाता था। मध्ययुग में यह मूल रूप से कृषि एवं लेने देन के कार्यो में सलंग्न थे। ओसवाल, सैतवाल, परवार, गोला घूरब, चरनापर, बघेवाल इत्यादि इनकी उपजातियाँ थी।

इन तीनों वर्णो को मूल रूप से आर्य व्यवस्था से सम्बन्धित माना जाता था। सामाजिक अनुक्रम में शूद्रों को सबसे निम्न स्थान प्रदान किया जाता था। उनके ऊपर अन्य व्यवासायिक एवं कामगार जातियों का बोलबाला था। शूद्र वर्ण में चमार, मोची, कोरी, तेली, बखोर, पासी इत्यादि को सम्मलित किया जाता था। व्यावसायिक वर्ग के अन्तर्गत सुनार, लुहार, ठठेरा, बढ़ई, कसेरा इत्यादि को सम्मलित किा जाता था। जबकि बनजारा, कुँजड़ा, भड़भूँजा इत्यादि को उनके कार्य के आधार पर स्थान प्रदान करने की परम्परा थी।[13]

उत्तर मध्यकाल में बुंदेलखण्ड़ में उपासनाओं के सम्बन्ध में विविधता प्राप्त होती है। क्षत्रिय एवं उनकी उपजातियॉ शक्ति, दुर्गा, विन्ध्यवासिनी, मैहर की शारदा देवी इत्यादि की उपासना से सम्बन्धित थी। नवरात्र में उपवास रखना, सिद्ध पीठों पर मेले लगाना, कुल देवी की पूजा करना शासक वर्ग की परम्परा में सम्मलित था। शक्ति से सम्बन्धित शिव, शंकर, पाशुपति इत्यादि शैव उपासना को बल मिला तथा उनसे सम्बन्धित अनेक मंदिरों का निर्माण करवाया गया।[14] इसके अतिरिक्त गौड़, भील एवं अन्यान्य वर्गो की मान्यताओं में ठाकुर बाबा, गौड़ बाबा, दरोइया बाबा, खब्बीस बाबा, हरदोल लाला, कारस देव, घटोईया देव, दूल्ही बाबा, हिंगलाज माता, मरई माता, दन्तेश्वरी देवी इत्यादि शक्तियों की विभिन्न प्रकार के स्थानीय देव एवं देवियों की पूजा की जाती थी।

बुन्देलखण्ड की संस्कृति मूल रूप से हिन्दु धर्म से प्रभावित तथा सनातन परम्परा के वाहक के रूप में दिखाई देती है। वैदिक परम्परा से चली आ रही परम्पराओं एंव रीति रिवाजों को प्रश्रय प्रदान किया गया। वर्णाश्रम व्यवस्था का पालन बुन्देलखण्ड के अनेक शासकों के द्वारा किया गया। यद्यपि इसमें अनेक प्रकार के परिवर्तन की प्रवृत्ति दिखाई देती है। अपने उपासना के अनुरूप बुंदेल शासकों के द्वारा अपनी राजधानी में अनेक महत्वपूर्ण मंदिरों का निर्माण करवाया गया, जिनमें ओरछा का रामसीता मंदिर सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। चंदेल वंश के शासकों द्वारा स्थापत्य कला को प्रश्रय दिया तथा उनके काल में खजुराहों में बड़ी संख्या में मंदिरों का निर्माण करवाया गया। बुन्देलखण्ड के जनजीवन एवं लोक संस्कृति को प्रदर्शित करने वाली अनेक महत्वपूर्ण रचनाएँ प्राप्त होती है।

सन्दर्भ ग्रंथ:

1. डॉ0 भगवानदास गुप्त, महाराजा छ्त्रसाल बुन्देला, शिवलाल अग्रवाल एण्ड क0 प्रा0 लि0 आगरा, 1958, पृ0 सं0 18
2 केशवचन्द्र मिश्र, चंदेल एवं उनका राजत्व काल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1967, पृ0 सं0 49
3 भगवानदास गुप्त, महाराज छत्रसाल बुन्देला, आगरा, 1958, पृ0 सं0 78
4 पं0 मुकुन्द शास्त्री, बुन्देलखण्ड प्रकाशिका, वाराणसी, 1955, पृ0 सं0 6
5 केशवदास, भूषण ग्रंथावली, (छत्रसाल दशक) गोरेलाल तिवारी, हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयागराज, 1993, पृ0 सं0 56
6 बुन्देलखण्ड का इतिहास, रमेशचन्द्र श्रीवास्तव, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1909, पृ0 सं0 96
7 प्रतिपाल सिंह बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग – 2, आगरा, 1992, पृ0 सं0 87
8 महामहोपध्याय दत्तो वामन पोतदार, मराठाज् इन दी लैंड आफ ब्रेव बुन्देलाज, हिस्टोरिकल एंड इकनोमिक स्ट्डीज, पुणे, पृ0 सं0 113
9 बाबू ब्रजरत्नदास, मासिक उल उमरा अनु0 काशी नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ0 सं0 14
10 गोरे लाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ0 सं0 29
11 लाल कवि, छत्रप्रकाश, श्याम सुन्दर दास, कृष्णबल्देव वर्मा (अनु0) काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी,, 1916, पृ0 सं0 29
12 डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ झाँसी, खण्ड, 24, इलाहाबाद (प्रयागराज), 1929, पृ0 सं0 390
13 वी0 के0 श्रीवास्तव, बुन्देलखण्ड की संस्कृति, राधा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2009, पृ0 सं0 74
14 राधारमण वैद्य, भारतीय संस्कृति एवं बुन्देलखण्ड, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2008, पृ0 सं0 32

मौर्यकाल में पुरातत्त्वः पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सन्दर्भ में

पल्लवी सक्सेना

शोधार्थी - इतिहास विभाग, पं0 जवाहार लाल नेहरू कॉलेज, बाँदा, उत्तर प्रदेश

डॉ० श्रीमती आरती पाण्डेय

विभागाध्यक्ष - इतिहास विभाग, पं0 जवाहर लाल नेहरू कॉलेज, बाँदा, उत्तर प्रदेश

प्राचीन भारतीय इतिहास में मौर्यकाल एक युग प्रर्वतक संस्कृति के रूप मे विश्लेषित किया जाता है। वास्तव में इस कालखण्ड का इतिहास प्रमाणिक रूप से विशालकाय पत्थरों पर उत्कीर्ण है। इस काल के पुरातात्विक साक्ष्यों के रूप में अभिलेख, शिलालेख, मुद्रा, मूर्तिकला, स्तूप, चौत्य, मुद्रा विहार, मृदभाण्ड तथा पत्थरों से निर्मित भवनों को प्रस्तुत किया जा सकता है। मात्र पुरातात्विक प्रमाणों के आधार पर मौर्यकालीन संस्कृति को एक विशद् रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत पश्चिमी उत्तर प्रदेश का क्षेत्र सम्मलित था, जो कि मध्यदेश के अन्तर्गत आता था, जिसकी राजधानी पाटिलपुत्र थी। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में बड़ी संख्या में मौर्य काल से सम्बन्धित पुरातात्विक साक्ष्य प्राप्त होते है।

मौर्य काल में कला तथा स्थापत्य के क्षेत्र में एक नवीन शैली एवं सुसंगठित क्रियाकलाप के दर्शन होते है। मौर्यकाल से पूर्व कला के निर्माण में लकड़ी, मिट्टी, घास फूस तथा ईट इत्यादि का प्रयोग किया जाता था, जो कि कालक्रम में नष्ट हो गए। मौर्यकाल में कला के क्षेत्र में सर्वप्रथम पाषाण का प्रयोग किया गया, जिसके फलस्वरूप यह कलाकृतियाँ चिरस्थायी रूप में हमकों प्राप्त होती है।[1] मौर्यकालीन पुरातत्विक प्रमाणों को दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में राजकीय कला को रखा जाता है, जिसके अन्तर्गत राजपासाद, स्तम्भ, गुहा विहार, स्तूप इत्यादि को रखा जाता है। इनका निर्माण शासको के द्वारा करवाया गया। द्वितीय वर्ग में लोककला को रखा जाता है,जिसमें कलाकारों द्वारा लोकरूचि की वस्तुओं का निर्माण किया गया। इसके अन्तर्गत यक्ष यक्षिणी की प्रतिमाएँ, मृणमूर्तियाँ तथा पाषाण निर्मित छोटी छोटी प्रतिमाओ को सम्मलित किया जाता है।

महात्मा बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात उनकी अस्थियों के अवशेषों पर समाधियों का निर्माण किया गया, जिसे सामान्य रूप से स्तूप कहा जाता है। स्तूप का शाब्दिक अर्थ ढेर से लिया जाता है। यद्यपि स्तूप शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में किया गया है, परन्तु इसका वास्तविक स्वरूप महात्मा बुद्ध से जुडा हुआ है। बौद्ध ग्रंथ दिव्यावदान में अशोक के द्वारा 84000 स्तूपों के निर्माण का उल्लेख किया गया है।[2] इस अनुश्रूति को चीनी यात्री हवेनसांग के द्वारा दोहराया गया है। समय के प्रभाव से यह स्तूप एवं विहार सामान्य रूप से नष्ट हो चुके है। कुछ ही शेष है, जो कि वर्तमान समय में प्राप्त होते है। जब चीनी यात्री फाहयान एवं हवेनसांग भारत आए थे तो उसने इन सभी स्तूपों एवं विहारो का अवलोकन किया था। पांचवी शताब्दी में जब फाहयान भारत आया तो उसने अशोक के इन कलाओ को देखा था। यद्यपि उस समय तक एक लम्बा समय बीत चुका था, परन्तु वह सभी पूर्णतया सुरक्षित अवस्था में थे। फाहयान ने लिखा है कि पाटिलपुत्र अशोक के राज्य की राजधानी थी। नगर में अशोक के राजप्रासाद तथा सभाभवन है। इन सबका निर्माण असुरों के द्वारा किया गया है। जिस प्रकार की सुन्दर पच्चीकारी देखने को मिलती है, उससे यह आभास होता है कि इनका निर्माण इस लोक के लोगों के द्वारा नही किया गया। इसी प्रकार का उल्लेख सातवी शताब्दी में भारत आने वाले हवेनसांग ने भी किया है। हवेनसांग ने बहुत से स्तूपो का उल्लेख किया है जो कि विभिन्न स्थानों पर उसने देखे थे। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मथुरा में इस प्रकार के एक स्तूप का उल्लेख किया जा सकता है।[3] दुर्भाग्यवश वर्तमान में यह नष्ट हो चुका है।

इन स्तूपों में महात्मा बुद्ध अथवा उनके शिष्यों के अवशेषों को रखा गया है। यह स्तूप बौद्धों की श्रद्धा एवं उपासना के प्रमुख केन्द्र के रूप में विकसित हुए। स्तूपों का प्रारम्भिक रूप अर्धगोलाकार मिलता है। इसमें एक मेधि के ऊपर उल्टे कटोरे की आकृति का एक थूहा बनाया जाता है, जिसे अंड के नाम से जाना जाता है। स्तूप का शीर्ष भाग चपटे आकार में होता है, जिसके ऊपर धातुपात्र को रखा जाता है। इसे हर्मिका कहा जाता है। हर्मिका का सामान्य अर्थ देवस्थान से लिया जाता है। हर्मिका के मध्य में एक यष्टि लगाई जाती है, जिसके ऊपरी सिरे पर तीन छत्र होते है। स्तूप के चारो ओर जिस दीवार का निर्माण किया जाता है, उसे वेदिका कहा जाता है। स्तूप तथा वेदिका के मध्य प्रदक्षिणापथ होता है। वेदिका के चारो दिशाओं में प्रवेशद्वार बनाए जाते है। प्रवेशद्वार पर मेहराबदार तोरण होते थे। इस प्रकार हम देखते है कि एक स्तूप में मेधि, अंड, प्रदक्षिणापथ, वेदिका, हर्मिका, यष्टि, छत्र, तोरण प्रमुख भाग होते है।[4]

मौर्य शासक अशोक के द्वारा अनेक स्तम्भों पर अपने लेख उत्कीर्ण करवाए थे। कला की दृष्टि से यह स्तम्भ उतने ही महत्वपूर्ण माने जाते है, जितने कि इन पर उत्कीर्ण लेख। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मथुरा एवं संकिसा से इस प्रकार के स्तम्भ प्राप्त होते है। यद्यपि इनमें से बहुत से स्तम्भों पर उसका कोई लेख उत्कीर्ण नही है, परन्तु अपनी कलात्मकता के कारण इनकों महत्वपूर्ण माना जाता है। अशोक के काल से सम्बन्धित सात स्तम्भ लेख भारत के विभिन्न भागों से प्राप्त हुए है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मेरठ से अशोक का एक स्तम्भ लेख प्राप्त होता है, जो कि वर्तमान समय दिल्ली में काश्मीरी दरवाजें के पश्चिमी उत्तर में फैली हुई पहाड़ियों पर स्थित है।[5] यह स्तम्भ प्रारम्भ में मेरठ में था, जिसे फीरोजशाह तुगलक के द्वारा दिल्ली लाया गया। उत्तर कालीन मुगल शासक

फर्रूखसियर के शासनकाल में बारूद खाने में विस्फोट हो जाने के कारण इस स्तम्भ को बहुत क्षति पहुँची थी तथा वह गिरकर अनेक टुकड़ों में विभाजित हो गया था। 1867 ई0 में इस पुनः पूर्ववत खडा किया गया। इस स्तम्भ में कुल छ लेख उत्कीर्ण है, परन्तु वर्तमान समय में यह सभी पूर्ण एवं सुरक्षित दशा में नही है। नई दिल्ली के श्रीनिवासपुरी के दक्षिण में बहापुर नामक गाँव के समीप अरावली पर्वतमाला की पहाड़ियों के पास अशोक का एक अन्य अभिलेख प्राप्त हुआ है, जो कि एक चट्टान पर उत्कीर्ण है।[6] यह अशोक के लघु शिलालेखों की ही एक प्रतिलिपि है।

इन स्तम्भो का निर्माण चुनार के बलुऍ पत्थर से किया गया है तथा इनमे मूल रूप से दो भाग है। स्तम्भ की सम्पूर्ण लाट एक ही पत्थर से निर्मित है तथा उसका शीर्ष भाग एक अन्य पत्थर से निर्मित है। प्रस्तर निर्मित इन स्तम्भों पर ऐसा ओप किया गया है, जो कि अत्यन्त सुन्दर, चमकदार तथा चिकना है। स्तम्भ लेखों पर इस प्रकार की चमक का कारण व्रजलेप है अथवा पत्थर की घुटाई, कहना मुश्किल है। मौर्यो के काल में इस प्रकार की जिस कला का विकास हुआ, वह सम्प्रति के शासन काल तक चलता रहा। उसके पश्चात इस प्रकार की कला लुप्त हो गई। अशोक के काल के जो लाट प्राप्त होते है, वह गोल तथा नीचे से ऊपर तक चढ़ाव उतारदार है। इनकी ऊँचाई तीस से चालीस फीट के लगभग है। लाटों पर जो शीर्ष भाग पृथक रूप से बना कर उनके साथ संयुक्त किया गया है।[7] वह मौर्य युग की मूर्तिकला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण माने जाते है।

मौर्य युगीन स्तम्भ लेखों के शीर्ष भाग के पाँच प्रमुख अंश है, जिनके विवरण के बिना स्तम्भों का परिचय अधूरा है। प्रथम इकहरी अथवा दोहरी पतली मेखला, जो लाट के ठीक ऊपर स्थित है। द्वितीय मेखला के ऊपर लोटी हुई कमल की पंखुडियों की आलंकारिक आकृति वाली बैठकी, जो घंटे की आकृति की है। तृतीय उस पर एक कंठा, जो कि मोटी डोरी अथवा सादे गोले के रूप में निर्मित होती थी। चर्तुथ सबसे ऊपर गोल अथवा चौखंडी एक चौकी, जिसके सिरे पर एक अथवा अधिक पशुओं का निर्माण किया जाता था। जिस ढंग के विशाल, सुन्दर चमकदार तथा चिकनें स्तम्भ मौर्य युग में पाए गए है, उस प्रकार के निर्माण परवर्ती कालीन भारत में दिखाई नही देते है। न केवल भारत वरन् भारत के बाहर भी इस प्रकार का कोई निर्माण नही किया गया।[8] पत्थर को काट कर, घिस कर सुन्दर स्तम्भ तथा मूर्तियाँ बनाने की उत्कृष्ट कला का विकास मौर्य काल में हुआ, वह विश्व इतिहास में अनुपम माना जाता है।

पत्थर को तराशकर मूर्तियाँ बनाने की कला मौर्ययुग में अपने पूर्ण विकसित अवस्था में थी। आगरा एवं मथुरा के मध्यम परखम नामक स्थान से एक मूर्ति प्राप्त हुई है। इसे मणिभ्रद के नाम से जाना जाता है। इस मूर्ति की ऊँचाई सात फीट है तथा यह भूरे बलुए पत्थर से निर्मित है। इसके ऊपर अत्यन्त चमकदार ओप किया गया है। दुर्भाग्य से इस मूर्ति का मुंह टूट गया है तथा इसकी भुजाएँ भी खण्ड़ित अवस्था में है। मूर्ति को जो पहनावा पहनाया गया है, उससे मौर्यकाल के पहनावें का अंदाजा किया जा सकता है। वर्तमान समय में यह मूति मथुरा के संग्रहालय में रखी गई है।[9] मथुरा जिले के बड़ोदा ग्राम से एक यक्ष प्रतिमा प्राप्त होती है। इसी प्रकार मथुरा के झीग का नगरा नामक स्थान से एक यक्षी की प्रतिमा प्राप्त होती है।

इस प्रकार की सभी पाषाण निर्मित प्रतिमाएँ विशाल आकार प्रकार की है, जिन्हे सभी ओर से तराश कर निर्मित किया गया है। इनके शरीर पर वस्त्र एवं आभूषण का अंकन बहुत ही मनोहारी रूप में किया गया है। इन्ही यक्ष एवं यक्षी प्रतिमाओं के आधा पर कालान्तर में बुद्ध, बोधिसत्व तथा जैन तीर्थकरों की विशाल मूर्तियों का निर्माण किया गया। यक्ष यक्षी प्रतिमाएँ इस काल में लोक धर्म का प्रमुख आधार मानी जा सकती है। इनको सर्वत्र देवी देवताओं के रूप में पूजा जाता था।[10]

मौर्य युग की बहुत सी मृणमूर्तियाँ पश्चिम उत्तर प्रदेश से प्राप्त होती है। यह मूर्तिया विशेष रूप से मथुरा एवं अहिच्छत्र से प्राप्त हुई है। यह मूर्तियाँ कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण होने के साथ साथ तद्युगीन वेशभूषा एवं सभ्यता की प्रमाणिक जानकारी उपलब्ध कराती है। अहिच्छत्र, मथुरा तथा हस्तिनापुर से अनेक स्थानों से बड़ी संख्या में विभिन्न पशु पक्षियों जैसे हाथी, घोडा, बैल, भेड, कुत्ता, हिरण तथा नर नारियों की मृणमूर्तियाँ प्राप्त हुई है। संकिसा की गजमूर्ति मूर्तिकला की दृष्टि से निम्नस्तरीय है। गज के शरीर का भाग बोझिल होने के कारण झुक सा गया है। उसके अगले पैर खंभे की बनावट के है। मूर्तिकार के द्वारा पैरो में गति लाने का असफल प्रयास किया गया है, क्योकि गज का विशाल एवं थुलथुल शरीर जड़ प्रतीत हो रहा है। इन मर्तियों का निर्माण हाथ से सांचे में ढालकर बनाया गया है।[11]

मौर्य युग से सम्बन्धित बहुत से सिक्के वर्तमान काल में भी प्राप्त होते है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मौर्य कालीन मुद्रा पद्वति के सम्बन्ध में विशद् विवेचन किया गया है। मुद्रा संचालन के लिए एक पृथक विभाग था, जिसका अमात्य लक्षणाध्यक्ष कहलाता था। इस काल में दो प्रकार के सिक्को का प्रचलन था। कोश प्रवेश्य तथा व्यावहारिक। राजकीय कर एवं क्रय विक्रय के लिए कोश प्रवेश्य मुद्रा ही मान्य थी, जबकि जनसाधारण के व्यवहार के लिए व्यावहारिक सिक्कों का प्रयोग किया जाता था। पुरातत्त्व सम्बन्धी खोजों के द्वारा मौर्य काल से जुड़े हुए सिक्के बड़ी संख्या में प्राप्त होते है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के अहिच्छत्र, मथुरा इत्यादि स्थानों से प्राप्त होते है। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण भारत में यह हजारों की संख्या में प्राप्त होते है। इनकों पंचमार्क अथवा आहत सिक्कों के नाम से जाना जाता है।[12] पाणिनी तथा उनके पूर्व काल से ही इस प्रकार के सिक्कों का प्रयोग किया जाने लगा था। पाणिनी के ग्रंथ में रूपादाहतपशंसयोर्यप् शब्द का प्रयोग किया गया है। रूप के साथ यप् प्रत्यय लगाने से रूप्य शब्द का निर्माण होता है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में रूप्य शब्द का प्रयोग एक प्रकार के सिक्कों के लिए किया है। यह चाँदी से निर्मित होता था। ये रूप्य आहति द्वारा निर्मित किए जाते थे, तथा इन पर अनेक प्रकार के लक्षणो को अंकित किया जाता था। इस काल के सिक्कों पर जो लक्षण अंकित किए गए है, उनमें चन्द्रमेरू तथा मयूर प्रमुख है। चन्द्रमेरू अंकित सिक्कें बड़ी मात्रा में प्राप्त होते है। संभव है कि यह मौर्य राजाओं का राजचिन्ह रहा हो। इस प्रकार के सिक्कें आकार में गोल तथा इनका वनज 32 रत्ती के लगभग पाया गया है। इन सिक्कों का रसायनिक परीक्षण करने से ज्ञात होता है कि इसमें 79 प्रतिशत चाँदी तथा 21 प्रतिशत सीसा अथवा लोहा था। चाँदी में मिलावट का यह प्रतिशत कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी दिया गया है। चन्द्रमेरू अंकन के यह सिक्कें साम्राज्य के विभिन्न स्थानों से पाए गए है। मयूर के अंकन वाले सिक्कें भी मौर्य काल से सम्बन्धित है। मौर्यो के पूर्वज मयूर नगर के निवासी माने जाते है। संभव है कि अपने पुराने अभिजन के चिन्ह को अपने सिक्कों पर अंकित करवाया हो। मौर्य युग के अवशेषों में बडी मात्रा में ऐसे सिक्कें भी प्राप्त होते है, जिन पर किसी वृक्ष, पशु इत्यादि के चिन्ह अंकित है। ऐसा माना जाता है कि इस प्रकार के सिक्कों का प्रचलन पूर्व मौर्य काल में हुआ था, परन्तु मौर्य काल में इनका प्रचलन था। पुरातात्त्विक साक्ष्यों के रूप में प्राप्त सिक्कों में बड़ी संख्या चाँदी के सिक्कों की है, इसके पश्चात ताम्र सिक्कों का प्रचलन था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ताम्र निर्मित पण सिक्कों का उल्लेख किया गया है। इसके साथ काकणी तथा अर्धकाकणी का भी प्रचलन मिलता है।[13]

मौर्यकालीन पुरातात्त्विक साक्ष्यों का विवेचन करने से स्पष्ट होता है कि इस काल में बड़ी संख्या में ऐसे तत्वों का प्रचलन हुआ, जो कि पूर्व काल में अप्राप्य थे। स्तूप, शिलालेख, स्वतंत्रत पाषाण वेदिका, मुद्रा इत्यादि क्षेत्रों में इस प्रकार के तत्व प्रधानता से पाए गए है। अशोक द्वारा निर्मित अनेक स्तम्भ वर्तमान समय में भी पाए जाते है। इसके साथ ही अनेक शिलाखण्ड भी प्राप्त होते है, जिन पर अशोक के द्वारा अपनी धर्मलिपियाँ उत्कीर्ण करवाई थी। दुर्भाग्यवश अब न तो अशोक द्वारा निर्मित प्रासाद है तथा न ही सभाभवन जिसका उल्लेख फाहयान तथा हवेनसांग ने किया था तथा जिसे देखकर वे आश्चर्यचकित रह गए थे। आज भी अशोक द्वारा निर्मित अनेक स्तूप जीर्ण दशा में पाए जाते है। भारतीय संस्कृति की यह अमूल्य धरोहर, उस कालखण्ड को प्रकाशित करने का कार्य करती है, जो कि कभी भारत का गौरव माना जाता था।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

(1) सत्यकेतु विद्यालंकार, मौर्य साम्राज्य का इतिहास, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली, 2017, पृ0 सं0 635

(2) डॉ0 सुष्मिता पाण्डेय, समाज आर्थिक व्यवस्था एवं धर्म, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1991, प्रथम संस्करण, पृ0 सं0 43

(3) रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण,1992, पृ0 सं0 76

(4) बी0 बी0 लाल, एक्सकेवेशन एट हस्तिनापुर एंड अदर एक्सप्लोरेशंस इन द अपर गंगा एंड सतलज बेसिन्स, 1950 - 52, ऐसिएंट इंडिया, नं0 10, 11, पृ0 सं0 113

(5) द्विजेन्द्रनारायण झा, कृष्णमोहन श्रीमाली, प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2001, द्वितीय संस्करण, पृ0 सं0 185

(6) ओम प्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, विश्व प्रकाशन, 2001, पंचम संस्करण पृ0 सं0 140

(7) एफ0 आर0 अल्चिन, दिलीप के0 चक्रवर्ती, भारतीय पुरातत्व के स्त्रोत, वाल्यूम 1, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1979, प्रथम संस्करण, पृं0 सं0 80

(8) डॉ0 राजेन्द्र पाण्ड़ेय, भारत का सांस्कृतिक इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृ0 सं0 111 (9) रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992, प्रथम संस्करण, पृ0 सं0 95

(10) एच0 सी0 भारद्वाज, आस्पेक्ट्स आफ एसिएंट इण्डियन टेक्नोलाजी, नई दिल्ली, 1979, प्रथम संस्करण, पृ0 सं0 154

(11) वासुदेव उपाध्याय, प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एंव मंदिर, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1972, पृ0 सं0 76

(12) ए0 एल0 बाशम, अद्भुत भारत, वेंकटेशचन्द्र पाण्डेय (अनु0) शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, 2003, पृ0 सं0 38

(13) सत्यकेतु विद्यालंकार, मौर्य साम्राज्य का इतिहास, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली, 2017, पृ0 सं0 655

समसामयिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में दलित महिलाओं की भागीदारी की समस्याएँ

लाल चन्द पाल

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग), हिन्दू पी0जी0 कालेज, जमानियाँ, गाजीपुर

शोध सारांश

दलित स्त्रियों का सशक्तीकरण तभी होगा जब सभी सामाजिक- सांस्कृतिक संस्थाओं में दलित महिलाओं की जातिवार प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो। वे डाक्टर, प्रोफेसर, कुलपति, फिल्म निर्माता, अभिनेत्रियां, टी0 वी0 चौनलों की ऐंकर, दैनिक अखबारों की सम्पादक हो, महिला आयोगों की चेयनमैंन हो, साहित्य अकादमियों की अध्यक्ष और सचिव हो, सांसद, विधायक, मंत्री हो, लेखिका हो, न्यायपालिका में हो, प्रशासनिक क्षेत्रों में हो। दलित क्रान्ति का सारा दारोमदार आज दलित स्त्री के ही कन्धे पर है। ''दलित स्त्री का पराश्रित चिन्तन दलित स्त्री-विमर्श के लिए अभिशाप है।''[1] इसलिए दलित स्त्रियाँ अपने पत्र-पत्रिकायें निकालने की जिम्मेदारी खुद संभाल सकती हैं। वे गैर-दलित सुविधाभोगी महिलाओं को स्त्री-विमर्श का असली पाठ सिखा सकती है। शिक्षा में, सिनेमा में, मीडिया में, समाज और राजनीति में हर जगह दलित स्त्री का हिस्सा गैर-दलित स्त्री ने खा लिया है, किसी दलित पुरुष ने नहीं। सवर्ण महिलायें ही वंचित दलित महिलाओं की क्षतिपूर्ति कर सकती हैं। वे उनके लिए कुछ तो कर सकती हैं। सबसे पहले वे छुआछूत छोड़कर बहनापा अपनाये।

प्रमुख शब्दः स्त्री-विमर्श, दलित स्त्री विमर्श, दलित स्त्री, मीडिया, संस्कृति, कला, शिक्षा, दलित स्त्री की भागीदारी।

मातृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में पुरुष स्त्रियों पर निर्भर होते थे या उनके अधीन होते थे। प्रजनन विशिष्ठता के कारण स्त्री का समय तथा शक्ति क्षीण होने लगी, फलस्वरूप प्रगति की प्रक्रिया में बाधा आने के कारण वह उन्नति की प्रतिस्पर्धा में पिछड़ती गयी। कालान्तर में वह पुरुष सत्ता के अधीन हो गई। यूरोप में जहाँ-जहाँ समाजवादी क्रांतियाँ हुई वहाँ-वहाँ औद्योगिक व सामाजिक विकास की प्रक्रिया में स्त्रियों की सहभागिता बनी रही, वहाँ वह पुरुष के साथ बराबर आगे बढ़ी। हिन्दुस्तान में पुरुषों के साथ बराबर सहभागिता करने वाली महिलाओं की संख्या नगण्य रही। जो स्त्रियाँ आगे बढ़ी भी वह वर्ग-दृष्टि से पूँजीपतियों की स्त्रियाँ रही और दलित स्त्री की दशा तो आज भी तुलनात्मक दृष्टि से बहुत चिन्तनीय है।

वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति बेहतर थी इस राय से भारतीय विद्वान कदाचित् असहमत नहीं होंगे, किन्तु जब स्त्री के अधोगति के लिए मनु को जिम्मेदार ठहराया जाता है तो पुरातनपंथी, सनातनी कुपित हो जाते हैं। अम्बेडकर कहते हैं, ''मनु से पूर्व स्त्री को उपनपयन का अधिकार था। श्रुतिसूत्रों से जाहिर है कि स्त्री वेदमंत्र दोहरा सकती थी। पाणिनी की अष्टाध्यायी इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि स्त्रियाँ गुरूकुल में जाती थी। पतंजलि का महाभाष्य दर्शाता है कि स्त्रियाँ अध्यापिकाएं थी, स्त्रियों ने धर्मदर्शन मेटाफिजिक्स जैसे अत्यंत गूढ़ विषयों पर पुरुषों से सार्वजनिक शास्त्रार्थ किये थे। जनक-सुलभा-याज्ञवल्क्य, गार्गी-याज्ञवल्क्य, मैत्रेयी, शंकराचार्य-विधाधरी के बीच सार्वजनिक शास्त्रार्थ की कहानियाँ बताती हैं कि मनु के पूर्व स्त्री, शिक्षा और ज्ञान के उच्चम शिखरों तक पहुँच चुकी थी।''[2]

स्मृतिकाल से नारी को हीन समझा गया उसकी निन्दा की गई। वह भोग की वस्तु बनकर रह गयी। उसका अस्तित्व समाप्त होना यही से प्रारम्भ हो गया, और धीरे-धीरे स्त्री की स्थिति दयनीय होती गई और आज वह सभी के समक्ष दया की पात्र बनी हुई है।

बौद्ध धर्म में स्त्रियों की स्थिति जैन धर्म से अधिक अच्छी थी। संघों में आकर स्त्रियाँ ज्ञान-ध्यान अर्जन किया करती थी। बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध ने नारी के नैतिक व सामाजिक उत्थान पर जोर दिया। किन्तु बाद में स्वयं बुद्ध ने नारी को यह अधिकार देने का पश्चाताप किया और आगे भिक्षुओं में अनाचार फैल गया और इस धर्म में भी नारी हेय की पात्र बन गयी।''[3]

मध्यकालीन परम्परा में-

नारी नरक का द्वार

x x x x x

जिमि स्वतन्त्र भए बिगरहि नारी

x x x x x

पराधीन सपनेहुँ सुख नाही

x x x x x

कत बिधि सृजीं नारि जग माही।

अर्थात् मध्यकालीन संक्रान्ति का दौर स्त्री जीवन के लिए 'काला अध्याय' था। स्त्री को नरक का द्वार समझा जाने लगा। वह किसी भी आयोजन में भाग नहीं ले सकती थी इस प्रकार स्त्रियों की दशा निम्न से निम्नतर होती गई। उन पर बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध, सती प्रथा, जौहर प्रथा आदि थोप दी गयी।

19वीं सदी में स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ-साथ समाज सुधार आन्दोलन भी चला। यह समाज सुधार आन्दोलन सामाजिक-राजनैतिक स्वतन्त्रता की आकांक्षा में मानवीय मुक्ति का भी पैरोकार रहा। इसमें राजा राममोहन राय, डॉ0 अम्बेडकर, महात्मा गाँधी, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, विवेकानंद, दयानंद आदि ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी क्रम में महिलाओं की दशा में सुधार कैसे हो यह प्रश्न चुनौती के रूप में सामने आया। इसी समय ईसाई मिशनरियों एवं पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त बुद्धिजीवियों ने महिलाओं की पतनोन्मुखी दशा के उन्नयन के लिए अनेक प्रयास शुरू किये। इस दिशा में सर्वप्रथम कदम राजा राममोहन राय ने उठाया। तत्कालीन भारतीय समाज में महिलाओं से सम्बन्धित अनेक सामाजिक कुरीतियाँ विद्यमान थी, जैसे- बाल-विवाह, शिशु-हत्या, सतीप्रथा, विधवाओं की दयनीय दशा, निम्न स्तरीय नारी शिक्षा आदि। ब्रिटिश सरकार ने भी इन बुराइयों को खत्म करने के लिए हमारा साथ दिया। 1973 ई0 एवं 1804 ई0 में बंगाल रेगुलेशन एक्ट द्वारा शिशु हत्या पर प्रतिबंध लगाने की कोशिश की गई। राजाराम मोहनराय के प्रयास से लार्ड विलियम बैंटिक ने 4 दिसम्बर, 1929 ई0 को अधिनियम 17 पारित कर सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित कर दिया। ईश्वरचन्द विद्यासागर ने अथक प्रयास से 1856 ई0 में हिन्दू विधवा पुनर्विवाह कानून पारित करवाया।

नारी शिक्षा के विकास में ईसाई मिशनरियों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। कलकत्ता में नारी शिक्षा के विस्तार हेतु 'तरुण स्त्री सभा' का गठन हुआ। बम्बई के एलफिन्सटन कालेज, बेंथमस्कूल आदि में नारी शिक्षा के विकास के लिए कदम उठाये। बी0एन0 मालाबारी के प्रयास से 1891 ई0 में 'एज ऑफ कंसेट बिल' पारित हुआ इसके आधार पर 12 वर्ष या इससे कम आयु की बालिकाओं का विवाह निषेध कर दिया गया। सन् 1872 ई0 में ब्रह्म मैरिज एक्ट पारित हुआ, इसके अनुसार 14 वर्ष से कम आयु की बालिकाओं का विवाह कानून विरुद्ध घोषित कर दिया गया। तदोपरान्त महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु एक प्रमुख कानून आया- 1930 ई0 में 'शारदा एक्ट', इस कानून द्वारा विवाह योग्य पुरुषों की आयु 18 वर्ष तथा महिलाओं की 14 वर्ष निर्धारित कर दी गई।

उक्त सुधार के बाद भी यह कहा जा सकता है कि किसी भी संस्था ने धर्म, सम्प्रदाय, वर्ग से ऊपर उठकर सार्वभौमिक रूप में महिलाओं की दशाओं के सम्बन्ध में विचार नहीं किया। स्वतन्त्रता के बाद भी महिलाओं से संबन्धित समस्यायें धर्म, वर्ग, जाति की सीमाओं में ही बंधकर रह गई। अतः संवैधानिक घोषणा के बावजूद एक समान आचार संहिता का निर्माण आज भी नहीं हो पाया है। ये सुधार कुछ ही क्षेत्रों तथा समूहों तक सीमित रहे।

वर्तमान भारतीय समाज भीषण वर्गीकरण का शिकार हैं एक ओर जहाँ अमेरिका से होड़ लेती प्रौद्योगिकी है, विलासिता के साजों सामान है। वहीं दूसरी ओर ऐसे भी लोग हैं, जिन्हें आज भी पीने का पानी लाने के लिए मीलों दूर चलकर जाना पड़ता है। ईधन के लिए दर-दर भटकना पड़ता है, दो जून की रोटी रोज नसीब नहीं होती। भारतीयों स्त्रियों के सामान्यतः तीन वर्ग किये जा सकते हैं- (1) यह वर्ग दो प्रतिशत का है- इनके पास शिक्षा, सुविधा, पद-सम्मान और मजबूत आर्थिक स्थिति है। ये महिलायें सामाजिक और आर्थिक रूप से किसी भी प्रकार की जोखिम उठाने में सक्षम है। ये किटी-पार्टियों तथा ब्यूटी पार्लर में अपना वक्त गुजारती हैं। पति का पैसा खर्च करने के अलावा इनके पास कोई काम नहीं होता। ये सजावटी उपकरण की तरह होती हैं। (2) यह वर्ग अठारह-बीस प्रतिशत का है। ये उच्चशिक्षित, शिक्षित तथा अर्द्धशिक्षित है। पारिवारिक जरूरतें पूरा करने हेतु नौकरी करती हैं, अपनी गृहस्थी को बखूबी चलाती हैं। इनमें अपने दायित्वों का निर्वहन करते-करते सोचने समझने की शक्ति आ गयी है। यही वह वर्ग है जिसमें सर्वाधिक जागरूक व विद्रोही स्त्रियाँ हैं। दलित महिला साहित्यकारों को छोड़ लेखिकाओं की बड़ी तादाद इसी मध्यवर्गीय समाज की उपज है। (3) यह सबसे बड़ा जनसमूह है। इसमें 80 प्रतिशत स्त्रियाँ आती हैं। ये विकास की हर किरण से बेखबर और उपेक्षित है, इनके पास न तो शिक्षा है न जीवन की अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति हेतु साधन। इनके जीवन का सारा वक्त रोजी-रोटी के व्यवस्था में ही खत्म हो जाता है। ये शहरों में घरों में काम करती हैं, कल-कारखानों में मजदूरी करती हैं। ग्रामीण इलाकों में मजदूरी, भवन निर्माण, बुनाई, कटाई, कृषि श्रमिक आदि के रूप में अपना श्रम देती हैं। इनके लिए 'स्त्रीमुक्ति' और 'नारीवाद' अनजाना शब्द है, इसका इनके जीवन में कोई उपयोगिता नहीं है। वंचितों में सबसे अधिक वचिंत 'दलित स्त्री' है, क्योंकि वह दोहरी विडम्बना झेलती है, एक तो दलित होने की तथा दूसरी स्त्री होने की, और आश्चर्य की बात है कि हिन्दी साहित्य ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में 'दलित महिला' पात्रों को अनुपस्थिति कर उन्हें उपेक्षित किया गया है।

गैर-दलित स्त्रियों का नारीवाद (फेमिनिज्म) विदेशी चेतना पर निर्भर है जबकि दलित महिलाओं का विमर्श विशुद्ध भारतीय है। पेरिस की रहने वाली दार्शनिक 'सिनोम द बोरूवा' को अपना आदर्श मानने वाली गैर-दलित महिलायें इतना भी नहीं सोचती है कि भारतीय संविधान किसी भी स्त्री को अथवा पुरुष को एक साथ एकाधिक पुरुष या स्त्री से सम्बन्ध की स्थापना को इजाजत नहीं देता। गैर-दलित स्त्रियाँ खासकर साहित्यकार इस नैतिक मर्यादा को तोड़ना ही पुरुष की सत्ता से आजादी' पाना समझती हैं।[4] इनके स्त्री विमर्श का फलक तथा आयाम बहुत सीमित है। इनका विमर्श सम्पूर्ण स्त्री को अपने अन्दर नहीं समेट पाता, आंशिक ही रह जाता है। लेकिन दलित महिलायें तो मूलभूत आवश्यकताओं से ही वंचित है, इसलिए प्रो0 श्यौराज सिंह 'बेचैन' कहते हैं, ''दलित महिलाओं को तो वे सब अवसर नहीं मिले हैं, जिन पर गैरदलित महिलायें पहले से काबिज हैं।''[5]

गैर-दलित लेखिकाएँ स्त्री-विमर्श को यौन-उच्छृंखलता पर केन्द्रित करके दलित स्त्रियों के शैक्षिक हकों, सामाजिक सुरक्षा, और वैयक्तिक सम्मान वाले मुद्दे को दबाना चाहती हैं। इसलिए दलित महिला विमर्श की दृष्टि से महिलाओं द्वारा संचालित निजी व स्वायत्त संस्थाओं में दलित महिलाओं की भागीदारी बहुत जरूरी है।''[6] दलित स्त्री-विमर्श तथा गैर-दलित स्त्री-विमर्श में स्पष्ट भेद है, उनकी अलग-अलग समस्यायें हैं और उनका अलग-अलग समाधान भी होंगे।''[7]

दलित स्त्रियों की समस्याओं पर चिन्तन से पहले यह स्पष्ट कर लेना जरूरी है- 'क्या सभी महिलायें दलित हैं। इस सम्बन्ध में मृणाल पांडे कहती हैं, ''कुल मिलाकर आज अपने परिवार के संदर्भ में भारतीय स्त्री व्यक्तिशः दलित है। तो ब्राह्मणवाद के सन्दर्भ में वह सामाजिक बिसात पर दलित है, और धनबल, भुजबल मूलक मौजूदा चुनावी लोकतंत्र की दृष्टि से जांचे तब तो सारे राष्ट्र की महिलायें दलित हैं।''[8] भारतीय समाज व्यवस्था में कुछ लोग भले ही सब स्त्रियों को दलित कह लें, परन्तु सवर्ण महिलायें स्वयं को दलित मानने को तैयार नहीं है। नीलम कुलश्रेष्ठ कहती हैं कि, ''मैं भी स्त्री को दलितों से जोड़े

जाने का विरोध करती हूँ।'' वे तर्क देती हुई कहती हैं, ''जिस तरह दलितों का पीढ़ी दर पीढ़ी शोषण एक बड़ी साजिश है, उसी तरह स्त्री की शक्ति को भी नकारकर उसे दलितों से जोड़ना या अपने से कमतर चीज बना देना, पुरुष अहं की भारी साजिश है।''[9] मृदुला गर्ग ने अपने भाषण में बड़े ही अप्रत्यशित ढंग से स्त्री को दलित मानने से इंकार कर दिया, और अपनी धारणाओं को 'मत बनाओ स्त्री को दलित'[10] शीर्षक लेख से नव भारत टाइम्स में भी दोहराया।

इसलिए दलित स्त्रियाँ 'दलित महिला साहित्य' तथा समाज की संरचना को उधेड़कर फिर से बुनेंगी, और दलितों पर जबरन 'हरिजन' शब्द थोपना उतना ही गलत होगा जितना कि सवर्ण स्त्रियों पर 'दलित' शब्द लादना।''[11]

आज मीडिया, संस्कृति, कला, टी0वी0 शो, फैशन शो और महानगरों में विभिन्न कम्पनियों द्वारा आयोजित नृत्य, सौन्दर्य प्रतियोगिताएं, वाद-विवाद प्रतियोगितायें, सेवा स्पर्धाएं आदि में दलित लड़कियों की भागीदारी नगण्य क्यों है ? प्रतिनिधित्व शून्य क्यों है? इसी पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए प्रो0 श्यौराज सिंह 'बेचैन' कहते हैं, ''तो सांस्कृतिक तथा सामाजिक संस्थाएं लोकतांत्रिक विविधता के लिए खतरा नहीं है तो क्या है?''[12]

दलित स्त्रियों के समस्याओं पर श्री कांशीराम 'बहुजन संगठक' के संपादकीय में लिखते हैं, ''दलित स्त्रियों की जिन्दगी में आजादी के अनुकूल परिवर्तन इसलिए नहीं आये क्योंकि आज जहाँ एक ओर महिलायें अपने अस्तित्व के प्रति सजग हैं वही दलित-शोषित समाज की महिलायें आज भी अपने अस्तित्व के प्रति बेखबर है।'' सम्पादकीय में परामर्श देते हैं कि, ''दलित शोषित समाज की शिक्षित महिलायें संगठन के महत्त्व को समझे और अपनी अनपढ़ बहनों को उसकी महत्ता समझाकर उसके दिल और दिमाग में यह बात भर दे कि उनका अस्तित्व खतरे में हैं। वे संगठित रूप में उनका प्रतिकार करें। यदि वह स्वयं पहल नहीं करेगी तो राजमाता के रूप में नाटक कर उनकी सहानुभूति प्राप्त करने वाली आयेंगी, बरगलाएंगी।''[13]

यदि यथार्थ में देखा जाय तो 'मनु' की बंदिशे सवर्ण स्त्रियों पर कम, दलित स्त्रियों पर अधिक लदी है, और दलितों द्वारा भी। शिक्षा, नौकरी, कला, साहित्य, मीडिया, राजनीति आदि में गैर-दलित वर्ग की ही महिलायें दिखती हैं, दलित स्त्रियों को इस कर्म-क्षेत्र में कोई भागीदारी ही नहीं है। वर्ण साहित्य के रचयिताओं ने जितनी अभद्र गालियाँ दलित महिलाओं को दी है, उतनी पुरुषों को नहीं दी है। प्रो0 श्यौराज सिंह 'बेचैन' कहते हैं, कथाकार संपादक राजेन्द्र यादव का दृष्टिकोण ज्यादा साफ है। उन्होंने कहा था, ''अगर दलित और पिछड़े वर्ग की महिलाओं का प्रतिनिधित्व महिला आरक्षण में तय नहीं किया गया तो सारे स्थानों पर परकटी महिलायें आकर बैठ जायेंगी।''[14]

मृणाल पाण्डे कहती हैं, ''पर क्या हम यह माने कि भारतीय समाज में अंग्रेजों द्वारा आधुनिकता की कलम रोपने का काम यदि जारी रहता तो ज्यादा अच्छा होता।''[15] पर क्या हिन्दू समाज ब्रिटिशों से इसलिए खफा नहीं है कि उन्होंने कानून बनाकर व्यक्तिगत विशेषाधिकार समाप्त कर दिये थे। एक जैसे अपराध के लिए एक जैसी सजा का प्रावधान कर दिये थे। क्षत्रियों से रक्षाधर्म का पालन नहीं हो सका था, वर्णव्यवस्था ने सभी को सैनिक बनने की इजाजत नहीं दी थी। अंग्रेजों ने यह द्वार सभी के लिए खोल दिये। डेमोक्रेटिक शिक्षा का उद्‌भव किया अर्थात् स्कूल का गेट भी सभी के लिये खोल दिये। ज्ञान-विज्ञान का अध्ययन शुरू कराया तथा ज्ञान-विज्ञान की क्षमता रखने वाली अंग्रेजी भाषा से परिचित कराया। इसलिए मृणाल पाण्डे दैनिक हिन्दुस्तान के अपने विमर्श स्तम्भ में लिखती हैं, ''वह देश सचमुच दलित महिलाओं को सत्ता का आधा हिस्सा खुशी-खुशी क्या देगा जहाँ अपने भाई को भी सुई के नोंक के बराबर जमीन के सवाल पर ही महाभारत मचता रहा है। सर्वदलीय सर्वानुमति यदि इधर किसी मुद्दे पर बनी है तो वह सिर्फ एक है, गरीबों की उपस्थिति को भुलाना।''[16]

आज हर जगह 'परकटी महिलाओं' की उपस्थिति को देखते हुए मृणाल पाण्डे कहती है- ''वैसे आरक्षण के ताजा इतिहास को देखते हुए यदि आज मध्यवर्ग की 'परकटी' स्त्रियों की जमात भी सत्ता की भागीदारी पहले ग्रहण कर ले तो घबराने जैसी कोई बात नहीं। न ही इस बात से घबराना चाहिये कि आरक्षण पर चर्चाओं से जातिवाद और मजबूत हुआ है। याद रखा जाना चाहिये इन दस लाख महिलाओं को पंचायती राज संस्थाओं के भीतर जो राजनीतिक सत्ता मिली है, उसे दो हजार वर्ष पुरानी वर्णवादी (मनुवादी) व्यवस्था का वह आशीर्वाद प्राप्त नहीं है, जो पुरुष-प्रधान राज व्यवस्था को प्राप्त था।''[17]

अनुसूचित जाति एवं जनजाति की बालिकाएँ शिक्षा के मामले में स्वयं अपने वर्ग के बालकों से एवं सामान्य वर्ग की बालिकाओं से बहुत पीछे है। अधिकांश दलित बालिकाएँ पढ़ाई पूरी किये बगैर स्कूल छोड़कर घर बैठ जाती हैं। शिक्षा के सभी स्तरों पर दलित बालिकाओं की विद्यालय छोड़ने की दर बहुत ज्यादा है। दलित बालिकाओं की शिक्षा की स्थिति काफी बुरी है। स्कूल से बाहर निकलने वाली छात्राओ की संख्या स्कूल में दर्ज होने वाली छात्राओं की संख्या से काफी ज्यादा है अर्थात् स्कूल में बच्चे का नाम दर्ज तो हो रहा है परन्तु वे जल्दी ही बाहर आ जा रही है।

दलित बालिकाओं के विद्यालय छोड़ने के निम्नलिखित कारण हैं-

1. दलित बालिकाओं को बीच में ही विद्यालय छोड़कर घरेलू कार्यों में संलग्न होना पड़ता है।
2. स्कूल का दूर होना, यातायात की अनुपलब्धता, घरेलू काम, छोटे भाई-बहनों की देखरेख, आर्थिक व विभिन्न सामाजिक समस्यायें आदि कुछ ऐसे ही कारण है, जो कि दलित शिक्षा के राह में बाधक हैं।
3. पाठशाला का नीरस वातावरण, शिक्षकों द्वारा उपेक्षा इससे बालिकाओं को पाठशाला जाना सजा से कम नहीं लगता।
4. स्कूलों में छुआछूत, शिक्षकों द्वारा दलित बालिकाओं के साथ दोहरा व्यवहार किया जाता है, दलित बालिकाओं से ही साफ-सफाई इत्यादि काम कराये जाते हैं।
5. सरकारी स्कूलों के भवनों की बहुत दुर्दशा है, दलित बच्चों को पीछे बैठाया जाता है, तथा उन्हें हतोत्साहित करते हुए जाति बोधक शब्दों के साथ मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जाता है।
6. आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण दलित बालिकाएँ बालश्रम के लिए मजबूर है। शैक्षिक विकास का सबसे उपयुक्त बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था श्रम के बोझ के नीचे दबकर रह जाता है।

दलित बालिकाओं के शिक्षा में सहभागिता के लिए निम्नलिखित प्रयास किये जाने चाहिये-

1. शिक्षा का सिद्धान्त एक बुद्धिवादी दृष्टिकोण पर आश्रित हो, अस्पृश्यता का अन्त कर सभी के साथ समान व्यवहार करना चाहिए।

2. दलित बालिकाओं पर केन्द्रित शैक्षिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।
3. जवाबदेह शिक्षा प्रणाली विकसित करनी चाहिए।
4. दलित बालिकाओं की शिक्षा शोषणमुक्त हो एवं उनके सामाजिक सांस्कृतिक विकास की व्यवस्था की जाय। इसके लिए जमीनी स्तर पर योजनाओं का क्रियान्वयन होना चाहिए। लिंग संवेदीकरण कार्यक्रम तैयार होने चाहिये।
5. दलित बालिकाओं के लिए रोजगारोंन्मुख शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए जिसमें विविध व्यवसायिक प्रशिक्षण जैसे कुटीर उद्योग, गाँव शिल्प आदि का प्रशिक्षण उनके घर पर दिया जाना चाहिए।
6. दलित बालिकाओं में प्रतिस्पर्धा की भावना जागृत की जानी चाहिए।
7. उच्च शिक्षा की पूरी जिम्मेदारी शासन को लेनी चाहिए।
8. शिक्षकों को इस बात के लिए प्रोत्साहित तथा प्रशिक्षित किया जाना चाहिए कि वे दलित गैर-दलित में कोई फर्क न करें।
9. विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं में सहभागिता बढ़ाने के लिए तहसील या गाँव स्तर पर सोशल कोंचिंग तथा आर्थिक सहायता मिलनी चाहिए। दलितों को शिक्षित करने में सरकार की इच्छा प्रबल होना चाहिए।
10. स्वयं दलितों को बेटा-बेटी का भेद खत्म करना होगा, क्योंकि लोग बेटियों से घर का काम करवाते हैं स्कूल नहीं भेजते हैं।

दलित लड़कियों को हर प्रतियोगिता में मात देने वाली लड़कियाँ किस जाति-वर्ण से आयी हैं। यदि इसका एहसास है तो दलित लड़कियों को विशेष प्रोत्साहन की जरूरत है। दलित महिलाओं में श्रम, संघर्ष, सेवा और सहयोग की भावना अभूतपूर्व है। बस उनको थोड़ा सहयोग तथा प्रतिरक्षण देने की आवश्यकता है। दलित स्त्रियों के दुख अपार हैं। गैर-दलित लेखिकाएँ उनके दु:ख उन्हीं से सुनकर दूर से देखकर 'सफरिंग का साहित्य' लिखने का दावा कर रही हैं। दलित स्त्रियों को अब अपने भोगे हुए यथार्थ के साथ साहित्य में उतरना होगा। कुछ क्षेत्रों के अपवाद छोड़कर शिक्षा, साहित्य, कला, संस्कृति व्यापार, अधिकार आदि की दृष्टि से दलित समाज एक गुलाम समाज हैं पुरुष इस गुलामी के खिलाफ लड़ रहे हैं। महिलायें साथ हो तो लड़ाई जीती जा सकती है।

आज भी कला के क्षेत्र में गैर-दलित स्त्रियों का ही वर्चस्व है। वही लोग खेल, माडलिंग, सौन्दर्य प्रतियोगिता, सिनेमा, सीरियल सभी जगह हावी है। ये सुविधाभोगी सवर्ण महिलायें अंधविश्वास से लबालब भरे सीरियल घर-घर परोस रहीं है। घर-घर में घुसे इनके सीरियलों से कैसा अतार्किक, अवैज्ञानिक विमर्श समाज में तैयार हो रहा है, इसका जिम्मेदार कौन है। जब देश मिश्रित विविध समाजों से बना है तो सांस्कृतिक रूप से खास जातियों के वर्चस्व की संस्कृति और जाति विशेष की स्त्रियों के एक तरफा संस्कार टी0 वी0 चौनलों पर क्यों परोसे जा रहे है? देश के सांस्कृतिक मंचों पर सब जातियों-उपजातियों की विशेषताएँ उभर कर आनी चाहिए। जिससे देश सांस्कृतिक रूप से समृद्ध हो। विश्व स्तर की हमारी कला, संगीत और साहित्य व्यवस्था दूसरों को भी ग्राह्य हो।''

अत: निष्कर्ष निकलता है कि मीडिया, साहित्य, कला, संस्कृति आदि क्षेत्रों में दलितों की भागीदारी नगण्य है। यह कहकर अक्सर पल्ला झाड़ लिया जाता है कि 'दलित नेतृत्व' पूरी तरह असफल है जिसके कारण दलित आज भी शोषित, दलित, वंचित और उपेक्षित है। लेकिन सत्ता केवल सियासत में निहित नहीं होती अपितु उन गैर-राजनीतिक सत्ताओं पर भी गौर करना चाहिए जिसमें भागीदारी के बगैर कोई भी कौम विकास नहीं कर सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची:

1 प्रो0 श्यौराज सिंह 'बेचौन', स्त्री विमर्श और पहली दलित शिक्षिका, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, सं0 पृ0 सं0 5
2 Dr. Ambedkar Rise and fall of the Hindu Women, P. 30
3 उनियाल, डॉ0 सौ0 जे0 एम0 देसाई, आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी, पृ0 सं0 19
4 प्रो0 श्यौराज सिंह 'बेचौन', स्त्री विमर्श और पहली दलित शिक्षिका, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, सं0 2009, सं0 पृ0 सं0 8-9
5 वही, पृ0 सं0 9
6 वही, पृ0 सं0 9
7 वही
8 मृणाल पाण्डे, दैनिक हिन्दुस्तान, भारतीय राजनीति में महिला आरक्षण का सवाल, विमर्श, 9 मार्च 2003, नई दिल्ली
9 नीलम कुलश्रेष्ठ, हंस, मासिक, जून 1993, नई दिल्ली
10 हंस (मा0) जून 1993, नई दिल्ली, पृ0 सं0 73
11 प्रो0 श्यौराज सिंह 'बेचौन', स्त्री विमर्श और पहली दलित शिक्षिका, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, उ0 प्र0, पृ0 सं0 8
12 वही, पृ0 सं0 6
13 मा0 कांशीराम, बहुजन संगठक, संपादकीय, 9 अगस्त 1982, नई दिल्ली
14 प्रो0 श्यौराज सिंह 'बेचौन', स्त्री विमर्श और पहली दलित शिक्षिका, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, उ0 प्र0, पृ0 सं0 2
15 मृणाल पाण्डे, दैनिक हिन्दुस्तान, विमर्श, भारतीय राजनीति में महिला आरक्षण का सवाल, 9 मार्च 2003, नई दिल्ली
16 वही
17 वही

जागेश्वर मन्दिर का ऐतिहासिक अध्ययन

रेखा बृजवासी

शोध छात्रा, इतिहास विभाग, डी0एस0बी0 परिसर कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल

भारत की हजारों वर्षो की संस्कृति में धर्म प्रमुख स्थान रखता है और यहाँ के मन्दिर देश की परम्परा व प्रतिभा के उपज है। मन्दिरों की वास्तु कला, दीवारों पर उकेरी गई आकृतियाँ तथा यहाँ का वातावरण व्यक्ति के विचारों को स्थायीत्व को प्रदान करता है।[1] ''और यह संस्कृति क्या है इसे दिनकर जी की यह परिभाषा स्पष्ट करती है-" संस्कृति जिन्दगी जीने का तरीका है। जिसमें हम जन्म लेते हैं। जो हमारे सारे जीवन को व्यापे हुए है तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभव का हाथ रहा है। किसी समाज की अथवा जाति के विचार परम्पराएँ, आचार व्यवहार, जीवन-यापन की पद्धति तथा साहित्य कला सम्बन्धी वे उपलब्धियाँ जिन्हें वंश परम्परागत रूप में अर्जित किया गया हो संस्कृति हैं।[2]

आगे इसी संस्कृति के विकास क्रम को स्पष्ट करते हुए ग्रीन महोदय कहते है यही ''संस्कृति जब एक जनसमुदाय की लिखित भाषा, विज्ञान एक विशेष दर्शन, श्रम विभाजन व जटिल तकनीकी का रूप धारण कर लेती है तो यह एक सभ्यता बन जाती है।''[3] (ग्रीन के कथन का हिन्दी अनुवाद)

भारत के इन्हीं मन्दिरों के क्रम में उत्तराखण्ड राज्य के कुमाऊँ मण्डल के जिला अल्मोड़ा में जागेश्वर मन्दिर शिवोपासना के लिए प्राचीन काल से ही लोकप्रिय रहा है। जिसके दो कारण प्रतीत होते हैं-पहला स्थानीय राजवंशों का शैव धर्म के प्रति विशेष झुकाव तथा दूसरा साहित्य में शिव को हिमालयवासी बतलाया जाना। कुमाऊँ में शिवोपासना भी दो रूपों में की जाती है प्रतीक रूप व प्रतिमा रूप, जिनमें सर्वाधिक प्रतीक पाषाण लिंगात्मक रूप की आराधना होती है।[4]

जागेश्वर मन्दिर का परिचय- जागेश्वर मन्दिर चौगर्खा परगने के दारून पट्टी में अल्मोड़ा से पिथौरागढ़ मार्ग पर 35 कि0मी की दूरी पर व आरतोला से 3 कि0मी0 की दूरी (38 कि0मी0) पर स्थित ज्योतिर्लिंग तीर्थ है। यहाँ 8 वीं सदी से 9 वीं सदी तक को अनेक मन्दिर विद्यमान हैं।[5] मानसखण्ड में जागेश्वर की स्थिति बतलाते हुए कहा गया है कि हिमालय के सुरम्य तट पर स्थित सरयू के दक्षिण पूर्व के पवित्र दारूकावन तथा टंकण पर्वत के बीच जटागंगा सुशोभित है, जो स्थान-स्थान पर तपस्वियों के आश्रमों से परिवेष्ठित है। (मानसखण्ड 61.25) जटागंगा का यह पवित्र क्षेत्र लिंगोत्पत्ति के रूप में शिवपुराण में भी वर्णित है। (शिव-शतसंहिता 126-18)।[6]

जागेश्वर मन्दिर समूह के मुख्य मन्दिर-जागेश्वर मन्दिर अपने प्राचीन स्वरूप में मुख्य मन्दिरों जागनाथ व मृत्युंजय सहित 108 अन्य छोटे-बडे मन्दिरों समूहों-जिनमें पुष्टितमाता, कालिका, चंडिका, हनुमान मन्दिर, भैरव मन्दिर, नवग्रह, सूर्य मन्दिर, लकुलीश, नव दुर्गा मन्दिर, अन्नपूर्णा व अन्य मंदिर आते हैं का समूह है। बाद के वर्षो में मंदिरों के निर्माण में वृद्धि के फलस्वरूप वर्तमान में यह 125 मंदिरों का समूह माना जाता है।[7]

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि-जागेश्वर मन्दिर से प्राचीन कथा में उल्लेख है कि यहाँ झॉकरसैम पर्वत में शिव ने सती के शव की राख को अपने शरीर पर मलकर हजारों वर्ष तक कठोर तपस्या की थी तथा यही सप्तऋषियों ने भी तपस्या की। इसी झॉकर सैम पर्वत के नीचे जागेश्वर धाम स्थित है।[8]

ऐसी मान्यता है कि जागनाथ मन्दिर को त्रेतायुग में रामेश्वरम से उसका विग्रह लाकर श्री रामचन्द्र द्वारा स्थापित किया गया था। राजा शालिवाहन देव द्वारा इसका जीर्णोधार किया गया था। यहाँ के मृत्युंजय मन्दिर का निर्माण राजा विक्रमादित्य द्वारा किया गया। बाद में शंकराचार्य ने यहाँ मन्दिर की पुनः प्रतिष्ठा की, समय-समय पर अलग-अलग कत्यूरी व चन्द राजाओं ने इसका जीर्णोद्वार किया।[9]

इस मन्दिर की प्राचीनता के विषय में अनेक कथाएँ व किवंदतियाँ है जिनमें से एक यह भी है कि यहाँ पर योगी शिव जाग्रत हुए थे, इसलिए यह जागनाथ/जागेश्वर कहलाया।[10] ऐसे ही यहाँ पर प्रचलित अन्य कथा में बताते है कि यहँ पर स्थित वृद्ध जागेश्वर मन्दिर में शिव ने नारायण विष्णु की तपस्या की थी और उन्हें मालपुए का भोग लगाया था। तपस्या के आशीर्वाद रूप में इन्होंने श्री हरि विष्णु से संसार के सभी भक्तों, स्त्रियों को सन्तान सुख व कष्टों से मुक्ति हो, ऐसा आशीर्वाद लिया। तभी से यहाँ पर जो भी भक्त सन्तान सुख या अन्य कष्टों की मुक्ति हेतु आता है, उसकी मनौती अवश्य पूरी होती है।[11] ऐसी ही मान्यता यहॉ जागेश्वर के जागनाथ मन्दिर की भी है किन्तु इसमें अलग विशेषता यह है कि यहाँ स्त्रियॉ जो थाड़दी (दायें पैर में खड़े होकर) होकर सायंकाल से लेकर प्रातःकाल तक हाथ में जलता दीया लिए खड़ी रहती है उन्हें पुत्र प्राप्ति अवश्य होती है।[12] इसी तरह मृत्युंजय मन्दिर के बारे में बताया जाता है कि आदिगुरू शंकराचार्य के आगमन से पूर्व यहाँ का शिवलिंग जिसका भी नाम लेता था उसकी तुरन्त मृत्यु हो जाती थी। बाद में शंकराचार्य द्वारा इसको मंत्रों द्वारा कीलित कर दिया गया तब से यह शिवलिंग सही रूप में प्रार्थना करने आए लोगों की ही मनौती पूर्ण करता है। यहाँ पर रोग-कष्ट निवारण हेतु गृह पूजा का भी विशेष विधान है।[13]

प्राचीन तीर्थयात्रियों के आगमन सम्बन्धी अभिलेख-जागेश्वर के सबसे प्राचीन लेखों से पता चलता है कि ये पूर्व देश, कदम्ब, वटेश्वर से आने वाले यात्रियों के है। जो कि इस मन्दिर की प्राचीन काल से चली आ रही मान्यता के साक्षात प्रमाण है। ऐसे ही अन्य अभिलेख भी यहाँ पर मौजूद हैं। मन्दिर में यात्रा करने वाले प्राचीन तीर्थ यात्रियों के यहाँ मन्दिर के प्रवेश द्वार से लेकर भित्तियों तक जो अभिलेख खुदे है उनमें हमे छठी सातवीं ई0 की लिपि, व्यक्तिगत

नामों का उल्लेख मिलता है। जिनमें मृत्युंजय मन्दिर के अभिलेखों में बलवर्मन ताम्रघट, बटेश्वर एवं प्रभुदत्त पूर्व देश के यात्रियों को प्रतिनिधि के रूप में यात्रा करने का उल्लेख मिलता है।[14] इसी तरह इस मन्दिर की स्थापत्यकला जो रेखा शिखर शैली फॉसना, बल्लभी, देवल शैली से अलंकृत है, के द्वारा भी स्पष्ट होता है कि इसको निर्मित व संरक्षित करने वाले कत्यूरी व चंद राजा कलाप्रेमी रहे होंगे।[15] यहाँ पर मिली चन्द राजाओं की धातु की मूर्तियॉ दीपचन्द व त्रिमलचन्द, पवनचन्द व ताम्रपत्र, चन्द राजाओं द्वारा इसे अपना पौराणिक कुल बनाना कही न कही इस मन्दिर के धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व अर्थिक महत्व को उजागर करता है।[16]

मन्दिर का महत्व- जागेश्वर मन्दिर के महत्व की ओर ध्यान दें तो इस मन्दिर का इतिहास इसके निर्माण से लेकर वर्तमान तक समृद्ध रहा है। तत्कालीन ऐतिहासिक राजाओं द्वारा इसे संरक्षित किया जाना, प्राचीन काल से ही शिवभक्तों का यहाँ पर आगमन (प्रतिनिधि के रूप से व प्रत्यक्ष रूप से), विभिन्न सुदूर देशों से यहॉ आए तीर्थयात्रियों के खुदे अभिलेख, मन्दिर की अदभुत वास्तुकला, भव्य गर्भगृह। नित प्रतिदिन होने वाली प्रातः कालीन आरती हजारों तीर्थयात्रियों द्वारा श्रावण के महीने में मनौती पूरी होने पर शिवार्चन करना, योग साधना केन्द्रों का यहाँ स्थापित होना, इसके सभी पक्षों की महत्ता की सार्थकता की पुष्टि करता है। (पूर्व विवरण का सार सारांश)[17]

मन्दिर की महत्ता का कारण -

मन्दिरों का सामाजिक जीवन के लिए, आर्थिक महत्व इसके निकट क्षेत्रों के आर्थिक जीवन का संचालन करने में विशेष रूप से रहा है। मन्दिरों के प्राचीन इतिहास को ही देखें तो ये कई हजारों, लाखों वास्तुकारों, मूर्ति निर्माताओं, धातु बर्तन निर्माताओं पुजारियों व अन्य धूप, मालाओं, भोज्य पदार्थों से सम्बन्धित व्यवसाय/रोजगार प्रदान करने वाले होते है इसी तरह यहाँ लगने वाले मेले भी इसके आर्थिक व सामाजिक महत्ता में वृद्धि करते है।

जागेश्वर मन्दिर में उपरोक्त सभी विशेषताएँ शत-प्रतिशत रूप से मिलती हैं जो कि आधुनिक युग में भी कई हजारगुना लोगों को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से मानसिक, सामाजिक व आर्थिक लाभ पहुँचा रहा है। यही कारण है कि यहाँ प्रति वर्ष श्रद्धालुओं का आवगमन बढ़ता जा रहा है।[18]

मन्दिर में लगने वाले मेले- मन्दिर में लगने वाले मेले विशेषकर श्रावणी चतुर्दशी, वैशाख पूणिमा, चतुर्दशी व कार्तिक पूर्णिमा में, इसकी सामाजिक सांस्कृतिक महत्ता को बढ़ाते है।[19]

जागेश्वर मन्दिर से संबन्धित पुजारी वर्ग- (लगभग 110 पुजारी) जागेश्वर मन्दिर समूह में जागेश्वर, मृत्युंजय सहित अन्य मन्दिरों की पूजा यहाँ के भट्ट बिरादरी के पुजारी वर्ग द्वारा किया जाता है। किन्तु यहाँ स्थित भैरव मन्दिर को नाथ वर्ग के पुजारियों द्वारा पूजा जाता है।[20]

दण्डेश्वर मन्दिर-यहाँ पर राणा बिरादरी के पुजारी वर्ग द्वारा (लगभग 70-80 पुजारी) पूजा पाठ का कार्य किया जाता है।[21]

झॉकरसैम-यहाँ पर पाण्डे लोगों द्वारा पूजा-पाठ सम्बन्धी क्रियाएँ की जा रही है।[22]

वृद्व जागेश्वर मन्दिर- यहाँ भी भट्ट बिरादरी के लोगों द्वारा पूजा की जाती है।[23]

भारतीय पुरातत्व विभाग-द्वारा यहाँ पर क्षेत्रीय अभिलेखागार अल्मोड़ा संग्रहालय की स्थापना की गई। जो वर्ष 1995 में एक छोटे मूर्तिकक्ष के रूप में था तथा 2002 में संग्रहालय के रूप में परिवर्तित हुआ यहाँ पर मन्दिर से संबन्धित 160 मूर्तिशिल्पों का संग्रह मूर्तिकक्ष में संरक्षित किया गया है। जो तीन वीथिकायों में प्रदर्शित है।

- वीथिका संख्या 1 में 33 प्रस्तर निर्मित प्रतिमायें हैं
- वीथिका संख्या 2 में 11 प्रस्तर प्रतिमाएँ है
- तथा वीथिका 3 में 11 प्रतिमाएँ है।

भारतीय पुरातत्व विभाग इसे गुप्त व पूर्वी कत्यूरी काल, उत्तरी कत्यूरी काल व चन्दकाल (15 वीं से 18 वी) सदी का मानता है।[24]

प्राथमिक स्रोत- मुख्य मंदिरों का विवरण

- जागेश्वर मन्दिर (फुलाई गुंठ) भू-निर्देशांक अक्षांश 29० 38‘ 19‘‘ उत्तर लंब। 79० 51‘16‘‘ पूर्व
- मृत्युंजय मन्दिर (फुलाई गुंठ) भू-निर्देशांक अक्षांश 29० 38‘ 19‘‘ उत्तर लंब। 79० 51‘16‘‘ पूर्व
- दंडेश्वर मन्दिर (कोटली और चंदोक गुंठ) भू-निर्देशांक अक्षांश 29० 38‘ 5‘‘ उत्तर लंब। 79० 50‘35‘‘ पूर्व
- चंडिका मन्दिर (फुलाई गुंठ) भू-निर्देशांक अक्षांश 29० 38‘ 19‘‘ उत्तर लंब। 79० 51‘16‘‘ पूर्व
- नवदुर्गा मंदिर, हनुमान मंदिर, कुबेर मंदिर, केदारनाथ, नीलकण्ठ मंदिर, अन्नपूर्णा मंदिर, लकुलीश मंदिर, नवग्रह मंदिर, सूर्यमंदिर, रानी वंदमाला मंदिर, भैरव मंदिर, समाधि मंदिर, पीरामिडाकार मंदिर व अन्य मंदिर समूह के चित्र।

मन्दिर से सम्बन्धित अभिलेख -

- जागेश्वर मुख्य मंदिर अभिलेख
- मृत्युञ्जय मंदिर अभिलेख
- वीणेश्वर मंदिर अभिलेख व अन्य

शोधार्थी को क्षेत्रीय सर्वेक्षण के दौरान जो-जो अभिलेख प्राप्त हुए, यहाँ पर उन अभिलेखों का ही जिक्र किया गया है। जबकि इतिहासकार डी0सी0 सरकार व महेश्वर प्रसाद जोशी जी को यहाँ 25 से भी ज्यादा अभिलेख प्राप्त हुए थे, जिनमें से वर्तमान में कई अभिलेख धूसर (अस्पष्ट) हो चुके हैं।

- ताम्र पत्र – वृद्धाजागेश्वर मन्दिर से संबंधित चंदराजाओं के ताम्रपत्र।
- मूर्तियों का विवरण – दीपचन्द और पवनचन्द, त्रिमलचन्द, पौन राजा व मूर्तिकक्ष में संरक्षित मूर्तियाँ।
- पुजारी, पुरातत्त्वविदों व आम जनमानस का साक्षात्कार।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. उपाध्याय, वासुदेव प्रो0 ''प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा मन्दिर'' विहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी पटना, प्रथम संस्कारण 1972
2. शोधार्थी, बसन्तबल्लभ उपाध्याय, ''दिनकर के प्रबंधेत्तर काव्यों में अभिव्यक्त भारतीय संस्कृति एवं दर्शन'', शोध प्रबन्ध वर्ष 1990, पृ0सं0 28.
3. वाड़मय, आचार्य श्री राम पं0, ''भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व'', अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, द्वितीय संस्करण, 1998, पृ0सं0 16
4. शोधार्थी, देवकी नन्दन तेवाड़ी, ''कुमाऊँ की देव प्रतिमाएँ'' शोध प्रबन्ध, वर्ष 1984-20 अगस्त, कु0वि0वि0नैनीताल, पृ0सं0 38-43
5. नैथानी प्रसाद शिव एवं नैथानी मोहन ''उत्तराखण्ड का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक भूगोल'', पृ0सं0 181-183
6. शोधार्थी, मदनमोहन जोशी, ''अल्मोड़ा जनपद का पुरातत्व'' शोध प्रबन्ध 2000-2001, अल्मोड़ा परिसर कु0वि0वि0 नैनीताल, पृ0सं0 71
7. यहाँ पर प्रदर्शित निर्देशन बोर्ड तथा साक्षात्कार महेश चन्द्र भट्ट पुजारी जागनाथ मन्दिर।
8. भट्ट त्रिलोकचन्द, ''उत्तरांचल के देवालय'', तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड, नई दिल्ली, पृ0सं0 138
9. पूवोक्त
10. प्रसाद जगदीश्वरी, ''कुमाऊँ के देवालय'', उत्तराखण्ड सेवानिधि, दीनानाथ कॉटेज नैनीताल, पृ0सं0 40-41
11. साक्षात्कार श्री चन्द्रबल्लभ भट्ट वृद्धजागेश्वर पुजारी
12. साक्षात्कार पं0 महेश चन्द्र भट्ट मृत्यंन्जय मन्दिर पुजारी
13. साक्षात्कार महेश चन्द्र भट्ट, मृत्युन्जय मन्दिर के पुजारी, जागेश्वर
14. शोधार्थी मदन मोहन जोशी, ''अल्मोड़ा जनपद का पुरातत्व'' शोध प्रबन्ध 2000-2001, अल्मोड़ा परिसर कु0 वि0 वि0 नैनीताल
15. उनियाल हेमा, ''कुमाऊँ के प्रसिद्ध मन्दिर'' (धर्म, संस्कृति एवं वास्तुशिल्प) तक्षशिला प्रकाशन, वर्ष 2005 (144-145)
16. क्षेत्र सर्वेक्षण कार्य (चित्र शोध प्रबंध में अंकित है)
17. सार सारांश-निष्कर्ष
18. डबराल, शिवप्रसाद, ''उत्तराखण्ड यात्रा दर्शन'', डिजिटल लाइब्रेरी इंडिया, जयज्ञान, पृ0सं0 184-185
19. साक्षात्कार श्री बची सिंह राणा दण्डेष्वर मन्दिर पुजारी।
20. साक्षात्कार पण्डित महेश चन्द्र भट्ट पुजारी मृत्युंन्जय मन्दिर
21. साक्षात्कार श्री बची सिंह राणा व डूंगर सिंह राणा, पुजारी दण्डेश्वर मन्दिर
22. साक्षात्कार गिरीश चन्द्र पाण्डे निवासी, ज्योलिकोट
23. साक्षात्कार चन्द्र बल्लभ भट्ट पुजारी वृद्धजागेश्वर
24. पुरातात्विक संग्राहलय जागेश्वर, जनपद अल्मोड़ा उत्तराखण्ड पुस्तिका
25. website – http://museum.asidehraduncircle.in

महाकवि हर्ष की संस्कृत नाटिकाओं में प्रकृति चित्रण

डॉ० आशा सिंह रावत

असिस्टेण्ट प्रोफेसर-संस्कृत, शासकीय के० आर० जी० पी० जी० स्वशासी महाविद्यालय, ग्वालियर (म०प्र०)

प्रकृति एवम् पुरुष का सम्बन्ध तो आदिकाल से चला आ रहा है। प्रकृति न केवल मनुष्य की चिर सहचरी है अपितु उसके सुख-दु:ख में भी सहभागिनी है। मनुष्य जब जन्म लेकर इस धरातल पर आता है, तब से उसकी अन्तिम यात्रा तक प्रकृति सदैव उसके साथ रहती है। अत: प्रकृति के प्रति प्रेम का भाव होना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। भारतीय जनजीवन प्राकृतिक उपदानों के साथ पूर्ण रूप से अनुस्यूत है। अत: इसे प्राकृतिक उपादानों से पृथक् नहीं किया जा सकता।

भारत भूमि पर तो प्रकृति ने अपनी अपार अनुकम्पा व प्रेम लुटाया है। भारत भूमि का वक्षस्थल प्रकृति की रम्य क्रीडा स्थली है। यहाँ की प्राकृतिक छटा दर्शनीय व मनोहारी है। यहाँ के नदी तट, बसन्त ऋतु की शीतल व मादक हवा, पर्वतों के मखमली दृश्य संसार में अन्यत्र प्राप्त होना दुर्लभ है। यही कारण है कि भारतीय कवियों का प्रकृति के प्रति विशेष अनुराग रहा है। वैदिक काल में भी ऋषियों व मंत्र दृष्टाओं द्वारा जो साम गायन का स्वर झंकृत किया गया, वह प्रकृति सुन्दरी के स्वर्णिम आंचल में विराजमान होकर ही रचा गया। भारत की प्राकृतिक संरचना की जीवटता व सुन्दरता, भावुक कवियों को सदैव अपनी और आकर्षित करती रही है और येन-केन प्रकारेण उनके साथ सम्बन्ध भी स्थापित करती रही है। संस्कृत साहित्य के रूपकों में कवियों द्वारा प्रकृति के जो सुन्दर चित्र खींचे गए हैं, वह विश्व के किसी अन्य साहित्य में उपलब्ध नहीं होते हैं।

संस्कृत साहित्य में प्रकृति चित्रण का विशेष स्थान रहा है। प्रमुख रूप से रूपकों में। संस्कृत साहित्य के कवियों का प्रकृति से विशेष प्रेम रहा है। वे माधुर्य व सौन्दर्य के उपासक होते हैं, अत: उनका हृदय सौम्य भाव में रमण करता है और इसी कारण जिन दृश्यों से मधुरता व सुन्दरता का अनुभव होता है, वे उन दृश्यों पर रीझते हैं और अपने रूपकों में उन दृश्यों का चित्रण बड़े ही मार्मिक रूप में करते हैं।

संस्कृत नाटिकाओं में मुख्यत: अन्त:पुर की प्रणय कथा का चित्रण किया गया है, जिसमें प्रकृति के प्रति कवि का आकर्षण स्वाभाविक एवम् पूर्ण रूप से प्रकट होता है।

''संस्कृत नाटिकाओं में प्रकृति का चित्रण दो प्रकार से किया गया है-

(1) उद्दीपन के रूप में तथा

(2) आलम्बन के रूप में।''

मनुष्य के भावों पर प्रकृति का प्रभाव सदैव से रहा है। मनुष्य के मनोभावों को तीव्र व उद्दीप्त करने में प्रकृति महत्वूर्ण भूमिका अदा करती है। प्रेमी की सोई हुई प्रेम भावना प्रकृति का रमणीय सान्निध्य पाकर जाग्रत हो उठती है।

''बाह्य प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण संस्कृत कवियों ने अपने तीव्र अवलोकन का विषय बनाया है तथा यथार्थता से मण्डित वर्णनों का चमत्कार सरस हृदयों को बलात् अपनी ओर खींचता है।''

मधुमास में बहती हुई शीतल पवन, उपवन में विकसित पुष्पों की सुगन्ध और पंचम स्वर में कूकती कोकिला, अधिकांश कवि इनका वर्णन उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत करते हैं, किन्तु जब कवि की दृष्टि प्रकृति के स्वाभाविक रूप की ओर आकृष्ट होती है तो वह प्रकृति के स्वतंत्र रूप का विश्लेषण कर, उन्मुक्त हृदय से उसका वर्णन करता है, जो अपने को दूसरे प्रकार के वर्णन से स्वत: पृथक् कर देता है। यह भाव आलम्बन के रूप में काव्य में प्रतिष्ठित होता है।

महाराज हर्ष प्रकृति निरीक्षण में अत्यन्त कुशल हैं। उनके अनुसार मधुमास का आगमन लोगों के हृदय को कोमलता से भर देता है। इस कोमल हृदय पर कामदेव के पुष्प रूपी बाणों का प्रहार उसे बींध देता है।

''इहं प्रथमं मधुमासो जनस्य हृदयानि करोति मृदुलानि पश्चाद्विध्यति कामो लब्धप्रसरै: कुसुमबाणै:।''

महाराज हर्षवर्धन का अनुसरण करते हुए महाकवि राजशेखर ने भी अपने काव्य में प्रमुख रूप से बसन्त ऋतु का वर्णन किया है। उन्होंने विभिन्न ऋतुओं का वर्णन बहुत ही चित्रात्मक एवम् रमणीय ढंग से प्रस्तुत किया है। बसन्त ऋतु का आगमन किस प्रकार होता है, उसका वर्णन उन्होंने कुछ इस प्रकार किया है-

''गर्भग्रन्थिषु वीरूचां सुमनसो मध्यऽङ्कुर पल्लवा।
वांछामात्रपरिग्रह: पिकवधूकण्ठोदरे पंचम:।
तस्मात् त्रीणि जगन्ति विष्णु दिवसेद्वित्रैर्मनोजन्मना
देवस्यापि चिरोझितं यदि भवेदाभ्यासवश्यं धनु:।

''लताओं की गर्भग्रन्थियों के भीतर तथा पुष्पों के मध्य अंकुर तथा पल्लव उत्पन्न हो चुके हैं और केवल इच्छामात्र से ग्राह्य कोकिला के कण्ठ में पंचम स्वर प्रायः उत्पन्न हो चुका है। सक्षम कामदेव का धनुष भी कदाचित् अब दो-तीन दिन में अभ्यास करने के कारण काम देने योग्य हो जाएगा।''

इसी प्रकार का एक और पद्य है-

इह हि नववसन्ते मंजरी पुंजरेणुच्छुरणधवलदेहाबद्धहेलं चरन्ति।
तरलमलिसमूहा हारिहुंकारकण्ठा बहुलपरिमलाली सुन्दरं सिन्दुवारम्।।''

''इस नवीन बसन्त ऋतु में आम्र मंजरियों के पराग के लेपन से श्वेत शरीर तथा हुंकारयुक्त कण्ठ के कारण मोहक ये भौंरों के झुण्ड अतिशय सुगन्ध वाले इन सिन्दुवार पुष्पों की ओर बढ़े जा रहे हैं।

बसन्त ऋतु के आगमन के साथ ही प्रकृति करवट लेना प्रारम्भ करती है और ये प्राकृतिक परिवर्तन विरही जनों के संताप में वृद्धि कर देती है। इस अवस्था का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण महाकवि कालिदास रचित गीतिकाव्य 'मेघदूतम्' में प्राप्त होता है। अपनी प्रियतमा के वियोग में शाप से ग्रसित यक्ष आकाश में लहलहाते शीतलता प्रदान करने वाले सघन मेघों को देखकर व्याकुल हो उठता है और अपने सन्देश के प्रेषण हेतु मेघ से याचना करता है।

महाकवि कलिदास प्रकृति को चेतन रूप में देखते हैं, महाकवि का प्रकृति चित्रण अप्रतिम एवम् अतिरमणीय है। उनके काव्य का विकास प्रकृति वर्णन से ही हुआ है। अतः उनके काव्यों की प्रकृति मूक, अचेतन या निष्प्राण नहीं है। वह मनुष्यों की भाँति सुख, दुःख एवम् संवेदनाओं का अनुभव करती है। इसलिए शकुन्तला की विदाई के अवसर पर न केवल महर्षि कण्व अपितु समस्त तपोवन पीडिघ्त हो उठता है।

प्रियम्वदा कहती है-

''न केवलं सख्येवत्वयोपस्थितवियोगस्य तपोवनस्यापि समवस्था दृश्यते।''

अतः शकुन्तला के प्रस्थान से उसकी सखियाँ ही नहीं अपितु सम्पूर्ण तपोवन दुःखित है। कालिदास के काव्यों में प्रकृति के आलम्बन रूप का दर्शन होता है। कालिदास के रूपकों का प्रभाव हर्ष की रचनाओं पर स्पष्ट दिखाई देता है।

बसन्त ऋतु सभी ऋतुओं में श्रेष्ठ मानी जाती है। इसका आगमन वसुन्धरा की शोभा में वृद्धि करने वाला होता है। संस्कृत नाटिकाकारों ने इसके इसी गुण का वर्णन अपनी नाटिकाओं में किया है। श्रृंगार रस को उद्दीप्त करने वाली शीतल पवन, कोकिला को मधुर स्वर और सायंकालीन सुषमा का चित्रण ही इन नाटिकाकारों के प्रकृति वर्णन का विषय रहा है।

''उदयतटान्तरितमियं प्राची सूचयति। दिङ्नशानाथम्।
परिपाण्डुना मुखेन प्रियमिव हृदयस्थितं रमणी।।''

महाराज हर्ष को चन्द्र उदय होने से पूर्व शाम के समय प्राची दिशा विरहिणी नायिका के मुख मण्डल के समान लगती है।

पुनः इसी प्रसंग में उदयन वासवदत्ता के सौन्दर्य का वर्णन करता जा रहा है और सन्ध्या भी उचित रूप में वर्णित होती जा रही है-

''देवि त्वन्मुखपंकजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा।
पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्तिविच्छायताम्।
श्रुत्वा ते परिवारवारवनितागीतानि भृगांगना।
लीयन्ते मुकुलान्तरेषु शनकैः संजातलज्जा इव।''

अर्थात् देवी! देखो, चन्द्रमा की कान्ति को तिरस्कृत करने वाले तुम्हारे मुख रूपी कमल से जीते गए जलज अचानक कान्ति हीन हो रहे हैं। तुम्हारी सेविका गणिकाओं के गीतों को सुनकर भ्रमरांगनाएँ, जिन्हें मानो लज्जा उत्पन्न हो रही है, धीरे से कमलों के मध्य छिप रही है।

इस प्रकार महाराज हर्ष ने अपनी काव्य प्रतिभा के द्वारा बहुत ही सुन्दर भाव को व्यक्त किया है। इसी भाव से युक्त एक पद्य हर्ष की प्रियदर्शिका में भी दर्शनीय है-

''हृत्वा पद्मवनधुतिं प्रियतमेवेयं दिनश्रीगर्ता।
रागोऽस्मिन्यम चेतसीव सवितर्बिम्बेऽधिकं लक्ष्यते।
चक्रोहोऽहमिव स्थितः सहचरीं ध्यायन्नलिन्यास्तबे सज्जाताः।
सहसा ममेव भुवनस्याव्यन्धकारा दिशः।''

महाराज हर्ष ने प्रकृति का निरीक्षण बहुत ही सूक्ष्म रूप से किया है व एक शिल्पी की भाँति बहुत बारीकी से उन्हें चित्रित करने का प्रयास भी किया है, जिसमें वे पूर्णतः सफल हुए हैं। जिस भाव को वे सहृदय पाठकों तक पहुँचाना चाहते हैं वह दर्शकों व पाठकों के हृदय तक संचरित तो हुआ ही साथ ही प्रकृति के उद्भुत रूप का दर्शन कराने में भी सफल रहा है।

रत्नावली के तृतीयांक में हर्ष द्वारा रचित इस पद्य से इसकी अभिव्यक्ति होती है -

''पालीयं चम्पकानां नियतमयमसौ सुन्दरः सिन्दुवारः।
सान्द्रावीथीतथेयं बकुलविटपिनां पाटलापङिक्तरेषां।
आघ्रायाघ्राय गन्धं विविधमधिगतैः पादपैरेवमस्मिन्।
व्यक्ति पन्थाः प्रयाति द्विगुणतरतमोनिह तोव्येष चिन्हः।

यह चम्पक वृक्षों की कतारें हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह वही सुन्दर सिन्दुवार के वृक्ष हैं तथा मौलसिरी वृक्षों की घनी झाड़ियाँ हैं। यह पाटल पादपों की कतारें हैं। इन सघन वृक्षों के कारण मार्ग अन्धकार युक्त हो गया है और दृश्य नहीं है, किन्तु अनेक प्रकार की सुगन्ध सूंघ-सूंघकर वृक्षरूपी चिन्हों से यह मार्ग स्पष्ट हो रहा है।

इसी प्रकार का अत्यंत मनोरम वर्णन प्रियदर्शिका में भी प्राप्य है। जहाँ कविवर हर्ष द्वारा धारा गृहोद्यान का अत्यन्त सुन्दर चित्र खींचा है-

''वृन्तैः श्रुद्रप्रवालस्थगितमिव तलं भाति शेफालिकानां।
गन्धः सप्तच्छदानां सपदि गजमदामोदमोहं करोति।
एते चेन्निद्रपऽच्युतबहलरजः पुंजपिंगागरागा।
गायन्त्यव्यक्तवाचः किमपि मधुलिहो वारूणीपानमन्ताः''

प्रभात की मनोरम छटा का भी अत्यन्त प्रभावपूर्ण वर्णन इन नाटिकाओं में दर्शनीय है।

''सुधारश्मिः सधस्तिमिरनिकरानतं विरचयन्नलिन्देभ (म्भः) स्पन्दं शशिमणिसमुत्थं च वितरन्। उदेत्यादौ रक्ताम्बुजसमरुचिः कैरववने। प्रमोदं तन्वानो मधुपवनितागीतिमधुरम्।''

प्रकृति चित्रण के अन्तर्गत कवियों ने विभिन्न ऋतुओं का वर्णन किया है। इसमें कवि की चित्रात्मकता एवम् कल्पनाशक्ति ने प्राणों का संचार कर दिया है। श्रृंगार रस के उद्दीप्त विभाव की श्रेणी में आने के कारण कवि की रागात्मकता इसके प्रति अधिक होती है। यह रागात्मकता जब सूक्ष्म निरीक्षण के साथ जुड़ती है तो यह काव्य को एक विशिष्ट आभा प्रदान करती है।

भारतीय कवियों द्वारा प्रकृति को शक्ति रूप माना गया है तथा उसके विभिन्न दृश्यों को देखकर जीवन यापन करने की शिक्षा ग्रहण की है। मनुष्य के भावों पर प्रकृति का प्रभाव हमेशा से ही रहा है।

''अंग्रेज कवि वर्ड्सवर्थ तो सम्पूर्ण प्रकृति अथवा उसके किसी-किसी दृश्य को देखकर शान्त शुद्ध व उदात्त भाव का अनुभव करता था।'' केवल भारतीय कवियों ने ही नहीं अपितु पाश्चात्य कवियों ने भी प्रकृति को अखण्ड व सजीव वस्तु मानकर उसका दर्शन किया है और अपने काव्य में उसका वर्णन भी किया है। केवल भाव परिवर्तन के कारण कवियों के वर्णन में विभिन्नता देखने को मिलती है।

इस प्रकार महाराज हर्ष ने अपनी काव्य प्रतिभा के द्वारा प्रकृति का निरीक्षण बहुत ही सूक्ष्म रूप से किया है व एक शिल्पी की भाँति बहुत बारीकी से उन्हें चित्रित करने का प्रयास भी किया है, जिसमें वे पूर्णतः सफल हुए हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. संस्कृत नाटिकाः उद्भव एवम् विकास, पृ. 393
2. वहीं
3. रत्नावली, 1/5
4. विद्धशालभंजिका , 1/23
5. विद्धशालभंजिका, 1/30
6. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, चतुर्थांक
7. रत्नावली, 1/24
8. रत्नावली, 1/25
9. प्रियदर्शिका, 2/10
10. रत्नावली, तृतीयांक
11. प्रियदर्शिका, 2.2
12. वृषभानुजा, 3.7
13. बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 140

मुरारि कृत अनर्घराघवम् नाटक का समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० बाबूलाल मीना

एसोसिएट प्रोफेसर संस्कृत विभाग, एम. एस. जे. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर (राज०)

अनर्घराघवम् नाटक बालवाल्मीकि की उपाधि से विभूषित मुरारि की एकमात्र उपलब्ध कृति है। संस्कृत-नाट्य परम्परा को नारायणभट्ट के बाद आगे बढाने का श्रेय मुरारि को ही जाता है। श्रीवर्धमानक एवं तंतुमती के पुत्र मुरारि का स्थितिकाल भवभूति एवं रत्नाकर के बीच आठवीं शताब्दी का निर्धारित किया गया है।

अनर्घराघवम् नाटक की रचना के लिए मुरारि ने भवभूति के 'महावीरचरितम्' नाटक को आदर्श रूप में ग्रहण किया। उनके विषय-निर्वाचन, कथावस्तु-संविधान तथा शैली आदि अनेक गुणों से मुरारि पूर्णरूपेण प्रभावित थे। यही कारण है कि मुरारि ने उसी रामकथा विषयक सामग्री को कथावस्तु रूप में ग्रहण किया, जिसे आधार बनाकर भवभूति अपने 'महावीरचरितम्' और 'उत्तररामचरितम्' नाटकों की रचना कर चुके थे।

अनर्घराघवम् की कथावस्तु सात अंकों मे निबद्ध है। इसमें महर्षि विश्वामित्र द्वारा यज्ञरक्षार्थ राम-लक्ष्मण को ले जाने के प्रसंग से लेकर रावण-वध के पश्चात् राम के अयोध्या लौटने तक की कथा अत्यन्त रोचक एवं नाटकीय रूप मे प्रस्तुत की गई है। मुनीन्द्र संवाद नामक प्रथम अंक में राम-लक्ष्मण का तपोवन-गमन, कौमारविक्रम नामक द्वितीय अंक में ताडका आदि का वध, पिनाकभंग नामक तृतीय अंक में धनुर्भग के पश्चात् राम-सीता विवाह तथा उर्मिला आदि बहनों का परिणय, दशरथविप्रलम्भ नामक चतुर्थ अंक में राम-परशुराम युद्ध, सुग्रीवाभिषेक नामक पंचम अंक में वनवास, सीताहरण, जटायु-रावण संग्राम व बालिवध का प्रसंग है। दशग्रीवनिग्रह नामक षष्ठ अंक में राम-रावण युद्ध का वर्णन है तथा अन्तिम नायकानन्द नामक सप्तम अंक में पुष्पक विमान पर आरूढ सीता आदि सहित राम के अयोध्या लौटने का प्रसंग वर्णित है।

अनर्घराघव का अर्थ है- अमूल्य, अलौकिक तथा धीरोदात्त आदि गुणों से मण्डित श्रीरामचन्द्र। स्पष्टत: राम इस नाटक के नायक हैं। इस नाटक की प्रस्तावना से विदित होता है कि अद्‌भुत एवं वीर रस का संचार जनसाधारण में करने के उद्देश्य से यह नाटक रचा गया है और इस हेतु कवि ने श्रीराम का जीवन-चरित उत्तम कथानक के रूप में ग्रहण किया है।

मुरारि ने स्वप्रतिभा से मूलकथानक में कतिपय परिवर्तन-परिवर्धन कर दिए हैं, जिनमें निम्न प्रमुख कहे जा सकते हैं-

1. नाटक में बालि स्वयं उत्तेजित होकर राम से युद्ध करता है। इस युद्ध में राम बालि का वध कर देते हैं, जबकि वाल्मीकि रामायण में राम द्वारा छिपकर बालि वध का प्रसंग है। यह कृत्य राम के यश को कलंकित करता है।
2. परशुराम से युद्ध के लिए तैयार राम द्वारा की गई धनुष टंकार के श्रवण मात्र से सीता द्वारा एक विचित्र कल्पना किया जाना भी कवि की अपनी सूझ का परिणाम है। मूल रामायण में ऐसी किसी कल्पना का उल्लेख नहीं है।
3. कबंध-लक्ष्मण युद्ध और गुह्य-रक्षा के विषय में की गई कल्पना भी नवीन प्रतीत होती है।

वस्तुत: नायक राम के चरित को निष्कलंक सिद्ध करने और कथावस्तु को दर्शकों के लिए रोचक बनाने के उद्देश्य से ही नाटककार ने ये परिवर्तन किए हैं।

प्रस्तुत नाटक में राम, परशुराम, माल्यवान प्रमुख पात्रों के रूप में चित्रित हैं। रावण प्रतिनायक है। लक्ष्मण का चित्रण राम के अनुगामी के रूप में चित्रित किया गया है। सीता का चरित प्रसंगानुसार वर्णित है। विश्वामित्र का चरित्र इस नाटक में मूल स्त्रोत माना जाता है। इस नाटक में विदूषक का अभाव है।

नायक रामचन्द्र को विष्णु का अवतार, संसार के अभ्युदय का भार उठाने वाले अवतार रूप में चित्रित किया गया है-

वसिष्ठोक्तैर्मन्त्रैर्दधति जगतामाभ्युदयिकीं
धुरं संप्रत्येते दिनकरकुलीना: क्षितिभुज:।
गृहे येषां राजादिभिरपि कलाभिश्चतसृभि:
स्वयं देवो लक्ष्मीस्तनकलशवारिगजपति:।।[1]

मुरारि ने राक्षसी प्रवृत्ति वाले रावण को भी अवसरोचित धर्म का पालन करने वाला चित्रित किया है।[2]

रस-दृष्टि से नाटक पर विचार करने से प्रतीत होता है कि श्रृंगार रस में मुरारि की सर्वाधिक रूचि है। विश्वामित्र जैसे ऋषि के मुख से करायी गयी श्रृंगारमयी चर्चा कवि के श्रृंगार प्रेमी की छवि प्रस्तुत करती है-

पौलोमीकुचपत्रभंगरचनाचातुर्यमध्यापित:।[3]

द्वितीय अंक में राम को भी ऐसी ही कल्पना में विलीन चित्रित किया गया है-

पौलोमीकुचकुम्भकुङ्कुमरजःस्वाजन्यजन्मोद्धताः।[4]

चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में लंकापुरी का प्रातःकालीन वर्णन कवि की इस रस के प्रति विशेष अभिरूचि को प्रकट करता है।[5]

रावण के लिए प्रयुक्त प्रस्तुत पद्य वीर और श्रृंगार रस से परिपूर्ण है-

श्रुत्वा दाशरथीं सुवेलकटकेसाटोपमर्धे धनु-
ष्टंकारैः परिपूरयन्ति ककुभः प्रो छन्ति कौक्षेयकान।
अभ्यस्यन्ति तथैव चित्रफलके लंकापतेस्तत्पुन-
वैदेहीकुचपत्त्रवल्लिरचनाचातुर्यमर्धे कराः।।[6]

एक अन्य श्रृंगारिक पद्य है-

अभिमुखपतयालुभिर्ललाट श्रमसलिलैरवधूतपत्त्रलेखः।
कथयति पुरूषायितं वधूना सृदितहिमद्युतिदुर्मनाः कपोलः।।[7]

(ललाट पर से गिरती हुई पसीने की बूँदों के कारण युवतियों के कपोल की पत्र-रचना धुल गयी है। विवर्ण चन्द्रमा के समान खिन्न कपोल उनकी विपरीत रति के सूचक है।)

यद्यपि इस नाटक में विदूषक का सर्वथा अभाव है तथापि प्रसंगवश कहीं-कहीं नाटक के पात्रों के कथन हास्य रस की सृष्टि करने में सक्षम हुए हैं। यथा पशुमेढ्र की यह उक्ति-

अहो स्थविरभल्लूकस्य मन्त्रोपन्यासः परिहासः कुशलता च।[8]

भावोद्बोध के कतिपय प्रसंग भवभूति का अनुसरण कर चित्रित किए गए है। रावण द्वारा सीता का हरण कर लिए जाने पर महावीर राम की कारुणिक दशा का कवि ने बडा ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। सीता के वियोग से व्यथित राम करूण शब्दों में कहते हैं-

स्फुरति जडता वाष्पायेते दृशौ गलति स्मृति-

र्मयि रसतयाशोको भावश्चिरेण विपच्यते।[9]

(जडता बढती ही जा रही है, आखो से निरन्तर अश्रु प्रवाहित हो रहे है, मेरी स्मरणशक्ति भी लुप्त हो रही है, मेरा शोक करुण रस रूप में परिणत हो रहा है।)

मुरारि ने प्रायः सभी रसों का प्रयोग अपने नाटक में किया है। राम जैसे धैर्यवान् व पराक्रमी पुरुष को भी कवि ने प्रसंगवश क्रोधी रूप में चित्रित किया है।[10] इसी प्रकार राम-परशुराम संवाद भी रौद्र रस की सृष्टि करने में सक्षम है।[11] साथ ही राम के दृढ व नम्र वचन उनकी वीरता के परिचायक हैं।[12]

कर्त्तव्यनिष्ठ व धर्म का पालन करने वाले रामचन्द्र ताडका राक्षसी का वध करने में संकोच करते हैं किन्तु ऋषि विश्वामित्र की आज्ञा पालन के लिए वे स्त्री-वध रूपी अधर्म को करना आवश्यक समझते हैं। अपने दुर्यश की कल्पना करते हुए भी राम अपनी वीरता का परिचय देते हैं और धर्म के मार्ग से विमुख नहीं होते।[13]

क्लिष्ट पदावली, गौडी रीति व विपुलकाय समास पूर्ण तथा रावण की वीरता का द्योतक यह पद्य अधिक काव्यात्मक बन गया है-

न्य चन्य चद्धरित्रीधृतचरणभरश्चन्द्रहासैकदृष्टिः
व्यावल्गद्यौगपद्योत्सुकसकलभुजाक्रान्तदिक्चक्रवालः।
क्रोधक्रूराक्षिरक्तोत्पलरचितवियत्तोरणस्त्रज्जि बिभ्रद्
वक्त्राणि प्रत्यनीकप्रसरसरभसो निर्जिहीते दशास्यः।।[14]

महावीरचरित के राम की अपेक्षा मुरारि के राम अधिक विनम्र स्वभाव वाले हैं। तभी तो वे रावण की प्रशंसा महान् व त्रिभुवन वीर के रूप में करते हैं।[15]

विश्वामित्र के आश्रम में प्रवेश करती हुई ताडका तथा अन्य राक्षस अपने उपद्रव से उपस्थित जनों के हृदय में भय का संचार करते हैं।[16] गाधिनन्दन विश्वामित्र के सिद्धाश्रम का राम-लक्ष्मण द्वारा किया गया वर्णन वहॉ के शान्त व रमणीय वातावरण की छवि प्रस्तुत करता है।[17] राम-रावण युद्ध के प्रसगों में अद्भुत और वीभत्स रस भी दिखाई पडते हैं।[18]

नाटक में अवसर के अनुकूल अत्यन्त सरल व प्रसादगुण युक्त भाषा का प्रयोग मुरारि ने किया है। राम के धनुर्भग से पूर्व जनक की यह उक्ति इसका उदाहरण है-

इदं वयो मूर्तिरियं मनोज्ञा वीराद्भूतोऽयं चरितप्ररोहः।
इमौ कुमारौ बत पश्यतो मे कृतार्थमन्तर्नटतीव चेतः।।[19]

प्रसाद गुण को कविता की रीढ माना जाता है-

अभेदनोपास्ते कुमुदमुदरे वा स्थितवतो
विपक्षादम्भोजादुपगतवतो वा मधुलिहः।

अपर्याप्तः को पि स्वपरपरिचर्यापरिचय-

प्रबन्धः साधूनामयमनभिसन्धानमधुरः।।[20]

(कुमुद अपने उदर में रहने वाले तथा शत्रुभूत कमलों के पास से आने वाले भ्रमरों का समान आदर करता है, ठीक ही है साधुजन स्व तथा पर का विचार किए बिना ही उपकार किया करते हैं।)

भाषा पर असाधारण अधिकार के कारण मुरारि ने व्याकरण विषयक पाण्डित्य का पूर्ण प्रदर्शन किया। गोदावरी के रमणीय तट के वर्णन द्वारा प्रकृति का मनोरम चित्रण उनकी शैली की विशेषता दर्शाता है-

दृश्यन्ते मधुमत्तकोकिलवधूनिर्धूतचूताङ;कुर-

प्राग्भारप्रसरत्परागसिकतादुर्गास्तटीभूमयः।

याः कृच्छादतिलङ;घ्य लुब्धकभयात् तैरेवरेणूत्करै-

र्धारावाहिभिरस्ति लुप्तपदवी निःशंकमेणीकुलम।।[21]

वर्णन की प्रधानता से परिपूर्ण इस नाटक में नवीन चन्द्रमा का अत्यन्त सुन्दर, मनोहारी महाकाव्योचित वर्णन प्राप्य है, मानो मुरारि को चन्द्र-वर्णन अतिशय प्रिय था।[22] इसी प्रकार आवश्यक न होते हुए भी प्रातःकालीन प्रकृति का कवि ने विस्तृत वर्णन किया है किन्तु वह मनोहारी बन पडा है।[23]

नाटक में उपमा व अतिशयोक्ति अलंकारों का प्रयोग विशेष कुशलता से किया गया है-

निर्मुक्तशेषधवलैरचलेन्द्रमन्थसंक्षुब्धदुग्धमयसागरगर्भगौरैः।

राजन्निदं बहुलपक्षदलन्मृगाङ्ककच्छेदौज्ज्वलैस्तवयशोभिरशोभि।।[24]

इसमें पाताल से शेषनाग, भूलोक से क्षीरसागर और भुवलोक से चन्द्र की उपमा दी गई है।

उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग भी मुरारि ने सुन्दरता से किया है।[25] रूपकाश्रित व्यंजना के प्रयोग में भी मुरारि कुशल हैं।[26] रावण के युद्धावतरण का वर्णन बन्धगाढता एवं उपस्थापन शैली का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है।[27]

मुरारि की अतिशयोक्तियॉ बडी चमत्कारिणी हैं-

अनेन रम्भोरू भवन्मुखेन तुषारभानोस्तुलया धृतस्य।

ऊनस्य नूनं परिपूरणाय तारा: स्फुरन्ति प्रतिमानखण्डाः।।[28]

(राम सीता से कहते हैं कि "तुम्हारे मुख व चन्द्रमा की तुलना में तुम्हारा मुख ही अधिक सारवान् सिद्ध हुआ है। वजन की कमी को पूर्ण करने हेतु चन्द्रमा संग चमकते तारों को रखना आवश्यक हो गया।")

तर्कसंगत कल्पनाएँ कवि की अपनी विशेषता है जो अविस्मरणीय बन गई हैं।[29] शब्द विन्यास और उदारभावों के निरूपण में निष्णात मुरारि के अनर्घराघव में नवीन घटनाओं के समावेश के कारण हमें राम कथा के अभिनव स्वरूप के दर्शन होते हैं। यह नाटक मुरारि के प्रचुर पौराणिक ज्ञान, शब्द-वैभव, गम्भीर पदशय्या तथा कतिपय मौलिक उपमाओं के सुन्दर प्रयोग आदि विशेषताओं को अपने में समेटे हुए है। मुरारि की भाषा सूक्तियों व लोकोक्तियों के प्रयोग से स्पष्ट व चित्रमयी बन गयी है।[30]

परवर्ती साहित्यशास्त्रियों और वैयाकरणों ने अनर्घराघव में प्रयुक्त अलंकृत भाषा व परिष्कृत शैली के आधार पर मुरारि की प्रशंसा की है। मखंक ने तो वक्रोक्ति के आचार्य के रूप में उनकी प्रशंसा की है। माघ की भाँति भाषा पर अधिकार सम्बन्धी उनकी प्रशस्ति में कहा गया है-

मुरारिपदचिन्ता चेत् तदा माघे मतिं (रतिं) कुरु।

मुरारिपदचिन्ता चेत् तदा माघे मतिं कुरु।।[31]

मुरारि ने रामकाव्य के गाम्भीर्य और मर्म को भलीभाँति समझकर ही उसे अपने नाटक का कथानक बनाया किन्तु अपने वैदुष्य व वर्णन की विलक्षणता के प्रदर्शन की चाह में पद्यों का प्रयोग बहुलता से किया, जिससे यह रचना नाटकीय प्रारूप में काव्य बन गयी।

इस नाटक में पाँच हजार चालीस श्लोक है। वह अपनी कृति को एक काव्य कहते हुए यह कहतें हैं कि यदि इस बृहत् कृति का आनन्द लेना है तो इसका एक काव्य के रूप में अध्ययन करना चाहिए। मुरारि के काव्य में एक ऐसा लालित्य है जिसे किसी भी प्रकार अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।[32] इन सब विशेषताओं के बाद भी यह कृति निर्दोष नहीं कही जा सकती। कथा को परम्परागत रूप में ही कवि ने वर्णित कर दिया है। उसमें विशेष नवीनता नहीं हैं। पात्र भी रूढिबद्ध हैं। चन्द्रलोक व सुमेरू के दर्शन की उद्भावना तथा महावीरचरितम् के जटायु-संपाति-संवाद के स्थान पर जटायु-जांबवंत-संवाद की योजना कर देना शोचनीय है। संवाद प्रायः नीरस ही हैं। उनमें रोचकता व स्वाभाविकता का अभाव है। इस नाटक में गद्य का सीमित प्रयोग है। कथासूत्रों को जोडने के लिए विस्तृत विष्कंभकों की योजना की गई है। अंकों का आकार बढा हुआ है। परम्परागत रामकथा से सम्बद्ध अनेक अप्राकृतिक तत्वों का प्रयोग नाटक में किया गया है किन्तु उनमें भी नवीनता नहीं है। अतः ये तत्व नाटकीय प्रभाव की सृष्टि में कोई योगदान नहीं दे पाए हैं।[33] भवभूति की शैली भावानुरूप स्वाभाविकता लिए हुए है किन्तु मुरारि ने प्रयत्न साध्यता व कृत्रिमता के आवरण में बद्ध शैली का प्रयोग किया है। कथावस्तु में गत्यात्मकता व नाटकीय कौतूहल का अभाव तथा प्रभात, संध्या, चन्द्रोदय, आश्रम आदि के अनावश्यक विस्तृत वर्णन इस नाटक के प्रमुख दोष कहे जा सकते हैं।

मुरारि महाकवि भवभूति के अनुगामी थे किन्तु उन्होंने भवभूति से मात्र पदविन्यास ग्रहण किया, शेष बातों में वे महाकवि माघ के ऋणी प्रतीत होते हैं। महाकवि माघ की विलक्षण प्रतिभा, गम्भीर अध्ययन तथा सारग्राहिणी प्रवृति से प्रभावित मुरारि के अनर्घराघवम् नाटक को पढकर कहीं-कहीं ऐसा प्रतीत होता है कि माघ की ही भाँति इन्होंने व्याकरणसिद्ध पदों तथा गीतात्मक शब्दालंकारों का प्रयोग किया है।[34]

संभवत: इसी कारण परम आदरणीय यह एक ही ग्रन्थ माघ की तरह अक्षयकीर्त्ति का कारण बन गया। संस्कृत की प्राचीन परम्परा के कुछ विद्वान मुरारि को भवभूति से बढकर मानते हैं और उनकी प्रशस्ति करते हुए कहते हैं-

मुरारिपदचिन्तायां भवभूतेस्तु का कथा।
भवभूतिं परित्यज्य मुरारिमुररीकुरु।।[35]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि महाकवि भवभूति के पश्चात् रामकथा विषयक सामग्री को कथावस्तु के रूप में ग्रहण कर नाटक की रचना करना सरल नहीं था किन्तु मुरारि भवभूति से इतने अधिक प्रभावित हो चुके थे कि उन्हें अपने नाटक के लिए कोई और कथानक ही नहीं रुचा। नाटक वस्तुत: रंगमंच की वस्तु मानी गयी है, मात्र पढने के लिए उसकी रचना किया जाना उसकी असफलता का द्योतक है। मुरारि ने भवभूति के अनुकरण का प्रयास अवश्य किया किन्तु वे उसमें पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर सके। अभिनेयता की दृष्टि से अनर्घराघवम् उस कोटि की रचना नहीं कही जा सकती। यद्यपि नाट्यकला के लिए आवश्यक मानकों पर यह खरा नहीं उतरता किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि मुरारि का प्रयास विफल हो गया। पाण्डित्य प्रदर्शन व जटिलता की प्रवृत्ति के कारण अनर्घराघवम् नाटक विद्वतवर्ग में भले ही वह सम्मान प्राप्त नहीं कर सका, जिसकी आकांक्षा लिए उसकी रचना कवि ने की थी किन्तु काव्योचित गुणों से पूर्ण एक कृति तो इसे अवश्य ही माना जा सकता है और इसी रूप में यह नाटक सदैव स्मरण किया जाता रहेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. अनर्घराघवम् , 1/52
2. अनर्घराघवम् , 2/8
3. अनर्घराघवम् , 2/65
4. अनर्घराघवम् , 2/73
5. अनर्घराघवम् , 4/1-6
6. अनर्घराघवम् , 6/17
7. अनर्घराघवम् , 7/107
8. अनर्घराघवम् , द्वितीय अंक, पृ. 67
9. अनर्घराघवम् , 5/22
10. अनर्घराघवम् , 2/33
11. अनर्घराघवम् , 4/37
12. अनर्घराघवम् , 4/32
13. अनर्घराघवम् , 2/62-63
14. अनर्घराघवम् , 6/28
15. अनर्घराघवम् , 3/39-40
16. अनर्घराघवम् , 2/54
17. अनर्घराघवम् , 2/14-18
18. अनर्घराघवम् , षष्ठ अंक
19. अनर्घराघवम् , 3/24
20. अनर्घराघवम् , 6/6
21. अनर्घराघवम् , 5/6
22. अनर्घराघवम् , 7/83
23. अनर्घराघवम् , 2/1-6
24. अनर्घराघवम् , 1/35
25. अनर्घराघवम् , 2/5
26. अनर्घराघवम् , 6/9
27. अनर्घराघवम् , 6/31
28. अनर्घराघवम् , 7/81
29. अनर्घराघवम् , 6/4
30. अनर्घराघवम् , 5/35
31. वे. वरदाचार्य, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 258
32. कृष्ण चौतन्य, संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास, पृ. 374, 376
33. डॉ. मूलचन्द्र पाठक, संस्कृत नाटक में अतिप्राकृत तत्व, पृ. 342
34. डॉ. मनमोहनलाल जगन्नाथ शर्मा, महाकवि माघ, पृ. 438
35. अनर्घराघवम् पृ. 4

''हरियाणा विधानसभा चुनाव 2014 व 2019 के जनादेश का तुलनात्मक अध्ययन''

राजीव वर्मा

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, ओम स्टर्लिंग ग्लोबल युनिवर्सिटी, हिसार (हरियाणा)

डॉ० तिलक राज आहुजा

प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, ओम स्टर्लिंग ग्लोबल युनिवर्सिटी, हिसार (हरियाणा)

शोध आलेख सार

इस तथ्य से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता है कि सैकड़ों वर्षो से शासक चुनने की समस्त प्रणालियों में लोकतन्त्र सरकार का व शासन का सर्वोत्तम रूप रहा है। इस लोकतन्त्र में भी चुनाव लोकतांत्रिक व्यवस्था के प्राण होते हैं। इन चुनावों के माध्यम से आम जनमानस अपनी इच्छा को व्यक्त करता है तथा इसी कारण लोकतन्त्र में आम जनता को सर्वाधिक शक्तिशाली स्थान प्रदान किया गया है। हरियाणा की एक पृथक राज्य के रूप में स्थापना 1 नवंबर, 1966 को हुई थी। प्रथम विधानसभा चुनाव से लेकर सन् 2019 में हुए विधानसभा चुनावों तक के सफर में हरियाणा की राजनीति में अत्याधिक उतार-चढ़ाव आए। परन्तु इन समस्त चुनावों ने इस बात को प्रमुखता से साबित किया कि हरियाणा जैसे एक छोटे से प्रदेश का मतदाता आज अत्याधिक जागरूक हो चुका है। जहां सन् 2014 के विधानसभा चुनावों के परिणाम अत्याधिक आश्चर्यजनक रहे वहीं सन् 2019 के विधानसभा चुनावों ने पुनः एक बार इस बात को सिद्व किया कि सरकार चाहे जितनी भी आत्मविश्वास से भरी हुई हो परन्तु उसकी सफलता वास्तव में इस बात पर ही निर्भर करती है कि आम जनमानस तथा नागरिकों के मन में उसके प्रति क्या विचार हैं। जहां सन् 2014 के विधानसभा चुनावों से हरियाणा में लगातार 10 वर्षो से सतारूढ़ कांग्रेस पार्टी को हार का सामना करना पड़ा व पहली बार हरियाणा में भारतीय जनता पार्टी की सरकार बनी वहीं सन् 2019 के विधानसभा चुनावों के परिणामों ने भारतीय जनता पार्टी के समस्त दावों को झूठा साबित कर दिया व बड़ी मुश्किलों से गठबंधन कर ही एक बार पुनः भारतीय जनता पार्टी की सरकार बन पाई। अतः इस वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य हरियाणा में सन् 2014 व सन् 2019 में सम्पन्न हुए विधानसभा चुनावों के जनादेश का तुलनात्मक अध्ययन करना है तथा उन तथ्यों का पता लगाना है जिनके कारण इन दोनों विधानसभा चुनावों में मतदाताओं के मतदान व्यवहार में इतना अधिक परिवर्तन हुआ।

मूल शब्द - लोकतन्त्र मतदान, मतदान व्यवहार, राजनीति, हरियाणा विधानसभा चुनाव 2014 व 2019, सरकार शासन, मतदाता, विधानसभा क्षेत्र।

भूमिका -

लोकतांत्रिक व्यवस्था में आम नागरिक को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है क्योंकि आम नागरिक की इच्छा के आधार पर ही शासन चलाने के लिए सरकार का निर्माण होता है। प्रत्येक चुनावों में विभिन्न राजनीतिक दल अपने दल के प्रत्याशियों की जीत को सुनिश्चित करने के लिए तथा सत्ता को प्राप्त करने के लिए अनेकों प्रकार के तरीकों का प्रयोग करते हैं। इसी कारण लोकतन्त्र में चुनावों को एक उत्सव के समान माना जाता है। 1 नवम्बर, 1966 को हमारे देश भारत के 17वें राज्य के रूप में अस्तित्व में आने के बाद से हरियाणा राज्य में भी चुनावों को एक उत्सव के रूप में ही मनाया जाता है। सन् 1967 के प्रारम्भिक विधानसभा चुनावों से लेकर सन् 2019 के विधानसभा चुनावों तक हरियाणा में लोकतांत्रिक व्यवस्था ने एक लम्बा सफर तय किया है। इन समस्त चुनावों में मतदाताओं द्वारा किए गए मतदान के अध्ययन से जहां राजनीतिक दल स्वयं की कमियों को जान पाते हैं वहीं आम जागरूक नागरिक भी राजनीति के प्रति अपनी समझ को और अधिक विकसित कर पाता है। सन् 2014 में सम्पन्न हुए हरियाणा विधानसभा के चुनाव वास्तव में अनोखे थे क्योंकि इन चुनावों के कारण जहां 10 वर्शो से सतारूढ़ कांग्रेस को अपनी सत्ता गवानी पड़ी थी वहीं पहली बार हरियाणा की राजनीति में भारतीय जनता पार्टी का अभ्युदय हुआ व भारतीय जनता पार्टी ने 90 विधानसभा सदस्य वाली हरियाणा विधानसभा में 47 सीटें जीतकर अपनी सरकार बनाई। जहां सन् 2014 के हरियाणा विधानसभा के चुनाव अद्भूत परिणामों को लिए हुए थे वहीं सन् 2019 के विधानसभा चुनावों के परिणामों ने तो सभी राजनेताओं, सभी चुनावी एजेंसियों व सभी राजनीतिक विशेषज्ञों की आंखें खोलकर रख दी। जहां सतारूढ़ भारतीय जनता पार्टी अपनी जीत के प्रति पूर्णत आश्वस्त थी व उनका नारा भी था ''अबकी बार 75 पार'' वहीं अन्य राजनीतिज्ञों को भी अंदाजा नहीं था कि चुनाव परिणाम इतने आश्चर्यजनक होगें। भारतीय जनता पार्टी जहां केवल

40 सीटों तक ही सिमट कर रह गई वहीं नई-2 प्रकट हुई दुष्यतं चौटाला की जन्नायक जनता पार्टी (जे जे पी) 10 सीटें जीतकर किंगमेकर की भूमिका में आ गई और BJP+JJP के गठबंधन वाली सरकार सतारूढ़ हुई। सन् 2014 तथा सन् 2019 में हुए हरियाणा विधानसभा चुनावों के परिणाम निम्न प्रकार रहे हैं -

2014 के हरियाणा विधानसभा चुनावों के परिणाम -

भारतीय जनता पार्टी	47 सीट
कांग्रेस	15 सीट
इनेलो	19 सीट
हजकां	02 सीट

हरियाणा विधानसभा चुनाव 2014 में प्राप्त मत प्रतिशत -

भारतीय जनता पार्टी	33.20 प्रतिशत
कांग्रेस	20.58 प्रतिशत
इनेलो	24.11 प्रतिशत

हरियाणा विधानसभा चुनाव, 2014 के लिए 15 अक्तूबर को मतदान हुआ व 4 दिन बाद यानि 19 अक्तूबर को परिणाम घोशित किए गए। चुनाव लड़ने वाले कुल उम्मीदवार 1351 थे तथा कुल 90 सीट के लिए मतदान हुआ था। चुनाव परिणामों के पश्चात श्री मनोहर लाल खट्टर ने मुख्यमंत्रीं के रूप में शपथ ली व पहली बार भारतीय जनता पार्टी अकेले अपने दम पर हरियाणा में सतारूढ़ हुई।

2019 के हरियाणा विधानसभा चुनावों के परिणाम -

भारतीय जनता पार्टी	40 सीट
कांग्रेस	31 सीट
जजपा	10 सीट
इनेलो	01 सीट

हरियाणा विधानसभा चुनाव 2019 में प्राप्त मत प्रतिशत -

भारतीय जनता पार्टी	36.49 प्रतिशत
कांग्रेस	28.08 प्रतिशत
जजपा	14.80 प्रतिशत

हरियाणा विधानसभा चुनाव, 2019 के लिए 21 अक्टूबर, 2019 को मतदान हुआ व 3 दिन बाद यानि 24 अक्टूबर, 2019 को परिणाम घोशित किए गए। मतदान का प्रतिशत 68.20 प्रतिशत रहा तथा चुनाव परिणामों के पश्चात भाजपा ने जजपा के 10 व 7 निर्दलीय विधायकों के सहयोग से सरकार का गठन किया। श्री मनोहर लाल खट्टर एक बार पुनः राज्य के मुख्यमत्रीं बने तथा श्री दुश्यतं चौटाला उप-मुख्यमत्रीं बने।

हरियाणा विधानसभा चुनाव 2014 व 2019 के परिणामों का तुलनात्मक अध्ययन -

विधानसभा चुनावों 2014 व 2019 के परिणामों के बाद यद्यपि हरियाणा में भाजपा की ही सरकार बनी परन्तु इन दोनों विधानसभा चुनावों के परिणामों में अत्याधिक अन्तर था। जहां 2014 में हुए विधानसभा चुनावों ने 10 साल के कांग्रेस के शासन को समाप्त कर दिया व पहली बार भारतीय जनता पार्टी संपूर्ण बहुमत के साथ सत्तारूढ़ हुई वहीं सन् 2019 के विधानसभा चुनावों के परिणामों ने अत्याधिक आत्मविश्वास से भरी हुई भारतीय जनता पार्टी को एक अप्रत्याशित झटका दे दिया। इन परिणामों ने इस बात को सिद्व कर दिया कि केवल आभासी व कल्पनात्मक जीत को ही सच मानना सही नहीं है बल्कि वर्तमान के जागरूक मतदाता के मन को समझना व उसके हित के अनुसार कार्य करना भी अति आवश्यक है। वास्तव में सन् 2014 व 2019 के हरियाणा विधानसभा के चुनाव परिणामों के तुलनात्मक अध्ययन को निम्न बिन्दूओं के द्वारा वर्णित किया जा सकता है-

1. एक तरफा लहर -

केन्द्र में कांग्रेस के 10 वर्श के शासन के कार्यकाल में हुए भ्रष्टाचार व अन्य घोटालों आदि के कारण जहां सन् 2014 में कांग्रेस के विरूद्व एक विरोध का माहोल बना हुआ था। हरियाणा में भी भूपेन्द्र सिंह हुड्डा पिछले 10 वर्ष से सत्ता में थे तो इस सत्ता विरोधी लहर का नुकसान कांग्रेस को हरियाणा में भी हुआ और 2014 के विधानसभा चुनावों में जहां बी. जे. पी. 47 सीटें जीतकर बहुमत प्राप्त करने में सफल रही वहीं कांग्रेस जहां केवल 15 पर और इनेलो केवल 19 सीटों पर ही सिमट कर रह गई। परन्तु सन् 2019 में हुए हरियाणा विधानसभा चुनावों के समय एक तरफा लहर जैसा कुछ नहीं था। बल्कि मतदाता भी बिखरे हुए प्रतीत हुए। फलस्वरूप किसी भी पार्टी को पूर्ण बहुमत नहीं मिला और भारतीय जनता पार्टी 40, कांग्रेस 31 व नई-2 जननायक जनता पार्टी 10 सीटें ही प्राप्त कर पाई।

2. मोदी फैक्टर-

इस बात से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि सन् 2014 में पहले लोकसभा व फिर विधानसभा चुनवों में भारतीय जनता पार्टी को जो अभूतपूर्व विजय प्राप्त हुई थी उसकी बहुत बड़ी वजह श्री नरेन्द्र मोदी जी के प्रति आम जनमानस व मतदाताओं में बना सकारात्मक माहौल था। वास्तव में सत्य यही है कि सन् 2014 में हरियाणा के लोकसभा व विधानसभा चुनावों में भारतीय जनता पार्टी के उन कई नए चेहरों को भी विजय प्राप्त हुई थी जिनका ज्यादा बड़ा जनाधार नहीं था परन्तु श्री नरेन्द्र मोदी के नाम से ही उनको विजय प्राप्त हुई थी। यद्यपि सन् 2019 में भी लोकसभा चुनावों में भी मोदी फैक्टर की वजह से ही हरियाणा के लोकसभा चुनावों में भारतीय जनता पार्टी ने 10 की 10 सीटों पर विजय प्राप्त की थी परन्तु हरियाणा विधानसभा चुनाव, 2019 में मोदी फेक्टर इतना कारगर साबित नहीं हुआ और भाजपा बहुमत के आकड़े तक भी नहीं पहुंच पाई।

3. जाट राजनीति-

हरियाणा प्रदेश की राजनीति को जाटों की राजनीति भी कहा जाता है। परन्तु सन् 2014 के विधानसभा चुनावों में जाट- गैर जाट का मुद्दा ज्यादा प्रभावी नहीं था। बल्कि सभी जातियों के लोगों ने केवल प्रधानमंत्रीं श्री नरेन्द्र मोदी जी के नाम पर ही वोट दिए थे। परन्तु बाद में हुए दंगों व अन्य कई कारणों से जाट व गैर जाट के मध्य की खाई और भी ज्यादा गहरा गई। आन्तरिक रूप से जाट मतदाताओं में भारतीय जनता पार्टी के प्रति नाराजगी का भाव गहरा गया था। इसी कारण सन् 2019 के विधानसभा चुनावों में जाट मतदाता भूपेन्द्र सिंह हुड्डा के नेतृत्व वाली कांग्रेस की तरफ शिफ्ट हो गया व जिसके कारण भाजपा के लगभग सभी जाट उम्मीदवार व जाट मंत्रीं बुरी तरह पराजित हुए व कांग्रेस की सीटें जाटलैण्ड के सहयोग से 15 से बढ़कर 31 हो गई।

4. धर्म का प्रभाव-

मतदाताओं के मतदान को प्रभावित करने वाले कारकों में धर्म एक अत्यंत महत्वपूर्ण कारक की भूमिका अदा करता है। सन् 2014 में हुए हरियाणा विध ानसभा चुनावों के समय भारतीय जनता पार्टी हिन्दुत्ववादी लहर पर विराजमान थी। जिसका फायदा भाजपा को विधानसभा चुनावों में भी मिला व पहली बार भाजपा स्वयं के दम पर सत्ता प्राप्त करने में सफल रही। परन्तु सन् 2019 के विधानसभा चुनावों के समय मतदाताओं को प्रभावित करने में धर्म इतना ज्यादा महत्वपूर्ण कारक नहीं था।

5. परिवारवादी राजनीति-

सन् 2014 के हरियाणा विधानसभा चुनावों में परिवारवादी राजनीति को अत्याधिक झटका लगा व पारिवारिक राजनीति के सहारे राजनीति करने वाले कई उम्मीदवार चुनाव हार गए। हरियाणा जनहित कांग्रेस (कुलदीप बिश्नोई) बस 2 सीटों तक सिमटकर रह गई व इनेलो भी कोई खास करिश्मा ना दिखा पाई। सन् 2019 के विधानसभा चुनावों में तो पारिवारिक राजनीति का लगभग सफाया ही हो गया। इनेलो 19 सीटों से लुढ़ककर बस 1 सीट पर ही रह गई। जननायक जनता पार्टी ने 10 सीटों पर विजय अवश्य हांसिल की पर उसकी वजह पारिवारिक विरासत कतई नहीं थी।

6. विकास व सुशासन के नारे-

विकास व सुशासन के नारों ने हरियाणा विधानसभा चुनाव 2014 को अत्याधिक प्रभावित किया था। केन्द्र की कांग्रेस सरकार पर लगे भ्रश्टाचार व घोटालों के आरोपों ने हरियाणा में भूपेन्द्र सिंह हुड्डा के नेतृत्व वाली कांग्रेस की छवि को भी अत्याधिक नुकसान पहुंचाया। 'अबकी बार-मोदी सरकार', ''मोदी है तो मुमकिन है'' तथा ''चलो चले, मोदी के साथ'' आदि नारों ने भाजपा के पक्ष में माहोल बनाया तथा 2014 के हरियाणा विधानसभा चुनावों में भाजपा बहुमत प्राप्त करने में सफल रही। यद्यपि सन् 2019 के हरियाणा विधानसभा चुनाव में भाजपा का नारा था ''अबकी बार 75 पार'' जो निरर्थक साबित हुआ। भाजपा 75 तो दूर अपने दम पर बहुमत के आंकड़े तक को प्राप्त ना कर पाई और बस 40 सीटों तक ही सिमटकर रह गई। इसका मुख्य कारण भाजपा के नेताओं का अति आत्मविश्वासी होना तथा आम मतदाता के रूझान व जरूरतों को ना समझना था।

7. सोशल मीडिया का प्रभाव-

सन् 2014 के हरियाणा विधानसभी के चुनावों में सोशल मीडिया का अत्याधिक प्रभाव पड़ा था। वास्तव में पहले लोकसभा व फिर विधानसभा चुनावों में भारतीय जनता पार्टी तथा श्री नरेन्द्र मोदी के पक्ष में सकारात्मक माहौल बनाने में सोशल मीडिया यानि के अखबार, रेडिघ्यो, टेलिवीजन, इन्टरनेट, फेसबुक, ट्वीटर व व्हटसअप्प आदि का अत्याधिक योगदान था व इसने हरियाणा के मतदाताओं को पहले लोकसभा व फिर विधानसभा के चुनावों में इतना अधि क प्रभावित किया कि भारतीय जनता पार्टी को 2014 के हरियाणा विधानसभा चुनावों में अभूतपूर्व विजय प्राप्त हुई। परन्तु सन् 2019 के हरियाणा विधानसभा चुनावों में सोशल मीडिया इतना ज्यादा प्रभावी नहीं दिखा और ना ही यह आम हरियाणवी मतदाता को भारतीय जनता पार्टी के पक्ष में उतना अधिक प्रभावित कर पाया। जिसके परिणामस्वरूप सोशल मीडिया के अत्याधिक प्रचार व प्रसार के बावजूद भी भारतीय जनता पार्टी बहुमत के जादूई आकंड़े को छू तक नहीं पाई और इसे जननायक जनता पार्टी (जे जे पी) के साथ गठबन्धन सरकार बनाकर ही संतोष करना पड़ा।

8. सत्ता विरोधी लहर-

राजनीति में इस बात को एक सामान्य तथ्य के रूप में स्वीकार किया जाता है कि जब कभी भी चुनाव होते हैं तो जो दल सत्तासीन होता है उसे सत्ता विरोधी लहर का सामना करना ही पड़ता है। सन् 2014 के हरियाणा विधानसभा चुनावों के समय यह बात एकदम सत्य साबित हुई। पिछले 10 वर्षो से सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी को मतदाताओं के आक्रोश व जबरदस्त सत्ता विरोधी लहर का सामना करना पड़ा व यह लहर इतनी ज्यादा प्रभावशाली थी कि कांग्रेस पार्टी केवल 15 सीटों तक ही सिमटर रह गई व भाजपा ने 47 सीटों के साथ बहुमत प्राप्त कर आसानी से अपनी सरकार बना ली। परन्तु सन् 2019 के हरियाणा विधानसभा चुनावों के समय इस सत्ता विरोधी लहर का सामना 5 वर्षो से सत्तासीन भारतीय जनता पार्टी को करना पड़ा और 75+ सीटों की उम्मीद करने वाली भाजपा को केवल 40 सीटों पर ही संतोश करना पड़ा और इस लहर का फायदा उठाकर कांग्रेस भी 15 सीटों से बढ़कर 31 सीटों तक पहुंच गई।

9. परिवर्तन हेतु मतदान-

सन् 2014 के हरियाणा विधानसभा चुनावों में मतदाताओं द्वारा सत्ता के परिवर्तन हेतु मतदान किया गया था। खासतौर पर आम मतदाता केन्द्र में कांग्रेस की सरकार के लिए अत्याधिक आक्रोश की स्थिति में था। अत: इस आक्रोश की आंच हरियाणा में पहले 2014 के लोकसभा चुनाव में व फिर हरियाणा विधानसभा चुनाव 2014 में भी कांग्रेस के लिए अत्यंत मारक सिद्ध हुई व कांग्रेस पार्टी को अपनी 10 वर्षो की सत्ता गवानी पड़ी। सन् 2019 के हरियाणा विधानसभा चुनाव में परिवर्तन हेतु मतदान किया गया परन्तु इस बार मतदाता सन् 2014 की तुलना में थोड़ा भ्रम की स्थिति में था या यूं भी कहा जा सकता है कि सभी मतदाता नहीं बल्कि मतदाताओं के केवल एक खास वर्ग जैसे कि जाट मतदाताओं ने ही सत्ता परिवर्तन हेतु मतदान किया जिसका परिणाम यह निकला कि किसी भी राजनीतिक दल को बहुमत की प्राप्ति नहीं हुई और कोई भी दल केवल अपने दम पर सरकार बनाने में सक्षम नहीं बन पाया।

वस्तुत: उपरोक्त समस्त तथ्यों के अध्ययन के पश्चात् हम निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि सन् 2014 व 2019 में सम्पन्न हुए हरियाणा विधानसभा के चुनाव हरियाणा की राजनीति में अत्याधिक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन चुनावों ने सिद्ध कर दिया कि मतदाताओं के मन को तथा उनके मतदान व्यवहार के पैटर्न को समझना एक अत्यंत ही मुश्किल कार्य है। इन दोनों ही चुनावों के तुलनात्मक अध्ययन से यह बात पूर्णत: स्पष्ट हो जाती है कि मतदाताओं का मतदान - व्यवहार, समय, आवश्यकताओं, मुद्दों, अपेक्षाओं व परिस्थितियों आदि के आधार पर बदलता ही रहता है। जो मुद्दे पिछले किसी चुनाव में अत्यंत महत्वपूर्ण रहे होते हैं, अगले वैसे ही चुनाव में वे मुद्दे निरर्थक भी साबित हो सकते हैं। इन दोनों चुनावों के तुलनात्मक अध्ययन से यह बात भी सिद्व होती है कि वर्तमान समय में हरियाणा का मतदाता अत्याधिक जागरूक हो चुका है तथा उसे केवल कागजी बातों से बहलाया या फुसलाया नहीं जा सकता है। इस अध्ययन ये यह भी निश्कर्श निकलता है कि एक ही समय काल में केन्द्र व राज्य सरकार के प्रति मतदान करते समय मतदाताओं की प्राथमिकता भी भिन्न-2 होती है। उदाहरण के तौर पर जहां सन् 2019 के लोकसभा चुनावों में हरियाणा के मतदाताओं ने केन्द्र के लिए सरकार चुनते समय जहां भाजपा को 10 की 10 लोकसभा सीटों पर जीता दिया वहीं थोड़े से ही समय के बाद उन्हीं हरियाणा के मतदाताओं ने सन् 2019 के हरियाणा विधानसभा चुनाव में उसी भाजपा को केवल 40 सीटों तक ही सिमटने को मजबूर कर दिया। इन दोनों चुनावों के तुलनात्मक अध्ययन से यह बात भी स्पश्ट होती है कि बिना आम जनमानस व मतदाता के मन को जाने केवल अति-आत्मविश्वास का शिकार होकर ''अबकी बार 75 पार'' जैसे नारे देने वाली भाजपा जैसी पार्टियों को जहां चुनाव परिणाम के रूप में राजनीतिक झटकों का सामना करना पड़ता है। वहीं समझदारी के साथ मौके की नजाकत को भांपते हुए व धरातल पर मतदाताओं के मध्य मेहनत करने से श्री दुश्यंत चौटाला की जननायक जनता पार्टी जैसे नई नवेली पार्टियां भी सत्ता में हिस्सेदारी को प्राप्त करने में सफल हो जाती हैं। कुल मिलाकर हरियाणा विधानसभा चुनाव 2014 व 2019 के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् निश्कर्श के रूप में कहा जा सकता है कि वर्तमान लोकतान्त्रिक युग में वही राजनीतिक दल सफलता व सत्ता को प्राप्त करेगा जो आम मतदाता की इच्छा आकांक्षाओं व उनकी जरूरतों को ध्यान में रखते हुए अपनी राजनीतिक गतिविधियों की दिशा तय करेगा क्योंकि वर्तमान समय में सत्ता व शासन की चाबी केवल मतदाताओं को जीतकर ही प्राप्त की जा सकती है।

सन्दर्भ सूची -

1. रजनी कोठारी, पार्टी सिस्टम एण्ड इलेकसन स्टडीज
2. सुभाष कश्यप, भारत में निर्वाचन: समस्याएं व सुधार, नई दिल्ली
3. इलेक्षन इन इण्डिया, आर० पी० भल्ला
4. भारत में राजनीतिक प्रक्रियाएं: बी० एन० चौधरी
5. लोकतन्त्र के सात अध्याय: अभय कुमार दुबे
6. यू. आर घई: इण्डियन पॉलिटिकल सिस्टम, न्यू एकेडमिक पब्लिकेशन
7. लक्ष्मीकान्त एम - लोक प्रशासन
8. यादव के. सी. - हरियाणा का इतिहास, नई दिल्ली मैकमिलन इण्डिया
9. इण्टरनेट पर उपलब्ध जानकारी
10. कम्पेडियन ऑफ जनरल इलेक्षन टू विधानसभा इन हरियाणा स्टेट बाई चीफ इलैक्टोरल ऑफिसर, हरियाणा
11. दैनिक जागरण, दैनिक भास्कर व दी ट्रिब्यून आदि समाचार पत्रों के लेख

किन्नर और उनका संघर्ष

शाहिद हुसैन

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, डॉ. सी. वी रामन विश्वविद्यालय, करगीरोड कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श, किसान विमर्श, बाल विमर्श है लेकिन किन्नर विमर्श एक ज्वलंतशील विषय है। इसी विषय के जरिए हम उनके दुख को कम तो नहीं कर सकते परंतु हम उनसे रूबरू अवश्य हो सकते हैं। किन्नर समाज जिसके साथ बिल्कुल उपेक्षित सा व्यवहार किया जाता है, उपहास उड़ाया जाता है। उसको आज सम्मान की दरकार है वह आम आदमी की तरह जीने का अधिकार रखते हैं। आज साहित्य उनकी पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए तरस रहा है किंतु उनको उचित अभिव्यक्ति नहीं मिल पा रही है।

हिंदी साहित्य में किन्नर या थर्ड जेंडर समुदाय को लेकर बहुत कम लिखा गया है। किन्नर जीवन पर हिंदी साहित्य में आत्मकथाओं या ऐसे किसी साहित्य का अभाव है। भारत समेत पूरी दुनिया में किन्नरों की संख्या लाखों में है लेकिन फिर भी साहित्य समाज भाषा संस्कृति संविधान सत्ता संपत्ति और जीवन जीने के तमाम अधिकारों से उन्हें सदियों से बेदखल किया जाता रहा है। उनमें रोजगार एवं शिक्षा का अभाव है जिसके कारण उन्हें सार्वजनिक स्थलों पर भीख मांगने पड़ती है। तालियां पीट कर नेंग वसूल करना पड़ता है। इससे भी जरूरत पूरी ना हो तो वेश्यावृत्ति के गलीच दलदल में उतर जाना पड़ता है। सार्वजनिक स्थलों पर उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता है। सामान्य लोगों के लिए बने अस्पतालों में उन्हें इलाज नहीं मिलता, स्कूलों में दाखिला नहीं मिलता, सरकारी गैर सरकारी जगहों पर रोजगार नहीं मिलता। हम उन्हें अश्लीलता की दृष्टि से देखने के आदी है।

किन्नर या हिजरों से अभिप्राय उन लोगों से है जिनके जननांग पूरी तरह विकसित ना हो पाए हो अथवा पुरुष होकर भी स्त्रैण स्वभाव के लोग जिन्हें पुरुषों की जगह स्त्रियों के बीच रहने में सहजता महसूस होती है। वैसे हिजड़ों को 4 वर्गों में विभक्त किया जा सकता है- बुचरा, नीलिमा मनसा और हंसा। वास्तविक हिजड़े तो बुचरा ही होते हैं क्योंकि यह जन्मजात न पुरुष न स्त्री होते हैं। नीलिमा किसी कारणवश स्वयं को हिजड़ा बनाने के लिए समर्पित कर देते हैं। मनसा तन के स्थान पर मानसिक तौर पर स्वयं को विपरीत लिंग अथवा अक्सर स्त्रीलिंग के अधिक निकट महसूस करते हैं और हंसा शारीरिक कमी या नपुंसकता आदि यौन न्यूनताओं के कारण बने हिजड़े होते हैं। नकली हिजड़ों को अबुआ कहा जाता है। जो वास्तव में पुरुष होते हैं किंतु धन के लोभ में हिजड़े का स्वांग रख लेते हैं। जबरन बनाए गए हिजड़े छिबरा कहलाते हैं। परिवार से रंजिश के कारण इनका लिंगाच्छेदन कर इन्हें हिजड़ा बनाया जाता है। भारत की सन 2071 की जनगणना के अनुसार पूरे भारत में लगभग 4.9 लाख किन्नर है जिनमें से एक लाख सैंतीस हजार उत्तर प्रदेश में है इसी जनगणना के मुताबिक सामान्य जनसंख्या में शिक्षित लोगों की संख्या 74 फीसदी है जबकि यही संख्या किन्नरों में महज 46 फीसदी ही है। इनमें से आधे से अधिक नकली स्वांग करने वाले हिजड़े हैं। आश्चर्य की बात यह है कि शेष दो लाख असली हिजड़ों में से भी सिर्फ 400 जन्मजात हिजड़े या बुचरा हैं शेष हिजड़े स्त्रैण स्वभाव के कारण हिजड़ों में परिवर्तित किए जाने वाले मनसा या हंसा हिजड़े हैं। और इस से भी बड़े आश्चर्य की बात यह है कि इन दो लाख हिजड़ों में से लगभग सत्तर हजार हिजड़े ऐसे हैं जिन्हें एक छोटे से ऑपरेशन के बाद लिंग परिवर्तन करने के पश्चात पुरुष या स्त्री बनाया जा सकता है। लेकिन दुख की बात यह है कि इस ओर किसी का ध्यान नहीं है।

वैसे देखा जाए तो सभी नाम एक दूसरे के पृथक है या कहें की समानांतर हैं फिर भी अध्ययन करने पर उसमें भेद किया जा सकता है। किन्नर एक जाति का भी नाम है जो हिमालय के कनौर प्रदेश (हिमवत और हिमकटी) में रहते हैं। उनकी भाषा कनौरी है। ''हिजड़ा'' यह उर्दू शब्द है और किन्नर हिंदी शब्द है। आज के समय में सरकार एवं सामाजिक संगठन ने इसे ट्रांसजेंडर नाम दिया है यानी कि तीसरा लिंग अर्थात तृतीय प्रकृति के लोग। हर राज्य में उन्हें अलग- अलग नाम से पुकारा जाता है जैसे तेलुगु- नपुंसकुड़, कोज्जा या मादा। तमिल- थिरु, नंगई, अरावनी। अंग्रेजी में- Eunuch, Hermaphrdit, LGBt~ गुजराती- पवैया। पंजाबी- खुसरा। कन्नड-? जोगप्पा। मराठी- धपकिया। भारत के अन्य जगहों पर हिजड़ा, छक्का, किन्नर, खोजा, नपुंसक, थर्ड जेंडर आदि नामों से संबोधित किया जाता है।

वैसे इनका इतिहास काफी पुराना है। रामायण महाभारत के समय से हिजड़ों का इतिहास चला रहा है। रामचरितमानस में भी किन्नरों का उल्लेख मिलता है। वनवास जाते समय श्रीराम पीछे आए छोटे भाइयों सहित सभी स्त्री एवं पुरुषों को वापस लौट जाने के लिए कहते हैं। आदेश का पालन करते हुए सभी स्त्री एवं पुरुष वापस अयोध्या लौट जाते हैं किंतु मध्य लिंगी अर्थात हिजड़े वापस नहीं लौटते। 14 वर्षों के बाद वनवास से वापस लौटते समय श्रीराम ने उनसे वहां रुके रहने का कारण पूछा तब श्रीराम के कथन को किन्नरों ने स्पष्ट किया कि प्रभु आपने नर और नारी को वापस जाने की अनुमति दी थी किंतु हमारे संबंध में कोई आदेश नहीं किया था। इस प्रसंग का उल्लेख रामचरितमानस में तुलसीदास जी करते हैं -

जथा जोग करि विनय प्रनामा, विदा किए सब सानुज रामा।
नारि पुरुष लघु मध्य बडेरे, सब सनमानि कृपानिधि फेरे।

इसका उल्लेख किन्नर कथा उपन्यास में महेंद्र भीष्म ने भी किया है। कहा जाता है कि हिजड़ों की इस निश्चल एवं निस्वार्थ भक्ति भावना को देखकर श्रीराम ने उन्हें वरदान दिया था कि कलयुग में तुम्हारा ही राज होगा और तुम लोग जिसको भी आशीर्वाद दोगे उसका कभी अनिष्ट नहीं होगा। रामचरितमानस में ही श्री राम की भक्ति के संबंध में पात्रता का उल्लेख करते हुए लिखा कि -

पुरुष नपुंसक नारि वा, जीव चराचर कोई।

सर्व भाव भज कपट तजि,मोहि परम प्रिय सोई।

अर्थात चराचर जगत में कोई भी जाति हो चाहे वह स्त्री, पुरुष, नपुंसक, देव, दानव, मानव, तिर्यक इत्यादि हो अगर वह संपूर्ण कपट को त्याग कर मुझे भजता है वह मुझे प्रिय है। रामायण काल में किन्नर वर्ग की विशेष उपस्थिति थी।

मुगल काल में राजा के युद्ध में जाने पर रानियों की देखभाल किन्नर किया करते थे। महाभारत काल में किन्नर के रूप में शिखंडी तथा बृहन्नाला (अर्जुन) का उल्लेख मिलता है। अर्जुन ने शिखंडी को ढाल बनाकर ही भीष्म पितामह का वध करने में सफलता पाई थी। शिखंडी को सामने देखकर भीष्म पितामह ने कहा कि वह एक नपुंसक से युद्ध नहीं कर सकते और अपने शस्त्र नीचे डाल दिए थे। किन्नर कहलाना किसी मर्द को पसंद नहीं वह शब्द पिघलता शीशा सा कानों में उतरता हुआ प्रतीत होता है। किसी आदमी को हिजड़ा कहने से उन्हें गाली लगती है क्योंकि यह अपमान करने वाला शब्द है पर कहीं अंत तक मन में कचोट जरूर होती है। आखिर ईश्वर ने उसके साथ अन्याय क्यों किया कि हम उन्हें अपने से दूर सामाजिक दायरे से बाहर हाशिये पर रखते हैं। उनके प्रति हमारी सोच में अश्लीलता का चश्मा क्यों चढ़ा रहता है। स्त्री पुरुष की संरचना प्रकृति प्रदत्त है। जैविक आधार ने स्त्री पुरुष और तृतीय लिंगी को शारीरिक मानसिक भिन्नता प्रदान की है। मानव समाज में परस्पर भिन्न लिंगी मनुष्य एक दूसरे के पूरक और सहयोगी रहे हैं किंतु मानव सभ्यता के विकास से ही लिंग भेद के कारण दमन, अन्याय, शोषण और असमानता का लंबा इतिहास भी है। विशेषकर तृतीय लिंगी समुदाय को एक समान नागरिक अधिकार प्राप्त है। समाज या परिवार से वंचित नहीं रहना पड़ता है क्योंकि सार्वजनिक और सरकारी कार्यों में उन्हें दोयम दर्जे से नहीं देखा जाता। पुरुष सत्तात्मक भारतीय समाज में लिंग भी इन लोगों को बहिष्कृत किया जाता है तथा उसके साथ मनुष्य की तरह व्यवहार भी नहीं किया जाता बल्कि उन्हें निर्दयता, क्रूरता और दर्दनाक स्थितियों का सामना करना पड़ता है। नई सदी की कहानियों में तृतीय लिंगी समुदाय का ध्यान आकर्षक होना तथा उनकी अस्मिता को उद्घाटित करना नए यथार्थ की शुरुआत है। हम भी इंसान हैं किन्नरों पर आधारित कहानियों का विशिष्ट संग्रह है। किन्नरों के पास शिक्षा के साधन नहीं है और ना रोजगार प्राप्त करने के अवसर मिल पाते हैं उन्हें मानवीय अधिकारों से वंचित रखा जाता है। उन्हें स्वतंत्र जीवन जीने का अधिकार नहीं है। बचपन में जब उन्हें किन्नर होने का पता चलता है तब उन्हें मां-बाप से दूर किन्नर समुदाय में भेज दिया जाता है।

नालासोपारा उपन्यास के माध्यम से हिजड़ो के जीवन से संबंधित व्यक्तिगत एवं सामाजिक सरोकारों को पाठक के सामने परत खोलते हुए प्रस्तुत करने का प्रयास है। इस उपन्यास के लेखक के संदर्भ में चित्र मुद्गल कहती हैं लंबे समय से मन में पीड़ा थी। एक छटपटाहट थी आखिर क्यों हमारे इस अहम हिस्से को अलग-थलग किया जा रहा है। हमारे बच्चों को क्यों हमसे दूर किया जा रहा है। आजादी से लेकर अभी तक कई रूढिघ्यां टूटी लेकिन किन्नरों के जिंदगी में कोई बदलाव नहीं आया। उपन्यास एक बड़ा प्रश्न उठता है कि लिंग पूजक समाज लिंग विहीन ओं को कैसे बर्दाश्त करेगा? उपन्यास इस प्रश्न पर गंभीरता से सोचने को विवश करता है कि आखिर एक मनुष्य को सिर्फ इसलिए समाज से बहिष्कृत होना पड़े कि वह लिंग दोषी है।

निष्कर्ष

सृष्टि के निर्माता ईश्वर हैं मनुष्य में नर नारी और उभयलिंगी भी उसी की रचना है। मनुष्य में उभय लिंगी यानी हिजड़ों को हाशिए में रखते चले आ रहे हैं उन्हें सामाजिक मान्यता आदर सम्मान तो दूर हिजड़ा शब्द एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए गाली के रूप में इस्तेमाल करते चले आ रहे हैं जो सुनने वालों के ह्रदय को भेद डालता है। हिजड़ों की 4 शाखाएं हैं बुचरा, नीलिमा, मनसा और हंसा। बुचरा जन्मजात हिजड़ा होता है। नीलिमा स्वयं बने हिजड़ा है। मनसा स्वेच्छा से शामिल तथा हंसा शारीरिक कमी के कारण बने हिजड़े हैं। हिजड़ा रूप में जन्म लेने में एक बच्चे का कोई कसूर नहीं है। वह भी ईश्वर की सृष्टि है। समाज एक अल्पविकसित या विकलांग बच्चे की सेवा, सुश्रूषा, उसकी चिकित्सकीय सुविधाएं, पढ़ाई, लिखाई इत्यादि का भरपूर ध्यान रखते हैं और वही हिजड़ा बच्चा जन्म लेते ही उसे पल भर में हाशिये पर रख दिया जाता है। रात दिन उसे अपमानित होना पड़ता है इतना ही नहीं समाज उसे स्वयं से अलग कर देता है अपने ही परिवार से विस्थापित हो जाने को मजबूर कर देते हैं। विस्थापन का दंश सबसे अधिक कष्टकारी होता है। हिजड़ा बच्चा सबसे पहली उपेक्षा और विस्थापन अपने ही घर परिवार से पाता है। भारत समेत पूरी दुनिया में किन्नरों की संख्या लाखों में है लेकिन फिर भी साहित्य समाज भाषा संस्कृति संविधान सत्ता संपत्ति और जीवन जीने के तमाम अधिकारों से उन्हें सदियों से बेदखल किया जाता रहा है। रोजगार और शिक्षा का अभाव है जिसके कारण उन्हें सार्वजनिक स्थलों पर भीख मांगनी पड़ती है तालियां पीट कर नींद वसूलने होते हैं। इससे भी जरूरत पूरी ना हो तो वेश्यावृत्ति के गलीज दलदल में उतर जाना होता है। सार्वजनिक स्थलों पर उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता है। सामान्य लोगों के लिए बने अस्पतालों में उन्हें इलाज नहीं मिलता स्कूलों में दाखिला नहीं मिलता सरकारी गैर सरकारी जगहों पर रोजगार नहीं मिलता। उन्हें भी आत्मसम्मान प्यारा होता है, शेष समाज को यह सत्य कमेशा याद रखना होगा। वे केवल ताली बजाने भर के लिए नहीं हैं, यह स्वीकारना होगा। लड़का या लड़की होना जितना सहज है, उतना ही भिन्न लिंगी मानसिकता का विकसित होना भी सहज है, क्योंकि यह एक प्राकृतिक घटना है जिस पर किसी का कोई बस नहीं चलता, यह स्मरण में रखते हुए बालक का सामाजिक स्वीकार हो, प्यार, सम्मान, उचित मार्गदर्शन, उपचार प्राप्त हो तो उस व्यक्ति का समुचित, समुन्नत विकास हो सकेगा, इसमें दो राय नहीं। किन्नर बनने से पूर्व व्यक्ति किस मानसिक-शारीरिक तकलीफों, से गुजरता है, अगर इसका बोध हो तो संभव है कि किन्नरों के प्रति हमारा समाज सहृदयी होने लगे!

ग्रंथ सूची

1. डॉ सूरज बडत्या या कबीरन, ''हम भी इंसान हैं'' संपादक डॉ एम फिरोज खान, वांग्मय बुक्स अलीगढ़ 2018
2. नीरजा माधव ''यमदीप'' सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली 2009
3. प्रतीप सौरभ ''तीसरी ताली'' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2011
4. महेंद्र भीष्म ''मैं पायल'' अमन प्रकाशन, कानपुर संस्करण 2016
5. मनोबि बंधोपाध्याय ''पुरुष तन में फंसा मेरा नारी मन'' राजपाल एंड संस, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2018
6. शरद ''सिंह थर्ड जेंडर विमर्श'' सामयिक प्रकाशन जनवाड़ा नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज नई दिल्ली संस्करण 2019
7. चित्रा मुद्गल ''पोस्ट बॉक्स नंबर नालासोपारा'' सामाजिक पेपर बॉक्स नई दिल्ली 2017

फारसी विद्वान: वंचित वर्गों के उत्थान में सहायक एवं मानव अधिकारों के संरक्षक

डॉ० तसनीम कौसर चिश्ती

एसोसिएट प्रोफेसर, फारसी विभाग, करामत हुसैन मुस्लिम गर्ल्स पी0जी0 कालेज, लखनऊ

प्रस्तावना:

अगर हम फारसी साहित्य पर नजर डालें तो हमें यह भलीभांति ज्ञात होगा कि फारसी विद्वानों ने हमें सदैव ही वंचित वर्गो के उत्थान एवं उनके अधिकारों का हनन न हो इस सम्बन्ध में पूर्ण सहयोग दिया है।

यूँ तो फारसी विद्वानों एवं मानव अधिकारों के संरक्षकों की सूची बहुत लम्बी है इस कारण केवल कुछ ही प्रमुख नामों जैसे सादी शीराजी, मौलाना अलालउद्दीन रूमी, हाफिज शीराजी, उमर खय्याम, अल्लामा इकबाल, ईरज मिजर्घ, फररूखी यजदी, परवीन एतिसामी, सीमीन बहबहानी, तहिरा सफार जादे एवं फरोज फररूखाजाद आदि है। मैने उदाहरण सहित इसमें सम्मिलित किया है ताकि वह लोग जो फारसी साहित्य के अनमोल खजाने से अवगत नहीं है वह इस से लाभानवित हो सकें, एवं इसके विद्वानों द्वारा मार्गदर्शन से समाज की विभिन्न समस्याओं का निवारण करने में सक्षम हो सकें चाहे उसका सम्बन्ध समाज के किसी भी वर्ग से हो।

इसी का विस्तारपूर्वक मूल्यांकन करने का प्रयास इस शोध पत्र में किया गया है। विशेष रूप से मानव अस्तित्व, उसकी गरिमा एवं अस्मिता को दर्शाने की कोशिश की गई है।

इस श्रृंखला में सर्वप्रथम शीराज में जन्मे प्रमुख फारसी विद्वान सादी शीराजी हैं जिनके द्वारा रचित यह पंक्तियाँ संयुक्त राष्ट्र संघ की इमारत के मुख्य द्वार पर लिखी मिलती है।

वह कहते हैं:

बनी आ दम आजाए यक दीगरन्द
के दर आफरीनिश जे यक गौहरंद
चू उजवे बेदर्द आर्वद रूजगार
दिगर उजवहा रा न मांद करार
तू कज मेहनते दीगराँ बेगमी
न शायद के नामत नेहंद आदमी

अर्थात: संसार के सारे लोग एक शरीर के समान हैं। और जन्म से ही एक दूसरे का हिस्सा है। जब जमाना शरीर के किसी एक भाग पर चोट पहुँचाता है तो उस का प्रभाव शरीर के दूसरे अंगो पर भी पड़ता है। तुझे अगर दूसरों की पीड़ा का एहसास नहीं ही है तो तुझे ''आदमी'' कहना उचित नहीं है।

एक दूसरे स्थान पर सादी शीराजी कहते हैं:

तने आदमी शरीफस्त बे जाने अदिमियत
न हमीन लिबासे जीबास्त निशाने आदमीयत

अर्थात: मानव का शरीर मानवता के कारण है न कि सुन्दर कपड़ों को शरीर पर धारण करने से है।

''सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा'' के लेखक अल्लामा इकघ्बाल भी इसी विचार धारा के समर्थक हैं जो मुहम्मद (स) एवं कुराने द्वारा प्रस्तुत की गई है। वह कहते है:

पेशे कुरआन बन्दओं मौला यकीसत
बोरयाओं मसंदो दीबा यकीस्त

अर्थात: कुराने हकीम के सामने आकघ और गुलाम एक हैं। चाहे कोई कीमती कपड़े से बने मसनद पर बैठा हो या टाट पर बैठने वाला हो दोनो एक समान हैं। इनमें किसी प्रकार का कोई अंतर नहीं है।

कुराने करीम की सूरहे निसा (4) आयत नम्बर 1 में इरशादे रब्बानी है:

''या अय्योहननासत तकू रब्बाकुमुल लजी
खलाकुम मिन नफसिन वाहिदा वा
खलाकघ्हा मिनहा जौजेहा वा रिजालन
कसीरा वा निसाआ''
(अन निसा (4), आयत: 1)

अर्थात:- सारे इंसानों का स्त्रोत एक है एवं कोई भी व्यक्ति लिंग, रंग, नसल, जातपात, इलाके के आधार पर भिन्न नहीं है।

फारसी विद्वानों ने न केवल स्त्री द्वारा निरंतर संघर्षो एवं प्रयासों को दर्शाने का प्रयास किया है बलकि समाज की इन्ही त्रुटियों को दूर करने, समान्ता पर आधारित संघर्षो, सुधारों, स्थितियों को सामनो रखकर स्त्रीयों की अस्मिता मूलक विर्मश की दिशा निर्धारित करके हमें उनके आंकलन की समीक्षा के निर्देश देते हुए दिखाई देते है एवं इन्ही आदेशों का पालन एवं समाज की इन्ही त्रुटियों को दूर करने का प्रयास करते दिखाई देते है। इस सम्बन्ध में फारसी साहित्य की प्रसिद्ध कवित्री परवीन एतिसामी यह कहती हुई नजर आती है:

गर अतफाले मा बी शामंद शबहा बाक नीसत
रूवाजा तेहू मी कुनद हर शब कबाब ए रंजबर

अर्थात: अगर हमारे मजदूरों के बच्चे रातों को बिना खाने के है तो इस बात से किसी प्रकार का अंतर नहीं पड़ता। हमारा मालिक तो प्रतिदिन तीतर के कबाब खाता है।

इस सम्बन्ध में चाहे वह अल्लामा इकघ्बाल हों या परवीन एतसामी हों या ईरज मिजर्घ हों या अन्य फारसी कवि, विद्वान तकरीबन सभी ने नारी असितत्व और उसकी गरिमा की सराहना की हैं। उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत है। परवीन एतिसामी कहती है:

दर आन सराय कि जन नीस्त उन्सो शफकघ्त नीसत
दर आन वुजुद कि दिले मर्द मुर्दा अस्त रूवान
बहीच मुबहिसो दीबाचाइ कघ्जा न नविश्त
बराए मर्द कमालो बराई जन नुकसान
चे जन चे मर्द कसे शुद बुर्जुगो कामरवा
के दाशत मेवए अज बागेघ इलम दर दामान।

परवीन एतिसामी का भी शिक्षावादियों की तरह मानना है कि नारी की गोद ही बच्चे का पहला स्कूल है। वह कहती हैं:

दामने मादर नखुस्त आमूजगोर कूदक अस्त
तिफले दानिशवर कुजा परवरदा नादान मादरी?

दूसरे आधुनिक कवि ईरज मिजर्घ नारी के सम्बन्ध में कहते हैं:

हमीशे दुखतरे इमरोज मादरे फरदास्त
ज़े मादर अस्त मय्स्सर बुर्जगिए पिसराँ

अल्लामा इकघ्बाल की यह पंक्ति नारी के सम्बन्ध में काफी प्रसिद्ध है:

''वुजुदे जन से है तसवीरे काईनात में रंग''

''मानवता'' की शब्दकोश में प्यार ही जीवन है। हम एक दूसरे को प्रेम की भावना से महसूस कर सकते है एवं इस सृष्टि के रचनाकार ने प्यार के बन्धन से अधिक किसी और बंधन को इतना मजबूत नहीं बनाया और यही रिश्ता एक दूसरे को समीप लाता हैं। वास्तव में इसी प्यार मुहब्बत के कारण संसार इतना सुन्दर दिखता है।

फारसी गजल के ताजदार हाफ़िज शीराजी इसी प्रेम भावना के संदर्भ में कहते हैं:

हरगिज न मीरद आन कि दिलश जिघ्न्दे शुद बे इशक़
सब्त अस्त बर जरीदए आलम दवामे मा

अर्थात: वह इंसान कभी नहीं मरता जो सच्चे प्रम को अपनाता है। इउसका नाम सदा के लिए अमर हो जाता है।

या

अल्लामा ईक़बाल इसी चघीज को दूसरे स्थान पर यूँ कहते है:

अज मुहब्बत मी शवद पायंदा तर
जिन्दे तर, सोज़िन्दे तर, ताबिन्दे तर

इसी कारण फारसी भाषा के सूफिघ्याना साहित्य का अधिकतर भाग इस बात का प्रतीक है कि इनमें प्रेम भक्ति कवियों, सूफियों के द्वार हर आमो खघस के लिए बराबर खुले रहते थे क्योकि ईश्वर का सच्चा प्रेमी वही है जो सबको लाभ पहुँचाए। इसी सम्बन्ध में सादी शीराजी कहते हैं।

तरीक़त बे जुज खिदमते ख़लक नीस्त
बे तसबीहो सज्जादओं दलक़ नीस्त

इसीलिए हम दूसरों के साथ ऐसा व्यवहार न करें जो हमें अपने लिए पसंद न हो क्योंकि किसी भी इंसान का चरित्र उसके व्यवहार से साफ प्रतीत होता है। इसलिए हमें यह प्रयास करना चाहिए कि हम सदैव संयम से काम लें एवं समानता का व्यवहार करने का प्रयास करें:

इस विषय के सम्बन्ध में आधुनिक फारसी साहित्य की कावियत्री परवीन ऐतिसामी की पंक्तियाँ प्रस्तुत है:

बे कस मपसंद रंजे कज बराए खीशतन नपसंदी
बदूशे कस मनेह बारे कि खुद बुर्दनश न तवानी

अर्थात किसी व्यक्ति के लिए ऐसी पीड़ा को पसंद न करो जो अपने लिए नहीं चाहते। किसी के कंधों पर इतना बोझ मत रखो कि जिसे तुम खुद न उठा पाओ।

या

ऐ जूरमंद रूजेघ जईफान सियाह मकुन
खूनाबे मी चकद हमी अज दस्ते इंतिकघम

अर्थात: ऐ बलवान कमजोरो के दिन तबाह मत करो। उनके मन से बदले की भावन उठती है।

या

इशरते बजमे तो जेघ अस्त केह मेहनत बर मास्त
सुबहे आन नाहिया वक्त असत कि शाम अस्त इंनजा

बकौल उर्दू कवि मीर तकी मीर:

अमीरों की शौक्त पे हरगिज न जा
हुए है गरीब इनकी दौलत से हम

हमारे समाज की एक ओर झुकने वाली तराजू की विडम्बना को बड़े स्पष्ट शब्दों में अल्लामा इकघ्बाल ने यूँ दर्शाया है। वह कहते है:

खघ्वाजा अज खूने रगे मजदूर साजद लाले नाब
अज जफाऐ दहखुदायान किश्ते दहकघनान ख़राब
इंकिलाब
इंकिलाब ए इंकिलाब

अर्थात: ऐ लोगों कितनी दुखद बात है कि उच्च वर्ग के लोग निर्धनों, मजदूरों का खून चूस रहे हैं। उनकी मेहनत का नाजायज फायदा उठा रहे हैं। जानतोड़ मेहनत वह करें और फायदा दूसरों की झोली में जाए। वंचित वर्ग आज भी फुटपाथ या झुग्गी झोपड़ी में एक-एक दाने का मोहताज हैं। इसलिए इंकिलाब या परिवर्तन की अत्यन्त आवश्यकता हैं।

अपनी उर्दू शायरी में अल्लामा इकबाल कहते हैं:

जिस खेत से दहकघन को मयस्सर न हो रोटी
उस खेत के हर खोशए गुन्दुम का जला दो।

इंकिलाब से उनका कघ्ताई यह अर्थ नहीं था कि केवल किसी भी समस्या के प्रति नारेबाजी करें बल्कि इससे उनका दायित्व यह था कि कुरान शरीफ द्वारा प्रस्तुत की गई जीवनयापन की प्रणाली का प्रचार एवं प्रसार सारे संसार में हो जिस आधार ''समानता'' पर है।

कुरआन शरीफ में इरशादे बारीए ताला है:

''वैलुल्ले कुल्ले हुमाजतिल लुमाजते
निललजी जमआ मालऊँ वा अदददा''
(104 सूरा अल हुमाजाह/आयत-2)

अर्थात:- उस शख्स का अंजाम तबाही और बर्बादी है जो ताने मारता है। लोगो में कीड़े निकालता है। जो दौलत जमा करता है और गिन-गिन कर रखता है।

हमारे समाज की दैनीय दशा यह है कि अलग-अलग धर्म गुरू अपने-अपने झांसे में लोगों को उलझा रहे हैं। यानि जनता को बेवकूफ बना रहे है एवं मजे की बात यह है कि भूमंडलीकरण के इस दौरे में भी लोग इन पाखंडियों के जाल में फंस रहे हैं और उन्हे इसका तनिक एहसास भी नहीं है कि बा जहिर साधू समान दिखने वालों का असली चेहरा वास्तव में कितना दागदार और घिनौंना है।

महान प्रसिद्ध कवि हाफिघ्ज शीराजी ने ऐसे ढोंगी, रियाकारों की खूब खबर ली है।

वह कहते है:

वाईजान चुन जलवे वर मेहराबो मिम्बर मी कुन्नद
चुन बा खलवत मी रवंद ऑन कारे दीगर मी कुनन्द

अर्थात: वाईज या नसीहत करने वाले जब मस्जिद के मिम्बर पर बैठते है तो वह पंद-ओ नसीहत पर आधारित लम्बी चौड़ी बाते करते हैं। परन्तु जब अकेले होते हैं तो वह कुछ दूसरे ही यानि संसार के सारे कुर्कमों में संलिप्त पाए जाते हैं।

इसी प्रकार अल्लमा इक़बाल भी इसी सम्बन्ध में कहते हैं:

शेखद्धे शहर अज रिशतए तसबीह सद मोमिन बेदाम
काफिघ्राने सादा दिल रा बृहम्मने जुन्नारे ताब
इंकिलाब।
इंकिलाब ए इंकिलाब

आधुनिक फारसी साहित्य की कवित्री परवीन एतिसामी का अंदाज भी वंचित वर्गो के उत्थान के लिए किसी परिचय की आवश्यकता नहीं रखता। वह अपनी कविता ''ऐ रंजबर'' कहती हैं:

ता ब की जान कन्दन अंदर आफताब ऐ रंजबर
रेख़तन अज बहरे नान अज चेहरे आब ऐ रंजबर
अज हुकूके पाईमाले खीशतन कुन पुरसिशे
चंद मी तरसी ज़े हर रवानो जना ऐ रंजबर
गर कि अतफाले तू बी शमद शबहा बाक नीस्त
खुवाजा तीहू मीकुन्द हर शब कबाब ऐ रंजबर
दीवे आजों खुदपरस्ती रा बेगीरो हबस कुन
ता शवद चेहरे हकघीकघ्त बी हिजाब ऐ रंजबर
जीन हमा खुवारी कि बीनी ज़े आफताबों बादो खघक
चीस्त मुजदत जुज निकोहिश या ईताब ऐ रंजबर
(जावेदाना परवीन एतेसामी पेज सं0-116)

या

दरख़ते जोरो सितम हीच बरगो बार न दाश्त
अगर के दस्ते मजाजात मी जदश तबरे
(जावेदाना परवीन एतेसामी पेज सं0-43)

निष्कर्ष

जब हम ''अवशेष (बैलैंस)'' शब्द के अर्थ को अच्छी तरह समझ लेगे एवं इसका प्रयोग दूसरों के लिए भी उचित तौर पर भांलि-भांति करने का प्रयास करेंगे तभी मानव और उसके द्वारा गठित अनेक वर्गो की समस्याओं का निवारण सम्भव होगा अल्लामा इकघ्बाल ''असरार खुदी में कहते हैं।

ख़ेजो कानूने अखुव्वत साज दैह
जामे सहबाऐ मुहब्बत बाज दैह
बाज दर आलम बेयार अय्यामे सुलह
जंगजूयान रा बेदैह प्यामे सुलह

अर्थात: उठो और प्रेम के कानून को बनाओ। मुहब्बत का जाम दोबारा दो। संसार में फिर पुर्न सुलह व अमन के दिन लाओ। और युद्ध करने वालों को सुलह का संदेश दो।

या

एक दूसरे स्थान पर इकघ्बाल जावेद नामे में कहते है:

आदमियत एहतिरामे आदमी
बाख़बर शौ अज मुकघमें आदमी

अर्थात: मानवता मानव के सम्मान करने में है इसलिए मानव के स्थान को अच्छे ढंग से जान लो। अंतत: यह कहना उचित होगा कि वंचित वर्गों का उत्थान एवं मानव अधिकारों का संरक्षण तभी सम्भव हो सकता है जब पवित्र पुस्तक कुरान शरीफ मे दिये गये उसूलों एवं फारसी के विद्वानों द्वारा बताए हुए मार्ग दर्शनों पर आज हम सब चले तभी हम अपने समाज की नकारत्मक शक्तियों का मुकाबला भली-भांति कर पायेगें एवं समाजी वर्गों में जमीन आसपान वाले अन्तर पर आधारित संग्राम को किसी हद तक कम कर सकने में सक्षम होगे। फारसी विद्ववानों द्वारा प्रेम, आपसी सोहारद, शांति आदि जैसे लुप्त, मान्वय मूल्यों को पुन: जीवित रखने की सत प्रतिशत आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. दीवाने-हाफिज, अनुवादक कघजी सज्जाद हुसैन प्रकाशन: सबरंग किताब घर, दिल्ली-6
2. गुलिस्ताँ मुतारज्जिम प्रकाशन:राजा राम कुमार, मुन्शी नवल किशोर, लखनऊ।
3. स्टडीज इन परशियन पोएटरी, लेखक: शहजाद अहमद खान, प्रथम प्रकाशन: 1994 प्रकाशन: रायल बुक कम्पनी, सदर, कराची, पाकिस्तान
4. गुजीदा शेरे फारसी माआसिर, मोअल्लिफ डॉ0 मुनीबुर रहमान, इंस्टीय्यूट आफ इस्लामिक स्टूडैन्टस प्रकाशसन सीरीज-5 खण्ड-1, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्ससिटी, अलीगढ़।
5. इकबाल शनासी, हुनर वा अनदीशए मुहम्मद इक़बाल, तालीफ वा तरजुमा: गुलाम रजा सईदी।
6. दा मैटा फिज़िकस आफ रूमी: आ क्रीटीकल एण्ड हिस्टारिक स्कैच, नई दिल्ली।

राही मासूम रजा के उपन्यासों में साम्प्रदायिकता और अलगाववादी दृष्टि

जयसिंह यादव

शोधार्थी, नेहरू ग्राम भारती मानित् विश्वविद्यालय, प्रयागराज

भारत विविध संस्कृतियों का देश है, विविधता में एकता यहाँ की विशेषता रही है । भारतीय इतिहास में 1857 ई. से पूर्व कोई ऐसी घटना साम्प्रदायिक दंगा या फिर अलगाववाद जैसी कोई भी प्रवृत्ति देखने को नहीं मिलती जिससे यह कहा जा सके कि अंग्रेजों के आगमन के पूर्व भारत में विभाजन साम्प्रदायिकता एवं अलगाववाद था । भारतीयों में कभी भी धार्मिक संकीर्णता और कट्टरता की प्रवृत्ति नहीं रही । इस देश की प्रेम संस्कृति को आत्मसात करके अमीर खुसरों ने हिन्दुस्तान को दुनिया का जन्नत बताया । अंग्रेजों ने धर्म जाति क्षेत्र तथा भाषा और संस्कृति आदि अनेक स्तरों पर संकीर्णताओं को बढ़ावा देकर भारतीय जनता को बाटों और अपने सत्ता तथा वर्ग स्वार्थों की पूर्ति की।

राही जी उन लेखकों में से हैं, जिन्होंने भारत के स्वतंत्रता संग्राम को अपने दिल से महसूस किया था। उनका सम्पूर्ण लेखन हिन्दुस्तानी सभ्यता, संस्कृति और उसकी सांझी विरासत का प्रबल पक्षधर है ।वह अपने उपन्यासों के द्वारा व्यक्ति की कहानी न कहकर समय की कहानी कहते हैं, और धर्म की मासूमियत को खपत करने वाली साम्प्रदायिकता एवं अलगाववादी प्रवृत्ति को उजागर करते रहे।

'आधा गाँव' देश विभाजन की वास्तविकता को उद्घाटित करता है और उसकी त्रासदी को चित्रित करता है। यह उपन्यास उस छद्म विमर्श को सामने रखता है जिसमें देश-विभाजन को धार्मिक आधार दिया है। यह उपन्यास देश-विभाजन के बाद भारतीय मुसलमानों की दुविधाग्रस्त मनः स्थिति और उनकी राष्ट्रीयता को परिभाषित करता है। जिस साफगोई से यह उपन्यास मुस्लिम लीग जनसंघ एवं कांग्रेस के चरित्र को बेनकाब करता है, वह देखने लायक है। मुस्लिम लीग और पाकिस्तान की मांग गंगौली के मुसलमानों के लिए एक अबूझ पहेली है। वे समझ नही पाते की मुसलमानों को एक अलग पनाहगाह की जरूरत क्यों पड़ रही है? या हिन्दुस्तान में एक अलग इस्लामी हुकूमत कैसे बन जाएगी? या बन भी गयी तो उससे उनके जीवन स्तर में कैसे सुधार आ जायेगा। फुनन मियाँ तो सीधे सीधे पाकिस्तान की माँग का विरोध करते है।

"कही इस्लाम है कि हूकूमतें बन जैयहे! हे भाई, बाप-दादा की कबर हियां है, चौक इमामबाड़ा हियां है, खेत-बाड़ी हियां है। हम कौनो बुरबक है कि तोरे पाकिस्तान जिंदाबाद में फंस जाय।[i]"

राही जी 'आधा गाँव' उपन्यास में यह दिखाते है कि अलगाववाद एवं साम्प्रदायिकता के प्रचार-प्रसार के लिए साम्प्रदायिक शक्तियाँ उन सभी ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक मिथकों का सहारा लेती है, जिनसे दो समुदायों के लोगों को एक दूसरे के विरूद्ध भड़काया जा सके। यह ध्यान देने की बात है कि सांप्रदायिकता की यह हवा बाहरी लोगों से ही गंगौली तक आती है। शिक्षित जनसमुदाय इसे ज्यादा धारदार बनाता है, लेकिन गंगौली के मीर सहिबान एवं आम हिन्दू इन मिथकों एवं विमर्शो को ज्यादा महत्व नही देते हैं। वास्तव में "विभाजन एवं मुस्लिम अस्मिता के प्रश्न को राही मासूम रजा न तो हिन्दू-मुस्लिम खानों में बाँटते हैं और न अंग्रेजों की 'फूट डालो व राज करो' की नीति तक सीमित करते है। वे इसके सूत्रों की तलाश भारतीय समाज की सामंती सरंचना व मुस्लिम समुदाय की आन्तरिक बुनावट में करते है।"[ii]

इस प्रकार अलगाववाद, साम्प्रदायिकता एवं हिन्दू-मुसलमान सम्बन्धों के दृष्टिकोण से राही मासूम रजा का यह उपन्यास बहुत महत्वपूर्ण है। इसके साम्प्रदायिक विमर्श का स्वरूप उद्घाटित तो होता ही है साथ ही साझी संस्कृति को क्षीण करने के षड्यन्त्र का पर्दाफाश होता है।

राही मासूम रजा ने 'टोपी शुक्ला' उपन्यास में साम्प्रदायिकता एवं अलगाववाद को केन्द्र में रखा है। स्वतंत्रयोत्तर भारत के सांस्कृतिक सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य पर यह उपन्यास एक व्यापक बहस छेड़ता है कि जाति-धर्म से परे कोई राष्ट्रीयता होती भी है या नही। 'टोपी शुक्ला' आजादी के सुनहरे स्वप्न के टूटने का आख्यान है जिसके कारण धार्मिकता क्षेत्रीयता के लिए संकट बनती है।

यह उपन्यास समाज में व्याप्त साम्प्रदायिकता की तह तक जाने का प्रयास करता है एवं आर्थिक कारकों को इसके लिए उत्तरदायी मानता है। बेरोजगारी का निराशाजनक वातावरण पूरे वातावरण में जो कुंठा भरता है, उसकी झलक सर्वत्र है। "इस छोटे से उपन्यास में कई महत्वपूर्ण समस्याओं पर विचार किया गया है। शिक्षा में बढ़ता हुआ जातिवाद, साम्प्रदायिकता, अलगाववाद एवं व्यवसायीकरण आज अपने शिखर पर है। शिक्षित होकर भी लोग रूढ़ संस्कारों से मुक्त नही है।

पूरा कथानक साम्प्रदायिकता फैलाने वाली शक्तियाँ अपना स्वार्थ सिद्ध करती है और इसमें बाधक कोई भी हो हिन्दू-मुसलमान बलि चढ़ा दिया जाता है। "नफरत! यह कैसा अजीब है। नफरत! यह अकेला शब्द राष्ट्रीय आंदोलन का फल है। बंगाल, पंजाब और उत्तर प्रदेश के इंकलाबियों की लाशों की कीमत केवल एक शब्द है- नफरत।"[iii]

हमारी वर्तमान व्यवस्था किस प्रकार से अलगाववाद एवं सांप्रदायिकता का जहर जनता की रंगों में घोल रही है। इस पर भी लेखक ने स्थान-स्थान पर प्रकाश डाला है। टोपी शुक्ला सिर्फ केवल एक उपन्यास ही नही है, एक सच्चाई है, वास्तविकता है, यथार्थ है। विभाजन के बाद देश में सांप्रदायिकता के सभी पहलुओं पर सोचने के लिए विवश कर देता है।

राही मासूम रजा के उपन्यास 'हिम्मत जौनपुरी' में सुक्कन के परिवारवालों में चर्चा के दौरान साम्प्रदायिक हिंसा की चर्चा मिलती है। सुक्कन आर्जू जौनपुरी की पत्नी थी। वे उदाहरण देते है- "एक हिन्दू-मुसलमान दंगे में उनके एक फूफा को सजा हो गयी थी। वह रुक्मनी पर आशिक थे। रुक्मनी भी उन पर आशिक थी। इत्तेफाक से बलवा हो गया, तो उन्होंने मौके का फायदा उठाया और रुक्मनी के पति के मार डाला।"[iv] राही इस प्रसंग में दिखाते है कि लोग अवसर का लाभ किस प्रकार उठाते है। 'हिम्मत जौनपुरी' में साम्प्रदायिकता और अलगाव की भावना को कहीं प्रसंग के रूप में तो सामने लाते ही है, साथ ही राही ने हिम्मत के देशप्रेम को भी व्यक्त किया है। 'हिम्मत जौनपुरी' साझी संस्कृति के आख्यान की दृष्टि से महत्वपूर्ण कृति है।

'ओंस की बूँद' उपन्यास का मूल कथ्य साम्प्रदायिकता है। राही ने विभाजन एवं उसके बाद भारत में प्रचार-प्रसार कर रहे हिन्दू-मुसलमान साम्प्रदायिकता एवं अलगाव को केन्द्र बनाकर यह उपन्यास रचा है। साम्प्रदायिकता के विकास एवं अलगाव के साथ-साथ दीनदयाल और वजीर हसन के बीच की दूरी कैसे बढ़ी थी। स्वयं राही जी के शब्दों में- "सन् 21-22 से अलगाव शुरू हो गया था। पानी में बेसहारा बहने वाली चीजों की तरह ये दोनों अलग होते जा रहे थे। सन् 35 में दोनों ने इस अलगाव को महसूस किया। सन् 40 तक बीच में एक दीवार उठ गयी, 45 में दोनों नदी के अलग किनारों पर थे- नदी से अलग ।"[v]

राही जी यह दिखाते है कि दंगे जो धर्म के नाम पर फैलाये जाते है, लेकिन स्वार्थी तत्व उसकी आड़ में अपने व्यक्तिगत कार्य सम्पन्न करते हैं । यह उपन्यास "एक ऐसे अन्तर्विरोधपूर्ण समय की कहानी है, जब आदमी, आदमी न रहकर निखालिस हिन्दू या मुसलमान बन जाता है, और मुल्लाओं-महंतों तथा राजनीतिज्ञों द्वारा फैलाये गये धार्मिक उन्माद और झूठ के फलस्वरूप सारी मानवीय संवेदनाओं को तिलांजलि देकर वहशी बन जाता है।"[vi] समग्र रूप से 'ओंस की बूँद' एक सशक्त उपन्यास है, जिसमें अलगाव एवं साम्प्रदायिकता के बहाने हिन्दू-मुसलमान सम्बन्धों का ताना-बाना बुना गया है।

'दिल एक सादा कागज' उपन्यास में गाजीपुर के 'जैदी' विला की कथा है। इस विला में बालक रफ्फन का बचपन बीतता है। देश के विभाजन के बाद परिवार बिखर जाता है। बड़े भाई पाकिस्तान चले जाते है। उनका मानना है कि भारत में मुसलमान सुरक्षित न रहेंगे। कालान्तर में उनका देश भी विभाजित हो जाता है और वे बंगला देशी बन जाते हैं। उनका परिवार भी बिखर जाता है। लेखक ने टिप्पणी की है-

"जिन्दगी के तजरबों को गज से नापनी चाहिए। भाई जानू पाकिस्तान इसलिए गये थे कि हिन्दुस्तान में मुसलमानों की इज्जत-आबरू महफूज नही थी। और अब उनकी इज्जत-आबरू ढाके में दुरूद पड़ रही है।"[vii]

इस उपन्यास में जहाँ तहाँ अलगाववाद की झलक नजर आती है, तो कई स्थान पर हिन्दू-मुसलमान सम्बन्धों के कई रूप भी मिलते हैं। लेखक ने दिखाया है कि हिन्दू-मुसलमान का विभेद अपेक्षाकृत पढ़े-लिखे वर्ग से ही उभरता है। आम जन धर्म के इन विभेदकारी उलझनों में नहीं पड़ता या तब पड़ता है, जब इसमें स्वार्थकश सम्मिलित किया जाता है। इस उपन्यास की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमे देश-प्रेम को धर्म की संकीर्णताओं से परे रखा गया है।

राही मासूम रजा के सभी उपन्यास हिन्दू-मुसलमान सम्बन्धों की व्याख्या तो करते ही हैं, साथ ही साम्प्रदायिक एवं अलगाव की प्रवृत्तियों का पर्दाफाश भी करते है। "फिल्मी जगत के चरिताख्यान का विवेचन करते विभाजन और साम्प्रदायिकता की बात करना अटपटा लग सकता है, लेकिन क्या फिल्म इंडस्ट्री के लोग इस तरह की भावनाओं से सर्वथा अछूते हैं? धर्म जाति और साम्प्रदायिकता भारतीयों में इस तरह से गुंथे है कि उसके बिना भारतीय समाज का कोई स्वरूप ही नही बनता।"[viii]

'सीन 75' में ऐसे लोगों की लम्बी फेहरिस्त है, जो साम्प्रदायिक, अलगाववाद एवं प्रगितशीलता के फैशन से आक्रान्त है।

'कटरा बी आर्जू' यूँ तो 'कटरा मीर बुलाकी' के लोगों की समग्र कथा है, लेकिन कुछ पात्र हिन्दू-मुसलमान सम्बन्ध के विश्लेषण और स्थान-स्थान पर साम्प्रदायिक के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण उपन्यास है। यह उपन्यास पूर्णरूप से आपातकाल पर आधारित है।

आपातकाल की इस त्रासदीपूर्ण कथा में हिन्दू-मुसलमान सम्बन्धों के सूत्र बहुत स्पष्टता से चित्रित हैं। एक जगह विभाजन का दर्द भोला पहलवान के अन्दर से उभर कर आता है। जहाँ भारतीयता झलक कर आती है- "हम्मे आधा पंजाब, आधा बंगाल, सिन्धु बलोचिस्तान जाये का गम नही है। गम इस बात का है कि सिन्ध-बलोचिस्तान के साथ गामा पहलवान भी चले गये पाकिस्तान में।"[ix]

इस उपन्यास में हिन्दू-मुसलमान की संकीर्णताएँ कम है। वहीं राही जी इसका प्रत्यक्ष विरोध करते हैं। इमरजेंसी की पृष्ठभूमि से प्रारम्भ हो कर यह उपन्यास जनता पार्टी की विजय पर समाप्त होता है। राही ने इस उपन्यास से वही प्रसंग दुहराये हैं जो अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों में लिख चुके है। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान का मसला, हिन्दू-मुस्लिम अलगाववाद एवं साम्प्रदायिकता मूल्यों का विघटन आदि।

राही मासूम रजा का यह उपन्यास साम्प्रदायिकता को ही केन्द्र में रखकर लिखा गया है। "यह उपन्यास साम्प्रदायिक तनाव की चिन्ता में लिखा गया है। यह तनाव अब तक का गम्भीर तनाव है। एक ओर दिल्ली में हिन्दू-सिख व हिन्दू-मुस्लिम तनाव है, तो दूसरी ओर मेरठ-अहमदाबाद में हिन्दू-मुस्लिम तनाव।"[x] वस्तुत: इसमें 1984 के सिख अलगाववादियों द्वारा प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी की हत्या के बाद फैले हिन्दू-सिख दंगे के प्रति असंतोष की अभिव्यक्ति है। लेखक की मूल दृष्टि यह बताने की है कि साम्प्रदायिकता केवल हिन्दू-मुसलमान सम्प्रदाय तक ही सीमित नही है, अपितु स्वार्थी तत्व अपने लाभ के लिए किसी भी समुदाय को साम्प्रदायिकता के अन्धकूप में धकेल सकते हैं। इस उपन्यास में हिन्दू-मुसलमान सम्बन्ध के भी कई सूत्र है साम्प्रदायिक दंगों की चर्चा है। यह चिन्ता बड़े प्रश्न के तौर पर उभरती है कि "धर्म और आदमी में फर्क करना आखिर हमें कब आयेगा?"[xi]

अंसतोष के दिन 1986 ई. में भारत में हिन्दू-सिख साम्प्रदायिकता के उभार के बाद लिखा गया था। हिन्दू-मुसलमान सम्बन्धों में उभरती दरारों के बाद विभाजनकारी विमर्श का यह नया प्रारूप था जिससे विक्षुब्ध होकर राही ने यह उपन्यास लिखा।

'नीम का पेड़' राही मासूम रजा का अंतिम उपन्यास है। राही ने इस उपन्यास में दो खालाजाद भाइयों के अलगाव और दुश्मनी की कहानी कही है। इस उपन्यास में दो भाइयों की दुश्मनी और टूटन के विविध रूपों को ऐसा चित्रित किया है, ऐसा लगता है कि इस संसार में न तो कोई किसी का भाई होता है, न दोस्त न कोई सगा। इन दोनों भाइयों में अलगाव, नफरत और बेदिली इस कदर थी कि इसका अनुमान नहीं लगा सकते। इसके भीतर जो कहानी कही गयी है वह नीम के पेड़ की ही है, और उसी की जबानी कही गई है। राही लिखते हैं "मैं शुक्रगुजार हूँ उस नीम के पेड़ का जिसने मुल्क को टुकड़े होते हुये भी देखा और आजादी के सपनों को टूटते हुए भी। जमींदारी को खत्म होते देखा तो नए राजाओं को बनते हुये भी देखा। उसका दर्द बस इतना है कि वह इन सबके बीच मोहब्बत और सुकून की तलाश करता फिर रहा है।"[xii]

राही ने इस उपन्यास में अनेक सामाजिक, साम्प्रदायिक, राजनीतिक एवं अलगाववाद की समस्याओं को उठाया है। किस तरह दो भाई आपस में स्वार्थ, अहंकार और झूठी शान के लिए एक दूसरे की जान के दुश्मन बन जाते है।

एक दोहा राही ने (1984 के सिखों और हिन्दुओं के मध्य साम्प्रदायिक दंगों के दौरान) लिखा था

"चारों ओर धुंध फैली है, मचा हुआ है कोहराम। राही जी कुछ कर दिखाओं मरना है आसान।"[xiii] उन्होंने अपनी कविताओं नज्म, शायरी और व्यंग्यों लेखों में भी इस स्थिति का हृदय विदारक चित्रण किया है और जनता से अपील की है सत्ता और धर्म के इन ठेकेदारों से सावधान रहे, क्योंकि ये मनुष्यता, सभ्यता, संस्कृति एवं हमारी साझी धरोहर के दुश्मन हैं-

राही साम्प्रदायिकता को एक छत का राग मानते है जो बुरे मौसम में तेजी के साथ फैला है। कोढ़ की बीमारी किसी को भी हो सकती है, उसे हिन्दू कोढ़, मुस्लिम कोढ़ नहीं कहेंगे। साम्प्रादायिकता और अलगाववाद भारतीय समाज का कोढ़ है। राही जी कबीर के बाद दूसरे बड़े लेखक है जिन्होंने तमाम खतरे उठाकर हिन्दू और मुसलमान दोनों साम्प्रदायिक शक्तियों का डटकर मुकाबला किया।

इसी तरह राही जी ने अपने महत्वपूर्ण आलेख 'भारतीय समाज किसी मजहब की जागीर नही' में दोनों साम्प्रदायवादियों को चुनौती देते हुये लिखा है- "इन लोगों के पाँवों के नीचे जमीन इतनी दलदली है कि इनके मुरीद झूठ के ओछे हथियार इस्तेमान करने लगे है। मैंने ये कहा था और अब भी कहता हूँ कि बाबरी मस्जिद और राम जन्मभूमि मंदिर दोनों को गिरा देना चाहिए और वहाँ एक राम-बाबरी पार्क बना देना चाहिए।" राही जी कबीर के बाद दूसरे भारतीय लेखक है, जिन्होंने अपने युग के सत्ताधारियों धर्म और समाज के ठेकेदारों को सीधे चुनौती दी है।

संदर्भ

i राही मासूम रजा, आधा गाँव- पृ-155
ii वीरेंद्र यादव, अभिनव कदम, पृ-314
iii राही मासूम रजा, टोपी शुक्ला- पृ-125
iv राही मासूम रजा, हिम्मत जौनपुरी- पृ-43
v राही मासूम रजा, ओस की बूंद- पृ-23
vi गोपाल राय- हिन्दी उपन्यास का इतिहास, पृ-294
vii राही मासूम रजा, दिल एक सादा कागज- पृ-192
viii चन्द्रदेव यादव, परदे की पीछे की दुनिया, अभिनव कदम, पृ.433
ix राही मासूम रजा, कटरा-बी-आर्जू, पृ-11
x कुँवर पाल सिंह- राही मासूम रजा, (मोनोग्राफ) पृ-41
xi राही मासूम रजा, असंतोष के दिन- पृ-23
xii राही मासूम रजा, नीम का पेड़, पृ-5
xiii प्रो. कुँवर पाल सिंह, गरीबे शहर- राही मासूम रजा (राही की कविता: साझी संस्कृति विरासत (भूमिका) पृ-12

भारतीय अर्थव्यवस्था पर कोरोना वायरस के कारण लॉकडाऊन का प्रभाव

डॉ० मनमोहन लाल विश्वकर्मा

असि. प्रोफेसर (अर्थशास्त्र), जी.एस.एस.पी.जी. कॉलेज कोयलसा, आजमगढ़ (उ0प्र0)

डॉ० कमलेश चौरसिया

असि. प्रोफेसर (अर्थशास्त्र), जनता महाविद्यालय, अजीतमल, औरैया (उ0प्र0)

सारांश (Abstract)

कोरोना वायरस (Covid&19) का संक्रमण सर्वप्रथम चीन के वुहान शहर में परिलक्षित हुआ और यह बहुत तेजी से विश्व के अन्य देशों में फैलने लगा। बढ़ते संक्रमण के दुष्प्रभावों को रोकने के लिये विश्व के कई देशों ने दिसम्बर, 2019 से लॉकडाऊन लगाना प्रारम्भ कर दिया। भारत में कोरोना वायरस के संक्रमण का पहला मामला 30 जनवरी, 2020 को मिला। भारत में पहली बार लॉकडाऊन 25 मार्च, 2020 से 14 अप्रैल, 2020 के अवधि के लिये लगाया गया, इसके बाद क्रमिक रूप से 15 अप्रैल से 3 मई, 4 मई से 17 मई, 18 मई से 31 मई, 2020 तक बढ़ता रहा। इस प्रकार भारत में 25 मार्च, 2020 से 31 मई, 2020 तक लगातार सभी प्रकार की आर्थिक गतिविधियाँ बन्द थी। इससे भारतीय अर्थव्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हुयी है। अर्थव्यवस्था के विभिन्न चरों जैसे- कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्र, अद्यौगिक क्षेत्र, सेवा क्षेत्र, विदेशी व्यापार क्षेत्र, प्रेषण, स्टॉक मार्केट, रोजगार आदि सभी क्षेत्रों में गिरावट आयी है।

मुख्य शब्द (Key words):- लॉकडाऊन, आर्थिक गतिविधि, भुखमरी, जी.वी.ए. (GVA), जी.डी.पी. (GDP), रोजगार, पलायन।

24 मार्च 2020 को शाम 8 बजे माननीय प्रधानमंत्री जी द्वारा कोरोना के बढ़ते मामले को देखते हुये, 25 मार्च से 14 अप्रैल तक लॉकडाऊन की घोषणा कर दी गयी। यह लॉकडाऊन पूर्ण लॉकडाऊन था अर्थात, जो जहॉ है वह वही रहे, घर से बाहर की सभी गतिवितधियाँ बन्द कर दी गयी। इससे सभी प्रकार की आर्थिक गतिविधि भी बन्द हो गयी। इसका सीधा प्रभाव लोगों के आय एवं रोजगार पर पड़ा। लॉकडाऊन की घोषणा करते समय माननीय प्रधानमंत्री जी ने कहा था कि "जान है तो जहॉन है" अर्थात् हमें सबसे पहले अपने जान को बचाना है, इसके बाद हम देश दुनियाँ देखेंगे।

चुँकि, कारोना वायरस संक्रमण की संख्या बहुत तेजी से बढ़ने लगी तो माननीय प्रधानमंत्री जी ने 14 अप्रैल 2020 को सुबह 10 बजे कहॉ कि "जान भी और जहॉन भी" अर्थात् हमें जान भी बचाना है और देश की अर्थव्यवस्था को भी बचाना है। चुँकि, बहुत दिनों तक देश को बन्द नहीं रखा जा सकता अत: 3 मई 2020 तक अर्थात् अगले 19 दिनों तक पुन: लॉकडाऊन रहेगा परन्तु कुछ आवश्यक वस्तुओं तथा कृषि में ढ़ील दिया जायेगा।

इसका कारण यह है कि यदि बहुत दिनों तक कोई आर्थिक गतिविधि नहीं होती है तो लोगों की आय में कमी आ जायेगी। आय में कमी से लोगों के जीवन-स्तर पर बुरा प्रभाव पड़ेगा एवं भुखमरी तक उत्पन्न हो जायेगी। भुखमरी से लोगों की मृत्यु होने लगेगी। इस प्रकार इस महामारी के दौरान यदि लोग घर से बाहर निकलते हैं तो कोरोना के कारण लोगों की मृत्यु होगी और यदि आर्थिक गतिविधियां रुकि रह गयी तो लोग की भुखमरी से मृत्यु हो जायेगी। अत: इस महामारी में लोगों को घर में रहते हुये आर्थिक क्रियाकलाप करना है तथा चुँकि यह समय कृषि कार्य का भी है तो लोगों को सावधानी पूर्वक कृषि कार्य भी करना है।

कृषि क्षेत्र:- कृषि, भारतीय अर्थव्यवस्था के रीढ़ की हड्डी मानी जाती है। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान लगभग 14 प्रतिशत के बराबर है। देश की लगभग 70 प्रतिशत आबादी कृषि क्षेत्र में लगी हुयी है- चाहे कृषक के रूप में चाहे मजदूर के रूप में, चाहे अनाज के परिवहन के रूप में या अन्य गतिविधियों में। यह औद्योगिक क्षेत्र के लिए कच्चे पदार्थ भी उपलब्ध कराती है। भारत में अप्रैल से जून तक का समय कृषि के लिये बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। इस समय रबी कृषि की कटाई तथा साग सब्जियों की बुआई-कटाई तथा जून माह में खरीफ की खेती की शुरूआत आदि। चुंकि इसी समय में कोरोना महामारी देश में तेजी से बढ़ रहा है तो इससे बचने के लिए लॉकडाउन लगाया गया है। अत: लॉकडाउन से कृषि क्षेत्र प्रभावित होगा। कृषकों को गेंहू की कटाई की समस्या मजदूरों की समस्या, अनाज के परिवहन की समस्या, अनाज के बिक्री तथा रख-रखाव की समस्या आदि।

कृषि से सम्बन्धित अन्य क्षेत्र:- आर्थिक समिक्षा 2019-20 के अनुसार जी.वी.ए. (GVA) में कृषि सम्बन्धित (कृषि, वन एवं मत्स्य) क्षेत्र का योगदान 13.9 प्रतिशत है। इसमें कृषि उपजों के साथ दूध, फल-फूल, साग-सब्जी, मॉस, मछली, अण्डा आदि को भी रखा जाता है। इस समय इन सभी खाद्य पदार्थो के मांग तथा पूर्ति दोनों में तेजी से गिरावट आ गयी है।

यहॉ ध्यान देने वाली बात है कि इन वस्तुओं की पूर्ति रूकी हुयी है या पूर्ति बहुत कम हो पा रही है, इसलिये इसकी मांग प्रभावित है। दूसरे, संरक्षण (प्रिजर्व एवं प्रोसेसिंग) के अभाव में यह बहुत दिनों तक रखे नहीं जा सकते हैं, इसलिये यह जहॉ हैं वहॉ खराब भी हो रहे हैं। इस प्रकार लॉकडाउन की वजह से खाद्य श्रृंखला प्रभावित हो रहा है।

अद्यौगिक क्षेत्रः- भारत जैसे देश में कृषि के बाद अद्यौगिक क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण योगदान माना जाता है। आर्थिक समीक्षा 2019-20 के अनुसार "वह जो सभी संसाधनों एवं अवसरों का कुशलतापूर्वक प्रयोग करता है वह सक्षम या उद्यमी है और उसके लिये कुछ भी हासिल करना असम्भव नहीं है- थिरुकुरल (पृष्ठ 38)।" पिछले कुछ वर्षो से भारत सरकार द्वारा अद्यौगिक क्षेत्र के विकास के लिये कई लाभकारी योजनायें प्रारम्भ किया गया है, जैसे स्टार्ट अप इण्डिया अभियान के द्वारा उद्यमिता को बढावा दिया गया।

आर्थिक समीक्षा 2019-20 के अनुसार जी.वी.ए. (GVA) में अद्यौगिक क्षेत्र का योगदान 28.3 प्रतिशत है। इसमें खनन उत्खनन क्षेत्र का योगदान 2.1 प्रतिशत, विनिर्माण क्षेत्र का योगदान 15.4 प्रतिशत, गैस विद्युत जलापुर्ति क्षेत्र का योगदान 2.9 प्रतिशत तथा निर्माण क्षेत्र का योगदान 8.0 प्रतिशत।

इस लॉकडाउन में अद्यौगिक क्षेत्र पूरी तरह से बन्द है, जिससे अद्यौगिक क्षेत्र में उत्पादन बिल्कुल शून्य हो गया है। इससे अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है तथा लोगों के रोजगार पर भी प्रभाव पड़ रहा है।

सेवा क्षेत्रः- भारतीय अर्थव्यवस्था में सेवा क्षेत्र का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। आर्थिक समीक्षा 2019-20 के अनुसार जी.वी.ए. (GVA) में सेवा क्षेत्र का योगदान 57.8 प्रतिशत है। जिसमें व्यापार, होटल, यातायात, संग्रहण, ब्राडकास्टिंग से संबन्धित संचार सेवाओं का योगदान 18.1 प्रतिशत, वित्तीय, रियल एस्टेट एवं व्यवसायिक सेवाओं का योगदान 24.5 प्रतिशत तथा जनप्रशासन, रक्षा एवं अन्य सेवाओं का योगदान 15.2 प्रतिशत है।

विमानन उद्योग औद्योगिक क्षेत्र के साथ सेवा क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण भाग होता है। सेन्टर फॉर एशिया पैसिफिक एविएशन ने आकलन किया है कि कोविड-19 की वजह से भारतीय विमानन उद्योग को इस साल लगभग 4 बिलियन डालर का नुकसान होगा। यहॉ ध्यान देने वाली बात है कि भारत में विमानन उद्योग बहुत दिनों से खराब स्थित में चल रहा था। अब इस लॉकडाउन की वजह से यह उद्योग लगभग समाप्त होने की स्थिति मे आ गया है।

यह भी ध्यान देने की बात है कि विमानन उद्योग सेवा क्षेत्र के अन्य उद्योगों से भी जुड़े होते है, जैसे- पर्यटन उद्योग। पर्यटन उद्योग कोविड-19 की वजह से लॉकडाउन के कारण पूरी तरह से बन्द हो चुका है। यह अनुमान लगाया गया है कि केवल इस दो महीने अर्थात् मार्च और अप्रैल में लगभग 15000 हजार करोड़ रूपये का पर्यटन उद्योग को नुकसान होगा। भारत में गर्मी में पर्यटन बहुत तेजी से बढ़ता है, जबकि इस गर्मी में यह बन्द ही रहेगा। पर्यटन उद्योग मौसमी रोजगार भी उपलब्ध कराता है अर्थात् इस समय कुछ लोग पर्यटन क्षेत्र में रोजगार के लिये जाते हैं और वहॉ कुछ दिन के लिए काम करते हैं। लॉकडाउन की वजह से ऐसे लोगों का रोजगार भी चला गया है। ब्प्प्ए ैव्ब्भ्ड का अनुमान है कि देश में पर्यटन से जुड़े कार्यबल का एक बड़ा हिस्सा बेरोजगारी का सामना कर रहा है।

आटोमोबाइल उद्योग तथा रीयल स्टेट सेक्टर प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र होते हैं। आटोमोबाइल्स सेक्टर पहले से ही यूरो-4 तथा यूरो 6 के चक्कर में फंसा हुआ था। पिछले पूरे साल इसके मांग में कमी दर्ज की गयी थी। इसके साथ यह अनुमान लगाया जा रहा है कि इसमें अभी 2 बिलियन डालर का नुकशान और होगा।

रियल स्टेट सेक्टर में लॉकडाऊन के कारण बहुत गिरावट होगी। यहॉ उल्लेखनीय है कि जब नोटबन्दी लागू किया गया था तो सबसे ज्यादा प्रभावित होने वाला कोई क्षेत्र था तो वह था रियल स्टेट। अब लॉकडाउन की वजह से यह पुनः रूक गया है। इससे वाणिज्यिक और आवासीय सम्पत्ति में कमी आयेगी।

विदेशी व्यापारः- चूँकि कोविड-19 का प्रकोप सभी देशों में है और सभी देशों ने लॉकडाउन लगा कर रखा है। इसलिये सभी देशों में अति आवश्यक वस्तुओं को छोड़कर आयात-निर्यात बन्द हो गया है। विकसित देशों में कच्चे माल और विनिर्माण वस्तुओं की मांग घट गयी है। मूल्य श्रृंखला बाधित हो गयी है क्योंकि, मांग में कमी तथा लोगों की आवाजाही में प्रतिबन्ध लगा हुआ है। किसी देश के आर्थिक विकास में वृद्धि दो क्षेत्रों द्वारा होती है-

1. घरेलू क्षेत्र
2. विदेशी क्षेत्र

भारत के विकास में विदेशी क्षेत्र की तुलना में घरेलू क्षेत्र का योगदान बहुत अधिक है, जबकि चीन, अमेरिका, यूरोपीय देश आदि के विकास में वृद्धि विदेशी क्षेत्र की भूमिका अधिक है। इसलिये इस विश्व लॉकडाउन मे भारत के लिये यह एक अच्छी बात है कि भारत का विकास विदेशी क्षेत्र पर कम निर्भर है।

प्रेषण (बाहर से भारत में पैसा):- हम जानते है कि भारत से लोग विदेशों में जा कर विभिन्न व्यवसायों जैसे- डॉक्टर, इंजीनियर, कामगार, मजदूर इत्यादि के रूप में आय अर्जित करते हैं और स्वदेश में अपने परिवार वालों का पैसे/रुपये भेजते हैं। इस प्रकार के पैसे को प्रेषण या रेमिटेन्स कहते है। यह देश के जी0डी0पी0 में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

चूँकि विदशों में भी लॉकडाउन चल रहा है और वहॉ भी वेतन में कटौती या रोजगार में छटनी चल रही है, तो प्रेषण में कमी आयेगी। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में कोरोना वायरस के कारण प्रेषण मुद्रा में 23 प्रतिशत की कमी आयेगी। यह पिछले वर्ष 83 बिलियन डालर था जो इस वर्ष कम होकर 64 बिलियन डालर हो सकता है।

स्टॉक मार्केटः- यह माना जाता है कि किसी देश के अर्थव्यवस्था में उतार-चढ़ाव देखना है तो वहॉ के स्टॉक मार्केट को देखना चाहिये। क्योंकि, यह सबसे संवेदनशील या सेंसेटिव क्षेत्र होता है, जिसमें प्रतिदिन उतार-चढ़ाव होते रहता है।

कोरोना वायरस के कारण लॉकडाऊन से प्रभावित होने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण देशों के स्टॉक मार्केट में गिरावट देखा जा सकता है (01 फरवरी, 2020 से 09 अप्रैल, 2020 के बीच के ऑकड़ों में गिरावट, डालर के रूप में)- (1) चीन- 3 प्रतिशत, (2) संयुक्त राज्य अमेरिका- 14 प्रतिशत, (3) यूरोप- 20 प्रतिशत, (4) भारत- 26 प्रतिशत।

यहॉ यह देखने वाली बात है कि कोरोना वायरस की उत्पत्ति चीन में हुयी और वहॉ के स्टाक मार्केट में सबसे कम गिरावट हुयी है। जबकि, भारत सबसे अधिक प्रभावित हुआ है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था बहुत ही संवेदनशील है जबकि चीन की अर्थव्यवस्था मजबूत है तथा वह कोरोना वायरस के कारण लॉकडाऊन से अपनी अर्थव्यवस्था को बचाने में काफी सजग भी रहा है।

रोजगार पर प्रभावः- यह देखा जा रहा है कि कोरोना वायरस की महामारी के कारण किये गये लॉकडाउन से रोजगार खत्म हो रहे हैं जिससे लोगों को भुखमरी का सामना करना पड़ रहा है। लॉकडाउन की वजह से देश की अर्थव्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हो रही है। इसी बीच माननीय प्रधानमंत्री जी तथा अन्य राज्यों के मुख्यमंत्री ने यह घोषणा की थी कि कोई भी उद्यमी या व्यक्ति अपने यहॉ काम करने वाले लोगों का ना तो वेतन काटे और ना ही उन्हें रोजगार से निकाले। परन्तु, सरकार ने स्वयं अपने कर्मचारियों के वेतन में कटौती की तथा उनके डी0ए0 व अन्य भत्ते अगले एक से डेढ़ वर्ष के लिये रोक दिया। यह अर्थव्यवस्था के खराब स्थित का सूचक है। सरकार के इस कार्य से निजी क्षेत्र के उद्यमी तथा अन्य व्यक्ति भी अपने कर्मचरियों के वेतन में कटौती करने लगे हैं तथा कई उद्यमी तो अपने यहॉ रोजगार में छटनी भी करने लगे हैं। चूँकि, सरकार जन कल्याण के लिये कार्य करती है, जबकि निजी क्षेत्र अपने लाभ के लिये कार्य करते हैं। जब सरकार ने ही ऐसा कार्य कर दिया तो निजी क्षेत्र क्यों न करेंगे। सी.एम.आई.ई. (CMIE- Centre For Monitoring Indian Economy) के अनुसार केवल अप्रैल महीने में 27 मिलियन या 2 करोड़ 70 लाख 20-30 वर्ष के युवा लॉकडाउन की वजह से अपनी नौकरी खो चुके है या बेरोजगार हो गये।

इस महामारी की स्थिति में यदि सरकार सभी लोगों को भुखमरी से बचाना चाहती है तो अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करना होगा। अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में विशेष आर्थिक पैकेज तथा निगरानी की जरूरत होगी। यहॉ पर सरकार द्वारा एक गलती हो गयी है कि प्रवासी मजदूरों को अपने अपने राज्यों में पहुँचाया जा रहा है। अब यदि उद्योगों को खोला जायेगा, तो वहॉ मजदूरों व कामगारों की कमी होगी। क्योंकि, जो मजदूर अपने घर को चले गये हैं, वह इतना डर गये हैं कि अगले कई महीनो तक उद्योगों की तरफ जायेगें नहीं। यहॉ सरकार को चाहिये था कि उद्योगपतियों से कहा जाय कि वह अपने मजदूरों के लिए क्वारंटीन व्यवस्था करें और प्रतिदिन जॉच कर अपने यहॉ काम पर लगायें। इससे उद्योगों में उत्पादन होता रहेगा तथा मजदूरों को आय भी प्राप्त होगी और उनका पलायन भी नहीं होगा।

संदर्भ ग्रन्थः-

- पुरी, वी0 के0 एवं मिश्र, एस0 के0 (2014), भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाऊस, "रामदूत" डॉ. भालेराव मार्ग गिरगाँव (केलेवाडी), मुम्बई-400004।
- लाल, एस0 एन0 एवं लाल, एस0 के0 भारतीय अर्थव्यवस्थाः सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।
- आर्थिक समीक्षा 2019-20, भारत सरकार, वित्त मंत्रालय, आर्थिक कार्य विभाग, आर्थिक प्रभाग, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
- भारत 2020, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
- Kapila, Uma (2019-20), Indian economy since independence, Academic Foundation, New Delhi.
- Kapila, Uma (2019-20), Indian economy: Performance and policies, Academic Foundation, New Delhi.
- COVID-19 and the world of work: Impact and policy responses (18 March, 2020). ILO Monitor 1'st Edition. (International Labour Organization).
- World economic outlook, April 2020: The great lockdown.(International Monetary Fund).
- Trade set to plunge as COVID-19 Pandemic upends global economy. Press Release, WTO (2020, April 8).

वेबसाइट्स (Websites) :

- www.cmie.com
- economicoutlook.cmie.com
- www.epw.in
- www.cii.in
- www.assocham.org
- www.financialexpress.com
- www.indiabudget.nic.in
- www.eepcindia.org
- www.indianinfra.com
- www.ilo.org
- www.imf.org
- www.wto.org

योगः कोरोना काल के तनाव को दूर करने का चिकित्सकीय वरदान

डॉ० सीमा चौहान

प्रवक्ता, योग विभाग, डी०एस०बी० परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

शोध सारांश

पृष्ठभूमि- तनाव हमेशा से ही मनुष्य की चिंता का एक महत्वपूर्ण विषय रहा है। कोरोना महामारी की स्थिति ने इस संवेदनशील विषय को नए सिरे से सामने लाया है।

उद्देश्य- इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य कोरोना काल में उत्पन्न तनाव को दूर करने में योग करने की भूमिका का अध्ययन करना है।

विधि- रेवाड़ी जिले के विभिन्न आयु वर्गों के 200 लोगों के साथ साक्षात्कार सर्वेक्षण किया, ताकि उनके तनाव के स्तर को समझा जा सकें। आंकड़ों का विश्लेषण मात्रात्मक तथा गुणात्मक तरीके के माध्यम से किया गया।

परिणाम- 80 फीसदी पुरुषों का कहना है कि वह औसतन पूरे हफ्ते में 4 या उससे ज्यादा दिन तनावग्रस्त महसूस करते हैं। 70 फीसदी पुरुषों ने अपने तनाव के स्तर को 5 में से 3.5 अंक दिया। 60 फीसदी महिलाएं इसलिए तनाव महसूस करती हैं क्योंकि वो अपने परिवार को ठीक से समय नही दे पाती। 95 फीसदी लोगों ने यह भी कहा कि काम करने के लंबे घंटों के वजह से उन्हें तनाव होता है।

परिचयः दिसंबर 2019 से पहले की दुनिया तथा उसके बाद की तुलना में काफी अंतर आ गया है। भागती दौड़ती जिंदगी में अचानक ऐसे व्यवधान लगे कि लोगों में तनाव उत्पन्न हो गया। हर उम्र के व्यक्ति दिन-रात चिंता, डर, अकेलेपन तथा अनिश्चिता से जूझ रहे हैं। तनाव का असर व्यक्ति के शरीर, दिमाग, भावनाओं तथा व्यवहार पर पड़ रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने चीन में पैदा हुई कोरोना वायरस को महामारी घोषित कर दिया। कोरोना वायरस का चीन के वुहान शहर से है जो व्यक्ति के फेफड़ों को ज्यादा नुकसान पहुँचाता है। यह वायरस एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में बहुत में तेजी से फैलता है। इस बीमारी से अब तक लाखों व्यक्तियों की मौत हो चुकी है तथा करोड़ों लोग संक्रमित हो रहे है।

भारत सरकार ने इस वायरस से लोगों को बचाने के लिए कई दिशा-निर्देश जारी किए गए। जिसमें लॉक डाउन, हाथों की साफ सफाई, मास्क का प्रयोग आदि मुख्य थे। इस लॉक डाउन में जहाँ प्रकृति अपने पुराने रूप में लौटी, वहीं सब कुछ बंद होने से हर व्यक्ति परेशान हो गया। गली की दुकान से लेकर मॉल बंद हो गए। उद्योग-धंधे बंद हो गए, जिस कारण लोगों के सामने खाने - पीने की दिक्कत आई। अपने घर जाने के लिए लाखों मजदूर तथा छात्र पैदल ही चल पड़े। हर जगह विरानी, उदासी की स्थिति थी। हांलाकि भारत सरकार, राज्य सरकारों तथा सम्पन्न व्यक्तियों ने यथा संभव सहायता भी की। जो लॉक डाउन शुरूआत में खुशनुमा लग रहा था, वही बाद में एक सजा बन गया। तीन-चार महीनों के लॉक डाउन के बाद धीरे-धीरे बाजार खुलने लगे परन्तु ग्राहक गायब रहें, विद्यालयों से छात्र गायब रहें। हर तरफ भयावह मंजर रहा।

इस बीमारी के काल के लोगों में तनाव आना शुरू हो गया। दिन भर लोगों की मौत की खबर सुनकर लोगों को ऐसा लगता था कि उनका भी दिन आने वाला है। लोगों में तनाव की तीन वजह पाई गई-

1. कोरोना से संक्रमित होने का डर
2. नौकरी तथा कारोबार आदि की अनिश्चिता
3. अकेलापन

इस तनाव का हर किसी पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। मानसिक तनाव से लोगों को बाहर निकलना ही होगा। वरना यह तनाव लोगों को अंतहीन दुख के सफर पर ले जाएगा। इस तनाव के कारण लोगों में घबराहट होती है तथा वह स्वयं को ऊर्जाहीन महसूस करता है। तनाव के कारण सिरदर्द, रोग प्रतिरोधक क्षमता का कम होना, थकान तथा रक्त चाप में उतार-चढ़ाव होने लगता है। इस तनाव के कारण व्यक्ति में चिंता, गुस्सा, चिड़चिड़ापन, उदासी आने लगती है। हर वक्त बुरे ख्याल, कल की चिंता, मौत का डर सताने लगता है।

योग लोगों के तनाव को दूर करने में सहायक है। योग लोगों के कोर्टिसोल तथा एड्रेनलिन हॉर्मोन को कम करने में सहायक है। योग एक प्रभावी प्रक्रिया है जो शरीर के कचरे को बाहर निकाल के फेंक देती है। तथा शरीर को कुशल बनाता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि से तनाव को दूर किया जा सकता है। योग व्यक्ति की सर्वश्रेष्ठ, संवेदनात्मक, सर्वोच्य क्रिया है जो हर क्षेत्र को समझने के लिए नई दृष्टि प्रदान करता है। योग अनुभव के नए क्षेत्र को खोलता है। योग के विभिन्न आसन जैसे शवासन, योग-निद्रा, सूर्य नमस्कार, शीतलासन, सर्वांगासन, हलासन आदि तनाव को

दूर करने में मुख्य भूमिका निभाते हैं। आसन व्यक्ति के स्वास्थ्य में सुधार करता है। शरीर के दर्द को दूर रखने में सहायक है, थकान को दूर करता है, शारीरिक आकार को बनाए रखने तथा सुधारने के लिए, प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाने में सहायक है। तनाव का सबसे बुरा असर हमारे शरीर पर पड़ता है। ऐसे में हर दिन सिर्फ 5 मिनट के योग से ना सिर्फ आपका मन शांत होगा बल्कि टेंशन भी दूर होगी और शरीर और दिमाग भी फिट रहेगा। शरीर को प्रभावित करने वाली प्रत्येक वस्तु या प्रक्रिया का प्रभाव मन पर अवश्य पड़ता है। तनाव अगर लंबे समय तक बना रहे तो व्यक्ति में कई तरह की मानसिक बीमारियां जन्म ले लेती हैं। लंबे समय तक तनाव का निरंतर जारी रहना लोगों में आत्महत्या, एंग्जायटी, चिंता विकार और क्रोनिक डिप्रेशन को बढ़ावा दे सकता है।

तनाव के लक्षण

- नींद ना आना
- रक्तचाप बढ़ना
- थकान
- अपचन
- बिमारी
- दिल की बिमारी
- निराशा
- आत्महत्या करने की सोचना
- हताश मन
- गुस्सा
- चुप्पी
- चिड़चिड़ापन

Doing What Matters in Times of Stress: An Illustrated Guide, W.H.O., Page No. 13

तनाव को दूर करने के उपाए-

1. ध्यान तथा योग
2. जीवनशैली के बदलाव
3. सकारात्मक सोच
4. उचित निद्रा
5. लोगों से मिलना

6. संगीत
7. नशे से दूरी
8. प्रकृति की खूबसूरती का आनंद
9. रचनात्मक कार्य करना
10. चिकित्सक से संपर्क करना

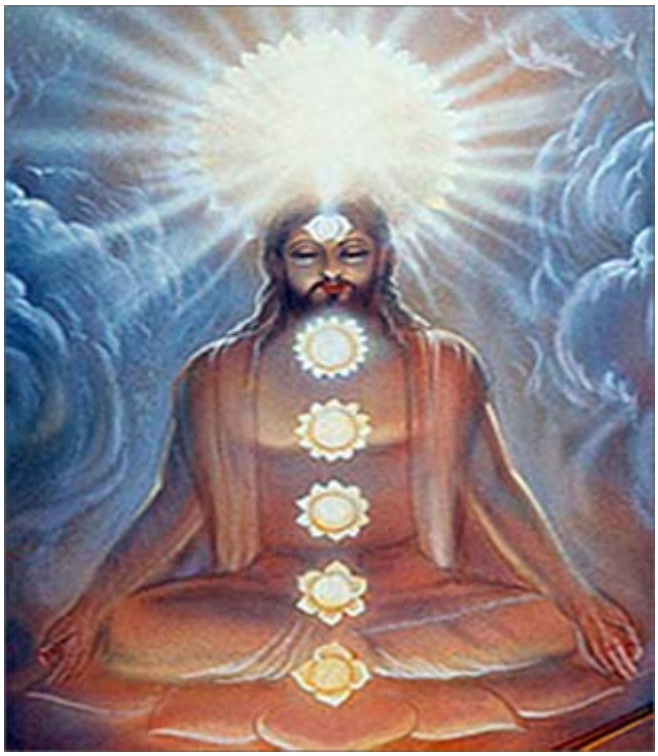

कोरोना से बचाव के लिए उपाए

- कोरोना से बचाव के लिए सामाजिक दूरी रखना जरूरी है। व्यक्तिगत स्वच्छता और शारीरिक दूरी बनाए रखें।
- हाथों को बार-बार धोना है और सफाई का पूरा ध्यान रखना है।
- चेहरे और आंखों पर हाथों से छूना नहीं है। यदि आपकी चेहरे को बार-बार छूने की आदत है तो इसे तुरंत बदल डालें।
- छींकते और खांसते समय अपनी नाक और मुंह को रूमाल या टिशू से ढंकें।
- उपयोग किए गए टिशू को उपयोग के तुरंत बाद बंद डिब्बे में फेंकें।
- लॉकडाउन का ईमानदारी से पालन करें।
- अपने इम्यून सिस्टम को मजबूत बनाएं जिसके लिए पौष्टिक आहार व योग को अपनी दिनचर्या में शामिल करें।
- दिनभर में कम से कम 1 बार हल्दी वाले दूध का सेवन जरूर करें।
- गुनगुने पानी पीने की आदत डालें।
- अपने तापमान और श्वसन लक्षणों की जांच नियमित रूप से करें।

योग मनुष्य को पवित्र बनाता है, निर्मल बनाता है, स्वस्थ बनाता है, कोरोना संक्रमण के दौर में योग रामबाण औषधि की तरह है। यजुर्वेद में की गयी पवित्रता- निर्मलता की यह कामना हर योगी के लिए काम्य है कि "देवजन मुझे पवित्र करें, मन में सुसंगत बुद्धि मुझे पवित्र करे, विश्व के सभी प्राणी मुझे पवित्र करें, अग्नि मुझे पवित्र करें।" योग के पथ पर अविराम गति से वही साधक आगे बढ़ सकता है, जो चित्त की पवित्रता एवं निर्मलता के प्रति पूर्ण जागरूक हो। निर्मल चित्त वाला व्यक्ति ही योग की गहराई तक पहुंच सकता है।

स्वामी विवेकानंद ने कहा हैं कि "निर्मल हृदय ही सत्य के प्रतिबिम्ब के लिए सर्वोत्तम दर्पण है। इसलिए सारी साधना हृदय को निर्मल करने के लिए ही है। जब वह निर्मल हो जाता है तो सारे सत्य उसी क्षण उसमें प्रतिबिम्बित हो जाते हैं। योग के बिना आध्यात्मिक शक्ति नहीं आ सकती।" आज विश्व में जो कोरोना महामारी, आतंकवाद, हिंसा, युद्ध, साम्प्रदायिक विद्वेष की ज्वलंत समस्याएं खड़ी है, उसका कारण भी योग का अभाव ही है। जब मानव अपनी आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक समस्याओं को सुलझाने के लिए अथवा उनका समाधान पाने के लिए योग का आश्रय लेता है तो वह योग से जुड़ता है, संबंध बनाता है, जीवन में उतारने का प्रयास करता है। किन्तु जब उसके बारे में कुछ जानने लगता है, जानकर क्रिया की प्रक्रिया में चरण बढ़ाता

है तो वह प्रयोग की सीमा में पहुंच जाता है। इसी प्रयोग की भूमिका को जीवन का अभिन्न अंग बनाकर हम मानवता को एक नयी शक्ल दे सकते है।

संबंधित साहित्य की समीक्षा

आई आई टी – दिल्ली की स्टडी: लॉकडाउन के दौरान योग करने वालों पर तनाव और डिप्रेशन का असर कम रहा।

यह स्टडी लॉकडाउन के दौरान 668 लोगों पर 26 अप्रैल से 8 जून तक की गई। इसमें शामिल लोगों को तीन हिस्सों में बांटा गया। पहला- योग करने वाले, दूसरे आध्यात्म की प्रैक्टिस करने वाले और तीसरे योग ना करने वाले लोग। पाया गया कि लंबे समय से योग करने वाले लोगों में तनाव कम था।

आईआईटी दिल्ली में नैशनल रिसोर्स सेंटर फॉर वैल्यू एजुकेशन इन इंजीनियरिंग (एनआरसीवीईई) के वैज्ञानिकों ने यह रिसर्च की है। तनाव से जुड़ी दिक्कतों और कोरोना के दौरान अच्छी सेहत के लिए योग के प्रभाव पर की गई यह स्टडी जर्नल PLOS ONE में हाल ही में पब्लिश हुई है। इस रिसर्च टीम में शामिल डॉ. पूजा साहनी ने बताया कि कोरोना के दौरान तनाव कम करने के लिए योग को कारगर बताया जा रहा था। हालांकि, इसके कोई प्रायोगिक सुबूत नहीं थे। हमारी स्टडी में हमने योग के प्रभाव की मैपिंग की है। सुबूत बताते हैं कि योग तनाव दूर करने के लिए और अच्छी सेहत के लिए कारगर रहा।

योग कोरोना संक्रमण की वजह से क्वारंटीन में रह रहे लोगों को तनाव से बचा रहा है। अमेरिका, जापान, जर्मनी समेत छह देशों में हुई रिसर्च से एक बार फिर इसकी पुष्टि हुई है। भारत में हमेशा तनाव से बचने के लिए योग का सहारा लेने की सलाह दी जाती रही है। कोरोना वायरस की वजह से दुनिया भर में लोग तनाव से जूझ रहे हैं। एक अध्ययन के मुताबिक, अमेरिका में एक तिहाई लोग इसकी चपेट में हैं तो वहीं भारत में भी बड़ी संख्या में लोग इसका शिकार हैं। ऐसे में यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ ऑस्ट्रेलिया की यह रिसर्च काफी मायने रखती है। शोधकर्ताओं ने अमेरिका, भारत, जापान, चीन, जर्मनी और स्वीडन में 1080 प्रतिभागियों पर यह अध्ययन किया गया।

अध्ययनकर्ता जैसिंटा ब्रिंसली कहती हैं कि आइसोलेशन के दौर में लोग अपनों के साथ ज्यादा समय नहीं बिता पाते। वर्क फ्रॉम होम की वजह से दोस्तों-प्रतिभागियों के साथ फिजिकली संपर्क खत्म हो जाता है। किसी तरह की समस्या सामने आने पर वह खुद को परेशान महसूस करते हैं और तनाव में चले जाते हैं।

ऐसे में अगर योग का सहारा लें तो काफी फायदा होगा। ब्रिटिश जर्नल ऑफ स्पोर्ट्स मेडिसिन में प्रकाशित इस रिसर्च के मुताबिक, लगातार योग करने से लोगों को अवसाद, चिंता, मानसिक तनाव में काफी राहत मिली। किसी भी तरह का योग करने से उनमें शारीरिक सक्रियता बढ़ी और अच्छे विचार सामने आए। इससे उनके स्वास्थ्य में भी काफी सुधार देखा गया।

साहित्य की समीक्षा के बाद शोधकर्ता ने स्वयं देखना चाहा कि क्या योग का कोरोना से उत्पन्न तनाव को कम करने में भूमिका सकारात्मक है या नहीं।

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोध अध्ययन का मुख्य उद्देश्य "कोरोना काल में उत्पन्न तनाव को दूर करने में योग करने की भूमिका" का अध्ययन करना था।

परिकल्पना

- योग करने से व्यक्तियों के तनाव स्तर पर सार्थक असर पड़ता हैं।
- योग करने से पुरुषों के तनाव स्तर पर सार्थक असर पड़ता हैं।
- योग करने से महिलाओं के तनाव स्तर पर सार्थक असर पड़ता हैं।

अध्ययन की सीमाएं

- अध्ययन रेवाड़ी जिले के 200 व्यक्तियों के तनाव स्तर पर योग अभ्यासों के प्रभाव का किया जाएगा।

न्यादर्श चयन तथा विधि

शोधकर्ता ने रेवाड़ी जिले के विभिन्न स्थानों पर रहने वाले 200 व्यक्तियों को यादृच्छिक रूप से चुना।

शोध उपकरण

स्वनिर्मित प्रश्नावली के माध्यम से उनके तनाव को जानने का प्रयास किया।

सांख्यिकी उपकरण

माध्य, प्रामाणिक विचलन, ग्राफ

परिणाम:-

परिकल्पना का परिणाम इस प्रकार रहा:-

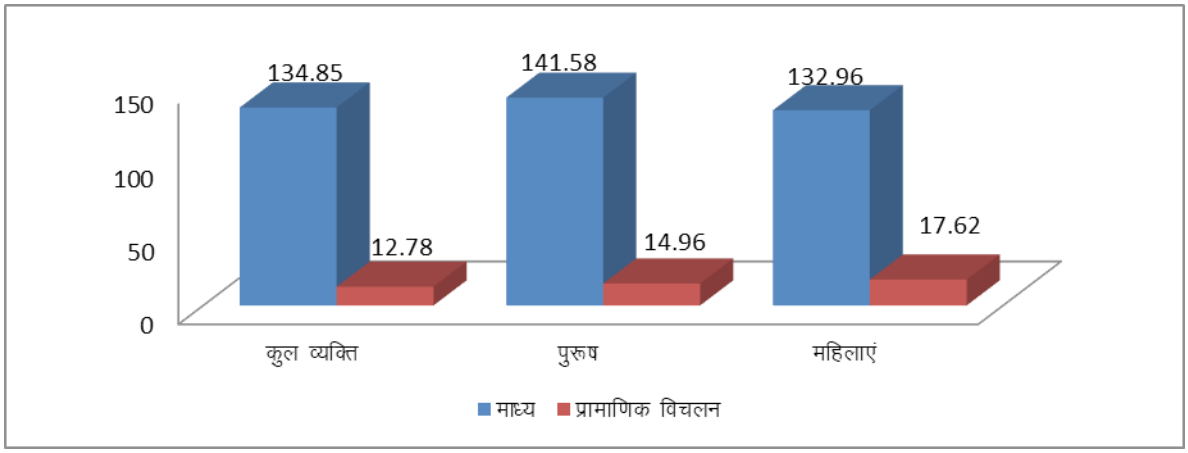

क्रम सं.		माध्य	प्रामाणिक विचलन	परिणाम
1	कुल व्यक्ति	134.85	12.78	तनाव पाया गया।
2	पुरुष	141.58	14.96	तनाव पाया गया।
3	महिला	132.96	17.62	कम तनाव पाया गया।

ज्यादातर व्यक्तियों ने माना कि वो तनाव से गुजर रहे है। पुरुषों में महिलाओं की अपेक्षा अधिक तनाव पाया गया। व्यक्तियों ने माना कि योग अभ्यास तनाव स्तर में सुधार करता है।

निष्कर्ष

इस अध्ययन का उद्देश्य था कोरोना काल में उत्पन्न तनाव को दूर करने में योग करने की भूमिका का अध्ययन करना था। लंबे समय तक चलने वाली इस महामारी, नौकरी जाने के डर तथा लॉक डाउन आदि ने लोगों के तनाव स्तर में वृद्धि की। तनाव को कम करने में योग महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। योग हर आयु वर्ग के व्यक्तियों के तनाव स्तर में सुधार में करता है। योग मनुष्य के मन को एकाग्रचित करता है। पुरुषों में तनाव की स्थिति ज्यादा पाई गई। महिलाओं में तनाव अपेक्षाकृत कम पाया गया। लोगों में कई प्रकार के तनाव की पहचान की गई। ऐसे कारणों का पता चला कि जिससे तनाव, चिंता और अवसाद वाले विचारों को बढ़ाने में योगदान देते है। योग के पश्चात् लोगों में तनाव के स्तर में कमी पाई गई। पुरुषों में तनाव का मुख्य कारण नौकरी का चले जाना तथा वेतन की कमी का होना रहा। महिलाओं में तनाव का कारण बच्चों की ऑन लाईन शिक्षा, परिवार के सदस्यों के द्वारा बार बार की फरमाईश रही। परन्तु महिलाओं ने अपने तनाव को परिवार पर जाहिर नहीं होने दिया। कामकाजी महिलाओं के लिए अवश्य ही ये समय तनावपूर्ण रहा। वर्क फ्रॉम होम तथा परिवार की दिक्कतों के कारण वो तनावग्रस्त रही। सभी व्यक्तियों का माना रहा कि योग एक प्रभावी अभ्यास है जो तनाव को दूर करता है।

संदर्भ सूची

- Berlin Sarah (2008), The effect of Yoga in the classroom. Education Studies . University of California, San Diego. P. 1-41
- Bhavani P., Varma G.P.S., D. Chandra Sekhar, Latha Hema, Raju D. P. Ramesh (2016), Effect of Yoga and Meditation on Engineering College Students. Journal of Chemical and Pharmaceutical Sciences. Special Issue 10, P. 22-24
- Joshi K. (2003). Philosophy and Yoga of Sri Aurobindo and Other Essays. New Delhi: GDMK Publisher Distributors
- Murugesan, R. Goyindarajulu, N. Bera T.K. (2000), Effect of Selected Yogic Practices on the Management of Hypertension. Indian Journal of Physiology and Pharmacology. Vol. 44 No. 2, P. 207-210.
- Nangia Diya & Malhotra Rekha(2012), Yoga cognition and mental Health. Journal of the Indian Academy of Applied Psychology. Vol. 38 Issue 2, P. 262-269.
- www.psycnet.apa.org
- www.positivejealth.com
- www.ncbi.nlm.nih.gov
- www.researchgate.com
- www.dstress.com
- www.stressfocus.com

संघर्ष उपरांत नेपाल में महिलाएं (पूर्व माओवादी महिलाओं के सन्दर्भ में)

हरीश कुमार यादव

राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांशः-

मीया ब्लूम के अनुसार किसी भी महिला को संघर्ष की तरफ जाने के लिए मुख्यतः पांच तत्व उत्प्रेरक का कार्य करते हैं मुक्ति, सम्बन्ध, सम्मान, प्रतिशोध , एवं बलात्कार नेपाल में नागरिक माओवादी गुरिल्ला युद्ध में राज्य के विरूद्ध हथियार उठाने वाली प्रत्येक महिला के पास उपरोक्त तत्वों में से कोई एक तत्व उपस्थित था। पितृसतात्मक सामाजिक संरचना के मध्य यह महिलाएं सामंतवाद के अत्याचारों के साथ-साथ लैंगिकता आधारित असमानता एवं दुर्व्यवहार से भी पीडिघ्त थीं। ऐसे में माओवादी संगठन द्वारा अपनी नीतियों में महिला अधिकारों एवं समानता के आश्वासन ने इनके संगठन के कार्यों एवं उनकी नीतियों के प्रति निष्ठा उत्पन्न की और यह महिलाएं राज्य के विरूद्ध सशस्त्र हिंसक संघर्ष में सहभागी बनी। संघर्ष के दौरान जितनी भी महिलाओं के साथ यौन हिंसा की घटनाएं हुई उनमें से अधिकांश ऐसे समुदाय से सम्बन्ध रखती थीं जो हर प्रकार से हाशिए पर पड़ा था। वह महिलाएं जोकि माओवादी संघर्ष का हिस्सा थीं, खासतौर पर सुरक्षाबलों के निशाने पर रहती थीं। ऐसी महिलाओं के प्रति क्रूर यौन हिंसा का प्रयोग किया जाता था। सन् 2006 में व्यापक शांति समझौते के साथ इस संघर्ष का अंत हुआ किंतु संघर्ष पश्चात् शांति निर्माण की प्रक्रिया में इन महिलाओं को परिधि पर ढकेल दिया गया। पुर्नवास कार्यक्रमों में संघर्ष की सक्रिया कार्यकर्ता महिलाओं को परंपरागत लैंगिकता आधारित भूमिका तक सीमित कर दिया गया। ऐसे में अपने अधिकारो एंव समानता की आशा में सशस्त्र संघर्ष का अंग रही महिलाएं संघर्षोपरांत भी संघर्ष से जुड़े दंश झेल रही हैं।

प्रस्तुत आलेख में नेपाल के सशस्त्र हिंसक संघर्ष के मूल कारण, राज्य के विरूद्ध माओवादी संघर्ष का हिस्सा रही महिलाओं की संघर्ष के पूर्व, संघर्ष के दौरान एवं संघर्ष के पश्चात् प्रस्थित का विस्तृत विश्लेषण किया गया है।

मुख्य बिन्दू- सशस्त्र-संघर्ष, हिंसा, बलात्कार, यौन-हिंसा, महिलाएं, लैंगिकता।

इसे शायद विडंबना ही माना जाएगा कि स्त्री और पुरूष दोनों ही समाज का अंग होते हैं किन्तु फिर भी दोनों वास्तव में समानता के स्तर पर नहीं होते हैं। महिलाओं को प्रत्येक स्तर पर अपने अस्तित्व के लिए लड़ना पड़ता है। ऐतिहासिक तौर पर यह दृश्य पूरी दुनिया विशेषकर एशियाई देशों में भी दिखता है और नेपाल भी इसका अपवाद नहीं है। लंबे समय तक राजशाही तथा सन् 2006 तक हिन्दू राष्ट्र रहे नेपाल में पितृसत्ता की जड़े काफी गहरी थीं। जीवन के प्रत्येक स्तर पर महिलाओं को पुरूष के सहयोगी के स्थान पर उसके अधीनस्थ कर्मचारी के रूप में काम करना पड़ता था। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि तत्कालिन समय का नेपाल अपनी मानसिकता एवं कृत्यों में पितृसत्तामक समाज के मूल्यों पर आधारित था जिसके सामाजिक मूल्य एवं सिद्धांत का पलड़ा एकतरफा पुरूष हित में झुका था। महिलाओं को किसी भी प्रकार के विशिष्ट अधिकार तो दूर मूलभूत अधिकारों यथा स्वास्थ्य, शिक्षा, यहाँ तक की संपत्ति के अधिकारों से भी वंचित रखा गया था। पितृसत्ता के दायरों के भीतर नेपाल की महिलाएं व्यवस्थित संरचनात्मक असमानता आधारित लैंगिक भेदभाव का शिकार थीं। विशेषतौर से दूरस्थ क्षेत्र की महिलाएं, यह महिलाएं पितृसत्ता के मूल्यों पर आधारित सामंतवादी व्यवस्था के शोषण का शिकार थीं जिसमें की स्त्री देह का शोषण भी शामिल था। एक महिला के जीवन पर उनके पिता, पति एवं उसके बेटे का नियंत्रण उसके स्वयं से ज्यादा होता था। विवाह को महिला के लिए अत्यंत आवश्यक माना जाता था। आज भी नेपाली समाज में जाति से बाहर विवाह को सहजता से स्वीकार नहीं किया जाता है। नेपाली समाज में महिला के आर्थिक योगदान को प्रायः अनदेखा कर दिया जाता था क्योंकि पारंपारिक तौर पर उनका स्थान हमेशा पुरूषों से नीचा रखा गया था।

सशस्त्र नागरिक संघर्ष और महिलाएंः-

नेपाल में दशक भर लंबे चले सशस्त्र हिंसक नेपाली माओवादी संघर्ष का अंत एक व्याप्त शांति समझौते के साथ 2006 में हुआ। औपचारिक तौर पर भले ही यह संघर्ष 1996 से प्रारंभ हुआ किन्तु इस सशस्त्र आन्दोलन की जड़े नेपाल के सामाजिक और आर्थिक भेदभाव एवं समस्याओं के रूप में काफी गहरायी में छिपी थीं। एक छोटे से विद्रोह के रूप में प्रारम्भ हुआ यह संघर्ष समय के साथ व्याप्क हो गया। अगर बात हम इस नागरिक संघर्ष से महिलाओं के जुड़ने की करें तो नेपाली समाज की इन महिलाओं के चारों तरफ एक प्रकार की संरचनात्मक हिंसा का आवरण था जहाँ इन्हें घरेलू हिंसा, सामाजिक हिंसा आदि का सामना करना पड़ता था साथ ही साथ लैंगिकता आधारित भेदभाव एवं शोषण ने इन महिलाओं के अंदर गहरी निराशा और अवसाद को जन्म दिया। ऐसे महौल के बीच माओवादियों के 40 सूत्रीय मांगपत्र ने वृहद स्तर पर महिलाओं में आशा एवं उत्साह का संचार किया। अपनी मांगों में माओवादियों द्वारा सभी प्रकार की असमानता को प्रत्येक स्तर पर खत्म करने की बात की गई जिसमें महिलाओं के साथ होने वाले लैंगिक असमानता को समाप्त कर

प्रत्येक स्तर पर उनको समानता का अवसर प्रदान करने की बात कही गई थी। पितृसत्ता के शोषण, जातिगत व्यवहार की समाप्ति, बेटियों को भी पैतृक संपत्ति में हिस्सेदारी जैसी मांगों ने महिलाओं को इन आन्दोलनों में भागीदारी करने के लिए प्रेरित किया। इसके अतिरिक्त वेश्यावृत्ति को खत्म करना तथा मानव तस्करी पर सख्तीपूर्ण रोक की व्यवस्था, विवाह, गर्भपात और तलाक जैसे विषयों में आपसी सहमति उसमें भी महिलाओं को तरजीह देने की व्यवस्था ने माओवादियों की लैंगिक संवेदनशीलता और प्रगतिशील सोच को महिलाओं के समक्ष रखा। इसी क्रम में माओवादियों द्वारा दूरस्थ इलाकों में ''पूर्ण शराबबंदी'' का आन्दोलन चलाया गया जिससे इन क्षेत्रों की महिलाओं की सहानुभूति माओवादियों के पक्ष में गई क्योंकि शराब की वजह से होने वाली हिंसा एवं दुर्व्यवहार का खामियाजा प्रायः महिलाओं को भुगतना पड़ता था। माओवादियों द्वारा अपने कृत्यों एवं विचारों के द्वारा नेपाली समाज में व्याप्त लैंगिक असमानता एवं लैंगिकता आधारित भेदभाव के फलस्वरूप बनी खाली जगह को पाटने का प्रयोग महिलाओं को अपने संघर्ष आन्दोलन से ज्यादा से ज्यादा जोड़ कर इसे जनांदोलन का रूप देने की रणनीति थी जिसमें की वह काफी हद तक सफल भी रहे। पितृसत्ता के दमन की शिकार महिलाएं जोकि इस संकीर्ण समाज से बाहर आने की आशा रखती थीं, ऐसी महिलाओं के लिए माओवादी आंदोलन एक प्रकार का 'मुक्तिद्वार' था। तमाम दुश्वारियों के बावजूद उन्हें इस बात की खुशी थी कि वे पुरूषों के समकक्ष रहकर लड़ाई में अपना योगदान दे रही हैं। नेपाल के नागरिक संघर्ष में राज्य के विरूद्ध हथियार उठाने वाली महिलाओं के पास मौजूद वजहों को संक्षेप में कहने के लिए मीया ब्लूम के द्वारा रेखांकित किए गऐ उन पाँच तत्वों को उल्लेख आवश्यक है जोकि प्रायः किसी भी महिला को संघर्ष की तरफ ले जाने के लिए उत्प्रेरक का कार्य करती हैं। उनके अनुसार मुक्ति, सम्मान, सम्बन्ध, प्रतिशोध एवं बलात्कार जैसे तत्वों का समावेश हर उस संघर्ष में शामिल महिलाओं की पृष्ठभूमि में होता है जिसने राज्य के विरूद्ध हथियार उठाया था। संघर्ष में भाग लेने वाली अधिकांश महिलाएं दलित थीं जोकि अपने स्थानीय समाज की सामंती व्यवस्था में शोषण का शिकार थीं, वहीं उच्च वर्ग की महिलाओं ने जातिगत रूढ़ियों, सामाजिक बंधनों को तोड़ने के लिए इस आन्दोलन में भाग लिया। अधिकांश मामलों में अध्ययन के अनुसार इन महिलाओं ने असमानता, अवसरों की कमी, सामाजिक-सांस्कृतिक भेदभाव, गरीबी और शोषण से तंग आकर संगठन में भाग लिया। प्रमुख महिला माओवादी नेता हीसीला यामी के अनुसार इस संघर्ष में हर तीसरा गुरिल्ला योद्धा महिला थी एवं वे नये क्षेत्र जहाँ माओवादी सक्रिय होने की कोशिश कर रहे थे हर दसवाँ बागी महिला थी। नेपाल के सशस्त्र माओवादी संघर्ष में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी, उनके द्वारा निर्मित संगठन, उनका नेतृत्व इन सब ने लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था विशेषकर मीडिया का। सामान्यतः यह धारणा सशस्त्र संगठनों की मानसिकता पर हावी रहती है कि महिलाएं ऐसे संगठनों पर बोझ होती हैं किन्तु नेपाल के नागरिक संघर्ष में महिलाओं द्वारा दिए गये सक्रिय सशस्त्र योगदान ने नेपाली समाज में महिलाओं की परंपरागत लैंगिक भूमिका को चुनौती दी थी।

माओवादी महिलाएं एवं हिंसाः- नेपाल में नागरिक संघर्ष के सालों में पश्चिमी क्षेत्र में स्थित जिलों खासकर रोलपा, रूकुम एवं गोरखा में कोई पुरूष दिखाई नहीं देता था। नेपाल का यह क्षेत्र माओवादी गतिविधियों का किन्द्र माना जाता था। जिसके कारण यहाँ पुलिस एवं सैन्यबलों द्वारा निरंतर अभियान चलाए जाते थे जिसके फलस्वरूप यहाँ से पुरूषों ने पलायन कर लिया। नेपाल का यह क्षेत्र सामंती व्यवस्था द्वारा संचारित होता था जहाँ महिलाओं से घर में ही रहने की अपेक्षा की जाती थी किन्तु संघर्ष के बीच यह महिलाएं घर के बाहर निकलकर काम करती थीं जिस कारण इन्हें पुलिस द्वारा प्रताडिष्त किया जाता था। किसी भी जगह जहाँ युद्ध एवं संघर्ष होते हैं वहाँ बलात्कार एवं यौन हिंसा के मामले होना भी स्वाभाविक है किन्तु इसमें निहित हिंसा व इससे सम्बंधित अमानवीय पक्षों को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं। महिलाओं की देह पर नियंत्रण करना युद्ध नीति का ही एक हिस्सा होता है। जिसका प्रयोग रणनीति के तौर पर कभी-कभी राज्य द्वारा भी किया जाता है। नेपाल में नागरिक संघर्ष का काल भी इसका अपवाद नहीं है। 1990 के मध्य में पुलिस द्वारा यौन हिंसा का प्रयोग महिलाओं के विरूद्ध एक रणनीति के तहत किया गया जिससे सरकार-विरोधी तत्वों की आवाज को दबा दिया जाए। पुलिस हिरासत में महिलाओं के साथ यौन हिंसा की गई, वहीं कुछ को मार दिया गया। सुरक्षा बलों द्वारा अभियान के शुरूआती चरणों में ही मध्य-पश्चिम और पश्चिम के दूर-दराज के क्षेत्रों में महिलाओं एवं बच्चियों को यौन हिंसा का शिकार बनाया गया। सुरक्षाबलों के जवान महिला माओवादियों, माओवादियों की महिला रिश्तेदारों को अपना निशाना बनाते थे साथ ही उन परिवार की महिलाओं को जो माओवादियों को रसद मुहैया कराते थे। वह महिलाएं जोकि माओवादी संघर्ष का हिस्सा थीं खासतौर पर सुरक्षा बलों के निशाने पर रहती थीं। ऐसी महिलाओं क साथ सुरक्षाबल के जवान बेहद क्रूर एवं निर्मम यौन हिंसा का प्रयोग करते थे। माओवादी काडर की महिलाओं के साथ बलात्कार एवं हिंसा रॉयल नेपाल आर्मी के लिए सामान्य बात थी। कई मामलों में तो काडर की महिलाओं के साथ सुरक्षाबल बलात्कार के बाद उनका शरीर खुले में जानबूझ कर छोड़ देते थे ताकि क्षेत्र की अन्य महिलाओं को काडर में भर्ती होने के प्रति हतोत्साहित किया जा सके।

सघर्ष समाप्ति के पश्चात् महिलाएंः-

दशक भर लंबे चले सशस्त्र हिंसक नेपाली माओवादी संघर्ष का अंत एक व्याप्क शांति समझौते के साथ 2006 में हुआ। किंतु समझौते की जो प्रक्रिया थी उससे साफ झलकता था कि जिस माओवादी संघर्ष में महिलाओं की उल्लेखनीय भागीदारी थी, वही भागीदारी शांति समझौते की प्रक्रिया में नगण्य समान थी। शांति समझौते की प्रक्रिया में तो महिलाएं हाशिए पर ढकेल तो दी ही गई थीं साथ ही साथ संघर्ष की समाप्ति के बाद का समय माओवादी संघर्ष का हिस्सा रही महिलाओं के लिए अलग-अलग स्तर पर एक नई चुनौती एंव एक अलग संघर्ष का वातावरण तैयार कर रहा था जिससे उन्हें आज तक जूझना पड़ रहा है। नागरिक संघर्ष नेपाल के समाज में पितृसत्तात्मक जड़ों को खत्म करने में नाकाम रहा है और इसी वजह से पूर्व महिला माओवादी पुनः अपनी युद्ध पूर्व भूमिका का निवर्हन कर रही हैं। इनमें से अधिकांश ने इस स्थिति को चुपचाप स्वीकार कर लिया है ताकि समाज के बीच उनका भविष्य सुरक्षित रहे। संघर्ष पश्चात् ऐसी कई महिलाएं हैं जिन्होंने आंदोलन का हिस्सा रहते हुए अपने पुरूष सहकर्मी से विवाह किया किन्तु संघर्ष समाप्ति के पश्चात् उन्हें उनके पतियों ने छोड़ दिया। ऐसे में यह महिलाएं भले अपने घरों को लौट आई किन्तु इन्हें खुद स्थानीय समुदाय द्वारा पूर्णतः स्वीकार नहीं किया गया, वही कुछ मामलों में स्वयं महिला के परिवार वालों ने महिला को 'अपवित्र' कहकर उसे अपनाने से मना कर दिया। इसके अतिरिक्त आंदोलन के दौरान शारीरिक अपंगता का शिकार हुई महिलाओं का मानना है कि घर की चार दीवारी से निकल कर कल तक वह सब हथियारों के साथ लड़ रहे थे और आज जब संघर्ष समाप्त हो गया है जब एक बार फिर से वही घर, खाना बनाना, सफाई करना, बच्चों की देखभाल करना जैसे काम करने लगी हैं किन्तु इस बार साथ में शारीरिक अपंगता भी है। ऐसे में कई बार यह महिलाएं भ्रमित हो जाती है कि आखिर इस नागरिक संघर्ष से उन्हें क्या हासिल हुआ है। संघर्ष पश्चात्

होने वाली शांति प्रक्रिया के तहत होने वाले समझौते की शर्तो के अनुपालन के तहत माओवादी आंदोलन का हिस्सा रही महिलाओं की एक बड़ी संख्या को समझौते की कुछ प्रक्रियाओं में शामिल मापदंड़ों के तहत 'अयोग्य' माना गया अर्थात ऐसे लड़ाके जोकि भर्ती के समय 18 साल से कम थे और जो प्रथम संघर्ष विराम के बाद आंदोलन का हिस्सा बने थे ऐसे पुरूषों एवं महिलाओं को पूर्णकालिक माओवादी योद्धा के पैमाने पर अयोग्य करार दिया गया। ऐसे में आन्दोलन के लिए अपना सर्वस्व देने वाली महिलाएं संघर्ष पश्चात् खाली हाथ ही नहीं लौटीं हैं अपितु वह खुद को हारा हुआ एवं अपमानित भी महसूस कर रही हैं। माओवादी होने का सामाजिक दंश इनकी आर्थिक आत्मनिर्भरता की राह में बाधा है। इन महिलाओं के अतीत ने उनको असुरक्षित भविष्य की तरफ ढकेल दिया है।

निष्कर्ष

नेपाल का संघर्ष सामाजिक-आर्थिक भेदभाव का लंबे समय से चली आ रही शोषण व्यवस्था की एक प्रतिक्रिया थी। जिसने कालांतर में एक व्याप्क हिंसक संघर्ष का रूप ले लिया। इसलिए जब दशक भर लंबे चले इस संघर्ष का अंत हुआ तब तक दोनों पक्षों की तरफ से 17,846 लोगों की मृत्यु, 1530 लापता, 3,142 अपहृत, 8,935 घायल, 9000 विधवा तथा 75,751 लोग विस्थापित हुए। संघर्ष में महिलाओं की भागीदारी उनके प्रति किए गए शोषण एवं दमन का परिणाम थी जिसका प्रयोग माओवादियों ने अपने संगठन को विस्तार देने में किया किन्तु वास्तव में माओवादियों के संगठन में भले ही महिलाएं सक्रिय संघर्ष में शामिल थीं किन्तु फिर भी वे कभी भी निर्णय लेने की भूमिका के स्थान पर नहीं थीं। संगठन की नीतियों के निर्माण एवं संचालन में उनकी प्रभावी भूमिका नहीं थी। इसी क्रम में अगर बात हम यौन हिंसा की करें तो महिलाओं को अपनी यौन हिंसा का शिकार बनाने वाले में राज्यकर्ता तथा माओवादी दोनों ही शामिल थे। किन्तु यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि सुरक्षाबलों द्वारा की गई यौन हिंसा की घटनाएं तो दस्तावेजो में दर्ज हैं किन्तु माओवादियों द्वारा की गई यौन हिंसा पर कोई व्यवस्थित दस्तावेज नहीं है साथ ही यह भी शर्मनाक विडम्बना है कि संघर्ष पश्चात् मानवाधिकारों के उल्लंघन, हत्या, प्रताड़ना आदि घटनाओं को अंर्तराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा दर्ज किया गया किन्तु यौन-हिंसा से सम्बन्धित मामलों की जानकारी होते हुए भी उसे अनदेखा कर दिया गया। सरकार द्वारा इस बात की जानकारी होते हुए भी कि इन महिलाओं ने यौन हिंसा का सामना किया है, वह दोषियों को दण्डित करने एवं पीडिघ्ताओं को न्याय देने में विफल रही है। केवल यही नहीं युद्ध एवं यौन हिंसा की शिकार इन महिलाओं को अवसाद, तनाव सहित अन्य मनोवैज्ञानिक समस्याओं से भी जूझना पड़ रहा है। शांति समझौते के पश्चात् सामान्य तौर पर देखा जाए तो इस आंदोलन में शामिल महिलाओं को उतना प्राप्त नहीं हुआ जिसकी वो हकदार थी। समझौते की प्रक्रिया से तो उन्हें दूर किया ही गया उनके उचित एवं सम्मानित पुर्नवास की व्यवस्था भी पूर्णत: जमीन पर नहीं उतरी। माओवादी होने का दंश आज भी वह सामाजिक रूप में ढो रही हैं जोकि संकेत है कि महिलाओं के लिए अब भी कुछ नहीं बदला है तिस पर उनके अपने संगठन द्वारा उनके सम्मान, पुर्नवास एवं जीवनयापन जैसी विकट समसयाओं पर चुप्पी साध लेना, उन्हें ग्लानि से भर देता है। कानूनी रूप में भले लैंगिक भेदभाव खत्म हुआ है किन्तु सामाजिक तौर पर नियम एवं रिवाज अब भी कड़े हैं विशेषकर उन महिलाओं के लिए जो माओवादी संघर्ष का हिस्सा रही हैं। शांति समझौते की प्रक्रिया में महिलाओं को प्रभावी भूमिका में न रखना, संघर्ष पश्चात् शान्ति निर्माण की प्रक्रिया में महिलाओं का नीति निर्माण और निर्णय-निर्माण में अनुपस्थित रहना, संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् संकल्प 1325 का सही प्रकार से अनुपालन न होना कुछ ऐसे विषय हैं जिनपर समय रहते अगर कार्यवाही न की गई तो विकास और शांति निर्माण की प्रक्रिया में उपेक्षित तथा पीछे छूटे लोग भविष्य में दूसरे नागरिक युद्ध को प्रारम्भ के लिए मजबूर होंगें।

Refernces:

- Bloom Mia, Bombshell : Women and Terrorism, University of Pennsylvania Press, 2012
- Butalia Urvashi, (E.d.) Speaking Peace: Women Voices From Kashmir, Kali for Women, 2002, New Delhi.
- Davis Jessica, Women In Modern Terrorism, Rowman, Littlefield, 2017
- Kolas Ashild, (E.d.) Women, Peace And Security In Nepal, Routledge, 2017, New York
- Manchanda Rita, (E.d.) Women and Politics of Peace : South Asia Narreatives On Militarization, Power and Justice, Sage Publication, 2017, New Delhi;
- Murthy Laxmi, and Varma Mitu, (E.d.) Garrisoned Mind: Women and Armed Canflict in South Asia, Tiger Publication;
- Sjoberg Laura, Gender, War and Conflict, John Wiley & Sons, 2014
- Sjoberg Laura & Gentry E. Caron, (E.d.) Women Gender and Terorism, The University of Georgia Press, 2011, Georgia
- Srivastava Garima, Deh He Desh : Croasia Pravas Diary, Rajpal, 2017, New Delhi

हिंदी का भविष्य और भविष्य में हिंदी

डॉ० ऐश्वर्या झा

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, स्वामी श्रद्धानंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

हिंदी भाषाई विविधता का अप्रतिम उदाहरण है जिसने वर्तमान में अपनी व्यापकता में कितनी ही बोलियों और भाषाओँ को संजोया हुआ है। संस्कृत भाषा से निकली ,अरबी फारसी जैसी विदेशी और पालि प्राकृत जैसी देशी भाषाओँ के मिश्रण ने हिंदी को अस्तित्व प्रदान किया है। भाषा की अपनी तरलता होती है जो हर सांचे में ढल जाने की क्षमता रखती है। जैसे ही भाषा को जबर्दस्ती एक ही सांचे में ढालने का प्रयास किया जाता है तब उसका शब्द संसार छोटा पड़ने लगता है। संस्कृत, लैटिन जैसी अति प्राचीन भाषाओँ के साथ यही हुआ। हिंदी भाषा ने समय की मांग और बदलते तेवर को समझ कर भविष्य की दुनिया और उसकी तकनीक के साथ अधिक सार्थक ढंग के साथ जुड़ रही है। आज हिंदी भाषा समाज की बढ़ती और बदलती जरूरतों को पूरा करने वाली भाषा बनकर उभर रही है। उसका स्वरूप सिर्फ साहित्यिक नहीं रहा है बल्कि वह व्यावहारिक और प्रयोजनमूलक हो गयी है।

संख्याबल के आधार पर तो हिंदी विश्वभाषा है ही साथ ही अपनी लिपि और ध्वन्यात्मकता के आधार पर सबसे शुद्ध और वैज्ञानिक भाषा है। भूमंडलीकरण के इस दौर में जब भाषायें खतम होती जा रही हैं हिंदी निरंतर अपना दायरा बढ़ा रही है। वर्ल्ड इकनोमिक फोरम के पावर लैंग्वेज इंडेक्स में विश्व की ऐसी भाषाओँ की रैंकिंग तैयार की गई जो २०५० तक विश्व की शक्तिशाली भाषाओँ में शामिल होंगी। हिंदी इस इंडेक्स के प्रथम दस भाषाओँ में शुमार है। आज का युग सूचना प्रौद्योगिकी का युग है, इस क्षेत्र में भी हिंदी पीछे नहीं है। "जिस कंप्यूटर तथा उसकी भाषा को लेकर हम भयभीत तथा सहमे हुए थे, उसे जीवन के हर क्षेत्र में जोड़कर हमने अपनी भाषाओँ से जीत लिया है। हिंदी भाषा इस दृष्टि से भी अग्रणी है। हिंदी में शब्द संसाधन का कार्य करने के लिए आज बाजार में जिस्ट कॉर्ड, जिस्ट शैल, सुलिपि, आकृति, ए.पी. एस. शब्द रत्न, लीप ऑफिस, अक्षर फॉर विंडोज, सुविन्डोज, प्रकाशक तथा इसी प्रकार के अन्य अनेक सॉफ्टवेयर उपलब्ध है। बैंकों के लिए अनेक द्विभाषी सॉफ्टवेयर भी अब विकसित कर लिए गए हैं। अंग्रेजी -हिंदी और इसी प्रकार अन्य भारतीय भाषाओँ के परस्पर अनुवाद की सम्भावनायें भी कंप्यूटर पर खोज ली गयी हैं। अनेक प्रकार के हिंदी फोंट्स भी अब बाजार में उपलब्ध है। माइक्रोसॉफ्ट कंपनी, सी -डैक तथा आई.बी.एस टाटा द्वारा बाजार में लाये गए हिंदी पी.सी. डॉस की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। हिंदी डॉस के आ जाने से अब तक जो निर्देश अंग्रेजी जाते रहे हैं। वे भी हिंदी में दिए जा सकते हैं। यह उपलब्धि वास्तव में हिंदी के लिए श्मील का पत्थर शसिद्ध हुई है।"[1]

राष्ट्र भाषा, राजभाषा, सम्पर्क भाषा के साथ - साथ अंतर्राष्ट्रीय भाषा बनी हिंदी रोजगार के क्षेत्र में भी अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रही है। केंद्र/राज्य सरकारों के विभिन्न विभागों में हिंदी अधिकारी, हिंदी सहायक, प्रबंधक (राजभाषा) जैसे पदों की भरमार है। निजी टीवी और रेडियो चौनलों में आनेवाले विभिन्न कार्यक्रमों में हिंदी बोलने वाले न्यूज एंकर, रेडियो जॉकी की आवश्यकता होती है। स्टार प्लस, जी टीवी, नेशनल जियोग्राफिक आदि टीवी चौनलों का हिंदी में कार्यक्रम देना हिंदी के महत्व को स्वत:सिद्ध करता है। स्थापित समाचार पत्रों, पत्रिकाओं के हिंदी रूपांतर आने से रोजगार के क्षेत्र में वृद्धि हुई है। विज्ञापन और सिनेमा के क्षेत्र में हिंदी अपना महत्व सिद्ध करती रही है। अन्य भाषा के सिनेमा का हिंदी में अनुवाद के लिए अनुवादक और वक्ता के रूप में भी रोजगार के अवसर हैं। हिंदी अध्यापन भी अब सिर्फ भारत तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि अमेरिका के 45 विश्वविद्यालयों सहित दुनिया के 176 विश्वविद्यालयों में हिंदी पढाई जाती है। "हिंदी भाषा के रूप में खड़ी बोली के विकास और फिर हिंदी की वैश्विक छवि का पल्लवन भाषा की स्वाभाविक गत्यात्मक प्रकृति का ही परिणाम है। मौजूदा सदी में हिंदी ने जिस श्रम और सौष्ठव के साथ राजभाषा, संपर्क भाषा और विश्व भाषा के रूप में अपनी अस्मिता का विस्तार किया है वह स्तुत्य है।"[2]

भारतीय नवजागरण के अग्रदूत भारतेंदु हरिश्चंद ने निज भाषा का महत्त्व बताते हुए लिखा भी हैं कि "निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल। अंग्रेजी पढ़ि के जदपि, सब गुन होत प्रवीन। पै निज भाषाज्ञान बिन, रहत हीन के हीन।"[3] अर्थात अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषाओँ में प्राप्त शिक्षा से आप प्रवीण तो हो जाओगे किन्तु सांस्कृतिक एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण से हीन ही रहोगे। दौलत सिंह कोठारी आयोग (1964-66) के सिफारिश पर लागू देश की पहली शिक्षा नीति (1968) में भी त्रिभाषा में शिक्षा व्यवस्था की कल्पना की गई थी, किन्तु ये सपना वर्ष 2020 में जारी शिक्षा नीति में लागू हो पा रहा है। प्राथमिक शिक्षा में मातृभाषा की अनिवार्यता को अपना कर भारत भर में निज भाषा में शिक्षा एक ऐसा रुका हुआ फैसला था जो भारत को विश्व गुरु बना सकता है। भारत आजादी की 75 वीं वर्षगांठ "अमृत महोत्सव" मना रहा है और नयी शिक्षा नीति 2020 में हिंदी को वैश्विक रूप प्रदान करने की बात कही गयी है। वोकेशनल कोर्सेज को हिंदी में करने का निर्णय अवश्य ही हिंदी को भविष्य में और मजबूती प्रदान करेगा। भारतीय भाषाओँ में ज्ञान निर्माण को प्राथमिकता देना डिजिटल माध्यम की सहायता से ही संभव है। डिजिटल क्रांति के कारण ही आज हिंदी तकनीक की भाषा बन चुकी है। बड़ी -बड़ी ई -कॉमर्स की कंपनियां हिंदी माध्यम से अपने उत्पाद बेच रही है। फ्लिपकार्ट, अमेजन जैसी ऑनलाइन कंपनियां अन्य उत्पादों के साथ हिंदी की पुस्तकें किंडल जैसे प्लेटफार्म पर उपलब्ध करवा रही है। आज हिंदी का अपना एक बाजार भी निर्मित हो चुका है। बाजारवाद

ने भाषा को भी एक 'प्रोडक्ट' बना दिया है लेकिन इसका लाभ हिंदी को अवश्य हुआ है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के द्वारा हिंदी को तरजीह दी जा रही है जिस कारण हिंदी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उत्तरोत्तर उन्नत हो रही है। हिंदी मात्र भारतीयों की पहचान ही नहीं वरन व्यापर और रोजगार की भाषा बन चुकी है। आज विश्व में हिंदी बोलने वालों की संख्या एक अरब तीस करोड़ के पार पहुँच चुकी है और इस संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है।

वैश्विक महामारी कोरोना का सबसे अधिक असर शिक्षा पर पड़ा, स्कूल के बच्चों की पढ़ाई की निरंतरता बनाए रखने के लिए जरूरी है कि डिजिटल शिक्षा को और मजूबत किया जाए, जिससे पढ़ाई में कोई बाधा न हो सके। हिंदी पट्टी खास कर ग्रामीण इलाके में बाध्य हो कर ही सही किन्तु करोड़ों लोगों ने हिंदी या अन्य क्षेत्रीय भाषा में डिजिटल युग में कदम रखा, इस से एक नया बाजार विकसित हो गया। 21 वी सदी में परिवर्तनऔर विकास की भाषा के रूप में हिन्दी के महत्व को नये सिरे से रेखांकित किया जा रहा है। हिन्दी आज सिर्फ साहित्य और बोलचाल की ही भाषा नहीं, बल्कि विज्ञान, प्रौद्योगिकी से लेकर संचार क्रांति और सूचना प्रौद्योगिकी से लेकर व्यापार की भाषा भी बन चुकी है।"गूगल–केपीएमजी रिसर्च, सेंसस इंडिया और आईआरएस की सर्वे रिपोर्ट को मानें तो साल 2021 में हिन्दी में इंटरनेट उपयोग करने वाले अंग्रेजी में इंटरनेट इस्तेमाल करने वालों से अधिक हो जाएंगे। एक अनुमान के मुताबिक 20.1 करोड़ लोग हिन्दी का उपयोग करने लगेंगे। गूगल के अनुसार हिन्दी में सामग्री पढ़ने वाले हर वर्ष 94% बढ़ रहे हैं, जबकि अंग्रेजी में 17% है।अमेजन इंडिया ने हाल ही में अपना एप हिन्दी में लॉन्च किया है। ओएलएक्स, क्विकर जैसे प्लेटफॉर्म पहले ही हिन्दी में उपलब्ध हैं। स्नैपडील भी हिन्दी में आ चुका है। 2021 तक 8.1 करोड़ लोग डिजिटल पेमेंट के लिए हिन्दी का उपयोग करने लगेंगे। जबकि 2016 में यह संख्या 2.2 करोड़ थी। सरकारी कामकाज के लिए 2016 तक 2.4 करोड़ लोग हिन्दी का इस्तेमाल करते थे जो 2021 में 9.4 करोड़ हो जाएंगे। 2016 में डिजिटल माध्यम में हिन्दी समाचार पढ़ने वालों की संख्या 5.5 करोड़ थी। जो 2021 में बढ़कर 14.4 करोड़ होने का अनुमान है।"[3]

हिंदी हमारी पहचान है, वास्तव में हिंदी हमारी जिन्दगी की वो रवानगी है जिसे हम हिंदगी कह सकते हैं। हिंदी हमारे जज्बातों भाषा है, ये हमारे मन की भाषा है। हिंदी अपने अपार अभिव्यक्ति क्षमता, शब्द भंडार के कारण आधुनिक युग की आवश्यकताओं को पूरा करने में पूर्णतया सक्षम है। इसमें व्याप्त अनंत संभावनाओं को यथार्थ रूप देने के लिए राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहल किया जाना बाकी है। "... यथा हिंदी का यू.एन.ओ. की भाषाओं में प्रवेश, हिंदी को विज्ञानं एवं तकनीकी शिक्षा की भाषा बनाना, हिंदी को उच्च न्यायालयों में स्थापित करना। हिंदी को राष्ट्रभाषा के समुचित व व्यावहारिक स्थान पर प्रतिष्ठित करना तथा हिंदी को कंप्यूटर एवं जीविकोपार्जन की भाषा बनाना आदि। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हिंदी की प्रतिस्पर्धा अंग्रेजी, मंदारिन, स्पेनिश, अरेबिक आदि भाषाओं से है जिनके पास हमसे अधिक संसाधन उपलब्ध हैं। हिंदी प्रेमियों को हिंदी की स्वीकार्यता एवं उपयोगिता बढ़ने के साथ–साथ अन्य भारतीय भाषाओँ की अभिवृद्धि के लिए भी सतत प्रयास करते रहना चाहिए। हमारा यह प्रयास ही देश की संस्कृति का अवलम्ब एवं संवाहक होगा।"[4] हिंदी भाषा ने अपने आप में अंग्रेजी, उर्दू आदि भाषाओँ क शब्दों को समाहित किया है। उसमें निस्संदेह सामंजस्य की समर्थता भारत आज शिक्षा, उद्योग और तकनीक के हिसाब से दुनिया का अग्रणी देशों में है और इसकी मुख्य भाषा हिंदी आने वाले समय में और पुरजोर तरीके से अपनी उपस्थिति दर्ज कराएगी। हिंदी का प्रश्न भाषा या सम्प्रेषण की सुविधा का नहीं है बल्कि राष्ट्रीय स्वाभिमान और राष्ट्रीय एकता का भी है। हिंदी केवल भाषा नहीं है वरन भारतीय संस्कृति की सबल, समर्थ और सशक्त संवाहिका है। आज हिंदी भाषा केवल भारत की भाषा ही नहीं रह गई है, वह अपना वैश्विक रूप ले रही है।है। इक्कीसवीं सदी का उत्तरार्ध अवश्य ही हिंदी भाषा –भाषियों का युग होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. राजभाषा भारती ,भारत सरकार ,गृह मंत्रालय ,राजभाषा विभाग ,वर्ष 39,अंक 15,जुलाई –सितम्बर 2017।
2. हिंदी राष्ट्रभाषा से विश्वभाषा की ओर (भूमिका), डॉ. सुरेश माहेश्वरी(सं)
3. कविशाला https://kavishala.in/@kavishala-labs/nij-bhasha-unnati-ahai-sab-unnati-ko-mul-bina-nij-bhasha-gyan-ke-mitat-na-hiy-ko-sul-bharatendu-hariscandra (लिंक पर 22 अगस्त 2021 को जानकारी उपलब्ध)
4. अमर उजाला ,14 सितम्बर 2013 http://www.amarujala.com/amp/technology/hindi-diwas-special-hindi-becoming-preferred-language-of-internet (लिंक पर 23 अगस्त 2021 को उपलब्ध जानकारी)
5. अनहद कृति, दिसंबर 2013, महेश चंद्र द्विवेदी, https://www.anhadkriti.com/mahesh-chandra-dewedy-essay-hindi-kaa-ujjwal-bhavishya (लिंक पर 23 अगस्त 2021 को उपलब्ध जानकारी)

अस्पृश्य जातियों के सामाजिक उत्थान में महात्मा गांधी का योगदान

मनीष कुमार मिश्र

शोधार्थी, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्राचीन हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में अनुसूचित जातियों का हिन्दू व्यवस्था में एकदम पृथक स्थान था, जैसे वे पांचवा वर्ण हो। वैदिक युग में इन्हें चाण्डाल कहा जाता था। चाण्डाल को अस्पृश्य जाति के रूप में ही देखा जाता था। पतंजली ने चण्डाल के अनेक प्रकार बताये है। मनु का कहना है कि चाण्डाल जाति का जन्म प्रतिलोम विवाह के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ। अंग्रेज इन्हे 'बाहरी जाति' मानते थे। उन्होंने इन्हे 'अस्पृश्य जाति' कहा। 1928 में साइमन कमीशन ने इस शब्द का प्रथम बार प्रयोग किया। भारतीय संविधान में इन्हें 'अनुसूचित जाति' कहा गया है जबकि गांधीजी इन्हें 'हरिजन' कहते है अर्थात ''ईश्वर के लोग''।

अस्पृश्य जातियों के उनका सामाजिक सम्मान दिलाने में महात्मा गांधी का अवर्णनीय योगदान रहा। असंख्य स्थलों पर उन्होंने अस्पृश्य भावना की आलोचना की है। इसे कलंक बताया हैं। गांधीजी ने वैचारिक स्तर पर अस्पृश्यता की आलोचना कठोर से कठोर शब्दों में की है और अस्पृश्यता के निराकरण के लिये जीवन भर संघर्ष करते रहे। गांधी जी कहते थे कि यदि सम्पूर्ण राष्ट्र का निर्माण बगैर किसी भेदभाव के समान स्तर पर करना चाहते है तो सबसे पहले अस्पृश्यता समाप्त करनी होगी। अस्पृश्यता लोकतंत्र विरोधी है। इस व्यवस्था में सभी समान है। यदि कुछ व्यक्तियों को सम्मान दिया जाता है और कुछ का अनादर किया जाता है अथवा उनसे घृणा की जाती है तो यह लोकतन्त्र नही है। व्यक्ति व्यक्ति का शोषण करें यह किसी भी दृष्टि से न मानवीय है और न न्यायसंगत ही है। गांधी जी अस्पृश्यता को कलंक मानते थे। वे कहते थे-

''अस्पृश्यता के लिए करोड़ो हिन्दू जिम्मेदार है, उनसे मुझे हार्दिक घृणा है। सत्याग्रही को चाहिए कि वह अपने अस्पृश्य कहे जाने वाले भाई के लिए रक्षक बनकर डटा रहे ओर कष्ट सहे।'' उन्होनें कहा कि ''हम सबकों हरिजन बनना पड़ेगा नही तो हम अस्पृश्यता का नामोनिशान नहीं मिटा पायेंगे। मैं अस्पृश्यता को मानवता के विरूद्ध एक भीषण अपराध समझता हूँ। यह आत्मसंयम का लक्षण नहीं, बल्कि अपने को श्रेष्ठ मानने की हठपूर्ण कल्पना है।'' गांधीजी ने अस्पृश्यता की आलोचना करने में अनेक शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे अस्पृश्यता अपराध है, अत्याचार है, विष है, कलंक है, एक शैतानी योजना है, अस्पृश्यता अन्याय है आदि।[1]

महात्मा जी सब एक महान समाजवैज्ञानिक और सामाजिक आविष्कारक ही नही थे, जैसा कि ग्रेग उन्हे वर्णित करते है- ''वह एक महान सामाजिक अन्तर्दृष्टि ओर विवेक से पूर्ण व्यक्तिव थे।''[2] गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस ने सामाजिक बुराईयों के विरूद्ध जो युद्ध लड़ा उससे छुआछुत कि विरूद्ध एक क्रान्तिकारी माहौल बना। छुआछूत की समस्या सबसे कठिन और कष्टदायक सामाजिक व्यवस्था है, जिससे कि अब तक सभ्य समाज ग्रस्त रहा है। इस बुराई के प्रभाव में हिन्दुओं ने अपने ही सहधर्मियों को अस्पृश्य आदि कहकर उत्पीड़ित किया। ऊँची जाति के लोगों द्वारा इनका शारीरिक स्पर्श और कभी-कभी आँख से दर्शन करना भी अपने को अशुद्ध करने जैसा माना जाता था तथा इन लोगों को मन्दिर में प्रवेश, सार्वजनिक कुओं के प्रयोग, स्कूल आदि में प्रवेश से वंचित किया गया था। संक्षेप में यह बुराई सामूहिक पागलपन से कम न थी।[3]

महात्मा गांधी जी अस्पृश्यता रूपी इस दैत्य के विरूद्ध जिस तरह संघर्ष किया, वह अद्वितीय है। उनकों अस्पृश्यों के कष्टों को सिर्फ सैद्धान्तिक ज्ञान ही नही था बल्कि अपने व्यक्तिगत अनुभव से वह यह भी जानते थे कि अछूत होने का क्या अर्थ होता है क्योंकि दक्षिण अफ्रीका में उन दिनों एक भारतीय की स्थिति भारत के एक अछूत से किसी भी तरह अच्छी नही थी।लुइस फिशर ने ठीक ही पूछा है-

''गांधी जिनको दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की समानता के लिए लड़ाई का अनुभव अभी ताजा ही था, भारत में कुछ भारतीयों द्वारा अन्य भारतीयों पर किए जा रहे बर्बर असमानता के व्यवहार को कैसे बर्दाश्त कर सकते थे।''[4]

प्रारम्भिक दौर में अछूतों के प्रति सहानुभूति रखने वाले लोग हिन्दुत्व के प्रति विद्रोह का रवैया रखते थे। उनका रवैया सीधे-सीधे संघर्ष करने का था। उन्होंने यह दिखाने का प्रयास नहीं किया कि छूआछूत हिन्दुत्व का अभिन्न अंग नही है। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने दूसरे नये धर्मो एवं पंथों को जन्म दिया, जैसे-बौद्ध, सिख, ब्रह्म समाज, आर्य समाज आदि, लेकिन हिन्दू बहुसंख्या को प्रभावित नहीं कर पाए। उन्होंने सहानुभूति की भावना पैदा करने के स्थान पर प्रतिरोध की भावना को पैदा किया और जाति प्रथा अपने स्थान पर बनी रही। दूसरी तरफ गांधी जी ने समस्या पर प्रहार किया। गांधी जी का तरीका प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष था तथा उनकी आँख जनता पर केन्द्रित थी। वे पर्याप्त रूप से प्रत्यक्ष आक्रामक थे, लेकिन चार मुख्य वर्णों में मूल रूप से अन्तर्निहित सिद्धान्तों के विरोधी नहीं थे। उन्होंने जाति प्रथा के सबसे कुचले हुए ओर सबसे ऊपर उठे हुए लोगों के मुदद्ों को उठाया। वे अच्छी तरह जानते

थे कि इस प्रकार वे समूची जातिवादी परम्परा की अवधारणा को ही चुनौती दे रहे है।[5] उन्होंने परम्परागत रूढिघ्वादी हिन्दुत्व के एक विद्रोही के रूप में नही बल्कि एक हिन्दू महात्मा की भांति छूआछूत पर प्रहार किया। कई बार उन्होंने अपने सनातनी हिन्दू होने का दावा भी किया। उन्होंने कहा कि ''हिन्दू धर्म में किसी भी एक व्यक्ति को अछूत घोषित करने की अनुमति नहीं है।[6] उन्होने वेदों और अन्य धार्मिक प्रतिमानों के ऊपर कभी प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया। उन्हीं धार्मिक प्रतिमानों का आलोचना की जिनमें छूआछूत का समर्थन किया गया था तथा यह तर्क दिया कि जिन हाथों द्वारा आत्मसंयम जैसी प्रेरणादायक पक्तियों की रचना की गयी है वे ही हाथ व्यक्ति के अन्दर क्रूरता पैदा करने को नहीं लिख सकते। छूआछूत के खिलाफ उनकी लड़ाई ने परम्परागत हिन्दूत्व को पूरी तरह नकारने जैसा रूप ग्रहण नहीं किया बल्कि ऊँची जाँति के हिन्दूओं में सामाजिक न्याय की भावना पैदा करने का प्रयास किया। उन्होंने हिन्दुओं से ''पश्चाताप तथा हृदय परिवर्तन करने को कहा।'' और यह स्वीकार किया कि ''मै तब तक सच्चा हिन्दू नहीं हो सकता। जब तक कि हिन्दुत्व को इस अभिशाप से मुक्त नहीं करा सकता। इसमें कोई आश्चर्य नहीं यदि जनता ने उनके अन्दर अपने प्राचीन ऋषियों को छवि देखी जो तथा आह्वान का प्रत्युत्तर दिया हो।[7]

गांधी जी की तरह छूआछूत के विरूद्ध लड़ाई उनसे पहले कोई अन्य व्यक्ति नहीं लड़ा था। अन्य सुधारकों के लिए छूआछूत उन्मूलन सिर्फ एक सहायक कार्यक्रम था लेकिन गांधी जी ने इसे अपने कार्यक्रम में एक सम्मानजनक और महत्वपूर्ण स्थान दिया। यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण लग सकता है जैसा कि राजकुमारी अमृतकौर ने कहा है- ''गांधी जी ने अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए जितना कठोर श्रम किया उतना किसी अन्य कार्य के लिए नहीं, यहाँ तक कि भारत राजनीतिक आजादी के लिए भी नही।[8]

12 फरवरी, 1922 को कांग्रेस कार्यसमिति ने बारदौली की बैठक में छूआछूत उन्मूलन को कांग्रेस के कार्यक्रम का एक अभिन्न अंग घोषित किया। 1924 से 1931 तक कांग्रेस ने छूआछूत रूपी इस महामारी को जड़मूल उखाड़ फेंकने के प्रस्ताव को दोहराया और 3 जनवरी 1929 को कार्यसमिति ने अपनी कलकत्ता बैठक में छूआछूत के विरूद्ध जेहाद करने हेतु एक उप समिति का गठन किया जिससे अछूतों की दशा को सुधारने, स्कूल मन्दिर ओर कुओं तक पहुँचाने में सफलता प्राप्त की।[9] इसके बाद नमक सत्याग्रह हुआ तथा गांधी-इरविन समझौता हुआ, जिसके परिणामस्वरूप गांधी ने गोलमेज सम्मेलन में कांग्रेस के पूर्ण प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। इस सम्मेलन में गांधी जी का डॉ0 अम्बेडकर के साथ टकराव हुआ, जिन्होनें दलित वर्गों के लिए पृथक निर्वाचन की मांग की थी। गांधीजी का विश्वास था कि पृथक निर्वाचन की व्यवस्था से उनकी दासता के बन्धन और मजबूत होंगे। उन्होनें घोषणा किया कि ''यदि इसका विरोध कोई एक व्यक्ति भी करेगा तो वह व्यक्ति मैं होऊंगा तथा अपनी जान देकर भी इसका विरोध करूँगा।[10] जब साम्प्रदायिक फैसले ने पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था की तो उन्होंने अपने फैसले के अनुरूप आचरण अनशन धारण किया।

छूआछूत के इतिहास में अनशन से एक नया रूप सामने आया। इसके परिणामस्वरूप न सिर्फ पूना-पैक्ट सामने आया जो कि दलितों के पक्ष में था और प्रान्तीय विधायिका में उनके हिस्से को 71 से बढ़ाकर 148 कर दिया बल्कि उस श्रृखंला को भी तोड़ दिया जिसने लाखों लोगों को दासता की बेडिघ्यों में जकड़ रखा था। इसने छुआछूत में विश्वास की धारण को नष्ट कर दिया।[11] पंडित मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व में हिन्दू नेताओं की एक बैठक हुयी और बम्बई में 25 दिसम्बर, 1932 को एक प्रस्ताव पारित किया गया-

''अब से हिन्दुओं में जन्म के आधार पर कोई अछूत नही माना जायेगा। अब सभी हिन्दू नेताओं का यह कर्त्तव्य होगा कि हर विधिक और शान्तिपूर्ण तरीकों से सामाजिक बुराईयों को दूर करे, जो एक प्रथा के रूप में अछूतों के ऊपर थोप दी गयी है। जिसमें मन्दिरों में प्रवेश का निषेध भी शामिल है।''[12]

अछूतोद्धार गांधीजी के जीवन का अब मुख्य लक्ष्य था। उन्होंने उनकों ''हरिजन'' का सुन्दर नाम दिया। उन्होंने छुआछूत के खिलाफ एक अभियान शुरू किया जिसने हिन्दुओं को बाध्य किया कि मन्दिरों के दरवाजे अछूतों के लिए खोले। हरिजन सेवक संघ की स्थापना की। जिसके तीन मुख्य कार्यक्रम थे-आर्थिक, शैक्षणिक और न्यायिक जिससे कि छुआछूत अवैधानिक बन जाये, यह हरिजन समाज को महात्मा की एक महान सेवा थी। अगले दो वर्षों के लिए गांधीजी ने अछूतोद्धार के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं किया। उन्होनें सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया।। 1933-34 में।। छूआछूत को समाप्त करने का अनुरोध किया और हरिजनों में कल्याणमयी कार्य हेतु करीब आठ लाख रूपये इकट्ठे किये।[13]

सन् 1937 ई0 में कांग्रेस में मंत्रिमण्डल के आगमन से छुआछूत विरोधी अभियान को एक नयी गति प्रदान हुयी। पहली बार हरिजनों को मंत्री और संसदीय सचिव बनने का मौका देकर उन्हें अपने भाग्य के निर्धारण का अवसर प्रदान किया। प्राय: प्रत्येक कांग्रेस शासित प्रांत में ऐसे उपाय किए गए कि जाति उनके रास्ते में कोई बाधा न पहुँचाये और सवर्ण हिन्दुओं के साथ समानता के आधार पर रह सकें और मन्दिरों के दरवाजे उनके लिए भी खुले रहे। उदाहरण के तौर पर सिर्फ मद्रास में तीन ऐसे उपाय किये गये- सिविल डिसेबिलिटी एक्ट, मालावार मन्दिर प्रवेश अधिनियम, मंदिर प्रवेश प्राधिकार अधिनियम लागू किए गये। शैक्षणिक क्षेत्र में भी उनके लिए विशेष धनराशि का आवंटन किया गया। विशेष छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की गयी और विशेष तौर से स्कूल विद्यालय खोले गये। बिहार, उड़ीसा तथा मद्रास में विद्यालयों के लिए यह अनिवार्य बनाया गया कि वे हरिजन छात्रों को स्वीकार करें तथा अध्यापक व श्यामपट्ट के सामने उन्हें अन्य छात्रों की तरह बैठने दें।[14] केन्द्रीय प्रान्त तथा बिहार में प्राथमिक कक्षा से विश्वविद्यालय स्तर तक नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गयी।[15] इसी प्रकार के अन्य उपाय कांग्रेसी प्रान्तों में भी किए गये।

जातिभेद ने हिन्दू समाज को जो समस्याएँ प्रदान की है, उनमें सबसे अधिक विनाशकारी और मानवीय समस्या अस्पृश्यता या छूत-अछूत की है। गांध ी जी ने इसके सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुए कहा था, ''अस्पृश्यता या छूआछूत जिस रूप में आज हिन्दू धर्म में प्रचलित है, वह भगवान और मनुष्य दोनों के विरूद्ध है। अत: यह एक विष की तरह है जो हिन्दू धर्म को खाए जा रहा है। मेरी राय में हिन्दू शास्त्रों में इसके लिए स्वीकृति नहीं है।'' गांध ी जी ने अस्पृश्यों की स्थिति पर तरस खाते हुए लिखा है कि.....इन बेचारे हरिजनों पर हमने जो अन्याय किया है उन्हें याद करना हमारे लिए अच्छा हैं। सामाजिक दृष्टि से वे कोढ़ी है, आर्थिक दृष्टि से वे गुलामें से की बदतर है, धार्मिक दृष्टि से देखे तो उन्हें उन स्थानों पर प्रवेश की अनुमति नहीं है। इसे हमने ''ईश्वर का घर'' नाम गलत दिया है। सार्वजनिक मार्गों, सार्वजनिक विद्यालयों, सार्वजनिक अस्पतालों, सार्वजनिक कुओं, सार्वजनिक नलों, सार्वजनिक

स्थानों पर उनका दिखाई देना तक अपराध है। उनकों रहने के लिए शहरों, गांवों में निकृष्टतम् स्थान दिये जाते है, जहाँ उन्हें लगभग कोई भी सामाजिक सुविध ा उपलब्ध नही होती। सवर्ण हिन्दू वकील और डॉक्टर समाज के अन्य लोगों की सेवा करते है। वह इस तरह उनकी सेवा करने के लिए तैयार नहीं हे। ब्राह्मण उनके अनुष्ठानों में पौरोहित्य करने को राजी नहीं है।[16]

गांधी जी अस्पृश्यता की समस्या का समाधान धार्मिक ग्रन्थों के आधार पर ही करना चाहते थे। उन्होंने यह सिद्ध किया कि धर्मग्रन्थ अस्पृश्यता को स्वीकार नहीं करते। उनका कहना था कि मैं पक्का सनातन+धर्मी हूँ। मैंने गीता आदि धर्मशास्त्रों का आरम्भ से ही बड़े परिश्रम और छानबीन के साथ अभ्यास किया। मुझे किसी भी शास्त्र में ऐसा नही मिलता कि अन्त्यजों के साथ अस्पृश्यता का व्यवहार किया जाय। जो व्यवहार वर्तमान समय में अन्तजों के साथ किया जा रहा है। उसकी पुष्टि किसी शास्त्र द्वारा नहीं होती। उन्होंने लिखा है कि ''हम शास्त्र का अर्थ करने के झंझट में इतना ज्यादा फंस गये है कि हमने ध ूल का धान करने के बजाय, धान का धूल कर दी है। हम चावल को छोड़कर छिलके से चिपट गए है। हमने मक्खन छोड़ दिया है, बेस्वाद पट्ठे के पीछे दौड़ रहे है।अस्पृश्यता संयम नहीं है, वह वर्णाश्रम की मर्यादा नहीं है''[17] गांधी जी ने धर्म ग्रन्थों पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि ''नैतिकता के विश्वमान्य मूल सिद्धान्तों से जिसकी संगती नहीं बैठती, वह मेरे लिए शास्त्र प्रमाण नहीं है। बल्कि उनकी पुष्टि के लिए बने है। उदाहरण के लिए ऐसी अनेक स्मृतियाँ है जिनमें से कुछ तो उन छोटे-छोटे क्षेत्रों के बाहर, कुछ सौ व्यक्तियों के लिए पूजनीय हैं। उनके मूल स्त्रोतों या रचनाकाल के बारे में कोई कुछ नही जानता। उन्होंने आगे लिखा है कि यदि ये सभी ग्रन्थ हिन्दुओं के लिए आवश्यक पालन करने योग्य मान लिया जाये तो शायद ही कोई अनैतिक कार्य ऐसा होगा। जिसके लिए शास्त्र प्रमाण मिलना कठिन है।[18]

गांधीजी देश के रक्षार्थ तथा हिन्दू धर्म के रक्षार्थ, हिन्दू समाज के रक्षार्थ, अस्पृश्यता-निवारण आवश्यक समझते थे। अस्पृश्यता निवारण से गांधी जी का तात्पर्य था कि अस्पृश्य माने जाने वाले भाई दूसरे वर्णों की भांति आजादी से घूम सके, जिन स्कूलों में और जिन मन्दिरों में अन्य सवर्णों के लोग आते है, वहाँ अस्पृश्य समझे जाने वाले भाई जा सकें ओर जिस कुएँ से सब लोग पानी भरते है, वहाँ से वह भी पानी ले सकें। उनके लिए अस्पृश्यता निवारण का अर्थ ''पंचम वर्ण'' की समाप्ति था। अर्थात मनुष्य का स्पर्श मात्र अपवित्र न समझा जाय। तथाकथित अस्पृश्यों के लिए वैसी स्वतन्त्रता होनी चाहिए जैसी कि सवर्णों को हैं।[19] वह तो शब्दकोष से अछूत, अस्पृश्य, अन्त्यज आदि अपमानजनक शब्दों को निकाल देने के पक्ष में थे। इसी कारण इन्होनें अछूत वर्ग को ''हरिजन'' अर्थात ''ईश्वरजन'' नया नाम दिया।[20]

गांधी जी के अनुसार जो अस्पृश्यता को पाप समझता है, उसे प्रायश्चित करने के लिए यह आवश्यक है कि वह अछूतों के साथ भातृत्व का बर्ताव करें। उनके साथ प्रेम और सेवा का व्यवहार करें तथा इन कृत्यों को करते हुए अपने को अशुद्ध न समझे और अछूतों के तकलीफों को दूर करता हुआ वर्षों की गुलामी से उत्पन्न अज्ञानता और अन्य बुराइयों को दूर करने में अछूतों की मदद करता हुआ अन्य हिन्दुओं को भी वैसा करने के लिए प्रेरित करें।

अस्पृश्यता-निवारण उच्च जातियों का उत्तदायित्व है। अस्पृश्यता को केवल हिन्दुत्व पर एक धब्बा कहना, उत्तेजनावश एक हरिजन को स्पर्श करना उसे गले लगाकर फिर उसे भूल जाना, अछूतोद्धार की समस्या का मजाक बनाना है। आवश्यकता इस बात की है कि सवर्ण अपना दैनिक जीवन इस तरह नियमित कि जो अछूत उनके सम्पर्क में आये, उनकों यह महसूस हो कि नये युग का आगमन हो चुका है। यह भी आवश्यक नही कि हरिजनों को किसी मंदिर में जाने की इजाजत नहीं है तो यदि सवर्ण हिन्दू को अछूतों को उद्धार करना है तो उसे मन्दिर में जाना बन्द कर देना चाहिए। उनका विचार था कि इस अन्याय को दूर करने के लिए प्रायश्चित की आवश्यकता है। जिसके कारण वे अस्पृश्य समझे जाते है। उनकी दृष्टि से शक्ति प्रयोग से अस्पृश्यता की समस्या को दूर करने में सफलता नही मिलेगी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गांधीजी अस्पृश्यता के घोर विरोधी और उन्हे सवर्णों के समान ही सभी अधिकार दिलाने के हिमायती थे। जाति-प्रथा की ही तरह, अस्पृश्यता निवारण सम्बन्धी उनके विचारों में सन् 1927 के बाद क्रमशः क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। इसके पूर्व वह अर्न्तजातीय खान-पान एवम् विवाह तथा अस्पृश्यों के पैतृक पेशों का परित्याग अनुचित मानते थे। इसी कारण उसको अस्पृश्यता निवारण के लिए आवश्यक नहीं समझा किन्तु इसके बाद उनके विचार में परिवर्तन हुआ, सन् 1934 के बाद से अन्तर्जातीय खान-पान एवम् विवाह तथा पेशें की बाध्यता को अस्वीकार कर दिया। वह अस्पृश्यता निवारण के लिए जाति-व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था को समाप्त कर समानता पर आधारित समाज की कल्पना करने लगी।

सन्दर्भ सूची:

1. वी.एन.सिंह एवं जनमेजय सिंह, ''भारत में सामाजिक आन्दोलन, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ0 215।
2. ग्रेग, आर.वी, राधाकृष्णन।सम्पा.।: महात्मा गांधी प्रोग्राम, अहमदाबाद, 1952, पृ0 69।
3. फिशर, लुई, दि लाइफ आफ महात्मा गांधी, लन्दन, 1952, पृ0 161।
4. फिशर, लुई, दि लाइफ ऑफ महात्मा गांधी, लन्दन, 1952 पृ0 164।
5. नेहरू, जवाहर लाल: महात्मा गांधी, कलकत्ता, 1949 पृ0 110।
6. यंग इण्डिया मई 11, 1921।
7. यंग इण्डिया अगस्त 26, 1926।
8. मरकज इलामी।सम्पा0।: ह्वाट गांधी हेज इन फार इण्डिया, लाहौर 1906, पृ0 83।
9. रिपोर्ट ऑफ दी जनरल सेक्रेटरी, 1929 तथा मित्रा, एन.एन.: मित्रा आर.एन.: दि इण्डियन क्वार्टली रजिस्टर 1929, कलकत्ता, पार्ट 2, पृ0 265 ।
10. इण्डियन राउण्ट टेबुल कांफ्रेस।सेकेण्ड सेशन। पार्ट 3, पृ0 1385।

11. फिशर लुई, ''दि लाइफ ऑफ महात्मा गांधी'' लन्दन, 1952 पृ0 342।
12. अम्बेडकर, बी.आर.: ह्वाट कांग्रेस कांग्रेस एण्ड गांधीजी हेज इन अनटचेबल्स,बम्बई 1946, पृ0 103 ।
13. मरकज इस्लामी।सम्पा।: ह्वाट गांधी हेज इन फॉर इण्डिया, लाहौर 1906, पृ0 87।
14. कूपलैण्ड, आर0: दि इण्डियन प्रोब्लम, पार्ट 2 लन्दन 1942, पृ0 145।
15. देसाई, ए0आर: सोशल बैकग्राउण्ड ऑफ नेशनलिज्म, बम्बई, 1952 पृ0 246।
16. प्यारेलाल: दि एपिल कास्ट, अहमदाबाद 1960 पृ0 522।
17. नवजीवन, हिन्दी, साप्ताहिक, अहमदाबाद, अगस्त 21, 1921।
18. बाम्बे क्रानिकल: नवम्बर, 18, 1932 उद्घृत स0गा0वा0खण्ड 52 पृ0 12।
19. यंग इण्डिया, दिसम्बर 1, 1921।
20. नन्दा, बी., आर, ।अनु0। श्याम सन्यासी: महात्मा गांधी-एक जीवनी दिल्ली, सरला साहित्य मण्डल, 1986, तृ.सं0 पृ0 252।
21. सुमन, क्षेमेन्द्र चन्द्र।संम.।।: बापू और हरिजन, लखनऊ, 1949, पृ0 6-7।

हिन्दी चित्रपट संगीत से लुप्त होती भजन गायन शैली एवं उसकी वर्तमान स्थिति

डॉ० भावना

असिसटेंन्ट प्रोफेसर, संगीत एवं नृत्य विभाग, चौधरी रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द

वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक भारतीय संगीत सांस्कृतिक संगीत की आत्मा के रूप में भारतीय संस्कृति को आध्यात्म की ओर प्रेरित कर रहा है। अपनी आरम्भिक अवस्था से ही संगीत वह श्रेष्ठतम् कला है जिसे ऋषि, मुनियों से लेकर संत, कवि तथा मीरा जैसी भक्तों की भक्ति का मूलाधार बनकर प्रतिष्ठित हुई एवं मोक्ष प्राप्ति का साधन बनी। संगीत को एक आध्यात्मिक कला के रूप में भी स्वीकृति दी गई है जो सदैव ही धार्मिक भावनाओं और आन्तरिक जीवन से संबन्धित रही है। संगीत कला को उच्च कोटि की उत्तम कला का स्थान भी दिया गया है क्योंकि इसकी उपासना व साधना सभी देवी देवताओं नी की। मानव जीवन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति केवल संगीत के द्वारा ही सम्भव है। संगीत के अभाव में मानव जीवन के इन उदेश्यों की पूर्ति करना असम्भव है। संगीत की साधना ईश्वर की उपासना एवं आराधना का सरल एवं श्रेष्ठ माध्यम माना गया है एवं साथ ही ये सांसारिक सुखों का स्त्रोत भी है। वर्तमान समय में यह जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। इसके अतिरिक्त यदि हम संगीत को जीविकोपार्जन का स्त्रोत भी कहे तो कोई अतिश्योक्ति न होगी।

संगीत मनोरंजन के विषय में यदि बात की जाए तो चित्रपट संगीत का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। चित्रपट संगीत वह संगीत है जो छाया चित्रों की भाषा अभिव्यक्ति को और अधिक सशक्त बनाता है एवं चित्रपट को पुष्टिता एवं परिपूर्णता प्रदान करता है। चित्रपट संगीत को सम्बन्ध प्रत्येक धर्म, जाति अथवा वर्ग से है। इस संगीत का प्रभाव सार्वभौमिक है। संगीत का मूल उद्देश्य जन साधारण का मनोरंजन करना है और इसी लक्ष्य की पूर्ति करना चित्रपट संगीत का भी उद्देश्य रहा है। क्योंकि जन रूचि के अनुसार ही इस विधा की रचना की जाती है। इसलिए यह एक सशक्त एवं लोकप्रिय माध्यम है। मानव पर दृश्य एवं श्रवण का दोहरा प्रभाव पड़ता है। एक प्रकार से चित्रपट एक आधुनिक और यान्त्रिक नाटक ही है जिसमें सारी विधाएँ समाहित है। फिल्म संगीत का क्षेत्र इतना अधिक विस्तृत है कि चाहे लोक संगीत हो अथवा पाश्चात्य संगीत, शास्त्रीय हो अथवा उपशास्त्रीय संगीत हो सभी विधाओं को आत्मसात् करने की क्षमता फिल्म संगीत में निहित हो सकती है।[1]

संगीत की सभी विधाएं शास्त्रीय संगीत हो या चित्रपट संगीत या फिर भाव संगीत इन सभी ने भारतीय संस्कृति के परिरक्षण में सदैव अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। शास्त्रीय संगीत, लोक संगीत, भाव संगीत एवं चित्रपट संगीत आदि के रूप में संगीत की कलात्मक विविधता समाज के विविध वर्गों, सम्प्रदायों आदि का उनकी रूचि के अनुरूप आस्वादन कराते हुए संगीत का आनन्द प्रदान करती है। शास्त्रीय संगीत, लोक संगीत, भाव संगीत एवं चित्रपट संगीत आदि अपने आप में परिष्कृत कलात्मक रूचि से युक्त सामाजिक वर्ग के अधिक निकट है परन्तु चित्रपट संगीत के नाम से जिस संगीत की चर्चा की जाती है वह कहीं ना कहीं किसी ना किसी रूप में संगीत के समस्त प्रकारों, स्वरूपों एवं विधाओं को किंचित परिवर्तनात्मक रूप में अंगीकार कर लेती है। संगीत के अनेक प्रकारों में से यदि चित्रपट संगीत एवं भाव संगीत के अन्तर्गत निहित भजन गायन शैली को अंगीकृत करके उसमें निहित लालित्य, माधुर्य, ईश्वर के प्रति भावनाओं एवं सौन्दर्य को प्रमाणित किया है। ये दोनों ही विधाएं जन जीवन को प्रभावित करने वाली महत्वपूर्ण विधाएं हैं जो आज मानव जीवन का और उसकी दिनचर्या का अभिन्न अंग बन चुकी है परन्तु जहाँ चित्रपट संगीत एक ओर सारे समाज को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है वहीं दुसरी ओर भजन गायन शैली जैसी भाव भक्ति पूर्ण विधा को अनदेखा कर रहा है। यदि भजन गायन शैली के महत्व पर प्रकाश डाला जाए तो भजन से हमारा अभिप्राय छन्दोबद्ध एवं भक्ति भाव पूर्ण रचना द्वारा अपने ईष्टदेव अथवा किसी अन्य देवी देवताओं की आराधना, स्मरण एवं वन्दना करना 'भजन' कहलाता है। परमार्थिक दृष्टि से अन्य गायन शैलियों की अपेक्षा भजन गायन भी गायक एवं श्रोताओं दोनों के लिए विशेष कल्याणकारी है। जहाँ साधारण गायन से मनोरंजन होता है वहीं भजन गायन से मनोरंजन के साथ-साथ ईश्वर का भी भजन होता है।

हिन्दी चित्रपट संगीत में भजन गायन शैली के लुप्त प्राय: एवं उसकी वर्तमान स्थिति का यदि चिन्तन एवं मनन किया जाए तो विदित होता है कि हिन्दी चित्रपटों में भजन गायन शैली का प्राय: अभाव ही रहा है। नवनिर्मित चित्रपटों में तो यह विधा प्राय: लुप्त ही होती दिखाई दे रही है। यह अत्यन्त चिन्ताजनक विषय है कि चित्रपट संगीत पर विशेषकर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव होने के कारण भजनों की परम्परागत धुनों पर भी उसका पूर्ण प्रभाव पड़ा है।

कहने का अभिप्राय यह है कि पहले तो इस विधा का प्रयोग हिन्दी चित्रपटों में थोड़ा बहुत होता रहा परन्तु समय के साथ-साथ भजन शैली का प्रयोग लगभग लुप्त हो चुका है। आधुनिक समय में हिन्दी चित्रपट पर पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के कारण धीरे-धीरे ऐसी विधाओं का स्थान 'आईटम सोंग' ने ले लिया है जो हमारी संस्कृति को ही नही बल्कि हमारे संगीत, सम्पदा एवं धरोहर को भी दिन प्रतिदिन क्षति पहुंचा रहा है।

नवनिर्मित चित्रपटों के माध्यम से आज के निर्माता निर्देशक इन 'आईटम सोंग' को दिखा कर निरन्तर समाज में अश्लीलता परोस रहें हैं। पहले चित्रपट संगीत के माध्यम से भजन जैसी शैली के द्वारा धर्म, अध्यात्म एवं संस्कृति से जन साधारण को परिचित कराया जाता था। जिसके द्वारा हमारी धार्मिक परम्परा

एवं सांस्कृतिक प्राणप्रतिष्ठा का भी संरक्षण हो रहा था परन्तु वर्तमान स्थिति को देखते हुए यह गायन शैली फिल्म संगीत से लुप्त ही होती जा रही है जिसका मुख्य कारण फिल्मी संगीत पर पड़ रहा पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव है। जिस संगीत का प्रयोग नवनिर्मित फिल्मों में किया जा रहा है, वह मानव को आत्मिक संतुष्टि एवं शुद्ध संगीत का रसास्वादन करवाने में असमर्थ है।

आधुनिक समाज में चल रही वैश्विक आंधी के फलस्वरूप आज दुर्भाग्यवष कुछ श्रेणी के लोग ही भजन जैसी गायन शैली को सुनने के इच्छुक हैं एवं उसी के फलस्वरूप आज समाज में 'आईटम सोंग' जैसे संगीत को देखने एवं प्रसन्नता से ग्रहण करने वालों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसका एक कारण यह भी है कि आज हिन्दी चित्रपट संगीत के निर्माता-निर्देशक व्यापारिक दृष्टि से ही संगीत की रचना करते हैं। मन की शान्ति एवं सांस्कृतिक उत्थान से उनका कोई सम्बन्ध नही। आज बढ़ते हुए बाजारवाद के कारण केवल व्यापारिक लाभ उठाने के लिए संगीतकार किसी भी सीमा तक जा रहें हैं। उनका मुख्य उदेश्य केवल व्यापार करना ही रह गया है। जो हमारी संस्कृति को ही नही बल्कि हमारे स्वस्थ एवं शुद्ध संगीत को भी भंग कर रहें हैं। हिन्दी चित्रपटों की वर्तमान स्थिति को देखते हुए उनमें कभी-कभी किसी एक पारिवारिक चित्रपट में ही कोई एक भजन का प्रयोग किया गया है। जैसे: विवाह, जोधा अकबर, रावन इत्यादि।

माना कि बाजारवाद उपभोक्ताओं और मीडिया के माध्यम से चल रही वैश्विक आंधी के कारण चित्रपट संगीत परिवर्तित हो रहा है। जिसके दुष्प्रभव से भजन जैसी कई शैलियाँ चित्रपट संगीत से लुप्त हो रही है। यह बहुत विडम्बना का विषय है कि आजकल की युवा पीढ़ी भजन गायन शैली को अधिक महत्व नही देती अंतत: ऐसे पनपते वातावरण के फलस्वरूप चित्रपट संगीत के माध्यम से वैसा ही संगीत परोसा जा रहा है जैसा कि आज की युवा पीढ़ी देखना व सुनना चाहती है। क्योंकि उनकी धारणा यह बन चुकी है कि भजन सुनना तो बुजुर्गों का काम है। अत: इस विधा के लुप्त होने का कारण इसे भी माना गया है।

इन सभी कारणों के पश्चात यदि सकारात्मक दृष्टि से देखा जाए तो हमारी सांगीतिक परम्परा को आघात पहुंचने पर भी सांसारिक एवं वैज्ञानिक उपकरणों के माध्यम से इस विधा को विकसित करने के लिए नए आयाम अपनाए जा रहें है। इन्ही माध्यमों के कारण हिन्दी चित्रपट संगीत और भजन के बीच होने वाला आदान प्रदान एक ऐसी स्वाभाविक प्रक्रिया है जो कि न केवल हिन्दी चित्रपटों को अपितु भजन जैसी अन्य गायन शैलियों को भी अंगीकृत कर उनका सम्पोष्ण भी करती है एवं भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक पक्ष को भी उजागर करने में सहायक सिद्ध हो सकती है। परन्तु ऐसा सम्भव हो नही पा रहा। फिर भी जहाँ ये विधा भी चित्रपट संगीत से लुप्त होती जा रही है वहीं दुसरी ओर आधुनिक संचार माध्यमों जैसे आकाशवाणी, दूरदर्शन, ओडियो सी. डी. , विडियो सी. डी. के द्वारा इस विधा को उन्नति का नया मार्ग प्रशस्त हो रहा है। प्रचार प्रसार के इन माध्यमों के द्वारा जन साधारण को इस विधा से अवगत एवं आत्मविभोर करवाया जा रहा है। जिसे ग्रहण कर लोग आध्यात्मिक आनन्द के साथ-साथ संगीत को भी आत्मसात कर रहें हैं। मन्दिरों में सुबह शाम बज रहे रिकॉड इस बात का साक्षात प्रमाण हैं।

आधुनिक समय में चित्रपट संगीत में इस दिशा का प्रयोग भले ही कम हो गया हो परन्तु फिर भी हिन्दी चित्रपट संगीत से सम्बन्धित ऐसे कई गायक कलाकार आज भी अपने मधुर स्वरों से आधुनिक संचार के माध्यमों के द्वारा निरन्तर भजन गायन के द्वारा जनता को भक्ति संगीत का रसोपान करवा रहे हैं। जैसे -लता मंगेशकर, आशा भौंसलें, सोनू निगम, नरेन्द्र चन्चल इत्यादि ऐसे ही अनेक कलाकार उभर कर आ रहे हैं। जो इस विधा के संरक्षण एवं संवध न में विशेष भूमिका निभा रहे हैं। वैदिक मंत्र, गायत्री मंत्र, महामृत्युन्जय मंत्र, राम अमृतवाणी, शिव अमृतवाणी, गुरबाणी, हनुमान चालीसा, दुर्गा चालीसा एवं विभिन्न देवी-देवताओं की विभन्न आरतियाँ एवं शब्द कीर्तन को घर-घर पहुंचाया जा रहा है। जो इस धार्मिक परम्परा एवं ईश्वर के प्रति आस्था को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहें हैं।

इस विधा की सांगीतिक प्रगति का सकारात्मक विश्लेषण किया जाए तो दृष्टिगोचर होता है कि आज आधुनिक संचार माध्यमों के अन्तर्गत दूरदर्शन पर ही मुख्य रूप से ऐसे कई धार्मिक चौनल प्रचार में आ रहे हैं। जो केवल धर्म एवं आध्यात्म से ही सम्बन्धित है। जिनके माध्यम से निरन्तर नए-नए कलाकारों के द्वारा इस विधा का गायन प्राय: होता रहता है जैसे:- साधना, आस्था, भक्ति सागर, आध्यात्म, दर्शन एवं श्रद्धा इत्यादि। जो इस विधा को विकास के पथ पर अग्रसर करने में निरन्तर तत्पर है एवं साधारण जनता को भी जागरूक एवं प्रेरित कर रहे हैं। परिणामस्वरूप इनके द्वारा देश का सामाजिक, धार्मिक एवं सास्कृतिक उत्थान तो हो ही रहा है इसके साथ ही लोगों की ईश्वर के प्रति आस्था एवं विश्वास को बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहें हैं। आज भाव संगीत का यह संगीतिक विकास ही बहुत बड़ा सांस्कृतिक परिवर्तन सिद्ध हो रहा है।

अंत: हम कह सकते है कि जहाँ एक ओर भजन जैसी विधा हिन्दी चित्रपट संगीत से निसन्देह लुप्त होती जा रही है वहीं दूसरी ओर विकासात्मक दृष्टि से दूरदर्शन, आकाशवाणी जैसे आधुनिक संचार माध्यमों के द्वारा इस गायन शैली की प्राण प्रतिष्ठा, परम्परा, मर्यादा, भक्ति भावना एवं धार्मिक आस्था के संरक्षण एवं प्रगति के लिए भरपूर प्रयास किये जा रहें हैं। इसके अतिरिक्त फिर भी पुरानी हिन्दी फिल्मों में इस विधा को प्रयोग जिस रूप में होता रहा है यदि नवनिर्मित फिल्मों में इस विधा का प्रयोग उस रूप में न कर के बल्कि आजकल के वातावरण के अनुसार थोड़ा बहुत परिवर्तित रूप में किया जाए जो यह योजना इस विधा की विकासात्मक प्रक्रिया में महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। इसके साथ ही हिन्दी चित्रपट संगीत में इस विधा को नए रूप में ग्रहण कर के लुप्त होने से भी बचाया जा सकता है। अन्तत: हम कह सकते है कि समाज को भक्ति रसोपान करवाने में नई पीढ़ी को इस विधा से अवगत करवाने एवं भारतीय संगीत की सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण एवं संवर्धन में यह सुझाव महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकते है।

हिन्दी चित्रपट संगीत में प्रयुक्त किए गए कुछ भजनो का सांगीतिक विश्लेषण इस प्रकार है-

1. भजन:- मन तड़पत हरिदरसन को आज.....[2]

सांगीतिक विश्लेषण:- इस भजन का प्रयोग हिन्दी फिल्म 'बैजू बांवरा' में किया गया है। यह मालकौंस राग के स्वरों पर आधारित है। इस में तीन ताल का प्रयोग किया गया है। इस भजन को मुहम्मद रफी ने अपने मधुर स्वरों में अलंकृत किया है। इस भजन में सारंगी का वादन बहुत सुन्दर लगता है।

2. भजन:- ओ दुनिया के रखवाले .....[3]

सांगीतिक विश्लेषणः- हिन्दी चित्रपट 'बैजू बांवरा' में इस भजन का दर्शन पाया जाता है। इस भजन को राग दरबारी में स्वर बद्ध किया गया है। इसे भी मुहम्मद रफी ने अपने मधुर स्वरों में अलंकृत किया है। इस भजन में सभी वाद्यों का प्रयोग किया गया है। परन्तु गिटार एवं सारंगी का प्रयोग बहुत सुन्दर लगता है। इस भजन को कहरवा ताल में तालबद्ध किया गया है।

3. भजनः- दर्शन दो घनश्याम .....[4]

सांगीतिक विश्लेषणः- इस भजन का प्रयोग फिल्म 'नरसी भगत' में किया गया है। पुराने संगीत निर्देशक रवि ने इस भजन में अपना संगीत दिया है। उन्होनें इसे राग 'केदार' में स्वर बद्ध किया है एवं तीन ताल में इसे तालबद्ध किया है। इस भजन का गायन मन्ना डे, हेमन्न कुमार एवं सुधा मल्हौत्रा ने किया है।

4. भजनः- ए मालिक तेरे बन्दे हम.....[5]

सांगीतिक विश्लेषणः- इस भजन का प्रयोग 'दो आँखें बारह हाथ' फिल्म में किया गया है। इस भजन का संगीत निर्देशन बसन्त देसाई ने एवं स्वर कोकिला लता मंगेशकर जी ने इसे अपने मधुर स्वरों में सजाया है। इस भजन को राग भैरवी में स्वर बद्ध किया गया है।

5. भजनः- तोरा मन दरपन कहलाएं.....[6]

सांगीतिक विश्लेषणः- इस भजन का प्रयोग फिल्म 'काजल' में किया गया है। पुराने संगीत निर्देशक रवि ने इस भजन में अपना संगीत दिया है। इस भजन का लेखन गीतकार साहिर लुधियानवी ने किया है। इस भजन को राग दरबारी में स्वर बद्ध किया गया है। इसे ताल कहरवा में तालबद्ध किया है। इस भजन में सितार वादन का प्रयोग बड़ा ही सुन्दर लगता है।

6. भजनः- हमको मन की शक्ति देना.....[7]

सांगीतिक विश्लेषणः- इस भजन का प्रयोग 'गुड्डी' फिल्म में किया गया है। इस भजन को संगीत निर्देशन बसन्त देसाई जी ने दिया। इस राग को वाणी जयरामन जी ने अपने स्वरों से अलंकृत किया। इस भजन को राग केदार में स्वर बद्ध किया गया है एवं दादरा ताल में बद्ध किया गया है।

7. भजनः- इक राधा इक मीरा.....

सांगीतिक विश्लेषणः- इस भजन का प्रयोग फिल्म 'राम तेरी गंगा मैली' में किया गया है। इस भजन का संगीत निर्देशन रविन्द्र जैन ने किया। इस भजन को लता जी ने अपनी मधुर आवाज से सजाया।

सन्दर्भ सूचीः-

1. उपशास्त्रीय संगीत अंक, शेफाली यादव, पृष्ठ संख्या-84, संस्करण 2003

1- lyricsoff.com
2- lyricsoff.com
3- http://pages.cswise.edu/~navin/india/song/isong/7/768.html
4- geelamanjusha.com
5- lyricsmedia.net
6- http://pages.cswise.edu/~navin/india/song/isong/4/470.html

हिन्द महासागर में महाशक्तियों की बढ़ती भूमिका और उसका भारतीय सुरक्षा पर प्रभाव

राजीव कुमार सिंह

शोधार्थी एवं असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, ए.पी.एन. पी.जी.कॉलेज, बस्ती(यू0पी0)

प्रो० ब्रजेश कुमार त्रिपाठी

शोध निर्देशक एवं प्राचार्य, हीरालाल रामनिवास पी.जी.कॉलेज खलीलाबाद, संत कबीरनगर (यू0पी0)

विश्व के तीसरे बड़े महासागर होने और तीन महाद्वीपों अफ्रीका, एशिया और आस्ट्रेलिया से घिरा होने के कारण हिन्द महासागर भू-राजनीतिक, भू-रणनीतिक, आर्थिक और व्यापारिक दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्व वाला क्षेत्र माना जाता है अनेको युद्धों और राजनयिक संकटो का साक्षी रहा यह क्षेत्र खनिज और कच्चे पदार्थों की व्यापक सम्भावनाओं और तीन ओर से स्थलीय आबद्ध होने से रणनीतिक रूप से विशेष स्थान रखता है। विश्व की सबसे शक्तिशाली नौ सेनाएं और विश्व राजनीति में अपनी शक्ति के उंचे दांव खेलने वाली महाशक्तियां यहां अपनी प्रभावशाली उपस्थित को अनिवार्य मानती है। पिछले कुछ वर्षों में यह क्षेत्र शस्त्र व्यापार के साथ साथ मादक पदार्थों के अवैध व्यापार की गति विधियों का भी प्रमुख केन्द्र बना हुआ है। इसके अलावा विश्व के अन्य जल क्षेत्रो की तुलना में यहां समुद्री डकैतियों की घटनाओं में भी वृद्धि दर्ज की गयी है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनय में महत्व रखने वाले अनेक क्षेत्रीय संगठन भी इसी क्षेत्र में कार्यरत है जिससे इसका महत्व और बढ़ जाता है।

हिन्द महासागर के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए अल्फ्रेड थेयर महान ने 19 वीं शताब्दी के मध्य में कहा था कि भविष्य में सभी युद्धो का निर्णय हिन्द महासागर में होगा और जो राष्ट्र हिन्द महासागर पर नियंत्रण स्थापित करेगा वही एशिया को अपने नियंत्रण में रखेगा। यह सातो समुद्रो की कुंजी है 21वीं शताब्दी में विश्व के भाग्य का फैसला इसी जल पर होगा। वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की वास्तविकता के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अल्फ्रेड महान की भविष्यवाणी सत्यप्रतीत हो रही है।

महान के कथन से हिन्द महासागर के ऐतिहासिक तथा भौगोलिक महत्व का पता चलता है। सायद इसी कारण हिन्द महासागर में अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों के बीच नौ सैनिक अड्डा बनाने की होड़ लगी हुई है। वर्तमान समय में हिन्द महासागर विश्व का एक ऐसा क्षेत्र है जो अस्थिर एवं अशान्त बना हुआ। राजनीतिक हलचल और महाशक्तियों की प्रतिद्वंदिता इस क्षेत्र की मूल विशेषताएं है। जब से नौ सैनिक शक्ति के महत्व को समझा जाने लगा है, विशेष कर द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से तब से यह क्षेत्र संघर्ष, तनाव और टकराव का केन्द्र बन गया है। अपना नौ सैनिक वर्चस्व स्थापित करने के लिए विश्व की महाशक्तियां विशेषकर अमेरिका, चीन, फ्रांस, ब्रिटेन इत्यादि महासागर में अपनी उपस्थित बढा रहे है।

वर्तमान समय में हिन्द महासागर महाशक्तियों का केन्द्र इसलिए बना हुआ है क्योंकि प्राकृतिक संसाधनो की समृद्धि, भू-राजनीतिक सामरिक महत्व, यूरोप, एशिया, आस्ट्रेलिया, और अफ्रीका को जोड़ने वाले जल मार्ग, विश्व की सबसे बड़ी ग्राहक संख्या आदि इन कारणो से महाशक्तियां हिन्द महासागर में अपना आधिपत्य जमाना चाहती है। इसके अलावा हिन्द महासागर में उपलब्ध कच्चे माल के भण्डार महाशक्तियों के प्रतिद्वंदिता के कारण है। विश्व का 37 प्रतिशत तेल, 90 प्रतिशत रबर, 70 प्रतिशत टीन, 79 प्रतिशत सोना, 28 प्रतिशत मैग्नीज, 27 क्रोमियम, 16 प्रतिशत लोहा, 98 प्रतिशत हीरा तथा 60 प्रतिशत यूरेनियम हिन्द महासागरीय क्षेत्र में पाये जाते है। दुनिया के कुल कंटेनर ट्रैफिक का आधा कारोबार हिन्द महासागर के रास्ते होता है। कुल ट्रैफिक का 70 प्रतिशत से ज्यादा पेट्रोलिया उत्पाद मध्य-पूर्व से प्रषान्त महासागर तक हिन्द महासागर के रास्ते से गुजरते हैं। विश्व व्यापार का 40 फीसदी हिस्सा मल्लका जल डमरू मध्य से गुजरता है तो कुल कच्चे तेल का 40 फीसदी हिस्सा हर्मुज जल डमरू मध्य से गुजरता है।

हिन्द महासागर में प्रतिस्पर्धा मुख्यत: अमेरिका और पूर्व सोवियत संघ की उपस्थिति के कारण हुई। ये दोनो बड़े देश अपने लक्ष्यों की प्रप्ति हेतु हिन्द महासागर में समय-समय पर तनाव एवं शीत युद्ध प्रोत्साहित करते रहे। जहां तक अमेरिका का सम्बन्ध है उसने आस्ट्रेलिया और ब्रिटेन से समझौता करके हिन्द महासागर में नव-सैन्य आधारो एवं संचार सुविधाओं का निर्माण कर लिया है। जिसके निम्न लक्ष्य हैं:-

- अपने आर्थिक,राजनैतिक,व्यापरिक व सैनिक हितों की पूर्ति हेतु इस सम्पूर्ण क्षेत्र में उत्पन्न रिक्तता की पूर्ति करना।
- अपनी प्रतिद्वन्दियों की सामरिक गतिविधियों पर प्रभावी अंकुश लगाकर शक्ति सन्तुलन पर नियंत्रण करना।

इसके साथ ही अमेरिका हिन्द महासागर में खुलने वाले प्रमुख जल द्वारो पर अपना नियंत्रण चाहता है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय व्यापार पर नियंत्रण स्थापित करना सम्भव हो सके। अमेरिका के इस महासागर में न केवल स्थायी सैनिक अड्डे हैं बल्कि उसे अनेक देशों की हवाई पट्टियों और बंदरगाहो के

प्रयोग के सुविधाएं भी उपलब्ध हैं। इसमें 35 अमेरिकी सैन्य अड्डे और ठिकाने है तथा जिनका केन्द्र बहुत डियागोगार्शिया है। यहां लगभग एक लाख चालीस हजार अमेरिकी सैनिक तैनात हैं। केन्या, सोमालिया, साउदी अरब, ओमान, जीबूती, पाकिस्तान और मिस्र के पूरे तटवर्ती क्षेत्र में अमेरिका ने अपने सैन्य अड्डो का जाल फैला रखा है।

रूस भी हिन्द महासागर में एक रणनीति के तहत अपनी भूमिका बढा रहा है हिन्द महासागर के तटीय देशों के साथ सम्बन बनाकर रूस इस क्षेत्र में अपने राजनीतिक सैन्य प्रभाव का विस्तार कर रहा है। यह सोमालिया तट पर समुद्री डकैती विरोधी अभियानों एक सक्रिय खिलाड़ी है। रूस मोजाम्बिक और मेडागास्कर के लिए एक प्रमुख भागीदार के रूप में उभरा है। इस्लामिक विद्रोह के खिलाफ लड़ाई का समर्थन करने के लिए मौजाम्बिक में रूसी भाड़े के सैनिको को देखा गया है। रूस पश्चिमी हिन्द महासागर में दक्षिण अफ्रीका और चीन के साथ नौ सैनिक अभ्यास कर रहा है तो पूर्वी हिन्द महासागर में म्यामार के सैन्य शासन का एक महत्वपूर्ण रणनीतिक साझेदार बना है।

यह निश्चित और स्पष्ट तथ्य है कि किसी क्षेत्र में एक महाशक्ति की उपस्थित दूसरी महाशक्ति के लिए निमंत्रण का कार्य करती है ब्रिटेन, जापान, फ्रांस, चीन आदि देशों की हिन्द महासागर में बढ़ी हुई रूचि इसी तथ्य को स्पष्ट कर रही है फ्रांस ने भी भू-राजनीतिक बदलाव को पहचानते हुए हिन्द-प्रशान्त क्षेत्र के राष्ट्र के रूप में अपनी पहचान बनाने और क्षेत्र के प्रमुख प्लेयर के साथ अपनी साझेदारी को मजबूत करने पर जोर देना शुरू कर दिया है। हिन्द महासागर में स्थित रीयूनियन द्वीप पर फ्रांस का ही अधिकार है लगभग 4000 फ्रांस सी0सी0कर्मी दोनो समुद्र परिक्षेत्रों, जीबूती और आबूधाबी सहित अलग अलग स्थानो पर हिन्द महासागर में तैनात है।

चीन हिन्द महासागर में अपनी उपस्थिति को लगातार बढा रहा है यह 2006 के बाद हिन्द प्रशान्त क्षेत्र में नौसेना पर सबसे ज्यादा धन खर्च करने वाला देश बन गया है। चीन का हित अब समुद्रोन्मुखी और हिन्द महासागर को लेकर उसने तमाम परियोजनाएं भी बना ली हैं चीन एक रणनीति के तहत हिन्द महासागर में भारत को 'स्ट्रिंग आफ पर्ल्स' नीति के तहत घेरना चाहता है। इस नीति के तहत चीन भारत के पड़ोसी देशों में अपने सैन्य अड्डे विकसित कर रहा है। चीन म्यामार, में कोकोद्वीप तथा सिप्तवे बंदरगाह, बंग्लादेश में चटगांव श्रीलंका में हवन टोटा, पाकिस्तान में ग्वादर पत्तन और इसी तरह मालदीव, थाइलैण्ड, कम्पोडिया, सेशेल्स, मारिशस तथा जीबूती में सैन्य अड्डो की एक श्रृंखला विकसित कर ली है।

हिन्द महासागर में महाशक्तियों की इस प्रकार दिलचस्पी इस क्षेत्र में तनाव और तटीय देशों एक असुरक्षा की भावना को बढा रही है। भारत की आशंका निराधार नही है कि हिन्द महासागर में महाशक्तियों की सैन्य स्पर्धा से इस क्षेत्र में शान्ति और स्थायित्व के लिए खतरा पैदा हो उठेगा जो भारतीय सुरक्षा के दृष्टिकोण से उचित नही कहा जा सकता।

भारत प्रारम्भ से ही हिन्द महासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने की वकालता करता रहा है बाद में भारतीय दृष्टिकोण का स्वागत करते हुए तथा अपनी सुरक्षा को ध्यान रखते हुए श्रीलकां, म्यामार, तंजानिया, इराक, यमन और मारिशस आदि देषो ने हिन्द महासागर में बाहरी शक्तियों का विरोध करते हुए शान्ति क्षेत्र के निर्माण का पूर्ण समर्थन किया। तत्पश्चात संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1971 में हिन्द महासागर को शान्ति का क्षेत्र घोषित कर दिया। लेकिन भारत के विरूद्ध पाकिस्तान, चीन का विद्वेषपूर्ण गठबन्धन हिन्द महासागर में शान्ति क्षेत्र के प्रयासों में एक बाधक तत्व बना हुआ है।

भारत की सुरक्षा हिन्द महासागर की शान्ति और सुरक्षा के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है। इसी कारण भारत इस क्षेत्र में बड़ी शक्तियों की बढ़ती हुई होड़ को लेकर शुरू से ही चिन्तित रहा है। हिन्द महासागर पर नियंत्रण स्थापित हेतु महाशक्तियों की आपसी प्रतिद्वंदिता ने जहां एक ओर इस क्षेत्र में शीत युद्ध को प्रोत्साहन दिया वहीं शस्त्र स्पर्धा और सैन्यीकरण में भी वृद्धि की। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से यह क्षेत्र संघर्ष तनाव एवं टकराव का केन्द्र बन गया है। हिन्द महासागर में परमाणु अस्त्रो से लैस महाशक्तियों के सैनिक जहाज और पनडुब्बियां इधर उधर गस्त लगाते रहते है। इन बड़ी ताकतों की मौजूगी निश्चित रूप से हमारे चिन्ता का विषय है। क्योंकि हमारे आर्थिक विकास और सुरक्षा का प्रश्न इस महासागर की लहरों से जुड़ा है।

अरब सागर के क्षेत्र में समुद्री लुटेरो से भारतीय व्यापरिक जहाजों को सदैव खतरा बना रहता है। समुद्री मार्ग से पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित आतंकवाद का दंश भी भारत झेल चुका है। 26/11 का मुम्बई हमला इसका प्रमुख उदाहरण है। समुद्री रास्तो से हथियारों, नसीली पदार्थों और मानव तरक्की संगठित अपराध के रूप में भारत के लिए एक बड़ी सामुद्रिक सुरक्षा चुनौती बनी हुई है। इस सभी गति-विधियों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से चीन पाकिस्तान का गठजोड़ शमिल रहता है। चीन द्वारा भारतीय सीमा के समीप विकसित किये जा रहे बंदरगाहो ने तनाव की स्थित उत्पन्न कर दी है। चीन इन बंदरगाहो का उपयोग भारत के खिलाफ रहता है। चटगाँव, कोको द्वीप, हंमनटोटा तथा ग्वादर पत्तन पर जासूसी जहाजों द्वारा भारतीय सुरक्षा संस्थानो जासूसी करता करता रहता है जो भारतीय सुरक्षा की दृष्टि से चिंतनीय है।

हिन्द महासागर दुनिया का अकेला ऐसा महासागर है जिसका नाम किसी देश के नाम पर पड़ा है। इस महासागर की सामाजिक, आर्थिक और राजनितिक गतिविधियां सभ्यता के प्रारम्भिक काल से ही भारतीय उपमहाद्वीप से जुड़ी है। हिन्द महासागर की कुल तट रेखा 12.5 प्रतिशत भाग भारतीय तट रेखा है। हिन्द महासागर में भारत के लगभग 1156 द्वीप है। इनकी सुरक्षा और विकास का उत्तरदायित्व भारत पर है। भारत का लगभग 98 प्रतिशत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार हिन्द महासागर के मार्ग से होता है। भारत का समुद्री क्षेत्र लगभग 24 लाख वर्ग किमी है। इसका आर्थिक दोहन हिन्द महासागर की शान्ति पर निर्भर करता है। भातर का लगभग 63 प्रतिशत पेट्रोलियम और खनिज तेल समुद्री क्षेत्रों से ही प्राप्त होता है। हिन्द महासागर में अनेक छोटे-छोटे देश है जिनके हितों की सुरक्षा में भारत की रूची है। इस दृष्टि से महासागर का सैन्यीकरण भारत के सुरक्षा हितों पर सीधा प्रभाव डालता है।

अत: भारत को अपनी भौगोलिक स्थित एवं स्वतंत्र राजनैतिक व आर्थिक विकास की आवश्यकताओं को देखते हुए हिन्द महासागर पर नियंत्रण पाने के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने को मुक्त सामुद्रिक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करें। हिन्द महासागर को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा शान्ति क्षेत्र घोषित करने के बाद भी महाशक्तियां इस दिशा में प्रतिकूल आचरण करने से बाज नही आ रही हैं। हिन्द महासागर पर नियंत्रण के अभाव में भारत की विश्व में स्थिति जहां एक ओर कमजोर होगी वहीं दूसरी ओर उसकी सुरक्षा उस देश की दया पर निर्भर करेगी। जो हिन्द महासागर पर अधिकार करने में समर्थ होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. पणिकर,के0एम0 - 'इण्डिया एण्ड द इण्डियन ओशन'
2. शर्मा, डा0 प्रभुदत्त - अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति
3. शर्मा, हरवीर, भारत:सामरिक परिवेष (1995-96) हम्बुज प्रकाशन,मेरठ
4. हरिशरण, हिन्द महासागर, चुनौतियां एवं विकल्प
5. गुप्त, परशुराम - स्त्रातिजिक भूगोल
6. वर्ल्ड फोकस, 2016
7. दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान समाचार पत्र।

सामाजिक क्रांति और नारी जागरण श्री राम शर्मा के संदर्भ में

पुष्पा शर्मा

शोध छात्रा, सर्वेपल्ली राधाकृष्णन विश्वविद्यालय, भोपाल

डॉ० अलका तिवारी

हिन्दी विभागाध्यक्ष, सर्वपल्ली राधकृष्णन विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

पण्डित श्री राम शर्मा आचार्य (20 सितम्बर 1911- 20 जून 1990) भारत के एक युग दृश्य मनीषा थे जिन्होने अखिल विश्व गायत्री परिवार की स्थापना की आचार्य जी ने अपना जीवन समाज की भलाई तथा सांस्कृतिक व चारित्रिक उत्थान के लिये समर्पित कर दिया। उन्होने आधुनिक व प्राचीन विज्ञान व धर्म का समन्वय करके आध्यात्मिक नवचेतना को जगाने का कार्य किया ताकि वर्तमान समय की चुनौतियों का सामना कर सके पण्डित श्री राम शर्मा जी का व्यक्तित्व एक साधु पुरूष, आध्यात्मक विज्ञानी, योगी, दाशर्निक मनौवैज्ञानिक, लेखक, समाज सुधारक, मनीषी व दृष्टा का समन्वित रूप था।

व्यक्ति समाज में जीता है और समाज इतिहास में। इसलिए व्यक्ति और समाज का अतीत के प्रति नैसर्गिक लगाव होता है। अतीत में यह क्षेत्र प्रागैतिहासिक काल तक फैलता जा रहा है तो दूसरी ओर वर्तमान को भी छूने लगा है। अतीत से लेकर वर्तमान तक भारतीय समाज में नारी की उपादेयता के लिए समाज के द्वन्द्वो, परिचालक शक्तियॉ, उनके बीच में संघर्षो और विकास की दिशा आदि का अध्ययन करता हुआ समाज का सर्वांगीण अध्ययन करता है। कुछ भी अछूता नही बचता। विशेष को रेखांकित करता हुआ भी सार्वभौम और सर्वकालिक परिप्रेक्ष्य रखता है। भारत में नारी को देवी, श्रृद्धा जैसे सम्बोधनों से सम्बोधित करने की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है।

प्राचीन भारत में स्त्रियों को ऊॅचा स्थान प्राप्त था। स्त्री गृहलक्ष्मी समझी जाती थी और उसे गृहस्वामिनी या अर्द्धांगिनी कहा जाता था। स्त्रियों को बाहर निकलने और घूमने फिरने की पूरी स्वतंत्रता थी। वे आकर्षक और सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण धारण कर यज्ञों, त्यौहारों, सामजिक समारोहों तथा उत्सवों में शामिल होती थी। ऋग्वेद में अपाला, विश्ववरा, घोषा, सिकाता, निलावरी, लोपामुद्रा आदि शिक्षित एवं विदुषी महिलाओं का उल्लेख आता है, जिन्होने वेदमंत्रों की भी व्याख्या की थी। ऋग्वेद में एक ऋचा में उल्लेख है-

हे देवकन्या उषा! धन सहित हमारे लिये सुप्रभात करो।

देवि! दानशील होकर प्रभात करो[1] उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की दशा में कुछ गिरावट आयी और कन्या का जन्म दुख का कारण माना जाने लगा। वैदिक दर्शन में नारी का व्यक्तित्व सदैव पूजनीय रहा है। आधुनिक युग में ज्ञान का क्षेत्र हो या विज्ञान का सब में नारी की उपादेयता समाज और संस्कति को अक्षुण्ण रखने में सहायक सिद्ध हुई है। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भी भारतीय नारियों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। रानी लक्ष्मीबाई, झलकारी बाई ने देश के लिए प्राण न्यौछाबर कर दिये। पन्ना धाय से लेकर मदर टेरेसा तक सभी नारियों ने देश और समाज के लिए अपना जीवन ही अर्पित कर दिया।

नारी की महिमा को पहचानकर समाज तथा राष्ट्र के सर्वांगीण विकास में उनको महत्वपूर्ण स्थान देने की आवश्यकता है। जिस समाज ने महिलाओं की उपेक्षा की, वह समाज प्रगतिपथ पर अग्रसर होने से वंचित हो गया। भारतीय समाज में नारी लम्बे समय से अवमानना, यातना और शोषण का शिकार रही है। महिलाओं के प्रति हिंसा का मूल कारण क्या है? इसको समझना कठिन कार्य प्रतीत होता है। बिडम्बना है कि पित्र सत्तात्मक समाज आज नारी की उपादेयता को अहंकारवश भूलता जा रहा है। नारी का हमारे हृदय और मन में गरिमामय स्थान होना चाहिए। आज आवश्यकता है कि हम नारी की उपादेयता को पहचाने तथा उनकी चेतना को बलवती बनाने की दिशा में सार्थक प्रयास करें। अतीत से लेकर वर्तमान तक परिवार, समाज और राष्ट्र के विकास में नारियों का अभूतपूर्व योगदान रहा है। आज की महिलाएं प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, लोक सभा विधान सभा की अध्यक्ष, राज्यपाल, न्यायाधीश, वैज्ञानिक, शिक्षक, चिकित्सक, सम्पादक, पत्रकार, संगीतकार आदि बनकर जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नही है, जिसे नारी समाज ने सुशोभित न किया हो। आज आवश्यकता है कि समाज को सुशिक्षित, प्रबुद्ध व सुसंस्कृत नारी की अपरिहार्यता की। जिससे वह अपना योगदान राष्ट्रीय विकास एवं समाज हित में समुचित रूप से कर सके।

भारतीय नारी जिसका सभ्यता एवं संस्कृति में पूरा विश्वास है ने सब प्रकार से अपने आपको परिवार और समाज के प्रति समर्पित कर दिया है। सीता और साबित्री के आदर्श को वह अपने जीवन में उतारने के लिए सदैव तत्पर रहती है। नारी की सामाजिक प्रतिष्ठा उसके पति की प्रतिष्ठा पर ही अधिकांशतः निर्भर करती है।

मानव जीवन को गतिमान बनाने में नारी का महत्वपूर्ण योगदान है। जब कभी दुख और अवसाद में मानव गहरे सागर में डूब जाता है तो नारी ही है जो मनुष्य को ढांढस बंधाकर दुखित मन को शांति प्रदान करती है। मानव सदैव अपने कल्याण के प्रति सचेष्ट रहा है उसका जीवन मंगलमय रहे, चतुर्दिक उसकी पताका लहराती रहे इसलिए मानव लोक विश्वासों को ऑख मूंदकर मानने लगता है।

भारत में नारियॉ लोक विश्वासों के प्रति इतनी सजग रहती है कि यात्रा करते समय मार्ग में पडने वाली नदियों में पैसे चढाती हैं। विशेष पर्वो पर स्त्रियों नदी में दीपदान करती हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से सौभाग्य में वृद्धि होती है।

प्राचीन भारत के गौरवमयी इतिहास में नारियों की दशा का अध्ययन करना अवश्यंभावी हो जाती है। ऋग्वेदिक समाज में महिलाओं को जीवन के हर क्षेत्र में सम्मान तथा स्वतंत्रता थी। उन्हें पुरूषों के समान अवसर उपलब्ध थे। उस समय नारियॉ युद्ध से लेकर यज्ञ और संस्कारों में बढ़-चढकर हिस्सा लेती थी। ज्ञान, विश्वास, अध्यात्मक से लेकर राजनीति, यज्ञकर्म एवं साधना तथा लेखन के क्षेत्र में अपना कौशल प्रदर्शित कर अपनी उत्कृष्ट कलाओं और क्षमताओं का भी संचार करती थीं। उस समय नारी सम्मान अपने चरम बिन्दु पर था। किन्तु उत्तर वैदिक काल आते-आते सती प्रथा, पर्दाप्रथा, बाल विवाह, अस्पृश्यता जैसी अनेक कुरीतियॉ एवं प्रथायें समाज में अपने पैर पसारने लगी। नारी ने अपने ममतामयी स्वरूप, त्याग, तपस्या और ज्ञान से इस संसार को प्रगति पथ पर आगे बढने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज आवश्यता है कि नारी के सम्मान और उसके असाधारण व्यक्तित्व को सशक्त करने की। आज के समय में नारियों को अपनी पहचान और प्रतिष्ठा स्वयं बनाकर सशक्त बनना है। हमें अतीत से सीख लेकर नारी की उपादेयता को समझना होगा क्योंकि अतीत से लेकर वर्तमान तक और भविष्य निर्माण के लिए भी समाज को एक नई दिशा देने में नारी की प्रमुख भूमिका है।

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य ने व्यक्त किये हैं कि भारत के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हे उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने ताड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख-सुनकर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यो को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का उनका समय एक सक्रिय स्वयंसेवक- स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद पैदल लम्बा रास्ता पार कर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल भी गये। छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई। जेल में भी जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अँग्रेजी सीखकर लौटै। आसनसोल जेल में वे पं. जवाहरलाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मदनमोहन मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से, मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना। यही मंत्र आगे चलकर एक घंटा समयदान, बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्म घट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनता चला गया, जिसका आधार था - प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश।

नारी सशक्तीकरण सिर्फ नारों से नहीं बल्कि कुछ क्रांतिकारी कदम उठाने से पूर्ण होगा। अगर वास्तव में नारी को अपनी जगह बनानी है, तो नारी शक्ति को अपनी ताकत का आभास करना ही पड़ेगा। क्योंकि कोई अन्य व्यक्ति किसी को सिर्फ सहानुभूति ही दे सकता है। शक्ति उसे स्वयं प्राप्त करनी होती है। ठीक उसी प्रकार स्त्रियों को भी अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों का विरोध करना ही होगा और अपनी सुरक्षा के स्थान पर अपने हक की बात करनी होगी, क्योंकि सुरक्षा उनका अधिकार है। आज के आधुनिक युग में स्त्रियों को पुरुषों की भांति समान अधिकार दिया जा रहा है। कुछ विसंगतियों को छोडकर देश और समाज में उचित स्थान मिल रहा है। हमें शुरुवात अपने घर की नारियों से करना होगा और उन्हें सहायता के साथ प्रोत्साहन भी देना होगा, तब जाकर कही नारी शक्ति का वास्तविक रूप में उदय हो सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. समकालीन महिला लेखन- डॉ ओमप्रकाश शर्मा, पूजा प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 1999
2. समकालीन हिन्दी के पत्र साहित्य में नारी विषयक चिन्तन - मध्ययुगीन साहित्य में नारी भावना, लेख -उषा पाण्डेय, भावना प्रकाशन नई दिल्ली संस्करण-1993,
3. हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण-डॉ.श्याम सुन्दर व्यास राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली संस्करण-1977
4. सुन्दरदास-सुन्दर ग्रन्थावली, राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली संस्करण-1977
5. सेवा समर्पण नारी विशेषांक, प्रताप लहरी- प्रतापनारायण मिश्र, सेवाकुन्ज नई दिल्ली संस्करण-अप्रेल 2004
6. (बेटे और बेटी में भेदभाव कैसा) अखण्ड ज्योतिः श्रीराम शर्मा आचार्य, सं:- डॉ प्रणव पण्ड्या अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी-मथुरा सन् 2014

स्वामी विवेकानंद : जीवन वृत्त एवं दर्शन

आशीष राठौर

शोध छात्र, सर्वेपल्ली राधाकृष्णन विश्वविद्यालय भोपाल

डॉ० ज्योति राजपूत

सोशियोलॉजी विभाग, सर्वेपल्ली राधाकृष्णन विश्वविद्यालय भोपाल

"मुक्ति मुक्ति कृपा कटाक्ष प्रेक्षण मघ दल विदलनदक्षम् ।
बालचन्द्रधरमिन्दुवन्धमिह नौमि गुरु विवेकानन्दम् ।।"

अर्थात् जिनकी कृपा दृष्टि से भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं, जो पाप समूह का विनाश करने में निपुण हैं, जो मस्तक पर चन्द्रकला धारण करने वाले शिवस्वरूप ही हैं एवं 'इन्दु' कवि के वन्दनीय हैं, उन गुरू विवेकानन्द को मैं प्रणाम करता हूँ। विवेकानन्द ने हमारे देश में ही नहीं वरन् विदेशों में भी इस प्रकार के कार्य किये जिससे लोगों में राजनीतिक चेतना के साथ-साथ सांस्कृतिक तथा धार्मिक भावनाओं का विकास हुआ। अमूल्य रत्नों से परिपूर्ण जाज्वल्यमान भारत वसुन्धरा का अचल कितना पवित्र किन्तु सौभाग्यशाली और कितना अनोखा है। यह किसी से छिपा नहीं है। यह रत्नगर्भा भारत भूमि अपने अन्तर में जहाँ असंख्य मणि-मुक्ताए छिपायें बैठी है वहीं उसके आंचल में समय-समय पर ऐसे नवरत्न पैदा हुए हैं जिनकी जीवन ज्योति से जगती तल जगमगा उठा जिन्होंने चट्टान बनकर समय का प्रवाह रोक दिया जो अपने लिए नहीं वरन् विश्व के लिए जिये और जिनके पवित्र तेज के समक्ष समस्त अमानवीय एवं अपावन विचारों ने घुटने टेक दिये। मां भारती के ये अमर पुत्र अपने पूर्वजों की धरती सभाल, अतीत का ज्योति कलश ले साधना के पथ पर बढ़े तो पथ की बीहड़ता उसका अन्धकार सब कुछ स्वयंमेव नष्ट हो गया। मंजुला आरती के लिए स्वागत में खड़ी मिली। उनका जीवन आज भी सफलता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचकर वह ज्ञान ज्योति बिखेर रहा है जिसके प्रकाश पर संसार सब कुछ न्यौछावर करने को सन्नद्ध है। ऐसे विलक्षण पुरुष भारत में एक-दो नहीं हुए हैं। इनकी विशाल मलिका है। इस दिव्य मालिका में एक ज्योतिमनि रत्न हैं स्वामी विवेकानन्द जी के पूर्वजों का आदि निवास वर्द्धमान (पश्चिम बंगाल) जिले के कालना महकमें के अन्तर्गत डेरेटोना गांव में था। ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ में ही वे लोग गांव छोड़कर कलकत्ता में आ बसे। पहले गढ़ गोविन्दपुर और बाद में उत्तर कलकत्ता के सिमला इलके में सिमला मुहल्ले के जिस घर में स्वामी जी का जन्म हुआ था, उस घर को उनके परदादा राममोहन दत्त ने बनवाया था। राममोहन के ज्येष्ठ पुत्र दुर्गा प्रसाद ने बीस बाईस वर्ष की उम्र में संसार-त्याग कर सन्यास ग्रहण किया था। उनके पुत्र विश्वनाथ दत्त उस समय छोटे थे। श्री विश्वनाथ दत्त ने बड़े होकर एटर्नी का पेशा अपनाया । उनका विवाह सिमला निवासी नन्दलाल बसु की एकमात्र कन्या भुवनेश्वरी देवी से हुआ। नरेन्द्रनाथ, जो परवर्ती काल में स्वामी विवेकानन्द कहलाए, इन्हीं की छठी सन्तान थे । श्री विश्वनाथ दत्त अत्यन्त उदार प्रकृति के मनुष्य थे। खान-पान, पोशाक तथा अदब कायदे में वे हिन्दू-मुसलमान की मिश्रित संस्कृति के अनुरागी थे एवं कर्मक्षेत्र में अंग्रेजों का अनुसरण करते थे। अर्थोपार्जन तो प्रचुर मात्रा में करते थे, पर संचय करने के आग्रही नहीं थे। अनेकों आत्मीय जनों और दरिद्रों का प्रतिपालन करते थे। उन्हें सात भाषाओं में दक्षता प्राप्त थी । इतिहास तथा संगीत में विशेष रूचि थी। भुवनेश्वरी देवी सभी अर्थों में उनकी सुयोग्य सहधर्मिणी थीं। उनके हर कदम पर उनका व्यक्तित्व और अभिजात्य प्रकाश पाता था। गरीब, दु:खी उनके दरवाजे से खाली हाथ नहीं सौते थे परिवार का हर काम स्वयं करने के उपरान्त नियमित रूप से पूजा, शास्त्राध्ययन एवं सिलाई का काम भी करती थीं। प्रतिवेशी लोगों के सुख-दु:ख की खबर लेना भी प्रतिदिन नहीं भूलती थीं। नरेन्द्रनाथ ने अपनी माता से ही प्राथमिक अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की थी।

सन् 1863 ई० की 12 जनवरी पौष संक्रान्ति के दिन प्रात: 6 बजकर 33 मिनट 33 सेकण्ड पर भुवनेश्वरी देवी की छठी सन्तान का जन्म हुआ ! भुवनेश्वरी देवी ने विश्वास किया कि यह पुत्र उन्हें काशी के वीरेश्वर शिव के अनुग्रह से प्राप्त हुआ है। इसी कारण पुत्र का नामकरण वीरेश्वर किया गया और घरेलू नाम वीरेश्वर बिले हुआ। लोग आपको नरेन्द्रनाथ के नाम से भी जानते थे। बिले में असाधारण मेधा, तेजस्विता, साहस, स्वाधीन, मनोभाव, सहृदयता, बन्धु प्रीति एवं खेलकूद के प्रति आकर्षण का स्पष्ट परिचय मिलता था और इसके साथ प्रबल आध्यात्मिक तृष्णा भी। बिले ध्यान-ध्यान खेलते समय सहज ही गंभीर ध्यान में डूब जाता। राम-सीता और शिव की वह पूजा करता। साधु-सन्यासियों को देखते ही अनजाने आकर्षण से दौड़कर उनके पास चला जाता। सोने से पहले ज्योति-दर्शन करना उसी एक स्वाभाविक अवस्था थी। उम्र बढ़ने के साथ-साथ नरेन्द्रनाथ स्कूल में वाद-विवाद और आलोचना सभाओं में मणि की तरह चमके। खेलकूद में सबसे आगे निकले, शास्त्रीय भजन-संगीत में प्रथम श्रेणी के गायक और नाटक में कुशल अभिनेता बने एवं विभिन्न प्रकार की पुस्तकों के अध्ययन से अल्प अवस्था में ही उनमें गहन गंभीर चिन्तन शाक्ति जागी सन्यास के प्रति आकर्षण बढ़ता ही रहा, परन्तु जगत् के प्रति निष्ठुर नहीं हुए।

उनका अत्यन्त ममताशील हृदय विपदाओं से घिरे व्यक्ति की सहायता के लिए उन्हें हमेशा प्रेरित और अग्रसर करता रहता। नरेन्द्रनाथ 1879 ई० में

मैट्रोपॉलिटन स्कूल में प्रथम श्रेणी में एण्ट्रेन्स परीक्षा उत्तीर्ण होकर कलकत्ता स्थित प्रेसिडेन्सी कॉलेज में दाखिल हुए, पर मलेरिया ज्वर से अक्रान्त होने के कारण पढ़ाई में व्यवधान उत्पन्न हुआ। प्रेसिडेन्सी कालेज छोड़कर जनरल असेम्बली (स्कॉटिश चर्च कॉलेज) में दाखिल हुए। उसी कॉलेज में 1881 ई० में एफ.ए. तथा 1883 में बी.ए. परीक्षा पास की। नरेन्द्रनाथ में विद्यानुराग प्रबल था एवं लिखने-पढ़ने की परिधि स्कूल एवं कॉलेज की परीक्षाओं अत्यन्त विस्तृत थी। छात्रावास में ही उन्होंने दार्शनिक हर्बट स्पेन्सर के विचारों की समालोचना कर उन्हें लिखा था। उसके उत्तर में स्पेन्सर महाशय ने नरेन्द्रनाथ की यथेष्ट प्रशंसा की थी और लिखा था कि वे अपनी पुस्तक के परवर्ती संस्करण में उनकी समालोचना के अनुरूप कुछ-कुछ परिवर्तन भी करेंगे ।

उनके कॉलेज के अध्यापक विलियम हेस्टी उनकी प्रतिभा से मुग्ध होकर कहा करते नरेन्द्रनाथ सचमुच ही एक जीनियस (प्रतिभाशाली) है मैं बहुत स्थानों में घूमा हूँ, परन्तु इसके अनुरूप बुद्धि और बहुमुखी प्रतिभा कहीं नहीं देखी, यहाँ तक कि जर्मनी के विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले दर्शन के छात्रों में भी नहीं ।

विलियम हस्टी से ही नरेन्द्रनाथ ने सर्वप्रथम सुना था कि दक्षिणेश्वर में रामकृष्ण परमहंस समाधि में लीन थे। इसके उपरान्त् सन् 1881 ई० में नवम्बर माह (सम्भवत: 6 नवम्बर) में कलकत्ते के सुरेन्द्रनाथ मित्र के अवास पर श्रीरामकृष्ण से से पहली मुलाकात हुई। दूसरी बार श्रीरामकृष्ण से दर में मिले उस दिन नरेन्द्रनाथ ने श्रीरामकृष्ण से वहीं सीधा प्रश्न किया जो उन्होंने इससे पहले भी अनेक से पूछा था "आपने क्या ईश्वर का साक्षात्कार किया ? उत्तर भी उतना ही सीधा मिला: "हाँ, मैं उनका दर्शन पाता हूँ। तुम्हे जैसा देखता हूँ, उससे भी स्पष्ट उन्हें देखता हूँ। तुम अगर देखना चाहते हो तो तुम्हे भी दिखा सकता हूँ।" उत्तर सुनकर नरेन्द्रनाथ अचम्भित हो गये। यह तो पहला व्यक्ति है जो बड़े सहज भाव से कहता है कि उसने ईश्वर को देखा है। सिर्फ इतना ही नहीं, वह अन्य को भी ईश्वर का साक्षात्कार करा सकता है। परन्तु नरेन्द्रनाथ ने सहज ही उनको स्वीकार नहीं किया था। पुन: परीक्षा के उपरान्त ही जब वे उनकी पवित्रता तथा आध्यात्मिकता के विषय में नि:सन्दिग्ध हुए, तभी उनके जीवन के पथ प्रदर्शक के रूप में ग्रहण किया। उनके परखने के इस कौशल से श्रीरामकृष्ण अत्यन्त मुग्ध हुए थे और उन्होंने जाना था कि यह मनुष्यों को दु:ख से मुक्त करने के लिए पृथ्वी पर आया है और यही उनके भावों के प्रचार का माध्यम बनेगा।

नरेन्द्रनाथ ने श्रीरामकृष्णका घनिष्ठ संसर्ग लगभग पांच वर्ष तक पाया था। इन पाच वर्षों में उन्हें श्रीरामकृष्ण की शिक्षा तथा अपनी योग्यता के आधार पर बहुविध अध्यात्मिक अनुभूतियाँ प्राप्त हुई। किन्तु 25 फरवरी 1884 को उनके पिता का आकस्मिक देहान्त होने के उपरान्त उन्हें बहुत ही आर्थिक कष्ट का सामना करना पड़ा इस कठिन परिस्थिति में भी उनके विवेक और वैराग्य में तनिक भी कमी नहीं आई। सन् 1884 ई0 में श्रीरामकृष्ण कण्ठरोग (कैंसर) से ग्रस्त हुए, चिकित्सा के लिए उन्हें पहले श्यामपुकुर और बाद में काशीपुर में एक किराये के मकान में लाया गया। इसी मकान में गरेन्द्रनाथ अपने गुरूभाइयों को लेकर श्रीरामकृष्ण की सेवा की और तीव्र आध्यात्मिक साधना में डूब गये। एक दिन उन्होंने श्रीरामकृष्ण के समक्ष इच्छा व्यक्त की ये शुकदेव की भाति दिन-रात निर्विकल्प समाधि में डूबे रहना चाहते हैं। परन्तु श्रीरामकृष्ण ने धिक्कारा, "छि नरेन, तुम सिर्फ अपनी मुक्ति की इच्छा रखते हो। तुम्हें तो विशाल वटवृक्ष की तरह होना पड़ेगा, जिसकी छाया में समस्त पृथ्वी के मनुष्य शान्ति-लाभ करेगे।" यद्यपि उन्होंने ऐसा कहा था, परन्तु उनकी कृपा से ही काशीपुर में ही नरेन्द्रनाथ ने एक दिन आध्यात्मिक जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि निर्विकल्प समाधि प्राप्त की थी समाधि भंग होने के उपरान्त श्रीरामकृष्ण ने उनसे कहा कि इस उपलब्धि की कुजी वे अपने पास ही रखेंगे। जगत् के प्रति जब नरेन्द्रनाथ के कर्तव्य की इति होगी, तो ये स्वयं ही इस उपलब्धि का द्वार पुन: मुक्त कर देंगे।शीपुर में श्रीरामकृष्ण ने एक दिन कागज पर लिखा, "नरेन्द्र शिक्षा देगा।" अर्थात् भारतवर्ष का जो शाश्वत आध्यात्मिक आदर्श अपने जीवन में उन्होंने उपस्थित किया था, जगत् में उसी का प्रसार नरेन्द्रनाथ को करना होगा। इस पर नरेन्द्रनाथ ने आपत्ति प्रकट की तो श्रीरामकृष्ण बोले, "तेरी हड्डियाँ भी यह काम करेंगी।" एक दिन श्रीरामकृष्ण ने वैष्णव धर्म की समालोचना करते समय मन्तव्य व्यक्त किया जीव पर दया नहीं, शिव भाव से जीव की सेवा करनी चाहिए। नरेन्द्रनाथ इस पर मुग्ध होकर बोले, "आज ठाकुर के वचनों में एक अद्‌भुत प्रकाश अनुभव किया। अगर ईश्वर ने कभी अवसर दिया तो आज जो अद्‌भुत सत्य को सुना, उसे सम्पूर्ण संसार में बिखेर दूंगा धारवर्ती काल में स्वामीजी ने मानव सेवा के माध्यम से भगवान की उपासना का जो अनुष्ठान पसारा उसकी जमीन उसी दिन तैयार हुई थी । वस्तुत: स्वामी विवेकानन्द का प्रत्येक काम ही श्रीरामकृष्ण द्वारा निर्देशित है। श्रीरामकृष्ण सूत्र हैं और स्वामी जी उनके भाष्य हैं। सन्यासी गुरूभाईयों को लेकर एक संघ की प्रतिष्ठा का निर्देश भी श्रीरामकृष्ण ही दे गये थे।

सन् 1856 ई० की 16 अगस्त को श्रीरामकृष्ण की इहलीला को विराम मिला। इस घटना के कुछ दिन बाद ही नरेन्द्रनाथ ने अपने गुरूभाईयों के साथ वराहनगर के एक जीर्ण मकान में रामकृष्ण मठ की प्रतिष्ठा की । चरम दारिद्र्य के बीच अपने गुरुभाईयों के साथ भूखे-अपभूखे रहकर तीव्र तपस्या, भजन-कीर्तन, शास्त्रालोचना के मध्य दिन गुजारते। इसी स्थान पर सन् 1887 ई० के जनवरी माह में नरेन्द्रनाथ और दस गुरुभाईयों ने सन्यास ग्रहण किया। नरेन्द्रनाथ ने अपना नाम स्वामी विविदिषानन्द ग्रहण किया। आत्मगोपन के लिए स्वामीजी नाना नाम ग्रहण कर लेते थे। विविदिषानन्द, सच्चिदानन्द और विवेकानन्द । लेकिन शिकागो विश्वधर्म महासभा में स्वामी विवेकानन्द नाम से आविर्भूत हुए थे, इसी कारण इसी नाम से समस्त विश्व ने उन्हें पहचाना। सन्यास के बाद स्वामी जी एवं उनके अन्य गुरूभाई परिव्राजक के रूप में समय-समय पर निकल पड़ते। कभी-कभी अकेले और अन्य समय साथ मिलकर परिव्रजन किया करते थे। इस प्रकार पैदल चलकर स्वामी जी ने समस्त भारत का परिभ्रमण किया और इस दौरान शिक्षित अशिक्षित, धनी-निर्धन, राजा-महाराज, ब्राह्मण-चण्डाल, समाज के विभिन्न स्तरों के लोगों के साथ उनका परिचय हुआ। उनकी प्रतिभा, आकर्षणीय तेजोदीप्त कान्ति एवं आध्यात्मिक गंभीरता से सभी मुग्ध हुए। 3 अगस्त, सन् 1890 ई० को जिस भ्रमण पर ये निकले, वही उनका सर्वाधिक दीर्घकालिक और स्थायी महत्व याला साबित हुआ। इस भ्रमण काल में उनकी प्रतिभा से मुग्ध होकर बहुतों ने उन्हें अमेरिका में होने वाले विश्वधर्म महासभा में भाग लेने का अनुरोध किया। प्रारम्भ में स्वामी जी ने इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया। बाद में मद्रास के लोगों की उत्कृष्ठ इच्छा एवं दैव निर्देश पर (श्रीरामकृष्ण ने सूक्ष्म शरीर के माध्यम से एवं कामारपुकुर से श्रीमाँ शारदादेवी ने उन्हें अनुमति प्रदान की) उन्होंने अमेरिका जाने का निश्चय किया। स्वामी भारत के जनसाधारण के प्रतिनिधि होकर उनसे प्राप्त आर्थिक सहायता से अमेरिका गये। उन्होंने चाहा भी वही था। उन्होंने कहा था, "अगर यह मा की इच्छा हो कि मुझे (अमेरिका) जाना पड़े तो मैं जनसाधारण की अर्थ सहायता द्वारा ही जाऊँगा क्योंकि भारत में सर्वसाधारण और गरीब मनुष्यों के लिए ही मैं पाश्चात्य देश जाऊंगा।" स्वामी जी ने सन् 1893 ई० को 31 मई को मुम्बई

से जहाज द्वारा अमेरिका के लिए प्रस्थान किया। वे 25 जुलाई को वेंकुवर पहुँचे। वहाँ से रेलगाड़ी द्वारा 30 जुलाई को सन्ध्या के समय शिकागो पहुँचे। ध र्म सभा में विलम्ब जानकर कम खर्च पर रहने के लिए स्वामी जी बोस्टन चले गये। बोस्टन में वे विभिन्न विद्वानों तथा अध्यापकों से परिचित हुए। इनमें हावर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर राइट विशेष उल्लेखनीय हैं। स्वामी जी के पास कोई परिचय पत्र नहीं है जानकर राइट ने धर्म-सभा कमेटी के चेयरमैन डॉ० बैरोज को पत्र लिखा ष्हमारे सभी अध्यापकों को सम्मिलित करने से जो होगा, यह सन्यासी उससे भी अधिक विद्वान है।" स्वामीजी ने 1902 ई0 की 4 जुलाई को देहत्याग किया। सन्ध्या-बेला में मठ स्थित अपने कक्ष में ये ध्यानरत थे। रात्रि 9 बजकर 10 मिनट पर वह ध्यान महासमाधि में परिणित हुआ। उस समय उनकी आयु 39 वर्ष 5 माह 23 दिन थी। परन्तु स्थूल शरीर का नाश होने पर भी, जिस शक्ति के रूप में स्वामी विवेकानन्द उभरे थे, वह अब भी क्रियाशील है। स्वामी जी ने स्वयं कहा था, "शरीर को पुराने वस्त्र की भाति त्याग कर इसके बाहर चला जाना ही श्रेय मानता हूँ। परन्तु मैं काम से कभी निरत नहीं होऊँगा। मैं तब तक मानव को अनुप्रेरित करता रहूँगा, जब तक प्रत्येक मनुष्य यह नहीं समझता कि वह भगवान है।" भारतवर्ष के नवजागरण के प्रत्येक क्षेत्र को स्वामीजी ने अत्यन्त प्रभावित किया है और समस्त पृथ्वी के लिए एक पथ-निर्देशक छोड़ गये हैं। अनेक मनीषियों का यह मानना है कि स्वामी विवेकानन्द ही आधुनिक भारत के स्त्रष्टा हैं। इस प्रसंग में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी की उक्ति स्मरणीय है। हमारे आधुनिक इतिहास की ओर जो कोई भी दृष्टि डालेगा, उसे स्पष्ट दिखेगा ष्स्वामी विवेकानन्द के हम कितने ऋणी है। उन्होंने भारत की महिता की ओर देशवासियों की आखें उन्मुख की राजनीति को आध्यात्मिक पर आधारित किया। हम धर्मा-धों को दृष्टि प्रदान की। वे ही भारतीय स्वाधीनता संग्राम के जनक हैं। हमारी राजनीतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक स्वाध ीनता के जनक भी वे ही हैं।

1.3 अध्ययन की आवश्यकता

वर्तमान समय में तेजी से बदलते सामाजिक संदर्भ के कारण शिक्षा के ढाँचे में बहुत से परिवर्तन आवश्यक होते जा रहे हैं और साथ ही इसकी बढ़ती मांग भी। इस प्रकार की स्थिति से उत्पन्न होने वाली समस्याओं से निपटने के लिए अनेक प्रकार के शैक्षिक अनुसंधानों की आवश्यकता भी निरन्तर बढ़ती जा रही है। आज की ज्वलंत समस्याओं के स्वरूप को समझने और उनका समाधान निकालने के लिए समय-समय पर जगह-जगह गोष्ठियों का आयोजन किया जाना चाहिए, जिसमें आम जनता को व्यक्तिगत और सामाजिक समस्याओं के समाधान को समझने की सुविधा मिलती है। सवाल और जवाब। समाज सेवा का सबसे पहला काम जनता में तार्किकता जगाना है, ताकि लोग अपनी अवांछनीय आदतों और अवांछनीय रूढ़ियों को छोड़ कर औचित्य को अपनाने और सही रास्ते पर चलने के लिए तैयार हो सकें। जिन प्रयासों से यह कार्य किया जा सकता है, उन्हें सर्वोत्तम समाज सेवा माना जाएगा। मेरे द्वारा प्रस्तावित स्वामी विवेकानन्द जी की सामाजिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि आधुनिक भारत के निर्माण में उनका हमारे देश एवं समाज की प्रगति में अभूतपूर्व योगदान है। स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा-मनुष्य तभी तक मनुष्य कहा जा सकता है, जब तक वह प्रकृति से ऊपर उठने के लिए संघर्ष करता है। संसार तो उस सिंह के सम्मान और आदर करता है जो हजारों मेमनों को मृत्यु के घाट उतारता है। लोगों को यह समझने की फुरसत कहॉ है कि सिंह की विजय हजारों मेमनों की मृत्यु का कारण है।

मनुष्य अपने को सुखी करने के लिए चारों ओर दौड़ता फिरता है जो युवक जीवन संग्राम में सफल हुए हैं उनसे पूछो तो उत्तर मिलेगा जगत सत्य है। भारतीय मनीषियों ने कह दिया-''ब्रहम सत्यम, जगत मिथ्या'' लेकिन जब वही व्यक्ति बूढ़े हो जाते हैं तब उनसे पूछो तो कहेगें अरे भाई। ये सब तो भाग्य का खेल है। ऐसी परिस्थिति में वर्तमान समय में स्वामी जी के विचारो को जानने की अत्यंत आवश्कता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. सत्यदेव यादव, "स्वामी विवेकानंद का समाज दर्शन एवं धर्म दर्शन" महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, 1919
2. रेखा सिंह, "स्वामी विवेकानंद का समाज दर्शन" पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर, उत्तर प्रदेश 1996
3. शशि कांत वर्मा, भारतीय राष्ट्रवाद और स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, 2000
4. कृष्ण मोहन त्रिपाठी, "स्वामी विवेकानंद का अध्यात्म वाद" गांधी शताब्दी स्मारक स्नातकोत्तर महाविद्यालय कोयलाना, आजमगढ़, 2002
5. रवीश चंद्र पांडे, "स्वामी विवेकानंद के धर्म दर्शन का समीक्षात्मक अध्ययन" वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

आत्मनिर्भरता के क्षेत्र में कृषि उद्योग का योगदान

रहमत उल्लाह अंसारी

शोध छात्र, सर्वेपल्ली राधाकृष्णन विश्वविद्यालय भोपाल

डॉ० ज्योति राजपूत

सोशियोलॉजी विभाग, सर्वेपल्ली राधाकृष्णन विश्वविद्यालय भोपाल

किशोरावस्था को तनाव तथा तूफान की अवस्था कहा गया है। इस अवस्था को जीवन की सबसे कठिन अवस्था कहा गया है। यही वह अवस्था है जब किशोर न तो बालक रहता है एवं न पूर्ण बन पाता है। इसे परिवर्तन की अवस्था भी कहा गया है क्योंकि इस अवस्था में परिवर्तनों का अंबार लग जाता हैं। किशोर बालक-बालिकाओं में अनेक शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तन होते है। उनके संवेगात्मक, सामाजिक तथा नैतिक जीवन का स्वरूप बदल जाता हैं। बाल्यावस्था की विशेषताओं का लोप होने लगता है एवं नये-नये लक्षण जन्म लेने लगते हैं। यही वह अवस्था है जिसमें उनमें अदम्य उत्साह तथा अपूर्व शक्ति होती है जिनमें वे अपना अधिकतम विकास भी कर सकते हैं एवं अपना सर्वस्व गवां भी सकते हैं।

किशोरावस्था को समस्याओं की आयु अथवा समस्याओं की अवस्था भी कहा गया हैं क्योंकि इस अवस्था में जहाँ स्वयं किशोर बालक-बलिकायें अपने परिवार, विद्यालय, स्वास्थ्य, मनोरंजन, भविष्य, यौन आदि से संबंधित समस्याओं से जूझते हैं, वहीं उनके माता-पिता, संरक्षक, अध्यापक, समाज और राष्ट्र के लिए वे भी एक समस्या होते हैं। इस अवस्था में किशोर तथा किशोरियों को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, उनमें किशोरावस्था की प्रमुख समस्यायें निम्नलिखित हैं--

1. स्वतंत्रता की समस्या

किशोरावस्था में आत्मप्रकाशन की भावना बड़ी प्रबल होती है। वे समाज की रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों का घोर विरोध करते हैं। वे माता-पिता के बंध न में बँधकर रहना नही चाहते। यदि उन पर नियंत्रण लगाया जाता है तो वे विद्रोह करने के लिए तैयार रहते हैं। किशोरों को घूमना-फिरना बहुत अच्छा लगता है। वे नये-नये स्थानों पर जाना पसंद करते हैं। उन्हें एक स्थान पर बंधकर रहना अच्छा नही लगता। जो माता-पिता किशोरों की इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को अनुचित रूप से दबाते हैं, उनके बालकों में बेचैनी तथा निराशा उत्पन्न हो जाती है और वे उच्छृंखल एवं आवारा हो जाते हैं।

2. स्थिरता एवं समंजन की समस्या

जिस प्रकार शिशु की मन:स्थिति नही होती, उसी तरह किशोर बालक-बालिकाओं में भी अस्थायित्व होता है। उनका व्यवहार बहुत ही परिवर्तनशील होता हैं। रॉस ने किशोरावस्था को शैशवावस्था का पुनरावर्तन कहा है। शिशुओं की तरह किशोर चंचल होता है। उसे यह भ्रांति होती है कि वह दूसरे व्यक्तियों के आकर्षण का केंद्र है पर ऐसा हमेशा नही होता। शिशु की भाँति उसे अपने चारों तरफ के वातावरण से समंजन करना पड़ता हैं। वातावरण से समंजन में कठिनाई उसके शारीरिक तथा मानसिक विकास के कारण भी होती है। समंजन की समस्या कभी-कभार उसके लिए दुखदायी हो जाती है जो उसको चिंतित कर देती है। समंजन की समस्या के कारण कभी-कभी उनका व्यवहार अवांछनीय एवं अशोभनीय हो जाता हैं।

3. विरोधी मनोभावों की समस्या

किशोरावस्था में किशोर बालक-बालिकाओं में विरोधी मनोभाव चरमसीमा पर होते है। किसी क्षण वे बहुत ही सक्रिय दिखायी देते हैं एवं किसी क्षण अत्यधिक आलसी तथा निष्क्रिय। कभी वे अत्यधिक उत्साह से परिपूर्ण आत्म विरोध के घोतक होते हैं तथा इसका कारण संवेगात्मक ज्ञान योग का अभाव होता हैं।

4. प्रबल जिज्ञासा की समस्या

किशोरावस्था के उत्तरार्द्ध में जिज्ञासा की प्रबलता हो जाती है। अब किशोर बालक-बालिकायें प्रौढ़ जीवन विषयक ज्ञान की खोज में लग जाते हैं। इस अवस्था में होने वाले नये-नये परिवर्तन उनकी जिज्ञासा को उद्दीप्त करने का कार्य करते हैं। विपरीत लिंग के लोगों के संबंध में उनकी जिज्ञासा बढ़ती जाती है क्योंकि उनके विषय में प्राप्त होने वाले अनुभव रूचिपूर्ण और आनंददायक होते हैं। किशोरों की जिज्ञासा का उचित समाधान अति आवश्यक हैं।

5. आत्म गौरव की समस्या

किशोरावस्था में आत्म गौरव की भावना का विकास होता हैं। इसका कारण उनके अंदर नवीन दृष्टिकोणों का विकसित होना है। वे जहाँ भी होते हैं, अपना सम्मान चाहते हैं। परिवार में, विद्यालय, समूह में वे अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते हैं।

कक्षा में मानीटर, खेलों में कप्तान, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक परिषदों और कार्यक्रमों में वे कोई न कोई पद प्राप्त करना चाहते हैं, जिससे उनकी आत्म गौरव की भावना की संतुष्टि हो। ऐसा न होने पर वे संघर्ष एवं विद्रोह पर उतारू हो जाते हैं। इस समस्या को दूर करने के लिए किशोरों को उनका उचित साथ दिये जाने की आवश्यकता हैं।

6. आत्म निर्भरता की समस्या

इस अवस्था में किशोर आत्मनिर्भर तथा स्वावलंबी बनना चाहते हैं क्योंकि एक तो उन्हें अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु धन की आवश्यकता होती है दूसरे वे यह मानने लगते हैं कि वे अब बड़े हो गये हैं एवं उन्हें माता-पिता पर बोझ नही बनना चाहिए। अनेक किशोर धन प्राप्ति के लिए अनैतिक तथा आपराधिक कार्यों में लिप्त हो जाते हैं। इस समस्या को दूर करने के लिए उनको समुचित निर्देशन दिया जाना चाहिए।

7. कल्पनाशील क्रियाओं की समस्या

किशोरावस्था में किशोर बालक-बालिकायें कल्पना जगत में विचरण करते रहते हैं। वास्तविक संसार से उनका कोई सरोकार नहीं रहता। वे अपना अलग ही कल्पना का संसार संजोये रहते हैं तथा दिवास्वप्नों में खोये रहते हैं। कल्पना के द्वारा वे अपनी अतृप्त इच्छाओं को पूर्ण करने की कोशिश करते हैं। जिन वस्तुओं को उनको अभाव होता है, उनको वे कल्पना के द्वारा पूरा कर लेते हैं। माता-पिता तथा शिक्षकों को चाहिए कि उनको कल्पना को सृजनात्मक कार्य में लगायें।

8. व्यवसाय चयन की समस्या

किशोरों की एक प्रमुख समस्या व्यवसाय का चुनाव करने की होती है। इस अवस्था में वे अपने लिए उपयुक्त व्यवसाय को चुनने, उसके लिए तैयारी करने, उसमें प्रवेश करने तथा उसमें उन्नति करने के लिए अत्यधिक चिंतित रहते हैं। पर व्यवसाय के संबंध मे उनका चिंतन बड़ा अवास्तविक होता है। वे साधारण व्यवसायों को पसंद नही करते वरन् ऐसे व्यवसायों को चुनना चाहते हैं जो उनकी योग्यता से बहुत ऊंचे होते हैं।

9. नैतिक और सामाजिक मूल्यों की समस्या

किशोर बालक-बालिकाओं के सामने नैतिक तथा सामाजिक मूल्यों की समस्या भी अत्यंत कठिन होती हैं। वे इन मूल्यों में बंध महसूस करते हैं एवं इनको अपनी स्वतंत्रता में बाधक मानते हैं। माता-पिता, अध्यापक तथा समाज किशोरों से इन मूल्यों का पालन करने की अपेक्षा रखते हैं और किशोर अपनी एवं अपने साथियों की इच्छाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति करना चाहते हैं जिससे इन दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाई आती है तथा वे दुविध ा में फँस जाते हैं। माता-पिता और शिक्षकों का कर्तव्य है कि वे किशोरों के आत्म सम्मान को बनाये रखकर और उनकी उचित इच्छाओं एवं आकांक्षाओं के अनुरूप उनकी सहायता करें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. होरेक्स, जे.ई: दी साइकोलोजी ऑफ एडोल्सेन्स, बोस्टन हॉटन, मिफिंग कम्पनी (1976)
2. राय पारसनाथ: अनुसंधान परिचय विनोद पुस्तक मंदिर (1990)
3. अग्रवाल जे.सी.: एज्यूकेशन रिसर्च एन इन्ट्रोडक्शन, आर्य बुक डिपो न्यू देहली (1991)
4. अस्थाना, विपिन: मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन, आगरा अग्रवाल पब्लिकेशन (2007-08)
5. सिंह, अरूण कुमार: मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, बंगलो 309 रोड, जवाहर नगर, दिल्ली: मोतीलाल बनारसी दास (2010)
6. गुप्ता, एस०पी०: आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, इलाहाबाद: शारदा पुस्तक मंदिर (2008)
7. भार्गव, महेश: शैक्षिक सरोकार राखी प्रकाशन आगरा (2007)
8. नागर, कैलाथनाथ: सांख्यिकी के मूल तत्व, मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ (2009-10)
9. शर्मा, सी.एलण.: सामाजिक सर्वेक्षण अनुसंधान की अन्वेषण पद्धतियाँ, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर (1999)
10. गौरीसन, कार्ल.सी.: साइकालोजी ऑफ अडोलसेन्स ष्पाँचवा संस्करण, पेन्टिस हॉल

सामाजिक और आर्थिक परिवेश में प्रेमचंद

रीना राठौर

शोध छात्रा, सर्वेपल्ली राधाकृष्णन विश्वविद्यालय भोपाल

डॉ० अलका तिवारी

हिन्दी विभागाध्यक्ष, सर्वपल्ली राधकृष्णन विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

आधुनिक हिंदी साहित्य के लेखकों में मुंशी प्रेमचंद जी अग्रणी माने जाते हैं। मुंशी प्रेमचंद जी उर्दू साहित्य में भी उतने ही प्रसिद्ध हैं जितने की हिंदी साहित्य में। एक उपन्यासकार, कथाकार और कहानीकार होने के साथ-साथ मुंशी प्रेमचंद जी एक समाज सुधारक और विचारक भी थे। उपन्यास सम्राट तथा अप्रतिम कथाकार प्रेमचंद युग-प्रवर्तक रचनाकार के रूप में जाने जाते हैं। साहित्य-जगत् में उत्कृष्ट कथाकार के रूप में उनकी पहचान बनी हुई है। भारत की आत्मा ग्रामवासिनी है और प्रेमचंद की लेखनी ने देश के ग्रामीण-जीवन की समस्त अच्छाइयों बुराइयों को विसंगतियों तथा विद्रूपताओं का जीवन्त चित्रण अपनी कथा-कृतियों में किया है। प्रेमचंद आम भारतीय के जीवन-संघर्ष के अप्रतिम कथाकार थे। साहित्यकार मूलत: अपनी रचना-धर्मिता के माध्यम से समाज का सचित्र निरूपण करता है, जिसके आदर्श उदाहरण हैं- प्रेमचंद। प्रेमचंद का साहित्य अपने युग से जुड़ा हुआ साहित्य है, जिसमें युगीन समाज और उसकी समस्याओं का राजनीतिक परिस्थितियों और उनके प्रभाव का जन-जागरण और समाज-सुधार का, विदेशी सत्ता के प्रति गहरे आक्रोश और असहयोग की भावना का सर्वांगीण चित्रण मिलता है। उन्होंने समाज में व्याप्त समस्याओं का चुनौतीपूर्वक सामना भी किया है। अनुभवजन्य लेखन के कारण उन्हें कालजयी कथाकार के रूप में स्वीकार किया गया है।

समाज की तत्कालीन वास्तविक परिस्थितियों का वर्णन जितनी वास्तविकता से प्रेमचंद जी ने किया है शायद ही इतनी वास्तविकता किसी अन्यत्र रचनाओं में देखने को मिलती है। अगर प्रेमचंद्र से पहले के उपन्यासकारों की बात करें तो उनके लिखने का दृष्टिकोण व्यक्तिवादी था परंतु प्रेमचंद जी ने व्यक्तिवादी परंपरा से ऊपर उठकर सामाजिक परंपरा, सामाजिक मुद्दों, सामाजिक वास्तविकता से संबंधित रचनाओं का साहित्य में आगाज किया और उस पर खुलकर टिप्पणियां भी की। मुंशी प्रेमचंद का वास्तविक नाम धनपत राय था। प्रेमचंद्र जी ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत उर्दू के एक सहित्यकार के रूप में शुरू किया उन्होंने लगभग 300 कहानियाँ और उपन्यास लिखे। उनके प्रसिद्ध उपन्यास- गोदान, निर्मला, गबन, रंगमंच, और सेवासदन हैं। उनकी प्रसिद्ध रचनाओं में मैदान-ए-अमल, बे-वाह, चौगान आदि शामिल हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि प्रेमचंद उर्दू कहानियों के पिता थे। प्रेमचंद की प्रसिद्ध रचनाओं और उनकी कहानियों को मानसरोवर कहानी के संग्रह में आठ भागो में संग्रहित किया गया है। प्रेमचंद्र जी उर्दू में लघु कहानियों के जनक भी माने जाते हैं, और उनके प्रमुख उपन्यासों पर तो फिल्मों का निर्माण भी हो चुका है। उनके उपन्यासों में मध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग के सामाजिक समस्याओं तथा जीवन के यथार्थ का चित्रण बड़े ही स्वाभाविक रूप से किया गया है उनके उपन्यासों को पढ़ कर तो ऐसा लगता है मानो आंखों के सामने वह पूरा चित्र उतर आया हो। उन्होंने हिंदू-मुस्लिम एकता पर भी जोर दिया।

प्रस्तावना

धनपत राय श्रीवास्तव (31 जुलाई 1880 से 8 अक्टूबर 1936) जो प्रेमचंद के नाम से जाने जाते हैं, वो हिन्दी और उर्दू के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार, कहानीकार एवं विचारक थे। उन्होंने सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, निर्मला, गबन, कर्मभूमि, गोदान आदि लगभग डेढ़ दर्जन उपन्यास तथा कफन, पूस की रात, पंच परमेश्वर, बड़े घर की बेटी, बूढ़ी काकी, दो बैलों की कथा आदि तीन सौ से अधिक कहानियाँ लिखीं। उनमें से अधिकांश हिन्दी तथा उर्दू दोनों भाषाओं में प्रकाशित हुईं। उन्होंने अपने दौर की सभी प्रमुख उर्दू और हिन्दी पत्रिकाओं जमाना, सरस्वती, माधुरी, मर्यादा, चाँद, सुधा आदि में लिखा। उन्होंने हिन्दी समाचार पत्र जागरण तथा साहित्यिक पत्रिका हंस का संपादन और प्रकाशन भी किया। इसके लिए उन्होंने सरस्वती प्रेस खरीदा जो बाद में घाटे में रहा और बन्द करना पड़ा। प्रेमचंद फिल्मों की पटकथा लिखने मुंबई आए और लगभग तीन वर्ष तक रहे। जीवन के अंतिम दिनों तक वे साहित्य सृजन में लगे रहे। महाजनी सभ्यता उनका अंतिम निबन्ध, साहित्य का उद्देश्य अन्तिम व्याख्यान, कफन अन्तिम कहानी, गोदान अन्तिम पूर्ण उपन्यास तथा मंगलसूत्र अन्तिम अपूर्ण उपन्यास माना जाता है। 1906 से 1936 के बीच लिखा गया प्रेमचंद का साहित्य इन तीस वर्षों का सामाजिक सांस्कृतिक दस्तावेज है। इसमें उस दौर के समाजसुधार आन्दोलनों, स्वाधीनता संग्राम तथा प्रगतिवादी आन्दोलनों के सामाजिक प्रभावों का स्पष्ट चित्रण है। उनमें दहेज, अनमेल विवाह, पराधीनता, लगान, छूआछूत, जाति भेद, विधवा विवाह, आधुनिकता, स्त्री-पुरुष समानता, आदि उस दौर की सभी प्रमुख समस्याओं का चित्रण मिलता है। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद उनके साहित्य की मुख्य विशेषता है। हिन्दी कहानी तथा उपन्यास के क्षेत्र में 1918 से 1936 तक के कालखण्ड को 'प्रेमचंद युग' या 'प्रेमचन्द युग' कहा जाता है।

राजनीतिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंदः-

मुंशी प्रेमचंद राजनीतिक एवं सामाजिक सम्वेदना के संवाहक माने जाते हैं वे न केवल सामाजिक संदर्भ और परिवेश में किसी व्यक्ति के अस्तित्व और मूल्य को स्वीकार करते हैं बल्कि वे यथार्थवादी चित्रण और समस्याओं के विश्लेषण में भी विश्वास करते हैं। एक लेखक के रूप में उनका उद्देश्य समाज को जागरूक करना है। प्रेमचंद का राजनीतिक सामाजिक यथार्थवाद उनकी उम्र के किसी भी अन्य लेखक की तुलना में अधिक सकारात्मक और प्रगतिशील है। उनके लेखन में सामाजिक परिप्रेक्ष्य का अनुसरण करने वाले उपन्यासकार अधिक स्पष्ट रूप से और प्रभावी ढंग से व्यक्ति और समाज के कल्याण के बारे में कल्पना करते हैं। जीवन का यह दृष्टिकोण उनके लेखन में परिलक्षित होता है जो उनकी कला को अधिक अभिव्यंजक और सत्य बनाता है। प्रेमचंद अपने लेखन में सामाजिक जीवन के यथार्थ का परिचय देने वाले पहले ऐसे उपन्यासकार, कहानीकार और साहित्यकार हैं, जिनके उपन्यासों को देखने से जीवन के विभिन्न पहलुओं को देखने का एक नजरिया मिलता है तथा तत्कालीन समाज में व्याप्त बुराइयों तथा अत्याचारों के प्रति संवेदना को व्यक्त करने के लिए लेखनी चलाते हैं और लेखनी के माध्यम से संवेदना को व्यक्त करते हैं अगर हम उनके प्रसिद्ध उपन्यासों की बात करें तो वह समाज में व्याप्त बुराइयों को दर्शाते हैं, मुंशी प्रेमचंद जी के सामाजिक उपन्यास लिखने का मुख्य प्रेरणा स्रोत सामाजिक जीवन के प्रति, समाज कल्याण के प्रति उनका उत्साह था।

प्रसिद्ध उपन्यास गोदान की बात करते हैं तो उसमें जीवन के विभिन्न पहलुओं-ग्रामीण जीवन, गरीबी, अमीरों द्वारा अत्याचार, साहूकार द्वारा अत्याचार, व्यक्तिगत संबंध, पारिवारिक जीवन की समस्याओं, सामाजिक समस्याओं आदि को दर्शाया गया है। गोदान का अर्थ है-गाय का दान करना या उपहार देना। यह यह उपन्यास हो रही और उसके परिवार के चारों तरफ घूमता है। इस उपन्यास में होरी एक किसान है जोकि संघर्ष का प्रतीक है। होरी एक किसान के प्रतीक रूप में अपने अंदर सभी तूफान को छुपाए हुए है। इस उपन्यास में गाय का आना एक प्रतिष्ठा का प्रतीक है, होरी का भाई हीरा होरी की गाय को जहर दे देता है जो कि ईर्ष्या का प्रतीक है, भाई को बचाने के लिए पुलिस का रिशवत लेना भ्रष्टाचार का प्रतीक है। इस उपन्यास में भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था के कारण समाज में उत्पन्न हुई बुराइयों को दिखाया गया है। उपन्यास में हमें अलग-अलग विचारों के दो लोगों के बीच प्रेम और घृणा संबंधों के बारे में बताता है-मिस मालती और मिस्टर मेहता। मिस मालती पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता पर विश्वास करती हैं जबकि मिस्टर मेहता का मानना है कि समाज में पुरुषों की तुलना में महिलाओं को एक उच्च स्थान दिया जाना चाहिए, जो कि सामाजिक प्रगति की लौ का प्रतीक है। इस उपन्यास में अन्नदाता का प्रतीक किसान जीवन के संघर्षों को जन्म से लेकर मृत्यु तक बड़े मार्मिक ढंग से दर्शाया गया है जिसे पढ़कर कोई ऐसा नहीं होगा जिसकी आंखों में आंसू ना आए तथा अपने जीवन से किसी ना किसी रूप संबंधित ना कर पाए चाहे वे उसके पूर्वजों या पूर्वजों के पूर्वज या फिर माता-पिता हो।

उपन्यास निर्मला में प्रेमचंद ने दहेज प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों का पर्दाफाश किया है और बेमेल विवाह का। जिसमें युवती हमेशा पीड़ित रहती है। वास्तव में, यह उपन्यास निर्मला नाम की एक युवती की दयनीय कहानी है, जो कई बच्चों के साथ एक वृद्ध विधुर से विवाहित कर दी जाती है। अपने पति द्वारा बेवफाई के संदेह से उसे बहुत मानसिक यातनाओं से गुजरना पड़ता है। उपन्यास रंग भूमि में सामाजिक-राजनीतिक मुद्दों की एक विस्तृत श्रृंखला को दर्शाता है जिसमें ग्रामीण गरीबी, भेदभाव, छुआछूत और पिछड़ेपन की पृष्ठभूमि में भारत और पाखंडी भारत के बीच तनाव को दर्शाता है। औद्योगीकरण को इस उपन्यास में दिखाया गया है। उद्योगपति के बारे में बताया गया है। जब तक कोई व्यक्ति अपने साथी मनुष्यों के साथ क्रूर व्यवहार नहीं करता है, वह व्यवसायी बनने में सफल नहीं हो सकता है। इस प्रकार, प्रेमचंद जी ने इस उपन्यास के माध्यम से भारतीय गांवों में सदियों पुरानी सामाजिक परंपराओं और नए ब्रिटिश साम्राज्यवाद की लहर के बीच संघर्ष को चित्रित किया है।

प्रेमचंद का सबसे महत्वपूर्ण उपन्यास कर्मभूमि जो राष्ट्रीय आंदोलन की पृष्ठभूमि में लिखा गया था। अपने समकालीन कई सामाजिक बुराइयों जैसे नशा और अशिक्षा, भूमि विवाद, जमींदारों के अत्याचारों, मंदिरों में अछूतों के प्रवेश पर प्रतिबंध आदि को दिखाया गया है। प्रेमचंद जी ने उपन्यास गबन में ब्रिटिश युग में भारत के निम्न मध्यम वर्ग के भारतीय युवाओं के गिरते नैतिक मूल्यों को दिखाया है। एक व्यक्ति ऊंचाइयों तक पहुंचने के लिए क्या करता है? एक अमीर व्यक्ति के रूप में झूठी छवि को बनाए रखने के लिए और ऊंचाइयां पर पहुचने के लिये क्या-क्या नही करता है? इस उपन्यास के माध्यम से दिखया है। यह कहानी रामनाथ की है जो एक सुंदर, सुख की तलाश करने वाला, घमंडी, नैतिक रूप से कमजोर व्यक्ति है, जो अपनी पत्नी को जालपा को खुश करने की कोशिश करता रहता है, जो अपनी पत्नी जलपा को गहने उपहार के तौर पर देता है, जिसे वह वास्तव में अपने अल्प वेतन से नहीं खरीद सकता है और फिर ऋणों के जाल में फंस जाता है, जो अंततः उसे गबन करने के लिए मजबूर करता है। गोदान के बाद इसे प्रेमचंद का सबसे अच्छा काम माना जाता है। उपरोक्त उपन्यासों की विभिन्न विशेषताओं को देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि मुंशी प्रेमचंद के लगभग सभी उपन्यास सामाजिक जीवन की समस्याओं, ग्रामीण जीवन की वास्तविकता तथा उनकी समस्याएं, गरीबों और किसानों का शोषण, वेश्यावृत्ति, बाल-विवाह, बेमेल विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों को दर्शाते हैं उनके उपन्यासों में राजनीतिक उथल-पुथल तथा भ्रष्टाचार को भी दिखाया गया हैद्य ऐसा प्रतीत होता है की यह बुराइयां हमारे समाज में अभी भी कहीं ना कहीं और किसी ना किसी रूप में आज भी विद्यमान हैद्य मुंशी प्रेमचंद जी ने अपने उपन्यास के माध्यम से समाज को एक दृष्टि प्रदान की थी, समय भले ही परिवर्तित हुआ है लेकिन हमारा समाज ने प्रगति तो की है, उन्नति भी की है लेकिन अगर इन सब बुराइयों को देखते हैं तो यह बुराइयां भी प्रगति पर है। इन सब बुराइयों की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित नहीं होता है क्योंकि आज आधुनिकीकरण और तकनीकी युग में इन बुराइयों ने नया रूप ले लिया है-बलात्कार, भ्रष्टाचार, निम्न तबके का शोषण, राजनीतिक भ्रष्टाचार, राजनीतिक उथल-पुथल होद्य यदि हम मुंशी प्रेमचंद जी के सुप्रसिद्ध उपन्यास गोदान को देखें तो उसमें ग्रामीण जीवन के संघर्षों, गरीबों और किसानों के शोषण, तो वही निर्मला में दहेज प्रथा, बेमेल विवाह और बाल विवाह जैसी कुप्रथा तो रंगभूमि में सामाजिक, राजनीतिक उथल-पुथल, गरीबी, भेदभाव, छुआछूत और पिछड़ेपन, पाखंड और औद्योगिक क्रूरता तो आगे कर्मभूमि में समकालीन समाज की बुराइयों जैसे नशा, अशिक्षा, जमीदारों के अत्याचार, मंदिरों में निम्न तबके के लोगों के प्रवेश वर्जित होना तो वही गबन उपन्यास में मध्यम वर्ग के युवाओं में गिरते नैतिक मूल्यों, झूठी छवि बनाए रखने के लिए अनैतिक व्यवहार तथा चकाचौंध को उन्होंने अपने उपन्यास के माध्यम से यथार्थ रूप में दिखाया है, तभी तो मुंशी प्रेमचंद जी को सामाजिक जीवन के यथार्थ दृष्टा के रूप में भी जाना जाता है।

प्रेमचंद के उपन्यासों से सामाजिक कल्याण हेतु सचेष्ट उपन्यासों की जो परंपरा शुरू हुई थी वह किंचित परिवर्तनों के साथ स्वतन्त्रता परवर्ती हिन्दी-उपन्यासों में भी सुरक्षित है। अंतर केवल इतना हो गया है कि सामाजिक कल्याण का स्थान सामाजिक अध्ययन ने ले लिया है। प्रेमचंद के उपन्यास भारत की आत्मा के ग्राम निवासिनी होने का समर्थन करते हैं। 'गोदान' को कृषक-जीवन का महाकाव्य कहा जाता है। बाद के कुछ उपन्यासकारों ने भी इनसे प्रेरणा लेते हुए गाँव को विस्तार और गंभीरता से अपने कथानक में उतारने का प्रयास किया। ग्राम्य-जीवन का समग्र चित्र प्रस्तुत करने वाले इन उपन्यासों को आंचलिक या ग्राम-मित्तिक उपन्यास की संज्ञा से विभूषित किया गया। फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' के साथ हिन्दी उपन्यास की एक ऐसी ही नयी विचारधारा का शुभारंभ साहित्य जगत में हुआ। आंचलिक उपन्यासों के लिए यह प्राय: अनिवार्य माना जाने लगा कि उपन्यासकार उपेक्षित अंचल को नायक के रूप में प्रतिष्ठित करता हुआ वहाँ के पात्रों, समस्याओं, रहन-सहन, सम्बन्धों, विश्वासों, जीवन-संघर्षों आदि को रूपायित करे। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद जिन कथाकारों ने अपने मौलिक व्यक्तित्व से कथा-सृजन के क्षेत्र में नयी संभावनाओं को प्रकट किया और जिनकी रचनाओं से कथा-साहित्य के सुधी पाठकों को एक नयी ऊर्जा और उत्तेजना मिली, साथ ही साथ ही समीक्षकों को भी मूल्यांकन के नए आधार प्राप्त हुए, उनमें अमरकांत का स्थान अन्यतम है। आंचलिकता के अनिवार्य तत्वों के परिप्रेक्ष्य में हमें इनके उपन्यास 'इन्हीं हथियारों से' का अध्ययन करना समीचीन होगा।

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-आंदोलन की प्रकृति के अनुरूप ही यह बहुनायक-संरचना वाला उपन्यास है, जिसके प्रमुख चरित्रों में नीलेश (छात्र), गोवर्धन (व्यापारी), सदाशयव्रत (पूर्व पहलवान-डाकू), नम्रता (जमींदार की बेटी), भगजोगिनी (फल-विक्रेता की पत्नी), रमाशंकर (साधारण कार्यकर्ता), हरचरण (मजदूर), गोपालराम (दलित) एवं ढेला (वेश्या-पुत्री) है। तात्पर्य है कि समाज का कोई तबका, कोई समुदाय नहीं बचा जो इस आंदोलन में शरीक ना हुआ हो। यह उपन्यास इन्हीं मामूली लोगों, गुमनाम साधारण नायकों का विरुद है-उनके चारित्रिक उत्कर्ष और पतन को साथ-साथ अभिव्यक्त करता हुआ। इतने नायकों वाले इस उपन्यास का महानायक 'बलिया'जिले को कह सकते हैं। वर्तमान उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग का एक पिछड़ा जिला। किंतु बलिया प्रतिवादी, प्रतिरोधी और साहसी जनपद है, जो जीवन की कोमलताओं और राग-रंग से भी समृद्ध है। बलिया के शरीर की संपूर्णता और सजीवता में कुछ खास अवयवों व अंगों का योग है। वहाँ का प्राकृतिक-भौगोलिक चित्र, व्यक्ति समाज के पारस्परिक संबन्ध, अर्थ, शिक्षा, भावनाएँ, धर्म, संस्कृति, राजनीति आदि मिलकर बलिया की पूर्ण प्रतीति कराते हैं।

स्त्रियों की सामाजिक स्थिति:-

ग्रामीण अंचल से संबन्धित एक और प्रकार के शोषण-नारी के शोषण का जिक्र भी 'इन्हीं हथियारों में' उपन्यास में भगजोगिनी, भगजोगिनी की सास, ढेला, ढेला की मां श्यामादासी, धनेसरी, कनेरी आदि अनेक स्त्री पात्र हैं, जो असहाय, आर्थिक रूप से कमजोर तथा परिस्थितियों के आगे घुटने टेकने को विवश हैं। उनकी इसी आर्थिक विपन्नता की मजबूरी का फायदा पुरुष-वर्ग उठाता रहता है। दामोदर, भगजोगिनी के पति की मृत्यु के बाद,उसके घर में उत्पन्न आर्थिक समस्या का फायदा उठाते हुए उसकी मदद के नाम पर छोटी-छोटी सहायता देकर, उसका शारीरिक शोषण करता है। असहाय और विवश भगजोगिनी अपने स्वाभिमान का गला घोटकर स्वयं को दामोदर के समक्ष समर्पित कर देती है। दूसरी तरफ दामोदर की पत्नी,जो दामोदर से कभी प्रेम न पाकर अपने को पूजा-पाठ में तल्लीन कर लेती है; वह कहती है- "एक स्त्री के लिए प्रेमी पति और प्यारे बच्चों की सेवा तो सबसे बड़ी पूजा है। आपके कुटेवों ने, आपकी कठोरता ने मेरे सभी अरमान नष्ट कर दिये हैं। मैं अपने को भूलने के लिए ही कंठी-माला पहनकर, पुजारिन बनकर चौबीसों घंटे घंटी टुनटुनाती रहती हूं"।

सामाजिक मनोवृत्ति में परिवर्तन:-

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश में शिक्षा,संचार,व्यापार और यातायात के साधनों की उपलब्धता के कारण शहरी और ग्रामीण संस्कृतियों का सम्मिलन बहुत तेजी से हुआ जिसका प्रभाव यह हुआ कि अब तक की स्थापित सामाजिक, नैतिक, धार्मिक मान्यताओं और मानवीय मूल्यों का क्षरण होना शुरू हुआ, जिसकी झलक इस समय के कथा-साहित्य में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। इस उपन्यास की पात्र कनेरी विवाहोपरांत भी चनरा से संबंध रखती है। सदाशयव्रत जब चनरा के विषय में पूछता है तो कहती है- "मेरे करम जले दरिद्र बाप ने मुझे बूढ़े पेटमैन के हाथों बेच दिया। पर इस आदमी में कुछ है नहीं। ऊपर से हमेशा खुर-खुर किये रहता है। चनरा रेलवे में मजदूर है।, बाबू साहब, बड़ा नेक है, हिम्मती है,पक्का मर्द है, मौका बात पर जान देने वाला मनई है। यही मेरा सब कुछ है"। बलिया के धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक जीवन का लेखा-जोखा अमरकांत ने पर्याप्त विस्तार से प्रस्तुत किया है-

निष्कर्ष:-

यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मुंशी प्रेमचंद के सामाजिक परिवर्तन और गरीब किसानों के शोषण, वेश्यावृत्ति, बाल विवाह जैसी सामाजिक बुराइयों के प्रति उनके उत्साह को दर्शाते हैं, विधवाओं की समस्याएं अध्ययन और आलोचना के लिए विषय हैं। उनकी उम्र राजनीतिक उथल-पुथल और तेजी से सामाजिक-आर्थिक बदलावों का युग थी, जिसमें प्रेमचंद की प्रतिभा का उदय और फूल दिखाई दिया। जब प्रेमचंद ने लिखना शुरू किया, तो वे प्रचलित सामाजिक और राजनीतिक अशांति से असंतुष्ट थे। एक लेखक के रूप में उनका उद्देश्य समाज को रहने के लिए एक बेहतर जगह बनाना था। इसलिए वे सामाजिक मुद्दों और सामाजिक नैतिकता पर चर्चा करते हैं, जो समकालीन समाज के लिए नया है। इस प्रकार प्रेमचंद अपने समय के प्रतिनिधि लेखक बने रहे।

प्रेमचन्द ने साहित्यकारों को कल्पना के आकाश से यथार्थ धरातल पर लाकर यह सन्देश दिया कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज का जैसा रूप देखना है उसके लिए सामाजिक चेतना भी वैसी ही लानी होगी। सामाजिक चेतना का विशद् वर्णन प्रेमचन्द्र ने अति सजीव रूप में अपने उपन्यास साहित्य किया है। उन्होंने अपने उपन्यास साहित्य से तत्कालीन समाज का सजीव चित्रण करके समाज को एक दिशा प्रदान की है। समस्याएं देशकाल व परिस्थिति के अनुसार बदलती रहती है। लेकिन उसका मूल अर्थ हर समय समाज में विद्यमान रहता है, उससे जूझने की सामर्थ्य व साधन परिवर्तित हो जाते हैं। उन्होंने

मूल समस्या व उसका समाधान बताकर सम्पूर्ण समाज को एक दिशा प्रदान कर यह बता दिया है कि समाज में चेतना लाकर एक दिशा प्रदान की जा सकती है।

संदर्भ-

1. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (संस्करण-2016)।
2. हिन्दी उपन्यास: विविध आयाम, सं. डॉ. चंद्रभानु सोनवने, पुस्तक संस्थान, कानपुर(संस्करण-1977).
3. उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा,डॉ.परमानंद श्रीवास्तव, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली (प्रथम संस्करण 1976).
4. हिन्दी उपन्यास का विकास, मधुरेश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (संस्करण-2014).
5. हिन्दी उपन्यास: अंतरंग पहचान, डॉ. प्रेमकुमार,गिरनार प्रकाशन महेसाना (प्रथम संस्कारण-1983).
6. स्वातंत्र्योत्तर आंचलिक उपन्यास, सुभाषिनी शर्मा, सजीव प्रकाशन, नई दिल्ली (प्रथम संस्करण 1976)।
7. उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ, डॉ. सुरेश सिन्हा, रामा प्रकाशन, लखनऊ (प्रथम संस्करण-1965).
8. इन्टरनेट का उपयोग।

प्राथमिक विद्यालय के अनुभव और बाल-विकास का व्यक्तित्व प्रभाव

किरण कुमारी

शोध छात्रा, गृह विज्ञान, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

डॉ० लाल बाबू सिंह

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, स्नाकोत्तर मनोविज्ञान विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (भोजपुर)

जब बालक को प्राथमिक स्कूल में प्रवेश दिलाया जाता है तो उसे विद्यालय के वातावरण, अध्यापकों और साथियों के साथ समायोजन करना सीखना पड़ता है, जो बच्चे प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश से पूर्व नर्सरी स्कूल में शिक्षा ग्रहण कर चुके होते है। उन्हें नये वातावरण में समायोजन करने में उतनी कठिनाई नहीं होती जितनी कि उन बालकों को जिनका विद्यालय में पहली बार प्रवेश हुआ है। इसी प्रकार से यह भी देखा गया है कि जिन बच्चों को अच्छा पारिवारिक वातावरण और प्रशिक्षण मिला है, उनका विद्यालय में समायोजन अन्य बच्चों की अपेक्षा जल्दी और अच्छा हो जाता है। प्राथमिक विद्यालय के बालकों के सर्वांगीण शिक्षा के लिए आवश्यक है कि विद्यालय के अध्यापक बालक के अभिभावकों से निरन्तर सर्म्पक बनाये रखें।

1. प्रजातन्त्रात्मक वातावरण:- इस प्रकार की कक्षाओं में अध्यापकों और विद्यार्थी मिलकर यह निश्चय करते है कि उन्हें कक्षा में क्या कार्य करना है। इस प्रकार की कक्षाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों में अनेक विशेषताएँ देखी जाती है,जैसे कि यह विद्यार्थी कक्षा के अन्य विद्यार्थियों के साथ मित्रवत व्यवहार करते है। अध्यापक की अनुपस्थिति में भी एक-दूसरे के साथ मिलकर कार्य करते है, विद्यार्थियों में सहयोग की भावना अधिक होती है।
2. निरंकुशवादी वातावरण:- इस प्रकार का वातावरण उन कक्षाओं में देखने को मिलता है, जिनमें कक्षा-अध्यापक ही महत्वपूर्ण होता है। इस प्रकार के वातावरण में पढ़ने वाले विद्यार्थियों में विद्रोह की प्रवृति, निष्क्रियता की प्रवृति अधिक मात्रा में पायी जाती है।
3. स्वतंत्रता का वातावरण:- इस प्रकार का वातावरण उन कक्षाओं में होता है,जहॉ अध्यापक विद्यार्थियों को पूरी छूट देता है और कक्षा में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के सुझावों को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है।

अध्यापक-विद्यार्थी सम्बन्ध: विद्यालय में एक छात्र का अधिगम और उपलब्धि किस प्रकार की होगी यह बहुत कुछ इस बात पर भी निर्भर करता है कि अध्यापक और विद्यार्थियों में सम्बन्ध किस प्रकार के है। एक छोटे बच्चें के लिए अध्यापक मॉ का प्रतिस्थापित रूप है। दूसरी ओर कुछ बड़े बालकों के लिए शिक्षक वह वयस्क व्यक्ति है,जो आदरणीय और प्रशंसा पाने वाला है जिसके व्यवहार का अनुकरण करना चाहिए।

1. विद्यालय और शिक्षक उपलब्धि:- इस दिशा में हुए शोध में देखा गया है कि कुछ विद्यार्थी ऐसे होते है जिनकी कक्षा में उपलब्धि उनकी योग्यताओं को देखते हुए अपेक्षाकृत कुछ कम होती है। जब किसी विद्यार्थी के पारिवारीकजन की मृत्यु हो जाती है,विद्यार्थी को एक स्कूल से दूसरे में प्रवेश कराया जाता है। या विद्यार्थी को कोई तीव्र संवेग उत्पन्न करने वाला अनुभव होता है,तो विद्यार्थियों को शैक्षिक उपलब्धि सामान्य की अपेक्षा कम रह जाती है।
2. स्कूल तथा व्यक्तित्व:- परिवार के बाद बालक के व्यक्तित्व पर पड़ोस का प्रभाव पड़ता है। पड़ोस के जिन बच्चों के साथ खेलता है अथवा जो बच्चें बालक के साथ उससे खेलने उसके घर आते है,बच्चा इन बच्चों से अनेक आदतें और तरह-तरह के कौशल ही नहीं सीखता है। बल्कि बच्चें का बौद्धिक और संवेगात्मक विकास भी इन बच्चों के व्यवहार से प्रभावित होता है। जब बच्चा कुछ और बड़ा हो जाता है तब वह विद्यालय जाता है। विद्यालय में वह शैक्षिक सफलता और असफलता के अनुभव प्राप्त करता है।

कैसे करें बच्चें का व्यक्तित्व विकास: व्यक्तित्व का प्रभाव विभिन्न आयु में अलग-अलग प्रभाव होता है। व्यक्तित्व विकास अनुक्रम में होता रहता है तथा विन्निन चरणों में व्यक्तित्व के प्रभाव दृष्टिगत होती है। शैशवावस्था में व्यक्तित्व की जो संरचना बनती है, पूर्व बाल्यावस्था में उसका विस्तार होता है। पूर्व बाल्यावस्था के आरम्भ से ही बच्चें के सम्बन्धों में परिस्थितियों तथा प्रत्यक्ष ज्ञान आदि में परिवर्तन आता है। जो बालक के व्यक्तित्व विकास में सहायता प्रदान करता है।

माता-पिता तथा अन्य लोग जो बालक के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है वे जैसा व्यवहार प्रदर्शित करते है, उसका प्रभाव बच्चें के व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। बालक के जीवन में मॉ की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। अत: बालक के प्रति उसकी सोच, उसका व्यवहार, बालक के व्यक्तित्व विकास को प्रभावित ही नहीं बल्कि स्थापित भी करता है।

प्रत्येक व्यक्ति का समायोजन उसके व्यक्तित्व से निर्धारित होता है। बालकों के सफल समायोजन में भी व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण कार्य है। उन संस्कृतियों के बालकों को समयोजन में व्यक्तित्व का कार्य और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। जो संस्कृति सरल की अपेक्षा जटिल है। विदेशी संस्कृतियॉ भी दिन-प्रतिदिन कठिन होती जा रही है। ताकि उनका समायोजन जीवन पर्यन्त सफल रहे और जीवन-आनन्दमय रहें।

विद्यालय में प्रवेश के दौरान ही बालक के व्यक्तित्व प्रभाव को पहचाना जा सकता है। उसके परिवार पर भविष्य में बालक का व्यक्तित्व कैसा होगा? इसके बारे में भविष्यवाणी की जा सकती है। कुछ बालक दबंग प्रवृति के होते है,तो कुछ बच्चे गुसैल है, तो कुछ विन्नम। व्यक्तित्व के प्रभाव में लिंगगत अंतर भी प्रर्दशित होता है। बालक प्राय: झगड़ालू, निर्दयी, फुर्तीले, बहानेबाज होते है जबकि बालिकाएँ प्राय: आज्ञाकारी, स्नेहशील तथा उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार प्रदर्शित करती है।

पारिवारिक प्रभाव:

(1) मॉ का महत्व:- इस दिशा में हुए अध्ययनों से यह जानकारी हुआ है कि जीवन के प्रारम्भिक काल में उस व्यक्ति के मॉ से सम्बन्धों का प्रभाव उसके जीवन पर अधिक पड़ता है।

(2) पिता का महत्व:- मॉ की भॉति पिता की भी उपस्थिति, अनुपस्थिति और व्यवहार आदि का प्रभाव बालक के व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व विकास पर पिता की अनुपस्थिति का पड़ता है।

(3) पारिवारिक सम्बन्ध:- बालक के व्यक्तित्व पर माता-पिता के अतिरिक्त परिवार के अन्य सदस्यों का भी प्रभाव पड़ता है। यह देखा गया है कि यदि परिवार के अन्य सदस्य बालक के साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार करते है। उसकी आवश्कताओं को पूरा करने में सहायता करते है,उसे अच्छी-अच्छी बाते सिखाते है तो निश्चय ही ऐसा वातावरण बालक के व्यक्तित्व में धनात्मक क्षणों को उत्पन्न करता है। परिवार के अनेक सदस्यों में माता-पिता के बाद भाई, बहन, दादा, दादी, चाचा, ताऊ आदि किसी का भी प्रभाव अधिक हो सकता है। परिवार के अनेक सदस्यों में से बालक के व्यक्तित्व पर उस सदस्य का प्रभाव बालक के व्यक्तित्व पर अधिक पड़ता है।

(4) पैतृक अभिवृति:- बालक अपने अभिभावक के संस्कार का प्रभाव भी व्यक्तित्व के विकास पर पड़ता है। शोध में देखा गया है,जो बालक यह अनुभव करते है कि उनके माता-पिता उनको अधिक उपेक्षा करते है। उनकी अहम शक्ति अधिक होती है, उनकी आकांक्षाएँ अपेक्षाकृत अधिक वास्तविक होती है तथा उनमें स्वतंत्रता अधिक होती है।

(5) परिवार का आकार:- परिवार का आकार भी बालक के व्यक्तित्व को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। जब परिवार में माता-पिता के अतिरिक्त बच्चों की संख्या अधिक होती है तब एक नवजात शिशु भाषा, ज्ञान तथा मानसिक योग्यता मॉ का विकास अन्य बालकों की उपस्थिति के कारण अपेक्षाकृत शीध्र सम्पन्न होता है परन्तु भाई-बहनों की संख्या जब अधिक होती है और परिवार में सुविधाओं का अभाव होता है तब व्यक्तित्व पर इस प्रकार के परिवार के आकार का प्रभाव ऋणात्मक पड़ता है।

निष्कर्ष- विद्यालय बालकों को जीवन की जटिल परिस्थितियों का सामना करने योग्य बनाता है। विद्यालय सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण करता है तथा उसे अगली पीढ़ी में हस्तांतरित करता है। विद्यालय बालकों को घर तथा संसार से जोड़ने का कार्य भी करता है। व्यक्तित्व का सामंजस पूर्ण विकास करने में विद्यालय का विकास उस समय से ही प्रारम्भ हो जाता है, जब बालक मॉ के पेट में होता है। जन्म के बाद बालक का विकास तीव्रगति से चलता है। व्यक्तित्व के भिन्न-भिन्न लक्षणों का विकास भिन्न-भिन्न अवस्थाओं तथा भिन्न-भिन्न आयु स्तरों में होता है। प्रारंभिक बाल्यावस्था में व्यक्तित्व का जो प्रभाव बन जाता है, व्यक्तित्व का रूप स्थायी तौर पर समान बना रहता है। यह देखा गया है कि बालक की अधिकांश व्यक्तित्व विशेषताएँ उसके सरक्षको के अनुसार होती है। इन समानताओं का एक मुख्य कारण वंशानुक्रम है। इसका कारण संरक्षकों द्वारा उत्पन्न वह वातावरण है जिसमें की बच्चें पलते है।

संदर्भ सूची:-

1. जी0डब्लू0 आलपोर्ट(1937) के अनुसार ''व्यक्तित्व व्यक्ति के मनोदैहिक गुणों का वह गत्यात्मक संगठन है जो व्यक्ति वातावरण के प्रति अपूर्व समायोजन को निर्धारित करता है।''
2. एम0एन0(1953) के अनुसार ''व्यक्तित्व की परिभाषा उस अति विशेषतापूर्ण संगठन के रूप में की जा सकती है जिसमें व्यक्ति की संरचना व्यवहार के ढंग, रूचियॉ अभिवृतियॉ, क्षमताएँ, योग्यताएँ सम्मिलित है।''
3. आलपोर्ट(1961) ने लिखा है कि व्यक्तित्व के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि यह सोपक्षित रूप से चिरकाल स्थाई और अभूतपूर्ण संगठन है।
4. जी0डब्लू0 आलपोर्ट (G.WALLPORT 1961) ने लिखा है कि किन्ही दो व्यक्तियों के लक्षण (TRAITS) सूक्षम रूप से समान नहीं होते है।
5. अनेक अध्ययनों (B.M. CADWELL 1962,L.W. SONTAG 1966, M.F. WALLDROP & R.Q. BELL 1966) में।
6. हरलौक(1974) का विचार है कि स्कूल से सम्बन्धित अनेक कारनों का प्रभाव बालको के व्यक्तित्व के विकास पर पड़ता है।

सामाजिक न्याय की पाश्चात्य एवं भारतीय अवधारणा: एक विश्लेषण

डॉ० कमेलश कुमार

असि० प्रो० राजनीति विज्ञान विभाग, श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मऊरानीपुर (झाँसी) उ०प्र०

राजनीतिक चिंतन के इतिहास में उभरती नवीन परिस्थितियों के कारण हम धीरे-धीरे न्याय की दार्शनिक एवं तात्विक अवधारणा से सामाजिक न्याय की अवधारणा की ओर अग्रसर हो रहे हैं। जहाँ पहले न्याय का आधार दार्शनिक और तात्विक होता था वहीं अब इसका आधार सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक हो गया है।

वर्तमान समय मे न्याय एक प्रकार की वह मूल्य व्यवस्था है, जिसका मौलिक उद्देश्य असीमित प्रतिस्पर्धा को समिति करना है। इस उद्देश्य के पीछे एक बहुत बड़ा ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य रहा है। पाश्चात्य जगत में आधुनिक युग के आगमन के साथ-साथ विशेषाधिकार हीन लोगों के लिए समान व्यवहार के दावे के साथ सामाजिक न्याय की अवधारणा मान्य हो गयी है।

सत्रवहीं एवं अठारहवीं शताब्दी में यूरोप में प्रतिस्पर्धा जन्म विसंगतियों को दूर करने के लिए राज्य के हस्तक्षेप की आवश्यकता उत्पन्न हुई। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए न्याय के परिप्रेक्ष्य को व्यापक बनाने की अपेक्षा की गई सामाजिक न्याय की अवधारणा इसी अपेक्षा की उत्पाद है। वास्तव में प्लेटो, अरस्तू से लेकर करीब अठारहवीं शताब्दी तक मजदूरों, स्त्रियों, गरीबों आदि के अधिकारों पर किसी भी दार्शनिक ने बहुत विस्तार से विचार नहीं किया है। यह समाजवादी चेतना थी जिसने विशेषकर मजदूरों को श्रमिकों को अपने अध्ययन का आधार बनाया। अब यहाँ देखना उचित होगा कि यह यात्रा कहाँ से शुरू हुई, इसके कितने विभिन्न आयाम है एवं इसकी क्या दशाएँ हो सकती है।

सामाजिक न्याय के प्रत्यय को समझने के पहले हमें न्याय के पारम्परिक अर्थ और आधुनिक सामाजिक न्याय के अन्तर को समझ लेना आवश्यक है। न्याय की अवधारणा की यात्रा संक्षेपत: व्यक्तियों के बीच न्याय से वर्तमान सामाजिक न्याय अथवा विशिष्ट नियमों पर आधारित आंशिक न्याय से वर्तमान सर्वच्छादी न्याय की तरह रही है। कहना न होगा कि अपकृत्यकर्ता और उससे प्रभावित व्यक्ति के बीच का न्याय आंशिक न्याय का द्योतक था। इसी तरह नियम संगठित, यथास्थिति कायम करने और वांछित या शिक्ष पर समान पहुँच सम्बन्धी सिद्धान्त आंशिक न्याय के परिचायक रहे है। अब लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना के साथ-साथ विशेषाधिकार हीन लोगों के लिए समान व्यवहार के दावे के साथ सामाजिक न्याय की अवधारणा मान्य हो गयी है।

सामाजिक रूप में न्याय तभी सम्भव है जब समाज के तीनों वर्ग अपने स्वभावानुकूल कार्यो के संपादन में सामन्जस्य और एकता बनाये रखते है। उसने न्याय की परिभाषा नैतिक कर्तव्य परायणता पर आधारित करते हुए कहा है कि न्याय वह भौतिक सिद्धान्त है जिसके अनुसार एक व्यक्ति को कवेल एक ही ऐसा कार्य करना चाहिए जो उसकी प्रकृति के सर्वथा अनुकूल हो। प्लेटो ने न्याय की जो परिभाषा दी है वह स्वंय उस समय के वर्ण व्यवस्था की पोषक थी। परिणामत: वह कहता है कि ''अपने काम से मतलब रखना और दूसरे के कार्यो में हस्तक्षेप न करना ही न्याय है।'' प्लेटो का मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसका प्राप्य उपलब्ध हो।

अरस्तू का राजनीतिक चिन्तन प्राचीन यूनानी दार्शनिकों की इस मान्यता से शुरू होता है कि ''राज्य जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अस्तित्व में आता है और सद्जीवन की सिद्धि के लिए बना रहता है। प्लेटो ने तर्क दिया कि राज्य का उदय मानव मात्र की आवश्यकताओं से होता है। प्रत्येक मनुष्य मिल-जुलकर राज्य या समाज बनाकर रहते हैं। क्या राज्य की उत्पत्ति के किसी और कारण की कल्पना की जा सकती हैं ? प्राचीन यूनानी दार्शनिकों ने राज्य और समाज में कोई अन्तर नहीं किया है। अब समस्या यह है कि राज्य और समाज में कोई अन्तर नहीं किया है। अब समस्या यह है कि राज्य को सद्जीवन का साधन कैसे बनाया जाय ? यही से न्याय की तलाश शुरू हो जाती है।

अरस्तू के चिन्तन में न्याय की समस्या पर विस्तृत विचार किया गया है। हसके अनुसार न्याय का सरोकार मानवीय संबंधों के नियमन से है। अरस्तू का विश्वास था कि लोगों के मन में न्याय के बारे में एक जैसी धारणा के कारण ही राज्य अस्तित्व में आता है। न्याय के प्रयोग क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए अरस्तू ने दो प्रकार के न्याय में अंतर किया है, पहला वितरण न्याय है, दूसरे को प्रतिवर्ती न्याय, परिशोधनात्मक न्याय या प्रतीकारात्मक न्याय कहा जाता है।

अरस्तू ने न्याय की समस्या पर मुख्यत: इस दृष्टि से विचार किया कि व्यक्तियों के आपसी लेन-देन में या राज्य के पदो के वितरण में किन-किन नियमों का पालन होना चाहिए, इसके अलावा अरस्तू ने एक विश्वव्यापी कानून अथवा प्राकृतिक कानून के अस्तित्व का भी संकेत दिया। जो कि किसी देश या किसी युग विशेष के कानून से परे हैं और जिसका सम्बन्ध सम्पूर्ण मानव जाति से है।

आधुनिक युग के डेविड ह्यूम ने यह मत व्यक्त किया कि न्याय का अर्थ नियमों का पालन मात्र है क्योंकि अनुभव से यह सिद्ध हो चुका है कि नियम 'सर्वहित' का आधार है। अत: सर्वहित या सार्वजनिक उपयोगिता को न्याय का एक मात्र स्रोत मानना चाहिए। मनुष्य की प्रकृति, विवेक या अनुबन्ध में इन नियमों का स्रोत ढूँढने से कोई फायदा नहीं है।

फिर उपयोगिता के प्रवर्तक बेंथम ने कहा कि 'प्राकृतिक कानून' सरीखी शब्दावली यथार्थ मूल्यों को धुँधला कर देती है। अत: न्याय की सच्ची परख उपयोगिता से होती है, जिसका मूल मंत्र अधिकतम लोगों का है अधिकतम सुख है। बेंथम कहते है कि ''न्याय प्रदर्शितों और सुपात्र तथा पीडिघ्त की खुशहाली को सुरक्षित बनाया जाना चाहिए।''

जॉन स्टूवर्ट मिल ने न्याय को सामाजिक उपयोगिता का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष माना है। मनुष्य चूँकि अपने लिए, सुरक्षा की भावना करते हैं, इसलिए वे ऐसे नैतिक नियम स्वीकार कर लेते हैं, जिनसे दूसरे भी वैसी ही सुरक्षा अनुभव कर सके। संक्षेप में उपयोगितावाद के अनुसार न्याय का मूलाधार उपयोगिता एवं अन्याय है, उसे बदल जाना ही श्रेयस्कर है।

मार्क्स, ऐजिंल्स, लेनिन, माओ जैसे विचारकों ने न्याय को एक 'समाजवादी समाज' की स्थापना के रूप में समझा जहाँ सभी प्रकार के अन्याय एवं शोषण विशेषकर आर्थिक उत्पीड़न समाप्त हो जाये। कानून द्वारा समस्त शोषण अथवा पूँजीवादी व्यवस्था का अन्त हो और राज्य की सत्ता सर्वहारा वर्ग के तानाशाही के अधीन हो तब कहीं जाकर न्याय संगत समाज स्थापित हो सकता है। जीवन की समाजवादी पद्धति में न्याय का आर्थिक तत्व प्रमुख है।

न्याय के सिद्धान्त:

समाजिक जीवन में न्याय किस रूप में स्थापित किया जाय इस सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं-

समतामूलक न्याय का सिद्धान्त:

न्याय के समतामूलक सिद्धान्त की प्रारम्भिक अवस्था इस बात पर जोर देता है कि 'समान लोगों के बीच समान व्यवहार होना चाहिए।' यदि इस सिद्धान्त की अवहेलना की जाती है तो अन्याय उत्पन्न होगा। इस सिद्धान्त के अनुसार अन्याय दो प्रकार से उत्पन्न हो सकता है। प्रथम जहाँ समान लोगों के साथ समान व्यवहार किया जाता है तथा दूसरा जहाँ असमान लोगों के साथ असमान व्यवहार किया जाता है। अरस्तू के इस समतामूलक विवरणात्मक न्याय के अनुसार समान लोगों के समान वितरण का तात्पर्य यह है कि विभेदीकरण की विहित कसौटी के अनुसार असमान मामलों में भिन्न व्यवहार होना चाहिए परन्तु मूल प्रश्न यह उठता है कि क्या विशिष्ट कसौटी का चयन न्यायपूर्ण हो, कहना न होगा कि इस सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक व्यवस्था में पायी जाने वाली अनेक असमानताओं को स्वीकार्य मान लिया जाता है। समतामूलक न्याय की दूसरी समस्या तथ्यत: असमान स्थिति वालों के बीच समान विधि की है। यह बर्ताव असमानता को उत्पन्न कर उसमें अभिवृद्धि कर सकता है।

उपयोगिता वादी सिद्धान्त:

उपयोगिता वाद का मुख्य प्रवर्तक जेरेमी बेन्थम है। जॉन स्टूअर्ट मिल ने इसकी कुछ बुनियादी मान्यताओं में संशोधन करते हुए इसकी परम्परा को आगे बढ़ाया। उपयोगितावाद, नैतिकता, राजनीति और विधि निर्माण का वह सिद्धान्त है, जिसके अन्तर्गत किसी कृत्य, नियम, नीति या निर्णय को इस आधार पर उचित या अनुचित मानते हैं कि प्रभावित व्यक्तियों के सुख को कितना बढ़ाता है या कम करता है। बेंथम का विचार था कि व्यक्ति की सन्तुष्टि ही उपयोगिता का मानदण्ड है। अत: जब सम्पूर्ण समाज समाज के लिए किसी नीति का निर्माण करना हो तो उसका सर्वोपरि सिद्धान्त अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख होना चाहिए।

यह बात ध्यान देने की है कि न्याय की समस्या की तरह उपयोगिता का भी सरोकार वस्तुओं, सेवाओं, लाभों आदि के आवंटन से है। उपयोगितावादी इस आवंटन के लिए अपने तर्क के अनुसार एक आधार पर प्रस्तुत करता है परन्तु वह न्याय स्थापित करने का दावा नहीं करता है। वस्तुत: यह न्याय के प्रति उदासीन है। यह सिद्धान्त 'उपयोगितावाद' के हित में 'न्याय' का बलिदान कर देता है। रॉल्स के न्याय सिद्धान्त में उपयोगितावाद के इस बुनियादी पक्ष पर प्रहार किया गया है।

न्याय का सामाजिक संविदाकरण का सिद्धान्त:

रॉल्स न्याय के मापदण्ड के रूप में उपयोगितावाद को असंतोषजनक मानते हुए सामाजिक संविदा पर अवलम्बित एक नये सिद्धान्त का सृजन करते हुए जिसमें उन्होने उन मूल्य की उपेक्षा करते हुए किसी पूर्व निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति करना चाहते है। उपयोगितावाद का ध्येय कुल उपयोगिता की अधिकतम वृद्धि है, चाहे इसका वितरण किसी भी रूप में क्यों न हो। इसमें किसी व्यक्ति को यह निश्चय नही हो सकता है कि उसे इससे अवश्य लाभ होगा। अधि कतम लोगों के अधिकतम सुख का हिसाब लगाते समय यह नहीं देखता है कि इससे किसी व्यक्ति को कितनी क्षति हो सकती है, जैसे कि उसे दास बनाकर, सुखी लोगों के सुख को कितना ही क्यों न बढ़ा दिया जाये, उससे दु:खी लोगों के दु:ख का हिसाब बराबर नहीं किया जा सकता।

ये प्राकृतिक वस्तुएँ हैं अधिकार और स्वतंत्रताएँ, शक्तियाँ और अवसर आय और सम्पदा तथा आत्म सम्मान के साधन। रॉल्स ने अपने न्याय सिद्धान्त को शुद्ध प्रक्रियात्मक की संज्ञा दी है। इसका अर्थ यह है कि न्याय के जो सिद्धान्त सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिए जायेंगे, उनके प्रयोग के फलस्वरूप जो भी वितरण-व्यवस्था अस्तित्व में आयेगी वह अनिवार्यत: न्यायपूर्ण होगी।

मार्क्स ने वितरण न्याय के एक सिद्धान्त की तुलना में दूसरे सिद्धान्त को वरीयता दी। उसने नैतिक सापेक्षवाद में विश्वास रखते हुए भी ऐसी समाज व्यवस्था स्थापित करने का रास्ता दिखाया है। जिसमें उत्पादन प्रणाली से जुघ्ड़ी हुई विचारधारा या मिथ्या चेतना लुप्त हो जायेगी। अत: वह नैतिक दृष्टि से उच्च कोटि की व्यवस्था होगी।

इस तरह मार्क्स स्वतंत्रता और मानववाद के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए प्रभुत्व और पराधीनता की जिन परिस्थितियों पर प्रहार करता है वे सामाजिक न्याय सशक्त अवधारणा के रूप में विकसित हुई हैं।

समतामूलक उपयोगितावादी, निष्पक्षतापूर्ण, मार्क्सवादी न्याय के सिद्धान्तों के विश्लेषणात्मक अध्ययन से यह पता चलता है कि न्याय एक उद्देश्य है जिसे विभिन्न दृष्टिकोणों द्वारा प्राप्त करने का प्रयास किया जाता रहा है। न्याय के जितने पूर्ववर्ती सिद्धान्त या सूत्र हैं गुणवत्ता आवश्यकता, सद्व्यवहार इत्यादि किसी न किसी रूप में सामाजिक न्याय में सहायक सिद्ध होते हैं किन्तु समय काल व विभिन्न परिस्थितियों के कारण आधुनिक युग में सामाजिक न्याय की अवध ारणा बलवती होती जा रही है जो बहुत ही व्यापक अर्थ के लिए हुए है।

प्राचीन काल से सामाजिक-आर्थिक व राजनीति क्षेत्रों में न्याय की स्थापना करना सभी विचारकों का परम ध्येय रहा है किन्तु एक नवीन धारणा के रूप में ''सामाजिक न्याय'' शब्द अपेक्षाकृत नया है और इसका उद्‌भव सामाजिक ज्ञानकोष के अन्य शब्दों की अपेक्षा शैशव अवस्था में है। आमतौर पर इस शब्द का प्रयोग 19वीं शताब्दी के समाजवादी आन्दोलनों के बाद से किया जा रहा है।'' यद्यपि इसकी जड़ें इतिहास में खोजी जा सकती है।

प्रसिद्ध विद्वान ''एल0टी0 हाबहाउस' ने सामाजिक न्याय के विचार की उत्पत्ति स्टोइक दर्शन की प्राकृतिक समानता तथा ईश्वर के समस्त पुत्रों के भातृत्व के सिद्धान्त पर आधारित मानते है। इसी प्रकार कार्ल जे0 फ्रेंडरिक के अनुसार ''सामाजिक न्याय की जड़ बाइबिल में है।'' प्राचीन इस्राइल में धन के पुनर्वितरण का सिद्धान्त मिलता है। वहाँ कुछ सालों के अन्तराल पर समस्त कर्जो को माफ कर दिया जाता था। इसाई यहूदी सभ्यता में सामाजिक न्याय का प्रमुख स्थान था।'' इतना होते हुए भी इनके काल में गुलामी प्रथा प्रचलित थीं।

वास्तव में सामाजिक न्याय की माँग का आधुनिक स्वरूप औद्योगिक क्रान्ति के युग से प्रारम्भ हुआ। टामस बोटामोर ने अपनी पुस्तक 'क्लासेज इन इन मार्डन सोसायटी, (आधुनिक समाज में वर्गो की स्थिति) के अन्तर्गत बताया है कि सभ्यता के लम्बे इतिहास में धन, सम्पदा, पद, प्रतिष्ठा और शक्ति की विषमतायें प्राय: ऐसी स्थिति के रूप में स्वीकार की जाती रही हैं जिसमें कोई हेर-फेर किया जा सकता हो। अट्ठारहवीं शताब्दी में जब अमेरिकी और फ्रांसिसी क्रांतियों ने इस स्थिति पर प्रश्न चिन्ह लगाने की प्रेरणा दी, तब कहीं यह अनुभव किया गया कि सामाजिक वर्ग-व्यवस्था विषमता की जीती-जागती मिशाल है।

इस पर व्यापक विवाद हुआ और सामाजिक न्याय के दृष्टिकोण से इसे चुनौती दी गई। तभी इस तरह की घोषणाओं का सूत्रपात हुआ।

फ्रांस की क्रांति का सबसे अधिक महत्व उदारवाद की उत्पत्ति के रूप में देखा जा सकता है। इसमें मनुष्य के अधिकार के विचार का जन्म हुआ तथा इसमें सामाजिक सम्बन्धों को सामाजिक न्याय के संदर्भ में देखना प्रारम्भ हुआ, जिसकी परिणति आज के समाज को स्वसिद्ध सिद्धान्त के रूप में स्थापित करने में हुई। अस्तु सामाजिक न्याय 'शब्द' में न्याय' शब्द की सर्वोच्चता है तो मानव जीवन और सामाजिक व्यवस्था की आधारशिला भी है।

यह मानव प्रकृति का वह पक्ष है, जिसके आधार पर मनुष्य को नैतिक व सदाचारी प्राणी माना जाता है। वस्तुत: ''न्याय'' व्यक्ति के सद्विवेक का ही दूसरा नाम है। न्याय की भावना सामाजिक सम्बन्धों और व्यक्तिगत स्वार्थो के बीच संतुलन पैदा करती है और सामाजिक व्यवस्था को नैतिक आधार प्रदान करके उसे मजबूत बनाती है।

सामाजिक न्याय वह धारणा है जो समाज के विभिन्न वर्गो को आपस में संगठित करके एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने में विश्वास करती हैं जिसमें व्यक्ति उन सभी अधिकार एवं सुविधाओं को प्राप्त कर सके जो उसके विकास के लिए आवश्यक है।

इस प्रकार सामाजिक न्याय का आधुनिक प्रत्यय आधुनिक चेतना के आधार पर बना है। आधुनिक चेतना कोई स्थिर चेतना नहीं बल्कि यह एक गतिशील चेतना है जो समय के साथ अपना रूप बदलती रहती है। नयी चेतना के अनुसार सामाजिक न्याय का तकाजा है कि उन सामाजिक परिस्थितियों को बदल दिया जाय तो अन्यायपूर्ण तथा शोषण करने वाली हो।

संदर्भ-

- John Rawls : "Theory of Justice", Oxford University press, London, 1972.
- O.P. Gauba : "Dimension of Social Justice", Natioanl Publishing House, New Delhi.
- B.N. Benerjee, "Natural Justice and social Justice before the Superme Court (1950-59)" Estern Law, House Calcutta, 1960
- A.M. Honanc, "Social Justice in Roberts Simmers, ed-Essays in legal philosophy", basil blakwill, Oxford 1968.
- See Ernest Barker : The Political thought of Plato and Aristotle" Dover Publication, New York, 1906.
- Moris, Ginsborg : "On Justice, Penguin Books Middle Sex", 1965.
- W.K. Frankena : "The concept of Scoical Justice englwood cliffs", New Jersy, 1962.
- C.K. See Aleen : Asped of Justice, stevers and sons, London, 1976.
- डी0आर0 जाटव: 'सामाजिक न्याय का सिद्धान्त', समता साहित्य सदन, जयपुर।

चन्द्रमनोरमीयम् में प्रकृति-वर्णन

ज्योति

शोधार्थी, संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

संस्कृत-साहित्य विश्व का सबसे प्राचीनतम साहित्य है। यह भारतीय संस्कृति का प्रमुख आधार है। प्राचीनता की दृष्टि से यह अद्वितीय है। अनेक शताब्दियाँ बीत जाने पर भी इस साहित्य का उत्तरोत्तर प्रसार अबाध गति से होता रहा है। इस साहित्य को पोषित एवं पल्लवित करने के लिए समय-समय पर अनेक विद्वानों ने अपनी प्रतिभा से अनेक काव्यों तथा महाकाव्यों की रचना करके संस्कृत-साहित्य को चरमोत्कर्ष तक पहुँचाया। कालिदास, भवभूति, बाणभटट आदि अनेक महाकवि अपनी उत्कृष्ट रचनाओं के कारण सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध हुए। कवियों की इसी परम्परा में आधुनिक काल के भी अनेक कवि हुए हैं, जिनकी अनवरत साहित्यसर्जना के कारण काव्यों तथा महाकाव्यों की परम्परा निरन्तर चलती आ रही है। आधुनिक कवियों की परम्परा में श्री जयनारायणयात्री का नाम भी उल्लेखनीय है। वे संस्कृत भाषा के मर्मज्ञ विद्वान् हैं।

कवि श्री जयनारायण यात्री जी बाल्यकाल से ही प्रकृति के सान्निध्य में रहे हैं, इसलिए प्रकृति के प्रति उनका अटूट प्रेम है। उन्होंने प्रकृति को निकट से देखा है एवं उसके साथ आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। प्रकृति के प्रति उनका यह लगाव लगभग उनकी सभी रचनाओं में परिलक्षित होता है। अवसरानुकूल उन्होंने प्रकृति का सुन्दर वर्णन किया है। उनकी रचनाओं में प्रकृति कभी आलम्बन रूप में, कभी उद्दीपन रूप में, कभी मानवीय रूप में एवं कभी उपमान व अलंकार रूप में दृग्गोचर होती है।

कवि ने प्रकृति के कलापूर्ण वर्णन के साथ मानवीय अनुभूति का मिश्रण कर सुन्दर मणिकाञ्चन संयोग स्थापित किया है। पंचम अंक में पति के विरह में दु:खी रानी मनोरमा के दु:खातिशय से व्याकुल वृक्ष आदि भी शोकमग्न हो जाते हैं।[1]

तृतीय अंक में कवि ने वसन्त ऋतु का अनेक रूपों में मनोहारी वर्णन किया है, जो सहज एवं स्वाभाविक है।

वसन्त ऋतु:

भारतवर्ष में मानी जाने वाली छ: ऋतुओं में वसन्त ऋतु सबसे मनोहर है, जो फाल्गुन और चौत्र मास में होती है। इस ऋतु में न अधिक गर्मी होती है और न ही सर्दी। यह आनन्द प्रदान करने वाली ऋतु होती है।

कवि ने सुन्दरता का प्रसार करने वाली इस ऋतु का आलम्बन रूप में वर्णन करते हुए कहा है कि यह ऋतु सभी प्राणियों, जीव-जंतुओं, पशु-पक्षियों में कामभावना को उत्पन्न करती है। वसन्तु ऋतु में कामदेव सभी प्राणियों को कामुक बना देता है। वह किसी को भी क्षमा नहीं करता।[2]

सुख देने वाली प्रकृति सुखदायक क्षणों में सुख प्रदान करती है, लेकिन यही प्रकृति वियोग में दु:खदायिका बन जाती है। कवि ने वसन्त ऋतु का वर्णन मोर-मोरनी के विरह के उद्दीपन रूप में करते हुए वसन्त ऋतु में स्त्री-पुरुष के संग को मोर-मोरनी के माध्यम से स्पष्ट किया है कि वसन्त ऋतु में स्त्री-संग तो भाग्यशाली ही प्राप्त करते हैं।[3]

एक अन्य स्थल पर कवि ने वसन्त ऋतु का कोयल की मधुर ध्वनि के साथ आलंकारिक चित्रण भी किया है। कोयल के अनवरत बोलने का उत्प्रेक्षा अलंकार में निबन्धन करके कवि अपनी विद्वता का परिचय देता है। कवि यह संभावना कर रहा है कि वर्ष भर रुद्ध कण्ठ वाली कोयल वसन्त ऋतु आने पर लगातार बोलती है, जैसे वह वसन्त का धन्यवाद करती हो।[4]

कवि ने वसन्त ऋतु का स्वाभाविक चित्रण करते हुए कहा है कि वसन्त ऋतु में कामदेव सभी प्राणियों को पीडित कर देता है। बूढ़े भी काम से पीडिष्त होकर जवानी को प्राप्त हुए प्रतीत होते हैं।[5]

वन:

वन-वर्णन के बिना प्रकृति-चित्रण प्रभावशाली नहीं हो सकता, क्योंकि विभिन्न ऋतुओं का प्रभाव वृक्षों, फूलों आदि पर विशेष रूप से दृग्गोचर होता है।

तृतीय अंक में उद्यान में भ्रमण करते हुए रानी मनोरमा वहां की शोभा का वास्तविक चित्रण करते हुए कहती है कि हे स्वामी ! यह बाग अनुपम सुन्दर है। चारों ओर हरियाली शोभायमान है। अनेक प्रकार के फूलों से सजे हुए छोटे पौधे विवाह में सजी हुई स्त्रियों की तरह शोभायमान है, चमक रहे हैं।[6]

कवि ने वन-शोभा का आलंकारिक वर्णन करते हुए कहा है कि - "विपिनविभां वीक्षताम्। पलाशतृणसंकुलधरणिर्हरितक्षौमदुकूला छादितेव प्रतिभाति। श्यामायमानेऽस्मिन् कान्तारेऽशेषविकसितानि सितसुमानि वियति तारका इव प्रतीयन्ते।[7]

अर्थात् वन की शोभा को देखों। हरे घासों से भरी हुई भूमि रेशमी दुपट्टे से ढकी हुई प्रतीत हो रही है। इस साँवले वन में पूरे खिले हुए सफेद फूल आकाश में तारों की तरह प्रतीत हो रहे हैं।

कवि ने रानी मनोरमा के दु:ख से दु:खी वन का मानवीकरण कर सुन्दर चित्रण किया है -

"विललाप गलं विवृत्य सा, सकलं गुञ्जयते स्म काननम्।
प्रतिभाति यथा तया समं, तदरोदीत् करुणाद्रुतं वनम्।।"[8]

अर्थात् वह (रानी मनोरमा) गला फाड़कर रोने लगी। सारे वन को गूञ्जा दिया। ऐसा लग रहा था जैसे दया से पिघला हुआ वह वन उसके साथ रो रहा था।

अपि च:

"व्यलपंस्तरवो लता: खगा,
उपला: पुष्पफलानि मेदिनी।
व्यरमद् हृदयं न मामकं,
भवमायां यद्युक्तं यौवने।।"[9]

अर्थात् वन के वृक्ष, बेल, पक्षी, पत्थर, फूल-फल और भूमि भी विलाप करने लगी, जिसने जवानी में संसार की माया को छोड़ दिया था, वह मेरा हृदय भी रो पड़ा। पंचम अंक में भी वन-भ्रमण करते हुए राजा चन्द्रकेतु वन की शोभा का मनोहारी वर्णन करते हुए कहता है -

"ज्वलितदीपकसन्निभशोभितै,
र्विविधमञ्जुलवर्णविभासितै:।
विकसितै: कुसुमै: परिपूरितं,
वनमिदं हरते मम मानसम्।।"[10]

पर्वत:

कवि ने प्रस्तुत रूपक में हिमालय पर्वत का आलम्बन रूप में यथार्थ चित्रण करते हुए उसे दवाइयों (जड़ी-बूटियों) का खजाना, गंगा-यमुनादि नदियों का पिता एवं लक्ष्मण को संजीवनी से जीवन-दान देने वाला बताया है।[11]

पशु-पक्षी वर्ग:

प्रस्तुत रूपक में कवि ने प्राकृतिक उपादानों के रूप में यथावसर पशु एवं पक्षियों की भी सुन्दर एवं स्वाभाविक क्रियाओं का कलात्मक अंकन भी किया है। पशु-पक्षी भी सुख-दु:ख आदि संवेदनाओं से स्पष्ट होते हैं। पंचम अंक में रानी मनोरमा के विलाप करने पर मोर नाचना बंद कर देते हैं, मृगों ने घास खाना छोड़ दिया एवं उनके बच्चों ने दूध पीना छोड़ दिया। विलाप से दु:खी भंवरों ने भी फूलों का रस पीना छोड़ दिया। रोने से व्याकुल हुई कोयल भी चुप हो गई।[12]

इस प्रकार कवि श्री जयनारायण यात्री ने प्राकृतिक तत्त्वों का अत्यन्त रमणीय वर्णन किया है। कवि की प्रकृति स्नेह की साक्षात् मूर्ति है, जिसमें करुणा, सहानुभूति, रमणीयता आदि सभी अनवद्य मानवीय भाव विद्यमान हैं। उन्होंने प्राकृतिक तत्त्वों वन, पर्वत, वसन्त ऋतु आदि का स्वाभाविक वर्णन करते हुए अपने प्रकृति-प्रेम को प्रकट किया है।

संदर्भ

1 तव विलापमाकर्ण्य .....प्रसूनरसपानं । च. म., पृ. 119

2 "सुहृदयं मदनस्य मधु: प्रिये,
सह तमानयते मनुजांगना:।
स कुरुते कमिता नवयौवने,
पशुखगानपि न क्षमते स्मर:।।" वही, 3.17

3 वही, पृ. 82, 83

4 अतः वर्षपर्यन्तं स .....सुरभेर्धन्यवादं करोति। वही, पृ. 83

5 ऋतुरयं दयित कुसुमाकरो,
व्यथयते मदनः समदेहिनः।
प्रवयसोऽपि भवन्ति हि चंचला,
स्तरुणतां व्रजिताः प्रतिभान्ति ते।।" च. म., 3.15

6 अनुपमरमणीयमिदमुपवनं वर्तते। परितो हरितिमा विभाति। नानाविधकुसुमैः सुसज्जिता गुल्माः परिणयेऽलंकृता वनिता इव द्योतन्ते। वही, पृ. 79

7 वही, पृ. 116

8 वही, पृ. 5.19

9 वही, पृ. 5.20

10 वही, पृ. 5.15

11 अनुपमरमणीयमिदमुपवनं वर्तते। परितो हरितिमा विभाति। नानाविधकुसुमैः सुसज्जिता गुल्माः परिणयेऽलंकृता वनिता इव द्योतन्ते। वही, पृ. 5.20

12 पुत्रिके ! मा विलप, विरम वत्से विरम। पश्य तव विलापमाकर्ण्य लता द्रुमाः कुसुमदलाश्रूणि मुञ्चन्ति। खिन्ना मयूरा नर्वनं विजहुः। दूना कुरंगास्तृणादनमत्यजन्, तेषां शावका मातुः पयः पानम मुञ्चन्। तव क्रन्दनात् संतप्ता अलयः प्रसूनरसपानं व्यस्मरन्। तव रोदनादाकुलाः परभृता मौनम् बिभरुः। वही, पृ. 119

अष्टछाप संगीत में प्रयुक्त रागों का स्वरूप

अंकिता मिश्रा

इलाहाबाद

अष्टछाप कवि संगीतज्ञों ने अष्टछाप संगीत में निम्नलिखित रागों का प्रयोग अपने संगीत में किया - देवगंधार, रामकली, भैरव, विभास, मालकौंस, बिलावल, ललित, सूहा, तोड़ी, आसावरी, धनाश्री, सारंग, नट, पूर्वी, गौरी, जैतश्री, खमाज, सोरठ, कल्याण, ईमन, कान्हरा, नायकी, हमीर, केदार, अड़ाना, मारू, मालव, बसंत, मल्हार, काफी, जैजैवन्ती, रायसा, बिहाग।

राग देवगंधार

पुष्टिमार्गीय संगीत मे यह राग प्रात:काल गाया जाने वाला राग है। इस राग का महत्व इसी से समझा जा सकता है कि श्रीकृष्ण जन्माष्टमी जैसे मुख्य अवसर पर इसका गायन होता है। यथा - 'ब्रज भयो महर के पूत' और 'नैन भरि देखो नन्दकुमार' इत्यादि।

राग के इस स्वरूप में सब स्वर शुद्ध लगते हैं। जाति सम्पूर्ण है। वादी पंचम तथा संवादी षड्ज है। आरोह में निषाद अल्पत्व है। धैवत व मध्यम विराम स्थान है। मध्य व तार सप्तक में चलन है। गायन समय प्रात:काल है।

आरोह-अवरोह

।। सा, ग म प, ध, प ध सां, रें गं मं गं रें । सां निधपम, प ध, पम, ग रेसा।।

राग रामकली

यह राग सामान्यत: राग भैरव से मिलता-जुलता राग है। इस राग को प्रात:कालीन मंगला की झांकी में विशेष रूप से गाया जाता है। राग के इस स्वरूप में ऋषभ-धैवत कोमल और आन्दोलित है। यह भैरव थाट का राग है। जाति सम्पूर्ण है। वादी स्वर पंचम, सम्वादी स्वर ऋषभ है। चलन और वादी-सम्वादी भेद होने से यह भैरव राग से पृथक् होता है। गायन समय प्रात:काल है।

आरोह-अवरोह

।। सा ग, म प, ध नी सां । सां, नी ध प, ग म रे, सा ।।

राग भैरव

पुष्टिमार्गीय संगीत का दैनिक क्रम इसी राग से प्रारम्भ होता है इसमें विट्ठलनाथ जी द्वारा रचित पद 'मंगल मंगलं ब्रज भुवि मंगलं' मंगला की झांकी में आवश्यक रूप से गाया जाता है। उक्त पद गायन के बाद ही मंगल के दर्शन खुलते हैं। झांकी की आरती मंगला आरती 'गोपाल की माई' राग भैरव में ही गायी जाती है।

यह भैरव थाट का राग है ऋषभ धैवत कोमल व आन्दोलित है। जाति सम्पूर्ण है। आरोह में ऋषभ स्वर का अल्पत्व है। प्रात:काल गायन समय है।

आरोह-अवरोह

।।सा रे, ग, म, प, ध, नी, सां। सां नी ध, प, म ग रे, सा।।

राग-विभास

यह प्रात:काल मंगला, शृंगार के समय गाया जाता है। यह आजकल देशकार से मिलता जुलता राग है। इसमें 'खिलावन आवैगी ब्रज नारी' पद बहु-प्रचलित है। यह बिलावल थाट का राग है। इसमें सब स्वर शुद्ध मध्यम और निषाद स्वर वर्जित है। वादी स्वर पंचम और सम्वादी षड्ज है। जाति औडव है। गान समय प्रात:काल है।

आरोह-अवरोह

।। सा, रे, ग, प, सांध, सां। सां, धप, ग प धप रे, सा रे सा।।

राग मालकौंस

सम्प्रदाय में यह गर्म रागों के अन्तर्गत माना जाता है। इसे मंगला, शृंगार की झांकियों में गाते है। इसमें विशेष रूप से खंडिता के पद प्रचलित है। तानसेन का पद 'आवन कहि गये अजहूं न आये' अत्यधिक प्रचलित पद है। यह भैरवी थाट का राग है। गांधार, धैवत, निषाद स्वर कोमल है। ऋषभ और पंचम स्वर वर्जित है। वादी स्वर पंचम और सम्वादी स्वर षड्ज है। गान समय रात्रि का अन्तिम प्रहर है।

आरोह-अवरोह

।। सा, ग म, ध, नी, सां। सां नी ध, म, ग म ग, सा ।।

राग बिलावल

यह प्रात:कालीन झांकियों में गाया जाता है। यह बिलावल थाट का प्रमुख राग है। सब स्वर शुद्ध है। जाति सम्पूर्ण है। वादी धैवत सम्वादी गांधार है। आरोह में निषाद अवरोह में गांधार स्वर वक्र है। सम्प्रदाय में इसके कई स्वरूप मिलते है और पदों की प्रारम्भिक पंक्ति में राग प्रकारों के नाम हैं -

1. ''गोकुल घर घर होत बधाई - यह स्वरूप आधुनिक प्रचलित अल्हैया बिलावल के समान है।
2. गोवर्धन की सिखरतें - इसमें बिलावल के साथ-साथ राग सोरठ के भी स्वर दिखाई देते हैं। सम्प्रदाय के सुधीजन इसे सामेरी बिलावल कहकर भी पुकारते है।
3. सुनों श्याम चितलाय - इसमें बिलावल के साथ-साथ नट का भी मिश्रण प्रतीत होता है। प्राय: कीर्तनियाँ इसे नट बिलावल कहते हुए सुने गये है। आधुनिक नट-बिलावल से बहुतांश में मिलता है।
4. नंदराय लला ब्रज रायलला - यह स्वरूप मध्यम को षड्ज मानकर गाया जाता है। इसमें ऊँचे स्वरों का चलन नहीं है। इसमें खमाज व झिंझोटी की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। कुकुभ की भी झलक दिखाई देती है।
5. फाग खेलन ब्रज सुन्दरी - इसमें कोमल 'ध' का भी क्वचिद् प्रयोग होता है तथा मध्यम को षड्ज मानकर गाया जाता है।
6. नागरी निपुन छबीली - इसमें आद्योपान्त सोरठ का ही स्वरूप है ताल वैविध्य से चौकडा भी गाये जाते है। इसको बिलावल क्यों कहते है? इसका कारण स्पष्ट रूप से समझ में नहीं आता। कुछ लोग इसे सामेरी भी कहते है।
7. जय जगदीश हरे - यह पद जयदेव की अष्टपदी के है ये विशेषकर मथुरा में राग बिलावल में गाया जाता है। शुद्ध मध्यम का प्रयोग होता है। शुक्ल बिलावल के स्वर दिखते है।''

राग ललित

सम्प्रदाय में ललित राग के दो स्वरूप प्रचार में है। किसी में शुद्ध धैवत लेते है किसी में कोमल। पंचम वर्ज्य मारवा थाट के इस राग में ऋषभ धैवत स्वर कोमल है। दोनों मध्यम सर्वसम्मति से लगते हैं। दोनों प्रकारों में वादी शुद्ध मध्यम, सम्वादी षड्ज है। गायन समय रात्रि का चतुर्थ प्रहर है।

आरोह-अवरोह

कोमल धैवत प्रकार - नी रे ग म, म म म ग, म ध सां। रें नी ध, म म ग, रे सा।।

शुद्ध धैवत प्रकार - नी, रे ग, म म म ग, म ध सां। रें नी ध, म ध, म म ग, रे सा।।

राग सूहा

सम्प्रदाय में यह राग प्रात:कालीन झांकियों में स्नान यात्रा से, रथ यात्रा तक मंगला के समय गाया जाता है। काफी थाट का सूहा, कान्हड़ा अंग का राग है। धैवत वर्ज्य तथा आरोह में ऋषभ स्वर का अल्पत्व है। गांधार, निषाद स्वर कोमल है आरोह में शुद्ध, निषाद लेते है। ''नी प'' स्वर संगति होती है। वादी मध्यम सम्वादी षड्ज है। गायन समय दिन का दूसरा प्रहर है। 'सुहातेरी सोने चोंच मढ़ाऊ' ये पद सम्प्रदाय में बहु प्रचलित पद है।

आरोह-अवरोह

।।सा, ग म, प, नी प, नी सां। सां- नी प, म, प, गम, रे, सा।।

राग-तोड़ी

इस राग का गायन शीत ऋतु में राज-भोग की झांकी में किया जाता है। सम्प्रदाय में तोड़ी का मात्र एक स्वरूप प्रचलित है। इसे आजकल मियाँ की तोड़ी कहते है। इसे तोड़ी या टोड़ी संज्ञा प्राप्त है। यह तोड़ी थाट का राग है। इसमें ऋषभ, गांधार, धैवत स्वर कोमल मध्यम तीव्र है। जाति सम्पूर्ण है। गायन समय दिन का दूसरा प्रहर है। देवालय में 'छोटी सी कन्हैया', 'तेरो कोऊ है रे कन्हैया' पद तोड़ी में खूब गाते है।

आरोह-अवरोह

।।सा रे ग, म प, ध, नी सां । सां नी ध प, म ग, रे, सा।।

राग आसावरी

सम्प्रदाय में यह राग तोड़ी के भाँति शीतकाल में राजभोग के समय गाया जाता है। आसावरी राग आसावरी थाट से उत्पन्न माना गया है। गांधार, धैवत, निषाद स्वर कोमल, शेष स्वर शुद्ध है। आरोह में गांधार, निषाद वर्जित एवं अवरोह सम्पूर्ण है। वादी स्वर धैवत एवं सम्वादी स्वर गांधार है। इस राग का गायन समय दिन का दूसरा प्रहर है। सम्प्रदाय में विशेष रूप से आसावरी की उठान तार सप्तक के स्वरों से होती है। सम्प्रदाय की बहु प्रचलित बंदिश 'सोधै न्हाय बैठी चार ताल में निबद्ध है। कुछ विरले बंदिशें जिनका सम कोमल निषाद पर होता है। वह भी दिखाई देती है जैसे 'बैठी रानी जसुमति लाल झुलावै'।

आरोह-अवरोह

।। सा, रे म प, ध सां । सां नी ध प, म, ग, रे, सा ।।

राग धनाश्री

सम्प्रदाय में इस राग का गायन राजभोग की झांकी में होता है। यह राग भीमपलासी और भैरवी अंग से गाते हैं। इसमें दोनों ऋषभ, धैवत तथा निषाद व कोमल गांधार प्रयुक्त होता है। मध्यम शुद्ध है। आरोह में ऋषभ, धैवत स्वर का अल्पत्व है। वादी सम्वादी स्वर पंचम षड्ज मान्य है। गान समय दिन का तीसरा प्रहार है। ''सम्प्रदाय में कोमल धैवत का प्रयोग होता है उठान ऊपर से ही है।'' 'सबै मिल मंगल गावो माई', 'रंगीले छबीले नैना रस भरे' पद अति प्रचलित है।

आरोह-अवरोह

।। सा, ग म प, प ध प म ग म प, नी सां। सां गं रें सां, रें नी ध प, ग म प नी, ध प, ग, रे सा ।।

राग सारंग

सम्प्रदाय में इस राग का गायन राजभोग झांकी के समय होता है। शीतकाल में यह नहीं गाया जाता है। सारंग खमाज थाट का राग है। यह श्याम कल्याण और वृंदावनी सारंग का मिश्रित स्वरूप है। दोंनों मध्यम और निषाद युक्त है। गांधार वर्जित स्वर है अवरोह में धैवत गाते है। वादी-सम्वादी ऋषभ पंचम है। गान समय दिन का दूसरा प्रहर है।

सम्प्रदाय में इसके विविध स्वरूप मिलते है लेकिन सभी को सारंग की संज्ञा प्राप्त है। पदों की पहली पंक्ति बोलकर राग का बोध करते है। जैसे इन पदों से 'वेद रटत ब्रह्म रटत' (वृन्दावनी सारंग), 'मोहन खेलत होरी' (लंकादहन सारंग), 'आज दधि मीठौ मदन गोपाल' (सारंग या नूर सारंग), 'होनी के जानत री।' (गौड़-सारंग), 'ठीक दुपहरी की बिरियां' (सामंत-सारंग) राग का बोध होता है।

आरोह-अवरोह

सा, रेमप, म प नी सां। सां, नी प, म ध प, म रे, नी सा।

राग-नट (नाट)

सम्प्रदाय में यह राग सायं गेय है। बिलावल थाट के राग नट में सब स्वर शुद्ध है और जाति सम्पूर्ण है। अवरोह में धैवत, गांधार स्वर वक्र है। राग में वादी स्वर पंचम और सम्वादी स्वर षड्ज है। इसका गान समय रात्रि का द्वितीय प्रहर है। यह राग छायानट से अत्यधिक मिलता है। छायानट में तीव्र म के प्रयोग से दोनों में भिन्नता आती है। अष्टछाप सम्प्रदाय में 'प्रीतम प्रीत ही सों पैये है' पद अत्यधिक प्रचलित है।

आरोह-अवरोह

।। सा, गम, प, रेगमप, धनीसां। सां, नी ध, नी प, मग, मरे, सा ।।

राग पूर्वी

अष्टछाप सम्प्रदाय में यह राग सायं गेय है। प्रातः उत्थापन, भोग व शृंगार के समय यह राग गाया जाता है। यह पूर्वी थाट का आश्रय राग है। दोंनों मध्यम और ऋषभ, धैवत स्वर कोमल है जाति सम्पूर्ण है। इसमें वादी स्वर गांधार और सम्वादी स्वर निषाद है। नाथद्वारा में कोमल धैवत तथा इसके अतिरिक्त अन्य मंदिरों में तीव्र धैवत की पूर्वी कहीं-कही दिखाई देती है। इस प्रकार पुष्टिमार्गीय मंदिरों में दोनों प्रकार की पूर्वी प्रचार में है यह मान सकते है। आवती के समय 'आगे गाय पीछे गाय' यह पद सर्वाधिक गाया जाता है।

आरोह-अवरोह

।। सा, रे ग, मप, ध, नी सां। सां नीधप, म, ग, रे सा ।।

राग गौरी

यह राग सायंकालीन झांकियों में विशेषत: शयन से पूर्व गाये जाते है। अष्टछाप सम्प्रदाय में राग के विभिन्न स्वरूप प्राप्त होते है - होरी रे भैया होरी रे भैया' (पूर्वी अंग), 'ए गोरी गोरी गुजरिया' (भैरव व पूर्वी अंग), 'ऋतु बसंत सुख से लिये हो' (भैरव अंग)। यह पूर्वी थाट का राग है। ऋषभ धैवत स्वर कोमल मध्यम तीव्र है। कहीं-कहीं शुद्ध मध्यम भी लेते है। आरोह में गांधार वर्ज्य है। वादी स्वर ऋषभ संवादी स्वर पंचम है। गायन समय सायंकाल है।

आरोह-अवरोह

।। सा, नी, ध्घ नी, रे, प, मपध, नी ध नी, सां रें नी ध प, मपध, मगरे, मग, रे ग रे, सा ।।

राग खमाज

यह राग सायं समय झांकी, शृंगार आदि में गाते हैं। सम्प्रदाय में खमाज का स्वरूप प्रचलित खमाज के समान है। यह खमाज थाट का मुख्य राग है। दोनों निषाद शेष स्वर शुद्ध है। आरोह में ऋषभ का स्वरूप अल्प है। वादी स्वर गांधार, संवादी स्वर निषाद है। गान समय रात्रि का द्वितीय प्रहर है। सम्प्रदाय में इस राग को अधिक महत्व नहीं दिया जाता है। कीर्तनियां प्राय: यह एक पद गाते है - 'मन मोहन रंग हिंडोला'।

आरोह-अवरोह

।। सा, ग म, प, ध, नी, सां। सां, नी ध म प, ध, मग रेसा ।।

राग जैतश्री

यह राग सायं समय झांकियों में गाये जाते है। यह राग भी अधिक महत्व का नहीं समझा जाता है। मथुरा आदि स्थानों पर इसे अलग ढंग से गाते हैं। 'जैतश्री' मारवा थाट का एक अप्रचलित राग है। ऋषभ स्वर कोमल है। मध्यम तीव्र शेष स्वर शुद्ध है। आरोह में ऋषभ, धैवत वर्जित है, अवरोह में निषाद व मध्यम दुर्बल है। वादी स्वर पंचम सम्वादी स्वर षड्ज है। गायन समय सायंकाल है। इस राग में 'नंद कुंवर खेलत राधा संग' पद अधिक प्रयोग किया जाता है।

आरोह-अवरोह

।। सा, ग, प, धमप, सां। नी रें सां, ध प, ग, म ग, रे सा।।

राग सोरठ

यह राग संध्या आरती एवं भोग की झांकियों में गाये जाते हैं। राजस्थान में यह राग लोकगीत के रूप में प्रचलित है। सम्प्रदाय में यह राग स्नान यात्रा से रथ यात्रा के समय में गाये जाते हैं। यह खमाज थाट का राग है। आरोह में गांधार, धैवत वर्ज्य है। अवरोह में गांधार स्वर अल्प है। वादी स्वर ऋषभ, संवादी स्वर पंचम है। गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। ध म रे स्वर मीड़ युक्त प्रयुक्त होता है। मथुरा में 'अब मुंख मांडौगी' पद बहु प्रचलित है।

आरोह-अवरोह

।। सा, रे, मप, नी सां। रें नी ध, प, धम रे, नी, सा ।।

राग कल्याण

यह राग सम्प्रदाय में सायंकालीन झांकियों में शृंगार, शयन में गाये जाते है। यह कल्याण थाट का प्रमुख राग है। मध्यम तीव्र है शेष स्वर शुद्ध है। इसमें आरोह में मध्यम, निषाद स्वर वर्जित है। वादी स्वर गांधार, संवादी धैवत है। इस राग में पंचम, ऋषभ की संगति है। गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर है।

आरोह-अवरोह

।। सा रे ग, प ध, सां। सां नी, ध प, म ग, प, रे, सा ।।

राग कान्हड़ा

यह राग विशेष रूप से सायंकालीन झांकियों में शयन के समय गाये जाते है। राग कान्हड़ा काफी थाट का राग है। इसमें ग, नि कोमल प्रयुक्त होते है। आरोह में गांधार, अवरोह में धैवत स्वर दुर्बल है। आरोह में 'नी प' स्वर संगति के साथ गांधार स्वर वक्र और आन्दोलित होता है। वादी स्वर ऋषभ, सम्वादी स्वर पंचम है। गायन समय मध्य रात्रि मानते है। अष्टछाप संगीत में 'अंधियारी भादों की रात' पद इस राग का प्रतिनिधित्व करता है। 'अष्टछाप संगीत में कान्हरा की जगह कान्हरे के प्रकार प्राप्त होते है।' यहाँ कान्हरे का स्वरूप दृष्टव्य है।

आरोह-अवरोह

।। सा रे ग, म रे, सा, मपधनीप, म प सां, नी प, मपग, मरेसा।।

राग नायकी कान्हड़ा

सम्प्रदाय में यह राग सायं झांकियों में शयन में गाये जाते है। इस राग का स्वरूप इस प्रकार है। इसमें गांधार निषाद कोमल है यह कान्हड़ा का प्रसिद्ध प्रकार है। इसमें पूर्वांग में सूहा, उतरांग में सारंग राग का मिश्रण है। वादी स्वर पंचम, सम्वादी स्वर षड्ज है। अवरोह में नीप की संगति, गांधार वक्र आन्दोलित है। रात्रि के तृतीय प्रहर में गाते है। अष्टछाप संगीत में नायकी कान्हड़ा का निम्नलिखित स्वरूप प्रचलित है -

आरोह-अवरोह

।। सा रे ग, म प, धं नी प, म प, नी, सां। सां नी ध, नी प, म, ग म रे सा।।

राग हमीर

यह राग सम्प्रदाय में ग्रीष्म ऋतु में संध्या झांकियों में गाये जाते है। अष्टछाप संगीत में प्रयुक्त किया जाने वाला हमीर प्रचलित हमीर जैसा ही है। इसे विशेषत: ठण्डा राग कहकर सम्बोधित किया जाता है। इसीलिए इसे ग्रीष्म काल में गाते है। यह कल्याण थाट का राग है। दोंनों मध्यम है, और सब स्वर शुद्ध है। आरोह में निषाद, अवरोह में गांधार स्वर वक्र है। वादी स्वर धैवत, सम्वादी स्वर गांधार है। इसको रात्रि के प्रथम प्रहर में गाते है। इसमें स्वामी हरिदास का पद 'चलो वो न देखे ठाड़े दौऊ कुंजन की परछाई' विशेषतया गाते है।

आरोह-अवरोह

।। सारेसा, गमध, नीध, सां। सां नी धप, मपधप, गमरेसा ।।

राग केदार

यह राग सायंकालीन शयन की झांकियों में गाये जाते है। अष्टछाप सम्प्रदाय में केदार का स्वरूप प्रचलित केदार जैसा है। इसमें विशेष रूप से रास के पदों का गायन होता है। जैसे - 'अद्‌भुत नट भेष धरै' और 'सुनधुन वेण बाजे' आदि।

यह कल्याण थाट का राग है। इसमें दोनों मध्यम शेष स्वर शुद्ध है। अवरोह में धैवत के संग कोमल निषाद गाते हैं। आरोह में ऋषभ स्वर वर्ज्य व गांध ार, निषाद स्वर दुर्बल है। अवरोह में गांधार दुर्बल है। वादी स्वर शुद्ध मध्यम व सम्वादी स्वर षड्ज है। रात्रि के प्रथम प्रहर में इसे गाते है।

आरोह-अवरोह

।। सा, म, प, मपधप, नी ध, सां। सांनी धप मपधनीधप, मपम, रेसा ।।

राग अड़ाना (अडाणा)

यह राग सायंकालीन शयन की झांकी में गाये जाते है। राग अडाणा आसावरी थाट का उत्तरांग प्रधान राग है। ग, ध, नि स्वर कोमल है। अवरोह में ध ैवत वर्ज्य और गांधार वक्र है। वादी स्वर तार षड्ज, संवादी पंचम है। सम्प्रदाय में इस राग में शुद्ध, धैवत का प्रयोग करते है। इसका गायन समय रात्रि का तृतीय प्रहर है। देवालय में 'गावत धमार आई ब्रज की नार' पद का गायन अधिकता से होता है।

आरोह-अवरोह

।। सा, रेमप, ध, नी सां। सां ध नी प, म प, गम, रेसा ।।

राग मारू

पुष्टिमार्गीय संगीत में यह राग अत्यधिक प्रचलित है। 'गायन दर्पण व नाद विनोद' ग्रन्थों में जो आज से लगभग गत एक शताब्दी की सूचना देते हैं इस राग के उसी स्वरूप का वर्णन मिलता है जो रूप पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय में प्राप्त है। इसमें भैरव थाट के स्वर तथा तार सप्तक की चलन है।

राग मारू, मारवा थाट जन्य सोहनी और परज राग का मिश्र राग है। इसकी जाति सम्पूर्ण है दोनों मध्यम व धैवत तथा कोमल ऋषभ प्रयोग करते है। नादी तार षड्ज और सम्वादी के कोमल है। रात्रि के तृतीय प्रहर में गाते है।

आरोह-अवरोह

।। सा ग म ध नी सा। रें नि ध प, गम, पध, सांनी धप, मग, नीध, म ग रे सा ।।

राग मालव

यह राग केवल पुष्टिमार्गीय मंदिरों में ही प्रयुक्त होता है। यह राग कल्याण थाट जनित है। इसमें मध्यम, निषाद वर्ज्य है अत: जाति औडव है। वादी स्वर षड्ज तथा सम्वादी स्वर पंचम है। इसका गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर है।

आरोह-अवरोह

।। सा रे ग प ध सां। सां, धप, रेंसां, पग, धपगरेसा ।।

राग बसंत

पुष्टिमार्गीय मंदिरों में यह राग बसंत पंचमी से प्रारम्भ होकर ठाकुर जी की पाटोत्सव (फाल्गुन शु0 8) तक आठो झांकियो में गाया जाता है। इस प्रकार एक माह तक यह राग गाया जाता है। यह राग मारवा थाट जन्य है। दोंनों मध्यम व ऋषभ कोमल लगते है। जाति सम्पूर्ण है। वादी स्वर तार षड्ज सम्वादी पंचम है। इस राग को बसंत ऋतु में किसी भी समय गाया बजाया जाता है।

आरोह-अवरोह

।। सा, मगप, नी ध प, म ग, म ध सां। रें नी ध प, मग मगरे सा ।।

राग मल्हार

पुष्टिमार्गीय मंदिरों में मल्हार भी अति महत्वपूर्ण राग माना जाता है इसका गायन आषाढ़ शु0 2 से आषाढ़ सं0 15 तक आठों प्रहर की झांकियों में गाया जाता है। मंदिरों में इस राग में 'ससक ससक रही (शुद्ध मल्हार), 'गोवर्धन तें आई गाय सब' (सोरठ और गौर मल्हार का मिश्र), 'तुम घन से घन स्याम' (गौड़ मल्हार से मिलता हुआ), मान न कर री गौरी (शुद्ध धैवत युक्त) आदि पद प्रचलित है।

यह काफी थाट का राग है। दो निषाद सब स्वर शुद्ध है। आरोह में गांधार वर्ज्य, अवरोह में दुर्बल है। वादी स्वर पंचम और संवादी स्वर षड्ज है। वर्षा ऋतु में किसी समय में गाया जाता है।

आरोह-अवरोह

।। सा, मरे, प मप ध नी सां, नी नी सां। सांध, नी प म, रे, सा ।।

राग काफी

मंदिर में यह राग होली, शृंगार, भोग, संध्या आरती के अवसर पर विशेष रूप से गाया जाता है। यहाँ भी अन्य रागों के समान कई रूप प्रचलित हैं। जैसे एरी सबी प्रगटे है कृष्ण मुरारि' (दोनों गंधार युक्त), 'आज हरि ब्रज जुवतिन पकरे' (आधुनिक काफी के समान), 'श्री गोकुल राजकुमार लाल रंग भीने हो' (कुछ काफी के साथ गौड़ मल्हार के स्वरूप से युक्त)

इसका मुख्य स्वरूप इस प्रकार है यह काफी थाट का राग है। ग नि कोमल सम्पूर्ण जाति है। वादी स्वर पंचम, संवादी स्वर ऋषभ है। गायन समय मध्य रात्रि है।

आरोह-अवरोह

।। सा रे ग, मप, ध, नी सां। सां, नी ध प, म ग रे, सा ।।

राग जैजैवन्ती

यह सायंकालीन झांकियों में गाया जाता है। यहाँ की जैजैवन्ती प्रचलित सोरठ अंग की जैजैवन्ती से मिलती है। लेकिन इसमें कोमल गांधार वाला स्वरूप नहीं मिलता है। यह खमाज थाट का राग है। इसकी जाति सम्पूर्ण है इसमें वादी स्वर ऋषभ संवादी स्वर पंचम है। दो गांधार और दो निषाद प्रयुक्त होते है। गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है।

आरोह-अवरोह

।। सा, रेरे, रेगरेसा, नी, ध्घ प रे, ग म प नी सां। सां नी ध प, म ग, रे ग रे सा ।।

राग रायसा कान्हड़ा

सम्प्रदाय में इसे फूलों के हिंडोले के समय विशेष रूप से गाते है। कहते है देवालयों में यह राग ब्रज में सावन के समय में गाये जाने वाले लोक गीतों से आया है। यह काफी थाट का अप्रचलित राग है। गांधार स्वर और निषाद स्वर कोमल है। अवरोह में दुर्बल धैवत युक्त 'नी प' की संगति है। वादी स्वर पंचम, संवादी षड्ज है। यह राग कानरा, नायकी, सहाना, देशी राग के मिश्रण से बना है। गान समय रात्रि का तृतीय प्रहर है।

आरोह-अवरोह

।। सा, नीधध्‌ नीपध्‌, ध्घ नी सा, रे ग म प, ध, नी प सां। पध, मप नी म पग, ग म रे, सा ।।

राग बिहाग

शयन की झांकी में राग बिहाग का गायन विशेष रूप से किया जाता है। यह शीत ऋतु में विशेष रूप से गेय है। यह बिलावल थाट का राग है। सभी स्वर शुद्ध है। आरोह में ऋषभ, धैवत वर्ज्य है। तीव्र मध्यम से गायन होता है। वादी स्वर गांधार तथा संवादी स्वर निषाद है। गान समय रात्रि का दूसरा प्रहर है।

आरोह-अवरोह

।। सा ग, म प, नी सां। सां नी ध प, म प, ग म ग, रे सा ।।

उपर्युक्त रागों के अलावा भी अष्टछाप संगीत में कई राग गाये जाते है। जैसे- पंचम, खट, श्री, जंगला, झिंझोटि। किन्तु अब यह राग लुप्त प्राय हो चुके हैं। इनके विषय में कहीं भी उचित उल्लेख नहीं मिलता। अतः इनका वर्णन भी प्रामाणिक न होग

संदर्भ सूचीः

1 पुष्टिमार्गीय मन्दिरों की संगीत परम्परा (हवेली संगीत) - डॉ0 सत्यभान शर्मा
2 ब्रज संस्कृति में संगीत - डॉ0 अंजू शर्मा
3 वही

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के पत्रकारिता में राष्ट्रबोध

डॉ० भारती तिवारी

हिंदी विभाग, श्री उपेंद्र तिवारी स्मृति महाविद्यालय, सवायजपुर हरदोई

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के पत्रकारिता में राष्ट्रवाद एक धारा के रूप में प्रवाहित किया जाता है। भारतीय पत्रकारिता में राष्ट्र को मुक्त करने का कार्य किए हैं। देखा जाए तो पत्रकारिता को राष्ट्र के रूप में गति प्रदान करने वाले पत्रकारों में से एक महत्वपूर्ण नाम पंडित दीनदयाल उपाध्याय का नाम आता है। यह भारत में एक कैसे राजनीतिक दलों से वादा करते थे। तथा अपने विचारों के माध्यम से पत्रकारिता में एक नया मोड़ प्रदान करते थे। पत्रकारिता किस प्रकार से सहायक हो सकता है।।यह उपाध्याय जी ही समझते थे। यह एक ऐसे सशक्त पत्रकार थे। जिन्होंने श्याम प्रसाद मुखर्जी के साथ रहकर वंश की राजनीतिक दल कर दो द्रव्य के रूप में कार्य किए थे। लेकिन वे अपने मार्ग से कभी विचलित नहीं हुए और समाज कल्याण के लिए एक ऐसी रास्ते को चुने जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता। फिर भी एक आत्मा मानवतावाद के रचयिता पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने महात्मा गांधी जी के विचारों को व्यक्त किए थे। "उपाध्याय जी ने अपने विचारों एवं कर्मों के माध्यम से इस तरह की राशि बताएं कि समाज में एक एक वर्ग को संप्रेषित कार्य करने का प्रयोग किया करते थे। उनके पत्रकारिता में आजादी के उपरांत एक तलाश के रूप में दिखाई देती थीं उपाध्याय जी ने लोगों के प्रति संवेदनशीलता का रास्ता दिखाते थे क्योंकि उनका लगाव उस वर्ग से नहीं था वह सब को एक नई सोच व दिशा में देते थे।" 1947 ईस्वी में पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने राष्ट्र का संघ लिमिटेड की स्थापना की थी। राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड महेंद्र कुलश्रेष्ठ, गिरीश चंद्र मिश्रा,अटल बिहारी वाजपेई ने राजीव लोचन अग्निहोत्री आदि श्रेष्ठ प्रतिकार थे। जिन्होंने अपनी प्रेरणा से भारतीय लोगों को सम्मान दिखाया। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी पंचायत जय राष्ट्र धर्म एवं स्वदेश के माध्यम से जनमत निर्माण करने के लिए महत्वपूर्ण कार्य किए थे और उनके लेख में पहुंचे चलने के गोश्त के अनुरूप शंखनाद करते थे।उन्होंने राष्ट्रीय एकता को संबोधित करते हुए कहा है कि ष्यदि हम एकता चाहते हैं तो भारतीय राष्ट्रीय जो हिंदू राष्ट्रीयता है तथा भारतीय संस्कृति जो हिंदू संस्कृति है उसका दर्शन करें उसे मानदंड बनाकर चले भागीरथी की पुण्य धाराओं में सभी प्रभावों को संगम होने दें यदि यमुना मिलेगी और सभी अपने काली मां खोकर गंगा में एकरूपता हो जाएगीष

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने अपने आप में एक ऐसे व्यक्ति थे। जो देश के बदलाव के लिए प्रदर्शन एवं विरोध की भावना को प्राथमिकता नहीं देते थे। वे कभी-कभी सोचते हैं कि देश में विभिन्न प्रकार की विसंगतियों एवं समस्याओं को निवारण करने के लिए धर्म अर्थ काम मोक्ष को अपनाते थे। उन्होंने उल्लेख करते हुए कहा है कि

"आज देश के प्रभाव को पूर्ति के लिए हम सब जग रहे थे। परंतु इसके अतिरिक्त वस्तुत: अपनी इच्छा अनुसार सुनहरे सपने योजनाओं तथा महत्वाकांक्षा के प्रमुख गुरुकुल देश का चित्रण देश का चित्र निर्माण करने के लिए प्रतिशत परिश्रम और प्रसाद करने को हम से 95% लोग तैयार नहीं है। जिसके अभाव में सुंदर सुंदर चित्र ने चिल्ली के सपनों के अतिरिक्त कुछ और नहीं।"

सन 1947 ईस्वी भारत राजनीतिक रूप से स्वतंत्र हो गया था किंतु अंग्रेजों के जाने के बाद राष्ट्रीय पत्रकारिता का उद्घाटन की गई थीं। जिसमें आचार्यों ने संस्कृति व सभ्यता को जोड़कर एक नया एक आत्मा अनुभव करते थे और संस्कृति स्वतंत्रता के लिए पत्रकारिता के रूप में परम आवश्यक माना गया है। फिर भी राष्ट्र के प्रति ऐसी स्वतंत्रता कभी निरर्थक नहीं, बल्कि एक सार्थक रूप में दिखाई देता है। उपाध्याय जी ने सांस्कृतिक उद्यान को बाधक बताते हुए कहते हैं कि "राष्ट्र की भावना को निर्माण करने में मुझको साकार रूप देने का श्रेय भी राष्ट्र की संस्कृति का ही है तथा राष्ट्र की संकुचित सीमाओं को तोड़कर मानव की एक आत्मा एकात्मता का अनुभव कराती है अत: संस्कृति की स्वतंत्रता पर आवश्यक है। बिना उसके राष्ट्र की स्वतंत्रता निरर्थक नहीं बल्कि टिकाऊ भी रह सकेगी।"

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने राष्ट्रीय एकता में पत्रकारिता की मर्यादा को बनाए रखने के लिए राष्ट्रीय सांस्कृतिक एकता को ध्यान में रखना आवश्यक है। फिर भी वह अपने जीवन के प्रति राष्ट्रीयता पत्रकारिता वाकहि में सच होते हैं वे कहते हैं कि "भारत में एक संस्कृति रह सकती है एक से अधिक संस्कृति का नारा देश के टुकड़े- टुकड़े करके हमारे जीवन को विनाश का पतन आज सांस्कृतिक बाद का ग्रंथ का प्रथम नियम संस्कृति व तथा साम्यवादी को संप्रदाय वाद का कष्ट कराया गया क्योंकि वह कांग्रेस विद्वान भी अपने दीदी समझ कर इस संस्कृति बात को अपना रहे हैं इसी भावना और से भारत की एकता तथा अखंडता बनी रह सकती है तथा तभी अपनी संपूर्ण समस्याओं को उलझा सकते हैं।"

उपाध्याय जी के राष्ट्रीय विचारधारा सीमित न हो पर उनकी पत्रकारिता व्यापक रूप में उभरते हैं। इसके बावजूद भी राष्ट्र धर्म प्रकाशन की स्थापना किया गया। वह अपने पथ पर सदा निरन्तर चलते रहे। कभी अपने आप से हारे नहीं। निरंतर गतिमान पूर्वक कार्य करते रहे। इन्हीं के माध्यम से पत्रकारिता में जीवन के अभाव को कभी रुकने नहीं दिया। इसलिए उपाध्याय जी को राष्ट्रीय पत्रकारिता के रूप में जाना जाता है लेकिन आजादी के बाद पपीता का उद्बोधन आज भी किया जा रहा है उन्होंने पत्रकारिता के लिए एक नई सोच रखते थे। यह पत्रकारिता का ध्यान ही नहीं बल्कि हिंदुत्व भारतीयता राजनीति समाज

संस्कृति आदि विषयों पर गहन अध्ययन किए थे। पत्रिका के अलावा भी विभिन्न पुस्तकों का विमोचन भी किया गया था। जो इस प्रकार दिखाई पड़ता है जैसे राष्ट्रीय चिंतन सम्राट चंद्रगुप्त भारतीय राजनीतिक विकास को दिशा कामा एकात्म मानवतावाद आदि।

अंतिम बिंदु पर हम कह सकते हैं कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने एक ऐसे कर्मठ सरल व्यक्ति थे। जो विभिन्न ने पत्र और पत्रकारिता का कार्य करने के दौरान समाज व देश के प्रति उजागर किए हैं फिर भी उन्हें पत्रकारों के माध्यम से जाना जाता है इस प्रकार उपाध्याय जी का देवा देहावसान 1968 ईस्वी में बनारस से 30 किलोमीटर की दूरी पर मुगलसराय जंक्शन पर मृत के रूप में पाए गए थे। मृत्यु का कारण भी संदिग्ध है। लेकिन भी राष्ट्रवादी पत्रकारिता को ऐसे प्रभाव में दवा के रूप में दिखाई दिए जिन्हें आज भुलाया नहीं जा सकता है फिर भी वे अपने मार्ग होते हुए भी राष्ट्रीय पत्रकारिता का उद्‌बोधन करते रहे। जो आज भी पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी को राष्ट्रीय पत्रकारिता का वह राष्ट्रबोध स्मरणीय और अनुकरणीय है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पंचजन्य 24 अगस्त 1953.
2. पांचजन्य आश्विन कृष्ण 2 विक्रम संबत 2007.
3. पंचजन्य भाद्र कृष्ण 9, विक्रम संबत 2006.
3. राष्ट्रधर्म शरद पूर्णिमा विक्रम संवत 2006.

प्राचीन भारतीय संस्कृति की विविधिता

राजन कुमार

(शोध छात्र), प्रा.भा. इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व, ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा बिहार

किसी भी सभ्यता का मेरूदण्ड समाज का सांस्कृतिक ढांचा ही होता है। किसी सभ्यता को निर्धारित करने के लिए उसकी सांस्कृतिक परम्परा का विशेष कर आदान-प्रदान की प्रक्रिया एवं उसके प्रतिफल को समझना आवश्यक होता है। वाहरी शक्तियों द्वारा होने वाले आक्रमणों के फलस्वरूप प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परम्परा पर जो साकारात्मक प्रभाव पड़ा है। वह प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परम्परा को अनेक नयी विचारधारा देने के साथ-साथ प्राचीन भारत का सम्पर्क अन्य देशों से करा दिया जिसके फलस्वरूप प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परम्परा क्रमशः समृद्धि होती चली गई पुरा तात्विक दृष्टि से सैन्धव सभ्यता के मुख्य काल मोहनजोदड़ो, हडप्पा, लोथल, कालीबंगा, आदि स्थलों का उत्खनन कार्य विस्तृत क्षेत्र में वैज्ञानिक विधि से सम्पन्न हो चुका है। किन्तु दुर्भाग्यवश सैन्धवकालीन लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है उत्पन्न के पश्चात यह तथ्य पूर्ण रूपेण स्पष्ट है कि सिन्धु सभ्यता एक नगरीय और व्यपार प्रधान सभ्यता थी क्योंकि उत्खनन के फलस्वरूप सुनियोजित नगर चौड़ी सड़के जल निकासी की नियोजित व्यवस्था भवन निर्माण व ईटो का प्रयोग, स्नानागार अन्नागार, व अन्य सामग्रिया प्राप्त हुए है किन्तु भारतीय इतिहास के लेखन में सर्वप्रथम लिखित सामग्री हमें वेदों से ही प्राप्त होती है। वैदिक ग्रन्थों से हमें कृषि, पशुपालन, ग्रामीण सभ्यता के लिखित प्रमाण मिलते है। सभ्यता से भिन्न थी और अधिक प्राचीन भी थी तभी एक अत्यन्त समस्या मूलक प्रश्न खड़ा हो गया कि यदि यह सत्य हैं तो हड़प्पा सभ्यता वैदिक देवों एवं धर्मिक भाव चिन्हों जैसे पशुपति, पीपल, वृक्ष, नाग, वृषभ आदि की स्थिति को कैसे समझा जाए इस समस्या के निराकरण हेतु यह तर्क दिया गया है कि यह असम्भव नहीं था क्योंकि धार्मिक विश्वास मौखिक रूप से सभ्यता के ह्रास के बाद भी जीवीत रह सकते हैं और वाद में आने वाले संस्कृतियों में घुस सकते हैं किन्तु यह तर्क केवल सम्भाव्य होकर रह गया कभी प्रमाणित नहीं हो पाया, क्योंकि उत्खनन कर्ता ने गहराई से अनुशीलन कर यह विचार व्यक्त किया कि हड़प्पा सभ्यता में पालतु घोड़े के उपयोग का प्रमाण नहीं मिलता जबकि ऋग्वैदिक काल में धोड़ों द्वारा पालित रथों से आरम्भ होती थी साथ ही हड़प्पा सभ्यता में लोहे का प्रयोग कभी नहीं हुआ जबकि वैदिक आर्यों द्वारा इसका प्रचुर प्रयोग होता था। जहाँ एक ओर हड़प्प सभ्यता एक विकसित नगरीय सभ्यता थी वहीं दूसरी ओर वैदिक सभ्यता ग्रामीण संस्कृति थी।

इतिहासकारों ने वैदिक आर्यों को ईरान, हंगरी, आस्ट्रिया, जर्मन प्रदेश, उत्तरी ध्रुव, मध्य एशिया, तथा भारत के मूल निवासी सिद्ध करने का प्रयास किया है। भारत के अतिरिक्त आर्यों को विदेशी मूल का सिद्ध करने वाले इतिहासकार यह तथ्य प्रस्तुत करते है कि आर्यों ने भारत में पहले से रहने वाली अनार्य या द्रविड़ जाति के लोगों पर आक्रमण कर अपनी सभ्यता को स्थापित किया ऐतिहासिक सत्य जो भी हो इतना तो पूर्ण स्पष्ट है कि वैदिक संस्कृति और हड़प्पा संस्कृति में पूर्ण भिन्नताएं है और यह भिन्नताएं ही इस तथ्य को ऐतिहासिक सिद्ध करती है कि यह तो हड़प्पा सभ्यता के लोगों ने वैदिक सभ्यता के लोगो पर आक्रमण किया होगा। वस्तुतः इन आक्रमणों के फलस्वरूप ही प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के विविध पक्षों पर हमें प्रभाव दृष्टिगत होता है।

यह सांस्कृतिक प्रभाव हमें विशेष रूप से आर्थिक क्षेत्र के साथ-साथ समाजिक व धार्मिक क्षेत्र में भी दिखाई पड़ता है। हड़प्पा के अवशेषों से जिन अस्थि, अवशेष को पाया गया था मुहरों पर जिनके अंकन मिले है उसमें वृषम, भैंस, भेड़, बकरी, हाथी, घोड़ा, वत्तक, आदि है जबकि ऋग्वेद काल में भी आरम्भ में गाय, भैंस, भेड़, बकरी, सुअर, कुत्ता, कबूतर, तोता, आदि पालतू जानवरों का उल्लेख मिलता है एक स्थान पर शेर को पिजड़े में बन्द दिखाया गया है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि हड़प्पा अवशेषों में जिन पशुओं को पाया गया है। उनका ऋग्वेद में भी आया है। परन्तु कुछ अपवाद है जैसे बकरी, घोड़ा, हाथी, सिंह, आदि बकरी, को कहा गया है कि आर्य इसे तुर्की से लाये थे। गाय को भी बेवोलिया से लाया गया था। परन्तु बकरी की जंगली जातियों पहले से मौजूद थी। सांड़ होना यह भी सिद्ध करता है कि गाय भी बहुत पहले से रही होगी।

हड़प्पा की मुहरों पर बाघ का चित्र पाया गया है जबकि ऋग्वेद में व्याध शब्द का एक बार भी प्रयोग भयंकरता आदि के मामलों में बार-बार आया। पशुपालन की तुलना में ऋग्वेद कृषि की स्थिति विवादास्पद दिखाई देती है। वैदिक काल में कृषि किस पैमाने पर हो रही थी इसका निर्णय इस बात से नहीं होना चाहिए कि कृषि का उल्लेख कितनी बार हुआ है। कारण कि ऋग्वेद किसानों का या उनके द्वारा रचा गया साहित्य नहीं है। खेतों की जुताई के लिए बैदिक काल में हल का प्रयोग होता था इसमें बैल का प्रयोग किया जाता था हल के लिए ऋग्वेद में लांगल, सीर, वृक, आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसी सन्दर्भ में वस्त्र, दाल, जुआर, सीसा शब्द का भी उल्लेख मिलता है। हलवाहे के लिए कीनांश व भू स्वामी के लिए क्षेत्र पति शब्द का प्रयोग हुआ है व्रीही या धान का भी उल्लेख किया गया है इस प्रकार वैदिक साहित्य पर दृष्टि डालने पर हम वो प्रमाण पाते है कि जिनके हड़प्पा के अवशेषों में कौशलो का हस्तानान्तरण भी पैतृक रूप से होने लगा था इसकी पुष्टि उन स्थानों पर होती है जहाँ पिता द्वारा पुत्र को शिक्षा देने का स्पष्ट उल्लेख है। ऋग्वेद में जिन व्यवस्थाओं का उल्लेख है उनमें कमाई तन्तुकाय, शिक्षण, शिक्षक, आदि है।

ऋग्वेद में जब किसी विशेष मामले में निपुणता का प्रश्न आता है तो जनसाधारण को न याद करके कुछ विशेष देवी या देवताओं या व्यक्तियों का ही उल्लेख मिलता है। वैदिक हथियारों में अकेले धनुष वाण व भाले को ही युद्ध में ही प्रयोग किए जाते होंगे यही दशा हड़प्पा की भी रही होगी। प्राचीन भारत

में लगभग 558 ई०पू० के लगभग ईरानियों का आक्रमण हुआ जिसमें साइरस, डेरियस, जराक्सीज, मुख्य थे जो लगभग 330 इ०पू० तक पश्चिनोत्तर भारत में शासन किए इन ईरानी आक्रमणकारियों के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति परम्परा पर काफी गहरा प्रभाव पड़ा।

327 इ०पू० में भारत पर यूनानियों का आक्रमण हुआ जिसमें मुख्य आक्रमणकारी सिकन्दर था। किन्तु भारत पर आक्रमण करने के कुछ ही समय बाद सिकन्दर वापस लौट गया और उसके साथ आने वाले वहुसंख्यक यूनानी भारतीय सभ्यता में घुल मिल गये तथा अनके साथ उनके द्वारा लाये हुए यूनानी संस्कृति परम्परा के साकारात्मक पक्षों को भारत ने अपनी सांस्कृतिक परम्परा में सम्मिलित कर लिया। उसके पश्चात भारत पर शक क्षहरातों का आक्रमण हुआ जो भारत में आये और भिन्न-भिन्न टुकड़ो में बटकर भारत के विभिन्न क्षेत्रों पर शासन करने लगे जिनमें प्रमुख रूप से पंजाब के शक, मथुरा के क्षत्रपुर, महराष्ट्र के शक थे। परन्तु इन विदेशी शक्तियों के शक्तियां धीरे-धीरे क्षीण हो गयी और अन्ततः उनकी सम्प्रभुता समाप्त हो गई किन्तु इन आक्रमणकारियों का कुछ सांस्कृतिक सकारात्मक प्रमाण भारतीय संस्कृति परम्परा पर पड़ा। शक आक्रमण के परिणाम स्वरूप भारतीय जन मानसून के वैज्ञानिक पद्धति से परिचित होने के साथ भारत का मिश्र मध्य एशिया, आदि देशो से व्यापारिक सम्बन्ध अधिक सुद्ध हो गये।

प्रथम शती के आरम्भिक चरण में भारत पर कुपोषण का आक्रमण हुआ और कुपोषण शासकों ने चतुर्थ शती तक भारत पर शासन किया। इन कुषाण आक्रमणकारियों में अलावा कुषाण वंश का महान शासक कनिष्क आदि मुख्य थे इस कुषाण आक्रमण का भारतीय संस्कृति परंपरा पर व्यापक साकारात्मक प्रभाव पड़ा। कुषाणों के आक्रमण के परिणामस्वरूप जो आर्थिक प्रभाव पड़ा उसके फलस्वरूप भारत का रोम, ईरान, मध्य एशिया, चीन, कोरिया, तिब्बत, जापान, आदि देशों से पहले की अपेक्षा अधिक व्यापारिक सम्बन्ध सुद्ध हुए। साथ ही कुषाणों के आक्रमण के फलस्वरूप ही भारतीय, कला, शैली पर अत्यन्त ही महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा जिसमें विशेषकर सूर्य मूर्ति निर्माण कला शैली में एक नई परम्परा स्थापित हो गई और कुषाणों के आक्रमण के फलस्वरूप ही भारत में यथार्थवादी गान्धार कला शैली अस्तित्व में आई यह शैली विदेशी होते हुए भी भारतीय है। इस शैलों में प्रमुख विषय के रूप में भगवान बुद्ध तथा बोधि सत्व को अपनाया गया है। इस प्रकार वैदिक काल से लेकर कुषाण काल तक भारत पर ईरानी, यूनानी, शकों, कुषाणों, के आक्रमण हुए किन्तु ये आये तो अपनी संस्कृति सभ्यता को लेकर आये थे जिसमें बहुसंख्यक विदेशी जातियां भारत में ही रह गई और भारतीय सांस्कृतिक परम्परा ने उनकी सकारात्मक सांस्कृतिक परम्परा को अपने में समाहित कर लिया।

परिणामस्वरूप भारतीय सांस्कृतिक परम्परा इन आक्रमणों के फलस्वरूप क्रमशः अत्यधिक समृद्धि होती चली गई। यही कारण है कि आज भी भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के सभी क्षेत्रों में हमें भिन्न-भिन्न स्वरूप और परम्परा दिखलाई देती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. शर्मा, रजनी : ष्समकालीन भारतीय दार्शनिकों की दृष्टि में भारतीय संस्कृति का स्वरूप महात्मा गाँधी, श्री अरविन्द, डॉ० राधाकृष्णन के विशेष सन्दर्भ मेंष् रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, 1990-1992
2. महना, सेल्ली : ष्श्री अरविन्दोज कन्सेप्ट ऑफ हुमैन यूनिटी एण्ड इट्स रेलिवेन्स टु माडर्न टाइम्सष्, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, 1990
3. दिनकर, रामधारी सिंह : ष्संस्कृति के चार अ यायष्, लोकभारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005.

उपन्यास साहित्य में स्त्री-विमर्श की परम्परा

डॉ0 कविता वर्मा

एस-503 सतलज अपार्टमेन्ट, गोमती नगर विस्तार, लखनऊ

हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श पर अभी तक जाने कितना कुछ कहा, सुना एवं लिखा जा चुका है। स्त्री-विमर्श आज एक बहु चर्चित और महत्वपूर्ण विषय बन गया है। बदले हुए समय में कई 'भ्रमों' और 'भटकाओं' को दूर कर दिया है। कुल मिलाकर हिन्दी में भी 'स्त्री-प्रश्न' एक गम्भीर चिन्तन और आन्दोलन का रूप ले चुका है। पहले की अपेक्षा 'स्त्री मुक्ति चेतना' और स्त्री-पराधीनता सम्बन्धी विचार न सिर्फ व्यापक हुए हैं बल्कि गहरे और जटिल भी।

दुनिया भर की भाषाओं एवं सन्दर्भित संस्कृतियों में, स्त्री जीवन की दशा जिस रूप में अभिव्यक्त हुयी है उसके आधार पर महान नारी वादी चिन्तक 'सीमोन द बोउवा' ने उचित ही लिखा है 'स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि बनाई जाती है।' स्त्री उपेक्षित के सन्दर्भ में 'पूरब' हो या 'पश्चिम' कोई बड़ा भेद नजर नही आता। मिथक, इतिहास, धर्म, साहित्य और कला सबमें स्त्री उपेक्षित और दोयम है और यह दोयमता भारत के सन्दर्भ में 'ऋग्वेद' से लेकर आधुनिक और स्वतंत्र भारत के संविधान और कानून तक में देखी जा सकती है। आज भी पितृसत्तात्मक सभ्यता और संस्कृति द्वारा औरत को पूरा मनुष्य न मानकर वस्तु ही समझा जाता है। 'स्त्री-विमर्श' स्त्री को 'पूर्ण मानव' का दर्जा पाने की एक संघर्षशील कोशिश है जो दुनिया भर के उन स्त्री-पुरूष रचना कारों एवं विचारकों के द्वारा की जा रही है जो स्त्री-पुरुष समानता और लोक तांत्रिक जीवन दृष्टि के विकास के पक्षधर हैं इस अर्थ में स्त्री-विमर्श को मानव समता का विमर्श भी मान सकते हैं।

हिन्दी के आरम्भिक उपन्यासों में नव जागरण का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है उस समय जितने भी 'सुधारवादी' एवं 'उद्धारवादी' अभियान चले उसके केन्द्र में मूल रूप से स्त्री ही थी। हमारी भारतीय संस्कृति जो कि 'स्त्री' व्यथा पर ही टिकी है, क्या सचमुच स्त्री जीवन में कुछ सुधार लाना चाहती थी या फिर बदली हुयी परिस्थितियों में स्वयं को टिकाये रखने का, अपने वर्चस्व को बनाये रखने का बहाना था? फिलहाल जो भी हो तत्कालीन उपन्यास साहित्य के केन्द्र में स्त्री ही थी। आदर्श पत्नी, आदर्श विधवा, आदर्श पतिव्रता, आदर्श माँ और आदर्श संयुक्त परिवार की महिमा का बखान तत्कालीन अनेक उपन्यासों की विषयवस्तु थी।

प्रेमचन्द हिन्दी उपन्यास जगत में प्रेमचन्द के प्रवेश ने स्त्री को एक नई जमीन और दृष्टि प्रदान की उनकी प्रगतिशील दृष्टि से स्त्री समस्या धर्म और संस्कृति की 'प्रतीक' और 'साधन' से कुछ बाहर निकल सहज मानवी की समस्या में रूपान्तरित होने लगी। स्त्री से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण सवालों पर सबसे बड़ी बात जो उनके उपन्यासों मे देखने को मिलती है, वह है-स्त्रीत्व की अवधारणा के प्रति पूर्ण आस्था। सफल दाम्पत्य के हिमायती प्रेमचन्द दाम्पत्य जीवन की खामियों को गिनाते हुए उसके प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हैं। मातृत्व की महिमा का बखान तो ये करते नहीं थकते। जो 'गोदान' के पुरुष पात्र मेहता के कथन से स्पष्ट होता है ''लेकिन मैं समझता हूँ कि नारी केवल माता है और इसके उपरान्त वह जो कुछ है वह सब मातृत्व का अनुकरण मात्र है। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना है और सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान विनय है। एक शब्द में उसे लय कहूँगा जीवन का, व्यक्तित्व का और नारीत्व का भी''।[1] परिवार एवं विवाह संस्था की खामियों को उद्घाटित करने वाले प्रेमचन्द स्त्री की उस सांस्कृतिक छवि के प्रति कुछ नही कहते जो केवल उसे माँ, बहन, पत्नी की ही भूमिका में कैद कर देना चाहती है। पुरूष संदर्भ से पृथक उसके व्यक्तित्व को स्वीकारती ही नही।

जैनेन्द्र स्त्री के प्रति नियतिवादी, यातनावादी और प्रकृतिवादी दृष्टि रखते हैं। उनके स्त्री पात्रों द्वारा किया गया प्रतिरोध अपने आप में बेजोड़ है। संयम, धैर्य और अहिंसक प्रतिरोध उनके स्त्री पात्रों की मुख्य विशेषता है। स्त्री गुण और पुरुष गुण में भेद मानकर स्त्री को श्रेष्ठ ठहराने वाले लेखकों में जैनेन्द्र का नाम आगे है। इनके स्त्री सम्बन्धी विचारों पर गाँधीवाद का प्रभाव स्पष्ट देखने को मिलता है। इनके स्त्री-पात्र रूढिघ्यों को तोड़ती हुए भी अन्ततः उसी पारम्परिक भूमिका में अपने को छुपा लेती है, जिसे तोड़कर वे बाहर निकलना चाहती थी। पतिव्रता धर्म की पवित्रता और महानता पर उनकी एक पात्र मृणाल करती हैं- ''मै छल नहीं कर सकती, छल पाप है। हुआ जो हुआ व्याहता को पतिव्रता होना चाहिए। सच्ची बनकर ही समर्पित हुआ जा सकता है''।[2] जैनेन्द्र की रचना दृष्टि पर आलोचक रामदरश मिश्र ठीक कहते हैं कि ''लेखक कहीं सीधे ढंग से कहीं व्यंगात्मक ढंग से सामाजिक जीवन की विसंगतियाँ भी उद्घाटित करते चलता है। यह बात और है कि वह इन विसंगतियों के प्रति समर्पण का भाव रखता है ताकि उसके यातनावादी दर्शन का निर्वाह हो सके''।[3] संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र विवाह और परिवार संस्था में असंतोष व्यक्त करते हुए भी कोई समाधान देने में विफल रहे, पर प्रत्येक युग की दृष्टि से उनका लेखन स्त्री की एक नई छवि गढ़ने में सफल हुआ है।

यशपाल, प्रेमचन्द और जैनेन्द्र की तुलना में स्त्री स्वाधीनता वियषक बहस में कहीं अधिक स्पष्ट और मुखर है। इसका कारण उनके वैचारिक आचार में मार्क्सवाद का होना है। उनकी दृष्टि में स्त्री की समस्या न तो वायवीय (आध्यात्मिक) है और न ही उसका समाधान वायवीय हो सकता है हिन्दी में सम्भवत: पहली बार उपन्यासकार ने स्त्री की यौनिकता और उसके पितृ सत्तात्मक दमन के प्रश्न को गम्भीरता से उठाया। उनके स्त्रीपात्र न केवल अपने अधिकारों के लिए लड़ने वाली हैं, बल्कि उन रूढ़ मान्यताओं को तोड़ती हैं जो कि स्त्री-विरोधी मानसिकता की उपज हैं। वे अपनी सामाजिक/सांस्कृतिक मुक्ति में ही परम्परा और धर्म की सार्थकता देखती हैं। उनकी एक पात्र वैवाहिक व्यवस्था की कमियों और इसमें पुरूष वर्चस्व की हिमायत को गलत ठहराती हुयी कहती है-''यदि स्त्री को किसी न किसी की बन कर ही रहना है तो उसकी स्वतंत्रता का अर्थ ही क्या हुआ? स्वतंत्रता शायद इसी बात की है कि स्त्री एक बार अपना मालिक चुन लें परन्तु गुलाम उसे जरूर बनना है''।[4]

इसी प्रकार नागार्जुन अपने समकालीन लेखकों से कई अर्थों में भिन्न और विशिष्ट हैं। स्त्री जीवन की विडम्बना जिनमें देहात की बालिकाएं एवं स्त्रियाँ विवाह के आग में निरीहता पूर्वक झोंक दी जाती हैं उनके कथा साहित्य में पूरी संवेदना के साथ स्थान पाती हैं। उपन्यास साहित्य के गम्भीर आलोचक डा0 गोपाल राय, नागार्जुन की कथा भूमि और जीवन दृष्टि पर प्रकाश डालते हुए कहते है कि-''जहाँ आठ-दस वर्ष की बालिकाओं का विवाह साठ-पैंसठ साल के बूढ़े से कर दिया जाता था, जहाँ विधवाओं को जीवित-मृत होने की षड्यंत्र भुगतनी पड़ती थी,'' जहाँ कुलीनता के नाम पर एक व्यक्ति से दर्जनों कन्याएं व्याह दी जाती थी, जिसके चलते विवाहित स्त्रियाँ घोर यातना का जीवन व्यतीत करती थीं और व्यभिचार के लिए बाध्य होती थीं। 'रतिनाथ की चाची' तथा 'नई पौध' में नारी शोषण की समस्या को नागार्जुन ने गहरी संवेदना के साथ प्रकट किया है और उसका अपने ढंग से समाधान भी प्रस्तुत किया है। नागार्जुन के स्त्री-पात्र सामाजिक रूढिघ्यों और सामन्ती अत्याचारों की शिकार हैं। 'रतिनाथ की चाची' में गौरी यंत्रणा की हद तक सामाजिक रूढिघ्यों एवं सामन्ती अत्याचारों की शिकार है, तो 'कुम्भीपाक' की कुंती अपने समान युवतियों को वैश्या बना दिये जाने के कारण समाज से पूँछती है। इसी तरह नागार्जुन अपने क्रान्तिकारी स्वभाव एवं लेखन के अनुसार स्त्री की यौनिकता अथवा यौन-शुचिता जैसे मिथको एवं दैहिक पवित्रता जैसी धारणाओं पर कड़ा प्रहार करते हैं।

अज्ञेय स्त्री जीवन को बिल्कुल नए कोण से देखते हैं। वे विवाह संस्था में स्त्रियों के व्यक्तित्व के विलीन होने की त्रासदी को बखूबी समझते हैं उनके लिये चुनाव की समस्या सबसे बड़ी समस्या है। वे आत्म-निर्णय एवं आत्म-सम्मान पर अधिक बल देते हैं। सामाजिक नैतिकताओं से उनके स्त्री-पात्र बखूबी टकराते हैं। 'नदी के द्वीप' की रेखा कहती है-''यह क्या है भुवन? बरसों मैं श्रीमती हेमेन्द्र कहलायी, उसके क्या अर्थ थे? अगले महीने से श्रीमती रमेशचन्द्र कहलाऊँगी, इसके भी क्या अर्थ हैं? कुछ अर्थ तो होंगे अपने से पूँछती हूँ पर क्या यह नहीं सोच पाती.... मैं इतना ही सोच पाती हूँ कि मेरे लिए यह समूचा श्रीमतीत्व मिथ्या है कि मैं तुम्हारी हूँ केवल तुम्हारी ही हुई हूँ, और किसी की भी नहीं, न कभी हो सकूँगी।''[5] निर्णय लेने की स्वतंत्रता और अपनी शर्तों पर जिन्दगी जीने की सहूलियतें यही तो तत्व हैं जो अज्ञेय की दृष्टि में व्यक्ति कि जिन्दगी को खुशहाल एवं मुक्त रख सकते हैं उसे व्यक्तित्व प्रदान कर सकते हैं।

मोहन राकेश ने भी दाम्पत्य जीवन के अविश्वास और यौन कुण्ठा के माध्यम से स्त्री-पुरुत्र के सम्बन्धों की बिडम्बना पर गहराई से विचार किया है। विवाह संस्था की निरर्थकता पर प्रकाश डालते हुए उनका एक पात्र कहता है- ''कितना अच्छा होता यदि हम पति पत्नी न होकर दो मित्र होते और दो मित्रों की तरह यह यात्रा साथ-साथ करते''।[6]

इस प्रकार पुरूष रचनाओं की भाँति स्त्री रचनाकारों के लेखन में स्त्री-विमर्श रचा बसा है जिसमें मुन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, ऊषा प्रियंवदा, मेहरून्निशा परवेज, शशि प्रभा शास्त्री, राजी सेठ, नाशिरा शर्मा, प्रभा खेतान आदि लेखिकाएं हैं।

मन्नू भण्डारी हिन्दी की एक चर्चित उपन्यास लेखिका हैं 'आपका बंटी' नामक उपन्यास स्त्री जीवन और उसकी बिडम्बनाओं को बहुत ही बारीकी से उठाता है। पति-पत्नी के बीच अनबन की स्थिति में जब तलाक हो जाता है तब उसका प्रभाव किस पर अधिक पड़ता है, कौन इस मुक्ति की कीमत अधि क चुकाता है, किसको क्या देना खोना पड़ता है? और समाज हर स्थिति में स्त्री को ही सहनशील/संयमी होने की बात करता है? ढेर सारे प्रश्न और उनके उत्तर इस महत्वपूर्ण कृति में मिल जाते हैं। शकुन जिसे न तो अपने पति का प्यार मिला और न अपने द्वारा चयनित दूसरे साथी का। प्रेम और अहंकार के बीच उसे अपने बेटे को भी छोड़ना पड़ा-''वह जानती थी कि ये कोने जब होते हैं तो कितने पैने होते हैं। वैसे इनसे सब कुछ कटता चलता है, विश्वास, सद्भावना, अपनत्व सारी की सारी जिन्दगी बँट जाती है-खेमे में टुकड़ो में, इसके बाद पूरी जिन्दगी जीना..... कीमत चुका दी लग रहा है कि वह जैसे एकदम खाली और खोखली हो गयी है''।[7]

कृष्णा सोबती हिन्दी उपन्यास साहित्य में स्त्री स्वर और स्त्री शक्ति दोनों को नये रूप में परिभाषित करती हैं उनके स्त्री पात्र कभी भी मौका नहीं चूकते अपनी बात रखने और इच्छा व्यक्त करने में। स्त्री की यौनिकता और सामाजिक वर्जनावादी नैतिकताओं के बीच उनका लेखन अपनी एक अलग पहचान बनाता है।

इसी क्रम में प्रभा खेतान ने आओ पेपे घर चले, तालाबंदी, छिन्नमस्ता अपने-अपने चेहरे, पीली आँधी आदि उपन्यासों में स्त्री विषयक चिन्तन और गहरी संवेदना व्यक्त की है। छिन्नमस्ता की प्रिया एक स्थान पर कहती है-''औरत कहाँ नहीं रोती है सड़क पर झाड़ू लगाते हुए, एयरपोर्ट पर बाथरूम साफ करते''[8] प्रभा खेतान की पहचान ही नारीवादी लेखिका के रूप में उभरता है।

इसी प्रकार हिन्दी उपन्यास साहित्य में स्त्री-विमर्श की एक दीर्घ परम्परा देखने को मिलती है। स्त्री-विमर्श की दृष्टि से महत्वपूर्ण उपन्यासों में स्त्री-पुरुष दोनों लेखक शामिल हैं परन्तु पूर्ण रूपेण सफलता स्त्री लेखिकाओं को ही मिली है क्यों कि उन्होने जो लिखा, वह उनका स्वयं का भोगा एवं जिया सच है।

सन्दर्भ सूची-

1. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ- 65
2. त्याग-पत्र, जैनेन्द्र, पृष्ठ-62
3. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा रामदरश मिश्र, पृष्ठ-97
4. दादा कामरेड, यशपाल, पृष्ठ-28
5. नदी के द्वीप, अज्ञेय, पृष्ठ-314
6. अन्धेरे बन्द कमरे, मोहन राकेश, पृष्ठ 142
7. आपका बंटी, मन्नू भण्डारी, पृष्ठ 196
8. छिन्नमस्ता, प्रभाखेतान, पृष्ठ 220

विज्ञान, धर्म एवं अध्यात्म परस्पर पूरक हैं, विरोधी नहीं: एक आलोचनात्मक अध्ययन

डॉ० शीलक राम

दर्शन-विभाग कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

शोध-आलेख सार

सृष्टि के प्रारंभ से ही मनुष्य संसार के संबंध में तर्क-वितर्क करता आया है। स्थूल नेत्रों से दिखाई पड़ने वाले संसार के सिवाय भी कोई सत्ता है या नहीं, इस संबंध में दार्शनिकों एवं रहस्यदर्शियों ने खूब विचार-विमर्श किया है तथा इस विचार-विमर्श का निष्कर्ष है कि इस विश्व में दो सत्ताएं आच्छादित हैं। एक जड़ तथा दूसरी चेतन। इन्हीं को प्रकृति और पुरुष भी कहते हैं। स्थूल और सूक्ष्म भी। इन दोनों का पृथक-पृथक अस्तित्त्व और महत्व है, पर सुयोग तभी बनता है जब वे एक-दूसरे की सहायक बनकर संयुक्त शक्ति के रूप में विकसित होती और अपने चमत्कार दिखाती हैं।

मुख्य-शब्द : विज्ञान, अध्यात्म, धर्म, सभ्यता, संस्कृति, योग, मोक्ष, पुरुषार्थ, जड़ व चेतन।

सृष्टि के प्रारंभ से ही मनुष्य संसार के संबंध में तर्क-वितर्क करता आया है। स्थूल नेत्रों से दिखाई पड़ने वाले संसार के सिवाय भी कोई सत्ता है या नहीं, इस संबंध में दार्शनिकों एवं रहस्यदर्शियों ने खूब विचार-विमर्श किया है तथा इस विचार-विमर्श का निष्कर्ष है कि इस विश्व में दो सत्ताएं आच्छादित हैं। एक जड़ तथा दूसरी चेतन। इन्हीं को प्रकृति और पुरुष भी कहते हैं। स्थूल और सूक्ष्म भी। इन दोनों का पृथक-पृथक अस्तित्त्व और महत्व है, पर सुयोग तभी बनता है जब वे एक-दूसरे की सहायक बनकर संयुक्त शक्ति के रूप में विकसित होती और अपने चमत्कार दिखाती हैं।[1]

काया पंच तत्त्वों-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश द्वारा विनिर्मित है। अंग-अवयवों में रक्त-मांस, तंतु-झिली, अस्ति-मज्जा का मिलन-एकीकरण है। इसलिए उनसे इच्छानुरूप काम कराया जा सकता है। शरीर तंत्र की प्रकृति की करामात भी इसे कह सकते हैं। इतने पर भी वह अपूर्ण है। उसके भीतर एक चेतना काम करती है। उसी का अचेतन भाग श्वास-प्रवास, निमेष-उन्मेष, आकुंचन-प्रकुचन, सुषुप्ति-जागृति आदि की व्यवस्था बनाता रहता है। दूसरा पक्ष है-सचेतन। जो सोचता, निर्णय करता और इच्छानुरूप कार्य करने का आदेश देकर अनेकानेक क्रिया-कृत्य संपन्न करता है। सृष्टि का कार्य व्यापार इस तरह से प्रकृति के विभिन्न विकारों से आगे बढ़ता है।[2]

देखने में आता है कि जब तक जड़-चेतन का संयोग है, तभी तक प्राणी जीवित रहता है। दोनों के विलग हो जाने पर मृत्यु हो जाती है। पुनर्जन्म से पूर्व उसे किस स्थिति में कहां रहना पड़ता है? उसका केवल अनुमान ही लगाया जाता रहता है। कदाचित आत्म-सत्ता कुछ अधिक सामर्थ्यवान रही होती तो उसने अपनी स्थिति पर ऐसा प्रकाश डाला होता तो हर किसी के लिए मान्य होता, पर आदिकाल से लेकर अद्यावधि इस संबंध में कुछ सुनिश्चित तथा हस्तगत हो नहीं सका है। भूत-प्रेत के रूप में उनके सूक्ष्म शरीर की हरकते ही यदा-कदा प्रकाश में आती हैं। कोई अनुमान लगाया भी गया हो तो मतावलंबियों द्वारा अपने-अपने ढंग से प्रतिपादित करने पर अनिश्चय की स्थिति फिर जैसी की तैसी बन जाती है। जल, थल और नभ के क्षेत्र में यदि चेतना का हस्तक्षेप न हुआ होता तो यहां अभी भी लगभग वैसा ही दीख पड़ता जैसा अनादिकाल में किसी प्रकार विनिर्मित हुआ था। चेतन जब जड़ में प्रेरणा उत्पन्न करता है तो ही संसार का कार्य-व्यापार चलता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जड़ और चेतन का संयोग ही सब प्रकार अभीष्ट है। जीवन यात्रा के सुसंचालन तक में चेतना की आवश्यकता पड़ती है, तभी वे सुंदर, सुव्यवस्थित और उपयोगी होने का प्रमाण परिचय दे पाते हैं। यद्यपि अग्नि एवं बिजली का अस्तित्त्व अनादिकाल से सृष्टि में विद्यमान था पर उसका उद्घाटन तो मनुष्य ने ही किया है और उन सबका विविध प्रयोजनों के लिए उपयोग कर सकने का कौशल उसी के पुरुषार्थ ने संभव कर दिखाया है। पुरुषार्थ का इसीलिए तो सर्वाधिक महत्त्व स्वीकार किया जाता है।

आरंभिक काल से लेकर तब तक प्रकृति की शक्तियों का रहस्योद्घाटन, सुनियोजन और महत्वपूर्ण उपयोग बन पड़ना संभव बनाने वाली कुशलता का नाम ही विज्ञान है।[3] इस चमत्कारी उपलब्धि को जड़-चेतन का समन्वय ही कह सकते हैं। पदार्थ को सुनियोजित करने की क्षमता जिसे विज्ञान कहते हैं, कितना सशक्त-समर्थ और सुविधाओं से भरा-पूरा है। इतना विकास व समृद्धि विज्ञान में विकास से आए हैं कि आज व्यक्ति इसी को सब कुछ समझने की भूल करने लगा है। हर तरफ विज्ञान के चमत्कार व्यक्ति को मोहित किए हुए हैं। यह हमारी जानने की इच्छा की पूर्ति करता है।[4]

इस पृथकता के रहते हुए भी संसार इतना सुंदर और सुविधा साधनों से भरा-पूरा बन सका, उसका श्रेय उस विज्ञान को ही दिया जा सकता है जिसे पदार्थ से लाभान्वित होने की कुशलता कहा जाता है। पदार्थ का उपयोग जानना ही पर्याप्त नहीं, उसका सदुपयोग भी समझा जाना चाहिए। विज्ञान को शक्ति और साधन उत्पन्न करने का श्रेय तो है, पर वह स्वयं इस स्थिति में नहीं कि सदुपयोग और दुरुपयोग का अंतर कर सके।[5] तात्कालिक लाभ की संकीर्णता प्राय: ऐसे सघन आवरण से भरी-पूरी होती है कि उसे दूरवर्ती परिणामों की समझ-बूझ प्राय: नहीं के बराबर होती है। इसलिए प्रलोभनों, आकर्षणों व लिप्साओं

की प्रबलता उपलब्ध शक्तियों का दुरुपयोग करने के लिए ही घसीट ले जाती है। इसके अनेक प्रमाण आज के व्यक्ति की दुर्दशा देखकर दिए जा सकते हैं। सब साधन होने के बावजूद भी व्यक्ति दुखी है।

यही है पदार्थ संपदा का दुरुपयोग। इसे विज्ञान वैभव को अनर्थ के लिए नियोजित करना कह सकते हैं। पतन तात्कालिक लाभ की आतुरता के साथ जुड़ा हुआ है। मात्र एक ही रोकथाम का उपाय है-दूरदर्शी विवेकशीलता पर आधारित नीतिमत्ता, मानव गरिमा के साथ जुड़ी हई उत्कृष्टता। इसी को तत्त्वदर्शन की भाषा में अध्यात्म कहा गया है।[6] इसके बिना समकालीन सभ्यता का कोई न तो वर्तमान है तथा न ही कोई भविष्य भौतिक मानसिकता ने संसार के सारे सुख-चैन को छीन लिया है।

फिर भी एक आश्चर्य और भी शेष रह जाता है कि विज्ञान की जन्मदात्री होने पर भी यह चेतना अपने आपके संबंध में भी कम दिग्भ्रांत नहीं रहती। अपने को भी अपने बुने मकड़जाल में फंसाने और असाधारण संत्रास सहते रहने के लिए बाधित होती है। अपने प्रति पक्षपात भी रहती है और सर्वोत्तम होने का आग्रह भी। ऐसी दशा में दृष्टिकोण गड़बड़ाता है, कुकल्पनाएं उठती हैं। यह भ्रांति क्यों होती है इसका समाधान करने में बड़े-बड़ों के पसीने छूट चुके हैं लेकिन समस्या वहीं की वहीं है। अंधेरे का रोना रोने की बजाय प्रकाश फैलाने की व्यवस्था करनी चाहिए।

यह ध्यान में रखने योग्य बात है कि लोग आदर्शों की बात का मौखिक समर्थन तो अपना बड़प्पन बघारने के लिए करते रहते हैं। वैसे धर्मोपदेश सुनकर उनके प्रति समर्थन भी व्यक्त कर देते हैं, पर मानते और करते वही रहते हैं जो पहले से ही मजबूती के साथ अपनी मान्यताओं में समाविष्ट कर रखा है। आत्मसुधार के क्षेत्र में यही भारी संकट है। अपनी मान्यता से पीछे हटना बड़ी क्रांति की बात होती है। ऐसे व्यक्ति ही वीर कहलाने के अधिकारी हैं।

आत्म-समीक्षा निष्पक्ष भाव से कर सकने की क्षमता, आत्मसुधार और आत्मर्माण के लिए उभार गया प्रचंड साहस, अपने आपे का सुधार-परिष्कार उस आत्मबल के पक्षधर तत्त्वदर्शन के माध्यम से ही हो सकता है, जिसे पुरातन भाषा में 'अध्यात्म' कहते हैं।[7] विज्ञान वैभव का सदुपयोग और आत्मा चेतना का परिष्कार ये दोनों ही प्रयोजन जिस आधार पर सिद्ध हो सकें उसे एक शब्द में अध्यात्म कहा जाता है। उच्चस्तरीय तत्त्वदर्शन भी इसी को संपन्न करने हेतु भारतीय रहस्यदर्शियों ने षड्-दर्शन की रचना की।

लोक व्यवहार में अध्यात्म और विज्ञान की दो पृथक धाराएं बन गई हैं। दोनों ने अपने-अपने दुर्ग अलग-अलग खड़े कर लिए हैं। भ्रांतियां दोनों पर ही अपने-अपने ढंग की सवार हैं। वे जिस भी स्थिति में हैं अपने को पूर्ण मानकर चल रहे हैं। अपने स्वयं को पूर्ण मानना नहीं अपितु इसे साधना द्वारा जानना है। मानना झगड़े की जड़ है तथा जानना सब झगड़ों का समाधान है।

उस स्तर का मानस बन जाने पर यह भी प्रयास चल पड़ता है कि विपक्षी को निराधार और हेय ठहराने के लिए जितने तर्कों के तीर चलाए जा सकते हों, उन्हें चलाने में कोर कसर न रखी जाए। पिछली शताब्दियों में यही होता भी रहा है। जब अध्यात्म का किला मजबूत था, तब उसके बुर्जो पर बैठे तोपची विज्ञान को आसुरी मायाजाल बनाते रहे।[8] दोनों एक-दूसरे के विरोधी नहीं अपितु परस्पर पूरक हैं। एक पूर्वावस्था है जबकि दूसरा उत्तरावस्था।

अब इस शताब्दी में विज्ञान ने बाजी मार ली है और अपने आविष्कारों के आधार पर मिलने वाली सुविधाओं के चमत्कार से सर्वसाधारण का मन मोह लिया है तो उसने भी अपने विरोधी के प्रति कमर कसने में कोई कसर नहीं रखी है। अकेला विज्ञान विनाशकारी है, वह संहार ही करेगा। वह भोगों में लिप्त ही करेगा। यह सिलसिला आज चल रहा है।

इस द्वंद्व में मनुष्य जाति को असीम क्षति उठानी पड़ रही है। गाड़ी को खींचने वाले दो बैल यदि परस्पर सींग मारने पर उतर आएं तो यात्रा हो ही नहीं सकती। यह धींगा-मस्ती व खींचातानी अब अपने चरम पर है। दोनों एक-दूसरे के दुश्मन बने बैठे हैं।

वस्तुतः प्रश्न ही तद्-विषयक भ्रांति पर आधारित है। विज्ञान और अध्यात्म सदा से एक-दूसरे के पूरक रहे हैं, विलग होने पर कोई भी अपना स्वतंत्र अस्तित्त्व बनाए नहीं रह सकता है।[9]

पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव में असाधारण शीत है, फिर भी इन दोनों क्षेत्रों में जीवधारियों के अपने-अपने ढंग के क्रियाकलाप पाए गए हैं। इस सुयोग के अभाव में समुद्र के मध्य उठे हुए अनेक द्वीप अभी भी सुनसान पड़े हैं। जड़ और चेतन के युग्म को ही विज्ञान और अध्यात्म की संज्ञा दी जाती है। जहां अकेला एक हो वहां निस्तब्धता के अतिरिक्त और क्या पाया जा सकता है। कोई भी लाठी एक सिरे वाली नहीं हो सकती ।

यदि सचेतन प्राणियों की उत्पत्ति से पूर्वकाल पर दृष्टि डाली जाए तो भी आदि कारण को खोजते-खोजते वहां पहुंचना पड़ेगा जहां चेतन की इच्छा या प्रेरणा के उपरांत पदार्थ का अस्तित्त्व प्रकाश में आया। श्रुति वचनों में उसका उल्लेख भर है। 'एकोहम् बहुस्यामि'[10] सूत्र में यही प्रतिपादन है कि सृष्ट को शून्य स्थिति में रहना अखरा तो उसने इच्छा की 'एक से बहुत हो जाऊं' फलतः परा और अपरा प्रकृति के रूप में दो प्रवाह फूट पड़े। इसी वस्तुस्थिति को उजागर किया गया है-'ऋतं च सत्यं च...'[11] आदि वर्णनों में भी इसी उपक्रम का विस्तार किया गया है, यह अध्यात्म प्रधान-पक्ष का प्रतिपादन हुआ। धर्म व अध्यात्म के ग्रंथों में कहीं भी केवल एक को महत्व नहीं दिया गया है।

पदार्थ विद्या भले ही अपने परिकर द्वारा ही विश्व को संचालित सिद्ध करे, उसी को प्रधान माने, फिर भी यह स्वीकार किए बिना उनका कथन भी समग्र नहीं बन पड़ता कि कोई अदृश्य इच्छाशक्ति पदार्थ सत्ता का उद्भव, संचालन, अभिवर्द्धन और परिवर्तन जैसे खेल खिला रही है। यहां यह पदार्थ के पीछे एक सुव्यवस्था का समावेश है। सचेतन ही अचेतन पर नियंत्रण कर सकता है। पदार्थ की छोटी इकाई के अंतर्गत जिस प्रकार जितने परिकर काम करते हैं और अपनी धुरी कक्षा में भ्रमण करते देखे जाते हैं, उनसे स्पष्ट है कि यह नियमित अनुशासन भी किसी व्यापक सत्ता का ही इच्छापूर्वक अवस्था के अंतर्गत रखा गया खेल है।[12] चलाने वाले के बिना कोई वस्तु चलायमान कैसे हो सकती है?गति देने वाला यदि कोई नहीं है तो गतिमान वस्तु गतिमान ही रहेगी तथा स्थिर वस्तु स्थिर ही रहेगी।

ऋतुचक्र भी इस प्रकार का विनिर्मित है कि उससे निबटने के लिए हर जीवधारी को अपने कौशल का, समुचित अभिवर्द्धन करने का अवसर प्राप्त होता रहे। वनस्पतियों और प्राणियों का एक-दूसरे का पूरक बनकर रहना भी कितना विचित्र है कि यह विश्वास किए बिना रहा नहीं जाता कि यह समस्त विस्तार

किसी बुद्धिमान तंत्र के संरक्षण में चल रहा है। सृष्टि व्यापार अंधसंचालन नहीं है अपितु सुनियोजित है। इस योजना को भ्रमवश न देख पाए तो यह व्यक्ति की गलती है।

शास्त्रीय प्रतिपादनों से लेकर वैज्ञानिक अनुसंधानों तक को अपने-अपने ढंग से एक ही निष्कर्ष पर पहुंचना पड़ा है कि पदार्थ का उत्पादन और उसका क्रमबद्ध नियमन किसी सचेतन सत्ता का ही खेल है। इस प्रकार जड़ और चेतन दोनों का अत्यंत सुव्यवस्थित होना सहज सिद्ध है। पूर्ण निर्जीव कहा जा सके, ऐसा तो यहां कुछ भी नहीं है।[13] अग्नि का ज्वलंत ज्वाल भाल भी नहीं। समुद्र के ज्वार-भाटे तक नहीं। चेतन कम जड़ है तथा जड़ कम चेतन है।

क्षीरसागर में विष्णु के सो जाने पर महाप्रलय हो जाताा है, क्षीरसागर और विष्णु जड़ चेतन के यही दो समन्वय अंत में रह जाते हैं। आरंभ में भी कमल पुष्प पर बैठे ब्रह्म द्वारा सृष्टि सृजन का यही तात्पर्य है कि ब्रह्म और प्रकृति वैभव का मिल-जुलकर बना आधार ही सृष्टि का मूल कारण बना। सृष्टि संचालन में विरोधी शक्तियों में समन्वय होता है। यह विरोधाभास ही सृष्टि संचालन का कारण है।

कोई जड़ ऐसा नहीं है जिसमें चेतना का कोई न कोई अंश विद्यमान न हो। पत्थरों तक में मद्गामी हलचल होती हे, धातुओं तक को जंग लगती है और क्षरण परिवर्तन होता है। यह सब तथ्य बताते हैं कि कि जड़ नितांत निर्जीव एवं गतिविहीन नहीं है।[14] धर्म धारणा और ध्यान धारणा के माध्यम से ईश्वर के साथ संबंध जोडने की प्रक्रिया में उसे किसी-न किसी आकार को कहीं न कहीं ठहरा हुआ कल्पित करना पड़ता है। विभिन्न संप्रदायों और साधना परंपराओं ने ईश्वर का कोई न कोई ऐसा स्वरूप निर्धारित किया है, जिसका ध्यान बन पड़े और उसके साथ भक्ति भावना का आरोपण संभव हो सके। नितांत निराकार की कल्पना तक नहीं बन पड़ती। वेदांत तक में आत्मस्वरूप में ईश्वर की ज्योति प्रकाशित होने की मान्यता है।[15] निराकार मत वाले भी प्रकाश ज्योति को ईश्वर का स्वरूप मानकर काम चलाते हैं।

न तो हलचलों से, गुणों से, सामथ्यों से रहित किसी जड़-पदार्थ की उपस्थिति ढूंढी जा सकती है और न सर्वव्यापी ब्रह्म चेतना का स्वरूप विवेचन संभव है।[16]

उत्पादन, अभिवर्द्धन और परिवर्तन-यह तीन गतिविधियां प्रत्येक पदार्थ और प्राणी में अनवरत रूप से होती रही हैं। इन हलचलों का केंद्र सजीव सत्ता ही हो सकता है।

मनुष्य कभी-कभी नैतिक नियमों का उल्लंघन कर तात्कालिक लाभ उठाता देख जाता है। इससे कर्मफल की व्यवस्था में संदेह होता है, पर कुछ ही समय में क्रिया-प्रतिक्रिया सामने आकर रहती है, इससे विदित है कि जड़ और चेतन का पारस्परिक समन्वय अविच्छिन्न है। 77 जो समन्वय नहीं देखते वे विनोद पैदा करते हैं। विवाद पैदा करना उनकी आजीविका है।

पदार्थ का प्रतिनिधित्व विज्ञान करता है और चेतना का अध्यात्म। दोनों के बीच सघन समन्वय न रहने पर तो यहां कुछ भी बन या चल न सकेगा। जो विलग है ही नहीं, उनका समन्वय करने की आवश्यकता और चेष्टा भी किस प्रकार बन पड़ेगी?[18] भ्रम को तोड़कर यह सब संभव हो सकता है। भ्रम भ्रम के समय तो होता ही है। उसकी आभासिक सत्ता तो होती ही है।

विराट ब्रह्म की परिकल्पना में इस विश्व को ही ईश्वर का दृश्य स्वरूप माना गया है। अर्जुन, कौशल्या, काकभुशुण्डि आदि ने ईश्वर दर्शन का आग्रह किया तो उन्होंने विराट विश्व की झांकी करके ही संतोष करना पड़ा।[19] निराकार का अपना निजी स्वरूप कोई हो ही नहीं सकता। व्याख्या शुरु होते ही विकृति आ जाती है लेकिन व्यक्ति व्याख्या किए बिना रह भी नहीं सकता।

चेतना का अणु-पक्ष आत्म-सत्ता में है और विभु-पक्ष ब्रह्मांडीय चेतना में। दोनों एक ही तत्त्व के बने है। ब्रह्म सान्निध्य का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए आत्मा परिष्कार ही एकमात्र उपाय माना गया है। इसी के निमित्त उपासना, साधना और आराधना का त्रिविध प्रयास करना पड़ता है।[20] अंधेरा कम प्रकाश है जबकि प्रकाश कम अंधकार है।

साधनापरक समस्त कर्मकांड इसी की पूर्ति के लिए विनिर्मित किए गए हैं। जो जिस अनुपात से आत्म-शोधन करता जाता है, उसके भव-बंधन उसी मात्रा में कटते हैं।[21] ब्रह्म सान्निध्य का रसास्वादन करने का अवसर उसे उसी अनुपात में मिलता चला जाता है। वैसे आत्म-शोधन का यहां अर्थ चित्त के विकारों की शुद्धि है। वैसे आत्म-शोधन का यहां अर्थ चित्त के विकारों की शुद्धि है। आत्मा तो पहले ही शुद्ध, बुद्ध एवं निर्विकार है।

यह देखा जाता है कि दोनों सत्ताओं में पृथकता ही नहीं प्रतिकूलता भी है। ईश्वर के गुण जीव में नहीं पाए जाते और जीव स्तर की गतिविधियां न अपनाने के लिए ईश्वर की विवशता भी समझी जा सकती है। ईश्वर कम जीव है जबकि जीव कम ईश्वर है।

विज्ञान-पक्ष की मान्यता है कि जो प्रत्यक्ष है वह उतना ही सत्य है। इसमें जो तुरंत लाभ देख सके, अपनी सत्ता का परिचय दे सके, वही मान्य है। क्योंकि ईश्वर, धर्म और तत्त्वदर्शन के प्रतिपादन प्रत्यक्ष नहीं है, इसलिए उन्हें मान्यता क्यों दी जाए? लेकिन यह तर्क इतना प्रबल नहीं है।

अध्यात्म का कथन है-शास्त्रों-आप्त वचनों में ही पूर्ण सत्य समाहित है, उन्हें झुठलाना ऋषियों और शास्त्रों का अपमान है। विज्ञान की खोजें नित नई सामने आती हैं, पिछले कथनों को झुठलाती चलती हैं व ऐसे अपरिपक्व प्रतिपादनों की बात क्यों सुनी जाए?जो विरोध के लिए ही विरोध करते हैं वे समस्या को विकराल रूप ही देते हैं, इसके सिवाय कुछ नहीं करते।

विज्ञान के संबंध में अध्यात्म पक्ष द्वारा कहा जाता है कि उसके द्वारा प्रकृति का असाधारण दोहन किए जाने पर भविष्य के लिए कुछ न बचेगा। प्रदूषण फैलने की विषाक्तता प्राणघातक होगी, लोग काहिल बनेंगे-इसके कारण समस्त सत्ता संपदा सिमटकर कुछ ही हाथों में सीमित हो जाएगी। नीति-मर्यादाओं का कोई मूल्य न रहेगा आदि-आदि। इसी प्रकार विज्ञान ने अध्यात्म को अंध-विज्ञान बताया है। धर्म को अफीम की गोली कहा है, आधार रहित कल्पनाओं की उड़ानें बताया है।[22] ईश्वर यदि नियामक है तो वही कर्म अपनी विशेषताओं के कारण प्रकृति क्यो नहीं कर सकती। अध्यात्म परावलंबन है, वह पराक्रम

व साहस को काटता है और व्यक्ति को दीन-दुर्बल बनाता है। वस्तुतः दोनों ही पक्ष असाधारण शक्तिसंपन्न हैं, उनके प्रतिदानों में इतनी सच्चाई एवं उपयोगिता भी है जिसे जन-साधारण को बताते हुए औचित्य अपनाने की पृष्ठभूमि तैयार की जा सके। विग्रह से शत्रुता उपजती है, आग्रह प्रतिष्ठा का प्रश्न बनता है और अहंकार इस प्रकार आड़े आता है कि तथ्यों के निरीक्षण-परीक्षण की गुंजाइश तक नहीं रहती, वरन् विरोध में मजा आता है, दूसरे पक्ष को नीचा दिखाने की प्रवृत्ति बढ़ती है।[23] यह इस तरह की मानसिकता ही अवैज्ञानिक है। वैज्ञानिक सोच का व्यक्ति चाहे वह वैज्ञानिक हो या रहस्यदर्शी-सर्वत्र जानने को प्रोत्साहन देगा।

विचारशील वर्ग द्वारा सोचा जा रहा है कि संसार की इन दोनों सर्वोपरि कही जा सकने योग्य शक्तियों को परस्पर सामंजस्य और सहयोग का तालमेल बिठाने की स्थिति में लाया जाए, अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय किया जाए, यह आवाज आज हर दिशा में उठ रही है। विश्व के मुर्द्धन्य विचारकों का यही अभिमत है। इनके मध्य जो खाई खुद गई है, उसे पाटने के लिए प्रबल प्रयत्न किया जाए।[24] लेकिन यह प्रत्यन कौन करेगा? जो प्रयत्न करने की हिमायत करते हैं, पहल उन्हीं को करनी चाहिए। वहां ही यदि पहल न होगी तो अन्य कौन पहल करेगा। पश्चिम में तो धार्मिक कहलाने वाले व्यक्ति ही सर्वाधिक भौतिकवाद है।[25]

वास्तविकता यह है कि दोनों के बीच सामंजस्य की परंपरा अनादिकाल से चली आ रही है, वे एक-दूसरे के विरोधी नहीं पूरक हैं। एक से सर्वथा पृथक रहकर दूसरा अपना अस्तित्त्व तक बनाए नहीं रह सकता। पदार्थ के बिना चेतना पंगु है और चेतना की प्रखरता के बिना पदार्थ अंधे के समतुल्य। अंधे-पंगे परस्पर मिलकर ही नदी पार करने की योजना बना सकते हैं और पार जाने में सफल हो सकते हैं।[26] यहां तो स्थिति यह है कि दोनों एक-दूसरे को डुबाने में लगे हैं।

अध्यात्म और विज्ञान दोनों का ही एक लक्ष्य है सत्य की खोज। यह तभी बन पड़ता है कि जब मस्तिष्क खुला रखा जाए, पिछली मान्यताओं में यदि नए तथ्य सामने आने पर परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़े तो उसके लिए तैयार रहा जाए। शोध प्रक्रिया इसी प्रकार संपन्न होगी। हालत ऐसी हो चुकी है कि वैज्ञानिक भी बुद्धूओं जैसी बातें करते देखे जा सकते हैं। अध्यात्म के पर्याय भारतभूमि के संबंध में पाश्चात्यों के विचार अवैज्ञानिक ही नहीं अपितु निकृष्ट कोटि के भी हैं। वैसे तो प्राचीन भारत में पश्चिम की दिलचस्पी सदैव से रही है लेकिन उनकी सोच का विषय केवल इंडोलोजी भर है प्राचीन भारत के नाम पर पश्चिम में सब कुछ बिक रहा है, लेकिन आधुनिक अभी तक अटूट और निरंतर नव-नवोन्मेष शाली ही ठहरता हो, मगर पश्चिम अधिकांशतः इस अक्षुण्णता को, इस निरंतरता को यथावत स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं, उसके लिए इंडिया 'इंडोलोजी' भर है-एक ऐतिहासिक चीज भर। न कि जीता जागता निरंतर सृजनशील संस्कृति-प्रवाह।[27]

अब तक दोनों पक्षों ने बहुत कुछ जाना है, पर जो जानने के लिए शेष है, वह उससे भी कहीं अधिक है जो अब तक हस्तगत हो चुका है। विज्ञान अपेक्षाकृत अधिक अच्छी तरह समझता और अपनाता है, तभी तो पुराने शोध निष्कर्षों से संतुष्ट न रहकर आगे की बात जानने, अधिक गहराई में उतरने और यदि पिछले में सुधार-संशोधन करना पड़े तो उसके लिए तैयार रहा है। इसीलिए विज्ञान आज तक इतनी तरक्की कर पाया है। पूर्वाग्रहमुक्ति विज्ञान एवं अध्यात्म दोनों की प्रगति हेतु जरूरी है।

इस संबंध में अध्यात्म-पक्ष ने भूल की है। शास्त्र-उल्लेख और आप्त वचनों को ही पूर्ण न मानकर नए अनुसंधानों के लिए द्वार खुला रखा गया होता तो आज इतनी प्रखरता, प्रामाणिकता और उपयोगिता इतनी अधिक रही होती कि किसी को उंगली उठाने की चुनौती देने का अवसर ही न मिलता।[28] यह सब असंतुलित विकास की वजह से है। हमने अध्यात्म की ओर से आंखें ही बंद कर ली हैं। विज्ञान ने वही किया है, उसके सिद्धांत सार्वभौम हैं। सभी देश उनसे समान रूप से लाभ उठाते हैं। बिजली, रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन, मशीनें सभी का स्वरूप संसार भर में प्रायः एक जैसा है। सच्चाई एक होनी चाहिए, सूर्य एक है, चंद्रमा एक है, आकाश एक है। फिर विज्ञान के मूलभूत सिद्धांतों और प्रयोगों में भी एकता क्यों न होगी। धर्म को भी प्रामाणिकता के लिए एकता का, एकात्मता का सिद्धांत अपनाना होगा, तभी विग्रह और भ्रम फैलाने के लांछन से मुक्ति मिल सकेगी। विज्ञान सार्वभौम, सार्वजनीन और सर्वोपयोगी है। अध्यात्म को भी इस स्तर का बनकर अपनी महत्ता प्रतिपादित करनी चाहिए और वह स्थिति नहीं बनने देनी चाहिए, जिसमें उंगली उठाने और निंदा होने की स्थिति बने।[29] आज तो भौतिकवादी तो योगी हैं ही, इसके साथ रहस्यवादी कहलाने वाले भी धन-दौलत के अंबार लगाने में जुटे हैं।

अध्यात्म-क्षेत्र का अपना स्वरूप और अपना अनुशासन है, जिसे पढ़-सुन लेने से काम नहीं चलता, वरना उसके निधारणों को हृदयंगम करना और दृढ़तापूर्वक प्रयोग में लाना पड़ता है। उस सारी व्यवस्था को समझ पाने पर ही यह संभव हो सकता है कि प्रतिफलों से लाभान्वित हुआ जा सके, केवल तभी कथोपकथनों की तोतारटंत से तो कौतूहल मात्र बन पड़ता है। लाभ उठाने जैसी स्थिति तो बन ही नहीं पाती।[30] जिससे लाभ उठाना है उसकी व्यर्थ निंदा तो नहीं करनी चाहिए। यह तथ्य खोपड़ी में आ ही जाना चाहिए।

चेतन-पक्ष को सुनियोजित-सुसंस्कृत बनाने की विधा को 'अध्यात्म' नाम से जाना जाता है। इसमें वह अनुशासन भी जुड़ा हुआ है, जिसको संयम या आत्मानुशासन नाम से जाना जाता है। यह न बनने पर जो शेष रह जाता है, उसे आडंबर या कलेवर ही कह सकते हैं।[31] यह आडंबर आज हर स्थान पर दृष्टिगोचर हैं। आध्यात्मिक कहलाने वाले तथाकथित महापुरुषा भी मात्र शब्दों की कुश्ती लड़ने लगे हैं।

जब जड़ पदार्थों से लाभान्वित होने की, शरीरों को स्वस्थ रखने की व्यापार-व्यवसाय की, कोई विधि-व्यवस्था हो सकती है, तो चेतना को सही और सुसंस्कृत बनाने रहने का भी सुनिश्चित अनुशासन रहेगा ही। शरीर की पृष्ठभूमि में प्राण काम करता है। प्राण दुर्बल हो जाने पर या विलग हो जाने पर शरीर महत्त्वहीन बन जाता है। इससे प्रकट है कि चेतना की, प्राण सत्ता की, विचारणा की अपनी समर्थता और उपयोगिता है। उसे उपेक्षा की स्थिति में नहीं रखा जा सकता है, जैसे-तैसे, जहां-तहां उसे पड़ा नहीं रहने दिया जा सकता है। पदार्थ -विज्ञानियों की तरह ऋषि-कल्प तपस्वियों ने अपने मानस की प्रयोगशाला बनाकर उन तथ्यों को खोज निकाला है, जिन्हें अपनाकर नर-वानर स्तर का एक सामान्य प्राणी किस तरह ऋद्धि-सिद्धियों का स्वामी, विश्व वसुधा का अधि

ष्ठाता बन सका। किस प्रकार उसने अपनी प्रसुप्त शक्तियों को खोजा और उन्हें जागृत करके देवमान्य का पद पाया। अध्यात्म विचारों की उत्कृष्टता अपनाने से आरंभ होता है। इसका प्रभाव व्यक्तिगत चरित्र को उत्कृत स्तर का देखे जाने में परिलक्षित होता है। यही उपलब्धि जब जनसंपर्क में उतरती है तो आदर्शवादी व्यवहार कुशलता के रूप में दीख पड़ती है। इसी समग्र प्रयोजन को एक शब्द में चेतना की उत्कृष्टता भी कह सकते हैं। यही अध्यात्म है।[32] यह सब साधना का विषय है, शब्दों का आडंबर या सिद्धांतों का मायाजाल नहीं। यह कोई दर्शनशास्त्र नहीं है।[33]

गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता को ही दार्शनिक भाषा में अध्यात्म कहा जाता है। उसके आधार पर जो मिल सकता है, उसकी जानकारी संसार में सृजन के प्रयोजनों में सफल हुए महामानवों की जीवन-गाथा का पर्यवेक्षण करते हुए सहज ही जानी जा सकती है। ऐसे महामानवों से प्रेरणा मिल सकती है। वास्तव में करना हमें स्वयं ही पड़ेगा। कोई हमारे लिए हमारे चित्त की शुद्धि नहीं कर सकता।

इन दिनों देवताओं, भूत-प्रेतों, सिद्धि चमत्कारों की विचित्रताओं से भरी हुई कृतियों को ही अध्यात्म का स्वरूप माना जाता है। मान्यताओं के क्षेत्र में उसकी परिधि परलोक तक सीमाबद्ध रहती है। स्वर्ग मुक्ति के अतिरिक्त चमत्कारी सिद्धियों से उसे जोड़ा जा सकता है। मनोकामनाएं पूर्ण करने, शाप-वरदान देने में भी उसकी भूमिका समझी जाती है। ये मान्यताएं सर्वथा अप्रासांगिक हैं। वास्तविकता इतनी भर है कि अध्यात्म विज्ञान के अनुरूप आचरण करने पर अदृश्य चेतना के भावना, मान्यता, आस्था, प्रज्ञा, निष्ठा, श्रद्धा पक्षों को उच्चस्तरीय बनाया जाता है। वे परिस्थिति होने पर इच्छा, आकांक्षा, प्रेरणा के क्षेत्र में बुद्धि क्षेत्र को देवोपम बनाती हैं।[34] आंख के अंधे लेकिन गांठ के पूरे स्वार्थी लोगों ने अध्यात्म को भी एक व्यवसाय बनाकर रख दिया है। नाम अध्यात्म का लेकिन धन-दौलत को जमा करने पर जुटे हैं योगी लोग।

आत्मबल प्राप्त करने के लिए दो साधनाएं निरंतर करनी पड़ती हैं, एक है संयमशीलता, जिसे दूसरे शब्दों में तपश्चर्या[35] भी कह सकते हैं। इसका प्रयोग है-पुण्य परमार्थ। लोकमंगल, जनकल्याण भी इसी आधार पर बन पड़ता है। संकीर्ण स्वार्थपरता यदि उदात्त उदारता में विकसित हो चले तो समझना चाहिए कि अध्यात्म सही रूप में अपनाया गया और उल्लास भरा सत्परिणाम मिलते रहने की बात बन गई। यह सब होगा साधना से ही। वैचारिक रूप से चिंतन करने या कल्पना लोक में खोने से कुछ भी होने वाला नहीं है। चित्त से मल व विकारों की शुद्धि जब तक नहीं हो जाती तब तक विकास की आशा व्यर्थ है।

व्यक्ति चेतना की तरह ब्रह्मांड चेतना भी है। चिंगारी और ज्वाला की उपमा इसी प्रसंग में दी गई है। परिष्कृत व्यक्तित्त्व जागृत चिंगारी है, जो अवसर का सुयोग मिलते ही ज्वाल-भाल एवं दावानल के रूप में सुविस्तृत बनती है और असाधारण भूमिका निभाती देखी जाती है। ऐसे प्रसंगों का ही दैवी चमत्कार के रूप में उल्लेख होता रहता है।[36] यह यदि हो जाए तो चमत्कार दिखाने से बचें तथा साधना में आगे-आगे बढ़ते जाएं। दिखावा व चमत्कार भटका सकते हैं।

अध्यात्म की वास्तविकता का स्वरूप एवं उपक्रम समझ लेने के उपरांत यह स्पष्ट हो जाता है कि चेतन को महाचेतन के साथ जोड़ने की यह प्रक्रिया आत्मसंयम, अनुशासन, मर्यादापालन की तपश्चर्या से आरंभ होती है और उत्कृष्ट आदर्शवादिता से भरे-पूरे चरित्र व्यवहार में अपना प्रमाण-परिचय पग-पग पर देती है। परिष्कृत आत्मा ही परमात्मा है। वेदांत दर्शन में 'अयमात्मा ब्रह्मा'[37], 'प्रज्ञानब्रह्म'[38], 'तत्त्वमसि'[39], 'सोऽहम्'[40] 'शिवोऽहम्'[41] जैसे सूत्रों द्वारा वास्तविकता का स्पष्टीकरण किया गया है। यह सब साधना से अनुभूत होने पर ही संभव हो सकता है। महर्षि पतंजलि के बतलाए साधनामार्ग की साधना करके कोई भी साधक इसे संपन्न कर सकता है। इससे ही किसी सुनिश्चित एवं सार्थक परिणाम की आशा की जा सकती है।

परिष्कृत आत्मा ही परमात्मा के समतुल्य बन जाता है। सद्गुणों के समुच्चय वाली विश्वव्यापी चेतना ही परमात्मा है। उसी स्तर की आत्माएं ही सजातीय के साथ घुलने में समर्थ होती हैं। ऐसी आत्माएं ही जगत् में क्रांति का कारण बनती है। इन्हें महापुरुष की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद, ओशो रजनीश एवं जिद्दू कृष्णमूर्ति इसी कोटि में आते हैं।

अध्यात्म का स्वरूप और उद्देश्य यही है। यह उपक्रम जहां, जितने अंश में बन पड़ रहा हो, समझना चाहिए कि वहां उतना ही भगवान का निवास है। तो यदि कोई ऐसा नहीं करता है तो या तो आत्मघात करना पड़ेगा या आत्मरूपांतरण।[42]

अंधविश्वास फैलाने का आरोप दार्शनिक प्रतिपादनों पर लगता है, कारण कि उनके आधार पर जो कुछ कहा जाता है, वह सर्वमान्य नहीं होता। मात्र एक वर्ग के लोग ही उसे यथार्थ मानते हैं। अपने को सच्चा और दूसरों को झूठा भी ठहराते हैं। कलह यहीं से आरंभ होता है। जो बात प्रत्यक्ष प्रमाणित न की जा सके, उसे अपनी श्रद्धा के अनुरूप मान्यता देने में तो कोई भी स्वतंत्र है, पर उन्हें दबाव या प्रलोभन के आधार पर दूसरों पर थोपना अनुचित है। इसी अनौचित्य का विरोध प्राय: विज्ञान वर्ग द्वारा अध्यात्म पर होता रहता है। इस जोर-जबरदस्ती को करने तथा दुनिया में इसका प्रचार करने में ईसाईयत व इस्लाम अग्रणी हैं। अपनी सुरक्षा हेतु बाकी मत भी ऐसा करने को मजबूर हो गए हैं।

अध्यात्म मान्यताओं में ऐसे अनेकों प्रसंग एवं प्रकरण जुड़ गए हैं जो न तो अपनी यथार्थता सिद्ध कर पाते हैं और न उपयोगिता। मात्र शास्त्र वचन, परंपरा प्रचलन की दुहाई देकर दुराग्रह ही अपनाए रहते हैं। यह स्थिति विचारशील वर्ग के सम्मुख उपाहास्सास्पद बने, तो आश्चर्य ही क्या?43 इसे विकार की श्रेणी में ही गिना जाएगा।

समय की मांग है कि इस सर्वव्यापी अवांछनीयता और अप्रामाणिकता के माहौल में हर मान्यता का नए सिरे से विवेचन-निरीक्षण हो। जो अपनी उपयोगिता सिद्ध कर पाता है उसी को लोकमान्यता मिलती है। आर्य वैदिक हिंदू सनातन धर्म इस कसौटी पर सर्वाधिक खरा उतरता है।

विज्ञान को शक्तिपुंज कहा जा सकता है, पर वह जड़ पदार्थों से विनिर्मित होने के कारण विवेकशून्य स्तर का है। स्वच्छंदता मिलने पर वह ऐसा भी कर बैठ सकता है, जिससे भारी हानि उठानी पड़े और पछताते हुए सिर धुनना पड़े। पछताने एवं सिर धुनने का समय चल रहा है। विज्ञान के एकतरफा विकास ने सारे संतुलन को खराब कर दिया है।

समर्थता अच्छी बात है, पर उसके साथ सदुपयोग करने और सुरक्षा में रखने की शर्त अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है अन्यता खतरा-ही-खतरा मंडराता रहेगा।

भौतिक विज्ञान और उनके सशक्त उत्पादनों का लाभ तभी है जब उनके ऊपर दूरदर्शी प्रणाली का समुचित अंकुश नियंत्रण हो, अन्यथा असुरक्षित छोड़ देने पर लाभ के स्थान पर हानि सहने का संकट ही सहन करना होगा। भूल यहीं हुई है और हो रही है। अब भौतिकवाद एक दर्शन भी बन गया है, उसका प्रतिपादन है कि जो इंद्रियों या यंत्रों की पकड़ में आ सकता है, उतना ही सत्य और तथ्य है।44 ईश्वर द्वार विनिर्मित क्रिया की प्रतिक्रिया को भी नकारा गया है और कहा गया है कि उसे भावनात्मक मामले में दखल नहीं देना चाहिए। विष खाने से मृत्यु हो जाती है और टॉनिक पीने से फुर्ती आती है, इतना ही प्रतिपादन अपर्याप्त है। यह चितंन व सोच भी आज एक महाव्याधि का रूप धारण कर चुकी है। हर तरफ भौतिकवाद का बोलबाला है।

दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में विज्ञान का हस्तक्षेप बढ़ने का प्रतिफल लगभग नास्तिकता जैसा हुआ। प्राणी को जब पदार्थ मात्र मान लिया गया तो उस पर भी जड़ नियम लागू करने की बात सोचना स्वाभाविक है।[45] विज्ञान एवं अध्यात्म का इसके बिना सब व्यर्थ सा हो चुका है। विश्व के संतुलित विकास हेतु अत्यंत जरूरी है। प्रत्येक व्यक्ति एक टापू की तरह बन चुका है। किसी का किसी से कोई संपर्क नहीं बचा है।

भौतिक-दर्शन या दमन मनुष्य जैसे अति चतुर प्राणी को सज्जनता के अनुबंध में बांधे रह सकेगा, यह संभव नहीं। वह पग-पग पर धूर्तता का प्रयोग करते हुए ऐसा कुछ कर सकता है जिससे नीति, सदाचार, न्याय, सहकार, सद्भाव जैसे मानवी सदगुणों की चूलें ही हिल जाएं और आज ये चूलें वास्तव में हिल चुकी हैं। हर दिशा में व्याप्त कलह, दमन, विरोध, हिंसा, बदले की भावना, आतंक व भ्रष्टाचार ने सब अस्त-व्यस्त कर दिया है।

इन विपत्तियों, समस्याओं, विडंबनाओं और अनिष्ट की आशंकाओं के मूल में एक ही कारण है मनुष्य के स्तर में निकृष्टता का समावेश। उसकी कृतियां संसार में स्वर्ग भी उतार सकती हैं और देखते-देखते नरक का माहौल भी बना सकती हैं। यदि संसार को सुखी-समुन्नत बनाना है तो प्रधानतया एक ही उपाय अपनाना होगा उसे सुसंस्कृत बनाना तथा शालीनता अपनाने के लिए भावना स्तर पर तैयार करना। अध्यात्म तत्त्व-दर्शन से संबंधित अनेकानेक प्रतिपादन, अनुभव एवं कर्मकांड इसी एक उद्देश्य को लेकर बनाए गए हैं, जो लोक और परलोक को प्रत्यक्ष और परोक्ष हर कसौटी पर बहुमूल्य सिद्ध करने में समर्थ होते हैं। जिस आस्था संकट ने अनेकानेक समस्याओं, उलझनों, विपत्तियों, विडंबनाओं और आंशकाओं को जन्म दिया है, उन्हें निरस्त करने का वास्तविक उपाय यही है कि लोकमानस को आदर्शवादी निष्ठाओं से अनुप्रमाणित किया जाए। हर किसी का हर प्रकार कल्याण इसी अवलंबन को अपनाने में है।[46] भला भलाई के फैलाव में सहयोगी बनता है जबकि बुरा बुराई को फैलाता है। बुराई अपने आप फैल जाती है परंतु भलाई हेतु हमें प्रयास करने पड़ेंगे।

यदि धर्म और अध्यात्म के सिद्धांतों की अवहेलना चल पड़े तो फिर बूढे बैल की तरह बूढ़े बाप को भी किसी कसाईखाने में लाभ पहुंचाने में लाभ सोचा जाने लगेगा। नारी मात्र को अश्लील उपयोग का आधार मानने में कोई संकोच न होगा। न कोई अंकुश तथा न कोई मर्यादा। जैसे चलता है चलने दो। विवेक समझ की बात करना तो बहुत दूर की सोचना है।[47]

अध्यात्म का विशुद्ध दर्शन, मनोविज्ञान, परामनोविज्ञान, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र आदि के आधार पर सही बैठता है और आवश्यक समझा जा सकता है। उसके साथ जुड़े हुए प्रतिपादनों और कर्मकांडों को भी इस दृष्टि से स्वीकार किया जा सकता है कि वे अंततः व्यक्ति को संयमी, अनुशासित, प्रामाणिक, सद्गुणी एवं परमार्थ-परायण बनाने की भूमिका निभाते हैं। यदि यह न हो पाए तो समझो कि जीवन व्यर्थ गया। व्यर्थ यहां आए तथा व्यर्थ ही धक्के खाकर वापिस चले जाएंगे।

अध्यात्म-दर्शन के प्रति उपेक्षा और अवमानना इसलिए नहीं बनी कि उसके प्रतिपादन गलत हैं, वरन इसलिए विग्रह उपजा कि उसकी आड़ में अनेकानेक अवांछनीयताओं ने अपना अड्डा जमा लिया है। अंधविश्वासों, मूढ़ मान्यताओं और अवांछनीयताओं के पक्ष में ऐसा समर्थन भी प्रस्तुत किया है जो कबीलों की गुटबंदी की दृष्टि से किन्हीं को भले ही रास आता हो, पर उसे सर्वोपयोगी नहीं कहा जा सकता।[48] हमारा पक्ष शत-प्रतिशत सत्य और अन्यों की मान्यता सर्वथा झूठी है, इसी को मतान्धता, धर्मान्धता, असहिष्णुता आदि के नाम से पुकारा जाता है। इसी पर अड़ जाने के कारण आए दिन विग्रह खड़े होते और खून खराबे के दृश्य नजर आते हैं। इस प्रकार स्थापित को पत्थर की लकीर मानकर उनके अनुपयोगी होने पर भी अपनाने के लिए अड़े रहना ऐसा भी अनौचित्य है जिसके कारण धर्म और अध्यात्म के प्रति विरोध भाव उपजता है और उसकी अपेक्षा, हठवादिता हर विचारशीलता पर बुरा असर छोड़ती है।[49] यदि व्यक्ति दूसरों के मत को आदर देना सीख ले तो काफी मतांधता व धर्मांधता दूर हो सकती है। सहिष्णुता व धैर्य को अपने जीवन में उतरें फिर देखनें कैसे-कैसे चमत्कार इस संसार में हो सकते हैं।

निहित स्वार्थों वाले चतुर वर्ग ने अध्यात्म से संबंधित अनेक प्रचलनों को अपने ढंग से तोड़-मरोड़कर आजीविका का माध्यम बना लिया। अन्य व्यवसायों की तरह यदि धर्मधुरीण कहलाने वाले व्यक्ति अपनी सेवा का उचित पुरस्कार मांगते तो हर्ज न होता, पर अंधविश्वासों में भावुक जनों को फंसाकर उनके भोलेपन का अनुचित लाभ उठाना अखरता है और इस औचित्य के प्रति उपजा आक्रोश समूचे धर्म या अध्यात्म क्षेत्र के प्रति तिरस्कार का भाव उत्पन्न करता है।[50] धर्म अध्यात्म की आड़ में भ्रष्टाचार व अनाचार का नंगा नाच सर्वत्र देखने को मिल रहा है।

विज्ञान ने सत्य की शोध को लक्ष्य बनाया है, जब भी भूल मालूम हुई है, उसको सुधारा है। जो हस्तगत हुआ है उसे आत्यंतिक सत्य न मानकर आगे भी खोज चलते रहने की उपयोगिता को स्वीकार किया है। इन्हीं मान्यताओं के आधार पर उसने इतनी प्रगति की है और भविष्य में और भी अधिक कर गुजरने की संभावना है क्योंकि अध्यात्म स्वयं के साथ कुछ करना होता है। अतः इसके संबंध में कुछ बाहर से देखने पर मालूम भी नहीं होता है। प्रगति या पतन को देखना किसी अन्य द्वारा संभव भी नहीं है। कोई सिद्ध या योगी ही यह कर सकता है।

अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय का तात्पर्य यह है -मनुष्य जीवन को भौतिक और आत्मिक प्रगति का संतुलन बिठाने, मिल-जुलकर काम करने के लिए सहमत किया जाए। संभव सत्प्रगति के मार्ग में किन्हीं भी पूर्वाग्रहों को बाधक न बनने दिया जाए, इसी में सबका सब प्रकार कल्याण है।[51] विज्ञान अपने आप में अध्यात्म हेतु आधार या शुरुआत का काम करे-यही उचित है। यदि विज्ञान अपने आपको ही सर्वोपरि एवं अंतिम सत्य मान लेगा तो समस्याएं खडी

हो जाएंगी। इन समस्याओं का विज्ञान के पास कोई समाधान नहीं है। विज्ञान शुरुआत है, भौतिक समृद्धि है लेकिन चरम निष्पत्ति नहीं। इसी तरह से अध्यात्म अंत है लेकिन शुरुआत के बिना अंत आएगा कैसे?चलना शुरु कर दें लेकिन कहीं पहुंचने का लक्ष्य पास में न हो तो भी सब कबाड़ा हो जाता है। जीवन में चलने की शुरुआत भी होती है, रास्ते पर चलना भी होता है तथा कहीं पहुंचना भी होता है। इनमें से अकेले-अकेले किसी का महत्व नहीं है। विज्ञान व अध्यात्म भी ऐसे ही हैं। विज्ञान गालियां दे अध्यात्म को और अध्यात्म नरक में भेजता रहे विज्ञान को-ऐसे में तो विनाश ही होगा, भटकाव ही होगा तथा असंतुलन ही होगा। होना यह चाहिए कि विज्ञान भौतिक समृद्धि दे तथा अध्यात्म आंतरिक संतुष्टि की अनुभूति दे-केवलमात्र यही पथ है आगे बढ़ने का। किसी से आगे नहीं अपितु अपने व्यतीत को कल से आगे, इस व्यतीत हो चुके क्षण से आगे। विकास करना किसी को नीचा दिखलाना नहीं अपितु अपने स्वयं का अतिक्रमण करना है। अपने वर्तमान को उज्जवल, तृप्त एवं परिपुष्ट यदि हम बनाते चलें तो हमारा भविष्य आवश्यक रूप से बाहरी-भीतरी भराव से युक्त होगा। विज्ञान एवं अध्यात्म परस्पर दुश्मनी का त्याग करके एक दूसरे के पूरक के रूप में काम करेंगे तो ही इस संसार के समृद्ध, विकसित, तृप्त एवं सृजनात्मक होने की आशा की जा सकती है। भारतवर्ष में यह पूरकता एवं समन्वय अतीत में रहा भी है। आज हालत यह है कि विज्ञान में भी पाखंड, ढोंग एवं दिखावा धर्म व अध्यात्म से कम नहीं है। हम देख नहीं सकते या देखना नहीं चाहते, यह एक भिन्न बात है। कमियां दोनों ही जगह हैं-विज्ञान में भी तथा अध्यात्म में भी। अपनी कमियों को अपनी कमजोरी न मानकर इनसे सीख ग्रहण करें तथा इन्हें दूर करके (रूपांतरण द्वारा) जड़ व चेतन दोनों को ही सुख, शांति, सद्भाव, करूणा, सह-अस्तित्त्व, प्रेम एवं वैभव प्रदान करें। वेद की शिक्षा है-

सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै:। तेजस्विनावधीतमस्तु। म्य विद्विषाव है। ॐ शांति: शांति शांति।

हमारा अध्ययन तेजपूर्ण हो। हम परस्पर विद्वैष न करें। हे परमात्मा हमें आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक शांति मिले।

संदर्भ एवं टिप्पणियां

1. ईश्वरकृष्ण, सांख्यकारिका, कारिका (2)
2. (सं.) डॉ. रामकृष्ण आचार्य, सांख्यकारिका (सांख्य तत्त्व कौमुदी सहित), पृ. 122-123
3. श्रीराम शर्मा आचार्य, विज्ञान एवं अध्यात्म का समन्वित स्वरूप, पृ. 6
4. उपरिवत्
5. बेचारा जड़ यह कार्य करने में असमर्थ है। चेतना की मदद यानि अध्यात्म की मदद से आत्मा की अनुभूति इसमें हमारी मदद कर सकते हैं। समकालीन व्यक्ति को इसकी महती जरूरत है।
6. श्रीराम शर्मा आचार्य, विज्ञान एवं अध्यात्म का समन्वित स्वरूप, पृ. 8
7. उपरिवत्, पृ. 9
8. अपनी हदों को पार करके विज्ञान हो या अध्यात्म-दोनों ही आसुरी बन जाते हैं।
9. दुकानदार लोग हमेशा वस्तुओं को तोड़कर देखते हैं। धर्म व अध्यात्म को भिन्न-भिन्न मानने वाले लोग भी दुकानदारी चला रहे हैं।
10. ऋग्वेद का यह प्रसिद्ध वचन है जो प्रत्येक दृष्टि से पूर्ण है।
11. ऋग्वेद व उपनिषद् इस तरह के वचनों के साक्षी हैं।
12. श्रीराम शर्मा आचार्य, विज्ञान एवं अध्यात्म का समन्वित स्वरूप, पृ. 12
13. बात समझ व विवेक की है। दृष्टिकोण यदि समन्वयवादी तथा सत्य को जानने का हो तो अधिक कठिनाई नहीं होती है।
14. जड़ में ऊर्जा सुप्तावस्था में मौजूद है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह पूरी तरह से जड़ एवं स्थिर है।
15. वेदांत के सभी ग्रंथों का अध्ययन इस हेतु लाभकारी रहेगा।
16. वेदांत ग्रंथों की यह सर्वोपरि अनुभूति है।
17. इसके बगैर संसार का कार्य-व्यापार चल नहीं सकता।
18. सामान्य व्यक्ति हेतु तो ये अलग-अलग ही हैं।
19. श्रीमद्भगवद्गीता
20. ओशो के ग्रंथ 'जिन खोजा तिन पाईयां' तथा 'मैं कहता आंखिन देखी' का अध्ययन इस हेतु करना चाहिए।
21. श्रीराम शर्मा आचार्य, विज्ञान एवं अध्यात्म का समन्वित स्वरूप, पृ. 19
22. उपरिवत्, पृ. 20
23. उपरिवत्, पृ. 21
24. उपरिवत्, पृ. 22
25. इस तथ्य की तरफ ध्यान नहीं दिया जाता है। यह वैज्ञानिक अंधविश्वास है।
26. श्रीराम शर्मा आचार्य, विज्ञान एवं अध्यात्म का समन्वित स्वरूप, पृ. 22
27. इस क्षेत्र में बहुत काम किए जाने के बावजूद सरकारी सहायता न मिलने से इसका अधिक प्रचार नहीं हो पाया है।
28. श्रीराम शर्मा आचार्य, विज्ञान एवं अध्यात्म का समन्वित स्वरूप, पृ. 23
29. उपरिवत्, पृ. 24

30. उपरिवत्, पृ. 25
31. उपरिवत्, पृ. 26
32. उपरिवत्, पृ. 27
33. ध्यान, समाधि, अध्यात्म व साधना के नाम प्रवचन तो खूब सुनने को मिलते हैं, परंतु साधना कहीं-कहीं ही देखने को मिलती हैं।
34. श्रीराम शर्मा आचार्य का क्रांतिकारी दृष्टिकोण
35. उपरिवत्, पृ. 28
36. उपरिवत्, पृ. 29

37-41 के सूत्र या महावाक्य वेदांत के महावाक्य कहे जाते हैं।

42. श्रीराम शर्मा आचार्य, विज्ञान एवं अध्यात्म का समन्वित स्वरूप, पृ. 30
43. उपरिवत्, पृ. 32
44. उपरिवत्, पृ. 34
45. उपरिवत्
46. उपरिवत्, पृ. 36
47. उपरिवत्, पृ. 38
48. उपरिवत्, पृ. 39
49. उपरिवत्, पृ. 40
50. उपरिवत्, पृ. 51
51. उपरिवत्

विदेश नीति के निर्धारक तत्वः एक दृष्टि

डॉ० अजित

सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, गवर्नमेंट कमला मोदी गर्ल्स कॉलेज, नीमकथाना (सीकर), राजस्थान

सारांश- भारत की विदेश नीति के मूल सिद्धांत ब्रिटिश शासनकाल में ही विकसित हो गए थे। 1938 में कांग्रेस ने हरिपुरा अधिवेशन में प्रस्ताव पास किया जिसमें इस बात पर बल दिया गया कि भारत के लोग अपने पड़ोसियों के साथ शान्तिपूर्ण और मैत्रीपूर्ण ढंग से रहना चाहते हैं। वह विभिन्न राज्यों के मतभेदों के सभी कारणों को समाप्त कर स्थायी रूप से विश्व शान्ति स्थापित करना चाहते हैं। उन्होंने साम्राज्यवाद के प्रति विरोध व्यक्त किया क्योंकि यह जनता के एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के शोषण पर आधारित है। भारत की विदेश नीति के उपरोक्त सिद्धान्तों की पंडित नेहरू ने अपने 2 सितम्बर 1946 के भाषण में व्याख्या की। बाद के वर्षों में भी भारत की विदेश नीति के अनेक सिद्धान्तों की और व्याख्या की गई अथवा उसमें परिवर्तन किए गए। भारत की विदेश नीति का निर्धारण अनेक कारकों द्वारा होता हैं जिनमें उस देश का भौगोलिक आकार, भौगोलिक स्थिति एवं पर्यावरण जैसे कारक महत्त्वपूर्ण होते हैं। भू-भाग में पाए जाने वाले प्राकृतिक संसाधन, तकनीकी और पूंजीगत क्षमता राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति या शासन प्रणाली देश के इतिहास और संस्कृति के द्वारा विदेश नीति प्रभावित होती है। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय और वैश्विक कारक भी विदेश नीति के महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्त्व हैं।इसशोध-पत्र में विदेश नीति के निर्धारक तत्वकेअध्ययन को समझने का प्रयास करेंगे।

मुख्य-शब्दः विदेश नीति, भौगोलिक आकार,तकनीकी और पूंजीगत क्षमता, वैश्विक कारक।

प्रस्तावनाः वर्तमान युग अन्तर्राष्ट्रीयता का युग है। विज्ञान के तीव्र विकास ने समस्त विश्व को एक इकाई का रूप दे दिया है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक देश को विश्व के अन्य देशों के साथ राजनीतिक, आर्थिक, सास्कृतिक और अन्य क्षेत्रों में समन्वय स्थापित करने होते हैं। विश्व के विभिन्न देशों, अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों, अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों और आन्दोलनों तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति एक देश का जो दृष्टिकोण होता है, उस समस्त दृष्टिकोण को सामूहिक रूप से 'विदेश नीति' का नाम दिया जाता है। भारत विश्व में विस्तृत भूभाग और पर गहरा प्रभाव पड़ता है। युद्धोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का सबसे प्रमुख और दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य विश्व का दो विरोधी गुटों में बट जाना था। एक गुट का नेता संयुक्त राज्य अमरीका था और दूसरे गुट का नेता सोवियत संघ इन दोनों गुटों के बीच मतभेदों की एक ऐसी खाई उत्पन्न हो गयी थी और दोनो गुट एक - दूसरे के विरोध में इस प्रकार सक्रिय थे कि इसे शीतयुद्ध का नाम दिया गया। 1947 में जब भारत स्वतन्त्र हुआ तो एशिया और विश्व में भारत की अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थिति को देखते हुए दोनो विरोधी गुटों के देशों द्वारा भारत को अपनी ओर शामिल करने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिए गए और विरोधी गुटों के इन प्रयासों ने वैदेशिक नीति के क्षेत्र में भारत के लिए कठिन स्थिति उत्पन्न कर दी, लेकिन भारत के द्वारा अपने विवेकपूर्ण मार्ग का शीघ्र ही चुनाव कर लिया गया और यह मार्ग था, 'गुट - निरपेक्षता की नीति'।

विदेश नीति के मौलिक सिद्धांतः

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ही भारत के द्वारा निश्चित कर लिया गया कि भारत इन दोनों विरोधी गुटों में से किसी में भी शामिल न होते हुए विश्व के सभी देशों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करेगा और इस दृष्टि से भारत के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में असंलग्नता या गुट-निरपेक्षता की विदेश नीति का पालन किया जाएगा। वास्तव में भारत के द्वारा असलग्नता की विदेश नीति को अपनाने के कुछ विशेष कारण थे। यदि भारत किसी गुट की सदस्यता को स्वीकार कर लेता तो अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उसकी स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती। वह विश्व राजनीति में स्वतन्त्र रूप से भाग नहीं ले सकता था। दूसरे पक्ष के अनुसार ही अपनी विदेश नीति तय करनी पड़ती अतः अपने सम्मान को बनाए रखने के लिए असलग्नता की नीति ही श्रेयस्कर थी।

सैकड़ों वर्षों के शोषण से मुक्ति के बाद भारत के सम्मुख सबसे अधिक महत्वपूर्ण पुनर्निर्माण का था और आर्थिक पुनर्निर्माण का यह कार्य विश्व शान्ति के वातावरण में ही सम्भव था। अत भारत के लिए यही स्वाभाविक था कि वह सैनिक गुटों से अलग रहते हुए अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करने का प्रयत्न करें। इस प्रकार राष्ट्रीय हितों और विश्व शान्ति के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए गुटनिरपेक्षता की विदेश नीति अपनायी गयी है। भारत की इस असलग्नता या गुट निरपेक्षता का अर्थ विश्व मामलों या घटनाक्रमों से अपने को अलग करना नहीं है वरन प्रत्येक मामले पर गुण-दोष तथा राष्ट्रीय हितों के आधार पर विश्वशान्ति के सन्दर्भ में निर्णय लेना है। इस तरह हमारी विदेश नीति गतिशील है स्थिर नहीं है। 1949 में पं. नेहरू ने अमरीकी जनता के समक्ष कहा था, 'जब स्वतन्त्रता के लिए सकट उत्पन्न हो, न्याय पर आघात पहुचे या आक्रमण की घटना घटित हो, तब हम तटस्थ नहीं रह सकते और न ही हम तटस्थ रहेंगे।' अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी भारत के द्वारा सदैव ही स्वतन्त्र और निष्पक्ष विदेश नीति अपनाई जाती रही और कांग्रेस पार्टी के उपरान्त केन्द्र में अन्य जो दल सत्ता में आए उन्होंने भी इसी नीति को जारी रखा।

पं. नेहरू ने 1953 में अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर टिप्पणी करते हुए था, 'अपनी नीति में हम जो कुछ चाहते हैं उसका सार शान्ति है, शान्ति देश में और विदेश में। यदि हम शान्ति की स्थापना करने के लिए कुछ भी कर सकें, तो करने का भरसक प्रयत्न करेंगे।' शान्ति की स्थापना के इस पवित्र लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ही भारत किसी सैनिक गुट में शामिल नहीं हुआ और इसके द्वारा प्रारम्भ से ही निःशस्त्रीकरण की दिशा में प्रयत्न किए जा रहे हैं। भारत की शान्तिप्रियता का प्रमाण यह है कि जब अगस्त, 1963 में 'परमाणु परीक्षण रोक सन्धि' हुई, तो भारत वह पहला देश था जिसने अविलम्ब इस सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिए। 1974 में भारत के द्वारा अणुबम का परीक्षण किया गया, लेकिन उसी समय यह स्पष्ट कर दिया गया कि भारत अणुशक्ति का प्रयोग शान्ति के लिए ही करेगा। भारत इस सम्बन्ध में सदैव के लिए वचनबद्ध है। भारत ने एशिया एवं अफ्रीकी देशों के उन राष्ट्रीय आन्दोलनों का से साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का विरोध भारत की विदेश नीति का एक पूर्ण समर्थन किया जो अपने देश की आजादी की मांग कर रहे थे। भारत ने अपनी आजादी के दौरान ही कहा था- भारत की आजादी का प्रश्न केवल भारत का ही प्रश्न नहीं है, अपितु एशिया एव अफ्रीका के अनेक पराधीन राष्ट्रों का भाग्य भारत की आजादी की लड़ाई के साथ जुड़ा है।

आर्थिक दृष्टि से एक अत्यधिक पिछड़ा हुआ देश होने के कारण भारत को अपने आर्थिक एव औद्योगिक विकास के लिए काफी बड़ी मात्रा में विदेशी पूजी की आवश्यकता थी और भारत यह आर्थिक सहायता विश्व के दोनों की गुटों से बिना किसी शर्त के प्राप्त करना चाहता था। इस कारण भारत के द्वारा असलग्नता की विदेश नीति को अपनाया गया। भारत ने आर्थिक सहायता के बदले में कभी भी कोई प्रतिबन्ध स्वीकार नही किए है, उसका मत है कि भारत किसी शक्ति की ऐसी किसी शर्त को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है जो भारत की राष्ट्रीयता, प्रभुसत्ता या आत्मसम्मान के विरुद्ध हो।भारत की विदेश नीति को प्रभावित करने वाला एक तत्व एशियाई पुनर्जागरण है। यद्यपि भारत अपनी असलग्नता की नीति के आधार पर सभी महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं और समस्याओं के सम्बन्ध में सत्य और न्याय का पक्ष ग्रहण करता रहता है, किन्तु इसके साथ-साथ एशियाई और अफ्रीकी महाद्वीप के देशों के प्रति उसकी विशेष सहानुभूति का भाव भी नितान्त स्पष्ट रहता है। भारत ने सयुक्त राष्ट्र संघ एवं अन्य ऐसी ही संस्थाओं के बाहर एवं भीतर इन देशों का खुलकर समर्थन किया है।

विदेश नीति के निर्धारक तत्वः

भू-भाग या भौगोलिक कारकों के द्वारा विदेश नीति अत्यधिक प्रभावित होती है, जिसे परंपरागत रूप में भू- राजनीति की संज्ञा दी गई है। भू-भागीय कारकों में देश की अवस्थिति, आकार, स्थलाकृति इत्यादि कारक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। भारत विश्व का 7 वां सबसे बड़ा देश है, भारत का क्षेत्रफल 32, 87, 263 वर्ग किमी. है। भारत का हिंद महासागर क्षेत्र में स्थित होना विदेश नीति को प्रभावित करता है। भौगोलिक रूप में भारत का विशाल क्षेत्र हिमालय से घिरा हुआ है। भारतीय विदेश नीति के निर्माण में एवं सुरक्षा बनाए रखने के लिए हिमालय जैसे प्राकृतिक प्रहरी की भूमिका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। वर्ष 1962 के युद्ध के बाद चीन ने लद्दाख और तिब्बत के मध्य स्थित महत्त्वपूर्ण दरों पर अपना नियंत्रण कायम कर लिया है औरअक्साई चिन से होकर सिक्यांग-तिब्बत राजमार्ग का निर्माण किया गया है। इसके अतिरिक्त चीन ने नेपाल को जोड़ने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण दरों, जिसमें कोदारी दर्रा भी शामिल है, पर भी अपना प्रभाव स्थापित किया है। चीन, अरुणाचल प्रदेश के एक बड़े भाग पर अपना दावा कर रहा है, जिसमें भारतीय विदेश नीति स्पष्टतः प्रभावित होती है। इसलिए विदेश नीति में हिमालयी राज्यों विशेषकर नेपाल, भूटान, म्यांमार के साथ संबंध बनाने पर विशेष बल दिया गया है, क्योंकि चीन जैसे महाशक्ति का सीमा पर स्थित होना और उत्तरी पूर्वी राज्यों में व्याप्त आतंरिक सुरक्षा की समस्या से विदेश नीति पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

विदेश नीति के निर्धारण में राजनीतिक व्यवस्था की अहम् भूमिका होती है। दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश होने के कारण भारत ने सदैव शांतिपूर्ण सहअस्तित्व पर बल दिया तथा विश्व में लोकतंत्र के प्रसार का समर्थन किया। वर्तमान समय में अनेक विकसित लोकतांत्रिक देशों ने भारत के लोकतंत्र को स्थायी लोकतंत्र का दर्जा दिया। अमेरिका, यूरोपीय यूनियन एवं जापान जैसे लोकतांत्रिक व्यवस्था के महत्त्व को प्रदर्शित करते हैं। यह उल्लेखनीय है कि लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में अनेक दलों का अस्तित्व होता है। वर्ष 1990 के बाद बनने वाली गठबंधन सरकारों के दौर में गठबंधन सहयोगियों के मध्य विदेश नीति से संबंधित मुद्दों पर मतभेद उत्पन्न हुए, जिसमें सबसे उल्लेखनीय मतभेद वर्ष 2005 में किए गए भारत - अमेरिका सिविल परमाणु समझौते के मुद्दे पर देखा गया, जहां वामपंथी दल एवं कांग्रेस के मध्य स्पष्ट मतभेद उभरे। भारतीय लोकतंत्र में संसदीय शासन प्रणाली के साथ संघात्मक व्यवस्था को भी अपनाया गया है। इसलिए विदेश नीति के निर्माण में राज्य सरकारों की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। उदाहरण के लिए, श्रीलंका में जारी तमिल संघर्ष मुद्दे पर तमिलनाडु सरकार द्वारा संघ सरकार पर दबाव बनाने का प्रयत्न किया गया। शीत युद्धोत्तर विश्व में भी भारत ने लोकतंत्र के प्रसार का समर्थन किया है, लेकिन भारत की स्पष्ट मान्यता है कि वह किसी देश पर लोकतंत्र को बाहर से आरोपित नहीं करेगा। इसलिए भारत एवं म्यांमार के मध्य संबंध ों को मधुर बनाया गया। वर्तमान समय में भारत में विद्यमान सांप्रदायिकता, नृजातीय संघर्ष और नक्सलवाद जैसी समस्या से विदेश नीति स्पष्ट रूप में प्रभावित होती है। इसलिए इन समस्याओं को हल करना विदेश नीति की मूल चुनौती है।

राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक है कि ऊर्जा के लिए हम किसी एक ही स्रोत पर निर्भर न हों। इसलिए अफ्रीकी देशों, मध्य एशिया और रूस के साथ भी ऊर्जा आदान-प्रदान से संबंधित सहयोग हो रहे हैं। यहां तक कि लैटिन अमेरिकी देशों से भी ऊर्जा आपूर्ति के समझौते किए जा चुके हैं। विदेश नीति में ऊर्जा सुरक्षा की नीतियों के निर्धारण में पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्रालय, कोयला मंत्रालय, गैर-परंपरागत ऊर्जा संसाधन मंत्रालय एवं परमाणु ऊर्जा विभाग की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। वर्तमान युग में आर्थिक विकास बनाए रखने के साथ पर्यावरणीय प्रदूषण को भी नियंत्रित करना मूल चुनौती है। इसलिए

परमाणु ऊर्जा के मुद्दे पर विभिन्न देशों के साथ समझौते किए गए। विदेश नीति के निर्माण में देश के इतिहास एवं संस्कृति का अत्यधिक प्रभाव होता है। यद्यपि भारतीय इतिहास में अशोक और कौटिल्य दोनों की परंपराएं विद्यमान हैं। अशोक के द्वारा शांति एवं सह-अस्तित्व पर बल दिया गया, जबकि कौटिल्य का मानना था कि राज्य को शक्तिशाली बनाने के लिए किसी भी उपाय का सहारा लिया जा सकता है। परंतु विदेश नीति के आरंभिक काल में अशोक द्वारा अपनाई गई शांति पूर्ण सह अस्तित्व का प्रभाव अधिक रहा है। भारतीय समाज न केवल विविधतापूर्ण है, बल्कि सहिष्णु भी है।

शीतयुद्धोत्तर विश्व में क्षेत्राय आर वैश्विक कारकों शीतयुद्धोत्तर विश्व में क्षेत्रीय और वैश्विक कारकों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं और भारतीय विदेश नीति में परिवर्तन स्पष्ट रूप में दिखते हैं। भारत में उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों अपनाया गया एवं विदेश नीति में भू-अर्थ को प्राथमिकता दी गई। एकध्रुवीय विश्व में अमेरिका के साथ बेहतर संबंध बनाने पर बल दिया गया। विदेश नीति में व्यापार एवं निवेश जैसे मुद्दे प्राथमिक दक्षिण एशिया में उभरते चीन के परिणामस्वरूप और चीन एवं पाकिस्तान गठजोड़ के कारण अभी भी भारतीय विदेश नीति एवं सुरक्षा के लिए एक गंभीर चुनौती विद्यमान है। वर्ष 1990 के बाद वैश्विक शक्ति संतुलन में स्पष्ट परिवर्तन हुए। अमेरिका एवं रूस के मध्य मित्रतापूर्ण संबंधों का विकास हुआ। अब रूस और चीन भी सामरिक मित्र बन गए। विश्व से पूंजीवाद बनाम् साम्यवाद का विभाजन समाप्त हो गया। अत भारत ने लुक ईस्ट पॉलिसी अपनाई, जिससे दक्षिणी-पूर्वी एशियाई देशों के साथ आर्थिक संबंधों का सुदृढ़ किया जा सके। दक्षेस को मुक्त व्यापार क्षेत्र (साफ्टा) के रूप में विकसित करने पर बल दिया गया। वर्तमान में भारत एवं आसियान के मध्य, मुक्त व्यापार के समझौते पर हस्ताक्षर हो चुके हैं। भारत एवं यूरोपीय यूनियन के मध्य मुक्त व्यापार समझौते पर विचार चल रहा है।

वर्तमान युग उदारीकरण एवं भू-मंडलीकरण का युग है। भारत, भू-मंडलीकरण का विरोधी नहीं है और न ही बहुपक्षीय वैश्विक वार्ताओं के विरुद्ध है। परंतु भारत का यह मानना है कि 'दोहा विकास वार्ता' में विकासशील देशों के हितों को भी बनाए रखा जाए। क्षेत्रीय आर्थिक संगठनों एवं विश्व व्यापार संगठन के युग में विविधताकारी विदेश नीति अपनाते हुए अफ्रीका, लैटिन अमेरिका, लुक वेस्ट पॉलिसी (2004), मध्य एशिया के साथ भी व्यापारिक आर्थिक संबंध ों को सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न किया। शीतयुद्ध की समाप्ति और बढ़ते भारतीय एवं अमेरिकी संबंधों के परिणामस्वरूप भारत, जापान, ऑस्ट्रेलिया व दक्षिण कोरिया के साथ भी मधुर और मित्रतापूर्ण संबंध विकसित हो रहे हैं। वर्ष 2012 में भारत एवं दक्षिण कोरिया के बीच सिविल परमाणु समझौता हुआ।विदेश नीति के निर्माण में घरेलू कारकों के अलावा क्षेत्रीय एवं वैश्विक कारकों का भी अत्यधिक प्रभाव होता है। आरंभ में प्रधानमंत्री नेहरू ने एशियाई-अफ्रीकी सुदृढ़ता की नीति पर बल दिया, परंतु पाकिस्तान की भारत विरोधी नीति और चीन की विस्तारवादी आकांक्षाओं के कारण नेहरू का सपना साकार नहीं हो सका। भारत द्वारा पड़ोसी देशों के प्रति सद्भावपूर्ण नीति अपनाई गई, परंतु पड़ोसी देशों ने भारत के प्रति संदेह और अविश्वास व्यक्त किया। विश्व में व्याप्त शीत युद्ध और हथियारों की दौड़ के कारण भारत चाहकर भी सभी देशों के साथ संबंध बेहतर नहीं कर सका। भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति को अमेरिका जैसे देशों ने सीधे नकार दिया। शीत युद्धोत्तर विश्व में क्षेत्रीय और वैश्विक कारकों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं तथा भारतीय विदेश नीति में परिवर्तन स्पष्ट रूप में दिखते हैं। भारत में उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों को अपनाया गया। विदेश नीति में भू-अर्थ को प्राथमिकता दी गई तथा एकध्रुवीय विश्व में अमेरिका के साथ बेहतर संबंध बनाने पर बल दिया गया। विदेश नीति में व्यापार एवं निवेश जैसे मुद्दे प्राथमिक हुए, परंतु दक्षिणी एशिया में उभरते चीन के परिणामस्वरूप और चीन-पाकिस्तान गठजोड़ अभी भी भारतीय विदेश नीति एवं सुरक्षा के लिए एक गंभीर चुनौती बना हुआ है।

भारतीय विदेश नीति में तीसरी दुनिया के देशों के साथ संबंध को अभी भी निर्णायक महत्व प्रदान किया जाता है। अफ्रीका, लैटिन अमेरिका व पश्चिम एशिया के साथ संबंधों निर्माण पर विशेष बल दिया गया है। दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों के साथ संबंधों को प्रगाढ़ किया गया। इसी के साथ अमेरिका से मित्रतापूर्ण संबंध और सुदृढ़ किए जा रहे हैं। रूस के साथ पहले से ही सदाबहार संबंध बना हुआ है। इसलिए भारतीय विदेश नीति में गुटनिरपेक्षता स्पष्ट रूप में विद्यमान है, परंतु वर्तमान परिदृश्य में गुटनिरपेक्ष विदेश नीति में महाशक्तियों की सीधी आलोचना एवं विरोध के बजाए, विकासशील देशों के हितों को पूर्ण करने पर ज्यादा महत्व दिया जा रहा है। भारतीय विदेश नीति में गुटनिरपेक्षता कायम है, लेकिन महाशक्तियों का विरोध नहीं, यह एक मध्यममार्गी एवं व्यावहारिक तरीका है।

निष्कर्ष

वर्तमान विश्व में व्याप्त वैश्विक आतंकवाद से भारतीय विदेश नीति पर इसके स्पष्ट प्रभाव देखे जा सकते हैं। इसलिए भारत ने अफगानिस्तान में एक लोकतांत्रिक सरकार का समर्थन किया तथा सीमापार आतंकवाद के मुद्दे पर पाकिस्तान पर अंतर्राष्ट्रीय दबाव बनाने का प्रयत्नभी किया गया। भारत की अभी रू यह मान्यता है कि आतंकवाद के विरुद्ध दोहरे मानदंडों का प्रयोग नहीं होना चाहिए। आतंकवाद को किसी भी आधार पर औचित्यपूर्ण नहीं ठहराया जा सकता। भारत ने सदैव सतत विकास का समर्थन किया, परंतु विकासशील देशों के हितों को पर्यावरणीय संरक्षित करने की मांग भी उठाई। भारत के अनुसार, उत्तरदायित्व के सिद्धांत का प्रयोग होना चाहिए। विश्व में व्याप्त सुरक्षा की नई चुनौतियों या सुरक्षा के गैर-परंपरागत खतरों को सुलझाने के लिए एक शक्तिशाली संयुक्त राष्ट्र आवश्यकता है। इसलिए भारत ने संयुक्त राष्ट्र के सुधार पर बल दिया तथा स्थायी सदस्यता का दावा भी प्रस्तुत किया। विदेश नीति के निर्धारण में सैनिक शक्ति को किसी भी राष्ट्र की शासन प्रणाली का आधार माना जाता है। यदि किसी राज्य के पास शक्तिशाली सेना हो तो वह अपने प्रतिद्वंद्वियों से सफलतापूर्वक समझौता कर सकता है। भारत की विश्व में तीसरी सबसे बड़ी सैनिक व्यवस्था है। भारत एक परमाणु संपन्न देश है। यह अपनी परमाणु शक्ति का प्रयोग बाहरी खतरों के विरुद्ध भय निवारण के रूप में करता है। भारत के दोनों पड़ोसी पाकिस्तान और चीन भारत के साथ संघर्ष की स्थिति में देखे जाते हैं। ऐसी स्थिति में सशक्त सैन्य शक्ति और उसका और अधिक विकास विदेश नीति का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निर्धारक बन गया है।निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि विदेशी नीति के निर्धारण में अनेक अवयव विद्यमान होते हैं। सभी तत्त्वों के मिले जुले प्रभाव विदेश नीति की दिशा एवं दशा सुनिश्चित करते हैं। परंतु ये अवयव निरंतर परिवर्तित होते रहते हैं, इसलिए विदेश नीति में बदलाव देखने को मिलता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारत की विदेश नीति कल, आज और कल प्रो. जगत एस मेहता, नेशनल पब्लिशिंग हाउस 2/35 अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली -110002
2. भारतीय विदेश नीति (21 वीं सदी में निर्णायक मोड़ पर)-पंकज के सिंह, प्रकाशक प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली-110002
3. भारतीय विदेश नीति-जे. एन. दीक्षित, प्रकाशक-प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली -110002
4. भारत में राजनीति कल और आज रजनी कोठारी, संपादक अभय कुमार दुबे, प्रकाशक वाणी प्रकाशन 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली -110002
5. भारत की राजनीति - बिमल जालान, प्रकाशक पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया प्रा.लि. डी.एल.एफ. साइबर सिटी, गुड़गांव, हरियाणा-122002, संस्करण 2007
6. चीन और भारत इतिहास, संस्कृति, सहयोग और-प्रतिस्पर्धा- संपादन पारमिता मुखर्जी, अर्णव के देब, - मिआओ पांग, प्रकाशक-सेज पब्लिकेशन इण्डिया प्रा.लि, संस्करण 2016
7. अंतर्राष्ट्रीय संबंध, तपन बिश्वाल, प्रकाशक- ओरियंट ब्लैकरॉन प्राइवेट लिमिटेड, संस्करण 2016
8. भारत की विदेश नीति चुनौती और रणनीति सौकरी, ओरियंट ब्लैकस्यॉन प्राइवेट लिमिटेड, संस्करण 2017
9. भारतीय विदेश नीति भूमंडलीकरण के दौर में मिश्रा, प्रकाशक-ओरियंट ब्लैकरवॉन प्राइवेट लिमिटेड, संस्करण 2018
10. भारत की विदेश नीति पुनरावलोकन एवं संभावनाएं. संपादक सुमित गांगुली, प्रकाशक ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2/11 भूतल, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण-2018

वैश्वीकरण के युग में भारतीय संघवाद की चुनौतियाँः एक अध्ययन

रीना कुमारी

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

डॉ० सोनिका

असिस्टैंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान एवं लोकप्रशासन विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

सारः-

संघीय ढांचे में दो स्तरीय सरकार होती है, जिसके पास सुनियोजित शक्तियां और कार्य होते हैं। इस प्रणाली में केंद्र सरकार और इकाइयों की सरकारें एक अच्छी तरह से परिभाषित क्षेत्र में कार्य करती हैं, समन्वय करती हैं और साथ ही स्वतंत्र रूप से कार्य करती हैं। दूसरे शब्दों में, संघीय राज्य व्यवस्था विविध ता में एकता लाने और सामान्य राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए एक संवैधानिक उपकरण प्रदान करती है। सरकार की एक संघीय प्रणाली में संघ और राज्यों के बीच सत्ता के स्पष्ट विभाजन की आवश्यकता होती है। यद्यपि भारतीय संविधान में एक संघीय राज्य की ऐसी सभी विशेषताएं हैं, भारतीय संविधान को सच्चे संघों की श्रेणी में रखना वास्तव में कठिन है। संविधान के निर्माताओं ने इसमें कुछ गैर-संघीय विशेषताओं को शामिल किया है जैसे एकल नागरिकता, एकल न्यायपालिका, एक मजबूत केंद्र, राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति, राज्य सभा में असमान प्रतिनिधित्व आदि। ये सभी मजबूत केंद्र की ओर झुकाव का संकेत देते हैं। राज्यों को केंद्र के साथ मिलकर काम करना होगा। संविधान स्वरूप में संघीय है लेकिन आत्मा में एकात्मक है। विधायी, प्रशासनिक और वित्तीय क्षेत्रों में केंद्र-राज्य संबंधों का अध्ययन भी स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि केंद्र राज्यों की तुलना में अधिक मजबूत है। केंद्र को एक प्रमुख भूमिका सौंपी गई है जो राष्ट्र की एकता और अखंडता के खतरों को ध्यान में रखते हुए आवश्यक हो गई है। इसलिए, सहकारी संघवाद के प्रावधान हैं। वर्ष के दौरान भारतीय संविधान के कामकाज से संकेत मिलता है कि केंद्र और राज्यों के बीच संबंध बहुत समन्वय नहीं रहे हैं। राज्यों ने और अधिक स्वायत्तता की मांग शुरू कर दी है। केंद्र-राज्य संबंधों की समीक्षा के लिए भारत सरकार द्वारा विभिन्न आयोगों की नियुक्ति की गई है। सरकारिया आयोग ने समस्या की जांच की और संघीय, विधायी, प्रशासनिक और वित्तीय संबंधों के क्षेत्र में बदलाव की सिफारिश की।

मुख्य शब्दः संघवाद, वैश्वीकरण, संविधान, लोकतंत्र।

परिचयः-

एक प्रक्रिया के रूप में वैश्वीकरण उतना ही पुराना है जितना कि स्वयं सभ्यता लेकिन पिछले दो दशकों के दौरान ही इसे बहुत प्रमुखता मिली है। इसका दुनिया के सभी देशों विशेषकर विकासशील देशों की प्रशासनिक प्रणालियों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। भारत भी उस प्रक्रिया का हिस्सा बन गया जब हमने 1991 में इराक के साथ अमेरिका के युद्ध के कारण घरेलू वित्तीय संकट के बाद अपनी अर्थव्यवस्था को दुनिया के बाकी हिस्सों के लिए खोल दिया।

स्वतंत्र भारत की संघीय परियोजना उतनी ही अपनी औपनिवेशिक विरासत की उपज थी जितनी कि राष्ट्रीय निर्माण की अनिवार्यताओं के प्रति उसकी प्रतिक्रिया। संस्थापक पिताओं को उम्मीद थी कि उनका संस्थागत ढांचा देश की जटिल विविधता और एक नए राष्ट्र के निर्माण के साथ-साथ संबोधित करेगा। बहुलवाद और विकेन्द्रीकरण की ओर रुझान केंद्रीकरण सुविधाओं के साथ सह-अस्तित्व में हैं, जिससे कुछ भारतीय संघवाद को अर्ध-संघवाद के रूप में अर्हता प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते हैं।

योजना आयोग के गठन और भारतीय राज्य के समाजवादी नियोजन आर्थिक विकास के पालन के साथ, केंद्र सरकार जबरदस्त शक्तियों का प्रयोग करने के लिए आई थी। हालाँकि, भारतीय संविधान ने विविधता और सांस्कृतिक बहुलवाद को समायोजित करने का आधार भी रखा। संविधान ने अल्पसंख्यक अधि कारों को सुनिश्चित किया और प्रत्येक धर्म के समुदाय को अपने निजी क्षेत्र में स्वायत्तता प्रदान की।

पिछले पांच दशकों में, भारतीय संघवाद को भारतीय राष्ट्र की गैर-क्षेत्रीय आवश्यकताओं के साथ क्षेत्रीय संतुलन की चुनौती का सामना करना पड़ा है। केंद्रीकरण को क्षेत्रीय और सांस्कृतिक बहुलवादों के उत्तरोत्तर क्रिस्टलीकरण के साथ संघर्ष करना और सह-अस्तित्व रखना पड़ा है। विविध पहचानों को तेज करने में कई कारकों ने योगदान दिया है।

इसमे शामिल है। राज्यों का भाषाई पुनर्गठनय सांस्कृतिक और शैक्षिक विशेषाधिकारों के संबंध में अल्पसंख्यकों को संवैधानिक अधिकार प्रदान करना, शिक्षा और कृषि के दो महत्वपूर्ण क्षेत्रों में क्षेत्रीय सरकारों का अनन्य अधिकार क्षेत्रय अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए शिक्षा और रोजगार में सकारात्मक कार्रवाई नीतियों का विस्तार, स्थानीय जातीय अल्पसंख्यकों के लिए विशेष शैक्षिक प्रावधान और कश्मीर, पंजाब और उत्तर-पूर्व में स्वायत्तता और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष।

हालांकि वैश्वीकरण एक बहुत ही विवादित अवधारणा है, लेकिन आम सहमति है कि, पिछले दो दशकों में, लोगों, पूंजी, माल और विचारों के अंतर्राष्ट्रीय प्रवाह में पर्याप्त वृद्धि हुई है। अक्सर, यह सुझाव दिया गया है कि वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप, एक तरफ, राष्ट्र-राज्य की संप्रभुता का ह्रास हुआ है और दूसरी ओर, राजनीतिक शक्ति का एक अधोमुखी आंदोलन, 'वैश्वीकरण' की युग्मित ताकतों को जन्म दे रहा है।

भारतीय राजनीति पर वैश्वीकरण के अलग-अलग प्रभाव हैं और इन चुनौतियों के लिए भारतीय संघवाद की तीन अलग-अलग प्रतिक्रियाएं हैं।

सबसे पहले, यह सुझाव दिया जाता है कि अर्थव्यवस्था के विनियमन का देश के आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है यह जबकि विकसित क्षेत्र तेजी से आगे बढ़ने पर अल्प विकसित और पिछड़े क्षेत्र पिछड़ जाएंगे। यदि भारतीय राज्य को समानता और संतुलित विकास के अपने लक्ष्यों को आगे बढ़ाना है, तो यह अनिवार्य है कि राष्ट्रीय सरकार की शक्तियों को बढ़ाया जाए। उदा. सरकार प्रतिस्पर्धात्मकता और बेहतर सेवा वितरण के लिए समान नीतियां रखने के लिए केंद्रीकरण की मांग क्यों करती है।

दूसरा, वैश्वीकरण एक वैधता शून्य पैदा करता है। जबकि राष्ट्र-राज्य आर्थिक संप्रभुता के अपने स्वयं के विघटन की अध्यक्षता करते हैं, यह अपने नियंत्रण या आंतरिक संप्रभुता को नहीं छोड़ता है। अपनी घरेलू संप्रभुता को बढ़ाने के लिए, उसे स्थानीय लोकतांत्रिक ढांचे बनाने के लिए मजबूर किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप राज्य की वैधता को आगे बढ़ाया जाता है।

यह सुझाव दिया जाता है कि भारतीय संघवाद की तीसरी परत, पंचायती व्यवस्था की संवैधानिक मान्यता, ठीक इसी चिंता का प्रतिबिंब है।

भारतीय संघवाद के सामने तीसरी चुनौती नागरिक समाज संगठनों का तेजी से उदय है। यह प्रस्तावित है कि इनमें से कुछ संघ आंतरिक और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लोकतांत्रिक शासन के समानांतर और क्षैतिज ढांचे का निर्माण करते हैं, जबकि अन्य लोकतंत्र के संचालन के लिए खतरा हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था के धीरे-धीरे नियंत्रण मुक्त होने के साथ, भारतीय राज्यों के बीच विशेष रूप से विदेशी स्रोतों से निवेश सुरक्षित करने के लिए स्वाभाविक रूप से प्रतिस्पध र्ा उभरी है। इसका क्षेत्रीय असंतुलन को बढ़ाने में प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, राज्यों के बीच की खाई में वृद्धि हुई है।

यदि भारतीय राज्य आर्थिक विकास के लिए प्रतिबद्ध है, तो वह प्रमुख, केंद्रीय रूप से प्रबंधित सुधारात्मक हस्तक्षेपों को शुरू किए बिना दो-स्तरीय प्रणाली का जोखिम नहीं उठा सकता है। जबकि राज्य अपने विकास में व्यापक प्रगति करते हैं, पिछड़े राज्यों को उनके सामाजिक और आर्थिक विकास में सहायता न केवल अपने लिए, बल्कि उनके शासन के लिए संभावित सकारात्मक प्रभावों के कारण भी करनी पड़ती है।

संघवाद आधुनिक संविधानवाद के सबसे महत्वपूर्ण कारकों में से एक है। यह शायद पूरे विश्व में स्थापित है, राजनीतिक संगठन के एकमात्र रूप में, जो उद्देश्यों, रुचियों और परंपराओं के विविध पैटर्न वाले समुदायों के अनुकूल है, जो समान उद्देश्यों और हितों की खोज और सामान्य परंपरा की खेती में एक साथ शामिल होना चाहते हैं। संघवाद का मूल उद्देश्य अनेकता में एकता, सत्ता में अंतरण और प्रशासन में विकेन्द्रीकरण है। संघवाद की मूल शर्त बहुलता है, इसकी मूल प्रवृत्ति सामंजस्य है और इसका नियामक सिद्धांत एक जुटता है। डेनियल जे. एलाजारा के अनुसार, "संघीय व्यवस्था प्रत्येक को अपनी मौलिक राजनीतिक अखंडता बनाए रखने की अनुमति प्रदान करती है"।

जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, संघवाद 'अनेकता में एकता' के सिद्धांत पर टिका है। संयुक्त राज्य अमेरिका, स्विट्जरलैंड, कनाडा और भारत के मामले बताते हैं कि उनमें से प्रत्येक में प्रचलित विविधताएं हैं जिन्हें संरक्षित करने की मांग की जाती है। हालांकि लोगों के जीवन के विविध धार्मिक, जातीय और सांस्कृतिक पैटर्न हैं, लेकिन उन्होंने सामान्य पहचान की भावना भी विकसित की है जिसे वे खोना नहीं चाहते हैं। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि इन सामाजिक और सांस्कृतिक भिन्नताओं के बावजूद, विविध लोगों को एक साथ जोड़ने के लिए एकता की प्रबल भावना होनी चाहिए। संघीय राज्य, आवश्यक विशेषताओं में एकात्मक राज्य से भिन्न होने के कारण, कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसमें सरकारों के दो समूह हैं जिन्हें एक साथ और सद्भाव में काम करना चाहिए।

एकीकरण का तात्पर्य भारत में विभिन्न भाषाओं, धर्मों, नस्लों आदि के लोगों के सह-अस्तित्व से है। लेकिन कुछ विखंडनीय संघीय प्रवृत्तियां हैं जो राष्ट्रीय एकता और अखंडता के लिए खतरा हैं। वे भारत में संघीय व्यवस्था में बाधा उत्पन्न करते हैं। यहां हम चुनौतियों के निम्नलिखित प्रमुख क्षेत्रों पर अपनी चर्चा जारी रखेंगे:

इस तथ्य के बावजूद कि भारतीय संविधान एक संघीय ढांचे की स्थापना करता है, भारतीय संविधान को एक सच्चे संघ की श्रेणी में रखना वास्तव में बहुत कठिन है। संविधान निर्माताओं ने इसमें कुछ गैर-संघीय विशेषताओं को शामिल करके भारतीय संघ के वास्तविक स्वरूप को संशोधित किया है। ये हैं : संविधान का अनुच्छेद I भारत को श्राज्यों के संघश् के रूप में वर्णित करता है, जिसका अर्थ है दो चीजेंरू पहला, यह राज्यों के बीच एक समझौते का परिणाम नहीं है और दूसरा, राज्यों को अलग होने या अलग होने की कोई स्वतंत्रता नहीं है। इसके अलावा, संघ और राज्यों का संविधान एक एकल ढांचा है जिससे न तो बाहर निकल सकता है और न ही जिसके भीतर उन्हें कार्य करना चाहिए। संघ एक संघ है क्योंकि यह अविनाशी है और देश की एकता को बनाए रखने में मदद करता है। केंद्र राज्यों के राज्यपालों की नियुक्ति करता है और राज्यपाल की सिफारिशों पर या अन्यथा राज्य के प्रशासन को अपने हाथ में ले सकता है। दूसरे शब्दों में, राज्यपाल राज्यों में केंद्र का एजेंट होता है। भारतीय संघीय व्यवस्था के कामकाज से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि राज्यपाल ने राज्य के मुखिया की तुलना में केंद्र के प्रतिनिधि के रूप में अधिक कार्य किया है। यह केंद्र सरकार को राज्य पर नियंत्रण रखने में सक्षम बनाता है

प्रशासन राष्ट्रीय आपातकाल लागू होने के बाद राज्यों पर संघ का नियंत्रण। एक संघ में इकाइयों की समानता की गारंटी संघीय विधायिका (संसद) के ऊपरी सदन में उनके समान प्रतिनिधित्व द्वारा दी जाती है। हालाँकि, यह भारतीय राज्यों के मामले में लागू नहीं है। राज्यसभा में उनका असमान प्रतिनिधित्व है।

संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे एक सच्चे महासंघ में प्रत्येक राज्य, चाहे उसका क्षेत्रफल या जनसंख्या के मामले में उनका आकार कुछ भी हो, यह उच्च सदन यानी सीनेट में दो प्रतिनिधि भेजता है। इन सबके अलावा, मुख्य चुनाव आयुक्त, नियंत्रक और महालेखा परीक्षक जैसी सभी महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ केंद्र सरकार द्वारा की जाती हैं। इसके अलावा, एकल नागरिकता है। राज्यों के लिए अलग संविधान का कोई प्रावधान नहीं है। राज्य संविधान में संशोधन का प्रस्ताव नहीं दे सकते। इस तरह के संशोधन केवल केंद्रीय संसद द्वारा ही किए जा सकते हैं। प्रशासनिक प्रणाली की एकरूपता सुनिश्चित करने और संघीय व्यवस्था को बिगाड़े बिना न्यूनतम सामान्य प्रशासनिक मानकों को बनाए रखने के लिए। आईएएस और आईपीएस जैसी अखिल भारतीय सेवाएं बनाई गई हैं जिन्हें संघ के नियंत्रण में रखा गया है। वित्तीय मामलों में भी राज्य काफी हद तक संघ पर निर्भर करते हैं। राज्यों के पास अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन नहीं हैं। वित्तीय आपातकाल के दौरान, केंद्र राज्य के वित्त पर पूर्ण नियंत्रण रखता है। किसी भी राज्य या उसके हिस्से में गड़बड़ी की स्थिति में, केंद्र सरकार को राज्य में या राज्य के अशांत हिस्से में केंद्रीय बल की प्रतिनियुक्ति करने का अधिकार है। साथ ही, संसद, कानून द्वारा, किसी भी राज्य के क्षेत्र को बढ़ा या घटा सकती है और उसके नाम और सीमाओं को बदल सकती है। संघीय सिद्धांत में न्यायालयों की दोहरी प्रणाली की परिकल्पना की गई है। लेकिन, भारत में हमने सर्वोच्च न्यायालय को सर्वोच्च न्यायालय के साथ एकीकृत कर दिया है। भारत का संविधान संघ सूची के अनुसार सभी महत्वपूर्ण विषयों को केंद्र को सौंपकर एक मजबूत केंद्र की स्थापना करता है। राज्य सरकारों के पास बहुत सीमित शक्तियाँ हैं। आर्थिक रूप से राज्य केंद्र पर निर्भर हैं उपरोक्त चर्चा से, यह स्पष्ट है कि राज्यों की कीमत पर केंद्र के पक्ष में झुकाव है। राज्यों को केंद्र के साथ मिलकर काम करना होगा। इसने इस तर्क को समर्थन दिया है कि भारतीय संविधान रूप में संघीय है लेकिन भावना में एकात्मक है। संवैधानिक विशेषज्ञों ने इसे 'अर्ध संघीय' प्रणाली कहा है।

किसी भी संघवाद के मार्गदर्शक सिद्धांतों में से एक यह है कि असमान राज्यों के पास समान शक्तियाँ होनी चाहिए। एक ओर क्षेत्रीय विषमताएं एक-दूसरे के साथ-साथ राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय अभिनेताओं की तुलना में इकाइयों की सौदेबाजी की शक्ति पर प्रभाव डालती हैं। दूसरी ओर इन इकाइयों की आबादी की सामाजिक और राजनीतिक भागीदारी पर उनका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

स्वतंत्रता के तुरंत बाद हमने केंद्र और राज्यों के साथ एक संघीय प्रणाली का विकल्प चुना, जिसमें उम्मीद की जाती थी कि वे अपने-अपने क्षेत्रों में काम करें और कल्याण को अधिकतम करने के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए एक-दूसरे का सहयोग करें। जहां तक केंद्र-राज्य संबंधों का संबंध था, देश का संविधान मार्गदर्शक सिद्धांत था।

वास्तविक व्यवहार में, प्रचलित राजनीतिक वातावरण के कारण भारत मूल रूप से 1967 तक सरकार का एकात्मक रूप था। उत्तर भारत में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों द्वारा राज्य स्तर पर सरकारों के गठन के साथ बड़ा परिवर्तन हुआ। इसने वित्तीय, प्रशासनिक और विधायी क्षेत्रों में केंद्र और राज्यों के बीच घर्षण को जन्म दिया। यह टकराव के संघवाद का दौर था और यह 80 के दशक के अंत तक जारी रहा।

1990 के दशक की शुरुआत में सहकारी संघवाद के साथ केंद्र-राज्य संबंधों की दिशा में एक बड़ा बदलाव आया, जो 1990 से पहले के पिछले दो दशकों के दौरान प्रचलित टकराव संघवाद की जगह ले रहा था। इस परिवर्तन के लिए जिम्मेदार प्रमुख कारणों में से एक भारतीय में वैश्वीकरण का आगमन था।

गठबंधन युग के दौरान भारत में संघवाद का स्वभाव स्पष्ट रूप से बदल गया है। राजनीतिक विचार-विमर्श भारत में संघ-राज्य संबंधों के प्रशासनिक और वित्तीय पहलुओं को पार करता हुआ प्रतीत होता है। जिन राज्यों में उन दलों की सरकारें होती हैं जो केंद्रीय गठबंधन का हिस्सा होते हैं, वे यह आभास देते हैं कि केंद्र के साथ उनका कोई टकराव नहीं है। उनकी शिकायत विनम्र या वश में है और सामान्य जागरूकता यह है कि वे विशेष चिंतन करते हैं और केंद्र द्वारा अनुमोदित संसाधनों के मामलों में पकड़ रखते हैं। परिणामस्वरूप, यह कभी-कभी शोर मचा रहा है कि केंद्र विपक्षी दलों की सरकारों वाले राज्यों के खिलाफ पक्षपात कर रहा है। हालांकि, जब कोई योजना आयोग द्वारा वार्षिक आधार पर जारी केंद्रीय योजना निधि के आवंटन के बारे में जागरूक हो जाता है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा कोई पक्षपातपूर्ण भेदभाव नहीं है। समता और निष्पक्षता की अधिक व्यापक धारणा के लिए कहा जाता है।

निम्नलिखित बिंदु भारतीय संघवाद पर वैश्वीकरण के प्रभाव को दर्शाते हैं:

1. इससे राज्यों को शक्तियों का विकेंद्रीकरण हुआ केंद्र प्रशासनिक, वित्तीय और विधायी क्षेत्रों में राज्यों को अधिक अधिकार प्रदान करता है।
2. वैश्वीकरण की सफलता स्थानीय स्तर पर नीतियों के कार्यान्वयन पर निर्भर करती है। इसलिए फोकस योजना से हटकर क्रियान्वयन की ओर हो गया है। चूंकि निष्पादन केवल स्थानीय स्तर पर ही किया जा सकता है, इसलिए केंद्र ने राज्यों और स्थानीय स्व-सरकारों को स्थान दिया है।
3. विदेशी निवेश को आकर्षित करना वैश्वीकरण की सफलता की कुंजी है और यह पूरी तरह से केंद्र और राज्यों द्वारा समान नीतियों की शुरूआत और कार्यान्वयन पर निर्भर करता है। संघवाद के टकराव के चरण के परिणामस्वरूप केंद्र और राज्यों के बीच अलग-अलग नीतियां बनीं, जबकि वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप नीतियों का अभिसरण हुआ है।
4. आर्थिक विकास राजनीतिक स्थिरता और शांति और सद्भाव पर बहुत अधिक निर्भर है। वैश्वीकरण के हिस्से के रूप में, केंद्र और राज्य दोनों उपरोक्त सुनिश्चित करने में सक्रिय भागीदार बन गए हैं। 1990 के दशक की शुरुआत के बाद से, कला 356 का उपयोग करने की संख्या पहले की अवधि की तुलना में काफी कम हो गई थी।

5. वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप अत्याधुनिक स्तर पर यानी स्थानीय स्तर पर विकास पर जोर दिया गया है। इसके परिणामस्वरूप न्यू लोकलिज्म, पीपल्स एम्पावरमेंट आदि जैसी अवधारणाओं का उदय हुआ है।
6. वैश्वीकरण के प्रारंभिक वर्षों के दौरान, विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए राज्यों के बीच अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा थी। इसके परिणामस्वरूप राज्यों ने विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए कर दरों को कम करने जैसी अल्पकालिक नीतियों को अपनाया है। लेकिन समय के साथ, उन्होंने इस तथ्य को महसूस किया है कि उन अल्पकालिक उपायों के परिणामस्वरूप वांछित परिणाम लाए बिना ही वित्त में गिरावट आ सकती है। अब उन्होंने बुनियादी ढांचे के विकास पर जोर देना शुरू कर दिया है क्योंकि यह केवल लंबे समय में समग्र विकास सुनिश्चित कर सकता है।
7. योजना आयोग जैसी संस्थाओं ने उदारीकरण से पहले के दिनों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और कुछ मामलों में विपक्षी राजनीतिक दलों द्वारा शासित राज्यों ने केंद्र सरकार पर योजना आयोग का दुरुपयोग करने का आरोप लगाया है। लेकिन वैश्वीकरण के आगमन के साथ स्थिति बदल गई है क्योंकि राज्यों के साथ-साथ केंद्र ने इस तथ्य को महसूस किया है कि दोनों विकास प्रक्रिया में समान और सक्रिय भागीदार हैं।

निष्कर्ष-

वैश्वीकरण एक सजातीय प्रक्रिया नहीं है। इसके कई प्रक्षेप पथ हैं। यद्यपि राज्य आर्थिक क्षेत्रों में अपनी संप्रभुता का परित्याग कर सकता है, वह अपनी घरेलू संप्रभुता को सुदृढ़ करने के लिए लगातार प्रयास करता है। इस प्रकार, एक राज्य की संप्रभुता को आंतरिक और बाहरी दृष्टिकोण से विभाजित और जांचा जा सकता है। एक ओर, भारतीय राज्य के समानता और विकास के मौलिक उद्देश्यों को संरक्षित करने के लिए, भारतीय संघवाद को केंद्र सरकार की भूमिका को बढ़ाने की दिशा में आगे बढ़ने के लिए मजबूर किया जा सकता है।

यह बाजार आधारित विकास के परिणामस्वरूप तेजी से बढ़ रही अंतरक्षेत्रीय आर्थिक और सामाजिक असमानता का मुकाबला करने के लिए आवश्यक होगा। दूसरी ओर, स्थानीय सरकार के संवैधानिक रूप से स्वीकृत तीसरे स्तर की स्थापनाओं में विकेंद्रीकरण की ओर रुझान स्पष्ट है। स्वैच्छिक और गैर-सरकारी संगठनों की सक्रिय भागीदारी को समायोजित करने के लिए शक्तियों का विकेंद्रीकरण भी आवश्यक हो सकता है।

संदर्भ

1. एस. भटनागर और प्रदीप कुमार (सं.), समकालीन भारतीय राजनीति, नई दिल्ली, निबंध प्रकाशक, 1997
2. पॉलब्रास, जातीयता और राष्ट्रवाद, सेज प्रकाशन, 1991।
3. रोनाल्ड वाट्स, न्यू फेडरेशन: कॉमनवेल्थ में प्रयोग, ऑक्सफोर्ड क्लेरेंडन प्रेस, 1966
4. उर्सुला के हिक्स, संघवाद: विफलता और सफलता न्यूयॉर्क ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1978
5. चौबे, शिबानी किंकर (1973), भारत की संविधान सभा, नई दिल्ली।
6. पी. पद्नाभन, (1973), देसाई (संस्करण), मैकमिलन, नई दिल्ली में "भारतीय संविधान का अलोकतांत्रिक हृदय''।

भारतीय सांस्कृतिक विविधता और पूर्वोत्तर की संस्कृति

कामना सिंह

कमरा नं0-266, गोदावरी हॉस्टल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067

मनुष्य सदा से अपने लिए बेहतर से बेहतर करने का प्रयास करता रहा है। अपने लिए भौतिक तथा आध्यात्मिक रूप से विकास के विभिन्न सोपानों को प्राप्त करने में मनुष्य निरंतर प्रयत्नशील है। मनुष्य अन्य प्राणियों से भिन्न है। वह भिन्न इसलिए है कि, अपने लिए एक समाज का निर्माण करता है। समाज में वह कुछ श्रेष्ठ भौतिक और आध्यात्मिक मूल्य बनाता है, जिससे वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संचालित होता है या प्रभावित करता है। वह श्रेष्ठ और आध्यात्मिक मूल्य ही संस्कृति के तत्व होते हैं जिस पर मनुष्य सदैव चिंतन करता रहता है। 'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सर्वोच्च चिंतन-मनन मूर्तरूप (अर्थात मंदिर मूर्ति चित्रकला, कविता, नाटक, संगीत, धर्म, शिष्टाचार) को संस्कृति मानते है। इस संदर्भ में आचार्य जी के मानदण्ड बहुत ऊँचे है। उनके अनुसार साहित्य, संगीत, नृत्य तथा अन्य कलाओं में जो सर्वोत्तम है वह संस्कृति हैं।''[1] एक तरफ जहाँ श्रेष्ठ तत्वों को संस्कृति का मूल मानने वाले हैं वही संस्कृति में सामान्य तत्वों का भी समावेशन करने वाले भी विद्वान हैं। श्यामा चरण दूबे का मानना है कि ''इतिहासकारों ने संस्कृति को किसी समूह या देश के विशेष कलात्मक अथवा बौद्धिक विकास के रूप में ग्रहण किया है। जीवन के ये पक्ष नि:संदेह संस्कृति के अंग है, परन्तु मानव विज्ञान की वैज्ञानिक दृष्टि विशेष विकासों के अतिरिक्त सामान्य व्यवहार प्रकारों को भी संस्कृति का अविभाज्य अंग मानती है।''[2] संस्कृति में बहुत से तत्व अभिव्यक्त और बहुत से तत्व अनभिव्यक्त होते हैं। संस्कृति मानव व्यवहार का हिस्सा बन उसके कर्मो को भी प्रभावित करती है।

संस्कृति किसी भी देश की वे अर्जित उपलब्धियाँ होती है जो उसने सैकड़ों-हजारों वर्षो के अथक प्रयास से प्राप्त की हुई होती हैं। संस्कृति से ही उसके भौगोलिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, आर्थिक एवं प्राकृतिक परिवेश, आचार-विचार, ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, धर्म, लोक परम्परा तथा लोक कलाओं आदि के बारे में पता चलता है। संस्कृति का संबंध एक ओर जहाँ मनुष्य के शारीरिक, बौद्धिक तथा मानसिक आदि शक्तियों से है वहीं दूसरी ओर धर्म, दर्शन, साहित्य,कला आदि भी इसके अंग हैं। मनुष्य के लिए जो तत्व ग्राह्य और अनुकरणीय होकर शिवत्व का वरण करते हों, वे संस्कृति के अंग है। संस्कृति का अर्थ अंत:करण की शुद्धि और सहृदयता भी है। संस्कृति सर्जन तथा प्रेरक शक्ति भी है जो मानव के शुद्ध चित्त और सकारात्मक मानसिकता वाला बनाए। डॉ. देवराज भी संस्कृति के उन तत्वों को ही इंगित करते हैं जो मानव व्यवहार के लिए अनुकरणीय है। उनके अनुसार ''किसी भी देश या जाति की संस्कृति के अंतर्गत उसके धर्म, नैतिक मान्यताओं, काव्य-साहित्य, दर्शन आदि का समावेश किया जाता है।''[3] एस. आबिद हुसैन ने संस्कृति को उच्चतम मूल्यों की चेतना बताते हुए कहा है कि ''संस्कृति किसी एक समाज में पायी जाने वाली उच्चतम मूल्यों की वह चेतना है, जो सामाजिक प्रथाओं, व्यक्तियों की चित्तवृत्तियों, भावनाओं, मनोवृत्तियों, आचरण के साथ-साथ, उसके द्वारा भौतिक पदार्थो को विशिष्ट स्वरूप दिये जाने में अभिव्यक्त होती है।''[4]

संस्कृति को समग्रत: देखा जाय तो ''वह मूल्यों के एक विन्यास की नुमाइंदगी करती है। जिससे बनने वाले आदर्शो के आइने में मानवीय जीवन के वांछनीय स्वरूपों के दर्शन किये जाते हैं। इस लिहाज से संस्कृति एक ऐसा अपरिहार्य उपकरण है जिसके प्रयोग से मनुष्य और उसका पर्यावरण अपने भीतर होने वाले परिवर्तनों की गति और दिशा को एक सीमा तक नियंत्रित कर सकता है।''[5] जिसका "प्रमुख तत्व उर्जात्मकता, सृजनात्मकता, कल्पनाशीलता, सौन्दर्यमूलकता, सातत्य है जो इसकी पौराणिकता, साहित्य, दर्शन, नैतिक चेतना, सौन्दर्य चेतना, ललित कलाओं और भाषा-संस्कृति में परिभाषित होती है।

भारतीय संस्कृति सदियों से चले आ रहे इस भू-भाग की मान्यताएँ, रीति-रिवाज, आचार-विचार, धर्म, आदि का समन्वित रूप है। भारतीय संस्कृति यहाँ की प्राकृतिक, राजनीतिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियों तथा विद्वानों की आध्यात्मिक शक्ति का योगदान है। डॉ. देवराज का कहना है कि ''भारतीय संस्कृति का अर्थ हुआ इस देश की नैतिक, धार्मिक परम्परा, उसके दार्शनिक चिंतन-प्रयत्न एवं ललित कलाएँ। जब हम कहते हैं कि हमें अपनी संस्कृति पर गर्व है तो हमारा मतलब अपने देश की इन क्षेत्रों से सम्बद्ध लब्धियों के महत्व से होता है जब हम भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान की बात करते हैं तो शायद हमारा अभिप्राय यही होता है कि हमारे देशवासी फिर से प्राचीन मान्यताओं एवं जीवन परिपाटी का अनुसरण करने लगे।''[6]

भारतीय संस्कृति पर विदेशी धर्मों आदि का प्रभाव उसकी साम्राज्यवादी ताकत के अनुपात में प्राय: कम ही रही है। उसकी मुख्य ताकत उसकी आध्यात्मिक शक्ति और यहीं से ली गयी लोकाचार की मान्यताएँ रही हैं। भारतीय संस्कृति पर विदेशी धर्म जैसे इस्लाम और ईसाइयत का प्रभाव उसकी साम्राज्यवादी शक्ति नहीं बल्कि उसका यहाँ की मान्यताओं के अनुसार ढल जाना है। ''संत पॉल ने दक्षिण में इस धर्म (ईसाइयत) की नींव ईसवी सन् 1852 में रखी थी। वे धर्म की वैचारिक शक्ति को लेकर आये थे, उनके पीछे न साम्राज्यवाद की सामरिक ताकत थी, न किसी छद्म व्यवसायिक कंपनी का समर्थन। उल्लेखनीय है कि केरल और तमिलनाडु में पहले ब्राह्मणों के कई परिवारों ने ईसाई धर्म स्वीकार किया। इस धर्म के अनेक प्रचारकों ने भारतीय संन्यासियों की वेशभूषा और धर्मोपदेश के तरीके अपनाये थे।''[7] भारतीय संन्यासियों की वेशभूषा को अपना कर पादरियों द्वारा अपने ईसाई धर्म का प्रचार करना, भारतीय संस्कृति के समन्वयवाद के विविध आयामों को ही दर्शाता है।

''भारतीय संस्कृति प्रधान रूप से हिन्दू संस्कृति है। भारत में स्थित मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि समूहों का समावेश इसी में (हिन्दू संस्कृति में) होता है। भारतवर्ष पर लिखे हुए अपने निबंध में कार्ल मार्क्स ने इसी विधान का समर्थन किया है हिन्दू संस्कृति वास्तव में वैदिक संस्कृति का ही विकसित रूप

है। वैदिक संस्कृति के परिणत आदर्शों से अनुप्राणित होकर ही हिन्दू संस्कृति का निर्माण हुआ है। वेदों के अधिकार से वंचित और त्रैवणिकों द्वारा बहिष्कृत हिन्दू जातियाँ भी आज तक वैदिक संस्कृति का ही पालन कर रही हैं। क्योंकि उनके आदर्श इसी संस्कृति की प्रेरणा से प्रभावित है।''[8]

भारत के सांस्कृतिक विकास में लगातार परिवर्तन होता रहा है। यहाँ अनेक स्तरों पर बहुत कुछ जुड़ता रहा है। एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश तक परिवर्तित होता रहा है। वैसे ही जैसे उत्तर और दक्षिण में, पश्चिम और पूर्व में आर्य-द्रविड़ प्रतिरूप में बदलाव आया। आज जिसे हम हिन्दू संस्कृति कहते हैं, उसी का निर्माण करते हैं। ''हिन्दू संस्कृति का आविर्भाव आर्य और आर्येत्तर संस्कृतियों के मिश्रण से हुआ तथा जिसे हम वैदिक संस्कृति कहते हैं।''[9]

पूर्वोत्तर राज्य का सांस्कृतिक परिवेश भारत के किसी भी राज्य से कई मायनों में अलग और विशिष्ट है। यह विशेषता स्त्री-पुरुष संबंध में सबसे मुखर रूप में दिखाई देती है। असम सहित पूर्वोत्तर के सभी राज्यों में महिला और पुरुष में जमीनी भेदभाव नहीं है। ब्रिटिश शासनकाल में भी लिंगभेद नहीं पनपा इसके पीछे जनजातियों की संस्कृति और पश्चिमी देशों के पादरियों की उदारता ही कही जा सकती है। स्त्रियाँ स्वच्छन्द होकर रहती हैं। बाजार तो स्त्रियों के हवाले ही है। पुरुषों से किसी भी मामलों में यहाँ की स्त्रियाँ अपने को हीनतर नहीं मानती हैं। उत्तर भारत की तरह पूर्वोत्तर में स्त्रियों पर कोई सामाजिक दबाव या बंधन नहीं है। पूर्वोत्तर के राज्य मेघालय, नगालैण्ड, अरुणाचल और मणिपुर में तो मातृसत्तात्मक व्यवस्था प्रचलन में है। स्त्रियाँ घर में खुद ही कपड़ा बनाती हैं। और उन पर तरह-तरह की फुलकारी करती है। विष्णु प्रभाकर लिखते हैं कि-''रेशम और कपास के सभी घरेलू वस्त्र ये स्वयं करघों पर बुनती हैं। गाँधी जी ने कहा था असम की नारी जन्मजात बुनकर है। वह करघों पर कविताएँ बुनती है। सुंदरता को हानि पहुँचाए बिना उसने अपने पहनावे में मितव्ययिता का व्यवहार किया है।...रंग इन्हें भी बहुत प्रिय है। माना जाता है कि जो लड़की नाचना और बुनना नहीं जानती वह कुछ नहीं जानती।''[10]

मातृवंशीय व्यवस्था द्वारा समाज में प्राप्त अधिकारों पर अनिल टिप्पणी करते हैं-''सुंदर, पीली लड़कियाँ मालकिन के गुरुर से दुकानें चला रही थीं। मातृसत्तात्क समाज में पले होने का आत्मविश्वास उनके चेहरे पर था। खासी लोककथाओं में सूर्य स्त्री है और चंद्रमा पुरुष। खासी पुरुष वाकई अपनी स्त्रियों की रोशनी में ही दिखाई पड़ते हैं।...पुरुष को बैंक से कर्ज लेना हो तो गारंटी औरतों की चलती है।''[11]

पूर्वोत्तर में क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा राज्य अरुणाचल प्रदेश है। 83, 743 वर्ग किलोमीटर में फैले इस प्रदेश की वर्तमान जनसंख्या 13, 83, 727151 है। यह प्रदेश उत्तर में चीन पूर्व में म्यांमार, दक्षिण में असम और नगालैण्ड और पश्चिम में भूटान से घिरा है। उग्र नदियाँ, दुर्गम पहाड़ों और भयावह घने जंगलों के कारण यहाँ यातायात के साधन आज भी कठिन हैं। अरुणाचल के लिए पहली रेल लाईन की शुरूआत 7 अप्रैल 2017 को नाहरलुगुन तक के लिए हुई है जो राजधानी ईटानगर से 15 किलोमीटर पहले पड़ता है। अरुणाचल प्रदेश में देश की सर्वाधिक जनजातियाँ निवास करती हैं। जनजातियों के कारण इस प्रदेश को लघु भारत कहा जा सकता है। कृष्णनाथ लिखते हैं-''अरुणाचल में जनजातियाँ बसती है। यह संविधान में अनुसूचित है। एक नहीं अनेक हैं। 100 से अधिक हैं। जनगणना (1971) के अनुसार 104 हैं। विष्णु प्रभाकर के अनुसार "इस प्रदेश में कोई ढाई हजार गाँव हैं, जिनमें अनेक जनजातियाँ हैं। इनमें प्रमुख हैं-मिश्मी, मोनपाडफलाआबर, तागिन, गालोंग, आपातानी, मिरी, मेम्बो, पाइलिबा, राभो, बोकार और बोरी। कृषि प्रधान जातियाँ साधारणतया अधिक सामाजिक हैं। और परिवार में रहना जानती हैं। वैसे हर जाति की अपनी संस्कृति है। कुछ जातियाँ अपना संबंध प्राचीन आर्यों के साथ भी जोड़ती है। जैसे लोहित जिले की मिश्मी जनजाति का विश्वास है कि भगवान श्रीकृष्ण की पत्नी रुक्मणी के पिता राजा भीष्मक मिश्मी प्रदेश में सदया के राजा थे। यह कहानी सच हो या न हो लेकिन इतना स्पष्ट है कि इस प्रदेश पर प्राचीन आर्यों का राज्य था।''[12] अरुणाचल प्रदेश में मूलत: पच्चीस मुख्य कबीले हैं जिनकी सौ से ज्यादा उपजातियाँ हैं। ये ज्यादातर तिब्बत-बर्मा के पठार से यहाँ आकर बसे हैं। इनकी अलग-अलग मान्यताएँ हैं, उत्सव-त्योहार हैं। इनके अपने रीति-रिवाज, वेश-भूषा और अपनी भाषा है। सब लोगों की अपनी एक विशेष प्रकार की संस्कृति है। अरुणाचल में सभी जनजातियों का अपना 'क्लब' है जिसे 'मोरंग' कहा जाता है। जहाँ युवाओं को भविष्य के लिए गढ़ा जाता है। 'हर गाँव में युवकों के लिए 'मोरंग' (एक प्रकार का क्लब) होता है। वहाँ उसे भविष्य के लिए तैयार किया जाता है। यहाँ वे सिपाहियों जैसा कड़ा जीवन बिताते हैं। इसी प्रकार सभी जातियों में 'मिथुन' की पूजा करके उसे काटना और बाँटकर खाना, घर में बनी चावल की शराब अंपोग पीकर नाचगान करना, शिकार करना और संयुक्त कुटुम्ब प्रथा का पालन करना आदि कुछ ऐसी प्रथाएँ हैं।''[13]

मेघालय की उत्पत्ति से लेकर यहाँ की जनजातियों तथा उनके वंश के आगमन की कई दंतकथाएँ हैं। लोक कथा और लोक-मान्यताओं का इस राज्य में प्रमुख स्थान है। इनके वंश तथा इनकी धार्मिक मान्यताओं के बारे में लोककथाएँ खूब प्रचलित हैं। मेघालय के राज्यपाल रह चुके मधुकर दिघे लिखते हैं-''कहा जाता है कि ये 'हैन्यूट्रेप' सात झोपड़ियों के वंशज हैं यहाँ यह किवदंती प्रचलित है कि ईश्वर ने जब कई जातियाँ पृथ्वी पर भेजने हेतु बनाई तो सबसे पहले हैन्यूट्रेप के सोलह परिवार पैदा किए। ये सोलह परिवार सर्वप्रथम स्वर्ग में ही रहा करते थे और यह कहा जाता है कि कुछ अरसे के बाद भगवान ने इनमें से सात परिवारों को पृथ्वी पर भेजा। जिस सीढ़ी से ये परिवार पृथ्वी पर उतरे वह सोने की थी। इन परिवारों के उतरने के बाद वह सीढ़ी हटा ली गई। परिणामस्वरूप इन्हें पृथ्वी पर ही निवास करना पड़ा। ये ही सात परिवार 'हैन्यूट्रेप' खासी-जयंतिया पहाड़ों के पूरे क्षेत्र में फैल गये। इनकी भाषा मोन-खोमेर व गारो लोगों की भाषा तिब्बती-बर्मी है।''[14]

मेघालय के भाषा साहित्य का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। मेघालय राज्य की सरकारी कामकाज की भाषा अंग्रेजी है और शहरी लोगों की अपनी भाषा के अतिरिक्त अंग्रेजी ही एक तरह से मातृभाषा हो गई है। इस राज्य की प्रमुख भाषा खासी है। खासी भाषा में साहित्य की रचना तो हुई है परन्तु वह बहुत पुराना नहीं है। खासी के अलावा यहाँ जयंतिया और गारो की भी अपनी भाषाएँ हैं पर उसमें भी साहित्य का घोर अभाव है। विष्णु प्रभाकर के अनुसार-''इस प्रदेश की भाषा और साहित्य का कोई इतिहास नहीं मिलता। इनकी अपनी कोई लिपि नहीं है। खासी और गारो क्रमश: मोनखमेर और बोडो वंश की भाषाएँ हैं। सन् 1841 में ईसाईयों ने रोमन लिपि का प्रचार किया। अब प्रमुख भाषा भी अंग्रेजी हो गई है।''[15] लेकिन मधुकर दिघे ऐसा नहीं मानते की इन जनजातियों के पास अपनी कोई लिपि नहीं थी उनके अनुसार-''आज से सौ वर्ष पूर्व खासी और गारों भाषाओं की लिपि बंगाली थी, परन्तु अंग्रेजों के आने के बाद उन्होंने अपनी सुविधा को ध्यान में रखकर बंगाली लिपि के स्थान पर रोमन लिपि का प्रचलन कर दिया। ऐसा नहीं है कि केवल मेघालय की जनजातियों के पास ही अपनी लिपि नहीं है बल्कि, नगालैण्ड, मिजोरम, अरुणाचल की अधिसंख्या जनजातियाँ ऐसी हैं जिनकी अपनी कोई लिपि नहीं है बल्कि ये रोमन, बांग्ला, असमिया और देवनागरी पर आश्रित है। ''पूर्वोत्तर क्षेत्र के बाहर बसे हुए लोगों को शायद यह ज्ञान न हो कि असम, मणिपुर तथा त्रिपुरा राज्यों में ही उनकी

अपनी-अपनी लिपि हैं। अधिकांश अन्य प्रांत, विशेषकर पर्वतीय कबीले (मेघालय, मिजोरम तथा नगालैण्ड) रोमन लिपि से ही अपना काम चलाते हैं। यह ब्रिटिश राज की ही देन है या फिर ईसाई मिशनरियों की है, जो बहुत पहले से पूर्वोत्तर भारत में आते रहे हैं। लिपि के संदर्भ में कृष्णनाथ की टिप्पणी दृष्टव्य है-''अरुणाचल में सिर्फ दो जनजातियों की कोई लिपि है। दोनों बौद्ध हैं। एक तो मोनपा है। इनकी तो वही भोट भाषा लिपि है। जो लद्दाख से लगाकर अरुणाचल की धर्मभाषा और लिपि है। इस तरह एकमाने में खाम्ती अकेली जनजाति है जिसकी अपनी लिपि है। खासी जाति मातृसत्तात्मक जनजाति है। स्त्री वंश के आधार परसम्पत्ति उत्तराधिकार सुरक्षित है। यहाँ सम्पत्ति का हस्तांतरण सबसे छोटी बेटी 'काकुड्डू' के नाम होता है। मेघालय में महिलाएँ सामाजिक और आर्थिक जीवन की धुरी है। फिर भी आश्चर्य की बात है पारम्परिक राजा 'सिएम' के दरबार में स्त्रियों को कोई अधिकार नहीं है। मधुकर दिघे लिखते हैं-''यहाँ नारियाँ ही सामाजिक और आर्थिक जीवन के केन्द्र में हैं। परन्तु अन्य सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक विषयों की तुलना में आधुनिक युग के राजनीतिक जीवन में उनकी उतनी अधिक दिलचस्पी नहीं पाई जाती यह भी आश्चर्यजनक है। हिमामिलियन राजदरबार में स्त्रियों के अनुपस्थिति पर अनिल यादव आश्चर्य व्यक्त करते हुए लिखते हैं ''अजीब था कि खासी जनजाति में महिलाएँ परिवार की मुखिया होती है लेकिन यहाँ कोई महिला नहीं दिखाई देर ही थी।''[16] असम से सबसे पहले राज्य के रूप में अलग होने वाला क्षेत्र है नगालैण्ड। 1 दिसम्बर 1963 को भारतीय गणराज्य में सोलहवें राज्य के रूप में नगालैण्ड शामिल हुआ। कोहिमा इस राज्य की राजधानी है। नगालैण्ड में चौदह जनजातियाँ निवास करती हैं जिसमें अंगामी, आओ, सेमा, कोन्याक, लोथा, रियाङ, रेङमा प्रमुख हैं। इसके उत्तर में अरुणाचल प्रदेश, पूर्व में म्यांमार, पश्चिम में असम और दक्षिण में मणिपुर है। ये अपनी संस्कृति अपनी धार्मिक मान्यताओं को आज भी पहले की तरह ही मानते हैं, जबकि नगालैण्ड में 87 फिसदी ईसाई है।

खेजा के नोमा में पत्थर की एक विशाल शिला है जिसे नागा पूजते हैं। नागा कुंठा रहित होते हैं। स्त्री-पुरुष मुक्त रूप से जीवन व्यतीत करते हैं। प्रत्येक स्त्री को अपना जीवन साथी चुनने का और विवाह से पूर्व उसे परखने का अधिकार होता है। आत्मा और पुनर्जन्म में इनका खूब विश्वास है। ये साधारणत: भूत-प्रेतों से डरते हैं। नगालैण्ड का वर्णन प्राचीन कथाओं और पौराणिक कहानियों में भी है। विष्णु प्रभाकर लिखते हैं-''हमारे प्राचीन साहित्य में नाग जाति का बहुत वर्णन आया है। कालिदास और बाणभट्ट आदि कवियों की रचनाओं में नाग कन्याओं का बार-बार उल्लेख मिलता है। वे अपने सौन्दर्य के कारण बहुत प्रसिद्ध रही है। पाण्ड व अर्जुन ने इसी प्रदेश में आकर नागकन्या उलूपि से विवाह किया था। कोहिमा के पास 'खोनमा' गाँव में आज भी उस युग के खण्डहर मिलते हैं।[17]

भारतीय गणराज्य का एक प्रदेश है मणिपुर जिसकी राजधानी इम्फाल है। इसका क्षेत्रफल 22, 347 वर्ग किलोमीटर और जनसंख्या 28, 55, 894,17 है। यहाँ की मूल जनजाति मेइती या मीतै (मणिपुरी हिन्दू) है। भाषा इतिलोन है जिसे 'मणिपुरी भाषा' भी कहते हैं। यह भाषा भारतीय संविधान द्वारा 1992 में अंगीकृत है। महाभारत जैसे प्राचीन ग्रंथ में भी मणिपुर का उल्लेख मिलता है। यहाँ की भाषा संस्कृति पर प्राचीन कथाओं की छाप है। वैष्णव मत का प्रभाव यहाँ की संस्कृति पर सबसे ज्यादा है। मणिपुर के लोक जीवन और लोक संस्कृति पर कृष्ण की गहरी छाप है। यहाँ पर कृष्ण भक्ति और रास आज भी प्रचलित है।

मणिपुर की प्रत्येक जनजातियों के अपने रीति-रिवाज, अपने अपने-देवता है। यहाँ तीन प्रसिद्ध नदियाँ हैं-इम्फाल, नामबूल और बोराक। नदियों को प्रसन्न करने के लिए हर साल मेले का आयोजन होता है। इस राज्य में त्योहारों का इतना आधिक्य है कि इसे उत्सव-भूमि कहा जाता है। यहाँ चेराओवा, रथयात्रा, डोलयात्रा आदि प्रमुख त्योहार है। मणिपुरी जनजाति पर विष्णु प्रभाकर की टिप्पणी है ''परिश्रमशीला नारियाँ प्रकृति के समान ही सुंदर है। स्वभाव से शिष्ट और मृदुल, ये वाणिज्य व्यापार खूब कर लेती हैं। यहाँ के अधिकांश निवासी 'मेते' कहलाते हैं। ये आर्य और मंगोलों के मिश्रण हैं। सुदृढ़ ठिगना कद, छोटी नाक, मुँह पर बाल कम, रंग इनका गोरा भी है और काला भी। अधिकांश लोग अपने को क्षत्रिय मानते हैं और जनेऊ पहनते हैं। असम और बंगाल से आकर बहुत से ब्राह्मण यहाँ बस गए हैं। मुसलमानों के प्रति इनका व्यवहार बहुत अच्छा रहा है, इसलिए उनकी संख्या भी काफी है। पहाड़ों के अंदर कुकी, लोई, माओ, मार, कबुई, तांगखुल और मारिंग आदि जनजातियाँ बसती है। इन सबकी अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं।[18]

यह राज्य विभिन्न प्रकार के वनस्पतियों और प्राणियों से समृद्ध है। यहाँ की प्राकृतिक राजधानी आइजोल है जो यहाँ का प्रमुख बाजार और आर्थिक केन्द्र है।

मिजोरम राज्य छ: पर्वतों के बीच बसा है जो उत्तर से दक्षिण की ओर मिलते हैं। इस राज्य का सबसे ऊँचा पर्वत 'भूरा' है जो 7100 फीट के लगभग ऊँचा है। मिजोरम की एक अन्य प्रमुख जनजाति 'चकमा' है जो बौद्ध धर्म के हीनयान शाखा से संबंधित है। यहाँ इनके लिए संविधान की छठी अनुसूची के तहत चकमा स्वायत्त जिला गठित किया गया है। विजय राघव रेड्डी लिखते हैं ''प्रमाणिक निवासियों में चकमा भी अनुसूचित जनजातियों की सूची में सम्मिलित हैं, जो मूलत: हीनयान शाखा के थे रवाद सम्प्रदाय के बौद्ध हैं।''[19] मिजो लोगों के समान चकमा भी बाहर से आकर यहाँ बसे थे। मिजो लोगों के यहाँ बस जाने के लगभग 150 साल बाद वे यहाँ आकर बसे थे। करीब 550 साल पहले अर्थात् मिजो लोगों के प्रवेश से पहले यह दुर्गम इलाका प्राय: विरान ही रहा था। पूर्वोत्तर के सभी राज्यों की तरह मिजोरम में भी स्त्री स्वाधीनता मैदानी भागों से बहुत अधिक है। यहाँ परिवार का मुखिया पुरुष होता है। पर स्त्रियों का महत्व तनिक भी कम नहीं है। घर से लेकर व्यापार तक सब स्त्रियाँ सम्भालती हैं। इनको अपना जीवनसाथी चुनने की स्वतंत्रता के साथ-साथ उसको छोड़ने की भी आजादी है। असगर वजाहत लिखते हैं-''मिजो समाज में आदमी औरत का दर्जा बराबरी का है। आदमी और औरत में कोई अंतर नहीं माना जाता। यही वजह है कि औरतें मुक्त रूप से समाज के प्राय: हर क्षेत्र में अपना योगदान देती हैं। उत्तर भारत की औरतों से बिल्कुल अलग करके आचरण और व्यवहार में संकोच अपने को छोटा समझने, पुरुषों पर आश्रित होने का भाव नहीं दिखाई देता बाजार में ऐसे दृश्य दिखाई पड़ते हैं जिनकी कल्पना उत्तर भारत में नहीं की जा सकती।''[20]

सम्पूर्ण भारत में पूर्वोत्तर का उत्सव और त्योहार प्रसिद्ध हैं। रंग बिरंगे उत्सवों में इस क्षेत्र का सौन्दर्य और भी मनोहर हो जाता है। पूर्वोत्तर को मैदानी भाग से जोड़ने वाले राज्य असम का प्रसिद्ध त्योहार 'बिहु' है। शरद एवं वसंत के आगमन की खुशी को व्यक्त करता है बिहु, अपने नृत्य और गीत के माध्यम से। भारत के अनेक उत्सवों की तरह इसका भी संबंध कृषि संस्कृति से है। 'बिहु' यहाँ के उत्सवधर्मी संस्कृति का प्रतीक है। विष्णु प्रभाकर लिखते हैं- ''बिहु

उत्सव तीन तरह के होते हैं-'कातेबिहु' या 'कंगालीबिहु', 'माघबिहु' या 'भोगालीबिहु', 'चतरबिहु', या 'रंगालीबिहु'। रंगालीबिहु इन तीनों में प्रमुख है। यह वसंत के अवसर पर मनाया जाता है। यह पुराने वर्ष को विदा कर नये वर्ष का स्वागत करता है। नव वर्ष के पहले दिन 'मानुहरबिहु' होता है। इसमें सब छोटे अपने बड़ों को नमस्कार करते हैं। मेघालय का सबसे बड़ा त्योहार 'बाहदेनखलाम' है। इस दिन ये लोग प्लेग वृक्ष का विसर्जन करते हैं, नृत्य संगीत इस त्योहार का आधार होता है। 'मिजो' के त्योहार को 'कुट' कहा जाता है। मिजोरम में वर्तमान समय में केवल तीन जनजातीय उत्सव मनाया जाता है-'चपकार', 'श्रिममकुट' और 'थालफवांकुट'। ज्यादातर ईसाई धर्म को मानने वाले हैं अत: क्रिसमस को भी धूम-धाम से मनाया जाता है। नगालैण्ड में भी अधिसंख्य आबादी ईसाई है फिर भी ये अपने पारम्परिक उत्सव मनाते हैं जो ज्यादातर कृषि संस्कृति से जुड़े हुए हैं। मणिपुर में भी प्रत्येक जनजाति की अपनी संस्कृति, अपने रीति-रिवाज हैं और अपने देवता भी। तीन प्रसिद्ध नदियों-इम्फाल, नामबूल और बोराक को प्रसन्न करने के लिए प्रत्येक वर्ष मेला लगता है जहाँ इनके नृत्य, संगीत पारम्परिक प्रथाओं का दर्शन होता है। त्रिपुरा, बंग्लाभाषी बहुल राज्य है इसलिए यहाँ 'दुर्गा पूजा' भी धूम-धाम से मनाया जाता है। यहाँ जुलाई के महीने के सप्ताह भर चलने वाला त्योहार है 'खरची पूजा'। बंगला नववर्ष अप्रैल के दूसरे सप्ताह में मनाया जाता है। सिक्किम की ज्यादातर जनसंख्या बौद्ध और हिन्दू है इसलिए समस्त हिन्दू उत्सव, दीपावली, होली, दशहरा के साथ बौद्ध धर्म के त्योहार 'लहोसार', 'लूसोंग', 'सागादावा', 'ल्हाबाब', 'टेशी' और 'भूमचू' भी मनाते हैं। लोसर तिब्बती नववर्ष का त्योहार है जो मध्य दिसम्बर में आता है। इस दौरान पूरे सिक्किम में एक हफ्ते का अवकाश घोषित रहता है। अरुणाचल में पच्चीस से ज्यादा मूल जनजातियाँ हैं। उनकी अपनी-अपनी लोकमान्यताएँ, संस्कृति, उत्सव और त्योहार हैं। आद जनजाति का सबसे मुख्य त्योहार 'सोलुंग' है। अंग्रेजी माह के सितम्बर महीने में इस त्योहार को मनाया जाता है। इसमें 'पोनुंग' नामक नृत्य होता है। मोनपाओं ने बौद्ध ध र्म स्वीकार करने के बावजूद अपनी जनजातीय संस्कृति और संस्कार नहीं छोड़ा है। इनका एक प्रमुख त्योहार है 'छेहचिलेंङ' जो ये पूर्णिमा को मानते हैं। इस दिन मांसाहार का सेवन ज्यादातर लोग नहीं करते हैं।

पूर्वोत्तर भारत की सांस्कृतिक विशेषता और शेष भारत से जब उसके संबंधों पर विचार किया जाता है तो वैयक्तिक, प्राकृतिक, सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि विषय सामने आते हैं जहाँ पूर्वोत्तर के वैशिष्ट्य के बरक्स शेष की समानता और वैषम्य उपस्थित होता है। कई ऐसे मौके आते हैं जब दोनों क्षेत्रों में बिल्कुल समानता उपस्थित हो जाती है और कहीं-कहीं वे एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न नजर आते हैं। पूर्वोत्तर भारत शुद्ध रूप से जनजातियों की विशाल रणभूमि है वह भी सौ से ज्यादा मूल जनजातियाँ उपजातियाँ तो इसके तिगुने के लगभग है। सबकी अपनी-अपनी भाषा, संस्कृति, रीति-रिवाज, पूजा-पद्धति, संस्कार और इतिहास हैं जो एक दूसरे से अलग भी हैं और कहीं-कहीं जुड़ते भी हैं। मेघालय के राज्यपाल रहे मधुकर दिघे इस जुड़ाव को पान के माध्यम से दर्शाते हैं-''भारतीय संस्कृति में पान का महत्व सर्वविदित है। शादी ब्याह हो या पूजा-पाठ, सब जगह पान व सुपारी अवश्य रहती है। इसी प्रकार खासी-जयंतियों में भी पान का महत्व है। बल्कि कुछ अधिक ही मात्रा में। खासियों का त्योहार, समारोह या स्वागत-सत्कार बगैर पान-सुपारी, चूने के पूरा नहीं होता। यदि कोई व्यक्ति अपनी आर्थिक परिस्थिति के कारण अपने घर आए आगंतुक का स्वागत पान सुपारी से न करा सके तो भी वह कम-से-कम पान सुपारी क्वाई आगंतुक के सामने अवश्य रखकर 'अतिथिभव' कहेगा।''[21]

पूर्वोत्तर भारत के समाज में धर्म का महत्व जनजातियों में बहुत है। ईसाई मिशनरियों द्वारा ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार होने से जनजातियों में मूर्ति पूजा का प्रचलन अब लगभग नहीं है। इनके पारम्परिक धार्मिक त्योहार ज्यादातर प्रकृति और कृषि से जुड़े हुए हैं जो अभी भी ये मानते हैं, ईसाईयत इसमें बाधा नहीं है। यहाँ परम्परा और आधुनिकता का सुंदर समन्वय है। सांवरमल सांगानेरिया ने पूर्वोत्तर भारत की धार्मिक रीति, लोक संस्कृति की अनेकता में एकता पर लिखा है ''विभिन्नता में एकता भारतीय संस्कृति की विशेषता है। हमारा बहुत कुछ एक दूसरे से मिलता है, किन्तु हम उसे जानते नहीं, पहचानते नहीं। इसी उद्देश्य से अलग-अलग जनजातियों में प्रचलित पूजा पद्धति से लोगों को परिचित कराने के लिए बोड़ो की बाथौ-पूजा, कार्बी की पूजा पद्धति, बौद्धधर्मी जनजातियों की लोसर-पूजा, अरुणाचल की अनेक जनजातियों द्वारा की जाने वाली दान्यी-पोलो (सूर्य-चन्द्र) की पूजा आदि का प्रदर्शन किया गया। सभी जनजातियों को अपनी पूजा पद्धति में चावल और जल का प्रयोग सामान्य रूप से करते देख मेरे मन में विचार कौंधा कि देश के सभी लोग तो अपनी पूजा में चावल और जल का प्रयोग करते हैं।''[22] समाज में लोगों की रक्षा के लिए कई तरह के धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन होता है। लोक-व्यवहार में यह मान्यता है कि समाज की रक्षा के लिए यह आयोजन आवश्यक है। इन आयोजनों में ग्राम देवता से लेकर कई प्रकार के क्षेत्रीय देवताओं और इष्टों की पूजा की जाती है। इनमें पशु-पक्षी की बलि से लेकर ग्रामीण सौहार्द के भी काम होते हैं। चूँकि जनजातियों की सामाजिक संरचना भी सामूहिक है इसलिए इनके आयोजनों में सामूहिक लोक व्यवहार देखने को मिलता है। सांगोनेरिया जी लिखते हैं-''अनिष्टकारी आत्माओं की तुष्टि के लिए फोडलिङ त्योहार अक्टूबर-नवम्बर में मनाया जाता है। इस त्योहार में सभी लोगों का सम्मिलित होना आवश्यक है। इस त्योहार के बहाने ग्राम सुधार के तौर पर रास्तों तक की मरम्मत की जाती है। सूर्य-चन्द्र की पूजा के बाद सफेद मुर्गे की बलि देकर उसके सिर को खम्भे पर लटका दिया जाता है। पूजा-बेदी के सामने हाथों में दाव और ढाल लेकर नर्तक नृत्य करते हैं सामूहिक भोज होता है।''[23]

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि संस्कृति किसी भी देश की अर्जित उपलब्धियाँ हैं जो उसने सैकड़ों-हजारों वर्षों के अथक प्रयास से प्राप्त की हुई होती है। संस्कृति से ही उस देश के भौगोलिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, आर्थिक एवं प्राकृतिक परिवेश, आचार-विचार, ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, धर्म, लोक, परंपरा तथा लोक कलाओं आदि के बारे में पता चलता है। भारतीय संस्कृति अनेक धर्मों से अनेक रीति-रिवाजों और अनेक मान्यताओं से बनी है। इसलिए इसमें विविधता का होना स्वाभाविक है। यही विविधता इसका मूल स्वर है। भारतीय संस्कृति की दूसरी बड़ी विशेषता है जो इसे चिरकालिक बनाती है वह है समन्वय की विराट चेष्टा। पूर्वोत्तर भारत पौराणिक ऐतिहासिक काल से शेष भारत का अंग रहा है तथा इसकी संस्कृति शेष भारत की संस्कृति का अभिन्न अंग है। पूर्वोत्तर की संस्कृति भारत की संस्कृति की विविधता और भी व्यापक और भव्य बनाती है।

संदर्भ सूची:

1 कपूर, सुदर्शन कुमार, भारतीय सांस्कृतिक विरासत: एक परिदृश्य, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली, सं-2009, प्रस्तावना, पृष्ठ 10

2 दूबे, श्यामा चरण, मानव और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2016, पृष्ठ 69

3 (डॉ.) देवराज, साहित्य और संस्कृति, नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी, सं.-1958, पृष्ठ 102
4 हुसैन, एस.आबिद, भारत की राष्ट्रीय संस्कृति, (अनुवाद-दुर्गा शरण शुक्ल), राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली, सं.-1987, पृष्ठ 3
5 सोती, वीरेन्द्र चन्द्र, भारतीय संस्कृति के मूल तत्व, राजपाल एण्ड संस, नई दिल्ली, सं.-2012, पृष्ठ 02
6 दूबे, अभय कुमार, समाज विज्ञान विश्वकोश, पृष्ठ 1883
7 (डॉ.) शास्त्री, मंगलदेव, भारतीय संस्कृति का विकास (वैदिकधारा), भारतीय ज्ञानपीठ सं.-2005, पृष्ठ 38-39
8 कपूर, सुदर्शन कुमार, भारतीय संस्कृतिक विरासत, पृष्ठ 2
9 वर्मा, धीरेन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश भाग-1, ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी, सं.-2013, पृष्ठ 713 139
10 दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 39
11 जोशी, तर्कतीथ लक्ष्मण शास्त्री, वैदिक संस्कृति का विकास, पृष्ठ 15
12 हुसैन, एस.आबिद, भारत की राष्ट्रीय संस्कृति, पृष्ठ 43
13 वही, पृष्ठ 77
14 बोरा, राजमल, भारतीय भक्ति साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं-1994, पृष्ठ 89
15 hi-wikipedia-org/north&East India
16 hi-wikipedia-org/north&East India
17 दिघे, मधुकर, पूर्वांचल की ओर, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, सं-1993, पृष्ठ 09 33 वही, पृष्ठ 97
18 रेड्डी, विजय राघव, संस्कृति संगम उत्तर पूर्वांचल, कलिंगा प्रकाशन, दिल्ली, सं-1993, पृष्ठ 3
19 यादव, अनिल, वह भी कोई देस है महाराज, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, (उ.प्र.), सं-2012, पृष्ठ 18
20 प्रभाकर, विष्णु, एक देश एक हृदय, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, सं-2004, पृष्ठ 37
21 www- census-co-in/state/assam
22 प्रभाकर, विष्णु, एक देश एक हृदय, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, सं-2004, पृष्ठ 52
23 यादव, अनिल, वह भी कोई देस है महराज, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, (उ.प्र.), सं-2012, पृष्ठ 51

वैशेषिकदर्शनानुसारं शरीरस्य विभिन्नायामानां विवेचनम्

विजय कुमार

V.P.O. Popran, Assandh, Karnal, Haryana – 132039

सारांशः

प्रतिक्षणं क्षीयमाणं गात्रं शरीरम् । सर्वेषु दर्शनेषु एव शरीरचर्चा विहिता। वैशेषिकदर्शने स्वरूपदृष्ट्या शरीरस्य चातुर्विध्यम् –पार्थिव–जलीय– तैजस–वायव्यशरीरमिति। पार्थिवशरीरं क्षितिपरमाणुभिः निर्मितं भवति, मनुष्यपशुखगादीनाम्। जलीयतैजसवायव्यशरीराणि क्रमशः वरुणादित्यवायुलोकेषु भवन्ति। पार्थिवपरमाणूनां उपष्टम्भेन एव अतिरिक्तत्रिविधशरीरेषु उपभोगयोग्यता उत्पद्यते। उत्पत्तिदृष्टया योनिजायोनिजभेदाभ्यां शरीरस्य द्वैविध्यम् भवति। जरायुजाण्डजभेदाभ्यां योनिजशरीराणां द्वैविध्यम्, स्वेदजोद्भिजभेदाभ्यां अयोनिज– शरीराणां द्वैविध्यम। मानुषादिदेहाः पार्थिवाः न तु पाञ्चभौतिकाः। आतिवाहिक–शरीरमपि भवति यत् मनः शुष्कशरीरात् आदाय कर्मानुासरं फलभोगार्थं स्वर्गादिलोकेषु अनुरुपशरीरं यावत् नयति। ईश्वरः नास्ति शरीरवान् तस्य शरीरं तु परमाणुः एव । एवं शोधपत्रेऽस्मिन् शरीरस्य विभिन्नायामानां विश्लेषणं चर्चयामः ।

शब्दकुञ्जिकाः 'वैशेषिकदर्शनम्' 'पार्थिवशरीरम्', 'योनिजायोनिजशरीरम्', 'पाञ्चभौतिकत्वमू', 'आतिवाहिकशरीरम्'।

भारतीयदर्शनपरम्परायां वैशेषिकदर्शनं मूलतः पदार्थशास्त्रमस्ति। अतः दृश्यमानजगतः परं याः समस्याः अनुभूयन्ते, तासां समाधानापेक्षया, दृश्यमानं जगत् वास्तविकं मत्वा, तस्य सत्तायाः विश्लेषणं महत् श्रेयस्करं मन्यते दर्शनमिदम्। महर्षिः कणादः स्वदर्शनोद्देश्यं निरुपयन् प्रथमे सूत्रे एव निगदति 'धर्मविवेचना' एव प्रधानलक्ष्यम्।[1] लौकिकसुखालौकिककल्याणसिद्धिरेव धर्मः इति।[2] धर्मस्य प्रथमं साधनं शरीरमेव खलु, इत्यत्र नास्ति सन्देहावसरः।

शरीरस्य लक्षणम्ः

"शीर्यते इति शरीरम्" अर्थात् प्रतिक्षणं क्षीयमाणं गात्रं नाम शरीरम्।[3] शरीरं विना आत्मा विषयान् भोक्तुं असमर्थः, तस्मादेव शरीरं भोगायतनम्।[4] केवलं भोगानां आयतनत्वात् आहोस्वित् चेष्टानां आश्रयत्वात्, हस्तपादादयः शरीरत्वेन न व्यवह्रियन्ते, तेषां अवयविभूतस्य शरीरस्य अवयवत्वात्।[5] दर्शनेऽस्मिन् शरीरं सकलचेष्टानां आश्रयम्, समस्तेन्द्रियाणां आधारस्थलम् तथा च समस्तविषयभोगानां केन्द्रबिन्दुत्वेन स्मृतमस्ति।[6] हितप्राप्तये अहितपरिहाराय भूयमाना क्रिया चेष्टा निगद्यते।[7] प्रयत्नप्रेरितात्मनः व्यापार एव चेष्टा इति।[8] सा चेष्टा यस्मिन् भवति तदेव शरीरम्।

स्वरुपतः आत्मा नित्यस्वरूपः व्यापकश्चास्ति, परन्तु शरीरेण सह संयुक्ते सति, अस्य ज्ञानप्रयत्नचिकीर्षाः सीमिताः जायन्ते। विना शरीरं आत्मा विषयज्ञानं नानुभवति।[9] अतः 'आत्मा' प्रथमप्रमेयत्वेन, प्रथमप्रमेयस्य भोगस्थानं 'शरीरम्' द्वितीयप्रमेयत्वेन परिगण्यते। अतः कथ्यते शरीरमन्त्यावयवि चेष्टाभोगेन्द्रियाश्रयः।[10]

स्वरूपदृष्टया शरीरस्य चातुर्विध्यम्ः

वैशेषिकदर्शने पृथिव्याप्तेजोवाय्वाख्यानि चतुर्द्रव्याणि नित्यानि तथा च अनित्यानि उभयरूपे भवन्ति। कार्यरूपे सावयवानि अनित्यरूपे भवन्ति, परमाणुरूपे निरवयवानि नित्यरुपे च भवन्ति। कार्यरुपे पुनस्त्रिविधविभाजनम् – शरीरेन्द्रियविषयभेदात्[11] । एवं स्वरुपदृष्टया शरीरस्य चातुर्विध्यम् –

(i) पार्थिवशरीरम्
(ii) जलीयशरीरम्
(iii) तैजसशरीरम्
(iv) वायव्यशरीरम्

पार्थिवशरीरं क्षितिपरमाणुभिः निर्मितं भवति, मनुष्यपशुखगादीनाम्। जलीय तैजसवायव्यशरीराणि क्रमशः वरूणादित्यवायुलोके च भवन्ति। जलीयशरीरस्य समवायिकारणं परमाणुरूपं जलम्, तैजसशरीरस्य समवायिकारणं परमाणुरूपं तेजः तथा च वायव्यशरीरस्य समवायिकारणं परमाणुरूपं वायुः। पार्थिवपरमाणूनां सहयोगेन एतेषु शरीरेषु उपभोगयोग्यतायाः संकल्पना मन्यते। भोगसाधनतायाः सिद्धौ आगमप्रमाणाश्रयः।[12] जीवानां निम्नस्तरे स्थिताः दैहिकाः पार्थिवशरीराणि धारयन्ति, दिव्यशक्तीनां शरीराणि जलीयतैजसवायव्याख्यानि भवन्ति।[13] इदमपि सुस्पष्टं यत् पार्थिवपरमाणूनां उपष्टम्भेन एतानि त्रिविधशरीराणि विशेषाकृतिं धारयन्ति न तु "जलीय–बुद्बुद" इव एव भवन्ति।[14]

उत्पत्तिदृष्टया पार्थिवशरीरस्य द्वैविध्यम्ः

योनिजायोनिजभेदाभ्यां पार्थिवशरीराणां द्वैविध्यं स्वीकृतम्।[15] पुनः योनिजशरीराणां जरायुजाण्डजभेदाभ्यां द्वैविध्यम्, अयोनिजशरीराणां अपि स्वेदजोद्भिज्जभेदाभ्यां द्वैविध्यम्। एवं प्रकारेण चतुर्विधानि पार्थिवशरीराणि। मनुष्याणां चतुष्पदानां शरीराणि जरायुजानि भवन्ति। अण्डेभ्यो उत्पन्नानि अण्डजानि यथा पक्षिपन्नगादीनि।

स्वेदेभ्यः जातानि स्वेदजानि यथा यूकामशकादीनि। तृणगुल्मादीनां शरीराणि उद्भिजानि।[16] ध्यातव्यमत्र यत् प्रशस्तपादेन वृक्षादयः स्थावरविषयत्वेन स्वीकृताः न तु उद्भिजशरीरेषु तेषां गणना कृता।[17] किन्तु वृद्धि-क्षत-भग्न-संरोहण-प्राणवायुसंयोग-आगमप्रमाणैः स्पष्टं यत् वृक्षादयोऽपि भोगाधिष्ठानत्वात् शरीरस्यैव भेदाः[18], यद्यपि तेषु हिताहितप्राप्तेः - परिहारानुकूलचेष्टायाः इन्द्रियाधारितायाः स्पष्टताभावात, तेषु शरीरत्वं न व्यवह्रियते।[19]

देवर्षीणां नारकीयजन्तूनां शरीराणि अयोनिजानि भवन्ति। यदा अयोनिजशरीराणि धर्मेण सह पार्थिवाणुभिः उत्पन्नानि भवन्ति तदा देवानां ऋषीणां शरीराणि भवन्ति तथा च यदा अधर्मेण सह पार्थिवाणुभिः उत्पन्नानि भवन्ति तदा क्षुद्रजन्तूनां यातनाशरीराणि भवन्ति।[20]

अयोनिजशरीराणि विना कारणं नोत्पद्यन्ते। पार्थिवाणवः तेषां उपादानकारणम्, परमाणूनां पारस्परिकसंयोगः असमवायिकारणम्, धर्माधर्मादयः निमित्तकारणं भवति। अतः कथ्यते अयोनिजस्य अर्थः भवति यत् शरीरमिदं शुक्रशोणितजन्यसाधारणजीवानां शरीरेभ्यः भिन्नं भवति, अत्र श्रुतिप्रमाणमपि खलु।[21]

कौण्डभट्टस्य कथनमस्ति यत् अयोनिजशरीराणि प्रायः देवर्षीणां क्षुद्रजन्तूनां जलीय-तैजस-वायव्यशरीराणि एव भवन्ति, यत्र पार्थिवपरमाणवः तेषां उपादानकारणम्।[22] पार्थिवशरीरं इन्द्रियेभ्यः भिन्नं भवति, इन्द्रियाणां अधिष्ठानं शरीरम्, इन्द्रियैः ग्राह्यमाणाः सुखदुःखाद्यभोगाः शरीरेण अनुभूयन्ते, तद्द्वारा आत्मा भुंकते।

मानुषशरीरस्य पार्थिवत्वं न तु पाञ्चभौतिकत्वम्ः

प्रत्यक्षाप्रत्यक्षद्रव्याणां जन्यकार्यं प्रत्यक्षं भवितुं नार्हति।[23] मानुषशरीरं तु प्रत्यक्षगोचरमेव। कार्ये गुणानां उत्पत्तिः कारणस्थगुणानां आधारेण एव भवति। शरीरे केवलं पार्थिवगुणाः एव उपलभ्यन्ते। वैशेषिकपरम्परायां सूत्रकारात् अनन्तरं अस्य विषयस्य चर्चा व्योमशिवाचार्यः एव करोति, पदार्थधर्मसंग्रहे अस्य चर्चा नोपलभ्यते। पृथिवी मानुषादिदेहस्य समवायिकारणं अस्ति, जल-तेज-वायु- आकाशाख्यानि चतुर्भूतानि निमित्तकारणानि। एतेषां उपष्टम्भः एव (सहयोगः) मनुष्यादिदेहेषु स्नेहोष्मादिगुणानां हेतुः भवति।[24] चतुर्भूतानां शरीरेण सह संयोगो भवति, संयोगश्च सदैव अनित्यः, संयोगः (चतुर्भूतानां शरीरेण सह) तावत् पर्यन्तं एव विद्यमानो भवति यावत् पर्यन्तं आत्मनः संयोगः शरीरेण सह भवति। शुष्कशरीरे केवलं पृथव्याः गन्धवत्त्वं गुणः उपलभ्यते।[25] अतः मानुषादीनां शरीरं पार्थिवमेव न तु पाञ्चभौतिकम्।

सूक्ष्मशरीरस्य विचारः

वैशेषिकदर्शने लिंगशरीरस्य उल्लेखः नोपलभ्यते। स्पष्टरुपेण सर्वादौ व्योमशिवाचार्यः सूक्ष्मशरीरस्य चर्चा करोति। प्रशस्तपादेन 'अप्रत्यय-कर्म' प्रसंगे यस्य आतिवाहिक-शरीरस्य उल्लेखः कृतः। परवर्ती-आचार्यैः तदाधारेणैव वर्णनं कृतम् - मृतस्थूलशरीरस्य पार्श्वे एव, एकं अतिसूक्ष्मम्, उपलब्धेः सर्वथा अयोग्यम्, आतिवाहिक-शरीरं कल्पयते। यस्योत्पत्तिः सक्रियपरमाणुभिः द्वडणुकादिक्रमेण भवति। परमाणुषु क्रियायाः उत्पत्तिः अदृष्टेन भवति। आतिवाहिक-शरीरं मनः मृतशरीरात् आदाय फलभोगाय स्वर्गनरकादिलोकेषु नयति[26], तत्र गत्वा मनः कर्मानुसारं फलभोगार्थं अनुरुपशरीरेण सह सम्बद्धो भवति। यतोहि मृत्युलोके स्वर्गादिलोके वा मनः विना शरीरं फलभोगं कर्तुं असमर्थम्। शरीरसम्बद्धमनसि एव क्रिया भवति (महाप्रलयावस्थां विहाय)। अतः मृत्योः पश्चात् जन्मतः प्राक् मनसि याः क्रियाः उत्पद्यन्ते, तदा मनसः कस्यचित् शरीरेण सह संयोगः भवितव्यमेव। तस्मात् कथ्यते 'तत्संयोगार्थं कर्मोपसर्पणमिति'।[27]

ईश्वरे अशरीत्वम्ः

वैशेषिकदर्शनानुसारं ईश्वरः शरीरवान् नास्ति। ईश्वरः जगतः कर्त्ता, परन्तु शरीरस्य सम्बन्ध एव कर्तृत्वं नास्ति, शरीर-व्यापारापेक्षां विना अपि, केवलं इच्छा-प्रयत्न-साह्येन एव चौतन्ये जड़वस्तूनां व्यापृतसामर्थ्यं दृश्यते।[28] यदि ईश्वरशरीरस्य कल्पना क्रियते तदा जन्यत्वात् शरीरान्तरापेक्षा भविष्यति, एवं अनवस्यादोषापत्तिः।[29] अतः ईश्वरः नास्ति शरीरवान्, परमाणुः एव तस्य शरीरम्।

निष्कर्षतः कथयितुं पारयामः यत् "मानुषदेहः पार्थिवः न तु पाञ्चभौतिकः" सिद्धान्तस्यास्य घोषणा अन्यसम्प्रदायेभ्यः सर्वथा भिन्ना, मौलिका, तार्किका चास्ति । यदा तार्किकदृष्ट्या अवलोकयामः तदा ज्ञास्यामः एव यत् जल-तेजो-वायु-आकाशाख्यानां इतरचतुर्महाभूतानां पार्थिवाणुभिः सह संबंधः संयोगसम्बन्धः एव । मनः सूक्ष्मशरीरे न भवति अपितु मृतशरीरात् सूक्ष्मशरीरं आदाय फलभोगार्थं स्वर्गादिलोकान् नयति । तत्र गत्वा कर्मानुसारं अलौकिकशरीरेण सह सम्बद्धो भवति। मृत्योः पश्चात् अग्रिमजन्मतः पूर्वं उत्पद्यमानानां क्रियाणां आधारः मन एव, यत् च तत्रापि अलौकिकशरीरेण सह सम्बधो भवति। एवं मनसः स्वातन्त्र्यं विशिष्टसम्प्रत्ययश्च सिद्धयति आतिवाहिकशरीरसन्दर्भे ।

संदर्भ

1. वैशेषिकसूत्रम् 1/1/1
2. तदेव 1/1/2
3. न्यायकोश, पृ० 868
4. न्यायकन्दली, प० 82
5. न्यायसूत्रवृत्तिङ्क, विश्वनाथः, 1/1/11
6. न्यायसूत्रम् 1/1/11
7. न्यायवार्त्तिकः (न्याय सूत्र 1/1/11)
8. न्यायवात्तिकः, तात्पर्यटीका, परिशुद्धिः (न्यायसूत्रम् 1/1/11)
9. "अशरीराणामात्मनां न विषयावबोधः" न्यायकणिका, पृङ्क 141
10. तार्किकरक्षा - 1/28

11. वैशेषिकसूत्रम् - 4/2/1
12. व्योमवती, पृ० 271
13. वैशेषिक दर्शन परिशीलन, डॉङ्क शशि प्रभा कुमार, पृ० 57
14. न्यायकणिका, पृ० 95
15. वैशेषिकसूत्रम्, 4/2/5
16. किरणावली, पृ० 57-58
17. प्रशस्तपादभाष्यम्, पृ० 19
18. वैशेषिकसूत्रम्, 4/2/5 (उपस्करः शूरमिश्रः, पृ० 289)
19. न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, प्रभा टीका, पृ० 61
20. प्रशस्तपादभाष्यम्, पृ1 17-18
21. व्योमवती, पृ० 229
22. पदार्थदीपिका 'सप्तपदार्थी' ग्रन्थस्य टीका, पृ० 2
23. वैशेषिकसूत्रम्, 4/2/2
24. व्योमवती, पृ० 200
25. न्यायवार्तिकः (न्यायसूत्रम् 3/1/28)
26. न्यायकन्दली, पृ० 738-39
27. प्रशस्तपादभाष्यम्, पृ० 272
28. न्यायकन्दली, पृ० 138-39
29. व्योमवती, पृ० 304-05

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गर्भावस्था में मधुमेह का अध्ययन आहार एवं पोषण विज्ञान के सन्दर्भ में

वन्दना सिंह यादव

शोध छात्रा, गृह विज्ञान विभाग, हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड

डॉ० अनीता वर्मा

शोध-निर्देशिका, एसोसिएट प्रोफेसर, हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड

प्रस्तावना (Introduction)

मधुमेह, मोटापा, मलेरिया और एचआईवी यह चार बीमारियाँ दुनियाभर की गर्भवती महिलाओं के लिए सबसे खतरनाक हैं, क्योंकि 25% मातृ मृत्यु दर का कारण यही है। डब्ल्यूएचओ की एक रिपोर्ट के अनुसार 1990 से अब तक मातृ मृत्यु दर में 45% की कमी आई है। इसके बावजूद अब भी साल भर में 2.89 लाख (यानी हर घंटे 33)महिलाएं जान गंवा रही हैं। विकसित और विकासशील देशों में यह अंतर भी साफ नजर आता है। अफ्रीका में 40 में से एक और यूरोप में 3300 में से एक स्त्री पर यह खतरा होता है।

गर्भकालीन मधुमेह (या गर्भकालीन मधुमेह मेलिटस, जीडीएम (GDM) एक ऐसी स्थिति होती है जिसमें ऐसी महिलाओं में, जिनमें पहले से मधुमेह का निदान न हुआ हो, गर्भावस्था के समय रक्त में शर्करा के उच्च स्तर पाए जाते हैं। गर्भावधि मधुमेह एक ऐसा मधुमेह है, जो गर्भावस्था के दौरान हो सकता है। अन्य प्रकार के मधुमेह की तरह ही यह भी उच्च रक्त शर्करा के कारण होता है, जो गर्भवती महिला और अजन्मे बच्चें दोनों के स्वास्थ को प्रभावित कर सकता है कुछ महिलाओ को गर्भधारण से पहले ही मधुमेह होता है इसे प्री-जेस्टेशनल डायबिटीज कहते हैं, गर्भावस्था के दौरान होने वाले मधुमेह को जेस्टेशनल डायबिटीज कहा जाता है। गर्भावस्था में महिला के शरीर में ग्लूकोज के उपयोग का स्तर बदल सकता है इससे उसे गर्भकालीन मधुमेह हो सकता है इस दौरान गर्भनाल (प्लेसेंटा) बच्चे को पोषक तत्व और आक्सीजन देता है, प्लेसेंटा भी हार्मोन बनाती है ऐसे में अगर किसी महिला को धुंधली दृष्टि, थकान, अधिक प्यास लगना, बार-बार पेशाब आना, वजन कम होना और विशेष रूप से योनी, त्वचा तथा मूत्राशय में संक्रमण का खतरा नजर आए, तो उसे तुरंत अपने डाक्टर से परामर्श लेना चाहिए।

भारत में करीब 22-25% महिलाओं में गर्भावस्था के दौरान जेस्टेशनल डायबिटीज मेलिटस (जीडीएम) से पीड़ित होने का खतरा है। पब्लिक हेल्थ फाउन्डेशन आफ इण्डिया के अनुसार जीडीएम से दुनिया में 15% महिलायें प्रभावित होती हैं। भारत में अनुमानित तौर पर 40 लाख महिलायें इससे पीड़ित हैं। इसके अलावा यहाँ करीब 6.5 करोंड़ से अधिक लोग मधुमेह से पीड़ित हैं ऐसे लोगो की संख्या 7.7 करोंड़ है, जिनमे शर्करा का स्तर सामान्य से ज्यादा है इनमे से करीब 45% संख्या महिलाओं की है। माना जा रहा है की जीडीएम से पीड़ित महिलाओं की संख्या 2030 तक बढकर 10.12 करोड़ होने की संभावना है। एक अध्ययन के अनुसार भारत में जीडीएम से पीड़ित महिलाओं का प्रतिशत ऊँचा है इनमे चेन्नई के 17%, तिरुवनंतपुरम में 15%, बेंगलुरु में 12% और लुधियाना में 17.5% पीड़ित महिलायें शामिल है। जीडीएम माँ और बच्चे के स्वास्थ्य के लिए एक गंभीर खतरा है मधुमेह का प्रसार बढ़ने के साथ खासकर भारत जैसे निम्न एवं मध्यम आय वाले देशो में इस स्थिति के और बिगड़ने की आशंका है।

भारत का मातृ मृत्यु अनुपात (एमएमआर) 2016-17 में सुधरकर 103 हो गया है, जो 2016-18 में 113 था। यह भारत के रजिस्ट्रार जनरल द्वारा 14 मार्च, 2022 को जारी एमएमआर पर विशेष बुलेटिन के अनुसार है। सात भारतीय राज्यों में मातृ मृत्यु दर बहुत अधिक है। ये हैं राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, ओडिशा और असम। 'वेरी हाइ' एमएमआर का अर्थ है प्रति 100,000 जीवित जन्मों पर 130 या अधिक मातृ मृत्यु। उत्तर प्रदेश, राजस्थान और बिहार राज्यों में एमएमआर में सबसे ज्यादा गिरावट देखी गई है। पश्चिम बंगाल, हरियाणा, उत्तराखंड और छत्तीसगढ़ ने पिछले सर्वेक्षण की तुलना में एमएमआर में वृद्धि दर्ज की है। उत्तर प्रदेश का एमएमआर 2017-19 के लिए 167 था, जबकि 2014-16 में 201, 2015-17 में 216 और 2016-18 में 197 था। 2017-19 में बिहार का एमएमआर 141 था, जो 2014-16 में 99, 2015-17 में 186 और 2016-18 में 164 था।

गर्भावस्था के दौरान शुगर लेवल क्यों बढ़ जाता है ये समझना बहुत जरुरी है। एक्सपर्ट्स का मानना है की गर्भावस्था के दौरान शरीर में इंसुलिन की मात्रा कम होने लगती है। यह ज्यादातर चौथे या पांचवें महीने में होता है। शरीर में इंसुलिन का कम होना ब्लड में शुगर लेवल को बढ़ाने का काम करता है जो प्रेग्नेंसी में डायबिटीज का रूप ले सकता है। जेस्टेशनल डायबिटीज, डायबिटीज टाइप 1 और डायबिटीज टाइप 2 से अलग होती है। प्रेगनेंसी के नौ महीने बड़े ही चुनौती भरे होते हैं। इस दौरान गर्भवती महिला के शरीर में कई तरह के बदलाव होते हैं। गर्भावस्था में कई बार महिलाओं का शुगर लेवल कंट्रोल

नहीं हो पाता है, जिससे कई प्रकार की परेशानियां शुरू हो जाती हैं। इन्हीं इन्हीं समस्याओं में से एक है प्रेग्नेंसी में डायबिटीज यानी गर्भावधि मधुमेह। इसे 'जेस्टेशनल डायबिटीज (Gestational Diabetè)' के नाम से भी जाना जाता है।

गर्भावस्था में मधुमेह के कारण क्या हैं? (Diabetes in pregnancy)

जब शरीर में पर्याप्त मात्रा में इंसुलिन नहीं बन पाता, तब गर्भावस्था में मधुमेह होता है। इंसुलिन शरीर में स्वाभाविक रूप से रिलीज होने वाला एक हार्मोन है, जिसका काम बॉडी में भोजन और ग्लूकोज को एनर्जी में बदलता है। प्रेग्नेंसी के दौरान कई हार्मोंस के लेवल में बढ़ोत्तरी होती है, जिससे बॉडी का वजन बढ़ने जैसे कई बदलाव होते हैं। इसकी वजह से शरीर में ब्लड शुगर का लेवल बिगड़ जाता है। इस कंडीशन को इंसुलिन प्रतिरोधक कहते हैं। इसके कारण बॉडी को इंसुलिन की आवश्यकता और अधिक हो जाती है।

गर्भावस्था में मधुमेह (Diabetes in Pregnancy) की वजह से मां और शिशु को होने वाले जोखिम

गर्भावस्था में मधुमेह की वजह से ये रिस्क हो सकते हैं :

- शिशु का आकार बड़ा होना (Increased size of foetù)- यदि किसी प्रेग्नेंट महिला को डायबिटीज है, तो गर्भ में शिशु का आकार सामान्य से थोड़ा ज्यादा बड़ा हो सकता है। इसकी वजह से सिजेरियन डिलिवरी की संभावना बढ़ जाती है।
- जिन महिलाओं को प्रेग्नेंसी में डायबिटीज होता है, उन्हें और उनके शिशु को भविष्य में टाइप-2 डायबिटीज होने का खतरा भी हो सकता है।
- मृत शिशु का जन्म- अगर गर्भावधि मधुमेह का इलाज समय पर न किया जाए, तो मृत शिशु के जन्म का खतरा रहता है।
- समय पूर्व प्रसव की संभावना बढ़ना (Pre&mature delivery) - प्रेग्नेंसी में डायबिटीज से जूझती महिलाओं में समय से पूर्व प्रसव का खतरा बढ़ जाता है। इसके अलावा, इस स्थिति में शिशु को सांस संबंधी समस्याएं भी हो सकती हैं।
- प्रीक्लेम्पसिया (Preeclampsia) - प्रेग्नेंसी में डायबिटीज के दौरान प्रीक्लेम्पसिया (उच्च रक्तचाप से संबंधित स्थिति) का खतरा भी बढ़ सकता है।

जेस्टेशनल डायबिटीज का जोखिम किन्हें ज्यादा होता है?

हालांकि, प्रेग्नेंसी में डायबिटीज किसी भी प्रेग्नेंट महिला को हो सकता है, लेकिन नीचे बताए गए मामलों में इसका जोखिम बढ़ सकता है।

- 25 साल से अधिक उम्र की महिलाओं को जेस्टेशनल डायबिटीज (गर्भावधि मधुमेह) होने का खतरा ज्यादा रहता है।
- अगर परिवार में किसी को डायबिटीज है, तो गर्भावस्था में डायबिटीज की संभावना अधिक रहती है।
- अगर आपको पहले की गर्भावस्था में भी डायबिटीज था, तो अगली प्रेगनेंसी में भी डायबिटीज होने की आशंका बढ़ जाती है।
- यदि पहले से ही डायबिटीज है, तो इसका खतरा और भी बढ़ सकता है।
- यदि प्रेग्नेंट महिला का वजन सामान्य से अधिक है, तो जेस्टेशनल डायबिटीज का खतरा बढ़ सकता है।

गर्भावस्था में मधुमेह के लक्षण (Signs of diabetes in pregnancy)

1. **जल्दी पेशाब आना**- गर्भकालीन मधुमेह द्रव असंतुलन का कारण बन सकता ह। गुर्दा अत्यधिक मात्रा में तरल को मूत्र के रूप में बाहर निकाल देता है। नतीजतन, आपको बार-बार पेशाब करने की इच्छा होती है। ये बार-बार पेशाब आना आपको सामान्य से अधिक तेजी से डिहाइड्रेट कर सकता है।
2. **जी मिचलाना**- गर्भावस्था की अवधि के दौरान, स्त्री शारीरिक और भावनात्मक परिवर्तनों से गुजरती हैं। अत: गर्भावस्था की अवधि के दौरान मतली एक सामान्य समस्या है। कुछ महिलाओं के लिए, पहली तिमाही के दौरान मतली और उल्टी की अनुभूति बंद हो जाती है। लेकिन कुछ के लिए, यह गर्भावस्था की अवधि के दौरान बनी रहती है। गर्भकालीन मधुमेह मतली को बढ़ा सकता है और कभी-कभी, आपको उल्टी करने की इच्छा हो सकती है।
3. **प्यास**- गर्भावस्था के दौरान महिलाएं सामान्य से थोड़ा अधिक पानी पीती हैं। फिर भी, मधुमेह से पीड़ित गर्भवती महिलाओं को बहुत बार प्यास का अहसास होता है। जब आपको गर्भावधि मधुमेह होता है तो प्यास प्रमुख लक्षणों में से एक है। यदि आपने कोई गहन कार्य या व्यायाम नहीं किया है तो भी आपको बहुत प्यास लगती है। प्यास लगने के अलावा आपका मुंह अक्सर सूख जाता है। इससे बार-बार पानी पीने की इच्छा भी बढ़ जाती है।
4. **थकान**- गर्भावस्था के दौरान भोजन के बाद भी थकान बनी रह सकती है । गर्भवती महिला ज्यादातर दिन थका हुआ महसूस करती हैं । अक्सर तंद्रा का अहसास हो सकता है और हमेशा सोना चाहती हैं।गर्भावस्था के दौरान ये लक्षण सामान्य हो सकते हैं जो संकेत भी दे सकते हैं कि आप गर्भावधि मधुमेह से प्रभावित हो सकती हैं।
5. धुंधला दिखाई देना
6. मूत्राशय, वजाइना और स्किन में लगातार इंफेक्शन होना ।

गर्भावस्था के दौरान पोषक तत्त्वों की आवश्यक मांग

विटामिन ए (Vitamin A)- RDA 2020 के अनुसार, वयस्क सामान्य क्रियाशील, मध्यम क्रियाशील, अधिक क्रियाशील स्त्री के लिए विटामिन ए की दैनिक मांग एक समान अर्थात् 840&g/ दिन जबकि गर्भवती स्त्री के लिए 900 &g/ दिन की मात्रा निर्धारित की गई है।

थायमिन - RDA 2020 के अनुसार, वयस्क सामान्य क्रियाशील, मध्यम क्रियाशील, अधिक क्रियाशील स्त्री के लिए थायमिन की दैनिक मांग क्रमश: 1.4 मिलीग्राम / दिन,1.7 मिलीग्राम / दिन, 2.2 मिलीग्राम / दिन की मात्रा निर्धारित की गई है जबकि गर्भवती स्त्री के लिए थायमिन की दैनिक मांग 2. 0 मिलीग्राम / दिन की मात्रा निर्धारित की गई है।

राइबोफ्लेविन - RDA 2020 के अनुसार, वयस्क सामान्य क्रियाशील, मध्यम क्रियाशील, अधिक क्रियाशील स्त्री के लिए राइबोफ्लेविन की दैनिक मांग क्रमश: 1.9 मिलीग्राम / दिन, 2.4 मिलीग्राम / दिन, 3.1 मिलीग्राम / दिन की मात्रा निर्धारित की गई है जबकि गर्भवती स्त्री के लिए राइबोफ्लेविन की दैनिक मांग 2.7 मिलीग्राम / दिन की मात्रा निर्धारित की गई है।

नियासिन- RDA 2020 के अनुसार, वयस्क सामान्य क्रियाशील, मध्यम क्रियाशील, अधिक क्रियाशील स्त्री के लिए नियासिन की दैनिक मांग क्रमश: 11 मिलीग्राम / दिन, 14 मिलीग्राम / दिन, 18 मिलीग्राम / दिन की मात्रा निर्धारित की गई है जबकि गर्भवती स्त्री के लिए नियासिन की दैनिक मांग +2. 5 मिलीग्राम / दिन की मात्रा निर्धारित की गई है।

विटामिन बी 6 - RDA 2020 के अनुसार, वयस्क सामान्य क्रियाशील, मध्यम क्रियाशील स्त्री के लिए विटामिन बी 6 की दैनिक मांग एक समान अर्थात 1.9 मिलीग्राम / दिन, तथा अधिक क्रियाशील स्त्री के लिए विटामिन बी 6 की दैनिक मांग 2.4 मिलीग्राम / दिन की मात्रा निर्धारित की गई है जबकि गर्भवती स्त्री के लिए विटामिन बी 6 की दैनिक मांग 2.3 मिलीग्राम / दिन की मात्रा निर्धारित की गई है।

फोलेट- RDA 2020 के अनुसार, वयस्क सामान्य क्रियाशील, मध्यम क्रियाशील, अधिक क्रियाशील स्त्री के लिए फोलेट की दैनिक मांग एक समान अर्थात् 220-g/ दिन जबकि गर्भवती स्त्री के लिए 570-g/ दिन की मात्रा निर्धारित की गई है।

विटामिन बी 12- RDA 2020 के अनुसार, वयस्क सामान्य क्रियाशील, मध्यम क्रियाशील, अधिक क्रियाशील स्त्री के लिए विटामिन बी 12 की दैनिक मांग 2.5-g/ दिन की मात्रा निर्धारित की गई है जबकि गर्भवती स्त्री के लिए +2.5-g/ दिन की मात्रा निर्धारित की गई है।

लोहा (Iron)- RDA 2020 के अनुसार, वयस्क सामान्य क्रियाशील, मध्यम क्रियाशील, अधिक क्रियाशील स्त्री के लिए आयरन की 29 मिलीग्राम / दिन की मात्रा निर्धारित की गई है जबकि गर्भवती स्त्री के लिए 40 मिलीग्राम / दिन की मात्रा निर्धारित की गई है।

जिंक (Zinc) - RDA 2020 के अनुसार, वयस्क सामान्य क्रियाशील, मध्यम क्रियाशील, अधिक क्रियाशील स्त्री के लिए जिंक की 13.2 मिलीग्राम / दिन की मात्रा निर्धारित की गई है जबकि गर्भवती स्त्री के लिए 14.5 मिलीग्राम / दिन की मात्रा निर्धारित की गई है।

गर्भावस्था में मधुमेह के दौरान आहार की आदतें-क्या खाना चाहिए और क्या नहीं

गर्भावस्था की अवधि के दौरान, आपके बच्चे को पोषण देने वाले खाद्य पदार्थों का सेवन करना महत्वपूर्ण है। और जब आपको गर्भावधि मधुमेह का परीक्षण किया जाता है, तो हमेशा अपने खाने के बारे में सावधान रहें। सही खानपान से मधुमेह को नियंत्रित किया जा सकता है। इसलिए, आप अपने डॉक्टर से अपने लिए सही डाइट प्लान बनवा लें। इसके अलावा, अगर किसी को गर्भावस्था में मधुमेह हो जाए तो उसे क्या खाना चाहिए और किन चीजों से परहेज करना चाहिए। आइए जानते हैं, इस दौरान क्या खाना चाहिए :

- फाइबर युक्त साबुत अनाज खाना चाहिए। उच्च फाइबर और साबुत अनाज कार्बोहाइड्रेट चुनना बेहतर है , वे स्वस्थ हैं और आपके रक्त शर्करा के स्तर को नहीं बढ़ाते हैं। ये कार्बोहाइड्रेट आपको लंबे समय तक भरा रखते हैं।
- कम मात्रा में ही सही किन्तु स्वस्थ प्रोटीन और स्वस्थ वसा का सेवन करें। साबुत अनाज जैसे अनाज, चावल और स्टार्च वाली सब्जियां जैसे मकई और मटर भी मध्यम मात्रा में ली जा सकती हैं।
- हरी सब्जियों व फलियों आदि का सेवन करना चाहिए।
- फलों के जूस की जगह साबुत फलों का सेवन करें। फलों के रस की तुलना में साबुत फलों में अधिक फाइबर होता है और फलों का रस आपके रक्त शर्करा के स्तर को बढ़ाता है।
- दूध व योगर्ट (एक तरह का दही) खाना फायदेमंद रहेगा। कम वसा वाला डेयरी भोजन या बिना वसा वाला दूध एक बेहतर विकल्प है। आप बिना चीनी और कृत्रिम मिठास के भी दही का सेवन कर सकते हैं। डेयरी से पूरी तरह से परहेज न करें क्योंकि वे फॉस्फोरस, कैल्शियम और प्रोटीन का एक समृद्ध स्रोत हैं।
- मछली, अंडे, मीट, व नट्स खाएं। मछली और चिकन जैसे स्वस्थ प्रोटीन विकल्पों को अपने आहार में शामिल किया जा सकता है। खाने से पहले सभी दिखाई देने वाली चर्बी को काटने की कोशिश करें और ग्रिल्ड और तले हुए मांस के बजाय उबले हुए वसा को चुनें।
- बेहतर होगा कि आप दिन में थोड़ा-थोड़ा करके तीन बार खाना खाएं और दो बार स्नैक्स लें।

गर्भावस्था में मधुमेह के दौरान क्या न खाएं

- कोल्ड ड्रिंक, कैंडी व टॉफी से परहेज करें।
- ऐसी चीजें न खाएं जिनमें बहुत तेज मीठा हो।
- जैम और शहद से परहेज करें।
- बेक की गई चीजें जैसे केक व मफिंस से दूर रहें।
- फास्ट फूड बिल्कुल न खाएं।

गर्भावस्था में मधुमेह को कैसे रोकें?

यह सच है कि इलाज से बेहतर सावधानी बरतना है। अगर पहले से ही ध्यान रखें, तो बड़ी से बड़ी समस्याओं से बचा जा सकता है। ऐसा ही कुछ गर्भावस्था में मधुमेह के साथ भी है। यहां हम बता रहे हैं कि आप गर्भावस्था में होने वाले मधुमेह को कैसे रोक सकते हैं-

- स्वस्थ खानपान : जब आप गर्भधारण करने की कोशिश कर रही हों, तो अपने खानपान का विशेष ख्याल रखें। गर्भावधि मधुमेह से बचने के लिए स्वस्थ खानपान बेहद जरूरी है। आप फाइबर युक्त और कम फैट वाला खाना खाएं। इसके अलावा, तले हुए खाने से परहेज करें। आहार का विशेष ध्यान रखें क्योंकि आपके आहार से ही गर्भ में पल रहे बच्चे को न्यूट्रिशन मिलेगा। कार्बोहाइड्रेट से भरपूर आहार लें। कार्बोहाइड्रेट शरीर में धीरे-ध ीरे और कम मात्रा में शुगर का निर्माण करता है। कार्बोहाइड्रेट और वसा को रोज अपने आहार में शामिल करें।गर्भवती महिलाएं जिन्हें को नॉन-वेजेटेरियन खाना पसंद है तो अच्छी तरह पका और कम मसाले में बना हुआ नॉनवेज खाना चाहिए।
- व्यायाम करें : शरीर को इस दौरान आराम की स्थिति में न रखें। अगर डॉक्टर ने आपको बेड रेस्ट की सलाह दी है तो ऐसी स्थिति में आराम करना जरुरी है लेकिन, अगर आप बिलकुल स्वस्थ हैं तो टहलना चाहिए, गर्भावस्था के दौरान करने वाले योग या आसन करना चाहिए जिससे शरीर एक्टिव रहेगा। फिट रहने के लिए व्यायाम जरूरी है। जरूरी नहीं कि इसके लिए आप जिम जाएं या कड़ी कसरत करें। फिट रहने के लिए नियमित रूप से सैर कर सकते हैं या फिर तैराकी आती है, तो ट्रेनर की देखरेख में इसे भी कर सकते हैं।
- वजन नियंत्रित रखें : गर्भावस्था के दौरान वजन को ज्यादा बढ़ने ना दें। इस दौरान 10 से 11 किलो तक वजन बढ़ने से कोई समस्या नहीं होती। अगर गर्भावस्था से पहले आपका वजन सामान्य से ज्यादा है, तो पहले अपना वजन नियंत्रित करें और फिर गर्भधारण की योजना बनाएं।
- कभी-कभी अधिक उम्र में गर्भ धारण करने की वजह से भी जेस्टेशनल डायबिटीज का खतरा बढ़ जाता है।
- लक्षण नजर आने पर डॉक्टर के पास जाएं : अगर इन सबके बावजूद आपको मधुमेह के लक्षण नजर आते हैं, तो बिना देरी किए डॉक्टर के पास जाएं और अपनी जांच कराएं।

निष्कर्ष- दुनिया भर में मधुमेह एक बड़ी समस्या बनती जा रही है। प्राय: खराब जीवन शैली से होने वाली यह बीमारी अनुवांशिक भी होती है। रक्त में शुगर की मात्रा अनियंत्रित हो जाने से यह जान लेवा भी बन जाती है। गर्भावधि मधुमेह का सबसे पहला इलाज है सही जीवनशैली और स्वस्थ खानपान। इस दौरान, आपको एक स्वस्थ जीवन शैली अपनाने की जरूरत है। गर्भवती महिला को अपने आहार में विटामिन, खनिज लवण और पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए संतुलित आहार लेना अति आवश्यक है। विटामिन बी का सेवन नियमित होना चाहिए जैसे-हरी पत्तेदार सब्जियां, अनाज और दाल में विटामिन बी पाया जाता है। इसके अलावा, जैसे-जैसे गर्भावस्था बढ़ेगी आपको इंसुलिन की आवश्यकता ज्यादा होगी। इसके लिए डॉक्टर इंसुलिन के इंजेक्शन दे सकते हैं। सामान्य मधुमेह में दी जाने वाली कई दवाइयां गर्भावस्था में लेनी सुरक्षित नहीं होती, इसलिए इंसुलिन के इन्जेक्शन लेना जरूरी हो जाता है। नेशनल लाइब्रेरी ऑफ मेडिसिन के अनुसार, गर्भावधि मधुमेह वाली महिलाओं को स्वस्थ संतुलित आहार लेने की सलाह दी जाती है। एक नए अध्ययन में कहा गया है कि मधुमेह से पीड़ित महिलाएं गर्भावस्था के दौरान स्वस्थ जीवनशैली अपनाकर टाइप टू मधुमेह विकसित होने के खतरे को कम कर सकती हैं। अध्ययन के अनुसार , यदि मधुमेह पीड़ित महिला गर्भावस्था के दौरान जीवन शैली के पांच सूत्रों-पौष्टिक भोजन, शराब व धूम्रपान से परहेज, औसत वजन व नियमित व्यायाम का पालन करती है तो वह मोटापे या खतरनाक आनुवांशिक मधुमेह से पीड़ित महिला की अपेक्षा टाइप 2 मधुमेह के खतरे को 90% तक कम कर सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. "डायबिटीज और मोटापा ले रहा गर्भवती की जान", हिन्दुस्तान ,वाराणसी, बुधवार, मई 07, 2014, पृ०सं. 20
2. https//helloswasthya.com, प्रेग्नेंसी में डायबिटीज: गर्भावस्था के दौरान बढ़ सकता है शुगर लेवल ,ऐसे करे कंट्रोल
3. "गर्भावस्था में डायबिटीज", अमर उजाला वाराणसी, मंगलवार, मार्च 17,2015, पृ०सं. 14
4. www.downtoearth.org.in, भारत में मातृ मृत्यु अनुपात में 9 फीसदी की गिरावट ,जानें सभी राज्यों का हाल
5. DA short report, A REPORT OF THE EXPERT GROUP, 2020
6. https//www.starhealth.in, गर्भकालीन मधुमेह-लक्षण, कारण, उपचार और रोकथाम
7. https//www.momjunction.com, गर्भकालीन मधुमेह (डायबिटीज) के लक्षण और उपचार
8. "स्वस्थ जीवन शैली से गर्भवती में कम हो सकता है डायबिटीज का खतरा" दैनिक जागरण, वाराणसी, सितम्बर 24 , 2022 ,पृ०सं. 15
9. "गर्भवती लें संतुलित आहार: डॉ.सुमिता", अमर उजाला वाराणसी, शुक्रवार, मई 20, 2022, पृ०सं. 06

शिक्षा का अर्थ एवं प्राथमिक शिक्षा में नए प्रयोग

डॉ0 अजीत यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर, टी0आर0एस0 कालेज ऑफ एजूकेशन एण्ड टेक्नोलॉजी, कौशाम्बी

शिक्षा क्या है? इस पर समय-समय पर विभिन्न विद्वानों तथा शिक्षाशास्त्रियों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। उनके विचारों पर देश, काल तथा समाज का प्रभाव पड़ा है। अत: उन लोागें ने समाज की बदलती हुई परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा की परिभाषाएँ दी हैं। शिक्षा की परिभाषाओं पर विचार करने से पहले हमें शिक्षा के अर्थ को समझ लेना चाहिए।

भारतीय दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि "शिक्षा'' शब्द की व्युत्पत्ति "शिक्ष: शिक्षणो'' धातु से हुई है। इसका अर्थ है विद्या ग्रहण करना। दूसरे शब्दों में शिक्षा का तात्पर्य विद्योपार्जन है।

पश्चिमी विद्वानों के अनुसार एजूकेशन शब्द, जो शिक्षा का समानार्थी है, की उत्पत्ति लैटिन भाषा के "एडूकेटम'' शब्द से हुई है। लैटिन में 'ई' का अर्थ है "अन्दर से बाहर'' और "डूको'' का अर्थ है "निकालना''। अत:: "एडूकेटम'' का अर्थ है "अन्दर से बाहर की ओर निकालना''। इस दृष्टि से एजूकेशन का तात्पर्य व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों एवं योग्यताओं के विकास से है।

शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा

जब हम व्यापक अर्थ में शिक्षा को लेते हैं तब शिक्षा केवल वह नहीं होती जिसे स्कूलों में प्रदान किया जाता है। व्यापक अर्थ में शिक्षा सम्पूर्ण जीवन तक चलने वाली प्रक्रिया है। व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक कुछ न कुछ सीखता रहता है, नयी बातों और नये अनुभवों को प्राप्त करता रहता है। इसलिए यह कहा जाता है कि शिक्षा जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है। इस तरह शिक्षा एक गतिशील विषय है। इसका रूप स्थिर नहीं है। शिक्षा में सरिता का स्वाभाविक प्रवाह होता है। शिक्षा चेतन है, जड़ नही। शिक्षा का सम्बन्ध जीवन से होने के कारण उसमें गति और ग्रहण करने की शक्ति है।[1] दूसरे शब्दों में, शिक्षा एक जीवित क्रिया है। यदि हम एक प्राकृतिक उदाहरण लें तो शिक्षा का अर्थ स्पष्ट हो जाएगा। यह उदाहरण उस कमल का है जो सूर्य का प्रकाश पाकर खिल उठता है और सूर्यास्त होने पर कुम्हला जाता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति शिक्षा रूपी प्रकार पाकर कमल की भांति खिल उठता है और शिक्षा न मिलने पर अविकसित रहता है।

अत: व्यापक अर्थ में शिक्षा से हमारा तात्पर्य उस क्रिया से है जो मनुष्य को इस योग्य बनाती है कि वह समाज का उपयोगी प्राणी बनकर समाज को विकास में सहयोग प्रदान कर सके। शिक्षा वह कार्य है जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है। अत: शिक्षा के द्वारा मनुष्य सभ्य बनता है। अर्थात् उसकी आदिकालीन बर्बरता कम हो जाती है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य उन शक्तियों को विकसित करता है जो उसे सफलता प्राप्त करने में सहायक होती हैं। शिक्षा ऐसी कुछ नहीं है जो एक वस्तु के रूप में दी जा सके। शिक्षा तो एक प्रकार की "चेतना'' है जिसे मनुष्य स्वयं प्राप्त करता है। आदिकाल से मनुष्य सीखता आ रहा है और जो कुछ उसने सीखा है, उसे शिक्षा का रूप दिया। दूसरे शब्दों में, शिक्षा मानव समाज की संचित सीख है जिसे परम्परा और परिस्थिति के अनुसार मनुष्य ग्रहण करता है।

विभिन्न विद्वानों ने शिक्षा की परिभाषा भिन्न-भिन्न दृष्टियों से की है। इसलिए उनमें शिक्षा की किसी एक परिभाषा पर मतैक्य नहीं है, जो कि शिक्षा की व्यापकता को देखते हुए सम्भव भी नहीं है। अब हम कुछ विद्वानों की परिभाषाओं पर विचार करेंगे।

रूसो- "शिक्षा जीवन हैं शिक्षा का केन्द्र बालक है। इसलिए शिक्षा का ध्येय व्यक्तित्व का उत्कर्ष है।'' इस परिभाषा से यह विदित होता है कि रूसो शिक्षा को व्यापक अर्थ में ग्रहण करता था। इसलिए उसने कहा कि शिक्षा जीवन है। दूसरे शब्दों में, सम्पूर्ण जीवन भर हम शिक्षा ग्रहण करते रहते हैं।

पेस्तालात्सी- पेस्तालात्सी के अनुसार, "शिक्षा हमारी अन्त: शक्तियों का विकास है ऊपर से लादा हुआ ज्ञान नहीं है। वह स्वयं बच्चे की कार्यशीलता तथा उसके अनुभवों का परिणाम है।'' अत: पेस्तालात्सी का मत है कि शिक्षा मनुष्य को इस योग्य बनाती है कि वह ईश्वर द्वारा प्रदत्त शक्तियों का उपयोग करे और समाज का उपयोगी सदस्य बने। इसीलिए पेस्तालात्सी ने कहा है "शिक्षा मनुष्य की समस्त शक्तियों का स्वाभाविक, समरस तथा प्रगतिशील विकास है।''

हमारे देश के महान् विचारक और सन्त स्वामी विवेकानन्द ने भी शिक्ष का अर्थ बताते हुए कहा है कि "मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना शिक्षा है।'' स्वामी विवेकानन्द जिस अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति का उल्लेख करते हैं, वह आध्यात्मिक है और उस मुक्ति के लिए आवश्यक है जिसका उल्लेख गाँधीजी ने भी किया है।

व्यापक अर्थ में सम्पूर्ण समाज शिक्षा प्रदान करने वाली संस्था हैं समाज का प्रत्येक प्रौढ़ व्यक्ति शिक्षक होता है। हम सदा कुछ न कुछ किसी न किसी से सीखते रहते हैं। ऐसा इसलिए करते हैं कि हम जीवन में समंजन प्राप्त कर सकें। इस दृष्टि से समाजीकरण की प्रक्रिया भी व्यापक अर्थ में शिक्षा है।

वास्तव में सारे देश में बुनियादी शिक्षा को सुधारने की आवश्यकता है, विशेषतया ग्रामीण, कठिन क्षेत्रों में, जहाँ निर्धन-दलितों के बच्चे पढ़ते हैं। अलग स्कूल खोलने की अपेक्षा यत्र-तत्र सर्वत्र सभी के लिए स्तरीय स्कूल चलाने की जरूरत है।[2] स्कूल खोलकर, सभी सुविधाएँ देकर, ये भी सतत जानकारी तथा प्रयास रखने चाहिए कि वहाँ सारा साल पढ़ाई हो, अध्यापक पढ़ाएँ और विद्यार्थी पढ़ें। यही 'नई शिक्षा नीति' (सन् 1986-92) में सारांशत: कहा गया है।

सभी को पास करना

शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर सभी को अगली श्रेणी में बिठाने के सिद्धांत से बहुत-से राज्यों में शिक्षा का सर्वनाश हो गया है। आन्ध्र प्रदेश में सैकड़ों स्कूलों के परिणाम शून्य रहते जब आगे चलकर बोर्ड की परीक्षा हुई। यह स्थिति कई वर्षों तक चलती रही। अन्य राज्यों में भी स्थिति सुखद नहीं है। यदि गत वर्षों के आठवीं परीक्षा के परिणामों पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि अधिकतर राज्यों में ये परीक्षाफल 30 तथा 40 प्रतिशत के बीच रहते हैं। कई स्कूलों का परिणाम 0 से 10 प्रतिशत के मध्य ही रहता है। यह ठीक है कि सी.बी.एस.सी. के परिणाम इतने बुरे नहीं आते, परन्तु ये संस्थाएँ गिनी-चुनी हैं और साधारण स्कूलों से प्राय: बेहतर होती है।

वस्तुत: सभी को पास करने के सिद्धांत में कोई त्रुटि नहीं है। परन्तु इसमें निहित भेद को, आशय को समझने की आवश्यकता है। सभी को पास करो, पर पढ़ाकर, ऐसे नहीं। पढ़ाई तो ठीक ढंग से हो नहीं पाती, न ही इसके लिए विशेष ध्यान दिया जाता है। प्राइमरी स्कूलों में न किसी को इन्स्पेक्शन का डार है, न बोर्ड की परीक्षा का। बच्चों को भी फैल होने का डर नहीं, न अध्यापकों को अच्छे परिणाम देने की चिन्ता। बहुत अध्यापक रोज स्कूल जाते ही नहीं, कई जाते हैं तो वहाँ दिल लगाकर पढ़ाते नहीं।

चार स्तर हैं[4] कार्य को चलाने के। पहले, सुशिक्षित अध्यापक हों, दूसरे, वे प्रत्येक दिन स्कूल जाएँ, तीसरे, जब नित्यप्रति जाएँ तो मन लगाकार पढ़ाएँ, चौथे, वे पढ़ाने के अतिरिक्त और मार्गदर्शन भी करें, स्कूलों को प्रत्येक दिशा में चमकाएँ। अब सभी सुधार चौथे स्तर पर आरम्भ होते हैं। परन्तु बहुधा हम पहले-दूसरे स्तर पर भी नहीं हैं। अत: 'न फेल' जैसे सुधारों की बात निरर्थक-सी प्रतीत होती है।

अत: प्राथमिक शिक्षा को व्यावसायिक दृष्टिकोण से देखने की आवश्यकता है। सभी इसे सुदृढ़ करने की बात करते हैं। भारत सरकार ने पांचवीं तक सभी को मुफ्त शिक्षा देने की बात कही है। बहुत बार इसका एकमात्र उपाय अधिक धन या अध्यापक वर्ग को अधिक वेतनमान देना समझ लिया जाता है जो एक भ्रान्ति है। धन चाहिए, परन्तु केवल ध नही सुधार नहीं जा सकता। यह देखना और भी आवश्यक हो जाता है कि एक-एक पैसा ठीक ढंग से खर्च हो रहा है या नहीं। क्या व्यवस्था इतनी चुस्त है कि शिक्षा-संस्थाओं में सारा साल सुचारुरूपेण पठन-पाठन कार्य विधिपूर्वक चले? यदि नहीं, तो धन को कुएँ में फेंकने का भी क्या लाभ, विशेषताया जब इसके लिए विदेशों से ऋण लिया जा रहा है?

पढ़ाई न होने के कई कारण हैं। प्राथमिक स्तर पर भवनों, पाठ्य-सामग्री की कमी की बात कही जाती है। परन्तु यदि अध्यापक जागरूक हों, प्रेरित हों तो भवनों की कमी का बहुत कुप्रभाव नहीं पड़ता। बाहर, वृक्षों के नीच भी पढ़ाई करवाई जा सकती है। और फिर क्या अध्यापन सामग्री चाहिए प्राथमिक कक्षाओं के लिए? नगर की संस्थाओं में, जहाँ ये सारी सुविधाएँ हैं, कहाँ अच्छे ढंग से पढ़ाई हो पाती है?

पब्लिक स्कूलों में फेल करने की व्यवस्था है। यह दूसरी बात है कि वहाँ बहुत कम बच्चे फेल होते हैं क्योंकि वहाँ अभिभावक आमतौर पर जागरूक रहते हैं। पढ़ाई नियमानुसार, लगातार और बेहतर होती है। सभी की लालसा होती है कि अपने बच्चों को वहाँ भेजें, नि:शुल्क सरकारी स्कूलों में नहीं। इसका अर्थ है कि माता-पिता सभी पास के सिद्धांत को लाभप्रद नहीं समझते। पाँचवीं तक सबको पास कर भी दिया, तो कौन-सा तीर मार लिया। आगे भी तो प्रत्येक कदम पर परीक्षाएँ होनी हैं, छँटनी होनी है। जब आधार ही कमजोर रह जाए तो आगे चलकर विद्यार्थी कुछ नहीं कर पाते हैं। यही कारण है कि आगे चलकर केवल नकल द्वारा बहुत से विद्यार्थी पास होने का प्रयास करते हैं।

वस्तुत: न फेल, आदि के सुधार काल्पनिक तथा हानिकारक प्रतीत 72 होते हैं। आज आवश्यकता तो इस बात की है कि पहले सभी क्षेत्रों, राज्यों में प्राइमरी शिक्षा का यथार्थ जायजा लिया जाए। यह पता लगाया जाए कि प्रत्येक स्थान, क्षेत्र में इसकी वास्तविक स्थिति क्या है। इसके लिए प्राथमिक शिक्षा आयोग राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर पर बनाए जाएँ। वस्तु-स्थिति की सही जानकारी होने पर इस शिक्षा स्तर को सुदृढ़ बनाने हेतु ठोस, स्थानीय स्थिति के अनुसार, कार्यक्रम सुलझाए जाएँ। मन में ऊँचे ध्येय हो, पर देश-प्रदेश की वास्तविकता कार्य-विधि का मूल आधार हो।

साधारण स्कूल पद्धति

क्या सभी के लिए साधारण एक स्कूल पद्धति भारतवर्ष में चल सकती है ? हिमाचल प्रदेश में ही नहीं अपितु सारे देश में प्राय: साधारण शिक्षा संस्थाएँ ही चल रही हैं। 90 प्रतिशत विद्यार्थी इन्हीं में शिक्षा पा रहे हैं। परन्तु कई निजी स्कूल खुल गए हैं और माता-पिता तथा विद्यार्थियों का रुझान उन्हीं की ओर बढ़ता जा रहा है। जो अभिभावक धनी हैं वे अपने बच्चों को ऐसी निजी संस्थाओं में भेजना पसन्द करते हैं। आज एक धारणा जोर पकड़ती जा रही है कि निजी संस्थाओं की पढ़ाई बेहतर है।

इस प्रवृत्ति को प्रकट रूप में रोकने का प्रयास भी किया जा रहा है। स्कूल बनाकर निजी संस्थाओं को अपने, सरकारी अधीन किया जाए। क्यों भला? ये अध्यापकों को वेतन ठीक नहीं देते, अपने परिणामों से अच्छे विद्यार्थियों को खींच लेते हैं, वहाँ यह नहीं है, वह नहीं है। यदि वहाँ कुछ नहीं है, तो लोग जिनमें आलोचक भी बड़ी मात्रा में शामिल हैं, अपने बच्चों को वहाँ क्यों भेजते हैं ? वहाँ अपेक्षाकृत पढ़ाई बेहतर कैसे हो पाती हैं ? कहना आसान है, पर इन प्रश्नों के उत्तर दे पाना कठिन है।

साँझा स्कूल पद्धति (कॉमन स्कूल सिस्टम)

साँझा स्कूल पद्धति (कॉमन स्कूल सिस्टम) पर इस परिचर्चा हेतु राष्ट्रीय स्तर के समाचार-पत्रों में विज्ञापन देकर प्रपत्र मँगवाए गए थे। राष्ट्रीय परिषद को इस विषय पर देश भर से 285 निबन्ध प्राप्त हुए। उनमें से 41 को (35 पुरुषों द्वारा लिखित, 12 महिलाओं द्वारा रचित, 41 अंग्रेजी में, 6 हिन्दी में लिखित)

गम्भीर चर्चा हेतु चुना गया था। इन 47 में से 43 लेख कइस पद्धति के हक में थे, केवल 4 ने इस प्रणाली का विरोध किया था। इस तरह इन लेखकों सहित 70 से ऊपर विद्वानों, शिक्षा प्रशासकों, शिक्षाविदों तथा अन्य क्षेत्रों में अनुभवी लोगों को इस संगोष्ठी में परिचर्चा हेतु सारे देश से बुलाया गया। 2 दिन जमकर बहस हुई।

एक स्कूल प्रणाली के साथ-साथ शिक्षा के अन्य पहलू भी परिचर्चा की परिधि में आए। लगभग सभी सिद्धांत रूप में दो बातें मानते थे, कॉमन स्कूल सिस्टम है ठीक, पर इसे निष्ठा से ला पाना बहुत कठिन है।[5] वास्तव में इस प्रणाली की सिफारिश सबसे पहले कोठारी कमीशन (सन् 1964-66) ने की थी, सन् 1968 की शिक्षा नीति का इसे एक अंग बनाया गया था। सन् 1986 की शिक्षा नीति में इस पर केवल एक वाक्य लिखा गया है। सन् 1990 में, आचार्य रामामूर्ति रिपोर्ट में इसकी ओर पुनः ध्यान आकर्षित किया गया। परन्तु जब सन् 1992 में इस रिपोर्ट का पुनः अध्ययन जनार्दन रेड्डी कमेटी ने किया तो इस बात को फिर अनदेखा कर दिया गया। अतः इसके 'एक्शन कार्यक्रम' इसकी बात तक नहीं हैं। यही एक मुख्य कारण है कि शिक्षा प्रणाली एक स्कूल पद्धति से बहुत दूर होती गयी और प्राईवेट/पब्लिक स्कूलों की संख्या बढ़ने लगी।

आरम्भ से अंग्रेजी

भारतवर्ष में भाषाओं के विषय में मैट्रिक तक की शिक्षा के लिए त्रि-शिक्षा फार्मूला बना है और लगभग सब जगह किसी-न-किसी रूप से इस पर आचरण किया जा रहा। परन्तु समस्या तब आती है जब भाषा का मूल उद्देश्य भूलकर इसका बँटवारा स्वार्थ के लिए कर दिया जाता है। अंगेजी के साथ यही हो रहा है। देश की स्वतंत्रता के बाद यह प्रवृति बहुत जोर पकड़ गई है। स्वदेशी शिक्षा की व्यवस्था करने वाली अग्रणी संस्थान तीन बातों का मुख्यतया ध्यान रखती थी। प्रथम, भारतीय भाषाओं की पढ़ाई, सहशिक्षा का बहिष्कार, अंग्रेजी भाषा को बुनियादी शिक्षा में पहली से आरम्भ न करना। परंतु समयानुसार उन्होंने अंग्रेजी पद्धति अपना रखी। इनके तथाकथित स्कूलों या पब्लिक संस्थाओं में पहली कक्षा से ही सहशिक्षा के साथ अंग्रेजी की पढ़ाई होती है, तथ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से 'अर्थ' ही मुख्य ध्येय रह गया प्रतीत होता है।

यह देखा गया है कि साधारणतः माता-पिता, विशेषतया ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में, अपने बच्चों के लिए, अच्छी स्तर की लाभदायक शिक्षा चाहते हैं जिसमें अंग्रेजी का भी पुट हो और वह बहुत महँगी भी न हो। इसके लिए अंग्रेजी का प्रथम कक्षा से आरम्भ करना उचित होगा। परन्तु यदि सम्पूर्ण व्यवस्था तथा स्तर की ओ विशेष ध्यान नहीं दिया गया तो अंग्रेजी का आरम्भ करना निरर्थक होगा, हानिकारक भी। इससे केवल 'अनपचे ज्ञान' का बोझ बढ़ेगा जो बच्चे के मानसिक विकास को रोकेगा। अध्यापकों की कमी और अधिक अनुभव होगी।

संदर्भ

1. Ainscow, Mel. 1994. Special Needs in the Classroom. A Teacher- Education Guide. London: Jessica Kingsley: Paris: United Nations Educational, Scientific, and Cultural Organization.
2. Ayyar, R. V. Vaidyanathan. 1993a. "Educational Planning and Administration in India: Retrospect and Prospect." Journal of Educational Planning and Administration 7(2): 197-214.8193
3. Chattopadhya, Raghabedra. 1995. "Universalization of Primary Education: Policy Bug." Paper presented at the international seminar, Research on School Effectiveness and Learning Achievement at Primary Stage, National Council of Educational Research and Training, New Delhi, July. Processed.
4. Dave, P. N. Forthcoming. "Primary Education: A Trend Report." In NCERT, Fifth Survey of Research Education. New Delhi: National Council of Educational Research and Training.
5. George, P. S. 1994a. "Management of Education in Kerala." Centre for Development Studies, Bangalore. Processed.

ग्रामीण गरीबी निवारण एवं विकास हेतु कृषि एवं रोजगार

गंगाराम

शोध छात्र, अर्थशास्त्र विभाग, सहकारी पी0जी0 कालेज मेहरावां जौनपुर

हमारे देश में विकास नीतियों का निर्धारण मुख्यत: नगरों को लक्ष्य मानकर बनाया गया और ग्रामीण क्षेत्र पृष्ठ पोषक रहे। नगरों में मुख्यत: उद्योग-धन्धे तथा ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि के विकास से ही विकास की कल्पना की गयी। सम्प्रति विकास नीति केबदलते परिवेश में कृषि नवीनीकरण के फलस्वरूप ग्रामीण-नगरीय स्थानान्तरण बढ़ा है तथा ग्राम के कृषि उत्पादन अतिरेक नगरों की ओर विपणन प्रणाली के माध्यम से पहुंचते हैं। लेकिन, सशक्त विपणन प्रणाली के अभाव एवं आर्थिक द्वैतवाद के फलस्वरूप नगरीय क्षेत्र ग्रामीण क्षेत्रों के शोषक बन गये हैं। ग्रामीण क्षेत्रों से आने वाली वस्तुओं का मूल्य नगरों में अधिक हो जाता है और नगरीय उपभोक्ता समुदाय इस बढ़े मूल्य से निरन्तर परेशान है। उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों ही इस द्वैतवाद के शिकार हैं। नगरीय क्षेत्रों के औद्योगिक उत्पादन ग्रामीण क्षेत्रों में मात्र विनिर्माण लागत के कारण मंहगे मिलते हैं। ये ग्रामीण क्षेत्रों में भी निर्मित किये जा सकते हैं। ग्रामीण उत्पादों के कम एवं नगरीय उत्पादों के सापेक्ष्यत: अधिक मूल्य होने के फलस्वरूप ग्रामीण उत्पादक एवं नगरीय उपभोक्ता समुदाय त्रस्त है। बीच का अल्पसंख्यक मुनाफाखोर वर्ग आर्थिक द्वैत को बढ़ा दे रहा है। नगरों द्वारा सीमा में सम्मिलित ग्राम भी विपन्नावस्था में हैं, क्योंकि उनमें आर्थिक सहायता एवं अवसंरचना का विकास नहीं हो पा रहा है। आर्थिक द्वैत के संदर्भ में यह एक छोटा सा प्रमाण है। ग्रामीण क्षेन्नों के उत्पादन अतिरेक के मूल्य कम होने से ग्रामीण उत्पादन प्रभावित हो रहा है। ग्रामों में भण्डारण की व्यवस्था भी अपर्याप्त है। फलस्वरूप, नगरीय एवं ग्रामीण अन्तर्निर्भरता की स्वाभाविकता में तनाव का अनुभव किया जा रहा है। नगरीय सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में असन्तुलन का मुख्य कारण ग्रामीण क्षेत्रों का समुचित विकास न होना है।

वस्तुत: भारत में नगरों के विकास पर अधिक ध्यान दिया गया और ग्रामों में रचनात्मक विकास पर सापेक्ष्यत: कम ध्यान दिया गया। ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के खाद्यान्न में राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता लाने के साथ कुछ कृषितर क्रियाकलापों को ग्रामों एवं छोटे सेवा केन्द्रों पर स्थापित करके ग्रामीणों को सेवा एवं रोजगार के नये अवसर प्रदान किये जा सकते हैं। कृषि उत्पादों पर आधारित उद्योगों के विकास, कृषि उत्पादन में वृद्धि, अवसंचना तथा संस्थागत एवं अन्य क्रियाकलापों के विकास द्वारा ग्रामीण क्षेत्र का कायाकल्प किया जा सकता है। इस प्रकार कतिपय ग्रामीण अधिवास सेवा केन्द्र का रूप भी ले सकते हैं। लेकिन इसमें मुख्यत: स्थानीय संसाधनों के साथ सामाजिक एवं वातावरणीय संतुलन पर भी ध्यान देना आवश्यक है। अवधारणात्मक दृष्टि से, नगर-ग्राम अन्तर्निर्भरता एवं अर्न्तक्रिया का अध्ययन उनके आर्थिक एवं क्रियात्मक गतिशीलता के आधार पर किया जा सकता है। भारत में प्राचीन काल से ही नगर एवं ग्राम एक दूसरे से सम्बद्ध रह कर पारस्परिक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पक्षों में सम्पूरक थे।

ग्रामीण विकास विभिन्न तकनीकी, आर्थिक, सामाजिक एवं संस्थागत कारकों के बीच अंत: क्रिया का अंतिम परिणाम है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति के खेत में कुल उत्पादन बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि स्थानीय पारिस्थितिकीय एवं सामाजिक-आर्थिक स्थितियों के अनुकूल नयी प्रौद्योगिकी को अपनाया जाए, किसानों को उसके प्रयोग के बारे शिक्षित एवं प्रशिक्षित किया जाए, पर्याप्त संसाधनों को उचित समय एवं स्थान पर उपलब्ध कराया जाए एवं आपूर्ति तथा विपणन के लिए सेवा सुविधाओं की आवश्यक अधासंरचना तैयार की जाए। अंततोगत्वा, फिर भी उत्पादक की इन उपायों के प्रति प्रतिक्रिया ही विकास नियोजन की सफलता अथवा असफलता को निर्धारित करती है। विकास नियोजन के क्षेत्र दृष्टिकोण में लोगों की भूमिका, उनकी क्षमता एवं उनके अभिप्रेरण पर बल दिया जाता है। इसके अतिरिक्त यह एकीकृत दृष्टिकोण है, इस अर्थ में कि यह विकास प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारकों के महत्व को निर्धारित करता है।

विकास नियोजन में क्षेत्र दृष्टिकोण, भारत में राष्ट्रीय नियोजन के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्यों की प्राप्ति में योगदान दे सकते है-

1. पिछडे क्षेत्र के विकास को गति देना।
2. विकास एवं संवृद्धि में अन्तर क्षेत्रीय असमानताओं को कम करना।
3. कृषि एवं अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के सन्दर्भ में राष्ट्रीय नियोजन का एकत्रीकरण प्रदान करना।
4. नियोजन एवं क्रियान्वयन के विभिन्न स्तरों पर समन्वय एवं एकीकरण को सहज करना।
5. समग्र क्षेत्र विकास नियोजन के साथ कृषि एवं ग्रामीण विकास को समन्वित करना।
6. विकास परियोजनाओं को तैयार करने एवं क्रियान्वयन की प्रक्रियाओं में लोगों की व्यापक भागीदारी को बढ़ावा देना।

ग्रामीण विकास नियोजन के सन्दर्भ में सूक्ष्म स्तरीय नियोजन की निम्नलिखित भूमिका है-

1. कृषकों (या अन्य कोई ग्रामीण उत्पादकों) की उत्पादन आगत एवं साख की भावी जरूरतों को बताना, ताकि एक उपयुक्त आपूर्ति योजना तैयार की जा सके।

2. ग्रामीण व्यावसायिक इकाइयों के पुनर्गठन के लिए सबसे अच्छे विकल्प का निर्धारण करना, ताकि सार्वजनिक सेवाओं एवं सुविधाओं का पूरी तरह उपयोग हो सके।
3. ग्रामीण विकास परियोजनाओं का निर्माण एवं मूल्यांकन करने हेतु बुनियादी जानकारी प्रस्तुत करना।
4. प्रौद्योगिकी, कीमतों, सार्वजनिक कार्यक्रमों एवं ग्रामीण उत्पादन की नीतियों, आय एवं रोजगार में परिवर्तन के प्रभावों को प्रस्तुत करने में सहायता करना।
5. ग्रामीण विकास विस्तार कार्यकर्ता को ग्रामीण उत्पादकों के साथ प्रभावी संबंध स्थापित करने तथा उन्हें कृषि की वैज्ञानिक विधियों में शिक्षित करने में सहायता प्रदान करना।

ग्रामीण विकास नियोजन के सन्दर्भ में सूक्ष्म स्तरीय नियोजन की निम्नलिखित भूमिका है-

1. कृषकों (या अन्य कोई ग्रामीण उत्पादकों) की उत्पादन आगत एवं साख की भावी जरूरतों को बताना, ताकि एक उपयुक्त आपूर्ति योजना तैयार की जा सके।
2. ग्रामीण व्यावसायिक इकाइयों के पुनर्गठन के लिए सबसे अच्छे विकल्प का निर्धारण करना, ताकि सार्वजनिक सेवाओं एवं सुविधाओं का पूरी तरह उपयोग हो सके।
3. ग्रामीण विकास परियोजनाओं का निर्माण एवं मूल्यांकन करने हेतु बुनियादी जानकारी प्रस्तुत करना।
4. प्रौद्योगिकी, कीमतों, सार्वजनिक कार्यक्रमों एवं ग्रामीण उत्पादन की नीतियों, आय एवं रोजगार में परिवर्तन के प्रभावों को प्रस्तुत करने में सहायता करना।
5. ग्रामीण विकास विस्तार कार्यकर्ता को ग्रामीण उत्पादकों के साथ प्रभावी संबंध स्थापित करने तथा उन्हें कृषि की वैज्ञानिक विधियों में शिक्षित करने में सहायता प्रदान करना।

ग्रामीण क्षेत्रो के समग्र विकास हेतु रोजगार

आजादी के बाद से ग्रामीण बेरोजगारी भारत की एक प्रमुख समस्या रही है। पिछले लगभग 6 दशकों में गांवों में रोजगार के नए अवसर जुटाकर गरीबी दूर करने के इरादे से केन्द्र तथा राज्य सरकारों की ओर से समय-समय पर अनेक योजनाएं और कार्यक्रम चलाए गए, जो इस प्रकार है-

1. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण योजनाएँ गारण्टी अधिनियम मनरेगा

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून 'नरेगा' 2 सितंबर 2005 को अस्तित्व में आया और इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम 2 फरवरी 2006 को लागू हो गया।[1] शुरू में यह कार्यक्रम देश के 200 जिलों में लागू किया गया। 2007-08 में इसका क्रियान्वयन 330 जिलों तक बढ़ाया गया और 1 अप्रैल 2008 से देश के सभी 614 जिलों में इसे लागू कर दिया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य गाँवों के उन परिवारों को साल में कम से कम 100 दिन का रोजगार दिलाना है जिनके वयस्क सदस्य बेरोजगार हैं और मेहनत-मजदूरी करने को तैयार हैं। इस कानून का मुख्य उद्देश्य गांवों में गरीबी दूर करके लोगों की क्रय शक्ति बढ़ाना और उनका जीवन-स्तर बेहतर बनाता है। यह कार्यक्रम समाज कल्याण और आम आदमी के उत्थान के उद्देश्य से चलाई गई उन प्रमुख योजनाओं का हिस्सा है जिन्हें लागू करने का वादा यू.पी.ए. सरकार ने न्यूनतम साझा कार्यक्रम के तहत किया था।

सरकार इससे पूर्व भी रोजगार सृजित करने की विविध योजनाएं चलाती रही है लेकिन पहले कभी भी रोजगार की कानूनी गारंटी नहीं दी गई थी। इस कार्यक्रम में वर्ष में कम से कम 100 दिनों का रोजगार मिल जाने से ग्रामीण परिवारों में आत्मविश्वास का स्तर ऊँचा उठ गया है। इससे ग्रामीण समुदाय में आर्थिक व सामाजिक विषमता कम करने में भी मदद मिल रही है।

'नरेगा' की सफलता का एक और आयाम यह है कि यह ग्रामीण विकास का इंजन बनकर सामने आ रहा है। इसकी बदौलत गांवों में विकास कार्यों तथा स्थायी परिसंपत्तियों के निर्माण को नई गति मिल रही है। यह कृषि आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने में सहायक सिद्ध हो रहा है।[2] इसे चलाने में पंचायती राज संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका के चलते ग्रामीण प्रशासन का विकेन्द्रीकरण हो रहा है और इस तरह लोकतंत्र तथा पारदर्शिता की जड़ें मजबूत हो रही है।

'नरेगा' के अन्तर्गत रोजगार देने की प्रक्रिया को यथासंभव सरल और पारदर्शी बनाने का प्रयास किया गया है, ताकि लोगों को नियम-कायदों के जंजाल से बचाया जा सके और उनका शोषण भी न होने पाए। जो भी ग्रामीण वयस्क मेहनत- मजदूरी करना चाहते हैं उन्हें ग्राम पंचायत में अपना नाम दर्ज कराना होता है। इन उम्मीदवारों की योग्यता आदि की जांच के बाद उन्हें पंचायत कार्यालय से 'जॉब कार्ड' जारी किया जाता है। जॉब कार्ड एक तरह से श्रमिक की रोजगार पासबुक है, जिसमें उसे मिले रोजगार का ब्यौरा दर्ज रहता है। इसमें परिवार के सभी वयस्क सदस्यों के फोटो लगे रहते है। जॉब कार्डधारी लोग पंचायत में आवेदन करके सूचित करते हैं कि उन्हें कब और कितने दिन का रोजगार चाहिए। इस प्रकार रोजगार की गारंटी की व्यवस्था लागू हो जाती है। यदि 15 दिन के भीतर रोजगार नहीं जुटाया जाता है तो आवेदक को बेरोजगारी भत्ते का नकद भुगतान किया जाता है। यह भी प्रावधान किया गया है कि रोजगार गांव से प्राय 5 किलोमीटर की दूरी में ही उपलब्ध कराया जाए। इससे अधिक दूर काम पर लगाए जाने की स्थिति में 10 प्रतिशत अतिरिक्त वेतन देना होगा। वेतन का भुगतान चेक द्वारा किया जाता है।

2. स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना

भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता उन्मूलन, स्वरोजगार को प्रोत्साहन, मजदूरी एवं पोषण को सुनिश्चित करने तथा समाज कल्याण के दायित्वों की पूर्ति हेतु केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा अनेक विकासपरक एवं कल्याणकारी कार्यक्रम संचालित किए जाते रहे हैं।[3] वर्तमान में जारी स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजनाका संक्षिप्त विवरण (प्रावधान) यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

यह योजना पूर्ववर्ती छः कार्यक्रमों-ट्राइसेम, द्वाकरा, सिट्रा, गंगा कल्याण योजना, दस लाख कुआँ योजना तथा आई.आर.डी.पी. को एकीकृत करके संचालित की जा रही है।

गाँवों में गरीब व्यक्तियों की क्षमता पर आधारित सूक्ष्म उद्यम स्थापित करने के लिये स्वग्र जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना की शुरूआत 1 अप्रैल, 1999 से की गई। केन्द्र एवं राज्य सरकार इस योजना में 75: 25 के अनुपात में व्यय करती है।

3. सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना

यह योजना पूर्ववर्ती जवाहर ग्राम समृद्धि योजना तथा सुनिश्चित रोजगार योजना को मिलाकर अप्रैल, 2002 से संचालित की जा रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में मजदूरी रोजगार एवं खाद्य सुरक्षा के साथ-साथ स्थायी स्वरूप के सामुदायिक, सामाजिक एवं आर्थिक संसाधनों का सृजन करना तथा इन्फ्रास्ट्रक्चर का विकास करना है।

देश की आर्थिक प्रगति और राष्ट्र निर्माण के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का विकास बहुत जरूरी है। समग्र विकास का लक्ष्य हासिल करने में कृषि और इससे संबंधित क्षेत्र देश की अर्थव्यवस्था के लिए काफी अहम हैं। केंद्र सरकार, राज्य सरकारों और कृषि विश्वविद्यालयों की लगातार कोशिशों से प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन, जरूरी सामग्री के बेहतर इस्तेमाल, कृषि में मौसम पर कम से कम निर्भरता का लक्ष्य हासिल करने और तकनीकी हस्तक्षेप के जरिए किसानों की हालत सुधारने में मदद मिली है।

अब गांवों के रास्ते देश को मजबूत करने के गर्म के साथ सरकार की तरफ से कई अहम योजनाएं चलाई जा रही है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने अपने दो साल के कार्यकाल में ग्रामीण इलाकों के तीव्र विकास को लेकर सांसद आदर्श ग्राम योजना, श्यामा प्रसाद मुखर्जी रुर्बन मिशन, दीनदयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना, प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना समेत कई नई योजनाएं शुरू की है। इन योजनाओं के कारण ग्रामीण विकास के साथ-साथ रोजगार में वृद्धि हुई है।

संदर्भ

1 Ali Ahmed, Fakhruddin (1971) : "New Strategy for Rural Development", India's Journal of Rural Development', 'Kurukshetra' Vol.20, No.3.

2 Arora, R.C. (1976) : Development of Agriculture and Allied Sectors : An Integrated Area Approach. S. Chand & Sons, Delhi.

3 Asmerom, H.K. (1989) : Development Administration and Rural Development Strategy in Kenya : A Review of Its Special Rural Development Prgrammes, In Chaturvedi, T.N. (Ed.) Rural development– Some Themes and Dimensions, Indian Institute of Public Administration, New Delhi.

शिक्षा के उद्देश्य एवं भारतीय शिक्षा की समस्याएँ

डॉ0 जितेन्द्र सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, टी0आर0एस0 कालेज ऑफ एजूकेशन एण्ड टेक्नोलॉजी, कौशाम्बी

किसी भी व्यक्ति, समाज, राष्ट्र के विकास में शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण योगदान होता है। हमारे देश के संदर्भ में यह बात और भी सच है। स्वतंत्रता के बाद नीति निर्माताओं ने अंग्रेजों द्वारा निर्मित कुलीनतावादी शिक्षा प्रणाली को जन सामान्य की उस शिक्षा प्रणाली में बदलने के लिए कठिन परिश्रम किया, जो समानता एवं सामाजिक न्याय के सिद्धांतों पर खड़ी थी। वर्ष 2009 में शिक्षा के अधिकार का विचार देते हुए इसे मौलिक अधिकार बना दिया गया और राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा भी की गई। उसके बाद से नीति निर्माताओं ने सर्व शिक्षा अभियान और मध्याह्न भोजन योजना जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से सभी को शिक्षा उपलब्ध कराने का प्रयास किया है। आज भारत को तेजी से विकसित होती अर्थव्यवस्था के रूप में ही नहीं बल्कि उपयुक्त एवं शिक्षित व्यक्तियों वाले शक्तिशाली मानव संसाधन के विशाल समूह के रूप में भी अंतर्राष्ट्रीय मंच पर गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। उच्च शिक्षित, तकनीक को समझने वाले और वैज्ञानिक तरीके से प्रशिक्षित भारतीय नागरिक दुनिया के कोने-कोने में विभिन्न प्रकार के काम कर रहे हैं और भारत का मान बढ़ा रहे हैं।[1]

इस तथ्य को सभी मानते हैं कि किसी भी व्यक्ति, समाज, राष्ट्र के विकास में शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसमें भी मूल स्रोत प्राथमिक शिक्षा होती है। परन्तु भारतवर्ष में प्राइमरी शिक्षा भी ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया। यह कटु सत्य है कि देश ने बहुत सारी निरक्षर जनसंख्या के साथ इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश किया है। अब यह जानने की आवश्यकता है कि भारत में बुनियादी शिक्षा की वास्तविक स्थिति क्या है, इसका प्रसार करने, इसमें सार्थकता, सुदृढ़ता एवम् गुणवत्ता लाने के मार्ग में कौन-कौन सी रुकावटें रही हैं, और कैसे उन्हें दूर किया जा सकता है। प्राथमिक शिक्षा चुनौति एवं समस्याएँ करने का एक प्रयास है।

शिक्षा के उद्देश्य

शिक्षा एक सौद्देश्य प्रक्रिया है। विभिन्न शिक्षा-दार्शनिकों के पारस्परिक दृष्टि भेद के कारण उनके द्वारा निर्धारित शिक्षा के उद्देश्यों में कुछ भिन्नता भले ही दृष्टिगोचर होती हों, परन्तु वे उद्देश्यों की चर्चा न करें ऐसा कदापि संभव नहीं है। जीवन की प्रत्येक गतिविधि का कोई न कोई पूर्व-उद्देश्य अवश्य होता है। अत: शिक्षा जैसी अति महत्वपूर्ण प्रक्रिया निरुद्देश्य हो, यह कैसे संभव है। शैक्षिक प्रक्रिया को दिशा, क्रमबद्धता व गति प्रदान करने का कार्य सुविचारित, सुनिश्चित व स्पष्ट शैक्षिक उद्देश्यों के बल पर ही हो पाता है।

उद्देश्यों का निर्धारण अनेक कारणों से प्रभावित होता है। दार्शनिक-सामाजिक-आर्थिक दर्शन एवं देश-काल परिस्थितियों का प्रभाव शैक्षिक उद्देश्यों पर पड़ता है।[2]

जीविकोपार्जन का उद्देश्य

शिक्षा के उद्देश्य के सम्बन्ध में जन सामान्य का यह विचार है कि शिक्षा जीविका-निर्वाह में सहायता प्रदान करे। जीवन, जो संघर्षों का दूसरा नाम है, इस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देता है जिनके लिए व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से मुकाबला करना पड़ता है। एक व्यक्ति चाहता है कि वह दूसरे से बढ़ जाए। इस तरह के मुकाबले और छीना-झपटी की दशा में शिक्षा को एक ऐसा साधन बनाया जाता है जो इस काम में सहायता पहुँचाए। इन कारणों से जन-साधारण की दृष्टि में शिक्षा का उद्देश्य जीविका-निर्वाह में सहायता प्रदान करना है।

बौद्धिक उद्देश्य

जीविका-निर्वाह की प्रतिक्रिया शिक्षा का बौद्धिक उद्देश्य है। जीविका-निर्वाह के उद्देश्य के कारण शिक्षा उस व्यावहारिकता और कार्य में उलझी रही जिससे बुद्धि का विकास रुक गया। इस कमी को पूरा करने के लिए शिक्षा का उद्देश्य बौद्धिक बना दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि शिक्षा से व्यावहारिकता हट गई। अब शिक्षा केवल बुद्धि का विकास हो गई। इस प्रकार शिक्षा केवल ज्ञानोपार्जन के उद्देश्य से दी जाने लगी। बुद्धि का विकास व्यावहारिकता से विद्रोह करके होने लगा। इसका प्रभाव यह पड़ा कि शिक्षा का बौद्धिक उद्देश्य मन को भोजन भले ही दे सका लेकिन तन सूखने लगा। यदि बौद्धिक उद्देश्य में इस बात का ध्यान रखा जाता कि मनुष्य को भोजन की आवश्यकता पड़ती है और भोजन प्राप्त करने के लिए कार्य करना पड़ता है तो बौद्धिक उद्देश्य सफल होता। इस प्रकार शिक्षा का केवल बौद्धिक उद्देश्य भी स्वीकार नहीं किया जा सकता।

जीवन की पूर्णता: स्पेन्सर का उद्देश्य

संसार के प्रसिद्ध शिक्षा विशेषज्ञ हरबार्ट स्पेन्सर ने शिक्षा का उद्देश्य जीवन की पूर्णता बताया है। स्पेन्सर का मत है कि शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य-जीवन को सब प्रकार से पूर्ण बनाना है। जीवन की पूर्णता है क्या? उसने कहा कि जिस वस्तु का जीवन में कम महत्व है उसकी ओर कम ध्यान देना चाहिए। इन बातों का ध्यान रखते हुए स्पेन्सर ने जीवन के विभिन्न कार्यों का उने महत्व के अनुसार निम्नलिखित वर्गीकरण किया है-

1. वे कार्य जो प्रत्यक्ष रूप से आत्मरक्षा में सहायक होते हैं।
2. वे कार्य जो जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति द्वारा परोक्ष रूप से आत्मरक्षा में सहायक होते हैं।
3. वे कार्य जो सन्तान के पालन-पोषण और शिक्षा के लिए आवश्यक हैं।
4. वे कार्य जो सामाजिक और राजनीतिक सम्बन्धों को अच्छा बनाए रखने के लिए आवश्यक है।
5. वे कार्य जो अवकाश के समय किए जाते हैं।

स्पेन्सर का विचार है कि मनुष्य प्रतिक्षण किसी न किसी कार्य में लगा रहता है। यदि वह प्रत्येक कार्य को ठीक-ठीक करता है तो वह सफल जीवन व्यतीत करता है। इसी उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए स्पेन्सर महोदय ने शिक्षा में उन विषयों को स्थान दिया है जो मनुष्य की जीवन-रक्षा से प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सम्बन्धित होते हैं, जिनके द्वारा मनुष्य सन्तान और समाज की रक्षा कर सकता है और फिर जिनकी सहायता से वह फ़ुरसत का समय अच्छी तरह बिता सकता है।

हरबार्ट का नैतिक उद्देश्य

हरबार्ट जर्मनी का प्रसिद्ध शिक्षा-विशेषज्ञ था। हरबार्ट ने शिक्षा का वह उद्देश्य निश्चित किया जिसकी कि स्पेन्सर के उद्देश्य में कमी थी। हरबार्ट ने शिक्षा का उद्देश्य नैतिक रखा। हरबार्ट का विचार था कि मनुष्य में कुछ ऐसी वृत्तियाँ पायी जाती हैं जिनका सुधार करना आवश्यक है। मनुष्य के कुछ कार्य सामाजिक दृष्टि से उचित नहीं है। दूसरे शब्दों में, हरबार्ट का यह मत था कि शिक्षा का उद्देश्य ऐसा होना चाहिए जिसमें मनुष्य अपनी दुर्बलताओं को दूर कर सके और वह ऐसा आचरण करे जो सबको पसन्द हो। इस प्रकार हरबार्ट शिक्षा का उद्देश्य चरित्र-निर्माण मानता था। जीवन के लिए अच्छे चरित्र की आवश्यकता है क्योंकि बिना अच्छे चरित्र के सुख और शान्ति सम्भव नहीं। इसलिए जीवन को सुखी बनाने के लिए हरबार्ट महोदय ने शिक्षा का नैतिक उद्देश्य बताया।

सामाजिक उद्देश्य

समाज का एक स्थिर रूप नहीं होता। वह बदलता रहता है। समाज में पविर्तन के साथ नीति के रूप में भी परिवर्तन होता है। इस सिद्धांत को शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य स्वीकार करता है। समाज के हित के लिए ही व्यक्ति है इसलिए व्यक्ति में शिक्षा वह क्षमता उत्पन्न कर दे कि वह समाज का कल्याण कर सके। उसका जीवन समाज के लिए भार-तुल्य न हो। वह समाज के हित के लिए अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग करने में कुशल हो। वह भली-भाँति समाज के लिए उपयोगी बन सके, यही शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य है।

भारतीय शिक्षा की समस्याएँ

भारतीय शिक्षा की समस्याएँ में प्राथमिक शिक्षा की मुख्य दो समस्याएं है-

(क) अपव्यय,

(ख) अवरोधन

(क) **अपव्यय**- शिक्षा में अपव्यय का सर्वमान्य अर्थ है उन छात्रों पर समय, धन और शक्ति का अपव्यय जो सफलतापूर्वक अपनी शिक्षा को पूर्ण नहीं करते हैं। अपनी पढ़ाई प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने के पहले ही छोड़ देते हैं और जीविकोपार्जन में लग जाते हैं। अत: वे कुछ दिनों के बाद पड़ी हुई बातों को भूलकर निरक्षर कहलाने लगते हैं।

(ख) **अवरोधन**- प्राथमिक शिक्षा की दूसरी मुख्य समस्या अवरोधन है। अवरोधन का अर्थ स्पष्ट करते हुए हर्टांग-समिति ने लिखा है- ¶By stagnation we mean the retention in a lower class of a child for period of more than one year.** अर्थात् 'अवरोध' से हमारा अभिप्राय है एक बच्चे का निम्न कक्षा में एक वर्ष से अधिक रोका जाना।' अवरोधन का प्रमुख कारण परीक्षा में अनुत्तीर्ण होना है। प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों में से लगभग 40 प्रतिशत छात्रों को परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने के कारण एक कक्षा में एक-से अधिक वर्ष व्यतीत करना पड़ता है। इस प्रकार जो छात्र 4 या 5 वर्ष की निश्चित अवधि में प्राथमिक शिक्षा पूर्ण नहीं कर पाते, उन पर भी किसी अंश तक समय, धन और शक्ति का अपव्यय होता है।

यद्यपि अनिवार्य शिक्षा की प्रगति में राष्ट्र उन्नति कर रहा है, फिर भी, अपेक्षित लक्ष्य की प्राप्ति निर्धारित अवधि में नहीं हो पा रही है। इस प्रगति में कुछ बाधक समस्याएँ हैं-

1. राजनीतिक कठिनाइयाँ (समस्याएँ)- स्वतंत्रता-प्राप्ति के तुरंत बाद देश में उथल-पुथल रहा। इसके कई कारण थे-
   (क) सैकड़ों देशी रियासतों को भारत संघ में मिलना पड़ा।
   (ख) भारत के दो विभाग- भारत और पाकिस्तान हो गए।
   (ग) पाकिस्तान से भागे हुए विस्थापितों को भारत में शरण देनी पड़ी।

(घ) देश के बँटवारा के कारण वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हो गई। फलतः सरकार इन्हीं उधेड़-बुन में फँसी रह गई और निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा पर कम ध्यान दिया गया।

2. भौगोलिक कठिनाइयाँ- प्राथमिक शिक्षा प्रसार में भौगोलिक परिस्थितियाँ कम बाधक नहीं हैं।

(क) देश के अधिकांश भाग पहाड़ी है।, जहाँ गाँव एक दूसरे से अधिक दूरी पर है। यहाँ आने-जाने के मार्ग भी अत्यंत दुर्गम हैं, जिनसे शिक्षा-प्रसार में असुविधा उत्पन्न होती है।

(ख) हमारे देश में आवागमन के साधन भी उत्तम नहीं हैं। गाँवों में तो इसका पूर्णतः अभाव है जिस कारण कई गाँवों के लिए एक स्कूल की स्थापना कठिन साबित हुआ।

(ग) देश के बहुत से ऐसे स्थान हैं जहाँ प्राथमिक विद्यालय के छात्रों एवं शिक्षकों को हमेशा अस्वस्थता का सामना करना पड़ता है। अतः ऐसे स्थानों पर विद्यालय खोलना अत्यधिक कठिन है।

3.पाठ्यक्रम की अनुपयुक्तता- प्रायः प्राथमिक-शिक्षा के पाठ्यक्रम छोटे-छोटे बालकों की रूचि एवं मानसिक स्तर के अनुपयुक्त होते हैं। वे अत्यंत नीरस एवं अनाकर्षक होते हैं जिस कारण छात्रों की पाठ में दिलचस्पी नहीं मिलती। फलतः वे स्कूल जाने से मुकरते हैं।

4.प्रशासनिक कठिनाइयाँ- प्रशासन संबंधी निम्नलिखित कठिनाइयाँ उपस्थित हुई-

(क) अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के उत्तरदायित्व को स्थानीय जिला परिषद् तथा नगरपालिका को सौंपा गया। परंतु आर्थिक अभाव के कारण वे समुचित सहयोग न देकर केंद्र का मुख जोहती रहीं। साथ-ही-साथ विभाग एवं परिषद् की नीति में मेल न खाने से भी प्राथमिक शिक्षा को कभी-कभी बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा।

(ख) सरकार द्वारा शालाओं की कोठरियों, फर्नीचर इत्यादि की पर्याप्त एवं समुचित व्यवस्था का अभाव रहा।

(ग) निश्चित समय तक शाला में बच्चों को ठहराने का कोई प्रबंध भी नहीं रहा। अतः निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा का समुचित प्रसार न हो सका।

5. भाषा की कठिनाई- भारत में 1961 की जनगणना के अनुसार 845 भाषाएँ बोली जाती हैं। ऐसी परिस्थितियों में संपूर्ण देश के बच्चों को किसी खास भाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करना कठिन है। साथ ही, भारत में बहुत-सी ऐसी जातियाँ है। जिनकी न कोई भाषा ही है और न तो साहित्य ही। इस प्रकार की आदिवासी जातियों को किसी प्रकार शिक्षा प्रदान की जाए यह भी कठिन समस्या है।

6.समाजक समस्याएँ- हमारे देश में प्राथमिक शिक्ष प्रदान करने में अनेक प्रकार की सामाजिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जो निम्नलिखित हैं-

(क) हमारे समाज में अभी भी वर्ग भेद, छुआछूत और जाति भेद चरम सीमा पर है।

(ख) बाल-विवाह की प्रथा के कारण बालक एवं बालिकाएँ बालपन में ही शिक्षा ग्रहण करने से मुँह मोड़ लेते हैं।

(ग) अधिकांश अभिभावक बालिका को शिक्षा-प्रदान करना दुश्चरित्रता का कारण समझते हैं।

(घ) हमारे देश की प्राथमिक शालाओं में भी सहशिक्षा को हेय की दृष्टि से लोग देखते हैं।

(ड़) हमारे देश में अभी भी पर्दा-प्रथा का प्रचार ग्रामों में रहने के कारण माता-पिता अपनी पुत्रियों को विद्यालय भेजने में संकोच करते हैं।

प्राथमिक प्राथमिक विद्यालय के लिए नए स्कूलों की स्थापना करना एक कठिन कार्य है। नगरों की अपेक्षा गाँवों में यह अधिक कठिन है। प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए प्रायः 4-5 लाख गाँवों में नए प्राथमिक स्कूल की स्थापना करनी होगी, जिसके लिए अधिक धनराशि की आवश्यकता है। भारत जैसे निर्धन देश में यह असंभव है।

संदर्भ

1 **Ayyar, R. V. Vaidyanathan. 1993a. "Educational Planning and Administration in India: Retrospect and Prospect." Journal of Educational Planning and Administration 7(2): 197-8214.**

2 **Aggarwal, J. C. 1996. Human Development in India since Independence: Socio-Economic Profile. New Delhi: Shipra.**

3 **Daswani, C. J., Neerja Shukla, and K. Rama Vani. 1995. "Educational Problems of Tribal Children." Indian Educational Review (special issue):190-222.21**

4 **1993f Report of the Group to Examine the Feasibility of Implementing the Recommendations of the National Advisory Committee. New Delhi: Department of Education.**

5 **1995a. Analysis of Budget Expenditure on Education. Various issues. New Delhi: Department of Education.**

रघुवीर सहाय के काव्य में ''लोकतंत्र'' की अवधारणा

पंकज सिंह

हिन्दी साहित्य, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

प्रस्तावना

बहुत सारी शासन प्रणालियों में 'लोकतंत्र को इसलिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं खास स्थान हासिल है, क्योंकि इसमें जनता की इच्छा सर्वोपरि होती है। उस पर राजतंत्र, धर्मतंत्र या तानाशाही शासन प्रणालियों की तरह बलात् इच्छाओं को थोपा नहीं जाता।

लेकिन बहुत सी अच्छाइयों के बावजूद कुछ ऐसी कमियाँ इसमें निहित हैं जो लोकतंत्र के वास्तविक स्वरूप को विकृत करती हैं। किन्तु यह भी सच है कि यदि इन कमियों पर नियंत्रण पा लिया जाए तो अन्य शासन-प्रणालियों की तुलना में यह कई गुना बेहतर है। और इन कमियों पर नियंत्रण तभी पाया जा सकता है, जब 'भीड़', 'प्रबुद्ध जनता' में तब्दील हो जाए।

लोकतंत्र की सबसे बड़ी कमी है- इसका भीड़तंत्र में प्रतिस्थापित हो जाना। यदि इसे भीड़तंत्र बनने से बचाया जा सके तो इससे अच्छी शासन प्रणाली कोई हो ही नहीं सकती। लोकतंत्र के जो भी रोग हैं, वे इतने असाध्य भी नहीं हैं। यदि परिश्रमपूर्वक प्रयत्न किया जाए तो इनका पूर्ण इलाज सम्भव है। रघुवीर सहाय जनता को बदलने का एकमात्र साधन सत्ता के सदुपयोग को मानते हैं। यह सही भी है कि सत्ता का सकारात्मक प्रयोग कर जनता के न केवल जीवन स्तर बल्कि उनके बौद्धिक और मानसिक स्तर का भी उन्नयन किया जा सकता है।

अशिक्षा और गरीबी जैसी बीमारियों का पूर्ण निराकरण सत्ता के सदुपयोग से ही सम्भव है। पढ़ी लिखी और जागरूक जनता अपने तुच्छ स्वार्थों के ऊपर राष्ट्रहित और जनकल्याण को वरीयता देगी। वह दोहरे मानदण्ड अपनाने से बचेगी।

प्रबुद्ध जनता 'बुर्जुआ लोकतंत्र को नकार देगी। जागरुक समाज वास्तविक लोकतंत्र को स्थापित करने में सक्षम होगा। रधुवीर सहाय भी 'बुर्जुआ लोकतंत्र को लेकर आशंकित हैं। इस तरह के लोकतंत्र में जनता सिर्फ मोहरा होती है, वास्तविक सत्ता पूँजीपतियों और जमींदारों के कब्जे में होती है। सुरेश शर्मा का यह पर्यवेक्षण एकदम सटीक है कि ''अत: भारत का बुर्जुआ लोकतंत्र एक अवास्तविक लोकतंत्र है। बुर्जुआ लोकतंत्र के अन्तर्गत शासन में जनता की हिस्सेदारी सिर्फ चुनाव से सम्बद्ध है, जो पूँजीपति, जमींदार वर्ग से निर्धारित होता है।''[1]

धन और बाहुबल ने लोकतंत्र की बुनियादी अवधारणा को ही खंडित कर दिया है। हिंसा और हत्या में विश्वास करने वाले लोग चुनकर विधानमंडलों में पहुँचते हैं। जिन लोगों ने जीने का अधिकार छीना, उनके ही ऊपर जनता के कल्याण का दायित्व है।

जाति, धर्म और सम्प्रदाय की आवधारणाओं से चोटिल लोकतंत्र को राजनीति के अपराधीकरण ने और क्षति पहुँचाया है। शासन की बागडोर अब एकदम अवांछनीय तत्त्वों के हाथ में है। उन लोगों ने सत्ता की चाबी हथिया ली है, जो भ्रष्ट, अपराधी एवं मौकापरस्त हैं। उन्हें जनता की परेशानियों से कोई सरोकार नहीं। भारतेन्दु की 'अंधेर नगरी' की तरह यहाँ भी चहँओर अंधेर ही अंधेर हैं। अच्छे और ईमानदार लोग प्रताड़ित हैं तो भ्रष्ट और बेईमान सुख और वैभव भोग रहे हैं। रघुवीर सहाय ने 'खुशीराम' के चरित्र के जरिए लोकतंत्र की इसी बिडम्बना को अपनी कविता 'मेरा प्रतिनिधि' में दर्शाया है-

"एक दिन आखिरकार दुपहर में छुरे से मारा गया खुशीराम
वह अशुभ दिन थाय कोई राजनीति का मसला
देश में उस वक्त पेश नहीं था। खुशीराम बन नहीं
सका कत्ल का मसला, बदचलनी का बना, उसने
जैसा किया वैसा भरा।"[2]

स्वतंत्रता के बाद अपनी सरकार से लोगों को बहुत सी उम्मीदें थीं। लोगों को लगता था कि ब्रिटिश काल की शोषण, अन्याय और भेदभाव आधारित शासन-प्रणाली से अब मुक्ति मिलेगी। किन्तु जनता की ये स्वर्णिम अपेक्षाएँ बहुत जल्द ही खंडित होनी शुरू हो गईं। नेहरू के कालखंड के अंतिम दौर से जो राजनीतिक अध: पतन शुरू हुआ, वह आज तक जारी है। सहाय के समय में यह राजनीतिक विकृति अचानक ही सामने आई थी। परतंत्र भारत में नेताओं और क्रान्तिकारियों ने जिन मूल्यों के सहारे अंग्रेजों से इतना लम्बा संघर्ष किया था, वे अब एकदम से उपेक्षित हो गए थे।

देश की आजादी अपने वास्तविक स्वरूप में लोगों के सामने नहीं आई। यह स्वाधीनता भी मानो ब्रिटिश पराधीनता का दूसरा चक्र हो। शोषण और अन्याय करने वाले जरूर बदले, किन्तु उसका स्वरूप नहीं बदला। लोग अपने ही देश में अलग-थलग पड़ गए। मोहभंग से उपजा यह दर्द सहाय की कविताओं में कई जगह व्यक्त हुआ है-

''बीस वर्ष खो गए भरमे उपदेश में
एक पूरी पीढ़ी जनमी पली पुसी क्लेश में
बेगानी हो गई अपने ही देश में वह
अपने बचपन की
आजादी।''[3]

और सच यह है कि हिन्दुस्तान की जनता इस स्वदेशी अन्याय और शोषण को सहने की अभ्यस्त हो गई है। अब वह विद्रोह की आवाज नहीं बुलंद करती। पहले की तरह अब सत्ता को बदलने की वह अदम्य इच्छा नहीं रही। बुद्धिजीवी वर्ग भी स्वार्थ या भय के कारण उसी अन्यायी वर्ग के साथ है।

इस विषम स्थिति का चित्रण रघुवीर सहाय अपने तरीके से 'खुशीराम' के चरित्र के जरिए करते हैं-

''दिन-रात सांस लेता है ट्रांजिस्टर लिए हुए खुशनसीब खुशीराम
फुरसत में अन्याय सहने में मस्त
स्मृतियाँ खखोलता हकलाता बतलाता सवेरे
अखबार में उसके लिए खास करके एक पृष्ठ पर दुम
हिलाता सम्पादक एक पर गुरगुराता है।''[4]

रघुवीर सहाय लोकतंत्र के इस विकृत रूप को देखकर प्रायः क्षुब्ध हो उठते हैं। जनप्रतिनिधियों के भ्रष्ट आचरण ने इतनी प्रशंसित शासन प्रणाली को भी कलंकित कर दिया है। लेकिन लोकतंत्र की इस दुर्गति के लिए जितना जनप्रतिनिधि दोषी हैं, उससे कम जनता नहीं। जनता ही जाति, धर्म जैसी संकीर्ण मान्यताओं के आधार पर इनका चुनाव करती है। यदि जनता का बौद्धिक और मानसिक उन्नयन हो, तो इस समस्या से छुटकारा मिल सकता है।

सहाय लोकतंत्र को 'इनसान की शानदार जिन्दगी और कुत्ते की मौत के बीच की स्थिति मानते हैं। दरअसल एक तरफ स्वर्णिम भविष्य की आशा मन में रहती है तो दूसरी तरफ वर्तमान का कटु एवं दुखद यथार्थ। दो एकदम विपरीत बातें लोकतंत्र की अवधारणा में निहित हैं। लोकतंत्र के इसी विरोधाभासी रूप को लक्ष्यकर रघुवीर सहाय लिखते हैं-

''लोकतंत्र-मोटे, बहुत मोटे तौर पर लोकतंत्र ने हमें इनसान की
शानदार जिन्दगी और कुत्ते की मौत के बीच चाँप लिया है। इस स्थिति
में सबसे आसान यह पड़ता है कि व्यक्ति स्वातंत्र्य की अभी तक बची
सुविधा का फायदा उठाकर मैं अपने लिए बचे रहने की निजी, बिलकुल
अहस्तान्तरणीय रियायत ले लूँ। उससे कुछ मुश्किल यह है कि मैं यह
रियायत अस्वीकार करूँ और उनके आसरे जिन्दा रहूँ जो इनसान
के लिए दूसरे हथियारों से लड़ते हैं- साहित्येतर हथियारों से! सबसे
मुश्किल और एक ही सही रास्ता है कि मैं सब सेनाओं में लडूँ-किसी
में ढाल सहित, किसी में निष्कवच होकर- मगर अपने को अन्त में मरने
सिर्फ अपने मोर्चे पर हूँ ..... जिसे साहित्य कहते हैं।''[5]

सबसे आसान यह पड़ता है कि व्यक्ति स्वातंत्र्य की अभी तक बची सुविधा का फायदा उठाकर मैं अपने लिए बचे रहने की निजी, बिलकुल अहस्तान्तरणीय रियायत ले लूँ। उससे कुछ मुश्किल यह है कि मैं यह रियायत अस्वीकार करूँ और उनके आसरे जिन्दा रहूँ जो इनसान के लिए दूसरे हथियारों से लड़ते हैं- साहित्येतर हथियारों से! सबसे मुश्किल और एक ही सही रास्ता है कि मैं सब सेनाओं में लडूंकिसी में ढाल सहित, किसी में निष्कवच होकर- मगर अपने को अन्त में मरने सिर्फ अपने मोर्चे पर हूँ.... जिसे साहित्य कहते हैं।''

वर्तमान समय में भी लोकतंत्र का वही रूप है जो सहाय के समय में था। राजनीति का अपराधीकरण तेजी से बढ़ा है। विधायकों, सांसदों एवं जनप्रतिनिधि यों के मन में जनता के प्रति जो उपेक्षा का भाव तब था, वही अब भी है। सांसदों के पास इतना वक्त नहीं है कि वे अपनी सांसद-निधि खर्च कर सकें। खाते में आया पैसा जहाँ का तहाँ पड़ा रह जाता है। 'दैनिक जागरण' नामक समाचार पत्र का यह पर्यवेक्षण एकदम सटीक है-

''सांसद निधि का खाता यह साबित करता है कि इन नुमाइन्दों के पास
न तो अपने चुनाव क्षेत्र के लिए फुर्सत है और न विकास की योजनाएं।
तभी तो 406 सांसदों के नाम प्रति सदस्य दो करोड़ रू0 से अधिक
की निधि इस्तेमाल के बगैर पड़ी है।''[6]

भ्रष्टाचार की समस्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। नीचे से लेकर ऊपर तक सभी संदिग्ध हैं। जनप्रतिनिधियों के भ्रष्ट और बेईमान होने से नौकरशाही भी अनियंत्रित और बेलगाम हई है। सत्ता में भागीदार सभी दागी हैं। किसी का भी चरित्र बेदाग और निष्कलंक नहीं। लोकतंत्र का यह विद्रूप चेहरा वास्तव में बड़ा डरावना है। वर्तमान में भ्रष्टाचार की गभीर स्थिति को लक्ष्यकर 'दैनिक जागरण' अपने सम्पादकीय में लिखता है.....

"आम जनता के लिए यह समझना मुश्किल हो रहा है कि आखिर उसे कब तक यह आश्वासन दिया जाता रहेगा कि केन्द्र सरकार मजबूत लोकपाल विधेयक लाने के साथ भ्रष्टाचार के खिलाफ अन्य उपाय करने जा रही?यह सवाल अन्य अनेक सवालों को जन्म दे रहा है, जैसे कि क्या प्रधानमंत्री भ्रष्टाचार पर लगाम लगाने के मामले में राजनीतिक रूप से पर्याप्त सक्षम नहीं? क्या उन्हें संप्रग के घटकों के साथ-साथ खुद कांग्रेस का पूरा साथ नहीं मिल पा रहा है? यदि ऐसा कुछ नहीं है तो फिर क्या कारण है कि भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने की बार-बार जरूरत जताने के बावजूद प्रधानमंत्री कोई ठोस पहल करने के मामले में अकेले-असहाय से नजर आ रहे हैं।"[7]

दरअसल लोकतंत्र की असफलता के पीछे जनता का भी हाथ कुछ कम नहीं है। उसकी जड़ता और निष्क्रियता ने ही भ्रष्टाचारी राजनेताओं को बेलगाम बना दिया। लेकिन सहाय एक 'ऐक्टिविस्ट साहित्यकार' हैं। जनता को उसी के हालातों पर छोड़ना उन्हें मंजूर नहीं। उसके प्रति वे अपनी एक जिम्मेदारी महसूस कते हैं। वे लोकतांत्रिक शासन प्रणाली का सदुपयोग कर जनता की स्थितियों में बदलाव चाहते हैं। जनता अगर अपने को 'आदिम मूर्खता से मुक्त कर ले, तो 'लोकतंत्र सार्थक साबित हो सकता है।

सन्दर्भ सूची:

1. रघुवीर सहाय का कवि कर्म, सुरेश शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2002, पृ0 78.
2. रघुवीर सहाय, रचनावली-1, कोई एक और मतदाता', सं0- सुरेश शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2000, पृ0 135.
3. वही, 'मेरा प्रतिनिधि', पृ0 110.
4. वही, 'कोई एक और मतदाता', पृ0 110.
5. वही, पृ0 103.
6. दैनिक जागरण, 01 नवम्बर 2011, लखनऊ संस्करण, पृ0 1.
7. दैनिक जागरण, सम्पादकीय, 01 नवम्बर 2011, लखनऊ संस्करण।

'सुबर्थ निर्णय में कर्मकारक'

डॉ० शैलेन्द्र सिंह

हिसार (हरियाणा)

शोध-आलेख सार

कौण्डभट्ट ने कर्मकारक की परिभाषा 'धात्वर्थव्यापारजन्यफलाश्रयः कर्म' इसमें फलाश्रय कर्म और व्यापाराश्रयः कर्त्ता कहा है, क्रिया कर्त्ता में रहती है परन्तु क्रिया से उत्पन्न जो फल है उसका आश्रय कर्म है। वाक्य में प्रयुक्त धातु से उपस्थाप्य अर्थात् क्रिया से उत्पन्न फल का जो आश्रय है उसकी कर्म संज्ञा होती है परन्तु नैयायिकों ने 'परसमवेतक्रियाजन्यधात्वर्था- वच्छेदक फलशालित्वं कर्मत्व' यह कर्म की परिभाषा दी है उनके अनुसार क्रिया का विशेषण परसमवेत और फल का विशेषण धात्वर्थावच्छेदक को बना लो जिनके अनुसार जिसको कर्म बनाना है उससे भिन्न समवाय सम्बन्ध से जुड़ी हुई धात्वर्थ के वाच्यार्थ व्यापार का जो फल है उस फल के आश्रय का नाम कर्म है परन्तु कौण्डभट्ट ने इस परिभाषा के लम्बी हो जाने से इसे गौरवदोष से ग्रस्त माना है तथा 'द्यात्वर्थव्यापारजन्यफलाश्रयः कर्म' इस परिभाषा को ठीक माना है और कहा है जिसकी कर्मसंज्ञा होती है, उसमें द्वितीयाविभक्ति होती है ।

मुख्य-शब्दः कर्मकारक, ईप्सिततम, वैयाकरणभूषणसार, भावनुकूल व्यापार, कर्मसंज्ञा, व्यापारजन्यकलाश्रय।

आचार्य पाणिनि तक व्याकरण दर्शन का स्वरूप निश्चित हो चुका था। ऋक् प्रातिशाख्य, यजुः, प्रातिशाख्य, तैतिरीय प्रातिशाख्य, अथर्वप्रातिशाख्य, निरूक्त तथा अष्टाध्यायी में लगभग पैंसठ आचार्यों के नाम आए हैं। प्रातिशाख्यों में व्याकरण दर्शन के दर्शन सर्वत्र दिखाई देते हैं। युधिष्ठिर मीमांसक ने पाणिनि से प्राचीन पचासी व्याकरण प्रवक्ताओं का उल्लेख किया है[1]- आपिशलि, कश्यप, गार्ग्य, गालब, चाक्रवर्मण, भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्य, सेनक तथा स्फोटायन। पाणिनि से पूर्व स्फोटायन, औदुम्बरायण तथा व्याडि का नाम विशेष दार्शनिक आचार्यों में परिगणित किया जा सकता है। व्याकरण दर्शन की परम्परा में कौण्डभट्ट का नाम प्रमाण रूप में स्वीकार किया गया है। वैयाकरणभूषण और वैयाकरणभूषणसार इन ग्रन्थों में व्याकरणदर्शन का उत्कृष्ट रूप देखा जा सकता है।

वैयाकरण कौण्डभट्ट ने 'वैयाकरणभूषणसार' में कारकों का वर्गीकरण किया है जिसके अनुसार द्वितीया कर्म, तृतीया करण और सप्तमीअधिकरण को आश्रय अर्थ में, पञ्चमी अपादान को अवधि अर्थ में चतुर्थी सम्प्रदान को उद्देश्य अर्थ में और षष्ठी को सम्बन्ध अर्थ में माना है अथवा संक्षिप्त रूप से इन सब विभक्तियों को शक्ति अर्थ में माना है ।

वैयाकरणभूषणसारकर्ता कौण्डभट्ट ने कारकसम्बन्धी विभक्तियों के अर्थ का तात्विक विवेचन सूत्ररूप में भाष्यसम्मत प्रस्तुत किया है जिसके अनुसार उन्होंने आश्रय, अवधि, उद्देश्य, सम्बन्ध तथा शक्ति ये पाँच अर्थ सुपादि (सु औ जस् ..... सुप्) विभक्तियों के माने है ।

कर्त्ता के ईप्सिततम व्यापार को कर्म कहते हैं । 'क्रियाजन्यफलाश्रयः कर्म' अर्थात् क्रिया से उत्पन्न जो फल उस फल के आश्रय की कर्म संज्ञा होती है और कर्म में द्वितीय विभक्ति का 'कर्मणिद्वितीया'[2] इस सूत्र से विधान होता है ।

कर्त्ता के व्यापार से उत्पन्न फल के आश्रयरूप में विवक्षित को कर्म कहते हैं ।

कर्म का लक्षणः

(i)आचार्य पाणिनि के अनुसार - 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म'[3] अर्थात् कर्ता के ईप्सित व्यापार को कर्म कहते हैं।

'कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञ स्यात्' ।

(ii)कौण्डभट्ट के अनुसार - 'क्रियाजन्यफलाश्रयः कर्म' अर्थात् क्रिया से उत्पन्न फल का आश्रय कर्म है।

कर्म कारक की परिभाषाः

पाणिनि के अनुसार - 'कर्मणिद्वितीया'[4] इस सूत्र से कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है । यथा - 'सः ओदनं पचति'

यहाँ ओदन अवयवों का शैथिल्य तद्रूपफल का आश्रय होने से कर्मसंज्ञक कौण्डभट्ट के अनुसार कर्म की परिभाषा

'तद्धात्वर्थव्यापारजन्यफलाश्रयः कर्म'[5] अर्थात् धात्वर्थ के दो रूप व्यापार और फल क्रमशः कर्ता और कर्म में रहते हैं। व्यापार का आश्रयकर्ता और फल का आश्रय कर्म होता है। यथा - 'ओदनं पचति'[6]

इस वाक्य में विक्लिति रूप फल का आश्रय होने से ओदन की कर्मसंज्ञा होती है । अपि च

'सः घटं करोति' यहां घट की उत्पत्यानुकूल व्यापार अर्थ होने से उत्पत्ति रूप फल के आश्रय घट की कर्मसंज्ञा होती है ।

नैयायिकों के अनुसार:

'परसमवेतक्रियाजन्यधात्वर्थावच्छेदक फलशालित्वं कर्मत:' अर्थात् जिसको कर्म बनाना है उससे पर (भिन्न) में समवेत (समवाय सम्बन्ध से जुड़ी हुई) क्रिया से उत्पन्न धात्वर्थावच्छेदक (धात्वर्थ के वाच्यार्थ व्यापार का फल) उस फल के आश्रय का नाम कर्म है। यथा- 'चौत्र: प्रयागात् काशीं गच्छति' यहां नैयायिकों ने धात्वर्थ का विशेषण परसमवेत को तथा फल का विशेषण धात्वर्थावच्छेदक माना है परन्तु परवर्ती वैयाकरणआचार्यों ने इस परिभाषा में गौरवदोष बताकर खण्डन किया है ।

'खण्डन-मण्डन':

वैयाकरण कौण्डभट्ट के अनुसार कर्म का लक्षण पाणिनि के सूत्र 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' पर आधारित है अर्थात् कर्ता को जो ईप्सित है उसकी कर्मसंज्ञा होती है। 'कर्तु: स्वनिष्ठ व्यापारप्रयोज्यफलेन सम्बद्धमिष्यमाण:'[7]। यथा - 'देवदत: ग्रामं गच्छति' इस वाक्य में कर्ता (देवदत्त) को स्वनिष्ठ अर्थात् गमन व्यापार से उत्पन्न संयोगरूप फल के साथ ग्राम को सम्बद्ध करना है। अत: देवदत्त को ग्राम ईप्सित होने के कारण ग्राम की कर्मसंज्ञा होती है।

आपत्ति:

यहाँ नैयायिक आपत्ति करते हैं कि यदि इस लक्षण को स्वीकार किया जाए तो केवल ईप्सित कारक की कर्मसंज्ञा मानी जाएगी, अनीप्सित कारक की नहीं मानी जाएगी परन्तु पाणिनि ने तो 'तथायुक्तंचानीप्सितम्'[8] इस सूत्र के द्वारा अनीप्सित कारक की भी कर्मसंज्ञा कही है । अत: यह लक्षण अव्याप्तिदोष से ग्रस्त माना जाएगा।

समाधान:

उक्त आपत्ति का समाधान कौण्डभट्ट ने इस प्रकार किया है कि 'क्रियाजन्यफलाश्रय: कर्म' यह लक्षण दोनों प्रकार के ईप्सित व अनीप्सित कारकों में संगत हो जाएगा क्योंकि इनका उपयोग कर्मसंज्ञा का विधान करने में होता ह। कर्म कारक के प्रयोग स्थल में जब शाब्द होता है तब ईप्सित एवं अनीप्सित की प्रतीति किसी पद के प्रकृति तथा प्रत्यय से नहीं होती । यथा - 'देवदत: ग्रामं गच्छति'

इस वाक्य का शाब्दबोध ग्रामकर्तृक संयोगानुकूल वर्तमानकालिक व्यापार इस रूप में होता है ।

शका:

ईप्सित तथा अनीप्सित का शाब्द बोध में भान नहीं होने पर 'क्रियाजन्यफलाश्रय: कर्म' में 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' से ही कर्मसंज्ञा का विधान क्यों नहीं किया 'तथायुक्तं चानीप्सितम्' यह क्यों कहा ।

समाधान:

'अग्नेर्माणवकं वारयति' यहां वारि धात्वर्थ अग्निसंयोगानुकूल व्यापार और भावानुकूल व्यापार होने से संयोग और तदनुकूलव्यापारभाव इन दो फलों का आश्रय होने से दोनों में कर्मसंज्ञा प्राप्त होगी परन्तु 'वारणार्थानामीप्सित:'[9] यह सूत्र कर्मसंज्ञा का अपवाद होगा, अत: पञ्चमी प्राप्त होगी, इसीलिए विषयभेद करके ईप्सित की अपादानसंज्ञा और ईप्सिततम को कर्मसंज्ञा मानने पर आनीप्सित को कर्मसंज्ञा प्राप्त नहीं होगी। अत: 'तथायुक्तं चानीप्सित'[10] इस सूत्र का विध ान किया गया।

वैयाकरणमत में जो कर्मलक्षण 'क्रियाजन्यफलाश्रय: कर्म' स्वीकार किया है उसमें आपत्ति करते हुए नैयायिक कहते है कि यह लक्षण 'चौत्र: प्रयागात् काशीं गच्छति' इस स्थल में अतिव्याप्त होता है और इस आपत्ति के निराकरण के लिए नैयायिक कर्मलक्षण में स्थित क्रिया का विशेषण परसमवेत को और फल का विशेषण धात्वर्थावच्छेदक को मानते है। यथा- 'चौत्र: तण्डुलं पचति' इस वाक्य में प्रकृत्यार्थ तण्डुल से भिन्न जो चौत्र और उस चौत्र में समवाय सम्बन्ध से रहने वाला विक्लितिजनक व्यापार और उस विक्लिति का आश्रय जो तण्डुल है उसकी कर्मसंज्ञा होती है।

कर्म की परिभाषा के सम्बन्ध में कौण्डभट्ट का समाधान:

नैयायिकों ने जो यह बात कही है कौण्डभट्ट ने उसे समीचीन नहीं माना है । उनका कथन है कि -

'चौत्र: प्रयागात् काशीं गच्छति' इस प्रयोग में प्रयाग की कर्मसंज्ञा नहीं होगी क्योंकि उनकी अनुसार 'क्रियाजन्यफलाश्रय: कर्म'[11] यह कर्म का लक्षण है जिसका अर्थ है वाक्य में प्रयुक्त धातु से उपस्थाप्य फल का आश्रय और प्रकृतस्थल में गम् धातु संयोगरूप फल का वाचक है तथा विभाग रूप फल का वाचक तो त्यज् धातु है। अत: संयोगरूपफल का आश्रय काशी है और काशी में यह लक्षण संगत होगा, प्रयाग में यह लक्षण संगत नहीं होगा क्योंकि प्रकृत वाक्य में त्यज् धातु का प्रयोग नहीं किया गया ह।

अत: कौण्डभट्ट के द्वारा कर्मकारक का जो लक्षण दिया है उसमें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की जा सकती।

अब आगे 'वैयाकरणभूषणसार:' में कौण्डभट्ट ने विशेषरूप से कर्म का निरूपण करते हुए उसके सात भेद बताए है जिसका आधार भर्तृहरि की निम्नकारिका है

"निर्वर्त्यञ्च विकार्यञ्च प्राप्यञ्चेति त्रिधा मतम्,
तच्चेप्सिततमं कर्म चतुर्द्धान्यत्तु कल्पितम् ।

औदासीन्येन यत् प्राप्यं यच्च कर्तुरनीप्सितम्,
संज्ञान्तरैरनाख्यातं यद्यच्चाप्यन्यपूर्वकम्।।"[12]

कर्म के भेद:

उन्होंने 'कर्तुरीप्सिततमंकर्म' सूत्र के आधार पर कर्म के तीन भेद माने है- (i) निवत्र्य (ii) विकार्य (iii) प्राप्य

'तथायुक्तंचानीप्सितम्' इस सूत्र के आधार पर दो भेद बताए है- (i) उदासीन (ii) द्वेष्य

'अकथितं च'[13] इस सूत्र के आधार पर भी कर्म के अन्य दो भेद माने है- (i) अनाख्यात कर्म (ii) अन्यपूर्वक कर्म

निर्वत्र्य कर्म:

निवत्र्य अर्थात् निष्पन्नम् जो प्रकाशित होने से पूर्व नहीं था, प्रकाशित होने पर ही प्रतीति के पथ पर आया है अर्थात् जिसे क्रिया के द्वारा निष्पन्न किया जाता है उसे निर्वत्र्य कर्म कहते हैं। यथा- 'घटं करोति' यहाँ मिट्टी वही है परन्तु स्वरूप बदला गया है अत: निर्वत्र्य कर्म है ।

विकार्य कर्म:

(i)प्रकृति के नाश से उत्पन्न (ii) प्रकृति में गुणान्तर की उत्पत्ति से[14] यथा- 'काष्ठं भस्म करोति' यहां भस्म अपनी प्रकृति काष्ठ को जलाकर प्रकट हुआ है। यथा- 'सुवर्णे कुण्डलं करोति' यहां कुण्डल विकार्य कर्म है क्योंकि कुण्डल की उत्पति सुवर्णरूप परिवत्रन के कारण हुई है ।

प्राप्य कर्म:

जिस कर्म में क्रिया होने पर भी देखने वाला देखने अथवा अनुमान करने से कोई अन्तर न सिद्ध कर सके वह प्राप्य कर्म है। यथा - घटं पश्यति - यहां अनेक व्यक्तियों ने घट को देखा है परन्तु कोई यह सिद्ध नहीं कर पाता । किसने घट को कितनी बार देखा क्योंकि उसमें कोई बदलाव नहीं हुआ।

आदित्यं पश्यति- यह भी प्राप्य कर्म है क्योंकि द्रष्टा की क्रिया से उसके अन्दर कोई परिवर्तन नहीं आता ।

उदासीन कर्म:

अनिच्छित वस्तु को उदासीन कर्म कहते है 'ईप्सिततमवत्क्रियया युक्तमनीप्सितमपि कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्[15] यथा - 'ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति' यहां तृण उदासीन कर्म है क्योंकि कर्ता तृण को प्राप्त करने में उदासीन रहता है।

द्वेष्यकर्म (कर्त्ता को अनीप्सित):

जो कर्म कर्ता की इच्छा के विरूद्ध जाने या अनजाने परिस्थितिवश कर्ता की क्रिया से होने वाले फल का आश्रय हो जाए उसको द्वेष्य कर्म कहते है। यथा - 'ओदनंभुञ्जानोविषंभुङ्क्ते' क्योंकि यहां भोजन में विष इच्छित न होकर द्वेष्य अर्थात् कर्त्ता को अनीप्सित है!!।

अनाख्यात कर्म:

दुह, याच्, पच् आदि 16 धातुओं के अपादानादि की अविवक्षा करके उनमें कर्मत्व की विवक्षा कर देने पर उन्हें द्वितीया गौणकर्म मानकर वाक्य में रखा जाता है वही अनाख्यात कर्म है।

'अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्'16 यथा - 'गां दोग्धि पय:' इस वाक्य में अपादान कारक गो को कर्म बनाने की इच्छा होने पर 'अकथितं च' सूत्र से कर्मसंज्ञा हुई है।

अन्यपूर्वककर्म:

अन्यपूर्वक कर्म वह है जो कर्मकारक से भिन्न कारक का वाचक शब्द उपसर्ग आदि किसी विशेष पद के कारण अपने आप को कर्म बनाने के लिए विवश हो। यथा- 'हरये क्रुध्यति' यहां 'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानाम् यं प्रतिकोप:'[17] इस सूत्र से हरि की सम्प्रदान संज्ञा है परन्तु उपसर्ग लगा देने से 'क्रुधद्रुहोपसृष्टयो: कर्म'[18] इस सूत्र से कर्मसंज्ञा का विधान होकर हरिमभिक्रुध्यति निष्पन्न होगा।

अत: कौण्डभट्ट के अनुसार कही गई कर्म की यह परिभाषा 'प्रकृतधात्वर्थफलाश्रयत्वं कर्मत्वं' संगत हुई ।

उपसंहार:

संक्षेपत: यह कह सकते है कि कौण्डभट्ट ने कर्मकारक की परिभाषा 'धात्वर्थव्यापारजन्यफलाश्रय: कर्म' इसमें फलाश्रय कर्म और व्यापाराश्रय: कर्त्ता कहा है, क्रिया कर्त्ता में रहती है परन्तु क्रिया से उत्पन्न जो फल है उसका आश्रय कर्म है । वाक्य में प्रयुक्त धातु से उपस्थाप्य अर्थात् क्रिया से उत्पन्न फल का जो आश्रय है उसकी कर्मसंज्ञा होती है परन्तु नैयायिकों ने 'परसमवेतक्रियाजन्यधात्वर्था- वच्छेदक फलशालित्वं कर्मत्व' यह कर्म की परिभाषा दी है उनके अनुसार क्रिया का विशेषण परसमवेत और फल का विशेषण धात्वर्थावच्छेदक को बना लो जिनके अनुसार जिसको कर्म बनाना है उससे भिन्न समवाय सम्बन्ध से जुड़ी हुई धात्वर्थ के वाच्यार्थ व्यापार का जो फल है उस फल के आश्रय का नाम कर्म है परन्तु कौण्डभट्ट ने इस परिभाषा के लम्बी हो जाने से इसे

गौरवदोष से ग्रस्त माना है तथा 'द्यात्वर्थव्यापारजन्यफलाश्रयः कर्म' इस परिभाषा को ठीक माना है और कहा है जिसकी कर्मसंज्ञा होती है, उसमें द्वितीयाविभक्ति होती है ।

संदर्भ

1. युधिष्ठिर मीमांसक, व्याकरण शास्त्र का इतिहास, पृ. 67
2. अष्टो०, 2.3.2
3. अष्टा० 1-4-46
4. उपरिवत्, 2-3-2
5. वै० भू० सा०, पृ० 223
6. वै० भू० सा० (संस्कृतदर्पण व्याख्या), पृ० 153
7. वै० भू० साट०, पृ० 222
8. अष्टा०, 1-4-50
9. अष्टा०, 1-4-28
10 वै० भू० सा० (संस्कृतदर्पणव्याख्या), पृ० 222
11. वै० भू० सा० (संस्कृतदर्पणव्याख्या), पृ० 152
12. वाक्यपदीयम्, तृतीयकाण्ड कारिका नं० 46
13. अष्टा०, 1-4-51
14. वै० भू० सा०, पृ० 241
15. वै० सि० कौ०, पृ० 699
16. वही, पृ० 700

भारतीय राष्ट्रवाद के प्रेरकः स्वामी दयानन्द सरस्वती

निशा

शोधार्थी , संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

राष्ट्रभावना किसी भी राष्ट्र के व्यक्तियों में अपने देश के प्रति एकता की भावना होती है। इसमें देश के प्रति प्रेम, भक्ति, समर्पण एवं अपनेपन की भावना होती है। राष्ट्रीय भावना से युक्त व्यक्ति में सम्पूर्ण देश के प्रति आत्मीयता का भाव होता है। वह अपने व्यक्तिगत एवं सामूहिक हितों का त्याग करता हुआ राष्ट्रहित को ही सर्वोपरि मानता है।

भारत जैसे राष्ट्र में जहाँ विभिन्न जाति, वर्ग, समुदायों, सम्प्रदायों एवं धर्मों के लोग रहते हैं, वहां राष्ट्रवाद की भावना और भी अधिक आवश्यक हो जाती है। राष्ट्रवाद की भावना ही देश के नागरिकों को जाति-पाति एवं धर्म-अधर्म की विचारधारा से ऊपर उठाकर, उन्हें एकता के सूत्र में पिरोती है। राष्ट्रवाद की भावना किसी भी राष्ट्र के नागरिकों में पाई जाने वाली सामुदायिक विचारधारा होती है, जो उनका संगठन सुदृढ़ करती है।

जब भारत में राष्ट्रभावना की उत्पति की बात आती है, तो कतिपय पाश्चात्य विद्वान् कहते है कि भारतीय संस्कृति में राष्ट्रवाद अंग्रेजी शासन की देन है। परन्तु यह सर्वथा असत्य है। वस्तुतः भारत में राष्ट्रभावना, राष्ट्र के प्रति आत्मीयता की भावना वैदिक काल से ही अस्तित्व में थी। वेदों के अंतर्गत अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में धरती को माता कहते हुए आत्मीयता की भावना प्रकट की गई है-

'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।' [1]

इसके अतिरिक्त पुराणों में भी राष्ट्र के प्रति प्रेम एवं श्रद्धाभाव का अत्यधिक वर्णन प्राप्त होता है। विष्णु पुराण में भारत के प्रति राष्ट्रभावना का अत्यन्त विस्तृत विवरण प्राप्त होता है-

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।
यतो हि कर्मभूरेषा ह्यतोऽन्या भोगभूमयः।।[2]

उक्त पुराण के अनुसार भारतवर्ष में लोग सदैव आपस में मिल-जुल कर रहते हैं।

गायन्ति देवाः किल गीतकानि,
धन्यास्तु ते भारत भूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते,
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात।।[3]

अर्थात् देवगण भी निरन्तर यही गुणगान करते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग एवं अपवर्ग के मार्गभूत भारतवर्ष में जन्म लिया है, वे पुरुष हम देवताओं से भी श्रेष्ठ हैं।

उपर्युक्त श्लोक में जो पुरुष शब्द का प्रयोग किया गया है, उसका तात्पर्य मात्र पुंलिग को निर्धारित करने वाले 'पुरुष' शब्द से नहीं है। यहाँ पुरुष का अर्थ जीवात्मा से है। ऋग्वेद में भी कहा गया है 'पुरि शेते इति पुरुष' अर्थात् जो पुर यानी शरीर में शयन किया करता है, वही पुरुष है। इसमें स्त्रीलिंग एवं पुलिंग दोनों का अंतर्भाव होता है। अतः श्लोक में आया हुआ 'पुरुष' शब्द भारतवर्ष में जन्म लेने वाले प्रत्येक शरीरधारी जीव के लिए प्रयुक्त हुआ है। यद्यपि उक्त उल्लेख मेरे शोध-विषय से भिन्न प्रकृति का है तथा यह स्वयं में ही एक विस्तृत शोध का विषय है। परन्तु इस श्लोक को पढ़ते हुए मेरा ध्यान बार-बार 'पुरुष' शब्द पर जा रहा था। शब्दों के वास्तविक अर्थ एवं व्युत्पत्ति आदि से अनभिज्ञ कोई व्यक्ति इसे भाषिक आधार पर मानकर श्लोक के अर्थ को भिन्न दृष्टि से न देखे, इसलिए इस शब्द की समीक्षा करना मैंने आवश्यक समझा।

विष्णु पुराण के अतिरिक्त वायु पुराण, भागवत पुराण, गरुड़ पुराण, रामायण एवं महाभारत आदि में भी भारतवर्ष के प्रति विशेष श्रद्धा का भाव निहित है। हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के परिचायक वेद, पुराण आदि में राष्ट्रभावना का सर्वत्र वर्णन मिलता है।

भारत में ब्रिटिश शासनकाल के दौरान राष्ट्रभावना का विकास विशेष रूप से इसलिए हुआ, क्योंकि सैकडों वर्षों से गुलामी की बेड़ियों में कैद भारतीय शिक्षा से सर्वथा वंचित थे तथा जब अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ के कारण भारत में शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया तो एक विशिष्ट शिक्षित वर्ग का निर्माण हुआ,

जो स्वतन्त्रता के मूल अधिकार को समझता था। शिक्षा के माध्यम से उन्होंने राष्ट्रवाद की शक्ति को पहचाना। यद्यपि पाश्चात्य देशों के इतिहास ने भी भारतीय नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना का निर्माण किया, परन्तु प्राचीन भारतीय संस्कृति से उन्हें राष्ट्र के प्रति आत्मीयता का भाव उत्पन्न करने वाली प्रेरणा नहीं मिली, ऐसा नहीं है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में विद्यमान राष्ट्रभावना के तत्वों को भली-भांति जानने वाले एवं भारत में राष्ट्रवाद की उत्पत्ति में विशेष योगदान देने वाले स्वामी दयानन्द सरस्वती की भारतीय नागरिकों में 'राष्ट्रीय एकता' पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका है। 'आर्य समाज' के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' के माध्यम से भारतीय नागरिकों में आत्मविश्वास का भाव जागृत किया। उन्हें भारतीय संस्कृति की गौरवशाली महिमा से अवगत कराया। उन्होंने समाज में व्याप्त धार्मिक एवं सामाजिक बुराईयों को दूर करने के लिए वर्ष 1875 में आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज का उद्देश्य भारत में धार्मिक शुद्धता लाने के लिए साथ-साथ राष्ट्रीयता का प्रचार-प्रसार करना था। आर्य का अर्थ होता है- 'सभ्य' एवं समाज का अर्थ है लोगों का समुदाय। अत: 'आर्य समाज' का अर्थ है- सभ्य लोगों का समुदाय। आर्य समाज ने भारतीय नागरिकों को शिक्षा प्राप्ति पर बल देने एवं उनमें अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम भाव उत्पन्न करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। सैकडों वर्षों से गुलाम भारतीयों के हृदय में स्वतन्त्रता प्राप्त करने की इच्छा जागृत करना एवं इसकी प्राप्ति के लिए राष्ट्र के प्रति आत्मसमर्पण एवं त्याग की भावना उत्पन्न करने का मार्ग भी आर्य समाज के द्वारा निर्दिष्ट किया गया। आर्य समाज के अनुयायियों ने भी भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलनों में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। भारतीय समाज में स्वतन्त्रता से पूर्व नवचेतना एवं पुनरुत्थान आंदोलन के रूप में स्वामी दयानन्द सरस्वती का 'आर्य समाज' सर्वाधिक प्रभावशाली एवं सुदृढ़ आंदोलन था। उनके द्वारा चलाए गए 'शुद्धि आंदोलन' ने अखण्ड भारत के मूल वैदिक धर्म में सुधार करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित 'सत्यार्थ प्रकाश' पुस्तक ने भी भारत में व्याप्त सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों को दूर करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इस पुस्तक की रचना स्वामी जी के द्वारा वर्ष 1875 में ही की गई थी। इस पुस्तक में कुल 14 अध्याय हैं, जिनमें स्वामी जी ने धार्मिक एव सामाजिक आदर्शों का उल्लेख किया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती यद्यपि मूल रूप से धार्मिक चिन्तन के प्रतिपादक थे तथापि उनके धार्मिक विचारों एवं व्यवहार ने भारत में राष्ट्रवादी भावना का निर्माण भी किया। भारतीय पुनर्जागरण के द्वारा राष्ट्रवाद को जागृत करने के लिए स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अनेक अन्धविश्वासों, रूढ़िवादी विचारों एवं अशिक्षा का डटकर मुकाबला किया एवं समाज में शिक्षा व तर्कपूर्ण विचारों का प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने लोगों को मिथ्या तत्वों, अन्ध विश्वासों, जात-पात, छुआछूत आदि से ऊपर उठाकर उनमें सम्पूर्ण राष्ट्र, अखण्ड भारत को साथ लेकर चलने वाली विचारधारा को प्रवाहित किया। उन्होंने तर्कयुक्त दृष्टि का प्रयोग करते हुए समाज में फैले हुए पाखण्डों, अंधविश्वासों एवं विभिन्न प्रकार की बुराईयों का खण्डन किया।

स्वामी दयानन्द जी शिक्षा पर विशेष बल देते थे, क्योंकि वे जानते थे कि भारतीय समाज में हजारों वर्षों से चली आ रही धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों का अंत शिक्षा के द्वारा ही हो सकता है। उन्होंने जाति-पाति, ऊँच-नीच व स्त्री-पुरुष का विचार न करते हुए सभी को समान भाव से शिक्षा प्राप्त करने का उपदेश दिया। वे कहते थे कि 'सभी वर्णों के स्त्री-पुरुषों में शिक्षा का प्रचार अवश्य होना चाहिए।'[4]

स्वामी जी ने भारत में राष्ट्रवाद का प्रचार ऐसे समय में किया जब सम्पूर्ण राष्ट्र गुलामी की बेड़ियों से जकड़ा हुआ था। लोग अनेक प्रकार के अंधविश्वासों का शिकार बने हुए थे। ऐसे दुष्कर समय में उन्होंने लोगों में नवजागरण के प्राण फूंके। स्वामी दयानन्द जी ने सम्पूर्ण राष्ट्र को अखण्ड भारत के गौरवशाली इतिहास से अवगत कराया एवं उन्होंने आंतरिक शक्ति का प्रसार किया। वेदों का प्रमाण देकर उन्होंने समाज में नवचेतना की ज्वाला उत्पन्न की। उनके पुनरुत्थान एवं नवजागरण के उपदेश ने भारत में राष्ट्रीयता की भावनाओं का सूत्रपात किया। उन्होंने अपने संदेशों के द्वारा राष्ट्र में हजारों वर्षों से चली आ रही रूढ़िवादी विचारधारा एवं अज्ञानता को दूर करने का भरसक प्रयास किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने लोगों में जागृति एवं राष्ट्रभावना उत्पन्न करने के लिए वेदों को आधार बनाया। वेदों में वर्णित विचारों को उन्होंने राष्ट्रवाद से जोड़ते हुए समाज को एक नई दिशा प्रदान की। उनका दिया हुआ प्रसिद्ध नारा 'वेदों की ओर लौटो।' समाज में अत्यधिक प्रचलित हुआ। यह नारा स्वामी जी की वेदों के प्रति आस्था को द्योतित करता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भारत के नागरिकों में अपने राष्ट्र के प्रति आत्मीयता का भाव उत्पन्न करने में एक आदर्श प्रेरक की भूमिका निभाई है। उनके द्वारा किए गए सुधारवादी आंदोलनों एवं पुनरुत्थान के प्रयासों का परिणाम यह हुआ कि भारतीय समाज जो अनेक प्रकार के सामाजिक मिथ, धार्मिक अंधविश्वासों एवं रूढ़िवादी विचारधारा से झकड़ा हुआ था, उसने स्वयं के एक पृथक अस्तित्व को स्वीकार किया। स्वामी जी के उपदेशों से प्रभावित होकर प्रत्येक व्यक्ति आत्मविश्वास से युक्त हुआ एवं सम्पूर्ण राष्ट्र को अपना कुटुम्ब मानने लगा। जिस समाज में व्यक्ति पहले मात्र अपने धर्म एवं जाति वाले लोगों को अपना मानते थे, वही व्यक्ति स्वामी जी के आदेशों पर चलकर एवं अपनी विचारधारा को ऊपर उठाकर सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रति आत्मीयता का भाव रखने लगे तथा इसी राष्ट्रवादी विचारधारा से प्रेरित होकर अपने देश के प्रति त्याग भावना की ओर अग्रसर हुए, जिसके परिणामस्वरूप भारत को एक स्वतन्त्र राष्ट्र की पहचान मिली।

आर्य समाज की राष्ट्रवादी भावना से प्रेरणा प्राप्त कर भारत एक स्वतंत्र लोकतांत्रिक साम्राज्य के रूप में ऊभरा है एवं आज भी उनके द्वारा बताए गए मार्ग का अनुगमन करने के लिए तत्पर है।

संदर्भ

1 अथर्ववेद, 12.1.12

2 विष्णु पुराण, 2.3.22

3 वही, 2.3.24

4 सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय सम्मुलास, पृ. स.-58

गणराज्यों की अवधारणा एवं पतन के कारण

बृजकेश यादव

शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, (म0प्र0)

प्राचीन भारत में केवल नृपतन्त्र का ही प्रचलन था; जिन राज्यों को प्रजातन्त्र समझा जाता है वे वास्तव में जन-राज्य या ज्ञाति-राज्य थे। इस मत के अनुसार मानव गण और यौधेय गण का अर्थ मालव और यौधेय प्रजातन्त्र नहीं वरन् मालव और यौधेय (ज्ञाति) राज्य है। परन्तु यह मत ठीक नहीं हैं। यदि हम मान भी लें कि मानव और यौधेय गण या ज्ञातियाँ थीं तो भी इस बात के पर्याप्त प्रमाण हें कि इनकी राज्य-व्यवस्था प्रजा तन्त्रात्मक थी। यह निर्विवाद सिद्ध है कि गण का अर्थ एक विशिष्ट राज्य-व्यवस्था है जो नृपतन्त्र से नितान्त भिन्न है। मध्यप्रदेश के कुछ व्यापारियों से दक्षिण के एक राजा ने पूछा कि आपके देश में कौन राजा राज्य करते हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि महाराज, हममे से कुछ ऐसे देश के हैं जहां राजा का राज्य है और औरों के देश में गणतन्त्र की व्यवस्था है।[1] एक जैन ग्रन्थ में कहा गया है कि जैन साधु ऐसे देश में न जाएं जहां राजा न हो, या जहां युवराज का राज्य हो या जहां आपस में लड़ने वाले दो राजाओं (द्वैराज्य) का राज्य हो जहाँ गणराज्य हो।[2] इन दो उद्धरणों से स्पष्ट है कि गण का एक निश्चित वैधानिक अर्थ है और इससे ऐसे राज्य का बोध होता है जहां अधिकार एक आदमी के हाथ में न होकर गण अथवा अनेक व्यक्तियों के हाथ में होता था। ठीक इसी अर्थ में 'संघ' शब्द का भी प्रयोग किया जाता था। अत: जब सैकड़ों मुद्राएं हमारे सामने हैं, जिन पर के छोटे लेखों में यौधेय, मालव और अर्जुनायन राजाओं का नहीं वरन् उनके गण का उल्लेख है तो उससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि उनका तात्पर्य जन या जाति से नहीं वरन् गण या लोकतंत्र राज्यव्यवस्था से है जिसकी ओर से उक्त मुद्राएं जारी की गयी थी।

मुद्रा-लेखों और पारिभाषिक शब्दों के अतिरिक्त प्राचीन भारत में राजतंत्र से भिन्न प्रकार के प्रजातन्त्रों का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए हमारे पास सम-सामयिक यूनानी लेखकों के विवरणों का बहुमूल्य प्रमाण भी है। कुछ लोग इन प्रमाणों को संदिग्ध समझते है।[3] वे कहते हैं कि यूनानी इतिहासकारों ने जबर्दस्ती भारतीय राज्य-व्यवस्था को अपने देश में प्रचलित व्यवस्था से मिलाने की चेष्टा की है। यह तर्क विचित्र है। प्राचीन यूनान में जितनी राजनीतिक सिद्धांतों और मूलतत्वों की चर्चा और विवेचन और शासन-व्यवस्था का अध्ययन और विश्लेषण हुआ था उतना अन्यत्र कहीं नहीं हुआ था। यूनानी इतिहास-लेखकों ने प्राचीन भारत में नृपतंत्र और अनेक प्रकार के प्रजातन्त्र दोनों देखे थे। वे स्वयं लोकतंत्र के समर्थक थे और कोई कारण नहीं कि वे झूठ-मूठ अपने शत्रुओं में ऐसी राज्य-व्यवस्था का अस्तित्व सिद्ध करना चाहें जिसे वे अपने गौरव का विषय मानते थे। उनके लेखों के अध्ययन से सिद्ध होतना है कि उन्होंने भिन्न प्रकार के राज्यों की विभिन्नता की बड़ी सूक्ष्मता से अध्ययन किया था। आंभी और पुरू दोनों सिकन्दर के समकालीन राजा थे। यूनानी लेखकों का कथन है कि जब पुरू ने सिकन्दर की अधीनता स्वीकार कर ली तो सिकन्दर ने अपना जीता बहुत बड़ा भूमिभाग उनको प्रदान कर दिया; यूनानी इतिहासकार बड़ी सावधानी से कहते हैं कि उस प्रदेश में प्रजातंत्रात्मक राज्यव्यवस्था थी।[4] यूनानी लेखकों ने लिखा कि न्यासा के नगर-राज्य में उच्चवर्गतंत्र प्रचलित था।[5] वे आगे जाकर कहते हैं कि सबरक नामक प्रबल भारतीय ज्ञाति में प्रजातंत्र था, नृपतंत्र नहीं। व्यास नदी के पूर्व एक शक्तिशाली राज्य अवस्थित था जिसका शासन उच्चवर्ग के हाथ में था, जो जनता पर न्याय से और सौम्यता से शासन करता था। सन्धि नदी की घाटी में बहुत से प्रजातन्त्रीय राज्य थे मगर उनका वर्णन करने से यूनानी इतिहासकार जो वहां इने-गिने नृपतत्रांत्मक राज्य थे उनका उल्लेख करना नहीं भूले हैं। वे लिखते हैं कि मुसिक राज्य पर एक राजा का राज्य है और पाटल में भिन्न कुल के दो राजाओं का राज्य है जो लोक-समिति की सलाह से एकसाथ राज्य करते हैं। जब हम देखते हैं कि यूनानी लेखकों ने शासन-पद्धति और राज्य-व्यवस्था की विभिन्नता का किस सूक्ष्मता से वर्णन किया है तब हमें उनके वर्णनों की प्रामाणिकता स्वीकार करनी ही पड़ती है और यह विचित्र तर्क अस्वीकार करना पड़ता है कि उन्होंने केवल यूनान से समता दिखाने के लिए अपने मन से भारत में प्रजातंत्र राज्यों का वर्णन दिया है। मैकक्रिंडल का यह मत भी निस्सार है कि यूनानी लेखकों द्वारा वर्णित प्रजातंत्रात्मक राज्य वास्तव में ग्राम-सभाएं थी।[6] यूनानी लेखकों ने तो ग्राम-जीवन या ग्राम-शासन का उल्लेख भी नहीं किया है। फिक का यह मत है कि ग्रीक लेखकों द्वारा वर्णित प्रजातंत्र या स्वयंशासित राज्य छोटी-छोटी रियासतें या एक्के-दुक्के नगर थे जो मगध जैसे बड़े-बड़े साम्राज्यों के अड़ोस-पड़ोस में रहते हुए आवैर किसी प्रकार अपनी स्वायत्तता को बनाये रख सकते थे।[7] परन्तु यह मत भी ठीक नहीं है। एक तो सिकन्दर के समय में पंजाब में कोई बड़ा साम्राज्य भी न था, दूसरे उस समय के प्रजातंत्रात्मक राज्य राजाओं द्वारा शासित राज्यों से कहीं अधिक विस्तृत और शक्तिवान थे।

अभी तक हमने इन राज्यों के लिए प्रजातंत्र शब्द का सामान्य प्रयोग किया है। अब हमें इनका प्रकृत स्वरूप निश्चित करना है। कुछ लेखक इनकी शासन-संस्था को केवल ज्ञाति या जन की पंचायत बताते हैं। कुछ दूसरे उसको उच्च-जनतंत्र समझते है, कुछ ऐसे भी लेखक हैं जो इनमे विशुद्ध प्रजातंत्र देखते हैं। अब हमें देखना है कि इनमें से कौन-सा शब्द इनके विधान का ठीक-ठीक वर्णन कर सकता है।

कुछ लेखकों का कहना है कि इन राज्यों को प्रजातंत्र या लोकतंत्र कहना ठीक नहीं क्योंकि इनमें सारे अधिकार साधारण जनता के हाथ में नहीं वरन् एक छोटे से उच्चवर्ग के लोगों के हाथों में ही रहते थे। हम जानते हैं कि यौधेयों में शासन-सूत्र 5000 व्यक्तियों की परिषद् के हाथ में था जिनमें से प्रत्येक के लिए राज्य को एक हाथी देना जरूरत था।[8] अस्तु, यह स्पष्ट है कि इस राज्य के अमीर या उच्च वर्ग के सदस्य ही होते थे, जिनमें एक-एक हाथी दे

सकने की सामर्थ्य थी। जनसाधारण का राज्य के शासन में कोई हाथ न था। शाक्यों और कोलियों के राज्य में यही स्थिति थी। समस्त जनता के जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाले सन्धि-विग्रह जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न का निर्णय भी थोड़े से शाक्य और कोलिय राजाओं अर्थात् सरदारों के हाथ में था। साधारण किसान और मजदूर का काम केवल अधिकारीवर्ग के निश्चय को जानना और पूरा करना था।

इसमें सन्देह नहीं कि आजकल प्रजातंत्र और लोकतंत्र का जो अर्थ है उस अर्थ में तो प्राचीन भारत के यौधेय, शाक्य, मालव और लिच्छवि गणराज्य लोकतंत्र नहीं कहे जा सकते। आधुनिककाल के अधिकांश उन्नतिशील लोकतंत्र राज्यों की भांति प्राचीन भारत के इन गणराज्यों में शासन की बागडोर सामान्य जनता के हाथ में नहीं थी फिर भी हम इन्हें प्रजातंत्र या गणतंत्र कह सकते हैं। राजनीति के प्रमाणभूत ग्रन्थों के अनुसार प्रजातंत्र राज्य वह है, जिसमें सर्वोच्च शासन-अधिकार राजतंत्र की भांति एक व्यक्ति के हाथों में न होकर एक समूह, गण या परिषद् के हाथों में हो, जिसके सदस्यों की संख्या चाहे कम हो या अधिक। इस प्रकार सरदारतंत्र, उच्चजनतंत्र, और प्रजातंत्र सभी लोकतंत्र की श्रेणी में आते हैं। इसी प्रकार प्राचीन रोम, एथेंस, स्पार्टा, कार्थेज मध्यकालीन वेनिस, संयुक्त नेदरलैंड और पोलैंड सभी प्रजातंत्र माने गये हैं, यद्यपि इनमें से किसी में भी आधुनिक लोकतंत्र के सब लक्षण वर्तमान न थे। प्राचीन यूनान और इटली के प्रजातंत्र राज्यों में मतदान का अधिकार बहुत छोटे से अल्पसंख्यक समूह के हाथ में था जो स्वतंत्र मगर अधिकाररहित नागरिक और बहुसंख्यक दास वर्ग पर शासन करता था। मध्ययुग में वेनिस के प्रजातंत्र में कौसिल की समाप्ति के बाद मताधिकार थोड़े से रईसों के हाथ में रह गया था और इन पर भी एक छोटे से गुट का बड़ा प्रभाव रहता था। संयुक्त नेदरलैंड के सात राज्यों का शासक निर्वाचित 'स्टैथोल्डर' होता था परन्तु उसे चुनने का अधिकार भी बहुत थोड़े लोगों को ही था। आधुनिककाल में भी संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में लाखों निगो चिरकाल तक मताधिकार से वंचित रहे हैं, इंग्लैंड में भी 19वीं सदी के मध्य तक 'पाकेट बारो' पाये जाते थे जिनके सहारे सरदार लोग जिसे चाहे उसे निर्वाचित कर सकते थे।

राज्यशास्त्र के आधुनिक ग्रन्थों में गणतन्त्र की उत्पत्ति पर बड़े विस्तार से विचार किया जाात है। सर्वप्रथम गणतन्त्र की किस प्रकार उत्पत्ति हुई, इसके तत्कालीन प्रमाण तो मिल नहीं सकते। सामाजिक या राजनीतिक संघटन से परिचित लोगों ने भिन्न-भिन्न समय पर अपने राज्य की किस प्रकार स्थापना की, इसके उदाहरण इतिहास में बहुत मिलते हैं पर पहले-पहल मनुष्य ने राजनीतिक संघटन का ज्ञान प्राप्त करके किस प्रकार गणतन्त्र की स्थापना की, इसकी तो पुराणों और किवदंतियों के सहारे कल्पना ही की जा सकती थी। आधुनिक लेखक वैज्ञानिक प्रणाली और विकासवाद के सिद्धांतों के आधार पर अपना-अपना मत प्रतिपादन करते हैं। इस समय भी आदिम व्यवस्था में रहने वाली जंगली जातियों की स्थिति के निरीक्षण से उनके कुछ सिद्धांतों की पुष्टि भी होती है। परन्तु पुराने विचारकों को, चाहे वे पूर्व के हों या पश्चिम के, ये साधन उपलब्ध न थे। प्राचीन भारत में अधिकतर संस्थाओं की उत्पत्ति दैवी ही मानी जाती थी और राज्य की उत्पत्ति भी इसी प्रकार समझी जाती थी।

गणराज्यों के पतन के कारण

गणराज्यों के पतन के कारण कुछ इस प्रकार है -

ईरानी आक्रमण

यद्यपि उत्तर-भारत के पूर्वी भाग में मगध साम्राज्य का उदय हो रहा था और मगध की शक्ति बड़ी विशाल और उसकी सेना बड़ी प्रबल थी, परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि मगध ने पश्चिमोत्तर भारत को अपने साम्राज्य में मिलाने की कभी दूरी कोशिश न की। इसका फल यह हुआ कि उत्तरापथ अथवा भारत का पश्मिोत्तर भाग कई छोटे-बड़े राज्यों में बँटा हुआ था। इसमें से कुछ राज्य गणतांत्रिक और कुछ एकतांत्रिक थे। ये राज्य आपस में प्रायः लड़ते रहते थे। इससे उत्तरापथ राजनैतिक और सैनिक दृष्टि से कमजोर हो गया था और विदेशी आक्रमण को निमंत्रण दे रहा था।

जिस समय भारत में मगध साम्राज्य का उदय हो रहा था, उसी समय फारस में छठी शती ईसा पूर्व में एक बड़े साम्राज्य की स्थापना हुई थी। यह साम्राज्य पश्चिम और पूर्व दोनों ओर अपना विस्तार कर रहा था। फारस के राजा पुरुष ने लगभग 550 ई0 पू0 में मकरान के रास्ते से भारत पर आक्रमण किया। पहले आक्रमण में भारतीयों से वह बुरी तरह हारा और केवल अपने सात साथियों के साथ जान बचाकर भागा। दूसरे आक्रमण में उसे अधिक सफलता मिली और उसने काबुल घाटी पर अपना अधिकार जमा लिया। ईरान के दूसरे राजा दारा ने 521 ई0 पू0 के लगभग भारत पर आक्रमण किया। उसने गान्धार, कम्बोज पश्चिमी पंजाब और सिन्ध पर अपना साम्राज्य स्थापित किया। किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि ईरानी राजाओं ने भारत पर कभी सीधे राज्य नहीं किया, वे वार्षिक कर और सैनिक सहायता से ही सन्तुष्ट थे। ईरान के साथ राजनीतिक सम्पर्क का फल यह हुआ कि पश्मिोत्तर भारत में कुछ ईरानी तश्च आ मिला। यहाँ की भाषा, लिपि और वेशभूषा के ऊपर भी ईरानी प्रभाव पड़ा।

यूनानी आक्रमण

जिस तरह सातवीं और आठवीं शताब्दी ईसा पूर्व उत्तर-भारत में कई एक गणराज्य हुए, जिन्होंने धर्म, राजनीति और कला में अपनी देन छोड़ी, उसी तरह सातवीं और छठवीं शती ईसा पूर्व में यूनान में भी कई गणराज्य थे, जिन्होंने यूनानी सभ्यता और संस्कृति को जन्म दिया और उनको उच्चतम शिखर पर पहुँचाया। चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में विलासिता, परस्पर युद्ध और स्थानीयता के कारण गणराज्यों का ह्रास प्रारम्भ हुआ। इसी समय मेसिडोनिया में एक नयी राजनैतिक शक्ति का उदय हुआ। वहाँ के राजा फिलिप ने यूनान के गणतंत्रों का विनाश करके सारे यूनान पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। फिलिप का पुत्र सिकन्दर महान् उससे भी अधिक महत्वाकांशी था।

सिकन्दर के आक्रमण का परिणाम यह हुआ कि कुछ समय के लिये सीमान्त और पंजाब के अधिकांश पर यूनानी आधिपत्य स्थापित हो गया।

चूँकि प्राचीन ग्रन्थों में सर्वत्र राजतंत्र की ही प्रशंसा की गयी थी तथा राजा का पद दैवी माना गया था, अतः गणराज्यों ने भी सुशासन एवं सुरक्षा की दृष्टि से राजतंत्रात्मक प्रणाली को अपनाना लाभकर समझा। गणराज्यों के शासक राजतंत्रों के अनुकरण पर महाराज तथा महासेनापति जैसी उपाधियाँ ग्रहण करने

लगे। ये पद वंशानुगत पर से चलने लगे। कुमारदेवी के उदाहरण से स्पष्ट है कि वह लिच्छवि गणराज्य की आनुवंशिक रूप से उत्तराधिकारी थी। क्रमशः गणराज्यों में सत्ता सबसे प्रभावशाली व्यक्ति के हाथ में केन्द्रित हो गयी। अब राजतंत्रों से उनका कोई विभेद नहीं रह गया। इस प्रकार उनके शासन का जनतांत्रिक स्वरूप समाप्त हो गया। गणराज्यों की आपसी फूट तथा समकालीन राजतंत्रों की विस्तारवादी नीति को भी न्यूनाधिक रूप से उनके पतन के लिये उत्तरदायी माना जा सकता है।

संदर्भ

1 देव केचिद्देशा गणाधीनाः केचिद्राजाधीनाः। अवदानशतक, 2, पृ0 103

2 अरायणि वा गणरायणि वा जुवरायणि वा दोज्जणि वा बरज्जणि वा विरूद्धरज्जणि वा। आचरंग सूत्र, 2.3.1.101

3 बेनीप्रसाद, स्टेट। 168-9 मैकक्रिंडल, अलेक्जेंडर्स इनवेजन।

4 बेनीप्रसाद, स्टेट। 168-9 मैकक्रिंडल, अलेक्जेंडर्स इनवेजन। पृ0 308-93, पृ0 81

5 बेनीप्रसाद, स्टेट। 168-9 मैकक्रिंडल, अलेक्जेंडर्स इनवेजन। पृ0 252, 4- पृ0 121

6 मैकक्रिंडल, पृ0 115

7 फिक, सोशल कंडिशंस इन दिन नॉर्थ ईस्टर्न, इण्डिया, पृ0 137

8 मैकक्रिंडल, इन्वेजन ऑफ अलेक्जेंडर दि ग्रेट, पृ0 181

भारत-म्यांमार बांग्लादेश संबंधों में चीन की भूमिका

परमजीत राम

शोध् छात्रा, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन, विभाग, श्री गणेश राय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डोभी जौनपुर

भारत-म्यांमार के द्विपक्षीय संबंधें में कई ऐसे कारक है जिसमें दोनों देशों की घरेलू बाध्यता तथा रणनीतिक वास्तविकता भी सम्मिलित है, जो इन्हें निर्धरित करने में भूमिका अदा करती है। म्यांमार के साथ भारत के द्विपक्षीय संबंध्, भारत की आदर्शवादी नीति से यथार्थवादी नीति की ओर झुकाव को दर्शाते है। दक्षिण पूर्व एशिया तथा भारतीय उपमहाद्वीप के बीच म्यांमार के जमीनी सेतु का काम करता है। एशिया के दो बड़े पड़ोसियों के बीच यहां एक वपफर स्टेट की स्थिति में है जिससे भारत चीन दोनों इसके प्रति झुकाव रखाते है। भारत के साथ सीमा साझा करने वाले सबसे बड़े देशों में म्यांमार दूसरा देश है जिसकी सीमाएं भारत के साथ 1640 किमी0 जुड़ी हुयी है। यह उत्तरपूर्व के राज्यों के लिए उच्च स्तरीय संवेदनशील क्षेत्रा है जिसमें बंगाल की खाड़ी के साथ भी लम्बी समुद्री सीमा भी लगी हुई है।

हाल के समय में चीन-म्यांमार के बीच बढ़ती हुयी निकटता भारत के लिए चिन्ता का विषय है। 80 के दशक में 'अच्छी पड़ोसी नीति' की पहल डेंग जियोपिंग के द्वारा शुरू की गयी जिससे म्यांमार-चीन के बीच संबंधें का नया युग शुरू हुआ। 1989 के समय से चीन-म्यांमार के बीच व्यापारिक संबंधें में बढ़ोत्तरी हुयी और चीन ने म्यांमार को एक साझीदार के रूप में स्वीकारा। इस बदलती परिस्थिति में और शीत युद्ध के बाद की बदलती दुनिया में, भारत को पुनः म्यांमार के साथ अपने संबंधें को सहेजना जरूरी हो गया है। भारत ने इसके लिए यथार्थवादी विदेशनीति को स्वीकारते हुए अपने राष्ट्रीय हितों के अनुकूल निर्णय लेने का निर्णय लेना जरूरी समझा है। शीत यद्ध के बाद के समय में भारत की ज्यादेतर विदेश नीति में म्यांमार के लोकतांत्रिक आन्दोलन से एक दूरी बनाकर अपने को रखा गया और यह कहा गया कि यह म्यांमार का आंतरिक विषय है और वहां के सैन्य दल से भी मैत्राी बनाकर रखा गया।[1] म्यांमार को लेकर आज की भारत की नीतियों में वर्मा की सेना द्वारा रोहिंग्यों को प्रताडित्रात किये जाने पर ध्यान नहीं दिया गया है।

भारत-म्यांमार संबंधें की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि-

भारत-म्यांमार दोनों उपनिवेशवाद के शिकार रहे है। प्रथम व द्वितीय एंग्लो-वर्मा यद्ध में बर्मा ;म्यांमार का आरंभिक नामद्ध को लगातार दो बार हार का सामना करना पड़ा। 1856 में बर्मा को ब्रिटिश भारत का एक प्रांत बना दिया गया। 1937 में भारत उपनिवेश से अलग करके ब्रिटिशों ने एक इसे अलग उपनिवेश क्राउन के नाम पर बना दिया। द्वितीय विश्व युद्ध के समय, 1942 में बर्मा हार गया और उसके ऊपर जापान का नियंत्राण हो गया जिसे 1945 में ब्रिटेन ने पुनः अपना कब्जा किया। 1947 में जब भारत स्वतंत्रा हुआ तो उसने ब्रिटेन से वर्मा की स्वतंत्राता का प्रबल समर्थन किया। 1948 में बर्मा भी स्वतंत्रा हो गया।[2] उस समय के बर्मा के प्रधनमंत्राी यू-यू ने गुट निरपेक्ष आन्दोलन में उसकी मजबूती के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया। इससे दोनों देशों के द्विपक्षीय संबंधें को ऊर्जा मिली। 1962 तक दोनों देशों के द्विपक्षीय संबंधें में घनिष्टता दिखायी दी, जिसमें व्यापार तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान, आपदा के समय में पारस्परिक सहयोग, जिसमें भारत ने हमेशा म्यांमार का साथ दिया। 1962 में सैन्य जनरल नी बिन ने यू-यू की लोकतांत्रिक सरकार का तख्ता पलट किया।[3] जनरल नी बिन ने निरंकुश शासन यह कहते हुए स्थापित किया कि यह एक समाजवादी राज्य है जिसका नाम ''बर्मा का समाजवाद का मार्ग' है।''

भारत की कूटनीतिक क्षमता तथा बांग्लादेश-

भारत के पास अकूट कूटनीतिक क्षमता है जो उसे लोकप्रिय संस्कृति, लोकतांत्रिक राजनीतिक, संस्थाएं और परंपराओं में शामिल नेतृत्व की तरपफ से विरासत में मिली है। आज भारत की भी कोशिश है कि वो अपनी कूटनीतिक संसाध्नों का प्रयोग करें और इसके साथ ही साथ कड़े उपाय भी अपनाने की आवश्यकता है। इसे कुछ लोगों ने भारत के द्वारा उपनिवेशवाद के खिलापफ जाने के रूप में देखा है। पिफर भी इसे संपूर्ण के सापेक्ष देखा जॉय तो भारत के कूटनीतिक क्षमता में अभिवृद्धि होती हुई देखी गई है। ब्लारेल के मुताबिक भी भारत को अब समझ में आ गया है कि उसे कूटनीतिक एवम् कड़े उपायों को अपनाने की जरूरत है, लेकिन ये दोनों उपाय एक दूसरे के खिलापफ नहीं होने चाहिए। जहां तक उनके द्वारा कड़े उपायों को अपनाने की जरूरत है, तो इसे आर्थिक एवम् सैन्य क्षममता की वृद्धि करते रहना चाहिए।[4]

भारत के कूटनीतिक संसाध्नों के कई पक्ष है यथा- खेल-कूद, संगीत, कला, पिफल्म एवं साहित्य। लेकिन कुछ विद्वानों ने इसमें स्वतंत्रा मीडिया, स्वतंत्रा एवम् निष्पक्ष न्यायपालिकाक, विविध् नागरिक समाज, निरपेक्षता, बहुलवाद, कुशल अंग्रेजीभाषी श्रमिक, विविध् व्यंजन, काष्ठकला, योग एवम् अन्य सांस्कृतिक पहलुओं को भी कूटनीतिक संसाध्नों से जोड़ा है। भारत की हैसियत अब नाभिकीय शत्तिफ के रूप में भी उभर रही है।

भारत की बांग्लादेश के साथ कुछ सीमा संबंधी समस्याएं भी है। इन दोनों देशों के बीच 4096 किमी0 की सीमा रेखा है जिसमें से कैमिला-त्रिपुरा की सीमा अध्किृत रूप से विवादों में घिरी है। सन् 1972 में दोनों देशों के राष्ट्राध्यक्षों के द्वारा एक सहमति पत्रा हस्ताक्षर किया गया जो अभी तक क्रियाशील नहीं हो पाया। अप्रैल माह से सीमा विवाद का स्वरूप बिगड़ता गया क्योंकि आगजनी की घटना में कई लोगों की मौत भी हो गई। कहीं कहीं तो भारत और

बांग्लादेश के मध्य सीमांकन ही स्पष्ट नहीं है। किसी के घर का ही आध हिस्सा तो भारत में है लेकिन शेष आध भाग बांग्लादेश के प्राध्किार क्षेत्रा के अंतर्गत आता है। घुसपैठ की समस्या को रोक पाना भी संभव नहीं है।

ऊर्जा क्षेत्रा को ध्यान में रखते हुए भारत को बांग्लादेश के साथ इतर रिश्ते बनाने की सख्त जरूरत है। भारत सरकार की नीति ही है कि अधिक से अध्कि तेल एवम् प्राकृतिक गैस के आपूर्तिकर्ताओं की तलाश की जॉय। इस दिशा में भारत ने अच्छी-खासी प्रगति की है। वर्तमान में भारत मध्यपूर्वी देशों से 60 से 70 प्रतिशत तेल की आपूर्ति कर रहा है। सन् 2025 के बीतने के साथ ही साथ, जैसी कि उम्मीद है कि भारत तीसरा ऐसा देश होगा जो अपने उपभोग का 90 प्रतिशत तेल आपूर्ति कर रहा होगा। ओ0एन0जी0सी0 संगठन के अंतर्राष्ट्रीय प्रभाग को ओ0एन0जी0सी0 विदेश के नाम से जाना जाता है जो विदेशों में ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों की तलाश कर रही है। केंद्रीय एशिया में भी ओ0एन0जी0सी0 नाम के संगठन ने ईरान और कजाकिस्तान तक अपने कार्य क्षेत्रा फैला रखे हैं।

बांग्लादेश को भारत से आर्थिक सहयोग-

विगत सात वर्षों में भारत ने बांग्लादेश को 8 बिलियन अमेरिकी डालर का सहयोग दिया है। इससे बांग्लादेश सबसे बड़ा लाईन ऑपफ क्रेडिट भारत से प्राप्त करने वाला देश हो गया है। जनवरी 2010 में बांग्लादेश की प्रधनमंत्राी का भारत यात्रा के दौरान 1 बिलियन अमेरिकी डालर लाईन क्रेडिट दिया गया जो लोक यातायात, रोड, रेलवे, पुल तथा जल मार्ग आदि पर खर्च होने वाला था। इसमें बहुत सारी परियोजनाएं या तो पूरी हो गयी हैं या पूरे होने के नजदीक है। जाईन ऑपफ क्रेडिट पफण्ड के अलावे भारत सरकार 'बांग्लादेश को सहायता' योजना के तहत भी सहायता करती है। इस तरह की योजनाओं में विद्यालय/कालेज की ईमारत, प्रयोगशालाएं, दवाखाने, गहरे ट्यूबवेल, सामुदायिक केन्द्र, ऐतिहासिक स्थलों का पुनरद्धार आदि के कार्य किये गये है। वर्तमान समय में सतत विकास परियोजनाएं _CDPs¼ राजशाही, खुलना तथा सीलहट शहरों में चल रही है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के पैतृक घर जो सियालदह में है, वहां 36 सामुदायिक केन्द्र बनाए गए हैं जिसमें बांग्लादेश के कुछ चिन्हित जिलों को भी सम्मिलित किया गया है। अगरतला-अंकोरा रेलवे लिंक एक बहत बड़ी परियोजना है जिसमें भारत सरकार मदद कर रही है।[5]

भारत-म्यांमार संबंधें में चीन की भूमिका-

भारत म्यांमार संबंधें में चीन की बेशक अहम भूमिका है क्योंकि वो म्यांमार में अपने प्रभाव का इस्तेमाल करता रहता है। नववास्तविकतावाद के प्रवर्तक जोसेपफ ग्रिएको का मानना है कि राज्यों की प्रवृत्ति है कि वो प्रतिस्पर्धी लाभ के बारे में प्रायः सोचते रहते हैं और विशुद्ध निरपेक्ष लाभ की सतत उपेक्षा करते है। म्यांमार के प्रति अपनी नीतियां निर्धरित और विकसित करते समय भारत भी चीन के सापेक्ष लाभ के बारे में सोचता है।

चीन की भूमिका ही भारत को म्यांमार के प्रति नीतियां विकसित करने के लिए प्रेरित करती हैं जो प्रायः वास्तविकता के ध्रातल से हटकर है। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के परिदृश्य में सारे देशों की प्रकृति लगभग एक सी है और वे इस जटिल दुनियां में एक दूसरे के प्रति कारणिक या तार्किक भूमिका का निर्वहन करते रहते है जो इन्हें 'अराजक' की श्रेणी में ऽड़ा कर देती है। वैसे इनका पूरा अध्किार है कि ये पारस्परिक लाभ के लिए एक दूसरे की मदद एवम् सहयोग करें क्योंकि इनकी गतिविध्यिां प्रायः आर्थिक, सैन्य एवम् कूटनीतिक रूप से प्रेरित हो जाया करती है। चीन के बारे में इसी सिद्धांत का निरूपण करना कहीं से गैर वाजिब नहीं होगा। क्योंकि इसमें व्यापक तरीके से म्यांमार को आर्थिक कूटनीतिक एवम् सैन्य सहयोग उपलब्ध् कराए हैं, जबकि पश्चिमी जगत ने इस आर्थिक प्रतिबंध् थोपे थे। म्यांमार को भारी मात्रा में सैन्य आपूर्ति चीन के द्वारा की जाती रही है। तमाम जेट, लड़ाकू विमान, सशस्त्रा वाहन और नौसेना के जहाजों की सतत आपूर्ति निर्बाध् रूप से चीन के द्वारा की जाती रही है। इतना ही नहीं, नौसेना के ठिकानों के हंगगई में आधुनिकीकरण करने एवम् कोको द्वीप, अक्यब और मरगुई में रडार बनाने की सारी गतिविध्यिां बंगाल की खाड़ी में देखी जा सकती है। कोको द्वीप को म्यांमार से पट्टे पर हासिल किया गया है ताकि भारतीय सागर तक पहुंच बनाया जा सके। इसके अलावे चीन के पास इतनी सशत्तफ अत्याधुनिक सुविध है कि वो भारत के पूर्वी तट पर नौसेना की गतिविध्यिों पर सीधे नजर रख सकता है। भारत के मिसाईल कार्यक्रम की पूरी निगाहबानी चीन के लिए अत्यंत सहज एवम् सरल है।

यदि म्यांमार में चीन का प्रभाव बढ़ता रहा तो भारत के सामुद्रिक ठिकानों के समक्ष गंभीर चुनौतियां उत्पन्न हो सकती है। कारण यही है कि चीन की ध्मक अरब सागर तक सुनी जा सकती है जो पाकिस्तान के ग्वादर बंदरगाह और भारतीय सागर तक होते हुए म्यांमार तक पहुंच सकती है। क्याउक्प्यू नामक नये बंदरगाह का बीजिंग के वित्तपोषण के मदद से निर्माण के साथ म्यांमार भी चीन की महती आकांक्षा से परिपूर्ण परियोजना में शामिल हो चुका है। चीन की ख्वाहिश है कि भारतीय सागर को घेरते हुए बंदरगाहों के निर्माण पूरे हो। म्यांमार इसकी खास कड़ी है। ऐसा विश्वास है कि नौसेना के ठिकानों के आधुनिकीकरण के अवसर को चीन अपने हाथ से खाली नहीं जाने देगा। चीन और म्यांमार के बीच बढ़ती नजदीकियां चीन के भारतीय सागर तक पहुंचने के मंसूबे को जरूर पूरा करेगी। चीन के ऊपर इल्जाम है कि वो पाकिस्तान, श्रीलंका, बांग्लादेश और श्रीलंका में बंदरगाह की सुविध सृजित करते हुए भारत को घेरने की रणनीति पर अमल कर रहा है। इसे भारत के द्वारा चौकसी और शक के नजरिए से देखा जा रहा है। ऐसी आशंका है कि इन बंदरगाहों का इस्तेमाल न केवल आर्थिक होगा, बल्कि उग्रवाद को बढ़ावा देने के लिए भी किया जा सकेगा। इसके अतिरित्तफ हर जगह और हर रोज दैनिक जीवन में चीन के उत्पादों का बेधड़क इस्तेमाल उत्तरी और उत्तरी पूर्वी म्यांमार में जिस तरीके से किया जा रहा है, वो भारत के लिए चिंता का विषय है। चीन और म्यांमार के सीमावर्ती क्षेत्रों में जिस तरह से पूरी आर्थिकी सतत शैली से अंर्तनिर्भर होती जा रही है, वो भारत के लिए व्यथा का विषय है।

हाल के वर्षों में भारत के प्रधनमंत्राी श्री नरेन्द्र मोदी ने चीन के प्रभाव एवम् वर्चस्व को रोकने में सपफलता पाई है। बांग्लादेश में चीन के द्वारा कोशिश की गई है कि वहां पूंजी निवेश और तकनीकी सहायता के लिए संभावनाएं ढूंढ़ी जॉय। चीन और बांग्लादेश के बीच रिश्तों की शुरूआत सन् 1975 में की गई और इस रिश्ते में इतनी मजबूती आ गई कि चीन ने बांग्लादेश से आयातित 95 प्रतिशत उत्पादों पर कर नहीं लेने का पफैसला कर दिया। बांग्लादेश के साथ चीन सबसे बड़ा व्यापारिक सहयोगी हो गया और सन् 2019 में इन दोनों देशों के बीच व्यापार 18 बिलियन यू0एस0 डालर तक पहुंचं गया। व्यापारिक

संबंधें के अलावे चीन ने अपने आपको सबसे बेहतर और अनुकूल मित्रा के रूप में सिद्ध किया। चाहे वो राजनीति या आर्थिक क्षेत्रा की बात हो या कूटनीतिक संबंधें की, चीन ने अपने को बांग्लादेश के अच्छे मित्रा के रूप में प्रदर्शित किया। इन दोनों देशों के बीच राजनीतिक यात्रा भी प्रायः होती रही है, जिससे प्रदर्शित होता है कि चीन की इसमें गहरी अभिरूचि है। चीन के इस विस्तारवादी नीति से भारत बेहद चिंतित है। इसने नेपाल से भी प्रगाढ़ संबंध् बना रखे है। दोनों देशों के बीच व्यापक विषयों- कृषि, व्यापार, परिवहन एवं संचार, ऊर्जा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में आम सहमति कायम हुई है।

अभी हाल ही में दोनों देशों के बीच आर्थिक संबंधें पर भी प्रगति दर्ज होती हुई दखी गई है। प्रथम दृष्टया, ऐसा प्रतीत होता है कि बांग्लादेश चीन के प्रति झुकाव इसलिए भी प्रदर्शित कर रहा है ताकि भारत के साथ सौदेबाजी अपनी शर्तो पर की जा सकें। चीन ने अपने वर्चस्व की वृद्धि के सिलसिले में श्रीलंका को अपने प्रभाव में समेट लिया और इसका असर यह रहा कि श्रीलंका को सारे हथियारों की आपूर्ति श्रीलंका के द्वारा की जाने लगी।

17 जनवरी 2020 को म्यांमार की नयी राजधनी नेपीदा में चीन के राष्ट्रपति जी जिनपिंग की यात्रा हुयी और दोनों देशों ने संबंधें को और प्रगाढ़ बनाने पर विचार किया गया।[6] विगत 70 वर्षों में म्यांमार की चीन के प्रति नीति अपरिवर्तनीय रही है। चीन के महत्वाकांक्षी परियोजना बी0आर0आई0 जो चीन-म्यांमार आर्थिक गलियारा (CMEC) का अंग है, म्यांमार उसमें सक्रिय रूप से भागीदार है। इसके माध्यम से दोनों देशों ने भिन्नता का एक नया अध्याय तैयार किया है।[7] चीन का म्यांमार के अन्दर इस तरह से अपना प्रभाव बढ़ाना भारत के राष्ट्रीय हितों के प्रतिकूल है।[8] इसलिए भारत भी कूटनीतिक सपफलता इस बात पर ही निर्भर है कि वह कैसे म्यांमार के अन्दर चीन के प्रभाव को रोके।

संदर्भ

1 Sreeparna Banerjee, Myanmar. India relations on upswing, Raisina Debates, Oct 20, 2020, https://www.orfonline.org/expert-speak/myanmar-india-relations-upswing/

2 Myanmar profile - Timeline, 3 September 2018, https://www.bbc.com/news/world-asia-pacific-12992883

3 Myanmar profile - Timeline, 3 September 2018, https://www.bbc.com/news/world-asia-pacific-12992883

4 Blareel, Nicolas (2021), "India: the next superpower? India's soft power: from potential to reality?'', LSE Research, London, UK, Available at: http://eprints.lse.ac.uk/43445/l/India_India%27%20%soft%20%power%28%lsero%29.pdf (accessed on 26 December 2020)

5 https://meacms.meagov.in/Portal/ForeignRelation/Bangladesh_ September_ 2017_en.pdf

6 Why Chinese President Xi Jinping's Myanmar visit may worry India, TIMESOFINDIA.COM, Jan https://timesofindia.indiatimes.com/india/why-chinese-president-xi-jinpings-myanmar-visit-may-worry-india/articleshow/73324878.cms

7 China's Xi ends Myanmar visit with flurry of agreements, January 18,2020, https://apnews.com/article/fc7e96i184e58e3876173910178b135a

8 Why Chinese President Xi Jinping's Myanmar visit may worry India, TIMESOFINDIA.COM, Jan https://timesofindia.indiatimes.com/india/why-chinese-president-xi-jinpings-myanmar-visit-may-worry-india/articleshow/73324878.cms

स्त्री विमर्श: वैचारिक विश्लेषण

पूनम तिवारी

शोधछात्रा, हिन्दी विभाग, भगवन्त विश्वविद्यालय अजमेर, राजस्थान

स्त्री विमर्श को पश्चिम और पूरब में भिन्न-भिन्न ढंग से परिभाषित किया है।कुछ लोग इसे पश्चिमी आविष्कार कहते हैं। मगर यह सही नहीं है। यह अत्यंत नाजुक और गंभीर विषय है। कई बातें एक साथ आ जाती हैं। एक तरफ चिंतन है जिसे वैचारिक दर्शन या सैद्धांतिक लेखन कहते हैं। दूसरी तरफ नारी चेतना का सारा प्रसंग है। नारी संगठन वा नारीवादी आंदोलन है। वह बिलकुल अलग स्तर पर एक चीज है, जो बहुत पहले से चली आ रही है। तीसरे स्तर पर वह लेखन जहाँ रचनाकार क्या सोचता है, क्या करता है, किस तरह भाषा से अपनी बात कह लेता है। रचनाकार अपने लेखन पर अपनी बात कह लेता है। रचनाकार अपने लेबल पर अपनी तरह से सोचता है और कहता है। ये धरातल स्त्री को अलग-अलग तरह से केंद्रित करते हैं। उनके अपने अनुभव भी भिन्न होते हैं। पश्चिम की विद्वान इस्टेल फ्रडमेन ने भिन्न शब्दों में परिभाषित किया है-

"Feminism is a belief that although women and men are inherently of equal worth, most ties privilege men as a group. As a result, social movements are necessery to achive political equality between women and men, with the understanding that gender always intersects with other social hierarchies."

अर्थात् पुरुष एवं स्त्री सम महत्व रखते हैं। अधिकांश समाजों में पुरुष को वरीयता देते हैं। अत: स्त्री-पुरुष समानता के लिए सामाजिक आंदोलन जरूरी है क्योंकि लिंगाधारित अंतर अन्य सामाजिक परंपराओं में प्रवेश करता है। जो हो यह निश्चित है कि यह चिंतन अन्याय के विरुद्ध है। इसे लेकर हमारे यहाँ पिछली आधी सदी से अलग वैचारिकता बनी है।

भारतीय वैचारिकता

भारतीय वैचारिकता में नारी-विमर्श ऐतिहासिक विकास-प्रक्रिया का परिणाम है। सभ्यता-संस्कृति के प्रारम्भिक दौर अर्थात् पूर्व वैदिककाल में भारतीय समाज मातृसत्तात्मक था। नारी परिवार का मुखिया होती थी और आर्थिक संरचना का केन्द्र भी वही थी। वैदिककाल के आरम्भिक दिनों में स्त्री को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार भी था किन्तु उत्तर वैदिककाल में निजी सम्मत्ति की अवधारणा के साथ-साथ समाज की आर्थिक संरचना पर पुरुषों का प्रभुत्व बढ़ने लगा जिसकी वजह से सामाजिक व्यवस्था और पारिवारिक संरचना में नारी की भूमिका गौण होने लगी। एक तरफ उसे पूज्य स्थान दिया गया तो दूसरी ओर उसे पुरुष की अनुगामिनी बनाये रखने की भी व्यवस्था की गयी। धार्मिक विधि-निषेध के मानदण्ड स्त्री की सीमित दायरे में रखने के अनुकूल बनाये गये।[1]

रामायण-महाभारत काल में तो स्त्रियाँ बिल्कुल उपेक्षित और दोयम दर्जे की मानव-प्रजाति के रूप में स्थापित हो चुकी थी। अ बवह पूरी तरह पुरुष की संरक्षित वस्तु मान ली गयी थी। सावित्री और सीता की श्रेणी में द्रौपदी नहीं रही। जैन और बौद्धकाल में भी नारी के प्रति दृष्टिकोण में कोई फर्क नहीं आया। स्वयं बुद्ध संघ में स्त्रियों के प्रवेश के पक्ष में नहीं थे। आनन्द के कहने पर खिन्न भाव से ही उन्होंने संघ में स्त्रियों के प्रवेश की अनुमति दी थी।[2]

वीरगाथाकाल में पुरुषों के पीछे आग में जलकर भस्म होने वाली स्त्रियों को आदर्श माना गया। भक्तिकाल में भी नारी के प्रति बहुत अच्छी धारणा नहीं दिखलाई पड़ती। शासत्रवाद और कर्मकाण्ड का विरोध करके अपनी विशिष्ट पहचान बनाने वाले सन्त कबीर की दृष्टि में नारी पुरुष को पथभ्रष्ट करने वाली पाप की खान और माया ही थी। उसके मानवीय पक्ष को देखने की जरूरत यहाँ भी नहीं समझी गयी।

वस्तुत: नारी सम्बन्धी सामाजिक नजरिए में बदलाव और स्वयं नारियों के भीतर जागरूकता नवजागरण काल में आयी। राजा राममोहन राय सती प्रथा जैसी अमानवीय प्रथा का विरोध, स्वतंत्रता आन्दोलन में नारियों का प्रवेश इसके सबूत हैं। छायावाद काल में नारी-मुक्ति की बेचौनी साहित्य में देखी जा सकती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नारी-मुक्ति से जुड़े कई तरह के सवाल उठने लगे। पितृसत्तात्मक परिवार में नारी के उत्तराधिकार का प्रश्न भी उठाया गया। परिवार की संरचना में नारी की भूमिका और महत्व, विवाह संस्था से सम्बन्धित रूढिघ्यों के खिलाफ स्वर और पुराने संस्कारों की जकड़न से बाहर आने की बेचौनी साफ-साफ महसूस की जाने लगी। विभिन्न प्रकार के अन्धविश्वासों और नैतिकता के अलग-अलग मानदण्डों का विरोध भी स्त्रियों ने शुरू किया। परिवर्तन की इस लहर के प्रभावस्वरूप आधुनिक नारी का दृष्टिकोण काफी बदला हुआ नजर आया।

पाश्चात्य वैचारिकता-

विश्व में नारी चर्चा का इतिहास, भारत में बहुत पुराना है। परंतु वह लिखित नहीं है। अत: पश्चिम की चर्चा पहले कर रहे हैं।

प्लेटो इतिहास में पहला चिंतक है, जिसके संवाद मिलते हैं। प्लेटो ने लगभग तीस संवाद लिखे। ये सारे पुरुषों के संग हुए। स्त्रियों को कोई स्थान नहीं था। प्लेटो की एकादेमी में भी एक्जीथिया और लास्थीनिया को छोड़कर किसी स्त्री को विशेष महत्व नहीं दिया। बस घरेलू महत्व तक सीमित रखा।

अरस्तू के समय में घर का कामकाज और बच्चे बड़े करने में फुरसत नहीं पा सकती। इस प्रकार नारियाँ भौतिक जीवन में सीमित रहें।डेकार्ट्स के अनुसार घर-बार, बच्चों के बंधन से मुक्त होना संभव नहीं। अत: निम्न स्तर पर रहना, बौद्धिक श्रम से थके मानव का भोग का सामान बनना मात्र रहा।

कीट ने आगे चल कर कहा-"A single moral person" अर्थत् दोनों की समझदारी पर जोर दिया। परंतु हीगल का मानना है कि पुरुषों का विकास पशुओं के साथ तुलनीय है जब कि स्त्रियों का विकास वनस्पतियों के साथ तुल्य है।

मार्क्स के साथ नारी के प्रति दृष्टिकोण में बड़ा परिवर्तन दिखाई देता है। पूंजीवादी और साम्यवादी संघर्ष में वे स्त्री की भागीदारी का स्वागत करते हैं। वृहत्तर सामाजिक दायित्व पूरा करने में नारी भी सक्षम है। नारी को प्रोलिटेरियत और पुरुष को बूजुआ के रूप में नहीं देखते। पर प्रजन को उत्पादन से जोड़कर नहीं देखा गया। नारी की सारी प्राकृतिक क्षमताओं को आध्यात्मिक मानता है। तो फिर उसके चिंतन में पुरुष प्रधानता ही दिखाई पड़ती है।[3]

पश्चिम में जान स्टुअर्ट मिल पहला दार्शनिक था जिसने मताधिकार, शिक्षा और रोजगार में नारियों को पुरुषों की बराबरी की चर्चा की है। आगे चल कर मिल का मानना था घर में नौकर हो तो "It is good that the mistress of a family with herself do the work of servants."

फिर भी पश्चिमी चिंतन प्रवाह प्रकृति और पुरुष के रिश्तों में बार-बार यह कहा गया है कि प्रकृति पर पुरुष की विजय दिखती है। अर्थात् प्राकृतिक शक्तियों को लगातार दमित रखना ही पौरुष का प्रतीक माना गया है।

लोहिया का स्त्री-विमर्श वैचारिकता

भारत का नवनिर्माण कैसा हो? किस प्रकार का हो? किस प्रकार का उसका मॉडल हो, जिससे समग्र भारत का आर्थिक-सामाजिक विकास सम्भव हो सके। देश के अनेक चिन्तकों, मनीषियों और विचारकों ने पृथक-पृथक् क्षेत्रों में अपने विचार प्रकट किए हैं। आधुनिक भारत में गांधीजी, जयप्रकाश नारायण, विनोबा भावे और राममनोहर लोहिया ऐसे विचारक हुए है जो सिद्धांत की बातें नहीं करते, बल्कि यथार्थ जगत की समस्याओं का निराकरण किस प्रकार किया जाए, इस पर दिशा-निर्देश देते हैं। यह चाहे पुरुष समाज हो अथवा स्त्री समाज। लोहिया समाजवादी चिन्तक हैं। वह आर्थिक ढांचे को इस तरह बदलने के पक्ष में हैं, जिससे व्यक्तियों की मानसिकता व सोच में परिवर्तन हो सके। महज आर्थिक ढांचे में परिवर्तन होने से स्त्री-पुरुष संबंधों में समानता का भाव उत्पन्न नहीं हो सकता। वास्तव में "उन्होंने सिद्धांत निर्माण से ज्यादा समाज के वंचित और उत्पीड़ित समूहों के अन्तर्निहित 'पोटेंशियल' को उन्मुक्त करना जरूरी और महत्वपूर्ण समझा। भारतीय समाज के संदर्भ में उन्होंने ब्राह्मणवादी-सामन्तवादी-पूंजीवादी बौद्धिक-सांस्कृतिक संरचनाओं के परिवर्तनकारी प्रतिरोध के लिए वंचित और उत्पीड़ित समूहों, यथा आदिवासी, दलित पिछड़े, स्त्रियां, अल्पसंख्यक के 'पोटेंशियल' को उन्मुक्त और सक्रिय करने पर बल दिया है।"[4] लोहिया उन परम्पराओं का खण्डन-मण्डन करते हैं, जो मिथकों के फ्रेम में बंधे और कसे हैं।

मानवता के कल्याण के लिए स्त्री सशक्तीकरण के कार्यक्रमों को नैतिक नियमानुसार आगे बढ़ना होगा ताकि भविष्य का इतिहास नारी की स्वतंत्रता एवं ज्ञानलोक से समृद्ध हो एवं भविष्य के समाज की नींव नारी-पुरुष के प्रेम एवं सहयोगिता पर आधारित हो, न कि पुरुष की प्रधानता एवं नारी की अधीनस्था पर। मेरा मानना है कि परिवार का एकमात्र रूप पितृसत्तात्मक हो-यह जरूरी नहीं है। आवश्यकता एवं परिस्थिति के अनुसार परिवार का रूप मातृसत्तात्मक भी हो सकता है। वर्तमान समय में विवाहित नारी के अधिकार एवं कर्तव्य भी विवाहोपरान्त जीवन के साथ ही सीमित नहीं रहना चाहिए। न्याय एवं समता के सिद्धांत के अनुसार किसी भी लिंग का सन्तान का अधिकार एवं कर्तव्य में विभाजन अनुचि है। इस विषय में कानून एवं सामाजिक नियमों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन अपेक्षित है।

प्राचीन नीति दर्शन के केन्द्र में पुरुष एवं पुरुष स्थापित मूल्यों का स्थान है, पर वर्तमान शताब्दी के उत्तर आधुनिक नीति-दर्शन में नारी तथा अन्य उपेक्षित वर्ग नैतिकता के केन्द्र में स्थापित हो रहे हैं। इस नैतिकता की एक मुख्य विशेषता है एवं होगी सापेक्षतावाद की चिन्तनधारा द्वारा चालित होना। इसके अनुसार सत्य सापेक्ष है एवं कुछ भी परम सत्य नहीं है। व्यावहारिकता इस नैतिकता की सार-नीति है। आज के वैश्विक समाज में वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के साथ-साथ संस्कृतिगत विभिन्नताओं के सम्मिश्रण के क्रम में नयी-नयी समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं, जिन्हें सुलझाने के लिए नैतिकता सम्बन्धी दृष्टिकोण में परिवर्तन एवं लचीलेपन की आवश्यकता है।

अन्त में यह विश्वास है कि भविष्य का समाज जिसके केन्द्र में नारी प्रतिष्ठित होगी, एक आदर्श समाज होगा, क्योंकि इसमें नैतिकता का आधार होगा नारी का मूल्यबोध-जो सम्पूर्ण मानवता के हित को लक्ष्य मानता है। समग्र की इकाई के रूप में व्यक्ति अगर समुन्नत हो तो समाज भी विकसित होगा। मार्क्स ने अपने दर्शन में 'सर्वहारा' वर्ग का राज्य प्रतिष्ठित होने पर सभी सामाजिक एवं राजनीतिक विषमताओं का अन्त होगा- ऐसा माना था। चूँकि उन्होंने श्रेणी संघर्ष को इस विषमता के अन्त के लिए साधन रूप माना था इसलिए क्षमता का हस्तान्तर अभिजात वर्ग के निम्नवर्ग में होने पर भी अपेक्षित सामंजस्य की स्थापना समाज में नहीं हो पायी। पर सुशिक्षित नारी का मूल्याबोध नैतिकता के केन्द्र में प्रतिष्ठित होने पर समतापूर्ण समाज की स्थापना होगी।

संदर्भ

1 भारतीय सामाजिक व्यवस्था-राम आहूजा, पृ. 65

2 भारतीय संस्कृति - कोष 7. पृ. 33

3 संपा, डॉ. उमा शुक्ल, डॉ. माधुरी छेडा, डॉ. सुमनिका सेठी, आधुनिक कथा साहित्य में नारी: स्वरूप और प्रतिमा, पृ. 88

4 प्रेम सिंह, वसुधा, दिल्ली, मार्च 2004, पृष्ठ 191।

ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य समस्याएँ एवं कारण

सरिता कुशवाहा

शोधछात्रा, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विभाग, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर, उ0प्र0।

स्वास्थ्य की व्यापक रूप से स्वीकृत परिभाषा विश्व स्वास्थ्य संगठन (1948) ने दी है जिसके अनुसार-"स्वास्थ्य किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक तथा आध्यात्मिक रूप से निरोग एवं प्रसन्न होने की स्थिति है, न कि केवल किसी प्रकार के रोग या निरूशक्तता की अनुपस्थिति।"[1] वास्तव में स्वास्थ्य बहुआयामी है। WHo~ की परिभाषा तीन विशिष्ट आयामों-शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक को रेखांकित करती है।

जीवन के मानक का समानान्तर शब्द जो संयुक्त राष्ट्र के दस्तावेजों में प्रयुक्त हुए हैं, वे हैं जीवन का स्तर। इसके नौ घटक क्रमशः हैं- स्वास्थ्य भोजन का उपभोग, शिक्षा, व्यवसाय और कार्य करने की स्थितियां, आवास, सामाजिक सुरक्षा, वस्त्र, मनोरंजन, विश्राम तथा मानवाधिकार। ये वस्तुनिष्ठ विशेषताएं मनुष्य की सुखद स्थिति को प्रभावित करती हैं। यह स्वीकार किया गया है कि जीवन के स्तर का सबसे महत्वपूर्ण घटक स्वास्थ्य है, क्योंकि उसकी क्षति का अर्थ जीवन के स्तर की क्षति है।[2]

प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में सुख, शान्ति, सन्तुष्टि तथा सफलता प्राप्त करने के लिए हर दृष्टि से स्वस्थ होना आवश्यक है। स्वास्थ्य किसी भी समाज की आर्थिक प्रगति के लिए अनिवार्य है। जो व्यक्ति अथवा समाज स्वास्थ्य की दृष्टि से पिछड़ा हुआ है वह आधुनिक युग की दौड़ में पीछे रहने के लिए बाध्य है क्योंकि अच्छे स्वास्थ्य के अभाव में व्यक्ति और व्यक्तियों से निर्मित समाज अपने गुणों के अनुरूप सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने में सक्षम नहीं हो पाते हैं। इसलिए शरीर स्वस्थता अति महत्त्वपूर्ण है। इसके अभाव में व्यक्ति का समग्र विकास सम्भव नहीं है।

आज यह आवश्यक हो गया है कि हम अपनी जीवन शैली में सुधार लायें। नियमित व्यायाम और संतुलित भोजन को अपनी दिनचर्या का हिस्सा बनायें। अपने आस-पास के वातावरण को साफ-सुथरा रखें। दूषित जल, भोजन करने से बचें। स्वास्थ्य के सन्दर्भ में हमें अपनी प्राचीन अमूल्य धरोहरों के महत्व को भी नये सिरे से समझना होगा।

आरोग्यामृत के अनुसार, "सकारात्मक चिंतन विकास का और नकारात्मक चिंतन ह्रास का द्योतक है। इसलिए सदैव सकारात्मक विचार रखें जिससे इन्द्रिय, मन, बुद्धि स्वस्थ रहे और निज लक्ष्य की पूर्णता में सफलता प्राप्त हो सके।"[3]

देश के ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं का ढाँचा त्रिस्तरीय है। प्रथम स्तर पर स्वास्थ्य उपकेन्द्रों की स्थापना की गई है। इनमें एक सहायक नर्स मिडवाइफ और पुरुष स्वास्थ्यकर्ता हैं। उपकेन्द्रों को मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, पोषण, रोग प्रतिरक्षा, अतिसार नियंत्रण, संचारी रोग नियंत्रण जैसे कार्य सौपें गए हैं।

स्वास्थ्य समस्याएँ एवं कारण

भारत एक ग्राम बाहुल्य व कृषि आधारित देश है। भारत की कुल जनसंख्या एक अरब 25 करोड़ है, जो विश्व की 17.5 प्रतिशत आबादी के बराबर है। उनमें से ग्रामीण क्षेत्रों में 68.89 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। कहा भी जाता है कि भारत गाँवों का देश है। देश की समृद्धि ग्रामीण क्षेत्रों के विकास पर निर्भर करती है। महात्मा गांधी सहित विभिन्न विद्वानों का मत है कि भारत की मूल आत्मा गांवों में निवास करती है अर्थात् गाँव की तरक्की किये बिना, भारत की उन्नति नहीं हो सकती है।

स्पष्टतः जब तक गाँवों के परिस्थितियों में सुधार नहीं आता तब तक देश की प्रगति भली भांति तथा सन्तोषजनक नहीं हो सकती है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों की कमी के कारण प्राथमिक स्वास्थ्य हेतु मूलभूत सुविधाओं जैसे- भवन, कर्मचारी व दबाईयों का अभाव दिखाई देता है। गांव में कुशल चिकित्सक और स्वास्थ्य केन्द्रों की कमी के कारण प्रत्येक व्यक्ति को उचित स्वास्थ्य सुविधाएँ नहीं मिल पाती हैं, जो ग्रामीण क्षेत्र के व्यक्तियों के विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं। ऐसी स्थिति में ग्रामीण क्षेत्रों की दशा सोचनीय बनी हुई है। आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्तियों तक बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराना एक बड़ी चुनौती है।

गांवों में सफाई की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता है। प्रत्येक घर के आगे या पीछे कूड़े का ढेर पड़ा रहता है। बच्चे-बूढ़े सब कूड़े के पास ही मल-मूत्र त्यागते हैं, क्योंकि 80 प्रतिशत घरों में शौचालय नहीं होते हैं। कीड़े-मकोड़े, मक्खी, मच्छर आदि का उत्पात रहता है। वायु एवं जल प्रदूषण पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है जिससे ग्रामीण जनता जल संवाहित संक्रामक रोगों से पीड़ित रहती है।[4]

ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता को सुनिश्चित करने हेतु प्रशिक्षित डॉक्टरों का अभाव है क्योंकि ज्यादातर चिकित्सक अपनी सुख-सुविधाओं हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य नहीं करना चाहते हैं। इसी कारण ग्रामीण क्षेत्रों में डॉक्टर मरीज का अनुपात बिगड़ता जा रहा है। आँकड़ों के अनुसार देश के तीन चौथाई रोगी ग्रामीण क्षेत्रों से निकलते हैं, लेकिन यहाँ रोगियों की बड़ी संख्या के अनुपात में स्वास्थ्य कर्मियों की कमी पाई जाती है।

ग्रामीण स्वास्थ्य उपकेन्द्रों, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों और सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों में स्वास्थ्यगत आधारभूत ढाँचे की भारी कमी है। इन केन्द्रों में 62 प्रतिशत विशेष चिकित्सक, 49 प्रतिशत प्रयोगशाला सहायकों और 20 प्रतिशत फार्मासिस्टों की कमी है। दूसरी समस्या ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली, सड़क और परिवहन के साधनों की कमी है। ग्रामीण स्वास्थ्य केन्द्रों पर दवाई, प्रशिक्षित कर्मचारियों, जांच सुविधाओं और उचित प्रबन्धन का भारी अभाव है।

ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति वर्ष लाखों लोग संक्रामक रोगों के कारण काल-कवलित हो रहे हैं। देश के ग्रामीण क्षेत्रों में 4.5 करोड़ बच्चों एवं महिलाएँ कुपोषण एवं रक्त की कमी के शिकार हैं। ग्रामीण स्वास्थ्य का शोचनीय स्तर मूलत: निर्धनता एवं निरक्षरता का परिणाम है जो एक विषैले कुण्ठ को जन्म देता है कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक ही स्थिति बनी रहती है।[5]

भारत सरकार द्वारा स्वास्थ्य के क्षेत्र में जो योजनाएं बनायी गई है वह उन्हें हासिल करने में कितनी सफल रही हैं, इसका सटीक मूल्यांकन तब तक नहीं हो सकता है जब तक कि हम इसमें ग्रामीण क्षेत्रों को भी सम्मिलित न कर लें। भारत की 68.8 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। अत: यह एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जहां पर स्वास्थ्य से सम्बन्धित सेवाओं की तरफ सर्वाधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। भारत के नगरीय क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता कम है। अत: शिक्षा एवं जागरूकता के अभाव में ग्रामीणों में स्वास्थ्य के प्रति विभिन्न भ्रान्तियाँ व्याप्त हैं, जैसे- ग्रामीण क्षेत्रों में रोगों को देवी-देवताओं का अभिशाप एवं प्रेतात्माओं के प्रभाव का प्रतिफल माना जाता है। यही कारण है कि ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांशत: रोगों का उपचार झाड़-फूँक या टोने-टोटके से किया जाता है। इसके साथ ही भारतीय ग्रामीण समाज सदियों से अशिक्षा तथा रूढिग्वादिता का शिकार रहा है। यही कारण है कि ग्रामीण क्षेत्रों में रोग व स्वास्थ्य को एक संयोग का विषय माना जाता है। ग्रामीणों में यह धारणा व्याप्त है कि रोग, जन्म, विवाह एवं मृत्यु आदि घटनाओं का नियंत्रण ईश्वर द्वारा होता है।

विभिन्न स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराये जाने के बावजूद आज भी ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में दूषित पेयजल विषाक्त भोजन, जहरीली शराब, पर्यावरणीय असंतुलन तथा धूम्रपान के कारण रोगों का प्रसार अधिक है। ग्रामीण स्वास्थ्य का शोचनीय स्तर मूलत: निर्धनता एवं निरक्षरता का परिणाम है जो एक ऐसे विषैले कुण्ठ को जन्म देता है कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक ही स्थिति बनी रहती है। निम्न स्वास्थ्य के कारण व्यक्ति रोजगार नहीं कर पाता है तो आय का स्तर निम्न बना रहता है। अत: निर्धनता की स्थिति बन जाती है। निर्धनता में बच्चे भी अधिक उत्पन्न किये जाते हैं। निर्धन व्यक्ति के बच्चे प्राय: निरक्षर रह जाते हैं, अत: वे मजदूरी करते हैं और उनका भी स्वास्थ्य निम्न बना रहता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार व्यापक रूप से स्वास्थ्य किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक तथा आध्यात्मिक रूप से निरोग एवं प्रसन्न होने की स्थिति है न कि केवल किसी प्रकार की नि:शक्तता की अनुपस्थिति। इसे व्यापक दृष्टि से देखें तो हमारे समाज का 50 प्रतिशत हिस्सा गंभीर रोगों से तथा 45 प्रतिशत आबादी अन्य दैनदिन; मौसमीय या दुर्घटनाओं से सम्बन्धित व्याधियों से ग्रस्त है।[6]

ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता को सुनिश्चित करने हेतु प्रशिक्षित डॉक्टरों का अभाव है; क्योंकि ज्यादातर चिकित्सक अपनी सुख-सुविधाओं हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य नहीं करना चाहते हैं। इसी कारण ग्रामीण क्षेत्रों में डॉक्टर मरीज का अनुपात बिगड़ता जा रहा है। इसके अतिरिक्त जो डॉक्टर व कर्मचारी ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत हैं, वे पूरे मनोयोग से कार्य न करके लापरवाही करते हैं। इसी स्थिति से निपटने हेतु अभी हाल में सरकार द्वारा राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के तहत 'कम्यूनिटी मानीटरिंग' लागू करने की बात चल रही है। इसके तहत गाँव की स्वास्थ्य सेवाओं का ढाँचा सुधारने के लिए स्थानीय नागरिकों की सहायता लेने का प्रावधान किया गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों की कमी की वजह से प्राथमिक स्वास्थ्य हेतु ढांचागत सुविधाओं जैसे- भवनों, कर्मचारियों व रख-रखाव का अभाव दिखलाई पड़ता है। 2001 के जनसंख्या मानक के अनुसार देश में 21,481 उपकेन्द्रों 3,180 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों और 3,448 सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों की कमी है। अत: ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक रूप से कमजोर लोगों तक बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराना एक बड़ी चुनौती है। ऐसी स्थिति में यह चुनौती और बढ़ जाती है जबकि हमारी सरकार द्वारा स्वास्थ्य क्षेत्र पर किया जाने वाला संसाधनों का आवंटन संतोषजनक न हो।

ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं की सुचारू रूप से उपलब्धता न होने के कारण यहाँ के अधिकतर व्यक्ति पारंपरिक उपचार पद्धतियों का सहारा लेते हैं जिससे ग्रामीणों में रोग की जटिलताएँ और बढ़ती जाती है। सरकार द्वारा पूर्व के वर्षों में किये गये प्रयासों से शहरी, स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार देखा गया है किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं काहाल अभी भी चिन्ताजनक स्थिति में है। इसके लिए गुणवत्तापूर्ण चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराने हेतु देश भर में जिला अस्पतालों को आधुनिक बनाने के लिये चिन्हित किया गया।[7]

अन्तत: हम यह कह सकते हैं कि भविष्य में भारत की आर्थिक समृद्धि व विजन 2020 के सपने को साकार करने हेतु यह अत्यन्त आवश्यक है कि स्वास्थ्य सेवाओं की ग्रामीण लोगों तक पहुंच को सुनिश्चित करने की दिशा में सार्थक नीतिगत उपाय किया जाये ताकि देश के ग्रामीण स्वास्थ्य परिदृश्य को बेहतर बनाया जा सके।

संदर्भ

1 पार्क. के. (2013): सामुदायिक स्वास्थ्य विज्ञान, मे. बनारसीदास, भनोत, जबलपुर, पृ0सं0 169.

2 पार्क. के. (2013): सामुदायिक स्वास्थ्य विज्ञान, मे. बनारसीदास, भनोत, जबलपुर, पृ0सं0 172

3 सदाफल आरोग्य विज्ञान (2015). अंक- 01, पृष्ठ 04

4 देवी, डॉ0 गायत्री (1998) ग्रामीण परिवारों में स्वास्थ्य समाज वैज्ञानिक, मार्डन पब्लिाकेशन, नई दिल्ली।

5 कटारिया, डॉ0 सुरेन्द्र (2008) गाँवों में स्वास्थ्य सुविधाओं का मूल्यांकन, कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, अक्टूबर, पृष्ठ संख्या 10-12

6 पार्क, के. (2013): सामुदायिक स्वास्थ्य विज्ञान, मे. बनारसीदास भनोत, जबलपुर, पृष्ठ संख्या 169.

7 यादव, विजय कुमार (2008): भारत में ग्रामीण स्वास्थ्य परिदृश्य, कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, अक्टूबर, पृष्ठ संख्या 8-9

सन् 1947 के भारत-विभाजन के पश्चात् जम्मू कश्मीर

त्रिलोकी सोनी

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ

सन् 1947 के भारत-विभाजन के पश्चात् ही देश के मुकुटमणि जम्मू कश्मीर को शेष भारत से अलग करने का षड्यंत्र पाकिस्तान द्वारा शुरू हो गया, जो सन् 1947, 1965 और 1971 के पाकिस्तानी युद्धों से बिलकुल स्पष्ट हो गया है। पुनः सन् 1989 से अघोषित युद्ध और आतंकवाद के माध्यम से यह षड्यंत्र हो रहा है। घाटी के मुट्ठी भर मुसलमानों को बहका कर, उन्हें सब्जबाग दिखाकर इसलामिक कट्टरपंथियों ने इनके हाथों में हथियार थमाकर, राज्य की जनता, विशेषकर अल्पसंख्यक हिन्दू समाज पर अत्याचार करने के लिए तैयार किया। इनके अत्याचारों से घाटी में शांति का संदेश देने वाली बर्फ की सफेद चादर मारे गए मासूम लोगों का कफन बन गई। श्रीनगर की श्री (समृद्धि) भी चली गई, नगर भी उजड़ गया और हिंसा का केन्द्र बन गया। सन् 1986 में आतकवाद का एक भंयकर रूप उभरा-हिन्दू समाज के धार्मिक स्थलों पर हमला किया गया, उन्हें जलाया गया। परन्तु श्री जगमोहन के वहाँ का राज्यपाल बन जाने पर ये घटनाएँ थम गई। सन् 1986-88 तक की अवधि में आतंकवाद बिलकुल शान्त हो गया था। हिन्दू-मुसलमानों में जो कड़वाहट पैदा हो गई थी, फिर से भाईचारे में बदल गई। अल्पसंख्यक हिन्दू समाज को लगा, अब ऐसा-वैसा कुछ नहीं होने वाला है। उसने फिर से मकान बनाने एवं व्यापार बढ़ाने का काम शुरू कर दिया। परन्तु भंयकर आतंकवाद की तैयारियाँ-अन्दर-ही-अन्दर चलती रहीं। युवकों को हथियारों के प्रशिक्षण के लिए सीमा पार भेजा जा रहा था। हथियारों को स्थान-स्थान पर पहुँचाया जा रहा था। जमायते इसलामिया संगठन के मुल्ला-मौलवी गाँव-गाँव घूमकर मुस्लिम समाज के दिलो-दिमाग में अलगाववाद एवं आतंकवाद के समर्थन का जहर भर रहे थे और आजादी का सब्जबाग दिखा रहे थे। सन् 1986-88 तक शान्त रहने के बाद सन् 1989 में पुनः घाटी में आतंकवाद ने अपना भयंकर अत्याचारी रूप दिखाया।

सन् 1932 में जम्मू और कश्मीर 'मुस्लिम कान्फ्रेंन्स' के नाम से एक राजनैतिक संगठन की स्थापना हुई।[1] इसका पहला अधिवेशन 15-17 अक्टूबर 1932 को श्रीनगर में सम्पन्न हुआ।[2] शेख अब्दुल्ला इसके अध्यक्ष बनाये गये। प्रारम्भ में मुस्लिम कान्फ्रेन्स ने सामान्य मांगे रखीं। उनका मुख्य उद्देश्यों मुसलमानों की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक बेहतरी के लिए कार्य करना तथा नागरिक और सैनिक सेवाओं में मुसलमानों को अधिक से अधिक पद दिलवाना था। निः सन्देह मुस्लिम कान्फ्रेन्स में विपरीत मानसिकता के लोग थे, परन्तु धर्मनिरपेक्ष या गैर साम्प्रदायिक लोगों की भी कमी नहीं थी। आरम्भ में शेख अब्दुल्ला ने गर्व ने गर्व से कहा था कि 'कश्मीरी राजनीतिक साम्प्रदायिकता के कीड़े से मुक्त हैं।''

मुस्लिम कान्फ्रेन्स ने एक प्रतिवेदन महाराजा को दिया, जिसमें यह मांग की गयी थी कि 'ग्लेन्सी आयोग' के सुझावों को तत्काल लागू किया जाय, विशेष रूप से संयुक्त निर्वाचन की प्रक्रिया को तत्काल राज्य में लागू करने पर जोर दिया गया।[3] 1935 में शेख अब्दुल्ला ने सभी समुदायों के लोगों से अपील की, ''मेरा संघर्ष मेरे देश की मुक्ति या स्वतन्त्रता के लिए हैं। हमें अपने क्षुद्र साम्प्रदायिक विवादों से ऊपर उठना चाहिए तथा जनता के हित के लिए एकजुट होकर कार्य करना चाहिए। मैं अपने सभी हिन्दू भाईयों को विश्वास दिलाता हूँ कि वे अपने काल्पनिक भय को अपने हृदय से निकाल दें। मैं वायदा करता हूँ कि उनके सभी अधिकार सुरक्षित रहेंगे तथा उनके किसी भी अधिकार का हनन नहीं होगा, यदि वे मुसलमानों के साथ हाथ मिलाते हैं।''[4]

हिंदु समाज का घाटी से विस्थापन

कश्मीर घाटी में मजहबी आतंकवाद ने मुख्य रूप से हिन्दूओं को निशाना बनाया। हत्या, बलात्कार और अपहरण का तांडव नृत्य होने लगा। समाज के ऊपर दहशत की तलवार लटकाई गई। हिन्दू जनसंख्या घाटी में न केवल अल्पसंख्यक थी। अपितु इस प्रकार से बिखरी हुई थी कि वह सामूहिक रूप से इस आतंकवाद का मुकाबला करने में अपने-आपको असमर्थ महसूस कर रही थी। मात्र पाँच-छह गाँव ही ऐसे थे जहाँ हिन्दूओं के आठ-सळार घर इकट्ठे थे। गाँव-गाँव में हिन्दूओं को तंग-तबाह अपमानित-प्रताडिघ्त करने और व्यभिचार की घटनाएँ सरेआम होने लगीं। हिन्दूओं की धार्मिक भावनाओं को कष्ट पहुँचाने के लिए उनके घरों के सामने गो-मांस की दुकानें खोल दी गई। अनंतनाग में जद मोहल्ला, बस अड्डा, पुलवामा की मंडी, श्रीनगर शहर, बारामूला शहर के देवी मन्दिर के पास आदि अनेक स्थानों पर गो-हत्याएँ होने लगीं। पूरी घाटी का वातावरण हिन्दू, हिंदी और हिन्दुस्तान के विरूद्ध हो गया। हिन्दूओं के घरों के बाहर चेतावनी के परचे चिपकने लगे, जिनपर लिखा रहता था-'या तो तुम सब मुसलमान बन जाओ, पाकिस्तान जिन्दाबाद कहो, आजादी का नारा लगाओ, नही ंतो घाटी खाली कर दो, यहाँ से भाग जाओ और अपनी लड़कियों और औरतों को यहाँ छोड़ देना, उन्हें हम रखेंगें।' दिन-दहाड़े घाटी में आतंकवादी अपने समर्थकों के साथ अत्याधुनिक हथियारों से लैस होकर बड़े-बड़े जलसे-जुलूस निकालने लगे। भाषणों में कहा जाता था- 'हमे काफिरों (हिन्दूओं) का खात्मा करना है। इनकी लड़कियाँ ले जानी हैं।'

19 जनवरी, 1990 को आजादी के समर्थन में एक विशाल जुलूस निकाला गया, जिसमें लाखों लोगों को बंदूक की नोक पर शामिल होने के लिए बाध्य किया गया। इससे हिंदु एकदम भयभीत हो गए। रात्रि में हिन्दू लड़कियों को जबरदस्ती निर्वस्त्र करके मशाल की रोशनी में जुलूस निकाले गए। बाप के सामने बेटी के साथ बलात्कार और बेटे के सामने माँ के साथ बलात्कार की घटनाएँ होने लगीं। प्रशासन एकदम असफल हो गया। मंत्री से लेकर संतरी तक सब

आतंकवादियों को प्रश्रय देने के लिए मजबूर होने लगे। 18 दिसंबर, 1989 से 20 जनवरी, 1990 तक का समय तो ऐसा लगता था कि कश्मीर में आतंकवादियों की सरकार चल रही है। 26 जनवरी, 1990 को कश्मीर की आजादी की घोषणा होगी, ऐसा सबको विश्वास था। जीवन और मौत से जूझ रहे घाटी के हिन्दूओं का एक प्रतिनिधि मंडल सर्वश्री हीरालाल, अमरनाथ वैष्णवी, हीरालाल चड्ढा आदि प्रमुख लोगों के नेतृत्व में केंद्र सरकार के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह से मिला और घाटी की स्थितियों से अवगत कराया।[5] परतुं तब तक काफी देर हो चुकी थी। समय पर कोई सहायता नहीं मिली। हिंदु अपनी प्राण रक्षा और युवा लड़कियों की इज्जत बचाने के जिए रात के अँधेरे में उन्हें शहर में लाने लगे और सुबह चुपचाप जम्मू भेजने लगे। कई लड़कियाँ जिन्हें आतंकवादी ढूँढ़ रहे थे, वे बुर्का पहनकर जम्मू पहुँची और अपनी आबरू को बचाया। कश्मीर की सात्विक धरती पर आसुरी शक्तियों का राज हो गया। यहाँ की नदियों में अमृत की जगह रक्त बहने लगा। जिन वनों में हमारे ऋषि-महात्मा निर्भय होकर तप करते थे, वे उग्रवादियों के शरणस्थल बन गए। पुत्र के मरने पर पिता को अग्नि देने के लिए मना किया गया। माँ के रोने पर भी प्रतिबंध लगाया गया। नारियों के दाम लगाए जाने लगे। हिन्दू समाज के सामने ऐसी विकट परिस्थितियों में दो ही मार्ग थे-या तो वे सब मुसलमान बन जाए, कश्मीर की आजादी का नारा लगाएँ और अपने घरों की आबरू को 'जिहाद' का नारा लगानेवालों के हवाले कर दें या फिर दूसरा रास्ता यह था कि अपना घरबार, लाखों की धन-संपति को छोड़कर, अपने आत्मसम्मान और धर्म को बचाने के लिए घाटी छोड़कर विस्थापित हो जाएँ। कश्मीर घाटी के अधिकांश हिन्दूओं ने दूसरा मार्ग अपनाया और घाटी से विस्थापित होकर नारकीय जीवन जीने को विवश हुए।

मुस्लिम समाज का विस्थापन

कश्मीर घाटी से मुस्लिम समाज का विस्थापन अक्टूबर 1996 के चुनावों के बाद से प्रारंम्भ हुआ। इस विस्थापन में दो बातें थीं। कुछ विस्थापन तो आतंकवादियों के अत्याचार-उत्पीड़न के कारण हुआ और कुछ विस्थापन आतंकवाद का हौआ खड़ा करने के लिए षड्यंत्र के तहत हुआ। प्रारंभ में आतंकवादी-अलगाववादी नेताओं नें मुस्लिम समाज को कश्मीर की आजादी का सब्जबाग दिखाकर अपने साथ मिलाया। परन्तु कुछ समय पश्चात् जब लोगों ने देखा कि हमारा नेतृत्व करनेवाले अब्दुलगनी लोन, सैयद अली शाह गिलानी आदि नेताओं के बच्चे आजादी की जंग में शामिल नहीं होकर दिल्ली, बंगलौर और विदेशों में रहकर पढ़ाई कर रहे है, कुछ भारत सरकार की नौकरियों में हैं तो लोगों को लगा कि उन्हें बरगलाकर तथाकथित नेता अपने स्वार्थ की रोटी सेंक रहे हैं। इसलामिक जेहाद के नाम पर बहकाकर मुस्लिम परिवार के बच्चों को आतंकवादी बनने के लिए प्रेरित करने वाले नेताओं की वास्ताविकता को जानने के बाद लोगों ने दबी जुबान से ही सही, उनका विरोध करना शुरू कर दिया। इसके प्रतिक्रिया स्वरूप कुछ मुस्लिम परिवारों को भी भारत का पिट्ठू बताकर उत्पीड़ित किया जाने लगा। परिणाम यह हुआ कि कुछ निर्दोष मुस्लिम परिवारों को भी विस्थापन की यातनाएँ झेलने के लिए विवश होना पड़ा जनसामान्य मुस्लिम परिवार का तथाकथित जेहाद से मोहभंग यह देखकर हुआ कि बंदूक उठानेवाले हमारे परिवार का भविष्य क्या होगा? पर्यटकों के नहीं आने से परिवार की आर्थिक स्थिति भी खराब हो रही है। फिर कश्मीर की आर्थिक स्थिति दिल्ली की केंद्र सरकार पर निर्भर है।"[6] यह आतंकवाद आजादी की लड़ाई नहीं, बल्कि बरबादी और तबाही का रास्ता है। लोगों ने यह भी देखा कि हमारे तथाकथित अलगाववादी नेता दिन-दूने, रात-चौगुने के हिसाब से करोड़पति होते जा रहे हैं और हमारा परिवार भुखमरी के कगार पर खड़ा हैं।

दूसरी बात यह कि हिन्दूओं के घाटी से विस्थापित होने के बाद आतंकवादी अपनी हवस की पूर्ति के लिए मुस्लिम लड़कियों और उनके परिवारवालों को तंग करने लगे। जिन्होंनें राज्य चुनाव में मतदान किया, उन्हें भी धमकियाँ दी जाने लगीं। इन सब कारणों से कुछ मुस्लिम परिवार विस्थापित होकर जम्मू आ गए और किसी तरह जीवन व्यापन करने लगे। परन्तु ऐसे परिवारों की संख्या कम थी।

जम्मू-कश्मीर प्रारम्भ से ही विवादित राज्य रहा है। 1989 में उग्रवाद की शुरूआत के पश्चात इस राज्य में आन्तरिक अशान्ति का दौर भी शुरू हो गया। जम्मू-कश्मीर के प्रति केंद्र सरकार का दृष्टिोण सदैव ही सकारात्मक रहा यद्यपि राज्य की जनता असंतोष का निवारण नही हो सका। मई, 2004 में प्रथम बार प्रधानमंत्री का पद ग्रहण करने के छः माह के भीतर ही नंवबर, 2004 में जम्मू-कश्मीर की यात्रा कर डॉ0 मनमोहन सिंह ने राज्य के पुनर्निर्माण के लिए 24,000 करोड़ रू0 के विशेष पैकेज की घोषणा की थी।

जम्मू-कश्मीर में शान्ति प्रक्रिया को गति प्रदान करने के लिए गोलमेज सम्मेलनों का आयोजन हो, राज्य की जनता के हितार्थ विभिन्न रेल एवं बस सेवाओं की शुरूआत हो या फिर सीमा पार व्यापार पर सहमति और पाकिस्तान के साथ शान्ति वार्ता, विगत वर्षो में शान्ति की अनेक पहलें आयोजित की गयी। विद्युत संकटग्रस्त जम्मू-कश्मीर एवं बगलिहार जल विद्युत परियोजनाओं का शुभारम्भ और घाटी में पहली रेल परियोजना की शुरूआत कर केन्द्र सरकार ने राज्य के लिए सराहनीय कार्य किया।

सरकार के प्रति जनता में विश्वास के इस संकट के कारण विरोध-प्रदर्शनों और आंदोलनों को बल मिलते देर नहीं लगती। कश्मीर में जारी ताजा विरोध-प्रदर्शन विश्वास के इसी संकट को दर्शाते हैं।"[7]

अगर आपको 1990 के दशक का कश्मीर याद हो तो आज के वर्तमान हालत की तुलना तब से की जा सकती हैं। अन्तर सिर्फ हथियारों का आया है। दुनिया आगे बढ़ती है, कश्मीर पीछे की ओर मुड़ा हैं। आजादी के नारे तो वही है पर बन्दूक गायब दिख रही हैं। उसका स्थान पत्थरों ने ले लिया है। कुछ इसे कश्मीर में 'स्टोन एज' भी कह रहे हैं। कहने को कोई कुछ भी कहे पर कड़ी सच्चाई यह हैं कि कश्मीर को समय के चक्र मे उलाझाने में अब राजनीति भी अहम भूमिका निभाने लगी। पहले फिर्स और सिर्फ पाकिस्तान, पाकिस्तानी सेना तथा उसकी खुफिया एजेंसी आईएसआई को हालात के लिए दोषी ठहराया जाता रहा था पर अब भीतरी ताकते भी शामिल हो चुकी हैं। कश्मीर के हालात को हमेशा बेरोजगारी से जोड़ा जाता रहा हैं। जब 1990 के दशक में कश्मीरियों ने बंदूक उठाई तो तत्कालीन मुख्यमंत्री डॉ0 फारूक अब्दुल्ला भी यह कहने से चूकते नहीं थे कि बेरोजगारी से ग्रस्त कश्मीरी बन्दूक उठाने को मजबूर हुआ है और अब जब कश्मीरियों ने बन्दूक की जगह पत्थर उठाए तो भी तर्क वही हैं।"[8]

यह नि:सन्देह है कि पाकिस्तान भारत को अपना सबसे प्रबल शत्रु मानता है, वस्तुत: पाकिस्तान के शाकसों और शासक वर्ग में पुरानी सैद्धान्तिक शत्रुता चली आ रही है। भारत के स्वाधीनता संघर्ष में से दोनों एक दूसरे के विरोधी थे और दो राष्ट्रों के सिद्धान्तों को लेकर उनमें निरन्तर उग्र मतभेद रहे थे। उन्हें यह भी मालूम था कि भारत के नेताओं ने वे भारत की हर बात पर विरोध करने और उसे अपने शत्रु मानने पर तुले हुए थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस मतभेद ने और भी उग्र रूप धारण कर लिया। पाकिस्तान का जन्म धर्म के आधार पर हुआ था अतएव भारत और पाकिस्तान के बीच मौलिक मतभेद है। यह मध्यकालीन धर्मान्धता तथा आधुनिक धर्म निरपेक्षता तथा समाजवाद और सैनिक तानाशाही का मतभेद है। अतएव यह मानना है कि यदि पाकिस्तान और भारत में कश्मीर के प्रश्न को लेकर झगड़ा है, गलत होगा। वास्तवतिकता तो यह है कि यदि कश्मीर की समस्या न होती तो इस तरह की किसी दूसरी समस्या को खड़ा करना पड़ता। बात यह है कि पाकिस्तानी को अपना पड़ोसी भारत फूटी आँखों नहीं भाता।

संदर्भ

[1] सुमित सरकार, 'आधुनिक भारत', पृ0-344।

[2] ज़िज़िर गुप्ता, 'कश्मीर ए स्टडी इन इण्डिया-पकिस्तान रिलेज़न्स 1967', पृ0-52।

[3] गुलाम अब्बास, मुस्लिम कान्फ्रेन्स के नेता द्वारा प्रेशित पत्रक।

[4] कोटेड इन दी प्रीफे टू न्यू दिल्ली, कश्मीर ब्यूरो आफ इन्फार्मेज़न, न्यू दिल्ली।

[5] जसजीत सिंह, ''एक्सेज़न ऑफ जम्मू एण्ड कश्मीर'', इण्डियन एक्सप्रेस (नई दिल्ली) 5 नवम्बर, 1993

[6] जे.एन. दीक्षित : भारतीय विदेज़ नीति (प्रभात प्रकाज़न, दिल्ली, 1999) पृ0 192

7 शुक्रवार, 21 से 27 अगस्त 2010, पृ0 22-23

[8] समसामयिकी घटना चक्र, सितम्बर 2010, पृ0 9-10

कारगिल संघर्ष का स्वरूप

विनोद यादव

शोध छात्र,रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग,, डी0ए0वी0 स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आजमगढ़

कारगिल बटालिक और द्राश सेक्टर में जितनी ऊंची पहाड़ियां हैं और जिस किस्म की वहां की भौगोलिक संरचना है, वहां एक या दो दिन में नहीं पहुंच जा सकता है तथा पूरे प्रशिक्षण के उपरान्त ही पहुंचा जा सकता था। कारगिल 1 जुलाई 1979 को लद्दाख जनपद को काटकर नया जनपद बनाया गया था। कारगिल का सामरिक अर्थ है-कर यानी सफेद और गिल यानी स्थान तिब्बत में इसे कारगिल के नाम से सम्बोधित किया जाता है, जिसका अर्थ है चौराहा। स्कार्दू तथा लेह के बीच एवं काशगर तथा श्रीनगर के मध्य स्थित होने के कारण कारगिल अपना नाम सार्थक करता कारगिल की, अनोखी सामरिक स्थित है, यह ऐसे स्थान पर स्थित है जो चार घाटियों का प्रवेश द्वार है।[1]

करगिल पूर्व स्थिति

कारगिल से पूर्व राज्य में हिंदू-मुसलिम भेदभाव अपने चरम पर था। उग्रवादी काफी हद तक डोडा तथा किश्तवाड़ के हिंदुओं को अपने घर छोड़कर भाग जाने पर बाध्य करने में सफल हो गए थे। इसका प्रभाव जम्मू जैसे क्षेत्रों पर भी पड़ा, जहाँ हिंदू संख्या में अधिक थे। वे मुसलमानों के पीछे पड़ गए और उन्होंने या तो उन्हें मार डाला या वहाँ से भागने पर बाध्य कर दिया। सांप्रदायिक सद्भावना में इस बढ़ती कमी को रोकने के लिए मुख्यमंत्री फारुक अब्दुल्ला और उनका प्रशासन कुछ नहीं कर पाए।[2]

जहाँ तक शेष भारत का प्रश्न था, सौभाग्य से आइ.एस.आइ. और उसके अपराधी जगत् के साथी संगठन अपनी गतिविधियाँ उतने प्रभावशाली ढंग से नहीं फैला पाए, जितना वे चाहते थे। कारण था, संपूर्ण स्तर पर इस्लामी एकता का अभाव। मुस्लिम सांप्रदायिकता के कारण हिंदुओं की ओर से भी कुछ प्रतिकूल प्रतिक्रिया हुई। यदि मुसलमान अपनी सांप्रदायिक गतिविधियाँ जारी रखते तो हिंदुओं की ओर से भी प्रतिक्रिया अवश्य होती, जो देश की संपूर्ण मुस्लिम जनसंख्या के लिए अनिष्टकारी होती। [3]

कारगिल की पहली लड़ाई

25 जनवरी, 1998 को श्रीनगर से 26 कि.मी. की दूरी पर स्थित बंधामा गाँव में 4 विभिन्न परिवारों में 23 कश्मीरी पंडितों की हत्या कर दी गई। एकमात्र जीवित बचे व्यक्ति विनोद कुमार धर शायद लोगों को यह बताने के लिए ही जीवित बच गए कि लंबी-लंबी दाढ़ी वाले 28 आदमी अचानक गाँव में आए, वहाँ चाय पी और फिर एक वायरलेस संदेश पाते ही अंधाधुंध गोलियाँ चलाने लगे। विनोद कुमार धर के माता-पिता, दो बहनें और दो भाई इस दुर्घटना के शिकार हो गए।

हत्याओं का समय ध्यानपूर्वक चुना गया था-गणतंत्र दिवस से एक दिन पहले; गुलमर्ग में होनेवाले प्रथम राष्ट्रीय शीतकालीन खेलों से दो दिन पहले तथा ईद से 4 दिन पहले। स्थान निर्धारण भी महत्त्वपूर्ण था। वंधामा गाँव मुख्यमंत्री फारुक अब्दुल्ला के निर्वाचन क्षेत्र गांदरबल का भाग था। उग्रवादियों का उद्देश्य स्पष्ट था। कश्मीर में बचे-खुचे सांप्रदायिक मेल-मिलाप को भी जातीय आधार पर नष्ट कर देना।

अप्रैल 1998 में भी ऊधमपुर जिले के प्रनकोट गाँव में इसी प्रकार 4 विभिन्न परिवारों के 28 सदस्यों को मार डाला गया। इसके 28 दिन बाद ही उग्रवादियों ने डोडा जिले में देसा और पुंछ में सूरनकोट में अलग-अलग वारदातों में लगभग 10 व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया। इसके विरोध में आंदोलन आरंभ हो गए और पुलिस तथा आंदोलनकारियों के बीच गोलाबारी एवं झगड़े हुए। आगजनी की भी कई घटनाएँ हुईं।

19 जून, 1998 को एक बार फिर पाकिस्तान द्वारा प्रोत्साहित उग्रवादियों ने डोडा जिले में छपनाड़ी गाँव में लगभग दो दर्जन हिंदुओं को निर्दयता से मार डाला। 28 जुलाई को उन्होंने हडना में 9 निर्दोष हिंदुओं की हत्या कर दी। तत्पश्चात् वे एक अन्य गाँव 'सरवन' में चले गए, जहाँ उन्होंने 7 और लोगों को मार डाला। यह एक स्पष्ट संकेत था कि उग्रवाद अब घाटी से बाहर निकलकर जम्मू क्षेत्र तक पहुँच गया था। इस्लामाबाद कश्मीर विवाद को सुलगता हुआ रखना चाहता था।

इससे पाकिस्तान की एक और युक्ति भी स्पष्ट होती थी। वह कश्मीरी विद्रोह को हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिक संघर्ष का रूप देना चाहता था और शेष भारत में भी उसे फैलाना चाहता था, ताकि समूचे भारतवर्ष में अस्थिरता उत्पन्न हो जाए। उग्रवादियों ने एक नया मोरचा खोलकर सेना को सांप्रदायिक झगड़े रोकने में भी उलझा लिया था।

इस प्रकार के हत्याकांड सन् 1999 के आरंभ में भी जारी रहे। बल जरालान में एक विवाह समारोह में कुछ युवक शामियाने के भीतर खड़े देसी शराब के अंतिम छूटों का आनंद ले रहे थे। मध्य प्रदेश से आया संतराम, जो एक ईंटों के भट्ठे पर काम करता था, कुछ अतिरिक्त रुपए कमाने के लिए समारोह

में बरतन साफ कर रहा था। किसी ने नहीं देखा कि शामियाने का कोना उठाकर कब लश्करे-तोइबा के आतंकवादी भीतर घुस आए। कुछ ही पलों में वहाँ 7 लाशें पड़ी थीं। एक लाश संतराम की भी थी।

बल जरालान का यह हत्याकांड 19 फरवरी, 1999 को हुए तीन सामूहिक हत्याकांडों में से एक था। ये हत्याकांड जान-बूझकर ऐसे समय किए गए जब प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी 'लाहौर प्रक्रिया' को आगे बढ़ाने के लिए वाघा से सीमा पार जानेवाले थे। ये हत्याकांड सन् 1998 के ग्रीष्मकाल में हुए कांडों की याद दिलाते थे। उस समय मोहरा फतह गाँव में 4 सदस्योंवाले एक परिवार को समाप्त कर दिया गया था। उसी रात ऊधमपुर जिले में एक परिवार के 9 सदस्यों को मार डाला गया, जिनमें 3 बच्चे थे। इन समस्त संहारों के पीछे लश्करे-तोइबा का हाथ था।

जम्मू-कश्मीर के पुलिस अधिकारियों को पहले से ही प्रधानमंत्री की पाकिस्तान यात्रा के दौरान इस प्रकार की अशांति और विपत्ति की आशंका थी। अति दक्षिणपंथी उग्रवादी संगठन, जो कश्मीर में पृथक्तावादी एवं उग्रवादी संगठनों की सहायता करते हैं, पाकिस्तानी प्रधानमंत्री श्री नवाज शरीफ के भारत के साथ तनाव कम करने के प्रयासों का विरोध कर रहे थे। राजौरी में सेना ने वाघा यात्रा से 4 दिन पूर्व ही लश्करे-तोइबा द्वारा प्रयोग की जाने वाली 'रेडियो फ्रीक्वेंसी' पर कमांडरों को अपने दलों को यह संकेत देते सुना कि 'बर्फ को लाल रंगकर' नवाज शरीफ को 'उपहार' दिया जाए।[4]

19 फरवरी की रात्रि को कश्मीर पुलिस तथा सेना ने राजौरी जिले में सेवारी गाँव में, जहाँ सितंबर 1997 को पहली बार सामूहिक हत्याएँ हुई थीं, उग्रवादियों को पकड़ने के लिए घात लगाई। उनकी आशंका सही थी। लश्करे-तोइबा के 5 आतंकवादी वहाँ नजर आए। दो तो मार डाले गए लेकिन शेष 3 आसपास के लोगों को बंधक बनाकर उनकी आड़ में गोलियों की बौछार से बचकर निकल गए।

बल जरालान में आहतों की संख्या बहुत अधिक न होने का कारण था-13 जे. एंड के. राइफल्स के सैनिक विकास शर्मा और केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल के जवान राजीव शर्मा की वहाँ उपस्थिति। वे दोनों भाई थे और अपनी बहन के विवाह में छुट्टी पर आए हुए थे। जैसे ही विकास शर्मा ने गोलियों की आवाज सुनी, उसने अपने घर में पड़ी दो .303 राइफलों में से एक उठा ली और अँधेरे में ही गोलियाँ चलानी आरंभ कर दीं। शीघ्र ही उसके भाई ने भी उसका साथ देते हुए गोलियाँ चलाई। दोनों ने मिलकर गोलियों के लगभग 10 चक्र पूरे किए। राजीव शर्मा ने बताया, 'हम कुछ भी नहीं देख पा रहे थे और हमें आतंकवादियों को मार देने की कोई आशा नहीं थी, लेकिन उन्हें इतनी देर ठहरने का समय नहीं मिला कि वे झाडिघ्यों में छिपे युवकों को चुन-चुनकर भून डालें या उन्हें जो पास बहती नहर में उतर गए थे।' राजौरी का मुख्य हिजबुल मुजाहिदीनी आतंकवादी शेर खान, जो पाकिस्तानी नागरिक था, 5 फरवरी को गाँव सुरक्षा कमेटी के एक सदस्य रघुबीर सिंह द्वारा सोंचल गाँव में मार डाला गया। तब आतंकवादियों को इतना तो समझ आ गया कि गाँव सुरक्षा कमेटी के पुराने हथियार भी घातक हो सकते हैं।

लेकिन भरयाना के दीवान चंद तथा उसके परिवार के लिए बच पाने का ऐसा कोई अवसर नहीं था। भरयाना जम्मू क्षेत्र के आम गाँवों की तरह मुख्य मार्ग से बहुत दूर था। वहाँ से मुख्य मार्ग तक पहुँचने के लिए लगभग 9 घंटे पैदल चलना पड़ता था। यह गाँव एक पर्वत के किनारे सैकड़ों मील तक फैले घरों का समूह था। यहाँ बसनेवाले निर्धन परिवार आजीविका के लिए वर्ष में एक बार होनेवाली मक्का की फसल पर ही निर्भर थे। जब आतंकवादी दीवानचंद के घर पहुँचे तो उसके पास उनकी भोजन संबंधी माँगें पूरी करने के अलावा और कोई चारा नहीं था, क्योंकि सबसे नजदीकी सुरक्षा चौकी तक पहुँचने के लिए भी 4 घंटे पैदल चलना पड़ता था। 19 फरवरी की रात को उनके परिवार ने अभी भोजन समाप्त किया ही था कि 7 आतंकवादी उनके घर में घुस आए। वे सातों उर्दू बोलते थे, लेकिन वह पुंछ की बोली से भिन्न थी। उन्होंने आते ही दूध की माँग की, जो दीवान परिवार द्वारा पूरी कर दी गई। तत्पश्चात् वे लोग कुछ सौ मीटर की दूरी पर स्थित शीबा देवी के घर चले गए। शीबा देवी ने बाद में बताया, 'मेरे कुत्तों ने भौंकना आरंभ कर दिया और आतंकवादियों ने उन्हें चुप कराने के लिए कहा। मैं बहुत भयभीत हो गई थी, क्योंकि गत जुलाई में इसी प्रकार कई सशस्त्र लोग मेरे घर में आए थे और मेरे मुरगे-मुरगियाँ लेकर चले गए थे। इसलिए मैंने जो चार चूजे घर में थे, उन्हें छिपा दिया और स्वयं वहाँ से भाग गई।'

इस निर्णय ने ही शायद शीबा देवी की प्राण रक्षा की, मगर दीवानचंद का भाग्य पलट गया। रात दो बजे के बाद आसपास सबसे बड़े शिकार की खोज में घूमकर आतंकवादी पुनः उनके घर लौट आए। उन्होंने एक बार फिर परिवार से दूध गरम करने को कहा। दीवानचंद एवं उनका परिवार एक-दूसरे के साथ सिमटकर बैठ गए, तभी अचानक आतंकवादियों ने गोलियाँ चलानी आरंभ कर दीं। उनका दामाद दिलीप सिंह एकमात्र वयस्क था, जो जीवित बच गया। उसके अनुसार, 'वे कुछ देर शवों के इर्दगिर्द खड़े रहे। मेरे ससुर का सबसे छोटा बच्चा शंकरसिंह अपनी माँ की गोद में था, जब माँ को गोलियाँ लगीं वह जमीन पर गिर गया और रोने लगा। एक आतंकवादी बोला कि उन्हें उसको भी मार देना चाहिए, लेकिन किसी दूसरे ने कहा-किसलिए? वो तो यूँ भी जल्दी ही मर जाएगा।'

शंकरसिंह ही एकमात्र बच्चा नहीं था, जो बच गया। उसके भाई जीतसिंह, बिल्लू और ओंकार सिंह उसी कमरे के एक कोने में सो रहे थे। अंधकार के कारण कंबल में लिपटे उन बच्चों को आतंकवादी देख नहीं पाए। दीवानसिंह के ज्येष्ठ पुत्र 10 वर्षीय जीतसिंह ने बताया, 'मैं गोलियों की आवाज सुनकर जाग गया। फर्श पर रक्त और शव पड़े थे। मैं निश्चेष्ट रहा। मैं रातभर बिस्तर पर पड़ा रहा। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि क्या करूँ? भोर होने के बाद मैं अपने चाचा के घर की ओर चल पड़ा, जो एक घंटे का रास्ता था।' दीवानचंद की बेटियाँ, 4 वर्षीय वैष्णो देवी और 14 वर्षीय कांतादेवी, दिलीप सिंह की डेढ़ वर्षीय बेटी बिमलो देवी के साथ मारी गई।

19 फरवरी की रात का तीसरा सामूहिक हत्याकांड, जो मोहरा फाता में हुआ, इससे कुछ कम पाशविक नहीं था। उसका विवरण बग्गा गुज्जर से मिला। वह मुंशीराम से अपने पशुओं के लिए चारा खरीदने देर शाम मोहरा फाता पहुँचा। इसलिए उसे मुंशीराम के घर के बाहर बनी कोठरी में ही रात व्यतीत करने के लिए कहा गया। रात एक बजे आतंकवादी वहाँ आए और 15 व्यक्तियों के लिए चाय की माँग की। बग्गा ने कहा कि उसके पास उनकी माँग पूरी करने का कोई साधन नहीं है। वह उन्हें मुंशीराम के घर ले गया। रास्ते में वह पेड़ों में छिप गया और मथियानी गली में बनी सुरक्षा सीमा बल की चौकी तक घंटों पैदल चलता रहा। लेकिन इस बीच मुंशीराम, उसकी 65 वर्षीय पत्नी तथा दोनों पुत्रों-कृष्णराम एवं तेजारामदृको यातना देकर मार डाला गया।

इन हत्याकांडों का परिणाम अपेक्षित ही था। राजौरी क्षेत्र में तो एक प्रकार से सांप्रदायिक दंगे ही हो गए, जब बल जारालान के निवासी स्थानीय हिंदू नेताओं द्वारा उकसाए जाने पर शवों को शहर में लाने पर अड़ गए। पुलिस ने धाँगरी गाँव में उनका रास्ता रोका, लेकिन भीड़ केवल गोलियाँ चलने पर ही तितर-बितर हुई। इस उपद्रव में एक 20 वर्षीय युवक नासिर गुज्जर गोली लगने से मारा गया। वह केवल उत्सुकतावश भीड़ में घुस आया था। उसे देखते ही सांप्रदायिक उन्माद में कुछ लोग चिल्लाने लगे कि वह आतंकवादी था। नासिर गुज्जर डरकर भागा और इतना घबरा गया कि उसने सीमा सुरक्षा बल का रुकने का आदेश भी नहीं सुना। उन्होंने गोलियाँ चला दीं और वह मारा गया।

नासिर गुज्जर की मृत्यु हत्याओं के उस कुचक्र का केवल एक उदाहरण है, जिसने जम्मू क्षेत्र के विभिन्न संप्रदायों के बीच शांति के झीने आवरण को भी छिन्न-भिन्न कर दिया। करारा में 4 निर्दोष मुसलमानों की हिंदुओं द्वारा हत्या ने आतंकवादियों द्वारा किए गए हत्याकांडों को एक प्रकार से वैधता प्रदान कर दी। सेवारी में एक स्थानीय मुसलमान अध्यापक मंजूर अहमद के एक हिंदू युवती रीता कुमारी से विवाह के कारण वहाँ के हिंदू कट्टरवादियों में हिंसा की अग्नि भड़क उठी। अपमानित तथा अपनी नवविवाहिता से जबरदस्ती अलग कर दिए गए मंजूर अहमद ने हिजबुल मुजाहिदीन का सहारा लिया। उन्होंने बदले में उन दो परिवारों के सदस्यों को मार डाला, जो इस अंतरजातीय विवाह के विरुद्ध प्रदर्शनों का नेतृत्व कर रहे थे।

सफलतापूर्वक परमाणु परीक्षण कर लेने के पश्चात् पाकिस्तानी सेना को विश्वास हो गया कि अब वे परंपरागत युद्ध में उनसे कहीं बेहतर हो गए हैं। यही नहीं, भारत की पहल न करने की नीति का लाभ उठाते हुए पाकिस्तान आश्वस्त था कि वह भारत के लिए परमाणु संकट खड़ा करके उसे धमका सकेगा। पाकिस्तानी सेना को यह भी विश्वास था कि उनकी परमाणु एवं प्रक्षेपणास्त्र क्षमता भारत से बेहतर थी। वे इस बात से भी अनभिज्ञ थे कि भारत का परमाणु सिद्धांत अभी अधूरा था। भारत ने अभी अपने नयूनतम स्तर को भी अस्त्र बनाने के लिए प्रयोग नहीं किया था और न ही अपनी परमाणु क्षमता के लिए कोई नियंत्रण नीति की रचना की थी।

संदर्भ

1 डॉ0 अश्विनी कुमार सिंह, कश्मीर समस्या 'आतंकवाद और भारतीय सुरक्षा' अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, पृ0 63

2 तूणीर, 26 जनवरी 2005, पृ0सं0 78

3 लेफ्टिनेंट जनरल के0के0 नंदा, कश्मीर 'निरंतर युद्ध के साए में', प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 243

4 दैनिक जागरण, 13 फरवरी, 2007

हिन्दी कथा साहित्य में बाल शोषण का स्वरूप

तनुजा गोस्वामी

उपायुक्त (राज्य कर विभाग, राजस्थान)

हिन्दी कथा साहित्य का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। इसमें कई विधाएँ हैं, कई विषय हैं। बाल साहित्य भी इसका एक अंग हैं। टेलीविजन एवं मोबाईल के प्रादुर्भाव के पूर्व की बात करें तो दादी-नानी द्वारा पूर्ण संवेदनशीलता के साथ सुनाई गई कहानियाँ बच्चों के मनोमस्तिष्क पर एक अमिट छाप छोड़ती थी। आधुनिक युग की आपाधापी में विकसित हुए एकल परिवारों में ये परम्पराएँ अब लुप्त-सी होने लगी हैं। बाल साहित्य के रूप में लिखी गई पंचतंत्र, हितोपदेश, सिंहासन बत्तीसी एवं बेताल पच्चीसी आज भी बच्चों द्वारा पढ़ी जाती हैं। अमीर खुसरो ने भी बाल मनोरंजन एवं उनको शिक्षा देने के उद्देश्य से कुछ मुकरियाँ एवं पहेलियाँ लिखी थीं। हिन्दी कथा साहित्य के सिरमौर प्रेमचन्द भी बाल साहित्य के महत्व को स्वीकार करते हैं। उन्होनें पहला उपन्यास 'दुर्गादास' लिखा था जो कि मुख्य रूप से बालक-बालिकाओं को ध्यान में रखकर ही लिखा गया था। 'दुर्गादास' की भूमिका में प्रेमचन्द लिखते हैं, **''बालकों के लिए राष्ट्र के सपूतों से बढ़कर उपयोगी साहित्य का कोई दूसरा अंग नहीं है, इससे उनका चरित्र ही बलवान नहीं होता उनमें राष्ट्रप्रेम और साहस का संचार भी होता है।"**[1] उनकी 'ईदगाह', 'बड़े भाईसाहब', 'गुल्ली डण्डा', 'रक्षा में हत्या', 'बूढ़ी काकी' आदि कहानियाँ बाल मनोविज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। अज्ञेय कृत 'शेखर एक जीवनी' का शेखर अपनी मन की सीढ़ियों पर बार-बार चढ़ता उतरता नजर आता है। चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की सुप्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' बचपन के अल्हड़ वार्तालाप से ही शुरू होती है। बचपन की कोमलता को समग्र रूप से देखने पर बाल साहित्य के दो रूप देखने को मिलते हैं - पहला, बच्चों के मनोरंजन के उद्देश्य से एवं उन्हें शिक्षा देने के उद्देश्य से लिखा गया बाल साहित्य। दूसरा, बालमन की समस्याओं को समाज के सम्मुख लाने के उद्देश्य से लिखा गया साहित्य। पूर्व में लिखा गया बाल-साहित्य मुख्य रूप से पशु-पक्षियों, राज-रानी और बचपन के अल्हड़पन और भोलेपन को केन्द्र में रखकर लिखा गया था किंतु बाल साहित्य का उत्तरार्द्ध न जाने कैसे समस्यापरक हो गया। आधुनिकीकरण के साथ-साथ 'बच्चा' समाज की अत्यन्त संवेदनशील इकाई बन गया, दया का पात्र बन गया, पारिवारिक कलह का यंत्र बन गया, असामाजिक तत्वों की कुंठाओं का शिकार बन गया।

आधुनिक बाल साहित्य में बचपन सामाजिक व आर्थिक शोषण की तुलना में भावनात्मक शोषण शिकार है। भौतिक जगत की सम्पूर्ण सुख-सुविधाओं के होते हुए भी बचपन सूखे रेगिस्तान में भटकता हुआ दिखाई देता है। मन्नू भण्डारी का उपन्यास 'आपका बंटी' इस क्षेत्र का सबसे महत्वपूर्ण एवं सशक्त उपन्यास है। इसमें माता-पिता के आपसी द्वन्द्व, तनाव व अहम की चक्की में पिसते बालक की कथा है। एक बच्चे के लिए माता और पिता दोनों दो आँखों के समान होता है किंतु संबंध-विच्छेद की कगार पर पहुंचे अभिभावकों के कारण उसे मजबूरन एक आँख बंद करनी पड़ती है, दोनों में से एक को चुनना पड़ता है। स्वयं पर निर्भर ना होने के कारण दोनों के प्रति निष्ठा होते हुए भी किसी एक के प्रति निष्ठावान होना पड़ता है। 'आपका बंटी' का मुख्य पात्र बंटी परिवार की अहंवादी प्रवृत्ति, अति महत्वाकांक्षा, असहिष्णुता, प्रेमपूर्ण उष्मा के अभाव के कारण सामाजिक व मानसिक तनाव का शिकार हो जाता है। उसके माता और पिता दोनों स्वयं के 'स्त्री' या 'पुरूष' होने को अधिक महत्त्व देते हैं तथा असफल और असहज दाम्पत्य संबंधों को तोड़कर अपने-अपने नये साथी के साथ जीवन पुनः प्रारंभ कर देते हैं। दोनों की रस्साकशी के बीच बंटी अवाँछित-सा हो जाता है। माँ उसे अपने नये वैवाहिक जीवन के बीच बाधा समझ कर उसके पिता के पास उसे भेज देती है। पिता और उनकी पत्नी व बेटे के बीच उसकी स्थिति बड़ी अटपटी सी हो जाती है। पिता पैर में चुभे काँटे की भाँति उसे निकालकर हॉस्टल भिजवा देते हैं। वह यंत्रवत् हर परिस्थिति को स्वीकारता चला जाता है, क्योंकि कम प्यार देने अर्थात् अवस्नेह एवं तिरस्कार के कारण उसमें संवेगों की कमी हो जाती है। जब उसे यह अहसास हो जाता है कि उसके दुख में दुखी होने वाला अब कोई नहीं है तो वह स्वयं निहत्था महसूस कर परिस्थितियों के सामने समर्पण कर देता है। वह टूटकर, सिकुड़कर, सिमटकर अकेलेपन का शिकार हो जाता है। डॉ. हेरी.एम. जॉनसन ने इस विषय में कहा है, **"कोई भी यह नहीं सोचता कि प्रभावित बच्चों के लिए तलाक हितकर रहा? पर यह कोई नहीं जानता कि क्या अप्रसन्न और लड़ते रहने वाले माता-पिता के साथ रहने की तुलना में यह स्थिति और भी खराब है, न कोई यह भी जानता है कि बच्चे तलाक के कारण अत्यधिक यातना भोगते हैं अथवा उस संघर्ष से भोगते हैं जिसके कारण कि तलाक लिया गया।"**[2]

अतः बाल साहित्य के पूर्वार्द्ध में बाल शोषण की अभिव्यक्ति समान्यतः देखने को नहीं मिलती किंतु उत्तर्रार्द्ध बाल मन की समस्याओं को मुख्य रूप से इंगित करता है। यह सत्य है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। बाल साहित्य का पूर्वार्द्ध उस काल से संबद्ध है जब भारतीय समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली थी, परिवार के मुखिया बुजुर्ग हुआ करते थे, व्यक्ति सामाजिक था, आधुनिकता की दौड़ में शामिल नहीं था, नैतिकता प्रधान मूल्य था, विवाह विच्छेद जैसी घटनाएँ नगण्य थीं। ऐसे परिवेश में बच्चों का मनोरंजन करना, उन्हें सही मार्ग दिखाना तथा जीवन संघर्ष के लिए तैयार करना ही बाल साहित्य का प्रमुख लक्ष्य बन गया था, जबकि बाल साहित्य के उत्तरार्द्ध तक सामाजिक परिवेश में जटिल परिवर्तन आ गये थे। बच्चे मानसिक शोषण व सामाजिक शोषण के शिकार होने लगे थे। स्वातंन्योत्तर काल में ऐसे अनेक कहानी, उपन्यासों की रचना की गई जो बच्चों की इन समस्याओं को पुरजोर तरीके से अभिव्यक्त करते हैं।

उषादेवी विजय कोल्हटकर की कहानी 'करार पत्र' का मुख्य पात्र निकलस प्रारंभ में बहुत खुश मिजाज, व होशियार होता है किन्तु माता-पिता के संबंध विच्छेद और झगड़ों की आँच में झुलसकर वह कुम्हला जाता है। वह पिता के घूमने, हँसने, खेलने, मस्ती करने, उनके सीने पर सोने वाले पलों को रोज जीना चाहता है किंतु माता-पिता का अहं उसे इस सपने से वंचित कर देता है। परिणामस्वरूप वह हताश और निराश हो जाता है। इसी प्रकार 'दिलासा' नामक कहानी की नायिका प्रत्येक पाँच-छः वर्ष बाद तलाक लेकर हर बार नये पुरूष से पुनर्विवाह करती है। अपनी बीस वर्ष की अवस्था में चार पिताओं के साथ सामंजस्य बैठा चुकी नायिका की पुत्री अपनी माँ के प्रति अपने रोष को इन शब्दों में व्यक्त करती है **"माँ की हर शादी में ऐसा लगा जैसे जिन्दगी, जिन्दगी न हो, कोई नौटंकी हो। नये शौक की, नये रिश्ते की खुशी उसकी होती है और दर्द मेरा। नाटक के नये अंक की तरह माँ की नई शादी, मेरे नये डैडी, नया फर्नीचर, घर की नई सजावट, नये समझौते।"**[3] स्त्रियों ने अपने पुराने प्रतिमानों को उतार फेंकने की चेष्टा में काफी कुछ उतार फेंका। पुरूषों के विरूद्ध लड़ते-लड़ते अनजाने ही वह पुरूष प्रतिमानों को आदर्श मान बैठी और पुरूषों से बराबरी की अंधी लड़ाई में शामिल हो गई। रूसी शिक्षाशास्त्री अंतोन माकारें को इस विषय में लिखते हैं, **"पारिवारिक समूह की पूर्णता और एकता अच्छे लालन-पालन के लिए एक अनिवार्य शर्त है। इसका विनाश निर्वाह खर्च अदा करने वाले बापों और इकलौते राजकुमारों से ही नहीं होता बल्कि माता-पिता के झगड़ों, पिताओं की निरंकुशता, क्रूरता और माताओं के छिछोरेपन की कमजोरी से भी होता है।"**[4] इसी प्रकार की भावना कृष्णा अग्निहोत्री की कथा नायिका की पुत्री अपने माता-पिता के संबंध विच्छेद के बाद अपनी मां के साथ रहने लगती है। वह आये दिन अपने घर आने वाले अंकलो से व उनके साथ अपनी माँ के रिश्तों से परेशान हो जाती है क्योंकि उसके हमउम्र साथी उन अंकलों के बारे में तरह-तरह के सवाल करते हैं जिससे वह स्वयं को अपमानित अनुभव करती है। वह माँ के प्रति अपने गुस्से को इसलिए जब्त कर लेती है कि कहीं वह पिता की तरह अपनी माँ से भी दूर ना जो जाए। इस प्रकार वह अपने भीतर की लड़ाई से खुद ही दो-चार होती रहती है। निर्मल वर्मा की कहानी 'एक दिन का मेहमान' कहानी में लड़की अपने वर्षों पूर्व छोड़कर गये पिता के पुनः आने पर पेशोपेश में पड़ जाती है। वह नहीं चाहती कि उनकी अनुपस्थिति में उन लोगों ने जो दुरूह शांति कायम की उसमें कोई व्यवधान पड़े। वह अपने पिता को रोकती है कि वे माँ से पुनः ना मिले। मालती जोशी की कहानी 'नीड़ का निर्माण फिर फिर' की पात्र पिंकी भी अपने माता-पिता के संबंध विच्छेद और पुनः सुलह के बीच झूलती नजर आती है। बचपन से उसकी माता व अन्य परिजनों द्वारा उसके मन में उसके पिता की खलनायक की छवि उकेर दी जाती है जिससे वह अपने पिता से घृणा करने लगती हैं किंतु एक दिन अचानक उसके पिता घर लौटते हैं और पुनः उन्हीं परिजनों द्वारा उसके पिता को 'पिता' के रूप में स्वीकार करने हेतु समझाइश की जाने लगती है। इस बीच पिंकी स्वयं को ठगा-सा महसूस करती है मानों उसकी भावनाओं का कोई स्वतंत्र अस्तित्व ही ना हो। सामान्यतः होता भी यही है कि विवाह-विच्छेद के शिकार बच्चे जिस अभिभावक के साथ रहते हैं उनके प्रति निष्ठावान होने एवं दूसरे के प्रति घृणा का भाव प्रदर्शित करने की उनके अपेक्षा की जाती है। वे स्वयं दोनों के बारे में क्या राय व्यक्त करते हैं इस विषय पर कोई सोचना विचारना ही नहीं चाहता। रमेश बक्षी की कहानी 'उत्तर' का पिता अपने पुत्र को अत्यन्त आत्मनिर्भर बनाने के चक्कर में आत्मकेन्द्रित और असंवेदनशील बना देता है। फलतः उसका पुत्र 'राजू' उग्र, उदास हो जाता है, वह किसी के साथ भी आत्मीय संबंध नहीं बनाना चाहता। स्वयं में गुम हो जाता है। पिता यह सब देखकर अपना दुःख व्यक्त करते है, **"मुझे कई बार लगा कि हम दोनों अलग-अलग अकेले हैं। हम दोनों में कोई रिश्ता नहीं है।"**[5]

शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'पहचान' में तलाक के बाद बच्चे की माता द्वारा दूसरा विवाह कर लिया जाता है। उसका नाम शिवजीत सचदेव से बदलकर अब शिवजीत अबरोल हो गया है। यह देखकर वह अपनी कक्षा के बीच हँसी का पात्र बन जाता है जिससे उसे अत्यन्त ग्लानि का अनुभव होता है। कृष्णचन्दर की कहानी 'मेरे दोस्त का बेटा' एक वैश्या और अनाम बाप से पैदा हुए बच्चे की कहानी है। समाज के लिए उसकी माँ एवं पिता की पहचान एक गाली के समान है। ऐसी परिस्थितियाँ जिन पर अपना वश नहीं चलता, जिसे हम खुद बदल नहीं सकते जब हमारे अपमान का कारण बनती हैं तो हृदय एक अजीब-सी घुटन से भर जाता है। वह बच्चा मनोविकार का शिकार होकर एक दिन एक मैगजीन के पन्ने पर छपी हँसते हुए बच्चे की फोटो देखकर कहता है, **"मैं इसका गला काट डालूँगा... बस काट डालूँगा। यह मेरी तरफ देखकर हँसता क्यों है?"**[6] वह घृणा एवं क्रोध के मिले-जुले भाव से कहता है, **"यह मेरी ओर देखकर सदा हँसता है। चहक-चहक। लड़के ने एकदम चाकू से तस्वीर को दो-तीन जगहों से काट डाला। हँसते हुए बच्चे का चित्र जगह-जगह से फट गया।"**[7] चार वर्षीय बच्चे द्वारा ऐसा व्यवहार किया जाना हैरत में डालने वाला है। उसके व्यवहार से यह उद्घाटित होता है कि वह कहीं भीतर तक अपने अस्तित्व के प्रति गहरी घृणा से भर चुका है। ऐसे बच्चे बड़े होकर सहज जीवन जीने में सफल नहीं हो पाते। जलज भादुड़ी की कहानी 'गेरूए की आत्महत्या' कहानी का पात्र 'अम्बर' अपने माता-पिता के अलग होने के पश्चात् अपने मन के गलियारों में भटकता हुआ बड़ा होने पर सन्यासी बन जाता है। किंतु वह अपने अतीत से पीछा नहीं छुड़ा पाता। उसके बचपन का अप्रिय पारिवारिक परिवेश उसे भीतर ही भीतर नोचता रहता है। उसके भीतर पनप रही असुरक्षा की भावना उसे आक्रोश में पनाह देती है। उसका स्वकथन है, **''उनका जीवन एक विकृतिमय सपना था पर उनसे कटकर भी मैं अपने को सदा असुरक्षित पाता था। मैं आवेश और बदले की आग में जलता रहा। नींद में अपने को स्टोनमैन समझता। पेड़-पौधों को चाकू भोंक देना, नदी वृक्ष में बड़े-बड़े पत्थर मारना, इसी में आनंद पाता था। जबकि दूसरे बच्चे आपस में गेंद खेलते, वहीं में विध्वंसकारी खेल खेलता और जंगलों में पशु-पक्षियों पेड़-पौधो पर अत्याचार करता फिरता था।... मैं तो दोनों से नफरत करने लगा था।"**[8] अतः बचपन से वह आत्म विध्वंस के पथ पर चलता हुआ आत्महत्या को गले लगाकर अपनी इहलीला समाप्त कर लेता है। 'अपने पार' तथा 'एक और जिन्दगी' के बच्चे अपनी माँ को खुश करने की अपेक्षा में बड़े होने पर भी शिशुओं की भाँति व्यवहार करने के लिए प्रेरित होते हैं। इतने छोटे बच्चों में भी असुरक्षा की भावना का इतना घनीभूत होना अचंभित कर देता है। उन्हें खुश करने या उनके प्रति निष्ठा व्यक्त करने के लिए असहज आचरण करने के लिए प्रेरित होना गहन पीड़ा से भर देता है। अतः उक्त कहानियों और उपन्यासों में बच्चे स्वयं के परिवार द्वारा दिये गये दुःख एवं संत्रास से प्रताडिघ्त हैं। वे अपने माता-पिता के अहमवादी फैसलों के बोझ के तले कुचले हुए हैं। वे दोनों में से किसी एक को चुनना नहीं चाहतें, उन्हें दोनों ही चाहिए किंतु तलाक होने के बाद किसी एक के साथ रहना, उसी की खुशी में खुश उसी के दुख में दुखी होने की बाध्यता उन्हें नैसर्गिक बचपन से मीलों दूर ले जाती है। जे.एफ. बाऊन ने इस विषय में लिखा हैं,

''बालक अपने आप में सम्पूर्ण इकाई होता है, वह बड़े का अधूरा या छोटा संस्करण नहीं है।''[9] इस उधेड़बुन में वे हताशा और निराशा के शिकार होकर या तो आक्रोशित और विद्रोही प्रवृत्ति के हो जाते हैं या अपने में सिमटकर संकोची प्रवृत्ति के हो जाते हैं। अन्ततः वे गहन मानसिक शोषण के शिकार होकर सहज सामाजिक जीवन के अनुपयोगी हो जाते हैं। हिन्दी कथा साहित्य में जहाँ-जहाँ भी दयनीय बाल पात्रों का उल्लेख हुआ है वहाँ माता-पिता का अलगाव मुख्य कारण रहा है। यह दलित बाल-पात्रों के शोषण से नितांत भिन्न है।

हिन्दी कथा साहित्य में कुछ ऐसे बाल पात्रों का भी उल्लेख हुआ है जो परिस्थितिवश अपराध और दुराचरण के शिकार हो जाते हैं। ये परिस्थितियाँ, गरीबी, अशिक्षा, अति महत्वाकांक्षा या माता-पिता का अलगाव व उनकी अवहेलना कुछ भी हो सकते हैं। जगदंबा प्रसाद दीक्षित के उपन्यास 'मुरदा घर' का बालक 'गन्या' मुम्बई के महानगर की झोपड़ पट्टी के गंदे, बदबूदार परिवेश में पलने, बढ़ने वाला बालक है। यह बालक अपनी भूख मिटाने के लिए होटल के पीछे फेंके गये जूठे खाने पर यह कहकर टूट पड़ता है, **''तेरी माँ की... हट रे... तू हट साला भेनचोद। ए... उसकू पकड़ तो। मैं ढूँढ़ के निकाला। हाथ नहीं लगाना। ऐसा मारेगा।''**[10] भूख से व्याकुल गन्या का दूषित भोजन पर झपट पड़ना उसके शारीरिक और मानसिक शोषण का प्रतीक है। वह अपने पेट की अग्नि से इतना पीड़ित है कि फेंका हुआ खाना खाने को मजबूर है। मानवीय स्तर से गिरना उसे दया का पात्र बनाता है। इस उपन्यास का अन्य बाल पात्र 'राजू' अपराधी माता-पिता की संतान है तथा 'अन्या' अनाथ संतान है। इसके अतिरिक्त 'सोन्या', 'गोपी' और 'मुहम्मद' उस गंदी बस्ती में रहने को अभिशप्त है। इसी प्रकार 'तलाश' उपन्यास के लेखक महावीर अधिकारी ने अनाथालयों, समाज-सेवी संस्थाओं और सदनों में पलने बढ़ने वाले लावारिस और बेसहारा बच्चों के दर्द का उल्लेख किया है। इस उपन्यास के पात्र फोस्टर के साथ उसके पिता की पत्नी और सदन में काम करने वाली सदस्या कामाचार करती है और कहती है कि वह उसे माँ का प्यार दे रही है। माँ का निधन हो जाने के कारण उसे इस चीज का ज्ञान नहीं था कि माँ का प्यार कैसा होता है। अतः बचपन की नासमझी में ऐसी यौन प्रताड़नाओं का शिकार होकर वह प्रत्येक औरत को उपभोग की वस्तु समझने लगता है। इस उपन्यास की एक अन्य पात्र 'लतिका' अनाथालय में पलने बढ़ने वाली लड़की है अपनी बाल्यावस्था में हुए यौन उत्पीड़न से विचलित और व्यथित रहती है, **''बारह वर्ष की उम्र से जब मेरा जीवन उसी आदमी के हाथों नष्ट हुआ था जो मुझे बेटी बनाकर अनाथालय से ले गया था। उसने मुझे सड़क पर ढ़केल दिया था। तभी से बीमार हूँ मुझे दौरे आते है।''**[11] बचपन में घटित घटनाएँ मृत्युपर्यंत बार-बार उपस्थित होकर अपने हस्ताक्षर करती रहती हैं, उनसे विलग होना असंभव है। विष्णुदेव उपाध्याय कृत 'कटु सत्य' की बाल पात्रा 'गरिमा' धनाढ्य परिवार से है। परिवार का अत्यधिक नियंत्रण उसे विच्छृंखल बना देता है। वह अध्ययन की अपेक्षा शराब, सिगरेट, जुआ आदि की आदि होकर... हो जाती है। उसके इस कथन में किशोर मन की कोमलता दम तोड़ती सी नजर आती है, **''मेरा यह महीना तो बहुत अच्छा गुजरा। कोई पाँच क्लाइंट्स इस महीने मेरे सम्पर्क में आये। तीन नये थे और दो पुराने। एक नये क्लाइंट ने तीन बार बुलाया मुझे।''**[12] इस प्रकार अनजाने की वह अपने बचपन का गला घोंटकर भी खुश है। ऐसे बच्चे स्वयं का शोषण स्वयं ही करने पर आमादा होते हैं। गंगा प्रसाद मिश्र के उपन्यास 'मुस्कान है कहाँ' का बालपात्र 'टोनी' मि. एण्ड मिसेस बाली दम्पत्ति की उपेक्षित संतान है। वह अकेलेपन के कारण यौन संबंधो के प्रति आकर्षित होता है और फिर नशे की ओर। नशे के कारण अपने मित्र सुबोध की मृत्यु के बाद वह मानसिक रूप विकासरग्रस्त हो जाता है। द्रोणवीर कोहली के उपन्यास 'काया स्पर्श' का पात्र इक्ष्वाकु अपनी माता और बड़े भाई की मृत्यु के पश्चात् अकेलेपन का शिकार हो जाता है, जिस पर अपने पिता की व्यस्तता और उनका नजरअंदाज किया जाना उसे तोड़ देता है। कहीं और ठौर ना पाकर आत्महत्या की दहलीज पार कर जाता है। अभिमन्यु अनत के उपन्यास 'अचित्रित' पात्रा 'मरिचक' अपनी किशोरवय में देह का सौदा करने के लिए मजबूर हो जाती है। वह कहती है, **''पन्द्रह ही वर्ष में देह बेचकर देह को पालने के लिए विवश हो गई।''**[13] उसकी दृष्टि में स्त्री-पुरूष संबंधों की सीमा केवल 'सेक्स' है। मधुकांकरिया के चर्चित उपन्यास 'पत्ताखोर' का बाल पात्र 13 वर्षीय आदित्य दोनों अभिभावकों के नौकरी में व्यस्त होने के कारण अकेलेपन का शिकार हो जाता है। उनके आवश्यकता से अधिक नियंत्रण के कारण वह अतिशय कटुता से भर जाता है। उसकी माँ के प्रति उसके ये शब्द उसके मन के कसैलेपन को अभिव्यक्त करते हैं, **''साली कुत्ती मरती भी नहीं।''**[14] इस घुटनभरी जिन्दगी के परिणामस्वरूप वह नशे की ओर प्रवृत्त होता है और 'पत्ताखोर' बन जाता है। माता-पिता की अवज्ञा करना, हेराइन और ब्राऊन शुगर का सेवन करना, चोरी करना, और झूठ बोलना उसके लिए बिल्कुल सामान्य बात बन जाती है। प्रभा खेतान के उपन्यास 'छिन्नमस्ता' की प्रिया स्वयं के बड़े भाई द्वारा किये गये यौन शोषण से पीडिघ्त लड़की है जो अपने बचपन में भोगे गये यौन शोषण के कारण कभी सामान्य नहीं हो पाती है। वह अपने दर्द को इस प्रकार व्यक्त करती है, **''सुरक्षा, मुझे सुरक्षा की जरूरत थी ताकि कोई मुझे बड़े भैया से बचा ले। मैं वे रातें भूल नहीं पातीं जब भाभीजी बेहद बीमार रहने लगी थी और भैया मेरे और सरोज के कमरे में सोया करते थे। रात को चुपके से रेंगकर मेरी ओर उनका आ जाना। उनका बदन मेरी पीठ से सटा रहता। हल्की फुसफुसाहट- ''प्रिया ! एई प्रिया....' फिर कुछ हरकतें। मैं साँस रोके पत्थर सी पड़ी रहती। मेरा कलेजा धकधक करता रहता और मेरा रोम-रोम किसी रक्षक को पुकारता। 'ओह ! मुझे बचा लो, भगवान ! तुम मुझे बचा लो। मुझे बचा लो !' आधे घण्टे, पौन घण्टे किसी कड़ी चीज की रगड़ मैं पीठ पर झेलती रहती। सांसो की तेजी और फिर थक-हारकर पुरूष का स्खलन। चिपचिपा, लिसलिसा सीमेन, कभी मेरे कुर्ते में, कभी चद्दर में लगा रह जाता।''**[15] प्रिया की यह पीड़ा उन सभी लड़कियों की पीड़ा है जो लड़की होने के अपराध की सजा काटती है।

इस प्रकार हिन्दी कथा साहित्य बाल शोषण की घटनाओं से भरा पड़ा है। शोषण के प्रकार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं किंतु दर्द एक सा है। इन कहानी उपन्यासों में ये चीखें मुख्यतः बच्चे के घर की चार दीवारी के भीतर ही दम घोंटती नजर आती है। इनमें शोषक मुख्य रूप से उनके अभिभावक और परिजन ही है। यह शोषण दलित बच्चों के शोषण से नितांत भिन्न है। उनके शोषण का स्त्रोत वर्णव्यवस्था है। वे सामाजिक व्यवस्था से आतंकित है उसका कुचक्र इतना जटिल है कि उससे निकला बहुत मुश्किल प्रतीत होता है। यह भी उल्लेखनीय है कि वर्णव्यवस्था का इतिहास हिन्दी कथा साहित्य से प्राचीन है। यह व्यवस्था यहाँ के सामाजिक ताने-बाने का मूल सूत्र है फिर भी हिन्दी कथाकारों द्वारा इन दलित बच्चों की पीड़ा को नजर अंदाज किया जाना कई सवाल पैदा करता है। एक और महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि ये कहानियाँ और उपन्यास प्राक्कल्पना पर आधारित है, और हिन्दी आत्मकथाओं में बाल शोषण की घटना साधारणतया देखने को नहीं मिलती। जबकि दलित आत्मकथाएँ भोगा हुआ यथार्थ है वे कटु सत्य हैं। वे भारतीय समाज की नग्न तस्वीर पेश करती हैं।

संदर्भ सूची

1. प्रेमचन्द, दुर्गादास (भूमिका से)
2. डॉ. हेरी. एम. जॉनसन, समाजशास्त्रः एक विधिवत विवेचन, पृष्ठ संख्या 171
3. उषा देवी विजय होल्कर, दिलासा, पृष्ठ संख्या 135-36
4. अन्तोन माकारेंको, एक पुस्तक माता-पिता के नाम, पृष्ठ संख्या 140
5. रमेश बक्षी, उत्तर, पृष्ठ संख्या 408
6. कृष्णचन्दन, मेरे दोस्त का बेटा, पृष्ठ संख्या 40
7. वही, पृष्ठ संख्या 40
8. जलज भादुडी, गेरूवे की आत्मकथा, पृष्ठ संख्या 64
9. नीरज जैन, आधुनिक हिन्दी उपन्यास व्यक्तित्त्व विघटन के निकष पर, निर्मल पब्लिकेशन 2001, पृष्ठ संख्या 44
10. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मुर्दाघर, राधाकृष्ण प्रकाशन 1974, पृष्ठ संख्या 33
11. महावीर अधिकारी, तलाश, राजपाल एण्ड संस 1975, पृष्ठ संख्या 117
12. विष्णुदेव उपाध्याय, कटुसत्य, आत्माराम एण्ड संस, प्रथम संस्करण 1976, पृष्ठ संख्या 34
13. अभिमन्यु अनंत, अचित्रित, किताबघर प्रकाशन 2002, पृष्ठ संख्या 164
14. मधु कांकरिया, पत्ताखोर, राजकमल प्रकाशन 2005, पृष्ठ संख्या 61
15. प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन 2016 पृष्ठ संख्या 40

हिन्दी साहित्यिक कृतियों पर केंद्रित फिल्मों में स्त्री-चेतना

कु० सरिता यादव

शोध छात्रा, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय (केन्द्रीय विश्वविद्यालय), लखनऊ

साहित्य और सिनेमा आपस में अन्त:सम्बन्धित विधाएं हैं। जब साहित्य पर आधारित फिल्मों की निर्माण प्रक्रिया आरम्भ हुई तो उनका आधार कथा-साहित्य ही बना। राही मासूम रजा का कहना है कि, "मैं काव्य को साहित्य मानता हूँ और उपन्यास को तथा फिल्म को भी काव्य का ही एक रूप मानता हूँ। जैसे-जैसे जीवन पेचीदा होता गया, वैसे-वैसे काव्य भी बदलता गया। महाकाव्य उपन्यास बन गया और नाटक फिल्म।"[1]

दादासाहेब फालके द्वारा निर्मित प्रथम भारतीय फिल्म 'राजा हरिश्चन्द्र' (1913 ई0) भारतेन्दु के नाटक 'हरिश्चन्द्र' पर आधारित थी। इसके पश्चात् साहित्यिक कृतियों पर आधारित अनेक फिल्में बनीं जिनमें अधिकांश असफल रहीं। हिंदी सिनेमा के आरंभिक दौर में धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और फंतासी फिल्मों की ही प्रधानता रही। ऐसी फिल्मों का मुख्य उद्देश्य होता था आदर्शवादी संदेश को दर्शकों तक पहुँचाना। सिनेमा की व्यापक सामाजिक स्वीकृति के बाद हिंदी सिनेमा अपने कर्तव्यों के प्रति गंभीर हुआ। स्वतंत्रता के उपरांत फिल्में धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक गलियों से होती हुई एक भरी-पूरी बस्ती में जा पहुँची जहाँ विविध सामाजिक समस्याओं और प्रेम-कथाओं का जमघट था, फिल्में नये-नये विषयों पर बनने लगीं।

सातवें दशक में जहाँ एक और हिंदी कथा-साहित्य में बदलाव आया, वहीं हिंदी भाषी फिल्मकारों की संख्या भी बढ़ी। सत्तर के दशक में जब भारतीय सिनेमा अपने सर्वाधिक प्रयोगशील दौर में था, साहित्यिक कृतियों पर खूब फिल्में बनीं और सफल भी रहीं। गुलजार ने कमलेश्वर की कृतियों पर 'आंधी' और 'मौसम' बनाई तो दोनों फिल्में मील का पत्थर साबित हुईं। निर्देशक बासु चटर्जी ने मन्नू भंडारी की चर्चित कहानी 'यही सच है' को 'रजनीगंधा' (1974 ई0) नाम से सिनेमा के पर्दे प्रस्तुत किया। 'रजनी गंधा' को सर्वश्रेष्ठ पटकथा का फिल्मफेयर अवॉर्ड मिला और इसके बारे में यह स्वीकार किया जाता है कि इसने साहित्यक कृति के साथ न्याय किया है।

प्रेमचंद के महाकाव्यात्मक उपन्यास 'गोदान' पर सन् 1963 ई0 में त्रिलोक जेटली ने इसी नाम से फिल्म बनायी। गोदान की प्रमुख स्त्री- पात्र है- धनिया। कामिनी कौशल ने इस फिल्म में धनिया का किरदार निभाया है। धनिया स्पष्ट, स्वाभिमानी, साहसी और शोषण के खिलाफ आवाज बुलंद करने वाली स्त्री है। वह पूरी तरह निडर होकर गलत को गलत और सही को सही कहने का साहस रखती है। एक पल वह ममतामयी माँ बन जाती है। तो दूसरे ही क्षण अन्याय का प्रतिरोध करते हुए रणचण्डी के रूप में अवतरित होती है। गोबर द्वारा झुनिया को छोड़कर शहर चले जाने पर पहले तो वह झुनिया को खूब खरी-खोटी सुनाती है तो वहीं दूसरे ही पल होरी की झुनिया के प्रति नाराजगी देखकर वह झुनिया के लिए सहृदय माँ बन जाती है। इतना ही नहीं जब झुनिया को घर में रखने के खिलाफ पंचायत उसके परिवार पर हर्जाना लगाती है तो वह उनके फैसलों का विरोध भी करती है। वह गोदान की सर्वाधिक मुखर चरित्र है अपनी सम्पूर्णता में वह होरी का प्रतिपक्ष प्रस्तुत करती हुई एक विद्रोहिणी स्त्री है। होरी के इस कथन पर "जब दूसरों के पाँव तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है।"[2] इसके विपरीत धनिया का मानना था कि "हमने जमींदार के खेत जोते हैं, तो वह अपना लगान ही तो लेगा, उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलवे क्यों सहलाएँ।"[3]

गोदान की अन्य महत्वपूणी स्त्री पात्र हैं-झुनिया और मालती। झुनिया न सिर्फ गोबर से प्रेम करती है बल्कि उस प्रेम-संबंध को निभाने की खातिर समाज से लड़ती भी है। वह अकेले ही समाज के विरोध और तिरस्कार का सामना करती है। स्त्रियों से ही समर्पण की अपेक्षा रखने वाले पुरूषात्मक समाज के समक्ष वह पुरूषों से भी समर्पण की माँग करती है। प्रेम में बराबरी की बात करते हुए वह गोबर से कहती है-"सर्बस तो तभी पाओगे, जब अपना सर्बस दोगे।"[4] जिस सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों से ही सत्ती-सावित्री होने की उम्मीद की जाती है, इसके लिए उन्हें उपदेश दिया जाता है, झुनिया उस सामाजिक व्यवस्था को चुनौति देती हुई कहती है कि, "जब मर्द इधर-उधर ताक-झाँक करेगा तो औरत भी आँख लड़ाएगी। मर्द दूसरी औरतों के पीछे दौड़ेगा तो औरत भी जरूर मर्दों के पीछे दौड़ेगी।"[5]

गोदान की स्त्री-चेतना पर ध्यान केन्द्रित करते हुए यह तथ्य भी उजागर होता है कि दलित व किसान पृष्ठभूमि की स्त्रियाँ अपने अधिकारों व वैयक्तिक स्वतंत्रता के प्रति अधिक सजग व मुखर हैं। उच्च मध्यवर्गीय गोविंदी से निम्न मध्यवर्गीय झुनिया अधिक सचेत, जागरूक और साहसी है। वह उन मर्दों की नस-नस पहचानती है जो उसकी गुलामी करने के लिए तैयार हैं। वह लम्पट पुरूषों के झांसे में नहीं आती। वह तो एक ऐसे भले आदमी का साथ चाहती है जो उसे अपना समझे और जिस पर वह भी अपना अधिकार जता सके। ऐसा साथी उसे गोबर के रूप में मिलता है, जिसकी वह पत्नी तथा उसके बच्चे

की माँ है लेकिन उस पारिवारिक व्यवस्था में वह गोविंदी की भाँति अपने अस्तित्व और अस्मिता को विसर्जित नहीं कर देती। वह गोविंदी की भाँति नहीं है जो उपेक्षा और अनादर सहकर कर भी अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होती, त्याग और सेवा ही जिसके लिए सबसे बड़ा अधिकार है तथा जो इस योग्यता को धारण करे कि उसकी प्रतिमा बनाकर पूजा की जाए। पति अक्सर क्रोध में उसे अपशब्द कह देता है, दीवानखाने में मुजरा सुनता है, क्लब में शराब पीता है, उसे पीटता है लेकिन फिर भी वह गोविंदी के लिए सर्वस्व है। गोविंदी की भाँति पति झुनिया के लिए देवता नहीं है भले ही वह चरित्र से कितना ही क्यों न गिर जाए। वह सोना से स्पष्ट शब्दों में कहती है- "हाँ, जब जान जाऊँगी कि तुम्हारे भैया ने वहाँ किसी को रख लिया है, तब की नहीं चलाती। तब मेरे ऊपर किसी का कोई बंधन न रहेगा।"[6] गोविंदी उपेक्षित और अपमानित होकर भी खन्ना की लौंडी थी। उनसे लड़-झगड़कर, जलकर रोकर भी वह उन्हीं की हो जाती। उनसे अलग जीवन की वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी।

शिवमूर्ति की प्रसिद्ध कहानी 'तिरिया चस्तिर' पर बासु चटर्जी ने 'तिरिया चस्तिर' (1994 ई0) नाम से ही फिल्म बनाई। यह फिल्म तिरिया चस्तिर के बहाने पुरूष चस्तिर व पुरूष प्रपंच को बेनकाब करती है। कहानी की नायिका जवान 'विमली' काम-पिपासु पुरूषों की हरकतों से अनजान नहीं है। वह अच्छी तरह उनकी कुवासनाओं को समझते हुए अपनी अस्मिता की रक्षा तीखे प्रतिरोध के स्वर में करती रहती है। विमली गरीबी और अभावों के बीच जीते हुए भी नारी अस्मिता के प्रति सजग है। अपने ससुर द्वारा किए गए बलात्कार को गाँव की अन्य स्त्रियों की भाँति वह अपनी नियति मानकर स्वीकार नहीं करती बल्कि उसके खिलाफ आवाज उठाती है और भरी पंचायत में विद्रोह करती हुई पंचो का फैसला मानने से इनकार कर देती है- "नहीं मुझे ये पंच का फैसला मंजूर नहीं। ये पंच अंधा है, बहरा है, इसमें कोनो भगवान का सत्त नहीं। ऐसे पंच के फैसले पर मैं थूकती हूँ, थू ! थू !"[7] मर्दवादी समाज द्वारा निर्दोष विमली को बदचलन घोषित करते हुए उसे दगनी से दागने की सजा दी जाती है किंतु इस क्रूर निर्णय की शिकार विमली के विद्रोह का स्वर धीमा नहीं पड़ता और वह निरन्तर संघर्ष करती हुई संघर्षशील स्त्री की प्रतीक बन जाती है। बासु चटर्जी ने 1974 ई0 में मन्नू भंडारी की कहानी 'यही सच है' पर 'रजनीगंधा' नाम से फिल्म बनायी। इस फिल्म ने स्त्री को पौराणिक चरित्र एंव पूर्व निर्धारित ढांचे से बाहर निकालकर बिल्कुल नए रूप में प्रस्तुत किया। 'दीपा' एक पढ़ी-लिखी आधुनिक युवती है जो अपने जीवनसाथी के चयन के फैसले खुद लेती है।

सन् 1975 ई0 में गुलजार ने कमलेश्वर के उपन्यास 'काली आँधी' पर फिल्म बनायी। जिसकी प्रमुख पात्र आरती एक शिक्षित, स्वाभिमानी और राजनैतिक दृष्टि से सम्पन्न युवती है। स्त्री-चेतना के लिहाज से यह फिल्म स्त्री द्वारा पारिवारिक ढाँचे को तोड़ उसके बाहर अपने अस्तित्व की तलाश का एक संवेदनशील दस्तावेज कही जा सकती है।

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम' पर 'तीसरी कसम' (1966 ई0) नामक फिल्म बनी। फिल्म के निर्माता थे शैलेन्द्र और निर्देशक बासु भट्टाचार्य। यह फिल्म पर्दे पर लिखी गई एक भावना-प्रधान कविता सी प्रतीत होती है। इस फिल्म में दो मुख्य चरित्र हैं- हीरामन (राजकपूर) और हीराबाई (वहीदा रहमान)। हीरामन एक भोला-भाला निम्नवर्गीय युवक है जो बैलगाड़ी हॉकता है। हीराबाई से उसे सच्चा प्रेम है। हीराबाई नौटंकी कंपनी में नाचने वाली औरत है और नाचने वाली औरत तो पूरे पुरूष समाज की जागीर होती है। ये और बात है कि उस भरे पूरे समाज में वास्तव में उसका कोई अपना नहीं होता है। हीराबाई से हीरामन पूछता है-"आपके घर में कौन-कौन है?"[8] हीराबाई कहती है- "सारी दुनिया, ये और बात है जिसकी सारी दुनिया होती है उसका कोई और नहीं होता"[9] नौटंकी में काम करने वाली हीराबाई जिसे आम जनता 'वेश्या' कहती है और जमींदार जैसे संभ्रान्त लोग बलपूर्वक अपनी हवस का शिकार बनाना चाहते हैं उसकी महफिल में आने वाले ये लोग कुछ क्षण के लिए अपनी आँखे सेंकने आते हैं, दिल बहलाने आते हैं न कि उसे दिल में बसाने। हीराबाई कहती है-

"कहीं भी कोई भी अपना नहीं जमाने में,
न आशियाने के बाहर न आशियाने में।"[10]

हीराबाई दब्बू और कमजौर औरत नहीं है। हीरामन लालमोहर को समझता है- "भाई रे, यह हम लोगों के मुलुक की जनाना नहीं है कि लटपट बोली सुनकर भी चुप रह जाये। एक तो पच्छिम की औरत, तिस पर कंपनी की!"[11] हीराबाई के बिना किसी संकोच के हीरामन से बातें करना, उसे मीता (मित्र) कहकर संबोधित करना, उसके प्रांत के गीत सुनना, उसके साथ बैठकर भोजन करना, उसकी स्वतंत्रता और समानता की आकांक्षा को खुद-ब-खुद व्यक्त कर देता है। बिहार के उस इलाके में जहाँ आम स्त्रियों को स्वतंत्रता और समानता का अधिकार प्राप्त न हो सका था, एक नर्तकी के मन में इस आकांक्षा का प्रस्फुटन स्त्री-दृष्टि से निःसंदेह महत्वपूर्ण है। जमींदार के कहने पर कि "आजकल सुना है तुम्हारे मन की बात सिर्फ बैलगाड़ी के गाड़ीवान ही समझ सकते हैं।"[12] हीराबाई जवाब देती है-"कहाँ जमींदार साहब, आप ही की तरह वो भी मुझे गलत समझते हैं। आपकी निगाह में मैं सिर्फ एक बाजारू औरत हूँ और उनकी निगाहों में देवी। लेकिन जमींदार साहब उनकी गलतफहमी में जो एक नशा है वो ना आपके ऐशबाग में है और ना बिलायती शराब में।"[13]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि ये तत्कालीन पितृसत्तात्मक व्यवस्था में साहस के साथ आवाज उठाती हैं, अपना प्रतिरोध दर्ज कराती हैं किंतु उनकी आवाज दबा दी जाती है और उनका प्रतिरोध अभियान का रूप नहीं ले पाता।

संदर्भ सूची

1. भारद्वाज, सॅ0 डॉ0 शैलजा, साहित्य और सिनेमा बदलते परिदृश्य में संभावनाएँ और चुनौतियां, चिंतन प्रकाशन, कानपुर, संस्करणः 2013, पृ0-47
2. प्रेमचंद, गोदान, शिवा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करणः 2015, पृ0-5

3. वही, पृ0-5
4. फिल्म: गोदान, 1963 ई0
5. प्रेमचंद,गोदान, शिवा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2015,पृ0-47
6. वही, पृ0-175-176
7. फिल्म: तिरिया चरित्तर , 1994 ई0
8. फिल्म: तीसरी कसम, 1966 ई0
9. वही
10. वही
11. यादव, राजेन्द्र एक दुनिया: समानान्तर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, उन्नीसवाँ संस्करण: 2018, पृ0-189
12. फिल्म: तीसरी कसम, 1966 ई0
13. वही

संजीव बख्शी के रचना संसार में आंचलिकता

प्रो० (डॉ०) अनुसुइया अग्रवाल

(डी. लिट्) शोध-निर्देशक, प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (हिन्दी), शा. म. व. स्नातकोत्तर महाविद्यालय- महासमुंद (छ.ग.)

कु० कुसुम

शोधार्थी, शा. म. व. स्नातकोत्तर महाविद्यालय- महासमुंद (छ.ग.)

सारांशः- प्रस्तुत शोध-पत्र में छत्तीसगढ़ के कवि संजीव बख्शी के रचना संसार में आंचलिकता के स्वर का अध्ययन किया गया है। छत्तीसगढ़ का अपना इतिहास और सांस्कृतिक परिदृश्य विशाल रहा है, यहाँ के रचनाकारों ने आंचलिक साहित्य और जीवन को नई पहचान दी है। बख्शी की विशेषता यह है कि उन्हें प्रेम है अपने गांव से, अपने अंचल से, यहाँ के लोगों से, यहाँ के गीतों, तीज-त्यौहारों से, इसी प्रेम का परिणाम है कि वे अपने रचनाकर्म में आंचलिक शब्दों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत कर सके। आंचलिक रचना में व्यक्ति विशेष का महत्व न होकर, एक स्थान विशेष का महत्व होता है। 'भूलनकांदा' उनका प्रसिद्ध उपन्यास है, इस रचना में बस्तर अंचल की कथा है। 'खैरागढ़ नांदगांव' दूसरा उपन्यास हैं, जिसमें खैरागढ़ की कथा का वर्णन है जो किसी विशेष भू-भाग या अंचल की वास्तविकता को प्रस्तुत करता हैं।

मुख्य शब्दः- लोक संस्कृति, आंचलिक, तीज-त्यौहार

प्रस्तावनाः- संजीव बख्शी की रचनाओं में आंचलिकता की झलक दिखाई देती है। उनका रचना संसार अंचल की संस्कृति, प्रथाओं, रहन-सहन, रीति-रिवाज और भौगोलिक सीमाओं से परिचय कराता है। आंचलिकता के संदर्भ में प्रकाश वाजपेयी कहते है- "अंचल के जनजीवन का समग्र चित्रण करने वाली प्रवृत्ति को आंचलिकता कहते है।"[1] आंचलिकता का नाता अंचल विशेष से होता है, जिसका आधार ग्रामीण क्षेत्र है। अंचल शब्द से ही आंचलिकता बना है। आंचलिकता किस रूप में प्रकट होती है इस पर विचार करते हुए कहा गया है ''वेशभूषा, जीवनयापन, आर्थिक व्यवस्था, वर्गगत भेदभाव, विश्वास, संस्कार, खान-पान, रहन-सहन, इन सभी की अभिव्यक्ति आंचलिकता में समाहित होती है।''[2] आंचलिकता के इन सभी यंत्रों में जीवन का चित्रण अंचल की सभ्यता और संस्कृति के साथ किया जाता है।

साहित्य में आंचलिक उपन्यास विधा के अंर्तगत सर्वप्रथम फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आंचल' वर्श 1954 में प्रकाशित हुआ था, इसके कथाकार बिहार राज्य के पूर्णिया जिले से जुड़े हुए थे, यह एक आंचलिक उपन्यास था। वर्ष 1955 में उदयशंकर भट्ट ने 'सागर लहरें और मनुष्य' उपन्यास की रचना की थी, यह मछुआरों की जिंदगी पर आधारित था। वर्ष 1957 में रांगेय राघव का 'कब तक पुकारू' आंचलिक उपन्यास प्रकाशित हुआ था। छत्तीसगढ़ के बस्तर क्षेत्र को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास 'जंगल का फूल' राजेन्द्र अवस्थी का है, यह भी आंचलिक उपन्यास है। यहां के निवासी आदिवासी है। उपन्यास का प्रमुख कथा केन्द्र गढ़बंगाल नामक एक गांव है। शिवप्रसाद सिंह का 'अलग-अलग वैतरणी', रामदशरथ मिश्र का 'जल टूटता हुआ', जगदीशचंद्र गुप्त का 'धरती-धन न अपना' आदि अपना आंचलिक उपन्यास है। आंचलिकता में अंचल की सभी विशेषताएं समाहित होती है।

संजीव बख्शी एक ऐसे ही रचनाकार है, जिनकी रचनाओं में हमें आंचलिकता की झलक दिखाई पड़ती हैं। 'भूलनकांदा' उनका प्रसिद्ध उपन्यास है। छ. ग. के बस्तर क्षेत्र को आधार बनाकर लिखा गया यह एक आंचलिक उपन्यास है। संजीव बख्शी पहले एक कवि है, उपन्यासकार बाद में। 'तार को आ गई हल्की हंसी', 'भित्ती पर बैठे लोग', 'जो तितलियों के पास है', 'मौहा झाड़ को लाइफ ट्री कहते है', 'जयदेव बघेल' उनके प्रमुख कविता संग्रह है। 'भूलनकांदा' जो कि बस्तर पर आधारित एक प्रसिद्ध उपन्यास है जिस पर 'भूलन द मेज' नामक एक फिल्म भी बनी है, जिसे वर्ष 2021 में राष्ट्रीय पुरस्कार मिला है। दूसरा उपन्यास 'खैरागढ़ नांदगांव' का कथा केंद्र खैरागढ़ है। खैरागढ़ का नक्षा खींचते हुए संजीव बख्शी कहते कि ''इतवारी बाजार, गोलबाजार, बलभद्र हॉटल, लक्ष्मण झूला, पुराना बस स्टैंड, विक्टोरिया हाई स्कूल (अब पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी स्कूल), अस्पताल, राजफैमिली जाने का रास्ता, दंतेश्वरी माई का मंदिर, संगीत विश्वविद्यालय, फतह मैदान, सिविल लाइन, कचहरी, तहसील कार्यालय, तुरकारीपारा, बरेठपारा, सोनारपारा, बनियापारा, कुम्हारपारा, किल्लापारा आदि मुहल्लों से मिलकर बना है- खैरागढ़ नांदगांव।''[3] संजीव बख्शी के उपन्यासों का पढ़कर पूर्वांचल के गांवों का सामाजिक यथार्थ, ग्रामीणों की सरलता उनके रचना के माध्यम से अभिव्यक्त होते है। ''यह खैरागढ़ है यह जितना कट चाय और डबल पान के लिए जाना जाता है उतना ही उसे उधारी के लिए जानते है लोग, थोड़ा कान देकर सुनिए तो बताता हूं यहां सिनेमा भी लोग उधारी में देखते है।''[4] संजीव बख्शी के उपन्यासों के सारे पात्र सच्चे है, काल्पनिक नहीं। उनके पात्र सजीव आंचलिक है। हाव-भाव, व्यवहार, सोच, पहनावा-ओढ़ावा, रहन-सहन सभी में आंचलिकता की झलक दिखाई देती है।

''अंकलहा, दुकालू लड़ेगा, खोरहा कचरा,

नाम है या टोटका जो रख दिया काका ने
पड़ोस में नाम पुकारते रहिए जीवन भर
बनती रहेगी एक ध्वनि, किसी निश्चित कंपन आसपास
अच्छा या बुरा कोई नाम नहीं, ध्वनि सबकी अलग-अलग।''[5]

बख्शी की रचनाओं में अलग-अलग विशेषता दिखाई पड़ती है, उनके काव्य संग्रह में युगीन चेतनाओं, अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, जातिवाद, वर्गवाद, स्थानीय राजनीति, वर्ग संघर्श, लोक जीवन के तत्व को प्रमुख रूप से उजागर किया गया है। कविता 'घोटुल' जिसमें बख्शी ने बस्तर अंचल की घोटुल परंपरा का वर्णन किया है।

''गांव भर की मोटियारिने
घोटुल को लीपती है
लीपती है अपने भविश्य, अपने सपने
गाती है रीलो रेला, हुलकी लीपती-लीपते
फिर सजती मोटियारिने
संवारती है घोटुल को
संजते है मंदिर बजते है ढोल
नाच उठते है सब साथ-साथ
कक्साड़ कांकरेंग
पहर बाद रात भर''[6]

बख्शी के उपन्यासों के साथ-साथ कविताओं में भी आंचलिकता के स्वर दिखाई देती है। कविताओं के माध्यम से जीवन के विविध पहलू को समझने में सहायता प्रदान करती है, तथा अपनी संस्कृति से जुड़े रहने की प्रेरणा देती है। गांव के भोले-भाले लोग अपनी संस्कृति को अपनी पहचान मानते है, परंपरा से चली आ रही प्रथाओं को बड़े लगन और जतन से पालन करते है। सभी पर्व और त्यौहारों को पूरे उत्साह से मनाते है।

''घर-घर ठेठरी खुरमी बनाई गई बच्चों ने बैल दौड़ाएं, छोरियों ने घरघुंदिया बनाकर वहां मिट्टी के चुल्हें, चौकी, बेलना, पीढ़ी, जांते बर्तन, कढ़ाई से खाना बनाने का खेल खेला।''[7]

संजीव बख्शी ने बस्तर को कथा का केन्द्र बनाकर कविता की रचना की है, जिसमें आंचलिकता के स्वर दिखाई पड़ती है। मन को मोह लेने वाला महुआ पेड़ जो कि आदिवासी पर ही कविता संग्रह मौहाझाड़ को लाइफ ट्री कहते है, जयदेव बघेल कविता यह चक्कों का रथ की परंपरा का गुणगान किया है यह रथ पौराणिक है, इसकी परिक्रमा के नियम निश्चित है, जो आज भी इस अंचल की परंपरा का निर्वाह कर रही है।

''राजा के पूरे वर्श के मुकाबले था, इनका एक दिन
राजा बांटते शराब चावल बकरा
न राजा है न राजपाट
रथ के नियम है वही के वही
शराब, चावल, बकरा
वह पूरा गांव नटखट।''[8]

बख्शी के साहित्य में समाज का गहरा यथार्थ है, उस समाज की संस्कृति लोक-परंपरा, गीत-संगीत, मान्यताएं, विश्वास रहन-सहन आदि की अभिव्यक्ति उनके साहित्य में देखने को मिलती है, इनकी कविताओं से जुड़ना अतीत वर्तमान के अनुभव व स्मृतियों से जुड़ना है। ग्रामीण संस्कृति, सभ्यता व लोक जीवन की झांकी उनकी कविताओं में दिखाई पड़ती है।

निष्कर्षः- बहुमुखी प्रतिभा के धनी संजीव बख्शी का साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है। मानवीय संवेदना एवं सामाजिक समस्याओं पीड़ाओं, लोक-संस्कृति, सभ्यता संस्कार, आंचलिकता आदि उनके लेखन के प्रमुख विषय रहे है। एक साहित्यकार के रूप में अपनी रचनाओं में आदर्श की अपेक्षा यथार्थ की अभिव्यक्ति दी है। आंचलिकता आंचलिक जानकारी से जुड़ा है। कोई भी रचना आंचलिक रचना लिखते समय एक विशिष्ट क्षेत्र या स्थान को अपनी कथा वस्तु के लिए चुनता है। वह अपनी भौगोलिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विशेषताओं का गठन करता है। समाज में फैले जात-पांत, छुआछूत प्रचलित रूढ़ियों का विरोध करते हुए समाज के निम्न वर्ग के प्रति न्यायपूर्ण व्यवहार दिलाने का पुरजोर प्रयास किए है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

1. नवले, संजय. हिंदी साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि. कानपुर: अमन प्रकाशन, प्रथम संस्करण, वर्ष 2017, पृ. 90.
2. मिश्र, राजेन्द्र. साहित्य की वैचारिक भूमिका. दिल्ली: तक्षशिला प्रकाशन, प्रथम संस्करण, वर्ष 2007, पृ. 252.
3. शुक्ल, स्मृति. परख-परिवर्तनकारी चेतना का उपन्यास: खैरागढ़-नांदगांव, लमही अप्रैल-सितंबर 2020, पृ. 23.
4. बख्शी, संजीव. सफेद से कुछ दूरी पर पीला रहता है. दिल्ली: मेघा बुक्स. प्रथम संस्करण, 2008. पृ. 97.
5. बख्शी, संजीव. जो तितलियों के पास है. दिल्ली: मेघा बुक्स. प्रथम संस्करण, 2009. पृ. 54.
6. बख्शी, संजीव. भित्ती पर बैठे लोग. रायपुर: शताब्दी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1999. पृ. 22.
7. बख्शी, संजीव. भूलनकांदा. गाजियाबाद: अंतिका प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2012. पृ. 16.
8. बख्शी, संजीव. मौहा झाड़ को लाइफ ट्री कहते है, जयदेव बघेल: वैभव प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2010. पृ. 78.

प्राथमिक स्तर के अध्यापकों के नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति पर उनकी लैंगिक एवं आवासीय स्थिति के प्रभाव का अध्ययन

अनिल कुमार यादव

शोध छात्र, हण्डिया पी0जी0 कालेज, हण्डिया प्रयागराज

वर्तमान भारत में प्रचलित शिक्षा प्रणाली में मुख्यत: शिक्षा के तीन स्तर निर्धारित किए गए हैं। प्राथमिक शिक्षा स्तर, माध्यमिक शिक्षा स्तर एवं उच्च शिक्षा स्तर। शिक्षा के इन तीनों स्तरों में प्राथमिक शिक्षा आगे के स्तरों के शिक्षा के लिए आधार प्रदान करती है। इस स्तर पर औपचारिक शिक्षा के आधारभूत विषयों-पढ़ना-लिखना, अभिव्यक्ति क्षमता व गणित ज्ञान का विकास किया जाता है। वस्तुत: प्राथमिक स्तर की शिक्षा में बालक को माध्यमिक स्तर की शिक्षा के लिए तैयार किया जाता है। प्राथमिक स्तर की शिक्षा में बालक की अभिव्यक्ति क्षमता, सोचने विचारने की क्षमता, गणितीय कौशलों, भाषा ज्ञान, का विकास किया जाता है। वस्तुत: प्राथमिक शिक्षा ही किसी व्यक्ति के जीवन की वह नींव होती है, जिस पर उसके सम्पूर्ण जीवन का भविष्य निश्चित होता है। किन्तु विडम्बना यह है कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009, 1 अप्रैल, 2010 से प्रभावी तौर पर लागू है और इस अधिनियम को लागू हुए ग्यारह साल हो गए, लेकिन प्राथमिक शिक्षा को लेकर जो हमारा सपना था वो कहीं भी साकार रूप लेता नहीं दिख रहा है। प्राथमिक शिक्षा के स्तर में दिन प्रतिदिन गिरावट आ रही है। प्राथमिक शिक्षा के गुणवत्ता सुधार हेतु सरकार द्वारा नित नए प्रयास किए जा रहे हैं इसी क्रम में प्राथमिक शिक्षा को रूचिपूर्ण और अभिप्रेरणायुक्त बनाने हेतु नवाचारों के प्रयोग पर भी बल दिया जा रहा है तथा सरकार एवं प्राथमिक शिक्षा विभाग द्वारा इसके लिए अथक प्रयास भी किए जा रहे हैं। वस्तुत: व्यक्ति के जीवन में और शिक्षा प्रक्रिया प्राथमिक शिक्षा के महत्व को देखते हुए प्राथमिक स्तर की शिक्षा एवं इस स्तर पर कार्यरत अध्यापकों की नवचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति सम्बन्धी अध्ययन किया गया।

नवाचारी शिक्षा:

प्रत्येक वस्तु या क्रिया में परिवर्तन, प्रकृति का नियम है। परिवर्तन से ही विकास के चरण आगे बढ़ते हैं। परिवर्तन एक जीवन्त, गतिशील और आवश्यक क्रिया है, जो समाज को वर्तमान व्यवस्था के अनुकूल बनाती है। परिवर्तन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होते हैं। इन्ही परिवर्तनों से व्यक्ति और समाज को स्फूर्ति, चेतना, ऊर्जा एवं नवीनता की उपलब्धि होती है। समय के साथ हो रहे नित नए विचारों एवं आविश्कारों के कारण समाज एवं व्यक्तियों में भी परिवर्तन हुए हैं तथा इन परिवर्तनों का प्रभाव शिक्षा पर भी पड़ा है। शिक्षा को काल एवं तात्कालिक परिस्थितियों के अनुकूल बनाने हेतु शिक्षण प्रक्रिया एवं शैक्षिक क्रियाकलापों में भी नूतन प्रवृत्तियों ने अपनी उपयोगिता स्वयं सिद्ध कर दी है।

नवाचार नवीन आवश्यकताओं को पूर्ण करने हेतु नया विचार, उपकरण या प्रक्रिया है। नवाचार को समस्याओं के बेहतर समाधान करने के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले नवीन उपकरण, तरीके या विधियाँ हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ''नवाचार का आशय मात्र कोई नवीन कार्य करना ही नहीं अपितु किसी भी कार्य को नवीन तरीकों या विधियों से करना नवाचार कहलाता है।''

ट्रायटेन के अनुसार- "शैक्षिक नवाचारों का उद्भव स्वत: नहीं होता वरन् इन्हें खोजना पड़ता है तथा सुनियोजित ढंग से इन्हें प्रयोग में लाना होता है, ताकि शैक्षिक कार्यक्रमों को परिवर्तित परिवेश में गति मिल सके और परिवर्तन के साथ गहरा तारतम्य बनाये रख सकें।"

प्रो0 उदय पारिख और श्री टी0पी0 राव नवाचार को बड़ी सरलता से परिभाषित करते हैं- "किसी उपयोगी कार्य के लिए किसी व्यक्ति या निकाय के द्वारा किया गया विचार अथवा अभ्यास नवाचार कहलाता है।"

इस प्रकार "नवाचार एक विचार है, एक व्यवहार है अथवा वस्तु है, जो नवीन और वर्तमान का गुणात्मक स्वरूप है।"

अभिवृत्ति:

अभिवृत्ति से तात्पर्य व्यक्ति के उस दृष्टिकोण से है, जिसके कारण वह किन्हीं वस्तुओं, संस्थानों, परिस्थितियों आदि के प्रति किसी विशेष प्रकार का व्यवहार करता है। दूसरे शब्दों में अभिवृत्ति व्यक्ति के व्यक्तित्व की वे प्रवृत्तियाँ हैं, जो उसे किसी वस्तु व्यक्ति आदि के सम्बन्ध में किसी विशिष्ट प्रकार के व्यवहार को प्रदर्शित करने का निर्णय लेने के लिए प्रेरित करती है।

थर्सटन एवं चेव के अनुसार:-"किसी विशिष्ट प्रकरण के प्रति व्यक्ति की प्रवृत्तियों व भावनाओं पूर्वाग्रहों अथवा पक्षपातों, पूर्वनिर्मित अभिप्रायों, विचारों, भय, दबावों तथा मान्यताओं का कुल योग है।''

रैमर्स, गेज तथा रूमेल के शब्दों में: "अभिवृत्ति किसी मनोवैज्ञानिक वस्तु के प्रति, अनुभव के द्वारा संगठित, धनात्मक या ऋणात्मक प्रतिक्रिया करने की संवेगात्मक प्रवृत्ति है।''

इस प्रकार अभिवृत्ति व्यक्ति के मनोभावों अथवा विश्वासों को इंगित करती हैं। ये बताती हैं कि व्यक्ति क्या महसूस करता है? अथवा उसके पूर्व विश्वास क्या हैं? अभिवृत्तियों का निर्माण व्यक्ति के द्वारा विगत में विभिन्न परिस्थितियों में अर्जित अनुभवों को सामान्यीकृत करने के फलस्वरूप होता है। अभिवृत्ति के निर्माण में व्यक्ति के व्यवहार के प्रत्यक्षात्मक, संवेगात्मक प्रेरणात्मक तथा क्रियात्मक पक्ष निहित रहते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में प्राथमिक स्तर के अध्यापकों के नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन किया गया।

अध्ययन विधि:

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्ता का उद्देश्य प्राथमिक स्तर के अध्यापकों के नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना है। अत: समस्या की प्रकृति के आधार पर सर्वेक्षण विधि का प्रयोग करना उचित पाया। क्योंकि सर्वेक्षण विधि वर्तमान प्रयासों से सम्बन्धित है जो अनुसंधान के अन्तर्गत घटना तथ्य की स्थिति को निर्धारित करती है।

न्यादर्श:

यद्यपि उत्तर प्रदेश के सभी प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापन कार्य कर रहे समस्त अध्यापक प्रस्तुत अध्ययन की जनसंख्या हैं परन्तु समय एवं साधनों की परिसीमाओं का ध्यान रखते हुए उत्तर प्रदेश के जौनपुर जनपद में बेसिक शिक्षा परिषद उत्तर प्रदेश द्वारा संचालित प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों के 800 शिक्षकों को न्यादर्श के रूप में चयनित किया कया जिसमें 400 अध्यापक एवं 400 अध्यापिकाएं सम्मिलित थी।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण:

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति मापनी का निर्माण किया गया जिसकी सहायता से प्रदततों का संकलन किया गया।

परिकल्पनाएं:

1. लिंग भेद के आधार पर प्राथमिक शिक्षा स्तर में सेवारत अध्यापकों की नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्तियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
2. आवासगत भेद के आधार पर प्राथमिक शिक्षा स्तर में सेवारत अध्यापकों की नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्तियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या:

सारिणी संख्या - 1: नवाचारी शिक्षा के प्रति प्राप्त अभिवृत्ति प्राप्तांकों के आधार पर अध्यापकों का प्रतिशत

अभिवृत्ति स्तर	*अध्यापकों का प्रतिशत*
उच्च सकारात्मक अभिवृत्ति	64
सामान्य या औसत सकारात्मक अभिवृत्ति	28
निम्न सकारात्मक अभिवृत्ति	8

सारिणी संख्या - 2: प्राथमिक शिक्षा स्तर में सेवारत पुरुष एवं महिला अध्यापकों की नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमान मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात मान की सारिणी

समूह	*संख्या*	*मध्यमान*	*मानक विचलन*	*क्रान्तिक अनुपात*	*(cr) मान की सार्थकता*
					0.05 स्तर
पुरुष अध्यापक	400	80.51	12.76	0.69	सार्थक नहीं
महिला अध्यापक	400	79.88	12.99		

उपरोक्त सारिणी से स्पष्ट है कि प्राथमिक शिक्षा स्तर में सेवारत पुरुष अध्यापकों की नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान, प्राथमिक शिक्षा स्तर में सेवारत महिला अध्यापकों की नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमान से अधिक है। किन्तु इन दोनों मध्यमानों के क्रान्तिक अनुपात का मान सार्थकता के स्तर 0.05 पर सार्थक नहीं है। स्पष्ट है कि प्राथमिक शिक्षा स्तर में सेवारत पुरुष अध्यापकों एवं महिला अध्यापकों के नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति प्राप्तांकों के मध्यमानों मे साथर्क अन्तर नहीं है।

अत: यहाँ पर परिकल्पना संख्या 1, ''लिंग भेद के आधार पर प्राथमिक शिक्षा स्तर में सेवारत अध्यापकों की नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्तियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।'', स्वीकृत की जाती है।

सारिणी संख्या-3

प्राथमिक शिक्षा स्तर में सेवारत ग्रामीण एवं शहरी अध्यापकों की नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमान मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात मान की सारिणी

समूह	*संख्या*	*मध्यमान*	*मानक विचलन*	*क्रान्तिक अनुपात (cr) मान*	*(cr) मान की सार्थकता*
					0.05 स्तर
ग्रामीण अध्यापक	400	79.56	12.86	1.40	सार्थक नहीं
शहरी अध्यापक	400	80.84	12.87		

उपरोक्त सारिणी से स्पष्ट है कि प्राथमिक शिक्षा स्तर में सेवारत ग्रामीण अध्यापकों की नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान, प्राथमिक शिक्षा स्तर में सेवारत शहरी अध्यापकों की नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमान से कम है। किन्तु इन दोनों मध्यमानों के क्रान्तिक अनुपात का मान सार्थकता के स्तर 0.05 पर सार्थक नहीं है। स्पष्ट है कि प्राथमिक शिक्षा स्तर में सेवारत ग्रामीण एवं शहरी अध्यापकों के नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति प्राप्तांकों के मध्यमानों मे साथर्क अन्तर नहीं है।

अत: यहाँ पर परिकल्पना संख्या 2, ''आवासगत भेद के आधार पर प्राथमिक शिक्षा स्तर में सेवारत अध्यापकों की नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्तियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।'', स्वीकृत की जाती है।

परिणाम:

1. प्राथमिक शिक्षा स्तर में सेवारत अध्यापकों एवं अध्यापपिकओं की नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई साथर्क अन्तर नहीं है अर्थात प्राथमिक स्तर के अध्यापकों एवं अध्यापपिकओं की नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में समानता है।
2. प्राथमिक शिक्षा स्तर में सेवारत ग्रामीण एवं शहरी अध्यापकों की नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई साथर्क अन्तर नहीं है अर्थात प्राथमिक स्तर के ग्रामीण अध्यापकों एवं शहरी अध्यापकों की नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में समानता है।

निष्कर्ष:

1. प्राथमिक शिक्षा स्तर में सेवारत अध्यापकों एवं अध्यापपिकओं की नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई साथर्क अन्तर नहीं है अत: कहा जा सकता है कि प्राथमिक शिक्षा स्तर में सेवारत अध्यापकों की नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति पर उनकी लैंगिक स्थिति का कोई प्रभाव नहीं होता है।
2. प्राथमिक शिक्षा स्तर में सेवारत ग्रामीण एवं शहरी अध्यापकों की नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई साथर्क अन्तर नहीं है अत: कहा जा सकता है कि प्राथमिक शिक्षा स्तर में सेवारत अध्यापकों की नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति पर उनकी आवासीय स्थिति का कोई प्रभाव नहीं होता है।

शैक्षिक निहितार्थ एवं सुझाव:

प्राथमिक स्तर की शिक्षा व्यक्ति के जीवन में नींव कीं इंट का कार्य करती है। प्राथमिक स्तर पर बालकों को सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक एवं चारित्रिक विकास किया जाता है और मानव व्यवहार में प्रशिक्षित किया जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में उसकी प्राथमिक शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वर्तमान में सरकार द्वारा अनेक प्रयासों के बावजूद हमारी प्राथमिक शिक्षा में निरन्तर गिरावट देखने में आ रही है। इन्हीं कारणों से प्राथमिक स्तर की पठन-पाठन में नवाचारों के प्रयोग पर बल दिया जा रहा है। यद्यपि अध्यापकों की नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति उनके लैंगिक एवं आवासीय स्थितियों से प्रभावित नहीं होती किंतु प्रस्तुत अध्ययन के दौरान यह दृष्टिगत हुआ कि लगभग 28 प्रतिशत अध्यापकों में नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति औसत सकारात्मक तथा 8 प्रतिशत अध्यापकों में नवाचारी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति अति निम्न स्तर की प्राप्त हुई। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि प्राथमिक शिक्षा विभाग एवं सरकार द्वारा अध्यापकों को ऐसे प्रशिक्षण प्रदान किए जाएं जिससे उनमें नवाचारों के प्रति उचित सकारात्मक अभिवृत्तियों का विकास हो सके तथा वे पूर्ण तन्मयता एवं निष्ठा के साथ अपने अध्यापन एवं शिक्षण के दौरान उनका प्रयोग कर सकें और प्राथमिक स्तर की शिक्षा में गुणोत्तर वृद्धि हो सके।

सन्दर्भ ग्रंथ -

1. कपिल एच. के. (2000). रिसर्च मेथड्स (इन बिहैवियरल साइंस). हर प्रसाद भार्गव, कचेरी घाट आगरा
2. डा.एस.पी.गुप्ता. (2008). आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन. शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. डा.एस.पी.गुप्ता. (2008). एडवान्स एजूकेशनल साइकोलाजी. शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
4. गुड, सी.वी. एण्ड अदर्स (1941)0 मेथड्स इन सोसल रिसर्च. ए सेन्चुरी क्राफट्स, न्यूयार्क.
5. गैरेट एच.ई. (1984). शिक्षा मनोविज्ञान में सांख्यिकीय प्रयोग. कल्यानी, पब्लिशर्स, लुधियाना.

भारत में महिला आरक्षण नीति

डॉ० प्रवीन कंवर भाटी

सार

अनादिकाल से सामाजिक एवं शैक्षणिक स्तर पर महिलाओं और पुरुषों के बीच असमानता विद्यमान रही है। जनसंख्या में महिलाओं की आबादी पुरुषों की आबादी की लगभग 50 प्रतिशत रही है। सन् 1975 में महिलाओं की स्थिति से सम्बन्धित समानता का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया जिसके अन्तर्गत महिला आरक्षण की बात कही गई, किन्तु इस प्रतिवेदन को समर्थन प्राप्त नहीं हो पाया। विक्टर ह्यूगो ने कहा है कि ''मनुष्य में दृष्टि होती है और नारी में दिव्य दृष्टि।''[1]

प्रस्तुत इकाई में आरक्षण के व्यापक ऐतिहासिक एवं समकालीन प्रसंग, दोनों में महिलाओं हेतु आरक्षण पर परिचर्चा करने का प्रयास किया गया है। वर्ष 1994 से प्रभावी संविधान में 73वें व 74वें संशोधनों के माध्यम से संवैधानिक रूप से प्रदेशीय स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए एक-तिहाई आरक्षण वाले समकालीन अनुभव पर सूक्ष्म दृष्टि डालने के लिए ऐसा प्रस्तावित भी हैं। यह इकाई राजनैतिक आरक्षणों को चर्चा के केन्द्र में रखती हैं, क्योंकि नीति-निर्माताओं के बीच और नारी आन्दोलन में नीति और वाद-विवाद के मोर्चा पर यही सर्वोपरि मुद्दा है।

आरक्षण की नीति और सत्ता-विकेन्द्रण के सिद्धान्तों का एक ही तर्कधार हैं। कल्याणकारी राज्य का दृष्टिकोण रखने वाली लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था में, विशेष रूप से भारत जैसे अदृश्य समाज में, दोनों ही अवधारणाएँ सार्थक आज्ञार्य या नियोग रखती हैं। वे एक लक्ष्य जनसमूह के लिए न्याय की पूर्वधारणा रखती हैं। वे यह भी दर्शाती हैं कि न्याय राज्य व्यवस्था प्राधार में इतना प्रबल है कि राज्य इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु एक अतिरिक्त अनुबंध करने को तैयार है। ये जताती है कि राज्य-व्यवस्था निश्चित रूप से लोकतांत्रिक है और राज्य की प्रजा के सभी तबकों के बीच संगतता लाने के लिए दृढप्रतिज्ञ हैं।

एक राजनीतिक आक्षय के रूप में आरक्षण एक सतत् विषमता इस नीति के आलोचक इसके विरोध में विभिन्न मत और विभिन्न कारण प्रस्तुत करते हैं ऐसे विरोधियों के बीच विस्मयकारी समानता भी दिखाई पड़ घ्ती है यथा उनके साथ सत्ता में भागीदारी से झंकार जो निरन्तर हाशिए पर ही रहे हैं। इस प्रकार एक लोकतांत्रिक राज्य द्वारा आरक्षण के साधन का आव्हान किए जाते समय यथापूर्व स्थिति वाली शक्तियों की ओर से दोनों ही चुनौतियों का सामना उसे करना पड़ता है। महिलाओं के लिए आरक्षण की आवश्यका का मूल्यांकन करने का प्रयास करते समय उठने वाला पहला प्रश्न है। इन आरक्षणों का उद्देश्य क्या हासिल करने का है उनका प्रयोजन क्या है और उनका मानदण्ड क्या है?

निर्वाचित स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए आरक्षणों से सम्बन्ध प्रावधानों ने मुद्दे में प्रकट किए कि रूचि में व्यापक रूप से योगदान दिया है, उन्हें आमतौर पर लोकतंत्रीकरण और खासतौर पर लिंग न्याय की दिशा में एक साहसपूर्ण कदम माना गया, उन पर, वस्तुत: दो संवैधानिक संशोधनों के अधिनियम से पहले लम्बी बहसों के दौरान संसद में जोरदार चर्चा हुई थी। हमें इसी कारण वर्ष 1989-92 की संसदीय बहसों से परे अवश्य देखना चाहिए ताकि महिलाओं के चुनावी आरक्षणों पर स्पष्ट चर्चा मिल सकें। महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व का मुद्दा और उसके साधनों का भी, वास्तव में बहुत पुराना हैं। यह सन् 1971 में उठाया जा चुका था जब भारतीय महिला संगठनों ने ब्रिटिश सरकारों को अपने पक्ष में करने का प्रयास शुरू कर दिया था, यह माँग करते हुए कि महिलाओं को ब्रिटिश भारत के संवैधानिक सुधारों द्वारा दिए गए व्यापक मताधिकार आधार में शामिल किया जाए। जहाँ तक कि स्वतंत्र भारत का संबंध है, महिलाओं के लिए आरक्षणों का विकल्प पहली बार काका कालेकर प्रथम वर्ग आयोग के अध्यक्ष द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट में नजर आया, जिन्होंने कहा कि ''भारत में महिलाओं की स्थिति बड़ी अजीब सी हैं। हमें हमेशा महसूस किया हुआ कि वे बहुत अधिक लाचारियों के तरह रह रही हैं। और इसी कारण उन्हें पिछड़ा वर्ग जैसे ही एक वर्ग के रूप में लिया जाए। परन्तु वे किसी पृथक् समुदाय का हिस्सा नहीं हैं, उन्हें पिछड़े वर्गों में सूचीबद्ध किया जाना भी संभव नहीं है।[2]

यही प्रश्न बाद में भारतीय महिला प्रस्थिति पर पर आयोग द्वारा उठाया गया जो कि ''1974 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा उद्घोषित महिला दशक (1975-85) हेतु तैयारी करने के लिए बनाया गया था। अपनी रिपोर्ट/समानता की ओर में इसने महिलाओं के बेहद कम राजनीतिक प्रतिनिधित्व में सुधार लाने के लिए कोटा का सहारा लेने के नफे-नुकसान पर चर्चा की।[3]

अस्सी के दशक में फिर से यह प्रश्न उठता, अब यह स्पष्ट हो गया कि उक्त आयोग द्वारा संसूचित वैकल्पिक उपायों को गंभीरता से नहीं लिया जा रहा हैं। जैसे स्थानीय स्तर पर महिला पंचायतों या परिषदों को बनाया जाना अथवा महिलाओं के लिए आंतरिक कोटा रखने वाले राजनीतिक दलों का अंगीकरण। यह मुद्दा फिर नारी आन्दोलन द्वारा उठाया गया, जिसने पहली बार महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी को अपनी प्राथमिकता में एक रखा।

महिला आरक्षण नारी का मुद्दा नारी आन्दोलन ने अपने हाथ में लिया और अन्तत: 1993 में यह 73वें एवं 74वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम पारित हो जाने के बाद ही वास्तव में महिलाओं के लिए चुनावी आरक्षण पर आम बहस शुरू हुई। 1996 में लोक सभा में एक संविधान संशोधन विधेयक लाने

के बाद यह और तेज हो गई। इस बहस ने महिलाओं के कोटा से जुड़ी सरकारी और नकारी अनेक अपेक्षाओं की श्रृंखला को जन्म दिया। महिलाओं के कोटा और आरक्षण नीति के पक्ष में बहस के दौर में मुख्य रूप से निम्नलिखित तर्क सामने आए:

- लिंग के लिहाज से निर्वाचित विधान सभाओं की न्यूनतम प्रतिनिधिकता की गारण्टी देकर महिला कोटा लिंग विषयक न्याय परकता को बढ़वा देगा।
- विधायी निकायों में महिलाओं की बड़ी विधमानता महिला हितों का बेहद प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करेगी।
- महिला कोटा निर्वाचित विधान सभाओं, और इसके सहारे व्यापक समाज को महिलाऐं विशिष्ट प्रतिभाओं द्वारा गठित संसाधन आधार का लाभपूर्ण ढंग से दोहन करने में सक्षम बनायेगा।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा–''यदि आप मुझे 500 पुरुष दें तो मैं राष्ट्र को एक वर्ष में बदल दूँगा, परंतु यदि मुझे 50 महिलाएं दें तो मैं कुछ ही महीनों में देश को बदल दूँगा।''[4]

महिलाओं के मौलिक अधिकार:

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 'मानवीय अधिकारों का सार्वलौकिक घोषणा पत्र' स्वीकार किए हुए भी 55 वर्ष से अधिक समय व्यतीत हो चुका है लेकिन आज तक भी महिला वर्ग के हित और अधिकार सुरक्षित नहीं हैं।

भारत जैसे देश में तो दहेज की मांग करते हुए महिला वर्ग पर अत्याचार तथा परिवार और समाज में महिला वर्ग के लिए अपमानजनक स्थिति आए दिन का घटनाक्रम बन गया हैं।

महिला वर्ग की इस गिरी हुई स्थिति के मूल कारण तो दो हैं -

(1) महिलाओं में शिक्षा का अभाव।

(2) महिलाओं की आर्थिक निर्भरता।

जनगणना के ताजा आंकड़ों के अनुसार टिकारी प्रखंड क्षेत्र की आबादी में 25.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। अर्थात गत 10 वर्षों में 48 हजार 883 लोगों की संख्या बढ़ी है। वहीं पुरुष की अपेक्षा महिलाओं के साक्षरता दर में वृद्धि हुई है। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार पुरुषों का साक्षरता दर 63 प्रतिशत एवं महिलाओं साक्षरता दर 36 प्रतिशत था। जबकि जनगणना 2011 में पुरुषों की साक्षरता दर में मामूली वृद्धि हुई और 67.8 प्रतिशत पर सिमट गयी। वहीं महिलाओं की साक्षरता दर 47.8 प्रतिशत जा पहुंची।

भारतीय संविधान एवं महिलाएं

हमारे देश के सभी कानून हमारे संविधान द्वारा अधिकृत होते हैं।

1. संविधान महिलाओं और पुरूषों में लैंगिक भेदभाव मिटाने की मंशा रखता हैं।
2. संविधान इस बात को तूल देता है कि महिलाओं को पारंपरिक रूप से प्रताडिघ्त किया गया हैं तथा हीन समझा गया है। इस अन्याय को समाप्त करने के लिए संविधान सरकार को महिलाओं के हित में विशेष प्रावधान बनाने की अनुमति देता हैं।
3. संविधान निहित रूप से यह उम्मीद रखता है कि सरकार सभी कमजोर वर्गों, जिसमें महिलाएं सम्मिलित हैं, कि स्थिति सुधारने के लिए विशेष प्रयत्न करेगी।

मूल संवैधानिक अधिकारों में समानता के अधिकार का महिलाओं के लिए विशेष महत्व हैं।

1. सार्वजनिक नौकरियों में समान अधिकार है।
2. समान वेतन का अधिकार है।

भारतीय संविधान द्वारा सामाजिक न्याय दो प्रकार से लागू किया गया है।

1. नैतिक अधिकार वे अधिकार होते हैं जिनका संबंध मानव के नैतिक आचरण से होता है।
2. कानूनी अधिकार-

(1) दहेज निषेध अधिनियम:

दहेज निषेध अधिनियम 1961 को दंड के मामले में अधिक सशक्त करने के उद्देश्य से सन् 1986 में पुन: संशोधित किया गया तथा अधिनियम में दहेज लेने तथा देने के लिए उकसाने के लिए न्यूनतम दंड 5 वर्ष की कैद तथा 15,000 रूपये जुर्माना का प्रावधान कर दिया गया।

(2) अनैतिक व्यापार अधिनियम

अनैतिक व्यापार अधिनियम 1986 महिलाओं व लड़कियों में वेश्यावृत्ति के उद्देश्य अनैतिक व्यापार को प्रतिबंधित करता है।

महिला आरक्षण विधेयक:

हाल ही में एक राजनीतिक दल ने दीर्घ अवधि से लंबित महिला आरक्षण विधेयक को मानसून सत्र से पहले संसद में लाने की मांग की हैं।

इस विधेयक को मई 2008 में राज्यसभा में पेश किया गया था और स्थायी समिति के पास भेजा गया था। इसे वर्ष 2010 में उच्च सदन में पारित किया गया तथा अंत में लोकसभा को प्रेषित किया गया। यह बिल 15वीं लोकसभा के साथ लैप्स हो गया।

- इस बिल का मूल विचार एक संवैधानिक संशोधन से उत्पन्न हुआ था जिसे वर्ष 1993 में पारित किया गया था।
- इस संविधान संशोधन द्वारा प्रावधान किया गया कि ग्राम पंचायत के सरपंचों की एक-तिहाई संख्या महिलाओं के लिए आरक्षित होनी चाहिए।
- इस प्रकार के महिला आरक्षण को लोकसभा और राज्य विधानसभाओं तक विस्तारित करने के लिए महिला आरक्षण विधेयक को दीर्घकालिक योजना के रूप में देखा गया था।
- यह विधेयक लोकसभा और सभी राज्य विधान सभाओं में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत सीटें आरक्षित करता है।
- आरक्षित सीटों को राज्य या केन्द्रशासित प्रदेश के विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में चक्रीय आधार पर आवंटित किया जा सकता हैं।
- इस संशोधन अधिनियम के लागू के 15 वर्ष बाद महिलाओं के लिये सीटों का आरक्षण समाप्त हो जाएगा।
- ग्लोबल जेंडर गैप रिपोर्ट 2021 के अनुसार राजनीतिक सशक्तीकरण सूचकांक में भारत के प्रदर्शन में गिरावट आई और साथ ही महिला मंत्रियों की संख्या वर्ष 2019 के 23.1 प्रतिशत से घटकर वर्ष 2021 में 9.1 प्रतिशत तक पहुंच गई हैं।
- सरकार के आर्थिक सर्वेक्षणों में भी यह माना जाता है कि लोकसभा और विधान सभाओं में महिला प्रतिनिधियों की संख्या बहुत कम हैं।
- पंचायती राज संस्थाओं ने महिला प्रतिनिधियों को जमीनी स्तर व्यवस्था में शामिल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। कई राज्यों ने चुनाव में महिला उम्मीदवारों के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण दिया है।

महिलाओं के आरक्षण और समानता का मुद्दा

देश में चुनावों का माहौल है, लेकिन कभी भी राजनीतिक दल ने महिलाओं को समानता का अधिकार तथा 33 फीसदी आरक्षण देने की बात नहीं की है। बेशक यह मुद्दा चुनावी चर्चा से लगभग गायब हे, लेकिन समय-समय पर महिलाओं को समानता और आरक्षण का अधिकार देने का मुद्दा सतह पर आ जाता है। सबरी माला मंदिर में प्रवेश का मामला हो या तीन तलाक पर कानून बनाने का मुद्दा इसमें एक बार फिर महिलाओं की समानता का सवाल उठाया हैं।

भारत में महिलाएँ देश की आबादी का लगभग आधा हिस्सा हैं। यूँ तो यह आधी आबादी कभी शोषण तो कभी अत्याचार के मामलों को लेकर अक्सर चर्चा में रहती हैं, लेकिन जब भी हम महिलाओं की समानता की बात करते हैं तो यह भूल जाते हैं कि किसी भी वर्ग में समानता के लिये सबसे पहले अवसरों की समानता होना बेहद जरूरी है। यह भी किसी से छिपा नहीं है कि देश में आधी आबादी राजनीति में अभी भी हाशिये पर हैं। यह स्थिति तब है जबकि जितनी भी महिलाओं को राजनीति के निचले पायदान ले ऊपरी पायदान तक जितना भी और जब भी मौका मिला, उन्होंने अपनी योग्यता और क्षमता का लोहा मनवाया हैं।

- पहली बार वर्ष 16974 में संसद में महिलाओं के प्रतिनिधित्व का मुद्दा भारत में महिलाओं की स्थिति के आंकलन संबंधी समिति की रिपोर्ट में उठाया गया था। राजनीतिक इकाईयों में महिलाओं की क्रम संख्या का जिक्र करते हुए रिपोर्ट में पंचायतों और स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित करने का सुझाव दिया गया।
- 1993 में संविधान में 73वें और 74वें संशोधन के तहत पंचायतों और नगरपालिकाओं में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत सीटें आरक्षित की गई।
- 1996 में महिला आरक्षण विधेयक को पहली बार एच.डी. देवगौड़ा सरकार ने 81वें संविधान संशोधन विधेयक के रूप में संसद में पेश किया। लेकिन देवगौड़ा सरकार अल्पमत में आ गई और 11वीं लोकसभा को भंग कर दिया गा।
- 1998 में तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने लोकसभा में फिर से विधेयक पेश किया। लेकिन गठबंधन की मजबूरियों और भारी विरोध के बीच यह लैप्स हो गया।
- 1999, 2002 तथा 2003 में इे फिर लाया गया, लेकिन नतीजा वही ठाक के तीन पात।
- 2008 में मनमोहन सिंह सरकार ने लोकसभा और विधान सभाओं में 33 प्रतिशत महिला आरक्षण से जुड़ा 108वाँ संविधान संशोधन विधेयक राज्यसभा में पेश किया ।
- इसके दो साल बाद 2010 में तमाम राजनीतिक अवरोधों को दरकिनार कर राज्यसभा में यह विधेयक पारित करा दिया गया। कांग्रेस को बीजेपी और वामदलों के अलावा कुछ और अन्य दलों का साथ मिला। लेकिन लोकसभा में 262 सीटें होने के बावजूद मनमोहन सिंह सरकार विधेयक को पारित नहीं करा पाई।
- लोकसभा में अब भी महिला आरक्षण विधेयक पर लुका-छिपी का खेल चल रहा है और सभी राजनीतिक दल तथा सरकार इस पर सहमति बनानें में असमर्थ दिखाई दे रहे हैं।

विधेयक की राह में बाधाएँ:

शीरीन एम. राय और कैरोल स्पैरी द्वारा संपादित पुस्तक "Women Members in the Indian Parliament"में महिलाओं के क्रम में प्रतिनिधित्व का कारण विभिन्न दलों में राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी तथा पुरूषवादी मानसिकता को बताया गया हैं।[6]

- इस विधेयक का विरोध करने वालों का कहना है कि दलित और ओ.बी.सी. महिलाओं के लिये अलग से कोटा होना चाहिए। उनके अनुसार सवर्ण, दलित और ओ.बी.सी. महिलाओं की सामाजिक परिस्थितियों में अंतर होता है और इस वर्ग की महिलाओं का शोषण अधिक होता हैं। उनका यह भी कहना है कि महिला विधेयक के रोटेशन के प्रावधानों में विसंगतियाँ हैं जिन्हें दूर करना चाहिये।
- इसी के साथ-साथ एक तर्क यह भी है कि इस विधेयक से केवल शहरी महिलाओं का प्रतिनिधित्व ही संसद में बढ़ पाएगा। इसके बावजूद यह एक दिलचस्प तथ्य है कि किसी भी दल से महिला उम्मीदवारों को चुनाव में उस अनुपात में नहीं उतारा जाता, जिससे उनका प्रतिनिधित्व बेहतर हो सकें।

जर्नल ऑफ इकोनॉमिक बिहेवियर एंड ऑर्गेनाइजेशन में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार जिन सरकारों में महिलाओं की भागीदारी अधिक होती है। वहाँ भ्रष्टाचार कम होता है। भारत में भी ऐसी महिलाओं के कई उदाहरण हैं जिन्होंने अवसर मिलने पर राजनीति में न केवल अपनी पहचान लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी ख्याति अर्जित की।[7]

अमेरिका में राष्ट्रपति पद का चुनाव लड़ चुकी हिलेरी क्लिंलटन का कहना है ''जब तक महिलाओं की आवाज नहीं सुनी जाएगी तब तक सच्चा लोकतंत्र नहीं आ सकता। जब तक महिलाओं को अवसर नहीं दिया जाता, तब तक सच्चा लोकतंत्र नहीं हो सकता।''[8]

- दुनिया में लोकसभा जैसे निचले सदन में महिला प्रतिनिधित्व की बात करें, तो भारत इस मामले में पाकिस्तान से भी पीछे है।
- जिनेवा स्थित इंटर-पार्लियामेंट्री यूनियन की नवीनतम रिपोर्ट के मुताबिक भारत 150वें स्थान पर है जबकि पाकिस्तान को 101वाँ स्थान मिला हैं।
- इस रिपोर्ट में खांडा पहले, क्यूबा दूसरे और बोलपिया तीसरे स्थान पर हैं। इन देशों की संसद में महिला सदस्यों की संख्या 50 प्रतिशत से ज्यादा हैं।
- इसमें 50 देशों की संसद में महिलाओं की संख्या कुल सदस्यों के 30 प्रतिशत से अधिक हैं

ये आंकड़े 1 जनवरी 2019 तक के हैं।

एशिया की स्थिति	*सीट*	*महिला सांसद*	*हिस्सेदारी*
नेपाल	275	90	32.7:
चीन	2975	742	24.9:
बांग्लादेश	350	72	20.6:
पाकिस्तान	341	69	20.2:
भूटान	47	07	14.9:
भारत	543	66	12.1:
म्यांमार	433	49	11.3:
श्रीलंका	225	12	5.3:

1952 में लोकसभा में 22 सीटों पर महिलाएँ चुनकर आई थीं, लेकिन 2014 में हुए चुनाव के बाद लोकसभा में 62 महिलाएँ ही पहुँ सकी यानी 62 वर्ष में 36 प्रतिशत वृद्धि। 1952 में लोकसभा में महिलाओं की संख्या 4.4 प्रतिशत थी जो 2017 की लोकसभा में लगभग 11 प्रतिशत है लेकिन यह अब भी वैश्विक औसत से 20 प्रतिशत कम है। भारत के आम चुनावों में महिला उम्मीदवारों की सफलता का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि यह पिछले तीन आम चुनावों से बेहतर रही हैं। 2014 के आम चुनावों में महिलाओं की सफलता दर 9 प्रतिशत रही जो पुरुषों की 6 प्रतिशत की तुलना में 3 प्रतिशत ज्यादा हैं।

हमारे संविधान की प्रस्तावना में व्यक्त की गई आकांक्षाओं के अलावा अनुच्छेद 14,15 (3), 39 (ए) और 46 में सामाजिक न्याय एवं अवसर की समानता की बात कही गई है ताकि राजनीतिक और सार्वजनिक जीवन में महिलाओं के खिलाफ भेदभाव को खत्म करने के लिए उचित उपाय किये जा सकें।

- आज भी आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों में महिला उम्मीदवारों को टिकट उनके व्यक्तिगत प्रभाव के चलते नहीं, बल्कि उनके पति या अन्य पुरुष संबंधियों के प्रभाव के आधार पर दिया जाता है।
- इस निराशाजनक स्थिति से निपटने के लिए परिवार द्वारा महिलाओं को चुनाव प्रक्रिया में खुद भाग लेने के लिये सशक्त बनाना होगा। पारिवारिक समर्थन होने के कारण उनके प्रतिनिधित्व का दायरा बढ़ेगा।
- सॉफ्ट कोटा सिस्टम इस तर्क पर आधारित है कि लैंगिक समानता धीरे-धीरे समय के साथ नियमों की आवश्यकता के बिना होगी और इसका उपयोग अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया जैसे लोकतंत्रों में किया जाता हैं।
- सीटों के आरक्षण के लिए अफ्रीका, दक्षिण एशिया और अरब क्षेत्र में उपयोग की जाने वाली सबसे व्यापक लैंगिक कोटा प्रणाली हैं।

भारतीय राजनीति में आजादी के इतने वर्षों बाद भी महिलाओं की भागीदारी बहुत कम हैं। वास्तव में भारत की आधी आबादी का एक बहुत बड़ा भाग अभी भी अपने मूलभूत अधिकारों से वंचित है। आज जरूरत इस बात की है इनहें विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जाए। भारत की राजनीति में महिलाओं की भागीदारी कम होने के पीदे प्रमुख कारण अब तक समाज में पितृसत्तात्मक ढाँचे का मौजूद होना है। ऐसे में यह अनिवार्य हो जाता है कि चुनावों के विभिन्न स्तर पर महिलाओं की भागीदारी का विश्लेषण किया जाए ताकि यह पता लगाया जा सके कि स्वतंत्रता के छह दशक बाद भी इतनी असमानता क्यों है?

महिलाओं के प्रतिनिधित्व के मुद्दों पर राजनीतिक वर्ग का भेदभावपूर्ण रवैया चिंताजनक हैं। ऐसे में संसद से ही इसे समाप्त करने की शुरूआत हो तो संभवत: यह देश के लिये बड़ा संदेश होगा और साथ ही महिला सशक्तीकरण की दिशा में एक बड़ी राह खुलेगी।

महिला आरक्षण सिद्धान्तः

सर्वोच्च न्यायालय सौरव यादव बनाम उत्तर प्रदेश 18 दिसम्बर 2020 उर्ध्वाधर आरक्षण जो अनुमेय है और क्षैतिज आरक्षण की अवधारणा के लिए अलग है। क्षैतिज आरक्षण में ऊर्ध्वाधर आरक्षण में कटौती, इसलिए-तदनुसार लागू किया जाने वाला आरक्षण, इस निर्धारित तरीके से क्षैतिज आरक्षण का आवेदन विशेष आरक्षण कोटा की योग्यता को बनाए रखता है।

भारत का सर्वोच्च न्यायालय 47 का हवाला देता है।[8]

राजेश कुमार दरिया बनाम राजस्थान लोक सेवा

18 जुलाई 2007 को बाद के वर्ष और आरक्षण को क्षैतिज आरक्षण के रूप में माना जाता है, अर्थात् महिला उम्मीदवारों का आरक्षण आनुपातिक रूप से समायोजित किया जाएगा। इस प्रकार महिलाओं का चयन कार्यक्षेत्र में योग्यता के आधार पर किया गया।[9]

मो. सिद्दीक अली बनाम उच्च न्यायालय एपीथ्रू-24 अक्टूबर 2008 को न्यायालय इस प्रकार पढ़ घ्ता है: ''यह रिट याचिका संविधान योजना के तहत अनुमत मुंसिफ मजिस्ट्रेट के चयन के मामले में महिला आरक्षण को चुनौती देती है।[10]

शिव प्रसाद बनाम भारत सरकार और अन्य

25 अप्रेल 2008 को संवर्ग, यूपी सरकार की आरक्षण नीति में महिलाओं के लिए 20 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान है, उक्त नीति रही है-विश्वविद्यालय ने सरकार की आरक्षण नीति लागू की थी।[11]

गोवा राज्य बनाम फौजिया इम्तियाज शेख 12 मार्च, 2021 को

आज से, इस प्रकार अन्य बातों के साथ-साथ महिलाओं के लिए कुल संख्या के एक तिहाई से कम आरक्षण को सुनिश्चित करना[12]

भारत संचार निगम लिमिटेड बनाम संदीप चौधरी 28 अप्रैल, 2022

इस हद तक, क्षैतिज आरक्षण लम्बवत आरक्षण से भिन्न होता हैं। इस प्रकार महिलाओं का चयन कार्यक्षेत्र में योग्यता के आधार पर किया गया।[13]

8 अप्रैल, 2009 को एपीपी लोक सेवा आयोग बनाम बालोजी बाधक्व और अन्य नियम 22-ए के माध्यम से महिलाओं का आरक्षण जिसमें कहा गया है: 22-ए। नियुक्ति में महिला आरक्षण: कुछ भी निहित होने के बावजूद महिलाएं पुरूषों की तुलना में बेहतर अनुकूल हैं। महिलाओं को वरीयता दी जाएगी: बशर्ते कि ऐसी पूर्ण वरीयता महिलाओं को।[14]

मैरिपति नागराजा और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश सरकार और-12 अक्टूबर 2007 को महिलाओं को 30 प्रतिशत तक आरक्षण देने की शर्त रखी गई थी, ऐसी कोई शर्त नही-कृषि। इस अपील में उक्त श्रेणी में महिलाओं के आरक्षण का प्रश्न शामिल है।

चुनावी आरक्षणः- एक मूल्यांकन

महिलाओं के लिए आरक्षणों से जुड़ी अपेक्षाओं और चुनावी आरक्षणों पर व्यापक बहस में उनके स्थान की व्याख्या के बाद शहरी स्थानीय निकायों में इन आरक्षणों की ओर रूख करते हैं तो 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा परिभाषित आरक्षण नीति को कोई भी मूल्यांकन कई कठिनाईयों से गुजरता है। स्थानीय स्वशासन की वर्तमान स्थिति पूरे भारतीय संघ में अत्यधिक विषमांगी हैं। कुछ राज्यों ने स्थानीय चुनाव अभी आयोजित ही किए हैं, जबकि अन्य नए विधायी प्रचार के प्रसंग में अपने दूसरे कार्यकाल में बखूबी पहुँच चुके हैं। महिला आरक्षण नीति महज 13 वर्ष पुरानी है। शहरी स्थानीय निकायों में चुनावी आरक्षण के प्रभाव विषयक जानकारी, अपेक्षाकृत सीमित हैं। पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं पर अध्ययनों की भरमार के मुकाबले शहरी स्थानीय निकायों में महिला कोटा लागू किऐ जाने पर पर्याप्त अनुसंधान नहीं हुआ है। सामाजिक परिस्थिति पर विषमांगी सूचना का अभाव और किए गए अध्ययनों में निर्वाचित महिलाओं की आय स्पष्टतया किसी भी मूल्यांकन हेतु एक बड़ी बाधा है।

सन्दर्भ सूची

1. बेतील, आद्रें (1998) 'डिस्ट्रीब्यूटिव जस्टिस एंड इन्स्टीट्यूनल वैल-बीइगं', गुरूप्रीत महाजन (सं.) कृत डिमोक्रेसी, डिफरैन्स एंड सोशलजस्टिस में, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेसः नई दिल्ली।
2. नानीवाडेकर मेघा (1977) इम्पॉवरिंग वीमनः असैसिंग व पॉलिसी ऑफ रिजर्वेशन्स इन लोकन बॉडीजः असैसिंग व पॉलिसी ऑफ रिजर्वेशन्स इन लोकल बॉडीजः ए रिपोर्ट, रामभाऊ माल्गी प्रबोधिनीः मुम्बई
3. बुच, निर्मल (2003) जैनर, डिमोक्रेसी एंड लोकल गवर्नेस ए स्टडी ऑफ द इलेक्टॉरल प्रोसैस इन पंचायत इमर्जिंग लीडरशिप इन मध्यप्रदेश, महिला चेतना मंचः भोपाल।
4. जॉन. एम. (1999) ''डिमोक्रेसी पैट्रीआर्कीज एंड रिजर्वेशन्स फॉर वीमन'' इंडियन जर्नल ऑफ जैग स्टडीज खंड 6, न 1 जनवरी-जून।
5. महिला आरक्षण विधेयक, drishtiias.com https:èkèkindiankanoon.org
6. भारत में महिला आरक्षण नीति, डॉ. चरण सिंह
7. वही, पृष्ठ संख्या 109-112
8. वही, पृष्ठ संख्या 167-172
9. वही, पृष्ठ संख्या 176-177
10. वही, पृष्ठ संख्या 199-200
11. वही, पृष्ठ संख्या 106-107
12. वही, पृष्ठ संख्या 90-91
13. वही, पृष्ठ संख्या 97-99
14. वही, पृष्ठ संख्या 88-89

आमेर के लक्ष्मीनारायण एवं जगतशिरोमणि मंदिर का कलात्मक विश्लेषण (स्थापत्य कला के विशेष सन्दर्भ में)

तोसिफ अली

शोधार्थी, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ० शिवकुमार मिश्रा

शोध निर्देशक, सह आचार्य (इतिहास), राजकीय महाविद्यालय, शाहबाद

लक्ष्मीनारायण (बिहारी जी) मंदिर :

स्थिति व निर्माता : यह मंदिर वर्तमान में बस स्टैंड (आमेर) के पास पन्ना मियां / मीना के कुण्ड के पास स्थित है। इस उत्तर मध्यकालीन स्थापत्य के सुन्दर व कलात्मक नमूने को 16 वी. सदी के आमेर के प्रारम्भिक राजा पृथ्वीराज (1503-1527 ई.) की पत्नी तथा बीकानेर के शासक राव लूणकरण की पुत्री बालाबाई ने बनवाया था।[1] यह सुंदर मंदिर ऊंची जगती पर बना हुआ है, जिसमें सीढ़ियों द्वारा चढ़ने के बाद छोटे द्वार से अन्दर प्रवेश किया जाता है। वैष्णव संप्रदाय का यह मंदिर भगवान विष्णु को समर्पित है।

चित्र : 1 लक्ष्मी नारायणजी का मंदिर (आमेर)

मंदिर का स्थापत्य व कलात्मकता : यह मंदिर लगभग दस फीट ऊंची जगती (चबूतरे) पर बना हुआ है। इसकी जगती के नीचे विभिन्न कक्ष बने हुए हैं। इस मंदिर का निर्माण हरे रंग के बलुआ पत्थर से हुआ है।[2] इस मंदिर को हिंदू मंदिर स्थापत्य शैली के सभी पारंपरिक भाग यथा ख्र गर्भगृह, शिखर, अंतराल मंडप, अर्धमंडप, गुम्बद आदि से सुसज्जित किया गया है, जैसा चित्र संख्या 1 में प्रदर्शित है। कुछ सीढ़ियां चढ़ने के बाद इस मंदिर के स्तंभों पर आधारित अर्धमंडप में पहुंचा जाता है। सभामंडप चारों तरफ से खुला तथा गोल स्तंभों पर आधारित है।

सभामंडप में सोलह स्तंभ है और अर्धमण्डप में दो स्तम्भ मिलते हैं। अर्धमंडप का गोल और अलंकृत वितान है, जिसके मध्य पाषाण का झूमर लगा हुआ है। सभामंडप का भीतरी ऊपरी भाग गोल गुंबज की भांति बना हुआ है जो कि चारों तरफ से फूल पत्तियों से सुसज्जित है, जिसके बीच में पाषाण का झूमर है। सभामंडप और अर्धमंडप के स्तंभों पर विभिन्न वाद्ययंत्रों से युक्त यक्ष-यक्षिणीयों तथा अप्सराओं का अंकन किया गया हैं। सभामंडप का शिखर अष्टकोणीय है तथा अर्धमंडप का शिखर पाषाण कलश से युक्त है। गर्भगृह का पंचशाखा युक्त नन्दिनी नामक द्वार है, जिसमें मूर्तियों का शिल्पांकन किया गया है।[3]

इस मंदिर का गर्भगृह उत्तरमुखी है, जिसके दोनों तरफ आले (ताक) बने हुए है, जिसके पूर्व आले में आभूषण युक्त नंदी पर विराजित शिव-पार्वती सुखासन की मुद्रा में बैठे है। वर्तमान समय में इसमें नंदी के दो पैर खंडित अवस्था में है। इसकी पश्चिमी ताक में अपने वाहन मूषक के साथ गणेश की प्रतिमा विद्यमान

है तथा इस प्रतिमा में गणेश जी पर सिंदूर चढ़ा हुआ है। गर्भगृह के उतरंग देव (सिरदल) में भी गणेश का विग्रह प्रतिष्ठित है।

गर्भगृह के निकट स्तंभों पर मानवाकृति है जिनमें गोद में बच्चा लिये हुए नारी, नीचे हाथ पकड़े खड़ा बच्चा तथा दूसरा अंकन आभूषणों से युक्त नारी को चंवर लिये हुए दिखाया गया है। गर्भगृह की मुख्य प्रतिमाएं काले पत्थर से निर्मित विष्णु लक्ष्मी की है। भगवान विष्णु व लक्ष्मी को आलिंगन मुद्रा में दिखाया गया है। गर्भगृह के बिल्कुल सामने मंदिर के अनुरूप ही चार स्तम्भों पर आधारित एक पीठिका बनी हुई है। इस पीठिका पर गोल गुंबदनुमा कलात्मक छतरी बनी हुई है। वर्तमान में इसकी वेदिका खाली (रिक्त) है।

इस मंदिर में मंडोवर, गर्भगृह के ऊपर बाह्य भाग पर बना हुआ है। मंडोवर की तीनों तरफ रथिकाएं बनी हुई है। गर्भगृह के पूर्व की रथिका में विष्णु व लक्ष्मी का अंकन है तथा गर्भगृह के पीछे वाली रथिका में महिषमर्दिनी उत्कीर्ण है। मंडोवर पर नाचती हुई अप्सराएं तथा अनेक देवताओं का अंकन मिलता है। इसके पश्चात् शिखर प्रारंभ होता है जो ऊपर से संकरा तथा नीचे से चौड़ा है। शिखर के तीनों तरफ सिंह विराजित भद्राएं हैं जिसमें सिंह के पैरों में हाथी जिसकी सूण्ड सिंह की ठोड़ी पर है, का अंकन किया गया है। वर्तमान में इसका मुख्य शिखर कलश रहित है।

आमेर का लक्ष्मी नारायणजी मंदिर विशेष प्रकार के पत्थरों से निर्मित होने के कारण एक अलग पहचान रखता है। इस मंदिर के निर्माण में स्थानीय लोकमान्यता के अनुसार धनाऊ की पहाड़ियों (कानोता) से लाए गए सलेटी रंग के पत्थरों का इस्तेमाल किया गया है।[4] पुरातत्व विभाग का साइन बोर्ड मंदिर की दीवार पर लगा हुआ जिसमें मंदिर के बारे में जरुरी जानकारी लिखी हुई है। लक्ष्मी नारायण मंदिर प्राकृतिक सौंदर्य से पूर्ण पहाड़ी के बीच में स्थित है। आज भी यहां पर सेवारत पुजारी को मात्र रू. 100 से कम ही मानदेय प्राप्त होता है।[5] शोधार्थी द्वारा किए गए प्रत्यक्ष अवलोकन से यह ज्ञात हुआ कि वर्तमान समय में केंद्रीय पुरातत्व विभाग के अधीन यह मंदिर उचित संरक्षण के अभाव में अपने मूल स्वरूप को खोता जा रहा है, जिसके कुछ हिस्से की मरम्मत आवश्यक है।

जगतशिरोमणि मंदिर :

पृष्ठभूमि : यह मंदिर आमेर में सागर रोड़ के पश्चिम में पहाड़ी के तलहटी में स्थित है। जगतशिरोमणि भगवान विष्णु का ही अन्य नाम है। इसका निर्माण आमेर के शासक राजा मानसिंह प्रथम की पत्नी रानी कनकावती ने अपने पुत्र जगतसिंह (1594 ई. में असामयिक मृत्यु) की स्मृति में करवाया था। इस तथ्य की पुष्टि कछवाहा वंशावली में भी होती है जिसमें उल्लेखित है कि रानी कनकावती द्वारा आमेर में जगतशिरोमणि मंदिर का निर्माण अपने पुत्र जगतसिंह की स्मृति को चिरस्थायी करने के लिये करवाया गया था।[6]

निर्माण व कालखण्ड : इस भव्य मंदिर के निर्माण में 9 वर्ष (1599 -1608 ई.) का समय लगा। यहाँ से प्राप्त एक लेख में तिथि 1600 ई.(वि.सं.1657) अंकित है जिसमें इसके निर्माण का समय राजा मानसिंह का काल साबित होता है। डी. आर. भण्डारकर ने उल्लेख किया है कि इस मंदिर के गर्भगृह में भगवान कृष्ण का वहीं विग्रह (मूर्ति) है जिसकी मीराबाई पूजा किया करती थी। राजा मानसिंह द्वारा इसे चितौड़ की विजय के बाद यहाँ लाकर मंदिर में स्थापित किया गया था।

जनसामान्य में इस मंदिर को मीरा मंदिर के नाम से जाना जाता है। इस मंदिर के निर्माण में लगभग 1 करोड़ 80 लाख रुपये धनराशि व्यय की गयी थी।[7] जी.एन.बहुरा ने भी इस मंदिर के पुजारी की बही में से पुजारी बसंतीलाल द्वारा लिखित एक लेख (सं.1911) का उदाहरण दिया है जिसमें ठाकुर जगतशिरोमणि एवं मीराबाई के जीवन का उल्लेख मिलता है।[8]

मंदिर का स्थापत्य एवं शिल्पकला : इसका स्थापत्यगत प्रारूप श्रृंगार युक्त तथा मंदिर अलंकरण से परिपूर्ण है। यह भव्य तथा कलात्मक मंदिर महामेरु शैली / खजुराहों पद्धति से बना हुआ है। इस मंदिर की शिल्पकला जैसलमेर के जैन मंदिर से समानता रखती है। प्रभावशाली तक्षण कला तथा भवन निर्माण कला के दक्ष कारीगरों द्वारा इस भव्य राजप्रासाद का निर्माण किया गया। मंदिर में पौराणिक कथाओं के आधार पर गढ़े गए शिल्प भी दर्शनीय हैं। इसके निर्माण में तीन प्रकार के पत्थरों ख्र श्वेत संगमरमर, स्थानीय दानेदार बलुआ पत्थर तथा लाल पत्थर आदि का इस्तेमाल किया गया है। यह मंदिर लगभग पंद्रह फीट ऊँचे चबूतरे पर बनाया गया है।[9]

चित्र : 2 जगतशिरोमणि मंदिर का तोरण द्वार

तोरण द्वार : जगतशिरोमणि मंदिर में सीढ़ियों की समाप्ति पर एक भव्य, सुन्दर मूर्तियों से युक्त कलात्मक प्रवेश द्वार बना हुआ है, जो दो स्तम्भों पर आधारित श्वेत संगमरमर से निर्मित है जिसे तोरण द्वार भी कहा जाता है। इसके दोनों ओर संगमरमर से बने हुए हाथी अपनी सूण्ड में घंटियाँ धारण किये खड़े है,[10] जैसा कि चित्र संख्या 2 में प्रदर्शित है।

ऐसा तोरण द्वार भारत में बहुत ही दुर्लभ है। इसके स्तम्भों पर तीन जंघायें/मंजिले बनी है। हर जंघा के बाद उलटे कमल की आकृति है। इन पर अनेक सामाजिक जन जीवन के अंकन, खड़े हुए राम-सीता, माँ-बेटे की प्रतिमा, शिव-पार्वती आदि का शिल्पांकन देखने को मिलते है। यह स्तम्भ 5.6 फीट के आकार में चौकोर है तथा दोनों स्तम्भों के मध्य की दूरी 8.3 फीट है जो ऊपर से डाट द्वारा परस्पर जुड़े हुए है। यह डाट तीन भागों (प्रथम -लाल पत्थर के ब्रेकेट, द्वितीय - अर्धकमल तथा तृतीय -उत्कीर्ण आकृतियाँ) आदि में विभाजित है। इन दोनों स्तम्भों के बीच में एक सुन्दर व स्तम्भ-युक्त कलात्मक छतरी बनी हुई है। इस कलात्मक छतरी पर संवरणा युक्त शिखर बना हुआ है। मंदिर के तोरण द्वार के दोनों तरफ स्तम्भों से युक्त खुले दालान मौजूद है ऐसा संभवत: श्रद्धालुओं के आराम के लिये निर्मित किया गया है।[11] यह तोरण द्वार स्थापत्य कला की दृष्टि से कलात्मक तथा वैभवपूर्ण है।

गर्भगृह : इस मंदिर का गर्भगृह आयताकार है जो दानेदार बलुआ पत्थर से बना हुआ है जिसकी चौड़ाई 10 फीट तथा लम्बाई 15 फीट है। यहाँ (गर्भगृह) में श्वेत संगमरमर से निर्मित विष्णु की प्रतिमा है तथा इसके निकट छोटी चतुर्भुज विष्णु की प्रतिमा एवं आगे मीरा व बंशी बजाते कृष्ण की मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित है। इसमें राधा व गिरधर गोपाल के साथ विष्णु की मूर्ति भी विराजमान है राधा व विष्णु की मूर्ति सफेद संगमरमर तथा गिरधर गोपाल की मूर्ति काले जेट पत्थर से निर्मित है इसके साथ ही यहाँ अष्टधातु से निर्मित पीतल की मीराबाई प्रतिमा भी विद्यमान है।[12]

विष्णु की मूर्ति स्थाई व ऊँचे चबूतरे पर स्थित है तथा गिरधर गोपाल - राधा की मूर्तियाँ लकड़ी के तख्त पर स्थित है जिसे एक जगह से दूसरी जगह स्थानांतरित किया जा सकता है। गर्भगृह के किवाड़ काफी पुराने तथा चन्दन की लकड़ी से बने है।[13] इसके द्वार पर पौराणिक देवी-देवताओं के चित्र (कृष्णावतार, रामावतार, वराहावतार आदि) तथा कई मूर्तियाँ उत्कीर्ण है। ये कलात्मक होने के साथ साथ आकर्षक तथा जीवंत प्रतीत होती है।

मुख्य भवन(प्रासाद) : इस मंदिर का मूल प्रासाद त्रिभंगाकार तथा शिखर युक्त विशाल उतुंग है। यह ऊँची पीठिका का बना हुआ है, जिसके दक्षिण में प्रवेश द्वार तथा उत्तर में गरुड़ मण्डप स्थित है। इस मंदिर का समायोजन इकाई प्रणाली के अनुसार किया गया है जिसमे कुल 64 इकाइयाँ है। बी. एल. धामा के अनुसार पाषाण से निर्मित इस मंदिर का निर्माण शिल्पशास्त्र के अनुसार है।[14] इस मंदिर का मुख्य प्रासाद तीन मंजिला है। मुख्य मंदिर के आगे गरुड़ मंदिर स्थित है। गरुड़ मंदिर की छत पंचायतन शैली में निर्मित है जिसके मध्य में अलंकरण से युक्त शिखर तथा चारों कोनों पर छोटे शिखर बने हुए जो पाषाण कलश व आमलक से सुसज्जित है।

सभामण्डप : इन मंदिर में लाल पत्थर से निर्मित लगभग 30 फीट लम्बा एवं 20 फीट चौड़ा सभामण्डप है जो कलात्मक स्तम्भों पर आधारित है। इसकी दूसरी मंजिल पर चारों तरफ विस्तृत गलियारा मौजूद है। सभामण्डप की दीवारें चारों तरफ से सुन्दर झरोखों व सफेद पत्थर से निर्मित जालियों से सुशोभित है। जाली-झरोखों से युक्त इस पर चारों तरफ कलात्मक छतरियां बनी हुई है। सभामण्डप पर स्तम्भों पर आधारित गुम्बद बना हुआ है जो कि आकार में आयताकार है तथा काफी आकर्षक है। स्तम्भों पर विभिन्न अपसराओ तथा देवताओं की आकृतियाँ उत्कीर्ण है। ये स्तम्भ डाटों व टोडियों से गुम्बद से जुड़े हुए है।

सभामण्डप का बाह्य भाग आतंरिक भाग की अपेक्षा अधिक आकर्षक तथा विशाल है। इसमें छत पर फूल पत्तियों के अलंकरण भी बने हुए जिनमे पक्षियों का रंग लाल रंग से चित्रित तथा गुम्बद के ऊपरी भाग पर भित्ति चित्र भी है जो वर्तमान में उचित संरक्षण के अभाव में अच्छी अवस्था में नहीं है[15] हालांकि चित्रों के विषयों को पहचाना जा सकता है जैसे- राम-दरबार, विष्णु, राम-रावण युद्ध आदि। इनकी उचित देखभाल से इस प्राचीन संस्कृति के प्रतीक बचाना चाहिए। सभामण्डप के आगे की ओर अर्धमण्डप बना हुआ यह अर्धमण्डप स्तम्भों से विभाजित है जिसके दोनों तरफ ऊपर जाने की असामान्य रूप से ऊँची सीढ़ियाँ बनी हुई है, यही से सभा मण्डप में प्रवेश होता है।

यह मन्दिर राजपूत स्थापत्य कला का अनूठा नमूना है। यह मंदिर सुन्दर व कलात्मक वास्तुकला तथा तक्षणकला का प्रतिनिधित्व करता है। यह हिन्दू स्थापत्य शैली से निर्मित मंदिर है। इस मंदिर की विशेष बात यह है कि तत्कालीन समय के अन्य मंदिरों की तरह मुगल प्रभुत्व काल में भी इस पर मुगल प्रभाव आंशिक है।

सन्दर्भ सूची :

1. मंदिर की दीवार पर लगे पुरातत्व विभाग के शिलापट्ट के अनुसार
2. वही
3. शोधार्थी द्वारा प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा अशोक सिंह से हुए वार्तालाप से प्राप्त तथ्य के अनुसार
4. डॉ. रेनु मीना, आम्बेर-जयपुर के प्रमुख देवालय, जयपुर, 2013, पृ.75
5. पूर्वोक्त

6. एच. भीषम पाल, दि टेम्पलस् ऑफ राजस्थान, अलवर, 1969, पृ.53 - राजीव नयन प्रसाद, अनु. डॉ. रतनलाल मिश्र, राजा मानसिंह आमेर, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2014, पृ.149
7. डी. आर. भंडारकर, प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑफ दि आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, वेस्टर्न, बम्बई, 1910, पृ.47
8. बही की नकल प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में संरक्षित है (हरिनारायण द्वारा लिखित)
9. शोधार्थी द्वारा प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा अशोक सिंह से हुए वार्तालाप से प्राप्त तथ्य के अनुसार
10. चित्र संख्या - 2 देखें
11. पूर्वोक्त
12. डॉ. गीता शर्मा, आमेर स्थापत्य एवं चित्रकला, जयपुर, 2011, पृ.52
13. डॉ. रेनु मीना, आम्बेर-जयपुर के प्रमुख देवालय, जयपुर, 2013, पृ.83
14. बी. एल. धामा, ए मेमोरी ऑफ द जगत शिरोमणि मंदिर, पृ.11
15. शोधार्थी द्वारा प्रत्यक्ष अवलोकन के आधार पर

शिक्षा में सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का योगदान एवं चुनौतियाँ

डॉ० विधु शेखर पाण्डेय

सहायक आचार्य, बी.एड. विभाग, आर.बी.एस. डिग्री कॉलेज, प्रयागराज

डॉ० रुचि दूबे

सहायक आचार्या, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश

आज का युग सूचना क्रान्ति का युग है और हम ज्ञान पर आधारित समाज में रह रहे हैं। ज्ञान किसी भी राष्ट्र की शक्ति है तथा व्यक्ति के सर्वांगीण एवं चहुँमुखी विकास के लिए आवश्यक भी है। इस बढ़ते हुए ज्ञान तक पहुँचने के लिए एवं उसके उपयोग करने के लिए नवीन तकनीकों की आवश्यकता प्रतीत होती है तथापि इसके लिए सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी सर्वाधिक उपयुक्त साधन समझ आती है। यद्यपि सूचनाएँ हमारे आस-पास के वातावरण के बारे में ज्ञान एवं समझ प्राप्त करने के महत्वपूर्ण आधार होते हैं और व्यक्ति इन सूचनाओं को ग्रहण करने, संग्रह करने एवं आवश्यकता पड़ने पर इसके प्रयोग का ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार की गतिविधियां सूचना तकनीकी हैं परन्तु सम्प्रेषण की कला के बिना विभिन्न सूचनाओं की प्राप्ति एवं उसका उपयोग सम्भव नहीं है। अत: सम्प्रेषण एक द्विमार्गीय प्रक्रिया है जिसमें विचारों, विश्वास एवं सूचनाओं को दूसरों में बाँटते हैं। सूचनाओं के स्रोत एवं ग्राह्य करने वाले के मध्य आदान-प्रदान होता है, जिससे ज्ञान में वृद्धि, समझ एवं इसके उपयोग में यथोचित सहायता प्राप्त होती है। इस प्रकार ज्ञान को प्राप्त करने की प्रक्रिया में सूचना एवं सम्प्रेषण दोनों ही परम आवश्यक है। अत: सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का उद्देश्य प्रयोगकर्ता के ज्ञान, सम्प्रेषण कौशल, निर्णय क्षमता एवं समस्या समाधान क्षमता को बढ़ाना है।

कुंजी शब्द- सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी, शिक्षक प्रशिक्षण, परामर्श

प्रस्तावना

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी शिक्षक प्रशिक्षण, शैक्षिक प्रशासन, परामर्श, छात्रों के व्यक्तिगत विकास एवं ज्ञान आधारित समाज के निर्माण में सहायक होता है। मानव किसी भी सूचना की अनुभूति अपनी पाँच इन्द्रियों के माध्यम से करता है, यथा-दृश्येन्द्रिय, स्वादेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय एवं घ्राणेन्द्रिय। इस प्रकार प्राप्त सूचना मानव के मस्तिष्क पर प्रभाव डालती है, फलस्वरूप सूचना धारण कर ली जाती है। शिक्षण अधिगम प्रणाली के प्रभावी होने की जाँच इस धारणा क्षमता पर केन्द्रित है। यह अनुसंधानों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है कि सूचना प्राप्त होने के बाद से ही वह मानव मस्तिष्क में क्षीण होने लगती है एवं एक निश्चित समयावधि के बाद प्राप्त सूचना का कुछ प्रतिशत भाग ही मस्तिष्क में शेष रह जाता है। अत: इसी शेष सूचना को छात्र के द्वारा उपयोग किया जाता है। शिक्षण अधिगम प्रणाली द्वारा धारण करने की क्षमता को विकसित करने का प्रयास किया जाता है।

सूचना सम्प्रेषण तकनीकी का अर्थ एवं प्रकृति

सम्प्रेषण शब्द का सामान्य अर्थ सूचना को एक व्यक्ति के द्वारा दूसरे अन्य व्यक्तियों तक पहुँचाना है। यह स्थिति एक व्यक्ति के द्वारा समूह तक पहुँचाने की भी हो सकती है इसका विशिष्ट अर्थ शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक द्वारा छात्रों को विभिन्न सूचनाएं पहुँचाने से है। अत: सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी वह तकनीकी है जिसके द्वारा सूचनाओं को शुद्ध एवं प्रभावी रूप में प्राप्त करने, संग्रहण करने, प्रयोग करने, निरूपित करने एवं स्थानान्तरण करने में सहायक सिद्ध होती है। फलस्वरूप अनुसंधानकर्ता के ज्ञान, सम्प्रेषण कौशल, समस्या समाधान की क्षमता एवं निर्णय क्षमता को बढ़ाने में मदद मिलती है। सम्प्रेषण की प्रकृति पर विचार करें तो निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है, यथा-

- सम्प्रेषण एक प्रक्रिया के रूप में- सम्प्रेषण प्रेषक एवं ग्रहणकर्ता के मध्य चलने वाली वह प्रक्रिया है जिसमें प्रेषक संदेश को कूट भाषा में परिवर्तित करता है। इनकोडिंग और वही कूट भाषा ग्रहणकर्ता के द्वारा कूटानुवाद कर लिया जाता है।

- सम्प्रेषण अपरिहार्य तत्व के रूप में- सम्प्रेषण भौतिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से परम आवश्यक है। यदि हम किसी व्यक्ति को सम्पूर्ण भौतिक सुविधाएं मुहैया करा दें, परन्तु उसे लिखने, पढ़ने, बोलने, सुनने से वंचित कर दें तो उसका मानसिक संतुलन बिगड़ने की पूरी संभावना बनी रहती है।
- सम्प्रेषण के न्यूनतम दो पक्ष- सम्प्रेषण प्रक्रिया में न्यूनतम दो पक्ष प्रेषक एवं ग्रहणकर्ता अनिवार्य होता है। एक पक्ष होने पर उसे सम्प्रेषण की संज्ञा नहीं दी जा सकती जब तक कि ग्रहणकर्ता संदेश को ग्रहण न कर ले, सम्प्रेषण की प्रक्रिया अधूरी मानी जाती है।
- सम्प्रेषण का चक्रीय स्वरूप- प्रेषक एवं ग्रहणकर्ता के मध्य का सम्बन्ध चक्रीय होता है। एक अच्छे सम्प्रेषण की अवस्था में इसका स्वरूप चक्रीय होना आवश्यक होता है। ग्रहणकर्ता ग्रहण की गयी बातों पर प्रतिपुष्टि पुनः प्रेषक तक पहुँचाता है। इस अवस्था में ग्रहणकर्ता प्रेषक बन जाता है एवं प्रेषक ग्रहणकर्ता बन जाता है। कक्षा-कक्ष की परिस्थितियों में यदि चक्र का निर्माण होता है शिक्षण अधिगम अत्यन्त प्रभावशाली हो जाता है।
- सम्प्रेषण के विशिष्ट कौशल- सम्प्रेषण के चार महत्वपूर्ण विशिष्ट कौशल होते हैं, यथा-पढ़ना, लिखना, बोलना और सुनना।
- सम्प्रेषण सामाजिक व्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है- सम्प्रेषण किसी भी समाज एवं सामाजिक व्यवस्था की मुख्य नींव होता है इसके बगैर कोई भी समाज, सामाजिक प्राणी एवं संस्था कार्य नहीं कर सकती है।

अतः सम्प्रेषण एक गत्यात्मक प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति चेतन अथवा अचेतन, दूसरों के संज्ञानात्मक ढाँचे को सांकेतिक रूप में, उपकरणों या साधनों द्वारा प्रभावित करता है। एडगर डेल के शब्दों में-''सम्प्रेषण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत सूचनाओं, निर्देशों तथा निर्णयों द्वारा लोगों के विचारों एवं अभिवृत्तियों में परिवर्तन लाया जा सकता है।''

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का उद्‌भव तथा विकास

प्राचीन काल में सूचनाएं व्यक्तियों के मस्तिष्क में ही संग्रहित हुआ करती थीं तथा अधिकर्ता को मौखिक रूप से ही स्थानान्तरित होती थी। इस प्रकार स्याही और कागज के आविष्कार ने सूचना एवं सम्प्रेषण तक के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण है। प्रिन्ट मीडिया भी इस क्षेत्र का महत्वपूर्ण आविष्कार है। कुछ महत्वपूर्ण तकनीकी विकास जो सूचना एवं सम्प्रेषण में सहायक साबित हुए हैं वह इस प्रकार हैं:-(1) फ्रांस के प्रो0 ग्राफिन के द्वारा सन् 1900 में फोटोस्टेट का आविष्कार हुआ (2) 1940 ई0 में माइक्रोग्राफी का आविष्कार हुआ, जिसके द्वारा रिकार्ड की हुई सामग्री को बहुत छोटे रूप में कापी किया जा सकता है। (3) सन् 1960 ई0 में प्रिन्ट करने के लिए लेजर तकनीकी का आविष्कार हुआ जो शिक्षा तथा व्यवसाय के क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध हुआ। (4) 20वीं सदी में चुम्बकीय विडियो कैमरा, विडियो डिस्क एवं कम्प्यूटर का विकास शिक्षा में सहायक सिद्ध हुआ। (5) टेलीग्राफ, टेलीफोन, रेडियो, टेप रिकार्डर, टेलीविजन, सम्प्रेषण सैटेलाइट एवं फैक्स इत्यादि का आविष्कार जिसने हमें सैटेलाइट युग में लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अतः सूचनाओं के एकत्रीकरण, संग्रहण करने तथा आदान-प्रदान के नवीन संसाधनों से युक्त होने के उपरान्त 19वीं सदी में सूचना एवं सम्प्रेषण के ऊपर वैज्ञानिक नियन्त्रण की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किये गये। सन् 1950 में संयुक्त राज्य अमेरिका में सूचना विज्ञान शब्द का प्रतिपादन हुआ। जिसका मुख्य उद्देश्य वैज्ञानिक सूचनाओं के संचार को अधिक प्रभावी बनाना तथा प्रयोगकर्ताओं को वैज्ञानिक सूचनाओं की प्राप्ति के लिए नवीन एवं विकसित विधियों के लिए प्रोग्राम बनाना था। सन् 1960 के उपरान्त सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का प्रयोग विभिन्न क्षेत्रों, यथा-विज्ञान, प्रौद्योगिकी, उद्योगों, चिकित्सा शिक्षा, शिक्षा, बैंक, सरकारी कार्यालयों, प्रबन्धन आदि में व्यापक रूप से प्रयोग होने लगा। आज इसका प्रयोग शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, दूरस्थ एवं मुक्त शिक्षा, आभासी कक्षाओं में बहुतायत स्तर पर हो रहा है।

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

मानव सभ्यता के शुरूआती चरण के साथ ही सम्प्रेषण कला विकसित हुई थी। मानव का दूसरे मानव से वार्तालाप सम्प्रेषण कला के कारण ही सम्भव हो सका, जिसे यदि हम शिक्षा के क्षेत्र में समझना चाहें तो हमें कक्षा के परिदृश्य में सोचना होगा। कक्षा-कक्ष की प्राचीनतम अवधारणा में शिक्षक एवं विषयवस्तु केन्द्र में होती थी और सम्पूर्ण शैक्षिक प्रणाली शिक्षक केन्द्रित होती थी। शिक्षक ही शैक्षिक उद्देश्यों के आधार पर पठन-पाठन क्रिया को आगे बढ़ाता था और उस समय प्रायः सम्प्रेषण का स्वरूप एकमार्गीय हुआ करता था। इस प्रकार सम्प्रेषण में प्रेषक संदेश देता है और ग्रहणकर्ता उसे ग्रहण करता है। समाज की बदलती हुई परिस्थितियों ने जैसे-जैसे शैक्षिक उद्देश्यों में बदलाव किया वैसे-वैसे कक्षा-कक्ष की प्रणाली में बदलाव आता गया। मनोविज्ञान विषय के द्वारा छात्र की भूमिका शिक्षण प्रणाली में बढ़ने लगी। छात्र शिक्षण अधिगम प्रणाली का केन्द्र होता गया, जिसके कारण उसकी अभिरूचियों एवं आवश्यकताओं को अधिक से अधिक ध्यान में रखा जाने लगा। ऐसी परिस्थिति में सम्प्रेषण एक चक्र के रूप में कार्य करने लगा जिसे द्विमार्गीय सम्प्रेषण कहा गया। द्विमार्गीय सम्प्रेषण में ग्रहणकर्ता भी अपनी अभिव्यक्ति प्रतिपुष्टि के माध्यम से प्रेषक तक पहुँचाने में सक्षम हुआ। इस प्रकार सम्प्रेषण की मूल अवधारणा में परिवर्तन कर दिया गया एवं प्रेषक तथा ग्रहणकर्ता के स्थान परिवर्तनशील होने लगे। प्रतिपुष्टि की दशा में ग्रहणकर्ता प्रेषक हो गया एवं प्रेषक ग्रहणकर्ता की भूमिका में आ गया।

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के कार्य एवं विशेषताएं

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के कार्य क्षेत्र को समझने के लिए मुख्य रूप से दो बिन्दु उत्तरदायी हैं, जो इस प्रकार हैं:-(1) अन्तः संस्थागत कार्य- इसके अन्तर्गत एक ही संस्था के अन्दर होने वाला सम्प्रेषण आता है, यथा- शिक्षक का छात्र से, छात्र का अन्य छात्रों से, शिक्षक का प्राचार्य से इत्यादि। (2)

अर्न्तसंस्थागत कार्य- जब दो संस्थाओं के मध्य सम्प्रेषण कार्य किया जाता है तो इस प्रकार के सम्प्रेषण को अर्न्तसंस्थागत कार्य की संज्ञा दी जाती है। सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने में सम्प्रेषण के इस कार्य का अधिक योगदान है, जैसे-एक विद्यालय का दूसरे विद्यालय से और किसी एक संस्था का किसी कम्पनी से।

सम्प्रेषण की विशेषताओं पर विचार किया जाय तो यह एक सोद्देश्य एवं सार्वभौमिक प्रक्रिया है एवं यह एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। आदर्श सम्प्रेषण की स्थिति व्यवहार में परिलक्षित हो पाना लगभग असम्भव है तथापि सम्प्रेषण किसी प्रसंग के सापेक्ष होता है और यह शाब्दिक एवं अशाब्दिक दो प्रकार से देखा जाता है। यदि प्रेषक अपनी अभिव्यक्ति चित्रों अथवा शब्दों के माध्यम से करता है तो उसे शाब्दिक सम्प्रेषण की संज्ञा दी जाती है और यदि प्रेषक अपनी अभिव्यक्ति शब्दों के अतिरिक्त संकेतों अथवा शारीरिक मुद्राओं के माध्यम से प्रेषित करता है तब उसे अशाब्दिक सम्प्रेषण कहा जाता है।

आधुनिक सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी

आधुनिक सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी हार्डवेयर, साफ्टवेयर, मीडिया तथा प्रेषक माध्यमों आदि का शिक्षण कहलाता है, यथा-बहुमाध्यम युक्त कम्प्यूटर, डिजिटल विडियो कैमरा, पावर प्वाइंट अनुकरण, वर्ड प्रोसेसर, स्प्रेड सीट, डिजिटल लाइब्रेरी, एल.सी.डी. प्रोजेक्टर, ई-मेल, इण्टरनेट, वर्ल्ड वाइड वेब, कम्प्यूट डाटा वेस, विडियो कार्ड तथा वेब कैमरे के साथ लैपटॉप, सी.डी. रोम एवं डी.वी.डी., हाइपर मीडिया तथा हाइपरटैक्स्ट के स्रोत अन्तः क्रियात्मक रिमोट अनुदेशन, दृश्य व श्रव्य कानफ्रेंसिंग एवं आभासी कक्षा आदि शामिल हैं।

शिक्षा के बदलते स्वरूप में सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का स्थान

वर्तमान परिदृश्य में समाज का स्वरूप तीव्र गति से बदल रहा है और उसी गति से सूचनाओं की गति भी परिवर्तित हो रही है। आज सूचना एक जगह से दूसरी जगह कुछ ही मिनट या सेकेण्ड में पहुँच जाती है। त्वरित सेवाओं हेतु भी सूचना का तेज आवागमन परम आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति समाज की विभिन्न गतिविधियों से जुड़ा रहना चाहता है, जिसके लिए आई.सी.टी. की आवश्यकता समीचीन है। ई-मेल के द्वारा हम विभिन्न प्रकार की सूचनाओं तथा विषयवस्तु को कुछ ही समय में एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से प्रेषित एवं ग्रहण कर लेते हैं। अतः आज जैसे-जैसे सूचनाओं की आवश्यकता एवं स्वरूप बदल रहा है उसी क्रम में सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का विकास एवं उपयोग तेजी से बढ़ता जा रहा है।

शिक्षा स्तर के उन्नयन में सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का योगदान

वर्तमान शैक्षिक परिस्थितियों के सापेक्ष सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी वरदान सिद्ध हुई है, जिसे हम निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत समझ सकते हैं, यथा-(1) अधिक पठनीय सामग्री की उपलब्धता सुनिश्चित होने के कारण आज का विद्यार्थी कम समय में अधिक विषयवस्तु की जानकारी प्राप्त कर सकता है। (2) छात्रों में चिन्तन करने की क्षमता एवं नेतृत्व क्षमता के विकास में सम्प्रेषण तकनीकी का उपयोग सहायक सिद्ध हुई है। (3) नवीन अनुसंधानों के होने में आई.सी.टी. का विशेष योगदान शामिल है। (4) छात्रों में आत्मविश्वास की वृद्धि होती है। (5) कक्षा-कक्ष का शैक्षिक माहौल रोचक बनता है तथा अधिगम के दर में भी तेजी देखने को मिलती है। (6) ज्ञान के संग्रहण एवं प्रसार के लिए आई.सी.टी. अधिक लाभदायी साबित हुई है।

शिक्षा में सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के संयोजन की चुनौतियां

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के बढ़ते हुए उपयोग से देश में शिक्षा व्यवस्था में पर्याप्त सुधार किसी भी चुनौती से कम नहीं है, जिन्हें हम विभिन्न बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते हैं, जैसे-(1) परम्परागत सोच-कम जागरूक होना अथवा पुरानी सोच से बाहर न निकल पाना एक चुनौती है। (2) संसाधनों की कमी- उपयुक्त संसाधनों की कमी के कारण भी शिक्षा की गुणवत्ता एवं शैक्षिक माहौल चुनौती का विषय बना रहता है। (3) प्रशिक्षण की कमी- जनसंख्या में कम्प्यूटर शिक्षित लोगों के साथ नगण्य है। यह एक प्रमुख चुनौती है। (4) बजट की कमी- जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ प्रति व्यक्ति बजट काफी कम होता है जिसके कारण आई.सी.टी. को स्थापित कर पाना चुनौतीपूर्ण है।

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के शैक्षिक निहितार्थ

आधुनिक सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी ने हमारे दैनिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों, यथा-शिक्षा, चिकित्सा, व्यापार एवं बैंकिंग सेक्टरों को प्रभावित कर रहा है। नवीनतम यंत्रों एवं विधियों के द्वारा सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी ने शिक्षा के माध्यम से ज्ञान आधारित समाज के निर्माण में सहायता प्रदान की है। सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के द्वारा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया काफी सरल हो जाती है, जिसके द्वारा छात्रों को स्वानुदेशन भी आसानी से प्राप्त हो जाता है। छात्र स्वानुदेशन प्राप्त करने से शिक्षक उस समय का प्रयोग उन्हें निर्देशन व परामर्श देने, ट्यूटोरियल समूह शिक्षण भी कर सकते हैं। अतः शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति में सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी शिक्षकों व छात्रों की सहायता करती है।

परामर्श देने के कार्य में भी सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी सहायक साबित हुई है। अपेक्षित शैक्षिक, व्यवसायिक तथा व्यक्तिगत परामर्श देने में सूचना के स्रोतों को प्राप्त करने में यह परामर्शदाताओं को सहायता प्रदान करती है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में शिक्षक केन्द्रित से छात्र केन्द्रित बनाने में सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इसकी सहायता से छात्र बड़ी संख्या में सूचनाओं को प्राप्त कर सकते हैं एवं प्रभावी सम्प्रेषण के द्वारा सहयोगात्मक शिक्षा से कठिन कार्यों को भी कर सकते हैं, जिससे ज्ञान एवं कौशल अर्जित करके अधिक आत्मनिर्देशित एवं आत्मविश्वास प्राप्त कर सकते हैं। सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी ने शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में भी उल्लेखनीय भूमिका निभायी है। शिक्षक के बहुआयामी दायित्वों के निर्वाह के लिए चुनौतियों को स्वीकार

करने में यह शिक्षक की सहायता करता है। सूक्ष्म शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षण कौशलों के विकास में इसका प्रयोग किया जा सकता है। सूचना और सम्प्रेषण तकनीकी ने शैक्षिक शोध कार्यों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके माध्यम से शोध कार्यों के लिए अपेक्षित शुद्ध एवं विभिन्न प्रकार की शैक्षिक एवं शोध सूचनाएं प्राप्त होती हैं। अत: सम्प्रेषण के स्रोतों के द्वारा शोधकर्ता आसानी से शोध से सम्बन्धित तथ्यों को प्राप्त कर पाते हैं। इस प्रकार शिक्षा के सभी क्षेत्रों में सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी की महत्वपूर्ण भूमिका निर्दिष्ट होती है, जो शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अत्यन्त सहायक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

- कपूर, यू. (1986), शैक्षिक तकनीकी, आगरा: साहित्य प्रकाशन।
- कुमार, के.एल. (1996), एजुकेशनल टेक्नोलॉजी, नई दिल्ली: न्यू एज।
- कुलश्रेष्ठ, एस.पी. (1979), एजुकेशनल टेक्नोलॉजी, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- पनगोत्रा, एन. (1980), फण्डामेन्टल ऑफ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी, चण्डीगढ़: इण्टरनेशनल पब्लिशर्स।
- भट्ट, बी.डी. एवं शर्मा, एस.आर. (1992), शैक्षिक तकनीकी-तकनीकी की अवधारणा, नई दिल्ली: कनिष्का पब्लिशर्स।
- माथुर, एस.एस. (1996), शैक्षिक तकनीकी, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- दास, आर.सी. (1993), एजुकेशनल टेक्नोलॉजी: एक बेसिक टेक्स्ट, नई दिल्ली, स्टरलिंग।
- श्रीवास्तव, एस. एवं शर्मा, आर. (2019), शिक्षा के तकनीकी परिप्रेक्ष्य: सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी, आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन्स।

भारतीय अर्थव्यवस्था पर जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव

नुतन जे० पटेल

पीएच. डी. स्कॉलर(अर्थशास्त्र), उत्तर गुजरात यूनिवर्सिटी, पाटन

सारांशः

दुनिया के किसी भी देश का आर्थिक विकास उसकी राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति आय पर निर्भर करता है। जबकि राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति आय उस देश की जनसंख्या वृद्धि दर पर आधारित होती है। वर्तमान अध्ययन अर्थव्यवस्था पर भारत की जनसंख्या के प्रभाव को प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन इस बात की जांच करता है कि जनसंख्या मानव जीवन, राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय, सामाजिक, राजनीतिक, बेरोजगारी और गरीबी को कैसे प्रभावित करती है। यह प्रस्तुत किया जाता है। यह अध्ययन जनसांख्यिकीय स्थिति का अध्ययन करने और इसे नियंत्रण में लाने के उद्देश्यों को भी प्रस्तुत करता है।

प्रस्तावना :

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि विश्व में भारत जनसंख्या के मामले में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है, वह समय दूर नहीं जब भारत चीन को पछाड़कर दुनिया में पहला स्थान बन जाएगा, इसका मतलब यह नहीं है कि हम दुनिया में पहले स्थान पर हैं। लेकिन इसे भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए एक बहुत ही गंभीर मामला कहा जा सकता है, जिसे संबोधित करने की आवश्यकता है। आजादी के बाद से भारत की जनसंख्या वृद्धि दर लगातार बढ़ रही है। जिससे भारत में गरीबी, बेरोजगारी, आय असमानता, भूख, महंगाई और काला धन जैसी समस्याएं पैदा हो गई हैं। जिसका मुख्य कारण भारत में लगातार बढ़ती जनसंख्या है। भारत में जनसंख्या वृद्धि का मुख्य कारण हमारे ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में सामाजिक रीति-रिवाज और धार्मिक मान्यताएं हैं। साथ ही उचित योजना और बुनियादी ढांचे के परिणामस्वरूप जनसंख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। जनसंख्या नियंत्रण के लिए कई योजनाएं और कार्यक्रम शुरू करने के बावजूद हम उस लक्ष्य तक वांछित सीमा तक नहीं पहुंच पाए हैं। वर्तमान में भारत की कुल जनसंख्या 1,396,415,322 है, (139 करोड़) विकास दर 2017 में 1.07, 2018 में 1.04, 2019 में 1.02 और 2020 में 0.99 थी। भारत की जनसंख्या विश्व की कुल जनसंख्या का 17.7% है।

भारत में सबसे अधिक आबादी वाले
राज्य और शहर (जनसांख्यिकीय स्थिति) :

भारत में जनसंख्या एक आम बात हो गई है। वर्तमान में (1 जुलाई, 2021- को) भारत में 27,873 मौतों के मुकाबले एक दिन में 65,881 बच्चे पैदा होते हैं। यह कहा जा सकता है कि मृत्यु दर की तुलना में भारत में जन्म दर कम है जिसके कारण जनसंख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। भारत -1, 346 देखे गए हैं।

भारत में रहने वाली दुनिया की 6 में से 1 आबादी के साथ, देश में 2001 और 2011 की जनगणना के बीच 17.7% की वृद्धि हुई है, जिसमें 181. 5 मिलियन लोग शामिल हैं। देश का आकार केवल 40 वर्षों में दोगुना हो गया है, और अगले दो दशकों में चीन को दुनिया का सबसे अधिक आबादी वाला देश बनाने की उम्मीद है।

भारत में दिन-प्रतिदिन बढ़ती जनसंख्या भारत के आर्थिक विकास में बाधक सिद्ध हो रही है। जनसंख्या वृद्धि के कारण आर्थिक वृद्धि दर घट रही है। बढ़ती हुई जनसंख्या अनेक प्रदूषकों को जन्म देती है। जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ खाद्यान्न की मांग भी बढ़ती है। परिणामस्वरूप खाद्यान्न की बढ़ती हुई मांग को पूरा करना असंभव हो जाता है जिसके कारण प्रभावी मांग बनी रहती है। इसके अलावा, यह रोजगार पर भी नकारात्मक प्रभाव डालता है। जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास में बाधक सिद्ध होती है।

जन संख्या प्रमाण मिलियन में

भारत के राज्यों और शहरों के संदर्भ में जनसांख्यिकीय स्थिति की सबसे बड़ी आबादी मुंबई (महाराष्ट्र) में 12,691,836 मिलियन, दिल्ली (उत्तर प्रदेश) में 10,927,986 मिलियन, बैंगलोर (पश्चिम बंगाल) में 5,104,047 मिलियन, कलकत्ता में 4,328,063 मीटर, चेन्नई में 4,328,063 मीटर है। , अहमदाबाद (गुजरात) में 3,719,710 मीटर, हैदराबाद में 3,597,816 मीटर, पुणे में 2,935,504 मीटर, सूरत में 2,894 मीटर, 504 मीटर और कानपुर में 2,823,249 मीटर, जिसके तहत सबसे अधिक जनसंख्या अनुपात महाराष्ट्र में मुंबई में पाया गया, जबकि गुजरात में सबसे ज्यादा आबादी अहमदाबाद में थी और सूरत में देखा गया।

भारत में जनसंख्या वृद्धि के रुझान

साल	*कुल जनसंख्या*	*वृद्धिदर*	*जनसंख्या घनत्व*	*जनसंख्या क्रमांक*	*जनसंख्या घनत्व क्रमांक*
२०१५	१,३१०,१५२,४०३	१.२० %	४४०.६६	२	२७
२०१६	१,३२४,५१७,२४९	१.१० %	४४५.४९	२	२७
२०१७	१,३३८,६७६,७८५	१.०७ %	४५०.२५	२	२७
२०१८	१,३५२,६४२,२८०	१.०४ %	४५४.९५	२	२७
२०१९	१,३६६,४१७,७५४	१.०२ %	४५९.५८	२	२७
२०२०	१,३८०,००४,३८५	०.९९ %	४६४.१५	२	२८
२०२१	१,३९३,४०९,०३८	१.०२ %	४६८.६६	२	२९

https:èkèkworldpopulationreview.comèkcountriesindia-population

भारत में जनसंख्या वृद्धि के कारण :

भारत में बढ़ती जनसंख्या के लिए कई कारण जिम्मेदार हैं, जिनमें गरीबी और बेरोजगारी प्रमुख कारणों के रूप में उभर रही है। क्योंकि गरीबी और गरीबी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भारत में बढ़ती जनसंख्या के कारण गरीबी का अनुपात बढ़ता है। गरीब लोग बच्चों को आय का स्रोत मानते हैं और प्रचलित अंधविश्वासों और समाज में रूढ़िवादी मान्यताओं के कारण बेटा पैदा करने की तीव्र इच्छा भी जनसंख्या वृद्धि का मुख्य कारण बनी हुई है। इसके अलावा, भारत के कुछ राज्यों में बाल विवाह अभी भी एक समस्या है। कम उम्र में बाल विवाह से महिलाओं में बच्चों की संख्या अधिक होती है।

जनसंख्या नियंत्रण के उपाय :

भारत में नियोजन अवधि के दौरान सरकार द्वारा जनसंख्या नियंत्रण के कई उपाय किए जाते हैं, जिसके तहत परिवार नियोजन, औजारों का उपयोग, लघु परिवार सुखी परिवार योजना आदि को लागू किया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य बढ़ती जनसंख्या को नियंत्रित करना था।

संदर्भ ग्रंथ :

1. https:èkèkworldpopulationreview.comèkcountriesèkindia-population
2. Reader, Department of Fertility Studies, International Institute for Population Sciences, Govandi Station Road, Deonar,Mumbai 400 088, INDIA. Email: dnagdeve@yahoo.com and dnagdeve@iips.net
3. https:èkèkwww.mapsofindia.comèkmy-indiaèkindiaèkoverpopulation-in-india-causes-effects-and-how-to-control-it
4. https:èkèkpscnotes.inèkeffects-of-population-growth-in-indiaèk
5. Demographic Changes and their Macroeconomic Ramifications in India
6. Sabyasachi Tripathi, Relationship Between Infrastructure And Population Agglomeration In Urban India : An Empirical Assessment

कच्छ के रबारी समाज में पशुओं के शुंगार का योगदान

परेशभाई बाबुभाई देसाइ

पीएच.डी. (स्कोलर, इतिहास), हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात यूनिवर्सिटी, पाटण

पशु इलाज-सजावट से आय :

खेती और कृषि को मानव जाति की पहली सभ्यता माना जाता है। आदिकाल से ही सभ्यता का उदय हुआ और कृषकों के पदचिन्ह सुने जाने लगे। तब से, मानव समाज ने जानवरों को पालतू बनाना और उनका बोझ हल्का करने के लिए उनका उपयोग करना शुरू कर दिया है। वैदिक काल में भी, गाय, बैल, हाथी, घोड़े आदि जैसे घरेलू जानवरों को गाड़ियां, हल, दूध लाने और सामान लाने के लिए इस्तेमाल किया जाता था। वहीं से इंसान और जानवर के बीच एक तरह का प्रेम-प्रेम बंधन बनता है। उस समय जानवरों का सम्मान किया जाता था। वह अपने प्राणों की भाँति प्रिय पशुओं के प्रति अपना प्रेम प्रकट करते थे और समय-समय पर पशुओं को सजाते और पूजते थे। इसमें लोक जीवन में पाए जाने वाले पशु अलंकरण की परंपरा का पता वैदिक काल से लगाया जा सकता है। इस परंपरा को हम आजादी के बाद भी देख सकते हैं। कच्छ और सौराष्ट्र में जानवरों को सजाने की परंपरा अधिक प्रचलित है।

रबारी समुदाय के लोगों ने अपने शुष्क वातावरण को रंगीन बनाने के लिए इस क्षेत्र को अलग-अलग रंगों से देश और दुनिया में प्रसिद्ध किया है। इस क्षेत्र की इन जनजातियों ने भी कई हस्तशिल्प जैसे जानवरों और पक्षियों की सजावट के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया है।

घोड़े की सजावट से आय:

स्वतंत्रता पूर्व युग में घोड़ों का देश की अर्थव्यवस्था में विशेष महत्व था। एक घोड़े की कीमत एक हजार गायों के बराबर होती थी। ऐसे जाटवान घोड़ों को उनके स्वामियों और अवनवा आभूषणों और रंग-बिरंगे फूलों की मालाओं से सजाया जाता था। घुड़दौड़ में अभी भी घोड़ों को सजाने की परंपरा है। हमारे लोक जीवन में घोड़े एक महत्वपूर्ण जानवर रहे हैं। यही कारण है कि मनुष्य अपने शरीर को सजाने का ध्यान रखता है। घोड़े को संवारने में भी यही ध्यान रखा जाता है। घोड़ों की विशेष सजावट में मुंह पर एक पत्ती के साथ एक फूली हुई नाक और लगाम, एक रंगीन पराठा या डोक पर एक धागा और एक चांदी की छड़, डोक के नीचे एक खजांची के साथ एक आगम धागा, पैरों पर एक लांघा शामिल है। पीठ पर एक सूंड, एक डाली, एक खोगीर, कोठो के साथ एक अदाया रॉड और उस पर एक जीन। कच्छ के विभिन्न प्रांतों और समाजों से कढ़ाई के साथ जैन कुशन। एक घोड़े का अलंकरण एक लट में रस्सी, एक गोदी और पीठ पर मोती जड़े या कशीदाकारी जौल होगा जो कमरबंद और जीन को जकड़ने के लिए होगा। घोड़े की शोभा में सिर को ढकने के लिए एक विशेष कशीर की कढ़ाई वाला कपड़ा तैयार किया जाता था, जब जुलूस या सवारी के दौरान घोड़े को चांदी की जंजीर से बांध दिया जाता था। जिसे मधुमक्खी या अखियो के नाम से जाना जाता है। घोड़े की पीठ पर जिन्न भी एक रंगीन कपड़े पर कढ़ाई की जाती थी जिसे कच्छी में परछत के नाम से भी जाना जाता है। जिस पर भरत भरी हुई थी। वागड़ के रबारी लोगों की तरह रबारी समाज के लोग भी हस्तशिल्प के आधार पर घोड़े की सजावट तैयार करके आय अर्जित करते थे।

सांडों की सजावट से आय:

कच्छ मिट्टी में पली-बढ़ी रबारी समुदाय की महिलाओं ने अपने जानवरों को सजाने में उंगलियों की स्पर्श-प्रेम कढ़ाई को इस तरह व्यक्त किया है जैसे उन्होंने अपने पालतू जानवरों के साथ हीरे और गांठें बांधी हों। कच्छ और सौराष्ट्र में, सांडों को शादी के अवसरों पर मोतियों और कढ़ाई वाले गहनों से सजाया जाता है। बैल की गोफन, सिर पर बंधी हुई रोटियां, सींग की रोटियां, माउथपीस, नेकबैंड मुख्य हैं।

कच्छ में मनाए जाने वाले बड़े यक्ष सहित कई पारंपरिक लोक मेलों में, लोगों को सजी हुई गाड़ियों में बैल की सवारी करते देखना एक और सौभाग्य की बात थी। कच्छ में रबारी समुदाय के लोगों द्वारा सांड की कढ़ाई बहुत अच्छी तरह से की जाती थी, जहाँ कच्छ के जैन समुदाय द्वारा रखे गए चांदी के आभूषणों से विभिन्न सजे हुए बैलों को भी सजाया जाता था।

ऊंट की सजावट से आय:

कच्छ का मरुस्थल होने के कारण ऊंटों की उपयोगिता अच्छी रही है। एक समय में सिंह के साथ सभी संचार ऊंट द्वारा किए जाते थे। खासकर कच्छ के मेमन से किया वागड़ से ऊंटों पर सवार होकर सिंध जाया करते थे। जिस तरह सिंधी मुसलमान सिर्फ ऊंटों के जरिए सिंध के साथ अपना व्यापार करते हैं, उसी तरह कच्छ का रबारी समुदाय भी अपने मवेशी ऊंट को सजाता है। शौकीन परिवार अपनी संथाओं को मेलों में या यहाँ तक कि शादी के अवसरों

पर भी सजाते हैं। ऊँट की सजावट में सिर पर कशीदाकारी टोपी, मुखपत्र, पालने पर फेंकने के लिए एक मुद्रित लस्सो और चावल से भरा झूला, दिनचना गुड़िया, दो पैरों वाली जिंगल घंटियाँ, गले की टोकरियाँ, पालन या लाठी भी शामिल हैं। पीतल और चांदी। कच्छ के अंजार में लगने वाले लोक मेलों में ऊँट के आभूषण बेचे जाते थे।

कच्छ के रबारी समुदाय के लोग अपना पारंपरिक कढ़ाई का काम कर रहे हैं। इसमें श्जुलश में ढेबरिया रबारी ऊंटों की उत्कृष्ट कढ़ाई है जो अंजार क्षेत्र में पाई जाती है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि रबारी समाज के लोग ऊँट के आभूषण बनाकर और बेचकर आर्थिक रूप से अपना भरण-पोषण करने में सक्षम थे।

इसके अलावा गाय, भेड़ और बकरियों को सजाने की परंपरा आजादी से पहले कच्छ के अस्तिकतवाग में थी। हालांकि कच्छ में इसका जिक्र कम है। सांस्कृतिक सृजन के साथ-साथ लोक जीवन में विकसित होने वाली कलाओं, जानवरों को मोतियों और विभिन्न प्रकार की कढ़ाई से सजाना और प्रेम व्यक्त करने की भावना भी महत्वपूर्ण रही है। इस कला के विकास से कच्छ के लोक समाज की रुचि और रुचि का सुन्दर परिचय मिलता है। उस समय यह कला उपयुक्त थी। सराहना की। इसलिए जो महिलाएं अपने खाली समय में भी अपने खाली समय में शिल्प के काम में अपना दिल लगाती हैं, वे जानवरों की सजावट के लिए भर्ती होती हैं। अब आजादी के बाद बदलते समय में, लोक जीवन में जानवरों की सजावट और सजावट के लिए लोगों की पसंद मीठी वीर्दी, यहां तक कि आज कुछ जनजातियाँ विशेष रूप से रबारी, जडेजा और कानबी।कीमतों ने विरासत परंपराओं को बनाए रखा है और उनसे आय अर्जित करके अपने वित्तीय पहलू को मजबूत कर रहे हैं।

कच्छ का हुनर और जहाज उधोग:

कच्छ में, हुन्नोर कृषि के बाद दूसरा सबसे बड़ा उधोग है। लेकिन हुंडियामन तूफान ने कच्छ के दो महत्वपूर्ण पारंपरिक हुन्नोर उद्योगों को नहीं बख्शा और उन्हें नष्ट करने में प्रमुख भूमिका निभाई। कच्छ क्षेत्र में व्यापार शुरू होने से पहले ही हस्तशिल्प उधोग शुरू हो गया था। जिसमें हस्तशिल्पकार, दर्जी, बढ़ई, लोहार, लोहार आदि अपनी आर्थिक आय के लिए अपना पूरा जीवन व्यतीत करते हैं। कच्छ को अपनी सभी जरूरतों के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता था। इससे हस्तशिल्प उधोग में बाढ़ आ गई।

हस्तशिल्प उधोग:

कच्छ के रबारी समुदाय के लोग आज भी भटकती जिंदगी जी रहे हैं। उनकी महिलाएं खाली समय में कढ़ाई करती हैं। जो एक अनोखा अंदाज है। अब आज यह हेरात जगत में भी प्रवेश कर चुका है। इसके अलावा, अन्य छोटे और बड़े हस्तशिल्प भी वहां विकसित हुए हैं। आइए बात करते हैं कच्छया की। अगर कोई वैश्विक पहचान है तो वह है। इसके हस्तशिल्प कच्छ में, सूखे मैदानों, पहाड़ियों या रेगिस्तानों से उठकर, ये हस्तशिल्प कच्छ के पर्यावरण और लोगों के जीवन में रंग और संगीत जोड़ते हैं। हस्तशिल्प, जो वर्षों तक घरेलू बने रहे, पिछली आधी सदी में विश्व स्तर पर विस्तारित हुए हैं। ये हस्तशिल्प इतने उत्कृष्ट हैं कि हर साल पूरे भारत के विभिन्न कारीगर केंद्र या राज्य सरकारों से पुरस्कार प्राप्त करते हैं। उनकी अधिकतम कचना कारीगरों से मिलती है।

कढ़ाई घैरा बहनों द्वारा की जाती है। लाल रंग मुख्य रूप से कढ़ाई के लिए प्रयोग किया जाता है। यह अधिक आकर्षक है। कल्तमारक कल्प की मजबूत परंपरा के भीतर रहते हुए, कलाकार अपने कल्पनाशिकात को स्वतंत्र लगाम देता है। प्रत्येक कॉम की कढ़ाई उस कॉम की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करती है। यह भी उन्हीं के नाम पर रखा गया है। जैसे मटवा कढ़ाई, सूफ कढ़ाई, रबारी कढ़ाई, अहीर कढ़ाई, मोची कढ़ाई, कानबी कढ़ाई विभिन्न नामों से जानी जाती है। वे इसे बेचकर आय अर्जित करते हैं और अपना जीवन यापन करते हैं।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारत विशेषकर गुजरात के इतिहास और पुरातत्व, कला, संस्कृति, मूर्तिकला आदि में कच्छ का योगदान मुट्ठी भर जोड़ रहा है। आजादी से पहले और बाद में कच्छ के रबारी समाज की आर्थिक स्थिति और गतिविधियों को देखते हुए, एक विचार मिलता है। कि दुनिया के यात्रियों और यात्रा करने वालों ने हमेशा कच्छ को अपना आश्रय बनाया है। कच्छ क्षेत्र में हम दुनिया भर की संस्कृतियों का सामंजस्य देख सकते हैं। कच्छ में कई जनजातियां बस गई हैं। कच्छ में विभिन्न प्रकार के मौसम, मिट्टी, प्रकृति, वैविध्य, रेगिस्तान, झील आदि हैं। यह क्षेत्र हजारों वर्षों से बौद्धिक संपदा से ओतप्रोत रहा है। पूरी दुनिया आने और कच्छ का आनंद लेने के लिए आकर्षित हुई है। कच्छ कई बार उथल-पुथल का शिकार हो चुका है। वह चार बार समुद्र में जा चुका है और वापस बाहर आया है। भारत के एक अनोखे कोने में स्थित इस क्षेत्र में राजाओं और कई पर्यटकों की सेनाओं ने दौरा किया है। सभी कच्छ से गुजर रहे हैं। जिसके कारण कचनो रबारी समाज में एक तरह के सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिवर्तन हुए हैं। अनेक जातियों और प्रजातियों के सांस्कृतिक समरसता के कारण यहाँ के लोगों के आर्थिक व्यवहार बदल जाते हैं। आर्थिक रूप से परिवर्तन और विविधीकरण है। कच्छ एक शुष्क क्षेत्र होने के कारण इसे इसी कमी को दूर करने का प्रयास माना जा सकता है, यहाँ के लोगों की पोशाक रंगीन और रंगीन रही है। आजादी के बाद की अवधि के दौरान, दर्मयगन कच्छ के रबारी समाज में खेती, कृषि, व्यापार, पशुपालन हस्तशिल्प उधोग आदि के क्षेत्र में परिवर्तन देखा जा सकता है। पूरे कच्छ में अतीत की गवाही देने वाले कई स्मारक पाए गए हैं। इतिहास के पन्ने देखने पर यह स्पष्ट होता है कि भटकती जिंदगी जीने वाली कच्छ की आस्था यी रबारी समाज आज बसने में सक्षम हो गई है। हम रबारी समाज में कच्छ क्षेत्र में एक अनूठी संस्कृति के निर्माण को देख सकते हैं। कच्छ के शुष्क वातावरण को रंगने के लिए रबारी समुदाय के लोग अपने तेल से विभिन्न रंगों से भरे कई हस्तशिल्प विकसित करते हैं।

कच्छ के रबारी समुदाय का जीवन, आवास आदि, जो फूलों की खेती के व्यवसाय में लगे हुए हैं, अन्य समुदायों से कुछ अलग हैं। रबारी समाज के लोग भेड़-बकरी, ऊंट और गाय-भैंस पाल कर जीवन यापन करते हैं। ये जानवर स्थिर जीवन नहीं जी सकते क्योंकि उन्हें चारे के लिए लगातार जंगल में

भटकना पड़ता है। लगातार जंगल में भटककर वे दूसरी जातियों के संपर्क में आए और आज वे बदल गए हैं। कच्छ के रबारी समुदाय को आर्थिक दृष्टि से भेड़-बकरी, गाय-भैंस, ऊंट आदि के दूध से आमदनी हो रही है और वे अपना व्यवसाय चला रहे हैं। उनका मुख्य व्यवसाय हमेशा पशुपालन रहा है।

संदर्भ सूची

(१) सौराष्ट्र के पिछड़े समुदाय भाग-3, पृष्ठ-८७
(२) श्वालो कचडोश, ढेबरभाई स्मोर्तियांक, अक्टूबर-२००५
(3) धोलकिया, कुंदनलाल जे. श्रुति और स्मृति, प्रकाशन, अक्षर भारती, भुज, पृष्ठ-१०६
(४) कारा डूंगर कच्छ जा इतिहास और लोकगीत, पृष्ठ-२०
(५) कच्छ के ऐतिहासिक लेख, पृष्ठ-१७८

आलोक शर्मा के बाल एवं लघु उपन्यास

अनिल कुमार इराज

शोधार्थी, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा मद्रास, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, कर्नाटक, धारवाड़

सी०एम० अड़की

मार्गदर्शक, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा मद्रास, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, कर्नाटक, धारवाड़

प्रस्तावना:

आज के बच्चे हैं कल के भविष्य है इसलिए उनमें नैतिक, सामाजिक मूल्यों का ज्ञान भरना, उनके व्यक्तित्व को सुंदर बनाना हम सब का कर्तव्य है। बच्चों के व्यक्तित्व को बनाने में बाल साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वैसे तो पहले नाना-नानी, दादा-दादी सब कहानियों के माध्यम सेष छोटी-छोटी कविताओं के माध्यम से उनका मनोरंजन करते थे अच्छाई का पाठ पढ़ाते थे। विशेषकर पंचतंत्र की कहानियां, अकबर बीरबल की कहानियां , तेनालीराम की कहानियां, लोक कहानियां मात्र बच्चों के लिए ही नहीं बड़ों के लिए भी प्रेरक हैं।

साहित्य युग एवं काल सापेक्ष होता है। समसामयिक परिवेश की हर धड़कन को रेखांकित करते जाना ही उसकी सार्थकता उसकी नियति है। वैसे तो हमेशा साहित्यकार अपने समसामयिक परिस्थितियों से प्रेरणा पाकर उन्हें साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करते आए है। विभिन्न साहित्यिक विधाओं में भिन्न-भिन्न विचारों को निरूपित करते आए हैं और प्रौढ़ साहित्य की तुलना में आज बाल साहित्य का अनुपात कुछ कम है फिर भी बच्चों के लिए कई प्रेरक कहानियां, उपन्यास, गीत, काव्य एकांकी, नाटक आदि विधाओं में सृजन कार्य हो रहा है। हिंदी बाल साहित्य संस्कृत बाल साहित्य और लोक कथाओं की नींव पर खड़ी है बाल साहित्य में लोक कथाओं का विशेष स्थान है। वैसे पंचतंत्र की कहानियां, हितोपदेश बच्चों के लिए व्यक्तित्व निर्माण में प्रमुख पात्र निभाते हैं भारतेंदु युग से लेकर अब तक बाल साहित्य के विविध विधाओं में समृद्ध सृजन कार्य हुआ है। चन्द्र, अधर नगरी, बादशाह दर्पण और कश्मीर कुसुम प्रमुख हैं। इन गद्य रचनाओं के साथ ही आपने अनेक बाल कविताओं का भी सृजन किया। भारतेन्दु युग के साहित्यकारों में बद्रीनारायण चौधरी, प्रतापनारायण मिश्र, श्री निवास दास, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण दास, काशीनाथ खत्री आदि प्रमुख हैं।

पूर्व-स्वतंत्रता काल के साहित्यकारों में कामता प्रसाद गुरु, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सुखदेव प्रसाद चौबे, विद्याभूषण विभु, गिरिजा दत्त शुक्ल, श्रीनाथ सिंह, आरसी प्रसाद सिंह, लल्ली प्रसाद पाण्डेय, सोहन लाल द्विवेदी, स्वर्ण सहोदर, रामेश्वर गुरू, राजेश्वर गुरू, रामसिंहासन सहाय 'मधुर' आदि प्रमुख हैं। उत्तर स्वतंत्रता युग में उपन्यासकार कहानीकारों ने भी बाल साहित्य की रचना की है जैसे विष्णु प्रभाकर, रामधारी सिंह दिनकर, हरिवंश राय बच्चन तथा कमलेश्वर आदि। इनके अतिरिक्त विशेष रूप से बाल साहित्य के लिए ही अपना महत्वपूर्ण योगदान देने वालों में निरंकार देव सेवक, चन्द्रपाल सिंह यादव 'मयंक', राष्ट्रबंधु, योगेश कुमार लल्ला, श्री प्रसाद, रामवचन सिंह आनंद, शोभनाथ लाल, रोहिताश्व अस्थाना, विनोद चन्द्र पाण्डेय, जयप्रकाश भारती, नरेंद्र धीर रमेश चंद्र प्रेम, डॉ. नीरज शास्त्री, दीनदयाल शर्मा, विभा देवसरे, आलोक शर्मा आदि प्रमुख है।

आज हिंदी बाल साहित्य में कई शोध कार्य हुए हैं मात्र पुस्तक ही नहीं बच्चों के लिए बाल पत्रिकाएं भी प्रकाशित हो रहे हैं इनमें सुमन सौरभ, बालहंस, बालभारती, बच्चों का देश, बाल भास्कर और टाबर टोली आदि प्रमुख है।

बाल साहित्य में प्रकृति चित्रण, सूरज, चांद, तारें, महापुरुषों के व्यक्तित्व, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, कंप्यूटर, मोबाइल, टेलीफोन पुस्तक आदि मुख्य विषय वस्तु है जिनके माध्यम से बाल साहित्यकार बच्चों को प्रेरणा देते हैं उनके व्यक्तित्व का निर्माण करने की कोशिश करते हैं समाज संस्कार संस्कृति धर्म आदि की जानकारी देते हैं। बाल साहित्य बच्चों में सकारात्मक सोच देती है उत्साह उमंग भरती है। उसका क्षेत्र भी व्यापक है।

बच्चों को अपने पालतू जानवर, आंगन के पेड़-पौधे, पशु पक्षी से बहुत लगाव होता है। वह कभी उन्हें चोट नहीं पहुंचाते हैं अगर कोई दूसरा भी चोट पहुंचाए उन्हें सहन नहीं होता है। उठते-बैठते, सोते-जागते, हमेशा वे उन्हीं के बारे में सोचते रहते हैं। आलोक शर्मा जी के उपन्यास भी कुछ ऐसे ही संदर्भो से जुड़े हुए हैं। इस अध्याय में आलोक शर्मा जी के बाल एवं लघु उपन्यासों का अध्ययन किया गया है। उनकी 'रानी' रचना पालतू जानवर पर आधारित है। मूक प्राणी की वेदना, भावनाएं, खुशी, हरकतें, उनसे उनका लगाव आदि पर उन्होंने प्रकाश डाला है। 'एक वृक्ष की आत्मकथा' उपन्यास में लेखक ने बच्चों को पेड़ की महत्ता, लाभ और स्वार्थी मनुष्य के अमानवीयता का चित्रण किया है। वही 'स्पीड' उपन्यास में आपने प्रतियोगिता की पूर्व तैयारियां, घर के लोगों का साथ, उत्साह, उमंग, कठिनाईयां, संघर्ष आदि की जानकारी दी है।

'रानी' उपन्यास 2001 में प्रकाशित हुई है। यह एक लघु उपन्यास है। इसमे लेखक ने अपने पालतू कुत्ता मिन्टु और कुतिया रानी के बारे मे लिखा है। उपन्यास की भूमिका में लेखक लिखते हैं-

"यह एक छोटी सी मगर सच्ची कहानी है उस बेजुबान, मासूम और सफेद बालों वाली भोली सी कुतिया (रानी) की जिसकी असमय ही मृत्यु हो गई। अभी से लगभग तीन घण्टे पहले ही मैं ने स्वयं अपने बगीचे में गड्ढा खोद कर उसे आहिस्ते से लिटाया, इतने आहिस्ते से कि उसे जरा भी तकलीफ न हो, उसके सख्त हो गये पैरों को मैंने थोड़ा सा मोड़ा ताकि वह उस गड्ढे में आसानी से आ जाये। जानते हैं? उसके पैर आराम से मुड़ गये, वह मर कर भी मेरे लिये समर्पित रही, मुझे प्यार करती रही। हे ईश्वर! अगर तुम विश्वास कर सको तो करना, मैं ऐसे प्रेम के लिये तुम्हारे साम्राज्य को भी ठुकरा सकता हूँ।"[1]

आज के आधुनिक युग में कुत्ता पालना एक शौक हो गया है। एक समय था सिर्फ बड़े-बड़े अमीरों के घर में कुत्ते होते थे पर आज सबके घर में एक कुत्ता जरूर होता है। वह मात्र कुत्ता नहीं उस घर का सदस्य होता है। कोई बाहर वाले उसे बुरा भला कहे तो घर का मालिक गुस्सा करता है। उसके खिलाफ एक शब्द भी वह बर्दाश्त नहीं करता। आजकल तो कुत्तों के लिए कपड़े, मोजे, गद्दा भी मिल रहे हैं। उनका जन्मदिन भी मनाया जा रहा है। वफादारी का दूसरा नाम कुत्ता है। आज कुछ युवा वर्ग कुत्तों का बिजनेस कर रहे हैं। कुत्तों के लिए प्रतियोगिता का आयोजन किया जा रहा है।

रानी उपन्यास में कुल बारह किस्से हैं जो मिंटू और रानी से जुड़े हुए हैं। पहला किस्सा है मिंटू का प्रवेश। इसमे मिन्टु का प्रवेश उनके घर में कब हुआ, नामकरण आदि की जानकारी है। लेखक अपने छोटे बेटे के लिए एक खास खिलौना लाकर देना चाहते थे वह 12वीं कक्षा में पढ़ रहा था। अब उसे चाबी वाले खिलौना देना उन्हें अच्छा नहीं लग रहा था इसलिए सीधा जाकर उन्होंने एक कुत्ते को खरीद लिया। जैसे ही वह घर आया पहले उसके रहने के लिए एक जगह तय की जाती है फिर उसके खाने का इंतजाम किया जाता है इन सभी कार्यों में लेखक के साथ-साथ उनके परिवार वाले भी व्यस्त हो जाते हैं। वह उनके घर में एक ऐसा सदस्य बन जाता है जिसका उसके साथ कोई खून का रिश्ता नहीं था। जगह के बाद नाम के बारे में सोचने लगते हैं और जानी, पीटर, कई नाम सोचकर अंत में मिन्टु रखा जाता है।

दूसरा किस्सा है 'मिंटू का बड़ा होना' इसमें मिंटू की शरारते और उसके बाल, आंखें आदि का वर्णन किया है। एक बार तो मिंटू एक चूहे के पीछे ऐसे पड़ता है कि अंत में एक संकरी में वह फंस जाता है। लेखक उसे के दुम पकड़कर निकालते हैं तो वह बहुत गुस्से से उन्हें देखता है। लेखक को समझ में नहीं आता कि उसे किस बात का गुस्सा है चूहा हाथ में नहीं आया या लेखक ने उसे दुम पकड़कर खींचा। लेखक यह भी लिखते हैं कि सर्दियों के मौसम में उन्होंने मिन्टु के लिए कोट बनवाया था जिसे पहनकर वह बहुत शानदार लग रहा था। क्योंकि मिन्टु अब बहुत बड़ा हो रहा था सभी को पहचान रहा था। लेखक जैसे ही घर लौटते थे वह उनकी गाड़ी की आवाज पहचान कर दरवाजे के सामने खड़ा हो जाता था। घर के अंदर आते ही दोनों पैरों पर खड़े हो जाता था उन्हें प्यार करता था। लेखक ने मिन्टु के प्रेम, विश्वास का अद्‌भुत वर्णन किया है।

मिंटू के कारनामे किस-किस से मिले खत में मिंटू का दूसरे कुत्तों के साथ झगड़ा करना और कार में से कूदना आदि घटनाओं को चित्रित किया है। लेखक अपने परिवार के साथ जब भी बाहर जाते थे तो मिन्टु को भी कार में ले जाते थे। एक बार तो वह कार से कूदकर ट्रैक्टर पर छलांग मारा था जिससे उसे चोट भी आ गई थी फिर लेखक उसे डॉक्टर के पास ले गए मरहम पट्टी करवाया और घर ले आए थे।

चौथा किस्सा है 'रानी की खोज' क्योंकि मिंटू घर में अकेला हो गया था उसके लिए एक साथी की जरूरत है घरवालों के मना करने पर भी लेखक एक कुत्तिया को घर ले आते हैं और उसका नाम रखते हैं रानी। मिंटू और रानी दोनों एक दूसरे को पसंद करने लगते हैं और दोनों में बहुत अच्छी दोस्ती भी हो जाती है।

पांचवा किस्सा है 'रानी के नखरे' लेखक लिखते हैं रानी अपना खाना खुद खाती थी पर मिन्टु नहीं खाता था पर धीरे-धीरे हुआ यूं की रानी भी मिन्टु का देख कर खुद खाना छोड दिया। मिन्टु को दूध पसंद नहीं था और रानी को दूध पंसद थी। मिन्टु लेखक के साथ उनकी रजाई में सो जाता था पर रानी थोड़ी देर सो कर वहाँ से चली जाती थी। सुबह जल्दी उठकर वह मिन्टु को आवाज देती थी।

'रानी के करतब' में लेखक ने रानी किस तरह दूसरे कुत्तों पर भौंकती थी और काली बिल्ली को किस तरह भगा दिया था, उसकी थूथनी किस तरह लोहे की पट्टियों में फस गया था आदि घटनाओं को चित्रित किया है।

अगले दो किस्सो में 'रानी का पहली बार मां बनना और उसके 'बच्चों की मृत्यु' का जिक्र लेखक ने किया है। अपने बच्चों के मरने के दो-तीन दिन बाद तक रानी बेहद परेशान रही, उन्हें हर जगह ढूंढती रही लेखक उसके दुख में उसका साथ दिया।

रानी का प्रेम किसके में लेखक रानी और मिंटू के बेमिसाल प्रेम का चित्रण किया है। लेखक दोनों को गोद में लेकर घूमते थे। शर्मा जी लिखते हैं दोनों उनके अनमोल जमा पूंजी थे। भगवान ने रानी को उनसे छीन लिया था पर रानी की आंखों में बसी वह खुशी आज भी उनके लिए जमा पूंजी है।

रानी फिर मां बनती है तब भी उसके चारों बच्चे मर जाते हैं किससे रानी बहुत दुखी हो चुकी थी दूध पीना बंद कर दिया था। रानी का आखिरी सफर मे लेखक लिखते हैं-

"रानी के दिल पर क्या बीत रही होगी इस बात को या तो रानी ही जानती होगी या फिर ईश्वर। मैं चाहकर भी रानी की मदद नह रहा था। रानी अब दुबली हो चली थी उसकी आंखों में उदासी की गहराने लगी थी और आँसू हर समय बहते रहते थे। खाने पीने क रानी ने देखना ही छोड़ दिया था, बस कभी-कभी वह थोड़ासा थी, लेकिन पानी पीते ही उसे उल्टी हो जाती थी ।"[2] रानी को अस्पताल में दिखाते हैं इंजेक्शन, ग्लुकोज लगवाते है। फिर भी उसे बचा नहीं पाते।

इस प्रकार लेखक ने इस उपन्यास में एक मूक जानवर की भावनाओं को, प्रेम, विश्वास को अपने शब्दों के सहारे व्यक्त किया है। यह मात्र एक मिन्टु या एक रानी की कहानी नहीं है हर एक के घर में एक मिन्टु एक रानी है उन सब की कहानी लेखक की जुबानी है।

आलोक शर्मा जी की दूसरी रचना है 'एक वृक्ष की आत्मकथा' वृक्ष से हमें बहुत कुछ मिलता है ऑक्सीजन, धूप में छांव, बारिश मे छाता, पशु पक्षियों के लिए घर, घोसला बनाने में सहायक होता है। बीज, फूल, फल जड़ों से लेकर पत्ते, डाली उसका रोम रोम मनुष्य के लिए सहायक है। पर दुख की बात यह है कि मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए उनका नाश कर रहा है। प्रस्तुत बाल उपन्यास में लेखक ने बीज से लेकर पेड़ बनने तक की एक वृक्ष की संघर्ष

की कहानी को अभिव्यक्त किया है। कुल सोलह शीर्षकों से वृक्ष की आत्मकथा को चित्रित किया गया है। शुरुआत बीज के संघर्ष से होती है। एक छोटा सा बीज जिसके अंदर फल है और एक बड़ा वृक्ष भी है। बीज के लिए वृक्ष ही माता और पिता है। वृक्ष ने एक कसम खाई है कि वह धरती की रक्षा करेगा मानवता और पर्यावरण की रक्षा करेगा। कभी-कभी तेज आंधी तूफान से बीज अपने वृक्ष से अलग होता है और अपने माता-पिता की गोद से निकलकर अनजानी दिशा में उड़ जाता है। जब उसे होश में आता है उसके साथ कोई नहीं थे न भाई न बहन बस चारों और हरी घास थी। उसे डर था कहीं कोई जंगली जानवर उसे कुचल न दे। पर भैंस के गोबर के कारण वह जमीन के अंदर चला जाता है। शायद धरती मां ने उसकी परेशानी को समझ ली थी वहां उसे अपनी गोद में सुला लेती है बीज चौन की नींद सो जाता है।

कई दिनों के बाद भी मां के गर्भ से धीरे-धीरे बढ़ता जाता है उसका शरीर सख्त होता है। कई संघर्षों के कारण उसका बदन फौलाद और कठोर हो जाता है। कहीं कीड़ों ने उस पर हमला कर दिया था फिर भी धरती मां ने उसकी रक्षा की थी। जब बारिश हुई तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और जी भर के पानी पिया। तेज हवा, धूप, बारिश हमेशा उसकी परीक्षा लेते थे। पर वह हर परीक्षा में पास हो रहा था हर इम्तिहान के साथ उसकी ताकत और विश्वास दोनों बढ़ रहे थे। वह कहता है- एक दिन जब अपने भोजन के लिये मैंने अपनी छोटी-छोटी आंखो से सूर्य भगवान की ओर देखा तो पाया कि उनकी दहकती हुई आंखो में मेरे लिये ममता और प्यार छलक रहा था। वे मेरी विजय से प्रसन्न थे और मुझे शाबासी दे रहे थे। सूर्य भगवान इसीलिये प्रसन्न थे क्योंकि इस धरती और मानवता की रक्षा के लिये मैं एक वृक्ष के रूप में जन्म ले चुका था, मेरी अभी तक की यात्रा सफल रही थी।"[3] वैसे तो हर जानवर हर पेड़ पौधों के पत्ते नहीं खाते। फिर भी हमेशा यह कोशिश रहती है हमारी कि जानवरों से पेड़ के पत्तों को फूलों को बचाए। फिर भी कभी-कभी बकरी, गाय, बैल, भैंस कई अन्य जानवरों से पेड़ घायल होता है। तब उसे भी दर्द होती है, वह रोती है। उनका मुकाबला भी करती है फिर भी हिम्मत नहीं हारती है। एक बार वह वृक्ष सांड से नाश होने वाला था पर एक छोटे से पौधे के कारण वह बच जाता है।

आंधी तूफान सूरज जानवरों से तो अपने आपको बता चुका था पर अब उसे इंसानों से खतरा हो रही थी क्योंकि स्वार्थी इंसान अपने लिए कभी भी उसे काट सकता था कभी फर्नीचर के लिए कभी अपने शौक के लिए कभी पैसों के लिए। कभी-कभी इंसान अपने जानवरों के पेट भरने के लिए भी वृक्ष के पत्तों को काटता है तब उसे बहुत दर्द होता है वह रोता है चिल्लाता है पर इंसान सुनता ही नहीं है। जहां वृक्ष था वहां रामू नामक लड़का आता था एक बार उसी ने दूसरे बच्चों से उसे बचाया था तब से उसका दोस्त बन गया था। वृक्ष अपने जीवन के मकसद के बारे में कहता है-

> *"रामु ने एक दिन मुझसे पूछा कि मेरे जीवन का मकसद क्या है? और तब मैंने अपनी शाखाओं को हवा में लहराते हुए रामु को जवाब दिया कि मेरे जीवन का मकसद अपने माता-पिता के सपने को पूरा करना है। मुझे एक बहुत बड़ा दरख्त बनना है और जहरीली कार्बन डायऑक्साइड गैस को ऑक्सीजन में बदलना है। मैं इतनी ज्यादा ऑक्सीजन गैस (प्राणवायु) बनाना चाहता हूं कि उससे सैकड़ों इंसान जीवित रह सकें। मुझे एक विशाल और ऊँचा दरख्त बनना है, आंधियों को हराना है उन आंधियों को जिन्होंने मुझे बचपन में ही मेरे माता पिता से अलग कर दिया था। मुझे बादलों को रोकना है, ताकि बारिश हो सके और बारिश से इन्सानों को पीने का पानी मिल सके, जमीन को पानी मिल सके ताकि इन्सान खेती कर सके और अपना पेट भर सकें।"*[4]

वैसे तो पेड़ के नीचे सबका जीवन होता है। बहुत से यादें होते हैं। विशेषकर बच्चे पेड़ के नीचे गोटियां खेलते हैं, दूसरे खेल भी खेलते हैं, कहानी सुनते हैं। वृक्ष का भी अपना लक्ष्य था कि वह आकाश में दूर तक जाएं और अपने आपको इतना विस्तृत कर देना चाहता था कि प्रकृति भी उस पर गर्व करें। एक बार जब नदी में बाढ़ आती है तो रामू उसी वृक्ष के ऊपर चढ़कर बैठ जाता है तब वह उससे घंटों तक बातें करता था यहां वृक्ष के साथ-साथ एक गरीब लड़के की कहानी को भी चित्रित किया गया है। रामू के पिता किसान थे, अपने बेटे रामू को पढ़ा लिखा कर अच्छा इंसान बनाना चाहते थे। वह जानवरों को चराता था, खेत में हल्का सा काम करता था, बाकी समय पढ़ाई में बिताता था, रामू नेक और होशियार था। वृक्ष रामू के लिए प्रार्थना करता है कि उसे कामयाबी दे, राजू जैसे इंसानों कि आज धरती को बहुत जरूरत है।

वृक्ष के शाखाओं में कई पक्षियों ने अपने घोसले बना रखे थे, कई तरह के छोटे बड़े पक्षी, रंग-बिरंगे पक्षी उसके ऊपर बसेरा करते थे। एक बार एक साथ घोंसले के पक्षियों को खाने के लिए आता है। तब वृक्ष उनकी रक्षा करने की बहुत कोशिश करता है। वह अपने शाखा उनको पत्तों को जोर-जोर से हिलाने लगता है। उसके साथ एक कांटे का भी वृक्ष था वह भी सांप को मारने की रोकने की बहुत कोशिश करता है तभी वृक्ष सबको कांटे के वृक्ष पर फेंक देता है जिससे कांटे सांप को छूने लगते हैं और सांप वहां से भाग जाता है पक्षियों के बच्चे बज जाते हैं। इस प्रकार वृक्ष की पक्षियों के साथ भी दोस्ती हो जाती है। आत्मकथा से बच्चों को यह सीख मिलती है कि हमेशा हमें दूसरों की सहायता करनी चाहिए आसरा बननी चाहिए। मात्र वृक्ष पक्षियों का सहारा नहीं बनता बल्कि पक्ष या भी उसकी ख्याल रखना शुरु करते हैं।

इसी बीच रामू प्रतियोगी परीक्षा के लिए बाहर चला जाता है। एक बार कुछ चोर पेड़ के नीचे बैठकर गांव में किस तरह डाका डाले इसकी योजना बनाते हैं जब वृक्ष को यह जानकारी मिलती है तो उसे कैसे रोके सोचने लगता है। सोचता है कि मैं पैदा होते ही मरने तक इंसानों के लिए क्या-क्या अच्छा करूं, कर सकता हूं सोचता रहता हूं पर यह इंसान है कि हमेशा कब्जा करना, चोरी करना, झूठ बोलना यही करते रहते हैं।

आत्मकथा में वृद्धि की साथ साथ इंसानों के गलत विचार गलत काम पर व्यंग्य किया गया है कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो वृक्ष नीचे बैठकर उसे एक धार्मिक वृक्ष बनाने की योजना करते हैं और धंधा करने की बात सोचते हैं तब वृक्ष सोचता है कितने नालायक है ये लोग। कहते तो अपने आप को गुरु और शिष्य हैं पर काम इनका छोटा है। इस प्रकार पूरे उपन्यास में वृक्ष का परोपकार ही जीवन और मनुष्य के स्वार्थपरता पर प्रकाश डाला गया है। वृक्ष बोल नहीं सकता, सोच नहीं सकता पर मनुष्य के पास दिमाग है, आंखें हैं काम है फिर भी वह अकल से अंधा हो गया है, स्वार्थी हो गया है। उसे अपनेअलावा कुछ दिखाई नहीं देता। शायद इसलिए आज स्वच्छता अभियान पेड़ बचाओ जैसे आंदोलन हो रहे हैं।

'स्पीड' यह लेखक के जीवन में घटित सत्य घटना पर आधारित लघु उपन्यास है। 2005 में यह प्रकाशित हुई। लेखक ने इसमें एयरटेल चौलेंज कार रैली 2005 के नाम से हिंदुस्तान में हुई एक रैली की बारे में बताया है। इसमें लेखक और उनके बेटे ने भाग लिया था। उपन्यास के प्रारंभिक अंक में आपने रैली

का संपूर्ण परिचय साथ ही अपने परिवार का भी पूरा परिचय दिया है। किस तरह उनके बेटे ने प्रतियोगिता की जानकारी ली और उनसे अनुमति मांगी। उनके पूरे परिवार को जोड़कर रखने में उनकी पत्नी रीता का बहुत योगदान रहा है यह भी बताना लेखक नहीं भूलते।

उनका बेटा मोनू अर्थात अनिमेश इंजीनियरिंग ब्रांच से बीई की उपाधि प्राप्त की है। पढ़ाई में बहुत होशियार है उसे विदेश जाने का अवसर भी मिला था पर सब कुछ छोड़ कर उसने गांव में रहकर खेती करना पसंद किया। प्रतियोगिता में के पहले चरण मे ही मोनू की सिलेक्शन हो गई थी। प्रतियोगिता के लिए जो भी पेपर्स चाहिए वह सब वे बहुत कठिनाइयों से तैयार कर लेते हैं। कार की प्रारंभिक जांच सर्विस सब करा लेते हैं।

लेखक ने इस रैली का महत्व भी उपन्यास में बताया है। प्रतियोगिता के माध्यम से हिंदुस्तान की चारों दिशाओं को एक सूत्र में बांधने का भी सार्थक प्रयास हो रहा था। खेल का पहला दिन बहुत ही अच्छा गुजरा था मोनू अपना फोन स्विच ऑफ रखता था पहले दिन ही उन्होंने खेल सीख लिया था। कब कौन सा शहर आता है, कौन सा निकल चुका है यह पता नहीं रहता था। बस किसी मशीन की तरह मोनू कार चलाता रहता था। लेखक उसे ट्यूलिप चार्ट देखकर विभिन्न पहचानों उपन्यास में लेखक ने और समय के बारे में बताते थे।

प्रतियोगिता कहां से कहां तक था, वे कब कहां थे, पहले दिन, दूसरे दिन कहां पहुंचे, पर किलोमीटर कितनी स्पीड पर गाड़ी थी, आधी सभी की जानकारी विस्तार से दिया है – "जयपुर से दिल्ली... यह हिन्दुस्तान की सबसे विशाल राष्ट्रीय स्तर की कार रैली का अन्तिम सफर था। जयपुर से दिल्ली की दूरी २७४.२ किलोमीटर थी और इस दूरी को कुल ३६८ मिनट में पूरा किया जाना था। एवरेज स्पीड २२.५० किलोमीटर प्रति घंटे से लेकर ७६.८० किलोमीटर प्रति घंटे तक थी। इस चरण को कुल २१ जोन्स में बांटा गया था, जिसमें फ्री जोन्स की संख्या ८ थी। पूरा रास्ता लगभग फोरलेन हाईवे था और हमारे देश में अब अच्छी सड़कें बन चुकी हैं, इस बात की उद्घोषणा करता था। वह १४ मई २००५ थी- कार रैली का पाचवा और अन्तिम दिन था।"[5]

अंत में लेखक यह भी कहते हैं कि इस प्रतियोगिता का परिणाम आज तक घोषित नहीं किया गया और समापन समारोह अभी नहीं हुआ। प्रतियोगिता जिन्होंने आयोजित की थी उनका आयोजन कैसा था, किस तरह की व्यवस्था की गई थी ,कार चलाते समय उनके बेटे की मानसिक स्थिति कैसी थी, किन किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा सभी की जानकारी उपन्यास दी गई है।

कुल मिलाकर इस उपन्यास से बच्चों को किसी भी प्रतियोगिता के लिए पूर्व तैयारी कैसी होनी चाहिए और मानसिक रूप से शारीरिक रूप से अपने आप को कैसे तरह तैयार कर लेनी चाहिए इसकी जानकारी दी है। यहां तक कि अभिभावकों के लिए भी यह एक उत्तम कृति है। उन्हें अपने बच्चों को किस तरह प्रेरणा देनी चाहिए उनकी हिम्मत बढ़ानी चाहिए यह जानकारी प्राप्त होती है।

कुल मिलाकर आपके उपन्यासों में धैर्य, विश्वास, त्याग, एकता, मानवीय मूल्य, नैतिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, पशु पक्षी, प्रकृति का संरक्षण, प्रतियोगिता की पूर्व तैयारी, परिवार का महत्व, व्यक्तित्व निर्माण में सहायक गुण स्वभाव, प्रेम, विश्वास, मित्रता, वृक्ष की महत्ता, संवेदना सब कुछ देखने पढने को मिलता है।

संदर्भ संकेत :

1 रानी, आलोक शर्मा, पृष्ठ संख्या 28
2 रानी, आलोक शर्मा, पृष्ठ संख्या 28
3 एक वृक्ष की आत्मकथा, आलोक शर्मा, पृष्ठ संख्या 9
4 वही 15
5 स्पीड, पृ सं 41

संदर्भ ग्रंथ :

1 रानी – आलोक शर्मा, संध्या प्रकाशन इंदौर 2001
2 एक वृक्ष की आत्मकथा, आलोक शर्मा संध्या प्रकाशन इंदौर 2002
3 स्पीड आलोक शर्मा संध्या प्रकाशन इंदौर 2005
4 बाल साहित्य सृजन के आयाम- आचार्य नीरज शास्त्री 2019 जवाहर पुस्तकालय मथुरा
5 हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ नगेंद्र
6 हिंदी बाल साहित्य का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन – डॉ अनिता पाटील. आशा प्रकाशन कानपुर 2016

वृद्धजनों की सामाजिक प्रस्थिति

डॉ० कुमार राजीव रंजन

एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, श्री चित्रगुप्त महाविद्यालय, मैनपुरी

युगों-युगों से भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था में वृद्ध व्यक्तियों को समाज में उच्च प्रस्थिति प्राप्त थी। अधिक आयु प्रतिष्ठासूचक मानी जाती थी। हिन्दू संयुक्त परिवार प्रणाली उनको सामाजिक सुरक्षा प्रदान करती थी तथा उनकी पूरी देखभाल करती थी। वे परिवार के अध्यक्ष थे तथा निर्णय निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। वे परिवार के बजट पर नियन्त्रण रखते ये तथा पारिवारिक मामलों पर उनसे परामर्श किया जाता था, अपितु अन्य मामलों में भी समुदाय द्वारा उनसे परामर्श किया जाता था क्योंकि उन्हें ज्ञान, अनुभव एवं दूरदर्शिता का प्रकाश स्तम्भ समझा जाता था। परन्तु अब स्थिति में परिवर्तन आ गया है। औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं सामाजिक गतिशीलता के कारण सामाजिक मूल्यों, सामाजिक संरचना एवं अर्थव्यवस्था में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन प्रारम्भ हो गया है। निर्धनता, बेकारी एवं मूल्य वृद्धि ने परिवार के सदस्यों को वृद्धों के प्रति अपने दायित्व को पूरा करने में अयोग्य बना दिया है। पीढ़ी का फासला बढ़ता जा रहा है। युवकों का दृष्टिकोण व्यक्तिवादी बनता जा रहा है तथा वृद्धों के प्रति उनका आदर भाव कम होता जा रहा है। आर्थिक विषमताओं के कारण अनेक परिवार अपना निर्वाह अच्छी प्रकार से करने की स्थिति में नहीं है जिसका वृद्धों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा उन्हें स्वयं ही अपनी देखभाल करनी होती है।

सोनेजा एवं त्यागी (1999) ने अपने अध्ययन में पाया कि वृद्धों की रहन-सहन की दशाओं में उनकी वित्तीय प्रस्थिति में कमी के साथ गिरावट आयी है। वृद्धों का यह भी मानना था कि युवा वर्ग की अभिवृत्तियाँ उनके प्रति बदली हैं और वे परिवार में अपनी सम्मानजनक स्थिति तभी तक बनाये रख सकते हैं जब तक परिवार में उनका हस्तक्षेप कम हो। क्लार्क एवं उगावार (1996) का निष्कर्ष है कि वृद्धजन सेवानिवृत्ति की अवस्था में अपनी आर्थिक दशा को लेकर चिन्तित थे। इलांगो एवं 'शीला' (1996) ने वृद्ध आश्रम में रह रहे वृद्धों के मनो-सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में पाया कि लगभग आधे वृद्ध अपने को उपेक्षित महसूस करते हैं। इन वृद्धों के वृद्ध आश्रम में आश्रय लेने का कारण उनकी निम्न आर्थिक दशा, बच्चों के द्वारा उपेक्षा, बच्चों का न होना, परिवार में संघर्ष एवं तनाव, गम्भीर अस्वस्थता आदि थे। त्रिपाठी (2002) के अध्ययन में सम्मिलित वृद्धों में से मात्र एक चौथाई लोग ही अकेले या अपने जीवनसाथी के साथ रह रहे थे, शेष अपने पुत्र या पौत्र के परिवार में इसी तरह सिंह (1999) का निष्कर्ष है कि परिवार की विपरीत परिस्थितियों के बाद भी वृद्ध परिवार में ही रहना चाहते हैं और बढ़ती आयु के साथ उनकी स्वास्थ्य समस्याएँ भी बढ़ी हैं जो उनकी सामाजिक एवं धार्मिक सहभागिता में बाधा उत्पन्न करती हैं। सिन्हा (1998) के अध्ययन में सम्मिलित सभी वृद्ध जीर्ण रोग, रक्तचाप, पीलिया, डायबिटीज, गुर्दे की समस्या, अस्थमा आदि किसी न किसी रोग से पीडिघ्त थे। जिरोवेक एवं एरिका (1995) ने अत्यन्त वृद्ध महिलाओं की राजनैतिक सहभागिता पर अध्ययन किया और यह पाया कि इन वृद्ध महिलाओं में राजनैतिक सहभागिता के क्षेत्र में बहुत कमी आयी है, और एक प्रकार से ये महिलायें शक्ति संरचना की प्रक्रिया से बाहर कर दी गयी है। मुचलर एवं बुलर्स (1994) ने जीवन के अन्तिम वर्षों में औपचारिक सेवा पर आधारित अपने अध्ययन में यह दर्शाया है कि विवाहित महिलाओं में औपचारिक सेवाएं लेने की सम्भावना विवाहित पुरुषों की तुलना में अधिक होती है। परन्तु ऐसा अविवाहित प्रस्थिति के वृद्धों में नहीं पाया गया। सिंह (2000) ने वृद्ध आश्रम से सम्बन्धित अपने अध्ययन में यह पाया कि काशी के वृद्ध आश्रम वृद्धों की देखरेख एवं सेवा में सकारात्मक भूमिका निभाते हैं और इन आश्रमों का धार्मिक-सांस्कृतिक वातावरण वृद्धों को अपने परिवार आवास एवं प्राथमिक सम्बन्धों की कमी का आभास नहीं होने देता।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आज के बदलते परिवेश में वृद्धों को अनेक पारिवारिक, सामाजिक, अति मनोवैज्ञानिक एवं भावनात्मक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। परिणामस्वरूप वृद्धावस्था एक सामाजिक समस्या बनती जा रही है। आज वृद्धों की समस्या पर अध्ययन की आवश्यकता उभर कर सामने आ रही है। इस पर कम अनुसंधानिक कार्य हुए हैं और वृद्धावस्था के बहुत सारे पक्ष अभी भी अन्वेषित नहीं किये गये हैं। प्रस्तुत अध्ययन इन्हीं समस्याओं को दृष्टिगत रखते किया गया है।

शोध प्रारूप

प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि पारिवारिक एवं सामाजिक आयाम से सम्बन्धित तथ्य वृद्ध व्यक्तियों के मनोवृत्तियों, दृष्टिकोण तथा उनके जीवन की दशा आदि को किस सीमा तक प्रभावित करते हैं। इस हेतु अध्ययन में समग्र के रूप में वाराणसी नगर के सेवानिवृत्त कर्मचारियों को लिया गया और इस समग्र में से 250 व्यक्तियों का चयन उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्शन प्रणाली के आधार पर किया गया। अध्ययन विवरणात्मक एवं गवेषणात्मक है। संकलन अनुसूची के माध्यम से साक्षात्कार प्रविधि द्वारा किया गया। तत्पश्चात् तथ्यों को वर्गीकृत एवं सारणीबद्ध करते हुए उन्हें विश्लेषित किया गया और सामान्य निष्कर्ष प्रतिपादित किये गये।

उपलब्धियाँ

अध्ययन में सम्मिलित उत्तरदाताओं की आयु 60 से 80 वर्ष के मध्य है। इनमें सभी जातियों के हिन्दू धर्मावलम्बी है। अधिकांश उत्तरदाता विवाहित एवं समृद्ध शैक्षिक प्रस्थिति धारक हैं। संयुक्त परिवार में रहने वाले उत्तरदाताओं की संख्या अधिक है। उनके परिवार के सदस्यों की शैक्षिक स्थिति उच्च है। यद्यपि अधिकांश परिवारों में उत्तरदाता के अतिरिक्त एक या दो अन्य उपार्जक सदस्य हैं तथापि कुछ परिवारों में आय का एकमात्र स्रोत उत्तरदाता की पेंशन राशि ही है। अध्ययन में सम्मिलित उत्तरदाताओं के परिवार की कुल मासिक आय 3001 से 27000 रुपये तक पायी गयी जिसका मध्यमान रु० 12760.50 है।

71.20 प्रतिशत उत्तरदाता अपने परिवार के स्वयं मुखिया हैं। अध्ययन में सम्मिलित वृद्ध व्यक्तियों में से अधिकांश अपने पारिवारिक वातावरण को सामान्य ही मानते हैं। उत्तरदाता अपने वैवाहिक जीवन से सन्तुष्ट हैं और यह मानते हैं कि पत्नी के उनके देखभाल करने में कोई नकारात्मक परिवर्तन नहीं आया है। परिवार के सदस्यों से सम्बन्ध के सन्दर्भ में अधिकतर वृद्ध इसे मधुर या सामान्य सम्बन्ध की संज्ञा देते हैं, साथ ही युवा सदस्यों के साथ इनका सम्बन्ध सामान्य है। परिवार के सदस्यों के साथ मनोरंजन की गतिविधियों में अधिकांशत: (68.00 प्रतिशत) कभी-कभी ही भाग लेते हैं और बढ़ती उम्र के साथ इस सहभागिता में और कमी दृष्टिगोचर होती हैं। बहुत ही कम उत्तरदाताओं के परिवार में सदस्यों के बीच पैतृक सम्पत्ति से सम्बन्धित विवाद पाया गया। केवल 38.80 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि परिवार में उनके सुझावों का पालन किया जाता है। कुछ को छोड़कर लगभग सभी उत्तरदाता घरेलू कार्यों (जैसे बच्चों देखभाल एवं उन्हें पढ़ाना, घरेलू काम-काज आदि) में सहयोग देते हैं। 84.80 प्रतिशत उत्तरदाता का कहना है कि परिवार के सदस्य उनकी देखरेख एवं सहायता करते हैं और इनमें से 56.40 प्रतिशत इस सहायता एवं स्नेह की प्रकृति व से सन्तुष्टि व्यक्त करते हैं। आयु के सन्दर्भ में अधिक आयु के उत्तरदाताओं ने परिवार द्वारा प्राप्त सहायता एवं स्नेह से अधिक असन्तुष्टि व्यक्त की है। लगभग आधे उत्तरदाता (47.60 प्रतिशत) यह अनुभव करते हैं कि वृद्धावस्था के कारण परिवार में उनके सम्मान की स्थिति में कमी आयी है। इन उत्तरदाताओं में अधिकतर उत्तरदाता अधिक उम्र के वृद्ध है। 36.40 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि वृद्धावस्था के कारण उन्हें परिवार में अकेलापन महसूस होता है। साथ ही 20:40 प्रतिशत उत्तरदाता परिवार में स्वयं को शक्तिहीन महसूस करते हैं। अधिकांश उत्तरदाता अपने सम्पूर्ण पारिवारिक जीवन से सामान्य रूप से सन्तुष्ट हैं। परिवार के अतिरिक्त उत्तरदाताओं की पड़ोसियों, रिश्तेदारों एवं मित्रों के साथ अन्त: क्रिया होती है। इनकी मित्र मण्डली में अधिकतर समान रुचि वाले, समान व्यावसायिक पृष्ठभूमि वाले या धार्मिक रुझान वाले लोग सम्मिलित हैं।

निष्कर्ष

तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि कभी सामाजिक जीवन एवं परिवारिक जीवन में उच्च प्रस्थिति रखने वाले वृद्ध व्यक्तियों की प्रस्थिति में स्पष्ट रूप से ह्रास हुआ है। आज वे अपने आपको शक्ति एवं प्राधिकार में तुलनात्मक रूप से कमजोर पाते हैं एवं पारिवारिक निर्णय निर्माण में भी उनकी भूमिका कमजोर हुई है। समकालीन भारतीय समाज संक्रमणकालीन दशा से गुजर रहा है, जिसमें युवा शक्ति, भौतिकवाद एवं उपभोक्तावाद को प्राथमिकता दी जा रही है, वृद्ध व्यक्ति परिवार में अपने आपको अलग-थलग पाते हैं जो कि न केवल उनके लिए मानसिक समस्याओं के स्रोत बनते हैं अपितु उनके जीवन से खुशी की मात्रा कम करके उनके जीवन को छोटा भी करते हैं। निश्चित रूप से आवश्यकता पारिवारिक सम्बन्धों, विशेष रूप से अन्तर्पीढ़ीय सम्बन्धों के पुनर्निर्माण की है।

सन्दर्भ

1. सोनेजा एस. एण्ड त्यागी आर.: फेमिली एण्ड एजिंग: ए स्टडी टू असेस दी काइन्ड ऑफ सपोर्ट रिक्वायर्ड बाई दी एजेड लिविंग इन फेमिलीज, रिसर्च एण्ड डेवलपमेंट जर्नल, वॉल्यूम 5, नं० 3, 1999, पेज 5-12
2. क्लार्क आर. एल. एण्ड उगावा एन., पब्लिक आटिट्यूड एण्ड कन्सर्न्स एबाउट पॉपुलेशन एजिंग इन जापान, एजिंग एण्ड सोसाइटी, वॉल्यूम 16, नं० 4 जुलाई, 1996, पेज 443-465.
3. इलांगो पी. एण्ड शीला पी. साइक सोशल प्रॉब्लम्स ऑफ इंस्टीट्यूशनलाइज्ड एजेड पर्सन्स, बोल्ड, वॉल्युम 6, नं० 3, 1996, पेज 10-19.
4. त्रिपाठी आर. एम.: सोशियो-इकोनॉमिक स्टेट्स ऑफ रूरल एजेड, ए केस स्टडी ऑफ इलाहाबाद, कुरुक्षेत्र, वॉल्युम 15, नं० 1, 2002, पेज 43-46.
5. सिंह यू.के.: पैटर्न्स ऑफ सोशल एडजस्टमेंट एण्ड इन्टरैक्शन इन ओल्ड एज, अनपब्लिश्ड पी-एच.डी. थीसिस, बी.एच.यू, वाराणसी, 1999.
6. सिन्हा एस आर.: वृद्धों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, के. के. पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1998, पृ. 67.
7. जिरोवेक आर. एल एण्ड एरिक जे.ए.: ग्रे पावर और पावर आउटेज? पॉलिटिकल पार्टिसिपेशन एमंग वेरि ओल्ड विमेन, जर्नल ऑफ विमेन एण्ड एजिंग, वॉल्युम 7. नं० 1-2, 1995, पेज 85-99.
8. मुचलर जे.ई. एण्ड बुलर्स एस.: जेन्डर डिफरेंसेस इन फॉर्मल केयर यूज इन लेटर लाइफ, रिसर्च ऑन एजिंग, वॉल्यूम 16, नं० 3, सितम्बर 1994, पेज 236-250.
9. सिंह यू. के. वॉलन्टरि एजेन्सीज एण्ड केयर ऑफ ओल्ड एजेड: ए सोशियोलॉजिकल स्टडी बेस्ड ऑन दी रिलिजियो-कल्चरल ऑर्गनाइजेशन्स फॉर ओल्ड एजेड पर्सन्स इन वाराणसी, पेपर प्रजेन्टेड इन इन्टरनेशनल सेमिनार ऑन 'एजिंग-ए चौलेन्ज इन दी न्यू मिलेनियम', बी.एच.यू., वाराणसी, 10-12 नवम्बर, 2000.

बाल्मीकि रामायण में वर्णित कर्त्तव्य की प्लेटो के न्याय की अवधारणा से तुलना

डॉ० नन्दिनी दुबे

(एसो० प्रो०) प्राचार्य व विभागाध्यक्ष (राजनीति विज्ञान), श्री अग्रसेन महाविद्यालय, मऊरानीपुर, (झाँसी) उ०प्र०

रामायणीय विचारधारा में कर्त्तव्य को जो महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है उसकी प्रतिछाया हमें यूनानी दार्शनिक प्लेटों के विचारों में दृष्टिगोचर होती है। प्लेटों के विषय में यह ज्ञात है कि वह 399 ई0 पू0 से लेकर 386 ई0 पूर्व अर्थात् बारह वर्ष तक विभिन्न देशों की यात्रा करता रहा है।[1] एक जनश्रुति के अनुसर तो इसी काल में प्लेटो ने गंगा के तटीय प्रदेशों की यात्रा की तथा विद्वानों से वेदान्त की शिक्षा भी प्राप्त की थी।[2] प्लेटों ने गंगातट पर आकर वेदान्त की शिक्षा ग्रहण की अथवा नहीं यह विवाद का विषय हो सकता है[3] किन्तु रामायणीय धर्म एवं प्लेटों के न्याय सम्बन्धी विचारों में बहुत समानता है। दोनों के विचार किसी सीमा तक अस्पष्ट हैं किन्तु दोनों ने ही नैतिकता एवं मानव प्रवृत्तियों की ध्यान में रखते हुए उन्हें एक व्यावहारिक रूप देना चाहा है।

महर्षि बाल्मीकि ने अपनी कृति में 'धर्म' को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।[4] यदि रामायण में से इसकी अवधारणा को निकाल दिया जाय तो वह कहानी मात्र रह जायेगी। रामायण की महानता उसकी कथावस्तु में नहीं अपितु उस उद्देश्य में है जिस महर्षि ने कथा के माध्यम से हमारे सम्मुख रखना चाहा।[5] राजनीतिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो महर्षि का उद्देश्य 'धर्म' पर आधारित एक आदर्श शासन एवं समाज का चित्रण करना था।[6] इसी भांति 'न्याय' की अवधारणा प्लेटों की महान कृति रिपब्लिक की आत्मा है। यदि उसमें से 'न्याय' की अवधारणा को निकाल दिया जाय तो ग्रन्थ निर्जीव हो जायेगा।[7] रिपब्लिक को लिखने में प्लेटों का उद्देश्य भी 'न्याय' के ऊपर आधारित एक आदर्श समाज का चित्र प्रस्तुत करना था।[8]

महर्षि बाल्मीकि ने 'धर्म' शब्द का प्रयोग उसके शाब्दिक अर्थ के अनुरूप नहीं किया है और न ही उन्होने उसे किसी एक सुनिश्चित अर्थ में प्रयुक्त किया है। कहीं पर उसका अर्थ नैतिकता प्रतीत होता है तो कहीं पर सद्गुण अथवा सधुता मालूम पड़ता है किन्तु जैसा भी स्पष्ट किया जा चुका है कि व्यवहार में धर्म का अर्थ कर्त्तव्य ही है। प्लेटों ने भी 'न्याय' शब्द का प्रयोग कानूनी अर्थ में नहीं किया है। 'न्याय' का अर्थ कहीं पर नैतिकता प्रतीत होता है तो कहीं पर साधुता। व्यावहारिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो न्याय में मनुष्य के अपने स्तर के अनुरूप सभी कर्त्तव्य निहित है।[9]

न्याय की परिभाषा करते हुए प्लेटों बताता है कि उसका सम्बन्ध केवल मनुष्य के बाह्य क्रिया-कलापों से नहीं, अपितु उसकी आत्मा से है।[10] प्लेटों के यहाँ 'न्याय' अपनी स्थिति के अनुरूप कर्त्तव्यों का पालन करना तथा दूसरों के कर्त्तव्यों में हस्तक्षेप न करने की इच्छा मात्र है। इसका आवास अपना निश्चित कर्त्तव्य करने वाले प्रत्येक नागरिक के हृदय में है।[11] बाल्मीकि के अनुसार भी 'धर्म' बहुत सूक्ष्म एवं दुर्जेय है तथा उसका ज्ञान मानव हृदय में स्थित आत्मा को ही है। इस भांति बाल्मीकीय 'धर्म' तथा प्लेटोंवादी 'न्याय' दोनों आधार सद्गुण है तथा दोनों का आवास व्यक्ति के हृदय में है।[12]

प्लेटों के यहां न्याय केवल सद्गुण ही नहीं अपितु वह गुण भी है जो व्यक्तियों में आत्म नियन्त्रण की भावना उत्पन्न करके इन्हें सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने की क्षमता प्रदान करता है।[13] इस प्रकार न्याय एकता और सामंजस्य का सिद्धान्त है जिसके अभाव में समाज में एकता की कल्पना नहीं की जा सकती है।[14] वाल्मीकी के यहां 'धर्म' मानव आत्मा का गुण जो उननें आत्म नियंत्रण की भावना उत्पन्न करता है और यह बताता है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति का एक निर्दिष्ट स्थान है जिसके अनुरूप उसे कार्य करना चाहिए।[15] इस प्रकार वाल्मीकी के अनुसार भी समाज में एकता एवं सामंजस्य बनाये रखने के लिए धर्म की भावना अनिवार्य है।

प्लेटों न्याय की स्थापना के लिए कार्य विशेषीकरण एवं श्रम विभाजन पर बल देता है। उसके अनुसार 'एक मनुष्य की एक ही कार्य करना चाहिए, वह कार्य जो उसकी प्रकृति के सबसे अनुकूल हो[16], तभी समाज में एकता स्थापित होगी। प्लेटों का विचार था कि यदि विभिन्न वर्ग स्वंय को अपने कार्य तक ही सीमित रखें तो पारस्परिक संघर्ष नहीं होगा।[17] रामायणीय वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था के मूल में भी कार्य विशेषीकरण का ही सिद्धान्त था। प्रत्येक वर्ण का अपना-अपना वर्ण धर्म था और साधारणतया एक वर्ण के व्यक्ति से उस वर्ण के लिए निर्दिष्ट कार्यो के लिए जाने की अपेक्षा की जाती थी। रामायण के अनुसार तो समाज का आधार ही चातुवर्ण्य व्यवस्था थी। इस प्रकार दोनों ही अपने-अपने ढंग से कार्य विशेषीकरण द्वारा समाज में एकता और समन्वय स्थापित करना चाहते थे प्लेटों यह मानता है कि अपना विकास करके व्यक्ति उच्च वर्ग से पहुंच सकता है।[18] इसी भांति रामायण में भी विशेष परिस्थितियों में व्यक्तियों के वर्ण परिर्वतन का उल्लेख मिलता है।[19]

विवेचन से यह स्पष्ट है कि वाल्मीकीय 'धर्म' की अवधारणा एवं सिद्धान्त तथा प्लेटों का न्याय का सिद्धान्त एक-दूसरे के बहुत निकट है। वास्तव में दोनों के मूल में एक ही विचारधारा प्रवाहित होती प्रतीत होती है। दोनों का उद्देश्य भी लगभग एक ही है। वाल्मीकी के यहां व्यक्ति के नैतिक उत्थान के लिए तथा समाज में शांति एवं व्यवस्था बनाये रखने के लिए एक अनिवार्य था कि सभी लोग अपने-अपने 'धर्म' को समझे और उनके अनुसार कार्य करें। प्लेटो के यहां भी समाज में शांति और व्यवस्था बनाये रखने के लिए अनिवार्य था कि सभी व्यक्ति समाज में अपने स्तर के अनुरूप अपना-अपना कार्य करें

और किसी दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप ने करें। यदि वाल्मीकि के अनुसार नैतिक एवं सामाजिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए धर्म अनिवार्य था तो प्लेटो के लिए न्याय की भावना।

किन्तु इन समानताओं का अर्थ यह नहीं है कि वाल्मीकीय 'धर्म' एवं प्लेटोंवादी 'न्याय' एक है। दोनों में कुछ महत्त्वपूर्ण अन्तर भी दृष्टिगोचर होते है। धर्मशास्त्रों के अनुसार 'धर्म' शब्द का विकास वैदिक शब्द 'ऋत' से हुआ है। प्रारम्भ में इस शब्द का प्रयोग भौतिक नियमों के संदर्भ में किया जाता था। बाद में इसी 'ऋतु' शब्द के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त किये जाने वाले शब्द 'धर्म' के अन्तर्गत भौथ्त आधिभौतिक एवं जीवधारी सभी को सम्मिलित किया जाने लगा। इस प्रकार 'धर्म' का अर्थ एवं क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। वाल्मीकीय 'धर्म' की तुलना में प्लेटों के 'न्याय' का अर्थ बहुत ही सीमित है। प्लेटों इसका प्रयोग केवल मनुष्य और विशेषकर सामाजिक मनुष्य के संदर्भ में ही करता है। प्लेटों यहां न्याय यह है कि प्रत्येक मनुष्य उन कार्यो को पूरा करे जिनकी सामाजिक प्रयोजनों के अनुसार उससे आशा की जाती है। न्याय का अर्थ यही है न इससे कम न इससे ज्यादा।[20]

वाल्मीकि ने 'धर्म' के सैद्धान्तिक पक्ष की अपेक्षा इसके व्यावहारिक स्वरूप पर अधिक बल दिया। उन्होने यह प्रयत्न किया कि वह प्रत्येक व्यक्ति के जन्म से मृत्यु तक के लिए यह बतावें कि किन परिस्थितियों में उसका क्या धर्म होगा इसके लिए अपने ग्रन्थ में उन्होने विभिन्न वर्णो, आश्रमों, सम्बन्धों यहां तक कि राज्य कर्मचारियों तक के धर्मो का विवेचन किया है।[21] प्लेटो ने भी अपनी पुस्तक रिपब्लिक में न्याय पर पूरा एक अध्याय लिखा और इस शब्द का पूर्णरूपेण सैद्धान्तिक विवेचना करने का प्रत्यन किया किन्तु उन्होने उसे व्यावहारिक बनाने की दिशा में कोई महत्त्वपूर्ण प्रयास किया। उन्होने यह तो बताया कि न्याय का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने स्तर के अनुरूप निर्दिष्ट कर्त्तव्यों का पालन करें। किन्तु उन्होने यह नहीं बताया कि वह कर्त्तव्य क्या होगें। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वाल्मीकि की तुलना में प्लेटों की विचारधारा सैद्धान्तिक अधिक और व्यावहारिक कम थी।

दोनों की तुलना से एक बात और भी स्पष्ट होती है कि यहां संत वाल्मीकि के दिल में मानव के प्रति प्यार था। उन्होने अपनी व्यवस्था में उसके सर्वांगीण विकास की ओर ध्यान दिया। उसके भौतिक जीवन के विकास के साथ-साथ पारलौकिक जीवन को भी ध्यान में रखा।[22] दार्शनिक प्लेटो के विचारों के मूल मानव के प्रति प्यार की भावना इतनी नहीं थी। वह तो उसके द्वारा अपने कुछ सिद्धान्तों के सम्पुष्ट करना चाहता था। वह एक ऐसे समाज का चित्र प्रस्तुत करना चाहता था जो कि उसके अनुसार आदर्श था।[23]

वाल्मीकि ने न तो कोई धर्म की नई परिभाषा दी है और नही उसका कोई नवीन प्रयोग किया है। उनकी विचारधारा वैदिक एवं धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुरूप ही थी उन्होने भारतीय दर्शन एवं परम्पराओ के विपरीत कुछ भी करने का प्रयत्न नहीं किया। उनके विपरीत प्लेटो ने अपनी न्याय की कल्पना को स्थापित करने के लिए उस समय तक यूनान में प्रचलित सभी न्याय सम्बन्धी सिद्धान्तों का खण्डन किया और एक सर्वथा नवीन कल्पना प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया।

महर्षि वाल्मीकि के 'धर्म' एवं प्लेटों के 'न्याय' सम्बन्धी विचारों के तुलनात्मक विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्लेटों की 'न्याय' की अवधारणा मूल रूप में वाल्मीकि की 'धर्म' की अवधारणा से बहुत कुछ मिलती जुलती है किन्तु प्लेटों द्वारा उसका विवेचन उतने व्यापक रूप से नहीं हो सका। इसका कारण यह हो सकता है कि प्लेटो को भारतीय दर्शन एवं विचारधाराओं का इतना ज्ञान नहीं था कि वह उसका इतना सूक्ष्म विवेचन करता। प्लेटो इस अवधारणा के सामाजिक एवं भौतिक प्रयोग से ही सन्तुष्ट हो गया। पाश्चात्य दर्शन सम्भवत: उस समय तक इतनी विकसित अवस्था में नहीं था कि वह इस विचारधारा का अधिक व्यापक प्रयोग कर सकता। यदि इस जनश्रुति में कुछ भी तथ्य है कि अपनी यात्राओं के दौरान प्लेटो गंगा तट तक आया और वहां पर उसने विद्वानों से वेदान्त की शिक्षा ग्रहण की, तो यह भी सम्भव हो सकता है कि प्लेटो ने वहां पर 'धर्म' की अवधारणा का ज्ञान प्राप्त किया और यूनान लौटकर उसने उसी विचारधारा को एक नये परिवेश तथा नवीन सन्दर्भ में प्रस्तुत किया।

'धर्म' की अवधारणा के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रामायणकालीन समाज एवं राज्य का आधार धर्म था। इतने गूढ़ दार्शनिक विचार का कितना सुन्दर एवं महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक प्रयोग रामायणीय समाज में किया गया था। इसका ज्ञान रामायणीय राजतन्त्र के अध्ययन से ही प्राप्त हो सकता है।

संदर्भ-

1. Will Durant, The Story of Philosophy, Cardinal Giant ed, New-York : Pocked Books, Inc., 1954, p. 13; See also Ernest Barker, Greek Political Theory : Plato and His Predecessors, University Paperbacks 3, Ist ed., Londont Methuen & Co. Ltd. 1960, pp. 126-127
2. Will Durant, op.cit., p. 13
3. Ibid.
4. अरण्यकाण्ड, 9, 30
5. "The Ramayana May be described as a manual of morals which, without entering into technical details, would instruct the reader in the duties of life."- The concept of Dharma in valmik Ramayan Munshi Ram Mandear Delhi, 1965
6. Justice is the hinge of Plato's thought, and the text of his discourse."- Ernest Barker, op. cit., p. 177. Greek Political theory University Paperbacks, Great Britain 1960
7. Plato, The Republic, Tr. H.D.P. Lee, England : Penguin Books Ltd, 1972 Book Four (434), p. 183
8. Ibid., Book For (443), p. 196
9. "We laid down, if you remember, and have often repeated, that in our state one man was to do one job, the job he was naturally most suited for" – Ibid. Book Four (443), p. 181
10. Its real concern it not with external actions, but with a man's inward self.- Plato, op. cit., Book Four (443), p. 196; see also, Ernest Barker, op. cit., pp. 203-204

11. किष्किन्धाकाण्ड, 18, 15
12. Ernest Barker. Op. cit., p. 207
13. Ibed., pp. 172-173
14. युद्धकाण्ड, 128, 104-105
15. "In our state one man was to do one job, the job he was naturally most suited for."-Plato, op. cit., Book Four (433), p. 181
16. Republic, Book Four (434), p. 183
17. युद्धकाण्ड, 128, 104
18. Republic, Book Four (423), p. 168
19. ब्राह्मण्यं तपसोग्रेण प्राप्तवानसि कौशिक। - बालकाण्ड, 65, 19
20. "For Justice, being seen, is nothing more and nothing less than man's performance of the part which the purposes of society demand that he shall play." – Ernest Barker, op. cit., p. 177
21. आश्रम व्यवस्था का उद्देश्य ही इहिलोक के साथ-साथ परलोक का भी सुधार करना था।- द्रष्टव्य बालकाण्ड, 42, 4
22. प्लेटो अपने दार्शनिक राजा की तुलना की उस कलाकार से करता है जो कि विचारों की अपनी तूलिका द्वारा चित्र के रूप में अंकित करता है।
23. Plato, op. cit., Book I, II & IV

सामाजिक न्याय, मानवाधिकार और पुलिस

प्रो० डॉ० उमेश कुमार

शोध निदेशक लोक प्रशासन विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

धर्मराज मिश्रा

शोध छात्र लोक प्रशासन विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

'मानवाधिकार' मनुष्य के सामाजिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। सभी व्यक्तियों को धर्म मूलवंश, जाति, लिंग, रंग तथा वर्ण के अलग होने के बावजूद समान माना गया है तथा सभी व्यक्तियों को राजनैतिक, आर्थिक सामाजिक धार्मिक एवं सांस्कृतिक अधिकार प्रदान किया गया है। इन अधिकारों को संविधान के भाग-3 में ''मूल अधिकार'' शीर्षक के अन्तर्गत रखा गया है जिसका उल्लंघन कोई भी नहीं कर सकता है। संविधान के अनु. 32 के अनुसार इन पर अतिक्रमण/उल्लंघन की स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय की शरण लेने का अधिकार है। ऐसा अधिकार (अनु. 226) में राज्य के उच्च न्यायालयों को प्रदान कर दिया गया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने 10 दिसम्बर 1948 की अपनी साधारण सभा द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा की। विश्व में मानवाधिकार के उल्लंघन को रोकने तथा उस पर कड़ी दृष्टि रखने हेतु राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन किया गया है। ऐसे संगठन Amnesty International, Asiawatch, International Commission of Civil Rights, International commission of Jurist & Human Rights Watch

आदि हैं। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का अध्यक्ष भारत का एक पूर्व न्यायाधीश, एक सदस्य (सर्वोच्च न्यायालय का वर्तमान या पूर्व न्यायाधीश) होता है दो सदस्य वे होते है जिन्हें मानवाधिकार के क्षेत्र में कार्य करने का व्यवहारिक अनुभव होगा। राष्ट्रीय महिला आयोग, अल्पसंख्यक आयोग और अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग के अध्यक्ष इस आयोग के पदेन सदस्य होते हैं। भारत में मानवाधिकार आयोग के प्रथम अध्यक्ष उच्चतम न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री रंगनाथ मिश्र रहे है।

पुलिस की कार्यप्रणाली में मानव अधिकारों के संरक्षण की दृष्टिकोण से आवश्यक परिवर्तन करने के लिए मानवाधिकार आयोग ने निम्नलिखित निर्देश दिये है:

1. मुठभेड़ (Enocounter)/Firing में मृत्यु की सूचना प्राप्त होने पर उसे तत्काल अभिलेखबद्ध किया जाय और अपराध अनुसंधान विभाग से पूरे प्रकरण की गहन विवेचना करायी जाये, जिससे यह ज्ञात हो सके कि मृत्यु न्यायसंगत थी अथवा नहीं। इस सम्बन्ध में च्वेज.डवतजमउ त्मचवतजए पंचायतनामा की प्रति सहित सूचना आयोग को प्रेषित किया जाये।
2. अभिरक्षण (Custody) में मृत्यु अथवा बलात्कार की सूचना 24 घंटे के भीतर आयोग को दी जाये। इसी तरह की स्थिति पुलिस स्टेशन से अस्पताल न्यायालय अथवा अन्यत्र ले जाते समय अपराधी की मृत्यु होने की स्थिति में भी किया जाये।
3. पुलिस अभिरक्षा में मृत्यु के मामलों में च्वेज.उवतजमउ परीक्षण की टमकपव FilmèCasset आदि को प्रत्येक दिशा में 2 माह के अन्दर माननीय आयोग को उपलब्ध करायी जाये।
4. पुलिस को भी तलाशी एवं गिरफ्तार व्यक्ति की गरिमा का आदर करते हुये, विधि एवं माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार ही करे।
5. प्रथम सूचना रिपोर्ट (FIR) तत्परता से अंकित किया जाए और विवेचना की प्रगति समय-समय पर वादी को दिया जाये जिसमें कोई यदि विलम्ब हो तो उन कारणों का उल्लेख किया जाये।
6. स्पब क्मजमबजवत परीक्षण थाने से बाहर स्वतन्त्र परिवेश में एक वकील की उपस्थिति में किया जाए जब व्यक्ति ने ऐसे परीक्षण के लिए अपनी सहमति दे दी हो, और इसे Magistrate द्वारा अभिलेखबद्ध (Record) कर दिया गया हो।
7. नियमित पुलिस-जनता गोष्ठियों के माध्यम से जनशिकायतों एवं अपराध नियंत्रण की विधियों के बारे में विचार करते हुये पुलिसजन सम्बन्धों में सुधार लाने का कार्य करना चाहिए।

8. पुलिस अभिरक्षा के लिए गए व्यक्तियों के साथ घटित होने वाले अपराधिक कृत्यों के निवारणार्थ माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह व्यवस्था दी गयी है कि उनके निर्देशों का उल्लंघन करने वाले जनसेवकों (पुलिस अधिकारियों) के विरूद्ध न केवल विभागीय कार्यवाही की जायेगी बल्कि माननीय उच्चतम न्यायालय की अवमानना के लिए भी उनके विरूद्ध कार्यवाही की जा सकती है।
9. माननीय आयोग द्वारा जाँच के निष्कर्ष एवं सम्पूर्ण परिस्थितियों पर सम्यक विचारोपरान्त प्रथम दृष्टया मानवाधिकार हनन का मामले पाये जाने पर राज्य सरकार या सम्बन्धित पदाधिकारी को कारण बताओ नोटिस जारी किया जाता है जिसमें शिकायत के संक्षिप्त विवरण व जाँच निष्कर्ष का उल्लेख करते हुये कहा जाता है कि पीड़ित के मानवाधिकार उल्लंघन को दृष्टिगत क्यों न उसे अन्तरिम राहत प्रदान किया जाये।
10. मानवाधिकार हनन/उल्लंघन प्रकरणों में दोषी पुलिसकर्मियों को जिलाकार्यकारी बल में तैनाती से उल्लंघन की गम्भीरता के अनुरूप न्यूनतम 2 वर्ष व अधिकतम 7 वर्ष के लिए प्रतिबंधित कर दिया जाये क्योंकि वरिष्ठ अधिकारियों का वह कर्त्तव्य है कि वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर प्रभाव नियंत्रण रखे।

दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 द्वारा गिरफ्तार व्यक्ति को प्रदत्त अधिकार:-

1. गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को गिरफ्तारी के आधारों और जमानत के अधिकारों की सूचना दिया जाना (धारा 50, 55, व 75, द.प्र.सं.)।
2. गिरफ्तार किये गए व्यक्ति को अनावश्क अवरोध न करना (धारा 49 द.प्र.सं.)।
3. मनमाना एवं अवैध गिरफ्तारी से सुरक्षा (धारा 50, 56 व 76 द.प्र.सं.)।
4. गिरफ्तारी पर जमानत पर रिहा होने का अधिकार (धारा 436, 437 50 (प्प) व 168 द.प्र.सं.)
5. गिरफ्तारी के समय से 24 घंटे के अंदर Magistrate के समक्ष प्रस्तुत किये जाने का अधिकार (धारा 57 द.प्र.सं.)।
6. स्वच्छ व त्वरित न्याय का अधिकार (धारा 309 द.प्र.सं.)।
7. असंज्ञेय अपराधों में बिना न्यायालय के निर्गत वारण्ट के गिरफ्तारी सम्भव न होना (धारा 155 द.प्र.सं.)।
8. गिरफ्तार व्यक्ति के प्रार्थना पर Registered चिकित्सा व्यवसायी द्वारा गिरफ्तार व्यक्ति की चिकित्सा परीक्षण कराया जाना (धारा 54 द.प्र.सं.)।
9. कुछ मामलों में अभियुक्त को राज्य के व्यय पर विधिक सहायता उपलब्ध कराया जाना (धारा 304 द.प्र.सं.)।
10. अभियुक्त के कब्जे से बरामद की गयी वस्तुओं की रसीद प्राप्त करने का अभियुक्त का अधिकार (धारा 100 (VI) व (VII) 50 द.प्र.सं.)।
11. पुलिस द्वारा 'Third Degree' का प्रयोग भी संविधान के अनुच्छेद (Article) 21 का उल्लंघन है (AIr 1981, S.c 625)।
12. पुलिस के द्वारा किया गया किसी प्रकार का उत्पीड़न, अमानवीय या अमर्यादित व्यवहार संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है (LAW Journal-743, 1997)।

कुछ समय पूर्व ही प्रकाशित एक समाचार के अनुसार आन्ध्रप्रदेश के Civil Liberty Committee ने 495 ऐसे मामलों को नयी सूची राष्ट्रीय मानवाधिकार कमीशन के समक्ष प्रस्तुत करने का निर्णय लिया था जिनमें उनके अनुसार ऐसा आरोपित है कि इन मामलों में फर्जी मुठभेड़ द्वारा उन्हें समाप्त कर दिया गया। उनके सचिव श्री के. बालगोपाल ने कहा कि उनके पास इन मामलों से सम्बन्धित काफी साक्ष्य मौजूद है। ये व्यक्ति Nexlite न होकर साधारण ग्रामवासी थे जिन्हें पुलिस बन्दीगृह में बराबर बिजली के झटके (Shock) की यातनाएँ दी गयी और उन्हें समाप्त कर दिया गया। कुछ समय पूर्व पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट ने पंजाब के बहुचर्चित 'गोदना' (Tattoo) केस में पंजाब सरकार को यह आदेश दिया था कि उन चार महिलाओं को जिनके माथे पर ''जेबकतरी'' गोदवा था उन्हें 50-50 हजार की क्षतिपूर्ति (Compensation) दिया जाये व Plastic Surgery करायी जाये। मानवाधिकार की रक्षा हेतु सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ दिन पूर्व उत्तरप्रदेश पुलिस पर कथित रूप से सर्वोच्च न्यायालय परिसर में ही एक अभियुक्त के साथ दुर्व्यवहार एवं मारपीट करने पर सजा एवं जुर्माना किया था। अपील को ठुकराते हुए माननीय न्यायाधीश ने यह घोषित किया था कि जो घटनाएँ हुई है वह कानून के अपमान एवं मानव गौरव एवं प्रतिष्ठा एवं मानवाधिकार के विरूद्ध है। आजकल सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के अनुसार इस बात पर बल दिया जा रहा है कि जिस पुलिस अधिकारी ने इस तरह के मानवाधिकार का उल्लंघन किया तो उनकी यह व्यक्तिगत दायित्व होगा कि उस पीड़ित व्यक्ति को क्षतिपूर्ति दे, जिसके ऊपर ऐसा अन्याय हुआ हो। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने पुलिसकर्मियों को निर्धन लोगों के प्रतिदिन के जीवन में बिना वजह हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति से बचने की सलाह भी दी है। ऐसा करने एवं पर्याप्त आधार के बिना उन्हें हिरासत में लेने से लोगों के मन में पुलिस के प्रति धारणा खराब होगी। आयोग ने सभी राज्यों के मुख्य सचिवों का आदेश दिया है कि हिरासत में मौत एवं बलात्कार की सूचना 24 घंटे के अन्दर उपलब्ध कराये। यदि इस बारे में समाचार-पत्र या अन्य स्त्रोतों से जानकारी मिली तो यह समझा जायेगा कि इस मामले को छिपाने का प्रयास किया गया है।

कभी-कभी तो पुलिस अधिकारी अथवा कर्मचारी बदले (Revenge) की भावना से भी अभिरक्षा (Custody) में रखे गये व्यक्ति के प्रति अमानुषिक व्यवहार करते है। कभी-कभी किसी प्रभावशाली व्यक्ति के यहाँ कोई चोरी/अपराधिक घटना हो जाने पर दबाव में आने पर शीघ्र ही अभियुक्तों एवं सम्पत्ति का पता लगाने के लिए इस तरह के अवैधानिक तरीके अपनाये जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1975 में और पुन: 1984 में यातना तथा क्रूर व्यवहार के विरोध में प्रस्ताव पास कर सभी देशों को उनके अनुरूप व्यवस्था करने के निर्देश दिये।

पुलिस के विरूद्ध मानवाधिकार के उल्लंघन की शिकायतें प्राय: मिलती रही है:

(1) अनावश्यक निरोध (Detention) एवं धन वसूली।

(2) अपराधों का पंजीकरण न करना और नागरिकों के जीवन व सम्पत्ति की सुरक्षा करने में पुलिस की सफलता।

(3) अभियुक्तों या दंगाई के विरूद्ध उचित विवेचना न करना।

(4) पुलिस द्वारा फर्जी मुठभेड़ (Encounter) में मृत्यु कारित करना।

(5) पुलिस की अभिरक्षा में पिटाई, उत्पीड़न या बलात्कार करना।

(6) गिरफ्तार किये व्यक्तियों को आधारभूत सुविधाएँ जैसे उचित सहायता, उचित भोजन, उचित शौचालय एवं पर्याप्त चिकित्सा सेवाएँ उपलब्ध न करना।

वर्ष 2000-03 तक मानवाधिकारी प्रकोष्ठ में भेजे गये प्रकरणों में, उस प्रकोष्ठ द्वारा करायी गयी जाँच में मानवाधिकार हनन की प्रमाणिक मामलों में कई वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों सहित अन्य अधिकारियों को जिनकी संख्या 314 रही, प्रथम दृष्टया दोषी पाया गया। हिरासती मौतों और फर्जी मुठभेड़ों में दोषी पुलिसकर्मियों के ऊपर धारा 302 के मुकदमें पंजीकृत किये गये और कितनो को आजीवन कारावास भी हुए। वर्ष 2003-2005 तक पुलिस हिरासत में 354 मौते हुई जो पुलिस व्यवस्था पर कलंक से कम नहीं है। पूर्व पुलिस महानिदेशक (सीमा सुरक्षा बल) श्री प्रकाश सिंह ने इस सम्बन्ध में दृढ़तापूर्वक कहा ''पुलिस की हिरासत में हुई मौते जैसी घटनाएँ साफ बताती है कि पुलिस का बर्ताब जनता के बीच बड़ा अमानवीय हो गया है। यदि पुलिस भी एक अपराधी की तरह काम करेगी तो क्या फर्क रह जायेगा, रक्षक और एक अपराधी में, हमें अपराध को खत्म करना है न कि स्वयं अपराधी बनना है।''

वर्ष 2005 के अन्तर्गत भारत में 61,560 मानवाधिकार उल्लंघन सम्बन्धी शिकायतें प्राप्त हुर्ठ, जिसमें से 18,940 विभागीय, 713 Magistrial 288 न्यायिक जाँच प्रक्रिया पूरी की गयी। सम्पूर्ण योग में से 34,590 Case असत्य व आधारहीन घोषित किये गये 9,965 Casè को इस वर्ष पंजीकृत किया गया जिसमें से 5,459 Casè को इस वर्ष पंजीकृत किया गया जिसमें से 5,459 Cases में नियमित विभागीय कार्यवाही की गयी। शेष 9,047 Casè को बिंतहमौममज लगाकर "Trail" हेतु भेजा गया।

वर्ष 2005 में जिन पुलिसकर्मियों के विरूद्ध विभागीय कार्यवाही तथा उन्हें दण्डित किया गया है:

दण्ड के स्वरूप	*संख्या*
पुलिसकर्मियों के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही	22,503
या वापस लिये या समाप्त हुए Cases	4,447
कार्यवाही पूर्ण हो जाने वाले Cases	10,939
पुलिस सेवा से पद्च्युत (Dismissed) पुलिसकर्मी	856
अधिक बड़े दण्ड पाये हुए पुलिसकर्मी	5151
छोटे दण्ड दिये गये पुलिसकर्मी	15,854
2005 में उ0प्र0 पुलिस बल की संख्या	1,53,179
मानवाधिकार के उल्लंघन सम्बन्धी शिकायतें पंजीकृत	5,284

नवम्बर 2007 में लोकसभा में चर्चा के दौरान तत्कालीन केन्द्रीय गृहमंत्री शिवराज पाटिल ने कहा कि मानवाधिकार हनन और पुलिस अत्याचार की देशभर से मिली कुल 31,096 शिकायतों में सर्वाधिक 21,899 उत्तर प्रदेश के खिलाफ है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2004-07 के अपेक्षाकृत 2008 में पुलिस हिरासत में मौतों की संख्या में 70 की बढ़ोतरी हुई है। उत्तर प्रदेश में 2005-06 के अपेक्षाकृत 2006-07 में हिरासती मौत तीन गुना बढ़ी है। वर्ष 2007-08 में उत्तरप्रदेश में हिरासती मौत 31 महाराष्ट्र में 25, और दिल्ली में 06 Record की गयी। पूरे देश के क्षितिज पर 2004-05 से लेकर 20 अप्रैल 2008 तक कुल 581 हिरासती मौते हुई हैं। केन्द्र सरकार ने हिरासती मौत के मामलों में नियंत्रण के लिए ब्च्ब् में संशोधन किया है। इससे पुलिस हिरासत में मौत, किसी व्यक्ति के लापता होने या हिरासत में महिला के साथ दुष्कर्म पर न्यायिक जाँच अनिवार्य हो गयी।

वर्ष 2008 में मानवाधिकार उल्लंघन सम्बन्धित मामले एवं परिणाम

मामले	*संख्या*
कुल प्राप्त शिकायतें (देश में)	48,939
मध्यप्रदेश पुलिस के खिलाफ प्राप्त शिकायतें	18,315
उत्तर प्रदेश पुलिस के खिलाफ प्राप्त शिकायतें	6015
दिल्ली पुलिस के खिलाफ प्राप्त शिकायतें	6031
(1) पुलिस कर्मियों के खिलाफ विभागीय जाँच गठित (दिल्ली)	539
(2) पुलिस कर्मियों के खिलाफ मामले पंजीकृत	93
(3) पुलिस कर्मियों के खिलाफ विभागीय कार्रवाई	1185
(4) पुलिस कर्मियों के खिलाफ सेवायें समाप्त (Dismissed)	87
(5) पुलिस कर्मियों के खिलाफ कठोर दण्ड दिये गये	319
(6) पुलिस कर्मियों के खिलाफ हल्की सजा दिये गये	919
(7) पूरे देश में दोषी पुलिस कर्मियों की सेवायें समाप्त	879
(8) जम्मू-कश्मीर में सर्वाधिक पुलिस कर्मियों की सेवायें समाप्त	219

संदर्भ ग्रंथ-सूची:-

1. डॉ0 अजीत कुमार सिंह: भारतीय पुलिस: ऐतिहासिक अनुशीलन, सदानीरा प्रकाशन, लखनऊ, 1993।
2. आनंद स्वरूप गुप्त: ''दि पुलिस इन ब्रिटिश इंडिया (1861-1947), लखनऊ, 1980।
3. अचीस्टन, सी0यू0 ए कलेक्शन ऑफ ट्रीटिज इनगेजमेंट एण्ड सनद, चौथा संस्करण, भाग-1, दिल्ली, 1960।
4. अगन्यू विजय: एलाइट वोमेन इन इंडियन पोलिटिक्स विकास पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, 1979।
5. अली बेगतारा: इंडियाज वीमेन पावर, न्यू दिल्ली, एस0के0 चांद एंड कम्पनी, 1960।
6. अलफ्रेड (एड) डी0 सूजा: वीमेन इन कन्टेम्पोररी इंडिया ट्रेडीशनल इमेजज एंड चेजिंग रोल्स, न्यू दिल्ली, 1975।
7. अल्तेकर, ए.एस., स्टेट एण्ड गवर्नमेंट इन एनसियंट इण्डिया, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1995।
8. आत्रे जे.जी.0, क्राइम्स अगेन्सट वीमेन, विकास पब्लिकेशन हाऊस, नई दिल्ली, 1998।
9. अग्रवाल, के.एम., कौटिल्य ऑन क्राइम एण्ड पनिशमेंट, कंचन पब्लिकेशन, बोधगया, 1983।
10. अय्यर, वी.आर. कृष्णा, क्रिमिनोलॉजी, लॉ एण्ड सोशल चेंज, पब्लिशर्स, दिल्ली, 1980।
11. अशोक टी.एम., द लोंग आर्म द लॉ-ए क्लेंच फर्स्ट, इण्डियन एक्सप्रेस, जून 19, 1977।

प्राचीन भारत में शिक्षा

डॉ० अवधनारायण

ज्योतिर्विद राममूर्ति महाविद्यालय, देवरी माण्डा मेजा प्रयागराज।

(600 ई0पू0 ईसा पूर्व से पहले के समय को वैदिक काल के नाम से जाना जाता है। यह समय वेदों की रचना तथा वेदों पर आधारित शिक्षा व्यवस्था का काल माना जाता है। इस काल के अन्तिम वर्षों में ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद आदि ग्रन्थों की रचना भी वेदों के भाष्य (Commentary) के रूप में हुई थी। 600 ईसा पूर्व से लेकर 1200 ईसवीं तक के काल को बुद्ध काल के नाम से पुकारा जाता है। इस काल में बौद्ध धर्म का उद्भव हुआ और उसी के अनुरूप एक नवीन प्रकार की शिक्षा व्यवस्था की गई थी)

शिक्षा व्यक्ति के व्यक्तित्व, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति के लिए ही नहीं अपितु सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के लिए भी अनिवार्य है। भारतीयों ने शिक्षा के इस महत्व को समझ लिया था और इसलिए भारत में अतीत काल में भी शिक्षा की सुन्दर व्यवस्था की गयी थी। राज्य द्वारा अनिवार्य नि:शुल्क शिक्षा का प्रबन्ध न होने पर भी शिक्षा का अत्यधिक प्रसार हुआ। भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली से सैकड़ों वर्षो तक भारत का विशाल वैदिक साहित्य ही सुरक्षित नहीं रहा, बल्कि प्रत्येक युग में दर्शन, न्याय, गणित, ज्योतिष, रसायन आदि विविध शास्त्रों और ज्ञान के क्षेत्रों में ऐसे मौलिक विचारक और विद्वान उत्पन्न हुए जिनसे हमारे देश का मस्तक आज भी गौरवान्वित है। अनादि काल से भारत में शिक्षा स्वयं के लिए नही अपितु धर्म के लिए प्राप्त की जाती थी। यह मुक्ति एवं आत्मबोध का साधन थी और जीवन का महान लक्ष्य मुक्ति था।[1]

वेदों में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जो इस बात को प्रमाणित करते हैं कि सुदूर अतीत में संगठित रूप से गुरूओं द्वारा शिक्षा दी जाती थी। ऋग्वेद के एक मन्त्र में अनेक छोटे-छोटे बालकों के एक साथ पढ़ने की उपमा दी गयी है। अथर्ववेद में ब्रह्मचर्य की महिमा के गीत गाये गये हैं और विद्याध्ययन पर प्रकाश डाला गया है। छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदों में इस बात का उल्लेख है कि अनेक ब्राह्मण अपने बालकों को घर पर ही शिक्षा देते थे तथा बहुत से अपने गुरू के घर जाकर विद्याध्ययन करते थे। वैदिक युग में शिक्षा का इतना अधिक प्रसार था कि छान्दोग्य उपनिषद में अश्वपति कैकेय कहते हैं कि मेरे साम्राज्य में कोई अशिक्षित व्यक्ति नही है। आर्यो में उपनयन संस्कार के बाद शिक्षा अनिवार्य थी। इससे साक्षरता का अत्यधिक प्रसार हुआ होगा और सम्भवत: शत-प्रतिशत व्यक्ति साक्षर रहे होंगे। पश्चिमी सभ्यता के मूलस्रोत यूनान देश में शिक्षा की समुचित व्यवस्था होने से यूनान के प्रमुख नगर एथेन्स में दस प्रतिशत और स्पार्टा में चार प्रतिशत व्यक्ति ही साक्षर थे।

वैदिक काल में ज्ञान प्राप्ति का मुख्य आधार तप एवं ध्यान था तथा शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक विकास को बढ़ाना था। परन्तु उत्तर वैदिक काल में यज्ञ, हवन आदि पर अधिक जोर दिया जाने लगा। उस समय यह महसूस किया गया कि यज्ञ, हवन आदि धार्मिक संस्कारों को ठीक प्रकार से सम्पन्न कराने के लिए इसकी विस्तृत विधि को शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए। इसके फलस्वरूप पुरोहितवाद का उदय हुआ तथा शिक्षा पर ब्राह्मणों का एकाधिकार हो गया। शिक्षा को कर्मकाण्ड से जोड़ दिया गया। फलत: शूद्रों एवं स्त्रियों की शिक्षा उपेक्षित हो गयी थी। जनसाधारण परेशान था। ऐसी परिस्थिति में आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व गौतमबुद्ध (563-483 B.C.) ने बौद्ध धर्म की स्थापना की थी। बौद्धधर्म को व्यापक हिन्दू धर्म का ही एक विकसित रूप माना जा सकता है। बौद्धधर्म के प्रचार व प्रसार के लिए बौद्ध मठों तथा विहारों की स्थापना की गई थी। प्रारम्भ में इन मठों तथा विहारों का एकमात्र उद्देश्य बौद्धों को धर्म की शिक्षा प्रदान करना था, परन्तु कालान्तर में सभी धर्मो के छात्रों को इन मठों या विहारों में शिक्षा दी जाने लगी थी। बौद्धकालीन शिक्षा काफी सीमा तक वैदिक शिक्षा के समान ही थी। जिस प्रकार से यज्ञ वैदिक काल में ज्ञान तथा शिक्षा के केन्द्र बिन्दु थे, ठीक उसी प्रकार से बौद्ध सघांराम बुद्ध काल में शिक्षा व विद्या के केन्द्र बिन्दु थे।

प्राचीन भारत में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य था-आत्मा और परमात्मा का मिलन तथा जीवन में परमात्मा का साक्षात्कार। इसीलिए जीवन के सभी क्षेत्रों में धर्म की प्रधानता थी। जीवन में कर्तव्यों एवं आवश्यकताओं की व्याख्या आध्यात्मिक दृष्टि से की गई। मानव द्वारा मोक्ष की प्राप्ति ही जीवन का चरम विकास था। इसलिए उस काल में शिक्षा को धर्म के मार्ग पर चलकर मोक्ष प्राप्त करने का साधन माना गया। ए0एस0 अल्टेकर के अनुसार धार्मिक भावना का विकास, व्यक्तित्व का विकास, सामाजिक कर्तव्यों का पालन, सामाजिक कार्य कुशलता में वृद्धि तथा राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार प्राचीन भारतीय शिक्षा का मुख्य उद्देश्य एवं आदर्श बताया गया है।[2]

भारत की प्राचीन शिक्षण पद्धति का मूल प्रारम्भ उपनयन संस्कार से होता था। इस संस्कार द्वारा बालक गुरू के समीप जाकर विद्याध्ययन के लिए उसका शिष्य बनता था। मनुस्मृति के अनुसार इस संस्कार के न करने पर मनुष्य समाज से पतित एवं बहिष्कृत समझा जाता था।[3] यह संस्कार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्ण के विद्यार्थियों के लिए ही अनुमन्य था। बौद्धायन का विचार है कि उपनयन संस्कार 8 से 16 वर्ष के बीच सम्पन्न होना चाहिए।[4] ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य विद्यार्थियों के लिए क्रमश: 8, 11, तथा 12 वर्ष की आयु का निर्धारण किया गया है। बालक का उपनयन संस्कार एक शुभ समय से हाता था। ब्राह्मण का संस्कार बसन्त ऋतु में, क्षत्रिय का ग्रीष्म ऋतु में, तथा वैश्य का पतझड़ ऋतु में किये जाने का विधान था। ए0एस0 अल्टेकर का विचार है कि

यह संस्कार बालक को याद दिलाने के उद्देश्य से किया जाता था कि उसका अनियमित बचपन का जीवन समाप्त हो गया है और आगे उसे नियमित एवं अनुशासित जीवन व्यतीत करना है।[5] राजबली पाण्डेय का विचार है कि यह माता तथा पुत्र का विदाई-भोज भी हो सकता है जो पुत्र के प्रति माता के गहरे स्नेह को प्रकट करता है।[6] मनु के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य वर्णो के विद्यार्थी क्रमशः कपास, ऊन तथा सन की जनेऊ धारण करें।[7] गुरू सावित्री मंत्र का उच्चारण करते हुए बालक को अपने सानिध्य में लेता था।[8] प्राचीन हिन्दू समाज में उपनयन एक अनिवार्य संस्कार था। इसका विधान ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए ही किया गया। इन तीनों को "द्विज'' कहा जाता था, जिनका इसके द्वारा दूसरा जन्म होता था। इस संस्कार का सामाजिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही महत्व था। इस संस्कार के बाद ही बालक अपने वर्ग तथा समाज का पूर्ण सदस्य बनता था तथा अपने पूर्वजों की सांस्कृतिक विरासत को प्राप्त करने का अधिकार उसे मिलता था।

प्राचीन भारत में विद्यार्थी दो प्रकार के होते थे। एक तो वे जो निरन्तर गुरू के सान्निध्य में रहकर शिक्षा प्राप्त करते था। इन्हें 'अन्तेवासी' कहा जाता था। शिक्षा प्राप्त करने के बाद जब वे अपने घर वापस जाते थे तो उनका 'समावर्तन' संस्कार सम्पन्न होता था। दूसरे प्रकार के विद्यार्थी वे होते थे जो प्रतिदिन गुरू के घर केवल विद्याध्ययन के लिए आते थे और पढ़ने के पश्चात् प्रतिदिन अपने घर वापस चले जाते थे। ऐसे विद्यार्थी उम्रदराज होते थे। प्राचीन भारत में बालकों के साथ ही साथ बालिकाओं का भी उपनयन संस्कार होता था तथा वे भी ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करती थी। ऋग्वेद में अनेक ऐसे स्त्रियों के नाम मिलते हैं जो विदुषी तथा दार्शनिक थी यथा-घोषा, लोपामुद्रा, शाश्वती, अपाला, इन्द्राणी, निवावरी सिकता इत्यादि। महिला छात्राओं के भी दो वर्ग थे- ब्रह्मवादिनी एवं सद्योद्धाहा प्रथम आजीवन धर्म तथा दर्शन का अध्ययन करती थी तथा द्वितीय अपने विवाह के समय तक ही अध्ययन करती थी।

प्राचीन काल में शिक्षा गुरूकुल अथवा गुरूगृह में दी जाती थी। छात्र अपने गुरू के साथ किसी आश्रम में रहते थे। गुरूकुल के अतिरिक्त परिषद होती थी जहाँ उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी सत्य एवं ज्ञान की खोज करते थे। कुछ विद्यालय, मन्दिरों के साथ जुड़े हुए होते थे, समय-समय पर समस्त देश के विद्वानों, पण्डितों और धार्मिक नेताओं के सम्मेलन भी आमन्त्रित किये जाते थे, जहाँ शास्त्रार्थ हुआ करता था। गुरू को शिष्य का आध्यत्मिक पिता कहा गया है। गुरू अपने शिष्यों के साथ पुत्रवत व्यवहार करते थे। तथा उनमें चरित्र निर्माण के लिए अच्छी आदतों के विकास पर ध्यान दिया जाता था। शिष्य के हृदय में गुरू के प्रति आदर तथा विश्वास की भावना थी। छात्र गुरू सेवा को अपना पवित्र कतर्व्य समझते थे। सभी शिष्य गुरू का बहुत सम्मान करते थे। गुरू भी विद्यार्थियों के स्वास्थ्य और शिक्षा का पूरा ध्यान रखते थे। मनुस्मृति के अनुसार विद्यार्थी को अपने गुरू को तब तक द्रव्य नहीं देना चाहिए जब तक कि शिक्षा समाप्त न हो जाए।[9] समान्य रूप से शिक्षा की अवधि 12 वर्ष तक मानी जाती थी। परन्तु कुछ विद्यार्थी 24 वर्ष या 28 वर्ष और कुछ विद्यार्थी अजीवन शिक्षा ग्रहण करते थे।

ऋग्वेद के अनुसार गुरू बालकों को वैदिक सूक्त और वीर गाथाएं पढ़ाते थे। स्त्रियाँ कपड़ा बुनने, रंगने, कसीदा काढ़ने और टोकरी बनाने का कार्य करती थीं। उत्तर वैदिक काल में सहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों, व्याकरण, निरूक्त, छन्द और दर्शन की शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाने लगा। इस काल के कुछ ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि कन्याओं को नृत्य और गायन की भी शिक्षा दी जाती थी।[10] ऐतिहासिक काल-पूर्वाद्ध (600 ई0पू0-500 ई0 तक) में सूत्र साहित्य की रचना हुई। सूत्र साहित्य में वेदांगों का विशेष महत्व है। वेद के 6 अंग-शिक्षा, ज्योतिष, व्याकरण विरूक्त, छन्द और कल्प थे। इसका उद्देश्य था कि विद्यार्थी वैदिक साहित्य का अर्थ सही तरीके से समझकर उसका अध्ययन करें। मनुस्मृति से ज्ञात होता है कि इस काल में अधिकांश विद्यार्थी इतिहास, पुराण, न्याय मिमांशा, धर्मशास्त्र, धनुर्वेद, गंधर्ववेद, अर्थशास्त्र के साथ ही साथ सैनिक विज्ञान, आयुर्वेद एवं शल्य चिकित्सा इत्यादि की शिक्षा दी जाती थी। ऐतिहासिक काल-उत्तरार्ध (500 ई0 से 1200 ई0 तक) में ब्राह्मण विद्यार्थी वेदों एवं 18 विद्याओं का अध्ययन करते थे। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य विद्यार्थी नाट्य-कला, चित्रकला, फलित ज्योतिष, कुक्कुट विद्या, अश्वविद्या, हस्तिविद्या, राजनीतिक विज्ञान, ज्योतिष, व्याकरण, गणित एवं पराविद्या की भी शिक्षा प्राप्त करते थे।[11]

ऋग्वेद के एक सूक्त से ज्ञात होता है कि विद्यार्थी पिता या गुरू से मौखिक शिक्षा प्राप्त करते थे। और पाठ को बार-बार दोहराकर कंठस्थ करते थे।[12] शिष्य मौखिक शिक्षा प्राप्त करते थे। शिक्षा समाप्ति करने के बाद सामाजिक कर्तव्यों का पालन करना शिष्य का परम कर्तव्य बन जाता था। ऐतिहासिक काल पूर्वाह्न वैदिक साहित्य को शुद्ध करने के लिए विद्यार्थियों को संहिता का पाठ, पाद-पाठ, क्रम-पाठ, जटा-पाठ और धन-पाठ सभी को कठंस्थ करना पड़ता था। ऐतिहासिक काल के उत्तरार्थ में जन साधारण की शिक्षा का माध्यम कथा-गोष्ठियाँ थी जिनका आयोजन गाँव के लोग करते थे। इन कथा गोष्ठियों में विद्वान ब्राह्मण रामायण, महाभारत, पुराण और अन्य ग्रन्थों का पाठ करते थे और उनकी समुचित विवेचना भी करते थे। प्राचीन भारत में शिक्षा समाप्ति के उपरान्त विद्यार्थियों को न तो परीक्षाएँ देनी पड़ती थी और न ही उन्हें किसी प्रकार का प्रमाण पत्र दिया जाता था। कालान्तर में विक्रमशिला विश्वविद्यालय में समावर्तन के समय विद्यार्थियों को उपधियाँ देने की प्रथा प्रचलित हो गयी थी।

प्राचीन भारत में आजकल की भांति सुसंगठित शिक्षण-संस्थाएँ नहीं थी। परन्तु ऐसी संस्थाओं का उत्कर्ष बौद्ध युग में हुआ था। बौद्ध विहार इनका प्रथम स्वरूप था। इन विहारों के आधार पर नालन्दा एवं विक्रमाशिला विश्वविद्यालय का उद्भव हुआ। नवीं एवं दसवीं शताब्दी में हिन्दू मन्दिरों में भी शिक्षण कार्य में बौद्ध विहारों का अनुकरण किया। प्राचीन भारत में शिक्षा केन्द्रों के रूप में तक्षशिला का सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है। तक्षशिला हमारे देश का सबसे प्राचीन और प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र था। वहाँ साहित्यिक, धार्मिक और लौकिक सभी प्रकार की शिक्षाएँ दी जाती थी। नालन्दा महाविहार प्राचीन युग में भारत का एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय था। मूलतः यह एक बौद्ध विहार था। कालान्तर में जिसका विकास एक महान विश्वविद्यालय के रूप में हुआ। काढिघ्यावाड़ में सातवीं शताब्दी ई0 में वलभी नगर शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र था। इत्सिंग ने नालन्दा एवं बलभी दोनों की बहुत प्रशंसा की है। पाल राजाओं के राज्य काल में विक्रमशिला का विहार भी एक प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र था। ग्यारहवीं शताब्दी में विदेशी यात्री अलबरूनी ने काश्मीर को शिक्षा का बड़ा केन्द्र बताया है। उपर्युक्त विश्वविद्यालयों और महाविहारों के अतिरिक्त वाराणसी, नवद्वीप धारा, कन्नौज, उज्जैन आदि नगर शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि भारतीय शिक्षण पद्धति इतनी सुसम्पन्न थी कि उससे भारतीयों के मानसिक एवं शारीरिक रूप से इतना विकास हुआ कि ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्रों में भारतीयों का बोल-बाला था परन्तु मुस्लिम आक्रमण ने इस देश की शिक्षा व्यवस्था का समूल नष्ट कर दिया।

सन्दर्भ

1. Mukherjee, Radha Kumud, Mukti or Emancipation, Ancient Indian Education, Prologue XXI.
2. Altekan, A.S. Education in Ancient Indian
3. मनुस्मृति - 139
4. बौधायन गृहासूत्र 2/5.5
5. Altekan, A.S. Education in Ancient India P. 276
6- Panday RajBali. Hindu Sanskar P.128
7. मनुस्मृति - 2.44
8. ऋग्वेद - 3.62.10
9. मनुस्मृति - 2,45
10. तैत्तरीय संहित - 6,1,6,5 मैत्रायणी संहित- 3,73
11. गरूण पुराण - 223, 20
12. तैत्तरीय संहिता - 6,3,10,5

प्रेमचन्दः नारी अस्मिता एक युगीन परिप्रेक्ष्य

सलमा खातुन

हिन्दी विभाग, इलाहाबाद डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

बीसवीं शताब्दी के हिन्दी साहित्य में बहुत से कहानीकार और उपन्यासकार हुए है परन्तु जो कहानियाँ और उपन्यास प्रेमचन्द द्वारा लिखे गए वह अद्वितीय है और अन्यत्र दुर्लभ है। प्रेमचन्द का व्यक्तित्व रचनात्मकता और सृजनशीलता से परिपूर्ण है और वे कथा के विषय, पात्र-सृष्टि, उद्देश्य इत्यादि में क्रान्तिकारी परिवर्तन करके एक नए युग क्रान्तिकारी परिवर्तन करके एक नए युग 'प्रेमचन्द युग' का आरम्भ करते है। उक्त युग को पीछे छोड़ने में आज तक हिन्दी का कोई कथाकार सफल नहीं हो पाया हे। प्रेमचन्द का साहित्य संवेदनशीलता का साहित्य है, उनमें विचारों की गहराईयाँ है, वाक्यों का सुसंगठन है। दया-ममता, स्नेह, करुणा आदि का समावेश है और सबसे बड़ी बात कि उनके साहित्य में पात्रों द्वारा कहे गए वाक्य आज के परिप्रेक्ष्य में भी सटीक और सत्य बैठती है। पं0 हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सही लिखा है- "अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाषा-भाव, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, दुख-सुख और सूझ-बूझ को जानना चाहते है तो प्रेमचन्द से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता।"[1] जितनी शिद्दत से उन्होंने समाज की अन्य समस्याओं पर लेखनी चलाई है, उतनी ही सूक्ष्म दृष्टि नारी की व्यथा पर भी केंद्रित की है।

समाज सामाजिक सम्बन्धों का जटिल जाल होता है और इन सब के केन्द्र में स्वयं मनुष्य है। यह मनुष्य ही है जो समाज में संगठन एवं व्यवस्था स्थापित करने में सदा से प्रयत्नशील है और उसे प्रगति एवं गतिशीलता की दिशा में ले जाने प्रयासों में लगा हुआ है। साधारणतः इस व्यवस्था का कर्ता जब पुरुष हो गया तो वह स्वभावतः अहंकारी भी हो गया और वह अपनी स्थिति को सामाजिक परिवेश में सर्वोच्च स्तर पर लाने में कामयाब भी हुआ। यही मनोभाव पुरुष को वर्चस्ववाद की ओर ले गया। उसने यदि स्त्री को अधिक पढ़ी लिखी जागरूक, तर्कशील, बुद्धिमान पाया तो अपने अन्दर ही अन्दर खतरा महसूस करने लगा। पुरुष सदियों से स्त्री को निम्न स्थान देने लगा।

स्त्री चाहे वह किसी भी वर्ग जाति अथवा सम्प्रदाय की हो समाज के प्रत्येक क्षेत्र में उसका शोषण होता आया है। कहीं वह आर्थिक शोषण की शिकार है तो कहीं असमानता और यौन शोषण की। पुरुष प्रधान समाज में उसकी शिनाख्त दूसरे दर्जे के नागरिक के रूप में होती है वह अपने जायज अधिकारों तथा सामाजिक हैसियत से वंचित जीवन जीने को बाध्य है। हमारे सभ्य समाज में नैतिक आचरण की दृष्टि से जो कार्य नारी के लिए अक्ष्म्य अपराध है। उसी कार्य को यदि पुरुष करे तो जायज है। समाज के ठेकेदारों द्वारा नारी को दिग्भ्रमित करने के लिए भले ही उसे गृहदेवी, अन्नपूर्णा, गृहलक्ष्मी आदि विशेषणों से विभूषित किया जाता हो परन्तु वास्तव में उसकी स्थिति पुरुष की परिचारिका से अधिक और कुछ नहीं है। जन्म से रूढ़ियों के मध्य पली नारी अपनी पराधीनता को विधि का विधान मानकर सदियों से शिरोधार्य करती आयी है। समाज तो समाज उसके अपने परिवार में वह उत्तराधिकार से वंचित होने का दंश झेलती है। उसके चरित्र पर लांछन लगाकर उसे कभी भी घर से निष्कासित किया जा सकता है। भारतीय समाज में नारी की क्या हैसियत है स्त्री होने के नाते वह कैसी-कैसी सामाजिक तथा धार्मिक वर्जनाओं की श्रृंखला से आबद्ध है। धर्मशास्त्रों में उसके लिए किस प्रकार की विधि निषेधों की व्यवस्था है इन समस्त बातों से प्रेमचन्द पूर्णतः परिचित थे इसीलिए अपने कथा साहित्य में वे स्त्री चिन्तन व स्त्री अस्मिता के प्रश्न को सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक सभी आयामों पर उठाते है।[2]

प्रेमचन्द का युग देश के अनेक क्षेत्रों में नवीन चेतना का युग था। अतः नारी समाज में भी नवजागरण का संचार हुआ शताब्दियों से भारतीय नारी रूढ़ियों और कुरीतियों की जिन बेड़ियों में जकड़ी हुई थी उनसे उसे मुक्त कराने तथा नारी को समाज में समानता का अधिकार दिलाने की माँग पर बल दिया जाने लगा। नारी जीवन से सम्बन्धित समस्याओं पर सुधारकों तथा विचारकों ने विचार किया। एक सजग कलाकर होने के नाते प्रेमचंद का ध्यान इन समस्याओं की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक था।[3] 'सेवासदन' में प्रेमचंद नारी के आर्थिक स्वावलम्बन या पुरुष की गुलामी से मुक्ति से संबद्ध मुद्दों को अपेक्षाकृत कम महत्व देते हुए समाज में नारी के आदर के प्रति अधिक चिन्तित दिखायी देते है- "ईश्वर वह दिन कब लायेगा कि हमारी जाति में स्त्रियों का आदर होगा, स्त्री मैले-कुचैले, फटे-पुराने वस्त्र पहनकर, आभूषणविहीन होकर, आधे पेट सूखी रोटी खाकर, झोपड़े में रहकर मेहनत-मजदूरी करके सब कष्टों के सहते हुए भी आनन्द से जीवन व्यतीत कर सकती है, केवल घर में उसका आदर होना चाहिए, उससे प्रेम होना चाहिए।" 'आदर' अधिकार न होकर अहसान का एक रूप है, यह बाध्यता न होकर शिष्टाचार मात्र है। इसलिए 'नारी' को मात्र आदर की पात्रा ठहराना बहुत सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं है। अपने सबसे महत्वपूर्ण उपन्यास 'गोदान' में भी प्रेमचंद नारी को आदर की भव्यता से मंडित करने की कोशिश करते दिखायी देते है।[4] गोदान में व्यक्त नारी-विशयक प्रमुख विचार इस प्रकार है-

1. 'मेरे जेहन में औरत वफा और त्याग की मूर्ति है, जो अपनी बेजबानी से, अपनी कुर्बानी से, अपने को बिल्कुल मिटाकर पति की आत्मा का अंश बन जाती है।'
2. 'स्त्री पृथ्वी की भाँति धैर्यवान् है, शांति-सम्पन्न है, सहिष्णु है। पुरुष में नारी के गुण आ जाते है, तो वह महात्मा बन जाता है। नारी में पुरुष के गुण आ जाते है तो वह कुलटा हो जाती है।'

3. 'स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है, जितना प्रकाश अँधेरे से। मनुष्य के लिए क्षमा और त्याग और अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श है। नारी इस आदर्शको प्राप्त कर चुकी है। पुरुष धर्म और अध्यात्म और ऋषियों का आश्रय लेकर उस लक्ष्य पर पहुँचने के लिए सदियों से जोर मार रहा है, पर सफल नहीं हो सका।'

पहले उद्धरण में प्रेमचंद जिस तरह नारी से एकतरफा कुर्बानी की अपेक्षा करते है, वह एक तरह से पुरुष के निरंकुश एकाधिकार का समर्थन है। पति-पत्नी की आत्मा का अंश क्यों न बनें, पत्नी ही खुद को क्यों मिटाएघ् नारी में पुरुष के गुणों के निषेध की बात हास्यास्पद लगती है। स्त्री-पुरुष के कार्यों को अलग-अलग खतिया देना और एक का दूसरे के कर्मक्षेत्र में 'प्रवेश-निषेध' आज किसी भी दृष्टि से समीचीन नहीं ठहरता। आज नारियाँ जिस कुशलता से पुरुषों के लिए निश्चित किए गए कार्यों को कर रही है, उससे भी यह बहुत अयथार्थ और पिछड़ी हुई लगती है। नारी की पुरुष से श्रेष्ठता का विचार सैद्धान्तिक तौर पर आकर्षक है, जबकि व्यवहार में नारी की स्थिति बेहद दयनीय है। नारी को श्रद्धा और पूजा के योग्य ठहराना उस मध्यकालीन मानसिकता से अलग नहीं है, जो नारी की पूज्यता की आड़ में नारी की समानाधिकार के सवाल को साफ उड़ा जाती है।[5]

परन्तु कालान्तर में प्रेमचन्द जी की लेखनी आदर्शवाद से यथार्थवाद की ओर उन्मुख हो गयी। उनका हृदय परिवर्तन हो गया। उन्होंने पाया कि भारतीय नारी की हीन भावना, उसकी दुर्दशा, उसके शोषण का सबसे बड़ा कारण उसकी आर्थिक पराधीनता है। "प्रेमचंद का मानना था कि पुरुषों के वर्चस्व वाले इस समाज में नारी को शोषण अत्याचार तथा अन्याय से मुक्ति उसी समय मिल सकती है, जब वह शिक्षित और आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हो।[6] इस तथ्य को उन्होंने अपने उपन्यासों 'सेवासदन' तथा 'निर्मला' में रेखांकित किया है। 'सेवासदन' में आर्थिक कारणों से ही सुमन का विवाह अधेड़ आयु के गजाधर के साथ कर दिया जाता है जो सुमन के पतन का कारण बनता है। वह अपने पति की संकीर्ण मनोवृत्ति से तंग आकर अपने नारी मूल्यों का विघटन कर वेश्या बन बैठती है। इसी प्रकार 'निर्मला' का विवाह उसके पिता की आयु वाले तीन बच्चों के पिता मुंशी तोताराम से कर दिया जाता है जो उसके जीवन के कारुणिक अन्त का कारण बनता है। पति की मृत्यु के पश्चात् आर्थिक स्तर पर पत्नी की विशम परिस्थितियों को प्रेमचन्द ने 'वरदान' की 'सुवामा', 'विरजन', 'निर्मला' में उदयभानु की पत्नी, 'पतिज्ञा' में 'पूर्णा' और 'गबन' की 'रतन' के माध्यम से अत्यंत मार्मिक ढंग से चित्रित किया है। साथ ही उनके साथ होने वाले सामाजिक अन्याय की ओर भी संकेत किया है। इसके अतिरिक्त प्रेमचंद स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता का प्रश्न अपने लेखों के माध्यम से उठातें है- "पुरुषों ने स्त्रियों को इतना सताया है कि अब वे माताएँ और गृहिणी बनकर आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त करने पर तुली है अगर पुरुष बच्चे पालना और खाना बनाना नहीं जानते तो स्त्री क्यों सीखें। ..... वह खाना क्यों पकायें वकालत क्यों न करे, अध्यापिका क्यों न बने।"[7]

प्रेमचन्द की दृष्टि में स्त्री पुरुष बराबरी का मुख्य आधार है स्त्री की आर्थिक आत्म निर्भरता। प्रेमचंद समाज में नारी तथा पुरुष के समान अधिकारों के समर्थक थे और इस विषय में किसी भी प्रकार का सामाजिक अथवा धार्मिक बन्धन उन्हें स्वीकार नहीं था।[8] प्रेमचन्द अपने साहित्य के माध्यम से मात्र नारी उत्थान का ही चित्रण कर रहे थे, ऐसा कतई नहीं है। उनका मानना था कि स्त्रियों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होना चाहिए क्योंकि कानूनी अधिकारों के बिना पुरुष समाज उसे ठगता जाएगा। यही कारण है कि उस समय में नारी उत्थान के लिए कार्य करने वाले आर्य समाजियों के प्रति प्रेमचंद सहृदयता से कहते है कि - "मैं तो धन्यवाद देता हूँ स्वामी दयानन्द को, इन्होंने आर्य-समाज का प्रचार करके स्त्रियों और समाज का बड़ा उद्धार किया है।"

किसी समाज में जब तक नारी की स्थिति अधोमुखी रहेगी, उसका बहुमुखी शोषण होता रहेगा, वह समाज, वह देश कभी उन्नति नहीं कर सकेगा। स्त्री चिन्तन के सिलसिले में प्रेमचंद ने जिन सवालों को उठाया है वे आज भी उतनी ही प्रासंगिक है भले ही उनका स्वरूप और अधिक जटिल हो गया है। इन प्रश्नों में दहेज समस्या, वृद्ध विवाह की समस्या, अनमेल विवाह की समस्या, वेश्या समस्या को रेखांकित किया गया है। अपनी भविष्य दृष्टि से नारी अस्मिता और नारी सशक्तिकरण को उन्होंने बहुत पहले ही दिग्दर्शित कर लिया था। उनके कथा साहित्य में सामाजिक वर्जनाओं, परम्पराओं तथा रूढ़ियों के बोझ तले दबी मूक तथा बेजबान नारी अपनी चेतना और साहस के बलबूतों पर हालात बदलने में सामर्थ्य रखती है।

सन्दर्भः-

1. हिन्दी साहित्यः हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ0सं0-435
2. चिन्तन की नवीन दिशाएँ-लेखकः अनिल कुमार सिंह, प्रकाशन-साहित्य भंडार 50 चाहचन्द (जीरोरोड) इलाहाबाद, 211003 पृ0सं0-56
3. चिन्तन की नवीन दशाएँ-लेखकः अनिल कुमार सिंह, प्रकाशन-साहित्य भंडार 50 चाहचन्द (जीरो रोड) इलाहाबाद, 211003 पृ0सं0-56
4. गोदानः अध्ययन की समस्याएँ, पृ0सं0-46
5. प्रेमचन्दः सृजन एवं चिन्तन (हिन्दुस्तानी त्रैमासिक पत्रिका), सम्पादक- डॉ0 रामकुमार वर्मा
6. चिन्तन की नवीन दशाएँ-लेखकः अनिल कुमार सिंह, प्रकाशन-साहित्य भंडार 50 चाहचन्द (जीरो रोड) इलाहाबाद, 211003 पृ0सं0-57
7. विविध प्रसंग-प्रेमचन्द भाग 3, सन् 1934
8. चिन्तन की नवीन दशाएँ-लेखकः अनिल कुमार सिंह, प्रकाशन-साहित्य भंडार 50 चाहचन्द (जीरो रोड) इलाहाबाद, 211003 पृ0सं0-60

वैश्वीकरण एवं महात्मा गांधी का विचार दर्शन

डॉ० भरत लाल मीणा

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

शोध सारांश

वैश्वीकरण एक बहुआयामी अवधारणा है। इसके राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आयाम हैं। यह मान लेना गलत है कि वैश्वीकरण केवल आर्थिक परिघटना है। वैसे देखा जाए तो वैश्वीकरण कोई नई प्रक्रिया भी नहीं है। मानव समाज सभी कालों में किसी न किसी रूप में वैश्वीकृत रहा है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति समाज में रहकर ही होती है, वह अकेले रह कर अपनी आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर सकता। उसी प्रकार आज वैश्विक वातावरण में कोई देश दूसरे देशों से व्यापार या संपर्क किए बिना अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। आज नए नए अनुसंधान हो रहे हैं, उनका फायदा दूसरे देशों को तभी मिल सकता है जब वे एक दूसरे के संपर्क में रहेंगे। इन्ही अवधारणाओं की वजह से वैश्वीकरण संभव हुआ है। महात्मा गांधी स्वयं वैश्वीकरण के समर्थक थे तथा वे स्वयं भी वैश्वीकरण की ही उपज थे, वे लंदन में पढे, उन्होंने अपने राजनीतिक जीवन का प्रारंभ दक्षिण अफ्रीका से किया तथा उन पर पश्चिमी जगत के विचारकों जैसे जीसस, टॉलस्टॉय, थोरो, रस्किन आदि के विचारों का प्रभाव पड़ा। गांधी भारत की सांस्कृतिक पहचान और मूल्यों की रक्षा के लिए तत्पर थे, किंतु वसुधैव कुटुंबकम् के भी समर्थक थे। जिस प्रकार वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने राष्ट्र-राज्य की सीमाओं को अप्रासंगिक बना दिया है उसी तरह गांधी भी राष्ट्र-राज्य को समाप्त कर एक राज्यविहीन व्यवस्था (रामराज्य) स्थापित करने के प्रबल पक्षधर थे। किंतु गांधी वैश्वीकरण की प्रक्रिया के उदारवादी, बाजारवादी तथा पूंजीवादी मूल्यों और आधारों के विरोधी थे।

मुख्य शब्द-वैश्वीकरण, गांधी, राष्ट्र-राज्य, औद्योगीकरण, पूंजीवाद, निजीकरण, उपनिवेशवाद, उपभोक्तावाद।

शोध के उद्देश्य

1. आधुनिक वैश्वीकृत सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था में महात्मा गांधी के विचार दर्शन की प्रासंगिकता खोजना।
2. वैश्विक विकास प्रतिमानों के उपयोगी पक्षों को ग्रहण करते हुए भारतीय संस्कृति के अनुरूप विकास प्रतिमान का निर्धारण करना।
3. महात्मा गांधी के विचारों के संदर्भ में वर्तमान भारतीय विकास प्रतिमान का मूल्यांकन करते हुए आध्यात्मिकता और भौतिकतावाद के बीच संतुलित संबंधों की खोज करना।

प्रस्तावना

"मैं यह नहीं चाहता हूँ कि मेरा घर चारों तरफ दीवारों से घिरा रहे और खिडकियाँ बन्द रहें, बल्कि यह चाहता हूँ कि सभी भागों की संस्कृतियाँ मेरे घर में फलें-फूलें, जितनी सम्भावना हो"। महात्मा गांधी के उक्त शब्दों से उनका विश्व के प्रति दृष्टिकोण ज्ञात होता है तथा वे वैश्वीकरण के पक्षधर दिखाई देते हैं। किन्तु जब वैश्वीकरण मानव सभ्यता के सम्मुख संकट उत्पन्न करता है तो वहाँ हमें गांधी इसके विरूद्ध खड़े दिखाई देते हैं। इस क्रम में हमारे लिये यह जरूरी होगा कि हम वैश्वीकरण के संदर्भ में महात्मा गांधी के विचार दर्शन को जानने से पहले वैश्वीकरण के अर्थ को समझें।

एक अवधारणा के रूप में वैश्वीकरण की बुनियादी बात है- प्रवाह। प्रवाह कई तरह के हो सकते हैं, जैसे विश्व के एक हिस्से के विचारों का दूसरे हिस्सों में पहुँचना, पूँजी का एक से ज्यादा जगहों पर जाना, वस्तुओं का कई देशों में पहुँचना और उसका व्यापार तथा बेहतर आजीविका की तलाश में दुनियाँ के विभिन्न हिस्सों में लोगों की आवाजाही। यहाँ सबसे ज्यादा जरूरी बात है-विश्वव्यापी पारस्परिक जुडाव, जो ऐसे प्रवाहों की निरन्तरता से पैदा हुआ है और कायम भी है। वैश्वीकरण व्यापक तौर पर फिसलन भरी अवधारणा है। यह एक दूसरे से अन्तरूसम्बन्धित होती है। विभिन्न विद्वानों द्वारा वैश्वीकरण की व्याख्या विभिन्न रूपों में की गई है। कुछ के शब्दों में वैश्वीकरण का अर्थ सीमाविहीन है जबकि कुछ अन्य विचारक इसकी व्याख्या देश और काल की सिकुडन के रूप में करते हैं। किन्तु वैश्वीकरण एक अवधारणा के रूप में अन्तरराष्ट्रीय, सार्वभौमवाद, क्षेत्रीयवाद आदि अवधारणाओं से भिन्न है।

परिचर्चा

1970 से ही वैश्वीकरण की व्याख्या एक विचारधारा, एक बाजार रणनीति तथा एक ऐसी परिस्थिति, जिससे निकलना सम्भव नहीं है, के रूप में की जा रही है। वैश्वीकरण एक बहुआयामी अवधारणा है। इसके राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृति आयाम हैं और इनके बीच ठीक-ठीक भेद किया जाना चाहिए।

यह मान लेना गलत है कि वैश्वीकरण केवल आर्थिक परिघटना है। ठीक इसी तरह यह मान लेना भी भूल होगी कि वैश्वीकरण का एक आयाम एक ही समय में अन्य आयामों की तुलना में ज्यादा गहन हो सकता है। जैसे वर्तमान में वैश्वीकरण का आर्थिक आयाम राजनीतिक या सांस्कृतिक आयाम की तुलना में ज्यादा गहन है, इसलिये वर्तमान में वैश्वीकरण का अर्थ केवल आर्थिक नीतियों में खुलापन तथा उदारीकरण से लिया जा रहा है। जब कोई देश अन्य राष्ट्रों के साथ वस्तु, सेवा, पूँजी तथा बौद्धिक सम्पदा आदि के प्रतिबन्ध के बिना परस्पर आदान-प्रदान करता है तो इसे वैश्वीकरण कहते हैं। वर्तमान आधुनिक समय में संचार क्रान्ति ने पूरी दुनियाँ की दूरियाँ कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। इसी कारण से सम्पूर्ण विश्व एक गांव में परिवर्तित हो गया है।

वैसे देखा जाय तो वैश्वीकरण कोई नई प्रक्रिया नहीं है। मानव समाज सभी कालों में किसी न किसी रूप में वैश्वीकृत रहा है। व्यापार, धर्मप्रचार, शिक्षा इत्यादि ऐसे कारण रहे हैं जिससे विश्व के विभिन्न भागों के व्यक्ति किसी न किसी रूप में अन्तरक्रिया करते रहे हैं। वर्तमान वैश्वीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा देने में आधुनिक संचार साधनों जैसे कम्प्यूटर, इन्टरनेट, मोबाइल, सेटेलाइट इत्यादि ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया पूँजी और सूचनाओं के मुक्त प्रवाह पर आधारित है, जिससे विश्व के विभिन्न भाग या क्षेत्र तथा व्यक्ति परस्पर अन्तर-सम्बन्धों में बन्धते जा रहे हैं। यही कारण है कि विश्व के एक भाग में जो कुछ घटित होता है उसका प्रभाव दूसरे भाग तथा व्यक्तियों पर आवश्यक रूप से पड़ता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति समाज में ही होती है। वह अकेला रहकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। उसी प्रकार आज वैश्विक वातावरण में कोई देश दूसरे देशों से व्यापार या सम्पर्क किए बिना अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता है। विश्व में नित नये-नये अनुसंधान हो रहे हैं। उनका फायदा दूसरे देशों को तभी मिल सकता है, जब वे देश आपस में सम्पर्क में रहेंगे। इन्ही अवधारणाओं की वजह से वैश्वीकरण सम्भव हुआ।

महात्मा गांधी स्वयं वैश्वीकरण के समर्थक रहे हैं। वे स्वयं वैश्वीकरण की उपज थे। वे लंदन में पढ़े, उन्होंने अपने राजनीतिक जीवन का प्रारम्भ दक्षिण अफ्रीका से किया तथा उन पर पश्चिमी जगत के विचारकों जैसे जीसस, टाल्सटॉय, थोरो, रस्किन आदि के विचारों का प्रभाव पड़ा। गांधी ने वैश्वीकरण को पुरातन काल से चली आ रही प्रक्रिया बतलाया। गांधी भारत की सांस्कृति पहचान और मूल्यों की रक्षा के लिये तत्पर थे, परन्तु वे "वसुधैव कुटुम्बकम्" के भी समर्थक थे अर्थात वे वैश्विक समाज की स्थापना पर बल देते थे। जिस प्रकार वैश्वीकरण की प्रक्रिया राष्ट्र राज्य को कमजोर कर रही है, उसी तरह गांधी भी राष्ट्र राज्य को समाप्त करने के पक्षधर थे। गांधी का विचार दर्शन तथा वैश्वीकरण दोनों ही एक वैश्विक समाज की स्थापना पर बल देते हैं। सीमाविहीन विश्व दोनों का लक्ष्य है। व्यक्तियों तथा विश्व के विभिन्न भागों में अन्तरसम्बद्धता गांधी और वैश्वीकरण दोनों का लक्ष्य है, किन्तु वैश्वीकरण की प्रक्रिया के उदारवादी, बाजारवादी तथा पूँजीवादी मूल्यों और आधारों का गांधी ने विरोध किया है। इनमें प्रमुख हैं -

1. वैश्वीकरण के अर्न्तगत समस्त दुनियाँ के लोगों की आवश्कताओं की पूर्ति करने तथा सबको एक सूत्र में बाँधने के लिये कई नीतियाँ व योजनायें सामने आई हैं तथा विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन जैसी अनेक संस्थायें एक साथ सक्रिय हुई है। जिससे विश्व ग्राम की कल्पना धीरे-धीरे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हितों के भूमण्डलीकरण में बदल गई है। जबकि गांधी दर्शन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हितो के भूमण्डलीकरण के खिलाफ खड़ा है।
2. गांधी वैश्वीकरण के उस रूप के विरोधी हैं जो औद्योगिकरण की व्यापक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप लघु व कुटीर उद्योगों को नष्ट कर बेरोजगारी को बढ़ावा देता है। इसलिए गांधी व्यापक औद्योगिकरण व मशीनीकरण का विरोध करते हैं।
3. वर्तमान वैश्वीकरण लाभ कमाने की प्रक्रिया पर आधारित है, जबकि गांधी शाश्वत नैतिक मूल्यों के वैश्विक प्रसार पर बल देते हैं।
4. वैश्वीकरण की प्रक्रिया सक्षम लोगों को और ज्यादा सक्षम बना रही है, जबकि गांधी अंतिम व्यक्ति का भी कल्याण चाहते हैं।
5. वर्तमान वैश्वीकरण ।बज ळसवइंससल जेपदा स्वबंससल पर आधारित है, जबकि गांधी जेपदा ळसवइंससल ।बज स्वबंससल पर विश्वास करते हैं।
6. वर्तमान वैश्वीकरण संसाधनों के अधिकतम् दोहन पर आधारित है, जबकि गांधी इसका विरोध करते थे और कहते थे कि "मनुष्य प्रकृति पर निर्भर है, प्रकृति मनुष्य पर निर्भर नहीं है।"

वैश्वीकरण के दौर में गांधी दर्शन की प्रासंगिकताः-

वैश्वीकरण के सन्दर्भ में गांधी के दृष्टिकोण और मौजूदा विश्व समाज की स्थिति का जब हम आकलन करते हैं तो पाते हैं कि वर्तमान वैश्वीकरण की प्रक्रिया के अनुभव जितने सुखद रहे हैं, उनसे कहीं ज्यादा दुःखद रहे हैं। वैश्वीकरण ने बडे पैमाने पर समाज को खण्डित किया है तथा मानवीय मूल्यों को समाप्त करने की कोशिश की है। वैश्वीकरण के इस दौर मे लोग धीरे-धीरे वस्तु में बदलते जा रहे हैं। मनुष्य मशीन की तरह निर्जीव बनता जा रहा हैं। वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभावों के अन्तर्गत ग्रामीण विकास और कृषि क्षेत्र की अनदेखी की जा रही है। विकास की प्रक्रिया केवल शहरों तक सीमित हो गई है। उपभोक्तावाद का प्रसार दिखता है, पर्यावरण की अनदेखी की जा रही है, सांस्कृतिक क्षरण हो रहा है तथा एक प्रकार से आर्थिक उपनिवेशवाद स्थापित करने की कोशिश की जा रही है। विकास की अवधारणाओं के बीच दुनियाँ में असमानता, गरीबी और भुखमरी जैसी समस्याएं निरन्तर बढ़ती जा रही हैं। इन नकारात्मक प्रभावों को देखकर वैश्वरीकरण की प्रकिया पर सवाल उठने लगे हैं। इन सवालो के बीच दुनियाँ को एक रास्ता गांधी विचार दर्शन दिखलाता है। समकालीन आधुनिक भौतिकवादी समाज में जहाँ असंतोष, अवसाद, असमानता और असंवेदनशीलता जैसी समस्यायें हावी हैं, वहाँ विकास से जुडी

समस्याओं के संदर्भ में गांधी दर्शन की प्रासंगिकता को स्वीकार किया जा रहा है। वैसे तो गांधी ने आर्थिक विकास का कोई विशेष सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं किया है, परन्तु विभिन्न अवसरों पर दिये गये उनके व्याख्यानों और देश की समस्याओं पर प्रस्तुत विचारों तथा उनके राजनीतिक दर्शन में विकास के प्रतिरूप को देखा जा सकता है। गांधी ने पश्चिमी सभ्यता और आधुनिक सभ्यता को समवर्ती मानते हुए उसकी समीक्षा की। गांधी ने "यंग इण्डिया" में लिखा है कि "मै यह नहीं मानता कि इच्छाओं को बढ़ाने और उनकी पूर्ति के साधन जुटाने से संसार अपने लक्ष्य की ओर एक कदम भी आगे बढ़ पायेगा। आज की दुनियाँ में दूरी और समय के अन्तराल को कम करने, भौतिक इच्छाओं को बढ़ाने और उनकी तृप्ति के लिये धरती का कोना छान मारने की ऊँची दौड़ चल रही है, वह मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं है।"

गांधी ने हिन्द स्वराज में लिखा है कि आधुनिक सभ्यता दिखावटी तौर पर समानता के सिद्धान्त को सम्मान देती है, परन्तु यथार्थ में वह प्रजातिवाद को बढ़ावा देती है। इसमें अश्वेतों को मानवीय गरिमा से वंचित रखा जाता है और उनका शोषण किया जाता है। गांधी के अनुसार आधुनिक सभ्यता में चेतन की तुलना में जड़ को, प्राकृतिक जीवन की तुलना में यांत्रिक जीवन को और नैतिकता की तुलना में राजनीति और अर्थशास्त्र को ऊँचा स्थान दिया गया है। उनके ये विचार वर्तमान दुनियाँ पर पूर्ण रूप से लागू होते हैं। इसलिये संकट के इस दौर में विकास के नये प्रतिमान के विकल्प के रूप में गांधी दर्शन श्रेष्ठ विकल्प दिखाई देता है।

गांधी दर्शन मानवता, सत्य, अहिंसा, शान्ति, संतोष, अनासक्ति, एकता और राष्ट्रीयता पर आधारित है। किन्तु वैश्वीकरण के दौर में इन सारे मूल्यों को शब्दकोश में समेटकर रख दिया गया है। बढे पैमाने पर व्याप्त गलाकाट आर्थिक प्रतिस्पर्धा और विघटन के इस दौर में किसी व्यक्ति के पास इन सबके बारे में सोचने का समय नहीं है। महात्मा गांधी इन्हीं सब बातों के बारे में हमें सचेत करते हैं। वे मनुष्य को मनुष्य बने रहने की सलाह देते हैं और इसके लिये जरूरी आचार-व्यवहार का संदेश देते हैं तथा सम्बन्धित व्यापक जीवन दर्शन प्रस्तुत करते हैं। गांधी का प्रभाव देश और काल की सामायें लांघकर आज वैश्वीकरण के इस कठिन दौर में भी प्रासंगिक है। गांधी के सारे विचार उनके अनुभवों से छनकर निकले हैं। उनकी सफलता इस बात में है कि वे जो सोचते और कहते हैं, वह वे करते हैं।

महात्मा गांधी ने गांवों की आत्म निर्भरता और कुटीर उद्योगों पर बहुत अधिक बल दिया था। भूमण्डलीकरण के दौर में गांधी का यह विचार पहले से ज्यादा प्रासंगिक हो गया है। क्योंकि इस दौर में भारत जैसे विकासशील देशों की पहली जरूरत अपनी जडों को मजबूत करने की है और इसके लिये गांवों को आत्मनिर्भर बनाना बेहद जरूरी है। भारत जैसे विकासशील देशों को सावधान रहना होगा कि कहीं भूमण्डलीकरण की आंधी में बहुत सी परम्परागत आजीविकायें नष्ट न हो जायें, विशेषकर खेती-किसानी और दस्तकारी। इनके साथ बहुत सा परम्परागत ज्ञान भी जुडा है। यदि यह सब नष्ट हो गया तो हमारी बहुमूल्य विरासत लुप्त हो जायेगी। यदि गांधी के रास्ते को अपनाया जायेगा तो गांवों व कस्बों की आत्मनिर्भरता व आवीविका की विविधता को संरक्षित रख पाना सम्भव होगा। इसी तरह अनेक अन्य बुनियादी जरूरतों के बडे हिस्से की आपूर्ति खादी व कुटीर उद्योगों से हो सकेगी। यदि गांवों और कस्बों की अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भरता के साथ मजबूत बनाया जायेगा तो हम विश्व अर्थवयवस्था के उतार-चढावों का सामना अधिक दृढता से कर सकते हैं।

महात्मा गांधी इस बात पर भी बहुत अधिक बल देते थे कि अर्थ पक्ष और नैतिक पक्ष एक दूसरे के पूरक हैं। यदि गांधी की इस सोच पर ध्यान दिया जाय तो अर्थव्यवस्था को भ्रष्टाचार और कालाधन जैसी बीमारियों से बचाया जा सकता है। इसी नैतिक सोच से जुडी हुई गांधी की सोच यह भी थी कि सबसे बडी प्राथमिकता निर्धन वर्ग का दु:ख-दर्द दूर करने की होनी चाहिये। उन्होंने कहा कि यदि अनिश्चय की स्थिति हो तो इस आधार पर निर्णय लिया जाना चाहिये कि सबसे निर्धन और जरूरतमन्द वर्ग के लिए क्या आवश्यक है? यदि आज इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जाये तो न केवल भारत, बल्कि दुनियाँ के करोडो लोगों के दु:ख -दर्द को कम किया जा सकता है।

निष्कर्ष

वर्तमान दौर में महात्मा गांधी का स्वदेशी का विचार वैश्वीकरण का रचनात्मक विकास बन सकता है। उन्होंने अपनी पुस्तक हिन्द स्वराज में मशीनीकरण के भयाभय रूप को रेखांकित करते हुये स्वदेशी की महत्ता को स्थापित किया। इसके साथ ही रस्किन की पुस्तक "अंटु दिस लास्ट" से सर्वोदय के सिद्धान्त को ग्रहण किया और अपने जीवन में उतारा। गांधी के स्वदेशी और सर्वोदय के विचार को वर्तमान दौर में अपनाया जायेगा तो कुटीर उद्योगों को लुप्त होने से बचाया जा सकेगा। इसके साथ ही ग्रामीण रोजगार साधनों को नष्ट होने से बचाकर शहरों में मजदूरी के लिये नागरिकों के बढते पलायन को रोका जा सकता है। गांधी दर्शन प्राकृतिक संसाधनों के समझदारी भरे उपयोग पर आधारित है, न कि प्राकृतिक संसाधनों और सौन्दर्य के विनाश पर। इस सम्बन्ध में उनका विचार है कि प्रकृति के पास पृथ्वी के सभी जीवों की जरूरतों को पूरा करने के लिये पर्याप्त संसाधन हैं, लेकिन हर किसी के लालच की पूर्ति के लिये नहीं है। उनका यह विचार आज की दुनियाँ में प्रासंगिक है, जब लोग अत्यधिक लालच, व्यापक स्तर पर हिंसा और भागदौड भरी जीवन शैली का समाधान खोजने की कोशिश कर रहे हैं। विश्व मानव सभ्यता को संकट से बचाने के लिए हमें गांधी द्वारा बताए गये सात सामाजिक पापों से बचकर चलने की जरूरत है। यह सात सामाजिक पाप हैं - विवेक के बिना भोग, चरित्र के बिना ज्ञान, श्रम के बिना सम्पत्ति, नैतिकता के बिना व्यापार, त्याग के बिना धर्म, मानवता के बिना विज्ञान और सिद्धान्तहीन राजनीति। गांधी द्वारा बताये गए इन सात सामाजिक पापों से नहीं बचेगें तो हम मनुष्य, समाज और उसकी स्वतंत्रता को खो देंगे। गांधी का चिन्तन दर्शन संसार के हर आदमी को जोड़ता है, जबकि वैश्वीकरण केवल बाजार नेटवर्क मजबूत करता है। लगातार बदल रही दुनियाँ वैश्वीकरण की जीवन्त प्रक्रिया है और एक गम्भीर चुनौती भी। हम वैश्वीकरण की प्रक्रिया को पूर्णतया नहीं रोक सकते, लेकिन वैश्वीकरण की

चुनौतियों का सामना महात्मा गांधी के विचार दर्शन के माध्यम से कर सकते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक "गांधी, अम्बेडकर लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ" में निष्कर्ष दिया है कि भारतीय इतिहास में कोई भी एक व्यक्ति किसी युग में इतने विशाल जन समुदायों को प्रभावित नहीं कर सका और विश्व इतिहास में भी किसी एक व्यक्ति का ऐसा व्यापक प्रभाव नहीं देखा गया। महात्मा गांधी के विचार दर्शन का प्रभाव देश और काल की सीमाओं को लांघकर वैश्वीकरण के इस कठिन दौर में भी प्रासंगिक है।

संदर्भः-

1. डॉ. शिखा गढवाल; वैश्वीकरण, मानव अधिकार और गांधी, लिटरेरी सर्किल, संसारचन्द्र रोड, जयपुर, 2019
2. रामजी सिंह; गांधी और मानवता का भविष्य, कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स, दरियागंज, नई दिल्ली, 2019
3. डॉ. एम.के. मिश्रा; डॉ. कमल दाधीच- गांधी का आर्थिक चिन्तन, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 2019
4. मनोज कुमार सिंह; आशुतोष कुमार - महात्मा गांधीरू एक अवलोकन, के.के. पब्लिकेशन्स, दरियागंज, नई दिल्ली, 2018
5. समकालीन विश्व राजनीति; एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली
6. भारत डोगरा; आलेख-आज भी प्रासंगिक हैं गांधी के आर्थिक विचार, देशबन्धु (30.01.2017)
7. महात्मा गांधी; हिन्द स्वराज, नवजीवन प्रकाशन।

स्वामी विवेकानन्द एवं गुरूदेव रविन्द्र नाथ के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० रमाकान्त यादव

एसोसिएट प्रोफ्फेसर (बी. एड. विभाग), चौ. चरण सिंह पी.जी. कॉलेज हेंवारा इटावा

सारांश

जिस व्यक्ति का जैसा दर्शन एवं परिस्थिति काल व समय होता है वैसा ही उसके शिक्चा सम्वंधी विचार होते है विश्व-भारती संस्था की स्थापना इस बात की ओर संकेती है की रविन्द्र नाथ टैगोर ने अपने समय की परिस्थितियों से उब कर ही विश्व भारती संस्था की स्थापना की थी शन्ति निकेतन की स्थापना आधुनिक युग में बिल्कुल मौलिक ढंग की है, उसके आयोजन में जैसा विचार है जैसा आदर्श है, जैसा चिंतन है, वैसा रविन्द्र नाथ टैगोर जैसा शिक्षा शास्त्र का मर्मज्ञ भारत देश की परिस्थियों, आवश्यकताओ और परम्पराओं का ज्ञाता ही कर सकता है उक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है की रविन्द्र नाथ टैगोर अपने देश के एक महान शिक्षा शास्त्री थे क्यों की वे अपने समय में सिक्षा के संभंध में काफी विचार किये है और जों भी उच्च विचार सिक्षा के संभंध में आया है उसको लेखनी बध्द भी किया है जैसा की उनके शिक्षा सम्भंदी रचानो से ज्ञात होता है।

प्रस्तावना

रविन्द्र नाथ टैगोर के रचनाओ से ज्ञात होता है की उन्होंने शिक्षा से सम्बंधित सभी पहलुओ पर विचार किया है विचारो को उन्होंने विश्वभारती के रूप में एक ठोस और वयाव्हारिक रूप दिया है यह उनके शिक्षा शाश्त्री होने का सबसे बड़ा प्रमाण है शिक्षाशाश्त्र के विषय में भी उन्होंने काफी चर्चा की है और इस चर्चा में उनके दार्शनिक विचारो की पूरी छाव मिलती है हम उनके विचारो के अनुसार विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर विचार करेगे है.

प्राचीन काल से सामाजिक संरचना में स्त्रियों की भूमिका प्रमुख है लगभग आधी जनसंख्या स्त्रियों की ही है इसलिए यह कहना अनिवार्य हो जाता है कि सामाजिक प्रक्रिया बिना शिक्षा के समुचित ढंग से नहीं हो सकती है। दार्शनिक और वैज्ञानिक विचार धारायें तथा शिक्षाविदों ने स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी गूढ़ तथा अनिवार्य समस्या पर तर्क पूर्ण विचार करके उनका हल प्रस्तुत किया है।

वर्तमान भारतीय परिस्थितियों में यह अनिवार्य हो गया है कि रवीन्द्र नाथ टैगोर और स्वामी विवेकानन्द जैसे शिक्षाविदों के स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी क्या विचार थे? तथा उन्होंने उसकी तत्कालीन स्थिति और सुधार हेतु उनके द्वारा दिये गये विचारों को वर्तमान में किस प्रकार अमल में ला सकते हैं।

स्वामी जी और रवीन्द्र नाथ टैगोर जी दोनों ही लोक जीवन की वेदना को बड़ी गहराई से समझते थे एक धर्म के माध्यम से जनजीवन को सुखमय बनाना चाहते थे और दूसरा धर्म पर आधारित राजनीति के माध्यम से एक स्थान पर स्वामी जी ने कहा है-

"क्या आप जानते हैं कि लाखों आदमी आज भूखों मर रहे हैं और युगों से मरते आ रहे हैं। दोनों विचारकों का यह मानना था कि आध्यात्मिकता के ही साथ व्यक्ति का विकास हो और व्यक्ति का जीवन इस प्रकार बनाया जाय कि वह शिक्षा के ही माध्यम से भी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति भी करता चले।

रवीन्द्र नाथ टैगोर ने अपने विचारों में व्यक्त किया है कि ईश्वर को भी यदि अपने अस्तित्व का आभास देना है तो उसे गरीब आदमी के सामने भोजन के रूप में आना होगा।

दोनों ही विचारकों ने नारी की मर्यादा को अत्यधिक महत्त्व दिया है। स्वामी जी ने अपने संगठन में महिलाओं को भी शामिल किया और एक विदेशी महिला सिस्टर निवेदिता ने जो कार्य अपने देश में किया उससे सभी परिचित है।

अमेरिका में उन्होंने विभिन्न व्याख्यानों में पाश्चात्य और स्त्री शिक्षा में विभिन्न प्रकार से अन्तर बताते हुए एक भाषण में इस प्रकार कहा-

"भारतीय नारी पहले माँ है और तब कही और कुछ, रवीन्द्र नाथ टैगोर भी समानता पर सदैव बल देते थे और उन्होंने नारी की साधना को अद्वितीय प्रतीक माना था और वह नारी का प्रचीन गौरव पुन: स्थापित करना चाहते थे।

अन्त में यह कहना अनुचित न होगा कि स्त्री शिक्षा में रवीन्द्र नाथ टैगोर और स्वामी विवेकानन्द की विचारधारायें वाहय रूप से भिन्न होते हुए भी मूलत: जीवनोपयोगी प्रदान करे तथा कुशल योग्य, आदर्श एवं चरित्रवान शिक्षिकाओं की आवश्यकतानुसार शिक्षण संस्थाओं में नियुक्ति कर स्त्री शिक्षा में वृद्धि की जा सकती है जिन तथ्यों एवं विचारों पर इन शिक्षा शास्त्रियों ने प्रकाश डाला है वे सिद्धान्त और विचार उपयोगी थे किन्तु सही अर्थों में उनपर शिक्षा में क्रियान्वयन किया जाये।

स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में निष्कर्ष

१. स्वामी जी धर्म, नैतिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा के पक्षधर थे जिससे हमारे व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास हो सकें। जबकि रवीन्द्र नाथ टैगोर व्यवसायिक शिक्षा पर बल दिये जिससे बेरोजगारी दूर करने तथा तकनीकि युक्त समाज बनाने में काफी सुधार हुआ है।

२. स्वामी जी भारतीय संस्कृति से प्रभावित थे अत: उन्होंने भारतीय स्त्रियों को विश्व की सभ्य व शालीन स्त्री माना और भारतीय संस्कृति के अनुसार शिक्षा देने पर बल दिया जबकि रवीन्द्र नाथ टैगोर भारतीय शिक्षा के साथ-साथ पाश्चात्य शिक्षा पर भी बल दिया।

३. स्वामी विवेकानन्द जी और रवीन्द्र नाथ टैगोर दोनों ही लोक जीवन की वेदना को बड़ी गहराई से समझते थे, पर स्वामी जी धर्म के माध्यम से जीवन को सुखमय बनाना चाहते थे और टैगोर जी धर्म पर आधारित राजनीति के माध्यम से।

४. रवीन्द्र नाथ टैगोर स्त्रियों को पुरूषों के बराबर शिक्षा देने के पक्ष में थे, क्योंकि स्त्री शिक्षा पुरूष शिक्षा के बराबर होने से समाज व राष्ट्र का तीव्र विकास होगा। एक नारी के शिक्षित होने से पूरा परिवार व समाज शिक्षित होता है। इसी प्रकार स्वामी जी का कहना था कि जब स्त्रियां एक बार शिक्षित हो जाएं तो उन्हें स्वयं निर्णय लेने दो, उन्हें जीवन में क्या करना है और क्या नहीं।

रवीन्द्र नाथ टैगोर ने प्रत्येक स्त्री एवं पुरूष की साक्षरता को शक्ति का आधार माना है। उन्होंने स्त्रियों को गृहोपयोगी तथा उत्पादक शिक्षा प्राप्त करने पर बल दिया और स्वामी विवेकानन्द ने स्त्री शिक्षा द्वारा स्वतंत्रता, आत्मबल तथा निर्भयता प्राप्त करने पर बल दिया अर्थात् स्वामी जी स्त्रियों की स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक थे।

स्वामी जी के अनुसार भारतीय नारी पहले माँ है और तब कहीं और कुछ। रवीन्द्र नाथ टैगोर भी समानता पर सदैव बल देते थे और उन्होंने नारी की साधना को अद्वितीय प्रतीक माना था और वे नारी के प्राचीन गौरव को पुन: स्थापित करना चाहते थे।

हम यह कह सकते हैं कि स्त्री शिक्षा के संदर्भ में रवीन्द्र नाथ टैगोर और स्वामी विवेकानन्द की विचारधाराएं वाह्य रूपों से भिन्न होते हुए भी मूलत: एक ही थी। विभिन्न पथ पर चलकर दोनों ने एक ही लक्ष्य अर्थात् "स्त्री के शावत मूल्यों'' को सामने रखा।

अन्त में हम अपने अनुसंधान कार्य के फलस्वरूप इस निष्कर्ष पर पहुचे है कि इन शिक्षा शास्त्रियों के स्त्री शिक्षा सम्बन्धी विचार एवं सिद्धान्त आधुनिक भारतीय परिस्थितियों में अमल किए जा रहे हैं। परन्तु अभी और भी सुधार हम इन महान शिक्षाविदों के विचारों से कर सकते हैं।

अभी स्त्री शिक्षा सम्बन्धी तथा खास तौर पर ग्रामीण स्त्री शिक्षा सम्बन्धी अनेकों समस्यायें हैं पर उन समस्याओं का समाधान हम इन महान शिक्षा दार्शनिकों के शैक्षिक विचारों पर अमल करके कर सकते हैं।

स्त्री शिक्षा के सन्दर्भ में सुझाव-

स्त्री शिक्षा के सन्दर्भ में रवीन्द्र नाथ टैगोर और स्वामी विवेकानन्द द्वारा दिये गये सुझावों को ध्यान में रखकर योजनाओं का निर्माण करना चाहिए जिससे स्त्री शिक्षा की समस्या पर नियंत्रण पाया जा सकें।

संसार का कार्य उचित ढंग से करने के लिए यह आवश्यक है कि स्त्री पुरूष की समानता को ध्यान में रखकर ही योजनाओं को बनाना चाहिए तथा वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षाओं में पर्याप्त सुधार किया जाना चाहिए जो कि वर्तमान में देखने में नहीं आ रहा है।

स्त्रियों को शिक्षा अवश्य दी जानी चाहिए जिससे वे अपनी योजनाएं स्वयं लागू करें, जैसा कि स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा कि सभी समस्याओं का समाधान शिक्षा में है।

इसलिए विवेकानन्द ने भी कहा है कि शिक्षित स्त्रियां स्वयं अपना निर्णय लेगी कि क्या मुझे करना है पुरूष कौन होता है उनके बीच में बोलने वाला। इसलिए आज यह अति आवश्यक हो गया है कि योजनायें बनाने में तथा उनके क्रियान्वयन में महिलाओं को आगे आना चाहिए तभी वे समझ सकेगी कि उनकी अपनी जाति की समस्या क्या है? तथा इसके लिए क्या करना चाहिए परन्तु आज के समाज में स्त्री शिक्षा की वृद्धि के लिए योजनायें बनाने में भी उनका पूर्ण सहयोग एवं सहकारिता को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता है।

शैक्षिक विषयों में अन्तर होना चाहिए क्योंकि स्त्री में कुछ ऐसे गुण होते हैं जो कि पुरूष में नहीं होते अर्थात् स्त्रियों में कलात्मक रूचि अधिक पायी जाती है इसलिए उन्हें प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर गृह सज्जा, कढ़ाई, बुनाई, कटाई, सिलाई आदि की शिक्षा देना अनिवार्य है। परन्तु आज सभी शिक्षण संस्थाओं में ऐसी सुविधा नहीं है इसका होना अनिवार्य है। उन्हें गृह विज्ञान के शिक्षण के अन्तर्गत व्यवहार, पाककला तथा मातृत्व की भी शिक्षा देना अति अनिवार्य है स्त्रियों को स्वरक्षा हेतु जिम्नास्टिक, दंगल आदि की भी जानकारी देना आवश्यक है क्योंकि वे वीरता का भी अवतार है, आज के दूषित समाज में उन्हें अपनी रक्षा स्वयं करनी चाहिए यह भी शिक्षा के द्वारा ही अधिक सम्भव हो सकेगा, तथा लड़कियां लड़कों द्वारा की जा रही उद्दण्डता का जवाब स्वयं देने में समर्थ हो सकेगी, रवीन्द्र नाथ जी चाहते थे कि स्त्रियों को इस प्रकार की शिक्षा नहीं दी जा रही है परन्तु विदेशों में बालिकायें कुश्ती प्रतियोगिता भी कर रही है दिनांक 01.12.1994 को कानपुर के ग्रीन पार्क स्टेडियम में इस प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इससे भारतीय महिलाओं को भी शिक्षा लेनी चाहिए कि बालिकायें किसी भी दृष्टिकोण से पुरूषों से कम नहीं है। ऐसी प्रतियोगिताओं का आयोजन भारतीय शिक्षण संस्थाओं में भी किया जाना चाहिए।

रवीन्द्र नाथ टैगोर स्त्रियों के प्राचीन गौरव को स्थापित करना चाहते थे जिसके लिए उनके उत्थान पर उनके प्रकार के सुधारत्मक कार्यों को सम्पादित करने का कार्य किया इसी के तहत 1908 में शान्ति निकेतन में उन्होंने स्त्रियों के विकास के लिए एक अलग विभाग बनाया और नया विभाग 'नारी भवन' कहलाया फिर नारी विभाग बन गया। स्त्रियों को उनके व्यवहारिक कला कौशलों यथा-गृह विज्ञान, पाठ्यकला, सिलाई, बुनाई आदि की शिक्षा दी जाती थी इसके साथ ही साथ नारी को समाज सेवा का प्रशिक्षण भी दिया जाता था।

टैगोर जी ने उन्हें दो प्रकार से ज्ञान देने की बात कही विशुद्ध ज्ञान तथा व्यवहारिक ज्ञान विशुद्ध ज्ञान के क्षेत्र में स्त्री और पुरूष में कोई अन्तर नहीं है। व्यवहारिक ज्ञान के क्षेत्र में दोनों में अन्तर पाया जाता है। उनके अनुसार स्त्री शिक्षा के द्वारा ही समाज को मजबूत बनाया जा सकता है। स्त्री शिक्षा के लिए पुरूषों को अपनी कुण्ठा को छोड़ना होगा उन्हें नारी के साथ मिलकर आपसी सहयोग से एक नये संसार का सृजन करना होगा जिसमें कोई भी किसी से कम नहीं होगा टैगोर नारी को घरों में सजाने तथा उन्हें मजबूत चहार दीवारी में कैद करने का विरोध करते थे वे कहते थे समाज का नव निर्माण तभी सम्भव है जब स्त्री और पुरूष दोनों ही शिक्षित होगें।

आज प्रतिदिन कई युवतियों की दहेज न मिलने के कारण हत्या की जा रही थी लेकिन इन विद्वानों का विचार था कि इन समस्याओं में फंसकर हत्या व आत्महत्या नहीं की जानी चाहिए फिर उनकी शिक्षा किस कामकी यदि वे अपनी ही रक्षा स्वयं न कर सकी। इसके लिए स्त्रियों को अपने पैरों पर खड़े होने के लिए व्यावसायिक शिक्षा दी जानी चाहिए वे संघर्ष के समय अपना पेट पाल सके और किसी के भी अधीन न रहे अपनी जीविका स्वयं चलायें। परन्तु आज शिक्षा केवल किताबी ज्ञान को ही बढ़ाती है उसे किताबी ज्ञान के अलावा व्यावसायिक एवं जीविकोपार्जन हेतु व्यवहारिक एवं औद्योगिकी शिक्षा भी प्रदान की जानी चाहिए।

रवीन्द्र नाथ टैगोर और स्वामी विवेकानन्द द्वारा दिये गये सुझाव आज प्रभावपूर्ण है कि शिक्षित स्त्रियों को ही आगे आकर अशिक्षित महिलाओं की भावनाओं को जगाकर उनको कुछ कर दिखाने की क्षमता पैदा करना चाहिए यह किताबी ज्ञान के अलावा भी उनमें अपनी मौजूदा हालत और उनके सहयोग की समाज को कितनी आवश्यकता है यह ज्ञान कराना शिक्षित स्त्रियों का ही परम कर्तव्य है।

इन सभी सुझावों को ध्यान में रखकर ही शिक्षा की योजनायें बनायी जानी चाहिए। इनके सुझाव निश्चय ही स्त्री शिक्षा के विकास में सहायक सिद्ध हो सकेगें।

भावी अध्ययन हेतु सुझावः

१. रवीन्द्र नाथ टैगोर और स्वामी विवेकानन्द के स्त्री शिक्षा सम्बन्धी विचारों की वर्तमान युग में प्रासंगिकता।

२. विवेकानन्द, टैगोर तथा विनोवा भावे के स्त्री शिक्षा सम्बन्धी विचारों का समीक्षात्मक अध्ययन किया जाय।

शिक्षा का सम्बन्ध या सीमा सिर्फ साक्षरता तक ही सीमित नहीं है पर सीधे तौर पर धर्म से भी है। धर्म ही है, जो जोड़ने का काम करता है, धर्म शिक्षा विशेष धर्म के लिये कदापि नहीं अपितु सभी के लिये है, धर्म विभाजन नहीं करता बल्कि एकता का वातावरण तैयार करता है। शिक्षा भी इसी कार्य की प्रमुखता का श्रोत है। वर्तमान में शिक्षा की दशा और दिशा, कुछ कहते नहीं बनती सीधे तौर पर शिक्षा का प्रतिबिम्ब समाज होता है। यदि समाज स्वस्थ है तो शिक्षा सार्थक है। यदि यूँ कहा जाये "इन दौरे तरक्की के अंदाज निराले है, जहनों में अंधेरे है, सड़कों पे उजाले है'' तो गलत न होगा।

प्राथमिक शिक्षा वह आधारबिन्दु है जो व्यक्ति के स्वरूप, ढांचे को निर्धारित करता है। यदि बीज ही गलत होगा तो निश्चित रूप से वृक्ष खराब ही होगा। वर्तमान में यह एक सार्वभौमिक सत्य है कि स्कूल कहीं के भी हों बच्चों को लुभाते नहीं डराते है हमारी शिक्षा आज भी उस पश्चिम उपनिवेशवाद की चपेट में है जो अपने यहाँ तो स्कूलों की हार मानता है पर विकासशील देशों में स्कूलों की शक्ल में नया बहुराष्ट्रीय व्यापार खोज रहा है बिडंम्बना यह है कि स्कूल कितना भी खराब हो। हमारे बच्चों, किशोरों और युवाओं की शिक्षा का मुकाम है। ऐसे में उपनिवेशवाद की जड़े मिटाना और एक भौतिक सोच के आधार पर अपने स्कूलों को सुधारना शिक्षा जगत को सुधारना शिक्षा जगत का सबसे जरूरी और आपातकालीन सरोकार है।

बच्चों में अपार संभावनायें होती है सभी बच्चे कुछ न कुछ सीखना चाहते है, चाहे वह विषय हो, कला हो या फिर कोई खेल हो। यह शिक्षक पर निर्भर करता है कि वह बच्चें में पायी जाने वाली संभावनाओं को किस प्रकार संवारता है। इस दौरान आने वाली चुनौतियों का सामना कैसे करता है। खेल और बच्चे एक दूसरे का पर्याय है खेल में जहाँ बच्चों को आनन्द मिलता है वहीं खेल के दौरान बहुत कुछ सीखने को भी मिलता है। खेल बच्चों की भाषा को विस्तार देता है। खेल ही खेल में सहयोग, धैर्य, जैसी आदतें बच्चे सीख लेते हैं। विद्यालयों में खेलने का अवसर मिले तो विद्यालय भी आनन्ददायी स्थल बन सकेगा। बच्चों को सक्रिय बनाने में उनकी तर्क, स्मृति कल्पना और चिंतन शक्ति को विकसित करने में सृजनात्मकता परस्पर सम्मान, पराजय तथा चुनौतियों को स्वीकारने एवं प्रतिभा को निखारने में खेल महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन कर सकते हैं।

किसी भी क्षेत्र में सफलता की एक ही कुंजी है-परस्पर सहयोग। जैसे वरट्रेंड रसेल ने कहा है-'मिलकर रहना या फिर नहीं रहना'। शिक्षा क्षेत्र में यह और भी जरूरी और सार्थक नियम है। सभी के बच्चें शिक्षा ग्रहण करते हैं, सबकी सहायता से यह राष्ट्र निर्माण का पावन कार्य हो सकता है। समाज के सभी तत्वों, विभागों को इसमें पूर्ण सहयोग होना अनिवार्य है शिक्षा संस्कृति, चाहे निजी हो चाहे सरकारी, विद्यार्थियों के लिए हैं, जब वे परस्पर सद्भावना और सहयोग से चलती है, आभास होता है कि भगवान स्वर्ग में है और सब कुछ ठीक से चल रहा है विकसित देशों में यह बात उभरकर सामने आती है। लेकिन जब शिक्षा का कार्य केवल सरकार या किन्हीं संस्थाओं का क्रिया-कलाप समझ लिया जाता है, तो ऐसा लगता है कि 'नरक खाली हो गया है और सब शैतान यहीं आ गए है।

सन्दर्भ

1. अग्रवाल सुबोधः भारतीय शिक्षा सिध्दांत गर्ग, ब्रधर्स, कटरा रोड प्रयाग १९५७.
2. अनिवेसेंटः भारतीय आदर्श आनंद प्रकाश लि. कमच्छा वाराणसी-1.१९५४
3. कबीर, हुमायुः एजुकेशन इन न्यू आइडिया, जार्ज आलें एंड अन्विन
4. गाँधी, महात्माः सच्ची शिक्षा ट्रांसलेटर श्री राम चौधरी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद
5. टैगोर, रविंद्रनाथः पोएट्स स्कूल विश्व भारती बुलेटिन नम्वर ९, जुलाई ,१९४६
6. गीतांजलि, मैकमिलन एंड क.लि.लन्दन

वर्तमान युग में मूल्यों का हास

डॉ० अजय कुमार यादव

एसो. प्रोफे. शिक्षक प्रशिक्षण विभाग, चौ. चरण सिंह पी. जी. कालेज, हेवरा, इटावा

देश में शैक्षिक उन्नयन के लिए पिछली सदी में गठित किये गए आयोग के चेयरमैन डॉ० एस० कोठारी ने अपनी रिपोर्ट 1964-66 का शीर्षक दिया था राष्ट्रीय विकास के लिए शिक्षा। मैं सोचता हूँ कि अगर वर्तमान परिदृश्य में उन्हें रिपोर्ट दाखिल करनी होती तो वह निश्चित रूप से इस शीर्षक को बदलकर चरित्र निर्माण के लिए शिक्षा करना चाहते। दरअसल पिछली सदी के छठे दशक में पूरी दुनिया में विकास पर जोर था तो हमने भी उसे अपना लिया नतीजा यह हुआ कि हमने ढेर सारे डिग्रीधारी तो पैदा कर लिए लेकिन मानवीय मूल्यों की शिक्षा भूल गये।

आज हमारा शिक्षित समाज कैसा है? पहले मकान कच्चे थे, लोग पक्के थे। आज मकान पक्के हैं लेकिन लोग कच्चे होते जा रहे हैं विशेषकर शिक्षित लोग गुलाम भारत में डिग्रीधारी गिने चुने थे आजाद भारत में उनकी भीड़ है लेकिन सच्चे शिक्षित कम है। सुखद यह है कि अच्छे लोग अभी भी बहुतायत में है किन्तु विचित्र संकट यह है कि नेक एक नहीं है जो एक हो गये उनमें से अनेक नेक नहीं है। शिक्षित तो बहुत है लेकिन उनमें से विकास के सक्रिय तो बहुत है लेकिन उनमें विकास के सक्रिय साक्षी विरले है अधिकांश मूकदर्शक बनकर जी रहे हैं नागरिक नहीं बनना चाहते। आजाद देश की तीसरी पीढ़ी आ जाने के बाद भी इस विरोधाभास का एक मुख्य कारण यही है कि हमारे विद्यालय आगे आने वाली पीढ़ी के लिए जी रहे हैं क्या हमारे छात्र पुस्तकों का चमत्कार समझ रहे हैं क्या उन्होंने अच्छे विचारों, भावों के झीकों को आने का आनन्द प्राप्त किया है क्या उन्होंने कभी भी अक्षर और शब्द का राज जानने की कोशिश की। क्या उन्होंने अपना खुलापन संतुलन और धेय बरकरा रखना सीखा है क्या उन्हें अपने से बेहतर आदमी का साथ मिला है? क्या उन्हें कुछ लम्हें नये उपयोगी और कल्याणकारी विचारों की मशाल लेकर चलने का फक्र हासिल हुआ है? क्या उन्हें यह पता है कि सफलता और असफलता मात्र एक जोडी ऐसे जूतों की तरह है जिन्हें मन्दिर मस्जिद या गिरजाघर में जाने से पहले उतारना जरूरी है। क्या उन्होंने कभी सोचा है कि सफलता का रंग अक्सर कच्चा लेकिन सार्थकता का रंग पक्का चोखा और चटख क्यों होता है क्या उन्होंने कभी पूछा-तेरे दामन में बल मौत से ज्यादा क्या है? जिन्दगी और बता तेरा इरादा क्या है?

इन सारे ज्वलन्त सवालों से घिरे पुराने मर्जी से पीडित हमारे शिक्षा केन्द्र आज भी आयातित घिराली की तरह चिपके है। न पूरी तरह स्वीकृत, बहिष्कृत हम कर नहीं सकते यदा-कदा तिरस्कृत करते रहते हैं। आम धारणा यह है कि गुलाम भारत के विद्यालय आजाद थे जबकि आजाद भारत के अनेक शिक्षा केन्द्र गुलाम बेहाल और विपन्न होते जा रहे हैं उपनिषद शब्द का भाव था अध्यापक के निकट बैठकर सीखना यही गुण गायब है। हम सरस्वती को वीणा पुस्तक धारिणी मानकर पूजते तो हैं किन्तु हमारा समाज पठनीय कम दर्शनीय अधिक हो गया है। ग्रन्थी भवति पण्डित का रिश्ता डगमगा गया है छात्र टेलीविजन से चिपका है उसका एकाग्रता का अन्तराल बेहद कम हो गया है, बेरोजगारी की फौज बढ़ गयी है उनमें अनेक रोजगार पाने लायक भी नहीं हैं। हमने नये विषय तो खोले हैं लेकिन बतौर फैशन के यह सच है कि विद्यालय समाज का आइना होता है परन्तु वातावरण में जब गिरावट आती है तब संस्कृति के सर्वोत्कृष्ट फूल सबसे पहले मुरझाते हैं। यही कारण है कि गाज भी सबसे पहले विद्यालय पर ही गिरती है। यहाँ हमें समाज का चेहरा बेनकाब दिखता है धर्म सस्कार के बन्धन ही ढीले हो गये हैं राजनीति की पकड़ कमजोर हो गयी है मर्यादा और रोक-टोक का ताना बना टूट रहा है। यह भी गौरतलब है कि बूढ़े लोग अक्सर गलत काम छिपकर करते हैं परन्तु युवक खुलकर निहित स्वार्थों के दीमकों ने हमारे विद्यालयों को खोखला कर दिया है। जाहिर है हमारी शिक्षा व्यवस्था में आमूल चूल बदलाव की जरूरत है। शिक्षा सामाजिक सरोकारों से जुड़ी होनी चाहिए अगर यह जुड़ाव नहीं रहेगा तो बच्चे शिक्षित तो हो जायेंगे परन्तु बेहतर इंसान नहीं बन पायेंगे। इक्कीसवीं सदी में हमें ऐसे मानव संसाधन की जरूरत है जिसके अन्दर अपनी धरती से पनपे मूल्य समाहित हों। उमने सम्मान और सेवा के भाव हो। वह आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी हो वह इंसान व प्रकृति के रिश्तों को उसकी नजाकत को समझते हो। इतिहास की किताब में यह पढ़ लेना पर्याप्त नहीं कि हमारे पूर्वज पेड़ पौधों और पशु पक्षियों की पूजा करते थे, हमें इसके पीछे के भाव को समझकर उसे अपने जीवन में उतारना होगा। पहले भी हमारा जीवन उन पर निर्भर था और आज भी है, औ आगे भी रहेगा। आपके पास पर्याप्त धन है तो इसका मतलब यह नहीं है कि आप सुखीरहेंगे। इस प्रकृति पारा परत पर रहने वाले सभी लोगों के लिए पर्याप्त संसाधन है परन्तु किसी एक का सेकरसकता है। इसलिए हम प्रकृति से उतना ही ले जितनी हमें जरूरत है। भारतीय शिक्षित समाज की कल्पना करते हुए हमें इस शुभअवसर पर एक संकल्प लेना होगा। हमें हर विद्यार्थी को यह सीखना होना कि अगर प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्तव्य ईमानदारी से करता रहे तो किसी एक अधिकारों का हनन नहीं

शिक्षक से अभिभावक की अपेक्षा- मैं जानता हूँ उसे समझना होगा कि सभी मनुष्य न्यायी नहीं होते, सभी मनुष्य सच्चे नहीं होते परन्तु आप से यह समझायें कि दुष्टों के प्रतिरोध के लिए शूरवीर भी होते हैं और स्वार्थी राजनीतिज्ञ के होते हुए जनकल्याण के लिए समर्पित नेता भी उसे यह बोध करायें कि यदि शत्रु होते हैं तो वहीं भी होते हैं। मैं जानता हूँ कि यह कार्य समय साध्य है किन्तु यदि आप समझा सके तो उसे आवश्यक समझा कि कमाया हुआ एक रूपया पाये गये पाच की तुलना में कहीं अधिक अच्छा है।

आधुनिक जीवन के सभी पक्षों में बढ़ते मूल्य संकट से हम सभी चिन्तित हैं। इस चिन्ता से प्रेरित समसामयिक मूल्य विमर्श के दो व पक्ष उभर रहे हैं। एक है परम्परावादी विद्वानों का उनका मानना है कि यह संकट इसलिए उत्पन्न हुआ है क्योंकि हम अपनी परम्परा से और उसके धार्मिक सांस्कृतिक मूल्यों से विमुख होकर पश्चिमी सभ्यता का अनुसरण करते जा रहे हैं। दूसरी और आधुनिकता के प्रगतिशील आग्रहों का स्वागत करन वाले चिन्तक इस मूल्य संकट को मूलत: पारम्परिक से आधुनिक होते समाज के संक्रमण काल की पीड़ा मानते हैं। उनकी दृष्टि में वैश्वीकरण के इस युग में पारम्परिक मूल्यों की दुहाई देना हमारी प्रगति को बाधिक करता है। इस दृष्टि से यह विचारणीय है कि भारतीय मूल्य विमर्श में क्या कुछ ऐसा है जो समसामयिक युग के लिए महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है और कैसे वह आज के मूल्य सकट से उबरने का मार्ग दिखा सकता है। साथ ही इस बात पर भी विचार करेंगे कि कैसे आधुनिकता के नए समाज दर्शन से निकल कर सामाजिक मूल्यों को अपनी सभ्यता के पारम्परिक मूल्यों के साथ संगति बैठाकर हम एक बेहतर जीवन दृष्टि और बेहतर मूल्य व्यवस्था विकसित कर सकते हैं। हजारों वर्षों से अपनी निरन्तरता बनाए रखने वाली भारतीय संस्कृति की अपनी विशिष्ट मूल्य परम्परा रही है। विविध विचारों के विनियम से और सांस्कृतिक आदान-प्रदान से यह परम्परा समृद्ध होती रही है।

अत: समाज के इस बदले परिदृश्य में मानव मूल्यों के अस का अध्ययन और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। प्रस्तुत शोध में शोधार्थी ने प्रासंगिकता शब्द का प्रयोग उसके मौलिक पक्ष के परीक्षण के लिये नहीं किया गया है, अपितु यह जाँचने के लिए किया है कि विद्यार्थियों में मानवीय मूल्यों के प्रति रूझान की स्थिति किस प्रकार की है। उनमें मानवीय मूल्यों का पोषण हो भी रहा है या आधुनिक जीवन के विकास की आपा-धापी में वे नैतिक, चारित्रिक पतन की ओर बढ़ रहे हैं। वर्तमान विद्यालय शिक्षा क्या उन्हें उचित दिशा एवं सोच दे रही है। मूल्यों के सन्दर्भ में यही जाँचने का प्रयास प्रस्तुत शोध में शोधार्थी द्वारा किया गया है।

सन्दर्भ सूची

1. गुप्त, नत्थूलाल (2000) मूल्यपरक शिक्षा और समाज नमन प्रकाशन, नई दिल्ली. पू. ठ
2. कर्मयोगी, आर०यीत एवं सक्सेना, जयोत्सना (2012) मूल्यपरक शिक्षा आर०लाल० बुक डिपो मेरठ, पृ0 9-10
3. गुप्त गणपति चन्द्र (2012) मानव मूल्य एवं साहित्य, संस्कारम, अंक 2 व 3, संस्कारम् संस्थान, नई दिल्ली पृ० 32
4. गुसाई, संतोष सिंह एवं मीनाक्षी (2011) प्रतियोगिता दर्पण, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा पू. 1278-79

सूचना संचार (इंटरनेट) का विकास एवं समाज में इसका प्रभाव: एक अध्ययन

डॉ० कुसुम यादव

एसो. प्रोफे. शिक्षक प्रशिक्षण विभाग, चौ. चरण सिंह पी. जी. कालेज, हेवरा, इटावा

प्रस्तावना

सर्वप्रथम 1982 में विश्वविद्यालय के जे०सी०आर० निकलिडर ने अभिकलित्र जाल तैयार किया था। वे चाहते थे कि अभिकलित्र का एक ऐसा जाल हो जिससे आंकड़ों क्रमादेश और सूचनायें भेजी जा सके। 1966 में डारपा (मोर्चाब्दी प्रगति अनुसंधान परियोजना अभिकरण) ने आरपानेट के रूप में अभिकलित्र जाल बनाया। बाद में इसमें भी कई परिवर्तन हुए और 1972 में बॉब कॉहन ने अन्तर्राष्ट्रीय अभिकलित्र संचार सम्मेलन में पहला सजीव प्रदर्शन किया।

अमरीकी सेना की सूचना और अनुसंधान सम्बन्धी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए 1973 में यू०एस० एडवांसरिसर्च प्रोजेक्ट एजेंसी ने एक कार्यक्रम की शुरूआत की। उस कार्यक्रम का उद्देश्य था कम्प्यूटरों के द्वारा विभिन्न प्रकारकी तकनीकी और प्रौद्योगिकी को एक दूसरे से जोड़ा जाए और एक नेटवर्क बनाया जाए। इसका उद्देश्य संचारसम्बन्धी मूल बातों (कम्यूनिकेशन प्रोटोकॉल) को एक साथ ही एक ही समय में अनेक कम्प्यूटरों पर नेटवर्क के माध्यम सेदेखा और पढ़ा जा सके। इसे इंटरनेटिंग प्रोजेक्ट नाम दिया गया जो आगे चलकर इंटरनेट के नाम जाना जाने लगा।

इंटरनेट समुदाय को अमरीकी फेडरल सरकार की सहायता लगातार उपलब्ध होती रही क्योंकि मूल रूप से इंटरनेट अमरीका के अनुसंधान कार्य का ही एक हिस्सा था। आज भी यह अमरीकी अनुसंधान कार्यशाला का महत्त्वपूर्ण अंक है। किन्तु 1980 के दशक के अन्त में नेटवर्क सेवाओं व इंटरनेट उपभोक्ताओं में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अभूतपूर्व वृद्धि हुई और इसका इस्तेमाल व्यापारिक गतिविधियों के लिए भी किया जाने लगा। सच तो यह है कि आज की इंटरनेट प्रणाली का बहुत बड़ा हिस्सा व अनुसंधान संस्थानों एवं विश्व स्तरीय निजी व सरकारी व्यापार संगठनों की निजी नेटवर्क सेवाओं से ही बना है।

इंटरनेट तकनीकी का विकास

पिछले 18 सालों से इंटरनेट सहकारी पक्षों के बीच सहयोगी भूमिका निभाता चला आ रहा है। इंटरनेट के संचालन में कुछ बातें बहुत जरूरी है। इनमें से एक है प्रणाली को संचालित करने वाले प्रोटोकॉल का निर्धारण प्रोटोकॉल का मूल विकास डीएआरपीए अनुसंधान कार्यक्रम में किया गया किन्तु पिछले 5-6 सालों में यह कार्य विभिन्न देशों की सरकारी एजेन्सियों उद्योगों व शैक्षिक समुदाय की सहायता से विस्तृत रूप से किया जाने लगा है। इंटरनेट समुदाय के सही मार्गदर्शन और टीसीपी/आईपी के समुचित विकास के लिए 1983 में अमरीका में इंटरनेट एक्टिविटीज बोर्ड का गठन किया गया।

इंटरनेट इंजीनियरिंग टास्क फोर्स तथा इसके दो महत्वपूर्ण अंग हैं। इंजीनियरिंग आस्क फोर्स का काम टीसीपी/आईपी प्रोटोकॉल के विकास के साथ-साथ अन्य प्रोटोकॉल आदि का इंटरनेट में समावेश करना है। विभिन्न सरकारी एजेंसियों के सहयोग के द्वारा इंटरनेट एक्टिविटीज बोर्ड के मार्गदर्शन में नेटवर्किंग की गई उन्नतिशील परिकल्पनाओं के विकास की जिम्मेदारी रिसर्च आस्क फोर्स की है जिसमें वह लगातार प्रयत्नशील रहता है। आरम्भ में इंटरनेट उपभोगकर्ता समुदाय में जहाँ केवल कम्प्यूटर साइंस तथा इंजीनियरिंग रेणी के लोग ही हुआ करते थे आज इसके उपभोक्ताओं में विज्ञान, कला, संस्कृति सरकारी/गैर सरकारी प्रशासन व सैन्य जगत के ही नहीं बल्कि कृषि एवं व्यापार जगत के लोग भी शामिल हो रहे हैं। ऐसा लगता है कि अब दुनिया के किसी भी हिस्से में रहने वालाकोई भी व्यक्ति इंटरनेट के बिना अपने अस्तित्व की कल्पना कर सके।

इंटरनेट का अर्थ-विश्य को उन्नति की गति देने वाली इंटरनेट सेवा का अर्थ है इंटरनेट वर्क अर्थात आन्तरिक संचार। इस वर्क सिस्टम को इंटरनेट के नाम से भी जान जाता है। यहाँ विभिन्न प्रकार की 40 हजार नेटवर्क प्रणालियाँ हैं जिनकर उपयोग इंटरनेट के माध्यम से सरलता से किया जा सकता है। यह डिजिटल स्रोत और रिसीवर को जोड़ने की प्रक्रिया है। यह साधारण तरीके पर कम्प्यूटरों के विश्वव्यापी नेटवर्क के रूप में व्याख्याति कर सकते हैं जो प्रोटोकॉल (सूचना के आदान-प्रदान सम्बन्धी नियम) के आधार पर संचार करते हैं। इसके द्वारा सबसे ज्यादा विधि स्रोतों से सूचनाओं तकपहुंचा जाता है, जिससे व्यक्तियों और विश्वभर के संगठनों का योगदान होता है। इसे नेटवर्क ऑफ सर्वर्स (सेवकों का नेटवर्क) कहा जाता है।

इंटरनेट पाठ सामग्री (टेक्स्ट) या सूचना को विश्व भर में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाने का एक नवीन साधन है जो तीव्रता के साथ कम खर्च में सुगमतापूर्वक संचार करता है। यह खुद अन्तक्रिया नहीं करता लेकिन उपभोक्ता कम्प्यूटरों के द्वारा इस पर नियंत्रण रखते हैं जो उन्हें नेटवर्क पर सूचना भेजने तथा प्राप्त करने में सहायता पहुंचाते हैं।

इंटरनेट की विशेषता:

आज इंटरनेट सारी दुनिया का एक ज्ञान मंच बन चुका है। इस दशक के पहले तक इंटरनेट की सुविधा का फायदा विशेष रूप से विकसित देशों को ही प्राप्त था जबकि सदी के अन्तिम दशक में विकासशील और अर्धविकसित देशों में इसकी लोकप्रियता बढ़ी है। इस नेटवर्क से किसी भी विषय पर जानकारी उपलब्ध की जा सकती है। यहाँ इतनी ज्यादा जानकारी उपलब्ध है जिसे आत्मसात करने अथवा इतनी मात्रा में जानकारी प्राप्त करने कोई दूसरा माध्यम नहीं है। 1997 तक विश्व भर में इंटरनेट के मेजान कम्प्यूटरों की संख्या 01 करोड़ 90 लाख से अधिक हो गई थी जबकि सन 1993 में इसकी संख्या मात्र 22 लाख थी इंटरनेट सेवा की महत्वपूर्ण विशेषताएं निम्नलिखित है-

सम्पर्क- ई-मेल व चौट गुप्स के माध्यम से संसार में किसी भी वार्तालाप किया जा सकता है। पत्र व्यवहार के लिए पहले के जमाने में कबूतरों की सहायता लेनी पड़ती थी उसके पश्चात् डाक विभाग यह काम करने लगा। आज के वैज्ञानिक युग में यह कार्य अब ईमेल के द्वारा किया जा सकता है। इसमें समय भी नहीं लगता आप अपने कम्प्यूटर पर टाइप करते जाइए आपका पत्र पलक झपकते ही उसके कम्प्यूटर पर आ जाएगा जिसे आप भेज रहे होते हैं। चौटिंग वार्तालाप भी इंटरनेट के चौट ग्रुप्स के द्वारा टेलीफोन की तरह ही है फर्क सिर्फ इतना ही है कि टेलीफोनपर मुंह से बात करते हैं इंटरनेट पर की बोर्ड के माध्यम से सम्पर्क स्थापित किया जाता है। अन्वेषण- इंटरनेट पूरे संसार को एक दूसरे से जोड़ता है जिसके द्वारा हम विविध देशों संस्थानों और विचारकों की जानकारी हासिल करते हैं। इतना ही नहीं इंटरनेट के माध्यम से विभिन्न देशों, शहरों का भ्रमण किया जा सकता है घर बैठे ही अमेरिका, जापान इत्यादि घूम सकते हैं यूरोप का म्यूजियम देख सकते हैं जहाँ न पहुंचे रवि, वहाँ पहुंचे कवि आज इंटरनेट ने कवियों को भी बहुत पीछे छोड़ दिया है। यह पलक झपकते ही मनचाही जगह पहुंचा देता है।

ज्ञान में बढ़ोत्तरी- इंटरनेट के माध्यम से मानव के ज्ञान में तीव्रता से वृद्धि होती है। इंटरनेट पर एक सवाल का जवाब खोजने के सिलसिले में कई दूसरे का ज्ञान भी प्राप्त हो जाता है जो अचानक ही खोज के दौरान जाहिर होते हैं। इंटरनेट की भाषा में इसे सिरेनडिविटी आकस्मिक लाभवृत्ति कहा जाता है। शोध में सहायक इंटरनेट प्रत्येक वस्तु एवं क्षेत्र से जुड़ी हुई है उद्देश्य प्राप्ति के लिए इंटरनेट पर कहीं से भी शुरुआत की जा सकती है क्योंकि इंटरनेट सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, संगीत, कृषि, गृहविज्ञान आदि सभी से जुड़ी जानकारी उपयोगकर्ता के लिए उपलब्ध है। उपयोगकर्ताओं को इसकी जितनी ज्यादा जानकारी प्राप्त होगी वह उतनी ही तीव्रता के साथ अपने आविष्कार के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकता है। सूचना को अतिशीघ्र कैसे प्राप्त किया जाये इसकीविस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिए पैट्रिक विनसेंट की लिखी पुस्तक का अध्ययन करके उठाया जा सकता है।

इंटरनेट सेवा से प्रगति

भारत में सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नवे दशक में व्यापक प्रगति हुई है जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान समय में भारत अन्तर्राष्ट्रीय सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अग्रणी माना जा रहा है। देश में सूचना प्रौद्योगिकी की पहचान एक ऐसे एजेन्ट के रूप में हुई है जो मनुष्य जीवन के सभी पहलुओं में परिवर्तन लाने वाला है और जिससे 21वीं शताब्दी में हमारे यहाँ ज्ञान पर आधारित समाज का निर्माण होगा। नौवीं पंचवर्षीय योजना के अर्थपत्र में इसके महत्व को स्वीकार करते हुए देश में सूचना प्रौद्योगिकी और संचार ढांचे को विकसित करने के लिए खास जोर दिया गया है। इस योजना के आधार पर सन 2000 तक देश के सभी गाँवों में टेलीफोन सुविधा सुलभ कराने की बात कही गयी थी। भारतीय प्रशासन ने अपनी नवीन नीति के तहत इंटरनेट सेवा को शहरों में नहीं बल्कि गांवों में भी सुलभ कराने का लक्ष्य रखा और इस लक्ष्य को इस रूपों के आरम्भ में ही प्राप्त कर लिया। कस्बों, नगरों में साइबर कैफे का प्रसार सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आयी क्रान्ति का प्रमाण है।

भारत में क्रेडिट कार्ड द्वारा इंटरनेट पर भुगतान करने की प्रक्रिया को अभी सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हुई है। इससे ई-कॉमर्स का प्रचलन बढ़ने की संभावना है। ई-कॉमर्स को व्यापक स्तर पर प्रभावशाली एवं सुव्यस्थित रूप से प्रसारितकरने के लिए व्यापार सरकार एवं उपभोक्ता तीनों को मिल कर सम्मिलित प्रयास करने होंगे क्योंकि संवैधानिक स्वीकृति एवं सुन्धा नितान्त आवश्यक है। इंटरनेट पर सूचना प्राप्त करना

इंटरनेट पर अत्याधिक संख्या में सूचनाएं उपलब्ध रहती है। अनेक साइट अवेषण में विशेषज्ञता प्राप्त है। वे www सर्वसे के छादा पर आधारित निर्माण द्वारा इसे सम्पन्न करते हैं। प्रयोगकर्ता प्रार्थना करते हैं कि उनकी साइट ऑनलाइन के रूप में जाने से जोड़ दिया जाए कुछ मामलों में यह नि:शुल्क है तथा कुछ मामलों में शुल्क लिया जाता है। कुछ साइट जो विषण सुविधा प्रदान करने में विशेष है जैसे-

- www. yahoo.com
  www. excite.com
  www. webcrawler- com

स्पाइसर अथवा रोबोट इन साइटो द्वारा संचालित कार्यक्रम है जो अपने साइट को जोड़ना एवं ब्राउस करता है।

जिसे यह पृष्ठों एवं विषयों के डाटा आधार पर प्राप्त होता है। स्पाइडर www साइट पर उच्च भार निर्मित कर सकता है। तथा प्रत्येक तथ्य से निरन्तर प्रवाह द्वारा उसे ओवरलोड कर सकता है, निरन्तर करने पर इन तथ्यों का अतितीव दर सेई-मेल सूचना तकनीकी के इस युग में इंटरनेट के प्रादुर्भाव से संदेश प्राप्त करने के तकनीकी में अभूतपूर्व बदलाव किया है। ई-मेल संचार का एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा कम कीमत पर कहीं भी अधिकाधिक संख्या में संदेश भेजा जा सकता है। भेजने के लिए उपयुक्त ई-मेल पता होना अत्यन्त आवश्यक है जैसे ई-मेल भेजने के लिए हम निर्दिष्ट स्थानों में पता, विषय, पाठ आदि लिखते हैं, इसके बाद आवश्यक कमांड का प्रयोग कर ई-मेल भेजते हैं। यह मेल उपयोगकर्ता के मेल बाक्स में जाकर संगृहित हो जाता है। कुछ प्रमुख प्रोटोकॉल है ई-मेल की प्रेषण प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं जो निम्न प्रकार है-

- इंटरएक्टिव मेल एक्सेस प्रोटोकॉल (IMAP)
  यूनिक्स टू यूनिक्स कॉपी प्रोटोकॉल (UUVP)
  साधारण मेल ट्रांसफर प्रोटोकॉल (SMTP)
  पोस्ट ऑफिस प्रोटोकॉल (POP)

ई-मेल की विशेषताएं

पासवर्ड दिए जाने पर यह गोपनीय रखा जा सकता है।

एक ही साथ अनेक लोगों को एक ही संदेश भेजा जा सकता है।

संचार की यह बहुत तीव्र विधि है।

. ई-मेल एक सस्ता व कम खर्चीला साधन है। घ इसकी विश्वसनीयता प्रामाणिक है क्योंकि इसके क्रय-विक्रय भी किया जा रहा है। प्रायः संदेश का उत्तर भीअविलम्ब दिया जा सकता है जिसमें मूल पाठ भी पुनः प्रेषित किया जा सकता है। यह समय सीमा, भौगोलिक दूरी यह समस्याओं से स्वतंत्र है।

एक ही साथ अनेक लोगों को एक ही संदेश भेजा जा सकता है।

मेलिंग लिस्टइंटरनेट पर विभिन्न निःशुल्क मेलिंग लिस्ट प्राप्त है जोकि विशिष्ट विषय से जुड़े रहते हैं, वे निम्नलिखित हैं-

• listroalepomis psych upenn. adu (सायनासोर से सम्बन्धित). majordomaasisinternis. ent (इंटरनेट पर नई साइटों के बारे में) उपर्युक्त मेलिंग लिस्ट को नियमित रूप से इंटरनेट द्वारा उपलब्ध किया जा सकता है। केवल वांछित पते पर अनुरोध की आवश्यकता होती है।

निःशुल्क ई-मेल सेवाएं

www. yahoomail. com :
www. mailcity. com
www. rediff. com
www. webdunia. com
www. hotmail. com
www. name. com
www. indiatimes. com

- www. geocities. com
  www. unsanet. com www. mypad. com

ई-मेल संदेश को समझना ई-मेल भेजने वाला तथा प्राप्त करने वाला दोनों पृथक-पृथक लॉगिन नेम का इस्तेमाल करते हैं। पूर्ण ई-मेल पते को प्रमुख दो भागों में बांटा गया है- anuragaindiatimes. com

ई-मेल में अनेक लिखित भाग होते है- प्राप्तकर्ता का पता (To)
सम्प्रेषण का पता (From)
विषय (Subject)
संदेश विवरण (Message) प्रतिलिपि (cc) अनेक प्रयोक्ताओं के लिए संदेश प्रेषण

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, अरुण कुमार (2014) मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियों, ग्यारहवाँ संशोधित संस्करण,मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन पटना।
- श्रेष्ठ एस.पी. (2008), शैक्षिक तकनीकों के मूल आधार पूर्णतया संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण अग्रवालप्रकाशन आगरा।।
- कपिल ए.के. (2000), सांख्यिकी के मूल तत्व, चौदहवां संस्करण एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा' कश्यप, सुभाष (2006). हमारा संविधान, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
- मालवीय, राजीव (2009) शिक्षा के नूतन आयाम, द्वितीय संस्करण, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- पाण्डेय, आरएस एवं मिश्र. के.एस. (2008). मूल्य शिक्षा, चतुर्थ संस्करण, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
- पाठक, राममूर्ति (2004) सामाजिक-राजनीतिक दर्शन की रूपरेखा प्रथम संस्कारण, अभिमन्यु प्रकाशन, इलाहाबाद।
- खमाण्डेय, के.पी. (2006) शैक्षिक अनुसंधान, तृतीय संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
- सुलेमान मुहम्मद (2007). उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, द्वितीय संशोधित संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, पटना।

वैश्विक फलक पर हिन्दी का बदलता स्वरूप

डॉ० अरविन्द कुमार

एसो. प्रोफे. हिंदी विभाग विभाग, चौ. चरण सिंह पी. जी. कालेज, हेवरा, इटावा

शोध सारांश

भाषा एक सामाजिक इकाई करते हैं और हम सम्प्रेषण करते है अपने सामाजिक होने का देते हैं। अलग-अलगअलग-अलग संस्कृतियों से लोग रहते हैं। उनकी अपनी एक भाषा है,-पंजाब में पंजाबी, महाराष्ट्र में मराठी, नेपाल नेपाली, राजस्थान में राजस्थानी इत्यादि-इत्यादि। लेकिन जब हिन्दी भौगोलिक स्तर पर वर व्यावहारिक तौर पर भी अत्यन्त हो जाता है

जिस प्रकार नदी बहती है उसी प्रकार भाषा भी प्रवाहमान है हिन्दी भाषा ने एकता के सूत्र में सबको बाँधा है। डॉ० ए. के. रस्तोगी लिखते है हिन्दी केवल हिन्दुस्तान की ही नहीं रही, चीनी और अंग्रेजी को पीछे छोड़ते हुए विश्व की प्रथम भाषा हो गई है। इसे बोलने वाले के रोग स्वेच्छा से इसे अपनाए हुए है। भारत अतिरिक्त मॉरीशस, फिजी, केन्या, वर्मा, मालदीव, थाइलैण्ड, पाकिस्तान, after, वेश, श्रीलंका, नेपाल, भूटान, इंडोनेशिया, सिंगापुर, मलेशिया और fasts इत्यादि अनेक देशों में हिन्दी भाषा बोली और समझी जाती है। अपनी बात को और अधिक पुख्ता करते हुए डॉ० रस्तोगी बताते है कि हिन्दी भाषा की यह वैश्विक स्थिति एक नहीं बनी है, बल्कि इसका अपना एक समृद्ध इतिहास है। भारत का स्वाधीनता संघर्ष विश्व इतिहास में अद्‌भुत क्रान्ति का अध्याय है। इसमें दो विचारधाराएँ समान रूप से साथ-साथ कार्य कर रही थी। गाँधी जी की अहिंसात्मक विचारधारा और क्रान्तिकारियों की सर्वस्व बलिदानों वाली विचारधारा दोनों विचारधाराओं के पुरोधाओं ने भारत और भारत के बाहर, भारत की स्वतंत्रता के औचित्य को प्रमाणित करने हेतु प्रयास किए। गाँधी जी द्वारा अफ्रीका में अहिंसा का प्रचार किया गया और क्रान्तिकारियों द्वारा इंग्लैण्ड, अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, जापान जैसे देशों में भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रयास किए गए थे। इनके साथ किसी न किसी रूप में हिन्दी भाषा भी गयी। इससे वैश्विक स्तर पर हिन्दी को स्थान मिला। एक अन्यत्र स्थल पर डॉ० गोपीनाथ ने अपनी पुस्तक विश्व भाषा हिन्दी की अस्मिता स्वप्न और यथार्थ में कहते हैं कि विश्व भाषा के रूप में हिन्दी का जो विकास हो रहा है, उसके साथ कई अपेक्षाएँ भी बढ़ी है। उदाहरण के लिए हिन्दी में बुनियादी सन्दर्भ सामग्री, शैक्षिक व्याकरण, द्विभाषी, बहुभाषी कोष तथा नवीन प्रौद्योगिकी पर आधारित पाठ्य सामग्री की आवश्यकता है। इस क्षेत्र में व्यक्तिगत एवं संस्थागत प्रयासों में काफी सामग्री का निर्माण भारत और भारत के बाहर भी हुआ है

हिन्दी के आधुनिकीकरण का महत्त्वपूर्ण घटक उसकी सहजता है। जब तक सहजता का गुण विद्यमान रहेगा तब तक भाषा गतिशील बनी रहेगी। वैश्विक फलक पर हिन्दी की क्या स्थिति है इसके सन्दर्भ में अच्युतानन्द मिश्र ने लिखा है, बाजारवाद के सहारे 21 वीं सदी में हिन्दी वैश्विक फलक पर अपनी जगह तलाश रही है। ग्लोबलाइजेशन का care और 'प्रोडक्ट' या 'arv' बनकर हिन्दी अपने तेवर के साथ आगे बढ़ती जा रही है। हिन्दी राष्ट्रभाषा तो पायी लेकिन यह मीडिया मालिकों के आर्थिक मुनाफे की भाषा में श्मार्केट फ्रेण्डलीश है। टी.वी. चौनलों और एस. एम.एस. भाषा से हिन्दी का कैनवास बढ़ रहा है। भारतेन्दु के बाद हिन्दी को एक बार फिर नयी वाल में डालने की कोशिश हो रही है। इस बार यह कार्य साहित्य नहीं बाजार कर रहा है और उसके माध्यम हिन्दी के पत्रकार है। आज बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उत्पादन की बिक्री आम हिन्दी के विज्ञापनों पर ही निर्भर है क्योंकि भारत का एक बहुत बड़ा वर्ग है जहां अंग्रेजी बोलने वाले कम से कम डेढ़ दो प्रतिशत ही हैं जबकि हिन्दी पढ़ने, बोलने व समझने वालों को तादाद ज्यादा है और सुगम भी है। ऐसे में हिन्दी भाषा इन विदेशी उत्पादों के लिए सहायिका के तौर पर कार्य करती है। एक बात और ध्यातत्व है कि मीडिया का भी हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में महनीय भूमिका रही है। डॉ० अनिल सिंह अपने हिन्दी पत्रकारिता और अनुवाद क्षेत्र में रोजगार के अवसर में बताते है कि- हिन्दी आज रोजगारपरक होती जा रही है। after tree, लेखन, अनुवाद, समाचारवाचक, स्किप्ट लेखन, कैमरा मैन, पटकथा लेखन, संवाददाता, ग्राफिक्स, विज्ञापन, मल्टीमीडिया, उद्‌घोषक, हिन्दी अधिकारी, तत्काल भाषान्तर ईकाइयों आदि में हिन्दी के रोजगार परक रूपों में सुनहरे अवसर है।

यह बात निर्विवाद रूप से सत्य प्रतीत होती जा रही है कि जहां हिन्दी और हिन्दी पढ़ने-पढ़ाने वालों को ओछी दृष्टि से देखा जाता था आज विश्व भर में हिन्दी पढ़ने और पढ़ाने का प्रचलन तीव्र से तीव्रतर बढ़ा है। कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दी विश्व के कोने-कोने में गूंज रही है। डॉ० मधु गोसाई का कथन है कि आज टी.वी. के सारे हिन्दी चौनल हिन्दी का प्रयोग कर रहे है। बड़ी-बड़ी कम्पनियां जो हिन्दी के नाम से घृणा करती थी अपने विज्ञापन हिन्दी में दे रही हैं। बी.बी.सी. ती अपना घोर वैज्ञानिक कार्यक्रम डिस्कवरी तक हिन्दी में प्रसारित कर रही है तो हिन्दी का भविष्य बिल्कुल उज्ज्वल है और हिन्दी से जुड़े लोगों का भी सरकारी नौकर रहें या प्राइवेट रहेंगे जरूर। टी.वी. चौनलों पर कितने लोगों को रोजगार मिला है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में जो कर्मचारी रखे जाते है, वे भले ही निम्न श्रेणी के हो हिन्दुस्तानी ही रखे जाएगें और मूलत: हिन्दी को निम्न श्रेणी के मजदूरों ने सात समुंदर पार पहुंचाया है उच्चाधिकारियों ने नहीं। इस प्रकार बाजारवाद ने हिन्दी को सबकी सम्पर्क भाषा बना डाला है। उपभोक्तावाद ने हिन्दी को विश्व में तीसरा दर्जा दिलाया है। यह दरजा जनसंख्या, मार्केट और मीडिया ने दिलाया है। वैश्वीकरण ने दिलाया है।

इन सबसे इतर वैश्वीकरण के दौर में हिन्दी के समक्ष नाना चुनौतियां भी खड़ी की है या कहें कि हिन्दी की अस्मिता के आगे प्रश्न चिह्न लगता नजर आ रहा है। क्योंकि भूमंडलीकरण में भाषाओं में परिवर्तन आना नैसर्गिक व स्वाभा ही है। क्योंकि रसूल हमजातोल ने कहा था कि जब किसी राष्ट्र को समाप्त करना हो तो सर्वप्रथम उस राष्ट्र की भाषा खत्म करें जब भाषा खत्म होगी राष्ट्र स्वत: ही नष्ट हो जाएगा। स्पष्ट है कि जब भाषा की प्रभुता नष्ट हो रही है तो हमारी संस्कृति भी इस विश्वव्यापी विस्तारीकरण में पतनोन्मुख है। क्योंकि अगर एक तरफ विकास की सीढ़ी पर चढ़ा जा रहा है तो दूसरी तरफ कुछ छूटा भी तो जा रहा है। भाषागत नियम सब बदल रहे हैं। ये सब हिन्दी भाषा के लचीलेपन के कारण है। डॉ० परमानंद पांचाल अपने आलेख कहां जा रही है हिन्दी ? में कहते है कि, हिन्दी के सामने दूसरी बड़ी कठिनाई इसका बढ़ता हुआ रोमानीकरण अर्थात् लिपि का प्रयोग है। विज्ञापनों में हिन्दी को रोमन लिपि में लिखने का प्रचलन बढ़ रहा है और श्हिंग्लिशश नाम की एक कृत्रिम भाषा जनम ले रही है जो हिन्दी हेतु शुभ लक्षण नहीं है। हिन्दी अपनी देवनागरी लिपि के कारण ही हिन्दी है। रोमन इसका स्वरूप बिगाड़ देगी। इतिहास साक्षी है कि जब हिन्दी फारसी लिपि में लिखी जान लगी तो श्उर्दूश हो गई। हमें इसके प्रति सजग होना पड़ेगा।खैर हिन्दी तो अब लोगों की आवश्यकता बन चुकी है। इसके बिना कोई राजनेता अपनी राष्ट्रीय पहचान नहीं बना सकता। कोई समाज सुधारक अथवा धार्मिक नेता हिन्दी ज्ञान के अभाव में पूरे देश में अपने विचारों को सम्प्रेषित नहीं कर सकता। इसलिए सफल राजनेता, धर्मप्रचारक और समाज सुधारक बनने हेतु हिन्दी ज्ञान अनिवार्य है।

अस्तु, विद्यानिवास मिश्र का यह कथन बिल्कुल सटीक लगता है कि जब वे कहते है कि ष्हिन्दी की अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका एक स्वप्न नहीं है, नये विश्व मानव की मांग है।ष यह बात बिल्कुल सोलह आने सत्य प्रतीत होती दिख रही है।

सन्दर्भ सूची

1 डॉ० गोपीनाथ, विश्व भाषा हिन्दी की अस्मिता स्वप्न और यथार्थ, 2008

2 अच्युतानन्द मिश्र, वैश्वीकरण, मीडिया और हिन्दी, म०गां०अहि०वि०, वर्षा, 2007,

3 डॉ0 सुखदेव सिंह मिन्हास, वैश्वीकरण के दौर में हिन्दी, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2011

4 सं0, वीरेन्द्र परमार, हिन्दी राजभाषा-विश्वभाषा जनभाषा, नमन प्रकाशन, दिल्ली, 2013

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की गणितीय अभिवृत्ति का अध्ययन

डॉ० फतेह बहादुर सिंह यादव

एसो. प्रोफे. शिक्षक प्रशिक्षण विभाग, चौ. चरण सिंह पी. जी. कालेज, हेवरा, इटावा

सारांश

प्रस्तुत शोध माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की गणितीय अभिवृत्ति का अध्ययन पर किया गया है। इसमें जयपुर शहर के केन्द्र व राज्य सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों को लिया गया है, जिसमें सर्वेक्षण विधि को उपयोग में लाया गया है। शोध में अली इमाम और ताहिरा खातून द्वारा निर्मित गणितीय अभिवृत्ति मापनी (माध्यमिक स्तर) उपकरण प्रयुक्त किया गया है। शोध में सांख्यिकी में मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात का उपयोग किया गया है। प्रस्तुत शोध कार्य के निष्कर्ष के रूप में यह पाया गया कि राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिक स्तर पर गणित विषय के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं होता है। संकेताक्षर: गणितीय अभिवृत्ति, माध्यमिक स्तर, विद्यार्थी ।

प्रस्तावना:- शिक्षा में अध्यापक छात्र को कुछ देता नहीं वरन् उसकी अन्तर्निहित शक्तियों को प्रस्फुटित होने में सहायता प्रदान करता है। छात्र के अन्दर बहुत सी मानसिक शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं। किन्तु ये शक्तियाँ सुषुप्तावस्था में रहती हैं। उन्हें बाहर लाने का कार्य, प्रस्फुटित एवं विकसित करने का कार्य शिक्षा करती है। शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो मनुष्य की जन्मजात शक्तियों के स्वाभाविक और सामंजस्यपूर्ण विकास में योगदान प्रदान करती है। शिक्षा केवल यही नहीं जो बालक को स्कूल में मिलती है बल्कि शिक्षा का कार्यक्रम जीवन भर चलता रहता है। मनुष्य विभिन्न अनुभवों से अपने जीवन भर हर किसी परिस्थिति और हर किसी मनुष्य से कुछ-न-कुछ सीखता रहता है। मनुष्य अन्य प्राणियों से भिन्न है। उसकी भिन्नता का एक आधार उसमें अपने अनुभवों को सुरक्षित रखने तथा उसे अगली पीढ़ी तक पहुँचाने की क्षमता है। मनुष्य इस प्रकार अपने ज्ञान को आगे बढ़ाता जाता है। ज्ञान में वृद्धि के साथ-साथ उसके ज्ञान प्राप्त करने की सामर्थ्य में वृद्धि होती है और वह अपने परिवेश से अच्छा समन्वय स्थापित कर पाता है। मनुष्य सदैव अपने वातावरण को जिज्ञासा की दृष्टि से देखता है, उसे समझने और नियंत्रित करने का प्रयास करता है। इस जिज्ञासु मानव की शक्तियाँ असीमित हैं। जिज्ञासा के फलस्वरूप उसके सामने कोई समस्या आती है तब उसकी समस्त शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों उसके समाधान के लिए एकाग्र हो जाती हैं। अभिवृत्ति भी इन शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों की घटक है।

प्राचीन काल से ही गणित विषय के बारे में हमारी ये सोच बनी हुयी है कि गणित एक कठिन विषय है परन्तु जिस विषय का प्रयोग हम अपने दैनिक जीवन में पल-पल करते रहते हैं उसके प्रति ऐसी धारण क्यों बनी? क्यों विद्यार्थियों में एक अज्ञात सा भय पैदा हो जाता है? क्यों वे गणित विषय से दूर भागने लग जाते हैं? इन सब प्रश्नों के उत्तर में अभिवृत्ति का बहुत योगदान है। गणित में कुछ स्वयं सिद्धियाँ और नीरस प्रकरण उस भय को बढ़ा देते हैं यह प्रवृत्ति अधिगम की दर को घटा देती है जबकि गणित सीखने के प्रति मानसिकता सही रहे तो सीखने की दर में वृद्धि की जा सकती है।

गणित के प्रति अभिवृत्ति विकसित करने में अध्यापक तथा विद्यालय की भूमिका महत्वपूर्ण होती है क्योंकि माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की भीड़ हो जाने के कारण विद्यालयों में अच्छे परिणाम देने की होड़ लगी रहती है, फलस्वरुप गणित विषय पर भी अधिक ध्यान दिया जाता है। बार-बार समझाने पर भी विद्यार्थी को त्रुटियाँ दूर करना नहीं आता तो झुंझलाहट में अध्यापक भी कुछ ऐसा बोल देता है जो गणित के प्रति छात्र की अभिवृत्ति को कम कर देता है तथा विद्यार्थी गणित को कठिन विषय समझ कर उससे दूरी बनानेलगता है। उसकी गणित विषय के प्रति मानसिकता बदल जाती है, सवालों को हल करने में त्रुटियों को ज्यादा करने लगता है एवं उसे गणित विषय से भय लगने लगता है।

वर्तमान समय में शिक्षण अधिगम में काफी नए-नए प्रयोग किए जा रहे हैं तथा शिक्षण की नवीन तकनीकों का प्रयोग किया जा रहा है। गणित शिक्षण के क्षेत्र में भी नई विधियों का इस्तेमाल किया जा रहा है अथवा नहीं या फिर वो विद्यार्थियों की गणित के प्रति अभिवृत्ति पैदा कर सकी हैं या नहीं यही जानने के लिए शोधार्थी ने माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की गणितीय अभिवृत्ति का अध्ययन करने का मानस बनाया।

समस्या का औचित्य- यह सर्वविदित है कि विद्यालयों में गणित में अभिवृत्ति रखने वाले विद्यार्थियों का प्रतिशत बहुत कम है जिसका कारण आरम्भिक स्तर पर अमनोवैज्ञानिक शिक्षण विधियाँ एवं शिक्षक की अकुशलता है। शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक का कर्त्तव्य है कि वह बालक को सक्रिय बनाकर उसकी शारीरिक, मानसिक शक्तियों, योग्यताओं, रूचियों एवं अभिवृत्तियों का अध्ययन करे और k उसकी क्षमताओं के अनुकूल उसकी जन्मजात शक्तियों के स्वाभाविक विकास का हर संभव प्रयास करता हुआ शिक्षा प्रदान करे। आज गणित शिक्षण को एक यांत्रिक प्रक्रिया का रूप दे दिया है, जिसके परिणामस्वरूप गणित में अन्तर्निहित चिन्तन व विश्लेषण करने की तर्कशक्ति का मार्ग अवरूद्ध हो गया है। इस मनोवृत्ति के घातक परिणामों से प्रभावशाली ढंग से निबटने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षक गणित की प्रकृति, उसमें निहित तत्वों एवं उसके महत्व से परिचित हों, क्योंकि गणित एक महत्वपूर्ण विषय है इस नाते इसके प्रति सकारात्मक सोच बनाना आवश्यक है।

शोध के उद्देश्य

1. राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिक स्तर परगणित विषय के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति प्राप्तांकमध्यमानों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिक स्तर परगणित विशय के प्रति छात्रों की अभिवृत्ति प्राप्तांक मध्यमानों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिक स्तर परगणित विषय के प्रति छात्राओं की अभिवृत्ति प्राप्तांक मध्यमानों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पनाएँ

1. राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिक स्तर परगणित विषय के प्रति विद्यार्थियों की अभिरूचि प्राप्तांक मध्यमानों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिक स्तर परगणित विषय के प्रति छात्रों की अभिरूचि प्राप्तांक मध्यमानों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिकस्तर परगणित विषय के प्रति छात्राओं की अभिरूचि प्राप्तांकमध्यमानों में सार्थक कोई अन्तर नहीं है।

शोध का परिसीमन

1. प्रस्तुत शोध जयपुर शहर के छात्र-छात्राओं तक ही सीमित है।
2. प्रस्तुत शोध राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों तक ही सीमित है।
3. प्रस्तुत शोध माध्यमिक स्तर के 120 विद्यार्थियों तक ही सीमित है
4. प्रस्तुत शोध केवल गणित विषय के प्रतिविद्यार्थियों की अभिवृत्ति तक ही सीमित है।

जनसंख्या एवं न्यादर्श:- प्रस्तुत शोध कार्य के लिए जयपुरशहर के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत कुल विद्यार्थियों में से न्यादर्शके रुप में 120 विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक विधि से किया गया।

न्यायदर्श तालिका

विद्यालय	*छात्र*	*छात्रा*	*योग*
केंद्र सरकार द्वारा संचालित	30	30	60
राज्य सरकार द्वारा संचालित	30	30	60
योग	60	60	60

शोध में प्रयुक्त उपकरण:- प्रस्तुत शोध हेतु निम्नलिखित मानकीकृत उपकरण का प्रयोग किया गया है-

गणितीय अभिवृत्ति मापनी (माध्यमिक स्तर): अली इमाम और ताहिरा खातून द्वारा निर्मित ।

प्रस्तुत शोध की विधि:- प्रस्तुत शोध में सर्वेक्षण विधि काउपयोग किया गया है।

प्रदत्तों का विश्लेषण

• परिकल्पना संख्या 1- राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिक स्तर परगणित विषय के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति प्राप्तांक मध्यमानों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

समूह	वर्ग	न्यायदर्श	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात	स्वीकृत\ अस्वीकृत
केंद्र सरकार द्वारा संचालित	माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी	60	84.48333	13.68717	0.001638	स्वीकृत
राज्य सरकार द्वारा संचालित		60	76.9		12.23873	

df = (N1+ N2 – 2)=(60+60-2)=118, .05 पर ब्र का मूल्य 1.96, .01 पर का मूल्य 2.58

सारणी संख्या-1 के अवलोवन से ज्ञात होता है कि केन्द्र सरकारद्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की के प्रति अभिवृत्ति प्राप्ताकों का मध्यमान 84.48333 एवं दिन 1388717 है तथा राज्य सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की गणित विषय के प्रति अभिवृति प्राप्तांकों का मध्यमान 70.9 एवं मानक विचलन 12.23873 है। 110 पर क्रान्तिक अनुपात का मूल्य 0.001638 प्राप्त हुआ जी 005 एवं 0.01 स्तर पर सार्थक क्रान्तिक अनुपात कामूल्य 1.96 एवं 258 से कम है। अत: परिकल्पना ष्राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिक स्तर परगणित विषय के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति प्राप्तांक मध्यमानों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है स्वीकृत की जाती है।

समूह	वर्ग	न्यायदर्श	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात	स्वीकृत\ अस्वीकृत
केंद्र सरकार द्वारा संचालित	माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी	30	84.46667	13.68717	0.001638	स्वीकृत
राज्य सरकार द्वारा संचालित		30	77.1	12.56802		

df=(N1+ N2 – 2)=(30+30-2)=58, .05 पर का मूल्य 2.00, .01 पर का मूल्य 2.66

परिकल्पना संख्या 2-राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिक स्तर पर गणित विषय के प्रति छात्रों की अभिवृत्ति प्राप्तांक मध्यमानों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी संख्या-2 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि केन्द्र सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिक स्तर के छात्रों की गणित विषय के प्रति अभिवृत्ति प्राप्तांकों का मध्यमान 84.46667 एवं मानक विचलन 14.44785 है तथा राज्य सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की गणित विषय के प्रति अभिवृत्ति प्राप्तांकों का मध्यमान 77.1 एवं मानक विचलन 12.56802 है। स्वतंत्रता के अंश 58 पर क्रान्तिक अनुपात का मूल्य 0.030285 प्राप्त हुआ। जो 0.05 एवं 0.01 स्तर पर सार्थक क्रान्तिक अनुपात कामूल्य 2.00 एवं 2.66 से कम है। अत: परिकल्पना ष्राज्य एवं केन्द्र द्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिक स्तर पर गणित विषय के प्रति छात्रों की अभिवृत्ति प्राप्तांक मध्यमानों में कोई सार्थक अन्तर नहीं हैष् स्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना संख्या 3राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिक स्तर पर गणित विषय के प्रति छात्राओं की अभिवृत्ति प्राप्तांक मध्यमानों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

समूह	वर्ग	न्यायदर्श	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात	स्वीकृत\ अस्वीकृत
केंद्र सरकार द्वारा संचालित	माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी	30	84.5	13.12999	0.025764	स्वीकृत
राज्य सरकार द्वारा संचालित		30	76.7	12.11198		

df=(N1+ N2 – 2)=(30+30-2)=58, .05 पर का मूल्य 2.00, .01 पर का मूल्य 2.66

सारणी संख्या-3 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि केन्द्र सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिक स्तर के छात्रों की गणित विषय के प्रति अभिवृत्ति प्राप्तांकों का मध्यमान 84.5 एवं मानकविचलन 13.12999 है तथा राज्य सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की गणित विषय के प्रति अभिवृत्ति प्राप्तांकों का मध्यमान 76.7 एवं मानक 12.11198 है।

के अंश पर कान्तिक अनुपात का मूल्य 0.025764 प्राप्त हुआ जो 0.05 एवं 0.01 स्तर पर सार्थक क्रान्तिक अनुपात का मूल्य 2,00 एवं 2.00 है। आत परिकल्पना राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिक स्तर पर गणित विषय के प्रति छात्राओं की अभिवृत्ति प्राप्तांक मध्यमानों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है स्वीकृत की जाती है।

शोध के निष्कर्ष

1. राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिक स्तर परगणित विषय के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

2. राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिक स्तर पर गणित विषय के प्रति छात्रों की अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। विद्यालयों में माध्यमिक
3. राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा संचालित स्तर पर गणित विषय के प्रति छात्राओं की अभिवृत्ति में सार्थकअन्तर नहीं पाया गया। प्रस्तुत शोध अध्ययन जो कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की गणित विषय के प्रति अभिवृत्ति पर किया गया जिसका निष्कर्ष यह निकलता है कि राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा संचालित विद्यालयों में माध्यमिक स्तर पर गणित विषय के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति मेंसार्थक अन्तर नहीं होता है।

शोध के शैक्षिक निहितार्थ प्रस्तुत शोध अध्ययन का शैक्षिक निहितार्थ यह है कि माध्यमिक स्तर पर गणित एक कठिन विषय के रूप में समझा जाता है चाहे वो केन्द्र या राज्य सरकार किसी के द्वारा संचालित विद्यालय हो विद्यार्थी की गणित विषय केप्रति अभिवृत्ति में विद्यालय की भूमिका का जितना योगदान नहीं है जितना कि अध्यापक का अंत अध्यापक को चाहिए कि माध्यमिक स्तर पर गणित को दैनिक जीवन में उपयोगी बताते हुए शिक्षण कराये तथा उसके प्रति विद्यार्थियों सकारात्मक सोच जाग्रत करे तभी विद्यार्थी गणित को एक मनोरंजक विषय के रूप में अपना सकेंगे।

सन्दर्भः

- पाण्डेय, रामशकल (2001) षशिक्षा मनोविज्ञानष, आरलाल बुक डिपो, मेरठ पटेल, आर. एन. (2012) टीचिंग एण्ड लर्निंग मैथेमैटिक्स इन
- मॉर्डन टाइम्स, हिमालय पब्लिसिंग हाउस, मुम्बई, शर्मा, आर.ए. (1998): "शिक्षा अनुसंधान इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ शुक्ला, डी. पी. (1995): "रिसर्च मैथडोलॉजी" कॉलेज बुक डिपो, जयपुर
- सिद्ध. के. एस. (1984) दी टीचिंग ऑफ मैथेमैटिक्स, स्टार्लिंग पब्लिसर प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली
- सिंह, सोरन. (1995): "गणित शिक्षण", साहित्य प्रकाशन, आगरा शर्मा, आर. ए. (2004): "मापन, मूल्यांकन एवं सांख्यिकी", लाल बुक डिपो, मेरठ परिहार, अमरजीत सिंह (2014) शैक्षिक मापन एवं मूल्यांकन",
  आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ
- एजूट्रेक्स मई 2011, वोल्यूम 10 नं.9, पेज 12-13 पैनासीआ इन्टरनेशल रिसर्च जर्नलः अक्टू-दिस. 2016. वोल्यूम - 4.नं.2, पेज 58-68

दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के संवेगात्मक समायोजनका तुलनात्मक

डॉ० नीति

एसो. प्रोफे. शिक्षक प्रशिक्षण विभाग, चौ. चरण सिंह पी. जी. कालेज, हेवरा, इटावा

सारांश

मानव के विकास एवं उन्नति में संवेगात्मक परिपक्वता का विशेष महत्व होता है उन्नति एवं विकास मानव के पूरे जीवन को प्रभावित करते हैं। संवेगात्मक परिपश्यता के अभाव में व्यक्ति का व्यक्तित्व विघटित हो जाता है। जब व्यक्ति अपने संवेगों का सही प्रयोग करना सीख जाता है तो उसे संवेगात्मक परिपक कहते हैं। समाज में सर्वगों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मानव व्यवहार को संगठित या संतुलित बनाने में संवेगों का विशेष महत्व होता है क्योंकि उत्तेजना एवं अनुक्रिया के रूप में जहाँ यह एक और दूसरों से प्रभावित होता है वही दूसरी और उन्हें भी प्रभावित करता है। यह प्रक्रिया देखने में सरल व सामान्य लगती है परन्तु वास्तविकता यह है इसका स्वरूप उतना ही अधिक सूक्ष्म एवं जटिल होता है। एक संगठित व्यक्तित्व के लिये यह आवश्यक है कि यह तनावों कुण्ठाओं एवं अर्तद्वन्दों से मुक्त हो, चितिन्त या प्रसस्त व्यक्ति किसी भी स्थिति में न तो उद्देश्यपूर्ण ढंग से कार्य कर सकता है न ही तार्किक चिंतन कर सकता है और न ही प्रभावशाली ढंग से अपने परिवेश के साथ उपयुक्त संतुलन ही स्थापित कर सकता है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि व्यक्ति उन परिस्थितियों पर अपना विशेष नियन्त्रण रखे जो उसके जीवन को अस्त-व्यस्त कर देती है। किसी भी स्थिति में विचलित व्यक्ति अपने परिवेश के साथ आपेक्षित व्यवहार नहीं कर पाता है। समायोजन से तात्पर्य वास्तविकता के धरातल पर विभिन्न परिस्थितियों में स्वयं डालने की प्रक्रिया है। समायोजन एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने अन्दर उपस्थित गुणों को संगठित कर अपने जीवन के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करता है जो व्यक्ति स्वयं की परिस्थितियों के अनुसार डालकर सामंजस्य स्थापित कर लेता है, वह व्यक्ति अपनी योग्यता उपलब्धि का सही प्रदर्शन कर पाता है। आधुनिक युग प्रतियोगिता का युग है तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दिव्यांग बालकों को उच्च उपलब्धियों की आवश्यकता है। इन उपलब्धियों के लिए दिव्यांग बालकों को उचित मार्गदर्शन और प्रोत्साहन की आवश्यकता है। ताकि बालक भी सामान्य बालकों की तरह राष्ट्र की उन्नति के कर्णधार बने साथ ही स्वजीवन को सफल बनायें। इस हेतु दिव्यांग बालकों में श्रेष्ठ अध्ययन आदते जैसे कक्षा शिक्षण से पूर्व अध्ययन करना, विद्यालय में नियमितता व्यय कार्य, स्वमूल्यांकन व स्वाध्याय करना आदि का विकास आत्मचेतना, समन्वय, समायोजन, सामाजिक दृढता व इच्छाशक्ति का निर्माण आवश्यक है।

प्रस्तावना

शिक्षा मानव के विकास करने का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन है। शिक्षा मनुष्य का सर्वागीण विकास करती है। शिक्षा मनुष्य के विकास का मूल साधन है। इसके द्वारा बालक की जन्मजात शक्तियों का विकास, उनके ज्ञान एवं कला-कौशल में वृद्धि एवं विकास तथा उसके व्यवहार में परिवर्तन एवं परिमार्जन किया जाता है और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है शिक्षा एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जो इस समाज के सदस्यों के द्वारा समाज के विकास के लिए चलायी जाती है। समाज तथा व्यक्ति का विकास ही शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्र अपने भविष्य की उस राह पर खड़े होते हैं. जहाँ पर उनकी मानसिक वृद्धि, शारीरिक वृद्धि और संवेगात्मक वृद्धि उनके भविष्य की दिशा और दशा तय करती है। उच्च माध्यमिक स्तर पर छात्र एवं छात्राओं में समायोजन सम्बन्धी समस्यायें अधिक पाई जाती है। इस स्तर पर किशोरों में संवेगात्मक अस्थिरता व रूचि सम्बन्धी परिवर्तनों के फलस्वरूप समायोजन सम्बन्धी समस्याये अधिक विद्यमान रहती है। इस स्तर पर विद्यार्थी कभी अपने को बालक समझता है और अपने से बड़ों के साथ समायोजन स्थापित नहीं कर पाता है। इस समय वे भिन्न-भिन्न समाज के सदस्य होते हैं. इन भिन्न-भिन्न समाज के व्यवहारों व मानदण्डों में बढ़ी भिन्नता होती है जिसके कारण उनके सामने समायोजन की क्षमता विकराल रूप में उपस्थित होती है। दिव्यांग छात्रों के सम्बन्ध में उनकी समायोजन क्षमता विशेष से और भी महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि दिव्यांग छात्रों के प्रति समाज द्वारा बरती जा रही सहानुभूति या उन्हें दयापूर्वक से देखना भी यह उनके अध्ययन में बाधक बनता है तथा उनकी समायोजन क्षमता पर भी प्रभाव डालता है।

यद्यपि दिव्यांग विद्यार्थियों की आवश्यकतायें भी सामान्य विद्यार्थियों के समान ही होती है किन्तु उन्हें सन्तुष्ट करने के उपाय सीमित होते हैं, उन्हें अधिक बाधायें सहन करनी पड़ती जिससे उनके समायोजन के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक विसंगतियाँ दृष्टिगत होती हैं। समुचित विकास न होने के कारण दिव्यांग बालकों समाज व व्यक्तियों के साथ समायोजन स्थापित करने में कठिनाई महसूस होती है। एक सामान्य विद्यार्थी जहाँ प्राय: स्वयं को सक्षम व योग्य पाता हैआत्मविश्वास से परिपूर्ण होता है. वहीं एक दिव्यांग विद्यार्थी के लिए स्वयं को मूल्यहीन दीन-हीन मानना सहज हैपरम्पर कोई विद्यार्थी स्वयं को समझने लगता है, नकारात्मक भावना रखता है तो यह उसे वातावरण के साथ परस्पर समायोजित होने में कठिनाई महसूस करता है। साथ ही वातावरण में उपस्थिति भिन्नताओं के कारण दिव्यांग विद्यार्थी की अभिवृत्ति में विशेष उत्पन्न होने लगता है। शिक्षा के समुचित प्रबन्धन द्वारा सही दिशा निर्देश देकर विसंगतियों को

दूर किया सकता है। जा सकता है। दिव्यांग विद्यार्थियों में अनन्त सम्भावनाएँ, शक्ति, सामर्थ, क्षतिपूरक के रूप में विद्यमान रहती हैं। उनके समुचित उपयोग हेतु आवश्यक है कि जीवन के विविध क्षेत्रों में प्रगति हेतु देश के भावी कर्णधारों को उनके स्व से अवगत कराना होगा ताकि वे सामर्थ्यनुसार उन्हें प्राप्त करने के लिए भूतसकस्थित हो वे गुरुमायोजित हो ताकि उनके व्याक्तित्व का सर्वांगीण संतुलित विकास हो।

समायोजन पर मानसिक संघर्ष का भी प्रभाव पड़ता है। मानसिक संघर्ष उस समय उत्पन्न होता है जब एक व्यक्ति को पर्यावरण की उन शक्तियों का सामना करना पड़ता है। जब बालक में मानसिक द्वन्द उत्पन्न होता है तो बालक का समायोजन प्रभावित होता है। मानसिक तनाव से बालक का समायोजन प्रभावित होता है यह यह संघर्षात्मक स्थिति से है जो विरोधी मनोवृत्तियों को उत्पन्न करती है तनाव उत्पन्न होने पर मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है और व्यक्ति बुरी-तरह प्रभावित होता है। अपमान भी व्यक्ति के संतुलन को बिगाड़ देता है। अपमानजनक परिस्थितियों का सामना होने पर व्यक्ति की संवेगात्मक स्थिति में उथल-पुथल मच जाता है। जो आगे चलकर उसके समायोजन पर बुरा प्रभाव डालती है। शारीरिक रोग भी समायोजन पर बुरा प्रभाव डालते हैं। शारीरिक अक्षमता एवं कमी से समायोजन बिगड़ता है प्राय: रोगी दिव्यांग या अशक्त व्यक्तियों का अन्य लोगों से समायोजन ठीक नहीं हो पाता है। असफलता हीन भावना, आत्मग्लानि, अहंकार कुण्डा, चिन्ता एवं आचार्य भी एक व्यक्ति के समायोजन को प्रभावित करते है। समायोजन एक उपलब्धि के रूप में किसी व्यक्ति की क्षमता की गुणवत्ता है। किसी व्यक्ति के द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में अपने दायित्वों का पालन करना ही समायोजन है। समायोजन का बुरा या अच्छा होना ही उसकी उपलब्धि है। किसी भी राष्ट्र या समाज की उन्नति सुसमायोजित व्यक्तियों पर निर्भर करती है। एक अच्छे समायोजन का तात्पर्य शारीरिक स्वास्थ्य, मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य कार्य प्रभावशीलता, सामाजिक स्वीकृति के साथ कार्य करना है। अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व वर्तमान समय में दिव्यांगता सम्पूर्ण विश्व में एक अभिशाप का रूप धारण कर चुकी है। वर्तमान समय में विश्व का प्रत्येक 12वां व्यक्ति इस भीषणतम समस्या से जूझ रहा है और दिव्यांगों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। सम्पूर्ण विश्व में दिव्यांगता को एक जटिल सामाजिक समस्या माना जा रहा है। दिव्यांगता एक शारीरिक एवं मानसिक हो सकती है, परन्तु इसे सामाजिक समस्या मानकर देखना मानवता के प्रति न्याय नहीं हो सकता। देश व विश्व की अनेकों संस्थाएं व संगठन दिव्यांगों। के उत्थान हेतु प्रयत्नशील है। समस्त लोगों का प्रयास है कि परिस्थितिवश उत्पन्न दिव्यांगता के शिकार लोग सामान्य जीवन जी सके। भारत सरकार भी इस दिशा में प्रयत्नशील है। भारत में दिव्यामता एक चिन्ता का विषय है। इस समय भारत में लगभग 1.978 करोड़ लोग किसी न किसी रूप में शारीरिक दिव्यांगता का यह अनुपात गांवों में 2 प्रतिशत तथा शहरों में 16 प्रतिशत है। शारीरिक दिव्यांगता का यह अनुपात गांवों में 2 प्रतिशत क्या शहरों में 16 प्रतिशत है। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (आई०सी०एस०आर०) केद्वारा किये गये सर्वेक्षण के अनुसार 78 प्रतिशत लोगों को सुनने में कठिनाई होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह अनुपात 10.8 प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त भारत में कुछ रोगियों की संख्या भी अधिक है। देश में लगभग 40 लाख व्यक्ति कुष्ठ रोगसे ग्रस्त है, जिनमें से बच्चों की संख्या लगभग 18 प्रतिशत है। स्थिति यह है कि कुष्ठ रोगियों के शरीर विकृत हो गयेहैं। शारीरिक अक्षमता से ग्रस्त दिव्यांगों के कल्याण हेतु भारत में शिक्षा, व्यवसायिक प्रशिक्षण, पुनर्वास जनशक्ति काविकास तथा प्रौद्योगिकी स्तरोन्नयन के क्षेत्रों में कई प्रकार की पहल की जा चुकी है।

दिव्यांग बालकों के जीवन में आधुनिक दिव्यांग विद्यालयों की भूमिका महत्वपूर्ण है उनके व्यक्तित्व का विकास उनके बौद्धिक एवं शारीरिक क्षमता के अनुरूप उनकी जीवन दिशा निर्धारित करना, उनके लिए विशेष पाठ्यक्रम विशेष शिक्षण विधि, उनकी शिक्षा के लिए अध्यापकों का प्रशिक्षित होना उनके लिए सामान्य बालकों से अलग दण्ड व्यवस्था, उनके लिए विशेष पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं को आयोजित करना उन्हें अभिव्यक्ति का अवसर देना, व्यवसायिक शिक्षा की व्यवस्था करना, जिससे विद्यालय से निकलने के पश्चात् ये आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो सके। समाज के साथ समायोजन स्थापित कर सके। इसके लिए यह आवश्यक है कि आधुनिक दिव्यांग विद्यालयों को समाज के बदलते परिवेश के साथ सामंजस्य बनाये रखने के लिए शोध कार्य पर बल देना चाहिए। आजकल व्यक्ति समायोजन की आवश्यकता को पूर्ण करने में असफल हो रहा है। जिसके फलस्वरूप उनमें अनुशासनहीनता, कुण्ठा, उग्रता तथा असंतोष एवं अराजकता की भावना उत्पन्न हो रही है यह उनके कुसमायोजन का प्रबल प्रतीक है।

वर्तमान में व्यक्ति अर्थ एवं कार्य की प्रबल वासनाओं का शिकार हो रहा है। यह सब कुछ केवल भौतिकता के दर्पण में ही देखने का प्रयास करता है। भौतिकता से अलग होने के कारण वह अपने प्रतिविम्ब से ही अलग होने लगता है। उसमें अनेक प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक विकृतियों और व्याधियाँ उत्पन्न होने लगती है। वह अनेक प्रकार के भ्रमों का शिकार होता है। वास्तव में व्यक्ति में विद्यमान उत्तेजनायें उसके लिये विपरीत प्रकट होती है जैसे वह स्थिर को अस्थिर और अस्थिर को स्थिर महसूस करता रहता है। उसकी दशा उस अंगुलिमाल ढाकू की तरह होती है जिसे स्थिर गौतम बुद्ध भागते हुए दिखाई देते थे। आज के सन्दर्भ में भी हम देखते हैं कि संवेगों के घात-प्रतिघात से आर्तकित कही पद सेवन मे रहता है तो कही कपट जाल के ताने-बाने मुन रहा होता है तो कहीं हत्या अथवा आमारिया का सहारा ले रहा है। कहने का आशय यह है कि संवेग जहाँ एक और रचनात्मक बनाता है तो वर्ष दूसरी और उसे विध्वंसक और विघटनकारी भी बनाता है ऐसी स्थिति में संवेगात्मक परिपक्वता का महत्व बढ़ जाता है मानव जीवन निर्माण एवं समायोजन के लिये ही विशेष रूप से उत्तरदायी माना जाता है न कि विघटन एवं विनाश के लिये संदेश का रचनात्मक स्वरूप ही मानव मानवीय मूल्यों एवं आदर्शों का विकास करता है अन्यथा वह बन जाता है। सर्वगात्मक परिपक्वता के कारण ही राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा गया है, जबकि संवेगात्मक परिणका नहीं होने के कारण ही रायण को राक्षस कहा गया। आधुनिक मनौवैज्ञानिक इस बात पर बल देते हैं कि के समुचित विकास जिये संवेगात्मक परिपक्वता का होना आवश्यक है। संर्वगात्मक परिपक्वता के अभाव में व्यक्ति अहम भावनाओं का शिकार होता है तथा अपनी अहम एवं नैतिक अहम शक्ति दुर्बल होने के कारण जीवन अभिशाप बन जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने संवेगात्मक परिपक्वता को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया है। कोल के अनुसार- ष्संवेगात्मक परिपक्वता का एक प्रमुख प्रभाव चिन्ताओं को संभालने का है। अन्य प्रभावों में समान व्यवहार उन कारकों के लिए जो बच्चों के विकास, संवेदनशीलता को प्रभावित करते हैं इसके अलावा संवेगात्मक परिपक्व व्यक्ति में हास्य एवं नवीनता का मिश्रण होता है जिसके कारण वह खेलना और जिम्मेदारियों का वहन आराम से करते J बालकों का शारीरिक एवं मानसिक विकास इसी पर निर्भर करता है। माता-पिता एवं अध्यापकों को चाहिए कि वे बालकों के संवेगों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा की व्यवस्था करे। किशोरावस्था में बालकों में संवेगों की गति सबसे ज्यादा तीव्र होती है हर्ष की स्थिति में अपने संवेगों को बहुत तीव्र गति से प्रकट करते हैं। उसी प्रकार क्रोध की स्थिति में बालक के संवेग सबसे ज्यादा तीव्र होते है इसका मुख्य कारण माता-पिता द्वारा बालकों पर अधिक अनुशासन, परिवार में प्रतिकूल पारस्परिक सम्बन्ध, बालको की इच्छाएं पूरी न होना आदि ऐसी स्थिति में बालक अपने आपको असहाय पाते है एवं परिवार एवं समाज में समायोजन करने में कठिनाई होती है। विपरीत लिंग के साथ समायोजन करने में समस्या, मित्रों के साथ सामंजस्य बिठा पाना आर्थिक समस्यायें आदि होती है।

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्यः

1 दिव्यांग छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्यययन करना।

2 सामान्य छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्यययन करना।

3 दिव्यांग छात्र एवं सामान्य छात्र के संवेगात्मक समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।

4 दिव्यांग छात्राओं एवं सामान्य छात्राओं के संवेगात्क समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ

1 दिव्यांग छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक समायोजन स्तर में सार्थक अन्तर नहीं है।

सामान्य छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक समायोजन स्तर में सार्थक अन्तर नहीं है।दिव्यांग छात्र एवं सामान्य छात्र के संवेगात्मक समायोजन स्तर में सार्थक अन्तर नहीं है।

2 दिव्यांग छात्राओं एवं सामान्य छात्राओं के सर्वगात्मक समायोजन स्तर में सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन का परिसीमन

प्रस्तुत शोध समस्या में कानपुर नगर के 14-18 वर्ष आयु के 50 दिव्यांग एवं 50 सामान्य विद्यार्थियों का चयन किया गया है जिसमे 50 प्रतिशत छात्राओं को लिया गया है।

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण

कपूर स्वर्षो (1990)-बधिर एवं सामान्य बालकों ने ज्ञात्मक कार्यों एवं योग्यता के सापेक्ष महत्त्व के तुलनात्मक अध्ययन में देखा कि पढ़ने वाले और न पढ़ने वाले बच्चों की योग्यता के सापेक्ष महत्त्व में कोई खास अन्तर नहीं है तथा जिन बालकों को निर्देष दिए गए थे उनकी शैक्षिक निष्पत्ति सार्थक रूप से अच्छी पायी गई। निष्कर्ष में यह पाया गया पढ़ने वाले छात्रों की योग्यता के सापेक्ष महत्व में अन्तर नहीं होता एवं निर्देष के अभाव में शैक्षिक निष्पत्ति में सार्थक रूप से अन्तर पाया गया।

गुर्नानी (2012) ने राजस्थान सीनियर हायर सैकेण्डरी स्कूल के शारीरिक रूप से दिव्यांग छात्रों के जीवन मूल्य व्यक्तित्व व सृजनात्मकता के अध्ययन में पाया कि शारीरिक रूप से दिव्यांग छात्र धार्मिक, प्रजातांत्रिक तथा अधिक सृजनात्मक थे। शारीरिक रूप से दिव्यांग छात्र कल्पनापील, जीवन मूल्यों युक्त व सौम्य प्रवृत्ति के पाये गये।' निष्कर्ष में यह पाया गया दिव्यांग छात्र कल्पनाशीलता, जीवन मूल्यों युक्त व सौम्य प्रवृति के होते हैं। दिव्यांग छात्र धार्मिक, प्रजातांत्रिक व अधिक सृजनात्मक थे अर्थात् व्यवहारिक जीवन में दोनों पक्ष देखने को मिले।

नरसिम्हन तथा पिल्लई (2012)-ने विभिन्न माध्यमों के विद्यार्थियों के मध्य समायोजन एवं उपलब्धि स्तर जानने का प्रयास किया, जिससे उन्होंने पाया कि अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों का समायोजन स्तर व उपलब्धि स्तर तेलगू माध्यम की अपेक्षा अधिक था।

सिंह (2013) मानसिक रूप से प्रतिभाशाली तथा मन्दबुद्धि बालकों के समायोजन का अध्ययन। न्यादर्श- न्यादर्श के रूप में 10वी कक्षा के 600 छात्रों का तथा 400 छात्राओं का चयन किया जो उ०प्र० की वीन कमिश्नरियों से चुने गये। उपकरण उपकरण के रूप में जोशी का मानसिक योग्यता परीक्षण तथा समायोजन समस्या सूधी, सामान्य समायोजन एस०एस०) भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में समायोजन का अध्ययन करने वाली यांत्रिक व्यवहार सूची जिसे अनुनेयं तैयार कर प्रयोग किया गया है. आँकड़ों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन था

प्रतिशत सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया। निशार्थ रूप में लड़के तथा लड़कियों के बुद्धि प्राप्तांकों में कोई सार्थक अभार नहीं पाया गया। प्रतिभाशाली मानसिकमन्दबुद्धि तथा सामान्य बालको के सामाजिक, आर्थिक स्तर में भिन्नता पायी गयी। प्रतिभाशाली एवं मानसिक मन्दबुद्धि छात्रों की सामान्य समायोजन योग्यता में अंतर पाया गया। तीनों समूहों में भिन्न-भिन्न समायोजन परिस्थितियों का भिन्न -2 प्रभाव पाया गया तथा उनकी प्रतिक्रियायें भी अलग-2 ज्ञात की गयी।

बाला (2015) "दिव्यांग एवं सामान्य बालको के समायोजन, शैक्षिक सुविधाओं मूल्यों एवं मानसिक तत्परता का अध्ययन।" उददेश्य अध्ययन के उददेश्य व्यक्तिगत मानव मूल्य, सम्प्रत्यय, समायोजन, मानसिक तत्परता एवं दिव्यांग बालकों को दी जाने वाली सुविधाओं का अध्ययन करना था। न्यादर्श के रूप में 500 अन बधिर एवं अपंग बालको एवं 500 सामान्य बालकों को लिया गया जो 12 से 16 वर्ष केआयु के थे। अध्ययन हेतु कैटल की व्यक्तिगत सूची (प्रश्नावली) बर्नर व लिण्डजे की मूल्य अनुसूची डिग्री पर्सन`लिटीवल्ड लिस्ट व भाटिया परफार्मेन्स टेस्ट सिन्हा की समायोजन सूची तथा शैक्षिक सुविधाओं के अध्ययन हेतु स्वयं निर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया।

निष्कर्ष रूप में दिव्यांग एवं सामान्य बालकों के व्यक्तिगत व मूल्यों में सार्थक अन्तर प्राप्त हुआ। शारीरिक दिव्यांग बालकों अपंग, बधिर एवं दृष्टिहीन के व्यक्तित्व ये लगभग एक जैसी विशेषतायें प्रदर्शित हुई। बधिर बालकों में सजगता एवं राजनैतिक मूल्यों के प्रति उदासीन पाये गये परन्तु इनमें सौन्दर्यात्मक, धार्मिक एवं सामाजिक मूल्य अधिक प्राप्त हुए। अन्धे बालकों में अस्त-व्यस्तता एवं चिन्ता की प्रवृत्ति दृष्टियोगर हुई। दृष्टिहीन एवं बधिर बालकों के संवेगात्मक, सामाजिक एवं शैक्षिक समायोजन सार्थक अन्तर पाया गया। की अध्ययन विधि-शोध के अनुसंधान हेतु वर्णनात्मक अनुसंधान विधि के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोगकिया गया है।

शोध की जनसंख्या जनसंख्या या समष्टि से तात्पर्य ऐसे व्यक्तियों या वस्तुओं से है जिसे शोधकर्ता अपने शोध में स्पष्ट रूप से परिभाषित करता है। शोध में जनसंख्या से तात्पर्य सम्पूर्ण इकाइयों से है। कानपुर नगर के माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के कक्षा 9-10 के दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थी प्रस्तुत शोध की जनसंख्या है। शोध का न्यादर्श : शोध कार्य में लाटरी विधि द्वारा यादृच्छिक न्यादर्श का चयन किया गया है क्योंकि ज्यादर्श की यह विधि हमारे लघु

विषय के अनुसार सबसे उचित है। शोध के अध्ययन हेतु शोधार्थी द्वारा यादृदिक न्यादर्श विधि के द्वारा उच्च माध्यमिक स्तर के 100 छात्र/छात्राओं का चयन किया गया जिसमें 50 सामान्य तथा 50 दिव्यांगों को सम्मिलितकिया गया है।

शोध हेतु आवश्यक उपकरण शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा डॉ० आर० बी० पाटिल (कर्नाटक) द्वारा निर्मित। dolescent's Emotional Adjustment Inventory (AEAI) का प्रयोग किया है।

सांख्यिकीय विधियाँ प्रस्तुत शोध कार्य में शोधार्थी ने प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या करने के लिए मध्यमानमानक विचलन, टी-परीक्षण सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या

शून्य परिकल्पना-1 दिव्यांग छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक समायोजन स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

तालिका नं0-1: दिव्यांग छात्र एवं छात्राओं के समायोजन स्तर पर आधारित सार्थकता सम्बन्धी प्राप्तांकों के मध्यमान, मानक विचलन एवंटी अनुपात

समूह	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन		टी अनुपात	सार्थकता स्तर
दिव्यांग छात्र	25	28.96	8.78	48	2.34	0.01 पर असर्थकता
दिव्यांग छात्राएं	25	29.52	7.75			

परिणामों की व्याख्या- उपर्युक्त सारणी को प्रदर्शित करने के बाद यह कहा जाना अत्यन्त आवश्यक एवं उचित है कि सारणी में प्रदर्शित किया गया परिगणित - मान 2.34 प्राप्त हुआ है जो 1-सारणी में df= 48 के अन्तर्गत 0.01 सार्थकता स्तर पर सैद्धान्तिक 1-के मान 2.68 से कम प्राप्त हुआ है। अत: इससे स्पष्ट होता है कि उपरोक्त शून्य परिकल्पना षदिव्यांग छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक समायोजन स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है को स्वीकृत किया जाता है। अर्थात् इसके आधार पर इस बात की पुष्टि हो जाती है कि दिव्यांग छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक समायोजन स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शून्य परिकल्पना-2 सामान्य छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक समायोजन स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

तालिका नंबर 2: सामान्य छात्र एवम छात्राओं के संवेगात्मक समायोजन स्तर पर आधारित सार्थकता सम्बन्धी प्राप्तांकों के मध्यमान मानक विचलन एवम टी अनुपात

समूह	विद्यार्थियों संख्या	मध्यमान	मानक विचलन		टी अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य छात्र	25	19.80	6.35	48	0.40	0.01 पर असर्थाकता
सामान्य छात्राये	25	19.20	3.60			

परिणामों की व्याख्या-उपर्युक्त सारणी को प्रदर्शित करने के बाद यह कहा जाना अत्यन्त आवश्यक एवं उचित है कि सारणी में प्रदर्शित किया गया परिगणित 1-मान 0.40 प्राप्त हुआ है जो 1-सारणी में कि48 के अन्तर्गत 0.01 सार्थकत स्तर पर सैद्धान्तिक 1-के मान 2.68 से कम प्राप्त हुआ है।

अत: इससे स्पष्ट होता है कि उपरोक्त शून्य परिकल्पना सामान्य छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक समायोजन स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है को स्वीकृत किया जाता है। अर्थात् इसके आधार पर इस बात की पुष्टि हो जाती है कि सामान्य छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक समायोजन स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं होकर समूह है संवेगात्मक समायोजन में एकरूपता या एक समानता प्रदर्शित होती है। इस प्रकार दोनों समूहों के संवेगात्मक समायोजन स्तर के विषय तुलनात्मक अध्ययन प्राप्त मध्यमान के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इन दोनों समूहों का समायोजन औसत दर्जे का है।

शून्य परिकल्पना -3 : दिव्यांग छात्र एवं सामान्य छात्र के समायोजन स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

तालिका नं0-3: दिव्यांग छात्र एवं सामान्य छात्र के समायोजन स्तर पर आधारित सार्थकता सम्बन्धी प्राप्तांकों के मध्यमान, मानक विचलन एवम टी अनुपात

समूह	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन		टी अनुपात	सार्थकता स्तर
दिव्यांग छात्र	25	28.96	8.78	48	2.16	0.01 पर असर्थाकता 0.05 पर असर्थाकता
सामान्य छात्र	25	19.80	6.35			

परिणामों की व्याख्या- उपर्युक्त सारणी को प्रदर्शित करने के बाद यह कहा जाना अत्यन्त आवश्यक एवं उचित है कि सारणी में प्रदर्शित किया गया परिगणित ।-मान 2.82 प्राप्त हुआ है जो 1-सारणी कि- 48 के अन्तर्गत 0.01 सार्थकता स्तर 2.68 से कम है तथा 1-सारणी कि= 48 के अन्तर्गत सार्थकता स्तर 0.05 पर सैद्धान्तिक मान 2.01 से अधिक है।

अत: शून्य परिकल्पना दिव्यांग छात्र एवं सामान्य छात्र के संवेगात्मक समायोजन स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है को सार्थकता स्तर 0.01 पर असार्थक अर्थात स्वीकृत तथा 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक अर्थात शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है।

शून्य परिकल्पना-4 : दिव्यांग छात्राओं एवं सामान्य छात्राओं के संवेगात्मकसमायोजन स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

तालिका नंबर 04

समूह	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन		टी अनुपात	सार्थकता स्तर
दिव्यांग छात्राएं	25	29.52	7.75	48	2.08	0.01 पर असर्थाकता 0.05 पर असर्थाकता
सामान्य छात्राएं	25	19.20	3.60			

परिणामों की व्याख्या-उपर्युक्त सारणी को प्रदर्शित करने के बाद यह कहा जाना अत्यन्त आवश्यक है कि उपर्युक्त सारणी में प्रदर्शित किया गया परिगणित -मान 2.08 प्राप्त हुआ है जो ज-सारणी df= 48 के अन्तर्गत सार्थकता स्तर 0.01 के सैद्धान्तिक 1-के मान 2.68 से कम है तथा 1-सारणी df= 48 के अन्तर्गत सार्थकता स्तर 0.05 के सैद्धान्तिक 1-मान 2.01 से अधिक है। अत: शून्य परिकल्पना षदिव्यांग छात्राओं एवं सामान्य छात्राओं के संवेगात्मक समायोजन स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता हैष को 0.01 सार्थकता स्तर पर स्वीकृत तथा 0.05 सार्थकता स्तर पर अस्वीकृत किया जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 0.01 सार्थकता स्तर पर इन दोनों समूहों के संवेगात्मक समायोजन में कोई अन्तर नहीं होता। परन्तु 0.05 सार्थकता स्तर पर इन दोनों समूहों के संवेगात्मक समायोजन में अन्तर होता है। अर्थात 0.05 स्तर पर 95 प्रतिशत के साथ यह कहा जा सकता है कि दिव्यांग छात्राओं एवं सामान्य छात्राओं के संवेगात्मक समायोजन स्तर में सार्थक अन्तर होता है। जो कि वास्तविकता को प्रदर्शित करती है।

आध्ययन निष्कर्ष :-अध्ययन से प्राप्त परिणामों को जय परिभाषित जनसंख्या पर लागू किया तो उसे अपने शोध के आगर पर निम्नवत निष्कर्ष, प्रासंगित एवं तथ्यपूर्ण रूप से प्राप्त हुएदिव्यांग छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक समायोजन में स्तर पर प्राप्त निष्कर्ष-

- दिव्यांग छात्र एवं छात्राओं को संवेगात्मक समायोजन में अन्तर नहीं है का तात्पर्य है कि इनके संवेगात्मक [मायोजन एक पजैसे अर्थात समान हैं और यह समायोजन असहमत है अर्थात निम्न स्तर का है। जिसका मूल निष्कर्ष लोगों में जागरूकता का अभाव है।
- दिव्यांग छात्र एवं छात्राओं के निम्न स्तर के संवेगात्मक समायोजन से दूसरा निष्कर्ष यह प्राप्त हुआ कि सामाजिक अन्तक्रिया के अवसरों की कमी है जिससे इन दोनों के समायोजन का स्तर कमजोर और अप्रभावी परिलक्षित होता है।
- दिव्यांग छात्र एवं छात्राओं के निम्न स्तर के (असहमत) संवेगात्मक समायोजन से तीसरा निष्कर्ष यह प्राप्त हुआ कि इन दोनों समूहों के लोगो (अभिभावकों में) संकुचित मानसिकता व्याप्त है। दिव्यांग छात्र एवं छात्राओ के निम्न स्तर संवेगात्मक समायोजन से यह भी निष्कर्ष प्राप्त हुआ

कि इन इन दोनों समूहो के लोगों में रूढ़िवादी सोच प्रभावी एवं व्याप्त है जिससे इन छात्रों के समायोजन के स्तर में कमजोरियोंसक्रिय है।

दिव्यांग छात्र एवं छात्राओं में निम्न स्तर के संवेगात्मक समायोजन के लिए यह भी निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि इन दोनोंसमूहों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति भी अपनी भूमिका निर्वाहित कर रही है।

- दिव्यांग छात्र एवं छात्राओं में निम्न स्तर के संवेगात्मक समायोजन के लिए यह भी निष्कर्ष निकलता है कि इन दोनों रुमूहों का परिवार में लोगो की कम या अधिक संख्या अर्थात एक परिवार एवं संयुक्त परिवार ही समायोजन की क्षमता को प्रभावित करता है।

सामान्य छात्र एवं छात्राओं के समायोजन पर प्राप्त निष्कर्ष- सामान्य छात्र एवं छात्राओं के यह निष्कर्ष प्राप्त किया गया कि इनका संवेगात्मक समायोजन स्तर औसत दर्जे का है।

सामान्य छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक समायोजन में जागरूकता का अभाव नहीं है।

सामान्य छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक समायोजन में लोगों की संकुचित मानसिकता नहीं प्रभावी है। सामान्य छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक समायोजन में लोगों रूढ़िवादी दृष्टिकोण नहीं व्याप्त है।

सामान्य छात्र एवं छात्राओं के समायोजन में लोगों द्वारा सामाजिक अन्तक्रिया के अवसर की उपलब्धता औसतन है अर्थात यथासम्भव प्रयास किये जाते हैं।

दिव्यांग छात्र एवं सामान्य छात्रों के संवेगात्मक समायोजन पर प्राप्त निष्कर्ष

- दिव्यांग छात्र एवं सामान्य छात्रों के संवेगात्मक समायोजन में अन्तर की स्पष्टता देखकर ही वास्तविक प्रतीत होता है कि दिव्यांग छात्रों में जागरूकता का अभाव पाया जाता है लेकिन सामान्य छात्रों में जागरूकता का अभाव पाया जाये।ऐसा बहुत ही कम सम्भव है अर्थात ऐसी परिस्थिति आ जाती है कि सामान्य छात्रों में समायोजन कभी-कभीअभावी हो जाये।
- दिल्यांग छात्र एवं सामान्य छात्रों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह भी निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि दिव्याग छात्रों के लोगों में सामान्य छात्रों के लोगों की अपेक्षा संकुचित मानसिकता अधिक प्रभावी होती है।

दिव्यांग छात्राओं एवं सामान्य छात्राओं के संवेगात्मक समायोजन पर प्राप्त निष्कर्ष-

दिव्यांग छात्राओं एवं सामान्य छात्राओं के संवेगालक समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करने पर उपर्युक्त दिव्यांग छात्र एवं सामान्य छात्र के समान भी निष्कर्ष प्राप्त हुए है अर्थात इन दोनों समूहों में भी समायोजन के विषय में जागरूकता का अभाव संकुचित मानसिकता, रूढ़िवादी सोच या दृष्टिकोण एवं सामाजिक अन्तक्रिया के अवसरों की कमी रूप में परिलक्षित होती है।

सन्दर्भ सूची

- कपिल एच (1992) अनुसंधान विधियाँ, आगरा हरप्रसाद भार्गव, कचहरी घाट, आगरा।
- कौल लोकेश (2000) शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली, आगरा विकास पब्लिकेशन्स हाउस।
- नानन्द स्वामी (2000), आधुनिक भारत के निर्माण में शिक्षकों के कर्तव्य और दायित्व आगरा भार्गव बुक हाउस ।
- सिंह, अरुण कुमार (2010), मनोविज्ञान समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियों, पटना मोतीलाल बनारसीदास
- गोन्द्राय श्रीवास्तव (2000), विशिष्ट बालकों की शिक्षा अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- श्रीस्तव दिनीत प्रशान्त अग्निहोत्री एवं बन्दना सिंह (2012) समेकित शिक्षा के अन्तर्गत अध्ययनरत् सामान्य दिव्यांग की उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन, मुमुड जनरल ऑफ हयूमिनिटीजवाल्यूम नं० 2012 (2013) मानसिक रूप से प्रतिभाशाली तथा मन्दबुद्धि बालकों के समायोजन का अध्ययन
- सुमार एस०ए० (2014) प्राथमिक छात्रा के संवेगात्मक, सामाजिक एवं शैक्षिक समायोजन पर माता-पिता के दृष्टि प्रभावका' (2015) दिव्यांग एवं सामान्य बालकों के समायोजन, शैक्षिक सुविधाओं मूल्यों एवं मानसिक तत्परता का(2015) बालकों के समायोजन एवं पारिवारिक वातावरण का अध्ययन

प्रगतिशील समाज में समावेशी शिक्षा की भूमिका

डॉ० सरोज यादव

(एसो. प्रोफे) शिक्षक प्रशिक्षण विभाग, चौ. चरण सिंह पी. जी. कालेज, हेवरा, इटावा

समाज की वास्तविक खुशी तभी हासिल की जा सकती है जब कतार में खड़े आखिरी व्यक्ति का भी कल्याण हो सके व्यक्ति का सही अर्थों में कल्या तभी संभव है जब समाज का भी कल्याण हो, समावेषी का यह विचार ही गांधीवादी स्वराज की अवधारणा का नैतिक आधार केन्द्र बिन्दु है। आजादी के से भारत में हुए शैक्षिक व्यवस्था का विकास इस बात की पुष्टि करता है कि भारतीय शिक्षा ने विभिन्न क्षेत्रीय विविधता और भिन्न सीमाओं के बावजूद में समावेशी शिक्षा के लिए उपकरण के रूप में कार्य किया है। समावेशी शिक्षा से तात्पर्य वैसी शिक्षा प्रणाली से है जिसमें सभी विद्यार्थियों को बिना किसी भेद-भाव के सीखने-सिखाने के समान अवसर मिले, लेकिन आज भी यह समावेशी शिक्षा उस मुकाम तक नहीं पहुंची है जहाँ इसे पहुंचना चाहिए। यह संकल्पना इस पर आधारित है कि सभी बच्चों के विद्यालयी शिक्षा में समावेशन व उसकी प्रक्रियाओं की व्यापक समझ की इस कदर आवश्यकता है कि उन क्षेत्रीय सांस्कृतिक, सामाजिक परिवेश और विस्तृत सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं दोनों में ही संदर्भित करके समझा जाए। हमारा विधान जाति, वर्ग, धर्म आर्थिक एवं लैंगिग आधार पर किसी भी प्रकार के विभेद का निषेध करता है और इस प्रकार एक समावेशी समाज की स्थापना का आदर्श प्राप्त करता है। "समावेशन शब्द का अपने आप में कुछ खास अर्थ नहीं होता है समावेशन के चारों तरफ जो वैचारिक, दार्शनिक, शैक्षिक ढांचा होता है ही समावेशन को परिभाषित करता है समावेशन की प्रक्रिया में बच्चे को न केवल लोकतंत्र की भागीदारी के लिए सक्षम बनाया जा सकता है बल्कि यह सीखने एवं विश्वास करने के लिए भी सक्षम बनाया जा सकता है कि लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए दूसरों के साथ रिश्ते बनाना, अन्तक्रिया करना भी समान रूप से महत्वपूर्ण है।" (NCF 2005 पृष्ठ-96) समावेशी शिक्षा बालक को अन्य बालकों के समान गतिविधियों में भाग लेने और व्यक्तिगत लक्ष्यों पर कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करती है। इसलिए इस शिक्षा की आवश्यकता अधिक महसूस होती है। यह शिक्षा समाज के सभी बालकों को शिक्षा की मुख् से जोड़ने का समर्थन करती है। समावेशी समाज को बढ़ावा देने के लिए कुछ नीतियों एवं कार्यक्रम जैसे-एकीकृत शिक्षा, NCF 1986 एवं POA-1992 समान विद्यालय व्यवस्था समावेशित प्रणाली डभ्त्क कार्य योजना, सर्व शिक्षा अभियान, NCF-2005 आदि का क्रियान्वयन किया गया है। कुछ अन्य पहल जैसे- विशेष विद्यालयों की स्थापना 1980 केन्द्रीय स्वीकृत योजना-1987, भारतीय पुनर्वास परिषद 1982. विकलांगता अधिनियम 1905 पीडब्लूडी 2018 है। में समादेशन 2000, दिव्यांग बालकों के लिए राष्ट्रीय नीति 2006. दिव्यांग बालकों का सशक्तीकरण 2009, जिनकी समावेशी समाज के निर्माण में अहम भूमिका है। इन कार्यक्रम और नीतियों को कार्यरूप में परिभाषित करने के लिए लोगों को जागरूक एवं समावेशी माहौल तैयार करना आवश्यक है। तभी यह योजनाएं एवं नीतियां सफल हो सकती है। समावेशी शिक्षा के माध्यम से दिव्यांगजनों के विकास हेतु समावेशी समाज के निर्माण में शिक्षकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। समाज के दृष्टिकोण को समावेशी बनाने के लिए शिक्षक सम्मेलनों भाषणों, वीडियो, फिल्मों, सेमिनार, वर्कशाप आदि का आयोजन कर सकता है। जीवन कोहली जैसे सत्य, ईमानदारी बढ़ी का सम्मान संवेदनशीलता अवकाश का सदुपयोग, विभिन्नता में एकता व्यक्तिगत स्वच्छता, पर्यावरण सं समभाव की भावना, भाषा एवं विज्ञान श्रम की महत्ता आदि की शिक्षा समावेशी परिवेश की स्थापना में सहयोग प्रदान करती है। जिसमें सिकों की भूमिका सराहनीय है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि समावेशी समाज का निर्माण एक व्यापक व जटिल प्रक्रिया है। इसे कार्य रूप में परिणत करने हेतु हमें स्वयं इसकी आवश्यकता को महसूस करना होगा व इस कार्य के लिए प्रतिबद्ध होने की आवश्यकता है। हम लंबी दूरी तय कर चुके हैं। हमें कभी लंबे जाना है। समावेशन ही भविष्य है, लोगों का सशक्तीकरण ही भविष्य है। सम्भवत: नियति को दिए वचन को वास्तव में और पर्याप्त कर से फलीभूत करने का समय आ गया है। टैगोर ने लिखा है कि समस्या यह नहीं कि मतभेद कैसे दूर किए जाए बल्कि यह है कि मतभेद बनाए सूबते हुए एकता की स्थापन कैसे की जाए।

प्रमुख शब्दावली -समावेशी शिक्षा, स्वराज, NCF-2005, NPE 1986 समावेशी परिवेश

समावेशी विकास और समावेशी समाज के लिए सबसे आवश्यक तत्व है समावेशी शिक्षा। शैक्षिक परिदृश्य में समावेशी शिक्षा के सत्य से साक्षात्कार के लिए सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान की समीक्षा भी जरूरी है। समावेशी विकास से आशय जब विकास की प्रक्रिया में अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्र (प्राथमिक द्वितीयक, तृतीयक) देश के सभी अंचल (भौगोलिक क्षेत्र) एवं समाज के सभी वर्ग शामिल हो तो ऐसा विकास समावेशी विकास कहलाता है। भारतीय संविधान में समता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय एवं व्यक्ति की गरिमा को प्राप्त मूल्यों के रूप में निरूपित किया गया है। हमारा संविधान जाति, वर्ग, धर्म, आर्थिक एवं लैंगिक आधार पर किसी भी प्रकार के विभेद को निषेध करता है। लोकतांत्रिक समाज की स्थापना के लिए हमारे संवैधानिक मूल्य स्पष्ट दिशा निर्देशन प्रदान करते है और इस प्रकार एक समावेशी समाज की स्थापना का आदर्श प्रस्तुत करते है। इस परिप्रेक्ष्य में बच्चे को सामाजिक, जातिगत, आर्थिक, वर्गीय, लैंगिक शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से भिन्न देखें जाने के बजाय एक स्वतंत्र अधिगमकर्ता के रूप में देखे जाने की आवश्यकता है। जिससे लोकतांत्रिक समाज में बच्चों के समुचित समावेशन हेतु वातावरण का सृजन किया जा सके। समावेशन की ठोस प्रक्रिया प्रतीकात्मक लोकतंत्र से भागीदारी आधारित लोकतंत्र का मार्ग प्रशस्त करती है। समावेशी समाज का विकास उसमेंनिहित सम्पूर्ण मानवीय क्षमता

के कुशलतापूर्वक उपयोग पर निर्भर करता है। समाज के सभी वर्गो की सहभागिता के बिना समावेशी समाज क विकास सम्भव नहीं हो सकता है। शिक्षा समावेशन की प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण औजार है। शिक्षा ही वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से एक बच्चा लोकतांत्रिक प्रक्रिया में अपनी भूमिका के लिए तैयारी करता है। दूसरी ओर समावेशन में बाधक तत्वों से निकलने का सामर्थ्य प्राप्त कर सकता है। शिक्षा हर बच्चे का अधिकार है और इसी के आधार पर वह जीवन की वं चुनौतियों से जूझने में समर्थ होता है। ष्भारत में विश्व की सबसे बड़ी शिक्षा प्रणाली काम करती है और इसमें लगभग 20 करोड़ से ज्यादा स्कूली बच्चे जुड़े हुए है। इस 20 करोड़ स्कूली बच्चों की उम्र 6 से 14 साल के बीच है और इन बच्चों की संख्या के 10 फीसदी को नियमित षिक्षा हासिल नहीं हो पाती। (NSS0-2002-2001 की जनणना आंकड़ों के अनुसार)। भारत का संविधान यह सुनिश्चित करता है कि प्राथमिक शिक्षा हर बच्चे का मौलिक अधिकार है। 83वें संविधान संशोधन के अनुसार यही भावना विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय अधिनियमों जैसे मानवाधिकार की वैश्विक उद्घोषणा 1884 और अंतर्भूत बाधामुक्त और अधिकार आधारित समाज के लिए स्थापित बिवाको मिलेनियम फ्रेमवर्क फार एक्शन में भी दुहराई गई है। गांधी जी ने इस बात पर बल दिया कि समाज की में वास्तविक खुशी तभी हासिल की जा सकती है जब कतार में खड़े आखिरीव्यक्ति का भी कल्याण हो। समावेशी का यह विचार ही गांधीवादी स्वराज की अवधारणा का नैतिक आधार एवं केन्द्र बिन्दु है। समावेशी शिक्षा की जड़े कनाडा और अमेरिका से जुड़ी है। समावेशी शिक्षा विशेष विद्यालय या कक्षा को स्वीकार नहीं करता। अशक्त बच्चों को सामान्य बच्चों से अलग करना अब मान्य नहीं है। पहले समावेशी शिक्षा की परिकल्पना सिर्फ विशेष छात्रों के लिए की गई थी। लेकिन वर्तमान समय में हर अध्यापक को समावेशी शिक्षा की विस्तृत दृष्टिकोण में अपनी कक्षा में व्यवहार में लाना चाहिए। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (NCF 2005) में सभी बच्चों की गुणवत्तापूर्ण समावेशी शिक्षा प्रदान करने पर व्यापक दृष्टिकोण प्रदान किया है जिसमें शिक्षक को हर छात्रों की अनोखी जरूरतों के प्रति संवेदनशील होना, बच्चों पर केन्द्रित सामाजिक रूप से प्रासंगिक और न्यायोचित पढ़ाने सीखने की प्रक्रिया प्रदान करना। उनके सामाजिक सांस्कृतिक सन्दर्भो में विविधता को समझाना आदि। अत: शिक्षक को बच्चों के वर्ग, जाति, धर्म, लिंग और नि:शक्तता पर ध्यान दिए बिना सभी बच्चों को संलग्न करने और सीखने के सार्थक अवसर प्रदान करने मे सक्षम होना चाहिए। शिक्षा का अधिकार कानून 2009 (RTE) लिंग और सामाजिक श्रेणी पर ध्यान दिए बिना सभी छात्रों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराने के इस निर्णय को अधिक मजबूत और सुदृढ़ करता है। समावेशी कक्षा में शिक्षकों द्वारा न्यायोचित शिक्षा प्रदान करने में विद्यालय शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। समावेशन शब्द का अपने आप में कुछ खास अर्थ नहीं होता है। समावेशन के चारों तरफ जो वैचारिक दार्शनिक शैक्षिक ढांचा होता है। वही समावेशन को परिभाषित करता है समावेशन की प्रक्रिया में बच्चे को न केवल लोकतंत्र की भागीदारी के लिए सक्षम बनाया जा सकता है बल्कि यह सीखने एवं विश्वास करने के लिए भी सक्षम बनाया जा सकता है कि लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए दूसरों के साथ रिश्ते बनाना, अन्त:क्रिया करना भी समान रूप से महत्वपूर्ण है।"(NCF 2005 पृष्ठ 96) समावेशन की प्रक्रिया के पारिवारिक, शैक्षिक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक आयाम हो सकते है लेकिन सबसे महत्वपूर्ण भूमिका परिवार एवं विद्यालय की होती है क्योंकि बच्चे के सामाजीकरण की प्रथम पाठशाला उसका परिवार होता है और इसके बाद विद्यालय होता है। समावेशी शिक्षा के वैचारिक एवं दार्शनिक आधार यह है कि प्रत्येक बालक स्वाभाविक रूप से सीखने के लिए अभिप्रेरित होता है। बालकों के सीखने के तौर तरीकों में विविधता होती है। अनुभवों के द्वारा अनुकरण के माध्यम से चर्चा प्रश्न पूछना, चिन्तन करने छोटे व बड़े समूह में गतिविधियों करने आदि तरीकों से बच्चा सीखता है। बच्चों को सीखने सिखाने के क्रम में समुचित अवसर देने की आवश्यकता होती है। सीखने सिखाने के लिए समुचित वातावरण तैयार करने की आवश्यकता है। सीखने की प्रक्रिया विद्यालय के साथ-साथ विद्यालय के बाहर भी निरन्तर चलती रहती है। अत: सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को इस प्रकार व्यवस्थित किये जाने की आवश्यकता है जिससे बालक पूर्ण रूप से उसमें सम्मिलित हो जाये और उसके बारे में अपने आधार पर अपनी समझ विकसित करें। सीखने-सिखाने की प्रक्रिया आरम्भ करने से पूर्व बालक के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, भौगोलिक प राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को जानना आवश्यक है। प्रत्येक बालक की विविधता के प्रति आदर करना

समावेशी शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व - समावेशी शिक्षा प्रत्येक बालक के लिए उच्च और उचित उम्मीदों के साथ उसकी व्यक्तिगत शक्तियों का विकास करती है। प्रत्येक बालक सीखने के लिए अभिप्रेरित होता है। समावेशी शिक्षा अन्य बालकों को अपने स्वयं के व्यक्तिगत आवश्यकताओं और क्षमताओं में सामजस्य स्थापित करने में सहयोग करती है। समावेशी शिक्षा सम्मान और अपनेपन की विद्यालय संस्कृति के साथ-साथ व्यक्तिगत मतभेदों को स्वीकार करने के लिए अवसर प्रदान करती है। समावेशी शिक्षा बालक को अन्य बालको के समानका गतिविधियों में भाग लेने और व्यक्तिगत लक्ष्यों पर कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करती है। समावेशी शिक्षा बालको की शिक्षा गतिविधियों में उनके माता पिता को भी सम्मिलित करने की वकालत करती है। समावेशी शिक्षा सही मायने में शिक्षा का अधिकार जैसे शब्दों का रूपान्तरित रूप है, जिसमें कई उद्देश्यों में से एक उद्देश्य है. विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं वाले बालकों को एक समतामूलक शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षा प्राप्त करने के अवसर प्रदान करना। समावेशी शिक्षा समाज के सभी बालकों को शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ने का समर्थन करती है।

समावेशी समाज- किसी व्यक्ति अथवा समूह को किसी समाज से उसके धर्म जाति, रंग भाषा आदि के आधार पर उसके अधिकारों से पृथक करना और केवल शारीरिक या मानसिक रूप से कभी होने पर उससे मुँह मोड़ लेना भेदभाव माना जायेगा जो मनुष्य होने की गुणवत्ता पर प्रश्न चिन्ह लगाता है। समाज में व्याप्त इन संकीर्ण दायरों से ऊपर उठकर प्रत्येक व्यक्ति जब समाज में दिव्यांगजनों की शिक्षा, सुरक्षा, संरक्षण, सम्मान तथा उसके प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति के लिए ठोस कदम उठायेगा तभी समावेशी समाज की कल्पना धरातल पर उतरेगी। समावेशी समाज के निर्माण में जो कार्य नीति महत्वपूर्ण एवं सशक्त भूमिका निभा रही है वह है समावेशन समावेशन का दर्शन समुदाय की सदस्यता और समुदाय का अंग होने पर आधारित है यह सभी तक पहुंचने का एक तरीका है। समावेशन हेतु कोई भी प्रमाणित प्रक्रिया नहीं है। परन्तु सफल समादेशन का तात्पर्य दिव्यांजनों को नियमित कक्षा में उत्तम शिक्षण शिक्षक-शिक्षार्थी के स्वस्थ्य सम्बन्ध और सभी बालकों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना है। जिससे नियमित कक्षा में दिव्यांगजन समायोजित हो सके उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो तथा सामाजिक अधिगम सम्बन्धी वातावरण में कार्यात्मक तरीकों से आगे बढ़ने का अवसर प्राप्त हो।

समावेशी समाज को बढ़ावा देने हेतु नीतियां एवं कार्यक्रम . भारतीय संविधान की प्रस्तावना में कहा गया Every onehas the right to equality of status and opportunity". अनुच्छेद 45. कहा गया है कि Free & compulsory Education for children up to age of 14 year..

एकीकृत शिक्षा 1950 के मध्य विकसित हुआ तथा यह बालकों को मुख्य धारा में सम्मिलित करने की अनोखी पहल है। NPE-1986& POA-1982- विशिष्ट आवश्यकता वाले बालको कोसामान्य बालको के साथ एकीकरण पर बल देता है। समान विद्यालय व्यवस्था उद्देश्य विशिष्ट बालकों को सामान्य बालको के साथ सामान्य विद्यालयों में शिक्षा के अवसर प्रदान करना।

समावेशित प्रणाली- इसमें जनसंख्या का एक क्षेत्र प्रोजेक्ट के रूपलिया जाता है। इस क्षेत्र में आने वाले क्षेत्र निर्योग्य बालकों को प्रवेशदिलाने के उत्तरदायी होते है।

सेलमैन का स्टेटमेण्ट व कार्य योजना समावेशी शिक्षा को बढ़ावादेना तथा विद्यालयों में सभी प्रकार के बालको को प्रवेश देना।

MIRD कार्य योजना निर्योग्य बालकों को मुख्यधारा शिक्षा में नामांकित करना व रोके रखना।

सर्व शिक्षा अभियान प्रत्येक बालक को उसी रूप में स्वीकार किया जाए जिस रूप में यह है उसे गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा दी जाये।

Bridge course for CWSN (Child with special Need) -aftreवातावरण तैयार करके समावेशीकरण की सम्भावनाओं को और अधिक बढ़ा देते हैं। ऐसे कौशल विकसित करना जिससे वे अपना जीवनयापन कर सकें।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005- सभी बच्चों को समय-समय पर उनके कार्य विशेष के लिए तथा उनके प्रदर्शन, योग्यता व श्रेष्ठता की प्रशंसा भी की जानी चाहिए व शिक्षकको विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों को साथ लेकर चलना होगा।

कुछ अन्य पहल जिनकी समावेशी समाज के निर्माण में अहम भूमिका रही है। इस प्रकार है

विशेष विद्यालयों की स्थापना 1980

राष्ट्रीय शिक्षा नीति--1986

केन्द्रीय एकीकृत योजना 1967

भारतीय पुनर्वास परिषद-1992

विकलांगता अधिनियम 1995

DPEP में शैक्षिक कार्यक्रम LE.D. का समावेश 1997 दिव्यांग बालकों के कल्याणार्थ राष्ट्रीय ट्रस्ट -1999

S.S.A. में समावेशन - 2000

दिव्यांग बालकों के समावेशन हेतु व्यापक कार्य योजना - 2005- दिव्यांग बालकों के लिए राष्ट्रीय नीति- 2006

दिव्यांग बालकों का सशक्तीकरण 2009

इन कार्यक्रमों और नीतियों को कार्यरूप में परिणित करने के लिए आवश्यक है कि इन नीतियों व कार्यक्रमों के प्रति लोगों को जागरूक किया जाय तथा समावेशन का माहौल तैयार किया जाए। सरकार सिर्फ योजनाएं तैयार कर सकती है परन्तु इनकी सफलता उस योजना में लगे हुए व्यक्तियों पर निर्भर करती है जब तक व्यक्ति स्वयं इस कार्य के प्रति ईमानदार नहीं होगा तब तक किसी भी योजना को सफल नहीं बनाया जा सकता।

समावेशी समाज एवं शिक्षकों की भूमिका- विकास या निर्माण के लिए कोई भी क्षेत्र चुना गया हो जरूरत है आगे बढ़ने की तथा नये नये रास्तों की तलाश करने की दिव्यांगजनों के सन्दर्भ में समावेशी समाज के निर्माण का प्रत्यय अभी प्रक्रिया में है इसे वास्तविक रूप प्रदान करने हेतु अधिकतम प्रयास की आवश्यकता है। समावेशी समाज का निर्माण एक चुनौती पूर्ण कार्य है। यह कोई एक दिन या कुछ घण्टों का काम नहीं है इसको तमाम व्यावहारिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिसमे समावेशीकरण काफी हद तक मददगार साबित हो सकती है। परन्तु समावेशीकरण एक सतही नहीं बल्कि आंतरिक प्रक्रिया है जो कि बड़ी तपस्या के बाद लोगों के व्यवहारों में परिवर्तन ला पायेगी और इसमें कोई दो राय नहीं है कि ऐसा करने के लिए समावेशी शिक्षा अपना योगदान देगी। समावेशी शिक्षा का आशय दिव्यांग बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ बैठाकर सामान्य रूप से पढ़ाना ताकि सामान्य बच्चों और दिव्यांग बच्चों में कोई भेदभाव न रहें और आपसी सहयोग से पठन-पाठन के कार्य को कर सकें। समावेशी शिक्षा के लिए अनेक प्रयास किये गये व किये जा रहे हैं, लेकिन यह तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक शिक्षण प्रक्रिया का मुख्य केन्द्र बिन्दु शिक्षक जिस पर सारी शिक्षा व्यवस्था घूमती है। यह जिम्मेदार जागरूक व अपनी भूमिका का ईमानदारी सेनिर्वहन करने वाला हो समावेषी शिक्षा के माध्यम से दिव्यांगजनों के विकास हेतु समावेशी समाज के निर्माण में शिक्षकों से निम्नलिखित भूमिकाएं अपेक्षित हैं-

शिक्षकों को इस बात से भली भांति अवगत होना चाहिए कि समावेशी समाज का प्रत्यय दिव्यांग बालकों के लिए शैक्षिक अवसरों की समानता, पूर्ण सहभागिता, उपयुक्त पाठ्यक्रम, शिक्षण व्यूहरचना, सहायक सेवाएँ तथा समुदायिक सहभागिता पर आधारित है।

शिक्षकों को विभिन्न आयोगों, नीतियों योजनाओं तथा सरकारी- गैरसरकारी संगठनों में दिव्यांग बालकों की शिक्षा एवं सुविधा हेतु दी गयी संस्तुतियों के विषय में जानकारी होनी चाहिए।

सर्वप्रथम शिक्षकों को दिव्यांग बालकों के अनुकूल वातावरण तैयार करना चाहिए जिसमें उनके साथ सामान्य समकक्षों, सामान्य अध्यापकोसामान्य बच्चों के माता-पिता जैसा व्यवहार हो।

शिक्षकों द्वारा दिव्यांग बालकों को यह स्वीकार करने में मदद करना चाहिए कि काम के क्षेत्र में वह दूसरे बच्चों से भिन्न है। परन्तु दूसरे क्षेत्रों में वह बिल्कुल भी भिन्न नहीं है। अपने बारे में इस प्रकार की समझ विकसित होने से उसे कई मनोवैज्ञानिक समस्याओं का कम करने में सहयता मिलेगी। समय-समय पर शिक्षकों द्वारा ऐसे व्यक्तिगत कार्यक्रम को विकसित करके लागू करना जा कक्षा के प्रत्येक बच्चे की आवश्यकताओं की पूर्ति करे व जिसमें किसी समस्या वाले बच्चे की विशेष आवश्यकताएं भी शामिल हो

दिव्यांग बालकों के अभिभावकों के साथ शिक्षकों को हमेशा सम्पर्क व तालमेल बनाकर रखना चाहिए जिससे कि सीखने की अवस्थाओं का पर पर अभिभावकों द्वारा प्रवलीकरण किया जा सके।

शिक्षकों द्वारा यह सुनिश्चित करना कि दिव्यांग समन्वयकतां या सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा किसी दिव्यांग बच्चे को क्या विशेष सेवाएं दी जा रही है और आप अपने कक्षा शिक्षण में दिव्यांगों की सहायताहेतु किसी विशेषज्ञ की सेवाएं किस प्रकार ले सकते है।

नियमित कक्षा में दिव्यांग बालकों के लिए पाठ्यक्रम अनुशीलन, अनुदेशात्मक व्यूहरचनाएं नवाचार तथा कक्षा प्रबन्धन हेतु कक्षा नियमित शिक्षक और संसाधित शिक्षक का सहयोग प्राप्त करना।

पिसकों द्वारा कक्षागत समस्याओं का सावधानीपूर्वक चयन कर क्रियात्मक अनुसंधान किया जाये जिससे दिव्यांग बालकों की विषयी समायोजन, गृह कार्य, उच्चारण, वर्तनी सम्प्रेषण कौशल, अनुशासन, उपलब्धि आदि समस्याओं का समाधान शोध द्वारा करके समावेशी समाज के निर्माण के अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकें। .

निष्कर्ष : उपरोक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि समावेशी समाज का निर्माण एक व्यापक व जटिल प्रक्रिया है। इसे कार्य के रूप में परिणत करने हेतु हमें स्वयं इसकी आवश्यकता को महसूस करना होगा व इस कार्य के लिए प्रतिबद्ध होने की आवश्यकता है। एक बेहतर समावेशी समाज के लिए सामान्य क्रियाओं के स्थान पर अतिरिक्त उपायों की जरूरत है। एक स्वतंत्र एवं अच्छे समावेशी समाज के विकास के लिए हमें सभी वर्गों के बच्चों के लिए एक समान अवसर उपलब्ध करवाने होगे तभी समावेशी शिक्षा का स्वरूप मजबूत हो सकता है और समावेशी विकास का सपना पूरा हो सकता है। हम लम्बी दूरी तय कर चुके है। हमें अभी और लम्बे जाना है समावेशन ही भविष्य है। लोगों का सशक्तीकरण ही भविष्य है। सम्भवत: नियति को दिए वचन को वास्तव में और पर्याप्त रूप से फलीभूत करने का समय आ गया है। टैगोर ने लिखा है कि समस्या यह नहीं मतभेद दूर किए जाए बल्कि यह है कि मतभेद बनाए रखते हुए एकता की स्थापना कैसे की जाए।"

सन्दर्भ बन्ध-सूची

1. तुली, उमा (2013); समावेशी शिक्षा एक वास्तविकता, योजना, नईदिल्ली: सूचना एवं प्रसारण (भारत सरकार), अप्रैल 2013 अंक 4.
2. झा, राकेश कुमार (2013); समावेशी लोकतंत्र योजना. नई दिल्ली: सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय (भारत सरकार). अप्रैल 2013 अंक 4
3. सारस्वत, मालती एवं आशा शर्मा (नवीन संस्करण)); शिक्षा केमनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य इलाहाबाद: आलोक प्रकाशन 4.
4. पाठक, पी०डी० एवं गुरूशरण दास त्यागी (2016-17); समसामयिक भारतीय शिक्षा: चिन्ता एवं मुद्दे आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन,
5. नामदेव, हरीओम एवं अनुराधा शर्मा (2016); समावेशी शिक्षा. आगरा:) अग्रवाल पब्लिकेशन,
6. मंगल एस0के0 (2015); एजूकेटिंग एक्सेप्सनल चिल्ड्रेन दिल्ली : पी०एच०आई० लर्निंग प्रा०लि०. 7. वर्मा. विमलेश (2016); समोवेशित विशिष्ट शिक्षा इलाहाबाद: शारदापुस्तक भवन

शिवप्रसाद सिंह के कथा साहित्य में स्त्री चेतना

दीप्ति

शोधार्थी (हिन्दी विभाग) वनस्थली विद्यापीठ, टोंक राजस्थान

प्रो० डॉ० गीता कपिल

शोध निर्देशिक (हिन्दी विभाग) वनस्थली विद्यापीठ, टोंक राजस्थान

आज स्त्री विमर्श साहित्य का केन्द्रीय विषय बन कर उभरा है। पश्चिमी और भारतीय दोनों दृष्टियों से नारी मुक्ति और नारी अस्मिता एक महत्वपूर्ण प्रश्न बन गया है। आधुनिक युग में स्त्री विमर्श व स्त्री चेतना सदियों से हो रहे स्त्री के शोषण के प्रति जागरूकता का परिणाम है। हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श आज की भारतीय स्त्री के जीवन की सम्भावनाओं को दर्शाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् स्त्री अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हुई। उसने पारिवारिक जिम्मेदारियों से निकलकर राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक आदि क्षेत्रों में अपनी भागीदारी की। जिस पितृसत्तात्मक समाज द्वारा उसे नियंत्रित किया जाता रहा, उसके प्रति वह अधिक सतर्क हुई और अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुई। स्वाधीनता संग्राम के समय आजादी की चरम कामना के चलते जाने कितनी ही रूढ़ियॉ भंग हुई। स्त्री भी इस आंदोलन में पुरूष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष करती रही। देश आजाद हो गया और साथ ही स्त्री घोर संघर्ष करती हुई दशक दर दशक विकास की सीढ़ियॉ चढ़ने लगी। उसके लिए पुरानी पुरूषवादी परम्पराओं से लडना आसान नहीं था परन्तु वह निरन्तर संघर्ष करती रही और अपने हक की लड़ाई लड़ती रही। उसके अपने अधिकारों के प्रति जागृति और उनके लिए संघर्ष को शिवप्रसाद सिंह ने अपने कथा साहित्य में दर्शाया है।

डॉ शिवप्रसाद सिंह का लेखन क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। उन्होने अपने कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन के प्रत्येक पहलु को बड़ी ही बारीकी से प्रस्तुत किया है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक नारी सदैव शोषण व उपेक्षा का शिकार रही है। डॉ शिवप्रसाद सिंह स्त्री के विषय में कहते हैं- ''नारी हर रूप में श्रेष्ठ होती है। जो खून को दूध में बदल सकती है, उसे प्रकृति ने ही श्रेष्ठ बनाया है। पर आज की हिन्दुस्तानी नारी तमस् में इस तरह डूबी हुई है कि अपनी शक्ति को ही भूल गई है। मैने अनपढ़ गॅवार और अति सामान्य कही जाने वाली नारी का भी तेजोद्दीप रूप देखा है। मैं नारी की कमजोरियों से वाकिफ होने का पूरा प्रयत्न करता हूॅ।"[1] शिवप्रसाद सिंह हिन्दी के ऐसे लेखकों में से हैं जिन्होंने समाज में स्त्रियों की स्थिति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। उन्होने तत्कालीन ग्रामीण परिवेश में नारी के संघर्ष को अपने लेखन का विषय बनाया। उनकी कहानियों में नारी के विविध रूपों को दर्शाया गया है। उनकी नारी कमजोर है, विवश है, शोषित है, विभिन्न प्रकार की यातनाएँ झेलती है तो कहीं अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करती नजर आती है।

वैसे उनकी कहानी की यात्रा दादी माँ जैसी आदर्श नारी को लेकर आरम्भ हुई है। लेकिन अधिकतर कहानियाँ स्त्री-यातना से सम्बन्धित हैं। यातना भोगना उनकी नियति हो गई है। भारतीय समाज पुरुष प्रधान समाज रहा है। युगों से नारी का शोषण होता आया है। वह इससे मुक्त नहीं हो पायी। गाँव के हर किस्म के अत्याचारों की कीमत नारियों को ही चुकानी पड़ती है। लेकिन भूमण्डलीकरण के इस दौर मे जहॉ सब कुछ तेजी से परिवर्तित हो रहा है, ऐसे में नारी की स्थिति भी पहले जैसी नहीं रही। किन्तु आज भी बहुत सी ऐसी जगह हैं जहाँ पर अभी भी स्त्री शोषण का शिकार हो रही है। आज के युग में कहीं स्त्री शोषित हो रही है, तो अनेक स्थितियों में वह शोषक के रूप में भी दिखाई देती है। नारी अब अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही है। स्त्री को समाज में कभी बराबरी का दर्जा नहीं दिया गया। कभी उसकी वैश्या, कुल्टा आदि कहकर अवहेलना की गई, तो कभी देवी बनाकर पूजा की गई। दोनों ही स्थितियों में उसे सामान्य मनुष्य का दर्जा प्राप्त नहीं हुआ। स्त्री स्वयं भी अपने हक के लिये लड़ते-लड़ते राह से भटक जाती है। ''कही उसमें साधारण दयनीयता है और कहीं असाधारण विद्रोह, परन्तु सन्तुलन से उसका जीवन परिचित नहीं।''[2] यह नारी के जीवन की विड़म्बना है।

उन्होंने अलग-अलग वैतरणी, औरत आदि उपन्यासों तथा कहानियों में नारी की विवषता तथा उसके अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए संघर्ष को दिखाया है। उनके अनुसार- "मैं नारी को अलग-अलग सत्ता मानकर नहीं समाज की क्रिया-शक्ति मानकर उसके बारे में विचार करता हूँ। अति सामान्य नारी ही मेरे लेखन में चित्रित हैं, मैं उसमें वर्ग भेद नहीं करता, क्योंकि नारी में मुझे वर्गगत भेद कम नजर आए"[3]।

शिवप्रसाद सिंह के 'औरत' उपन्यास में स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं को देखा जा सकता है। यह उपन्यास आज भी कहीं न कहीं प्रासंगिक है। स्त्री अपने अधिकारों को लेकर जागरूक होना चाहती है और हो भी रही है लेकिन सोबरन राय जैसे आदमखोर जानवर स्त्रियों को अपनी दरिन्दगी का शिकार बना लेते हैं। वे स्त्री मन को पूर्ण विकसित होने से पहले ही उसकी आत्मा पर ऐसा आघात करते हैं कि नारी का सम्पूर्ण जीवन नरक बनकर रह जाता है।

समाज के इस कुरूप चेहरे को उजागर करते हुए 'अनामिका' ने लिखा है –''भीतर कहीं किसी पनडुब्बी में कोई तालिबानी तो छुपकर नहीं बैठा? कहते हैं, वो कहीं भी हो सकता है! राक्षस ने जैसे अपनी जान तोते में डाल रखी थी, उसने हमारे महबूबों, भाइयों, दोस्तों, बेटो, पिताओं तथा अन्य बुजुर्गों में भी छुपा रखी है। अपनी दरिन्दगी इत्ती-इत्ती ही सही, पर इत्ते अन्तरंग रिश्तों में इत्ती-सी भी दरिन्दगी अन्दर की हरीतिमा झुलसा देने को पर्याप्त है।''[4] वर्तमान समाज इन बातों का जीवंत उदाहरण है।

इसी उपन्यास में लेखक ने प्रतिभा बंसल के रूप में एक ऐसी स्त्री का भी वर्णन किया है जो अपने साथ हुए अन्याय का बदला संपूर्ण पुरुष जाति से लेती है। प्रतिभा बंसल के बारे में बताते हुए शिवेन्द्र कहता है- ''जहाँ तक मुझे पता चला प्रतिभा जिस युवक को चाहती थी वह पुलिस में नौकरी करने वाली ऑफिसर से शादी रचवाने को तैयार नहीं हुआ क्योंकि वह मानता था कि आंगन के बाहर निकलकर काम करने वाली हर औरत चरित्रहीन होती है। इससे जो ठेस लगी थी प्रतिभा के मन पर, वह जरा-सा छेड देने से प्रतिशोध में बदल जाती थी। वह गलत काम करने वाले हर जालिम को पीटते वक्त वही कहती जो उसे ठुकराते वक्त कहा गया था, यानी औरत चरित्रहीन होती है, और चरित्रहीन होती है- यह दर्द प्रतिभा के साहस को तोड़ देता था।''[5] प्रतिभा अपने प्रति हुए अन्याय के कारण पूर्णत: बदल जाती है और प्रत्येक अपराधी के अपराध को अपने साथ हुए अन्याय से जोड़ लेती है।

औरत का वजूद पुरूष के बिना कुछ नहीं समझा जाता है। ''वे शून्य के समान पुरूष की इकाई के साथ सब कुछ हैं, परन्तु उससे रहित कुछ नहीं।''[6] स्त्री का जन्म के साथ ही संपूर्ण अस्तित्व पुरूष के साथ जुड़ जाता है। विवाह से पहले वह पिता के नाम से जानी पहचानी जाती है और विवाह उपरान्त उनका सम्पूर्ण जीवन पति पर निर्भर करता है। यदि किसी स्त्री का पति अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो समाज उसे अस्तित्व विहीन समझ लेता है साथ ही उसके चरित्र पर अनेक आक्षेप लगाने लगता है। उपन्यास में कल्पनाथ के मरने के उपरानत उसकी पत्नी चन्द्रा के चरित्र को लेकर भी तमाम बातें उठती हैं लेकिन वह एक दृढ़ मनोबल और आत्मविश्वासी स्त्री है जो इन आक्षेपों से स्वयं को टूटने नहीं देती। समाज में इतनी रूढिघ्याँ व्याप्त हैं कि किसी औरत के पति के मरने के बाद उस विधवा के जीवन से सारी खुशियों और रंगों को ही छीन लिया जाता है। उपन्यास की उपधाइन भौजी इसका जीता जागता प्रमाण हैं। उनके पति के मरने के बाद उनसे घर वार सब छीन लिया जाता है। एक बार वे अपने छोटे भाई के विवाह में बिन बुलाये शरीक होने के बाद चुपके से नई दुल्हन का मुँह देखने की चेष्टा करतीं हैं तो उनके पिता उनसे कहते हैं –''हट जा, विधवा की छाया नहीं पड़नी चाहिए ये नई गृहस्थी बनाने जा रहे हैं। तू जानकर इनका अशुभ क्यों सोच रही है, हट जा।''[7] इतना कहकर उनके ऊपर छड़ी बरसा दी। यह समाज की विडम्बना ही है कि एक ऐसे इन्सान को अधिक प्रताड़ना देता है जिसका सर्वस्व पहले ही लुट चुका हो। अपने प्रिय मनुष्य के चले जाने के गम से स्त्री बाहर भी नहीं निकल पाती कि उसे अपने परिवार के लोग ही सहारा देने के बजाए बहिष्कृत कर देते हैं। तथा उसे नारकीय जीवन भोगने पर विवश करते हैं और जब शिवेन्द्र जैसा कोई मनुष्य उनकी पीड़ा को कम करना चाहता है तो वे अपनी गन्दी सोच को उसके चरित्र पर थोपने लगते हैं।

शिवप्रसाद सिंह के नारी पात्र धीरे-धीरे अपने अधिकारों के लिए जागृत होते दिखाई देते हैं। वे अपने प्रति हो रहे अन्याय के लिए डटकर सामने खड़ी दिखाई देती हैं।

धरातल कहानी की पात्र नैना अपने पति की मृत्यु के पश्चात् ससुराल वालों के साथ रहती है किन्तु जब वह देखती है कि परिवार में उसकी स्थिति केवल एक बच्चा खिलाने वाली दायी की है तो एक दिन वह बच्चा खिलाने से मना कर देती है। इस तरह वह घर वालों के लिए बोझ बन जाती है। किन्तु जब वह अपना हिस्सा माँगती है तो उसे दबाने की कोशिश की जाती है। वह हार नहीं मानती, वह सोचती है- ''तो यह मुझे कुतिया बनाकर जंजीर में बाँधकर रखना चाहता है। ताकि मैं दुम हिलाती रोटी के टुकड़े के लिए पैर चाहूँ। मैं ऐसा नहीं कर सकूँगी। हर्गिज नहीं।''[8] नैना का यह विचार उसकी उसके अधिकारों के प्रति चेतना का प्रतीक है। वह मुकदमा लड़ती है और अंतत: पारिवारिक सम्पत्ति में अपना अधिकार पा लेती है।

इसीप्रकार 'भग्न प्राचीर' कहानी की सुशीला अपने पति के चरित्रहीन होने पर उसका विरोध करती है। वह कहती है- ''तुम कमाते थे, मैं खाती थी। तुम मेरी छाती पर मूंग दल सकते थे; क्योंकि तुम कमाते थे। पर अब कान खोलकर सुन लो, जल्दी अपना रास्ता बदलो, वरना मुझे भी सोचना पड़ेगा।''[9]

'शैलूष' उपन्यास की सावित्री जड परम्पराओं को ठुकराकर एक नट-युवक जुड़ावन से प्रेम विवाह करती है और सभी नटों को उनका अधिकार दिलाने के लिए सरकार से लड़ती है, धरने पर बैठती है, पर हार नहीं मानती।

'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास की पात्र कनिया भी जड़ परम्पराओं को तोड़ती नजर आती है। वह पतिव्रता नारी होने के भाव से बाहर निकल पति के बुरे कामों का विरोध करती है। वह कहती है- ''ऐसे मरद से रँडापा ही अच्छा।''[10]

अत: धीरे-धीरे नारी में अपने अधिकारों के लिए चेतना का विकास हुआ। डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने अपने कथा-साहित्य में परंपरागत मान्यताओं को नकारने वाली तथा स्वतन्त्र मार्ग का चयन करने वाली जागरूक नारी का चित्रण किया है।

शिवप्रसाद सिंह के सभी नारी पात्रों के साथ कुछ न कुछ घटित हुआ है, जिसके कारण उनके जीवन में परिवर्तन आ गया।

महादेवी वर्मा स्त्री विमर्श पर चर्चा करते हुये कहती हैं कि ''भारतीय नारी भी जिस दिन अपने सम्पूर्ण प्राणवेग से जाग सके उस दिन उसकी गति रोकना सम्भव नहीं।''[11] यह बात बिल्कुल सत्य है जब तक नारी खामोश रहती है उस पर हर कोई जुल्म करता रहता है परन्तु जब वह जाग जाती है तो प्रतिभा, बंसल, सुशीला, कनिया व गुलाबी का रूप धारण कर लेती है जिसकी गति को रोक पाना किसी के वश में नहीं होता।

सन्दर्भ सूची:

1. शीतांशु, पाण्डेय शशिभूषण- शिवप्रसाद सिंह स्रटा और सृष्टि, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 1995, पृ0 - 22
2. वर्मा, महादेवी- श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 2008, पृ0 - 9
3. शीतांशु, पाण्डेय शशिभूषण- शिवप्रसाद सिंह स्रटा और सृष्टि ,वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 1995, पृ0 - 22
4. अनामिका- स्त्री विमर्श का लोकपक्ष, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ0 - 7
5. सिह, शिवप्रसाद- औरत, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, 2002, पृ0 - 26
6. वर्मा, महादेवी- श्रृंखला की कडिघ्याँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 2008, पृ0 - 94
7. सिह, शिवप्रसाद- औरत, राजपाल एण्ड सन्ज दिल्ली, 2002, पृ0 - 185
8. सिंह, शिवप्रसाद- अन्धकूप, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985, पृ0- 17
9. वही- पृ0- 237
10. सिंह, शिवप्रसाद- अलग अलग वैतरणी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 2014, पृ0-307
11. वर्मा, महादेवी- श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 2008, पृ0 - 9

हरनोट के कथा साहित्य में ग्रामांचल का बदलता परिवेश

संजीव कुमार मौर्य

शोधार्थी, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

मानव सभ्यता के विकास के साथ ही कहानी विधा का भी अंकुरण हुआ। समय की गतिशीलता के साथ कहानी के विविध रूप सामने आए हैं। जीवन की यथार्थ प्रवृत्ति से जुड़ी कहानी की एक विविधता है आंचलिकता। आंचलिकता में किसी ग्रामीण या आदिवासी परिवेश का वहाँ के रहन-सहन, परंपरा, भाषा, भाव-विचार, संस्कृति, खान-पान और त्योहार का विशद अंकन होता है। 'अंचल' मूल रूप से संस्कृत के 'अञ्च' धातु में 'अलच्' प्रत्यय के योग से बना है। आंचलिक शब्द 'अंचल' शब्द में 'इक' प्रत्यय लगाने से बना है, जिसका अर्थ है-'अंचल संबंधी'। ज्ञान शब्द कोश में 'अंचल' शब्द का अर्थ ''वस्त्र का छोर, साड़ी, ओढ़नी, आदि का छोर जो छाती या पेट पर रहता है, देश का प्रान्त कोना, तट, किनारा दिया गया है।''[1] किन्तु यदि हम कथा साहित्य के परिप्रेक्ष्य में अंचल शब्द पर विचार करें तो ''अंचल शब्द का अर्थ किसी ऐसे भूखंड, प्राप्त भाग या देश विशेष से है, जिसकी अपनी एक भौगोलिक स्थिति, संस्कृति, भाषा और अपनी समस्याएं हो, अपनी विशिष्टता एक जीवित व्यक्ति हो और सामान्य के अंदर से अपनी विशिष्टता जताता हो, बाहरी प्रभावों ने जिसके वैशिष्ट्य को समाप्त न कर दिया हो।''[2]

अपने बीज रूप में आंचलिकता हमें लज्जाराम मेहता के 'आदर्श दंपति', बालकृष्ण भट्ट के 'सौ अजान एक सुजान', ठाकुर जगमोहन सिंह के 'श्यामा स्वप्न' इत्यादि में दृष्टिगत होती है। हालांकि आंचलिकता के पूर्ण तत्व तो यहाँ भी नहीं मिलते, लेकिन आंचलिक तत्त्वों में केवल वातावरण चित्रण का प्रारंभिक रूप ही हमें यहाँ दिखाई देता है। आगे आंचलिकता के ये तत्त्व प्रेमचंद के कथा साहित्य से प्रवाहित होकर फणीश्वर नाथ रेणु के कथाओं में अपनी पूर्णता को प्राप्त करते हैं। ''अंचल विशेष की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण करने के साथ-साथ आंचलिक कहानीकार उन स्थितियों के प्रति जनता की प्रतिक्रिया और नए विचारों के संपर्क के कारण होने वाली उनकी चेतना का वर्णन भी करता है। रूढिघ्यों, अंधविश्वासों, सामाजिक अनीतियों, प्रशासन की ज्यादतियों, अनाचार, रिश्वत, बेईमानी, स्वार्थपरता आदि के विरुद्ध क्रांति की लहर का संकेत कर वह जागरूक और सजग जनता को करवट लेते हुए चित्रित करता है।''[3] यह आंचलिकता आज भी हरनोट के कथा साहित्य में पुष्पित और पल्लवित हो रही है। ''हरनोट की कहानी में गाँव की मिट्टी से उपजे चरित्र हैं। अपने ही लोक के बीच सांस लेते, उसी की माटी में लथपथ ये चरित्र पाठक से एकदम तादात्म्य स्थापित करते हैं और उसे लोक जीवन से सीधे साक्षात्कार कराते हैं।''[4]

पहाड़ी जीवन के चितेरे एस आर हरनोट का जन्म सन् 1955 ई. में हिमाचल प्रदेश के शिमला जिले के चनावग गाँव में हुआ था। शिमला में रहते हुए भी कभी उनको वहाँ का बाहरी प्राकृतिक सौंदर्य आकर्षित नहीं कर पाया जैसा कि सुमित्रानंदन पंत या केदारनाथ अग्रवाल के साथ हुआ। इन लोगों ने पहाड़ी अंचल का बहुत सुंदर और मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है। किंतु हरनोट जी ने हमारे लिए एक नए हिमाचल का सृजन किया है और यह नया हिमाचल वहाँ की आम ग्रामीण संस्कृति, रहन-सहन, विचार, परम्पराएँ, रुढिघ्याँ, देवी-देवता, खानपान, जाति व्यवस्था, गरीबी, अशिक्षा और न जाने कितने भाव को व्यक्त करने वाली है। यही कारण है जो लेखक को अन्य लेखकों से विशिष्ट बनाता है क्योंकि हरनोट जी का मानना है कि लेखक का कर्तव्य मात्र मनोरंजन नहीं होना चाहिए, बल्कि लेखक को समाज का सर्जन होना चाहिए। हरनोट प्रेमचंद की परम्परा के कहानीकार माने जाते हैं। इनकी अधिकांश कहानियों की प्रकृति ग्रामोन्मुख है। मौजूदा दौर में पर्वतीय अंचल से जुड़े लेखकों में एस आर हरनोट जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हरनोट जी ने जहाँ 'दारोश' 'हिरख', 'मुठ्ठी में गाँव', 'कागभाखा' आदि आंचलित कहानियों में ख्याति प्राप्त की है। वहीं हिमाचल की संस्कृति को व्याख्यायित करता इनका उपन्यास 'हिडिम्ब' भी इनकी ख्याति में चार चाँद लगाता है। ''इनके कथा साहित्य में एक छोटे से अंचल की कथा होती है लेकिन सरोकार वैश्विक होते हैं।''[5]

पहाड़ी जन जीवन से निःसृत हरनोट की कहानियाँ पूरे अंचल का विशेष रेखांकन करती हैं। इनकी कहानियों में पहाड़ी जीवन की दुश्वारियां, निर्धनता, क्षुब्ध विह्वलता और हाशिए पर स्थित समाज की पीड़ा मुखरित हुई हैं। जो पहाड़ी जीवन की विडंबनाओं और संघर्ष के अटूट क्रम को प्रस्तुत करती हैं। इनकी कहानियों में हिमाचल के पूरे ग्रामांचल का सूक्ष्म और सतर्क चितेरे की भाँति वहाँ के रीति-रिवाज, लोक संस्कृति, परंपराओं, धार्मिक विश्वासों, बोली-भाषा, वेशभूषा का चित्रण हुआ है। इसके लिए उन्होंने जनपद विशेष में प्रचलित लोकगीतों, मुहावरों, लोकोक्तियों और स्थानीय भाषा का प्रयोग भी किया है। इनके कथा साहित्य में वहाँ के खानपान का भी वर्णन मिलता है जिसमें मक्के की रोटी, दही, लस्सी का जिक्र कई बार आया है। 'माँ पढ़ती है' कहानी में ग्रामीण परिवेश इस प्रकार से रेखांकित हुआ है कि 'गोबर की बास से लेकर सरसों के फूल की सुगंध तक' एक-एक बात हमें साफ-साफ दिखाई पड़ती है। हरनोट की कहानियों को पढ़कर किसी भी पड़ाव पर ऐसा नहीं लगता की उनमें आंचलिकता कूट पीसकर भरी गई हो। उनकी कहानियों में अंचल की खुशबू स्वाभाविक रूप से बिखरी, पुष्पित और पल्लवित होती हुई दिखाई देती है।

हरनोट की कहानी 'बिल्लियाँ बतियाती हैं' में बूढ़ी अम्मा के माध्यम से गाँव का स्वाभाविक परिचय अद्‌भुत है ''ऐसा कोई बच्चा गाँव का न होगा जो अम्मा के यहाँ गुड़ की डली या मक्खन रोटी न खा जाता हो, ऐसी औरत न होगी जो पानी-पनिहार, घास-लकड़ी को आते-जाते अम्मा के आँगन में बैठ बीड़ी का कश न मार जाती होगी, ऐसा कुत्ता न होगा जो अम्मा के दरवाजे का टुकड़ा न खा जाता होगा और ऐसी चिडिघ्या न बची होगी अम्मा का दाना न चुग जाती होगी। पशु भी आते-जाते उसका आँगन झाँक ही लेते हैं।''[6]

हरनोट के पास जीवन अनुभवों का अंबार है, इसलिए वे अपने कथ्य का चयन कल्पना के आधार पर नहीं बल्कि जीवन की वास्तविकताओं के बूते करते हैं। यही खूबी उनकी कहानियों में स्वाभाविक आंचलिकता लाने में भरपूर मदद करती है। "आंचलिकता लेखक की सहज आत्मीयतापूर्ण दृष्टि है, जिसमें शहरी आकर्षण और चमक-दमक से दूर धरती का स्वच्छंद प्रांगण बसता है जहाँ वन्य कुसुम स्वयं खिलते और अपनी आभा बिखेरते हैं।''[7] यहाँ सीधे-सादे आम लोगों की रोजमर्रा की जिंदगी है। इस जिंदगी में कृषि से जुड़ी परंपराएँ और उत्सव हैं। ढोल, नगाड़े, शहनाई, झूरी, गिद्दा, जुल्फिया, नाटी है। तरह-तरह के विश्वास-अंधविश्वास, देवी-देवता और उनकी सामूहिक पूजा अर्चानाएँ हैं। जातिगत विभाजन है, लेकिन इस विभाजन के बावजूद गाँव के रिश्ते-नाते हैं, निर्धन किसानों का तरह-तरह से शोषण करते मुखिया और सरपंच हैं। कल्याणकारी योजनाओं की धज्जियाँ उड़ाते नौकरशाह हैं। जंगल काटते और पशुओं को मारते माफिया हैं।

कुल मिलाकर यह गाँव की वही परंपरागत तस्वीर है, जो अक्सर कहानियों में आती रही है। लेकिन इन कहानियों में बार-बार इस तथ्य को रेखांकित किया जाना कि आजादी के बाद भारतीय गाँव किस तरह बदले हैं, इन कहानियों को अपने ढंग से जरूरी बनाता है। हाल के वर्षों में देश के गाँव तेजी से बदल रहे हैं। गाँव में व्यवसाय के नए संसाधन पनपने से गाँव के कारीगर तबाह हो रहे हैं। वे अपना पुश्तैनी पेशा छोड़कर रोजी-रोटी के लिए दर-दर भटकने को मजबूर हो रहे हैं। इनकी कहानियों की केन्द्रीय चिंता ग्रामीण जीवन का बदलता यथार्थ ही है। अब गाँव में भी आधे हिस्से से ज्यादा लोगों को बाजार के लोभ-लालच ने अपना शिकार बना लिया है। गाँव पर बढ़ते शहरीकरण के हमले ने वहाँ गाँव और गाँव के लोगों की सामाजिक स्थिति और आकांक्षाओं को सामान्य नहीं रहने दिया है। समाज में जहाँ भूमंडलीकरण, निजीकरण के साथ उपभोक्तावाद मशीनीकरण की धूम मची है, जिसके कारण निम्न मध्य वर्ग के जीवन में भयानक उलट-पलट हो चला है। अब उसके वांछित और अवांछित होने को बाजार तय कर रहा है। ग्रामांचल के इस बदलते स्वरूप का जिक्र उनकी कहानी 'पत्थर का खेल' में भी देखने को मिलता है ''जलेबियों, सूजी की बर्फियों और आलू छोले की जगह जंकफूड के स्टॉल हैं।

बिजली से चलने वाली चाय-कॉफी की मशीनें रेल के इंजन की तरह भाप छोड़ रही हैं। मन्यारियों की जगह तरह-तरह के जुआ घर हैं..... ..औरतों की दुकानें अलग हैं जिनमें आधुनिक किस्म के साज-सज्जा और मेकअप के सामान भरे पड़े हैं।..... हर किस्म की गाडिघ्यों के मॉडलों की दुकानें हैं। उतराऊ कपड़ों का एक लंबा बाजार भी लगाया गया है। जैसा अकसर शहरों में देखने को मिलता है। यानी गाँव के इस मेले में अचानक शहर का एक बाजार घुस गया है जहाँ से पारंपरिक चीजें गायब हो गयी हैं।''[8]

हरनोट की कहानियाँ जहाँ एक ओर हमारे गाँव-समाज का सजीव चित्रांकन करती है तो दूसरी ओर विकास के नाम पर देश भर में जिस तरह का खेल चल रहा है उसकी पोल भी खोलती है। इनकी कहानी मिट्टी के लोग इसी बदलाव पर केन्द्रित है ''गाँव-परगने में शायद ही कोई ऐसा घर था जिसमें उन्होंने मिट्टी न कूटी हो। क्या 'मटकंधे' बनाते। क्या कुटाई करते .... भीत पर भीत ऐसे चिनते मानों हाथ नहीं कोई घर बनाने की मशीन हो। किसी के दो मंजिले मकान बनते तो किसी का एक मंजिला।" लेकिन गाँव में बदलाव की ऐसी बयार आई कि "धीरे-धीरे मजदूरों के लिए मशीनें चुनौती बनकर खड़ी हो गई। सरकार ने सारे का सारा काम अब ठेके पर दे दिया था।.. .....जो काम बीस-तीस मजदूर करते थे, उन्हें अब लंबी-लंबी गर्दनों वाली मशीनें करने लगी थीं।''[9]

जीवंत ग्रामीण संस्कृति और आधुनिक विकास में तालमेल की चिंता हरनोट की कहानियों में अप्रत्यक्ष रूप से मौजूद है। सामाजिक जीवन में आते बदलावों, बदलते मूल्यों और बढ़ती विकृतियों को उभारकर सामने लाने का काम वे अपने इन वृद्ध पात्रों के जरिए करते हैं। मूल्यों का नष्ट होना कहानीकार की एक और पीड़ा है। 'कागभाखा' की दादी का दु:ख इसी पीड़ा की अभिव्यक्ति है ''आज का समां देखकर दादी भीतर ही कुढ़ती है, जलती है, फुंकती है। जैसे गाँव ही बदल गया। पहले जैसे लोग नहीं रहे। दया, धर्म खत्म हो गया। ममता नहीं रही। एक-दूसरे के लिए शरीक बन गये। छोटी-छोटी बातों पर लड़ते-झगड़ते हैं। मार-पीट करते हैं। भला-बुरा बोलते हैं। पहले कितना प्यार था। मिलजुलकर लोग आपस में रहते। एक-दूसरे के सुख-दुख में आते-जाते जैसे एक ही घर हो, एक ही परिवार हो.....।''[10] हरनोट की कहानियों के केंद्रीय पात्र भी 'दादा', 'दादी', 'अम्मा', 'चाचू' आदि संबोधन के साथ ही पाठकों के सामने आते हैं। ये वृद्धजन परंपरा के वाहक भी हैं। गीत, नृत्य, वाद्य, पूजा-अर्चना ग्रामीण संस्कृति से गहरे में जुड़ी ये चीजें इन्हीं वृद्ध लोगों द्वारा अगली पीढ़ी को सौंपे जाने से आज तक हमारी संस्कृति में रची-बसी हैं।

हमारे जीवन में धार्मिक मान्यताओं और त्योहारों तथा उत्सवों का भी बहुत महत्त्व होता है। क्योंकि यदि हम गहराई से देंखे तो ये त्योहार और उत्सव कहीं हमें आपस में जोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लेकिन बदलती परिस्थितियों ने न केवल हमारे त्योहारों और उत्सवों को ही बदला है बल्कि हमारी भावनाओं को भी परिवर्तित किया है। यही परिवर्तन हरनोट की चिंता है जो उनकी कहानियों में जगह-जगह फैली पसरी हुई दिखाई देती है। हरनोट की कहानियों की एक विशेषता ग्रामीण संस्कृति के इस प्रबल पक्ष को उभारना भी है। वे पूरी तन्मयता के साथ इसका वर्णन करते हैं। जैसे- "अम्मा को यादहै, जब मक्की बड़ी होती, तो खूब गुड़ाई लगती। ..... गुड़ाई में तो अम्मा भी साथ रहतीं। उन्हें पिता के साथ विशेष तौर से गुड़ाई में बुलाया जाता।.....पिता शहनाई पकड़ते, उनका जोड़ीदार ढोल और अम्मा कभी 'झूरी' तो कभी 'जुल्फिया' गाती। अम्मा की आवाज मक्कियों के खेतों को चीरकर दूर घाटियों में टकरा जाती। खेत मानो जवान हो गए हों। घाटियाँ गूँज गई हों। बरसात के बादल उमड़ते-घुमड़ते हुए मस्ती में झूम रहे हों। रिमझिम बरखा और लोगों का अनूठा जोश, वातावरण को नया रंग दे गया हो।.....''[11]

धर्म हमारी संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। उसके रूढ़ पक्ष को छोड़ कर देखें, तो समाज की सामूहिकता को बनाए रखने में उसकी एक मुख्य भूमिका है। मिलने-जुलने और एक साथ होने का अवसर देने वाला इसका एक पहलू है उत्सवधर्मिता। लेकिन उत्सवधर्मिता भी कम होती जा रही है। यह बदलाव भी हरनोट की चिंता में शामिल है: ''दादी यह देखकर हैरान होती हैं कि अब न तो पंच पूरे आते हैं और न ही गाँव के लोग इकट्ठे होते हैं। सब कुछ नाम का होता है। कितने दिन हो गए, कितने साल गुजर गए, न देवता का भडेरा ही हुआ और न देवता की चेरशी ही किसी ने दी। वरना हर छठे महीने भडेरा और तीसरे साल देवता की चेरशी होती। चेरसी में पूरा परगना ही जैसे उमड़ पड़ता। देवता के रथ-छतर सजाए जाते। पूरी परंपरा से देवता का मेला लगता। पंची-पंचायत होती। सभी देव थलों के लिए पूजाएँ दी जाती .....।''[12] ये सब बदलते गाँव के वे चित्र हैं, जहाँ कहानीकार की चिंता सामुदायिक जीवन के आधार मूल्य को बचाए रखने की है।

पहाड़ी अंचल में ब्राह्मणों के बीच तुलसी के तथा पीपल के ब्याह की परंपरा है। तुलसी को बेटी तथा पीपल को बेटे की तरह धूमधाम से ब्याहा जाता है। बिरादरी में अपनी शान बनाए रखने और बढ़ाने के लिए इस परंपरा का निर्वाह निर्धन ब्राह्मण कर्ज लेकर भी करते हैं। 'लाल होता दरख्त' में हरनोट ने ऐसी परंपराओं पर प्रश्नचिन्ह लगाया है। एक जमाने में धनी रहा ब्राह्मण मथरू खेत में उगे पीपल के विवाह और छोटी बेटी मुन्नी के दहेज के लिए परेशान है। अंतत: वह अपने बचे-खुचे खेत बेचने का फैसला करता है। माँ-बाप पर बोझ होना मुन्नी को व्यथित कर जाता है और वह उन्हें इस बोझ से मुक्त करने का फैसला करती है-''.....दबे पाँव पीपल की तरफ आती है मुन्नी..... कपड़े की गठरी में से सिंदूर की डिबिया निकालती है। पीपल की एक टहनी को अपनी तरफ खींचती है। उसके एक पत्ते पर सारा सिंदूर उड़ेल देती है और पत्ते की टहनी को फिर अपनी माँग में सिंदूर भरने को जैसे मजबूर कर देती है।''[13] मुन्नी के इस मार्मिक फैसले के जरिए कहानी शास्त्रों की व्यर्थ परंपराओं और दहेज जैसी रूढ़ प्रथाओं पर चोट करती है।

ऐसी ही एक कहानी 'दारोश' में जबरन विवाह की रीति पर प्रहार है। दारोश का अर्थ है बलपूर्वक या जबरदस्ती। जबरदस्ती विवाह करने को 'दारोश डबलव' कहा जाता है। इस विवाह के लिए लड़का जिस लड़की से विवाह करना चाहता है, उसे जबरन उठा ले जाता है और उसकी इच्छा के विरुद्ध सहवास करता है। विवश होकर लड़की को उससे विवाह करना ही पड़ता है। लेकिन 'दारोश' कहानी की 'कानम' कहानी 'लाल होता दरख्त' की 'मुन्नी' की तरह आत्मबलिदान नहीं करती। वह संघर्ष करती है और जब उसका पिता उसे डाटता है तो वह तनकर खड़ी हो जाती है और कहती है ''बड़े पिता मैं सुमन नहीं हूँ कि दो-चार गुंडे आये, पीठ पर उठाया और अपने खूँटे बाँध दिया।[14] धीरे-धीरे उसके साथ कई लोग हो जाते हैं। दारोश हिमाचल की एक ऐसी रूढिघ है जिसे कानम जैसी लड़की ही तोड़ पाती है।

इस प्रकार हरनोट की ये कहानियाँ बदलते ग्राम समाज के वे चित्र हैं, जिनमें अच्छे के बिखरने की पीड़ा और बुरे के टूटने की खुशी दोनों शामिल है। हरनोट अपनी कहानियों में प्राय: लुप्त हो रही हमारी प्राचीन संस्कृति को लगातार बचाने की कोशिश करते हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर ज्ञानरंजन जी ने ठीक ही लिखा है कि ''हमारा समाज प्रेमचंद के समाज से अधिक बदतर हो चुका है और जहाँ इस विडंबना के बावजूद जीवन की लकीरों को बचाने की कोशिश हो रही है। एक जबरदस्त पराजय और बियावान के बीच जहाँ साहित्य, संस्कृति विकास, व्यवस्था, सत्ता प्रशासन सब कुछ लुप्त हो गया है और जहाँ मासूम बच्चे और असहाय वृद्ध ही बचे हैं। ऐसे भूखंडों में हरनोट ने अपनी रचना को केंद्रित करने का प्रयास इन कहानियों के माध्यम से किया है। हरनोट इन्हीं कोनों और भूखंडों से आते हुए जीवन की मार्मिक लीला रचते हैं। उनकी कहानियों में बार-बार डूबते संसार में बहुमूल्य को डूबने से बचाने की कोशिश होती है। उन्होंने अपनी कहानियों में जो लैंडस्केप और बस्तियाँ ली हैं, जो चित्र चुने हैं उनकी तरफ आज किसी का ध्यान नहीं है। यह सत्तर वर्ष के स्वर्ण युग की पोल खोलता चिट्ठा है। यही हरनोट की सीमा है और यही उनकी उपलब्धि है। यह सीमा न होती तो मुमकिन था कि वे बाजारू रुझानों और साहित्य के नए चमकीले उभार की तरफ चले जाते।''[15]

यदि हिंदी कथा साहित्य में फणीश्वर नाथ रेणु आँचलिकता के सूत्रधार माने जाते है तो 21 वीं शताब्दी में बदलते हुए ग्रामांचल की तस्वीर को अपनी कहानियों में उकेरने का माद्दा एस आर हरनोट रखते हैं। हरनोट जी कल्पनाजीवी नहीं अपितु यथार्थ के पक्षधर हैं। यही कारण है कि वे आज हिंदी वाङ्मय में एक मान्यता प्राप्त हस्ताक्षर हैं। ग्रामीण परिवेश से ताल्लुक रखने के कारण ही उनको लोक संस्कृति को नजदीक से देखने, समझने और परखने का मौका मिला। जो प्राय: उनकी कहानियों में दिखाई देता है। इस तरह से हरनोट जी की लगभग सभी कहानियाँ लोक-परंपराओं की सुदृढ़ धरती से उपजी समर्थ कहानियाँ हैं। उनमें लोक-संघर्षों की सहज लोकधुन बहती है जो ग्रामांचल संवेदना को बचाए रखने का एकमात्र उपाय है। वैसे भी, लोक कथाएं हमेशा सुखांत होती है और सुखद सौभाग्य की मंगल कामना के लिए होती हैं। हरनोट जी का कथा-संसार भी अनिष्ट के विनाश और मानव-अस्तित्व की मंगल कामना का लोक-संसार है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. भाषा शब्द कोश, सं. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल', ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 1917, पृ. 7
2. आंचलिकता और हिंदी उपन्यास, डॉ नगीना जैन, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1976, पृष्ठ 7
3. फणीश्वर नाथ रेणु की कहानियों में आंचलिकता, सहदेव कांबले, पृ. 37
4. अमर उजाला, लेख- कठोर यथार्थ का सरस बयान (मेहरबान पंवार 'मनु'), चंडीगढ़, 24 फरवरी 2001
5. हिडिम्ब, एस आर हरनोट, आधार प्रकाशन, पंचकुला (हरियाणा), 2004, पुस्तक के फ्लैप से
6. दारोश तथा अन्य कहानियाँ, एस आर हरनोट, आधार प्रकाशन, पंचकुला (हरियाणा), 2012. पृ. 14

7. फणीश्वर नाथ रेणु: व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डॉ हरि शंकर दूबे, पृ. 142
8. कीलें, एस आर हरनोट, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 99
9. दस प्रतिनिधि कहानियाँ, एस आर हरनोट, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ. 34
10. दारोश तथा अन्य कहानियाँ, एस आर हरनोट, आधार प्रकाशन, पंचकुला (हरियाणा), 2012, पृ. 55
11. वही, 2012, पृ. 15
12. वही, 2012 पृ. 56
13. वही, 2012, पृ. 80
14. वही, 2012 पृ. 119
15. दारोश तथा अन्य कहानियाँ, एस आर हरनोट, आधार प्रकाशन, पंचकुला (हरियाणा), 2012, पुस्तक के फ्लैप से

वृद्ध विमर्श की परंपरा और संघर्ष

डॉ० सुनीता चौधरी

जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय (जोधपुर)

हिंदी साहित्य में दलित-विमर्श, स्त्री-विमर्श, आदिवासी-विमर्श, किन्नर-विमर्श (थर्ड जेंडर विमर्श) के बाद अब वृद्ध-विमर्श की भी धमक सुनाई देने लगी है। वैसे आजकल जिस तरह नई पीढ़ी, युवा पीढ़ी की चर्चा जोरों पर है, उसे देखते हुए वृद्ध-विमर्श का होना भी उचित ही लगता है। वृद्धों या बूढ़ों को लेकर आमतौर पर ऐसे लोगों की तस्वीर उभरती है जो सफेद बाल, झड़े हुए दांत, शिथिल-ऊर्जा हीन शरीर लेकर जीवन-यापन करते हैं। हिंदीवालों के बीच तो केशवदास का यह कहा खूब प्रचलित है- 'केशव केशन अस करी जस अरिहु न कराय/ चंद्रवदन मृगलोचनी बाबा कहि-कहि जाय।' इसका मतलब यही हुआ न कि चंद्रवदन मृगलोचनी वनिताओं को आकृष्ट करने की सामर्थ्य से चूक जाने का नाम बुढ़ापा है। वैसी और भी कवियों और रसिकों की बड़ी जमात रही है, जिन्होंने वृद्धावस्था को दंतहीन दरअसल, बुढ़ापा जिसे आमतौर पर निष्क्रियता, शिथिलता की शारीरिक दशा समझ कर बहुत काम की चीज नहीं समझा जाता, बचपन से लेकर जवानी तक के जीवनानुभवों का कोश होता है- ऐसा प्रकाश पुंज होता है, जिसके आलोक में युवा पीढ़ी अपने वर्तमान को संवारते हुए भविष्य का श्रृंगार कर सकती है। यही कारण रहा है कि प्राच्य और पाश्चात्य दोनों परंपराओं में वृद्ध या वृद्धावस्था के प्रति सम्मानजनक भाव रहा है। इतिहास और साहित्य, दोनों ही इस तथ्य के साक्षी हैं कि बूढ़े-बुजुर्गों के अनुभवों-परामर्शों से लाभ उठाने वाली युवा पीढ़ी ही नव-निर्माण कर पाती है, जबकि इसके विपरीत मार्ग पर चलने वाली युवा शक्ति विध्वंस की वीरानगी छोड़ जाती है। इसके प्रमाणस्वरूप हम 'महाभारत' और 'रामायण' की कथाओं को देख सकते हैं।

याद करें, 'महाभारत' में एक तरफ भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विदुर जैसे तपे-तपाए, अनुभव-सिद्ध ज्ञानी, तत्त्वेताओं की जमात है, तो दूसरी तरफ जवानी की शक्ति और जोश से बरसाती पानी से उफनती नदियों की तरह दुर्योधन, दुरूशासन, कर्ण आदि जैसे युवकों की जमात वृद्धों, बुजुर्गों की मंडली ने युवा कौरव मंडली को बहुत समझाया कि पांडवों से युद्ध करने में अहित ही अहित है, के अहंकार में दुर्योधन और उसके सहायकों ने इन बुजुर्गों के परामर्श को ठेंगा दिखाते हुए अंततरू युद्ध का मार्ग अपनाया। परिणाम हुआ महाविनाश- न वृद्ध बचे, न जवान- बचे सिर्फ पांच भाई पांडव और बेशुमार विधवाओं का चहुंओर विलाप। यही नहीं, इच्छा मृत्यु का वरदान पाए हुए भीष्म पितामह का महत्त्व तब अधिक उत्कृष्ट रूप में उभरता है, जब वे शर-शय्या पर पड़े हुए अपने अनुभवों के आधार पर युधिष्ठिर को नीति, शांति, अहिंसा, राजधर्म आदि के संबंध में उपयोगी उपदेश देते हैं, जिन्हें युधिष्ठिर पाथेय स्वरूप अंगीकार करते हुए अपने राजधर्म का निर्वाह करते हैं।

महाभारत के विपरीत 'रामायण' में हम देखते हैं कि राम ने वृद्ध पिता की आज्ञा का सम्मान करते हुए वनवास स्वीकार किया। ऐसा करके राम ने अपने परिवार को कलह और विघटन से बचाया, तो दूसरी तरफ अत्याचारियों का दमन कर सार्वजनिक हित के कार्य संपन्न किए। इसी रामकथा का एक पात्र श्रवण कुमार अपने वृद्ध माता-पिता की अनन्य सेवा करके आदर्श पुत्र का प्रतिमान रच गया। हमारे यहाँ की पौराणिक तथा लोक-कथाओं में ऋषि-मुनियों, साधु-संतों से संबद्ध जो कथाएँ मिलती हैं उनसे ज्ञात होता है कि उन सबने कठिन तपस्या, साधना करते हुए वृद्धावस्था को प्राप्त किया था, जहाँ पहुँच कर वे लोक, समाज और राज्य के नियमन तथा संचालन हेतु नीतियों का प्रतिपादन करने में सक्षम हो पाते थे। तबके राजा या शासक उन ऋषि सहित तपोवनों में जाकर उनसे राजधर्म, लोकधर्म के निमित्त नीति निर्देशक तत्वों का ज्ञान प्राप्त कर अपने राजकीय दायित्वों का निष्पादन करते थे। 'पंचतंत्र' की कहानियों से पता चलता है कि कैसे वृद्ध, अनुभवी विष्णु शर्मा ने अपने अनुभवों के आधार पर पशु-पक्षियों की कहानियों का वाचन कर राजा के मूढ़ राजकुमारों को बुद्धिमान और व्यवहार कुशल बना दिया।

इतिहास यह भी बताता है कि वृद्ध चाणक्य के साथ मिल कर युवा चंद्रगुप्त ने स्वेच्छाचारी नंद के कुशासन का अंत कर दिया। सिद्धार्थ ने जीवन की चरितार्थता की खोज में अपनी जवानी खपा दी, तब जाकर वे 'बुद्ध' बन सके। बूढ़े सुकरात को विष का प्याला पीना पड़ा, सत्य-कथन के लिए। बीसवीं सदी ने भी देखा कि कैसे लाठी टेक कर चलने वाले बूढ़े महात्मा गांधी के नेतृत्व में संगठित होकर देश ने पराधीनता के जुए को उतार फेंका। यह कहने में अत्युक्ति नहीं कि अब तक का मानव-विकास बुढ़ापे से प्राप्त पाथेय-पोषण का ही परिणाम है- इस सत्य को नकारने वाली युवा शक्ति आत्मघाती दिशा में ही प्रयाण कर सकती है।

दरअसल, देखा जाए तो वृद्ध और युवा, जिसे पुराना और नया भी कह सकते हैं, के बीच जो संबंध रहा है वह परस्पर संवाद का रहा है। वृद्धावस्था को परंपरा और युवावस्था को प्रगति मानें तो परंपरा से सकारात्मक पाथेय ग्रहण करके ही प्रगति सही दिशा प्राप्त करती है। युवा या नए के जोश में पुराने को पूरी तरह नकारना तात्कालिक दृष्टि से राजनीतिक-सामाजिक आंदोलनों में कुछ हद तक अपेक्षित हो सकता है, पर साहित्य के क्षेत्र में वह वांछनीय नहीं होता। साहित्य में वृद्ध और युवा या फिर पुराने-नए का जो परिदृश्य होता है वह आमने-सामने अवस्थित दो विरोधी शिविरों के बजाय पूर्वापर संबंधों के सह-अस्तित्व का होता है। नया रचने के उपक्रम में युवा या नए रचनाकार पुराने अनुभवों का पुनरू सृजन करते हैं, बदलते युग-संदर्भ में उन्हें नवीकृत करते हैं। बूढ़ों या पुराने के अनुभवों से बहुत कुछ श्रेष्ठ, सकारात्मक मूल्यों को आत्मसात करके प्रकट होने वाली रचनाशीलता ही भविष्य की दीपशिखा प्रज्जवलित करने में

सक्षम होती है। तभी तो अंग्रेजी की आधुनिक नई समीक्षा के पुरोधा टीएस इलियट भी होमर से लेकर वर्तमान तक चली आ रही परंपराओं में स्नात होने की बात करते हैं।

जहाँ तक भारत की बात है, यहाँ पुरातनता या वृद्धावस्था का अनादर नहीं किया गया। तभी तो आज का भी भारतीय मानस और चित्त जितना आधुनिक युग में जीता है, उतना ही वह अपनी पूजा-उपासना की विधियों, विविध रीति-रिवाजों आदि के जरिए बहुत कुछ पुरातन काल से भी जीवंतता प्राप्त करता है और यह सब उसका दोष नहीं, खूबी है। पुरानी मसल है- 'पुराना चावल ही पथ्य के काम आता है।' गांवों में बुखार ग्रस्त व्यक्ति को बुखार उतरने पर सुपाच्य आहार के रूप में पुराने चावल का ही भात दिया जाता था और इस चावल को बड़े जतन से संभाल कर रखा जाता था। आज की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं असीम इंद्रिय-सुख की चाहत से बीमार होती जा रही मानव-आत्माओं को वाल्मीकि-व्यास से लेकर अब तक के मानवतावादी साहित्य तथा वृद्ध समझे जाने वाले लोगों से नाता जोड़ कर ही नीरोग किया जा सकता है। साथ ही आज के वृद्धों का दायित्व बनता है कि वे अपने अनुभवों के उजाले से युवा-पीढ़ी का प्रगति-पथ आलोकित करें।

वृद्ध हमारे समाज के लिए परंपरा के प्रतीक है, तो युवा आधुनिकता के। परंपरा और आधुनिकता का संघर्ष सामाजिक प्रक्रिया तो है ही साथ ही व्यक्तिगत प्रक्रिया भी है।

हिन्दी और भारतीय भाषा ही नहीं बल्कि विश्व साहित्य का एक बहुत बड़ा हिस्सा वृद्ध पिता की सत्ता से टकराता, जूझता, लड़ता और कई बार लहुलुहान होता नजर आता है। जिज्ञासा और प्रश्नाकुलता से लबरेज नचिकेता अपने वृद्ध पिता से शापित होता है। पिता वाजश्रवा अपने पुत्र नचिकेता को शाप देता है, 'जा मैं तुझे यम को देता हूँ।' यह सजा थी प्रश्न और शंका करने की, स्वतंत्र ढंग से सोचने की, बाप से, बुजुर्ग से अर्थात वृद्ध से अलग अपना मत रखने की। नचिकेता जैसे-तैसे यम तक पहुंचता है और आत्मा जीवन तथा इच्छाओं के बारे में प्रश्न करता है। वृद्ध के सत्ता-तंत्र से सीधे-सीधे टकराने वाला कदाचित नचिकेता पहला व्यक्ति है। हिन्दी के कथा सम्राट प्रेमचंद की कई रचनाएँ इसी सत्ता तंत्र से टकराती है। कर्मभूमि का नायक अमरकांत अपने पिता लाला समरकान्त की सत्ता से आहत है। लाला समरकान्त की घाघ दुनियावी समझ प्रत्येक कदम पर अमरकांत की परिवर्तनकामी समझ के आड़े आती है। नतीजतन पिता पुत्र में छत्तीस का आंकड़ा हो जाता है। निर्मला के वकील साहेब वृद्धावस्था में अपनी पुत्री के वय की लड़की निर्मला से शादी करते हैं, फलस्वरूप उसकी दुर्दशा तो होती ही है, पुत्र मंसाराम की मृत्यु भी वकील साहेब की बूढायी मानसिकता की वजह से हो जाती है। वृद्ध वकील अपने शक्की और झक्की स्वभाव के कारण मंसाराम पर संदेह करते है। उन्हें संदेह है कि मंसाराम का दैहिक सम्बन्ध निर्मला से है। मंसाराम को जब यह सूचना मिलती है तो वह टूट जाता है। उसे ऐसा मनोवैज्ञानिक झटका लगता है कि वह उस झटके को बर्दाश्त नहीं कर पाता।

इसमें दो राय नहीं कि वृद्धों का आदर-सम्मान होना चाहिए। जो समाज अपने बुजुर्ग का सम्मान नहीं कर पाता उससे दूषित और घृणित समाज की कल्पना भी दुष्कर है। वृद्धों की चिंताएँ समस्याएँ और सरोकार पर गंभीरता से बात होनी चाहिए। भूमंडलीकरण और एकल परिवार की वजह जिस तरह उनकी दुनिया सिकड़ी-सिमटी है, उस पर विचार किया जाना चाहिए और वृद्धों के लिए विकल्प की तलाश की जानी चाहिए। किन्तु आवश्यकता से अधिक महिमामंडन वृद्धो का भी नहीं किया जाना चाहिए, किसी का भी नहीं किया जाना चाहिए। 'मी' का भी नहीं और 'लार्ड' का भी नहीं। इस महिमामंडन का दुष्परिणाम यह होता है कि बहुत सारे निर्णय ऐसे लेने पड़ते हैं जो समाज की गति और दिशा को पीछे ले जाते हैं। समाज की प्रगति और विकास में जो कारक आड़े आते हैं, उनमें एक वृद्ध भी हैं। वे प्रत्येक परिवर्तन को संदेह की दृष्टि से देखते है , और उसका विरोध करते है। चूंकि भारतीय परम्परा में वृद्धो की बातों को सम्मान देने का, उनके निर्णय के विरुद्ध नहीं जाने का एक रिवाज रहा है इसलिए उन परिवर्तनों में कई परिवर्तनों को स्थगित करना पड़ता है। संयुक्त परिवार की कई लड़कियाँ तो दूर लड़के भी 'दादा प्रेम' के कारण बाहर पढ़ने नहीं जा पाते हैं, बगैर दहेज शादी नहीं कर पाते हैं, धार्मिक रुढियों और अंधविश्वासों के मकड़जाल से मुक्त नहीं हो पाते हैं। धन का अपव्यय करने पर विवश होते हैं, प्रेम विवाह तो कर ही नहीं पाते हैं। यह सब वृद्ध-दृष्टि का फल है। कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय समाज का कोढ़ वर्णव्यवस्था अंतरजातीय विवाह से ही समाप्त हो सकती है। किन्तु जिस समाज का वृद्ध और उसका सत्तातंत्र प्रेम-विवाह की छूट नहीं देता हो वह अंतरजातीय विवाह का छूट कैसे दे सकता है?

भारतीय लेखकों में नागार्जुन और विदेशी लेखकों में काफ्का इस वृद्ध-पितृ-तंत्र से सर्वाधिक टकराते हैं। काफ्का की एक अत्यंत प्रसिद्ध रचना है पिता के नाम पत्र। जो उनकी मृत्यु के उपरांत प्रकाशित हुई। कहा जाता है कि काफ्का की अधिकांश रचनाएँ उनकी निजी जिन्दगी है। उन्हीं के शब्दों में 'मेरी जिन्दगी ही मेरा साहित्य है।' पिता के नाम पत्र में वे लिखते हैं, 'मेरे पालन पोषण पर आपका जो भयानक प्रभावशाली तरीका रहा है, उसके प्रभाव ने मुझे एक पल भी चौन से नहीं रहने दिया। गालियों, धमकियों, तानाकशी, जहर बुझी और तिलमिला देनेवाली हंसी और साथ-साथ ताज्जुब की बात है कि जो आत्मदया भी लगता है, मानो बच्चा अगर मर नहीं गया तो सिर्फ आपकी दया के कारण ही। जैसे आप ही ने उसे योग्य जिन्दगी का वरदान दिया हो। जहाँ तक मेरा सवाल है, आप मेरे लिए सर्वशक्तिमान थे, और मुझे ऐसा लगता था जैसे आप हर समय इस शक्तिमान को बढाने की ही फिराक में लगे रहते हैं। जिधर से भी देखो, आप महाबली, परम विराट और दैत्याकार ही लगते थे।

बाद में जिन्दगी भर हमसब एकजुट होकर आपके प्रभाव से ही लड़ते रहे। ...लेकिन कैसे क्षुद्र और बचकाने तरीके से... अगर मैं आपसे जान बचाकर घर से भाग गया होता तो मुझे सारा परिवार यहाँ तक कि माँ को भी छोड़ना पड़ता। ...मेरा सारा लेखन सिर्फ और सिर्फ आपको ही लेकर है।'

नागार्जुन ने भी अपने पिता के 'चंठ' और 'बदचलन' स्वभाव को निर्द्वंद्व होकर कई जगह पर लिखा है। वे भी अपनी माँ-चाची के प्यार के कारण वापस घर लौट-लौट आते। मैथिली कविता 'द्वंद्व में वे अपने पिता की आलोचना करते हुए लिखते हैं,

छला अपने मूर्ख/ हमारा चारि आखर पढ़ा गेला बाप जे
बौआ कमा क' लगा देत टाल/ बुढ़ारी मे बैसि क' हम खाएब ...
हीतक संग सतरंज खूब खेलायब/ आहि रे कपार...

मुइलाक बाद जे अनका ऊपर दे भार/ बिन्दुओ भारिजलसं तर्पण ने केओ केलकनि

हमर नहि से हुनकर कर्मक दोष...

नागार्जुन ने वृद्धावस्था मे आकर भी वृद्धों की आलोचना की है। उनकी यह आलोचना अनुभव के खमीर में पकी हुई आलोचना है। उनके उनकी यह आलोचना अनुभव के खमीर में पकी हुई आलोचना है। उनके अनुसार सड़ी-गली परम्पराएँ, मान्यताएँ आदि वृद्धों के जरिये ही नयी पीढ़ी में इंजेक्ट होती रहती है। 'भ्रष्टाचार के दानव' को दूर करने में उन्हें वृद्धों की नहीं युवाओं की भूमिका महत्वपूर्ण लगती है। इसी शीर्षक से लिखे गए अपने निबंध में उन्होंने लिखा है, "मेरी तो पक्की धारणा है कि भ्रष्टाचार का उन्मूलन भविष्य में हम नहीं कर पाएंगे, जिनकी उम्र 50 पार गई है। यानी मुझे स्पष्ट दीखता है कि भ्रष्टाचार का उन्मूलन नयी पीढी ही करेगी।"

बुजुर्ग शिक्षकों से भी नागार्जुन को कोई ज्यादा उम्मीद नहीं थी। पुराने शिक्षकों के प्रति नई पीढी की श्रद्धा-भक्ति दिन से दिन घटती जा रही है, यह नागार्जुन के लिए चिंता का विषय नहीं है। उन्हीं के शब्दों में- "मैं इसे भावी युग के लिए बहुत बड़ा शुभ मानता हूँ। मेरी यह दृढ़ धारणा है कि युवकों के शिक्षक युवक ही हो सकते हैं। ठस दिमाग वाले सिकुड़े हुए दिलवाले वयस्क (बुजुर्ग) भला नौजवानों को क्या सिखलाएंगे।"

शिक्षण के क्षेत्र में सर्वथा नयी स्थापना करते हुए नागार्जुन 'रहनुमा' शीर्षक निबंध में लिखते हैं- "युवक छात्र वयोवृद्ध अध्यापक को अपनी फेनिल श्रद्धा ही दे सकेंगे। प्रीती-पूर्ण आतंरिक श्रद्धा तो वह उसी शिक्षक को देगा तो ऊबड़-खाबड़ पौधों में आगे-आगे चल सकेगा, जो शिष्य का गुरु भी होगा और सखा भी होगा। जिस समय नागार्जुन गुरु को सखावत होने की बात कह रहे थे उस समय बड़े-बड़े शिक्षाविद भी यह कहने में संकोच करते थे। आज तो शिक्षण की महत्वपूर्ण शर्त है यह सखावत भाव। बुजुर्ग और वृद्ध शिक्षकों एवं अभिभावकों को संबोधित करते हुए सुप्रसिद्ध रचनाकार खलील जिब्रान कहते हैं- "तुम उन्हें अपना अनुराग दे सकते हो, विचार नहीं क्योंकि उनके पास उनके अपने विचार हैं

तुम उनकी काया को आवास दे सकते हो आत्मा को नहीं
क्योंकि उनकी आत्माएँ भविष्य के भवन में वास करती हैं
जहाँ तुम पहुँच नहीं सकते, स्वप्न में भी नहीं
तुम उनकी तरह होने का प्रयास कर सकते हो
किन्तु उनको अपने जैसा बनाने का प्रयत्न मत करना
क्योंकि जीवन पीछे नहीं लौटता
न ही अतीत के साथ ठहरता है।"

नागार्जुन वृद्धों की सख्त आलोचना इसलिए करते हैं कि वे पुरानी राहों को छोड़ने के नागार्जुन वृद्धों की सख्त आलोचना इसलिए करते हैं कि वे पुरानी राहों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते, अतीत-मोह से ग्रस्त रहते हैं। नागार्जुन के शब्दों में- "कोई फिसलनवाली पुरानी राहों का मोह बुजुर्ग को भले हो, नवयुवक आप ही अपनी राह बना लेने की क्षमता रखते हैं। पुरातन की फिसलन, बीहड़पन, विषमता आदि हटाने में जितना वक्त बर्बाद होगा उतने में ही वे दो गुनी अधिक नई राहे नहीं तय कर लेंगे?"

यह तो वृद्धों का एक हिस्सा है। किन्तु वृद्धों की इन मानसिकताओं को संवेदनशीलता के साथ समझने की भी आवश्यकता है। वृद्ध अपने नये मूल्य और नई जीवन शैली से सामंजस्य नहीं बैठा पाते इसी कारण वे हर प्रकार के नए बदलाव को वे अपसंस्कृति का ही भाग मानते है। वृद्धों को समाज में अपने परिवार से, परिस्थिति से, सत्ता से संघर्ष करना पड़ता है।

इस प्रकार वृद्धों की परंपरा और संघर्ष की परिस्थिति का वर्णन मैंने यहाँ पर किया है।

संदर्भ-सूची-

1. नागार्जुन .पृ-15
2. भृष्टाचार के दानव - नागार्जुन -पृ.16
3. वही
4. रहनुमा नागार्जुन -पृ.31
5. वही पृ. 35
6. वही .पृ.41

शिल्प विधान की कसौटी पर भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य

डॉ० अशोक कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, श्री बजरंग स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दादर आश्रम, सिकन्दरपुर, बलिया।

भारतीय मान्यता के अनुसार भावतत्व और विचारतत्व की एक अन्विति विशेष ही काव्य है। काव्य तत्व रूप से शब्द और अर्थ ही तो हैं जिसका विस्तार और प्रसार का रूप भाषा है। इस प्रकार दो पक्षों की स्थिति स्वीकार्य है। जिसे भावपक्ष या अनुभूति पक्ष एवं कलापक्ष या अभिव्यक्ति पक्ष के रूप में जाना जाता है। काव्य में मस्तिष्क या बुद्धित्व और भाव या हृदय तत्व दोनों को साथ लेकर चलने की महज परम्परा रही है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'चिन्तामणि भाग एक' के निवेदन में स्पष्ट किया है कि ''यात्रा के लिए निकलती रही बुद्धि पर हृदय को भी साथ लेकर अपना रास्ता निकालती हुई जहाँ कहीं मार्मिक या भावाकर्षक स्थलों पर पहुँची है, वहाँ हृदय थोड़ा बहुत रमता, अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कुछ कहता गया है। इस प्रकार यात्रा के श्रम का परिहार होता रहा है। बुद्धिपथ पर हृदय भी अपने लिए कुछ न कुछ पाता रहा है''[1] इसका आशय है कि बुद्धि और हृदय तत्व को बहुत पहले से ही काव्य को शब्दार्थ के अन्तर्गत संकलित किया गया था।

आधुनिक हिन्दी काव्य चिन्तकों ने भी काव्य तत्व का विश्लेषण किया है। आचार्य शुक्ल ने हृदय की मुक्तावस्था को रसदशा ओर इस मुक्ति की साधना हेतु मनुष्य की वाणी ने जो शब्द और अर्थ गौरव का अर्थसिंचन किया, उसे ही काव्य कहा है। उनके अनुसार ''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आयी है उसे कविता कहते हैं''[2] पाश्चात्य विचारकों ने काव्य में शब्द को विशेष महत्व दिया है। होरेस का कथन है ''कवि को शब्दों के उपयुक्त चुनाव और रचना में उनके उचित विधान का पूरा ध्यान रखना चाहिए। शब्दों का उपयुक्त चुनाव और उनका उचित विधान दोनों महत्वपूर्ण हैं। कवि को मात्र प्रदर्शन के लिए शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।[3] शब्द के साथ ही पाश्चात्य विचारकों ने शैली पर विशेष बल दिया जिसकी छाया नये कवियों पर पड़ी है। काव्य शिल्प का तात्पर्य शब्द योजना, छन्दयोजना एवं पाश्चात्य अलंकारों से जुड़ गया है। शिल्प शब्द अंग्रेजी के टेकनीक का पर्याय है। रूपसर्जना की विशिष्ट योजना ही शिल्प है। शिल्प एक प्रकार से वाह्य स्ट्रक्चर है। डॉ0 पुष्करदत्त शर्मा ने अपनी पुस्तक 'आधुनिक काव्यरूप और शिल्प' में कहा है- ''शिल्प रूपकार का कौशल है। तकनीक अर्थात तकनीकि प्रिसिंपल ही कहला सकता है।''[4]

आधुनिक हिन्दी कविता के शिल्प पर विचार करते हुए कैलाश बाजपेयी कहते हैं- ''काव्यकृति के निर्माण में जिन उपादानों द्वारा काव्य का ढांचा तैयार किया जाता है वे सब काव्य के शिल्प तत्व कहे जाते हैं। शिल्प विधि रचना की उन प्रमुखताओं का लेखा-जोखा है जिसके आधार पर रचना मूर्त हो चुकी है अथवा विशिष्ट भंगिमा के साथ लेखनी द्वारा अवतरित होती है।''[5] काव्यशिल्प का तात्पर्य काव्य के प्रस्तुति के तौर-तरीकों से है। भारतीय काव्य चिन्तक अनुभूति को महत्व देतेहैं वहीं पाश्चात्य काव्य चिन्तक काव्य के टेकनीक को। निष्कर्षत: अनुभूति पर बल प्रदान करने के कारण भारतीय काव्य चिन्तक शब्द और अर्थ को समान गौरव प्रदान करते हैं जबकि पाश्चात्य चिन्तक टेकनीक पर अधिक बल प्रदान करने के कारण शब्द को ही विशेष गौरव देते हैं। नयी कविता और नये काव्य का परिप्रेक्ष्य भी शब्द गौरव की महिमा से मण्डित है। तीसरा सप्तक की भूमिका में अज्ञेय ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है ''नये कवि की उपलब्धि और देन की कसौटी इसी आधार पर होनी चाहिए। जिन्होंने शब्द को नया कुछ नहीं दिया है, वे लीक पीटने वाले से अधिक कुछ नहीं हैं-भले ही जो लीक वे पीट रहे हैं वह पुरानी न हो और जिन्होंने उसे नया कुछ देने के आग्रह में पुराना बिल्कुल मिटा दिया है वे ऐसे देवता हैं जो भक्त को नया रूप दिखाने के लिए अन्तर्धान हो ही गये हैं.....[6]

इस सम्बन्ध में अज्ञेय आगे कहते हैं ''नया कवि शिल्प के प्रति कभी उदासीन नहीं रहा क्योंकि वह उसे प्रेषण से काटकर अलग नहीं करता है। नयी शिल्प दृष्टि उसे मिली है, यह दूसरी बात है कि वह सबमें एक सी गहरी न हो या सब देखे पथ पर एक सी समगति से न चल सके हों।''[7] दूसरा सप्तक में संकलित सात कवियों में सर्वप्रथम नाम भवानी प्रसाद मिश्र का है, इसकी भूमिका में स्वयं अज्ञेय ने लिखा है ''और हमारा विश्वास है कि हिन्दी में सम्प्रति जो काव्य संग्रह छपते हैं, उनमें कम ऐसे होगें जिनमें अच्छी कविताओं की इतनी बड़ी संख्या एकत्र मिले, जितनी दूसरा सप्तक में पायी जायेगी।''[8]

भवानी प्रसाद मिश्र सादगी के कवि हैं। सरलता इनके स्वभाव में है। कला से अधिक कथ्य को ध्यान में रखने वाले ये कवि हैं। छायावादोत्तर काल के साधारण को असाधारण रूप में व्यक्त होने वाले ये विलक्षण कवि हैं। इनके सम्बन्ध में विश्वम्भर मानव कहते हैं- ''श्री मिश्र उन कवियों में हैं जो कला से अधिक कथ्य का ध्यान रखते हैं। भाषा की सरलता की ओर इनका झुकाक प्रारम्भ से ही रहा है। इन्होंने कहा ही है- 'जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख' परिणाम यह हुआ कि शब्दों के तद्भव रूप प्रयुक्त करने के लिए वे प्राय: विवश हुए हैं। परवत, अरथ, मीत जैसे शब्द कहीं भी मिल जायेंगे। यह बात अरबी, फारसी के शब्दों के साथ लागू नहीं होती। यह समझ में नहीं आता कि जो व्यक्ति ख्वावीदा, मुसन्निफ, जिंदा और जाम शब्द का प्रयोग कर सकता है साबित, सबब और यानी लिख सकता है वह खड़ी बोली के क्षेत्र में उतरकर पै, लौ, रितु, आगी, नद्दी, जोती, जिनने आदि को सुधारकर क्यों नहीं लिख

सकता? इनकी रचनाओं में अनेक स्थानों पर छंदभंग और गतिभंग दोष पाया जाता है जिसका कोई कारण समझ में नहीं आता सिवाय एक प्रकार की लापरवाही के। शब्दों के अशुद्ध प्रयोग भी कुछ कम नहीं हैं।''[9] कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि भवानी प्रसाद मिश्र की भाषा में एक अकृत्रिम सादगी है, स्पष्ट निजत्व है। उनकी शब्दों की शक्ति ने वाणी का वाण बनाकर अपनी काव्ययात्रा की है। 'गीत फरोश' की भाषा में व्यंग्य-वक्रोक्ति है लेकिन आगे की कविताओं में भाषा यथार्थ के एक ठोस धरातल पर पहुँचती है। इस सम्बन्ध में डॉ0 कृष्णदत्त पालीवाल का कथन है ''जो बात भवानी प्रसाद मिश्र को अपने समकालीनों से अलग करती है वह है उनकी दृष्टि की सहज सामान्यता। परिणामत: वे 'आम आदमी' 'आम आदमी' कहकर हर समय बर्राते नहीं हैं, बल्कि पूरी आदमीयता के साथ उसकी विशिष्टताओं को संकेतित प्रतीकित करते चलते हैं। एक भरा पूरा आनन्दमय आदमी उनकी कविता में निष्ठा एवं विश्वास के साथ मौजूद है इस आदमी के सुख-दु:ख की उसकी रोजमर्रा की जिन्दगी को उन्होंने जिस सहज जीवन्त भाषा में बांधा है, वह नयी कविता की एक खास उपलब्धि कही जायेगी। व्यंग्य, विद्रोह एवं विरोध पहले भी कवियों में था ओर उनके समसामयिक कवियों में है परन्तु जिस सहज स्वभाव की शिल्प सजगता से मिश्र जी ने उसकी पकड़ पैदा की है वह अन्यत्र दुर्लभ है''[10]

भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं में जीवन का नवीन यथार्थ है, जिसके माध्यम से वे अपनी विशिष्ट पहचान बनाते हैं। अपनी कविताओं के स्वभाव और चरित्र को 'गीत फरोश' में व्यक्त करते हुए वे कहते हैं-

''पहले पहल
शब्दों के महल
जब मैंने बनाए।
तो वे
मुझे बहुत भाये।
मैंने उनका बड़ा सिंगार किया
और कभी कभी तो
अपने से भी ज्यादा
उन्हें प्यार किया।'' [11]

भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य भाषा के निर्माण की यह वही भूमि है जिस पर उनके काव्य के महल की चिनाई हुई है वे निरन्तर अपने आपको विसर्जित करते हुए लिखते रहे। वे सतह से ऊपर उठते रहे। साधारण में विशिष्टता को आकार देने का काम भवानी भाई ने अपनी काव्य भाषा से लिया। वे दूसरा सप्तक के वक्तव्य में कहते हैं-

''जिस तरह हम बोलते हैं
उस तरह तू लिख
और इनके बाद भी
हमसे बड़ा तू दिख।'' [12]

इस प्रकार जहाँ नयी कविता में भाषा की संरचना जटिल है, साथ ही शिल्प की प्रमुखता है वहीं भवानी प्रसाद मिश्र की कविता में भाषागत संरचना से अधिक कथ्य को प्रमुखता दी गयी है। इनके काव्य में कथ्य पर संरचना हावी नहीं हो पाती।

शिल्प एक प्रकार से काव्य के वाह्य ढांचा के रूप में मान्य है। इसको प्रस्तुत करने की प्रवीणता ही शिल्प विधान है। भाषा सर्वश्रेष्ठ शिल्पविधान है। यह वाचिक और लिखित अभिव्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ रूप रखती है। इसलिए काव्यरूप में वाचिक और लिखित रूपों का प्रस्फुटन होता है। भावाभिव्यक्ति जब सांकेतिक हो जाती है तो वह प्रतीक के रूप में व्यक्त होती है। प्रतीकों के माध्यम से कवि अपने भावों और विचारों की प्रभावशाली अभिव्यक्ति करते हैं। ये प्रतीक आवश्यकतानुसार अध्यात्मिक सामाजिक, राजनीतिक, दार्शनिक एवं सांस्कृतिक भी होते हैं। इस सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल का कथन उल्लेखनीय है- ''किसी देवता का प्रतीक सामने आने पर जिस प्रकार उसके स्वरूप और उसकी विभूति की भावना चट मन में आ जाती है, उसी प्रकार काव्य में आयी हुई कुल वस्तुएं विशेष मनोविकारों या भावनाओं को जाग्रत कर देती है, जैसे-'कमल' माधुर्यपूर्ण कोमल सौन्दर्य की भावना जाग्रत करता है, 'कुमुदिनी' शुभ हास की, 'चन्द्र' मृदुल आभा की, 'समुद्र' प्राचुर्य, विस्तार और गम्भीरता की, 'आकाश' सूक्ष्मता और अनन्तता की, इसी प्रकार 'सूर्य' से क्रूरता और कुटिलता का, 'अग्नि' से तेज और क्रोध का, 'वाणी' से वाणी या विद्या का, 'चातक' से नि:स्वार्थ प्रेम का संकेत मिलता है।''[13]

प्रतीकों के प्रयोग में नयी कविता के कवियों ने विशेष निपुणता पायी है। इन्होंने प्रतीकों के माध्यम से अपनी हृदय की भावनाओं को व्यक्त किया है। इनके द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

सांस्कृतिक प्रतीक।
कलात्मक प्रतीक।
प्राकृतिक प्रतीक।
वैज्ञानिक प्रतीक।
यौन प्रतीक।

भवानी प्रसाद मिश्र जी सांस्कृतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति के कवि हैं। उनका विचार है कि सामाजिक वैषम्य को समाप्त किये बिना आदर्श रामराज्य की कल्पना निरर्थक है। भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत प्रेम एवं सहयोग तथा अहिंसा उनके मूल में है। इन्होंने दु:शासन को भारतीय संस्कृति में असद् का प्रतीक माना है। वे कहते हैं-

''कैसा मजा है
मुँह खोला भर
कि तैयार कोई सजा है
दु:शासन को अनुशासन पर्व
कहो तो ठीक
पुलिस और सेना की क्रूरता पर
गर्व करो तो ठीक..... ''[14]

सांस्कृतिक प्रतीकों के सम्बन्ध में भवानी प्रसाद मिश्र का कथन है ''हमारी संस्कृति में सबसे अधिक महत्व पुष्प से पूजा का है। देवता को पुष्प चढ़ाते ही देवता प्रसन्न होता है। फूल एक मनोभाव का प्रतीक है। ..... भारतीय साहित्य और दर्शन में विशेषकर आगमों के अनुसार फूल आकाश तत्व है। फूल चढ़ाकर हम आराध्य ही को ऊँचा नहीं मानते स्वयं भी ऊँचा उठने की स्थिति में आ जाते हैं। जड़ता का भाव कम हो जाता है।''[15]

इसी प्रकार इन्होंने 'नदी' को सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में प्रयोग किया है। नदी भारतीय कृषि जीवन का प्राण है। एक तरह से वह भारतीय संस्कृति का प्राणतत्व है।

भवानी प्रसाद मिश्र की रचनाओं में कला की नवीनता और कभी न सूखने की शक्ति है। इनके काव्य की शक्ति किसी असाधारण तत्व पर केन्द्रित न रहकर असाधारण को साधारण बनाते हुए हृदय को सीधे छूने में समर्थ हुई है। इनका साधारण गीतकार रूप 'गीत फरोश' बनकर अपनी भावाभिव्यक्ति को कलात्मक बनाने में सफल होता है।

जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ
मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ
मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूँ।
X X X X
जी पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको
पर बाद-बाद में अक्ल जगी मुझको
जी, लोगों ने बेच दिए ईमान,
जी, आप न हो सुनकर ज्यादा हैरान
मैं सोच समझकर आखिर
अपने गीत बेचता हूँ।'' [16]

भवानी प्रसाद मिश्र ने प्रकृति का प्रतीकों के रूप में प्रयोग किया है। नर्मदा के चित्र, सतपुड़ा के जंगल आदि प्रतीकों के माध्यम से इन्होंने अपने भावों की अभिव्यक्ति की है। 'मंगल वर्षा' में वे कहते हैं-

पीके फूटे आज प्यार के पानी बरसारी।
हरियाली छा गयी, हमारे सावन सरसारी।
बादल आये आसमान में, धरती फूली री।''[17]

भवानी प्रसाद मिश्र गाँधी चिन्तन में विश्वास करने वाले थे। इनका विश्वास था कि भारत में कोई यदि वैज्ञानिक दर्शन है तो गाँधी दर्शन है और गाँधीदर्शन ही इनका वैज्ञानिक प्रतीक है जो प्रेरणा देता है कि मानव आत्मनिर्भर बने। इसीलिए उन्होंने गाँधी और गाँधी के नाम को पूरी मानवता के त्राता के रूप में वर्णित किया है वे कहते हैं-

शुरू कर रहा हूँ
जितना बन सकता है मुझसे उतना छोटा एक काम
लेकर समूची मानवता की परम्परा में
अब तक के सबसे सीधे सादे निर्भय और स्नेही आदमी
गाँधी का नाम।''[18]

भवानी प्रसाद मिश्र ने नयी कविता के अनुरूप विम्ब विधान अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। उन्होंने 'वर्षा' के माध्यम से दृश्य विम्ब का प्रस्तुतीकरण किया है।

वर्षा,
सुख देती है
पौधे को, पशु को
पत्ती को, फूल को
आम को, नीम को
महुए को, बबूल को।[19]

इन्होंने विम्ब विधान का सम्बन्ध जीवन से जोड़ा है। वे कहते हैं-

एक माँ
चल रही सड़क पर
अपने बच्चे को
छाती से चिपकाए हुए
और आश्वस्त है वह
कि प्रलय काल तक
ले जायेगी उसे निकालकर
चारों तरफ से आ रही आफतों से। [20]

यहाँ भारतीय जनव्यथा को व्यक्त करती हुई एक माँ का चित्रण है जो अपने बच्चे को छाती से लगायी है।

नयी कविता के कवियों ने मिथक का भी प्रयोग किया है। भवानी प्रसाद मिश्र ने भी अपने काव्य में अनेक मिथकों का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ चरखा चलाना आज भी एक मिथक है। भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में गाँधी के विचार, खादी और चरखा को मानवता से जोड़कर दु:खी मानवता की पीड़ा को इन्होंने अपनी कविताओं में प्रस्तुत किया है। आगे चलकर 'सन्नाटा कविता में आत्मसंलाप शैली में सन्नाटे में खड़े एक खण्डहर को चित्रित किया गया है जिसमें एक रानी और एक पागल की जनश्रुति में व्याप्त प्रेम कथा का वर्णन किया गया है। यहाँ उनका मिथकीय प्रयोग इस कथा को दीर्घ आकार देने में सफल है।

नयी कविता मुक्त छन्द को प्रश्रय देती है जिसमें परम्परागत छन्द विधान के ढांचे से विद्रोह दिखता है। नये कवि लीक छोड़ कर घिसे-पिटे उपमानों को छोड़कर नये उपमानों को प्रयोग में लाते हैं। जिनसे अनुभूत सत्य को चित्रित किया जा सके। भवानी प्रसाद मिश्र ने भी नये छन्द ''मुक्त छन्द'' का प्रयोग अपने काव्य में किया है। नये उपमान का प्रयोग करते हुए वे कहते हैं-

''लहरों के आने पर
काई सा फटे नहीं
रोटी के लालच में
तोते सा रटे नहीं
प्राणी वही प्राणी है।'' [21]

मिश्र जी ने नये काव्य में प्रयुक्त होने वाले अलंकार मानवीकरण का भी प्रयोग बड़ी सफलता से किया है। कवि ने 'सन्नाटा' पर मानवीय व्यापार आरोपित करते हुए सन्नाटे का मानवीकरण किया है।

लो पहले अपना नाम बता दूँ तुम को
फिर चुपके धरम बता दूँ तुमको.....
X X X X
कुछ लोग भ्रान्तिवश मुझे शान्ति कहते हैं
निस्तब्ध बताते हैं कुछ चुप रहते हैं
मैं शान्त नहीं, निस्तब्ध नहीं, फिर क्या हूँ?
मैं मौन नहीं, मुझमें स्वर बहते हैं।''
'सन्नाटा' [22]

इस प्रकार भवानी प्रसाद मिश्र ने सामान्य भाव, शिल्प, सामान्य प्रतीक, सामान्य विम्ब ग्रहण करते हैं और उसे असामान्य में बड़ी खूबी से परिवर्तित कर देते हैं। इनकी भाषा और शिल्प क्रमश: सरल होते चले गये हैं। इस सन्दर्भ में ये अद्वितीय कवि सिद्ध होते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्लः चिन्तामणि भाग एक निवेदन।
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्लः चिन्तामणि भाग एक, कविता क्या है, पृष्ठ-97
3. भगीरथ मिश्रः समीक्षा लोक, पृष्ठ-874
4. डॉ0 पुष्कर शर्माः आधुनिक काव्य रूप और शिल्प, पृष्ठ-06
5. कैलाश वाजपेयीः आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, पृष्ठ-19
6. अज्ञेयः तीसरा सप्तक भूमिका, पृष्ठ 7-8
7. अज्ञेयः तीसरा सप्तक भूमिका, पृष्ठ 10
8. अज्ञेयः तीसरा सप्तक भूमिका, पृष्ठ 5-6
9. विश्वम्भर मानवः नयी कविता नये कवि पृष्ठ-263
10. डॉ0 कृष्णदत्त पालीवालः भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य संसार, पृष्ठ-56
11. भवानी प्रसाद मिश्रः गीत फरोश की भूमिका
12. अज्ञेयः दूसरा सप्तक-भवानी प्रसाद मिश्रः वक्तव्य, पृष्ठ-20
13. आचार्य रामचन्द्र शुक्लः चिन्तामणि भाग दो, पृष्ठ-121
14. भवानी प्रसाद मिश्रः त्रिकाल संध्या, पृष्ठ-120
15. डॉ0 कृष्णदत्त पालीवालः भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य संसार, पृष्ठ-148
16. भवानी प्रसाद मिश्रः गीत फरोश, पृष्ठ-166
17. भवानी प्रसाद मिश्रः दूसरा सप्तक, पृष्ठ-30
18. भवानी प्रसाद मिश्रः गाँधी पंचशती प्रारम्भिक, पृष्ठ-7
19. भवानी प्रसाद मिश्रः व्यक्तिगत, पृष्ठ-138
20. भवानी प्रसाद मिश्रः व्यक्तिगत, पृष्ठ-35
21. संपा0 अज्ञेयः दूसरा सप्तक, पृष्ठ-33
22. सं0 अज्ञेयः वही, पृष्ठ-26

बिहार की तत्कालीन राजनीति में दलितों की स्थिति

डॉ० मो० मरगूब रजा

Ph.D, इतिहास विभाग, बी.एन.एम.यू. मधेपुरा (बिहार)

बिहार में हुए 1951-52 में पहले चुनाव में खूब घमासान हुआ। प्रसिद्ध कवि रामदयाल पांडेय ने कोंग्रेस की बैठक पर एक रिपोर्ट 'योगी' में लिखी- 'महुआ बाजार में कांग्रेस उम्मीदवारों का निर्णय। पैरवी और टडइली का जोर, महिलाओं की उपेक्षा। जनतंत्र की नीवें में जातीयता और दलबंदी का नंगा नाच।'[1]

1952 के चुनाव में बिहार की राजनीतिक पहचान बदल गयी।[2]

आजाद भारत की उस प्रथम चुनावी गहमा-गहमी में भी पिछड़ी जातियॉ हाशिए पर थी।[3]

आजादी के बाद दो चुनावों पर नजर डालने से कुछ निष्कर्ष स्पष्ट नजर आतें।- 1. दस सालों के कांग्रेस का ग्राफ गिर गया था और बिहार में सोशलिस्टों का कुछ-कुछ 'पिछड़ा' आधार बनने लगा था। पहले चुनाव में सोशलिस्ट पार्टी की करारी हार से आहत जयप्रकाश नारायण सर्वोदयी हो गये। 2. प्राय: सभी राष्ट्रवादी नेताओं के जातिवादी चेहरे बेपर्दा हो गये। सहजानंद सरस्वती ने 1926 के कौंसिल के चुनाव के समय ही कहा था कि बिहार के अधिसंख्य राष्ट्रवादी नेता जातिवादी हैं। हालांकि जातियॉ समाज की जड़ ईकाई नहीं रही। पाला बदलने, मोल-तोल करने और अपने को टिकाए रखने लिए जातिगत आधारों का इस्तेमाल का जो सिलसिला बीसवीं सदी में शुरू हुआ, उसका द्विजवादी चरम विकृत रूप 50 के दशक में दिखने लगा। 3. सोशलिस्ट पार्टी और त्रिवेणी सुंघ से पिछडत्रों के बीच शुरू राजनीतिक पहचल ने उसमें सत्ता की हिस्सेदारी की भूख की जगाया! 'पिछड़ा पावे सौ में साठ' का नारा बुलंद हुआ। परिणामत: कांग्रेस में भी पिछड़े नेताओं की पूछ धीरे-धीरे बढ़ने लगी। दलित और मुसलमानों के लिए राजनीति में भागीदारी का रास्ता कुछ और खुला।[4]

18 फरवरी, 1961 को विनोदानंद झा मुख्यमंत्री बने। झा मंत्रिमंडल में पिछड़े मंत्रियों की सुख्या बढ़कर चार हो गयी और पिछड़े वर्ग के चार लोग पार्लियामेंट्री सेक्रेट्री बनाये गये।

झा मंत्रिमंडल में नौ कैबिनेट मंत्री, पंद्रह उप मंत्री और दस पार्लियामेंट्री सेक्रेट्री थे। इनमें छह दलित थे। मंत्रिमंडल और पार्लियामेंट्री सेक्रेट्री के चयन को देखने से इस बात का पता चलता है कि सभी जातीय समुदायों को आनुपातिक प्रतिनिधित्व देने के लिहाज से यह पहला बड़ा प्रयास था। यानी अपने को सत्ता में टिकाए रखने के लिए पिछड़ो जातियों की बढ़ती ताकत को सहलाने-फुसलाने और साथ लेकर चलने की द्विज राजनीति का यह पहला और बड़ा संकेत था। वैसे, 'पिछड़े समुदाय' के नेतृत्व को साथ लेकर चलने का यह संकेत बिहार में सत्ता पर कब्जा के लिए 1952 के चुनाव से जारी 'अगड़ा बनाम अगड़ा' के जातिगत संघर्ष की राजनीति का ही हिस्सा था। यह स्पष्ट था कि सत्ता के लिए आपस में लड़ते हुए द्विज राजनीति के अलमबरदारों को बिहार की राजनीति में 'पिछड़ाबाद' की धमकदार पदचाप सुनाई देने लगी थी और वे इसकी काट के लिए अपनी-अपनी रणनीति बनाने लगे थे।

विनोदानंद झा ने दूसरी बार 15 मार्च, 1962 को मुख्यमंत्री की गद्दी संभाली। के0 बी0 सहाय को पहले झा मंत्रिमंडल में शामिल नहीं किया गया था। इस मंत्रिमंडल में पिछड़े वर्ग के मंत्रियों की संख्या तीन थी और वीरचंद पटेल ही एक मात्र कैबिनेट मंत्री बनाये गये थे। तीन महीने बाद 29 जून को श्री सहाय को कैबिनेट में शामिल किया गया। उसके लगभग तीन महीने बाद आदिवासी नेता जयपाल सिंह को 3 सितम्बर को मंत्री बनाया गया।

कामराज योजना लागू होते ही बिहार की राजनीति एक बार फिर गरमाई। पिछड़ों के नेता वीरचंद पटेल पहली बार खुलकर मैदान में आये। वीरचंद पद के चुनाव के लिए कमर कस कर तैयार हो गये। कांग्रेस की राजनीति के लिए यह शामिल हुआ।[5]

सत्येंद नारायण सिंह का समर्थन नहीं मिलने के कारण वीरचंद पटले को पराजित होना ही था। वे पराजित हुए लेकिन नेता पद की दावेदारी के लिए उनके खड़े होने का असर यह हुआ कि 20 सदस्यीय मंत्रिमंडल में पिछड़ी जाति के तीन सदस्यों को कैबिनेट मिला! अब तक ऐसा नहीं हुआ था। वीरचंद पटेल सहित रामलखन सिंह यादव और श्रीमती सुमित्रा देवी को कैबिनेट मंत्री का पद मिला और सहदेव महतो राज्य मंत्री बनाये गये।

दूसरी बात यह हुई कि 'त्रिवेणी संघ' के जमाने से शुरू हुए सामाजिक संघर्ष ने 1963 में राजनीतिक आकार ग्रहण किया। 'कांग्रेस के अंदर आ रहे इन बदलावों का सीधा संबंध बाहर सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक क्षेत्र में आ रहे बदलावों से था। पिछड़ी जातियों के खुशहाल एवं मध्यम तबके के किसान विपक्षी सोशलिस्ट पार्टियों का आधार बन रहे थे। उन जातियों पर कांग्रेस का प्रभाव तो था, लेकिन उन्होने कांग्रेस के साभ कभी अपनापन महसूस नहीं किया गया! कांग्रेस से अलग होने के बाद सोशलिस्टों ने वैकल्पिक शक्ति खड़ा करने में उन्ही समुदायों को अपना आधार बनाया।[6]

1967-77 के दौर ने बिहार की राजनीतिक में भयानक उथल-पुथल मचा दिया। उसी दौर में राजनीतिक में 'दलबदल' का नया ट्रेंड स्थापित हुआ। 1967-69 के बीच मात्र दो वर्षो के दौरान छह सरकारों बनीं और उनका विधटन हुआ! महामाया प्रसाद सिन्हा की सरकार के पतन के बाद 28 जनवरी, 1968 को सतीश प्रदास सिंह की सरकार बनी। पांच दिन की यह सरकार बी0 पी0 मंडल के मुख्यमंत्री बनने की राह खोलने के लिए थी। जब बी0 पी0 मंडल विधान परिषद के सदस्य बने तो, शोषित दल की -असली सरकार उनके नेतृत्व में 1 फरवरी 1968 को बनी। बी0 पी0 मंडल के 36 सदस्यीय मंत्रिमंडल में मुख्यमंत्री सहित लगभग आधे लोग पिछड़ी जाति के थे।[7]

बिहार में 1967-72 के बीच राजनीतिक अस्थिरता का दौर रहा। 1967 में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी को सरकार के पतन के बाद 72 के विधानसभा चुनावों तक नौ सरकारे बनीं! सोशलिस्ट पार्टी के टूट से बनी बी0 पी0 मंडल की पहली पिछड़ी जातियों की सरकार इसी दौर में बनी!

उथल-पुथल के इस दौर में समाजिक परिवर्तन के संकेत मिलने शुरू हो गये थे। यह संकेत राजनीतिक और समाज में पिछड़ा उभारके रूप में चिन्हित हुआ। कांग्रेस राजनीतिक व सामाजिक स्तर पर कमजोर हुई। सत्ता पर कब्जा करने और कायम रखने के लिए उसका ब्राह्म-दलित-मुसलमान के त्रिकोण में सुरक्षित 'वोट बैंक' का दिवाला पिटने लगा था। स्वतंत्रता आंदोलन में अर्जित 'पुझय' की उसकी 'माया' चुक रही थी। उसके समानांतर सामाजवादी शक्तियों का राजनीतिक विकास और विस्तार हो रहा था। संगठन कांग्रेस, लोकतांत्रिक कांग्रेस जैसे संगठन अस्तित्व में आ गये थे, जो कांग्रेस के खंडित चरित्र के प्रमाण जैसे थे। कांग्रेस में एक तरफ ब्राह्मण, भूमिहार और राजपूत लॉबियों की आपसी प्रतिद्वंद्विता बढ़ गयी थी और दूसरी तरफ उसके पिछड़े आधारों का क्षरण हो रहा था।

राजनीतिक अस्थिरता व पिछड़ा उभार के इस दौर में बिहार में नक्सली उभार की धमक सुनाई पड़ने लगी। नक्सली आंदोलन ने बिहार के दबे और सताये हुए समुदायों को आकर्षित किया। आंदोलन के पहले चरण में मुसहरी, सूर्यगढ़ा, संथालपरगना में नक्सलवादी सक्रिय हुए![8]

बिहार की राजनीति में चुनावी हिंसा एवं दलित वर्ग

1966से 1980 के बीच हिंसा की घटनाओं को लेकर किये गये एक अध्ययन का सार यह है कि राज्य में हिंसा की घटनाए जमीन एवं जाति के नाम पर होती है। पहली श्रेणी में जबरन फसल कठाई, न्यूनतम मजदूरी की मांग, बंधुआ मजदूरी, फसल लूट, गैरमजरूआ जमीन पर कब्जा, फसलों की बर्बादी, सिंचाई, बइाईदारी, एवं नक्सली आंदोलन, लम्बे समय का भूमि विवाद, भूदान की जमीन, मठ की जमीन एवं दूसरे गॉवों की जमीन पर कब्जे से लकर मछली मारने, जमीन जोतने तक के मामले शामिल हैं। दूसरी श्रेणी की घटनाएू अन्तरजातीय विवाह, दुश्मनी, सामाजिक प्रभुत्व बनाये रखने का जबरिया, प्रयास, यौन शोषण, छुआछूत व दो विरोधी जातियों के बीच जमीन पर कब्जे की होड़, चुनाव के दौरान बुथ कब्जा आदि के कारण होती है।[9]

अमत्र्य सेन का कहना है कि बिहार प्रांत में 'हिंसा के बहुत ऊंचे स्तर' का कारण यह भी है कि विषमताओं की पैठ बहुत गहरी बनी हुई है। आर्थिक गैरबराबरी से सामाजिक जीवन का स्वरूप, राजनीतिक प्रक्रियाओं का चरित्र, सरकार की प्राथमिकताएं, सब कुछ बदल जाते हैं। विषमता सामाजिक तनाव का कारण बन सकती है। इससे हिंसा जन्म ले सकती है।

पिछले पचास वर्षो में बिहारी समाज मे यही नयी चुनाव संस्कृति पैदा हुई। यह संस्कृति बुदूक, धन और बल की संस्कृति है। सामंती प्रभाव वाले क्षेत्रों में इस संस्कृति ने अपना नया दबदबा कायम किया। जड़ जमाई मनोवृति ने इस बंदूक की संस्कृति से अपना नया दबदबा कायम किया। लठैत-अपराधी दोनाली पर गये। यह सब राजनीतिज्ञों के संरक्षण में हुआ। लेकिन तब तक गांवो की परिदृश्य बदलने लगा था। दलित-पिछड़ो में आजादी की नयी भूख जबने लगी थी। नक्सलवादियों ने उन्ही वर्गो को अपना आधार अनाया, जिन्हें कभी समाजवादियों तथा कम्युनिस्टों ने बनाया था। भूमि संघर्ष, न्यूनतम मजदूरी के संघर्ष के साथ वोट देने की आजादी का संघर्ष होने लगा। इस वर्ग को पहले दबा दिया जाता था। वह मतदान केन्द्रों तक नहीं पहुंचता था। कुछ चेतन हुआ तो नयी आधी आ गयी। राजनीति में अपराधियों का इस्तेमाल करने वाली शक्तियों और गांव-समाज से जुड़ कर काम करने वाली शक्तियों का टकराव होने लगा। यह टकराव पहले कम्युनिस्टों व समाजवादियों के साथ था।[10]

पहले दलित-पिछड़ा समुदाय 'बाबू' लोगो की बातें मान कर मतदान केन्द्रों से बिना वोट दिये लौट आता था, तो हिंसा नहीं होती थी। बाद के दौर में वह अपनी मज्री के अनुसार वोट देने की चाहत करने लगा तो हिंसा की घटनाओं में इजाफा होने लगा। मध्य बिहार में सामंती प्रभुत्व वाले इलाके में प्रतिरोध संघर्ष मुखरित हुआ तो नवोदित जमींदारों ने निजी सेनाओं के गठन के पीदे राजनीतिक ताकतें काम कर रही थीं। उनका मकसद था ग्रामीण असंतोष को दबाना। लेकिन असंख्य गांवो में प्रतिरोध्स संघर्ष मुखरित हुआ, तो महला तेज होता गया। रूपसपुर-चंदवा, बेलछी, परसबीधा, अरवल तक सैकड़ो नरसंहार हुए। सामंतों द्वारा गठित सेनाएं आम दिनों में ग्रामीणों के संघर्षा को कुचलती हैं और चुनाव के दिनों में बंदूक के बल पर बूथ कब्जा करती हैं। जनता व जन समुदाय से कटे नेता व पार्टियां समूह वोट के लिए अपराधियों पर पूरी तरह निर्भर होती गयीं। इन अपराधियों ने सोचा कि वे दूसरे को जिता कर भेज सकते है। तो खुद क्यों नहीं विधानसभा-लोकसभा में जा सकते हैं। इसी सोच से बिहार में नयी हिंसक राजनीति के बीच पड़े।[11]

बिहार में राजनीतिक पतन की शुरूआत या रातोंरात नहीं हुआ। यह भ्रूण रूप में पहले भी थी। बिहार के पहले आम चुनाव से तीसरे आम चुनाव तक हिंसा की प्रवृतियां छिटपुट रूप से दिखाइ पड़ती है। उसके बाद तो जैसे चुनावी हिंसा का लावा ही फूट पड़ा।

बिहार के चुनाव में गलत व आपराधिक प्रवृतियों की घुसपैठ को तीन कालखंडों में विभक्त किया जा सकता है- (क) 1952-62। इस दौर में कांग्रेस का निष्कटक राज रहा और वह लगातार चुनाव जीतती रही। चुनाव के दौरान मतदाताओं को दबाने का चलन काम कर रहा था, पर खुले तौर पर यह सब न था। (ख) 1967-72। 1967 चुनाव में कांग्रेस को पराजय का मुंह देखना पड़ा। कांग्रेस सत्ताच्युत हो गयी। बिहार सहित नौ राज्यों में संविद सरकारें बनी। 1969-72 के चुनावों में आपराधी शक्तियों, हिंसा, बूथ लेट और हर तरह के हथकंडो का प्रवेश हुआ। (ग) 1977 और उसके बाद के चुनावों में 'सत्ता के लिए' हर तरह की प्रवृतियों की खुली घुसपैठ, बूथ-लूट और संगठित हिंसा परवान चढ़ी।[12]

बिहार में मतदान की पवित्रता के बारे में घारणा उलट गयी है और शांतिपूर्ण निष्पक्ष मतदान अतीत की याद भर हो कर रह गया। राज्य के मुख्य निर्वाचन अधिकारी की 1962 में लिखी रिपोर्ट के मुताबीक, मतदान के दिन पूर्व जैसा माहौल था। महिलाएं रंग-बिरंगी साड़िया पहन कर वोट डालने आयीं। कुछ महिलाएं तो घूंघट काढ़े और बुर्का पहने हुई थीं। उनमें वोट डालने का उत्साह देखते बनता था।

बिहार में प्रतिदिन होने वाली हिंसा में दस से अधिक आदमी मरते हैं। सालाना मारे जाने का औसत साढ़े चार-पांच हजार बैठता है और देश में चुनावी हिंसा का रिकार्ड भी बिहार के ही नाम है। 1985 में हुए चुनाव को लेकर संसद में सवाल पूछा गया कि किन-किन राज्यों में कितनी चुनावी हिंसा हुई। जवाब में गृह राज्य मंत्री ने कहा कि बिहार में लोकसीाा चुनाव में 28 तथा विधान सभा में 91 हिंसा की घटनाएं हुई।

गृह मंत्री की रिपोर्ट के अनुसार देश भर में हुए चुनाव में हिंसा की कुल 161 घटनाएं घटीं। इसमें अकेले बिहार में 119 घटनाएं घटीं। बिहार को छोड़कर शेष राज्यों में हिंसा की मात्र 42 घटनाएं घटी।

बिहार में 1977 के चुनाव के बाद हिंसा की घटनाओं में लगातार वृद्धि हुई है और इसने एक संगठित रूप अख्तियार कर लिया है। 1977 के चुनाव में हिंसा का रिकार्ड 194 का रहा, जिसमें कुल 26 लोग मारे गये और घायल हुए 309 व्यक्ति। 1980 के चुनाव में मारे जाने वाले लोगों की संख्या बढ़कर 38 पहुॅच गयी और 788 व्यक्ति घायल हुए।

भाकपा के शीर्ष नेता चतुरानन मिश्र के अनुसार, '1977 में जनता पार्टी की जीत के बाद संपूर्ण राज्य में सामंतों की तरफ से एक आम हवा फैल गयी कि हरिजन, आदिवासी और कमजोर वर्ग के लोगों को सताओं-बेलछी, पथड्डा जैसी घटनाएं करो सामंतो द्वारा बड़े पैमाने पर बालिग मताधिकार का अपहरण हो रहा है। बूथ कब्जा करना आम बात हो गयी है। इसी चुनाव में गोह में मेरी पार्टी के दस आदमी मार डाले गये। वे गोली से मार दिये गये, क्योंकि उन्होंने बूथ कब्जा करने से रोका था।'

हिंसा के मामले में 1985 के विधान सभा चुनाव में पिछला रिकार्ड टूट गया। घटनाओं की संख्या और मरने वालों की संख्या देगुनी हो गयी। 1985 के चुनाव में हिंसा की कुल 1370 घटनाएं दर्ज की गयी, जिनमें 69 लोग मारे गये और घायल हुए 242। मतदान के पहले हिंसा की 37 घटनाएं हुई, जिनमें 11 व्यक्ति मारे गये और 29 घायल हुए। पुनर्मतदान के दिन भी हिंसा की घटनाएं दर्ज की गयी, जिनमें दो व्यक्ति मारे गया।

1991 लोकसभा चुनाव में मधेपुरा में एक निर्दलीस प्रत्याशी राजकुमारी चौधरी तथा गया (सुरक्षित) से भाजपा के उम्मीदवार ईश्वर चौधरी की हत्या कर दी गयी, जिससे इन संसदीय क्षेत्रों में चुनाव स्थगित हो गया।

लोकसभा के 1991 के मध्यावधि चुनाव को लेकर राज्य के तत्कालीन मुख्य सचिव कमला प्रसाद की अध्यक्षता में हुई बैठक में इस बात पर बहस हुई कि एक दिन का मतदान कम हिंसा के लिहाज से बेहतर होगया या दो दिन का? पुलिस महानिदेशक (स्पेशल ब्रांच) ने अपने विचारों को यों रखा- 'जहां तक मतदान कराने के दिनों का सवाल है पिछले अनुभवों के आधार पर यह महसूस किया गया कि एक दिन का मतदान बेहतर होगा। 1977 के आम चुनाव और 1980 के मध्यावधि चुनाव में तीन दिन के मतदान में मात्र तीन व्यक्ति मारे गये। इसी तरह 1984 में एक दिन के मतदान में जहां सिर्फ 12 लोग मारे गये, वहीं इसकी तुलना में नवम्बर 1989 के चुनाव में दो दिन में हुए मतदान में 40 लोग मारे गये। पुलिस महानिदेशक ने बैठक में यह भी बताया कि 1989 के चुनाव में मतपेटी छीनने की 327 घटनाएं हुई और 281 जगह दुबारा मतदान कराना पड़ा।

1989 के लोकसभा चुनाव में जहां 40 व्यक्ति मारे गये, वहीं इस चुनाव के कुछ दिनों बाद, 1990 में हुए विधानसभा के चुनाव में हिंसा की घटनाओं में वृद्धि हुई और 87 लोग मारे गये और 318 व्यक्ति घायल व्यक्ति घायल हुए। कुल 520 मामले दर्ज किये गये। 99 मामलों में उम्मीदवारों के समर्थकों ने गोलियां चलायीं जबकि पुलिस को 36 स्थानों पर गोलियां चलानी पड़ी।[13]

संदर्भः-

1. 'योगी', 29 सितम्बर, 1951
2. 'श्री बाबू एंड जेपीः एलिगेशन-काउंटर एलिगेशन', 1957, एन0 एम0 पी0 श्रीवास्तव।
3. 'मेरी जीवन यात्रा', राजुल सांकृत्यायन-4, पेज-83।
4. 'बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम', प्रसन्न कुमार चौधरी-श्रीकांत पेज-206।
5. 'दिनमान', 23-29 सितंबर, 1990, जुगुनू शारदेय।
6. 'बिहार में सामाजिक परिवर्त के कुछ आयाम', प्रसन्न कुमर चौधरी-श्रीकांत पेज-207।
7. 'दिनमान', 13 जुन, 1971।
8. वहीं।
9. बिहार के धधकते खेत खलिहानों की दास्तान, पेज-23।
10. दिनमान, 13 जनवरी, 1 70, पेज-22।
11. भाकपा-माले नेता रामनरेश राम से बातचीत।
12. सामयिक वार्ता, 16-31 दिसमबर, 1977, बजरंग सिंह।
13. गृह मंत्रालय के अधिकारियों के साथ 9.8.76 की बैठक के लिए भोजपुर प्रशासन द्वारा तैयार की गयी सूची और आर0 एन0 सिंह (डी0 आई0 जी0) की रिपोर्ट!

समकालीन भारत में नव मध्य वर्ग के निर्धारक, तत्व और विशेषताएँ

मो० शर्फुद्दीन

शोध-छात्र, राजनीति विज्ञान, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

वर्तमान में भारत के पूँजीवादी समाजों में मध्यम वर्ग ऊपरी पूँजीवादी वर्ग और निम्न वर्ग के बीच प्रमुख संतुलनकर्ता के रूप में लगातार मजबूती से उभर रहा है।[1] इससे साफ है कि भारत के सामान्य क्षेत्रीय प्रादेशिक समाचार-पत्रों व पत्रिकाओं से लेकर राष्ट्रीय समाचार पत्र-पत्रिकाओं तक में केवल इसी वर्ग के हितों व मूल्य और जरुरतों को केंद्रीय बिंदु बनाया जाता है। बाजारवादी समाजों में भी उत्पादन की बिक्री के लिए इसी वर्ग को ध्यान में रखा जाता है और इतना ही नहीं उद्योगपति करोड़ों-अरबों रुपये केवल विज्ञापन पर खर्च करते हैं जो भारत की केवल इसी मध्यम वर्ग की उपभोक्तावादी संस्कृति पर आधारित होता है।[2] समकालीन भारतीय आर्थिक जगत में सबसे बड़ा व विशाल बाजार भी मध्यम वर्ग के रूप में विद्यमान है जिसका तात्पर्य यह है कि समकालीन अंतर्राष्ट्रीय और भारतीय आर्थिक जगत नये मध्यम वर्ग से बिल्कुल गुंथा हुआ है[3] इसलिए यह खासतौर पर ध्यान रखता है कि उपभोक्तावादी संस्कृति की इस तरह से रचना की जाए कि भारतीय मध्यम वर्ग इस आकर्षण से घिरा रहे।

आकार की दृष्टि से भारतीय मध्यम वर्ग संपूर्ण यूरोपीय देशों से भी विशाल माना जाता है। एक अनुमान के अनुसार भारतीय मध्यम वर्ग चीन के मध्यम वर्ग से भी विशाल है। जैसा कि 1990 के दशक के आरंभ में एक परंपरागत अनुमान के अनुसार भारत में लगभग बीस करोड़ लोग मध्यम वर्ग में शामिल है और अन्य अनुमान के अनुसार इनकी संख्या लगभग बीस करोड़ से लेकर पचास करोड़ लोगों तक है[4] जो चीन के 130 मिलियन से लेकर 170 मिलियन लोगों से को मध्यम वर्ग की तुलना में काफी विशाल दिखता है।[5] हालॉकि यह निश्चित संख्यात्मक अनुमान नहीं है चूँकि 2020 में राष्ट्रीय व्यवहारिक आर्थिक शोध परिषद् (National Council of Applied Economic Research) ने इनकी सटीक जानकारी एकत्र करने की कोशिश की और यह अनुमान लगाया कि वर्तमान में भारतीय मध्यम वर्ग 35 करोड़ से लेकर 40 करोड़ तक है।[6] आखिर इस अनुमान ये स्पष्ट समझा जा सकता है कि बाजार से लेकर राजनीतिक क्षेत्र तक मध्यम वर्ग आकर्षण का केंद्र बन गया है।

हालॉकि यह आकर्षण 1980 के दशक तक बिल्कुल पृष्ठभूमि में ही रहा, चूँकि उस समय दूरदर्शन भी अपने कार्यक्रमों में इस वर्ग की अपेक्षा भारतीय ग्रामीण व शहरी भारत के गरीब तबके तक ही सीमित रहता था, लेकिन समकालीन भारत में शहरीकरण बढ़ गया है और यहॉ मनोरंजन के इलेक्ट्रॉनिक सामान शहरी मध्यम वर्ग की पहुँच में हो गये हैं। वे अब महँगे से महँगा सामान भी आसान किश्तों में खरीदकर आनंद उठाने लगे हैं। जिसके परिणामस्वरूप मनोरंजन के साधनों-टेलीविजन, एफ.एम. रेडियो, सिनेमाघर और थिएटर भी भारत के निम्न गरीब वर्ग के स्थान पर मध्यम वर्ग की अति दिखावे वाली संस्कृति पर आधारित होने लगे हैं और उसका मतलब यह है कि लगातार बढ़ते हुए मध्यम वर्ग के प्रभाव के कारण भारतीय संस्कृति अपनी पुरानी गरीब-सी दिखने वाली संस्कृति से छुटकारा पाना चाहती है जिसे लगातार टेलीविजन और सिनेमा ऐसा करने में लगे हैं।[7] इससे दो प्रकार के सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन देखने में आ रहे हैं- प्रथम, मनोरंजन जगत को अब सालाना हजारों-करोड़ रुपये का व्यापार मिलने लगा है और मनोरंजन जगत भारत के सबसे बड़े उद्योगों में शामिल हो गया है जिससे नव औद्योगिक वर्ग नई परिभाषा ले रहा है। द्वितीय मध्यम वर्ग और मनोरंजन के आपसी मिलन से नई जीवन शैली भी चलन में आने लगी है। मगर इतना होने के बावजूद समस्या यह है कि मध्यम वर्ग अभी भी अपनी सर्वव्यापक व आकार की समस्या से जुड़ा है।

भारत में मध्य वर्ग कौन है और इसकी विशेषता क्या है? यह प्रश्न भी कम रूचि पैदा करने वाला नहीं है, चूँकि यह प्रश्न भी वैश्विक मध्य वर्ग की भाँति उन्हीं चरणों व निर्धारक तत्वों से प्रभावित होता रहा है जिसकी निरपेक्ष व्याख्या करना बिल्कुल प्रासंगिक नहीं होगा।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में (नव) मध्य वर्ग की अवधारणा को भारतीय परिप्रेक्ष्य में यथावत स्वीकार कर लेने से कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अमेरिकी व यूरोपीय मध्य वर्ग को आज के मापदंड पर भारतीय समाजों में रखकर देखें तो हम पायेंगे कि वहाँ का मध्य वर्ग तो भारतीय परिप्रेक्ष्य में अमीर व बुर्जुआ वर्ग की श्रेणी में आ जायेगा। दूसरा, यूरोपीय व पाश्चात्य समाजों की अपेक्षा भारत में वर्ग का निर्माण जाति पर आधारित सामाजिक व्यवस्था से बड़ी सूक्ष्मता के साथ जुड़ा हुआ है।

भारत में यह व्यवस्था अभी बनने के दौर में है। इसका वर्णन अभी न तो जाति की शब्दावली में किया जा सकता है, और न ही शुद्ध वर्ग की शब्दावली में। यह जरुर है कि पिछले कुछ वर्षों में इस श्रेणी की महत्ता काफी कुछ स्पष्ट हो गई है। इसे हम 'नया मध्य वर्ग' कह सकते हैं। यह नया इसलिए है, क्योंकि इसके उद्भव को सीधे-सीधे जाति व्यवस्था के विकास से जोड़ा जा सकता है और इस 'नएपन' ने मध्य वर्ग को पहले से कहीं अधिक विविध बना दिया है। पहले के मध्य वर्ग यानी आजादी के समय इस वर्ग पर सवर्णों की चौधराहट थी। इसके अलावा पारंपरिक श्रेणी क्रम में ऊँचे दर्जे को मापदंड बनाकर इस पुराने मध्य वर्ग में प्रवेश पाया जा सकता था। इसकी संस्कृतिकरण वाली जीवन शैली एक सांस्कृतिक संलक्षण की तरह उभरती थी। जबकि नये मध्य

वर्ग की रचना में कर्मकांड और संस्कृतिकरण अप्रासंगिक हो गये हैं। इसकी अन्य विशेषता यह भी है कि यह सभी जातियों और धार्मिक लोगों के लिए समान रूप से खुला हुआ है। आधुनिक शिक्षा गैर पारंपरिक व्यवसायों, ऊँची आमदनी और राज्यसत्ता से लैस होकर कोई भी जाति या उसका सदस्य इसमें प्रवेश प्राप्त कर सकता है।[8] नये मध्य वर्ग की सदस्यता नई जीवन शैली में (आधुनिक उपभोक्तावाद शैली) के साथ-साथ कुछ खास तरह की आर्थिक परिसंपत्तियों के स्वामित्व और मध्य वर्ग के होने की आत्मचेतना पर निर्भर होती है।

भारत में मध्य वर्ग से संबंधित आँकड़े जुटाने के उद्देश्य से दिल्ली स्थित 'विकासशील समाज अध्ययन पीठ' ने भारत के लगभग सभी राज्यों (जम्मू कश्मीर को छोड़कर) में एक सैंपल सर्वे किया जिसके आधार पर मध्य वर्ग का मोटा-मोटा व्यवहारिक खांका खींचने में मदद मिली। सर्वेक्षण में मुख्यत: चार विशेषताओं का पता लगाया गया और इनमें से कम से कम दो लक्षण पूरे करने वाले लोगों को मध्य वर्ग में शामिल किया गया। जैसे-

1. कम से कम दस साल की स्कूली शिक्षा मिली हो,
2. चार में से कम से कम तीन परिसंपत्तियाँ उसके पास हो-मोटर वाहन, टी. वी., बिजली का पम्पिंग सेट और गैर-खेतिहर जमीन,
3. ईंटों और सीमेंट से बने हुए पक्के मकान में रहने वाले और
4. सरकारी व गैर-सरकारी प्रशासनिक सेवाओं खासकर लिखने-पढ़ने वाले काम करने वाले लोग। अत: इस आधार पर सीएसडीएस ने लगभग बीस प्रतिशत लोगों को मध्यवर्गीय संरचना में शामिल पाया।[9]

दरअसल इस सर्वेक्षण से और भी कुछ रोचक तथ्य उभर कर आये जो परंपरागत भारतीय मध्य वर्ग और समकालीन भारतीय 'नये मध्य वर्ग' के बीच विभाजक रेखा को और स्पष्ट करने वाले सिद्ध हो सकते हैं जैसे-स्वतंत्रता के समय मध्य वर्ग केवल अंग्रेजी शिक्षित सवर्णों से ही मिलकर बना था। चूँकि इनके पास अन्य गैर-सवर्ण जातियों के मुकाबले ज्यादा आर्थिक-सामाजिक संसाधन थे जिसके बल पर वह लोग इसमें आसानी से शामिल होने लगे थे। लेकिन बाद के तीस वर्षों में देश में कृषि-आंदोलनों के परिणामस्वरूप धनी किसानों की मजबूत प्रगतिशील जातियाँ भी इसमें शामिल हो गईं जिससे इसके आकार में वृद्धि हो गई। इस तरह इस अवधि में एक छोटे ग्राम आधारित मध्य वर्ग का उदय हुआ। हालांकि सर्वेक्षण के विश्लेषण से पता चला कि आज भी भारतीय 'मध्य वर्ग' पर सवर्ण और धनी किसान जातियाँ हावी हैं। इन दो सवर्ण श्रेणियों में द्विज सवर्ण और गैर-द्विज ताकतवर जातियाँ सर्वेक्षण की 25 प्रतिशत थी, लेकिन वह मध्य वर्ग की 50 प्रतिशत निकलीं। इसका तात्पर्य यह भी है कि आज के मध्य वर्ग में सवर्णों का प्रतिनिधित्व घटा है, क्योंकि पुराने मध्य वर्ग में तकरीबन सभी सवर्ण ही होते थे।[10] जो निश्चित ही सामाजिक परिवर्तन का द्योतक है।

इस सर्वेक्षण में पहली बार निचली जातियों के लिए भी सुखद संभावना पैदा हुई। क्योंकि इसमें मध्यम वर्ग की आधी सदस्यता निचली जातियों की विभिन्न सामाजिक संस्थाओं की निकली। इसमें दलित, आदिवासी, किसानों और कारीगरों के पिछड़े समुदाय और धार्मिक अल्पसंख्यक शामिल हैं। यद्यपि ये समूह सर्वेक्षण की 25 प्रतिशत हिस्सेदार थी, लेकिन ये मध्य वर्ग की 50 प्रतिशत सदस्यता ही प्राप्त कर पाये। अर्थात इनकी मध्य वर्ग में उपस्थिति सवर्ण और मध्य जातियों की तुलना में कहीं कम निकली, चूंकि इसके लिए परंपरागत सामाजिक-आर्थिक संसाधन जिम्मेदार रहे थे, मगर फिर भी अगर इस उपस्थिति को इन जातियों के निचले सांस्कृतिक, सामाजिक दर्जे के संदर्भ में देखा जाए तो उनका मध्य वर्ग में इतना रूपांतरण भी काफी सकारात्मक महत्व रखता है। धीरुभाई शेठ कहते हैं कि अछूत रह चुकी जातियों के सदस्यों को शिक्षा, संपत्ति, राजसत्ता आदि के अवदान सामाजिक गतिशीलता के जरिए मिल जाते हैं तो निचली जातियों के सदस्यों को मध्य वर्ग में प्रवेश के रास्ते में उनका निम्न सांस्कृतिक कर्मकांडीय दर्जा बाधा नहीं बनता। इन लोगों को मध्य वर्ग के सदस्य की चेतना प्राप्त करने में कोई भी दिक्कत नहीं आती।[11]

हाल ही में यह भी ज्ञात हुआ है कि आज के भारतीय मध्य वर्ग में ग्रामीण सदस्यों की संख्या काफी बढ़ रही है। ऐसा इसलिए हो रहा है, चूँकि इसके दायरे में पहले तो ग्रामीण समाजों की ताकतवर जातियाँ और फिर हाल ही में प्रवेश करने वाली वे ग्रामीण निम्न जातियां हैं जो आधुनिक अर्थव्यवस्था और प्रशासनिक संस्थाओं में भागीदारी करके अपना सामाजिक-आर्थिक स्तर उठाने में सफल रही है।[12] इससे स्पष्ट है कि आज का भारतीय मध्य वर्ग जनसंख्यामूलक दृष्टि से कोई एक निश्चित सांस्कृतिक कर्मकांड पर आधारित दर्जेवाली श्रेणी से नहीं निकला है। इसका वास्तविक स्वरूप तो सामाजिक-सांस्कृतिक किस्म का ही है। लेकिन इस वर्ग में प्रवेश करने वाले विभिन्न जातियों की जीवन शैली परंपरा से आगे जाकर आधुनिक पाश्चात्यवादी हो गई है। या कहना चाहिए कि यह वर्ग बाहरी तौर पर तो आधुनिक पाश्चात्यवादी व्यवहार करने वाला है और वैसा दिखता भी है, लेकिन इसके विपरीत आंतरिक तौर पर यह वही परंपरागत जातिवादी और सांस्कृतिक परंपरावादी होता है। इसमें केवल अंतर इतना है कि अधिकतर मौकों पर (सामाजिक स्तर पर) पर यह सेकुलरवादी व्यवहार करता है और अवसर मिलने पर परंपरा और आधुनिकता दोनों विरोधी प्रतिमानों में से अवसर की नजाकत देखकर चुन लेता है अर्थात जिससे इसे अधिक लाभ मिलता है।

ऐसा इसलिए भी है, चूंकि मध्य वर्ग के सदस्यों और इसके दायरे से बाहर सामान्यजन के राजनीतिक व्यवहार और प्राथमिकताओं के बीच भारी अंतर होता है। चाहे किसी राजनीतिक दल को समर्थन देने जैसा राजनीतिक मानक हो या फिर सांस्कृतिक वर्ग सिद्धांत में आस्था व विश्वास करने वाला सामाजिक, सांस्कृतिक मानक हो। अक्सर देखने को मिलता है कि मध्य वर्ग के निचली जाति के सदस्य और ऊँची जाति के सदस्यों के बीच आपसी अंतर कम होता है, जबकि ये मध्यवर्गीय अपनी ही जाति के गैर-मध्यवर्गीय सदस्यों से इन मानकों में मतभेद कहीं ज्यादा गहरे हो सकते हैं।[13]

अंतिम विश्लेषण के तौर पर हम कह सकते हैं कि पिछले दशक में नव मध्यम वर्ग की सक्रियता में निरंतर वृद्धि होती रही है, भारत में भ्रष्टाचार के विरुद्ध ऐतिहासिक आंदोलन इसका जीवंत उदाहरण है। इसी आंदोलन से आम आदमी पार्टी ('आप' पार्टी) का जन्म हुआ था। हाल ही के इतिहास पर अगर हम नजर दौड़ाएँ तो पायेंगे कि 2014 के आम चुनाव में बड़े शहरों के अलावा अन्य शहरों में भी मध्यम वर्ग का मतदान पहली बार गरीब वर्ग से कहीं अधिक हुआ था। वस्तुत: यह तर्क दिया जाता है कि मध्यम वर्ग में सरकारी नियमों के प्रति जागरूकता बढ़ जाने के कारण नीति संबंधी मुद्दों पर वैचारिक अंतर बढ़ने से ही मुख्यत: 2014 में भाजपा को चुनाव में भारी सफलता मिली थी। व्यापक शहरीकरण और आमदनी में वृद्धि होने से जनसांख्यिकीय परिवर्तन के कारण भविष्य में ये प्रवृत्तियाँ और भी बढ़ सकती हैं।

सन्दर्भ सूची:-

1. वाल ब्यूरिस, ''द डिसकवरी ऑफ द न्यू मिडिल क्लास'' इन ऑर्थर जे. विदिच, द न्यू मिडिल क्लासेज, लाईफ-स्टाईल्स, स्टेटस क्लेम्स एंड पॉलिटिकल ओरियंटेशन, न्यूयॉर्क यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 1995, पृ. 18-19.
2. सुरिन्द्र एस. जोधका, द इंडियन मिडिल क्लास, ऑक्सफोर्ड, न्यू दिल्ली, 2016, पृ. 6.
3. मनीष के. झा एण्ड पुष्पेन्द्र, बियोन्ड कन्जम्पसन: इंडियाज न्यू मिडिल क्लास इन द नियो-लिबरल टाईम्स, रूटलेज, न्यू दिल्ली, 2020, पृ. 73.
4. पवन के. वर्मा, द ग्रेट इंडियन मिडिल क्लास, विकिंग, दिल्ली, 1998, पृ0-170.
5. सुजीत महापात्रा, ''द एक्सप्लोजन ऑफ द मिडिल क्लास'' इन नीरा चंदोक (संपा.) कंटेम्परारी इंडिया: इकोनॉमी, सोसाइटी, पॉलिटिक्स, पियर्सन, दिल्ली, 1999, पृ0-121.
6. द हिन्दू, 22 मई, 2019त्र
7. मरियम एसलैनी, कॉन्टेस्टेड कैपिटल: रूरल मिडिल क्लास इन इंडिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 2019.
8. लीला फर्नांडिस, इंडियाज न्यू मिडिल क्लास, यूनिवर्सिटी ऑफ मिनिसोटा प्रेस, मिनिसोटा, 2006.
9. अभिजीत राय, द मिडिल क्लास इन इंडिया: फ्रॉम 1947 टू द प्रेजेंट एंड वियोंड, एशियन पॉलिटिक्स, वॉल्यूम, 23, नं. 1, स्प्रिंग 2018.
10. उपरोक्त.
11. लीला फर्नांडिस, पूर्वोक्त.
12. मनीष के झा एंड पुष्पेन्द्र (2019), पूर्वोक्त.
13. धीरुभाई सेठ, ''नये मध्य वर्ग का उदय'', अभय कुमार दुबे (सं.) लोकतंत्र के सात अध्याय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 113-114.

भू धारकों के अधिकार: भू अर्जन एवं प्रतिकर निर्धारण की चुनौतियाँ

विजय यादव

शोध छात्र (विधि), डॉ. सी. वी. विश्वविद्यालयकरगी रोड कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

डॉ० जैनेन्द्र कुमारपटेल

सह प्राध्यापक, विधि विभाग, डॉ. सी. वी. विश्वविद्यालय करगी रोड कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश:-

44वां संविधान संशोधन भूमि सुधार कानूनों को भाग 12 में एक संवैधानिक अधिकार के रूप में जोड़ता है जबकि भारतीय संविधान के भाग 3 काअनुच्छेद 31 संपत्ति केमौलिक अधिकार को निरस्त करता है। अनुच्छेद 31क और 31ख का मुख्य लक्ष्य भूमि सुधार कानूनों को इस आधार पर कानूनी रूप से चुनौती देने से रोकना हैकि वे संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 का उल्लंघन कर रहे हैं। 1894 के भूमि अधिग्रहण अधिनियम में, अधिग्रहण की गई भूमि के लिए मुआवजे के भुगतान का प्रावधान किया गया था, लेकिनइसमें पर्याप्त एवं मुआवजे का प्रावधान का अभाव था। इस अभाव को पूरा करने के प्रयोजन 2013 मेंभारतीय संसद ने "भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्व्यसथापन अधिनियम, उचित मुआवजे और पारदर्शिता के अधिकार अधिनियम, 2013" के रूप में जाना जाने वाला एक नया कानून अधिनियमित किया है। संविधान के अनुच्छेद 31क एवं 31खमें भूमि अधिग्रहण विधियों को गारंटीकृत किया गया है और 2013 के अधिनियम के अंतर्गतउचित मुआवजे और पारदर्शिता के अभाव में किया गए भू अर्जन को संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 का उल्लंघन माना जाएगा, परिणामत: शोध अध्ययन में भू अर्जन करते समय ध्यान में रखे जाने वाले प्रावधानों का अध्ययन प्रस्तुत है।

कुंजी शब्द:- भूमिअधिग्रहण, कृषि भूमि, हित, बाजार लागत, पुनर्वास, मुआवजा, भूमि राशि।

प्रस्तावना:-

भारतीय संविधान के भाग 3 में वर्णित अनुच्छेद 31 के अंतर्गत संपत्ति का मौलिक अधिकार 44वे संशोधन अधिनियम के द्वारा निरस्त कर दिया गया। इस अधिकार को संविधान के भाग 12, अनुच्छेद 300 के में संवैधानिक अधिकार के रूप में जोड़ दिया गया है। भूमि सुधार विधियों द्वारा अनुच्छेद 14 एवं अनुच्छेद 19 का अतिक्रमण होने पर अनुच्छेद 31 के एवं अनुच्छेद 31ख ऐसी भूमि सुधार विधियों को इस आधार पर न्यायालय में चुनौती देने से सुरक्षा प्रदान करते हैं[1]।

अनुसंधान का महत्व:-

भूमि अर्जन अधिनियम 1894 में भूमि अर्जन के प्रति प्रतिकर निर्धारण एवं पारदर्शिता संबंधी कमियों को दूर करने हेतु भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णयों में अनेकों निर्देश दिए हैंजिसके अनुसरण में भूमि अर्जन, पुनर्वासन एवं पुनर्व्यसथापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम 2013 पारित किया गया। इस अधिनियम के प्रावधान भी कृषकों के अधिकारों को संरक्षित करने के लिए अपर्याप्त हैं। इस अधिनियम के अंतर्गत भू अर्जन प्रकरणों में उचित प्रतिकर की पारदर्शिता, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन संबंधी उपचरात्मक प्रावधानों की पर्याप्तता का विश्लेषण करना इस शोध का मुख्य उद्देश्य है ताकि कृषक अधिकारों का उल्लंघन को रोक जा सके और उद्देश्यपरक भू अर्जन किया जा सके। सरकार द्वारा लोकहित में भू अर्जन किए जाने की आवश्यकता एवं कृषकों के भूमि और पुनर्वासन संबंधी हितों के साथ जीवन जीने की स्वतंत्रता के अधिकार के मध्य किस प्रकार विधायी एवं न्यायिक संतुलन स्थापित किए जाए इस अध्ययन से स्पष्ट होगा।

परिभाषा:-

भूमि अर्जनपुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता का अधिनियम 2013 के अनुसार भूमि के प्रतिकर का अर्जन की लागत के रूप में परिभाषित किया है[2]। जिसके अनुसार अर्जन की लागत के अंतर्गत आता है:-

1. मुआवजेकीराशि, जिसमेंसुधार, भूमिअधिग्रहण, पुनर्वास, और पुनर्वासप्राधिकरण या अदालत द्वारा दिए गए किसी भी बढ़े हुए मुआवजे, उस पर देय ब्याज, और ऐसे प्राधिकरणया अदालत द्वारा प्रभावित परिवार को देय होने के लिए तय की गई कोई अतिरिक्तराशि शामिल है, या
2. विस्थापित और नकारात्मक रूप से प्रभावित परिवारों के निपटान के लिए भूमि और भवन प्राप्त करने की लागत, या
3. पुनर्वास क्षेत्रो में बुनियादी ढांचे और सुविधाओं की लागत, या
4. इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार निर्धारित पुनर्वास और पुनर्वास की लागत, या
5. इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार निर्धारित स्थानांतरण की लागत, या
6. क- परियोजना स्थल की भूमि और परियोजना क्षेत्र के बाहर की भूमि सहित भूमि अधिग्रहण के`लिए प्रशासनिक लागत, मुआवजे की लागत के प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए जो संबंधित सरकार निर्दिष्ट कर सकती है।

ख- भूस्वामियों के`पुनर्वास और पुनर्वास के संबंध में होने वाली प्रशासनिक लागत, अन्य परिवार जिनकी संपत्ति का अधिग्रहण किया गया है, अधि ग्रहण के लिए विचार किया जा रहा है, या ऐसे अधिग्रहण से प्रभावित अन्यपरिवार; या

7. सामाजिक समाधानों की जांच के लिए अध्ययन की लागत।

उद्देश्यः-

इस शोध के मुख्य उद्देश्य निम्न बिंदुओं में उद्धृत हैंः-

1. जिन किसानों की जमीन खरीदी जा रही है, उनके मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए उचित मुआवजा कैसे तय किया जाए।

2. यह निर्धारण करना की भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुन र्व्यवस्थापन अधिनियम 2013 में उचित मुआवजे और पारदर्शिताउ का अधिकार का प्रवर्तन किया जा रहा है या नहीं।

3. यह निर्धारण करना की क्या भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया किसानों को अधिकारोो का उल्लंघन तोन हीं करती और यदि करती है, तो स्थिति को सुधारने के लिए उठाए जाने वाले`कदमों की पहचान करना।

4. व्यक्तियों के बीच मे आवज के निर्धारण करने हेतु समान मापदंडों का प्रयोग करके समरूपता लाना।

शोध साहित्य समीक्षाः-

इस शोध में शोधकर्ता ने यह निष्कर्ष दिया है कियह सुनिश्चित करने के लिए कि जमींदार, विशेष रूप से किसान, जबरन अधिग्रहण और स्वैच्छिक बिक्री दोनों में अपनी भूमि का उचित मूल्य प्राप्त करता है, एक निष्पक्ष मूल्यांकनकर्ता को नियुक्त करना आवश्यक है। इसके महत्वपूर्ण घटकों के अधिग्रहण और विकास दोनों के लिए समानांतर गैर-अनिवार्य ढांचे की आवश्यकता है।[3]

यह शोध इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि कैसे बुंदेलखंड के बांदा जिले के किसान फोर्टविलियम हंटर द्वारा 1824 में भूमि अधिग्रहण के लिए नियम के लिए आधार तैयार कियातथा किस प्रकार केंद्र सरकार इस कानून के अनुसार किसानों की जमीन पर घुसपैठ करती रहती है।[4]

यह शोध पत्र भारत में विभिन्न भूमि अधिग्रहण अधिनियमों भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894, भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्वास विधेयक, 2013 तथा भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्व्यसथापन अध्यादेश, 2015 का तुलनात्मक विश्लेषण करता है और भूमि की आवश्यकता वाली तीन अलग-अलग विकास परियोजनाओं के लिए अधिनियम के प्रावधानों के अंतर के प्रभाव का व्यष्टि अध्ययन भी करता है।[5]

परिकल्पनाः-

भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 में पर्याप्त मुआवजे का प्रावधान नहीं था, भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने अनेक निर्णय पारित किए जो जनता को पर्याप्त मुआवजा प्रदान करने के लिए निर्देशित करता है। भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्व्यवस्थापन अधिनियम, 2013 में उचित मुआवजे और पारदर्शिता का अधिकार 2013 में सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों के आधार पर पारित किया गया था, और यह उचित मुआवजे के निर्धारण के लिए कानूनी ढांचे के रूप में कार्य करता है। हालांकि, उपरोक्त कानूनों के बावजूद, मुआवजे का भुगतान करने की कोई समय सीमा स्थापित नहीं की गई है, और न ही यह तय किया गया है कि अगर समय पर मुआवजे का भुगतान नहीं किया गया, तो भूमि स्वामी उक्त भूमि को पुनः प्राप्त करने का अधिकारी होगा। सरकार इस बात की भी निर्धारण करेगी कि उक्त भूमि काहकदार कौन है और इससे उस हकदार को कितना नुकसान हुआ है? परिणामस्वरूप, यह स्पष्ट है कि इस कानून में कई कमियाँ हैं जिन्हें अध्ययन, आंकड़ों का संग्रहण और विश्लेषण के माध्यम से चिह्नित किया जाएगा। इस बात की भी जांच की जाएगी कि जिन लोगों की भूमि अधिग्रहीत की गई है, उन्हें किन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है और इससे उनकी पारिवारिक एवं आर्थिक स्थिति किस प्रकार प्रभावित हो रही है तथा इन चुनौतियों से निपटने के लिए कौन-कौन से कदम उठाए जाए?

इस अधिनियम में उपबंधित मुआवजे के निर्धारण हेतु पर्याप्त प्रावधान नहीं हैं। इसमें संशोधन की नितांत अवश्यकता है। जिससे लोगों के आजीविका एवं जीवन के अधिकार को संरक्षित किया जा सके। इस शोध में निष्कर्ष एवं सुझाव स्वरूप समय सीमा निर्धारित करना भी है जिससे यदि निर्धारित समय सीमा में अधिग्रहण प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है तो अधिग्रहण अधिकारी अधिग्रहित भूमि को अपने नियंत्रण मेंले लेगा और अधिग्रहण प्रक्रिया पूर्ण नहीं होती या मुआवजा नहीं दिया जाता है तो संपत्ति उसके असली हकदार को वापस कर दी जाएगी।

भूमि अर्जन का सिद्धांतः-

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने दिशानिर्देशों में निर्दिष्ट किया है कि संपत्ति अधिग्रहण अधिनियम के प्रावधान जो भूमि अधिग्रहण का अधिकार प्रदान करते हैं, का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए। भूमि अधिग्रहण का लक्ष्यजनहित एवं सार्वजनिक उपयोग होना चाहिए।सार्वजनिक हित समान रूप से महत्वपूर्ण है, कोई भी प्रतिपूर्ति भ्रामक या अवास्तविक नहीं होनी चाहिए। भूमि अधिग्रहण करते समय पर्याप्त मुआवजे के अलावा संतुष्टि के रूप में कुछ राशि प्रदान करने का प्रावधान है अतः भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया तब तक पूर्ण नहीं मानी जाएगी जब तक भूमि स्वामी को पूर्ण प्रतिकर प्राप्त नहीं हो जाता। ब्याज प्रतिकर का हिस्सा नहीं होता इसलिए इसे प्रतिकर के अलावा अतिरिक्त देय मन गया है[6]।

प्रतिकर निर्धारण में भारतीय उच्चतम न्यायालयकी मार्गदर्शिकाः

मेजर जनरल कपिल मेहरा एवं अन्य बनाम् भारत संघ एवंअन्य[7]नये अधिनियम भूमि अर्जन पुर्नवासन और पुर्नव्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम 2013 केअंतर्गत बाजार मूल्य शब्द को उक्त वाद में परिभाषित किया गया है-

बाजार मूल्यः-

भूमि अधिग्रहण के समय मुआवजा निर्धारण हेतु पहला प्रश्न भूमि के बाजार मूल्य का उत्पन्न होता है। भूमि अधिग्रहण अधिकारी को अधिग्रहीत भूमि के बाजार मूल्य का निर्धारण करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिएः-

1. भूमि की वर्तमान भौगोलिक स्थिति।
2. संपत्ति का वर्तमान उपयोग।
3. मौजूदा लाभ, जैसे राज्य या राष्ट्रीय राजमार्गों, सड़कों या विकसित क्षेत्रों से निकटता।
4. उसी पड़ोस, गांव या स्थान में खरीदी गई संपत्ति के साथ-साथ उसके बगल में या आस-पास स्थित अन्य संपत्तियों का बाजार मूल्य।

नर्मदा बचाओ आंदोलन केस, मध्य प्रदेश राज्य बनाम भेरू सिंह और अन्य[8]मामले में, नर्मदा नदी की एक सहायक नदी पर मान बांध बनाने के लिए भूमि अधिग्रहीत किया गया था। जिन परिवारों की संपत्ति अधिग्रहीत की गई थी उन प्रभावित परिवारों के पुनर्वास और पुनर्स्थापना के लिए आर एंड आर नीति के अधीन नगद प्रतिकर प्रदान किया गया था साथ ही साथ जिनकी भूमि परियोजना के डूबान क्षेत्र में आया उन्हें विशेष पुनर्वास अनुदान प्रदान किया गया।

सरकार ने मध्य प्रदेश शिकायत प्रतितोष प्राधिकरण (GRA) का भी गठन किया ताकि ऐसे व्यक्ति जिनमे विवाद के स्थिति बनी हुई हैं वे शिकायत दर्ज करा सकें। मध्य प्रदेश प्रशासन द्वारा लागू की गई अपर्याप्त नीति से आक्रोशित शिकायत प्रतितोष प्राधिकरण द्वारा जारी आदेशों के जवाब में नागरिकों ने एक जनहित याचिका के रूप में एक रिट याचिका दायर की और मध्य प्रदेश उच्च न्यायालयने विशेष निर्देश दिए। मध्य प्रदेश राज्य और रिटया चिकाकर्ताने सर्वोच्च न्यायालय में भी अपील दायर की। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने मध्य प्रदेश राज्य की अपील को स्वीकार कर लिया, याचिकाकर्ताओं की अपील को कुछ अपवादों के साथ अस्वीकार कर दिया, और आवश्यक निर्देश भी दिए।

रकम का निर्धारणः-

संपत्ति अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्व्यसथापन, मुआवजा और पारदर्शिता अधिनियम 2013 के तहत भूमि के मालिक को दी जाने वाली मुआवजे की कुल राशि बाजार मूल्य के आधार पर की गणना करने की आवश्यकता होती है, जिसकी जमीन एवं जमीन से जुड़ी सभी संपत्तियों को ध्यान में रखकर अधिग्रहीत गई है। इसके अलावा, उपरोक्त अधिनियम के तहत, विभिन्न स्थितियों केआधार पर विभिन्न तरीकों से मुआवजे का निर्धारण किया जाता है। अधिनियम के तहत भुगतान किए जाने वाले मुआवजे को निर्धारित करने के लिए निम्नलिखित मानदंडों का उपयोग किया जाता है[9]।

कलेक्टर द्वारा निर्धारणः-

वे मापदण्ड जिन पर कलेक्टर द्वारा अधिनिर्णय का अवधारण करने में यह विचार किया जायेगा कि कितनी राशि का प्रतिकर देना है[10], यह तय करते समय कलेक्टर निम्नलिखित कारकों को ध्यान में रखेगाः-

(1) पहली अनुसूची और दूसरी अनुसूची के अनुसार बाजार मूल्य और प्रतिकर की राशि का निर्धारण।

(2) कलेक्टर द्वारा हटाए जाने के समय संपत्ति पर मौजूद किसी भी पेड़ और पौधों को हटाने से हित बद्धपक्षकार को होने वाला नुकसान।

(3) नुकसान, यदि कोई हो, उस समय उस भूमि को अपनी अन्य भूमि से अलग करने में हित बद्धपक्षकार द्वारा किया गया, जिस समय कलेक्टर संपत्ति का नियंत्रण लेता है।

(4) भूमि का कब्जा लेने के समय कलेक्टर द्वारा भूमि की अधिग्रहण के परिणामस्वरूप हित बद्धपक्षकारकी अन्य संपत्ति, चाहे वह चल या अचल हो, को कोई नुकसान हुआ हो।

(5) यदि कलेक्टर द्वारा भूमि अधिग्रहण के परिणामस्वरूप हित बद्धपक्षकार को अपने घर या व्यवसाय के स्थान को स्थानांतरित करने की आवश्यकता होती है, तो इस कार्य से जुड़ी कोई भी उचित लागत।

(6) वास्तविक नुकसान, यदि कोई हो, घोषणा के प्रकाशन के समय भूमि के लाभों में कमी और कलेक्टर द्वारा भूमि का कब्जा लेने के कारण हुआ।

(7) कोई अन्य औचित्य जो प्रभावित परिवार के सदस्यों के लिए निष्पक्ष न्याय के हितों के लिए अधिक फायदेमंद है।

भूमि या भवन से संलग्न वस्तु भूमि या भवन से संलग्न वस्तुओं के मूल्य का अवधारण[11]:-

(1) कलेक्टर किसी योग्य इंजीनियर या संबंधित क्षेत्र में ऐसे अन्य विशेषज्ञ की सेवाओं का उपयोग करके खरीदी जाने वाली भूमि, भवन, और किसी भी अचल संपत्ति या भवन से जुड़ी संपत्ति का बाजार मूल्य निर्धारित करने में सक्षम होगा। यदि उसे आवश्यक लगे;

(2) कृषि, वानिकी, बागवानी, रेशमकीट पालन, या किसी अन्य विषय के क्षेत्र में विशेषज्ञों की सहायता जिसे कलेक्टर नई अर्जित संपत्ति से जुड़े पेड़ों और पौधों के मूल्य का आकलन करने के लिए आवश्यक समझे;

(3) भूमि अधिग्रहण प्रक्रिया के दौरान नुकसान पहुँचाए गए खड़ूसाल के मूल्य का निर्धारण कलेक्टर द्वारा कृषि के क्षेत्र में ज्ञान रखने वाले किसी भी व्यक्ति की सहायता से किया जा सकता है, जिसे वह उचित समझे।

कलेक्टर द्वारा भूमि का बाजार मूल्य का अवधारण[12]:-

बाजार मूल्य निर्धारित करने के लिए, निम्नलिखित मानदंडों का उपयोग किया जाएगा:-

(1) बाजार मूल्य, यदि कोई हो, भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 में बिक्री विलेख या बिक्री विलेख के पंजीकरण के लिए निर्धारित किया गया है, जैसा लागू हो, उस क्षेत्र में जहां भूमि स्थित है। या

(2) अगले दरवाजे के क्षेत्र में समान प्रकार की भूमि के लिए सामान्य बिक्री मूल्य, या

(3) यदि निजी व्यवसायों या सार्वजनिक-निजी भागीदारी वाली परियोजनाओं के लिए भूमि का अधिग्रहण किया जा रहा है, तो सहमति पर मुआवजा, जो भी अधिक हो।

भूमि अधिग्रहण का मानव अधिकारों पर प्रभाव:-

भले ही भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 ने भूमि अधिग्रहण कानूनों को कानूनी चुनौती से मुक्त कर दिया हो, अगर कोई व्यक्ति खेती करता है और अपनी संपत्ति से जीविकोपार्जन करता है और वह जमीन छिन ली जाती है, तो वह अब अपने परिवार का पालन-पोषण नहीं कर पाएगा और न ही जीविकोपार्जन कर सकता है। इस प्रकार उसके जीवन के मौलिक अधिकार से वंचित होना पड़ेगा, जो अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है।

1894 के अधिग्रहण अधिनियम ने इसके लिए कोई प्रावधान नहीं किया, लेकिन 2013 के संशोधन के दौरान, यह निर्णय लिया गया कि भूमि स्वामी के परिवार के सदस्यों को मुआवजा प्रदान करने के अलावा, पुनर्वास योजना भी लागू की जाएगी। ऐसा करने के बाद ही उसके मौलिक अधिकारों की रक्षा करते हुए उसकी जमीन का अधिग्रहण किया जा सकेगा। यदि किसी की भूमि का अधिग्रहण किया जाता है, तो वह, यदि वे चाहें तो, कलेक्टर द्वारा किए गए अधिग्रहण के विरुद्ध कलेक्टर के पास औपचारिक आपत्ति दर्ज करके मामले को समाधान के लिए न्यायालय में प्रस्तुत करने की अपेक्षा कर सकता है। इस प्रकार न्यायालय यह स्पष्ट करता है कि निम्न प्रकार की आपत्ति होने पर न्यायालय उस पर विचार कर सकता है[13]।

(1) भूमि की माप के बारे में।

(2) क्षतिधन की मात्रा के बारे में।

(3) इस क्षतिधन को पाने का हकदार कौन हैं।

(4) विभिन्न व्यक्तियों में क्षतिधन का विभाजन।

इस तरह, यदि कोई संपत्ति कई लोगों के स्वामित्व में है, तो अदालत उनमें से प्रत्येक को समान अधिकार देने और उनके बीच मुआवजे को वितरित करने का प्रयास करेगी। दिया जाने वाला कोई भी मुआवजा उचित बाजार मूल्य निर्धनरण के आधार पर होना चाहिए, और कलेक्टर भी निर्धारण करने में सक्षम होना चाहिए। यदि मुआवजे का फैसला नहीं किया जाता है, तो न्यायालय उचित मुआवजे का भी फैसला करती है, यह सुनिश्चित करते हुए किहितधारीपक्ष को अदालत के आदेशों के माध्यम से उचित मुआवजा मिले और उसके मौलिक अधिकारों का उल्लंघन न हो।

समस्याएं:-

(1) उचित प्रतिकर निर्धारित करने में विफलता।

(2) मुआवजा देने की समय सीमा निर्धारित नहीं होना।

(3) भिन्न-भिन्न परिवारों को भिन्न-भिन्न भुगतान की पेशकश करना जिनकी भूमि एक दूसरे से जुड़ी हुई है।

(4) सरकार द्वारा अधिग्रहीत भूमि काकब्जा नहीं लेने की स्थिति में योजना का अभाव।

(5) अधिग्रहीत की गई भूमि केमालिक के साथपुनर्वासकी समस्या।

(6) कृषि भूमि का मूल्य उपज के साथ निर्धारित किया जाता है जब इसे अधिग्रहीत किया जाता है। कलेक्टर द्वारा प्रतिकर का निर्धारण मासिक या प्रति घंटा के आधार पर किया जाता है। चूंकि प्रतिकर का निर्धारण एक व्यक्ति द्वारा किया जाता है जो अनुचित है।

(7) अनिवार्य अधिग्रहण एक समस्या है जहां किसी व्यक्ति की जमीन का अधिग्रहण इस तथ्य के बावजूद किया जाता है कि वह अपनी संपत्ति छोड़ना नहीं चाहताहै।

(8) जिस व्यक्ति की जमीन अधिग्रहीत की जाती है, उसकी आय का स्रोत समाप्त होने से वह अपने परिवार का भरण-पोषण करने में असमर्थ हो जाता है, जिससे उसके लिए एक जटिल समस्याउत्पन्न हो जाती है।

समाधानः-

(1) मुआवजे की उचित निर्धारण के लिए उक्त भूमि में निवासरतलोगों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए, जिनसे भूमि अधिग्रहीत की गई है।

(2) अधिग्रहित की गई भूमि एक निश्चित समय सीमा के भीतर अधिग्रहण अधिकारी द्वारा कब्जे में नहीं लिया जाता है तो उक्त भूमि उसके असली हकदार को वापिस किया जाना चाहिए।

(3) मुआवजा देने की एक निश्चित समय सीमा निर्धारित की जानी चाहिए।

(4) मुआवजे की किस्त संदाय किए जाने पर हर बार भूमि का बाजार मूल्य का निर्धारण किया जाए।

(5) अधिग्रहित भूमि से जुड़े मामलों में, मालिक को अदालती लागत का भुगतान करने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।

(6) नई अधिग्रहीतभूमि के मालिक और उसके परिवार के पुनर्वास की सम्यक योजना बनानी चाहिए।

(7) जो नई भूमि अर्जित की जाती है उनमें कृषि भूमि मालिकों के लिए सरकारी रोजगार देने की एक प्रक्रिया शामिल होनी चाहिए।

"भूमि राशि" पोर्टल एक नवीन पहलः-

"भूमि राशी" पोर्टल1 अप्रैल, 2018 को प्रारंभ की गई। अगस्त 2018 तक प्लेटफॉर्म का उपयोग करके 850 भूमि अधिग्रहण आवेदनों का निपटानजा चुका है। पोर्टल में अवसरों का विस्तार करने और भूमि अधिग्रहण प्रक्रिया की दक्षता में सुधार करने की क्षमता है। पहले ऐसे मामलों के भौतिक निराकरण में सप्ताह या महीने भी लग जाते थे। इस पोर्टलने अब निराकरण के समय को काफी हदतक कम कर दिया है, जिसमें अधिकांश मामलों में लगभग दो सप्ताह लगते हैं[14]।

पहले, पूरी भूमि अधिग्रहण प्रक्रिया समय लेने वाली और अपारदर्शी थी, जिसके परिणामस्वरूप अप्रत्याशित देरी हुई। इसमें कई नोटिसों का निर्माण और वितरण शामिल था, जिनमें से प्रत्येक को प्रकाशित होने से पहले प्रसंस्करण/अनुमोदन के लिए कई प्राधिकरणों के माध्यम से जाना होगा। इन तथ्यों को प्रत्यक्ष भौतिक रूप से कारवाई करना समय लेने वाला और त्रुटिपूर्ण होता था। इसके अलावा, 1956 के राष्ट्रीय राजमार्ग अधिनियम के तहत अधिग्रहित भूमि की क्षतिपूर्ति के लिए उपयोग किए जाने वाले धन को पूरी तरह से भूमि अधिग्रहण के लिए सक्षम प्राधिकारी के विवेक पर रखा गया था[15]। ये राशि अधिग्रहण के लिए सक्षम प्राधिकारी और भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण परियोजनाओं और नेशनल हाईवे इंटरकने क्टिविटी इम्प्रूवमेंट प्रोजेक्ट्स के परियोजना निदेशक के नाम पर एक ज्वाइंट अकाउंट में डाला गया था। भूमि अधिग्रहण के लिए सक्षम प्राधिकारी ने भूमि अधिग्रहण प्रतिकरों की घोषणा किए जाने और अंतिम रूप दिए जाने के बाद धन का वितरण किया जाएगा। क्योंकि भूमि अधिग्रहण के लिए बड़ी राशि की मुआवजे की आवश्यकता होती है और पूरी प्रक्रिया में समय लगता है, इन राशियों को अनावश्यक रूप से भूमि अधिग्रहण के लिए सक्षम प्राधिकारी के खाते में एक विस्तारित अवधि के लिए रखा गया था, जिससे परियोजना में देरी हुई[16]।

भूमि राशी अब वित्त मंत्रालय के सार्वजनिक वित्तीय प्रबंधन प्रणाली प्लेटफॉर्म से जुड़ी हुई है, जिससे प्रभावित/हितधारीपक्षों के खातों में तत्समयमु आवजा जमा किया जा सकता है। इस संबंध में वास्तविक भुगतान का पहला सेट राजस्थान में एक राष्ट्रीय राजमार्ग परियोजना के लिए सार्वजनिक वित्तीय प्रबंधन प्रणाली प्लेटफॉर्म का उपयोग करके सफलतापूर्वक किया गया था। भारत सरकार के सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय ने राजमार्ग अवसंरचना विकास परियोजनाओं में तेजी लाने के लिए भूमि अधिग्रहण अधिसूचनाओं के ऑनलाइन कारवाईके लिए एकीकृत मंच के रूप में भूमि राशी की शुरुआत की है। भूमि खरीद प्रक्रिया के खुलेपन और दक्षता से किसानों, जमींदारों, ठेकेदारों और निवेशकों को लाभ होगा[17]।

उपसंहारः-

यद्यपि भूमि अधिग्रहण से संबंधित विधियों का औचित्य है। क्योंकि इसके बिनाकोई भी देश विकास कार्यक्रमों को संचालित नहीं कर सकता चूंकि भूमि ही वो संसाधन है जिसमें किसी निश्चित स्थान पर किसी निश्चित उपक्रम स्थापित करके लोकहित एवं विकास के कार्यक्रमों के द्वारा लोगों तक लाभ पहुंचाया जा सकता है।तथ्यात्मक बात यह है कि जब तक भूमि स्वामियों को अर्जित भूमि के बदले में उचित प्रतिकर और पुनर्वासएक निश्चित समय सीमा में ब्याज सहित प्रदान किया जाएगा तब तक मानवाधिकारों का उल्लंघन नहीं होगा। जिसके लिए अर्जन अधिकारी द्वारा उचित प्रतिकरऔर पुनर्वास की व्यवस्था की जाए साथ ही साथ विस्थापितोंया जिनकी भूमि अधिग्रहीत की गई है उनकी आजीविका के लिए संसाधन उपलब्ध कराया जाए। किन्तु उपरोक्त उपबंधों एवं उपायों की व्यवस्था करने में अधिग्रहण अधिकारी असफल होने पर मानवाधिकारों का उल्लंघन होता है।भूमि राशि ऑनलाइन भूमि अधिग्रहण अधिसूचनाओं को क्रियान्वित करने के लिए एक मानकीकृत मंच है। पोर्टल में दक्षता बढ़ाने और भूमि अधिग्रहण प्रक्रिया में नए विकल्प समाहित करने की क्षमता है। इस पोर्टल के द्वारा अगस्त 2018 तक 850 भूमि अधिग्रहण प्रस्तावों को प्रबंधित किया गया है। किसानों, जमींदारों, ठेकेदारों और निवेशकों को भूमि अधिग्रहण प्रक्रिया की पारदर्शिता और दक्षता से लाभ होगा।

इसलिए भूमि अधिग्रहण करते समय उक्त बातों को ध्यान में रखना जरूरी है। यदि उपरोक्त विधियों के माध्यम से कोई अधिग्रहण पूरा किया जाता है, तो ऐसा करने का आधार अभी भी लागू होगा, और व्यक्ति के संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं होगा।

संदर्भ सूची:-

[1] जपाण्डेय, न भारत का संविधान, 39वाँ सं., इलाहाबाद: सेंट्रल लॉ एजेंसी, 2006.

[2] एअवस्थी, क भूमि अर्जन अधिनियम, द्वितीय सं., इंदौर: इंडिया पब्लिशिंग कंपनी, 2013.

[3] समॉरिस और अ. पाण्डेय, "टूवर्ड्स रिफॉर्म ऑफ लैण्ड ऐक्विजिशन फ्रैम्वर्क इन इंडिया," द इकनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, संस्क. 42, क्र. 22, चच. 2083-2090, 2007.

[4] आसागर, "भूमि अधिग्रहण कानून-1894: बनाम किसान," 05 जून 2011.[ऑनलाइन]. . Available: https://bundelkhand.in/article/bhumi-adhigrahan-kanoon-1894-banam-kisan. [इस दिन देखा गया 02 नवंबर 2022].

[5] रनलठिग, अ. अभयंकर, आ. गुरनानी और आ. गोयल , "कम्पैरटिव अनैलिसिस ऑफ लैण्ड ऐक्विजिशन एक्टस इन इंडिया: केस बेस्ड अप्रोच,"इंटरनेशनल जर्नल ऑफ लॉ एण्ड मैनिज्मन्ट स्टडीस,संस्क. III. क्र. II, pp. 1-22, 2015.

[6] बखेत्रपाल, ए. भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यस्थापन में उचित प्रतिकर पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम 2013, इंदौर: खेत्रपाल पब्लिकैशन, 2015 .

[7] मेजर जनरल कपिल मेहरा एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं एक अन्य, 2015.

[8] मध्य प्रदेश राज्य बनाम भेरू सिंह और अन्य, 2012 (3).

[9] वसिंह. पोरवाल और श. डेवलपमेंट-इन्ड्यूस्ड डिसप्लेसमेंट, रीअबिलटैशन एण्ड रेसेटलेमेन्ट इन इंडिया, 1ला सं., लंदन: रूटलेज, 2011,p. 248.

[10] मपांडेय, च. "विधि साहित्य प्रकाशन," उच्च न्यायालय सिवल निर्णय पत्रिका,pp. 1-159, 1 जुलाई-सितम्बर 2017.

[11] भखेत्रपाल, स. भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम, 2013, 2015 सं., इंदौर: पूजा लॉ हाउस, 2019.

[12] उज्ज्वला राजे गायकवाड़ बनाम हिरेन अच्युतभाई शाह और अन्य, 2016.

[13] सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय, "भूमि अधिग्रहण पोर्टल," नैशनल इंफोरमटिक सेंटर, 1 अप्रैल 2018. [ऑनलाइन]. Available: https://bhoomirashi-gov-in/. [इस दिन देखा गया 24 नवंबर 2022].

[14] भसरकार, "सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय," राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र, 25 नवंबर 2022. [ऑनलाइन]. Available: https://morth-nic-in/hi-

[15] भसरकार, "सड़क परिवहन एवं राजमार्ग मंत्रालय," 17 नवंबर 2000. [ऑनलाइन]. . Available: https://morth.nic.in/sites/default/files/Land_Acquisition_under_the_National_Highways_Act_1956_File3093.pdf. [इस दिन देखा गया 25 नवंबर 2022].

भारतीय सामाजिक मुद्दे एवं समस्याएं: एक अनुशीलन

डॉ० अमृता श्रीवास्तव

एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, गोरखपुर

सार

विभिन्न विषयों में प्रगति के साथ भारतीय समाज ने समय के साथ प्रगति की है। हालाँकि, ऐसे सामाजिक-सांस्कृतिक मुद्दे हैं जिन्हें हर समुदाय में पहचाना और संबोधित किया जाना चाहिए। लोगों की सुरक्षा, विशेष रूप से महिलाओं, बच्चों और बुजुर्गों जैसे कमजोर समूहों की, आधुनिक भारतीय संस्कृति में एक प्रमुख मुद्दा है। जातिवाद, दहेज, सांप्रदायिकता, नशाखोरी, नशीली दवाओं की लत और अन्य प्रमुख सामाजिक-सांस्कृतिक चिंताओं को आज संबोधित करने की आवश्यकता है। यहां शामिल विषय संपूर्ण नहीं हैं। ऐसी और भी चिंताएँ हैं जिनका समाधान पूरे देश के साथ-साथ अलग-अलग क्षेत्रों और समुदायों को करना चाहिए। इस पत्र के अंतर्गत भारतीय सामाजिक मुद्दों एवं समस्याओं के बारे में विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्द: जातिवाद; भ्रष्टाचार; साम्प्रदायिकता; स्वच्छता; बेरोजगारी।

परिचय

एक सामाजिक मुद्दा या समस्या एक ऐसा मुद्दा है जिसे समाज द्वारा एक ऐसी समस्या के रूप में मान्यता दी गई है जो समाज को इष्टतम स्तर पर कार्य करने से रोक रही है। यह समझना महत्वपूर्ण है कि समाज में होने वाली सभी चीजें सामाजिक समस्याओं के स्तर तक नहीं उठाई जाती हैं। चार कारकों को रेखांकित किया गया है जो एक सामाजिक मुद्दे या समस्या की विशेषता प्रतीत होते हैं। इसमे शामिल है:

1. जनता को स्थिति को एक समस्या के रूप में पहचानना चाहिए।
2. स्थिति समाज द्वारा स्वीकृत सामान्य मूल्यों के विरुद्ध है।
3. आबादी का एक बड़ा वर्ग समस्या को एक वैध चिंता के रूप में पहचानता है।
4. नागरिकों और/या सामुदायिक संसाधनों की संयुक्त कार्रवाई के माध्यम से समस्या को सुधारा या कम किया जा सकता है।

सामाजिक समस्याएं और मुद्दे समाजशास्त्र, सामाजिक विज्ञान और मानविकी में प्रस्तुत किए जाने वाले प्रमुख पत्रों में से एक हैं। सामाजिक समस्या समाज में ऐसी स्थिति है जिसे अवांछनीय माना जाता है और सुधार या उन्मूलन की आवश्यकता होती है। गरीबी, बेरोजगारी, पलायन, अपराध, नशीली दवाओं के दुरुपयोग, बाल शोषण, महिलाओं के खिलाफ अपराध, बच्चों के खिलाफ अपराध, जाति, वर्ग और धर्म के आधार पर भेदभाव, भ्रष्टाचार, परिवार और स्वास्थ्य समस्याओं, शिक्षा, राजनीतिक, सामाजिक मुद्दों जैसे मुद्दे आर्थिक, सांस्कृतिक और पर्यावरण के मुद्दों और मानवाधिकारों के उल्लंघन सभी को सामाजिक आर्थिक नतीजों में देखने की जरूरत है।[1]

जातिवाद

जातियाँ कठोर हैं और कभी-कभी दमनकारी सामाजिक समूह भी हैं, जिनमें जीवन शैली, व्यवसाय और सामाजिक स्थिति पीढिघ्यों से चली आ रही है। भारत में जाति व्यवस्था प्राचीन काल से चली आ रही है और मध्ययुगीन, प्रारंभिक और आधुनिक भारत, विशेष रूप से मुगल साम्राज्य और ब्रिटिश राज में कई शासक अभिजात वर्ग से प्रभावित हुई है। वर्ण और जाति, जाति व्यवस्था को बनाने वाली दो धारणाएँ, विश्लेषण की अलग-अलग डिग्री के रूप में सोची जा सकती हैं।

1947 में स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद, भारत ने ऐतिहासिक रूप से वंचित आबादी की मदद करने के उद्देश्य से कई सकारात्मक कार्रवाई कार्यक्रम लागू किए। इन उपायों में इन समूहों के लिए उच्च शिक्षा और सरकारी नौकरियों में निश्चित संख्या में स्थान आरक्षित करना शामिल था।

दहेज प्रथा

भारत में, दहेज प्रथा उन वस्तुओं को संदर्भित करती है, जिसमें नकद, और स्थायी या व्यक्तिगत संपत्ति जो दुल्हन का परिवार दूल्हे, उसके माता-पिता और रिश्तेदारों को विवाह की शर्त के रूप में भुगतान करता है। दहेज केवल एक वित्तीय भुगतान या दुल्हन के अलावा दूल्हे के परिवार को दिया जाने वाला उपहार है, और इसमें नकद, गहने, बिजली के उपकरण, फर्नीचर, बिस्तर, क्रॉकरी, बर्तन, वाहन और अन्य घरेलू सामान शामिल हैं जो नवविवाहितों की शादी में मदद करते हैं।

सांप्रदायिकता

भारत की धार्मिक और सांस्कृतिक विविधता एक राजनीतिक अवधारणा के रूप में सांप्रदायिकता को जन्म देती है। इसे धार्मिक और जातीय पहचान के आधार पर समूहों के बीच विभाजन, तनाव और विभाजन उत्पन्न करने के लिए एक राजनीतिक प्रचार उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप सांप्रदायिक घृणा और हिंसा हुई है।

प्राचीन भारतीय सभ्यता में विभिन्न धर्मों के लोग सौहार्दपूर्ण ढंग से सह-अस्तित्व में रहते थे। शायद धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को पेश करने वाले पहले भारतीय पैगंबर बुद्ध थे। इस बीच, अशोक जैसे राजाओं ने धार्मिक सहिष्णुता और सद्भाव की नीति अपनाई। मध्यकालीन भारत में इस्लाम का परिचय हिंसा के दुर्लभ कृत्यों द्वारा चिह्नित किया गया था, जैसे कि महमूद गजनी द्वारा हिंदू मंदिरों का विनाश और महमूद द्वारा हिंदुओं, जैनियों और बौद्धों पर हमला। जबकि धर्म ने लोगों के जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, कोई सामुदायिक दर्शन या राजनीति नहीं थी। अकबर और शेर शाह सूरी जैसे शासकों ने पूरे देश में प्रचलित कई संस्कृतियों और परंपराओं के प्रति सहिष्णुता की धार्मिक नीति अपनाई। कुछ सांप्रदायिक राजा, जैसे औरंगजेब, फिर भी, अन्य धार्मिक प्रथाओं के प्रति सबसे कम सहिष्णु थे। यह ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रभाव और आधुनिक घटना के रूप में भारतीय सामाजिक स्तर की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ।[2]

लिंग आधारित भेदभाव

हर पेशे में, हमारा संविधान पुरुषों और महिलाओं को समान अधिकार की गारंटी देता है। महिलाओं के पास अब वोट देने, विरासत में लेने और संपत्ति रखने की क्षमता है। वास्तव में, संविधान यह निर्धारित करता है कि सरकार आबादी के कमजोर हिस्सों के हितों को बड़े ध्यान से बढ़ावा देगी। आजादी के बाद से महिलाओं के हितों को आगे बढ़ाने के लिए कई कानून बनाए गए हैं। ये नियम अन्य बातों के साथ-साथ विवाह, संपत्ति विरासत, तलाक और दहेज को नियंत्रित करते हैं। 1976 का समान पारिश्रमिक अधिनियम यह सुनिश्चित करने के लिए पारित किया गया था कि समान कार्य के लिए पुरुषों और महिलाओं को समान रूप से भुगतान किया जाए। इन प्रतिबंधों के बावजूद, हम अभी भी महिलाओं के खिलाफ बहुत सारे पूर्वाग्रह देखते हैं।

भारत में, महिलाओं को स्वास्थ्य, शिक्षा और रोजगार सहित विभिन्न क्षेत्रों में भेदभाव का सामना करना पड़ता है। लड़कियां दहेज के लिए जिम्मेदार होती हैं, और उन्हें शादी के बाद अपने माता-पिता का घर छोड़ना पड़ता है। इसके अलावा, माता-पिता अपने बुढ़ापे की रक्षा के लिए पुरुष संतान पैदा करने की इच्छा रखते हैं। क्योंकि वे लड़कियां हैं, कई कन्या शिशुओं का गर्भपात कर दिया जाता है, छोड़ दिया जाता है, उद्देश्यपूर्ण ढंग से उपेक्षित किया जाता है, और अल्पपोषित किया जाता है।[3]

नशे की लत

नशीली दवाओं के दुरुपयोग के साथ अक्सर समुदाय पर नकारात्मक सामाजिक प्रभाव पड़ता है। वर्तमान लेख उद्योग, शिक्षा और प्रशिक्षण, और परिवार पर नशीली दवाओं के दुरुपयोग के नकारात्मक प्रभाव के साथ-साथ हिंसा, अपराध, वित्तीय कठिनाइयों, आवास के मुद्दों, बेघरों और आवारागर्दी में इसकी भूमिका पर केंद्रित है।कैनबिस, हेरोइन और भारतीय-उत्पादित फार्मास्युटिकल दवाएं भारत में सबसे अधिक दुरुपयोग वाली दवाएं हैं। कैनबिस उत्पादों, जिन्हें अक्सर चरस, भांग या गांजा कहा जाता है, का पूरे देश में दुरुपयोग किया जाता है क्योंकि इसने कुछ हिंदू देवताओं के साथ अपने जुड़ाव के कारण कुछ हद तक धार्मिक पवित्रता प्राप्त की है।

व्यसन वाले लोगों में अक्सर एक या अधिक संबंधित स्वास्थ्य समस्याएं होती हैं, जिनमें फेफड़े या हृदय रोग, स्ट्रोक, कैंसर या मानसिक स्वास्थ्य स्थितियां शामिल हो सकती हैं। इमेजिंग स्कैन, छाती का एक्स-रे, और रक्त परीक्षण पूरे शरीर में लंबे समय तक नशीली दवाओं के उपयोग के हानिकारक प्रभाव दिखा सकते हैं।लाखों भारतीय शराब, भांग और अफीम पर निर्भर हैं, और नशीली दवाओं का दुरुपयोग भारतीय समाज में एक व्यापक घटना है, एक नई रिपोर्ट कहती है, संयुक्त राष्ट्र के नशीली दवाओं और अपराध कार्यालय और भारत के सामाजिक न्याय मंत्रालय द्वारा संयुक्त रूप से प्रकाशित की गई है।

व्यसन के 5 कारण होते हैं-

- व्यसन का पारिवारिक इतिहास। कुछ परिवारों में मादक पदार्थों की लत अधिक आम है और इसमें जीन के आधार पर जोखिम बढ़ सकता है।
.
- मानसिक स्वास्थ्य विकार।
- साथियों का दबाव।
- परिवार की भागीदारी का अभाव।
- प्रारंभिक उपयोग।
- अत्यधिक नशे की लत वाली दवा लेना।

भ्रष्टाचार

"भ्रष्टाचार विशेष रूप से व्यक्तिगत लाभ या तो आर्थिक या एक पक्ष के लिए सरकार में उन लोगों द्वारा शक्ति के दुरुपयोग और दुरुपयोग के कार्य को संदर्भित करता है"। सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार अवैध तरीकों से व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने और सार्वजनिक कार्यालय और संपत्ति के दुरुपयोग का एक साधन है। सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में लोग विभिन्न प्रकार के बड़े और छोटे कार्यों को पूरा करने के लिए भ्रष्ट तरीके और अनुचित तरीके अपनाते हैं।

ऐसा इसलिए है क्योंकि लोग बहुत अधिक प्रयास किए बिना बहुत सारा पैसा कमाना चाहते हैं। भ्रष्टाचार का खतरा भारत में व्याप्त है, पुलिसकर्मियों द्वारा क्षुद्र रिश्वत की मांग से लेकर 2जी घोटाले जैसे उच्चतम राजनीतिक स्तर पर करोड़ों रुपये के घोटाले तक। यह केवल सरकारी प्राधिकरणों तक ही सीमित नहीं है बल्कि निजी क्षेत्र के भीतर भी देखा जा सकता है। 2021 में करप्शन परसेप्शन इंडेक्स के तहत देश को 180 में से 85वें स्थान पर रखा गया, इस पैमाने पर जहां सबसे कम रैंक वाले देशों को सबसे ईमानदार सार्वजनिक क्षेत्र माना जाता है। यह तस्वीर दिखाता है कि हमारा देश अधिकारियों और प्रशासकों के हाथों में है जो अपने कर्तव्यों को पूरा करने के लिए नैतिक तरीके नहीं अपना रहे हैं।[4]

निरक्षरता

निरक्षरता भारत में कई सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का एक परिणाम है, बड़े पैमाने पर जनसंख्या वृद्धि और संसाधनों की कमी को वर्ग और जाति विभाजन के साथ प्रमुख कारणों में से एक के रूप में समझा जा सकता है जो केवल विशेषाधिकार प्राप्त लोगों को इन संसाधनों तक पहुंचने की अनुमति देता है। लैंगिक भेदभाव के कारण शिक्षा की कमी ने आधी आबादी को शिक्षा से वंचित कर दिया है। ग्रामीण क्षेत्रों में सांस्कृतिक पिछड़ेपन, गरीबी और जागरूकता की कमी को भारत में निरक्षरता के अभिशाप के लिए समान रूप से दोषी ठहराया जा सकता है।

स्वतंत्रता के बाद से, भारत की साक्षरता दर छह गुना बढ़ गई है। भले ही साक्षरता दर 2001 में 12 प्रतिशत से बढ़कर 2011 में 74 प्रतिशत हो गई हो, फिर भी भारत में अभी भी निरक्षर वयस्कों की दुनिया की सबसे बड़ी आबादी है। कक्षा एक में दाखिला लेने वाले सभी बच्चों में से केवल एक-तिहाई से अधिक बच्चे ही कक्षा आठ तक पहुँच पाते हैं। 6-14 वर्ष की आयु के लगभग 35 मिलियन बच्चे स्कूल नहीं गए हैं। 5 से 9 वर्ष के आयु वर्ग की 53 प्रतिशत महिलाएँ निरक्षर हैं। भारत में, केवल 53 प्रतिशत लोकेल में प्राथमिक विद्यालय है, इस बीच, केवल 20 प्रतिशत निवास स्थान में माध्यमिक विद्यालय है।[5]

भारत का संविधान सभी के लिए शिक्षा के महत्व को स्वीकार करता है; इसलिए इसने देश में शैक्षिक अधिकारों के उचित और प्रभावी कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए कई प्रावधान किए हैं। केंद्र और राज्य सरकार दोनों ने भारत में निरक्षरता उन्मूलन के लिए कई पहल और योजनाएं शुरू की हैं। 2002 से संचालित सर्व शिक्षा अभियान में उन लोगों को शामिल किया गया है जो डोमेन, विशेष रूप से बुजुर्ग नागरिकों और महिलाओं को प्राथमिक शिक्षा प्रदान करते हैं। भारत में लाखों लोगों को शिक्षित करने के लिए 1988 में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन कार्यक्रम लागू किया गया है। साक्षर भारत एक अन्य कार्यक्रम है जिसका लक्ष्य राष्ट्रीय स्तर पर 80 प्रतिशत साक्षरता स्तर है, इसका ध्यान महिलाओं के बीच साक्षरता को बढ़ावा देने पर है।

शिक्षा व्यवस्था

शिक्षा एक ऐसा उपकरण है जो व्यक्तियों को उनके जीवन के सभी पहलुओं में सशक्त बनाता है। यह उनके ज्ञान, कौशल, तकनीकों और दुनिया के बारे में उनकी दृष्टि को विस्तृत करता है। यह नैतिक और नैतिक मूल्यों को विकसित करने में भी मदद करता है। इन सबके अलावा, उच्च आय की संभावनाओं के साथ-साथ रोजगार के अवसर काफी हद तक बढ़ जाते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि किसी देश का विकास उसकी शिक्षा प्रणाली की गुणवत्ता पर निर्भर करता है। शैक्षिक क्षेत्र में पर्याप्त निवेश जनशक्ति की दक्षता और उत्पादकता बढ़ाने में मदद करेगा। आखिरकार, सुशिक्षित लोग आर्थिक विकास की गति को तेज करने में मदद करते हैं जिसके परिणामस्वरूप देश का विकास होता है।

भारत अपनी शैक्षिक प्रतिभा के लिए जाना जाता है। हालाँकि, औद्योगिक आवश्यकताओं के संबंध में अपने छात्रों के लिए आवश्यक रोजगार पैदा करने में विफलता के लिए भारतीय शिक्षा प्रणाली की आलोचना की जाती है। इसलिए, भारतीय शिक्षा क्षेत्र के सामने बहुत सारी चुनौतियाँ हैं जिन पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है।

भारत में पुरानी शिक्षा प्रणाली मुख्य रूप से किताबी शिक्षा पर आधारित थी लेकिन आजकल इंटरनेट और अनुभवात्मक शिक्षण विधियों के उपयोग से बहुत कुछ बदल गया है। अबेकस और वैदिक गणित के प्रयोग ने एक विषय के रूप में गणित में नए आयाम जोड़े हैं। सीखने के नए दरवाजे और अध्ययन के दिलचस्प तरीके अस्तित्व में आए।

इसी तरह, शिक्षा का पुराना पाठ्यक्रम मुख्य रूप से सिद्धांतों और अवधारणाओं को रटने पर केंद्रित है। व्यावहारिक डोमेन में छात्रों को कोई एक्सपोजर प्रदान नहीं किया जा रहा है। माता-पिता और शिक्षक भी व्यावहारिक ज्ञान और अवधारणाओं की उपयोगिता के बजाय विषयों में उच्च अंक प्राप्त करने के लिए छात्रों का मार्गदर्शन करने पर ध्यान केंद्रित करते हैं। नतीजतन, शिक्षा एक चूहा दौड़ बन गई है। लेकिन, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की शुरुआत के कारण चीजें बदल गई हैं। भारत में अब तक तीन शिक्षा नीतियां थीं। पहला वर्ष 1968 में, दूसरा वर्ष 1986 में और तीसरा वर्ष 2020 में। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का मुख्य उद्देश्य वंचित समूहों को शिक्षा के क्षेत्र में समान अवसर प्रदान करके शामिल करना था। लेकिन राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 प्रकृति में अधिक समग्र है। इसका उद्देश्य कौशल आधारित शिक्षा और छात्रों को रोजगार प्रदान करना है। नई शैक्षिक नीति 2020 द्वारा पिछली शैक्षिक नीतियों की सभी खामियों को दूर किया जा रहा है।[6]

बुनियादी स्वच्छता

इस संबंध में आंकड़े विवादित हैं, कहीं भी 300 मिलियन और 522 मिलियन के बीच व्यक्ति अभी भी भारत में खुले में शौच का अभ्यास करते हैं। यह आंकड़ा दुनिया में कहीं और से ज्यादा है। खराब स्वच्छता एक आवर्ती मुद्दा है जो भारत के कई स्वास्थ्य मुद्दों से जुड़ा हुआ है। विश्व स्तर पर, उन 2. 5 अरब लोगों में से जिनकी पहुंच स्वच्छता सुविधाओं तक नहीं है, लगभग 1 अरब लोग खुले में शौच करते हैं, जिनमें से 82 प्रतिशत 10 देशों (भारत, इंडोनेशिया, पाकिस्तान, नाइजीरिया, इथियोपिया, सूडान, नाइजर, आदि) में रहते हैं।

इस प्रथा के कारण भारत में काफी मात्रा में बीमारी का बोझ होता है, जिससे अनगिनत संक्रामक रोग होते हैं, जिनमें से कई डायरिया का कारण बनते हैं जिसके परिणामस्वरूप गंभीर निर्जलीकरण हो सकता है।बहुत से लोग इस प्रथा को केवल इसलिए जारी रखते हैं क्योंकि यह वही है जो हमेशा से किया जाता रहा है, आबादी के बीच स्वच्छता पर शिक्षा की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है। अधिक अभी भी ऐसा केवल इसलिए करते हैं क्योंकि उनके पास कोई अन्य विकल्प नहीं है, भारत में शौचालय सुविधाओं की कमी है, खासकर ग्रामीण समुदायों में। इस समस्या के समाधान के लिए कई कार्यक्रम चलाए गए हैं, हालांकि वर्तमान में उनका प्रभाव सीमित है।[7]

हेल्थकेयर

300 मिलियन और 522 मिलियन के बीच व्यक्ति अभी भी भारत में खुले में शौच का अभ्यास करते हैं। यह आंकड़ा दुनिया में कहीं और से ज्यादा है। खराब स्वच्छता एक आवर्ती मुद्दा है जो भारत के कई स्वास्थ्य मुद्दों से जुड़ा हुआ है।विश्व स्तर पर, उन 2.5 अरब लोगों में से जिनकी पहुंच स्वच्छता सुविधाओं तक नहीं है, लगभग 1 अरब लोग खुले में शौच करते हैं, जिनमें से 82 प्रतिशत 10 देशों (भारत, इंडोनेशिया, पाकिस्तान, नाइजीरिया, इथियोपिया, सूडान, नाइजर, आदि) में रहते हैं।इस प्रथा के कारण भारत में काफी मात्रा में बीमारी का बोझ होता है, जिससे अनगिनत संक्रामक रोग होते हैं, जिनमें से कई डायरिया का कारण बनते हैं जिसके परिणामस्वरूप गंभीर निर्जलीकरण हो सकता है।

बहुत से लोग इस प्रथा को केवल इसलिए जारी रखते हैं क्योंकि यह वही है जो हमेशा से किया जाता रहा है, आबादी के बीच स्वच्छता पर शिक्षा की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है। अधिक अभी भी ऐसा केवल इसलिए करते हैं क्योंकि उनके पास कोई अन्य विकल्प नहीं है, भारत में शौचालय सुविधाओं की कमी है, खासकर ग्रामीण समुदायों में।इस समस्या के समाधान के लिए कई कार्यक्रम चलाए गए हैं, हालांकि वर्तमान में उनका प्रभाव सीमित है।

गरीबी

भारत जैसे देश में गरीबी को परिभाषित करने और उसका आकलन करने के कई तरीके हैं। उदाहरण के लिए, भारत में तेंदुलकर समिति ने अनाज, दालें, दूध, खाद्य तेल, मांसाहारी वस्तुओं, सब्जियों, ताजे फलों, सूखे मेवों, चीनी, नमक और मसालों, अन्य भोजन, ईंधन की आवश्यकता के आधार पर निर्वाह स्तर की गणना की। कपड़े, जूते, शिक्षा, चिकित्सा (गैर-संस्थागत और संस्थागत), मनोरंजन, व्यक्तिगत और शौचालय के सामान, अन्य सामान, अन्य सेवाएं और टिकाऊ वस्तुएं। इसलिए, तेंदुलकर समिति की कार्यप्रणाली के अनुसार, वर्ष 2011-12 के लिए राष्ट्रीय गरीबी रेखा (प्रति व्यक्ति प्रति माह) की गणना ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 816 रुपये और शहरी क्षेत्रों के लिए 1000 रुपये की गई थी। इस पद्धति का उपयोग करते हुए, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन ने 2011-12 में जनसंख्या के 21.9 प्रतिशत (269 मिलियन) पर गरीबी का अनुमान लगाया। यानी गरीबों की श्रेणी में वे लोग आते हैं जिनकी दैनिक आय गांवों में 27 रुपये प्रतिदिन से कम और शहरों में 33 रुपये प्रतिदिन से कम है। दूसरी ओर, बाद की रंगराजन समिति ने ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी रेखा 32 रुपये और शहरी क्षेत्रों में 47 रुपये आंकी। इस आधार पर, 2011-2012 में भारत में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले गरीबों की संख्या को संशोधित कर जनसंख्या का 29. 5 प्रतिशत (363 मिलियन) कर दिया गया।[8]

प्रदूषण

हमारे पर्यावरण को दूषित करने से लेकर हमारे स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाने तक, खराब वायु गुणवत्ता एक प्रमुख वैश्विक चुनौती है। वायु प्रदूषण के नकारात्मक प्रभावों से कोई भी सुरक्षित नहीं है, लेकिन कई लोग सोचते हैं कि यह साझा बोझ उनके जीवन को प्रभावित नहीं करता है।स्वच्छ हवा हर किसी का काम है और वायु प्रदूषण को रोका जा सकता है। इस गंभीर मुद्दे का समाधान जलवायु संकट से निपटने, समावेशी समाजों को बढ़ावा देने और बचपन के विकास में सुधार लाने के लिए भी महत्वपूर्ण है।

महिला सुरक्षा

आज भारत में महिलाओं की सुरक्षा की हर जगह व्यापक रूप से चर्चा होती है। अब यह एक गंभीर समस्या बन गई है। अपराध दर आसमान छू रही है। महिलाएं न तो घर में सुरक्षित हैं और न ही बाहर। अन्य देशों की महिला यात्री भी भारत की यात्रा करते समय अपने आप को एक अनिश्चित स्थिति में पाती हैं। लेकिन ये डर उन्हें किसी भी सामाजिक गतिविधि से नहीं रोक सकता, लेकिन पर्याप्त सुरक्षा उपाय होने चाहिए जिनका महिलाओं के खिलाफ हिंसा से बचाव के लिए सख्ती से पालन किया जाना चाहिए।

हिंसा और भेदभाव महिलाओं के जीवन को खतरे में डालते हैं और उन्हें किसी भी सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने से रोकते हैं। भारत में, वह उन लोगों द्वारा पूजनीय हैं, जो दुर्गा, सती और सावित्री के माध्यम से महिलाओं के खिलाफ अपराधों में वृद्धि की देवी मानते हैं। पहले महिलाएं अपने घरों तक ही सीमित थीं, लेकिन शहरीकरण ने महिलाओं को इस जेल को तोड़ने और पुरुषों के साथ बराबरी पर दुनिया को अपनी प्रतिभा दिखाने के लिए मजबूर किया है।

टैक्सी ड्राइवर से लेकर बहुराष्ट्रीय निगमों के सीईओ तक हर चीज में महिलाओं ने अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया। एक महिला को इस विचार को छोड़ देना चाहिए कि जब वह घर छोड़ती है तो वह कुछ नहीं कर सकती। उन्हें मानना पड़ेगा कि उन्होंने भी चांद पर कदम रखा था। चांद पर उतरने वाली पहली भारतीय महिला कल्पना चावला न केवल दुनिया भर की महिलाओं के लिए बल्कि अंतरिक्ष यात्री बनने का सपना देखने वाले सभी पुरुषों के लिए एक रोल मॉडल बन गई हैं। वह पूरी दुनिया के लिए प्रेरणा बन गई हैं।

घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न और हत्या भारत में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के सामान्य रूप हैं। दहेज हत्या, हत्या का एक चरम रूप है। भारतीयों में अभी भी यह धारणा है कि दहेज एक परंपरा है और लड़की का पिता इसके लिए भुगतान करने के लिए सब कुछ खो देता है। घरेलू हिंसा, एक रिश्ते में एक

साथी द्वारा दूसरे के साथ की जाती है। भारत में घरेलू हिंसा बढ़ रही है। 70 फीसदी महिलाएं घरेलू हिंसा की शिकार होती हैं। यह अवसाद और आत्महत्या की ओर ले जाता है।

यह सीधी हत्या नहीं है, लेकिन हत्या का कारण निश्चित है। इसके अलावा, लड़कियों को कम उम्र में शादी करने के लिए मजबूर किया जाता है। यह युवा दुल्हन अभी इतनी भी उम्र की नहीं है कि अपनी जिम्मेदारियों को समझ सके। एसिड फेंकना एक क्रूर हमला है जो एक खूबसूरत लड़की के जीवन को बर्बाद कर देता है। "रिलेशनशिप चीटिंग" महिलाओं के खिलाफ एक और आम अपराध है। एक आदमी आसानी से अपनी पत्नी के साथ संबंध तोड़ लेता है और दूसरी दुल्हन के साथ एक नया जीवन शुरू करता है।

बेरोजगारी

हमारे देश की जनसंख्या लगातार बढ़ रही है। जनसंख्या में अभूतपूर्व वृद्धि ने भारत में बेरोजगारी की समस्या को बढ़ा दिया है। यही कारण है कि बेरोजगारी की समस्या हर साल विकट होती जा रही है। नागरिकों को रोजगार उपलब्ध कराना राज्य का दायित्व है। लेकिन भारत में बेरोजगारों की संख्या खतरनाक रूप से बढ़ रही है। कुल आबादी का 33 प्रतिशत से अधिक अभी भी गरीबी रेखा से नीचे है। पंजीकृत बेरोजगारों की संख्या, जिनका नाम रजिस्टर में नहीं है, उनकी तो बात ही छोड़ दें, काफी चौंका देने वाली है। रोजगार कार्यालय के रजिस्टर में नौकरी चाहने वालों की संख्या भी दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। यहां रोजगार की तीन श्रेणियां हैं। गाँवों में, जो लोग कृषि में रहते हैं, वे साल में चार से पाँच महीने बेकार रहकर काम करते हैं। उस अवधि के दौरान, वे व्यावहारिक रूप से बेरोजगार रहते हैं। कस्बों और शहरों में बेरोजगारों का एक और वर्ग है, जो कारखानों में बड़ी-बड़ी मशीनें लगाने के कारण रोजगार नहीं खोज पाता। अंत में, बड़ी संख्या में शिक्षित लोग हैं जो बेरोजगार हैं। जनता और अशिक्षित भी कुछ ऐसे साधन अपनाती है जिससे वे अपनी आजीविका कमा सकते हैं। हालाँकि, शिक्षित लोग ऐसा नहीं कर सकते।

भारत की 1.39 अरब लोगों की कुल आबादी में से 97 मिलियन अत्यधिक गरीबी में रहते हैं। 2020 की शुरुआत में अचानक कोविड-19 के प्रकोप के बाद, भारत में कई और लोग गरीबी में धकेल दिए गए। कुछ अनुमान बताते हैं कि 2021 के अंत तक 150-199 मिलियन अतिरिक्त लोग गरीबी में गिर सकते हैं।

सीएमआईई द्वारा उपलब्ध कराए गए आंकड़ों के आधार पर 8 जून 2021 तक लॉकडाउन और गतिशीलता पर प्रतिबंध के बीच भारत में बेरोजगारी दर 12.81 प्रतिशत है। इससे पहले, भारत की बेरोजगारी दर मार्च 2021 में 6.5 प्रतिशत से बढ़कर अप्रैल 2021 में 8 प्रतिशत हो गई, जो मई के अंत तक घटकर 14.7 प्रतिशत हो गई, जबकि अप्रैल में रोजगार दर मार्च में 37.6 प्रतिशत से गिरकर 36.8 प्रतिशत हो गई।

समाधान

किसी सामाजिक समस्या का समाधान समस्या उत्पन्न करने वाली सामाजिक परिस्थितियों के कारणों का पता लगाने पर निर्भर करता है। हालांकि हर सामाजिक समस्या कई कारकों के कारण होती है, लेकिन मुख्य कारक, सहकारी कारकों और समस्या की उत्पत्ति और विकास में मामूली वृद्धि का पता लगाना हमेशा संभव होता है। प्रत्येक समस्या अद्वितीय होने की संभावना है और इसमें व्यक्तिवादी लक्षण होने की संभावना है जो इसे अन्य समस्याओं से अलग कर सकती है।

कई बार सामाजिक समस्या की प्रकृति ऐसी होती है कि नियंत्रण असंभव नहीं तो अत्यंत कठिन हो जाता है। यह तब होता है जब एक सामाजिक समस्या प्राकृतिक कारकों जैसे सूखा या बाढ़ के कारण होती है या जब सामाजिक हितों का संघर्ष उपचारात्मक कार्यक्रमों के उपाय को रोकता है, या मौजूदा राजनीतिक या आर्थिक व्यवस्था को बदलने के लिए क्रांति की आवश्यकता होती है।

सामाजिक समस्याओं को समझने और परखने के बाद, समाज को प्रभावी होना होगा और कुछ कार्रवाई करनी होगी चाहे वह स्थापित सामाजिक संस्थाओं को बदलने का प्रयास हो या मौजूदा संस्थाओं को बदलने की कोशिश किए बिना उपाय अपनाकर उन्हें कम करने की कोशिश करना। इसके अलावा, कार्रवाई को व्यवस्थित या वैयक्तिकृत किया जा सकता है।

पूर्व समूह प्रयास के माध्यम से कार्रवाई है जैसे उद्योग के प्रबंधन में औद्योगिक श्रमिकों को हिस्सा देना, उत्तरार्द्ध व्यक्तिगत जीवन के माध्यम से कार्रवाई है और अच्छे सिद्धांतों के अनुसार जीवन जीकर दूसरों को प्रभावित करना है। गांधीजी ने अस्पृश्यता की समस्या को हल करने के लिए दूसरी विधि का इस्तेमाल किया-अछूतों के साथ रहना और उनके साथ सहानुभूति और दया का व्यवहार करना। जब अन्य लोगों ने उनके उदाहरण का अनुकरण किया और उनका अनुसरण किया, तो प्रभाव अधिक से अधिक हो गया, और अंततः सरकार को 1955 में अस्पृश्यता के अभ्यास पर रोक लगाने के लिए एक कानून बनाने के लिए मजबूर होना पड़ा।

इस प्रकार, संगठित कार्रवाई राज्य या एक राजनीतिक दल या पंचायत या एक आधिकारिक समूह द्वारा की जा सकती है। संगठित कार्रवाई में एक महत्वपूर्ण बिंदु राज्य एजेंसियों और जो राज्य से जुड़े नहीं हैं, के बीच कार्यों का वितरण है। कभी-कभी संगठित और व्यक्तिगत कार्रवाई के संयोजन से समस्या का समाधान हो जाता है।

सामाजिक समस्याओं का समाधान तभी हो सकता है जब समाज में व्यक्तियों में निम्नलिखित चार भावनाएँ हों:

(1) यह महसूस करना कि किसी स्थिति को ठीक किया जा सकता है,

(2) स्थिति को ठीक करने का दृढ़ संकल्प,

(3) लोगों में विश्वास और यह विश्वास कि उनकी बुद्धि और प्रयासों के कारण प्रगति की कोई सीमा नहीं है, और

(4) स्थिति को सुधारने के लिए तकनीकी और तर्कसंगत ज्ञान और कौशल का उपयोग।

निष्कर्ष

सामाजिक मुद्दों में बहुत सी कमियां हैं जो हमारे समाज को नुकसान पहुंचाती हैं। वे ऐसी स्थितियाँ हैं जिनका हमारे समाज पर प्रतिकूल और हानिकारक परिणाम होता है। वे तब उत्पन्न होते हैं जब जनता प्रकृति या समाज को एक आदर्श स्थिति से छोड़ देती है। सामाजिक मुद्दों का हमारे समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ता है और अंततः यह हम सभी को प्रभावित करता है। कुछ सामाजिक मुद्दों को हल करने के लिए हमें एक सामान्य दृष्टिकोण की आवश्यकता है। कोई भी समाज सामाजिक मुद्दों से मुक्त नहीं है, उनमें से लगभग हर किसी का कोई न कोई सामाजिक मुद्दा होता है।

एक समाज सामाजिक मुद्दों को सफलतापूर्वक समाप्त कर सकता है यदि वे अडिग हो जाएं। ये सामाजिक मुद्दे समाज की प्रगति में बाधा के रूप में कार्य करते हैं। इस प्रकार, हम सभी को उनके खिलाफ लड़ने के लिए एक साथ आना चाहिए और अधिक अच्छे के लिए उन्हें समाप्त करना चाहिए।

संदर्भ

1. राम, आहूजा, 1992, भारत में सामाजिक समस्याएं, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. टर्नर, जोनाथन एच., 1987; समाजशास्त्रीय सिद्धांत की संरचना, चौथा संस्करण, रावत प्रकाशन, जयपुर।
3. हेनरी, केनेथ, 1978, सोशल प्रॉब्लम्सः इंस्टीट्यूशनल एंड इंटरपर्सनल पर्सपेक्टिव्स, स्कॉट, फोप्रेसमैन एंड कंपनी, इलिनोइस, लंदन।
4. कोठारी, रजनी, 1988, परिवर्तन और जीवन रक्षा, अजंता प्रकाशन, दिल्ली,
5. लर्नर, डेनियल, 1964, द पासिंग ऑफ ट्रेडिशनल सोसाइटी, द फ्री प्रेस, लंदन।
6. पोलैन्यी, कार्ल, 1957, द ग्रेट ट्रांसफॉर्मेशनः द पॉलिटिकल एंड इकोनॉमिक ओरिजिन ऑफ आवर टाइम, बीकन प्रेस, बोस्टन।
7. मर्टन, रॉबर्ट के. एंड निस्बेट, रॉबर्ट, 1976, कंटेम्परेरी सोशल प्रॉब्लम्स, हरकोर्ट ब्रेस इवानोविच, इंटरनेशनल एडिटिंग, न्यूयॉर्क, शिकागो।
8. सिंह, योगेंद्र, 1988, भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण, पुनर्मुद्रण, रावत प्रकाशन, जयपुर।

शीत युद्ध समाप्ति के बाद भारत-अमेरिकी संबंध में पारस्परिक सहयोग के बिंदु

प्रहलाद कुमार मीना

सह आचार्य-राजनीति विज्ञान, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

शोध सारांश- शीत युद्ध के बाद के युग में भारत और अमेरिका के बीच घनिष्ठ रणनीतिक साझेदारी का विकास भारत की विदेश नीति की विशिष्ट विशेषता को दर्शाता है। यह समय की तुलना और सामग्री दोनों में विशिष्ट है। यदि हम भारत-अमेरिका संबंधों की दो चरणों में तुलना करते हैं- शीत युद्ध के दौरान और शीत युद्ध के बाद उनकी विशिष्टता स्पष्ट हो जाती है क्योंकि दोनों देशों के बीच जुड़ाव की दिशाओं में उल्लेखनीय अंतर है।

भारत और अमेरिका के बीच शीत युद्ध के बाद के संबंधों ने आतंकवाद, रक्षा सहयोग, व्यापार और निवेश, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, शिक्षा, ऊर्जा जैसे कई विविध क्षेत्रों को कवर करने के लिए विस्तार किया है। हालाँकि, भारत की रणनीतिक स्वायत्तता के लिए जो महत्वपूर्ण है, वह इन संबंधों की विविधता नहीं है, बल्कि उनकी बढ़ती रणनीतिक प्रोफाइल और विशिष्टता है।

असैन्य परमाणु क्षेत्र में सहयोग जैसे सामरिक घटकों के बढ़ते हिस्से के साथ लगातार विकसित हो रही भारत-अमेरिका साझेदारी की सामग्री को समृद्ध किया गया है, संयुक्त आतंकवाद रोधी तंत्र, संयुक्त समुद्री अभ्यासों के साथ रक्षा सहयोग को मजबूत करना, उन्नत रक्षा प्रणाली की आपूर्ति और सह-उत्पादन, रक्षा बलों के अंतर- परिचालन के लिए तंत्र, भारत को अमेरिका का प्रमुख रक्षा साझेदार घोषित किया जाना, इंडो-पैसिफिक क्षेत्र के लिए एक आम रणनीतिक दृष्टि का विकास, और अमेरिका की दक्षिण एशियाई रणनीति में भारत की बढ़ी हुई भूमिका।

मूल शब्द- शीत युद्ध, गुटनिरपेक्षता, एक ध्रुवीयता, महाशक्ति, साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद।

परिचय- शीत युद्ध की अवधि के दौरान, भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति का पालन किया और दो महाशक्तियों (अमेरिका और सोवियत संघ) और उनके सैन्य गठबंधनों के बीच शीत युद्ध की प्रतिद्वंद्विता से दूर रखने की कोशिश की। अमेरिका ने पसंद नहीं किया क्योंकि उसके पूर्व विदेश सचिव जॉन फोस्टर डुल्ल्स ने एक बार इसे श्अपरिपक्व घोषित कर दिया था।

हालाँकि, अमेरिका ने कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं पर भारत का समर्थन किया जैसे कि 480 कार्यक्रम के तहत 1950 में भारत को खाद्यान्न की आपूर्ति और 1962 में चीन की आक्रामकता के दौरान भारत को राजनीतिक समर्थन- प्रदान करना। लेकिन, 1970 के दशक की शुरुआत से, भारत-अमेरिका के संबंधों में लगातार नकारात्मक प्रतिक्रियाएं मिली।

भारत-पाक युद्ध, 1971 के दौरान भारत के खिलाफ अमेरिका द्वारा बंदूक-नाव कूटनीति के उपयोग जैसे कुछ मुद्दों और घटनाओं के मद्देनजर, अगस्त 1971 में शांति और मित्रता की भारत-सोवियत संघ संधि पर हस्ताक्षर, मई 1974 में भारत के परमाणु प्रयोग के बाद अमेरिका और उसके सहयोगियों द्वारा भारत के खिलाफ प्रतिबंधों को लागू करना, 1979 में अफगानिस्तान में सोवियत संघ सैन्य हस्तक्षेप के लिए भारत का अप्रत्यक्ष समर्थन, 1980 के दशक में पाकिस्तान को अमेरिकी सैन्य और आर्थिक सहायता और अमेरिकी साम्राज्यवाद और पूंजीवादी विश्व व्यवस्था और अन्य समान मुद्दों पर भारत का लगातार विरोध।

1990 के दशक में सोवियत संघ के विघटन के साथ शीत युद्ध का अंत भारत-अमेरिका संबंधों में एक मील का पत्थर था। इसने कुछ द्विपक्षीय अड़चनों को समाप्त कर दिया, विशेष रूप से सोवियत संघ के साथ भारत की रणनीतिक निकटता और दोनों देशों के बीच अन्य मतभेदों को पतला कर दिया। 1989 में अफगानिस्तान से सोवियत सेनाओं की वापसी के कारण अमेरिकी दक्षिण एशियाई रणनीति में पाकिस्तान के सामरिक महत्व में कमी आई। 1991 में भारत वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ घनिष्ठ एकीकरण की दृष्टि से आर्थिक उदारीकरण के लिए गया।

यह बदलाव अमेरिका और उसके पश्चिमी सहयोगियों की आर्थिक जरूरतों और आकांक्षाओं के अनुरूप था। शीत युद्ध के बाद के दौर में हुए इन घटनाक्रमों ने भारत-अमेरिका संबंधों की दिशा को और अधिक सकारात्मक और तालमेल वाले दौर की ओर मोड़ दिया। चीन की आर्थिक और सैन्य वृद्धि ने और बढ़ा दिया और भारत-अमेरिका रणनीतिक साझेदारी के लिए एक चिपकने वाली ऊर्जा प्रदान करना जारी रखा।

भारत-अमेरिका रणनीतिक साझेदारी के पहलू-

भारत-अमेरिका रणनीतिक साझेदारी में तीन महत्वपूर्ण पहलू हैं- असैन्य परमाणु सहयोग, रक्षा सहयोग, और आतंकवाद निरोधी उपाय। इन पहलुओं में साझेदारी के द्विपक्षीय, क्षेत्रीय और वैश्विक आयाम हैं।

सिविल न्यूक्लियर कोऑपरेशन- शांतिप्रिय नागरिक परमाणु सहयोग समझौता, 2008 दोनों देशों के बीच पहली बड़ी रणनीतिक सफलता है। यह समझौता भारत के लिए विशेष रणनीतिक महत्व रखता है क्योंकि इसने 1974 के शांतिपूर्ण परमाणु विस्फोट के बाद से भारत के वैश्विक परमाणु अलगाव को समाप्त

कर दिया। भारतीय प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह और अमेरिकी राष्ट्रपति बुश के बीच जुलाई, 2005 में हस्ताक्षरित रणनीतिक सहयोग के लिए इस समझौते की नींव रखी गई थी। भारत को भी परमाणु अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर किए बिना एक जिम्मेदार और वास्तविक परमाणु ऊर्जा और सुविधा किले परमाणु सहयोग के रूप में मान्यता दी गई थी।

इस सौदे को अमेरिका के भारत संबंधों में एक वाटरशेड के रूप में देखा जाता है और अंतर्राष्ट्रीय अप्रसार प्रयासों के लिए एक नया पहलू पेश करता है। 1 अगस्त, 2008 को, द्रुश्व ने भारत के साथ सुरक्षा समझौते को मंजूरी दे दी, जिसके बाद संयुक्त राज्य अमेरिका ने परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह से संपर्क किया, ताकि भारत को असैन्य परमाणु व्यापार शुरू करने के लिए छूट प्रदान की जा सके। इस सौदे ने भारत को रूस, फ्रांस, दक्षिण कोरिया, जापान और ऑस्ट्रेलिया जैसे कई अन्य देशों के साथ समान परमाणु सहयोग समझौतों पर हस्ताक्षर करने की सुविधा प्रदान की।

अमेरिका ने तीन अन्य बहुपक्षीय अप्रसार व्यवस्थाओं की सदस्यता प्राप्त करने में भारत को प्रोत्साहित और समर्थन दिया–

1. भारत को सितंबर, 2016 में (मिसाइल टेक्नोलॉजी कंट्रोल रिजीम) की सदस्यता मिली है। मिसाइल टेक्नोलॉजी कंट्रोल रिजीम की स्थापना 1987 में बड़े पैमाने पर विनाश सक्षम बैलिस्टिक मिसाइलों, क्रूज मिसाइलों और मानव रहित हवाई वाहनों और संबद्ध हथियारों के प्रसार को प्रतिबंधित करने के लिए की गई थी। गैर-मिसाइल राज्यों को तकनीक।
2. भारत जनवरी 2018 में ऑस्ट्रेलिया समूह (एजी) में शामिल हो गया। 1985 में इसे एक अनौपचारिक मंच के रूप में स्थापित किया गया था ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि निर्यात रासायनिक या जैविक हथियारों के विकास में योगदान न करें।
3. भारत 2017 में वासेनार अरेंजमेंट में शामिल हुआ, जिसे जुलाई 1996 में 33 राष्ट्रों द्वारा स्थापित किया गया था। यह उन देशों को पारंपरिक हथियारों और दोहरे उपयोग वाले सामानों और प्रौद्योगिकियों के निर्यात को नियंत्रित करने का प्रयास करता है, जिन्होंने एनपीटी पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं।

हालाँकि, चीन द्वारा उठाए गए कड़े विरोध के कारण भारत को परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह की सदस्यता मिलनी बाकी है। अमेरिका एनएसजी में भारत के प्रवेश का पुरजोर समर्थन करता है।

रक्षा सहयोग– रक्षा सहयोग की नींव एक रक्षा ढांचा सहयोग समझौते द्वारा 2005 में 10 साल की अवधि के लिए हस्ताक्षरित रखी गई थी, जिसमें संयुक्त समुद्री अभ्यास, हथियारों की आपूर्ति और रक्षा जानकारी के आदान- प्रदान को निर्धारित किया गया था। उन्होंने 2007 में संयुक्त मालाबार नौसैनिक अभ्यास शुरू करने का फैसला किया, जिसमें शुरू में जापान भी शामिल था, लेकिन चीनी आपत्तियों के कारण, जापान को मालाबार अभ्यास से हटा दिया गया था।

हालांकि, जनवरी 2015 में अमेरिकी राष्ट्रपति ओबामा की यात्रा के बाद, दोनों देश जापान को भविष्य के अभ्यास में आमंत्रित करने पर सहमत हुए। नतीजतन जापान ने 2016 में मालाबार तंत्र को फिर से शामिल किया है। उम्मीद है कि ऑस्ट्रेलिया जल्द ही इस त्रिपक्षीय नौसेना अभ्यास में शामिल हो सकता है।

उन्नत प्रणाली की आपूर्ति के साथ रक्षा सह-उत्पादन और सह-विकास - भारत-अमेरिका रक्षा सहयोग का एक महत्वपूर्ण तत्व है। दोनों देशों ने रक्षा ढांचे समझौते के एक हिस्से के रूप में महत्वाकांक्षी रक्षा प्रौद्योगिकी और व्यापार पहल की घोषणा की, 2015 में 10 वर्षों की अवधि के लिए नवीनीकृत किया गया। सह उत्पादन और क्षमताओं का सह-विकास को मजबूत करना है जो सैन्य बलों के निरंतरता और आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक हैं। 130 सुपर हरक्यूलिस विमान के लिए खुफिया एकत्रीकरण और टोही मॉड्यूल, मोबाइल इलेक्ट्रिक हाइब्रिड पावर स्रोत, सैनिकों के लिए रासायनिक, जैविक युद्ध सुरक्षा गियर उपर्युक्त विकास की अगली कड़ी में, भारत को 2016 में अमेरिका द्वारा एक प्रमुख रक्षा साझेदार नामित किया गया था, जो भारत को अमेरिका से सबसे उन्नत रक्षा उपकरणों की आपूर्ति था, का अधिकार देता है।

भारत ने अमेरिका से कई उन्नत रक्षा वस्तुओं जैसे 130 विमान, समुद्री निगरानी विमान, और जलशवा, अपाचे हमले के हेलीकॉप्टर और चिनूक भारी लिफ्ट हेलीकॉप्टर और अन्य खरीदे हैं। मोदी के जून, 2017 के अमेरिका दौरे के दौरान, अमेरिका भारत को कुछ सी गार्डियन ड्रोन बेचने के लिए सहमत हुआ। यह उन्नत पायलट रहित ड्रोन हिंद महासागर में निगरानी और निगरानी के लिए भारत की क्षमता को बढ़ाएगा।

पिछले कुछ वर्षों में, अमेरिका ने रूस को भारत के लिए प्रमुख रक्षा आपूर्तिकर्ता के रूप में प्रतिस्थापित किया है।

परिचालन स्तर पर रक्षा सहयोग को मजबूत करने के लिए, अमेरिका ने भारत के साथ चार समझौतों पर हस्ताक्षर करने का प्रस्ताव रखा, जिन्हें मूलभूत समझौतों के रूप में जाना जाता है। इन चार समझौतों में से, भारत, शुरुआती झिझक के बाद, अब तक तीन समझौतों पर हस्ताक्षर कर चुका है–

1. सैन्य सूचना समझौते की सामान्य सुरक्षा पर 2002 में हस्ताक्षर किए गए थे और यह सैन्य मामलों के बारे में विनिमय और संचार की सुरक्षा प्रदान करता है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि जीएसओएमआईए भारत सरकार और सार्वजनिक एजेंसियों के साथ अमेरिकी सरकार और कंपनियों से वर्गीकृत जानकारी साझा करने की अनुमति देता है लेकिन भारतीय निजी क्षेत्र की नहीं। हालांकि, दोनों देशों ने औद्योगिक सुरक्षा अनुबंध (एएसए) पर बातचीत शुरू करने के लिए 2+2 वार्ता के दौरान 2018 में सहमति व्यक्त की है, जो भारतीय निजी क्षेत्र की कंपनियों को अमेरिकी रक्षा कंपनियों के साथ सहयोग करने की अनुमति देगा।
2. लॉजिस्टिक एक्सचेंज मेमोरेंडम ऑफ एग्रीमेंट पर 2016 में हस्ताक्षर किए गए थे। यह भारत और अमेरिकी सेनाओं के बीच सैन्य रसद साझा करने पर एक समझौता है। यह समझौता एक दूसरे के युद्धपोतों और हवाई जहाजों के लिए ईंधन भरने और बर्थिंग जैसी सुविधाएं प्रदान करेगा।
3. नई दिल्ली में पहले 2+2 वार्ता के दौरान सितंबर 2018 में संचार संगतता और सुरक्षा समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। यह भारत को एक सुरक्षित नेटवर्क के माध्यम से विमान और जहाजों के साथ सैन्य कमांडरों को संचार करने की अनुमति देने वाले एन्क्रिप्टेड संचार उपकरण और सिस्टम प्राप्त करने में सक्षम करेगा।

4. जियोस्पेशियल कोऑपरेशन पर बेसिक एक्सचेंज एंड कोऑपरेशन एग्रीमेंट भारत को स्थलाकृतिक और वैमानिकी डेटा और उत्पाद प्रदान करेगा, जो नेविगेशन और लक्ष्यीकरण में सहायता करेगा। इस समझौते पर अभी हस्ताक्षर होना बाकी है।

रूस के साथ उसकी सामरिक स्वायत्तता और रक्षा साझेदारी को खोने के डर से भारत ने कुछ वर्षों के लिए इन समझौतों पर हस्ताक्षर करने में देरी की है। लेकिन अब मौजूदा परिस्थितियों में झिझक दूर हो गई है।

भारत को अगस्त 2017 में घोषित अमेरिकी दक्षिण एशिया रणनीति में एक प्रमुख भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित किया गया था। इस रणनीति का उद्देश्य अफगानिस्तान में शांति और स्थिरता बहाल करना और पाकिस्तान को आतंकवादी तत्वों के समर्थन के लिए पाकिस्तान को दरकिनार करना है।

हाल के वर्षों में, दोनों देशों के बीच रक्षा संबंधों को नए सिरे से ध्यान केंद्रित किया गया है। दो देशों के विदेश मंत्रियों के साथ रक्षा मंत्रियों को शामिल करके 2+2 वार्ता का शुभारंभ भारत और अमेरिका के बीच घनिष्ठ रणनीतिक संबंधों के और विस्तार का संकेत नहीं है। सितंबर 2, 2018 के पहले सप्ताह में दिल्ली में 2+2 वार्ताओं का उद्घाटन दौर आयोजित किया गया था, जिसमें अन्य बातों के अलावा एक नई त्रि सेवाओं के संयुक्त अध्याय पर समझौतों की सुविधा थी, रक्षा नवाचार में सहयोग का विस्तार, और संचार संगतता और सुरक्षा समझौता।

सी इंडो-पैसिफिक स्ट्रेटेजिक थिएटर- चीन और अन्य एशियाई देशों के उदय के साथ, चीन और आसियान सदस्यों की तरह, भारत-प्रशांत महासागर ने हाल के वर्षों में रणनीतिक और आर्थिक महत्व ग्रहण किया है। यह क्षेत्र अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और ऊर्जा संसाधनों के लिए प्रमुख आपूर्ति मार्ग है और इसमें शामिल है। इसमें दो गर्म स्थान हैं मलक्का जलडमरूमध्य और दक्षिण चीन सागर। संकीर्ण मलक्का जलडमरूमध्य हिंद महासागर को प्रशांत महासागर से जोड़ता है और दक्षिण चीन सागर चीन और उसके पांच पड़ोसियों- ताइवान, वियतनाम, ब्रुनेई, मलेशिया और फिलीपींस के बीच एक विवादित स्थान के रूप में उभरा है। चीन दक्षिण चीन सागर के 90 प्रतिशत हिस्से का दावा करता है और इस क्षेत्र में शक्ति प्रक्षेपण के लिए प्रेरित करता है, यह स्थिति अमेरिका को नेविगेशन की स्वतंत्रता की जमीन पर स्वीकार नहीं है।

यह भारत-प्रशांत क्षेत्र में भी है कि चीन ने 21 वीं सदी की समुद्री रेशम मार्ग परियोजना शुरू की है, जिसमें प्रशांत महासागर से पूर्वी अफ्रीकी तट तक बंदरगाह और बुनियादी सुविधाओं का विकास शामिल है। भारत और अमेरिका दोनों इस परियोजना में शामिल हो गए हैं, जिसे आलोचकों ने चीन की घेरा नीति या सौ साल के मोतियों की स्ट्रिंग के सौम्य संस्करण के रूप में देखा है।

इस प्रकार, भारत-प्रशांत भारत के लिए अविश्वसनीय रणनीतिक महत्व रखता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिका इस क्षेत्र में एक निवासी शक्ति रहा है और चीन और उसके शक्ति प्रक्षेपण के क्षेत्र में अमेरिकी प्रभाव पर सेंध लगाने की संभावना है। भारत ने अपने लुक ईस्ट और अब एक्ट ईस्ट पॉलिसी के तहत इस क्षेत्र में गहरी रुचि विकसित की है और 2004 में हिंद महासागर से परे नौसेना की भूमिका को बढ़ाने की घोषणा की है। अमेरिका प्रशांत क्षेत्र में भारत को बड़ी भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित करता रहा है।

जनवरी 2010 में अपनी पहली यात्रा के दौरान, अमेरिकी राष्ट्रपति ओबामा ने भारत-अमेरिका संबंधों को श्इक्कीसवीं सदी की मैत्रीपूर्ण मित्रताश कहा था। और 2015 की अपनी यात्रा के दौरान, ओबामा ने टिप्पणी की, भारत और अमेरिका सिर्फ प्राकृतिक सहयोगी नहीं हैं, मेरा मानना है कि यू एस भारत का सबसे अच्छा साथी हो सकता है। 2015 में इस यात्रा के दौरान, दोनों देशों ने एक महत्वपूर्ण रणनीतिक दस्तावेज- एशिया प्रशांत और हिंद महासागर क्षेत्र पर यूएस-इंडिया रणनीतिक दृष्टि पर हस्ताक्षर किए। इसमें कहा गया है कि भारत और अमेरिका के बीच घनिष्ठ सहयोग भारत-प्रशांत क्षेत्र में शांति, स्थिरता और समृद्धि सुनिश्चित करने के लिए अपरिहार्य है। दोनों ने पुष्टि की कि इस क्षेत्र में विशेष रूप से दक्षिण चीन सागर में समुद्री सुरक्षा और नेविगेशन की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने की आवश्यकता है। यह अंतर्राष्ट्रीय कानून के तहत सभी समुद्री विवादों को हल करने या धमकी के उपयोग के लिए कहता है।

अन्य बातों के अलावा, अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने 2017 में चार सदस्य (अमेरिका, भारत, जापान और ऑस्ट्रेलिया) के रूप में भारत-प्रशांत क्षेत्र में रणनीतिक साझेदारी तंत्र अर्थात क्वॉड के विचार को पुनर्जीवित किया। इसके अलावा यू.एस. पैसिफिक कमांड को हाल ही में इंडो-पैसिफिक कमांड के रूप में नाम दिया गया था, इस महत्व का प्रतीक है कि इस क्षेत्र में भारत और हिंद महासागर के साथ संलग्न हैं। इस प्रकार, भारत और अमेरिका भारत-प्रशांत क्षेत्र में अपनी रणनीतिक समझ और साझेदारी को मजबूत करने के तरीके में हैं। ऐसा लगता है कि क्षेत्र में चीन के लगातार बिजली प्रक्षेपण और भारत के साथ कभी-कभार होने वाली परेशानियों ने इस साझेदारी को सुगम बना दिया है।

स्ट्रैटेजिक ऑटोनॉमी-ए टाइट्रोप वॉक- उपरोक्त विश्लेषण दर्शाता है कि भारत और अमेरिका के बीच रणनीतिक साझेदारी न केवल बहुत मजबूत है, बल्कि नो-रिटर्न के चरण में भी उन्नत है। दिसंबर, 2017 में अमेरिका द्वारा घोषित नई सुरक्षा रणनीति (एनएसएस), भारत की अग्रणी वैश्विक शक्ति और अमेरिका के मजबूत रणनीतिक और रक्षा भागीदार के रूप में उभरने का स्वागत करती है। एनएसएस भी इस क्षेत्र में भारतीय सहायता बढ़ाता है। भारत हिंद महासागर की सुरक्षा और व्यापक क्षेत्र में अपनी नेतृत्वकारी भूमिका के लिए समर्थन का हकदार है।

इस पृष्ठभूमि में, अगर अमेरिका रूस, चीन, ईरान और अन्य प्रमुख शक्तियों के साथ तनाव विकसित करता है, तो सामरिक स्वायत्तता बनाए रखना एक कठिन चाल है। वर्तमान में, अमेरिका के तीनों देशों के साथ तनावपूर्ण संबंध हैं। यूक्रेनी मामलों में रूसी हस्तक्षेप के मुद्दे पर अमेरिका ने रूस के खिलाफ प्रतिबंध लगाए हैं। अमेरिका ने ईरानी परमाणु समझौते से हटने और आगे प्रतिबंधों को फिर से लागू करने की घोषणा की है।

अमेरिका के पास उन देशों को दंडित करने का कानूनी प्रावधान है जो अमेरिकी प्रतिबंधों के खिलाफ जाते हैं और इन देशों से निपटते हैं। यह कानूनी प्रावेधान प्रतिसाद अधिनियम, 2017 के माध्यम से काउंटरिंग अमेरिका के सलाहकार के रूप में जाना जाता है। ऊपर दिए गए संबंधित प्रावधानों के भारत भी इन देशों से निपटने के लिए विवश है।

दिसंबर 2017 में, अमेरिका ने अपनी लंबे समय से प्रतीक्षित नई सुरक्षा रणनीति (एनएसएस) का अनावरण किया, जो अन्य बातों के अलावा, रूस और चीन को अमेरिकी हितों और वैश्विक प्रभाव के लिए प्रमुख खतरे के रूप में मानते हैं। उपरोक्त अमेरिकी प्रतिबंधों के मद्देनजर, भारत भी इन देशों के साथ

व्यवहार करने के लिए विवश है। फिर भी, भारत, अमेरिका के खुले और विशिष्ट विरोध के बावजूद, अक्टूबर 2018 में रूस से एस -400 मिसाइल रक्षा प्रणाली की खरीद के साथ आगे बढ़ा और भविष्य में ईरान के साथ तेल व्यापार जारी रखने का भी फैसला किया। जैसा कि राष्ट्रपति ट्रम्प अपनी अमेरिका फर्स्ट नीति के साथ आगे बढ़ते हैं, भारत भविष्य में इस तरह की कई अन्य कठिन परिस्थितियों का सामना कर सकता है।

निष्कर्ष- यद्यपि भारत और अमेरिका के संबंधों में कई तनाव के बिंदु हैं। कई बार अमेरिका ने अपने स्वार्थ के अनुकूल इन संबंधों को दिशा देने का प्रयास भी किया है तथापि बढ़ते आर्थिक युग में और उदारीकरण व वैश्वीकरण के इस दौर में अमेरिका ने भारत के बढ़ते कद और उसकी भूमिका को समझा है और इसी कारण अमेरिका निरंतर भारत के साथ अपने संबंधों को एक नया आयाम देने के लिए प्रयास कर रहा है।

भारत भी वैश्विक परिदृश्य में अपनी मजबूती को नया आयाम देने के लिए अमेरिका के साथ अपने संबंधों को नई ऊंचाइयों तक पहुंचा रहा है और इसी कारण पिछले कुछ समय में भारत और अमेरिका के साथ कई महत्वपूर्ण समझौतों पर हस्ताक्षर हो चुके हैं और दोनों ही देश पारस्परिक रिश्तो को एक नया धरातल और इस रूप में संपूर्ण वैश्विक परिदृश्य को प्रभावित करने का प्रयास कर रहे हैं। हम आशा कर सकते हैं कि भविष्य में भारत-अमेरिकी साझेदारी दोनों ही देशों के संबंधों को एक सकारात्मक अर्थ प्रदान करेंगे और इससे दोनों देशों के संबंधों को एक नया आधार मिलेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. चतुर्वेदी, अरूण, तायल, विमलेन्दु, अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद और अन्तर्राष्ट्रीय विधि, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1988
2. चौपड़ा, वी.डी., ग्लोबल चौलेन्ज ऑफ टैरिरिज्म, ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
3. समद्दर, सुजीत, डिफेन्स, डपलपमेन्ट एण्ड नेशनल सेक्युरिटी, ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
4. आडवाणी, एल.के. मेरा देश मेरा जीवन, भारत रूपा एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2008
5. गिरिराज, शाह, द लाईफ एण्ड टाईम्स ऑफ मेंज विलियम स्लेगन, ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
6. गुप्ता, राकेश, टैरेरिज्म कम्युनलिज्म एण्ड अदर चौलेन्जेज टू इण्डियान सिक्युरिटी, ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004
7. गुलाम, श्रीप्रकाश, मोहम्मदशाह, टुवर्ड्स अण्डरस्टेन्डिंग द कश्मीर क्राईसेस, नई दिल्ली, 2015
8. लाल, ए.के., नीयो-टैरेरिज्म, ज्ञान पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2004
9. मिश्रा, पुष्पेंद्र कुमार, भारत-पाक संबंध : एक पूनर्वेक्षण, क्लासिकल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2016
10. सेन, अमर्त्य, स्वतंत्रता के रूप में विकास, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2000
11. चन्द्र भूषण, टैरेरिज्म एण्ड सेपरेशन इन नॉर्थ ईस्ट इण्डिया, ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
12. चन्द्र रमेश, ग्लोबल टैरेरिज्म : ए थेट टू ह्यूमनिटी, ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003
13. दीक्षित, संजय, अनब्रेकिंग इंडिया डिसीजन ऑन आर्टिकल 370 एंड सीएए, गरुड़ प्रकाशन, 2020
14. भोंडले के., राहुल, इण्डिया सिक्योरिटी स्कोप, ऑक्सफोर्ड पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2006
15. चन्द, अत्तर, टैरेरिज्म पॉलिटिकल वायलेन्स एण्ड सेक्युरिटी ऑफ नेशन्स, ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988
16. हॉरोविट्ज, डोनाल्ड, सामुदायिक संघर्ष : नीति और संभावनाएँ, ईगल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1990

देवपाल के मान्धाता ताम्रपत्र लेख में प्रतिबिम्बित सामाजिक एवं आर्थिक जीवन-एक अध्ययन

सूर्यकान्त मणि

शोध छात्र, प्रा0भा0इ0सं0 एवं पुरा0 विभाग, आर्य महिला पी0जी0 कॉलेज, चेतगंज वाराणसी, (सम्बद्ध काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

प्रस्तुत ताम्रपत्र लेख[1] की प्राप्ति मान्धाता नामक स्थल से हुई, जो मध्य प्रदेश के निमाड़ जनपद में अवस्थित हैं। जो सिद्धेश्वर मन्दिर के पास नर्मदा नदी के किनारे एक गाँव के रूप में विख्यात है। यहाँ से तीन की संख्या में ताम्रपत्र मिले है। इनमें देवपाल नामक महाकुमार वंशीय (परमार राजवंश की एक अन्य अवर शाखा) राजा का वर्णन मिलता है। इस की तिथि वि. सं. 1282 वर्ष अर्थात् 1225 ई0 हैं। यह लेख की लिपि 13 वीं शताब्दी की नागरी लिपि एवं भाषा संस्कृत में है। जो गद्य-पद्य के रूप वर्णित है, यह लेख तीन ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण मिलताहै। जिसमें प्रथम के पृष्ठभाग, द्वितीय के अग्रभाग- पृष्ठ भाग, तृतीय के अग्रभाग पर सुन्दर एवं सरल रूप में लिपिबद्ध है। इनमें व के स्थान पर बस के स्थान परश का उपयोग लेखन शैली की एक अलग विशेषता प्रस्तुत कर रहा है। जो संभवत: तद्युगीन राजवंश के द्वारा क्षेत्रीय लिखने की विधि रही हो। इसके तीसरे ताम्रपत्र के अग्रभाग के नीचे गरूड़ का अंकन मिलता है, जो हमें परमार राजवंश के राजकीय चिन्ह के रूप में दिखलाई पड़ता है। यह अभिलेख राजनीतिक एवं सामाजिक दृष्टि से इतिहास के पुन:र्निर्माण में अपना महळवपूर्ण योगदान देता है। इस लेख में घ्संदर्भित है कि ब्राह्मण वर्ण के लोगों को गाँव का 32 भागों में विभाजित करके भूमिदान देने को श्रेस्यकर माना गया है। इसके अतिरिक्तइसमें भी आर्थिक जीवन एवं धार्मिक महत्त्व को भी दर्शाया गया है। अत: प्रस्तुत उक्त लेख में संस्कृति के विविध पक्षों को उद्घाटित करने का प्रयास किया जायेगा।

प्राचीन भारतीय समाज का मुख्य आधार उसकी व्यवस्था पर निर्भर करता है। जो वर्ण-व्यवस्था के रूप में समाज के सामाजिक संरचना में पल्लवित व प्रचलित रहती है। यह प्राचीन काल से लेकर पूर्व मध्यकाल तक आते-आते परिवर्तित होकर जाति एवं उपजाति का स्थान ले लिया। इस आमूल-चूल परिवर्तन से वर्णव्यवस्था के गोत्र, प्रवर, वेदाध्ययन शाखा पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव दिखलाई पड़ता है, इस लेख में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र के विषय में स्पष्ट विवरण मिलता है। जो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में एक उत्तम उदाहरण हो सकता है। इस लेख के पंक्ति क्रमांक संख्या-23-71 तक में सताजुणा[2] गाँव में 32 ब्राह्मणों सहित अन्य दूसरे गाँव से आये हुए ब्राह्मणों की चर्चा मिलती है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि देवपाल के राजत्वकाल में ब्राह्मणों को समाज में विशिष्ट स्थान प्राप्त हो रहा। ब्राह्मण का तात्पर्य है कि एक पुरोहित वर्ग से है जो वैदिक काल से परम तळवज्ञानी के रूप में समाज में विद्यमान रहा है। ब्राह्मण का मुख्यत: कार्य अध्ययन- अध्यापन, यजन-याजन, याज्ञिक- कर्मकाण्ड हीमाना जाता हैं।[3] ब्राह्मण वर्ण के 32 ब्राह्मणों के मूलस्थान[4], वेदाध्ययनशाखा[5], गोत्र-प्रवर[6], पितामह का नाम[7], पिता का नाम8, दान प्राप्तकर्ता9 का नाम क्रमश: लेख पक्ति क्रमांक 23-71 तक में इस प्रकार वर्णित है कि "आश्रम, महावन, टकारी, त्रिपुरी, मुतवथु, अकोला, मथुरा, डिम्डावानक, मुतावथु, मध्यदेश, टकारी, मध्यदेश, सरस्वती, मथुरा, व हस्तिनापुर; वाजिमाध्यदिन, आश्वयलायन, माध्यंदिन, कौथुम, शाखायन, माध्यांदिन, राणयिनी,कठ; पराशर, पवित्र, औदल्य, कात्यायन, भारद्वाज, काश्यप, परावसु, वसु, वशिष्ठ, भार्ग्गव, गौतम, वत्स, मुदगल, शांडिल्य, धौम्य, हरितकुत्स, मार्कण्डेय, कौत्स., पराशर शक्तृ वशिष्ठ, गार्ग्गय गौरि वीतांगिरस, भारद्वाज अंगिरस वार्हस्पत्य, काश्यप वत्सार नैध्रूव, परावसू, कांकायान, कैंकस, काश्यप वत्सार, वशिष्ठ, भार्गव-च्यवन, आप्नुवान-आर्व्य जामदग्नी, भार्ग्गव-वैहव्य-सावेतस, काश्यप वत्सार नैध्रुव, गौतम अंगिरस औतत्श्य, भार्ग्गव-च्यावन, आप्नुवानऔर्व्व, जामदग्न, अंगिरस भर समुद्गल, शांडिल्य अशित देवल, अंगिरस अवरीष यौवनाश्व, काश्यप वत्सार नैध्रुव, पराशर शक्तृ वशिष्ठ, श्रोत्रि, दामोदर, गंगाधर, सिंहकण्ठ, पद्यमस्वामि, रामेश्वर, डालण, केल्हण, हरिधर, पृथ्विधर, भरतपाल, चतुर्व्वेद जर्नादन, चतुर्व्वेद समुद्धर, चतुर्व्वेद पवित्र, चतुर्व्वेद समुद्धर, चतुर्व्वेद धरणीधर, द्विवेद्वी गोविन्द, गंगाधर, पण्डित-मदन, त्रिवेदी-जर्नादन, अग्निहोत-छीतू, याग्निगोत्र नागदेव, चतुर्व्वेद विष्णु, त्रिवेद्वी माधव, त्रिवेद्वी ऋषि, चतुर्व्वेदी विजय, उपाध्याय-नारायण, अग्निहोत्र-कटुक, अग्निहोत्र- छीतू, द्विवेद्वी नारायण- चतुर्व्वेदी हरि, पऋच-काह्लड़, श्रोति ब्रहमा, आवस्थानिक महादित्य शुक्ल मधुकण्ठ, त्रिलोचन, द्विवेद्वी जसोधर, त्रिवेद्वी-आसाधर मधु, पण्डित-महीधर, चतुर्व्वेद आशाधर, डाल्लण, चतुर्व्वेद धरणीधर, चतुर्व्वेद विष्णु, चतुर्व्वेद देवधर, चतुर्व्वेद धरणीधर, चतुर्व्वेद देवधर, चतुर्व्वेद ब्रहमा, द्विवेद्वी वासधर, केशव, पण्डित कान्हड़ त्रिवेद्वी नरसिंह, अग्निहोत्र धरणीधर यानिहोत्र कृष्ण, चतुर्व्वेद साधारण, त्रिवेदी सोमेश्वर, त्रिवेद्वी मार्कण्ड, चतुर्व्वेद अजयी, अग्निहोत्र जसदेव, पुरूर्षोत्तम, उपाध्याय दामोदर, द्विवेदी पद्यमनाम, चतुर्व्वेद जर्नादन, पत्रूच कुमार, श्रोति गंगाधर शर्मा, शुक्ल भद्रेश्वर शर्मा, शुक्ल चन्द्रकण्ठ शर्मा, नारायण शर्मा, त्रिवेद्वी सूर शर्मा, विश्वेश्वर रामशर्मा, पण्डित भृगु शर्मा, अग्निहोत नारायण गोसल शर्मा, महाराज पण्डित श्री गोस-शर्मा, चतुर्व्वेद-रामेश्वर-शर्मा, चतुर्व्वेद-गदाधर-शर्मा, चतुर्व्वेद-गर्भेश्वर, चतुर्व्वेद लोहट शर्मा, चतुर्व्वेद-पुरुषोळाम, द्विवेदी गंगाधर शर्मा, उदै शर्मा, पण्डित कुलधर शर्मा, अग्निहोत अभिनन्द शर्मा, अग्नि अन्नन्त शर्मा, आग्निहोत्र स्थानेश्वर शर्मा, चतुर्व्वेद उधर शर्मा, त्रिवेद्वी कुलधर शर्मा, त्रिवेद्वी मधुसूदन शर्मा चतुर्व्वेद अल्लि शर्मा, लोहड़ शर्मा, नरसिंह शर्मा, मार्कण्डेय शर्मा, पाठक वायुदेव चतुर्व्वेद राजेशर्मा, पण्डित कुसुम पाल शर्मा।" अर्थात इससे यह स्पष्ट होता है कि देवपाल के शासन काल में राजा भोज की तरह पुरोहित वर्ग को एक विशेष राजाश्रय प्राप्त रहा हो।ऐसा ही आबू शाखा के पूर्णपाल नरेशके शासन काल में भडूण्द लेख (वि0सं0 1102 वर्ष) भी ऐसे ही 22 ब्राह्मणों को भूमिदान दिया गयाथा।[10] अत राजा भोज, देवपाल, पूर्णपाल ने पुरोहित वर्ग के लिए अपने राजदरबार में विशेष स्थान प्रदान करने के लिए विख्यात थे। इन ब्राह्मण वर्ण के चतुर्व्वेद

त्रिवेदी, द्विवेदी, उपाध्याय, पाठक, पण्डित उपाधि एक विशेष ज्ञानी वर्ग की ओर संकेत करता है।इनमें वेदाध्ययन शाखा में ऋग्वेद (आश्वालयन, शांखायन) शुक्ल-यजुर्वेद (माध्यंदिन, वाजसनेय) कृष्ण-यजुर्वेद (मैत्रायणी, कठ, तैतरीय), सामवेद (कौथुम, राणायनीय) महळ्वपूर्ण मानें जाते हैं। इस पुरोहित वर्ग के लिए एक अलग प्रकार का वर्णन हुआ जो इसलेख के अन्तिम के पंक्ति में 'महा-सन्धि-विग्रहिक-पण्डित-विल्हण' का उल्लेख मिलता है। अर्थात ऐसा स्पष्ट होता है कि ''परमार काल में प्रशासनिक पदों पर ब्राह्मण भी विराजमान होने लगे थे।''[11] इस लेख के पंक्ति क्रमांक दस में धर्मरक्षक (नरवर्मन) ने प्रत्येक प्रात: काल ब्राह्मणों को गाँव दान देने वाला स्वंय को कहा है।अत: देवपाल के शासन काल में ब्राहाण वर्ण को विशेष स्थान प्राप्त रहा हो। देवपाल के मान्धाता ताम्रपत्र लेख में 'क्षत्रिय वर्ण' का स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता हैपरन्तु पंक्ति क्रमांक ग्यारह में यशोवर्मन स्वंय को 'क्षत्रियों का मुकुट'[12] कहता है। जो क्षात्रकर्म एवं शूर वीरता के लिए विख्यात था। राजा भोज ने स्वंय को भगवान कृष्ण के समान कहा है। इसके अतिरिक्त लेख के आरम्भ में भगवान राम युधिष्ठिर, भीम कावर्णन मिलता है। जिनकी क्षात्रकर्म-धर्म की कथा सदियों तक प्रचलित रही है। परमार राजवंश राजपूत वंश परम्परा का मूल आधार रहा है, क्योंकि परमार राजवंश स्वयं को क्षत्रिय मानते थें।[13] उक्त लेख में वैश्य एवं शूद्र वर्ण का उल्लेख नहीं मिलता हैं। परन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि इन दो वर्णों का अस्तित्व न रहा हो, क्योंकि पशुपालक के रूप, व्यापारी के रूप में परमार कालीन अभिलेखों में दिखलाई पड़ता है। इस प्रकार का अर्जुनवर्मन के धार प्रशस्ति में इनका वर्णन मिलता है।

समाज के धार्मिक परम्परा का निर्वहन राजदरबार का रहा हो, अथवा साधारण वर्ग रहाहो।तद्युगीन लेख में पंक्ति क्रमांक-18 में वर्णन मिलता है कि "देवपाल ने सोमपर्व के पावन अवसर पर भगवान विष्णु के मन्दिर के पास भगवान भवानीपति की पूजा-अर्चना करके रेवा नदी में स्नान करके 32 ब्राहमणों को सताजुणा गाँव दान में देने का संकल्प लिया।[14]'' जो राजन्य वर्ग के धर्म के प्रति समर्पण को स्पष्ट करता है।इसके अलावा तृतीय ताम्रपत्र लेख के अग्रभाग के नीचे गरुड़देव और सर्प का अंकन मिलता है, जो परमार राजवंश का राजकीय चिन्ह भी माना गया है। ऐसा ही सरदार संग्रहालय, जोधपुर में एक गरुड़ देव की मूर्ति रखी हुई है, जो परमार राजवंश के समकालीन है। अत: यह स्पष्ट होता है इस काल में धार्मिक-सहिष्णुता का एक विशिष्ट उदाहरण दिखलाई पड़ता है, जो कि शैव-वैष्णव सम्प्रदाय की ओर इंगित करता है। इनमें भगवान विष्णु का वाहन गरुड़ और भगवान शिव के गले के हार के स्वरूप में सर्प (नागदेव) मुख्य हैं। यहाँ यह स्पष्ट नहीं हो पा रहा है कि गरुड़ देव एवं नागदेव में कोई माधुर्य सम्बन्ध रहा हो अथवा नहीं।डी0सी0 सरकार के कथन के अनुसार यह मांगलिक चिन्ह के तरह ही अंकन किया जा रहा है। जैसे स्वास्तिक, त्रिरत्न, बोधिवृक्ष आदि का अंकन मिलता है। जो गरुड़ पक्षी का विवरण कलात्मक दृष्टिकोण से विशेष है। प्राचीन भारत में मौर्यकाल गुप्तकाल, हर्षोळार काल, और पूर्व-मध्यकाल तक आते-आते ताम्रपत्रों पर स्पष्ट रूपों में अंकित मिलता है। देवपालके हरसूद लेख में श्लोक क्रमांक संख्या (9-10) वर्णन मिलता है कि 'देवपाल के राजळवकाल में हर्षपुर नामक में केशव नामक व्यापारी के द्वारा धारानगरी में शैव मन्दिर निर्मित करवाया गया था।'[15]अर्थात् इससे हमें शैव-धर्म की जानकारी मिलती है। इसके अलावा नागदेव की पूजा का प्रचलन रहा है। देवपाल के उदयपुर के मन्दिर स्तम्भ लेख (वि0सं0 1289 वर्ष)- "चौसठ ग्रामों समूह में भृंगारिका नामक गाँव था'', संभवत एक अन्य नाम उदयपुर रहा हो, जहाँ से बैद्यनाथ को समर्पित यह गाँव दान में दिया गया।''[16] यह दान मुख्य रूप से नील कण्ठेश्वर मन्दिर के पूजा-पाठ के लिए दिया गया हो। इन सब तथ्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि इन क्षेत्रों में भगवान शंकर का पूजा-पाठ का प्रचलन तेजी से रहा हो।इन उक्त ब्राहमणों के अलावा भी गाँव में निवास करने वाले ब्राहमणों, पटेल, अन्य जाति वर्ग के लोगों को दान देने का आदेश दिया अत: समाज के प्रत्येक वर्ग, जाति के लोगों को सुखमय जीवन व्यतीत करने का आधार प्रतिबिम्बितहोता है। इसके अतिरिक्त तात्कालिन लेख मेंसाहित्य व संगीत का भी उल्लेख मिलता है, जो तद्युगीन समाज में गीत- संगीत एवं कला-नाटक की ओर संकेत करता है। जबकि ऐसा ही अर्जुन वर्मन के धार प्रशस्ति लेख में 'परिजात-मन्जरी' नामक नाटक का कुछ अंश मिलता है, जो नाट्यशास्त्र का एक उळाम उदाहरण है।

इस लेख पंक्ति क्रमांक 23 के अन्त में वर्णन मिलता है कि "माता- पिता के पुण्य-यश के वृद्धि के लिए गाँव के छ: हल योग्य विभाजित भू-भाग से, आय, हिरण्य, भाग- भोग कर, जमा निधि के द्वाराभूमि दान के रूप में दिया गया।[17]''अर्थात यहाँ गाँव से तात्पर्य सताजुणा' से है, जिसको 32 ब्राहमणों में कई-भू भाग विभाजित दान किया गया। हिरण्य[18] से तात्पर्य- 'स्वर्ण मुद्रा के रूप में एक प्रकार के कर से है जबकि डी0सी0 सरकार के कथन के अनुसार "राजा का एक भाग, जो फसल उत्पादनों के द्वारा प्राप्त हो अर्थात् मुद्रा के समान हीरहा है उसे हिरण्य कहा जाता है।'' अर्थात् ऐसा कहा जा सकता है कि हिरण्य एक व्यापारिक-वाणिज्यिक नगदी फसल कर रहा हो। परन्तु इस 'हिरण्य-कर' की दर अथवा मात्रा क्या रही हो यह वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कहनाकठिन है। हिरण्यके राजस्व-आय का लेखा-जोखा रखने वाला अधिकारीहिरण्य-सामुदायिक होता था। अर्थात् एक प्राचीन उत्पादन भण्डारण प्रणाली का संकेत मिलता है।भाग-भोगकर[19] का अर्थ है कि "उस भू-भाग का उपभोग जो कर के रूप हो'' इस भोग-कर के बारे में कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'भू-कर' शब्द का वर्णन मिलता है। भाग-भोगकर का देख-रेख भौगिक नामक अधिकारी करता था। सोपरिकर[20] का भी उल्लेख हुआ, जो एक विशेष प्रकार का कर है। छ: हल जोतने योग्य भूमि[21] से आशय छ: हल से जोती हुई जमीन अथवा भूमि है, जो 32 ब्राह्मण लोगों में भू-माप प्रणाली के द्वारा बाँटकर दान में दी गयी। यहाँ 'हल' का आशय एक भू-माप के लिए प्रयोग है। अगर एक हल में एक जोड़ी बैल के द्वारा जोती गयी भूमि से है। छ: हल भूमि से सम्बन्ध छ: जोड़ी बैल से जोती भूमि का एक बड़ा भू-भाग से सम्बन्धित है।अत: छ: हल का एक विशाल भू-भाग 32 भागों में बाँटना एक उळाम कोटि की भू-मापन, प्रणाली की ओर संकेत प्रदान करता है। यहाँ पर पशुपालन का भी संकेत दिखलाई पड़ता है। जो हमें बैल देवता के पूजा की परम्परा का अंकन मिलता है। इस लेख 'सनिधि'[22] शब्द का उपयोग हुआ जो एक अच्छा निधि भण्डारण का प्रतीक है। इसका गुप्तनिधि सहित अधिक भण्डारण से सम्बन्ध है। अर्थात् देवपाल के शासन काल में एक विशेष कोटि का कोषागार का प्रबन्धन भी दृष्टिगत होता है। ऐसा ही देवपाल के उदयपुर मन्दिर स्तम्भ लेख में ''4 बिस्वे'' शब्द का भू-मापन प्रणाली का उल्लेख महळ्वपूर्ण है।

अत: निष्कर्षत: ऐसा कहा जा सकता है कि "इतिहास के पुर्नसंरचना में अभिलेखों का महळ्वपूर्ण स्थान है, जिनमें ताम्रपत्र लेख मुख्य है जो राजकीय शासन पत्र के रूप में 'दान' को प्रमाणित करता है। देवपाल के मान्धाता ताम्रपत्र लेखों में इसी प्रकार का वर्णन मिलता है। इसमें देवपाल के राजकीय प्रशासनिक ''अधिकारी पण्डित विल्हण महासंधिविग्रहिक'' उल्लेख है। इतना ही नहीं राजनीतिक इतिहास के दृष्टिकोण से वंशवृक्ष का भी वर्णन मिलता है, जो भोजदेव, उदयादित्य, नरवर्मन, यशोवर्मन, अजयवर्मन, विध्यवर्मन, सुभ्रतवर्मन, अर्जुनवर्मन, देवपाल तक है। तत्कालिक सामाजिक इतिहास की पुनरावृळिाकरण में

वर्णव्यवस्था के ब्राह्मण वर्ण का गोत्र-प्रवर, मूलस्थान, पितामह, पिता का नाम, ब्राह्मण का नाम प्रतिबिम्बित है। जो राजा के द्वाराएक गाँव का 32 भागों में बाँटकर दान के रूप में प्राप्त करना आर्थिक स्थिति की समृद्धि एवं सम्पन्नता का एक उळाम उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसके अलावा भू-दान के साथ-साथ हिरण्य, भोग-कर, सोपरिकर, सनिधि के द्वारा ब्राह्मणों, एवं पटेलों को भी दान प्राप्त हुए।धार्मिक इतिहास का एक प्रतिबिम्ब समाज के आधार को गति प्रदान करते हैं, जो उक्त तामपत्रों में राजा के द्वारा भगवान भवानीपति (भगवान शिव) स्थानीय देवता की पूजा अर्चना करने का उल्लेख हुआ है। अत: कोई भी समाज 'धर्म' के बिना आधारहीन होता है इसलिएसुसभ्य व सुसज्जित समाज धर्म की नींव पर निर्मित हेाता है। इसके अतिरिक्त राजा के द्वारा माता- पिता के पुण्य- यश की प्राप्ति हेतू 32 ब्राहाण वर्ण को दान देना एक प्रकार के धार्मिक संकल्प चेतना को प्रकट करता है। राजा पुरोहित वर्ग के प्रति पूर्णरूप से समर्पित रहा हो।

ताम्रपत्र का मूल पाठ का फलक चित्र

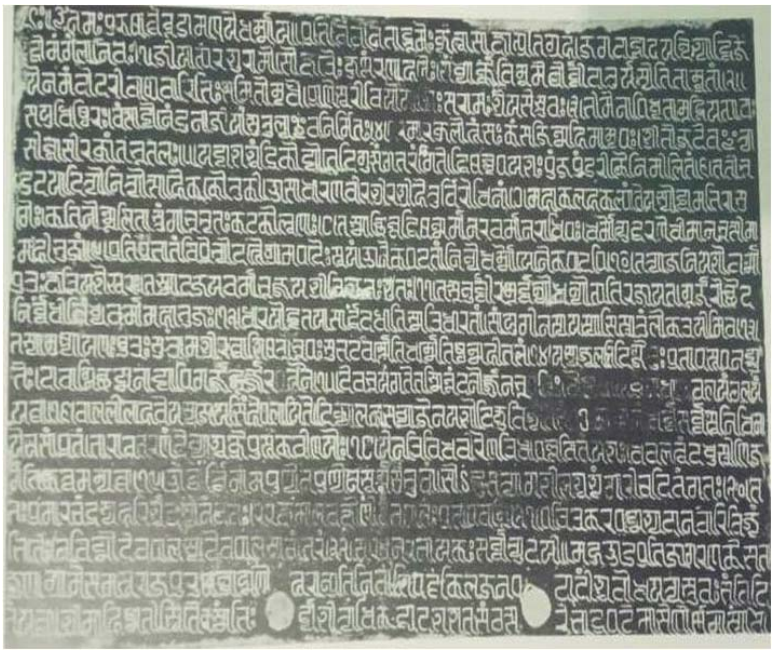

फलक संख्या-1 प्रथमताम्रपत्र का पृष्ठ-भाग (सौजन्य से:-त्रिवेदी हरिहर विट्ठल, का0इ0इ0, खण्ड-7, भाग-2, आर्कियो0 सर्वे0 इण्डि0, नई दिल्ली, 1991, पृ0 182)

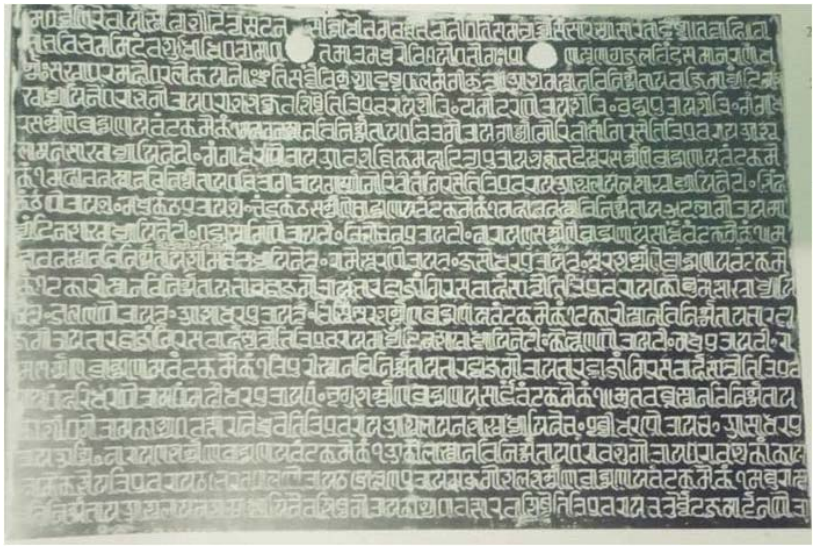

फलक संख्या-2, द्वितीय ताम्रपत्र का अग्र-भाग (सौजन्य से:- त्रिवेदी हरिहर विट्ठल, का0इ0इ0, खण्ड-7, भाग-2, आर्कियो0 सर्वे0 इण्डि0, नई दिल्ली, 1991, पृ0 182)

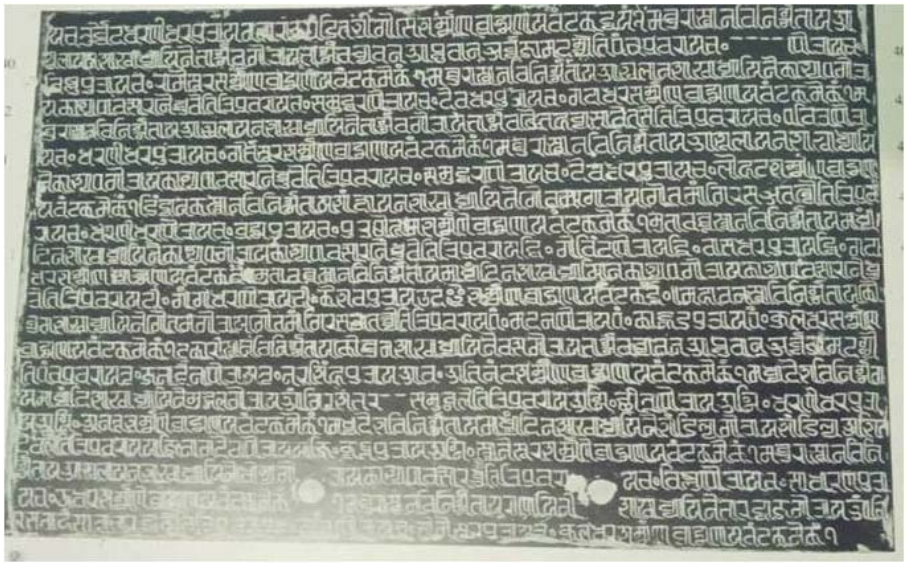

फलक संख्या-3, द्वितीय ताम्रपत्र का पृष्ठ-भाग (सौजन्य से:- त्रिवेदी हरिहर विट्ठल, का0इ0इ0, खण्ड-7, भाग-2, आर्कियो0 सर्वे0 इण्डि0, नई दिल्ली, 1991, पृ0 182)

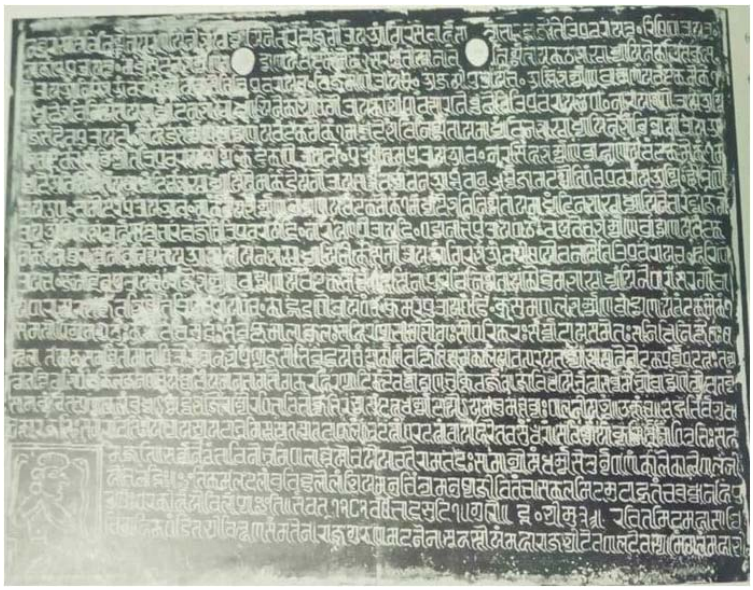

फलक संख्या-4तृतीय ताम्रपत्र का अग्र-भाग (सौजन्य से:- त्रिवेदी हरिहर विट्ठल, का0इ0इ0, खण्ड-7, भाग-2, आर्कियो0 सर्वे0 इण्डि0, नई दिल्ली, 1991, पृ0 182)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. कीलहार्न, एपि0 इण्डि0, जिल्द-नवीं, आर्क्यो0 सर्वे0 इण्डि0, नई दिल्ली, 1907-08, पृष्ठ 103
2. पूर्वोक्त ग्रन्थ, पृ0 105
3. समरांगणसूत्रधार, 7.10, मनुस्मृति- 1.88
4. त्रिवेद्वी, हरिहर विठ्ठल, का0इ0इ0, खण्ड-सात, भाग-दो, आर्क्यो0 सर्वे0 इण्डि0 नई दिल्ली, 1991, पृष्ठ-182- 185।
5. पूर्वोक्त ग्रन्थ
6. पूर्वोक्त ग्रन्थ
7. पूर्वोक्त ग्रन्थ
8. पूर्वोक्त ग्रन्थ
9. पूर्वोक्त ग्रन्थ

10. त्रिवेद्वी, हरिहर विठ्ठल, का0इ0इ0, खण्ड-सात, भाग-दो, आर्क्यो0 सर्वे0 इण्डि0 नई दिल्ली, 1991, पृष्ठ-182-185।
11. त्रिवेद्वी, हरिहर विठ्ठल, का0इ0इ0, खण्ड-सात, भाग-दो, आर्क्यो0 सर्वे0 इण्डि0 नई दिल्ली, 1991, पृष्ठ 185
12. पूर्वोक्तग्रन्थ, पृष्ठ 182
13. महाढ़ डॉ ईश्वर सिंह, राजपूत वंशावली, राजस्थानी ग्रन्थगार जोधपुर, राजस्थान, संस्करण-10वॉ 2018 पृष्ठ 6-32।
14. कीलहार्न, एपि0 इण्डि0, जिल्द-नवीं, आर्क्यो0 सर्वे0 इण्डि0, नई दिल्ली, 1907-08, पृष्ठ पूर्वोक्त, पृष्ठ 108-109
15. इण्डि0 ऐण्टि0, जिन्द 20वीं, पृष्ठ 310-312
16. पूर्वोक्त ग्रन्थ, पृष्ठ 83
17. त्रिवेद्वी, हरिहर विठ्ठल, का0इ0इ0, खण्ड-सात, भाग-दो, आर्क्यो0 सर्वे0 इण्डि0 नई दिल्ली, 1991, पृष्ठ-185
18. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, 1,13.6,
19. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, 5,6,मनुस्मृति- 8, 130
20. त्रिवेद्वी, हरिहर विठ्ठल, का0इ0इ0, खण्ड-सात, भाग-दो, आर्क्यो0 सर्वे0 इण्डि0 नई दिल्ली, 1991,पृष्ठ 184 श्लोक- 24
21. डी0सी सरकार,सलेक्ट इंस्क्रिप्शनन्स, खण्ड-एक, पृष्ठ 208
22. त्रिवेद्वी, हरिहर विठ्ठल, का0इ0इ0, खण्ड-सात, भाग-दो, आर्क्यो0 सर्वे0 इण्डि0 नई दिल्ली, 1991,पृष्ठ 184 श्लोक- 24

विकास प्रशासन कीअवधारणा एवं चुनौतियाँ

डॉ० शिव कुमार राम

एसोसिएट प्रोफेसर, अध्यक्ष राजनीति विज्ञान विभाग, एस. आर. पी. एस. कॉलेज, जैतपुर, मुजफ्फरपुर। बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

सार-संक्षेपः

विकास प्रशासन की अवधारणा विकासशील देशों में लोकप्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन की सह-उपज है। विकास प्रशासन का जन्म विकासशील देशों की नयी-नयी प्रशासनिक योजनाओं तथा कार्यक्रमों को लागू करने के संदर्भ में हुआ है, इसके क्षेत्र में लोक प्रशासन के वे सभी कार्य आ जाते है, जो नीतियों, योजनाओं, कार्यक्रमों के निर्माण से संबंधित हैं। संक्षेप में, इसके क्षेत्र में वे समस्त गतिविधियाँ आती हैं, जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, औधोगिक तथा प्रशासनिक विकास से सम्बन्धित हों और जो सरकार द्वारा संचालित की जाती हों। उपरोक्त बातों के अतिरिक्त विकास प्रशासन के क्षेत्र में क्षेत्रीय विकास परिषदें, साामुदायिक सेवाएँ, प्रबन्ध कार्यक्रम अर्न्तराष्ट्रीय सहयोग आदि बातों आदि का भी अध्ययन किया जाता है। जैसे - जैसे सरकार के विकास संबंधी कार्यक्रम बढ़ते जाते हैं। विकास प्रशासन का क्षेत्र भी विस्तृत होता जाता है।

कुंजीः- विकास प्रशासन, समाज कल्याण, तीसरी दुनियाँ, साम्यवादी, राष्ट्रीय विकास।

भूमिकाः-

विकास प्रशासन की अवधारणा विकासशील देशों में लोकप्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन की सह-उपज है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1955 में यू0 एल0 गोस्वामी ने किया था, परन्तु इसे औपचारिक मान्यता उस समय प्राप्त हुई, जब अमेरिकन लोक प्रशासन समिति के तुलनात्मक प्रशासन समूह एवं सामाजिक विज्ञान शोध परिषद की तुलनात्मक राजनीति समिति ने इसको बौद्धिक आधार प्रदान किया। इस अवधारणा को लोकप्रिय बनाने में फ्रेड डब्ल्यू. रिग्स, एडवर्ड डब्ल्यू. वीडनर जोसेफ लॉ0 पोलोमबार, अल्बर्ट वाटरसन आदि के नाम प्रमुख हैं।

विकास प्रशासन की अवधारणा एशिया, अफ्रिका एवं लैटिन अमेरिका के दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात हुए स्वतंत्र देशों के लिए अर्थपुर्ण है। अपने औपनिवेशिक शासकों से स्वतंत्रता प्राप्त करने के उपरान्त इन देशों में अविकसित अर्थव्यवस्था से विकसित अर्थव्यवस्था की ओर जाने के प्रयास आरम्भ किये गये। विकास के क्रम से गुजरते हुए इन देशों को विकासशील देश कहा गया, जिनके प्रमुख विकास संबंधी अनेक समस्याएँ थी, उनका प्रमुख कार्य नियोजित परिवर्तन द्वारा सामाजिक-आर्थिक बदलाव लाना था। परम्परागत लोक प्रशासन, प्रशासन प्रणाली के सुधार से संबंधित था अतएव लोक प्रशासन के एक नये स्वरूप को विकसित करने की आवश्यकता अनुभव की गई जो विकासशील देशों की सामाजिक-आर्थिक एवं प्रशासनीय समस्याओं के अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित करेगा। इस प्रकास विकास प्रशासन के विचार को संकल्पना की गई।

विकास-प्रशासन में दो भिन्न, किन्तु पारस्परिक सम्बन्धित परम्पराओं का मिलन होता दिखाई देता है। प्रशासनिक दर्शन की दो विचारधाराओं में से एक धारा पिछली शताब्दी के अन्त में प्रशासनिक सुधार आन्दोलन के साथ वैज्ञानिक प्रबन्ध की विकसित हो रही प्रवृति का परिणाम थी। सुधार के इन प्रयत्नों के मुख्य मुध्दे प्रशासन चलाने के यथासम्भव 'उच्चतम' ढंग के साधन थे। इस प्रक्रिया में उद्देश्यों अथवा लक्ष्यों के विश्लेषण की ओर समान ध्यान नहीं दिया गया। लक्ष्यों को प्रायः बचत और कार्य-कुशलता ही मान लिया गया। अतः बचत और कार्य कुशलता साधन और साध्य दोनों ही समझे जाते रहे और इनके बीच का भेद मिट गया। लक्ष्यों के अध्ययन पर कम बल दिया गया। उद्देश्यों को भूल कर लोक प्रशासन ने साधनों को महत्व दिया। यह वह सन्दर्भ था, यह प्रशासनिक सिद्धान्त में लुप्तांश था जिसको पूरा करने के लिए वीडनर ने 'विकास-प्रशासन' की धारणा को प्रस्तुत किया।

विकास प्रशासन का दुसरा प्रवाह राष्ट्रीय नियोजन और सरकारी हस्तक्षेप की ओर वह प्रवृति है जो इस शताब्दी के चौथे दशक की आर्थिक मन्दी की स्थिति, द्वितीय विश्वयुद्ध, युद्ध के उपरान्त पुनर्निर्माण तथा अन्य घटनाओं के परिणामस्वरूप उत्पन हुई। द्विवेदी तथा जैन इस मॉडल या नमूने को संकट प्रबन्ध तथा पुनर्निर्माण प्रशासन का नाम देते हैं। (1) इसके अतिरिक्त कुछ अन्य सम्बन्धित घटनाएँ भी थी, जैसे यूरोप के देशो का पुनर्निर्माण कार्यक्रम, जो मार्शल योजना के अधीन पश्चिमी यूरोप के देशों की युद्ध से तबाह अर्थव्यवस्थाओं को पुनः निर्मित करने के लिए आरम्भ किया गया और जो सहायता द्वारा पश्चिमी विकास का तत्कालीन मॉडल बना। (2) युद्धोपरान्त विश्व का दो विरोधी तथा सैद्धान्तिक गुटबन्दी में बँट जाना, सामूहिक प्रतिरक्षा के साधनों का आश्रम लेना तथा शीतयुद्ध। (3) संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा आयोजित सहयोग तथा बहुपक्षीय तकनीकी सहायता और वित्त द्वारा विकास। (4) एशिया और अफ्रीका के देशों का औपनिवेशिक गुलामी से मुक्त होकर प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्यों और अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के सदस्यों के रूप में उभरना। इन सभी घटनाओं ने राज्यों के प्रशासनों के सम्मुख नई चुनौतियाँ प्रस्तुत की।

एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका के देशों, जिन्हें तीसरी दुनियाँ का नाम दिया जाता है, के सम्मुख बड़ी गम्भीर समस्याएँ थी, जैसे अविकसित अर्थव्यस्थाएँ, सामाजिक गतिहीनता, जातीय, प्रजातीय तथा कबीला समूहों के प्रति संकीर्ण वफादारियाँ, अशिक्षा, कमजोर स्वास्थ्य, अथवा अविकसित राजनीतिक

तथा प्रशासनिक संस्थान, तकनीकी तथ प्रबन्धकीय कौशल का अभाव, आदि। अत: उनके सामने मुख्य कार्य शीघ्रता से सामजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विकास करना और राष्ट्रीय उदारीकरण थे। सातवें दशक के प्रारम्भ में ही विकास तीसरे संसार का सर्वप्रमुख विषय बन गया था। पश्चिमी देशों ने इस चुनौती का उळार कई प्रकार से दिया। उनमें पहला था विकास प्रशासन की धारणा को सैद्धान्तिक रूप देना।

एडवर्ड वीडनर की परिभाषा के अनुसार, "विकास प्रशासन एक कार्योन्मुख लक्ष्योन्मुखी प्रशासनिक व्यवस्था है।" विकास का मुल प्रश्न है सामाजिक परिवर्तन। इसके साथ वह यह भी मानते हैं कि सरकार में विकास प्रशासन वह प्रक्रिया है जो एक संगठन के प्रगतिशील राजनीतिक आर्थिक तथा सामाजिक लक्ष्यों की ओर मार्गदर्शन करती है, जिन लक्ष्यों को किसी न किसी प्रकार अधिकृत ढंग से निर्मित किया गया है। फेनसाड विकास प्रशासन को 'नवीनता लाने वाले मूल्यों का वाहन समझते हैं इसमें वे सभी नये कार्य सम्मिलित होते हैं जो विकासशील देशों ने आधुनिकीकरण तथा औद्योगीकीकरण के मार्ग पर चलने के लिए अपने हाथों में लिये हैं। साधारणतया विकास प्रशासन में वे संगठन और साधन सम्मिलित है जो नियोजन, आर्थिक विकास तथा राष्ट्रीय आय का प्रसार करने के लिए साधनों को जुटाने और बाँटने के लिए स्थापित किये जाते हैं। अत: आधुनिकीकरण, सामाजिक-आर्थिक विकास और संस्थानों का निर्माण विकास प्रशासन के अनिवार्य तत्व माने गये। फ्रेड रिग्स के अनुसार, विकास प्रशासन का अभिप्राय प्रशासनिक समस्याएँ तथा सरकार का सुधार दोनों ही है। अरोड़ा का कथन है कि लोक प्रशासन के सहित्य में 'विकास-प्रशासन' शब्द का प्रयोग दो सम्बन्धित अर्थों में किया जाता है। प्रथम, इसका उल्लेख विकास-कार्यक्रमों के प्रशासन तथा उन तरीकों के सम्बन्ध में किया जाता है जो बड़े-बड़े संगठन, विशेषतया सरकारें विकास सम्बन्धी अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए नीतियों और योजनाओं को लागू करते हुए अपनाती है। द्वितीय और परोक्ष रूप में, प्रशासनिक सामर्थ्य को बढ़ाना भी इसमें सम्मिलित होता है। प्रशासनिक विकास के ये दोनों पक्ष, अर्थात् विकास का प्रशासन और प्रशासन का विकास इन शब्द की अधिकतर परिभाषाओं में जुड़े होते हैं। स्वार्डलो विकास प्रशासन में दो परस्पर सम्बन्धी कार्यो को मुख्य मानते हैं और वे हैं-संस्थानों का निर्माण तथा नियोजन। विकास प्रशासन के विद्यार्थी यह मानते हैं कि ये दोनों पक्ष कार्यात्मक दृष्टि से परस्पर सम्बन्धित है। जैसा कि रिग्स ने कहा है, "सामान्यतया प्रशासन को बहुत अच्छी प्रकार तब तक नहीं सुधारा जा सकता जब तक कि उन पर्यावरणात्मक प्रतिबंधों (अवसंरचना) जो इसके प्रभावी बनने में रूकावट डालते हैं, में परिवर्तन न किये जाएँ और स्वयं पर्यावरण तब तक नहीं बदल सकता जब तक कि विकास-कार्यक्रमों को सुदृढ़ न किया जाये। कुछ विद्वान विकास-प्रशासन को नियोजित प्रशासन समझते हैं जो ठीक नहीं है, क्योंकि सारा नियोजन विकास सम्बन्धी नहीं होता और न ही सभी विकास प्रशासन नियोजित होता है। आजकल विकास प्रशासन का संबंध चार 'पी' (four PS- plans, policies, programmes and projects) अर्थात् योजनाएँ, नीतियाँ, कार्यक्रम तथा प्रोजेक्ट के निर्माण और लागू करने के साथ माना जाता है। जैसा कि डोनाल्ड सी० स्टोन्ज (Donal C.Stones) का विचार है, "मोटे तौर पर विकास प्रशासन का सम्बन्ध राष्ट्रीय विकास को पूरा करना होता है।" परिवर्तन की कुछ मूल प्रक्रियाएँ होती है जिनके द्वारा लक्ष्यों पर सहमति प्राप्त की जाती है और योजनाएँ, नीतियाँ, कार्यक्रम तथा प्रोजेक्ट (4 p"s) बनाये और लागू किये जाते हैं..... अत: विकास प्रशासन का सम्बन्ध मुख्यतया चार 'पी' (4 p"s) के बनाने और लागू करने वाले कार्यों और प्रक्रियाओं के साथ होता है, चाहे राजनीतिक तौर पर लक्ष्यों और उद्देश्यों के किसी सम्मिश्रण को निश्चित क्यों न किया गया हो।

विकास प्रशासन तथा परम्परागत प्रशासन के बीच तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षित प्रतीत होता है, ताकि विकास प्रशासन की अवधारणा को अधिक स्पष्ट किया जा सके। वस्तुत: विकास प्रशासन के आगमन के पूर्व का प्रशासन 'परम्परावादी' कहा जा सकता है।

परम्परागत प्रशासन कानून और व्यवस्था से सम्बन्धित था। उस समय लोक कल्याण का दायित्व गैर-सरकारी रूप से व्यक्ति, परिवार एवं समाज पूरा करता था। कानून एवं व्यवस्था लोक कल्याण के विरूद्ध नहीं है। राज्य में कानून और व्यवस्था की स्थापना जनता के विकास एवं कल्याण के लिए परम आवश्यक है। समाज में व्यवस्था और सुरक्षा न होने पर विकास नहीं हो सकता। यदि कृषक को फसल की रक्षा का भरोसा न हो तो वह उन्नत तरीकों से कृषि में रूचि कभी नहीं दिखाएगा। परम्परागत प्रशासन में विकास की चिन्ता तो थी, किन्तु उसका दृष्टिकोण नकारात्मक था तथा प्रतिरोधों को हटाने में रूचि थी। उस समाज में व्याप्त उपद्रवों को दबाना और व्यवस्था करना मात्र अधिकारी के लिए पर्याप्त माना जाता था। उससे यह आशा नहीं थी कि वह लोक कल्याण में विशेष रूचि लेगा। अनेक व्यक्तिगत अध्ययनों से स्पष्ट है कि अंग्रेजी राज के जिलाधीश लोक कल्याण में विशेष रूचि लेते थे, किन्तु उनका यह व्यवहार उनके दायित्वों की परिधि से बाहर माना जाता था। विकास प्रशासन समाज के कल्याण के लिए अत्यधिक रूचि लेता है और तकनीकी ज्ञान, वित्तीय सहयोग एवं प्रशासनिक संगठन के रूप में इसे अभिव्यक्त करता है।

परम्परागत प्रशासन के समय जनता प्रार्थना पत्रों के माध्यम से प्रशासन से सम्पर्क स्थापित करती थी। प्रशासनिक दृष्टि से जनसाधारण को अपील अथवा याचिका के अतिरिक्त कोई अधिकार नहीं था। वह निवैंयक्तिक सरकार न जनता को प्यार करती थी और न जनता के प्यार की आकाँक्षी थी। विकास प्रशासन इस तथ्य के प्रति सजग है कि इसका अस्तित्व एवं औचित्य समाज के कल्याण तथा सेवा के लिए है। इसमें जनप्रतिनिधियों के प्रशासनिक निर्णय, प्रक्रिया एवं क्रियान्वयन पर विशेष ध्यान दिया गया है। यह प्रशासन इस बात पर जोर देता है कि अन्तिम सळाा जनता के हाथों में रहे। जनता ही यह निर्णय ले कि नए विचारों को कब तक स्वीकार किया जाएगा।

परम्परागत प्रशासन कार्य-कुशलता के लिए संचालित किया जाता था। निर्णयों में शीघ्रता, आदेशों में स्पष्टता एवं क्रियान्वयन में मितव्ययिता इसका सबसे बड़ा ध्येय था जो सभी प्रभावों से इसकी रक्षा करता था। इसका मुख्य केन्द्र व्यक्ति था। व्यक्ति का विकास स्वतंत्र परिवेश में होता है, जहाँ उद्देश्य और साधन चुनने तथा गलतियाँ करने की उसे स्वंतन्त्रता होती है। पॉल एपलबी के अनुसार राजनीति द्वारा प्रजातान्त्रिक स्वरूप को अन्य स्वरूपों से भिन्न किया जाता है। जनता का कल्याण राजनीतिज्ञों को प्रशासनिक परिधियों से बाहर रखने से नहीं होता, वरन् उच्च राजनीति द्वारा निम्न राजनीति करने से होता है। परम्परागत प्रशासन में पद्सोपान की इकहरी श्रृंखला होती है। प्रत्येक कार्यकर्ता अपने उच्चतर से आदेश ग्रहण करता है तथा अपने अधीनस्थों को आदेश देता है। विकास प्रशासन एक बहुआयामी गतिविधि है, जिसमें विभिन्न विभागों के अनेक विशेषज्ञों के ज्ञान, परामर्श एवं सेवा की आवश्यकता रहती है। विकास प्रशासन में कोई कार्यकर्ता स्वयं स्वामी नहीं होता है। वह साम्राज्य निर्माता नहीं बन सकता। उसे एक टीम वर्कर होना चाहिए। एक विकास अधिकारी से टीम का नेता होने की आकाँक्षा की जाती है, किन्तु नियामकीय प्रशासन के कार्यकळाा एक तहसीलदार से यह आशा नहीं की जाती।

परम्परागत प्रशासन में समस्त सळाा उच्चाधिकारियों में निहित रहती है। उच्च स्तर का अधिकारी अपने अधीनस्थ पर नियन्त्रण अधिक रखता है। विकास प्रशासन में स्थानीय परिस्थितियों का महत्व तथा विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है। प्रत्येक कार्यकर्ता पदसोपान के सम्मान अनुसार क्षेत्राधिकार की सभी परिस्थतियों को जानने का दावा नहीं कर सकता। इसलिए विकास प्रशासन में सभी स्तरों के लिए सत्ता के अधिक हस्तान्तरण की आवश्यकता होती है। इसे मेरी पार्कर फॉलेट ने परिचित जन्य अधिकारी (Authority of the Situation) कहा है। विकास प्रशासन में पद्सोपानात्मक अन्तर की बाधाएँ हटाने हेतु आन्तरिक बन जाता है। विकास कार्यक्रमों में आदेशों की अपेक्षा सुझाव अधिक महत्व रखते हैं। परम्परागत प्रशासन में नियमों, विनियमों एवं आदेशों का पर्याप्त अनुशीलन किया जाता था। इसमें पहल को वांछनीय, किन्तु मूलभूत नहीं माना जाता था। विकास प्रशासन में कार्य के प्रति रचनात्मक दृष्टिकोण आवश्यक है। कोई विकास योजना एक जैसे आदेशों के अधीन, सभी क्षेत्रों में एक प्रकार से लागू नहीं की जा सकती है। प्रत्येक विकास कार्यकर्ता स्वयं की पहल द्वारा विशेष परिस्थितियों में विभिन्न कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने का निर्णय लेता है, यहाँ तक कि एक ग्रामसेवक अपने कार्यो के लिए तहसीलदार की अपेक्षा स्वयं की पहल आवश्यक समझता है।

परम्परागत प्रशासन कानून और व्यवस्था से सम्बन्धित होने के कारण सैनिक प्रकृति का था। प्रशासकों के लिए एक जैसी आचार संहिताएँ, नियम और व्यवस्थाएँ होती थीं। विकासवादी प्रशासन विज्ञान और तकनीकी से सम्बन्धित होने के कारण गतिशील है। यह अपने कार्यकर्ताओं से गतिशीलता की आकाँक्षा करता है। इन्हे प्रगतिशील विज्ञान और तकनीकी में रूचि रखनी होती है। ये भौतिक और सामाजिक विज्ञानों बढ़ते हुये क्षितिजों से सम्बन्ध रखते हैं। इन्हें अपनी उपलब्धियाँ मानव सेवा के लिए लगानी होती है। तथा उन्हें परिस्थितिजन्य होना चाहिए। उन्हें कानुन और व्यवस्था का सम्मान करते हुए अपनी रूचि इसमें लगानी चाहिए की एक सुरक्षित छोटे कुँए के पानी से लेकर बहुउद्देश्यीय नदी घाटी परियोजना के जल तक का उपयोग किया जाए।

विकास प्रशासन एक बहुआयामी अवधारणा है तथा परिस्थितिजन्य है। ऐसे विकास प्रशासन को कार्योन्मुखी एवं लक्ष्योन्मुख प्रशासन कहा जा सकता है। विकासशील देशों में विकास प्रशासन का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक आर्थिक विकास करना है। सामान्यत: इसके अग्रलिखित उद्देश्य बताये जाते हैं।

(1) विकासात्मक नीतियों और लक्ष्यों का सूत्रीकरण, (2) कार्यक्रम सूत्रीकरण और कार्यक्रम एवं परियोजना प्रबन्धन, (3) प्रशासनिक संरचना और प्रक्रियाओं का पुनर्गठन, (4) परिणामों का मूल्ययांकन, (5) विकासात्मक प्रयासों में जनता की सहभागिता तथा (6) सामाजिक और राजनीतिक संरचना की प्रगति करना। यह उल्लेखनीय है कि इन उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु प्रत्येक देश प्रयत्नशील रहता है।

निष्कर्ष:

विकास प्रशासन का सम्बन्ध विकास के सभी पक्षों से सम्बन्धित है। इसमें आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक विकास शामिल है। विकास प्रशासन का आर्थिक आयाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वस्तुत: विकास, आर्थिक चिंतन की मूल भावना है। अर्थव्यवस्था को किस सांचे में ढाला जाए जिससे आर्थिक समाज के प्रत्येक सदस्य को उत्पादक श्रम करने का अवसर प्राप्त हो और न्यूनतम मजदूरी प्राप्त हो। यह उद्देश्य प्रशासन के सामने एक ज्वलंत प्रश्न बन कर हमेशा रहा है। इसी प्रकार के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद् ने रोजगार लक्ष्यों की नीतियाँ निर्धारित की है जिसको क्रियान्वित करना प्रशासन का हमेशा से महत्वपूर्ण कार्य रहा है और नौकरशाही विकास और जनकल्याण का एक तर्कसंगत और तटस्थ माध्यम। एल0 डी0 ह्वाइट ने लोक प्रशासन को 'आधुनिक सरकार की समस्याओं का हृदय' कहा है। इनमें कोई दो मत नहीं कि लोक प्रशासन को सरकार की चौथी शाखा नहीं कहा जाए। यद्यपि आधुनिक राज्य के कार्यो में बढ़ती हुई विविधता, संख्या और कार्यों की जटिलता के कारण प्रशासकीय विलंब का जन्म हुआ है। फलत: सरकार के उद्देश्यों एवं निष्पादन के बीच व वांछित उद्देश्यों एवं उन्हें प्राप्त करने के लिए आवश्यक प्रशासकीय यंत्रों के बीच एक गंभीर असंतुलिन विद्यमान है। तथापि लोक प्रशासन ही वह यंत्र है जिसके माध्यम से लोक कल्याणकारी राज्य अपनी योजनाओं व कार्यक्रमों को वांछित उद्देश्यों की पूर्ति में निर्देशित करता है।

सन्दर्भ

1. मिल्टन ईस्मन जे०, दी पोलिटिक्स ऑफ डेवल्पमेन्ट एडमिनिस्ट्रेशन, एम० सी० ग्र० हिल कम्पनी, न्यूयॉर्क, 1966, पृष्ठ-59
2. तथैव, पृष्ठ-60
3. वासुदेवन, ए, आर०बी०आइ०, ऑकेनल पेपर्स, वोल्यूम-18, नं०-2-3 जून-सितम्बर, 1997 नई दिल्ली।
4. भारत सरकार का योजना आयोग, विभिन्न पंचवर्षीय योजनाएँ का अवलोकन तथा उसी से अनेक सन्दर्भो से प्राप्त सामग्री।
5. वाल्डो, डवाइट्, दि स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पृ. 20.
6. चतुर्वेदी, टी. एन., तुलनात्मक लोक प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, पृ. 52.
7. भट्टाचार्य, मोहित, ब्यूरोक्रेसी एण्ड डेवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली, 1979, पृ. 4-5.
8. 11वीं पंचवर्षीय योजना से प्राप्त सामग्री ।
9. भगवती, जगदीश, श् दि् डिजाइन ऑफ इण्डियन डेवलपमेन्ट'', इन इशर जज अहलूवालिया एण्ड आई०एम०डीविकास प्रशासन कीअवधारणा एवं चुनौतियाँ

भारत में समाजवादी आंदोलन और राजनीतिक दलः एक विश्लेषण

डॉ० हरिश्चन्द्र प्रसाद यादव

एसोसिएट प्रोफेसर, अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, डॉ० राम मनोहर लोहिया स्मारकमहाविद्यालय, मुजफ्फरपुर।, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

सार-संक्षेपः हमारे जैसा लोकतंत्र एशिया में और कहीं तो है नहीं - जापान और इज्रायल को छोड़कर जिनमें नागरिक स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की आजादी, स्थापित सत्ता से असहमति की आजादी और उस सत्ता के विकेन्द्रीयकरण के अधिकार संविधान सम्मत है। लोकतंत्र के यही सब उपादान हैं।'' ''लोकतंत्र के हम योग्य हैं, इसका एक और प्रमाण है। सन् 1978 में एक साक्षात्कार में लोकनायक जयप्रकाश के नेतृत्व की आवश्यकता, लोकतंत्र के लिए भारतीयों की योग्यता, भारत के लिए उपयुक्त शासन-प्रणाली, जनता पार्टी का संगठन एवं कर्त्तव्य आदि पर निम्नलिखित व्यावहारिक विचार प्रकट किए - ''बिना नेतृत्व के लोग संगठित नहीं हो सकते हैं। जब गोकुल डूब रहा था तो कृष्ण न होते तो उसका उद्धार न होता। जब नेतृत्व दिया तो सारे लोग उस पर चले गए।परंतु हमारे देश में जो परिस्थितियाँ है उनमें राष्ट्रपति प्रणाली लोकतंत्र से कुछ अलग होती चली जाएगी। हमारे यहाँ बहुत विभिन्नताएँ हैं, भाषावार राज्य है। ऐसी अवस्था में राष्ट्रपति प्रणाली के पैर मजबूत भी नहीं हो सकते। आज हमारे विधायकों पर जनता का अंकुश नही रहा पार्टी का है, बल्कि पार्टी का भी नहीं उसके भीतर के शासक गुट का है - पार्टी में असहमति होनी चाहिए पर उसकी मार्यादा हो। शायद हर पार्टी लीडर चाहता होगा कि असहमति न हो पर सशक्त असहमति को निरूसाह करना गलत बात है। पार्टी के बाहर के संगठनों को समाप्त कर देने के विषय में श्री जयप्रकाश ने कहा, मैं बराबर इसके पक्ष में रहा हूँ। जनता पार्टी के घटक यदि अपने बाहर के संगठनों को समाप्त नहीं करना चाहते तो वे सही मायने में एकीकरण नहीं चाहते हैं और अवसरवादिता से काम ले रहे हैं।

कुंजीः लोकतंत्र, सत्ता का विकेन्द्रीयकरण, राजनीतिक दल, समाजवादी आंदोलन।

भूमिका

सन् 1978 में एक साक्षात्कार में लोकनायक जयप्रकाश के नेतृत्व की आवश्यकता, लोकतंत्र के लिए भारतीयों की योग्यता, भारत के लिए उपयुक्त शासन-प्रणाली, जनता पार्टी का संगठन एवं कर्त्तव्य आदि पर निम्नलिखित व्यावहारिक विचार प्रकट किए - ''बिना नेतृत्व के लोग संगठित नहीं हो सकते हैं। जब गोकुल डूब रहा था तो कृष्ण न होते तो उसका उद्धार न होता। जब नेतृत्व दिया तो सारे लोग उस पर चले गए। लगता है इस देश में सही प्रकार का नेता जो भारतीय मूल्यों को मानता हो और जिसके प्रति भारतीय जनता की श्रद्धा हो, उसका अनुसरण लोग कर सकते हैं चाहे वह कितना ही क्रांतिकारी कार्यक्रम या विचार रखें।'' ''यह बहस कि हमलोग लोकतंत्र के योग्य नहीं, यह गलत बहस है। हम निश्चय ही लोकतंत्र के योग्य हैं। हमारे जैसा लोकतंत्र एशिया में और कहीं तो है नहीं - जापान और इज्रायल को छोड़कर जिनमें नागरिक स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की आजादी, स्थापित सत्ता से असहमति की आजादी और उस सत्ता के विकेन्द्रीयकरण के अधिकार संविधान सम्मत है। लोकतंत्र के यही सब उपादान हैं।'' ''लोकतंत्र के हम योग्य हैं, इसका एक और प्रमाण है। जब इमर्जेन्सी लागू हुई थी जो सिर्फ यही नहीं हुआ था, लाखों लोग उत्तर भारत में गिरफ्तार भी हुए थे और दमन के जो उपाय किए थे वे भी अवश्य ही इमर्जेन्सी के आवश्यक अंग नहीं थे। अफसोस है कि कांग्रेस के लोगों ने भी उसको चुपचाप बर्दाश्त और कबूल किया- पुरानी कांग्रेस के लोगों ने भी। पर जनता को जब मौका मिला तो उसने चुनाव में जवाब दिया। इससे मालूम होता है कि लोकतंत्र कोई विदेशी पौधा नहीं है जो हमारे यहाँ लगा दिया गया हो। इस मिट्टी में कुछ उनकी गाथाएँ हैं, यादें हें, भी शायद हमारे मानस में काम करती।'' हमारे देश में एकात्मक सरकार नहीं हो सकती-राष्ट्रपति प्रणाली के लिए व्यक्ति की तानाशाही में बदल जाना आसान है। उसमें एक व्यकित होता है जिसके चारों ओर लोग होते हैं। यह ठीक है कि बिना एक व्यक्ति के नेतृत्व में संसदीय लोकतंत्र भी नहीं चल सकता। परंतु हमारे देश में जो परिस्थितियाँ है उनमें राष्ट्रपति प्रणाली लोकतंत्र से कुछ अलग होती चली जाएगी। हमारे यहाँ बहुत विभिन्नताएँ हैं, भाषावार राज्य है। ऐसी अवस्था में राष्ट्रपति प्रणाली के पैर मजबूत भी नहीं हो सकते।

आज हमारे विधायकों पर जनता का अंकुश नही रहा पार्टी का है, बल्कि पार्टी का भी नहीं उसके भीतर के शासक गुट का है - पार्टी में असहमति होनी चाहिए पर उसकी मार्यादा हो। शायद हर पार्टी लीडर चाहता होगा कि असहमति न हो पर सशक्त असहमति को निरूसाह करना गलत बात है। पार्टी के बाहर के संगठनों को समाप्त कर देने के विषय में श्री जयप्रकाश ने कहा, मैं बराबर इसके पक्ष में रहा हूँ। जनता पार्टी के घटक यदि अपने बाहर के संगठनों को समाप्त नहीं करना चाहते तो वे सही मायने में एकीकरण नहीं चाहते हैं और अवसरवादिता से काम ले रहे हैं। शिखर राजनीति की क्षमताहीनता की ओर ध्यान दिला कर जयप्रकाशजी ने कहा - ''नेता उसके साथ चिपके रहेंगे तो लोग सरकार से नहीं जुड़ सकेंगे। राजनीतिक-आर्थिक विकास नहीं हो सकेगा। आज खेती में नुकसान हो रहा है क्योंकि गाँव और शहर का असंतुलन हमारी राजनीति में व्याप्त रहा है। कारण यह है कि जो लोग राजनीति मे

गाँव से आए हैं वे भी शहर में अधिकतर वैसी ही नीतियाँ निश्चित करते हैं जो मध्य वर्ग और उसके हितों को सामने रखती है। मजदूर वर्ग या भूमिहीन खेतिहरों का भी संगठन होना चाहिए। ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के श्रमिकों के बीच उनके अपने नेता निकलने चाहिए - उम्मीद थी कि यह संघर्षवाहिनी के माध्यम से होगा पर मैं अपनी बीमारी की वजह से कोई निर्देश नहीं दे सका। ''संपूर्ण क्रांति की जो मेरी धारणा है उसमें एक ऐसा मंथन चाहिए जिसमे सबक मिल जाएं और एक नई चीज तैयार हो। वह शिखर राजनीति के चलते रहने पर नहीं हो सकता है।'' जबकि राजनीति का चरित्र फिर पीछे की ओर लौट रहा है। जयप्रकाशजी आगे की ओर देखते रहे। आज के अनेक निराशावादियों की तरह वह यह नहीं मानते थे कि इस देश को सेना या पुलिस ही ठीक एक सकती है। सैनिक या पुलिस तख्ता पलट तभी संभव होगा जबकि आर्थिक गतिरोधक हो जाए और लोगों को बहुत आर्थिक संकट हो। जब हम लोग बढ़ रहे हैं वह खतरा नहीं दिखाई पड़ता है। इस अवसर पर जे0 पी0 भूदान आंदोलन के द्वारा लोकशक्ति को जागृत करने की संभावनाओं को रेखांकित किया। भूदान आंदोलन मुख्यत: दो कारणों से मर गया - एक तो मंत्रियों और सरकारी मशीनरी को आंदोलन का अंतरंग हिस्सा मान लिए जाने पर भूदान का नैतिक पक्ष कुंठित हो गया। दूसरे, आंदोलन के कार्यकर्त्ताओं ने भूदान या भूमि वितरण के बाद पीछे मुड़कर नहीं दखा कि क्रांति सचमुच जीवित है या मर गई। फिर भी भूदान के कारण जितनी जमींन बंटी उतनी शायद कोई भी राज्य सरकार नहीं बंटवा सकी।

सन् 1970 में मुज्जफरपुर की विशाला जनसभा में जे0 पी0 ने भूदान आंदोलनों को एक नया आयाम दिया। उन्होंने कहा कि ग्राम प्राप्ति की पुष्टि और स्वराज्य की स्थापना भी जरूरी है, जिसके लिए ग्रामसभा की स्थापना, जमींन का बीसवाँ हिस्सा भूमिहीनों में बांटना, ग्रामकोष की स्थापना और शांति सेना की स्थापना की जाए। नक्सलप थी समस्या के संदर्भ मे उन्होंने बासगीत जमींन के पर्चे दिलवाने, मजदूरों की समस्याएँ समझने और सुलझाने और शक्तिशाली तत्त्वों के शोषण से गरीबों को बचाने के लिए मुसहरी प्रखंड ने स्वयं काम करने का संकल्प किया। 2 मार्च, 1979 को तत्कालीन प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई को अपनी चिंताएँ व्यक्त करते हुए श्री जयप्रकाश नारायण ने जो ऐतिहासिक पत्र लिखा था, उसमें सरकार, लोकतंत्र और जनता के बारे में उनके विचारों की झलक मिलती है। इस ऐतिहासिक पत्र से यह स्पष्ट है कि सदैव एक ऐसे शासन की अपेक्षा करते थे जो अपने चुनावी वादों को निभाए, जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्क के प्रति सचेत रहे, लोगों की आकांक्षाओं को पूरा करे फिर चाहे वह कांग्रेसी सरकार हो या कोई अन्य सरकार। पिछले दो वर्षों में प्राय: एक मौन दर्शक सा रहा हूँ। लगातार अस्वस्थ रहने के कारण मैं महसूस करता हूँ कि लोगों से कट सा गया हूँ। जिन्होंने मुझे शक्ति दी और जीवनपर्यत मेरे संघर्ष के साथ रहे, अब मुझमें इतनी शक्ति भी नहीं रही कि उनसे साथ चल-फिर सकूँ और उनसे बात कर सकूँ। लेकिन उनके साथ संपर्क के जो भी संचार-साधन मेरे पास हैं, उससे लोगों की भावना, उनमें तेजी से व्याप्त हो रही निराशा का अहसास मुझे है। इस संदर्भ में आपको एक लोकतांत्रिक और जनता पार्टी तथा लोगों का मित्र होने के नाते यह पत्र लिख रहा हूँ। देश में लोकतंत्र की पुन: स्थापना के लिए जो संघर्ष किया गया था, उसमें मैंने भी - भले ही छोटी सी भूमिका अदा की थी और मैं लोगों के प्रति वचनबद्ध हूँ। मैंने आवश्वासन दिया था कि जनता सरकार अपने वादों को निभाएगी और जन-आकांक्षाओं को पूरी करेगी। 1977 की पहली चुनाव सभा में मैंने लोगों को जो वचन दिया था, उसकी जिम्मेदारी महसूस करते हुए यह पत्र आपको संबोधित कर रहा हूँ। दो वर्ष पूर्व आपने और आपके सहयोगियों ने गाँधी समाधि पर जो प्रतिज्ञा की थी उसकी ओर आपका और आपकी सरकार का ध्यान आकृष्ट करने के उद्देश्य से भी मैं यह पत्र आपको लिख रहा हूँ। मैं ऐसा महसूस करता हूँ कि उस प्रतिज्ञा और उन लोगों की ऊँची-ऊँची आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए बहुत कम प्रयास किया गया, जिन्हों ने वोट उदेकर आपको और आपके सहयोगियों को 1977 में सत्ता में बिठाया। लोगों की ऊँची आकांक्षाओं का ज्वार अब मंद पड़ कर निराशा में बदलता जा रहा है। इससे इन तानाशाही ताकतों को नया जीवन मिला है जिसे लोगों ने चुनाव में अंतिम रूप से नकार दिया था। अभूतपूर्व लोकतंत्रीय क्रांति के बाद भी ऐसा दिखाई देता है कि देश दिशाहीनता की स्थिति में भटक रहा है। इस भटकाव को रोकने के लिए यदि ढ़ंग से कुछ न किया गया तो एक ऐसी असंभव स्थिति पैदा हो जाएगी, जहाँ लोकतंत्र के बचे रहने की गुंजाइश बहुत कम रह जाएगी। विदेशों में रहने वाले कुछ भारतीय मित्रों ने हाल ही में मुझे बताया कि लोकतंत्र की गाड़ी फिर से पटरी पर लाने में हमारी योग्यता के कारण विश्व की नजरों में भारत की प्रतिष्टा काफी बढ़ी। उनका कहना है कि पूरे देश पर तानाशाही शक्तियों का साम्राज्य होने के बाद भी शांतिपूर्ण तरीके से लोकतंत्र की वापसी हो सकी। अगर जनता सरकार असफल होती है और तानाशाही की वापसी का मार्ग प्रशस्त होता है तो यह हमारे इतिहास में सर्वाधिक दु:खद घटना होगी। मैंने पहले भी घोषित किया था कि जनता सरकार को सुपरिणाम सामने लाने के लिए वक्त देना चाहिए और यह कि जनता को इसके लिए कम-से-कम एक वर्ष तक इंतजार करना चाहिए। अब जनता शासन के दो वर्ष पूरे होने को है। आप लोगों से कह सकते हैं कि अभी तीन वर्ष और इंतजार करो, क्योंकि संविधान में आपको पाँच वर्ष तक शासन करने का अधिकार दिया है, लेकिन मोरारजी भाई, लोग उस समय तक जब तक कि आप अपना निर्धारित कार्यकाल पूरा नहीं करते, इंतजार नहीं कर सकते, और उन्हें करना भी नहीं चाहिए। यह सच है कि हमारा संविधान लोगों के इस अधिकार को मान्यता नहीं देता। यह देखकर मुझे दु:ख हुआ कि वर्त्तमान संसद ने जिस 45वें संविधान संशोधन को पारित किया, उसमें ही इस जनाधिकार को शामिल करने की कोई व्यवस्था नहीं की गई, हालांकि जनता पार्टी ने अपने चुनाव-घोषणा पत्र में इस प्रस्ताव पर विचार करने का वचन दिया था। चाहे आप या हम उसे पसंद करें अथवा नापसंद, लेकिन समय आने पर देश की जनता अपना यह अधिकार इस्तेमाल करेगी। अब चूँकि जनता शासन का एक वर्ष और पूरा होने को है, इसलिए यदि लोग आपकी सरकार की कार्यवाहियों का स्पष्टीकरण मांगते हैं तो इस का उन्हें पूरा-पूरा हक है। ऐसा भी नहीं है कि इन दो वर्षों में आपकी सरकार ने कुछ किया ही नहीं। इसकी कुछ उपलब्धियों की जानकारी मुझे है। विशेष रूप से मूल्य प्रबंध के मुद्रा-स्फीति नियंत्रण और राजनीतिक आजादी की पुष्टि के क्षेत्र में। लेकिन मेरा ख्याल है कि जब तक हम आर्थिक प्रणाली में सुधार नहीं करते और किसी ठोस नींव पर उसकी पुनर्रचना नहीं करते मूल्यों में स्थिरता बहुत दिनों तक बनी नहीं रह सकती। हमारी अर्थव्यवस्था पूंजीपतियों और नौकरशाहों दोनों के नियंत्रण से मुक्त होनी चाहिए। सामाजिक क्षेत्र में भी अभी बहुत कुछ करना बांकी है। हरिजनों पर अत्याचार जारी है और इसे रोकने की दिशा में कुछ भी न किए जाने से जनता सरकार की तस्वीर कुरूप हुई है। हरिजनों की जीवन-रक्षा करने तथा समाज के अन्य कमजोर वर्गों को सम्मानित जीवन बिताने का अधिकार देने के लिए क्या हमारे पास कोई उपाय नहीं रह गया है? मैं इस बात से सहमत हूँ कि यह समस्या हमें विरासत में मिली, लेकिन मैं इससे कतई सहमत नहीं हो सकता कि गांधीजी के आदर्शों के अनुरूप बनी सही मायनों में लोकतांत्रिक सरकार के प्रयत्नों के बावजूद विरासत में मिली समस्या बरकरार रहे। मुझे पता चला है कि मुसलमानों ने जनता पार्टी को संदेह की नजर से देखना शुरू कर दिया है। अगर इस बात में तनिक भी सच्चाई है तो जनता पार्टी के सभी वर्गो को अपने दिल टटोलने चाहिए और जनता पार्टी से मुसलमानों

के अलगाव के कारण का पता लगाना चाहिए। प्रधानमंत्री और पार्टी का नेता हो ने के नाते आपको पार्टी और सरकार की धर्मनिरपेक्ष छवि फिर से सुदृढ़ करने के लिए कदम उठाने चाहिए। मैं जिस बात से सर्वाधिक चिंतित हूँ, वह है विश्वविद्यालयों में अशांति की लहर और करीब-करीब अराजकता की स्थिति। इसके कई कारण हो कसते हैं, पर इनकी गंभीरता से समझने और सोचने की जरूरत है। मुझे ऐसा लगता है कि वर्तमान असाधारण अशांति के मूल में छात्रों एवं युवा वर्ग के मस्तिष्क से व्याप्त निराशा की भावना हैं। शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन करके हम उसे ऐसी नहीं बना सके जो शिक्षित वर्ग को रोजगार की गारंटी दे सके और उज्ज्वल भविष्य के प्रतिआश्वस्थ कर सके। हमारी इस विफलता ने युवा मस्तिष्क में अशांति और पैदा की है। इसलिए जरूरी है कि शिक्षा को रोजगार-उन्मुख बनया जाए और साथ ही सभी शिक्षित युवकों के लिए रोजगार के अवसर पैदा किए जाएं और जब तक ऐसा नहीं होता, सरकार को सभी को बेरोजगारी भत्ता अथवा सार्वजनिक सहायता देने की व्यवस्था करनी चाहिए। रोजगार का अधिकार एक स्वस्थ लोकतंत्र के लिए उतना ही अनिवार्य है जितना वोट का अधिकार। इस प्रस्ताव को आप अव्यवहारिक कह कर रद्द भी नहीं कर सकते। युवावर्ग की बेरोजगारी की समस्या को कारगर ढंग से सुलझाया जाना चाहिए। अंत में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि मैं आपसे एक व्यक्तिगत अनुरोध करता हूँ। यह राष्ट्रीय स्तर पर एक प्राणवान नेतृत्व बनाने के बारे में है। राज्यों को ऐसा नेता उत्पन्न करने होंगे जो बूढ़े थके हाथों से नेतृत्व ले सकें। परन्तु मैं केंन्द्र में अधिक चिंतित हूँ। क्योंकि वही राष्ट्र का भविष्य निर्देश करता है। मैं जानता हूँ कि केन्द्र में नई प्रतिभाओं का टोटा नहीं है। परिवार के मुखिया की हैसियत से आपकी भावी पीढिघ्यों के प्रति दायित्व है। प्रथमत: यह आपकी जिम्मेदारी है कि नेतृत्व की एक दूसरी पंक्ति उस समय कार्यभार संभालने के लिए उपलब्ध रहे जब आप आैर अन्य वरिष्ठ नेता अवकास ग्रहण करने को तैयार हों यह कैसे होगा, यह आपको तय करना है। मैं जानता हूँ कि यह सब बातें आपके मन में होगी या होनी चाहिए। फिर भी मैंने अपनी चिंता आपके सामने रखना उचित समझा। यह आपके या आपके सहायेागियों के व्यक्तिगत नियह रादर भाव से नहीं लिखा गया। मैं चाहूँगा कि आप इस पत्र के विषय पर अपने मंत्रिमंडल के सहयोगियों से विचार-विमर्श करें। यह सर्वविदित है कि स्वतंत्रता संग्राम से जे0 पी0 ने क्रान्तिकारी भूमिका निभाई थी। इसके पूर्व आजादी की लड़ाई में किसनों और मजदूरों को शामिल करने के उद्देश्य से उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी (सी0 एम0 पी0) की स्थापना 1934 में की। आजादी भारत विचार के प्रचार-प्रसार और किसानों और मजदूरों को संगठित करने की दिशा में अनेक कदम उठाए। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में रहकर समाजवादी विचार को कांग्रेस के अंदर और बाहर और बाहर लोकप्रिय बनाने और कांग्रेस के नेतृत्व एवं संगठन में समाजवादियों का वर्चस्व कायम करने के लिए वे निरनतर प्रयत्नशील रहे। इतिहास के कुछ पिछले पत्रों को उलटकर मैंने हिंसा-अहिंसा के प्रश्न पर गांधी और जेपी के विचारों को यहाँ उद्धत किया है। गांधीजी मूलत: मानवतावादी थे, और जेपी बुनियादी रूप से क्रांतिकारी थे। लेकिन आगे चलकर जेपी ने भी यह स्वीकार किया कि क्रांति के लिए हजारों मनुष्यों की हत्या करना अनुचित है। महान समाजवादी क्रांतिकारी लेनिन क्रान्ति के लिए हजारों लाखों मनुष्यों की बलि चढ़ाने के लिए तैयार है। यही कारण है कि जेपी लेनिनवाद से हटकर गांधीवाद के मानवीय पक्ष की ओर मुड़े और क्रान्ति या संपूर्ण क्रान्ति के लिए शांतिमय एंव शुद्ध साधनों की अनिवार्यता स्वीकार की। सन् 1942 में जेपी ने अंग्रजी साम्राज्यवाद के खिलाफ हाथ में बन्दूक लेकर संघर्ष किया था। उसी जयप्रकाश ने आंदोलन के दौरान बन्दूक फेंककर शांतिमय साधनों का सहारा लिया और स्वदेशी अधिनायकवाद को उखाड़ फेंका। इसके बाद वे वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना की दिशा में सक्रिय कदम उठाने वाले थे जो उनके संपूर्ण क्रान्ति के कार्यक्रम का अभिन्न हिस्सा था अगर 1977 में जेपी बीमार नहीं होते और चंडीगढ़ के एकाकी कारावास में उनके दोनों गुर्दे खराब नहीं कर दिये जाते, तो इन्दराशाही के खात्मे के बाद भारत की तस्वीर कुछ और होती। जेपी ने यह कभी नहीं सोचा था कि संपूर्ण क्रांन्ति उनके जीवन-काल में हो जाएगी। उन्हें आशा थी कि संपूर्ण क्रान्ति के आदर्शों के प्रतिबद्ध छात्र और युवा संपूर्ण क्रांन्ति की मशाल थाम लेंगे और शांतिमय और शुद्ध साधनों के सहारे देश के क्रांन्ति की मंजिल की ओर ले जाएगें। यह विचित्र इत्तफाक है कि भारतीय राजनीति के दो महत्वपूर्ण व्यक्तित्वों का, जिन्होंने एक दशक तक कंधे से कंधा मिलाकर भारतीय मुक्ति संग्राम की अगुआई की थी, यह जन्म शताब्दी वर्ष हैं जो जे0 पी0 एक सुखी सम्पत्र परिवार में जन्में थे जबकि किशोरी भाई यानी किशोरी प्रसत्र सिंह एक सामान्य परिवार में। जे0 पी0 की उच्च शिक्षा अमरीका में हुई थी। जबकि किशोरी भाई की पढ़ाई असहयोग आन्दोलन के दौरान टूट गई थी। जो बाद में जारी नहीं रह सकी। वे मात्र दसवी कक्षा तक ही पढ़े थे। जे0 पी0 अमरीका से कम्युनिष्ट बनकर भारत लौटे थे और यहाँ आने के बाद उन्होंने भारत के कम्युनिस्टों के बारे में कोई खोज खबर नहीं ली थी। वे सीधे गाँधी जी के पास गए उनकी पत्नी प्रभावती देवी उनके अमरीकी प्रवास काल में गाँधी जी के आश्रम में रही थी। जे0 पी0 और किशोर के बीच वैचारिक एकता और संघर्ष की घटना हजारीबार जेल में घटित हुई थी। दोनों अर्थात् जे0 पी0 और किशोरी भाई के बीच रामनन्दन मिश्र, योगेन्द्र शुक्ल और बसावन सिंह की मौजूदगी में नई पार्टी बनाने के सवाल पर विचार विनिमय हुआ। दोनों इस बात पर सहमत हो गये। कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की मौजूदा नीतियों और ढांचे से सोशलिस्ट अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सकते, इसलिए दूसरी पार्टी बनाने की जरूरत है, पर पार्टी का वाह्य आवरण मौजूदा कांग्रेस साशलिस्ट पार्टी ही होगी। यह भी तय हुआ कि हमलोगों को अपना सम्पर्क कम्युनिस्ट कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ही होगी। यह भी तय हुआ कि हमलोगों को अपना सम्पर्क कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल के साथ स्वतंत्र ढंग से रखना चाहिए, संभव है उनके हस्तक्षेप से हिन्दुस्तान के सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट पार्टियों के बीच का मतभेद मिट भी जाए। जे0 पी0 के प्रति किशोरी भाई के मन में जो श्रद्धा थी, उनके प्रति उनका जो सम्मोहनद था वह बार-बार उनको उनके पास खींच कर ले जाता है। कभी-कभी लगता है कि उनके पसन्द नहीं आते वे तुरन्त रिएक्ट करते। या तो उनके पास संवाद के लिए पहुँच जाते उनके तर्क-वितर्क करते या उनके विचारों के विरूद्ध अपने विचार लिख देती ऐसे विचार उनकी पुस्तक में छिपे भी है। अध्यक्ष बन जाने के बाद आचार्य नरेन्द्रदेव प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के दोनों पक्षों के सदस्यों की मिलीजुली कार्यकारिणी समिति का गठन करना उचित समझा इसलिए आचार्य जी ने डाक्टर लोहिया के प्रस्वात के समर्थन श्री त्रिलोकी सिंह जी हो प्रधानमंत्री तथा श्री विपिनपाल दास तथा फरीदुलहक अन्सारी को संयुक्त मंत्री के रूप में नियुक्त किया तथा उसके विरोध में वोट देने वाले श्री एम0 आर0 एण्डवते को तीसरा संयुक्त मंत्री नियुक्त किया। कार्यसमिति में भी आचार्य जी ने डॉ0 लोहिया के समर्थन श्री मधुलिमये, री महादेवी सिंह, भी राजनारायण सिंह तथा महाराजा विजयानगरम जाजू को स्थान दिया। लेकिन इसके बाबजूद भी डॉक्टर राम मनोहर लोहिया, श्री मधुलिमये तथा श्री महादेव सिंह ने कार्यकारिणी समिति के सदस्य बनने के इन्कार कर दिया। यहाँ तक कि जे0 वी0 कृपलानी एक कार्यकारिणी समिति के नियंत्रित सदस्य बनने की स्वीकृति देदी, राम मनोहर जी ऐसा करने को भी तैयार नहीं हुए। कार्यकारिणी समिति ने डॉक्टर राम मनोहर लोहिया को केन्द्रीय पार्लियामेन्टरी बोर्ड का अध्यक्ष नियुक्त किया, लेकिन वे इस पद से भी इस्तीफा दे दिये तथा नागपुर अधिवेशन के प्रजा सोशलिष्ट पार्टी के निर्णय के विरूद्ध और तीव्र गति से प्रचार करने लगें प्रजा सोशलिष्ट

पार्टी में वाद विवाद उस समय और अधिक तेज हो गया जब श्री मधु लिमये ने 24 जनवरी 1955 ई 0 को फ्रीप्रेस जर्नल में यह तथ्य उजागर किया कि प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के बहुसंख्यक सदस् काँग्रेस की समाजवादी घोषणा को एक बड़ा धोखा समझाते हैं। 20 फरवरी को बम्बई में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के नौ सदस्यों ने मधुलिमये के करि को आलोचना की तथा कहा कि कॉग्रेस द्वारा समावजाद के सिद्धातों को अपनाकर सही दिशा में स्वागत योग्य कदम है तथा इसका श्रेय सोशलिस्ट पार्टी को हैं उनलोगों का कहना था कि मधुलिमये जैसे व्यक्ति को पार्टी में रखना ही पार्टी को तबाह करना है। उनलोगों ने पार्टी अध्यक्ष आयार्य नरेन्द्रेव से अपील की कि सत्तारूढ़ काँग्रेस दल के द्वारा समाजवादी ढंग से समाज को अपना लक्ष्य मान लेना से जो परिस्थिति पैदा हुई है। उस पर विचार करने के लिए वह शीघ्र ही पार्टी का नरेशनल कन्वेन्शन बुलाये। आचार्य जी ने काग्रेस की मंसा को स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि कांग्रेस सारे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने के लिए इच्छुक है, इसलिए वह अपनी इच्छा एवं उद्देश्य की पूर्ति के लिए विभिन्न विरोधी विचारधाराओं के लोगों को अपने में समेटना चाहता है। यह कांग्रेस की मनोवृति जनतंत्र के विकास के लिए हानिकारक है। अगर कांग्रेस यर्थार्थ में अपने में जान डालना चाहती है तो उसे समझना चाहिए कि जनता ही शक्ति का वास्तविक श्रोत है। तथा जन संबंध के माध्यम से ही जानदार बन सकती है। इसलिए आचार्य जी का मानना है कि किसी संगठन में जान डालने के लिए बार-बार जनशक्ति के महान भंडार का प्रयोग करना होगा। नेता आते है तथा चले जाते हैं, लेकिन संगठन अगर अपने सही संदेश को लेकर चलता है तथा सामाजिक उद्देश्य के लिए उपयोगी होता है तो नेताओं के हट जाने या चले जाने के बाद भी वह अधिक शक्ति के साथ बना रहता है। इस प्रकार आचार्य जी के कहने का तात्पर्य यह है कि संगठन के लिए जन शक्ति एंव सही सामाजिक उद्देश्य की आवश्यकता है न कि नेता की। उन्होंने यह भी कहा कि प्रत्येक महत्वपूर्ण आन्दोलन अपना नेता स्वयं चुन लिया करता है। इतिहास साक्षी है कि कोई भी महत्वपूर्ण आन्दोलन नेतृत्व के अभाव में असफल नहीं हुआ है। उपरोक्त आलोचनाओं के बावजूद आचार्य नरेन्द्रदेव द्वारा प्रस्तुत नीति घोषणा पत्र के समर्थन में भी अधिवेशन में विचार प्रस्तुत किया गये हैं। समर्थकों के अनुसार मौजूदा परिस्थिति में इलाहाबाद नीति घोषणा को चालू रखने से काम नहीं चल सकता, बल्कि पार्टी की सजीवता के लिए फैले हुए भ्रमों को दूर करने के लिए पार्टी की नीति स्पष्ट करने के लिए सिद्धांतों पर आश्रित नीति घोषणा का परिता होना आवश्यक है। समर्थकों का यह भी निश्चित मत था कि हमारी पार्टी केवल सत्ता करने में संलग्न राजनीतिक पार्टी नहीं है, वह तो समाजवादी आंदोलन है। समजावाद का प्रचार करना उसके लिए जनमत तैयार करना, जनसमूह को समाजवादी आंदोलन की ओर आकर्षित करना प्रजा सोशलिष्ट पार्टी का मुख्य कार्य है । इस कार्य के लिए सिद्धांतों की समुचित व्याख्या आवश्यक है। बुनियादी सैद्धान्तिक एकता के बिना पार्टी आगे नहीं झुक सकता है। पार्टी का अस्तित्व भी ज्यादा दिन तक कायम नहीं रह सकता। नीति घोषणा पत्र के सभी विचारों में सामंजस्य है। उसके सिद्धांत जटिल मार्क्सवादी नहीं है। वैसे किसी भी विचारधारा एवं नीति का समर्थन और विरोध होना स्वाभाविक है, लेकिन वस्तुतः जैसा कि गंगाशरण सिंह ने कहा है कि आचार्य नरेन्द्रदेव की यह नीति घोषणा जनतान्त्रिक समाजवादी के मौलिक सिद्धांतों तथा पार्टी की बुनियादी नीति को प्रतिपादित करती है तथा समाजवादी समाज और संस्कृति की रूपरेखा प्रस्तुत करती है। यह व्यक्तिवाद और कमयुनिज्य से पार्टी के सैद्धान्तिक भेदों की विवेचना काँग्रेस और कम्युनिज्म पार्टी के सिद्धांतों और नीतियों की आलोचना और कांग्रेस सरकारों में लक्ष्यों और दावों की संक्षेप में समीक्षा करती है। नीति घोषणा पत्र तैयार करने के बाद आचार्य नरेन्द्रदेव अपनी चिकित्सा हेतु 3 जनवरी 1956 ई0 को वायुमार्ग द्वारा मद्रास के परेन्दुराई चले गये जहाँ 19 फरवरी 1956 ई0 को दमें के विकट दौरे के कारण सायं काल 5 बजकर 10 मिनट पर इस महान आत्मा का देहावसान हो गया।

निष्कर्ष

इस कार्य के लिए सिद्धांतों की समुचित व्याख्या आवश्यक है। बुनियादी सैद्धान्तिक एकता के बिना पार्टी आगे नहीं झुक सकता है। पार्टी का अस्तित्व भी ज्यादा दिन तक कायम नहीं रह सकता। नीति घोषणा पत्र के सभी विचारों में सामंजस्य है। उसके सिद्धांत जटिल मार्क्सवादी नहीं है। वैसे किसी भी विचारधारा एवं नीति का समर्थन और विरोध होना स्वाभाविक है, लेकिन वस्तुतः जैसा कि गंगाशरण सिंह ने कहा है कि आचार्य नरेन्द्रदेव की यह नीति घोषणा जनतान्त्रिक समाजवादी के मौलिक सिद्धांतों तथा पार्टी की बुनियादी नीति को प्रतिपादित करती है तथा समाजवादी समाज और संस्कृति की रूपरेखा प्रस्तुत करती है। यह व्यक्तिवाद और कमयुनिज्य से पार्टी के सैद्धान्तिक भेदों की विवेचना काँग्रेस और कम्युनिज्म पार्टी के सिद्धांतों और नीतियों की आलोचना और कांग्रेस सरकारों में लक्ष्यों और दावों की संक्षेप में समीक्षा करती है।

संदर्भ स्रोतः

1. सच्चिदानंद, (जे0 पी0 के निजी सचिव रह चुके हैं) हिन्दुस्तान दैनिक समाचार पत्र, 2003 ।
2. गुप्ता आशा, सोशियोलिज्म इन थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस, पृ0- 126।
3. सिंह भगवती शरण, सोशियोलिज्म इन थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस, पृ0- 26
4. वर्मा विश्वनाथ प्रसाद, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन।
5. लाल मुकुट बिहारी, आचार्य नरेन्द्रदेव, युग और नेतृत्व, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1989।
6. राय सत्या, भारत में राष्ट्रवाद, पृ0- 49 ।
7. मुखर्जी मृदुला, रविवार साप्ताहिक, ज्ञानमंडल, वाराणसी, पृ0- 61।
8. आचार्य नरेन्द्रदेव, सविनय अवज्ञा के विजय में आचार्य जी के विचारा स्मृति ग्रंथ केसर तथा मेनन द्वारा सम्पादित, पृ0- 328-334।
9. देसाई, ए0 आर0, पीजेन्ट स्ट्रगल इन इंण्डिया, पृ0- 349-40।

शकुन एवं अपशुकन का भ्रम जाल

डॉ० सरोज मीना

सह-आचार्य, संस्कृत विभाग, बाबूषोभाराम राजकीय कला, महाविद्यालय, अलवर

शोध सारांश:-

शकुंन शास्त्र प्राचीनकाल से ही हमारे विश्वास और श्रद्धा का विषय रहा है शकुन शास्त्र के प्रवर्तनें में महर्षि अत्रि, बृहस्पति, गर्ग, व्यास, वसिष्ठ, भृगु, कौव्न, गौरव आदि प्रसिद्ध ऋषि रहे है शकुन शास्त्र भी भविष्य की सूचना देता है इसलिए इसे भी ज्योतिष का अंग माना गया है। प्राचीनकाल में लोग पूर्वजन्तम में किये गये कर्म को ही भाग्य मानते थे हमारे ऋषि मुनियों ने अपने तपोबल और आत्मज्ञान से दौ पैर वाले, चार पैर वाले, छः पैर वाले और पाँच पैर वाले पशु-पक्षियों के क्रियाकलापों की चेष्टाओं और प्रकृति तथा भाषा आदि का सूक्ष्म निरीक्षण-परीक्षण करने उनसे प्राप्त परिणामों का मूल्यांकन किया और तब उन शुभ-अषुभ के फलदायक शकुनों को या अपने अनुभवों को लोक कल्याणार्थ प्रकाशित किया। जब हम किसी कार्यवश घर से बाहर जा रहे होते है तो हमारे आगे पीछे होने वाली घटनाएं और उनके द्वारा घटित होने वाला फलित ही हमारे लिए दियारणीय या शोयनीय रहता है और यही से शकुन शास्त्र का इसका प्रारंभ हमारे जीवन में होता हैं। परिस्थितियां चाहे जैसी भी रहे या बदल जाये वैदिक ज्ञान और हमारे ऋषियों के ज्ञान की घरोहर की मूल भावना एवं शकुनों की सार्थकता नहीं बदली है। प्रस्तुत पत्र में शुभ अशुभ शकुनों का भ्रमजाल आग की जैसे हमारे जीवन को प्रभावित करता है। यही समझने समझाने का प्रयास किया गया है।

शब्दावली- शकुंनशास्त्र, अपशकुन, नियति, घटनाओं, अंधविश्वासों, अमांगलिक, फउकना।

शोध का उद्देश्य- शकुन अपशकुनो के प्रति आमजन में व्याप्त अंधविश्वास जो आज भी उनके मन मस्तिष्क में प्रबलता से अपनी पैठ बनाये हुए है को खत्म करना। शुभ अशुभ शकुनों के प्रति चली आ रही रूढ़िवादी व परम्परागत अज्ञानता से आवृत सोच को खत्म कर वास्तविकता से व वैज्ञानिकता से युक्त गतिविधियों से लोगों का परिचय कराना। शुभ अशुभ के भ्रमजाल में फँसे लोगों को उन अंधविश्वासों का अनुकरण करने से रोकने का प्रयास करना।

मुख्य आलेख

शकुन संस्कृत भाषा का शब्द है तथा सकना अर्थ वाले 'शकु' धातु से बना है, जो भी पदार्थ, क्रिया, शब्द आदि किसी भावी शुभ या अशुभ को बता सकता है, वह शकुन कहलाता है, फिर भी 'शकुन' का प्रयोग प्रायः अच्छे अर्थ में होता है और अपशकुन का बुरे में, जैसे प्रातः काल सफाई कर्मचारी का दिखाई देना शकुन है तो ब्राह्मण से भेंट होना अपषकुन, इसी प्रकार घर से निकलते समय किसी व्यक्ति का छीकना अपशकुन समझा जाता है पर वही यदि छींक दो बार आये तो शकुन माना जाता है। किन्तु भोजन के आरम्भ में छींक को शुभ 'शकुन' माना गया है। शकुन शास्त्र प्राचीन काल से ही हमारे विश्वास और श्रद्धा का विषय रहा है। महर्षि तुलसीदास ने मानस में बैठी 'शगुन मनावति माता' कहकर लोकाधार में व्याप्त शकुन शास्त्र को माना है। शकुन शास्त्र का उपदेश करने वाले स्वयं भगवान शंकर रहे है, जिन्हें त्रिनेत्र कहा जाता है। शकुन शास्त्र के प्रर्वतकों में महर्षि अत्रि, बृहस्पति, गर्ग, शुक्राचार्य, व्यास, वसिष्ठ, भृगु, कौत्सु एवं गौतम आदि प्रसिद्ध ऋषि रहे है। चूँकि यह शकुन शास्त्र भी भविष्य की सूचना देता है। इसलिए इसे भी ज्योतिष का अंग माना गया है। शकुनशास्त्र से जो भी सूचना हमें मिलती है। यदि हम उस सूचना को आधार बनाकर आचरण करें तो प्रतिकूलता से बचकर अनुकूलता का लाभ उठा सकते है। कुछ लोगों का मानना है कि यदि शकुनशास्त्र का प्रभाव इतना ही शक्तिशाली है तो फिर भाग्य अथवा नियति का क्या अर्थ है। इस विषय में बंसन्त राज शाकुनि ने लिखा है-

पूर्व जन्म जनितं पुराविदः कर्म दैवमिति संप्रक्षते।
उद्यमेन तदुपार्जितं तदा दैवमुद्यमवषं न तत्कथम्।।

अर्थात् प्राचीनकाल में लोग पूर्व जन्म में किये गये कर्म को ही भाग्य मानते थे, कर्म ही हमारा भाग्य बन जाता था। इसे इस तरह भी समझा जा सकता है कि भाग्य कर्म के परिणाम स्वरूप होने के कारण कर्म के आश्रित हुआ है। हमारे ऋषि मुनियों ने अपने तपोबल और आत्म-ज्ञान से दो पैर बने चार पैर वाले छः पैर वाले और पाँच वाले पशु-पक्षियों के क्रियसाकलापों की चेष्ठाओं और प्रकृति तथा भाषा आदि का सूक्ष्म निरीक्षण-परीक्षण करके उनसे प्राप्त परिणामों का मूल्यांकन किया और तब उन शुभ, अषुभ के फलदायक शकुनों को या अपने अनुभवों को लोक कल्याणार्थ प्रकाशित किया। शकुन घर से निकलते के समय या किसी शुभ कार्य को करते समय ही विचारणीय रहा करते है। जब हम किसी कार्यवष घर से बाहर जा रहे होते है तो हमारे आगे पीछे होने वाली घटनाएं और उनके द्वारा घटित होने वाला फलित ही हमारे लिये विचारणीय या शोचनीय रहता है और यही से इसका प्रारम्भ हमारे जीवन में होता है।[1]

प्रश्न यहां यह है कि क्या सचमुच प्रस्थान काल में छींक से यात्रा में या किसी शुभ कार्य में प्रातः काल ब्राह्मण के दर्शन से दिन में कोई अमंगल होता है? मेरे विचारानुसार तो नहीं तो फिर प्राचीनकाल से आजतक लोग इन्हें मानते क्यों है? इन अपशकुनों के प्रति लोगों में इतना भय क्यों है और शुभ-शकुनों के इच्छुक क्यों है? सामान्य तौर पर यहां यही प्रतीत होता है कि भय तथा अज्ञान के कारण हमारे प्राचीन पूर्वज इन्हें मानते आये है और इसीलिए हम भी इन्हें आज तक शुभ-अषुभ के रूप में मानने को विवश है। शकुनों के प्रति हमारे विश्वास का कारण अज्ञानता भी है। हम ऐसी-ऐसी घटनाओं को शुभ-अशुभों से जोड़ लेते है। जिनका दूर-दूर तक कोई लेना देना नहीं होता है। शकुनों के प्रति हमारे विश्वास का कारण हमारी प्राचीन पुस्तकें भी है-

पूर्वजन्म कृतकर्मणः पुलं पाकमेति नियमेन देहिनः।

तत्प्रकाशपति दैवनोदितः प्रस्थितस्य शकुनः स्थितस्य द।[2]

अर्थात् जीव को पूर्वजन्म में किए गये कर्म का फल मिलता है। फिर चाहे वह घर में हो, यात्रा में हो, देवीय प्रभाव उस फल को प्रकट कर ही देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक शुभ-अशुभ शकुन के पीछे पूर्वजन्मकृत कर्म और दैवीय प्रभाव ही निहित होता है। प्रायः देखा जाये तो इनसे कुछ अच्छा या बुरा नहीं होता है पर जब कोई साहसी या निडर व्यक्ति इनका उल्लंधन कर संकट में पड़ जाता है तो फिर यह कहने का अवसर मिल जाता है कि यह शकुन अच्छा नहीं हुआ, यह कार्य मत करें, नहीं मानो तो अब इसका फल भुगतो। शुभ-अशुभ के फलदायक शकुन कहां से प्रारंभ हुए इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता परन्तु इतना तो तय है कि जहां-जहां मनुष्य है वहां-वहां अन्य अंधविश्वासों के समान शकुन भी चारों और व्याप्त है और आज के इस वैज्ञानिक युग में भी ये अपनी स्थिति को उसी तरह बनाये हुए है जैसे प्राचीनकाल में जब अशिक्षा व अज्ञानता की स्थिति थी परन्तु आज विज्ञान का युग है और आज भी हमारे विकसित देश अमेरिका में स्वप्न में बीमार का मरना भावी स्वास्थ्य का सूचक समझा जाता है और विवाह का होना मृत्यु का। हमारे भारतवर्ष में यात्रा के आरंभ में एक छींक अशुभ व दो छींक को शुभ माना गया है। पुरूषों का दायां अंग फड़कना शुभ समझा जाता है तो स्त्रियों का बायां अंग फड़कना शुभ संकते का सूचक है।

शुभ-अशुभ के फलदायक इन शकुनों को हम तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते है-

1. मनुष्य सम्बन्धी शकुन
2. पशु-पक्षीयों से सम्बन्धित शकुन
3. देवी/प्राकृतिक शकुन

प्रथम वर्ग में हम उन शकुनों को देख सकते है, जिनका सम्बन्ध मनुष्यों की विभिन्न क्रियाओं से है। स्वप्न दर्षन छींक, बायें या दायें अंग का फड़कना इत्यादि।

यदि हम प्रातः काल उठकर परिवार से भिन्न यदि किन्हीं अन्य व्यक्तियों का दर्शन करे तो पूरे दिन उस दर्षन के प्रभाव का अनुभव करने पर ज्ञात होता है कि कुछ लोगों का दर्शन करना हमारे लिए शुभ रहा और कुछ का दर्शन हमारे लिए प्रतिकूल या अशुभ रहा। इसी प्रकार के परीक्षण हम अपनी दिनचर्या में जब करते है तो जब समान परिणाम मिले तो यह हम मानने लगते है कि ये शुभ-अशुभ शकुन प्रभावशाली होते है। इसी कारण ब्रह्मवादियों ने नित्य आचार में प्रातः उठते ही अपने हाथों की हथेलियों के दर्शन की व्यवस्था की। जैसे-

कराग्रेवसते लक्ष्मी करमध्ये सरस्वती।

करपृष्ठे स्थितो ब्रह्मा प्रभाते कर दर्शनम्।।

हाथ के अग्र भाग में लक्ष्मी है, बीच में सरस्वती और हाथ की पिछली और ब्रह्मा निवास करते है। यह स्वीकार कर प्रातः काल में उठते ही हम कर दर्षन करना चाहिए क्योंकि यह शुभ फलदायक है।

स्वप्ना अवस्था के शुभ-अशुभ के विषय में अथर्ववेद में एक मंत्र आता है। जहां ऋषि सुस्वप्न को मांगलिक मानता है और दुस्वप्न को अमांगलिक, मांगलिक को वह अप्सरा पुत्र बताता है और अमांगलिक को यमराज का पुत्र इसलिए वह अशुभ स्वप्न को अपने शत्रुओं पर डाल देता है।

देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर यो भद्रः स्वप्न।

समम यः पापस्तद् द्विषते प्र हिण्मः।।[3]

इसी प्रकार मनुष्य के शरीर के विभिन्न अंगों के फड़कने को भी हमारे शास्त्रों में या भारतीय संस्कृति में शुभ-अशुभों से जोड़कर देखा जाता है। जैसे किसी व्यक्ति के सिर की त्वचा फड़कती है तो सौभाग्य के रूप में देखा जाता हैं, यदि गरदन फड़के तो वह व्यक्ति विदेष यात्रा करता है, यदि किसी व्यक्ति का दाहिनी ओर का कान फड़के तो उसे शुभ समाचार मिलता है और यदि बायां कान फड़के तो उसे किसी प्रियजन से मिलन का या शुभचिंतक से मिलन का संकेत माना जाता है।

यहां हम महाकवि कालिदास द्वारा रचित अभिज्ञान शाकुन्तलम् के श्लोक को उदाहरण के तौर पर देख सकते है जहां इसी प्रकार जब राजा दुष्यन्त मारीचि ऋषि के आश्रम के समीप जाते है जहां शकुन्तला अपने पुत्र भरत के साथ रह रही होती है तो राजा के अंग स्फुटित होने लगते है और वो विचार करते है कि यह शुभ संकते है। श्लोक है-

मनोरथाय नाषंसे किं बाहो स्पन्दसे वृथा।

पूर्वावधीरितं श्रेयो दुखं हि परिवर्तते।।[4]

यहां राजा दुश्यन्त को दक्षिण का फड़कना जो कि सुन्दर स्त्री की प्राप्ति का सूचक होता है। शूभ-शकुन की ओर संकते करता है। कण्व मुनि के आश्रम के समीप पहुचने पर राजा की दाहिनी भुजा जब फड़कने लगती है तो वह श्रेष्ठ स्त्री रूपी वर की प्राप्ति के शकुन का अनुभव करता है क्योंकि आश्रम भले ही शान्त है परन्तु किसी न किसी वर स्त्री की प्राप्ति संभव भी हो सकती है अन्यथा शकुन शास्त्र झूठा हो जायेगा। इस तरह राजा विचार करता है।

शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य।
अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवति सर्वत्र।।[6]

इसी तरह यदि किसी व्यक्ति की दाहिनी ओर की भौह फड़के तो उसे ख्याति मिलती है और दाहिनी आंख फड़के तो उसकी समस्त अभिलाशाएं पूर्व हो जाती है। ऐसा शकुन माना जाता है। यदि बाई और की भौंह या आंख फड़के तो मित्र से मिलने का शुभ संकते के रूप में देखा जाता है यदि किसी व्यक्ति की दाहिनी पलक फड़फड़ाती है तो उसे अभीष्ट की सिद्धि प्राप्त होती है यदि वह लगातार फड़फड़ायें तो रोग से शारीरिक कष्ट प्राप्ति को अशुभ संकेत की शकुन माना जाता है यदि दाई ओर का गाला फड़फड़ाए तो व्यक्ति के बीमार होने का अशुभ संकेत के रूप माना जाता है। इस प्रकार मनुष्य के द्वारा की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं में अंग फड़कने को शुभ अशुभ शकुन के रूप में देखा जाता है।

सर्दी जुकाम या किसी कीट पतंगों के पड़ जाने पर छींक आना स्वाभाविक क्रिया है। परन्तु हम अज्ञानवंश उसमें भी अनेको भली बुरी कल्पनाओं को जोड़ देते है। गार्ग्य ऋषि ने अथर्ववेद में नक्षत्रों आदि के प्रभाव का वर्णन करते हुये कहते है।-

अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम्।
सर्वेर्मे रिक्तकुंमान् परा तांत्सवितः सुव।।[6]

आज के वैज्ञानिक युग में भी हमारी संस्कृति में ये आदतें किसी से नहीं छुपी है जब हम किसी जाते हुये व्यक्ति को पीछे से बुलाने को या पीछे से आवाज देने को, छींक को तथा बाहर निकलते ही जल से रिक्त बरतन को दिखाई पड़ने को अपशकुन के रूप में देखने की जो परम्परा है वह प्राचीन काल से आगे तक चली आ रही है।

शकुन शब्द का पक्षियों से पुराना तथा विषेष सम्बन्ध है शुकनम् (नपुसंक लिंग) में शुभ या अषुभ के सूचक चिन्ह का वाचक है, और शकुन (पुल्लिंग) पक्षी, चील, गिद्ध का, सस्कृत का शकुनि शब्द भी पक्षी, चील, गिद्ध और मुर्गे का अर्थ प्रकार कहता है।7 महर्षि यास्क ने भी निरूक्त में शकुनि (पक्षी) के शुकन प्रकार करने की सामर्थ्य को स्वीकार किया है। (9/1)

ऐतिहासिक काल में शकुनों का आरम्भ शुकुनियों (पक्षियों) से ही हुआ होगा ऐसा माना जाता रहा है और फिर उसका विस्तार मनुष्य पशुओं व प्राकृतिक परिवतनों तक विस्तृत होता गया होगा, जो भी विकास रहा हो वेदों में कपिंजल, कबूतर, उल्लू, काक, मेंढ़क, मृग का उल्लेख शकुनों के रूप में किया गया है।

कपिंजल का अर्थ है तीतर ऋग्वेद के दूसरे मण्डल के 42-43 वें सूक्तों का देवता कपिंजल रूपधारी इन्द्र है 41 वें सूक्त में ग्रत्समद ऋषि ने अन्य देवों के साथ इन्द्र की भी स्तुति की है पर अल्पमात्र इसलिये अधिक स्तुति की ईच्छा रखने वाला इन्द्र तीतर का रूप धारण कर लेता है। और बाहर जाने के लिये उद्यत ऋषि के दाइं और चहक उठा जो शुभ शकुन का सूचक है। इससे यह परिलक्षित होता है कि वैदिककाल में बाहर जाते समय यदि किसी व्यक्ति के दाई ओर तीतर का बोला जाना शुभ शकुन के रूप में देखा जाता था।

अव क्रंद दक्षिणतो गृहाणां सुमंगलों भद्रवादी शकुंतेः।
मा न स्तेन ईषत माधषंसो ब्रहद्वदेम विदथे सुवीराः।।[8]

अर्थात् हे पक्षी ते मगंलकारी बनकर हमारे घरों के दक्षिण दिषा की ओर बोल ताकि हम पर चोर व पापी का प्रभाव न पड़े। हम वीर संतति से युक्त होकर यज्ञ में तेरी भरपूर प्रशंसा करेगें।

यदि यात्रा करते समय बटेर दाहिनी तरफ जाकर वापस लौटे और यात्रा से आते समय बाई ओर जाकर वापस लौटे तो उस व्यक्ति का आने वाला समय शुभ शकुनों के योग्य माना जाता है। कबूतर के प्रति तो हमारे विचारों में पर्याप्त परिवर्तन आ चुका है पहले उन्हें अमगंलकारी विपत्ति के दूत के रूप में माना जाता था परन्तु उल्लू के प्रति आज भी हमारा दृष्टिकोण प्राचीनकाल के समान धारणाओं पर ही टिका हुआ है। उल्लू को आज भी उतना ही विनाशक समझा जाता है जितना वैदिक युग में समझा जाता था।

प्रायः उजाड़में बसने वाला यह पक्षी जब कभी किसी घर या बस्ती में आ जाता है तो उसे मनहूस या अपशकुनी के रूप में ही देखा जाता है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में जहाँ कबूतर को अपषकुनी कहा है वही उल्लू को भी अपशकुनी कहा गया है। अथर्ववेद के छठे काण्ड के 27-29 वें सूक्तों में भृगु ऋषि ने उल्लू और कबूतर के अपशकुन से आत्मरक्षा के लिये इस प्रकार कामना की है-

अमून् हेतिः पतत्रिणी न्येतु यदुलूको वदति मोघमेतत्।
यद् वा कपोतः पदमग्नौ कृणोति।।[9]

अर्थात् यह पंखो वाला उल्लू शत्रुओं पर जा गिरे उल्लू का बोलना अथवा कबूतर का अग्नि के समीप आना हमारे लिए अशुभकारी होते है। वैदिक काल से ही कौआ को ना केवल भारतवर्ष में अपितु दूसरे देशों के लोग भी अपशकुनी ही मानते है भारतीय इतिहास में कौए के अपशकुन की कई आश्चर्यजनक धटनाऐं उपलब्ध होती है उदाहरणार्थ 1809 ई. में मराठा (सिंधिया) दरबार लगा हुआ था कि उसी समय एक कौआ उड़ता हुआ आया और बीच में से निकल गया और सभी लोग इसे अपशकुन मानकर धबरा गये और फिर राजा से निवेदन किया कि अपशकुन को दूर करने के लिए ब्राह्मण को सोने का कौआ दान में देना चाहिए इस निवेदन को मानकर और अपशकुन को दूर करने के लिए राजा ने ब्राह्मण को सौनका कौआ दान किया, किन्तु वर्तमान समय में कौओं के प्रति अब हमारा नजरिया बदल गया है आजकल घर के आंगन में आकर या मुंडेर पर उसका बोलना अतिथि व प्रियतम के आगमन का सूचक समझा जाता है इसी प्रकार मेढ़कों का टर्राना ही वर्षा ऋतु के लिए शुभ माना जाता था। इसके सम्बंध में यास्काचार्य ने निरूक्त (9/1/6-7) में एक रोचक बात लिखी है वर्षा के इच्छुक वशिष्ठ ऋषि ने पर्जन्म देवता (मेघ की स्तुति) और मेढ़कों ने उस स्तुति का अनुमोदन किया तो प्रसन्न ऋषि ने मेढ़घ्कों की स्तुति में भी मंत्र हि रच दिया जैसे-

उपप्रवद मंडूकि वर्षामा वद तादुरिः।

मध्येह्नवदस्य प्लवस्य विगृहय चतुर पदः।।[10]

यदि प्रवास पर जाते समय किसी व्यक्ति को मैना दिखे तो अशुभ शकुन है, यदि प्रवास पर जाते समय (अंगी/हरिजन) दिखे तो शुभ शकुन माना जाता है उसी तरह जल से पूर्व पात्र मिले या दिखे तो शुभफल माना जाता है इसी प्रकार घर से बाहर निकलते समय बिल्ली द्वारा रास्ता काटना आज भी भारत जैसे देष में अपशकुन ही माना जाता है काली बिल्ली का रास्ता काटना हमें विपत्ति का संकेत देती है और हम कुछ देर के लिए अपनी यात्रा को टाल देते हैं। शकुन शास्त्र में कुत्तों को शकुन रत्न कहा गया है क्योंकि ये इंसानों के सबसे करीब होते है और उनकी गतिविधियों के अनुसार कुछ संकेत करते है जिनके आधार पर हम भविष्य की घटनाओं का मूल्यांकन करते है रात में कुत्तों का रोना अपशकुन का सूचक माना गया है।[11]

शकुन शास्त्र के अनुसार छिपकली के शरीर के अलग-अलग अंगो पर गिरने को शकुन/अपशकुन माना जाता है। स्त्री के शरीर के बायें भाग पर और पुरूष के शरीर के दाहिनी भाग की तरफ गिरना शुभ माना जाता है। इसी प्रकार छिपकली का नीचे से ऊपर की ओर चढ़ना शुभ माना जाता है तो ऊपर से नीचे की ओर गिरना अशुभ माना गया है। शकुन शास्त्र के अनुसार छिपकली का किसी विशेष समय पर दिखना जमीन पर या शरीर पर गिरना भविष्य की शुभ-अशुभ घटनाओं का संकेत होता है।[12]

कई बार ये सभी बातें महज एक अंधविश्वास लगती है। लेकिन यदि हम अपने पौराणिक ग्रंथों में छिपे इतिहास के पन्ने टटोले तो पता लगता है कि इन बातों में कहीं न कहीं कुछ सच्चाई जरूर है पुराणों में दर्ज कुछ कथाएं हमें शकुन-अपशकुन की एक गहरी तस्वीर दिखाती है। माना जाता है कि इन शकुनों के परिणाम उतने ही प्राचीन है जितनी मनुष्य जाति, भविष्य में हमारे साथ क्या घटित होने वाला है इसके संकेत हमें कई प्रकार से मिलते है पहला साधन है कि हमारे अच्छे बुरे, डरावने, और रहस्य से भरे स्वप्न जो भविष्य की झलक देते है। दूसरा साधन हैशकुन शास्त्र यानि ऐसे संकेत जो किसी घटना के माध्यम से हमें भविष्य में होने वाली शुभ-अशुभ गतिविधियों की सूचना देते है।[13]

शकुन-अपशुकनों की इस श्रृंखला में आगे बढ़ते हुए अब हम उन शकुनों की बात करेंगे जिनका सम्बन्ध ना तो मनुष्यों से और ना ही प्राणियों से बल्कि इनका सम्बन्ध प्राकृतिक घटनाओं से है जैसे भूचाल, आँधी, तूफान, ग्रहण आदि भले ही आज हम इन्हें शकुन या भयंकर नहीं मानते है परन्तु प्राचीन युग में तो इन्हें अपषकुन ही माना जाता था अर्थवेद में इनमें सम्बन्धित अनेकों मंत्र जहां-तहां उपलब्ध होते है जैसे-

शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत्।

शं गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरव तीर्यती।।[11] *(अथर्व. 19/9/8)*

पृथ्वी पर जब भी प्रलय, तूफान या भूचाल आने वाला होता है तो जानवर परेषान हो जाते है, पक्षी अपने छिपने की जगह खोजने लगते है और कुत्ते जोर-जोर से भौकते है, चिटियां अपने आंडे और बीज को लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान को जाती हुयी दिखायी पड़ती है ये सभी घटनाऐं हमें आने वाली प्राकृतिक आपदा का संकेत देती है अगर दिन में या रात में कभी भी कुत्ते की बेवजह रोने की आवाज आये तो ये किसी के मौत या विपत्ति आने के संकेत है।

हमारे वेद पुराण या अन्य धार्मिक ग्रंथो में अनेक जगह उल्लेख आता है कि मनुष्य के सहयोगी माने जाने वाले जीव, जंतु, पशु-पंक्षी और माता कही जाने वाली प्रकृति कई बार भविष्य में घटित होने वाली अच्छी-बुरी घटनाओं के संकेत पूर्व में ही देने लगते है, जानकर लोग इनके संकेतों को समझ कर लोगों को सजग रहने को भी कहते रहते है प्राचीन शास्त्रों में वस्तु एवं जीवों के सम्बन्धों के बारे में शुभ-अषुभ को लेकर लिखा है, प्रकृति भी अपने माध्यम से मनुष्य को आने वाली शुभ-अशुभ घटनाओं की जानकारी देती रहती है इसका प्रमाण हम भूकंप या इस तरह की घटनाओं से ठीक पहले जानवरों व पक्षियों के व्यवहार को देखकर समझ सकते है माना जाता है कि हम इंसानों की अपेक्षा पक्षी और जीव-जन्तुओं की इन्द्रिया-प्रकृति के प्रति कई गुना संवेदनशील होती है। भूकंप, बाढ़, वर्षा आदि को लेकर उन्हें पहले से ही आभास हो जाता है। (Animals and Birds Gires Goods and Bed Signal Tons) लेकिन जानकारी के अभाव में हम उनके इन इषारों को पहचान नहीं जाते है।[12]

वर्तमान समय में भी लोक अंचल अर्थात् समाज का एक काफी बड़ा तबका एक बड़ा प्रतिषत इन प्राचीन निमित अथवा मान्यताओं को परोक्ष-अपरोक्ष रूप से मानता है और उन पर अपने अनुभवों के आधार विश्वास भी करते हैं। वस्तुतः इन तथ्यों के पीछे वैज्ञानिक कारण ढूँढ पाना काफी कठिन है केवल स्वानुभाव ही इसका प्रमाण है हां इतना अवष्य कहा जा सकता है कि भौतिक जगत से ऊपर एक सत्ता का संचालक को ही ऐसी विभिन्न बातों का आधारभूत कहा जा सकता है।[13] (चमत्कारी प्रकृति संकेत (उमेश पाण्डे) भगवती पॉकेट बुक्स)

भारतीय समाज में शकुनों में विष्वास की प्रकृति अति प्राचीनकाल से परिलक्षित होती है ऐसी नहीं है कि शकुनों में गहरी आस्था केवल भारतीय समाज में ही प्रचलित हो अपितु संसार की प्रत्येक मानव सभ्यता एवं संस्कृति के कई विकसित देष जैसे अमेरिका, इग्लैण्ड, रूस में भी अलग-अलग ढ़ग और मान्यताओं के अनुसार शकुनों का प्रचलन आज भी हैं।[14]

शास्त्रकारों का कहना है कि मनुष्यों के जो पूर्व जन्मार्जित शुभाशुभफल है उनको गमनकालिक शकुन प्रकाषित करते है यथा-

अन्यजन्मांतरकृतं कर्म पुसां शुभाशुभम्।

यत्तस्य शकुनः पाकं निवेदयती गच्छताम्।।

निष्कर्षः-

अतः मानव का शकुनों में विष्वास सार्वभौतिक एवं सार्वकालिक है। यह घारणा प्रबल तथा पुष्ट है कि अज्ञात शक्ति या देवता, पशु-पक्षियों की गतिविधियों अथवा विषिष्ट लक्षणों के माध्यम से शुभाशुभ घटित होने की पूर्व सूचना प्रदान करते है। वैदिक संहिताएं, सूत्र, ग्रंथ, बुद्धचरित्र, आरण्यक, सभी ज्योतिष संस्थाएं

शकुन शास्त्रों के वर्णनों से ओत-प्रोत है और हमारी लोककाथाओं में भी शकुनषास्त्र का विस्तृत वर्णन किया गया है। परिस्थितियाँ चाहे जितनी बदल जायें वैदिक ज्ञान और हमारे ऋषियों के ज्ञान की धरोहर की मूल भावना एवं शकुनों की सार्थकता नही बदली है। शकुन, अपराध की उपादेयता ग्राम-देहात व आादिवासी समाज के व्यवहार व लोकजीवन में आज भी ज्यों की त्यों प्रचलित है। और उनका मान्यताओं के अनुसार अनुकरण भी किया जा रहा है।

संदर्भः-

1. शकुन-अपशकुन प्रमोद सागर। मनोज पब्लिकेशन
2. शकुन बसन्तराज पृ. 9
3. अथर्ववेद/9/57/4
4. अभिशाकुन्तवक, सातमोड़क श्लोक संख्या-13 (डॉ. विश्वनाथ शर्मा)
5. प्रथम अंक/श्लोक सं. 14 डां. विश्वनाथ शर्मा अभिलान शाकुन्तलम्
6. अथर्ववेद /9/8/4
7. कितने अप्रासंगिक है धर्मग्रंथ (राकेश नाथ) विश्व विजय प्रा. लि. नई दिल्ली ।
8. ऋग्वेद 2/42/3
9. अथर्व. 6/29/1
10. अर्थर्व वेद 4/15/14
11. शुभ-अशुभ के संकेत शकुन शास्त्र के अनुसार (https//sachhiprerna.com)
12. https://m.dailyhunt.in
13. https://hindi.speakingtree.in
14. शकुन-अपशकुनः एक शास्त्रार्थ विवेचना- डॉ. जितेन्द्र व्यास

शिक्षा के अधिकार अधिनियम की उपलब्धियाँ और चुनौतियाँ

डॉ० अनीता सती

गृह विज्ञान विभाग, हे0 न0 ब0 गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड

सारांश

भारत में शिक्षा के अधिकार को कानूनी रूप से प्रभावी हुए लगभग 12 वर्ष हो चुके हैं देश के लगभग 99 प्रतिशत आबादियों में प्राथमिक विद्यालय एवं 95 प्रतिशत आबादियों में उच्च प्राथमिक विद्यालय स्थापित हो चुके हैं। लेकिन यदि आबादियों में जनंसख्या के घनत्व को दृष्टिगत करें तो मलिन बस्तियों में खास तौर से उच्च प्राथमिक पाठशालाओं की कमी बनी हुई है और इसी प्रकार जिन आबादियों में केवल प्राथमिक विद्यालय हैं, खासतौर से उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश में सामाजिक दबावों और आने-जाने की असुविधा के कारण लड़कियां प्राथमिक कक्षाओं से आगे नहीं बढ़ पातीं। अन्य प्रावधानों जैसे शिक्षकों की संख्या को सम्मिलित कर लगता है कि शिक्षा के अधिकार अधिनियम के प्रभावी होने से निश्चित रुप से सुविधाओं में सुधार हो रहा है परन्तु शिक्षा की गुणवत्ता गम्भीर चिन्ता का विषय है।

प्रस्तावना

भारत के संविधान में, राज्य के नीति निर्देशक तत्वों (धारा 45) के अन्तर्गत, आधारिक शिक्षा सभी बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य रूप से उपलब्ध कराने की प्रतिबद्धता व्यक्त की गयी थी, परन्तु संविधान लागू होने के लगभग छ: दशक बाद तक यह प्रतिबद्धता, एक पवित्र घोषणा मात्र थी। यहां तक कि, वर्ष 1992 में सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय, कि शिक्षा का अधिकार जीवन के अधिकार से जुड़ा है, के लगभग दस वर्ष बाद सरकार 2002 में संविधान में संशोधन (86वां संशोधन) कर शिक्षा को मौलिक अधिकार बना पायी और सविधान में संशोधन के लगभग 7 वर्ष बाद वर्ष 2009 में छ: से चौदह साल के बच्चों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिनियम पारित हो पाया है। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के लगभग 17 वर्ष के बाद वर्ष 2009 में बच्चों का नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 (The Right to Children to Free and Compulsory Education Act., 2009) पारित हुआ जो कि 1 अप्रैल 2010 से प्रभावी है।

शिक्षा के अधिकार कानून में यह व्यवस्था है कि बच्चों को शिक्षा की सुविधा उनके पड़ोस में ही मिलनी चाहिए। यद्यपि शिक्षा के अधिकार अधिनियम, में पड़ोस परिभाषित नहीं किया गया है, लेकिन केन्द्र सरकार द्वारा संस्तुत शिक्षा के अधिकार अधिनियम-2009 के क्रियान्वयन के लिए बनाये गये आदर्श नियम (Model Rule) के अनुसार कक्षा 1 से 5 तक के लिए आवास से एक किलोमीटर तथा कक्षा 5 से 8 तक के लिए तीन किलोमीटर की दूरी के अन्तर्गत स्कूल उपलब्ध होने चाहिए। इन आदर्श नियमों में यह स्पष्ट किया गया है कि दुर्गम्य, कम आबादी, यातायात-परिवहन सुविधा से वंचित, बाढ़, भूस्खलन, वन क्षेत्र आदि क्षेत्रों में सरकार तथा स्थानीय निकाय उपरोक्त दूरी के मानकों को परिस्थितियों के अनुसार शिथिल कर सकते हैं। इन आदर्श नियमों में यह भी व्यवस्था है कि यदि सरकार दूरी के मानकों के अनुसार किन्हीं भी कारणों से स्कूल उपलब्ध नहीं करा पा रही हो तो वह घर से स्कूल तक बच्चों को यातायात सुविधा प्रदान कर या अधिकृत व्यक्ति के संरक्षण में स्कूल में लाने व घर वापिस पहुंचाने की व्यवस्था करेगी। यदि आवश्यक हो तो सरकार आवासीय स्कूलों की भी व्यवस्था कर सकती है।

इन आदर्श कानूनों में यह भी संस्तुत किया गया है कि घनी आबादी वाले क्षेत्रों में भी स्कूलों के लिए निर्धारित दूरी के मानकों को शिथिल किया जा सकता है, और निर्धारित दूरी के अन्तर्गत एक से अधिक विद्यालय स्थापित किये जा सकते हैं। शिक्षा के अधिकार कानून की व्यापकता, लोचशीलता, समावेशी प्रवृति आदि के कारण प्रशंसा की गयी। इस अधिनियम में अध्यापकों, भवन, पेयजल, शौचालय आदि के स्पष्ट मानक निर्धारित करने, शारीरिक दण्ड पर प्रतिबन्ध लगाने तथा निजी स्कूलों के लिये 25 प्रतिशत गरीब बच्चों के प्रवेश देने की अनिवार्यता को गुणात्मक शिक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जा रहा है। इसी प्रकार स्कूलों में प्रवेश के लिए जन्म प्रमाण पत्र की अनिवार्यता को समाप्त किया जाना भी प्रवेश प्रक्रिया के सरलीकरण की दिशा में नि:सन्देह उल्लेखनीय और प्रगतिशील व्यवस्था है। खासतौर से प्रवासी मजदूरों और समाज के कमजोर वर्ग के अभिभावकों को, बच्चों के स्कूल में प्रवेश के समय जन्म-प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने में बहुत कठिनाई होती रही है। इस अधिनियम में यह भी व्यवस्था की गई है कि बच्चे को उसकी आयु के अनुकूल ही कक्षा में प्रवेश मिले और यह जिम्मेदारी स्कूल की होगी कि जिस कक्षा में बच्चे को दाखिला दिया गया है, वह उस स्तर का ज्ञान अर्जित कर ले। शिक्षा के अधिकार अधिनियम के अनुसार यह उल्लेखनीय है कि वर्ष 2013 तक 6-14 वर्ष के सभी बच्चों को स्कूल में नामांकित होना चाहिए, और 2015 तक स्कूलों में मानकों के अनुसार अध्यापक होने चाहिए और सभी अध्यापक प्रशिक्षित होने चाहिए। इस अधिनियम के सन्दर्भ में सर्वाधिक जटिलता केन्द्र और राज्य के मध्य, शिक्षा के अधिकार के क्रियान्वयन की वित्तीय लागत को वहन करने से सम्बन्धित है। एक ओर इस अधिनियम की धारा "7c1" में व्यवस्था है कि

वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराना केन्द्र और राज्य सरकार दोनों का दायित्व है और दूसरी ओर धारा "7c5" में व्यवस्था है कि राज्य सरकार इस अधिनियम को क्रियान्वित करने के लिए संसाधन उपलब्ध करायेगी। राज्यों की वित्तीय स्थिति को दृष्टिगत कर ऐसा नहीं लगता कि राज्यों के लिए यह सम्भव हो पायेगा। तथ्य तो यह है कि केन्द्र और राज्य सरकारों का शिक्षा पर कुल व्यय, अभी भी कोठारी कमीशन (1966) और बाद में कैबिनेट एडवाइजरी कमैटी ऑन एजुकेशन (2006) द्वारा भी संस्तुत, सकल घरेलू उत्पाद के 6 प्रतिशत से बहुत कम है। पिछले दशक में, भारत में शिक्षा पर कुल व्यय सकल घरेलू उत्पाद के 3 से 4 प्रतिशत के बीच रहा है, जिसमें राज्य सरकारों का योगदान राज्य सकल घरेलू उत्पादन के लगभग 2.5 प्रतिशत से 3.13 प्रतिशत के मध्य एवं केन्द्र सरकार का योगदान सकल घरेलू उत्पाद के 0.5 प्रतिशत से 1 प्रतिशत के मध्य रहा है(Center for Budget & Accountability and UNICEF, 2011).

भारत में आधारिक शिक्षा के विकास के अवरोधक तत्वों में वित्तीय संसाधनों की कमी निःसन्देह एक गम्भीर अवरोधक है परन्तु मात्र यही एक अवरोधक नहीं है। शिक्षा के अधिकार पर केन्द्र सरकार द्वारा गठित 'सैकिया कमेटी' 1997 का विचार था (Government of India, Ministry of Human Resource Development, 1997), कि शिक्षा के अधिकार को क्रियान्वित करने के लिए पांच वर्ष तक प्रतिवर्ष 40,000 करोड़ रूपये की आवश्यकता होगी। 'तापस मजूमदार कमेटी' (1999) ने अनुमान लगाया कि 10 वर्ष की अवधि के लिए 1,37,000 करोड़ रूपये की आवश्यकता होगी। सर्वशिक्षा अभियान को लागू करते समय अनुमान लगाया कि दस वर्ष अवधि के लिए 95,000 करोड़ रूपये वांछित होंगे। दसवीं पंचवर्षीय योजना के लिए गठित 'वर्किंग कमेटी' ने अनुमान लगाया कि शिक्षा के अधिकार को लागू करने के लिए पूरे योजना काल में 55,000-60,000 करोड़ रूपये की आवश्यकता होगी। वर्ष 2005 में 'कैबिनेट एडवाइजरी कमेटी ऑन एजुकेशन' का अनुमान था कि शिक्षा के अधिकार कानून को लागू करने के लिए वर्तमान मूल्य पर 3,20,000 करोड़ से 4,36,000 करोड़ रूपये की आवश्यकता होगी। शिक्षा के अधिकार कानून लागू होने के पश्चात् केन्द्र और राज्य सरकारों ने आधारिक शिक्षा पर जो धनराशि निवेश की है, जैसा कि तालिका-1 में दिया गया है वह संसाधनों की कमी की आशंका को पुष्ट ही करती है।

तालिका संख्या-1.0 आधारिक शिक्षा पर केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकार का व्यय (करोड़ में)

वर्ष	कुल व्यय	केन्द्र सरकार का व्यय	राज्य सरकार का व्यय	केन्द्र सरकार का व्यय (कुल व्यय का प्रतिशत)	राज्य सरकार का व्यय (कुल व्यय का प्रतिशत)
2003-04	36365.97	5203.45	31162.52	14.31	85.69
2004-05	41874.17	7692.18	34181.99	18.37	81.63
2005-06	52722.41	12481.24	40241.17	23.67	76.33
2006-07	62063.30	17501.48	44561.82	28.20	71.80
2007-08	69526.24	18122.68	51403.56	26.07	73.93
2008-09	80313.91	19972.25	60341.66	24.87	75.13
2009-10	100081.83	21484.10	78597.73	21.47	78.53
2010-11	123550.81	31213.32	92337.49	25.26	74.74
2011-12*	147947.24	34073.24	113874.00	23.03	76.97
2012-13**	169250.34	41022.24	128228.10	24.24	75.76
CAGR	16.62	18.22	15.20	–	–
औसत व्यय	88369.62	20876.61	67493.00	–	–

*संशोधित अनुमान ;त्मअपेमक म्ेजपउंजमद्धए **बजट अनुमान (Budget Estimate),

CAGR (Compound Annual Growth Rate) 2003.04 से 2012.13 तक।

स्रोतः Government of India, Ministry of Finance: Union Budget of India Vol. II (Various Issues).

Government of India, Ministry of Human Resource Development: Analysis of Budget Expenditure on Education Various Issues.

शिक्षा के लिए संसाधनों की कमी को दृष्टिगत कर वर्ष 2004 में केन्द्र सरकार ने सभी करों पर 2 प्रतिशत उपकर लगाया बाद में शिक्षा उपकर को बढ़ाकर 3 प्रतिशत कर दिया गया (2 प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा एवं 1 प्रतिशत उच्च शिक्षा हेतु)। इन व्यवस्थाओं के परिणाम स्वरूप केन्द्र सरकार के द्वारा आधारिक शिक्षा के लिए बजटीय आबंटन में काफी वृद्धि हुई। जैसा कि तालिका संख्या-(3.0) के अवलोकन से स्पष्ट है कि 2003-04 से 2012-13 तक भारत में आधारिक शिक्षा के व्यय में 16.62 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि हुई। राज्य सरकारों (15.2 प्रतिशत) की तुलना में केन्द्र सरकार (18.22 प्रतिशत) के आधारिक शिक्षा पर व्यय में अधिक वृद्धि हुई है। वर्ष 2003-04 में आधारिक शिक्षा पर होने वाले कुल व्यय का 14 प्रतिशत केन्द्र सरकार करती थी जो वर्तमान में बढ़कर लगभग 25 प्रतिशत हो गया है। यदि 10 वर्षों का औसत व्यय देखें तो आधारिक शिक्षा पर किये गये कुल व्यय का लगभग 23.62 प्रतिशत केन्द्र सरकार और 76.38 प्रतिशत राज्य सरकारें करती रही हैं। वर्तमान में केन्द्र सरकार के व्यय का बड़ा भाग लगभग 64 प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा कोष (शिक्षा उपकर) से जमा किया जाता है (Government of Indi)। वास्तव में ग्यारहवीं योजना में केन्द्र सरकार और राज्य सरकार के द्वारा क्रमशः 39 प्रतिशत एवं 44 प्रतिशत आधारिक शिक्षा पर व्यय किया गया (Government of India, Planning Commission, (2012), 12th Five Year Plan, Chapter 1, p. 121) ।

शिक्षा के अधिकार के सम्बंध में यह उल्लेखनीय है कि शिक्षा का अधिकार केवल सरकारी क्षेत्र के विद्यालयों पर ही नहीं बल्कि निजी क्षेत्र के विद्यालयों पर भी लागू होता है। इस दृष्टि से इस अधिनियम की प्रशंसा की जा रही है कि इसने निजी क्षेत्र और सरकारी क्षेत्र को प्रतिद्धन्दी न मानकर पूरक माना है, और निजी क्षेत्र के स्कूलों को सामाजिक रूप से संवेदनशील बनाने के गम्भीर प्रयास किये है। इस प्रयासों में कैपिटेशन फीस पर पूर्ण पाबन्दी, निजी स्कूलों में 25 प्रतिशत निर्धन वर्ग के बच्चों के प्रवेश देने की अनिवार्यता आदि सम्मिलित है। सरकारी या किसी भी अन्य प्रकार के स्कूल में प्रवेश परीक्षा पर पाबंदी है। इन प्रावधानों का निजी स्कूलों ने स्वागत कम और विरोध करते हुए इन्हें अपनी स्वायत्तता पर कुठाराघात माना है। निर्धन वर्ग के बच्चों को प्रवेश देने की अनिवार्यता को निजी स्कूलों के संगठन द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती भी दी गई थी। यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय ने शिक्षा के अधिकार अधिनियम में निहित इस प्रावधान को उचित ठहराया परन्तु निजी विद्यालयों द्वारा इस प्रावधान का विरोध, यह इंगित तो करता ही है कि निजी विद्यालय सम्भ्रान्त वर्ग के बच्चों एवं गरीब बच्चों को साथ-साथ पढ़ाने एवं खेलने के समावेशी विचार को स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं (Kumar,K., 2011)। वास्तव में अनेक निजी स्कूल इस समावेशी विचार को निष्प्रभावी करने के लिए प्रयासरत् हैं। कभी वे बच्चों की सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि के अलग-अलग होने के कारण उनकी पढ़ाई के स्तर और तरीके भिन्न होने की वकालत कर इस प्रावधान को हटवाना चाहते हैं कभी ये स्कूल, स्थान, अध्यापक और समय की कमी का हवाला देकर शिक्षा के अधिकार कानून की इस व्यवस्था को तर्कसंगत नहीं बताते। कुछ निजी स्कूल ने इस प्रावधान को प्रभावहीन बनाने का सरल-सुगम तरीका निकाल दिया है। ये स्कूल इन गरीब बच्चों की कक्षायें, उनकी पढ़ाई के स्तर और पढ़ाई के माध्यम में भिन्नता के आधार पर अलग चलाते हैं। कुछ स्कूल स्थान की कमी का आधार लेकर, गरीब बच्चों की कक्षायें अलग से संध्याकाल में चलाते हैं। कारण जो भी हो, गरीब और सम्भ्रांत वर्ग के, एक ही स्कूल के बच्चों को अलग-अलग पढ़ाई करवाना, शिक्षा के अधिकार कानून की मूलभावना, "समावेशी समाज के लिए शिक्षा", की हत्या है। वास्तव में शिक्षा के अधिकार कानून के इस प्रावधान (25 प्रतिशत गरीब बच्चों को प्रवेश देना) को लागू करने का काम वे ही निजी स्कूल कर सकते हैं जो समावेशी समाज और समावेशी विकास की अवधारणा से सहमत हैं जैसे कोलकाता का 'लोरेटो स्कूल'। यह स्कूल शिक्षा के कानून बनने से पहले गरीब और अमीर बच्चों के बीच कम से कम पढ़ाई के अन्तर की खाई को पाटने के लिए प्रयासरत् है। विडम्बना यह है कि लोरेटो स्कूल की प्रशंसा तो बहुत होती है परन्तु उसका अनुकरण करने वाले बहुत कम हैं।

गरीब बच्चों की निजी स्कूलों द्वारा अन्य आधारों पर भी आलोचना की गयी है। कतिपय विश्लेषकों का मत है कि चूंकि निजी स्कूलों में दाखिल कराये गये गरीब बच्चों की फीस सरकार वहन करेगी इस प्रकार से सरकार निजी स्कूलों के लिए आय का सुरक्षित स्रोत उपलब्ध करा रही है। यह प्रवृति धीरे-धीरे प्रबल होती जायेगी और चूंकि कोठारी कमीशन द्वारा संस्तुत कॉमन स्कूल सरकार की कार्य सूची में है ही नही अत: शिक्षा का अधिकार कानून का प्रावधान (निजी स्कूलों में 25 प्रतिशत गरीब बच्चों के प्रवेश की अनिवार्यता) शिक्षा के निजीकरण को ही बढ़ावा देगी। वास्तव में 'बाजारवाद' को ही प्रगति और दक्षता का पर्याय मानने वाली विचारधारा शिक्षा में समावेशी विकास की अवधारणा से सहमत ही नहीं हो पाती। अत: यह आरोप लगाया जाता है कि शिक्षा का अधिकार का रास्ता भी इसी विचारधारा को आगे बढ़ाता है और शिक्षा में अवसरों की समानता पर कुठाराघात करता है (Sadgopal. A., 2011)।

उपलब्धियाँ

आलोचकों का मत है कि शैक्षिक अवसरों की समानता, जो कि किसी भी एक समतामूलक समाज का आधार है, शिक्षा के अधिकार कानून का लक्ष्य है ही नही, अन्यथा यह कैसे हो सकता है कि भारत में परिवारों की आय के आधार पर स्कूलों की उपलब्धता के परिदृश्य पर शिक्षा के अधिकार कानून में कोई टिप्पणी भी न हो।6 शिक्षा के अधिकार अधिनियम पर यह टिप्पणी भी की जाती है कि वह निजी स्कूलों के प्रति काफी उदार है। उदाहरण के लिए सरकारी स्कूलों के प्रबंधन में बच्चों के अभिभावकों की विद्यालय प्रबंधन समिति के माध्यम से निर्णायक भूमिका रखी गयी है। अधिकांश विशेषज्ञ मानते हैं कि शिक्षा के अधिकार का यह प्रभावशाली कदम है तथा शिक्षा व्यवस्था और समाज के मध्य संवाद का सटीक तरीका है। शिक्षा के अधिकार अधिनियम का यह प्रावधान निजी स्कूलों पर लागू नहीं होता, इससे यह प्रतीत होता है कि निजी स्कूलों का सामाजिक दायित्व बोध इतना विकसित हो गया कि उन्हें सामुदायिक भागीदारिता की आवश्यकता ही नहीं है, या स्कूलों का सामुदायिक प्रबंधन, सरकारी स्कूलों में व्याप्त अव्यवस्था की जिम्मेदारी से बचने का सरकार का एक तरीका है, और सरकारी स्कूलों के निष्प्रभावी होने का कलंक समुदाय के माथे पर लगाने की एक चालाक युक्ति। शिक्षा के वार्षिक स्तर रिपोर्ट (Annual Status of Eduation Report -ASER) 2014 के आंकड़े इस तथ्य की पुष्टि करते हैं, जिसे तालिका संख्या 2 में दर्शाया गया है।

तालिका संख्या-2.0 शिक्षा के अधिकार अधिनियम के पश्चात् आधारिक शिक्षा के विकास की स्थिति (ग्रामीण क्षेत्र)

क्रम सं.		विद्यालयों की संख्या (प्रतिशत में)	
		2010	2014
1.0	शिक्षा के अधिकार अधिनियम में निर्धारित छात्र: शिक्षक अनुपात का अनुपालन करने वाले विद्यालय	38.9	49.3
2.0	शिक्षा के अधिकार अधिनियम में निर्धारित शिक्षक-कक्ष अनुपात का अनुपालन करने वाले विद्यालय	76.2	72.8
3.0	खेल के मैदान की उपलब्धता	47.2	65.2
4.0	शौचालय सुविधा की उपलब्धता:-		
4.1	उपलब्ध एवं उपयोग में शौचालय	47.2	65.2
4.2	उपलब्ध पर उपयोग के अयोग्य शौचालय	41.8	28.5

4.3	शौचालय रहित विद्यालय		11.0	6.3
5.0	बालिका शौचालयों की उपलब्धता:-			
5.1	उपयोग करने योग्य शौचालय		32.9	55.7
5.2	उपलब्ध पर उपयोग के अयोग्य शौचालय		18.7	12.9
5.3	उपलब्ध पर ताला बन्द		17.2	12.6
5.4	शौचालय रहित विद्यालय		11.0	6.3
6.0	पेयजल सुविधा:-			
6.1	उपलब्ध एवं उपयोग में		72.7	75.6
6.2	उपलब्ध पर पेयजल आपूर्ति नहीं		10.3	10.5
6.3	पेयजल सुविधा रहित विद्यालय		17.0	13.9
7.0	शिक्षा की गुणवत्ता:-		कुल बच्चों का प्रतिशत	
7.1	कक्षा पांच के बच्चे जो कक्षा दो का पाठ ठीक से पढ़ पाते हैं।	सरकारी स्कूल	50.7	42.2
		निजी स्कूल	64.2	62.2
7.2	कक्षा पांच के बच्चे जो साधारण भाग ठीक से दे देते हैं।	सरकारी स्कूल	33.9	20.7
		निजी स्कूल	44.2	39.3

स्रोत: ASER (2015), p. 86 Table (7), p. 87 Table (9), p.k~ 90 Table(18).

चुनौतियाँ

SRRI-IMRB के द्वारा 2005, 2010 एवं 2014 में किये गये स्कूल न जाने वाले बच्चों के परिणामों के सर्वेक्षण से उक्त आशंका ही पुष्ट होती है। वर्ष 2005 में उक्त सर्वेक्षण के अनुसार 1.34 करोड़ बच्चे, जो 6-13 वर्ष की आयु के कुल बच्चों का लगभग 6.94 प्रतिशत थे, स्कूल नहीं जाते थे, वर्ष 2014 में घटकर 0.64 करोड़ रह गये अर्थात् दस वर्ष की अवधि में स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या में प्रतिवर्ष 07.14 प्रतिशत वार्षिक कमी आयी। यदि इस अवधि को दो भागों वर्ष 2004-09, शिक्षा का अधिकार कानून से पूर्व तथा और 2009-2014 शिक्षा का अधिकार कानून के प्रभावी होने की अवधि में विभाजित करते हैं तो स्पष्ट होता है कि शिक्षा के कानून बनने से पूर्व अवधि (2004-09) के मध्य स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या में अपेक्षाकृत तीव्र गिरावट आयी और शिक्षा के अधिकार कानून बनने के बाद यह प्रवृति शिथिल होती जा रही है। वर्ष 2009 में वर्ष 2005 की तुलना में स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या में 43 लाख (0.43 करोड़) की कमी आयी तथा वर्ष 2009 में स्कूल न जाने वाले बच्चे कुल बच्चों की संख्या का लगभग 4.3 प्रतिशत थे। वर्ष 2014 में स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या 64 लाख (0.64 करोड़) पायी गयी, जो बच्चों की कुल संख्या का लगभग 2.97 प्रतिशत है अर्थात् 2004 से 2009 तक 5 वर्ष की अवधि में स्कूल ने जाने वाले बच्चों की संख्या में प्रतिवर्ष 9.58 प्रतिशत की कमी आयी और बाद के वर्षों 2009-14 के बीच यह दर घटकर 4.6 प्रतिशत रह गयी। यह प्रवृति स्पष्ट रूप से यह इंगित करती है कि शिक्षा कानून यद्यपि आधारिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है क्योंकि यह शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए किये गये समस्त प्रयासों को वैधता प्रदान करता है, पर यह प्रवृति यह भी बताती है कि शिक्षा का अधिकार कानून उस समय ही बनता है जबकि जनता की चेतना का पर्याप्त विकास हो जाता है, और कानूनी बाध्यता हो या नही अधिकांश लोग बच्चों को पढ़ाने लगते हैं (Caldwell, J., 1980, p. 233).

यह प्रवृति यह भी इंगित करती है कि समाज के कतिपय वर्गों में, शिक्षा की अवसर लागत उच्च होने के कारण, शिक्षा के अधिकार कानून की प्रभावशीलता कम हो जाती है। फुटपाथ पर रहने बच्चे, आदिवासी बच्चे, भूमिहीन श्रमिकों के बच्चे, सेक्स वर्कर के बच्चे आदि उन वर्गों से आते हैं, जिन्हें अनेकानेक कारणों से स्कूलों में नामांकित करना एवं उनकी उपस्थिति की निरन्तरता बनाये रखना कठिन है। बच्चों के स्कूल में नामांकन न होने के अनेक कारण हैं। जैसा कि आंकड़े बताते हैं कि स्कूल न जाने वाले कुल बच्चों में (64 लाख) में से लगभग 55 प्रतिशत बच्चे-उत्तर प्रदेश (16.1 लाख), बिहार (11.6 लाख), राजस्थान (6.0 लाख) इन राज्यों में हैं। महत्वपूर्ण बात है कि पूर्वी भारत के राज्यों अर्थात असम, उत्तरी भारत के राज्य हरियाणा एवं उत्तर प्रदेश और पश्चिमी भारत के राज्य राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र में स्कूल न जाने वाले बच्चे देश के 6-14 वर्ष के कुल बच्चों का 94 प्रतिशत हैं। दक्षिण भारत के चार राज्य केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश में स्कूल न जाने वाले बच्चों का भाग केवल 4 प्रतिशत से कुछ अधिक ही है। देश के पूर्वोत्तर राज्यों में स्कूल न जाने वाले बच्चों का 1 प्रतिशत है।

तालिका संख्या 3 के अवलोकन से स्पष्ट है कि देश के गरीब राज्यों में स्कूल न जाने वाले बच्चों का प्रतिशत अधिक है। उदाहरण के लिए देश के सर्वाधिक गरीब राज्यों में सम्मिलित उड़ीसा में कुल स्कूल न जाने वाले बच्चों का प्रतिशत सर्वाधिक है।

तालिका संख्या-3.0 भारत के प्रमुख राज्यों में स्कूल न जाने वाले (6-13 आयु वर्ग) के बच्चों का कुल बच्चों (6-13 आयु वर्ग) से प्रतिशत

राज्य	स्कूल न जाने वाले बच्चों का कुल बच्चों से प्रतिशत			राज्य प्रतिकूल क्रम			प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पाद (2013-14)	गरीबी रेखा से नीचे की जनसंख्या का प्रतिशत (2011-12)
	2005	2009	2014	2005	2009	2014		
बिहार	17	7.15	4.95	1	3	4	15650	33.74
झारखंड़	10.88	2.34	2.02	2	10	11	28882	36.96
असम	8.91	4.55	2.68	3	6	8	24533	31.98
पश्चिमी बंगाल	8.67	5.25	2.45	4	5	9	36527	19.98
उत्तर प्रदेश	8.15	7.6	3.9	5	2	5	19234	29.43
उत्तरा खंड़	7.47	3.54	5.07	6	7	2	56822	11.26
राजस्थान	6.9	8.36	5.02	7	1	3	30120	14.71
मध्य प्रदेश	6.63	2.62	3.78	8	9	7	27917	31.65
छत्तीसगढ़	6.5	1.18	3.9	9	15	6	28113	39.93
उड़ीसा	5.37	7.02	6.1	10	4	1	25891	32.59
आन्ध्र प्रदेश	4.29	1.41	0.91	11	12	14	46788	9.20
हरियाणा	4.15	2.69	0.21	12	8	18	67317	11.16
गुजरात	3.96	1.86	1.94	13	11	12	61220*	16.63
महाराश्ट्र	3.17	1.27	0.81	14	13	16	69584	17.35
पंजाब	2.87	0.03	2.28	15	18	10	49411	8.26
तमिलनाडु	2.14	0.63	0.66	16	16	17	62361	11.28
कर्नाटक	1.42	1.27	1.94	17	14	13	45024*	20.91
केरल	0.55	0.37	0.82	18	17	15	56115	7.05

स्रोत: स्कूल न जाने बच्चों के लिए SRRI- IMRB (2005) Ed.Cil.SRI- IMRB (2010, 2014)

*प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पाद वर्ष 2012-13 से सम्बन्धित है। प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पाद एवं गरीबी की रेखा से नीचे की जनसंख्या का प्रतिशत के आंकड़े www.rbi.org से लिये हैं।

यह भी उल्लेखनीय है कि सामाजिक, आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग में स्कूल न जाने वाले बच्चों का प्रतिशत राष्ट्रीय औसत से कहीं अधिक है। सामाजिक, आर्थिक पिछड़ेपन के कारण मुस्लिम समुदाय में स्कूल न जाने वाले बच्चों का प्रतिशत अनुसूचित जनजाति से अधिक है। और 2005-2009 के बीच में मुस्लिम समुदाय में स्कूल न जाने वाले बच्चों में कमी आने की दर (2.3) राष्ट्रीय औसत के बराबर थी, लेकिन शिक्षा के अधिकार कानून लागू होने के पश्चात् 2009-14 के मध्य मुस्लिम समुदाय में स्कूल न जाने वाले बच्चों में तुलनात्मक रूप से सर्वाधिक कमी आयी है।

तालिका संख्या-4.0 विभिन्न समुदायों में स्कूल न जाने वाले बच्चों में कमी (प्रतिशत में) 2005.2014

समुदाय	स्कूल न जाने वाले बच्चों का कुल बच्चों से प्रतिशत			कमी (प्रतिशत बिन्दु में)	
	2005	**2009**	**2014**	**2005-09**	**2009-14**
कुल	6.9	4.3	3.0	2.3	1.3
मुस्लिम	10	7.7	4.4	2.3	3.2
अनुसूचित जाति	8.1	5.9	3.2	2.2	2.7
अनुसूचित जनजाति	9.5	5.2	4.2	3.9	1.4

स्रोत: SRRI- IMRB (2005) Ed.Cil.SRI- IMRB (2010, 2014)

आधारिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लिये भारत सरकार, राज्य सरकार, स्थानीय निकायों की भागीदारिता के साथ संचालित किये जा रहे सर्वशिक्षा अभियान के अन्तर्गत बच्चों को स्कूलों में लाने के लिये अनेक उपाय किये जा रहे हैं, जैसे दुर्गम्य क्षेत्रों में बच्चों को घर से स्कूल तक लाने-ले जाने की सुविधा, पिछड़े क्षेत्रों में बालिकाओं के लिए आवासीय विद्यालयों की स्थापना, पिछड़े जनपदों और निवास क्षेत्रों को चिह्नित कर उन्हें अतिरिक्त संसाधन उपलब्ध कराना सम्मिलित है। लेकिन इन उपायों के बावजूद भी सभी बच्चें स्कूलों में नामांकित नहीं हो पा रहे हैं। सर्वशिक्षा आयोग के 12वें ज्वाइंट रिव्यू मिशन (Twelth Joint Review Mission) में इस समस्या पर टिप्पणी की है कि राज्यों में शैक्षिक प्रशासन (एजूकेशनल गर्वनेन्स) की क्षमता में कमी और शिथिलता के कारण शिक्षा के अधिकार कानून के बावजूद सभी बच्चे स्कूलों में दाखिल नहीं हो पा रहे हैं। इसी क्षमता की कमी के कारण अनेक राज्य केन्द्र सरकार द्वारा आवंटित वित्तीय संसाधनों का पूर्ण उपयोग भी नहीं कर पा रहे हैं। इसी कारण पिछडे हुए क्षेत्र, आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं। बच्चों को स्कूल में दाखिल करने के जो भी उपचार और नवाचार किये जा रहे हैं, वे प्रशासन की शिथिलता के कारण वांछित प्रतिफल नहीं दे पा रहे हैं (Government of India , Ministry of Human Resource Development, 2010, p.7.) ।

निष्कर्ष एवं सुझाव

सभी बच्चों को स्कूल में दाखिल न कर पाने में वांछित सफलता न मिलने के अतिरिक्त, शैक्षिक गुणवत्ता, जो शिक्षा के अधिकार का प्रमुख मन्तव्य था, में भी उल्लेखनीय प्रगति नहीं हो पा रही है। शिक्षा की गुणवत्ता की स्थिति यह है कि शिक्षा की वार्षिक स्थिति रिर्पोट (Annual Status of Education) जो कि स्वंय सेवी संस्था 'प्रथम' द्वारा प्रस्तुत की जाती है, में ऐसे बच्चों की भरमार रहती है जो जिस कक्षा में पढ़ रहे हैं, उससे तीन या चार स्तर नीचे की पाठ्य पुस्तक को नहीं पढ़ पाते और कक्षा 5 एवं 8 में होने के बावजूद गणित की साधारण क्षमता रहित हैं, अर्थात् साधारण जोड, घटाव और गुणा करना भी नहीं आता। उदाहरण के लिए-ग्रमीण क्षेत्रों में सरकारी स्कूलों में कक्षा पांच में पढ़ने वाले लगभग आधे बच्चे (51.9 प्रतिशत) तथा कक्षा आठ में पढ़ने वाले लगभग एक चौथाई बच्चे (25.4 प्रतिशत) कक्षा दो का पाठ नहीं पढ़ पाते। इसी प्रकार कक्षा पांच में पढ़ने वाले तीन चौथाई (74 प्रतिशत) बच्चे एवं कक्षा आठ में पढ़ने वाले आधे से अधिक (लगभग 55.9 प्रतिशत) तीन अंकों की संख्या में एक अंक का ऐसा भाग नहीं दे सकते जिसमें भाग देने के बाद शेष (जैसे- 869%7) बचता हो (ASER, 2015)। गुणवत्ता की इस दयनीय स्थिति के लिये शिक्षकों की कमी, घर और स्कूल में सीखने और सिखानें के लिये न्यूनतम वांछित वातावरण का अभाव, आदि है परन्तु उनके अध्ययन बताते हैं कि शिक्षा के अधिकार का लक्ष्य प्राप्त नहीं होने के कारण मुख्यत: व्यवस्थाजन्य है और अभी तक आधारिक शिक्षा के विभिन्न प्रतिभागी (स्टेक होल्डर) विकास के अधिकार की अवधारणा को आत्मसात् नहीं कर पाये हैं। सम्भवत: इसी कारण स्कूल में दाखिल होने के बावजूद बड़ी संख्या में बच्चे स्कूल से अनुपस्थित रहते हैं। बच्चों की अनुपस्थिति के अनेक अनुमान जैसे- एडसिल, एस.आर.आर.आई.-आई.एम.बी.आर. 2010 के अनुसार आधारिक विद्यालयों में 25 प्रतिशत बच्चे अनुपस्थित रहते हैं जबकि राष्ट्रीय सांख्यिकी-संस्थान (2010) के अनुमान के अनुसार 33 प्रतिशत बच्चे अनुपस्थित रहते हैं। लगातार स्कूल से अनुपस्थित रहने के कारण बच्चें पढ़ाई में पिछड़ते जाते हैं और धीरे-धीरे उनकी पढ़ाई में रूचि घटती जाती है तो वे पढ़ाई पूरी किये बिना स्कूल छोड़ (Drop Out) देते है। पढ़ाई बीचे में ही छोड़ने वाले ड्राप आउट बच्चों की संख्या के अनुमानों में मिलता है, परन्तु इस बात पर आम सहमति है कि समाज के कमजोर वर्ग के बच्चों में बीच में ही पढ़ाई छोड़ने की प्रवृति अधिक है। शिक्षा के अधिकार पर 'अनिल बोडिया कमेटी' का अनुमान है कि अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लगभग 46 प्रतिशत बच्चें जिनमें बड़ी संख्या में लड़कियां हैं कक्षा 8 तक पहुंचते-पहुंचते स्कूल छोड़ देते हैं। वास्तव में सामाजिक आर्थिक रूप से पिछड़े और संवेदनशील वर्ग के बच्चों को स्कूल में दाखिल कराना और उन्हें गुणवत्ता युक्त शिक्षा प्रदान करना ही शिक्षा के अधिकार कानून की प्रमुख चुनौती है जिस पर इस कानून को अभी खरा उतरना है।

References:

Annual Status of Education Report, (2014), Main Finding. www.img.asercentre.org/docs/publication/ASER%20Reports/ASER%202014/National%20PPTs/aser2014indiaenglish.pdf.

ASER, (2015), Annual Status of Education Report (Rural) 2014, ASER Centre, New Delhi.

Caldwell, J., (1980), A Mass Education as a Diterminant of the Thing of the Fertility Decline Population and Development Review, 6 (2).

Center for Budget & Accountability and UNICEF, (2011), Sarva Siksha Abhiyan (SSA), Budgeting for Change Series Social Policy (Planning, Monitoring and Evalution, S.P.M.E) UNICEF, India, New Delhi .

Education Cunsultant India Limited (Ed.Cil) & Social and Rural Research Institute (A Specialist unit) of IMRB International (2010), New Delhi.

Education Cunsultant India Limited (Ed.Cil) & Social and Rural Research Institute (A Specialist unit) of IMRB International (2014), New Delhi.

Government of India , Ministry of Human Resource Development, (2010), Tenth Joint Review Mission, Sarva Siksha Abhiyan.

Government of India, Ministry of Finance: Union Budget of India Expenditue Budget Vol. II, Ministry of Human Resource Development, Department of Education and Literacy, Notes on Demand and Growth. www.indiabudget.nic.in/ub-2015-16/sbe.5a pdf.

Government of India, Ministry of Human Resource Development Department of Higher Education, Planning & Monitoring Unit (2014), Analysis of Budgeted Expenditure on Education (2010-11 to 2012-13), New Delhi.

Government of India, Ministry of Human Resource Development, (2011), Analysis of Budgeted Expenditure on Education (2007-08 to 2009-10), New Delhi.

Government of India, Ministry of Human Resource Development, Department of Education with NIC. Report of the Committee of State Education Ministry (1997), www.tenindia.nic/retreaved/50 years edu/home.htm.

Government of India, Ministry of Human Resource Development: Department of Higher Education Planning & Monitoring Unit, Analysis of Budgeted Expenditure, for the Year (2003-04 to 2012-13)

Government of India, Planning Commission, (2010), Evaluation Report on Sarva Siksha Abhiyan, New Delhi, Programme Evalution Organization.

Government of India, Planning Commission, (2012) 12th Five Year Plan, Chapter 1.

Sadgopal, A., (2011), Neoliberal Act Frontline, Vol. 28, (14 July-1-15-2011).

United Nations Development Programme, (2014), Human Development Report 2014, Sustainning Human Progress Reducing Vulnerability and Building Resilience.

हिमाचली लोक साहित्य में लोकगाथाएं (लाहौल व कुल्लू के संदर्भ में)

डॉ० उरसेम लता

एसोसियेट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय कुल्लू, हिमाचल प्रदेश

प्रारूप –

हिमाचल – परिचय
गाथाएं – परिचय
स्त्री केन्द्रित लोक गाथाएं
रूपी राणी (लाहौल) की गाथाएं
यानदासी लाड़ी की लोकगाथा (कुल्लू-रूपी क्षेत्र)
सोहनी भोटली – भूंकू गद्दी की लोकगाथा (लाहौल)
रामकी कोली की लोकगाथा (कुल्लू-रूपी क्षेत्र)
गाथाओं के संकलन की जरूरत

बीज शब्द –

पहाड़ सी कठिन भौगोलिक परिस्थितियों से लड़ते-जूझते, थकते-हारते, खड़े होते-गिरते हैं, फिर भी चले चले जाते हैं निरंतर। इसी निरंतरता में मानवीय सम्बन्धों, प्रकृति की मीठी-कड़वी तकलीफों-परेशानियों से जन्म लेती है- 'गाथाएं'। इन्हीं गाथाओं को पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुनाती-गाती नाचती अतीत से सबक लेती और देती चलती रहती है जिन्दगी। गाथाएं हिमाचली लोक साहित्य की अमूल्य विरासत है जिससे न केवल अज्ञात गाथाकार की रचनात्मकता से पाठक-चमत्कृत रह जाता है बल्कि साथ ही साथ पहाड़ी जीवन की विडम्बनाओं से दो-चार होती मानव सभ्यता के विभिन्न पड़ावों से भी परिचित होता है। इस तरह गाथाएं बेहतर दुनिया का सपना बुनने की प्रेरणा भी देती चलती हैं।

शोधालेख –

दुर्गम भूखण्ड! चारों ओर पसरे पहाड़ों का न खत्म होने वाला सिलसिला। कहीं रूखे, सपाट, पथरीले बर्फ से ढके पहाड़ तो कहीं देवदारों, चीड़ों और बुरांश से भरे मौन पहाड़। जहां की नीखता को पहाड़ों से गिरते छोटे-बड़े झरने और नदियां तोड़ते रहते हैं रह-रह कर अपनी कल-कल, झर-झर से। इन्हीं पहाड़ों में बसती आ रही है युगों से जिन्दगी, जिसे धीरे-धीरे मैदानी रंग अपने रंग में रंगने लगे हैं। इन रंगों के आकर्षण से पहले बहुत पहले से बेहद छोटी-छोटी बातों में बसती रही है खुशियां, पलते आए हैं सपने, पोषित होती रही हैं नन्हीं-नन्हीं उम्मीदें और चाहतें। इन्हीं अनुभवों में पोषित चलते चले जाते हैं पहाड़ी जीवन के कटु सत्य और इस तरह ऐसी कई छोटी-छोटी दुनियाओं में फैली है एक बड़ी दुनिया। इन्हीं वनों-प्रान्तों के बीच चलती है पहाड़ी जिन्दगी और जिन्दगी को थामे रखती है पहाड़ियों की जिजिविषा।

इस सम्बन्ध में हिमाचली लोक संगीत पर विचार करते हुए मीयां गोवर्धन सिंह कहते हैं कि –''हिमाचली लोक संगीत पहाड़ी घाटियों सा गम्भीर, पर्वतीय पवन सा स्वच्छन्द, नदी-नालों की तरह मचलता थिरकता तथा अनेक वनस्पतियों से गंध और स्वाद ग्रहण करता हुआ विकसित हुआ है।''[1]

हिमाचली लोकगाथाएं मानवीय सम्बन्धों, रिश्तों की जटिलताओं व सामाजिक दबावों के बीच जूझते आम आदमी एवं उनसे जुड़े क्रूरतम सत्यों की बात तो करती ही है साथ ही प्राकृतिक आपदाओं, आजीविका की कठिनाईयों के चलते मनुष्य व प्रकृति के सम्बन्धों का यर्थाथ व जीवन्त चित्र भी प्रस्तुत करती है। फिर चाहे प्रेम की कोमल व ईमानदार भावनाएं हों या सौतेले रिश्तों की तकलीफ से उपजी पीड़ा, जातिगत भेदभावों से उपजी कसक हो या पहाड़ से निरन्तर जूझती स्त्री की कठिन जिन्दगी, या फिर उसके वरक्स गद्दियों की मेहनतकश अन्तहीन यात्राओं की कहानी।

शोधालेख की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए यहां केवल कुछ लोकप्रिय पहाड़ी स्त्री सम्बन्धी, लोकगाथाओं पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। लोकगाथाएं पहाड़ी जनमानस के सामूहिक गान हैं, जिसमें रचनाकार, गायक, परिस्थितियां, नदी-नाले, वन-प्रांतर, स्त्री-पुरूष, बच्चे-बूढे, देव-दानव, जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, धरती-आकाश सभी की उपस्थिति दर्ज है। यानि इन गाथाओं में प्रकृति अपनी सम्पूर्णता के साथ विद्यमान है। इस सम्बन्ध में 'हिमाचल प्रदेश की लोक गाथाएं'

की भूमिका में संपादक जगदीश शर्मा लिखते हैं कि – ''लोक गाथाओं में जहां ऐंचली में सृष्टि उत्पळि, विकास का वर्णन है वहां गूगा-गाथा के प्रसंग में गुगा वीर की कथा के माध्यम से ऐतिहासिक प्रसंग का उल्लेख है। देव गाथाओं में देवताओं के अलौकिक चमत्कार, उनके प्रति प्रजा की आस्था एवं अनन्य भक्ति भावना इन लोक गाथाओं में सुरक्षित है।''[2]

लोकगाथाओं का महत्व जहां एक ओर मानवीय सम्बन्धों, प्रकृति व मनुष्यों के सम्बन्धों, उनमें निहित विडम्बनाओं, आशाओं-आकांक्षाओं की दृष्टि से है वहीं किसी क्षेत्र विशेष के इतिहास को जानने की दृष्टि से भी है। इस सम्बन्ध में के. अंगरूप लाहुली का कहना है कि – "आदिवासी क्षेत्र लाहुल का अब तक कोई लिखित इतिहास उपलब्ध नहीं है। अत: उस क्षेत्र के अतीत की कतिपय स्मृतियों को हम केवल वहां के लोकगीतों, लोक गाथाओं तथा जनश्रुतियों के माध्यम से कुछ जान सकते हैं क्योंकि लोकगाथा आदि मौखिक साहित्य में स्थानीय इतिहास की सामग्री भरपूर रहती है। इस प्रकार इसके अनुशीलन से विलुप्त एवं विस्मित इतिहास पर किंचित प्रकाश पड़ सकता है।''[3]

हिमाचल प्रदेश की भौगोलिक स्थिति पर विचार करें तो इसे तीन खंडों में विभाजित करके देखा जा सकता है इस सम्बन्ध में हिमाचल को वाह्य-हिमालय, मध्यवर्ती हिमालय तथा वृहद हिमालय तीन खण्डों में बांटा गया है। वाह्य हिमालय के अन्तर्गत सिरमौर का मैदानी भाग, बिलासपुर, ऊना और कांगड़ा क्षेत्र आते हैं। मध्य हिमालय के अन्तर्गत शिमला, कुल्लू, चम्बा व लाहौल स्पिति के जिले आते हैं तथा वृहद हिमालय के अन्तर्गत कांगला, बारालाचा, कुंजम, परांग, पिन पार्वती जैसे दर्रे शामिल हैं।

प्रस्तुत शोधालेख में मध्यवर्ती हिमालय में प्रचलित लोकगाथाओं में से कुछ महत्वपूर्ण गाथाओं पर चर्चा की जाएगी जिसमें लाहौल स्पिति में प्रचलित लोकगाथा 'रूपी राणी' एक ऐसी लोकगाथा है जिसके सम्बन्ध में स्मिता लोप्पा लिखती हैं कि –"यूं तो रूपी रानी के इस धुरे में उस समय पड़े भयंकर अकाल तथा इस अकाल को समाप्त करने हेतु घोर षड़यंत्र के चलते रूपी रानी का जन साधारण के हितों के लिए दिए गए बलिदान का वर्णन मिलता है, परन्तु यह धुरे उस समय की नारी की शोचनीय तथा उपेक्षित अवस्था को भी प्रदर्शित करता है धुरे में नारी जीवन के मूल्य को एक काली कुतिया तथा एक काली बिल्ली के जीवन से भी कम आंका गया है।''[4]

ए काड़ी कूती बाटा देउंले प्रौढ़ी कूणू पारेला

ए काड़ी बिलणी बाटा देउंले चूली कूणू पारेला

"बात उस समय की है जब लाहुल के धुषाल गांव में रघु राणा का राज था। उस समय एक बार भीषण अकाल पड़ा गांव में नहर और जल स्रोत सूख गए। ऐसे में एक दिन चम्बा से आए हुए एक सिद्ध एवं महात्मा साधु राणा ने अपनी समस्या बताई और उसका उपाय पूछा। साधु ने समस्या के निदान हेतु अपनी पोथी में देखा तो बोले कि यह तो बहुत बुरा प्रश्न निकला।'[5] लोकगाथा में राणा द्वारा अपनी समस्या और चिन्ता को साधु के सामने रखना इस बात को दर्शाता है कि राणा के समक्ष और कोई समाधान अपने स्तर पर नहीं रहा होगा और उनके द्वारा बताए जाने वाले समाधान को लागू करने के अलावा कोई चारा संभवत: नजर नहीं आया हो। रूपी राणी की लोकगाथा अत्यंत मार्मिक दृश्य तो सृजित करती ही है साथ ही साथ दरबारियों के घोर षडयंत्र, कुटिलता और राणा की स्वार्थपरता को भी उभारती है जिसमें अपने रक्त संबंधियों, पालित कुळो-बिल्लियों को छोड़कर अपनी रानी की बलि देने की मानसिकता तथा स्त्री के प्रति होने वाले अत्याचारों का पर्दाफाश भी होता है। गाथा में वर्णित है कि –''यदि मैं काली कुतियां की बलि देता हूं तो मेरे घर के मुख्य द्वार की रखवाली कौन करेगा? काली बिल्ली की बलि दूं तो चौके की रखवाली कैसे होगी? पुत्र की बलि दूंगा तो अपना राज-काज का कार्य किसे सौंपूंगा? यदि नन्ही बेटी की बलि देता हूं तो चम्बा में किसे ब्याहूंगा?''[6]

पानी के लिए दिए गए इस बलिदान की पहाड़ी जनपद में अलग-अलग क्षेत्रों में ऐसी ही गाथाएं राणी सूही, रूल्ला दी कुल्ह, नेउली राणी आदि नामों से भी मिलती है। जिनमें लक्ष्य भी एक है और भाषा में भी कहीं-कहीं साम्य दिखाई देता है जो एक गम्भीर तुलनात्मक अध्ययन से तथ्यों को सामने लाने की मांग करता भी दिखाई देता है।

इसी तरह पहाड़ी स्त्री के कठिनाई भरे जीवन और दुर्गम क्षेत्रों में कभी घास काटते, लकड़ियां चुनते, दीवारों की लिपाई-पुताई के लिए मिटटी खोदते, पहाड़ों से गिरकर या दबकर मर जाने की घटनाओं से उपजी गाथाएं जहां पहाड़ी स्त्री के कष्टों भरे जीवन को अभिव्यक्त करती हैं वहीं पहाड़ों को एक पर्यटक की दृष्टि से देखते सौन्दर्य के बरक्स पहाड़ी लोगों के जीवन में हर क्षण हादसों की आशंका में पहाड़ों के सामने अडिग खड़े मनुष्य की जिजिविषा का उदघाटन भी करती है। यानदासी लाड़ी की लोकगाथा में लोककवि 'मेले के आगमन से पहले घर की लिपाई-पुताई में लगी यानदासी का वनों में जाकर सबसे अच्छी, लाल मिटटी को खोजते हुए दूर निकल जाना और घर को सबसे सुन्दर बनाने के सपनों की आकांक्षा में पहाड़ की खुदाई करते समय उसी पहाड़ के गिरने और उसी मिटटी में दफन हो जाने की गाथा को जब सुनाता है तो आंखों के समक्ष एक चित्र घूम जाता है जहां आंगन में लाई गई मानदासी की देह, बरामदे में खड़े अबोध बालक और मृत्यु की खबर सुन आंगन में पहुंची बदहवास बूढ़ी मां और उसके विलाप का अत्यन्त हृदय स्पर्शी बिम्ब स्थाई स्मृति का हिस्सा हो जाता है। लोकगायक सूरदास अपनी दर्दभरी आवाज में जब गाता है –

''खड़ी ता उठै बोला` यानदासिओ लाड़िए,

आमा तेरी चाउआडू पूजी बलिए''

तो श्रोताओ के मानस पटल पर एक मार्मिक दृश्य बिम्ब उपस्थित हो हृदय को कहीं गहरे छू जाता है। इसी तरह स्त्री-पुरूष प्रेम सम्बन्धों की गाथाओं में 'सोहनी भोटली-भूंकू गद्दी' की गाथा हो या 'रामकी कोली' की गाथा हो, दोनों गाथाओं में सामाजिक दबाव किस तरह जाति व क्षेत्र की संकुचित मानसिकता के चलते उनकी राह में न केवल व्यवधान पैदा करता है बल्कि समाज में भय का आतंक पैदा करने के उद्देश्य से अपराध करने से भी नहीं हिचकिचाता। सोहनी और भूंकू गद्दी की प्रेमगाथा में लोक कवि दोनों के बीच प्रेम और प्रेम में सारी दुनिया को भूला देने का वर्णन कुछ इस प्रकार करता है कि –''गद्दी अपनी भेड़ों को भूल गया और सोहनी अपने सारे काम काज, एक दिन खिड़की से एक पीला पत्ता उड़कर आता है जिसे देख दोनों चौंक

जाते हैं और गहरी उदासी और निराशा में डूब जाते हैं- कि इतनी जल्दी ये ऋतुएं कैसे बीत गई, पतझड़ आ गया और अब उन्हें बिछड़ना होगा। भेड़ों को वापस लौटा ले जाने का समय आ भी गया'' एक हृदयस्पर्शी चित्र उपस्थित कर देता है। इस बेरहम दुनियां से यह सब देखा नहीं जाता और गाथा की अन्तिम पंक्तियों में गाथाकार लोगों द्वारा उन दोनों को एक दूसरे की झूठी मृत्यु की खबर और इस अप्रत्याशित सन्देश को सहन न कर पाने और इस तरह दोनों के मृत्यु को प्राप्त करने का वर्णन अत्यन्त मार्मिकता से अभिव्यक्त करता है और यह पीड़ा एक अमर लोकगाथा में बदल कई सवालों को उठाती हुई प्रेमी युवाओं की पीड़ा को व्यक्त करती हुई मानवीय सम्बन्धों में समाज की भूमिका क्या हो पर विमर्श की मांग करती दिखाई देती है।

इसी तरह 'रामकी कोली' की गाथा में अर्न्तजातीय प्रेम सम्बन्धों में दोनों के बीच पलते कोमल भावों की परिणति 'रामकी' के सर को धड़ से अलग कर धोखे से उसे मारकर जहां भय की, आतंक की सृष्टि भावी पीढ़ियों के लिए करता है वहीं जातिगत भेदभावों से मानवता की हत्या करता भी प्रतीत होता है।

बेशदी ऐजी बोला खोडू थाचा बै रामकी कोलिए खोडू थाचा बै
ढैंढ रौहू हेरिदा, मुंडी खाचा नै रामकी कोलिए मुंडी खाचा नै

उपरोक्त गाथाएं स्त्री केन्द्रित गाथाएं है, इसके अतिरिक्त असंख्य गाथाएं मध्य हिमालय के कुल्लू व लाहौल के क्षेत्रों में भरी पड़ी हैं। कई संकलित और कई लिखित रूप में संचित होने की प्रतीक्षा में अब भी किसी न किसी रूप में लोकमानस का हिस्सा बनी हुई है, बची हुई है। इस आशंका से इन्कार नहीं किया जा सकता कि निरन्तर मशीनी होते जा रहे इस वक्त में इन गाथाओं को सुनने-सुनाने वाले लोग न रहें अतः ऐसी गाथाओं को, जो अभी भी पिछली पीढ़ियों की स्मृतियों में मौजूद हैं, को एकत्रित कर संकलित किया जाए ताकि इन गाथाओं से अपने अतीत के भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक व राजनीतिक पहलूओं को संजोया जा सके और उनके आलोक में हम वर्तमान को समझने की दृष्टि प्राप्त कर सकें। इस संबंध में स्वर्गीय श्री मौलू राम ठाकुर पूर्व उप निदेशक (भाषा संस्कृति) एवं सचिव हिमाचल, कला संस्कृति और भाषा अकादमी ने 'हिमाचल की देव संस्कृति' पुस्तक की प्रस्तावना में लोक गाथाओं के महत्व और उनकी जरूरत पर विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि ''लोकगाथाएं लोक पुराण है। शिष्ट साहित्य में पुराणों का जो महत्व है, वही महत्व लोक साहित्य में लोक गाथाओं का है परन्तु जहां पुराणों पर विपुल अध्ययन, चिन्तन, शोध और अनुसंधान हुआ है, लोकगाथाओं के अभी संग्रह भी प्रकाशित नहीं हुए हैं। लोकगायक धीरे-धीरे विदा ले रहे हैं और उनके साथ समाज का एक समृद्ध और विशिष्ट खजाना भी लुप्त हो जाएगा जो पहाड़ी क्षेत्र की पुराकालीन संस्कृति, सभ्यता तथा सामाजिक व्यवस्था की खोज के लिए एक मात्र स्रोत है।''6 अतः आज शासकीय व व्यक्तिगत दोनों स्तरों पर लोक मानस में अब भी बची हुई लोकगाथाओं को संकलित कर मौखिक परम्परा की इस अमूल्य धरोहर को बचाने की अत्यन्त आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1 हिमाचल प्रदेश का इतिहास, संस्कृति और आर्थिक परिवेश, मीयां गोवर्धन सिंह व चमन लाल गुप्त, मिनर्वा पब्लिशर्ज एवं डिस्ट्रीव्यूटर्ज पृ0सं0 263

2 हिमाचल प्रदेश की लोकगाथाएं, संपादक जगदीश शर्मा, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला दिसम्बर 2000 पृ0 सं0 5

3 चन्द्रताल पत्रिका, प्रकाशक व मुद्रक सतीश कुमार द्वारा डिजिटल एक्सप्रेस, मनाली, कैता माया राम के. अंगरूप लाहुली, अंक 29 जनवरी 2014-मार्च 2016 पृ0 सं0 27

4 'चन्द्रताल' पत्रिका, प्रकाशक व मुद्रक सतीश कुमार द्वारा डिजिटल एक्सप्रेस, मनाली, रूपी राणी की बलि, स्मिता लोप्पा अंक 26 अक्तूबर 2008- अक्तूबर 2009, पृ0 सं0 27

5 -वही-

6 हिमाचल की देव संस्कृति, डॉ0 सूरत ठाकुर, एच जी पब्लिकेशन 2004 पृ0 सं0 3

अहीरवाल के लोकगीतों में राग तत्व व ताल तत्व का समावेश

डॉ० रविन्द्र कुमार

संगीत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, नरवाना (जीन्द)

शोध-आलेख सार

अहीरवाल हरियाणा के दक्षिणी छोर पर राजस्थान की सीमा से सटा हुआ अहीर बाहुल्य क्षेत्र है जो आर्थिक पिछडेपन के बावजूद भी अपनी अलग-अलग भाषायी तथा सांस्कृतिक पहचान कायम रखे हुये हैं। यहां के लोक गीत जन मानस को समान रूप से अनुशासित, सुसंस्कृत एवं आदर्शवान बनाये हुए हैं। अरावली पर्वन श्रंखलाओं को अपनी गोद में समेटे अहीर वाल के लोक गीतों एंव उनकी लोक धुनों पर यहां के संघर्शमय जीवन की छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है। इन लोक गीतों में अहीरवाल के रिति-रिवाज, आदि काल से चली आ रही परम्पपराओं की अनूठी तस्वीर दिखाई पड़ती है। यहां के लोक गीत गाने में बड़े सरल होते हैं तथा इनकी लोक धुन कर्ण प्रिय होती हैं जो जीवन की अनूभूति का भावात्मक तथा लयात्मक संगीत बद्ध सपन्दन है। जो अर्न्तआत्मा को छू जाते हैं। अहीरवाल के लोक गीतों का सूक्ष्म अध्ययन करने के पश्चात् उसमें शास्त्रीय तत्त्वों की उपस्थितियों को सरलता से देखा जा सकता है। अहीरवाल के लोक गीतों में कुछ रागों की झलक दिखाई पडती है तो कुछ लोक गीत ऐसे भी हैं जो किसी एक राग पर आधारित है। कुछ लोकगीत ऐसे भी हैं जिनमें कुछ रागों का आभास मिलता है तथा कुछ विभिन्न ताल तत्त्वों का वनज है। लोक गायक इन गीतों में शास्त्रीय रागों का प्रयोग जान बूझ कर नहीं करता अपितु स्वभाविक तौर से ही उससे रागों में धुनें बन जाती हैं जो अंजाने में ही राग का पालन कर जाते हैं।

मुख्य शाब्दः लोकगीत, स्वरलिपि, राग तत्त्व, ताल वजन।

अहीरवाल के लोक गीतों में शास्त्रीय संगीत के तत्त्वों से हमारा अभिप्रायः यह है कि अहीरवाल के लोक गीतों में शास्त्रीय संगीत के तत्त्व विद्यमान हैं अवश्य, किन्तु ये प्रमुख नहीं हैं। अहीरवाल में स्त्रीगेय व पुरूशगेय दो प्रकार के लोक गीत उपलब्ध हैं। स्त्रियों के गीत पुरूषों के गीतों की अपेक्षाकृत अधिक है। गायन की दृष्टि से स्त्रीगेय गीतों का सांगीतिक पक्ष पुरूशों के द्वारा गाये जाने वाले गीतों की अपेक्षा अत्यन्त सरल होता है। स्त्री गेय गीतों की लोक धुन चार या पांच स्वरों में ही पूर्ण धुन बद्ध होती है। जिनमें किसी एक राग का पूर्ण स्वरूप स्पश्ट रूप से देखने को नहीं मिलता तथा कुछ लोक गीतों की धुनों में विभिन्न रागों का आभास मिलता है जैसे- राग पीलू, काफी, मिश्र काफी, झिंझोटी, पट्टदीप, मैखी इत्यादि। इन लोक गीतों में निम्न ताल तत्त्व का वजन होता है जैसे- कहरवा, दादरा, रन्पक, दीप चन्दी इत्यादि।

पुरूष गायकों में यहां पेशेवर गायकों के गाने में अधिक हैं। चूंकि ये दो पेशेवर गायक हैं जिनका काम ही या आजीविका का साधन ही गाना व बजाना है। जो कि अधिकतर मिरासी या नट जाति से सम्बन्धित होते हैं। इन पेशेवर जाति वाले पुरुष गायकों का कलात्मक पक्ष अत्यन्त प्रबल होता है तथा उनके गायन में शौकिया गायकों की अपेक्षा शास्त्रीय तत्त्वों की उपस्थिति अधिक मिलती है। इन गायकों का गायन गले की तैयारी, खटका, मुर्की, मींड व लय बाजी से परिपूर्ण है। ये लोक गायक इन गीतों में शास्त्रीय रागों का प्रयोग जान-बूझ कर नहीं करते अपितुस्वभाविक तौर से ही उनसे ऐसे रागों में धुनें बन जाती हैं जो अंजाने में राग-नियमों का पालन कर जाती हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पश्ट हो जाता है कि अहीरवाल के लोक गीतों का अपना उत्कृष्ट आदि आधार है। इसलिये ये गीत सौन्दर्य एंव माधुर्य वर्द्धक और रसोत्पति करते हैं। यहां के लोक गीतों की स्वर लिपि बनाते समय यह बात आवश्य स्पष्ट हुई है कि इन गीतों में लगने वाले स्वरों का चलन शास्त्रीय रागों पर आधारित है या हम यूं भी कह सकते हैं कि शास्त्रीय संगीत का मूलाधार यही लोक संगीत है।

अतः लोक संगीत भावना प्रधान होता है उसे शास्त्रीयता की कसौटी पर लाकर परखने का प्रयास करना उसके साथअन्याय करना होगा।

घुडचढ़ी गीत

अनोखा लाडला ओ राईबर मंझल्या- मझल्या चाल
एक मंजल तेरी आगरो ओ राईबर दूजी बीकानेर।

यह गीत अहीरवाल में दुल्हे की घुड़चडी में सभी स्त्रियां मिल कर गाती हैं। ध सा रे म ग रे रे सा इत्यादि स्वर लगने से राम झिंझोटी का आभास होता है तथा इस में कहरवा ताल तत्त्व का वजन है।

घुडचढ़ी गीत							
राग–झिंझोटी, ताल–कहरवा							
1	2	3	4	5	6	7	8
			ध	ध	सा	सा	–
			अ	नो	S	खा	S
सा	रे	रे	म	म	–	–	–
ला	S	S	ङ	ला	S	S	S
ग	–	रे	सा	रे	–	रे	सा
ओ	S	S	S	रा	ई	ब	र
सा	रे	रे	ग	ग	ग	रे	रे
मं	झ	ल	या	म	झ	ल	या
सा	–	सा					
चा	S	ल					

फाल्गुन गीत					
राग–पीलू, ताल–दादरा, 6 मात्रा					
स्वर लिपि					
1	2	3	4	5	6
				सा	सा
				हो	ली
सा	सा	सा	ग़	रे	सा
खे	ल	ण	आ	वै	नै
नी़	–	नी़	निसा	सा	ग़
वा	S	ब	कहि	यो	मु
ग़	रे	सा	सा	–	–
रे	ठ	ण	सै	S	S

सत्संगी–गीत							
राग–काफ़ी, ताल–कहरवा							
मेरा अवगुण भरयो शरीर नाथ कैसे तारोगे।							
1	2	3	4	5	6	7	8
						सा	सा
						मे	रो
सा	रे	रे	रे	सा	रे	रे	ग़ु
ऽ	अव	गु	ण	भ	रयो	ऽ	श
ग़ु	रे	रे	सा	सा	सा	रे	रे
री	ऽ	र	ना	ऽ	थ	कै	से
ग़ु	ग़ु	रे	रे	सा	सा	–	–
ता	ऽ	रो	ऽ	गे	ऽ	ऽ	ऽ

जन्म लियो नन्द लाल

लला मेरो घुट्टी मांगे जी राज।

यह गीत अहीरवाल में बच्चे के जन्म पर गाया जाता है। इस गीत में ध स रे मग, सा रे गा या, रे रे रेग. सारे मग, सा रे सा स्वर झिंझोटी राग का आभास कराते हैं और इसमें ताल दादरा का वजन है।

बच्चे के जन्म पर गाया जाने वाला गीत					
स्वर–झिंझोटी, ताल–दादरा					
1	2	3	4	5	6
ध–	सा	सा	सा रे	रे	नि़
जन	म	लि	योऽ	नं	द
सा	सा	रे	रे	रे	ग
ला	ल	ल	ला	मे	रो
सा	रे	म	ग	रे	रे
घु	ट्टी	ऽ	मां	गे	जी
सा	–	सा			
रा	ऽ	ज			

धमालः-

राग-पीलू का आभास

लक्ष्मण कै हो बाण लग्यो रै सक्ती लछमण कै।

कह तो जीवा ले सीता सतवन्ती-2
कह तो जीवा वै हनुमान जी, लछमण कै।

धमाल							
राग–पीलू							
1	2	3	4	5	6	7	8
		प	प	प	–	प	नि
		ल	छ	म	ण	कै	हो
नि	–	सा	ग़	रे–	सा	नि	नि
बा	S	ण	ल	ग्यो	S	स	क
सा	–	नि	नि	सा	–	सा	–
ती	S	ल	छ	म	ण	कै	S

भात गीत

मेरी जिठाणी कै पांच भाई
मेरै तो मां को जायो एक सै।
वै तो पांच ल्याया पच्चीस लेगा
माग्यां में लेग्या तो चूंदड़ी।
वैं तो भर कै उल्टो भी चाल्या
उल्टी दे दे ऐ जीजी चूंदड़ी।

इस गीत में मिश्र काफी तत्त्व का तथा ताल रूपक का वजन है। यह गीत अहीरवाल का प्रचलित गीत है तथा हरियाणा में लगभग सभी जगह गायाजाता है।

भात गीत						
राग–काफी मिश्र, ताल–रूपक						
1	2	3	4	5	6	7
					सा	ध़
					मे	S
ध़	–	सा	सा	रे	ग़	ग़
री	S	घि	ठा	S	णी	कै
ग़	–	ग़रे	रेम	ग़	ग़	रे
पां	S	चS	भाS	S	ई	S
रे	सा	सासा	सा	रे	ग़	रे
मे	रै	तोS	मा	को	जा	यो
सा	–	रे	स	–		
ऐ	S	क	सै	S		

घुड़चढ़ी गीत

अनोखा लाडला ओ राईबर मंझल्या-मझल्या चाल।
एक मंजल तेरी आगरो ओ राईबर दूजी बीकाने।

यह गीत अहीरवाल में दूल्हे की घुड़चढ़ी में सभी स्त्रियाँ मिलकर गाती हैं। ध सा रे म ग रे रे सा इत्यादि स्वर लगने से राग झिंझोटी का आभास होता है तथा इसमें कहरवा ताल तत्त्व का वजन है।

सीठणा

धोया धोया थाल, परोस दिया भात जी
आओ आओ रामचन्द्र, बैठो म्हारै साथ जी।
बैठो म्हारे साथ तो कासै, घालो हाथ जी
कासैघालो हाथ बताओ, थारी जात जी।

सन्दर्भ

1. पतासो देवी (जिला नारनौल) द्वारा प्राप्त गी
2. डॉ० जय सिंह यादव - लोक संगीत एक विस्तृत अध्ययन।
3. बिमला (धारूहेड़ा) द्वारा प्राप्त गीत
4. (गांव झगड़ोली) जिला महेन्द्रगढ द्वारा प्राप्त गीत
5. डॉ० के० सी० यादव - अहीरवाल: इतिहास एंव संस्कृति।
6. भतेरी (गांव अटेली) नारनौल द्वारा प्राप्त गीत।
7. रीना (महेन्द्रगढ़) से प्राप्त गीत

मिथिला में लोक नृत्यः एक ऐतिहासिक विष्लेषण

आलोक कुमार मिश्र

शोधार्थी, इतिहास विभाग, ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

सार

रंगों और परंपराओं की भूमि, 0भारत एक ऐसा देश है जिसमें प्रत्येक राज्य अपने कैनवास में एक नया रंग जोड़ता है। विविधता भारत की जड़ों में है, चाहे वह भोजन, वस्त्र, त्यौहार, भाषा और परिदृश्य में हो। हर राज्य और उसके क्षेत्रों में अलग-अलग नृत्य शैली और लोक संगीत होते हैं, जिसके साथ वे अपने समुदाय की प्रकृति को व्यक्त करते हैं। भारत के हर हिस्से में अपना अनूठा लोक नृत्य है, जो शास्त्रीय नृत्य के रूप में उतना जटिल नहीं है, लेकिन इसकी सादगी में, यह उनके लोगों की गहरी आस्था को दर्शाता है। हम कुछ बेहतरीन लोक नृत्यों की खोज करते हैं जो भारत की सांस्कृतिक विरासत को और अधिक सुंदर बनाते हैं। इसी संदर्भ में मिथिला का लोक नृत्य की अपनी एक विशेष शैली है जो लोगों को काफी मंत्रमुग्ध कर देता है। प्रस्तुत पत्र के माध्यम से मिथिला के लोक नृत्य पर एक विहंगम दृष्टि डालने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्दः लोक नृत्य; विविधता; समरसता; लोकलुभावन।

परिचय

मिथिला लोक नृत्य का अपना पृथक् इतिहास है। इसकी पौराणिकता पर संदेह नहीं किया जा सकता है। वस्तुतः लोक संगीत को जीवित रखने का नृत्य सशक्त माध्यम है। नृत्य और संगीत मैथिल लोक-जीवन में घुल मिल गया है। मिथिला की नृत्य शैलियों में इतनी सजीवता और जीवन्तता है कि इसे मैथिली की सर्वप्राचीन गद्य ग्रंथ वर्ण रत्नाकर में ''लोरिक नाच्यो'' के रूप में वर्णित किया गया है। वैसे भी मैथिली की नृत्य शैलियों की प्रामाणिकता के कतिपय साक्ष्य हैं। किन्तु इसका सबसे बड़ा प्रमाण है आज भी जीवित इसका वास्तविक प्रचलित सुरक्षित स्वरूप।

आदिम नृत्य

जंगल का यह नृत्य वैसा ही प्रामाणिक और प्राणवन्त है। इसे दैवी प्रभाव से युक्त माना जाता है। इस नृत्य का नर्तक होता है ''भगती''। विश्वास किया जाता है कि ''भगता'' देवता विशेष का ''भाव'' करता है। इस नृत्य के प्रमुख वाद्य है झालि मृदंग और हड़ताल। सभी देवी देवताओं के लिए निश्चित गीत हैं। गाँव के बाहर की सभी देवताओं के लिए ''थान'' अथवा ''गहवर'' बना रहता है।

विषहरा नृत्य

यह सर्प नृत्य है। भगता के माथे पर छोटा बड़ा कलशा पर दूसरे पर शिखराकार स्थापित रहता है। उसके हाथ में धूपदान और दूसरे में होता है बेंत। फिर गीत प्रारंभ होता है और भगता में भाव आने लगता है। बेंत साँप का प्रतीक है शिखराकर कलश जलकुंड का, जो नाम का बिहार स्थल माना जाता है। धूम्रदान से निकलने वाली ज्वाला सर्प विष का प्रतीक है और नर्तक साँप के सदृश जीभ लपलपाता रहता है।[1]

लोकगाथा नृत्य

मैथिली में लोकगाथा शैली अति प्राचीनकाल से प्रचलित रही है। विभिन्न जाति के ऐतिहासिक व्यक्तित्व के संबंध में अधिक ओजस्वी शैली में रचित गेय लोक गाथाएँ आदिकाल से ही प्रचलित रही है। इसे लोक महाकाव्य भी कहा जा सकता है। नृत्य की यह शैली अत्यधिक लोकप्रिय और मनोहारिणी है। कल्पना की उड़ान, कथानक की छवि छटा, धीरोदात नायक का इन्द्रधनुषी चरित्र यह सब मिलकर एक अपूर्व वातावरण की सृष्टि करता है। चूड़ियों के साथ ही सुनाई देती तलवार की झंकार। युद्ध और रोमांस हाथ में हाथ मिलाकर चल रहे होते। इन नृत्यों में भक्ति, प्रेम और मनोरंजन का समावेश रहता है। इनमें प्रमुख हैं दयाल सिंह के माथे पर का स्वर्ण कलश। माँ कमला के निवास का प्रतीक शिव तत्व में गंगा का प्रतीक सुवर्ण अग्नि तत्व, इनार (कुँआ)-सुषुना इनार का लहस वृत्ताकार चक्कर, सर्प तत्व-लहरा।

दयाल सिंह नृत्य के क्रम में यह दूसरा नृत्य है। नर्तक किशोरवय का होता है। नीलरंग की साड़ी में वह नवयौवना के रूप में उपस्थित किया जाता है। माथे पर ''कोढ़िला'' का मुकुट बना होता जिसमें सुशोभित होते कमल फूल, काश फूल, हरा और मछली की आकृति। यह सब कमला नदी का प्रतीक है। कंचुकी का रंग पीताभ होता है और हाथ में होता लम्बा श्वेत वस्त्र। वाद्य यंत्रों में झाल मृदंग और डंडताल का प्रयोग होता है। गायन के क्रम में कमला मैया का गीत गाया जाता है और फिर प्रारंभ हो जाता वेगशील नृत्य। प्रचलित है कि नृत्य के अन्त में यदि नर्तक को पकड़ नहीं लिया जाय तो नाचते-नाचते उसकी मृत्यु हो जाती है। करूण रागिनी में नर्तक का गीत सुनाई देता-''कमला मैया नुआ पुरायब नुआ पुरायब कमला मैया.....।[2]

कमला कोयला

किशोर नर्तक इस नृत्य के क्रम में पूजा, नाव, पतवार, हिलोर और कचटियाँ का भाव उपस्थित करता है। अन्त में उसके बलिदान के नृत्य, नृत्य गति के चरमोत्कर्ष को उपस्थित करते है।

नैका बनिजारा प्रतापी व्यापारी था। फुलेश्वरी उनकी परिणीता थी जिसे उनकी अनुपस्थिति में तिलेश्वरी काशी के वेश्या व्यापारी को बेच देती है। बड़े कौशल से रानी फुलेश्वरी रास्ते भर डोम से अपने सतीत्व की रक्षा करती है। इस नृत्य में रसिक कुम्भा हाथ में चाबुक लिए होता.....डोम की मुद्रा क्षण में भयंकर और तुरंत याचनापूर्ण होती रहती। कुम्भा की मुद्रा उत्कट बासना लिए होती और फुलेश्वरी की मुद्रा में करूणा का सागर लहरा रहा होता। अन्त में रानी की जीत होती और डोम के हृदय की वासना तिरोहित हो जाती। यह ''डोम-कछ'' नृत्य कहलाता है। इसी के अन्तर नायिका फुलेश्वरी नृत्य भी होता है। इस नृत्य की पृष्ठभूमि में मात्र सारंगी के द्वारा विभिन्न रागिनी के भाव उत्पन्न किये जाते हैं। इस नृत्य में अंधकार और आलोक का रहस्यमय मिश्रण होता है और उत्तेजक क्षणों में नगाड़ा बज उठता है।

इसी के आधार पर कोबर नृत्य भी किया जाता है। लोक गाथा नृत्य के मधु-लोक का यह सर्वोत्कृष्ट नृत्य मानी जाता है। इसके तीन चरण होते।

यह पौराणिक आधार पर आधारित अति प्राचीन नृत्य है। यह सत्यनारायण के चौपहरा पूजा के आधार पर प्रदर्शित किया जाता है। झाल और मृदंग के संग नर्तक दल श्रीमन्नारायण के धुन के साथ-साथ पूजा स्थल का नृत्यमान गति से परिक्रमा करता है। परिक्रमा के क्रम में ताल के अनुसार तीन गति होती है। (1) हंसगति (विलम्बित) (2) मृम गति (दुत) (3) गरूड़ गति (गुडकान या गरूडकान)।

पौराणिक नृत्यों में कृष्ण संबंधी नृत्य बहुत प्रचलित है। इसमें सबसे प्राचीन नृत्य है रास-नृत्य। मृदंग और बांसुरी इसके मुख्य वाद्य है। नृत्यमान गोपियों के चलायमान वृत्त में राधा-कृष्ण नृत्य चलता रहता है।

यह नृत्य पूर्व में अधिक प्रसिद्ध था। सारंगी और बांसुरी के सहारे यह नृत्य कृष्ण के साथ गोपिकाओं के अनुराग भरे वातावरण में चलता है।[3]

दोनों प्रकारों में राधा माधव पक्ष के नृत्यों की संख्या अधिक है। यह नृत्य वतान शैली का नृत्य है। वर्तमान अर्थात् गांव भंगिमा के माध्यम से अभिव्यक्ति। इस शैली में विद्यापति के वयःसन्धि, राधाकृष्ण दूती, सद्यः स्नाता, मिलन अभिसार, मानभंग वियोग आदि पदों को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया जाता है। अत्यधिक सूक्ष्म विवरणोपरान्त नृत्य की शुरूआत होती है। महाकवि विद्यापति ने स्वयं इस प्रकार के नृत्य के लिए व्यवहृत होने वाले अनुकूल वाद्य यंत्रों की चर्चा की है।

बजत द्रिम-द्रिम धौं द्रिंमिया।
नटत कलावति भाति श्याम संग।।
कर करताल प्रबन्धक ध्वनियाँ।
डिमडिम डम्फ डिमिक डिम मादल।।
रूनझुन मंजीर बोल।

मूरज, रबाब, वीण स्वर मंडल और करताल आदि वाद्ययंत्रो का नाम इस नृत्य के क्रम में आया है। हर मौरा पक्ष के नृत्यों में ''मान रक्षा नृत्य'' अत्यधिक प्रसिद्ध है। यह नृत्य महाकवि की प्रसिद्ध नचारी पर आधारित होता है।

आजु नाथ एक व्रत महा सुख लागत हे।
तोहें शिव धरू नटवेश, कि डमरू बजाएब हे।।

इस नृत्य में शिव नाचते भी हैं और नाचने के क्रम में अपनी चार लाचारियों से भी गौरी को अवगत कराते हैं। यह नृत्य माधुर्य और कलात्मक वैशिष्ट्य के लिए प्रख्यात है। पृष्ठभूमि में नचारी की रागिणी गूँजती है। शिव अपनी भाव भंगिमाओं के माध्यम से कुछ इस प्रकार प्रकट करते जैसे पार्वती वहाँ उपस्थित हों किन्तु वहाँ वास्तव में पार्वती होती नहीं। पद्य की अंतिम कड़ी ''तहूँ गौरा जैबह पड़ाय नाच के देखत है'' के साथ शिव भाग रही पार्वती के पीछे विकल होकर चले जाते हैं।

यह नृत्य हास्य रस प्रधान है। इसका आधार विद्यापति का यह पद है-

रूसि चलली भवानी तेजि महेश।
कर धैल कार्तिक गोद गणेश।।

छकड़वाजी नृत्य

यह नृत्य सामाजिक नृत्य की श्रेणी में आता है। समाज में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। यह नृत्य इस्लामी महफिल के साकी'' नृत्य से प्रभावित है। जाम्मा पहने, पटुका लपेटे, माथे पर जड़ीदार टोपी रखकर किशोर वय का नर्तक इस नृत्य को प्रदर्शित करता है। सारंगी और तबला इसका मुख्य वाद्य है। आप फरामाइस करते जाइये और भाव भंगिमाओं साथ गजल ठुमरी, जैजैवन्ती तिलक कामोद जो मन हो सुनते जाइये।

असि नृत्य

इस नृत्य की परंपरा अति प्राचीन काल से रही है। इसमें एक सैनिक अपनी प्रेयसी को छोड़कर एक अन्य नवयौवना से प्रेम करता है। उसकी प्रेयसी यह सब देख लेती है क्रोध में पागल होकर वह सैनिक के म्यान से तलवार निकाल लेती है और पति के वक्ष पर प्रहार करने को होती है। किन्तु सैनिक के

प्रति अगाथ प्रेम के कारण वक्ष के समीप ले जाकर वह तलवार म्यान में वापस रख देती है। इस नृत्य में सैनिक और उसकी दोनों प्रेयसी मोहक मुद्राएं उपस्थित करती हैं।

डामर नृत्य

डामर नृत्य का इतिहास अति प्राचीन है। शिव के नचारी पर आधारित यह नृत्य केवल डमरू की ध्वनियों पर अवलम्बित होता है। बीच में शंख ध्वनि से नृत्य की स्थितियों का विभाजन किया जाता है। इस गीत की चार मुद्रायें और गीत होते हैं। (1) वस्सह (2) त्रिशूल (3) सर्प और (4) गंगाजल। झुक के नाचना और मस्ती में सिर को हिलाना डूलाना है वस्सह मुद्रा दोनों हाथ ऊपर उठाकर नाचना है त्रिशूल का प्रतीक, पंक्तिबद्ध होकर ऋजु गति से आगे बढ़ाना सर्प का प्रतीक और वेग से उछलकर लहर की तरह आगे बढ़ना है गंगा की धारा का प्रतीक। डामर नृत्य दिखलाने के लिए नहीं किया जाता है वरन् वह स्वयं तन्मयता की स्थिति प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

बतहा-बतही नृत्य

''जुड़शीतल के अवसर पर भांग का पेड़, पत्थल खल्ली, काला रंग और केला का डंफ के संयोग से एक व्यक्ति शिव बनता और दूसरा पार्वती। साथ ही कोई वसहा का रूप धारण करता तो कोई बाघ का। बाघ नाचता, वसहा डोलता और बतहा बतही अर्थात् शिव-पार्वती नृत्य करते चलते हैं। पीछे-पीछे मिट्टी कादों से युक्त जन समुदाय भांग के नशे में ढ़ोल मृदंग और झाल बजाते हुए अपने को शिव का गण मानते और उनका अनुसरण करते हैं।

झरनी नृत्य

यह नृत्य हुसैन की शहादत की गाथा पर आधारित है। यह गरवा नृत्य की तरह होता है। प्रत्येक नर्तक के हाथ में बोरा से निर्मित झरनी होती है। सभी वृताकार होकर गीत और चक्कर काटने के साथ ही एक दूसरे की झरनी पर पहार करते हैं। पृष्ठभूमि में मिथिला का प्रसिद्ध वाद्य ''ताशा'' और ढ़ाल गड़गड़ाता रहता है।

नारी नृत्य

नारी नृत्य के चार प्रचलित प्रकार हैं।[12] इन नृत्यों में पुरूष के लिए कोई स्थान नहीं होता है। ये नृत्य है- (1) नयना योगिन नृत्य (2) घसकट्टी नृत्य (3) सामा चकेवा नृत्य और (4) जटबा-जटिन नृत्य।

नयना योगिन नृत्य

विवाह की रात्रि कोहवर घर में ले जाते समय दुल्हन के संग उसकी सखी कुँवारी बालिकाओं को चारो कोने में चित्रित नयना योगिन के चित्रों के सम्मुख बैठा दिया जाता है और ''नयन भंगिमा'' नृत्य के बीच उसी नृत्यमान बालाओं के बीच में वर को वधू पहचानने के लिए कहा जाता है। अभी इसका स्वरूप मिथिला में जीवित है। इस नृत्य में नयन भंगिमा और स्मित हास्य की प्रधानता होती है।

घसकटी नृत्य

चतुर्थी के दिन वर वधू को दुर्वाक्षत से युक्त खेत में ले जाया जाता है। ललनाओं के माथे पर झिलमिलाती दीप मालाये होती है और वर वधू को वृत में रखकर गीत गाते हुए वे चक्कर देती है। इस बीच वर से घास काटने को कहा जाता है। नृत्य की चरमावस्था का आगमन तब होता है। जब वर काटी हुई घास का गट्टर वधू के माथे पर रखना चाहता है और ललनायें वधू से नहिं.... नहिं.... नहिं..... सस्वर..... कहती है। यह महिलाओं का सामूहिक नृत्य है।

जट अर्थात् शिव और जटिन का अर्थ पार्वती। प्रकारान्तर से यह शिव पार्वती नृत्य ही है। सावन में वर्षा के आगमन के लक्षण नहीं मिल रहे होते तब क्षितिज पर मेघ को बुलाने के लिए यह नृत्य प्रदर्शित किया जाता है। नारियों का एक दल तरूण पुरूषों का वेष धारण करता और दूसरा तरूणी भार्याओं का। दोनों दल आमने-सामने रहकर गीत के माध्यम से कथोपकथन करते। बीच में रहता, एक ऊखल, उसके किनारे झिलमिलाता दीप और ऊखल के जल में रखा रहता एक मण्डूक। इसी के इर्द गिर्द ललनायें मनोहर नृत्य करती हैं।

सामा(श्यामा) चकेबा नृत्य

यह नृत्य भी महिलाओं का सामूहिक नृत्य है। शरदागमन के साथ-साथ हिमालय से आने वाले हँस समूह के स्वागत में यह नृत्योत्सव मनाया जाता है। प्रत्येक ललना के सिर पर बॉस से बना एक सुन्दर चंगेरा होता है। प्रत्येक में श्यामा चकेबा की मनोहर मूर्तियां रहती जिसका मुँह सुन्दर नारी का होता और शरीर छविमय पक्षी का। करमी तथा कोका पुष्पों से डाला सजा होता है। चाँदनी रात में दूर्वाच्छादित (कहीं कहीं जोते खेत में) यह नृत्य चलता है। गीतों में जहां भाई के स्नेह की प्रशंसा की गयी होती वहीं भाभी की स्वभावगत शुष्कता की निंदा होती। उदाहरणस्वरूप:

गाम के अधिकारी तोहे फल्लॉ भैया हो।
भैया हाथ दस पोखरी खुनाय दै, कि चम्पा वन लगवाया द हे।।
कि राजहंस केलि करते हे।।

इस गीत के साथ नृत्य चलता रहता है। प्रत्येक महिला के हाथ में उल्का दंड रहता है। नृत्य के क्रम में ही उसमें आग लगा दिया जाता और फिर शुरू हो जाता उल्का नृत्य। माथे पर मालिका सहित डाला हाथ में प्रज्वलित उल्का दंड, कंठ में कोमल गीत और पैरों में गति, एक मोहक, चिताकर्षक दृश्य का आयोजन करता है।

शिशु नृत्य

इसमें दो प्रकार के नृत्य प्रमुख हैं

(क) करियाझूमरि नृत्य (ख) बगुला-बगुली नृत्य

करिया झूमरि नृत्य

यह एक प्रकार का मेघ नृत्य है। आषाढ़ मास के नव घनश्याम जब क्षितिज कोर पर मृदंग के समान गंभीर गर्जन करते छा जाते हैं जो विद्युल्लता रह रह कर विहँस उठती तब मिथिला की बालिकायें दो-दो का दल बनाकर पॉच से पॉच मिलाकर हाथों को ऑग्ल भाषा के आठ (8) का स्वरूप देकर नाचने लगती हैं। एक ही साथ कई-कई जोड़े नृत्यरत रहते हैं। उनके काले काले बाल लहरा रहे होते मानो घनश्याम के वर्ण को चुनौती दे रहा हो। प्रधान बालिका आगे आकर गाती है:

आम मजरलई, जामुन मजरलई
कमला मे हिलकोर गई।
बाबा के पोखरि मे कमल फुलेलई
कोईली पारई सोर गई।।
कू....ऽ....ऽ.....कू.....ऽ...कू....ऽ.....ऽ

और इसके साथ ही नृत्यमान बालिकायें एक ही साथ कू.... कू.... कर उठती है। यह नृत्य अत्यधिक बेगवान और मनोहर होता है।

बगुला-बगुली नृत्य-

मैथिल बालकों में यह नृत्य अधिक प्रचलित है। पाँच बालकों के द्वारा यह नृत्य सम्पादित होता है। एक बालक मध्य में खड़ा रहता और चार उसके पृथक-पृथक दिशाओं में होते। सबके हाथों मे एक-एक रंगीन वस्त्र होता है। मध्य का बालक दोनों हाथों से चारों वस्त्र का एक छोर पकड़ लेता और नाचने लगता। उसके साथ ही सभी शिशु नाचने लगते। वे गीत लय के द्वारा गति को संतुलित रखते है। प्रत्येक कड़ी के अन्त में।

बगुला बगुली ओइ पार जो
हमर नुआ सुखौने जो
हमरा नुआ में झर झर बसात
झर झर बसात।

झर झर बसात कहने के साथ ही वे सभी वस्त्र खंडों को जोड़-जोड़ से हिलाने लगते।

मैथिली लोक नृत्य में मुख बन्ध की बड़ी आवश्यकता होती है। इसे एक प्रकार का शान्ति पाठ ही समझना चाहिये। किसी-किसी नृत्य के मुख बन्ध में राजा भीमसेन, मीरा सुलतान और रंगीला मुहम्मद शाह का नाम विशेष रूप से आता है। इसके उपरान्त होती है प्रार्थना। गणेश, गौरी, गंगा की प्रार्थना के उपरान्त करूण स्वर में नृत्य की बैखरी देवी सरस्वती की प्रार्थना की जाती।

कंठ वसिह सरस्वती माता
कोकिला सन दिहऽ भास।

किसी-किसी नृत्य में नटराज शिव की भी प्रशंसा विशेष रूप से की जाती है। तांत्रिक साधना, आन्तरिक उद्वेग साधना, भक्ति, श्रृंगार, पूजा, सामाजिक उल्लास तथा विभिन्न चिंता धाराओं का प्रतीक मैथिली-नृत्यों में कमोवेश अवश्यक के रूप में जीवित है। मैथिली नृत्य के विकास के माध्यम से जहाँ मैथिल लोक-संगीत की रसमय भूमि का परिचय प्राप्त होता है वहीं मैथिल समाज की मान्यता, चिंतन और सांस्कृतिक धारा के विभिन्न स्वरूपों को अच्छी तरह समझा जा सकता। आज भी मिथिला में नृत्य के माध्यम से विद्यापति, गोविन्द दास, उमापति, लाल दास, मुंशी रघुनंदन दास के गीतों को स्मरण किया जाता है।[5]

लोकनाट्य

मिथिला में लोकनाट्यों की परंपरा अत्यंत समृद्ध रही है। सम्पूर्ण भारत के लोकनाट्यों को प्रभावित करने वाले तीन मुख्य कारण की उत्पत्ति यही हुई है। 11वीं शताब्दी में ज्योतिरीश्वर ठाकुर द्वारा रचित वर्णरत्नाकर, जयदेव का 'गीतगोविंद' तथा उमापति द्वारा रचित 'पारिजातहरण नाटक' इन तीन ग्रंथो का प्रभाव उत्तर से दक्षिण, पूर्वी भारत के लगभग सभी लोकनाट्यों पर पड़ा। ज्योतिरीश्वर ठाकुर के द्वारा रचित 'वर्णरत्नाकर' की बात करें तो यह महाकाव्य विश्वकोषीय ग्रंथ है। यह ग्रंथ तत्कालीन समाज और कला का विश्वकोश है। वर्णरत्नाकर गद्य काव्य है, जो प्राचीन मैथिली में विरचित है। विद्वानों ने इसे आधुनिक आर्य भाषा का प्राचीनतम ग्रंथ कहा है, बिदापत तथा नटुआ नाच जैसे नाट्य रूपों की चर्चा हमें वर्णरत्नाकर से ही मिलती है, वर्णरत्नाकर में वाद्यों कलाजीवियों,

चौंसठ कलारूपों, नायक - नायिका के प्रकार का उल्लेख हुआ है। संगीतशास्त्रीय दृष्टि से वर्णरत्नाकर महत्वपूर्ण ग्रंथ है, इसमें 45-46 रागों का उल्लेख हुआ जिंका प्रयोग कीर्तनियाँ नाटकों में हुआ है।[6]

जयदेव द्वारा रचित गीतगोविंद भारतीय कला इतिहास में मोड़ साबित हुआ। गीतगोविंद वैष्णव परंपरा का भक्ति काव्य है। जिसमें वृन्दावन में राधा और कृष्ण की विविध काम-क्रीड़ाओं का चित्रण है। इस काव्य का उद्देश्य श्रृंगार के माध्यम से भक्ति है। इसके पद, सर्ग संगीतबंध है जिसमें रागों का उल्लेख् हुआ है। तीसरा इसमें नाट्य तत्व है। सभी प्रबंधों में निरंतर विद्यमान यह नाट्य तत्व उन्हे नृत्य संगीत का रूप ब्रजबूलीकरता है। इस प्रकार गीतगोविंद में काव्य नाट्य, संगीत और नृत्य, इन चारों को समाहित करने की अद्‌भुत क्षमता है। असम के शंकरदेव की रचनाओं, बिहार के उमापति की कृतियों, तमिल क्षेत्र के भागवत मेला नाटकों, कर्नाटक और आंध्र के यक्षगान मलयालम, कृष्णट्टम और कथकली, इन सबका अंतिम प्रेरणा स्रोत गीतगोविंद है।[7]

डॉ० राघवन का मत है कि संसार में संगीत और नृत्य के सम्पूर्ण इतिहास में जयदेव के गीतगोविंद से बढ़कर कोई कृति नहीं। तीसरी महत्वपूर्ण कृति उमापति 'पारिजातहरण' जो पूर्व से दक्षिण तक के कई लोकनाट्यों में खेला जाता है। कालांतर में कर्नाटक में 'कृष्ण पारिजात' नाट्यरूप ही विकसित हुआ, जो आज भी प्रदर्शित होता है। वैष्णव संत शंकरदेव ने भी उमापति से प्रभावित हो पारिजातहरण यात्रा की रचना की।[8]

त्रिपुरा के ढब जात्रा, उत्तर बंगाल के जात्रा, बिहार के बिदापत नाच आदि पारंपरिक नाट्यों में पारिजातहरण का कथानक बहुत दिनों तक मंचित होता रहा। धार्मिक होते हुए भी इसका कथानक सामाजिक और पारिवारिक सम्बन्धों से विकसित हुआ। यहाँ कृष्ण आलौकिक शक्ति नहीं बल्कि दो पत्नियों के मध्य विवाद को सुलझाने में असफल गृहस्थ है। इस कारण यह कथानक कई नाट्य रूपों में प्रचलित हुआ।[9]

निष्कर्ष

मिथिलांचल में नृत्यप्रधान लोकनाट्यों को नाच कहा जाता है। चौदहवीं शताब्दी में ज्योतिरीश्वर वर्णरत्नाकर ने लोरिक नाच, विद्यापति (गोरक्षविजय) ने दक्षिण देशीय नाच, और जयकान्त मिश्र ने कार्तिक नाच (नृसिंह नाच) का उल्लेख किया है। मिथिलाञ्चल में सलहेस, कमला, नारदी, बिदापत पसरिया आदि नाच अद्यतन पारंपरित है। ज्योतिरीश्वर और विद्यापति ने नाट्य को नृत्य की पर्यायवाची सीमां में बांधा है। नेपाल में रथयात्रा के अवसर पर कार्तिक नाच जैसे मैथिली लोकनाट्य की और मिथिला में पारिजातहरण नाच की परंपरा बनी हुई है। अत: मिथिलाञ्चल में नाच अथवा नाट्य सदियों से लोकरुंजन का जीवंत और सशक्त माध्यम बना हुआ है।

संदर्भ:

1. झा,शैलेंद्र मोहन,' ज्योतिरीश्वर', पृष्ठ 12
2. राघवन,वी, 'उपरूपक एवं नृत्य प्रबंध' (1956 में आयोजित अखिल भारतीय नृत्य संगोष्ठी में पढ़ा गया लेख)
3. वर्ण रत्नाकर', मैथिली अकादमी ,पटना, 1980
4. नवभारत टाइम्स (पटना संस्कारण)-23 जुलाई, 1993 ई०
5. सिंह,मौन, 'प्रफुल्ल कुमार,' मिथिलांचल लोकनाट्य-पूर्वाञ्चालिय नाटक और रंगमंच, भाग 2,पटना
6. भारती, ओमप्रकाश, 'मैथलीक लोकनाट्य, पृष्ठ 39-40
7. मलांगिया, महेंद्र, 'मैथिली लोकनृत्य विस्तृत अध्ययन एवं विश्लेषण' ,पृष्ठ 47
8. मिश्र, जयकान्त, 'कीर्तनियाँ नाटक', पृष्ठ 16
9. बरुआ, सिंधी कुमार, 'अंकिया नाट', परिचय खंड पृष्ठ 19

नई शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में पर्यावरण शिक्षा

विभा कुमारी

शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

सार

पर्यावरण शिक्षा समय की मांग है। जैसे-जैसे दुनिया अपनी पर्यावरणीय समस्याओं जैसे जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग, वनों की कटाई और प्रदूषण में प्रगति कर रही है, पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता जरूरी है। विश्व के विभिन्न देशों ने आम जनता के लिए पर्यावरण शिक्षा की दिशा में पहल की है और भारत ने भी इस दिशा में अच्छा प्रयास किया है। नई शिक्षा नीति 2020 में सतत् विकास को उचित महत्व दिया गया है लेकिन यह सभी के लिए पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता की बात नहीं करता है। प्रस्तुत पत्र भारत में पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता और इसमें शैक्षिक नीतियों की भूमिका पर केंद्रित है।

मुख्य-शब्द: पर्यावरण शिक्षा, पर्यावरण संबंधी समस्याएं, नई शिक्षा नीति- 2020।

परिचय

पारंपरिक आर्थिक और सांस्कृतिक प्रणालियों की दीर्घकालिक स्थिरता पारंपरिक शैक्षिक कार्यक्रमों का परिणाम है जो मानव स्वभाव और पर्यावरण को पूरी तरह से एक दूसरे के साथ स्थापित करते हैं। दुर्भाग्य से, पारंपरिक ज्ञान को औपनिवेशिक, औद्योगिक और वैश्विक अनुभव ने कमजोर कर दिया है। सामान्य तौर पर, पारंपरिक प्राथमिकताओं और शिक्षा प्रणालियों को इस संकीर्ण दृष्टिकोण से बदल दिया गया है कि प्रकृति और संस्कृति केवल आर्थिक उत्पादकता जितनी ही महत्वपूर्ण हैं। दुनिया और संस्कृति की उपेक्षा का मतलब है कि समसामयिक शिक्षा में सतत् जीवन के ज्ञान, मूल्यों और कौशल की भूमिका निभाई गई है। दरअसल, कई मामलों में, सीखे गए और छिपे हुए सबक हमारे आधुनिक, धनी, उपभोक्ता-केंद्रित समाज के सामाजिक और पर्यावरणीय मूल्यों को पुनर्जीवित करने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

पर्यावरण शिक्षा

पर्यावरण शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्तियों को पर्यावरण के मुद्दों का पता लगाने, समस्या समाधान में भाग लेने और पर्यावरण में सुधार के लिए कार्रवाई करने की अनुमति देती है। परिणामस्वरूप, व्यक्ति पर्यावरणीय मुद्दों की गहरी समझ प्राप्त करते हैं और जिम्मेदार निर्णय लेने की क्षमता रखते हैं।

इन लक्ष्यों को हासिल करने में मदद के लिए पांच संबंधित उद्देश्यों की सिफारिश की गई है:

जागरूकता: सामाजिक समूहों और व्यक्तियों को पूरे पर्यावरण और उससे जुड़ी समस्याओं के प्रति जागरूकता और संवेदनशीलता हासिल करने में मदद करना।

ज्ञान: सामाजिक समूहों और व्यक्तियों को सूचनाओं की एक विस्तृत श्रृंखला की खोज करने में मदद करना, और प्रकृति एवं उससे जुड़ी समस्याओं की बुनियादी समझ हासिल करना।

रवैया: सामाजिक समूहों और व्यक्तियों को पर्यावरण के लिए मूल्यों और भावनाओं का एक सेट खोजने में मदद करना, साथ ही साथ पर्यावरण के विकास और संरक्षण में सक्रिय रूप से भाग लेने की प्रेरणा देना।

कौशल: पर्यावरणीय समस्याओं को पहचानने और हल करने के लिए सामाजिक समूहों और व्यक्तियों को कौशल प्राप्त करने में सहायता करना।

भागीदारी: पर्यावरणीय समस्याओं को हल करने के लिए काम करने में सभी स्तरों पर भाग लेने के अवसर के साथ सामाजिक समूहों और व्यक्तियों को प्रदान करना।[1]

नई शिक्षा नीति 2020

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, 21वीं सदी की पहली शिक्षा नीति है और इसका उद्देश्य हमारे देश के विकास की बढ़ती जरूरतों को पूरा करना है। इस सिद्धांत के आधार पर कि शिक्षा को न केवल संज्ञानात्मक कौशल - 'बुनियादी' पठन और संख्यात्मक कौशल और 'उच्च' संज्ञानात्मक क्षमताओं, जैसे महत्वपूर्ण सोच और समस्या समाधान - बल्कि सामाजिक, नैतिक और भावनात्मक शक्तियों में भी सुधार करना चाहिए। नई शिक्षा नीति का उद्देश्य सभी छात्रों को, उनके निवास स्थान की परवाह किए बिना, एक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रणाली प्रदान करना है, जिसमें ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर, वंचित और कम प्रतिनिधित्व वाले समूहों पर विशेष ध्यान दिया गया है। शिक्षा आर्थिक और सामाजिक गतिशीलता, समावेश और समानता प्राप्त करने का एक उत्कृष्ट साधन है। यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति भारतीय जड़ों वाली एक ऐसी शिक्षा प्रणाली को देखती है जो सीधे भारत के परिवर्तन में योगदान करती है। नीति निर्धारित करती है कि हमारे

संस्थानों के पाठ्यक्रम और शिक्षण को छात्रों के बीच बुनियादी कार्यों और संविधान के मूल्यों के प्रति सम्मान की गहरी भावना, मानव दुनिया के साथ सद्भाव और बदलती दुनिया में मानवीय भूमिकाओं और जिम्मेदारियों की स्पष्ट समझ विकसित करनी चाहिए।[2]

पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता

वैश्विक पर्यावरण परिदृश्य- पर्यावरणीय क्षरण पर इसकी विभिन्न रिपोर्टों में पुष्टि की गई। मानव विकास, आर्थिक गतिविधि और उपभोग के पैटर्न ने पर्यावरण पर दबाव बढ़ाया है। इसका अर्थ है कि ऊर्जा, परिवहन और उपभोग के अन्य रूपों की मांग में तीव्र वृद्धि ने विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों को जन्म देना जारी रखा है। अस्थिर भूमि उपयोग के कारण मिट्टी का क्षरण, पोषक तत्वों की कमी, पानी की कमी, लवणता और जैविक चक्र के विघटन के रूप में भूमि का क्षरण हुआ है। अवक्रमण उत्पादकता, जैव विविधता और अन्य पारिस्थितिक तंत्र को कम करता है और जलवायु परिवर्तन में योगदान देता है। पानी की बढ़ती कमी विकास, खाद्य सुरक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य और पर्यावरण सेवाओं को कमजोर करती है। जल और भूमि संसाधनों की मात्रा और गुणवत्ता, साथ ही साथ पर्यावरण सहायता सेवाएं, जनसंख्या वृद्धि, ग्रामीण-शहरी प्रवास और बढ़ती संपत्ति और संसाधनों के उपयोग और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से खतरे में हैं। जैव विविधता में गिरावट और पारिस्थितिक तंत्र सेवाओं की हानि भविष्य के विकास के लिए एक प्रमुख वैश्विक खतरा बनी हुई है। पर्यावरणीय क्षरण इसलिए विकास को कमजोर करता है और भविष्य के विकास को खतरे में डालता है और स्पष्ट रूप से मानव स्वास्थ्य समस्याओं से जुड़ा हुआ है।

भारत भी इसी तरह की समस्याओं का सामना कर रहा है। भारत के पर्यावरण की स्थिति पर सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट की नवीनतम आधिकारिक रिपोर्ट में कहा गया है

ऽपिछले साल भारत के भीतर 50 लाख से अधिक लोगों को निकाला गया, जो दुनिया में सबसे ज्यादा है।

- दक्षिण-पश्चिम मानसून के कारण आई बाढ़ के कारण 26 लाख विस्थापन हुए, जबकि अकेले चक्रवात फानी के कारण 18 लाख विस्थापन हुए, इसके बाद चक्रवात वायु आए और रिपोर्ट ने प्रवासी आबादी पर 2011 की जनगणना के आंकड़ों को भी तोड़ दिया।
- आपदाओं के समय देश में 45 करोड़ से अधिक प्रवासी थे, उनमें से अधिकांश अपने राज्य के भीतर ही पलायन कर रहे थे। 2011 में, 1.7 से अधिक नए प्रवासियों ने मुख्य रूप से ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों में रोजगार के उद्देश्यों में भाग लिया।
- पिछले साल मौसम की 19 प्रमुख घटनाओं ने 1,357 लोगों की जान ली।
- क्षेत्रों में वन क्षेत्र में 38 प्रतिशतकी कमी आई है, जबकि 21 नदी झरनों में से पांच अब पानी की कुल कमी की स्थिति में हैं।
- वन, जल, अपशिष्ट, वायु, भूमि, वन्य जीवन और अन्य प्राकृतिक संसाधनों का अवलोकन भी इस प्रकार के रिपोर्ट प्रदान करती है। यह देखा गया कि 2014 की तुलना में 2018 में 747 अधिक बाघ थे, हालांकि, बाघ संरक्षण के लिए शुद्ध क्षेत्र 179 वर्ग किलोमीटर कम हो गया।

कोविड लॉकडाउन के अनुभवों ने यह सुनिश्चित किया है कि शहरी वायु प्रदूषण का मुख्य कारण वाहनों से होने वाला उत्सर्जन और औद्योगिक गतिविधियां हैं। लगभग 1200 मिमी औसत वार्षिक वर्षा के साथ, उपयुक्त जल प्रबंधन रणनीतियों की कमी के कारण इस संसाधन की कमी हो गई है। कृषि विस्तार, औद्योगीकरण और शहरीकरण के एक साथ प्रभावों से कई भारतीय शहरों में मध्यम से गंभीर पानी की कमी का अनुभव होना शुरू हो गया है। यह घाटा वर्षा के पैटर्न और वर्षा की मात्रा में परिवर्तन, हिमनदों में कमी और मीठे पानी के संसाधनों में कमी से भी बढ़ जाएगा। मानव दबाव, सिंचाई और औद्योगिक जरूरतें जल असुरक्षा के प्रमुख दबाव हैं। घरेलू उपयोग के लिए उचित पानी की कीमतों में कमी, अनुचित सीवेज, उद्योगों द्वारा भूजल का अनियंत्रित निर्वहन और औद्योगिक अपशिष्ट का निर्वहन, विषाक्त और रासायनिक अपशिष्ट जल उपचार, अक्षम सिंचाई और रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग ने गुणवत्ता और मात्रा के मामले में पानी को प्रभावित किया है।

भारत अभी भी दुनिया के 17 सबसे अधिक जैव विविधता वाले हॉटस्पॉट में से एक है, 10 प्रतिशत वन्यजीव आवास विनाश, वनों की कटाई, अवैध शिकार, आक्रामक प्रजातियों, अति प्रयोग और प्रदूषण से उत्पन्न खतरों की सूची में हैं। हालांकि भारत जलवायु परिवर्तन के लिए अग्रणी ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में केवल लगभग 5 प्रतिशत योगदान देता है, लगभग 700 मिलियन भारतीय आज ग्लोबल वार्मिंग के खतरे से सीधे तौर पर अवगत हैं। यह खेती को प्रभावित करता है, सूखे, बाढ़ का कारण बनता है; तूफान अधिक लगातार और अधिक गंभीर होते हैं और समुद्र के स्तर को बढ़ाते हैं। इसलिए ये समस्याएं जलवायु परिवर्तन की ओर ले जा रही हैं जिससे खाद्य सुरक्षा, जल सुरक्षा और ऊर्जा सुरक्षा को खतरा है जो भारत के पूर्ण विकास प्रयासों को पंगु बना देता है।

ये कुछ कारण हैं कि क्यों हमें एक बेहतर पर्यावरण शिक्षा की ओर देखना चाहिए। प्रकृति से हमारे संबंध को समझना आवश्यक है। हम अपने पर्यावरण पर भरोसा करते हैं। प्रकृति से हमारे संबंध को समझना और यह समझना कि हम जीवन से भरे ग्रह पर कई प्रजातियों में से एक हैं, एक स्थायी पर्यावरण को सुविधाजनक बनाने के लिए महत्वपूर्ण है। हमारे कार्यों के परिणामस्वरूप लाभकारी परिवर्तन हुए हैं, जैसे दीर्घायु, भौतिक संपत्ति, यात्रा और अवकाश का समय। हालाँकि, वायु और जल प्रदूषण एवं मिट्टी के कटाव से लेकर विलुप्त होने तक कई अन्य अप्रिय परिवर्तन आए हैं जो मानव कल्याण के लिए खतरा हैं और मानव स्वास्थ्य के लिए खतरा हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हमें पर्यावरण के साथ अपने संबंध को समझने की आवश्यकता है क्योंकि यह ज्ञान हमारी सबसे अधिक दबाव वाली पर्यावरणीय समस्या को हल करने में एक महत्वपूर्ण पहला कदम है जो अंततः स्वास्थ्य, सामाजिक या आर्थिक प्रणालियों में समाप्त हो जाती है। इसे स्वीकार करते हुए और अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों और प्रयासों से बाहर निकलकर विभिन्न स्तरों पर पर्यावरण शिक्षा की अवधारणा बन गई।

पर्यावरण शिक्षा और शैक्षिक नीतियां

बरबेरेट (फिएन, 1993, पृ.107) के अनुसार प्रकृति "शिक्षा के सामान्य ज्ञान के लिए बहुत छोटी हो गई है", शिक्षा ने अनिश्चित प्रथाओं को बनाए रखने में एक प्रमुख भूमिका निभाई है: ऐतिहासिक रूप से, स्कूलों और कॉलेजों की संख्या उन लोगों को दर्शाती है जो एक बड़ा समाज है। ऐसा नहीं है कि शिक्षा

ने स्पष्ट रूप से प्रगति के संगठन और एक बेलगाम विकास अर्थव्यवस्था, प्रशिक्षित इंजीनियरों और प्रबंधकों, अनुसंधान और विकसित तकनीकों को अपनाया है, जिसका पर्यावरण पर इतना नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।[3]

शिक्षा में नई धारणाओं के विकास के साथ एक मौलिक पुनर्स्थापन की आवश्यकता है जो पारिस्थितिक प्रक्रियाओं, बाजार की ताकतों, सांस्कृतिक मूल्यों, न्यायसंगत निर्णय लेने, सरकारी कार्यों और मानवीय गतिविधियों के पर्यावरणीय प्रभावों को एक समग्र, अन्योन्याश्रित तरीके से व्यवहार करता है।

1972 में संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन के बाद भारत सरकार ने संविधान में 42वें संशोधन के माध्यम से राज्य को "पर्यावरण की रक्षा और सुधार के उपाय करने और देश के वनों और वन्यजीवों की सुरक्षा के उपाय करने" की जिम्मेदारी देकर पर्यावरण संबंधी चिंता को बढ़ावा दिया (अनुच्छेद 48 - ए) इसने अनुच्छेद 51 ए के माध्यम से प्रत्येक नागरिक को "मौलिक कर्तव्य" खंड (जी) शीर्षक के साथ जिम्मेदार बनाया है, इसके लिए प्रत्येक नागरिक को जंगल, झीलों, नदियों और वन्य जीवन सहित प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा और सुधार करने की आवश्यकता है। इस पृष्ठभूमि के साथ पर्यावरण विभाग की स्थापना 1980 में भारत सरकार द्वारा की गई थी और 1985 में पर्यावरण और वन मंत्रालय के रूप में उन्नत किया गया था।

नई शिक्षा नीति 1986 और उसके बाद की शैक्षिक नीतियों (NCFSE, 2000, NCF 2005) ने पर्यावरण शिक्षा को स्कूली शिक्षा में एक स्पष्ट स्थान दिया है। परिणामस्वरूप, आज, पर्यावरण जागरूकता और समझ का संचार प्रत्येक छात्र के पाठ्यक्रम (औपचारिक या गैर-औपचारिक) का एक अभिन्न अंग बन गया है, जिससे उन्हें अपने पर्यावरण का पता लगाने और समझने में सक्षम बनाया जा सके, जिससे उन्हें सूचित सरोकार और मूल्य मिल सकें। और पर्यावरणीय समस्याओं/मुद्दों को हल करने के लिए काम करने में सक्रिय भागीदारी हो सके।[4]

शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति, 1986 (एनपीई) ने कहा है "पर्यावरण की सुरक्षा एक मूल्य है जो शिक्षा के सभी चरणों में पाठ्यक्रम का एक अभिन्न अंग होना चाहिए"। इस पृष्ठभूमि के साथ भारतीय स्कूली शिक्षा प्रणाली में अन्य विषयों के माध्यम से पर्यावरण शिक्षा का संचार किया गया। मौजूदा प्रणालियों में कमी और पर्यावरणीय जागरूकता के निम्न स्तर और बिगड़ती पर्यावरणीय परिस्थितियों के कारण गैर-औपचारिक शिक्षा और प्रशिक्षण की आवश्यकता की पहचान हुई।

पर्यावरण शिक्षा को प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण अध्ययन के रूप में पेश किया जाता है। तीसरी से पांचवीं कक्षा के लिए ईवीएस हमारे पर्यावरण (भौतिक, जैविक और सामाजिक-सांस्कृतिक) के अध्ययन से संबंधित है, इसके संरक्षण (एनसीएफ 2005) पर जोर दिया गया है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 के अनुसार, पर्यावरण शिक्षा के घटक बहुत हद तक विभिन्न विषयों जैसे भौतिकी, गणित, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, भूगोल, इतिहास, राजनीति विज्ञान, स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा, कला, संगीत आदि का हिस्सा हैं।

NCF-2005 के अनुवर्ती के रूप में, स्कूली शिक्षा के सभी चरणों के लिए पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों को राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद द्वारा विकसित किया गया है। कक्षा प् और प्प् के लिए, पर्यावरण अध्ययन घटक हैं। तीसरी से पांचवीं कक्षा के लिए, एनसीईआरटी ने ईवीएस पाठ्यक्रम और विज्ञान और सामाजिक विज्ञान घटकों को एकीकृत करने वाली पाठ्यपुस्तकों को विकसित किया है"।

NCF 2005 EVS पढ़ाने के कुछ उद्देश्यों के रूप में निम्नलिखित को इंगित करता है।

बच्चों को प्राकृतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण के बीच संबंधों का पता लगाने और समझने के लिए प्रशिक्षित करना; अवलोकन और चित्रण के आधार पर एक समझ विकसित करना, जीवित अनुभवों और जीवन के भौतिक, जैविक, सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं से लिया गया है, न कि अमूर्तता से; सामाजिक परिघटनाओं के बारे में बच्चे को उत्सुक बनाने के लिए संज्ञानात्मक क्षमता और साधन संपन्नता पैदा करना, परिवार से शुरू करना और व्यापक स्थानों पर जाना; विशेष रूप से प्राकृतिक पर्यावरण (कलाकृतियों और लोगों सहित) के संबंध में बच्चे की जिज्ञासा और रचनात्मकता का पोषण करना; पर्यावरण के मुद्दों के बारे में जागरूकता विकसित करने के लिए; अवलोकन, वर्गीकरण, अनुमान आदि के माध्यम से बुनियादी संज्ञानात्मक और मनोगत्यात्मक कौशल प्राप्त करने के लिए बच्चे को खोजपूर्ण और व्यावहारिक गतिविधियों में संलग्न करना।

बाद के चरणों में तकनीकी और मात्रात्मक कौशल के विकास की प्रस्तावना के रूप में डिजाइन और निर्माण, अनुमान और माप पर जोर देना; समानता और न्याय के मूल्यों और मानव गरिमा और अधिकारों के सम्मान के साथ लैंगिक चिंताओं और हाशिए पर उत्पीड़न के मुद्दों को गंभीर रूप से संबोधित करने में सक्षम होना।

पर्यावरण शिक्षा और नई शिक्षा नीति 2020

नई शिक्षा नीति-2020 हमें एक वैश्विक नेता (विश्वगुरु) बनने के लिए भारतीय स्वयं को पुनः प्राप्त करने, पुनः स्पष्ट करने और पुनर्गठन के लिए एक रोडमैप प्रदान करता है जहां समानता और बंधुत्व का जश्न मनाया जाएगा।

यह वर्तमान पर्यावरण शिक्षा प्रणाली में कुछ भी नहीं जोड़ता है। यह पर्यावरण शिक्षा की वर्तमान व्यवस्था से संतुष्ट है। यह सतत् विकास लक्ष्यों को उचित महत्व देता है जो आगे पर्यावरणीय लाभ से संबंधित है। नीति स्वदेशी ज्ञान के प्रसार पर भी जोर देती है जो पर्यावरणीय चुनौतियों की बेहतरी के लिए भी बहुत फायदेमंद है।

लेकिन बेहतर पर्यावरण शिक्षा के प्रति स्वीकृति का अभाव बहुत निराशाजनक है क्योंकि भारतीय शिक्षा प्रणाली पर्यावरण शिक्षा में विफल हो रही है। भारतीय शिक्षा प्रणाली के उत्पाद पर्यावरण के मुद्दों के बारे में चिंतित नहीं हैं। इस रवैये के कारण भारत पर्यावरण अनुसंधान में पिछड़ रहा है। इसलिए यह अत्यावश्यक था कि हम पर्यावरण शिक्षा में बहुत आवश्यक पाठ्यचर्या और शैक्षणिक परिवर्तनों के बारे में बात करें।

मानवता के इतिहास में पर्यावरणीय विनाश का वर्तमान स्तर अद्वितीय है, और अगर इसे वर्तमान दर पर जारी रखने के लिए छोड़ दिया जाता है, तो हम अपनी पीढ़ी के भीतर, एक प्रवृत्ति के शुरुआती चरणों का अनुभव करेंगे जो गंभीर रूप से हमारे बहुत ताने-बाने को नष्ट करने का जीवन में जोखिम उठाते

हैं। अति-उपभोग पर्यावरण संकट के केंद्र में है, कि पर्यावरण शिक्षा को उपभोग नियंत्रण सिखाना चाहिए, और अंततः हम अपने उपभोग पैटर्न को बदलकर जैव विविधता और अपने स्वयं के पर्यावरण कल्याण को संरक्षित करने में मदद कर सकते हैं।[5]

पर्यावरण शिक्षा के लिए इन चुनौतियों की आवश्यकता है कि हम जिस तरह से अनुसंधान करते हैं और पर्यावरण पेशेवरों और शिक्षकों को प्रशिक्षित करते हैं, हम जो नीतियां बनाते हैं, साथ ही आम जनता को पर्यावरण संबंधी जानकारी देने के तरीके की फिर से जांच करते हैं।

हम पहले दिन की प्रासंगिक समस्याओं पर चर्चा करने के लिए अनुशंसित पर्यावरण विज्ञान की पुस्तकों को अद्यतन करके ऐसा कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, कई भारतीय पाठ्यपुस्तकें अभी भी एक मुद्दे के रूप में ओजोन परत के क्षरण के बारे में बात करती हैं। 1987 में मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल के अनुसमर्थन के बाद, अंटार्कटिक के ऊपर ओजोन छिद्र लगातार बंद हो रहा है। यह वैश्विक मुद्दा, जैसा कि कई लोगों ने घोषित किया है, अब हल हो गया है। इन पुस्तकों को केवल कुछ लोकप्रिय वैश्विक समस्याओं के बजाय विशिष्ट राष्ट्रीय पर्यावरणीय समस्याओं पर अधिक जोर देना चाहिए।[6]

अपने पर्यावरण की रक्षा के लिए उन्हें अधिक व्यक्तिगत कारण बनाने देने का एक और तरीका वास्तव में उन्हें इसके बारे में बताना है। उदाहरण के लिए भारतीय छात्रों को अपने देश के वनस्पतियों और जीवों के बारे में ज्ञान होना चाहिए। यदि वे केवल बाघ/हाथी/गैंडे को ऐसी प्रजाति के रूप में देखते हैं जिन्हें इस देश में संरक्षण की सख्त जरूरत है, तो वे भारत की जैव विविधता की स्थिति के बारे में खतरनाक रूप से गलत जानकारी रखते हैं। वे अपने संरक्षण के लिए आर्थिक रूप से योगदान करने के अलावा उन विशेष प्रजातियों की रक्षा के बारे में ज्यादा कुछ नहीं कर सकते हैं, जो फिर से कारण से जुड़ने का एक बहुत ही अप्रत्यक्ष तरीका है। भारत अपनी जलवायु, भूगोल, भूविज्ञान, जातीयता, वनस्पतियों और जीवों, समाज और अर्थव्यवस्था के मामले में अत्यधिक विविध देश है। इसलिए, देश में पर्यावरण शिक्षा को स्थान-विशिष्ट होना चाहिए।[7]

निष्कर्ष

पर्यावरण शिक्षा को अधिक प्रासंगिक बनाने के लिए हमें वैश्विक परिवर्तन पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। एक समस्या जो छात्रों के दृष्टिकोण में बदलाव की कमी का कारण बनती है, वह यह है कि वे पर्यावरण के मुद्दों को अपने जीवन की समस्याओं के रूप में नहीं देखते हैं। हम छात्रों को अपने पर्यावरण की रक्षा के लिए अधिक कारणों को तैयार करने की अनुमति देकर इस कमी को दूर कर सकते हैं। यह अच्छा है कि प्राकृतिक विज्ञान की कई कक्षाएं उनके दिलो-दिमाग को आकर्षित कर रही हैं और उन्हें सकारात्मक सोचने के लिए प्रोत्साहित कर रही हैं। हालांकि, अध्ययनों ने लगातार दिखाया है कि ऐसा करने से हमेशा सकारात्मक परिणाम नहीं मिल सकते हैं। किसी भी बदलाव पर विचार करने के लिए किसी भी समस्या में अपनी हिस्सेदारी की ओर इशारा करने की जरूरत है। शिक्षकों को पर्यावरण के अनुकूल कक्षाओं को एक ऐसे स्थान के रूप में बनाकर इसे सशक्त बनाना चाहिए जो छात्रों को अपने वातावरण में एक व्यक्तिगत संगठन बनाने और उन मुद्दों में खुद को विसर्जित करने की अनुमति देता है जो उनसे संबंधित हैं।

संदर्भ

1. टिलबरी, डी. (1995). स्थिरता के लिए पर्यावरण शिक्षा: 1990 के दशक में पर्यावरण शिक्षा के नए फोकस को परिभाषित करना। पर्यावरण शिक्षा अनुसंधान, 1(2), 195-212।
2. यूनेस्को-यूएनईपी (1978) त्बिलिसी घोषणा, कनेक्ट, प्प्प् (1), 1-9। (पर्यावरण शिक्षा की प्रकृति, कार्यक्षेत्र और उद्देश्य का एक अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सहमत बयान।
3. फीन, जॉन बेरबेरेट (1993) पर्यावरण के लिए शिक्षा: महत्वपूर्ण पाठ्यचर्या सिद्धांत और पर्यावरण शिक्षा। विक्टोरिया, डीकिन विश्वविद्यालय। (सतत् विकास के लिए शिक्षा के मूल्यों और नागरिकता उद्देश्यों के अंतर्गत पर्यावरण और शैक्षिक विचारधाराओं का एक महत्वपूर्ण विश्लेषण)
4. भट, एस.ए., जाहिद, ए.टी., शेख, बी.ए., और पार्रे, एस.एच. (2017) भारत में पर्यावरण शिक्षा: सतत् विकास के लिए एक दृष्टिकोण। बिजनेस रिव्यू, 6(1), 14-21।
5. भरूचा, ई. (2002) स्कूल पाठ्यक्रम में पर्यावरण संचार की स्थिति और इसके वितरण की प्रभावशीलता। पुणे: भारती विद्यापीठ पर्यावरण शिक्षा और अनुसंधान संस्थान।
6. पर्यावरण शिक्षा केंद्र (2004) आनंदशाला: एक रिपोर्ट अहमदाबाद: पर्यावरण शिक्षा केंद्र।
7. स्कॉट एशमैन, रेबेका एल फ्रेंजेन (2017) पर्यावरण के बारे में पढ़ाने के लिए शिक्षक उम्मीदवारों को किस प्रकार तैयार किया जा रहा है? विस्कॉन्सिन से एक केस स्टडी। पर्यावरण शिक्षा अनुसंधान 23:3, पृ. 299-323।

भारतीय संगीत में प्रयुक्त वाद्य यंत्रों में पशुधन की भूमिका: एक विश्लेष्णात्मक अध्ययन

डॉ० मुकेश

एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत विभाग, पं० नेकी राम शर्मा, कॉलेज, रोहतक (हरियाणा)

आरंभ से ही विद्वानों द्वारा माना जाता रहा है कि धरती पर मनुष्य के आगमन के साथ ही, संगीत का भी आगमन हुआ। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक किसी-न-किसी रूप में संगीत, उसके जीवन में विद्यमान रहता है। क्योंकि जब एक स्वस्थ बच्चा पैदा होता है और जब वह रोता है, तो उसके रोने में भी एक प्रकार की तारता एवं कर्षण होता है। जो मनुष्य की संगीत के साथ घनिष्ठता को दर्शाता है।

आरंभ से मानव सभ्यता का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि संगीत मनुष्य के जीवन का एक अभिन्न पहल रहा है। जैसे -जैसे आदि मानव की सभ्यता विकसित हुई, वैसे-वैसे संगीत भी विकसित होता चला गया। इस विकसित होती गई सभ्यता का कारण यह है कि मानव आरम्भ से ही अन्य प्रजातियों की अपेक्षा अधिक गतिमान एवम समझदार रहा है। उसमें विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति की शक्ति हमेशा से रही, जिसके माध्यम से वह निरंतर असभ्यता से सभ्यता की ओर चलायमान रहा है। वह अपने हृदय की उभरती भावनाओं को सदैव गायन एवं नृत्य के माध्यम से प्रकट करता रहा है। इसी विशेषता के कारण उसने कुछ ध्वनियों सुनी होंगी, जिसे अनजाने में वह उत्पन्न करता रहा होगा। जैसे-पृथ्वी पर चलते हुए पैरों की आवाजें, दोनों हाथों से ताली देना अथवा पंजी को मारने की ध्वनि, विशेषरूप से अपने शरीर के अंगों पर संभवत: मानव ने ठोंककर या पीटकर लभ के प्रतिष्ठापन करने में कष्ट का अनुभव किया होगा तथा कुछ कृत्रिम यंत्रों को अस्तित्व में लाने का विचार किया होगा। तब उसने प्राकृतिक रूप से उपलब्ध वस्तुओं मे से ही अपनी सामग्री को जुटाना प्रारम्भ कर दिया तथा इन्हीं वस्तुओं के द्वारा वाद्य यंत्र प्रकाश में आए होगे।

मनुष्य आरंभ से ही अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति पर ही निर्भर रहा है। आदि मानव भी अपने भोजन, आश्रय एवं वस्त्रादि की आवश्यकताएं प्रकृति से ही पूरी किया करता था। अपने भोजन के लिए वह पशुओं का शिकार करता था। वस्त्र के लिए पत्तों व पेड़ की छालों का प्रयोग करता था। अत: वाद्य-यंत्रों के निर्माण की सामग्री भी वह वनों एवं पशुओं से ही जुटाता था। क्योंकि उस काल में यही सामग्रियाँ सर्व सुलभ थी आरंभ से ही वाद्य-यंत्रों निर्माण मे अधिकांशत: पशुओं के अंगों का प्रयोग होता आया है। जैसे ही हम प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक, वाद्य यंत्रों के उद्‌भव एवम् विकास का अवलोकन करें तो हमें ऐसे सैकड़ो वाद्य मिल जाएंगे, जिसमें किसी-न-किसी रूप में पशुधन का प्रयोग होता आया है।

प्राचीन काल के धार्मिक अवशेषों, शास्त्रीय ग्रंथों, वेदकालीन वाद्य निरूपण तथा मोहन जोदड़ो की खुदाई से प्राप्त अवशेष भी इस बात का प्रमाण हैं कि वाद्य-यंत्रों के निर्माण में पशुधन का प्रयोग किया जाता था।

पुरातत्ववेत्ताओं ने रेनडियर (प्राचीन जाति के हिरण) की हड्डी व सींग से बनी बाँसुरी पाई है। अतिप्राचीन काल मे जंगली पशुओं के खोखले अवशेष मिले हैं, जिनका प्रयोग आदिवासी समुदाय अपनी आवाज को एक जगह से दूसरे समूह तक पहुँचाने का कार्य सफलता पूर्वक करते थे। गौ या बैल का सींग अंदर से पोला (खाली) होता है। नुकीले भाग को भी पोला करके फूंक मारने से ध्वनि निकलती है। प्राचीन काल मे रण-वाद्य के रूप में भी इसका उपयोग किया जाता था। प्राचीन शिवालयों मे भी इसका नाद किया जाता था। शंख भी एक ऐसा ही सुषिर वाद्य का उदाहरण है, जो समुद्र की तलियों में पाया जाने वाला एक जीव है। जिसका प्रयोग पवित्र एवम् धार्मिक कार्यों में प्राचीन काल से होता आया है।

सुषिर वाघों के पश्चात अवनद्ध वाद्य हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। अवनद्ध अर्थात चमड़े से मढे हुए वाद्य। जब भी हम पशुधन निर्मित वाद्य-यंत्रों पर विचार करते हैं तो सभी वर्गों के वाद्यों मे अवनद्ध वाद्यों की सूची हमें लंबी दिखाई देती है। प्रारंभिक पशुधन से निर्मित अवनद्ध वाद्य अपने सरलतम रूप में प्रचलित थे। जैसे-भूमि-दुन्दुभि जिसे भूमि के अन्दर बहुत बड़ा गड्ढा खोदकर किसी जानवर विशेषकर बैल के चमड़े से आच्छादित करके बैल की पूँछ से उसका वादन किया जाता था। वैदिक काल में जब यज्ञ किया जाता था तो यज्ञ मंडप के एक कोने मे भूमि-दुन्दुभि अवश्य बनाया जाता था तथा फिर इस पर ताड़न किया जाता था। भूमि-दुन्दुभि के अतिरिक्त दुन्दुभि नामक वाद्य का भी उल्लेख वेदों मे हुआ है, जो एक बड़े से प्यालेनुमा लकड़ी के खोखले खोल पर चमड़ा मढ़कर बनाया जाता था तथा इसका वादन दण्ड से किया जाता था। यह दण्ड 'आहनन' कहलाता था। इसका वादन भी विभिन्न अवसरों, उत्सवों, विपत्ति की आशंका में एवं शत्रुओं को भयभीत करने के लिए किया जाता था। उससे ज्ञात होता है कि वैदिक युग में दुन्दुभि और भूमि-दुन्दुभि दोनों महत्वपूर्ण वाद्य थे।

इसी प्रकार से तत् वाद्यों का भी निर्माण किया गया। प्रारंभिक काल मे मानव ने धातु निर्मित तंत्रियों के स्थान पर जानवरों के तंतुओं अर्थात आंतों का प्रयोग किया था। तंतुओं (आँतो) को प्रयोग करने की प्रेरणा एक ऐतिहासिक घटना से प्रेरित दिखाई देती है। रामायण के एक प्रसंग मे यह आता है कि ''रावण ने महादेव को प्रसन्न करने के लिए अपनी ही आंत निकालकर तार के रूप में एक नया वाद्य बनाया था। उस वाद्य को संगीत-ग्रंथों में 'रावण हस्तिका' नामक वीणा बताया गया है। दक्षिण भारत में इसे 'रावणस्ट्राम' या वीनवाह भी कहते हैं"।

अधिकतर तंत्री- वाद्यों जैसे- सारंगी, वायलिन, इसराज, दिलरुबा आदि का वादन गज द्वारा किया जाता है। गज का निर्माण एक धनुषाकार लकड़ी पर बालों को गूंथकर किया जाता है तथा उस गज में जो बाल प्रयोग में लाए जाते हैं, वो भी घोड़े की पूंछ के बालों द्वारा निर्मित होते हैं। इसका कारण हैं कि घोड़े के पूँछ के बाल लम्बे होते हैं तथा अन्य प्राणियों के बाल छोटे होते हैं। इसके अलावा घोड़े के बालों की प्राप्ति भी सहज होती है। ये बाल लम्बे, करकरे और खुरदरे होते हैं। करकरे और खुरदरे बाल होने के कारण तार की सपाटी पर घर्षण करने से बाल के खुरदरेपन के कारण आवाज भरावदार, खुली और जवारीदार निकलती है। अधिक उपयोग से बाल मुलायम हो जाने पर उस पर बहरोजा लगाते हैं। इससे बालों को पुनः खुरदुराहट,प्राप्त हो जाती है। आजकल तंत्री वाद्यो पर धातु की तार लगा दी जाती है लेकिन जब धातु सर्व-सुलभ नहीं थे। तब इन तंत्री वाद्यों पर तांत के तार चढ़ाए जाते थे। और आज भी कई तंत्री वाद्यों पर धातु के स्थान पर तांत के तार चढ़ाए जाते है। तांत का तार बकरे की आंत का बनता है सारंगी, सारिंदा तथा चिकारा के ऊपर तांत के तार चढ़ाए जाते हैं। जब सजातीय-सजातीय का घर्षण होता है। तब उसमें से मनोरम ध्वनि निकलती है। तांत का तार, धातु के तार जैसा मुलायम नहीं होता। लेकिन कुछ खुरदरा और करकरा होता है। इसी कारण इसके ऊपर गज फिरने से मधुर ध्वनि निकलती है।

इसके अलावा कई तंत्री वाद्यो मे, नीचे जहाँ तुम्बा होता है, वहाँ पर भी जानवर की खाल मढ़ी जाती है। उदाहरण के लिए रबाब, जो कि एक अरबी वाद्य है, उसका निचला हिस्सा भी भेड़ की खाल से मढ़ा जाता है। जिसे 'मांद' कहते हैं। इसी तरह सारंगी का निचला हिस्सा भी खाल से मढ़ा जाता है। जिसे मंधान कहते हैं। इसके अलावा और भी कई ऐसे तंत्री वाघ है, जिनके तुम्बे को जानवर की खाल से मदा जाता है। ताकि वाद्य यंत्रों की आवाज में देर तक ठहरने वाली गुंज उत्पन्न हो सके।

इतिहास का अवलोकन करने पर कई ऐसी लोक-कथाएं एवं गीत भी सामने आते है, जो निस्संदेह ही वाद्य-यंत्रो के निर्माण में पशुधन की महत्ता को उजागर करते हैं।

ओराओं का एक गीत है, जिसमें एक लड़का कहता है कि-

"केले की पहाड़ी पर, मैने सेमफलियाँ देखी है फैली और पकी हुई।
एक बन्दर फलियों को घूर रहा है, और मैं कहता हुँ,
अपने धनुष और बाण से मैं तुम्हें मार दूँगा
मैं तुम्हारी चमड़ी उतार लूँगा ।
और फिर चमडी से मांदर बनाऊँगा ।
जब मैं मांदर बजाऊँगा
गांव की कुमारियाँ मेरे पास चली आऐंगी।''

हिन्दू धर्म में बंदर को धार्मिक आस्था से जोड़कर देखा जाता है। तथा हनुमान के रूप मे इनकी (बंदरो) पूजा भी की जाती है। किंतु इन लोक कथाओं से हमें बंदर की खाल से संबंधित तथ्य का रोचक संकेत भी मिलता है कि इस खाल का उपयोग कुछ जनजातियों द्वारा ढोल के मुँह तैयार करने के लिए भी किया जाता है। संथाल जनजाति के लोग भी अपने 'तुन्हा' नामक वाद्य को बनाने के लिए वानर की खाल का इस्तेमाल करते है। इस जानवर (बंदर) को पकड़ने के लिए वो जंगल में आते हैं और जब बंदर के ठिकाने का पता चल जाता है। तब 'हनुमान मंत्र' का गान किया जाता है। जिससे जानवर गति हीन हो जाते हैं। इसके बाद बंदरों को पकड़कर मार दिया जाता है। और उनकी चमड़ी ढोल बनाने के काम में ले ली जाती हैं।

इसके अतिरिक्त अवनद्ध वाद्यों के संदर्भ में अगर वर्तमान के परिपेक्ष्य में बात की जाए तो शास्त्रीय संगीत मे तबले का महत्वपूर्ण स्थान हैं। अर्वाचीन शास्त्रीय संगीत का सर्वोत्तम ताल वाद्य तबला ही है। इसके दो भाग होते हैं। जिसे बाँया व दाँया कहा जाता है। दाँया भाग शीशम, खैर व विजयसार की लकड़ी से बनाया जाता है। इसके ऊपर चमड़ा मढ़कर इस पर स्याही लगाते हैं तथा इसे ऊँट की खाल की बद्दी से कसा जाता है। दोनों भागों को मढ़ने की रीति एक ही हैं। तबले पर मढ़ा जाने वाला खाल भी बकरी या बकरे का होता है।

इसी तरीके से उत्तर-भारतीय लोक संगीत का सबसे लोकप्रिय और प्रचलित लोक-वाघ ढोलक भी चमड़े द्वारा मढ़ा जाता है। ढोलक का मेखड़ा लकड़ी का बना होता है। इसके भी दो मुख होते हैं तथा इसके दोनो मुँह पर पतला सा चमड़ा चढ़ा रहता है। चढ़ाते समय चमड़े को भिगो कर एक बांस की गोल कमाची में इस तरह लपेटते हैं कि वह कमाची चमड़े से आवृत्त होकर ढोलक के मेखड़े पर आकर चिपक जाती है। इसी कमाची में दोनों ओर डोरी लगाकर कस देते हैं। इसी डोरी में लोहे या पीतल की कड़ियाँ पहनाई जाती है। इन कड़ियों को चढ़ाने से ढोलक तन जाता है। तथा उतारने से उतर जाता है। ढोलक के दोनों मुँह लगभग समान ही होते हैं किन्तु मध्य भाग थोड़ा उभरा हुआ रहता है।

किसी भी वाद्य-यंत्र के निर्माण की प्रक्रिया भौतिक विशेषताओं पर भी निर्भर करती है। अर्थात् जिस जगह ऋतु जैसी होगी प् उसी के आधार पर वहाँ का वातावरण खान-पान, रहन-सहन मनुष्य एवं पशुओं की बनावट आदि निर्भर करते हैं। उदाहरण के लिए 'हिमाचल प्रदेश' भारत के ठंडे इलाकों मे से एक है। अतः वहाँ का जनजीवन भी उसी के अनुसार प्रभावित होता है। वहाँ के ज्यादातर पशुओं की खाल भी मोटी होती है, तथा बकरी या बकरे की खाल में अपेक्षाकृत अधिक मोटाई होती है। जिस कारण उनके खाल से बने तबले वो गूंज उत्पन्न नहीं कर पाते, जो अपेक्षित होती है। गूंजदार तबला ही सबसे उत्तम तबला माना जाता है।

जबकि इसके विपरीत राजस्थान की भौतिक परिस्थिती बहुत गर्म होती प् तथा वहाँ के अधिकतर पशुओं की त्वचा बहुत पतली होती हैं। विशेषतः बकरी या बकरे की त्वचा अथवा खाल पतली होने के कारण तबले के निर्माण के लिए सर्वोतम मानी जाती है। क्योंकि जो खाल जितनी पतली होती है। उसमें उतनी ही अधिक तन्यता और गूंज उत्पन्नू की सकती है। यही कारण है कि राजस्थान मे प्रचूर मात्रा मे ताल वाद्य पाए जाते है। और सबसे अधिक अवनद्ध वाद्यो

के कलाकार, चाहें तो शास्त्रीय संगीत के कलाकार हों या लोक संगीत के वहीं से निकलते हैं। 'बॉलीवुड' अथवा 'फिल्म इंडस्ट्री' में काम करने वाले अवनद्ध वाद्यों के कलाकारों मे भी अधिकतर राजस्थान के कलाकार पाए जाते हैं। अत: हम ये कह सकते हैं कि किसी भी जगह की संस्कृति, परंपरा एवं क्रियाकलाप वहाँ की भौगोलिक परिस्थिती पर निर्भर करती है। तथा उसी के अनुसार वहां का संगीत भी परिलक्षित होता है।

इन सभी प्राचीन संदर्भी एवम् उदाहरणों से हमें यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल से आरंभ होकर मध्य काल से होते हुए आधुनिक काल तक के वाद्य यंत्रों के निर्माण में पशुधन की कितनी महत्ता है। वर्तमान में अथवा भविष्य में इन वाद्य-यंत्रों के निर्माण में ये असंभव सा प्रतीत होता है कि इसके (पशुधन) विकल्प ढूँढें जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. अनामिका कुमारी, ''अतनाद वाद्यों में ध्वनि का विकास'', कनिष्क पाब्लशर्स, नई दिल्ली।
2. डॉ. चौतन्य देव, ''वाद्य यंत्र'', नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली
3. डॉ. लालमणि मिश्र, ''भारतीय संगीत वाद्य'', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली"।
4. संगीत पत्रिका - (2004) भारतीय वाद्य अंक

भारत में आर्थिक विकास, योजना और सामाजिक परिवर्तन

डॉ० अनिल विठ्ठल बाविस्कर

सहयोगी प्राध्यापक, इतिहास विभाग प्रमुख, कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, अक्कलकुवा, महाराष्ट्र

Abstract:

आर्थिक विकास आणि सामाजिक बदल इंग्लिश अर्थशास्त्रज्ञ विकस्टीड यांनी एकदा म्हटले होते की, जोपर्यंत त्याच्याकडे खायला काही नसेल तोपर्यंत तो संत, कवी किंवा प्रेमी होऊ शकत नाही. राष्ट्रांमध्ये असेही म्हणता येईल की, राजकीय विकास, सांस्कृतिक उपलब्धी आणि परिवर्तन आणि सामाजिक प्रगती केवळ किमान जीवनमान गाठणे शक्य आहे. किंवा, आपण असे म्हणू शकतो की, सामाजिक प्रगती आर्थिक विकासावर अवलंबून असते. प्रश्न असा आहे: आर्थिक विकास म्हणजे काय? आर्थिक विकासाची पूर्वआवश्यकता काय आहे किंवा कोणते घटक वाढीस हातभार लावतात? भारतासह जगातील अविकसित भागात आर्थिक विकासाला कशामुळे अडथळे येतात? आर्थिक विकासाच्या समाजशास्त्रीय पैलू आणि सामाजिक समस्यांशी संबंधित होण्यापूर्वी हे काही महत्त्वाचे प्रश्न समजून घेतले पाहिजेत.

प्रस्तावना:

आर्थिक विकासाची संकल्पना व्यापक अर्थाने, आर्थिक विकासाकडे " कोणत्याही स्रोतातून दरडोई वास्तविक उत्पन्नातील वाढ" (रॉबर्ट फॅरिस, 1964: 889) म्हणून पाहिले जाऊ शकते. बाख (1960: 167) यांनी "अर्थव्यवस्थेतील वस्तू जेव्हा आर्थिक वस्तूंचे भरीव उत्पादन आणि आजकाल भरीव उत्पादन तंत्रज्ञानाच्या अधिक वापरावर अवलंबून आहे. संकुचित अर्थाने, म्हणून असे म्हटले जाऊ शकते की आर्थिक विकास म्हणजे "आर्थिक वस्तूंचे उत्पादन आणि वितरणासाठी निर्जीव शक्ती आणि इतर तंत्रज्ञानाचा व्यापक वापर" (रॉबर्ट फारिस, इबिड: 889). या अर्थाने, आर्थिक विकास व्यावहारिकदृष्ट्या औद्योगिकीकरणाच्या समतुल्य आहे. परंतु आर्थिक विकास म्हणजे केवळ औद्योगिकीकरण होय असे म्हणणे योग्य ठरणार नाही कारण उत्पादनात शक्ती आणि तंत्रज्ञानाचा वापर करण्याबरोबरच त्यात श्रमिक गतिशीलता, व्यापक शैक्षणिक व्यवस्था इत्यादींचाही समावेश होतो

स्वतंत्रता के बाद भारत में आर्थिक विकास को वास्तव में एक क्रांतिकारी परिवर्तन के रूप में वर्णित किया जा सकता है, अगर हम ब्रिटिश काल में आर्थिक विकास की तुलना लगभग दो दशकों के नेहरू काल (स्वतंत्रता के बाद) में करते हैं।, इंदिरा गांधी और राजीव गांधी की अवधि लगभग दो दशक, और पिछले तीन वर्षों की अवधि (वीपी सिंह, चंद्रशेखर और नरसिम्हा राव की सरकारों की)। 1757 और 1947 के बीच ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की दो शताब्दियों में आर्थिक विकास 1 प्रतिशत या उससे कम था, विकास की दर इतनी दयनीय रूप से कम थी कि इसने भारत को केवल कच्चे माल का आपूर्तिकर्ता बना दिया और एकआर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन पश्चिमी निर्यात के लिए 443 अंतराल बाजार। औद्योगिक क्षेत्र पर ब्रिटिश पूंजी का अत्यधिक दबदबा था। भारतीयों के स्वामित्व वाले औद्योगिक क्षेत्र के एक हिस्से का प्रबंधन ब्रिटिश एजेंसियों द्वारा किया जाता था। कृषि अर्थव्यवस्था में, किसान जमींदारों, जागीरदारों और स्थानीय साहूकारों (साहूकारों) के चंगुल में थे। बचत और निवेश बहुत कम थे। तकनीक निम्न स्तर की थी। लागू पिछड़े क्षेत्र के विकास के माध्यम से क्षेत्रीय संतुलन की कोई अवधारणा नहीं थी। भारत के निर्माण के लिए विदेशी पूंजी उपलब्ध नहीं थी। कम आय से कम बचत होती है, जिससे कम निवेश होता है, जिससे कम वृद्धि होती है, जिससे कम आय होती है। गरीबी के दुष्चक्र और निराशा के कभी न खत्म होने वाले चक्र का सिद्धांत औपनिवेशिक काल की अर्थव्यवस्था के लिए काफी उपयुक्त था। आजादी के बाद, नई सरकार के लिए कार्य दो गुना था: औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था को खत्म करना और उसके स्थान पर एक आधुनिक, स्वतंत्र और आत्मनिर्भर आर्थिक व्यवस्था के लिए आधार तैयार करना। देश की आधुनिक अर्थव्यवस्था और राष्ट्रवाद का खाका-समाज का समाजवादी पैटर्न- 1955 में कांग्रेस के आवादी अधिवेशन (नेहरू युग के दौरान) और 1969 में बैंगलोर अधिवेशन (इंदिरा गांधी युग के दौरान) द्वारा प्रदान किया गया था। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि समाजवाद के नेहरू मॉडल ने 1950, 1960, 1970 और 1980 के चार दशकों में हमारी अर्थव्यवस्था में सुधार किया, हालांकि एक ऐसा स्कूल है जो अर्थव्यवस्था के विकास की तुलना में इसके (नेहरू मॉडल के) प्रदर्शन की निंदा करता है। दक्षिण कोरिया, सिंगापुर, हांगकांग, थाईलैंड और ताइवान में। अब हमारे पास लाखों आधुनिक औद्योगिक उद्यम हैं जहां एक बार लेकिन कुछ मुट्ठी भर हमारे पास तकनीकी और उद्यमशीलता कौशल का एक बड़ा भंडार है; हमारे पास भिलाई और राउरकेला जैसी बड़ी सार्वजनिक परियोजनाएं हैं और हीराकुंड जैसे बड़े बांध हैं; विकासशील देशों में हमारे पास बचत की उच्चतम दर है; हमारी विकास दर 5 प्रतिशत प्रति वर्ष थी (1990-91 में); डॉलर के लिहाज से निर्यात में सालाना 17 फीसदी की धीमी वृद्धि; अनिवासी भारतीयों (एनआरआईएस) की जमाराशियों में बीस गुना वृद्धि; अंतरराष्ट्रीय मुद्रा बाजार में अद्वितीय विश्वसनीयता; और सरकार द्वारा दावा किए गए अनुसार 1990 में 1980 से 26 प्रतिशत तक गिर गया)। इस विकास के बावजूद, यह भी एक सच्चाई है कि हम मुद्रास्फीति और उच्च ऋण की समस्या का सामना कर रहे हैं। व्यापार घाटे का संतुलन 3,000 मिलियन डॉलर

से ऊपर है और बजट घाटा खरबों में है। के बाद वी.पी. सिंह और चंद्रशेखर सरकार की नीतियों ने 1988 और 1991 के बीच देश की अर्थव्यवस्था पर गरीबी रेखा से नीचे (51 प्रतिशत से) पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। 444 आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन नरसिम्हा राव की सरकार ने 1992 की शुरुआत में समाजवादी मॉडल को त्याग दिया और उदारीकरण, बाजारीकरण और निजीकरण (जिसे अब नेहरू पूंजीवाद कहा जाता है) के दर्शन पर आधारित एक नया संशोधित मॉडल लॉन्च किया, जिसका दावा कांग्रेस सरकार करेगी। हमारे आर्थिक विकास को एक बड़ा बढ़ावा दें।

सरकार का कहना है कि इस नए मॉडल का सार यह है कि यह राज्य के साथ-साथ निजी उद्यमियों में विश्वास को जोड़ती है, और बहुल लोकतंत्र और मिश्रित अर्थव्यवस्था में अटूट विश्वास रखती है। अप्रैल 1992 में कांग्रेस के तिरुपति अधिवेशन ने एक नया वैचारिक प्रतिमान अपनाया जो कि केंद्र के बाएं से दाएं-केंद्र में बदलाव था। यह नेहरू के नाम पर नेहरू को हटाने की एक तकनीक थी। इसने ध्यान केंद्रित किया: विभिन्न क्षेत्रों (कृषि और सार्वजनिक वितरण प्रणाली सहित) को सब्सिडी में कटौती, लाइसेंस-प्रति-मित्रराज को त्यागना, मौजूदा नीति को पेश करना, बहुराष्ट्रीय निगमों के लिए देश को खोलना, आयात नियंत्रण को हटाना और जनता के साथ व्यवहार नहीं करना क्षेत्र केवल एक गैर-कार्य नैतिकता की विशेषता वाली नौकरी वितरण एजेंसी के रूप में। इस प्रकार, बयानबाजी समाजवादी बनी रही जबकि नीतियों की सामग्री प्रतिशोध के साथ पूंजीवादी हो गई। ऐसे विद्वान हैं जो यह नहीं मानते कि वर्तमान सरकार की आर्थिक नीति वास्तव में भारतीय अर्थव्यवस्था का कायाकल्प करेगी। उनका मानना है कि आयात पर प्रतिबंध लगाकर, निर्यात को बढ़ावा देकर, कर-जाल को चौड़ा करके, सार्वजनिक क्षेत्र को नौकरशाही से मुक्त करके, काले धन का पता लगाकर, रक्षा खर्चों में कटौती करके, प्राकृतिक संसाधनों के दोहन में अधिक रुचि लेकर, माल के लिए बहुत बड़ा बाजार, कट्टरपंथी भूमि सुधार लाना, और इसी तरह। ये विद्वान यह भी मानते हैं कि देश को बाहरी उपायों के बजाय आंतरिक पर निर्भर होना चाहिए। सामाजिक रूप से, यह माना जा सकता है कि आर्थिक विकास – नेहरू और उदार मॉडल दोनों के माध्यम से – ने हमारी सामाजिक संरचनाओं को उस दिशा में प्रभावित किया है जैसा हम चाहते थे। हमारे समाज-विकासवादी (चरणों की श्रृंखला में समाज के विकास का आकलन), संघर्ष (प्रतिस्पर्धा और सत्ता के लिए निरंतर संघर्ष पर जोर देना), कार्यात्मक (सामाजिक में अन्य सभी तत्वों के लिए प्रत्येक संस्थागत अभ्यास के परिणामों का विश्लेषण) के मूल्यांकन के लिए हम जो भी समाजशास्त्रीय मॉडल का उपयोग कर सकते हैं। संरचना), आदि – यह स्पष्ट होगा कि सामाजिक संबंधों, सामाजिक संस्थाओं, सामाजिक प्रणालियों और सामाजिक संरचनाओं, और सामाजिक मानदंडों आदि के नेटवर्क में परिवर्तन हुआ है।

निष्कर्ष :

भारत में लोग अब रूढ़िवादी नहीं हैं। सदी पहले। वे नैतिक मानदंडों से दृढ़ता से नहीं चिपके रहते हैं औरआर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन 445 सामाजिक मूल्य जो उन्हें अतीत से प्राप्त हुए। पुरुष व्यक्तिगत रूप से व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामूहिक सुरक्षा के लिए प्रयास करते हैं। उनके दृष्टिकोण, औजारों और विचारों में भी बदलाव आया है। वे नए अनुभवों की कामना करते हैं। उनमें न केवल प्रौद्योगिकियों को उधार लेने की जिज्ञासा है बल्कि सांस्कृतिक तत्व भी अन्य समाजों का निर्माण करते हैं। उनमें नवोन्मेष के लिए एक रचनात्मक आग्रह है। वे नवाचारों और सामाजिक परिवर्तनों की स्वीकृति के परिणामों के बारे में ज्यादा चिंतित नहीं हैं। वे गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, महंगाई, भाई-भतीजावाद, आतंकवाद, जातिवाद और क्षेत्रवाद आदि की समस्याओं को कम करने में विफल होने के लिए सत्ता अभिजात वर्ग के खिलाफ विरोध और आंदोलन कर सकते हैं, फिर भी वे जानते हैं कि भारत में सामाजिक व्यवस्था कभी भी एक राज्य में नहीं होगी। असमानता का। हितों के विचलन के साथ भारतीय संस्कृति न केवल जीवित रहेगी बल्कि विकसित भी होगी। सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक विकास के माध्यम से, सामाजिक संरचनाओं और सामाजिक व्यवहार-पारंपरिक और संक्रमणकालीन को सुराग और दिशा प्रदान करेगा।

References:

- Rural Sociology in India, Vora and Co., Bombay, 1959.
- Hoselitz, Bert, Sociological Aspects of Economic Growth, Current Thought Series, Vakils, Feffer & Simons, Bombay, 1960.
- Hunt, Chester, Social Aspects of Economic Development, Randour House, New York, 1962.
- Meynaud, Jean, Social Change and Economic Development, UNESCO Publi- cation, 1963.
- Moore, Wilbert, "Social Aspects of Economic Development" in Robert Faris (Ed.), Handbook of Modern Sociology, Prentice Hall, Englewood Cliffs, New Jersey, 1964.
- Narmadeshwar Prasad, Change Strategy in a Developing Society, Meenakshi Prakashan, Meerut, 1970.
- Novack, David, "Sociological Approach to Economic Development" in Novack David (Ed.), Development and Society: The Dynamics of Economic Change, 1964.

विवेकी राय जी के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन की सामाजिक, आर्थिक, एवं धार्मिक समस्याओं का अध्ययन

डॉ० बबीता देवी

शोध संक्षेप- विवेकी राय जी ने अपनी ग्रामीण जीवन के प्रति जो मनोदशा व्यक्त की है उसे पढ़कर ऐसा मालूम होता है कि उनका जीवन दर्शन ग्रामीण परिपेक्ष में अधिक रमा है इस कारण से कहा जा सकता है कि गाँव के विषय में जो बात कही जाती है कि भारत गाँव में बसता है यह बात सौ फीसदी सच है किंतु बड़े पदों पर आसीन होने वाले अधिकारियों नेताओं ने गाँव के ह्रदय मानस कि हमेशा चिंता नहीं की और गाँव आज बिछड़ते और पिछड़ते चले गए जिस प्रकार विवेकी राय जी बताते हैं कि मैं शहरी बनना चाहता था किंतु मेरी दृष्टि गाँव में अधिक रमी और मैं शहर में भी आकर के शहरी नहीं बन पाया क्योंकि वह एक सच्चे कृषक का जीवन भोग चुके थे इसी कारण वे शहर की विभिन्न प्रकार की जालसाजी का जीवन को नहीं भोगना चाहते थे इसी प्रकार शहर में एक दूसरे के नजदीक होते हुए भी लोग आपस में आदर सत्कार नहीं करना चाहते जिस प्रकार गाँव में आते जाते लोग एक दूसरे को स्वत ही राम-राम कर लेते हैं और ह्रदय के विभिन्न पक्षों को एक दूसरे से लगातार साक्षात्कार करते रहते हैं क्योंकि किसान में कृषक अकेला ही कार्य नहीं करता पूरा परिवार के साथ कार्य करता है इसी प्रकार आस-पड़ोस के सभी कृषक मिलजुल कर एक दूसरे के लिए सुख दुख के साथी होते हैं इसी कारण से यह जो मनोदशा विवेकी राय की हुई यह एक सच्चे ग्रामीण जीवन की है और इसमें कहा जा सकता है आज की आधुनिकता वादी सोच जो शहरों में हावी है।

मुख्य शब्द- ईष्या, डाह और पाखण्ड, भावविभोर, यथार्थ का चित्रण।

1.1 प्रस्तावना

विवेकी राय पूर्वाञ्चल के जातीय कथाकार हैं। शिवप्रसाद सिंह के बाद पूर्वी उत्तर प्रदेश की सामाजिक-सांस्कृतिक अवस्थिति को इतने व्यापक ढंग से कथा-साहित्य में उन्होंने ही प्रस्तुत किया। इस अंचल की आबोहवा का निर्माण प्राय: किसान जातियों के द्वारा हुआ है।इसमें दया, करुणा, सहानुभूति और सरलता है, तो ईष्या-डाह और पाखण्ड भी है। विवेकी राय का कथाकार इसी में निर्मित हुआ है। वे इसमें से कुछ चुनते या छांटते-बराते नहीं हैं, बल्कि उसे पूरा का पूरा प्रस्तुत कर देते हैं। जो कहीं कहानी-उपन्यास तो कहीं निबन्ध का रूप धर लेता है।

विवेकी राय का लेखन आजादी के बाद शुरू होता है। 1952 के आस-पास का यह समय है। नई कहानी के प्राय: कहानीकार इसी समय के इर्द-गिर्द लिखना प्रारम्भ करते हैं। नये आजाद हुए देश की रूमानियत और हहाती वास्तविकताएं एक साथ प्रकट होती हैं।एक राष्ट्र बनना शुरू होता है। इसमें कई परम्पराएं, रूढ़ियां, दुर्बलताएं मौजूद हैं। मूल्य और नैतिकता के स्तर पर इस बनते राष्ट्र में पिछड़ापन अधिक है।वह प्राय: वर्णवादी है। आधुनिक मूल्य-बोध से इसकी गहरी टकराहट है। द्वन्द्व, अंतर्विरोध, विसंगतियां इसी टकराहट में जन्म लेती हैं। इस दौर के अन्य कहानीकारों की भांति विवेकी राय भी इससे गुजरते हैं, दर्ज करते हैं। वे उतने व्यवस्थित भले न हों, जितने कि पूर्वाञ्चल के उनके समकालीन अमरकान्त, मार्कण्डेय और शिव प्रसाद सिंह थे।विवेकी राय अंत तक इनके जैसी कथा-भाषा भी प्राप्त नहीं कर पाये, लेकिन पूर्वाञ्चल के जीवन-जगत का व्यापक फलक वे कहीं अधिक छूते हैं।

यही वर्णवादी वर्चस्व, कृषि संस्कृति और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में भी है। इसे उनकी कहानी, 'रावण', 'मरछिया' आदि में देखा जा सकता है। आजादी के बाद अपनाए गये लोकतन्त्र का मुख्य अंतर्विरोध आधुनिकता और वर्णवादी विरासत के द्वन्द्व से उपजता है। नागार्जुन की एक कविता की पंक्ति, तामझाम है लोकतंत्र काध्लटका है सामन्ती ताला, से इस अंतर्विरोध को समझना आसान होगा। विवेकी राय की कहानियों में लोकतंत्र के तामझाम पर लटके सामन्ती ताले के कई सामाजिक-राजनीतिक व सांस्कृतिक सन्दर्भ मौजूद हैं। 'मांग नहीं सका सोना', 'कानून का दिवाला', 'अपना सपना', 'दमरी की खोज में, 'अतिथि', 'चुनाव-चक्र', 'सामलगमला' आदि कहानियों में यह अच्छे से अभिव्यक्त हुआ है।

1.1 ग्रामीण जीवन की अवधारणा

आंचलिकता शब्द अंग्रेजी के 'रिजन' शब्द के पर्याय रूप में प्रयुक्त हुआ है। अंग्रेजी में 'रिजनल नावेल' की सुस्थिर परम्परा रही है। अंचल शब्द का अर्थ किसी ऐसे भूखंड, प्रांत या क्षेत्र विशेष है, जिसकी अपनी एक विशेष भौगोलिक स्थिति, संस्कृति, लोकजीवन, भाषा व समस्याएं हों। एक आंचलिक लेखक एक विशेष क्षेत्र पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है और इस क्षेत्र और वहां के निवासियों को अपनी कथा का आधार बनाता है। आज हम जिस उपन्यास का परिचय देने जा रहे हैं उसके लेखक श्री विवेकी राय जी का कहना है, "'सोनामाटी' की पृष्ठभूमि में पूर्वी उत्तर प्रदेश के दो जिलों, गाजीपुर और बलिया, का मध्यवर्ती एक विशिष्ठ अंचल है करइल। इस अंचल का भूगोल तो सत्य है परन्तु इतिहास अर्थात्प्रस्तुत कहानी में प्रयुक्त करइल क्षेत्र के उन गाँवों और

पात्रों आदि के माध्यम से समकालीन जीवन-संघर्ष को चित्रांकित किया गया है। यह संघर्ष किस सीमा तक एक अंचल का है और कहां तक वह व्यापक राष्ट्रीय जीवन यथार्थ से जुड़ा है, इसका निर्णय तो पाठक ही कर सकता है।"

विवेकी राय जी ने अपनी ग्रामीण जीवन के प्रति जो मनोदशा व्यक्त की है उसे पढ़कर ऐसा मालूम होता है कि उनका जीवन दर्शन ग्रामीण परिपेक्ष में अधिक रमा है इस कारण से कहा जा सकता है कि गाँव के विषय में जो बात कही जाती है कि भारत गाँव में बसता है यह बात सौ फीसदी सच है किंतु बड़े पदों पर आसीन होने वाले अधिकारियों नेताओं ने गाँव के ह्रदय मानस कि हमेशा चिंता नहीं की और गाँव आज बिछड़ते और पिछड़ते चले गए जिस प्रकार विवेकी राय जी बताते हैं कि मैं शहरी बनना चाहता था किंतु मेरी दृष्टि गाँव में अधिक रमी और मैं शहर में भी आकर के शहरी नहीं बन पाया क्योंकि वह एक सच्चे कृषक का जीवन भोग चुके थे इसी कारण वे शहर की विभिन्न प्रकार की जालसाजी का जीवन को नहीं भोगना चाहते थे इसी प्रकार शहर में एक दूसरे के नजदीक होते हुए भी लोग आपस में आदर सत्कार नहीं करना चाहते जिस प्रकार गाँव में आते जाते लोग एक दूसरे को स्वत ही राम-राम कर लेते हैं और ह्रदय के विभिन्न पक्षों को एक दूसरे से लगातार साक्षात्कार करते रहते हैं क्योंकि किसान में कृषक अकेला ही कार्य नहीं करता पूरा परिवार के साथ कार्य करता है इसी प्रकार आस-पड़ोस के सभी कृषक मिलजुल कर एक दूसरे के लिए सुख दुख के साथी होते हैं इसी कारण से यह जो मनोदशा विवेकी राय की हुई यह एक सच्चे ग्रामीण जीवन की है और इसमें कहा जा सकता है।

1.2 ग्रामीण जीवन की राजनीतिक समस्याएँ

निबन्ध विधा के भीतर भी उनकी पहचान का एक मजबूत आधार ग्रमीण जीवन के प्रति गहरा लगाव है। 'उठ जाग मुसाफिर' संग्रह के दो निबन्ध 'चिन्ता भारत के उजडते गावों की' और 'गाँव पर बनाम गाँव में' तो शीर्षक से ही ग्रामीण परिवेश से जुडाव व्यक्त करते हैं। 'तिनडंडिया चोट से उभरा समय और सवाल' शीर्षक निबन्ध में उन्होंने लिखा है,- "सायंकाल किसी के खेत में 'कोठा' छूट जाने का अनुमान होता, अर्थात लगता कि खेत का कुछ भाग छूट जाएगा, तो कुछ समय पहले काम समाप्त हुए किसी भाई का सहयोग मिल जाता-बिना मांगे भी। एक दिन मुझे भी अकस्मात ऐसा ही सहयोग मिल गया और सूर्यास्त होते-होते 'मेरा कोठा मार दिया गया'। यह प्रेम,भाईचारा,सहयोग और सहकार का अमृत है, जिसे पीकर अकाल पीडित गरीब गाँव जीवित है। साठ-सत्तर साल पूर्व का था यह जीता जागता परिदृश्य। स्वराज्य, विकास, नई खेती, नए ढांचे, नई-नई साधन-सम्पन्नता, सुविधा, नए तन्त्र-यन्त्र और मनी-मन्त्र में फंस किसान निरानन्द और गाँव उदास क्यों हो गए ? यह तुम्हरी कैसी सुराजी विकास की नई यान्त्रिक-व्यापरिक खेती है, जिसने ग्राम-देवता को मार डाला और गाँव भलमानुस-विहीन हो गया? (८५-८६)। यहां स्वराज, पंचायती राज और समन्वित-विकास की सरकारी होर्डिगों पोस्टरों और बैनरों से इतर, सरकारी स्लोगनों के ठीक उलट, आज के गाँव की वास्तविक तस्वीर है जो पुरानी पिढी की स्मृतियों के गाँव के रूप में आज के गाँव के सामने डट कर खडी है। लेखक स्मृतियों के उस गाँव को अपने लेखन में फिर से जी रहा है।

1.3 ग्रामीण जीवन की आर्थिक समस्याएँ

विवेकी राय का मन गाँव-घर और सिवान-मथार में खूब रमा है। अर्ध-नगरीय कस्बाई जीवन से आ जुडने के बावजूद, वह अब भी उनकी सैर करने निकल जाता है। निबन्ध उनकी इसी मनोयात्रा के सहचर हैं। गाँवों के प्रति गहरा आकर्षण बल्कि, मोह की स्थिति के कारण प्राय: यह महसूस होता है कि उनके यहां एक ही विषय का अतिशय दोहराव है और वे इससे बाहर नहीं निकल पाए हैं। लेकिन यह एक सतही अनुभव है। उनके निबन्धों में आहिस्ते-आहिस्ते उतरा जाय तो ऊपर से बहुत सरल और सीधे लगने वाले या रोचक लालित्यपूर्ण निबन्ध भी बहुत गहरी अर्थ-व्यंजकता, उदात्त जीवन-दर्शन और सामजिक-बोध से सम्पन्न हैं। गाँव उनके लिए शहस्र-शीर्षा, शहस्र-पाद भारत की एक लघु इकाई हैं। कहा जाता है, एक चावल देख कर तसले के भात के पकने का अंदाजा लग जाता है, गाँव तसले के उसी चावल की तरह हैं जिनसे भारत में हो रहे बदलावों की नब्ज टटोली जा सकती है। विवेकी राय गाँवों के बहाने पूरे भारत की बात करते हैं। भूख, बेरोजगारी, बेकारी, शोषण और भ्रष्टाचार जैसी तमाम समस्याएं, उनके यहां इसी माध्यम से व्यक्त हुई हैं।'उठ जाग मुसाफिर' को पढते समय कभी यह अनुभव होता है कि अपने ही गाँव का कोई बडा-बुजुर्ग, कोई पुरनिया नई पीढी के किसी पढे-लिखे युवक को अपनी स्मृतियों की दुनिया की सैर करा रहा है तो कभी लगता है कि 'कविर्मनीषी परिभूस्वयंभू' को चरितार्थ करता हुआ कोई लेखक आधुनिक गंवई जीवन की संहिता का दर्शन (ऋषय: मंत्र द्रष्टार:) कर उसके मंत्रों का गान कर रहा है। फर्क यह है कि ये मंत्र आदिम मन के मुग्ध-गायन नहीं जैसा कि वैदिक ऋचाओं के सम्बन्ध में माना जाता है, बल्कि लेखक ने यहां असहमतियों के लिए प्रर्याप्त छूट ली है। वह स्वयं उनका भाष्य भी करता चल रहा है। इस पूरी प्रक्रिया में लेखक का 'किसान-मन' अत्यन्त सजग है। इसलिए खेती-बारी, घर-दुआर, गाँव-जवार की ही बात नहीं करता बल्कि, वह ऋतु और मौसम की, बतास और बयार की खबर भी रखता है। जब वह प्रकृति में रमता है, तो निरन्तर डूबता जाता हैय आकण्ठ नहीं आपद-मस्तक। उसका दर्शन ही है- 'ज्यों-जों बूडे श्याम रंग त्यं-त्यं उज्ज्वल होय'। बिना इसके ग्रिष्म जैसे भुतहे मौसम में 'बहार' (ग्रिष्म बहार) की कल्पना कहां संभव है ? एक किसान ही है जिसे इस मौसम में भी मजा लेने की आदत है। चौती कटी है, बाग में महुए की मादक गन्ध है, आम के टिकोरे हैं, जौ या चने का सत्तू और आम की चटनी या 'पन्ना' है। बारहों महीने यह मौज कहां-कभी फांका और कभी आधा-पेट। लेखक आज की 'अपरिचित' गरमी के बीच उन्हीं दिनों की याद कर रहा है- "किसी बगीचे में पेड के नीचे आराम से सोते-बैठते, हंसते-बोलते लू भरी दोपहरी कट जाती। अब न बाग न वृक्ष ! झंखन में अचेत पडे-पडे भीतर-ही-भीतर गुनावट में डूबे हैं गाँव या शहर के वृद्धजन!"(पृष्ठ-६२)। किसान का प्रकृति से गहरा नाता है। वह भी उसके परिवार की एक सदस्य है- "गाँव के बाहर कचनार अमराइयां हैं, चीं-चीं चहचह से गुलजार बंसवारियां हैं। वृक्ष देवता भी मानवी रिश्तों में बंधे हैं। नया लगाया गया बाग फलदार होने लगा तो उसका विधिवत विवाह हुआ। लगाने वाला व्यक्ति फल नहीं खाएगा" (पृष्ठ-९८)।

1.4 ग्रामीण जीवन की धार्मिक समस्याएँ

अंचल विशेष को आधार बनाकर रची जाने वाली औपन्यासिक कृति सहज ही आंचलिक उपन्यास मान ली जाती है। विवेकी राय की कहानियों में उत्तरप्रदेश के गाँवों का बड़ा सजीव चित्रण हुआ है। उन्हें ग्रामीण जीवन का कुशल चितेरा कहा जाता है। वे गावों से हमेशा जुड़े रहे। गाजीपुर और उसके आसपास के गावों का उन्हें विशद अनुभव है। प्रस्तुत उपन्यास "सोनामाटी" भी गाँवों से जुड़ा है। इसमें विस्तृत ग्रामांचल की कहानी है जो गाजीपुर और बलिया

के बीच फैला है। आज के टूटते-बिखरते गाँव का सम्पूर्ण सत्य उन्होंने इस उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत किया है। गाँवों में व्याप्त मूल्यहीनता की बात इसमें बहुत ही मार्मिक ढंग से कही गई है। पैसे की संस्कृति से गाँव भी अछूता नहीं है। रामरूप उपन्यास का मुख्य पात्र है। वह जीवन-मूल्यों में विश्वास रखता है। लेकिन वह आज के परिवेश में अपने को मजबूर और कमजोर पा रहा है। उसका ससुर हनुमान प्रसाद रावण की भूमिका निभाता है।

असहाय स्त्री की दयनीय स्थिति व पूरी त्रासदी को बयान करता है यह वक्तव्य। इस उपन्यास में कोइली का अंकन बड़ा ही मर्मस्पर्शी है। वह एक बूढ़े के साथ जुड़ती है, स्वाभिमान की रक्षा के लिए और सारी लालसायें मसलकर रख देती है। उसके अंकन में अत्यन्त आधुनिक संवेदना का स्पर्श मिलता है। सर्वहारा की पहचान तो उसकी पीड़ा है। लेकिन इसमें भी एक बात निश्चित है कि इस वर्ग की स्त्री सबसे पीड़ित होती है। वह समाज की वासना का शिकार भी होती है। हर किसी के द्वारा शोषित और त्रस्त जीवन उसका नसीब हुआ करता है। एक पुरुष सत्तात्मक समाज स्त्री के बारे में कितना नृशंस और अत्याचारी हो सकता है, इसका प्रमाण विवेकी राय जी के इस उपन्यास में मिलता है।

लेखक विवेकी राय का गाँव की जनता, विशेषकर किसान जनता के दुख-सुख से गहरा सरोकार है। उनके इस गहरे सरोकार के कारण ही "सोनामाटी" की रचना हुई है। गाँव की जनता संघर्षशील है। उपन्यास में लेखक का सर्वाधिक ध्यान अंचल विशेष की जन-चेतना को चित्रित करने पर केन्द्रित है। उन्होंने जन-सामान्य के प्रति हार्दिक संवेदना महसूस करते हुए चित्रित किया है। साथ ही साथ करइल अंचल की लोक संस्कृति भी सहज रूप से अंकित होती चलती है। समय और समाज ने एक मास्टर को अकेले जूझते और समझौता करते छोड़ दिया है। यही गाँव के बुद्धिजीवी की नियति है। गाँव के रावण का अंकन बहुत ही सशक्त है। लगता है, राम कहीं हिरा गये 'राम का हिरा जाना' मतलब आज रामराज कहीं खो गया है।

1.6 निष्कर्ष

डॉ. विवेकी राय जी- इन कथा -आन्दोलनों से मैं जान बूझकर ही नहीं जुड़ा क्योंकि मैं उस आन्दोलनी के खोखलेपन को बहुत निकट से देख रहा था। वे आन्दोलन ऐसे थे जैसे उस दौर की राजनीतिक नारेबाजियाँ। मैं स्पष्ट देख रहा था कि एक ही व्यक्ति कई-कई कथा आन्दोलनों में शामिल रहता था। मैं यह भी स्पष्ट रूप से देख रहा था कि हिन्दी कहानी इन आन्दोलनों के सहारे नहीं बल्कि अपनी शक्ति से आगे बढ़ रही है। ये आंदोलन वाले कहानी के मूल धर्मों को अपने ऊपर नहीं बल्कि अपनी नवीनताओं तथा अपनी नयी मुद्राओं को कहानियों के ऊपर आरोपित कर अपने प्रचार का झण्डा बुलंद करते रहे। वास्तव में यह सब एक प्रकार से आत्मप्रचार का साधना मात्र था, जिससे मुझे कुछ भी लेना-देना नहीं था। हाँ ! इतना तो अवश्य मानना पड़ेगा कि इन आंदोलनों से कहानी साहित्य में कोई क्षति नहीं हुई बल्कि गहमा-गहमी के इस वातावरण से कथा-साहित्य के विकास में कुछ लाभ ही हुआ।

सरलता, सादगी, निश्चल वृत्ति और सच्चाई विवेकी राय की स्वभावगत विशेषताएं हैं। उनके बोलने का ढंग, अदब और शैली में सरलता है। यह सरलता सामने वाले को भावविभोर करती है। उनके स्वभाव की निश्चलता के बारे में डॉ. सत्यकाम अपना अनुभव बताते हैं, हां, एक बार बिजली कटने पर पंखा भी झलने लगे थे। मैंने हाथ पकड़ लिया। वे मुस्कुराने लगे सहज निश्चल हंसी। मैं मंत्रमुग्ध-सा उन्हें देखता रहा। फिर जोर से उन्होंने ठहाका लगाया। मैं अचंभित। उन्होंने कहा, 'मैं सबको ठंड़क पहुंचाता हूं। सारे समाज। सारे देश को। आपको भी पहुंचा रहा हूं तो क्या हर्ज है।' विवेकी राय का स्वभाव असाधारण होने का परिचय प्रस्तुत कथन देता है। (माटी की महक, प. 8) वेदप्रकाश अमिताभ उनके स्वभाव पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं, किसी तामझाम या आधुनिक सजावट से रहित एक कमरे में साधारण वेशभूषा, किंतु असाधारण व्यक्तित्व के धनी विवेकी राय से मिलना कोई 'उत्तेजना' नहीं पैदा करता, अपितु एक विशेष प्रकार का संतोष देता है। (माटी की महक, पृ. 38) यहीं संतोष उनके साहित्य में नजर आता है।

विवेकी राय भीड़-भाड़ की दुनिया से कोसों दूर हैं। वे साहित्य की दलगत राजनीति से भी दूर हैं। किसी के साथ शत्रुता नहीं और किसी के साथ हद से ज्यादा दोस्ती नहीं। वे अपने-आप में मस्तमौला और अपने काम से मतलब रखने वाले एकांतप्रिय व्यक्ति हैं। प्रशंसा या शिकायत सुनने के लिए वक्त भी नहीं है। वे हमेशा अपने कार्य में व्यस्त रहते हैं।

विवेकी राय के अभिव्यक्ति के मुख्य विषय भाषा, संस्कृति, गाँव और राष्ट्र हैं। उन्होंने भाषा की वर्तमान स्थिति पर कई निबंध और कहानियों में चर्चा की है और सरकार की भाषा संबंधी गलत नीतियों की आलोचना भी की है। विवेकी राय भोजपुरी-प्रेमी और हिंदी-सेवी रहे हैं। भोजपुरी के शब्द, कहावतें और मुहावरें हिंदी साहित्य के सौंदर्य में और भी अधिक निखार एवं सरसता लाते हैं। संस्कृति के अध:पतन पर भी उनका मौलिक चिंतन हैं। परिवर्तित गाँव और आधुनिकता के कारण भारतीय संस्कृति अपना अस्तित्व खोती जा रही है। यह गाँव के लिए ही नहीं, देश के लिए भी खतरा है। 'सोना माटी' में इस पर विस्तृत चर्चा की है। इसके साथ ही 'समर शेष है' 'लोकऋण', 'बबूल', 'श्वेत-पत्र' और 'मंगलभवन' में लोकगीत, लोककथाएं, लोकप्रथाएं, रस्म-रिवाज, राष्ट्रगीत आदि प्रचूर मात्रा में है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अंतिम दशक के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का चित्रण- डॉ. मोहम्मद जमील अहमद- अन्नपूर्ण प्रकाशन, कानपुर- प्रथम संस्करण- 2006.
2. अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों का समान शास्त्रीय अध्ययन- डॉ. गोरखनाथ तिवारी- अन्नपूर्ण प्रकाशन- प्रथम संस्करण- 2008.
3. अक्षर बीज की हरियाली में- डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ- विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी- प्रथम संस्करण- 2002.
4. आंचलिक उपन्यास एकता की खोज- डॉ. आण्टणी पि.एम. जवाहर पुस्तकालय, मधुरा-प्रथम संस्करण- 1993.
5. आंचलिक उपन्यासों में ग्राम्य जीवन- डॉ. उत्तम भाई पट्टेल- क्वालिटी बुक्स एण्ड पब्लिशर्स, कानपुर- प्रथम संस्करण- 1988.

6. आंचलिक उपन्यास और उनके शिल्पविधि- डॉ. आदर्श सक्सेना सूर्यमंदिर प्रकाशन, बीकानेर, राजस्थान- प्रथम संस्करण- 1971.
7. आंचलिक उपन्यास और रेणु- डॉ. सत्यनारायण उपाध्याय- संजय प्रकाशन, बुलानाला, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1980.
8. आंचलिकता और आधुनिकता बोध- डॉ. भगवती प्रकाश शुल्क ग्रन्थ प्रकाशन, कानपुर- प्रथम संस्करण 1972.
9. आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास- डॉ. नगीना जैन- अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड- प्रथम संस्करण- 1976.
10. आंचलिकता की कला और कथा साहित्य- डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्रा- प्राची प्रकाशन, दिल्ली- प्रथम संस्करण- 1981.
11. आंचलिक उपन्यास संवेदना और शिल्प- डॉ. ज्ञानचंद गुप्त अभिनव प्रकाशन, दिल्ली- प्रथम संस्करण- 1975.
12. आज का हिन्दी उपन्यास- डॉ. इन्द्रनाथ मदान- राजकमल प्रकाशन, दिल्ली- प्रथम संस्करण- 1966.
13. आज का हिन्दी उपन्यास: संवेदना और दृष्टि- डॉ. रामदरश मिश्र- अभिनव प्रकाशन, दिल्ली- प्रथम संस्करण- 1975.
14. आठवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में आधुनिकता बोध- डॉ. शोभा देश पाण्डे- चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर- प्रथम संस्करण- 2008.
15. आधुनिक परिदृश्य: आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास- विद्या सिन्हा- वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- प्रथम संस्करण- 2001.

"काव्य में अभिव्यंजना और कला" प्राकृत काव्य के संदर्भ में

डॉ० दुधनाथ चौधरी

अध्यक्ष, प्राकृत एवं जैनशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा।

बाहरी जगत के दृश्यों के देखकर हमारे मन पर जो प्रभाव पड़ता है, उससे प्रभावित होकर हम अपने अन्तर्जगत में कल्पना की सहायता से उसे व्यंजित करते हैं। मनुष्य मात्र का यह स्वभाव है कि वह अपने भाव के आधिक्य-प्रभाव को बाहर प्रकाशित करने के लिए हमेशा लालायित रहता है। जिस वस्तु से वह स्वयं प्रभावित हो उसी से वह दूसरों को भी प्रभावित करना चाहता है। चलते फिरते जब-जब कभी हम कोई अनूठी चीज देखते है और उससे जब हमारे हृदय में आनन्द या विस्मय का भाव भर जाता है तब अपने हृदय के भीतर उस समस्त भाव को न रख कर हम अपने साथियों को भी उस ओर इंगित कर आनन्द या विस्मय के भाव से भर देना चाहते है। दु:ख में भी हमारी यही प्रवृति रहती हैं जब हम दु:खी रहते है, तब दूसरों को सुखी देखने का धैर्य कम ही रखते है। अपने पीछे हम चराचर विश्व को भी अनुकम्पित देखना चाहते है। मनुष्य की यही प्रवृति शेष के साथ एकरूपता जातियता का सम्बन्ध स्थिर करती है।

हमारे मन में जो कुछ है उसको दबाकर रखना बड़ी शक्ति का काम है अर्थात् बहुत ही धैर्य का परिचय देने जैसा हैं स्वभावनुसार उसे अभिवयक्त करने पर ही हमें शांति मिलती है। अभिव्यक्त करने का ढंग बहुत कुछ हमारी योग्यता, प्रतिभा तथा शिक्षा पर निर्भर करता है। जो मुर्ख है अरसिक है उसे हृदय में न तो भाव के लिए जगह और न मान में कल्पना के लिए कोई स्थान। फिर उसके लिए अभिव्यक्ति कोई चीज ही नही। सुनी सुनाई बात को अविकल रूप से तोते की तरह कह देना कुछ और है और अपनी ओर से उसी बात को एक नई शैली में ढालकर कहना कुछ और ही प्रभाव रखता है। इस संदर्भ में एक पाश्चात्य विद्वान के मतानुसार झूठ बोलने से मौलिकता की शक्ति बढ़ती है। सत्य-असत्य निर्णय का भार कर्तव्यशास्त्र के उपर है। यहाँ इसकी मीमांसा का स्थान नही हैं, हम असत्य के सहारे या मनगढ़न्त बातों के आधार पर व्यंजित प्रभाव की चर्चा करना नहीं चाहते। सत्य के प्रभाव में जो स्थायित्व है वह असत्य में सम्भावित भी नहीं है। इतना तो अवश्य ही मानना पड़ेगा कि प्रत्येक असत्य में थोड़ा सा भी सत्य का तत्व मिला ही रहता है। यदि ऐसा न रहें तो थोड़ी देर के लिए भी लोगों को असत्य पर विश्वास न जमे किन्तु हमेशा ऐसा नहीं होता। झूठी बात को भी हम सच्ची मानकर उस पर विश्वास कर लेते है। झूठ बोलकर हम दूसरों को धोखा देने की इच्छा रखते है पर यह नही चाहते की दूसरे भी झूठ बोलकर हमे धोखा दें। यदि झूठ बोलने का नियम ठीक होता तो सभी झूठ ही बोलते और तब कोई एक दूसरे पर विश्वास ही न रखता। फिर हमारे झूठ बोलने का प्रयोजन ही न रहता। इससे यह स्पष्ट है कि झूठ बोलने की इच्छा होना एक अपवाद है। सत्य सदा असत्य का विरोध ही करता। अन्तर इतना ही है कि विज्ञान में हम निरपेक्ष सत्य की जिज्ञासा रखते है पर काव्य में हम अपनी कल्पना और भावना के उत्कर्ष के लिए सत्य को अविकल रूप में ग्रहण नहीं कर सकते। ध्यानपूर्वक देखा जाए तो पता चलेगा कि प्रत्येक कला का पूर्वरूप से यही कहा जा सकता है कि काव्य का हमारे चित पर का द्वार खोलता है। इसी कारण काव्य विधान के लिए हम निरलंकृत अवस्था में सत्य को बाहर नहीं निकालते। जिस प्रकार कोई अभिनेत्री दर्शकों के मनोरंजन के लिए खुब सुसज्जित होकर रंग भूमि पर उतरती है, उसी प्रकार कवि सत्य भी पाठकों के उपर प्रभाव डालने के निमित भावनाओं, कल्पनाओं और बहुवर्णो से संश्लिष्ट होकर प्रकाशित होता है।

काव्य में सत्य की एक अलग प्रकार की भाषा है और प्रयोजन हैं अपेक्षा और औचित्य से मिलता जुलता जो हो, वह भी काव्य में सत्य ही हैं अभिज्ञानशाकुन्तलम् के अंतिम अंक में यदि दुष्यन्त और शुकल्तला के मिलन व्यापार की योजना न होती तो समस्त नाटक ही असत्य हो जाता।

काव्यगत सत्य की प्रवृत्ति:- काव्यगत सत्य के लिए यह सर्वथा अपेक्षित है कि वह आंतरिक आवश्यकता और औचित्य-विचार की अपेक्षा न करें। इससे समस्त अध्ययनशील पाठकों के आशा-क्रम का विवेचन दो दृष्टियों से किया जा सकता है। पाश्चात्य दृष्टि में घटना और चमत्कार का इतना बाहुल्य रहता है कि यह कहना कभी-कभी बहुत कठिन हो जाता है कि आगे की घटना किस ओर मुड़गी। अध्ययनकर्त्ता को असमंजस में डाले रखना वहाँ के काव्य का प्रधान लक्ष्य रहता है। भारतीय दृष्टि में काव्य के लिए इतना असमंजस और घटना चक्र अपेक्षित नहीं हैं। यदि रामायाण में रावण का निधन न हो, महाभारत में कौरवों का पराभव न हो तो दोनों महाकाव्य भारतीय दृष्टि से ही असत्य समझे जाएंगे। काव्यगत सत्य के साथ औचित्य का जो सम्बन्ध है वह कण्व ऋषि के उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा कण्व एक ऋषि है। यह सत्य है ऋषि सांसारिक मोह माया से विरत रहते है यह भी सत्य है। फिर दूसरे पद में शकुन्तला कण्व ऋषि की पालिता कन्या है, यह सत्य है। कन्या की विदाई के समय पिता का हृदय स्नेहाधिक्य के कारण उमड़ आता है यह भी सत्य है। दोनों पक्षों के समन्वय से औचित्य और सत्य का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। यदि कण्व ऋषि शकुन्तला विदाई के कारण प्राकृत जनकी तरह छाती पीट-पीटकर रोते तो उनका ऋषित्व असत्य हो जाता और यदि वे इस करूणाजनक दृष्य को देखकर भी एकान्त रूप से निष्कम्प रहते, स्नेहाद्रता न दिखाते, तो यह असत्य हो जाता कि उन्होंने शकुन्तला को पाला-पोसा है और उनकी छाती के भीतर मनुष्य का एक हृदय भी स्पन्दित हो रहा है। यदि काव्यकार अपने काव्य में

औचित्य का कुछ विचार ही न रखें तो पाठक या श्रोता को रसानुभूति हो ही नहीं सकती। काव्य का यह औचित्य है और इसी औचित्य के कारण सत्य का विधान हुआ है।

जो दृश्य या तथ्य जैसा है उसको ठीक वैसा ही व्यक्त करना काव्य नहीं है। यूरोप का एक साहित्य सम्प्रदाय कला को प्रकृति की अनुकृति मानता है। इस सम्प्रदाय की सबसे बड़ी भूल यही है कि कला को प्रकृति की ठीक अनुकृति मानने पर उसमें कलाकार की आध्यात्मिक सत्ता का मेल नहीं रह सकता। प्रकृति में जो प्रत्यक्ष है वही काव्य में परोक्ष हो जाता है, अतएव, इस परोक्ष को फिर से प्रत्यक्ष बनाने के लिए सामान्य अनुकृति से काम नहीं चल सकता। जो अपना भाव है उसको दूसरे का भी भाव बनाने लिए साधारण ढंग से कृत कार्यता नहीं हो सकती। यदि इस कथन का यह तात्पर्य लिया जाए कि कलाकार का कर्तव्य प्राकृतिक पदार्थो की ऐसी प्रतिकृतियाँ प्रस्तुत करना है, जो हमारी दृष्टियों पर मूल पदार्थो के सदृश ही प्रभाव डालें, जिन्हें देखकर हमें चकित होना पड़े तो यह हमारे सिद्धान्त के ही विरूद्ध न होगा, बल्कि कला के स्वरूप को भी बहुत कुछ विकृत कर देगा। कला में चमत्कार और भ्रम के लिए कोई स्थान नहीं है। मनुष्य की शक्ति प्रकृति की बराबरी नहीं कर सकती, अत: उसका सफल अनुकरण ही कैसे हो सकता है। जगत् के सत्य में हमारी प्रतीति और संवेदना को उभारने की बड़ी शक्ति रहती है, उसके प्रमाण हमारी इन्द्रियों के सम्मुख वर्तमान रहते है। काव्य में हमें इसी शक्ति की उद्भावना करनी पड़ती है। यदि कला प्रकृति की अनुकृति हो तो जो कुछ जगत् में है उसको अविकल रूप से कह देना ही काव्य हो जाता, किन्तु ऐसा नहीं होता। इतिहास से काव्य का काम नहीं चल सकता। प्राकृति पर कृत्रिमता का थोड़ा बहुत बोझ लादा जाता है, परन्तु यह सत्य के अनुरोध से ही करना पड़ता है। कृत्रिमता का यह बोझ में सत्य तक पहुँचाने में बहुत सहायता करता है। त्रिनेत्र के रोष से कामदेव के भस्मी भूत हो जाने पर पति ने यर्थाथ में कितना विलाप किया इसका हमारे पास कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं, परन्तु महाकवि कालिदास ने रति विलाप का जो करूण तथा वैदग्ध्यपूर्ण वर्णन किया है उससे क्या हमारे हृदय की रागिनी विकल नहीं हो जाती फिर क्या उस वर्णन की असत्यता हमारी प्रतीति में बाधक होती है? यही प्राकृत सत्य और काव्यगत सत्य का अंतर है। काव्य में जो सत्य निहित रहता है वह प्राकृत सत्य से कम महत्वपूर्ण नहीं। महाकवि कालिदास ने कला के अनुरोध से प्राकृत पर थोड़ा बहुत असत्य का बोझ अवश्य लादा होगा परन्तु अब वह सत्य में इतना सन्निहित हो गया है कि उसके लिए सत्य से अलग कोई दूसरी संज्ञा हो ही नहीं सकती। कला को प्राकृति की अनुकृति आपनाने से उसका सजीवता नष्ट हो जाती है और सजीवता नष्ट हो जाने पर कला रह ही नहीं जाती।

कलावादियों का एक दूसरा सम्प्रदाय कला के लिए ही मानता हैं भारतवर्ष में इस साम्प्रदाय के पोषक कवीन्द्र रविन्द्र ठाकुर कहे जाते हैं। इस सम्प्रदाय का जन्म तथा विकास यूरोप के फ्रेन्च साहित्य में हुआ हैं। भारतवर्ष की तरह यूरोप में भी इस सम्प्रदाय के अनुयायियों की संख्या बहुत ज्यादा नहीं हैं संसार की प्रत्येक वस्तु का कुछ न कुछ उपयोग है, उसका कोई न कोई व्यापक लक्ष्य होता है। जिस किसी वस्तु का सम्बन्ध मानव जीवन के साथ स्थापित किया जाएगा उसका अवश्य ही कुछ उद्देश्य बताना पड़ेगा, पर उद्देश्य चाहे साधारण हो या असाधारण कला का उद्देश्य यदि मानव समाज से हटकर कला ही रखा जाये तो कलाकार को कला निर्माण में कैसे रूचि होगी। यह भी विचारणीय तथ्य हैं जिस वस्तु का कोई उद्देश्य नहीं, जिसका कुछ उपयोग नहीं उसका निर्माण ही क्यों करें। काव्य कला का भी उद्देश्य होता है। मनुष्य के सभी काम किसी न किसी उद्देश्य से ही होते हैं। बाहर से कुछ काम भले ही व्यर्थ और अव्यावहारिक लगे परन्तु उसके मूल में कोई उपयोगी प्रवृति ही कार्य करते हैं। बच्चे का अनुकरण से कागज या स्लेट पर व्यर्थ का घिसना भी उपयोग से खाली नहीं है। उससे बच्चे की प्रवृति लिखने की ओर बढ़ने के साथ ही उसका मन भी बहलता हैं फिर कला जैसी उपयोगी वस्तु को उद्देश्यहीन बताना कितनी अव्यावहारिक बात है।

"कला-कला के लिए है" इसका तात्पर्य समझने में बहुत ही वाग्विस्तार करना पड़ता है। इसका तात्पर्य कला की उद्देश्यहीनता से नहीं है। इस कला सम्प्रदाय के अनुयायियों ने कला के स्वरूप को व्यर्थ के विलय से इतना प्रच्छन्न कर दिया है कि उसका यर्थाथ रूप सहज ही स्पष्ट नहीं हो सकता। स्वयं कवीन्द्र-रवीन्द्र ने भी कला की उद्देश्यहीनता उस रूप में स्वीकृत नहीं की है जिस रूप में कलावादी प्राय: बोला करते है। उनका विचार इस सम्बन्ध में यही है कि कला जिस आकृति का सहारा लेती है उससे वह अलग नहीं हो सकती इस सम्बन्ध में कहने का तात्पर्य इतना ही है कि कवि द्वारा मौलिक रूप से जिस पदावली का योजना की जाएगी तो कला का रूप विकृत हो जाएगा। इस सम्बन्ध में काव्य प्रेमी रवि बाबु का मत है कि ज्ञान के विषय को लेकर विभिन्न लोगो ने भिन्न-भिन्न भाषाओं द्वारा अनेक प्रकार से प्रचारित किया जा सकता है। इसी प्रकार उसका उद्देश्य यर्थाथ रूप से सफल हुआ किन्तु भावों के विषय में यह बात नहीं हो सकतीं वे जिस मूर्ति का सहारा लेते है उससे फिर अलग नहीं हो सकते।

यह बात स्पष्ट है कि कोई कलाकार "स्वान्त: सुखायं कला का निर्माण नहीं करता। इतना हो सकता है कि जिस दिशा में उसकी प्रवृति हो उसी में वह कला का विधान करें। जीवन को छोड़कर कला ही रहता हैं इस संदर्भ में गोस्वामी तुलसीदास यह भले ही कहे कि उन्होंने अपने रामचरित्मानस की रचना स्वांत: सुखाय की है, पर मानस के पढ़ने पद-पद पर यह लक्षित होता है कि उन्होंने जनता को लक्ष्य कर ही उसकी रचना की है। यदि गोस्वामी जी ने अपने रामचरितमानस का लक्ष्य जन समाज में प्रचारित करना न रखा होता तो उसके बहुत से अंश क्षेपक समझ समझकर निकाल दिये जा सकते थे। प्रत्येक मनुष्य अपनी रूचि से वही काम करता है जो उसे अच्छा लगता हैं इसी प्रकार कलाकार भी अपनी रूचि अनुसार ही कला का विषय चयन करता है। विषय निर्वाचन तथा प्रतिपादन शैली में हम स्वान्त: सुखाय को कुछ दूर तक मान सकते है। लेकिन कला के विधान काल में जन समाज को भूल जाना संभव नहीं। इस सम्बन्ध में कवि रवीन्द्र ठाकुर का यह कथन बहुत ही महत्वपूर्ण हैं वे कहते है कि- शुद्धभाव से एकमात्र अपने आनन्द के लिए ही लिखने को साहित्य नहीं कहते। कुछ लोग कविता रचकर कहते है कि जैसे पक्षी अपने आनन्द के उल्लास में गाता है उसी प्रकार लेखक की रचना का उच्छ्वास भी अपने लिए ही होता है। मानो पाठक उसे छिपाकर सुना करते है। पक्षी के गान में पक्षी समाज के प्रति कुछ भी लक्ष्य नहीं होगा इस बात पर दबाव नही बनाया जा सकता। नही होता तो नहीं सही पर इसे लेकर तर्क करना व्यर्थ हैं किन्तु लेखक की रचना का प्रधान लक्ष्य पाठक समाज ही होता हैं इसलिए इस संदर्भ से उपरोक्त बातें सही साबित हो जाता है कि रवि बाबु भी कला का उद्देश्य मानते हैं इस संदर्भ में ए0सी0 ब्रॉड ली ने ऑक्सफोर्ड के अपने कविता विषयक व्याख्यान

में तर्कों के विराट अयोजन के साथ 'कला' कला के लिए ही मानी हैं। उन्होंने कला को बाह्य संसर्ग से बिन्कुल मुक्त रखकर उसका अलग ही स्वतंत्र पूर्ण एवं स्वयं विद्यायक संसार माना हैं। जवीन पक्ष को छोड़ देने से कला में कुछ तत्व ही नहीं रह सकता। एक कलाविद् ने जीवन से निरपेक्ष रहकर ही का काव्यानुशीलन का ढंग बताया हैं। ब्रॉडले की अन्य बातों को हम विशेष महत्व नही देते, किन्तु कला का अर्थ स्वयं कला ही है यह कहकर उन्होंने बड़ी मार्मिकता का परिचय दिया है। किसी काव्य का अर्थ उस काव्य से भिन्न नही हो सकता। कवि के संगठित पदों को छोड़कर अन्य पदों से कला के निर्वाह के साथ काव्य की व्याख्या नहीं हो सकती। महाकवि कालिदास के 'रघुवंश' और भवभूति के 'उतररामचरित' आदि काव्य-नाटक में कला जिन स्वरूपों में व्यक्त हुई है उनसे भिन्न उनका अर्थ नही हो सकता।

'कला, कला के लिए' का यदि इतना ही तात्पर्य रहे तो अच्छी बात है, किन्तु जीवन से निरपेक्ष रखना उसके महत्व को कम करना है। रिचड्र्स महोदय ने अखण्ड्य तर्कों और मार्मिक युक्तियों से कलावाद की इस बढ़ती हुई प्रवृत्ति पर अच्छा कुठाराघात किया है। उनके मतानुसार कविता का विश्व शेष सृष्टि से भिन्न कोई यथार्थता नहीं रखता इनके न खास नियम है और न विचित्रताएँ। प्रत्येक कविता हमारी अनुभूति का एक खण्ड-मात्र होती है। अन्य अनुभूतियों से काव्यानुभूति में सबसे बडी भिन्नता की बात यही है कि इसमें प्रेषणार्थता का होना अनिवार्य है। अपनी अनुभूतियों को दूसरे हृदय तक पहुँचाने में यदि हम असमर्थ रहे तो वह काव्यानुभूति न होकर सामान्य अनुभूति ही रह जाएगी। इन सब बातों से यह निश्चित होता है कि कला किसी नई ओर अपरिचित दुनिया की चीज नहीं हैं वह इसी संसार की वस्तु है और हमारे जीवन के साथ उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि वह अलौकिक रहती तो उससे किसी रस की प्रतीति न होती केवल कुतूहल ही बढ़ता।

कुछ लोग कला में द्वित्व की भावना रखते हैं। चाहे वह काव्य-कला हो या चित्र-कला दोनों में दो-दो मूर्तियों का विधान करते हैं एक स्थूलता की मूर्ति और दूसरी सौन्दर्य की संश्लिष्ट भावना की। किसी काव्य-कला की पहली मूर्ति शब्द, छन्द, वाक्य-विन्यास आदि की रहती है और दूसरी उसकी सहायता से कल्पना में जो बिम्ब उपस्थित होता है उसकी चित्रकला में भी पहली मूर्ति उसके पट की स्थूलता की और दूसरी उससे जो भाव-ग्रहण किया जाता है उसकी। किन्तु, विचार करने पर इन मूर्तियों का द्वित्व सर्वथा आस्तित्वहीन ठहरता है। कला में उसी वस्तु का महत्व है, जो हमारी आत्मा का स्पर्श कर सकें। पहली मूर्ति का चिंतन हम कभी नहीं करते, उससे उत्पन्न सौन्दर्य-भाव का मूल्य ही कला का लक्ष्य हैं। काव्य में हमारा ध्यान शब्द, छन्द, वाक्य विन्यास आदि पर जाता है सही और इन्हीं की सहायता से हम बिम्ब-ग्रहण भी करते है, किन्तु इस बिम्ब-ग्रहण के अतिरिक्त कला का दूसरा साध्य नहीं है। बिम्ब ग्रहण के समय हम अन्य बातों की कल्पना भी नहीं करते। अत: कला में द्वैत का निरूपण करना व्यर्थ ही नहीं, झंझटों को बढ़ाना भी है।

कलावादियों का एक भिन्न सम्प्रदाय सहजानुभूति और कला की एकात्मता प्रतिपादित करता हैं पर कुछ लोग यह मानते हुए कि कला सहजानुभूति है, कहते है, वह एक दूसरी श्रेणी की सहजानुभूति हैं साधारण सहजानुभूति से उसमें कुछ विशेषता हैं। विशेषता यह बताई जाती है कि जिस प्रकार वैज्ञानिक सिद्धान्त विचार का विचार ही कुछ है और न सहजानुभूति की सहजानुभूति ही। छोटा-से छोटा विचार भी स्वत: पूर्ण होता है। विज्ञान जिस तरह प्रत्यक्ष अनुभवों के स्थान पर विचार की स्थापना करता है उसी तरह कभी-कभी बहुत से छोटे-छोटे विचारों के स्थान पर एक बड़े विचार की, पर उसके निर्माण की क्रिया सदा एक सी होती है। यही सहजानुभूति अधिक विस्तृत, अधिक मिश्रित हो सकती है। कला की सहजानुभूति अधिक विस्तृत, अधिक मिश्रित हो सकती है, किन्तु वह होती है, इन्द्रिय-बोध तथा तीव्रता से उसमें कोई वास्तविक विशेषता नहीं रहती। दोनों एक ही हैं भेद का आडमबर दिखना वृथा है। दुष्यन्त से तिरकृत तथा अपमानित होकर- शकुन्तला ने अपने दु:ख तथा क्षोभ को जिस एक शब्द-अनार्य-द्वारा व्यक्त किया या उसमें और एक लम्बे दु:खान्त नाटक में कोई आंतरिक भेद नही। उस दु:खान्त नाटक के लिए नई सहजानुभूति के साथ-साथ पुरानी अभिव्यंजना को भी फिर से प्रभाव में रूपान्तरित कर एक बड़ी सहजानुभूति में मिला देना होगा। पुरानी सहजानुभूति या अभिव्यंजना का उससे अधिक और कोई मूल्य नहीं। इसी प्रकार का भेद कलाकार और साधारण मनुष्य में है। कुछ लोग अपने अन्त:करण की संकुल अवस्थाओं की अभिव्यक्ति करने में दूसरों की अपेक्षा अधिक पटु होते है। उनकी उस ओर विशेष रूचि होती है। ऐसे ही लोगो को हम कलाकार महाकवि, प्रतिभाशाली इत्यदि कहते है। उनको हम मानवजाति से अलग नहीं कर देते या अपने लिए ही हम कोई दूसरी संज्ञा चुनकर मानवता पर उन्हें सर्वाधिकार नहीं दे देते। सभी मनुष्य है, परन्तु यह सर्वथा सत्य और स्वाभाविक है कि प्रत्येक मनुष्य की बुद्धि, विचार, भाव, विवेक, प्रतिभा अलग-अलग स्तर के है। उसी प्रकार सहजानुभूति की कोई विशेष श्रेणी निश्चित नहीं की जा सकती। यदि श्रेणी विभाग किया जाए तो संसार में जितने मनुष्य है, उतनी ही श्रेणियाँ होगी, क्योंकि एक मनुष्य ठीक दूसरे की भाँति कल्पना, भावना या चिन्तन नहीं कर सकता। उसमें थोड़ा अन्तर भी अवश्य होगा। कला की ओर जिनकी रूचि नहीं, जो न तो कल्पनाशील है और न प्रतिभा संपन्न ही, उनको सहजानुभूति के कुछ चित्र दिखाई दे दे परन्तु यदि वे अंकित किये जाए तो पागल के प्रलाप-मात्र होंगे। कला उनसे कोसो दूर बैठकर अपने भाग्य पर आँसू बहाने से ज्यादा कुछ नहीं हो सकता।

पिछले अध्याय में इस बात की चर्चा हो चुकी है कि सहजानुभूति और अभिव्यंजना में अन्तर नहीं हैं। सहजानुभूति होते ही अभिव्यंजना प्रस्तुत हो जाती हैं यह दूसरी बात है कि उस अभिव्यंजना को वर्णो से अलग रखा जाए।

कला निर्माण में चेतना-अचेतना की स्थिति:- कुछ लोग इस बात पर चर्चा करते है कि कलात्मक अभिव्यंजना अचेतनावस्था में होती है। शायद इसी कारण प्रतिभाशली पागल समझे जाते है। वस्तुत: प्रत्येक मानव-क्रिया की भाँति कला भी चेतनावस्था में निर्मित की जाती हैं। मनुष्य की जिस क्रिया या प्रयत्न में इच्छा का योग नहीं है, वह क्रिया या प्रयत्न हो हीं नही सकता। यदि ऐसा न हो तो मनुष्य की स्वाभाविक क्रियाओं और कलाकृतियों में कोई अन्तर ही न रहता। इतना तो अवश्य ही सत्य है किकलाकार की चेतना एक इतिहासकार या समालोचक की चेतनता नही होती। इसके विपरित कलाकार में भावुकता और मनोवेग का आधिक्य कलावस्तु परिचायक है और गाम्भीर्य उसकी अभिव्यंजना शक्ति का जिसके द्वारा प्रत्येक कलाकार अपनी मानसिक अनुभूतियों को संयमित रूप से अभिव्यक्त करता हैं। अभिव्यंजना का तत्पर्य ही हमारी संवेदनाओं पर आध्यात्मिक सत्ता का प्रमुख है। हमारे पशुत्व पर मनुष्यत्व की विजय हैं अत: कलाकार को हम अचेत न कह कर कला संलग्न या तन्मय, भले ही कह सकते है। जिस कला का निर्माण अचेतनावस्था में होता है उसमें चेतन जगत् के

ग्रहण रूप को देखकर विस्मित होना पड़ेगा। विस्मय को कला में स्थान नहीं दिया जा सकता। मानव- प्रकृति में आनन्द और विषाद का कोई माध्यम-भाव क्रियाशील नहीं होता। स्थिर और निष्कम प्रकृति में मानवता की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। आनन्द और विवाद के अभाव में मानव प्रकृति अद्धय हो जाती है अत: मनोवेग और कर्म से ही जीवन में कला का विधान संभव है। कला निर्माण के दो भेद बताए गए हैरू- मनो वेग और कर्म से ही जीवन में कला का विधान संभाव हैं कला निर्माण के लिए न तो पूर्ण चेतनता अपेक्षित है और न ही अचेतनता वह एक ऐसी अवस्था है जिसमें कलाकार की समस्त शक्ति प्रवृति, मनोवेग एक ही दिशा में कार्य करती हैं, यदि ध्यान पूर्वक अध्ययन और विचार किया जाए तो कला निर्माण के दो भेद समाने आ जाते है प्रथम है- स्वत: प्रसूत और दूसरा चेतना युक्त, मनोवेग की अवस्थिति दोनों में अनिवार्य है। पहले में कलाकार को यह स्पष्ट ज्ञान नहीं रहता कि वह वास्तव में कला का निर्माण कर रहा है और दूसरे में उसकी समस्त चेतनता बाह्य जगत् की परिस्थितियों से संघर्ष करती हुई कला का विधान करती हैं, जिस अभिव्यक्ति में मनोवेग की उत्कृष्ट प्रेरणा रहेगी वह निश्चय ही सुन्दर होगी। देश में फैले हुए ऐसे ही छोटे-छोटे गीतों के आधार पर महाकवि अपने महाकाव्यों का निर्माण करते है। स्वत: प्रसूत गीतों में व्यक्तितव का विकास उतना नहीं हो सकता जितना, चेतना युक्त होकर काव्य निर्माण हैं। रामायण और महाभारत में बाल्मीकि तथा व्यास का व्यक्तित्व बहुत स्पष्ट नहीं हो सका हैं इसका कारण यह है कि इन दोनों महाकाव्यों में भारतीय जीवन के ऐसे मिश्रित वर्णन है, जिनमें से कवि के व्यक्तित्व का ज्ञान प्राप्त करना कठिन हो जाता हैं। रामायण पढ़ते समय हमारे हृदय में वाल्मीकि की बहुत कुछ धाक बनी रहती है, पर व्यास का अस्तित्व एक दूसरे ढंग से महाभारत में व्यक्त हुआ हैं, यदि इन दोनों महाकवियों ने स्वयं अपने को भी अपने-अपने महाकाव्यों एक-एक पात्र बना न लिया होता तो वह ज्ञान भी जो उन दोनों के सम्बन्ध में हमें प्राप्त न हो सकता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि देश में प्रचलित गीतों के चित्र उतने पूर्ण नहीं होते, उनमें विस्तार का उतना ध्यान नहीं रहता उनके रंग उतने भड़कीले नहीं होते, परन्तु हमें तो यह अपूर्णता उस पूर्णता से कहीं अधिक अच्छी लगती हैं। संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी की बहुत सी मुक्तक कविताओं में हमने ऐसी अपूर्णता देखी हैं। वास्तव में यह आकस्मिकता की परिचायिका हैं। यह बात नही हैं कि अभिव्यंजना ही अपूर्ण होती हैं ऐसा तो होता ही नहीं है। केवल बाह्य उपकरण अपूर्ण से दिखाई देते है। अपूर्णता का अभास होता हैं उनके वे मुक्त काव्य आरंभ में सरल-स्वाभाविक शब्दों से रेखा चित्र से बनाते चलते है, भाव धीरे-धीरे जागृत होता चलता है, परन्तु अंत होते-होते कवि की लेखनी स्वयं जैसे उतेजित हो उठती है। एक दो उक्तियाँ ऐसी मर्म स्पर्शिनी बन पड़ती हैं कि सारे काव्य के साथ पाठक या श्रोता का हृदय भी एक अत्यंत उँची रस-भूमि पर पहुँच जाता हैं इसी आधार पर छोटे-छोटे भाव खण्डों के आधार पर काव्य का निर्माण हो जाता है।

संवेदना और कला में भी काव्य जगत में स्थान प्राप्त हैं कोई संवेदना, कोई मानसिक अनुभव तब तक कला का स्वरूप ग्रहण नही करता जब तक वह हमारी आध्यात्मिक सत्ता का ही एक अंग नहीं बन जाता और यह सौभाग्य उसे तभी प्राप्त हो सकता है, जब वह उस आध्यात्मिक क्रिया की सहायता से आकृति में परिणत हो जाए। हमारी आत्मा अपनी क्रिया से संवेदना तथा उसके कारण भूत इन्द्रिय बोध और प्रभाव को सर्वथा रूपांतरित कर देती है। अपनी विशेषज्ञता की छाप लगाकर वह अपनी श्रेणी का ही बना लेती है। यदि कोई अपनी प्रणयिनी के आसव की व्याख्या जैसी बिम्बाघरों, उसके भृकुटि- विलास को उसके उभरते हुए यौवन को, उसकी सहज चपल, मनमोहनी चेष्टाओं को देखकर आलिंगन की लालसा से आगे बढ़ सकता है, परन्तु यह सदा सत्य नहीं है कि सुन्दर योजना प्रस्तुत करने में सक्षम हो सकेगा। यदि व्यक्ति एकान्त में बैठकर, उसी रतिभाव से प्रेरित होकर अपने मानस-पटल पर उसी सुन्दर रूप का अपने भावों के मनोहर रंगों में रंगा हुआ एक चित्र अपनी कल्पना-तुलिका से उपस्थित कर सकता है। तो संभव है वह कला का विधान कर सके। यहाँ पर एक बात स्मरण योग्य है कि अनुभूत संवेदन की केवल स्मृति से ही काम न ही चल सकता। कलात्मक अभिव्यक्ति और भाव प्रेरित सहज अनुभव एक ही कोटी के नही होते। एक हमारी आत्मा का काम है और दूसरा हमारे मन का।

अभिव्यंजना में अभिनय का योग:- हम अपनी सहजानुभूति को केवल शब्दों में ही प्रकट नहीं करते बल्कि अपने अनुभवों और इंगितों से भी उनको व्यंजित करने का चेष्टा करते है। जब कोई अल्हड़ और सहृदय ग्रामीण युवक अपनी प्रिय बाला को पनघट पर अपने घड़े में जल करते हुए देख लेता हैं और दूसरों की दृष्टि बचाकर या किसी बहाने से ही उससे अपने मन की एक दो बात कर आता है, तब क्या वह अपनी मित्र मण्डली में उस बाला की चेष्टाओं का वर्णन केवल शब्दों में ही न करता है उस अभिव्यक्ति में उसका सारा शरीर योग देता हैं। उस प्रिय बाला का जल में घड़े का डुबोना फिर अपनी खुब सुरत बाहुओं को उपर उठाकर केश-पाश संभालना, गोडुली को झाड़कर सिर पर रखना, भरे हुए घड़े को उठाकर घुटने पर रख थोड़ा पानी उलीचना और पुन: उसको सिर पर रख अपनी सहेलियों के साथ विहँसती, बात-चीत करती हुई घर जाने के दृश्य का वर्णन जिस उमंग के साथ जिस भाव-भंगिमा के साथ वह करता है उसमें अनुभवों के द्वारा अभिनय भी होता चलता है, उसकी सभी प्रकार क्रियाएँ मिलाकर अभिव्यंजना है, सब मिलाकर कला है और साथ में अभिनय का योग भी होता है।

अभिव्यंजनावाद में मानव चरित्र का निर्माण:- मनुष्य का चरित्र ही मनोवेगों के घात- प्रतिघात का परिणाम हैं एक ओर हमारी व्यक्तिगत स्वाभाविक प्रवृति रहती है और वृहतर सामाजिक शिष्टता। हमारी इच्छा वासना, कामना विचार आदि का समाज की रीति, परम्परा सभ्यता, कानून आदि से संघर्ष होता रहता है। हम वही काम और उसी ढंग से कर सकते है, जिसका समर्थन समस्त नहीं, तो कम से कम उसका एक बड़ा अंश करें। समष्टि को छोड़कर व्यष्टि के प्रति भी हमारी यही परिस्थिति रहती है। हमारे मन में जितनी भावनाएँ उठती है उन सबको बिना विचार किये किसी व्यक्ति के समक्ष हम प्रकाशित नहीं कर देते। उनमें से कुछ भावनाओं को जीवन की गतिविधि तथा नैतिकता पर विचार रखते हुए, चुनकर अभिवयक्त करते है। अत: मन में किसी भावना के उदित होते ही हम यह निश्चय करते है- किससे करें केसे करें कब करें। कभी-कभी जल्दबाजी में हम बिना सोचे-विचारे कुछ बोल जाते है। कभी अपने कथन के औचित्य तथा युक्तिपूर्णता पर हमें खुशी होती हैं और कभी उसके अनौचित्य तथा अनुपयुक्ता पर पश्चात् भी।

इस प्रकार जिस बात को हम अमीत से कह सकते है उसी को सुजीत से नही कह सकते। प्रत्येक व्यक्ति के लिए हमारे मन में अलग-अलग भाव और अलग-अलग विचार रहते है और इन्हीं से प्रेरित होकर हम कुछ कहते या करते है जो हमारी प्राकृति और सभ्यता के संघर्ष से उत्पन्न होता हैं काव्यरचना

भी हमारे इसी संघर्ष का परिणाम हैं हमारी रचना में कहीं हमारी प्रकृति-विशेष लक्षित रहती हैं कही सामाजिक भिष्टता कहीं पर दोनों। इसी प्रयत्न के कारण काव्य में यर्थाथवाद और आदर्शवाद का विधान किया जाता है। कला दोनों प्रकार के वादों के लिए सुरक्षित हैं। अभिव्यंजनावाद में किसी एक वाद का पक्षघर नहीं हैं। पारस्परिक बातचीत या किसी वाद-विवाद में जब हमारे मत एक दूसरे से भिन्न होते है, तब उसका कारण विशेषत: यह नहीं होता कि हमारे अनुभव भिन्न-भिन्न हैं। बल्कि उस विषय के हमारे निर्णय ही परस्पर विरोधी होते है।

निष्कर्ष:- अभिवयंजना को भाव प्रकाशन की शैली मानकर चलने से उसमें कलाकार के व्यक्तित्व की खोज करनी पड़ेगी कथा वस्तु और जीवन वृत दोनों दो अलग-अलग चीजें है। मनुष्य पूर्णरूप से अपने को कभी व्यक्त नहीं करता। कितने काव्याकारों की जीवनियों तथा दन्त कथाओं से यह स्पष्ट होता है कि जितना द्वन्द्व उनके जीवन में रहा उतना उन्होंने अपने काव्यों में नही उकेरा और जितना अपने काव्यों में किया उतनी विषमता उनकी जीवन में नहीं रहा। काव्य में अभिव्यंजना तथा कला का स्पष्ट प्रारूप तैयार करने में काव्यगत सत्य की प्रवृति कला के लिए, कला-के क्षेत्र में चेतनता, अचेतनता कला निर्माण के भेद, अभिव्यजना में अभिन्य का योग, अभिव्यंजना वाद में मानव-चरित्र का निर्माण आदि बहुत सी विधाओं के सामंजन तथा समायोजन से एक स्वतंत्र काव्य में अभिव्यंजनों और कला का संवर्द्धन हो सका।

संदर्भ

1. काव्य में अभिव्यंजनावाद- डॉ0 लक्ष्मीनारायण सुधांशु प्रकाशक- बिहार राष्ट्रभाव-परिषद्-पटना।

संस्कृत की चुनौतियाँ एवं समाधान

डॉ० सन्तोष देवी

संस्कृत सहायक प्राध्यापिका, चौ० ईश्वर सिंह कन्या महाविद्यालय, फतेहपुर-पूण्डरी, कैथल (हरियाणा)

शोध-आलेख सार

संस्कृत शिक्षण के लिए उपयुक्त वातावरण का अभाव है। कुशल व प्रशिक्षित प्राध्यापकों का भी अभाव है। संस्कृत विद्यालयों और महाविद्यालयों में दृश्य-श्रव्य उपकरणों का अभाव है। अभिभावक और छात्रगण भी संस्कृत विषय के प्रति उदासीन हैं। जीविकोपार्जन की समस्या भी प्रमुख है। सरकार भी इस विषय के लिए उदासीन हैं। अतः संस्कृत व संस्कृति की रक्षा के लिए आधुनिक समय में संस्कृत-अध्यापन आवश्यक और उपयोगी हैं; इसके लिए संस्कृतज्ञों को मिलकर स्थान-2 पर परिषद्, सभा, गोष्ठी, भाषण तथा सम्मेलनों का आयोजन करवाना होगा। जो नवीन लेखक और वक्ता होंगे, उनके लिए पुरस्कार का प्रबंध करना होगा तथा उनका उत्साह बढ़ाना होगा।

मुख्य-शब्दः त्यागभाव, ईश्वरसमर्पण, क्षमाशीलता, अनासक्त भाव।

संस्कृत भारतीय संस्कृति का मूल है। भारतीय संस्कृति विश्व की सभी संस्कृतियों में प्राचीन तथा श्रेष्ठ है। संस्कृत में ही भारतीय संस्कृति सुरक्षित है। वेदों, उपनिषदों, धर्मसूत्रों, दर्शनों, स्मृतिग्रंथों, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता, नीतिकाव्यों तथा कथाकाव्यों में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-इस पुरुषार्थचतुष्ट्य तथा कर्तव्य और अकर्तव्य का विस्तृत बोध करवाया गया हैं।

इन सभी ग्रंथों में परस्परसहयोग, धैर्य, निर्भयता, मित्रता, सत्संगति, सत्यनिष्ठता, अहिंसा, सदाचार, नम्रता, लोभपरित्याग, कुसंगतित्याग, शिष्टाचार, वीरता, सन्तोष, क्षमा, निरभिमान, गुणवत्ता, स्वामिभक्ति, देशभक्ति, मातृपितृ-गुरुसमादर, दक्षताविवेक, कर्तव्यनिष्ठा तथा दयाशीलतादिगुण वर्णित हैं। संस्कृत के ज्ञान से ही इन सभी गुणों का ज्ञान तथा प्राप्ति हो सकती है। इन सभी गुणों की प्राप्ति के लिए हम सभी को संस्कृत के प्रति रूचि तथा संस्कृत साहित्य का अध्ययन करना आवश्यक है। परंतु आजकल विद्यालयों और महाविद्यालयों में विद्यार्थियों की संस्कृत के प्रति रूचि कम होती जा रही है जो उचित नहीं हैं।

भारतीय संस्कृति में त्याग की भावना स्थल-स्थल पर दिखाई देती है क्योंकि यह जो कुछ स्थावर और जंगम जगत् हैं, वह ईश्वर से व्याप्त हैं, आच्छादनीय है अर्थात् सब में ईश्वर को व्यापक समझना चाहिए। उसका त्यागभाव से भोग करना चाहिए अर्थात् ईश्वरसमर्पण करके व्यवहार करें। लालच न करें अर्थात् कभी किसी के धन के प्रति आसक्ति न करें।[1]

भारतीय संस्कृति में धर्म की प्रधानता है। महर्षि मनु ने 'मनुस्मृति' में धर्म के दश लक्षण बताए हैं - धृति (धैर्य), क्षमा (क्षमाशीलता), दम (तप), अस्तेयं (चोरी न करना), शौच (पवित्रता), इन्द्रियनिग्रह (इन्द्रियों पर नियंत्रण), धी (बुद्धिमता), विद्या (ज्ञान), सत्यं (सत्याचरण) और अक्रोध अर्थात् क्रोध न करना-ये दश धर्म के लक्षण हैं।[2]

उपर्युक्त सभी लक्षण हमारी भारतीय संस्कृति को निरंतर पुष्ट रखने वाले ऐसे संस्कार हैं जिनका अनुसरण प्रत्येक भारतीय को अपने जीवन में करना चाहिए तथा अपने जीवन को उन्नत बनाना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विद्यालय स्तर से ही संस्कृत का कुछ पाठ्यक्रम लागू करना होगा और फिर धीरे-धीरे बड़ी कक्षाओं में इसे बढ़ाना होगा तथा साथ ही संस्कृत को बड़े ही सरल अनुवाद से तथा व्यावहारिक ढंग से पढ़ाना होगा, ताकि विद्यार्थियों में संस्कृत के प्रति रूचि बढ़े। इसके लिए अध्यापकों के साथ-साथ बच्चों के अभिभावकों को भी प्रयास करना पड़ेगा कि वे संस्कृत विषय को लें, क्योंकि संस्कृत प्रत्येक मनुष्य को सही दिशा प्रदान करने वाली है तथा समाज की सर्वविध उन्नति के लिए, एकमत और सामंजस्य के लिए अभीष्ट हैं; जैसा कि वेद में कहा गया है कि हे ईश्वर। हमारे विचार, हृदय तथा मन-सब कुछ समान हों।[3]

'मनुस्मृति' में सदाचरण से सम्बन्धित एक श्लोक में कहा गया है कि नित्य प्रणाम करने वाले तथा वृद्धजनों की सेवा करने वाले व्यक्ति की चार चीजें सदा बढ़ती रहती हैं - आयु, विद्या, यश और बल।[4] इस प्रकार इस श्लोक के माध्यम से हमारे युवाओं को अपने बुजूर्गो की सेवा तथा सम्मान की शिक्षा अवश्य मिलेगी।

श्रीमद्भगवद्गीता में उपदेश दिया गया है प्रत्येक प्राणी को अनासक्त भाव से कर्म करना चाहिए, फल की कभी चिन्ता नहीं करनी चाहिए और कर्म न करने में भी कभी आसक्ति नहीं होनी चाहिए।[5] जबकि वर्तमान में युवा वर्ग या अधिकाँश मनुष्य पहले फल (परिणाम) की चिंता करते हैं बाद में कर्म करने की सोचते हैं, जिसके कारण वे जीवन में उन्नति नहीं कर पाते। लेकिन यदि जीवन में आगे बढ़ना है तो हम सभी को गीता के कर्मविषयक इस सिद्धान्त का अपने जीवन मे अनुसरण करना होगा तथा इसके लिए पहले संस्कृत का ज्ञान अर्जित करना होगा।

संस्कृत के ज्ञान के प्रचार और प्रसार के लिए महान् पुरुषों के सदाचरण से सम्बन्धित तथा सरल और सुबोध संस्कृत भाषा में सरल नाटकों का निर्माण करके समाज में उसका प्रदर्शन करना चाहिए। महर्षि मनु की दृष्टि में सदाचरण ही परम धर्म है।[6] परस्पर विश्वास का मूल कारण है तथा सर्वत्र सम्मान प्राप्त कराने वाला है।

संस्कृत का व्याकरण मनोवैज्ञानिक और विश्वप्रसिद्ध है तथा महर्षि पाणिनिकृत नियमों पर आधारित है। व्याकरण को सरल अनुवाद तथा अभ्यास द्वारा पढ़ाया जाना चाहिए। अध्यापन के समय नये भावों को बताने वाले नये संस्कृत शब्दों को संस्कृतस्वरूपप्रदान करके आत्मसात् करवाना होगा। हमारा समस्त ज्ञान, विज्ञान, समाजशास्त्र, दर्शन, चिकित्सा- शास्त्र, गणित, ज्योतिषादि तथा सभी सामाजिक, राजनैतिक, तथा वैज्ञानिक ग्रंथ संस्कृत भाषा में रचित हैं। हमारे जीवन में जन्म से मृत्युपर्यन्त होने वाले सोलह संस्कार भी संस्कृत भाषा में ही सम्पन्न होते हैं, अतः संस्कृत की रक्षा के लिए तथा प्रचार एवं प्रसार के लिए संस्कृतज्ञों को सरल संस्कृत में ही व्यवहार करना चाहिए। भाषण, लेखन, वाद-विवाद, संलाप तथा पत्र-व्यवहार में संस्कृत का ही प्रयोग करना चाहिए।

सरकार की सहायता से हमारे सभी संस्कृत-ग्रंथों का अनुवाद विश्व की सभी प्रधान भाषाओं में होना चाहिए। सभी प्रमुख उपयोगी ग्रंथों का संस्करण सारांश रूप में तथा थोड़े मूल्य के साथ प्राप्त होना चाहिए। अन्य भारतीय भाषाओं के साथ ही संस्कृत भी सभी विद्यालयों में अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाएं।

परंतु संस्कृत शिक्षण के लिए उपयुक्त वातावरण का अभाव है। कुशल व प्रशिक्षित प्राध्यापकों का भी अभाव है। संस्कृत विद्यालयों और महाविद्यालयों में दृश्य-श्रव्य उपकरणों का अभाव है। अभिभावक और छात्रगण भी संस्कृत विषय के प्रति उदासीन हैं। जीविकोपार्जन की समस्या भी प्रमुख है। सरकार भी इस विषय के लिए उदासीन हैं। अतः संस्कृत व संस्कृति की रक्षा के लिए आधुनिक समय में संस्कृत-अध्यापन आवश्यक और उपयोगी हैं; इसके लिए संस्कृतज्ञों को मिलकर स्थान-2 पर परिषद्, सभा, गोष्ठी, भाषण तथा सम्मेलनों का आयोजन करवाना होगा। जो नवीन लेखक और वक्ता होंगे, उनके लिए पुरस्कार का प्रबंध करना होगा तथा उनका उत्साह बढ़ाना होगा। विद्यालयों में संस्कृत विषय अनिवार्य रूप से पढ़ाना होगा, फिर वह चाहे चालीस या पचास अंकों का ही क्यों न हो। ऐसा करके ही संस्कृत को उन्नत किया जा सकता है और इस कार्य में छात्र, अध्यापक, अभिभावक तथा सरकार सभी को मिलकर प्रयास करना पड़ेगा, तभी हम हमारे समक्ष संस्कृत के प्रति आने वाली चुनौतियों का डटकर सामना कर सकेंगे और समाधान भी कर सकेंगे।

सन्दर्भ

1. ईशोपनिषद्, 1.1, यजुर्वेद, 40.1
   ईशावस्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
   तेन व्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।
2. मनुस्मृति, 6.92:
   धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिद्रियनिग्रहः।
   धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।
3. ऋग्वेद, 1.191.4: समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
   समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।
4. मनुस्मृति, 2.121:
   अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
   चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।।
5. श्रीमद्भगवद्गीता, 2.47: कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
   मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।
6. मनुस्मृति, 1.108:
   आचारः परमोधर्मः।

पंचायती राज संस्थान और भारत में ग्रामीण विकास - संरचनात्मक और कार्यात्मक आयाम

शीला मिश्रा

शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

सार

आरंभ से ही पंचायतें भारतीय गांवों की रीढ़ रही हैं। पंचायती राज शासन की एक प्रणाली है जिसमें ग्राम पंचायतें प्रशासन की बुनियादी इकाइयाँ हैं। पंचायती राज संस्थान (पीआरआई) कार्यक्रम कार्यान्वयन में शामिल रहे हैं और वे योजना और इसके कार्यान्वयन के विकेंद्रीकृत विकास के मूल का गठन करते हैं। पंचायती राज संस्थाओं का उद्देश्य ग्रामीण स्वशासन (ग्राम स्वराज) के गांधीवादी सपने को साकार करना और ग्रामीण विकास और पुनर्निर्माण का एक प्रभावी साधन बनना है। 1959 से लगभग सभी ग्रामीण विकास विभाग पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से अपने कार्यक्रमों का क्रियान्वयन कर रहे हैं। 73वें संविधान संशोधन की भावना के तहत राज्य अधिनियमों के कार्यान्वयन के साथ ग्रामीण विकास में पंचायती राज संस्थाओं की स्पष्ट भूमिका की परिकल्पना की गई है। भारत सरकार और विभिन्न राज्य सरकारें अब तेजी से विभिन्न योजनाओं के कार्यान्वयन के साथ-साथ गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में पंचायती राज संस्थानों की सहायता की मांग कर रही हैं। पत्र का उद्देश्य पंचायत राज व्यवस्था की व्यवस्था, गरीबी उन्मूलन और ग्रामीण विकास के लिए सरकारी योजनाओं के कार्यान्वयन में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका, विभिन्न सरकारी योजनाओं आदि पर प्रकाश डालना है।

मुख्य-शब्दः रीढ़, प्रभावी, शासन, कार्यान्वयन, संस्थान, पुनर्निर्माण।

परिचय

आरंभ से ही पंचायतें भारतीय गांवों की रीढ़ रही हैं। पंचायती राज शासन की एक प्रणाली है जिसमें ग्राम पंचायतें प्रशासन की बुनियादी इकाइयाँ हैं। पंचायत राज संस्थान (पीआरआई) कार्यक्रम कार्यान्वयन में शामिल रहे हैं और वे योजना और इसके कार्यान्वयन के विकेंद्रीकृत विकास के मूल का गठन करते हैं। पंचायती राज संस्थाओं का उद्देश्य ग्रामीण स्वशासन (ग्राम स्वराज) के गांधीवादी सपने को साकार करना और ग्रामीण विकास और पुनर्निर्माण का एक प्रभावी साधन बनना है। 1959 से लगभग सभी ग्रामीण विकास विभाग पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से अपने कार्यक्रमों का क्रियान्वयन कर रहे हैं। 73वें संविधान संशोधन की भावना के तहत राज्य अधिनियमों के कार्यान्वयन के साथ ग्रामीण विकास में पंचायती राज संस्थाओं की स्पष्ट भूमिका की परिकल्पना की गई है। भारत सरकार और विभिन्न राज्य सरकारें अब तेजी से विभिन्न योजनाओं के कार्यान्वयन के साथ-साथ गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में पंचायत राज संस्थानों की सहायता की मांग कर रही हैं।[1]

पंचायती राज संस्थाओं का विकास और कार्यपंचायतें भारत की प्राचीन स्वायत्त लोकतांत्रिक संस्थाएं हैं। पंचायतों का वर्णन प्राचीन भारतीय ग्रंथ 'ऋग्वेद' में 'सभा' और 'समितियों' के रूप में मिलता है। पंचायत शाब्दिक रूप से पांच (पंच) बुद्धिमान और सम्मानित बुजुर्गों की मेनस असेंबली (यात) है जिसे ग्राम समुदाय द्वारा चुना और स्वीकार किया जाता है। पंचायती राज का दर्शन ग्रामीण भारत की परंपरा और संस्कृति में गहराई से डूबा हुआ है। यह कोई नई अवधारणा नहीं है। पंचायती राज ने ग्राम स्तर पर स्वशासन की व्यवस्था प्रदान की। पंचायत राज संस्थाएँ स्वशासन की जमीनी इकाई है। इसे ग्रामीण भारत में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन का वाहन घोषित किया गया है। इन निकायों का प्रभावी और सार्थक कामकाज सक्रिय भागीदारी योगदान और इसके नागरिकों, पुरुष और महिला दोनों की भागीदारी पर निर्भर करेगा।[2]

पंचायत के उद्देश्य

1. समुदाय के आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों की सहायता।
2. समुदाय में सामंजस्य और सहकारी स्वयं सहायता।
3. सहकारी संस्थाओं का विकास।
4. जनशक्ति के उपयोग सहित स्थानीय संसाधनों का विकास।
5. कृषि में उत्पादन योजना में सर्वोच्च प्राथमिकता के रूप में।

6. स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका पर विशेष जोर देने के साथ लंबवत और क्षैतिज रूप से प्राधिकरण और पहल दोनों का प्रगतिशील फैलाव।
7. ग्रामीण उद्योगों को बढ़ावा देना।
8. व्यापक प्रशिक्षण/शिक्षा और कर्तव्यों और जिम्मेदारियों के स्पष्ट सीमांकन के माध्यम से जनप्रतिनिधियों और जनसेवकों के बीच समझ और सामंजस्य।

पंचायतों का संगठनात्मक पैटर्न ग्रामीण पुनर्निर्माण में लोगों की भागीदारी को सूचीबद्ध करने के लिए पंचायत राज संस्थाओं को तीन स्तरीय प्रणाली में संगठित किया गया है, जैसे, 1. ग्राम पंचायत ग्राम पंचायत पंचायत राज संस्थाओं या स्थानीय स्वशासन की प्राथमिक इकाई है। इसे भारतीय संविधान में निर्देशक सिद्धांत के तहत पहली औपचारिक लोकतांत्रिक संस्था माना जाता है। यह गाँव के बुजुर्गों का एक मंत्रिमंडल है, जो सीधे गाँव के वयस्क नागरिकों द्वारा चुना जाता है। पंचायत का कार्यकाल पांच वर्ष का होता है और यह सीधे निर्वाचित होती है। इसे अपने कार्यों को करने के लिए करों के माध्यम से आय होती है।

ग्राम पंचायतों के मुख्य कार्य

1. ग्राम पंचायत क्षेत्र के विकास के लिए वार्षिक योजना तैयार करना।
2. ग्राम पंचायत का वार्षिक बजट तैयार करना।
3. प्राकृतिक आपदाओं में राहत जुटाना।
4. सार्वजनिक संपत्तियों पर से अतिक्रमण हटाना।
5. सामुदायिक कार्यों के लिए स्वैच्छिक मजदूरों और योगदान का आयोजन करना।
6. गांवों के आवश्यक आंकड़ों का रखरखाव।
7. ऐसे अन्य विकास कार्य जो सौंपे जा सकते हैं।
8. सेवा या विकासात्मक कार्य, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि आदि को बढ़ावा देना।
9. प्रतिनिधि कार्य, जहां मुख्य भूमिका आवाज उठाना और राय का प्रतिनिधित्व करना है;
10. विनियामक और प्रशासनिक कार्य, जिसमें व्यक्तियों और संस्थानों के आचरण को विनियमित करना और करों का संग्रह भी शामिल है।

ग्राम पंचायतों की आय के स्रोत

1. भू-राजस्व में हिस्सा।
2. स्थानीय कर।
3. दुकानों, मछली पालन आदि के बंदोबस्त से अर्जित राजस्व
4. पंचायत राज अधिनियम में निर्दिष्ट गृह कर और अन्य कर।
5. सुविधाएं, उपकर, टोल प्रदान करने के लिए शुल्क।
6. अंशदान और अनुदान।
7. जुर्माना और दंड।

तालुका/ब्लॉक पंचायत यह तालुका या ब्लॉक स्तर पर प्रशासन का दूसरा स्तर है। इसकी अध्यक्षता तालुका अध्यक्ष करते हैं। प्रखंड विकास पदाधिकारी की नियुक्ति शासन द्वारा की जाती है। वह ब्लॉक के नेता के रूप में कार्य करता है।

जिला पंचायत

जिला पंचायत को जिला विकास परिषद् या जिला परिषद् के नाम से भी जाना जाता है। यह जिला स्तर पर कार्यरत पंचायती राज का तीसरा स्तर है। इसकी अध्यक्षता पंचायत संघ अध्यक्ष करते हैं। जिला कलक्टर जिला विकास अधिकारियों की सहायता से कार्य का नेतृत्व करता है। पंचायती राज व्यवस्था ने प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा, संचार, कृषि विस्तार, सहयोग, स्वास्थ्य आदि क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति की। लोगों को पीने का पानी मिल सका। कुछ जगहों पर लोगों ने पानी की आपूर्ति, गाँव की गलियों, बिजली की रोशनी की व्यवस्था, गाँव की सफाई आदि के लिए पर्याप्त संसाधन उपलब्ध कराए थे। ग्रामीण लोगों में ग्रामीण जागृति लाई गई; परिणामस्वरूप ग्रामीण अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुए और अपने जीवन स्तर में सुधार किया।[3]

ग्रामीण विकास

संकल्पनात्मक आयाम ग्रामीण विकास ग्रामीण लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार की दृष्टि से ग्रामीण क्षेत्रों के समग्र विकास को दर्शाता है। यह एक व्यापक और बहुआयामी अवधारणा है और ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि और संबद्ध गतिविधियों, ग्रामीण और कुटीर उद्योगों और शिल्प, सामाजिक-आर्थिक बुनियादी ढांचे, सामुदायिक सेवाओं और सुविधाओं और मानव संसाधन विकास के विकास को शामिल करती है। विभिन्न भौतिक, तकनीकी, आर्थिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और संस्थागत कारकों के बीच परस्पर क्रियाओं का परिणाम। ग्रामीण विकास एक ऐसी रणनीति है जिसे लोगों के एक विशिष्ट

समूह-ग्रामीण गरीबों के आर्थिक और सामाजिक कल्याण में सुधार के लिए तैयार किया गया है। एक अनुशासन के रूप में ग्रामीण विकास प्रकृति में बहु-अनुशासनात्मक है, जो कृषि सामाजिक व्यवहार, इंजीनियरिंग और प्रबंधन विज्ञान के प्रतिच्छेदन का प्रतिनिधित्व करता है। ग्रामीण विकास के मूल तत्व भौगोलिक स्थिति, संस्कृति और देश के विकास के ऐतिहासिक चरण में अंतर के बावजूद तीन मूल तत्व हैं जिन्हें ग्रामीण विकास का सही अर्थ माना जाता है।[4]

जीवन की बुनियादी आवश्यकताएं लोगों को बनाए रखने के लिए जीवन की बुनियादी जरूरतों में भोजन, कपड़ा, आश्रय, बुनियादी साक्षरता, प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल और जीवन और संपत्ति की सुरक्षा शामिल है। सभी के लिए जीवन की इन मूलभूत आवश्यकताओं का प्रावधान सभी अर्थव्यवस्थाओं की प्राथमिक जिम्मेदारी है। यह जीवन या ग्रामीण लोगों की गुणवत्ता में सुधार के लिए आवश्यक शर्त है जो ग्रामीण विकास का हिस्सा है।

आत्म सम्मान प्रत्येक व्यक्ति का स्वाभिमान, गरिमा और सम्मान ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का हिस्सा होना चाहिए।

स्वतंत्रता ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन के विभिन्न पहलुओं जैसे आर्थिक स्वतंत्रता, वैचारिक स्वतंत्रता और सामाजिक दासता से मुक्ति में लोगों की स्वतंत्रता सुनिश्चित की जानी चाहिए। किसी भी रूप की दासता विकास की स्थिति को दर्शाती है।

ग्रामीण विकास की आवश्यकता भारत की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का मुख्य रूप से ग्रामीण चरित्र ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली जनसंख्या के बहुत अधिक अनुपात में परिलक्षित होता है। यह 1901 में 89 प्रतिशत, 1951 में 83 प्रतिशत, 1971 में 80 प्रतिशत, 1991 में 74 प्रतिशत और 2001 में 72.22 प्रतिशत थी। इसकी 740 मिलियन से अधिक आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है, जिसमें ग्रामीण क्षेत्र का योगदान लगभग 30 प्रतिशत है। सकल घरेलू उत्पाद भारत के लिए सामाजिक-आर्थिक विकास की कोई भी रणनीति जिसमें ग्रामीण लोगों की उपेक्षा की जाती है और ग्रामीण क्षेत्र सफल नहीं हो सकते। इसलिए ग्रामीण विकास भारत में एक परम और तत्काल आवश्यकता है।[5]

ग्रामीण विकास के लिए सरकारी पहलें भारत सरकार ने ग्रामीण विकास के लिए कई पहल की हैं। इसने ग्रामीण विकास मंत्रालय की स्थापना की है। यह मंत्रालय एशिया और प्रशांत के एकीकृत ग्रामीण विकास केंद्र (आईआरडीएपी) और एफ्रो-एशियाई ग्रामीण विकास संगठन (एएआरडीओ) जैसे दो अंतरराष्ट्रीय संगठनों के लिए एक नोडल विभाग है।

पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से ग्रामीण विकास

पंचायती राज संस्थाएं देश के विकास की प्रक्रिया में भारतीय लोगों की भागीदारी के लिए सामाजिक न्याय के साथ विकास के सबसे पोषित लक्ष्य को पूरा करने में सक्रिय रूप से शामिल हैं। 73वें संविधान संशोधन के बाद ग्रामीण विकास में पंचायती राज संस्थाओं की स्पष्ट भूमिका की परिकल्पना की गई है। भारत सरकार और राज्य सरकारें विभिन्न योजनाओं के साथ-साथ गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में पंचायत राज संस्थानों की सहायता की मांग कर रही हैं। इनमें से भारत सरकार के निम्नलिखित विकास कार्यक्रमों और राज्य सरकारों ने हमेशा पंचायत राज संस्थानों की सार्थक भागीदारी की मांग की है। ग्यारहवीं अनुसूची और पंचवर्षीय योजनाओं के संदर्भ में उनके लिए एक विशिष्ट भूमिका निर्धारित की गई है। पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से निम्नलिखित कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया जाता है।

संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (एसजीआरवाई), स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (एसजीएसवाई) इंदिरा आवास योजना (आईएवाई), समग्र आवास योजना (एसएवाई), परीक्षण क्षेत्र विकास कार्यक्रम (टीएडीपी), प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (पीएमजीवाई), अंत्योदय अन्न योजना (एएवाई), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना और कई अन्य। पंचायत राज संस्थाएं ग्राम स्तर पर योजना बनाने और क्रियान्वयन में उनकी भागीदारी के माध्यम से ग्रामीण विकास में शामिल हैं। ग्राम सभा जो पंचायत प्रणाली का एक अभिन्न अंग है, को विकेंद्रीकृत योजना में सभी लोगों को शामिल करने का अधिकार दिया जा रहा है। भले ही, धन और स्वीकृति शक्ति अभी भी अलग-अलग स्तर पर हो सकती है, लेकिन जब कार्यक्रमों के निष्पादन का सवाल आता है, तो इसमें शामिल होने के अलावा कोई विकल्प नहीं होता है। ग्राम स्तर पर पंचायती राज संस्थाएँ। स्थानीय आबादी की जरूरतों को पूरा करने के लिए स्थानीय शासन का कोई विकल्प नहीं है। 73वें और 74वें संवैधानिक संशोधनों ने उस आवश्यकता को मान्यता दी। स्थानीय सरकार का सबसे निचला स्तर अर्थात् ग्राम पंचायत सीधे नागरिक के संपर्क में है और ग्राम सभा में और अन्य माध्यमों से इसे काम में लिया जा सकता है। यह सरल नागरिक कार्यों से लेकर जटिल विकास योजना तक कई कार्यों के लिए उत्तरदायी है। लेकिन वह इन कार्यों को तभी कर सकता है जब उसे पर्याप्त शक्तियाँ और संसाधन दिए जाएँ।[6]

पंचायती राज संस्थानों को सशक्त बनाना

पंचायती राज संस्थाओं को सशक्त बनाने के मुद्दे में (i) धन, (ii) कार्यों और (iii) पदाधिकारियों को उनके पास स्थानांतरित करना केंद्र और राज्यों के बीच चर्चा का एक केंद्रीय बिंदु रहा है। योजना आयोग और ग्रामीण विकास मंत्रालय ने राज्य सरकारों पर बार-बार दबाव डाला है। भारत के संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में सूचीबद्ध 29 विषयों के संबंध में इन संसाधनों को पंचायतों को हस्तांतरित करने की आवश्यकता। ये विषय हैं- कृषि विस्तार, लघु सिंचाई, जल प्रबंधन और कृषि सहित वाटरशेड विकास, पशुपालन, मत्स्य पालन, सामाजिक वानिकी फार्म, लघु वन उपज, भूमि सुधार, कार्यान्वयन भूमि सुधार, भूमि चकबंदी और मृदा संरक्षण, खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों सहित लघु उद्योग, खादी, ग्रामीण और कुटीर उद्योग, ग्रामीण आवास, पेयजल, ईंधन और चारा, सड़कें, पुलिया, पुल, फेरी, जलमार्ग और परिवहन और संचार के अन्य साधन, बिजली वितरण सहित ग्रामीण विद्युतीकरण, गैर-पारंपरिक ऊर्जा, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम, प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों सहित शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा, प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा, पुस्तकालय, सांस्कृतिक गतिविधियां, बाजार और मेले, स्वास्थ्य और स्वच्छता सहित अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र और औषधालय, परिवार कल्याण, महिला और बाल विकास,

विकलांगों और मानसिक रूप से मंद लोगों के कल्याण सहित समाज कल्याण, विशेष रूप से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के कल्याण में कमजोर वर्ग का कल्याण, सार्वजनिक वितरण प्रणाली और सामुदायिक संपत्तियों का रखरखाव। ऊपर उल्लिखित 29 विषय भारत के संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में सूचीबद्ध हैं। वे ग्रामीण जीवन के सभी प्रमुख पहलुओं को कवर करते हैं। हालाँकि, 73वें संशोधन के बावजूद अधिकांश राज्यों ने पंचायत को बहुत कम शक्ति और वित्तीय संसाधन हस्तांतरित किए हैं।[7]

बाधाओं के क्षेत्र

ग्रामीण विकास की प्रक्रिया में पंचायत राज संस्थाओं की प्रभावी भागीदारी इन संस्थाओं के सामने आने वाली कुछ कठिनाइयों से विवश है। समस्याएं काफी हद तक वित्त, प्रबंधन और संगठन से संबंधित हैं। पंचायत राज संस्थाओं को पर्याप्त शक्तियाँ और संसाधन उपलब्ध नहीं कराए जाते हैं, हालाँकि राज्यों पर इन पर बहुत अधिक उत्तरदायित्व होते हैं। पंचायत राज संस्थाओं को नियंत्रित करने वाले कानूनों और नियमों को समझने की कमी की समस्या है। "निर्वाचित सदस्यों को प्रशिक्षण सत्रों के माध्यम से कानून को समझना चाहिए लेकिन अधिकारियों को नियंत्रित करना एक समस्या है। वे निर्वाचित निकायों द्वारा सर्वसम्मति से अनुमोदित योजनाओं को विफल करने के लिए अक्सर नियमों और प्रक्रियाओं की प्राचीन संरचना का उपयोग करने में सक्षम होते हैं। समस्या का समाधान करने का एक तरीका यह है कि पंचायत और संबंधित लिंक विभाग के अधिकारियों को निर्वाचित सदस्यों के प्रशिक्षण सत्र में भाग लेने के लिए कहा जाए। निचले स्तर के अधिकारियों द्वारा उत्पन्न समस्याओं को दूर करने के लिए कम से कम कुछ प्रशिक्षकों को निर्वाचित सदस्यों द्वारा प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाना चाहिए। ग्रामीण विकास के लिए उनके कामकाज में पंचायत राज संस्थानों की प्रभावशीलता की एक अन्य समस्या स्थानीय शासन में सदस्यों विशेषकर महिला सदस्यों की प्रभावी भागीदारी की कमी से संबंधित है। कुछ स्तर की शिक्षा के बिना कानूनों को समझने और समय-समय पर नियमों और प्रक्रियाओं में बदलाव लाने के कारण कम साक्षरता स्तर के कारण समस्या उत्पन्न होती है। पंचायती राज संस्थाएं ग्रामीण विकास लाने में अपनी भूमिका में तभी प्रभावी हो सकती हैं, जब वे शासन के सुदृढ़ और वैज्ञानिक ढांचे द्वारा शासित हों। इन स्थानीय संस्थाओं के सदस्य आत्मविश्वास के संकट और निम्न स्तर के आत्म-सम्मान से ग्रस्त हैं। यह पाया गया है कि वर्तमान चुनाव प्रणाली ने अज्ञानी और निरक्षरों को व्यवस्था में ला दिया है। पंचायत राज संस्थाओं के मामलों में सरकार और राजनेताओं के अत्यधिक हस्तक्षेप की घटना भी है।[8]

पंचायती राज संस्थानों के माध्यम से ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों का कार्यान्वयन

पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से कार्यान्वित निम्नलिखित प्रमुख ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का संक्षिप्त विश्लेषण यहाँ दिया गया है।

1. स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (एसजीएसवाई), 1999

स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना का यह एकल स्वरोजगार कार्यक्रम 1-04-1999 को शुरू किया गया था। एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम और संबद्ध कार्यक्रमों ट्राइसेम, डवाकरा, सिट्रा और गंगा कल्याण योजना की पिछली योजनाओं की कमजोरियों को दूर करने के लिए इस कार्यक्रम की कल्पना की गई है। इस योजना के तहत उद्यमों को सब्सिडी दी जाती है SGSY को केंद्र और राज्यों के बीच 75:25 लागत साझाकरण के आधार पर वित्तपोषित किया जाता है। SGSY को जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों (DRDAS) द्वारा पंचायत समितियों के माध्यम से कार्यान्वित किया जाता है। एसजीएसवाई के कार्यान्वयन के लिए डीआरडीए बैंकों, पंचायत राज संस्थानों, एनजीओ आदि जैसी विभिन्न एजेंसियों के एकीकरण की आवश्यकता है।[9]

2. संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (एसजीआरवाई) 2001

यह कार्यक्रम 25 सितंबर 2001 को चल रही योजनाओं - रोजगार आश्वासन योजना (ईएएस) और जवाहर ग्राम समृद्धि योजना (जेजीएसवाई) को मिलाकर शुरू किया गया था। ग्रामीण क्षेत्रों में टिकाऊ समुदाय, सामाजिक और आर्थिक बुनियादी ढाँचे की।

3. इंदिरा आवास योजना (आईएवाई) (1985-86)

यह कार्यक्रम नौवीं योजना के दौरान 1985-86 में शुरू किया गया था। इसका उद्देश्य "सभी के लिए आवास" प्रदान करना है और 20 लाख अतिरिक्त आवासीय इकाइयों के निर्माण की सुविधा प्रदान करना है, जिनमें से 13 लाख आवासीय इकाइयों का निर्माण ग्रामीण क्षेत्रों में किया जाना था। पल् के तहत लाभार्थियों की पहचान में पंचायती राज संस्थानों की महत्वपूर्ण भूमिका है। सूची में वरिष्ठता के क्रम में बीपीएल सूची के आधार पर तैयार स्थायी आईएवाई प्रतीक्षा सूची से लाभार्थियों का चयन किया जाएगा। ग्राम पंचायतें बीपीएल सूची से आश्रयहीन परिवारों को निकाल सकती हैं। ग्राम सभा द्वारा चयन अंतिम है।

4. अंत्योदय अन्न योजना (एएवाई-2000)

एक करोड़ गरीब परिवारों को कवर करने के लिए योजना 2000 में शुरू की गई थी। योजनाओं में रुपये की अत्यधिक रियायती दर पर बीपीएल परिवारों को खाद्यान्न उपलब्ध कराने की परिकल्पना की गई है। गेहूं के लिए 2 रुपये प्रति किलो और रु। चावल के लिए 3 रुपये प्रति किलो। एएवाई योजना का विस्तार 2003-04 में बीपीएल परिवारों में से 50 लाख घरों को जोड़कर और 2.5 करोड़ परिवारों को कवर करने के लिए किया गया था।

5. प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (पीएमजीएसवाई-2000)

यह 25 दिसंबर 2000 को शुरू की गई शत-प्रतिशत केंद्र प्रायोजित योजना है। पीएमजीएसवाई का प्राथमिक उद्देश्य 500 से अधिक लोगों की आबादी वाले ग्रामीण क्षेत्रों में सभी असंबद्ध बस्तियों को कनेक्टिविटी प्रदान करना था। भारत निर्माण के तहत मैदानी क्षेत्र में 1000 से अधिक आबादी वाले सभी आवासों को कनेक्टिविटी प्रदान करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

6. निर्मल ग्राम योजना (1999)

कर्नाटक सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक-आर्थिक विकास के एक भाग के रूप में स्वच्छता की स्थिति में सुधार के लिए 2 अक्टूबर 1995 को 'निर्मल ग्राम योजना' के नाम से एक व्यापक अभियान शुरू किया है। सरकार पंचायत राज संस्थाओं और गैर-सरकारी संगठनों के सहयोग से इस योजना को लागू कर रही है।

7. राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम (1995)

केंद्र सरकार द्वारा शुरू किए गए इस कार्यक्रम का उद्देश्य गरीब परिवारों को वृद्धावस्था, प्राथमिक रोटी कमाने वाले की मृत्यु और प्रसूति के मामले में सामाजिक सहायता लाभ प्रदान करना है। एनएसएपी के तीन घटकों की मुख्य विशेषताएं हैं 1) राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना (एनओएपीएस), 2) राष्ट्रीय पारिवारिक लाभ योजना (बीएफबीएस) और 3) राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना (एनएमबीएस)।

8. राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (एनआरएलएम)

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन पंचायतों और गरीबों की संस्थाओं के बीच पारस्परिक रूप से लाभकारी कामकाजी संबंध, परामर्श और संसाधनों के बंटवारे के लिए औपचारिक तंत्र के निर्माण की वकालत करता है। उदा: एसएचजी

9. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा-2009)

यह कार्यक्रम 2 फरवरी 2006 को शुरू किया गया था। इसमें ग्रामीण परिवारों को एक वित्तीय वर्ष में 100 दिनों के रोजगार की गारंटी देकर ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की आजीविका को सुरक्षित करने की परिकल्पना की गई है। मनरेगा सभी पहले और मौजूदा मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों से एक आदर्श बदलाव को चिह्नित करता है क्योंकि यह एक अधिनियम है न कि केवल एक योजना है। यह काम करने की कानूनी गारंटी प्रदान करता है।

मनरेगा संविधान के 73वें संशोधन के उद्देश्यों को साकार करने के लिए एक शक्तिशाली, कानूनी अधिकार और अवसर प्रदान करता है। अधिनियम औपचारिक रूप से इस अधिनियम के तहत बनाई गई योजनाओं की योजना और कार्यान्वयन के लिए तीन स्तरों पर पंचायतों को प्रमुख प्राधिकरण घोषित करता है और यह प्रावधान पर्याप्त गारंटीकृत संसाधनों द्वारा समर्थित है।

अधिनियम के कार्यान्वयन के लिए पंचायतें उपकरणों से कहीं बढ़कर हैं; गरीबों के लिए बढ़ी हुई आजीविका सुरक्षा के अपेक्षित परिणाम को साकार करने में उनका आंतरिक मूल्य है। पंचायती राज संस्थाओं (पीआरआई) को मनरेगा ग्राम पंचायत के कार्यान्वयन में निम्नलिखित भूमिकाएं और जिम्मेदारियां सौंपी गई हैं:

पंजीकरण के लिए आवेदन प्राप्त करना, पंजीकरण आवेदनों का सत्यापन करना, परिवारों का पंजीकरण करना, जॉब कार्ड जारी करना, काम के लिए आवेदन प्राप्त करना, इन आवेदनों के लिए कार्य, आवेदन जमा करने के पंद्रह दिनों के भीतर या अग्रिम आवेदन के मामले में काम की मांग की तारीख से, जो भी बाद में हो, कार्यान्वयन एजेंसी के बावजूद काम का आवंटन, काम की मांग का आकलन करने के लिए समय-समय पर सर्वेक्षण करना, पहचान और योजना बनाना कार्य, उनकी प्राथमिकता के क्रम के निर्धारण सहित परियोजनाओं की शेल्फ विकसित करना। यह सूची जांच और प्रारंभिक अनुमोदन के लिए कार्यक्रम अधिकारी को अग्रेषित की जाती है, आवश्यक तकनीकी मानकों और मापों को पूरा करने वाले कार्यों को निष्पादित करना, अभिलेखों को बनाए रखना, खातों को बनाए रखना और केंद्र/राज्य सरकार द्वारा निर्धारित प्रारूपों में उपयोग प्रमाण पत्र प्रदान करना, सालाना एक रिपोर्ट तैयार करना जिसमें तथ्य शामिल हों और अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर योजना के कार्यान्वयन से संबंधित आंकड़े और उपलब्धियां और, इसकी प्रति जनता को उपलब्ध कराना, जागरूकता पैदा करना और सामाजिक जुटाना, योजना और सामाजिक लेखा परीक्षा के लिए ग्राम सभा का आयोजन करना, सहित सभी प्रासंगिक दस्तावेज उपलब्ध कराना मस्टर रोल, बिल, वाउचर, माप बही, स्वीकृति आदेश की प्रतियां और अन्य जुड़े खाते की किताबें और कागजात ग्राम सभा को सामाजिक लेखापरीक्षा करने के उद्देश्य से, ग्राम स्तर पर कार्यान्वयन की निगरानी, निम्नलिखित सूचनाओं को सक्रिय रूप से प्रकट करना कार्यस्थलों के लिए, भुगतान की गई मजदूरी, सामग्री घटक आदि। और जॉब कार्ड वाले व्यक्तियों के नाम, प्रत्येक परियोजना आदि के लिए खरीदी गई सामग्री की मात्रा और मूल्य आदि बताते हैं और सामाजिक लेखापरीक्षा इकाई को योजनाओं के लेखापरीक्षा नियमों में निर्दिष्ट सभी जानकारी प्रदान करते हैं। मनरेगा के अंतर्गत योजनाओं के क्रियान्वयन में ग्राम सभा, मध्य पंचायत एवं जिला पंचायत की निश्चित भूमिका है।[10]

निष्कर्ष

पंचायतें भारत की प्राचीन स्वायत्त लोकतान्त्रिक संस्थाएँ हैं। पंचायतों का वर्णन प्राचीन भारतीय ग्रंथ 'ऋग्वेद' में 'सभा' और 'समितियों' के रूप में मिलता है। पंचायत का शाब्दिक अर्थ है पांच (पंच) वार और सम्मानित बुजुर्गों की सभा जिसे ग्राम समुदाय द्वारा चुना और स्वीकार किया जाता है। पंचायत राज का दर्शन ग्रामीण भारत की परंपरा और संस्कृति में गहराई से डूबा हुआ है। यह कोई नई अवधारणा नहीं है। पंचायत राज ने ग्राम स्तर पर स्वशासन की व्यवस्था प्रदान की। पंचायत राज संस्थाएँ स्वशासन की जमीनी इकाई है। इसे ग्रामीण भारत में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन का वाहन घोषित किया गया है। इन निकायों का प्रभावी और सार्थक कामकाज सक्रिय भागीदारी योगदान और इसके नागरिकों, पुरुष और महिला दोनों की भागीदारी पर निर्भर करेगा। ग्रामीण विकास में ऐसे संस्थानों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है।

संदर्भ

1. चेम्बर्स रॉबर्ट (1983)। "रूरल डेवलपमेंट: पुटिंग द लास्ट फर्स्ट", लॉन्गमैन पब्लिकेशन, लंदन, पृ. 14.
2. मिथिलेश कुमार झा (2012), "माइक्रोफाइनेंस एंड रूरल डेवलपमेंट-कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली।

3. सिन्हा सुबोधकुमार और राजेश कुमार (2007), "ग्रासरूट डेमोक्रेसी एंड गवर्नेंस", 90वां कांफ्रेंस वॉल्यूम, इंडियन इकोनॉमिक एसोसिएशन, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर।
4. पर्रेक उदय 1989, प्रभावी शासन के लिए विकेंद्रीकरण, प्रशासनिक परिवर्तन केंद्र, जयपुर।
5. प्रसाद आर सी 1968 डेमोक्रेसी एंड डेवलपमेंट, रचना प्रकाशन नई दिल्ली।
6. शिवैया एट. अल 1976 पंचायत राज: एक विश्लेषणात्मक सर्वेक्षण एनआईसीडी हैदराबाद
7. सिरसीकर वी एम 1974 लीडरशिप पैटर्न इन रूरल महाराष्ट्र पॉपुलर प्रकाशन बॉम्बे।
8. सुगथ दास गुप्ता 1969 पंचायत की अवधारणा और उनके संस्थागत निहितार्थ, एशिया पब्लिशिंग हाउस बॉम्बे।
9. अजीज अब्दुल (2000) लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण: कर्नाटक आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक वॉल्यूम का अनुभव 35, संख्या 39, योजना परियोजनाओं की रिपोर्ट पर समिति, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1957, वॉल्यूम - I
10. भारत सरकार (1978) पंचायत राज संस्थाओं पर समिति की रिपोर्ट, कृषि और सिंचाई मंत्रालय, नई दिल्ली।

सामाजीकरण के संदर्भ में बाल विकासः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

सुलेखा झा

शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

सार

जैसे-जैसे स्कूली उम्र के बच्चे विकसित होते हैं और घर के बाहर अपनी व्यक्तिगत पहचान बनाना शुरू करते हैं, उन्हें अभी भी अपने माता-पिता की सहायता, समर्थन और मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है ताकि वे अन्य बच्चों के साथ समाजीकरण में सफल हो सकें। उदाहरण के लिए, उन्हें स्वच्छता, काम और गृहकार्य के बारे में अनुस्मारक की आवश्यकता हो सकती है, भले ही उनके शरीर तेजी से विकसित हो रहे हों और वे आंतरिक रूप से बाहरी रूप से अधिक परिपक्व लगते हों। विकासशील बच्चों को न केवल उचित पोषण और टेलीविजन और कंप्यूटर के समय के साथ सख्ती से घर पर समर्थन की आवश्यकता होती है, बल्कि यह भी कि वे अपने रिश्ते कैसे बनाते हैं। सामाजिक मुद्दों पर काबू पाना बच्चे के विकास के लिए उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि शैक्षणिक और स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों पर काबू पाना। माता-पिता बच्चों के समाजीकरण के विभिन्न पहलुओं में कैसे शामिल हो सकते हैं, उसे समझकर अपने बच्चों की सहायता करने में महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

मुख्य-शब्दः अनुपालन; संघर्ष अनुशासन; सहानुभूति; भाषा।

परिचय

कभी-कभी माता-पिता की बातचीत से समूह खेल में परिवर्तन सामाजिक विकास में एक प्रमुख कदम है। यह सहायक हो सकता है यदि माता-पिता दूसरे बच्चे के माता-पिता के साथ निगरानी वाले वातावरण में अपने बच्चे के लिए एक प्लेमेट पेश करके हस्तक्षेप करते हैं। बच्चों के पास माता-पिता के हस्तक्षेप के बिना एक-दूसरे के साथ बातचीत करने के लिए और अधिक समय हो सकता है। यह छोटे समूहों के साथ भी किया जा सकता है जहां पहले माता-पिता लगे होते हैं और फिर बच्चों को अधिक जगह देने की अनुमति देते हैं लेकिन फिर भी एक पर्यवेक्षक की भूमिका में होते हैं। इसके अतिरिक्त, जैसे-जैसे बच्चे की उम्र बढ़ती है, बच्चे को अपने माता-पिता के घर में रहने के बिना दूसरे बच्चे के घर जाने की अधिक स्वतंत्रता होनी चाहिए, लेकिन फिर भी उस स्थिति में पहुँच योग्य होना चाहिए जब बच्चे को लेने की आवश्यकता हो। जब वे थोड़े बड़े होते हैं, तो बच्चा अपने माता-पिता द्वारा कम योजना के साथ अपने दोस्त के घर भी जा सकता है।[1]

सर्वोत्तम सामाजिक संबंधों को समझने के दौरान बच्चों को स्वतंत्रता की अनुमति देना महत्वपूर्ण है, उन्हें यह जानने में मदद करना उतना ही महत्वपूर्ण है कि क्या उचित है और क्या अनुचित है। अनुचित व्यवहार भाषा और क्रिया दोनों में आ सकता है। अनुचित भाषा गाली-गलौज और नीचता में आ सकती है और इसे दृढ़ता से और तुरंत ठीक करने की आवश्यकता है, लेकिन गुस्से में नहीं ताकि बच्चे को अपने माता-पिता द्वारा अपमानित महसूस न हो। इसके अतिरिक्त, घर और स्कूल में बच्चे का सामाजिककरण कैसे किया गया है और कक्षा के भीतर और बाहर दोनों जगह उनकी सामाजिक जरूरतों पर चर्चा करने के लिए बच्चे के शिक्षक से मिलना काफी उपयोगी हो सकता है। जब बच्चे स्कूल में होते हैं, तो वे अक्सर अपने साथियों के साथ "फिट" होने की गहरी इच्छा रखते हैं और उन्हें शामिल महसूस करने में मदद करने के लिए संरचित कक्षा के अनुभवों का उपयोग कर सकते हैं। यदि बच्चे को एडीएचडी जैसी सीखने की अक्षमता है, तो बच्चे के शिक्षक से बात करना विशेष रूप से जरूरी है, क्योंकि वे सामाजिक संकेतों, प्रसंस्करण जानकारी और आत्म अभिव्यक्ति में ट्यूनिंग के साथ संघर्ष कर सकते हैं।[2]

सिद्धांतकारों और शोधकर्ताओं ने चर्चा की है कि माता-पिता सहानुभूति और सामाजिक व्यवहार के विकास के लिए बच्चों और किशोरों का सामाजिकरण करते हैं। वे निश्चित समाजीकरण प्रथाओं के माध्यम से बच्चों और किशोरों के सामाजिक विकास में योगदान करते हैं। लोकतांत्रिक या आधिकारिक पेरेंटिंग में माता-पिता के समर्थन, गर्मजोशी और संवेदनशीलता जैसे माता-पिता के प्रेरण और तर्क, मांग और नियंत्रण जैसे समाजीकरण प्रथाओं को शामिल किया गया है। समाजीकरण की प्रक्रिया में माता-पिता के व्यवहार में समर्थन और मांग या नियंत्रण को दो आयामों के रूप में पहचाना जाता है। समाजीकरण प्रथाओं में बच्चों के साथ बातचीत में माता-पिता का समर्थन या गर्मजोशी और जवाबदेही प्रदर्शित होती है और माता-पिता-बच्चे के रिश्तों में सकारात्मक स्नेह का उल्लेख करते हैं।

गर्मजोशी और जवाबदेही बच्चों की जरूरतों के लिए माता-पिता के सहायक, स्नेही और संवेदनशील रवैये और व्यवहार को दर्शाती है और बच्चों के लिए अनुमोदन और सकारात्मक भावनाओं और व्यवहारों को शामिल करती है। समाजीकरण की कुछ प्रथाएं सामाजिक और नैतिक विकास से संबंधित हैं।

माता-पिता की प्रेरण और माता-पिता की मॉडलिंग के साथ-साथ माता-पिता की गर्मजोशी बच्चों के सामाजिक विकास में योगदान करती है। माता-पिता आगमनात्मक तर्क का उपयोग करके, विशेष रूप से अन्य उन्मुख तर्क का उपयोग करके और दूसरों की जरूरतों पर ध्यान केंद्रित करके और फर्म नियंत्रण प्रथाओं, बच्चों के साथ संबंधों और बातचीत में दंडात्मक तकनीकों को छोड़कर, अपने बच्चों को सामाजिक तरीकों से व्यवहार करने का प्रयास करते हैं। लोकतांत्रिक या आधिकारिक माता-पिता बच्चों को नियमों की व्याख्या करने, बच्चों के साथ तर्क करने, बच्चों की जरूरतों को सुनने, उनके तर्कों पर विचार करने, राय में मतभेदों का सम्मान करने और बच्चों की इच्छाओं को ध्यान में रखते हुए समाधान खोजने जैसे समाजीकरण प्रथाओं का प्रदर्शन कर सकते हैं। रुचि दिखाना और बच्चों की गतिविधियों और अनुभवों में भाग लेना। ये माता-पिता न केवल अपने बच्चों को स्वीकार करते हैं और प्यार करते हैं बल्कि आवश्यक श्रेणीबद्ध नियंत्रण या अधिकार भी लागू करते हैं। माता-पिता प्रेरण के माध्यम से मौखिक तर्क द्वारा अपने बच्चों के लिए विशेष व्यवहार के सकारात्मक और नकारात्मक परिणाम के बारे में सीधे संदेश देते हैं। माता-पिता की प्रेरणा जिसमें एक सहायक पेरेंटिंग अभ्यास शामिल है, बच्चों को उनके कार्यों के सकारात्मक या नकारात्मक परिणामों को समझने में मदद करने के लिए स्पष्टीकरण प्रदान करता है। माता-पिता प्रेरण का उपयोग करते हैं और प्रोत्साहित करते हैं या अभियोग व्यवहार को मॉडल करते हैं और अपने बच्चों से अपेक्षित अभियोग व्यवहार के लिए स्पष्टीकरण देते हैं। बच्चे दूसरों के लिए चिंता को बढ़ावा देने के लिए समाजीकरण प्रथाओं के प्रति अधिक ग्रहणशील हो सकते हैं जब माता-पिता अन्य-उन्मुख व्यवहार करते हैं और अपने बच्चों के प्रति स्नेह और जुड़ाव को बढ़ावा देते हैं या प्रोत्साहित करते हैं।[3]

साझा तंत्रिका प्रतिनिधित्व अन्य लोगों के संज्ञानात्मक अवस्थाओं को समझने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और उनके संबंधित भावनात्मक या संज्ञानात्मक अवस्थाओं को अनुकरण करने की क्षमता प्रदान करते हैं। विकराल रूप से दर्द महसूस करना एक व्यक्ति में तंत्रिका नेटवर्क को जगाता है जो तब सक्रिय होता है जब वह अपने आप में दर्द का अनुभव करता है। सहानुभूति एक व्यक्ति की अनुभवी भावनाओं और अन्य व्यक्तियों द्वारा व्यक्त की गई भावनाओं के बीच समानता को इंगित करती है। इसमें किसी अन्य व्यक्ति के लिए भावनात्मक प्रतिक्रिया शामिल है जिसके लिए व्यक्ति की भावनात्मक स्थिति साझा करने की आवश्यकता होती है और दूसरे व्यक्ति के परिप्रेक्ष्य को लेने की संज्ञानात्मक क्षमता और स्वयं और अन्य में अनुभवी भावनाओं की उत्पत्ति को पकड़ने वाले तंत्र को देखना शामिल है। सहानुभूति किसी अन्य व्यक्ति के प्रतिरूपात्मक रूप से संज्ञानात्मक या भावनात्मक अनुभव को महसूस करने या कल्पना करने की क्षमता को इंगित करती है और इसमें भावात्मक और संज्ञानात्मक दोनों घटक शामिल होते हैं। संज्ञानात्मक सहानुभूति को दिमाग या स्मृति में रखी गई जानकारी का उपयोग करने की आवश्यकता होती है। यह परिप्रेक्ष्य लेने और अन्य व्यक्तियों की आंतरिक स्थितियों और संज्ञान को संज्ञानात्मक रूप से समझने की क्षमता को संदर्भित करता है। संज्ञानात्मक सहानुभूति दूसरे के अनुभव की सटीक रूप से कल्पना करने की क्षमता को संदर्भित करती है और मन या परिप्रेक्ष्य लेने वाले सिद्धांत के माध्यम से किसी व्यक्ति के परिप्रेक्ष्य को ग्रहण करती है। यह किसी अन्य व्यक्ति की आंतरिक मानसिक स्थिति का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति के माध्यम से मन के सिद्धांत के लिए संज्ञानात्मक सहानुभूति के रूप में वर्णित है। संज्ञानात्मक सहानुभूति के लिए दूसरे की भावनाओं को प्रभावी ढंग से पहचानने और संकटपूर्ण स्थिति को गहराई से समझने की क्षमता की आवश्यकता होती है। किसी अन्य व्यक्ति की आंतरिक स्थिति को सही ढंग से समझने की संज्ञानात्मक क्षमता को समानुपाती सटीकता, सहानुभूति, भावनात्मक छूत या भावना के साथ भावात्मक प्रतिध्वनि के रूप में संदर्भित किया जाता है जैसा कि कोई अन्य व्यक्ति महसूस करता है। प्रभावशाली सहानुभूति का तात्पर्य अन्य लोगों के भावनात्मक अनुभव को स्पष्ट रूप से महसूस करने की क्षमता से है, जबकि संज्ञानात्मक सहानुभूति अन्य लोगों के अनुभव को समझने के लिए संदर्भित करती है। इसका अर्थ है अन्य व्यक्तियों की भावनाओं के प्रति उत्तरदायी होने और परोक्ष रूप से अनुभव करने की क्षमता। प्रभावशाली सहानुभूति अन्य व्यक्तियों की भावनाओं को उचित रूप से प्रतिक्रिया देने के लिए संदर्भित करती है और भावनात्मक संसर्ग और अन्य व्यक्तियों की देखी गई भावात्मक स्थितियों से भावनाओं को पकड़ने की क्षमता को इंगित करती है। भावपूर्ण सहानुभूति उनके भावनात्मक प्रदर्शन को समझने के लिए एक व्यक्तिगत प्रयास को संदर्भित करता है जैसे कि शरीर की हरकतें और किसी अन्य व्यक्ति के चेहरे और मुखर भाव। यह व्यक्ति को दूसरों की भावनात्मक स्थिति का अप्रत्यक्ष रूप से अनुभव करने और दूसरों द्वारा व्यक्त की गई भावनाओं के प्रति एक भावनात्मक भावनात्मक प्रतिक्रिया का अनुभव करने पर जोर देता है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति में श्रवण, दृश्य और स्थितिजन्य संकेतों के आधार पर दूसरे व्यक्ति की संज्ञानात्मक और भावनात्मक स्थिति को समझने की कोशिश करता है। प्रभावी सहानुभूति में दूसरे व्यक्ति की ध्वनि अवस्थाओं, शरीर के हावभाव और चेहरे के भावों के आधार पर भावनाओं को तेजी से पहचानना शामिल है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की स्थिति पर प्रतिक्रिया कर सकता है और स्वयं में दूसरे व्यक्ति के भावनात्मक अनुभव को महसूस और प्रतिबिंबित करके दूसरे व्यक्ति की भावनात्मक स्थिति के साथ सही पहचान कर सकता है। किसी व्यक्ति की भावनात्मक स्थिति तब मौखिक या भावात्मक अभिव्यक्तियों के माध्यम से या सहानुभूति प्रदर्शित करके और दूसरे व्यक्ति को आराम या सहायता प्रदान करके बताई जा सकती है। सहानुभूति नकल, भावनात्मक छूत, करुणा और सहानुभूति जैसी अवधारणाओं से जुड़ी है। अनुकरण या भावनात्मक संसर्ग सहानुभूति से पहले होता है जो सहानुभूति और करुणा के लिए सबसे महत्वपूर्ण है, जो अभियोग व्यवहार से पहले हो सकता है। नकल और भावनात्मक छूत एक समानुभूतिपूर्ण प्रतिक्रिया में काफी योगदान दे सकती है।[4]

व्यक्ति जब अन्य व्यक्तियों के भावात्मक चेहरे के भावों जैसे मुस्कुराते या भौंहें चढ़ाते हैं, तो वे संबंधित भावात्मक भावों की नकल कर सकते हैं। नकल करने से एक व्यक्ति दूसरे की भावनाओं को समझने और साझा करने में सक्षम होता है। भावनात्मक छूत का तात्पर्य अन्य लोगों की भावनाओं को पकड़ने की प्रवृत्ति से भी है। सिद्धांतकारों ने तर्क दिया है कि सहानुभूति सहानुभूति का कारण बन सकती है जिसका अर्थ है कि दूसरों पर ध्यान केंद्रित करने और ध्यान केंद्रित करके उनकी भावनात्मक स्थिति को समझने और समझने के आधार पर दूसरे के लिए चिंता या दु:ख। सहानुभूति को भावनात्मक प्रतिक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है जो दूसरे की नकारात्मक भावनात्मक स्थिति की समझ के आधार पर दूसरे की ओर उन्मुख होती है। इसमें चिंता की भावना और संकट में दूसरों द्वारा अनुभव की गई नकारात्मक भावनाओं को कम करने की इच्छा शामिल है। सहानुभूति के परिणामस्वरूप संकट में दूसरे व्यक्ति द्वारा अनुभव की गई नकारात्मक भावनाओं को दूर करने की प्रेरणा मिलती है। एक व्यक्ति अभियोगात्मक या परोपकारी तरीके से व्यवहार कर सकता है और दूसरे व्यक्ति को संकट में नकारात्मक भावनाओं का अनुभव करके नकारात्मक उत्तेजना को कम करने की इच्छा से मदद कर सकता है। सहानुभूति और आंतरिक मानदंडों/सिद्धांतों को परोपकारी कार्यों के लिए दो प्राथमिक उद्देश्यों के रूप में देखा जाता है। सहानुभूतिपूर्ण चिंता दूसरों को उन्मुख करती है और इसमें दूसरों

के लिए महसूस करना शामिल है। करुणा नैतिकता का एक आयाम बताती है जो पारस्परिक जिम्मेदारी, नैतिक व्यवहार और संकट में दूसरों की भलाई के लिए चिंता पर जोर देती है। व्यक्ति सहानुभूति विकसित कर सकते हैं और दूसरों को सहानुभूति देकर दूसरों की कष्टदायक स्थितियों को समझ सकते हैं। सहानुभूति अर्थात् दूसरों के लिए करुणा की भावना अभियोग व्यवहार को प्रेरित करती है।[5]

सामाजिक कौशल के अधिग्रहण के रूप में परिभाषित, समाजीकरण प्रक्रिया है कि कैसे लोग दूसरों के साथ जुड़ना और संबंध बनाना सीखते हैं। बच्चों को एक साथ खेलते हुए देखना माता-पिता को मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करता है कि कैसे समाजीकरण बाल विकास को प्रभावित करता है, और उनके प्रारंभिक वर्षों के दौरान, बच्चे अपने अधिकांश सामाजिक कौशल अन्य बच्चों के साथ समूह की बातचीत के माध्यम से प्राप्त करेंगे।[6]

अनुपालन और संघर्ष

चाहे वह इस बात पर सहमत होना हो कि वे कौन सा खेल खेलने जा रहे हैं या नियमों पर बहस कर रहे हैं, जब बच्चे एक साथ खेलते हैं तो उनकी प्रतिस्पर्धी प्रकृति अक्सर उनसे बेहतर हो जाती है। यह इस प्रकार की बातचीत के दौरान है कि बच्चे सीखते हैं कि समस्याओं को कैसे हल किया जाए और असहमति को कैसे हल किया जाए। अधिकांश बचपन के खेल, हॉपस्कॉच से बेसबॉल तक, बच्चों को सिखाते हैं कि उन्हें नियमों का पालन करना आवश्यक है। असहमति को सुलझाना, जैसे कि बेस रनर सुरक्षित है या बाहर है, बच्चों को सिखाता है कि समूह के समग्र लक्ष्यों को आगे बढ़ाने के लिए सभ्य तरीके से संघर्ष किया जाना चाहिए।[7]

अनुशासन

यह महसूस करना कि उसके अनुचित व्यवहार के परिणाम होंगे, आपके बच्चे के समाजीकरण की प्रक्रिया का एक प्रमुख हिस्सा है। हालाँकि, जिन बच्चों को डांट, पिटाई या विशेषाधिकारों की हानि जैसे दंड मिलते हैं, वे अक्सर उन बच्चों के समान सामाजिक क्षमता का विकास नहीं करेंगे जिनके माता-पिता अनुशासन के लिए अधिक सक्रिय दृष्टिकोण अपनाते हैं। पुस्तक में, "तार्किक परिणाम: अनुशासन के लिए एक नया दृष्टिकोण," लेखक रुडोल्फ ड्रेइकर्स, एमडी, सुझाव देते हैं कि तार्किक परिणाम उचित परिणाम हैं जो खराब व्यवहार का पालन करना चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि बच्चा जानबूझकर अपने प्लेमेट पर प्रहार करता है, तो पिटाई करने के बजाय, उसकी कार्रवाई का तार्किक परिणाम यह होगा कि उसे अब उस दोस्त के साथ खेलने की अनुमति नहीं दी जाएगी, कम से कम जब तक वह अपने तरीकों की त्रुटि नहीं देखती।[8]

सहानुभूति और करुणा

अपने पूर्वस्कूली वर्षों में शुरू करते हुए, जैसे-जैसे दूसरों के साथ उसकी बातचीत बढ़ती है, बच्चा यह समझ पैदा करना शुरू कर देगा कि दूसरों की भी वही भावनाएँ और जरूरतें हैं जो वह करता है। इस समय के दौरान, आपका बच्चा सीखेगा कि कैसे दूसरों के प्रति सहानुभूति और करुणा दिखानी है, जैसे कि अगर खेल के मैदान में उसके किसी दोस्त को चोट लग जाती है या वह आपके साथ अपना जूस और कुकीज साझा करना चाहता है तो मदद प्राप्त करना। यह समाजीकरण की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण चरण है जो आपके बच्चे के विकास पर गहरा प्रभाव डाल सकता है, दूसरों के साथ देखभाल और रचनात्मक तरीके से संबंध बनाना सीखना।[9]

भाषा

जैसे-जैसे बच्चों का समूह खेल बढ़ता है, उनका भाषा कौशल तीव्र गति से विकसित होने लगता है। पूर्वस्कूली और खेल के मैदान की गतिविधियों और सॉकर और टी-बॉल गेम जैसी सामाजिक बातचीत, सभी बच्चे के बोले गए शब्द सीखने में योगदान करते हैं। उसकी खेल गतिविधियों के अलावा, परिवार के अन्य सदस्यों के साथ सामाजिक संपर्क भी आपके बच्चे को उसके भाषा कौशल विकसित करने में मदद करते हैं।[10]

निष्कर्ष

एक विकासशील बच्चे के साथ व्यवहार करते समय, एक माता-पिता को धैर्य रखने की जरूरत होती है, लेकिन उन्हें इस तरह से शामिल किया जाता है जो उन्हें बढ़ने और अपनी गति से सीखने की जगह भी देता है। वे अपने बच्चों के साथ उनकी उम्मीदों और नियमों के बारे में संवाद कर सकते हैं जिन्हें लागू किया जा सकता है, साथ ही वे जिस व्यवहार का पालन करना चाहते हैं उसका अनुकरण भी कर सकते हैं। इसके अलावा, माता-पिता को यह समझने की जरूरत है कि बच्चे सामाजिक विकास के साथ-साथ प्रतिगमन का अनुभव कर सकते हैं। जीत के साथ असफलता भी आती है और माता-पिता को अपने बच्चे के विकास की दर के बारे में निराश नहीं होना चाहिए। माता-पिता के लिए अपने बच्चे को भविष्य में शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक और सामाजिक रूप से स्वस्थ वयस्कों के रूप में विकसित करने के लिए उत्साह और आशावाद बनाए रखना महत्वपूर्ण है।

संदर्भ

1. ईसेनबर्ग एन, फैब्स आरए, सामाजिक विकास, इन: ईसेनबर्ग एन, डेमन डब्ल्यू, संपादक, बाल मनोविज्ञान की पुस्तिका, सामाजिक, भावनात्मक और व्यक्तित्व विकास, न्यूयॉर्क: विली; 1998. पृ. 701-778
2. जैन्सेंस जेएमएएम, डेकोविच एम. बाल पालन, अभियोग नैतिक तर्क और अभियोग व्यवहार, व्यवहारिक विकास का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, 1997;20:509-527
3. मैकोबी ईई, मार्टिन जे.ए., परिवार के संदर्भ में समाजीकरण: माता-पिता-बच्चे की बातचीत, इन: मुसेन पीएच, हेथरिंगटन ईएम, संपादक, बाल मनोविज्ञान की पुस्तिका, समाजीकरण, व्यक्तित्व और सामाजिक विकास, न्यूयॉर्क: विली; 1983. पृ.. 1-101

4. डार्लिंग एन, स्टाइनबर्ग एल., संदर्भ के रूप में पेरेंटिंग शैली: एक एकीकृत मॉडल, मनोवैज्ञानिक बुलेटिन। 1993;113:487-496
5. झोउ क्यू, ईसेनबर्ग एन, लोसोया एसएच, फैब्स आरए, रेसर एम, गुथरी आईके, मर्फी बीसी, कंबरलैंड एजे, शेपर्ड एसए, बच्चों की सहानुभूति से संबंधित प्रतिक्रिया और सामाजिक कार्यप्रणाली के लिए माता-पिता की गर्मजोशी और सकारात्मक अभिव्यक्ति के संबंध: एक अनुदैर्ध्य अध्ययन, बाल विकास, 2002;73:893-915
6. बार्बर बीके, स्टोल्ज एचई, ऑलसेन जेए, माता-पिता का समर्थन, मनोवैज्ञानिक नियंत्रण और व्यवहार नियंत्रण: समय, पद्धति और संस्कृति में प्रासंगिकता का आकलन करना, बाल विकास के क्षेत्र में शोधकार्य के लिए सोसायटी के मोनोग्राफ 2005;70:7. सीरियल 276
7. बॉम्रिंड डी. पेरेंटिंग स्टाइल और किशोर विकास, इन: ब्रूक्स जे, लर्नर आर, पीटरसन एसी, संपादक, किशोरावस्था का विश्वकोश, न्यूयॉर्क: गारलैंड; 1991. पृ. 758-772
8. हेस्टिंग्स पीडी, जहान-वैक्सलर सी, रॉबिन्सन जे, अशर बी, ब्रिजेस डुप्लीकेट व्यवहार समस्याओं वाले बच्चों में दूसरों के लिए चिंता का विकास। विकासमूलक मनोविज्ञान। 2000;36:531-546
9. फोस्टर एसएल, रॉबिन एएल, माता-पिता-किशोर संघर्ष, इन: मैश ईजे, बार्कले आरए, संपादक, बचपन विकार, न्यूयॉर्क: गिल्डफ्रॉन; 1989. पृ. 493-528
10. शेन वाई, कार्लो जी, नाइट जीपी, माता-पिता के अनुशासन, सहानुभूति से संबंधित लक्षण और अभियोग नैतिक तर्क के बीच संबंध: एक बहुसांस्कृतिक परीक्षा, प्रारंभिक किशोरावस्था का जर्नल, 2013;33:994-1021

आतंकवाद: भारतीय अर्थव्यवस्था और लोकतंत्र पर इसका प्रभाव

डॉ० वैशाली देवपुरा

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

संक्षेप

इस शोध पत्र में आतंकवाद से भारतीय अर्थव्यवस्था और लोकतंत्र पर हुए प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। आतंकवाद सामाजिक या राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए किसी सरकार, वर्ग, या नागरिकों के ख़िलाफ बल या हिंसा का का गैरकानूनी उपयोग है। आतंकवाद सिर्फ जनहानि ही नहीं बल्कि देश की आजीविका, अर्थव्यवस्था और सभ्य विश्व व्यवस्था को भी नष्ट कर देता है। भारत में आतंकवाद की उत्पत्ति के लिए हम कई सामाजिक-आर्थिक कारणों द्वारा उत्पन्न जैसे गरीबी, धर्म, अलगाव, अशिक्षा, जनसंख्या विस्फोट जैसे कारणों को मान सकते हैं। आतंकवाद सिर्फ लोकतंत्र के लिए ही नहीं संपूर्ण विश्व जगत की मानव सभ्यता के लिए भी खघ्तरा बना हुआ है जो भारत जैसे विकासशील देश में अर्थव्यवस्था, मानव संसाधन, व्यापार, पर्यटन आदि लिए खतरा उत्पन्न करता है। एसी विश्वव्यापी समस्या के रोकथाम के लिए भारत द्वारा कई अंतरराष्ट्रीय संगठनों के साथ जैसे,आतंकवाद विरोधी संयुक्त राष्ट्र कार्यालय (UNOCT), फाइनेंशियल एक्शन टास्क फोर्स (FATF) जैसे समझौते स्थापित किये गये। भारत को अपनी आंतरिक सुरक्षा सुदृढ़ करने के साथ-साथ अतंकवाद के ख़िलाफ विश्वव्यापी मंच स्थापित करने की आवश्यकता है।

मूलशब्द: आतंकवाद, भारतीय अर्थव्यवस्था, लोकतंत्र पर इसका प्रभाव। वैश्विक आतंकवाद, संयुक्त राष्ट्र, अन्तराष्ट्रीय समझौते।

आतंकवाद की परिभाषा:

आतंकवाद क्या है? आतंकवाद को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है, लेकिन सबसे सटीक परिभाषा, विशेष रूप से इसे राष्ट्रीय सुरक्षा से जोड़ने के संदर्भ में, योना अलेक्जेंडर द्वारा प्रदान की गई है। इनके अनुसार 'आतंकवाद राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के उद्देश्य से डराने या सामान्यीकृत व्यापक भय पैदा करने के लिये यादृच्छिक या नागरिक लक्ष्यों के खिलाफ हिंसा का उपयोग या धमकी है।' आतंकवाद की मुख्य विषेषताएं क्या हैं? सबसे पहले, आतंकवाद राज्यों या समूहों द्वारा आयोजित किया जाता है। वे अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संगठित समूहों को सरोगेट के रूप में उपयोग कर रहे हैं। दूसरा, आतंकवाद को प्रायोजित करने वाले राज्य या समूह राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए ऐसा करते है, हालांकि वे अपने राजनीतिक लक्ष्यों को पूरा करने के लिए कई अन्य लक्ष्यों को भी अपना सकते है। दूसरी ओर, समूह सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक षिकायतों या कारणों का उपयोग कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, अलकायदा, ओसामा बिन लादेन, अपने जिहादी आतंकवाद को इस आधार पर उचित ठहराते हैं कि अमेरिका उनका एक शुद्ध इस्लामी राज्य में मुसलमानों के एकीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने में मुख्य बाधा है। तीसरा, आतंकवादी कई हथियारों का इस्तेमाल कने में सक्षम हैं। चुकि आतंकवाद ताकतवर के खिलाफ कमजारों का एक हथियार है, उनके लक्ष्य राज्य के सषस्त्र बलों के बजाय निर्दोष है।

भारत में आतंकवाद:

विकासशील देश होने के नाते भारत कई अन्य विकसित देशों की तुलना में विभिन्न प्रकार की चुनौतियों का सामना कर रहा है, जैसे भूख, जनसंख्या विस्फोट, गरीबी, बेरोजगारी और अशिक्षा आदि। ये समस्याएं पिछले साठ वर्षों से अधिक की आजादी की लंबी यात्रा में इसके विकास को प्रभावित कर रही हैं। लेकिन सबसे खतरनाक खतरा आतंकवाद है। एक समय था जब आतंकवाद राजनीतिक उद्देश्यों और सीमा पार प्रेरणाओं से लिपटी एक दूर की अवधारणा थी और कुछ हद तक जम्मू-कश्मीर राज्य तक ही सीमित थी । फिर यह फैलने लगा एवं अगला मुख्य क्षेत्र उत्तर पूर्वी भारत था जातीय पहचान और अलगाववादी ओवरटोन के कारण। फिर 1971 में तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तानी से शरणार्थियों की घुसपैठ और बाद में अवैध प्रवासियों ने जनसांख्यिकीय असंतुलन और राजनीतिक अस्थिरता और आतंकवादी हिंसा के स्वदेशी स्त्रोतों को जोड़ा है। हालाकि हमलों का बार-बार होना काफी कम हो गया है. फिर भी ये क्षेत्र अभी भी आतंकवादी हॉटस्पॉट बने है।

भारत में राजनीतिक कारणों से इस्लाम के दुरूपयोग ने आतंकवाद को एक और आयाम दिया है जिसे शजिहादी आतंकवादश के नाम से जाना जाता है। कई बाहरी सहायता प्राप्त आंतरिक या आंतरिक सहायता प्राप्त बाहरी जिहादी तत्त्व और उनके संगठन हैं, जिन्होंने पूरे भारत में आतंक के शासन का विस्तार करने के लिए अपना जाल फैलाया है। भारत में आतंकवाद ही मुख्य रूप से धार्मिक समुदायों और नक्सलवादी कट्टरपंथी आंदोलनों के लिए जिम्मेदार है। आज दीर्घकालिक आतंकवादी गतिविधियों वाले क्षेत्रों में जम्मू और कश्मीर, उत्तर और पश्चिम भारत (जिहादी आतंकवाद), मध्य भारत (नक्सलवाद के कारण) और उत्तर-पूर्व भारत में सेवन सिस्टर स्टेट्स (जातीय राष्ट्रवादी और अलगाववादी आंदोलन) है। 2006 तक भारत के 600 जिलों में से कम से कम

230 विभिन्न उग्रवादियों और आतंकवादी आंदोलनों से अलग-अलग तीव्रता से अशांत थे, अगस्त 2008 में, तत्कालीन राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार श्री के. नारायणन ने स्पष्ट रूप से जोर दिया था कि 750 से अधिक आतंकवादी सेल देश में काम कर रहे हैं।

आर्थिक गतिविधियों पर प्रतिकूल प्रभावः

समकालीन समाज पर आतंकवाद और इसके आर्थिक प्रभाव पिछले एक दशक में सबसे अधिक दबाव वाले मुद्दों में से एक रहे हैं। आतंकवादी हमले, चाहे स्थानीय हो या अंतर्राष्ट्रीय अलग-अलग तीव्रता के तत्काल मानवीय, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव पैदा करते हैं, हालांकि, उनका प्रभाव वहाँ नहीं रुकता क्योंकि अधिकांश लागतें अप्रत्यक्ष नतीजों से आती हैं, जिन्हें अप्रत्यक्ष लागत के रूप में बहुत भिन्न देखा जा सकता है। आतंकवादी हमलों की संख्या गतिविधियों, क्षेत्रों, देशों और समय में उनके वितरण में भिन्न होती है। आतंकवादी हमलों के आर्थिक परिणामों के आयाम का एक बेहतर विचार प्राप्त करने के लिए, अर्थव्यवस्था पर उनके प्राथमिक प्रभावों पर एक नजर डालने की आवश्यकता है। यह एक तथ्य है कि आतंकवादी हमले आम तौर पर आर्थिक विकास के नकारात्मक प्रभाव का पर्याय हैं। आतंकवाद वैश्वीकरण की गतिशीलता के माध्यम से अपनी क्षमताओं को अधिकतम करने में कामयाब रहा है और आज भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए अशांति का एक प्रमुख कारक बन गया है। इसलिए, आतंकवादी समूहों और उनके सहायक नेटवर्क को रोकने के लिए इसके आर्थिक प्रभावों के बारे में जानकारी एकत्र करना महत्वपूर्ण हो गया है। अर्थशास्त्रियों के अनुसार, भारतीय अर्थव्यवस्था पर आतंकवाद के प्रभाव विविध हैं। वैश्विक वित्तीय संकट के कारण पहले से ही क्षतिग्रस्त भारतीय अर्थव्यवस्था आतंकवादी हमलों से और अधिक प्रभावित हो रही है, जिसके अल्पकालिक और दीर्घकालिक निहितार्थ हैं।

अर्थशास्त्रियों का मानना है कि आतंकवादी हमलों से अर्थव्यवस्था को ऐसे समय में नुकसान होगा जब वह पहले से ही कमजोर हो रही है। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों पर भारतीय अनुसंधान परिषद (आईसीआरआईईआर) ने वित्तीय संकट और आतंकी हमलों जैसे बाहरी झटकों के योगदान का अनुमान लगाया है। नई दिल्ली स्थित थिंक टैंक ने हाल ही में देश की जीडीपी विकास दर पर बाहरी झटकों के प्रभाव पर एक अध्ययन पूरा किया है। आईसीआरआईईआर के निदेशक और मुख्य कार्यकारी राजीव कुमार के अनुसार, आईसीआरआईईआर प्रमुख संकेतकों के उपयोग के साथ भारत की जीडीपी विकास दर का अनुमान लगाता रहा है। ये वे चर हैं जिन्हें देश में आर्थिक गतिविधि के भविष्य के स्तर पर महत्वपूर्ण प्रभाव माना जाता है।

आतंकवाद का तात्कालिक प्रभाव संपत्ति का विनाश, जीवन की हानि और धन की हानि है, लेकिन उनका दीर्घकालिक प्रतिकूल प्रभाव औद्योगिक गतिविधियों के खिलाफ है। जयपुर सीरियल ब्लास्ट, जम्मू-कश्मीर आतंकवाद और मुंबई 26/11 के हमलों का कई उद्योगों पर तत्काल और केंद्रित प्रभाव पड़ा, जिससे केंद्रित आर्थिक और नौकरी का नुकसान हुआ। बेशक, इन उद्योगों की भारी सघनता वाले क्षेत्रों या इलाकों को भी नुकसान उठाना पड़ा।

26 नवंबर, 2008 को, अच्छी तरह से प्रशिक्षित आतंकवादी छोटी नावों पर अरब सागर से आए और स्वचालित हथियारों और विस्फोटकों के साथ मुंबई में कई हाई-प्रोफाइल बुनियादी ढांचागत लक्ष्यों पर हमला किया। हमला किए गए कई स्थलों में दो लक्जरी होटल-ताज महल पैलेस और ओबेरॉय-ट्राइडेंट - मुख्य रेलवे टर्मिनल के साथ, एक यहूदी सांस्कृतिक केंद्र, विदेशियों द्वारा संचालित एक कैफे, एक सिनेमा घर और दो अस्पताल थे। इस प्रकार, आतंकवादी हमले इमारतों और अन्य बुनियादी ढांचे को नष्ट करके अर्थव्यवस्था को सीधे तौर पर नुकसान पहुंचाते हैं। होटलों, रेलवे, बस स्टेशनों, स्टॉक एक्सचेंज, पुलों, जलविद्युत संयंत्रों, पूजा स्थलों, बाजारों, पर्यटन स्थलों, संसद और अन्य सार्वजनिक स्थानों पर हमले इसके कुछ उदाहरण हैं। 26/11 के बाद के हमलों की संरचनात्मक क्षति कुल 500 करोड़ रुपये थी, जिसनेबाद में बीमा उद्योग पर अपना प्रभाव डाला।

वैश्वीकरण ने इन झटकों के प्रभाव को दुनिया के सबसे दूरस्थ हिस्से में भी महसूस किया है। आज प्रत्येक राष्ट्र आर्थिक, सामाजिक या साम्प्रदायिक अशांति के निहितार्थों को प्रभावित करता है। वित्तीय वर्ष 2008 तक भारत और कारगिल युद्ध, संसद पर हमले के बाद 9.3% तक सकल घरेलू उत्पाद के साथ एक स्थिर वृद्धि देखी थी, अब 26/11 में लाखों का कारोबार खो गया है क्योंकि इस अवधि के दौरान दोनों देशों के बीच व्यापार लिंक जमे हुए हैं। सीमावर्ती राज्यों में कृषि-निर्यातकों को भारी नुकसान हुआ है। इसके परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों में बेरोजगारी बढ़ी है, जो बदले में फिर से दंगे भड़काती है। 26/11 के हमले में विदेशी बंधक शामिल थे और वे स्थान जहां व्यापारिक नेताओं, अधिकारियों और विदेशियों का आना-जाना लगा रहता था। इससे निवेश और वैश्विक व्यावसायिक गतिविधियों में गिरावट आती है।

मुंबई की अर्थव्यवस्था, जो भारत के 1 ट्रिलियन डॉलर जीडीपी में 5% का योगदान करती है और इसके प्रत्यक्ष करों का लगभग एक तिहाई है, वैश्विक अर्थव्यवस्था में खुद को एकीकृत करने में भारत की सफलता का प्रतीक है। ऐसी घटनाओं के कारण जिनका मुंबई ने सामना किया है, प्रतिद्वंद्वियों हांगकांग और टोक्यो की तुलना में एशियाई वित्त की एक प्रमुख राजधानी बनना मुश्किल था। इसका स्टॉक एक्सचेंज दुनिया के सबस व्यस्त बाजारों में से एक है, इसका बैंकिंग समुदाय दक्षिण एशिया से ईर्ष्या करता है, और इसके रेस्तरां और नाइटलाइफ की तुलना किसी भी वैश्विक सांस्कृतिक राजधानी से की जा सकती है।

मानव संसाधन पर आतंकवाद का खतरा भयानक है। आतंकवादी हमलों का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम मानवीय क्षति है। आतंकवाद भारी नागरिक मृत्युदर का कारण बनता है। आतंकवादी हमले के कारण जितनी अधिक मौतें होंगी, जनसंख्या पर उसका उतना ही अधिक मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ेगा। यह प्रत्यक्ष आर्थिक परिणाम की तरह प्रतीत नहीं हो सकता है लेकिन आतंक पास्तव में अर्थव्यवस्था को नाटकीय रूप से प्रभावित करता है। अनुमान पिछले 5 वर्षों में हैं 4000 आतंकवादी हमलों में मारे गए थे। यह भारत को आतंकवादी मौतों और आतंकवादी घटनाओं दोनों में इराक के बाद रखता है।

आतंकवाद और आतंकवाद की आर्थिक लागत को गंभीरता से लिया जाना चाहिए। हमलों की महत्वपूर्ण लागतें थीं जिनका अनुमान बाद में खोई हुई मजदूरी कामगारों के मुआवजे और घटे हुए वाणिज्य में होने वाले आर्थिक नुकसान से लगाया जाना चाहिए। कभी इतिहास का साथी रहा आतंकवाद अब सिद्धांत और व्यवहार दोनों में अर्थशास्त्र का भी अनिवार्य हिस्सा बन गया है। आतंकवाद के आर्थिक प्रभाव की गणना विभिन्न दृष्टिकोणों से की जा सकती है। संपत्ति की प्रत्यक्ष लागत और उत्पादकता पर तत्काल प्रभाव के साथ-साथ आतंकवाद का जवाब देने की लंबी अवधि की अप्रत्यक्ष लागतें हैं। इन लागतों की गणना

काफी बारीकी से की जा सकती है। दुनिया के किसी भी हिस्से में आतंकवाद अवांछित है क्योंकि यह न केवल मानव जीवन को मारता है बल्कि बुनियादी ढांचे, उद्योग को भी अंततः अपने समग्र विकास को रोक देता है। आजादी के बाद भारत बार-बार आतंकवादी गतिविधियों का दंश झेल रहा है। गरीबी, बेरोजगारी, असमानता और अन्य सामाजिक-आर्थिक मुद्दे हिंसा और आतंकवाद के कृत्यों से जुड़े हुए पाए जाते हैं। हाल के वर्षों को भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्णसमय के रूप में देखा गया है और विश्लेषकों का मानना है कि पिछले लंबे समय तक घटनाओ पर भारी पड़ना जारी रहेगा। अग्रणी संकेतक अतीत में जो पहले हो चुका है, उसके आधार पर भविष्य के विकास की भविष्यवाणी कर सकते हैं लेकिन अचानक बाहरी झटकों के प्रभाव को नहीं पकड़ सकते हैं जो अर्थव्यवस्था पर तत्काल प्रभाव डाल सकते हैं।

फेडरेशन ऑफ इंडियन चौंबर्स ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्रीज (फिक्की) द्वारा हाल ही में प्रकाशित राष्ट्रीय सुरक्षा और आतंकवाद पर टास्क फोर्सरिपोर्ट में दोहराया गया है कि भारत एक नए आतंकवाद का सामना कर रहा है, जो अधिक उग्र, परिष्कृत और धार्मिक रूप से प्रेरित है। हालाँकि, इस खतरे से निपटने के लिए, रिपोर्ट में कहा गया है, भारत के पास एक मजबूत और व्यापक आतंकवाद विरोधी रणनीति का अभाव है। मौजूदा तंत्र विभिन्न प्रणालीगत अपर्याप्तताओं से घिरा हुआ है और आतंकवाद से लड़ने में निजी क्षेत्र और नागरिक समाज की भूमिका को ध्यान में नहीं रखता है। दूसरी ओर, कुछ अर्थशास्त्रियों का मानना है कि आतंकवाद हमारी आर्थिक गतिविधियों में बाधा नहीं बन सकता है क्योंकि यह हमारे देश की पूंजी के भंडार के एक छोटे से अंश को ही नष्ट कर देता है। हालाँकि, भू-राजनीतिक और आर्थिक परिदृश्य पर एक व्यापक नजर इस गलत धारणा को आसानी से मिटा सकती है। हालांकि, यदि आतंकवाद भारत में समग्र आर्थिक जोखिम के एक छोटे से हिस्से का प्रतिनिधित्व करता है, तो इसका देश भर में उत्पादक पूंजी के आवंटन पर बड़ा प्रभाव पड़ सकता है। इन धमकियों के बावजूद यहां के अर्थशास्त्रियों को पूरा भरोसा है कि सरकार कई आतंकवाद विरोधी उपायों की मदद से निकट भविष्य में स्थिति को सफलतापूर्वक संभाल लेगी और हमारी अर्थव्यवस्था को निकट भविष्य में नई ऊंचाइयों पर ले जाने में सक्षम बनाएगी। उनका मानना है कि आतंकवाद विशाल भारतीय अर्थव्यवस्था पर केवल अल्पकालिक प्रभाव रखता है, जहां माना जाता है कि घरेलूबाजार निरंतर विकास का समर्थन करने के लिए काफी बड़ा है और आशावादी हैं कि देश को इससे बाहर निकालने के लिए उनकी दीर्घकालिक संभावनाएं काफी मजबूत रहेंगी। फिर भी यह नोट किया जा सकता है कि आतंकवाद अब भारतीय अर्थव्यवस्था का एक अनिवार्य हिस्सा बन गया है। इसलिए, आतंकवाद की अवधारणा पर कोई चर्चा करते समय या उसके बारे में कोई निर्णय लेते समय हमें इसके आर्थिक, आर्थिक प्रभावों की पूरी तरह से जांच करने की आवश्यकता है। हालांकि, हमारे देश में आतंकवाद का आर्थिक निहितार्थ खतरनाक स्थिति में है और इससे बचने की जरूरत है।

पर्यटन भारत में सबसेबड़ा सेवा उद्योग है तथा यह भारत में सकल घरेलू उत्पाद में 63% और भारत में कुल रोजगार का 8.9% योगदान के साथ सबसे बड़ा सेवा उद्योग है। भारत सालाना 5 मिलियन से अधिक विदेशी पर्यटकों के आगमन और 562 मिलियन घरेलू पर्यटन यात्राओं का साक्षी है। निश्चित रूप से आतंकवाद का प्रभाव पर्यटन से जुड़े अन्य उद्योगों जैसे आतिथ्य और होटल उद्योग और परिवहन और स्थानीय टूर ऑपरेटरों द्वारा महसूस किया जाएगा। यात्रा और पर्यटन प्रतिस्पर्धात्मकता रिपोर्ट 2007 ने भारत में पर्यटन को मूल्य प्रतिस्पर्धात्मकता के मामले में 6 पां लेकिन सुरक्षा और सुरक्षा के मामले में 39वां स्थान दिया। आतंकवाद के कारण अधिकांश विदेशी पर्यटक भारत आने से डर रहे हैं, जो अंततः पर्यटन को धीरे-धीरे गायब कर देता है।

आतंकवाद का भारत के विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। कोई भी वास्तव में परिणामों का अनुमान नहीं लगा सकता है यह कीमत और भारत पर आतंकवाद के प्रभाव की लागत या धन की राशि जो हर साल आतंकवाद पर युद्ध के रूप में खर्च की जाती है। आतंकवाद के खिलाफ युद्ध लड़ने या उग्रवाद से लड़ने के लिए निरंतर चौकसी के साथ सीमाओं की रक्षा करने के लिए हर साल जिस तरह की राशि खर्च की जाती है, वह बहुत बड़ी है। 2002 में श्री अरुण जेटली ने एक आंकड़ा प्रदान किया, जिसमें कहा गया था कि कुल धनराशि खर्च की गई और इसमें पह राशि शामिल नहीं है जो हमने अपने सुरक्षा बलों, सेना आदि पर खर्च की, केवल राहत और पुनर्वास पर विशेष अर्धसैनिक बलों पर जिन्हें हम उग्रवाद विरोधी के लिए तैनात करते हैं। यह उस तरह का पैसा है जो वास्तव में सिर्फ उग्रवाद विरोधी उपायों में लगाया गया है

लोकतंत्र पर प्रभावः

आतंकवाद न केवल भारत के लोकतंत्र के लिए बल्कि दुनिया भर के देशों के लिए खतरा रहा है जो लोगों के अधिकारों के आनंद को प्रभावित करता है। आतंकवाद ने मानव जीवन के लगभग हर क्षेत्र को प्रभावित किया है, चाहे वह आर्थिक या राजनीतिक या सामाजिक जीवन हो। मोटे तौर पर, आतंकवाद स्वतंत्रता, विकास और मानवाधिकारों का विरोधी है। भारत के सीमांत क्षेत्र, विशेष रूप से पाकिस्तान की सीमा से लगे क्षेत्र आतंकवाद से सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र हैं। पारंपरिक सोच यह रही है कि यह राज्य है जो मानवाधिकारों का उल्लंघन करता है लेकिन आतंकवादी द्वारा मानवाधिकारों का उल्लंघन एक वास्तविकता है, जो एक गंभीर समस्या है। आतंकवाद, अपने सभी रूपों में मानवाधिकारों का सबसे बड़ा उल्लंघनकर्ता है। यह आज दुनिया के लिए एक स्पष्ट और वर्तमान खतरा है, यह निर्दोष नागरिकों के मानवाधिकारों पर घातक प्रहार करता है।

आतंकवादियों द्वारा निर्दोष लोगों की निर्मम, बर्बर, अमानवीय हत्या न केवल सरकार के अधिकार को चुनौती देने के उद्देश्य से की जाती है, बल्कि देश की सुरक्षा और संप्रभुता को खतरे में डालने और आघात और स्थायी दुख लाने के लिए भी किया जाता है। परिवार जो इस तरह की हत्याओं से पीड़ित हैं। उनके दुख और आघात को पर्याप्त रूप से व्यक्त नहीं किया जा सकता है लेकिन केवल महसूस किया जा सकता है। एक शब्द में कहना भयानक है। जीवन का अधिकार, जो अन्य सभी अधिकारों का आनंद सुनिश्चित करता है, प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक समूह के लोगों, प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक राष्ट्र और वास्तव में, सभी मानवता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। आतंकवाद सबसे बुनियादी मानवाधिकारों पर एक सीधा हमला है, जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार, बिना चेहरे वाले हत्यारों द्वारा, जिनका एकमात्र उद्देश्य मनुष्यों को मारना और अपंग बनाना है।

आतंकवाद का उद्भव 1980 के दशक का एक दुर्भाग्यपूर्ण और हानिकारक विकास रहा है। तब से यह भारतीय राजनीति की एक दुखद वास्तविकता है, जम्मू-कश्मीर, असम और अन्य उत्तर-पूर्वी राज्य, बिहार और आंध्र प्रदेश सभी प्रभावित राज्य हैं। आतंकवाद किसी न किसी रूप में भारत के विभिन्न

भागों में विद्यमान है। आतंकवाद अलगाववादियों और क्रांतिकारियों का एक मानक हथियार रहा है, जो या तो भारत से बाहर स्वतंत्र मातृभूमि के निर्माण या भारत को एक नए राज्य में बदलने की वकालत करते हैं। जम्मू-कश्मीर में अलगाववादी समूहों ने आतंकवाद को एक हथियार के रूप में अपनाया है। यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ असम (ULV) असम का एक आतंकवादी संगठन भारतीय संघ से स्वतंत्र मातृभूमि के लिए लड़ रहा है।

आतंकवाद का खतरा भारत में राष्ट्रीय एकीकरण और राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है। यह अपने आप में देश के विभाजन या विघटन के खतरे को समाहित करता है। यह एक बहुत ही जटिल और खतरनाक विकास का गठन करता है, जो अगर अनियंत्रित रहता है, तो राष्ट्रीय एकता को खतरे में डालने की क्षमता है। आतंकवाद भारत के कानूनी आधार का उल्लंघन करने और उन उपकरणों को स्थायी रूप से घायल करने के लिए डिजाइन की गई हिंसा के कृत्यों से शुरू होता है। आतंकवाद भी राजनीतिक अस्थिरता की ओर ले जाता है। भारत के दो पूर्व प्रधानमंत्रियों, श्रीमती इंदिरा गांधी और श्री राजीव गांधी की हत्याओं ने पहले ही भारतीय राजनीति और अर्थव्यवस्था को बड़े पैमानेपर झटका दिया था।

भारत में आतंकवाद की विशेषता कम्युनिस्ट, इस्लामवादी और अलगाववादी समूह हैं। कम्युनिस्ट आतंकवादी समूह अब तक सबसे लगातार अपराधी हैं और भारत में आतंकवाद से होने वाली मौतों का मुख्य कारण हैं। ग्लोबल टेररिज्म इंडेक्स के अनुसार, 2015 में भारत में आतंकवाद से होने वाली मौतें 2000 के बाद से दूसरे सबसे निचले स्तर पर आ गई। स्टेटिस्टा द्वारा प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार, 2016 में भारत में आतंकवादी हमलों की संख्या 927 है आतंकवाद का सबसे तात्कालिक और मापने योग्य प्रभाव भौतिक विनाश है। आतंकवादी मौजूदा संयंत्रों, मशीनों, परिवहन प्रणालियों और अन्य आर्थिक संसाधनों को नष्ट कर देते हैं। छोटे पैमाने पर, आतंकवाद के कृत्य विभिन्न सार्वजनिक स्थानों, बाजारों या धार्मिक स्थानों को उड़ा सकते हैं। आतंकवाद का प्रभाव हमेशा अर्थव्यवस्था के लिए नकारात्मक होता है, और भौतिक विनाश इसका एक बड़ा कारण है। मूल्यवान वस्तुओं और सेवाओ को उत्पन्न करने वाले उत्पादक संसाधनों को नष्ट कर दिया जाता है, जबकि अन्य संसाधनों को सैन्य और रक्षा को मजबूत करने के लिए अन्य उत्पादक उपयोगों से लगभग हमेशा के लिए हटा दिया जाता है। इनमें से कोई भी धन का सृजन नहीं करता है या जीवन स्तर में वृद्धि नहीं करता है। आतंकवादी गतिविधियों की संख्या में वृद्धि के साथ सुरक्षा के बदले में सरकार और नागरिक आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता को छोड़ने के लिए कहीं अधिक इच्छुक हैं। इसके परिणामस्वरूप उच्च कर, उच्च सरकारी घाटा और उच्च मुद्रास्फीति हो सकती है जो नागरिकों के अधिकारों के उपभोग पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। भारत वैश्विक और राष्ट्रीय दोनों मोर्चों पर आतंकवाद के खतरे से लड़ने की दिशा में लगातार काम कर रहा है, इस प्रकार नीतिगत स्तर पर कुछ उपाय अपना रहा है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत ने संयुक्त राष्ट्र महासभा में अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद पर व्यापक सम्मेलन का प्रस्ताव रखा है, जिस पर बातचीत चल रही है। इसके गोद लेने पर, सम्मेलन सभी आतंकवादी गतिविधियों के अपराधीकरण के लिए कानूनी आधार प्रदान करेगा। भारत ने सभी मानवाधिकारों के आनंद पर आतंकवाद के प्रभाव पर मानवाधिकार परिषद के संकल्प 34/8 के पक्ष में भी मतदान किया है। राष्ट्रीय स्तर पर, भारत ने कई कानूनों को बनाया और लागू किया है। उनमें से कुछ गैरकानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1967 आतंकवाद निवारण अधिनियम, 2002 आदि हैं।

भारतीय क्षेत्र में आतंकवादी, सांप्रदायिक, वामपंथी, चरमपंथी (एलडब्ल्यूई), सीमा पार फायरिंग और माइन, आईईडी विस्फोटों के नागरिक पीड़ितों की सहायता के लिए केंद्रीय योजना नामक एक केंद्रीय योजना तैयार की गई है। योजना का व्यापक उद्देश्य आतंकवादी, सांप्रदायिक और नक्सली हिंसा के पीड़ितों के परिवारों की सहायता करना है। हाल ही में सरकार ने वित्तीय सहायता को 3 लाख रुपये से बढ़ाकर 5 लाख रुपये कर दिया है। वित्तीय सहायता के अलावा, जो स्थायी रूप से अक्षम हैं और मारे गए पीड़ितों के परिवार के सदस्य राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के तहत जिला स्वास्थ्य समिति द्वारा दिए गए स्वास्थ्य कार्ड के हकदार हैं। यह कार्ड धारकों को हिंसा के कारण होने वाली अन्य सभी बड़ी बीमारियों के संबंध में मुफ्त चिकित्सा उपचार का अधिकार देगा। अन्य पहलों में कल्याण योजना शामिल है जिसके तहत मेडिकल कॉलेजों में आतंकवाद से पीड़ितों के परिजनों के लिए एक सीट आरक्षित रखी जाती है। राज्य घायल व्यक्तियों को चिकित्सा सहायता प्रदान करने के लिए नजदीकी अस्पतालों में स्थानांतरित करने के लिए तत्काल कार्रवाई शुरू करता है।

आतंकवाद एक लोकतंत्र में राजनीतिक संतुलन को कमजोर कर सकता है, और अधिक चरमपंथी तत्वों को पांव जमाने का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। आतंकवादी हमले में मरने वालों की संख्या अक्सर भयावह होती है जो मीडिया का ध्यान आकर्षित करती है और राजनीतिक आलोचना की ओर ले जाती है, सरकार में विश्वास को कम कर सकती है। दरअसल, किसी भी सरकार का मूल कार्य अपने नागरिकों की सुरक्षा सुनिश्चित करना है, और जबकि कुछ हमले ध्वज के चारों ओर रैली मानसिकता को बढ़ावा देते हैं, बार-बार होने वाले आतंकवादी हमले नागरिकों को उनके नेतृत्व पर सवाल उठाने के लिए प्रेरित करते हैं। यह विश्वास की कमी, बदले में नागरिकों को कानून और व्यवस्था का वादा करने वाली अधिक चरम आवाजों का पक्ष लेनेके लिए राजी कर सकती है या, अगर उन्हें सरकार में कोई उम्मीद नहीं दिखती है, तो सुरक्षा के लिए गिरोह या मिलिशिया जैसे गैर-सरकारी अभिनेताओ की ओर मुड़े।

निष्कर्ष और सुझाव:

आतंकवान केवल हिसात्मक कार्य या हिंसा के उपयोग करने की धमकी है जो लोगों के बीच डर फैलाती है यह कुछ समूहों द्वारा किये गये हिंसक कृत्यों को इस तरह से करने के लिये दिया गया नाम है जो कानून के खिलाफ है। आतंकवाद दुनियाभर के अधिकांष देषों के लिए एक खतरा है। हालांकि आतंकवाद के बढ़ने के कारण अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग हो सकते है, फिर भी यह मुख्य रूप से धर्म, विचारधारा, राजनीति, ऐतिहासिक विरासत, जातीयता, गरीबी, भ्रष्टाचार आदि के कारण बढ़ता है।

यह साबित हो चुका है कि आतंकवाद ने हमारे देश के लोकतंत्र, राष्ट्रीय एकता, अर्थव्यवस्था और विकास के मूल्यों को बुरी तरह से प्रभावित और बर्बाद कर दिया है और इसके उन्मूलन के लिए व्यापक मोर्चे पर राज्य की कार्रवाई की आवश्यकता है। इस खतरे को रोकने के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता है। इस समस्या से निपटने के लिए एक सर्वसम्मत रणनीति को दुनिया भर में लागू किया जाना चाहिए। भारत को आतंकवादी हमलों की बढ़ती संख्या से निपटनेके लिए आतंकवादी संगठनों और उन्हें प्रायोजित करने वाले देशों के खिलाफ कुछ सख्त और ठोस कार्रवाई करनी चाहिए। भारत को आतंकवाद को प्रायोजित करने वालेदेशों पर कुछ दबाव डालना चाहिए। इसके अलावा पूरे देश में सुरक्षा को कड़ा किया जाना चाहिए साथ ही इन आतंकी हमलों का

मुकाबला करने के लिए सुरक्षा कर्मियों को नई तकनीक प्रदान की जानी चाहिए। सीसीटीवी कैमरों के माध्यम से संचार प्रणाली से आतंकवादी हमलों के लिए एहतियाती उपाय आसानी से पहचाने जा सकते हैं, बल्कि गैर अपराधियों को दंडित किया जा सकता है जब घटनाएं होती हैं। खुफिया एजेंसियों को मजबूत किया जाना चाहिए क्योंकि आतंकवाद से मुकाबला करने में खुफिया एजेंसियों की अहम भूमिका होनी चाहिए थी। इसके अलावा लोकतंत्र के चारों स्तंभों को आतंकवाद के खिलाफ इस लड़ाई में अपनी जिम्मेदारी निभानी चाहिए। आतंकवाद से लड़ना केवल सरकार और बलों का कर्तव्य नहीं होना चाहिए आतंकवाद से लड़नेके लिए नागरिक समाज की भूमिका भी उतनो ही महत्वपूर्ण है। संगठनों को सहायता प्रदान करना बंद करने के लिए नागरिकों को आगे आने की आवश्यकता है, और इसके बजाय, इस तरह के खतरे को रोकने के लिए प्रशासन को अपना पूरा सहयोग देना चाहिए ताकि हमारा राष्ट्र भारत निरंतर प्रयास और उपलब्धि के उच्च स्तर तक बढ़ सके।

संदर्भ सूची:

1. Narang A.S. Terrorism the global Perspective, Kishka Publication, New Delhi, 2001.
2. Sharma Ashok, Terrorism in India, An assessment, World focus 2003.
3. Grover Virender, Encyclopedia of international terrorism, Deep and Deep Publication,2002.
4. कुसुमलता, आतंकवाद का मनोवैज्ञानिक स्वरूप एवं विश्लेषण,
5. प्रियंका विश्नोई, वैश्विक मंच और आतंकवाद कश्मीर के संदर्भ में, International Research Journal of Multidisciplinary Studies 5, 2019.
6. Swamy Subramanian, Terrorism in India: A strategy of deterrence for India''s National security, Haranand Publication, 2008.

गोविन्द मिश्र जी के कथा साहित्य में नारी के विभिन्न स्वरूपों का संक्षिप्त विश्लेषण

पंकज मिश्र

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, डी0 ए0 वी0 स्नातकोत्तर महा0 वि0, बुलन्दशहर

डॉ० रानी बाला गौड़

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, पूर्व प्राचार्य, डी0 ए0 वी0 स्नातकोत्तर महा0 वि0, बुलन्दशहर

सार-

नारी का समाज में महत्वपूर्ण स्थान है। नारी के बिना इस संसार की कल्पना नहीं की जा सकती है। यदि नारी नहीं होगी तो मानव सृष्टि का विकास रूक जाएगा। वैदिक काल में नारी को देवी के समान माना जाता था। उस समय नारी के प्रति लोगों की धारणा-''यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमन्ते तत्र देवता'' की थी। उस समय नारी को आदि शक्ति, अर्द्धांगिनी, ग्रह लक्ष्मी समझा जाता था। धीरे-धीरे नारी की स्थिति का पतन होने लगा। मुगलकाल में कन्या के पैदा होते ही उसे मार दिया जाता था। सती प्रथा पर्दा प्रथा जैसी कुरूतियाँ समाज में फैली हुई थीं। ब्रिटिश शासन काल में नारी की स्थिति बद से बदत्तर हो गई। उस समय नारी का स्थान अधिकार विहीन, पुरुष आश्रित और शोषित सदस्य का था। लड़कियों के लिए दहेज की, अनमेल विवाह की, सपत्नियों की आदि समस्याएँ थीं। नारी को शिक्षा का अधिकार नहीं था। विधवा पुनः घर नहीं बसा सकती थी। औरत केवल भोग की वस्तु थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भी नारी की स्थिति दयनीय थी। आज भी हमारे समाज में नारी की विभिन्न समस्याएँ व्याप्त हैं। गोविन्द मिश्र जी का कथा साहित्य अधिकांश नारी केन्द्रित है।

प्रस्तावना-

वर्तमान युग में पति-पत्नी का अहं, रुचि, मानसिकता, भावनाओं का अलगाव, विचारों में विरोधाभास, अर्थाभाव, अर्थलिप्सु प्रवृत्ति, सदेंह तथा अविश्वास आदि कारणों से दाम्पत्य जीवन में किसी एक को और कभी दोनों को अकेलेपन की समस्या से जूझना पड़ता है। प्रौढ़ युवतियों का सहज-स्वाभाविक कामनाओं की आवृत्ति से निर्मित अकेलापन उनके जीवन में घुटन भर रहा है। बीमारीग्रस्त तथा बूढेघ् व्यक्ति संतान की सजा भुगतने पर मजबूर हैं। परित्यक्ता तथा विधवाओं का अकेलापन उनके जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप साबित हो रहा है। पश्चिमी सभ्यता एवं शिक्षा के कारण इन सबंधों में बहुत परिवर्तन आ रहे हैं। इसका परिणाम तलाक की बढ़ती संख्या है। पति-पत्नी के सम्बन्धों के अतिरिक्त माता-पिता और संतान का पारिवारिक संबंधों में अपना महत्वपूर्ण स्थान है परन्तु आधुनिकता, मँहगाई, स्वार्थ, अधकचरी शिक्षा ने इस रिश्ते को भी हानि पहुँचाई है। भाई-भाई, बहन-भाई, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, सास-बहू, देवरानी-जेठानी, ननद-भाभी आदि रिश्तों में पहले वाला लगाव अब नहीं रह गया है। बढ़ती मँहगाई, स्वार्थ भावना तथा पारस्परिक रागद्वेष ने इन रिश्तों की गहराई को फीका कर दिया है। इन सब कारणों से व्यक्ति में कुण्ठा, अहंकार एवंस्वार्थ भाव उत्पन्न हो गया है। संबंधों के बदलाव के साथ-साथ नारी के स्वरूप में भी परिवर्तन हो रहा है। यह बदलाव स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अपने मुखर रूप में सामने आया है। भैतिकतावाद का आकर्षण सामाजिक इकाई पर कुठाराघात करने में लगा है। व्यक्ति नितान्त अकेला होता चला जा रहा है।

भारतीय समाज में नारी को प्राचीनकाल से ही गृहिणी पद से सुशोभित किया गया है, अतः उसके बाहर आने की समस्या ही नहीं थी। बचपन में वह पिता के संरक्षण में रहती थी। विवाहित होने पर पति का कठोर नियंत्रण रहता था। वृद्धावस्था में संतान की इच्छानुसार चलना पड़ता था। नारी घर की चार दीवारी से निकलकर राजनैति, सामाजिक क्षेत्र में कार्य करें यह प्रयास शिक्षा द्वारा ही संभव हुआ आधुनिक शिक्षा ने जो मूलतः पाश्चात्य शिक्षा थी, नारी की पारिवारिक और सामाजिक स्थिति में परिवर्तन किया।

गोविन्द मिश्र ने अपने कथा-साहित्य में सबल, सभ्य, सुसंस्कृत शिक्षित नारियों को स्थान दिया है। आज की नारी इतनी सशक्त हो गई है कि पुरुषों को भी नारी की शक्ति को देखकर आश्चर्य होता है। गोविन्द मिश्र का नारी के प्रति ऐसा जागृत दृष्टिकोण उनके आधुनिक होने का द्योतक है। वह रूढ़िवादिता को त्याग कर आगे बढ़ने के पक्षधर हैं। शिक्षा के प्रसार के साथ ही महिलाएँ नौकरी के क्षेत्र में भी प्रवष्टि हुई और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनीं। वस्तुतः आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने की क्षमता ने स्त्री को पूरी तरह से मुक्त कर दिया। स्त्री चाहे तो वह भी पुरुषों की तरह आत्मनिर्भर होकर जीवन बिता सकती है और वह आत्मनिर्भर हाके र अपना जीवन बिताती भी है।

नारी का विभिन्न रूपः-

गोविन्द मिश्र जी के कथा साहित्य में अन्य कथाकारों की अपेक्षा अधिकांशतः नारी मूल विषयक के केन्द्र में रहती है। नारी के जिस जीवन संघर्ष को उन्होंने समाज में देखा और अनुभव किया, उसे कथापात्रों के माध्यम से साहित्य में व्यक्त किया है। उनके उपन्यासों एवं कहानियों में नारी पारिवारिक मूल्यों को जोड़ने के लिए प्रयासरत है तो कहीं माता-पिता के विस्मृत होते अस्तित्व को सम्भालने के प्रयास में स्वयं टूटती तथा स्वयं को सम्बल देती दृष्टव्य होती है। यह परम्परागत नारी अपने पूर्ण सहयोग तथा सामर्थ्य से समाज को टूटने से बचा रही है। कभी ममतामयी माँ के रूप में, कभी आदर्श पत्नी के रूप में विवाह-संस्था को बनाये हुए हैं, जहाँ व्यक्ति को आर्थिक दंश तोड़ने का प्रयास करते हैं। वहाँ मिश्र जी की नारी बहुत कुछ झेलते हुए भी परिवार को बिखरने नहीं देती। ''पाँच आँगनों वाला घर'' की जोगेश्वरी पति द्वारा प्रताड़ित एवं अपमानित होने पर भी अपने पत्नीत्व की सार्थकता परिवार व पति के समर्पण में पाती है। ''माँ ने कैसे पग-पग पर पिता द्वारा दी गई यातनाएँ झेली, उनकी कमियों के एवज में अपने भीतर नई-नई खूबियाँ उभारीं। पिता उस समय के थे जब औरत को पीटना मामूली बात थी। माँ बड़े घर की थीं..... इसलिए होशोहवास में तो पिता हिचककर रह जाते, पर नशे में हुए तो भीतर से कमरा बन्द कर पूरी कसर निकाल लेते..... जिस तरह माँ सांसारिक जीवन में उन्हें दबाकर धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थीं। माँ के सामने एक ही जोरदार इच्छा थी-उनका घर बड़ा होना है-पैसे से, परिवार से।..... उन्होंने अपने उद्देश्य के लिए जब जरूरत हुई, अपने पति को भी एक किनारे सरका दिया।''[1]

पति के आकस्मिक दिवंगत हो जाने पर शोक व्यक्त करने का समय जोगेश्वरी के पास नहीं था। वह तटस्थ होकर उचित निर्णय लेना जानती थी। उसने बड़े बेटे राधे लाल को पिता की जगह गृहस्थी के लिए तैयार कर लिया था। जोगेश्वरी परिवार के प्रति समर्पित रहती है, ''माँ को इतनी फुर्सत नहीं थी, वे पिता के असमय निधन के दुःख में घुलतीं। उन्होंने पिता की जगह तैयार करना शुरू किया राधेलाल को। जब तक राधेलाल को कुछ पता चलता .... वे एक बड़ी गृहस्थी के स्वामी वाले साँचे में फिट किए जा चुके थे।''[2]

वर्तमान में जहाँ पारिवारिक रिश्ते क्षीण होते जा रहे हैं, वहाँ सामाजिक सम्बन्धों को बनाये रखने के लिए प्रयासरत 'लहर' कहानी की रश्मि तब अपने आत्मविश्वास को डिगा देती है, जब उसे पता चलता है कि उसे इस गृहस्थी को सम्भालना है। वह आत्मनिर्भर होते हुए भी पुरुष प्रधान समाज की दृष्टि में एक गृहणी है, ''पुरुष प्रधान समाज उसे अपनी सोच के लायक रखता ही कहाँ है। कैसी सभ्य-सभ्य मार पड़ती है उस पर। हमारी ये बड़ी-बड़ी बातें कैसी गुलामी में जकड़कर रख देती हैं उसे। एक बार विवाह हो गया तो लड़की लाख पढ़ी-लिखी हो, कमाऊ हो, आत्म निर्भर हो, सबसे पहले वह गृहस्थिन है, जिसे पति, घर और बच्चों के लिए होम होना ही है। उसकी अपनी जिन्दगी कुछ नहीं।''[3] अशिक्षा, अज्ञानता और अधीनता के अंधकार युग से शिक्षा, जागृति और समानता के प्रकाश पुंज में आने के पश्चात् भी नारी स्वयं को शोषित तथा अस्तित्वहीन समझने के लिए विवश होती है। रश्मि वैवाहिक जीवन में सामंजस्य करती हुई चलती है। कभी-कभी वह अपने स्त्री होने पर भी दुःख व्यक्त करती है ''अपना स्त्री होना खराब लगता है..... मैंने खुद को क्या बना डाला है। कभी-कभी लगता है जैसे मैं हूँ ही नहीं..... लता हूँ, हवा का कोई गड्ढा हूँ।''[4] यहाँ नारी पात्र भारतीय संस्कारों से युक्त एवं सामाजिक मान्यताओं को स्वीकार करते चलते हैं, परन्तु आधुनिक एवं पाश्चात्य प्रभावों को अलग नहीं कर सकते।

विद्रोहिणी नारीः-

आधुनिक भारतीय नारी पुरुष के साथ अर्थोपार्जन के लिए कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है। वह दोहरी भूमिका निभाते हुए अधिक महत्वपूर्ण हो गयी है। वह स्वयं क्यों पुरुष का उत्पीड़न, शोषण, अत्याचार तथा बन्धन सहे? नारी अपने बढ़ते कदमों में आने वाली बेड़ियों के रूप में संस्कार एवं परम्पराओं को तोड़ने में कतई संकोच नहीं करती और न ही किसी भी प्रकार का समझौता करने के लिए विवश होती है। मिश्र जी ने नारी का विद्रोही पक्ष अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया है। उन्होंने आज की नारी के विविध रूपों को उसकी अच्छाईयों, बुराइयों एवं कमजोरियों के साथ चित्रित करने का प्रयास किया है। ''धूल पौधों पर'' उपन्यास की नायिका में अपने पति के साथ हर कदम पर सामंजस्य करना चाहती है, परन्तु उसके ससुराल वाले उसे एक समान की तरह समझते हैं। जिस तरह वह प्रोफेसर प्रेमप्रकाश से कहती है कि ''मैं कोई चीज हूँ, जानवर हूँ या पत्नी हूँ तो इसलिए मनुष्य भी नहीं हूँ? मेरी इच्छा-अनिच्छा कुछ नहीं..... रात भर उसने मुझे एक जबर कुत्ते की तरह चींधा.... मेरे शरीर का कोई हिस्सा नहीं छोड़ा..... यहाँ तक कि मेरे बाल खींचे, जबरदस्ती मेरे कपड़े उतार फेंके, छाती पर नाखूनों से लकीरें खींच दीं, इधर-उधर कहीं भी दाँत गड़ाये। रात भर मुझे रौंदता रहा.....।।''[5] 'मैं' के मन में विद्रोह चलता रहता है, विद्रोह की ज्वाला में वह प्रतिदिन जलती रहती है। उसको समझ नहीं आता कि वह क्या करे? समाज के बन्धनों में वह इस तरह बंधी हुई है कि कितना भी विद्रोह करे मगर निकलने में असफल रहती है।

नारी की स्वतंत्रता और समानता के बाधित होन का एक पक्ष यह भी है कि नारी ही नारी की समता में सबसे बड़ा अवरोध है। घर में जब बेटी का जन्म होता है तो उसके लिए अलग संस्कार और नियम होते हैं तथा बेटे के जन्मोत्सव पर संस्कार और विधान अलग होते हैं। समाज में नारी असमानता की शिकार होती है जिसे पुरुष वर्ग अपने विधान की जंजीरों में जकड़ना चाहता है। मगर आज के समाज में स्त्री ही स्त्री की स्वतंत्रता में बाधक बनी हुई है। नारी जब नारी की प्रतिद्वन्द्वी होती है तो इसमें नारी का भी दोष नहीं है कि वह क्यों इस तरह नारी स्वतंत्रता को बाधित कर रही है। 'खिलाफत' उपन्यास एक इस्लामिक स्टेट की पृष्ठभूमि पर आधारित है। इसमें आयशा अन्द्राबी कैम्पेन चलाते समय स्त्रियों पर धर्म तथा संस्कारों का आरोपण करते हुए उनकी स्वतंत्रता पर रोक लगाने का प्रयास करती है ''कोई मुल्क या तो मुस्लिम है या गैर मुस्लिम, तीसरी कोई चीज नहीं। उसने दुख्तरान-ए-मिल्लत चला रखी है। वह कश्मीर यूनिवर्सिटी से अरबी में पोस्ट ग्रेजुएट है, कश्मीर में बुर्का पहनने के लिए कैम्पेन चला रही है-जो औरत बिना बुर्का नजर आयी, उसके मुँह पर कालिख पोत देती हैं। काम पर जाने वाली औरतों के पीछे पड़ जाती हैं कि वे काम पर न जायें, औरतों का काम है घर पर रहना। औरतों में आजाद-ख्याली के एकदम खिलाफ हैं।''[6]

वर्तमान की नारी के पास दूसरों के विषय में सोचने का समय नहीं है। वह स्वयं के सम्बन्धों का निर्वाह करते हुए इतनी दूर आ गयी है कि अपने लिए भी अपरिचित सी हो गई है। इस अपरिचय बोध की इतनी अधिकता बढ़ गयी है कि मानवीय सम्बन्धों की मिठास अब दृष्टिगत नहीं होती।

कुण्ठित नारी:-

नारी की भावुकता, कोमलता, ममता और सहनता मूलभूत प्रकृति है। आधुनिक परिवेश में नारी के यहीं गुण समाज के मूलाधार हैं जिस पर वह टिका है। मिश्र जी ने नारी के भावुक रूप को अभिव्यक्त किया है। 'तुम हो' कहानी की सुषमा को जब उसके पिता उसके ससुराल वालों पर दहेज का झूठा आरोप लगाकर अपने घर ले आते हैं। तब सुषमा के पिता के दबाव में आकर भावनाओं को मन में समेटने के लिए विवश होती है। फिर भी न जाने क्यों उसका मन ससुराल पक्ष की ओर जाता है। वह अपने पिता के चंगुल में फंस गई थी, वहाँ से निकलने में वह असफल हो जाती है और भावुकता की ओट में निरन्तर कुण्ठित होती जाती है। वह सोचती है, ''उसके बारे में क्या सोचती होगी सास या ननद! जिसके लिए उन्होंने क्या-क्या किया, वह यह कह रही हैं। ऐसा झूठ! क्या छवि बनी होगी सुषमा की वहाँ! यहाँ किसी से यह कहो तो कहेंगे अब कौन सी छवि! वहाँ किसी के सोचने-ओचने का क्या, पागल हो क्या? तुम अब तो वहाँ जाने से रहीं। रहने की बात तो और दूर की ..... तो तुम्हें क्या मतलब?''[7] सुषमा मानसिक दबावों से मुक्ति और अपने स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना का पूरा प्रयास करती है। वह पहले मूक-सी बनी रहती है। उसे लगता है कि वह असहनीय है। वह स्वयं निर्णय करने में अक्षम-सा महसूस करती है तथा स्वयं पिता और पति के निर्देशों का अनुसरण करती है। मगर जब वह यथार्थ की दृष्टि से दोनों के पक्षों का मूल्यांकन करती है क्योंकि पिता उसके पति पर दहेज का आरोप लगाते हैं। जिसका समर्थन सुषमा नहीं करती और कुण्ठा की ज्वाला से निकलकर वह पिता के समक्ष अपना पक्ष रखती है, ''मेरे ब्याह में जो खर्चा हुआ, वह निकल आया, उससे ज्यादा ही। आगे हम उनसे कुछ नहीं लेंगे। रघु को छोड़कर बाकी सबने मेरे साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया। रघु ने एक बड़ी कृपा की कि मुझे छुआ तक नहीं। जिस झूठ को लेकर हम लड़ रहे हैं, उसे मैं और नहीं खींच सकूँगी। अब यह लड़ाई बन्द करिए। मैं पुलिस में कोई शिकायत नहीं करूँगी। आप और रघु के पिता हट जाइए। रघु और मैं आपसी रजामंदी से तलाक ले लेंगे-साधारण तलाक।''[8] सुषमा अनेक विरोध तथा कुण्ठाओं के बावजूद अपने पिता का विरोध करती है। साधिकार स्वतंत्र रूप से रहना चाहती है। वह अवरोध सहन नहीं कर सकती। अपने निर्णयों पर दूसरों का हस्तक्षेप उसे अस्वीकार-सा प्रतीत होता है, ''पहली बार उसने पिता से साधिकार कुछ कहा। अधिकार अपना, अपने होने का। खामोशी की अदृश्य डोर अपने पिता के चेहरे को किसी तरफ खींच रही थी। सुषमा उनके क्रोध झेलने को तैयार थी।''[9]

आधुनिक नारी पुरुष के साथ प्रतिस्पर्धा के क्षेत्र में उतर पड़ी है। वह पुरुष के साथ केवल भावनात्मक रूप से जुड़ी है अपितु प्रतिस्पर्धा ने उसे पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने पर विवश किया है। पुरुष सत्ता समाज से मिलने वाले शोषण, उत्पीड़न और बन्धन के विरुद्ध लड़ने का वह साहस करती है। आज पुरुष की भोग्या बनकर जीने वाली स्त्रियों की संख्या कम होती जा रही है। 'तुम्हारी रोशनी में' उपन्यास में सुवर्णा नामक विवाहित स्त्री की कहानी है। वह अपने पति रमेश की युवा सोच और सहयोग के कारण पूर्ण स्वतंत्र ढंग से रहती है। वह नौकरी करने के बावजूद घर और बच्चों के प्रति न सिर्फ यह कि वह उदासीन नहीं है, इस मोर्चे पर भी वह अपनी सफलता के प्रति सजग रहती है। वह प्रतिस्पर्धा में कहती भी है, ''गृहस्थिन होना गर्व की बात है मेरे लिए.....। यहाँ भी अपना काम मुझे उतना ही अच्छा लगता है जितना दफ्तार का काम। जैसे मैं दफ्तर में सफल होना चाहती हूँ वैसे ही घर में भी। वहाँ मैं किसी आदमी से पिछड़ी नहीं रहना चाहती, यहाँ किसी औरत से नहीं।''[10] सुवर्णा जब मोहन के साथ पिकनिक पर जाती है तब रमेश उसके साथ अनैतिक व्यवहार करता है, साथ ही उस पर पति के अधिकार का आरोपण लाद देता है कि वह उससे बिना पूछे किसी से नहीं मिलेगी। वह उस पर भावनात्मक हमला ही नहीं, अपितु शारीरिक यातना भी देता है। गाली-गलौज और मारपीट के साथ वह उसके संवेदनात्मक अंग रूपी बच्चों और उसके बीच दीवार खड़ी करने का प्रयास करता है। वह इस नीति को अपनाकर उसे झुकाना चाहता है, मगर वह तटस्थ होकर उत्तर देती है, ''मैं यह नहीं मानती कि सिर्फ इसलिए कि तुम मेरे पति हो, तुम यह तय करो कि मैं इससे मिलूँ, उससे न मिलूँ। बात तीन चार आदमियों की नहीं है, उस स्वतंत्रता की है जो ईश्वर ने मुझे दी है और जिसे तुम हड़प लेना चाहते हो..... पर बहस की क्या जरूरत..... तुम इन लोगों से मिलने की बात मान भी लो तब भी मेरा फैसला वही रहेगा।''[11]

सामाजिक, आर्थिक परिवेश ने जब भी पुरुष को कमजोर किया है तब उसने नारी के प्रेमपूर्ण आँचल में ही आश्रय लिया है। मिश्र जी के साहित्य में नारी जहाँ दाम्पत्य जीवन का निर्वाह करती है, वहाँ वह पति की सहयोगिनी बनकर हर कदम पर उसके साथ खड़ी रहती है। 'पाँच आँगनों वाला घर'' की ओमी पति का अनुसरण करती हुई चलती है। पति ठीक करता है या गलत, सभी कार्यों में उसके कदम से कदम मिलाकर चलती है। ''जब-जब वे ओमी को देखते हैं। यह स्त्री जिसको उन्होंने अपने प्रभावी व्यक्तित्व के सहारे अपने सिद्धान्तों पर चलने को मजबूर किया..... उसकी कितनी इच्छाएँ, आकांक्षाएँ दबी रह गई... क्या यह करने का अधिकार मोहन को था? मोहन की तरह वह भी पीछे मुड़कर देखती होगी..... जीवन में उसके प्राप्ति? बस पति का अनुसरण किया, पति ठीक था या गलत पता नहीं..... अनुसरण ही जीवन।''[12]

विविध आयामों की ओर बढ़ती हुई नारी के संघर्षों से आकर्षित होकर मिश्र जी ने उसके अनेक रूपों को चित्रित किया है। नारी के ये रूप यदि मन के परम्परागत मूल्यों तथा संस्कारों को सहलाते हैं तो कहीं पर गहरे आघात करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। परिवर्तित परिवेश एवं मूल्यों से प्रभावित नारी विभिन्न स्थानों पर नये रूप में द्रष्टव्य होती है।

उपसंहार:-

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि गोविन्द मिश्र के लेखन में समय के साथ समस्याओं को नए कलेवर में रखने का हुनर प्राप्त है। समाज और संस्कृति उनके उपन्यासों में प्रमुख स्थान पाते हैं, आशावादी गोविन्द मिश्र अपने समाज और उसमें घटित होने वाली हर परिस्थिति का सूक्ष्म अंकन करने की क्षमता

रखते हैं, उनके कई सारे उपन्यासों में स्त्री जीवन, गरीबी-भुखमरी, ऊँच-नीच का भेदभाव के साथ परम्परा के प्रति लगाव, संस्कृति और धर्म के प्रति यथार्थवादी मानवीय सोच आदि का समिश्रण विद्यमान है। मिश्र जी के साहित्य में नारी के विविध रूप अनेक कोणों से रूपायित होते हैं। विविध आयामों की ओर अग्रसर होती नारी से प्रभावित होकर मिश्र जी ने उसके विविध रूपों का अति सूक्ष्मांकन किया है। नारी के ये रूप एक ओर हृदय के परम्परागत संस्कारों को सहलाते हैं तो दूसरी ओर तटस्थ होकर परिवर्तन की चाह में उन्हें तोड़ने को विवश भी होते हैं। परिवर्तित परिवेश एवं मूल्यों से प्रभावित नारी अनेक स्थानों पर नवीन रूपों में दृष्टिगत होती है।

सन्दर्भ सूची:-

1 पाँचों आँगनों वाला घर, गोविन्द मिश्र, पृ0 28
2 पाँचों आँगनों वाला घर, गोविन्द मिश्र, पृ0 28-29
3 'लहर' कहानी समग्र भाग-3, गोविन्द मिश्र, पृ0 148
4 'लहर' कहानी समग्र भाग-3, गोविन्द मिश्र, पृ0 149
5 'धूल पौधों पर', गोविन्द मिश्र, पृ0 23
6 'खिलाफत' गोविन्द मिश्र, पृ0 141
7 'तुम हो! कहानी समग्र भाग-3, गोविन्द मिश्र, पृ0 253-254
8 'तुम हो! कहानी समग्र भाग-3, गोविन्द मिश्र, पृ0 256
9 'तुम हो! कहानी समग्र भाग-3, गोविन्द मिश्र, पृ0 256
10 'तुम्हारी रोशनी में' गोविन्द मिश्र, पृ0 20
11. 'तुम्हारी रोशनी में' गोविन्द मिश्र, पृ0 149
12. पाँचों आँगनों वाला घर, गोविन्द मिश्र, पृ0 158
13 कान्त सुदेश (2020) गोविन्द मिश्र के कथा साहित्य में नारी का स्वरूप।

मध्यवर्ग का परिचय तथा मंजुल भगत की कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन का संक्षिप्त विश्लेषण

डॉ० मधु शर्मा

शोध निर्देशिका, एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, एन0ए0एस0 कॉलिज, मेरठ

संगीता यादव

शोधार्थिनी, एन0ए0एस0 कॉलिज, मेरठ

सार-

अपने नाम के अनुरूप ही अस्तित्व पाने वाला मध्यवर्ग दो वर्गों के बीच ही रूपाकार होता है। इसके बावजूद इस वर्ग की अपनी निजी विशेषताऐं हैं। इंग्लैंड, रूस और प्रफांस की क्रांतियों ने इस वर्ग को निर्मित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उद्योग, व्यापार, उत्पादन में वृद्धि और पूंजीवाद के आरंभ से ही पूंजीवादी देशों में मध्यवर्ग का होना निश्चित हुआ है। 'मध्यम वर्ग केवल एक स्तरीय लोगों का वर्ग नहीं है। इसके सदस्य आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से भिन्न धरातलों पर रहते हैं। मध्यवर्ग के संबंध मे मंजुल भगत जी का विचार है कि ''समाज की शक्ति इसके प्रभुत्व में है। सरकारी कर्मचारी उद्योगों के मैनेजर राज्य उद्यमियों के कार्यकर्ता, कानून, चिकित्सा, प्रबंधक, बैंकिंग शिक्षा आदि में लगे व्यवसायी तथा औद्योगिक उद्यमी इसी वर्ग में आते हैं। इसलिए कई विद्वान मध्यम वर्ग शब्द का प्रयोग न करके मध्यवर्ग शब्द का प्रयोग में लाते हैं।

प्रस्तावना-

समाजशास्त्र के विश्वकोश ने मध्यवर्ग को इन शब्दों में व्यक्त किया है- 'मध्यवर्ग अपनी सीमाओं के उद्योग और व्यापार की मंझली स्थिति के उद्यमकर्ता जैसे शिल्पी और किसान अर्थात् वस्तुओं के छोटे उत्पादक, छोटे दुकानदार और व्यापारी तथा दफ्तरों के कर्मचारियों एवं वेतनभोगी लोगों को समाविष्ट करता है।[1]

'मध्यवर्ग के अन्तर्गत छोटे व्यवसायों के स्वामी, पेशेवर लोग, बाबू वर्ग और सम्पन्न किसान सम्मिलित होते हैं।'[2]

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार 'मध्यवर्ग सामंती व्यवस्था में नहीं पाया जाता क्योंकि उस समय जमींदार तथा किसान का सीध संबंध था, किन्तु पूंजीवादी व्यवस्था ने समाज को इतना जटिल बना दिया है कि एक मध्यवर्ग की भी आवश्यकता हुई जो इस जटिल व्यवस्था के संघटन सूत्र को संभाल सके। इस वर्ग में नौकरी पेशा, शिक्षक, क्लर्क और अन्य साधरण लोग आते हैं। मध्यवर्ग विशेषत: बुद्धिमान वर्ग माना जाता है और हमारे सामाजिक क्रांति के प्राय: समस्त विचारों का सर्जन मध्यवर्ग में होता है।[3]

वर्गविहीन समाज के स्वप्नद्रष्टा कार्ल मार्क्स के अनुसार, 'उन देशों में जहाँ आधुनिक सभ्यता का पूर्ण विकास हो गया है, छोटे बुर्जुआ का एक नया वर्ग बना लिया गया है, जो श्रमजीवी और बुर्जुआ समाज के अनुपूरक भाग के रूप में सदा बचता रहा है।'[4]

एक अन्य विद्वान के अनुसार 'मध्य वर्ग आज जनसंरचना के उस विभिन्न भाग को सूचित करने वाला पारिभाषिक शब्द है जिसमें मुख्यतया छोटे-मोटे व्यापारी और उद्योगपति व्यवसायिक एवं दूसरे सामान्य आय वाले बौद्धिक कार्यकर्त्ता, कुशल शिल्पी, समृद्ध किसान सपेफदपोश, कर्मिष्ठ वर्ग तथा बड़े-बड़े व्यापार केन्द्र, औद्योगिक प्रतिष्ठानों के वेतन भोगी सेवक आते हैं। उनके कुछ कम समान आर्थिक हित हैं। जो कुछ समानता उनमें हैं, वह उनके शैक्षिक स्तर, जीवन स्तर और पारिवारिक जीवन के आदर्शों एवं उनके लोकाचार तथा मनोविनोदात्मक हित में है।[5]

पश्चिमी विचारक अरस्तु का मानना है कि 'सभी राज्यों में तीन प्रकार के व्यक्ति मिलते हैं - एक वर्ग बहुत धनी है और दूसरा बहुत ही निर्धन और तीसरी प्रकार के व्यक्ति मध्यम श्रेणी के हैं। इस मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों में कई बातें अच्छी होती हैं। अत: मेरी इच्छा है कि मैं अपने नगर के मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों में ही माना जाये।'[6]

आर0एच0 ग्रेटन तो मध्यवर्ग को नाम के अनुरूप ही परिभाषित करते हैं तथा अन्य वर्गों के समान मानते हैं-'मध्यवर्ग का नाम ही समाज के स्तर की ओर संकेत करता है।

मध्यवर्ग के निर्धारक तत्व-

स्वतंत्र भारत में वर्गीय विकास को कई बातों ने प्रभावित किया। इसे शिक्षा, तकनीकी, आर्थिक कई प्रकार से देख सकते हैं, यह भी ज्ञातत्व है कि धनसंपदा से पूर्ण यह देश आत्मनिर्भरता की परंपरा से हटकर विदेशों के साथ जुड़ने का प्रयास भी कर रहा था। जहाँ एक ओर पश्चिमी सभ्यता और शिक्षा ने भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग को प्रभावित किया वहीं पूंजी की नवीन निवेश प्रक्रिया से वर्ग की भावना को बल मिला। पूंजीवाद ने विश्व स्तर पर मानवीय जीवन को प्रभावित किया था फिर उसका प्रभाव भारत पर पड़ना भी स्वाभाविक था। वास्तव में अंग्रेजी शासन के माध्यम से भारत में वर्गीय भावना का भी आगमन हुआ।

पूंजीवादी उद्योगपति अधिक से अधिक मुनाफा कमाने के लिए ऐसे लोगों को एजेंसी में भर रहे थे जो व्यापार में पारंगत होने के साथ शिक्षित भी हों तथा भाषायी ज्ञान से अवगत हो। हिसाब-किताब रखने, माल लाने, ले जाने और रिकॉर्ड आदि रखने के लिए लिपिकों, लेखाकारों की आवश्यकता हुई। इस प्रकार मध्यवर्ग के अस्तित्व का विकास हुआ।

अखिल भारतीय सेवाओं में भारतीय लोग पर्याप्त संख्या में आने लगे। शहरों में जन्म या जाति अब प्रतिष्ठा को पूर्व निर्धरित नहीं करती थी। और न ही जाति से व्यवसाय का पूर्व निर्णय होता था। पश्चिमी शिक्षा ने विश्व संस्कृति से भारत को जोड़ा फलस्वरूप वैयक्तिकता की भावना बढ़ी और संयुक्त परिवार की नींव हिल गई। अलग-अलग व्यवसायों में जाने की छूट से परम्परागत कार्य की व्यवस्था भी भंग हुई। अब पितृ व्यवसाय पर वंशानुगत कार्य को ही सर्वोपरि न मानकर किसी भी व्यवसाय अथवा नौकरी में जाने की छूट हो गई।

निजी संपत्ति के अधिकार ने परिवारों को बिखराव के मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया। भूमि का बंटवारा होने से खेती योग्य भूमि कम पड़ने लगी अतः लोग नौकरियों की तरपफ बढ़ने लगे। महाजनों, व्यापारियों अथवा बनियों की एक श्रेणी ऐसी भी थी जो स्वयं को निम्न वर्ग से अलग समझकर उच्च वर्ग में शामिल मानते थे किन्तु आर्थिक स्थिति के थोड़े से दबाव से ये भी मध्यवर्ग में ही गिने जाएंगे।

महत्वपूर्ण बात यह थी कि अब धर्म और जाति के कारण आर्थिक दबाव की स्थिति उत्पन्न होने का भय समाप्त हो रहा था। हर जाति, हर धर्म के लोग एक दूसरे से घुलमिल सकते थे, जीविकोपार्जन हेतु मनचाही नौकरी में जा सकते थे।

कानून की व्यवस्था उनको और अधिक अधिकार प्रदान कराती थी। अधिकार चाहे दिखावटी हो और उन्हें शासक अपनी इच्छानुसार परिवर्तित करता रहे, किन्तु यह विदित है कि कंपनी शासन के अंतर्गत मध्यवर्ग का उदय हुआ। यह मध्यवर्ग की जातीय अवधरणा के परे आर्थिक व वर्गीय अवधरणा थी। जिसने व्यक्ति के जीवन स्तर को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

मैकाले के अनुसार - 'अंग्रेजी शिक्षा द्वारा एक वर्ग को जन्म दिया गया जो हमारे और करोड़ों लोगों जिन पर शासन किया जा रहा है, में सम्पर्क बनाने वाले के रूप में बने, जो केवल खून और रंग में भारतीय हों, परन्तु रूचि, विचार, नैतिकता एवं बुद्धि से पूर्णतः अंग्रेज हों।[7]

अंग्रेजी शिक्षा और पूंजीवाद ने भारत के परम्परागत ढांचे को तोड़ा। शहरों में नौकरी करने वालों की संख्या में वृद्धि हुई। गांवों से लोगों का पलायन आरंभ हुआ। आर्थिक स्तर पर हुए परिवर्तन ने देश की नयी रूपरेखा प्रस्तुत की।

'मध्यवर्ग अपने उसूलों से जितना ज्यादा समझौता करता था, उसके पाखंड और नैतिकता की बातों में उतनी ही बढ़ोतरी होती चली जाती थी। अपना हित साधने के लिए वह अपने मूल्यों को गिरा लेने के लिए तैयार रहता था, लेकिन साथ ही शिखर पर हो रहे भ्रष्टाचार की निंदा करने का 'नैतिक' अधिकार भी नहीं छोड़ता था। इस तरह उच्च पदों पर भ्रष्टाचार को उसने अपनी सिद्धान्तहीनता का तर्क बना लिया। यह प्रवृति सिर्फ रिश्वतखोरी तक ही सीमित नहीं थी। अगर प्रधानमंत्री अपने पुत्र को नाजायज तौर पर आगे बढ़ा सकती थी, तो एक साधारण मध्यवर्गीय भारतीय को अपने किसी रिश्तेदार को योग्यता न होते हुए भी लाभ पहुंचाने में संकोच क्यों होना चाहिए था? अगर राजनेताओं के पास नकदी के ढेर हो सकते थे, तो एक अफसर किसी व्यापारी से दीवाली का महँगा 'उपहार' लेने से क्यों हिचकता? इस प्रकार 'भ्रष्टाचार की गाथा' ने समाज में भ्रष्टाचार को मान्यता दिला दी। नेहरू की मृत्यु के बाद अपने विचारधारात्मक आग्रहों से वंचित हो चुके मध्यवर्ग के पास इस परिस्थिति का मुकाबला करने लायक संकल्प और रुचि दोनों का ही अभाव था।[8]

इस प्रकार स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय मध्यवर्ग ने अन्य देशों की तुलना में अधिक कठिनाइयों का सामना किया है। एक ओर इस वर्ग पर पाश्चात्य शिक्षा तथा संस्कृति का व्यापक प्रभाव पड़ा है तो दूसरी ओर पूंजीवादी व्यवस्था तथा अन्य देशों में हुई क्रांतियों ने भी इस वर्ग की उत्पत्ति तथा विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

मंजुल भगत का मध्य वर्ग-

मध्यवर्ग के संबंध मे डॉ0 एम0के0 मिश्रा का विचार है कि ''समाज की शक्ति इसके प्रभुत्व में है। सरकारी कर्मचारी उद्योगों के मैनेजर राज्य उद्यमियों के कार्यकर्ता, कानून, चिकित्सा, प्रबंधक, बैंकिंग शिक्षा आदि में लगे व्यवसायी तथा औद्योगिक उद्यमी इसी वर्ग में आते हैं। यह मध्यम वर्ग बहुत सक्रिय तथा शक्तिशील चीजों को संचालित करने वाला महत्वपूर्ण वर्ग है।''[9] समाज में मध्यम वर्ग ही अधिकांशतः है अन्य वर्ग इसकी तुलना में कम ही हैं। मध्यम वर्ग भौतिक सुख-सुविधा में उच्चवर्ग से कम है किन्तु निम्नवर्ग का अभाव भी यहाँ नहीं दिखता। मध्य वर्ग के पास अपनी जरूरतों के अनुसार सुविधायें होती हैं। मध्यवर्ग मंजुल जी की कहानियों के साथ-साथ समाज का भी प्रतिनिधित्व करता है। 'नागपाश' मध्यवर्ग की कहानी है, जिसमें शिवानी और प्रशान्त पढ़ाई के दौरान मिलते है तथा प्रेम विवाह करते है। बाद में शराबी प्रशान्त के कारण शिवानी की स्थिति खराब हो जाती है। ''शिवानी को वह रात याद हो आई, जब नशे में पागल प्रशान्त ने बहस करते-करते तड़ाक से शिवानी के गाल पर एक तमाचा जड़ दिया था।''[10]

'खोज' कहानी नीलिमा के अपने अस्तित्व को खोजने की कहानी है। 'निशा' मध्यवर्ग की आधुनिक नारी की पहचान की कहानी है। जो विषम परिस्थितियों में अपने लिए राह तलाश करती है। 'बीवी और बांदी' कहानी उच्चमध्यवर्ग की कहानी है जिसमें मालकिन और नौकरानी है। इसमें नौकरानी मालकिन की नकल करती है। 'रसप्रिया' में स्त्री के भिन्न-भिन्न रूपों का चित्रण है जिसमें पड़सास, सास, बहू, पत्नी एवं विधवा के दर्शन होते है। 'बुआजी'

कहानी स्त्री के दु:ख-दर्द की कहानी है जो परिस्थिति परिवर्तन मात्र से कुलदेवी या कोठे की नर्तकी बन जाती है। ''यही है वह जादूगरनी जिसके घूमर से सुहाग बचाने को सती सावित्री जप-व्रत करती हैं? या फिर वह किसी स्वामिनिष्ट पतिव्रता का ही रूप है, जो असंख्य त्रास सहकर भी पतिगृह की दहलीज नहीं लाँघना चाहती? जरा सी परिस्थिति-परिवर्तन से वही कुलदेवी है और वही कोठे की नर्तकी भी?''[11]

'त्यागमयी' एक नई भारतीय स्त्री का प्रतिरूप है जो पति द्वारा उसे धोखा देने पर उसकी हत्या कर देती है। 'कबाड़' कहानी वृद्ध ताई की एक कबाड़ वाले के लिए ममत्व एवं प्रेम की कहानी है जो कबाड़ी के गृहस्थ जीवन के सपने देखती है, और घर के कबाड़ में से कुछ सामान एकत्र करती रहती है किन्तु कबाड़ी को विवाहित देखने से पूर्व ही उनकी मृत्यु हो जाती है। 'दादी जी का बटुआ' कहानी एक वृद्ध दादी एवं उनकी पोती सरीना के निश्छल प्रेम संबंध की कहानी है जैसे- प्रेमचन्द के ईदगाह कहानी में है। 'तीन पेड़ों के साये में' कहानी तीन दादाओं एवं उनकी संतानों की कहानी है। जिसमें सभी लोग कभी-कभी छुट्टियों में मिल पाते हैं। 'खट्टी-मीठी गोलियाँ' कहानी उच्चमध्यवर्ग एवं निम्नवर्ग की कहानी है जिसमें एक निर्धन बालिका संतो अपनी हमउम्र मालकिन की बेटी की तरह रहने का स्वप्न देखती है। इस कहानी में बाल मनोविज्ञान का सुन्दर चित्रण है। 'कितना छोटा सफर' अस्पताल की कहानी है जिसमें मरीज और डाक्टर के संवाद से कहानी आगे बढ़ती है।

'ब्यूटी सैलून' एक चीनी लड़की चीची की कहानी है जो अपनी माँ की मृत्यु के बाद ब्यूटी सैलून चलाती है और अविवाहित रहती है। 'मृत्यु की ओर' कहानी एक मरते हुए व्यक्ति की कहानी है जिसे उसकी माँ एवं पत्नी उसे बचाने का प्रयास करती हैं। 'भग्नावशेष' मोहित एवं भावना की कहानी है जो चार वर्ष साथ रहने के पश्चात् शादी करते है। किन्तु शादी के छ: वर्ष बाद मतभेद के कारण संबंध विच्छेद कर लेते हैं। इस कहानी में पति-पत्नी ही भग्नावशेष है। 'तीसरा अस्तित्व' नई बहू कोमिला की कहानी है जो ससुराल एवं मायके के बीच में खुद को फंसा हुआ महसूस करती है। शादी के बाद मायके में उसे उपेक्षा मिलती है और ससुराल में भी वह सौरभ की पत्नी से ज्यादा कुछ नहीं। कहानी के अंत में कोमिला की सास उसे मायके और ससुराल का महत्व समझाती है। 'दोबारा' कहानी एक मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है जिसमें माँ मीनाक्षी अपनी बेटी संगीता के लिए रिश्ते तलाश करती है और सोचती है कि जिस प्रकार उसका पति आदित्य शराबी है। उसी के समान बेटी की शादी भी गलत जगह न हो जाये। 'पायदान' भी शराबी पति मुकेश के कारण पत्नी मुक्ता के बर्बाद होते जीवन की कहानी है। ''मुक्ता को मालूम ही नहीं चला, कैसे मुकेश की ज्यादतियाँ, उसके व्यक्तित्व पर मलबे की तरह ढ़ेर होती गयी और मुक्ता उसमें, गहरे धंसती चली गयी।''[12]

'अजूबा' नेहा एवं निशीथ की कहानी है जिसमें नेहा शादी के चार वर्ष बाद भी कुंवारी है। कहानी की मूल समस्या यही है। यह कहानी पति-पत्नी के संबंध को नया आयाम देती है। 'छोटा डॉक्टर' कहानी अस्पताल की है जिसमें अस्पताल की दयनीय स्थिति, रोगियों के प्रति दुर्व्यवहार लापरवाही एवं अमानवीयता का यथार्थ चित्रण किया गया है। ''इंसान को किसी और नर्क की कल्पना करने की जरूरत नहीं। नर्क का निम्न से निम्न बाकी नहीं है यहाँ जाने कितने विकल प्रेत यहाँ रह जाते होंगे। नर्स चिड़चिड़ी और डॉक्टर अधीर। हर कोई भागा जा रहा है, नर्स भी, डॉक्टर भी और मरीज भी।''[13] 'शुभ-अशुभ' कहानी मध्यवर्गीय परिवार में बहू के त्याग की कहानी है जिसमें बहू प्रसव के लिए अस्पताल में है और डॉक्टर बच्चे या बहू में से किसी एक को बचाने की बात करते है। मायके वाले बेटी को बचाना चाहते हैं। किन्तु ससुराल के लोग अपने वंश को आगे ले जाने वाले बच्चे को बचाना चाहते हैं। बहू भी परम्पागत भारतीय नारी के समान अपने बच्चे को बचाना चाहती है। वह अपने पति के बच्चे की माँ बनना चाहती है कातिल नहीं। वह पत्नी एवं माँ दोनों रूपों में आत्मोत्सर्ग करती है अंत में माँ व बच्चा दोनों ही मर जाते है और कहानी मार्मिक हो जाती है। 'दूत' एक शराबी पति एवं बीमार पत्नी तनु की कहानी है जिसमें कम्पाउंडर दूत के समान आता है। वह पति को शराब से मुक्ति तो दिलाता है किन्तु तनु अकेली रह जाती है। पति उसका साथ नहीं देता। 'चिनार अपने-अपने' कश्मीर घूमने आये साहित्यकारों की कहानी है जिसमें स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार का वर्णन है। रेशमा जब बीमार होती है तो उसका पति, सास एवं ननद उसे अस्पताल में छोड़कर भाग जाते हैं। रेशमा किसी अन्य परिवार के साथ दिल्ली पहुँचती है। चाँद अपनी बेटी पर होने वाले अत्याचार से परेशान है।

'अंतिम चोट' कहानी में भारतीय पुरुषों की पत्नियाँ जर्मन मूल की है किन्तु सब भारतीय नारी की तरह रहती हैं फिर भी इनके पति इनका अपमान करते हैं। ये पतियों के लिए 'मैदे की गुड़ियाँ' या 'उलटी पड़ी छिपकली' है। ये जर्मन पत्नियाँ सिर्फ पैसा कमाने के लिए हैं। माता-पिता की सेवा तथा संतान के लिए तो देसी पत्नियाँ हैं। ''एक गोरी पत्नी कमाने के लिए और दूसरी देशी माँ-बाप बाप की सेवा-टहल और संतान की परवरिश के लिए।''[14] इस कहानी में संकीर्ण मानसिकता के पतियों का चित्रण है जो पत्नियों को सम्मान नहीं देते। 'वह जो एक चाहत हुआ करती थी' लालिमा की कहानी है जो अमित से प्रेम विवाह करती है जिसकी परिणति दु:ख में होती है। वह अपने छात्र जीवन को फिर से जीना चाहती है जो संभव नहीं है। 'अंधेमोड़' कहानी मध्यवर्गीय परिवार के पति-पत्नी की कहानी है जिससे पत्नी उजाला घर एवं पति में खोयी रहती है किन्तु वह अपनी जीन्दगी भी जीना चाहती है। 'चील के झपट्टे-सी चीख' सास, पति एवं पत्नी की मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है जिसमें सास अपनी बहू से परेशान है। 'ठग लिया नौशा हमारा' कहानी में विवाह पूर्व होने वाले नाच-गाने का सजीव चित्रण है। 'कुएं का मेढ़क' कहानी में नसीबचन्द कुएं का मेढ़क है जो विवाह पश्चात् परिवार को पोता तो देता है किन्तु लीला नामक युवती से प्रेमसंबंध भी रखता है। ''नसीबचन्द पर मदहोशी तारी थी। वह पूरे आलम से बेखबर था। बुजुर्गों की फुसफसाहटें भला क्या सुनता। वह अलग ही फुसफुसा रहा था, ''लीला, मैंने अपने परिवार से अपना फर्ज निभा दिया है। उन्हें एक पोता दे दिया है।''[15] 'अस्मि' कहानी रोगी रसील की है जो उसके पति के आगमन पर समाप्त हो जाती है।

निष्कर्ष-

उपर्युक्त समग्र विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारतीय मध्यवर्ग को आधूनिक स्वरूप प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। इस वर्ग की अपनी सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याएं हैं जो इसे समाज के विशेष वर्ग का दर्जा प्रदान करती हैं। मध्यवर्ग समाज का क्रांतिकारी वर्ग होने के कारण ही वर्तमान परिवेश में वैश्विक मंदी का डटकर सामना कर रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. 'द इनसाइक्लोपीडिया ऑपफ सेशल साइन्सेज', पृ0 467
2. 'वेबस्टर्स न्यू ट्वनटियथ सेन्चुरी डिक्शनरी', भाग-2
3. धीरेन्द्र वर्मा, 'हिन्दी साहित्य कोश'
4. मार्क्स-एंजिल्स, 'मेनिपेफस्टो ऑपफ कम्यूनिस्ट पार्टी', पृ0 100
5. एडिटिड बाय हेनरी प्रेट, 'डिक्शनरी ऑपफ सोशियोलोजी', पृ0 13
6. वेन्डिक्सिस एंड लिपसेट, 'क्लास, स्टेट्स, पावर', पृ0 17
7. प्रेफंक मोरस, 'इण्डिया टुडे', पृ0 196
8. पवन कुमार वर्मा, 'भारत के मध्यवर्ग की अजीब दास्तान', पृ0 89
9. भारतीय समाज- डॉ0 एम0के0 मिश्रा, पृ0 370, कल्पना प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2015
10. मंजुल भगत समग्र कथा साहित्य- संपा0 कमल किशोर गोयनका, पृ0 35, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2013
11. डॉ0 चण्डीप्रसाद जोशी, 'हिन्दी उपन्यास - समाजशास्त्रीय विवेचन', पृ0 330-331
12. मंजुल भगत समग्र कथा साहित्य- संपा0 कमल किशोर गोयनका, पृ0 35, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2013
13. बावन पत्ते और एक जोकर- मंजुल भगत, पृ0 124, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, दूसरा संस्करण-1998
14. चर्चित कहानियाँ- मंजुल भगत, पृ0 56, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2009
15. अंतिम बयान- मंजुल भगत, पृ0 65, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण-2001

बथुआ (चेनोपोडियम एल्बम) के पोषण और औषधीय महत्व और लोगों के बीच खाने की प्रथाओं के बारे में जागरूकता: एक जानकारीपूर्ण अध्ययन

दीपशिखा नागवंशी

रिसर्च स्कॉलर, आर.जी.पी.जी., कॉलेज, मेरठ

सारांश: हरी पत्तेदार सब्जियां सबका ध्यान खींचती हैं, क्योंकि मानव स्वास्थ्य के लिए उनके कई फायदे हैं। बथुआ में महत्वपूर्ण विटामिन, खनिज, फाइबर और आवश्यक अमीनो एसिड का सबसे सस्ता और सुलभ स्रोत पाया जा सकता है। अधिकांश विकासशील देशों में सब्जियां महत्वपूर्ण विटामिन, खनिज, फाइबर और आवश्यक अमीनो एसिड के सबसे कम खर्चीले और सबसे आसानी से सुलभ रूप हो सकती हैं, जहां दैनिक आहार में स्टार्चयुक्त स्टेपल खाद्य पदार्थों का प्रभुत्व होता है। बथुआ उन कई स्थानीय और जंगली सब्जियों में से एक है जिनका दुनिया भर में कम उपयोग किया जाता है क्योंकि उनकी पोषण क्षमता की अपर्याप्त वैज्ञानिक समझ है। बथुआ संपूर्ण पोषण का एक सस्ता स्रोत है जिसे "बिजलीघर" के रूप में जाना जाता है। बथुआ के कई औषधीय उपयोग हैं, जिनमें गुर्दे की पथरी, आंतरिक और बाहरी सूजन और रक्त शुद्धि शामिल है।

मुख्य शब्द: बथुआ (चेनोपोडियम एल्बम), पोषण, स्वास्थ्य, आदि

परिचय: बथुआ, जिसे वैज्ञानिक भाषा में चेनोपोडियम एल्बम भी कहा जाता है, की भारतीय व्यंजनों के इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका है। यह एक प्रसिद्ध प्राचीन मौसमी हरी सब्जी है, जो अन्य साग के समान ही तैयार किया जाता है और इसके स्वाद और स्वास्थ्य लाभों के कारण बड़े पैमाने पर इसका सेवन किया जाता है। यह सर्दियों में मिलने वाली पौष्टिक सब्जी है। 4,700 मीटर तक की ऊंचाई पर बथुआ के पत्ते केवल सर्दियों में ही पहुंच पाते हैं। बथुआ, जो मुख्य रूप से राजस्थान और हिमाचल प्रदेश राज्यों में उगाया जाता है, पूरे देश में इसे भेजा जाता है। प्रसिद्ध मेथी (मेथी), पालक (पालक), और सरसो (सरसों का साग) के साथ इस सर्दी में बथुआ हमारे आहार का एक घटक होना चाहिए। बथुआ के पत्ते महत्वपूर्ण खनिजों और एंटीऑक्सिडेंट सहित कई पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं, जो आपके सामान्य स्वास्थ्य के लिए अद्भुत काम कर सकते हैं। यह विटामिन ए, सी और बी कॉम्प्लेक्स का एक शक्तिशाली स्रोत है। पत्तियों में अमीनो एसिड का भी बेहतरीन स्रोत पाया जाता है। हम सभी जानते हैं कि हमारे शरीर और मांसपेशियों के स्वास्थ्य के लिए अमीनो एसिड कितना महत्वपूर्ण है। फाइबर और पानी की मात्रा के साथ आयरन, पोटैशियम, फॉस्फोरस और कैल्शियम जैसे खनिज भी काफी मात्रा में पाए जाते हैं। नतीजतन, बथुआ स्वस्थ पाचन और आंतों के आंदोलन को बढ़ावा देकर पाचन तंत्र के साथ कब्ज और कई अन्य मुद्दों का भी इलाज करता है। बथुआ स्वास्थ्य और आहार मंडल में अच्छी तरह से जाना जाता है क्योंकि यह हमारे जिगर के स्वास्थ्य को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

चित्र:1-स्रोत: allyouneedisanggplant-wordpress-com

अन्य सभी हरी सब्जियों की तरह, बथुआ में कैलोरी बहुत कम होती है और अगर कोई अपना वजन देख रहा है तो इसका सेवन किया जा सकता है। यूएसडीए के आंकड़ों के अनुसार, बथुआ के 100 ग्राम हिस्से में सिर्फ 43 कैलोरी होती है। बथुआ कैल्शियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम और विटामिन ए, सी और बी6 से भरपूर होता है। ये सभी सूक्ष्म पोषक तत्व बथुआ को अविश्वसनीय रूप से पौष्टिक और सर्दियों के आहार को आवश्यक बनाते हैं।

साहित्य की समीक्षा

अनुसंधान के लिए एक ठोस सैद्धांतिक आधार बनाने के लिए साहित्य की गहन परीक्षा की आवश्यकता है। यह न केवल क्षेत्र की सीमाओं को परिभाषित करने में सहायता करता है बल्कि पूर्व में पूर्ण किए गए अनुसंधान की आकस्मिक प्रतिकृति को रोकने में भी सहायता करता है-

शिप्रा पांडे और राजिंदर के. गुप्ता (2014) ने अपने शोध में बताया कि इसे फैट-हेन, वास्तुकाह और चकविट के नाम से भी जाना जाता है। बथुआ के नुकीले और तीर के आकार के पत्तों के कारण इसके कई चिकित्सीय उपयोग हैं। इसके कोमल अंकुरों को सब्जी के रूप में पकाया जा सकता है या पराठे में एक सामग्री के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। इन्हें सलाद में कच्चा या दही के साथ रायते के रूप में भी खाया जा सकता है। पोषण मूल्य में सुधार करने और आहार में विविधता लाने के लिए, इसकी पत्तियों को सुखाया जा सकता है और पारंपरिक खाद्य व्यंजनों की एक श्रृंखला में जोड़ा जा सकता है। अमृता पूनिया और आशुतोष उपाध्याय (2015) के शोध के अनुसार, सी. एल्बम में कई औषधीय गुण हैं और यह कार्यात्मक पोषक तत्वों का एक अच्छा स्रोत है। यह उनके पोषण मूल्य और स्वास्थ्य में सुधार के लिए विभिन्न एक्सट्रूडेड खाद्य पदार्थों में जोड़ा जा सकता है। एक्सट्रूडेड उत्पादों की रासायनिक और पोषण संबंधी विशेषताओं को पत्तियों को जोड़कर बेहतर बनाया जा सकता है, जो एक्सट्रूडेड उत्पादों को कार्यात्मक खाद्य पदार्थों के रूप में बेहतर बना सकता है। न्गोजी। M-Eze और सहकर्मियों (2017) ने अपने अध्ययन में पाया कि नाइजीरिया के लागोस राज्य में बैंक कर्मचारी खाद्य पदार्थों के पोषण मूल्य के प्रति सचेत हैं। हालाँकि, बैंक कर्मचारियों के बीच स्वस्थ खाने की आदतों को अपनाने की आवश्यकता है। उनके पोषण स्वास्थ्य को बढ़ाने के अलावा, अच्छी खाने की प्रथाएं बैंक कर्मचारियों को खराब पोषण से होने वाली बीमारियों से बचने में मदद करेंगी। बैंक कर्मचारियों के बीच पोषण संबंधी व्यवहारों की समझ और ज्ञान बढ़ाने के लिए लगातार पोषण सेमिनार, परामर्श और कार्यशालाएं आयोजित की जानी चाहिए। कृना पटेल (2018) के अलावा बथुआ (चेनोपोडियम एल्बम) के पत्तों को पालक की तरह पकाकर खाया जा सकता है और कभी पारंपरिक उपचार में इस्तेमाल किया जाता था। बथुआ के पत्ते एंटीऑक्सीडेंट, पोटैशियम, आयरन, कैल्शियम, जिंक, विटामिन सी और अन्य पोषक तत्वों का बेहतरीन स्रोत हैं। इसलिए, यह मानव पोषण संबंधी जरूरतों को पूरा करता है और आहार के लिए एक बहुत ही स्वस्थ पूरक हो सकता है।

बथुआ बहुत अनुकूलनीय है और इसे पारंपरिक सब्जी के अलावा कई तरीकों से बनाया जा सकता है। अपने शीतकालीन भोजन में बथुआ को शामिल करने के लिए यहां कुछ सुझाव दिए गए हैं।

1. बथुआ पराठा: बथुआ पराठा बथुआ रोटी के समान तकनीक का उपयोग करके बनाया जाता है, सिवाय इसके कि पराठा गाढ़ा होता है और घी के साथ पकाया जाता है, जिससे इसके पोषण मूल्य में वृद्धि होती है। सर्दियों में हार्दिक भारतीय नाश्ते के लिए एक स्वादिष्ट व्यंजन बथुआ पराठा है।
2. बथुए का रायता: बथुआ का रायता किसी भी अन्य नियमित रायता की तरह ही बथुए के पत्तों को उबालकर और पीसकर एक समृद्ध और गाढ़ा पेस्ट बनाकर तैयार किया जाता है। फिर इस पेस्ट में ताजा दही के साथ नमक, मिर्च, हर्ब्स और सीजनिंग मिलाई जाती है।
3. बथुआ साग: सरसो और पालक साग के समान, बथुआ साग एक स्वादिष्ट सर्दियों का भोजन है जो रोटी और चावल के व्यंजन के साथ अच्छा लगता है। मिश्रित साग के लिए इसे अकेले या अन्य सागों के साथ मिलाकर खाया जा सकता है।
4. बथुआ दाल: इसके पत्तों को काटकर दाल और थोड़ी सी हींग के साथ उबाला जाता है, ठीक अन्य सभी दाल व्यंजनों की तरह।

बथुआ (चेनोपोडियम एल्बम) के स्वास्थ्य लाभ और औषधीय उपयोग

तीर के आकार का बथुआ का पौधा गैर विषैले, अत्यधिक पोषक पत्ते और बीज पैदा करता है जो पूरी दुनिया में सहस्राब्दियों से खाया जाता रहा है। वे किसी भी अन्य प्रकार की हरी पत्तेदार सब्जियों की तरह ही ढेर सारे स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते हैं। बथुआ के पत्ते पोषक तत्वों, विटामिन, एंटीऑक्सिडेंट और उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन, विशेष रूप से विटामिन सी और ए के एक उत्कृष्ट प्रदाता हैं। कैल्शियम, लोहा, पोटेशियम, जस्ता जैसे अन्य आवश्यक खनिजों की थोड़ी मात्रा के कारण यह पत्तेदार खरपतवार एक शानदार भोजन विकल्प है।, और अन्य ट्रेस तत्व। बथुआ भूख को उत्तेजित करता है और उचित पाचन में सहायता करता है क्योंकि पत्तियों से रस का 10 मिलीलीटर आंत को साफ करेगा और आवश्यक खनिजों की आपूर्ति करेगा। नमक, नींबू का रस और टमाटर के साथ इसकी पत्तियों का इस्तेमाल टमाटर के व्यंजन में भी किया जाता है। बथुआ के पौधों के रस का पारंपरिक रूप से आंतों के परजीवी के इलाज के लिए उपयोग किया जाता है। प्रत्येक भोजन के बाद लगभग 10-15 मिली पत्तों के रस की तीन खुराक में थोड़ा सेंधा नमक मिलाकर सेवन करें। बथुआ के बीज में अमीनो एसिड प्रचुर मात्रा में होता है। बथुआ का सेवन करने से खून की मात्रा बढ़ जाती है। बथुआ को हार्ट टॉनिक माना जाता है और यह दिल के लिए फायदेमंद होता है। बथुआ के पत्ते के द्रव्य से रक्त शुद्ध होता है। बथुआ के पत्ते रक्त संचार को साफ करने के साथ-साथ लीवर, प्लीहा और पित्ताशय की थैली को साफ करने के लिए भी फायदेमंद होते हैं। आंतरिक और बाहरी सूजन, गुर्दे की पथरी, बच्चे के जन्म के बाद होने वाले संक्रमण, पीलिया, एनीमिया, अनियमित मासिक धर्म और मूत्र पथ के संक्रमण के प्राकृतिक उपचार के लिए बथुआ का रस बहुत फायदेमंद होता है।

पारंपरिक उपयोग

आयुर्वेद, अथर्ववेद, चरक संहिता, सुश्रुत संहिता और अन्य जैसे प्राचीन लेखों में, चेनोपोडियम की कई प्रजातियों को विभिन्न प्रकार के औषधीय गुणों से युक्त बताया गया है। (बख्शी और अन्य 1999)। सी. एल्बम को ऐतिहासिक रूप से एक कृमिनाशक, मूत्रवर्धक, पाचन, वातहर और रेचक के रूप में इस्तेमाल किया गया है। इसके अतिरिक्त, यह समग्र कमजोरी, पेप्टिक अल्सर, अपच, पेट फूलना, स्ट्रेप थ्रोट, ग्रसनीशोथ, स्प्लेनोपेथी, और ऑप्थाल्मोपैथी के साथ मदद करता है। जलन को दूर करने के लिए, पत्तियों को एक महीन पाउडर में पीस लिया जाता है, और पत्तों का रस जलने पर लगाया जाता है। नियमित भोजन के साथ मिलाने पर, पौधे के पाउडर (25-50%) को एस्ट्रस चक्र को बाधित करने के लिए कहा गया था। हवाई घटकों और अल्कोहल का काढ़ा जोड़ों और शरीर के अन्य गठिया-प्रवण क्षेत्रों पर शीर्ष पर लगाया जाता है। (प्रजापति एवं अन्य 2003; पाल एवं अन्य 2011)। आप इसके कोमल तनों को सलाद में या दही के साथ कच्चा भी खा सकते हैं। इन्हें सब्जी के रूप में भी पकाया जाता है या पके हुए अंकुरों को दही में मिलाकर खाया जाता है। बाद

में उपयोग के लिए, सुखाई गई जड़ी-बूटी को भंडारण में रखा जाता है। फीड के रूप में, यह भी कार्यरत है। पत्तियां पोटेशियम और विटामिन सी से भरपूर होती हैं। इसके अतिरिक्त, इसका उपयोग घावों, आंतों के अल्सर, प्लीहा वृद्धि और यकृत संबंधी समस्याओं के इलाज के लिए किया जाता है। (सरमा और अन्य 2008)।

पोषण संबंधी महत्व

सी. एल्बम एक पौष्टिक खाने वाला जंगली खरपतवार है जो भारत में पाया जाता है। (ब्रांड एट अल। 1993; देवसगायम एट अल। 2004)। सी. एल्बम के पत्ते लगभग किस चीज के बने होते हैं, इसका वर्णन इसमें किया गया है। उनके उच्च प्रोटीन सामग्री और उच्च लाइसिन (5.1-6.4%) और मेथियोनीन (0.4-1.0%) सामग्री के साथ संतुलित अमीनो एसिड स्पेक्ट्रम के कारण, चेनोपोडियम एसपीपी। एक पत्तेदार सब्जी (सी. एल्बम) के साथ-साथ एक महत्वपूर्ण सहायक अनाज फसल (चेनोपोडियम क्विनोआ और सी. एल्बम) के रूप में खेती की गई है। (प्रकाश और पाल 1998; भार्गव और अन्य 2003ए, बी)। इसकी अनुकूलता और चुनौतीपूर्ण वातावरण जैसे कम वर्षा, उच्च ऊंचाई, पतली ठंडी हवा, गर्म धूप और उप-ठंडे तापमान में पनपने की क्षमता के कारण, सी. एल्बम ने हाल ही में एक मूल्यवान खाद्य स्रोत के रूप में एशिया में नई रुचि को आकर्षित किया है। कटाई के लिए किन पत्तियों का चयन करते समय, पत्ती की पोषक सामग्री और उसकी उम्र के बीच संबंध पर विचार करना आवश्यक है। इसकी पत्तियों के पोषण मूल्य के कारण, विभिन्न अमेरिकी संस्कृतियों ने उन्हें सलाद में कच्चा या पकाकर खाया है, और वे अभी भी मेक्सिको और अन्य विकासशील देशों में आहार का एक प्रमुख हिस्सा हैं। 4.2% की प्रोटीन सामग्री के साथ, सी. एल्बम के पत्तों में आवश्यक अमीनो एसिड जैसे लाइसिन, ल्यूसीन और आइसोल्यूसीन के साथ-साथ कैल्शियम और विटामिन ए (11,000 आईयू/100 ग्राम) और सी (80 मिलीग्राम/100 ग्राम) प्रचुर मात्रा में होते हैं। (गोंजालेज एट अल। 2003)। ग्युरेरो और इसासा (1997) के अनुसार, सी. एल्बम की पत्तियों में विटामिन सी (155 मिलीग्राम/100 ग्राम) और कैरोटेनॉयड्स (12.5 मिलीग्राम/100 ग्राम) के महत्वपूर्ण स्तर होते हैं। सी. एल्बम में अमरनाथ के पत्तों की तुलना में उच्च फाइबर स्तर (4-6 ग्राम / 100 ग्राम) और एक उच्च लौह सामग्री (यादव और सहगल, 2002) थी लेकिन व्यापक रूप से खपत पालक और गोभी से कम थी। पांडे और पाठक (2010) के अनुसार सी. एल्बम में ल्यूसीन, आइसोल्यूसिन, लाइसिन और विटामिन सी उच्च मात्रा में पाए जाते हैं। ये अमीनो एसिड प्राथमिक सक्रिय तत्व हैं।

उद्देश्य

1. पोषण एवं औषधीय क्षेत्र में बथुआ के महत्व का पता लगाना।
2. उत्तरदाताओं के उपभोग स्तर का निर्धारण करना।
3. उत्तरदाताओं में बथुआ के प्रति जागरूकता का स्तर निर्धारित करना।

अनुसंधान क्रियाविधि

अक्टूबर-नवंबर 2020 के बीच एक संक्षिप्त प्रश्नावली विकसित और ऑनलाइन प्रशासित की गई है; शोधकर्ता ने ऑनलाइन डेटा संग्रह के लिए एक उपकरण के रूप में ळववहसम फॉर्म का उपयोग किया। अधिक से अधिक लोगों को भाग लेने के लिए आमंत्रित करने के लिए प्रश्नावली भरने का लिंक फेसबुक और व्हाट्सएप पर साझा किया गया है। कोई चयन मानदंड सर्वेक्षण में भागीदारी को सीमित नहीं करता है। स्वयंसेवी जो सर्वेक्षण में भाग लेने के लिए सहमत हुए। प्रश्नावली 120 उत्तरदाताओं द्वारा भरी गई थी। प्रश्नावली को तीन खंडों के साथ डिजाइन किया गया था। प्रथम खंड में जहां शोधकर्ता ने माध्यमिक डेटा की मदद से बथुआ के पोषण, औषधीय और स्वास्थ्य लाभों पर प्रकाश डाला है, दूसरे खंड में उत्तरदाताओं के बीच बथुआ के गुणों के बारे में जागरूकता पर प्रकाश डाला गया है, और अंतिम तीसरे खंड में बताया गया है कि उत्तरदाताओं द्वारा किस आयु वर्ग का उपयोग किया जाता है।. प्राथमिक सूचना के माध्यम से सूचना एकत्र की गई। उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, संरचित प्रश्नावली के माध्यम से प्राथमिक डेटा एकत्र किया गया था।

डेटा विश्लेषण: सर्वेक्षण में भाग लेने के लिए कुल 120 विषयों को स्वीकार किया गया, और 6 प्रश्नों को सांख्यिकीय विश्लेषण में शामिल किया गया है उत्तरदाता पुरुष, महिला हैं और तीसरी श्रेणी 'कहना नहीं चाहतेश को 15 से 56 और उससे ऊपर की उम्र के बीच लिया गया, 53 (44.2%) पुरुष थे और 64 (53.3%) महिलाएं थीं और 3 (2.5%) लोगों को श्प्रेफर नॉट टू से' चुना गया क्योंकि शोधकर्ताओं ने लिंग श्रेणियों में तीसरा विकल्प प्रदान किया है।

तालिका: 1: नमूना संग्रह की आयु के अनुसार वितरण।

आयु		
आयु सीमा	**संख्या**	**%**
15 - 25	36	30
26 - 35	49	40.8
36 - 45	14	11.7
46 - 55	7	5.8
56 and above	14	11.7
कुल	120	100

तालिका 1 में अधिकतम उत्तरदाता आयु वर्ग 26–35 वर्ष 49 की संख्या यानी (40.8%) से संबंधित हैं, इसके बाद 15–25 वर्ष आयु वर्गश हैं, जो संख्या में 36 हैं यानी (30%) और इसके बाद 36–45 आयु वर्ग और 56 और उससे ऊपर के ब्रैकेट में 14 उत्तरदाता (11.7%) और 46 – 55 साल के ब्रैकेट में केवल 7 उत्तरदाता (5.8%) हैं।

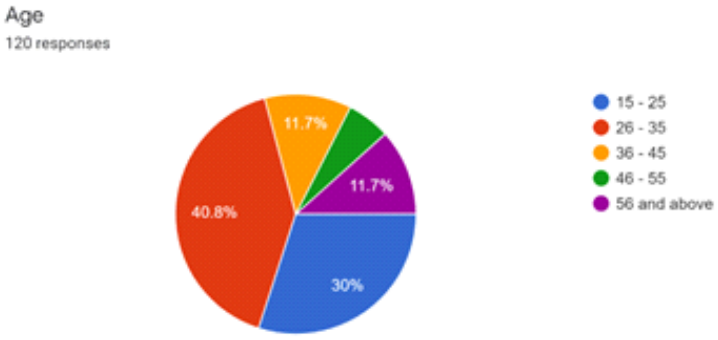

चित्र: 1– नमूना संग्रह के बीच आयु के वितरण को दर्शाने वाला पाई चार्ट।

तालिका 2: बथुआ के ज्ञान के अनुसार वितरण।

जवाब	संख्या	%
हाँ	104	87.6
नहीं	10	8.3
कुछ हद तक	06	5
कुल	120	100

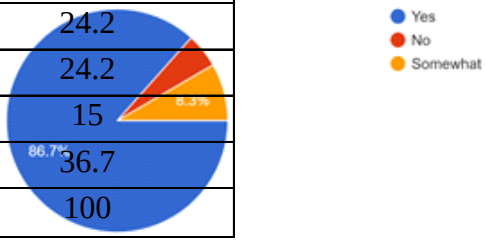

चित्र:2– उत्तरदाताओं के बीच बथुआ के वितरण ज्ञान को दर्शाने वाला पाई चार्ट।

ऊपर का ग्राफ बथुआ के ज्ञान को प्रकट करता है। 120 उत्तरदाताओं में से 104 यानी 87.6% को बथुआ का ज्ञान है और 10 उत्तरदाताओं यानी 8.3% को इसके बारे में कोई जानकारी नहीं है। 6 उत्तरदाता यानी 5% बथुआ के बारे में कुछ हद तक जानते थे।

तालिका: 3: सर्दी के मौसम में खपत के अनुसार वितरण।

बथुआ सर्दी के मौसम में सेवन	संख्या	संख्या	%
एक सप्ताह में एक बार	29	29	24.2
हफ्ते में दो बार	29	29	24.2
पाक्षिक	18	18	15
महीने में एक बार	44	44	36.7
कुल	120	120	100

चित्र:4- उत्तरदाताओं के बीच बथुआ की वितरण खपत को दर्शाने वाला पाई चार्ट।

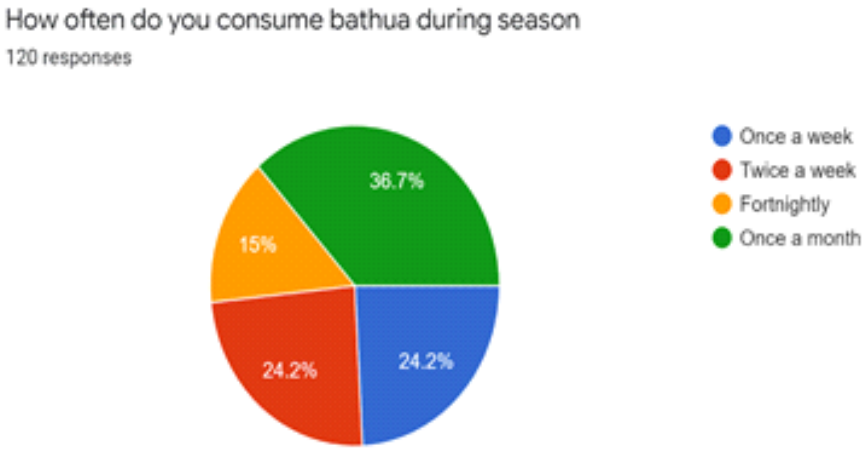

ऊपर उल्लिखित ग्राफ बथुआ की खपत की खपत आवृत्ति को दर्शाता है। 29 उत्तरदाता यानी 24.2% सप्ताह में एक बार उपभोग करते हैं और समान आवृत्ति उन उत्तरदाताओं के लिए देखी जाती है जो सप्ताह में दो बार बथुआ का सेवन करते हैं। 18 उत्तरदाता पखवाड़े में 15% उपभोग करते हैं और 44 अंकों के साथ उच्चतम उत्तरदाता यानी 36.7% महीने में एक बार बथुआ का सेवन करते हैं

तालिका: 4: बथुआ की पोषण जागरूकता के अनुसार वितरण।

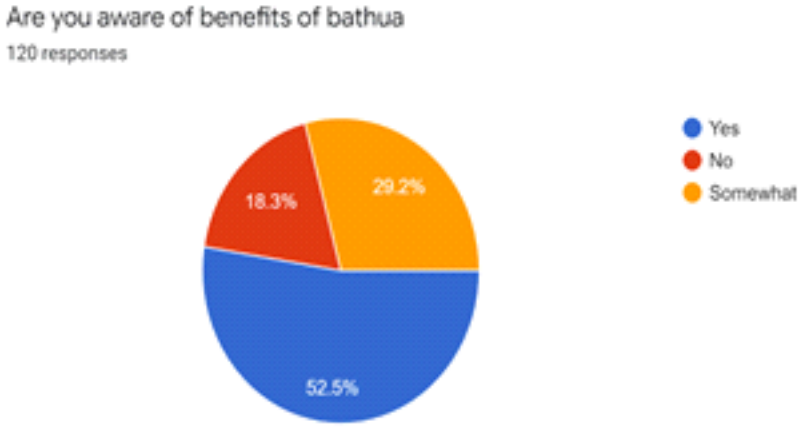

चित्र: 5- उत्तरदाताओं के बीच बथुआ की पोषण जागरूकता के वितरण को दर्शाने वाला पाई चार्ट।

उपरोक्त ग्राफ बथुआ के पोषण जागरूकता स्तर को दर्शाता है। 120 उत्तरदाताओं में से 63 यानी 52.5% को बथुआ का ज्ञान है और 22 उत्तरदाताओं यानी 18.3% को इसके बारे में कोई पोषण संबंधी जानकारी नहीं है। 35 उत्तरदाता यानी 29.2% बथुआ के बारे में कुछ हद तक जागरूक थे।

तालिका :5: बथुआ के अनुसार वितरण सबसे ज्यादा पसंद किया जाने वाला व्यंजन है।

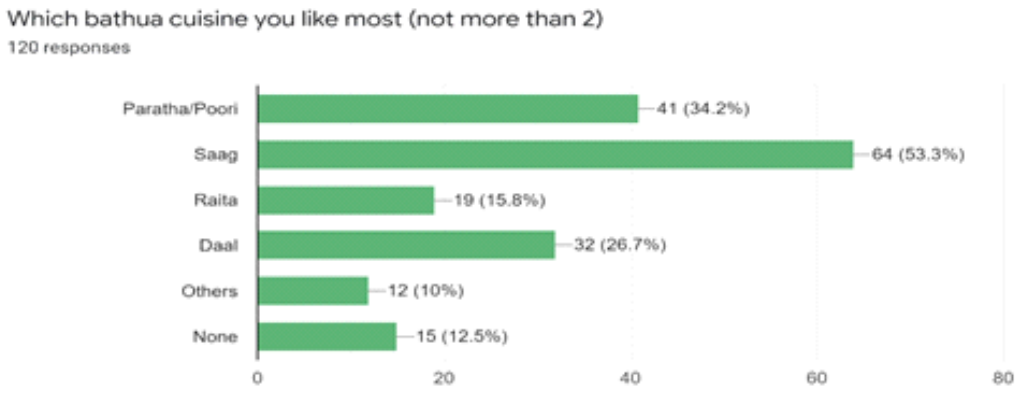

बथुआ के वर्ग		
पराठा/पूरी	41	34.2
साग	64	53.3
रायता	19	15.8
दाल	32	26.7
अन्य	12	10
निष्कर्ष		
कोई नहीं	15	12.5
कुल	120	100

चित्र: 6- उत्तरदाताओं के बीच बथुआ के अधिकांश व्यंजनों के वितरण को दर्शाने वाला पाई चार्ट।

ऊपर दिया गया ग्राफ सबसे अच्छा बथुआ व्यंजन दर्शाता है जिसका उत्तरदाता उपभोग करना पसंद करते हैं। 64 उत्तरदाताओं (53.3%) के साथ साग के रूप में खपत की उच्चतम प्रतिक्रिया है। इसके बाद 41 उत्तरदाताओं (34.2%) के साथ पराठा या पूरी फॉर्म है। दाल के रूप में खपत 32 उत्तरदाताओं (26.7%) के साथ तीसरी सबसे बड़ी प्रतिक्रिया है। रायता को 19 उत्तरदाताओं (15.8%) ने पसंद किया। 12 उत्तरदाता (10%) अन्य प्रकार के बथुआ व्यंजन पसंद करते हैं। 15 उत्तरदाताओं को बथुआ का सेवन पसंद नहीं है।

निष्कर्ष

बथुआ कार्यात्मक पोषक तत्वों का एक अच्छा स्रोत है और इसमें औषधीय गुण हैं। इसे अधिक पौष्टिक, स्वस्थ और साथ ही उपभोक्ता-उन्मुख बनाने के लिए विभिन्न एक्सट्रूडेड खाद्य उत्पादों में शामिल किया जा सकता है। इस अध्ययन में, यह पाया गया कि 86.7% उत्तरदाता बथुआ को उसके नाम से जानते हैं और बहुत कम प्रतिशत उत्तरदाता अनजान थे (5%)। आधे से अधिक उत्तरदाता (52.5%) इस पौधे के औषधीय और पोषण संबंधी गुणों से अवगत हैं। फिर भी 36.7% उत्तरदाता महीने में केवल एक बार इसका सेवन करते हैं। 53.3% उत्तरदाता बथुआ को साग के रूप में और उसके बाद पूरी/पराठे के रूप में खाना पसंद करते हैं। एक्सट्रूडेड उत्पादों में इसकी पत्तियों को शामिल करने से महान औषधीय और जैविक पोषण मानकों में वृद्धि हो सकती है और मठरी, रस आदि जैसे खाद्य उत्पादों के पोषक मूल्य में सुधार हो सकता है। केवल कमी से होने वाली बीमारियाँ और उम्र से संबंधित मांसपेशियों के अधः पतन से संबंधित विकार, बल्कि कैंसर और हृदय संबंधी विकारों जैसे पुराने अपक्षयी रोगों से भी रक्षा करना, जो अंततः समुदाय के लिए अत्यधिक फायदेमंद होगा।

संदर्भ

1. बख्शी डीएनजी, सेन सरमा पी, पाल डीसी। भारत में औषधीय पौधों का एक शब्दकोश। कलकत्ता: नया प्रकाश; 1999. पीपी। 424-425।
2. भार्गव ए, शुक्ला एस, ओहरी डी. जेनेटिक वेरिएबिलिटी एंड हेरिटेबिलिटी ऑफ सेलेक्टेड ट्रेट्स ड्यूरिंग डिफरेंट कटिंग्स ऑफ वेजिटेबल चेनोपोडियम। इंड जे जेनेट प्लांट ब्रीड। 2003;63:359-360।

3. ब्रांड एमजे, जेम्स केडब्ल्यू, मैगीगोर पी। ऑस्ट्रेलियाई आदिवासी खाद्य पदार्थों की संरचना की तालिकाएँ। कैनबरा राज्य: आदिवासी अध्ययन प्रेस; 1993.
4. देवसगयम टीपी, तिलक जेसी, बोलूर केके, साने केएस, घासकड़बी एसएस, लेले आरडी। समीक्षा: मानव स्वास्थ्य में मुक्त कण और एंटीऑक्सिडेंट: वर्तमान स्थिति और भविष्य की संभावनाएं। जे असोक चिकित्सक भारत। 2004;52:794-804।
5. Eze-N-M, Maduabum-F-O और अन्य (2017)। नाइजीरियाई बैंक कर्मियों के बीच खाद्य पोषक मूल्य और खाने की प्रथाओं के बारे में जागरूकता। चिकित्सा बाल्टीमोर। 96(10): ई6283.
6. गोंजालेज एडी, जांके आर, रैपोपोर्ट ईएच। वेलोर न्यूट्रिशनल डी लास मालेजस कॉमेस्टिबल्स। सिएनसिया होय। 2003;13:40-47।
7. ग्युरेरो जेएलजी, इसासा मेट। चेनोपोडियम प्रजातियों की पत्तियों की पोषण संबंधी संरचना (सी. एल्बम एल., सी. मुरले एल. और सी. ओपुलिफोलियम. इंट जे फूड साइंस नट. 1997;48:321-327. डीओआई: 10.3109/09637489709028578.
8. पांडे, एस., गुप्ता.आर.के., (2014)। चेनोपोडियम एल्बम (बथुआ) के पोषण, फाइटोकेमिकल, एंटीऑक्सिडेंट और जीवाणुरोधी गतिविधि की जांच। फार्माकोग्नॉसी और फाइटोकेमिस्ट्री जर्नल; 3 (3): 1-9।
9. पटेल.के, और अन्य (2018)। बथुआ के पत्तों के पोषण-विरोधी कारकों पर ब्लांचिंग का प्रभाव। फार्मा इनोवेशन जर्नल; 7(4): 214-216।
10. पूनिया.ए, उपाध्याय.ए (2015)। चेनोपोडियम एल्बम लिन: पोषक मूल्य और जैविक गुणों की समीक्षा। खाद्य विज्ञान और तकनीकी जर्नल; 52(7): 3977-3985.
11. प्रजापति एनडी, पुरोहित एसएस, शर्मा एके, कुमार टीए। हैंड बुक ऑफ मेडिसिनल प्लांट्स: ए कम्प्लीट सोर्स बुक। भारत: एग्रोबियोस; 2003. पृ. 134.
12. प्रकाश डी, पाल एम। चेनोपोडियम: बीज प्रोटीन, अंशांकन और अमीनो एसिड संरचना। इंट जे फूड साइंस न्यूट्र। 1998;49:271-275। डीओआई: 10. 3109/09637489809089398
13. शर्मा एच, शर्मा ए, शर्मा सीएम। खरपतवारों का पारंपरिक ज्ञान: असमिया लोगों (भारत) केर्बा पोलनिका द्वारा उपयोग की जाने वाली हर्बल दवाओं और सब्जियों का अध्ययन। 2008;54:80-88।
14. यादव एसके, सहगल एस. इन विट्रो और इन विवो अवेलेबिलिटी ऑफ आयरन फ्रॉम बथुआ (चेनोपोडियम एल्बम) और पालक (स्पेनैसियाओलेरासिया) जे फूड साइंस टेक्नोल। 2002;39:42-46।
15. यादव एसके, सहगल एस. इन विट्रो और इन विवो अवेलेबिलिटी ऑफ आयरन फ्रॉम बथुआ (चेनोपोडियम एल्बम) और पालक (स्पेनैसियाओलेरासिया) जे फूड साइंस टेक्नोल। 2002;39:42-46।

हिन्दी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श और सामाजिक सरोकार

डॉ० गेलजी भाटिया

आसि. प्रोफेसर हिन्दी, गूजरात विद्यापीठ

साहित्य और समाज का संबंध अन्योन्याश्रित है। साहित्य और समाज एक सिक्के के दो पहलुओं के समान है। साहित्य से सुज्ञ और तदुरस्त समाज का निर्माण होता है। इसके साथ उत्तम साहित्य का निर्माण समाज से होता है। जब समाज में परिवर्तन आता है तब साहित्य में भी परिवर्तन आता है। परिवर्तन संसार का नियम है। इस तरह साहित्य निर्माण समाज से और समाज से साहित्य निर्माण की परंपरा चलती रही है। समाज में नयी चेतना नया विचार पनपते है तो वही साहित्य में भी दर्ज हो जाता है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में खास करके आदिकाल मध्यकाल के बाद समाज में काफि परिवर्तन आया। खास करके कई नयी चेतना उभरकर सामने आयी। जैसे- हिंदी साहित्य में दलित-विमर्श, स्त्री-विमर्श, आदिवासी-विमर्श, किन्नर-विमर्श (थर्ड जेंडर विमर्श) विकलांग विमर्श, बाल विमर्श के बाद अब वृद्ध-विमर्श की भी धमक सुनाई देने लगी है। वैसे आजकल जिस तरह नई पीढ़ी, युवा पीढ़ी की चर्चा जोरों पर है, उसे देखते हुए वृद्ध-विमर्श का होना भी जायज लगता है। वृद्धों या बूढ़ों को लेकर आमतौर पर ऐसे लोगों की तस्वीर उभरती है जो सफेद बाल, झड़े हुए दांत, शिथिल-ऊर्जा सुकलकड़ी हीन शरीर लेकर जीवन-यापन करते हैं। रीतिकालीन हिन्दी कवि केशवदास की काव्य पंक्ति से हिंदी भाषा के सुज्ञ पाठक वर्ग भली भाँति परिचित है, उनकी एक काव्य पंक्ति खुब प्रचलित रही है जैसे कि- 'केशव केशन अस करी जस अरिहु न कराय। चंद्रवदन मृगलोचनी बाबा कहि कहि जाए।।

वृद्धावस्था की बात करने पर अक्सर प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक अनातोले फ्रांस का यह कथन भी प्रचलित है कि- 'काश! बुढ़ापे के बाद जवानी आती!' अनातोले का यह कथन बड़ा ही सांकेतिक है। जवानी वह शारीरिक अवस्था है, जो जोश, ऊर्जा, शौर्य से ओत-प्रोत होती है, जिसका उपयोग करते हुए हर व्यक्ति अपने-अपने ढंग से जीवन-यात्रा तय करता है और इस क्रम में वह बुढ़ापा तक पहुंचता है। बुढ़ापे में जवानी वाली ऊर्जा शक्ति तो नहीं रहती, पर मात्र रह जाता है विविध अनुभवों का भंडार। इन अनुभवों के आलोक में व्यक्ति को जवानी के अनुभव रहित जोश में किए गए अपने कई गलत निर्णयों और कार्यों का अहसास होता है, तो वह संताप की आंच में तपते हुए यह सोचता है कि अगर उसे बुढ़ापे में जवानी जैसी ताकत, स्फूर्ति मिल जाए तो वह पहले से बेहतरीन, श्रेयस्कर कार्य कर सकता है- फ्रांस के अनातोले का इस कथन का यही आशय है। दरअसल, बुढ़ापा जिसे आमतौर पर निष्क्रियता, शिथिलता की शारीरिक दशा समझ कर बहुत काम की चीज नहीं समझा जाता, बचपन से लेकर जवानी तक के जीवनानुभवों का कोश होता है- ऐसा प्रकाश पुंज होता है, जिसके आलोक में युवा पीढ़ी अपने वर्तमान को संवारते हुए भविष्य का शृंगार कर सकती है। इतिहास और साहित्य, दोनों ही इस तथ्य के साक्षी हैं कि बूढ़े-बुजुर्गों के अनुभवों-परामर्शों से लाभ उठाने वाली युवा पीढ़ी ही नव-निर्माण कर पाती है, जबकि इसके विपरीत मार्ग पर चलने वाली युवा शक्ति विध्वंस की वीर रामायण व महाभारत की कथाओं को देख सकते हैं।[1]

चंद्रमौलेश्वर प्रसाद जी ने वृद्धावस्था विमर्श नामक पुस्तक में वृद्धावस्था विमर्श की पीठिका का निर्माण करते हुए यह सही कहा गया है कि -"बुढ़ापे को एक नई दृष्टि से देखने की आवश्यकता है - एक ऐसी दृष्टि से जिसमें संवेदना हो और बूढ़े के लिए आदर व सम्मान प्राप्त हो। जीवन देने की आकांशा हो"।[2] आगे जीव विज्ञान और नृवंश विज्ञान के संदर्भ बूढ़े व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक स्थितियों पर चर्चा करते हुए प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक समाज में उनकी दशा का सविस्तार तुलनात्मक वर्णन किया गया है। इसमें संदेह नहीं कि आज एकल परिवार, शहरीकरण, कम आय और घरों की कमी कुछ ऐसे कारण हैं जिन्हें लेकर इंग्लैंड, अमेरिका, जापान, जर्मनी, कनाडा जैसे देश भी जूझ रहे हैं. चूँकि जापान और जर्मनी में अब भी बूढ़े माता-पिता के अपनी संतान के साथ रहने की प्रथा है, समस्या कुछ हद तक स्थिर है. परंतु जहाँ युवक गाँव या नगर छोड़कर शहर जा रहे हैं, परिस्थिति गंभीर बनी हुई है। ऐसे गाँव और नगर बूढ़ों से बहरे हुए हैं।"[3]

"वृद्धावस्था विमर्श बुढ़ापे के भ्रम और सच की परतों को खोलते हुए शारीरिक, मानसिक क्रियाशीलता पर इस उम्र के असर का भी आकलन करने वाली पुस्तक है। दैनिक जीवन के क्रियाकलाप किस प्रकार दैहिक शक्ति के क्षीण होने पर बदल जाते हैं। तिरस्कृत, अभावग्रस्त, निर्वासित और निराश्रित जैसा जीवन बिताता हुआ वृद्ध भी मनुष्य ही है। यह परामर्श भी दिया गया है कि वृद्धावस्था में अपने को किसी उद्देश्य से संबंधित रखने, किसी कार्य में व्यस्त रखने और एक ध्येय की बढ़ते रहने की कामना से ही वृद्ध व्यक्ति का भविष्य प्रकाशमय हो सकता है। नहीं तो वह किसी ऐसी बीमारी का शिकार हो सकते हैं जिससे उभर पाना कठिन हो और परिवार के लिए अत्यधिक चिंता का विषय हो।ष4 आज का युग परिवर्तन का युग है तथा इसी परिवर्तन के कारण हम बुजुर्गों की तरफ नही ध्यान दे पा रहे हैं, और न ही उनके अनुभव व ज्ञान का लाभ उठा पा रहे हैं। आज हमें वृद्धावस्था पर चिन्तन करने की आवश्यकता है। क्योंकि बिना चिन्तन उनकी दशा में सुधार सम्भव नहीं है।

'विमर्श' की अवधारणा

"विमश' शब्द को साधारण अर्थ में विचार विवेचन तथा परीक्षण के रूप में लिया जाता है। किसी भी समस्या या परिस्थितियों को देखकर उनके प्रति मानसिक, सांस्कृतिक तथा वैचारिक धारणाओं का समाहार करते हुए पूर्ण रूप से चिन्तन करना तथा उसे समझने का प्रयास करना 'विमर्श' है।[5]" 'हिन्दी में विमर्श' शब्द अंग्रेजी के क्पेबवनतेम शब्द से आया है जिसका अर्थ सुदीर्घ तथा गम्भीर चिन्तन से लिया जाता है। विमर्श का अर्थ वास्तविक रूप में जीवन्त बहस होता है। लोक भारती राजभाषा शब्द कोष (हिन्दी-अंग्रेजी) के अनुसार विमर्श का अर्थ पूर्ण चिंतन आदि होता है। साहित्य में विमर्श को लेकर काफी विषयों पर चर्चा होती रही है। आज वृद्ध विमर्श पर भी इसकी आवश्यकता है। आज समाज में भोगवाद तथा स्वार्थ की भावना प्रबल होती जा रही है। हम अपने जीवन के यथार्थ मूल्यों को भूलते जा रहे हैं। जिसका परिणामस्वरूप नैतिकता का ह्रास हो रहा है। उन मूल्यों को देखने के लिए वृद्धावस्था एक दर्पण होती है।"[6] बुजुर्ग लोग हमारी बुनियाद, परंपरा, संस्कृति तथा अस्तित्व का जीता जागता इतिहास है। इस इतिहास के साक्षी हमारे साथ आसपास पत्येक के घरों में मौजूद है। वे बुजुर्ग या वृद्ध लोग अनुभव और अनुभूति की खान होते है ऐसा कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इससे समाज नव निर्माण तथा देश और दुनिया के लिए अति आवश्यक भी है।

'वृद्ध विमर्श' की अवधारणा' :-

'वृद्ध विमर्श' का अर्थ है वृद्धावस्था की स्थिति व परिस्थितियों, घटनाओं आदि का चिन्तन करना अर्थात् वृद्धावस्था की समस्याओं को समझकर उनके लिए उचित समाधान करना आज के युग में 'वृद्ध विमर्श' अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि आज हम सभी इतने व्यस्त हो गए हैं कि हमारे पास बुजुर्गों के साथ बैठकर समझने का समय ही नहीं है। इसका मुख्य कारण सामाजिक विघटन अर्थात् संयुक्त परिवारों का टूटना है। इसी कारण हम बुजुर्गों की तरफ नही ध्यान दे पा रहे हैं और न ही उनके अनुभव व ज्ञान का लाभ उठा पा रहे हैं। व्यावसायिक जीवन की व्यवस्तता के कारण हमारे पास पुरानी तथा नई पीढ़ी में सामंजस्य बिठाने का समय नहीं है। परिणाम स्वरूप हमारी पीढ़ियाँ एक दूसरे के नजदिक आने की अपेक्षा दूर होती जा रही हैं। यह खाई या दरार हमें अपनी सभ्यता और संस्कृति से दूर ले जा रही है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम अपने बुजुर्गों के ज्ञान तथा अनुभव को दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित नहीं कर पा रहें हैं। वृद्धावस्था बचपन से जवानी और जवानी से बुढ़ापे तक की अंतर्यात्रा एवं बाह्य यात्रा के अनुभवों तथा गुणों का पूंज होता है। इस विमर्श और विषय संदर्भित व संबंधित भारतीय साहित्य में कहावतों और मुहावरें आज भी लोक प्रचलित है। जैसे कि- जितना पुराना उतना सोना, घरडा गाडा वाळे (गुजराती भाषा में प्रचलित) अर्थात् वृद्ध ही गई गाडी को वापस ला सकते हैं। परंतु पारिवारिक परिस्थितियों के कारण हमारे समाज से सभ्यता और संस्कृति लुप्त होती जा रही हैं। आज की युवा पीढ़ी के साथ बैठकर विचार साझा नहीं कर पाती, जिसके कारण हमारे भारतीय जीवन मूल्यों का विघटन हो रहा है। समाज में समस्या का आरंभ घर से ही होता है। आज युवा तथा वुद्ध दोनों का जीवन अंधकार की तरफ जा रहा है। आज का समाज वृद्धावस्था को समस्या की दृष्टि से देखता है और उन्हें बोझ समझता है। समाज में सम्मान न मिलने के कारण वृद्ध व्यक्तियों का जीवन निराशा की ओर जा रहा है। इस प्रकार एक समस्या अपनी सारी हदों को पार हो जाती है। जब समस्या को सहन करना बरदास्त नहीं होता तब समाज में नयी चेतना, नये विचार या नये मार्ग का उदय होता है। उसे विमर्श कहा जाता है।

हिन्दी साहित्य में वृद्ध विमर्श संबंधित कथा साहित्य

हरेक मनुष्य तृटि और कमजोरियों का पुतला है। मनुष्य साहित्य से घीरे-घीरे उन तृटियों को दूर कर महा मानव बनता है। साहित्य का व्यष्टि से लेकर समष्टि के विकास में अभिन्न योगदान होता है। इस तरह साहित्य के बिना समाज नव निर्माण की कल्पना नहीं कर सकते। साहित्य प्रारम्भ से ही समाज का दर्पण माना जाता है। साहित्य में प्राचीन काल से ही वृद्ध विमर्श को स्थान दिया गया है। साहित्य में सर्व प्रथम हम रामायण में देख सकते हैं कि राम अपने वृद्ध पिता के कहने मात्र से ही राज्य का त्याग करके वन गमन के लिए चले जाते हैं। प्राचीन काल में बड़े बुर्जुग वृद्धों को सम्मान दिया जाता था। लोक व्यवहार में लाठी वाली कहानी प्रचलित है जो एक पिताजी अपने बेटे को एकता सीखाने संबंधित प्रायोगिक कहानी करते हैं। इस तरह की अनेको कहानियाँ लोक कंठ में जीवित है। यह विचार धीरे-धीरे में भी दर्ज होने लगे। आज वृद्ध चेतना गद्य और पद्य साहित्य के क्षेत्र में अपनी एक अलग पहचान और आवाज बन गई है। इस आलेख की सीमा और मर्यादा को ध्यान में रखते हुए कथा साहित्य में व्यक्त वृद्ध विमर्श और सामाजिक सरोकार विचार पर लिया है।

आधुनिक परिस्थितियों में सही तथा गलत के द्वंद्व को सामने रख कर यथार्थ को संबोधित करते हुए वृद्ध विमर्श से जुड़ी कहानियाँ एवं उपन्यास हमें स्वातंत्र्योतर काल से ही प्राप्त होने लग जाते हैं। विशेषकर उपन्यासों में यदि देखा जाए तो 1981 में पंकज बिष्ट के उपन्यास में सर्वप्रथम वृद्ध विमर्श के बीजों को देखा जा सकता है। तत्पश्चात 21वीं सदी में सन् 2000 में रवींद्र वर्मा, कृष्णा सोबती, काशीनाथ सिंह इत्यादि अनेक रचनाकारों की रचनाओं में वृद्ध विमर्श विमर्श के स्वर सुनाई देते नजर आते है। वृद्ध जीवन पर आधारित निम्नांकित कुछ उपन्यास है जैसे कि- मस्तराम कपूर- 'विषय-पुरुष' (1997) पंकज बिष्ट-'उस चिड़िया का नाम' (2005), काशीनाथ सिंह, 'रेहन पर रग्घ' (2006) चित्रा मुद्गल-'गिलिगडू' (2010) निर्मल वर्मा 'अंतिम अरण्य' (2011), हृदयेश -'चार दरवेश' (2011) अज्ञेय- 'अपने-अपने अजनबी' (2005), कृष्णा सोबती-'समय-सरगम' (2012), ममता कालिया-'दौड़', रवीन्द्र वर्मा 'पत्थर ऊपर पानी' और डॉ सूरज सिंह नेगी के तीन उपन्यास हैं-'रिश्तों की आंच' (2016), 'वसीयत' (2018) और 'नियति चक्र' (2019) आदि है। उपन्यास के अलावा कई दर्जन कहानियां वृद्ध विमर्श करती हुई आ रही हैं।

वृद्ध जीवन पर आधारित कहानियों के संदर्भ में डॉ. शिवकुमार राजौरिया जी विवेच्य सामग्री के रूप में उन कहानियों को चुना है जिनमें वृद्धावस्था को मुख्य विषय या कथ्य के रूप में स्वीकार किया है जो इस प्रकार है- मुंशी प्रेमचंद रचित कहानियाँ बेटोवाली विधवा, बूढी काकी, अलग्योझा, मां, मंत्र, स्वामिनी, विध्वंस, सुभागी। जयशंकर प्रसाद जी रचित कहानियाँ गुदड़ी में लाल, ममता, बेड़ी। भीष्म साहनी रचित चीफ की दावत, यादें, चचा मंगलसेन, खून

का रिश्ता। यशपाल रचित पागल है, समय, दुख का अधिकार, कौन जाने। सुभद्रा कुमारी चौहान की कैलास शी नानी, भगवती चरण वर्मा की वसीयत, मोहन राकेश की परमात्मा का कुत्ता, ममता कालिया की आजादी, मृदुला गर्ग की उधार की हवा, बांसफल, छत पर दस्तक, उर्फ सैम, मन्नू भंडारी की मजबूरी, चंद्रगुप्त विद्यालंकार की मास्टर साहब, प्रतिभा रोय की पादुका पूजन, सूर्यबाला की सीढ़ी, सौगात, दादी और रिमोट, दादी का खजाना, शिवप्रसाद सिंह का दादी माँ, शिवानी की दादी, ए. असफल की माँ, रमेश उपाध्याय की शापमुक्ति, मनोज कुमार पांडे की जींस, विश्वभरनाथ कौशिक की ताई, मिथिलेश्वर की हरिहर काका, उषा प्रियंवदा की वापसी, राजी शेठ की उतनी दूर, उसका आकाश, गोविंद मिश्र की साधे, चित्रा मुदगल की गेंद, गिरिराज किशोर की फाइल दाखिल दफ्तर, रामधारी सिह दिवाकर की अपना घर, गिरीश अस्थाना बुढऊ का आधुनिकीकरण, सुनिल सिंह की हाँच, दिनेश चंद्र झा की उसका जाना, चन्द्रिका ठाकुर देशदीप की फाग पिया संग, सिद्धेश की समय, दयामंद पांडे कीयक्ष प्रश्न, उर्मिला शिरीष की बांधो न नाव इस ठांव बंधु, आदर्श मदान की साँझ का परिंदा, अमृतराय की आँख मिचौनी, गिरिराज शरण अग्रवाल की बूढा ज्वालामुखी, गोविंद मिश्र की घेरे, ज्ञानरंजन की पिता, दयानंद अनन्त की सीमेंन्ट में उगी घास, नरेन्द्र कोहली की शटल, प्रतिभा वर्मा की तिनको का घोंसला, बाबू सिंह चौहान की पिता, मंजुल भगत की दादी का बटुआ, रामकुमार भ्रमर की मोहताज, सत्यराज की अनधिकृत स्वप्न, सुनिल कौशिक की पराजित, सुरेश उनियाल घुन, साजिद रशिद की मौत के लिए अपील, मुरारी शर्मा कीमुट्ठी भर घूल, राजेश झरपरे की कितने दीनू कितने दीनानाथ, डो. श्रीमती कमल कुमार की अम्मा, संजीव दत्त शर्मा की नानी, संजय विद्रोही की बस कब चलेगी, योगिता यादव की बोनसाई, अलका सिन्हा की अपूर्णा, डो. शिबन कृष्ण रैणा की बाबूजी, चंद्रमौलेश्वर प्रसाद की माचिस की डिबिया, राजेन्द्र कृष्ण की और खिड़की, हरि भट्टनागर की माई आदि कहानियों में वृद्ध विमर्श के साथ-साथ सामाजिक सरोकार के विचार मिलते हैं।

कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श और सामाजिक सरोकार

नरेन्द्र कोहली के महासमर उपन्यास में देवव्रत अपने पिता की इच्छा पूर्ति के लिए आजीवन अविवाहित रहता है तथा राज्य का त्याग कर देता है। पाण्डव भी माता कुन्ती के प्रत्येक आशा का पालन बड़ी निष्ठा के साथ करते हैं। दूसरी तरफ कौरवो ने अपने बुजुर्गों की अवेहलना करके युद्ध चुना और उस युद्ध में महाविनाश हुआ। भारत के प्राचीनकाल में वृद्धों को सम्मान दिया जाता था परन्तु आज वृद्धों की स्थिति बदल गई है। वृद्धों का जीवन ज्ञान का भण्डार होते हुए भी मूल्यहीन हो गया है। वृद्धावस्था तक पहुँचते-पहुंचते व्यक्ति यह समझ जाता है कि उसने जीवन में क्या प्राप्त किया और क्या प्राप्त कर सकता है। इस परिस्थिति में यह अपने अधूरे कार्यों की जिम्मेवारी को युवा पीढ़ी के सुपूर्द कर देता है और वहीं युवा पीढ़ी उन्हें वृद्धाश्रमों में पहुँचा देती है। इस प्रकार वृद्धों को अपने अधिकारों से वंचित होना पड़ता है। महिलाएं सरलता के साथ वृद्धाश्रम के जीवन को अपना लेती है किन्तु पुरुषों को इसमें कठिनाई का अहसास होता है। वृद्ध व्यक्ति थोड़ा सा प्यार और आत्मीयता चाहता है और जब वही नहीं मिलती तब उसे स्वयं ही जीवन बोझ लगने लगता है। ऐसे में वृद्ध व्यक्ति के जीवन का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है। जब हम प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति को देखते है तो पता चलता है कि उस समय वृद्धों की स्थिति काफी अच्छी थी। जैसे-जैसे समय में परिवर्तन होता गया वैसे-वैसे वृंदों की दशा भी परिवर्तित होती गई। समाज साहित्य और संस्कृति में वृद्ध सदैव से ही उपस्थित रहे हैं। वृद्ध व्यक्ति सदैव से ही गुणों का भण्डार रहे हैं परन्तु आज के युग में उनके इन गुणों का सम्मान नहीं मिल पाता। हम अपनी अत्यधिक महत्वकाक्षाओं के कारण यथार्थ मूल्यों का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं।

साहित्य में 'वृद्ध विमर्श' प्राचीन काल से लेकर अब तक देखा जा सकता है। आधुनिक साहित्य में समाज में वृक्षों की बदलती हुई स्थिति तथा वृद्धों की सामाजिक समस्याओं का विवेचन किया गया है। वृद्ध व्यक्ति जो पूरे परिवार को बोझ उठाता था। वह आज स्वयं को कमजोर और मजबूर समझने लगा है। कुछ साहित्यकारों ने इस समस्या पर विचार करके वृद्ध विमर्श की तरफ ध्यान आकर्षित किया है। वृद्ध व्यक्तियों की मानसिक चिन्ता तथा उनकी दुविधाओं को अपने शब्दों में व्यक्त करने का प्रयास किया गया है ताकि युवा पीढ़ी वृद्धों की मनोदशा को समझकर उनके प्रति सद्भावना रख सक साहित्य के क्षेत्र में वृद्धों को केन्द्र बनाकर काफी कहानियों लिखी गई है और उनमें वृद्धों की मनोदशा को चित्रित करने का पूर्ण प्रयास किया गया है। मुंशी प्रेमचन्द की कहानी 'बेटों वाली विधवा' - "में पण्डित अयोध्यानाथ के देहान्त के बाद विधवा फूलमती के साथ उसके पुत्र और बहुएँ प्रतिक्षण गावनाओं को ठेस पहुँचाने वाला व्यवहार करते हैं। फूलमती को अपने ही घर में मिखारिन के समान जीवन जीना पड़ता है और अंत तक इसी दशा तथा पीड़ा को सहन करते हुए उसके जीवन का अंत हो जाता है।"[7] बेटों के रहते हुए भी वृद्ध किया सुखी न रह सकी। प्रेमचन्द की बूढ़ी काकी कहानी में भी काकी की दयनीय दशा पर विमर्श किया गया है। जब तक सम्पत्ति काकी के नाम रहती है तब तक बुधिराम और रूपा काकी का सम्मान करते है। जैसे ही काकी अपनी पूर्ण सम्पति उन्हें उपहार में देती है वह उसके साथ बुरा व्यवहार करने लगते हैं केवल एक छोटी लड़की ही उससे दयालुत्ता पूर्ण व्यवहार करती है। जैसा कि - "हमें पता है बुढ़ापा बचपन का पुनरागमन होता है। जिस प्रकार बचपन में बालक का मन चंचल होता है, उसी प्रकार वृद्धावस्था में भी जाने की चीजों के लिए मन तरसता जाता है। ऐसे नावपूर्ण दृश्य प्रेमचन्द की बूढ़ी काकी कहानी में देखे जा सकते है। बुद्धिराम और रूपा बूढ़ी काकी को पेटमर भोजन भी नहीं देते थे और दुत्कारते रहते हैं। बुद्धिराम के बेटे के तिलक कार्यक्रम के बाद बूढ़ी काकी स्वादिष्ट भोजन के लिए झूठे भोजन को खाने लगती है। रूपा का दिल पसीज जाता है और अपने किए गए व्यवहार पर पछताया होता है। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने मानवता के व्यवहार को जगाने का प्रयास किया है।"[8] लेखक ने इस कहानी में बूढ़ी काकी को माध्यम बनाकर समाज के वृद्धों के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार की तरफ ध्यान आकर्षित करवाया है। बूढ़ी काकी समाज में व्याप्त वृद्ध समस्याओं का यथार्थ चित्रण है। साहित्य के क्षेत्र में साहित्यकारों ने अपने लेखन को माध्यम बनाकर वृद्धों के जीवन में फैले अंधकार और निराशा पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। इसी समस्या पर प्रकाश डालते हुए उषा प्रियंवदा ने भी वापसीश कहानी में "गजाधर बाबू को माध्यम बनाकर सेवानिवृत्ति के बाद व्यक्ति के कटु अनुभवों को चित्रित करने का प्रयास किया है। इस कहानी में गजाधर बाबू बड़े उत्साह के साथ नौकरी से सेवा निवृत्ति होकर अपने घर परिवार में लौटते हैं परन्तु परिवार में उनका आना दुख का कारण और आधुनिक युग में टूटते सम्बन्धों के साथ एक वृद्ध की लाचारी को व्यक्त करती है।"[9]

"गजाधर बाबू परिवार के साथ सम्मान तथा स्नेह से समय बिताना चाहते हैं परन्तु कुछ समय के बाद घर में उनकी उपस्थिति खटकने लगती है गजाधर बाबू अपने ही घर में परायापन सहन नहीं कर पाते। नयी नौकरी पर जाने का फैसला करते हैं।"[10] इसी कहानी के माध्यम से वर्तमान युग में बिखरते परिवार

तथा मूल्यों के विघटन की समस्याओं चित्रित करने का प्रयास किया गया है। इस भीष्म की दावत कहानी में शामनाथ को मां अपनी एवं तरक्की में अडचन के साथ-साथ देहाती, असुंदर होकर एक बोज लग रहा है। इस तरह अपने लेखन कार्य से वृद्धों की समस्याओं को उजागर करने का प्रयास किया है। साहित्य में वृद्ध विमर्श को समाज की महत्त्वपूर्ण कड़ी का रूप देने का पूरा प्रयत्न किया गया है। अनेक कहानियों तथा उपन्यासों में वृद्धों की समस्याओं को उठाया गया है और पूर्ण रूप से समाज में वृद्धों को स्थान दिलाने का प्रयास किया गया है। वृद्ध विमर्श के माध्यम से वृद्धों की समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करते हुए समाज को जागरूक करने का भरसक प्रयास किया है। वृद्धों के लिए खोले गए वृद्धाश्रम आज व्यवसाय का रूप लिए खड़े हैं फिर भी युवा पीढ़ी उन्हें इस अन्धकार में धकेल रही है। वृद्ध व्यक्ति स्नेह और सम्मान की लालसा रखता है और युवा पीढ़ी उन्हें इन्हीं से वंचित कर रही है। साहित्य के माध्यम से साहित्यकार वृद्धों की इन्हीं समस्याओं को उजागर करने का प्रयास करता है। वृद्ध विमर्श वर्तमान युग की आवश्यकता है। इससे वृद्धों की स्थिति में सुधार कर सकते हैं। युवा पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी की बातें दकियानूसी लगती है। पीढ़ी अंतराल को लेकर युवा पीढ़ी वृद्धों को घृणित दृष्टि से देखती है, उनका हँसी मजाक उड़ाया जाता है। छोटी-छोटी बातों पर उनकी अवमानना की जाती है। चाहे उनको तिरस्कृत किया जाता हो किन्तु -"जिस समाज में सुरक्षा की भावना है, वहाँ के वृद्ध सम्मानपूर्वक रहते है क्योंकि यहाँ के युवा उनमें अपना भविष्य देखते हैं। जिस समाज ने संस्कार छोड़े और वृद्धों का तिरस्कार किया, उसका भविष्य भी अंधकार मय रहेगा।"[11]

वैश्वीकरण के समय में संयुक्त परिवार बिखर रहा है, मनुष्य का विघटन हो रहा है, संपति को ही सर्वोपरि माना जा रहा है ऐसी परिस्थिति में वृद्धों की सँभाल का प्रश्न उत्पन्न होता है। वृद्धावस्था की भी यही-"जैविक सच्चाई है कि जो व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से अनुत्पादक और अनुपयोगी हो जाता है वह समाज में कोई योगदान नहीं दे पाता। ऐसी अवस्था में वृद्धों की स्थिति क्या होती है, वही समाज का दर्पण माना जा सकता है।"[12] इस प्रकार वृद्धावस्था कोई बिमारी नही पर प्रत्येक के जीवन की एक अवस्था है जिनको रोकना और मुंह मोड़ना गलत होगा। वर्तमान जिसमें परिवार, समाज, सरकार, निजी संस्थाएँ, युवापीढ़ी को उनके प्रति जागरूक रहकर उनको समझने की और योग्य सहयोग देने की आवश्यकता। इन सभी को ध्यान में रखते हुए 'वृद्ध विमर्श' की बहुत ही प्रासंगिकता है।

निष्कर्षत:

वृद्ध विमर्श वर्तमान युग की जरूरत है क्योंकि आज वृद्धों को बोझ मानकर वृद्धाश्रमों में छोड़ दिया जाता है। इसी कारण युवावर्ग वृद्धों के अनुभवों व गुणों का लाभ नहीं उठा पा रहा है और पतन के पथ पर बढ़ जाता है। साहित्य के क्षेत्र में वृद्ध और युवा आमने-सामने की अपेक्षा सह-अस्तित्व का परिदृश्य होता है। साहित्यकार नया रचने में पुराने रचनाकारों के अनुभवों का सृजन करते हैं। वृद्ध विमर्श को आधार बनाकर हम समाज में व्याप्त वृद्धों की समस्याओं की तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित कर सकते हैं। वृद्ध व्यक्ति को जीवन की निराशा में न धकेलकर उन्हें जीवन को उत्साह से जीने का अधिकार दिया जा सकता है। वृद्ध विमर्श साहित्य में प्रारम्भ से ही शामिल रहा है आज भी इसका प्रयोग साहित्य में हो रहा है। वृद्ध विमर्श का साहित्य में प्रयोग वृद्धों के लिए सम्मान का मार्ग है तथा युवा पीढ़ी के लिए उनकी सफलता का मार्ग है। वृद्धों के अनुभवों व संस्कारों से युवावर्ग के जीवन मूल्यों में हो रहे विघटन को रोका जा सकता है। आज मूल्यों के विघटन के कारण युवावर्ग अलग होता जा रहा है। यदि वृद्ध विमर्श पर और भी ध्यान दिया जाए तो सम्भव है कि वृद्धों के जीवन की समस्याओं को उजागर करके लोगों के मन में खोया हुआ सम्मान तथा उनके प्रति प्रेम फिर से आ जाए। इससे लुप्त हुए मानव मूल्य समाज में फिर से लौट आए।

संदर्भ - सूची :-

1. विमर्श: साहित्य में वृद्ध विमर्श, श्री भगवान सिंह 09-09-2018
2. वृद्ध विमर्श की अवस्था -चंद्रमौलेश्वर. पृ.20
3. वही. पृ.50
4. वही. पृ.81
5. डॉ. हरदेव बाहरी 'लोकभारती राजभाषा शब्दकोष (हिन्दी-अंग्रेजी) पृ०स०-466, लोकभारती प्रकाशन।
6. फादर कामिल बुल्के अंग्रेजी-हिन्दी कोष पृ० स०-433. एस० चन्द एण्ड कम्पनी प्रा० लि०, नई दिल्ली। -
7. डॉ. हरदेव बाहरी 'लोकभारती राजभाषा शब्दकोष (हिन्दी-अंग्रेजी)' पृ०स०-455, लोकभारती
8. विकास नारायण राय 'प्रेमचंद से दोस्ती' पृ० स०-18, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद।
9. विकास नारायण राय 'प्रेमचंद से दोस्ती' पृ० सं० 25, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद। - 'मानसरोवर पृ० सं०-66, सरस्वती प्रैस, इलाहाबाद। 6.
10. उषा प्रियंवदा वापसी' पृ० स०-3 भारत-दर्शन, हिन्दी साहित्यिक पत्रिका।
11. वही
12. वृद्धावस्था : मानवजाति विज्ञान -वृद्धावस्था विमर्श -चंद्र मौलेश्वर प्रसाद .पृ.30
13. वही पृ.31
14. उषा प्रियंवदा वापसी' पृ० सं०- 7 भारत-दर्शन, हिन्दी साहित्यिक पत्रिका।
15. देशबंधु पत्रिका, रमेशचंद्र मीणा, लेख, हिन्दी उपन्यास साहित्य में दस्तक देता वृद्ध विमर्श – Deshbandhu https://www.deshbandhu.co.in अपबींत
16. हिंदी कहानियों में वृद्धों की व्यथा - प्रो. लता सुमंत, रचनाकार https://www.rachanakar.org 2020/03

माता-पिता एवं बालक संबंध तथा पारिवारिक समायोजन का बालक के विकास पर प्रभाव का अध्ययन

संजीव कुमार

सहायक प्राध्यापक, शिक्षा विभाग, महंत दर्शन दास महिला कॉलेज, मुजफ्फरपुर

बालक परिवार में जन्म लेता है और किशोरावस्था के प्रथम चरण तक परिवार में ही जीवन व्यतीत करता है। मनोविश्लेषणवादी फ्रायड (1930) की मान्यता है कि परिवार ही बच्चों की प्रथम पाठशाला है तथा जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की शिक्षा देने वाले उनके माता-पिता ही प्राथमिक शिक्षक हैं। यही शिक्षा उनके संपूर्ण भावी जीवन का निर्माता है। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक वाटसन (1920) एवं समाजशास्त्रीय मनोवैज्ञानिक सुलिभान की मान्यता है कि पारिवारिक समायोजन ही बालकों की व्यवहार प्रणाली और अंतत: व्यक्तित्व निर्माण की आधारशिला स्थपित करते हैं जिससे बालक के भावी व्यक्तित्व के वैशिष्ट एवं समायोजन प्रणाली का निर्माण एवं विकास होता है। माता-पिता एवं बालक का संबंध भावात्मक रूप से एक-दूसरे से जूड़ा होने के कारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। बच्चों के लिए यह संबंध जीवन पर्यन्त महत्व रखता है, परन्तु जन्म से लेकर किशोरावस्था तक इस संबंध का सर्वाधिक महत्व है। नवजात शिशु का पालन-पोषण पूर्णत: माता-पिता पर निर्भर होता है परंतु आयु बढ़ने के साथ-साथ यह आश्रितता या निर्भरता क्रमश: कम होने लगती है। किशोरावस्था या प्रौढ़ावस्था में यह निर्भरता प्राय: समाप्त हो जाती है। बालकों को प्रारंभ से ही अनुशासन में रखना माता-पिता का कर्तव्य होता है। बालकों को अच्छाइयों की ओर प्रवृत्त करना भी माता-पिता का उत्तरदायित्व होता है। यह कार्य जीवन के प्रारंभिक काल से शुरू होकर आगे चलता रहता है। माता-पिता एवं बालक के संबंधों की मधुरता इस बात पर निर्भर करता है कि स्वयं माता-पिता में अच्छे और मधुर संबंध हों। बच्चों के नकारात्मक और सकारात्मक विकास पर पति-पत्नी के मध्य सम्बन्धों की भूमिका महत्वपूर्ण है। जिन बालकों को आरंभिक काल से ही स्नेहपूर्ण वातावरण में रहने का अवसर मिलता है वे कलह, संघर्ष, मनमुटाव, ईर्ष्या आदि के स्थितियों से बचे रहते हैं। भारत की वर्तमान पीढ़ी संक्रमण काल से गुजर रही है। इस युग में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन के लक्षण स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं। यह क्रम 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अधिक तीव्र हो गया है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के उत्तरार्द्ध (1936 से 1947) में अनेकानेक राजनीतिक नेताओं ने अपने अभिनव विचारों तथा सिद्धांतों से तत्कालीन समाज को इस प्रकार प्रभावित किया जिससे न केवल सामाजिक व्यवहारों में ही परिवर्तन आया वरन् व्यक्तिगत व्यवहार, विचार प्रणाली तथा सर्वोन्मुखी अभियोजन भी प्रभावित होने लगे हैं। इन विचारों से तत्कालीन किशोर तथा युवा वर्ग सर्वाधिक प्रभावित हुआ।

साहित्य समीक्षा:

कैम्पवेल तथा होरोक्स (1961) ने अभिभावकों तथा उनके बच्चों के बीच सम्बन्धों के अध्ययन में पाया कि अभिभावकों तथा उनके बच्चों के बीच मनोवृत्ति में उच्च सह-सम्बन्ध गुणांक पाया जाता है। सिगेलमैन (1965) और सिलमर तथा डेयर (1966) ने अपने अध्ययन में पाया कि बच्चों के व्यवहार निर्धारण में उनके अभिभावकों के पालन-पोषण की अहम् भूमिका होती है। किशोर एवं खत्री (2003) द्वारा किये गये अध्ययन पाया गया कि बालकों के तुलना में बालिकाओं का संवेगात्मक समायोजन स्तर अत्यधिक अच्छा है। कुमारी पुष्पा (2009) के द्वारा पारिवारिक वातावरण और बच्चों के विकास के संदर्भ में किये गये अध्ययन पाया कि शहरी एवं ग्रामीण बच्चों के विकास पर माता-पिता एवं अभिभावकों के द्वारा पालन-पोषण की प्रणाली का प्रभाव निश्चित रुप से पाड़ता है। डॉ. अर्चना कपूर (2009) ने ''पारिवारिक परिवेश का बालक एवं बालिकाओं के मूल्य विकास पर प्रभाव'' शीर्षक शोध अध्ययन में पाया कि दोनों पारिवारिक परिवेशों (सकारात्मक एवं नकारात्मक) में पलित बालकों में धार्मिक एवं प्रभुत्ववादी मूल्य अधिक है। जबकि बालिकाओं में सामाजिक, प्रजातान्त्रिक एवं ज्ञानात्मक मूल्य अधिक विकसित पाए गए हैं। उपेन्द्र कुमार (2016) के अध्ययन का उद्देश्य यह जानना था कि माता-पिता और बच्चों के बीच का संबंध उनके शैक्षणिक विकास को किस रूप में प्रभावित करता है। उन्होंने पाया कि बच्चे का प्रदर्शन माता-पिता के पालन-पोषण की शैली पर निर्भर करता है और शैलियों में भिन्नता बच्चों के अच्छे-बुरे शैक्षणिक प्रदर्शन का कारण बनता है। रश्मि (2019) द्वारा अध्ययन में बाल-विकास पर पारिवारिक वातावरण के प्रभाव को देखा गया है।

यह पाया गया कि विकास और समायोजन की क्षमता को विकसित करने में संयुक्त परिवार का वातावरण बहुत महत्त्व रखता है।

उद्देश्य:

माता-पिता एवं बालकों के बीच पाए जाने वाले संबंध का उनके विकास पर किस रूप में प्रभाव पड़ता है और माता-पिता एवं बालक के बीच किस तरह की भूमिका पाई जाती है।

शोध प्रश्नः

(क) क्या पारिवारिक समायोजन किसी रूप में माता-पिता एवं बालकों के बीच के संबंध को निर्धारित करता है या उससे संबंधित है?

प्राक्कल्पनाः

माता-पिता एवं बालकों के बीच पाए जाने वाले उच्च पारिवारिक संबंध का समायोजन पर अनुकूल प्रभाव पाया जाएगा।

प्रतिदर्शः

मुजफ्फरपुर जिला अन्तर्गत शहरी क्षेत्रों के +2 विद्यालयों एवं इंटर स्तरीय महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं के 300 माता-पिता का अध्ययन किया गया।

प्रदत संकलन विधिः

शोध के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु वर्णात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है।

प्रदत विश्लेषण विधिः

आंकड़ों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मध्यांक, बहुलांक, प्रमाणिक विचलन और सह-संबंध विधि का उपयोग किया गया है।

उपकरणः

बच्चों के व्यक्तिगत, पारिवारिक समायोजन को मापने के लिए पारिवारिक पर्यवेक्षण प्रश्नावली (सिन्हा, 1970) का प्रयोग किया गया है। इस मूल प्रश्नावली का निर्माण अंग्रेजी में कूपर (1966) के द्वारा किया गया था।

परिणाम एवं विवेचनाः

(क) माता-पिता का बच्चों से संबंध

पिता से संबंधित अध्ययनः

मुजफ्फरपुर जिला अन्तर्गत शहरी क्षेत्रों के +2 विद्यालयों एवं इंटर स्तरीय महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं के द्वारा प्रतिदर्श में सम्मिलित 300 पिता से सबंधित प्रश्नावलियों से प्राप्त प्राप्तांकों का सांख्यिकीय विश्लेषण कर प्रसार और वितरण को सारणी संख्या-एक में वर्णित किया गया है:

सारणी संख्या-1

प्रतिदर्श संख्या	*मध्यमान*	*मध्यांक*	*बहुलांक*	*प्रमाणिक विचलन*	*मध्यमान की प्र. त्रुटि*
300	70.82	68.695	67.435	13.6	0.272

पिता के 300 संख्या के आधार पर प्राप्त प्राप्तांकों के वितरण के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि इस वितरण का मध्यमान 70.82, मध्यांक 68.695 और बहुलांक 67.435 प्राप्त हुआ है। इन तीनों ही केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापों में इतनी निकटता है कि प्रतिदर्श के प्रसार का जनसंख्या में प्रसामान्य वितरण की प्रवृत्ति 0.01 स्तर पर प्रमाणित होता है। यह इससे भी स्पष्ट होता है कि प्रसार के मध्यमान की प्रामाणिक त्रुटि 0.272 प्राप्त हुआ है। अतः 0.272×2.58=0.70 यह सिद्ध करता है कि प्रतिदर्श का यह जनसंख्या मध्यमान अधिक से अधिक +0.70 के प्रसार की सीमा के अंतर्गत है (गिलफोर्ड, 1976)।

300 छात्राओं के पिता से संबंध के बारे में प्रश्नावलियों के आधार पर प्राप्त प्राप्तांको का सांख्यिकीय विश्लेषण सारणी संख्या-दो में वर्णित है:

सारणी संख्या-2

प्रतिदर्श संख्या	*मध्यमान*	*मध्यांक*	*बहुलांक*	*प्रमाणिक विचलन*	*मध्यमान की प्र. त्रुटि*
300	68.89	67.542	67.432	12.5	0.243

प्रतिदर्श से प्राप्त प्राप्तांकों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि इस वितरण का मध्यमान 68.89, मध्यांक, 67.542. बहुलाक 67.432 प्राप्त हुआ है। इस केन्द्रीय प्रवृत्ति के तीनों ही मापों में बहुत अधिक निकटता पायी गई है। प्रतिदर्श के प्रसार का जनसंख्या में प्रसामान्य वितरण की प्रवृत्ति 0.01 स्तर पर प्रमाणित होता हुआ स्पष्ट है। यह इससे भी प्रमाणित होता है कि प्रसार के मध्यमान की प्रमाणिक त्रुटि 0.243 प्राप्त हुआ है। अतः 0.243×2.58=0.627 यह सिद्ध करता है कि प्रतिदर्श का यह जनसंख्या मध्यमान अधिक-से-अधिक +0.627 के प्रसार की सीमा के अंतर्गत है। (गिलफोर्ड, 1956)

इस विश्लेषण के आधार पर पिता एवं बालकों के बीच संबंध से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होता है:-

(क) प्रतिदर्श से प्राप्त प्राप्तांकों का वितरण जनसंख्या के प्रसामान्य वितरण के अति अनुकूल एवं निकट है।

(ख) प्रतिदर्श का मध्यमान जनसंख्या मध्यमान से निकटता रखने के कारण इस प्रतिदर्श मध्यमान को जनसंख्या मध्यमान के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

(ग) इस निष्कर्ष से यह भी प्रमाणित होता है कि पिता मापनी का वास्तविक जनसंख्या के समान रूप से वितरण नहीं पाया गया है। एक ओर समाज में जहाँ कुछ लोग पिता एवं बच्चे-बच्चियों के संबंध में अधिक अनुकूलता पाते हैं वहीं दूसरी ओर कुछ ऐसे भी पिता हैं जिनका संबंध अनुकूल नहीं है। लेकिन जनसंख्या की एक बड़ी संख्या जो लगभग 50 प्रतिशत के बीच आती है इन दोनों ही अति सीमाओं के मध्य पायी जाती है।

(ख) माता से संबंधित अध्ययन: प्रतिदर्श में सम्मिलित छात्र एवं छात्राओं के 300 माता से सबंधित प्रश्नावलियों से प्राप्त प्राप्तांकों का सांख्यिकीय विश्लेषण कर प्रसार और वितरण को सारणी संख्या- तीन में वर्णित किया गया है:

सारणी संख्या-3

प्रतिदर्श संख्या	*मध्यमान*	*मध्यांक*	*बहुलांक*	*प्रमाणिक विचलन*	*मध्यमान की प्र. त्रुटि*
300	68.75	67.65	68.48	12.5	0.243

300 बच्चों के प्रतिदर्श से संबंधित माताओं के आधार पर प्राप्त प्राप्ताकों के उपर वर्णित वितरण के आधार पर केन्द्रीय प्रवृत्ति के तीनों ही मापों के तुलनात्मक अध्ययन से यह सत्यापित होता है। इस प्रतिदर्श में तीनों ही मापों मध्यमान 68.75, मध्यांक 67.65 और बहुलांक 68.48 में बहुत अधिक निकटता एवं समानता पाई गई है। वैसी स्थिति में इस प्रतिदर्श के वास्तविक जनसंख्या के प्रतिनिधि होने की संभावना 99 प्रतिशत विश्वास की सीमा के अंदर प्रदर्शित होती है। प्रतिदर्श के मध्यमान की प्रमाणिक त्रुटि 0.243 प्राप्त हुआ है। अत: (0.243×2.58=0.627) गिलफोर्ड (1956) के अनुसार 0.01 स्तर पर यह सत्यापित हो रहा है।

प्रतिदर्श में सम्मिलित छात्र एवं छात्राओं के द्वारा 300 माता से सबंधित प्रश्नावलियों से प्राप्त प्राप्तांकों का सांख्यिकीय विश्लेषण कर प्रसार और वितरण को सारणी संख्या- चार में वर्णित किया गया है:

सारणी संख्या-4

प्रतिदर्श संख्या	*मध्यमान*	*मध्यांक*	*बहुलांक*	*प्रमाणिक विचलन*	*मध्यमान की प्र. त्रुटि*
300	66.16	59.31	62.235	14.265	0.294

माता-पिता एवं छात्राओं के बीच संबंध देखने लिए माता से संबंधित प्रश्नावलियों के आधार पर प्राप्त प्राप्तांकों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया। जिसका उल्लेख सारणी संख्या-4 में किया गया है। प्राप्त प्राप्तांकों के आधार पर केन्द्रीय प्रवृत्ति के तीनों ही मापों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। प्राप्त परिणाम में मध्यमान 66.16, मध्यांक 59.31, बहुलांक 62.235 प्राप्त हुआ है। केन्द्रीय प्रवृत्ति की इन तीनों ही मापों में बहुत अधिक निकटता पाई गई है। प्रतिदर्श के मध्यमान की प्रामाणिक त्रुटि 0.294 प्राप्त हुआ है। गिलफोर्ड (1956) के अनुसार 0.01 सार्थकता स्तर पर यह कहा जा सकता कि प्रतिदर्श का यह मध्यमान जनसंख्या के वास्तविक मध्यमान से 0.294×2.58=0.759 की सीमा में ही विचलन प्रदर्शित कर सकता है। इस सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर माता एवं उनके बच्चों एवं बच्चियों के संबंध में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं:-

(क) माता एवं उनके बच्चे एवं बच्चियों के प्रतिदर्श से प्राप्त प्राप्तांकों का वितरण वास्तविक जनसंख्या के प्रसामान्य वितरण सिद्धांत के अति अनुकूल है।

(ख) प्रतिदर्श का यह मध्यमान जनसंख्या के वास्तविक मध्यमान का प्रतिनिधित्व करता है।

(ग) यह प्रमाणित होता है कि बच्चे एवं बच्चियों एवं उनके माता के बीच संबंध का जनसंख्या में समान रुप से वितरण प्रदर्शित नहीं होता है। एक छोर पर जहाँ कुछ माताओं का अपने बच्चे एवं बच्चियों के साथ अधिक अनुकूल संबंध देखा जाता है, वहीं दूसरी ओर कुछ ऐसी भी माताएँ हैं जिनका अपने बच्चे एवं बच्चियों के साथ संबंध अनुकूल नहीं पाया जाता है। लेकिन इन दोनों ही अति समूहों के मध्य एक बड़ी संख्या पाई जाती है जिसका संबंध सामान्य माना जाता है।

संदर्भ:

Freud, S. (2014). Civilization and its discontents. Penguin Classics.

Watson, J. B. (1919): *Psychology from the Standpoint of a Behaviorist*, Philadelphia: Lippincott.

Sullivan, H. S. (1947). Conceptions of Modern Psychiatry. Washington D. C.: William A. White Psychiatric Foundation. pp. 4-5.

Brandt, David & Silverman, Helen (1985): (City Univ., New York, Johan Jay College of Criminal Justice) 'The Impact of Maternal Personality on Individuation During Adolescence'. *Psychoanalytic Psychology*. (Sum), Vol. (9) 267-278.

Kumari Pushpa (2009): "An Investigation of the Influence of Family Environment on Child Development" (*A Comparative Study of Rural and Urban Scheduled Castes Children of Vaishali District.*) A Thesis of BRA Bihar University Muzaffarpur.

Rashmi (2019): *In Investigation of the Influence of Family Environment on Child Development a Comparative Study of Urban and Rural Children of Chapra District*, A Thesis of B.R.A. Bihar University, Muzaffarpur.

Shery, Dr. (Mrs.) G. P. and J. C. Sinha (1977): National Psychological Corporation, Raja Mandi, Agra-282002.

Cooper, J. B. (1966): Two Scales for Parent evaluation, *Journal of Genetic Psychology*. 108, 40-55.

धर्म और रिलिजन का विमर्श और डॉ0 भीमराव रामजी आम्बेडकर

किस्मत कुमार

अम्बेडकर अध्ययन केन्द्र, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला

शोध-सारांश

बौद्धिक जगत में अपवादों को छोड़कर डॉ. आम्बेडकर कि 'हिन्दू होकर नहीं मरने' की घोषणा को 'धर्म परिवर्तन' के नाम से ऐसे प्रस्तुत किया जाता है जैसे उन्होंने कोई भारतीय समाज से ही युद्ध का मोर्चा खोल दिया हो। यही प्रस्तुति बाबासाहब आम्बेडकर के भारत भक्ति के निष्कलंक जीवन चरित्र को समाज के सामने लाने से अब तक रोकती रही है। समय-समय पर इस देश में अनेक समाज सुधारकों ने हिन्दू समाज में आई आडंबरी प्रथाओं के विरोध में जबरदस्त सामाजिक आंदोलनों का सूत्रपात किया था। उन्होंने भी बाबासाहब आम्बेडकर की तरह ही आडंबरों को समाप्त कर समाज में सुधार लाने की चेष्टाएं कीं। परंतु उनके बारे में 'समाज सुधारक' शब्द प्रयोग हुआ और बाबासाहब आम्बेडकर को केवल 'दलित नेता' बताकर समेटने का प्रयत्न किया गया। भारत भक्ति के प्रश्न पर उनका यह कथन ही उनके महान व्यक्तित्व के दर्शन कराता है। डॉ. आम्बेडकर कहते हैं कि हम सबसे पहले भारतीय हैं। बाद में मुसलमान, सिन्धी या कन्नड़; इस तरह की भावना निर्माण करने की अपेक्षा हम प्रथमतः भारतीय और बाद में भी भारतीय ही हैं। यह भावना निर्माण करनी चाहिए।[1] अर्थात डॉ. आम्बेडकर की दृष्टि भी 'राष्ट्र प्रथम' की अवधारणा पर केंद्रित थी।

मुख्य-शब्दः धर्म, रिलिजन, बुद्ध की शरण, साम्यवाद, जातिवाद

डॉ. आम्बेडकर इस्लाम एवं ईसाईयत के मार्ग को देश बाह्य मानते हुए अस्वीकार करते हैं। कम्युनिस्टों के मार्ग को भी इस देश की दृष्टि से अस्वीकार करते हुए भारतीय मूल के मार्गों में दशगुरु परंपरा के खालसा पंथ एवं तथागत बुद्ध के मार्ग पर चलने के लिए विचार करने हेतु रुक जाते हैं। डॉ.आंबेडकर की 'बुद्धं शरणम गच्छामि' की यात्रा की सम्यक समझ के लिए यह आवश्यक है कि धर्म और रिलिजन के विमर्श को सही तरीके से समझा जाये। धर्म और रिलिजन का यह विमर्श इसलिए भी आवश्यक है कि क्योंकि उनके कई महत्वपूर्ण निर्णय इस विमर्श से प्रभावित थे। प्रस्तुत शोध-आलेख धर्म और रिलिजन के परिप्रेक्ष्य में डॉ आम्बेडकर के 'बुद्धं शरणम गच्छामि' की यात्रा को समझने का प्रयास है। खालसा पंथ के अवलोकन में भी क्षेत्रीय समूह एवं जातिभेद की व्यवस्थाओं पर उनकी नजर पड़ती है और इसी बीच 1935 में घोषणा करने के बाद 1956 तक लगभग 21 वर्ष सवर्ण जातियों की ओर से हिन्दु समाज को निर्दोष बनाने की क्षमताओं, संभावनाओं का आकलन भी करते हैं। 1937 से 1951 तक डॉ. आम्बेडकर इस दृष्टि से अनेक गोष्ठियों में अपने मन की वेदना को कठोर से कठोर शब्दों में व्यक्त करते रहे परन्तु जल्दबाजी में किसी भी मार्ग को अपनाने के बजाय राजनीतिक क्षेत्र में इस आंदोलन को बल एवं दिशा देने पर ध्यान केंद्रित करते हैं। फिर सक्रिय राजनीति में अपने प्रश्नों के उत्तर ढूंढने का प्रयास करते हैं। 1937 से 1939 में डॉ. आम्बेडकर मुंबई विधानसभा के लिए निर्वाचित होकर अपने उद्देश्य प्राप्ति के लिए जुट जाते हैं। 1942 से 1946 में वायसराय की कार्यकारी परिषद में श्रम विभाग की जिम्मेदारी संभालते हैं। और श्रमिकों अर्थात समाज जीवन के सबसे उपेक्षित समूह के लिए श्रमिक सुधारों पर कार्य करते हैं। 1946 से 1951 तक भारत की संविधान सभा में ड्राफ्टिंग कमेटी के अध्यक्ष एवं जवाहर लाल नेहरू के प्रथम मंत्रिमंडल में सम्मिलित होकर देश के प्रति अपनी जिम्मेदारी का निर्वहन करते हुए दिखते हैं।

परन्तु डॉ. आम्बेडकर इन सभी कार्यकलापों के साथ-साथ सामाजिक विषमता से ग्रसित अछूत माने जाने वाले बंधुओं को सवर्ण हिंदुओं की इस मानसिक बीमारी का इलाज भी ढूंढते रहे। मुख्यतः डॉ. आम्बेडकर आंदोलनों के कारण संगठित हुए इस अस्पृश्य समाज को, जो बाबासाहब आम्बेडकर को ही अपना सब कुछ मान चुका था, एक निश्चित एवं मजबूत दिशा देने का ही विचार कर रहे थे।

इस सारे संघर्ष में डॉ. आम्बेडकर की मौलिक दृष्टि बहुत आगे का विचार करने वाले महान समाज सुधारक के साथ साथ एक परिपक्व राजनीतिज्ञ एवं दार्शनिक की भी लगती है। वास्तव में डॉ. आम्बेडकर ने अपने जीवन की तरुणाई में 1917 में हुई रूस की क्रांति के समय के वातावरण को नजदीक से निश्चित रूप से देखा-परखा होगा क्योंकि 1916 का अमेरिका के कोलम्बिया यूनिवर्सिटी में 'जाति की उत्पत्ति' पर प्रस्तुत शोध निबंध ने उनके तर्क और तथ्यपरक अध्ययन दृष्टि को सबके सम्मुख रख दिया था। इस शोध निबंध ने उस समय तक के समाजशास्त्रियों की धारणाओं को परखने का आह्वान करना भी महत्वपूर्ण था। और 1936 आते आते 20 वर्ष बाद भी डॉ. आम्बेडकर इसी 'जाति के उन्मूलन' के विषय पर भारतीय समाज को मजबूत बनाने हेतु आह्वान करते हुए दिखते है। अर्थात लंबे कालखण्ड तक अपने लक्ष्य प्रेरित जीवन में वह बहुत स्पष्ट थे। इसलिए विश्व पटल पर होने वाली राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक अथवा सांस्कृतिक आंदोलनों की उथल पुथल से वह अनभिज्ञ होंगे ऐसा नहीं हो सकता। इसलिए भारत में सामाजिक आंदोलन में प्रवेश करते समय भी उन्होंने स्वयं को अपने अनुयायियों सहित कम्युनिस्टों के मायावी जाल से बचने, बचाने की सफल व्यवस्था कर रखी थी। भारत के दलित- पीड़ित समाज

के अभावग्रस्त, उपेक्षित होने के कारण कम्युनिस्टों के झांसे में फंस भी सकता था परंतु डॉ. आम्बेडकर इस मोर्चे पर एक परिपक्व राजनीतिज्ञ की तरह अपने समाज का नेतृत्व करते रहे। यह भी कहा जा सकता है कि भारतीय समाज के एक बहुत बड़े समूह को कम्युनिस्टों के चंगुल में जाने से रोक लिया था। कम्युनिस्टों अथवा मार्क्सवादियों के बारे में डॉ. आम्बेडकर ने अपनी पुस्तक 'बुद्ध अथवा कार्लमार्क्स' में विस्तार से तर्कपूर्ण चर्चा करते हुए मार्क्सवाद को बुद्ध के विचार के विपरीत होने के कारण अस्वीकार किया है। बुद्ध के विचार में तानाशाही, हिंसा का कोई स्थान नहीं है। इसलिए डॉ. आम्बेडकर आर्थिक मोर्चे पर पर भी उनके विचार को यह कहते हुए अस्वीकृत करते हैं कि 'साम्यवादी दर्शन का उद्देश्य सूअरों को मोटा बनाने जैसा प्रतीत होता है। मानो मनुष्य सूअरों जैसे हैं। मनुष्य का विकास भौतिक रूप के साथ-साथ आध्यात्मिक रूप से भी होना चाहिए।'[2] और इस दृष्टि से भारत में भी राजनैतिक क्षेत्र में स्वयं अलग राजनीतिक दल बना कर दलितों के हितों की सुरक्षा की चिंता करते हुए दिखते हैं। मार्क्सवाद के विचार को समझते हुए अमान्य करना उनके चिंतन की धारा को डॉ. आम्बेडकर को दार्शनिकों की श्रेणी में भी लाकर खड़ा कर देता है। वह दलितों, पीड़ितों, अभावग्रस्त बंधुओं के जीवन की आवश्यकताओं संबंधी प्रश्नों के उत्तर भी भारत की मिट्टी में ही खोजने का निर्णय करते हैं। क्योंकि डॉ. आम्बेडकर को लगता था कि समाज के इस अभाव ग्रस्त, दलित, पीड़ित समूह को कम्युनिस्ट कहीं अपना आहार न बना ले। इसकी आशंका प्रकट करते हुए डॉ. आम्बेडकर कहते हैं,

"Between schedule castes and communism, Ambedkar is the barrier और between caste Hindus and communism Golwalkar (क्योंकि वे ब्राह्मण हैं) is the barrier" [3]

परिणामस्वरूप डॉ. आम्बेडकर बुद्ध के मार्ग पर चलने का निर्णय करते हैं। बुद्ध के मार्ग को भारतीय अथवा हिन्दु समाज की दृष्टि से भी सबसे उपयुक्त मानते हैं। आम्बेडकर कहते हैं कि भारत में प्रचलित अन्य मार्ग अथवा विश्वास इस लोक की अपेक्षा परलोक की चिंता ज्यादा करते हैं। उनका कर्मकांड करवाने का ज्यादा हेतु परलोक सुधारना ही है। इस संसार को तो वो वैसे भी माया ही मानते हैं।[4] लेकिन बुद्ध उस संसार की नहीं इस संसार की बात करने के कारण कुछ विशेष हैं। वे इस संसार को संवारने की बात करके अन्य मार्गों से विशेष एवं व्यावहारिक तो लगते हैं। बुद्ध के मार्ग को चुनने से एक बात तो यह भी ध्यान में आती है कि डॉ. आम्बेडकर समाज में धर्म के नाम पर चलने वाली कुप्रथाओं को धर्म आधारित व्यवस्था के पालन करने से ही समाप्त करने को प्राथमिकता देते हैं।

डॉ. आम्बेडकर की इस घोषणा का विवेचन करते समय हमें उनकी धर्म संबंधी अवधारणा को समझना पड़ेगा। डॉ. आम्बेडकर धर्म को किसी भी व्यक्ति के जीवन में गुण निर्माण एवं उसके व्यक्तित्व को निखारने वाला तत्व मानते हैं। वे कहा करते थे कि मनुष्य के गठन में धर्म का बड़ा स्थान है। उनका यह विश्वास था कि अपने पास जो भी अच्छी बातें हैं, वे सारे धर्म के फल हैं।[5] उनके अभिप्राय में धर्म एक ऐसा तत्व है जो समाज को अनुशासित, व्यवस्थित एवं संगठित रखने में भी सुन्दर भूमिका अदा करता है। धर्म को डॉ. आम्बेडकर व्यक्ति के जीवन के विकास के लिए भी और समाज जीवन के उत्थान के लिए भी आवश्यक मानते हैं। धर्म के नाम पर चलने वाले आडंबरों, प्रथाओं के वे धुर विरोधी हैं। इन कुप्रथाओं पर उनके द्वारा किए गए सम-सामयिक प्रहारों को ही धर्म परिवर्तन की व्याख्याओं में डाल देना उनके धर्म परायण व्यक्तित्व से ही अनुचित व्यवहार करने समान लगता है।

डॉ. आम्बेडकर का संघर्ष तो वास्तव में 'धर्म' शब्द के सही अर्थों में प्रयोग करने एवं व्यवहार में लाने हेतु ही था। उनका संघर्ष, हिन्दु समाज की सामाजिक रचना के सिद्धांत एवं व्यवहार में एकरूपता लाने के लिए था। हिन्दु समाज में डॉ. आम्बेडकर चार वर्णों की जगह जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था से बाहर निकल कर केवल एक वर्णीय ख्रहिन्दु वर्ण के आधार पर ही समाज की पहचान चाहते थे। उनके विचार से सभी वर्ण एकात्म हैं, एकात्मता के आधार पर ही केवल और केवल हिन्दु यही सबका परिचय होना चाहिए। डॉ. आम्बेडकर कहते हैं कि, "मेरे विचार से हिन्दु समाज जब एक जातिहीन समाज बन जाएगा, तभी इसके पास स्वयं को बचाने के लिए काफी शक्ति होगी। इस आंतरिक ताकत के बिना हिन्दुओं के लिए स्वराज, गुलामी की ओर केवल एक कदम होगा।"[6]

डॉ. आम्बेडकर धर्म को सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग मानते थे। वे समाज और मनुष्य के धर्म से गहरे संबंध बताते हुए कहते हैं कि, "धर्म का अर्थ दैवी शासन की आदर्श योजना का प्रतिपादन करना है, जिसका उद्देश्य एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था बनाना है, जिसमें मनुष्य नैतिक जीवन व्यतीत कर सके।"[7]

उनकी दृष्टि में सही अर्थों में धर्म की चार प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं:

1) नैतिकता के द्वारा समाज में एकता लाना,
2) आधुनिक विज्ञान के अनुकूल,
3) स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व, और
4) निर्धनता का अनुमोदन नहीं।

डॉ. आम्बेडकर के बारे में यह भी धारणा फैलाई जाती है कि वे धर्म के बड़े विद्रोही या विरोधी थे। परन्तु उनके विचारों का अध्ययन करने पर उनका धर्म प्रेरित व्यक्तित्व ही सामने आता है। शायद समाज में धर्म की आड़ में चलने वाली कुप्रथाओं को जड़ मूल से समाप्त करने के लिए उनकी तीखी टिप्पणियों के कारण उनकी इस प्रकार की छवि सामने आती हो। धर्म का मानव जीवन में महत्व बताते हुए डॉ. आम्बेडकर कहते हैं कि धर्म और धार्मिक शिक्षा की मानव के जीवन में अत्यंत आवश्यकता है। अक्सर यह समझा जाता है कि मैं धर्म की व्यवस्थाओं को नकारने वाला नास्तिक व्यक्ति हूं मगर यह सच नहीं है मेरे बारे में लोगों की गलतफहमी है जो भी लोग मेरे सम्पर्क में आते हैं उन्हें धर्म के प्रति मेरे प्रेम और श्रद्धा की जानकारी है। मैं धार्मिक पाखण्ड और कर्म-काण्डों को कदापि पसन्द नहीं करता..."[8]

आज कल सबसे बड़ा संकट धर्म और 'रिलीजन' शब्द को समानार्थी मानने से भी हो रहा है। वास्तव में इन दोनों शब्दों के अर्थ भ्रमपूर्ण ढंग से समझाए जाने के कारण भी अस्पष्टता या भ्रम बने रहने की प्रबल संभावना रहती है। भारत में धर्म शब्द का वास्तविक अर्थ अनपढ़ व्यक्ति भी सहज रूप से इसलिए

बता पाता है क्योंकि भारतीय समाज में धर्म शब्द का सामान्यत: प्रचलित अर्थ धारण करने योग्य बातों से है। और इन सब बातों का पालन करना वह अपना धर्म मानता है। मनुस्मृति में भी धर्म के जो दस लक्षण बताएं हैं उनमें सभी लक्षणों का संबंध आचरण अथवा धारण करने योग्य बातों से ही है:

धृति: क्षमा, दमो अस्तेय, शौचमिन्द्रियनिग्रह:।
धीर्विद्या सत्यम क्रोधो दशकं धर्मलक्षणम।।[9]

इनमें कहीं पर भी पूजा पद्धति का उल्लेख नहीं आता है। परंतु ''रिलीजन'' का संबंध पूजा पद्धति से होने के कारण 'धर्म' शब्द का भी भाषांतर ''रिलीजन'' करने से भ्रम निर्माण हो जाता है। वास्तव में 'रिलीजन' शब्द का अर्थ भारतीय समाज में प्रचलित मत, पंथ, संप्रदाय है। धर्म शब्द का अर्थ बताते हुए प्रख्यात चिंतक माधव गोविंद वैद्य लिखते हैं कि,श्धर्मश का अर्थ बहुत व्यापक है। अंग्रेजी भाषा में उसका समुचित पर्याय उपलब्ध नहीं है। अंग्रेजी में अक्सर 'धर्म' का 'रिलिजन' पर्याय दिया जाता है; किंतु यह पर्याय अपर्याप्त है। मैं यहां कुछ शब्दों का उदाहरण देता हूं -'धर्मशाला'। क्या अंग्रेजी में इसका अनुवाद 'रिलिजस स्कूल' करेंगे? 'धर्मार्थ अस्पताल' क्या यह 'हॉस्पिटल फॉर रिलिजंस' है। 'राजधर्म', क्या यह राजा का 'रिलिजन' है, जो प्रजा का नहीं है? और 'पुत्रधर्म' क्या यह बेटे का 'रिलिजन' है, जो उसके माता-पिता का नहीं है? यहां मैं थोड़ा विस्तार कर रहा हूं। हम अपने लिए कितना भी बड़ा भवन बनाएं, वह धर्म नहीं होता। हम जब औरों के लिए भवन' स्थापित करते हैं, तबश धर्मशाला खड़ी होती है। हम अपने या अपने परिवार के लिए दवाइयों का कितना भी बड़ा भंडार बनाएं, वह 'धर्म' नहीं होता। जब अन्य लोगों के लिए नि:शुल्क चिकित्सा की व्यवस्था खड़ी करते है, तब 'धर्मार्थ अस्पताल', यह फलक लगाने की योग्यता हम प्राप्त करते हैं। 'राजधर्म' यानी राजा के वे कर्तव्य, जो उसको प्रजा के साथ जोड़ते हैं और 'पुत्रधर्म', यानी पुत्र के वे कर्तव्य, जो उसे माता-पिता के साथ जोड़ते हैं। तो धर्म व्यक्ति को व्यापक अस्तित्व के साथ जोड़ने का साधन है। कितनी व्यापकता? इसकी कोई सीमा नहीं है। 'महाभारत' कहता है कि 'धारणाद् धर्म इत्याहु: धर्मो धारयात प्रजा:', यानी जो 'धारण' यानी पोषण करता हैकहते हैं उसे धर्म। शायद जोड़ने की व्यवस्था को ही धर्म कहा गया हो। इनको जोड़ने की जो व्यवस्था है....

इसलिए सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा है कि Hinduism is not a religion, it is a common-wealth of many religions. अर्थ है हिंदू एक 'रिलिजन' नहीं है, अनेक रिलिजनों का वह महासंघ है। और शायद इसीलिए इसे हिन्दू धर्म कहा गया क्योंकि इन सब में जो बातें धारण करने योग्य बताई गई हैं, वही तो धर्म के लक्षणों में भी आती हैं। और उन बातों को बताने वाले जो लोग थे वे हिन्दू थे।

इसलिए 'हिंदू' संकल्पना में वेदों का प्रामाण्य न मानने वाले जैन और बौद्ध, मूर्तिपूजा का विरोध करने वाले आर्य समाजी, इन सबका अंतर्भाव है। डॉ. आम्बेडकर द्वारा निर्मित हमारा विद्यमान संविधान भी बताता है कि हिंदुओं को जो लागू है, वह जैनों, बौद्धों तथा सिखों को भी लागू है। क्योंकि ये सब रिलिजंस कहिए, मजहब कहिए, संप्रदाय कहिए, मानने वाले लोग अपने रिलिजन का अभिमान तो धारण करते हैं, किंतु अन्य भी पंथ, संप्रदाय रह सकते हैं, उनको भी अस्तित्व का अधिकार है, ऐसी उनकी मान्यता है।[10]

और भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने भी 1995 में हिन्दू विचार को जीवन जीने की पद्धति ही बताया है। जीवन के लिए आवश्यक धारण करने योग्य बातें उसमें विद्यमान हैं इसीलिए जीवन जीने की पद्धति।

डॉ. आम्बेडकर यह भी कहते हैं कि धर्म का एक अर्थ यदि कानून बताया जाए तो बहुत सी बातों में सुधार स्वयमेव हो जाएगा। क्योंकि समाज धर्म मानकर जो आचरण करता है उसे सुधारना आसान काम नहीं होगा। क्योंकि धर्म को बदल डालने का विचार मान्य नहीं होता है। वास्तव में धर्म तो सार्वभौमिक भी है। शाश्वत भी है। लेकिन नियम अथवा कानून बदलाव की धारणा से जुड़े होते हैं इसलिए उनमें सामाजिक सुधारों को लागू करना सहज होगा। क्योंकि लोग भी जानते हैं कि कानून को बदला जा सकता है।[11]

धर्म को नया सैद्धांतिक आधार देने की वकालत डॉ. आम्बेडकर जरूर करते हैं। जात-पात तोड़क मण्डल के 1936 में होने वाले अधिवेशन की अध्यक्षता हेतु लिखे (प्रकाशित) परन्तु पढ़े नहीं गए अपने भाषण में वे 'धर्म को नया जीवन' बताते हुए लिखते हैं, 'आपको अपने धर्म को एक नया सैद्धांतिक आधार देना होगा, जो स्वतंत्रता, समानता और भाई-चारे के, संक्षेप में प्रजातंत्र के अनुरूप हो।। मैं इस विषय का विशेषज्ञ नहीं हूं। लेकिन मुझे बताया गया है कि ऐसे धार्मिक सिद्धांत जो स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के अनुरूप हो, उन्हें विदेश से लाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इस प्रकार के सिद्धांत उपनिषदों में वर्णित हैं आप चाहें तो पूरा ढांचा बदले बिना कच्ची धातु की यथेष्ट कटाई-छटाई करके यह किया जा सकता है, जो मेरे कथन से अधिक है। इसका तात्पर्य है कि जीवन की मूलभूत धारणाओं को पूरी तरह बदला जाए। इसका तात्पर्य है कि मनुष्य और चीजों के प्रति दृष्टिकोण तथा रवैये में पूरा बदलाव लाया जाए। इसका अर्थ है धर्म-परिवर्तन 'परन्तु यदि आप इस शब्द को पसंद नहीं करते तो मैं कहूंगा इसका अर्थ है नया जीवन। लेकिन एक नया जीवन मृत शरीर में प्रवेश नहीं कर सकता। नया जीवन केवल नए शरीर में ही प्रवेश कर सकता है। इससे पहले कि नया शरीर अस्तित्व में आए और उसमें नया जीवन प्रवेश कर सके. पुराने शरीर को हर हालत में मरना चाहिए। साधारण शब्दों में, इससे पहले कि नया जीवन डाला जाए और उसमें स्पंदन हो, पुराने ढर्रे को समाप्त होना चाहिए यही मेरे कहने का अर्थ है। जब मैने कहा था कि शास्त्रों की सत्ता को हटाओं और शास्त्रों का धर्म नष्ट कर दो।'[12] डॉ. आम्बेडकर का शास्त्रों की सत्ता को हटाने से अभिप्राय सवर्ण हिन्दू समाज के मन को ही बदलने का एक तर्कसंगत प्रयास एवं आह्वान था।

राजीव मल्होत्रा ने भी अपनी पुस्तक[13] में 'धर्म' शब्द के इसी भाव को प्रकट करते हुए लिखते हैं, धर्म को भारतीय आध्यात्मिक परम्पराओं के परिवार से उत्पन्न हुए शब्द की तरह इंगित किया जाता है, जो आज हिन्दू, बौद्ध, जैन और सिख धर्म के रूप में अभिव्यक्त है। मैं यह दिखाऊंगा कि 'धर्म' के विभिन्न परिदृश्य और प्रचलित साधनाएं आध्यात्मिक स्तर पर अन्तर्निहित अभिन्न एकता को प्रदर्शित करते हैं जो उनमें विद्यमान खुलेपन और गैर-आक्रामकता को सुदृढ़ करती है और उनका आधार भी है। "धर्म" को परिभाषित करना आसान नहीं है और इस पुस्तक का यथेष्ट भाग इसके कुछ पहलुओं को समझाने के लिए समर्पित किया गया है। "धर्म" को प्राय: "रिलीजन" (religion), "पंथ" (path) "नियम" (law) अथवा "नीति" (ethics) के रूप में अनुवादित किया जाता है। ये सभी अर्थ धर्म के मूल रूप को समझाने में असमर्थ हैं। यह कहना पर्याप्त होगा कि पारम्परिक संस्कृत शब्दावलियों में उपलब्ध धर्म के सिद्धान्तों

एवं दर्शन परम्पराओं का अंग्रेजी में कोई खरा अनुवाद नहीं है; धर्म में विविध जीवन शैलियां और विचारधाराएं सम्मिलित हैं जो कई सदियों के दौरान विकसित हुई हैं।

निष्कर्ष:

डॉ. आम्बेडकर ने स्वयं भी Buddha And His Dhamma नाम से जो पुस्तक लिखी है, उसमें उन्होंने एक पूरे अध्याय में धर्म और 'रिलीजन' के अन्तर को स्पष्ट किया है। सामान्य तौर पर भारत में अंग्रेजी भाषा के 'रिलीजन' शब्द को भारतीय भाषाओं के धर्म शब्द का पर्यायवाची मान लिया जाता है। इसके कारण अनुवाद करते समय धर्म को 'रिलीजन' बना दिया जाता है। लेकिन आम्बेडकर की दृष्टि में दोनों ही अलग अलग हैं। डॉ. आम्बेडकर पर धर्म का गहरा प्रभाव था। धर्म की आवश्यकता के विषय में वे कहते हैं कि मनुष्य मात्र के उत्कर्ष के लिए धर्म एक अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है। मुझे पता है कि कार्ल मार्क्स के अध्ययन के कारण एक पंथ का अविर्भाव हुआ है- इसके अनुसार धर्म वगैरह कुछ भी नहीं होता। उनके लिए धर्म का कोई महत्व नहीं है। उन्हें सुबह ब्रेकफास्ट मिल जाए, उसमें ब्रेड, मलाई, मक्खन, मुर्गे की टांग आदि भरपेट भोजन मिल जाए तो सब कुछ मिल जाये, आरामदायक नींद मिल जाए तो सब कुछ मिल जाए यह उनका तत्वज्ञान है। मैं इस विचार का नहीं हैं। मेरे पिता निर्धन थे, इसलिए मुझे इस तरह के कोई सुख नहीं मिले, मेरे जैसा कष्टमय जीवन किसी ने भी नहीं बिताया है। इसलिए मुझे इस बात का अहसास है कि सुख-संतोष के अभाव में व्यक्ति का जीवन किस तरह कष्टप्रद हो जाता है।[15] उपर्युक्त विवेचना से यह बात तो उभरकर आ ही रही है कि डॉ. आम्बेडकर व्यक्ति एवं समाज जीवन में धर्म की महता को स्वीकार करते हैं। इसलिए धर्म से दूर जाना या परिवर्तन करने से उनका अभिप्राय केवल सवर्ण समाज के समान अपने नैसर्गिक अधिकार को प्राप्त करने से ही था।

संदर्भ सूची:

1. धनंजयकीर, डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर जीवन चरित, अनुवाद गजानन सुर्वे, पॉप्यूलर प्रकाशन, 2018, पृष्ठ 120
2. बाबासाहब डॉ. आम्बेडकर सम्पूर्ण वाङमय, डॉ. आम्बेडकर प्रतिष्ठान, खण्ड 7, 2019, पृष्ठ 357
3. दत्तोपंत ठेंगडी, डॉ.. आम्बेडकर और सामाजिक क्रान्ति की यात्रा, लोकहित प्रकाशन, 2005, पृष्ठ 155
4. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री, डॉ. भीमराव रामजी आम्बेडकर यात्रा के पदचिन्ह, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 2018, पृष्ठ 171
5. रमेश पतंगे, संघर्ष महामानव का, अर्चना प्रकाशन, 2015, पृष्ठ 25
6. डॉ. बी. आर. आम्बेडकर, बाबासाहब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङमय,डॉ. आम्बेडकर प्रतिष्ठान, भारत सरकार, 2019, खण्ड1, पृष्ठ 93
7. डॉ. बी. आर. आम्बेडकर, बाबासाहब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङमय,डॉ. आम्बेडकर प्रतिष्ठान, भारत सरकार, 2019, खण्ड 6, पृष्ठ 7
8. चांगदेव भवानराव खैरमोड़े, बाबासाहेब डॉ. आम्बेडकर जीवन और चिंतन, सम्यक प्रकाशन, 2016, भाग 1, पृष्ठ 53
9. मनुस्मृति 6/92
10. मोहन भागवत, यशस्वी भारत, प्रभात प्रकाशन, 2021, पृष्ठ 6,7
11. डॉ. बी. आर. आम्बेडकर, बाबासाहब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङमय,डॉ. आम्बेडकर प्रतिष्ठान, भारत सरकार, 2019, खण्ड1, पृष्ठ 89
12. डॉ. बी. आर. आम्बेडकर, बाबासाहब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङमय,डॉ. आम्बेडकर प्रतिष्ठान, भारत सरकार, 2019, खण्ड1, पृष्ठ 90,91
13. राजीव मल्होत्रा, विभिन्नता, पाश्चात्य सार्वभौमिकता को भारतीय चुनौती, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स इंडिया, 2013,पृष्ठ19
14. http://www.voiceofdharmatemple.com/wp-content/uploads/2016/05/Dharma-religion.pdf
15. चांगदेव भवानराव खैरमोड़े, बाबासाहेब डॉ. आम्बेडकर जीवन और चिंतन, सम्यक प्रकाशन, 2020, भाग 12, पृष्ठ 103

भारत में वृद्धों की समस्याओं को दूर करने हेतु सरकारी प्रयास

प्रो० डॉ० मो० शाहिद हसन

विभागाध्यक्ष, विश्वविद्यालय समाजशास्त्र विभाग, ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

कंचन कुमारी

शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सार

भारत, दुनिया का दूसरा सबसे अधिक आबादी वाला देश है, जिसने पिछले 50 वर्षों में एक नाटकीय जनसांख्यिकीय परिवर्तन का अनुभव किया है, जिससे 60 वर्ष से अधिक आयु (यानी, बुजुर्ग) की आबादी लगभग तीन गुना हो गई है। संयुक्त राष्ट्र आर्थिक और सामाजिक मामलों का विभाग के अनुसार यह अनुमान लगाया गया है कि 60 और उससे अधिक आयु के भारतीयों का अनुपात 2010 में 7.5 प्रतिशत से बढ़कर 2025 में 11.1 प्रतिशत हो जाएगा। यह प्रतिशत की एक छोटी वृद्धि है, लेकिन निरपेक्ष रूप से एक आंकड़ा उल्लेखनीय है। जनसंख्या (2008) की अनुमानित आयु संरचना पर UNDESA के आंकड़ों के अनुसार, भारत में 2010 में 91.6 मिलियन से अधिक बुजुर्ग थे, जिसमें 2005 और 2010 के बीच 2.5 मिलियन बुजुर्गों की वार्षिक वृद्धि हुई थी। भारत में बुजुर्गों की संख्या 158.7 मिलियन तक पहुंचने का अनुमान है। 2025, और 2050 तक, 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की आबादी को पार करने की उम्मीद है। इस आलेख में भारत में वृद्धों की समस्याओं को दूर करने हेतु सरकारी प्रयास को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्द: वरिष्ठ नागरिक; सुरक्षित जीवन; वित्तीय सहायता; सरकारी योजनाएँ।

परिचय

भारत में वरिष्ठ नागरिक निर्विवाद रूप से राष्ट्र का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, उनकी बुद्धिमता और अनुभव युवा पीढ़ी और सामान्य रूप से अर्थव्यवस्था के लिए अमूल्य है। ऐसे में, देश के आदरणीय बुजुर्ग आबादी के लिए उपलब्ध वरिष्ठ नागरिक लाभों को समझना एक महत्वपूर्ण विषय है जिस पर चर्चा करने की आवश्यकता है। पेंशन योजनाओं और सेवानिवृत्ति लाभों से लेकर स्वास्थ्य सेवा और यात्रा रियायतों तक, वरिष्ठ नागरिक अपनी मातृभूमि की बाहों में अधिक आरामदायक और सुरक्षित जीवन जीने में मदद करने के लिए कई तरह की सेवाओं और संसाधनों का उपयोग करते हैं। हमेशा बदलती नीतियों और विनियमों के साथ, भारत में उपलब्ध नवीनतम वरिष्ठ नागरिक लाभों पर अप-टू-डेट रहना महत्वपूर्ण है। जैसे-जैसे जीवन प्रत्याशा बढ़ती है, भारत में बुजुर्गों की आबादी में नाटकीय वृद्धि का अनुभव होना तय है। विश्वस्त सूत्रों द्वारा दिए गए आँकड़ों के अनुसार, 2050 तक, यह अनुमान है कि बुजुर्गों की आबादी कुल आबादी का लगभग एक चौथाई होगी। ऐसी स्थिति में बचत उनके जीवन को आनंदमय और संतुष्ट बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।[1]

चूंकि सेवानिवृत्ति के दौरान किसी की आय कम हो जाती है, इसलिए चिकित्सा व्यय का प्रबंधन करना मुश्किल हो जाता है। बुजुर्ग लोग विभिन्न बीमारियों के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं, और इससे उपचार और रोकथाम दोनों की लागतों को कवर करने के लिए आय के एक स्थिर प्रवाह की आवश्यकता बढ़ जाती है। वरिष्ठ नागरिकों के अधिकारों की रक्षा और उनकी भलाई सुनिश्चित करने के लिए, भारत सरकार ने कई योजनाएं शुरू की हैं। 2022 और 2023 में भारत में वरिष्ठ नागरिकों के लिए कुछ बेहतरीन और शीर्ष सरकारी योजनाएं निम्नलिखित हैं:

1. प्रधानमंत्री वय वंदना योजना

प्रधानमंत्री वय वंदना योजना 60 वर्ष से अधिक आयु के भारतीय नागरिकों के लिए एक अग्रणी वरिष्ठ नागरिक कल्याण निधि है। वरिष्ठ नागरिकों के लिए यह प्रधान मंत्री योजना भारत के वरिष्ठ नागरिकों को वित्तीय सुरक्षा और आश्वासन प्रदान करने के लिए डिजाइन की गई है। यह प्रति वर्ष 8 प्रतिशत की आकर्षक ब्याज दर प्रदान करता है, और पेंशनभोगी अपनी भुगतान आवृत्ति चुन सकते हैं: मासिक, त्रैमासिक, अर्ध-वार्षिक या वार्षिक। इसमें मासिक न्यूनतम और अधिकतम पेंशन कैप रुपये हैं क्रमश: 3,000 रू. और 10,000, रू.। इस योजना के साथ, सरकार यह सुनिश्चित करती है कि वरिष्ठ नागरिकों का भविष्य सुरक्षित हो और उनके पास एक सम्मानित जीवन जीने का अवसर हो।[2]

दूसरे शब्दों में, पीएम वय वंदना योजना एक सरकारी योजना है जिसे वरिष्ठ भारतीय नागरिकों की वित्तीय सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए बनाया गया है। भारतीय जीवन बीमा निगम (एलआईसी) द्वारा संचालित यह पेंशन योजना, सेवानिवृत्ति के बाद एक सुरक्षित और सुरक्षित वित्तीय योजना विकल्प प्रदान करती है। वरिष्ठ नागरिक सुनिश्चित रिटर्न, कर लाभ और जीवन बीमा प्राप्त करके इस कल्याण कोष से लाभान्वित हो सकते हैं। यह योजना नियमित खर्चों को पूरा करने के लिए परिपक्वता के समय एकमुश्त राशि निकालने या पेंशन का विकल्प चुनने का विकल्प भी प्रदान करती है।

इस योजना के साथ, वरिष्ठ नागरिक मन की अतिरिक्त शांति के साथ एक सुरक्षित सेवानिवृत्ति का आनंद ले सकते हैं जो वरिष्ठ नागरिकों के लिए सरकारी योजनाओं द्वारा कवर किए जाने से आती है। यह वरिष्ठ नागरिक कल्याण कोष उन लोगों के लिए एक अति आवश्यक सुरक्षा तंत्र प्रदान करता है जो सेवानिवृत्ति के बाद एक आरामदायक जीवन का आनंद लेना चाहते हैं।

2. इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना भारत में एक सरकार समर्थित कार्यक्रम है जो वरिष्ठ नागरिकों को वित्तीय सहायता प्रदान करता है। यह देश में बुजुर्गों के लिए सबसे लोकप्रिय कार्यक्रमों में से एक है। यह विशेष रूप से 60 वर्ष और उससे अधिक आयु के उन लोगों के लिए डिजाइन किया गया है जो सरकारी दिशानिर्देशों के अनुसार गरीबी रेखा से नीचे आते हैं। इस योजना के माध्यम से, वरिष्ठ नागरिक प्रति माह तक पेंशन प्राप्त कर सकते हैं। यदि वे 60 और 79 वर्ष की आयु के बीच की उम्र के हैं तो उन्हें 200 रुपये प्रति माह पेंशन मिलता है। यदि वे 80 वर्ष से अधिक आयु के तो 500 प्रति माह मिलता है। भारत में यह महत्वपूर्ण वरिष्ठ नागरिक लाभ बुजुर्गों को बहुत आवश्यक वित्तीय सहायता प्रदान करता है और उन्हें जीवन की बेहतर गुणवत्ता का नेतृत्व करने में मदद करता है। कुल मिलाकर, यह योजना भारत में बुजुर्गों के लिए उपलब्ध कई कार्यक्रमों में से एक है, और यह वरिष्ठ नागरिकों के कल्याण और सुरक्षा को सुनिश्चित करने के सरकार के प्रयासों का एक अनिवार्य हिस्सा है।[3]

3. बुजुर्गों की स्वास्थ्य देखभाल के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम

बुजुर्गों की स्वास्थ्य देखभाल के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम की स्थापना 2010 में वरिष्ठ नागरिकों को निवारक और प्रोत्साहक स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं का लाभ प्रदान करने के लिए की गई थी। यह पहल बुजुर्ग नागरिकों को स्वास्थ्य और कल्याण सेवाओं तक पहुंच प्रदान करती है ताकि वे अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रख सकें। दूसरे शब्दों में, यह कार्यक्रम यह सुनिश्चित करने के लिए शुरू किया गया था कि वरिष्ठ नागरिकों को आवश्यक चिकित्सा देखभाल प्रदान की जाए और उन्हें स्वस्थ और अधिक स्वतंत्र जीवन जीने में सक्षम बनाया जाए।[4]

यह कार्यक्रम देश भर के जिला अस्पतालों, सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों (सीएचसी), प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों (पीएचसी) और उप-केंद्रों (एससी) में रहने वालों को गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य देखभाल सेवाएं प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। कार्यक्रम राज्य स्वास्थ्य सोसायटी के माध्यम से सभी स्तरों पर आवश्यक स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं और संसाधनों तक पहुंच को सुविधाजनक बनाने का प्रयास करता है। सरकार या स्वास्थ्य सुविधाओं से ये वरिष्ठ नागरिक लाभ मुफ्त या भारी सब्सिडी वाले हो सकते हैं, जिससे देश में बुजुर्ग आबादी को उचित मूल्य पर गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं का उपयोग करने की अनुमति मिलती है।

इसके अलावा, यह कार्यक्रम सरकार की वरिष्ठ नागरिक पेंशन योजना का हिस्सा है और एक व्यापक कार्यक्रम है जिसे यह सुनिश्चित करने के लिए डिजाइन किया गया है कि वरिष्ठ नागरिकों को आवश्यक चिकित्सा देखभाल प्रदान की जाती है। कुल मिलाकर, हमारे आदरणीय वरिष्ठ नागरिकों के पास अब राष्ट्रीय प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल विस्तार (एनपीएचसीई) के कार्यान्वयन के कारण अधिक किफायती लागत पर गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं तक पहुंचने का अवसर है।

4. वरिष्ट मेडिक्लेम पॉलिसी

भारत में बुजुर्ग नागरिकों के लिए, वरिष्ठ मेडिक्लेम पॉलिसी व्यापक स्वास्थ्य कवरेज प्रदान करती है और भारत में सबसे अच्छे राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों में से एक है। यह नीति 60 से 80 वर्ष की आयु के वरिष्ठ नागरिकों को विशेष चिकित्सा देखभाल प्रदान करने के लिए अनुकूलित है। यह दवा, रक्त आधान, एम्बुलेंस सेवाओं और अन्य निदान-संबंधी शुल्कों की लागतों को कवर करता है। यह मूल रूप से इस तरह से डिजाइन किया गया है कि यह देश में बुजुर्ग आबादी की अनूठी जरूरतों को पूरा कर सके और उनकी भलाई सुनिश्चित कर सके।[5]

भले ही पॉलिसी एक वर्ष के लिए वैध है, इसे 90 वर्ष की आयु तक नवीनीकृत किया जा सकता है और अतिरिक्त लाभ के साथ आता है, जैसे कि धारा 80 डी के तहत आयकर छूट। यह नीति वरिष्ठ नागरिकों के स्वास्थ्य और कल्याण को बढ़ावा देने के लिए तैयार की गई है। वरिष्ठ मेडिक्लेम पॉलिसी के साथ, बुजुर्ग नागरिक खगोलीय चिकित्सा बिलों के बारे में चिंता किए बिना गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ उठा सकते हैं।

इस प्रकार यह नीति भारत में बुजुर्ग नागरिकों के स्वास्थ्य को सुरक्षित करने का एक शानदार तरीका है और उन्हें ऐसे समय में आवश्यक वित्तीय सहायता प्रदान करती है जब चिकित्सा देखभाल की लागत आसमान छू रही है। यह सुनिश्चित करता है कि बुजुर्ग नागरिक चिकित्सा व्यय या बिलों की चिंता किए बिना अपनी सेवानिवृत्ति का आनंद ले सकते हैं, क्योंकि सरकार उनके लिए कवरेज प्रदान करेगी। यह सुरक्षा और मन की शांति की भावना प्रदान करता है, जिससे उन्हें आराम करने और अपने खघली समय का अधिकतम लाभ उठाने की अनुमति मिलती है।

5. राष्ट्रीय वयोश्री योजना

भारत सरकार ने हाल ही में राष्ट्रीय वयोश्री योजना शुरू की है, जो 60 वर्ष से अधिक आयु के वरिष्ठ नागरिकों के लिए एक सरकारी योजना है। यह पहल गरीबी में रहने वाले वरिष्ठ नागरिकों को शारीरिक सहायता प्रदान करके अधिक आरामदायक और स्वतंत्र जीवन जीने में मदद करने के लिए डिजाइन

की गई है। यह योजना विशेष रूप से उन लोगों को लक्षित करती है जो गरीबी रेखा से नीचे (बीपीएल) श्रेणी के हैं, उन्हें संसाधनों और उत्पादों तक बहुत आवश्यक पहुंच प्रदान करते हैं जो उन्हें अपने दैनिक जीवन में मदद कर सकते हैं।[6]

इसके अलावा, केंद्र सरकार इस योजना को पूरी तरह से वित्तपोषित कर रही है, जिससे यह "केंद्रीय क्षेत्र की योजना" बन गई है। इस योजना का लाभ उठाने के लिए वरिष्ठ नागरिक के पास बीपीएल कार्ड होना चाहिए। यह योजना गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले वरिष्ठ नागरिकों की आजीविका को समर्थन और बनाए रखने में मदद करती है। इसके अलावा, यह उन्हें उनके जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए आवश्यक और उचित सहायता और उपकरण प्रदान करता है और उन्हें सम्मान और स्वायत्तता के साथ जीने का अधिकार देता है। कुल मिलाकर, राष्ट्रीय वयोश्री योजना 60 वर्ष से अधिक आयु के वरिष्ठ नागरिकों के लिए एक उत्कृष्ट सरकारी योजना है जो गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। यह भारत सरकार द्वारा अपने नागरिकों की भलाई सुनिश्चित करने और उन्हें एक आरामदायक और स्वतंत्र जीवन जीने के लिए सशक्त बनाने के लिए की गई एक उत्कृष्ट पहल है।

6. वरिष्ठ पेंशन बीमा योजना

वित्त मंत्रालय द्वारा शुरू की गई यह पेंशन योजना 60 साल से ऊपर के वरिष्ठ नागरिकों के लिए है। इस योजना को संचालित करने का अधिकार एलआईसी ऑफ इंडिया के पास है। इस पॉलिसी का लाभ उठाने के लिए आपको कोई मेडिकल चेक-अप कराने की आवश्यकता नहीं है। यह 10 वर्षों तक 8 प्रतिशत प्रति वर्ष की गारंटीकृत ब्याज दर के साथ सुनिश्चित पेंशन प्रदान करता है - वे मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक और वार्षिक पेंशन का विकल्प चुन सकते हैं - यह इस बात पर निर्भर करता है कि वे इसे कैसे प्राप्त करना चाहते हैं।[7]

7. वरिष्ठ नागरिक कल्याण कोष

भारत सरकार ने हाल ही में अपने बुजुर्ग नागरिकों के कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय के तहत वरिष्ठ नागरिक कल्याण कोष की स्थापना की है। इस कोष का उद्देश्य सरकार की योजनाओं में छोटी बचत और बचत खातों से लावारिस राशि का दोहन करके बुजुर्ग नागरिकों को वित्तीय सहायता प्रदान करना है। इसका उद्देश्य यह गारंटी देना है कि वरिष्ठों के पास अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य और भलाई को बनाए रखने के साधन हैं।

यह योजना वरिष्ठ नागरिकों को विभिन्न सरकारी लाभ प्रदान करती है, जैसे सब्सिडी वाली स्वास्थ्य सेवा, चिकित्सा उपचार के लिए वित्तीय सहायता और जरूरतमंद वरिष्ठ नागरिकों के लिए पेंशन। वरिष्ठ नागरिकों के लिए यह सरकारी योजना हमारी बुजुर्ग आबादी के कल्याण और सुरक्षा के लिए एक स्वागत योग्य कदम है और यह सुनिश्चित करेगी कि कोई भी जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित न रहे।

8. वयोश्रेष्ठ सम्मान

वयोश्रेष्ठ सम्मान भारत में एक प्रतिष्ठित सरकारी वरिष्ठ नागरिक पुरस्कार कार्यक्रम है जिसे 2012 में वरिष्ठ नागरिकों को उनके संबंधित क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान के लिए पहचानने और पुरस्कृत करने के लिए स्थापित किया गया था। भारत सरकार की इस वार्षिक पहल को 2013 में एक राष्ट्रीय पुरस्कार से ऊपर उठाया गया था, और तब से, तेरह अलग-अलग श्रेणियों में मान्यता दी गई है।

वरिष्ठ नागरिकों को अनुकरणीय सेवाएं और सुविधाएं प्रदान करने वाली जिला पंचायतों को प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिन्ह और 10 लाख रुपये के नकद पुरस्कार से पुरस्कृत किया जाएगा। इसी तरह वृद्धावस्था के क्षेत्र में शोध करने वाली सर्वश्रेष्ठ संस्था को प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिन्ह और 5 लाख रुपये का नकद पुरस्कार दिया जाएगा। इन पुरस्कारों का उद्देश्य बुजुर्गों के कल्याण के लिए व्यक्तियों और संस्थानों की निस्वार्थ सेवा को पहचानना और प्रोत्साहित करना है।

वरिष्ठ नागरिकों को सेवाएं प्रदान करने और जागरूकता बढ़ाने के लिए सबसे सम्मानित संस्थान को प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिन्ह और 5 लाख रुपये का नकद पुरस्कार दिया जाएगा। यह पुरस्कार 90 वर्ष और उससे अधिक आयु के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को प्रदान किया जाएगा जो अभी भी सक्रिय और स्वतंत्र हैं, और समाज में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। पुरस्कार विजेता को एक प्रशस्ति पत्र, एक स्मृति चिन्ह और 2 लाख 50 हजार रुपये का नकद पुरस्कार भी प्राप्त होगा।

दूसरी ओर आइकोनिक मदर अवार्ड उन वरिष्ठ महिला नागरिकों को प्रदान किया जाएगा, जिन्होंने तमाम कठिनाइयों के बावजूद अपने बच्चों की परवरिश की और उन्हें अपनी पसंद के किसी भी क्षेत्र में बड़ी सफलता हासिल करने में मदद की। इस पुरस्कार के प्राप्तकर्ता को एक प्रशस्ति पत्र, एक स्मृति चिन्ह और 2 लाख पचास हजार रुपये के नकद पुरस्कार के साथ प्रस्तुत किया जाएगा। वयोश्रेष्ठ सम्मान एक अविश्वसनीय सरकारी वरिष्ठ पुरस्कार कार्यक्रम है जो वरिष्ठों की अनुकरणीय सेवा को मान्यता देकर उनकी कड़ी मेहनत और समर्पण को पहचानता है और उन्हें पुरस्कृत करता है। इन व्यक्तियों और संस्थानों को पुरस्कार देकर, भारत सरकार उन वरिष्ठों के लिए अपनी प्रशंसा दिखा रही है जिन्होंने अपने संबंधित क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।[8]

9. रिवर्स मॉर्टगेज योजना

रिवर्स मॉर्टगेज योजना भारत में वरिष्ठ नागरिकों का समर्थन करने के लिए डिजाइन किया गया एक अभिनव कार्यक्रम है जिसे 2007 में भारतीय वित्त मंत्रालय द्वारा पेश किया गया था। यह एक ऋण योजना है जो वरिष्ठ नागरिकों को घर के मूल्य के 60 प्रतिशत तक के ऋण का लाभ उठाने के लिए अपनी आवासीय संपत्ति को गिरवी रखने में सक्षम बनाती है। ऋण को कम से कम 10 वर्षों की अवधि के लिए बनाए रखा जाना चाहिए। यह योजना वरिष्ठ नागरिकों को बड़ी वित्तीय सहायता प्रदान करती है, जिससे उन्हें अपनी संपत्ति बेचे बिना अपने घरों से धन प्राप्त करने में मदद मिलती है। यह वरिष्ठ नागरिक ऋण कार्यक्रम सेवानिवृत्त व्यक्तियों के लिए उनकी दैनिक या विशेष जरूरतों के लिए आवश्यक धन का उपयोग करने का एक शानदार तरीका है।

यह योजना वरिष्ठ नागरिकों को एक वित्तीय सुरक्षा कवच प्रदान करती है, जिससे वे अपने सुनहरे वर्षों में आर्थिक चुनौतियों का सामना करने के बावजूद घर पर रहने और अपनी स्वतंत्रता बनाए रखने की अनुमति देते हैं। यह वरिष्ठों को अपने स्थानीय समुदायों के भीतर रहने के लिए प्रोत्साहित करता है, उन्हें

उन फंडों तक पहुंच प्रदान करता है जिनका उपयोग चिकित्सा बिलों, उपयोगिता बिलों और अन्य खर्चों को कवर करने के लिए किया जा सकता है। कुल मिलाकर, यह योजना वरिष्ठ नागरिकों को वह वित्तीय सुरक्षा प्रदान करती है जिसकी उन्हें आराम से और गरिमा के साथ जीने के लिए आवश्यकता होती है।

10. प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना

2018 में स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा शुरू की गई प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना (पीएमजेएवाई) एक महत्वाकांक्षी योजना है जिसने भारत में स्वास्थ्य सेवा प्रणाली में क्रांति ला दी है। इसके अंतर्गत 5 लाख रुपये तक का कवरेज प्रदान किया है। गरीब और कमजोर परिवारों के 10 करोड़ लोगों को माध्यमिक और तृतीयक अस्पताल में भर्ती के लिए प्रति परिवार 5 लाख तक का कवरेज प्रदान करता है। इस योजना के साथ, सरकार ने स्वास्थ्य सेवा को अधिक सुलभ और किफायती बनाने की दिशा में एक बड़ा कदम उठाया है।[9]

इसके अलावा, भारत सरकार ने कई अन्य योजनाएं शुरू की हैं जो विशेष रूप से बुजुर्ग आबादी के लिए बहुत मददगार रही हैं। इनमें ऐसी योजनाएं शामिल हैं जो चिकित्सा और अन्य खर्चों की योजना बनाने में सहायता करती हैं। इस तरह के उपायों ने भारत में स्वास्थ्य सेवा प्रणाली को बहुत जरूरी बढ़ावा दिया है और लोगों के लिए गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवा तक पहुंचना आसान बना दिया है।

निष्कर्ष

भारत सरकार ने देश में रहने वाले वरिष्ठ नागरिकों को लाभ पहुंचाने के लिए कई योजनाएं शुरू की हैं। इन (उपर्युक्त) योजनाओं को वित्तीय सुरक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, पेंशन योजनाओं तक पहुंच और अन्य सामाजिक कल्याण लाभों जैसे कई प्रकार के लाभ प्रदान करने के लिए डिजाइन किया गया है। इनमें से अधिकांश योजनाओं, या भारत में वरिष्ठ नागरिक लाभ ने बुजुर्ग नागरिकों को एक बहुत ही आवश्यक जीवन रेखा प्रदान की है, जिससे उन्हें सम्मान और वित्तीय सुरक्षा के साथ जीने में मदद मिली है। सरकार ने वरिष्ठ नागरिकों के लिए एक सुरक्षित भविष्य प्रदान करने के लिए काफी प्रतिबद्धता दिखाई है और जनसंख्या के इस महत्वपूर्ण वर्ग के कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए कई कदम उठाए हैं। इस संबंध में सरकार के प्रयास सराहनीय हैं और भारत के सभी नागरिकों द्वारा इसकी सराहना की जानी चाहिए।

संदर्भ

1. आचार्य ए, रैनसन के., गरीबों के लिए स्वास्थ्य देखभाल वित्तपोषण: गुजरात में समुदाय आधारित स्वास्थ्य बीमा योजनाएं, आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 2005; 40: 4,141-4,150।
2. अग्रवाल बी., लिंग और संपत्ति पर नियंत्रण: दक्षिण एशिया में आर्थिक विश्लेषण और नीति में एक महत्वपूर्ण अंतर, विश्व विकास, 1994; 10:1, 455-1,478।
3. ड्रोर डीएम, पुटेन-रेडमेकर ओ, कोरेन आर., बीमारी की लागत: भारत में पांच संसाधन-गरीब स्थानों के अध्ययन के लिए साक्ष्य, भारतीय चिकित्सा अनुसंधान जर्नल, 2008; 127: 347-361।
4. एलिस आर.पी., आलम एम, गुप्ता आई., भारत में स्वास्थ्य बीमा: पूर्वानुमान और संभावनाएं, आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 2000; 35: 207-217।
5. गोयल पीके, गर्ग एसके, सिंह जेवी, भटनागर एम, चोपड़ा एच, बाजपेयी एस.के., मेरठ की ग्रामीण आबादी में बुजुर्गों की अपूर्ण जरूरतें, इंडियन जर्नल ऑफ कम्युनिटी मेडिसिन, 2003; XXVIII, 165-166।
6. हुसैन जेड, घोष एस., क्या भारत में बुजुर्गों की स्वास्थ्य स्थिति बिगड़ रही है?: राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण डेटा के लगातार दौर की तुलना, म्यूनिख व्यक्तिगत त्मचम्ब संग्रह, 2010. रिपोर्ट संख्या 25747।
7. इंगल जीके, नाथ ए. भारत में जराचिकित्सा स्वास्थ्य: चिंताएं और समाधान, इंडियन जर्नल ऑफ कम्युनिटी मेडिसिन। 2008; 33: 214-218।
8. झा पी, गजलक्ष्मी वी, गुप्ता पीसी, एट अल, भारत में दस लाख मौतों का संभावित अध्ययन: औचित्य, डिजाइन और सत्यापन परिणाम, पीएलओएस मेडिसिन, 2006; 3:18।
9. कोडोथ पी, राजन एस. आई., वृद्धों के लिए संस्थागत प्रावधान और देखभाल: एशिया और यूरोप से परिप्रेक्ष्य, नई दिल्ली: एंथम प्रेस; 2008. पीपी. 83-114.

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'समय-सरगम' में मानवीय-सम्बंध

मंजु बाला

(शोधार्थी), हिन्दी-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़, दड़वा कलां (सिरसा), हरियाणा

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर ही वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तथा अनेक सम्बंध स्थापित करता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मानव को किसी न किसी सम्बंध की आवश्यकता अनुभव होती है। आपसी सम्बंधों के कारण ही वह अपने हर सुख-दु:ख में आपसी सहयोग एवं सानिध्य प्राप्त करता है यही सम्बंध आगे चलकर मानव के मानसिक, बौद्धिक विकास के लिए अनिवार्य हो जाता है। मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ प्रत्येक सम्बंध को निश्चित कर दिया गया और इसकी मर्यादा भी निर्धारित कर दी गई है। वर्तमान वैज्ञानिक युग मानव समाज की प्रगति का सूचक माना गया है। जिसके कारण उन्नति को बढ़ावा मिला है इस प्रकार वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी मानव जीवन का अभिन्न अंग भी बन गई है। इस प्रौद्योगिकी के कारण भले ही मानव को रोजगार के साधन उपलब्ध हो गए है लेकिन इसके कारण लोगों की सोच विचार करने का तरीका भी यांत्रिक हो गया है जिससे मानवीय सम्बंधों को गहरा आघात भी पहुँचा है आज मानव की मानव से दूरी इतनी बढ़ गई है कि वह एक-दूसरे के विचारों तथा भावनाओं को समझने में असमर्थ है आज का मानव सुकून व शांति की तलाश में इधर-उधर भटकता रहता है लेकिन सुख की प्राप्ति उन साधनों से सम्पन नहीं जिसके कारण प्राप्त करना चाहता है।

उपन्यास साहित्य एक ओर मानव चेतना को प्रतिबिंबित करता है तो दूसरी तरफ मानवीय सम्बंधों की व्याख्या करते हुए ऐसा आधार प्रस्तुत करता है जहां मानव अपनी आत्मोप्लधि से आत्म-साक्षात्कार करता हुआ जीवन के यथार्थ रूप में व्याख्या प्रस्तुत करता है। आज का मानव कृत्रिम और स्व-केन्द्रित अधिक है और यही प्रस्तुत उपन्यास 'समय-सरगम का केन्द्र बिदूं है। लेखिका कृष्णा सोबती ने मानवीय सम्बंधों के विभिन्न रूपों को इस उपन्यास में चित्रित करते हुए इन सम्बंधों में आ रहे परिवर्तनों को उभारा है।

मानवीय सम्बंध से अभिप्राय उन सम्बंधों से है जो एक व्यक्ति अनेक कारणों से अन्य लोगों से स्थापित करता है समाजशास्त्रीय विद्याभूषण और डी. आर. सचदेव का कहना है कि, ''प्रत्येक व्यक्ति, स्त्री-पुरुष के बीच स्थापित सामाजिक सम्बन्धों की उपज है। बच्चा माँ-बाप की देखभाल में पलता है और उनके साथ रहकर ही नागरिकता का पाठ पढ़ता है। यदि नवजात शिशु को समाज का संरक्षण तथा उसको देखभाल न मिले तो वह एक दिन भी जीवित नहीं रह सकता। ऐसे किसी शिशु का प्रमाणीकृत उदाहरण नहीं मिलता जो स्वयं जीवित रहा हो या भेड़ियों, लंगूरों या दूसरे पशुओं ने उसे पाला हो। मानव शिशु इतना निरीह है कि उसे समाज का संरक्षण अनिवार्य है। हम दूसरों के साथ रहकर तथा उसकी सहायता से ही अपना भोजन, आवास तथा कपड़े की जरूरत पूरी करते हैं।''[1] इस तरह विभिन्न मानवीय सम्बंधों का अपना अलग महत्त्व है। एक व्यक्ति इंसान तभी बनता है। जब वह अन्य लोगों के साथ एक रिश्ते की मान-मर्यादा में रहता है। प्रस्तुत उपन्यास कामिनी, दमयंती तथा प्रभुदयाल के माध्यम से माता-पिता की उनकी संतान के द्वारा की जा रही उपेक्षा को चित्रित करता है दमपंती की स्थिति अपने ही घर में बहुत दयनीय है उसके बच्चों द्वारा सेवा-सत्कार तो दूर उनके द्वारा बुलाए गए मेहमानों का अपमान उनके ही सामने होता है, जब दमयंती मेहमानों को कमरे में बैठने के लिए कहती है तो बेटा माधो, माँ की बेइज्जती करते हुए कहता है, ''ममा, उन्हें अपने कमरे में ले जाइए। हमें कुछ जरूरी बात करनी है। हम लोग चाय पी रहे हैं।''[2] दमयंती इस तरह व्यवहार करने से बहुत आहत होती है और भय के कारण मेहमानों को रुकने का आग्रह करती है ताकि बेटा उसके साथ अनहोनी न करे। इसी तरह प्रभुदयाल जो कि तीन बेटों का पिता है लेकिन जमीन जायदाद के लालच में बेटे उन्हें जान से मार देते हैं।

''पिछले दिनों कॉलोनी के नजदीक अपार्टमेंट में अचानक एक परिवार में होनी अनहोनी में रच ली गई। तीन बेटों के परिवार में विधुर पिता प्रभुदयाल अपने ही घर में पराए हो गए।''[3] संभवत: वर्तमान युग में बुजुर्ग और संतान के सम्बंधों में आत्मीयता की जगह घृणा, लोभ-लालच ने ले ली है। उनकी संतान उन्हें बोझ समझकर अपने साथ रखती है।

शिक्षा-व्यवस्था एक ऐसी रीढ़ है जिसके कारण हमारी मानसिकता में मानवीय सम्बंधों को लेकर काफी परिवर्तन देखने को मिलता है। इसी उपन्यास में पढ़े-लिखे तथा सुलझे हुए विचारों के पात्र ईशान और आरण्या न केवल अच्छे दोस्त है बल्कि जीवन के अतिम पड़ाव पर भी किसी का सहारा न ढूढंकर पूरी दृढ़ता से जीवन में आगे बढ़ते है। आरण्या अकेले रहती है परन्तु अकेलेपन को अपने पर हावी नहीं होने देती और अपनी जिंदगी को स्वतंत्र रूप से जीती है वह कहती भी है, ''एक बार घर के चौखटे से बाहर तो दुबारा उसमें घुसपैठ नहीं की जा सकती। करें भी तो क्यों? जब आपकी सुविधा-सुभीते

में कोई दूसरा दखल नहीं दे सकता तो आप ही किसी दूसरे पर बोझ क्यों बनें। किसी के रहन-सहन में क्यों हस्तक्षेप करें।''[4] इसी तरह बुजुर्ग किसी पर बोझ बनने की बजाय अपने तरीके से जीवन-यापन करते है मानवीय सम्बंधों में विघटन और आपसी तनाव पारिवारिक सदस्यों को काफी प्रभावित करता है। उम्र के इस पड़ाव में हर व्यक्ति सोचता है कि उसकी संतान हर तरह से सुखी सम्पन्न हो और उन्हें वह आदर व सम्मान दें। सम्भवत: मध्यकालीन समाज में बड़े बुजुर्गो को घर का मुखिया समझकर सम्मान किया जाता था परन्तु वर्तमान स्थिति में शायद ऐसा नहीं है। बदलते जीवन मूल्यों में परिवर्तन के साथ बुजुर्गो की स्थिति में भी परिवर्तन आया है इसी उपन्यास में दमयंती के बेटे-बहुऐं उन्हें प्रताड़ित करते हुए उनके साथ अमानवीय व्यवहार करते हैं, ''बच्चों की ऐसी हरकतों से मेरा धीरज खत्म हो रहा है। फ्लैट के कागज माँग रहा है बेटा। डॉक्टर के गई थी तो पीछे से बहू ने मेरा दीवान उठवा अपने कमरे में रख लिया। कहा कि उसे पसंद है। सुनो, मुझे इस कमरे से निकलने की इजाजत नहीं। मैं ड्रांइग रुम में मेहमानों को बिठा नहीं सकती।''[5] इस तरह बदलते जीवन मूल्यों के दौर में आज बुजुर्ग अकेलेपन तथा अपमान का दशं झेलने को मजबूर है। अपने ही घर में बैगानों की जिदंगी जीने पर मजबूर है जोकि सही नहीं है। इसी सदंर्भ में एक स्थल पर डॉ. विमला लाल का कहना है कि, ''रिश्तों की बंजर धरती में आज स्वार्थ का बीज इतनी तेजी से पनप रहा है कि मुहब्बत का अभाव किसी को खलता ही नहीं। रुपये-पैसे का अभाव भी आज हमारी रातों की नींद हराम कर देता है, किंतु बड़े-बुजुर्गों के आशीर्वाद, लाड़-प्यार और बहुमूल्य अनुभवों की पूंजी हमारी मुट्ठी से रेत की तरह फिसलती जा रही है। इसकी चिंता किसी को नहीं। आज की कथित व्यावहारिक जिंदगी में इन भावनाओं का न कोई अस्तित्व रह गया है न कोई जरूरत ही रही।''[6] आज युवाओं की अपनी सोच और मूल्य हैं। वे घर के बुर्जुगों की जरूरतों को तो जैसे-तैसे पूरा कर रहे है परन्तु उनके साथ भावात्मक जुड़ाव नहीं है और न ही उनके पास बैठकर उनकी किसी समस्या को जानने का उनके पास समय है। आज बुजुर्ग मानसिक तृप्ति के लिए तड़प रहा है। ऐसी ही स्थिति का सामना इसी उपन्यास की पात्रा कामिनी भी करने को मजबूर है उसके पारिवारिक सदस्यों को सिर्फ उसकी धन-दौलत से मतलब है। उसके बिमार होने पर घर के लोगों को अस्पताल बिल की चिंता है उसकी स्थिति कैसी है? किसी को कोई मतलब नहीं। दिला का दौरा पड़ने पर अस्पताल में ''भाई-भतीजें इकट्ठे थे पर शिकायत यह थी कि चौक भी काटकर नहीं रखा हुआ। किसी का विश्वास नहीं करती और न अपना भेद किसी को देती है।''[7] आज अर्थकेन्द्रित मानसिकता ने हमारी सोच को इतना परिवर्तित कर दिया है कि धन के आगे मानवीय रिश्ते कमजोर हो गए हैं। बड़े-बुजुर्गो को अपने लालच के कारण ही अपने पास रखा जाता है। इस भौतिक उन्नति के परिवेश में बुजुर्ग स्वयं को अकेला महसूस करते है। इसका सबसे बड़ा कारण युवाओं में नैतिक मूल्यों का अभाव तथा बुजुर्गो को स्वयं पर आश्रित मानने की प्रवृति भी है जिसके कारण वे उनका आदर व सम्मान के स्थान पर तिरस्कार करते हैं। अपने परिवार से तिरस्कृत आरण्या हालातों से समझौता कर अपने तरीके से जीवन यापन करती हैं अपने दोस्त ईशान से कहती भी है, की, ''पारिवारिक घनिष्ठता से जी हुई पुरानी भाव गठरी बेमानी हो चुकी है। शायद इसलिए अपना पारिवारिक तानपुरा खामोश है। परिवार की सुंगध इतनी भी नहीं सुहाती कि संगीत की लय-ताल की तरह हर-क्षण दिल तक पहुँचती रहे। .....आज का सच यह है कि परिवार के ऊपरी ढाँचे की संगत और भीतरी तनावों से दूर यह शांत अब मुझे सुखकर लगता है।''[8] आधुनिक भागदौड़ भरी जिंदगी में हमारे सम्बंधों में अपनापन कम होता जा रहा है जोकि भावनात्मक विकास के लिए बहुत आवश्यक है। आज सम्बंधों में आत्मीयता के स्थान पर स्वार्थ वृति से मानव आहत तो है ही, परन्तु व्यस्त जीवन के कारण आपसी सम्बंधों को प्रगाढ़ करने में भी असफल रहा है। यहां लेखिका ने विघटित व्यक्तित्व का कारण सम्बंधों में तनाव व घृणा की प्रवृति का उत्पन्न होना माना है।

आज अर्थ ने मानवीय सम्बंधों को काफी प्रभावित किया हैं। उपन्यास 'समय सरगम' अर्थ के कारण बुजुर्गो की हो रही दुर्दशा को व्यक्त करता है। अर्थ हमें वह मानसिक शांति नहीं दे सकता जो मानवीय सम्बंधों द्वारा प्राप्त होती हैं। परन्तु फिर भी अर्थ ने इन सम्बंधों को प्रभावित किया है। माँ बेटे का वात्सल्यपूर्ण सम्बंध भी धन से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। उपन्यास की पात्रा दमयन्ती ऐसी दयनीय माँ रही है। जब उनके दोस्त आरण्या और ईशान उनसे मिलने उनके घर आते है तो उनकी दु:खदपूर्ण स्थिति सामने आती है। इसी उपन्यास में प्रभुदयाल के तीनों बेटे उन्हें जायदाद के कारण जान से मार देते हैं। वर्तमान युग में बुर्जुग एवं उनकी संतान के सम्बंधों में अपनापन की जगह स्वार्थ एवं घृणा जैसी भावनाए प्रबल हो रही हैं। वर्तमान समय में संयुक्त परिवार टूट रहे है और एकाकी परिवार बढ़ रहे है इसी सामाजिक प्रवृति को भी लेखिका ने अपने इसी उपन्यास में उठाया है। मानवीय सम्बंधों में अलगाव के कारण मानव अपने परिवार तथा समाज से दूर तो होता ही है, साथ में मानवीय सम्बंधों में कही न कहीं अविश्वास भी उत्पन्न हो जाता है। वर्तमान शैक्षिक क्रान्ति ने मानव को हर रूप में परिवर्तित किया है। जिसके कारण मानवीय सम्बंध प्रभावित हो रहे हैं। इसी उपन्यास की पढ़ी-लिखी पात्रा आरण्या जीवन के अंतिम पड़ाव पर भी किसी की मदद न लेकर पूरी दृढ़ता से बीते समय को भूलकर अपना जीवन व्यतीत करती है वहीं अगर कोई अनपढ़ व्यक्ति होता तो शायद अपना मानसिक संतुलन खो बैठता। आज का मानव भले ही पूरी दुनिया से जुड़ने की बात करता हो परन्तु उसके निजी सम्बंध आज भी कही-न कही संकीर्ण नजर आ रहे हैं। उच्च महत्वकाक्षां व आत्मकेन्द्रित मानसिकता आदि अनेक कारण इसके लिए उतरदायी हैं।

पाद टिप्पणी:

1. विद्याभूषण एवं सचदेव, डी. आर. समाजशास्त्र के सिद्वांत, पृ.-110
2. सोबती कृष्णा, समय-सरगम (उपन्यासघ) पृ. 76-77
3. वही, पृ. 109
4. सोबती कृष्णा, समय-सरगम उपन्यास पृ. 123
5. सोबती कृष्णा समय सरगम (उपन्यास) पृ. 74

6. लाल, विमला, वृद्धावस्था का सच, पृ. 13
7. सोबती, कृष्णा, समय-सरगम (उपन्यास) पृ. 102
8. वही, पृ. 63

संदर्भ सूची

- समाज के सिधांत, इलाहबाद: किताब महल प्रकाशन
- समय सरगम, कृष्णा सोबती: राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
- प्राचीन भारत का सामिजिक इतिहास, पटना: हिंदी ग्रन्थ अकादमी
- संस्कृत साहित्य शोध एवं ज्ञानकोश, जयपुर: श्री निवास पब्लिकेशन

शिक्षक शिक्षण और आईसीटी की भूमिका

अमित कुमार पाण्डेय

(शोधार्थी)

डॉ० सुनीता श्रीवास्तव

डॉ० शैलेन्द्र सिंह

प्रस्तावना–

सीखने की प्रक्रिया में शिक्षक केंद्रीय भूमिका में होते हैं।

आईसीटी का उपयोग कर रहे शिक्षक के सुविधा प्रदाता की भूमिका में बदलाव होने से शिक्षकों द्वारा कक्षा में नेता रूप में सेवा करने की जरूरत समाप्त नहीं हो जाती, शिक्षक के पारम्परिक नेतृत्व कौशल और उसका प्रयोग अभी भी महत्वपूर्ण हैं (विशेष रूप उनके लिए, जो पाठ योजना, तैयारी तथा उनके फॉलो–आप में शामिल हों।)

आईसीटी का उपयोग करते समय पाठ की योजना बनाना महत्वपूर्ण है।

आईसीटी का उपयोग करते हुए पाठ की योजना बनाना महत्वपूर्ण है, अनुसंधान से पता चलता है कि जहां योजना अनुचित रूप से बनाई गई हो वहां छात्र का काम अक्सर विकेन्द्रित होता है और इससे लक्ष्य प्राप्ति में कमी आ सकती है।

प्रौद्योगिकी उपलब्ध कराने मात्र शिक्षण और अधिगम प्रक्रिया नहीं बदल जाएगी–

केवल आईसीटी के अस्तित्व में होने से ही शिक्षकों की पद्धति नहीं बदलेगी। हालांकि, आईसीटी शिक्षकों को अपने शिक्षण पद्धति को बदलने तथा अधिक सक्षमता प्राप्त करने में मदद कर सकती है, बशर्ते आवश्यक स्थितियां उपलब्ध करा दी जाएं। शिक्षकों की शैक्षणिक पद्धतियां और तार्किकता उनके द्वारा आईसीटी के उपयोग को प्रभावित करती है, और शिक्षक द्वारा आईसीटी के उपयोग की प्रकृति छात्र की उपलब्धि को प्रभावित करती है।

आईसीटी को शिक्षको द्वारा अधिक शिक्षार्थी केंद्रित ज्ञानार्जन हेतु वातावरण बनाने में मदद देने वाले उपकारणों के रूप में देखा जाता है–

ओईसीडी (आर्थिक सहयोग और विकास के लिए संगठन) देशों में, अनुसंधान के निष्कर्ष से यह माना जाता है कि आईसीटी का सबसे प्रभावी उपयोग उन मामलों में होता है, जिनमें शिक्षक, आईसीटी की मदद से, पूरी –कक्षा में विचार–विमर्श या व्यक्तिगत/छोटे समूह कार्य के जरिये विधार्थियों की समझ और सोच को चुनौती देते हैं। पारम्परिक शिक्षक–केन्द्रित शिक्षण पद्धति से शिक्षार्थी–केन्द्रित पद्धतियों की ओर जाने में समर्थता प्रदान करने व सहयोग करने के लिए महत्वपूर्ण उपकरणों के रूप में आईसीटी को देखा जाता है।

आईसीटी को बदलाव में सहयोग प्रदान करने तथा प्रचलित शैक्षणिक प्रथाओं के सहयोग/संवर्द्धन में प्रयुक्त किया जा सकता है–

आईसीटी का शिक्षकों द्वारा शिक्षण पद्धतियों में उपयोग, अनिवार्य रूप से पारम्परिक तरीकों की शिक्षण पद्धतियों में मामूली संवर्धन से लेकर उनके शिक्षण के दृष्टिकोण में अधिक मौलिक परिवर्तन करने के लिए किया जा सकता है। आईसीटी का उपयोग प्रचलित शैक्षणिक पद्धतियों के सुदृढीकरण के साथ–साथ शिक्षकों और छात्रों के बीच संवाद के तरीके को सृदृढ करने के लिए किया जा सकता है।

जानकारी की प्रस्तुति के लिए आईसीटी उपकरणों का प्रयोग मिश्रित रूप से प्रभावी होता है–

प्रस्तुति उपकरणों (ओवरहेड और एलसीडी प्रोजेक्टर,टेलीविजन, इलेक्ट्रॉनिक व्हाइटबोर्ड, निर्देशित वेब टूर्स जहां छात्र एक साथ कंप्यूटर स्क्रीन पर एक ही संसाधनों को देखते है।) के रूप में आईसीटी का उपयोग एक मिश्रित प्रभाव के रूप में देखा जाता है। जबकि यह वर्ग की समझ और कठिन अवधारणाओं

के बारे में चर्चा (विशेष रूप से सिमुलेशन के प्रदर्शन के माध्यम से) को बढ़ावा दे सकता है, आईसीटी के इस तरह के प्रयोग पारंपरिक शैक्षणिक पद्धतियों को सुदृढ़ कर सकते हैं और चर्चा किये जा रहे विषय से या उपयोग किए जा रहे उपकरण से ध्यान हटा सकते हैं।

आईसीटी का ज्ञान और शिक्षक की तकनीकी क्षमताए-

शिक्षकों को आईसीटी के उपयोग से लाभ के लिए तैयार करना केवल तकनीकी कौशल से अधिक है शिक्षण में आईसीटी के सफल एकीकरण के लिए शिक्षक की आईसीटी कौशल में तकनीकी महारथ करना एक पर्याप्त पूर्व शर्त नहीं हैं। वन ऑफ प्रशिक्षण पर्याप्त नहीं है।

शिक्षकों को सबसे उपयुक्त संसाधनों का मूल्याकन और चयन करने के लिए आईसीटी के गहन और सतत उपयोग की आवश्यकता होती है। हालांकि, उचित शैक्षणिक पद्धतियों का विकास उपयोग आईसीटी की तकनीकी महारथ से अधिक महत्वपूर्ण माना जाता हैं। कुछ ही शिक्षकों को अपने अध्यापन मे आईसीटी के उपयोग में व्यापक विशेषज्ञता होती है।

ओईसीडी देशों में सबसे उन्नत स्कूल में भी, बहुत कम शिक्षकों को आम तौर पर आईसीटी उपकरणों और संसाधनों की विस्तृत श्रृंखला व्यापक ज्ञान होता है।

ओईसीडी देशों में कम्प्यूटर साक्षरता को बढ़ावा देने के लिए आईसीटी का उपयोग शिक्षण और अधिगम उपकरण के रूप में आईसीटी के उपयोग की तुलना में कम महत्वपूर्ण रूप में देखा जाता है।

ओईसीडी के अनुभव में, हर रोज शिक्षण और सीखने की गतिविधियों में प्रौद्योगिकी कंप्यूटर की कक्षाओं में विशिष्ट अनुदेश से अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। जबकि प्रौद्योगिकी कौशल का विकास शिक्षण और सीखने की प्रक्रिया में एक भूमिका के रूप में देखा जाता है, और अपने आप में उतना महत्वपूर्ण नहीं है। जो स्कूल छात्र आईसीटी संबंधित कौशल और अनुभव के उच्चतम स्तर रिपोर्ट करते हैं, वे अक्सर उनमें से नहीं होते जिनमें भारी कंप्यूटर कोर्स की आवश्यकताएं हों, बल्कि वे होते हैं जिन्होने आईसीटी का उपयोग शिक्षण के व्यावसयिक विकास और शिक्षण और अधिगम प्रक्रिया में पूरी तरह से एक नियमित आधार पर इस्तेमाल किया हो।

अधिक परिष्कृत होते है-

ओईसीडी देशों में, छात्र के ज्ञान और आईसीटी के उपयोग तथा शिक्षकों के ज्ञान और आईसीटी के उपयोग की क्षमताओं के बीच अत्यधिक विषमता प्रतीत होती है। यह बताता है कि शिक्षक की अनुभवहीनता और कौशल की कमी अक्सर छात्रों द्वारा शिक्षा के लिए आईसीटी के उपयोग की प्रभावकारिता में बाधा के महत्वपूर्ण कारक हो सकते है।

शिक्षक द्वारा आईसीटी का उपयोग-

शिक्षक सामान्य रूप से आईसीटी का सबसे अधिक उपयोग नियमित कार्य (रिकॉर्ड रखने, लेसन प्लान विकास, सूचना प्रस्तुति, इंटरनेट पर बुनियादी जानकारी की खोज) के लिए करते हैं। अधिक जानकारी शिक्षक कंप्यूटर सहायता अनुदेश पर कम भरोसा करते हैं।

आईसीटी के उपयोग के अधिक जानकारी शिक्षक कंप्यूटर सहायता अनुदेशन का उपयोग अन्य शिक्षकों की तुलना में कम करते हैं, लेकिन कुल मिलाकर आईसीटी का अधिक उपयोग करते हैं।

शिक्षक आईसीटी का उपयोग कैसे करते हैं, यह उनकी सामान्य शिक्षक शैली पर निर्भर करता है-

आईसीटी के उपयोग के प्रकार शिक्षक के शैक्षणिक दर्शन के साथ जुड़ा होता हैं। जो शिक्षक आईसीटी का सर्वाधिक उपयोग करते हैं-और सर्वाधिक प्रभावकारी तरीके से उनके पारंपरिक संचरण विधि द्वारा शिक्षण के उपयोग की संभावना कम होती है। जो शिक्षक अधिक प्रकार के सॉफ्टवेयर का उपयोग करते हैं, उनकी प्रवृति रचनात्मक शिक्षण की अधिक होती है।

शिक्षण और सीखने में सहायता के लिए आईसीटी की शुरूआत और उपयोग के लिए अधिक समय खर्च करने वाला होता है, दोनों स्थितियों में जबकि वे शिक्षण प्रथाओं और रणनीतियों में परिवर्तन कर रहे हो और जबकि ऐसी रणनीतियों का नियमित रूप से उपयोग किया जाता है।

सीधे शब्दों में कहें तो आईसीटी के साथ अध्ययन में अधिक समय लगता है (इस बात पर अनुमान अलग-अलग होते हैं कि एक ही सामग्री को कवर करने के लिए कितने अतिरिक्त समय की आवश्यकता होती है, (10: एक आम अनुमान है)

शिक्षक का आत्मविश्वास और प्रेरणा-

कुछ ही शिक्षक आत्मविश्वासपूर्वक आईसीटी का उपयोग कर सकते हैं।

आईसीटी संसाधनों के एक विस्तृत रेंज का प्रयोग करने में कुछ ही शिक्षकों को आत्मविश्वास बना रहता है, और जिस तरह से पाठ संचालित किया जाता है, सीमित विश्वास उसे प्रभावित करता हैं।

भय कई शिक्षकों को आईसीटी का उपयोग करने से रोकता है-

ओईसीडी देशों में, कई शिक्षकों को आईसीटी का उपयोग करने के प्रति अभी भी भय है, इसलिए वे अपने शिक्षण में उनके उपयोग के लिए अनिच्छुक रहते हैं। कम से कम शुरूआत में, आईसीटी से संपर्क से संपर्क शिक्षक के व्यावसयिक विकास को बढ़ावा देने के लिए सक्षम उपकरण के रूप में महत्वपूर्ण प्रेरणास्त्रोत हो सकता है।

व्यावसायिक विकास जारी रखने में शिक्षक की प्रभावी भागीदारी को बढ़वा देने के लिए प्रोत्साहन प्रणालियां विकसित की जानी चाहिए-

शिक्षकों को व्यावसायिक विकास गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए अतिरिक्त प्रेरणा और प्रोत्साहन की आवश्यकता होती है। प्रोत्साहन कई तरीकों से दिया जा सकता है, जिनमें प्रमाणीकरण, पेशेवर उन्नति, वेतन वृद्धि, व्यावसायिक विकास हेतु सवैतनिक अवकाश, स्कूल और समुदाय स्तर पर और सथियों के बीच औपचारिक और अनौपचरिक मान्यता, कम अलगाव तथा अधिक उत्पादकता।

शिक्षकों द्वारा आईसीटी के उपयोग के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारक है सुगमता-

शिक्षक के आईसीटी से संबंधित कौशल के विकास को जारी रखने के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारक हैं उनके द्वारा नियमित रूप से इनका उपयोग कर पाना तथा प्रासंगिक आईसीटी उपकरण के लिए सुगमता लाना।

विषय ज्ञान-

शिक्षक का विषय ज्ञान आईसीटी के उपयोग को प्रभावित करता ह-

जिस तरह शिक्षकों द्वारा पाठ में आईसीटी का उपयोग किया जाता है, वह इस बात पर निर्भर करता है कि अपने विषयों पर शिक्षकों की कितनी पकड़ है और वे किस तरह आईसीटी संसाधनों को प्रासंगिक बनाकर उनका उपयोग कर सकते हैं।

शिक्षक की विषयवस्तु पर महारथ और ग्रहण क्षमता की समझ आईसीटी के उपयोग को अधिक प्रभावी है-

प्रमाण यह बताता है कि जब शिक्षक विषय ज्ञान और जिस तरह से विद्यार्थी विषय को समझते हैं इन दोनों बातों के अपने ज्ञान का उपयोग करते हैं, तब के छात्र की उपलब्धि के प्रयोग का अधिक प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

आईसीटी के माध्यम से नई/अतिरिक्त जानकारी से संपर्क पर्याप्त नहीं है-

प्राप्ति पर प्रभाव सबसे अधिक तब होता है जब विद्यार्थियों को सोचने के लिए चुनौती दी जाए और उनकी अपनी समझ पर सवाल किए जाएं, बजाय नई और अतिरिक्त जानकारी के सम्पर्क में लाने के।

आईसीटी विषय के मामले में स्वशिक्षा के लिए शिक्षक की सहायता कर सकते हैं, अद्यतन और सीखने के अतिरिक्त संसाधनों का उपयोग प्रदान कर, आईसीटी शिक्षक को उसके विषय क्षेत्र में स्व. शिक्षा के लिए सझम कर सकते हैं।

शिक्षक का व्यावसायिक विकास-

शिक्षक का सतत प्रशिक्षण और सहायता शिक्षा के क्षेत्र में आईसीटी के सफल उपयोग के लिए महत्वपूर्ण है -

शिक्षक का प्रशिक्षण और व्यावसायिक विकास शिक्षा के क्षेत्र में आईसीटी के सफल प्रयोग के लिए मुख्य चालक के रूप में देखा जाता है।

शिक्षक का व्यावसायिक विकास एक प्रक्रिया है, एक घटना नहीं-

आईसीटी के उपयोग में शिक्षकों को सहज महसूस करवाने के लिए परंपरागत, एक बार की शिक्षक प्रशिक्षण कार्यशालाएं अधिक प्रभावी नहीं पाई गई हैं, उनके द्वारा शिक्षण में समेकित करने में तो बिल्कुल भी नहीं। असतत, एक बार के प्रशिक्षण कार्यक्रम सतत व्यावसायिक विकास गतितिधियों की तुलना में कम प्रभावी देखे गए हैं।

आईसीटी का परिचय शिक्षकों के व्यावसायिक विकास की आवश्यकताओं में वृद्धि करता है-

शिक्षा के क्षेत्र में आईसीटी का प्रभावी उपयोग शिक्षकों के प्रशिक्षण और व्यावसायिक विकास की जरूरत को बढ़ता है। हालांकि इस तरह की बढ़ी हुई जरूरतों के लिए अधिक और बेहतर शैक्षिक सामग्री के लिए सुगमता प्रदान कर नियमित प्रशासनिक कार्यों में सहायता देकर मॉडल और प्रभावी शिक्षण पद्धतियों का सिम्युलेशन प्रदान कर और शिक्षार्थी को सहायता के नेटवर्क उपलब्ध कराकर आमने सामने तथा दुरस्थ शिक्षा दोनों वातावरणों में और वास्तविक समय में या एसिंक्रोलॉजी के लिए आईसीटी महत्वपूर्ण उपकरण हो सकते हैं।

सफल शिक्षक व्यावसायिक विकास के मॉडल तीन चरणों में विभाजित किए जा सकते ह-

1. सेवा पूर्व शिक्षा शास्त्र विषय की महारथ प्रबंधन कौशल और विभिन्न शिक्षण उपकरणों आईसीटी सहित के उपयोग पर ध्यान केंद्रित करना
2. सेवा के दौरान संरचित आमने सामने तथा दुरस्थ शिक्षा के अवसर सेवापूर्व प्रशिक्षण को विस्तृत करने और सीधे शिक्षक की जरूरतों के लिए प्रासंगिक के निर्माण में बल।
3. शिक्षकों के लिए आईसीटी द्वारा सक्षम सतत औपचरिक और अनौपचारिक शैक्षणिक और तकनीकी सहायता दैनिक जरूरतों और चुनौतियों पर लक्षित करना।

शिक्षक का प्रभावी व्यावसायिक विकास, प्रभावी शिक्षण पद्धतियों के मॉडल के अनुरूप होना चाहिए-

शिक्षक के प्रभावी व्यावसायिक विकास यथासंभव कक्षा के वातावरण के अनुरूप होना चाहिए। आईसीटी के उपयोग पर हैंड्स ऑन अनुदेश आवश्यकता है जहां आईसीटी को शिक्षण और सीखने की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण घटना माना जाता है। इसके अलावा व्यावसायिक विकास गतिविधियां प्रभावी तरीकों और व्यवहार के मॉडल के अनुरूप होनी चाहिये और उन्होंने शिक्षकों के बीच सहयोग का प्रोत्साहन तथा समर्थन करना चाहिए। स्कूल स्तर पर आईसीटी सुविधाओं के उपयोग से सतत व्यावसायिक विकास को सफलता के लिए एक प्रमुख कारक के रूप में देखा जाता है, खासकर तब जबकि ये शिक्षकों की दैनिक आवश्यकताओं और प्रथाओं के लिए सीधे प्रासंगिक संसाधनों और कौशलों पर केन्द्रित हों।

मूल्यांकन विधियों में प्रशिक्षण महत्वपूर्ण हैं-

व्यावसायिक विकास में शैक्षणिक पद्धतियों के मूल्यांकन और संशोधन के तरीके तथा शिक्षक को मूल्यांकन के विभिन्न तरीकों के सम्पर्क में लाना शामिल होने चाहिऐ।

प्रभावी व्यावसायिक विकास योजना के लिये पर्याप्त नियोजन की आवश्यकता होती है-

शिक्षक की व्यावसायिक विकास गतिविधियों के निर्माण और भागीदारी में मूल्यांकन से पहले आवश्यकता का मूल्यांकन होना चाहिए, इन गतिविधियों की नियमित निगरानी और आकलन होना चाहिए, और फीडबैक लूप स्थापित किये जाने चाहिए अगर व्यावसायिक विकास प्रभावी करना हो जो शिक्षकों की जरूरतों के लिए लक्षित हो।

शिक्षकों के लिए सतत, नियमित रूप से समर्थन महत्व पूर्ण है-

शिक्षक के व्यावसायिक विकास में मदद लिये सतत और नियमित मदद आवश्यक है और यह आईसीटी के उपयोग के माध्यम से प्रदान की जा सकती है वेब साइटों चर्चा समूहों ई मेल समुदायों रेडियो या टीवी प्रसारण के रूप में।

सक्षमता प्रदान करने वाले कारक-

शिक्षक द्वारा आईसीटी के उपयोग का अनुकूलन लागू करने के लिए कई किस्म कोपरिवर्तन किये जाने चाहिए। शिक्षण के तरीकों में परिवर्तन पाठयक्रम और मूल्यांकन में फेरबदल, और स्कूलों को और अधिक स्वायत्तता प्रदान करने से आईसीटी के उपयोग के अनुकूलन में मदद मिलती है। सक्षमता प्रदान करने वाले पर्याप्त कारक होने के साथ शिक्षक आईसीटी का उतना रचनावादी उपयोग कर सकते हैं, जितने उनका शैक्षणिक दर्शन अनुमति देता हो।

कार्यशील तकनीकी अवसंरचना महत्वपूर्ण हैं-

यदि उनके द्वारा आईसीटी का प्रभावी ढंग से इस्तेमाल किया जाना हो तो शिक्षको को कार्यशील कंप्यूटर की पर्याप्त उपलब्धता होनी चाहिये, और उन्हे पर्याप्त तकनीकी सहायता प्रदान की जानी चाहिये।

आईसीटी के परिचय में समय लगता हैं-

नए कौशल विकसित करने, अपनी मौजूद शिक्षण पद्धतियों और पाठ्यक्रम में अपनी एकरूपता का पता लगाने और आवश्यक अतिरिक्त पाठ की योजना बनाने के लिये शिक्षकों को पर्याप्त समय दिया जाना चाहिये, यदि आईसीटी का प्रभावी ढंग से इस्तेमाल करना हो।

स्कूल प्रशासन और समुदाय की सहायता महत्वपूर्ण हो सकती है-

शिक्षक द्वारा आईसीटी के उपयोग के लिए स्कूल प्रशासकों और कुछ मामलों में आसपास के समुदाय का समर्थन महत्वपूर्ण माना जाता है। इस कारण से दोनें समूहों की लक्षित पहुंच अक्सर आवश्यक होती है यदि शिक्षा में आईसीटी के सहयोग पर निवेश अनुकूलित किया जाना हो।

अभ्यास के समुदाय शिक्षक के व्यावसायिक विकास में सहायता के लिए महत्वपूर्ण उपकरण हो सकते हैं-

अभ्यास तथा साथियों के नेटवर्क के औपचारिक और अनौपचारिक समुदाय के अस्तित्व शिक्षा की पहल और गतिविधियों में आईसीटी की सहायता के लिये महत्वपूर्ण उपकरण हो सकते हैं। इस तरह की सहायता तंत्रों की मदद आईसीटी के उपयोग के माध्यम से की जा सकती है।

शिक्षा के क्षेत्र में आईसीटी शुरू करने से सीखे गये सबक साझा करने की आवश्यकता है।

चूंकि शिक्षा की सहायता के रूप में आईसीटी की शुरूआत अक्सर एक बड़े परिवर्तन या सुधार प्रक्रिया का हिस्सा होती है, यह महत्वपूर्ण है कि आईसीटी के सफल प्रयोग की जानकारी को बढ़ावा दिया जाये तथा इसका फैलाव किया जाय।

निष्कर्ष-

शिक्षक अक्सर आईसीटी का उपयोग नियमित कार्य (रिकार्ड रखने पाठ्योजना विकास, सूचना प्रस्तुति इंटरनेट पर जानकारी) के लिए करते है। निष्कर्ष मे पाया गया कि आई सीटी के जानकार शिक्षक कम्प्यूटर सहायता अनुदेश का उपयोग अन्य शिक्षकों की तुलना में कम करते है। वही आई सीटी न जानने वाले शिक्षक CAI का अधिक उपयोग करते है। राष्ट्रीय शिक्षा मिशन मे सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से किसी भी समय कही भी माध्यम से

उच्च शिक्षा संस्थाओं में सभी विद्यार्थियों के लिए इंटरनेट, इंटरनेट पर उच्च गुणवत्ता वाले वैयक्तिक और सक्रिय ज्ञान माडयूलो को उपलब्ध कराकर इसके अधिक उपयोग की जरूरत है।

संदर्भ ग्रंथ

1. आई सीटी की आलोचनात्मक समक्ष एवं उपयोग शिक्षक शिक्षा विभाग, उत्तराखण्ड मु0वि0वि0 हल्द्वानी।
2. Govt. of India (2012) National Policy on ICTs in School Education
3. Bharihok,D.(2000) Fundamentals of information Technology Pentagon Press, New Delhi.
4. Mangal, S.K. (2009) Shiksha Takniki Pgentic Hall India Pvt. Limited, New Delhi.
5. S.P. Kulshrestha (2009) foundation of education Technology R.Lall Book Depot Meerut, U.P.

साहित्य समाज और संस्कृति में पर्यावरणीय संवेदना

(Environmental Sensation in Literature and Culture)

डॉ० मा० इरशादुल हक

(समाजशास्त्र)

साहित्य, समाज और संस्कृति का दर्पण है। संस्कृति पर्यावरण का मानव निर्मित भाग है। जबकि पर्यावरण प्रकृति की अमूल्य निधि है। साहित्य, संस्कृति और पर्यावरण तीनों में अनोन्याश्रिता का सम्बंध है इसलिए तीनों एक दूसरे के पूरक है। साहित्य में सांस्कृतिक तत्वों का समावेश रहता है। अत: हम कह सकते है कि साहित्य, समाज और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है और साथ-साथ पर्यावरण से भी प्रभावित होता है। दूसरी ओर हम देखें तो मानव की सबसे बडी सम्पत्ति उसकी संस्कृति है क्योकि मनुष्य से उसकी संस्कृति छीन ली जाए तो जो कुछ उसके पास शेष बचेगा वह मनुष्य नहीं बल्कि नरवानर। संस्कृति एक ऐसा पर्यावरण है जिसमें रहकर ही मनुष्य एक सामाजिक प्राणी बनता है।

नि:संदेह. साहित्य में जनजीवन की व्याख्या होती है जिसमें संवेदनशीलता की क्षमता अधिक होती है। साहित्य तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, और सांस्कृतिक परिस्थितियों को पूर्णत: स्पष्ट कर उसे मानव-मात्र के लिए उपलब्ध कराता हैं। अत: समाज एवं संस्कृति का वास्तविक स्वरूप हम साहित्य में देख सकते है। राष्ट्र को यथार्थ के प्रति जागरूक बनाने का प्रयास भी साहित्य ही करता है।

संस्कृति पर्यावरण की उपज है। पर्यावरण दो प्रकार के होते है, सामाजिक और प्राकृतिक पर्यावरण। इन दोनों पर्यावरण से साहित्य और संस्कृति का गहरा लगाव है। इसलिए साहित्य और संस्कृति में पर्यावरणीय चिंतन का समावेश होना आवश्यम्भावी है। किसी भी राष्ट्र प्रान्त और क्षेत्र की साहित्य और संस्कृति वहां के पर्यावरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रहती। क्षेत्र का पर्यावरण जिस प्रकार का होता है उसी तरह वहाँ के साहित्य और संस्कृति का भी विकास होता है। वैदिक युग से लेकर वर्तमान समय तक साहित्य और संस्कृति में पर्यावरणीय संवेदना देखने को मिलती है।

मनुष्य के प्रत्येक किया, व्यवहार, सभ्यता, संस्कृति, विवाह, नातेदारी वेशभूषा पर पर्यावरण का प्रभाव देखने को मिलता है। जिससे साहित्य और संस्कृति की पर्यावरणीय चिन्तन उसी आधार पर विकसित होती है। साथ-साथ मनुष्य का विकास भी इसी पर्यावरणीय संवेदना के अनुरूप ही होता है। साहित्य और संस्कृति पर पर्यावरणीय संवेदना का जब प्रभाव पड़ता है तो उसी प्रकार के साहित्य और साहित्यकारों का विकास एवं प्रादुर्भाव होता है। जैसे कि जो साहित्यकार रमणीय स्थानों पर जन्म लेता है उनकी कविता लेख कहानी और नाठक में प्रकृति की सुन्दरता का मनोरम चित्रण देखने को मिलता है। जबकि शहरी क्षेत्र के साहित्यकारों के साहित्यिक रचनाओं में शहरी जीवन की समस्याओं जैसे तनाव, संघर्ष हडताल आदि का वर्णन देखने को मिलता है।

ठीक इसी तरह संस्कृति पर भी पर्यावरणीय संवेदना का प्रभाव देखने को मिलता है। मनुष्य के विभिन्न संस्कृतियों जैसे वेशभूषा, रहन सहन, खान पान, आवास उसी तरह के विकसित होते है जैसा वहां का पर्यावरण होता है जैसे समुद्री किनारो पर रहने वाले लोग मछली का सेवन, मैदानी क्षेत्रों में रहने वाले चावल गेहूँ का सेवन ठंण्डे प्रदेश में रहने वाले मांस-मछली शराब का सेवन करते है। वेश भूषा पर पर्यावरणीय चिन्तन का प्रभाव भी देखने को मिलता है। शीत प्रदेश के लोग उनी बस्त्रों का, गर्म प्रदेश के लोग सूती वस्त्र का प्रयोग करते है। आवास के क्षेत्र में देखे तो पहाड़ी क्षेत्र के लोग पत्थर के मकान मैदानी क्षेत्र के लोग ईट के मकान, अधिक वर्षा वाले क्षेत्र के लोग ढलुआ मकान बना कर रहते है। साहित्य और संस्कृति में पर्यावरणीय संवेदना इस बात से भी स्पष्ट होती है कि पर्यावरण से प्रभावित होकर वहाँ के नृत्य कला, संगीत, नाटक में अन्तर हो जाता है। जैसे कही शायरी, कहीं गजल, कही तराना, कही पॉप-म्यूजिक का प्रचलन देखने को मिलता है। इसी तरह कही किचिपूड़ी कही भरतनाट्यम कही ओड्सी कही गिददा तो कही भागडा नृत्य का प्रचलन है।

जब पर्यावरण में परिवर्तन होता है तो साहित्य और संस्कृतिक चिन्तन में भी परिवर्तन आ जाता है। औद्योगीकरण के पश्चात और इक्कीसवी सदी में पर्यावरणीय वातावरण में व्यापक परिवर्तन आया है। यह परिवर्तन पर्यावरण प्रदूषण और पारिस्थितिकीय पतन के कारण हुआ है। वर्तमान समय में औद्योगिकरण नगरीकरण जनसंख्या वृद्धि वृक्षो के प्रति बढता दुराव आण्विक हथियारों और संयंत्रों के प्रयोग ने पारिथतिकीय असंतुलन की स्थिति उत्पन्न की है। क्लोरो-फ्लोरो कार्बन और हैलोजन रसायनो के उत्पाद ने सम्पूर्ण पर्यावरण की प्राकृतिकता को नष्ट कर दिया है। पर्यावरणीय वातारण में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप वर्तमान समय में साहित्यकारों के साहित्य भी पर्यावरणीय परिवर्तन के अनुरूप विकसित हो रहे है। जैसे कि आज के शेरो शायरी और गजल में आतंकवाद भ्रष्टाचार कदाचार ओजोन परत पर छिद्र आदि से सम्बंधित बातों की झलक मिलती है। इसी तरह हमारी संस्कृति भी पर्यावरणीय परिवर्तन के अनुरूप विकसित हुई है। वैदिक या प्राचीन युग की संस्कृति में संस्कार और शिष्टाचार की प्राचीन परम्परा की झलक देखने को मिलती है। लेकिन आज इसमें परिवर्तन आया है। पहले हाथ जोड़ कर नमस्कार पैर छू कर बड़ो के प्रति आदर सम्मान प्रदर्शित किया जाता था। लेकिन आज हाथ जोडने के बजाय हाथ हिला कर हाय मम्मी पापा डैडी टाटा ओके थैक्स आदि शब्दो का प्रयोग किया जा रहा है। इसका तात्पर्य यह है कि जो वैदिक संस्कृति हमारी थी उसमें परिवर्तन आया है और इस परिवर्तन का प्रभाव साहित्य पर भी पडा है। इससे साहित्य और संस्कृति में पर्यावरणीय चिन्तन बदल गया है। यही कारण है कि आज के साहित्यकार भी बदले हुए पर्यावरणीय वातारण के अनुरूप अपने को ढालने का प्रयास कर रहे है।

मनुष्य प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ रचना है और इसका सम्पूर्ण जीवन पर्यावरण पर ही आधारित है। लेकिन खेद की बात यह है कि जिस पर्यावरण पर मानव का जीवन टिका है वही सुरक्षित और शुद्ध नही है। इसका कारण मनुष्य स्वयं है। इसने अपने भैतिक सुख सुविधाओं को प्राप्त करने विलासिता की होड़ में इक्कीसवी सदी में पर्यावरण से छेड़खानी-शुरू कर दी है। इसका तात्कालिक लाभ और सुख तो मनुष्य को प्राप्त हो जाता है, लेकिन इसके दीर्घकालीक परिणाम बड़े ही दूरगामी है। विलासिता की भूख और प्यास को मिटाने के लिए मनुष्य द्वारा बडेघ पैमाने पर वृक्षों और वनो का कटाव किया जा रहा है। विज्ञान और प्राद्योगिकीये विकास हो जाने के कारण बडे बडे कल कारखाने स्थापित हुए है, यातायात के द्रुतगामी साधनों का प्रयोग किया जा रहा है। लेकिन इन सभी से प्रतिदिन विष ही उगला जा रहा है जो जनजीवन के लिए हानिकारक है। यह सभी वातावरण को दूषित कर जल, वायु और ध्वनि प्रदूषण कर रहे है जिसका जनजीवन पर बुरा प्रभाव पड़ा है। यही कारण है कि आज मौसम ने भी अपना मुँह मोड़ लिया है। असमय वर्षा होना अधिक तापमान का बढना वर्षा ऋतु में सुखा पड़ना आदि पर्यावरण प्रदूषण का ही परिणाम है जिसके लिए मनुष्य स्वयं उत्तरदायी है।

दूसरी ओर विश्व स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक जनसंख्या विस्फोट की स्थिति उत्पन्न हुई है। आज विश्व की जनसंख्या लगभग आठ अरब और भारत की जनसंख्या एक अरब तीस करोड़ पहुच चुकी है इतनी बड़ी जनसंख्या के भरण-पोषण की समस्या का समाधान करने के लिए कृषि में पैदावार बढाने का प्रयास उसमें नवीन कीटनाशक खाद्य और बीजो का प्रयोग करके किया जा रहा है। लेकिन जिन कीटनाशको का भूमि में प्रयोग किया जा रहा है उनमें कुछ मिट्टी में घुलनशील होकर अर्न्तभोग जल को प्रदूषित कर रहे है तो कुछ अघुलनशील रह कर वायु को प्रदूषित कर रहे है। यही कारण है कि आज मानव को नाना प्रकार की बीमारियां ग्रस्ति कर रही है और असमय मनुष्य की मृत्यु भी हो रही है ।

पर्यावरण में हो रहे प्रदूषण और पारिस्थितिकीय पतन पर विश्व स्तर पर जैसे कोपेनहेगन का जलवायू सम्मेलन रियो-डि-जेनेरो का पृथ्वी सम्मेलन आदि में विचार किया जा रहा है। लेकिन इसमें सफलता आशा के अनुरूप नहीं मिल रही है इसके लिए नियम कानून बनाये जा रहे है, परन्तु लाभ शून्य है। अत: आवश्यकता इस बात की है कि साहित्य और संस्कृति के माध्यम से लोगो में इन पर्यावरण प्रदूषण के प्रति जागरूकता पैदा किया जाय। क्योकि साहित्य और संस्कृति में इतना सामर्थ्य होता है कि वह अपने शब्दों विचारों साहित्यक भाषाओं तथा संसकृतिक मूल्यों चिन्तन के माध्यम से लोगो के विचारों हृदय मस्तिष्क को परिवर्तित कर जन जागरण ला सकता है और पर्यावरण प्रदूषण के प्रति मनुष्य को सचेत कर भविष्य में इसके विकराल और गम्भीर परिणाम को रोकने में सफलता प्राप्त कर सकता है। इसलिए अन्त में मै यह कहना चाहूँगा कि साहित्य और संस्कृति में पर्यावरणीय संवेदना की रूचि में वृद्धि कर वैश्विक स्तर पर इस समस्या का निराकरण किया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. डा0 जी0के0 अग्रवाल-समाजशास्त्र
2. डा0 कमलेश महाजन-भारतीय समाज और मुद्दे और समस्या
3. सी0 मामोरिया- भारत का भूगोल
4. डा0 ओ0पी0 वर्मा-समाजशास्त्र

भारतीय अर्थव्यवस्था में एमएसएमई की भूमिका

डॉ० शकुन्तला मीना

सहायक आचार्य ई.ए.एफ.एम. महारानी श्री जया राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर (राजः)

परिचय- किसी भी देश के उद्योग के विकास में सूक्ष्म, लघु व मध्यम (एमएसएमई) उद्योगों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ये उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए मेरूदण्ड है। ये उद्योग प्राचीन काल से ही चले आ रहे हैं। खादी उद्योग, दशकरधा उद्योग, कच्ची-धानी उद्योग, नारियल के रेशे से बनने वाले सामान, चमड़ा उद्योग, स्लिक उद्योग, जूट उद्योग, हैण्डलूम ग्रामीण उद्योग, चावल, बंधाई, छपाई एवं रंगाई उद्योग, दाल उद्योग, चर्म उद्योग, कागज उद्योग, कत्था, गोंद, दियासलाई, इमारती पत्थर, ऊन उद्योग इत्यादि रोजगार देने में कृषि के बाद इन उद्योग का महत्वपूर्ण स्थान है। देश में पूजीं की कमी, तकनीकी ज्ञान का अभाव व श्रम की अत्यधिक पूर्ति होने के कारण इन उद्योगो का महत्व में वृद्धि हुई है। लघु उद्योग आधुनिक क्षेत्र के उद्योग आते है। ये उद्योग स्थानीय मॉग पर आधारित होते है। जबकि कुटीर उद्योग, में पारिवारिक श्रम का उपयोग किया जाता है भारत में इन उद्योगो से गॉवों में रोजगार मिल रहा है साथ में आय में वृद्धि हो रही थी इसलिए इनको कृषि के सहायक उद्योग के रूप में विकास करने की आवश्यकता है। जिससे अधिक से अधिक हाथों का काम मिल सके बेरोजगारी की समस्या काफी हद तक हल हो सके और ग्रामीण लोग आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से मजबूत हो कर सम्मान से जी सके।

भारत एक विकासशील देश है। यहां कृषि के बाद दूसरा स्थान राजगार देने में सूक्ष्म, लघु व मध्यम उद्योग का है। लघु व कुटीर उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ है। अर्थव्यवस्था में श्रम की अत्यधिक पूर्ति व पूंजी की कमी व तकनीकी ज्ञान का अभाव होने के कारण इन उद्योगों का महत्व बढ़ गया है। इन उद्योगों का उत्पादन, रोजगार एंव निर्यात क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान है। 1956 की औद्योगिक नीति में इनका महत्व इस तरह व्यक्त किया गया था "वे तत्काल बड़े पैमाने पर रोजगार प्रदान करते है" वे ऐसे उपाय उपलब्ध करते हैं, जिससे आय का अधिक समतापूर्ण वितरण संभव होता है। वे साधनों के एकीकरण का प्रभावशाली मार्ग प्रदान करते है।" और इसी प्रकार पूंजी तथा कुशलताओं को जुटाते में योगदान देते हैं। जो इनके अभाव में बेकार तथा अप्रयुक्त ही रह जाते है अनियोजित नगरीकरण से उत्पन्न समस्याओं में से कुछ को औद्योगिक उत्पादन के पूरे देश में छोटे केन्द्रों को स्थापित करके दूर किया जाता है। एमएसएमई इकाईयां परम्परागत व आधुनिक दोनों के उद्योगो मे पाई जाती है इसमें खादी जूट, दाल, चावल, चर्म, कागज उद्योग कत्था, गोंद उद्योग, ग्रामीण उद्योग, हैण्डलूम रंगाई छपाई व बधाई उद्योग, दियासलाई उद्योग, ऊन उद्योग, व आधुनिक उद्योग में उत्पादन करने वाली इकाई जैसे पम्प सैट, डीजल ईजन, विद्युत मोटर्स, रेडियों, बिजली के पंखे, सिलाई मशीन, बुनाई की मशीने, प्लास्टिक व रबड़ की वस्तुऐ, मिक्सर ग्राइन्डर, टेलिस्कोप अनेक प्रकार के वैज्ञानिक औजार, घरेलू उपकरण, व दवाईयां इत्यादि आते है।

लघु क्षेत्र के उद्योगो का पंजीयन स्वैछिक है। पंजीयन पहले जिला उद्योग केन्द्र पर अस्थायी होता है। उसे बाद में अनुरोध करने पर स्थायी रूप दिया जाता है। लेकिन विनिर्माण उद्योगों का पंजीयन फैक्टीज अधिनियम के अन्तर्गत धारा M (i)उत्पादन इकाईयों में 10 अधिक कर्मचारी कार्यरत है M (ii) जिनमें 20 से अधिक कर्मचारी कार्यरत हैं। लघु उद्योगो विनिर्माण क्षेत्र का उद्योग जिसमे सूक्ष्म में 25 लाख व लघु में 25 लाख से 5 करोड़ व मध्यम में 5 करोड़ से अधिक व 10 करोड़ से कम मशीनरी व पलांट में निवेश कर सकते है व सेवा क्षेत्र में 10 लाख, 10 लाख से अधिक 2 करोड़ से कम व 2 करोड़ से अधिक व 5 करोड़ से कम कर सकते है। लघु व कुटीर के बार में सूचना एकत्रित करने के लिए सम्बधित विभाग ने 1973-74 में 2.58 लाख औद्योगिक इकाई पंजीकृत थी। जो 2001-2002 में 13.75 लाख पंजीकृत व 91.46 लाख अपंजीकृत इस प्रकार 2015-16 में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (एन एस एस) के अनुसार देश में लगभग 633.8 लाख अंसिचित गैर कृषि उद्योग थे जो 11.10 करोड़ लगभग लोगो को रोजगार प्रदान करने वाली गतिविधियों में काम कर रहे है। एमएसएमई देश के घरेलू उत्पाद का लगभग 8 प्रतिशत, विनिर्माण उत्पादन का लगभग 45 प्रतिशत और संपति में लगभग 40 प्रतिशत योगदान करते हैं। लघु उद्योगों का बिना पैन कार्ड व बिना जी.एस.टी. के पंजीयन की सुविधा है। 2019-20 में विनिर्माण श्रेणी कुल 537677 उद्यमो व 8,65058 उद्यम लगभग पंजीयन कराया इसके अन्तर्गत पाँच शीर्ष उद्योग आते हैं।

खाद्य उत्पाद, वस्त्र परिधान, केबी क्रेटेड मेटल उत्पाद, और मशीनरी व उपकरण सूक्ष्म उद्योग में प्राय परिवार के सदस्यों के द्वारा कार्य किया जाता है इसमें हस्त क्रियाओं को प्रधानता दी जाती है इन उद्योगो में परम्परागत विधियों से कार्य किया जाता है इसमें निवेश की सीमा 25 लाख तक व कर्मचारी 10 से 50 तक होते हैं। लघु उद्योग में कार्य पारिश्रम पर व्यक्तियों से कराया जाता है, इन उद्योगों में उत्पादन मशीनों द्वारा होता है निवेश सीमा एक करोड़ रूपये व 50 से अधिक कर्मचारी काम करते है।

भारतीय अर्थव्यवस्था एम.एस.एम.ई. की भूमिका -

- रोजगार में वृद्धि-काम करने वालो की संख्या जो लाखों में थी 2019 में लगभग 11 करोड़ के करीब पहुंच गई है।
- कम पूंजी की आवश्यकता क्योंकि भारत की जनसंख्या अधिकांश गरीब है।

- ग्रामीण क्षेत्रों में लघु व कुटीर उद्योगों से कार्य मिलता है जिससे उनकी आय में वृद्धि हुई है संचार व परिवहन में साधनों में वृद्धि हुई।
- लघु व कुटीर उद्योगों में विकास से आर्थिक समानता के परिवेश का निर्माण होने से सत्ता का विकेन्द्रीकरण हुआ है।
- इन उद्योगो की वस्तुऐं थोडी मंहगी होती है लेकिन सुन्दर, उत्तम, टिकाऊ व अच्छी किस्म की होती है साथ ही स्थानीय लोगों को भी अपना कला का प्रदर्शन करने का मौका मिलता है।
- सरकार द्वारा लघु व सूक्ष्म उद्योग में 2019-2020 तक 899377 उद्योगो को लगभग गारन्टी दी है। लघु, सूक्ष्म व मध्यम उद्योग के द्वारा देश का समावेशित विकास ही सम्भव होगा जिससे अधिक से अधिक लोग इससे जुडेगे व मेक इन इण्डिया का सपना एम.एस.एम.ई. के साथ सम्भव हो सकता है।

समस्यायें-

लघु व कुटीर उद्योग के लिए महंगी मशीन खरीदने के लिए अधिक वित्त की आवश्यकता होती है। विनियोग संस्थाये अधिक ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध करवाती है उत्पादन प्रणाली परम्परागत होने के कारण उत्पादन में गिरावट आती है। राष्ट्रीय व अन्तराष्ट्रीय स्तर पर अपना उत्पाद बेचने में कठिनाई आती है, बडे उद्योगो से प्रतिस्प्रर्धा नही कर पाते है। व तकनीकी शिक्षा का अभाव है।

सरकारी प्रयास/सुझाव- एम.एस.एम.ई. के विकास के लिए सलाह देने के लिए सरकार ने अखिल भारतीय कुटीर उद्योग केन्द्रीय सिल्क बोर्ड 1949, दस्तकार व हस्तकरधा खादी व ग्रामोधोग आयोग 1953, लघु उद्योग व नारियल 1954, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम 1955 व दस्तकारी विकास निगम 1958 की स्थापना लघु उद्योग नीति 1991 व इन उद्योगो की वित्त उपलब्ध करवाने के लिए SBI, IDBI, SFC, SIDC, ICICI, NSICI वाणिज्य बैंको को अधिकृत किया गया। जिससे इन्हें वित्त समस्या नहीं रहे व शिक्षा व प्रशिक्षण व्यवस्था, सस्ते दर पर कच्चे माल की पूर्ति व गुणवत्ता में सुधार व माल के विपणन की व्यवस्था इत्यादि।

निष्कर्ष:- एम.एस.एम.ई. उद्योग का क्षेत्र विस्तृत है इसमें 11 करोड़ में लगभग व्यक्ति कार्यरत है। कृषि में बाद रोजगार देने मे इन का दूसरा स्थान देश की लघु उद्योग क्षेत्र भारतीय औद्योगिक संरचना का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। न केवल देश की जी.डी.पी तथा निर्वात आय में महत्वपूर्ण योगदान है। अपितु करोड़ो लोगो को रोजगार उपलब्ध कराकर सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक है इससे आर्थिक विषमता कम हो रही व देश का समावेश विकास हो रहे है और हम आत्मनिर्भर भारत देश बनने की और अग्रसर हो रहे है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. भारत के आर्थिक पर्यावरण:- प्रो.डी.आर. जाट, प्रो वशिष्ट, प्रो भिण्डा व दीया जैन, अजमेर बुक कम्पनी जयपुर-2010-11 पृ. 18.1-18.5
2. भारतीय अर्थव्यवस्था:- डॉ0 एल.एन.कोली, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा 2016 पृं. 305 से 311
3. राजस्थान आर्थिक पर्यावरण, बी.एल.औझा, मनोज क्रमा0 ओझा अजमेर बुक कम्पनी जयपुर 2016-2017 पृं 27.1-27.5
4. भारत आर्थिक पर्यावरण- डॉ0 बी.पी. गुप्ता, डॉ0 एच.आर.स्वामी, आर.बी.डी. पब्लिशिंग हाऊस जयपुर 2019 पृं 20.1-20.6
5. भारतीय अर्थव्यवस्था- एस.के.मिश्र, वी.के.पुरी. हिमालय पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली 2010 पृं 420-442
6. वार्षिक रिपोर्ट 2020 भारत सरकार एम.एस.एम.ई. उद्यम मन्त्रालय उद्योग भवन नई दिल्ली बुलेटिन/पत्रिकाये
7. भारतीय अर्थव्यवस्था- दत्त एवं सुन्दरम, एस चन्द्र एण्ड कम्पनी प्रा.लि. रामनगर नई दिल्ली 2010

हिन्द महासागरः संक्षिप्त अवलोकन

प्रो० भारती दास

रक्षा एवं स्त्रातेजिक अध्ययन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

रामस्वरूप

शोध-छात्र, रक्षा एवं स्त्रातेजिक अध्ययन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

सारांश-

प्राचीनकाल से ही भारत का हिन्द महासागर से जुड़ाव रहा है। सदा ही भारतीय शासकों ने इस महासागर को अपने नियंत्रण में रखने का प्रयास किया है। परंतु द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इस महासागर में हुए भूराजनीतिक परिवर्तनों ने इसे शक्ति स्पर्धा का केन्द्र बना दिया। भारतीय भूभाग की सुरक्षा इस बात पर निर्भर करती है कि यह महासागर कितना शांत बना रहता है। हिन्द महासागर में किसी भी प्रकार की अशांति प्रत्यक्षता भारत की सुरक्षा को प्रभावित करती है। स्वतंत्रता के बाद से ही भारत हिन्द महासागर में शांति हेतु तत्पर रहा है ताकि वह इस महासागर से संबद्ध अपने राजनीतिक, आर्थिक तथा सुरक्षा हितों की रक्षा कर सके।

महत्वपूर्ण शब्द- हिन्द महासागर, शक्ति स्पर्धा, सामुद्रिक मार्ग, सामुद्रिक सुरक्षा, तटीय सुरक्षा

''जो भी देश हिन्द महासागर को नियंत्रित करता है वह एशिया पर वर्चस्व स्थापित करेगा। यह महासागर सात समुद्रों की कुंजी है। 21वीं शताब्दी में विश्व का भाग्य निर्धारण इसकी समुद्री सतहो पर होगा।"[1] 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अमेरिकी नौ सैन्य विचारक अल्फ्रेड थ्रेयर माहन द्वारा की गई यह भविष्यवाणी द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से ही मूर्त रूप लेने लगी थी। यह अल्फ्रेड थ्रेयर माहन की रणनीतिक दूरदर्शिता का ही कमाल था कि उन्होनें उस समय, जब विश्व के अधिकांश देश अपनी स्थल शक्ति को बढ़ाने में ही प्रयासरत थे, में ही इस बात का अनुमान लगा लिया था कि भविष्य में होने वाले युद्धों का रण क्षेत्र स्थल क्षेत्र न होकर जल क्षेत्र होगा और साथ ही साथ अल्फ्रेड थ्रेयर माहन ने अमेरिका को यह सलाह भी दी कि वह अपनी नौ सैन्य शक्ति बढ़ाने का प्रयास करे। कालांतर में माहन ने नौ सैन्य शक्ति के आधारभूत तत्वों का भी विवेचन किया। माहन के इन विचारों से नौ सैन्यशक्ति की महत्ता को बल मिला। भविष्यवाणी के अनुसार हिन्द महासागर को एशिया तथा विश्व का भाग्य निर्धारक तत्व माना गया है। वर्तमान परिस्थितियों में इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता है कि एशिया की क्षेत्रीय राजनीति तथा वैश्विक राजनीति में हिन्द महासागर एक महत्वपूर्ण शक्ति निर्धारक तत्व है और द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से ही सभी छोटी-बड़ी शक्तियों ने हिन्द महासागर से लाभ प्राप्त करने तथा उसे नियंत्रित करने का प्रयास किया है। जहाँ द्वितीय विश्व तक इस महासागरीय क्षेत्र पर केवल ब्रिटेन की तूती बोलती थी, वहीं द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ, चीन, आस्ट्रेलिया, फ्रांस, भारत आदि अनेक क्षेत्रीय व वैश्विक शक्तियाँ इस क्षेत्र में उभर कर सामने आई और देखते ही देखते हिन्द महासागर शक्ति स्पर्धा का रंगमंच बन गया।

अन्य सभी महासागरों से तुलना करने पर हम पाते है कि हिन्द महासागर विश्व का सबसे अशांत महासागर है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जितने युद्ध प्रशांत व अटलांटिक महासागरीय क्षेत्रों में नहीं लड़े गए उससे कहीं ज्यादा युद्ध हिन्द महासागर क्षेत्र में लड़े गए हैं। युद्ध या टकराव का स्वरूप अलग हो सकता है जैसे- उपनिवेश विरोधी युद्ध, नव-साम्राज्यवादी लड़ाईया, पूंजीवाद बनाम साम्यवाद की लड़ाई, लोकतंत्र या सैनिक तानाशाही के मध्य लड़ाई, खाड़ी क्षेत्र में हो रही तेल प्रतिस्पर्धा आदि ऐसे अनेक उदाहरण रहे है जो यह सिद्ध करते हैं कि हिन्द महासागर सदा हि प्रतिस्पर्धा का केन्द्र रहा है। हिन्द महासागर क्षेत्र में इस तनाव ग्रस्तता या अशांति का मुख्य कारण स्वयं इस महासागर की विशिष्टताएं हैं। अगर संक्षेप में कहें तो इस महासागर की भौगोलिक, राजनैतिक, आर्थिक, स्त्रातेजिक आदि विशेषताएं इस महासागर को अन्य किसी भी महासागर से विशिष्ट युद्ध स्थल बनाती है।

भौगोलिक दृष्टि से देखें तो हिन्द महासागर, प्रशांत महासागर तथा अटलांटिक महासागर के बाद, विश्व का तीसरा सबसे बड़ा महासागर है। इसका कुल क्षेत्रफल लगभग 7,49,20,000 वर्ग किमी0 है जो कि कुल वैश्विक जल क्षेत्रफल का लगभग 20: है।[2]

इस महासागर का विस्तार पूर्व में आस्ट्रेलिया महाद्वीप, पश्चिम में अफ्रीका महाद्वीप के पूर्वी तट, दक्षिण में अटार्कटिका महाद्वीप के उत्तर तट तथा उत्तर में एशिया महाद्वीप के दक्षिणी भाग तक विस्तारित है। इसके जल क्षेत्रों में बंगाल की खाड़ी, अरब सागर, लाल सागर आदि प्रमुख नाम है। इस महासागर का पूर्वी द्वार मलक्का जलसंधि है जो इसे प्रशांत महासागर से जोड़ती है वही लाल सागर की स्वेज नहर के द्वारा यह भूमध्य सागर से जुड़ता है तथा पश्चिम में केप अगुलहास से यह अटलांटिक महासागर से जुड़ा है। जलवायु की दृष्टि से यह महासागर उष्ण तथा उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्र में आता है जिसके कारण इस महासागर का पानी बर्फ नहीं बनता है और यह महासागर 'उष्ण जल महासागर' कहलाता है। इसके कारण यह प्रशांत व अटलांटिक महासागर की तुलना में वर्ष भर नौवहन योग्य बना रहता है।

आर्थिक दृष्टिकोण से देखे तो वर्तमान में विश्व का अधिकांश व्यापार इसी के सतहों पर संचालित होता है। एशिया, अफ्रीका, दक्षिण पूर्वी एशिया के ज्यादातर राष्ट्र आयात निर्यात के लिए हिन्द महासागर के सामुद्रिक रास्तों पर निर्भर है। खनिज संपदा की दृष्टि से देखे तो इस महासागर के नितल में अथाह खनिज संपदा भरी पड़ी है जिसका अभी तक दोहन नहीं किया जा सका है। साथ ही साथ इसके तटवर्ती देशों में विश्व का लगभग 37% तेल, 70% टिन, 79% सोना, 90% रबड़, 98% हीरे, 27% क्रोमियम, 16% लोहा तथा यूरेनियम जैसे महत्वपूर्ण खनिजों का उत्पादन करते है।[3] हिन्द महासागर के तटवर्ती देशों में विश्व की लगभग एक चौथाई जनसंख्या निवास करती है तथा यहाँ के ज्यादातर राष्ट्र आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं है। ये अपनी अनेक आधारभूत आवश्यकताओं के लिए भी विकसित देशों के ऊपर निर्भर है। अत: यह क्षेत्र विकसित देशों के लिए एक बहुत बड़ा बाजार है।

राजनैतिक दृष्टिकोण से देखे तो पता चलता है कि इस क्षेत्र में विभिन्न राजनैतिक प्रणाली, राजनैतिक मत या मूल्य देखने को मिलते है। इस महासागर की परिधि में 47 देश आते है जिसमें कुछ राष्ट्रों में लोकतंत्र (जैसे- भारत), कुछ में राजतंत्र (जैसे- ओमान), कुछ राष्ट्रों में तानाशाही (जैसे- पाकिस्तान) तथा कुछ राष्ट्रों में मिश्रित व्यवस्था (जैसे- श्रीलंका) चलती है। परस्पर विभिन्न राजनैतिक प्रणाली तथा मूल्य होने के कारण राष्ट्रों में उच्च व निम्न प्रणाली की भावनाएं पनपती रहती है। साथ ही साथ सीमा से संलग्न राष्ट्र की राजनैतिक प्रणाली का प्रभाव भी पड़ोसी राष्ट्रों पर पड़ता है (जैसे- पाकिस्तान, बांग्लादेश, अफगानिस्तान आदि राष्ट्रों से राजनैतिक प्रताड़ना से परेशान होकर लोग पलायन करके भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में शरण लेते है जो कि अंतत: युद्ध का कारण बनता है)।

हिन्द महासागर का स्त्रातेतिक वातावरण वह प्रमुख कारण है जो इसे अन्य से विशिष्ट बनाता है। इस महासागर में मौजूद द्वीप ऐसी स्त्रातेजिक स्थिति प्रदान करते है कि आसानी से सभी महाद्वीपों पर निशाना लगाया जा सकता है। यह द्वीप अच्छे सैनिक अड्डो में तब्दील हो सकते हैं। डियागोगार्सिया इसका प्रमुख उदाहरण है। यह महासागर नौ सैनिक युद्ध पोतों तथा परमाणु हथियारों के भण्डार ग्रह के लिए आदर्श स्थिति तथा लाँच पैड उपलब्ध कराता है। चूँकि अधिकांश व्यापार इस महासागर के रास्ते से ही होता है तो युद्ध जैसी स्थिति में शत्रु देशों के व्यापार तथा पेट्रोलियम को बाधित कर शत्रु को आर्थिक रूप से प्रभावित किया जा सकता है।

इन सब विशेषताओं के अलावा जैव विविधता, नृजातीय विविधता, क्षेत्रीय संघर्ष आदि ऐसे अनेक कारण है जो कि समय-समय पर हिन्द महासागर को महत्वपूर्ण बना देते है।

अब हम उस घटनाक्रम को समझने का प्रयास करेगे कि किस प्रकार हिन्द महासागर क्षेत्र अशांति की ओर अग्रसर होता गया तथा इस अशांति का भारत पर क्या प्रभाव पड़ रहा है? और किस प्रकार भारत इन चुनौतियों से निपट रहा है?

प्राचीन काल से ही अरब सागर का प्रयोग व्यापार के लिए किया जाता रहा है। अनेक व्यापारी तथा यात्री अरब सागर के माध्यम से व्यापार और भ्रमण करने निकलते थे। प्राचीन काल में भारतीय व्यापारी अरब सागर के माध्यम से मिस्त्र तथा रोमन साम्राज्य के साथ लाल सागर के रास्ते व्यापार को अंजाम देते थे। ऐसे अनेक ऐतिहासिक उदाहरण मिलते है जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भारत के दक्षिणी राज्य के शासकों ने समुद्र का इस्तेमाल व्यापार के लिए किया तथा उसके तटों की सुरक्षा हेतु छोटी सी सेना रखते थे।[4] ध्यात्वय है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में नवाध्यक्ष नामक पद था जो कि नौ सेना अध्यक्ष जैसा ही कार्य करता था। चोल शासको का नाम भी प्रमुख है जिन्होनें सागरीय तटों की रक्षा हेतु सेना का निर्माण किया था। परंतु मध्य कालीन भारतीय राजाओं ने समुद्र के महत्व को दरकिनार कर दिया। मुगलों ने भी अपना सत्ता का केन्द्र उत्तर भारत को बनाया और समुद्र का व्यापक इस्तेमाल नहीं किया और न ही इसकी रक्षा के लिए कोई सेना रखी। हॉलाकि मुगल सम्राट जहॉगीर की पत्नि नूरजहॉ ने नौसेना के निर्माण में दिलचस्पी दिखायी परंतु इसे नजरअंदाज कर दिया गया।[5] इसी उदासीनता का परिणाम यह हुआ कि उत्तर मध्यकाल में हिन्द महासागर में विदेशी शक्तियों का आगमन शुरू हुआ जिसका शुभारम्भ किया पुर्तगालियों ने।

1498 में पुर्तगाली नाविक वास्कोडिगामा कालीकट बंदरगाह पहुँचा। केप ऑफ गुड होप के रास्ते आने वाला यह प्रथम नाविक था।[6] वास्कोडिगामा ने भारत से मसालों को ले जाकर बहुत बड़ा मुनाफा कमाया। इस कारण अन्य यूरोपीय शक्तियाँ भी भारत की ओर व्यापारिक उद्देश्य से आई। प्रारंभ में यह व्यापार के उद्देश्य से आये परंतु धीरे-धीरे यह साम्राज्यवादी उद्देश्य में बदल गया। तत्कालीन भारतीय राजाओं के पास कुशल नौ सेना न होने के कारण कोई भी इन्हें वापस खदेड़ने में सामर्थ नहीं था और अंतत: पूरे महासागर पर यूरोपीय शक्तियों का अधिकार हो गया। इनमें सबसे प्रमुख शक्ति था- ग्रेट ब्रिटेन। द्वितीय विश्व युद्ध तक ब्रिटेन की ही शक्ति का परिणाम था कि हिन्द महासागर को 'ब्रिटिश झील' के नाम से जाना जाता था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद वैश्विक परिदृश्य में जो परिवर्तन आए उनका असर हिन्द महासागर क्षेत्र पर भी पड़ा। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् अमेरिका तथा सोवियत संघ महाशक्ति के रूप में उभरे। इस महायुद्ध में ब्रिटेन की आर्थिक हालत खराब हो चुकी थी। सैन्य शक्ति में भी ह्रास हुआ था। अब यह वह ग्रेट ब्रिटेन नहीं रह गया था जिसके शासन में सूर्यास्त नहीं होता था। एशिया व अफ्रीका महाद्वीप में उभरे उपनिवेश विरोधी राष्ट्रवादी आंदोलनों को रोकना अब ब्रिटेन की क्षमता के बाहर था। ब्रिटेन ने धीरे-धीरे एशिया व अफ्रीका से अपनी उपस्थित रिक्त करना शुरू कर दिया। 1965 तक आते आते ब्रिटेन ने यह घोषणा कर दी कि वह अपने उन अड्डो को भी खाली कर देगा जो कि स्वेज के पूर्व में स्थित है। ब्रिटेन के जाने से हिन्द महासागर क्षेत्र में एक 'शक्ति शून्यता' की स्थिति उत्पन्न हो गई जिसे भरने के लिए अन्य शक्तियाँ आकर्षित हुई। ब्रिटेन नहीं चाहता था कि उसके जाने के बाद हिन्द महासागर पर साम्यवादी ताकतों का कब्जा हो जाए अत: ब्रिटेन ने संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ चागोस द्वीप समूह से संबंधित एक 50 वर्षीय समझौता कर डियागोगार्सिया द्वीप पर अमेरिका को सैन्य सुविधाएं विकसित करने की अनुमति दे दी।[7] इसी घटना से ही हिन्द महासागर की राजनीति में संयुक्त राज्य अमेरिका का पदार्पण हुआ।

शीत युद्ध के दौरान अमेरिका ने हिन्द महासागर में अपने प्रभाव को बढ़ाने के लिए अपने नौ सैनिक अड्डो का विस्तार शुरू कर दिया और धीरे-धीरे अमेरिका ने न केवल हिन्द महासागर में अपने कई सैन्य अड्डे स्थापित कर लिए वरन तटीय देशों के बंदरगाहों आदि पर अनेक ऐसी सुविधाऐं प्राप्त कर ली जिनके द्वारा वह इनका इस्तेमाल अपनी सैनिक सुविधाओं के लिए कर सकता है। मिस्त्र, सोमालिया, पाकिस्तान, केन्या, ओमान, आस्ट्रेलिया आदि ऐसे ही देश है जो ये सुविधाएं अमेरिका को प्रदान करते है। 2016 में एक ऐसा ही समझौता अमेरिका ने भारत के साथ किया है। प्रारंभ में सोवियत संघ भी इस

क्षेत्र में नियंत्रण पाने का प्रयास करता रहा। परंतु सोवियत संघ के विघटन के बाद उसके उत्तराधिकारी रूस ने हिन्द महासागर के लिए कोई अग्रगामी नीति नहीं अपनाई बल्कि उसने भारत जैसे देशों को सैन्य सहायता देकर अप्रत्यक्ष रूप से अमेरिकी प्रभाव को कम करने की पुरजोर कोशिश की।

यह कहा जा सकता है कि 20वीं शताब्दी के अंत तक अमेरिका एक मात्र बड़ी शक्ति थी जो कि हिन्द महासागर पर अपना नियंत्रण स्थापित किए थी। इस दौरान गुटनिरपेक्ष देशों ने अमेरिका द्वारा फैलाई जा रही हथियारों की दौड़ तथा हिन्द महासागर के शस्त्रीकरण का विरोध किया जिसकी चर्चा हम इसी लेख में आगे करेगें। 21वीं सदी में हिन्द महासागर की क्षेत्रीय राजनीति में व्यापक परिवर्तन होने लगे और भारत तथा चीन जैसे देशों ने हिन्द महासागर में अपनी उपस्थिति को मजबूत करना शुरू कर दिया। चीन की आर्थिक शक्ति तथा विस्तारवादी विचारधारा के चलते चीन ने हिन्द महासागर में अपने युद्धपोतो को तैनात करना शुरू कर दिया तथा अपनी 'ब्लैंक चेक' नीति के द्वारा हिन्द महासागर तटीय देशों से ऐसे आर्थिक व सैनिक समझौते किए जिनके द्वारा वह उन देशों के बंदरगाहो तथा अड्डों का प्रयोग अपने हित में कर सकता था। चीन अपनी 'सामुद्रिक रेशम मार्ग' की नीति के द्वारा हिन्द महासागर के रास्ते अपनी पहुँच यूरोप तक बनाना चाहता है ताकि वह इस रास्ते यूरोप तथा अफ्रीका में अपना व्यापार फैला सके। साथ ही साथ चीन ने भारत के प्रभाव को सीमित करने के लिए अपनी 'मोतियों की माला' नीति[8] के तहत भारत के पड़ोसी राष्ट्रों के बंदरगाहो में अपनी उपस्थिति सुनिश्चित कर ली। हालाकि चीन का कहना है कि इन बंदरगाहो का प्रयोग वह अपनी व्यापारिक उद्देश्य से करेगा। परन्तु सत्य तो यह है कि वह इसके द्वारा भारत की गतिविधियों पर नजर रखना चाहता है तथा युद्ध जैसी परिस्थितियों में इनका इस्तेमाल भारत के विरूद्ध करना चाहता है। पाकिस्तान का ग्वादर बंदरगाह, श्रीलंका का हंबनटोटा बंदरगाह, बांग्लादेश का चटगांव, म्यांमार का सित्तवे बंदरगाह तथा कोको द्वीप आदि का पुर्ननिर्माण व विकास चीन ने अपने इसी हित के चलते किया है।

हिन्द महासागर में हो रही इस स्पर्धा में अगर कोई सबसे ज्यादा प्रभावित है तो वह है- भारत। भारत के हित हिन्द महासागर में अन्य किसी भी राष्ट्र की तुलना में व्यापक हैं। अत: यहाँ हो रही किसी भी प्रकार की हलचल का व्यापक असर भारत पर पड़ता है। अब हम इस महासागर में भारत के हित तथा चुनौतियों को जानने का प्रयास करेगें।

भारत की भौगोलिक अवस्थिति हिन्द महासागर के केन्द्र में है। भारत हिन्द महासागर से तीन ओर (यथा- पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण) से घिरा हुआ है। भारत के पास लगभग 7516 किमी0 लंबी तट रेखा है जो कि भारत के मुख्य भू-भाग तथा हिन्द महासागर में विस्तारित अनेक छोटे-बड़े द्वीपों से होकर गुजरती है। भारत के अधिकार क्षेत्र में लगभग 1200 छोटे-बड़े द्वीप आते है जो कि अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी में मुख्य भू-भाग से कुछ ही दूरी पर स्थित है। भारत का सामुद्रिक क्षेत्र लगभग 24 लाख वर्ग किमी0 तक विस्तारित है। केवल हिन्द महासागर ही एक मात्र ऐसा महासागर है जिसका नाम किसी तटीय देश के नाम पर पड़ा हो। इससे इतना तो स्पष्ट है हिन्द महासागर भारत के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।[9]

निम्न बिंदुओ के माध्यम से हम हिन्द महासागर में भारतीय हितों को रेखांकित करने का प्रयत्न करेगें-

- प्राथमिक हित है- राष्ट्रीय सुरक्षा का और अखण्डता का। लंबी तट रेखा होने के कारण यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि इसके तटों की रक्षा हो सके। इन तटों पर स्थित बंदरगाहों से ही भारत व्यापार का आयात-निर्यात करता है। यह व्यापार इस बात पर निर्भर करता है कि हम अपने तटों को सुरक्षित करें और यहाँ से किसी भी प्रकार की घुसपैठ को रोक सकें। ध्यातव्य है कि 2008 में मुंबई में होने वाले आंतकी हमले के लिए आतंकी समुद्री रास्तों से ही आये थे। यह हमारे सुरक्षा तंत्र की ही विफलता थी कि इतने घातक हथियार लेकर आतंकी देश में प्रवेश कर सके। साथ ही साथ कई बार चीन पनडुब्बियों को भी भारतीय समुद्री क्षेत्र के पास देखा गया है जो कि सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा है।
- भारत का लगभग 98% व्यापार (मात्रा के अनुसार) हिन्द महासागर के रास्ते से ही होता है। यह व्यापार तटों पर स्थित औद्योगिक नगरों तथा बंदरगाहो से होता है।[10] भारत अपनी जरूरत की अधिकांश पेट्रोलियम का आयात भी टैंकरो के माध्यम से करता है। यह व्यापार व तेल भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है।
- तटीय क्षेत्रों से संलग्न राज्यों व केन्द्र शासित प्रदेशों के नागरिकों आर्थिक गतिविधियों जैसे- मत्स्य उद्योग, पर्यटन आदि के लिए समुद्र पर निर्भर है। साथ ही साथ हिन्द महासागर में भारत भविष्य के लिए संसाधनों के दोहन के प्रयत्न में लगा हुआ है।
- हिन्द महासागर क्षेत्र में अपनी पकड़ रखने के लिए भारत के लिए जरूरी है कि वह तटीय देशों से अपने संबंधो को मजबूत करे। इसके लिए भारत आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक रूप से तटीय देशों से जुड़ने के प्रयत्नों में लगा है। चीन द्वारा भारत को घेरने तथा अन्य राष्ट्रों को अपने ऋण जाल में फंसा कर अपने पक्ष में करने की नीति को प्रतिरोध करने हेतु इन तटीय देशों को अपने प्रभाव में लाना जरूरी है।

संक्षेप में कहे तो भारत आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक रूप से हिन्द महासागर से जुड़ा हुआ है। यदि सरदार के.एम. परिकर के शब्दों में जाने तो- ''भारत की आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक विकास हिन्द महासागर के बिना असंभव है।''[11] राष्ट्रीय सुरक्षा के दृष्टिकोण से भी देखे तो हम पाएंगे कि हिन्द महासागर के शांति पूर्ण वातावरण में ही भारत अपनी सुरक्षा को ओर भी सुदृढ़ कर सकता है।

स्वतंत्रता के उपरांत से ही भारत ने यह प्रयत्न किया है कि हिन्द महासागर में किसी भी प्रकार की शस्त्र दौड़ या स्पर्धा न हो। क्योंकि अंतत: भारत ही इससे सर्वाधिक प्रभावित होने वाला राष्ट्र है। इस चिंता को हम भारतीय विद्वान जेड. इमाम के उन शब्दों से समझ सकते है जब उन्होनें यह चिंता व्यक्त की थी कि, ''डिमागो गार्सिया से छोड़े गये नाभिकीय प्रेक्षवास्त्र कुछ मिनटों में ही नई दिल्ली पहुँच सकते है।'' इसी कारण भारत ने संयुक्त राष्ट्र जैसे अंतर्राष्ट्रीय मंच पर हिन्द महासागर को शांति क्षेत्र घोषित करने की कवायद ही है। श्रीलंका के नेतृत्व में गुटनिरपेक्षता देशों के 13 सदस्यीय दल ने संयुक्त राष्ट्र महासभा के 26वें अधिवेशन 1971 में ऐसा ही प्रस्ताव पेश किया था जिसे महासभा ने स्वीकार कर लिया था। 1971 में इसी प्रस्ताव के अनुरूप महासभा ने घोषणा की थी कि- ''हिन्द महासागर को उन सीमाओं में, जिन्हें अभी निर्धारित किया जाना है, इसके ऊपर कैले आकाशीय क्षेत्र तथा उसके समुद्र तल सहित इस प्रस्ताव द्वारा चिरकाल के लिए शांति क्षेत्र घोषित किया जाता है।''[12] प्रारंभ में हिन्द महासागर के प्रति भारत की नीति आशावादी थी। परंतु कालांतर में अपने राष्ट्रीय हितों व सुरक्षा को दांव पर देख भारत ने आर्थिक, सैन्य, राजनैतिक तरीकों से हिन्द महासागर को सुरक्षित करने का कार्य किया है। भारतीय नौसेना, भारतीय तटरक्षक बल, सागर प्रहरी बल, अंडमान निकोबार त्रि सैन्य कमान का गठन आदि ऐसे के माध्यम से भारत ने अपने तटीय क्षेत्रों तथा द्वीपों को सुरक्षित

करने का प्रयास किया है। इन्हीं प्रयासों का फल है कि फल है कि आज भारत के पास एक मजबूत नौ सेना है जो कि विमान वाहक पोत, परमाणु चलित पनडुब्बियों, विध्वसक पोत आदि से सुसज्जित है जिसका प्राथमिक उद्देश्य भारतीय समुद्री सीमा की संप्रभुता को बनाए रखना है। साथ ही साथ अनेक क्षेत्रीत संगठनों के द्वारा भी हिन्द महासागर को सुरक्षित रखने की कवायद की है, इन क्षेत्रीय संगठनों में प्रमुख नाम है- हिन्द महासागर तटीय क्षेत्रीय सहयोग संगठन, आसियान, सार्क, हिन्द महासागर आयोग आदि।

अंत में यह कहा जा सकता है कि भारत का भूत, वर्तमान तथा भविष्य हिन्द महासागर से जुड़ा हुआ है और इसकी अनदेखी कर भारत अपने दीर्घकालीन हितों की पूर्ति करने में सक्षम नहीं होगा। अपने तटों को सुरक्षित कर ही भारत अपने आर्थिक विकास की कल्पना कर सकता है।

संदर्भ सूची-

1. The Influence of Sea Power Upon History., A.T. Mahan
2. India's Strategic Concerns in the Indian Ocean., Vice Admiral P. C. Das., South Asia Defence and Strategic Year Book., New Delhi., 2009
3. Mining the Deep Sea., Richard Mahapatra and Anupam Chakravrty., Down to Earth., September 2014
4. India and the Indian Ocean: An Essay on the Influence of Sea Power on Indian History., K. M. Panikkar., 1951
5. Hind Mahasagar: ChunotiyanAvemVikalp., Hari Saran and Harsh Kumar Sinha., Neha publishers., 2012., pg-6
6. The Indian Ocean Power Politics., Sudha Raghvan., Lancer Book., 1996
7. Super Power Rivalry in the Indian Ocean: Indian and American Perspectives., S, Harrison., Oxford University Press., 1989
8. The China Syndrome., Harsh V. Pant., India Today Group New Delhi., 2001
9. Bhart 1991., prakasahn Vibhag ., Bharat Sarkar
10. Maritime Safety and Security in the Indian Ocean Region., Vijay Sakhuja., Vij Book India Pvt Ltd., New Delhi., 2016
11. India and the Indian Ocean: An Essay on the Influence of Sea Power on Indian History., K. M. Panikkar., 1951
12. Declaration of the Indian Ocean as a Zone of Peace., United Nations Disarmament Year Book., 1983

वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक लब्धि का तुलनात्मक अध्ययन

शैलेश कुमार यादव

(शोधार्थी) शिक्षक शिक्षा विभाग, तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर (उ0प्र0)

प्रो० (डॉ०) जयप्रकाश सिंह

(शोध निर्देशक) शिक्षक शिक्षा विभाग, तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर (उ0प्र0)

सारांश

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक लब्धि का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। इस अध्ययन में शोधार्थी द्वारा वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का अनुसरण किया गया है। शोधार्थी द्वारा जनपद जौनपुर में अवस्थित यू0पी0 बोर्ड द्वारा मान्यता प्राप्त वित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों से 300 विद्यार्थियों (150 छात्र व 150 छात्राएँ) एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों से 300 विद्यार्थियों (150 छात्र व 150 छात्राएँ) का चयन स्तरीकृत न्यादर्श प्रविधि की सहायता से किया गया। शोधार्थी द्वारा शैक्षिक लब्धि के मापन हेतु विद्यार्थियों की कक्षा-10 के बोर्ड परीक्षा के प्राप्तांकों को लिया गया है। सांख्यिकीय प्रविधि के अन्तर्गत शोधार्थी द्वारा मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात का अनुसरण किया गया है। निष्कर्ष में पाया गया कि स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक लब्धि, वित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक लब्धि से उच्च पायी गयी है। इसी प्रकार लिंगभेद के संदर्भ में माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक लब्धि का अध्ययन किया गया एवं निष्कर्ष रूप में यह दर्षाया गया है कि शैक्षिक लब्धि के संदर्भ में माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र व छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर नहीं होता है।

मुख्य शब्द: वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक स्तर, लिंगभेद एवं शैक्षिक लब्धि

प्रस्तावना:

माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों में विभिन्न क्षमताओं का विकास तीव्र गति से होता है जैसे- उसकी तार्किक क्षमता, उसकी स्मृति, चिन्तन, कल्पना-शक्ति, आदतों का निर्माण आदि। वर्तमान युग के नवीनतम् आविष्कार, साहित्य रचना, भौतिक वस्तुओं का निर्माण तथा मानव की अन्य उपलब्धियाँ सृजनात्मक शक्ति एवं कल्पना शक्ति का परिणाम है। मानव विकास तथा सभी प्रकार की उन्नति एवं प्रगति का आधार उनमें सम्बन्धित विषय में उच्च शैक्षिक लब्धि है। माध्यमिक स्तर पर बालक की शैक्षिक लब्धि बढ़ाने में विभिन्न मनोवैज्ञानिक कारकों का प्रमुख स्थान है। अत: माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की उनकी शैक्षिक लब्धि का अध्ययन किया जाना छात्रों की प्रगति हेतु आवश्यक एवं उपयोगी है।

विद्यालय में विभिन्न कक्षाओं में विद्यार्थी विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। कक्षा के सभी विद्यार्थियों का ज्ञान तथा ज्ञानार्जन करने की सीमा या प्रगति एक समान नहीं होती है। किसी कक्षा विशेष के विद्यार्थियों ने कितनी मात्रा में ज्ञानार्जन या प्रगति की है इसकी जाँच करना आवश्यक होता है। पूरे वर्ष में बालक द्वारा अर्जित ज्ञान, योग्यता एवं उसकी कार्य कुशलता को ही उसकी शैक्षिक उपलब्धि माना जाता है। एक निश्चित कार्यक्षेत्र एवं समय सीमा में बालक जो ज्ञान प्राप्त करता है उसके मापन को लब्धि कहते हैं तथा विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले विभिन्न विषयों में अर्जित की गयी योग्यता को शैक्षिक लब्धि कहते हैं। शैक्षिक लब्धि द्वारा विभिन्न पाठ्य विषयों में अर्जित ज्ञान, योग्यता और कार्य-कुशलता का मापन होता है। विद्यार्थियों की निरन्तर विकसित होती हुई योग्यताओं का मापन करना उनको आगे बढ़ाने के लिए आवष्यक होता है। विद्यार्थी ने निश्चित समय में कितना ज्ञान किस रूप में प्राप्त किया है, जीवन की परिस्थितियों में उसे कहाँ तक स्थानान्तरित किया है इत्यादि की जाँच शैक्षिक निष्पत्ति के द्वारा की जाती है।

बंसल, विजय एवं सिंघल, ए0पी0 (2015) ने लड़के/लड़कियों और ग्रामीण/शहरी विद्यार्थियों के सम्बन्ध में आत्मसम्प्रत्यय एवं शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन विषय पर कार्य किया तथा शैक्षिक उपलब्धि का मापन करने के लिए कक्षा-10वीं के अंक/ग्रेड का उपयोग किया गया। उन्होंने परिणाम प्राप्त किया कि लड़के एवं लड़कियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं आत्मसम्प्रत्यय में सार्थक अन्तर पाया गया। लड़कों की शैक्षिक उपलब्धि एवं आत्मसम्प्रत्यय लड़कियों से उच्च पायी गई।

ननामनी, एस0सी0 एवं ओईब, ओ0ए0 (2016) ने इबोनी जिले के अबकालीकी के उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के कला विषय के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि और लिंग पर अध्ययन किया। न्यादर्श के रूप में उन्होंने 3,497 विद्यार्थियों का चयन किया। उन्होंने परिणाम पाया कि कला विषय में छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि छात्रों से अधिक पायी गई।

पीर मोहम्मद, साराह, देबोस्का, अगाता एवं बोडुस्जेक डनिल (2017) ने विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के लिंगभेद का सम्बन्ध शैक्षिक उपलब्धि के साथ निकला। प्रस्तुत शोध कार्य में शैक्षिक अभिप्रेरणा, उपलब्धि उद्देश्य, सीखने का उद्देश्य, प्रदर्शन उद्देश्य, आत्म प्रभावकारिता, सक्रिय अधिगम तकनीकी और अध्ययन समय आदि शैक्षिक उपलब्धि को प्रदर्शित करता है। परिणाम प्राप्त किया कि शैक्षिक उपलब्धि को दर्शाने वाले प्रत्येक कारक के साथ सार्थकता ज्ञात की गयी परन्तु लड़के-लड़कियों के बीच केवल आत्मप्रभावकारिता ही सार्थक पाया गया।

अध्ययन के उद्देश्य:

1. वित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व छात्राओं की शैक्षिक लब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व छात्राओं की शैक्षिक लब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के विद्यार्थियों (छात्र व छात्राओं का संयुक्त समूह) की शैक्षिक लब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाऐं:

1. वित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व छात्राओं की शैक्षिक लब्धि में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
2. स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व छात्राओं की शैक्षिक लब्धि में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
3. वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के विद्यार्थियों (छात्र व छात्राओं का संयुक्त समूह) की शैक्षिक लब्धि में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

शोध विधि:

प्रस्तुत अध्ययन में उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी द्वारा वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का अनुसरण किया गया है।

न्यादर्श प्रारूप:

शोधार्थी द्वारा जनपद जौनपुर में अवस्थित यू0पी0 बोर्ड द्वारा मान्यता प्राप्त वित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों से 300 विद्यार्थियों (150 छात्र व 150 छात्राएँ) एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों से 300 विद्यार्थियों (150 छात्र व 150 छात्राएँ) का चयन स्तरीकृत न्यादर्श प्रविधि की सहायता से किया गया।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण:

प्रस्तुत अध्ययन में माध्यमिक स्तर के कक्षा-11 के विद्यार्थियों द्वारा पूर्व की बोर्ड परीक्षा (कक्षा-10) में प्राप्त परीक्षाफल प्राप्तांकों को आधार मान करके उनकी शैक्षिक उपलब्धि का निर्धारण किया गया है।

सांख्यिकीय प्रविधि:

सांख्यिकीय प्रविधि के अन्तर्गत शोधार्थी द्वारा मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात का अनुसरण किया गया है।

शोध उपलब्धियाँ:

1. वित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व छात्राओं की शैक्षिक लब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

प्रस्तुत खण्ड में वित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व छात्राओं की शैक्षिक लब्धि का तुलनात्मक विष्लेषण करने के लिए सर्वप्रथम शोधार्थी द्वारा छात्र व छात्राओं की शैक्षिक लब्धि से सम्बन्धित आँकड़ों का मध्यमान एवं मानक विचलन ज्ञात किया गया। तदोपरान्त शैक्षिक लब्धि के संदर्भ में वित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए क्रान्तिक अनुपात के मान को ज्ञात किया गया है। प्रस्तुत उद्देष्य के संदर्भ में प्राप्त सांख्यिकीय मानों (मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात) को सारणी 01 में प्रदर्षित किया गया है।

सारणी 01: वित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक लब्धि से सम्बन्धित आँकड़ों का सांख्यिकीय मान (मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात)

अध्ययन चर	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात	सार्थक स्तर
शैक्षिक लब्धि	छात्र	150	68.23	10.29	1.92	0.05 स्तर पर असार्थक
	छात्राएँ	150	70.54	10.59		

उपरोक्त सारणी 01 में प्रदर्शित सांख्यिकीय मानों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि वित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व छात्राओं की शैक्षिक लब्धि का मध्यमान क्रमशः 68.23 व 70.54 पाया गया एवं उपरोक्त के संदर्भ में मानक विचलन का मान क्रमशः 10.29 व 10.59 पाया गया है। शैक्षिक लब्धि के संदर्भ में वित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए क्रान्तिक अनुपात का मान 1.92 पाया गया है। प्राप्त क्रान्तिक अनुपात का मान 298 स्वतंत्रता अंश एवं 0.05 स्तर पर असार्थक है जो यह प्रदर्शित करता है कि वित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व छात्राओं की शैक्षिक लब्धि के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है। अतः प्रस्तुत उद्देश्य से सम्बन्धित शून्य परिकल्पना "वित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व छात्राओं की शैक्षिक लब्धि के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।" को स्वीकृत किया जाता है। सारणी 01 में वित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व छात्राओं की शैक्षिक लब्धि से सम्बन्धित मध्यमानों को आरेख 01 में प्रदर्शित किया गया है।

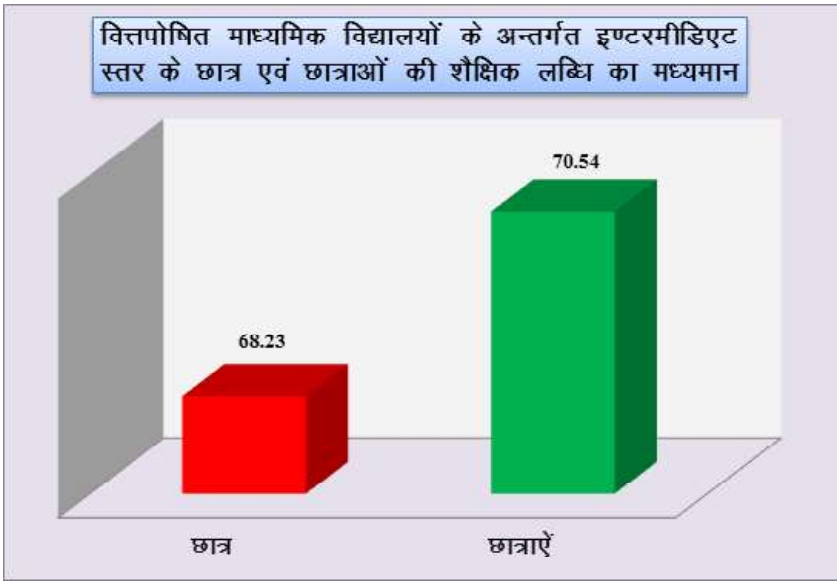

आरेख 01: वित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व छात्राओं की शैक्षिक लब्धि का मध्यमान

2. स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व छात्राओं की शैक्षिक लब्धि का अध्ययन करना।

प्रस्तुत खण्ड में स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व छात्राओं की शैक्षिक लब्धि का तुलनात्मक विश्लेषण करने के लिए सर्वप्रथम शोधार्थी द्वारा छात्र व छात्राओं की शैक्षिक लब्धि से सम्बन्धित आँकड़ों का मध्यमान एवं मानक विचलन ज्ञात किया गया। तदोपरान्त शैक्षिक लब्धि के संदर्भ में स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए क्रान्तिक अनुपात के मान को ज्ञात किया गया है। प्रस्तुत उद्देश्य के संदर्भ में प्राप्त सांख्यिकीय मानों (मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात) को सारणी 02 में प्रदर्शित किया गया है।

सारणी 02: स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक लब्धि से सम्बन्धित आँकड़ों का सांख्यिकीय मान (मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात)

अध्ययन चर	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात	सार्थक स्तर
शैक्षिक लब्धि	छात्र	150	72.08	9.89	1.81	0.05 स्तर पर असार्थक
	छात्राएँ	150	74.18	10.19		

उपरोक्त सारणी 02 में प्रदर्शित सांख्यिकीय मानों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व छात्राओं की शैक्षिक लब्धि का मध्यमान क्रमशः 72.08 व 74.18 पाया गया एवं उपरोक्त के संदर्भ में मानक विचलन का मान क्रमशः 9.89 व 10.19 पाया गया है। शैक्षिक लब्धि के संदर्भ में स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए क्रान्तिक अनुपात का मान 1.81 पाया गया है। प्राप्त क्रान्तिक अनुपात का मान 298 स्वतंत्रता अंश एवं 0.05 स्तर पर असार्थक है जो यह प्रदर्शित करता है कि स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व छात्राओं की शैक्षिक लब्धि के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है। अतः प्रस्तुत उद्देष्य से सम्बन्धित शून्य परिकल्पना "स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व

छात्राओं की शैक्षिक लब्धि के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।" को स्वीकृत किया जाता है। स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व छात्राओं की शैक्षिक लब्धि से सम्बन्धित मध्यमानों को आरेख 02 में प्रदर्शित किया गया है।

आरेख 02: स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के छात्र व छात्राओं की शैक्षिक लब्धि का मध्यमान

3. वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के विद्यार्थियों (छात्र व छात्राओं का संयुक्त समूह) की शैक्षिक लब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

प्रस्तुत खण्ड में वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के विद्यार्थियों (छात्र व छात्राओं का संयुक्त समूह) की शैक्षिक लब्धि का तुलनात्मक विश्लेषण करने के लिए सर्वप्रथम शोधार्थी द्वारा वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों (छात्र व छात्राओं का संयुक्त समूह) की शैक्षिक लब्धि से सम्बन्धित आँकड़ों का मध्यमान एवं मानक विचलन ज्ञात किया गया। तदोपरान्त शैक्षिक लब्धि के संदर्भ में वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों (छात्र व छात्राओं का संयुक्त समूह) के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए क्रान्तिक अनुपात के मान को ज्ञात किया गया है। प्रस्तुत उद्देश्य के संदर्भ में प्राप्त सांख्यिकीय मानों (मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात) को सारणी 03 में प्रदर्शित किया गया है।

सारणी 03: वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के विद्यार्थियों (छात्र व छात्राओं का संयुक्त समूह) की शैक्षिक लब्धि से सम्बन्धित आँकड़ों का सांख्यिकीय मान (मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात)

अध्ययन चर	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात	सार्थक स्तर
शैक्षिक लब्धि	वित्तपोषित	300	69.38	13.46	3.46	0.01 स्तर पर सार्थक
	स्ववित्तपोषित	300	73.13	13.07		

उपरोक्त सारणी 03 में प्रदर्शित सांख्यिकीय मानों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों (छात्र व छात्राओं का संयुक्त समूह) की शैक्षिक लब्धि का मध्यमान क्रमशः 69.38 व 73.13 पाया गया एवं उपरोक्त के संदर्भ में मानक विचलन का मान क्रमशः 13.48 व 13.07 पाया गया है। शैक्षिक लब्धि के संदर्भ में वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों (छात्र व छात्राओं का संयुक्त समूह) के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए क्रान्तिक अनुपात का मान 3.46 पाया गया है। प्राप्त क्रान्तिक अनुपात का मान 598 स्वतंत्रता अंश एवं 0.01 स्तर पर सार्थक है जो यह प्रदर्शित करता है कि वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों (छात्र व छात्राओं का संयुक्त समूह) की शैक्षिक लब्धि के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया है। इसका कारण यह हो सकता है कि स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों द्वारा अपनी साख-सृजन हेतु षिक्षण अधिगम पर अधिक ध्यान केन्द्रित करते है एवं समय-समय पर क्रियाशील प्रबन्धन तंत्र द्वारा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का निरीक्षण किया जाता है। जबकि वित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों में सुस्त निरीक्षण प्रणाली होने के कारण शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का आवधिक मूल्यांकन नहीं किया जाता है। जिसके कारण स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत विद्यार्थियों की शैक्षिक लब्धि उच्च पायी गई है। अतः प्रस्तुत उद्देष्य से सम्बन्धित शून्य परिकल्पना "वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत इण्टरमीडिएट स्तर के विद्यार्थियों (छात्र व छात्राओं का संयुक्त समूह) की शैक्षिक लब्धि में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।" को अस्वीकृत किया जाता है। सारणी 03 में वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों (छात्र व छात्राओं का संयुक्त समूह) की शैक्षिक लब्धि से सम्बन्धित मध्यमानों को आरेख 03 में प्रदर्शित किया गया है।

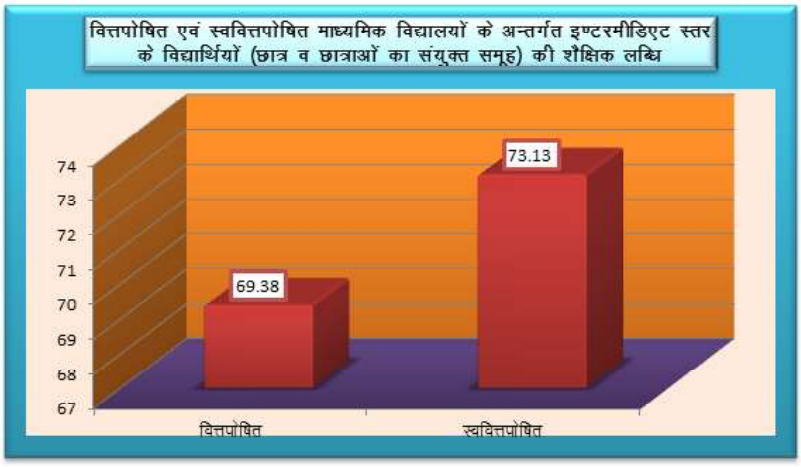

आरेख 03: वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों (छात्र व छात्राओं का संयुक्त समूह) की शैक्षिक लब्धि का मध्यमान

निष्कर्ष:

प्रस्तुत अध्ययन में प्राप्त परिणामों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक लब्धि, वित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक लब्धि से उच्च पायी गयी है। जो यह प्रदर्शित करता है कि विद्यार्थियों के शैक्षिक उन्नयन में स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों की भूमिका अधिक प्रभावी है। इसका कारण यह हो सकता है कि आर्थिक समृद्धि की दृष्टि से स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालय अपनी साख सृजन हेतु शैक्षणिक एवं गैर शैक्षणिक गतिविधियों पर अधिक ध्यान केन्द्रित करती है। स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के प्रबन्धन तंत्र द्वारा विद्यालयी गतिविधियों का सामयिक निरीक्षण एवं निर्देशन किया जाता है। जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से विद्यार्थियों के शैक्षणिक उन्नयन को प्रभावित करता है। उक्त निष्कर्ष की पुष्टि पूर्व में हुए शोध अध्ययनों के परिणामों द्वारा की जा सकती है। इसी प्रकार लिंगभेद के संदर्भ में माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक लब्धि का अध्ययन किया गया एवं निष्कर्ष रूप में यह दर्शाया गया है कि शैक्षिक लब्धि के संदर्भ में माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र व छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर नहीं होता है। पूर्व में हुए शोध अध्ययनों द्वारा भी अपने निष्कर्ष में यह दर्शाया गया है कि लिंगभेद के संदर्भ में विद्यार्थियों की शैक्षिक लब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

संदर्भ ग्रन्थ

बंसल, विजय एण्ड सिंघल, ए0पी0 (2015), "ए कम्प्रेटिव स्टडी ऑफ मेल-फीमेल एण्ड अर्वन रूरल स्टूडेंट्स इन रिलेशन टू देयर एकडमिक अचीवमेंट एण्ड सेल्फ-कॉनसेप्ट", जर्नल ऑफ एजूकेशनल एण्ड फिजियोलॉजिकल रिसर्च, वोल्यूम-5(1), पृष्ठ सं0 39-41

पीर मोहम्मद, साराह, देबोस्का, अगाता एण्ड बोडुस्जेक डनिल (2017), "जेण्डर डिफरेंस इन द कोरलेट्स ऑफ एकेडमिक अचीवमेंट अमंग यूनिवर्सिटी स्टूडेंट्स", जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च इन हायर एजूकेशन, वोल्यूम-9(2), पृष्ठ सं0 313-324

गुप्ता, एस0पी0 एवम् गुप्ता, अलका (2018). आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन। शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

गैरेट हैनरी ई. (1956). शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी। नई दिल्ली: कल्याणी पब्लिशर्स।

ननामनी, एस0सी0 एण्ड ओईब, ओ0ए0 (2016), "जेण्डर एण्ड एकेडमिक अचीवमेंट ऑफ सैकेण्डरी स्कूल स्टूडेंट्स इन सोशल स्टडीस इन आवाकालिकी अरवान ऑफ इबोनयी स्टेट", ब्रिटिश जर्नल ऑफ एजूकेशन, वोल्यूम-4(8), पृष्ठ सं0 72

आदिवासी समाज का बदलता स्वरूप और स्त्री

शैलेश यादव

शोधार्थी- पीएच० डी०, हिंदी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय, काँचीपुर, इंफाल-795003

आदिवासी समाज की जीवन संस्कृति अपनी धरती तथा प्रकृति से प्रेम के अभाव में कुछ भी नहीं है। आदिवासी जीवन के फूल प्रकृति के गोद में ही खिलते हैं। आदिवासी समाज के विकास की नींव में ही प्रेम बंधुत्व व स्त्री-पुरुष की समानता निहित है। साहित्य में इनकी सामूहिकता, समानता की पूर्णत: अभिव्यक्त होती है। साहित्य लेखन में लेखक के अपने व्यकितत्व के साथ-साथ उसकी संवेदना तथा उसके गहनतम सामाजिक हित का चिंतन भी शामिल होता है क्योंकि साहित्य समाज का कलात्मक सृजन है।

आदिवासी समाज जहाँ एक तरफ सुंदर जीवन दर्शन का प्रेरणास्रोत है वहीं दूसरी तरफ बाहरी वर्चस्व व कुछ अंधविश्वासी परंपरा आदिवासी समाज को भटकाव के दिशा में ले जाती है। इस दोनों तरह की स्थिति को कथा साहित्य में चिंतन तथा प्रतिरूपण किया गया है। चूँकि आदिवासी महिलाएँ आदिवासी समाज की प्रत्यक्षदर्शी होती हैं इसलिए वह अपने समाज के प्रति अपना दृष्टिकोण कथा साहित्य के माध्यम से मुखर रूप से रखती हैं। जो भी घटना, अंध विश्वास, दीकू समाज के वर्चस्व के कारण हो रहे बदलाव स्त्रियों के अंत: स्थल को छू जाता है या विचलित कर देता है, उसे आदिवासी स्त्रियाँ कभी उसकी सुंदरता को स्पष्ट करती है तो कभी अपनी लेखनी के माध्यम से विद्रोह कर उठती हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि आदिवासी समाज के सुख-दु:ख, हास्य-रूदन, संघर्ष और विद्रोह आदिवासी महिलाओं के लेखन में भी स्पष्ट होता है। "आदिवासी स्त्री लेखकों की रचनाएँ न सिर्फ भारतीय समाज के अदेखे बहुभाषयी और बहुसांस्कृतिक संसार को दर्ज करती हैं बल्कि पूर्वाग्रहों और गैर बराबरी से मुक्त एक स्वस्थ लोकतांत्रिक समाज की पुनर्रचना के लिए उत्प्रेरित भी हैं।"[1] कहा जाता है कि आदिवासी समाज में स्त्रियों की स्वच्छंदता होती है। यह कहाँ तक सत्य है? आदिवासी स्त्रियों की स्वच्छंदता के बारे में आदिवासी महिलाओं का कथा साहित्य किस रूप में देखता है। क्या स्त्री-पुरुष की समानता आदिवासी समाज में है? इन सभी प्रश्नों को आदिवासी कथा साहित्य के दृष्टि से देखने की कोशिश करेंगे।

आदिवासी प्रकृति के बीच रहने वाला मनुष्य है। उनकी सभी आवश्यकताएं प्रकृति ही पूरी करती है। नदी से पानी, वन से फल तथा लकडियाँ इकट्ठा करना इनके जीवन का एक अहम हिस्सा है। दैनंदिन जीवन की जरूरतों की पूर्ति अधिकतर आदिवासी स्त्रियाँ ही करती हैं। आदिवासी स्त्रियाँ अपनी सुरक्षा भी कर सकती हैं। इस तरह आदिवासी स्त्री जीवन काफी हद तक स्वच्छंद है, उन्हें घर से बाहर जाने के लिए कोई रोक-टोक नहीं है। आदिवासी स्त्री जीवन जितना सरल और उन्मुक्त है, वह उतना ही कर्मठ भी होती हैं। अपनी और अपने परिवार की जिम्मेदारियों को बखूबी निभाना भी जानती हैं। एलिस एक्का की कहानी 'वनकन्या' में स्त्री के कर्मठ, सरल व स्वच्छंद जीवन बहुत ही अच्छी तरह से अभिव्यक्त हुआ है- "सूरज की किरण के साथ ही कन्याएँ अपनी टोकरियाँ, कुल्हाडियाँ, विंडा और रस्सी लेकर वन को चली जातीं। वहाँ जंगल के फल-फूल और कंदमूल खोजती और उन्हें टोकरियों और आंचल में इकट्ठा करती वे सूखी लकडियाँ चुनती और उन्हें पेड़ की छालों से बाँध कर घर ले जातीं।"[2] ऐसे ही कर्मठ जीवन एक अन्य कहानी 'कोयल की लाडली सुमरी' में भी व्यक्त होता है। विश्व की मुख्य विकास की धारा में स्त्री समाज को घर के चहरदिवारी के अंदर केवल उपभोग की वस्तु माना जाता है। तथाकथित सभ्य समाज में स्त्रियों पर हजार तरह के बंधन होते हैं। वे कभी अकेली नहीं जा सकती। जो स्त्री परिवार और समाज से बाहर कदम निकालने की कोशिश करती है उसे कुलटा, दुष्टा आदि बना दिया जाता है। सभ्य समाज में तो स्त्रीयों की सीमा घर के चाहरदिवारी के अंदर तक ही है, जैसे ही चाहरदिवारी के बाहर कदम रखा, अपने अनुसार जिंदगी जीने के लिए पर फैलाए वैसे ही पर कुतर दिये जाते हैं या समाज उन्हें बदनाम कर देता है। यहाँ आदिवासी लेखिका आदिवासी स्त्री के माध्यम से सभी स्त्रियों के समानता व स्वतंत्रता के हनन का विचारणीय बिंदू छोड़ देती हैं।

आदिवासी लेखिकाओं ने आदिवासी स्त्री के बारे में दीकू समाज की वासनाग्रस्त मानसिकता कि आदिवासी स्त्री केवल कामुक होती है, का भी खण्डन किया है। इन लेखिकाओं के कथा साहित्य में आदिवासी स्त्री को सरल, कर्मठ, दयाद्र तथा दूसरों की सेवा या सहायता करने की तरफ उन्मुख दिखाती हैं। बाजारवाद, पूँजीवाद के विकास की इस अंधी दौड़ में स्त्री को केवल उपभोग की वस्तु बनाकर रख दिया है। क्या सच में स्त्री उपभोग की वस्तु मात्र है? क्या स्त्री का अस्तित्व व स्वतंत्रता रंच मात्र भी नहीं है? 'वनकन्या' कहानी में इसका समुचित समाधान दिया जाता है। कैसे एक शहरी व्यक्ति भटक कर जंगल में घायल हो जाता है, जान की रक्षा कर उसकी सहायता आदिवासी स्त्रियाँ ही करती हैं। उस पुरुष को ठीक कर प्रेम पूर्वक विदा देती हैं। विभिन्न औषधि की जानकारी भी इन प्रकृति के बीच रहने वाली आदिवासी स्त्रियों को होती है। कहानी की नायिका फेचो घायल पुरुष को इन्हीं औषधियों के उपयोग से ठीक कर देती है। आदिवासी स्त्रियों के सेवा सुश्रुषा से अविभूत होकर उस युवक ने कहा "तुम्हें अकेला छोड़ने का मन नहीं करता तुम्हारी सेवा को मैं कभी भूल नहीं सकूँगा फेचो, तुमने मेरे हृदय को जीत लिया है। आदिवासी इतने सहृदय और नेक होते हैं यह मुझे मालूम नहीं था।"[3]

आदिवासी स्त्री केवल अपने या अपने समाज के बारे में ही नहीं वरन वह पूरे भारत की उन्नति के लिए चिंतनशील है। आदिवासी स्त्री हिंदू समाज में निचले तबके के मैला ढोने के पेशे में भी बदलाव जरूरी समझती है। आदिवासी स्त्री कभी किसी मनुष्य में भेदभाव न कर मानवता के हित के लिए संघर्षशील व कल्पनाशील है। आज मुख्य धारा के समाज में विभेद आ गया है। पूँजीवादी लोग ही मानवता की सभी सुख-सुविधाओं का भोग करते हैं और ये ही निचले

तबके के मनुष्य को मनुष्य नहीं समझते। उन्हें मजबूरन निकृष्ट कार्य को करना पड़ता है। यहाँ एक आदिवासी स्त्री के मनुष्य के प्रति विचार दर्शनीय हैं- "हाय री दुनिया! एक ही सृष्टिकर्ता परमपिता की संतानों में इतना फर्क कोई हिंडोले पर झूलता है और कोई सिर पर मैला की बाल्टी लेकर घर-घर डोलता है हाय विधाता क्या तुम्हारा यही न्याय है? और कितना घिनौना काम है यह। क्या हमारे देश से इस कार्य का अंत कभी नहीं होगा?... काश, ऐसा भी दिन आता कि इस आजाद भारत के कोने कोने बिल्कुल साफ सुथरे हो जाते। सभी अपनी सफाई का काम आप ही कर लेते, तब शायद ही कोई भंगी होता।"[4] स्त्री केवल इतना ही नहीं सोचती वह तो देश सेवा करना चाहती है। एलिस एक्का की कहानी' 15 अगस्त, बिलचो और रामू' में आदिवासी स्त्री बिलचो, रामू के साथ मिलकर देश सेवा के साथ ही आदिवासी जीवन मूल्य और मानवता के जीवन मूल्यों से विश्व समाज की स्थापना करना चाहती हैं। सरकार के शिक्षा के अभियान 'सब पढ़े सब बढ़े' को आगे बढ़ाने में आदिवासी स्त्रियों का महत्वपूर्ण योगदान है। वे अपने समाज से निकलकर शिक्षा को प्राप्त कर अपने समाज, भारतीय समाज यहाँ तक कि विश्व समाज को उन्नत करने की इच्छ्छा रखती हैं। शिक्षा के प्रसार से ही आदिवासी समाज की अंधविश्वास, रूढिवादिता को तोड़ा जा सकता है। आदिवासी स्त्रियों के साथ-साथ आदिवासी समाज भी आपनी रूढ़ हो चूकी परंपरा में बदलाव चाहता है। शिक्षा के माध्यम से ही आदिवासी एक नए, सुखद, दु:ख-क्लेष मुक्त जीवन और समाज की स्थापना करना चाहता है।

आदिवासी कथा साहित्य में जहाँ एक तरफ स्त्री का स्वच्छंद जीवन, जीवन के रंगों में डूबी, अच्छे समाज के निर्माण की कल्पनाएँ लिए आदिवासी स्त्री का चित्रण किया गया है, वहीं दूसरी तरफ शोषण, संघर्ष, प्रतिरोध के स्वर को भी आदिवासी स्त्रियों को कभी- कभी अंधविश्वासों, रूढियों एवं गलत पम्पराओं की बलि चढ़ना पड़ जाता है। अधिकतर गैर आदिवासी समाज, स्त्री शरीर को बलात ही पाना चाहता है। उनके लिए स्त्री शरीर केवल उपभोग की वस्तु होती है। इसी संबंध में हरिराम मीणा जी सही कहते हैं- "आदिवासी और दलित औरतों के साथ अधिकांश- गैर दलित आदिवासी ही बलात्कारी साबित होते हैं अन्यथा ऐसी घटनाएं उनके समाज में न के बराबर होती हैं इस अर्थ में मुख्यधारा व कथित सभ्य समाज मे कई पायदान ऊपर ठहरती है आदिवासी की सोच"[5] आदिवासी तो अपने सरल स्वभाव एवं व्यवहार के कारण सभी को शामिल कर लेते हैं लेकिन शामिल होने वाले दीकू की दृष्टि केवल आदिवासी स्त्री शरीर को टटोलती है। वे आदिवासी स्त्री को आसानी से अपनी वासना का शिकार भी बना लेते हैं।

रोज केरकेट्टा की कहानी 'घाना लोहार का' में अधेड़ जगतसिंह अपनी पत्नी के रहते हुए भी आदिवासी रोपनी को अपने घर ले आता है। उसे रखता है वह अपने हिस्से की जायदाद से रोपनी को नहीं देता है जबकि रोपनी और जगत सिंह का बेटा भी है। रोपनी अपना अपमान तो सहन करती ही है लेकिन जब जगत सिंह के गाँव वाले उसे और उसके बेटे को बुरी तरह से मारते हैं तो वह बेटे का अपमान सहन नहीं कर पाती और जगत सिंह को उसके किए की सजा जान लेकर देती है। यहां आदिवासी समाज की स्त्री को जमींदार जगत सिह रखैल के रूप रखा था लेकिन उसे न ही प्रेम मिला न ही संपत्ति में हिस्सेदारी, ऊपर से बेटे और खुद का अपमान। इस बात को आदिवासी स्त्री सहन नहीं कर पाती और सभी समाज के सामने अपने प्रतिरोध को प्रतिशोध के रूप में जमींदार की हत्या कर देती है। अपने अधिकार को पाने के लिए बहुत मजबूर होकर हथियार भी उठा लेती है। यहां आदिवासी स्त्री के बारे में कहा जा सकता है कि वह अपने अधिकार के लिए सभी समाज से लड़ सकती है। वह जमींदारों की बनी बनाई परिपाटी से सीधे टकराकर तोड़ती है। वक्त के साथ स्त्री अपने अधिकार को माँग रही है। आदिवासी स्त्री दुनिया में चल रहे स्त्री विमर्श के अनुासार अपना अधिकार छीन कर लेना चाहती है क्योंकि अधिकार मांगने से नहीं मिलता है।

वहीं दूसरी तरफ 'प्रतिरोध' कहानी में आदिवासी लड़कियाँ दातून पत्ष्ता बेचकर घर का खर्च तो चलाती हैं लेकिन उन्हें खुलकर रहने को अधिकार नहीं मिलता, समानता का अधिकार नहीं मिलता। आदिवासी समाज मे भी जेंडरगत असमानता को यह कहानी दिखाती है। इसी कहानी में आदिवासी स्त्रियाँ जेंडरगत असमानता का प्रतिरोध भी करती हैं- "हाँ भाई लोग बहनों से दातुन-दोना, पत्ता बिचवाएंगे अपनी पत्नियों को अंडा जैसे जोगाकर रखेंगे। बहनों को दिल्ली गोवा भेजेंगे, उनकी कमाई से अपने बच्चों का पेट पालेंगे।"[6] यह कहानी उस प्रतिरोध को भी दर्शाती है जिसमें केवल पुरुष वर्ग ही खेल (फुटबाल आदि) प्रतियोगिता खेल सकते हैं स्त्रियाँ नहीं। इस कहानी में स्त्रियों ने आपसी सहयोग तथा सामूहिकता ने आदिवासी पुरुषवादी मानसिकता को बदल कर रख दिया, सभी स्त्रियों ने फुटबाल मैच खेला। आदिवासी स्त्रियाँ अपने अधिकार के संघर्ष के लिए लगी हुई हैं। समय के साथ-साथ वे भी अपने और अपने समाज के लिए जागरूता ला रहीं हैं।

आदिवासी कहानियाँ बाहरी समाज के संघर्ष तथा अपने समाज के अंतरद्वंद्व को रखते हुए इस समाज में दीकू समाज के वर्चस्व के कारण हो रहे बदलाव को भी सामने रखती हैं। ये कहानियाँ साथ ही साथ यह भी उजागर करती हैं कि जहाँ स्त्री का न भी दोष हो वहाँ दीकू और आदिवासी समाज दोनों केवल स्त्री को ही दोष देता है। आदिवासी स्त्री बलात वासना के शिकार से इतना डरी हुई है कि उसके अवचेतन मन में भी वही भय चलता रहता है। स्त्री अपने अवचेतन तन के भय से संघर्ष कर विजयी हो जाती है। कहानी 'कोयल की लाडली सुमरी' का एक उदाहरण देखिए कि स्त्री कैसे संघर्ष कर रही है- "सुमरी रोई, चीखी। गालियों की बौछार लगा दी- घोड़मुँहा, निदनाहा, पगैरठाहा आदि, परंतु उनके बल के सामने उसका कुछ न चलने लगा, साथ के कुल्हाड़े से एक दो पुरकस दे मारा खून का फौवारा बह निकला। सुमरी मत्त हो गई। अंधाधुंध कुल्हाड़ी चलाने लगी और न जाने कब तक चलाती रही और जब थक कर निढ़ाल हो गई, तो देखा उसके सिवा वहाँ कोई नहीं था। वह पड़ी ही रही और उसके नथुने फड़कते ही रहे साँस तेज चलती रही।"[7] कहीं न कहीं इन दीकू समाज के वर्चस्व के कारण आदिवासी समाज की स्त्रियाँ, बलात्कार से भयाकुल हो गई हैं इसलिए उनके अवचेतन मन में भी वही दृश्य चलता रहता है। इस मन की लड़ाई से बचने का रास्ता तो पा लेती हैं लेकिन वास्तविक रूप में बलात्कृता हो जाती हैं। सुमरी बलात्कृता तो होती है लेकिन वह आत्महत्या जैसा कदम उस समय नहीं उठाती। वह इस घटना को भूल भी जाती है। वहीं अन्य व तथा कथित सभ्य समाज में देखा जाए तो बलात्कार स्त्री के अस्तित्व के साथ जुड़ गया है कि उसके बाद वे जीना अपमान और नरक की स्थिति समझती हैं और आत्महत्या कर लेती हैं। "आदिवासी समाजों में बलात्कार कम से कम होते हैं और जब होते हैं न तो कोई स्त्री आत्महत्या करती है और न ही मान लिया जाता है कि उसका सर्वस्व लुट गया है।"[8] आदिवासी समाज उस स्त्री को सम्मान के साथ जीने देता है तथा उस घटना को एक दुर्घटना समझकर भुला देता है।

आदिवासी समाज बालात्कार जैसे संवेदनशील मुद्दे पर इतना खुलापन रखता था कि उस बलात्कृता स्त्री को जीने का अधिकार मिल जाए। उस स्त्री से उस बलात्कारी पुरुष का नाम पूछ कर उससे शादी करा देता था लेकिन जब से बाहरी समाज के व्यक्ति और उनकी संस्कृति का इन आदिवासी समाज पर प्रभाव आया है वे अपने जीवन मूल्य को भूलते ही जा रहें हैं। पहले बलात्कृता स्त्री को दुष्टा कलंकिनी नहीं समझा जाता था लेकिन अब- "और एक दिन बाजार के लोगों ने बस्ती के बुजुर्गो से कहा 'सुमरी पापिनी है, दुष्टा है, कुलकलंकिनी है।"[9] आदिवासी परंपरा के अनुसार जब बुजुर्गों ने सुमरी से बच्चे के पिता का नाम पूछा तो वह अनजान लूटेरों का नाम नहीं बता पाती है तब उसे आदिवासी संसार से बहिष्कृत कर दिया जाता है। इस पूरी घटना में स्त्री का कोई दोष नहीं है। फिर भी आज का आदिवासी समाज अपनी परंपरा को भूलकर स्त्री को आत्महत्या की तरफ ढ़केल रहा है। "सुमरी ने भी सोचा, ठीक ही तो है, मैं सब कुछ हूँ। पर मेरा क्या दोष पेट में साँस ले रहे नए जीव का क्या दोष? लोग दीकू की तरह सोचाने लगे हैं- 'मैं किसी को मुँह दिखाने के लायक नहीं और न ही मुझे जीना चाहिये'।"[10] और गर्भ में पल रहे बच्चे को लेकर कोयल नदी के किनारे पर मानसिक द्वंद्व के साथ खड़ी हो जाती है। यहाँ एक तरफ आदिवासी स्त्री बच्चे को जीवन देना चाहती है दूसरी तरफ बाहरी समाज के वर्चस्व के कारण उसे अपना ही समाज उसे जीने नहीं देना चाहता है। आदिवासी समाज में हो रहे बदलाव को इस कहानी के माध्यम से साफ देखा जा सकता है। आदिवासी समाज के जीवन मूल्य हिंदू आदि संस्कृतियों से प्रभावित होकर खोते जा रहें हैं। आज 2020-21 में आदिवासी समाज की स्त्री की स्थिति मुख्य धारा के समाज की स्थिति है। आदिवासी सामाजिक व्यवस्था के स्त्री-पुरुष बराबर के हकदार हैं। आदिवासी समाज में स्त्री शोषण का यथार्थ या शोषिता स्त्री का निर्मम स्वरूप सामने रखती हैं ये कहानियाँ।

अत: समग्र रूप से कहा जा सकता है कि आदिवासी समाज का अर्थ ही है प्रकृति की गोद का निवासी, स्वतंत्र, निश्छल, द्वेषरहित व विभेद से परे जहाँ स्त्री व पुरुष दोनों की स्वतंत्रता, अस्मिता, समाजिक पहचान। ऐरी समाजिक व्व्वसथ भी आज कुरीतियों से प्रभावित होकर मैली हो रही, प्रकृति मैली हो रही यानी आदिवासी। दोनों का दोहन हो रहा है। कहीं सत्री स्वतंत्रता है तो कहीं दीकू समाज के प्रभाव से स्त्री की स्वछंदता, समानता तथा सामूहिकता तार-तार और निर्मम हो रहीं हैं। कहा जाता है कि आदिवासी स्त्री को ज्यादा अधिकार है, ज्यादा स्वछंद है। यह पूर्ण सत्य नहीं है। आदिवासी समाज में भी जेंडर विभेद के द्वंद्व मौजूद हैं।

संदर्भ

1 एलिस एक्का की कहानियाँ, सं. वंदना टेटे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, कवर पृष्ठ।
2 वनकन्या, एलिस एक्का की कहानियाँ, सं. वंदना टेटे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्लीए प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ. 37
3 पूर्वोक्त, पृष्ठ 42
4 दुर्गी के बच्चे और एल्मा की कल्पनाएं, एलिस एक्का की कहानियाँ, सं. वंदना टेटे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ. 49.50
5 आदिवासी विमर्श, हरिराम मीणा, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ. 65
6 प्रतिरोध, बिरुवार गमछाए रोज केरकेट्टा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ. 31.32
7 कोयल की लाडली सुमरी, एलिस एक्का की कहानियाँ, सं. वंदना टेटे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ. 55
8 स्त्री के लिए जगह, राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. 120
9 कोयल की लाडली सुमरी, एलिस एक्का की कहानियाँ, सं. वंदना टेटे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ. 60
10 पूर्वोक्त, पृष्ठ. 60

स्वतंत्रता आन्दोलन में हिन्दी साहित्य और काव्य की भूमिका

श्रीमती अलका यतीन्द्र यादव

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), पी.एन.एस महाविद्यालय बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल प्रारंभ सन् 1850 से माना गया है, जब समाज में एक नया बदलाव आना प्रारम्भ हुआ। यही समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जन्म का है जिन्होंने न केवल समाज को एक नई दिशा अपनी लेखनी के माध्यम से दी, बल्कि एक पूरे युग का निर्माण भी किया जिसे भारतेन्दु युग के नाम से जाना गया।

प्रस्तावना

ईस्ट इंडिया कंपनी के भारत आगमन के साथ ही सोने की चिड़िया कहा जाने वाला भारत धीरे-धीरे गुलामी की जंजीरो में जकड़ना शुरू हो गया। बाहरी यूरोपीय शक्तियों ने भारत की प्राकृतिक सम्पदा, यहां के धन, वैभव सभी का दोहन, शोषण प्रारम्भ कर दिया। सन् 1600 ई0 मे ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में व्यापार के नाम पर पैर पसारने शुरू किये और यह सिलसिला लगभग ढाई सौ वर्षो की पीड़ा, यातना, शोषण, अत्याचार की चरम सीमा पहुँचता हुआ 15 अगस्त 1947 को समाप्त हुआ जब हमारे देश ने गुलामी की जंजीरो को काटते हुए स्वतंत्रता का तिरंगा लहराया।

जिस समय इस प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन की चिनगारी फूटी थी, उस समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र नामक बालक 5 वर्ष का था जिसने इतिहास विख्यात अमीरचन्द के घराने में 9 सितम्बर 1850 को पार्वती देवी की कोख से जन्म लिया था।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल प्रारंभ सन् 1850 से माना गया है, जब समाज में एक नया बदलाव आना प्रारम्भ हुआ। यही समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जन्म का है जिन्होंने न केवल समाज को एक नई दिशा अपनी लेखनी के माध्यम से दी, बल्कि एक पूरे युग का निर्माण भी किया जिसे भारतेन्दु युग के नाम से जाना गया।

इस समय जनचेतना पुनर्जागरण की भावना से अनुप्राणित थी। मातृभूमि के प्रति प्रेम, गोरक्षा, एकता, बाल-विवाह निषेध, शिक्षा का प्रचार-प्रसार, मद्य-निषेध और अन्य ऐसे कई विषय थे जिन पर जनता को जागरूक करना अति आवश्यक था। इसका एकमात्र माध्यम था साहित्य। यही वह हथियार था जिसके प्रयोग से हमारे साहित्यकारों ने इस दबी-कुचली जनता के मन में नई जागृति लाने का प्रयास किया।

कवियों ने क्षेत्रीयता से ऊपर उठकर सारे राष्ट्र को अपना केन्द्र बनाया। जननिजन्मभूमि की रक्षा के लिए सभी को एकजुट करना उन्होंने अपना कर्तव्य समझा। डॉ0 रामविलास शर्मा के शब्दों में, ''भारतेन्दु एक विशाल आन्दोलन के केन्द्र थे, वह दूसरो को एक सहकारी की भाँति उत्साहित करते थे, उन्होंने वे विषय दिये जिन पर वह ग्रामगीत लिखना आवश्यक समझते थे, इस विषय सूची से ही पता चलेगा कि भारतेन्दु देश के राजनीतिक आन्दोलन की बहुत सी बाते पहले ही सोच चुके थे। समाज सुधार से लेकर स्वदेशी आन्दोलन तक उनकी दृष्टि गयी थी। वे देश की जनता में एक नयी चेतना जगाना चाहते थे जो प्रत्येक क्षेत्र में उसे सजग रखे। अंग्रेजो की शोषण नीति का विरोध भारतेन्दु की निम्न पंक्तियों में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है -

भीतर-भीतर सब रस चूसै, हँसि, हँसि के तन-मन-धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि सज्जन! नहिं अंगरेज।

भारतेन्दु मंडल के प्रमुख लेखक- बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' बालकृष्ण भट्ट, काशीनाथ खत्री, दामोदर शास्त्री सप्रे, कार्तिक प्रसाद खत्री, केशवराम भट्ट, अंबिकादत्तव्यास, ठाकुर जगमोहन सिंह, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, राधाकृष्ण दास आदि राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत थे। भारतेन्दु और प्रतापनारायण मिश्र ने समाज की पीड़ा को क्रमशः इन शब्दों में व्यक्त किया है -

''रोबहु सब मिलि, आबहु भारत भाई।
हा! हा! भारत -दुर्दशा न देखी जाई।।

हिन्दी साहित्य के साथ साथ पत्रकारिता भी एक सशक्त माध्यम के रूप में उभर कर आई, जिसने जन-जागरण का कार्य बड़ी निडरता और कुशलता के साथ किया। स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार का प्रतिज्ञा पत्र भारतेन्दु ने 23 मार्च 1874 को कवि वचन सुधा में प्रकाशित किया था।

इस युग के सर्वश्रेष्ठ नाटककार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र है। उनके नाटक 'भारत दुर्दशा' 'अंधेर नगरी' भारत की समसामयिक दयनीय स्थिति पर कुठाराघात करते है। स्वतंत्रता तभी प्राप्त कर सकते हैं जब हमारा समाज कुरीतियों आडंबरो से मुक्त होगा। हम पढ-घलिख कर जागरूक नागरिक बनेंगे। कई प्रहसनों के माध्यम से हास्य -व्यंग्यपूर्ण शैली में धार्मिक पाखण्डों का खंडन हुआ और सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया गया। वस्तुतः भारतेन्दु काल में नाटकों की रचना का उद्देश्य जनता का मनोरंजन करना ही नही था बल्कि जनमानस को जागृत करना भी था।

प्रतापनारायण मिश्र ने भी समाज को जगाने का प्रयास किया। उसको आलस्य एवं भय की बेड़ियाँ तोड़कर अंग्रेजो को भगाने के लिए प्रेरित किया

''भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके समकालीन लेखकों को 1857 से जोड़ने वाली दो मुख्य चीजें है: 1. राष्ट्रीय स्वाधीनता का उद्देश्य और 2. अंग्रेजी राज की स्वरूप की पहचान। भारतेन्दु ने हिन्दी के एक नये आन्दोलन को जन्म दिया। साहित्यिक हिन्दी को प्रोत्साहन देने के साथ-साथ साहित्य में राष्ट्रीय और जनवादी तत्वों को प्रतिष्ठित किया।

जहाँ एक ओर पूरा देश पराधीनता की बेड़ियों को काटकर स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए एकजुट होकर संघर्षरत था वहीं दूसरी ओर हमारा हिन्दी साहित्य पूरे देश को एक जुट करने लगा था।

जिस तरह से अंग्रेजो का दमन, शोषण, गरीब, असहाय जनता पर हो रहा था, उसे किसी ऐसी शक्ति की आवश्यकता थी जो उनकी निरीहता को दूर कर उत्साह एवं जोश के साथ मातृभूमि के लिए मर मिट जाने को प्रेरित करे। निराला की 'राम की पूजा' उनमें ऐसा ही शक्ति का संचार करती है।

''प्रतिपल- परिवर्तित व्यूह, भेद कौशल समूह,
राक्षस-विरूद्ध-प्रत्यूह, क्रूद्ध-कपि-विषय हूह
विच्छुरित वहि-राजीवनयन-हत-लक्ष्य-बाण।
लोहित लोचन-रावण-मदमोचन-महीयान।''

चारो तरफ केवल एक ही लक्ष्य था भारत की स्वतंत्रता। गाँधी सत्य, अहिंसा एवं असहयोग के माध्यम से निरन्तर स्वतंत्रता की प्राप्ति की प्रेरणा प्रदान कर रहे थे। प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक विशाख, अजातशत्रु राज्यश्री, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी सभी में भारतभूमि की रक्षा और उसके प्रति घोर प्रेम एवं सम्मान की भावना प्रकट हुई है।

चन्द्रगुप्त में अलका भारतीय नवयुवकों को देश की रक्षा के लिए बलिदान देने का आह्वान करती है -

हिमादि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रत पुकारती
अमर्त्य वीरपुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ, सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है-बढ़े चलो, बढ़े चलो।

छायावादोत्तर काल में मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारी सिंह दिनकर, सियारामशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी ऐसे कवि हुए जिन्होंने समाज को एक नई दिशा दी। जनजागृति के साथ-साथ अंग्रेजो को खदेड़ने के लिए आम जनता को प्रेरित किया। हिन्दी की अवस्थिति को देख इनका मन व्यथित हो उठता है। ये चाहते है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा प्राप्त हो।

''अब सिद्ध हिन्दी ही यहाँ की राष्ट्रभाषा हो रही,
पर है वही सबसे अधिक साहित्य के हित रो रही।।

वह चाहते है कि हम विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करें और स्वदेशी का प्रयोग करें।

हमारी हिन्दी भाषा ने न केवल पूरे भारत को एकजुट किया बल्कि वह एक ऐसा माध्यम बनी जिसने एक छोटी सी चिनगारी को एक व्यापक राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, सामाजिक आन्दोलन का रूप दिया। जैसे-जैसे स्वतंत्रता संग्राम अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहा था, वैसे वैसे हिन्दी फलती-फूलती हुई अपने परिष्कृत रूप में सारे राष्ट्र को जोड़ने का काम कर रही थी। इस प्रकार स्वतंत्रता संग्राम में पूरे भारत को देश प्रेम एवं स्वतंत्रता आन्दोलन के एक सूत्र में बाँधने का काम हमारी मातृ भाषा हिन्दी ने बड़ी ही कुशलता के साथ किया।

छत्तीसगढ़ी साहित्य और काव्य का योगदान

वीर नारायण सिंहः- ब्रिटिश सत्ता से खिलाफत करते विद्रोह बिगुल फूंक दिया गया। यह सोनाखान विद्रोह के नाम से इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में अंकित हो गया।- जिसके आधार पर साहित्य रचे जाने लगे -

स्मिथ सेना लेके घेरिन सोना खान जमींदारी ल
सिंहगढ़ भइगे सिंहखान
फेर सोनाखान तपे आगी मं।

सच्चे अर्थो में छत्तीसगढ़ में स्वतंत्रता आंदोलन के सूत्रधार और महानायक के रूप में वीर नारायण सिंह प्रतिष्ठित है।

लोचन प्रसाद पांडेः- इन्होंने स्वराज आंदोलन और स्वदेशी अपनाओ और खादी अपनाओं पर आधारित कई गीत लिखे थे।

कुंजबिहारी चौबेः- कुंज बिहारी चौबे के बारे में बताया जाता है कि वे व्यक्ति रूप से क्रांतिकारी थे। इन्होंने क्रांतिकारी कविताएं लिखी इनका मानना था कि एक दिन स्वराज्य आएगा। इन्होने नवयुवकों को देश भक्ति और समाज सेवा के लिए प्रेरित किया।

नवयुवक उठ, बंधनों को तोड़
बहस और मुबाहिसे कर बंद।
ले न वाद-विवाद में आनंद
व्यर्थ बातों का बतंगड़ त्याग
बंधनों को काट हो स्वच्छंद।

कोदूराम दलितः- जन कवि के रूप में प्रख्यात थे इनकी कविताएं समूचे छत्तीसगढ़ पर अपनी अमीट छाप छोड़ती है। स्वतंत्रता आंदोलन के लिए कारगर इनकी कविताएं प्रभावी रही इनकी कविताएं भारतीय अस्मिता को जगाने वाला प्रमुख कविता है। गांधी जी के विचार से प्रभावित होकर बालकों के मन में स्वतंत्रता की अलख जगाने के लिए राउत दोहा लिख कर के प्रेरित किए-

हमर तिरंगा झंडा भैया, फहरावै असमान,
येखर शान रखे खातिर हम, देबो आपस परान।

उपसंहार

छत्तीसगढ़ में बहुत सारे कवि हुए है पं. सुंदरलाल शर्मा की छत्तीसगढ़ी दान लीला केवल स्वतंत्रता के लिए लोगों को जगाने के मकसद से लिखी गई थी।

छत्तीसगढ़ के लोकगीतो में महात्मा गांधी की चर्चा है। अंग्रेजो के खिलाफ जो आंदोलन चलाएं गए उसमें हिन्दी और साहित्य की महती भूमिका है। छत्तीसढ़ के कवि और साहित्यकार स्वतंत्रता आंदोलन के लिए लोगों को जागृत करने का कार्य किया। जन जाग्रन के बिना यह आंदोलन सफल नही हो सकता था।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में पूरा देश एकजुट होकर लड़ रहा था। देश में चहुओर साहित्यिक और बौद्धिक संघर्ष भी चल रहा था। कविताएं-कहानी और नाटक के माध्यम से लोगों को जागरूक करने का कार्य किया जा रहा था।

संदर्भः-

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास -डॉ. नागेन्द्र
2. भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परंपरा - रामविलास शर्मा पृ. 13-14
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नागेन्द्र पृष्ठ 442
4. चन्द्र गुप्त - जयशंकर प्रसाद पृष्ठ 164
5. भारत भारती - मैथलीशरण गुप्त पृष्ठ 131
6. छत्तीसगढ़ मित्र
7. छत्तीसगढ़ साहित्य की विकास यात्रा आरेख
8. कविता कोश

अमृता प्रीतम का वैचारिक और साहित्यिक दृष्टिकोण

ज्योति सक्सेना

पीएच.डी. शोधार्थी (हिन्दी विभाग), श्री रावतपुरा सरकार विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

सारांशः-

अमृता प्रीतम के साहित्य में भी वैचारिक और साहित्यिक दृष्टिकोण पाया जा सकता है। उनकी कहानियाँ विभिन्न सामाजिक मुद्दों, मानवीय संघर्षों, स्त्री सशक्तिकरण, परिवार के विभिन्न पहलुओं, और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के विषयों पर ध्यान केंद्रित करती हैं। अमृता प्रीतम की कहानियों में व्यक्तित्व विकास, स्वतंत्रता के महत्व, स्त्री और पुरुष के समानाधिकार, सामाजिक न्याय, और धार्मिक तत्वों का विचार किया जाता है। वे आपको समाज की विभिन्न प्रतिष्ठाओं, संघर्षों और संघर्षों के साथ रहने के तरीकों का अवलोकन करने के लिए प्रेरित करती हैं। उनकी उपन्यासों में साहित्यिक दृष्टिकोण के माध्यम से भी कथा के तत्वों, प्रतीकों, भाषा के उपयोग, चरित्र विकास और रचना के ढंग को व्यक्त किया जाता है। इससे पाठक को आनंद और समाधान मिलता है और कहानी के माध्यम से समस्याओं के समाधान ढूंढने के लिए प्रेरित होता है। अमृता प्रीतम साहित्यिक रूप से मजबूत होती हैं और विभिन्न सामाजिक विषयों को गहराई से छूने का प्रयास करती हैं। उनकी कहानियाँ विचारशीलता, संवेदनशीलता, और मानवीयता के साथ भरी होती हैं और पाठक को एक साहित्यिक और वैचारिक सफर प्रदान करती हैं। अमृता प्रीतम के साहित्य में वैचारिक और साहित्यिक दृष्टिकोण का संगम आपको अपने जीवन के बारे में सोचने, समस्याओं को समझने, समाज के मुद्दों को उठाने और मनोवैज्ञानिक तत्वों के अध्ययन के लिए प्रेरित करता है। इसके माध्यम से आप अपने विचारों को स्पष्ट करते हैं और समस्याओं का समाधान ढूंढने के लिए उत्साहित होते हैं।

प्रस्तावनाः-

हिंदी साहित्य में अमृता प्रीतम के कथासाहित्य का वैचारिक और साहित्यिक दृष्टिकोण का महत्वपूर्ण स्थान है। हिंदी साहित्य में विभिन्न दशाओं, समाजिक मुद्दों, आध्यात्मिकता, राष्ट्रीयता, मानवीयता और सामाजिक न्याय जैसे विषयों पर गहरा विचार किया जाता है। इसमें वैचारिक और साहित्यिक दृष्टिकोण का मेल मिलाप होता है और इससे आपको साहित्यिक रचनाओं में गंभीरता, समय का चित्रण और सामाजिक संदेश मिलता है।

अमृता प्रीतम साहित्य जगत् में एक ऐसी शख्सियत रही हैं जिनकी लेखनी ने भाषाओं की सीमाओं को तोड़ा और यह प्रमाणित किया कि लेखक की शैली भाषा, बोली देश की सीमाओं में बाँधी नहीं रहती। साहित्य में उनके द्वारा सृजित रचनाओं ने सभी वर्ग के पाठकों को आकर्षित किया। उनकी लेखन शैली पाठकों के कोमल मन पर सीधा प्रभाव छोडती है। अमृता प्रीतम हिन्दी साहित्य जगत में एक बहुचर्चित नाम है। साहित्य में उनके द्वारा सृजित रचनाओं ने पाठकों को काफी आकर्षित किया है।

हिंदी साहित्य में वैचारिक दृष्टिकोण के तहत विभिन्न लेखकों ने मानवीय जीवन, उसके अर्थ, प्रेम, समस्याएं और विचारों पर गहरा विचार किया है। यह साहित्यिक कार्य व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय स्तरों पर विचारशीलता को प्रकट करते हैं और आपको आपकी समस्याओं को समझने और समाधान करने के लिए प्रेरित करते हैं। साहित्यिक दृष्टिकोण के तहत हिंदी साहित्य में कवियों ने कविताओं, कहानियों, उपन्यासों और नाटकों के माध्यम से विभिन्न विषयों पर व्यापक चर्चा की है। इन साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से आपको कला, सौंदर्य, भाषा का उपयोग, लेखक की दृष्टि और रचना की संरचना के माध्यम से साहित्यिक उद्दीपक प्राप्त होता है।

अमृता प्रीतम ने बचपन में अनेक प्रकार के संघर्षों, अभावों और यात्राओं से ग्रस्त जीवन व्यतीत किया, परंतु सच्ची लगन, निष्ठा और अपने कार्य क्षेत्र में दृढ़ विश्वास ने उनमें विशिष्ट प्रतिभा को उभारा। अपने घर परिवार और समाज में व्याप्त विभिन्न परिस्थितियों को स्वयं देखा भोगा और उन परिस्थितियों को अपनी लेखनी द्वारा अपने मानस के अद्‌भुत विचारों को साहित्य में पिरोकर संप्रेषित किया। साहित्यकार के वैचारिकता किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है। साहित्यकार के वैचारिक व साहित्यिक दृष्टिकोण के निर्माण में उसके परिवारिक व समकालीन परिवेश का योगदान रहता है। इन दृष्टिकोणों की सहायता से हम, उन प्रेरणाओं को जान पाते हैं, जिससे एक साहित्यकार साहित्य सर्जन की ओर उन्मुख होता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि कई ऐसे महान व्यक्ति हुए हैं, जिन्होंने अपने विचारों की महानता के बल पर समाज की दिशा बदल दी। महात्मा गाँधी, स्वामी विवेकानंद, मार्क्स, लेनिन आदि इसके सफल उदाहरण है। अमृता प्रीतम इसका अपवाद नहीं है।

अमृता प्रीतम का सबसे पहला विद्रोह अपने घर से ही शुरू होता है। उनकी नानी रसोई की परछती पर तीन गिलास, अन्य बर्तनों से हटा कर रखती थी और उन गिलासों को परछती से तभी उतारती थी जब अमृता के पिता के मुसलमान दोस्त आते थे। उन्हें चाय या लस्सी पिलाने के बाद धोकर फिर वह रख दिया जाता था। जब अमृता ने यह सब देखा तो वह इस दकियानुसी विचार के खिलाफत में अपनी नानी से लड़ पड़ी। अमृता के शब्दों में "मैंने भी जिद पकड़ ली कि मैं किसी और बर्तन में न पानी पीऊगीं न दूध, चाय। पिताजी को इससे पहले पता नहीं था कि कुछ गिलास इस तरह अलग रखे जाते हैं।

उन्हें मालूम हुआ, तो उन्होंने मेरा साथ दिया और मेरा विद्रोह सफल हो गया, फिर बर्तन ना हिंदू रहे ना मुसलमान। उस पल न नानी जानती थी, न मैं कि बड़े होकर जिंदगी के कई बरस जिससे मैं इश्क करूँगी, वह उसी मजहब का होगा, जिस मजहब के लोगों के लिए घर के बर्तन भी अलग रख दिए जाते थे।''[1]

लेखिका के बाल मन पर सबसे ज्यादा प्रभाव उनके पिता का पड़ा जो बालका साधु के नाम से कविताएँ सुनाया करते थे। घर में माँ की मृत्यु के पश्चात् पिताजी के अलावा कोई भाई बहन नहीं था। उनके पिता सारी रात लिखते रहते और दिन में सो जाते थे। अमृता के शब्दों में "घर किताबों से भरा हुआ था। पिताजी के पास बहुत सी किताबें थी, हाथ की लिखी हुई, छपी हुई, पुराने ग्रंथों की, मैं थी और किताबें थी। सब किताबों में भी एक किताब थी। जिसके सफ़े खाली थे और मुझे लगा कि यह सफेद भरने हैं। माँ की मृत्यु के पश्चात् अमृता बिल्कुल अकेली हो गई थी। बातचीत करने के लिए घर में कोई नहीं था। पिता माँ की मृत्यु के पश्चात् जीवन से विरक्त हो गए थे पर वह चाहते थे कि अमृता कविताएँ लिखे। शब्दों में "काफिए रदीफ का हिसाब समझाकर मेरे पिता ने चाहा कि मैं लिखूँ, लिखती रही, मेरा ख़्याल है पिता की नजर में जितने भी अनचाही थी वह भी चाही बनाने के लिए।''[2]

सन् 1947 में जब देश का विभाजन हुआ, तो उस समय देश के जो हालात थे और औरत की जो स्थिति थी उससे उनके मन पर गहरा आघात लगा। देश विभाजन के समय सबसे ज्यादा शोषण औरतों का हुआ था। उन्होंने औरतों को कटते-मरते और बे-आबरू होते देखा, अमृता के शब्दों में "1947 में देश विभाजन हुआ, सामाजिक, राजनीतिक, और धार्मिक मूल्य काँच के बर्तनों की तरह टूट गए थे और उनकी किरचें लोगों के पैरों में बिछी हुई थी, ये किरचें मेरे पैरों में भी चुभी और माथे में भी। लेखिका ने विद्रोह अपनी नानी और पिता के राज में किया था। वही विद्रोह उनकी वैचारिकता बनकर उनके सम्पूर्ण साहित्य में देखने को मिलता है। इनकी वैचारिक से उनके पात्रों के विद्रोही तेवरों में देखने को मिलती है। जो समाज के दकियानूसी रिवाजों और मान्यताओं के खिलाफ खुलेआम सवाल करती है और समाज के दोहरे मापदंड वाले चेहरे पर तमाचा जड़ती हैं। अमृता के शब्दों में ''जब भी इर्द-गिर्द का सब कुछ, तन के कपड़ों की भाँति, रूह को तंग लगता है, होंठ जिंदगी की प्यास से खुश्क हो जाते हैं, आकाश के तारों को हाथ से छूने को जी करता है और कोई अन्याय चाहे दुनिया में किसी से और कहीं भी हो, उसके विरुद्ध मेरी साँसों में आग सुलग उठती हैं।''[3]

उनकी आत्मकथा 'रसीदी टिकट' को उनके व्यक्तित्व के मूल्यांकन का आधार बनाया जाता है। 'रसीदी टिकट' की चर्चा मूलत: उनके बेबाकपन, साहस और किसी चीज को न छिपाने की हिम्मत के कारण होती है। उनके कोमल अंतर्मन और लेखन में बेबाकी को समझने के लिए उनकी कविताओं और आत्मकथाओं दोनों पर बात करनी जरुरी है। उनके जीवन के सहयात्री, जिसे उन्होंने खुद समर्पण के सहयात्री कहा, इमरोज उनके जीवन का दस्तावेज का लेखा-जोखा 'मेरी हमदम मेरी दोस्त, पुस्तक में रखते हुए उनके व्यक्तित्व के बारे में बताते हैं- "अमृता का व्यक्तित्व दो भागों में विभक्त है। दिन में वह निडर, खुदमुखत्यार और बेफिक्र है, पर रात होते ही उनका व्यक्तितव सिमट जाता है। वह एक सामान्य स्त्री की भांति कमजोर, डरपोक और मोहताज बन जाता है।"[4] यह उनके जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू है लेकिन उनके जीवन संघर्ष, जीवनानुभव, अंतर्दृष्टि, लेखन में सामाजिक एंव व्यक्ति यथार्थ तथा नजरिए को समझने के लिए उनके उपन्यासों की ओर रुख करना जरुरी हो जाता है।

अमृता प्रीतम के उपन्यासों में उनके जीवन का दुख-दर्द, संघर्ष, विभाजन की त्रासदी, भोगे हुए यथार्थ, समकालीन साहित्यकारों से मिली तिक्ता का इतिहास है। उन्होंने अप्ने जीवन में अकेलापन और विभाजन की मार झेली थी, उसी जीवनानुभव ने उन्हें एक अंतर्दृष्टि दी जो उन्हें इस मुकाम पर ले आती है। उनेक जीवन की वेदना ने उन्हें जो यातना दी वही से वह द्रष्टा हो सकीं। उनेक साहित्य में एक साहित्यकार नहीं बल्कि उनका युग बोलता है। हम कह सकते हैं कि उनका लेखन छाती के दर्द की आग है और इस आग की परछाई नहीं है। उनके लेखन में एक पीड़ा है, ऐसी पीड़ा जो पाठकों को भीतर तक छू जाती है। उनके कथा पात्रों का आत्मसंघर्ष करना, समाज की कुरीतियों के खिलाफ लड़ना, आत्मसम्मान की रक्षा के संघर्ष करना, परिस्थितियों से समझौता न करने की जिद्द आदि पाठकों को अंदर कहीं छू जाती है और मन को झकझोर देती है।

अमृता प्रीतम की डायरी, उनकी आत्मकथा तथा विभिन्न समय दिए गए साक्षात्कारों के अध्ययन और विश्लेषण के साथ-साथ 'एक थी अनीता' उर्फ 'अनीता'. 'दिल्ली की गलियाँ', उर्फ 'कामिनी' 'चक न० छत्ती' उर्फ नागमणि उपन्यास की नायिकाओं क्रमश: अनीता, कामिनी, अलका के व्यक्तित्व, जीवन संघर्ष को सामने रख कर देखने से अमृता प्रीतम के जीवन और व्यक्तित्व को समझने में मदद मिल सकती है।

'दिल्ली की गलियाँ' उर्फ 'कामिनी' उपन्यास की नायिका कामिनी भी अमृता प्रीतम के व्यक्तितव का ही एक हिस्सा है। वह अपने जीवन में स्वतंत्रता चाहती है, नीजि जिंदगी में दखलअंदाजी से उसे काफी चिढ़ है। लेकिन उसके समकालीन साहित्यकारों ने उन्हें तरह-तरह से बदनाम करने की कोशिश की लेकिन उनके झूठ का सिक्का कहीं चल नहीं सका। अमृता प्रीतम इस संदर्भ में कहती हैं- "मेरे समकालीन बहुत से हैं, जो मुझे जितना दुख दे सकते हैं, देते हैं। मुझे हैरानी भी हुई, तकलीफ भी हुई। इस सब कुछ से उदासीन होने में बहुत समय लग गया।"[5]

इसी उपन्यास में अमृता प्रीतम ने देश की हालत, शिक्षा व्यवस्था, परिवार में टूट, नैतिक पतन जैसे गम्भीर प्रश्नों को भी उठाती हैं। देश कोआजादी मिले कुछ ही वर्ष हुए कि देश में लालफीताशाही, भ्रष्टाचार बढ़ने लगा है। कामिनी से एक सरदार जी जो आजादी की लड़ाई में आजाद हिंद फौज का हिस्सा था, देश की हालत और व्यवस्था के बारे में कहता है। वह बताता है कि कैसे आजादी की लड़ाई के समय उन्हें देश का भविष्य कहा जाता था और आज आजादी के बाद उनेक हाथ क्या लगा- सिर्फ नारे। वही आगे एक बच्चा अंधे भिखारी की कटोरी से रोटी चोरी करते पकड़ा जाता है तो वह कामिनी को बताता है कि कैसे उसकी सौतेली माँ उसे खाना नहीं देती, पिता पढ़ाई का खर्च नहीं देता।

कामिनी उस बच्चे को खाने के लिए पाँच रूपयें देती है। वह बच्चा एक रूपये का खाना खा कर बाकी के चार रूपये कामिनी को लौटा देता है। कामिनी इस पूरे घटनाक्रम के बारे मे सोचते हुए ऐसे सामाजिक प्रश्न उठाती है कि जिनके उत्तर आज भी हमारे लिए मुश्किल ही नहीं बल्कि बिना समाधान के रह जाते हैं- "पाँच मिनट पहले कामिनी को ख्याल आया कि वह बच्चे को किसी बालक सुधार स्कूल का पता लिख कर दे दे और अगर उसका बाप उसे

वहाँ छोड़ना मान जाए, तो वहाँ वह दाखिल हो जाए। पर साथ ही ख्याल आया था कि उस स्कूल में सिर्फ वे बच्चे दाखिल लिए जाते थे, जिनके माँ-बाप नहीं होते। इसलिए इस बच्चे को वहाँ दाखिला नहीं मिल सकता था। पर कामिनी को लगा कि वास्तव में इस बच्चे को किसी 'सुधार-स्कूल' में दाखिल होने की जरुरत नहीं थी- इसकी जरुरत तो उसके माँ-बाप को थी। पर किसी माँ-बाप के लिए कोई सुधार-स्कूल नहीं बना था।"[6]

अमृता जी ने देश के युवाओं के बीच बढ़ रहे नैतिक पतन पर चिंता जाहिर की है। जिस तरह बेरोजगारी के साथ-साथ देश में लालफीताशाही, नौकरशाही, भ्रष्ट तंत्र बढ़ रहा है, युवाओं में घुटन, कुंठा, बैचेनी, स्वार्थ भी बढ़ता जा रहा है। अमृता जी कहती हैं- युवा वर्ग के सामने आज जिंदगी नहीं है। वह जहाँ जाते हैं, वहाँ की रिश्वतखोरी, लालफीताशाही में ढ़ल जाना चाहते हैं। डरते है कि अगर उसमें ढ़ले नहीं तो शायद टूट जाएंगे। जब वे पाते है कि समाज में कोई आदर्श नही है, तो उनके अपने आदर्श भी चकनाचूर हो जाते हैं। वैसे भी जब तक बड़ों में आदर्श न हो, यानी माँ-बाप में न हो, गुरुओं में न हो, सियासत के नेताओं में न हो, पूरे माहौल में न हो, तो बच्चों में कैसे आ जाएंगे?"[7]

अमृता जी का लेखन वास्तव में उनके ही समय का नहीं बल्कि आज के समय का भी सच है। वे सिर्फ सामाजिक यथार्थ का चित्रण करके या नकारात्मकता को ही उजागर करके रूक नहीं जाती बल्कि वे हम सबसे अपील करती हैं समस्त बुराइयों को उखाड़ फेकने की। वे अपील करती हैं धर्म, जाति, समुदाय, हर तरह के भेद-भाव से ऊपर उठकर इंसानी रिश्तों को मजबूत करने की।

उपसंहार-

अमृता प्रीतम का वैचारिक और साहित्यिक दृष्टिकोण उनकी कविताओं और रचनाओं में गहराई से प्रकट होता है। उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से विभिन्न विषयों पर विचार किए हैं और राष्ट्रीयता, प्रेम, समाजिक न्याय, आध्यात्मिकता और मानवीय जीवन के मुद्दों पर गहरा विचार किया है। कविताओं में उन्होंने मानवीय संवेदना, जीवन की अवस्थाएं, प्रेम और संघर्ष के तत्वों को व्यक्त किया है। उन्होंने राष्ट्रीय विषयों पर भी अपनी कविताएं लिखी हैं, जो राष्ट्रीय एकता, स्वतंत्रता और गर्व के भाव को जीवंत करती हैं। उनकी कविताओं में सामाजिक न्याय, महिला सशक्तिकरण और समाज में सुधार की आवाज उठाई गई है। उनकी रचनाएं सामान्यतः सुंदरता, संवेदनशीलता, गहराई और साहित्यिकता से भरी होती हैं। उन्होंने विभिन्न भावनाओं, विचारों और जीवन की तत्वों को रचनाओं के माध्यम से प्रकट किया है। इसके अलावा, उनकी कविताओं में अक्सर विविधता, परिवर्तन, और विचारों के घुमाव और मनोवैज्ञानिकता के तत्व दिए जाते हैं। एक रूप में कहें तो, अमृता प्रीतम का वैचारिक और साहित्यिक दृष्टिकोण उनके लेखन में मानवीय अनुभवों को गहराई से अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है, साथ ही साहित्यिक रूपांतरण के माध्यम से समाज को संदेश पहुंचाता है।

संदर्भ सूची

1. प्रीतम, अमृता (1988) रसीदी टिकट, हिंदी पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली पृ. 10
2. अस्मा सलीम, श्याम सुशील (2008), मेरे साक्षात्कार अमृता प्रीतम, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 20
3. प्रीतम, अमृता (1988) रसीदी टिकट, हिंदी पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली पृ. 6
4. प्रीतम, अमृता (1988) रसीदी टिकट, हिंदी पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली पृ. 19
5. प्रीतम, अमृता (1994), दिल्ली की गलियाँ, हिंदी पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली पृ. 47
6. प्रीतम, अमृता (1994), दिल्ली की गलियाँ, हिंदी पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली पृ. 76
7. प्रीतम, अमृता (1997) उनके हस्ताक्षर, प्रकाशक, हिन्दी पॉकेट बुक्स, दिल्ली, पृ.स. -33

प्राचीन भारत में दुर्गों का महत्त्व

संदीप कुमार

(शोधार्थी) सल्तनत बहादुर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बदलापुर, जौनपुर, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

सारांश–

सिन्धु घाटी की सभ्यता और ऋग्वेद के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में सुरक्षात्मक साधनों में दुर्गा के महत्व से लोग परिचित हो चुके थे। ऋग्वेद में लौह दुर्ग के निर्माण की सुचना मिलती है। महाकाव्यों में भी दुर्गा और अनेकानेक शस्त्रास्त्रों के विषय में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है। कौटिल्य द्वारा उल्लिखित दुर्ग को मनु ने पुर कहा है। दुर्ग से किले का बोध होता है। लेकिन पुर के पर्याय के रूप में दुर्ग को किलाबंद राजधानी का बोधक होना चाहिये और यही अर्थ कौटिल्य के दुर्गविधान और दुर्ग–निवेश नामक दो पृथक प्रकरणों से भी निकाला जा सकता है। दुर्ग विधान में किले के निर्माण और दुर्ग निवेश में राजधानी की योजना और विन्यास बताया गया है। शांतिपर्व में जनपद और पुर का भेद किया गया है। जनपद से देहात का और पुर से राजधानी का बोध होता है।

प्रमुखतया दुर्ग निर्माण का मूल कारण शत्रु सेना से सुरक्षा था। मनु ने लिखा है कि दुर्ग शत्रु राज्य की रक्षा का प्रमुख आधार है। दुर्ग राज्य की सुरक्षा तो प्रदान करता ही है और उसकी प्रजा, सम्पत्ति एवं मित्रों को भी आश्रय प्रदान करता है। वह आक्रमण करने वाली सेनाओं के लिये एक सक्षम अवरोधी प्रदान करता है। ऐसा ही मत कौटिल्य का भी है। बृहस्पति ने भी इसकी पुष्टि की है। मनु ने तो दुर्ग के महत्व को सैनिक तुलना करके भी स्पष्ट कर दिया है। उसका कथन है कि दुर्ग परिखा पर स्थित एक धनुर्धारी एक सौ सैनिकों तथा एक सौ धनुर्धारी सैनिक दस हजार सैनिकों का मुकाबला कर सकते हैं। शुक्र भी इसी मत से सहमत है। युक्ति कल्पतरु में स्पष्ट किया गया है कि अपने अजेय दृढ़ दुर्ग के कारण राजा थोड़ी सी भी सेना सहित शक्तिशाली बन जाता है। इसी कारण प्राचीन काल से ही दुर्गा का सदैव महत्व रहा है। रामायण में अयोध्या की राजधानी और लंका की राजधानी को दुर्गों द्वारा सुदृढ़ किया गया था। शांति पर्व में अपने से अधिक बलवान शत्रु के द्वारा आक्रमण कर दिये जाने पर प्रतिरक्षात्मक युद्ध (किले में रह कर) करने को श्रेयस्कर बताया गया है। वनपर्व में कहा गया है कि शाल्व के द्वारा द्वारका पर आक्रमण कर देने पर इसी प्रकार की प्रतिरक्षा की सभी तैयारियां पूरी कर लेने पर भी यादवों ने दुर्ग से बाहर निकल कर शत्रु सेना से टक्कर लेकर उसे परास्त करके खदेड़ दिया। इस प्रकार के अनेक युद्धों और प्रतिरक्षात्मक तैयारियों के दर्शनोंके साथ ही साथ दुर्गों के महत्व पर बल देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाभारत काल में दुर्ग या राजधानी राज्य का स्नायुकेन्द्र माना जाता था। काणे ने इसे राज्य की घुरी बतलाया है। जैसा कि अन्यत्र कहा गया है कि भारत में सुरक्षा के उद्देश्य से दुर्गा का निर्माण बहुत प्राचीन काल से होने लगा था। मोहनजोदड़ों और हड़प्पा में भी दुर्गा के ध्वंसावशेषों के मिलने की पुष्टि होती है। आर्य सुरक्षा पद्धति में दुर्ग निर्माण एक अनिवार्य साधन बन गया था। ऋग्वेद में बहुधा नगरों का उल्लेख हुआ है। इन नगरों से तात्पर्य उन दुर्गों से है जहां आर्य सुरक्षित निवास करते थे। कहा गया है कि इन्द्र ने पुरुकुत्सु के सात नगर ध्वस्त कर डाले। इन्द्र ने दस्युओं को मारा और उनके अयस के नगरों को नष्ट कर डाला। तैतिरीय संहिता' शतपथ ब्राह्मण में अनेक नगरों का उल्लेख है। ऋग्वेद में दस्यु राजाओं के दुगों का उल्लेख अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है। दुर्ग ईंट तथा पत्थर से बनाये जाते थे। कतिपय दुग को अयसी भी कहा गया है। ये सभी वे दुर्ग थे और इनमें से कुछ शत् स्तम्भयुक्त थे। इससे स्पष्ट है कि ऋग्वेद काल में भी प्राकारयुक्त दुर्ग बनने लगे थे।

आर्यों ने उत्तर वैदिक काल में किलों के निर्माण और मरम्मत को और ध्यान देना आरम्भ कर दिया था। रामायण में चार प्रकार के दुर्गा का उल्लेख मिलता है 10 सामान्यत: शासक अपने सभी दुर्गा को धन–धान्य, अस्त्र–शस्त्र, जल, मंत्र, शिल्पी 1 तथा धनुर्धर सैनिकों से भरे रखते थे11। रामायण से दुर्गा की विशेषताओं पर तोनहीं लेकिन उनकी निर्माण शैली पर प्रकाश पड़ता है। अयोध्याश लंका किस्किन्धा की राजधानियों की किलेबन्दी बड़ी सावधानी से की गयी थी। रामायण में लंका के सात एवं आठ मंजिलों वाले प्रासादों एवं पच्चीकारी से युक्त फर्शो का उल्लेख निलता है।

महाभारत में दुगों के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। दुर्ग ही राष्ट्र की रक्षा का प्रधान आधार है। यदि दुर्ग शत्रु से बचा लिया जाय तो विजित राष्ट्र भी पुन: प्राप्त किया जा सकता है। एक स्थल पर आया है कि. सेना के एक अंग से भी सम्पन्न शत्रु दुर्ग का आश्रय लेकर समृद्धिशाली राजा के सम्पूर्ण देश को सन्तप्त कर सकता है। दुर्ग ही राज्य के लिये सर्वश्रेष्ठ आश्रय था क्योंकि राजा शत्रुओं से सन्तप्त होने पर दुर्गों में ही शरण लेते थे।

रामायण की तरह महाभारत में भी आया है कि सैनिकों के अतिरिक्त धन धान्य तथा युद्ध–सामग्री का पर्याप्त संचयन दुगों में अत्यन्त आवश्यक है। जिससे आपत्तिकाल के समय शरण लेने पर राज्य के लोगों को किसी प्रकार की कमी न महसूस हो। इस प्रकार दुर्ग राज्य की रक्षात्मक शक्ति के प्रतीक थे। यही कारण है कि देश में दुर्ग निर्माणप्रवृत्ति को बड़ा प्रोत्साहन मिला। महाभारत में इन्दप्रस्थ, द्वारिकापुरी, लंकापुरी, दुपदनगर, रेवतक आदि के दुगों के उल्लेख मिलते हैं। इससे विदित होता है कि, दुर्ग की रक्षा के लिये सर्व प्रथम जल से भरी परिखा का निर्माणकरवाया जाता था और उसे मीन, नक्र आदि के द्वारा तथा कील आदि गड़वाकर दुर्गम बना दिया जाता था। परिखा को पार करने के लिये सेतु बने रहते थे जो शत्रु के आक्रमण के समय तोड़ दिये जाते थे। प्राकार के भीतर गोपुर होता था, जिसकी रक्षा के लिये यंत्र, शतार्ध्न आदि मधा–स्थान रखे जाते थे।

सुरक्षित दुर्ग राज्य और राजा की सुरक्षा के लिये महत्त्वपूर्ण थे। दुर्गा की देखभाल तथा दुर्ग-रक्षा राजा का प्रधान कर्तव्य था। कृष्ण ने कुशस्थली दुर्ग का ऐसा संस्कार कराया था कि उसमें प्रवेश करना देवताओं के लिये भी दुर्लभ था। उस दुर्ग में रहकर स्त्रियां भी युद्ध कर सकती थीं, वृष्णिकुल के महारथियों की तो बात ही क्या? इस संदर्भ से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में दुर्ग की सुरक्षा का बड़ा महत्त्व था।जातकों, में भी नगरों के प्राकार द्वार आदि का वर्णन मिलता है। छठीं सदी ई.पू. में राजगृह में एक सुदृढ़ दुर्ग था। जब सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया तब भारत में अनेक स्थानों पर दुर्ग बने हुये थे। उनमें से मस्सग, वजीरा, और नस आदि दुर्ग इतने सुदृढ़ थे कि सिकन्दर जैसे विजेता को भी कठिनाई का सामना करना पड़ा था। मैगस्थनीज ने मौर्य राजधानी पाटलिपुत्र की रक्षा-व्यवस्था का विस्तृत विवरण दिया है। यह रक्षा व्यवस्था नगर के दुर्गीकरण के आधार पर की गई थी।

कौटिल्य ने दुर्गो की महत्ता पर प्रकाश डालते हुये लिखा है कि, यदि दुर्ग न हो तो कोष पर शत्रु सुगमता से अपना अधिकार कर लेता है। युद्ध के अवसरपर शत्रु की पराजय के लिये दुर्ग का ही आश्रय लेना होता है। वहीं से सैन्य शक्ति का प्रयोग भी भली-भांति किया जा सकता है। जिनका दुर्ग सुदृढ़ हो, उन्हें परास्त करना भी सुगम होता है। कौटिल्य ने दुर्गा के चार प्रकार को बताते हुये लिखा है कि, नदी और पर्वत दुर्ग आपत्तिकाल में जनपद की रक्षा के उपयोग में आते हैं। घान्वन. (मरुभूमि-दुर्ग) और वन-दुर्ग जंगलात के रक्षकों की सुरक्षा के लिये उपयोगी होते हैं अवसर पड़ने पर राजा भी भागकर इन दुर्गा में शरण ले सकता है। मनु ने गिरि-दुर्ग को सर्वश्रेष्ठ माना है। कामन्दक के अनुसार राजा की विशाल सीमा वाला, गहरी खाई, ऊंची चहारदिवारी व छज्जों से सम्पन्न, पुर के समीप, पर्वत, नदी तथा घने वन के समीप, जल, धन, धान्य से भरा हुआ, समय को सहने वाला बड़ा दुर्ग बनाना चाहिये। दुर्ग से रहित राजा पवन से प्रेरित मेघों के टुकड़ों के समान छिन्न-भिन्न हो जाता है।

रामायण, महाभारत, मनु', मत्स्य पुराण, कामन्दक, मानसोल्लास 10, शुक्र 11, विष्णुधर्मांतर 12 के अनुसार दुर्ग में पर्याप्त आयुध, अन्न, औषधि, धन, घोडे, हाथी, मारवाडी पशु, ब्राह्मण, शिल्पकार, मशीनें, (जो सैकड़ों लोगों को एक बार से मारती हैं) जल, एवं मुसा आदि सामान होने चाहिये। उपरोक्त विचारकों को इस प्रकारके सुझाव कि किलों में जीवन की आवश्यकता तथा सुरक्षा सम्बन्धी सामग्री के भंडार होने से आपत्तिकाल में शत्रु से घिर जाने पर किलों के भीतर से शत्रु का प्रतिरोध किया जा सकता है- सत्य प्रतीत होता है क्योंकि किले राज्य के लिये मजबूत सुरक्षात्मक साधन थे। नीतिवाक्यामृत का कथन है कि दुर्ग में गुप्त सुरंग होनी चाहिये जिससे गुप्त रूप से निकाला जा सके, नहीं तो वह बन्दीगृह जैसा हो जायेगा।

दुर्गों का निर्माण सुरक्षा के उद्देश्य से किया जाता था। प्रबल शत्रु का आक्रमण होने पर राजा अपने पुरवासियों सहित सभी प्रकार की खाद्य सामग्री एकत्र करके दुर्ग के अन्दर ही शरण लेता था। दुर्गों की सुरक्षा हेतु कुछ उपायों को काम में लाया जाता था। खाई में मगर, सर्प आदि विषैले जानवर पाले जाते थे। खाई की तली में कुछ नुकीली वस्तुयें भी लगा दी जाती थीं? जिससे शत्रु उसको पार न कर सकें। दुर्ग की अट्टालिकायें (परकोटे) उसके चारों और इस प्रकार से बने होते थे ताकि उस पर बैठा सैनिक चारों ओर देख सके और सभी दिशाओं से बाण वर्षा कर सके तथा साथ ही साथ वह शत्रु के प्रहार से भी बचा रह सके। सैनिकों के अन्यान्य शस्त्रास्त्रों के अतिरिक्त किलों की सुरक्षा के लिये कुछ स्थिर यंत्रों का प्रयोग किया जाता था जो दीवारों ओर द्वारों पर लगा दिये जाते थे, जिससे शत्रु के ऊपर पत्थर फेंका जाता था। किलों की सुरक्षा के लिये कुछ आग्नेयास्त्रों का भी उल्लेख मिलता है। उसके बाहर चारों और कई मील की दूरी तक गड्ढे खाई, कुये आदि खोद दिये जाते थे, जिससे आने वाला शत्रु उसमें गिर जाये किलों के बाहर चारों ओर फैली घास-फूस या लकड़ी आदि में आग लगा दी जाती थी जिससे शत्रु दुर्ग के निकट आ सके ।दुर्गों पर विजय प्राप्त करने के लिए कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में उपजाप (बहकाना), अपसर्प (गुप्तचरों द्वारा शत्रुनाश), वामन (विष प्रयोग), पर्युपासन (घेरा डालना) और अयमर्द (विध्वंस) नामक पांच विधियां बतलायी है।

कौटिल्य ने इस बात के लिए सचेत किया है कि शत्रु के दुर्ग पर विजय प्राप्त करने के लिए बिना किसी निश्चित योजना के आक्रमण नहीं करना चाहिए। अपितु इस कार्य के लिए एक सुनिश्चित ढंग अपनाना चाहिए। विजयाभिलाषी को चाहिए कि यह आक्रमण से पूर्व शत्रु के दुर्ग में विविध उपायों द्वारा अपने गुप्तचर भेजें। उसके अधिकारियों को घूस आदि देकर अपनी ओर मिला लें। वह शत्रु के कोष सैन्य अमात्य, फसल आदि का नाश करें। जब सभी परिस्थितियां अपने अनुकूल हो और शत्रु का राज्य बीमारी, दुर्भिक्ष आदि से पीड़ित होकर विपत्ति में फंसा हो, ऐसी अवस्था में उसके दुर्ग पर घेरा डाल देना चाहिए।

विजयाभिलाषी जब यह समझ ले कि वह सब प्रकार की युद्धोपयोगी सामग्री से सम्पन्न है और सभी प्रकार का कार्य कर सकने वाले मनुष्य उसके पास हैं तथा दूसरी ओर उसका शत्रु व्याधिग्रस्त है, उसकी प्रकृतियां धोखा देने वाली हैं "दुर्ग आदि की मरम्मत और धन-धान्य आदि का संग्रह भी उसने नहीं किया है, मित्र सहायता की भी सम्भावनाएं नहीं हैं, अथवा सम्भव होने पर भी अभी वह संधि करने में ही फंसा हुआ है, ऐसे शत्रु पर तत्काल आक्रमण कर देना चाहिए। जब देखें कि शत्रु के दुर्ग में स्वत: आग लग गयी है या सब लोग उत्सवों में व्यक्त हैं या खेल-तमाशों तथा चांदमारी में आसक्त हैं या शराबियों ने कोई उपद्रव खड़ा कर दिया है या लगातार युद्ध से शत्रु सेना थक गयी है या शत्रु पक्ष के बहुत से लोग जख्मी हो गये हैं। या रातभर जागने के कारण लोग थककर सोये हैं या नदी में बाढ़ आयी है या तुषारापात हुआ है, ऐसी अवस्था में शत्रु पर एकाएक धावा बोल देना चाहिए।

इस प्रकार कौटिल्य की भांति महर्षि वाल्मीकि ने भी किसी दुर्ग पर आक्रमण करने से पूर्व गुप्तचरों द्वारा शत्रु की सेना एवं उसके सुरक्षा साधनों को नष्ट कराने का समर्थन किया है। कौटिल्य ने सावधान किया है कि शत्रु के दुर्ग पर घेरा डालने से पूर्व विजिगीषु को अपनी छावनी और मार्ग की रक्षा करनी चाहिए। तत्पश्चात् दुर्ग की परिखा और प्राचीर की स्थिति के अनुसार उसके चारों ओर घेरा डालकर शत्रु के पानी में विष मिला दें और परिखाओं को मिट्टी से पाटकर तथा प्राचीरों और अहालको में सुरंग बनाकर दुर्ग पर आक्रमण कर देना चाहिए।

कौटिल्य के अनुसार दुर्ग के जिस भाग में रक्षा का अधिक प्रबन्ध हो, उसे विध्वंसकों द्वारा नष्ट किया जाना चाहिए। रक्षकों को छल-कपट से दुर्ग के बाहर निकालकर उन पर घोड़ों से भीषण आक्रमण किया जाय। दुर्गा की प्राचीरों, मुख्यद्वार एवं अड्ड्गालको आदि को धराशायी करने में हाथियों का विशेष योगदान होता था। कौटिल्य ने इस प्रकार के हाथियों को नागरायण (नगर को नष्ट करने वाला) कोटि में रखा है। ये बलिष्ठ हाथी ही शत्रु के दुर्गम सैन्य-व्यूह और स्कन्धावार का गर्दन करने में प्रमुख रूप से उपयोगी सिद्ध होते थे। यही कारण है कि कौटिल्य ने युद्धों में राजा की विजय को मुख्यत: हाथियों पर निर्भर माना है।

जब युद्ध क्षेत्र में शत्रु की सेना अधिक पराक्रमी प्रतीत होने लगे तथ साम, दाम, आदि उपायों से विजय प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए। सोमदेव का भी मत हैं कि प्रत्यक्ष युद्ध द्वारा शत्रु के दुर्ग पर विजय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन होता है। अत: विजयाभिलाषी को शत्रु के दुर्ग पर साम, दाम और भेद उपायों के सम्यक प्रयोग द्वारा विजय प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। दुर्ग के चारों ओर घरा डालने से, खन्दकों में छिपकर जल तथा तीक्ष्ण (कुशल) गुप्तचरा के प्रयोग आदि अपनों का आश्रय लेने से शत्रु के दुर्गे में प्रवेश सुगन बतलाया गया है।

कौटिल्य का मत है कि जब उपर्युक्त कोई उपाय न चलें और किसी भी प्रकार से दुर्ग पर विजय प्राप्त करना संभव न हो रहा हो, तब अन्तत: दुर्ग मेंआग लगा देनी चाहिए। इसके लिए बाज, कौवा, नप्ता (मुर्गे के समान पक्षी), गिद्ध, तोता मैना उल्लू और कबूतर आदि पक्षियों को पकड़कर उनकी पूंछ में आग लगाने वाली औषधियों को मलकर उन्हें शत्रु के दुर्ग में छोड़ दिया जाना चाहिए ताकि वहां आग लग जाय शत्रु-दुर्ग के बाहर खड़ी सेना को चाहिए कि यह अपनी छावनी से शत्रु के दुर्ग पर आग फेंकने के लिए ध्वज, धनुष-बाण उठाये हुए सैनिक मानुष-अग्नि (मारे हुए मनुष्य की हड्डी को चितकबरे बांस के साथ रगड़ने से उत्पन्न हुई आग के द्वारा शत्रु-दुर्ग में आग लगा दें या पहरेदार ही इस कार्य को करें दुर्ग के अन्दर अस्तपाल या दुर्गपाल के वेश में रहने वाले गुप्तचरों को चाहिए कि वे नेवला बन्दर बिल्ली और कुत्ते की पूंछ में ज्वलनशील औषधियों को लगाकर उन्हें शत्रु के उन भवनों में छोड़ दें, जहा दुर्ग रक्षा सम्बन्धी सामग्री रखी हो।

यद्यपि विजय प्राप्त करने के लिए अग्नि के प्रयोग का समर्थन कीय रामायण में भी किया गया है, जैसा कि सीता की खोज के समय हनुमान द्वारा लकापुरी की जला देने से स्पष्ट है, किन्तु कौटिल्य ने युद्ध के प्रारम्भ में इसके प्रयोग को अचेत नहीं ठहराया है। उनके अनुसार इस युक्ति का प्रयोग सबसे बाद में ही करना चाहिए क्योंकि अग्निदाह से असंख्य प्राणियों धन-धान्य, पशुओं एवं अनेक प्रकार के द्रव्यों का नाश हो जाता है।

यदि उपर्युक्त सभी उपायों के बाद भी शत्रु आत्मसमर्पण न करे और दुर्ग की प्राचीर टूटने या आग लगने का कोई भी उपाय दृष्टिगोचर हो रहा हो तो आक्रमणकारी को शत्रु से मित्रता करके वस्तुस्थिति का सूक्ष्मतापूर्वक निरीक्षण करते हुए उसकी कमजोरी को ताडना चाहिए और उचित अवसर मिलते ही अचानक आक्रमण करके दुर्ग हस्तगत कर लेना चाहिए। शत्रु द्वारा आक्रमण किये जाने पर अथवा दुर्ग को घेर लेने पर कौटिल्य ने उसकी सुरक्षा के अनेक उपाय बतलाये हैं। उनके अनुसार शत्रु के शिविर के चारों और एक योजन तक की घास, लकड़ी आदि को जला दिया जाय, पानी पीने की टंकियों में विष मिलाकर जल को दूषित कर दिया जाय और जलाशयों को तुड़वाकर उनका जल बाहर निकाल दिया जाय। इस प्रकार घात, लकड़ी और जल के अमाय में शत्रु सेना को बड़ी असुविधा का सामना करना पड़ेगा तथा उसके लिये दुर्ग को घरे रहकर अधिक समय तक रुक पाना संभय नहीं हो सकेगा।

कौटिल्य का मत है कि शत्रु के सैनिक मार्गो पर अन्धकूप, घास-फूस से ढके गड्ढे बनवाये जाने चाहिए तथा जगह-जगह पर कांटेदार जंजीरें भी बिछा दी जानी चाहिए। जहां शत्रु वहरा हो यहां एक बहुमुखी सुरंग बनवाकर शत्रु के प्रमुख व्यक्तियों को फंसा दिया जाय तथा अवसर मिलने पर शत्रु को भी उसी में फंसा दिया जाय। कदाचित् शत्रु ही विजिगीषु के शिविर (दुर्ग) में आने के लिए सुरंग- बनवाये तो वह चारों ओर इतनी गहरी खाई खुदवायें कि उससे जल निकल आये अथवा प्राकार के अनुसार उसके चारों ओर कूपशालाएं बनवा दी जायें। जिन-जिन स्थानों पर सुरंग बनवाये जाने का सन्देह हो, वहां खाली घड़े तथा कासे के बर्तनोंके छोटे-छोटे टुकड़े रखा दिये जाने चाहिए, जिससे सुरंग खोदने का पता लग जाय। सुरंगपथ का पता हो जाने पर तत्काल दूसरी सुरंग खुदवा देनी चाहिए अथवा बीच में उसे फोड़कर उसके अन्दर विषैली गैस या जल छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार सुरंग द्वारा शत्रु के दुर्ग में प्रवेश करने की संभावना कम हो जाती है।

के आक्रमणों से छिन्न-भिन्न हो जाता है। मनुस्मृति के अनुसार जिस प्रकार (धन्व आदि) दुर्गा में रहने वाले मनुष्य अपने शत्रु से नहीं मारे जा सकते, उसी प्रकार दुर्ग में निवास करने वाले राजा को भी उसके शत्रु नहीं मार सकते हैं। किले में रहने वाला एक धनुर्धारी (योद्धा) सौ योद्धाओं से और सौ धनुर्धारी योद्धा दस हजार योद्धाओं से लड़ सकते हैं। इसी कारण राजनीतिज्ञ दुर्गा की प्रशंसा करते हैं। दुर्गा के महत्व को स्वीकार करते हुए ही मनु ने पुर (राजधानी या दुर्ग) को राष्ट्र के पूर्व रखा है। याज्ञवल्क्य का उल्लेख है कि दुर्ग के राजा की सुरक्षा और प्रजा एवं कोश की रक्षा होती है। इसी प्रकार राजनीतिप्रकाश में बृहस्पति ने कहा है कि अपनी-अपनी रानियों, प्रजा एवं एकत्र की हुई सम्पत्ति की रक्षा के लिए राजा को प्राकारों एवं द्वार से युक्त दुर्ग का निर्माण करना चाहिए। सोमदेवसूरि के मतानुसार दुर्गहीन देश शत्रु द्वारा अवश्य जीत लिया जाता है। दुर्गरहित राजा उसी प्रकार आपदग्रस्त रहता है, जिस प्रकार समुद्र के मध्य में जहाज से भटका हुआ पक्षी आपदग्रस्त होता है। इसीलिए राजा एवं राज्य के कल्याण हेतु दुर्ग अत्यन्त आवश्यक बतलाया गया है।

उपर्युक्त प्राय: सभी राजनीतिशास्त्र के प्रणेताओं ने दुर्गा के महत्व को स्वीकार करते हुए उन्हें राष्ट्र, राजा प्रजा कोश और सेना की सुरक्षा के लिए उपयोगी बतलाया है, क्योंकि दुर्ग में सुरक्षित निर्बल राजा को भी शत्रु की शक्ति के आगे आसानी से नहीं झुकाया जा सकता। भारतीय समाज में सुरक्षा की दृष्टि से दुर्गों का योगदान अत्यन्त प्राचीनकाल से ही रहा है। आदिकालीन मानव हिंसक पशुओं, लुटेरों तथा बाढ आदि से अपने भवनों और ग्रामों की रक्षा के लिए उन्हें मिट्टी की दीवार अथवा लकड़ी की बाड़ों से घेर देते थे। कालान्तर में नगर सभ्यता और राजनीतिक सत्ता के विकास के साथ-साथ उन्होंने अपने नगरों और राजधानियों को भी परिखा, प्राकार आदि से सन्निवेष्टित करना प्रारम्भ कर दिया। भारत की राजनीतिक एवं भौगोलिक स्थिति तथा प्राचीन युद्ध-परम्पराओं के कारण प्राय: सभी राजाओं के लिए अपनी राजधानियों, नगरों और प्रासादों को दुर्ग से सुरक्षित करना अनिवार्य हो गया। राजधानियों का सुरक्षित रहना इसलिए भी अधिक आवश्यक था, क्योंकि वही राष्ट्र का केन्द्रबिन्दु होती थी और वहीं सारा भोज्य पदार्थ, कोश, राजा तथा प्रमुख सैन्यबल एकत्रित रहता था। इसके अतिरिक्त प्राचीनकाल में ऐसे द्रुतगामी संचार साधन उपलब्ध नहीं थे, जिनसे शासक केन्द्र या राजधानी में रहते हुए राज्य के विस्तृत भू-भाग पर शान्ति एवं सुरक्षा की व्यवस्था कर सकता। अत: बाह्य आक्रमणों, आन्तरिक विद्रोहों, उपद्रवों अराजकता एवं लूटमार आदि से बचने के लिए विभिन्न नगरों तथा ग्रामों को भी अपनी सुरक्षा का उत्तरदायित्व स्वयं ही वहन करना पड़ता था। इस प्रकार प्राय: प्रत्येक महत्वपूर्ण स्थल की सुरक्षा के लिए दुर्म की अनिवार्यता, उपयोगिता स्वीकार कर ली गयी थी और हवाई आक्रमणों से पूर्व लगभग अठारहवी शताब्दी ई. के अन्त तक भारतीय युद्धों के इतिहास में इनकी उल्लेखनीय भूमिका रही।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

- अग्निपुराण सरस्वती प्रेस, कलकत्ता, 1882; आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज, पूना, 1900.
- गरुणपुराण कलकत्ता, 1890; चौखम्भा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, 1964.
- देवीपुराण डॉ. मण्डनमिश्र (सं.) श्री लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय विद्यालय 1/6- शान्तिनिकेतन, नई दिल्ली, 1976.
- पद्मपुराण गुरुमण्डल ग्रन्थमाला सं. 18, कलकत्ता, 1957-59.
- ब्रह्माण्डपुराण श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, शक सं. 1857.
- ब्रह्मवैवर्तपुराण तारिणीश झा (सं.), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग,
- अपराजित (भुवनदेव) पृच्छा गायकवाड़ ओरियन्टल सिरीज, बड़ौदा, 1950.
- देवतामूर्तिप्रकरण तथा रूपमण्डल (सूत्रधार मण्डन) कलकत्ता-संस्कृत-ग्रन्थमाला -12. कलकत्ता, 1936.
- प्रतिमा-लक्षण (भारतीय वायुशास्त्र, ग्रन्थ-4, भाग-2) दिव्जेंद्रा नाथ शुक्ल (सं.), लखनऊ, सं. 2014.
- प्रमाणमंजरी (सूत्रधार मल्ल) विश्वविद्यालय ओरियन्टल सिरीज, सं. 3, बड़ौदा, 1966.
- प्रासादमण्डन (सूत्रधार मंडल) कश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली- 72, कश्मीर श्रीनगर, 1974
- अमरकोश (रामस्वरूप कृत भाषा टीका सहित) श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1905, हरदत्त शर्मा (सं.), पूना 1941,
- अर्थशास्त्र (कौटिलीय) आर. शाम शास्त्री (सं.), मैसूर, 1919, (हिन्दी अनु.) वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1962.
- कामन्दकीयनीति सार सोमदेवसूरि, अनुवादक सुन्दरलाल शास्त्री, वाराणसी, 1976.
- कामसूत्र (वात्स्यायन) निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।
- कुमारसम्भव (कालिदास) वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पं. सीकर (सं.) बम्बई, 1919.
- चतुर्व्वर्गचिन्तामणि (हमाद्रि): व्रत खण्ड, वि.इ. कलकत्ता, सं. 1934,
- मनुस्मृति गोपालशास्त्री नेने (सं.), बनारस, 1935, जे. जाली. लन्दन, 1887.
- महाभाष्य (पंतजलि) निर्णयसागर प्रेस, बम्बई. 1935.
- मेघदूत (कालिदास) आर.बी. कृष्णमचारी (सं.), श्री रंगम, 1909
- याज्ञवल्क्यस्मृति नारायण स्वामी खिस्ते (स.) बनारस, 1924

एटा जनपद में भूमि उपयोग का परिपवर्तनशील अध्ययन, 1995-1996 एवं 2015-16

डॉ० नवनीत शर्मा

अस्थायी प्रवक्ता, एन.आर.ई.सी. कॉलेज, खुर्जा (बुलन्दशहर)

डॉ० रामदास सिंह

स० अ०, पूर्व माध्यमिक विद्यालय, मुहब्बतपुर लभौआ बरनाहल, मैनपुरी

प्रस्तावना- भूमि एक प्रमुख आधारभूत प्राकृतिक संसाधन है, जिस पर समस्त आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्य सम्पन्न होते हैं। भूमि आदिकाल से लेकर अद्यतन काल तक निरन्तर मानवीय इतिहास को प्रोत्साह देती रही है। देश के किसी भू-भाग में रहने वाला प्रत्येक मानव अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति भूमि के विभिन्न उपयोगों द्वारा प्राप्त करता है वास्तव में भूमि उपयोग मानव पर्यावरण एवं प्राकृतिक सम्बन्धों का वर्णन है, जो कि भौतिक जलवायुविक और मिट्टी सम्बन्धी परिस्थितियों के साथ मानव क्रिया-कलापों, जो भूमि को प्रवाहित करते हैं, से सीधे सम्बन्धित है। भूमि उपयोग वह अध्ययन है जिसमें मानव द्वारा उत्पादित वस्तु के साथ-साथ मानवीय क्रियाकलापों का अध्ययन है। प्रकृति में उपलब्ध सभी संसाधनों में भूमि सबसे शक्तिशाली एवं उत्पादक कारक है। मानवीय सभ्यता और उसकी आवश्यकताओं में परिवर्तन के अनुसार भूमि उपयोग के स्वरूप में भी परिवर्तित होते रहे हैं, जिसमें परोक्ष रूप से कृषि विकास की आवश्यकताऐं अंकित होती रहती है।

भूमि उपयोग तथा भूमि प्रयोग में सूक्ष्म अन्तर है, दोनों शब्द दो भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के सूचक है। प्रयोग शब्द संरक्षण एवं अवधि दोनों रूपों में जबकि उपयोग केवल अवधि के सन्दर्भ में प्रयुक्त होता है। दूसरे शब्दों में ''मानव अपनी आवश्यकतानुसार भूमि के उचित एवं अनुचित उपयोग का विश्लेषण करता है तथा लाभप्रद भूमि उपयोग को अपनाता है, ऐसी व्यवस्था में भूमि उपयोग शब्द का प्रयोग उचित होगा।'' अत: भूमि उपयोग प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक उपादानों के संयोग का प्रतिफल है। मानव अपने अविरल परिश्रम से भूमि उपयोग में वृद्धि करता है।

उपर्युक्त विश्लेषणों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि, भूमि के प्रयोग एवं उपयोग में अन्तर है। दोनों ही शब्द भमि की दो अवस्थाओं के लिए प्रयुक्त होते हैं। इनके अन्तर को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है- 'भूमि प्रयोग' का अभिप्राय उस भू-भाग से है जो प्रकृति प्रदत्त विशेषताओं के अनुरूप हो तथा 'भूमि उपयोग' से तात्पर्य भूमि-प्रयोग की शोषण प्रक्रिया से है, जिसमें भूमि का व्यवहारिक उपयोग निश्चित उद्देश्य या योजना के लिये होता है।

कृषि भूमि उपयोग पर भारत एवं विश्व के विभिन्न देशों में अनेक विद्वानों ने समय-समय पर अध्ययन कर अपने शोध प्रबन्ध एवं शोध प्रपत्र प्रस्तुत किये है। इनमें वान थ्यूनेन (1783-1850), जॉनसन (1926), कैण्डाल (1939), लॉश (1954), स्टाम्प (1960), किलिंग वेल एवं मान्टगूमरी (1961), मेलर (1967), एफ० ए० आ० (1994), यू० एस० सोइल सर्वे डिविजन (1997) और भारतीय विद्धानों में प्रो० एम० शफी (1961-64), हनुमत राव (1970), नूर मोहम्मद (1978), सिंह, जसवीर (1984) सहगल (1990), मोहन्ती (1994) आदि के कार्य उल्लेखनीय हैं।

अध्ययन क्षेत्र- एटा जनपद भारत के उत्तर प्रदेश प्रान्त के अलीगढ़ मंडल का एक जनपद है । यह उत्तर में बदायूं एवं कासगंज जिला, दक्षिण में मैनपुरी और फिरोजाबाद, पूर्व में फर्रुखाबाद, व पश्चिम में अलीगढ़, हाथरस, मथुरा व आगरा जिलों से घिरा है। एटा नगर ईशन नदी के किनारे बसा है।

एटा जनपद का अक्षांशीय विस्तार $27^{0}18'$ उत्तरी अक्षांश से $28^{0}2'$ उत्तरी अक्षांश तथा देशान्तरीय विस्तार $78^{0}11'$ पूर्वी देशान्तर से $79^{0}29'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य 2,453 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल पर विस्तृत है। जनपद में कुल 883 गाँव हैं, जिसमें 853 गाँव आबाद तथा 30 गैर आबाद गाँव हैं, जो 72 स्थायी ग्राम पंचायतों के मध्य वितरित है। जनपद में 17,74,880 व्यक्ति निवास करते हैं, जिसमें 15,06,338 (84.86 प्रतिशत) व्यक्ति ग्रामीण तथा 2,68,542 (15.10 प्रतिशत) व्यक्ति नगरीय क्षेत्रों में निवास करते हैं।

वर्तमान शोध अध्ययन अलीगढ़ जनपद के विभिन्न भौगोलिक एवं विषयगत पक्षों के विश्लेषण एवं विवेचन हेतू विकासखण्ड एवं तहसीलों को आधारभूत इकाइयों को आवश्यकतानुसार सम्मिलित किया गया है। जनपद में कुल 8 विकासखण्ड हैं, जो 3 तहसीलों में विभक्त हैं।

आंकड़े व विधितन्त्र- प्रस्तुत शोध प्रपत्र द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है भूमि उपयोग व कृषि भूमि उपयोग के विकास खण्ड वार सभी आंकड़े कृषि वर्ष 1995-96 से 2015-16 पर आधारित है। विधितन्त्र विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक, अवलोकानात्मक एवं पूर्ववर्ती विभिन्न विद्वानों द्वारा किये गये शोध कार्यो के समीक्षोपरान्त इसको प्रस्तुत किया गया है-

किसी भी क्षेत्र के भूमि उपयोग को धरातलीय स्वरूप, बनाबट, ढाल, मृदा प्रकार, उर्वरता, भूमि का मूल्य, जल की आवश्यकता एवं उपलब्धता, शस्य प्रणाली, शस्यन परम्परा, कृषक की रूचि एवं शस्य चयन, शस्यन सुरक्षा, आवगमन की सुविधा तथा जागरूकता आदि कारक महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। जहाँ नगरीय क्षेत्र में भूमि उपयोग सकेन्द्रीय वलयानुसार अधिवास से दूरी के साथ ही गुणवत्ता समान मिलती है, वहीं ग्रामीण क्षेत्र में विखरा हुआ होता है।

भूमि उपयोग वर्गीकरण- विभिन्न राज्य अभिलेखों में भूमि उपयोग भिन्न-भिन्न वर्गीकरण दर्शाये गये हैं, किन्तु जनपद स्तर पर सर्वमान्य वर्गीकरण निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है-

1. कुल प्रतिवेदित क्षेत्र
2. वन क्षेत्र
3. चरागाह क्षेत्र
4. कृषि योग्य बंजर भूमि
5. परती भूमि
6. ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि
7. कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि
8. उद्यानों वृक्षो एवं झाड़ियों का क्षेत्रफल
9. शुद्ध कृषित क्षेत्र

1. कुल प्रतिवेदित क्षेत्र- एटा जनपद में वर्ष 2015-16 में कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल 2,44,068 हेक्टेयर है जो केवल ग्रामीण भूमि के उपयोग के अन्तर्गत आती है। जिसका 76.12 प्रतिशत (1,85,794 हेक्टेयर) क्षेत्रफल शुद्ध कृषित क्षेत्र भूमि उपयोग वर्ग के अन्तर्गत है तथा अन्य भूमि उपयोग वर्गो के आधार पर विकासखण्डवार विवरण तालिका-01 व मानचित्र-01 द्वारा दर्शाया गया है।

2. वन क्षेत्र- एटा जनपद में वन अल्प मात्रा में मिलते हैं। वन क्षेत्र के अन्तर्गत अलग से भू-क्षेत्र आवृत्त नहीं हैं। ये केवल सड़कों, तालाबों, नदियों तथा नहरों के किनारे-किनारे पट्टीनुमा आकार में पाए जाते हैं। तालिका-01 व मानचित्र-01 के अवलोकन से स्पष्ट है कि, वर्ष 2015-16 में एटा जनपद में कुल प्रतिवेदित क्षेत्र के 0.41 प्रतिशत (1034 हेक्टेयर) क्षेत्रफल पर वन भूमि उपयोग वर्ग के अन्तर्गत है। क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य में सर्वाधिक शीतलपुर विकासखण्ड में कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल का 2.04 प्रतिशत (652 हेक्टेयर) भू-भाग पर तथा निधौली कलां में कोई वन क्षेत्र नहीं है।

3. चरागाह क्षेत्र- एटा जनपद में चरागाह क्षेत्र बहुत अल्प मात्रा में पाया जाता है। ये केवल तालाबों, सड़को, नदियों, तथा नहरों के किनारे-किनारे पट्टीनुमा आकार में पाए जाते है। 2015-16 की तालिका-01 व मानचित्र-01 से स्पष्ट है कि, एटा जनपद के कुल प्रतिवेदित क्षेत्र के 0.14 प्रतिशत (347 हेक्टेयर) क्षेत्रफल पर चरागाह भूमि उपयोग वर्ग के अन्तर्गत है। क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य में सर्वाधिक सकीट विकासखण्ड में कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल का 0.32 प्रतिशत (129 हेक्टेयर) भू-भाग है, वहीं सबसे कम अलीगंज विकास खण्ड में 0.04 प्रतिशत (16 हेक्टेयर) भू-क्षेत्र इस वर्ग के अन्तर्गत आता है।

4. कृषि योग्य बंजर भूमि- भूमि उपयोग के इस वर्ग के अन्तर्गत उस भूमि को सम्मलित किया जाता है। जो वस्तुतः कृषि क्षेत्र के अन्तर्गत अधिग्रहित हो सकती है, किन्तु विशेष कारणों के परिणाम स्वरूप कृषि हेतु उपयोग नहीं हो पा रहा है। अतः वह क्षेत्र जो घास, वृक्ष इत्यादि के अन्तर्गत है, तथा अल्प भू-अधिग्रहित प्रयासों से कृषि योग्य बनाया जा सकता है।

एटा जनपद में वर्ष 2015-16 में कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल 4.51 प्रतिशत ;11,026 हेक्टेयरद्ध क्षेत्रफल पर भूमि उपयोग के इस वर्ग का विस्तार है। तालिक-01 व मानचित्र-01 के क्षेत्रीय अवलोकन से स्पष्ट है कि, सकीट विकासखण्ड के कुल प्रतिवेदित क्षेत्र के 12.06 प्रतिशत ;4,739 हेक्टेयरद्ध भाग पर सर्वाधिक क्षेत्रफल मिलता है। वहीं सबसे कम 0.89 प्रतिशत जलेसर विकासखण्ड के अन्तर्गत आता है, जहाँ कुल प्रतिवेदित क्षेत्र के 217 हेक्टेयर क्षेत्रफल पर कृषि योग्य बंजर भूमि का विस्तार है।

5. परती भूमि- इस भूमि उपयोग वर्ग के अन्तर्गत उस भू-क्षेत्र को रखा जाता है, जिसकी उर्वरता प्रतिवर्ष शस्य उगाने योग्य नहीं है तथा कृषकों द्वारा एक या एक से अधिक वर्षों के लिए शस्यविहीन छोड़ दिया जाता है, जिससे कि प्राकृतिक रूप से इसकी उर्वरता में वृद्धि हो सके। इस आधार पर इस भूमि उपयोग वर्ग को दो भागों में विभाजित किया जाता है-

(i) वर्तमान परती भूमि क्षेत्र- इस भूमि के अन्तर्गत वह भूमि आती है, जो एक वर्ष तक छोड़ी गई है। एटा जनपद में वर्ष 2015-16 में कुल प्रतिवेदित क्षेत्र के 4.90 प्रतिशत (11,960 हेक्टेयर) भू-भाग पर इसका विस्तार मिलता है। तलिका-01 व मानचित्र-01 से स्पष्ट है कि, सर्वाधिक निधौली कलां विकासखण्ड के कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल के 7.72 प्रतिशत (2,696 हेक्टेयर) क्षेत्रफल पर वर्तमान परती भूमि का विस्तार है। वहीं मात्र 4. 26 प्रतिशत (864 हेक्टेयर) क्षेत्रफल मारहरा विकासखण्ड में पाया जाता है।

(ii) पुरानी परती भूमि क्षेत्र- इस भूमि के अन्तर्गत वह भूमि क्षेत्र आता है, जो एक से अधिक वर्षों तक छोड़ी गई है। एटा जनपद में वर्ष 2015-16 में कुल प्रतिवेदित क्षेत्र के 3.06 प्रतिशत (7,480 हेक्टेयर) भू-भाग पर इस वर्ग का विस्तार मिलता है। तालिका-01 व मानचित्र-01 से स्पष्ट है कि, सर्वाधिक जैथरा विकासखण्ड के कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल के 5.79 (1,785 हेक्टेयर) क्षेत्रफल पर अन्य परती भूमि का विस्तार है, वहीं सबसे कम 1.27 प्रतिशत (259 हेक्टेयर) क्षेत्रफल का विस्तार मारहरा विकासखण्ड में पाया जाता है।

तालिका-01 एटा जनपद में विकासखण्डवार भूमि उपयोग (हेक्टेयर में) - 2015-16

वर्ष /विकासखण्ड	कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल	वन	कृय बेकार भूमि	वर्तमान परती	अन्य परती	ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि	कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि	चरा गाह	उद्यानों वृक्षों एवम् झाड़िया का क्षेत्रफल
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
2013–14	244068	1034	11854	10255	8632	1719	23980	328	396
2014–15	244068	1034	11026	11960	7488	1694	24514	347	211
2015–16	244068	1034	11026	11960	7488	1694	24514	347	211
विकास खण्डवार 2015–16									
1. जलेसर	24170	208	217	1304	452	237	2704	41	19
2. अवागढ़	19061	98	534	1238	952	336	2814	31	18
3. मारहरा	20262	76	663	864	259	171	2231	30	29
4. निधौली कलां	34915	0	2376	2696	1319	118	3117	61	20
5. शीतलपुर	31845	652	1429	1188	886	243	3403	24	30
6. सकीट	39289	0	4739	2418	1445	224	2855	129	19
7. जैथरा	30825	0	466	1234	1785	168	3534	15	28
8. अलीगंज	33701	0	602	1018	396	197	3856	16	48
योग ग्रामीण	244068	1034	11026	11960	7488	1694	24514	347	211
योग नगरीय	0	0	0	0	0	0	0	0	0
योग जनपद	244068	1034	11026	11960	7488	1694	24514	347	211

6. ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि- जिन क्षेत्रों में भूमि उच्च भूमि जल स्तर के कारण लवण प्रभावित अर्थात ऊसर है तथा किसी भी प्रकार की वनस्पती को उगाने की क्षमता नहीं रखती है। उन क्षेत्रों को ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि के अन्तर्गत रखा जाता है। जनपद एटा के कुल प्रतिवेदित क्षेत्र के 0.69 प्रतिशत भू-भाग पर इसका विस्तार है वर्ष 2015-16 में तालिका-01 व मानचित्र-01 के अवलोकन से स्पष्ट है कि, ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि के विस्तार में पर्याप्त क्षेत्रीय विषमताऐं पायी जाती है। जहाँ सर्वाधिक जलेसर विकासखण्ड में इसका विस्तार 0.98 प्रतिशत (237 हेक्टेयर) क्षेत्रफल पर है, वहीं सबसे कम 0.33 प्रतिशत (118 हेक्टेयर) क्षेत्रफल निधौली कलां विकासखण्ड में पाया जाता है।

7. कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि- इस भूमि के उपयोग वर्ग के अन्तर्गत विशेषता अधिवास एवं सांस्कृतिक कार्यो में प्रयुक्त भूमि, धरातलीय विषमता के उपयोग में न लाये जाने योग्य भूमि आदि सम्मलित है। इस दृष्टि से विभाग के द्वारा छोड़ी गई भूमि आदि सम्मलित है। इस दृष्टि से वर्तमान समय में यह भूमि उपयोग वर्ग अधिवासीय क्षेत्र के आस-पास की कृषित भूमि को निगलता हुआ प्रतीत होता है। अत: भूमि उपयोग के इस वर्ग का विस्तार बढ़ता जा रहा है।

वर्ष 2015-16 में एटा जनपद के कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल के 10.04 प्रतिशत भाग पर कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि है। तालिका-01 व मानचित्र-01 के अवलोकन से जनपद की क्षेत्रीय विषमता स्पष्ट होती है कि सर्वाधिक अलीगंज विकासखण्ड के कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल के 11.44 प्रतिशत (3,856 हेक्टेयर) भू-भाग पर इस भूमि उपयोग का विस्तार है। वहीं सबसे कम मारहरा विकासखण्ड के भू-भाग पर 11.01 प्रतिशत (2,231 हेक्टेयर) क्षेत्रफल पर कृषि के अतिरिक्त अन्य भूमि का विस्तार है।

8. उद्यानों, वृक्षों एवं झाड़ियों का क्षेत्र- एटा जनपद में उद्यान, वृक्ष व झाड़ियाँ बहुत सीमित मात्रा में पायी जाती है। इनके लिए अलग से भू-क्षेत्र आवृत्त नहीं है, ये भी केवल सड़कों, तालाबों, नदियों तथा नहरों के किनारे-किनारे पट्टीनुमा आकार में पाये जाते हैं। तालिका-01 व मानचित्र-01 के अवलोकन से स्पष्ट है कि, वर्ष 2015-16 में एटा जनपद में कुल प्रतिवेदित क्षेत्र के 0.08 प्रतिशत (211 हेक्टेयर) क्षेत्रफल पर उद्यानों, वृक्षों एवं झाड़ियों का भूमि उपयोग का विस्तार है। तालिका-01 द्वारा क्षेत्रीय अवलोकन से स्पष्ट है कि अलीगंज विकास खण्ड के कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल के 0.14 प्रतिशत (48 हेक्टेयर) भू-भाग पर इस भूमि वर्ग का विस्तार है। वहीं सबसे कम अबागढ़ विकासखण्ड में 0.06 प्रतिशत (18 हेक्टेयर) क्षेत्रफल पर उद्यानों, वृक्षों एवं झाड़ियों की भूमि का विस्तार पाया जाता है।

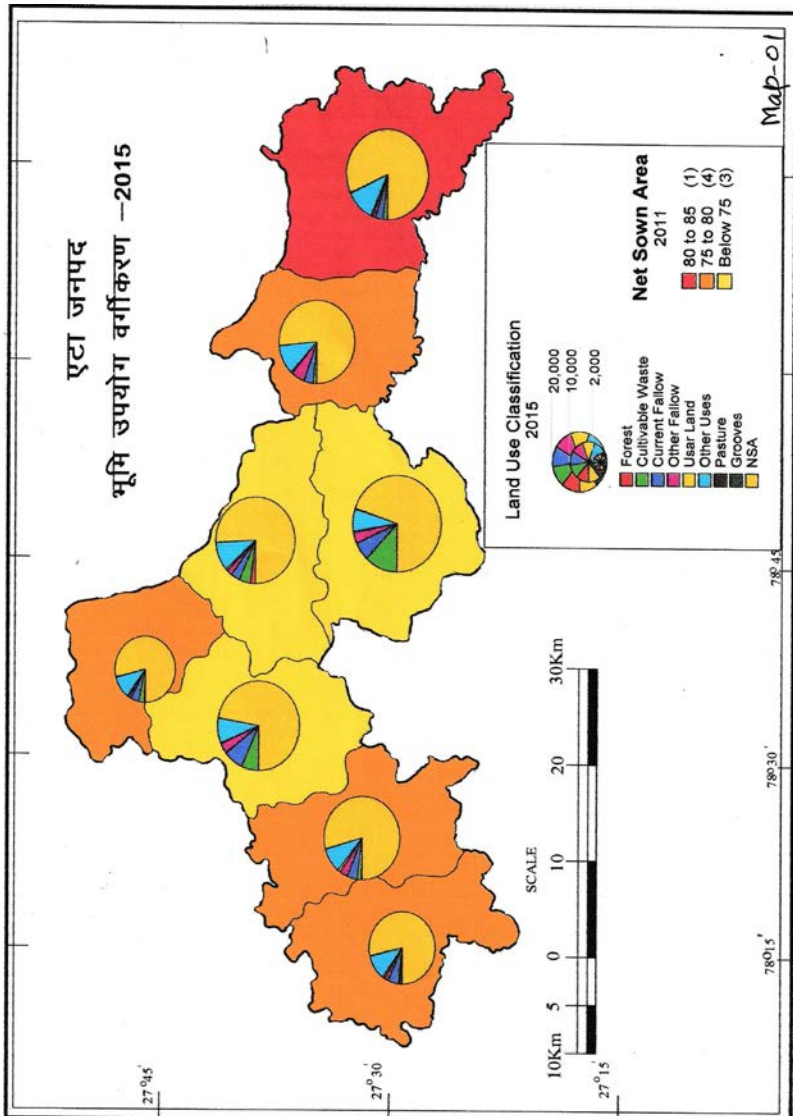

9. **शुद्ध कृषित क्षेत्र**– कृषि आधारित अर्थव्यवस्था वाले क्षेत्र के भूमि उपयोग में शुद्ध कृषित क्षेत्र सबसे महत्वपूर्ण कारक है, इससे अधिक दूसरा कोई तत्व नहीं है। विभिन्न ग्राम एवं तहसीलों में दीर्घकालिक कृषित आवरण, भूमि की उर्वरा शक्ति, जनसंख्या का भूमि संसाधन पर दबाब, अर्थ व्यवस्था में विविधिकरण के अभाव तथा सिंचाई का वृहद एवं गहन प्रयोग शुद्ध कृषि के उच्च अनुपात का परिणत हुआ है। भूमि उपयोग के इस महत्वपूर्ण तत्व के उपयोग के आधार पर ही किसी भी क्षेत्र के कृषि प्रकिणीय निर्धारित की जा सकती है। यथा धान्य प्रधान वाणिज्य निर्वाहक एवं पशुपालक, कृषि व्यवस्था आदि।

एटा जनपद में वर्ष 1995–96 में 3,10,608 हेक्टेयर क्षेत्रफल कुल प्रतिवेदित क्षेत्र का 70.07 प्रतिशत शुद्ध कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत आता था। जो वर्ष 2015–16 तक कमी के साथ 76.12 प्रतिशत हो गया जो कुल प्रतिवेदित क्षेत्र का 1,85,794 हेक्टेयर है। इस प्रकार विगत 20 वर्षों में 1,24,814 हेक्टेयर 62.65 क्षेत्रफल में परिर्वतन हुआ है। क्योकि 2018 के बाद एटा जनपद का कुछ भाग कासगंज जनपद में पहुँच गया जो पहले एटा जनपद में था इस कारण जनपद के भू–क्षेत्र में कमी आयी है, जिसमें जनपद के भूमि उपयोग में बहुत अधिक परिवर्तन देखने को मिला है।

शुद्ध, सकल बोया गया तथा सकल सिंचित क्षेत्र

तालिका–02 तथा मानचित्र–02 अवलोन से स्पष्ट है कि, वर्ष 2015–16 में जनपद में शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल सर्वाधिक जैथरा

विकासखण्ड में 27,595 हेक्टेयर (14.85 प्रतिशत) है, क्रमशः अलीगंज 27,568 हेक्टेयर (14.83 प्रतिशत) तथा सकीट विकासखण्ड में 27,460 हेक्टेयर (14.78 प्रतिशत) है। सबसे कम शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल 15,939 हेक्टेयर (8.58 प्रतिशत) मारहरा विकासखण्ड में है। इसी प्रकार जनपद में सकल बोया गया सर्वाधिक क्षेत्रफल 49,445 हेक्टेयर (16.00 प्रतिशत) सकीट विकासखण्ड में है तथा सबसे कम 29,348 हेक्टेयर (9.50 प्रतिशत) जलेसर विकास खण्ड में है। जबकि सर्वाधिक 46,043 (16.07 प्रतिशत) सकल सिंचित क्षेत्रफल सकीट विकासखण्ड में तथा सबसे कम 29,352 हेक्टेयर (10.24 प्रतिशत) क्षेत्रफल जैथरा विकासखण्ड में दर्ज किया गया है।

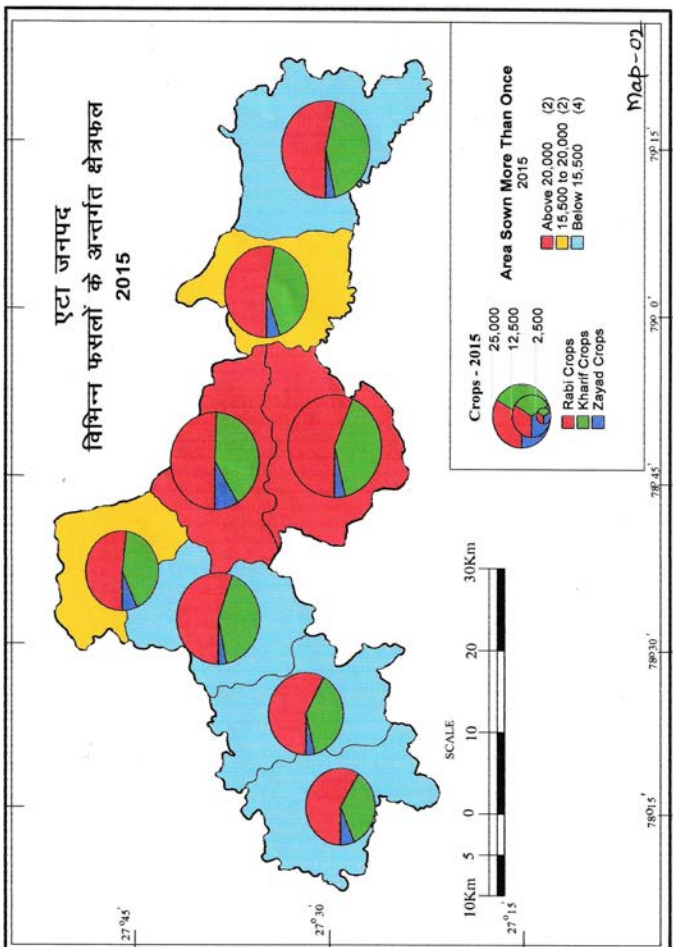

जनपद में तीनों प्रकार की फसलों (रबी, खरीफ व जायद) में सर्वाधिक सकल बोया गया क्षेत्रफल रबी (1,68,703 हेक्टेयर) की फसल के अन्तर्गत है, क्रमशः खरीफ (1,24,851 हेक्टेयर) तथा जायद (15,818 हेक्टेयर) का स्थान है। विकासखण्डवार रबी की फसल में सकल बोया गया सर्वाधिक क्षेत्रफल सकीट विकासखण्ड में 27,827 हेक्टेयर (16.50 प्रतिशत) दर्ज किया गया तथा सबसे कम मारहरा विकासखण्ड में 16,424 हेक्टेयर (9.73 प्रतिशत) में दर्ज किया गया है। वहीं खरीफ में सर्वाधिक सकल बोया गया क्षेत्रफल सकीट विकासखण्ड में 19,754 हेक्टेयर (15.82 प्रतिशत) तथा सबसे कम जलेसर विकासखण्ड में 10,215 हेक्टेयर (8.20 प्रतिशत) दर्ज किया गया है तथा जायद में सर्वाधिक क्षेत्रफल शीतलपुर विकासखण्ड में 3,823 हेक्टेयर (24.17 प्रतिशत) तथा सबसे कम निधौली कलां विकासखण्ड में 1,231 हेक्टेयर (7.8 प्रतिशत) के अन्तर्गत है।

तालिका–2

वर्ष /विकासखण्ड	शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल	एक बार से से अधिक बोया गया क्षेत्रफल	सकल बोया गया क्षेत्रफल				गन्ने के लिए तैयार की गयी भूमि	शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल	सकल सिंचित क्षेत्रफल
			कुल	रबी	खरीफ	जायद			
	11	12	13	14	15		1617	18	19
2013–14	185870	114430	300300	183752	101615	14933	0	185870	299554
2014–15	185794	123578	309372	168703	124851	15818	0	183990	286464
2015–16	185794	123578	309372	168703	124851	15818	0	183990	286464
1. जलेसर	18988	10360	29348	17221	10215	1912	0	19079	33987
2. अबागढ़	23040	9818	32858	19000	12624	1234	0	23540	35474
3. मारहरा	15939	15622	31561	16424	13013	2124	0	18738	33844
4. निधौली कलां	25208	14044	39252	21738	16283	1231	0	24775	36617
5. शीतलपुर	23996	20319	44315	22402	18090	3823	0	24008	39831
6. सकीट	27460	21985	49445	27827	19754	1864	0	25631	46043
7. जैथरा	23595	16101	39696	21023	16565	2108	0	22087	29352
8. अलीगंज	27568	15329	42897	23068	18307	1522	0	26732	31316
योग ग्रामीण	15794	123578	309372	168703	124851	15818	0	183990	286464
योग नगरीय	0	0	0	0	0	0	0	0	0
योग जनपद	185794	123578	309372	168703	124851	15818	0	183990	286464

तालिका-03 एटा जनपद में शुद्ध कृषित क्षेत्र का सामयिक स्थानिक प्रतिरूप (1995-96 से 2015-16)

विकासखण्ड	शुद्ध कृषित क्षेत्र (प्रतिशत में)					
	1995–96	2000–01	2005–06	2010–11	2015–16	1995–96 एवं 2015–16 के मध्य परिवर्तन
8. जलेसर	78.35	75.00	80.26	78.59	78.56	0.21
9. अबागढ़	66.00	70.13	76.59	79.31	79.28	–13.28
10. मारहरा	84.09	84.65	81.45	78.60	78.66	–5.43
11. निधौली कलां	62.40	60.40	69.63	70.30	72.17	9.77
12. शीतल पुर	73.41	73.64	76.84	75.38	75.35	1.94
13. सकीट	62.68	63.51	72.14	71.76	69.89	7.21
14. जैथरा	78.70	78.41	82.57	76.57	76.54	2.16
15. अलीगंज	77.59	79.45	80.33	81.83	81.80	4.21
योग ग्रामीण	71.72	72.32	74.76	76.17	76.12	4.40
योग नगरीय	0	0	0	0	0	0
योग जनपद	71.72	72.32	74.76	76.17	76.12	4.40

जनपद एटा में विकासखण्डवार शुद्ध कृषित क्षेत्र के सामयिक प्रतिरूप परिवर्तन का अवलोकन (1995-96 एवं 2015-16)

विकासखण्ड के शुद्ध कृषित क्षेत्र परिवर्तन तालिका-03 तथा मानचित्र-03 के अवलोकन से स्पष्ट हो रहा है कि, जनपद में शुद्ध कृषित क्षेत्र में19 95-96 से 2015-16 में 4.4 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है। जहां विकासखण्ड में इन 20 बर्षो के अन्तराल में सर्वाधिक वृद्धि परिवर्तन निधौली कलां विकासखण्ड में 9.77 प्रतिशत दर्ज किया गया है, वहीं सबसे कम परिवर्तन (ऋणात्मक) -13.28 प्रतिशत अवागढ़ विकासखण्ड में दर्ज किया गया है अन्य ऋणात्मक परिवर्तन वाले विकासखण्ड मारहरा (-5.43 प्रतिशत) तथा जैथरा (-2.16 प्रतिशत) हैं। इस प्रकार जनपद के 3 विकासखण्डों में ऋणात्मक परिवर्तन तथा पाँच विकासखण्डों में धनात्मक परिवर्तन दर्ज किया गया है।

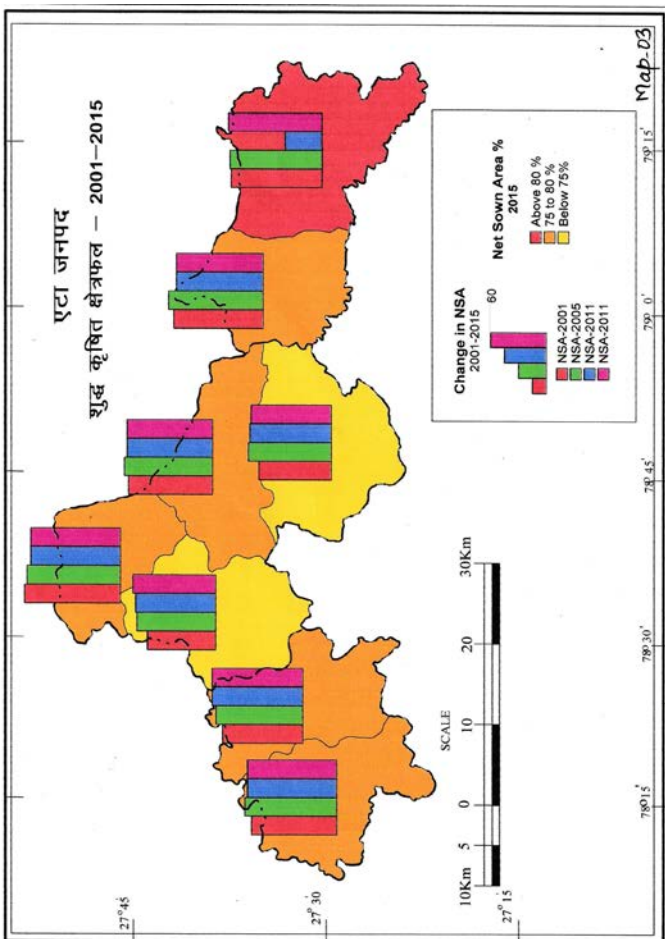

वर्ष 2015-16 में शुद्ध कृषित क्षेत्र के क्षेत्रीय प्रतिरूपों को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है-

1. उच्च अनुपात का कृषित क्षेत्र- शुद्ध कृषित क्षेत्र के इस वर्ग के अन्तर्गत जनपद के 80 प्रतिशत से अधिक अनुपात वाले कुल एक विकासखण्ड सम्मलित हैं। जिसमें जनपद के पूर्वी भू-भाग में अलीगंज विकासखण्ड आता है। तालिका-03 तथा मानचित्र-03 से स्पष्ट है कि, इस क्षेत्र में कृषिगत क्रियाऐं अत्यधिक सघन तथा सिंचाई के साधनों की स्थिति तुलनात्मक रूप से अन्य विकासखण्डों की अपेक्षा अच्छी है।

2. मध्यम अनुपात के कृषित क्षेत्र- 75-80 प्रतिशत शुद्ध कृषित क्षेत्र वाले पाँच विकासखण्ड इस वर्ग में सम्मलित है, जनपद के पश्चिम में शीतलपुर, दक्षिण-पश्चिम में अबागढ़ तथा जलेसर से लेकर पूर्व में जैथरा विकासखण्ड तक एक मेखला के रूप में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त उत्तर-पूर्व में मारहरा विकासखण्ड सहित जनपद के 50.00 प्रतिशत भाग पर मध्यम अनुपात वाले कृषित क्षेत्र का विस्तार है।

3. न्यून अनुपात के कृषित क्षेत्र- जनपद के इस वर्ग के अन्तर्गत 75 प्रतिशत कम शुद्ध कृषित क्षेत्र वाले कुल दो विकास खण्डों को सम्मलित किया गया है, जिनमें जनपद के उत्तरी भू-भाग में निधौली कलां तथा दक्षिण-पूर्व में सकीट विकासखण्ड सम्मलित हैं। निधौली कलां और सकीट में ऊसर बंजर के कारण शुद्ध कृषित क्षेत्र का कम अनुपात मिलता है। जो जनपद के 25 प्रतिशत भाग पर विस्तृत है।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि, जनपद के अन्तर्गत भूमि उपयोग संरचना वर्ष 1995-96 से 2015-16 के मध्य परिवर्तन शील रही है। जिसमें वन, चरागाह एवं उद्यान, परती भूमि, कृषि योग्य बंजर भूमि व ऊसर एवं कृषि अयोग्य भूमि के क्षेत्रफल में कमी दर्ज की गई है। वही शुद्ध कृषित कुछ वृद्धि पायी गई है। जो कि जनपद में हो रहे कृषि के निरन्तर विकास की घोतक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. सिंह जयदेव (2005):- मैनपुरी जनपद में कृषि स्वरूप एवम् भूमि वहन क्षमता का भौगोलिक विश्लेषण अप्रकाशित शोध ग्रन्ध डा० बी० आर० वि० वि० आगरा, पृष्ठ-75
2. Chauhan D.S. (1961) :- "Studies in Utilization of Agricultural Land " Agrawal & Co. Agra. PP-22-24
3. Buck J.N. (1972) :- " Land Utilization Theory and Practice New Delhi, P-3.
4. Mandal R.B. (1972) " Land Utilization Theory & Practice " New Delhi, P-3.
5. Nanavali M.B. (For World) (1957):- " Reading in Land Utilization " The Indian Society of Agricultural Economics Bombey P-32.
6. Stamp L.D. (1960) : "Land of Britain its use & misuse London".
7. Shafi M. (1961) Field work in land use, Research under Indian Conditions,Geographical Magazine, Bombay, Volume 8 & 9. Shafi M. (1961), Land Utilization in Eastern.
8. Shafi M. (1961), Land Utilization in Eastern in Uttar Pradesh
9. Hanumant Rao, CH. (1970): Farm Size and Credite Policy: Economic & Political Weekly, Review of Agricultural P-26.
10. Mohammad, Noor (1970) : Agricultural Land use in India, Delhi Inter India Publication.
11. Singh, Jasbir and Dillon, S.S. (1984): " Agricultural Geography" New Delhi.

युवाओं में पनप रहा है इंटरनेट डिप्रेशन

डॉ० संगीता सिन्हा

एसोसिएट प्रोफेसर (मनोविज्ञान) कॉलेज ऑफ कॉमर्स, आर्ट्स एंड साइंस, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, कंकड़बाग, पटना

सार:

वैश्वीकरण के दौर में इंटरनेट डिप्रेशन एक विश्वव्यापी समस्या बन गयी है। अलग-अलग वर्गों एवं देशों में अलग-अलग तरीके से इंटरनेट डिप्रेशन देखने को मिलता है। वैश्वीकरण के युग में मानसिक रोग को जानने, समझने, सोचने एवं देखने का नजरिया बदलना होगा। मनोरोग मनुष्य जाति के युगों पुरानी समस्या रही है। इंटरनेट डिप्रेशन के पहलू को देखा जाए तो यह मानसिक तनाव के कारण बच्चों, युवाओं, और वृद्ध सभी में व्याप्त नजर आ रहा है। आज यह रोग तेजी से समाज में फैल रहा है। इंटरनेट डिप्रेशन एक ऐसा रोग है जो किसी भी उम्र, लिंग व वर्ग के व्यक्ति को अपना शिकार बना सकता है। इस रोग से एक साधारण व्यक्ति ही नहीं बल्कि बड़ी-बड़ी हस्तियाँ भी ग्रसित हो सकती हैं। इस रोग से ग्रसित रोगियों की संख्या लगभग 40 से 60 प्रतिशत तक है। यह आत्महत्या का भी सबसे प्रमुख कारण है। इसके अतिरिक्त यह नशे की लत, यौन संबंधी विकारों व असामाजिक व्यवहारों का भी एक अहम पहलू है। भारत एक युवा देश है। यहाँ सबसे बड़ी आबादी युवा वर्ग की है, जिसके कारण हम गौरवान्वित महसूस करते हैं, क्योंकि युवा ही देश व समाज के मुख्य आधार होते हैं। देश का भविष्य इनके ही कंधों पर टिका होता है, लेकिन चिंताजनक विषय यह है कि आज हमारे समाज में युवावर्ग बड़ी तेजी से इंटरनेट डिप्रेशन के शिकार होते जा रहे हैं। आज युवा इस डिप्रेशन के शिकार न हों, इसके लिए उन्हें अपनी जिंदगी में निर्धारित नीति-नियमों का पालन करना चाहिए। अभिभावक व शिक्षक पर भी जिम्मेदारी बनती है कि वे युवाओं को समय-समय पर मार्ग-दर्शन दें ताकि वे इंटरनेट डिप्रेशन का शिकार होने से बच सकें।

मुख्य शब्द: परिभाषा, लक्षण, उपचार, निष्कर्ष।

परिभाषा:

डिप्रेशन का तात्पर्य मनोविज्ञान के क्षेत्र में मनोभावों के संबंधी दु:ख से होता है। इसे रोग या सिंड्रोम की संज्ञा दी जाती है। अधिकतर यह अवस्था व्यक्ति के प्रेम संबंधों को लेकर गंभीर होती है। किसी भी व्यक्ति के जीवन में अपने जीवन साथी के प्रति बहुत अधिक लगाव या प्रमुखता इसका सबसे बड़ा कारण होता है। व्यक्ति कभी कभी अपने आप को दुखी पाता है, या अकेला महसूस करता है, या कई बार वह अपनी दैनिक गतिविधियों में कोई रूचि नहीं दिखाता, ये सब डिप्रेशन के परिचित लक्षण होते हैं और किसी-किसी कारण से ऐसा होना काफी हद तक स्वाभाविक होता है। परन्तु जब ये लक्षण स्थायी हो जाते हैं और हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं, तब उस स्थिति को डिप्रेशन कहा जाता है। वैश्वीकरण में इसका असर इंटरनेट के जरिए काफी तेजी से हो रहा है।

अध्ययन में पता चला है कि युवाओं में अवसाद का प्रमुख कारण सुविधाभोगी जिंदगी तथा आधुनिक तकनीक से लैस होना है। इसमें भूमिका इंटरनेट ना रहा है। जिस इंटरनेट ने जिंदगी को तेज बना दिया है, वहीं वह हमारे युवाओं को डिप्रेशन में भी पहुंचा रहा है। युवा वर्ग अपनी जरूरतों में सबसे ज्यादा प्राथमिकता इंटरनेट को दे रहे हैं। इसके बिना इनकी अपनी जिंदगी अधूरी हो गई है। किसी भी कारणवश यदि हमारे किशोर-किशोरी ऑनलाइन नहीं हो पाते हैं तो वे तनाव का महसूस करने लगते हैं। उन्हें अपनी दिनचर्या में एक खालीपन सा महसूस होने लगता है। ऐसे युवाओं के चेहरे पर शिकन चढ़ने लगती है। आंखें भावशून्य हो जाती हैं। चेहरे पर उदासी, आलस्य का भाव, चिड़चिड़ापन तथा मित्रों-पड़ोसियों के साथ बनावटी मुस्कान देखने को मिलती है। यह सब इंटरनेट डिप्रेशन के लक्षण हैं, जो भारत के किशोर और युवा वर्ग में देखने को मिल रहे हैं। एक अध्ययन के अनुसार ऑनलाइन न होने के कारण स्ट्रेस अनुभव करनेवाले लोग एक विशेष बीमारी से पीड़ित हाते हैं। इस बीमारी को 'डिसकोमगु गोलेशन' कहते हैं। सर्वे के अनुसार संपूर्ण विश्व में इंटरनेट अधिक इस्तेमाल करनेवाले 18 से 24 वर्ष के युवा-युवतियाँ हैं। इंटरनेट की लत से जूझने वाले युवाओं पर अध्ययन के पश्चात विशेषज्ञों ने इंटरनेट एडिक्शन को चार वर्गों में बांटा है, जिसमें इंटरनेट का अधिक इस्तेमाल, अन्य प्रमुख भावनाओं में कोताही का एहसास, धैर्य का अभाव और नकारात्मकता के कारण हिंसा आदि शामिल हैं। शोध के अनुसार इंटरनेट एडिक्शन में व्यक्ति अपनी आधारभूत मानवीय इच्छाओं, संवेदनाओं एवं सोच को नजरअंदाज करने लग जाते हैं। चीन में हुए अध्ययन के अनुसार युवा वर्ग इंटरनेट यूजर्स एक सप्ताह में 16.9 ऑनलाइन व्यतीत करते हैं। इंटरनेट की दुनिया में समय बिताने के कारण युवा व किशोर वर्ग दूसरे क्षेत्रों में जैसे-पढ़ाई, खेलकूद आदि अनेकों प्रदर्शन में या दोस्तों से मिलने-जुलने में पिछड़ रहे है। कई बार देखने में आता है कि वर्चुअल वर्ल्ड का एडिक्शन बच्चों में कई तरह की बातें भी पैदा कर देता है। जब ऐसी चाह पूरी नहीं हो पाती तो बच्चे कुंठा एवं हताशा में चले जाते हैं। अवसाद से ग्रसित होकर अनेक बच्चों ने आत्महत्या तक कर ली है। मानसिक रोग 'डिसकोमगु गोलेशन' विदेश में सबसे चर्चित है। भारत में भी यह बीमारी तेजी से बढ़ रही है। इंटरनेट आज की जरूरत बन गयी है। इसने हमारी को जिंदगी को आसान बना दिया है। इतना ही नहीं वैश्वीकरण में इंटरनेट कई तरीके से मददगार हो रहा है, लेकिन इसका दुष्परिणाम हमें सोचने पर मजबूर कर रहा है। आखिर इंटरनेट की वजह से पैदा हुई एक नई की बीमारी से कैसे निपटा

जाए। गंभीर विषय तो यह है कि हमारे किशोर और नवयुवक काफी तेजी से इसके शिकार हो रहे हैं। जिस तेज गति से हाथ-हाथ में स्मार्टफोन और उसमें इंटरनेट की पहुंच हो गई, ऐसे में यह हमें भयावह भविष्य की चिंता में डाल दे रहा है।

विभिन्न अध्ययनों के अनुसार भारत में 100 में से 4 लोग इस रोग से ग्रस्त हैं। लगभग 3.5 करोड़ भारतवासी इंटरनेट डिप्रेशन से जूझ रहे हैं। आम चिकित्सकों व फिजिशियनों के पास जाने वाले रोगियों में हर पाँचवा व्यक्ति इस रोग से ग्रस्त है।

अब्राहम लिंकन (अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति), जेनेट जैक्सन (जानी मानी गायिका व डांसर), अरनेस्ट हेंमिग्वे (महान लेखक ''नोबल पुरस्कार विजेता'', सिग्मंड फ्रायड विश्व प्रसिद्ध महान मनोविश्लेषक), जीमकैरी (विश्व प्रसिद्ध कामेडियन), चार्ल्स डिक्कन (महान ब्रिटिश लेखक), मुल्क राज आनंद (महान लेखक), मार्लिन मुनरो (मशहूर) नायिका), बोरिस येल्तसिन, (रूस के भूतपूर्व राष्ट्रपति), बज एल्डरिन (चाँद पर कदम रखने वाला व्यक्ति) उपर्युक्त सारी हस्तियों के नाम इतिहास के पन्नों में स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ है। वे भी डिप्रेशन के शिकार हुए हैं, क्योंकि जब भी हम किसी कार्य को करते हैं, बात वही है नजरिया अलग रहने से प्रस्तुति का अंदाज अलग होता है। उनको कठिनाइयों से जुझना पड़ता है, कठिनाइयों को नहीं सह सकने वाला व्यक्ति डिप्रेशन का शिकार हो जाता है।

वैश्वीकरण के दौर में इंटरनेट डिप्रेशन एक विश्वव्यापी समस्या के रूप में अपनी पैठ बनाती प्रतीत हो रही है। यह सर्वाधिक व्यापक मनोरोग है और इस रोग से ग्रसित रोगियों की संख्या 40 से 60 प्रतिशत है। यह आत्महत्या का भी सबसे प्रमुख कारण है।

गर्भस्थ माताओं में इंटरनेट डिप्रेशन के होने से उसका गहरा असर नवजात शिशु पर पड़ता है। शिशु रोना, खाना-पीना व खेलना बंद कर देता है और उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है और ऐसी परिस्थिति में उसकी मृत्यु भी हो सकती है। गर्भावस्था में 50 से 80% औरतों में डिप्रेशन की भावना पायी जाती है, अनेक बार डिप्रेशन के कारण माता-पिता में लैंगिक विकार, बच्चों को ज्यादा मारना, उनका ध्यान न रखना या उनका शोषण करना जैसे लक्षण भी पैदा हो सकते हैं।

युवा वर्गों में पढ़ाई छोड़ देना, कहना न मानना, असामाजिक गतिविधियों में लिप्त होना, नशे की लत, आत्महत्या की कोशिश इत्यादि इंटरनेट डिप्रेशन के लक्षण हैं।

लैंगिक लक्षणों का विकास, विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण, लक्ष्य के बारे में चिंता, मित्रों से अधिक घनिष्ठता, माता-पिता से दूरी बनाये रखना इत्यादि भी इंटरनेट डिप्रेशन के मुख्य लक्षण हैं।

उपचार:

इंटरनेट डिप्रेशन से निपटने के लिए कुछ गंभीर उपाय करने होंगे, अन्यथा जिस युवा के सहारे दुनिया के दूसरे देशों से तरक्की में आगे निकलने का दंभ भर रहे हैं, वह चकनाचूर हो जाएगा। इसलिए पहले खुद किशोर इस बीमारी की जद में आने बचें। इस ऑनलाइन एडिक्शन से खुद को बचाने के लिए टाइम मैनेजमेंट फॉलो करें। इंटरनेट एडिक्शन से बचने के लिए मेडिटेशन भी एक अच्छा उपाय है। इसके अलावा युवाओं को जिंदगी में निर्धारित नीति-नियमों का पालन करना चाहिए। इन सब के अतिरिक्त अभिभावक और शिक्षक भी इस पर ध्यान दें। सरकार भी अपने स्तर से कोई ऐसी नीति बनाए, ताकि युवाओं को इंटरनेट के एडिक्शन से बचाया जा सके। कहने का तात्पर्य है कि सभी को एक नए मनोरोग को हराने के लिए सामूहिक उपाय करने होंगे।

Reference:

1. Mayer, N.R.F.: Frustration
2. Medougall, W.: outline of Abnormal Psychology.
3. Tredgold, A.F.: Mental Deficiency, Baltimore, Williams and Wilking, 1937.
4. Tanet, P.: The major symptoms of Hysteria.
5. Ponnusamy, A. (2006) Burrout and career Achievement among personnel Managers, Journal of Psychological Researches.

समकालीन परिदृश्य में भारत में समान नागरिक संहिता की आवश्यकता व चुनौतियाँ

रेखा यादव

सहायक आचार्य (राजनीति विज्ञान), हिन्दू कन्या महाविद्यालय, सीतापुर

शोध सारांश

भारतीय संविधान के अनुच्छेद-44 में स्पष्ट प्रावधान है कि राज्य पूरे देश के लिए एक समान नागरिक संहिता का निर्माण करे। प्राय: व्यक्तिगत धार्मिक कानूनों के कारण विविध धर्मों की महिलाओं को लैंगिक भेदभाव का सामना करना पड़ता है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न वादों के सम्बन्ध में निर्णय देते हुए सरकार को इस सम्बन्ध में आवश्यक पहल करने का निर्देश दिया जाता रहा है। समकालीन परिदृश्य में भारत में व्यक्तिगत कानूनों में बदलाव का प्रस्ताव कभी भी समाप्त न होने वाली बहस है। वास्तव में समान नागरिक संहिता का प्रस्ताव एक संवेदनशील विषय है, क्योंकि भारत एक बहुलतावादी देश है। जहाँ विविध धर्मावलम्बियों की अपनी मान्यताएँ हैं। प्रस्तुत लेख समान नागरिक संहिता की ऐतिहासिक यात्रा की जाँच करता है जहाँ इसकी आवश्यकता पर बल दिया गया है। लेख का निष्कर्ष यह है कि समकालीन परिदृश्य में भारत में बहुलतावादी संस्कृति को ध्यान में रखते हुए सामंजस्यपूर्ण ढंग से समान नागरिक संहिता का निर्माण ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

मुख्य शब्द:- समान नागरिक संहिता, अल्पसंख्यक, लैंगिक समानता, महिलाएँ।

भूमिका:- समान नागरिक संहिता से आशय देश के सभी नागरिकों के लिए धर्म, जाति व संप्रदाय के संबंध में एक समान कानून का प्रावधान है। साधारणत: इन विधियों में विवाह, विवाह विच्छेद, उत्तराधिकार, दत्तक व भरण पोषण से सम्बन्धित विषय सम्मिलित हैं, परन्तु इन्हें संचालित करने वाली विधियों में महिलाओं के समानता सम्बन्धी अधिकारों को लेकर विवाद की स्थिति विद्यमान है। विभिन्न धर्म, पंथ व संप्रदायों में अनेक विभेदमूलक मान्यताएँ हैं, जो कि स्त्रियों के समानता सम्बन्धी अधिकारो में बाधक है। प्राय: इन्हीं नियमों व धार्मिक मान्यताओं का हवाला देकर किसी भी वैधानिक सुधार का धार्मिक व सामाजिक संगठनों द्वारा विरोध किया जाता रहा है जो कि लैंगिक समानता, राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधक है। समान नागरिक संहिता देश के सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान किए जाने के अधिकार के साथ ही साथ एकता के सिद्धान्त को भी सुदृढ़ता प्रदान करती है।

समान नागरिक संहिता का ऐतिहासिक स्वरूप-समान नागरिक संहिता के ऐतिहासिकता की बात की जाए तो उर-नम्मु का कोड विश्व की सबसे पुरानी नागरिक संहिता व कार्पर जूरिस सिविलीस सबसे पुरानी सिविल संहिता मानी जाती है। जबकि आधुनिक काल में विधि निर्माण का प्रयास यूरोप में प्रबुद्धकाल के दौरान हुआ, जब यह धारणा विकसित हुई कि जीवन के सभी आयामों को मानवता पर आधारित एक समान व्यवस्था द्वारा संचालित होना चाहिए। तत्पश्चात् विश्व के अनेक देशों में सिविल संहिता को स्वीकार किया जाने लगा। इन संहिताओं में सिविल क्षेत्र से संबंधित सभी कानूनों जैसे पारिवारिक, उत्तराधिकार, सम्पत्ति, संविदा सम्बन्धी कानून सम्मिलित किये गये। प्रकृति के आधार पर विश्व की सभी संहिताओं को दो वर्गों में विभाजित किया गया जिसमें पहले वर्ग में फ्रांस सिविल संहिता, जिसे संस्थागत पद्धति व दूसरे वर्ग में जर्मन सिविल संहिता व स्विस सिविल संहिता, जो कि पेण्डेक्टवादी पद्धति पर आधारित है।

भारत में समान नागरिक संहिता की आवश्यकता- किसी देश का समाज कितना प्रगतिशील है उसकी पहचान उस राष्ट्र की महिलाओं की स्थिति से पता लगाया जा सकता है क्योंकि महिलाओं की स्थिति के लिए समाज के भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण के साथ-साथ सर्वाधिक प्रभावित करने वाली उस देश की राजनीति भी होती है। कमोबेश सभी धर्मों में महिलाओं के लिए परम्परागत प्रथाएँ व रूढ़िवादी मान्यताएं हैं। ऐसी मान्यताओं का रूढ़िवादी समाज सदैव से सहायक रहा है। महिलाओं को इन विभेदकारी जर्जर परम्पराओं के कारण सदैव से ही भेदभाव का सामना करना पड़ता है। ऐसे में राज्य के समक्ष एक प्रमुख चुनौती यह होती है कि वह कैसे एक समतामूलक समाज का निर्माण करे जहाँ लैंगिक न्याय सुनिश्चित किया जा सके।

समान नागरिक संहिता पर आधिकारिक बहस संविधान निर्माण के समय हुई थी। भारत में समान नागरिक संहिता की बात की जाए तो इसकी पृष्ठभूमि को दो भागो में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम 26 जनवरी 1950 से पूर्व व दूसरा स्वतंत्रता के बाद 26 जनवरी 1950 के बाद। औपनिवेशिक भारत में संहिताकरण का प्रयास तत्कालीन गर्वनर जनरल वारेन हेस्टिंग्स द्वारा किया गया था। कहा जाता है कि भारत ने दो बार रोमन कानूनों को स्वीकारा। प्रथम यूरोपियों द्वारा जो उनकी अपनी परिस्थितियों के अनुकूल और बाद में वही परिवर्तित स्वरूप जो भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल हो गया। अत: एक ही समय में पारिवारिक कानून पर दो समानान्तर धाराएं काम कर रही थीं, एक हिन्दू व दूसरी मुस्लिम व्यक्तिगत कानून। दोनों को ही स्वीकृति दी गई परन्तु औपचारिक तरीके से।

समाज में प्रचलित रूढ़ियों के निराकरण के प्रयास का श्रेय डॉ0 अम्बेडकर को जाता है। संविधान सभा में इस बात को लेकर विवाद की स्थिति थी कि ब्रिटिश शासन काल द्वारा निर्मित कानूनों को यथास्थिति बनाये रखा जाय या नहीं। इस पर उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त रूढ़ियों के निराकरण हेतु समान

नागरिकता संहिता का प्रस्ताव रखा, परन्तु इस पहल का काफी विरोध हुआ किन्तु अंततः उसे स्वीकार कर लिया गया। संविधान सभा में 23 नवम्बर 1948 को अनुच्छेद-35, जिसमें यह वर्णित था ''राज्य भारत के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र में निवास करने वाले नागरिकों के लिए एक समान संहिता के निर्माण का प्रयास करेगा।'' संविधान सभा में इस प्रस्ताव का चर्चा के दौरान डॉ0 अम्बेडकर का कहना था कि अनेक ऐसे प्रमाण मिले हैं जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि इस राष्ट्र में विवाह व उत्तराधिकार के अतिरिक्त एक ही व्यवहार संहिता है। अनुच्छेद-44 पर चर्चा करते हुए डॉ0 अम्बेडकर ने इसे वैकल्पिक बनाने का विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि यह पूरी तरह संभव है कि भावी संसद शुरूआत करते समय यह प्रावधान बनाये कि कानून उन लोगों पर लागू होगा जो इससे शासित होने की घोषणा करते हैं ताकि शुरू में कानून का लागू होना स्वयं की इच्छा पर निर्भर हो। देश की संसद ऐसे किसी तरीके से इसके आधार का पता लगा सकती है।

समान नागरिक संहिता की आवश्यकता पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न वादों के संबंध में दिये गये निर्णयों से इसकी महत्ता स्वतः हो जाती है। जिसकी चर्चा इस लेख के सम्बन्ध में आवश्यक होगी।

मो0 आरिफ खॉन बनाम शाह बानों वाद (1985) इस वाद में मुख्य न्यायाधीश वाई.वी.चन्द्रचूड़ ने अपने निर्णय में कहा कि ''धार्मिक स्वतंत्रता हमारी संस्कृति की नींव है परन्तु वे धार्मिक रीतियॉ जो मनुष्य की मर्यादा, मानवीय आधारों का उल्लंघन करती है वह स्वतंत्रता नहीं वरन् उत्पीडन हैं इसलिए उत्पीड़ितों की रक्षा और राष्ट्रीय एकता के विकास के लिए एक समान नागरिक संहिता परमावश्यक है।

सरला मुदगल व अन्य बनाम भारत संघ वाद (1995) में सर्वोच्च न्यायालय ने पुनः अनुच्छेद-44 के अन्तर्गत सरकार को समान नागरिक संहिता के निर्माण का निर्देश दिया था। इस वाद में प्रश्न यह था कि क्या एक हिन्दू व्यक्ति जिसने हिन्दू विधि के अन्तर्गत विवाह किया है क्या वह दूसरा विवाह करने के लिए इस्लाम धर्म स्वीकार कर सकता है? सर्वोच्च न्यायालय में अपने निर्णय में कहा कि दूसरी शादी के लिए इस्लाम को स्वीकारना व्यक्तिगत कानूनों का दुरूपयोग है इसके अतिरिक्त उसने यह भी कहा कि हिन्दू विवाह को केवल हिन्दू विवाह अधिनियम-1955 के अन्तर्गत ही भंग किया जा सकता है अर्थात् दूसरे विवाह के प्रयोजन हेतु इस्लाम स्वीकार कर लेने से हिन्दू विवाह विधि के अन्तर्गत भंग नहीं किया जा सकता, फलतः इससे भारतीय दण्ड संहिता की धारा-494 (5) के अन्तर्गत एक अपराध माना जायेगा। इस वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने यह कहा था कि ''विभाजन के बाद वे लोग जो भारत में रहना चाहते हैं उन्हें यह बात ज्ञात होनी चाहिए कि भारतीय नेता, द्विराष्ट्र, त्रिराष्ट्र के सिद्धान्त को मान्यताप्रदान की गई है। धर्म के नाम पर किसी समुदाय को अपने पृथक कायदे-कानून के निर्माण की स्वीकृति नहीं है। चूँकि पर्सनल लॉ की उत्पत्ति विधायी उपायों से हुई थी इसीलिए एक समान् नागरिक संहिता का निर्माण करके इसे समाप्त या संतुलित किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त अन्य याचिकाकर्ता महिलाओं ने भी दूसरी शादी करने की इच्छा से पुरूषों द्वारा धर्म परिवर्तन के मामलों को चुनौती दी, जिनमें मीना माथुर, (1988) व गीता रानी (1992) 424 प्रमुख हैं। इन दोनों महिलाओं के पतियों ने दूसरा विवाह करने की इच्छा से इस्लाम धर्म स्वीकार किया था। इन मामलों में न्यायाधीश कुलदीप सिंह की पीठ ने भारतीय दण्ड संहिता (IPC) की धारा 494 के अन्तर्गत फैसला सुनाते हुए पहली पत्नी को तलाक दिये बगैर दूसरे विवाह को अवैध करार दिया।

एक अन्य वाद जार्डन लिंगदोह बनाम एस.एस. चोपड़ा (1985) वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने एक बार पुनः समान नागरिक संहिता को आवश्यक बताया। क्रिश्चियन मैरिज एक्ट (1972) के अन्तर्गत ईसाई महिला व सिक्ख पुरूष ने विवाह किया था परन्तु विवाह के कुछ महीनों बाद ही तलाक की स्थिति उत्पन्न हो गई। ऐसे में क्रिश्चियन पर्सनल लॉ आड़े आया। तर्क यह दिया गया कि इसमें दो धर्म के लोग सम्मिलित हैं फिर एक धर्म के आधार पर निर्णय कैसे हो सकता है। एक बार पुनः समुदाय विशेष के धर्म के आधार पर बने कानून पर प्रश्न उठना स्वाभाविक था व सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ऐसी परिस्थिति में समान नागरिक संहिता की आवश्यकता दोहराई गई।

समान नागरिक संहिता के मार्ग में चुनौतियाँ-

1. भारत एक बहुलतावादी देश है जहाँ विभिन्न धर्मों, समुदायों की अपनी पृथक मान्यताएँ व रीति-रिवाज हैं। जिसके सम्बन्ध में वे काफी संवेदनशील हैं। ऐसे में समान नागरिक संहिता की संकल्पना कठिन लगती है।
2. समान नागरिक संहिता के विषय में जनमानस में आम सहमति का अभाव है। उनका मत है कि समान नागरिक संहिता के लागू होने से उन्हें उन मान्यताओं का पालन करना पड़ेगा, जो उनकी धार्मिक मान्यताओं से बिल्कुल अलग होंगी।
3. समान नागरिक संहिता एक प्रमुख चुनौती वोट बैंक की राजनीति है जो काफी सीमा तक सही भी है क्योंकि विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा स्वयं को विभिन्न धार्मिक समूहों व अल्पसंख्यकों का हितैषी दिखाया जाता है व ऐसे किसी भी सुधार जो कि परम्परागत मान्यताओं पर चोट करता है, का विरोध किया जाता है।

लाभः-

1. एक ही विषय पर भिन्न-भिन्न विधियों की भरमार से न्यायिक प्रक्रिया बाधित होती है। समान नागरिक संहिता लागू किये जाने की स्थिति में यह बाधा समाप्त हो जायेगी।
2. समान नागरिक संहिता के निर्माण से वोट बैंक की राजनीति समाप्त हो जायेगी।
3. समान नागरिक संहिता सामाजिक परिवर्तन का एक प्रमुख कारक है जिसका मुख्य उद्देश्य देश के सभी नागरिकों में समानता व एकरूपता की भावना का विकास होगा।

सुझावः-

यहाँ पर यह देखना आवश्यक होगा कि समान नागरिक संहिता से आशय यह नही है कि प्रत्येक धर्म व सम्प्रदाय को विवाह, विवाह विच्छेद, दत्तक, अभिभावकत्व व सम्पत्ति सम्बन्धी महिलाओं के अधिकार व भरण-पोषण जैसे विषयों में एक समान रीति-रिवाज को स्वीकार किया जाना चाहिए बल्कि इसका अर्थ यह है कि इसे इस रूप में स्वीकार करना होगा कि इन विषयो में किसी भी पक्ष के साथ अन्याय नहीं होना चाहिए। यह संहिता पूर्ण रूप से न्यायोचित होनी चाहिए। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि समान नागरिक संहिता के प्रति अल्पसंख्यकों के मन में एक प्रकार की असुरक्षा की भावना है। उनके मन में इस बात को लेकर संदेह है कि समान नागरिक संहिता के अस्तित्व में आ जाने से उनकी धार्मिक मान्यताओं व सांस्कृतिक पहचान के समाप्त हो जाने की सम्भावना बढ़ जायेगी। यही कारण है कि समान नागरिक संहिता का विरोध किया जाता रहा है। भारत एक बहुलतावादी संस्कृति प्रधान देश है, जहाँ प्रत्येक वर्ग की अपनी मान्यताएँ हैं। सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में प्रयास करते समय इसे ध्यान में रखना होगा क्योंकि अचानक से कोई भी परिवर्तन या विधि निर्माण एक प्रकार से उनमें असुरक्षा की भावना बढ़ा सकती है। अतः सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में क्रमबद्ध सुधारवादी प्रयास किया जाना चाहिए। शिक्षा का आधुनिकीकरण वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। वहीं बहुसंख्यक समाज को भी सामाजिक यथार्थ को स्वीकार कर सहिष्णुता की भावना को अपनाना होगा व अल्पसंख्यकों के विश्वास को मजबूत बनाते हुए प्रत्येक आवश्यक समाधान करना होगा जो कि उनमें यह भावना विकसित करें कि समान नागरिक संहिता के अस्तित्व में आने से उनकी अस्मिताओं से कोई छेड़छाड़ नहीं की जायेगी।

संदर्भ सूचीः

1. बरनवाल अनूपः समान नागरिक संहिता (चुनौतियॉ और समाधान), लोक भारती प्रकाशन, पेपर बैक 2019.
2. Ghosh S. Partha, The Politics of personal law in South Asia, Identity, Nationalism and the Uniform Civil Code, Routledge, Taylors Francis group, ISBN 978-1-138-50044-0
3. मो0 अहमद खॉ बनाम शाह बानो व अन्य- 1985 SCR(3) 844
4. सरला मुदगल बनाम भारत संघ। A.I.R. (1995) S.C. 1531.
5. दैनिक समाचार पत्र- दैनिक जागरण, दि0 23 जुलाई 2016, पृष्ठ सं0-

क्षेत्र के आधार पर स्नातक स्तर के दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन

संजीव कुमार त्रिपाठी

शोधकर्त्ता, एम0ए0, एम0एड्0, नेट (शिक्षाशास्त्र) राजा श्रीकृष्ण दत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर (उ0प्र0)
सम्बद्ध वीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल विश्वविद्यालय, जौनपुर (उ0प्र0)

सारांश

शोध लेख में क्षेत्र के आधार पर स्नातक स्तर के दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में शोध प्रविधि के रूप में वर्णनात्मक विधि के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया हैं। प्रस्तुत अध्ययन में उत्तर प्रदेश विश्वविद्यालय एवं उससे सम्बद्ध महाविद्यालयों में अध्ययनरत दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों की कुल संख्या को जनसंख्या के रूप में स्वीकार किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों का चयन सोद्देश्य न्यादर्शन विधि द्वारा किया गया है तथा विश्वविद्यालयों एवं उनसे सम्बद्ध महाविद्यालयों में अध्ययनरत् 300 ग्रामीण दिव्यांग एवं 300 शहरी सामान्य विद्यार्थी का चयन गुच्छ न्यादर्शन विधि वर्ग के आधार पर किया गया। दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के समायोजन क्षमता को जाँचने के लिए डॉ. जगदीश एवं डॉ. ए.के. श्रीवास्तव द्वारा निर्मित 'मेण्टल हेल्थ इन्वेन्ट्री' का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत शोध में प्रदत्तों की प्रकृति के आधार पर मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-अनुपात सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग किया गया है। प्रदत्तों के विश्लेषण पश्चात् अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये-

- ग्रामीण सामान्य विद्यार्थियों में सम्पूर्ण व्यक्तित्व, नियमबद्धता, समूह कार्यों में सहभागिता, वातावरण में सामंजस्य तथा मानसिक स्वास्थ्य के परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है जबकि स्वीकारात्मक स्व-आकंलन एवं यथार्थ को स्वीकारने का सामर्थ्य के संदर्भ में दोनों में समानता है।
- शहरी सामान्य विद्यार्थियों में मानसिक स्वास्थ्य तथा उसके आयाम सम्पूर्ण व्यक्तित्व, समूह-कार्यों में सहभागिता, वातावरण में सामंजस्य शहरी दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है जबकि शहरी दिव्यांग विद्यार्थियों में स्वीकारात्मक स्व-आंकलन एवं यथार्थ को स्वीकारने का सामर्थ्य उच्च है जबकि दोनों के मध्य नियमबद्धता में अंतर नहीं है।

मुख्य शब्द- दिव्यांग, सामान्य, विद्यार्थी, शहरी, ग्रामीण, मानसिक स्वास्थ्य, व्यक्तित्व, नियमबद्धता, समूह कार्यों में सहभागिता, वातावरण में सामंजस्य, स्वीकारात्मक स्व-आकंलन एवं यथार्थ को स्वीकारने का सामर्थ्य

प्रस्तावना-

मानसिक शब्द व्यक्ति के मन, मस्तिष्क या मनोविज्ञान से सम्बन्धित है जबकि स्वास्थ्य उसके समन्वित ढंग से कार्य करने की स्थिति को इंगित करता है। अत: मानसिक स्वास्थ्य पद से अभिप्राय व्यक्ति मन, मस्तिष्क या अन्त:करण की अपनी पूरी क्षमता के साथ सकारात्मक ढंग से कार्य करने की स्थिति में है। दूसरे शब्दों में कह सकते है कि मानसिक स्वास्थ्य से तात्पर्य व्यक्ति की उस मनोस्थिति से है जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में सामाजिक तथा व्यक्तिगत समायोजन करने में समर्थ होता है।

मानसिक स्वास्थ्य की अवधारणा अत्यन्त प्राचीन है। पहले उस व्यक्ति को मानसिक रोगी समझा जाता था जो समाज तथा परिवार विरोधी कार्य करता था पर वह क्यों कर रहा है, इसका पता उसे स्वयं नहीं होता था। दौरे पड़ना, वस्त्रविहीन हो जाना आदि भूत-प्रेत के उत्पात माने जाते थे और तन्त्र मन्त्र द्वारा मानसिक चिकित्सा की जाती थी। अशिक्षित क्षेत्रों में आज भी ऐसा किया जाता है। मनोविज्ञान ने मानसिक रोगों के बारें में नवीन अवधारणाएँ प्रस्तुत करती है।

मानसिक दोष या बीमारी न होने पर व्यक्ति को मानसिक रूप से स्वस्थ मानते हैं। मानसिक स्वास्थ्य का अन्य आशय व्यक्ति के द्वारा दैनिक जीवन में भावनाओं, इच्छाओं, महत्वाकांक्षाओं, आदर्शों में संतुलन रखने की योग्यता से लिया जाता है अर्थात् वह जीवन की वास्तविकताओं का पूर्ण रूप से सामना करने और उनको स्वीकार करने की योग्यता रखता है। मानसिक स्वास्थ्य का शिक्षा में बहुत बड़ा योगदान होता है जैसा कि विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य विद्यार्थियों के सम्पूर्ण क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान होता है। कुछ शोध से भी इंगित होता है कि मानसिक स्वास्थ्य पर क्षेत्र का भी प्रभाव पड़ता है जैसा कि

फर्हंग एवं अन्य (2014) ने निष्कर्ष में पाया गया कि ग्रामीण क्षेत्रीय कॉलेज विद्यार्थियों की तुलना में शहरी क्षेत्रीय कालेज विद्यार्थियों में मानसिक स्वास्थ्य व आत्मनिष्ठ कल्याण उच्च स्तर का पाया गया। वहीं पारिवारिक वातावरण भी विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। मुनिराजम्मा एवं अन्य (2011) ने निष्कर्ष के रूप में पाया कि बालकों का मानसिक स्वास्थ्य, माता-पिता की वैवाहिक सन्तुष्टि से प्रभावित होता है। जिन माता-पिता की वैवाहिक सन्तुष्टि अधिक होती है उनके बालकों का मानसिक स्वास्थ्य भी उच्च पाया गया। विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य उनके समायोजन, व्यक्तित्व, शैक्षिक उपलब्धि इत्यादि चरों पर सार्थक प्रभाव डालता है। कुमार एवं अन्य (2010) ने निष्कर्ष के रूप में पाया कि लिंग, परिवेश तथा शैक्षिक स्तर के आधार पर विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में अन्तर पाया गया। बमागोल्ड एवं अन्य (2011) ने निष्कर्ष के आधार पर पाया कि मानसिक स्वास्थ्य व शैक्षिक उपलब्धि में धनात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध पाया गया।

समस्या कथन-

क्षेत्र के आधार पर स्नातक स्तर के दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन।

अध्ययन का उद्देश्य-

अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों है-

1. स्नातक स्तर के ग्रामीण दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन तुलनात्मक अध्ययन।
2. स्नातक स्तर के शहरी दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन तुलनात्मक अध्ययन।

परिकल्पनाएँ-

उद्देश्यों के आधार पर निम्नलिखित परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है-

1. स्नातक स्तर के ग्रामीण दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. स्नातक स्तर के शहरी दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध प्रविधि-

प्रस्तुत अध्ययन में शोध प्रविधि के रूप में वर्णनात्मक विधि के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया हैं।

जनसंख्या-

प्रस्तुत अध्ययन में उत्तर प्रदेश विश्वविद्यालय एवं उससे सम्बद्ध महाविद्यालयों में अध्ययनरत दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों की कुल संख्या को जनसंख्या के रूप में स्वीकार किया गया है।

न्यादर्श-

प्रस्तुत अध्ययन में विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों का चयन सोद्देश्य न्यादर्शन विधि द्वारा किया गया है तथा विश्वविद्यालयों एवं उनसे सम्बद्ध महाविद्यालयों में अध्ययनरत् 300 ग्रामीण दिव्यांग एवं 300 शहरी सामान्य विद्यार्थी का चयन गुच्छ न्यादर्शन विधि वर्ग के आधार पर किया गया।

उपकरण की व्याख्या-

दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के समायोजन क्षमता को जाँचने के लिए डॉ. जगदीश एवं डॉ. ए.के. श्रीवास्तव द्वारा निर्मित 'मेण्टल हेल्थ इन्वेन्ट्री' का प्रयोग किया गया है।

प्रयुक्त सांख्यिकीय विधियाँ-

प्रस्तुत शोध में प्रदत्तों की प्रकृति के आधार पर मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-अनुपात सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या-

1. स्नातक स्तर के ग्रामीण दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन-

सारणी 41: ग्रामीण दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य की तुलना

क्र0सं0	मानसिक स्वास्थ्य	ग्रामीण दिव्यांग विद्यार्थी (150)			ग्रामीण सामान्य विद्यार्थी (150)			t-value
		Total	Mean	S.D.	Total	Mean	S.D.	
1	स्वीकारात्मक स्व–आंकलन	4501	30.01	4.41	4582	30.55	5.08	0.98
2	यथार्थ को स्वीकारने का सामर्थ्य	3941	26.27	3.86	3835	25.57	4.27	1.49
3	सम्पूर्ण व्यक्तित्व	4054	27.03	4.92	5090	33.93	5.58	11.36*
4	नियमबद्धता (स्वायतत्ता)	2744	18.29	2.57	2914	19.43	3.38	3.29*
5	समूह–कार्यों में सहभागिता	3721	24.81	3.34	4232	28.21	5.01	6.92*
6	वातावरण में सामंजस्य	3976	26.51	3.75	4833	32.22	5.22	10.88*
7	मानसिक स्वास्थ्य	22937	152.91	13.03	25343	168.95	18.02	8.83*

**.01 पर सार्थक*

सारणी 1 में स्नातक स्तर के ग्रामीण दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों की स्वीकारात्मक स्व-आंकलन का मध्यमान क्रमशः 30.01 एवं 30.55 तथा विचलन 4.41 एवं 5.08 है। प्राप्त टी-मान 0.98 है जो .01 के मान 2.59 से कम होने पर असार्थक है। परिणामतः ग्रामीण दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों में समान रूप से स्वीकारात्मक स्व-आंकलन है।

स्नातक स्तर के ग्रामीण दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों की यथार्थ को स्वीकारने का सामर्थ्य का मध्यमान क्रमशः 26.27 एवं 25.57 तथा विचलन 3. 86 एवं 4.27 है। प्राप्त टी-मान 1.49 है जो .01 के मान 2.59 से कम होने पर असार्थक है। परिणामतः ग्रामीण दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों में समान रूप से यथार्थ को स्वीकारने का सामर्थ्य है।

स्नातक स्तर के ग्रामीण दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों की सम्पूर्ण व्यक्तित्व का मध्यमान क्रमशः 27.03 एवं 33.93 तथा विचलन 4.92 एवं 5.58 है। प्राप्त टी-मान 11.36 है जो .01 के मान 2.59 से अधिक होने पर सार्थक है। परिणामतः ग्रामीण सामान्य विद्यार्थियों का सम्पूर्ण व्यक्तित्व ग्रामीण दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है।

स्नातक स्तर के ग्रामीण दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों की नियमबद्धता (स्वायतत्ता) का मध्यमान क्रमशः 18.29 एवं 19.43 तथा विचलन 2.57 एवं 3.38 है। प्राप्त टी-मान 3.29 है जो .01 के मान 2.59 से अधिक होने पर सार्थक है। परिणामतः ग्रामीण सामान्य विद्यार्थियों में नियमबद्धता (स्वायतत्ता) ग्रामीण दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है।

स्नातक स्तर के ग्रामीण दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों की समूह-कार्यों में सहभागिता का मध्यमान क्रमशः 24.81 एवं 28.21 तथा विचलन 3.34 एवं 5.01 है। प्राप्त टी-मान 6.92 है जो .01 के मान 2.59 से अधिक होने पर सार्थक है। परिणामतः ग्रामीण सामान्य विद्यार्थियों का समूह-कार्यों में सहभागिता ग्रामीण दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है।

स्नातक स्तर के ग्रामीण दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों की वातावरण में सामंजस्य का मध्यमान क्रमशः 26.51 एवं 32.22 तथा विचलन 3.75 एवं 5. 22 है। प्राप्त टी-मान 10.88 है जो .01 के मान 2.59 से अधिक होने पर सार्थक है। परिणामतः ग्रामीण सामान्य विद्यार्थियों का वातावरण में सामंजस्य ग्रामीण दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है।

स्नातक स्तर के ग्रामीण दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का मध्यमान क्रमशः 152.91 एवं 168.95 तथा विचलन 13.03 एवं 18. 02 है। प्राप्त टी-मान 8.83 है जो .01 के मान 2.59 से अधिक होने पर सार्थक है। परिणामतः ग्रामीण सामान्य विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य ग्रामीण दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है।

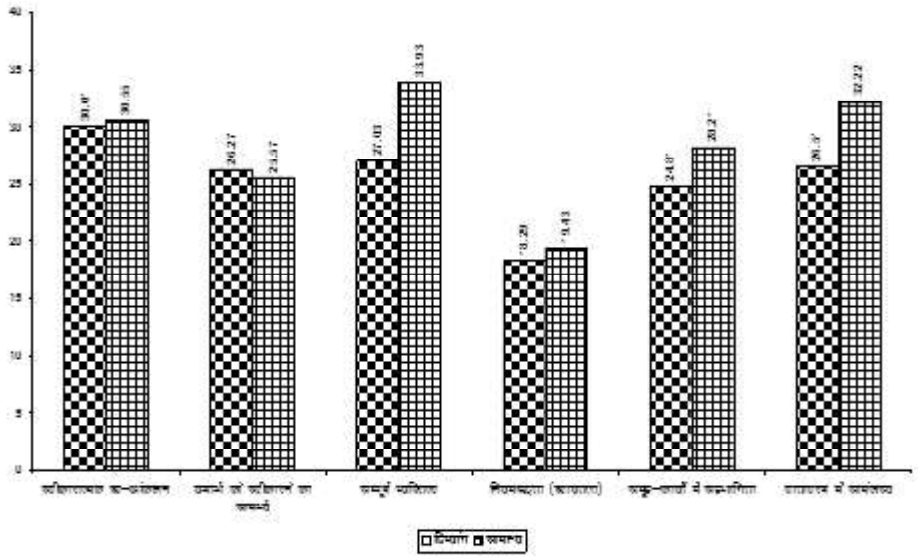

आरेख सं0 1 ग्रामीण दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य की विमाओं का मध्यमान

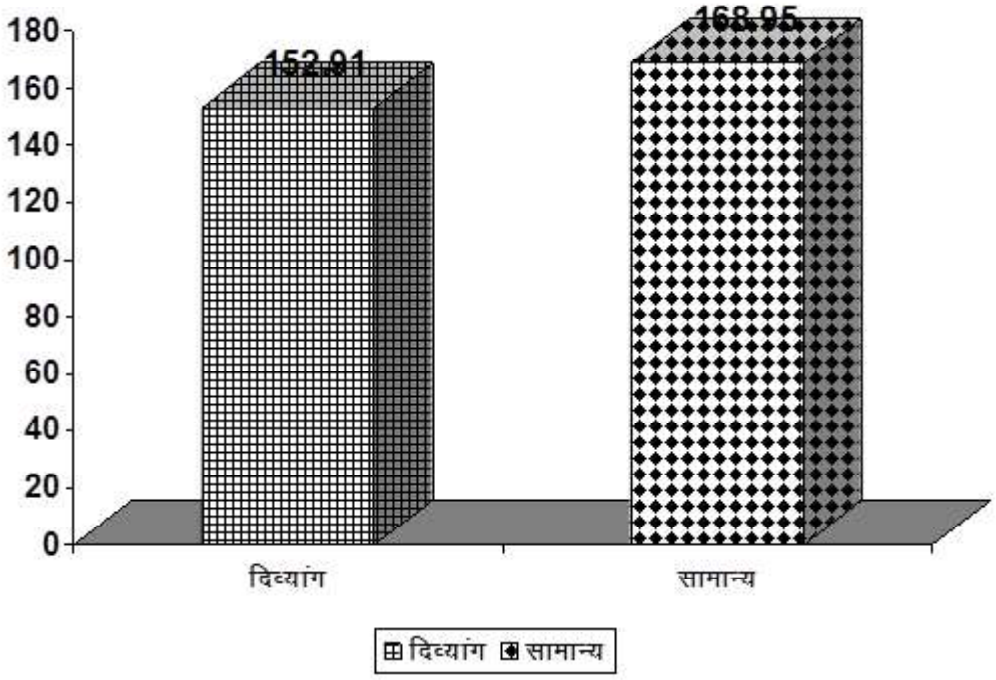

आरेख सं0 2 ग्रामीण दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का मध्यमान

2. स्नातक स्तर के शहरी दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन करना–

सारणी 2: शहरी दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य की तुलना

क्र0सं0	मानसिक स्वास्थ्य	शहरी दिव्यांग विद्यार्थी (150)			शहरी सामान्य विद्यार्थी (150)			t-value
		Total	Mean	S.D.	Total	Mean	S.D.	
1	स्वीकारात्मक स्व–आंकलन	5129	34.19	3.77	4589	30.59	4.47	7.54*
2	यथार्थ को स्वीकारने का सामर्थ्य	4394	29.29	3.22	3808	25.39	4.18	9.05*
3	सम्पूर्ण व्यक्तित्व	4798	31.99	4.11	5058	33.72	5.61	3.05*
4	नियमबद्धता (स्वायतत्ता)	3038	20.25	2.64	2920	19.47	3.25	2.28
5	समूह–कार्यों में सहभागिता	3808	25.39	3.96	4231	28.21	5.03	5.40*
6	वातावरण में सामंजस्य	3855	25.70	3.33	4765	31.77	5.32	11.84*
7	मानसिक स्वास्थ्य	25022	166.81	11.69	25265	168.43	17.70	0.94

**.01 पर सार्थक*

सारणी 2 में स्नातक स्तर के शहरी दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों की स्वीकारात्मक स्व-आंकलन का मध्यमान क्रमश: 34.19 एवं 30.59 तथा विचलन 3.77 एवं 4.47 है। प्राप्त टी-मान 7.54 है जो .01 के मान 2.59 से अधिक होने पर सार्थक है। परिणामत: शहरी दिव्यांग विद्यार्थियों में स्वीकारात्मक स्व-आंकलन शहरी सामान्य विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है।

स्नातक स्तर के शहरी दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों की यथार्थ को स्वीकारने का सामर्थ्य का मध्यमान क्रमश: 29.29 एवं 25.39 तथा विचलन 3. 22 एवं 4.18 है। प्राप्त टी-मान 9.05 है जो .01 के मान 2.59 से अधिक होने पर सार्थक है। परिणामत: शहरी दिव्यांग विद्यार्थियों मेंयथार्थ को स्वीकारने का सामर्थ्य शहरी सामान्य विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है।

स्नातक स्तर के शहरी दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों की सम्पूर्ण व्यक्तित्व का मध्यमान क्रमश: 31.99 एवं 33.72 तथा विचलन 4.11 एवं 5.61 है। प्राप्त टी-मान 3.05 है जो .01 के मान 2.59 से अधिक होनेपर सार्थक है। परिणामत: शहरी सामान्य विद्यार्थियों में सम्पूर्ण व्यक्तित्व शहरी दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है।

स्नातक स्तर के शहरी दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों की नियमबद्धता (स्वायतत्ता) का मध्यमान क्रमश: 20.25 एवं 19.47 तथा विचलन 2.64 एवं 3. 25 है। प्राप्त टी-मान 2.28 है जो .01 के मान 2.59 से कम होने पर असार्थक है। परिणामत: शहरी दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों में समान रूप से नियमबद्धता (स्वायतत्ता) है।

स्नातक स्तर के शहरी दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों की समूह-कार्यों में सहभागिता का मध्यमान क्रमश: 25.39 एवं 28.21 तथा विचलन 3.96 एवं 5.03 है। प्राप्त टी-मान 5.40 है जो .01 के मान 2.59 से अधिक होने पर सार्थक है। परिणामत: शहरी सामान्य विद्यार्थियों का समूह-कार्यों में सहभागिता शहरी दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है।

स्नातक स्तर के शहरी दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों की वातावरण में सामंजस्य का मध्यमान क्रमश: 25.70 एवं 31.77 तथा विचलन 3.33 एवं 5. 32 है। प्राप्त टी-मान 11.84 है जो .01 के मान 2.59 से अधिक होने पर सार्थक है। परिणामत: शहरी सामान्य विद्यार्थियों का वातावरण में सामंजस्य शहरी दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है।

स्नातक स्तर के शहरी दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का मध्यमान क्रमश: 166.81 एवं 168.43 तथा विचलन 11.69 एवं 17. 70 है। प्राप्त टी-मान 0.94 है जो .01 के मान 2.59 से कम होने पर असार्थक है। परिणामत: शहरी दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में समानता है।

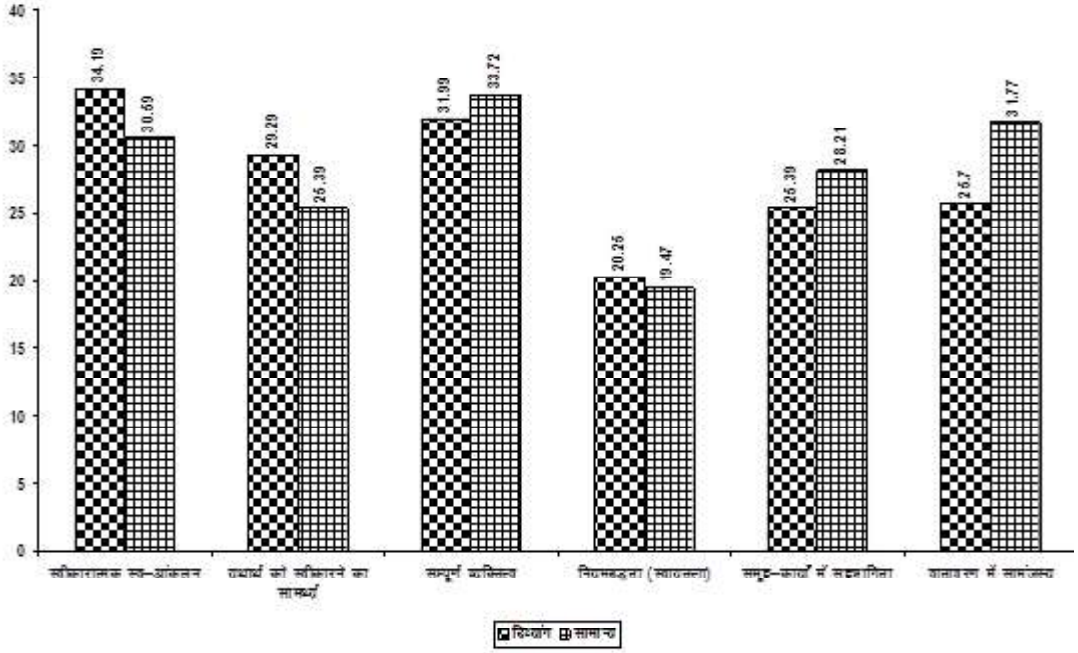

आरेख सं0 3 शहरी दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य की विमाओं का मध्यमान

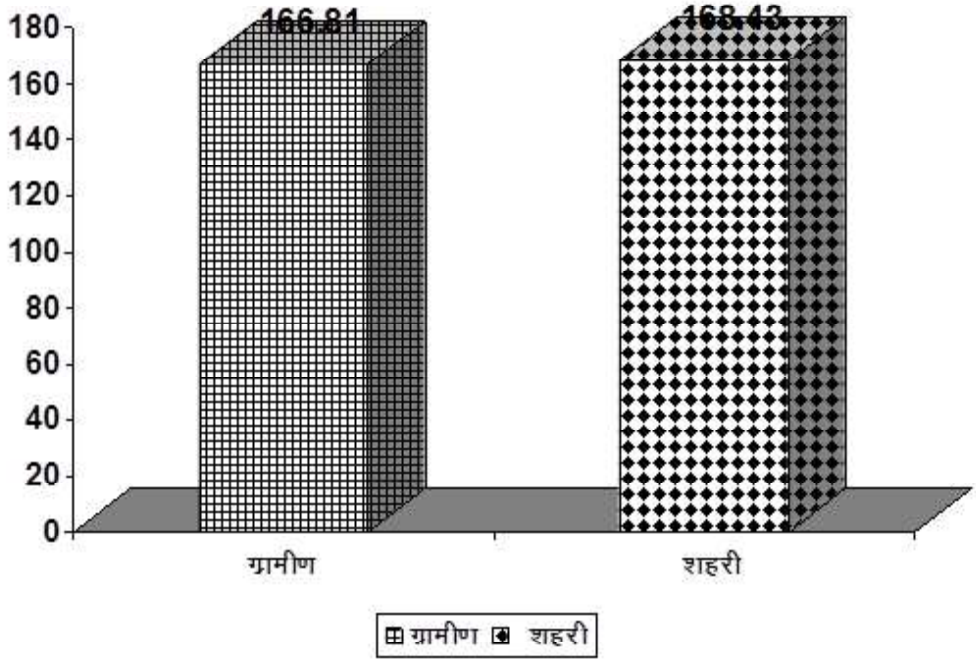

आरेख सं0 4 शहरी दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का मध्यमान

निष्कर्ष–

अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये–

- ग्रामीण सामान्य विद्यार्थियों में सम्पूर्ण व्यक्तित्व, नियमबद्धता, समूह कार्यों में सहभागिता, वातावरण में सामंजस्य तथा मानसिक स्वास्थ्य के परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है जबकि स्वीकारात्मक स्व–आकलन एवं यथार्थ को स्वीकारने का सामर्थ्य के संदर्भ में दोनों में समानता है।

- शहरी सामान्य विद्यार्थियों में मानसिक स्वास्थ्य तथा उसके आयाम सम्पूर्ण व्यक्तित्व, समूह-कार्यों में सहभागिता, वातावरण में सामंजस्य शहरी दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है जबकि शहरी दिव्यांग विद्यार्थियों में स्वीकारात्मक स्व-आंकलन एवं यथार्थ को स्वीकारने का सामर्थ्य उच्च है जबकि दोनों के मध्य नियमबद्धता में अंतर नहीं है।

सन्दर्भ सूची

- अल्वी रजा एवं बेनडेकी (2005). ''मेन्टल हाईजीन ऑफ द स्पेशल स्कूल टीचर्स इन करमान, ईरान''. http://www.ncbi.nlm.nih.gov.pubmed/ 15844850
- ए0 व्यास (2002), ए स्टडी ऑफ लर्निंग स्टाइल, मेन्टल एबिलिटी, एकेडमिक परफार्मेन्स एण्ड अदर इकोलॉजिकल कोरलिशन ऑफ अण्डर ग्रेजुएट एडोलसेन्ट गर्ल्स ऑफ राजस्थान, पी-एच0डी0 एजुकेशन, चौधरी चरण सिंह यूनिवर्सिटी, मेरठ
- कुमार, अश्वनी (2013). हाईस्कूल स्तर के अनुदानित तथा गैर अनुदानित विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध , छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर।
- कुमारी, सुधा एवं जाफरी, सदफ (2014). उत्तर प्रदेश बोर्ड के उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य व शैक्षिक उपलब्धि, जर्नल ऑफ कम्यूनिटी गाइडेन्स एण्ड रिसर्च, 31(2), पृ0 187-199
- तलवार, एम.एस. एवं दास, अन्निदिता (2014). द स्टडी ऑफ रिलेशनशिप बिटविन ऐकेडमी एचिवमेन्ट एण्ड मेन्टल हेल्थ ऑफ सेकेण्डरी स्कूल ट्राईब स्टूडेन्ट ऑफ असम, पैरीपेक्स- इण्डियन जर्नल ऑफ रिसर्च, वाल्यूम-3, इश्शू-11, पृ0 55-57
- पाण्डेय इन्द्र मोहन (2017). माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों के अधिगम शैली तथा उनके मानसिक स्वास्थ्य में सम्बन्ध का एक अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय, सिंगरामऊ, जौनपुर सम्बद्ध, वीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल विश्वविद्यालय, जौनपुर
- पुवा, पोह क्योंग एवं अन्य (2015). द रिलेशनशिप बिटविन मेन्टल हेल्थ एण्ड ऐकेडमी एचिवमेन्ट एमंग यूनिवर्सिटी स्टूडेन्ट-ए लिट्रेचर रिव्यू, ग्लोबल इलूमिनिस्ट्रेटर पब्लिशिंग, मल्टीडिसिपिलनरी स्टडिज, पृ0 755-764 www.globalilluminators.org

माध्यमिक स्तर पर सरकारी विद्यालयों के संगठनात्मक वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव के अध्ययन

विजय बहादुर यादव

शोध्छात्र, एम0ए0, एम0एड्0, नेट (शिक्षाशास्त्र) राजा श्रीकृष्ण दत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर (उ0प्र0)

सारांश

समस्या कथन- माध्यमिक स्तर पर सरकारी विद्यालयों के संगठनात्मक वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन है। प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता ने सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है। अध्ययन में जनसंख्या के रूप में जौनपुर जनपद में स्थित उन सभी सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त माध्यमिक स्तर के विद्यालयों, शिक्षकों एवं अध्ययनरत् विद्यार्थियों को जनसंख्या माना गया। अध्ययन कार्य में प्रतिदर्श चयन विधि के रूप में साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्श विधि का प्रयोग करके जौनपुर जनपद के सरकारी, अर्द्धसरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक स्तर के 20 विद्यालयों (10 सरकारी एवं 10 गैर सरकारी) का चयन किया गया तत्पश्चात् उन विद्यालयों में अध्यापनरत् 200 शिक्षकों (100 सरकारी एवं 100 गैर सरकारी शिक्षक) तथा 200 विद्यार्थियों (200 विद्यार्थी सरकारी विद्यालय से एवं 200 विद्यार्थी गैर सरकारी विद्यालय से) का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक विधि से किया गया है तथा 400 विद्यार्थियों (200 विद्यार्थी सरकारी विद्यालय से एवं 200 विद्यार्थी गैर सरकारी विद्यालय से) का चयन यादृच्छिक विधि से किया गया है। संज्योत पेठ, सुषमा चौधरी एवं उपेन्दर धर द्वारा निर्मित 'आर्गेनाइजेशनल क्लाइमेट स्केल (OCS) एवं विद्यार्थियों की परीक्षा में प्राप्त प्राप्तांक का प्रयोग किया गया है। आंकड़ों के विश्लेषण हेतु एनोवा (प्रसरण विधि) एवं, क्रान्तिक अनुपात, स्वातंत्र अंश का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया- सरकारी विद्यालयों के उच्च, सामान्य एवं निम्न संगठनात्मक वातावरण के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर है अर्थात् संगठनात्मक वातावरण के सन्दर्भ में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव है। गैर सरकारी उच्च, सामान्य एवं निम्न संगठनात्मक वातावरण के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर है अर्थात् संगठनात्मक वातावरण के सन्दर्भ में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव है।

की-वर्ड- माध्यमिक स्तर, सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालय, संगठनात्मक वातावरण, विद्यार्थी, शैक्षिक उपलब्धि, प्रभाव, एनोवा, क्रान्तिक अनुपात

प्रस्तावना-

कोई भी समाज अपने पाल्यों को बेहतर बनाने के क्रम में उनके शैक्षिक आयामों पर जब विचार करता है तो प्रकारान्तर में वह बालकों की शैक्षिक उपलब्धि में ही सरोकार रखता है। यह एक ज्ञात एवं प्रमाणित तथ्य है कि बालक की शैक्षिक उपलब्धि अनेकानेक कारकों से प्रभावित होती है। इन कारकों में सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक आदि अनेक आयाम सम्मिलित है। बालक के विकास के क्रम में कुछ काल खण्ड उपरोक्त कारणों से प्रभावित होने के सन्दर्भ में अत्यन्त संवेदनशील होते हैं। उसी अत्यन्त संवेदनशील कालखण्डों में बालकों की किशोरावस्था, जिसमें कि बालक माध्यमिक स्तर की शिक्षा ग्रहण करता है, भी सम्मिलित है। बालक के जीवन काल में माध्यमिक स्तर एक महत्वपूर्ण मोड़ की तरह होता है जहाँ पर आकर बालक को अपने भविष्य के निर्णय लेने होते हैं, यही वह शैक्षिक स्तर होता है जहाँ बालक को शैक्षिक सन्दर्भों से सम्बन्धित अनेक रास्तों का ज्ञान होता है और यही वह स्तर है जहाँ कि चुने हुए रास्ते उनके आगे आने वाले जीवन की रूपरेखा तय करते हैं। बालक में शैक्षिक विकास की यह अवस्था न तो अपरिपक्व होती है और न ही पूर्णतया परिपक्व होती है। इस काल खण्ड में संघर्षरत बालक वास्तव में एक अर्द्ध परिपक्व मनुष्य होता है। यही कारण है कि इस अवस्था में उसकी शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करने वाले कारकों की संख्या अधिक होती है। यद्यपि कालान्तर में अनेक कारण जो इस अवस्था में प्रभावकारी होते हैं, अप्रभावशील हो जाते हैं, इसलिए माध्यमिक स्तर के बालकों की शैक्षिक स्थिति, शैक्षिक प्रक्रिया, शैक्षिक प्रगति और शैक्षिक उपलब्धि्ज्ञ विचारणीय मुद्दा बन जाता है।

जब हम उन अनेक कारणों की चर्चा करते हैं तो कुछ कारक हमें ऐसे भी मिलते हैं जिनका स्वरूप पूर्णतया पारम्परिक नहीं होता और साथ ही साथ परिवर्तनशील भी होता है। अगर हम बालक के औपचारिक शैक्षिक ढाँचें की बात करते हैं तो विद्यालय एवं इसका वातावरण स्पष्ट रूप से एक प्रभाव के रूप में हमारे सामने आता है। विद्यालयी वातावरण के भी अनेक पहलू होते हैं जैसे, शिक्षक छात्र सम्बन्ध, शिक्षक-शिक्षक सम्बन्ध, भौतिक वातावरण, अभौतिक वातावरण, प्रशासनिक एवं नेतृत्व शैली, शिक्षण विधियाँ आदि। विद्यालयी वातावरण से सम्बन्धि्ज्ञत उपर्युक्त अनेक आयामों में ही विद्यालय का संगठनात्मक वातावरण भी सम्मिलित है। संगठनात्मक वातावरण से तात्पर्य, विद्यालय संगठन के स्वरूप, क्रियाविधि्ज्ञ एवं विस्तार से है। वास्तव में विद्यालय अनेक मानवीय दायित्वों का एक अभूतपूर्व संगठन होता है, जिसके प्रत्येक व्यक्ति अपने दायित्वों का न सिर्फ निर्वहन करता है वरन् वह उसके लिए जिम्मेदार भी होता है।

अपने दायित्वों के निर्वहन के क्रम में सबके अस्तित्व की संरक्षा एवं सम्मान करना भी संगठन की कार्य पद्धति में आता है। विद्यालय के संगठनात्मक वातावरण में विद्यालय में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सम्बन्धिज्ञत अनेक व्यक्तियों का सकारात्मक सहयोग होता है। आपसी सहयोग से एक विद्यालय के संगठनात्मक वातावरण में धनात्मक ऊर्जा का संचार होता है परन्तु संगठनात्मक वातावरण का असहयोगात्मक स्वरूप से वातावरण में नकारात्मकता का विखराव होता है। इस प्रकार इस संगठनात्मक वातावरण का प्रभाव सबसे अधिज्ञक प्रभावित होने वाला सदस्य अर्थात् शिक्षार्थी के विकास पर अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से पड़ता है। हम जानते हैं कि बालक के विकास के मापन का सबसे बड़ा आयाम उसकी शैक्षिक उपलब्धिज्ञ होती है। इस प्रकार विद्यालय का संगठनात्मक वातावरण प्रकारान्तर में बालक के शैक्षिक उपलब्धिज्ञ को भी प्रभावित करता है। विद्यालय वातावरण के नौ निश्चितकारी तत्वों में से हेड मास्टर, और स्टाफ का सम्बन्ध, संख्या प्रमुख की प्रशासनिक क्षमता, अध्यापकों की कार्य सन्तुष्टि और विद्यालय की भौतिक सुविधाओं का प्रमुख रूप से विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव पाया गया (मुखोपाध्याय, 1989)। संस्थागत वातावरण में अपनेपन की भावना का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धिज्ञ में सकारात्मक एवं सार्थक सम्बन्ध पाया गया (ओजेलबी, एस.ए. 2009)। विद्यालयीय वातावरण एवं विद्यार्थियों के उपलब्धिज्ञ में सार्थक एवं सकारात्मक सम्बन्धज्ञ पाया गया (शिंडलर, जॉन 2016)। शाला प्रबन्धन समिति के प्रयासों का शैक्षिक विकास में सकारात्मक प्रभाव पाया गया (कुशवाहा, मंजू 2017)। संगठनात्मक वातावरण का सीधा प्रभाव विद्यार्थियों के अभिप्रेरणा पर पड़ता है और अभिप्रेरणा का प्रभाव उनके शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ता है महमुदहा, सीती एवं अन्य, 2017)। उच्च विद्यालय वातावरण वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि मध्यम एवं निम्न विद्यालय वातावरण वाले विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च पाया गया (नायक एवं मरकाम, 2018)। माध्यमिक विद्यालयों के संगठनात्मक प्रभावशीलता का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक सम्बन्ध पाया गया (भुयन, बिन्दिया, 2018)।

समस्या कथन-

माध्यमिक स्तर पर सरकारी विद्यालयों के संगठनात्मक वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव के अध्ययन।

अध्ययन का उद्देश्य-

अध्ययन के उद्देश्य निम्नांकित है-

1. माध्यमिक स्तर पर सरकारी विद्यालयों के संगठनात्मक वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव के अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तर पर गैर सरकारी विद्यालयों के संगठनात्मक वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव के अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ-

उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है-

$H0_1$ माध्यमिक स्तर पर सरकारी विद्यालयों के संगठनात्मक वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव नहीं है।

$H0_2$ माध्यमिक स्तर पर गैर सरकारी विद्यालयों के संगठनात्मक वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव नहीं है।

अनुसंधान विधि

प्रस्तुत अध्ययन में शोधज्ञकर्ता ने सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है।

अध्ययन की जनसंख्या

अध्ययन में जनसंख्या के रूप में जौनपुर जनपद में स्थित उन सभी सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त माध्यमिक स्तर के विद्यालयों, शिक्षकों एवं अध्ययनरत् विद्यार्थियों को जनसंख्या माना गया।

न्यादर्श

अध्ययन कार्य में प्रतिदर्श चयन विधि के रूप में साधज्ञारण यादृच्छिक प्रतिदर्श विधि का प्रयोग करके जौनपुर जनपद के सरकारी, अर्द्धसरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक स्तर के 20 विद्यालयों (10 सरकारी एवं 10 गैर सरकारी) का चयन किया गया तत्पश्चात् उन विद्यालयों में अध्यापनरत् 200 शिक्षकों (100 सरकारी एवं 100 गैर सरकारी शिक्षक) तथा 200 विद्यार्थियों (200 विद्यार्थी सरकारी विद्यालय से एवं 200 विद्यार्थी गैर सरकारी विद्यालय से) का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक विधि से किया गया है तथा 400 विद्यार्थियों (200 विद्यार्थी सरकारी विद्यालय से एवं 200 विद्यार्थी गैर सरकारी विद्यालय से) का चयन यादृच्छिक विधि से किया गया है।

शोध उपकरण

संगठनात्मक वातावरण मापनी-

संज्योत पेठ, सुषमा चौधरी एवं उपेन्दर धर द्वारा निर्मित 'आर्गेनाइजेशनल क्लाइमेट स्केल (OCS)' का प्रयोग शोधकर्ता ने किया है।

शैक्षिक उपलब्धि-

विद्यार्थियों की परीक्षा में प्राप्त प्राप्तांक।

सांख्यिकी विधियाँ-

आंकड़ों के विश्लेषण हेतु एनोवा (प्रसरण विश्लि) एवं, क्रान्तिक अनुपात, स्वातंत्र अंश का प्रयोग किया गया है।

परिकल्पनाओं का परीक्षण-

1. माध्यमिक स्तर पर सरकारी विद्यालयों के संगठनात्मक वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

H_1 माध्यमिक स्तर पर सरकारी विद्यालयों के संगठनात्मक वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव है।

$H0_1$ माध्यमिक स्तर पर सरकारी विद्यालयों के संगठनात्मक वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव नहीं है।

सारणी सं0 1

माध्यमिक स्तर पर गैर सरकारी विद्यालयों के उच्च, सामान्य एवं निम्न संगठनात्मक वातावरण के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर का एफ-मान

स्रोत	स्वतंत्रांश (df)	वर्ग योग (SS)	माध्य वर्ग योग (MS)	प्रसरण–मान (F-Value)
समूहों के मध्य	2	19360.38	9680.19	9.85
समूहों के अन्दर	97	95342.62	982.91	
कुल	**99**	**114703.00**	**10663.10**	

**0.05 स्तर पर असार्थक*

समूहों के मध्य का वर्ग योग (SS) एवं माध्य वर्ग योग (MS) क्रमशः 19360.38 एवं 9680.19 तथा समूहों के अन्दर क्रमशः 95342.62 एवं 982. 91 है। एफ-अनुपात = (9.85) जो कि स्वतंत्रांश = (2, 97) पर एफ-अनुपात के क्रान्तिक मान 3.09 से अधिक है, 0.05 पर सार्थक है। पूर्व निर्मित शून्य परिकल्पना (H014) अस्वीकृत होती है। परिणामतः उच्च, सामान्य एवं निम्न संगठनात्मक वातावरण के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर है अर्थात् संगठनात्मक वातावरण के सन्दर्भ में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव है।

सारणी सं0 1.1

माध्यमिक स्तर पर गैर सरकारी विद्यालयों के उच्च, सामान्य एवं निम्न संगठनात्मक वातावरण के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर का क्रान्तिक-अनुपात

क्र. सं.	विद्यालय	N	M	σ_D	D	t-value
1.	उच्च	15	318.87	9.35	20.02	2.14*
	सामान्य	45	298.84			
2.	उच्च	15	318.87	9.49	39.89	4.20*
	निम्न	40	278.98			
3.	सामान्य	45	298.84	6.81	19.87	2.92*
	निम्न	40	278.98			

**0.05 स्तर पर सार्थक*

उच्च, सामान्य एवं निम्न संगठनात्मक वातावरण के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान क्रमशः 318.87, 298.84 एवं 278.98 है। प्रत्येक युग्म का क्रान्तिक-अनुपात मान 0.05 स्तर पर दिये गये मान से अधिक है, जो सार्थक है। तीनों प्रकार के संगठनात्मक वातावरण वाले विद्यालयों के प्राप्त प्रतिदर्श के मध्यमानों में पारस्परिक रूप से सार्थक अन्तर है अर्थात् शैक्षिक उपलब्धि के सन्दर्भ में तीनों प्रकार के संगठनात्मक वातावरण वाले विद्यालयों के विद्यार्थियों में विभिन्नता है। परिणामतः उच्च संगठनात्मक वातावरण वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि सामान्य एवं निम्न संगठनात्मक वातावरण वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि उच्च है।

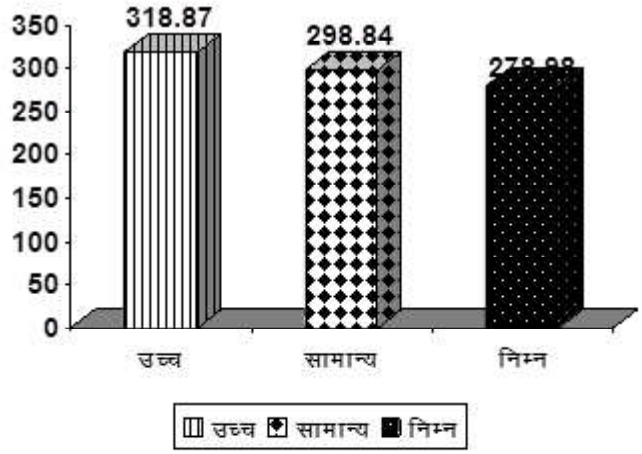

चित्र सं0 1 माध्यमिक स्तर पर गैर सरकारी विद्यालयों के उच्च, सामान्य एवं निम्न संगठनात्मक वातावरण के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान

2. माध्यमिक स्तर पर गैर सरकारी विद्यालयों के संगठनात्मक वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

H_2 माध्यमिक स्तर पर गैर सरकारी विद्यालयों के संगठनात्मक वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव है।

$H0_2$ माध्यमिक स्तर पर गैर सरकारी विद्यालयों के संगठनात्मक वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव नहीं है।

सारणी सं0 2

माध्यमिक स्तर पर गैर गैर सरकारी विद्यालयों के उच्च, सामान्य एवं निम्न संगठनात्मक वातावरण के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर का एफ-मान

स्रोत	स्वतंत्रांश (df)	वर्ग योग (SS)	माध्य वर्ग योग (MS)	प्रसरण–मान (F-Value)
समूहों के मध्य	2	39933.37	19966.69	18.34
समूहों के अन्दर	97	105622.34	1088.89	
कुल	**99**	**145555.71**	**21055.58**	

****0.05 स्तर पर असार्थक***

समूहों के मध्य का वर्ग योग (SS) एवं माध्य वर्ग योग (MS) क्रमशः 39933.37 एवं 19966.69 तथा समूहों के अन्दर क्रमशः 105622.34 एवं 1088.89 है। एफ-अनुपात = (18.34) जो कि स्वतंत्रांश = (2, 97) पर एफ-अनुपात के क्रान्तिक मान 3.09 से अधिक है, 0.05 पर सार्थक है। पूर्व निर्मित शून्य परिकल्पना (H015) अस्वीकृत होती है। परिणामतः उच्च, सामान्य एवं निम्न संगठनात्मक वातावरण के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर है अर्थात् संगठनात्मक वातावरण के सन्दर्भ में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव है।

सारणी सं0 2.1

माध्यमिक स्तर पर गैर गैर सरकारी विद्यालयों के उच्च, सामान्य एवं निम्न संगठनात्मक वातावरण के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर का क्रान्तिक-अनुपात

क्र.सं.	विद्यालय	N	M	σ_D	D	t-value
1.	उच्च	15	342.53	9.38	35.03	3.74*
	सामान्य	71	307.51			
2.	उच्च	15	342.53	12.26	74.25	6.05*
	निम्न	14	268.29			
3.	सामान्य	71	307.51	9.65	39.22	4.06*
	निम्न	14	268.29			

**0.05 स्तर पर सार्थक*

उच्च, सामान्य एवं निम्न संगठनात्मक वातावरण के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान क्रमशः 342.53, 307.51 एवं 268.29 है। प्रत्येक युग्म का क्रान्तिक-अनुपात मान 0.05 स्तर पर दिये गये मान से अधिक है, जो सार्थक है। तीनों प्रकार के संगठनात्मक वातावरण वाले विद्यालयों के प्राप्त प्रतिदर्श के मध्यमानों में पारस्परिक रूप से सार्थक अन्तर है अर्थात् शैक्षिक उपलब्धि के सन्दर्भ में तीनों प्रकार के संगठनात्मक वातावरण वाले विद्यालयों के विद्यार्थियों में विभिन्नता है। परिणामतः उच्च संगठनात्मक वातावरण वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि सामान्य एवं निम्न संगठनात्मक वातावरण वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि उच्च है।

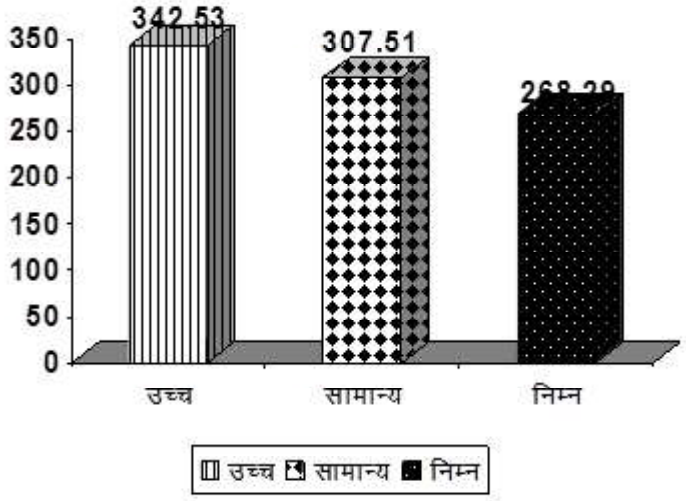

चित्र सं0 2 माध्यमिक स्तर पर गैर गैर सरकारी विद्यालयों के उच्च, सामान्य एवं निम्न संगठनात्मक वातावरण के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान

निष्कर्ष-

- सरकारी विद्यालयों के उच्च, सामान्य एवं निम्न संगठनात्मक वातावरण के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्ध्ज्ञि में अन्तर है अर्थात् संगठनात्मक वातावरण के सन्दर्भ में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव है।
- गैर सरकारी उच्च, सामान्य एवं निम्न संगठनात्मक वातावरण के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर है अर्थात् संगठनात्मक वातावरण के सन्दर्भ में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

•भट्ट, एम.एस. एण्ड मीर, एस.ए. (2018). परसिव्ड स्कूल क्लाइमेट एण्ड एकेडमिक एचिवमेण्ट ऑफ सेकेण्डरी स्कूल स्टूडेन्ट्स इन रिलेशन टू देयर जेण्डर एण्ड टाइप ऑफ स्कूल, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस एजुकेशनल रिसर्च, वॉ0 3, इश्यू-2, पृ0 620-628

- महमुदहा, सीती एण्ड एट आल (2017). ऑर्गनाइजेशनल क्लाइमेट एण्ड स्टूडेन्ट्स एचिवमेण्ट: ए स्टडी एट द वोकेशनल कॉलेज इन सुरबाया, इण्डोनेशिया, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, वॉ0 2, नं0 1, पृ0 34-50
- मिश्रा, के0एन0 (1991) इण्टर रिलेशनशिप बिटवीन आर्गेनाइजेशनल कान्फ्लिक्ट इन स्कूल टीचर स्ट्रेश एण्ड बर्न आउट इन रिलेशन टू टीचर्स पर्सनालिटी एट प्राइमरी लेवल, इन एम0बी0बुच (एजु0), फिफ्थ सर्वे ऑफ एजुकेशनल रिसर्च, वाल्यूम-II, पृ0-908, नई दिल्ली, एनसी0ई0आर0टी0।
- रजा, सैय्यद अहमद (2010). इम्पैक्ट ऑफ आर्गनाइजेशनल क्लाइमेट ऑफ परफार्मेन्स ऑफ कॉलेज टीचर्स इन पंजाब, जर्नल ऑफ कॉलेज टीचिंग एण्ड लर्निंग, वॉ0 7, नं0 10, पृ0 47-52
- लल्ला, टी0पी0 (1975) ए स्टडी ऑफ एन इन्वेस्टीगेशन इन्टू द इम्पैक्ट ऑफ टीचर्स क्लास-रूम विहैवियर ऑन प्यीपुल अचीवमेन्ट, पी-एच.डी. एजुकेशन, एम. एस.यु., इन एम0बी0बुच सेकण्ड सर्वे ऑफ एजुकेशनल रिसर्च, पृ0सं0-572।
- शर्मा, मोतीलाल (1973), एन इनवेस्टीगेशन इन टू आर्गनाइजेशन क्लाइमेट ऑफ सेकण्डरी स्कूल इन राजस्थान, अनपब्लिशड, पी-एच.डी., थीसिस, एम0एस0 यूनिवर्सिटी बड़ौदा।
- शिंडलर, जॉन एट आल (2016). द स्कूल क्लाइमेट- स्टूडेन्ट्स एचिवमेण्ट कनेक्शन: इफ वि वॉन्ट एचिवमेण्ट गेन्स, वि निड टू बिगेन बाइ इप्रूविंग द क्लाइमेट, जर्नल ऑफ स्कूल एडमिनिस्ट्रेशन रिसर्च एण्ड डेवेलपमेण्ट, वॉ0 1, नं0 1, पृ0 9-16
- हैराल्ड और जेम्स (1966), ए कम्प्टीशन ऑफ दि आर्गेनाइजेशनल क्लाइमेट्स ऑफ नीग्रो एण्ड व्हाइट एलीमेन्ट्री स्कूल्स, दि जर्नल ऑफ साइकोलॉजी, वाल्यूम 70, सेकिण्ड ऑफ जुलाई।

वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में डॉ. राधाकृष्णन के शैक्षिक दर्शन की प्रासंगिकता: एक अध्ययन

शुभम कुमार

गांव - खैरपुर जागीर, पोस्ट-रतनगढ़, ब्लॉक - नूरपुर, तहसील- चांदपुर, थाना- चांदपुर, जिला. -बिजनौर

शोधसार

वीणापाणी कमलनयनी माँ शारदा के वरद-पुत्र, अंग्रेजी के प्रकाण्ड पण्डित और शिक्षा जगत् के मानदण्ड एवं विश्वविद्यालयों के संचालन में विष्णात्, ओजस्वी वक्ता व सुलझे हुए राजनयिक एवं भारतीय संस्कृति व दर्शन तथा अध्यात्म जगत् के शिखर पुरुष डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन साधारण काया में एक ऐसे असाधारण व्यक्तित्व थे जिनकी पकड़ व पहुँच से कोई भी मानवीय गुण बचा नहीं, कोई योग्यता दूर न रही और कोई क्षमता अलग नहीं रही। ऐसे महान् सरस्वती के साधक डॉ० राधाकृष्णन् का जन्म एक साधारण गरीब परिवार में हुआ था। गाँव की धूल व मिट्टी में बड़े होकर अपनी असाधारण प्रतिभा तथा लगन के बल पर श्रेष्ठ अध्यापक की भूमिका पाकर डॉ0 राधाकृष्णन ने बौद्धिक सम्पदा का असाधारण संग्रह कर, समूचे विश्व में मानवता वितरित की। आज समूचा शिक्षक वर्ग उनसे न केवल प्रेरणा पाता है, बल्कि उन पर गर्व भी करता हैं दर्शन और विद्वता के क्षेत्र में उनकी चतुर्दिक इतनी ख्याति थी कि उनकी गणना विश्व के 6 समकालीन श्रेष्ठ महान दार्शनिकों में की जाती है। ऐसे अतुलित व्यक्तित्व के धनी डॉ राधाकृष्णन का शैक्षिक दर्शन अपने आप में अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में राधाकृष्णन के विचार आज भी प्रासंगिक हैं और जीवन पर्यंत रहेंगे।

शब्द कुंजी- वर्तमान परिदृश्य, डॉ राधाकृष्णन, शैक्षिक दर्शन, प्रासंगिकता, एक अध्ययन।

आलेख प्रस्तुति

शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली शाश्वत एवं चिरन्तन प्रक्रिया है, जब से सृष्टि का सृजन हुआ और मानव ने धराधाम पर अपनी जीवन लीला प्रारम्भ की तब से शिक्षा ज्ञान स्रोत के रूप में विद्यमान है। ज्ञान एवं जीवन की अजस्र धारा अनादि काल से वर्तमान तक निरन्तर प्रवाहमान है। शिक्षा और चिन्तन ऐसे मानवीय गुण है जो उसे अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ और उत्तम बनाते हैं। शिक्षा के द्वारा ही समाज की गतिशीलता और निरन्तरता बनी हुई है। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य ने सभ्यता एवं संस्कृति की चरम सीमा को छुआ है। यदि किसी राष्ट्र या समाज ने उन्नति के शिखर को प्राप्त किया है, विश्व में अग्रणी बना है या विश्व का नेतृत्व किया है तो इसमें उसकी शिक्षा व्यवस्था एवं शैक्षिक विचारों को प्रस्तुत करने वाले महान चिंतकों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। डॉ० राधाकृष्णन एक ऐसे ही महान दार्शनिक चिंतक रहे हैं जिन्होंने अपने गूढ़ वैचारिकशीलता से समाज को एक नई दिशा प्रदान की। डॉ० राधाकृष्णन के विचार से परमात्मा चर-अचर में व्याप्त सर्वशक्तिमान सत्ता है। परमात्मा केवल संसारातीत ही नहीं है, बल्कि कण-कण में व्याप्त भी है। वे केवल न्यायी ईश्वर में ही विश्वास करते हैं, जो संत और पानी दोनों के लिए निष्पक्ष है। उदाहरणार्थ- "जिस प्रकार सूर्य ठण्ड से कांपते हुए और गरमी से पसीना बहाते हुए दोनों प्रकार के लोगों पर समान भाव से प्रकाशित होता है। ईश्वर उपेक्षा से न तो क्रुद्ध होता है और न ही प्रार्थना से प्रसन्न होता है। उसके रथ के चक्र दया अथवा क्रोध से बाधित हुए बिना चलते हैं। ईश्वर का उपहास नहीं किया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार से डॉ० राधाकृष्णन के विचारों से स्वर्ग और नरक में कोई भौगोलिक अन्तर नहीं किया जा सकता है।

भारतीय संस्कृति में सर्वाधिक महत्व ब्रह्मचर्य को दिया जाता है। जो साधना से आत्मज्ञान में योग की प्राप्ति हेतु एक सशक्त साधन है। ब्रह्मचर्य से मन और शरीर को अद्भुत शक्ति प्राप्त होती है। राधाकृष्णन का मानना है कि ब्रह्मचर्य से साधना के पथ पर चलते हुए मानव सत्य को अंगीकार करने में सक्षम होता है। उनके विचार में सत्य और धर्म भारतीय जीवन दर्शन के सार तत्व है। सत्य परमात्मा का नाम है और धर्म कल्याण का। भारतीय संस्कृति धर्म प्रधान है। डॉ राधाकृष्णन के अनुसार धर्म जीवन के प्रति मानव की संपूर्ण चेतनवृत्ति का द्योतक है। डॉ राधाकृष्णन धर्म को ऐसे स्वरूप में ढालना चाहते थे जो सर्वस्वीकार्य और सार्वदेशिक हो। दुनिया के किसी भी भूभाग में रहने वाला व्यक्ति उसके नियमों और सिद्धांतों का विरोधी न हो। ऐसा धर्म करुणा और दया पर आधारित होगा।

भारतीय संस्कृति के अनुसार आत्मा परमात्मा का अंश है। मनुष्य के अंदर जो चेतना व्याप्त है वही आत्मा है। डॉ राधाकृष्णन के अनुसार जो आत्मा अपने दुष्कृत्यों के लिए अनुताप से दग्ध है वही नर्क में हैं इसके विपरीत जो आत्मा अच्छे ढंग से जीवन बिताने के कारण संतुष्ट है। वह स्वर्ग में है। पुण्य जीवन का पुरस्कार साधु जीवन स्वयं है।

डॉ राधाकृष्णन हिंदू संस्कृति के अनुसार धर्म एवं कर्म फल के सिद्धांत को मानते हैं। उनका मानना है कि किसी व्यक्ति की रूचि प्रवृत्ति उसके पिछले जन्म के कर्मों पर निर्भर करती है अत: मनुष्य को सदैव अच्छे कर्म करने चाहिए और दुष्कर्मों से बच कर रहना चाहिए।

डॉ राधाकृष्णन का शैक्षिक दर्शन

शैक्षिक उद्देश्य

डॉ० राधाकृष्णन् शिक्षा को जीवन एवं व्यक्तित्व की सफलता का आधार मानते हैं। वे नैतिक एवं मानवीय मूल्यों के विकास हेतु आध्यात्मिक शिक्षा तथा भौतिक अभावों की पूर्ति एवं आर्थिक विकास हेतु व्यावसायिक शिक्षा को आवश्यक समझते हैं। डॉ० राधाकृष्णन के विचार से स्वतंत्र भारत में उच्च शिक्षा केन्द्रों का यह कर्तव्य है कि वे ऐसी शिक्षा दे जिससे ज्ञान का स्वाभाविक प्रसार हो। युवक नये ज्ञान की खोज में पूर्ण मनोयोग से लग जायें तथा मानव जीवन का वास्तविक अर्थ एवं उददेश्य समझ सकें। हमारी शिक्षा का उद्देश्य भौतिक अभावों की पूर्ति और आर्थिक समृद्धि हेतु व्यावसायिक तथा तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी शिक्षा प्रदान करना होना चाहिए। स्वतंत्र भारत में युवकों में राजनीति, प्रशासन और व्यवसाय तथा उद्योग एवं वाणिज्यो के क्षेत्र में नेतृत्व की क्षमता का विकास करना विश्वविद्यालयों का कर्तव्य है। उन्हें हर प्रकार की उच्च शिक्षा साहित्यिक, वैज्ञानिक, प्राविधिक एवं व्यावसायिक की बढ़ती हुई माँग को पूरा करना है। इस प्रकार विश्वविद्यालयों को विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान के प्रयोग द्वारा कम से कम समय में राष्ट्र को इस योग्य बनाना है कि वह आभाव रोग अशिक्षा और अज्ञानता से पूरी तरह मुक्ति प्राप्त कर सकें।

शिक्षा का पाठ्यक्रम

शिक्षा (Liberal Education) विद्यार्थी में स्वतंत्र समालोचनात्मक व रचनात्मक शक्ति का विकास करती है। साथ ही उदार तथा व्यावसायिक तथा प्राविधिक व वो शिक्षा से विद्यार्थियों में कौशल एवं अभिरुचि का विकास होता है। डॉ० राधाकृष्णन के विचार से स्नातक पाठ्यक्रम 3 वर्ष का होना चाहिए। इसी कारण उन्होंने विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की रिपोर्ट में स्नातक पाठ्यक्रम 3 वर्ष किये जाने सम्बन्धी गुणात्मक सुझाव दिया। स्नातक विद्यार्थियों को सामान्य शिक्षा एवं धार्मिक शिक्षा के साथ संघीय भाषा, अथवा शास्त्रीय भाषा या आधुनिक भाषा (उन छात्रों हेतु जिनकी मातृभाषा हिन्दी हो) और अंग्रेजी विषय को अन्तिम रूप से पढ़ाया जाय।

शिक्षण विधि

उच्च शिक्षा में व्याख्यान विधि की शिक्षण की सामान्य विधि है। किन्तु छात्र इस शिक्षण विधि से पूरा लाभ इस कारण नहीं उठा पाते क्योंकि वह व्याख्यान से पहले व्यक्तिगत तैयारी या व्याख्यान के बाद पुस्तकालय में नियमित स्वाध्याय नहीं करता। साथ ही अध्यापक को अपने व्याख्यान तत्परता एवं लगन से तैयार करने चाहिए।

डॉ० राधाकृष्णन् के विचार से व्याख्यान के साथ ही छात्र से प्रश्न भी पूँछने चाहिए तथा श्याम पट्ट पर आवश्यक संकेत भी देने चाहिए। छात्रों से सप्ताह में एक बार लिखित कार्य भी कराना चाहिए। डिग्री कक्षाओं के छात्रों के लिए व्याख्यान के साथ अवबोध प्रणाली (Tutorial System) का प्रयोग करना चाहिए। ट्यूटोरियल कक्षा में छात्र सप्ताह में कम से कम एक बार शिक्षक से व्यक्तिगत समस्याओं एवं विषय सम्बंधी शिक्षण के संदर्भ में आवश्यक सलाह एवं परामर्श लेगा।

स्नातक कक्षा के अन्तिम वर्ष में एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं में विचार गोष्ठियों (Seminars) का समय-समय पर आयोजन होना चाहिए। सेमिनार की सामूहिक विचार गोष्ठियों में छात्रों को भी विषय विशेष की सामूहिक चर्चा में भाग लेने का पूरा अवसर दिया जाना चाहिए।

उपर्युक्त शिक्षण विधियों के साथ-साथ विभिन्न विषयों के शिक्षण में निरीक्षण विधि, परीक्षण विधि और प्रयोग विधि तथा पर्यटन एवं तर्क आदि विधियों का प्रयोग आवश्यकतानुसार करना चाहिए।

डॉ राधाकृष्णन के मत में शिक्षक

डॉ० राधाकृष्णन् के विचार से शिक्षक ही शिक्षा की धुरी है। शिक्षण की दृष्टि से शिक्षक का सर्वाधिक महत्व है। शिक्षा जगत् विशेष करके उच्च शिक्षा से जुड़े शिक्षकों हेतु डॉ० राधाकृष्णन ने अत्यंत महत्वपूर्ण एवं उपयोगी सुझाव दिया है। उन्होंने शिक्षकों में शिक्षण-व्यवसाय के प्रति व्याप्त उदासीनता एवं उत्साह के अभाव के कारणों का समुचित विवेचन भी किया है। महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय का शिक्षक ईमानदारी से अपने शिक्षण कर्त्तव्यों की पूर्ति की अपेक्षा या तो शिक्षक राजनीति में संलग्न हो जाता है या आर्थिक तंगी के कारण पारिवारिक, आर्थिक समस्याओं के समाधान में अमूल्य बौद्धिक ऊर्जा का अपव्यय करता है।

डॉ राधाकृष्णन के मत में शिक्षकों की विभिन्न समस्याएं हैं जैसे उद्योग जगत एवं प्रशासनिक जगत की तुलना में शिक्षकों का वेतन अत्यधिक न्यून है जिसके कारण उनमें निर्धनता और असंतोष विद्यमान है। जिससे उबारने के लिए शिक्षकों को आकर्षक वेतनमान दिया जाना चाहिए। इसी के साथ साथ उनके पदों में भी प्रोन्नति होनी चाहिए। महाविद्यालय विश्वविद्यालय शिक्षकों को शोध एवं शोध परियोजना हेतु समय-समय पर आर्थिक सहयोग दिया जाना चाहिए।

राधाकृष्णन के मत में नारी शिक्षा

बालक एवं बालिकाओं की शिक्षा का भी श्री गणेश माँ के संरक्षण में ही होता है एक सुशिक्षित माँ अपने बच्चों के लिए चरित्र एवं बुद्धि दोनों की दृष्टि से सर्वोत्तम शिक्षिका होती है। इसीलिए कहा गया है कि-

"Mother is the first teacher of the child."

"माता शिशु की प्रथम शिक्षिका होती है।"

नारी शिक्षा के महत्व को रेखांकित करते हुए राधाकृष्णन आयोग ने अपने प्रतिवेदन में कहा है-

"शिक्षित महिलाओं के बिना शिक्षित व्यक्ति नहीं हो सकते। यदि सामान्य शिक्षा पुरुषों या नारियों में से एक पर सीमित रखनी हो तो यह अवसर नारियों को दिया जाना चाहिए क्योंकि ऐसी स्थिति में शिक्षा निश्चित रूप से आगामी पीढ़ी को हस्तान्तरित की जा सकेगी।

अनुशासन

डॉ० राधाकृष्णन् मूल्य एवं चरित्र से जुड़े हुए एक आदर्श शिक्षक थे। वे स्वाभाविक अनुशासन के पक्षधर थे। वे जानते थे कि उच्च शिक्षा में अनुशासनहीनता एक प्रमुख समस्या है। उनके विचार से महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों एवं उच्च शिक्षण संस्थानों में व्याप्त अनुशासनहीनता के राजनैतिक आर्थिक एवं सामाजिक तथा शैक्षणिक एवं चारित्रिक कारण हैं।

अनुशासन की समस्या के समाधान के लिए जरूरी है कि छात्रों को राजनैतिक दलों से दूर रखा जाय, क्योंकि छात्रों की भावनाओं का राजनैतिक दल अपने घृणित स्वार्थी हेतु दुरूपयोग करते हैं।

छात्रों में अनुशासन की भावना जगाने हेतु विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में रचनात्मक वातावरण सृजित करना होगा। छात्रों को आत्म सम्मान एवं आत्मविश्वास के विकास का अवसर देना होगा। उनके लिए पर्याप्त मात्रा में मनोविनोद के अवसर, खेलकूद और व्यायाम तथा सामाजिक क्रियाकलापों एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेने की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

डॉ राधाकृष्णन के अनुसार शिक्षा का माध्यम

डॉ० राधाकृष्णन के विचार से अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है। साथ ही अंग्रेजी आधुनिक सभ्यता सम्बन्धी विचारों तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान एवं दर्शन की कुंजी है। अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा होने के साथ-साथ इसका ज्ञान समूचे विश्व के साथ सम्पर्क बनाये रखने हेतु अति आवश्यक है। अंग्रेजी देश में राष्ट्रीय एकता बनाने में भी उपयोगी है। उनके विचार से उच्च शिक्षा संस्थानों जैसे- इंजीनियरिंग कालेजों, मेडिकल कालेजों और व्यावसायिक च प्रबंधन शिक्षा (M.B.A.) एवं कम्प्यूटर शिक्षा संस्थानों में प्रवेश के लिए अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक होना चाहिए।

उनके विचार से विद्यार्थियों को तीन भाषाओं का ज्ञान अवश्य कराया जाय। पहला प्रादेशिक या क्षेत्रीय भाषा दूसरा संघीय या राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा तीसरा अन्तर्राष्ट्रीय भाषा अंग्रेजी उच्च शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषा को ही बनाया जाय। विश्वविद्यालय स्तर पर कुछ विषयों के अध्ययन के लिए हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाया जा सकता है।

वर्तमान भारतीय शैक्षिक परिदृश्य में डॉ० राधाकृष्णन् के शिक्षा- दर्शन की प्रासंगिकता:-

सर्वपल्ली डॉ० राधाकृष्णन महान दार्शनिक और अध्यात्म जगत के शिखर पुरुष थे जिनकी पकड़ से कोई मानवीय गुण बच ही नहीं सका। उन्होंने भारतीय दर्शन एवं भारतीय संस्कृति की पताका समूची दुनिया में फहरायी। 'वेद' विश्व साहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ है, जिसे आर्ष ग्रन्थ कहते हैं। 'यजुर्वेद में कहा गया है कि-

"सा प्रथम संस्कृतिर्विश्ववारा।" यह विश्व की प्रथम-प्राचीनतम संस्कृति है।

डॉ० टॉमस ने कहा है-

भारत में शिक्षा कोई नई बात नहीं है। संसार का कोई भी देश ऐसा नहीं है जहाँ ज्ञान के प्रेम का उद्‌गम इतना प्राचीन हो अथवा उसका प्रभाव इतना चिरस्थायी और शक्तिशाली हो।"

शिक्षा का प्राचीन वैदिक काल अत्यधिक गौरवशाली रहा, जिसमें देश ने ज्ञान- विज्ञान कला संस्कृति उद्योग व्यवसाय सभी में उन्नति की। बौद्ध काल में भारतवर्ष विश्व में अग्रणी था। नालंदा विश्वविद्यालय तक्षशिला विश्वविद्यालय इसके प्रमाण हैं। कालचक्र के परिवर्तन में मध्यकाल तक आते-आते भारतवर्ष का अंधकार युग प्रारंभ हो गया। विदेशी आक्रमणों ने देश के सामाजिक राजनीतिक एवं शैक्षिक तथा औद्योगिक परिदृश्य को ही परिवर्तित कर दिया। ईस्ट इंडिया कंपनी और ब्रिटिश शासन ने देश की दशा को और अधिक दयनीय बना दिया। संघर्ष त्याग एवं बलिदान के परिणाम स्वरूप 15 अगस्त 1947 को हमारा भारत आजाद हुआ और 26 जनवरी 1950 को गणतंत्र के रूप में घोषित किया गया। लोकतंत्र की सफलता के लिए शिक्षा को संविधान के अनुच्छेद 45 के अंतर्गत निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा पर बल दिया गया। संविधान के अनुच्छेद 30 में अल्पसंख्यकों की शिक्षा का प्रावधान सुनिश्चित किया गया। अनुच्छेद 29 में सभी को समान शैक्षिक अवसर, अनुच्छेद 46 में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और कमजोर वर्गों की शिक्षा की विशेष व्यवस्था सुनिश्चित की गई। अनुच्छेद 28 में धार्मिक संस्कार को स्वतंत्रता प्रदान की गई।

प्रारम्भ में शिक्षा को राज्य सूची में रखा गया जिसमें शिक्षा राज्य का विषय थी। परन्तु राज्यों के सकारात्मक रुख न होने के कारण 3 जनवरी 1977 के पश्चात् संविधान के 42वें संशोधन द्वारा शिक्षा को समवर्ती सूची में स्थान दिया गया जिसमें राज्यों के साथ-साथ केन्द्र सरकार को भी शिक्षा में सहयोग प्रदान करने का उत्तरदायित्व होता है।

हालांकि सरकार के द्वारा शिक्षा जगत में समय-समय पर विभिन्न सुधार किए जाते रहे हैं। लेकिन उसके बावजूद भी शिक्षा के स्तर में निरंतर गिरावट देखी जाती है। छः दशक के बाद भी हमारी शिक्षा को परंपरागत रूप से उन्नति प्राप्त नहीं हुई है। आज भी नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों का निरंतर ह्रास हो रहा है। भारतीय शिक्षा के प्रत्येक स्तर में अनेक समस्याएं आज भी देखने को मिलती हैं। चाहे वह प्राथमिक शिक्षा हो, माध्यमिक शिक्षा हो या उच्च शिक्षा।

प्राथमिक शिक्षा की समस्या

देश में चेतना को जागृत करने प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण का विकास करने व्यक्तित्व का विकास करने निरक्षरता को समूल नष्ट करने चारित्रिक और नैतिक विकास की नींव रखने हेतु प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता होती है लेकिन हमारी वर्तमान प्राथमिक शिक्षा की विभिन्न समस्याएं हैं जो निरंतर देखने को मिलती है

पूर्व एवं वर्तमान सरकार की दोषपूर्ण शिक्षा नीति की समस्या, प्रशासन की समस्या, शैक्षिक नियोजन एवं उत्तरदायित्व की समस्या, विद्यालयों के पास घनाभाव की समस्या शिक्षकों के अभाव की समस्या, अप्रभावी शिक्षण विधियों की समस्या तथा प्राथमिक शिक्षा के विभिन्न स्वरूपों की समस्या, ग्रामीण विद्यालयों की समस्या तथा रूढ़िवादिता व अभिभावकों की अशिक्षा की समस्या उपयुक्त कारणों से प्राथमिक शिक्षा अपेक्षित प्रगति नहीं कर पा रही है।

माध्यमिक शिक्षा की समस्या-

माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था, शिक्षा का एक ऐसा द्वार है जो एक और उच्च शिक्षा के प्रवेश के लिए और दूसरी ओर रोजगार एवं जीवनयापन के प्रवेश के लिए रास्ता खोलता है। मुदालियर आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के निम्न दोष बतायें हैं-

पुस्तकीय ज्ञान पर बल परीक्षा का अत्यधिक महत्व, प्रभावहीन शिक्षण विधि, एकांगी पाठ्य पुस्तकें, शिक्षक एवं विद्यार्थी अनुपात में असमानता, माध्यमिक शिक्षा की उद्देश्यहीनता आदि।

विश्वविद्यालयीय शिक्षा

विश्वविद्यालयीय शिक्षा किसी राष्ट्र के लिए वैसे ही है- "जैसे शरीर के लिए तंत्रिका तंत्र।" (Nervous System) विश्वविद्यालयीय शिक्षा की मुख्य संस्थायें निम्न हैं- उद्देश्य विहीनता की समस्या, उपयुक्त पाठ्यक्रम की समस्या, प्रवेश की समस्या, परीक्षा प्रणाली की समस्या, अनुशासनहीनता की समस्या, निर्देशन एवं परामर्श के अभाव की समस्या, दोषपूर्ण पाठ्यक्रम की समस्या और शोध कार्यों के अभाव की समस्या और अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या धनाभाव की समस्या आदि।

नैतिक एवं चारित्रिक पतन की समस्या-

नैतिकता और चरित्र व्यक्तित्व का आभूषण है किन्तु आजादी के पश्चात् नैतिक एवं चारित्रिक विकास में प्रत्येक स्तर पर तेजी से गिरावट आ रही है जिसके कारण सर्वत्र अनेक समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं।

विद्यालय समाज का लघु रूप होता है। समाज में घटित होने वाली प्रत्येक घटना का निश्चय ही प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव शिक्षा पर पड़ता है।

मानवीय मूल्यों के ह्रास की समस्या -

मानव के कुछ विशेष मूल्य: होते हैं। विशेष कर भारतीय समाज में मूल्यों का विशेष महत्व था, किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षा का विस्तार जरूर हुआ है किन्तु मानवीय मूल्यों का निरन्तर क्षरण हो रहा है। इससे शिक्षा पर प्रश्न चिह्न लगने लगा है।

अनुशासनहीनता की समस्या

आज शिक्षा व्यवस्था में सर्वत्र अनुशासनहीनता की समस्या व्याप्त है। वैदिक काल में आत्मानुशासन पर बल दिया जाता था जिससे बालक का चारित्रिक विकास होता था। किन्तु भौतिकता के प्रभाव के कारण विद्यार्थी में अनुशासनहीनता धीरे-धीरे बढ़ती जा रही है।

पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण -

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संस्कृति का उत्तरोत्तर विकास होना था । किन्तु हमारी मानवीय कमजोरियों के चलते ख्र पाश्चात्य संस्कृति का युवा पीढ़ी अंधानुकरण कर रही है। इस कारण हम जीवन के वास्तविक लक्ष्यों से भटकते जा रहे हैं। परिणामस्वरूप समाज में अमानवीय एवं अमर्यादित घटनायें प्राय: घट रही हैं।

अंग्रेजी भाषा का बढ़ता वर्चस्व-

यह अत्यन्त दुखद है कि अंग्रेजों के भारत से जाने के बाद भी अंग्रेजी का प्रभाव निरन्तर बढ़ता जा रहा है। हिन्दी सैद्धान्तिक रूप से राष्ट्र भाषा अवश्य है, किन्तु व्यावहारिक रूप में अंग्रेजी ही राष्ट्रभाषा के रूप में मान्य है। यह देश के स्वाभिमान की एक चुनौती है किन्तु इसका आभास आम भारतीयों को नहीं हो रहा है।

राधाकृष्णन के मत में शैक्षिक समस्याओं का व्यावहारिक समाधान

प्राथमिक शिक्षा नौनिहाल बच्चों की शिक्षा है। यह शिक्षा पूर्णतया मनोविज्ञान पर आधारित होनी चाहिए। व्यावहारिक मनोविज्ञान का परिपालन यदि संवेदनाओं के साथ किया जायेगा तो इसके कुछ परिणाम निश्चय ही दृष्टिगोचर होंगे।

यदि केन्द्र सरकार 6-14 वर्ष की आयु वर्ग वाले बच्चों का भविष्य निर्माण ईमानदारी से करना चाहती है तो उसे इसके लिए आवश्यक धन की व्यवस्था समूचे राष्ट्र के लिए एक साथ करनी होगी। इस दृष्टि से प्राथमिक शिक्षा को नि:शुल्क एवं अनिवार्य बनाने के लिए केन्द्र सरकार ने अनिवार्य शिक्षा अधिनियम अवश्य ही पारित किया है किन्तु जिम्मेदारी राज्यों को सौंप करके इस अधिनियम पर प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया है।

हमारे प्रशिक्षित अध्यापक एवं अध्यापिकायें नौनिहाल बच्चों को वही परम्परागत शिक्षा, अमनोवैज्ञानिक शिक्षा और दण्ड तथा भय के द्वारा शिक्षा देने के आदी हो जाते हैं उनका विकास होने के बदले, उनकी प्रतिभा कुण्ठित होने लगती है।

माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में राधाकृष्णन् एक स्वालम्बी शिक्षा की कल्पना करते हैं। वह शिक्षा जो हमारे नवयुवकों को संस्कारवान बनाने के साथ-साथ स्वावलम्बी ही बना सके। विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा से परिपूर्ण कर सके। जैसा कि उपनिषद् काल में हमारे देशवासियों में वह क्षमता विकसित थी, उसी क्षमता के कारण भारत अध्यात्म के साथ-साथ उद्योग एवं व्यवसाय में भी विश्व में अग्रणी था। सामानों से लदे हमारे जलयान विश्व में अपनी औद्योगिक समृद्धि का प्रमाण प्रस्तुत करते थे। आज की तरह हमारा नवयुवक बेरोजगारी का शिकार नहीं होता था।

उच्च शिक्षा का उद्देश्य उनका शोध के क्षेत्र में भारत को एक महाशक्ति के रूप में विकसित करने का था। विश्व के वहीं राष्ट्र आज प्रतिस्पर्द्धा के दौर में अपने अस्तित्व की सुरक्षा कर सकेंगे जो निश्चय ही शोध आर अनुसंधान को अपनी शिक्षा का आदर्श बनायेंगे। इसी कारण विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का प्रतिवेदन प्रस्तुत करते समय डॉ० राधाकृष्णन् ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की अनुशंसा की ताकि उच्च शिक्षा धनाभाव से ग्रसित न हो। यह यथार्थ है विश्वविद्यालय अनुदान आयोग समूचे देश की उच्च शिक्षा के लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था करता है।

सुझाव

भारतीय संस्कृति का अनेकता में एकता एक महत्वपूर्ण सार है। यदि इसी भाव को व्यावहारिक रूप दे दिया जाय, तो देश और समाज की अनेक समस्यायें स्वत: समाप्त हो जायेंगी। डॉ० राधाकृष्णन् को इसी बात का अफसोस था कि भारतीय लोग सिद्धान्त की तो बड़ी-बड़ी बातें करते हैं किन्तु अपने अतीत एवं इतिहास से कुछ भी नहीं सीखते। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है "यदि हमने इतिहास से सबक लिया होता तो पूरे देश की एक ही कौम को यूँ टुकड़ों में न बँटने देते। भारतीय उपमहाद्वीप पर अखण्ड भारत में एक ही कौम निवास करती थी, हमने ही उसे आर्य और अनार्य में बाँटा है फिर वर्ण व्यवस्था द्वारा उसके चार टुकड़े किये। फिर इन टुकड़ों को जातियों उपजातियों, गोत्रों और उपगोत्रों में विभाजित कर हमने एक ही काम के अनेक टुकड़े कर डाले।"

यदि आजादी के बाद हमारे जननायकों ने एक देश, एक भाषा, एक प्रकार की शिक्षा व्यवस्था का सपना देखा होता, उसे कार्यान्वित किया होता तो कश्मीर समस्या, बोडो समस्या, तमिल समस्या एवं नक्सलियों की समस्या सर न उठाती होती। सामूहिक नरसंहार न होते। विभिन्न राज्यों में विभिन्न शिक्षा बोर्ड, विभिन्न पब्लिक स्कूल और सी०बी०एस०ई० बोर्ड तथा आई०सी०एस०ई० बोर्ड प्राय: सरकार की अदूरदर्शी नीति का परिणाम है।

राधाकृष्णन ने जिस संस्कारवान युवकों की कल्पना की थी उसका सृजन वैदिक कालीन व्यवस्था के द्वारा ही सम्भव है। आधुनिक शिक्षा द्वारा ऐसे युवकों का निर्माण हो रहा है कि बिना पी०ए०सी० व पुलिस की सहायता से महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों का संचालन भी नहीं हो रहा है।

उनके अनुसार यदि प्रत्येक व्यक्ति में भारतीयता का भाव, राष्ट्र के प्रति प्रेम हो, नैतिक और चारित्रिक आदर्श हो तो जितनी भी शैक्षिक समस्याएं हैं वह स्वत: समाप्त हो जाएंगी। अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम, अपनी राष्ट्रभाषा के प्रति प्रेम व अपनी मातृभाषा के प्रति प्रेम अपने राष्ट्र के उत्थान का कारण है।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि डॉ० राधाकृष्णन ने भौतिक एवं औद्योगिक क्रान्ति की तरह ही नैतिक एवं आध्यात्मिक क्रान्ति की बात की है। इसी सुझाव में देश की समस्त समस्याओं का समाधान निहित है। आवश्यकता है कि इसका ईमानदारी व योजनाबद्ध तरीके से विकास किया जाय। डॉ० राधाकृष्णन की कामना थी विश्व समृद्ध एवं विश्व शान्ति की-

सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दु:खभाग् भवेत् ।।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सत्य की खोज- डॉ राधाकृष्णन, राजपाल एंड संस दिल्ली।
इंडियन फिलासफी- डॉ राधाकृष्णन, राजपाल एंड संस कश्मीरी गेट दिल्ली।
उद्देश्यपूर्ण जीवन- डॉ राधाकृष्णन, हिंदी पॉकेट बुक्स दिल्ली।
भारतीय संस्कृति कुछ विचार- डॉ राधाकृष्णन, राजपाल एंड संस दिल्ली।
विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग प्रतिवेदन- डॉ राधाकृष्णन, यूजीसी नई दिल्ली।
उपनिषदों का संदेश- स्वामी रंगनाथानंद, रामकृष्ण मठ नागपुर।
शिक्षा के दार्शनिक सिद्धांत- डॉ रामशकल पांडेय, अमोल पब्लिकेशन आगरा।
शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रीय आधार- प्रो एसपी रुहेला अमोल पब्लिकेशन आगरा ।
शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रीय आधार- रमन बिहारी लाल, रस्तोगी पब्लिकेशंस मेरठ।
भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएं- के जी रस्तोगी, रस्तोगी पब्लिकेशंस मेरठ।

लोकतत्वानामौचित्यम्

डॉ० मीनेश जैन

निदेशक प्राध्यापक-संस्कृत

विद्याकान्त तिवारी

शोधार्थी

तत्वानि सत्ताया घटकीभूतानि भवन्ति, तत्सत्वे तत् सत्वं तद् भावे तद् भावं इतिवत्। लोकस्य स्थितिः स्यादित्यर्थे लोकतत्व नितरामपेक्ष्यते। यथाग्नेर्दाह कत्वं बिनाग्निर्न तिष्ठति। एवमेव तत्वव्यतिरिक्तो लोकोऽपि स्वपुष्पायमाणः शशश्रृंगायमाणः कूर्मीक्षीराय माणो वा भवति।

लोकस्य तात्पर्यं व्यवहारो भवति। व्यावहारिक विषयाणां संघात एव लोको भवति, अन्यथा लोकस्य व्युत्पत्ति लभ्योऽर्थस्तु लोक्यतेऽसो लोकोऽर्थात् यत्किमपि पदार्थजातमथवा लोकनं लोकः दर्शनं लोकार्थो भवति। वस्तु तस्तु सकलोऽपि लोको व्यवहार भूमिरेवास्ति। अतो व्यवहार भूमिर्व्यवहारो वा लोको भवति। व्यवहारे औचित्यस्यापेक्षा कस्याष्चिदपि स्थितेः समीचीनतां युक्ततां मांगलिकतांवा प्रकटीकरोति।

औचित्यषब्दो दिवादिगणपठिताद् उच् समवाये इत्यस्याद् धातोः क्त प्रत्यये कृते सति निष्पन्नो उचितशब्दाद् भावार्थके ष्यन्ति विहिते सत्युपपद्यते। औचित्यशब्दः काव्यशास्त्रिणां सम्प्रायं सिद्धान्तविशेषंच स्मारयति। साहित्यकारमेतत्कृत स्मृत आदृतश्च।

औचित्यं परिभाषमाणः क्षेमेन्द्र आह-

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य तत्।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते।।

अनुरूपता आनुरूप्यं वा औचित्यपदेन कथितम् यद् यस्यानुरूपं तदुचितं तस्योचितस्य भाव औचित्यम्। लोकार्थप्रसिद्धये लोकतत्वानां औचित्यम् भवति। अतएव ये ये लोकार्थाः व्यवहारिक प्रयोजनानि, तेषामुपकृतये एव लोकावयवी भूतानां तत्वानां औचित्यम्।

प्रायेणावलोक्यते यत् व्युत्पत्तिलभ्यस्यार्थस्य कश्चन बिगूढः सम्बन्धो व्यावहारिकार्थस्य प्रवृत्ति बीजमिव भवति। यथा दक्ष इत्यर्थे रूढः कुशल शब्दः राष्ट्र-राज- अर्थनीति सम्बद्धाः विविधप्रयोगाः स्फुट रूपेण कौमुदीकारेण प्रस्तुताः।

पूर्वकृदन्त प्रकरणे ग्रामणीरिति पदं विद्यते। ग्रामोपपदात् नी प्रापणे इत्यस्माद् धातोः "सत्सूद्विषड्हदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि क्विप्" एतेभ्यो धातुभ्यः सोपसृष्ट सुबन्तोपपदेभ्यो निरूपसृष्ट सुबन्तोपपदेभ्यः क्विप् विधीयते।

ग्रामणी शब्दो नापित, श्रेष्ठ पुरूष, ग्रामाधिपानां विशेषणं भवति। सम्प्रति ग्राम सभापति ग्रामप्रधानो वायमुच्यते। कौमुदीकारस्यापि अभिप्रायः ग्रामाधिपार्थक एवास्ते। कौमुद्याामेव मत्वर्थीय प्रकरणेऽपि सुत्रपठितो ग्रामणी शब्दो दीक्षितेन मुख्यार्थको निरूपितः।

तच्च सूत्रम्- ''एषांग्रामणीः''इत्यस्ति। देवदत्तो मुख्य एषां देवदत्तकाः। अत्र बालमनोरमाकार आशयं विवृतवान्- ''ग्रामणी विशेषवाचकात् शब्दात् प्रथमान्तात् अस्येत्यर्थे कन् स्यात्। एतेन ग्रामणी शब्दो प्राशासनिकाधिकारि विशणतया, विशिष्ट गुणाधिष्ण तृतया च प्रयुक्तः पृथक पृथक स्थलेषु।

भावकर्मप्रकरणे कौमुदीकारेण षड्गुणामिति पदमुपायोजि। शब्दोऽयं राजनयार्थकः विशेषाभिप्रायेणार्थ शास्त्रादिषु व्याख्यातः। अत्रैव वणिज्यं, वाणिज्यं वेति द्वौ शब्दौ विद्यते। वणिजां भावः कर्म वेति व्युत्पन्नो शब्दावेतांवर्थनीति विषयकौ स्तः।

कारकप्रकरणे कौमुदीकारेण दण्डनीति विषयक निदर्शनानि चोरस्योज्जासनम्, चोरस्योन्नाटनमित्यादिकानि पठितानि। राज्ञे विशेषणतया शत्रुंजय, शत्रुहा, सार्वभौम, सम्राट, शास्ता, विराड् आदि शब्दाः कौमुद्यामनेकत्र पठिताः। एवं विधेर्निदर्शनैरिदं स्पष्ट समनुमेयम् यत् कौमुद्यां लोकतत्वानुशीलनार्थं यथेष्टं विषयसामग्री विद्यते।

पुराकाले गुरूकुलेषु अवस्थितानां तेषां छात्राणां विशेषणमासीद् ये सम्यक्तया कुशाहरण कर्म सम्पादयन्ति स्म। कुशान् लातीति कुशलः। एतद् दाक्ष्याद् विरहिता अकुशलाः प्राच्यन्ते स्मः। कुशानयनकर्मणि दक्ष स्यार्थस्य विस्तारो नैपुण्यवति जने निरूढः। इदानीम्तमे समये लोक, व्यवहार, औचित्यमिति त्रयोऽपि शब्दाः परस्परं संश्लिष्टा इवा भान्ति।

औचित्यस्य व्यापकत्व मनु मानात् परेऽस्ति। व्यवहारात् पृथक् नास्ति लोको न औचित्यम् वा। अतएव लोक स्थितेरभिप्राय एवौचित्यमस्ति। लोकस्य सकलमपि क्षेत्र मौचित्येन नियम्यते। औचित्येन एव लोको लोक तत्वानि वानु शास्यन्ते। लोकतत्वानां स्थितिरेव नानु शास्यते औचित्येनापितु उभ्दव संहृतिश्चापि तेनैवानु शास्येते।

प्रसंगेऽस्मिन् औचित्यमहिम्नः समुभ्दासके द्व वृतेऽत्र प्रस्तूयेते- तत्राद्यं शिवकर्तृकः कामदाह तथान्यः गीतास्थ कामस्य भगवद् विभूतिमत्वम्। अनुचित रूपेण वर्धमानः कामः शिवेन भस्म सात्क्रियते, नियम्यते वा तथा गीतायां धर्माविरूद्धोऽर्थात् समुचितः कामो भगवद्विभूतिरिति प्रगीतः।

लोकस्य तत्वानां चापि औचित्यमेवमेवानुसन्धेयम्। राजनयव्याख्याने भगवतः धर्माणां निरूपण अथवा दार्शनिक निरूपणान्तर्वर्ति कामशास्त्र चर्चा अनौचित्यमेवावहति। सिद्धान्तकौमुद्यामनेक विधमौचित्यं विलोक्यते।

सिद्धान्तकौमुद्याः प्रकरणानां संघटना प्रकरणादि न्यासक्रमः, सूत्रानुरूपाण्युदाहरणानि, उदाहरणानां प्रकरणानुरोधित्वमित्यादि। कौमुदीस्थ लोकतत्व औचित्यानुसन्धानं सिद्धान्तकौमुदी निर्माण प्रयोजनं तथा तस्य निर्मातुर्वैज्ञानिकी दृष्टिंच युगपदावेदयति।

प्रकरण संघटना तथा प्रकरणानुरूपमुदाहरणसंचयनं कौमुद्याः लोकतत्वापेक्षिणीं महत्तां सत्तां विषिष्टतांच प्रस्तौति।

//इति//

प्राचीन एवं आधुनिक शिक्षा प्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० श्रद्धा मिश्रा

सहायक प्राध्यापक, सरस्वती शिक्षा महाविद्यालय, सुभाष नगर अम्बिकापुर सरगुजा C-G

सारांश-

गुरुकुलों के अलावा, शिक्षा का एक अन्य महत्वपूर्ण संस्थान विद्यापीठ था। आध्यात्मिक शिक्षा के ये केंद्र श्रद्धेय आचार्य श्री शंकर द्वारा श्रृंगेरी, कांची, द्वारका और पुरी जैसे स्थानों में स्थापित किए गए थे। इसके अलावा, अग्रहार मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में ब्राह्मणों के कब्जे वाले शैक्षिक प्रतिष्ठान थे, जहां उन्होंने खुद को शिक्षण के लिए समर्पित कर दिया था। वर्तमान में तेजी से आगे बढ़ते हुए, आधुनिक शिक्षा में अपने पारंपरिक समकक्ष की तुलना में पर्याप्त परिवर्तन हुए हैं। नई प्रौद्योगिकियों के आगमन, शैक्षणिक पद्धतियों में प्रगति और समाज की बढ़ती जरूरतों के कारण शैक्षिक परिदृश्य में महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि 10 अप्रैल 1875 को सम्मानित महर्षि दयानंद सरस्वती द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने समकालीन शिक्षा को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस समय के दौरान एक प्रमुख शिक्षा प्रणाली गुरुकुल या गुरुकुलम थी। इस प्रणाली में छात्र शामिल होता है, जिसे शिष्य या शिष्य के रूप में जाना जाता है, जो अक्सर एक ही घर में, गुरु के निकट रहता था। अपनी शिक्षा पूरी होने पर शिष्य गुरुकुल से प्रस्थान करने से पहले गुरुदक्षिणा देकर अपना आभार व्यक्त करते थे। जैसे-जैसे समय बीतता गया, शिक्षा की दो अलग-अलग प्रणालियाँ उभरीं: वैदिक और बौद्ध। पूर्व में वेद, वेदांत, उपनिषद और अन्य संबंधित विषयों को पढ़ाने पर ध्यान केंद्रित किया गया, जबकि बाद में विभिन्न प्रमुख बौद्ध स्कूलों की शिक्षाओं को शामिल किया गया। शिक्षा सीखने को सुविधाजनक बनाने की बहुआयामी प्रक्रिया को शामिल करती है, जिसमें ज्ञान, कौशल, मूल्य, नैतिकता, विश्वास और आदतों का अधिग्रहण शामिल है। शिक्षा प्रदान करने के लिए विभिन्न तरीके अपनाए जाते हैं, जैसे शिक्षण, प्रशिक्षण, कहानी सुनाना, चर्चा और निर्देशित अनुसंधान। ऐतिहासिक संदर्भ की जांच करें तो, प्राचीन भारत में एक व्यापक शिक्षा प्रणाली थी जिसमें औपचारिक और अनौपचारिक दोनों तरीके शामिल थे। स्वदेशी शिक्षा घरों, मंदिरों, स्कूलों, टोलों, चतुस्पदियों और गुरुकुलों की सीमा के भीतर दी जाती थी। इन सेटिंग्स में, घरों, गांवों और मंदिरों में रहने वाले बुद्धिमान व्यक्ति छोटे बच्चों को मार्गदर्शन प्रदान करेंगे, जिससे उनमें जीवन के अच्छे तरीके पैदा होंगे।

प्रस्तावना-

प्राचीन और आधुनिक शिक्षा प्रणालियों के तुलनात्मक विश्लेषण का उद्देश्य इन दो शैक्षिक ढांचे के बीच समानता और अंतर का पता लगाना है। शिक्षण और सीखने, पाठ्यक्रम डिजाइन और शिक्षकों की भूमिका के लिए उनके संबंधित दृष्टिकोण की जांच करके, हम पूरे इतिहास में शिक्षा के विकास में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं। यह अध्ययन दोनों प्रणालियों की ताकत और कमजोरियों पर प्रकाश डालना चाहता है और अंततः आज के आधुनिक समाज में प्राचीन शैक्षिक प्रथाओं की प्रभावशीलता और प्रासंगिकता का आकलन करना चाहता है। आज की शिक्षा प्रणाली की विशेषता एक मानकीकृत पाठ्यक्रम है, जो सभी छात्रों को व्यापक और समान शिक्षा प्रदान करने के लिए डिजाइन किया गया है। ध्यान केवल बौद्धिक गतिविधियों से हटकर अधिक समग्र दृष्टिकोण पर केंद्रित हो गया है जिसमें शारीरिक शिक्षा, कला और व्यावसायिक प्रशिक्षण शामिल हैं। आधुनिक शिक्षा का उद्देश्य छात्रों को न केवल शैक्षणिक ज्ञान बल्कि व्यावहारिक कौशल भी प्रदान करना है जो समकालीन नौकरी बाजार के लिए प्रासंगिक हैं। प्राचीन ग्रीस, रोम, मिस्र और चीन जैसी सभ्यताओं में प्रचलित प्राचीन शिक्षा प्रणाली पारंपरिक और सांस्कृतिक प्रथाओं में गहराई से निहित थी। इन समाजों में शिक्षा मुख्य रूप से कुलीन वर्ग के लिए आरक्षित थी, क्योंकि इसे उनकी सामाजिक स्थिति और विशेषाधिकार को बनाए रखने के साधन के रूप में देखा जाता था। पाठ्यक्रम मुख्य रूप से दर्शनशास्त्र, बयानबाजी, गणित और विज्ञान जैसे विषयों पर केंद्रित था, जिसमें महत्वपूर्ण सोच और बौद्धिक क्षमताओं को विकसित करने पर जोर दिया गया था। इन दो शैक्षिक प्रणालियों की तुलना करके, हम कई समानताओं और अंतरों की पहचान कर सकते हैं जो प्रत्येक की ताकत और कमजोरियों पर प्रकाश डालते हैं। एक उल्लेखनीय समानता प्राचीन और आधुनिक शिक्षा दोनों में महत्वपूर्ण सोच कौशल के विकास पर जोर है। जबकि प्राचीन शिक्षा बौद्धिक गतिविधियों पर अधिक ध्यान केंद्रित करती थी, आधुनिक शिक्षा छात्रों में रचनात्मकता और नवीनता को बढ़ावा देने के महत्व को पहचानती है। उदाहरण के लिए, प्राचीन ग्रीस में शिक्षा को अत्यधिक महत्व दिया जाता था और छात्रों को सुकरात, प्लेटो और अरस्तू जैसे प्रसिद्ध दार्शनिकों द्वारा पढ़ाया जाता था। शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य विभिन्न बौद्धिक गतिविधियों में उत्कृष्टता प्राप्त करने वाले सर्वांगीण व्यक्तियों को तैयार करना था। सद्गुणों और नैतिक मूल्यों को विकसित करने पर जोर देना भी प्राचीन शिक्षा का एक महत्वपूर्ण घटक था, क्योंकि इसका उद्देश्य व्यक्तियों को जिम्मेदार और नैतिक नागरिकों के रूप में आकार देना था। प्राचीन शिक्षा प्रणाली के विपरीत, शिक्षा के प्रति आधुनिक दृष्टिकोण समय के साथ महत्वपूर्ण रूप से विकसित हुआ है, जो समाज की बदलती जरूरतों और मांगों को दर्शाता है। औद्योगीकरण और वैश्वीकरण के आगमन के साथ, शिक्षा जनता के लिए अधिक सुलभ हो गई, क्योंकि सरकारों ने सामाजिक गतिशीलता और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने में इसके महत्व को पहचाना।

पारंपरिक शिक्षा:

पारंपरिक शिक्षा में, छात्रों को अपने प्रशिक्षकों और साथियों के साथ आमने-सामने बातचीत होती है, जिससे तत्काल प्रतिक्रिया और संदेहों का स्पष्टीकरण मिलता है। यह प्रत्यक्ष जुड़ाव छात्रों के बीच समुदाय और सहयोग की भावना को बढ़ावा देता है, क्योंकि वे चर्चा और बहस में शामिल हो सकते हैं, जिससे विषयों की उनकी समझ में और वृद्धि होती है। इसके अलावा, पारंपरिक शिक्षा में अक्सर व्यावहारिक प्रदर्शन, प्रयोग और व्यावहारिक गतिविधियाँ शामिल होती हैं, जो अनुभवात्मक शिक्षा को बढ़ावा देती हैं। यह दृष्टिकोण छात्रों को सैद्धांतिक ज्ञान को वास्तविक जीवन स्थितियों में लागू करने और व्यावहारिक कौशल विकसित करने की अनुमति देता है जो उनके भविष्य के करियर के लिए आवश्यक हैं। पारंपरिक शिक्षा से तात्पर्य सीखने की उस पारंपरिक पद्धति से है जिसका सदियों से पालन किया जाता रहा है। इसमें भौतिक कक्षाओं में भाग लेना शामिल है, जहां छात्र शिक्षक या प्रोफेसर से निर्देश प्राप्त करने के लिए एकत्र होते हैं। इस प्रकार की शिक्षा आम तौर पर एक संरचित पाठ्यक्रम का पालन करती है, जिसे विभिन्न विषयों में व्यापक ज्ञान का आधार प्रदान करने के लिए डिजाइन किया गया है। पारंपरिक शिक्षा का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू छात्रों के लिए खेल, क्लब और सांस्कृतिक कार्यक्रमों जैसी पाठ्येतर गतिविधियों में शामिल होने का अवसर है। ये गतिविधियाँ छात्रों के समग्र विकास, सामाजिक कौशल, टीम वर्क, नेतृत्व गुणों और रचनात्मकता को बढ़ावा देने में योगदान करती हैं। इसके अलावा, पारंपरिक शिक्षा एक संरचित वातावरण प्रदान करती है जो छात्रों को अनुशासन, समय प्रबंधन और संगठनात्मक कौशल विकसित करने में मदद करती है। निश्चित शेड्यूल और समय-सीमा का पालन करके, छात्र कार्यों को प्राथमिकता देना, अपने समय का कुशलतापूर्वक प्रबंधन करना और शैक्षणिक आवश्यकताओं को समय पर पूरा करना सीखते हैं। इसके अलावा, पारंपरिक शिक्षा अक्सर छात्रों के लिए एक मजबूत सहायता प्रणाली प्रदान करती है, जिसमें पुस्तकालय, प्रयोगशालाएं और अकादमिक सलाहकार जैसे संसाधन शामिल हैं। ये संसाधन छात्रों के लिए विषयों की समझ को गहरा करने और आवश्यकता पड़ने पर मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए मूल्यवान उपकरण के रूप में काम करते हैं। अंत में, पारंपरिक शिक्षा में विभिन्न तत्व शामिल होते हैं जो एक सर्वांगीण सीखने के अनुभव में योगदान करते हैं। इसकी आमने-सामने की बातचीत, अनुभवात्मक सीखने के अवसर, अनुशासन और समय प्रबंधन पर जोर, और पाठ्येतर गतिविधियों और सहायता प्रणालियों का प्रावधान सभी छात्रों के व्यक्तिगत विकास और शैक्षणिक सफलता को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

प्राचीन शिक्षा की विशेषताएं:

प्राचीन शिक्षा की उल्लेखनीय विशेषताओं में से एक मौखिक शिक्षा पर जोर देना था। लिखित सामग्री के अभाव में, ज्ञान मुख्य रूप से बोले गए शब्दों और याद रखने के माध्यम से प्रसारित किया जाता था। इस पद्धति ने शिक्षक और छात्र के बीच सीधे बातचीत की अनुमति दी, जिससे विषय वस्तु की गहरी समझ को बढ़ावा मिला। इसके अलावा, मौखिक निर्देश ने सांस्कृतिक परंपराओं को संरक्षित करने और ऐतिहासिक घटनाओं को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, क्योंकि यह कहानी कहने और सुनाने पर बहुत अधिक निर्भर करता था। प्राचीन शिक्षा में विषयों की एक विस्तृत श्रृंखला भी शामिल थी। हालाँकि विभिन्न सभ्यताओं में पढ़ाए जाने वाले विशिष्ट विषय अलग-अलग थे, ज्ञान के कुछ क्षेत्रों पर आमतौर पर जोर दिया जाता था। प्राचीन मेसोपोटामिया, मिस्र और ग्रीस में गणित और खगोल विज्ञान को अत्यधिक महत्व दिया जाता था, क्योंकि उन्हें दुनिया को समझने और भविष्यवाणियां करने के लिए आवश्यक माना जाता था। साहित्य और कविता को भी महत्वपूर्ण माना जाता था, क्योंकि वे न केवल मनोरंजन प्रदान करते थे बल्कि नैतिक शिक्षा और सांस्कृतिक मूल्यों को भी व्यक्त करते थे। इसके अतिरिक्त, शारीरिक शिक्षा और सैन्य प्रशिक्षण प्राचीन समाजों में शिक्षा के अभिन्न अंग थे, क्योंकि वे व्यक्तियों को युद्ध के लिए तैयार करते थे और अनुशासन और शारीरिक फिटनेस पर जोर देते थे। प्राचीन शिक्षा का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू इसका नैतिक और नैतिक विकास पर ध्यान केंद्रित करना था। प्राचीन समाजों में शिक्षा का संबंध केवल शैक्षणिक विषयों से नहीं था; इसका उद्देश्य छात्रों में सद्गुण और चरित्र लक्षण पैदा करना भी था। इसका उद्देश्य सर्वांगीण व्यक्तियों को तैयार करना था जो अपने समुदायों में सकारात्मक योगदान देंगे। इस नैतिक शिक्षा में अक्सर धार्मिक या दार्शनिक ग्रंथों की शिक्षाएँ शामिल होती थीं, जो नैतिक आचरण के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करती थीं। प्राचीन शिक्षा के गुण विशिष्ट और अद्वितीय थे, जो सदियों पहले मौजूद समाजों के मूल्यों और मान्यताओं को दर्शाते थे। इन विशेषताओं में कई प्रकार के पहलू शामिल हैं, जिनमें ज्ञान प्रदान करने के तरीके, पढ़ाए जाने वाले विषय और शिक्षा का समग्र उद्देश्य शामिल हैं। निष्कर्षत:, प्राचीन शिक्षा की विशेषताएँ बहुआयामी थीं और अपने-अपने समाज के मूल्यों और प्राथमिकताओं को प्रतिबिंबित करती थीं। मौखिक शिक्षा, नैतिक और नैतिक विकास, विषयों की एक विविध श्रृंखला और विशिष्टता प्राचीन शैक्षिक प्रणालियों की परिभाषित विशेषताएं थीं। सभ्यताओं में मतभेदों के बावजूद, प्राचीन काल में शिक्षा ने व्यक्तियों के बौद्धिक और नैतिक विकास के साथ-साथ समाज में उनके योगदान को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके अलावा, प्राचीन शिक्षा अक्सर कुछ विशेषाधिकार प्राप्त लोगों के लिए आरक्षित थी। कई प्राचीन सभ्यताओं में, शिक्षा तक पहुँच कुलीन और शासक वर्गों तक ही सीमित थी। इस विशिष्टता ने सामाजिक पदानुक्रम को मजबूत किया और समाज के भीतर शक्ति की गतिशीलता को बनाए रखा। हालाँकि, कुछ अपवाद भी थे, जैसे कि प्राचीन एथेंस, जहाँ आबादी के एक बड़े हिस्से को शिक्षा प्रदान की जाती थी, हालाँकि अभी भी मुख्य रूप से पुरुषों को।

महिलाओं की शिक्षा:

प्राचीन भारत में महिलाओं के लिए शिक्षा का बहुत महत्व था। उन्होंने घरेलू प्रबंधन, नृत्य और संगीत जैसे विभिन्न पहलुओं में प्रशिक्षण लिया। इसके अलावा, उन्हें उपनयन संस्कार में भाग लेना आवश्यक था। शिक्षा प्राप्त करने वाली महिलाओं को दो समूहों में वर्गीकृत किया गया था। पहला समूह, जिसे सद्योदवाह कहा जाता था, ने विवाह बंधन में बंधने तक अपनी पढ़ाई जारी रखी। दूसरी ओर, दूसरे समूह, जिसे ब्रह्मवादिनी या ब्रह्मचर्य के नाम से जाना जाता है, ने शादी नहीं करने का फैसला किया और अपना जीवन निरंतर सीखने के लिए समर्पित कर दिया। जबकि महिलाओं को वेदों और वेदांगों की शिक्षा दी

जाती थी, लेकिन इन ग्रंथों में उनकी शिक्षा काफी हद तक धार्मिक गीतों और कविताओं तक ही सीमित थी जो अनुष्ठानों के लिए आवश्यक थे। इस युग से कई उल्लेखनीय महिला विद्वान उभरीं, जिनमें अपाला, इंद्राणी, घोषा, लोपामुद्रा, गार्गी और मैत्रेयी शामिल हैं, जिन्होंने वैदिक और उपनिषदिक ज्ञान में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

प्राचीन शैक्षिक संस्थानः

संक्षेप में, प्राचीन दुनिया में विभिन्न प्रसिद्ध शैक्षणिक संस्थान थे, जिनमें से प्रत्येक अपनी विशेषज्ञता के विशिष्ट क्षेत्रों और जीवन के सभी क्षेत्रों के छात्रों को दिए जाने वाले अमूल्य ज्ञान के लिए प्रतिष्ठित थे। पूर्वी भारत में नालंदा विश्वविद्यालय के महत्व की तरह, वल्लभी की भी पश्चिमी भारत में समान प्रतिष्ठा थी। कानून, चिकित्सा और अर्थशास्त्र जैसे विषयों पर अपनी एकाग्रता के लिए प्रसिद्ध, वल्लभी ने देश के सभी कोनों से छात्रों को आकर्षित किया, और खुद को अध्ययन के एक प्रमुख केंद्र के रूप में स्थापित किया। इसके अतिरिक्त, विक्रमशिला, जो तांत्रिक बौद्ध धर्म में अपनी विशेषज्ञता के लिए जाना जाता है, ने इस आध्यात्मिक अनुशासन में विशेषज्ञता रखने वाली संस्था के रूप में बहुत सम्मान अर्जित किया। इसके अलावा, गुरुकुल शिक्षकों के गृहनगर के रूप में कार्य करते थे, जहां छात्र अपने दीक्षा समारोह को पूरा करने के बाद यात्रा करते थे, और अपनी पढ़ाई की समाप्ति तक सीखने में डूबे रहते थे। परिषदें या अकादमियाँ उच्च शिक्षा के लिए सम्मानित स्थानों के रूप में कार्य करती थीं, जहाँ छात्र अपनी समझ को बढ़ाने के लिए बौद्धिक प्रवचन और बहस में संलग्न होते थे। दूसरी ओर, गोष्ठियाँ उन स्थानों के रूप में कार्य करती थीं जहाँ राजा विभिन्न संस्थानों के विद्वानों को एकत्रित होने और अपने विविध दृष्टिकोणों का आदान-प्रदान करने के लिए आमंत्रित करते थे। आश्रम, जो शिक्षा के केंद्र थे, देश के विभिन्न हिस्सों के छात्रों को पूज्य संतों और ऋषियों से ज्ञान प्राप्त करने का अवसर प्रदान करते थे। श्रृंगेरी, कांची, द्वारका और पुरी जैसे स्थानों में प्रतिष्ठित आचार्य श्री शंकर द्वारा स्थापित विद्यापीठ आध्यात्मिक शिक्षा के पवित्र स्थान थे। इस बीच, अग्रहारों ने विशेष रूप से ब्राह्मणों के लिए निर्दिष्ट गांवों में संस्थानों के रूप में कार्य किया, जहां उन्होंने उत्सुक शिक्षार्थियों को ज्ञान प्रदान किया। अंत में, बौद्धों द्वारा स्थापित विहार, शैक्षिक संस्थानों के रूप में कार्य करते थे जहाँ छात्र उच्च शैक्षिक सेटिंग के भीतर बौद्ध धर्म और दर्शन से संबंधित विषयों में गहराई से उतरते थे। प्राचीन काल में, जैसे आज हमारे पास दुनिया भर में प्रसिद्ध विश्वविद्यालय हैं, वैसे ही प्रतिष्ठित शैक्षणिक संस्थान भी मौजूद थे जिन्हें अत्यधिक सम्मान दिया जाता था। इन उल्लेखनीय संस्थानों में से चार अपनी विशेषज्ञता के विशिष्ट क्षेत्रों के लिए प्रतिष्ठित हैं। उदाहरण के लिए, नालंदा विश्वविद्यालय ने हिंदू धर्म और इसकी विश्वव्यापी प्रकृति की व्यापक समझ के साथ-साथ अपने तर्क विभाग के लिए प्रसिद्धि प्राप्त की। अब आधुनिक पाकिस्तान में स्थित, तक्षशिला विश्वविद्यालय को अपने असाधारण मेडिकल स्कूल के लिए दुनिया भर में व्यापक रूप से मान्यता मिली थी, जो छठी शताब्दी ईसा पूर्व के दौरान सीखने के प्राथमिक केंद्र के रूप में कार्यरत था।

तक्षशिला या तक्षशिलाः

प्राचीन काल में, तक्षशिला को शिक्षा के एक प्रसिद्ध केंद्र के रूप में व्यापक मान्यता मिली, जिसमें बौद्ध धर्म, प्राचीन धर्मग्रंथ, कानून, चिकित्सा, समाजशास्त्र, खगोल विज्ञान, सैन्य विज्ञान और 18 सिल्पास जैसे विभिन्न क्षेत्र शामिल थे। कठिन और लंबी यात्रा के बावजूद, विश्वविद्यालय को विशेष रूप से अपनी उच्च शिक्षा के लिए जाना जाता था, जो काशी, कोसल, मगध और यहां तक कि विभिन्न देशों जैसे दूर-दराज के स्थानों से छात्रों को आकर्षित करता था। तक्षशिला से जुड़े सबसे प्रतिष्ठित विद्वानों में से एक पाणिनि थे, जो एक प्रतिभाशाली व्याकरणविद् थे, जिनकी अपने विषय में विशेषज्ञता और अष्टाध्यायी पर उनके काम ने एक अमिट छाप छोड़ी थी। एक अन्य उल्लेखनीय व्यक्ति थे चाणक्य, जिन्होंने इस प्रतिष्ठित संस्थान में शासन कला में अपने कौशल को निखारा। वर्तमान उत्तर-पश्चिमी पाकिस्तान में स्थित, तक्षशिला एक प्राचीन भारतीय शहर था जो न केवल शिक्षा के केंद्र के रूप में कार्य करता था बल्कि वर्ष 1980 में संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) द्वारा एक पुरातात्विक स्थल और विश्व धरोहर स्थल के रूप में मान्यता भी प्राप्त की थी।

नालंदाः

नालन्दा एक विशेष स्थान था जहाँ छात्र और शिक्षक एक साथ रह सकते थे और सीख सकते थे। इसमें बहुत सारे छात्रों के रहने के लिए बड़ी इमारतें थीं और उन्हें अपनी शिक्षा के लिए भुगतान नहीं करना पड़ता था। विश्वविद्यालय में न केवल स्कूली विषय पढ़ाए जाते थे, बल्कि अच्छे और दयालु होने के महत्वपूर्ण पाठ भी पढ़ाए जाते थे। अफसोस की बात है कि 12वीं सदी में कुछ लोगों ने विश्वविद्यालय पर हमला किया और उसे नष्ट कर दिया। उन्होंने पुस्तकालय में भी आग लगा दी, जिसमें कई महत्वपूर्ण पुस्तकें थीं। नालन्दा अपने पुस्तकालय के लिए प्रसिद्ध था और इसके छात्र कितने होशियार थे। दुनिया भर से लोग वहां अध्ययन करने आते थे। उन्होंने दर्शनशास्त्र, खगोल विज्ञान, गणित, चिकित्सा और साहित्य जैसी कई अलग-अलग चीजों के बारे में सीखा। पुस्तकालय वास्तव में लंबा था और इसमें बहुत सारी अनोखी किताबें थीं। भले ही अब नालंदा खण्त्म हो गया है, लेकिन लोग इसे वापस लाने की कोशिश कर रहे हैं। उन्होंने सीखने और नवाचार की भावना को जारी रखने के लिए 2014 में एक नया विश्वविद्यालय शुरू किया। नालंदा महत्वपूर्ण था क्योंकि इसने बौद्ध धर्म को फैलाने में मदद की और एशिया से स्मार्ट लोगों को आकर्षित किया। नालन्दा में उनके पढ़ाने का तरीका भी विशेष था। छात्र एक-दूसरे से बात कर सकते थे और बहस कर सकते थे, जिससे उन्हें गंभीर रूप से सोचने और नई चीजें सीखने में मदद मिली। नालन्दा एक ऐसी जगह थी जहाँ लोग सीख सकते थे और विकास कर सकते थे।

शिक्षण के तरीकेः-

उस समय के दौरान, छात्रों के लिए समूहों में शिक्षा प्राप्त करना आम बात थी। हालाँकि, शिक्षकों ने छात्रों को उनकी अद्वितीय क्षमताओं और योग्यता के अनुसार व्यक्तिगत शिक्षा भी प्रदान की। ज्ञान संप्रेषित करने का प्राथमिक तरीका मौखिक पाठ के माध्यम से था, जिसे आत्मनिरीक्षण (सुनना, प्रतिबिंबित

करना और केंद्रित प्रतिबिंब), कहानी सुनाना, व्यक्तिगत अनुभव साझा करना, महत्वपूर्ण विश्लेषण करना, व्यावहारिक अध्ययन में संलग्न होना और सेमिनारों में भाग लेना जैसी कई तकनीकों के माध्यम से सुविधाजनक बनाया गया था।

सीखने के तरीके:

उस अवधि के दौरान, शिक्षकों ने अपने छात्रों के विकास पर बहुत जोर दिया और उनकी शिक्षाओं को उनके व्यक्तिगत ज्ञान और कौशल स्तरों के अनुरूप बनाया। शिक्षा के प्राथमिक तरीके में मौखिक संचार और बहस में शामिल होना शामिल था। कई तरीके अपनाए गए, जिनमें निम्नलिखित शामिल हैं: i) उस युग के दौरान पुस्तकों की अनुपस्थिति को देखते हुए, छात्रों ने अपने शिक्षकों की सहायता से, कक्षा में पढ़ाई गई हर चीज को याद करने की आदत विकसित की, जिन्होंने याद करने की प्रक्रिया को भी सुविधाजनक बनाया। ii) छात्रों ने अपने शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत अवधारणाओं को गहराई से समझा और अपनी समझ को बढ़ाने के लिए सक्रिय रूप से वैकल्पिक तरीकों की तलाश की। विषय वस्तु की अधिक व्यापक समझ को बढ़ावा देने के लिए चिंतन और केंद्रित चिंतन जैसी तकनीकों को नियोजित किया गया था। iv) कहानी सुनाना एक अन्य पसंदीदा शिक्षण तकनीक थी जिसका उपयोग शिक्षक पाठों को प्रभावी ढंग से संप्रेषित करने के लिए करते थे। v) छात्रों को पढ़ाए जा रहे विषयों के बारे में पूछताछ करने के लिए प्रोत्साहित किया गया, और इन पूछताछों को कक्षा में चर्चाओं और बाद में शिक्षकों की प्रतिक्रियाओं के माध्यम से संबोधित किया गया। vi) उस समय की शैक्षिक प्रणाली ने पढ़ाए जाने वाले विषयों से संबंधित व्यावहारिक ज्ञान के अधिग्रहण को प्राथमिकता दी। vii) छात्रों ने सेमिनारों में भाग लेने और वाद-विवाद में भाग लेने के माध्यम से भी ज्ञान का खजाना हासिल किया।

आधुनिक शिक्षा:

इसके अलावा, आधुनिक शिक्षा पारंपरिक कक्षा सेटिंग तक ही सीमित नहीं है। ऑनलाइन शिक्षण प्लेटफार्मों और दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों के आगमन के साथ, व्यक्तियों के पास अब अपनी गति से और दुनिया में कहीं से भी शिक्षा प्राप्त करने का लचीलापन और सुविधा है। इस पहुंच ने उन व्यक्तियों के लिए अवसर खोल दिए हैं जो पहले भौगोलिक या वित्तीय बाधाओं के कारण शिक्षा तक पहुंचने में असमर्थ थे। परिणामस्वरूप, आधुनिक शिक्षा अधिक सुलभ और लोकतांत्रिक हो गई है, जो जीवन के सभी क्षेत्रों के व्यक्तियों को अपने ज्ञान और कौशल को बढ़ाने के लिए सशक्त बनाती है। आधुनिक शिक्षा का सबसे प्रमुख पहलू प्रौद्योगिकी का एकीकरण है। आज की कक्षाओं में, शिक्षकों और छात्रों के पास डिजिटल उपकरणों और संसाधनों की एक श्रृंखला तक पहुंच है जो सीखने के अनुभव को बढ़ाते हैं। इंटरैक्टिव व्हाइटबोर्ड और ई-बुक्स से लेकर ऑनलाइन शोध डेटाबेस और शैक्षिक ऐप्स तक, प्रौद्योगिकी ने ज्ञान प्रदान करने और अर्जित करने के तरीके में क्रांति ला दी है। इस एकीकरण ने न केवल सीखने को अधिक आकर्षक और इंटरैक्टिव बना दिया है बल्कि छात्रों और शिक्षकों के बीच सहयोग और संचार के नए रास्ते भी खोल दिए हैं। आधुनिक दुनिया में शिक्षा में पारंपरिक तरीकों की तुलना में महत्वपूर्ण परिवर्तन और प्रगति हुई है। इन परिवर्तनों को कई कारकों के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, जिनमें तकनीकी प्रगति, उभरती सामाजिक जरूरतें और सुधार और नवाचार की निरंतर खोज शामिल है। इसके अलावा, आधुनिक शिक्षा में अधिक छात्र-केंद्रित दृष्टिकोण की ओर बदलाव देखा गया है। रटकर याद करने और निष्क्रिय सीखने के दिन गए। इसके बजाय, शिक्षक अब आलोचनात्मक सोच, समस्या-समाधान और रचनात्मकता पर जोर देते हैं। लगातार बदलती और प्रतिस्पर्धी दुनिया में सफल होने के लिए छात्रों को आवश्यक कौशल से लैस करने पर ध्यान केंद्रित किया गया है। छात्र-केंद्रित शिक्षा की ओर यह बदलाव व्यक्तियों को अपनी शिक्षा का स्वामित्व लेने, स्वतंत्रता और सीखने के लिए आजीवन प्रेम को बढ़ावा देने का अधिकार देता है। आधुनिक शिक्षा का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू समावेशिता और विविधता पर जोर देना है। शैक्षणिक संस्थान सभी छात्रों को उनकी पृष्ठभूमि या क्षमताओं की परवाह किए बिना समान अवसर और संसाधन प्रदान करने के महत्व को तेजी से पहचान रहे हैं। विशेष शिक्षा कार्यक्रम, बहुसांस्कृतिक पाठ्यक्रम और समावेशी कक्षाएँ इस बात के कुछ उदाहरण हैं कि आधुनिक शिक्षा शिक्षार्थियों की विविध आवश्यकताओं को कैसे पूरा करने का प्रयास करती है। समावेशिता को बढ़ावा देकर, आधुनिक शिक्षा का लक्ष्य एक ऐसा वातावरण बनाना है जहां प्रत्येक छात्र अपनी शैक्षिक यात्रा में मूल्यवान, सम्मानित और समर्थित महसूस करे।

शैक्षिक संस्थान: स्कूल:

स्कूल शैक्षिक संस्थानों के रूप में कार्य करते हैं जो बच्चों की प्राथमिक शिक्षा को पूरा करते हैं। वे या तो निजी या सरकारी स्वामित्व में हो सकते हैं और पूरे भारत में व्यापक हैं। इस देश में प्राथमिक शिक्षा में नर्सरी से दसवीं कक्षा तक की अवधि शामिल है। अपने प्रारंभिक वर्षों के दौरान बच्चों को कविता, व्याकरण, प्रार्थना और वर्णमाला जैसे विभिन्न पहलुओं के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के लिए स्कूलों में नामांकित किया जाता है। इसके अलावा, स्कूल अंग्रेजी, गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल और क्षेत्रीय भाषाओं जैसे विषयों में भी शिक्षा प्रदान करते हैं। स्कूल आम तौर पर शहरी क्षेत्रों में स्थित होते हैं, जो छात्रों को सांस्कृतिक और खेल आयोजनों में भाग लेने के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करते हैं। ये आयोजन छात्रों के पारस्परिक कौशल के साथ-साथ शारीरिक विकास को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दूसरी ओर, निजी स्कूलों का प्रबंधन आम तौर पर संगठनों द्वारा किया जाता है, जिसमें प्रिंसिपल संस्था के भीतर शैक्षणिक मामलों और सांस्कृतिक गतिविधियों की देखरेख करते हैं।

कॉलेजों:

एक बार जब छात्र स्कूलों में अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी कर लेते हैं, तो वे अपनी माध्यमिक शिक्षा के लिए कॉलेजों में दाखिला लेकर सीखने के अगले स्तर पर आगे बढ़ते हैं। हालाँकि, कॉलेजों में प्रवेश पाने से पहले, उन्हें प्रवेश परीक्षा से गुजरना पड़ता है जो उनके परीक्षा अंकों के आधार पर उनकी पात्रता निर्धारित करती है। इसके बाद, इन परीक्षाओं में उनके प्रदर्शन के आधार पर छात्रों को कॉलेज आवंटित किए जाते हैं। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि कुछ राज्यों में, छात्रों को अपने कॉलेज के वर्षों के दौरान विज्ञान या वाणिज्य में से एक विशिष्ट शैक्षणिक स्ट्रीम का चयन करने के लिए निर्देशित किया जाता

है। यह विकल्प तब उनकी माध्यमिक शिक्षा की दिशा को आकार देता है। कॉलेज शिक्षा का पाठ्यक्रम आम तौर पर 11वीं और 12वीं कक्षा तक फैला होता है। इस अवधि के दौरान, छात्र भौतिकी, रसायन विज्ञान, ज्यामिति, बीजगणित, लेखा जैसे विभिन्न विषयों में गहन अध्ययन करते हैं और अपनी व्यापक माध्यमिक शिक्षा के हिस्से के रूप में क्षेत्रीय भाषाओं के अध्ययन में भी संलग्न होते हैं।

विश्ध्वविद्यालय:

अपनी माध्यमिक शिक्षा पूरी करने के बाद, छात्रों को प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में प्रवेश सुरक्षित करने के लिए संयुक्त इंजीनियरिंग प्रवेश (जेईई) और अन्य राज्य स्तरीय परीक्षाओं जैसी कठोर परीक्षाओं से गुजरना पड़ता है। ये परीक्षाएं छात्रों के लिए उनकी पसंदीदा शैक्षणिक स्ट्रीम, जैसे कंप्यूटर साइंस, इलेक्ट्रॉनिक्स, सिविल इंजीनियरिंग, या मैकेनिकल इंजीनियरिंग चुनने के लिए प्रवेश द्वार के रूप में काम करती हैं, जो अंततः उनके भविष्य के करियर को आकार देती हैं। निष्कर्षत:, भारत में माध्यमिक शिक्षा से विश्वविद्यालय तक की यात्रा में कठोर परीक्षाएँ, शैक्षणिक धाराओं का सावधानीपूर्वक चयन और स्नातक और स्नातकोत्तर डिग्री की खोज शामिल है। शैक्षणिक प्रतिबद्धताओं के साथ-साथ, विश्वविद्यालय सांस्कृतिक और खेल कार्यक्रमों का आयोजन करके, एक ऐसे वातावरण को बढ़ावा देकर छात्रों के समग्र विकास को भी प्राथमिकता देते हैं जो सीखने और अवकाश दोनों को प्रोत्साहित करता है। जबकि अकादमिक गतिविधियाँ प्राथमिकता बनी हुई हैं, विश्वविद्यालय छात्रों को आराम करने और पाठ्येतर गतिविधियों में संलग्न होने के अवसर प्रदान करने के महत्व को भी पहचानते हैं। इस प्रकार, परिसर के भीतर अक्सर सांस्कृतिक और खेल कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं, जिससे छात्रों को उनकी पढ़ाई से बहुत जरूरी ब्रेक मिलता है और उन्हें अपने जुनून और रुचियों में शामिल होने का मौका मिलता है। एक बार प्रवेश लेने के बाद, भारत में विश्वविद्यालय क्रमश: 4 और 3 साल की अलग-अलग अवधि के साथ स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों की एक विस्तृत श्रृंखला प्रदान करते हैं। कुछ उल्लेखनीय विश्वविद्यालयों में सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, मुंबई विश्वविद्यालय और कई अन्य सहायता प्राप्त, गैर सहायता प्राप्त और निजी संस्थान शामिल हैं। ये संस्थान छात्रों को व्यापक शिक्षा प्रदान करते हैं और उन्हें उनके चुने हुए क्षेत्रों में उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान से लैस करते हैं।

पारंपरिक शिक्षा बनाम आधुनिक शिक्षा:

पारंपरिक और आधुनिक शिक्षा के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर शिक्षण दृष्टिकोण में निहित है। पारंपरिक शिक्षा शिक्षक-केंद्रित होती है, जिसमें प्रशिक्षक ज्ञान के एकमात्र प्राधिकारी और प्रसारक के रूप में कार्य करता है। छात्रों से अपेक्षा की जाती है कि वे निष्क्रिय रूप से जानकारी प्राप्त करें और स्थापित नियमों और मानकों के अनुरूप हों। इसके विपरीत, आधुनिक शिक्षा छात्र-केंद्रित दृष्टिकोण अपनाती है, जहां शिक्षक एक सुविधाकर्ता और मार्गदर्शक की भूमिका निभाता है। छात्रों को अपने सीखने का स्वामित्व लेने, प्रश्न पूछने और अपनी रुचियों और सीखने की शैलियों के आधार पर विषयों का पता लगाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इन दोनों शैक्षिक दृष्टिकोणों के बीच एक और अंतर वितरण का तरीका है। पारंपरिक शिक्षा मुख्य रूप से भौतिक कक्षाओं में होती है, जहाँ छात्रों और शिक्षकों के बीच आमने-सामने बातचीत आदर्श है। यह पारंपरिक सेटिंग सीधे संचार, व्यक्तिगत कनेक्शन और समुदाय की भावना को बढ़ावा देती है। दूसरी ओर, आधुनिक शिक्षा कक्षा की भौतिक दीवारों से परे सीखने के माहौल का विस्तार करने के लिए प्रौद्योगिकी का लाभ उठाती है। आभासी कक्षाएँ, ऑनलाइन पाठ्यक्रम और दूरस्थ शिक्षण प्लेटफॉर्म छात्रों को कहीं से भी, किसी भी समय शैक्षिक सामग्री तक पहुँचने और विविध पृष्ठभूमि और भौगोलिक स्थानों के साथियों के साथ सहयोग करने में सक्षम बनाते हैं। दूसरी ओर, आधुनिक शिक्षा पारंपरिक मॉडल से हटकर नवीन शिक्षण विधियों और प्रौद्योगिकियों को अपनाती है। यह आज की तेजी से बदलती दुनिया में आलोचनात्मक सोच, समस्या-समाधान और रचनात्मकता के महत्व को पहचानता है। आधुनिक शिक्षा में, छात्रों को सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेने, सहयोगात्मक गतिविधियों में संलग्न होने और पाठ्यपुस्तकों से परे जानकारी के विभिन्न स्रोतों, जैसे ऑनलाइन संसाधन, मल्टीमीडिया और अनुभवात्मक सीखने के अवसरों का पता लगाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। पारंपरिक शिक्षा और आधुनिक शिक्षा सीखने के दो अलग-अलग दृष्टिकोण हैं जो समय के साथ विकसित हुए हैं। जबकि पारंपरिक शिक्षा सदियों से प्रमुख पद्धति रही है, आधुनिक शिक्षा समाज की बदलती जरूरतों और मांगों की प्रतिक्रिया के रूप में उभरी है। दोनों दृष्टिकोणों की अपनी खूबियाँ और कमियाँ हैं, और उनके बीच के अंतर को समझने से व्यक्तियों को उनकी शैक्षिक यात्रा के बारे में सूचित निर्णय लेने में मदद मिल सकती है। पारंपरिक शिक्षा, जिसे पारंपरिक शिक्षा के रूप में भी जाना जाता है, इतिहास में गहराई से निहित है और पीढ़ियों से सीखने का प्राथमिक तरीका रही है। यह याद रखने, रटने और शिक्षक से छात्र तक ज्ञान के हस्तांतरण पर ध्यान देने के साथ एक संरचित और अनुशासित दृष्टिकोण पर जोर देता है। पारंपरिक शिक्षा सेटिंग्स में छात्र अक्सर एक निश्चित पाठ्यक्रम का पालन करते हैं, भौतिक कक्षाओं में कक्षाओं में भाग लेते हैं, और जानकारी के प्राथमिक स्रोतों के रूप में पाठ्यपुस्तकों और व्याख्यानों पर बहुत अधिक भरोसा करते हैं।

स्वतंत्रता के बाद आधुनिक शिक्षा:

स्वतंत्रता के बाद की अवधि में शिक्षा क्षेत्र में विभिन्न सुधारों की शुरूआत देखी गई। प्रमुख सुधारों में से एक 1956 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) की स्थापना थी। यूजीसी भारत में विश्वविद्यालयों में शिक्षा के मानकों के समन्वय, निर्धारण और रखरखाव के लिए जिम्मेदार था। इस कदम ने उच्च शिक्षा में एकरूपता और गुणवत्ता सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी) और भारतीय प्रबंधन संस्थान (आईआईएम) की स्थापना में विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर ध्यान भी स्पष्ट था। इन प्रमुख संस्थानों का उद्देश्य प्रतिभाशाली व्यक्तियों का पोषण करना और उन्हें अपने संबंधित क्षेत्रों में अग्रणी बनाना है। आईआईटी और आईआईएम ने तब से अपनी शैक्षणिक उत्कृष्टता के लिए अंतरराष्ट्रीय मान्यता प्राप्त की है और भारत में कुछ प्रतिभाशाली दिमाग पैदा किए हैं। इस अवधि के दौरान एक और महत्वपूर्ण विकास तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा पर जोर देना था। सरकार ने विकासशील राष्ट्र की मांगों को पूरा करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में कुशल पेशेवरों की आवश्यकता को पहचाना। परिणामस्वरूप, इंजीनियरिंग, चिकित्सा और

कृषि जैसे क्षेत्रों में विशेष प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए कई तकनीकी संस्थान और पॉलिटेक्निक स्थापित किए गए। तकनीकी शिक्षा के अलावा, सरकार ने प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा पर भी जोर दिया। विभिन्न नीतियों और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के माध्यम से, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा तक पहुंच बढ़ाने के प्रयास किए गए। 2009 में अधिनियमित शिक्षा का अधिकार अधिनियम ने 6 से 14 वर्ष की आयु के प्रत्येक बच्चे के लिए शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया। इस अधिनियम का उद्देश्य सभी के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा सुनिश्चित करना था, भले ही उनकी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि कुछ भी हो। ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद भारत में शिक्षा प्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखे गए। इन परिवर्तनों का उद्देश्य देश में शिक्षा की गुणवत्ता को आधुनिक बनाना और सुधारना था। प्रौद्योगिकी में प्रगति और इंटरनेट के उदय ने भी भारत में आधुनिक शिक्षा पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म, ऑनलाइन पाठ्यक्रम और डिजिटल संसाधनों ने शिक्षा को अधिक सुलभ और इंटरैक्टिव बना दिया है। छात्रों के पास अब जानकारी के विशाल भंडार तक पहुंच है और वे पारंपरिक कक्षाओं की बाधाओं को तोड़कर स्व-गति से सीखने में संलग्न हो सकते हैं। इसके अलावा, समाज की बदलती जरूरतों के अनुरूप पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियों को भी नया रूप दिया गया। ध्यान रटने से हटकर अधिक समग्र दृष्टिकोण पर केंद्रित हो गया जिसने आलोचनात्मक सोच, रचनात्मकता और समस्या-समाधान कौशल को प्रोत्साहित किया। छात्रों को व्यावहारिक ज्ञान से लैस करने और उनकी रोजगार क्षमता बढ़ाने के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण और कौशल विकास को भी पाठ्यक्रम में एकीकृत किया गया था।

आज का परिदृश्यः

पिछले कुछ वर्षों में शिक्षा परिदृश्य में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। अतीत में, आधुनिक शिक्षा को अधिक महत्व नहीं दिया जाता था, जबकि पारंपरिक शिक्षा को आज की दुनिया में पर्याप्त नहीं माना जाता है। जैसे-जैसे समाज की जरूरतें विकसित होती हैं, वैसे-वैसे हमारी शिक्षा प्रणाली भी विकसित होनी चाहिए और लोगों के लिए इस बदलाव को अपनाना महत्वपूर्ण है। पहले, शिक्षा मुख्य रूप से व्यक्तियों को उनकी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए ज्ञान और कौशल से लैस करने पर केंद्रित थी। उल्लेखनीय रूप से, यह मूल उद्देश्य अपरिवर्तित रहता है। हालाँकि, जो बदलाव आया है वह समकालीन समय में लोगों की विशिष्ट जरूरतें हैं। जिसे कभी विलासिता माना जाता था वह अब मूलभूत आवश्यकता बन गई है। परिणामस्वरूप, शिक्षा को इन बढ़ती माँगों के साथ तालमेल बिठाने के लिए अनुकूलन और विस्तार करना पड़ा। ऐसे विकास के बिना, आज की दुनिया की जटिल जरूरतों को पूरा करना बेहद चुनौतीपूर्ण होता।

शिक्षा में समानताः

शिक्षा में समानता को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न सामाजिक-आर्थिक समूहों के बीच मौजूद असमानताओं को भी संबोधित करना आवश्यक है। यह पहचानना महत्वपूर्ण है कि आर्थिक रूप से वंचित पृष्ठभूमि के छात्रों को शिक्षा में अतिरिक्त बाधाओं का सामना करना पड़ सकता है, जैसे शैक्षिक संसाधनों, ट्यूशन या पाठ्येतर गतिविधियों तक सीमित पहुंच। समानता सुनिश्चित करने के लिए, इन छात्रों को छात्रवृत्ति, अनुदान या परामर्श कार्यक्रम जैसे अतिरिक्त सहायता और संसाधन प्रदान करना आवश्यक है। इसके अलावा, शिक्षा में समानता समावेशी कक्षाओं के विचार को बढ़ावा देती है, जहां विविध पृष्ठभूमि के छात्रों का स्वागत किया जाता है और उन्हें महत्व दिया जाता है। समावेशी शिक्षा का उद्देश्य एक ऐसा वातावरण बनाना है जहां विकलांग या विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं वाले छात्रों सहित सभी छात्र शैक्षिक अनुभव में पूरी तरह से भाग ले सकें। इसमें प्रत्येक छात्र की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उचित आवास, सहायता सेवाएँ और व्यक्तिगत शिक्षण योजनाएँ लागू करना शामिल है। शिक्षा में समानता का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू प्रणालीगत पूर्वाग्रहों और भेदभाव को संबोधित करने और दूर करने की आवश्यकता है जो छात्रों के कुछ समूहों को प्रभावित कर सकते हैं। इसमें शैक्षणिक संस्थानों के भीतर नस्लवाद, लिंगवाद, सक्षमता और भेदभाव के अन्य रूपों का मुकाबला करना शामिल है। समावेशिता और सम्मान की संस्कृति को बढ़ावा देकर, शैक्षणिक संस्थान एक सुरक्षित और पोषणपूर्ण वातावरण बना सकते हैं जो सभी छात्रों के लिए समान अवसरों को बढ़ावा देता है। अंत में, शिक्षा में समानता एक बहुआयामी अवधारणा है जिसमें विभिन्न पहलुओं को शामिल किया गया है, जिसमें संसाधनों तक समान पहुंच, समावेशी कक्षाएँ, विविध आवश्यकताओं वाले छात्रों के लिए समर्थन, सामाजिक आर्थिक असमानताओं को संबोधित करना और भेदभाव का मुकाबला करना शामिल है। शिक्षा में समानता को प्राथमिकता देकर, हम एक निष्पक्ष और उचित शैक्षिक प्रणाली बना सकते हैं जो प्रत्येक छात्र को अपनी पूरी क्षमता तक पहुंचने के लिए सशक्त बनाती है। शिक्षा में समानता का एक पहलू पर्याप्त संसाधनों और सुविधाओं का प्रावधान है। यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि सभी समुदायों के स्कूलों में, चाहे वे शहरी हों या ग्रामीण, एक इष्टतम शिक्षण वातावरण बनाने के लिए आवश्यक बुनियादी ढाँचा, प्रौद्योगिकी और सामग्री हो। इसमें नवीनतम पाठ्यपुस्तकों, प्रौद्योगिकी उपकरणों, इंटरनेट कनेक्टिविटी और अच्छी तरह से बनाए रखी गई सुविधाओं तक पहुंच शामिल है जो सीखने के लिए एक सुरक्षित और अनुकूल माहौल को बढ़ावा देती है। शिक्षा में समानता केवल स्कूलों और कक्षाओं तक समान पहुंच प्रदान करने से कहीं अधिक है। इसमें प्रत्येक छात्र के लिए उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं और परिस्थितियों को स्वीकार करते हुए समान व्यवहार और समर्थन का विचार भी शामिल है। यह सिद्धांत मानता है कि प्रत्येक छात्र की सीखने की शैली, क्षमताएं और चुनौतियाँ अलग-अलग होती हैं, और इसलिए शिक्षा के लिए अनुरूप दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। शिक्षा में समानता की अवधारणा एक मौलिक सिद्धांत है जो छात्रों को सीखने और विकास के लिए समान अवसर प्रदान करने के महत्व पर जोर देती है। इसमें यह सुनिश्चित करना शामिल है कि सभी व्यक्तियों को, उनकी पृष्ठभूमि, सामाजिक आर्थिक स्थिति, नस्ल या लिंग की परवाह किए बिना, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और अकादमिक रूप से सफल होने के लिए आवश्यक संसाधनों तक पहुंच प्राप्त हो।

तुलनात्मक अध्ययनः

इस तुलनात्मक अध्ययन में हम प्राचीन काल और आधुनिक युग की शिक्षा प्रणालियों के बीच अंतर और समानताओं का विश्लेषण और परीक्षण करेंगे। इन प्रणालियों को प्रभावित करने वाले ऐतिहासिक संदर्भ और सामाजिक कारकों की खोज करके, हमारा लक्ष्य इस बात की गहरी समझ हासिल करना है

कि समय के साथ शिक्षा कैसे विकसित हुई है और इसका व्यक्तियों, समुदायों और समाजों पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस विश्लेषण के माध्यम से, हम दोनों प्रणालियों की ताकत और कमजोरियों पर प्रकाश डालने और उन क्षेत्रों की पहचान करने की उम्मीद करते हैं जहां प्राचीन प्रथाओं से प्राप्त अंतर्दृष्टि के आधार पर आधुनिक शिक्षा में सुधार किया जा सकता है। अंततः, यह अध्ययन शैक्षिक सुधार पर चल रहे प्रवचन में योगदान देना चाहता है और वर्तमान समय में छात्रों के लिए सीखने के अनुभव को बढ़ाने के प्रयासों में शिक्षकों, नीति निर्माताओं और शोधकर्ताओं के लिए मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करना चाहता है।

निष्कर्ष-

निष्कर्षतः, प्राचीन और आधुनिक शिक्षा प्रणालियों की गहन जांच और तुलना करने के बाद यह स्पष्ट है कि दोनों के बीच महत्वपूर्ण अंतर हैं। पारंपरिक प्रथाओं पर आधारित प्राचीन शिक्षा प्रणाली मुख्य रूप से ज्ञान और कौशल प्रदान करने पर केंद्रित थी जो अस्तित्व और सामाजिक भूमिकाओं के लिए आवश्यक थे। दूसरी ओर, आधुनिक शिक्षा प्रणाली समग्र दृष्टिकोण पर अधिक जोर देती है, जिसका लक्ष्य छात्रों में आलोचनात्मक सोच, समस्या सुलझाने की क्षमता और रचनात्मकता विकसित करना है। दोनों प्रणालियों के बीच एक प्रमुख अंतर उनके शैक्षिक दर्शन में निहित है। प्राचीन शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करना और ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाना था। यह शास्त्रों, ग्रंथों और मौखिक शिक्षाओं के कठोर स्मरण के माध्यम से हासिल किया गया था। इसके विपरीत, आधुनिक शिक्षा प्रणाली व्यक्तिवाद, व्यक्तिगत विकास और वास्तविक दुनिया में लागू होने वाले व्यावहारिक कौशल के अधिग्रहण पर जोर देती है। यह छात्रों को स्वतंत्र रूप से सवाल करने, विश्लेषण करने और सोचने के लिए प्रोत्साहित करता है, अवधारणाओं की गहरी समझ को बढ़ावा देता है और रचनात्मकता को बढ़ावा देता है। प्राचीन और आधुनिक शिक्षा प्रणालियों के बीच एक और महत्वपूर्ण अंतर प्रौद्योगिकी की भूमिका है। प्राचीन समय में, शिक्षा आमने-सामने की बातचीत और शिक्षक-छात्र संबंधों पर बहुत अधिक निर्भर करती थी। प्रौद्योगिकी का उपयोग सीमित था, यदि अस्तित्व में नहीं था। हालाँकि, आधुनिक शिक्षा प्रणाली में, प्रौद्योगिकी सीखने के अनुभव को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कंप्यूटर, इंटरनेट और विभिन्न शैक्षिक सॉफ्टवेयर के आगमन के साथ, छात्रों के पास अब अपनी उंगलियों पर बड़ी मात्रा में जानकारी उपलब्ध है। इसने हमारे सीखने के तरीके में क्रांति ला दी है और शिक्षा को अधिक इंटरैक्टिव, आकर्षक और सुलभ बना दिया है। इसके अलावा, प्राचीन और आधुनिक शिक्षा प्रणालियों में पढ़ाए जाने वाले पाठ्यक्रम और विषय बहुत भिन्न हैं। प्राचीन समय में, पाठ्यक्रम मुख्य रूप से दर्शनशास्त्र, धार्मिक अध्ययन, गणित और इतिहास जैसे विषयों पर केंद्रित था। इन विषयों को व्यक्तिगत और सामाजिक विकास के लिए मौलिक माना जाता था। इसके विपरीत, आधुनिक शिक्षा प्रणाली विज्ञान, कला, भाषा और व्यावसायिक पाठ्यक्रमों सहित विषयों की एक विस्तृत श्रृंखला प्रदान करती है। विषयों का यह विविधीकरण छात्रों को अपनी रुचियों और प्रतिभाओं का पता लगाने की अनुमति देता है, जिससे वे अपने जुनून को आगे बढ़ाने और अपने करियर की राह खुद बनाने में सक्षम होते हैं।

सन्दर्भ सूची-

1. Prudence. "Methods of Teaching." Review of Educational Research, Vol. 6, No. 3.
2. Psychology of Learning, General Methods of Teaching, and Supervision. Jun 1936. Jstor. 21 Mar 2008 "Whythis Hong Kong tutor is worth 22 Barack Obamas".3.
4. Henson, Kenneth T. "Teaching Methods: History and Status." Teaching methods: Designs for learning.
5. "Beck, Robert H. (2009). The Three R's Plus: What Today's Schools are Trying to Do and Why. U ofMinnesota Press. pp. 3ISBN 978-0-8166-6017-9.5.6
6. Dewey, John (1938). Experience and education. Kappa Delta Pi. pp. 5. ISBN 978-0-912099-35-4.6.
7. Available from: https://www. sociologygroup.com/indian-education- system-features-pros-cons *ISSN: 2320-5407 Int. J. Adv. Res. 9(04), 427-434* -4347.
8. Jayapalan N. History of Education in India; 19968.
9. Available from: http://digitaltk.com/ Indian-education-system-advantages- disadvantages/9.
10. https://www.pravakta.com/glorious-past-of-indian-education-hridaynarayn-dikshit/
11. https://ithihas.wordpress.com/2013/08/28/ancient-indian-education-system-from-the-beginning-to-10th-c-a-d/

"आचार्य जे. कृष्णमूर्ति के शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता"

रजनी यादव

बी1 -59 रामगंगा बिहार, मुरादाबाद

सारांश

शिक्षा का क्षेत्र हमेशा सभी दार्शनिकों के लिए एक दिलचस्प क्षेत्र रहा है क्योंकि यह उन्हें अपने विचारों या दृष्टि को एक ठोस आकार देने का साधन प्रदान करता है और कृष्णमूर्ति कोई अपवाद नहीं हैं। जे कृष्णमूर्ति शिक्षा के बारे में गहराई से चिंतित हैं और एक एकीकृत व्यक्ति को लाने की परिकल्पना करते हैं जो शारीरिक रूप से फिट, निडर, मूल्यों के प्रति सच्चे, पूछताछ की भावना, बुद्धिमान, रचनात्मक, अच्छे सौंदर्य बोध, सही व्यवसाय का चयन करता है, और इस प्रकार व्यक्तित्व की पूर्णता प्राप्त करता है। और एक नई सामाजिक व्यवस्था का विकास करता है। इस तरह के एक एकीकृत और समग्र व्यक्तित्व के निर्माण के लिए, कृष्णमूर्ति ने एकीकृत पाठ्यक्रम और शिक्षाशास्त्र, एकीकृत शिक्षकों, छोटे आकार के स्कूलों, अनुभव-आधारित शिक्षा, प्रकृति के प्रति सम्मान और एक संवेदनशील, निडर और उत्तेजक सीखने के माहौल को बनाए रखने की वकालत की, प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने के लिए गैर-वकालत की और गुणात्मक या रचनात्मक संस्कृति। मूल्यांकन। नवीनतम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में उनकी दृष्टि या शैक्षिक विचार या शिक्षा के दर्शन का प्रतिबिंब 21वीं सदी में उनके दर्शन की प्रासंगिकता को सिद्ध करता है।

आचार्य जे0 कृष्णमूर्ति भारतीय विचारधारा, योग, ध्यान, और मनोविज्ञान के प्रसिद्ध आध्यात्मिक गुरु थे। उन्होंने अपने जीवनभर योग, वेदांत, और उच्चतम चेतना के मुद्दों पर अध्ययन किया और उन्हें लोगों के बीच बिखरी हुई ज्ञान को एकत्र करके प्रस्तुत करने का काम किया। उनका जन्म 1896 में तमिलनाडु के चेट्टिनाड में हुआ था और मृत्यु 1981 में हुई। आचार्य जे0 कृष्णमूर्ति के पिता प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान थे और उन्होंने भगवद् गीता और उपनिषदों का अध्ययन किया था। उनके परिवार ने धर्मिक और आध्यात्मिक माहौल में प्राय: उनकी बढ़ावा-पूर्ण शिक्षा को समर्थन किया। बाल्यकाल में ही, आचार्य जे0 कृष्णमूर्ति ने धार्मिक और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों की खोज में रुचि रखी थी। उन्होंने अपने जीवन के दौरान विभिन्न आध्यात्मिक गुरुओं से शिक्षा और मार्गदर्शन प्राप्त किया। आचार्य जे0 कृष्णमूर्ति ने भारतीय संस्कृति के मूल्यों और धार्मिक ग्रंथों के साथ-साथ विश्व के विभिन्न धरोहरों का अध्ययन किया। उन्होंने योग, प्राणायाम, ध्यान, और मानसिक शुद्धि की विभिन्न विधियों पर गहरा अध्ययन किया और उन्हें लोगों को सिखाने का प्रयास किया। आचार्य जे0 कृष्णमूर्ति को आत्मज्ञान, सच्चिदानंद (सत्य, चित्त, आनंद) की प्राप्ति और स्वानुभूति की उच्चतम अवस्था तक पहुंचने के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में जाना जाता है। आचार्य जे0 कृष्णमूर्ति के शिष्यों की विधवा पत्नी श्रीमती राधा जी थीं, जो उनके साथ ध्यान और आध्यात्मिक कार्य में सहायक रहीं। उनके शिष्यों में भारत और विदेशों से लोग थे, जो उनके संदेश को विश्वभर में प्रसारित करते रहे। आचार्य जे0 कृष्णमूर्ति के उपदेशों का मुख्य उद्देश्य मन की शांति, संतुलन, और आनंद को प्राप्त करना था। उन्होंने योग के माध्यम से लोगों को आध्यात्मिक ज्ञान, स्वयं अनुभव, और स्वयं शोध का मार्ग दिखाया। उनके द्वारा शिक्षित शिष्यों ने उनके ज्ञान और शिक्षा को अपने जीवन में सामान्य करके अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त किया और सच्चे आनंद का अनुभव किया। आचार्य जे0 कृष्णमूर्ति का जीवन उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए विचारधारा, धरोहर और आध्यात्मिक संदेश के लिए लोगों के बीच एक बेहद मूल्यवान योगदान की प्रतीति कराता है। उनका जीवन एक पवित्र, सादगीपूर्ण और आध्यात्मिकता से भरा हुआ था।

आचार्य जे. कृष्णमूर्ति के शैक्षिक विचार

आचार्य जे. कृष्णमूर्ति भारतीय शिक्षा विद्वान और शिक्षा नीति निर्माता थे। उन्होंने भारतीय शिक्षा प्रणाली और विद्यार्थियों के प्रति अपने विचारों के माध्यम से महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके शैक्षिक विचार निम्नलिखित थे:

भारतीय संस्कृति के मूल्य: आचार्य जे. कृष्णमूर्ति ने हमेशा भारतीय संस्कृति और अर्थतत्व पर जोर दिया। उन्होंने बताया कि भारतीय शिक्षा पद्धति को विकसित करते समय हमें अपनी संस्कृति, धरोहर और मूल्यों को सम्मिलित करना चाहिए।

गुरु-शिष्य परंपरा: उनके विचार में गुरु-शिष्य परंपरा का महत्व था। उन्होंने कहा कि भारतीय शिक्षा पद्धति में गुरु के ज्ञान और शिष्य की श्रद्धा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

समग्र विकास: आचार्य जे. कृष्णमूर्ति ने शिक्षा के माध्यम से समग्र विकास को समर्थन किया। उन्होंने शिक्षा के माध्यम से छात्रों के शारीरिक, आध्यात्मिक, मानसिक और बौद्धिक विकास को समर्थन किया।

स्वदेशी शिक्षा: आचार्य जे. कृष्णमूर्ति ने स्वदेशी शिक्षा के पक्ष में उठाव किया। उन्होंने भारतीय शिक्षा पद्धति के अनुरूप शिक्षा के प्रति प्रोत्साहन दिया और पश्चिमी प्रवेशिक शिक्षा प्रणाली के मुद्दों पर विचार किया।

शिक्षा का उद्देश्य: उनके विचार में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का समृद्धि से विकास करना था। उन्होंने शिक्षा को केवल नौकरी पाने का माध्यम नहीं, बल्कि विद्यार्थियों के आत्मनिर्भर बनने और समृद्ध जीवन जीने का माध्यम बताया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति: आचार्य जे. कृष्णमूर्ति ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति के संबंध में अपने विचारों को प्रस्तुत किया था। उन्होंने शिक्षा प्रणाली में सुधार के लिए अपने सुझाव दिए थे जिनका उद्देश्य भारतीय शिक्षा को गुणवत्तापूर्ण और सामर्थ्यवान बनाना था।

ये थे आचार्य जे. कृष्णमूर्ति के मुख्य शैक्षिक विचार, जो भारतीय शिक्षा पद्धति और राष्ट्रीय शिक्षा नीति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रखे।

आचार्य जे. कृष्णमूर्ति के शिक्षा के उद्देश्य

आचार्य जे. कृष्णमूर्ति भारतीय शिक्षा पद्धति विकसित करने वाले प्रमुख शिक्षाविद थे। उनके शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित थे:

भारतीय संस्कृति और नैतिकता को प्रमुखता देना: आचार्य जे. कृष्णमूर्ति का मुख्य उद्देश्य था भारतीय संस्कृति, धरोहर और नैतिक मूल्यों के बारे में शिक्षा प्रदान करना। उन्होंने भारतीय तत्त्वज्ञान, वेदांत, उपनिषद, भगवद गीता और अन्य प्राचीन ग्रंथों की महत्वपूर्णता पर जोर दिया था।

संपूर्ण विकास को बढ़ावा देना: उनका उद्देश्य था छात्रों के संपूर्ण विकास को बढ़ावा देना। इसमें शारीरिक, आध्यात्मिक, और मानसिक विकास शामिल था। उन्होंने छात्रों को सिर्फ अकादमिक शिक्षा ही नहीं, बल्कि नैतिकता, दया, सहानुभूति, और शांति की महत्वपूर्णता पर भी जागरूक किया।

ज्ञान और विज्ञान को जोड़ना: आचार्य जे. कृष्णमूर्ति ने ज्ञान और विज्ञान को एक साथ जोड़कर शिक्षा को विशेष महत्व दिया। उन्होंने भारतीय परंपरागत ज्ञान को विज्ञानिक अध्ययन के साथ मिलाकर अध्यापन किया, जिससे छात्रों को नवीनतम विज्ञान और तकनीकी विकास के साथ भारतीय रूपांतरण को समझने में मदद मिलती थी।

समाज सेवा को प्रोत्साहित करना: आचार्य जे. कृष्णमूर्ति के शिक्षा के उद्देश्य में समाज सेवा को प्रोत्साहित करना भी शामिल था। उन्होंने छात्रों को समाज के लिए नैतिक दायित्व और सेवा भावना के साथ शिक्षित किया, जिससे छात्र समाज के लिए सक्रिय योगदान देने के लिए प्रेरित होते थे।

आचार्य जे. कृष्णमूर्ति का शिक्षा के उद्देश्य को अधिक प्राचीन भारतीय मूल्यों, संस्कृति, और नैतिकता के साथ समृद्ध करने वाला एक समर्थ शिक्षाविद था। उनके शिक्षा में विद्यार्थियों को समृद्धि और समृद्ध समाज के निर्माण के लिए नैतिक मूल्यों के साथ विज्ञानिक ज्ञान का संगम सिखाने का प्रयास था।

आचार्य जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षणविधि

आचार्य जे. कृष्णमूर्ति भारतीय शिक्षा विद्यालय के प्रमुख थे और उन्होंने विभिन्न शिक्षण विधियों और तकनीकों के संबंध में अपने विचारों को प्रस्तुत किया। उन्होंने शिक्षा को समृद्ध, नवाचारी, और समृख्यात तरीके से समझा। यहां कुछ महत्वपूर्ण शिक्षणविधियां हैं, जिन्हें आचार्य जे. कृष्णमूर्ति ने प्रोत्साहित किया:

अभिवृत्ति आधारित शिक्षा: आचार्य जे. कृष्णमूर्ति का मानना था कि शिक्षा को अभिवृत्ति आधारित बनाना चाहिए, जिसमें छात्र के पूर्वज्ञान और आसानी से सीखने की शक्ति को मध्यस्थ किया जा सकता है।

गुरुकुल पद्धति: उनके अनुसार, शिक्षा को गुरुकुल पद्धति से संबोधित करना चाहिए, जिसमें शिक्षा गुरु के निर्देशन में होती है और छात्र को प्राकृतिक वातावरण में सिखाया जाता है।

अनुष्ठानिक शिक्षा: उन्होंने अनुष्ठानिक शिक्षा को प्राथमिकता दी, जिसमें छात्र को सिखाया जाता है कि वह जो भी सीखता है, उसे अपने जीवन में कैसे लागू कर सकता है।

सरलीकरण: आचार्य जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार, शिक्षा को सरल और सुलभ बनाना चाहिए, जिससे छात्र आसानी से उसे समझ सकें और उसे अपने जीवन में लागू कर सकें।

अध्ययन के साथ और भी कौशलों को विकसित करना: उन्होंने शिक्षा को अकेले अध्ययन से अधिक भागीदारी और सहभागिता का माध्यम बनाने की सलाह दी। इससे छात्र के साथ उसके सम्पूर्ण विकास को पूरा करने का अवसर मिलता है।

समृद्ध और समर्पित शिक्षा: उनका मकसद छात्रों को समृद्ध और समर्पित शिक्षा प्रदान करना था, जिससे छात्र न केवल ज्ञान के साथ, बल्कि अच्छे नैतिक मूल्यों और शिष्टाचार के साथ अपने जीवन का सार्थक और सफल निर्माण कर सकें।

ये थे कुछ मुख्य तत्व जिनके माध्यम से आचार्य जे. कृष्णमूर्ति ने शिक्षण को समझाया था। उनके विचार भारतीय शिक्षा पद्धति में एक महत्वपूर्ण योगदान के रूप में माने जाते हैं।

आचार्य जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार विद्यालय की भूमिका

आचार्य जे. कृष्णमूर्ति एक विद्वान और शिक्षाशास्त्री थे जिन्होंने भारतीय शिक्षा व्यवस्था और शिक्षा के साधनों पर गहरा अध्ययन किया। उनके अनुसार, विद्यालय शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो निम्नलिखित प्रमुख कारणों से महत्वपूर्ण है:

ज्ञान का द्वार: विद्यालय विद्यार्थियों के लिए ज्ञान का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। यहां विभिन्न विषयों में शिक्षा दी जाती है जिससे विद्यार्थी ज्ञान का आधार बना सकते हैं और समृद्धि की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं।

व्यक्तित्व विकास: विद्यालय न केवल ज्ञान का द्वार होता है, बल्कि विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का विकास करने के लिए भी महत्वपूर्ण है। यहां विद्यार्थी सामाजिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक विकास के लिए अवसर प्राप्त करते हैं।

सामाजिकीकरण: विद्यालय विद्यार्थियों को अलग-अलग सामाजिक परिवेश में रहने का मौका देता है और उन्हें सामाजिकीकरण के लिए तैयार करता है। यह उन्हें समाज के साथ मिलजुलकर रहने और अपने विचारों को व्यक्त करने की क्षमता प्रदान करता है।

नैतिक शिक्षा: विद्यालय में नैतिक शिक्षा का महत्व है। विद्यार्थी न केवल अकादमिक ज्ञान प्राप्त करते हैं, बल्कि उन्हें सही और गलत के बीच अंतर को समझने की भी सीख मिलती है।

राष्ट्रनिर्माण: शिक्षा राष्ट्रनिर्माण के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है। विद्यालय विद्यार्थियों को राष्ट्रीय भावना और जागरूकता के साथ सम्मिलित करता है और उन्हें एक समरसता भाव से जीने की क्षमता प्रदान करता है।

आचार्य जे. कृष्णमूर्ति के मुताबिक, विद्यालय एक समृद्धि और समाज में प्रगति के लिए महत्वपूर्ण स्थान है और विद्यार्थियों के समूचे विकास के लिए एक महत्वपूर्ण संस्थान है।

आचार्य जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार अध्यापक की भूमिका

आचार्य जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार, अध्यापक एक सिखाने वाला नहीं होता है, बल्कि उसकी मुख्य भूमिका स्तुति, समर्थन, और मार्गदर्शन करने की होती है। उनके विचारों में शिक्षक छात्र को ज्ञान का स्रोत नहीं होता, बल्कि उन्हें अपने अंतर्मन के साथ संवाद करने और स्वयं को समझने में मदद करना चाहिए। यह उनके दृष्टिकोण का मुख्य तत्त्व था कि शिक्षक छात्र को सिखाने के लिए उसके मन में उत्पन्न विचारों और भावनाओं का सामना करने में सक्षम बनाता है। उनके अनुसार, शिक्षक की भूमिका विद्यार्थियों को अनुशासित और रटने वाले रोबोट बनाने की नहीं होती, बल्कि वे उन्हें स्वतंत्र विचार करने, प्रश्न करने, और ज्ञान के साथ समृद्ध जीवन जीने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। उनके अनुसार, सही शिक्षा उसे बनाने वाले शिक्षक के अन्तर्मन की गहराई को समझने में है, उसे छात्र के साथ संवाद करने में है और उसे सही दिशा में प्रेरित करने में है। इस प्रकार, आचार्य जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षक अपने छात्रों को सिखाने के स्थान पर उन्हें समझने और उनके साथ सहयोग करने का काम करते हैं। वे शिक्षा को अनुभवदायी बनाने की भूमिका निभाते हैं जो छात्रों के जीवन को समृद्ध, उत्कृष्ट, और सार्थक बनाती है।

आचार्य जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार विद्यार्थी की भूमिका

आचार्य कृष्णमूर्ति के अनुसार, विद्यार्थी एक गुरुकुल या शिक्षा संस्थान में अध्ययन करने वाला व्यक्ति होता है जो ज्ञान की प्राप्ति के लिए अभ्यासरत होता है। यह व्यक्ति ज्ञान के विकास और उसके समान अनुभवों के माध्यम से अपने अंतर्निहित समृद्धि को पहचानता है। उनके दृष्टिकोण के अनुसार, विद्यार्थी की मुख्य भूमिका निम्नलिखित होती है:

अध्ययन करना: विद्यार्थी का प्रमुख कार्य होता है अपने चयनित विषयों में अध्ययन करना। उन्हें अपने गुरुओं द्वारा प्रदत्त शिक्षा और संस्कृति का सम्मान करना चाहिए।

अध्यापक के प्रति सम्मान: विद्यार्थी को अपने अध्यापकों का सम्मान करना चाहिए और उनके शिक्षाओं को समझने का प्रयास करना चाहिए। गुरुकुल सिस्टम में गुरु को उच्चतम स्थान दिया जाता है, और विद्यार्थी को गुरु के शिक्षानुसार आचरण करना चाहिए।

नैतिक मूल्यों का सम्मान: विद्यार्थी को नैतिक मूल्यों को अपने जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा मानना चाहिए। वे ईमानदार, सत्यनिष्ठ और समर्पित व्यक्ति के रूप में अपने जीवन को बिताने का प्रयास करना चाहिए।

समृद्धि के लिए प्रयास करना: विद्यार्थी को ज्ञान और विद्या की प्राप्ति के लिए समर्पित रहना चाहिए। वे अपने अध्ययन में समृद्धि प्राप्त करके अपने विशेष क्षेत्र में एकाग्रता से काम करने का प्रयास करना चाहिए।

समाज के लिए योगदान: विद्यार्थी को समाज के लिए योगदान करने का संवेदनशील होना चाहिए। वे अपने ज्ञान और कौशल का उपयोग करके समाज के समृद्धि और सामर्थ्य के लिए प्रयास करने में सक्रिय भूमिका निभाने का प्रयास करना चाहिए।

आचार्य जे. कृष्णमूर्ति ने विद्यार्थियों को यह सिखाया है कि उन्हें सतत प्रयास करते रहना चाहिए और ज्ञान की खोज में लगे रहना चाहिए। एक संतुलित और उदार दृष्टिकोण वाला विद्यार्थी अपने जीवन में समृद्धि और सफलता प्राप्त करने में सक्षम होता है।

आचार्य जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार अनुशासन की भूमिका

आचार्य जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार, अनुशासन व्यक्ति के जीवन में एक महत्वपूर्ण गुण है, जो सफलता के मार्ग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अनुशासन संयम, समर्पण, और समरसता को जीवन में लाने में मदद करता है। यह एक व्यक्ति के व्यक्तिगत विकास और समृद्धि में सहायक होता है। आचार्य जे. कृष्णमूर्ति ने अनुशासन को जीवन का एक मौलिक तत्व बताया था। वे इसे एक साधारण सजगता और अन्तरंग नियंत्रण की तरह नहीं देखते थे, बल्कि इसे एक आध्यात्मिक अनुभव के रूप में समझते थे। उनके अनुसार, अनुशासन स्वयं को प्रशांत और स्थिर रखने का एक मार्ग है जो व्यक्ति को अपने जीवन के लिए सकारात्मक रूप से बदलने में मदद करता है। उन्होंने विद्यार्थियों, शिक्षकों, और समाज के अन्य लोगों को संबोधित करके अनुशासन के महत्व को बताया और यह उनके द्वारा प्रशस्तित विभिन्न भाषणों और लेखों में उद्धृत होता है। वे अपने छात्रों को उत्साहित करते थे कि अनुशासन से वे अपने जीवन को सफलतापूर्वक निर्माण कर सकते हैं। समार्थ अनुशासन में रहकर विद्यार्थियों को आत्मनिर्भर बनाने, उन्हें जीवन में एक उच्चतर मानक प्राप्त करने, और समाज में सकारात्मक परिवर्तन के लिए एक नेतृत्वी भूमिका निभाने की प्रेरणा दी जाती थी। आचार्य जे. कृष्णमूर्ति का यह संदेश हमें यह बताता है कि अनुशासन जीवन के एक महत्वपूर्ण संचालक है जो हमें अपने उद्देश्यों और सपनों की प्राप्ति के लिए सही दिशा में ले जाता है। इसके माध्यम से हम अपने स्वयं के और अपने समाज के उत्थान का प्रयास कर सकते हैं और एक उच्चतर स्तर पर समृद्धि और शांति को प्राप्त कर सकते हैं।

निष्कर्ष

शिक्षा के उनके दर्शन और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में इसके प्रतिबिंबों से यह स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि अभी भी जीवित है और नीति निर्माताओं को दिशा प्रदान कर रही है। कृष्णमूर्ति की तरह, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य महत्वपूर्ण और रचनात्मक सोच, संवेदनशीलता, करुणा, सहानुभूति, साहस और लचीलापन, वैज्ञानिक स्वभाव, सच्चे मूल्यों और अन्य उच्च-स्तरीय कौशल वाले समग्र और एकीकृत व्यक्तियों को विकसित करना है। कृष्णमूर्ति की तरह एक समग्र व्यक्तिगत राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 लाने के लिए, एक एकीकृत पाठ्यक्रम और शिक्षाशास्त्र, एक समग्र दृष्टिकोण वाले शिक्षक, माता-पिता की भागीदारी और निडर स्कूल का माहौल आवश्यक है। राष्ट्रीय नीति 2020 में कृष्णमूर्ति के विचारों का प्रतिबिंब परिवर्तन की शुरुआत का संकेत देता है। ऐसी शिक्षा प्रणाली बहुत प्रगतिशील लगती है और बच्चों को अच्छाई और खुशी और जीवन की पूर्णता में खिलने के लिए बहुत जगह प्रदान करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

हंटर, ए। (1988)। सत्य के बीज: जे कृष्णमूर्ति धार्मिक शिक्षक और शिक्षक (डॉक्टरेट शोध प्रबंध) के रूप में। लीड्स विश्वविद्यालय, यूनाइटेड किंगडम। http://etheses.whiterose.ac.uk/409/1/uk_bl_ethos_234816.pdf से लिया गया

कृष्णमूर्ति (2004)। फ्रीडम का मतलब क्या होता है?... चेन्नई: कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया।

कृष्णमूर्ति आधिकारिक वेबसाइट। अध्याय 43 - आकाश, पृथ्वी, मानव अस्तित्व की गति अविभाज्य है। जीवन का संपूर्ण आंदोलन सीखना है। 30/06/2020 from https://jkrishnamurti.org/content/chapter-43-movement-skies-earth-humanexistenceindivisible/education%20must%20not%20only%20be%20efficient%20in%20a cademic%20disciplines%20but%20must%20also%20explore%20the%20condit ioning%20of%20human%20conduct at 6:00 pm.

कृष्णमूर्ति, जे. (1984)। दूसरी प्रश्न और उत्तर बैठक। सार्वजनिक प्रश्न और उत्तर 2 सानेन, स्विट्जरलैंड -24 जुलाई 1984। 19/05/2019 from https://jkrishnamurti.org/content/2nd-question-answer-meeting-41 at 2:41 pm. बजे लिया गया।

कृष्णमूर्ति, जे. (2007). प्राक्कथन। रिश्ते: खुद के लिए, दूसरों के लिए, दुनिया के लिए। कैलिफोर्निया: अमेरिका के कृष्णमूर्ति फाउंडेशन।

कृष्णमूर्ति, जे. (2007). जीवन आगे। चेन्नई: कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया।

(2012)। शिक्षा पर। चेन्नई: कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया।

(2014)। शिक्षा और जीवन का महत्व। चेन्नई: कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया।

संगीत एवं काव्य की समन्वयता

प्रो० के० शशि कुमार

मार्गदर्शक, गायन विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

आवेश कुमार

शोध छात्र, मंच कला विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

अनादिकाल से संघर्षरत मनुष्य नवीन शक्ति संचय के लिए विश्राम के क्षणों में ऐसे रंजक साधनों की अपेक्षा रखता था जिनके द्वारा वह तन्मय होकर स्वयं को भूलकर आनन्दित हो सके। मानव ने आनन्द प्राप्ति के जितने साधनों का अविष्कार किया उन सभी में संगीत और काव्य कला सर्वश्रेष्ठ है। संगीत और काव्य का सम्बन्ध अविछिन्न है। संगीतज्ञ अपने मनोभावों को स्वर-लय के माध्यम से व्यक्त करता है और साहित्यकार अपने मनोगत भावों तथा जीवन की अनुभूतियों को शब्दार्थ के माध्यम से। संगीत साहित्य के अर्थ को व्यक्त करने में सहायक है और साहित्य संगीत के रूप को व्यक्त करने में सहायक। दोनों कलाएं मानव जीवन की सुखानुभूति के लिए अपरिहार्य है। कहा भी गया है- ''साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात्पशुः पुच्छ विषाणहीनः''।[1]

संगीताचार्य विश्वंभरनाथ भट्ट के मतानुसार- ''काव्य और संगीत परस्पर अन्यों न्याश्रित हैं। काव्य को शब्दों में संगीत अंर संगीत को स्वरो में काव्य कहा जा सकता है। यह ललित कलाओ का पारस्परिक आदान-प्रदान है।[2] ''काव्य-मीमासां'' के अष्टम् अध्याय में काव्य-रचना के बारह स्रोतो में से प्रकीर्णक के अर्न्तगत संगीत भी काव्य-कला में सहायक एक महत्वपूर्ण स्रोत है।[3] संगीत और काव्य इन दोनों का आधार नाद तत्व है। जिसकी महिमा अद्वितीय है। बृहद्देशी में लिखा है-

''नादरूपः स्मृतोब्रह्मा नादरूपों जनार्दनः।
नादरूपा पराशक्तिः नादरूपो महेश्वरः।।[4]

विश्व के आनन्दमय तत्व अर्थात् नाद का साकार रूप संगीत व साहित्य है। पंच महाभूतों में से प्रथम और सबसे सूक्ष्म आकाश का गुण होने के कारण 'शब्द' सर्वत्र व्याप्त है। शब्द ही वाक् तत्व है और भारतीय विचारधारा में इसके दो रूप माने गए हैं- नादात्मिका वाक् वर्णात्मिक वाक् इन्हीं दोनों से क्रमशः संगीत और काव्य की उत्पत्ति होती है। इसलिए संगीत में स्वर और काव्य में पद की प्रधानता होती है।

भारतीय चिन्तकों ने काव्य और संगीत को परस्पर पूरक, सहोदरा और अन्यो न्याश्रित माना है। प्रो0 विश्वनाथ प्रसाद के अनुसार-''संगीत अर्थबोध के लिए काव्य का सहारा लता है और काव्य प्रभावबुद्धि के लिए संगीत का।'' डॉ0 रामानन्द तिवारी के शब्दों में- ''संस्कृति और कला साम्य की भांति कलाओं के अन्तर्गत संगीत और काव्य में अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध का कारण शब्द के माध्यम की समानता है।[6] इस समानता की दृष्टि से ये दोनों कलाएं सहोदरा है। सुमित्रा नन्द पंत जी ने कविता को प्राणो का संगीत माना है तथा काव्य और संगीत की मैत्री पर बल देते हुए लिखा है- ''भाव गीति की स्वर लय मैत्री-सी।

षड्ऋतुएं नित संगति में आती।।[7]

पं0 ओंकारनाथ ठाकुर जी ने संगीत व काव्य के सम्बन्ध को अविभेद्य माना है। जिस प्रकार अकारादि व्यजंनो के साथ 'अ' आदि स्वर का सम्बन्ध, शरीर के साथ आत्मा का सम्बन्ध है उसी प्रकार काव्य और संगीत का सम्बन्ध है। ये माँ सरस्वती के दो स्तनों की भांति हैं, जिनका दुग्धपान कर कवि, कवि और संगीतकार, संगीतकार बना है। डॉ0 शरचच्चन्द्र परांजपे का विचार है कि संगीत नाद प्रधान साहित्य है और साहित्य शब्द प्रधान संगीत है।''[8]

काव्य और संगीत का सम्बन्ध शाश्वत है- आध्यात्मवाद की दृष्टि से भी और विकासवाद की दृष्टि से भी। उपनिषदों में कवि और गायक को एक ही अर्थ में लिया गया है। भारतीय परम्परानुसार नटराज शंकर स्वरों के आदिस्रोत हैं। डमरू के शब्दों से ही साहित्य के 'अक्षरों' अंर संगीत के 'स्वरो' की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार काव्य और संगीत का उन्मेष एक साथ हुआ। विकासवाद की दृष्टि से प्रायः सभी विद्याओं, कलाओं, सिद्धान्तों, शास्तों आदि का विकास शनैः-शनैः हुआ है। प्रारम्भिक काल में किसी शब्दो च्चारण के लिए नाद या स्वर की एवं किसी स्वरो च्चारण के लिए शब्द की आवश्यकता पड़ी ही होगी। इसलिए हम कह सकते हैं कि स्वरविहीन शब्दो च्चारण और शब्दविहीन स्वरो च्चारण असम्भव है। इनका सम्बन्ध शाश्वत है। यही स्वर और शब्द विकसित होकर क्रमशः संगीतशास्त्र और साहित्य शास्त्र के रूप में प्रचलित हुए।

संगीत और काव्य दोनों का आधार ध्वनि अथवा शब्द है। काव्य-पाठ एक ही ध्वनि में, एक-सी लय में लिया जाए तो वह काव्य-पाठ हास्यपद हो जाएगा इसके विपरीत उन सार्थक शब्दों का विभिन्न स्वर-लय योजना के साथ प्रयोग किया जाए तो विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति सहजता से ही हो जाएगी। उदाहरणार्थ- ''करो ना मोसे रार साँवरिया'' इस वाक्य में एक सम्बोधन, एक क्रिया और उसका निषेध है। गद्य में भी इसी बात को कह सकते हैं। सामान्य रूप सें कहने पर अर्थबोध तो होगा लेकिन भाव-बोध नहीं। उसके अर्थ में नवीनता, उत्कटता लाने में संगीत ही समर्थ है। मंगलदास अग्रवाल जी ने कहा

है कि ''कवि की कल्पना और भावनाओं से उत्पन्न कविता जब स्वर और ताल में आबद्ध हो संगीत का स्वरूप प्राप्त कर लेती है तो उसका आनन्द द्विगुणित हो जाता है।''[9] काव्य की विशिष्टता उसके अन्तर में निहित स्वर है और स्वर का अलंकार शब्द है।

संगीत और काव्य दोनों ही लय पर आश्रित हैं। लय, शब्द के साथ संयुक्त होकर छन्द बन जाती है छन्दों में आबद्ध काव्य ही संगीत की आधारभूमि है। अधिकांशत: काव्यसाहित्य छन्दोबद्ध हैं। संगीतशास्त्र से भी छन्द का अटूट सम्बन्ध है। संगीत के लय की गणना का आधार मात्रा है। और मात्राओं द्वारा ही छन्द की गति का भी बोध होता है। यद्यपि मुक्त छन्द की कविताओं में छन्द के नियमों की शिथिलता होने पर भी उनमें एक प्रवाह, एकगति होती है और यह गति संगीत की लय ही होती है। क्षेमेन्द्र ने कवि के लिए छन्द योजना को, रस अंर वर्णनीय विषय के अनुकूल रखना उचित ठहराया है-

काव्य रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च।
कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोगं विभागवित।।''[10]

जैसे श्रृंगार या करूण रस में कोमल-कान्त पदावली तथा मालिनी जैसे छन्द तथा वीररस मे कर्णकटु-वर्ण एवं शार्दूलविक्रीड़ित जैसे छन्द उचित प्रतीत होते हैं।

काव्य और संगीत दोनों की आत्मा रस ही रंजन का कारण है। काव्य के अन्तर्गत नौ रसों का विधान है जो कि संगीत में केवल चार रसों (श्रृंगार, वीर, करूण और शान्त) में ही समाविष्ट कर लिया गया है। काव्य में शब्दावली के माध्यम से रस की उत्पत्ति की जाती है जिससे स्वरों की सहायता से चरमोत्कर्ष की दिशा में लाया जाता है। काव्य के पदों को स्वरबद्ध करने से पूर्व उससे उत्पन्न होने वाले रस पर विचार करना आवश्यक होता है। उसी प्रकार संगीत में गाए जाने वाले भिन्न-भिन्न रागों से विभिन्न प्रकार के उत्पन्न होने वाले रसों पर भी विचार करना आवश्यक है। जब राग से उत्पन्न होने वाले रस के अनुरूप गेय पद का प्रयोग होता है तो राग और अधिक रंजकता को प्राप्त कर लेता है। अत: रस विशेष के लिए शब्दों का चयन काव्य-ज्ञान के बिना असम्भव है।

संगीत के मुख्य तीन अंग हैं- गायन, वादन और नृत्य। इसमें गायन कला प्रमुख मानी जाती है। गायन के लिए हमें गेय पदों की आवश्यकता पड़ती है। यही गेय-पद साहित्य हैं। जिस प्रकार संगीत, काव्य के लिए अपरिहार्य है, उसी प्रकार ''संगीत में भी आधार रूप में पद का प्रयोग ग्राह्य माना गया है।

भरत मुनि ने कहा है-

''गान्धर्व यन्मया प्रोक्तं स्वरतालपदात्मकम्।।
पद तस्य भवेद् वस्तु स्वरतालानुभावक्रम्।।''[11]

यद्यपि मुख्य रूप से संगीत के दो ही उपकरण हैं- स्वर और लय। किन्तु पद के कारण अभिव्यक्ति को निश्चित दिशा मिलती है। पद-रहित या निरर्थक पद-युक्त भी गायन होते हैं और वाद्य-संगीत भी इसी श्रेणी में आता है। भारतीय परम्परा में जितना सार्थक पद-युक्त गीत को महत्व प्राप्त है उतना वाद्य-संगीत को नहीं। इसीलिए वाद्य-प्रयोग को शुष्क-वाद्य भी कहा गया है।

संगीत और काव्य में शैलीतत्त्व का भी महत्वपूर्ण स्थान है। शैली संगीत और काव्य को मर्मस्पर्शी बोधगम्य तथा प्रेषणीय बनाती है। शब्द, स्वर-विन्यास, लय, मात्रा, यति, गति आदि शैली के आधार इन दोनों ही कलाओं में सामान्य रूप से क्रियाशील रहते हैं।[13] शैली द्वारा ही काव्य और संगीत की उत्कृष्टता एवं कवि और संगीतकार की प्रतिभा का प्रकाशन होता है। संगीत मं अनेक गीत शैलियाँ ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा इत्यादि प्रचलित हैं जिनका आध ार साहित्य में रचित विभिन्न गेय पद हैं यथा- ध्रुपद में वीर और रौद्र रस की अधिकता होती है। साहित्य हमें इसके लिए रसानुकूल पद प्रदान करता है तत्पश्चात् रसानुरूप स्वरारुप स्वरावली संगीत प्रदान करता है। जब स्वर से उत्पन्न भाव अथवा रस काव्य के उत्पन्न भाव अथवा रस से मिल जाते है तो संगीतज्ञ और श्रोता दोनों का हृदय रसाप्लवित हो जाता है। इसी प्रकार ख्याल, टप्पा, ठुमरी आदि गीत शैलियों का निर्वाह तभी हो सकता है। जब उनके अनुकूल पद गाए जाएं। अत: उत्कृष्ट संगीत के लिए शिष्ट और सरस एवं ललित काव्य की आवश्यकता होती है। भावतत्व भी काव्य व संगीत दोनों ही कलाओं में माधुर्य, हृदयस्पर्शिता तथा स्वाभाविकता का गुण उत्पन्न करता है। दोनों कलाएं सुख-दुख, उल्लास-विषाद आदि भावों की अभिव्यंजक एवं आनन्दानुभूति कराने में सक्षम हैं। मोक्ष मार्ग की प्रशस्ति में भी इन्हीं दोनों कलाओं को माध्यम बनाया जाता है। इसीलिनए कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि भक्तों तथा सन्त जनों की लक्ष्य प्राप्ति का साधन काव्य अंर संगीत ही रहा है।

वस्तुत: काव्य स्वत: संगीत है और संगीत आकार-प्रधान काव्य। पश्चात्य देशों में सम्भवत: काव्य को कला के अन्तर्गत सबसे पहलें अरस्तू नें सम्मिलित किया अरस्तू ने काव्य को कला के अन्तर्गत मानते हुए उसे संगीत का ही एक प्रकार माना। एड्गर एलेन पो0 के अनुसार- ''संगीत का जब किसी आनन्ददायक कल्पना से संयोग होता है तो वह कविता बन जाता है, बिना कल्पना का संगीत केवल संगीत रह जाता है, संगीत रहित कल्पना अपनी स्पष्टता या निश्चितता के कारण गद्य का रूप धारण कर लेती है।''[14]

काव्य का चरम लक्ष्य रमणीयता होते हुए भी इसके आकर्षण के लिए संगीत से रागतत्व लेने की अपेक्षा होती है। राग ही, आकर्षण की मुख्य शक्ति है। काव्यकी कल्पना और संगीत के राग दोनों अभिन्न हैं। संगीत में भावानुरूप गीत तथा राग के स्वरों को ग्रहण किया जाता है जैसे ''संगीत में प्रेमभावना की अभिव्यक्ति में बागेश्री, भीमपलासी तो भक्तिभाव की अभिव्यंजना में बिलावल, यमन आदि रागों की सहायता ली जाती है। पंत जी ने कविता और संगीत पर विचार करते हुए राग के व्यापक महत्व पर प्रकाश डाला है- ''भाषा का और मुख्यत: कविता की भाषा का प्राण राग है। राग ही के पंखों से अबाध उन्मुक्त उड़ान में लयमान होकर कविता सान्त को अनन्त से मिलाती है।[15] राग का अर्थ आकर्षण है, यह वह शक्ति है जिसके स्पर्श से आकर्षित हो हम शब्दों की आत्मा तक पहुँचते हैं।

बिम्ब-विधान की दृष्टि से भी काव्य और संगीत में समानता है। जैसे कवि अपनी रचनाओं द्वारा समाज के बिम्ब उपस्थित करता है वैसे ही संगीतकार भी राग निबद्ध बन्दिशों द्वारा समाज की मनोवृत्ति आदि का बिम्ब प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार कल्पना मानसिक सृष्टि है। कल्पनातत्व के ही साहचर्य से काव्य और संगीत में नवीनता, विलक्षणता, सूक्ष्मता, चमत्कारिकता आदि का समावेश होता है। कवि और कल्पना करता है। बुद्धितत्व भी दोनों कलाओं के विकास में सहयोगी है। यह तत्व काव्य में उचित शब्द तथा छन्दादि का प्रयोग करने का मार्ग प्रशस्त करता है और संगीत में काल-स्वरादि के उचित प्रयोग का बोध कराता है।

उपर्युक्त विवेचनानुसार संगीत और काव्य में पर्याप्त समानता है तथापि इन दोनों में कुछ अंशों में असमानता भी परिलक्षित होती है। विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के अनुसार- ''काव्य और संगीत में उतना ही अन्तर है, जितना सगुण और निर्गुण में। काव्य सगुण है और संगीत निर्गुण।[16] काव्य केवल चेतन व सहृदय मानव पर प्रभाव डाल सकता है। यह शब्द, भाषा, क्षेत्र तथा तथा देशादि की परिधि में बंधा है। एक अंग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ व्यक्ति पर इस भाषा में रचित उच्चकोटि की कविता भी कविता भी प्रभावी नहीं होगी। इसके विपरीत संगीत सृष्टि के प्रत्येक कण में व्याप्त है। इसकी शक्ति से पत्थर पिघलने की उक्ति न भी मानी जाए तो भी वह यह कहना अनुचित न होगा कि इसका प्रभाव समस्त जीव-जगत पर पड़ता है। वनस्पति के विकार, रोग निवृत्ति में दुग्धोत्पादन में मनः चिकित्सा में संगीत की उपयोगिता सिद्ध है किन्तु काव्य की नहीं। दीपक राग द्वारा दीप प्रज्जवलित करने तथा मेघ मल्हार राग द्वारा जलवृष्टि करने की जो क्षमता संगीत को प्राप्त है, वह काव्य को नहीं। मानव की सम्पूर्ण क्रियाओं में संगीत किसी न किसी रूप में अवश्य ही उपस्थित रहना है।

काव्य में अभिव्यक्ति का मध्यम 'भाषा' जो श्रव्य और दृश्य दोनों हैं किन्तु संगीत का आधार 'स्वर' है जो श्रव्य है। स्वरों का अर्थ निश्चित नहीं है, भाषा का अर्थ निश्चित है काव्य सार्थक शब्द-समूह ग्रहण करता है। जबकि संगीत में सार्थक शब्दों के अतिरिक्त शब्दों व वर्णों का भी प्रयोग होता है। जैसे- ''सा रे ग ग'' आदि वर्ण, गायन शैली तराने में प्रयुक्त ''तू ना कत्ता धिर-धिर'' इत्यादि बोल अर्थविहीन है जो सांगीतिक बोल के रूप में प्रयुक्त होते हैं। काव्य का गुण रसानुभूति कराना है किन्तु ''संगीत'' में राग-रागनियों द्वारा रसोत्पत्ति के अतिरिक्त उनसे पंचतत्वों की भी उत्पत्ति का उल्लेख मिलता है। यथा- 1. दीपक राग से अग्नि, 2. मेघ राग से जल 3. हिंडोंल राग से वायु, 4. भैरव राग से विद्युत शक्ति, 5. श्री राग से पृथ्वी, जल, वायु तथा मालकंस से द्रव पदार्थ।[17]

संगीत के आधार जहाँ नाद स्वर, ग्राम, सप्तक, मूर्च्छना, लय, ताल आदि संगीतिक तत्व होते है, वहीं काव्य के माध्यम भावादि, काव्य तत्व, भाषा अलंकार, शब्दशक्ति, छन्द आदि होते हैं। संगीत में विशेष राग की अभिव्यक्ति, सप्तस्वर, श्रुति, मूर्च्छना, विशिष्ट भाव स्वर (कोमल, तीव्र) तथा विशिष्ट आरोहावरोहण से होती है किन्तु काव्य में विशिष्ट भाव की अभिव्यक्ति विशिष्ट अलंकाल, शब्द शक्ति तथा विशिष्ट छन्दों के सामजन्य से होती है।

यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि संगीत के बिना काव्य प्रभावशाली तो रहता है। किन्तु उसमें जन-मानस को आन्दोलित कर उत्साहित करने की पूर्ण शक्ति का अभाव रहता है। इसी प्रकार शब्दरहित स्वर संगीत कल्पना-लोक के स्वप्निल आनन्द की सृष्टि तो करता है, परन्तु उसमें हृदय के भावों को साकार करने सर्वसाधारण के लिए सुलभ बनाने की न्यूनता परिलक्षित होती है। काव्य और संगीत का समन्वित और सन्तुलित रूप ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है इसीलिए गायक की अपेक्षा होती है एक सिद्ध कवीश्वर जिसकी रचना आश्रय लेकर वह अपने स्वरों का संकोच, विस्तार, आरोहण-अवरोहण कर सके, अपनी गमक मीड़ और मुर्कियों को प्रभाविता प्रदान कर सके तथा अपने स्वाभाविक सरल संगीत को कुछ घनीभूत कर सके और कवि की अपेक्षा होती है एक ऐसे सफल गायक की, जो उसके एक-एक शब्द की आत्मा को झंकृत करके सहृदय-संवेद्य बना सके।''[18]

संगीतमय कविता और काव्यात्मक संगीत ही पूर्णरूप में कविता या संगीत कहे जाने के अधिकारी हैं। ''काव्य के अन्तः करण में जब संगीत स्पंदन करने लगता है तब काव्य में सजीवता आ जाती है।[19] संगीत एक अमूर्त कला है और भावपूर्ण शब्द-योजना इसे मूर्तता प्रदान कर अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ उसे साकार कर देती है। संगीतज्ञ साहित्य में और साहित्यकार संगीत में पारंगत हो, यह सम्भव नहीं है। तथापि किसी एक के अध्ययन हेतु दूसरे के मर्मों को समझना तो आवश्यक है। संगीत और काव्य में यह पारस्परिक आदान-प्रदान अनिवार्य है। इसलिए ये दोनों ही ललित कलाएं एक-दूसरे के पूरक हैं। अतः जहां एक की प्रतिष्ठा होती है, दूसरा स्वयं ही प्रतिष्ठित हो जाता है।

अन्त टिप्पणी

1 भारतीय सांगीतिक जगत को तुलसीदास जी का योगदान- डॉ0 अरविन्द कुमार पृ01
2 भारतीय संगीत और कवि घनानन्द- डॉ0 अर्चना पाण्डेय, पृ0 41
3 वही,
4 संगीतोप्रयोगी संस्कृत - विमला मुसलागाँवकर, पृ0 150
5 भारतीय सांगीत जगत को तुलसीदास जी का योगदान- डॉ0 अरविन्द कुमार, पृ0 6-8
6 वही,
7 वही,
8 वही,
9 वही,
10 भारतीय सांगीत कवि घनानन्द - डॉ0 अरविन्द कुमार, पृ0 47
11 भारतीय सांगीत में ताल और रूप-विधान - डॉ0 सुभद्रा चौधरी, पृ0 47
12 सांगीत-संचयन- डॉ0 सुभद्रा चंधरी, पृ0 60
13 भारतीय सांगीत जगत को तुलसीदास जी का योगदान- डॉ0 अरविन्द कुमार, पृ0 9
14 वही,
15 वही,
16 वही, पृ0 12, भारतीय संगीत और घनानन्द- डॉ0 अर्चना पाण्डेय, पृ0 42
17 भारतीय सांगीत जगत को तुलसीदास जी का योगदान - डॉ0 अरविन्द कुमार, पृ0 12
18 भारतीय संगीत और कवि घनानन्द- डॉ0 अर्चना पाण्डेय, पृ0 49-50
19 वही,

पुष्टिमार्गीय मंदिरों की का सेवा स्वरुप

डॉ० पंकज शर्मा

सहायक आचार्य, संगीत विभाग, धीरेन्द्र महिला महाविद्यालय, वाराणसी

शोध सार

हवेली संगीत के इतिहास एवं स्वरुप के विषय में अध्ययन करने से पूर्व यह संज्ञान में होना महत्वपूर्ण है कि हवेली संगीत, श्री वल्लभाचार्य जी द्वारा प्रतिपादित वल्लभ सम्प्रदाय, जिसे पुष्टिमार्गीय परम्परा के नाम से भी जाना जाता है। पुष्टिमार्गीय मंदिरों की कीर्तन पद्धति, जो कि सम्प्रदाइयों के आराध्य ठाकुर जी (भगवान कृष्ण का बाल-स्वरुप) की सेवा निमित्त ही है। इसी कीर्तन पद्धति को पुष्टिमार्गीय मंदिरों का संगीत, मंदिरों का संगीत, वैष्णव मंदिरों का संगीत तथा हवेली संगीत के नाम से जाना जाता है। प्रस्तुत अध्याय में हवेली संगीत इतिहास परक तत्थ्यों, हवेली संगीत का उद्भव का विकास, पुष्टिमार्गीय मंदिरों की आयामों का अध्ययन किया गया है। साथ ही शोधार्थी द्वारा हवेली संगीत की गायन शैली एवं उसके स्वरुप आदि विषयों पर प्रस्तुत अध्याय में अध्ययन किया गया है। शोधार्थी द्वारा इस बात का विशेष ध्यान दिया गया है कि हवेली संगीत, मंदिरों का संगीत, पुष्टिमार्गीय मंदिरों का संगीत आदि भिन्न नामोल्लेख से हवेली संगीत से विषयान्तर्गत होने का भ्रम न हो परन्तु कही-कही हवेली संगीत से अतिरिक्त नामोल्लेख होने पर भी वह हवेली संगीत हेतु ही उल्लेख किया गया है।

सूचक शब्दः- हवेली संगीत, कीर्तन संगीत, पुष्टिमार्गीय संगीत, मंदिरों का संगीत, राग सेवा, शास्त्रीय संगीत

शोध उद्देश्यः-

प्रस्तुत शोध पत्र के लेखन का मुख्य उद्देश्य पुष्टिमार्गीय मंदिरो के विविध आयामों का अध्ययन कर हवेली संगीत के इतिहास परक तत्थ्यों को रेखांकित करना है।

शोध प्रविधिः-

प्रस्तुत शोध पत्र के लेखन के लिए दत्त संकलन हेतु विविध पुस्तकों एवं पत्रिकाओं का अध्ययन किया गया है।

शोध विषयः-

पुष्टिमार्गीय मंदिरों की कीर्तन पद्धति (राग सेवा) जिसमें अपने आराध्य ठाकुर जी को अष्टायाम सेवा, दैनिक एवं वर्षोत्सव रुप में की जाती है। परम्परा की यही कीर्तन पद्धति एवं इसका स्वरुप तथा प्रयोग विधि ही 'हवेली संगीत' है। हवेली संगीत का विस्तृत अध्ययन करने से पूर्व हवेलीशब्द के विषय में संक्षिप्त में चर्चा उचित है। ''हवेली शब्द की उत्पत्ति फारसी भाषा से मानी जाती है, जिसका अर्थ है- ''भव्य एवं सुख सुविधा से युक्त निवास।'' साधारण अर्थों में समझें तो बड़े-बड़े राज भवन तथा किसी सामान्य निवास स्थान (गृह) के बीच का महल हवेली कहलाता है।''[1] इसकी भव्यता एवं बनावट किसी राज महल के समान परन्तु उससे छोटी प्रतीत होती है।

हवेली संगीत का परिचय

बल्लभ सम्प्रदाय जो पुष्टि मार्गीय सम्प्रदाय के नाम से भी जाना जाता है। पुष्टि मर्गीय मंदिरों में ठाकुर जी की सेवा (भक्ति तथा पूजा) पद्धति के अन्तर्गत विभिन्न दर्शन, झांकियों (जागरण से शयन तक सेवा) का विधान सुनिश्चित है। इसी सेवा का प्रमुख माध्यम कीर्तन है।'' मंदिरों में सेवा विधि के समय भाव युक्त पदों को समयानुसार रागों में गाया जाता है। मंदिरों की यही कीर्तन पद्धत्ति जिसे मंदिर परम्परा में राग सेवा तथा पुष्टि मार्गीय मंदिरों को संगीत कहा जाता है।''[2]

पुष्टिमार्गी मंदिरों को हवेली संगीत कहने के सम्बन्ध में सम्प्रदाय के विद्वानों द्वारा जो तर्क संगत विचार एवं किवदितियों से सर्व सम्मत कारण दृष्टि गोचर होते है कि परम्परा में गुजरात एवं कुछ स्थानों पर मंदिरों को हवेली कहने की प्रथा है। इन मन्दिरों की बनावट भी एक हवेली की भाँति रहती है। जो कि अन्य मन्दिरों से भिन्न दिखाई पड़ती है।[3]

दूसरा कारण की आकाशवाणी के चीफ प्रोड्यूसर स्व0 श्री एन0 एन0 शुक्ल जी ने सर्वप्रथम पुष्टिमार्गी संगीत को हवेली संगीत के नाम से प्रसारित किया, इसे हवेली संगीत नाम देने के सन्दर्भ में इन्हें मन्दिरों को हवेली कहे जाने तथा सम्प्रदाय के विशिष्टजनों से विचार विमर्श द्वारा प्रेरणा मिली।''[4]

वैष्णव मंदिर (पुष्टिमार्गीय) संगीत को समझने से पूर्व पुष्टि मार्ग को जानना आवश्यक है। साथ ही श्री बल्लभाचार्य जी द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय को समझने के लिए 'भक्ति भाव' पर विचार करना आवश्यक है।

भक्ति के मनोवैज्ञानिक भाव के आधार पर विभिन्न आचार्यो ने भक्ति के विविध भेदों के बताया है। ''श्रीमद्भगवत के अनुसार साधक के स्वभावनुसार चार प्रकार की भक्ति का वर्णन मिलता है।''[5]

(1) तामस (2) राजस (3) सात्विकी (4) निर्गुणा

भक्ति उपासना का एक ऐसा मार्ग है जो कि उपासक या साधक को सीधे अपने लक्ष्य तक प्रसस्त करता हैं साथ ही यह मार्ग जो कि पूर्ण अनुराग एवं उस ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण हेतु मार्ग है, यह उपासक की साधना को फलित भी करता है। भगवान में निष्काय और अनन्य प्रेम होना ही निर्गुण भक्ति कहलाता है। भगवत् के अनुसार ''विशुद्ध भक्ति के तीन रूप''[1] प्राप्त है।

(1) विशुद्ध (2) नवधा (3) प्रेमा

उपर्युक्त वर्णन के अनुसार नवधा भक्ति को भक्ति हेतु सरल मार्ग माना गया हैं। इन भक्ति के नौ प्रकारों अथवा मार्ग का उल्लेख प्राप्त श्लोक के आधार पर किया गया है। जिसके आधार पर पुष्टिमार्गीय परम्परा में नवधा भक्ति में से कीर्तन गायन को ही ठाकुर जी की सेवा हेतु स्वीकार किया गया है।

''श्रवणं कीर्तनम् विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं वन्दनम् दात्यम् सख्यमात्मनिवेदनम्।।''[2]

''उपर्युक्त श्लोक के आधार पर भक्ति हेतु श्रवण कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन आदि नौ भक्ति मार्ग में श्रवण तथा कीर्तन के महत्त्व को शेष प्रकारों से महत्त्वपूर्ण बताया गया है। तदनुरुप ''पुष्टि मार्ग परम्परा में भी 'कीर्तन' को ही भक्ति हेतु विशेष महत्त्व दिया गया है।''[3]

प्राचीन काल में भिन्न-भिन्न आचार्यो द्वारा भक्ति का दार्शनिक रूप प्रदत्त किया गया तथा इसी विचारधारा से कृष्ण भक्ति का साम्प्रदायिक स्वरूप प्रकट हुआ। लगभग ''इसी काल में 10 वीं शताब्दी के आस-पास दक्षिण के एकनाथ मुनि ने वैष्णवों का संगठन कर'' भक्ति पदों का संग्रह किया और मंदिरों में कीर्तन एवं वैष्णव सिद्धान्तों की दर्शन परक व्याख्या कर के भक्ति परम्परा पर विशेष बल दिया।

पद्मपुराण में भगवान द्वारा उपदेशित वैष्णव मत के चार सम्प्रदाय के विकास में वर्णन मिलता है कि-

''श्री ब्रह्म रुद्र सनका वैष्णवाः क्षितिपावनाः
चत्वा रस्ते कलौ भाव्याः सम्प्रदाय प्रवर्तकाः''[4]

विभिन्न आचार्यो के प्रयास से कृष्ण भक्ति का विभिन्न सम्प्रदायों में पल्लवित एवं फलित हुई जिनमें चार सम्प्रदाय जिनका उत्तर भारत में विशेषतः प्रभावी यहाँ के भक्तिधारा पर पड़ा।

''प्राप्त संदर्भ के अनुसार ये चार सम्प्रदाय निम्नानुसार है।''[1]

(1) श्री सम्प्रदाय	श्री रामानुजाचार्य
(2) सनक (निम्बार्क) सम्प्रदाय	श्री निम्बार्काचार्य
(3) ब्रह्म (माध्व) सम्प्रदाय	श्री माध्वाचार्य
(4) रूद्र (विष्णुस्वामी) सम्प्रदाय	श्री विष्णु स्वामी

पुष्टि मार्ग की स्थापना

जगद्गुरू श्री बल्लभाचार्य जी द्वारा संवत् 1550 वि0सं0, श्रावण शुक्ल एकादशी के दिन पुष्टि मार्ग परम्परा को अपने प्रमुख सेवक दामोदर दास हरमानी को मंत्र दीक्षा देकर स्थापित किया। 'पुष्टि शब्द का शाब्दिक अर्थ 'पोषण' होता है। सम्प्रदाय में पुष्टि शब्द का विशिष्ट अर्थ श्रीमद् भगवत गीता के 'पोषणम् तदनुग्रह'[2] के सूत्र को आधार मानकर रखा गया है। इस सूत्र का अर्थ है- 'भगवान का अनुग्रह ही पोषण या पुष्टि है।' तथा जीव का योग क्षोम (जीव के अभाव की पूर्ति तथा प्राप्त वस्तु की रक्षा करना)[3] इस सूत्र के अभाव में असंभव है।

पुष्टि मार्ग में सेव्य स्वरूप

स्वरूप का अर्थ है भगवान श्री कृष्ण का विग्रह रूप (छोटे बालक के स्वरूप में) जिसकी उपासना विशुद्ध प्रेम और अराधना उन्हें वात्सल्य स्वरूप मान कर की जाती है। अष्टछाप कवि परमानन्द दास ने तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों को श्री कृष्ण के गुणावतार के रुप में स्वीकार किया है।''[4] सम्प्रदाय में श्री कृष्ण के सेव्य स्वृरुप के विषय में वर्णन प्रापत होता है कि-

''तस्माच्छीकृष्ण मार्गस्थो विमुक्तः सर्व लोकतः।
आत्मानन्द समुद्रस्थम् कृष्णमेव विचिन्तयेत्।।''[5]

सम्प्रदाय में देव मूर्ति को मूर्ति सम्बोधन के स्थान पर 'स्वरूप' कहा जाता है। सम्प्रदाय में श्रीनाथ जी को सर्वोपरि मान्य स्वरूप माना है। इनका प्राकट्य गोवर्धन पर्वत पर हुआ था। बाद में मुगलो द्वारा आक्रमण तथा मंदिर तोड़े जाने के भय से स्वरूप को ब्रज से राजस्थान लाया गया वही श्री नाथ द्वारा राजस्थान के नाम से प्रसिद्ध है।

तैलंग देश, काँकरवाड ग्राम, यजुर्वेदी, तैत्तिरीय शाखा, भारद्वाज गोत्र

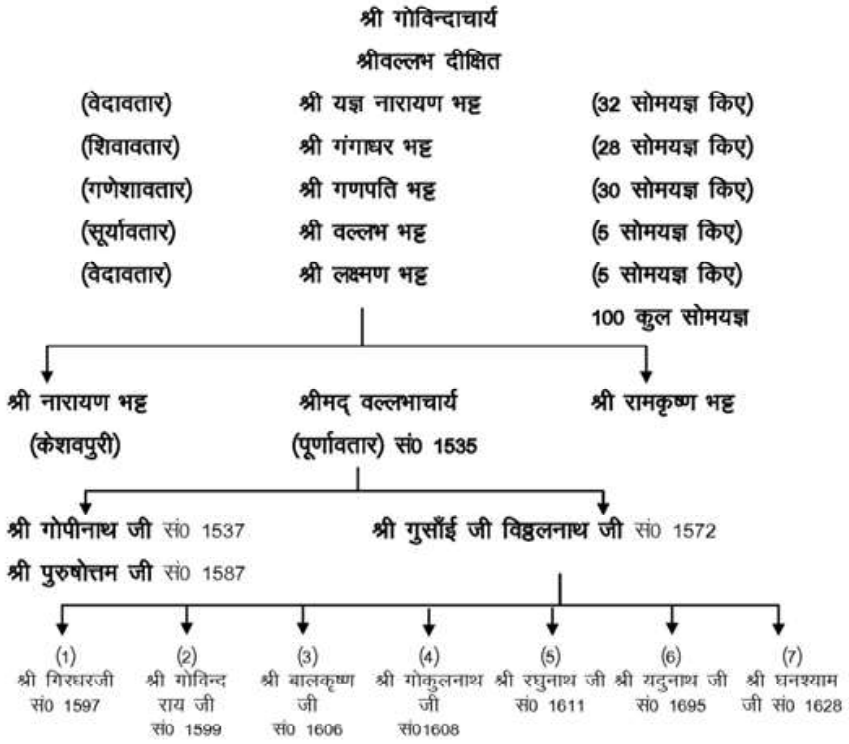

1. प्रथम गादी–श्री नाथ जी (नाथ द्वारा) श्री नवनीतप्रिया जी (नाथ द्वारा), श्री मथुरेशजी (कोटा)
2. द्वितीय गादी– श्री विट्ठलनाथ जी (नाथ द्वारा)
3. तृतीय गादी– श्री द्वारकानाथ जी (काँकरोली)
4. चतुर्थ गादी– श्री गोकुलनाथ जी (गोकुल)
5. पंचम गादी– श्री गोकुल चन्द्रमा जी (कामवन)
6. षष्ठ गादी– श्री बालकृष्ण जी (सूरत)
7. सप्तम गादी – श्री मदनमोहन जी (कामवन)

''श्रीमद्वल्लभाचार्य जी की कुल परम्परा- वंशवृक्ष''

पुष्टि मार्ग में सेवा

''कृष्ण सेवा सदा कार्या''

जगद्गुरू बल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित इस सम्प्रदास में अपने इष्ट श्री कृष्ण के बालस्वरूप की मनुहार भाव से सेवा (पूजा) की जाती है। सम्प्रदाय में सेवा के दो क्रम बताए गए है।

(1) नित्य सेवा

(2) वर्षोत्सव सेवा

नित्य सेवा ठाकुर जी के नित्य कर्म तथा दिनचर्या से सम्बन्धित है। जिसमें सेव्य स्वरूप के जागरण, स्नान, कलेवा, राज भोग, शयनादि आठ समय में विभाजित क्रम के अनुसार सेवा की जाती है। अत: इसे अष्टायाम सेवा भी कहते है।

''अष्टायाम सेवा में प्राप्त काल से साँय काल तक वात्सल्य भाव से की जाने वाली सेवा का समयानुसार प्रारूप इस प्रकार है।[1]

''नित्य सेवा/अष्टायाम सेवा-प्रणाली''

क्र0सं0	सेवा प्रारूप	समय	कार्य
1	मंगला	प्रातः 6 बजे लगभग	जागरण
2	श्रृंगार	क्रमशः	स्नान एवं श्रृंगार आदि
3	ग्वाल	श्रृंगार के लगभग एक षष्ट पश्चात्	ग्वाल बालों के साथ गौ चराना
4	राजभोग	क्रमशः	गौ चराने के समय भूख लगना
5	उत्थापन	राजभोग के पश्चात् विश्रांति के बाद	पुनः गौ चराने में लग जाना
6	भोग	क्रमशः	पुनः भूख लगने पर
7	संध्या आरती	संध्या काल	घर आने पर यशोदा द्वारा आरती
8	शयन	सांय लगभग 7 बजे	शयन

विशेष

नित्य सेवा पद्धति में जागरण तथा शयन के समय में ऋतु (मौसम) के अनुसार परिवर्तन होता है। ''उपर्युक्त तालिका में ग्रीष्म ऋतु के आधार पर है शीत ऋतु में जागरण का समय प्रातः 4:30 बजे होता है तथा शयन साँय 6 बजे किया जाता है तथा शेष झाँकियाँ भी जागरण एवं शयन के आधार पर ही क्रमशः रहती है।

वर्षोत्सव सेवा

सम्प्रदाय में नित्य सेवा के अतिरिक्त वर्षोत्सव सेवा का भी प्रावधान है। वर्ष पर्यंत होने वाली इस सेवा पद्धति में मुख्य रूप में श्रृंगार, राग तथा भोग सेवाओं के स्वरुप में वर्ष पर्यन्त ऋतु एवं समय आदि के परिवर्तन एवं प्रभाव को ध्यान में रखकर वर्षोत्सव सेवा पद्धति का नियोजन कियागया है। वर्ष भर के विशेष उत्सवों में यह आयोजन किया जाता है। छः ऋतुओं के उत्सव, अवतारों की जयन्ति, लोक त्यौंहार तथा विभिन्न आचार्य एवं इनके वंशजों के जन्म उत्सव सम्मिलित है। यह विधि विधान सम्प्रदाय में वर्षोत्सव सेवा के रूप में मनाया जाता है। प्राप्त ग्रंथो में वर्षोत्सव सेवा की जो सूची प्राप्त होती है उसे क्रमबद्ध रुप में यहाँ संकलित किया जा रहा है।[1]

पुष्टि मार्गीय परम्परा में सेवा के अंग

परम्परा में नित्यसेवा तथा वर्षोत्सव सेवा क्रम को तीन अंगों में निर्धारित किया गया है। जो निम्नवत हैं।

''(1) श्रृंगार (2) भोग (3) राग''

सम्प्रदाइयों के अनुसार ठाकुर जी को इन्हीं अंग में सेवा स्वीकार्य है। सेवा अंगों के व्यवस्थित रूप की विशेष बात यह है कि कोई भी सेवा हो चाहें श्रृंगार, भोग अथवा राग, सभी ऋतु प्रकृति का विशेष ध्यान दिया गया है। मौसम की तासीर तथा उस समय के अनुकूल ही वस्तुओं तथा रागों का प्रयोग सेवा के अन्तर्गत किया जाता है। जैसे शीत ऋतु में गर्म प्रकृति वाले व्यंजन, आभूषण रत्न तथा राग एवं ग्रीष्म ऋतु में शीतल प्रकृति वाले वस्तुओं का ही प्रयोग किया जाता है। जिसका वर्णन निम्नवत किया जा रहा है।

श्रृंगार सेवा

श्रृंगार सेवा में विभिन्न नवरत्न, आभूषण, वस्त्र आदि से श्रृंगार किया जाता है।

वर्षभर श्रृंगार हेतु उपयोग में लिए जाने वाले अलंकारियों का क्रम इस प्रकार है

(1) चरण पीठ/चरण चौकी, (जड़ाऊ, चाँदी अथवा सोना)
(2) नव आभूषण
(3) नूपूर
(4) मेखला, किंकणी
(5) मुद्रिक आरती (उंगलियों द्वारा)
(6) पहुँची, कंकड़ (कलाई के)
(7) बाजुबन्द
(8) हंसुली, कण्ठी, कतुला, चम्पकली, हेमल, दुमाला, तिमाला, चौमाला, सांकलन गोप, हरि (मोती जड़ी), लटक मणि, गुंजाहार (कण्ठ के)
(9) चिबुक हीरा
(10) वांक
(11) वेसर
(12) सीस फूल, चोटी, चंद्रिका, टिपारा, तुर्रा, कलंगी, ब्रजरल, मुकुट, सिर पैंच सेहरा, किरीट, किरण, आदि।

श्रृंगार सेवा में अलंकारों के अतिरिक्त वस्त्रों के रंगों का भी निश्चित विधान है जो ऋतु क्रम के आधार पर होता है जिनका सामान्य क्रम इस प्रकार है।

ऋतु	वस्त्ररंग
1 बसन्त	पीत वस्त्र
2 ग्रीष्म	श्वेत वस्त्र
3 पावस	हरित वस्त्र
4 शरद	श्वेत वस्त्र
5 हेमन्त	रक्त वस्त्र
6 शिशिर	नील वस्त्र

सम्प्रदाय में वस्त्र तथा अलंकरण भी विशेष ऋतु के अनुसार धारण कराने का प्रावधान है। जैसे-

ग्रीष्म काल	मोती अथवा पुष्पों से श्रृंगार
शीतकाल	नवरत्न के श्रृंगार
बसंत काल	मीना आदि के श्रृंगार

सभी उत्सवों में जन्माष्टमी अत्यधिक महत्वपूर्ण होने के कारण इस दिन का श्रृंगार सबसे महत्वपूर्ण एवं वैभव शाली माना जाता है।

भोग सेवा

श्रृंगार सेवा के समान भोग सेवा भी नित्य क्रम तथ वर्षोत्सव सेवा विधान अनुसार विभाजित है। भोग सेवा के अतंर्गत किस दिन, किस झांकी में कितनी मात्रा में क्या भोग लगना चाहिए इसके लिए भी प्रवातियाँ सुनिश्चित है। नाथ द्वारा (राजस्थान) में आज भी उसी विधान का पालन किया जाता है।

''सम्प्रदाय में पाक कला का पूर्ण वैभव यहाँ के कुनवाड़ा अन्नकूट और छप्पन भोग की झांकियों में देखने को मिलता है।[1] नित्य भोग सेवा में अष्टायाम के अन्तर्गत, पाँच भोग सेवा का विधान है। जिसके अन्तर्गत भिन्न-भिन्न समय में भोग हेतु व्यंजन पूर्व निर्धारित है।

एक साधारण दिवस की भोग व्यवस्था इस प्रकार है[2]

मंगल भोग	माखन, मिश्री, लड्डू
ग्वाल भोग	माखन, मिश्री, धैया, मठरी, लड्डू
राजभोग	सकरी सामग्री जैसे रोटी, दाल कढ़ी, दही, दूध भात, फीका भात, बाटी, चूरमा, पापड़, रायता, आदि।
उत्थापन भोग	ऋतुफल, सेवा, ठंडाई
शयन भोग	निसरी सामग्री जैसे पूड़ी हलवा साग रायता, सौंठ, दही बड़ा, दूध, मिठाइयाँ आदि।

राग सेवा

पुष्टिमार्गीय परम्परा में राग सेवा अर्थात् कीर्तन संगीत का विशेष महत्व है। ''सम्प्रदाय में गायन क्रिया को कीर्तन, तथा गायक को कीर्तनिया कहा जाता है।''[3] बिना कीर्तन अथवा कीर्तिनिया तथा भाव हीन गायन को सेवा का अपूर्ण हिस्सा ही समझा जाता है। जिस तरह अन्य सम्प्रदाय के मंदिरों में सेवा का क्रम मंत्रोच्चार से पूर्ण होता है उसी तरह पुष्टि मार्ग मंदिरों में कीर्तन को ही मंत्रोच्चार का स्थान दिया गया है।

राग सेवा का यह अभिन्न एवं महत्वपूर्ण भाव श्री बल्लभाचार्य जी की मौलिक अवतारण का प्रतिफल ही समझा जा सकता है क्योंकि अन्य परम्पराओं में पद गायन अवश्य ही होता है किन्तु सेवा का आवश्यक अंग, तथा उसकी महत्ता, कदाचित अन्यत्र प्राप्त नहीं होती।[4]

पुष्टि मार्ग में शुद्ध शास्त्रीयता पर आधारित गायन विधि परम्परा रूपी प्रवाह के आग्रह पर आधारित है। परम्परा में रागों का सुनियोजित स्वरूप नित्य क्रम में प्रातः राग भैरव, देवगंधार आदि से प्रारम्भ करके समयानुसार सांयकाल विहाग आदि के क्रम में नियोजित है।

इसी तरह ऋतु क्रम में भी विभिन्न ऋतुओं के आधार पर अनुकूल रागों का प्रयोग व्यवहार में प्रयुक्त है। जैसे बसन्तु ऋतु में राग बसन्त, पावस में मलहार आदि।

राग के नियोजन के विषय में बल्लभाचार्य जी का कथन है कि- ''अपने सुख के लिए आनन्द स्वरूप भगवान का कीतर्न गान करना चाहिए। इस प्रकार के गायन से जैसा सुख मिलता है, वैसा सुख शुकदेवादि मुनीश्वरों को आत्मानंद में भी प्राप्त नहीं हुआ। फिर दूसरों का क्या कहना।''[1] इसीलिए सब कुछ छोड़कर चित्त के निरोधार्य सदैव प्रभु का गुण गान करना चाहिए। ऐसा करने से ही सच्चिदानन्द सिद्ध होती है।

शोध निष्कर्ष

लगभग 500 वर्ष पुरानी यह परम्परा ठाकुर जी की सेवा एवं सभी प्रकार की सेवाओं की भव्यता परिचायक के रूप में अनूठी परम्परा मानी जाती है। प्रारम्भ से ही सम्प्रदाय के मंदिरों में राग, श्रृंगार एवं भोग सेवा प्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के व्यंजन, श्रृंगार, रत्नाभूषण, माला, पुष्प श्रृंगार आदि तथा समयानुसार विभिन्न रागों का चयन सभी विशिष्ट जनों द्वारा किया गया। वर्षोत्सव सेवा के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न ऋतुओं से सम्बन्धित सिर्फ राग ही नहीं वरन् व्यंजन एवं भोजन तथा रत्न आभूषण का श्रृंगार ऋतुओं के अनुकूल ही निर्धारित किया गया। सेवा श्रृंगार में विधि वाद्यों का प्रयोग आदि मंदिर परम्परा की भव्यता का सूचक है।

परन्तु वर्तमान में निश्चित ही किसीन किसी रूप में तथा अन्य कारण वश सम्प्रदाय के प्रारम्भिक स्वरूप में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत अध्याय में मंदिन परम्परा की सेवा पद्धति के अन्तर्गत राग, भोग, श्रृंगार, वाद्यों की प्रमुखता, वाद्यों का प्रयोग, सम्प्रदाय में शैलीगत परिवर्तन अथवा भिन्नता आदि विषय एवं विशेषणों में, ग्रंथों में प्राप्त वर्णन एवं साक्षात्कार द्वारा सम्प्रदाय के बदलते स्वरूप का संक्षिप्त अध्ययन किया गया है।

सन्दर्भ सूचीः-

1 प्रो0 सत्यभान शर्मा, पुष्टिमार्गीय मंदिरों की संगीत परम्परा हवेली संगीत, पृ0 40

2 पं0 ब्रजभूषण गोस्वमी जी से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त

3 डॉ0 करूणा द्विवेदी, भक्ति कवि परमानन्ददास, जीवन और काव्य, पृ0 73

4 डॉ0 निशा पण्डया, पुष्टिमार्गीय संगीत परम्परा में कुम्भनदास का य ंगदान, पृ0 35

5 अंजू शर्मा, ब्रज संस्कृति में संगीत, पृ0 65
6 रविप्रभा वर्मन, पुष्टिमार्गी कीर्तन, पृ0 3

फुटनोट

1 प्रो0 सत्यभान शर्मा, पुष्टिमार्गीय मंदिरों की संगीत परम्परा हवेली संगीत, पृ0 40
2 प्रों0 सत्यभान शर्मा जी से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त
3 पं0 ब्रजभूषण गोस्वमी जी से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त
4 प्रो0 सत्यभान शर्मा, पुष्टिमार्गीय मंदिरो की संगीत परम्परा हवेली संगीत, पृ0 41
5 प्रो0 सत्यभान शर्मा, पुष्टिमार्गीय मंदिरों की संगीत परम्परा हवेली संगीत, पृ0 4
6 वही
7 प्रो0 सत्यभान शर्मा, पुष्टिमार्गीय मंदिरो की संगीत परम्परा हवेली संगीत, पृ0 7
8 डॉ0 करूणा द्विवेदी, भक्ति कवि परमानन्ददास, जीवन और काव्य, पृ0 73
9 डॉ0 निशा पण्डया, पुष्टिमार्गीय संगीत परम्परा में कुम्भनदास का य ंगदान, पृ0 35
10 वही, पृ0 35
11 प्रो0 सत्यभान शर्मा, पुष्टिमार्गी मंदिरों की संगीत परम्परा, हवेली संगीत, पृ0 13
12 वही
13 डॉ0 करुणा द्विवेदी, भक्त कवि परमानन्द दास, जीवन अंर काव्य, पृ0 73
14 अंजू शर्मा, ब्रज संस्कृति में संगीत, पृ0 65
15 रविप्रभा वर्मन, पुष्टिमार्गी कीर्तन, पृ0 3
16 अंजू शर्मा, ब्रज संस्कृति में संगीत, पृ0 87
17 रवि प्रभा बर्मन, पुष्टिमार्गीय कीर्तन सेवा,
18 मंजू शर्मा, ब्रज संस्कृति में संगीत
19 प्रो0 सत्यभान शर्मा, पुष्टिमार्गीय मंदिरों की संगीत परम्परा, हवेली संगीत, पृ0 21
20 प्रो0 सत्यभान शर्मा, पुष्टिमार्गीय मंदिरों की संगीत परम्परा हवेली संगीत पृ0 21
21 श्री भँवर लाल जी कीर्तनिया, श्री विट्ठलनाथ जी भी हवेली नाथद्वारा, राजस्थान से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त
22 प्रो0 सत्यभान शर्मा, पुष्टिमार्गीय मंदिरों की संगीत परम्परा, हवेली संगीत, पृ0 21
23 प्रो0 सत्यभान शर्मा, पुष्टिमार्गीय मंदिरों में संगीत परम्परा, हवेली संगीत, पृ0 21

हिन्दी काव्य में राष्ट्रीयता

विनिता कुमारी वी वैष्णव

हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय, पाटण

साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना का उद्‌भव होने से पूर्व राष्ट्र तथा देश की परिस्थितियाँ द्वारा राष्ट्रीयता की भावना जागृत होती है। भारत में सर्वप्रथम संस्कृत साहित्य में काव्य लिखे गए जिसमें राष्ट्रीय भावना से प्रभावित कुछ उक्तियाँ मिल जाती है, किन्तु संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना से प्रेरित काव्य का विकास न हो पाया। भारत में राष्ट्रीय भावना जागृत हुई 'आदिकाल' में जब निरंतर देश पर मुसलमानों के आक्रमण प्रारंभ हुए और इन्हीं परिस्थिति तथा देश काल से प्रेरित होकर हिन्दी साहित्यकारों द्वारा काव्यों की रचनाएँ की जाने लगी जिसे हिन्दी साहित्य का आदिकाल माना गया है।

अ - आदिकालः- हिन्दी साहित्य में आदिकाल में राष्ट्रीय भावना का प्रारंभिक रूप सामने आता है। आदिकाल में दरबार मे अच्छे कवि चुने जाते थे, जो दरबारी कवि कहे जाते थे। वे दरबार में रहकर अपने कविता द्वारा आश्रयदाताओं को विदेशी आक्रमणकारियों के विरूद्व लड़ने के लिए प्रोत्साहित करते थे। उस समय देश छोटे -छोटे राज्यों मे विभक्त था। राजा आपस में विरोधी हुआ करते थे और एक-दूसरे का राज्य हड़पना चाहते थे या सुन्दर कन्या के लिए भी युद्ध प्रारंभ हो जाता था। उस समय की राष्ट्रीयता संकुचित थी जो केवल अपने राज्य तक ही सीमित थी। जिसे देशभक्ति के अंतर्गत नही लिखा जा सकता था। पृथ्वीराज रासौ, बीसलदेव रासौ, हम्मीरदेव, आल्हाखण्ड़ आदि सभी काव्य आदिकाल के प्रमुख काव्य है। पृथ्वीराज रासौ काव्य में युद्व क्षेत्र में मर मिटने वाले योद्वाओं के शौर्य एवं साहस बल का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण इन वीर गाथाओं में अंकित है।

करतार कृत्य दरबार दिया, इहू सुवत रजपूत कर।
रजपूत मरण संसार वर। पृथ्वीराज रासौ

वीरगाथा काल में पृथ्वीराज रासौ तक की रचनाओं को पूर्णतथा राष्ट्रीय गौरव की रक्षा कर पाने वाली सृजना में नही रखा जा सकता, इनमें भी संकुचित और वैयक्तिक चित्रणों का वर्णन मिलता है। इन काव्यों में वे केवल अपने राज्य का विजय और अन्य राज्यों का परिचय ही दर्शाते है। समग्र राष्ट्र की भावना इन कवियों में लुप्त है। देश की रक्षा एक होने पर इनकी भावना पर इनका ध्यान नही गया। इन्होंने केवल अपने आश्रयदाताओं का ही गान किया जिसे वे अपना कर्तव्य समझते थे।

ब - मध्यकालः- हिन्दी साहित्य में मध्यकाल का विशेष महत्व है। यह वह समय था जब साहित्य मे वीर रस प्रधान काव्य का सृजन हुआ। मध्यकाल में कुछ ऐसे कवि हुए जिन्होनें स्वतंत्रता के वीरों का वर्णन अपनी रचनाओं मे किया। महाराणा प्रताप जैसे शौर्य पुरूष का अत्यंत प्रभावशाली वर्णन मध्यकालीन कविताओ में पाया जाता है। महाराणा प्रताप को यह कवि राष्ट्रीयता का प्रतीक मानकर अपनी रचनाएं करते थे। मध्यकाल मे कविता को राजदरबार छोड़कर साधु -संतो की कुटियां मे शरण लेनी पड़ती थी अतः इस युग मे राष्ट्रीय भावना प्रधान काव्य का सृजन न के बराबर ही संभव था।

क - रीतिकालः- रीतिकाल में श्रृगांरिकता का प्राबल्य अधिक रहा है। समग्र काल श्रंगार रस में डूबा हुआ दिखाई देता है। रीतिकाल कें अधिंकांश कवियों ने राज दरबारों मे रहकर अपनी श्रृगार प्रधान कविताओं द्वारा आश्रयदाताओं का मनोरंजन करना तथा उनकी कामुक प्रवृतियों को उभारना था। संपूर्ण काल मनोरंजन और कामुकता से ओतप्रोत ही पाया जाता है। परिणाम स्वरूप राष्ट्रीयता या राष्टीय भावना इस युग में लुप्तता की सीमा तक पहुँच गई। फिर भी रीतिकाल में कुछ गिने हुए कवि भूषण लाल, सूदन आदि ने इस काल में जातीय गौरव को परखकर उस जिन्दा रखने का प्रयास अपनी रचनाओं के द्वारा किया। साथ ही जनता को औरंगजेब के अत्याचारों से लड़ने के लिए प्रेरित किया। उस समय छत्रपति शिवाजी ने वह कार्य किया जिसका राष्ट्रीय दृष्टि से बहुत महत्व है। भूषण ने उन्हें राष्ट्र रक्षक की उपाधि दी है।

हिन्दून की चोटी रोटी खाई है सिपाहिन की,
कांधे में जनेउ राखियों, माला राखी गर में।।
भीड़ि राखै मुगन, मरोड़ी राखे पातशाह,
बैरी पीसी राखै वरदान राखियों कर मे।
राजन की हद राखी तेग बल शिवराज,
देव राखै देवल स्वधर्म राखियौ गर मे।।

ख - आधुनिक कालः- हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द्र के साहित्य क्षेत्र में आगमन से माना जाता है। उस समय भारत पर अंग्रेजो का अधिकार था। अधिकांश भाग पर वे अपना शासन स्थापित कर चुके थें। भारत में पाश्चात्य सभ्यता का प्रचार और प्रसार हवा की तरह फैल रहा

था जिसका लाभ अंग्रेजी सरकार उठा रही थी। वे अपनी शोषण नीति अपना भारत को अंदर से कमजोर बना रहे थे। देश का अधिंकांश धन वे अपने देश ले जा रहे थे और भारत की जनता भूखी नंगी त्राहि -त्राहि कर रही थी। उस समय भारतेन्दुजी ने भारत की जनता में चेतना उजागर करने का प्रयास किया। भारतेन्दु जी ने एक तरफ अपनी राष्ट्र के प्रति निष्ठा और प्रेम का परिचय दिया और दूसरी तरफ विदेशियों के अत्याचार का पर्दाफाश किया।

अंगरेज राज सुख साज सजै सब भारी।
पै धन विदेश चाली जात इहै अति खबारी।।
हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाय

भारतेन्दु युग में अन्य कवि भी है जिन्होंनें अपनी कविताओं मे राष्ट्रीय भावना को मुखरित किया है।

सबके उपर टिकस की ताकत आई।
हा हा भारत दुर्दशा ना देखी जाइ।

जिसमें बदरीनारायण चौधरी प्रेमधन, प्रताप नारायण मिश्र, राधाचारण गौस्वामी, बालमुकुन्द गुप्त आदि का नाम प्रमुख है। इन सभी ने देश की जनता को राष्ट्र के लिए लड़ने और राष्ट्र भक्ति की भावना का संचार करते हुए उस उन्नति के पथ पर अग्रसर होने का संदेश दिया।

द्विवेदी युग ने राष्ट्रीय भावना का भारतेन्दु युग से भी अधिक सशक्त रूप धारण किया। स्वातंत्रय आन्दोलन, बंग -भंग आन्दोलन, आर्य समाज, प्रार्थन समाज संस्थाओं का निर्माण एवं कार्य शुरू हुआ परिणाम स्वरूप सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में नवीन चेंतना जागृत हुई और भारतीयो ने अपने हदय में भारतेन्दु युग की अपेक्षा अधिक आत्मगौरव के भाव का अनुभव किया। भारतेन्दु युग के कवियों को अंग्रेज शासकों ने देश की आशा थी इसलिए उन्होने देशभक्ति के साथ -साथ राजभक्ति को भी अपनाया था। द्विवेदी युग के कवियों को विदेशी शासकों से पूरी निराशा हुई और उनके अत्याचारों के प्रति वे पूर्णतया सजग हुए इसलिए उन्होनें अपने अधिकारों की प्राप्ति एवं देश की स्वतंत्रता के लिए विदेशी शासक के विरूध्द्ध विद्रोह व्यक्त किया। द्विवेदी युग के कवि देशवासियों के एकता के सूत्र मे बांधने का प्रयत्न करते है। जनता को देश के लिए मर मिटने की प्रेरण देते है। भारतेन्दु युग की तुलना में द्विवेदी युग की राष्ट्रीय कविता अतीत से वर्तमान कल्पना से यथार्थ निराशा में आशा विश्वास उपदेश के कर्म और आत्महीनता से आत्मगौरव की और अधिक अग्रसर दिखाई देती है।

मैथिलीशरण गुप्त ने भारत भारती के माध्यम से भारतवासियों का ध्यान भारत के भविष्य की ओर आकृष्ट किया।

हम कौन है या क्या हो गए है ओर क्या होगें अभी।
आओ विचारे आज मिलकर यह समस्याएं सभी।।

माखनलाल चतुवेर्दी देश के लिए बलिदान देने की बात करते है।

बलि होने की परवाह नही मै हूं कष्टों का राज्य रहे
मै जीता, जीता, जीता हूं, माता के होय स्वराज रहे।

इस काल के अधिकांश कवि स्वतंत्रता संग्राम के वीर सैनानी रहे, जिसमे मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुवेर्दी, सुभ्रदा कुमारी चौहान, रामनरेश त्रिपाठी का नाम आदर से लिया जाता है। आधुनिक युग का एक अन्य प्रसिद्व कवि है और वह है रामधारी सिंह दिनकर। दिनकर ओज के कवि है। इनकी रचनाएँ राष्ट्रीय भावनाओ से ओतप्रोत है। दिनकर जी ने सन् 1962 में हुई चीनी आक्रमण के समय भी अनेक देशानु रागपूर्ण कविताएँ लिखकर देश मे जागृति का शंख फूंका।

किसी भी देश का साहित्य अगर राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित या परिपूर्ण नही है तो वह साहित्य अधूरा माना जायेगा। किसी देश की जागृति के लिए वह अत्यंत आवश्यक है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हमारे बीच ऐसे राष्ट्रीय भावना से प्रेरित और जनता को प्रेरण दे सके ऐसी रचनाओं का अभाव पाया गया है। ऐसे कवियों की आवश्यकता आज भी देश को है।

संदर्भ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - नगेन्द्र
3. Hindietools.com

भारतीय संस्कृति में यज्ञ

डॉ० हेम चन्द्र द्विवेदी

भारतीय संस्कृति या वैदिक संस्कृति यज्ञ प्रधान संस्कृति मानी जाती है। यज्ञ के बिना भारतीय संस्कृति की कल्पना करना भी असंभव है। यज्ञ शब्द का अर्थ क्या है? यज्ञ का प्रारम्भ कब हुआ? इसका महत्व क्या है? किन साधनों से यज्ञ किया जाता है? प्रत्येक मनुष्य के समक्ष ये प्रश्न स्वाभाविक रूप से उपस्थित होते हैं। इन सभी प्रश्नों का उत्तर वैदिक साहित्य के सूक्ष्म अनुशीलन से हमें प्राप्त होता है। यज्ञ के विषय में एक विवेचन द्रष्टव्य है-

(1) यज्ञ शब्द का अर्थ :- यज् धातु से निष्पन्न यज्ञ शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए आप्टे कोश में कहा गया है:- 1 याग या मख, यज्ञ संबंधी कृत्य आदि । 2. पूजा का कार्य या कोई भी भक्ति संबंधी क्रिया 3. अग्नि का नाम 4. विष्णु का नाम। (संस्कृत हिन्दी कोश पृ. 823)

महर्षि पाणिनि ने अष्टाध्यायी में यज् धातु के तीन अर्थ दिए हैं-

"यज् देवपूजा संगतिकरण दानेषु"।

अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण (परस्पर मिलना), और 3 दान।

ध्यान से देखें तो यज्ञ में इन तीनों तत्त्वों का समावेश होता है। यज्ञ में देवताओं की पूजा होती है। इसमे देवताओं और मनुष्य का संगतिकरण (मिलना) होता है और दान होता है। महर्षि जैमिनी ने यज्ञ को स्पष्ट करते हुए कहा है-

"देवतोद्देश्येन द्रव्यत्यागो याग:"।

देवता के उद्देश्य से द्रव्य का त्याग करना ही यज्ञ है। यज्ञ की सारी क्रिया-विधि का मूल देवताओं को प्रसन्न करना तथा उनकी अनुकंपा प्राप्त कर जीवन को सुखी बनाना है। निरुक्तकार महर्षि यास्क ने यज्ञ का आशय स्पष्ट करते हुए लिखा है-

"यज्ञ: कस्मात्। प्रख्यातं यजति कर्मेति नैरूक्ता:।याज्ञचो भवतीति वा। यजूरून्नो भवतीति वा। बहुकृष्णाजिन इत्यौपमन्यव:। यजूष्येन नयन्तीति वा।" निरूक्त 3/4

यजनार्थक होने के कारण, फल विशेष की कामना के लिए किये जाने के कारण, यजुर्मत्रों से क्लिन्न होने के कारण, बहू कृष्णाजिन संपन्न होने के कारण तथा यजुर्मत्रों से संपन्न होने के कारण यज्ञ कहा जाता है। ऋषियों के द्वारा प्रदत्त इन परिभाषाओं से ना केवल यज्ञ का अर्थ स्पष्ट होता है अपितु इसके व्यापक स्वरूप का भी बोध होता है। यह एक ऐसी पवित्र क्रिया विधि है जिसके द्वारा हम देवता को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं। देवता, मंत्र, द्रव्य, दान, ऋत्विक, यजमान, और संगतिकरण- मेरी दृष्टि में यज्ञ के अनिवार्य उपादान हैं जिसके समन्वय से यज्ञ संपन्नता को प्राप्त होता है।

(2) यज्ञ का आरंभ:- यज्ञ का आरंभ कब हुआ? किसने सर्वप्रथम यज्ञ किया? इसका विस्तार कैसे हुआ? यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन प्रश्नों का समुचित उत्तर भी हमें वैदिक ग्रंथों के अनुशीलन से मिलता है।

विश्व के प्राचीनतम ग्रंथरत्न के रूप में समादृत ऋग्वेद के प्रथम मंडल के प्रथम सूक्त में ही यज्ञ शब्द प्रयुक्त हुआ है-

"अग्निमीत्ले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।।" ऋक्1/1/1

ऋग्वेद में ही एक मंत्र में कहा गया है कि देवताओं ने सर्वप्रथम यज्ञ किया-

"यज्ञेन यज्ञमयजंत देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन"।ऋक्. 10/90/16

प्रकृत ऋचा के ही अनुसार यज्ञ को प्रथम धर्म या अति प्राचीन माना गया है। वस्तुत: यज्ञ शब्द इतना महत्वपूर्ण है कि ऋग्वेद में बारंबार यज्ञ शब्द का प्रयोग हुआ है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यज्ञ संस्था का पूर्ण विकास ऋग्वैदिक काल में हो चुका था। ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है कि ऋषि अथर्वा ने सर्वप्रथम यज्ञ की प्रक्रिया को आरंभ किया-

ज्ञैरथर्वा प्रथमो पथस्तते। ऋग्वेद 1/83/5

ऋग्वेद की ही एक अन्य ऋचा में ऋषि अथर्वा को यज्ञ का स्वरूप कैसा हो इसका निर्धारण करने वाला कहा गया है-

यज्ञैरथर्वा प्रथमो विधारयत। ऋग्वेद 10/92/10

निश्चित रूप से यज्ञीय प्रक्रिया के आरंभ से तथा उसे प्रामाणिक स्वरूप प्रदान करने में ऋषि अथर्वा की महनीय भूमिका का संकेत ऋग्वेद की इन ऋचाओं के माध्यम से किया गया है।

यज्ञ के आरम्भ के विषय में शतपथ ब्राह्मण में एक महत्वपूर्ण उल्लेख प्राप्त होता है जिसके अनुसार बृहस्पति के पुत्र शंयु ने सर्वप्रथम यज्ञ संस्था को देखा। एक अन्य आख्यान के अनुसार देवताओं ने यज्ञ के रस को चूस लिया तथा यज्ञ को यूप द्वारा बिखेर कर अंतर्ध्यान हो गए। ऋषियों ने इसे चुन लिया और यज्ञ को एकत्र किया।

वैदिक ब्राह्मण ग्रंथों में कुरुक्षेत्र को देवताओं की यज्ञ भूमि कहा गया है। इन विवेचनों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यज्ञ एक दिव्य क्रिया है जिसका विकास महान ऋषियों ने अपनी उत्कृष्ट मेधा तथा अनुभवजन्य ज्ञान के आधार पर किया है। यज्ञ के आरंभ होने के कालखण्ड का निर्धारण वर्तमान साधनों से करना ना केवल असंभव है अपितु असंगत भी है। हम यह मान सकते हैं कि यज्ञ उतने ही प्राचीन हैं जितने वेदों के पावन मंत्र तथा जितनी प्राचीन यह सृष्टि।

(3) यज्ञ का महत्वः- यज्ञ के महत्व के विषय में जानने के लिए हमें पुनः उन्हीं वैदिक ग्रंथों का आश्रय लेना होगा जो हमारी संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं। वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदादि में यज्ञ के महत्व का सम्यक् रूपेण प्रतिपादन किया गया है। हमारे पवित्र ग्रंथ ऋग्वेद में यज्ञ का महत्व बताते हुए इसे विश्व का केंद्र कहा गया है-

"अयं यज्ञो भुवनस्य नाभि।" ऋग्वेद 1/164/35 यजु. 23/62

ऋग्वेद में यज्ञ की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि यज्ञ मनुष्य को मुक्ति प्रदान करता है। प्रत्येक गृहस्थ को यज्ञ अवश्य करने का आदेश देते हुए ऋषि कहते हैं ख़ यज्ञ की ओर प्रवृत्ति मनुष्य के संपूर्ण परिवार को दुख से पार लगाती है। ऋग्वेद की भांति यजुर्वेद में भी यज्ञ के महत्व का निरूपण करते हुए तथा इसकी सर्वोच्चता को स्वीकार करते हुए इसे संसार का केंद्र अथवा मूल माना गया है। ऋग्वेद और यजुर्वेद की विचारसरणि का अवलम्बन करते हुए अथर्ववेद में भी यज्ञ को ही विश्व का केंद्र या मूल तत्व कहा गया है। अथर्ववेद संहिता में यज्ञ के महत्व को रेखांकित करते हुए कहा गया है-

"अयं यज्ञो गातुविद् नाथविद् प्रजावित्।"अथर्ववेद 11/1/15

अर्थात यह यज्ञ मनुष्य का मार्गदर्शक, शरणदाता तथा सुसन्ततिदाता है।

वैदिक संस्कृति के प्राणभूत यज्ञ की महिमा का वर्णन करते हुए श्रीमद्भगवद्गीता मे स्वयं श्री कृष्ण कहते हैं-

"यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।" गीता 3/9

यज्ञ के निमित्त किया गया कर्म ही वास्तविक कर्म है। यज्ञ कर्म के अतिरिक्त अन्य कर्म बंधन में डालने वाले हैं अतः हे अर्जुन! यज्ञ कर्म के अनुष्ठान के द्वारा मुक्ति प्राप्त करनी चाहिए। महर्षि मनु ने भी यज्ञ के असंदिग्ध महत्व का निरूपण करते हुए कहा है-

"अग्नौ प्रास्ताऽहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।

आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।।" मनुस्मृति 3/36

अर्थात् अग्नि में दी गई आहुति ऊपर सूर्य की ओर जाती है, सूर्य से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न और अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है। यज्ञ के महत्व का इससे सुंदर वैज्ञानिक विश्लेषण भला और क्या हो सकता है। संपूर्ण सृष्टि प्रक्रिया के संचालन का सूत्र इस मंत्र में सूक्ष्मता से दर्शाया गया है। शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ का महत्व निरूपित करते हुए तथा यज्ञ की सर्वोच्चता को बताते हुए इसे सर्वश्रेष्ठ कर्म कहा गया है-

"यज्ञो वै श्रष्ठतमं कर्मः।" श. ब्र. 7/3/5/17

वैदिक ग्रन्थों में यज्ञ को विष्णु, प्रजापति, अग्नि, आदित्य, प्राण से सम्बोधित कर इसका महत्व बताया गया है।

सूक्ष्मतापूर्वक विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है की यज्ञ के द्वारा देवताओं को प्रसन्न कर अभिलषित फल प्राप्त किया जाता है। प्रकृति की दिव्य शक्तियां जिनके द्वारा मानव जीवन संभव है, वह देवता हैं। मानव जीवन के लिए आवश्यक प्राकृतिक तत्व यथा सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी आदि के प्रति सहज सरल भाव से श्रद्धा का प्रदर्शन, उनके प्रति कृतज्ञता का ज्ञापन ही यज्ञ प्रक्रिया का मूल कारण है। प्रकृति की ये दिव्य शक्तियां मनुष्य के अस्तित्व के लिए अपरिहार्य हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर हमें अपने तत्वदर्शी महान ऋषियों के ऊपर अत्यंत गर्व की अनुभूति होगी जिनकी विलक्षण ज्ञान-प्रभा ने प्रकृति कि इन दिव्य शक्तियों के महत्व को समझकर उनके शुद्ध स्वरूप की रक्षा तथा इन दिव्य शक्तियों से प्राप्त होने वाले लाभों को प्राप्त करने के लिए इस यज्ञ परंपरा को विकसित किया।

वस्तुतः प्रकृति और मानव के अन्योन्याश्रित संबंध को ध्यान में रखते हुए प्राकृतिक शक्तियों का दैवीकरण तथा उन देवताओं की प्रसन्नता से मानव को अभिलषित फल प्राप्त करने की प्रक्रिया ही यज्ञ है। यज्ञ के द्वारा न केवल पृथ्वी के पदार्थों की शुद्धि होती है अपितु अंतरिक्ष के पदार्थ भी शुद्ध होते हैं जिससे समस्त सृष्टि का कल्याण होता है।

संभवतः यज्ञ की इसी विशिष्टता के कारण वैदिक ग्रंथों में कहा गया है कि सत्य रूपी यज्ञ स्वर्ग की नौका है। अतः पापी लोगों को यज्ञ से दूर रखना चाहिए क्योंकि एक भी बुरे व्यक्ति के होने से नौका डूब जाती है।

यज्ञ एक ऐसा माध्यम है जिसके अनुष्ठान से व्यक्ति पाप से पुण्य की ओर, असत् से सत् की ओर, श्रेय से प्रेय की ओर, तमस से ज्योति की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर तथा आत्मा से परमात्मा की ओर उन्मुख होकर तदवत् होकर मुक्ति को प्राप्त करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थः-

संस्कृत हिन्दी कोश- वामन शिवराम आप्टे, नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1991
अष्टाध्यायी- शिरीष चन्द्र वसु,मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, 1962
मीमांसा दर्शनम्- मण्डन मिश्र शास्त्री, रमेश बुक डिपो जयपुर, 1955
निघण्टु तथा निरूक्त- लक्ष्मण सरूप, मोतीलाल बनारसीदास, 1967
श्रीमद्भगवद्गीता- गीता प्रेस गोरखपुर, 2002
शतपथ ब्राह्मण- जे एग्लिंग, दिल्ली, 1963
यजुर्वेद- दामोदर पाद सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, 1957
ऋग्वेद सहिंता- वैदिक संशोधन मण्डल, पूना 1933
अथर्ववेद संहिता- विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, 1962
मनुस्मृति - डॉ० सुरेन्द्रकुमार, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, 2005

नागार्जुन की कविताओं में जनक्रांति

डॉ० कानजीभाई रवजीभाई पाया

M.A., B.Ed., M.Phil., GSET, NET, PH.D. अध्यापक, लोढ़नोर पाठशाला, लोढ़नोर, तहसील- थराद, जनपद- बनासकांठा, गुजरात

कवि समाज के प्रति अत्यन्त सचेत एवम् जागृत हैं। अपनी काव्य-चेतना के माध्यम से वे विद्रोह की चिनगारी लेकर अन्याय अत्याचार पर टूट पड़ते हैं और इस समाज व्यवस्था में परिवर्तन चाहते हैं। सामान्य जनता की सामान्य एवम् अनिवार्य आवश्यकताएँ पूर्ण करने का स्वप्न नागार्जुन देखते हैं। कवि को यह विश्वास भी है इसे क्रांति और विद्रोह से ही पूरा किया जा सकता है।

नागार्जुन का विद्रोह लोककल्याणकारी है। विध्वंसकारी एवमं जन विरोधी शक्ति के प्रति कबीर की तरह ही नागार्जुन भी दहाड़ लगाते हैं। उनके विद्रोह में मानवीय गरिमा विद्यमान है। राजनेता, धार्मिक, ठेकेदार, भ्रष्टाचारी, पूँजीपति एवम् पाखण्डी लोगों से कवि विद्रोह करते है और जनता को परिवर्तन की दिशा में प्रेरित करते हैं। हमारे कवि नागार्जुन क्रांति तो चाहते हैं परन्तु क्रांति के नाम पर कोई आडम्बर उन्हें पंसद नहीं है। वे इस देश की शोषित, पीडित जनता की परिस्थितियों में बदलाव चाहते हैं। वे क्रांति के समर्थक हैं उन्हें। व्यक्तिगत ईमानदारी पर अधिक विश्वास हैं। शोषित-पीड़ित वर्ग के विकास के लिए क्रांति आवश्यक हैं।

नागार्जुन के व्यक्तित्तव में विद्रोह की भावना उनके विद्यार्थी जीवन से ही दिखाई पड़ती है। काशी के छात्रावास में एक वृद्धा का खुद दाह संस्कार कर उन्होंने अपनी विद्रोही वृति का परिचय दिया। उन्हें आंडम्बर और प्रदर्शन से नफरत हैं। इसका यह विद्रोही तेवर स्वतंत्रता पूर्व के किसान आंदोलनों में भी दिखाई पड़ता हैं। सन् 1938 के अमबारी (बिहार) के किसान आंदोलनों में पकड़े गए और छपरा तथा हजारीबाग में दस महीने तथा दूसरी बार भागलपुर सेन्ट्रल जेल में आठ महीने रहे। डॉ. विजय बहादुर सिंह ने लिखा है-

''क्रांति के सपने सजा देना भी जनवादी लेखक के बहुत बड़े दायित्व की पूर्ति कहा जा सकता है। किन्तु हमारा यह लेखक कोई सपनों में विश्वास करके बैठ जाने का कायल नहीं हैं। शब्द और कर्म की सहयात्रा किसी सपने को वास्तविकता में बदल सकती हैं। इसलिए वह किसान आंदोलन में किसानों का नेतृत्व करता हुआ जेल जाता हैं। आपात्काल का विरोध करते हुए भी उसे यही राह अपनानी पड़ती है। सत्ता की खूंखार और हिंसक कारगुजारियों से वह निरंतर जूझ रहा है।।''[1]

अंग्रेजों के हाथ से हम भारतीयों ने सत्ता तो ले ली लेकिन देशी नेतागण भी उन्हीं की लकीर पर चलने लगे। इससे स्वातंयोत्तर सामाजिक, आर्थिक, परिस्थितियाँ में किंचित भी परिवर्तन न पा कवि ने समाज के ठेकेदारों और राजनेताओं को खूब लताडा है। शोषित जनता के बीच क्रांति भावना का शंखनाद किया है। डॉ. हरिचरण शर्मा के शब्दों में-

''सामाजिक यथार्थ का चितेरा, व्यंग्य का तीक्ष्ण गायक और राग चेतना सम्पन्न कवि नागार्जुन के काव्य का एक महत्तवपूर्ण हैं। क्रांति एवम् विद्रोह की वाणी बोलनेवालो कवि व्यंग्यपरक शैली में अन्याय एवम् अत्याचार का विरोध करता है। यदि छद्मवेशी नेताओं को देखकर उसका मन विद्रोह कर उठता है! तो छल-कपट का व्यवहार करने में पटु राजनीतिज्ञों पर बरस पड़ता है। धोखाधडी, भ्रष्ट्राचार, पाखण्ड, स्वार्धी, लोभ और ईष्यो आदि भावों के सहारे काल यापन करने वाले व्यक्तियों से साधुवेशी, कुकर्मियों से उसे नफरत है। ऐसे लोगों के प्रति उसका आक्रोश काफी पैनी और चुभने वाली शैली में व्यक्त हुआ है।''[2]

अब हम यहाँ नागार्जुन की कविताओं में क्रांति और विद्रोह का स्वर देखेंगे। 'युगधारा' काव्य-संग्रह की 'पक्षधर!!' कविता में कवि की क्रांति के लिए तत्परता देखें-

''मन और तन की समूची ताकत लगा कर
विध्न-बाधा के पहाड़ो को गिरा दो, ढाह दो!
अमंगल के, अशुभ के उन हेतुओं को ध्वस्त कर दों!
खोद कर निर्मूल कर दो कण्टकावृत झाड़ियों को!
राह में रोड़े पड़े हैं। अमित-अगणित.....
उन्हीं से अतलान्त गर पाट डालो।''[3]

विध्याचल को जाग उठने की प्रेरणा देकर क्रांति का स्वर कवि ने 'उद्बोधन' कविता में व्यक्त किया है। देखिए-

''हे विन्ध्याचल, जिनकी आज्ञा मान
बिछा दिये थे तुमने अपने प्राण

उठो, उठो करना है नव निर्माण
तुम पर निर्भर जन-जागरण समस्त''[4]

'तुम किशोर तुम तरूण' कविता में कवि नई पीढ़ी का आह्वान करते हुए उन्हें क्रांति की मशाल जलाने को कहते हैं-

''अपने स्वप्नों को पूरा करने के खातिर
तुम्हें नहीं तो ओर किसे हम देखें बोलों!
निविड़ अविद्या से मन मूर्छित
तन जर्जर है भूख-प्यास से
व्यक्ति-व्यक्ति दु:ख दैन्य ग्रस्त है
दुविधा में समुदाय पस्त है
लो मशाल, अब घर-घर को आलोकित कर दो।''[5]

'तुमने कहा था' काव्य-संग्रह की 'रहे गूँजने बडी देर तक' कविता में कवि ने नई पीढ़ी के प्रति आस्था व्यक्त की है और शिशु-क्रांति की कल्पना करते हुए लिखा है-

''मैंने सोचा: निर्भय होकर शोषण की बुनियादें यह खोदेंगे
मैंने सोचा: बेबस बूढेघ विप्लवियों का कालिख यह धो देंगे
मैंने सोचा: फिरकाबन्दी-जातिवाद का झाड़ेंगे यह भूत
मैंने सोचा: निबिड़ विषमता को मिटायेंगे
नवयुग के शिशुदूत!''[6]

'अब तो बंद करो है देवी यह चुनाव का प्रहसन' शीर्षक कविता में इन्दिरा गाँधी के शासन पर प्रहार करते हुए क्रांति का स्वर इस प्रकार कवि ने प्रकट किया हैं-

''अभी ओर भी विप्लव होंगे और बहेगा खून
तरूण शक्ति तोडेगी सौ-सौ 'नियम ओर कानून'
महाक्रांति के प्रबल वह्नि में शोधित होगी सत्ता
अरूणाई में दमक उठेंगे ढाका और कलकत्ता।''[7]

'क्रांति सुगबुगाई' शीर्षक कविता में क्रांति की ज्वाला में कूदने वाले युवाओं की नारकीय यंत्रणाओं का चित्रण कवि ने किया हैं। इनमें कूदना अग्नि-दीक्षा और अग्नि-स्नान का पल हैं। उदाहरणनार्थ-

''मोटे सलाखों वाली काली दीवार के उस पार
अविराम चालू हैं यन्त्रणायें-
अग्नि-स्नान और अग्नि-दीक्षा की,
वह करांति और विप्लव
तरूण शांति सेना वालों के
सुगन्धित कर्म-कांड नहीं हुआ करते!
मोटे सलाखों वाली काली दीवार के उस पार''[8]

'काश, क्रांति उतनी आसानी से हुआ करती' कविता में नागार्जुन ने क्रांति का उत्पन्न होने के कारण बताये हैं। वे कहते है कि क्रांति केवल बैठे-बैठे लोगों के दिवास्वप्नों का काम नहीं है भाई! क्रांतियाँ तो क्रांतिकारियों के हृदयस्पर्शी संकल्प, आत्मा की सच्ची आवाज, आत्मविलोपी उत्सर्ग, अन्वरत (सतत) अभ्यास और अपरिमित दढ़ द्वारा ही होती हैं। क्रांति अनुशासन, बलिदान निष्ठा और संघर्ष, संकल्प चाहती हैं। इन कविता में कवि के शब्द-

''अग्निगर्भी संकल्प
आत्मविलोपी उत्सर्ग
पावन एवम् पुण्य जुगुप्सा
निर्मल करूणा
कठोर अनुशासन
अपरिसीम साहस
अनवरत अध्यवसाय.....

यही तो कुछ-एक तत्त्व है
यही पहुँचा देते है क्रांति की तलहटियों तक
शोषित-निपीड़ित-संघर्षशील मनुष्य-समुदाय को''[9]

जब जनता में क्रांतिकारी और सघर्षशील चेतना बढ़ती गई ठीक उसी वक्त पर सरकार उन जनता की सहज भावनाओं को अपनी इच्छा-लक्ष्य अनुरूप मोड़कर उसे सत्ता लोलुप्ता की लालच दी जाने लगी। तब जनता में क्रांतिकारी लक्ष्य पीछे छुटते जा रहे थे। ठीक उसी समय कवि जनता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता 'प्रतिबद्ध हूँ' कविता में व्यक्त करते है-

''बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त-

× × ×

आबद्ध हूँ, जी हाँ, आबद्ध हूँ-
लाख-लाख मुखड़ों के तरूण हुलास में
आबद्ध हूँ, जी हाँ, शतधा आबद्ध हूँ!''[10]

'हरजिन-गाथा' कविता में कवि ने एक हरिजन बालक 'कलुआ' को कृष्णावतार माना है, जो बड़ा होकर दीन-हीन-शोषित-पीड़ित जनता की रक्षा करेगा, कंस जैसे अत्याचारियों से मुक्ति दिलाएगा। कवि यहाँ सशस्त्र क्रांति करने की भविष्य वाणी करते है। जैसे कि-

''दिल ने कहा-अरे यह बालक
निम्न वर्ग का नायक होगा
नई ऋचाओं का निर्माता
नये वेद का गायक होगा
होंगे इसके सौ सहयोद्धा
लाख-लाख जन अनुचर होंगे
होगा कर्म-वचन का पक्का
फोटो इसके घर-घर होंगे।''[11]

'हजार-हजार बाँहोंवाली' काव्य-संग्रह की 'प्रतिहिंसा ही स्थानीयभाव है' शीर्षक कविता में कवि का आंतरिक विद्रोह देखे-

''नफरत की अपनी भट्ठी में
तुम्हे गालने की कोशिश ही
मेरे अंदर बार-बार ताकत भरती है
प्रतिहिंसा ही स्थायीभाव है अपने ऋषि का,

× × ×

देखोंगे सौ बार मरूँगा
देखोंगे, सौ बार जियूँगा
हिंसा मुझसे थर्राएगी
मैं तो उसका खून पियूँगा
प्रतिहिंसा ही स्थायीभाव है मेरे कवि का''[12]

आजादी के बाद स्थिति सुधरने के बजाय सरकार में जनता का शोषण, जुल्म इत्यादि बढ़ गये है। 'लाल भवानी' कविता में कवि का आक्रोश देखे-

''जमींदार है बदहवास, हमने उनको ललकारा है,
जिसका जाँगर उसकी धरती, यही एक बस नारा हैं;
होशियार, कुछ देर नहीं है लाल सबेरा आने में,
लाल भवानी प्रकट हुई है सुवा कि तैलंगाने में।''[13]

नेहरू के शासन से विक्षुब्ध होकर कवि का शेष और क्रोध ओर भी बढ़ जाता हैं। 'में हूँ सबके साथ' कविता में कवि का क्रोध देखे-

''लेकिन क्योंकर बुझने दूँ मैं अपना वाजिब क्रोध?
बच्चों के हत्यारों से पब्लिक लेगी प्रतिशोध!
इस पवित्र प्रतिशोध-यज्ञ में में हूँ सबके साथ.....
क्यों गूँगा होऊँ, बतलाओं झुकने दूँ क्यों माथ?''[14]

कवि नागार्जुन की कविताएँ शासन के अत्याचारों का खुलासा करती हुई अत्याचारियों को सावधान भी करती हैं। जैसे-

''खबरदार नफाखोरों, तिकड़मबाजों खबरदार!!
आवाम के जेहन में जहर घोलने वालों, खबरदार!!
महज निजी कुर्सियों के रखवालों खबरदार!!
खबरदार! मिलावट के माहिरो खबरदार!!
खबरदार! पीठ में छुरा घोंपने वालों खबरदार!!
खबरदार! सोते में गला रेतने वालों खबरदार!!''[15]

नागार्जुन की कविता में विरोध की आग इतनी तीव्र हो उठी है कि सड़क पर आ जानी है। बढ़ती हुई कमरतोड़ महँगाई जनता की सहनशक्ति और धैर्य को खत्म कर देती हैं। जनता (लोगों) के अधिकार के लिए कवि हुंकार भरे स्वर में कहत हैं-

''नहीं नहीं सो कैसे होगा, क्यों माने हम हार?
नभ से संघबद्ध जनता का गूँज गया हूँकार
मत समझो इन नारो को बच्चों की चीख-पुकार
दूर-दूर से आये है हम मनवाने निज अधिकार''[16]

'पुरानी जूतियों का कोरस' काव्य-संग्रह की 'चलो-चलो धरना दे चलकर' कविता में कवि का क्रांतिकारी स्वर देखिए-

''चलो-चलो धरना दे चलकर दिल्ली के दरबार में
शाही नखरे दबे पड़े है जहाँ कुतुब मीनार में
क्रांति खिली है लाल किले की लाल-लाल दिवारों में
'भूखहरण टिकिया' मिलती है वहाँ सुपर बाजार में''[17]

नागार्जुन ने साम्यवादी जीवन-दर्शन को स्वीकार कर समाज की विसंगतियाँ पर तीखा प्रहार किया है। वे तीखे प्रहारों से उसकी धज्जियाँ उड़ाने चलते हैं। 'ऐसे भी हम क्या' ऐसे भी तुम क्या! काव्य-संग्रह की 'वो हमें चेतावनी देने आए थे' कविता में चेतावनी देने वालों की चुनौती स्वीकार कर करते हैं।-

''क्रांति, समता, प्रगति, जनवाद
आजीवन हमने
इन शब्दों से काम लिया है!
वो हमें चेतावनी दे गये है!''[18]

अब कवि का क्रांति और विद्रोह का स्वर पूरी तरह जाग उठा था। मानवीय संघर्ष की क्रोधाग्नि भड़क उठी है। देखिए 'प्रतिहिंसा का महारूद्र' कविता में कवि के शब्द-

''तुम मुनाफा लोभी
तुम स्वार्थ के नारकीय कीडे
इस जंगल का एक-एक बिरवा
तुम्हारे समूचे वर्ग के लिए
प्रतिहिंसा का महारूद्र प्रमाणित होगा!''[19]

अब तो कवि की इच्छा है कि हमें शोषण और तानाशाही का डटकर सामना करके आजादी प्राप्त कर हमें नया हिन्दुस्तान बनाना हैं। 'आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने' काव्य-संग्रह की 'शांति मैत्री' कविता में कवि ने यही भावना व्यक्त की है। कवि के शब्दों में-

''क्रांति और शांति उधार में नहीं
स्वयं अपने बल बूते पर
हम प्राप्त करेंगे
शोषण और तानाशाही की बुनियादें
खोद-खोद कर हम सचमुच
नया हिन्दुस्तान बनाऐंगे।''[20]

कवि जनता के समक्ष यथार्थता प्रकट करते हैं। राजनेताओं की पोल खोल देता है। खोखलापन जाहिर कर देती है। वे देशी सत्ता के खिलाफ हमारी-जनता की-भारतीय जनमानस की मुक्ति की कविता लिखते है। उनकी कविता शांति की नहीं, बल्कि क्रांति की बात करती हैं। 'जयति-जयति सर्व मंगला' कविता में कवि के शब्द-

''चेन नहीं, आराम नहीं है
सपने में भी सुख-सुविधाओं का नाम नहीं है
तन विषण्ण मन चिर अशांत है
पल-पल छन-दन भया क्रांति है
कैसे लिखूँ 'शांति' पर कविता?[21]

आजाद भारत के छल-कपटी राजनीतिज्ञ के प्रति कवि का आक्रोश है। उन पर कवि क्रोधित होकर बरस पड़ते है। ऐसे लोगों के प्रति कवि को नफरत है। इन पर कवि ने चुभनेवाली तीक्ष्ण एवम् पैनी शैली में व्यंग्य किया हैं। उदाहराणार्थ-

''देश हमारा भूखा नंगा घायल है बेकारी से
मिले न रोटी-रोजी भर के दर-दर बने भिखारी से
स्वाभिमान सम्मान कहाँ है होली है इन्सान की
बदला सत्य, अंहिसा बदली, लाठी, गोली डंड़े हैं
कानूनों की सड़ी लाश पर प्रजातंत्र के झंड़े हैं
निश्चय राज्य बदलना होगा शासक, नेताशाही का
पदलोलुपता दलबंदी का भ्रष्ट्राचार तबाही का''[22]

इस प्रकार कवि नागार्जुन ने राजनीतिक नेताओं, धार्मिक ठेकेदारों, स्वार्थियों, भष्ट्राचारियों, अवसरवादियों, अत्याचारियों और पांखड़ी साधुओं पर व्यंग्य के साथ-साथ विद्रोह, विरोध और क्रांतिकारी मनोभावों की भी व्यंजना की है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची:-

1. डॉ.विजय बहादुर सिंह, नागार्जुन का रचना संसार, पृ. 59
2. डॉ.हरिचरण शर्मा, नए प्रतिनिधि कवि, पृ. 29
3. नागार्जुन, युगधारा, पृ. 73-74
4. वही, पृ. 76
5. नगार्जुन, सतरंगे पंखोवाली, पृ. 30
6. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. 39-40
7. वही, पृ. 52
8. नागार्जुन, खिंचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. 17
9. वही, पृ. 32
10. वही, पृ. 60-61
11. वही, पृ. 133
12. नागार्जुन, खिंचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. 17
13. वही, पृ. 49
14. वही, पृ. 89
15. वही, पृ. 143
16. वही, पृ. 126
17. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. 63
18. नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या?, पृ. 11
19. वही, पृ. 22
20. नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. 50-51
21. नागार्जुन, इस गुब्बारे कि छाया में, पृ. 80
22. जनयुग, 4 जनवरी, 1967

राजस्थान के कृषि विश्वविद्यालयों और संस्थानों मे उपयोगकर्ताओं द्वारा पुस्तकालयों में इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों के उपयोग की आवृत्ति, अवधि और प्रशिक्षण के स्वरुप का अध्ययन

डॉ० कन्हैया लाल शर्मा

वनस्थली विश्वविद्यालय, तह. निवाई, टोंक, राजस्थान-304022

सारांश

उपयोगकर्ताओं द्वारा इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों के उपयोग की आवृत्ति, इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों के लिए अवधि और इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों के संचालन के लिए उपयोगकर्ताओं द्वारा प्राप्त प्रशिक्षण के स्वरूप को जानने का प्रयास किया गया है। प्रश्नावली को दो सौ पचास उपयोगकर्ताओं को यादृच्छिक न्यादर्श पर वितरित किया गया हैं। सर्वेक्षण के परिणाम यहबताते हैं कि अधिकतम कृषि वैज्ञानिक अपने शैक्षणिक उपयोग के लिए प्रतिदिन अपने पुस्तकालयमें उपलब्ध ई-संसाधनों का उपयोग कर रहे हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने ई-संसाधनों का उपयोग सप्ताह में केवल एक बार किया और बाकी ने कभी-कभी ही इसका उपयोग किया। शोधकर्ताओं और छात्रों की स्थिति भी लगभग यही बताई गई। कुछ उपयोगकर्ता ऐसे हैं जो ई-संसाधनों का उपयोग कभी-कभी करते हैं। कतिपय उपयोगकर्ताओं ने कभी भी ई-संसाधनों का उपयोग नहीं किया। अधिकांश उपयोगकर्ताओं ने बताया कि उन्होंने कंप्यूटर के उपयोग के लिए कोई औपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया है।

मुख्य शब्दः पुस्तकालय उपयोग, उपयोग आवृत्ति, इलेक्ट्रॉनिक संसाधन, इलेक्ट्रॉनिक पुस्तकें, इलेक्ट्रॉनिक जर्नल और ओपेक

1 परिचय

इलेक्ट्रॉनिक संसाधन अनुसंधान और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनका उपयोग स्कैनिंग, इमेजिंग, भंडारण, प्रसंस्करण, पुनर्प्राप्ति और सूचना प्रसारित करने में किया जाता है। सीडी, ई-बुक्स, ई-जर्नल्स, इंटरनेट और ओपेक आदि जैसे सभी इलेक्ट्रॉनिक संसाधन धीरे-धीरे प्रिंट मीडिया के महत्व और उपयोग की जगह ले रहे हैं।

2. क्षेत्र और सीमाएँ

इस शोध कार्य में राजस्थान के कृषि विश्वविद्यालयों एवं संस्थानों के पुस्तकालय को शामिल किया गया हैं। पुस्तकालय कर्मचारियों और उपयोगकर्ताओं से वास्तविक स्थान पर किये गए सर्वेक्षण मेंमिले प्राथमिक प्रदत्तों के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त किये गए हैं। न्यादर्श में राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर, महाराणाप्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर; केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर; राष्ट्रीय ऊँट अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर; भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर का केंद्र; राष्ट्रीय शुष्क बागवानी अनुसंधानकेंद्र, बीकानेर के 150 कृषि वैज्ञानिक, 50 शोधकर्ता और स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर के कुल50 विद्यार्थी शामिल किये गए है।

3. अध्ययन का उद्देश्य

इस अध्ययन के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार थे:

A. उपयोगकर्ताओं द्वारा इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों के उपयोग की आवृत्ति को जानना।

B. उपयोगकर्ताओं द्वारा इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों के उपयोग की अवधि कोजानना।

C. इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों के संचालन के लिए उपयोगकर्ताओं द्वारा प्राप्त प्रशिक्षण के स्वरुप को जानने का प्रयास किया गया है।

4. परिकल्पना

इस अध्ययन के लिए वैचारिक ढांचे और संबंधित साहित्य की समीक्षा के आधार पर निम्नलिखित धारणाएँ बनाई गई हैं:

A. कृषि क्षेत्र में अब ई-संसाधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं।

B. कृषि वैज्ञानिक अक्सर विभिन्न प्रकार के ई-संसाधनों का उपयोग कर रहे हैंI

C. इलेक्ट्रॉनिक संसाधन के उपयोग के लिए उपयोगकर्ताओं को कई औपचारिक और अनौपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त हुये हैंI

5. कार्यप्रणाली

राजस्थान के कृषि वैज्ञानिकों (कृ.वै.),), अनुसंधान विद्वानों (अ.वि.) और कृषि विश्वविद्यालयों और संस्थानों के विद्यार्थियों(वि.) से प्रासंगिक जानकारी एकत्र करने के लिए शोधकर्ता द्वारा एक प्रश्नावली विकसित और और वितरित की गई है। उत्तरदाताओं द्वारा दी गई जानकारी और प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण और व्याख्या की गई।

6. डेटा विश्लेषण

उत्तरदाताओं द्वारा दी गई जानकारी और प्रतिक्रियाओं को वर्णनात्मक आंकड़ों और ची-स्क्वायर की मदद से अनुमानित आंकड़ों के रूप में मात्राबद्ध और विश्लेषण किया गया है।

6.1 उपयोगकर्ताओं द्वारा इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों के उपयोग की आवृत्ति

हमने राजस्थान के कृषि विश्वविद्यालयों और आईसीएआर संस्थानों के पुस्तकालयों के उपयोगकर्ताओं से भी पूछताछ की, कि वे अपने काम में ई-संसाधनों का कितनी बार उपयोग करते हैं। उनसे प्राप्त परिणाम निम्नलिखित तालिका 1 में सारणीबद्ध हैं।

तालिका 1: ई-संसाधनों का उपयोग करने वाले उपयोगकर्ताओं की आवृत्ति

क्र.सं.	उपयोग की आवृत्ति	प्रतिक्रियाएँ					
		कृ.वै.	%	अ.वि.	%	वि.	%
1	**दैनिक**	105	70.00	35	70.00	37	74.00
2	**सप्ताह में कम से कम एक बार**	28	18.67	8	16.00	8	16.00
3	**पखवाड़े में कम से कम एक बार**	8	5.33	3	6.00	2	4.00
4	**20 दिन में कम से कम एक बार**	6	4.00	2	4.00	1	2.00
5	**महीने में कम से कम एक बार**	1	0.67	1	2.00	1	2.00
6	**शायद ही कभी**	2	1.33	1	2.00	1	2.00
कुल		**150**	**100**	**50**	**100**	**50**	**100**

तालिका 1 पुस्तकालयों में इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों के उपयोग की आवृत्ति से संबंधित परिणामों को दर्शाती है। 70% कृषि वैज्ञानिकों ने उत्तर दिया कि वे अपने शैक्षणिक उपयोग के लिए प्रतिदिन अपने पुस्तकालय में उपलब्ध ई-संसाधनों का उपयोग करते हैं। हालाँकि, 19% वैज्ञानिकों ने ई-संसाधनों का उपयोग सप्ताह में केवल एक बार करना बताया और बाकी ने कभी-कभी ही इसका उपयोग किया। शोधार्थी एवं विद्यार्थियों की स्थिति भी लगभग इसी प्रकार प्रदर्शित हो रहीं है।

स्वतंत्रता का ची-स्क्वायर परीक्षण गैर-महत्वपूर्ण पाया गया, इस प्रकार उत्तरदाताओं की श्रेणी से स्वतंत्र उपयोगकर्ताओं द्वारा अक्सर ई-संसाधनों का उपयोग किया जाता है।

$\chi^2_{cal} = 2.038$ NS $\qquad$ $p = 0.996$ $\qquad$ $\left[\chi^2_{tab,\ 10,\ 5\%} = 18.307\right]$

NS= महत्वहीन

6. इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों के लिए उपयोगकर्ताओ केउपयोग की अवधि

पुस्तकालयों में आई टी अनुप्रयोग पर विचार करते समय इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों के लिए उपयोगकर्ताओ के उपयोग की अवधि काभी महत्त्व रखती हैं। इसलिए हमने अपने उपयोगकर्ताओं के सामने एक प्रश्न रखाहै कि वे अपने पुस्तकालयों के ईसंसाधनों काउपयोग करने के लिय प्रतिदिन कितनी अवधि का उपयोग करते हैं। उनकी प्रतिक्रियाएँ निम्न लिखित तालिका 2 में सारणी बद्ध हैं।

तालिका 2: इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों के लिए उपयोगकर्ताओ केउपयोग की अवधि

S. No.	अवधि	प्रतिक्रियाएँ					
		कृ.वै.	%	अ.वि.	%	वि.	%
1	प्रतिदिन 4 घंटे से अधिक	2	1.33	2	4.00	2	4.00
2	प्रतिदिन 4 घंटे	8	5.33	4	8.00	6	12.00
3	प्रतिदिन 3 घंटे	10	6.67	4	8.00	4	8.00
4	प्रतिदिन 2 घंटे	36	24.00	16	32.00	8	16.00
5	प्रतिदिन 1 घंटा	90	60.00	20	40.00	18	36.00
6	कभी नहीं	4	2.67	4	8.00	12	24.00
कुल		**150**	100.00	100.00	**100**	**50**	**100**

तालिका 2 पुस्तकालयों में इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों के लिए उपयोगकर्ताओं द्वारा बिताई गइ अवधि को दर्शाती है। 60.00% कृषि वैज्ञानिकों ने बताया कि वे प्रतिदिन लगभग एक घंटा ई-संसाधनों का उपयोग करते हैं। उपरोक्त तालिका के विश्लेषण से पता चलता है कि 1.33% वैज्ञानिक, 4.00% अनुसंधान विद्वान और छात्र पुस्तकालय में ई-संसाधनों पर प्रतिदिन चार घंटे से अधिक समय दे रहे हैं। लगभग 7% कृषि वैज्ञानिक, 8% अनुसंधान विद्वान और छात्र ई-संसाधनों पर प्रतिदिन लगभग 3 घंटे समर्पित करते हैं। 24% वैज्ञानिक, 32% शोधार्थी और 16% छात्र ई-संसाधनों के उपयोग के लिए प्रतिदिन 2 घंटे समर्पित करते हैं। हालाँकि, कुछ उपयोगकर्ता ऐसे भी हैं जिन्होंने कभी भी ई-संसाधनों का उपयोग नहीं किया।

ची-स्क्वायर परीक्षण गैर-महत्वपूर्ण पाया गया जिसके परिणामस्वरूप ई-संसाधनों के लिए उपयोगकर्ताओं द्वारा समर्पित घंटों की संख्या के मुकाबले उपयोगकर्ता की श्रेणी की स्वतंत्रता हुई।

$$\chi^2_{cal} = 64.514\ ** \qquad \left[\chi^2_{tab,\ 10,\ 5\%} = 18.307\right]$$

** अत्यधिक महत्वपूर्ण

6.3 इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों के संचालन के लिए उपयोगकर्ताओं द्वारा प्राप्त प्रशिक्षणका स्वरुप कंप्यूटर संचालन के लिए उपयोगकर्ताओं में विशेष कौशल की आवश्यकता होती है। कम्प्यूटर साक्षरता प्राप्त किये बिना उपयोगकर्ताओं द्वारा ई-संसाधनों का स्वतंत्र रूप से उपयोग संभव नहीं है। इसलिए, हमने राजस्थान के कृषि विश्वविद्यालयों और आईसीएआर संस्थानों के पुस्तकालयों के उपयोगकर्ताओं से पूछताछ की कि क्या उन्होंने कंप्यूटर कौशल विकसित करने के लिए कोई औपचारिक या अनौपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त किया है। उनके द्वारा दिये गये उत्तर निम्न तालिका 3 में प्रस्तुत किये गये हैं।

तालिका 3: ई-संसाधनों का उपयोग करने के लिए उपयोगकर्ताओं द्वारा प्राप्त प्रशिक्षण का प्रका

क्रम संख्या	प्रशिक्षणकास्वरुप	प्रतिक्रियाएँ					
		कृ.वै.	%	अ.वि.	%	वि.	%
1	औपचारिक प्रशिक्षण	55	36.67	19	38.00	22	44.00
2	अनौपचारिक प्रशिक्षण	95	63.33	31	62.00	28	56.0
कुल		**150**	**100**	**50**	**100**	**50**	**100**

उपरोक्त तालिका 3 पुस्तकालयों में इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों के संचालन के लिए उपयोगकर्ताओं द्वारा प्राप्त प्रशिक्षण के स्वरुप से संबंधित परिणामों को दर्शाती है। 63.33% वैज्ञानिकों, 62% अनुसंधान विद्वानों और 56% छात्रों ने बताया कि उन्होंने कंप्यूटर के उपयोग के लिए कोई औपचारिक प्रशिक्षण नहीं लिया है। उन्होंने कंप्यूटर पर बैठकर ही कंप्यूटर कौशल विकसित किया है। हालाँकि 37% वैज्ञानिकों, 38% अनुसंधान विद्वानों और 44% छात्रों ने कंप्यूटर के औपचारिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में शामिल होकर कंप्यूटर कौशल विकसित करना बताया।

ची-स्क्वायर परीक्षण गैर-महत्वपूर्ण पाया गया और डेटा से पता चलता है कि ई-संसाधनों के संचालन के लिए उत्तरदाताओं की सभी तीन श्रेणियों में अधिकांश उपयोगकर्ताओं द्वारा गैर-औपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त किया गया है।

$$\chi^2_{cal} = 0.857\ \text{NS}\, p = 0.652 \qquad \left[\chi^2_{tab,\ 2,\ 5\%} = 5.991\right]$$

NS= महत्वहीन

7. निष्कर्ष

अध्ययन के मुख्य निष्कर्ष इस प्रकार हैं:

1. अधिकतम कृषि वैज्ञानिकों ने उत्तर दिया कि वे अपने शैक्षणिक उपयोग के लिए प्रतिदिन अपने पुस्तकालय में उपलब्ध ई-संसाधनों का उपयोग करते हैं। हालाँकि, कुछ वैज्ञानिक ई-संसाधनों का उपयोग सप्ताह में केवल एक बार करते हैं और बाकी वैज्ञानिको ने बतया की इनका उपयोग कभी-कभार ही करते हैं। रिसर्च स्कॉलर और छात्रों की स्थिति भी कमोवेश यही थी.
2. अधिकतम कृषि वैज्ञानिकों ने बताया कि वे प्रतिदिन लगभग एक घंटा ई-संसाधनों का उपयोग करते हैं। वैज्ञानिक, शोधार्थी और छात्र प्रतिदिन पुस्तकालय में ई-संसाधनों पर चार घंटे से अधिक समय बिताते है। कुछ कृषि वैज्ञानिक, अनुसंधान विद्वान और छात्र प्रतिदिन लगभग 3 घंटे ई-संसाधनों का उपयोग करते हैं। हालाँकि, कुछ उपयोगकर्ता ऐसे भी हैं जो ई-संसाधनों का उपयोग कभी-कभार ही कर रहे हैं। बहुत कम उपयोगकर्ताओं ने जवाब दिया कि उन्होंने कभी भी ई-संसाधनों का उपयोग नहीं किया है।
3. अधिकतम कृषि वैज्ञानिकों, अनुसंधान विद्वानों और छात्रों ने बताया कि उन्होंने ई-संसाधनों के उपयोग करने के लिए कोई औपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया है। उन्होंने कंप्यूटर पर बैठे-बैठे ही कंप्यूटर संबंधी कौशल विकसित कर लिया। हालाँकि, कुछ वैज्ञानिकों, अनुसंधान विद्वानों और छात्रों ने कंप्यूटर के औपचारिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में शामिल होकर कंप्यूटर से संबंधित कौशल विकसित करना बताया।

8. सुझाव

वर्तमान अध्ययन के उपरोक्त परिणामों के आधार पर राजस्थान राज्य के कृषि विश्वविद्यालयों एवं संस्थानों के पुस्तकालयों में ई-संसाधनों के अधिक से अधिक उपयोग को बढाने के लिये निम्नलिखित सुझाव/सिफारिशें की जा सकती हैं-

1. अध्ययन के नतीजे बताते हैं कि अधिकतम कृषि वैज्ञानिक, विद्वान और छात्र अपने शैक्षणिक उपयोग के लिए प्रतिदिन उपलब्ध ई-संसाधनों का उपयोग कर रहे हैं। यह एक अच्छा संकेत है. पुस्तकालयप्रबंधन अपनी पुस्तकालयको अद्यतन रखकर इस स्थिति को बनाए रख सकता है। संसाधन अद्यतन करने के लिए उपयोगकर्ताओं की भविष्य की जरूरतो का ध्यान रखना महत्वपूर्ण हैं। पुस्तकालयों को ई-संसाधनों की संभावित आवश्यकता जानने के लिए उपयोगकर्ता की आवश्यकता का सर्वेक्षण करना चाहिए।
2. कुछ वैज्ञानिक, विद्वान और छात्र ई-संसाधनों का उपयोग सप्ताह में केवल एक बार करते हैं और कुछ उपयोगकर्ता ई-संसाधनों का बार-बार उपयोग नहीं कर रहे हैं। यह स्थिति वास्तव में चिंताजनक है और बताती है कि विशेष कारणों का पता लगाने के लिए उपयोगकर्ता सर्वेक्षण आयोजित करने की बहुत आवश्यकता है।
3. अध्ययन के परिणाम ई-संसाधनों के उपयोग के विभिन्न पैटर्न को प्रदर्शित करते हैं। अधिकांश उपयोगकर्ता प्रतिदिन लगभग एक घंटे से लेकर 4 घंटे, या इससे अधिक समय तक ई-संसाधनों का उपयोग कर रहे हैं। ऐसे शोधार्थी और छात्र जिन्होंने कभी भी ई-संसाधनों का उपयोग नहीं किया, उनकी भी एक बड़ी संख्या है। यह परिणाम बार-बार आयोजित किए जाने वाले अभिविन्यास कार्यक्रमों और उपयोगकर्ता जागरूकता कार्यक्रमों की आवश्यकता को दर्शाता है।
4. अध्ययन के नतीजे यहबताते हैं कि अधिकांश कृषि वैज्ञानिकों, अनुसंधान विद्वानों और छात्रों ने ई-संसाधनों के उपयोग के लिए कोई औपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया है। उन्होंने कंप्यूटर पर बैठकर ही ई-संसाधनों के उपयोग एवं कंप्यूटर संबंधी कौशल विकसित किया है। हालाँकि, कुछ वैज्ञानिकों, अनुसंधान विद्वानों और छात्रों ने कंप्यूटर के औपचारिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में शामिल होकर कंप्यूटर से संबंधित कौशल विकसित किया है। शोध बताते हैं कि ई-संसाधनों के उपयोग में कंप्यूटर संबंधी कौशल महत्वपूर्ण हैं। पुस्तकालय अपने उपयोगकर्ताओं के लिए औपचारिक बुनियादी और उन्नत प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित कर सकते हैं। इस प्रकार के कार्यक्रमों का पूर्ण उपयोग हो सकता है और ई-संसाधनों का उपयोग बढाया जा सकता है।
5. पुस्तकालयों द्वारा सब्सक्राइब किए गए ई-संसाधनों की उपयोगिता का मूल्यांकन पुस्तकालय में उनके उपयोग और मूल्य के आधार पर किया जाना चाहिए। स्पष्ट अनुमान प्राप्त करने के लिए उपयोगकर्ता की प्रतिक्रिया ली जा सकती है। सदस्यता जारी रखने या बंद करने के संबंध में निर्णय उपयोगकर्ताओं के आवधिक सर्वेक्षण पर आधारित होना चाहिए।
6. राजस्थान राज्य के कृषि विश्वविद्यालयों एवं संस्थानों के पुस्तकालयों में उचित इंटरनेट सुविधाएं उपलब्ध कराई जाये। उपयोगकर्ताओं को आकर्षित करने के लिए इंटरनेट की पर्याप्त गति बनाए रखी जानी चाहिए।
7. ई-संसाधनों के अधिक से अधिक बार उपयोग को आकर्षित करने के लिए उन्नत सॉफ्टवेयर और नवीनतम कॉन्फिगर कंप्यूटर हार्डवेयर आवश्यक हैं, इसलिए सभी पुस्तकालयों को अलग से बजट दिया जाना चाहिये।

संदर्भ

1. हेविट्सन, एंड्रयू (2002)। लीड्स मेट्रोपॉलिटन यूनिवर्सिटी में अकादमिक कर्मचारियों द्वारा इलेक्ट्रॉनिक सूचना सेवाओं का उपयोग और जागरूकता-एक मात्रात्मक अध्ययन। जर्नल टू लाइब्रेरियनशिप एंड इंफॉर्मेशन साइंस, 34(1), 43-52।
2. किनेंग्येरे, टी. और एनेट, एलीसन (2007)। युगांडा में चयनित शैक्षणिक और अनुसंधान संस्थानों में इलेक्ट्रॉनिक सूचना संसाधनों के उपयोग पर सूचना साक्षरता का प्रभाव। इलेक्ट्रॉनिक लाइब्रेरी, 25(3), 328-341।
3. लोहार एम. एस. एवं रूपश्री, टी. एन. (2005). बीआईईटी, दावणगेरे में संकाय सदस्यों द्वारा इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों का उपयोग: एक सर्वेक्षण। सूचना प्रबंधन के SRELS जर्नल.43
4. मोहम्मद, एच.के.(2007)। केरल में विशेष पुस्तकालयों में आईसीटी आधारित संसाधनों और सेवाओं का उपयोग। ऐन. लिब. इंफ. अध्ययन., 54, 23-31.
5. वॉन, जेसन (2004). शैक्षणिक पुस्तकालयों में कंप्यूटिंग प्रौद्योगिकी के उपयोग को नियंत्रित करने वाली नीतियां। इंफ. टेक. लिब., 23(4), 153-167.

हिन्दी पत्रकारिता में गिरते भाषायी स्तर की प्रवृत्तियों का अध्ययन

सर्वजीत गांधी

शोधार्थी, साबरमती विश्वविद्यालय, अहमदाबाद

भूमिका

भूमण्डलीकरण के दौर में उदार आर्थिक नीतियों को अपनाते हुए देश को वैश्वीकरण की उस धारा में बहने की खुली छूट दे दी गयी, जिस धारा में पाश्चात्य जगत काफी पहले से बहकर अपने पुराने आवरण को त्यागकर नया लिवास धारण कर चुका था। इस लिबास के अनेक सकारात्मक और नकारात्मक पहलू हैं। उदारीकरण और वैश्वीकरण की नीतियों के परिणामस्वरूप भारत में भी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर कई क्रांतिकारी बदलाव हुए।

इन परिर्वतनों में एक खास परिवर्तन देश के साक्षरता दर में हुई वृद्धि है। जनमाध्यमों ने भी समय की जरूरतों और मांग के अनुसार खुद को बदला है और बदलाव की यह प्रक्रिया लगातार जारी है। इन दो दशकों में हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन दृष्टिगत हुए हैं। वर्ष 1995 के बाद केबल टीवी और निजी चैनलों के आगमन का असर भी हिन्दी पत्रकारिता पर खासतौर पर पड़ा। इस दौरान तकनीकी क्रांति भी अभूतपूर्व रही। हिन्दी के नए-नए न्यूज चैनल्स वजूद में आने लगे। उन पर 24 घंटे खबरें प्रसारित की जाने लगी। इस तरह हिन्दी पत्रकारिता ने देश के उन सात हिन्दी भाषी प्रदेशों में सफलता के नए आयाम गढ़े हैं और बहुत हद तक अपनी जिम्मेदारियों को निभाया भी है। लेकिन इसके बावजूद पिछले कुछ समय से हिन्दी पत्रकारिता में भाषा के स्तर को लेकर एक नई बहस छिड़ी हुई है। बहस इस बात को लेकर हो रही है कि हिन्दी पत्रकारिता में भाषायी गिरावट हो रही है।

पत्रकारिता की भाषा मानक हिन्दी भाज़ा से दूर होती जा रही है और उसमें एक बनावटीपन आ गया है। इस भाषा को एक सस्ती और बाजारू भाषा के तौर पर देखा जा रहा है। इस भाषायी गिरावट के लिए कभी बाजार तो कभी हिन्दी भाषी पत्रकारों को जिम्मेदार ठहराया जा रहा है।

आलोचकों को हिन्दी पत्रकारिता में उर्दू, फारसी, इंग्लिश या किसी अन्य भारतीय भाषाओं के लोकप्रिय शब्दों के प्रयोग पर एतराज है और वे इसका पुरजोर विरोध करते हैं। वे इसे हिन्दी के लिए एक बड़ा खतरा मानते हैं। इसके विपरीत हिन्दी के प्रगतिशील लेखक, विचारक और साहित्यकार हिन्दी पत्रकारिता के वर्तमान भाषा और स्वरूप से पूरी तरह संतुष्ट दिख रहे हैं। वे हिन्दी पत्रकारिता में इंग्लिश या किसी दूसरी भारतीय भाषा के जनप्रिय शब्दों का प्रयोग करना गलत नहीं मान रहे हैं बल्कि भाशा के इस संक्रमण से उन्हें हिन्दी का ही फायदा नजर आ रहा है। उनका मत है कि इससे हिन्दी आम जन की भाषा बन रही है। इसके साथ ही यह बाजार और रोजगार की भाषा बन रही है। ऐसे में इस समस्या का अध्ययन करना प्रासंगिक जान पड़ता है।

शोध का उद्देश्य

* हिन्दी पत्रकारिता में हो रही भाषायी गिरावट के स्वरूप का अध्ययन करना।
* हिन्दी पत्रकारिता में भाषायी गिरावट के पीछे के कारणों का पता लगाना।

शोध प्रविधि

इस शोधा समस्या के अध्ययन के लिए गहन अध्ययन विधि का प्रयोग किया गया है। जो एक गुणात्मक अध्ययन विधि है। इसमें शोध समस्या के बारे में गहन साक्षात्कार के माध्यम से समस्या के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया गया है।

समग्र एवं निदर्शन

समग्रः इस अध्ययन में समग्र के रूप में पत्रकारिता जगत के स्तंभ पत्रकारों और संपादकों को धामिल किया गया है।

निदर्शनः

उद्देश्यपूर्ण निदर्शन(Purposive sampling)

साक्षात्कार के लिए उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि के माध्यम से इकाई का चुनाव किया गया है। जब शोध समस्या की प्रकृति वैशेषिक होती है तब निदर्शन के लिए उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि यह शोध समस्या विशेष प्रकार की है। जहां विषय विशेषज्ञों के साक्षात्कार की जरूरत

थी। इस अध्ययन के लिए उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में कार्यरत प्रतिष्ठित पत्रकार शान्तनु श्रीवास्तव, नवीन कुमार और प्रिंट मीडिया से आउटलुक हिन्दी के संपादक नीलाभ मिश्र, दैनिक हिन्दुस्तान के वरिष्ट पत्रकार प्रताप सोमवंशी का चयन किया गया है।

अधययन का विवेचन

पत्रकारिता में प्रयोग की जाने वाली भाषा आम बोलचाल की भाषा है क्योंकि पत्रकारिता का लक्ष्य आमजन को संबोधित करना होता है। बोलचाल की भाषा का प्रचलन बढ़ा है और हिन्दी हिंग्लिश हो गई है। देशज तथा लोकल भाषा का चलन तेजी से बढ़ रहा है। पत्रकारिता की हिन्दी ने साहित्य या बुद्धिजीवी वर्ग की शुद्ध या संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के आवरण को उतार फेंका है। उसने वैसी हिन्दी का लिबास ओढ़ लिया है जो आम जन के समझ में आने वाली भाषा हो। इसके लिए हिन्दी ने इंग्लिश, उर्दू और फारसी के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं के उन लोकप्रिय शब्दों को भी अपना लिया है जो अब हिन्दी भाषियों के जुबान पर रच-बस गया है।

शान्तनु श्रीवास्तव का कहना है कि पत्रकारिता की भाषा साहित्य की भाषा नहीं होती। साहित्य एक विशेष लक्ष्य समूह के लिए लिखा जाता है, जबकि समाचारपत्र आम जन को लक्षित कर प्रकाशित किए जाते हैं। ऐसे में पत्रकारिता पर यह आक्षेप लगाना तर्कसंगत नहीं है।

यह बदलाव पत्रकारीय भाषा के जनोन्मुखी होने का परिणाम या प्रतिफल है। किसी भी भाषा की जड़ें उस भाषा के बोलने वाले लोगों के सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक विरासत में छुपी होती है। जब किसी समाज के इन तीन तत्वों में बदलाव या परिर्वतन की बयार चलती है तो उसका असर उस समाज द्वारा बोले जाने वाली भाज़ा पर भी समान रूप से पड़ता है।

नीलाभ मिश्र ने बताया कि मीडिया समाज का प्रतिबिंब है और वह अपने पाठक या दर्शक से अपना संवाद उसी भाषा में करता है जो लोगों द्वारा आसानी से समझी और बोली जाती हो। हिन्दी के साथ भी कुछ ऐसा ही है। समय के अनुसार हिन्दी ने खुद को बदला है और ढाला है। यह बदलाव समय सापेक्ष है। इससे हिन्दी फल-फूल रही है। हिन्दी अपने देश की सीमा लांघ कर विदेशों तक पहुंच रही है। यह आज गैर हिन्दी भाषियों को अपनी ओर आकर्षित कर रही है और कहीं न कहीं इस बदलाव से हिन्दी ज्यादा सरल और आकर्षक बन कर उभरी है।

वर्तमान दौर में बाजार के दबाव ने पत्रकारिता में आमूल-चूल परिवर्तन किया है। भाषा का भी बाजारीकरण हुआ है। जैसे-जैसे मीडिया का चरित्र बदल रहा है यह एक बाजारू उत्पाद के रूप में तब्दील होता हुआ दिख रहा है। इसका लक्ष्य उपभोक्ताओं को आकर्षित करना है। हालांकि अगर हिन्दी भाषा के दृष्टि से देखा जाए तो यह उचित नहीं है। पत्रकारिता में आयी इस भाषायी गिरावट के लिए कहीं न कहीं अल्पज्ञान वाले नौसिखिए पत्रकार भी जिम्मेदार हैं। इस भाषायी गिरावट ने मानक हिन्दी भाषा के स्वरूप में भी बदलाव का सृजन किया है और इस गिरावट से हिन्दी पूरी तरह प्रभावित दिख रही है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि पत्रकारिता में हिंग्लिश के चलन को रोका जाए। मानक हिन्दी भाषा के सरलीकरण पर जोर दिया जाए, क्योंकि उधार, उधार ही होता है और अपना, अपना ही होता है।

भाषायी समृद्धि के लिए हिन्दी के साहित्यकारों को आगे आने की जरूरत है। उन्हें अपनी साहित्यिक सृजनात्मकता में सरल शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

अगर मानक शब्दों का प्रयोग प्रासंगिक और जरूरी हो तो शब्द प्रयोग के साथ उसे आम बोलचाल की भाषा में स्पष्ट करने का प्रयास करना चाहिए जिससे पाठक को उसे समझने में सहजता हो। हिन्दी भाषा में सरल शब्दों के प्रयोग को बढ़ावा देना चाहिए। यह बदलते दौर की मांग है कि अन्य भाषायी शब्दों का भी हिन्दीकरण किया जाए।

वहीं प्रताप सोमवंशी ने बताया कि समाचार पत्रों की भाषा में हो रहा बदलाव आज की आवश्यकता है क्योंकि तकनीकी विकास ने लोगों की जीवन शैली में व्यापक परिवर्तन किया है। आज भारत की आबादी में युवा बहुसंख्यक हैं उनकी आवश्यकताएं और बढती प्रतिस्पर्धा ने पठनीयता की प्रवृत्ति को तेजी से बदला है। ऐसे में कम समय में खबरों की संप्रेषणीयता अखबार के लिए एक चुनौती है। वहीं इलेक्ट्रानिक मीडिया से मिल रही प्रतियोगिता भी इसके पीछे एक महत्वपूर्ण कारक साबित हो रही है।

निष्कर्षः- हिन्दी पत्रकारिता में भाषायी बदलाव का मुख्य कारण बदलते सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक परिर्वतन का परिणाम है। पत्रकारिता वैसी भाषा का प्रयोग अपने संप्रेषण में करता है जो आम लोगों के लिए बोधगम्य हो। पत्रकारिता की भाषा साहित्य की भाषा नहीं होती। साहित्य एक विशेष लक्ष्य समूह के लिए लिखा जाता है जबकि समाचारपत्र आम जन को लक्षित कर प्रकाशित किए जाते हैं। भाषायी समृद्धि के लिए हिन्दी के साहित्यकारों को आगे आने की जरूरत है। उन्हें अपनी साहित्यिक सृजनात्मकता में सरल शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। हिन्दी भाषा में सरल शब्दों के प्रयोग को बढ़ावा देना चाहिए। यह बदलते दौर की मांग है कि अन्य भाषायी शब्दों का भी हिन्दीकरण किया जाए। क्योंकि उधार, उधार ही होता है और अपना, अपना ही होता है। पत्रकारिता का लक्ष्य आमजन को संबोधित करना होता है। इसमें बोलचाल की भाज़ा का प्रचलन बढ़ा है और हिन्दी हिंग्लिष्ठा हो गई है। देष्ठाज तथा लोकल भाषा का भी चलन तेजी से बढ़ रहा है। बाजार के सामने भाषा की शुद्धता के बजाए नए-नए उपभोक्ताओं की तलाश और पहचान कर उन तक अपना उत्पाद बेचेने का लक्ष्य है।

बाजार की जरूरत एक ऐसी हिन्दी भाषा की है जो सामान्य हिन्दी भाषियों के साथ-साथ देश में तेजी से उभर रहे उन मध्यमवर्गीय परिवारों की भी भाषा हो जिनके पास अपार क्रयशक्ति है। भाषायी परिवर्तन आज समय की मांग है परन्तु बदलाव इतना न किया जाय कि हम अपनी पहचान ही भूल जाएं। आज कहीं न कहीं ऐसा लग रहा है कि हिन्दी भाषा अपनी पहचान को खो रही है। इसलिए जरूरत है कि हिन्दी को समृद्ध और सरल बनाया जाय।

संदर्भग्रंथ

हिन्दी पत्रकारिता का बदलता स्वरूप, श्रवण कुमार, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2009
पत्रकारिता के विविध आयाम, डॉ यू सी गुप्ता, अर्जून पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2012
मीडिया के रूझान, योजना, मई 2009
पत्रकारिता के नये परिप्रेक्ष्य, राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005

पंचायती राज संस्थानों में सत्ता का विश्लेषण

डॉ० ईश्वर स्वरूप सहाय

पर्यवेक्षक

प्रीति कुमारी

शोधार्थीनी

सार

भारतीय संविधान का 73वां संशोधन सत्ता के हस्तांतरण और लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के लिए एक महत्वपूर्ण तंत्र के रूप में विकसित हुआ है। इसका खाका शक्ति संबंध को तीन स्तरों पर बदलना था, यानी परिवार, समुदाय और राज्य के उपकरण। पंचायती राज संस्थानों में वंचित समूहों (जाति, लिंग और जनजातियों) के प्रतिनिधित्व पर अध्ययन ने इन समूहों के खिलाफ निरंतर भेदभाव को उजागर किया है। यह लेख अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं से संबंधित निर्वाचित प्रतिनिधियों के प्रदर्शन को प्रभावित करने वाले सक्षम और अक्षम दोनों कारकों का विश्लेषण करता है। अध्ययन के निष्कर्ष (गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों) सामान्य के साथ-साथ समूह-विशिष्ट सक्षम और अक्षम करने वाले कारकों को उजागर करते हैं जो पंचायती राज संस्थानों में निर्वाचित प्रतिनिधियों के प्रदर्शन को प्रभावित करते हैं।

कीवर्ड: पंचायती राज, विकास, बहिष्करण, विकेंद्रीकरण, हस्तांतरण

परिचय

स्थानीय प्रशासन में मौजूद विसंगतियों को दूर करने और जमीनी स्तर पर शासन की प्रक्रिया को मजबूत करने के लिए 23 दिसंबर 1992 को 73वां संविधान संशोधन अस्तित्व में आया। पंचायती राज में सुधार गुणवत्तापूर्ण सार्वजनिक सेवाओं की दक्षता, खुलेपन और पहुंच को संबोधित करने और समावेश के साथ विकास को बढ़ावा देने के लिए किए गए थे। यह हाशिए के समुदायों और समूहों के 'समावेश' लाने के लिए एक संस्था बनाने की बढ़ती मांग की प्रतिक्रिया भी थी। इसने पंचायती राज संस्थानों में अनुसूचित जाति (एससी), अनुसूचित जनजाति (एसटी) और महिलाओं जैसे भेदभाव वाले और हाशिए के समुदायों का प्रतिनिधित्व किया है। संवैधानिक रूप से, इन समूहों के लिए कुछ प्रतिशत सीटें आरक्षित हैं ताकि उनका प्रतिनिधित्व और निर्णय लेने की प्रक्रिया में भागीदारी हो सके। लेकिन पंचायती राज संस्थाओं के प्रदर्शनकारी पहलू ने उनकी 'जाति', 'जातीय' और लिंग पृष्ठभूमि के कारण चुने हुए प्रतिनिधियों के चुनिंदा बहिष्कार को उजागर कर दिया है। संक्षेप में, भारत के संविधान ने हाशिए पर पड़े समूहों के प्रतिनिधित्व की गारंटी दी है लेकिन उनकी प्रभावी और समावेशी भागीदारी की गारंटी देने में विफल रहा है। हाशिए के समुदायों और समूहों के निर्वाचित प्रतिनिधि वंचित हैं और पंचायती राज संस्थाओं द्वारा प्रशासित विभिन्न विकास कार्यक्रमों तक पहुँचने से सूक्ष्म रूप से रोका जाता है।

इस पृष्ठभूमि के खिलाफ, यह लेख पंचायती राज संस्थाओं के कामकाज में ईआर, विशेष रूप से निर्वाचित अनुसूचित जाति प्रतिनिधियों (ईएससीआर), निर्वाचित अनुसूचित जनजाति प्रतिनिधियों (ईएसटीआर) और निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों (ईडब्ल्यूआर) की भागीदारी में सक्षम और अक्षम करने वाले कारकों को समझने का प्रयास करता है मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों डेटा का उपयोग करते हुए, इस अध्ययन में उत्तर प्रदेश के दो जिलों को शामिल किया गया है।

दो जिलों में एससी और एसटी की आबादी के आधार पर नमूने का चयन किया गया। इसके अतिरिक्त, पंचायती राज संस्थाओं के प्रत्येक स्तर पर ईएससीआर, ईएसटीआर और ईडब्ल्यूआर को भी शामिल किया गया था। यह लेख इक्कीस मुखियाओं से संबंधित आंकड़ों का विश्लेषण करता है। निष्कर्षों के परीक्षण के लिए, ईआर के आख्यान, प्रमुख जाति पुरुष ईआर के विचार और प्रशासनिक अधिकारियों को भी अध्ययन में शामिल किया गया है।

वैचारिक और संवैधानिक आयाम

पहले, पंचायतों को केवल ग्राम एकता और एकजुटता प्राप्त करने के साधन के रूप में देखा जाता था; हालाँकि, स्वतंत्रता आंदोलनों ने इसे स्थानीय स्वशासन के लिए एक संरचना के रूप में देखा और इसे एक राजनीतिक छाया दी। विकेंद्रीकरण पर, 1907 में रॉयल कमीशन ने कहा कि श्सत्ता के विकेन्द्रीकरण के लिए और प्रशासन के स्थानीय कार्यों के साथ लोगों को समूहबद्ध करने के लिए यह सबसे आवश्यक है कि ग्राम पंचायतों के गठन और

विकास के लिए प्रयास किया जाना चाहिए ताकि ग्राम मामलों का प्रबंधन किया जा सके। स्थानीय स्वशासन के निर्माण के लिए कुछ प्रावधान 1919 में प्रशासनिक सुधारों के माध्यम से और 1935 में प्रांतीय विधानों (स्टीफन, 2001, पृष्ठ 6) के माध्यम से पेश किए गए थे। वास्तव में, लॉर्ड रिपन ने प्रस्ताव दिया था कि भारत में ग्रामीण लोगों की भलाई और विकास के लिए स्थानीय निकाय होने चाहिए (मैथ्यू, 2003 , पीपी. 3-5)। हालाँकि, पंचायत प्रणाली की एक ठोस अवधारणा मोहनदास करमचंद गांधी द्वारा प्रस्तुत की गई थी, जिन्होंने लोगों को सशक्त बनाने के लिए ग्राम प्रशासन की पुरजोर वकालत की थी। ग्राम गणराज्य का उनका विचार ग्राम पंचायतों, तालुका पंचायतों, जिला पंचायतों, प्रांतीय पंचायतों और अखिल भारतीय पंचायतों की पांच स्तरीय प्रणाली के तहत गांवों को अधिक स्वायत्तता प्रदान करना था। दूसरी ओर, जवाहरलाल नेहरू 1957 में पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना की अपनी प्रतिबद्धता के माध्यम से केंद्र के समाजवादी मॉडल के पक्षधर थे।

इसके विपरीत, डॉ बीआर अंबेडकर ने पंचायती राज के विचार का विरोध किया, जहां ग्राम प्रधानों की कोई जवाबदेही नहीं है जो पंच (ग्राम पंचायत के सदस्य) बन जाते हैं। अम्बेडकर के लिए, गाँव हिंसा, भेदभाव और सांप्रदायिकता के स्थल थे। ऐसी स्थिति में, यदि दलितों को सवर्णों की दया पर छोड़ दिया जाता है, तो मानवाधिकारों का बार-बार हनन होगा क्योंकि दलितों को वर्षों और वर्षों तक जाति-आधारित पूर्वाग्रहों का सामना करना पड़ता है (अय्यर, 2014)। अय्यर एक ग्राम पंचायत विधेयक के माध्यम से पंचों के लिए शक्तियों को बढ़ाने के लिए बॉम्बे विधान परिषद की बहस के बारे में लिखते हैं; अम्बेडकर ने अपना गहरा विरोध व्यक्त किया।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम, जो नेहरू की समाजवादी योजना की रीढ़ था, 1952 में शुरू किया गया था, लेकिन प्रशासनिक बाधाओं के कारण ध्वस्त हो गया। स्थानीय शासन को मजबूत करने के लिए, बलवंत राय मेहता समिति ने 1957 में त्रिस्तरीय पंचायती राज प्रणाली की स्थापना की सिफारिश की- ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, ब्लॉक स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद (वर्मा), 1995) पंचायत समिति कार्यकारी निकाय होनी चाहिए जबकि जिला परिषद सलाहकार, समन्वय और पर्यवेक्षी निकाय होनी चाहिए। सभी नियोजन और विकासात्मक गतिविधियों को इन निकायों को सौंपा जाना चाहिए; इन संस्थानों को सत्ता और जिम्मेदारियों का हस्तांतरण होना चाहिए; संबंधित संस्थानों को पर्याप्त रूप से प्रदर्शन करने के लिए संसाधन उपलब्ध कराए जाने चाहिए; सभी सामाजिक और आर्थिक विकास कार्यक्रमों का प्रवाह इन एजेंसियों के माध्यम से होना चाहिए; सत्ता के आगे विघटन और वितरण के लिए एक अलग प्रणाली बनाने की जरूरत है (शिवरामू, 1997, पीपी। 2-3)। जनवरी 1958 में, इन सुझावों और इनपुट को राष्ट्रीय विकास परिषद (एसआर माहेश्वरी, 2000) द्वारा स्वीकार किया गया था, पीपी। 135-145), और विभिन्न राज्यों में पीआरआई अस्तित्व में आए और उसके बाद नागौर में उनका उद्घाटन हुआ।

भारत में पंचायती राज प्रणाली को व्यापक रूप से पोषित किया गया था, लेकिन पंचायती राज संस्थाओं के कामकाज के दौरान सत्ता के केंद्रीकरण के कारण इसका ह्रास हुआ। विभिन्न कारणों से, ग्राम पंचायतें अंततः अपने कार्यक्रमों को लागू करने के लिए सरकार की अधीनस्थ इकाइयाँ बन गईं (मलिक, 2002.), पीपी। 4)। 1977 में, अशोक मेहता समिति ने स्थानीय शासन को और मजबूत करने के लिए दो स्तरीय पंचायत प्रणाली की सिफारिश की। इसने जिला स्तर पर जिला परिषद और स्थानीय स्तर पर एक मंडल पंचायत की सिफारिश की जिसमें 15,000 से 20,000 लोगों की आबादी वाले गांवों के समूह शामिल थे। इसने योजना के लिए जिम्मेदार विकेंद्रीकरण के पहले बिंदु के रूप में जिला परिषद की सिफारिश की। स्थानीय स्तर पर सत्ता के हस्तांतरण को सुनिश्चित करने के लिए अशोक मेहता समिति द्वारा विभिन्न शक्तियों और कार्यों के अलावा सभी स्तरों पर राजनीतिक दलों की भागीदारी की सिफारिश की गई थी।

स्थानीय शासन की संस्था को और मजबूत करने के लिए, अशोक मेहता समिति की सिफारिशों के बाद, 1985 में जी वी के राव की अध्यक्षता में एक अन्य समिति का गठन किया गया था। इसने प्रतिनिधित्व में उचित सुधार, जन प्रतिनिधियों की क्षमता को मजबूत करने और पंचायती राज संस्थाओं में प्रशासनिक कर्मियों की सिफारिश की।. यह भी सुझाव दिया गया था कि खंड विकास अधिकारी (बीडीओ) को ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की योजना बनाने, लागू करने और निगरानी करने के लिए शक्ति के विस्तार की आवश्यकता है (घोष और प्रमाणिक 1999, पीपी। 215-216)। इसके अलावा, 1986 में, ग्रामीण विकास विभाग, भारत सरकार की एलएम सिंघवी समिति ने पंचायती राज के लिए संवैधानिक स्थिति की सिफारिश की और सुझाव दिया कि भारत में एक विकेन्द्रीकृत लोकतंत्र के लिए, ग्राम सभा (ग्राम सभा) को आधार पर मजबूत किया जाना चाहिए।

पंचायती राज संस्थाओं के बीस वर्षः समावेश और प्रतिनिधित्व

1992 में 73वें संवैधानिक संशोधन ने पंचायती राज संस्थाओं में हाशिए के समूहों के समावेश और प्रतिनिधित्व के युग की शुरुआत की और स्थानीय शासन निकायों में किसी विशिष्ट समूह के एकाधिकार को समाप्त किया। इसने विभिन्न समूहों की जरूरतों को पूरा करने का लक्ष्य रखा, विशेष रूप से जिन्हें जाति, धर्म और जातीय पृष्ठभूमि के आधार पर बाहर रखा गया है (हसन, 2009, पीपी। 3-5)। यह संशोधन भारतीय संविधान के अनुच्छेद 243 (डी) के अनुरूप था, जहां यह निर्धारित किया गया है कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या के अनुसार पंचायतों में सीटें आरक्षित की जानी चाहिए। इसके अलावा, प्रत्येक स्तर में एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित होंगी (बुच, 2009.) इस प्रकार, संक्षेप में, इस संवैधानिक कदम ने इन वंचित वर्गों के समग्र परिवर्तन की गारंटी दी। इन समूहों का प्रतिनिधित्व वास्तव में विभिन्न राज्यों में विभिन्न चरणों में पीआरआई की बीस वर्षों की यात्रा के दौरान महसूस किया गया है (एसआर माहेश्वरी, 2000, पृष्ठ 56)।

पंचायती राज में 73वें संशोधन के बाद, यह देखा गया है कि महिलाओं ने पंचायत कार्यालयों पर कब्जा करने और लोगों के कार्यों को निष्पादित करने में गहरी रुचि दिखाई है (ओमवेट, 1990) इसके अलावा, प्रत्येक पंचायत चुनाव में महिलाओं का प्रतिनिधित्व संविधान में निर्धारित 33 प्रतिशत आरक्षण से अधिक हो गया है। पंचायती राज मंत्रालय ने समय के साथ महिलाओं के प्रतिनिधित्व और भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए कई नीतियां लाईं। उदाहरण के लिए, पंचायत महिला एवं युवा शक्ति अभियान (PMEYSA) ने निर्वाचित महिलाओं और युवा प्रतिनिधियों पर ध्यान केंद्रित किया। इसे दो प्रमुख कार्यक्रमों

में विभाजित किया गया है: (ए) पंचायत महिला शक्ति अभियान (पीएमएसए) और (बी) पंचायत युवा शक्ति अभियान (पीवाईएसए)। पंचायत महिला शक्ति अभियान का उद्देश्य पंचायत निकायों में महिलाओं का वास्तविक प्रतिनिधित्व करना है। इस कार्यक्रम के माध्यम से महिलाओं को एकजुट होने और सामूहिक रूप से काम करने का मंच मिलता है। इस कार्यक्रम के तहत प्रदान किया जाने वाला प्रशिक्षण उनके नेतृत्व कौशल, पंचायत कार्यालयों की तकनीकी जानकारी, इस प्रकार, ऐसे कई अनुभव और अध्ययन हुए हैं जो सफलता और विफलता को दो बातों पर उजागर करते हैं; पहला, संवैधानिक प्रतिनिधित्व; और दूसरा, हाशिए के समुदायों के प्रतिनिधियों द्वारा पीआरआई के निर्णय लेने और शासन में वास्तविक प्रदर्शन और भागीदारी (सिंह, 2002)। इस संदर्भ में, निम्नलिखित खंड उनकी भागीदारी और प्रदर्शन के तथ्यों और आख्यानों पर प्रकाश डालता है।

फील्ड व्यू: कारकों को सक्षम और अक्षम करना

वर्तमान अध्ययन संविधान के 73वें संशोधन के उद्देश्य के कामकाजी पहलू की गवाही देने के लिए अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिला श्रेणियों के ईआर के प्रतिनिधित्व, भागीदारी और प्रदर्शन का विश्लेषण करने पर केंद्रित है। अध्ययन में साक्षात्कार, केस स्टडी, प्रतिभागियों की टिप्पणियों और मौखिक कथाओं का उपयोग किया गया है। उपरोक्त समूहों के ईआर द्वारा ग्राम पंचायत स्तर पर योजनाओं की भागीदारी, निर्णय लेने और कार्यान्वयन में सहायता / सक्षम और अक्षम करने वाले कारकों की समझ विकसित करने के लिए यह दृष्टिकोण अपनाया गया है। इस प्रकार, यह इन ईआर द्वारा ग्राम पंचायत स्तर पर भागीदारी में सामान्य बाधाओं के साथ-साथ अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिलाओं द्वारा सामना की जाने वाली बाधाओं की पहचान करता है, जो समूह विशिष्ट हैं। इस प्रकार, सभी समूहों और विशिष्ट समूह के लिए सामान्य कारकों और बाधाओं को एक साथ मात्रात्मक रूप से विश्लेषण किया जाता है,

सक्षम करने वाले कारक - सभी के लिए सामान्य

निष्कर्ष इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि शिक्षा, चुनाव, नेतृत्व, राजनीतिक दलों से समर्थन, नियम और प्रक्रियाएं, और प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण विभिन्न सामाजिक समूहों में ईआर के लिए सामान्य कारक हैं।

कई केस स्टडीज में जाति एक सक्षम और अक्षम करने वाले कारक के रूप में दिलचस्प रूप से सामने आई है। उनके कथनों से दो बिंदु निकलते हैं: पहला, ईएससीआर के अधिकांश उत्तरदाताओं ने अपने चुनाव का श्रेय अपनी जाति को दिया है, और दूसरा अपने निर्वाचन क्षेत्र की आरक्षित स्थिति को।

शिक्षा

लगभग 99 प्रतिशत ईआर ने पीआरआई में शिक्षा को सबसे महत्वपूर्ण समर्थकारी कारक के रूप में बल दिया। उनके अनुसार, निरक्षरता/अर्ध-साक्षरता को प्रभावी भागीदारी के लिए एक महत्वपूर्ण बाधा के रूप में देखा गया था। उन्होंने महसूस किया कि इसने सहकर्मियों द्वारा अज्ञानता का रवैया पैदा किया, साथ ही अधिकारियों और सहयोगियों द्वारा भी लापरवाही की, जिससे प्रदर्शन प्रभावित हुआ और आत्मविश्वास की कमी हुई। अध्ययन ने शिक्षा के पीछे के कारणों की भी पड़ताल कीएक महत्वपूर्ण सक्षम कारक के रूप में माना जा रहा है। उत्तरदाताओं के अनुसार, पहले, कार्यस्थल पर आत्मविश्वास हासिल करने के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण स्रोत साबित हुई; दूसरा, इसने उन्हें नीतियों को बेहतर तरीके से समझने में सक्षम बनाया; तीसरा, इसने उन्हें अपनी मांगों को स्पष्ट करने और उच्च अधिकारियों के साथ बातचीत करने में सक्षम बनाया; चौथा, इसने नीतियों, योजनाओं और सरकारी आदेशों की समझ और जागरूकता को बढ़ाया।

चुनाव

ईआर ने स्वीकार किया कि चुनाव (आरक्षण) भी एक अन्य महत्वपूर्ण कारक है जिसने पंचायती राज संस्थाओं में उनकी भागीदारी सुनिश्चित की है क्योंकि यह निर्वाचन क्षेत्र के लिए काम करने की प्रतिस्पर्धी भावना पैदा करता है।

नेतृत्व

पंचायती राज संस्थाओं में निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्रभावी भागीदारी के लिए 82 प्रतिशत ईआर ने नेतृत्व को एक आवश्यक गुण के रूप में पहचाना। उनके अनुसार, नेतृत्व की गुणवत्ता पहले पंचायत में सदस्यों की मदद करती है; दूसरा, यह स्थानीय और उच्च अधिकारियों के साथ बेहतर बातचीत करने में सक्षम बनाता है; तीसरा, यह सभाओं में प्रश्न उठाने का साहस भी जगाता है।

राजनीतिक दल का समर्थन

लगभग 60 प्रतिशत ईआर ने बताया कि राजनीतिक दलों ने पंचायत चुनावों और इसके नियमित कार्यों में भी प्रमुख भूमिका निभाई। राजनीतिक दलों से संबद्धता ने उन्हें मुखिया (पंचायत प्रमुख) के रूप में बेहतर तरीके से प्रदर्शन करने में सक्षम बनाया। पार्टी की संबद्धता से उन्हें पार्टी फंड भी मिला, जबकि पार्टी कार्यकर्ताओं ने संपर्क स्थापित किया जिससे वे पार्टी नेटवर्क के माध्यम से स्थानीय समस्याओं के समाधान के लिए उच्च अधिकारियों से मिल सके। बिना किसी राजनीतिक दल से संबद्धता वाले 40 प्रतिशत सदस्यों के पास समर्थन की कमी थी और इसने उन्हें अपनी पूरी क्षमता से प्रदर्शन करने से रोक दिया।

नियम, मानदंड और प्रक्रियाएं

पंचायती राज संस्थाएँ ईआर के लिए सक्षम और अक्षम दोनों रही हैं। 55 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार, पंचायती राज नियमों, मानदंडों और प्रक्रियाओं में स्पष्टता ने उन्हें बेहतर भागीदारी करने में मदद की है। हालांकि, अन्य 45 प्रतिशत ने पीआरआई के नियमों, मानदंडों और प्रक्रियाओं को 'बहुत जटिल

और अस्पष्ट' पाया। 2009 में स्थितप्रज्ञान रे लिखते हैं कि, 'समानता और दक्षता के लिए सुरक्षित निर्णय लेने की शक्ति और स्थानीय सरकारों की उत्तरदायित्व अनिवार्य है' (रे, 2009)। अध्ययन में पाया गया कि राज्य प्रशासन द्वारा स्वायत्त निर्णय लेने में हस्तक्षेप, प्रशासन की गैर-जवाबदेही और लालफीताशाही पंचायती राज संस्थाओं के लिए आम चुनौतियाँ हैं। निष्कर्षों ने यह भी स्थापित किया कि 80 प्रतिश 80 प्रतिशत से अधिक पंचायतों के पास अपनी खुद की उचित इमारत और अन्य सुविधाएं नहीं थीं।

प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण और कौशल विकास

निष्कर्षों के अनुसार, अधिकांश ईआर ने सक्षम करने वाले कारकों के रूप में तनाव, क्षमता निर्माण और कौशल विकास की ओर इशारा किया। उन्होंने इसे संस्था की बेहतरी के लिए एक आधिकारिक हस्तक्षेप के रूप में देखा। यह उन्हें संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में शासन की कला, कार्यप्रणाली और प्रक्रियात्मक रास्तों की बेहतर समझ, बेहतर निर्णय लेने के कौशल से लैस करता है। हालांकि, प्रतिनिधियों ने प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण कार्यक्रमों के साथ-साथ शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डाला है। लगभग 60 प्रतिशत एससी और एसटी पंचायत प्रतिनिधियों ने इसके विपरीत प्रतिबिंबित किया कि औपचारिक प्रशिक्षण कार्यक्रम के बाद भी वे शिक्षा और भाषा कौशल की कमी के कारण इसका पूरा लाभ नहीं उठा पा रहे हैं।

इसी तरह, माही पाल ने अपनी टिप्पणी में 2000 में इन मुद्दों को स्पष्ट रूप से सामने लाया है। पाल ग्यारहवें वित्त आयोग की आलोचना करते हैं कि उन्होंने प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण के मुद्दे को गंभीरता से नहीं लिया, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक न्याय और विकास के मुद्दे कम रह गए। संबोधित किया। उन्होंने पंचायती राज संस्थाओं की सफलता के लिए पूर्व शर्त के रूप में एक समयबद्ध प्रशिक्षण उन्मुखीकरण कार्यक्रम का भी सुझाव दिया। इसके अलावा, उन्होंने कहा कि, शनियमित आधार पर दो से तीन साल के अंतराल के बाद पुनश्चर्या प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के बाद उन्मुखीकरण किया जाना है। वास्तव में, हस्तांतरित धन का एक हिस्सा प्रशिक्षण और जागरूकता निर्माण के लिए निर्धारित किया जाना चाहिए क्योंकि पंचायतों को सशक्त बनाने का आग्रह जमीनी स्तर से उभरना है, लेकिन इसके लिए विकेंद्रीकरण के बारे में जागरूकता जरूरी है।

निष्कर्ष: समावेशी विकास के लिए अध्ययन में पाया गया कि शिक्षा ने निर्वाचित एससी, एसटी और महिला पीआरआई प्रतिनिधियों को विभिन्न सरकारी नीतियों, कल्याणकारी योजनाओं और आदेशों के बारे में अधिक जागरूक किया और उन्हें इन्हें बेहतर तरीके से समझने में मदद की। योजनाओं और नीतियों को बेहतर ढंग से समझने में उनकी मदद करने के अलावा, शिक्षा ने इन ईआर को उच्च प्रशासन अधिकारियों के साथ आत्मविश्वास से बातचीत करने और बातचीत करने में सक्षम बनाया। यद्यपि आधे ईआर ने स्वीकार किया कि अकेले शिक्षा ने उन्हें नीतियों को समझने में मदद की, फिर भी उन्होंने स्वीकार किया कि प्रशिक्षण और क्षमता वृद्धि ने निश्चित रूप से उन्हें नीतियों को बेहतर ढंग से समझने और पीआरआई गतिविधियों में विश्वास के साथ भाग लेने में मदद की। ईआर ने स्वीकार किया कि चुनाव (आरक्षण) भी एक अन्य महत्वपूर्ण कारक है जिसने पीआरआई में उनकी भागीदारी का आश्वासन दिया है क्योंकि यह निर्वाचन क्षेत्र के लिए काम करने के लिए प्रतिस्पर्धात्मक भावना पैदा करता है।

संदर्भ

अय्यर, एसए (2014)। अम्बेडकर बनाम गांधी: ग्राम सशक्तिकरण के जोखिम

बुच, एन. (2009)। पंचायतों में महिलाओं के लिए आरक्षण: भेष में एक रियायत? आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 44(40), 8-10।

चट्टोपाध्याय, आर., डुफ्लो, डी. (2004)। पंचायती राज में आरक्षण का प्रभाव आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 39(9), 979 - 986।

घोष, आर., प्रमाणिक, एके (1999)। भारत में पंचायत प्रणाली: ऐतिहासिक, संवैधानिक और वित्तीय विश्लेषण (पीपी। 215 - 216)। नई दिल्ली: कनिष्क प्रकाशक, वितरक।

हसन, जेड (2009), पॉलिटिक्स ऑफ इनक्लूजन: कास्ट्स, माइनॉरिटीज एंड पॉजिटिव एक्शन (पीपी. 3 - 5)। नई दिल्ली: ओयूपी।

माहेश्वरी, एसआर (2000)। भारत में लोक प्रशासन (पीपी. 135 - 145)। दिल्ली:

मैथ्यू, जी. (2003)। भारत में पंचायती राज संस्थाएं और मानवाधिकार। आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 38(2), 155 - 162।

मैथ्यू, जी., नायक, आरसी (1996)। काम कर रही पंचायतें : शोषितों के लिए इसका क्या अर्थ है? आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 31 (27), 1765 - 1771।

ओमवेट, जी. (1990)। महिला, जिला परिषद एवं पंचायत राज चन्दवाड़ से विटनेर। आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 25(31), 1687 - 1690।

पाई, एस. (2001)। सामाजिक पूंजी, पंचायत और जमीनी लोकतंत्र। आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 36(08), 645 - 654।

पाल, एम। (2000 ए)। पांचवे अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायतें। आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 35(16), 1602 - 1606

हथेली।। (2000 सी)। उत्तर प्रदेश पंचायत चुनाव: राजनीति से रणनीति तक। आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक

माध्यमिक शिक्षा को बेहतर बनाने में राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान की भूमिका

रानी रजक

सहायक प्राध्यापक, सरस्वती शिक्षा, महाविद्यालय, सुभाष नगर, अम्बिकापुर, सरगुजा, छत्तीसगढ़

सारांश–

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (आरएमएसए) भारत में शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के प्राथमिक उद्देश्य के साथ 2009 में शुरू किया गया था। इसके प्रमुख उद्देश्यों में शिक्षा की मूलभूत आवश्यकताओं को संबोधित करना और नामांकन दर बढ़ाना शामिल है। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए, योजना ने अपने लिए महत्वाकांक्षी लक्ष्य निर्धारित किए हैं, जैसे कि 2017 तक सभी के लिए माध्यमिक शिक्षा तक पहुंच सुनिश्चित करना और छात्रों के आवासों के उचित निकटता के भीतर स्कूलों की स्थापना करना। माध्यमिक स्तर पर, आरएमएसए का लक्ष्य स्कूलों को सभी आवश्यक भौतिक सुविधाएं प्रदान करना है, जिसमें अतिरिक्त कक्षाएं, प्रयोगशालाएं, पुस्तकालय, कला और शिल्प कक्ष, शौचालय, पीने के पानी की सुविधाएं, बिजली, कंप्यूटर, इंटरनेट का उपयोग और पर्याप्त संख्या में कुएं शामिल हैं। प्रशिक्षित शिक्षक-शिक्षा में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) का एकीकरण भी प्रौद्योगिकी के उपयोग के माध्यम से शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के आरएमएस, के प्रयासों का एक महत्वपूर्ण पहलू है। इन विभिन्न पहलों के माध्यम से, आरएमएस, भारत में शिक्षा प्रणाली में क्रांति लाने का प्रयास करता है और यह सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक छात्र को उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा मिले।

प्रस्तावना–

अभियान का एक प्रमुख पहलू छात्रों के बीच में पढ़ाई छोड़ने को रोकना और सभी के लिए उच्च शिक्षा तक पहुंच सुनिश्चित करना है। इसे प्राप्त करने के लिए, नामांकन दर को बढ़ावा देने और उच्च प्राथमिक स्तर (14.16 वर्ष) और उच्चतर माध्यमिक स्तर (16.18 वर्ष) तक शिक्षा का विस्तार करने के प्रयास किए गए हैं। इसका उद्देश्य छात्रों को न केवल आधुनिक प्रतियोगिताओं में उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए आवश्यक उपकरण और दक्षता प्रदान करना है, बल्कि रोजगार के अवसरों को सुरक्षित करना और उद्यमिता सहित विभिन्न व्यावसायिक गतिविधियों में सफल होना है। सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा (यूईई) को प्राप्त करने और वैश्वीकरण की मांगों को अपनाने के प्राथमिक उद्देश्य के साथ शुरू किया गया था। यह व्यापक अभियान न केवल भारत में शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए समर्पित है, बल्कि तेजी से बदलती दुनिया की जरूरतों को पूरा करने के लिए मौजूदा शैक्षिक प्रणाली का पुनर्मूल्यांकन भी करता है। इसका मुख्य फोकस नए ज्ञान और कौशल के अधिग्रहण को बढ़ावा देना, छात्रों को विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धी माहौल में उत्कृष्टता प्राप्त करने में सक्षम बनाना और यह सुनिश्चित करना है कि देश भर के प्राथमिकए माध्यमिक और उच्च माध्यमिक विद्यालय अपनी जिम्मेदारियों को प्रभावी ढंग से पूरा करें। संक्षेप में, सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान अभियान एक व्यापक पहल है जो आज की वैश्वीकृत दुनिया में शिक्षा के महत्व को पहचानती है। शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाकर, शैक्षिक प्रणाली का पुनर्मूल्यांकन करके, नए ज्ञान और कौशल के अधिग्रहण को बढ़ावा देकर और छात्रों को प्रतिस्पर्धी माहौल में उत्कृष्टता प्राप्त करने में सक्षम बनाकर, अभियान छात्रों को उनकी शैक्षणिक सफलता के लिए आवश्यक उपकरणों और दक्षताओं से लैस करने का प्रयास करता है। और व्यावसायिक गतिविधियाँ।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 के मार्गदर्शक बिन्दु हैं:

शिक्षा प्रणाली के प्राथमिक उद्देश्यों में से एक कक्षा के भीतर अर्जित ज्ञान और वास्तविक दुनिया में इसके व्यावहारिक अनुप्रयोग के बीच एक मजबूत संबंध स्थापित करना है। इसके लिए रटकर याद करने और दोहराव से सीखने के पारंपरिक तरीकों से हटना जरूरी है और इसके बजाय एक व्यापक पाठ्यक्रम के कार्यान्वयन पर जोर दिया जाता है जो छात्रों के समग्र विकास को सुविधाजनक बनाता है। केवल पाठ्यपुस्तकों पर निर्भर रहने के बजाय, शैक्षिक कार्यक्रमों को व्यावहारिक अनुभवों और अन्वेषण के पर्याप्त अवसर प्रदान करने चाहिए, जिससे शिक्षार्थियों को विषय वस्तु के साथ सक्रिय रूप से जुड़ने में सक्षम बनाया जा सके। इसके अलावा, मूल्यांकन को कक्षा की गतिविधियों के साथ संरेखित करने के लिए फिर से डिजाइन किया जाना चाहिएए जिससे छात्र अपनी समझ को अधिक सार्थक और प्रामाणिक तरीके से प्रदर्शित कर सकें। इसके अलावा, शिक्षा को न केवल व्यक्तियों को ज्ञान और कौशल से लैस करना चाहिए, बल्कि राष्ट्रीय पहचान की भावना भी पैदा करनी चाहिए और लोकतांत्रिक समाज के ढांचे के भीतर स्थानीय समुदाय की चिंताओं और जरूरतों को संबोधित करना चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा-

माध्यमिक शिक्षा स्कूली शिक्षा का एक महत्वपूर्ण चरण है जहाँ छात्र सीखते और बढ़ते रहते हैं। यह उन्हें अलग-अलग विषय पढ़ाकर और नियमित कक्षाओं के अलावा मजेदार चीजें करने का अवसर देकर उन्हें एक सर्वांगीण व्यक्ति बनने में मदद करता है। इससे उन्हें स्मार्ट, रचनात्मक और अन्य लोगों से बात करने में अच्छा बनने में मदद मिलती है। माध्यमिक शिक्षा छात्रों को वास्तविक दुनिया और एक दिन मिलने वाली नौकरियों के लिए तैयार होने में भी मदद करती है। यह प्राथमिक विद्यालय और कॉलेज के बीच एक पुल की तरह है। भारत में, माध्यमिक शिक्षा को दो भागों में विभाजित किया गया है: कक्षा 9 और 10 के लिए माध्यमिक शिक्षाए और कक्षा 11 और 12 के लिए उच्चतर माध्यमिक शिक्षा। इससे छात्रों को बड़े होने पर कदम दर कदम चीजें सीखने में मदद मिलती है। माध्यमिक शिक्षा के बादए छात्र भविष्य में अपनी इच्छित नौकरियों के लिए विशिष्ट कौशल भी सीख सकते हैं। इससे उन्हें नौकरी मिलने और अपने करियर में अच्छा प्रदर्शन करने की अधिक संभावना है। माध्यमिक शिक्षा के कई लक्ष्य हैं, जैसे छात्रों को अच्छे नागरिक बनना सिखाना और उन्हें नेता बनने में मदद करना। यह उन्हें लोकतंत्र के बारे में सिखाकर और स्कूल की गतिविधियों में नेता बनने का मौका देकर ऐसा करता है। कुल मिलाकरए भविष्य में छात्रों के विकास और सफलता के लिए माध्यमिक शिक्षा वास्तव में महत्वपूर्ण है।

माध्यमिक शिक्षा का विकास-

"माध्यमिक" शब्द "मध्य" शब्द से लिया गया है और यह शिक्षा के मध्य चरण का प्रतीक है। माध्यमिक शिक्षा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है क्योंकि यह प्राथमिक और उच्च शिक्षा के बीच के अंतर को पाटती है। इसे अपने आप में एक व्यापक इकाई माना जाता है, जिसमें एक विशिष्ट आयु सीमा और पाठ्यक्रम शामिल होता है जो विभिन्न देशों में भिन्न होता है। भारत में माध्यमिक शिक्षा को दो भागों में विभाजित किया गया है, अर्थात् माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा। माध्यमिक शिक्षा कक्षा 9-10 तक प्रदान की जाती है, जबकि उच्च माध्यमिक शिक्षा कक्षा 11-12 तक प्रदान की जाती है। कुल मिलाकर, माध्यमिक शिक्षा अत्यधिक महत्व रखती है क्योंकि यह प्राथमिक और उच्च शिक्षा के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करती है, और समय के साथ इसका विकास और सुधार विभिन्न कारकों से प्रभावित हुआ है, जिसमें ईसाई मिशनरियों के प्रयास और नई शैक्षिक प्रणालियों की शुरूआत शामिल है। माध्यमिक शिक्षा का विकास समय के साथ इसकी मात्रात्मक उन्नति और गुणात्मक वृद्धि दोनों को संदर्भित करता है। 1964 के कोठारी आयोग ने माध्यमिक शिक्षा में सुधार के महत्व पर जोर दिया। भारत में माध्यमिक शिक्षा की शुरुआत का श्रेय ईसाई मिशनरियों के प्रयासों को दिया जा सकता है। प्रारंभ में, पुर्तगाली ईसाई मिशनरियों ने प्राथमिक विद्यालयों के साथ-साथ माध्यमिक शिक्षा संस्थानों की स्थापना की, हालाँकि इस अवधि के दौरान माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य भिन्न था। जैसा कि डॉ० डीओ एलन ने कहा है, ये शैक्षणिक संस्थान मिशनरियों के लिए भारतीय आबादी के साथ संबंध स्थापित करने और उन्हें उनकी धार्मिक मान्यताओं और परंपराओं से परिचित कराने के साधन के रूप में काम करते थे। इसके बाद, 1613 और 1731 के बीच, डच, फ्रेंच और अंग्रेजी मिशनरियों ने माध्यमिक शिक्षा के विकास को बढ़ावा देने के उद्देश्य से कई माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना की। अंग्रेजी मिशनरियों ने भारत में एक नई शिक्षा प्रणाली शुरू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1854 में वुड की घोषणा के बाद भारत में माध्यमिक शिक्षा के विकास में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई। इस घोषणा ने तेजी से विस्तार की अवधि को चिह्नित किया और सभी प्रांतों में शिक्षा विभागों की स्थापना के लिए मंच तैयार किया। इसके अतिरिक्त, इसने सभी स्तरों पर शिक्षा के लिए विशिष्ट उद्देश्यों और पाठ्यक्रम दिशानिर्देशों को रेखांकित किया। इस पहल के हिस्से के रूप में हाई स्कूल स्थापित किए गए, और माध्यमिक शिक्षा का समर्थन करने के लिए एक सहायक अनुदान प्रणाली शुरू की गई। कुल मिलाकर, लॉर्ड मैकाले, वुड, भारतीय शिक्षा आयोग और भारतीय विश्वविद्यालय आयोग की प्रभावशाली रिपोर्टों और आयोगों के साथ-साथ मिशनरियों के प्रयासों ने 19वीं शताब्दी के दौरान भारत में शिक्षा प्रणाली में क्रांति लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन पहलों ने एक व्यापक और समावेशी माध्यमिक शिक्षा प्रणाली के विकास की नींव रखी, जिसका उद्देश्य देश के निवासियों की विविध आवश्यकताओं को पूरा करना था। 19वीं सदी की शुरुआत में भारत की शिक्षा प्रणाली में एक नई पद्धति के उद्भव का श्रेय काफी हद तक मिशनरियों के प्रयासों को दिया जा सकता है। इन व्यक्तियों ने देश में एक परिवर्तित शैक्षिक परिदृश्य की नींव रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। लॉर्ड मैकाले का 1835 का रिपोर्ट पत्र भारत में माध्यमिक शिक्षा शुरू करने में सहायक साबित हुआ, जिसने इसके कार्यान्वयन के लिए एक स्पष्ट रोडमैप पेश किया। इस रिपोर्ट में एक सुव्यवस्थित और कुशल शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता पर जोर दिया गया जो स्थानीय आबादी की जरूरतों को पूरा करती हो। माध्यमिक शिक्षा प्रणाली को और बढ़ाने के लिए, सरकार द्वारा 1882 में भारतीय शिक्षा आयोग की नियुक्ति की गई थी। इस आयोग ने पाठ्यक्रम को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और माध्यमिक स्तर पर विभिन्न पाठ्यक्रमों की शुरुआत की सिफारिश की। छात्रों की विविध आवश्यकताओं को स्वीकार करते हुए, आयोग ने शैक्षणिक और व्यावसायिक दोनों धाराओं के कार्यान्वयन का प्रस्ताव रखा। भारत में माध्यमिक शिक्षा पर विश्वविद्यालयों के प्रभाव को 1902 में भारतीय विश्वविद्यालय आयोग की सिफारिशों से और भी मजबूत किया गया। इस आयोग ने माध्यमिक शिक्षा पर विश्वविद्यालयों के नियंत्रण और पर्यवेक्षण को बढ़ाने की वकालत कीए जिससे एक अधिक एकीकृत और सामंजस्यपूर्ण शैक्षिक प्रणाली का निर्माण हुआ।

1964 में, डॉ० लक्ष्मण स्वामी मुदलियार की अध्यक्षता में राष्ट्रीय शिक्षा आयोग का गठन किया गया और माध्यमिक शिक्षा के विकास के लिए सिफारिशें प्रदान की गईं। इन सिफारिशों में माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना, शैक्षणिक मानकों को बढ़ाना और बाहरी परीक्षा परिणामों और स्कूल रिकॉर्ड के आधार पर योग्य छात्रों का चयन करना शामिल था। आयोग ने लड़कियों के लिए अलग स्कूल स्थापित करके और उनके लिए छात्रावास और छात्रवृत्ति प्रदान करके माध्यमिक स्तर पर लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा देने के महत्व पर भी जोर दिया। माध्यमिक शिक्षा के संबंध में विश्वविद्यालयों के अधिकारों में खामियों के एहसास के जवाब में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की स्थापना की गई थी। यह बोर्ड स्कूलों की देखरेखए पाठ्यक्रम डिजाइन करने और परीक्षा आयोजित करने के लिए जिम्मेदार था। कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग, जिसे सैडलर आयोग के नाम से भी जाना जाता है, का गठन 1917-1919 में किया गया था और विश्वविद्यालय शिक्षा को बढ़ाने के लिए माध्यमिक शिक्षा में सुधार की आवश्यकता को मान्यता दी गई थी। परिणामस्वरूप, आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन और पुनरुद्धार के लिए कई सिफारिशें प्रस्तावित कीं। इन सुझावों में विश्वविद्यालयों के लिए प्रवेश स्तर की आवश्यकता को लागू करनाए इंटरमीडिएट

कॉलेजों की स्थापना करना और माध्यमिक और इंटरमीडिएट शिक्षा के लिए एक बोर्ड बनाना शामिल था। 1937 में एबॉट-वुड रिपोर्ट ने माध्यमिक शिक्षा में व्यावसायिक और बहु-तकनीकी संस्थानों की स्थापना की सिफारिश की। इसने पारंपरिक शैक्षणिक संस्थानों के साथ-साथ तकनीकी स्कूलों की शुरुआत को प्रेरित किया। 1947 में भारत की आजादी के बादए भारत सरकार ने 1952 में माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन किया, जिसे मुदलियार आयोग भी कहा जाता है। इस आयोग ने पाठ्यक्रम में व्यावहारिकता के महत्व पर जोर दिया और तीन भाषाओं के अध्ययन की वकालत की। इसमें परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले 50% छात्रों को व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने, माध्यमिक स्तर पर नई शिक्षण नीतियों को अपनानेए 10 साल की शिक्षा के बाद हाई स्कूल परीक्षा शुरू करने और उच्च माध्यमिक के बाद 3 साल का डिग्री पाठ्यक्रम पेश करने का भी प्रस्ताव दिया गया है। इसके अलावाए आयोग ने माध्यमिक स्तर पर विभिन्न पाठ्यक्रमों को लागू करने का सुझाव दिया। 1986 में, भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति पारित की, जिसमें माध्यमिक शिक्षा के लिए और सुझावों की रूपरेखा दी गई। इन सुझावों में व्यावसायिक-आधारित शिक्षा का विकास और नई और विकसित प्रौद्योगिकियों के साथ जनशक्ति का समन्वय शामिल था।

माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य

भारत के स्वतंत्र होने के बाद लोगों को एहसास हुआ कि उन्हें माध्यमिक शिक्षा के लक्ष्यों को बदलने की जरूरत है। वे चाहते थे कि यह भारतीय संस्कृति को प्रतिबिंबित करे और देश को एक सफल लोकतंत्र बनने में मदद करे। जवाहरलाल नेहरू, जो स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान एक महत्वपूर्ण नेता थे, ने सोचा कि देश बदल रहा है इसलिए शिक्षा में बड़े बदलाव की जरूरत है। वे शिक्षा में संपूर्ण क्रांति चाहते थे। आजकल, देश हमेशा बदल रहा है, इसलिए माध्यमिक शिक्षा के लक्ष्यों को भी बदलने की जरूरत है। 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने इसे मान्यता दी और कहा कि माध्यमिक शिक्षा के लक्ष्य समय के साथ बदलने चाहिए। उन्होंने कहा कि छात्रों को यह सिखाना महत्वपूर्ण है कि अच्छे नागरिक कैसे बनें, अपने व्यक्तित्व का विकास कैसे करें, नौकरी के कौशल सीखें और नेता कैसे बनें। शिक्षा प्रणाली का मुख्य लक्ष्य छात्रों को उनकी नौकरियों में बेहतर बनने में मदद करना है। इसका मतलब है कि उन्हें आवश्यक तकनीकी कौशल सिखाना और उन्हें रचनात्मक होने और नए विचारों के साथ आने के लिए प्रोत्साहित करना। अतीत में, लोग हाई स्कूल शिक्षा के लिए लक्ष्यों की एक सूची बनाते थे। इनमें से एक लक्ष्य छात्रों को यह सिखाना है कि लोकतंत्र में अच्छे नागरिक कैसे बनें। शिक्षा लोगों को अधिक स्मार्ट, अधिक सामाजिक और अधिक नैतिक बनने में मदद करती है। एक अच्छे नागरिक के कुछ महत्वपूर्ण गुणों में स्पष्ट रूप से सोचने, अच्छी तरह से संवाद करने, दूसरों के साथ मिल-जुलकर रहने, अपने देश से प्यार करने और दुनिया को समझने में सक्षम होना शामिल है।

निष्कर्ष-

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान ने माध्यमिक शिक्षा में सुधार के लिए सामुदायिक भागीदारी के महत्व को पहचाना है। स्कूलों, परिवारों और समुदायों के बीच साझेदारी को बढ़ावा देकर, अभियान ने शिक्षा के लिए एक समावेशी और भागीदारीपूर्ण दृष्टिकोण तैयार किया है। इसके परिणामस्वरूप माता-पिता की भागीदारी, सामुदायिक समर्थन और जवाबदेही बढ़ी है, जो सभी माध्यमिक शिक्षा के समग्र सुधार में योगदान करते हैं। जागरूकता बढ़ाने और नीतिगत बदलावों को लागू करने के अलावा, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान ने स्कूलों और शिक्षकों को मूल्यवान संसाधन और सहायता भी प्रदान की है। अद्यतन और प्रासंगिक पाठ्यक्रम के विकास की सुविधा प्रदान करके, शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदान करके और बुनियादी ढांचे के उन्नयन में निवेश करके, अभियान ने स्कूलों को उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान करने के लिए आवश्यक उपकरणों से सुसज्जित किया है। इस समर्थन ने न केवल छात्रों के सीखने के अनुभव को बेहतर बनाया है, बल्कि शिक्षकों को अपने छात्रों को प्रभावी ढंग से संलग्न करने और प्रेरित करने के लिए भी सशक्त बनाया है, जिससे अंततः शैक्षणिक प्रदर्शन में सुधार हुआ है। राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान की प्राथमिक उपलब्धियों में से एक माध्यमिक शिक्षा के महत्व के बारे में जागरूकता बढ़ाने में इसकी सफलता रही है। उच्च शिक्षा, रोजगार के अवसरों और समग्र व्यक्तिगत विकास के लिए छात्रों को तैयार करने में माध्यमिक शिक्षा की भूमिका पर प्रकाश डालकर, अभियान ने परिवारों, समुदायों और नीति निर्माताओं को शिक्षा के इस महत्वपूर्ण चरण में निवेश को प्राथमिकता देने के लिए प्रोत्साहित किया है। इस बढ़ी हुई जागरूकता के कारण दृष्टिकोण में बदलाव आया है और माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता और पहुंच पर अधिक जोर दिया गया है। इसके अलावा, अभियान ने नीतिगत सुधारों को लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जिसका माध्यमिक शिक्षा पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। क्षेत्र के विशेषज्ञों के साथ अनुसंधान और परामर्श के माध्यम से, अभियान ने उन प्रमुख क्षेत्रों की पहचान की है जिनमें सुधार की आवश्यकता है और आवश्यक नीतिगत बदलावों की वकालत की गई है। इसके परिणामस्वरूप व्यापक राष्ट्रीय रणनीतियों और रूपरेखाओं का विकास और कार्यान्वयन हुआ है जिन्होंने माध्यमिक शिक्षा प्रणालियों के परिवर्तन को निर्देशित किया है। इन सुधारों ने पुराने पाठ्यक्रम, अपर्याप्त शिक्षक प्रशिक्षण और अपर्याप्त बुनियादी ढांचे जैसे मुद्दों को संबोधित किया है, जिससे छात्रों के लिए अधिक अनुकूल सीखने का माहौल तैयार हुआ है। संक्षेप में, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान ने माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अपने बहुआयामी दृष्टिकोण के माध्यम से, जिसमें जागरूकता बढ़ाना, नीति सुधारों को लागू करना और संसाधन और सहायता प्रदान करना शामिल है, अभियान ने माध्यमिक शिक्षा प्रणालियों के सामने आने वाली चुनौतियों को प्रभावी ढंग से संबोधित किया है। पाठ्यक्रम विकास, शिक्षक प्रशिक्षण, बुनियादी ढांचे में सुधार और सामुदायिक सहभागिता जैसे प्रमुख क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करके, इसने देश भर के स्कूलों में सकारात्मक बदलाव को बढ़ावा दिया है।

सन्दर्भ सूची-

- सिंह, के. (2013). भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास. लखीमपुर खीरीः गोविन्द प्रकाशन।
- शर्मा, आर.ए. (2006). भारतीय शिक्षा प्रणाली का विकास. मेरठः आर लाल बुक डिपो।
- मदान, पु. (2014). भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास तथा समस्याएं, आगराः अग्रवाल पब्लिकेशन्स।
- सिन्हा, ए. एवं रत्न, पी. (2014). राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान का बिहार राज्य के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन. भारतीय आधुनिक शिक्षा. अक्टूबर, ३०-३७

- दुबेए पी. (2014). शाला प्रबंधन एवं समिति के सहभागिता का शालयी क्रिया कलाप पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन. अप्रकाशित. शासकीय उन्नत शिक्षण संस्थान, बिलासपुर (छ०ग०)।
- पी. के. (2013). पब्लिक एंड प्राइवेट पार्टनरशिप इन आर. एम.एस. ए.: सम थॉट्स. रिसर्च डायरेक्शनस, १, १-३
- एस. एवं कुमार जे.(2014). राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान प्रोमोटिंग इनोवेशन अंडर द स्कीम
- http://www.ncert.nic.in/departments/nie/dse/activities/advisory_board/PDF/RMSA%20Hindi.pdf
- http://rmsaindia.gov.in/administrator/components/com_pdf/pdf/4395dfa0494d4f3f2438455e95e85384-RMSA-TCA-2.19%20Formative%20Evaluation%20RMSA%20In%20service%20Teacher%20Training%20Evaluation.pdf
- https://www.ijip.in/Archive/v5i1/18.01.004.20170501.pdf
- https://pen2print.org/index.php/ijr/article/view/9346

चित्रा मुद्गल कृत उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' में किन्नर विमर्श के विविध आयाम

कंचन

एम.फिल. हिन्दी डॉ. भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

प्रस्तावना

समकालीन सामाजिक, सांस्कृतिक परिदृश्य में आज का समय विमर्शों का समय है। जिसमें स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, कृष्क विमर्श, आदिवासी विमर्श, बुजुर्ग विमर्श, दिव्यांग विमर्श आदि साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान बना चुके हैं, वहीं किन्नर विमर्श साहित्य में अपना स्थान बना चुका है। सभी विमर्श व्यक्ति की असमिता, स्वतन्त्रता, सुरक्षा, अभिव्यक्ति, अधिकार और समानता के प्रश्नों से जुड़े हुए हैं। साथ ही पुरानी मान्यताओं, रूढिग्रस्त मानसिकताओं को तोड़कर समाज में नवीन विचारों को जन्म दे रहे हैं।

21वीं शताब्दी के दूसरे दशक से समाज के बुद्धिजीवियों और साहित्यकारों के मध्य इस तृतीय लिंग ने कुछ हलचल उत्पन्न की और सबका ध्यान इनके तिरस्कृत जीवन और पीढ़ा की तरफ खिंचा। विकास के दौर में किन्नर समाज आज भी किनारे पर खड़ा हैं। किन्नर समाज का विकास एक अनदेखा गम्भीर विषय है। आम नागरिक किन्नर समुदाय से अमानवीय व्यवहार करता है। इन्हें सभी नागरिक अधिकारों से वंचित किया जाता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक किन्नर समुदाय अनेकों प्रकार के शोषण का शिकार होता है।

आज हिन्दी साहित्य अनेक उपेक्षितों के पास पहुँच रहा है। ऐसा ही एक उपेक्षित समुदाय है किन्नर समाज। समाज में स्त्री और पुरूषों को महत्व दिया जाता है लेकिन एक तीसरा समाज किन्नर के रूप में पहचाना जाता है। उनकों समाज में आज भी महत्व नहीं मिल रहा है। समाज और सरकार से यह समाज आज भी उपेक्षित हैं। समाज और सरकार की दृष्टि में जिनका कोई अस्तित्व नहीं हैं ऐसे समाज पर हिन्दी साहित्य ने अपनी दृष्टि डाली है। उनके जीवन को लेकर अनेक उपन्यास लिखे गये हैं। उनके जीवन व समस्याओं से अवगत होना उनकी समस्याओं को खोजने का कार्य साहित्य ने किया है।

किन्नर समुदाय हास्यपरक जिन्दगी को छोड़कर अपने अधिकारों के लिये लड़ रहा है। यह एक ऐसा समुदाय है जो समाज के बीचों-बीच उपस्थित है लेकिन उसका कोई अस्तित्व नहीं है। रामायण और महाभारत काल से ही समाज में इस समुदाय की उपस्थिति दर्ज है पर 'सभ्य समाज' में तिरस्कार और अपमान का दंश झेलने के लिए विवश है। किन्नर उपहास का पात्र बनते हैं लेकिन उनका मजाक उड़ाने वाले उनकी पीड़ा को नहीं समझते। इसी पीड़ा को चित्रा मुद्गल जी ने अपने उपन्यास पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा में प्रस्तुत किया है।

'नाला सोपारा' उपन्यास में किन्नर विमर्श के विविध आयाम

'नाला सोपारा' उपन्यास उस वर्ग के लोगों का प्रतीक है जिसका सबसे अधिक मजाक उड़ाया गया है जिसका परिवार ने बहिष्कार किया हो और अकेले जीने को दुनिया के बीच छोड़ दिया हों। चित्रा जी ने इस उपन्यास में किन्नरों के जीवन के अनेकानेक पेहलुओं और प्रसंगों के द्वारा उनकी वेदना, पीड़ा, अपमान, तिरस्कार, आजीविका का संकट, अस्तित्व बोध के खतरों का सजीव चित्राण किया है। उनका जन्म समाज व परिवार को स्वीकार्य नहीं, जीवन को मान्यता नहीं। जन्म लेते ही माता-पिता से अलग कर देना- ''जिस नरक मे तूने और पप्पा ने धकेला है मुझे, वह एक अंधा कुआं है जिसमें सिर्फ सांप-बिच्छू रहते हैं। साप-बिच्छू बनकर वह पैदा नहीं हुए होंगे। बस, इस कुएं ने उन्हें आदमी नहीं रहने दिया।''

चित्रा जी ने समाज में तीसरे लिंग के रूप में पहचान रखने वालों के जीवन को इतने करीब से छुआ हैं कि शायद ही कोई रेशा हो जो हाथ नहीं लगे। सबसे खास बात यह है कि इस समाज में जिसे हम समाज का हिस्सा नहीं मानते उसकी अपनी समस्या हैं, अपनी पीड़ा है। कुछ किन्नर होकर भी किन्नरों के जैसे नहीं रहना चाहते।

अकेलेपन के संकट से जुझता किन्नर समाज

अकेलापन एक ऐसी भावना है जिसमें लोग बहुत तीव्रता से खालीपन और एकांत का अनुभव करते हैं। अवांछित एकांत का परिणाम अकेलापन है। अकेलापन अनुभव करने के लिए अकेले होने की आवश्यकता नहीं है, इसे भीड़ भरे स्थानों में भी अनुभव किया जा सकता है। अकेलेपन को अन्य व्यक्तियों से अलगाव की भावना के रूप में वर्णित किया जा सकता हैं। जब बच्चा एक परिवार में जन्म लेता है तो उसके आस-पास पूरा परिवार उसके संरक्षण के लिए मौजूद होता है और वह जब बड़ा होने लगता है तो उसे मित्रों का सान्निध्य प्राप्त होता है लेकिन इसके विपरित जब तृतीय लिंगी बच्चें की बात करते हैं तो परिस्थितियाँ भिन्न हो जाती हैं। किसी के घर में किन्नर बच्चे का जन्म सर्वप्रथम उससे छूटकारा पाने की भावना को साथ लेकर आता हैं। समाज में अपनी मान मर्यादा बनाए रखने के लिए अक्सर माता-पिता ऐसे बच्चे को समाज की नजरों से उसकी लैंगिक विकृति छिपाकर उसे घर में बंद रखते है ताकि उन्हें उपहास का पात्र न बनना पड़े और मौका मिलते ही उसे किन्नरों को सौंप दिया जाता है। ''तूने, मेरी बा, तूने और पप्पा ने मिलकर मुझे कसाइयों के हाथ मासूम बकरी सा सौंप दिया।''

इस पूरी प्रक्रिया में उस लैंगिक विकृत बच्चे की मन: स्थिति पर कोई ध्यान नहीं देता जो अपने अकेलेपन से जुझता हुआ घर के किसी कौने में घुट रहा होता हैं या किन्नर समुदाय के बीच रहकर खुद को अकेला महसूस कर रहा होता है।

राजनीतिक पक्ष

कोई भी सजक और संघर्षशील रचनाकार अपने समय की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों को अछूता नहीं रह सकता। चित्रा जी का उपन्यास राजनीति की तत्कालीन संवेदना का इतिहास है। राजनेताओं की पाबंदी, भ्रष्टाचार, दरिन्दिगी समाज में आज भी देखने को मिलती हैं। 'नाला सोपारा' के एक पात्र विधायक जी हैं जो विनोद की मद्द करने से पहले शर्तें रखते है। ''यहाँ लाजपत नगर में एक से एक बढ़िया कम्प्यूटर क्लासेस चलती है। पैसा भरकर तुम्हारा दाखिला करवाएं देते हैं इसी हफ्ते। मगर बरखुरदार पहले ही बताऐं देते हैं, नौकरी तुम्हें मेरे पास ही करनी होगी।'' राजनीति में व्यक्ति द्वारा व्यक्ति का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से किसी न किसी प्रकार शोषण किया जा रहा है। राजनीति में यह लोग आम लोगों की मद्द तो करते है लेकिन उसके पीछे अपना स्वार्थ छिपा होता है।

अजीविका की समस्या

'नाला सोपारा' उपन्यास में अजीविका की समस्या सामने आती है जो इन्हें अंतत: इनके समुदाय में ले जाती है खुशी के मौकों पर घरों में नाच-गाकर बधाईयाँ वसूलने वाले किन्नरों से लेकर एक स्वाभिमानी किन्नर विनोद जो आम मनूष्य की तरह बाहर काम करके जीविकोपार्जन करना चाहता है और अपने समुदाय के सभी लागों को भी नौकरी करके आत्मसम्मान के साथ जीने की प्रेरणा देता है।

उपन्यास में विनोद घरों और ट्रेनों में किन्नरों के साथ जाकर तालियाँ नहीं पीटता वह तड़के सुबह उठकर गाड़ियों को धोने का काम करता है। यहाँ एक प्रकार से उसका शोषण भी किया जाता है क्योंकि दिन के उजाले में कोई भी किसी किन्नर से अपनी कार साफ करवाना नहीं चाहता और बिचौलिया इसलिए उसे काम पर रखता हे क्योंकि अन्य मजदूरों की तुलना में विनोद को उसे कम पैसे देने पड़ेंगे। ''उमंग सोसाइटी में गाड़ियां धोने का काम मिल गया है बंधा हुआ। ठिकाने पर उस वक्त सभी लोग गहरी नींद सो रहे होते हैं। मना करने के बावजूद पूनम उठ जाती है मेरे निकलने से पहले और चाय का प्याला मुझे पकड़ा कर वापस जाकर सो जाती है।''

किन्नरों की समस्या एवं संवेदना

'नाला सोपारा' उपन्यास में किन्नर समाज की विभिन्न समस्याओं को दर्शाया गया है। किन्नर समाज के लोगों की अपनी अलग दुनिया होती है व उनका अपना समुदाय होता है। इसी भेद भावपूर्ण पुरूष सत्तामक समाज के द्वारा निर्मित प्रतिमानों के अनुसार किन्नरों ने अपने को ढाल लिया है। चित्रा जी ने अपने इस उपन्यास में किन्नरों के लिए नये प्रतिमानों को गढ़ा हैं। किन्नरों के संघर्षो को दर्शाया है।

समाज में प्राय: किन्नर समुदाय का अस्तित्व समाज की मुख्य धारा से अलग माना जाता है। चित्रा जी ने इस वर्ग की संवेदना को आत्मसात करते हुए संवेदनात्मक उपन्यास की रचना की है। किन्नरों के तौर-तरीके न अपनाने पर विनोद को कितने अत्याचार सहन करने पडेघ् लेकिन फिर भी वह किन्नरों के जैसे रहने को तैयार नहीं हुआ। ''उनके लात, घूंसे, थप्पड़ और कानों में गर्म तेल सी टपकती किसी भी सम्बन्ध को न बख्शने वाली अश्लील गालियों के बावजूद न मैं मटक-मटक कर ताली पिटने को राजी हुआ।''

एक मासूम बच्चे को किन्नर होने के कारण कितनी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। लिंग दोषी बच्चों को कलंक मानकर किन्नरों के हवाले कर देते है। उन्हें घुरे पर फेंक देते हैं।

निष्कर्ष

लेखिका की गहरी हमदर्दी इस जिंदगी के आयाचित दु:खों और अकेलेपन की तरफ है। इस उपन्यास को पढ़कर ही समझा जा सकता है कि इस दुनिया को बाकी समाज जिस निर्मम क्रूरता से देखता है वही क्रूरता इनमें हर स्तर पर दिखायी पड़ती है। किन्नरों की समस्या को उजागर करना एवं किन्नरों के प्रश्नों को नये संदर्भो में प्रस्तुत करना ही लेखिका चित्रा जी का लक्ष्य है। अत: कहा जा सकता है कि 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' उपन्यास एक सफल एवं सार्थक कृति है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- मुद्गल चित्रा, पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2016
- श्रीधर प्रदीप, हिन्दी के समकालीन विमर्श, विनय प्रकाशन, हंसपुरम, कानपुर, प्रथम संस्करण 2021
- खराटे मधु, हिन्दी उपन्यासों में किन्नर विमर्श, विद्या प्रकाशन, गुजैनी कानपुर, प्रथम संस्करण 2018
- वेबसाइटस
- https://anhivyakti.life
- http://www.indiatv.in
- hi.m.wikipedia.org

मार्गी व देशी संगीत (एक विश्लेषणात्मक) अध्ययन

काजल किरण

प्राथमिक संगीत शिक्षिका केन्द्रीय विद्यालय, गढ़हरा (बेगुसराय), बिहार

शोध सार-

हमारे संगीतज्ञों का यह मानना हैं कि भगवान ब्रह्मा ने सामवेद से संगीत की सृष्टि की है। संगीत मनुष्य की संवेदनाओं, भावनाओं एवं विचारों की अभिव्यक्ति का नादमय साधन हैं। अर्थात् स्वर और लय का ऐसा सुंदर संयोजन, जिसके माध्यम से हम अपनी भावों की अभिव्यक्ति कर सके, उसे हम संगीत कहते हैं। सर्वप्रथम शारंगदेव ने 'संगीत रत्नाकर' ग्रंथ में संगीत की परिभाषा देते हुए कहा हैं कि-

गीत वाद्य तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते।

अर्थात् गीत वाद्य और नृत्य का समुच्य ही संगीत है। संगीत प्रकृति की सर्वाधिक सुंदर रचनाओं में से एक है। प्राचीन काल से ही संगीत भगवतोपासना का एक सबल माध्यम माना जाता था। संगीत को ईश्वर का रूप एवं संगीत साधक को ईश्वर का अंश व भक्त समझा जाता था। इसी विचार धारा से प्रेरित होकर हमारे ऋषि-मुनि ने प्राचीन काल में ईश्वर की आराधना, उपासना तथा मोक्ष प्राप्ती के लिए जिस संगीत का प्रयोग किया वह मार्ग संगीत के रूप मे परिलक्षित हुआ। इसके ठीक विपरीत साधारण जनता की भावनात्मक, अध्यात्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का जो सबल माध्य बना वह देशी संगीत के रूप में उभर कर सामने आया।

इस प्रकार प्राचीन काल- में संगीत की दो विधाओं का प्रार्दुभाव हुआ- मार्गी संगीत, देशी संगीत

शोध सूचकः गन्धर्व, मार्गी, देशी संगीत, प्राचीन एंव मोक्ष.

शोध उद्देश्यः- प्रस्तुत शोध पत्र के लेखन का मुख्य उददे्श्य प्राचीन काल में प्रचलित मार्गी व देशी संगीत की उत्पत्ति एवं उसका विकास तथा उसकी विशेषताओं क सूक्ष्म विश्लेषण करना है। इस शोध के माध्यम से "हम जानेंगें कि मार्गी संगीत का विकास आधुनिक काल तक क्यों नहीं हुआ? और देशी संगीत का प्रचार प्रसार क्यों और कै हुआ?

शोध विषय-

अनादि काल से ही हमारा भारत साधको-अराधको व ऋषिमुनियों की तपोभूमि रही है। और देवी-देवता ही इनकी साधना के अधार स्तम्भ रहें हैं। प्राचीन काल में जब हमारे द्रष्टा ऋषि मुनियों को "यह ज्ञात हुआ कि संगीत में मन को एकाग्र करने की अद्भुत व प्रभावशाली शक्ति है, तभी से वे इस कला का प्रयोग ईश्वर की उपासना करने के लिए करने लगे। संगीत परमेश्वर प्राप्ती का प्रमुख साधन माना जाने लगा। उनका यह विचार था कि। शब्द की नाद ब्रहम हैं, इसलिए संगीत का उद्देश्य निश्चित करने के बाद, संगीत विद्वानों ने इसे कड़े नियमों में बांधने का प्रयत्न किया। सर्वप्रथम भरतमुनि ने अपने ग्रंथ में नाट्य शास्त्र में इस नियमबद्ध संगीत को जो ईश्वर प्राप्ती का साधन माना जाता है, मार्गी संगीत अथवा मार्ग संगीत का नाम दिया। कहा जाता है कि मार्ग संगीत ब्रहमा जी ने भरत मुनि को सिखाया, फिर भरतमुनि ने भगवान शंकर के समकक्ष इस का प्रदर्शन गांधव व अप्साराओं से करवाया। इस संगीत को केवल गान्धर्व ही गाया करते थे। इसलिए इसे गान्धर्व संगीत भी कहा जाता है। संगीतरत्नाकर" ग्रंथ के टीकाकार कुल्लिनाथ ने गान्धर्व और गान को ही, और देशीकहा है। कल्लिनाथ ने मार्ग संगीत के बारे में कुछ इस प्रकार कहा है कि:-

मार्गो देशीति तद्द्वेषा तत्र मार्गः स उच्यते।
यो मार्गितो विरिंच्याद्यै, प्रयुक्तो भरतादिभिः।।

अर्थात् मार्ग-संगीत वह है, जिसका प्रयोग ब्रह्मा के बाद भरत ने किया। वह अत्यंत प्राचीन तथा- कठोर सांस्कृतिक व धार्मिक नियमों से जुकड़ा हुआ था। अतः आगे उसका प्रचार ही समाप्त हो गया।

इसके अतिरिक्त प्राचीन काल में संगीत की एक और विद्या थी जिसका नाम था देशी संगीत व ज्ञान। देशी संगीत मार्ग संगीत की तरह अचल नही था अर्थात् इस संगीत क नियमों में परिवर्तन किया जा सकता था। इस संगीत का उद्देश्य भगवत प्राप्ती नही थी अपितु लोक जन-मून रंजन था, और लोक रुचि अनुसार इसमें परिवर्तन किया जा सकता था कुछ संगीतज्ञों का मानना या कि मार्गी संगीत में परिवर्तन करके ही देशी संगीत की उत्पत्ति हुई। शारंग देव ने अपने ग्रंथ संगीत रत्नाकर में देशी संगीत की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी है कि-

देश-देशे जनानां यदुरुच्या हृदयरंजकम्।
गीतं च वादन नृत्तं तद्देशी व्यभिधीयते।।

अर्थात् भिन्न-भिन्न देशों के जन (मनुष्य)- अपनी- अपनी रुचि के अनुसार जिसे गा-बजाकर और नाचकर प्रसन्नता प्राप्त करते हैं अथवा 'हृदय का रंजन करते है, वही देशी संगीत है। इसके अलावा संगीत दर्पण में देशी संगीत के बारें में इस प्रकार कहा गया है कि-

तत्तदेशास्थया रीत्या सत्सात् लोकानुरंजनमा।

देशे-देशे तु संगीत तद्देशीत्य विधीयते।।

अर्थात्- जो संगीत देश के भिन्न-भिन्न भागों में वहाँ के रीति-रिवाजों के अनुसार जनता का मनोरंजन करता है, वह देशी संगीत कहलाता है।

संगीत रत्नाकर नामक ग्रन्थ में शारंगदेव ने मार्गी तथा देशी संगीत के कुल मिला कर दस उपभेद बताये है जो क्रम से इस प्रकार है:-

1. ग्राम राग2. राग 3. उपराग 4. भाषा 5. विभाषा 6. अंतर भाषा 7. रागांग 8. भाषांग 9. उपांग 10. क्रियांग।

इन उपवेदों में से पहले छ: उपवेध मार्गी संगीत के माने जाते है तथा चार देशी संगीत के माने जाते है। इसी सिद्धांत को प्राचीन दस विध राग विभाजन भी कहा जाता था अत्यंत प्राचीन काल में मार्गी संगीत के अन्तर्गत जातीय गयी जाती थी। ये जातीय उस समय की प्रचलित रचनाये होती थी जो की ताल में वध्य थी मार्गी संगीत के अन्तर्गत इन्ही भिभिन्न स्वर रचनाओ को ताल के साथ इश्वर को प्रसन्न करने के लिए गया जाता था। इस प्रकार से जातीय में स्वरों का आधिक महत्त्व नहीं होता था। क्योंकि वे सब एक विशेष प्रकार की धुने ही होती थे और उन्ही धुनों पर अनेक पद गए जाते थे। ये सब मार्गी संगीत के अन्तेर्गत ही थे। मार्गी संगीत के प्रथम तीन उपवेद ग्रामराग राग तथा उपराग भी इसी प्रकार के स्वर रचाने थी। इन जातीयो की गाने की अनेक विधिया तथा शैलिया प्रचलित थी जिन्हें गितियां कह कर पुकारते थे भाषा, विभाषा तथा अंतर भाषा ये तीन गितियां मार्गी संगीत के अन्तेर्गत प्रचलित थी और इसके अलावा अन्य गितिया भी थी जैसे शुद्धा, भिन्ना, गौरी, वेसरा साधारण इत्यादि इसके अलावा भिभिन्न संगीत ग्रन्थ करो ने अपने ग्रन्थ में अलग अलग प्रकार से गितियों का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त देशी संगीत में ग्राम तथा देशी रगों का प्रचार प्रसार हुआ है।

इस प्रकार गान्धव और गान तथा मार्ग और देशी का सूक्ष्म अवलोकन करने के बाद हम कह सकते हैं कि मार्ग संगीत ही गांधर्व सं गीत था क्योंकि मार्ग संगीत को केवल गांधर्व लोग ही गाया करते थे, इसलिए इसे, गांधर्व संगीत भी कहा गया। तथा देशी संगीत का गान कहकर पुकारा गया।

आधुनिक कालू में देशी संगीत ही प्रचार में हैं क्योंकि देशी संगीत में समयानुसार बराबर परिवर्तन होते रहे है। जनरूचि पर आधारित होने के कारण प्रत्येक प्रान्त मे अलग-अलग संगीत का जन्म हुआ, जिसे हम देशी संगीत के नाम से जानते।

निष्कर्ष:- इस प्रकार अंतत: यह निष्कर्ष निकलता है कि मार्ग संगीत एक शब्द प्रधान अचल संगीत था। जो कि ईश्वर अथवा गांधवों द्वारा निर्मित था। और इसके गायन के नियमों में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। इसी कारण इस संगीत का लोप कलांतर में ही हो गया। इसके ठीक विपरीत देशी संगीत मानव निर्मित संगीत था जिसका मुख्य उद्देश्य जन-मन रंजन था। इस इस संगीत के नियम मार्ग संगीत जितने कठोर, नहीं थे। अर्थात् इसमें समयानुसार परिवर्तन किये जा सकते थे। आधुनिक समय में जिस प्रकारका संगीत गाया-बजाया जाता है वे सब देशी संगीत के ही अंतर्गत आते है। आज देशी संगीत की दो विधाए प्रचलित है:-

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत कर्नाटकी संगीत।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अशोक कुमार, 'यमन' संगीत रत्नावली, पृष्ठ 179
2. वसन्त, संगीत विशारद, पृष्ठ 282
3. लक्ष्मीनारायण गर्ग, निबन्ध संगीत, पृष्ठ 328
4. डा० मृत्युंजय शर्मा, संगीत मैनुअल, पृष्ठ 257

बरेली जनपद में समग्र शिक्षा अभियान के क्रियान्वयन के अन्तर्गत भौतिक संसाधनों की उपलब्धता का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० क्षमा पाण्डेय

(उपाचार्य) शिक्षा एवं सहबद्ध विज्ञान संकाय, महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, (उ0प्र0)

हेमपुष्पा गंगवार

(शोधार्थी) शिक्षा एवं सहबद्ध विज्ञान संकाय, महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, (उ0प्र0)

सारांश

समग्रशिक्षा अभियान, भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा 1 अप्रैल 2018 को औपचारिक रुप से प्रारम्भ किया गया, यह प्री-स्कूल से कक्षा 12 तक की विद्यालयी शिक्षा से सम्बन्धित एकीकृत योजना है जो शिक्षा के लिए सतत् विकास लक्ष्यों (एस०डी० जी० 4) के अनुसार और राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के उद्देश्यों की प्रतिपूर्ति करने में सहायक है। समग्र शिक्षा एक क्षेत्र व्यापी विकास कार्यक्रम है। इस महत्वाकांक्षी योजना के कार्यान्वयन के तीन वर्षों के उपरान्त यह माना जा सकता है कि देश शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लक्ष्य के निकट होना चाहिए, इसलिए वर्तमान शोध अध्ययन समग्र शिक्षा के कार्यान्वयन की वास्तविक स्थिति के आँकलन के संदर्भ में किया गया है। शोध अध्ययन हेतु बरेली जनपद के परिषदीय उच्च प्राथमिक विद्यालयों को चयनित किया गया है। वर्तमान अध्ययन हेतु समग्र शिक्षा अभियान के अंतर्गत निर्धारित मात्र एक आयाम, भौतिक संसाधनों की यथास्थिति के विश्लेषण को सम्मिलित किया गया है। शिक्षकों से प्राप्त प्रतिक्रियाओं से निष्कर्ष निकलता है कि अधिकांश विद्यालय समग्र शिक्षा योजना से लाभान्वित हो रहे हैं एवं शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लक्ष्य की पूर्ति में अग्रसर हैं।

बीज शब्दः समग्र शिक्षा योजना, सतत विकास लक्ष्य, समग्र शिक्षा के आयाम।

प्रस्तावना

समग्र शिक्षा योजना 2.0 का आरंभ देश की शिक्षा नीति को उन्नत करना है, इस शिक्षा अभियान को एसडीजी- 4 (सतत विकास लक्ष्य) से एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को एक साथ मिलाकर एक नया आयाम दिया गया है। इस योजना के समुचित क्रियान्वयन से बच्चों के सावभौमीक विकास हेतु उचित वातावरण प्राप्त होगा एवं प्राथमिक कक्षा से लेकर बारहवीं कक्षा तक शिक्षा के लिए एक समान समावेशी कक्षा बातावरण प्रदान किया जा रहा है। बच्चों के लिए शिक्षा व्यवस्था को और अधिक उन्नत बनाने के लिए भारत सरकार द्वारा इस अभियान को कार्यान्वित करने के लिए 2.94 लाख करोड़ रुपयों को खर्च करने का प्रावधान किया गया है। इस योजना के माध्यम से 5 वर्षों में सभी विद्यालयों को आई०सी०टी० से जोड़ा गया है। जिसके अंतर्गत स्मार्ट क्लासरूम एवं डिजिटल बोर्ड इत्यादि की व्यवस्था की गई है इस योजना अंतर्गत लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय वर्ष 2004 से ही संचालित किए जा रहे हैं।

इन विद्यालयों को अपग्रेड करते हुए इन्हें कक्षा 8 से लेकर कक्षा 12 तक संचालित किए जाने का प्रावधान है। इसके साथ ही कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों की छात्राओं को आत्म सुरक्षा के लिए भी प्रशिक्षित किया जा रहा है। छात्रों को उच्च प्राथमिक स्तर से ही व्यवसाय कौशल विकास का प्रशिक्षण एवं कार्यशील पुस्तकालय भी संचालित करना इस योजना का अभिन्न अंग है। समग्र शिक्षा अभियान 2.0 के अंतर्गत जनपद स्तर पर डाइट एवं राज्य स्तर पर एस०सी०ई०आर०टी० की की केंद्रीय भूमिका है। समग्र शिक्षा योजना को केन्द्र प्रायोजित योजना के रुप में लागू किया गया। केन्द्रीय मंत्री मण्डल द्वारा वित्तीय परिव्यय को मंजूरी मिलने के बाद अब स्कूली शिक्षा के लिए समग्र शिक्षा योजना चरण- 2, 2026 तक प्रभावी रहेगी। समग्र शिक्षा योजना बजट के 2.94 लाख करोड़ रुपए में से 1.85 लाख करोड़ रुपए केन्द्र सरकार देगी जबकि बाकी शेष राशि राज्य सरकार देगी। समग्र शिक्षा योजना का उद्देश्य एक

एकीकृत स्कूली शिक्षा योजना का निर्माण करना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन हेतु जून 2021 में निपुण भारत कार्यक्रम शुरु किया है। जिसका उद्देश्य 3 वर्ष से 9 वर्ष के बच्चों की न्यूनतम सीखने की जरुरतों को पूरा करना है। यह कार्यक्रम भी समग्र शिक्षा अभियान के अन्तर्गत संचालित है।

समग्र शिक्षा योजना

समग्र शिक्षा से तात्पर्य प्री स्कूल से कक्षा 12 तक विस्तारित स्कूल शिक्षा क्षेत्र के लिए एक व्यापक कार्यक्रम से है। यह एकीकृत शिक्षा है, जिसमें स्कूली शिक्षा के लिए समान अवसरों और समान शिक्षण परिणामों के संदर्भ में मापी गई स्कूल प्रभावशीलता में सुधार के व्यापक लक्ष्य समाहित है। इसके अंतर्गत सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (आरएमएसए) और शिक्षक शिक्षा (टीई) की तीनों योजनाओं को शामिल कर उनके एकीकरण एवं समग्र रूप में क्रियान्वयन से है।

शोध की आवश्यकता एवं महत्व

समग्र शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व वर्तमान शिक्षा प्रणाली में अधिक है। भारत ने राष्ट्र निर्माण हेतु शिक्षा की भूमिका को महत्वपूर्ण समझकर उसे सभी बच्चों के लिए अनिवार्य, सार्वभौमिक एवं नि:शुल्क बनाये जाने हेतु आवश्यक नियम बनाकर संविधान में रखा गया एवं सभी को अनिवार्य प्राथमिक एवं नि:शुल्क शिक्षा उपलब्ध कराने हेतु केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा कुछ योजनाओ जैसे-सर्वशिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान और शिक्षक शिक्षा संस्थानों के एकीकरण एवं विकास हेतु समग्रशिक्षा अभियान कार्यक्रम चलाया गया। इन योजनाओं के क्रियान्वयन और प्रबन्धन हेतु राष्ट्रीय, राज्य, जिला और उप-जिला स्तरों पर शिक्षा प्रणाली में सुधार हेतु अनेक व्यवस्थायें की गयी तथा शिक्षा प्रणाली के उद्देश्यों को प्राप्त करने में भी अस्थिरता प्राप्त हुयी। जिस कारण शिक्षा प्रणाली को एक ऐसे संगठित स्वरुप की आवश्यकता हुयी। जिसमें बच्चों की शिक्षा के साथ शिक्षक प्रशिक्षण को भी एक साथ देखा जा सके।

यह अभियान पूर्व-प्राथमिक कक्षा से 12 वीं एवं शिक्षक शिक्षा के लिए केन्द्रित है। यह योजना शिक्षक शिक्षा के पाठयचर्या में भी अपने सुझाव कार्यों को नियोजित करने का प्रयास कर रहा है। इस योजना के क्रियान्वयन की वर्तमान स्थिति का अध्ययन समीचीन प्रतीत होता है क्योकि इस अध्ययन से स्पष्ट होगा कि यह महत्वाकांक्षी योजना द्वारा शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार एवं उन्नति के प्रयास किस सीमा तक प्रभावी हैं। इसी उद्देश्य को केंद्र में रखते हुए बरेली जनपद में समग्र शिक्षा अभियान के क्रियान्वयन की वर्तमान स्थिति के विश्लेषणात्मक अध्ययन' का प्रयत्न किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. बरेली जनपद में समग्र शिक्षा अभियान के अन्तर्गत विद्यालय व्यवस्था संबंधी सुविधाओं की वर्तमान स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन।

शोध विधि- प्रस्तुत शोध में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या- प्रस्तुत शोध अध्ययन में बरेली जनपद में स्थापित परिषदीय उच्च प्राथमिक विद्यालय शोध की समस्त जनसंख्या हैं।

न्यादर्श- शोधकत्री द्वारा बरेली जनपद के सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत 500 शिक्षक एवं शिक्षिकाओं को न्यादर्श के रूप में लिया गया है।

शोध उपकरण

शोधकत्री ने स्वनिर्मित समग्र शिक्षा अभियान विषयक प्रश्नावली का प्रयोग किया है। इसके माध्यम से समग्र शिक्षा अभियान के अन्तर्गत आधारभूत संरचना की यथास्थिति को जानने का प्रयास किया गया है।

सीमांकन

समय एवं धन की सीमा को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ती द्वारा प्रस्तुत शोध अध्ययन के कार्य को बरेली जनपद के परिषदीय उच्च प्राथमिक विद्यालयों तक ही सीमित रखा गया है।

प्रयुक्त सांख्यिकी

प्रदत्त विश्लेषण हेतु प्रतिशत विधि का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं निष्कर्ष

प्रस्तुत उद्देश्य के द्वारा उच्च प्राथमिक विद्यालयों में समग्र शिक्षा अभियान के क्रियान्वयन का अध्ययन किया गया। इसके अंतर्गत 5 आयामों को सम्मिलित किया गया। इन आयामों के अन्तर्गत निर्मित प्रश्नों के आधार पर प्रदत्तों के संकलन हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। प्राप्त प्रदत्तों का प्रतिशत विश्लेषण किया गया जो निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है-

तालिका संख्या 1.0: विद्यालय व्यवस्था सम्बन्धी सुविधाओं का प्रतिशत विश्लेषण

क्र॰ संख्या	कथन (N=500)	हाँ	प्रतिशत (%)	नहीं	प्रतिशत (%)
1.	शिक्षण कार्य के लिए विद्यालय का अपना भवन है ?	457	91.4	43	8.6
2.	विद्यालय भवन भूकम्परोधी है ?	259	51.8	241	48.2
3.	विद्यालय भवन की समुचित रंगाई-पुताई है ?	439	87.8	61	12.2
4.	आपके विद्यालय में बाउंड्रीवाॅल की व्यवस्था है?	454	90.8	46	9.2
5.	विद्यालय भवन में अग्निशमन यंत्र हैं ?	449	89.8	51	10.2
6.	विद्यालय में खेल का मैदान है ?	338	67.6	162	32.4
7.	विद्यालय में प्रधानाध्यापक कक्ष है ?	413	82.6	87	17.4
8.	विद्यालय में शुद्ध पेयजल की सुविधा है ?	458	91.6	42	8.4
9.	विद्यालय में बालिकाओं के लिए क्रियाशील शौचालय की व्यवस्था है ?	469	93.8	31	6.2
10.	विद्यालय में दिव्यांग सुलभ शौचालय है ?	379	75.8	121	24.2
11.	शौचालयों में नल-जल की सुविधा है ?	464	92.8	36	7.2
12.	विद्यालय के शौचालय में साफ सफाई की व्यवस्था है ?	424	84.8	76	15.2
13.	आपके विद्यालय में हाथ धोने की सुविधा है ?	476	95.2	24	4.8
14.	विद्यालय के कक्षा कक्ष के फ्रर्श का टाइलीकरण है ?				
15.	विद्यालय में फर्नीचर की व्यवस्था है ?	329	65.8	171	34.2
16.	विद्यालय में विद्युत संयोजन है ?	461	92.2	39	7.8

बरेली जनपद के उच्च प्राथमिक विद्यालयों में समग्र शिक्षा अभियान के क्रियान्वयन की वर्तमान स्थिति के अध्ययन हेतु विद्यालयी व्यवस्था सम्बन्धी प्राप्त प्रतिक्रियाओं के आवृत्ति वितरण एवं प्रतिशत को तालिका संख्या 1.0 में दर्शाया गया है। इस तालिका से ज्ञात होता है कि प्राय: 91.4% विद्यालयों में शिक्षण कार्य के लिए उनका अपना भवन पाया गया है, लेकिन इनमें से मात्र 51-8 % विद्यालय भवन भूकंप रोधी पाए गए जबकि और 48.2% भवन भूकंप रोधी नहीं पाए गए। विद्यालयों में 87.8% भवनों की समुचित रंगाई-पुताई वाले हैं एवं 90.8% विद्यालयों में बाउंड्री वाल पायी गयी थी। 67.6% विद्यालयों में अपना खेल का मैदान है तथा 82.6% विद्यालयों में प्रधानाध्यापक कक्ष पाए गए। 91.6% विद्यालयों में शुद्ध पेयजल उपलब्ध था जबकि 8.4% विद्यालयों के विद्यार्थी शुद्ध पेयजल से वंचित थे। 93.8% विद्यालयों में बालिकाओं के लिए क्रियाशील शौचालय पाया गया एवं 75.80 % विद्यालयों में दिव्यांग शुलभ शौचालय पाया गया, इस आधार पर कह सकते हैं कि 6.2% सामान्य बालिकाएँ शौचालय जैसी आधारभूत सुविधाओं से वंचित हैं जबकि 24.20% दिव्याग बालिकाओं हेतु दिव्यांग शुलभ शौचालय जैसी आधारभूत सुविधाओं की व्यवस्था नहीं है। 84.80% विद्यालयों के शौचालयों में साफ-सफाई की व्यवस्था थी, जिसे संतोषजनक कहा जा सकता है। 92.8% विद्यालयों में नल-जल की सुविधा, 92.20% विद्यालयों में हाथ धोने की सुविधा पायी गयी इस आधार पर कह सकते हैं कि मात्र कुछ विद्यालय ही पानी पाने की व्यवस्था करवाने में असफल हैं जबकि इस संदर्भ में लक्ष्य 100% प्राप्त हो जाना चाहिए।

75.0% विद्यालयों में कक्षा-कक्ष के फर्श का टाईलीकरण तथा 65.8% विद्यालयों में फर्नीचर उपलब्ध पाया गया। 92.2% विद्यालयों में विद्युत संयोजन पाया गया एवं 7.8% विद्यालयों में विद्युत संयोजन नहीं पाया गया।

अत: निष्कर्ष निकलता है, कि उपरोक्त विद्यालयों में भौतिक सुविधाओं में से लगभग सभी व्यवस्थाओं का औसत अनुपात 80:20 का है। प्राप्त प्रदत्तों के विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि समग्र शिक्षा अभियान का क्रियान्वयन संतोषजनक स्तर पर है एवं प्राप्त भौतिक सुविधाएँ अपेक्षाकृत संतोषजनक हैं।

निष्कर्ष-

अत: शोध अध्ययन के निष्कर्ष रूप पाया गया की अधिकांश क्षेत्रों में विद्यालय भूकम्प रोधी नहीं पाए गए जो कि वर्तमान समय में शिक्षण मानक अनुसार अत्यंत ही आवश्यक है। और उपरोक्त विद्यालयों में भौतिक सुविधाएं कुल मिलाकर औसतन उच्च स्तर की पाई गई, जो कि शिक्षा के क्षेत्र में एक सराहनीय

कार्य है। अत: निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि विद्यालयों में संसाधनों के अभाव की पूर्ति की जाए जिससे विद्यालयों के भौतिक संसाधनों की गुणवत्ता में वृद्धि हो सके व उनकी शैक्षिणक गुणवत्ता में भी वृद्धि हो जिससे शिक्षार्थियों तथा उनके शिक्षण पर सकारात्मक प्रभाव पढ़ सके। यदि विद्यालय आधारभूत सुविधाओं से युक्त होंगे तो निश्चय ही विद्यार्थियों को विद्यालय में रुके रहने एवं अधिगम के प्रति रुचि बनाये रखने में सहायक होंगे।

सन्दर्भ

प्राथमिक शिक्षक, शैक्षिक संवाद की पत्रिका, एन०सी०ई०आर०टी० कैंपस, श्री अरविन्द मार्ग नई दिल्ली 110016 वर्ष 42 अंक 4 अक्टूबर 2018

केन्द्र सरकार का समग्र शिक्षा अभियान पोर्टल

भारत सरकार का पत्र सूचना कार्यालय

कुकरेत, वी०, आर० एवं सक्सेना, मनोज के. (2004) प्राइमरी एजुकेशन इन उत्तर प्रदेश एंड एनालिटिकल स्टडी, ज्ञान जनरल ऑफ एजुकेशन, वॉल्यूम -1

देहादर्रे, वृशाली (2015) एलिमेंट्री स्कूल एजुकेशन इन महाराष्ट्र जनरल ऑफ ऑल इंडिया एसोसिएशन फॉर एजुकेशनल रिसर्च, वॉल्यूम 27- 1

बानो, नरगिस एवं नुरुल होदा (2018) द स्टडी ऑफ इंफ्रास्ट्रक्चर मैनेजमेंट इन एलिमेंट्री स्कूल ऑफ बिहार, इंटरनेशनल जनरल ऑफ सोशल रेलीवेंस एंड कंसर्न, वॉल्यूम- 6, अंक-1जनवरी (2018)

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के लाभ एवं गरीबी निवारण के रूझान की समीक्षा

मुन्नी राम

शोधार्थी, अर्थशास्त्र, वी.वी. (पीजी) कॉलेज, शामली

डॉ० (श्रीमती) मंजु मगन

प्राचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, वी.वी. (पीजी) कॉलेज, शामली

सार–

स्किल इंडिया का निर्माण वर्तमान सरकार की प्राथमिकता है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा युवक–युवतियों के गरीबी निवारण, स्वावलम्बन एवं स्वरोजगार के लिए प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना प्रारम्भ की गई है। यह एक महत्वपूर्ण, महत्वाकांक्षी और सम्भावनाशील योजना है। कोई भी अयोग्य नहीं है, केवल एक योजक की आवश्यकता है, जो मार्गदर्शन कर सके। युवक–युवतियों को प्रशिक्षण देकर कौशल विकास योजना योजक का काम कर रहा है। राज्य सरकार कौशल विकास अभियान के माध्यम से अधिक से अधिक युवा वर्ग को प्रशिक्षित कर आत्मनिर्भर बनाने के लिए प्रतिबद्ध है। इसके तहत अभी तक 06 लाख युवक–युवतियों को प्रशिक्षित कर रोजगार उपलब्ध कराया जा चुका है। अगले 05 वर्षों में प्रदेश सरकार 70 लाख नौजवानों को प्रशिक्षित कर रोजगार दिलाएगी, ताकि रोजगार प्राप्त कर वे गलत व्यक्तियों की संगत से बच सके है, देश में बेरोजगार युवा गलत व्यक्तियों की संगत में जल्दी आ जाते हैं। पिछले तीन वर्षों में कौशल विकास के माध्यम से कौशल भारत, कुशल भारत की नींव रखी गई है।

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ प्राप्त:

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ पहले नहीं प्राप्त होता था परन्तु यह योजना वर्तमान समय में चलायी जा रही है। इस सम्बन्ध में जब उत्तरदाताओं से यह प्रश्न पूछा गया कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ प्राप्त हो रहा है कि नहीं? तो उत्तरदाताओं ने यह विचार व्यक्त किया कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ प्राप्त हो रहा है। यह तथ्य निम्न सारणी संख्या–1.1 के विश्लेषण से स्पष्ट होता है।

सारणी संख्या–1.1

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ प्राप्त हो रहा है कि नहीं

उत्तरदाता	हाँ	नहीं	कुछ–कुछ	प्रतिशत
ग्रामीण युवक	84 (93.34)	2 (2.22)	4 (4.44)	90 (100.00)
ग्रामीण युवतियाँ	52 (86.67)	3 (5.00)	5 (8.33)	60 (100.00)
भाहरी युवक	75 (96.15)	1 (1.28)	2 (2.57)	78 (100.00)
भाहरी युवतियाँ	67 (93.05)	2 (2.78)	3 (4.17)	72 (100.00)
योग	278 (92.67)	8 (2.67)	14 (4.66)	300 (100.00)

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ प्राप्त होने से सम्बन्धित

उपरोक्त सारणी–1.1 के विश्लेषण से यह तथ्य परिलक्षित होता है कि ग्रामीण युवक के 90 उत्तरदाताओं में से 93.34% उत्तरदाता इस तथ्य से सहमत है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ प्राप्त हो रहा है, 2. 22% उत्तरदाता इस तथ्य से असहमत है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ प्राप्त हो रहा है एवं 4.44% उत्तरदाताओं ने यह विचार व्यक्त किया कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ कुछ–कुछ प्राप्त हो रहा है। ग्रामीण

युवतियों के 60 उत्तरदाताओं में से 86.67% उत्तरदाता इस तथ्य से सहमत है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ प्राप्त हो रहा है, 5% उत्तरदाता इस तथ्य से असहमत है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ प्राप्त हो रहा है एवं 8.33% उत्तरदाताओं ने यह विचार व्यक्त किया कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ कुछ-कुछ प्राप्त हो रहा है। शहरी युवक के 78 उत्तरदाताओं में से 96.15% उत्तरदाता इस तथ्य से सहमत है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ प्राप्त हो रहा है, 1.28% उत्तरदाता इस तथ्य से असहमत है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ प्राप्त हो रहा है एवं 2.57% उत्तरदाताओं ने यह विचार व्यक्त किया कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ कुछ-कुछ प्राप्त हो रहा है।

शहरी युवतियों के 72 उत्तरदाताओं में से 93.05% उत्तरदाता इस तथ्य से सहमत है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ प्राप्त हो रहा है, 2.78% उत्तरदाता इस तथ्य से असहमत है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ प्राप्त हो रहा है एवं 4.17% उत्तरदाताओं ने यह विचार व्यक्त किया कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ कुछ-कुछ प्राप्त हो रहा है। इस प्रकार सारणी संख्या-1.2 के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्तरदाता इस तथ्य से सहमत है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ प्राप्त हो रहा है।

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से गरीबी को दूर करने का प्रयास:

गरीबी उन्मूलन सदैव ही तीसरी दुनिया (तृतीय विश्व) के शब्दों के लिये प्रमुख चुनौती रहा है। यद्यपि दो दशकों में गरीबी में कमी आयी है, किन्तु जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप गरीबों की संख्या कदाचित उतनी ही है। संसाधानों का बेहतर सदोहन तथा सघन रोजगार योजनाएं दीर्धकाल में गरीबी में कमी तथा आर्थिक वृद्धि में अति-महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। हालांकि इस हेतु इन राजनीतियों का कतिपय मूलभूत सेवाओं आवश्यकताओं के साथ युग्मित होना अनिवार्य है। तभी राज्य द्वारा संचालित गरीबी उन्मूलन योजनाओं जनता के जीवन की गुणवत्ता, दशा के उन्नयन में सहायक होंगी तथा गरीबी उन्मूलन के अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगी। सरकार द्वारा ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के लिये विविध गरीबी उन्मूलन परियोजनायें विशेष रूप से चलायी जा रही है। इस सम्बन्ध में जब उत्तरदाताओं से यह प्रश्न पूछा गया कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से गरीबी को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है? तो उत्तरदाताओं ने यह विचार व्यक्त किया कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से गरीबी को दूर करने का प्रयास किया जा रहाहै। यह तथ्य निम्न सारणी संख्या-1.2 के विश्लेषण से स्पष्ट होता है।

सारणी संख्या-1.2

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से गरीबी को दूर करने का प्रयास

उत्तरदाता	हाँ	न्हीं	कुछ-कुछ	प्रतिशत
ग्रामीण युवक	77 (85.56)	5 (5.56)	8 (8.88)	90 (100.00)
ग्रामीण युवतियाँ	44 (73.33)	6 (10.00)	10 (16.67)	60 (100.00)
भाहरी युवक	68 (87.18)	3 (3.85)	7 (8.97)	78 (100.00)
भाहरी युवतियाँ	59 (81.94)	4 (5.56)	9 (12.50)	72 (100.00)
योग	248 (82.67)	18 (6.00)	34 (11.33)	300 (100.00)

उपरोक्त सारणी संख्या-1.2 के विश्लेषण से यह तथ्य परिलक्षित होता है कि ग्रामीण युवक के 90 उत्तरदाताओं में से 85.56% उत्तरदाता इस तथ्य से सहमत है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से गरीबी को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है 5.56% उत्तरदाता इस तथ्य से असहमत है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से गरीबी को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है एवं 8.88% उत्तरदाताओं ने यह विचार व्यक्त किया कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से गरीबी को दूर करने का कुछ-कुछ प्रयास किया जा रहा है। ग्रामीण युवतियों के 60 उत्तरदाताओं में से 73.33% उत्तरदाता इस तथ्य से सहमत है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से गरीबी को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है 10% उत्तरदाता इस तथ्य से असहमत है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से गरीबी को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है एवं 16.67% उत्तरदाताओं ने यह विचार व्यक्त किया कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से गरीबी को दूर करने का कुछ-कुछ प्रयास किया जा रहा है।

शहरी युवक के 78 उत्तरदाताओं में से 87.18% उत्तरदाता इस तथ्य से सहमत है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से गरीबी को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है, 3.85% उत्तरदाता इस तथ्य से असहमत है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से गरीबी को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है एवं 8.97% उत्तरदाताओं ने यह विचार व्यक्त किया कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से गरीबी को दूर करने का कुछ-कुछ प्रयास किया जा रहा है। शहरी युवतियों के 72 उत्तरदाताओं में से 81.94% उत्तरदाता इस तथ्य से सहमत है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से गरीबी को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है, 5.56% उत्तरदाता इस तथ्य से असहमत है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से गरीबी को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है एवं 12.50% उत्तरदाताओं ने यह विचार व्यक्त किया कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से गरीबी को दूर करने का कुछ-कुछ प्रयास किया जा रहा है।

इस प्रकार सारणी संख्या-1.2 के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्तरदाता इस तथ्य से सहमत है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से गरीबी को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है।

योजना की ऋण प्रक्रिया से परिचित:

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना की प्रक्रिया में ऋण के बारे में पहले किसी को जानकारी नहीं थी। इस सम्बन्ध में जब उत्तरदाताओं से यह प्रश्न पूछा गया कि आप योजना की ऋण प्रक्रिया से परिचित है? तो उत्तरदाताओं ने यह विचार व्यक्त किया आप योजना की ऋण प्रक्रिया से परिचित है। यह तथ्य निम्न सारणी संख्या-1.3 के विश्लेषण से स्पष्ट होता है।

सारणी संख्या-1.3

योजना की ऋण प्रक्रिया से परिचित होने से सम्बन्धित

उत्तरदाता	हाँ	न्हीं	कुछ–कुछ	प्रतिशत
ग्रामीण युवक	68 (75.56)	7 (7.78)	15 (16.66)	90 (100.00)
ग्रामीण युवतियाँ	39 (65.00)	5 (8.33)	16 (26.67)	60 (100.00)
भाहरी युवक	60 (76.93)	6 (7.69)	12 (15.38)	78 (100.00)
भाहरी युवतियाँ	51 (70.83)	8 (11.11)	13 (18.06)	72 (100.00)
योग	218 (72.67)	26 (8.67)	56 (18.66)	300 (100.00)

उपरोक्त सारणी संख्या-1.3 के विश्लेषण से यह तथ्य परिलक्षित होता है कि ग्रामीण युवक के 90 उत्तरदाताओं में से 75.56% उत्तरदाता इस तथ्य से सहमत है कि आप योजना की ऋण प्रक्रिया से परिचित है, 7.78% उत्तरदाता इस तथ्य से असहमत है कि आप योजना की ऋण प्रक्रिया से परिचित है एवं 16.66% उत्तरदाताओं ने यह विचार व्यक्त किया कि योजना की ऋण प्रक्रिया से थोड़ा बहुत परिचित है। ग्रामीण युवतियों के 60 उत्तरदाताओं में से 65% उत्तरदाता इस तथ्य से सहमत है कि आप योजना की ऋण प्रक्रिया से परिचित है, 8.33% उत्तरदाता इस तथ्य से असहमत है कि आप योजना की ऋण प्रक्रिया से परिचित है एवं 26.67% उत्तरदाताओं ने यह विचार व्यक्त किया कि योजना की ऋण प्रक्रिया से थोड़ा बहुत परिचित है।

शहरी युवक के 78 उत्तरदाताओं में से 76.93% उत्तरदाता इस तथ्य से सहमत है कि आप योजना की ऋण प्रक्रिया से परिचित है, 7.69% उत्तरदाता इस तथ्य से असहमत है कि आप योजना की ऋण प्रक्रिया से परिचित है एवं 15.38% उत्तरदाताओं ने यह विचार व्यक्त किया कि योजना की ऋण प्रक्रिया से थोड़ा बहुत परिचित है।

शहरी युवतियों के 72 उत्तरदाताओं में से 70.83% उत्तरदाता इस तथ्य से सहमत है कि आप योजना की ऋण प्रक्रिया से परिचित है, 11.11% उत्तरदाता इस तथ्य से असहमत है कि आप योजना की ऋण प्रक्रिया से परिचित है एवं 18.06% उत्तरदाताओं ने यह विचार व्यक्त किया कि योजना की ऋण प्रक्रिया से थोड़ा बहुत परिचित है।

इस प्रकार सारणी संख्या 1.3 के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्तरदाता इस तथ्य से सहमत है कि आप योजना की ऋण प्रक्रिया से परिचित है।

निष्कर्ष:

शोधकर्ता द्वारा शोधकार्य के दौरान प्राप्त तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत अध्ययन में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का गरीबी निवारण के रूझान की समीक्षा को वास्तविक तथ्यों के आधार पर किया गया है। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का गरीबी निवारण के रूझान के आधार पर विश्लेषित करने पर जो निष्कर्ष प्राप्त हुये हैं वे निम्नलिखित है।

1. प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ पहले नहीं प्राप्त होता था परन्तु यह योजना वर्तमान समय में चलायी जा रही है। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ प्राप्त होने के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं ने स्पष्टत: इस तथ्य को स्वीकार किया है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लाभ प्राप्त हो रहा है। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से गरीबी को दूर करने का प्रयास किया जाने के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं ने स्पष्टत: इस तथ्य को स्वीकार किया है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से गरीबी को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है।
2. प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम के तहत कितने रूपए तक ऋण लिया जा सकता है इस सन्दर्भ में जानकारी के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं ने स्पष्टत: इस तथ्य को स्वीकार किया है कि प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम के तहत कितने रूपए तक ऋण लिया जा सकता है इसकी जानकारी है। इस योजना के तहत उद्योग-धन्धों को बढ़ावा मिलनेके सम्बन्ध में उत्तरदाताओं ने स्पष्टत: इस तथ्य को स्वीकार किया है कि इस योजना के तहत उद्योग-धन्धों को बढ़ावा मिला है।
3. ऋण को मंजूर करवाते समय बैंक अधिकारियों द्वारा आपके साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जानेके सम्बन्ध में उत्तरदाताओं ने स्पष्टत: इस तथ्य को स्वीकार किया है कि ऋण को मंजूर करवाते समय बैंक अधिकारियों द्वारा सहयोगी व्यवहार किया जाता है।
4. ऋण राशि को ब्याज के साथ अदा किया जाने के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं ने स्पष्टत: इस तथ्य को स्वीकार किया है कि ऋण राशि को ब्याज के साथ अदा किया जाता है।

5. प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना में वृद्धि होनेके सम्बन्ध में उत्तरदाताओं ने स्पष्टत: इस तथ्य को स्वीकार किया है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना में वृद्धि हो रही है।
6. प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना में आपके समक्ष क्या मुख्य समस्या आनेके सम्बन्ध में उत्तरदाताओं ने स्पष्टत: इस तथ्य को स्वीकार किया है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना में लोगों में जागरूकता की कमी मुख्य समस्या के रूप में आयी है।
7. राज्य तथा केन्द्र सरकार द्वारा गरीबी निवारण के लिए समय-समय पर पूरी सहायता प्रदान की जाने के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं ने स्पष्टत: इस तथ्य को स्वीकार किया है कि राज्य तथा केन्द्र सरकार द्वारा गरीबी निवारण के लिए समय-समय पर पूरी सहायता प्रदान की जाती है

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

- कुलश्रेष्ठ, डॉ. आर.एस.: भारत में उद्योगों का संगठन प्रबंध एवं वित्त, साहित्य भवन आगरा, वर्ष 2008
- मामोरिया, डॉ. सी.बी.: भारत की आर्थिक समस्याएँ, साहित्य भवन आगरा, वर्ष 2010
- सिन्हा, डॉ. वी.सी.: आर्थिक सवृद्धि एवं नियोजन, साहित्य भवन आगरा, वर्ष 2007
- शुक्ल, प्रो. त्रिभुवननाथ: उद्यमिता विकास म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल 2015
- पांथरी, शैलेन्द (2000): आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी

गणित में हिन्दी माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम विद्यार्थियों पर उपचारात्मक शिक्षण विधि का परम्परागत शिक्षण विधि से तुलनात्मक अध्ययन

विभय कुमार सोनी

शोधार्थी, शिक्षा संकाय, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय, सिंगरामऊ, जौनपुर (उ०प्र०)

डॉ० अंजनी कुमार मिश्र

शोध निर्देशक, असिस्टेण्ट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय, सिंगरामऊ, जौनपुर (उ०प्र०)

सार-तत्व-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में जौनपुर जनपद के हिन्दी माध्यम और अंग्रेजी माध्यम के कक्षा 8 गणित विषय के 60-60 विद्यार्थियों (प्रत्येक में 30 छात्रा एवं 30 छात्र) को सामाजिक, आर्थिक, सुविधा सम्पन्नता और विद्यालय के सरकारी तथा गैर-सरकारी स्थिति पर बिना ध्यान दिये, यादृच्छिक प्रतिचयन प्रविधि के प्रत्येक चरण को लॉटरी विधि द्वारा लिया गया है। यह प्रयोगात्मक शोध एकल समूह विधि पर आधारित है, जिसमें हिन्दी माध्यम और अंग्रेजी माध्यम में क्रमशः 'अ' और 'A' स्वनिर्मित प्रमापीकृत निदानात्मक परीक्षण बैटरी का निर्माण 2 प्रकरण परिमेय संख्याएँ (5 उप-प्रकरण) एवं वर्ग और वर्गमूल (2 उप-प्रकरण) पर किया गया है। 'अ' और 'A' को प्रशासित कर 20 प्रतिशत से 30 प्रतिशत तक प्राप्तांक वाले 40 विद्यार्थियों के समूह (प्रत्येक में 20 छात्रा एवं 20 छात्र) को लेकर उपचारात्मक अभ्यासमाला, गणित सर्कल, हरबर्ट पंचपदीय प्रणाली पर आधारित पाठ-योजना द्वारा पढ़ाकर पुनः परीक्षण बैटरी 'अ' और 'A' प्रशासित कर प्राप्त आँकड़ों से टी-मान की गणना की गयी। प्राप्त परिणाम से स्पष्ट है कि परम्परागत शिक्षणोपरान्त तथा उपचारात्मक शिक्षणोपरान्त विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर है।

संकेत शब्द- निदानात्मक परीक्षण, परम्परागत शिक्षण, उपचारात्मक शिक्षण, शैक्षिक उपलब्धि, तुलनात्मक अध्ययन।

प्रस्तावना-

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, जिसका समाजीकरण शिक्षा द्वारा होता है। शिक्षा ही एक पूर्ण मानव का निर्माण करती है, जिसके लिए विद्यालय में शिक्षण प्रक्रिया अपनायी जाती है। शिक्षण प्रक्रिया में मुख्य रूप से तीन घटक होते हैं- शिक्षक, शिक्षार्थी और पाठ्य-सामग्री। पाठ्य-सामग्री के माध्यम से शिक्षक और शिक्षार्थी में अन्तःक्रिया चलती है, शिक्षक कक्षा में अध्यापन कार्य करता है तत्पश्चात् प्रश्न पूछता है तो कभी शिक्षार्थी, शिक्षक के प्रश्नों का उत्तर देता है, कभी शान्त बैठता है अर्थात् प्रश्नों के उत्तर नहीं दे पाता। शिक्षार्थी शिक्षण कार्य से लाभान्वित हुआ या नहीं, ज्ञान में वृद्धि हुई या नहीं, व्यवहार में परिवर्तन आया या नहीं, कक्षोन्नति करने के लिए उपयुक्त ज्ञान प्राप्त किया या नहीं आदि प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए शिक्षार्थी की विभिन्न विषयों तथा क्षेत्रों में उपलब्धि का मूल्यांकन किया जाता है, तत्पश्चात् शैक्षिक दृष्टि से कमजोर विद्यार्थियों के कठिनाइयों को जानने के लिए निदानात्मक परीक्षण का उपयोग किया जाता है और उपचारात्मक शिक्षण के द्वारा न केवल विद्यार्थियों की कठिनाइयों एवं कमजोरियों को दूर किया जाता है बल्कि इन समस्याओं के मूल कारणों को भी समाप्त करने का प्रयास किया जाता है।

अध्ययन की पृष्ठभूमि-

निदान शब्द चिकित्सा विज्ञान की देन है। चिकित्सक रोगियों का उपचार करने से पूर्व विभिन्न प्रकार के परीक्षण का सहारा लेता है, बीमारी को जानकर इन बीमारियों को दूर करने के लिए एवं अच्छाइयों को रक्षित करने के लिए विभिन्न प्रकार की दवा देता है और बीमारियों को सम्पूर्ण समाप्त करने का प्रयास करता है। ठीक इसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न परीक्षणों के द्वारा विद्यार्थियों की अधिगम सम्बन्धित कठिनाइयों एवं उनके द्वारा की जाने वाली त्रुटियों के बारे में जानकारी प्राप्त की जाती है और इन कमियों को दूर करने के लिए उपचारात्मक शिक्षण की व्यूह रचना बनायी जाती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में गणित शिक्षण में गणित सर्कल के द्वारा उपचारात्मक शिक्षण की संकल्पना प्रस्तुत की गयी है, जिसका प्रयोग शोधार्थी ने अपने शोध में किया है।

अध्ययन का औचित्य-

गणित की उत्पत्ति का इतिहास अति प्राचीन है। गणित एक ऐसा विषय है जो बालकों में तर्कशक्ति, समस्या समाधान, खोजकर बनाना आदि गुणों का विकास करता है। बालक गणित विषय को प्रारम्भ से ही कठिन मानता है और गणित विषय पढ़ने में रुचि नहीं रखता है परन्तु निदान एवं उपचार के द्वारा इस भ्रम को दूर किया जा सकता है और बालकों में गणितीय एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास किया जा सकता है। भारत में प्राथमिक स्तर, उच्च प्राथमिक स्तर शिक्षा की सबसे कमजोर कड़ी है इसलिए निदान एवं उपचार की प्रक्रिया प्रारम्भिक कक्षाओं से ही प्रारम्भ कर दी जानी चाहिए।

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण-

ठाकरे, बी०एम० (1980) के शोध का मुख्य उद्देश्य गुजराती माध्यम विद्यार्थियों हेतु उपचारात्मक कार्यक्रम का विकास करना और उसकी प्रभावशीलता की जाँच हेतु 'भिन्न' और 'दशमलव' का चयन किया और इन विषयों पर उदाहरण के साथ विद्यार्थियों द्वारा की गयी त्रुटियों का विश्लेषण किया। परिणाम के विश्लेषण हेतु वर्णनात्मक सांख्यिकी और क्रान्तिक अनुपात का उपयोग किया गया। निष्कर्ष रूप में उपचारात्मक शिक्षणोपरान्त विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि उच्च पायी गयी। ओयेकंन, सम ओल्येसी (अक्टूबर, 2013) के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य जीव विज्ञान में विद्यार्थियों की उपलब्धि हेतु निदानात्मक-उपचारात्मक शिक्षण की प्रभावशीलता का अध्ययन करना। न्यादर्श के रूप में ओसून और नियाग्रा के स्थानीय सेकेण्डरी विद्यालय के 12 अध्यापकों और 427 विद्यार्थियों को लिया गया। न्यादर्श को एक बार प्रयोगात्मक समूह के रूप में और एक बार नियन्त्रित समूह के रूप में रखकर शोध उपकरणों को प्रशासित किया गया। उपचारात्मक शिक्षण हेतु 80 मिनट की दो पाठ-योजना पढ़ायी गयी, तत्पश्चात् एफ० परीक्षण और टी० परीक्षण के द्वारा सार्थकता का परीक्षण किया गया। निष्कर्ष रूप में यह प्राप्त हुआ कि उपचारात्मक शिक्षण, प्रयोगात्मक समूह पर सार्थक है।

समस्या कथन-

गणित में हिन्दी माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम विद्यार्थियों पर उपचारात्मक शिक्षण विधि का परम्परागत शिक्षण विधि से तुलनात्मक अध्ययन।

अध्ययन में प्रयुक्त तकनीकी शब्दों की व्याख्या-

निदानात्मक परीक्षण-

निदानात्मक परीक्षण से तात्पर्य ऐसे परीक्षण से है जो अधिगम सम्बन्धी कठिनाइयों और कमियों के स्वरूप का निर्धारण करते हैं।

परम्परागत शिक्षण विधि-

परम्परागत शिक्षण विधि से अभिप्राय शिक्षक-केन्द्रित विधि से है, जो मुख्यतः व्याख्यान आधारित होती है और विद्यार्थी निष्क्रिय श्रोता बना रहता है।

उपचारात्मक शिक्षण विधि-

उपचारात्मक शिक्षण वास्तव में उत्तम शिक्षण है जो विद्यार्थियों को अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्रदान करता है तथा सुप्रेरित क्रियाओं द्वारा उसको अपनी कमजोरियों के क्षेत्र में अधिक योग्यता की दिशा में अग्रसर करता है।

शैक्षिक उपलब्धि-

शैक्षिक उपलब्धि से तात्पर्य स्वनिर्मित प्रमापीकृत परीक्षण पर प्राप्तांकों से है।

तुलनात्मक अध्ययन-

तुलनात्मक अध्ययन से तात्पर्य प्रभावशीलता के अध्ययन से है।

शोध के उद्देश्य-

- हिन्दी माध्यम कक्षा 8 गणित विषय में परम्परागत शिक्षणोपरान्त तथा उपचारात्मक शिक्षणोपरान्त विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- अंग्रेजी माध्यम कक्षा 8 गणित विषय में परम्परागत शिक्षणोपरान्त तथा उपचारात्मक शिक्षणोपरान्त विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- कक्षा 8 गणित विषय में परम्परागत शिक्षणोपरान्त हिन्दी माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- कक्षा 8 गणित विषय में उपचारात्मक शिक्षणोपरान्त हिन्दी माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध के परिकल्पनाएँ–

H_{01}: हिन्दी माध्यम कक्षा 8 गणित विषय में परम्परागत शिक्षणोपरान्त तथा उपचारात्मक शिक्षणोपरान्त विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।

H_{02}: अंग्रेजी माध्यम कक्षा 8 गणित विषय में परम्परागत शिक्षणोपरान्त तथा उपचारात्मक शिक्षणोपरान्त विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।

H_{03}: कक्षा 8 गणित विषय में परम्परागत शिक्षणोपरान्त हिन्दी माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।

H_{04}: कक्षा 8 गणित विषय में उपचारात्मक शिक्षणोपरान्त हिन्दी माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि–

प्रयोगात्मक शोध विधि जो एकल समूह विधि पर आधारित है।

शोध समष्टि–

उत्तर प्रदेश के हिन्दी माध्यम और अंग्रेजी माध्यम के कक्षा 8 के गणित विषय पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या।

शोध न्यादर्श–

बहु-सोपान यादृच्छिक प्रतिचयन के अन्तर्गत लॉटरी विधि द्वारा 60-60 विद्यार्थियों (प्रत्येक में 30 छात्रा एवं 30 छात्र) का चयन किया गया तत्पश्चात् 20 प्रतिशत से 30 प्रतिशत तक अंक प्राप्त करने वाले 40-40 विद्यार्थियों (प्रत्येक में 20 छात्रा एवं 20 छात्र) का अन्तिम चयन हुआ।

शोध उपकरण–

निदानात्मक परीक्षण बैटरी	विश्वसनीयता गुणांक (परीक्षण पुनर्परीक्षण विधि द्वारा)	निकष वैधता	मानक
अ	0.99	0.99	शतांशीय मानक
A	0.93	0.99	शतांशीय मानक

2. उपचारात्मक अभ्यासमाला।
3. हरबर्ट पंचपदीय प्रणाली पर आधारित पाठ-योजना।

सांख्यिकीय विधियाँ– मध्यमान, मानक विचलन, टी-मान।

शोध परिसीमन–

1. स्वनिर्मित प्रमापीकृत परीक्षण।
2. कक्षा 8 गणित विषय के विद्यार्थी।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या–

तालिका-1: परिकल्पना संख्या H_{01} का टी-परीक्षण द्वारा विश्लेषण एवं व्याख्या

प्रतिदर्श	प्रतिदर्श का आकार	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमानों का अन्तर	मानक त्रुटि	सहसम्बन्ध गुणांक	टी–मान	सार्थकता स्तर	मुक्तांश	सारणी मान
परम्परागत शिक्षणोपरान्त परीक्षण	40	13.425	1.1808	34.75	0.215	0.30	161.63	0.01 (एक–पुच्छीय परीक्षण)	39	2.42
उपचारात्मक शिक्षणोपरान्त परीक्षण	40	48.175	1.1155							

व्याख्या–

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि परम्परागत शिक्षणोपरान्त परीक्षण पर विद्यार्थियों के अंकों का मध्यमान 13.425 व मानक विचलन 1.1808 तथा

उपचारात्मक शिक्षणोपरान्त परीक्षण पर विद्यार्थियों के अंकों का मध्यमान 48.175 व मानक विचलन 1.1155 प्राप्त हुआ। इन दोनों समूहों के मध्यमानों का अन्तर 34.75 व मानक त्रुटि 0.215 और सहसम्बन्ध गुणांक 0.30 प्राप्त हुआ, जिसकी सहायता से टी-अनुपात का मान निकालने पर 161.63 आया जो मुक्तांश 39 और सार्थकता स्तर 0.01 पर सारणी मान 2.42 से अधिक है।

तालिका-2: परिकल्पना संख्या H_{02} का टी-परीक्षण द्वारा विश्लेषण एवं व्याख्या

प्रतिदर्श	प्रतिदर्श का आकार	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमानों का अन्तर	मानक त्रुटि	सहसम्बन्ध गुणांक	टी–मान	सार्थकता स्तर	मुक्तांश	सारणी मान
परम्परागत शिक्षणोपरान्त परीक्षण	40	13.525	1.0952	34.75	0.2223	0.159	156.32	0.01 (एक–पुच्छीय परीक्षण)	39	2.42
उपचारात्मक शिक्षणोपरान्त परीक्षण	40	48.275	1.0721							

व्याख्या-

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि परम्परागत शिक्षणोपरान्त परीक्षण पर विद्यार्थियों के अंकों का मध्यमान 13.525 व मानक विचलन 1.0952 तथा उपचारात्मक शिक्षणोपरान्त परीक्षण पर विद्यार्थियों के अंकों का मध्यमान 48.275 व मानक विचलन 1.0721 प्राप्त हुआ। इन दोनों समूहों के मध्यमानों का अन्तर 34.75 व मानक त्रुटि 0.2223 और सहसम्बन्ध गुणांक 0.159 प्राप्त हुआ, जिसकी सहायता से टी-अनुपात का मान निकालने पर 156.32 आया जो मुक्तांश 39 और सार्थकता स्तर 0.01 पर सारणी मान 2.42 से अधिक है।

तालिका-3: परिकल्पना संख्या H_{03} का टी-परीक्षण द्वारा विश्लेषण एवं व्याख्या

प्रतिदर्श	प्रतिदर्श का आकार	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमानों का अन्तर	मानक त्रुटि	टी–मान	सार्थकता स्तर	मुक्तांश	सारणी मान
हिन्दी माध्यम के विद्यार्थी	40	13.425	1.1808	0.1	0.255	0.3922	0.01 (द्वि–पुच्छीय परीक्षण)	78	2.64
अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थी	40	13.525	1.0952						

व्याख्या-

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि हिन्दी माध्यम में परम्परागत शिक्षणोपरान्त विद्यार्थियों के अंकों का मध्यमान 13.425 व मानक विचलन 1.1808 तथा अंग्रेजी माध्यम में परम्परागत शिक्षणोपरान्त विद्यार्थियों के अंकों का मध्यमान 13.525 व मानक विचलन 1.0952 प्राप्त हुआ। इन दोनों समूहों के मध्यमानों का अन्तर 0.1 व मानक त्रुटि 0.255 प्राप्त हुआ, जिसकी सहायता से टी-अनुपात का मान निकालने पर 0.3922 आया जो मुक्तांश 78 और सार्थकता स्तर 0.01 पर सारणी मान 2.64 से कम है।

तालिका-4: परिकल्पना संख्या H_{04} का टी-परीक्षण द्वारा विश्लेषण एवं व्याख्या

प्रतिदर्श	प्रतिदर्श का आकार	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमानों का अन्तर	मानक त्रुटि	टी–मान	सार्थकता स्तर	मुक्तांश	सारणी मान
हिन्दी माध्यम के विद्यार्थी	40	48.175	1.1155	0.1	0.2448	0.4085	0.01 (द्वि–पुच्छीय परीक्षण)	78	2.64
अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थी	40	48.275	1.0721						

व्याख्या-

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि हिन्दी माध्यम में उपचारात्मक शिक्षणोपरान्त विद्यार्थियों के अंकों का मध्यमान 48.175 व मानक विचलन 1.1155 तथा

अंग्रेजी माध्यम में उपचारात्मक शिक्षणोपरान्त विद्यार्थियों के अंकों का मध्यमान 48.275 व मानक विचलन 1.0721 प्राप्त हुआ। इन दोनों समूहों के मध्यमानों का अन्तर 0.1 व मानक त्रुटि 0.2448 प्राप्त हुआ, जिसकी सहायता से टी-अनुपात का मान निकालने पर 0.4085 आया जो मुक्तांश 78 और सार्थकता स्तर 0.01 पर सारणी मान 2.64 से कम है।

शोध-निष्कर्ष-

1. परिकल्पना संख्या H_{01} के सन्दर्भ में शून्य परिकल्पना को अस्वीकार किया जाता है और वैकल्पिक परिकल्पना को स्वीकार किया जाता है कि विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर है और यह अन्तर उपचारात्मक शिक्षण का प्रभाव है।
2. परिकल्पना संख्या H_{02} के सन्दर्भ में शून्य परिकल्पना को अस्वीकार किया जाता है और वैकल्पिक परिकल्पना को स्वीकार किया जाता है कि विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर है और यह अन्तर उपचारात्मक शिक्षण का प्रभाव है।
3. परिकल्पना संख्या H_{03} के सन्दर्भ में शून्य परिकल्पना को स्वीकार किया जाता है कि परम्परागत शिक्षणोपरान्त हिन्दी माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं है अत: शैक्षिक उपलब्धि समान है अर्थात् माध्यम का चयन गणित विषय के पाठ्य-वस्तु पर कोई प्रभाव नहीं डालता है।
4. परिकल्पना संख्या H_{04} के सन्दर्भ में शून्य परिकल्पना को स्वीकार किया जाता है कि उपचारात्मक शिक्षणोपरान्त हिन्दी माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नही है अत: शैक्षिक उपलब्धि समान है अर्थात् माध्यम का चयन गणित विषय के पाठ्य-वस्तु पर कोई प्रभाव नहीं डालता है।

शैक्षिक निहितार्थ-

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन के प्रयोग से आज के परिवेश में आ रहे शिक्षा के स्तर के गिरावट को कम किया जा सकता है, साथ ही साथ शिक्षण, परीक्षण को और अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है।
2. प्रस्तुत शोध अध्ययन के प्रयोग द्वारा विद्यार्थियों में आत्मविश्वास का विकास होता है और विद्यार्थी अपने कमी को बिना झिझक के सीखते हैं।
3. प्रस्तुत शोध अध्ययन के प्रयोग द्वारा सीखा हुआ ज्ञान स्थायी होता है और विद्यार्थियों में सृजनात्मक का विकास होता है।
4. प्रस्तुत शोध अध्ययन द्वारा परम्परागत शिक्षण में सुधार हो सकेगा जो कि हमारे शिक्षण का मूल आधार है।

निष्कर्ष-

पाठ योजना द्वारा पढ़ाना, गणित, सर्कल, उपचारात्मक अभ्यासमाला आदि के द्वारा विद्यार्थी शैक्षिक उपलब्धि के स्वामित्व (निपुणता) स्तर को प्राप्त करता है। माध्यम का गणित शिक्षण में कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। प्रस्तुत शोध निष्कर्ष का समर्थन बी0एम0 ठाकरे (1980) और सम ओल्येसी ओयेकंन (अक्टूबर, 2013) के अध्ययन से होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. कौल, लोकेश (2011); शैक्षिक अनुसन्धान की कार्यप्रणाली, नई दिल्ली: विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0लि0।
2. गुप्ता, एस0पी0 तथा गुप्ता, अलका (2011); सांख्यिकीय विधियाँ, इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन।
3. बुच, एम0बी0 (सम्पादक) (1978-83); थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन, नई दिल्ली: एन०सी०ई०आर०टी०।
4. शर्मा, आर0ए0 (2015); शिक्षा अनुसन्धान के मूलतत्व एवं शोध प्रक्रिया, मेरठ: आर० लाल बुक डिपो।
5. सिंह, कर्ण तथा शर्मा, एम0सी0 (2011-12); गणित शिक्षण, लखीमपुर-खीरी: गोविन्द प्रकाशन।

इक्कीसवीं सदी में स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता

माया सोनकर

नेट (शिक्षाशास्त्र)

प्रस्तुत शोधपत्र इक्कीसवीं सदी में स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा-दर्शन की प्रासंगिकता को लेकर लिखा गया है। भारत भूमि महापुरुषों की जन्मदात्री रही है, जिसकी धरती पर ऐसे महामानवों ने जन्म लिया, जिनके प्रभामंडल से निकली ज्ञान की ज्योति ने संपूर्ण विश्व को आलोकित किया है। इन्हीं महापुरुषों में शक्ति के अप्रतिम संदेशवाहक, युगद्रष्टा स्वामी विवेकानन्द के अमूल्य विचार और भविष्य दृष्टि आज उनके जन्म के 150 वर्ष बाद भी हमारे लिए उतने ही महत्वपूर्ण हैं, जितने कि पहले थे। स्वामीजी स्वयं महाज्ञान है। ऐसा चरित्र, ऐसी मेधा, ऐसी वाग्मिता, ऐसा हृदय, ऐसी कर्मनिष्ठा, ऐसा ज्ञान, संसार में दुर्लभ है। आज राष्ट्र के समक्ष मूल्यों का संकट है, चरित्र का संकट है, जिनके उत्तर स्वामीजी के जीवन, शिक्षाओं द्वारा प्राप्त हो रहे हैं और संस्कृति, समाज-सेवा, चरित्र निर्माण, देशभक्ति, शिक्षा, व्यक्तित्व तथा नेतृत्व आदि के विषय में स्पष्ट दिशा निर्देश दे रहे हैं। "स्वामी विवेकानन्द वह समुद्र है जिस पर प्राचीन एवं नवीन भारत परस्पर आलिंगन करते है। विवेकानन्द वह समुद्र है, जिसमे धर्म और राजनीति राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता तथा उपनिषद् एवं विज्ञान सब के सब समाहित होते है।" भारतीय संस्कृति, चिन्तन एवं दर्शन का गौरवपूर्ण अतीत रहा है जिसमें बौद्धिक उड़ान के उत्कृष्ट नमूने है, तर्क प्रणाली की चरम परिणिति है, चिन्तन के आधार पर सिद्धान्तों का व्यावहारिक "निहतीकरण है। भारतीय दर्शन आध्यात्मिकता, नैतिकता, धार्मिकता, एवं वास्तविकता का अन्वेषण है भारतीय दार्शनिकों ने मानवता नैतिकता एवं चारित्रिक मूल्यों को युवा पीढ़ी के व्यवहार एवं आचरण में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। वर्तमान में मूल्य संकट, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार आर्थिक संकट, प्राचीन परम्परा एवं अतीत की अवहेलना, संवेदनहीनता जैसी गंभीर चुनौतियों का सामना करने हेतु भारतीय संस्कृति, सभ्यता की रक्षा एवं भारत के नवनिर्माण को गतिशील स्वरूप प्रदान करके युवा पीढ़ी को तदनुरूप तैयार करना, उन्हें शिक्षा प्रदान करना आवश्यक हो गया है।

12 जनवरी, 1883 को स्वामी विवेकानन्द के जन्म के बाद लगभग डेढ़ सदी बीत रही है परन्तु उनके संदेश आज भी युवाओं के लिये सजीव प्रेरणा बने हुए है। स्वामी जी एक महान दार्शनिक, शिक्षा शास्त्री, मौलिक चिन्तक, विचारक, समाज सुधारक कुशल मार्ग दर्शक तथा मानवता के आदर्श प्रतिनिधि थे। उनके द्वारा प्रतिपादित शिक्षा-दर्शन बहुत ही व्यापक एवं व्यावहारिक है। स्वामी विवेकानन्द का वेदान्त दर्शन एक समन्वयवादी शिक्षा दर्शन है. जिसमें आदर्शवाद, प्रकृतिवाद, प्रयोजनवाद, यथार्थवाद एवं मानवतावादी विचारों का समन्वित स्वरूप दर्शित है। स्वामी जी अतीत एवं वर्तमान के बीच एक प्रकार के संयोजक थे, ये पाश्चात्य देशों के आध्यात्मिक राजदूत थे तो भारत के लिये पश्चिम विज्ञान के प्रणेता।"

स्वामी विवेकानन्द मानव को ईश्वर की भांति प्रेम करते थे। उनका यह मानना था कि मानव शरीर एक मंदिर है जिसमें आत्मारूपी तत्व विद्यमान है। स्वामी जी के अनुसार, "मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।" शिक्षा वर्तमान एवं भविष्य निर्माण का अनुपम साधन है। आज हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जिसमे चरित्र निर्माण हो, नैतिकता के गुणों का विकास हो. मानसिक शक्ति बढ़े बुद्धि विकसित हो और देश के नागरिक अपने पैरों पर खड़े होना सीख सके शिक्षा के द्वारा ही राष्ट्र के मन, मस्तिष्क एवं मेरुदण्ड का निर्माण होता है। स्वामी जी का यह विचार वर्तमान परिवेश में अति प्रासंगिक है उपयोगी है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा द्वारा मानव निर्माण किया जाता है। समस्त अध्ययनों का अंतिम लक्ष्य मानव का विकास करना है जिस अध्ययन द्वारा मानव की संकल्पित शक्ति का प्रवाह संगठित होकर प्रभावोत्पादक बन सके उसी का नाम शिक्षा है।

स्वामी जी ने राष्ट्र के युवाओं को संबोधित करते हुए कहा था, "Be and make", "बनो और बनाओ। स्वामी जी का यह कथन आज भी युवा पीढ़ी के एक अमूल्य राष्ट्रीय संसाधन के रूप में विकसित करने हेतु महामंत्र की भांति है। आज यदि प्रत्येक युवा मे यह भावना विकसित एवं जागृत हो जाए कि उसे सिर्फ अपने विषय में ही नहीं वरन अपने साथ-साथ दूसरों के विषय में सोचना है, जिससे हमारे परिवेश के अन्य लोग भी कामयाबी की ओर अग्रसर हो। यह भावना मानव को मानव से जोड़ती है. मनुष्य के प्रति आत्मविश्वास उत्पन्न करके मनुष्य को मनुष्य बनाती है। अतः शिक्षा का उद्देश्य केवल पुस्तक पढ़ाना ही नहीं अपितु मनुष्य को मनुष्य बनाना होना चाहिए। एक पूर्ण मानव की शिक्षा के प्रारूप पर अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा, "मैं ऐसा धर्म चाहता हूँ जो हर व्यक्ति को अन्न, वस्त्र के साथ-साथ उन्हें सभी दुःख दूर करने की शक्ति प्रदान करें। हम सब भारतीय पहले है, मराठी, गुजराती बंगाली. मद्रासी बाद में सबको मिलकर अज्ञानता दूर करनी चाहिए। स्वामी जी कहते हैं, हमें मानव चाहिये, हमें ऐसी युवा पीढ़ी चाहिए, जो चट्टानों से टकरा सके।" आज इन्ही भावों को हमारी युवा पीढ़ी में निहित करने की महती आवश्यकता है।

स्वामी जी ने अपने शिक्षा दर्शन द्वारा युवा पीढ़ी में योग्यता दक्षता, कुशलता, क्षमता प्रवीणता, स्वावलंबन, त्याग संयम, देशप्रेम निष्ठा, मौलिकता, एकाग्रता, चिंतन, आत्मानुशासन तथा मानवीय मूल्यों को व्यावहारिक ढंग से प्रतिष्ठित करने का सार्थक प्रयास किया। आज इक्कीसवीं सदी में जिस प्रकाश स्तम्भ की

आवश्यकता है उसकी संज्ञा विवेकानन्द जी है। उनके गंभीर मोहक तर्कसंगत मनोरम व्यावहारिक संदेश की युवा वर्ग के निर्माण हेतु जितनी प्रासंगिकता आज है उतनी शायद कभी नहीं थी। सभवत: यह उनकी राष्ट्रगत दूरदर्शिता ही थी कि 150 वर्षों की लंबी यात्रा के बाद भी 21वीं सदी में आज युवा, भारत की आकाक्षाओं अपेक्षाओं के प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में हमारे समक्ष है कि देश की आबादी में युवाओं की संख्या में वृद्धि के साथ-साथ उनकी सक्रिय भागीदारी एवं विचार शैली में भी परिवर्तन आ रहा है।

शिक्षा ज्ञान एवं कौशलों के विकास का श्रोत है जो मनुष्य को अपने कार्य के प्रति समर्पित एवं विश्वसनीय बनाती है। यह मौतिक सम्पत्ति के उत्पादन का महत्वपूर्ण साधन भी है। जिस राष्ट्र का शैक्षिक स्तर जितना उच्च होगा उसकी उत्पादन क्षमता भी उतनी ही अधिक होगी। अत: शिक्षा को जितनी ही अधिक तात्कालिक आवश्यकताओं से जोड़ा जायेगा, उतनी ही उसकी सार्थकता बढ़ेगी। आज शिक्षा और जीवन के बीच की दूरी को कम करने की सामयिक आवश्यकता है। स्वामी जी का मानना था कि आध्यात्मिक उन्नति के पूर्व देश की भौतिक उन्नति एवं समृद्धि आवश्यक है। उन्होंने अपने दार्शनिक विचारों में सर्वत्र समकालीन भारत की सामाजिक समस्याओं पर गहन चिंतन किया तथा निराशा एवं कुण्ठा में फंसी भारतीय जनता को नवीन पथ दिखाया। उनका मानना था कि रोटी का प्रश्न हल किये बिना भूखा मनुष्य धार्मिक नहीं हो सकता। अत: रोटी का प्रश्न हल करने का नया मार्ग बलाना सबसे मुख्य और सबसे पहला कर्तव्य होना चाहिये। उनका मानना था कि यदि उच्च शिक्षा के बजाये तकनीकी शिक्षा प्रदान की जाये तो लोग रोटी पा सकेंगे और बेरोजगारी से बचकर रचनात्मक योगदान दे सकेंगे। स्वामी जी समाज सुधारकों के प्रबल समर्थक थे। उनका मानना था कि निम्न श्रेणी वालों को अपनाना, उन्हें शिक्षा देना, उन्हें ऊपर उठाना हमारे जीवन का लक्ष्य होना चाहिये। ये लोग मानव जाति की जड़ है और शिक्षित वर्ग उनकी शाखायें केवल डालियों को सीचने से पेड़ पुष्ट नहीं हो सकता उसे हरा भरा बनाना है तो उसकी जड़ों को सींचना होगा।

स्वामी जी ने मानव जीवन के लिये सर्वागपूर्ण दर्शन दिया। उन्होने अनुद्योग आलस्य, अकर्मण्यता के स्थान पर उद्योग परिश्रम एवं कर्तव्यता का पाठ पढ़ाया, जातिवाद, वैमनस्य, अस्पृश्यता भेदभावपूर्ण भावनाओं एवं विचारों को समाज में से जड़ सहित उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया। रुढ़िवादी पुरातन छिन्न भिन्न श्रृंखलाओं को नष्ट करके जनता को धर्म मूल तत्वों को समझाया। उन्होंने युवाओं का आह्वान करते हुए कहा था कि निराशा, कमजोरी भय तथा ईर्ष्या युवाओं के सबसे बड़े शत्रु है। युवाओं का उससे भी शत्रु स्वयं को कमजोर समझना है। उन्होंने युवाओं को जीवन में लक्ष्य निर्धारण करने का स्पष्ट संकेत दिया कि तुम सदैव सत्य का पालन करो. विजय तुम्हारी होगी। आने वाली शताब्दियों तुम्हारी बाट जोह रही है आने वाले भारत का भविष्य तुम्हारी कार्यशैली पर निर्भर करेगा। उनके द्वारा देखा गया यह स्वप्न कि भारत का भविष्य यहाँ के तरुणों के हाथों गढ़ा जायेगा सार्थक हो रहा है। आज हमारे देश के अनेक नवयुवक नवयुवतिया, विज्ञान, कृषि तकनीकी सूचना प्रौद्योगिकी प्रबन्धकीय चिकित्सा एवं अन्य तमाम क्षेत्रों में अपने आपको विश्व स्तर पर श्रेष्ठ, कुशल एवं दक्ष साबित करने हेतु कटिबद्ध है। मानव जीवन के प्रत्येक पहलू में उनके उपदेश निहित है व समसामयिक है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था कि, "यदि आप भारत को समझना चाहते है तो विवेकानन्द का अध्ययन कीजिये उसमे सब कुछ सकारात्मक है, नकारात्मक कुछ भी नहीं, इन दो वाक्यों माध्यम से ही गुरुदेव ने स्वामी जी के व्यक्तित्व एवं आधुनिक भारत के निर्माण में अपनी प्रासंगिकता की घोषणा कर दी।

स्वामी जी ने मानव जीवन के एक बहुत बड़े आधार पर बल दिया वह है कर्मवाद का सिद्धान्त। उन्होंने कहा था. तुममें से हर व्यक्ति आज जो है यह अपने कर्मों के कारण है। अत: अपने जीवन, का उत्तरदायित्व अपने कंधे पर लो मेरे कार्यों के लिये मेरे सिवा कोई अन्य उत्तरदायी नहीं है। हमें अपने प्रत्येक कर्म का रत्ती रत्ती हिसाब देना पड़ेगा। अपने कर्मों के द्वारा हम अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकते है। अत: हम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता है। स्वामी जी ने भारत के नव निर्माण हेतु भारतवासियों को यह अग्नि अभिशिक्त मंत्र को सदैव याद रखने को कहा, उठो जागो और लक्ष्य की प्राप्ति के बिना विश्राम मत लो आज नवयुवको को स्वामी जी द्वारा दिखाये गये मार्ग पर चलते हुए भारत को एक नई ऊंचाई तक श्जाने हेतु संकल्पित होना होगा।

स्वामी जी ने अपने गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस से मार्ग दर्शन प्राप्त किया जिन्होंने अपनी तपस्या से मिली समस्त शक्ति विवेकानन्द को दे दी जिसके फलस्वरूप स्वामी जी अपने चिन्तन, त्याग और तपस्या के धनीभूत भारत बन और सारे भारत के प्रतीक बन गये।

वर्तमान युग ज्ञान के विस्फोट का युग है और ज्ञान के लिये एकाग्रता की आवश्यकता होती है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार एकाग्रता की शक्ति जितनी ही अधिक होगी ज्ञान की प्राप्ति भी उतनी ही अधिक होगी। मन की एकापता ही संपूर्ण शिक्षा का सार है। आज हमारा देश एक नये मोड़ पर खड़ा है। हमारे राष्ट्र की प्रतिभायें हर क्षेत्र में अपनी कुशलता एवं दक्षता को साबित कर रही है। यहां तक कि अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने भी भारतीय मेघा की प्रशंसा की है जो अपनी दक्षता कुशलता, विशिष्टता से पश्चिमी युवाओं को मात दे रहे है। आज स्वामी जी के विचार युवाओं में नव जीवन का संचरण कर रहे है। आज युवाओं को सहयोग एवं समायोजन की भावता से आगे बढ़ते हुए स्वामी जी द्वारा दिये गये मंत्र बनो और बनाओ के आदर्शों मूल्यों एवं भावनाओं को आत्मसात करते हुए अपने परिवेश के अन्य युवाओं के जीवन के सजने संवारने का कार्य भी पूर्ण निष्ठा एवं लगन से करना होगा। दीप से दीप जलाने की प्रक्रिया को अपनाते हुए पूरे देश को जगमगाना होगा।

देखा जाये तो स्वतंत्रयोत्तर भारत में शिक्षा का प्रसार तो अत्यन्त तीव्रता से हुआ प्राथमिक विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालय तक के सभी स्तरों पर शिक्षण संस्थाओं में भारी वृद्धि हुई फलत: मात्रात्मक दृष्टिकोण से प्रसार तो हुआ किन्तु गुणवत्ता के दृष्टिकोण से सबसे ज्यादा क्षति भी इसी क्षेत्र को हुई। वर्तमान परिवेश में आज जहाँ राष्ट्र के समक्ष मूल्य संकट, बेरोजगारी, आतंकवाद जैसी गंभीर समस्यायें है वहीं भ्रष्टाचार आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति, अनुशासनहीनता, अकर्मण्यता, भाई भतीजावाद, सत्ता हेतु स्वार्थपूर्ण नीतियां कथनी करनी में अंतर तो जैसे राष्ट्रीय जीवन का अंग बन गई है। मानवीय संपर्कों की सहजता तो जैसे समाप्त हो गई है। आज समाज में संवेदनहीनता का आलम तो यह है कि पढ़े-लिखे माता-पिता, विशेषज्ञ, डॉक्टर, अन्य संभ्रान्त नागरिक मिलकर बालिकाओं को जन्म लेने से रोक रहे है, निश्चय रूप से उनकी शिक्षा में, संस्कारों में कोई कमी रही होगी, मानवीय मूल्यों की अनुपस्थिति की। इसी प्रकार जो युवा कुछ समय पहले कुछ देने को तत्पर रहते थे आज स्वयं रख लेने में विश्वास कर रहे है। आज युवाओं के मन मस्तिष्क में शाइनिंग इंडिया और असल भारत के बीच फासले बढ़ते जा रहे है। आज जिन पर भारत को सजाने संवारने की जिम्मेदारी है, वही अवसाद, कुण्ठा, आक्रोश की भावना से ग्रसित

है भविष्य के प्रति आशंकित है जो चिंतनीय है। इस प्रकार आज हम जिस संकट और संक्रमण काल से गुजर रहे है जहां अपने अस्तित्व, अपनी पहचान, मूल्य का संकट है वहां यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम स्वामी जी द्वारा प्रतिपादित विचारों को गहराई से मंथन करें जिनमें वर्तमान परिवेश की विभिन्न समस्याओं एवं चुनौतियों के उत्तर निहित है। जिन्होने अपने दार्शनिक, शैक्षिक, प्रगतिशील विचारों से राष्ट्र निर्माण, मानव निर्माण, लोकतंत्रीय पोषण, चरित्र निर्माण, सामाजिक जागरुकता जैसी प्रवृत्ति को विकसित करके राष्ट्र को विकास को स्वस्थ दिशा देने का प्रयास किया। उनके विचारों के मंथन से जो अमृत निकले उसे अपनी नई पीढ़ियों को वितरित करके उनके व्यक्तित्व को सार्थक और सकारात्मक स्वरुप देने में समर्थ हो सकें।

स्वामी जी ने स्वाध्याय, लोकतांत्रिक मूल्य, मानव निर्माण, राष्ट्र निर्माण, संकल्प शक्ति, संवेदनशीलता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, समाज सेवा, नैतिक चारित्रिक विकास, तर्क चिंतन, शील प्रवृत्ति, रचनात्मक दृष्टिकोण, मानव श्रम महत्ता, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय एकता, सर्वधर्म समभाव, शारीरिक बौद्धिक विकास, योग संयम, रोजगारपरक शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, त्रिभाषा सूत्र, सबके लिये अनिवार्य नि:शुल्क शिक्षा, नारी सशक्तिकरण, संकल्पशीलता, एकाग्रता जैसे ठोस विचारों एवं मूलमंत्रों से अभिसिंचित किया। आज राष्ट्रीय शिक्षा नीति हो या विभिन्न आयोगों के विचार यदि हम उनका समयक अध्ययन करें तो पायेंगे कि ये विचार उनमें समाहित है। स्वामी जी द्वारा प्रतिपादित शिक्षा दर्शन उच्च कोटि का है, जो न केवल मानव के शारीरिक, सामाजिक, चारित्रिक आध्यात्मिक विकास का आधार स्वरुप है, वरन् एकता, शांति और सांस्कृतिक सद्भाव को भी नवीन दिशा प्रदान करता है।

आज यदि मानव को बचाना है तो विवेकानन्द जी द्वारा बताए गए मार्ग पर चलकर उनके विचारों एवं मूल्यों को आत्मसात कर व्यवहार में प्रतिष्ठित करना ही होगा। आज हमें शिक्षा के ऐसे सार्थक स्वरूप की आवश्यकता है, ऐस नेतृत्व की जरूरत है, जिससे राष्ट्र के प्रत्येक युवा को उसकी क्षमता योग्यतानुरूप विकास धारा के साथ इस प्रकार से जोड़ा जा सके जो उसे मात्र गणितज्ञ, चिकित्सक, हृदयहीन वैज्ञानिक अथवा विविध ज्ञानों का कोष न बनाये वरन उसे मानवीय गुणों से युक्त बनाये। आज आवश्यकता है कि हम रामायण भी पढ़े तथा अणु बम के बारे में भी जानें। तभी युवा पीढी विभिन्न चुनौतियों का सामना करने में सक्षम हो सकेगी और राष्ट्र की प्रगति की ओर अग्रसर करने में अपना सकारात्मक, सार्थक योगदान दे सकेगी।

वस्तुतः स्वामी जी ने अपने समय में ऐसी योजनायें तैयार की थी जो वर्तमान परिदृश्य में बहुत उपयोगी सिद्ध हो रही है। यदि हम इनकी उपेक्षा करेंगे तो हमारा कार्य उस अज्ञानी व्यक्ति के समान होगा जो चिंतामणि के होते हुए भी भिक्षा मांगता है, जीवन के सभी पक्षों को संगीत से लेकर आत्मसंस्कार, व्यायाम से लेकर उद्योग धन्धों तक को ध्यान में रखकर उन्होने हमारा मार्ग निर्धारित किया और यदि हम उन पर नहीं चलेंगे तो हम अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी चलायेंगे।

संदर्भ:

1. अग्रवाल, बी०बी०: आधुनिक भारतीय शिक्षा की समस्याये, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, 1997-
2. ग्रोवर डॉ० इंद्रा संसार के महान शिक्षाशास्त्री, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1978
3. तरुण हरिवश भारतीय शिक्षा की समस्यायें तथा विश्व की शिक्षा प्रणालियां, प्रकाश संस्थान, नई दिल्ली 2007.
4. राजपूत, जगमोहन सिंह क्यों तनावग्रस्त है शिक्षा व्यवस्था किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली 2008.
5. रुहेला. प्रो० एस० पी० विकासोन्मुख भारतीय समाज में शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा 2008.
6. लाल रमन बिहारी एण्ड तोमर, डॉ० राजेन्द्र सिंह विश्व के श्रेष्ठ चिंतक, आर०एस० बुक डिपो, मेरठ 2007.
7. वर्मा डॉ० आर० एस० शिक्षा में नवचितन, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा 2008.
8. स्वामी विवेकानन्द स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान, प्रकाशक स्वामी बोधसारानन्द, अद्वैत आश्रम 5 डिही एण्टाली रोड, कोलकाता 2008.
9. स्वामी विवेकानन्द, प्रकाशक स्वामी ब्रह्मस्थानन्द, रामकृष्ण मार्ग धन्तोली, नागपुर 2005
10. स्वामी विवेकानन्द शिक्षा के विविध आयाम, स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा-दर्शन, प्रकाशक अरुण प्रकाशन मानसरोवर पार्क, नई दिल्ली 2006.
11. स्वामी विवेकानन्द भारत और उसकी समस्यायें, संकलक, स्वामी निर्वेदानन्द, रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर 2005.
12. स्वामी विवेकानन्द शिक्षा, रामकृष्ण आश्रम मार्ग धन्तोली 2006
13. स्वामी ब्रमार्थानंद विवेकानन्द राष्ट्र को आह्वान, - रामकृष्ण मार्ग, धन्तोली, नागपुर 2005
14. स्वामी विवेकानन्द वर्तमान भारत, प्रकाशक स्वामी ब्रह्मस्थानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर, पद्रहवा संस्करण, 2005
15. स्वामी विवेकानन्द भारत का भविष्य प्रकाशक, स्वामी ब्रह्मस्थानन्द, रामकृष्ण आश्रम, नागपुर 2004

मैं और मैं उपन्यास में नारी संघर्ष

मयुरकुमार नारायणभाई पटेल

पीएच.डी. शोधछात्र, हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय, पाटण

प्रस्तावना :

हिन्दी साहित्य का कोश बहुत विशाल है। माँ सरस्वती के इस विशाल भण्डार में बहुत से महिला व पुरुष साहित्यकारों ने अपने प्रतिभा के पुष्प अर्पित किये हैं। विभिन्न साहित्यकारों ने अपने-अपने साहित्य में अपने युग की नारी चेतना को अपने लेखन का विषय बनाया है। स्वतंत्रता के बाद हिन्दी साहित्य में उपन्यास व कहानी लोकप्रिय विधा है। भारतीय समाज में व्याप्त स्त्री जीवन आरम्भ से ही साहित्य का विषय रहा है। नारी के सन्दर्भ में अगर देखा जाए तो जिस संवेदना व मनोवैज्ञानिक ढंग से नारी की समस्या या स्थिति को महिला लेखिकाओं ने समझा है। पुरुष लेखकों में शायद उस भावना की कुछ कमी है। नारी शुरू से ही मानवीय अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रयासरत रही है। नारी ने कभी पुरुष अधिकारों का विरोध नहीं किया।एक नारी ही नारी की आन्तरिक पीड़ा को समझ सकती है। क्योंकि बलात्कार, अत्याचार, घरेलु हिंसा, नौकरी पेशा, नारी की समस्या, वेदना को अभिव्यक्त करने वाले साहित्य को स्त्री ही समझ सकती है। वर्तमान समाज तथा राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में नारी का जीवन आज साहित्य का ही नहीं बल्कि लोगों के बीच चर्चा का विषय बन रहा है।

'नारी चेतना' एक बहु आयामी शब्द है, जिसको बुद्धिजीवी वर्ग अपने-अपने ढंग से देखता-समझता है। हर एक के लिए इस शब्द का अर्थ अलग-अलग हो सकता है परन्तु इसे नकारा नहीं जा सकता। स्त्रियों का संघर्ष आदि काल से लेकर वर्तमान तक निरंतर चल रहा है और आगे भी चलता रहेगा। जिन नारियों को हम सफलता के शीर्ष पर देखते हैं, उनकी उस सफलता के पीछे सतत संघर्ष होता है। नारियों ने हर क्षेत्र में अपनी सामर्थ्य और कार्यकुशलता को सिद्ध किया है और प्रत्येक उस क्षेत्र में प्रवेश पाया है जो उनके लिए वर्जित माना जाता था। किन्तु साधारणत: हम जिन सफल नारियों की चर्चा करते हैं उनका प्रतिशत बहुत कम है।

समय के साथ परिस्थितियों में परिवर्तन अवश्य पाया है,जो हर क्षेत्र में परिलक्षित होता है। यह परिवर्तन स्त्रियों की दशा और दिशा में भी दिखने लगा है। सामान्य जन मानस की अवधारणाएं बदल रही है। यह कारण है कि समाज में निरंतर शिक्षित स्त्रियों की संख्या बढ़ रही है और कार्यक्षेत्र में उनकी सहभागिता भी। अब उनका दायरा घर की चार दीवारी तक सीमित नही है,बल्कि वे इस परिधि को लाँघकर दुनिया के विस्तार को अपनी दृष्टि से देख समझ रही है।

सन् १९८४ में रचित मृदुला गर्ग का पाँचवाँ उपन्यास है जो सर्वथा एक नए विषय और कथ्य को लेकर लिखा गया है। एक स्त्री लेखिका के दोहन शोषण और संघर्ष की यह कहानी है। एक गृहिणी के रूप में यह 'मैं' घर और परिवार की जिम्मेदारियों का वहन करती है।[१]

यह उपन्यास सामाजिक धरातल पर आधारित है। 'उसके हिस्से की धूप' से प्रारंभ होकर 'मैं और मैं' पर आकर लेखिका विराम लेती है। श्रीमती मृदुला गर्ग का यह पाँचवाँ उपन्यास है। इसमें फिर एक बार लेखिका अपनी अस्मिता की खोज का अभियान शुरू करती है। उन्होंने सत्य के साक्षात्कार को फिर एक बार दर्शाने की कोशिश की है। मैं और मैं की कथा कुछ दूसरा भाग ही समझ बैठता है।

मैं और मैं इस उपन्यास में माधवी एक मात्र नारी चरित्र है। प्रस्तुत उपन्यास में माधवी की पूरी तरह चीरफाड़ करते हुए लेखिका ने उसे वास्तविक रूप में प्रस्तुत किया है। इस बारे में लेखिका में विश्वास करती हूँ कि मुझे सिर्फ खुद को बेदर्दी से निवारण करके देखने का अधिकार है।

माधवी राकेश की बीवी है। राकेश का फरीदाबाद में दवाइयों का कारखाना है। भौतिक सुख-सुविधाओं से संपन्न घर है। राकेश के रूप में उसने प्यारा पति पाया है। उसने माधवी की स्व के निर्णय खुद लेने का अधिकार दिया है। माधवी और राकेश का साथ कलाकार और व्यापारी का साथ है माधवी को व्यवसाय में और राकेश को लेखन में जरा भी दिलचस्पी नहीं है। कौशल माधवी और राकेश के सम्बन्धों के बारे में सोचता है, नही माधवी के जीवन में शून्य है, बहुत बड़ा शून्य है। बौद्धिक अनुकुलता का अभाव आदमी को बिलकुल अकेला कर देता है। मन की बात बहुत कम मैं किसी से कह पाती हूँ उसने कहा था। शिष्ट सभ्य, सर्द, व्यवहार, यही हमारा जीवन है, उसने कहा था। वह जानता है, उसकी बौद्धिक आवश्यकताओं और चेतना की माँग को सिर्फ कौशल पूरा कर सकता है। माधवी खुदगर्ज है। वह अपने स्वार्थ पुर्ति के लिए मानवीय संबंधों का इस्तेमाल करने से भी नहीं चूकती। वह एक अच्छी लेखिका भी है। प्रतिभा की कमी उसमें नहीं है। वह उपन्यास और नाटक लिखती है। कौशल को लगता है, प्रतिभा तो है माधवीजी में। साहित्यकारों की भीड़ में एक वही है जिनसे उसको ईर्ष्या हुई है। जिन्होंने उसके अंत:स्थल को छुआ है।

माधवी को जानने के पश्चात ऐसा लगता है। मानो माधवी सिर्फ माधवी नहीं मृदुला गर्ग बोल रही हो। कौशल कुमार के रूप में माधवी को उसकी रचनाओं का सच्चा पाठक मिल जाता है। वह कहता है।[२]

उसे आगे लिखने की उत्तेजना मिलती है। और फिर एक दिन ऐसा आता है कि कौशल माधवी के लेखन के लिए अनिवार्य हो गया। माधवी एक दिन राकेश से कहती है, मैं तुमसे सच्ची बात कहे देती हूँ। कौशल मेरे लेखन के लिए अनिवार्य हो गया है। उसे दिखलाय बिना उपन्यास आगे नहीं चला पाती। इसीलिए उसे यहाँ आने से रोक भी नहीं पाती।

माधवी लेखिका है और उसका प्रेरक कौशल कुमार। माधवी सुविधाभोगी संपन्न वर्ग से जुड़ी है और कौशल दरिद्र, शोषित समास का एक हिस्सा है। इसीलिए दोनों अपने वर्ग की मानसिकता से बने हैं पर दोनों भी अपने आपको अपने वर्ग से श्रेष्ठ मानते हैं, विशिष्ट मानते हैं। इसी अर्थ में वे विशिष्ट वर्ग के होने के बावजूद भी वर्ग के प्रतिनिधि नहीं हो सकते। माधवी का मानव वर्गीय चेतना से बना है पर वह उस वर्ग में अपने को आम औरतों से विशिष्ट मानती है। अत: उसमें अहं प्रबल है इसीलिए कौशल की प्रतिभा से अभिभूत होने के बावजूद वह उससे धृणा करती है। लेखक कौशल कुमार की जरूरत उसे है पर वह उसके वर्गीय रूप से धृणा करती है यही धृणा उसके व्यक्तित्व की सच्चाई है। पर धृणा को छिपाकर वह कौशल से संबंध स्थापित करती रही। झूठ और पाखंड का सहारा उसने लिया। वह कौशल से कहती रही कि उसे झूठ पाखंड आडंबर से सख्त नफरत है; पर वास्तविकता वह जानती है। माधवी बुद्धि के छज्जे से वास्तविकता की पथरिली धरती पर गिरी। आडंबर से नफरत है तो कह दे अब आप आइए, डेढ़ बजने वाले और चाय नहीं बन सकती फिर होठ बंद खुलकर बंद क्यों हो गये ? बार बार घड़ी देखकर क्यों रह गयी जबान खुली क्यों नहीं?[३]

अपनी रचनाओं में हर इंसान को सिर्फ इंसान के रूप में देखने वाली माधवी व्यवहारिक स्तर पर गरीब-अमीर के भेद को मिटा नही पाती। त्रिवेणी होटल में पहले जब कौशल से वह मिलती तो माधवी कौशल से मिलने में संकोच महसूस करती इंसान भी बड़ा अजीब है वह अपने से अमीर और ऊँचे ओहदेवाले आदमी से मिलने में गर्व महसूस करता है। जबर्दस्ती उसके साथ रिश्ता जोड़ना चाहता है। माधवी में भी यह मानवीय कमजोरी है। त्रिवेणी के सामने सड़क पर कौशल का इंतजार करना उसे अच्छा नही लगता। कौशल की मैली बदरंग पैट-कमीज, खस्ताहाल, टूटी चप्पल, बिवाई फटे पाँव, तेत चुपड़े बाल अगर मैं बढ़िया सूट पहने होता तो मेरा सड़क पर इंतजार करना बुरा न लगता क्यों?[४]

- **उच्च वर्गीय नारी :** माधवी उच्च और सम्पन्न घराने की होने के कारण स्वयं को श्रेष्ठ मानती है। उसकी चेतना वर्गीय विभाजन करती है। वह अहं से ग्रसित नारी दिखाई देती है। वह विभाजित वर्ग की मानसिकता रखने के कारण कौशल जैसे लेखक से नफरत करती है। वह पति और समाज से छुपकर कौशल से मिलती है। इसे हम एक आडम्बर और पाखण्डी नारी कह सकते हैं।

  इस प्रकार मृदुला वर्माजी की उच्चवर्गीय नारियाँ आधुनिक चकाचौंध से घिरी रहकर भी अकेलापन महसूस करती हैं। वे अपनी चेतना से इस सम्मान से मुक्ति चाहती है। उन्हें प्रेम की आवश्यकता महसूस होती है। लेकिन मजबूरी वश वे अपने उच्च पारिवारिक संस्कार त्याग नहीं पाती और घुट-घुट कर जीवन जीने को विवश होती है।[५]

- **विद्रोहिणी नारी :** 'मैं और मैं' उपन्यास की माधवी एक विद्रोहिणी स्वभाव की नारी है। वह समाज में उस बात को स्वीकार नहीं कर सकती जो आदमी के व्यक्तित्व या अहं पर चोट करता हो। समाज में अगर नारी के अहम को चोट लगती है तो वह विद्रोही स्वर अपना लेती है। इसी विश्वास के साथ वह सम्पूर्ण स्थितियों की चीरफाड़ कर सकती है– 'मैं विश्वास करती हूँ कि मुझे सिर्फ खुद को बेदर्दो से निराकरण कर देखने का अधि कार है, सिर्फ अपनी ही चीरफाड़ मैं कर सकती हूँ।[६]

- **नारी शोषण की समस्याँ :** माधवी के शोषण का कारण स्वयं माधवी को ही दिखाया गया है। क्योंकि वह कौशल को पहली मुलाकात में ही दुतकारने और उस पर धृणा दिखाने की बजाय दया दिखाती है। उसमें न्यायबुद्धि मंद पड़ जाती है क्योंकि इन्सान जब प्रसिद्धि, प्रशंसा का मोह पालता है तो उसे पतन के गर्त में प्रविष्ट होने का आभास नहीं होता और जब होता है तो बहुत देर हो चुकी होती है। जैसे कहा जाता है न।'' परंतु माधवी यह कहावत अपने पर लागु नहीं होने देती वह समय रहते ही सचेत हो जाती है।

'मैं और मैं' उपन्यास में नारी शोषण के अलावा वर्ग वैषम्यता से उपजा शोषण, पति-पत्नी के दाम्पत्य संबंध, प्रेमी-प्रेमिका संबंध आदि भी देखने को मिलते हैं।

भारत में सदियों से वर्ग वैषम्यता का ज्वर फैला हुआ है। उच्चवर्ग निम्नवर्गीय लोगों के साथ ज्यादती कर उनका शोषण करते हैं। परंतु इस उपन्यास में उल्टा होता है। सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में कौशल द्वारा उच्चवर्गीय माधवी का शोषण, निम्नवर्गीय लोगों में उच्चवर्गीय लोगों पर अधिकार-बोध और उच्चवर्गीय लोगों में निम्नवर्गीय लोगों के प्रति अपराध-बोध आदि के कारण ही माधवी का शोषण होता है।

आम भारतीय नारी की तरह माधवी भी अत्यंत भावुक होने के कारण कौशल के प्रेमपूर्ण बातो में आ जाती है। उसमें अपनी प्रशंसा सुनने की इच्छा भी होती है। अपनी लेखकीय अस्तित्व 'मैं' को बनाए रखने के लिए वह भटक भी जाती है। जहाँ माधवी कौशल को मानसिक जरूरत मानती है तो कौशल माधवी को शारीरिक जरूरत भी समझने लगता है।[७]

डॉ. पुरूषोत्तम अग्रवाल ने ठीक ही कहा है कि– ''अगर किसी एक मुद्दे पर हर सभ्यता, हर परंपरा का दामन दागों से भरा है तो वह है स्त्री की अस्मिता का मुद्दा इस न्युनता का अहसास भी हर समाज के अचेतन में मौजूद है। इसलिए स्त्रीत्व के प्रति जागरूक और इसके प्रति आग्रहशील स्त्री से हर परंपरा डरती है।

इसका सीधा सा अर्थ यह है कि मानव सभ्यता के इतिहास में पुरूष समाज ने नारी को ऐसे नैतिक बंधनों में बाँध दिया कि वह अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक न हो सके। कोई परंपरा यह नही चाहती है कि स्त्री ताकतवर बने और समाज के सामने पुरी दृढता से खड़ी होकर अपने अधिकारों की माँग करे। यह भय मानव समाज के अचेतन में समाया हुआ है, इसलिए कोई भी परंपरा नारी को मुक्त करने के पक्ष में नहीं है।

वर्तमान स्त्री विमर्श स्त्री अधिकारों के संघर्ष के लिए किए जाने वाला संघर्ष और इस संघर्ष के द्वारा ही उन सभी शक्तियों का दामन किया जा सकता है, जो नारी शोषण के लिए जिम्मेदार है, जैसा कि मृदुला गर्ग ने कहा है।

स्त्री का दामन करने वाली तमाम तनों और शाखाओं को उखाड़ फेकना और समाज की जड़ पर चोट करना चाहती हूँ। मैं जानती है। मैं जानती हूँ, इसमें मुझे हानि होगी। मेरा समाज परिवार तहस-नहस हो जाएगा, मुझे लगातार जलील होना पड़ेगा। फिर भी जो खड़ी हूँ, अकेली और निडर, मैं उसी तरह अकेली खडी रहूँगी पूरे नैतिक विवेक और साहस से। मेरे हाथ में दोनों चीजें हैं– साहस और सच्चाई।

वर्तमान में चेतना सम्पन्न नारी कृत संकल्प है कि वह अपने अधिकारों को लेकर रहेगी वह उन सभी रूढियों को उखाड़ फेंकने के प्रति दृढ़ प्रतिज्ञ है उसने अपनी शक्ति को पहचान लिया है, और साहस और सच्चाई के साथ वह सभी प्रकार की संकीर्णताओ से मुक्त होना चाहती है।[४]

संदर्भ :

१. मैं और मैं उपन्यास, मृदुला गर्ग, पृ. ६

२. वही, पृ. १२

३. वही, पृ. ५

४. वही, पृ. ६०

५. मैं और मैं, मृदुला गर्ग, राजकमल प्रकाशन, पृ. ३१

६. मैं और मैं, मृदुला गर्ग, पृ. १०

७. मृदुला गर्ग का व्यक्ति और कृतित्व, डॉ. एस. दिप्ति, पृ. १५०

८. मृदुला गर्ग के साहित्य में नारी चित्रण, डॉ. एकता वशिष्ट, पृ. १३३

अनुगांधीयुग के कवि जयन्त पाठक की सॉनेट रचनाओं का आस्वाद

श्रीमाली मायाबेन अमृतलाल

पीएच.डी. शोधछात्रा, हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय, पाटण

आधुनिक गुजराती कविता के क्षेत्र में कवि-आलोचक जयन्त पाठक का योगदान महत्वपूर्ण है। हमारे यहाँ कुछ कवियों को नाम लेकर बुलाया जाता है। जैसे की दलपत, नर्मद, सुंदरम, उमाशंकर, राजेंद्र, निरंजन। इसी प्रकार जयन्त पाठक उशनस का नाम भी युगल उच्चारित किया जाता है। इस तरह के उल्लेख के पीछे का कारण उन कवियों की कविता की समानता के बजाय समकालीनता, निश्चित समय अवधि, समान कारक आदि हैं। अपनी कविता में 'विस्मय' और 'वतनराग' के भाव को अद्वितीय ढंग से अभिव्यक्त करने वाले कवि जयन्त पाठक का जन्म १९२० में गुजरात की पूर्वी सीमा पर पंचमहल जिले के राजगढ़ गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम हिम्मतलाल पाठक और माता का नाम इच्छा बा था। कवि की प्रारंभिक शिक्षा कलोल में पूरी हुई। उनके पालन पोषण में धार्मिक प्रवृत्ति वाले माता-पिता और पंचमहल की जनपदीय जीवनलीला का बहुमूल्य योगदान रहा है। सार्वजनिक जीवन के साथ सक्रियता एवम् गहन एकता ने उन पर अमिट छाप छोड़ी। दरअसल, यही उनकी रचनात्मकता का स्रोत है।

'मर्मर' से शुरू हुई उनकी रचनात्मक यात्रा 'बे अक्षर आनंदना' और 'क्षणो मां जीवु छु' तक जारी रही।

जयन्त पाठक के कवि निर्माण में गांधीवादी विचारधारा का भी योगदान रहा है। लेकिन प्रकृति, वन और मातृभूमि, ये तीनो ही उनकी संपूर्ण रचनात्मक चेतना के मुख्य स्रोत हैं। उनकी कविता चार खंडों में विभाजित है। पहला खंड वनांचल पूर्व की कविता है, दूसरा खंड उत्तर-वनांचल कविता है, तीसरा खंड आध्यात्मिक कविता है और चौथा खंड काव्य के उपलक्ष में काव्य और प्रकीर्ण कविता है।

जयन्त पाठक के काव्य संग्रह - मर्मर (१९५४), संकेत (१९६०), विस्मय (१९६३), सर्ग (१९६९), अंतरिक्ष (१९७५), अनुनय (१९७८), मृगया (१९८३), शूलि पर सेज (१९८८)।

जयन्त पाठक की कविताओं में प्रकृति, प्रेम, ईश्वर, पारिवारिक भावना, मातृभूमि, जंगल, शब्द, समय और सुख-दुख की मानवीय भावनाएँ उनकी कविताओं के विषय रहे हैं। प्रारंभ में गीत, सॉनेट, मुक्तक, छंदबद्ध रचनाएँ और बाद में गजल, अछन्द रचनाएँ भी कीं।

मर्मर और 'विस्मय' में, समकालीन महिमा प्रणय के रूप से मंत्रमुग्ध है। दानो का एकात्मकता, पृथ्वीचंद के और सॉनेट का आकर्षण, चिंतन तत्व सामाजिक, सांस्कृतिक मुद्दों का चित्रण, मनुष्य को 'अमृत का उत्तराधिकारी' प्रदान करना टैगोरशाय के गीतों को रहस्यवादी बनाता है। 'निस्मय' से कवि की वन-वन्य के प्रति अदम्य प्रवृत्ति ध्यान आकर्षित करने लगती है। इसमें प्यार की खुशी और प्यार में असफलता के बाद असफलता के दुख को भी दर्शाया गया है। 'संकेत' में कुछ अलग ही निहित होता है। मुहावरे और तुकबंदी से वापसी की व्यावहारिकता का पता चलता है। 'सर्ग' संग्रह परंपरा के साथ नवीनता को आलोकित करने के लिए व्यावहारिकता दिखाकर काव्यात्मकता प्राप्त करता है। अत: 'सर्ग' में हमें अछंदास रचनाएँ और गजलें तो मिलती ही हैं, फिर भी प्रकृति के सुंदर चित्र, प्रकृति के साथ संवेदनशील अनुभव और प्रेम की विफलता की उदासी को बहुत ही सूक्ष्मता से चित्रित किया गया है। यहीं पर मातृभूमि के प्रति प्रेम की भावी कविता का अंकुर फूटता प्रतीत होता है।

जयंत पाठक को उनके साहित्यिक कार्यों के लिए कई ईनाम और पुरस्कारों से सम्मानित किये गये है। कुमार चंद्रक, नर्मद चंद्रक, रंजीतराम, सुवर्णचंद्रक, प्रेमानंदचंद्रक सोवियत देश नेहरू पुरस्कार, केंद्रीय अकादमी पुरस्कार, नान्हालाल पुरस्कार धनजी-कांजी पदक, उमा-स्नेहर्षमी पुरस्कार अनंतराय रावल आलोचना पुरस्कार आदि सम्मान प्राप्त कर चुके हैं।

यदि हम वन-वतम और वागड़ा के चातक कवि की काव्य कला के बारे में उनके 'सॉनेट' को देखें;

जयन्त पाठक के सॉनेट

जंगल, मातृभूमि और भीषण गर्मी के कारण ही वन्य भूमि के आदिम आवेग और चुंबकीय आकर्षण को महसूस करने वाले कवि जयन्त पाठक को ढेर सारे सॉनेट मिले। अध्यात्म प्रकृति वतनप्रेम और अरण्य प्रति लगाव उनके सॉनेट्स के विषय हैं।

जयन्त पाठक की कविता कला के बारे में सुरेश दलाल 'कविपरिचय' में लिखते हैं कि जयन्त पाठक ने कविता के माध्यम से आदिवासियों के पसीने को इत्र में बदल दिया है। उनकी कविता का मतलब वगकाउ पवन"।[१]

'मुझे लगता' सॉनेट में कवि–

"न रूप, न रंग, पर कितना अनाकर्षक!
न बिजली की चमक, न तेज चाबुक,

गाल में गुलाब नहीं, रोज देख कर एसा होता
सृजन के विरुद्ध कला समारोह की बर्बादी है!"

खुदको जो किरदार मिलता है वह रंग-रूप की दृष्टि से सुंदर या आकर्षक नहीं होता। यह बहुत सीधा और सरल किरदार है। न रूप में रंग है, न सजावट है। मेरे मन में विचार उठ रहा है कि मुझे इतना विकृत चरित्र कहाँ से मिला? इसके प्रति आकर्षण था। प्रेम उत्पन्न नहीं होता। मन में जीवन बर्बाद करने का भाव रहता है।

"और निरखु रोज मोहक सुरेख नारी कृति
जीस पर नयन रूपी विज पडते हि उराद्रि चुरेचुरा
मैं एक विकृत और विक्षिप्त महिला का पति हूं
अतुष्ता, दै दोष भाग्य बलने बहता दुरा।"

कवि को लगता है कि उसकी अपनी स्त्री अन्य सुन्दर स्त्रियों की तुलना में बहुत विकृत है। एक और महिला जो बेहद खूबसूरत है। जिसके दर्शन मात्र से ही दिल में बिजलियाँ दौड़ जाए। पत्नी स्वरूपवान और सुंदर होनी चाहिए। एक ऐसा चरित्र जिसके साथ जीवन बिताना है। वह सुंदर और स्वरूपवान तो होना मिला चाहिए और देखने में आकर्षक होना चाहिए। इसके बजाय, उनका एक बहुत ही कुरुप पात्र है। उसके दिल में बहुत पछतावा और लालच है और इसके लिए कवि भाग्य को दोष देता है, लेकिन उदासीन तरीके से जीवन व्यतीत हो रहा है। उदास मन से दाम्पत्य जीवन बीत रहा है। समय बीतने के साथ पत्नी मातृत्व धारण कर लेती है। एक बच्चा पैदा होता है।

"वह्या दिन, और बनी जननी ए शिशु एकनि।"
उमंग उत्साह से प्राण से प्यारा खुदके पिंडको बड़ा कर रही है।
और एक छोटी सी गांठ - जीवन से पैदा हुआ एक शिशु
वह घुटने टेक देता है, उसकी छाती से लग कर छिप जाती है।

ये पंक्तियाँ कविता के हृदयस्पर्शी मूल्य का बोध कराती हैं। दुनिया की कोई भी कुरूप और कुरूप स्त्री जब मातृत्व ग्रहण करती है तो 'माँ' का रूप उसके सबसे सुन्दर रूप को ढक लेता है और एक बच्चे को भी एक विकृत स्त्री भी अपनी 'माँ' होती है। इसलिए ये 'माँ' ही दुनिया की सबसे सुन्दर होती है शारीरिक विकृति भी 'मातृत्व' को बाधित नहीं कर सकती। संसार में सर्वोच्च स्थान 'मातृत्व' का है।

जब ऐसी संतान किसी ऐसी स्त्री से चिपक जाती है जिसने ऐसी मातृत्व धारण कर लिया हो तो कवि सोचता है कि क्या ऐसी संतान सहज वृति उसे स्वयं प्राप्त हो जाए!

"हँसे नयन भातने निरखि स्नेहनी झलक;
तुम्हें प्यार करने के लीए अगर बन सकु बच्चा!"

अंतिम पंक्तियाँ सॉनेट के आघात को व्यक्त करती हैं। एक माँ जैसी महिला दुनिया की सबसे खूबसूरत महिला होती है।

जयन्त पाठक के बारे में यह कहा जा सकता है कि वे सर्वथा विस्मयकारी कवि हैं। प्रेम, प्रकृति, अरण्य-तरुराग, कवि का आश्चर्य उनकी कविताओं में अनेक रूपों में व्यक्त हुआ है। "यदि आप जयंत पाठक की कविता का आनंद लेते हैं, तो जयंत पाठक की कायाकल्प कविता अधूरी है। संस्कृत के मुहावरे, नकल से पैदा हुए छंदों का छिछलापन, बड़बड़ाना, कल्पना की बकवास, ये सब अनुभव के साथ फीके पड़ जाते हैं।"[२]

सॉनेट रीस में वैवाहिक जीवन की खट्टी मीठ्ठी जटिलता को दर्शाया गया है। पत्नी ने किसी कारणवश अपने पति से रुठ के नैनिहाल चली जाती है। पति उसे लेने जाता है। पत्नी के मन में हल्की-फुल्की नाराजगी और आक्रोश रहता है, लेकिन स्त्री का मन स्वाभाविक रूप से प्रियजन के अनुग्रह की अपेक्षा रखता है। जब पति पत्नी के घर पर जाता है;

"तुम आये हो मेरे शहर में, घर के आँगन में,
और मैं मूर्खने रीस (रुठने) की हालत में
प्यार का एक शब्द भी कहा नहीं, सब की तरह हालचाल पुछा;
तुम चले गए, सब की तरह मैंने भी आपको विदा दि।"

प्रिय पात्र घर आ गया है। 'प्रिया' शब्द पति और प्रिय पात्र के लिए एक लाडको शब्द है। यह प्रेम की आत्मीयता का सूचक शब्द है। 'पिया' के आगमन के समय किसी घटना या लड़ाई-झगड़े को लेकर मन में गुस्सा रहता है। जब प्रियतम घर आता है, तो खुशी या आनंद का एक भी शब्द बोले बिना, यन्त्रवत और फिका स्वागत करती हैं और प्रियतम उसको साथ लिए बिना ही चले जाते हैं।

पिया के जाने के बाद सचमुच पछतावा और दु:ख होता है और उसे अपनी गलती का एहसास होता है और वह अपने स्वभाव के प्रति पश्चाताप और पछतावा महसूस करता है और इस झगड़े के लिए खुद को जिम्मेदार मानती है।

क्षमा करें, प्रिय, मेरे क्रोध का कारण कुछ भी नहीं है,
स्वभाव से तेज और कभी-कभी छोटी सी बात पे रुठ जाती;
अब यह दिल वश में नहीं है, मैं तुमसे सच कहती हूँ
लेकिन प्रिय, तुम बताओ कि मेरे मन में क्या है?

एक महिला को अपने आप पर पछतावा महसूस होता है। उनका स्वभाव संकीर्ण सोच वाला और छोटी-छोटी बातों पर उतारू रहने का रहा है। लेकिन अब उसे अपनी गलती का एहसास हो गया है। अब प्रिय के पास भागने की उत्कंठा हो रही है और प्रिय के प्रति ज्यादा प्यार उमड़ रहा है। फिर भी दिल के दूसरे कोने में प्रियतम उसे प्रेम से मनाने की चेष्टा करे ऐसी इच्छा है।

"आपने रीस में आने का कारण पूछा;
जो थोडा भी सुझा होता तो सबसे आँख चुराकर भी देखते,
आपके रुपके पास ले कर दूसरी एकांत टपली
धीरे से गाल को सहला के बोला होता"

सॉनेट की ये पंक्तियाँ एक महिला के चाहत की लालसा दर्शाती हैं। किसी भी कारण से या गलत तरीके से, हर महिला अपने प्रिय चरित्र-पति की चाहत रखती है। प्रिया चाहती है कि काश तुम एकांत में थोड़ा और करीब आकर मुझे थपथपा छलक देते तो मैं खुद भी फट जाती और मेरे दिल में जो कुछ है वो भी उभर कर बहार आता ।

"उसे लेने आया हूँ, जल्दी से नीकल"
सजके बैठी न थी, मैं तुरंत चली आती।

अगर तुमने मुझे प्यार से मना लिया होता तो मैं वहीं बैठी होती। मैं तुम्हारे एक प्यार के इशारे पर सब कुछ छोड़कर तुम्हारे साथ आने को तैयार थी। शेक्सपियरियन शैली के इस सॉनेट में स्त्री के मन की लालसा को बखूबी व्यक्त किया गया है,

सॉनेट की इस पंक्ति में स्त्री का हृदय प्रियतम के लिए तरस रही है। जो किसी प्रिय पात्र की लालसा करती है। वह नैनिहाल में है और सपने देख रही है कि अब उसका प्रियतम आएगा। उठते-बैठते-जागते-सोते हर पल प्रियतम की झंखना हो रही है। क्या मेरा प्रियतम दोपहर को आएगा या आ गया है? क्या यह सचमुच सच है या यह एक दिवा स्वप्न है? ऐसी नारी के हृदय की तीव्र हृदय भावनाएँ निहित हैं।

"तुम कैसे मेरे शहर, घर का आँगन पिया!
तुम्हें पता नहीं कि दोपहर हो गई!
मैं अभी बहुत सी चीजें महसूस कर रहा हूं -
मैं सो रहा हूं और मेरे पीछे कोई हवा नहीं है"

प्रियतम की लालसा दोपहर में दिवा स्वप्न दिखाती है और खुद को प्रियतम-पिउ के साथ शरीर से शरीर का आनंद लेते हुए देखती है और मधुर मिलन की एक रात के बाद सुबह भी उसे मीठी याद दिलाती है।

"तुम रात को आओ, मुझ पर झुको;
मैं चमकती हुई, गर्म और गीली उठती हूँ।"

प्रस्तुत पंक्ती में दाम्पत्य प्रेम की कामुक भाव-भंगिमाएं व्यक्त की गई हैं और कई बार ऐसे भाव-भंगिमाएं प्रदर्शित की जाती हैं या हो रही होती हैं।

"कई गीतों और कई गीतों की शर्म छुपाएं!
जामु और ओचिन्तो कवल सारी जाये;
सबकी नजरों से जयत्यम ओझल हो गया;
बार-बार गीली आँखें बंद हो जातीं।"

'अभी प्रियतम आएगा' की अभिलाषा और अभिलाषा हृदय में अनवरत दौड़ रही है। पिया के मिलन के गाने दिमाग पर छा रहे हैं और महिला भी शर्मा रही है। मैं सबकी नजरों को नजरअंदाज करके अकेले मीठे सपने देखना चाहती हूँ। बार-बार घर के चट्टानी दरवाजे की ओर देखता। 'हंबन मारो पिउ अरगा' की निरंतर झंकार मन को आनंदित कर रही है।

"मुझे सच्ची खुशी थी लेकिन अब भ्रम है, हम;
प्रतीति ते चुमि अधर, भुज मन भिदि अब"

पिउ की उत्कंठा सॉनेट के अंत में चरमोत्कर्ष पर पहुँचती है। इन पंक्तियों से पता चलता है कि पीयू के लिए दिल की निरंतर लालसा अब दृढ़ विश्वास में व्यक्त होती है ख़ शमणु-स्वप्न सच हो जाता है - पीयू के आने और उसके दोनों होठो प्यार से चूमने की तीव्र इच्छा - प्रत्याशा।

शेक्सपियर की सॉनेट शैली में सौंदर्य तब मिलता है जब कथा स्पंदन का रूप ले लेती है। रोमांस की भावनाओं को बखूबी व्यक्त करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. सुरेश दलाल, 'कवि परिचय', पृ. ११५
२. सुरेश दलाल, 'वाग्डाज ब्रीथ-एडिट', प्रथम संस्करण, १९७८, पृ. २०

प्रोबीर गुहा का रंगमंच

डॉ० पुष्पा बरनवाल

(एसो० प्रोफे०) बैसवारा डिग्री कॉलेज लालगंज, रायबरेली

दिखाओं कि तुम दिखा रहे हो, उन तमाम विविध अंदाजों में,
जिन्हें तुम तब दिखाते हो, जब यह दिखाना होता है,
कि लोग कैसे अपनी भूमिकाएँ अदा करते हैं,
दिखनि का अंदाज कभी नहीं भूलना चाहिए।[1] *-ब्रेख्त (अनुवाद मंगलेश डबराल)*

प्रख्यात राजनीतिक रंग सष्य 'ब्रेख्त' की उक्त कविता में दिखाने के अंदाज, दिखाने के पीछे का अंदाज और अपनी दैनिकी में इसे आत्मसात करने की दृष्टि और सजगता पर विमर्श हैं। श्री प्रोबीर गुहा के रंगकर्म को उक्त कविता के आलोक में देखना जरुरी है। क्योंकि प्रोबीर गुहा भी मूलत: एक राजनीतिक रंगकर्मी है और किसी भी राजनीतिक रंगकर्म की बात शुरू होगी तो बतौर 'पीटर ब्रुक', 'ब्रेख्त' से गुजरना, उनसे टकराना ही पड़ेगा। उक्त कविता के माध्यम से 'ब्रेख्त' जिस नाट्य सिंद्धात को विकसित एवं स्थापित कर रहे थे उस समय दुनिया के रंगमंच पर सोवियत संघ नामक समाजवादी राज्य अस्तित्व में था, जर्मन फासीवाद फल फूल रहा था। लेकिन आज का समय, प्रोबीर गुहा का समय दुनिया के लगभग हर हिस्से में भूमण्डलीय पूंजी का समय, एक नये किस्म के फासीवाद का अपने पूरे आगोश में ब्रह्मांड को लेने का समय तब प्रश्न उठता है कि ब्रेख्त की रंग सैद्धान्तिकी के हथियार से आज काम चलाया जा सकता है क्या? उनकी कविता की अंतिम लाइन के भावों में प्रोबीर 'अपनी भूमिकाओं के पीछे.... खुद भी उन्हे अदा करने वालों...' के किस पक्ष/विपक्ष में दिखते हैं और तब आज के समय से जूझने के सन्दर्भ में प्रोबीर की धार का मूल्याकंन आवश्यक हो जाता है। प्रोबीर गुहा कहीं न कहीं ब्रेख्त को निरतंरता में आज रंगकर्म की नयी भाषा, नयी धारा विकसित करने की प्रक्रिया में हैं। ब्रेख्त दिखाने के जिस अंदाज की बात करते है, वहाँ से प्रोबीर गुहा के दिखाने का अंदाज आत्मा के स्तर पर राजनीतिक है लेकिन टेकनीक और शिल्प के स्तर पर इतिहास, परम्परा, संस्कार और आधुनिकता को एक साथ फेंट कर प्रस्तुत करने के साथ वैकल्पिक/ वैश्विक हैं। अलाप, Invisible और Journey theatre की कुछ ऐसी शैलियाँ इन्होने परिमार्जित विकसित की है, जिसमें दर्शक मानसिक शारीरिक रूप से भागीदारी करता है। दर्शकों की भागीदारी में भावुकता भंग ब्रेख्त की रंग सैद्धांतिकी का मुख्य पहलू रहा है जिसमें मंच और दर्शक के बीच की दूरी बनी रहती थी। लेकिन आज इनके यहां वह भागीदारी सशरीर एक साथ एक मंच और समाज में वैचारिक छवियों / कोलाजों के साथ आ उपस्थित हुई है।

प्रोबीर गुहा का नाटक देखते हुए बार-बार जार्जी ग्रोटोवस्की[2] और बादल सरकार कौधंते रहते हैं। हांलाकि विश्व प्रसिद्ध रंग व्यक्तित्वों-पीटर ब्रेक, अत्रा हालमीन, जान मार्टीन के साथ काम किये है कहीं-कहीं यह स्वाभाविक भी हैं। लेकिन फिर भी ये प्रोटोवस्की सरकार के आस पास लगते हैं। उनसे इन्होने काम सीखा है। लेकिन इनका रंग उक्त दोनों से शिल्प और कथ्य के स्तर पर भिन्न है। ग्रोटोवस्की अपने मंच पर ना के बराबर कास्टयूम्स का प्रयोग करते थे। कथ्य और शिल्प वहां दो व्यक्तित्व थे यहां पर दोनो एक हो जाते हैं पात्रों को अभिनय क्षमता को वहाँ निखार कर दर्शक के सामने लाया जाता है, कहानीपन को कायम रखा जाता है। लेकिन यहाँ प्रचण्ड शारीरिक भाषा, नृत्यात्मक छवियों का दृश्याकंन एवं दर्शक के साथ अलाप (संलाप) और संगीत का खुद एक चरित्र के रुप में मंच पर एक्ट करना, कथ्य और शिल्प की एक रूपता, कुछ ऐसे बिन्दु है जहाँ पर ग्रोटोवस्की के साथ इनका अलगाव और असहमति है।

बादल सरकार[3] की जिद्दी मानसिकता और बाकी पात्रों के साथ विमर्श के अभाव ने प्रोबीर गुहा को अलग किया। जिस Third theatre को बादल सरकार ने विकसित किया। वह मूलत: शहरी सीमाओं में, मनुष्य की एकान्त होती दुनिया के विवरणों में ही सिमट कर रह गया। वहाँ Body language है लेकिन नृत्य और संगीत नही। प्रोबीर गुहा विकल्प थिएटर को गाँव, कस्बों, गली मुहल्लों तक ले गये। सरकार अपने पगला घोड़ा, एवम् इंद्रजीत के लिए ज्यादा जाने जाते हैं। जिसकी थीम ही कहानी के साथ पात्रों का समायोजन है, और प्रदर्शन भी शहरी एलीट क्लास के बीच। लेकिन गुहा टेढ़े-मेढ़े रास्तों से होते, आम जन से बोलते बतियाते, बहस करते, रियेक्ट करते / होते चलते हैं। इस प्रकार ग्रोटोवस्की और सरकार की तकनीकी छाया के बावजूद भी मूलभूत रुप से गुहा का रंग ज्यादा चटख, चिरंजीवी, अनछुआ और अनूठा है।

पूरी दुनिया में आज टुच्ची राजनीति, सेक्स और स्वास्थ्य का बाजारीकरण और पूँजी का खेल चालू है। इसी पर आधारित है साहित्य और संस्कृति। उच्च हाई टेक थिएटर, एलीट वर्ग दर्शक-निर्देशक और समस्त साज-समान। इसके सामानान्तर प्रोबीर गुहा विकल्प की बात करते हैं। जिसमें समाजवादी सपने हैं लेकिन धंधला सा, कम साधन का रंगमंच हैं, तीसरी दुनिया और गरीब लोगों की सृजनात्मक साहित्य संस्कृति है। इसी वैकल्पिकता के पक्षधर है प्रोबीर गुहा। अपने रंगमंच की दुनिया में निरतंर बदलाव और प्रयोग के इस कदर पक्षधर हैं कि खुद का भी विकल्प प्रस्तुत करते हैं, यानि एक विकल्प गढ़ते है और पुन: उसका निषेध करके एक नया विकल्प लाते हैं। यहां वे 'कार्ल मार्क्स' के सिद्धांत "निषेध का निषेध" का प्रयोग करते दिखते हैं। इसी सिद्धांत को आत्मसात कर वैकल्पिक रंगमंच की बात करते हैं प्रोबीर। लेकिन यहां एक प्रश्न उठता है कि एक व्यक्ति द्वारा थिएटर में प्रयोग और विकल्प की बात जितनी भी की जाय, क्या वह समूची व्यवस्था का विकल्प बन सकता है? उनके सपने किसी अनुशासनात्मक पार्टी, विचार और दर्शन के वगैर साकार होना सम्भव है क्या?

फिर भी प्रोबीर गुहा अपनी समूची प्रयोगधर्मिता के साथ सांस्कृतिक स्तर पर एक वैकल्पिक संस्कृति के लिए अनवरत सक्रिय हैं। राजसत्ता, जड़ता और यथास्थिति का विरोध प्रोबीर अराजक अंदाज में करते हैं इसका यह अर्थ कत्तई न लगाया जाय कि वे अराजकतावादी हैं। वैसे भी किसी भी तरह की यथास्थिति को चुनौती देती अराजकता अपने सीमित समय और अर्थ में प्रगतिशील होती है। जबकि इनके पास तो समाज को सजाने का एक मुकम्मल विजन है, दर्शन है।

अब तक रंगमंच कहानी के साथ प्रोसेनियम में चलता रहा है या कहानी में प्रोसेनियम जिसकी परिधि से बाहर के सारे प्रयोग उसके समान्तर हये लेकिन उसका विकल्प नही बने आज भी मुख्य धारा में प्रोसेनियम ही है, जिसकी मूल आत्मा कहानी है और कोई भी कहानी विचारहीन नही होती लेकिन यहां संदर्भ तकनीक का है कहानी आधारित नाटक आजतक घर परिवार, कुर्सी, मेज, खिड़की से मुक्त नही हुआ बल्कि उसने अपने को विकसित ही किया है, विशेष कर हिन्दी साहित्य की अच्छी कहानियों का बगैर किसी नाट्य रूपातंर के मंच पर अल्पतम संसाधनों के माध्यम से मचंन जारी है। आजकल एन० एस० डी० के निदेशक देवेन्द्र राज अंकुर के द्वारा एक विशेष तकनीक के रूप में साहित्य की महत्वपूर्ण विधा कहानी को कहानी पाठ के अदांज में पात्रों द्वारा मंचित किया जाने लगा है जिसे 'कहानी का रंगमंच' नाम से सैद्धांतिक जामा भी पहनाया जा चुका है इससे सम्बंधित महेश आनंद की पुस्तक भी आ चुकी है। नाट्य विधा जो Script में आती थी इसकी अब आवश्यकता नहीं रही हालाकि सामान्यत: Script ने भी कहनीपन को कभी छोड़ा नही। लेकिन आज 'कहानी का रंगमंच' में किसी नाट्य Script की आवश्यकता नही पड़ती बल्कि सीधे कहानी को पात्रों के माध्यम से Floor पर उतार दिया जाता है यह अंकुर का नया प्रयोग है लेकिन अंतत: कहानी का कहानीपन उसका घर परिवार, कुर्सी, मेज, पर्दा, और सबसे महत्वपूर्ण प्रोसोनियम की घेरेबंदी से यह प्रयोग भी मुक्त नही हो सका। लेकिन ठीक इसके समान्तर प्रौबीर गुहा का रंग इसका भी विकल्प बन कर सामने आता है। यहाँ कोई Script नही कहानी नहीं, कुर्सी, मेज और परिवार का तो प्रश्न ही नही। यहां है तो विचारों का विकास पुंज, दृश्य क्रम और सामाजिक सरोकारों की छवियों (Immages) के कोलाज। इन्ही सामाजिक छवियों (Immages) को लेकर प्रोबीर गुहा सीधा Floor पर उतरते हैं ये छवियां केवल उनके अपने मन मस्तिष्क की ही नही बल्कि जितने पात्र यहां तक की संगीतकार भी उनके साथ काम करते हैं, सामूहिक अहसासों, अध्ययनों, दृष्टियों के परिणाम स्वरूप जो वनज चनज निकलता है वही दर्शकों के सामने प्रस्तुत होता है, इस प्रकार से यह सम्पूर्ण रूप से सामूहिकता का रंगमंच है जहाँ कथ्य और शिल्प में अंतर नही रह जाता। अपने आप में यह एक नयी रंग भाषा, विचार भाषा, जिसमें देह, संगीत नृत्य सब कुछ मिश्रित होता है। यही है भविष्य का रंगमंच जंडा कोई लिपिगत भाषा नहीं कहानी नहीं रहेगी तो सिर्फ विचार पुंज की नयी रंग भाषा। प्रोबीर गहा नृत्य, लोक नृत्य, परम्परा, तीज त्यौहार, रिचअल्स से भी छवियां उठाते हैं, और बहुत ही कशलता से उनका सकारात्मक प्रयोग करते हैं

अलाप, अदृश्य और यात्रा थियेटर गुहा की तीन ऐसी विशिष्ट शैलियां हैं जिन्हें इन्होंने अपने समय के सांस्कृतिक सामाजिक संदर्भों में परिवर्धित, परिमार्जित, विकसित और शोधित किया है। बांग्ला भाषा में अलाप का अर्थ परिचय से होता है लेकिन इसके व्यापक आन्तरिक अर्थों में देखा जाय तो हिन्दी में संवाद के ज्यादा करीब लगता है। दर्शकों को नाटक देखने, सोचने, तर्क वितर्क करने, रियेक्ट करने, चिंतित होने के साथ-साथ उसे एक चरित्र के (अभिनेता-अभिनेत्री) रूप में नाट्य चरित्रों के साथ मंच पर उतार देने की प्रक्रिया की शैली है अलाप। जिसे लैटिन अमेरिका के कछ निर्देशकों ने शिक्षा पर काम करते हुए इजाद किया था, उसे ही गुहा अपने समस्त सामाजिक संदर्भों में विकसित कर रहे हैं। इस शैली में तो नाटक के अन्त तक मूल पात्र ही दर्शक बन जाते हैं और दर्शक मंच पर अभिनय करते दिखते है।

अभी इस शैली का भारतीय रंगमंच में प्रचार-प्रसार, परिमाजन और मान्यता प्राप्त होना बाकी है। जो प्रोबीर गहा सहित उनके स्कूल के अन्य छात्रों द्वारा स्थापित होना बाकी है। अदृश्य रंगमंच दरअसल आम लोगों की रोजमर्रा की स्थितियों में बगैर नाटकीय उदघोषणा के सक्रिय हो जाना है और उनकी समस्याओं को आंदोलनात्मक स्वरूप में ले जाना है। प्रोवीर गहा ने हालांकि नेपाल देश में इस पर एक प्रयास तो किया ही परन्तु अब भी इसपर विस्तार से काम होना बाकी है।

Journey Theatre (यात्रा रंगमंच) मूल रूप से प्रोबीर गुहा की खोज है। सभागार से बाहर बृहत्तर पृष्ठभूमि लिये यह विभिन्न रंग कोलाज के रूप में मंचित होता है। जिसमें दर्शक एक यात्री के रूप में विभिन्न रंग कोलाजों के अंदर यात्रा करता है। यह यात्रा एक साथ अंतर्मुखी, बहिर्मुखी होते हुए यथार्थोन्मखी होती है। Victimised' इसकी सबसे सशक्त प्रस्तुति है। नाच, परम्परा, तीज-त्यौहार, प्रथा के साथ तमाम सामाजिक और सांस्कृतिक परिघटनाएं इसमें शामिल होती है। दर्शक इसमें सीधा शामिल होता है, प्रतिक्रिया देता है और अन्त में इस बृहत्तर पृष्ठभूमि का वह एक अहम हिस्सा बन जाता है। शैली की व्यापकता और जोखिम भरा गठन इसकी खूबी है तो क्या भविष्य का रंगमंच यात्रा रंगमंच के रूप में बदल जाएगा।

संदर्भ सूची

1. सृजन परिप्रेक्ष्य, सं-कात्यायिनी, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ
2. पीटर ब्रुक(1975), टुआड्र्स ए पुअर थियेटर(पर्फारमेंस बूक), मेथुइन ड्रामा पब्लिकेशन, लंदन
3. बादल सरकार, प्रवासी की कलम से, अनुवाद-प्रतिभा अग्रवाल, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली
4. म्कपजमक इल आनंद लाल, Theatres of India, A concise Companion, Oñford University Press, New Delhi

फूटनोट

1 ब्रेख्त(अनुवाद-मंगलेश डबराल), सृजन परिप्रेक्ष्य, सं-कात्यायिनी, परिकल्पना प्रकाशन, लख्नऊ पृष्ठ -109

2 विस्तार के लिये: पीटर ब्रूक(19750, टुआड्र्स ए पुअर थियेटर(पर्फारमेंस बूक), मेथुइन ड्रामा पब्लिकेशन, लंदन

3 विस्तार से: बादल सरकार, प्रवासी की कलम से, अनुवाद- प्रतिभा अग्रवाल, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गीता ज्ञान की सार्थकता

डॉ० ऋचा

असि0प्रोफेसर संस्कृत, काशीनरेश राजकीय स्नातकोत्तर, महाविद्यालय ज्ञानपुर, भदोही

भारतीय दार्शनिक ग्रन्थों की अजस्र प्रवाहिनी परम्परा में अतिविशिष्ट स्थान रखने वाली श्रीमद्भगवदगीता में अर्न्तनिहित ज्ञान जीवन का वह प्रकाश पुंज है, जो शोक और करूणा से निवृत्त होकर कर्तव्य पथ का सम्यक् मार्ग प्रशस्त करते हुए भारत में उदित होकर पूरे विश्व को आलोकित कर रही है। भगवद्गीता में अर्न्तनिहित ज्ञान नैराश्य के भंवर में फंसे मानव को सफलता और असफलता के प्रति समान भाव रखकर धर्मपरक, सदाचार व त्यागमय आचरण का अनुसरण करते हुए निःस्पृह भाव से कर्म करने की प्रेरणा देती है। भगवतगीता को एक ओर उपनिषदों का सार बताया गया है तो दूसरी ओर कहा जाता है कि इसमें महाभारत का सम्पूर्ण सार आ जाने से यह सर्वशास्त्रमयी हो गयी है। अतिविशिष्ट गम्भीर भावों के बीच ज्ञान के सार वेदों का जो दोहन गीता में मात्र 700 श्लोकों में दिया है, वह आपैरूषेय नही तो और क्या है? वेदों और उपनिषदों के सारभूत पीयूषवर्षिणी गीता में एक महान नैतिक दर्शन निहित है, चूँकि गीता नैतिक प्रश्नों पर विचार करती है इसलिए समय-समय पर तत्वमीमांसीय प्रश्नों का स्पर्श हो जाना स्वाभाविक है। भगवद् भगवद्गीता भारत की महान संस्कृति और उसके मूल्यों को समझने का ऐतिहासिक-साहित्यिक ऐसा अनुपम साक्ष्य है। जिसमें समस्त जीवों के कल्याण का निदर्शन सहज ही देखा जा सकता है। वेद भगवान के निःश्वास है और भगवद्गीता भगवान की वाणी है। निःश्वास तो स्वाभाविक होते है परन्तु गीता भागवान की वाणी होने के कारण योग में स्थित होकर कही गयी है।[1] योग में स्थित होकर गीता कहने का तात्पर्य है कि सुनने वाले का हित किसमें है? उसके हित चिन्तन में क्या कहना चाहिए? भविष्य में जो भी सुनेगा अथवा पढेगा उसका हित किसमें निहित होगा? इसीलिए गीता समस्त जीवों का हित चिन्तन करते हुए समग्र कल्याण का साधक मानी जाती है। जो जिस दृष्टि से देखता है, उसे वैसी ही दीखने लगती है।- ''ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।।[2]

भगवद्गीता मानवता के लिए चिरंतन संदेश है। इसलिए उसके बताये कर्तव्य पथ पर चलने से मानव मात्र का कल्याण निश्चित हो जाता है। यद्यपि इसके भावों के पास तो आसानी से पहुँचा जा सकता है परन्तु इसके पास तो अनवरत अभ्यास के बाद भी नहीं पहुँचा जा सकता है। भगवान मधुसूदन ने स्वयं कहा है- ''गीता मे ह्रदयं पार्थ"। गीता तात्पर्य 'वासुदेवः सर्वम्' में निहित है। गीता अपने भावों से मानव मात्र के समस्त विकारों का शमन का उसे निर्मल बनाती है। यदि संसार के सभी प्राणी अपने अन्तःकरण को गीता ज्ञान के पवित्र जल से धोकर निर्मल मन से विश्व के समस्त सन्तापों को दूर करने में समर्थ हो सकता है- तं विद्याद्दुःख संयोग वियोगं योग संज्ञितम्।[3] स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि जो मेरे इस गीता ज्ञान रूपी आज्ञा का पालन करेगा वह निःसंदेह कल्याण को प्राप्त होगा।[4] यही नहीं जो इसका अध्ययन करेगा उसके द्वारा मैं ज्ञान यज्ञ से पूजित होऊँगा।[5] यदि गीता के अध्ययन मात्र का इतना महात्म्य है तो जो मानव इसके अनुसार अपने कर्तव्य पथ पर चलेगा तो उसकी बात ही क्या? ऐसे कर्मयोगी भक्तों के लिए योगेश्वर कहते हैं कि वह मुझे सबसे अधिक प्रिय होते है और ऐसे भक्तों के आधीन मै स्वयं हो जाता हूँ। अतएव गीता भगवान का प्रधान रहस्यात्मक वह आदेश है जिसमें योग प्राप्ति के लिए मुख्य दो निष्ठाएं बताई गयी हैं।[6] गीता का किन्चित मात्र भी चिन्तन मनन करने वाला सांसारिक बंधन से मुक्त होकर आत्यान्तिक आनन्द के सागर में अकण्ठ गोते लगाते हुए परमपद का अधिकारी हो जाता है। गीता में एक सार्वभौम जीवन का दृष्टिकोण प्राप्त होता है। वैदिक काल से आज तक भारतीय अध्यात्म, दर्शन एवं संस्कृति ने पूरे विश्व को प्रभावित एवं आकर्षित किया है। वैदिक मंत्रो के द्वारा हमारे ऋषि-मुनियो ने जिस सत्य का आत्म साक्षात्कार किया था। उसका सम्पूर्ण सार गीता में उपलब्ध है। ज्ञान योगियों ने इसे ज्ञान का, भक्ति योगियो ने भक्ति तथा कर्मवीरों ने कर्म का सूत्र बताया हैं।[7] गीता ही एक मात्र ऐसा ग्रन्थ है जो अपने ऊपर उठने वाले सवाले का जबाव देने में समर्थ है। इसके सिद्धान्त और व्यवहार में कोई विरोध नहीं है। गीता पलायन वादी प्रवृति का परित्यागकर हमें सभी विकट परिस्थितियों की चुनौती का सामना करने के लिए अपने पुरूषार्थ का प्रदर्शन करने का उपदेश देती है। गीता जल में कमल की भाँति अनासक्त आचरण करने की प्रेरणा का स्रोत ग्रन्थ है।[8]

गीता न केवल व्यवहार की उस समस्या को अपना विषय बनाती है जिसका समाधान आदर्श की चेतना में रहते हुए भी आत्मा को वश में न रख पाने से उत्पन्न आन्तरिक द्वन्द से बचने की चाह रखने वाले मानव के लिए आवश्यक है, बल्कि गहन दार्शनिक रहस्यों का भी उद्घाटन करती है। इसकी अमरवाणी व्यवहार और परमार्थ का जो सुन्दर समन्वय प्रस्तुत करती है, वह सर्वथाभावेन सफलता का मूल सोपान है। योग के अन्त भावों का अथाह सागर गीता ज्ञान, भक्ति एवं कर्म इन तीन योगों की त्रिवेणी है। ज्ञान योग परमात्म से तादात्म्य स्थापित करने की शून्य विधि है। उसके लिए समस्त सृष्टि ईश्वरमय है तथा ब्रह्म से विपरीत कोई सत्ता नहीं होती। इसलिए जगदगुरू शंकराचार्य गीता को प्रधानतः ज्ञान का ही ग्रन्थ मानते है। अपने समस्त कार्यों, इच्छाओं और स्वयं को परब्रह्म में विलीन कर देना ही गीता के ज्ञान योग का सार है।[9] इसीलिए गीता में आशक्ति को त्यागकर निष्काम भाव से कर्मो को करने का निर्देश दिया गया है। सिद्धि-असिद्धि, लाभ-हानि, दोनो को समान समझते हुए समत्व का भाव रखना ही योग है। यहाँ पर योग शब्द से जो अर्थ अभिप्रेत है- वह है सुख और दुख में एक सी ही बुद्धि रखना, लाभ-हानि को समान समझना, सम्पत्ति और विपत्ति में समान भाव से व्यवहार करना। जो मानव केवल फल की आशा में ही कार्य करते हैं उनके लिए योगेश्वर कृष्ण का कथन है[10] कि समत्व बुद्धि की अपेक्षा सकाम कर्म अत्यन्त हीन है अतः समत्व बुद्धि के लिए प्रयत्नशील रहते हुए कर्म मार्ग में प्रवृत्त हो। समत्व बुद्धि से कार्य करने का फल बताते हुए कहते हैं[11]-

बुद्धियुक्तो जहातीह, उभे सुकृतदुष्कृते।।

तस्माद् योगाय युज्यस्व, योगः कर्मसु कौशलम्।।

समत्व के अर्न्तगत आत्मगत समत्व, वस्तुगत समत्व तथा गुणातीत समत्व, का उपदेश अद्रभुत समन्वय के साथ गीता में प्राप्त होता है। इसलिए जो मानव निस्काम भाव से समत्व बुद्धि रखते हुए कर्म में प्रवृत्त होता है वह दुष्कर्म में लिप्त नहीं होता। अतः निष्काम भाव से कर्मो के करने में कुशलता प्राप्त करना ही योग है। ऐसे योग के लिए समस्त मानव को सर्वदा ही उद्धत रहना चाहिए।[12] ज्ञानयोग की महत्व को स्पष्ट करते हुए भगवान श्री कृष्ण कहते हैं[13]–

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।।

इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसंदेह कुछ भी नहीं है जिसका साक्षात्कार योगी स्वयं योग की परिपक्व अवस्था में अपने अन्तःकरण में अनुभव करेगा। इस ज्ञान के लिए अपेक्षित योग्यता का कथन योगेश्वर कहते है कि[14]– ज्ञानयोग में पहले कर्तृत्वाभिमान का त्याग किया जाता है फिर फलेच्छा का त्याग स्वतः होता है। कर्मयोग में पहले फलेच्छा का त्याग किया जाता है फिर कर्तृत्वाभिमान का त्याग सुमगता से हो जाता है। इसलिए निस्पृह रह कर कर्म करने का निर्देश गीता में दिया गया है।

देखा जाय तो वास्तव में योग की आवश्यकता कर्म में ही है, क्योंकि ज्ञान और भक्ति वास्तव में योग ही है। कर्म बंधनकारक होने के कारण उनमें योग की आवश्यकता है। योगीराज कृष्ण का योग ओर कर्म के विषय मे जो वेदादि शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित मंतव्य है उसका यथार्थ ज्ञान गीता में इस प्रकार से होता है–[15] योगस्थः कुरू कर्मणि, संगं त्यक्तवा धनंजय।

सिद्धयसिद्धयोः समोभूत्वा, समत्वं योग उच्यते।

इसमें कर्म करण सापेक्ष होने के कारण कर्त्तव्य परायणता से सराबोर है। योग करण निरपेक्ष होने से स्वाधीनता, निर्विकारता, असंगता, समता का समन्वय कहा जा सकता है। संसार मे जो हमारा कर्त्तव्य होता है वह दुसरे का अधिकार होता है। इसलिए व्यक्ति का जो कर्त्तव्य है वह परिवार–समाज का अधिकार है अतः एक दुसरे के अधिकार की रक्षा करने से मानव ऋण मुक्त हो जाता है, और उसे योग की प्राप्ति हो जाती है किसी के अधिकार की रक्षा करने का तात्पर्य है– शरीर वस्तु योग्यता और सामर्थ्य को अपनी न समझकर प्रत्युत दुसरों की ही समझ कर उन्हीं की सेवा में अर्पित कर देना। इसलिए कामना और आशक्ति से रहित होकर कर्त्तव्य का पालन करने के संकल्प से शरीर–संसार के संयोग का वियोग हो जाना ही योग की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करती है।[16]

निष्काम कर्मयोग गीता रूपी विश्व वैज्ञानिक का लोक मंगल की भावना से अनुष्युत एक अनुपम आविष्कार है। कर्मयोग के लिए कर्म को साधन के रूप में नहीं बल्कि स्वयं साध्य के रूप में मानने की आवश्यकता है। कर्मयोगी के लिए 'स्वकर्म' ही 'स्वधर्म' है। गीता में निहित निवृत्ति मार्ग का जो आदर्श है यदि वही कामकाजी संसार से विच्छेद करने को कहता है तो प्रवृत्ति का आदर्श समाज में रहकर सामजिक स्थितियों से जुडें हुए कर्त्तव्य का पालन करने को कहता है। मनुष्य के अन्दर हृदय दौबर्ल्य के साथ अन्त में राग है विराग नहीं, वह संशय ग्रस्त भी है। इसीलिए भगवान मधुसूदन ने अर्जुन के माध्यम से समस्त मानव जाति के लिए कर्मफल को स्वनिग्रह से छोडकर परमात्म में समर्पित करके कर्म में संलग्न होने का मार्ग बताते हुए कहते हैं[17]–

कर्मव्येवाधिकारास्ते मा फलेषु कदाचन।

या कर्मफलहेतुभूर्मा ते संगोअस्त्वकर्मणि।।

इसलिए मानव को चाहिए कि वह विषयों मे लिप्त न होते हुए कर्तव्य कर्मों में संलग्न रहे, क्योंकि जो बिना आसक्ति के कर्मों में प्रवृत्त होता है वह अपने अभीष्ट को शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है। श्रीकृष्ण ने निवृत्ति मार्ग अकर्मण्यता–कर्मण्यता पर बहुत बल दिया है। गीता का यथार्थ आदेश ज्ञान–भक्ति युक्त कर्म है। गीता तत्वमींमांसीय प्रश्नों का भी यत्किंचिद विवेचन करती है इसलिए व्यक्ति को स्थित प्रज्ञ होकर कर्म में संलग्न होने का निर्देश करती है। यह जाग्रत अवस्था की एक समाधि है जो इन्द्रिय निग्रह के लिए आवश्यक है। इसलिए भगवान भगवान सर्वकर्म फलत्याग रूप साधन की श्रेष्ठता को उत्तम बताते है[18]। कर्मफल त्याग कर्म का ही दूसरा रूप है। भगवान ने अर्जुन को निमित्त बनाकर कर्म योग द्वारा प्रत्येक मनुष्य को कल्याण का अधिकार प्रदान किया। अन्यथा अध्यात्म मार्ग के विषय में यह सोचा नहीं जा सकता कि एकान्त के बिना, कर्मों को छोडे बिना, वस्तुओं का त्याग किये बिना, प्रत्येक परिस्थिति में मनुष्य अपना कल्याण कर सकता है। इसीलिए भगवान श्री कृष्ण ने कर्म योग को कर्म सन्यास से भी श्रेष्ठ बताया है। अतः कर्मफल का आश्रय न लेकर कतर्व्य कर्म में रत रहने वाला कर्मयोगी ही व्यास्तविक सन्यासी है।[19] गीता में मानव कल्याण, भक्ति, कर्म, उपासना, और ज्ञान नामक चार साधन वर्णित किये गये है। वस्तुतः वर्तमान समय स्वाग्रह का है स्वनिग्रह का नहीं, आज इस बात की संभावना बहुत कम है कि लोग अपने कर्त्तव्य को छोडकर सन्यासी हो जायेगे, जैसा कि अर्जुन का ध्येय था। आशंका तो इस बात की है कि अपने अधिकार मागने और उपयोग करने की व्यग्रता में अपने कर्तव्यों को भूल जाने की हैं। गीता ज्ञान की अमरवाणी व्यवहार और परमार्थ का जो सुन्दर समन्वय प्रस्तुत करती है। वह सर्वतोभावेन सफलता का मार्ग प्रशान्त करती है। भगवदगीता न केवल व्यवहार की उस समस्या को अपना विषय बनाती है। जिसका समाधान आदर्श की चेतना में रखते हुए भी आत्मा को वश में न रख पाने से उत्पन्न आन्तरिक द्वण्द से बचने की चाह रखने वाले मनुष्यों के लिए आवश्यक है, बल्कि गहन दार्शनिक रहस्यों का भी समाधान है। अतः गीता में उपदिष्ट ज्ञान की आवश्यकता जितनी आज है उतनी ही आगे भी रहेगी। इसका मूल्य निरन्तर बढ रहा है यहीं इसकी महत्ता का प्रमाण है। इसमें सभी सिद्धान्तों का एकीकरण ऐसी सुन्दरता के साथ पिरोया गया है कि तत्व जिज्ञासु को समस्त पथ एक ही राजमार्ग की ओर प्रवृत्त करते है। यही करण है 700 श्लोंको की छोटी सी गीता को कामधेनु और कल्पवृक्ष की संज्ञा से विभूषित किया जाता है।

संदर्भ - सूची

1- न शक्यं तन्मया भूयस्तथा वक्तुमशेषतः। परं हि ब्रम्ह कथितं योगयुक्तेन तन्मया।। महा0, आश्वा0-16/12/13
2- भगवद गीता - 4/11
3- तदैव - 6/23
4- तदैव - 3/31
5- तदैव -18/70
6- तदैव - 3/3
7- तदैव - 5/2, 3/20, 4/23
8- तदैव - 2/47
9- तदैव - 2/48
10- तदैव - 2/49
11- तदैव - 2/50
12- तदैव - 3/19
13- तदैव - 4/38
14- तदैव - 4/39
15- तदैव - 4/15
16- तैदव - 6/23
17- तदैव - 2/47
18- तदैव - 12/12
19- तदैव - 6/1

भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका का अध्ययन

डॉ० ललित मोहन शर्मा

Principal, Vandurga Institute of Management and Technology, Meerut

श्रीमती लक्ष्मी सक्सेना

Assistant Professor

इस शोध पत्र में राजनीति में महिलाओं की भागीदारी, वर्तमान स्थिति समस्याओं और महिलाओं के राजनीतिक भविष्य का अध्ययन किया गया है। वर्तमान राजनीतिक भविष्य का अध्ययन किया गया है। वर्तमान राजनीतिक भविष्य का अध्ययन किया गया है। वर्तमान राजनीति में महिलाओं की भागीदारी वैसी ही स्थिति नहीं है जैसी बीस साल पहले थी। दुनिया के इतिहास में राजनीति एक दुर्जेय कार्य रही है। राजनीति ने लोगों का शोषण किया है, धर्म की रक्षा और लोगों के जीवन और संपत्ति की रक्षा के नाम पर खून बहाया है। इसलिए राजनीति न केवल आम आदमियों की बल्कि उन पुरुषों की भी अखाड़ा रही है जो कठोर और क्रूर व्यवहार करते हैं। राजनीति पुरुषों की शारीरिक शक्ति और इससे उत्पन्न होने वाले अंहकार के साथ सक्रिय रही है। इसलिए, राजनीति में तुलनात्मक रूप से नरम स्वभाव की महिलाओं की भागीदारी पूरी दुनिया में कम रही है। राजनीति में महिलाओं की भागीदारी न केवल भारत में बल्कि पूरे विश्व के इतिहासमें एक अपवाद रही है। स्वतंत्रता के बाद से महिलाओं की राजनीति में भागीदारी के प्रतिशत में उत्तरोत्तर सुधार हुआ है। सबसे पहले, लैंगिक समानता के सिद्धान्त को भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, मौलिक कर्तव्यों और निर्देश सिद्धांतों में प्रस्तावित किया गया है। संविधान ने न केवल महिलाओं को समानता का दर्जा दिया है, बल्कि महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव के उपाय करने के लिए राज्य को सशक्त बनाया है। जिसकी आज जरूरत भी है। अन्य क्षेत्रों में, महिलाओं को अपने प्रभुत्व को स्थापित करते हुए एक ऊर्जावान और ठोस तरीके से चुनौतियों का समानाकरना पड़ा रहा है। राजनीति के नए आयाम बनाए जा रहे हैं जिसमें महिलाओं को समान रूप से प्रोत्साहित किया जा रहा है, भले ही वह पंचायती स्तर पर ही क्यों न हो। गाँव के सरपंच ने कई पंचायत स्तर के चुनावों में महिला उम्मीदवारों को जीता और उन्नति के नए द्वार खोले।

शब्द कुंजी:

राजनीति में महिलाओं की भागीदारी, भरतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका, भारत में महिला मतदाताओं की स्थिति, सक्रिय राजनीति में महिलाओं की स्थिति, पंचायती राज में महिलाओं की भागीदारी, भारतीय संसद में महिलाओं की भागीदारी और राजनीति का भविष्य महिलाओं की भागीदारी क्या वर्तमान राजनीति में महिलाओं की भागीदारी वैसी नहीं है जैसी बीस साल पहले थी? इस सवाल पर अक्सर डेटा का आकलन किया जाता है। बड़े पैमाने पर महिलाओं की राजनीति में भागीदारी के प्रतिशत में आजादी के बाद उत्तरोत्तर सुधार हुआ है। सबसेपहले, लैंगिक समानता के सिद्धांत को भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, मौलिक कर्तव्यों और निर्देशक सिद्धान्तों में प्रस्तावित किया गया है। संविधान ने न केवल महिलाओं को समानता का दर्जा दिया है, बल्कि महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव के उपाय करने के लिए राज्य को सशक्त बनाया है। जिसकी आज जरूरत भी है। अन्य क्षेत्रों में, महिलाओं को अपने प्रभुत्व को स्थापित करते हुए एक ऊर्जावान और ठोस तरीके से चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। राजनीति के नए आयाम बनाए जा रहे हैं जिसमें महिलाओं को समान रूप से प्रोत्साहित किया जा रहा है, भले ही वह पंचायती स्तर पर ही क्यों न हो। गाँव के सरपंच ने कई पंचायत स्तर के चुनावों में महिला उम्मीदवारों को जीता और उन्नति के नए द्वार खोले। घर की सीमा से लेकर शिक्षा, बैंकिंग, कॉरपोरेट क्षेत्र में उन्होंने अपनी योग्यता को पुरुषों के रूप में साबित किया है और अपने लिए सम्मानजनक स्थान बनाया है। चुनावों में समान भागीदारी की व्यवस्था होनी चाहिए, लेकिन इसके लिए सामाजिक सोच, प्रणालीगत बदलाव, सामाजिक विकास और सबसे अधिक शिक्षित और स्वस्थ वातावरण आवश्यक है। साथ ही उच्च सिद्धान्तों को शामिल करना बहुत महत्वपूर्ण है। जमीनी स्तर पर भी, कुछ पहल करनी होगी जिसमें शिक्षित महिलाएं, भले ही वे ग्रामीण इलाकों की हों, उन्हें आगे आने कामौका मिलता है। ऐसे प्रयास जिसमें स्वस्थ स्तर पर महिलाओं की भागीदारी संभव हो सकेगी। सरकार ने ऐसी कई योजनाओं को मूर्त रूप दिया है। जिसमें महिलाओं के कल्याण और उनके विकास को भी प्रमुख मुद्दों में शामिल किया गया है। 73वें और 74वें संशोधन के तहत महिलाओं को पंचायतों में सीटों और नगर निकायों के स्थानीय निकायों में आरक्षण प्रदान किया गया है। ताकि राजनीति में उनकी भागीदारी को एक मजबूत आधार प्रदान किया जा सके। कई कृत्यों में सुधार और सभी भेदभाव को समाप्त करके समानता को प्रमुखता दी गई है।

उद्देश्य:

1. भारतीय राजनीति में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन किया गया है।
2. भारतीय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी पर चर्चा की गई है।
3. भारतीय राजनीति में महिलाओं के प्रभावों का वर्णन किया गया है।

पकिल्पना:

1. भारतीय राजनीति में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।
2. भारतीय राजनीति में महिलाओं के प्रभाव में वृद्धि होती रही है।
3. वर्तमान में सरकार ने महिलाओं को राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

अध्ययन पद्धति एवं आँकड़ों का संग्रह:

प्रस्तुत अध्ययन के लिए ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति का प्रयोग किया गया है। इस अध्ययन हेतु राजनीतिक दृष्टिकोण का प्रयोग किया है। अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक का प्रयोग किया है। अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आँकड़ों का समावेश किया गया है। प्राथमिक आँकड़ों का संग्रह प्रत्यक्ष सर्वेक्षण, साक्षात्कार, अवलोकन, प्रश्नावली एवं अनुसूची आदि के माध्यम से किया गया है। द्वितीयक आँकड़ों के संकलन डायरी, पत्र पत्रिकाओं, समाचार पत्र एवं विभिन्न वेबसाइट एवं पुस्तकों के माध्यम से किया गया है। इस अध्ययन की प्रकृति वर्णनात्मक है।

राजनीतिक में महिलाओं की भागीदारी:

दुनिया के इतिहास में राजनीति एक दुर्जेय कार्य रही है। राजनीति ने लोगों का शोषण किया है, धर्म की रक्षा और लोगों के जीवन और संपत्ति की रक्षा के नाम पर खून बहाया है। इसलिए राजनीति न केवल आम आदमियों की बल्कि उन पुरुषों की भी अखाड़ा रही है जो कठोर और क्रूर व्यवहार करते हैं। राजनीति पुरुषों की शारीरिक शक्ति और इससे उत्पन्न होने वाले अहंकार के साथ सक्रिय रही है। इसलिए, राजनीति में तुलनात्मक रूप से नरमस्वभाव की महिलाओं की भागीदारी पूरी दुनिया में कम रही है। राजनीति में महिलाओं की भागीदारी न केवल भरत में बल्कि पूरे विश्व के इतिहास में एक अपवाद रही है। लेकिन आधुनिक युग में राजशाही के पतन और लोकतंत्र के विकास के साथ, जब सेना ओर पुलिस बल के आधार पर राजनीति का संचालन कम होने लगा और जनता की राय को विशेष महत्त्व मिला, तब आम जनता का भी एक जगह वर्चस्व था। समाज के कुछ शक्तिशाली लोग। बढ़ने लगा। धीरे-धीरे आम जनता की भागीदारी में महिलाओंकी भागीदारी भी बढ़ने लगी। महिलाओं की बढ़ती भागीदारी के साथ, राजनीति की प्रकृति बदल रही है और जो न केवल भारत के लिए बलिक पूरे विश्व के लिए एक अनूठा अनुभव है। लेकिन यह विचार करने योग्य है कि क्या राजनीतिक अधिकारोंपर बैठे पुरुषों का यह समूह दुनिया के राजनीतिक माहौल को तनाव-मुक्ति बनाने के लिए राजनीति में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए विवेक को अपनाएगा।

भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका:

भारत के इतिहास में आधुनिक काल राजनीति में महिलाओंकी भागीदारी से अधिक महत्वपूर्ण है। रानी लक्ष्मीबाई, मैडम बीकाजी कामा, कस्तूरबा, अरुणा आसफ अली, सरोजिनी नायडू, सुचेता कृपलानी, विजयलक्ष्मी पंडित, इंदिरा गांधी आदि ने हमारे स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान दिया। स्वाधीनता की राजनीति में नंदिनी सत्पथी, मोहसिना किदवई गिरिजा व्यास, सुषमा स्वराज, मायावती, वसुंधरा राजे, शीला दीक्षित, ममता बनर्जी, रेणुका चौधरी, सोनिया गांधी आदि ने सक्रियता दिखाई। इंदिरा गाँधी ने 16 वर्षों तक प्रधानमंत्री के रूप में देश का नेतृत्व किया। स्वतंत्रता के तुरंत बाद गठित देश के संविधान में, महिलाओं को न केवल पुरुषों के रूप में वोट देने के लिए समान अधिकार दिए गए हैं, बल्कि पंचायतसे संसद तक जनता का प्रतिनिधित्व करने के लिए चुनाव भी लड़ना है।

इस प्रकार पंचायत राज व्यवस्था में सभी जनप्रतिनिधि मंचों में कम से कम एक तिहाई सदस्यता के साथ राजनीति में महिला भागीदारी का संख्यात्मक प्रतिनिधितव बढ़ा है। महिलाओं के लिए सार्वजनिक प्रतिनिधित्व कानून द्वारा एक तिहाई सदस्यता के प्रतिनिधित्व के कारण समाज में पुरुषों और महिलाओं के समानता का विचार तेजी से बदल रहा है। महिलाओं में नया आत्मविश्वा पैदा हुआ है। खुद के प्रति उनकी छवि में सुधार हुआ है, वे अपनी आँखोंमें उग आए हैं। समाज में महिलाओं से संबंधित मुद्दों पर विशेष जोर दिया गया है, महिलाओं के खिलाफ अत्याचार, बल का उपयोग आदि के विरोध में जागरूकता बढ़ी है, बालिका शिक्षा को बढ़ावा दिया गया है। महिला मतदाताओं का सम्मान बढ़ा है, लेकिन विडंबना यह है कि संसद और विधानसभाओं में एक तिहाई महिला भागीदारी बढ़ाने का विधेयक 1998 से लंबित है, जो पुरुष-प्रधान समाज के अन्यायपूर्ण फैसले का कड़वा मामला है।

स्वतंत्रता से लेकर वर्तमान समय तक भारतीय राजनीति में महिलाओं की स्थिति:

भारत में स्वतंत्रता के बाद पहली केंद्र सरकार (जवाहरलाल नेहरू की सरकार में) के पास 20 कैबिनेट मंत्रालयों में केवल एक महिला (राजकुमारी अमृत कौर) थी, जिन्हें स्वास्थ्य मंत्रालय काप्रभार दिया गया था।

एक भी महिला को लाल बहादुर शास्त्री की सरकार में जगह नहीं दी गई। यहाँ तक कि इंदिरा गाँधी की 5वीं, 6वीं, 9वीं कैबिनेट में एक भी महिला केंद्रीयमंत्री नहीं थी। राजीव गांधी के मंत्रिमंडल में केवल एक महिला (मोहसिना किदवई) को शामिल किया था।

मोदी सरकार में महिलाओं स्थिति में सुधार हुआ है। 2014 में, मोदी सरकार में कुल नौ महिला सांसदों को कैबिनेट और राज्य मंत्री बनाया गया था। 16वीं लोकसभा में 61 महिला उम्मीदवार जीती हैं। यह अब तक का उच्चतम है। 543 सदस्यीय लोकसभा में महिला उम्मीदवारों की संख्या 2009 में 58 से अधिक है। पीवआरवएसव लेजिसलेटिव रिसर्च के अनुसार, ''यह देश के इतिहास में लोकसभा में पहुँचने वाली महिलाओं की सबसे अधिक संख्या है। 2009 में, 58 महिलाओं की सबसे अधिक संख्या है। 2009 में, 58 महिलाएं पहुँची। लोकसभा। ''प्रमुख महिला उम्मीदवार जो संसद का मार्ग प्रशस्त करने में कामयाब रहीं उनमें कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी (रायबेरली), भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) की वरिष्ठ नेता सुषमा स्वराज (विदिशा), उमा भारती (झाँसी, मेनका गाँधी) (पीलीभीत), पूनम महाजन (शामिल हैं) (मुंबई नॉर्थ सेंट्रल), किरण खेर (चंडीगढ़), राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी (एनसीपी) की सुप्रिया सुले (बारामती),

समाजवादी पार्टी (सपा) के नेता दिपाल यादव (कन्नौज)। गौरतलब है कि सोनिया, सुषमा, उमा, मेनका, सुप्रिया, डिंपल को पहले संसद जाने का मौका मिला है, जबकि पूनम, किरणकेलिए यह पहला कार्यकाल होगा। हस चुनाव मेंकई प्रमुख महिला उम्मीदवार हार गई, जिनमें कांग्रेस नेता अंबिका सोनी (अंबाला), कृष्णा तीरथ (उत्तर पश्चिम दिल्ली), गिरिजा व्यास (चित्तौड़गढ़), लोकसभा अध्यक्षमीरा कुमार (सासाराम), बिहार की पूर्व मुख्यमंत्री राबड़ी देवी (सरन), उनकी बेटी मीसा भारती (पाटलिपुत्र)। पश्चिम बंगाल से सबसे अधिक 13 महिला सांसद संसद के निचले सदन में पहुँचने में कामयाब रहीं, जबकि उत्तर प्रदेश की 11 महिलाओं को इस बार संसद जाने मौका मिला। 2009 में, 58 महिलाएं संसद में पहुँचीं, जबकि 2004 में 45 और 1999 में 49 महिलाएं जीतीं। लोकसभा में सबसे कम महिलाएं 1957 में देखी गई, जब उनकी संख्या केवल 22 थी।

भारत में महिला मतदाताओं की स्थितिः

1980 और 2014 के बीच, महिला मतदाताओं की संख्या में 15 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। जबकि 1980 में महिला मतदाताओं की संख्या 51 प्रतिशत थी, 2014 में यह बढ़कर 66 प्रतिशत हो गई।

1990 में महिला मतदाताओं की संख्या बढ़ने लगी और 2014 के लोकसभा चुनावों में सबसे ज्यादा महिला मतदान हुआ। लेकिन फिर भी स्थिति को पूरी तरहसे बेहतर नहीं माना जा सकता है। महिला मतदाताओं का प्रतिशत के लिहाज से कमजोर है और साथ ही वोट देने जा रही महिलाओं का एक बड़ा प्रतिशत वोट के मामले में खुद तय नहीं कर पा रहा है। किस पार्टी याकिस नेता के पास उनका वोट जाएगा, इसका फैसला घर के पुरुषों द्वारा किया जाता है और वे उसी निर्देशों का पालन करते हुए वोट देने जाते हैं।

दिल्ली के आनंद विहार मे रहने वाली 40 वर्षीय प्रियमिदा कहती हैं कि उनके घर के सभी सदस्य एक ही राजनीतिक पार्टी को वोट देते हैं और वोट देने से पहले हमें बताया जाता है कि हमें किस पार्टी को वोट देना है। जब उनसे इसका कारण पूछा गया, तो उन्होंने कहाकि हम राजनीति से सीधे तौर पर नहीं जुड़े हैं, इसलिए वोट देने का फैसला कौन करता है, यह हमारे घर के लोग तय करते हैं।

अगर हम राज्यों के अनुसार महिला मतदाताओं के प्रतिशत के बारे में बात करते हैं, तो 2014 के लोकसभा चुनावों (राज्य की आबादी के अनुपात में) महिला मतदाताओं काप्रतिशत सबसे कम था। जबकि, अरुणाचल प्रदेश में स्थिति विपरीत देखी गई, जहाँ महिलाओं के लिंगानुपात के मामले में महिला मतदाताओं कीसंख्या में कमी देखी गई। इस राज्य में महिलाओं ने पुरुषों की तुलना में अधिक किया।

कविता कृष्णन कहती हैं कि महिलाओं को घर से बाहर निकालना और वोट देना बहुत जरूरी है। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि सरकार ओर राजनीतिक दल अपने घोषणा पत्र में महिलाओं को केंद्र में रखें।

वह कहती हैं, ''महिलाओं की सुरखा के बारे में बात करना महत्त्वपूर्ण है, लेकिन साथ ही महिलाओं के कई महत्वपूर्ण मुद्दें हैं, जिन्हें अक्सर अनदेखा किया जाता है, ताकि उनके अधिकारों को शामिल किया जा सके ताकि महिलाओं कोभी मतदान में रूचि हो। उन्हें महसूस करना चाहिए कि उन्हें सरकार बनाने में योगदान भी महत्वपूर्ण है।

सक्रिय राजनीति में महिलाओं की स्थितिः

सक्रिय राजनीति में, यह केवल महिलाओं की बुरी स्थिति के लिए जिम्मेदार राजनीतिक दल नहीं है, बल्कि हमारा समाज भी है, जो राजनीति में महिलाओं को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है।

अगर प्रियंका गांधी राजनीति में आती हैं, तो उनकी पोशाक और उनके नैन नक्श पर टिप्पणी की जाती है। प्रियंका के बारे में बहुत सी बातें हुई हैं कि सुंदर महिला राजनीति में क्या कर पाएगी।

वहीं, शरद यादव की वसुंधरा राजे पर टिप्पणी, आपको याद होगा जब उन्होंने अपने मोटापे पर टिप्पणी की थी कि वसुंधरा राजे मोटी हो गई हैं, उन्हें आरामकी जरूरत है।

इसी तरह, ममता बनर्जी, मायावती, सुषमा स्वराज की उन सभी महिला राजनेताओं को ऐसी टिप्पणियों का सामना करना पड़ता है। उसकी कोई भी विफलता उसके स्त्री होने के कोण से उजागर होती है, जबकि एक विफलता का सामना एक पुरुष राजनीतिज्ञ को भी करना पड़ता है। राजनीति में महिलाओं के कमजोर होने के बारे में तर्क-महिला उम्मीदवारों के पास जीतने की बहुत कम संभावना है। महिलाएं राजनीति में किसी पुरुष को अपने घरेलू काम में समय नहीं दे पाती हैं महिलाओं की राजनीतिक समझ कम होती है, इसलिए वे जीतने पर भी महिला विभाग, बच्चों के विभाग जैसे क्षेत्रों तक ही सीमित रहती हैं।

1. जहाँ तक महिला उम्मीदवारों का संबंध है, पिछले तीन लोकसभा चुनावों में जीतने वाली महिला उम्मीदवारों का प्रतिशत पुरुषों की तुलना में अधिक है। 2014 के चुनाव में महिला उम्मीदवारकी सफलता दर 9 प्रतिशत थी जबकि पुरुषों की संख्या 6 प्रतिशत थी।

   16वीं लोकसभा चुनाव जीतने वाली महिला उम्मीदवारोंकी संख्या सबसे अधिक थी। आज भी, कई राजनीतिक दल महिलाओं पर ध्यान नहीं देते हैं, इसका असर यह है कि बहुत कम महिलाएँ सक्रिय राजनीति मे उतर पाती हैं।

   बिहार की भाजपा युवा नेता अमृता भूषण का कहना है कि महिलाएं चुनाव नहीं जीतती हैं, यह गलत है। जब आप चुनाव लड़ते हैं, तो पार्टी के बारे में बात होती है, यह एजेंडेके बारे में है और व्यक्तिगत उम्मीदवार की बात है। स्त्री या पुरुष का नहीं हैं।

   चुनावों में महिलाओं का जीत प्रतिशत भी पुरुषों की तुलना में अधिक देखा जाता है मुझे लगता है कि सही जगह पर महिलाओं के नाम रखने के लिए शायद बहुत कम लोग हैं उनका कहना है कि इस बार महिलाओं को भाजपा में अधिक सीटें मिलने की उम्मीद है।

2. राजनीति में महिलाओं कोकम समय देने के तर्क पर, राजद के विधायक इजाया यादव काकहना है कि एक महिला उम्मीदवार को अपने क्षेत्र में पुरुष उम्मीदवार की तुलना में कड़ी मेहतन करनी होगी। पुरुष उम्मीदवार को घर के अंदर नहीं ले जाता है। एक महिला उम्मीदवार भी बाहर से मिलती है और लोगों के घर के अंदर महिलाओं से मिलती है।
3. राजनीति में महिलाओं के कम प्रतिशत के कारण, महिलाएं भी अक्सर मंत्रिमंडलों के विभाजन से अनभिज्ञ हैं। उन्हें आमतौर पर वित्त, गृह, रक्षा और स्वास्थ्य जैसे क्षेत्र आवंटित नहीं किए जाते हैं,इसके बजाय उन्हें महिलाओं, बच्चों, चंगुल जैसे विभागों को सौंप दिया जाता है।

पंचायती राज में महिलाओं की भागीदारी:

पंचायतों की संख्याकी स्थिति 1 अप्रैल, 2005 के अनुसार इस प्रकार है ग्राम पंचायत 2,34,676 मध्यवर्ती पंचायत6,097 जिला पंचायत 537 कुल पंचायत संस्थाएं 2,41,310। इन संस्थाओं में महिलाओं की संख्या और उनका प्रतिशत इस प्रकार है-जिला पंचायत में 41 प्रतिशत, मध्यवर्ती पंचायत में 43 प्रतिशत और ग्राम पंचायत में 40 प्रतिशत। पंचायतों में माध्यम से महिलाओं के सशक्तिकरण का कार्य किया जा रहा है। पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी उनके लिए आरक्षित 33 प्रतिशत की न्यूनतम सीमा से अधिक है। देश में पंचायतों में 22 लाख निर्वाचन प्रतिनिधियों में से करीब 9 लाख महिलाएं हैं। तीन स्तरों वाली पंचायत प्रणाली में 59,000 से अधिक महिला अध्यक्ष हैं। पंचायत में पहुँची महिलाएँ नि:शुल्क भूमि आंवटन, आवास निर्माण सहायता, ग्रामीण विकास कार्यक्रम, स्वरोजगार कार्यक्रम के कार्यान्वयन आदि में बढ़-चढ़कर योगदान दे रही हैं।

भारतीय संसद में महिलाओं की भागीदारी:

जहाँ तक भारतीय संसद में महिलाओं के प्रतिनिधित्व की बात है, तो स्थिति बहुत निराशाजनक है। संसद में महिलाओं की स्थिति को केवल इंदिरा गांधी के 16 साल तक प्रधान मंत्री रहने के साथ बेहतर नहीं माना जा सकता है। इंदिरा गांधी, भंडारनायके, चंद्रिका कुमारतुंगा, बेनजीर भुट्टो, खालिदा जिया आदि जैसी महिलाएँ इन देशों की राजनीति में बढ़ती महिला भागीदारी कापरिणाम नहीं थीं, लेकिन वे वंशानुगत संस्कारों के राजतंत्रीय संस्कारों के कारण अपने पूर्वजों की प्रसिद्धि से लाभन्वित हो रही थीं। इन समाजों में शासन। वास्तव में, भारत की संसदीय राजनीति में न केवल महिलाओं ने भी कम सक्रिया भागीदारी दिखाई है। महिलाओं पर पुरुष वर्चस्व का उदाहरण बिहार की पूर्व मुख्यमंत्री राबड़ीदेवी के रूप में देखा जा सकता है, जो महिला हैं, लेकिन उनके पति लालू प्रसाद यादव की निर्णायकता में राजनीतिक भागीदारी सीमित रही है। इस प्रकार, वर्तमान भारतीय राजनीतिक पृष्ठिभूमि में संसद और विधानसभाओं में महिला भागीदारी बढ़ाने के लिए, 33 प्रतिशत महिला प्रतिनिधियों के आरक्षण का विकल्प चुना गया है, जो भारतीय राजनीति में एक क्रांतिकारी मोड़ है, जिसके स्पष्ट परिणाम होंगे दशक या दो।

महिलाओं की भागीदारी से राजनीति का भविष्य:

महत्वपूर्ण सवाल यह है कि राजनीति में महिलाओं की भागीदारी के कारण राजनीति की प्रकृति में क्या बदलाव होने की उम्मीद है। राजनीति हमारे जीवन के सभी पहुलाओं पर फैसले लेती है- राजनीति, अर्थव्यवस्था, शिक्षा, स्वास्थ्य, आंतरिक और बाहरी सुरक्षा आदि, इसलिए यदि हमारे समाज की आधी आबादी- महिलाएं उन फैसलों में शामिल नहीं हैं तो यह हित में नहीं है महिलाओं का विकास, न तो इन राजनीतिक सभा संगठनों के हित में है और न ही पूरे समाज के हित में है, तो महिलाओं में जो स्नेह और रचनात्मकता निहित है, वह अहिंसा है और शारीरिक बल के अहंकार से मुक्त है, वह अहिंसा है और शारीरिक बली के अहंकार से मुक्ति है, यह अधिक स्वच्छ है, संपूर्ण राजनीति के व्यवहार से शांत, विल इसे संतुलित और रचनात्मक बना देगा। आज महिलाओं की बढ़ती भागीदारी से राजनीति, मनमानी और अतिवाद में अपराधीकरण और भ्रष्टाचार कम हो जाएगा। पंयायतों से हमारे संसदों की बैठकों में हिंसा कम होगी, नागरिकता और प्रतिष्ठता बढ़ेगी, और सामाजिक बुराइयों और दुष्कर्मों में कमी आएगी। इसके अलावा समाज में, शिशुओं, लड़कियों ओर युवा महिलाओं के विकास पर अधिक ध्यान दिया जाएगा। उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार में सुधार होगा, महिलाओं के संपत्ति अधिकारों को व्यावहारिक और मजबूत बनाया जाएगा। इन पुरुषों और महिलाओं के बीच संबंधों में अधिक समानता और संतुलन होगा। सुनिश्चित करें कि राजनीति में महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि ने पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए विकास का एक नया चरण शुरु किया है और परिणाम बेहतर होंगे, लेकिन यह तभी संभव होगा जब पुरुष वर्ग व्यापक सामाजिक-राजनीतिक हित में महिला भागीदारी पर गंभीर हो और दूसरी ओर देश की महिलाओं को अपने राजनीतिक अधिकारों की समानता के लिए कड़ा संघर्ष करना चाहिए।

निष्कर्ष:

निष्कर्ष रूप में, यह कहा जा सकता है कि सरकार और समाज ने भी काफी हद तक महिलाओं की राजनीति में समान भागीदारी की दिशा में ठोस कदम उठाए हैं ओर वे यह भी साबित कर रहे हैं कि महिलाओं के सम्मान ओर सशक्तिकरण ने राजनीति को एक नई ऊँचाई प्रदान की है। राजनीति के नए आयाम बनाए जा रहे हैं जिसमें महिलाओं को समान रूप से प्रोत्साहित किया जा रहा है, भले ही वह पंचायती स्तर पर ही क्यों न हो। गाँव के सरपंच ने कई पंचायत स्तर के चुनावों में महिला उम्मीदवारों को जीता और उन्नति के नए द्वार खोले।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, प्रज्ञा (2011), ''वुमन इन इण्डिया सोसाइटी, जयपुर: पॉइण्टर पब्लिशर्स, पृष्ठ संव. 162, 165
2. चोपड़ा, पी.ए.एन. पुरी, बी.पी.एन., दास एम.एन. (2005). ''भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास''। दिल्ली: मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड पृष्ठ संव. 259, 265.

3. शर्मा, गोपीनाथ (2008). ''राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास''। जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी। पृष्ठ संव. 259, 265.
4. शर्मा, कालूराम। (2004). ''उन्नीसवीं सदी के राजस्थान का सामाजिक और आर्थिक जीवन''। जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृष्ठ संव. 125, 129
5. जैन, हुकुमचंद और माली, नारायण। (2011). ''राजस्थान का इतिहास और संस्कृति: विश्वकोश''। ''जयपुर: जैन प्रकाशन मंदिर। पृष्ठ संव. 548, 555.
6. अंसारी, एम ए (2010) ''महिला और मानव अधिकार जयपुर: ज्योति प्रकाशन।
7. कैथवास, सावित्री (2009) ''ग्रामीण पंचायती राज के विशेष संदर्भ: अनुसूचित जाति और जनजाति की महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण की प्रक्रिया में आने वाली बाधाएं: नए पंचायती राज के विशेष संदर्भ में। 25, पृष्ठ संव. 30, 32
8. शर्मा, प्रज्ञा (2011) ''महिला विकास और सशक्तिकरण'' जयपुर: आविष्कार पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।

टोंक जिले में फसल उत्पादन में वृद्धि

परवीन महलावत

शोधार्थी, भूगोल विभाग, रा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय टोंक, म. द. स. विश्वविद्यालय

प्रो० गजेन्द्र सिंह

शोध निदेशक, रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय टोंक

प्रस्तावना (Introduction):

टोंक जिला भारत के राजस्थान राज्य में स्थित हैं और यह उपमहाद्वीपीय क्षेत्र में स्थित हैं। राजस्थान की राजधानी से लगभग 100 किलो मीटर की दूरी पर स्थित हैं। टोंक जिले का मौसम उपमहाद्वीपीय मौसम प्रणाली के अनुसार हैं। यहाँ का मौसम गर्मियों में बहुत गर्म होता हैं, जबकि सर्दियों में ठंडा होता हैं। प्रमुख फसलों के लिए हल्की सर्दियां फसलों के लिए फायदेमंद हो सकती हैं। टोंक जिले का आर्थिक और सामाजिक जीवन खेती पर आधारित हैं। यहाँ पर मुख्य रूप से खेती की जाती हैं, जिसमें मुख्य फसलें जैसे कि गेहूँ, बाजरा, जौ, उत्पादित होती हैं। टोंक जिले के किसान अपनी आजीविका के लिए खेती पर निर्भर हैं। कृषि उत्पादन स्थानीय अर्थव्यवस्था को स्थिर रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं और यहाँ के लोगों को जीवनोत्तरण प्रदान करता हैं। राजस्थान राज्य का टोंक जिला एक उपमहाद्वीपीय जलवायु, विविध जलस्रोतों, और प्राचीन संस्कृति के साथ भरपूर धरोहर के लिए जाना जाता हैं। यह जिला अपनी खेती के लिए मशहूर हैं और फसल उत्पादन यहाँ के किसानों के लिए मुख्य आर्थिक और सामाजिक गतिविधि हैं। हम टोंक जिले में फसल उत्पादन के लाभों की चर्चा करेंगें और देखेंगे कि यह कैसे इस जिले के किसानों के जीवन को सुधारता हैं। टोंक जिला राजस्थान राज्य के मध्य-पश्चिम भाग में स्थित हैं और यह जयपुर से लगभग 100 किलो मीटर की दूरी पर हैं। यहाँ की जलवायु सुखद होती हैं और गर्मी में तापमान अत्यंत उच्च होता हैं, लेकिन बारिश के साथ ही जिले में किसानों को खेती करने के लिए उपयुक्त जलस्रोत भी मिलते हैं। फसल उत्पादन के लाभों का सबसे महत्वपूर्ण पहलू खाद्य सुरक्षा हैं। टोंक जिले के किसान अनाज, गेंहू, बाजरा, और मक्का जैसी मुख्य खाद्य फसलें उत्पादित करते हैं, जो जिले की जनसंख्या के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इन फसलों का उत्पादन होने से स्थानीय लोगों को उपयोगी और सस्ते खाद्य सामग्री मिलती हैं, जिस से खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित होती हैं। फसल उत्पादन के माध्यम से किसान अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार कर सकते हैं।

अध्ययन का उद्देश्य (Objective of the Study)

इस अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य है:-

01. अध्ययन क्षेत्र के फसल उत्पादन का आंकलन करना।
02. अध्ययन क्षेत्र के फसल उत्पादन का यहाँ के सामाजिक, आर्थिक विकास पर प्रभाव का अध्ययन करना।
03. इस अध्ययन का उद्देश्य टोंक जिले में फसल उत्पादन में वृद्धि के अध्ययन करना है।

टोंक जिले में फसल उत्पादन के लाभ (Benefits of Crop Production)

1. आर्थिक विकास (Economic Development): टोंक जिले में फसल उत्पादन का आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान होता है। खेती से प्राप्त होने वाली फसलें न केवल खाद्य सामग्री के रूप में उपयोग होती हैं, बल्कि इससे किसानों को आय भी मिलती हैं, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत होती हैं।
2. रोजगार (Employment): खेती टोंक जिले में बड़े पैमाने पर रोजगार का स्रोत होती हैं। फसलों की खेती, प्रसंस्कृत रोजगार के साथ ही कामगारों के लिए भी रोजगार की अवसर साधती हैं, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की समस्या कम होती हैं।
3. आर्थिक स्वावलंबन (Economic Self & sffuiciency): फसल उत्पादन क माध्यम से किसान अपने आप को आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बनाते हैं। इससे उनकी आर्थिक स्वावलंबन की दिशा में सुधार होता हैं और वे आपने परिवार कीआर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम होते हैं।
4. खाद्यसुरक्षा (Food Security): टोंक जिले में फसल उत्पादन खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण होता हैं। यहाँ की फसलें न केवल स्वाभाविक खाद्य सामग्री प्रदान करती हैं, बल्कि इसके साथ ही खेती से समाप्त होने वाले आयों से लोग खाद्य की सुरक्षा को सुनिश्चित करते हैं।

5. पर्यावरणीय सुधार (Environmental Benefits): सही खेती प्रथाओं का पालन करके, टोंक जिले के किसान भूमि के संरक्षण और पर्यावरणीय सुधार में भी मदद करते हैं। उनके खेतों की संरक्षण में एक महत्वपूर्ण योगदान होता हैं, जो प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा में मदद करता हैं।
6. सामाजिक सुधार (Social Improvement): फसल उत्पादन के माध्यम सेसामाजिक विकास भी होता हैं, क्योंकि यह ग्रामीण समुदायों को समृद्धि की ओर अग्रसर करता हैं और जीवन स्तर को उच्चाधिकृत बनाता हैं।

टोंक जिले में उच्च फसल उत्पादन क्षेत्र एवं निम्न फसल उत्पादन क्षेत्रों के लाभ:-

उच्च फसल उत्पादन क्षेत्रो के लाभ (Benefits of High Crop Production):

1. आर्थिक विकास (Economic Development): उच्च फसल उत्पादन स किसानों को अधिक आय मिलती हैं, जिससे वे अपने आर्थिक स्थिति में सुधार कर सकते हैं।
2. खाद्यसुरक्षा (Food Security): उच्च फसल उत्पादन से खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित होती हैं, क्योंकि अधिक उत्पादन से ज्यादा खाद्य सामग्री उपलब्ध होती हैं।
3. विपणन और वित्तीय विकल्प (Marketing and Financial Options): उच्च फसल उत्पादन से किसान विपणन के विभिन्न वित्तीय विकल्पों का भी उपयोग कर सकते हैं, जैसे कि किसान बाजार में अधिक फसल बेच सकते हैं और वित्तीय बैंको से ऋण प्राप्त कर सकते हैं।

निम्न फसल उत्पादन क्षेत्र के लाभ (Benefits of Low Crop Production):

1. खेती की मिलावट से बचाव (Pest and Disease Control): निम्न फसल उत्पादन खेती की मिलावटों को कम कर सकता हैं क्योंकि इसमें कम फसलों क जाती हैं और यह बीमारियों और कीटों के प्रसार को भी रोक सकता हैं।
2. प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण (Conservation of Natural Resources): निम्न फसल उत्पादन के लिए अधिक जल, ऊर्जा, और अन्य प्राकृतिक संसाधनों की आवश्यकता नहीं होती हैं, जिससे प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण होता हैं।
3. सामाजिक और पर्यावरणीय सुधार (Social and Environmental Improvements): निम्न फसल उत्पादन न केवल जलवायु परिवर्तन के प्रति कम असर करता हैं, बल्कि सामाजिक सुधार भी लाता हैं क्योंकि इससे किसानों केवातावरण को साफ-सुथरा रखने का माध्यम मिलता हैं।

फसल उत्पादन का टोंक जिले के सामाजिक-आर्थिक विकास पर प्रभाव:-

1. आर्थिक विकास (Economic Development): टोंक जिले में फसल उत्पादन का आर्थिक महत्वपूर्ण योगदान हैं। खेती से प्राप्त होने वाली फसलें न केवल खाद्य सामग्री के रूप में उपयोग होती हैं, बल्कि इससे किसानों को आय भी मिलती हैं, जिससे उनका आर्थिक स्थिति मजबूत होती हैं।
2. रोजगार (Employment): खेती टोंक जिले बड़े पैमाने पर रोजगार का स्रोत होती हैं। फसलों की खेती, प्रसंस्कृत रोजगार के साथ ही कामगारों के लिए भी रोजगार की अवसर साधती हैं, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की समस्या कम होती हैं।
3. आर्थिक स्वावलंबन (Economic Self & sffuiciency): फसल उत्पादन स किसान अपने आपको आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बनाते हैं। इससे उनकी आर्थिक स्वावलंबन की दिशा में सुधार होता हैं और वे अपनी आजीविका को सुधारने में सक्षम होते हैं।
4. खाद्यसुरक्षा (Food Security): टोंक जिले में फसल उत्पादन खाद्य सुरक्षा के दृष्टि से महत्वपूण हैं। यहाँ की फसलें न केवल स्वाभाविक खाद्य सामग्री प्रदान करती हैं, बल्कि इसके साथ ही खेती से प्राप्त होने वाली आय से लोग खाद्य की सुरक्षा को सुनिश्चित करते हैं।
5. पर्यावरणीय सुधार (Environmental Benefits): सही खेती प्रथाओं का पालन करके, टोंक जिले के किसान भूमि के संरक्षण और पर्यावरणीय सुधार मे भी मदद करते हैं। उनके खेतों की संरक्षण में एक महत्वपूर्ण योगदान होता हैं, जो प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा में मदद करता हैं।
6. सामाजिक सुधार (Social Improvement): फसल उत्पादन के माध्यम सेसामाजिक विकास भी होता हैं, क्योंकि यह ग्रामीण समुदायों को समृद्धि की ओर अग्रसर करता हैं और जीवन स्तर को उच्चाधिकृत बनाता हैं।

टोंक जिले में फसल उत्पादन एवं किसान:-

1. जीवन स्तर की सुधार (Improved Standard of Living): टोंक जिले के किसान अब अधिक समृद्धि और सुख-शांति का अहसास कर रहे हैं। उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार के कारण, वे अब अधिक सामग्री और सुविधाओं का उपयोग कर सकते हैं, जो उनके जीवन को सुखद बनाता हैं।

2. प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण (Conservation of Natural Resources): किसान अब प्राकृतिक संसाधनों के सही उपयोग के प्रति जागरूक हो रहे हैं। उनके खेतों की संरक्षण में अधिक सतर्कता और जिम्मेदारी हो रही हैं, जो प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण में मदद करता हैं।

3. शिक्षा का महत्व (Importance of Education): फसल उत्पादन के साथ ही शिक्षा के प्रति भी जागरूकता बढ़ रही हैं। किसानों के जीवन में आर्थिक सुधार के साथ ही उनके बच्चों को शिक्षा का महत्व समझाने का मौका मिल रहा हैं, जो उनके जीवन का सामाजिक और आर्थिक विकास हो रहा हैं।

4. कृषि तकनीकी सुधार (Technological Advancements in Agriculture): आधुनिक खेती तकनीक के प्रयोग के कारण, टोंक जिले के किसान अब अधिक उत्पादक और सुरक्षित खेती प्रणाली का पालन कर रहे हैं। उन्होंने उनके कृषि प्राकृतिक संसाधनों का अधिक उपयोग करने के तरीकों को सीख लिया हैं, जो उनके उत्पादकता को बढ़ाता हैं।

5. फसलों की विविधता (Crop Diversity): किसान अब विभिन्न प्रकार की फसलें उगा रहे हैं, जिसस उनके आर्थिक सुरक्षा में सुधार हो रहा हैं। विविधता स वे अपनी फसलों की दक्षता को बनाए रखने में सक्षम हो रहे हैं और बुआई के समय बीमारियों और कीटों के प्रति अधिक सतर्क रहते हैं।

6. सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन (Social and Cultural Changes): फसल उत्पादन के साथ ही सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन भी हो रहे हैं। किसान समुदाय में सामाजिक सद्भावना और औरता की सशक्तिकरण के प्रति अधिक जागरूकता हो रही हैं।

निष्कर्ष (Conclusion):

टोंक जिले में फसल उत्पादन के लाभ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, और इससे किसानों के जीवन में भी महत्वपूर्ण बदलाव आया हैं। यह न केवल आर्थिक सुधार लाता हैं, बल्कि पर्यावरण की सुरक्षा, खाद्यसुरक्षा, और सामाजिक सुधार के प्रति भी योगदान करता हैं। टोंक जिले के किसान आज अधिक जागरूक, आत्मनिर्भर, और सुखी जीवन जी रहे हैं, और उनके जीवन में खेती का महत्व और भी बढ़ गया हैं इससे न सिर्फ उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ हैं, बल्कि वे अपने पर्यावरण के साथ भी अधिक सहयोगी बने हैं और राजस्थान के कृषि सेक्टर के विकास में योगदान कर रह हैं, इसलिए टोंक जिले के फसल उत्पादन का योगदान उसके सामृद्धिक और सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण हैं और इसे सुनिश्चित रूप से बढ़ावा देना चाहिए। टोंक जिले में फसल उत्पादन के लाभ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, और इसस किसानों के जीवन में भी महत्वपूर्ण बदलाव आया हैं। यह न केवल आर्थिक सुधार लाता हैं, बल्कि पर्यावरण की सुरक्षा, खाद्यसुरक्षा, और सामाजिक सुधार के प्रति भी योगदान करता हैं। टोंक जिले के किसान आज अधिक जागरूक, आत्मनिर्भर, और सुखी जीवन जी रहे हैं, और उनके जीवन में खेती का महत्व और भी बढ़ गया हैं।

संदर्भः-

1. माइकल बेनानव, एबिगेलब्लासी, लिंडसे ब्राउन, लोनली प्लैनेट, 2017, आईएसबीएन 9781787012332
2. ''बर्लिट्ज पॉकेट गाइड राजस्थान,'' इनसाइट गाइड्स, आपा प्रकाशन (यूके) लिमिटेड, 2019, आईएसबीएन 9781785731990
3. मार्गरेट ईवॉकर (2016)। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत का कथक नृत्य। रूटलेज। पी पी 100-102। आईएसबीएन 978-1-317-11737-7
4. फ्रॉली, विलियम (मई 2003)। भाषा विज्ञान का अंतर्राष्ट्रीय विश्वकोश: 4-वॉल्यूम सेट ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। आईएसबीएन 978-0-19-513977-8.
5. संजीव जून। एसएससी के लिए पूरी गाइड। टाटा मैकग्रा-हिल एजुकेशन। पृष्ठ 255. ISBN 978-0070706453
6. हॉले, जॉनस्ट्रैटन (2020)। कृष्ण का खेल का मैदान: 21वीं सदी में वृंदावन। ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। आईएसबीएन 978-0190123987।

हिन्दी दलित कविता: भाषा और शिल्प

अमित कुमार चौधरी

शोध छात्र, हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

हिन्दी दलित कविताओं की भाषा एवं शिल्प सदियों से शोषित एवं पीड़ित दलित जनों की अन्तर्वेदना को प्रखरता से अभिव्यक्त करने वाली विद्रोह जन्य भाषा एवं शिल्प है। स्वानुभूति की प्रामाणित अभिव्यक्ति ही दलित काव्य भाषा की विशेषता है। डा0 एन. सिंह लिखते हैं कि, ''हिन्दी दलित साहित्य की भाषा सहज, सरल तथा आम बोलचाल की भाषा है। जब किसी वर्ग विशेष से कोई रचनात्मक व्यक्ति साहित्य में प्रवेश करता है, तो वही अकेला ही प्रवेश नहीं करता है। इसलिए जब दलित साहित्यकारों ने हिन्दी साहित्य में प्रवेश किया, उनके साथ दलित बस्तियों की सारी सडांध और गालियों ने भी साहित्य में प्रवेश किया। जिस प्रकार के दग्ध अनुभव दलित साहित्यकारों को हुए उनकी अभिव्यक्ति के लिए वैसी ही दग्ध भाषा का ही प्रयोग दलित साहित्यकारों ने किया।''[1]

हिन्दी दलित कविताओं की भाषा में रमणीय और काल्पनिक शब्दों का अभाव होता है। क्योंकि दलित कविता की भाषा यथार्थ के अधिक निकट है। दलित कविता की भाषा आक्रोश एवं प्रतिरोध से लैस एक मारक भाषा है जो अपना एक अलग सौन्दर्यबोध निर्मित करती है। अत: दलित कविता की भाषा में रमणीय शब्दावली एवं कल्पना का अभाव पाया जाता है। इसलिए दलित कविता पर प्राय: आरोप लगाया जाता है कि वह अश्लील है, वह केवल आक्रोश, विद्रोह और संताप का साहित्य है। उसमें अभिव्यक्ति की गहराई का अभाव है। जो काव्यशास्त्रीय दृष्टि से उतना खरा नहीं उतरता। इन आरोपों का खण्डन करते हुए ओमप्रकाश बाल्मीकि लिखते हैं कि, ''दलित साहित्य ने संस्कृतनिष्ठ परम्परागत साहित्यिक भाषा, काव्य शैली, प्रस्तुतीकरण को नकारकर सर्वग्राही भाषा का प्रयोग किया है। ऐसी भाषा जो दलितों की पीड़ा, अपमान व्यथा की सही और यथार्थवादी अभिव्यक्ति बन सके। दलित साहित्य की भाषा नकार और विरोध की भाषा है जिसमें युगों-युगों की यातनाएँ साकार हो उठी है।..... कुछ आलोचक दलित साहित्य में गन्दी और अश्लील भाषा के प्रयोग की ओर संकेत करते हैं। उन्हें लगता है सहित्य का पाठ 'पवित्र' होना चाहिए। भले ही उसमें बनावटी भाषा, जो अभिजात्य संस्कारों से रची बसी हो, का प्रयोग करना पड़ें। यह धारणा उचित नहीं हैं, क्योंकि दलित साहित्य कल्पना में नहीं जीता। वह जीवन के कटु यथार्थ से रूबरू होता है। यातनाओं से उपजी आक्रोशित भाषा एक तेज औजार की तरह भीतर तक झकझोर देती है। दलित समाज की बोली बानी के ऐसे अनेक शब्द प्रकट होते हैं जिनमें साहित्य अनभिज्ञ था। यह दलित साहित्य को ताजगी देता है और भाषा की जड़ता भी टूटती है।''[2]

अत: इन आरोपों में कोई तथ्य नहीं है दलित कविताओं में भी अलंकार, बिम्ब, प्रतीक आदि का बड़ी मात्रा में प्रयोग देखने को मिलता है। स्वानुभूति की प्रमाणित अभिव्यक्ति ही दलित काव्यभाषा की विशेषता है-

''मुँह अंधेरे बुहार गई सड़क में
जो चमक है
वह मैं हूँ
खेत की माटी में
उगते अन्न की खुशबू
मैं हूँ।
बाढ़ में बह गई झोपड़ी का दर्द
सूखे में दरक्ती धरती का बांझपन
वह मैं हूँ
सिर्फ मैं हूँ।''[3]

अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए सशक्त शिल्प का होना आवश्यक है। कविता अनुभूति एवं अभिव्यक्ति दोनों की माँग करता है। कविता की अभिव्यक्ति के लिए अनुभूति के साथ-साथ शब्द भण्डार, अलंकार, बिम्ब, प्रतीक आदि तत्वों की आवश्यकता होती है। इन सभी तत्वों के मिले-जुले रूप को कविता का शिल्प कहते हैं। प्राख्यात दलित चिन्तक डॉ0 शरण कुमार लिम्बाले का मत है कि, ''दलित लेखक लिखते समय अपने अनुभवों को आधार बनाता है। उसके लेखन में एक अवधारणा हमेशा मुखर होती है कि 'इसके विरुद्ध विद्रोह करना है, ये नकारना है, ये निर्माण करना है, चूँकि पूर्व निश्चित अवधारणाा से प्रेरित होकर दलित लेखक लिखता है, इसलिए उसका लेखन सोद्देश्य होता है।''[4]

शिल्प विधि को परिभाषित करते हुए डा0 गिरीश कुमार लिखते हैं कि, ''रचनाकार अपने अमूर्त भावों, जीवनानुभावों, स्वानुभूति से उत्पन्न हुए विचारों को जिस पद्धति से मूर्तरूप प्रदान करते हैं उसे शिल्पविधि कहते हैं।''[5]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिल्प के अन्तर्गत रचनाकार के अनुभवों एवं विचारों तथा भावों की प्रधानता होती है, न कि उसकी अभिव्यक्ति का ढंग। इस दृष्टि से उसका सौन्दर्य काव्यशास्त्रीय मापदंडों पर निर्भर न करके स्वप्रमाणित होता है।

शिल्प विधान के अन्तर्गत शब्द-सम्प्रदा, भाषागत विशेषता, बिम्ब विधान, प्रतीक विधान, अलंकार योजना, काव्य रूप आदि का विवेचन व विश्लेषण किया जाता है। ये सभी तत्व कविता के निर्माण के काम आते हैं।

भाषा अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम है तथा यह काव्य शिल्प का महत्वपूर्ण अंग है। जिसका मुख्य कार्य भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति है। दलित कविता की भाषा नवीन शब्द, नवीन दृष्टि एवं विद्रोह के अभूतपूर्ण मिश्रण से निर्मित आक्रोश की भाषा है। जिसमें सहजता और स्वाभाविकता बनाए रखना दलित कविता के शिल्प विधान की प्रमुख विशेषता है। दलित कविता की भाषा के आक्रोशित शब्द तीर बनकर अपना आक्रोश व्यक्त करते हैं। डा0 एन. सिंह लिखते है-

''बिना कर्म के शब्द जो निजधार खो, कुंठित हुए उन्हें धार दो।
सुनो हर शब्द एक तीर है, इसे अर्थ के विष में बुझा लो।''[6]

दलित कविता की भाषा यथार्थ के अधिक निकट है। इसमें आक्रोश है, प्रतिरोध है इसलिए वह दिलों को दहला देने वाली भाषा होती है। दलित लेखकों ने अपने दुख एवं दर्द की अभिव्यक्ति के लिए अपनी भाषा और अपने लिए एक अलग सौन्दर्य बोध का निर्माण किया। दलित कवित के केन्द्र में दमित, शोषित, उत्पीड़ित दलित समुदाय है जिसका सौन्दर्य भूखे पेट को भरने के लिए साधन जुटाने में समाहित हो जाता है। दलित कविता के मूल में दलित चेतना है। सामाजिक परिवर्तन ही इसका प्रमुख लक्ष्य है। दलित काव्य भाषा सभ्य समाज के लिए असुन्दर है उसमें अलंकारिकता का अभाव है। ओमप्रकाश बाल्मीकि लिखते हैं-

''मेरे शब्द पंख कटे पक्षी की तरह
तड़पड़ा उठते हैं
तुम अकेले नहीं मारे गए तपस्वी
यहाँ तो हर रोज मारे जाते हैं असंख्य लोग
जिनकी सिसकियाँ घुटकर रह जाती है
अंधेरे की काली पर्तों में।''[7]

दलित कविता की भाषा में दलितों की पीड़ा है, आक्रोश है, दर्द है जो अब अभिव्यक्ति चाहता है। जो आक्रोश में ही व्यक्त होता है। डा0 शरण कुमार लिम्बाले लिखते हैं कि, ''मेरा यह आक्रोश मेरा दर्द है। जब मेरी माँ, बहन पर अत्याचार होता है उसे क्या कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त करूँ। जब मैं लिखता हूँ तो मेरी रचनाएँ मेरे साथ हुए छल-कपट की अभिव्यक्ति होती है। अपने ऊपर हुए छल-कपट को क्या कलात्मक शैली में पेश करूँ। जिसका घर जल रहा है, उसका संताप सुर में होना चाहिए। आक्रोश शास्त्रीय संगीत में नहीं। इसलिए साहित्य शास्त्रीय सौन्दर्य दलित काव्य भाषा में खोजना नितांत निरर्थक है।''[8]

अत: दलित कवि अपनी कविता के माध्यम से अपने नकार के शब्दों को अभिव्यक्त करता हुआ लिखता है-

''तुम्हारे रचे शब्दों के
सीने पर चढ़ कर
बजाऊँगा डंका
विजय श्री का
क्योंकि
अब मैं गूँगा नहीं।''[9]

दलित कविता में दलित जीवन की यातनाओं का चित्रण है। इन यातनाओं के वर्णन के साथ कवि अपने प्रतिरोध को भी व्यक्त करता है। अपने ढोल शीर्षक कविता के माध्यम से जयप्रकाश कर्दम दलित जीवन की समग्र यातनाओं को अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं-

''मैं हूँ ढोल
चमड़े से मढ़ा काठ का खोल
मुझ पर पड़ने वाली प्रत्येक चोट
बनाती है जख्म मेरे जिस्म पर
जितनी तगड़ी चोट
उतना गहरा जख्म
उतनी ऊँची चीख
आनंदित होते हैं, वे जिस पर।''[10]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिन्दी दलित कविता में प्रतिरोध और आक्रोश की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है जो अपनी मुक्ति की मांग करती है। इस प्रतिरोध की अभिव्यक्ति के लिए दलित कवियों द्वारा एक विशिष्ट भाषा को अपनाया गया, जो सवर्णों द्वारा स्थापित भाषा से पूर्णतया मुक्त तार्किकता से मुक्त है। यह काव्यभाषा किसी परम्परागत साहित्य शास्त्रीय मानकों की मोहताज नहीं है। दलित कविता के सौन्दर्य का सीधा सम्बन्ध समाज परिवर्तन की बेचौनी है।

अन्याय, असमानता, शोषण, उत्पीड़न आदि का पारदर्शी चित्र हिन्दी की दलित कविताओं में बिम्बित हुए है। ओमप्रकाश बाल्मीकि लिखते हैं कि, ''दलित कविता में बिम्ब दलित जीवन की त्राससी और उसके यथार्थ को व्यक्त करते हैं। दलित कविता में अंधेरा, आस पास के परिवेश में गन्दगी की सड़ांध, सीलन भरे तंग मकानों में सिसकती जिन्दगी दलित जीवन के यथार्थ हैं जो उनके जीवन का आविभाज्य घटक बन गए है। उन वस्तुओं को दृश्य बिम्ब के स्थान पर रखकर दलित कविता इन्हीं वस्तुओं में अपने जीवन के प्रतिबिम्ब ढूढ़ती है।''[11]

हिन्दी दलित कविताओं में जो बिम्ब देखने को मिलता है ऐसे बिम्ब हिन्दी कविता में और कहीं नहीं देखने को मिलते हैं। मलखान सिंह द्वारा अपनी 'सुनोब्राम्हण' शीर्षक कविता में दलित कामगारों के कुछ ऐसा ही बिम्ब उतारा है-

''हमारे पसीने से
बू आती है तुम्हें
फिर ऐसा करो
एक दिन
अपनी जननी को
हमारी जननी के साथ
मैल कमाने भेजो
तुम! मेरे साथ आओ
चमड़ा पकाएंगे।
दोनों मिल बैठकर।
शाम को थक कर
पसर जाओ धरती पर
सूँघे खुद को
बेटे को
बेटी को
तभी जान पाओगे तुम
जीवन की गंध को
बलवती होती है जो
देह की गंध से।[12]

दलित कविता में विद्रोही चेतना के बिम्ब भी देखने को मिलते हैं। जो गोल-मोल लच्छेदार शब्दों का प्रयोग न करके साफ-साफ और दो टूक शब्दों में घोषणा करते हैं। 'एक अदद आदमी' शीर्षक कविता के माध्यम से डा0 कालीचरण स्नेही लिखते हैं-

''इस तरक्की पसन्द दौर में
मैं सुधार नहीं चाहता
परिवर्तन चाहता हूँ[13]
सम्पूर्ण परिवर्तन
मैं लड़ना चाहता हूँ
जी हाँ अपनी कौम के
स्वाभिमान और अस्मिता की खातिर।''

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दलित कविता में केवल उत्पीड़ित, अपमानित, असहाय भूमिहीन दलित जीवन के बिम्बों के साथ-साथ विद्रोही, जुझारू और संघर्षशील दलितों के भी सशक्त बिम्ब देखने को मिलते हैं।

हिन्दी दलित कविता में प्रतीकों का भी विशेष महत्व है। जो कविता की अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाते हैं। ओमप्रकाश बाल्मीकि का मत है कि, ''साहित्य में प्रतीक का महत्व सर्ववादित है। प्रतीक द्वारा भावना, विचारबोध आदि की अभिव्यक्ति जहाँ रचना को प्रभावशाली बनाती है, वहीं अर्थपूर्ण भी।

प्रतीक द्वारा किसी भी बात को संक्षेप में कहा जा सकता है। दलित साहित्य में समाज की पीड़ा, बेबसी उत्पीड़न और शोषण से उपजे आक्रोश को, सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग हुआ है।''[14]

अर्थात् दलित कविता में जो प्रतीकों की योजना की गई है वह अभिजात्य साहित्य में चित्रित प्रतीकों से भिन्न अपने समाज की बेबसी व्यथा और शोषण दमन के विभिन्न पक्षों को बयां करती है। मलखान सिंह अपने 'सफेद हाथी' शीर्षक कविता के माध्यम से अपनी बस्ती का एक चित्रण करते हैं जहां सुअर और मनुष्य जीवन में कोई अन्तर नहीं है-

''गाँव के दक्खिन में
पोखर की पार से सटा
यह डोम पाड़ा है
जो दूर से देखने में ठेठ मेढ़क लगता है
और अन्दर घुसते ही
सुअर की खुडारों में बदल जाता है।''[15]

ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी पेड शीर्षक कविता में चित्रित ठूँठ को अधूरी सामाजिक व्यवस्था का प्रतीक बताते हुए लिखते हैं-

''पेड,
तुम्हारा हरा पन उसी वक्त तक है
जब तक ये पत्ते सही सलामत है
तुम्हारी टहनियों पर
पत्ते झरते ही
पेड़ नहीं ठूँठ कहलाओगे
जीते जी मर जाओगे।''[16]

हिन्दी दलित कविता में मिथकों की भी योजना विशेष उद्देश्य से की गई है। पौराणिक मिथक यहाँ नई अर्थव्यंजना से भरे हैं। जन्म-मरण के मिथक प्रलय-सृजन के मिथक देव और दानव के मिथक, शम्बूक, कर्ण, एकलव्य आदि मिथक दलित कविता में नवीन अर्थ संदर्भ पाते हैं।

दलित साहित्यकारों ने रामराज्य की संकल्पना को नकारते हुए राम द्वारा किए गये ऋषि शम्बूक की हत्या को दलित चेतना की हत्या करार दिया है। दलित कवियों द्वारा शम्बूक के मिथक को दलित संवेदना के साथ जोड़कर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। दलित कवि कंवल भारती अपनी शम्बूक नामक कविता में लिखते हैं-

''शम्बूक.....
तुम्हारी हत्या
दलित चेतना की हत्या थी
स्वतंत्रता, समानता और न्याय बोध की हत्या थी
किन्तु शम्बूक
तुम आज भी सच हो
आज भी दे रहे हो शहादत
समाजिक परिवर्तन के यज्ञ में।''[17]

इस प्रकार डा0 एन. सिंह के शब्दों में, ''हिन्दी दलित साहित्य में मिथक यद्यपि परम्परित हैं, लेकिन परिवर्तित परिवेश एवं नई परिस्थितियों में इन मिथकों के अर्थ और प्रयोग पूर्णत: बदल चुके है। अपने स्वतंत्र मिथक गढ़े जाने का दलित साहित्य में कोई प्रश्न ही नहीं उठता, चूँकि दलित साहित्यकार तो शताब्दियों के उत्पीड़न, शोषण और अपमान से इतना दग्ध है कि अब वह परम्परागत मिथकों को भी शोषणवादी व्यवस्था का ही तरह बदल देने को तैयार हो गया है।''[18]

अलंकार साहित्य शास्त्र का अभिन्न अंग है। जो काव्य में चमत्कार उत्पन्न करते हैं। दलित कविता में भी हमें अनुप्रास, उपमा, प्रश्नालंकार, मानवीकरण, वीप्सा, उदाहरण, समुच्चय, अत्यानुप्रास आदि अलंकारों की अनुपमा छटा देखने को मिलती है। कुछ उदाहरण उत्कृष्ट है-

''आज मैंने देखा एक लड़की को
कूड़े के ढेर से काँच के कुछ
टुकड़े इकट्ठा करते हुए

पैरों में हल्की सुर्ख

मेंहदी लगी थी उसके

कानों में एक बासी फूल था।''[19] *(रूपक अलंकार)*

इस प्रकार दलित कविता की भाषा एवं शिल्प विधान पर विचार करते हुए हम कह सकते हैं कि दलित कविताओं की भाषा एवं शिल्प संरचना के प्रतिमान कविता की संरचनात्मकता को गौरवपूर्ण स्थान पर स्थापित करते हैं। दलित काव्य भाषा आम बोलचाल की भाषा है जिसमें एक विशेष आग और ऊर्जा है, जो दलित समाज की गहन अन्तर्वेदना और चिन्ताओं के साथ मुक्ति की चेतना जगाने में समर्थ है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 "डा0 एन.सिंह, ''दलित साहित्य के प्रतिमान, 'वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0-263
2 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र',ओमप्रकाश बाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0-81-82
3 'बस्स! बहुत हो चुका', ओमप्रकाश बाल्मीकि, 'वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 16-17
4 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र', डा0 शरण कुमार लिम्बाले, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2010, पृ0-45
5 'दलित चेतना केन्द्रित हिन्दी-गुजराती उपन्यास', डा0 गिरीश कुमार, एन. रोहित, गुजरात दलित साहित्य अकादमी अहमदाबाद 2004, पृ0-318
6 'दलित चेतना: कविता', (सं.) रमणिका गुप्ता, पृ0-28
7 'सदियों का संताप', ओमप्रकाश बाल्मीकि, फिलहाल प्रकाशन, देहरादून, पृ0-26।
8 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' शरण कुमार लिम्बाले, 'वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0-131।
9 अब मैं गूँगा नहीं।'' सूरजपाल चौहान, 'क्यों विश्वास करूँ', 'वाणी प्रकाशन, 2004, पृ0-19।
10 'बस्तियों के बाहर', जयप्रकाश कर्दम, हिन्दी बुकसेयर, नई दिल्ली, पृ0-12
11 -'दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र', डा0 ओमप्रकाश बाल्मीकि,'राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0-85
12 'सुनो ब्राम्हण' मलखान सिंह, रश्मि प्रकाशन, लखनऊ, पृ0 100-101।
13 'प्रतिनिधि कविताएँ, डा0 कालीचरण स्नेही, 'वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0-77
14 'हिन्दी साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र', ओमप्रकाश बाल्मीकि, 'राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0-84।
15 'सुनो ब्राम्हण (कविता संग्रह), मलखान सिंह, रश्मि प्रकाशन, लखनऊ, पृ0-12
16 ओमप्रकाश बाल्मीकि, 'बस्स! बहुत हो चुका' 'वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0-11
17 'तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती' (कविता संग्रह), कंवल भारती, बोधिसत्व प्रकाशन, रामपुर, पृ0-49।
18 'दलित साहित्य के प्रतिमान', डा0 एन. सिंह, 'वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0-284।
19 'आग और आन्दोलन', मोहनदास नैमिसराय, 'श्री नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0-13

जी० आर० संतोष की कला का कलात्मक एवं तकनीकी अध्ययन

नीतू नरवाल

शोधार्थी, दृश्य कला विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

शोध सारांश

समकालीन भारतीय कला में गुलाम रसूल संतोष की अमूर्त ज्यामितीय रचनाएँ भारतीय आध्यात्म व तंत्र साधना का प्रतिरूप है। प्रस्तुत शोध पत्र में शोधार्थी ने ऐतिहासिक पद्धति के प्रयोग के साथ गुलाम रसूल संतोष की रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन के साथ-साथ तकनीकी अध्ययन भी किया है। जी० आर० संतोष के चित्रों की रचना पद्धति में किस प्रकार पश्चिम के घनवाद के साथ-2 भारतीय तंत्र का भी समावेश है। इन सभी तथ्यों का उद्घाटन शोधार्थी ने वैज्ञानिक ढंग से किया है। संतोष का मकसद स्थूल जगत और सूक्ष्म जगत के बीच एकता के मुद्दों पर प्रकाश डालना है हालांकि उनके चित्रों में मानव रूपों के लिए एक स्पष्ट दृश्य संदर्भ है। वे वहाँ मनुष्यों का जानबूझकर प्रतिपादन नहीं करते हैं, बल्कि उन्हें एक आंतरिक परिवर्तन के लिए विचारोत्तेजक प्रतिक्रियाओं के रूप में देखा जाना चाहिए।

शब्द कुंजी- तंत्र, घनवाद, आध्यात्म।

परिचय

कहते है कि 'कलाकार कभी नहीं मरते' ऐसा इसीलिए कहा जाता है क्योंकि कलाकार अपनी रचनाओं के जरिए इस दुनिया में अमर हो जाते हैं। एक ऐसा शख्स जिसने अपनी जन्मभूमि श्रीनगर के 'गुलाम रसूल डार' को अपना नाम और बचपन के प्यार 'संतोष' को अपने नाम में मोती की तरह सजा लिया।[1] इस तरह इस कला के दीवाने ने खुद को 'गुलाम रसूल संतोष' बना लिया।

उनके जीवन का सफर तब से शुरू हुआ जब कश्मीर के श्री नगर में, गुलाम रसूल डार के चिंकराल मोहल्ला के हब्बा कदल के पड़ोस में 20 जून, 1929 को उनका जन्म हुआ। इनके पिता पुलिस में नौकरी करते थे, जिससे इनके घर का गुजारा चलता था। इनके पिता की मृत्यु के बाद इनके कंधों पर परिवार की जीविका कमाने का ऐसा भार पड़ा कि इन्हें अपनी स्कूल की शिक्षा छोड़घ्नी पड़ी और साईन बोर्ड, लेखन पेंटिंग, पेपरमैशी का काम, रेशम की बुनाई और दीवारों पर सफेदी करने जैसे कई मजदूरी के काम किए।[2] सन् 1952 में 'गुलाम रसूल' प्रगतिशील कलाकार संघ में शामिल हो गए, जो एक युवा कलाकारों का समूह था। घर के सभी खर्चों के साथ-साथ अपनी कला हेतू सामान के लिए भी वे कुछ पैसे निकाल लेते थे।

शुरूआत के दिनों में उन्होंने जल रंगों के प्रयोग द्वारा कई भू-दृश्य बनाए, जिनमें झेलम और डल झील के चित्र इनके इतने प्रिय विषय रहे कि इन्होंने फिर से अपने रंगों में उतारा। पहले जब वे दीना नाथ रैना जी के पास चित्रकारी सीखते थे और दूसरी बार तब जब वे प्रोफेसर एन एस बेन्द्र साहब से चित्रकारी सीखकर आए थे। 1954-1956 तक बड़ौदा विश्वविद्यालय में उन्होंने एएन० एस० बेंद्रे के मार्गदर्शन में रंग और उसकी परतों की समझ ली। संतोष ने दिल्ली के गढ़ी स्टूड़ियों में भी कार्य किया था।[3]

जब वे प्रगतिशील कलाकार संघ में शामिल हुए, तब इस संघ के विचारों पर सेजॉन और घनवाद का अत्यंत प्रभाव था। इसलिए शुरूआती भू-दृश्य चित्रों में उन्होंने घनवाद को अपनाया। विशेष तौर पर उनकी कला पर पिकासों का सबसे अधिक प्रभाव रहा। सन् 1954 में गुलाम रसूल जी ने महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी, बड़ौदा में दो साल नॉन-कॉलेजिएट स्टूडेंट रहकर प्रोफेसर एन० एस० बेंद्रे जी के साथ काम किया। जो उस वक्त कला विभाग के प्रधान थे। एन० एस० बेंद्रे साहब व्यक्ति चित्र और शरीर चित्रण में माहिर थे। बेंद्रे जी के साथ रहकर गुलाम रसूल जी ने बहुत ज्यादा मात्रा में चित्र बनाए, जिनमें व्यक्ति चित्र, भू-दश्य चित्र बहुत मात्रा में थे और इन चित्रों में अधिकतर घनवाद की छाप दिखाई देती है।

पेंटिंग शुरू करने से पहले संतोष ड्राइंग करने में काफी समय लगाते हैं वे अपनी ज्यामितीय संरचनाओं और रंगों की परतों पर काम करते हैं। अपने चित्रों की व्याख्या करते हुए संतोष कहते है कि ज्यामितीय आकृति यंत्र है। एक यंत्र, मंत्र या ध्वनि की संबंधित छवि है चूंकि मंत्र शुद्ध ध्वनि है, ज्यामिति शुद्ध रूप है। संतोष के चित्रों में सीधी छवि त्रिभुज की अवधारणा पर आधारित है। जो लगातार खंडित होती जाती है। वह त्रिभुजों के अनेक रूपों का प्रयोग करता है। प्रत्येक त्रिकोणीय इकाई की अपील और अर्थ अलग-अलग रंग के ग्लेज और उनके सरल और ज्यामितीय संयोजनों द्वारा लाए गए सूक्ष्म बदलावों पर निर्भर करता है।[4]

1964 ई० में उन्होंने अपनी कला में इम्पैस्टो तकनीक के साथ सफलतापूर्वक प्रयोग किए और इस शैली में कुछ यादगार चित्रों का चित्रण किया। बाद में उनके चित्रों में आकृतियाँ अमूर्त होने लगी जो उनके जीवन और विचारों में आए एक बड़े बदलाव का संकेत था। इस बदलाव को जानना बहुत जरूरी है क्योंकि इसके बिना उनके जीवन की कहानी अधूरी है।

सन् 1964 ई० में ही जब उन्होंने दक्षिणी कश्मीर में 'अमरनाथ' की यात्रा की तो इस यात्रा का उन पर इतना गहर असर हुआ कि वे मन से शिव-शक्ति के भक्त बन गए और इनके विचार शिवमय हो गए। इसके फलस्वरूप ये शैव दर्शन की ओर मुड़ गए। एकदम से इनकी तंत्र में रूचि बहुत बढ़ गई। अब चूंकि, शिव को तंत्र विज्ञान का जन्मदाता माना जाता है और शक्ति को उनकी अद्धागिनी जिन्हें अर्द्धनारीश्वर की झलक में दिखाया भी गया है, को देखकर इन्होंने शिव-शिक्त और तंत्र विज्ञान के चित्रण को ही अपना लक्ष्य बना लिया। इसीलिए फिर इनकी कलाकृतियाँ अमूर्त होकर तंत्र के ज्यामितीय चित्रों में बदलने लगी। उन्होंने इस शैली को नव-तंत्र शैली का नाम दिया। वे इस नई शैली के संस्थापकों में गिने जाते हैं। क्योंकि वे इस शैली के अग्र-दूत थे।

नवतंत्र शब्द को डॉ० एल० पी० सिहारे ने उन कलाकारों के काम को परिभाषित करते हुए गढ़ा था जिन्होंने तंत्र की पवित्र ज्यामिति को अपनी दृश्य भाषा के रूप में स्वीकार किया था। नव तंत्रवाद 1960 के दशक में के० सी० पणिकर और उनकी श्रृंखला 'शब्द और प्रतीक' से प्रकट हुआ, जिसमें 'पन्निकर ने ज्योतिषीय तत्वों, तमिल लिपि से प्रेरित सुलेखन रूपों और मंत्रों या ब्रह्माण्डीय कंपन और ध्वनियों से संबंधित कल्पना के माध्यम से एकता की अवधारणा को उजागर करने के लिए दि-आयामी तांत्रिक आरेखों को शामिल किया।[5]

नव-तांत्रिक कला को न केवल भारतीय कला में अपने भिन्न रूप व अलंकरण की प्रधानता के लिए बल्कि एक प्रमुख अमेरिकी अमूर्तता के लिए भी एक अद्वितीय रूप से अपनाया गया।

ऐतिहासिक रूप से अमूर्त कला के कुछ महान स्वामी जैसे कैंडिंस्की, मोंडियन, मालेक्चि और पॉलक्ले आदि, जो उपनिषद और वेदांतिक शिक्षाओं की ओर बहुत अधिक आकर्षित थे, आंशिक रूप से थियोसिफिस्ट और एंथोसोफिस्ट आदि के लेखन के माध्यम से और आंशिक रूप से प्रत्यक्ष स्त्रोतों के माध्यम से। पहले से ही भारतीय कलाकारों के लिए भारतीय गूढ़ सिद्धांतों के नए क्षेत्रों का पता लगाने का मार्ग प्रशस्त किया ताकि उन्हें अपने सौन्दर्य सिद्धांतों और रचनात्मक दृश्टि को तैयार करने और समृद्ध करने के लिए रूपांतरित किया जा सके।[6]

तकनीकी व कलात्मक अध्ययन

शारिका, 1989

24 × 36 इंच

कैनवास पर एक्रेलिक

हनुत सिंह के संग्रह से

संतोष ने तंत्र को अपनी साधना बना लिया था। जिसके चलते उन्होंने बाद में अपनी पूरी जिंदगी पुरूष व प्रकृति तथा तंत्र को परिभाषित करने में ही लगा दी थी। इनका रंगाकन व रेखांकन बहुत ही सधा हुआ था। वे प्रतीकात्मक ढ़ग से जिंदगी के सार को चित्रित करते थे। इनके शुरूआती कला चरण पर सेजॉन के परिदृश्यों तथा घनवाद का प्रभाव था। घनवाद के साथ-साथ उनका मोह अपने आस-पास के प्राकृतिक रूपों में भी रहा। उनके बेटे शब्बीर जो स्वंय एक अच्छे कलाकार हैं। बताते है कि भले ही मेरे पिता क्यूबिज्म से प्रभावित थे लेकिन उनका अपने मूल स्थान के प्रति भावनात्मक लगाव महसूस किया जा सकता है। वह सत्य भी है। कलाकृति को बनाते समय विषय व शैली दो महत्त्वपूर्ण पहलू है जो कलाकार को अन्यों से भिन्न बनाते हैं। ऐसे में शैलीगत प्रभाव यहाँ घनवाद का रहा जिसमें आकृतियों को अलग ज्यामितीय रेखाओं द्वारा काट दिया जाता था। एनालिटिकल घनवाद (विषलेषणात्मक घनवाद) में लगभग मोनोक्रोमेटिक रंग योजना होती थी। साथ ही ऐसा प्रतीत होता था कि तल गइराई में पीछे हटनें के बजाय कैनवास की सतह से आगे की ओर बढ़ रहे हो। इन पेंटिग में आमतौर पर केन्द्र में रूप कॉम्पैक्ट तथा घने होते हैं जैसे-जैसे वे कैनवास के किनारों की और बढ़ते जाते है वे बड़े होते प्रतीत होते हैं।[7]

संतोष ने भी अपनी आकृतियों को ज्यामितीय रेखाओं से काटकर या आकृतियों को जोड़कर बनाया था। किन्तु उनके चित्रों में अंडाकार, वर्ग, वृत्त, त्रिभुज आदि सभी आकृतियों को सुव्यवस्थित ढ़ग से स्थापित किया गया है। जबकि घनवाद में वे अस्त-व्यस्त प्रतीत होती थी। दूसरा परिवर्तन जो संतोष ने किया वह आकृति को केन्द्रित व संगठित करना हैं। घनवाद में आकृतियां कभी अग्रभूमि तो कभी पृष्ठभूमि में फैलती हुई नजर आती है। जबकी इनकी रेखाएं उन्हें एक स्पष्ट बाह्य आवरण प्रदान करती है। शैलीगत प्रभाव में यहां संरचनावाद व सर्वोच्चवाद की समानता भी है। नौम गाबों द्वारा 1916 में बनाया गया। 'कंस्ट्रक्टेड हैड न० 2' की समानता संतोष के चित्रों में प्रकट हो रही है। जिसमें मानव धड़ को कई ब्लॉक में बांटा गया है।[8] इन दोनों कलावादों ने बढ़-चढ़कर ज्यामितीय आकारों जैसे- वृत, वर्ग, त्रिभुज आदि से चित्रण किया। जिनसे प्रभावित होकर भारत में भी इनका तंत्रवाद के साथ संयोग करके चित्रण हुआ। फर्क इतना है कि पश्चात्य् ज्यामितीय आकृतियों का मकसद एकमात्र रेखाओं से विभिन्न रूपाकारों को प्रकट करना था किंतु संतोष ने इन ज्यामितीय रूपों के द्वारा सृष्टि की रचना में व्याप्त पुरुष व प्रकृति के संबंध को उजागर किया है।

हालांकि संतोष की कृतियाँ अपने रूप से ज्यादा अर्थ में गंभीर है क्योंकि उनके पीछे का दर्शन बहुत महान है। इसलिए उनका विषयगत महत्त्व बहुत ज्यादा है।

प्रस्तुत चित्र में देवी शारिका को चित्रित किया गया है जो दुर्गा देवी का ही रूप है। मुख्यत: यह देवी एक पक्षी (मैना) के रूप में जानी जाती है। किंतु देवी यहां प्रकृति (माया) के रूप में प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत की गई है। क्योंकि किसी भी प्रकार का लाक्षणिक समानता यहां देखने को नहीं मिल रही है। संतोष अक्सर कैनवास के केंद्र में स्त्री रूप को बनाते हैं। जिससे दो गोल स्तन से उसे पहचाना जा सकता है। नीले, हरे, काले, व नेपल येलो रंग की आभाओं को ही पूरे पट पर देखा जा सकता है। शारिका देवी का यंत्र भी है। जिसे 'शारिका यंत्र' के नाम से जाना जाता है। संतोष ने हरी पर्वत पर पत्थर में उत्कीर्ण 'शारिका यंत्र' देखा तो वे उससे इतने प्रभावित हुए कि उसे बार-बार देखते रहे। हरी पर्वत शारिका पीठ कश्मीर में एक मशहूर पवित्र स्थान में से एक है। किद्वंती कहती है कि इसी स्थान पर देवी शारिका ने राक्षस 'जालोभ्दव' का वध करने के लिए मैना का रूप धारण कर उस पर ऊपर से एक कंकड़ गिरा दिया जो गिरते-गिरते आकार में बड़ा होकर एक पहाड़ी जितना विशाल हो गया तब वह राक्षस उसके नीचे कुचल कर मर गया। तभी से वह देवी यहां 'शारिका' या 'त्रिपुरसुंदरी' के नाम से निवास करती है।

शारिका यहां 'श्री यंत्र' के रूप में है। जो हिंदुओं का बहुत शक्तिशाली एवं प्रसिद्ध यंत्र है। यह कमल की पंखुड़ियों से बना होता है। जिसमें नौ स्वतंत्र त्रिकोण होते हैं जो रहस्यमय रूप से एक-दूसरे के भीतर खीचें जाते हैं। ऊपर की ओर इशारा करने वाले चार त्रिकोण 'शिव' का प्रतिनिधित्व करते हैं और अन्य पांच नीचे की ओर इशारा करते हुए शक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। यहां शिव त्रिकोण को 'श्रीकंठ' व 'शिव तत्व' तथा 'शक्ति त्रिकोण' को 'शिव युवती' या 'शक्ति तत्व' के रूप में जाना जाता है। वास्तव में 'श्री यंत्र' नौ स्वतंत्र त्रिकोणों की सबसे शानदार रचना है। इसमें त्रिकोण अपने ऊपर और नीचे की स्थिति में एक-दूसरे को काटते हुए तैंतालिस बड़े व छोटे त्रिभुजों का निर्माण करते हैं। ये सभी त्रिभुज पहले भीतरी चक्र में मौजूद है जिसके ऊपर 'अष्टदल' नामक 8 पंखुड़ियों वाला एक कमल खींचा गया है जो सृष्टि के रहस्यमय कमल को पेश करता है। इसके पीछे 16 पंखुड़ी वाले कमल के साथ एक और चक्र बनाया जाता है। जिससे 'शडषदल' कहा जाता है। इन सभी को तीन संकेद्रित वृतों या 'त्रीमेखला' नामक तीन गुना करधनी में संजोया गया है। यह संपूर्ण आरेख एक वर्ग में समेटा हुआ है। तीन समानांतर रेखाओं के साथ इनके चार मुख्य बिंदुओं पर चार द्वारा होने से यह देवी की हवेली बन जाती है। पूरी रचना के केंद्र में बिंदु होता है।

इस प्रकार इस पूरे यंत्र को संतोष ने अपने जहन में बसा लिया, फिर अपने आंतरिक अनुभवों व भाषा में उसे मानव कृति के साथ संगठित करके एक नए तंत्र की शब्दावली पेश की। यहां स्त्री को देवी रूप में दिखाया है जिसके सिर के स्थान पर यंत्र रुपी सरंचना है। इसमें चार त्रिभुजों के एक-दूसरे के साथ गुंफित करते हुए बारह कोणों की संरचना बनाई है। जिसके बाहर पंखुडियों को स्थापित करके एक गोलाकृति में बांध दिया है। संतोष ने यहां तीन समानान्तर बाह्य रेखाओं को हटा दिया क्योंकि उनका मकसद पारम्परिक शारिका यंत्र की अनुकृति पेश करना नहीं था बल्कि उसे अपनी नवीन परिभाषा में प्रस्तुत करना था। दो गोल काले वृतों से स्तन दर्शातें हुए नाभी के स्थान को दो त्रिभुजों, एक उल्टा व एक सीधा जो नर-नारी, शिव-शक्ति का मिलन का प्रतीक है के रूप में दर्शाया है। यह समय की अनंत ध्वनि शिव के 'डमरू' को भी प्रतीकात्मक परिभाषा देता है। पृष्ठभूमि में बैंगनी, कोबाल्ट ब्लू व अल्ट्रामरीन की मिली-जुली तान का इस्तेमाल चित्र को रहस्यात्मक रूप दे रहा है। संतोष ने कहा भी था कि मेरा कैनवास शून्य के एक प्रक्षेपण का प्रतिनिधित्व करता है। शून्य जो समय और आयाम में अगम्य है जिसकी न शुरूआत है, न ही अंत है। आस-पास गहरे रंग के रूप में महासागर को संदर्भित किया गया है जो कैनवास की सीमाओं को अथाह व अगम्य बनाता है। अब कैनवास स्वंय प्रतीक बन गया है। स्पेस को कम से कम तीन दिशाओं या तीन रेखाओं के बिना परिभाषित नहीं किया जा सकता है। यह त्रिकोण बनाता है जो मूलत: मूल त्रिकोण है। इस प्रकार सर्वव्यापी रचनात्मक शक्ति की प्रारंभिक प्रकृति शक्ति 'ब्रह्म' हैं। ब्रह्म वह मौलिक ध्वनि है जो निरंतर चिरस्थायी व जीवंत हैं।[9] उनकी हर रचना शिव-शक्ति के मिलन को पेश करते हुए उस 'ब्रह्म' की ओर ध्यान आकर्षित करती है जो अनन्त व सर्वत्र है। चित्र की संरचना लंबवत् है किन्तु मानवाकृति के आधार के रूप में एक लाईन लगाई गई है जो क्षैतिज है। इस प्रकार रेखा से विरोधाभास प्रकट हुआ है, जो चित्र को उदासीन होने से बचाता है। पृथ्वी का प्रतीकात्मक चित्रण हरे रंग के छोटे-छोटे पत्थरों रूपी संरचना से किया है। यह सत्य है कि संतोष अकसर रंगों को इस्तेमाल करने से हिचकते नहीं थे। यह नीले के विरोधी रंग नारंगी व हरे के लाल विरोधी रंग को न दिखाकर मात्र नीले व हरे रंग से ही संपूर्ण रचना की जो बहुत कठिन रंग सामंजस्य प्रतीत होता है। ठंडे रंगों का चयन ध्यान की ओर खिंचता है। संयोजन के चारों ओर हासिया भी बनाया गया है जो उनकी लगभग सभी चित्रों में देखा जा सकता है। संतोष कहते हैं कि मेरे अधिकतर कैनवास में फ्रेमिंग व मार्जिन को देखा जा सकता है। दरअसल यह ब्रह्मांडीय स्थान के भीतर कैनवास को प्रभावित करता है। यह दृश्य परिभाषा रंगों के द्वारा पेश की जाती है।[10]

संयोजन में कलाकार ने नकारात्मक व सकारात्क स्पेस (अंतराल) का उचित प्रयोग किया है। यहाँ सम्मलित संतुलन को देखा जा सकता है। क्योंकि संतोष की कलाकृतियों को लम्बवत् दिशा में दो भागों में बांटा जा सकता है। क्योंकि कृतियाँ एक-दुसरे की दर्पण प्रतीत होती है। दरअसल संतोष के चित्रों का चित्रात्मक स्थान लम्बवत् रूप से द्विभाजित है और काल्पनिक विभाजन के दोनों ओर के चित्र एक-दूसरे के स्टीक सममित पार्श्व रूप से उल्टे प्रतिबिम्ब हैं। दुसरे शब्दों में कहें तो हर रचना एक जुंडवा दर्पण छवियों का एक संयोजन है। साथ ही एक से अधिक बार्डर की अपरिवर्तनीय उपस्थिति वास्तव में कैनवास से उसका प्रतिनिधित्व किए बिना एक खिडकी का आलौकिक अनुभव देता है।[11]

संदर्भ

1. कौल, शांतिवीर, जी० आर० संतोष की कला, लस्टर प्रेस रोली बुक्स, पृ० 5
2. कौल, शांतिवीर, जीव्म् आरव्म् संतोष की कला, लस्टर प्रेस रोली बुक्स, पृ० 4
3. चावला, रूपिका सरफेस एण्ड डेप्थ: इण्डियन आर्टिस्ट्स एंट वर्क वाइकिंग पेंगुइंगे बुक्स इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, 210, चिरंजन टॉवर 43 नेहरू पैलेस, नई दिल्ली, 110019, इण्डिया, पृ० 231
4. चावला, रूपिका सरफेस एण्ड डेप्थ: इण्डियन आर्टिस्ट्स एंट वर्क वाइकिंग पेंगुइंगे बुक्स इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, 210, चिरंजन टॉवर 43 नेहरू पैलेस, नई दिल्ली, 110019, इण्डिया, पृ० 228-229
5. आप्टे, सविता, नियो तांत्रिक आर्ट एज लिबरेशन, 11 फरवरी 2020, अभिगम तिथि- 19 दिसम्बर 2022, , https://www.Sotheby"s. com/en/articles/neo-tantric-art, Indian of South Asian modern & contemporary art
6. शर्मा ओ० पी० ओम प्रकाश, फॉर्टि ईयरस 1958-1998, ओव्म्पीव्म् शर्मा, 49 भारती आर्टिस्ट कॉलोनी, विकास मार्ग, दिल्ली 110092, पृ० 124
7. https://www.britannica.com/art/Cubism
8. https://www.theartstory.org/movement/constructivism/
9. नायर, उमा (क्यूरेटर), गुलाम रसूल संतोष: द काश्मीर शैव (1929-1997), इण्डियन काउंसिल फॉर कल्चर रिलेशन, पृ० 7
10. वही, पृ० 41
11. वही, पृ० 41

राम मनोहर लोहियाः समाजवाद के मूलाधार

नीरू यादव

शोधार्थी राजनीति विज्ञान, 1003ए सी, महिमा निर्माण अपार्टमेण्ट, महापुरा, अजमेर रोड, जयपुर

प्रस्तावना-

डॉ0 लोहिया अन्याय को सहना अनैतिक मानते थे। इसी प्रकार अन्याय का विरोध न करना वे अनैतिक मानते थे। डॉ लोहिया ने भारत के नेताओं और राजनैतिक दलों को सही सिखलाया कि सशक्त विपक्ष की भुमिका कैसे निभाई जाती है। लोकसभा में डॉ लोहिया जी की पार्टी के दर्जन भर सदस्य भी नही होते थे। लेकिन वहाँ बादशाहत उनकी ही चलती थी। वे सादगी और सच्चाई की प्रतिमुर्ति थे। वे जिस विशय पर भी बोलते थें उसमें मौलिकता और निर्भीकता होती थी। वे सीता-सावित्री पर बोले अंग्रेजी हटाओं या जात तोडों पर बोले-उनके तर्क प्राणलेवा होते थे। जो एक बार डॉ लोहिया को सुन ले या उनको पढ ले तो वह उनका मुरीद हो जाता था। बात उस समय की है। जब सन 1993 ई में डॉ लोहिया डाक्टरेट की डिग्री के साथ भारत लौटे तो लोग समझते थे कि किसी कालेज या युनिवर्सिटी में प्रोफेसरी करेंगे। लेकिन डॉ लोहिया सीधे गॉधी जी के पास गये क्योंकि उनका यह फैसला जर्मनी में ही प्रो देसनागर के पूछने पर कि अब तुम भारत जाकर क्या करोगे। उन्होनें कहा था प्रोफेसरी तो नही करूगा। स्पष्ट हो गया था। डॉ लोहिया जब भारत पहुचे तो पता चला कि उनके पिता (श्री हीरालाल लोहिया) चार सौ सत्याग्रहियों के साथ प्रेसीडेन्सी जेल में कैद है। जवाहरलाल नेहरू कैद किये जा चुके है। गॉधीजी गोलमेज से लौटते ही कैद कर लिये जा चुके है। खान अब्दुल गफ्फार खां को अंग्रेजों ने कैद करके बर्मा जेल भेज दिया है। देश में हर जगह धरपकड हो रही है। डॉ लोहिया को कुछ समय देश की स्थिति समझने में लगी। इसी बीच उनके चाचा रामकुमार लोहिया ने उन्हें व्यापार करने की सलाह दी तो लोहिया ने कहा व्यापार करने की सलाह दी तो लोहिया ने कहा व्यापार में पैसा लगता है। मेरे पास पैसा कहाँ है? चाचा ने कहा कि पैसे की कमी नही होगी। व्यापार तो बताओं लोहिया ने कहा भारत से अंग्रेजों को बाहर निकालने का व्यापार है। मै यही करना चाहता हु। डॉ लोहिया के इस विचार से उनके चाचा अत्यधिक नाराज हुए लेकिन डॉ लोहिया पर उस नाराजगी का कोई प्रभाव नही पडा और अत्यन्त संकटपूर्ण आर्थिक विशमता में भी वे झुके नही। लोहिया ने तत्काल ही फैसला कर लिया कि हमें देश कार्य में जी जान से जुट जाना है। यही हमारे जीवन का लक्ष्य होगा।

लोहिया ने ऐसी पॉच प्रकार की असमानताओं को चिन्हित किया जिनसे एक मात्र साथ लडने की आवश्यकता-

01 स्त्री और पुरूष के बीच असमानता
02 तव्चा के रंग के आधार पर असमानता
03 जाति आधारित असमानता
04 कुछ देशों द्वारा दुसरे देशों पर औपनिवेशिक शासन
05 आर्थिक असमानता इन पॉच असमानताओं के खिलाफ संघर्श ने पांच क्रांतियों का गठन किया। इस सुची मे उनके द्वारा दो और क्रांतियों को जोडा गया।
06 नागरिक स्वतंत्रता के लिये क्रांति (निजी जीवन पर अन्यापूर्ण अतिक्रमण के खिलाफ)
07 सत्याग्रह के पक्ष में हथियारों का त्याग कर अहिंसा के मार्ग का अनुसरण करने के लिये क्रांति।

ये सात क्रांतियों या सप्त क्रांति लोहिया के लिये समाजवाद का आदर्श थी। व्यवहारिक तौर पर देखा जाए तो इसमें गांधी तथा मार्क्स दोनों है। लोहिया जी के विचारों को उनके इन्ही सप्त क्रांति सिद्वांत के माध्यम से विस्तारपूर्वक देखा जाए तो हम स्पष्ट निष्कर्श पर पहुच जाते है। कि उनका समाजवाद का सिद्वांत सदैव प्रासंगिक है।

01 स्त्री और पुरूश के बीच असमानता- डॉ लोहिया नर-नारी समानता के प्रबल पैरोकर थे। वे अक्सर स्त्रियों को पुरूष की पराधीनता के खिलाफ आवाज बुलंद करने की हिम्मत देते थे। उनका स्पष्ट कहना था कि स्त्रियों को बराबरी का दर्जा देकर ही एक स्वस्थ और सुव्यवस्थित समाज का निर्माण किया जा सकता है। पुरूष द्वारा लादी गई नारी की पराधीनता और स्त्रियों द्वारा उसकी सहज स्वीकृति के सख्त विरूद्व थे। उन्हें कतई पसंद नही था कि औरतें घुंघट और पर्दे में रहें और पुरूष समाज उनका शोशण और अनादर करता रहें। वे स्त्रियों को पुरूषों की तरह मुखर व निडर देखना चाहते थे। यही वजह है। कि उन्हें ऐसी स्त्रिया पसंद थी जिनमें अपने स्वाभिमान की रक्षा और दमदारी से अपनी बात कहना की ताकत थी। उनका नारी आदर्श द्रौपदी थी जिसने अपने चीरहरण के समय पांडवों की चुप्पी पर सवाल दागा और कौरवों के अत्याचार के विरूद्व तनकर खडी हुई। आज भी हमारे समाज में किसी न किसी रूप से स्त्रियों का शोशण हो रहा है। उन्हें समानता का अधिकार नही दिया जा रहा है। ऐसी परिस्थिति में लोहिया के समाजवादी सिद्वांत स्त्री-पुरूष की समानता के लिए क्रांति के सिद्वांत को अपनाने की आवश्यकता है। जिससें हमारे समाज की बहुत सारी समस्याओं का समाधान हो सकता है। क्योंकि जब तक आधी आबादी को पर्याप्त अधिकार नही मिलेगें तब तक देश के विकास की बात करना या देश में समानता की बात करना बेइमानी होगी।

02 तव्चा के रंग के आधार पर असमानता- डॉ लोहिया अफ्रीका अमेरिका और युरोप में हो रहे अश्वेतों पर अत्याचार को भली-भॉती उदघाटित करते है। लोहिया जी ने 1964 में मिसीसिपी अमेरिका के एक रेस्तरा में नस्लभेद के खिलाफ सत्याग्रह करके गिरफ्तारी दी थी। लोहिया ने लिखा है। आज संसार में अफ्रीका जैसे देशों में जिस प्रकार के अत्याचार तथा अन्याय वहा के अश्वेतों के साथ किया जा रहा है। वह सम्पूर्ण सभ्यता पर कलंक है। दक्षिण अमेरिका तथा अमेरिका में ऐसी आबादियां है जहाँ गौरे लोगों के बीच काले लोगों का प्रवेश निशेध माना जाता है। अश्वेतों को पूर्णरूपेण मानवाधिकारों से वंचित रखा गया है। लोहिया जी के इस कथन से स्पष्ट है कि वे रंगभेद को न सिर्फ भारतीय बल्कि वैश्विक संदर्भो में देखते है। रंगभेद जिस रूप में लोहिया जी के समय था वैसा ही आज भी विश्व में अपने आपको ढकता-छिपाता निर्लज्जातापूर्वक विघमान है। भारत में इसका प्रभाव तो नही है। लेकिन वैश्विक स्तर पर समस्या जरूर है। अत: इसके समापन के लिए भी हमें लोहिया जी के सप्त क्रांति के मार्ग को अपनाना होगा।

03 जाति आधारित असमानता- भारत में जातिप्रथा तथा वर्ण-व्यवस्था के नाम पर जो सामाजिक एवं आर्थिक असमानता है। उसे समाप्त करने के लिए क्रांति की जरूरत है। आज भी हमारे में किसी न किसी रूप में जाति प्रथा मौजुद है। और इस जाति प्रथा का कुप्रभाव समाज के विकास को प्रभावित करता है। डॉ लोहिया ने हमेशा ही जाति से ऊपर उठकर एक ऐसे समाज की परिकल्पना की है। जिस समाज में सभी एक समान हों यदि वर्तमान भारतीय समाज से जाति प्रथा का दंश खत्म हो जाए तो भारतीय समाज निश्चित तौर पर ऊपर उठेगा अत: हमें इसके लिए भी लोहिया जी के मार्ग पर चलते हुए क्रांति करने की आवश्यकता है।

डॉ लोहिया जाति प्रभा के विरोधी थें उनके अनुसार जाति प्रथा समाजवाद के मार्ग का मुख्य अवरोधक है। जाति समाज में असमानता उत्पन्न करती है। डॉ राममनोहर लोहिया ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है। जीवन के बडे-बडे तथ्य जन्म मृत्यु शादी भोज ब्याह और सभी रस्में जाति के चौखट में होती है। ऐसें मौकों पर दुसरी जाति के लोग किनारे पर रहते है। जैसे वे तमाशबीन है। जाति प्रथा के कारण निम्न वर्ग शोषण का शिकार बनते है। जाति उन्हें उन्नति के अवसरों से अलग रहती है।

04 कुछ देशों द्वारा दुसरे पर औपनिवेशक शासन- परदेसी गुलामी के खिलाफ और स्वतंत्रता तथा विष्व लोक-राज के लिए क्रांति पर डॉ लोहिया हमेशा जोर देते थे। उनका विचार था कि जब तक वैश्विक स्तर पर किसी भी प्रकार के उपनिवेशवाद का प्रभाव रहेगा तब तक संपूर्ण विष्व के कल्याण की अवधारणा सही नही होगी। हमें हर स्तर पर समानता लाना होगा जो देश गरीब एवं किसी न किसी औपनिवेशिक शक्ति के गुलाम है उन्हें हर हाल में स्वतंत्रता दिलानी होगी ताकि इससे हर स्तर पर विश्व का कल्याण हो। लोहिया जी का यह विचार आज भी प्रासंगिक है। क्योंकि आज वैश्विक स्तर पर उस तरह की गुलामी नही है, जैसा कि लोहिया जी के समय था। वह साम्राज्यवाद या उपनिवेशवाद का गुलामी का दौर था। वर्तमान में पूंजीवादी नव साम्राज्यवाद की गुलामी के चंगुल में अनेक देश फसते चले जा रहे है। जिसके लिए वह किसी ना किसी रूप से मजबूर है। ऐसी परिस्थिति में हमें वैष्विक क्रांति के माध्यम से इन पूंजीवादी देशों को रोककर सभी देशों के बीच समानता लाने का प्रयास करना चाहिए।

05 आर्थिक असमानता- भुमंडलीकरण में निजी संपत्तियों के केंद्रीकरण को कम करने के लिए डॉ राम मनोहर लोहिया की संपत्ति का विकेंद्रीकरण सिद्वांत को अपनाया जा सकता है। डॉ लोहिया पूंजीवाद और साम्यवाद के बीच समानांतर एक समाजवादी विकल्प की स्थापना करना चाहते थे। वे संपत्ति को अपनाया जा सकता है। डॉ लोहिया पूंजीवाद और साम्यवाद के बीच समानांतर एक समाजवादी विकल्प की स्थापना करना चाहते थे। वे संपत्ति पर समाज के स्वामित्व के पोशक थे। लेकिन संपत्ति का विकेंन्द्रीकरण चाहते थे। डॉ लोहिया एडम स्मिथ द्वारा किये गये अंर्तराष्ट्रीय श्रम सिद्वांत को अंग्रेजों को फायदा देने वाला सिद्वांत बताते हुए अपने श्रम विभाजन का सिद्वांत दिया था। डॉ राममनोहर लोहिया का विचार था कि जब तक समाज में आर्थिक समानता नही आएगी तब तक विकास नही हो सकता है। अत: हमे मार्क्सवाद के रास्ते पर चलकर समाज में आर्थिक समानता लाने की आवष्यकता है। लोहिया जी के दौर में जिस प्रकार का भारत था उसमें आज थोडा बहुत बदलाव हुआ है। लेकिन आज भी हमारे समाज में अमीर गरीब के बीच की खाई बहुत बडी है। अत: हमे इसके लिऐ भी सप्त क्रांति के मार्ग पर चलकर समानता लाने का प्रयास करना चाहिए।

06 नागरिक स्वतंत्रता के लिए क्रांति- नागरिक स्वतंत्रता वह है जो व्यक्ति को समाज और राज्य के सदस्य के रूप में प्राप्त होती। नागरिक स्वतंत्रता की गारंटी राज्य देता है। लोहिया जी के दौर में ही नही बल्कि वर्तमान समय में भी हम देखें तो हम पाते है कि किसी न किसी रूप से नागरिक स्वतंत्रता उसे निर्बाध रूप से नही मिलती है। लोहिया जी ने नागरिक स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिए सत्याग्रह के मार्ग पर चलने की सलाह दी है। उनका कथन है कि सरकार बदलने के लिए जिंदा कौमें 5 वर्शो का इतंजार नही करती अर्थात सरकार के द्वारा अथवा किसी व्यक्ति के द्वारा यदि उसके नागरिकता संबंधी अधिकार में किसी प्रकार की बाधा पहुचती है तो ऐसी परिस्थिति में लोहिया जी ने क्रांति करने की सलाह दी है।

07 सत्याग्रह के पक्ष में हथियारों का त्याग कर अहिंसा के मार्ग का अनुसरण करने के लिये क्रांति- लोहिया जी का यह विचार पूर्ण रूप से गांधीवाद से प्रभावित है। उन्होंने मार्क्सवाद के बहुत सारे सिद्वांतों को माना लेकिन उनके समाजवाद में गांधीवाद का अहिंसा का तत्व समाहित है। लोहिया जी भी इस बात को स्वीकार करते है कि दुनिया में हिंसा के बल पर कभी भी कोई लक्ष्य नही प्राप्त किया जा सकता है। अत: अहिंसा ही सर्वोत्तम मार्ग है। जिसके बल पर लक्ष्य को बडी आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। वर्तमान विश्व में देखा जाए तो हिंसा एक बहुत बडी समस्या बनकर उभरी है। संपूर्ण विश्व में आज किसी न किसी रूप से लोग हिंसा से ग्रस्त है। भारत की ही बात की जाए तो भारत में भी हमारे समाज में हिंसा धीरे-धीरे बढती चली जा रही है। ऐसी परिस्थिति में हमें किसी भी आंदोलन को करते समय लोहिया के इस विचार करे अवश्य अपनाना चाहिए कि हम किसी परिस्थिति में हिंसा की जगह सत्याग्रह का मार्ग अनुसरण करें जिससे हमारे समाज की विविधता बची रहेंगी तथा हिंसा से होने वाली समस्याओं से भी छुटकारा मिलेगा। लोहिया ने अपने समाजवादी मॉडल में निम्न सिद्धान्तो के आत्मसात किया है के निम्न विचारधाराओं को अपनाकर सम्पूर्ण समाजवाद की स्थापना का अह्वान करते है।

5 चौखंबा सिंद्वात:- (समाजवादी राज्य का मॉडल) लोहिया ने अपनी पुस्तक समाजवादी नीति के विविध पक्ष के अतंर्गत चौखंबा सिद्वांत के माध्यम से समाजवादी राज्य का मॉडल प्रस्तुत किया है। लोहिया ने गॉव मंडल प्रान्त और देश को राज्य रूपी भवन के चार स्तंभ माने है। लोहिया का मत है। कि

राज्य का निर्माण इन चार स्तंभों में परस्पर तालमेल को ध्यान में रखकर किया जाएगा तो राज्य समुदाय का सच्चा प्रतिनिधि होगा राज्य के चारों स्तंभ अलग-अलग हो कर भी एक कृत्यात्मक संघ के रूप में परस्पर मिलकर काम करेंगे। राज्य का चौखंभा सिद्वात केंद्रीकरण और विकेंद्रीकरण की परस्पर विरोधी अवधाराधाओं में सामंजस्य स्थापित करेगा। लोहिया औपनिवेशक काल से चले आ रहे जिला कलेक्टर के पर को समाप्त कर देना चाहते है। क्योंकि वह शक्ति का केन्द्रीकरण करता है।

6 एशियाई परिस्थितियों में समाजवाद का विष्लेशण- राम मनोहर लोहिया ने माना की एशियाई समाजों में शोशण की प्रवृतियों युरोपीय समाजों से भिन्न है। युरोप में पुजींवादी प्रवृतिया शोशण के लिए उत्तरदायी है। किंतु एशियाई समाजों में पूंजीवाद शोशण की वजह नही है। अपितु यहॉ सदियों पुराना निरंकुश राजतंत्र और सामंतवाद आदि अन्याय की प्रमुख वजह है। एशियाई समाजों में धर्म की भुमिका राजनीति में बहुत गहरी है। जिससे राजनीतिक अस्थिरता का माहौल बना रहता है।

7 इतिहास की चक्रीय क्रय में व्याख्या अपनी पुस्तक व्हील ऑफ हिस्ट्री में लोहिया ने इतिहास की व्याख्या प्रस्तुत की है। लोहिया मानते है कि इतिहास द्वन्द्वात्मक शैली से नही अपितु चक्र की गति से आगे बढता है। हेगेल जहॉ इतिहास के विकास में विचार तत्व की बात करते है। वही मार्क्स ऐतिहासिक विकास क्रम में आर्थिक शक्ति की भुमिका को समझाते है। किंतु लोहिया ने जाति और वर्ग को ऐसी शक्ति के रूप में पहचाना है जो इतिहास को गति देते है। लोहिया मानते है। कि जाति और वर्ग में टकराव और खींचतान चलती रहती है। और इसी टकराव के साथ इतिहास आगे बढता है। जहाँ जाति एक रूढिवादी शक्ति है। जो जडता या परंपरावाद को बढावा देती है। जबकि वर्ग एक गतिशील शक्ति है। जो समाज में गतिशीलता को बढावा देती है।

8 सामंतशाही का विरोध- राम मनोहर लोहिया अनुचित विशेशाधिकारों के खिलाफ जीवन भर लडते रहे। ये विशेशाधिक जमींदारों के खिलाफ हो या सामंतो के खिलाफ लोहिया ने किसी को नही बख्शा। लोहिया ने सामंती व्यवस्था को शोशण की धुरी बताया। सामंत लोग जनता की मेहनत की कमाई को कर नाम देकर लूट लेते है। और स्वंय विलासिता का जीवन जीते है। लोहिया का मत है। कि भारत में समाजवाद की स्थापना के लिए केवल सामंतशाही का अंत की काफी नही है, अपितु सामंती सोच या प्रवृति का उन्मुलन होना बहुत अहम है।

9 मानवतावाद एवं विश्वबुधत्व का समर्थन- राम मनोहर लोहिया वैष्विक मुल्यों के प्रति गहरी प्रतिबद्वता रखते थे। वे मानते थे कि शांति और न्याय का मुद्दा है। समग्र दुनिया शोशण और अन्याय से मुक्त होनी चाहिए। लोहिया ने अपने सप्त क्रान्ति सिद्वान्त में न्यायपुर्ण दुनिया का रोडमैप भी प्रस्तुत किया है। लोहिया ने रंगभेद और प्रजाति भेद के उन्मुलन की बात की है। उपनिवेशवाद के साथ रंगभेद दुनिया के एक बडे हिस्से में व्याप्त हुआ और इसे थोडे बहुत रूप में आज भी देखा जा सकता है। लोहिया मानते थे कि किसी व्यक्ति को रंग के आधार पर दोयम दजे पर धकेलना मानवता के विरूद्व क्रूर अपराध है। प्रजातिवाद का सबसे वीभत्स और खतरनाक रूप दुनिया ने हिटलर के दौरे में जर्मनी में देखा था प्रजातिवाद को हवा देकर हिटलर ने जर्मन समाज को बंटवा दिया और लडवा दिया। लाखों यहुदी प्रजातीय संघर्ष की भेंट चढ गए थे। इसीलिए लोहिया मानते थे कि दुनिया में समरसता और भाईचारे के विकास के लिए रंगभेद और प्रजातिवाद जैसी प्रवृतियों का उन्मुलन बहुत जरूरी है।

10 कांग्रेस की एकदलीय प्रभुत्व की व्यवस्था को चुनौती- गैर कांग्रेसवाद राजनीतिक शब्दावली का प्रयोग सबसे पहले राम मनोहर लोहिया ने किया। पचास और साठ के दशक में यह राजनीति शब्दावली बहुत लोकप्रिय रही। कभी कभार आज भी कांग्रेस मुक्त भारत के प्रयास में कुछ नेता लोहिया के गैर कांग्रेसवाद को जोडने की कठिन कोशिश करते है। जो सही नही है। कांग्रेसवाद से अभिप्राय था केन्द्र और राज्यों की राजनीति में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का वर्चस्व। गैर कांग्रेसवाद का विचार दरअसल वर्चस्व की राजनीति को तोडने के लिए इजाद हुआ था। लोहिया का मत था कि भारत में लोकतंत्र को बचाने के लिए एक बार कांग्रेस का सत्ता से बेदखल करना जरूरी है। लोहिया को लगता था उस समय की कांग्रेस में जडता और अहंकार आ गया था सत्ता का गुरूर छा गया था। और उसकी नीतिया और कार्यक्रम इस देश के समावेशी लक्ष्य दूर होते जा रहे थे। नेहरू के दौर में विपक्ष हासिए पर था उस समय की कांग्रेस को लगता था कि वे सत्ता से कभी बेदखल नही होंगे। उस दौर कांग्रेस महज चालीस प्रतिशत के आस-पास मत लाकर केन्द्र और राज्य में सत्तासीन थी। लोहिया समझते थे कि यदि कांग्रेस विरोध मत एकजुट हो जाए तो कांग्रेस को सत्ता से बेदखल किया जा सकता है।

11 साम्प्रदायिकता का प्रबल विरोध- राम मनोहर लोहिया पर उनके विरोधी आरोप लगाते है कि लोहिया ने भारत में दक्षिणपंथी हिन्दुत्व की राजनीति को आगे बढाने में मदद की थी। ऐसा इसलिए कहा जाता है। क्योंकि एक समय राम मनोहर लोहिया ने कांग्रेस के वर्चस्व को चुनौती देने के लिए भारतीय जनसंघ के बड़े नेता दीनदयाल उपाध्याय से हाथ मिलाया था। और दीनदयाल उपाध्याय उसी राजनीतिक विरासत से आते है, जो हिंदुत्व का पोशण करती है। दीनदयाल उपाध्याय से राम मनोहर लोहिया के हाथ मिलाने की बात एक तथ्य है। किंतु उससे भी बडा तथ्य और सत्य यह है कि राम मनोहर लोहिया जीवन भर सामाजिक सद्राव और धर्मनिरपेक्षता के विचार की पैरवी करते रहे। लोहिया गांधी के अनुयायी थे। आजादी और भारत विभाजन के समय उत्पन्न साम्प्रदायिक दंगो को शांत करते के लिए राम मनोहर लोहिया महात्मा गांधी के साथ नोआखली की यात्रा पर थे।

12 कुटीर उधोगों की जरूरत पर बल- राम मनोहर लोहिया गांधी के बाद संभवतया दुसरे ऐसे विचारक थे जिन्होनें भारत में कुटीर उधोगों के महत्व को इतनी प्रबलता से रेखाकिंत किया। व्यापक स्तर पर बडे कल-कारखानों के लोहिया बहुत हिमायती नही थे। सीमित स्तर पर बडे कल कारखाने स्थापित भी किए जाते है, तो उनके प्रबंधन में श्रमिकों की भुमिका को बहुत जरूरी मानते थे। कुटीर उधोगों के प्रति लोहिया की दिलचस्पी इस रूप में थी कि कुटीर उधोगों से बेरोजगारी का हल होता है। कोई भी सरकार सभी लोगों को सरकारी नौकरी नही दें सकती। भारत गांवों का देश है। जहॉ संयुक्त परिवार की परंपरा है। वहॉ कुटीर उधोगों का विकास बहुत सहज है। लोहिया इस बात को लेकर बिल्कुल स्पष्ट थे कि भारत में आर्थिक समाजवाद के लक्ष्य को कुटीर उधोगों के जरिए ही हासिल किया जा सकता है।

निष्कर्श- आज देश में गैर-बराबरी, भ्रष्टाचार, भुखमरी, गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, कुपोशण जातिवाद क्षेत्रवाद और आतंकवाद जैसी समस्याए गहरायी है। यह सही है कि देश तरक्की का आसमान छू रहा है, लेकिन नैतिक और राष्ट्रीय मुल्यों में व्यापक गिरावट के कारण अमीरी-गरीबी की खाई लगातार चौडी होती जा रही है। जनवादी होने का मुखैटा चढा रखी सरकारें बुनियादी कसौटी पर विफल है। और सामाजिक-आर्थिक चुनैतियों से निपटने में नाकाम

है। नागरिक समाज के प्रति रवैया संवेदनशील है। ऐसी परिस्थिति में हमें लोहिया जी के विचारधारा पर चलने की आवश्यकता है। लोहिया जी ने बेहतरीन समाज निर्माण के लिए सत्तातंत्र को चरित्रवान होना जरूरी बताया था। उनका निष्कर्ष था कि सत्यनिष्ठा और न्यायप्रियता पर आधारित शासनतंत्र ही लोक व्यवस्था के लिए श्रेयस्कर साबित हो सकता है। लोहिया भारतीय भाशाओं को समृद्व होने देखना चाहते थे। उन्हें विश्वास था कि भारतीय भाशाओं के समृद्वि होने से देश में एकता मजबुत होगी।

लोहिया के सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक चिंतन की जरूरत हर दौर की पीढी को है। जब तक समाज में वर्चस्ववाद कायम रहेगा। लोहिया को लोकमंचों से याद किया जाता रहेगा। समाज में विशेशाधिकार प्राप्त वर्ग ने लोहिया पर कई आरोप लगाये मसलन-लोहिया उच्च जातियों के विरोधी थे उन्होनें अतार्किक होकर किसी का विरोध नही किया। लोहिया जीवन के हर क्षेत्र में वर्चस्ववाद के विरोधी थे क्योंकि वर्चस्ववाद अपने साथ गैर-बराबरी और उत्पीडन लेकर आता है। लोहिया किसी जाति के विरोधी नही थे अपितु जाति विशेष के वर्चस्व के विरोधी थे। लोहिया कांग्रेस के विरोधी नही थे बल्कि अंग्रेजी के सामंती रूप के विरोधी थे। इस तरह जब समाज में वर्चस्ववाद खडा होगा तब लोहिया का चिंतन समाज के कमजोर वर्ग के लिए ढाल बनेगा।

सन्दर्भ सूची:-

1. बी एल फडिया भारतीय राजनीतिक चिंतन साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा 2008 पृ 350-351।
2. मुख्तार अनीश भारतीय समाजवाद के शिल्पी समाजवादी अध्ययन एवं शोध संस्थान लखनऊ 2001 पृ 144-145।
3. डॉ डी एस यादव प्रमुख राजनीतिक विचारक डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस नई-दिल्ली 2012 पृ 222-223।
4. सुशमा गर्ग भारतीय राजनीतिक चिंतन अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा 2015 पृ 295।
5. जीवन मेहता भारतीय राजनीतिक चिंतन एस बी पी डी पब्लिशिंग हाउस आगरा 2015 पृ 197।
6. समकालीन राजनीतिक विचारक- डॉ वी सिंह गहलौत अर्जुन पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली 2000पृ 325।
7. ओमप्रकाश गावा राजनीतिक विचारक- विश्वकोश नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली 2001 पृ 186।
8. अंजली वैष्णव लोहिया के चिंतन में स्त्री विमर्श सामाजिक विमर्श अंक-04 वर्श 2021 पृष्ठ सं 45-47
9. डॉ पुरूशोखत्तम नागर भारतीय राजनीतिक विचारक हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर दुसरा संस्करण - 2010 पृष्ठ स 253
10. योगेन्द्र यादव यदि आज लोहिया होते द क्विंट के डिजिटल प्लेटफार्म पर वीडियों लोहिया जयंति पर विशेष।
11. प्रो आनंद लोहिया के विचारों की समकालीन प्रासंगिकता
12. ओम प्रकाश गाबा भारतीय राजनीतिक चिंतक मयुरबख्श प्रकाशन दिल्ली पॉचवा संस्करण - 2013 पृष्ठ स-178
13. अवधेश कुमार युग दृष्टा लोहिया कुरूक्षेत्र वर्श 65 अंक-11 सितम्बर-2019 पृष्ठ स 45-47
14. डॉ श्रीराम वर्मा भारतीय राजनीतिक विचारक कॉलेज बुक सेन्टर चौडा रास्ता जयपुर तृतीय संस्करण-2017 पृष्ठ स 483
15. रेहान फजल जब लोहिया ने नेहरू को चुनौती दी बीबीसी हिन्दी सेवा 14 नवम्बर 2017

भारतीय उपमहाद्वीप में संजातीय राष्ट्रवाद

डॉ० कमला

राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

सुनिल कुमार

सहायक प्राध्यापक, दयाल सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

एक विचारधारा के रूप में राष्ट्रवाद 18वीं सदी में उभरा है, आधुनिक राज्य के उद्भव के साथ यूरोपे में यह भी अस्तित्व में आया। शुरूआत में इसके विचारकों में राष्ट्रवाद पड़ताल का विषय नहीं था। प्रथम विश्व युद्ध तक राष्ट्रवाद में दिलचस्पी नितिशास्त्रीय तथा दार्शनिक रूप से ही दिखाई दीए किन्तु बाद के समय में इस विषय में विचारकों ने गहन दिलचस्पी दिखाई। प्रस्तुत लेख भारतीय उपमहाद्वीप में संजातीय राष्ट्रवाद के उद्भव एवं विकास पर चर्चा करता है। भारतीय उपमहाद्वीप में संजातीय राष्ट्रवाद का जन्म पश्चिम से आयातित है या हमारी स्वयं की संजातीय राष्ट्रवाद की अवधारणा प्रस्तुत रही है। इसी दिशा में इस लेख में विचार किया गया है।

मुख्य शब्द संजातीयता, राष्ट्रवाद भारतीय उपमहाद्वीप, देशभक्ति इत्यादि।

संजातीयता तथा राष्ट्रवाद की अवधारणा

एक विचारधारा के रूप में राष्ट्रवाद 18वीं सदी में उभरा है, आधुनिक राज्य के उद्भव के साथ यूरोपे में यह भी अस्तित्व में आया। शुरूआत में इसके विचारकों में राष्ट्रवाद पड़ताल का विषय नहीं था। प्रथम विश्व युद्ध तक राष्ट्रवाद में दिलचस्पी नितिशास्त्रीय तथा दार्शनिक रूप से ही दिखाई दीए किन्तु बाद के समय में इस विषय में विचारकों ने गहन दिलचस्पी दिखाई। संजातीयता की परिभाषा हेतु हमें संजातीय समुह को परिभाषित करना होगा।

'एथनिक' अंग्रेजी विशेषण, प्राचीन ग्रीक शब्द 'एथनोस' से आया है। यह यहूदियों से भिन्न जाति के व्यक्ति के रूप में प्रयोग होता है।[1]

जेम्स केलास ने राज्य के भीतर अर्ध-राष्ट्रीय प्रकार के अल्पसंख्यक समूह के रूप में संजातीय समूह की परिभाषा की है। जो एक राष्ट्र का रूप नहीं ले पाता।[2]

जर्ग हेल्बलिगं का कहना है कि यह समूह ना केवल विविध् हितों को साथ लेकर भिन्न वर्ग बनाते है, बल्कि संघर्ष व आंदोलन से एक ऐसा प्रत्यक्ष समूह निर्मित करते हैं जो राजनीतिक रूप से चलायमान होता है।[3]

वही राष्ट्रवाद की परिभाषा में मारग्रेट मूर ने संजातीय समूह की परिभाषा में कहा है कि राष्ट्रवाद एक सैद्धांतिक विचार है जो राष्ट्रीय सदस्यता को मूल्य प्रदान करता है तथा भूत व भविष्य में राष्ट्र को अस्तित्व प्रदान करता है तथा राष्ट्र की पहचान एक खास ग्रह देश या भूमण्डल के एक हिस्से के रूप में कराता है। इनका मानना है कि राष्ट्र एक नैतिक समुदाय है जो आपसी विश्वास तथा समैक्यता के बंधन से पहचाना जाता है और लोगों का एक समुदाय होने का अहसास ही राष्ट्रीय पहचान हेतु कापफी है।' राष्ट्रवाद पर यह समसामयिक स्पष्टीकरण असंख्य प्रमुख सिद्धांतों के मुद्दे उठाता है जैसे अर्नेस्ट गैलेनर का प्रसिद्ध विचार है। कि राष्ट्रवाद सर्वप्रथम एक राजनीतिक विचार है- जिसमें माना गया है कि राजनीतिक और राष्ट्रीय इकाई एक ही आकार की होनी चाहिए। इस विचार के साथ समस्या यह है कि इसमें माना गया है कि हर संजातीय राष्ट्रवादी आंदोलन स्वतंत्रता व राजनीति पृथकता की मांग करता है। जबकि ऐसे बहुत से समुह हैं जो चारित्रिक रूप से राष्ट्रवादी है किन्तु वह अलग राज्य नहीं चाहते, केवल अपने लिए स्वतंत्रता तथा राष्ट्र के भीतर की व्यवस्था पर नियंत्राण में हिस्सेदारी मात्रा चाहते हैं। राष्ट्र एक आत्मा है, एक आध्यात्मिक सिद्धांत दो बातें जो कठोरता से इसे एक बंधन में बांधती है एक तो भूतकाल और दूसरा भविष्य। पहला, यादों की पैतृक संपत्ति पर कब्जे की सामान्य भावना और दूसरा वास्तविक सहमति, एक दूसरे के साथ रहने की इच्छा, और अपनी पैतृक विरासत के मूल्यों की निरन्तरता की इच्छा ही राष्ट्रवाद है। रेनन कहता है कि राष्ट्र का अस्तित्व ही तब हुआ जब इसके सहभागों में राष्ट्र होने का भाव उत्पन्न हुआ। रेनन मानता है कि राष्ट्र हेतु भूतकाल में बलिदान की भावना और ऐसा ही भविष्य में करने की इच्छा खोखली नहीं हो सकती। वह तत्व जो लोगों को ऐसा करने की प्रेरणा देते है वही राष्ट्रवाद के निर्माणकारी तत्व है।

'प्रो० जी० अलूसियस' के अनुसार 'देशभक्ति, अपने स्थान से लगाव, पसंद नापसंद की प्राकृतिक भावना कभी भी राष्ट्रवाद नहीं कहलाती, इनके अनुसार राष्ट्रवाद खासकर भारतीय राष्ट्रवाद आधुनिकता से जुड़ा है, जब जन्म पर आधरित पदानुक्रम विशेषताओं की बजाय हमने समानता, स्वतंत्रता तथा लोकतांत्रिक

व्यवस्था की तरपफ रूझान किया तब राष्ट्रवाद आया। जिसमें प्राकृतिक भिन्नताएँ, समाज व संस्कृति का आधर नहीं रही बल्कि बुद्धि तथा तर्क को समाज का आधर बनाया गया इसे अलूसियस सामाजिक तार्किकता का नाम देते हैं सबसे राज्य के उद्भव यह विचा यूरोप (केन्द्र राष्ट्रों) और फिर ऐशिया तथा अफ्रीका के राष्ट्रों (परिधि राष्ट्रों) में आया। इनके अनुसार भारत में राष्ट्रवाद उपनिवेशवाद से शुरू हुआ, अंग्रेजों (जो कि धन कमाने के उद्देश्य से ही भारत आए थे) ने भारत की उपजाऊ भूमि और उससे जुड़े किसानों को पैसे कमाने का आधार बनाया और धीरे-धीरे श्रमिक, शिल्पकार आदि भी धन की निकासी का माध्यम बने। पैसा कमाने के उद्देश्य से ही उन्होंने जमीन के मालिकाना हक समाज के श्रेष्ठ वर्ग को प्रदान किये, और निम्न, उपेक्षित वर्गों का भरपूर शोषण किया जिसमें इस भारतीय अभिजन वर्ग का भी हिस्सा था। किन्तु जब यह शोषण अपनी चरम पर आया तब निम्न, उपेक्षित वर्गो ने सुविधाओं और अधिकारों की मांग शुरू कर दी इसलिए अंग्रेजों ने इनके अध्किारों हेतु कानुनी सुधारों की एक लम्बी शृंखला भारतीय समाज में प्रस्तुत की, किन्तु भारतीय श्रेष्ठ, अभिजन और यूं कहें कि लम्बे समय से लाभान्वित वर्ग को यह समानता की स्थिति पसंद नहीं आई और अपनी वर्ण व्यवस्था वाली ब्राह्मणीकल स्थित की वापसी हेतु उन्होंने अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष शुरू किया जिसके लिए इन्होंने किसान, श्रमिक और अन्य वर्गों को भी साथ मिला लिया ताकि अंग्रेजों को भारत से भगाया जो सकें और तभी भारतीयता और राष्ट्रवाद को यहां शुरूआत हुई।

रेनन कहता है कि राष्ट्र का अस्तित्व ही तब हुआ जब इसके भागों में राष्ट्र होने का भाव उत्पन्न हुआ इनका मानना है कि राष्ट्र हेतु भुतकाल में बलिदान की भावना और ऐसा ही भविष्य में करने की इच्छा खोखली नहीं हो सकती, वह तत्व जो लोगों को ऐसा करने की प्रेरणा देता है वह राष्ट्रवाद का निर्माणकारी तत्व है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि एक राष्ट्र होने के लिए एक समान संस्कृति, समान भाषा, समान धर्म, समान इतिहास, समान परंपराएं मूल कारण हो सकती है और कई अन्य मामलों में ऐसा ना होने पर भी एक राष्ट्र होने का भाव उत्पन्न हो सकता है। सांस्कृतिक एकता, सामुदायिक भाईचारा और एक राष्ट्रीय पहचान की लालसा एक राष्ट्रवादी आंदोलन का निर्धारण तत्व होती है। जैसा कि भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन में हम देख सकते हैं किन्तु भारत की स्थिति अन्यों से जरा अलग थी यहाँ सांस्कृतिक अनेकता जिसमें हिंदू, मुस्लिम, सिख, बौद्ध, जैन जैसी संस्कृतियाँ विद्यमान थी जहाँ किसान, श्रमिक, कारीगर तथा शिल्पकार अलग-अलग समुदाय भी थे किन्तु इन सभी में एक राष्ट्र होने का भाव और लालसा विद्यमान थी, जिसने इन्हें भारतीय राष्ट्रवादियों के साथ सांस्कृतिक एकीकरण, सामुदायिक भाईचारा और हम भारतवासी होने की पहचान के लिए स्वतंत्राता आंदोलन में एकजुट कर दिया।

भारतीय राष्ट्रवाद की अधिकांश इतिहासकारों का यह तर्क रहा है कि आधुनिक अर्थ में भारतीय राजनीतिक 'राष्ट्र' ब्रिटिश राज की स्थापना से पहले मौजूद नहीं था। इसी बहस पर 'प्रसेनजित दुआरा' ने ऐसे विचारों को प्रबोधन काल के इतिहास का 'प्रयोजन मॉडल' कहकर उसकी समालोचना की है और कहा है कि यह मॉडल 'विवादित और संयोगिक' राष्ट्र को एकता की एक मिथ्या भावना से लैस करता है। वास्तव में उपनिवेशी भारत में राष्ट्रवाद के सामने दोहरी चुनौती थी- राष्ट्रीय एकता स्थापित करना और आत्मनिर्णय के अधिकार का दावा करना। हर कोई इस बात पर सहमत है कि भारत एक बहुलवादी समाज था जिसमें क्षेत्र भाषा, धर्म, जाति, उपजातीयता आदि अनेक प्रकार की विविधताएँ थी। लेकिन उस दौरान इस विविधता से एक राष्ट्र का निर्माण हो रहा था। भारतवासी अपने राष्ट्र की कल्पना वास्तव में किस तरह करते यह गहरे विवाद का विषय था। केंब्रिज सकूल ने भारतीय संदर्भ में राष्ट्रवादी आंदोलन की सत्ता में संदेह व्यक्त किए हैं और उसकी बजाय उपनिवेशी भारत में स्थानीय आंदोलन की एक पूरी शृंखला दर्शायी वहीं मार्क्सवादी सम्प्रदाय ने राष्ट्रवादी आंदोलन के वर्गीय चरित्रा का विश्लेषण और व्याख्या उपनिवेश काल के आर्थिक विकासक्रमों के आधार पर करने की कोशिश की। 'बिपिन चन्द पाल' के लेखन मार्क्सवादी व्याख्या को एक सुस्पष्ट राष्ट्रवादी रूझान प्रदान किया है। इस बहस में 1982, में 'रणजीत गुहा' ने 'Sublten Studies' के पहले खंड से साहसिक हस्तक्षेप किया इनका प्रारंभिक कथन था कि भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास लेखन पर लंबे समय से 'कुलीनवाद' का वर्चस्व रहा है गुहा ने कहा कि तंग नजर इतिहास-लेखन भारतीय राष्ट्रवाद की व्याख्या नहीं कर सकता क्योंकि यह इस राष्ट्रवाद के निर्माण और विकास में जनता द्वारा अपने बूते पर अर्थात् कुलीनों से स्वतंत्रा रूप से किए गए नए योगदान की उपेक्षा करता है। वहीं उपनिवेशवादी कुलीनों के राष्ट्रवाद को समझने में 'पार्था चटर्जी' का महत्वपूर्ण योगदान रहा इनका कहना था कि भारत में राष्ट्रवाद मूलतः पश्चिम से एक भिन्न मगर उसमें व्युत्पन्न संवाद था, जिसका विकास तीन सुस्पष्ट चरणों में हुआ। प्रस्थान का क्षण, जब राष्ट्रवादी चेतना का निर्माण प्रबोध् पश्चात बुद्धिवादी चिंतन के वर्चस्ववादी प्रभाव के द्वारा हुआ जोड़तोड़ का क्षण जब इसके समर्थन में जनता को लामबंद किया गया और आगमन का क्षण जब हम 'व्यवस्था का संवाद' और 'शक्ति का बुद्धिसंगत गठन' बन गया और उपनिवेश पश्चाती राष्ट्रवादी विचारधारा को 'विकास ज्ञानप्रकाश' ने अपनी नवीनतम पुस्तक 'Another Reason' (1999) में 'पार्थ चौटर्जी' को अंशतः संशोधित करते हुए कहा है कि 'राष्ट्र के आंतरिक क्षेत्रा और एक राष्ट्र के रूप में बाहरी जीवन के बीच कोई बुनियादी विरोध नहीं था, राष्ट्र-राज्य एक अन्य, अमूर्त स्तर पर राष्ट्र का ही अस्तित्व था।

राष्ट्र राज्य के विचार से भारतीय समाज का साक्षात्कार उन्नीसवीं सदी के दूसरे हिस्से में हुआ। यह ख्याल राष्ट्रवाद की पश्चिमी विचारधारा की हवाओं पर सवार होकर हमारे पास आया। उस जमाने में भारत जैसे, अन्य समाजों की भांति हमारे राष्ट्रवादी नेताओं को भी पक्का यकीन था कि बकायदा राष्ट्र राज्य न होना और उपयुक्त राष्ट्रवादी भावनाओं से लैस न होना भारतीय समाज की प्रमुख खामी तो है साथ ही पिछड़ेपन का सबूत भी है।

जहाँ तक पाकिस्तान का सवाल है तो इसका निर्माण कदम ही धर्म रहा है जो स्वयं ही संजातीय राष्ट्रवाद का एक महत्वपूर्ण कारक माना गया है। स्वतंत्राता के पश्चात् से ही पाकिस्तानी समाज एक मुस्लिम बहुल समाज रहा है जो संजातीय रूप से काफी विविध है यदि किसी राज्य के शासक अभिजनों के द्वारा ही संजातीय आधार पर लोगों में भेदभाव, शोषण, अत्याचार तथा उत्पीड़न को बढ़ावा दिया जाए और कुछ समुहों को स्पष्ट तौर पर शक्ति राजनीति से बाहर रखा जाए तो संजातीय शिकायतें तार्किक तथा उद्देश्य परक रूप धरण कर लेती है और इस प्रकार उत्पीड़ित समुहों में ना केवल साक्षेप वंचना की भावना बल्कि राजनीतिक सत्ताधारियों से पूर्ण अलगाव भी उभर आता है। सिंधियों से लेकर पख्तूनों तक और मूहाजिरों से लेकर ब्लूचियों तक आर्थिक शोषण, उत्पीड़न तथा सापेक्ष वंचना की भावना पंजाबी समूह के अधिपत्य के प्रति साफ झलकती है। पंजाबियों को छोड़कर देश के सभी संजातीय समूहों में यह भावना है कि इस्लामाबाद सरकार के शासकों ने उनका शोषण किया है जब-जब पाकिस्तान के उत्पीड़ित संजातीय समूहों ने अपनी शिकायतें या मांगे सरकार का सामने

रखी तब तब सरकार का इनके प्रति दमनात्मक रवैया ही रहा जिसके कारण पाकिस्तान में अनेक संजातीय राष्ट्रीयताएँ उभर कर सामने आई। देश के सर्वाधिक लाभान्वित वर्गों, जिसमें पंजाबी, मुहाशिर, पख्तून क्रमशः पहले, दूसरे तथा तीसरे स्थान पर रहे, ने कभी भी सिंधियों, ब्लूचियों या पूर्वी पाकिस्तान की वास्तविक समस्याओं पर ध्यान नहीं दिया। जिसके गंभीर परिणाम इन्हें झेलने पड़े बंग्लादेश का निर्माण भी इन्हीं में से एक परिणाम था। किन्तु 1971 में पाकिस्तान के विभाजन ने भी इसके शासकों को कोई सीख नहीं दी और यहाँ समय-समय पर अनेक संजातीय राष्ट्रवाद उठते रहे और देश में अव्यवस्था तथा हिंसा बढ़ती चली गई।

संदर्भ

1. Helbling, Jurg, *The Nationalist Game State Dominance and Ethnic Nationalism*, in Hand-Rudoly Wicker (eds), *Rethinking Nationalism & Ethnicity*, The Struggle for meaning and order in Europe, oxford, BERG, 1997, p. 235.
2. Hutchinson, John and Smith, Anthony D. (eds.) 'Ethnicity' New York, Oxford Univeristy Press, 1996, p. 4.
3. James G. Kellas, 'The Politics of Nationalism & Ethnicity', Hong Kong : Macmillon, 1994, p. 4.
4. Gerald. F. Gaus and Chandran Kukathas, (edi) *'Handbook of Politifcal Theory"*, London, Sage Publication, 2004, p. 259.
5. Jonathan Hearn, *'Retinking Nationalism, A Critical Introducation*, New York Palgrave Macmillan, 2006, p. 4.
6. Horace B Davis, *Towards A Marxist Theory of Nationalism*, New York, Monthly Review Press, 1978, p. 21.
7. Ernest Renon, *'What is a Nation'*.
8. प्रो० जी० अलूसियस "राष्ट्र विहिन भारत में राष्ट्रवाद" जाकिर हुसैन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, राजनीति विज्ञान विभाग आयोजित सेमिनार में दिए व्याख्यसा से साभार, 2009, 10 नवंबर।
9. रेनन, अर्नेस्ट, 'वॉट इज ए नेान', इन 'नैशनालिज्म', न्यूयार्क मन्थली रिप्यू प्रैस, 1978, पृ० 21
10. दुआरा, प्रसनजीत, 'रेस्क्यूइंग हिस्ट्री फ्राम दी नेशन : क्वशनींग नैरेटिव्स ऑफ माडर्न चाइना, शिकागा, शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस, 1995, पृ० 4
11. बंधोपाध्याय शेखर 'प्लासी से विभाजन तक आधुनिक भारत का इतिहास', नई दिल्ली, ओरियंट ब्लैक्सवॉन, 2009, पृ० 201-205
12. गूहा रनजीत 'सवाल्टर्न स्टडीज' राइटिंग्स साउथ एशियन हिस्ट्री एण्ड सोसायटी, वोल्यूम-1, दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ० 1-3
13. चैटर्जी पार्था, 'नैशनालिस्ट थॉट एण्ड कोलोनियल वल्ड', ए डेरिवेटिव डिस्कोर्सिस लंदन, बुक्स, 1986, पृ० 43, 50, 51
14. पूर्वोक्त, बंधोपाध्याय शेखर, पृ० 202
15. नंदी, अशीश, 'राष्ट्रवाद बनाम देशभक्ति' (अनुवाद अभय कुमार दूबे), दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2005, पृ० 19, 27-33
16. Adeel Khan, *Politics of Identity: Ethnic Nationalism and the State in Pakistan* (New Delhi, Sage Publication, 2005), p. 24.

राजनीतिक मूल्यों के विकास में शिक्षा का महत्व

डॉ० दयाशंकर तिवारी

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद डिग्री कॉलेज (यूनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद) प्रयागराज।

प्रस्तावना:

सामान्यतः इस बात को स्वीकार किया जा सकता है कि वर्तमान समय की विभिन्न सामाजिक व्यवस्था एवं सभ्यताओं के बीच संघर्ष का कारण उनमें पाए जाने वाली सामाजिक मूल्यों में अंतर्निहित है। वस्तुतः व्यक्ति जिस समाज में रहता है वह उस समाज के अंतर्गत पाए जाने वाली मूल्य व्यवस्था से स्वयं का लगातार सामंजस्य बैठाने की कोशिश करता है। हमारे मूल्य ही हमारे सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था की संरचना को प्रदर्शित एवं संरक्षित करने का प्रयास करते हैं।

राजनीतिक मूल्य से अभिप्राय राजनीतिक संबंध, राजनीतिक व्यवस्था को परिचालन करने वाले तत्व, राजनीतिक मांग, स्वतंत्रता, समानता, अधिकार, न्याय एवं व्यक्ति के राजनीतिक व्यवस्था के प्रति झुकाव, राजनीतिक संस्कृति एवं राजनीतिक दृष्टिकोण से लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए एक तानाशाही या अधिनायकवादी शासन व्यवस्था में राजनीतिक मूल्य सीमित रुप मे आज्ञा पालन एवं सत्ता के प्रति आस्था से लगाया जाता है। इस प्रकार की शासन व्यवस्था में प्रजा से यही आशा की जाती है कि वह अपने स्वयं के राजनीतिक अधिकारों के प्रति जागरूक होने की बजाय उसे निश्चित सीमा में प्रदान किए गए राजनीतिक अधिकार को एवं अवसरों का लाभ उठाएं तथा सत्ता के प्रति अपनी आस्था को बनाए रखें। मैकियावेली ने राजनेताओं को एवं राजकुमारों को लक्षित करते हुए राजनीतिक मूल्यों के एक समूह के रूपरेखा दी है, जिसे राजकुमार या राजनेताओं को प्रभावी ढंग से शासन करने के लिए स्वयं में विकसित करने की आवश्यकता होती है।

शिक्षा किसी भी समाज के लिए एक महत्वपूर्ण साधन हो सकती है उस समाज को एक विकसित समाज एवं सुखद समाज बनाने के लिए। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य के मस्तिष्क का विकास होता है एवं वह इस माध्यम से अपने आप को, एवं अपने आसपास के वातावरण एवं परिवेश को अन्य रहने वाले सभी मनुष्यों के लिए भी सुखद एवं रहने योग्य बनाने की कोशिश करता है। इस संदर्भ में हम दलाई लामा के इस वाक्य से सीख ले सकते है कि "एक सार्थक जीवन जीने के लिए, आपको दूसरों को महत्व देना होगा, मानवीय मूल्यों पर ध्यान देना होगा और आंतरिक शांति पैदा करने का प्रयास करना होगा"।

शिक्षा एवं राजनीति का प्राचीन समय से ही गहरा संबंध रहा है। जिसमें एक तरफ शिक्षा राजनीतिक गतिशीलता की महत्वपूर्ण एवं प्रमुख अवयव रही है। यह अंतर संबंध राज्य की उत्पत्ति के साथ ही विभिन्न काल खंडों में विभाजित, अविभाजित तौर से जुड़ी रही है। शिक्षा की आधारभूत अनुशासनों में राजनीति विज्ञान का विशेष स्थान रहा है। विकासशील एवं विकसित देशों में राजनीतिक विज्ञान की शिक्षा पर रुचि बढ़ रही है। इस संदर्भ में शिक्षा एवं राजनीति विज्ञान का परस्पर प्रभाव देखा जा सकता है एक दूसरे पर। साथ ही राजनीतिक संस्थानों पर भी शिक्षा का प्रभाव प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होता है। राजनीतिक बदलाव एवं राजनीतिक मूल्यों में गतिशीलता प्रदान करने का कार्य भी शिक्षा के द्वारा ही किया जा सकता है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य की राजनीतिक चेतना को उचित मार्ग प्रदान किया जा सकता है।

रूसो ने अपनी शिक्षा व्यवस्था में सामंती तत्वों को समाप्त करने का प्रयास किया था। रूसो ने अपने तत्कालीन समय के शिक्षा को उसके सामंती चरित्र के कारण उसमें बदलाव करने की वकालत की थी। रूसो का मानना था कि "मनुष्य स्वतंत्र है, लेकिन वह हर जगह गुलामी की जंजीरों में झगड़ा हुआ है"। रूसो ने शिक्षा को प्रकृति आधारित शिक्षा बनाने की कोशिश की थी। उसका मानना था की शिक्षा बालकों को उनके अंतर निहित विकास को बढ़ाने वाली होनी चाहिए ना कि उन्हें बाहरी समाज के ज्ञान को अपने अंदर समाहित करने की प्रयास करने वाली होनी चाहिए। दरअसल रूसो शिक्षा व्यवस्था की कृत्रिमता को खत्म करना चाहते थे। उनका मानना था कि शिक्षा बालकों के विकास में नियंत्रक होने की बजाय उन्हें स्वयं सत्य खोजने के लिए प्रेरित करने या उनके विकास के लिए एक सहायक बनने वाली होनी चाहिए।

प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने सत्य ही कहा था कि "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है"। मनुष्य समाज मे रहकर ही अपना सर्वांगीण विकास कर सकता है। समाज में उसकी अलग-अलग आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अन्य मनुष्यों के द्वारा सहयोग किया जाता है। इसीलिए मनुष्य संबंधी किसी भी क्रियाकलाप का अध्ययन बिना समाज के अध्ययन के ना तो पूर्ण ही है और ना ही संभव। मनुष्य के क्रियाकलापों का अध्ययन विभिन्न तरीकों से किया जाता है, और जैसे-जैसे शिक्षा के द्वारा मनुष्यों के आचरण एवं व्यवहार में बदलाव आता है वैसे-वैसे राज्य और राजनीतिक मूल्यों में भी परिवर्तन दिखाई देता है। शिक्षा मनुष्य के आचरण एवं उसके मूल्य में भी परिवर्तन लाने का कार्य करती है।

ज्ञात हो कि राजनीति विज्ञान के जनक अरस्तु ने स्वयं अपने समय की शिक्षा प्रणाली में सिर्फ स्वतंत्र जनों को ही शिक्षा देने की बात की थी, जबकि दास, महिलाओं व अन्य देशज के लोगों को यूनान का नागरिक ना होने की वजह से उन्हें शिक्षा व्यवस्था से भी दूर रखा था। वही अरस्तु के गुरु प्लेटो ने शिक्षा व्यवस्था में सभी को समान भागीदारी देते हुए महिलाओं एवं पुरुषों के लिए समान शिक्षा की वकालत की थी।

आधुनिक काल तक आते-आते राज्य को बदलाव के विभिन्न अवस्थाओं से गुजरना पड़ा। जैसे-जैसे लोगों को सुरक्षा एवं जागरूकता का अनुभव हुआ, उनकी राजनीतिक चेतना का विकास हुआ। उसी प्रकार से राज्यों का स्वरूप भी बदला। एवम आधुनिक विशाल राज्यों में बदलते गए ।इसी के साथ ही साथ हमारी राजनीतिक मूल्यों में भी परिवर्तन आते हैं। आरंभिक दौर में जहां कबीलाई राज्यों में शासन व्यवस्था में जनता की भागीदारी सीमित होती थी या ना के बराबर थी, वही आधुनिक लोकतांत्रिक राज्यों में जनता की भागीदारी महत्वपूर्ण मानी जाती है। समकालीन राज्य लोकतांत्रिक मूल्यों, समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व सहिष्णुता, न्याय, अधिकार आदि राजनीतिक मूल्यों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान कर रहे हैं। आज इन राज्यों की पहचान भी धर्मनिरपेक्ष राज्यों के रूप में हो रही हैं। इस प्रकार से हम देखते हैं कि शिक्षा ने किस प्रकार से धार्मिक राज्य के जगह पर धर्मनिरपेक्ष राज्यों की स्थापना में अपना योगदान दिया है। बर्गेश के शब्दों में "राज्य और पूर्ण और व्यवस्थित रूप से आरंभ होकर धीरे-धीरे विकसित होता हुआ मानव जाति के पूर्ण तथा विश्व व्यापी संगठन का रूप ले रहा है"।

आधुनिक राष्ट्रीय राज्य एवं शिक्षा:

रोमन साम्राज्य की बुझी हुई राख पर आधुनिक राष्ट्रीय राज्य का जन्म हुआ। पुनर्जागरण, धार्मिक सुधार आंदोलन, औद्योगिक क्रांति, यातायात के साधनों का विकास, छापेखाने का विकास इत्यादि ने राष्ट्र राज्य के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 1789 की फ्रांसीसी क्रांति ने तीन प्रकार के राजनितिक मूल्यों (स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व) की स्थापना की। ये मूल्य राजनीतिक व्यवस्था की मूलभूत सिद्धांत के तौर पर विख्यात है। स्वतंत्रता समानता व बंधुता की मांग ने लोकतंत्रिय शासन व्यवस्था की स्थापना करने हेतु समाज और राजनीतिक विद्वानों को प्रेरित किया। और आज वर्तमान में विश्व की अधिकतर देशों में लोकतांत्रिक व्यवस्था को अंगीकृत किया गया है। भारत में भी स्वतंत्रता के पश्चात लोकतांत्रिक व्यवस्था को अंगीकृत किया गया। एवम आगे चलकर देश की आवश्यकताओं की प्राथमिकताओं को तय करके नागरिकों को उत्तम जीवन की ओर अग्रसर करने के लिए नई-नई नीतियों का शुरूआत किया गया है। देश में शिक्षा के विकास के साथ लोगों की आवश्यकताओं में परिवर्तन आता है, तथा लोगो ने अधिकार, स्वतंत्रता, समानता, एवं बंधुता जैसे राजनीतिक मूल्यों की वकालत करते हुए उन्हे सभी लोगों को भेदभाव रहित प्रदान करने पर जोर दिया। फलस्वरूप आधुनिक राष्ट्रीय राज्य के नागरिक अपना स्वतंत्रता पूर्वक जीवन निर्वाह कर रहे हैं। आज लोकतंत्र व लोक कल्याण को बनाए रखने के लिए लोगों का शिक्षित होना, जागरूक होना, राजनीति में सक्रिय भागीदारी, एवम उत्तरदायी सरकार का होना आवश्यक है। साथ ही साथ राजनीतिक दलों के अध्यक्ष, संयोजक, प्रमुख महासचिव, व अन्य महत्वपूर्ण पदों का वितरण भी लोकतांत्रिक प्रणाली से या निर्वाचन के माध्यम से होना जरूरी है। ताकि प्रतिभा के आधार पर सभी को समान अवसर मिल सकें। भारतीय संविधान में भी सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए सकारात्मक भेदभाव की व्यवस्था की गई है, जिससे समाज के उन वंचित लोगों को भी एक समान स्तर पर लाकर, उन्हें सामाजिक एवं राजनीतिक भागीदारी हेतु अवसर प्रदान किया जा सके। शिक्षा के माध्यम से आज हमने अपने सामाजिक मूल्यों में एवं राजनीतिक मूल्यों में परिवर्तन करने की कोशिश की है।आज वर्तमान भारतीय समाज में बाल विवाह, सती प्रथा, अस्पृश्यता जैसी कुप्रथाओ एवम् समस्याओं को भी समाप्त करने का प्रयास किया गया है। यह शिक्षित समाज होने का ही परिणाम है।

निष्कर्ष:

अंतत: हम कह सकते हैं कि शिक्षा समाज की नीव और भविष्य की निर्माता दोनों होती है। शिक्षा के माध्यम से ही हम अपनी पुरानी कुप्रथाओं को समाप्त कर सकते हैं। और अपनी परंपराओं एवं विरासतों को संरक्षित करते हुए उसे अपनी आने वाली पीढियां के लिए भी स्थानांतरित करने का प्रयास करते हैं। शिक्षा सामाजिक गतिशीलता के उन्नयन में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि शिक्षा राजनीतिक मूल्यों में भी परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण साधन है। और साथ ही साथ हमारे राजनीतिक मूल्यों के आधार पर हमारी शिक्षा व्यवस्था भी परिवर्तित होती रहती है।आज हमारी शिक्षा व्यवस्था लोकतांत्रिक मूल्यों, समानता, धर्मनिरपेक्षता के तत्वों को बढ़ाते हुए भारतीय समाज को नए ऊंचाइयों पर ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रही है।

आज शिक्षा के कारण ही राष्ट्रीय एकता को बढ़ाने एवं विभिन्न समुदायों एवं समूह में आपसी संघर्षों को कम करने में मदद मिली है। अत: शिक्षा प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक मूल्यों को विकसित करने ओर उसके पुन: सनरचना में एक महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही है।

संदर्भ:

1- सिंह, एस एन, राजनीति विज्ञान शब्दकोश, रावत पब्लिकेशन, जवाहर नगर जयपुर।
2- भार्गव राजीव एवम आचार्य अशोक, राजनीति सिद्धांत एक परिचय (2011) पियर्सन प्रकाशन।
3- पाठक एवम् त्यागी, शिक्षा के सिद्धांत, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
4- सेन अमर्त्य, इनिक्वालिटी रिइक्जामिनड, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस 1993।
5- बर्लिन आइजिया, फॉर एसेज ऑन लिबर्टी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस 1969
6- पचौरी गिरीश, शिक्षा और समाज, मेरठ इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस।
7- लाल रमन बिहारी, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्री आधार, मेरठ रस्तोगी प्रकाशन।
8- कुमार आनंद, सामाजिक विचारों का अध्ययन, विमल प्रकाशन मंदिर, आगरा।
9- शर्मा रामनाथ एवं शर्मा राजेंद्र कुमार(2006), शैक्षिक समाजशास्त्र, अटलांटिक पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
10- सिंगल, डॉ एस सी, राजनीतिक सिद्धांत, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा उत्तर प्रदेश 2012

भारतीय परम्पराएं और सामाजिक आर्थिक परिवेश

डॉ० ललिता शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, सौ.बा.दा. महिला महाविद्यालय, धमपुर, जिला बिजनौर, (उ.प्र.)

शोध परिचय

भारत, इतिहास, विविधता और सांस्कृतिक विरासत से समृद्ध देश, सहस्राब्दियों से विकसित परंपराओं का एक संग्रह समेटे हुए है। भारतीय परंपराओं और सामाजिक-आर्थिक परिवेश के बीच परस्पर क्रिया ने देश की पहचान को आकार दिया है और इसके लोगों के जीवन को प्रभावित किया है। यह व्यापक अन्वेषण भारत की परंपराओं और इसके सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य के बीच जटिल संबंधों को उजागर करने, ऐतिहासिक जड़ों, सांस्कृतिक प्रथाओं और इस जटिल रिश्ते को परिभाषित करने वाली समकालीन अभिव्यक्तियों में गहराई से जानना जरूरी है।

मुख्य शब्दः भारतीय परम्परा, प्रथाएँ,

भारतीय परंपराओं की ऐतिहासिक जड़ें

भारत की परंपराएँ इसके प्राचीन इतिहास में गहराई से निहित हैं, जिसकी सभ्यता हजारों साल पुरानी है। वैदिक काल, जिसे वेदों के नाम से जाने जाने वाले पवित्र ग्रंथों की विशेषता है, ने कई धार्मिक और दार्शनिक परंपराओं की नींव रखी जो भारतीय समाज को प्रभावित करती रही हैं। वेदों में उल्लिखित धर्म (कर्तव्य), कर्म (कार्य), और मोक्ष (मुक्ति) के सिद्धांतों का भारतीय संस्कृति के नैतिक और नैतिक ताने-बाने पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म और सिख धर्म के उद्भव ने भारत की धार्मिक विविधता में और परतें जोड़ दीं। इनमें से प्रत्येक परंपरा ने अद्वितीय दर्शन, अनुष्ठान और सामाजिक संरचनाओं को सामने लाया जो भारतीय जीवन शैली का अभिन्न अंग बन गए। मध्ययुगीन भारत में पनपे भक्ति और सूफी आंदोलनों ने भक्ति और ईश्वर के साथ व्यक्तिगत संबंध पर जोर दिया, जिससे भारतीय आध्यात्मिकता की समन्वित प्रकृति में योगदान हुआ।

प्राचीन काल में सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य कृषि प्रथाओं और व्यापार से जटिल रूप से जुड़ा हुआ था। जाति व्यवस्था, जिसकी उत्पत्ति व्यवसाय पर आधारित सामाजिक विभाजन के रूप में हुई, भारतीय समाज का एक महत्वपूर्ण पहलू बन गई। हालाँकि इसने श्रम विभाजन के लिए एक संरचित ढाँचा प्रदान किया, इसने सामाजिक स्तरीकरण और असमानताओं को भी जन्म दिया।

सांस्कृतिक प्रथाएँ और परंपराएँ

भारतीय परंपराएँ असंख्य सांस्कृतिक प्रथाओं में अभिव्यक्ति पाती हैं जिनमें कला, संगीत, नृत्य, व्यंजन और त्यौहार शामिल हैं। ये प्रथाएं न केवल सौंदर्य आनंद के स्रोत के रूप में काम करती हैं बल्कि सामाजिक संबंधों को आकार देने और सांप्रदायिक बंधनों को मजबूत करने में भी भूमिका निभाती हैं।

कला और वास्तुकला

भारत की कला और वास्तुकला इसकी सांस्कृतिक विरासत की विविधता को दर्शाती है। प्राचीन मंदिरों की जटिल नक्काशी से लेकर ताज महल की मुगल वास्तुकला तक, भारत में कलात्मक अभिव्यक्तियाँ अक्सर धार्मिक और ऐतिहासिक आख्यानों के साथ जुड़ी हुई हैं। भरतनाट्यम, कथक और शास्त्रीय संगीत जैसे पारंपरिक कला रूपों को संरक्षित किया गया है और पीढ़ियों से पारित किया जा रहा है, जो सांस्कृतिक परंपराओं की निरंतरता में योगदान दे रहा है।

त्यौहार

भारत में त्यौहार जीवंत उत्सव हैं जो धार्मिक और क्षेत्रीय सीमाओं से परे समुदायों को एक साथ लाते हैं। दिवाली, होली, ईद, क्रिसमस और कई अन्य त्योहार अनुष्ठानों, दावतों और साझा खुशी की भावना से चिह्नित हैं। ये उत्सव न केवल सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के क्षण प्रदान करते हैं बल्कि बढ़ते वाणिज्य और पर्यटन सहित आर्थिक गतिविधियों के अवसर के रूप में भी काम करते हैं।

कपड़े और पोशाक

पारंपरिक भारतीय कपड़े, जैसे साड़ी, धोती और पगड़ी, देश के भीतर सांस्कृतिक विविधता और क्षेत्रीय विविधताओं को दर्शाते हैं। पोशाक का चुनाव अक्सर सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व रखता है, और कपड़ा उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण योगदानकर्ता बना हुआ है।

सामाजिक-आर्थिक वातावरण

भारत का सामाजिक-आर्थिक वातावरण जनसंख्या की गतिशीलता, आर्थिक नीतियों, शासन संरचनाओं और सामाजिक असमानताओं सहित कारकों की एक जटिल परस्पर क्रिया की विशेषता है। देश में विकास के पथ को आकार देने वाली चुनौतियों और अवसरों को समझने के लिए सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य को समझना आवश्यक है।

जनसंख्या में गतिशीलता

1.3 अरब से अधिक आबादी वाला भारत दुनिया के सबसे अधिक आबादी वाले देशों में से एक है। बड़ी युवा आबादी के साथ जनसांख्यिकीय संरचना अवसर और चुनौतियाँ दोनों प्रस्तुत करती है। जबकि युवा जनसांख्यिकी आर्थिक विकास के लिए एक प्रेरक शक्ति हो सकती है, यह बढ़ती आबादी के लिए रोजगार और शिक्षा के अवसर प्रदान करने की चुनौती भी पेश करती है।

आर्थिक नीतियां और सुधार

भारत की आर्थिक यात्रा में पिछले कुछ वर्षों में महत्वपूर्ण नीतिगत परिवर्तन और सुधार देखे गए हैं। 1990 के दशक में अर्थव्यवस्था के उदारीकरण ने विदेशी निवेश और निजी उद्यम को प्रोत्साहित करते हुए बाजार-उन्मुख दृष्टिकोण की ओर बदलाव को चिह्नित किया। आर्थिक सुधारों के साथ सूचना प्रौद्योगिकी में उछाल ने भारत को एक वैश्विक आर्थिक खिलाड़ी के रूप में उभरने में योगदान दिया।

हालाँकि, आर्थिक विकास एक समान नहीं रहा है, और आय असमानता, क्षेत्रीय असमानताएँ और अनौपचारिक श्रम बाजार जैसी चुनौतियाँ बनी हुई हैं। "मेक इन इंडिया" और "डिजिटल इंडिया" जैसी हालिया पहलों का उद्देश्य इन चुनौतियों का समाधान करना और समावेशी विकास को बढ़ावा देना है।

कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था

कृषि भारतीय आबादी के एक महत्वपूर्ण हिस्से के लिए पारंपरिक आजीविका रही है। अन्य क्षेत्रों की वृद्धि के बावजूद, कृषि अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण योगदानकर्ता बनी हुई है, जो कार्यबल के एक बड़े हिस्से को रोजगार प्रदान करती है। खंडित भूमि जोत, पानी की कमी और मानसून पर निर्भरता जैसी चुनौतियाँ कृषि सुधारों और टिकाऊ प्रथाओं की आवश्यकता पर प्रकाश डालती हैं।

कृषि से जुड़ी ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बुनियादी ढांचे, शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल से संबंधित चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। समावेशी सामाजिक-आर्थिक विकास सुनिश्चित करने के लिए कौशल विकास, प्रौद्योगिकी तक पहुंच और वित्तीय समावेशन के माध्यम से ग्रामीण समुदायों को सशक्त बनाना आवश्यक है।

शहरीकरण और औद्योगीकरण

तीव्र शहरीकरण और औद्योगीकरण ने भारतीय शहरों के परिदृश्य को बदल दिया है। शहरी केंद्र वाणिज्य, शिक्षा और रोजगार के अवसरों के केंद्र के रूप में कार्य करते हैं। हालाँकि, शहरी क्षेत्रों के अनियोजित विकास ने अपर्याप्त बुनियादी ढांचे, पर्यावरणीय गिरावट और झुग्गी-झोपड़ियों के प्रसार जैसी चुनौतियों को जन्म दिया है।

औद्योगीकरण, आर्थिक विकास को गति देने के साथ-साथ, पर्यावरणीय स्थिरता और जिम्मेदार व्यावसायिक प्रथाओं की आवश्यकता के बारे में भी चिंता पैदा करता है। पर्यावरण संरक्षण के साथ शहरी विकास को संतुलित करना भारत के सामाजिक-आर्थिक भविष्य के लिए एक महत्वपूर्ण विचार है।

सामाजिक असमानताएँ और समावेशी विकास

भारत विभिन्न प्रकार की सामाजिक असमानताओं से जूझ रहा है, जिनमें जाति-आधारित भेदभाव, लैंगिक असमानताएं और शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल तक पहुंच में असमानताएं शामिल हैं। समावेशी विकास पहल का उद्देश्य सकारात्मक कार्रवाई नीतियों को बढ़ावा देना, हाशिए पर रहने वाले समुदायों को सशक्त बनाना और सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों को बढ़ाकर इन असमानताओं को दूर करना है।

विशेष रूप से महिला सशक्तिकरण, समावेशी विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है। महिलाओं की शिक्षा, आर्थिक भागीदारी और स्वास्थ्य देखभाल पहुंच बढ़ाने के प्रयास न केवल लैंगिक समानता बल्कि समग्र सामाजिक-आर्थिक विकास में भी योगदान करते हैं।

प्रौद्योगिकी और नवाचार

डिजिटल क्रांति का भारत के सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य पर गहरा प्रभाव पड़ा है। मोबाइल प्रौद्योगिकी और इंटरनेट को व्यापक रूप से अपनाने से सूचना, वित्तीय सेवाओं और ई-कॉमर्स तक पहुंच आसान हो गई है। आधार प्रणाली (एक बायोमेट्रिक पहचान प्रणाली) जैसे नवाचारों ने सेवा वितरण और वित्तीय समावेशन को सुव्यवस्थित किया है।

भारत में स्टार्टअप पारिस्थितिकी तंत्र में महत्वपूर्ण वृद्धि देखी गई है, जिसमें प्रौद्योगिकी-संचालित उद्यम रोजगार सृजन और आर्थिक गतिशीलता में योगदान दे रहे हैं। सतत विकास के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग करना और डिजिटल विभाजन को पाटना नीति निर्माताओं के लिए प्रमुख चुनौतियां बनी हुई हैं।

परंपराओं और सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता का अंतर्संबंध

भारतीय परंपराओं और सामाजिक-आर्थिक परिवेश का अंतर्संबंध दैनिक जीवन के विभिन्न पहलुओं में स्पष्ट है, जो व्यक्तिगत पसंद, सामुदायिक गतिशीलता और राष्ट्रीय नीतियों को प्रभावित करता है।

चुनौतियाँ और अवसर

भारत में परंपराओं और सामाजिक-आर्थिक वातावरण का सह-अस्तित्व चुनौतियों और अवसरों दोनों के साथ एक जटिल परिदृश्य प्रस्तुत करता है। अवसरों का लाभ उठाते हुए इन चुनौतियों का समाधान करना सतत विकास और समावेशी विकास को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण है।

सामाजिक असमानताओं को संबोधित करना

जाति-आधारित भेदभाव और लैंगिक असमानताओं सहित लगातार सामाजिक असमानताएँ, समावेशी विकास के लिए चुनौतियाँ पैदा करती हैं। इन असमानताओं को दूर करने के लिए सकारात्मक कार्रवाई, महिला सशक्तिकरण और शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल तक पहुंच को बढ़ावा देने वाले नीतिगत हस्तक्षेप आवश्यक हैं।

पर्यावरणीय स्थिरता के साथ शहरीकरण को संतुलित करना

तीव्र शहरीकरण, आर्थिक अवसर प्रदान करते हुए, प्रदूषण, भीड़भाड़ और प्राकृतिक संसाधनों की कमी जैसी पर्यावरणीय चुनौतियाँ लाता है। शहरी नियोजन जो स्थिरता, हरित स्थानों और कुशल संसाधन प्रबंधन पर जोर देता है, शहरी विकास के पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने के लिए महत्वपूर्ण है।

सतत कृषि पद्धतियाँ

भारत के सामाजिक-आर्थिक ताने-बाने की आधारशिला कृषि को पानी की कमी, मिट्टी का क्षरण और जलवायु परिवर्तन जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। खाद्य सुरक्षा और पर्यावरणीय लचीलापन सुनिश्चित करने के लिए जैविक खेती और जल संरक्षण सहित स्थायी कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देना महत्वपूर्ण है।

डिजिटल समावेशन और प्रौद्योगिकी तक पहुंच

जबकि प्रौद्योगिकी में सामाजिक-आर्थिक विकास को आगे बढ़ाने की क्षमता है, डिजिटल विभाजन एक चुनौती बना हुआ है। प्रौद्योगिकी, डिजिटल साक्षरता कार्यक्रमों और ई-गवर्नेंस सेवाओं तक किफायती पहुंच प्रदान करने वाली पहलों के माध्यम से इस अंतर को पाटना यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि डिजिटल क्रांति का लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुंचे।

निष्कर्ष

भारतीय परंपराओं और सामाजिक-आर्थिक परिवेश के बीच जटिल संबंध एक ऐसे राष्ट्र के लचीलेपन और अनुकूलनशीलता को दर्शाता है जिसने अपनी सांस्कृतिक जड़ों को बनाए रखते हुए परिवर्तन को अपनाया है। जैसे-जैसे भारत अपनी विकास यात्रा जारी रखता है, परंपरा और आधुनिकता का सह-अस्तित्व चुनौतियां और अवसर दोनों प्रस्तुत करता है।

सामाजिक असमानताओं को दूर करने, टिकाऊ प्रथाओं को बढ़ावा देने और तकनीकी प्रगति का लाभ उठाने के प्रयास समावेशी, न्यायसंगत और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध भविष्य को आकार देने के लिए अभिन्न अंग हैं। परंपराओं और सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता के अंतर्संबंधों को पहचानकर, नीति निर्माता, समुदाय और व्यक्ति एक सामंजस्यपूर्ण और प्रगतिशील भारत में योगदान कर सकते हैं जो अपनी विविध विरासत से ताकत लेता है।

इस परस्पर जुड़े रिश्ते की जटिलताओं को सुलझाने में, भारत के पास एक ऐसा रास्ता बनाने की क्षमता है जो अधिक टिकाऊ, समावेशी और समृद्ध भविष्य की दिशा में एक रास्ता तय करते हुए अपनी परंपराओं का सम्मान करता है।

सन्दर्भ ग्रंथ

- मुकर्जी, रविन्द्रनाथ, 1989, भारतीय समाज व संस्कृति, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हसनैन, नदीम, 2005, समकालीन भारतीय समाज: एक समाजशास्त्रीय परिदृश्य, भारत बुक सेन्टर, लखनऊ।
- दोषी व जैन, 2009 भारतीय समाज-रंचना एवं परिवर्तन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
- शर्मा, के. एल. 2001, कास्ट एंड क्लास इन इंडिया, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।

सामाजिक संबंधों पर सोशल मीडिया का प्रभाव

डॉ० अलका

सहायक प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, राजकीय पीजी कॉलेज, चंपावत

सारांश

सोशल मीडिया के उद्भव ने लोगों के एक-दूसरे के साथ संवाद करने और बातचीत करने के तरीकों पर महत्वप भाव डाला है। अपनी शुरुआत के बाद से सोशल मीडिया बहुत आगे बढ़ चुका है। जब 1960 के दशक के अंत में पहली कंप्यूटर-आधारित संचार प्रणालियाँ बनाई गई, तो सोशल मीडिया का इतिहास उसी समय से शुरू होता है। जब ये प्रारंभिक सिस्टम पहली बार विकसित किए गए थे, तो इसके अधिकांश उपयोगकर्ता शिक्षाविद और वैज्ञानिक थे जो अनुसंधान परियोजनाओं पर सहयोग करना और सूचनाओं का आदान-प्रदान करना चाहते थे। 1990 के दशक में सामान्य आबादी को इंटरनेट तक अधिक पहुंच प्राप्त हुई, जो कि शुरुआत के साथ मेल खाता था। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म का विकास। सिक्स डिग्रीज, पहला सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म जिसका व्यापक रूप से उपयोग किया गया था, वर्ष 1997 में विकसित और जारी किया गया था। यह प्लेटफॉर्म, जो आज उपलब्ध सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म के समान था, उपयोगकर्ताओं को प्रोफाइल स्थापित करने और अपने दोस्तों के साथ संवाद करने में सक्षम बनाता था। इक्कीसवीं सदी के शुरुआती वर्षों में फ्रेंडस्टर और माइस्पेस जैसे प्लेटफॉर्म प्रमुखता से उभरे। इन प्लेटफार्मों द्वारा सिक्स डिग्री के मुख्य तत्वों में सुधार किया गया, जिससे उपयोगकर्ता छवियों, संगीत और अन्य प्रकार की सामग्री सहित अपने संपर्कों के साथ जानकारी का आदान-प्रदान करने में सक्षम हो गए। हालांकि, सोशल मीडिया उद्योग 2004 तक शुरू नहीं हुआ था, जब फेसबुक को सबसे पहले जनता के सामने पेश किया गया था। फेसबुक बहुत कम समय में सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म रैंकिंग में शीर्ष पर पहुंच गया, और इसने ट्विटर, इंस्टाग्राम और स्नैपचौट जैसे अन्य प्लेटफॉर्म के निर्माण के लिए प्रेरणा स्रोत के रूप में काम किया। अब हम सोशल मीडिया को एक आवश्यक मानते हैं हमारे रोजमर्रा के जीवन का घटक- हाल ही में किए गए एक शोध में पाया गया कि दुनिया की साठ प्रतिशत से अधिक आबादी सोशल मीडिया का उपयोग करती है, और सामान्य व्यक्ति इन प्लेटफार्मों पर हर दिन दो घंटे से अधिक समय बिताता है। सोशल मीडिया के व्यापक उपयोग ने लोगों के संवाद करने के तरीके और उनके एक-दूसरे के साथ संबंधों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है, और यह बिल्कुल नए और अप्रत्याशित तरीकों से विकसित हो रहा है।

रिश्तों और संचार पर सोशल मीडिया के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव

सोशल मीडिया विभिन्न प्रकार के रिश्तों और संचार पर अच्छे और बुरे दोनों तरह के प्रभाव डाल सकता है। एक ओर, सोशल मीडिया लोगों को प्रियजनों के साथ संपर्क बनाए रखने और नए संबंध बनाने में सक्षम बनाकर उन्हें करीब लाने की क्षमता रखता है। दूसरी ओर, सोशल मीडिया का उपयोग व्यक्तियों को एक-दूसरे से दूर धकेलने की क्षमता रखता है, जिससे टकराव पैदा होता है और उनके रिश्तों में दूरी आ जाती है।

सकारात्मक प्रभाव

शारीरिक रूप से अलग होने पर भी लोग एक-दूसरे के साथ अपने संबंध बनाए रखने में सक्षम होते हैं, जो रिश्तों पर सोशल मीडिया के अच्छे लाभों में से एक है। उदाहरण के लिए, लंबी दूरी के रिश्तों के मामले में, जोड़ों के लिए त्वरित संदेश, वीडियो चौट और सोशल मीडिया के उपयोग के माध्यम से अपने संबंध बनाए रखना संभव है। इसके माध्यम से, वे अपना संबंध बनाए रखने और एक-दूसरे के साथ अपनी दोस्ती को गहरा करने में सक्षम होते हैं। इसके अतिरिक्त, सोशल मीडिया जोड़ों को अपनी भावनाओं को व्यक्त करने और अपने अनुभवों को साझा करने के लिए एक मंच प्रदान कर सकता है। जोड़े अपने रिश्ते के बारे में तस्वीरें, वीडियो और अपडेट पोस्ट कर सकते हैं, जिससे उनके दोस्तों और परिवार को उनकी खुशी में हिस्सा लेने का मौका मिल सके।

नकारात्मक प्रभाव

दूसरी ओर, सोशल मीडिया का उपयोग, पारस्परिक कनेक्शन और संचार पर हानिकारक प्रभाव डाल सकता है। एक हालिया अध्ययन में पाया गया कि 60% से अधिक जोड़े अपने रिश्ते में सोशल मीडिया के उपयोग के बारे में बहस करते हैं। इस तथ्य के परिणामस्वरूप कि सोशल मीडिया रुकावटों और विचलन का कारण बन सकता है, जिसके परिणामस्वरूप असहमति और संघर्ष हो सकते हैं, यह मामला है।

इसके अलावा, सोशल मीडिया के उपयोग से तनाव और अपेक्षाएं हो सकती हैं जो पारस्परिक बातचीत में यथार्थवादी नहीं हैं। उदाहरण के लिए, जोड़ों को सोशल मीडिया पर अपने रिश्ते की एक प्राचीन तस्वीर को लगातार चित्रित करने के लिए महसूस होने वाले दबाव के परिणामस्वरूप अपर्याप्तता और तनाव की भावनाओं का अनुभव हो सकता है।

आमने-सामने संचार पर सोशल मीडिया का प्रभाव

इसके अतिरिक्त, सोशल मीडिया के उदय से आमने-सामने संचार गहराई से प्रभावित हुआ है। इंस्टेंट मैसेजिंग, टेक्स्ट मैसेजिंग और अन्य प्रकार के डिजिटल संचार जैसे डिजिटल संचार तरीकों के प्रसार के परिणामस्वरूप आज कई व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से बात करने की तुलना में अपनी स्क्रीन के माध्यम से अधिक बात करते हैं। इसके परिणामस्वरूप आमने-सामने संपर्क में कमी आई है और साथ ही रिश्तों के भीतर नए संचार पैटर्न और संचार के पैटर्न का निर्माण हुआ है। इसका एक उदाहरण यह तथ्य होगा कि कई व्यक्ति अपने रिश्तों के साथ बातचीत करने के लिए सोशल मीडिया पर तेजी से निर्भर हो रहे हैं। आमने-सामने बातचीत करने के बजाय। संभव है कि इसके परिणामस्वरूप गलतफहमियाँ और गलतफहमियाँ पैदा होंगी, साथ ही साथ निभाए जा रहे रिश्तों में भावनात्मक जुड़ाव और अंतरंगता की कमी भी होगी।

संबंधों में प्रौद्योगिकी की भूमिका

जब रिश्तों की बात आती है, तो प्रौद्योगिकी एक ऐसी भूमिका निभाती है जो जटिल और बहुआयामी दोनों है। एक अर्थ में, प्रौद्योगिकी जोड़ों के लिए उनके रिश्तों को बनाए रखने के मामले में फायदेमंद हो सकती है क्योंकि यह उन्हें शारीरिक रूप से एक-दूसरे से अलग होने पर भी जुड़े रहने में सक्षम बनाती है। यह उन जोड़ों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हो सकता है जो काफी दूरियों के कारण अलग हो गए हैं या जिनके जीवन में बहुत कुछ चल रहा है। उदाहरण के लिए, फेसबुक, व्हाट्सएप और स्काइप जैसे सोशल मीडिया प्लेटफार्मों के उपयोग के माध्यम से, जोड़े एक-दूसरे के साथ संचार बनाए रखने, छवियों और वीडियो का आदान-प्रदान करने और यहां तक कि वर्चुअल डेट पर जाने में सक्षम हैं। दूसरी ओर, प्रौद्योगिकी भी हो सकती है पारस्परिक संबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव। उदाहरण के तौर पर, व्यक्ति अपने इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स पर निर्भरता विकसित कर सकते हैं और अपने रिश्तों के साथ आमने-सामने संचार में कम समय व्यतीत कर सकते हैं। इसके अलावा, सोशल मीडिया निरंतर व्याकुलता का एक स्रोत हो सकता है, जो जोड़ों द्वारा एक साथ बिताए जाने वाले गुणवत्तापूर्ण समय को कम कर सकता है। यह ध्यान देने योग्य है कि प्रौद्योगिकी रिश्तों में लोगों के संवाद करने के तरीके को भी प्रभावित कर सकती है। उदाहरण के लिए, इंस्टेंट मैसेजिंग और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म ने संचार को तेज और अधिक सुविधाजनक बना दिया है, लेकिन इनसे गलतफहमी और गलत व्याख्याएं भी हो सकती हैं। इसके अलावा, प्रौद्योगिकी तक पहुंच में आसानी के कारण आमने-सामने संचार में कमी आई है, जो स्वस्थ संबंधों के निर्माण और रखरखाव का एक महत्वपूर्ण घटक हो सकता है।

रिश्तों और संचार पर सोशल मीडिया के मनोवैज्ञानिक प्रभाव

पारस्परिक संबंधों और संचार पर सोशल मीडिया का प्रभाव तुरंत ध्यान देने योग्य परिणामों से कहीं अधिक है। सोशल मीडिया के कारण अन्य मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी हो सकते हैं, जैसे बेचैनी और चिंता की भावनाओं का विकास। उदाहरण के तौर पर, जो व्यक्ति सोशल मीडिया पर अपने रिश्तों की तुलना दूसरों से करते हैं, वे सोशल मीडिया के उपयोग के परिणामस्वरूप ईर्ष्या और असुरक्षा की भावनाओं का अनुभव कर सकते हैं। दूसरी ओर, सोशल मीडिया रिश्तों और संचार पर भी अच्छा प्रभाव डाल सकता है। एक ऐसा मंच प्रदान करके जो जोड़ों को शारीरिक रूप से एक-दूसरे से अलग होने पर भी अपना संबंध बनाए रखने और बातचीत करने की अनुमति देता है। उदाहरण के लिए, सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म उन जोड़ों को अनुमति देता है जो लंबी दूरी के रिश्तों में हैं, ताकि वे एक-दूसरे के साथ संचार बनाए रख सकें और एक-दूसरे को अपनी दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों से अवगत करा सकें। इस तथ्य के कारण कि वे शारीरिक रूप से एक-दूसरे से अलग हैं, इससे उनके रिश्ते को गहरा करने और उन्हें करीब लाने में मदद मिल सकती है। हालांकि, जब रिश्तों की बात आती है, तो सोशल मीडिया पर अत्यधिक निर्भरता के कारण आमने-सामने की बातचीत में कमी आ सकती है। संपर्क के अवसर. शोध के माध्यम से यह दिखाया गया है कि सोशल मीडिया के उपयोग से वास्तविक जीवन में संवाद करने की क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। इसके परिणामस्वरूप मौखिक संचार कौशल में कमी के साथ-साथ आमने-सामने की बातचीत में इमोटिकॉन्स और संक्षिप्ताक्षरों के उपयोग में वृद्धि हो सकती है। सोशल मीडिया की निरंतर व्याकुलता और उपलब्धता से गुणवत्तापूर्ण समय की मात्रा में भी गिरावट आ सकती है। साथ में समय बिताने के साथ-साथ साझेदारी के भीतर मौजूद घनिष्ठता के स्तर में भी कमी आई है। ऐसी संभावना है कि व्यक्तियों में अपने जीवनसाथी से अलगाव की भावना पैदा होने लगती है क्योंकि वे अपने फोन पर अधिक समय बिताते हैं और एक-दूसरे के साथ बातचीत करने में कम समय बिताते हैं। नतीजतन, इसके परिणामस्वरूप अलगाव की भावनाएँ पैदा हो सकती हैं और अंतरंगता में कमी आ सकती है, जिसका रिश्ते के समग्र स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड़ सकता है।

नकारात्मक प्रभावों के बावजूद, रिश्तों और संचार पर सोशल मीडिया के प्रभाव को कम करना संभव है। ऐसा करने के कुछ तरीके यहां दिए गए हैं:

सीमाएँ निर्धारित करें: किसी रिश्ते में सोशल मीडिया के उपयोग के संबंध में सीमाएँ स्थापित करना महत्वपूर्ण है। जोड़ों को एक सीमा पर सहमत होना चाहिए कि वे अपने फोन और सोशल मीडिया पर कितना समय बिताते हैं और आमने-सामने संचार को प्राथमिकता देने के लिए सचेत प्रयास करना चाहिए। सोशल मीडिया का सकारात्मक उपयोग करें: दूसरों से अपनी तुलना करने के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करने के बजाय अपने पार्टनर से अलग होकर, जोड़े इसका उपयोग अपने रिश्ते को बेहतर बनाने के लिए कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, वे अपने दैनिक अनुभव साझा कर सकते हैं, अपना प्यार और कृतज्ञता व्यक्त कर सकते हैं, या विशेष कार्यक्रमों की योजना बना सकते हैं। समय-समय पर डिस्कनेक्ट करें: सोशल मीडिया और प्रौद्योगिकी से नियमित ब्रेक लेने से जोड़ों को एक-दूसरे के साथ फिर से जुड़ने और उनके आमने-सामने के रिश्ते को बेहतर बनाने में मदद मिल सकती है। संचार कौशल का सामना करें। पेशेवर मदद लें: यदि रिश्तों और संचार पर सोशल मीडिया का नकारात्मक प्रभाव महत्वपूर्ण संकट पैदा कर रहा है, तो जोड़ों को मानसिक स्वास्थ्य पेशेवर की सहायता लेने से लाभ हो सकता है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में, सोशल मीडिया के उपयोग का लोगों के संचार और इंटरैक्शन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। उदाहरण के लिए, जब लंबी दूरी के रिश्तों को बनाए रखने की बात आती है, तो इसका बहुत प्रभाव पड़ सकता है; लेकिन, इसके नकारात्मक प्रभाव भी हो सकते हैं, जैसे आमने-सामने संपर्क में कमी और दोनों पक्षों के बीच घनिष्ठता के स्तर में कमी। फिर भी, जोड़े सोशल मीडिया के नकारात्मक प्रभावों को कम कर सकते हैं और सीमाएँ स्थापित करके, सोशल मीडिया का रचनात्मक उपयोग करके, कभी-कभी इससे हटकर और एक पेशेवर की सहायता लेकर अपने रिश्तों और संचार में सुधार कर सकते हैं। सोशल मीडिया की ताकत इसमें निहित है लोगों को एक साथ लाने की क्षमता, लेकिन इसमें उन्हें दूर धकेलने की भी क्षमता है। हमारी जिम्मेदारी है कि हम इस तकनीक का उपयोग ऐसे तरीके से करें जो हमारे रिश्तों और संचार को बढ़ाए न कि उन्हें और अधिक कठिन बना दे। हम उन लोगों के साथ संबंध विकसित करने में सक्षम होते हैं जिनकी हम परवाह करते हैं जो अधिक मजबूत और संतोषजनक होते हैं जब हमने सोशल मीडिया के प्रभाव का ज्ञान प्राप्त किया है और इसके नकारात्मक प्रभावों को सीमित करने के लिए उपाय किए हैं।

संदर्भ

1. बॉयड, डी (2014)। यह जटिल है: नेटवर्क किशोरों का सामाजिक जीवन। येल यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. एलिसन, एन बी, और बॉयड, डीएम (2013)। सामाजिक नेटवर्क साइटों के माध्यम से सामाजिकता। डटन (एड.), ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ इंटरनेट स्टडीज (पीपी 151-172)। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. - ग्रीव, आर., इंडियन, एम., विटवीन, के., टोलन, जी.ए., और मारिंगटन, जे.(2013). आमने-सामने या फेसबुक: क्या सामाजिक जुड़ाव ऑनलाइन प्राप्त किया जा सकता है? मानव व्यवहार में कंप्यूटर, 29 (3), 604-609।
4. हैम्पटन, के.एन., सेशंस गौलेट, एल., रेनी, एल., और पर्सेल, के. (2011). सामाजिक नेटवर्किंग साइटें और हमारा जीवन। प्यू रिसर्च सेंटर का इंटरनेट एंड अमेरिकन लाइफ प्रोजेक्ट।
5. क्रॉस, ई., वर्डुयन, पी., डेमिरलप, ई., पार्क, जे., ली, डी.एस., लिन, एन., ... और यबारा, ओ (2013)। फेसबुक का उपयोग युवा वयस्कों में व्यक्तिपरक कल्याण में गिरावट की भविष्यवाणी करता है। पीएलओएस वन, 8 (8), ई 69841।
6. मनागो, एएम, टेलर, टी, और ग्रीनफील्ड, पीएम (2012)। मैं और मेरे 400 दोस्त: कॉलेज के छात्रों के फेसबुक नेटवर्क की शारीरिक रचना, उनके संचार पैटर्न और कल्याण। विकासात्मक मनोविज्ञान, 48 (2), 369-380।
7. रेनी, एल, और वेलमैन, बी (2012)। नेटवर्क: नया सामाजिक ऑपरेटिंग सिस्टम। एमआईटी प्रेस।
8. स्टीनफील्ड, सी., एलिसन, एन.बी., और लैम्पे, सी. (2008). सामाजिक पूंजी, आत्म-सम्मान, और ऑनलाइन सोशल नेटवर्क साइटों का उपयोग: एक अनुदैर्ध्य विश्लेषण। जर्नल ऑफ एप्लाइड डेवलपमेंटल साइकोलॉजी, 29 (6), 434-445।
9. तुर्कले, एस (2011)। अकेले एक साथ: हम प्रौद्योगिकी से अधिक और एक-दूसरे से कम क्यों उम्मीद करते हैं। बुनियादी किताबें।
10. वाल्केनबर्ग, पी.एम., पीटर, जे., और शॉटेन, ए.पी. (2006). मित्र नेटवर्किंग साइटें और किशोरों की भलाई और सामाजिक आत्मसम्मान के लिए उनका संबंध। साइबरसाइकोलॉजी एंड बिहेवियर, 9 (5), 584-590।

महाराजगंज जनपद के सामाजिक-आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका

सूरज प्रकाश मिश्रा

सहायक प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग, बापू पी.जी. कॉलेज पीपीगंज, गोरखपुर

सार

भारतीय अर्थव्यवस्था का चरित्र मुख्यत: ग्रामीण है और इसमें अभी भी कृषि क्षेत्र का प्रभुत्व है, जो सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का लगभग पांचवां हिस्सा है और लगभग दो-तिहाई श्रम शक्ति को रोजगार देता है। सम्मानजनक जीडीपी विकास दर (लगभग 5 प्रतिशत प्रति वर्ष) के बावजूद, भारत में बेरोजगारी दर लगभग 15 प्रतिशत है। देश में आम तौर पर और विशेष रूप से कृषि क्षेत्र में रोजगार की गंभीर स्थिति को देखते हुए, इस क्षेत्र में और अधिक नौकरियां पैदा करने के अवसर पैदा करने पर जोर देने की तत्काल आवश्यकता है। भारत में कृषि संवैधानिक रूप से एक राज्य का विषय है और केंद्र सरकार की भूमिका नीति दिशानिर्देश तैयार करने और इस क्षेत्र के लिए वित्तीय संसाधन प्रदान करने तक ही सीमित है। इस पत्र में उत्तर प्रदेश के महाराजगंज जनपद के संदर्भ में सामाजिक-आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्द: कृषि; विकास; उत्पादकता; योजना।

परिचय

भारत सरकार ने बढ़ती आबादी के लिए खाद्य आपूर्ति को बनाए रखने के लिए कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए कृषि के विकास को उच्च प्राथमिकता दी है। गैर-कृषि क्षेत्रों के तेजी से विकास के बावजूद, अधिकांश छोटे, सीमांत और आदिवासी किसानों की आजीविका की जरूरतों को पूरा करने के लिए खेती महत्वपूर्ण बनी हुई है। नई प्रौद्योगिकियाँ किसानों के बीच वांछित सीमा तक नहीं पहुंच पाई हैं। यद्यपि पिछले दस वर्षों के दौरान विभिन्न योजनाएं शुरू करके कृषि क्षेत्र में सुधार के लिए बहुत सारे प्रयास किए गए हैं, फिर भी राष्ट्रीय कृषि उत्पादन, उत्पादकता, आय और इक्विटी संकेतकों में परिणाम वांछित स्तर पर परिलक्षित नहीं हुआ है। यह इन कार्यक्रमों की कार्यान्वयन प्रक्रिया में कुछ कमियों को इंगित करता है और इसलिए कार्यान्वयन रणनीति में सुधार की आवश्यकता है। यह विकास कार्यक्रमों के अधिकतम लाभ का पता लगाने के लिए एक समन्वित योजना और प्राथमिकता की भी मांग करता है। राष्ट्रीय कृषि विकास योजना उपलब्ध पूरक के लिए सही प्रकार का दृष्टिकोण है। विशिष्ट उत्पादन गतिविधियों के संभावित विकास के लिए संसाधन और समग्र जिला योजना अवधारणा के माध्यम से कृषि क्षेत्र के विकास में सुधार के लिए उपलब्ध संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग करने के लिए विभिन्न जिलों की विशिष्ट कृषि-जलवायु और सामाजिक परिस्थितियों के लिए सबसे उपयुक्त अतिरिक्त गतिविधियां शुरू करना होगा।[1]

किसी राज्य के सामंजस्यपूर्ण और समवर्ती विकास के लिए संतुलित क्षेत्रीय विकास महत्वपूर्ण है। इसका तात्पर्य किसी राज्य के सभी क्षेत्रों का समान विकास नहीं है। बल्कि यह सभी क्षेत्रों की विकास क्षमता का उसकी क्षमता के अनुसार उपयोग करने का संकेत देता है ताकि समग्र आर्थिक विकास का लाभ राज्य के सभी क्षेत्रों के निवासियों को मिल सके। 2011 की जनगणना के अनुसार, उत्तर प्रदेश की 77.73 प्रतिशत आबादी ग्रामीण इलाकों में रहती है और कृषि आजीविका का सबसे प्रमुख साधन है। गंगा के मैदानी इलाकों में स्थित, उत्तर प्रदेश अपनी व्यापक कृषि जलवायु परिवर्तनशीलता के कारण विभिन्न प्रकार की फसलें उगाता है। आजादी के बाद से राज्य का कृषि विकास हमेशा सरकार और नीति निर्माताओं द्वारा एक पोषित लक्ष्य रहा है। यद्यपि हरित क्रांति ने कृषि क्षेत्र में भारी सुधार करने में मदद की, लेकिन जनसांख्यिकीय, ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और पर्यावरणीय विशेषताओं से संबंधित कई कारकों के कारण कृषि विकास में असमानताएं असंतुलित क्षेत्रीय विकास का परिणाम हैं। निस्संदेह, सरकार का जोर राज्य के हर जिले में विकास की गति में क्षेत्रीय असमानता को कम करने पर होना चाहिए। इसी ने हमें उत्तर प्रदेश राज्य में कृषि विकास में स्थानिक-अस्थायी असमानताओं का मूल्यांकन करने के लिए काम करने के लिए प्रेरित किया है। किसी भी राज्य की क्षेत्रीय असमानताओं का आकलन एक जटिल प्रक्रिया है और इसे किसी एक संकेतक से आसानी से नहीं समझा जा सकता है। इसे देखते हुए, अयंगर और सुदर्शन (1982) ने विकास के स्तर में स्थानिक अंतर को मापने के लिए एक समग्र सूचकांक की गणना करने के लिए एक पद्धति का प्रस्ताव रखा। बाद में, नारायण और अन्य (1991) ने समग्र विकास सूचकांक के आकलन के लिए एक पद्धति विकसित की। तब से, कुछ विशेष समय अवधि के लिए जिलों को विश्लेषण की इकाई के रूप में लेते हुए विभिन्न राज्यों के लिए अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में विकास के स्तर का अनुमान लगाने के लिए कई अध्ययन किए गए हैं। हरियाणा राज्य के सभी जिलों में सैंतालीस संकेतकों का उपयोग करते हुए दुबे एट अल (2012) ने कृषि, औद्योगिक, ढांचागत और सामाजिक-आर्थिक क्षेत्रों के लिए विकासात्मक प्रयासों की मात्रा निर्धारित की। निजामुद्दीन (2014) ने भारत के विभिन्न राज्यों के लिए बाईस सामाजिक-आर्थिक और पर्यावरणीय स्थिरता संकेतकों के इष्टतम संयोजन का उपयोग करके विकास के स्तर को निर्धारित किया। सिंह और मेहला (2016) ने आठ कृषि विकास संकेतकों के इष्टतम संयोजन पर समग्र सूचकांक की मदद से भारत के सत्रह विभिन्न

राज्यों के कृषि विकास के स्तर का अनुमान लगाया। प्रमुख घटक और विहित सहसंबंध विश्लेषण का उपयोग करना। हुडा एट अल. (2017) ने हरियाणा में सामाजिक आर्थिक और कृषि क्षेत्रों के बीच संबंधों की ताकत को मापने का प्रयास किया।[2]

राज्य के विशाल आकार के कारण, उत्तर प्रदेश राज्य के विभिन्न जिलों में कृषि विकास में असमानुपातिक विकास होने की संभावना है। इस दिशा में कार्य करने के लिए, तीन अलग-अलग समय बिंदुओं अर्थात 2000-01, 2010-11 और 2017-18 के लिए बाईस कृषि संकेतकों पर जिलेवार डेटा प्राप्त किया गया है और विकास के समग्र सूचकांकों की गणना की गई है। यह उत्तर प्रदेश राज्य के विभिन्न जिलों को रैंक करने की अनुमति देता है। जिलों को उनके विकास के स्तर के अनुसार विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत करने का भी प्रयास किया गया है। वर्तमान अध्ययन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि हमने नवीनतम समय अवधि के सभी कम और कम विकसित जिलों के लिए मॉडल जिले का निर्धारण किया है ताकि योजनाकारों और नीति निर्माताओं द्वारा आवंटित मॉडल जिलों को ध्यान में रखते हुए इन जिलों पर उचित ध्यान दिया जा सके। उन्हें कम और कम विकसित जिलों में जिनमें महाराजगंज भी है उनकी कृषि विकास की तेज गति के लिए अध्ययन संभावित लक्ष्यों के आवंटन पर भी प्रकाश डालता है जो भविष्य की योजना के लिए उपयुक्त है।[3]

उत्तर प्रदेश जनसंख्या की दृष्टि से देश का सबसे बड़ा और क्षेत्रफल की दृष्टि से देश का दूसरा सबसे बड़ा राज्य है। राज्य का रिपोर्टिंग क्षेत्र 24.2 मिलियन हेक्टेयर है, जिसमें से खेती योग्य क्षेत्र 16.68 मिलियन हेक्टेयर है। सकल फसल क्षेत्र 25.5 मिलियन हेक्टेयर है। राज्य में फसल सघनता 153 प्रतिशत है। कृषक समुदाय में छोटे और सीमांत किसानों का वर्चस्व है। प्रति किसान औसत जोत का आकार केवल 0.83 हेक्टेयर है। हालाँकि सीमांत किसानों की औसत जोत का आकार 0.40 हेक्टेयर ही है। राज्य भारत के शुद्ध बोए गए क्षेत्र का 11 प्रतिशत हिस्सा है और 41.1 मिलियन टन से अधिक खाद्यान्न का योगदान देता है, जो देश के कुल खाद्यान्न उत्पादन का लगभग 20 प्रतिशत है। राज्य में भारत का 38 प्रतिशत गेहूं, 20 प्रतिशत धान, 21 प्रतिशत गन्ना, 34 प्रतिशत मूंगफली, 17.5 प्रतिशत तोरिया-बीज, 8 प्रतिशत फल और 16 प्रतिशत सब्जियां पैदा होती हैं। उत्तर प्रदेश देश का सबसे बड़ा आलू उत्पादक है, जो कुल उत्पादन में 43 प्रतिशत का योगदान देता है। राज्य 11.7 मिलियन किलो लीटर वार्षिक दूध उत्पादन के साथ देश का सबसे बड़ा दूध उत्पादक राज्य है, जो देश के कुल दूध उत्पादन का 16 प्रतिशत है। विशाल संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए, देश की कृषि क्षेत्र के नेतृत्व वाली आर्थिक वृद्धि को आगे बढ़ाने में राज्य की प्रमुख भूमिका है।[4]

देश की कृषि उपज में सबसे बड़े योगदान और दसवीं पंचवर्षीय योजना में राज्य की विकास दर में कुछ सुधार हासिल करने के बावजूद, यह अभी भी राष्ट्रीय औसत से पीछे है और परिणामस्वरूप, समय बीतने के साथ प्रति व्यक्ति आय में अंतर बढ़ रहा है। फसल, बागवानी, पशुपालन और मछली पालन सहित कृषि क्षेत्र के हर उप-क्षेत्र में आगे विकास की जबरदस्त गुंजाइश है। राज्य के सामने प्रमुख चुनौतियां प्रति व्यक्ति आय में अंतर को पाटना, गरीबी उन्मूलन, मानव विकास सूचकांक में सुधार, प्राथमिक क्षेत्र विशेष रूप से कृषि और पशुपालन उप क्षेत्रों में वृद्धि में सुधार करना है।[5]

राष्ट्रीय कृषि विकास योजना, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन, राष्ट्रीय बागवानी मिशन जैसी नई पहल कृषि उत्पादकता बढ़ाने और कृषि अर्थव्यवस्था को निरंतर विकास पथ पर लाने के लिए शक्तिशाली विकल्प हैं। भारत का सबसे अधिक आबादी वाला राज्य होने के कारण उत्तर प्रदेश का देश की आर्थिक वृद्धि पर बहुत प्रभाव पड़ता है। देश में वांछित कृषि विकास हासिल करने के लिए, यूपी जैसे राज्यों में कृषि क्षेत्र के विकास में सुधार के लिए क्षेत्र विशिष्ट रणनीतियों को अपनाना आवश्यक है।[6]

उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में उत्तर प्रदेश के लिए राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के तहत कृषि क्षेत्र के लिए एक सौ तेरह नए कार्यक्रमों की पहचान की गई है। प्रत्येक जिले के उपलब्ध संसाधनों और अन्य विकासात्मक योजनाओं/कार्यक्रमों से उपलब्ध संसाधनों के साथ इसके अभिसरण को ध्यान में रखते हुए कृषि क्षेत्र के समग्र विकास को प्राप्त करने के लिए फसल क्षेत्र और पशुधन और मत्स्य पालन क्षेत्र दोनों में कार्यक्रम प्रस्तावित किए गए हैं। इन गतिविधियों/कार्यक्रमों की पहचान विभिन्न विश्वसनीय स्रोतों, जिला प्रोफाइल और व्यक्तिगत जिलों के विजन स्टेटमेंट और जिला विशिष्ट आवश्यकताओं के सूक्ष्म विश्लेषण से एकत्र किए गए प्राथमिक और माध्यमिक डेटा के आधार पर की गई है। उगाई गई विभिन्न फसलों, इनपुट की उपलब्धता, पानी की उपलब्धता, मौजूदा कृषि मशीनीकरण सुविधाएं, मौजूदा बीज प्रतिस्थापन दर, पशुधन और मत्स्य पालन क्षेत्र की क्षमता, फलों और सब्जियों के उत्पादन की क्षमता, बाजार और अन्य बुनियादी ढांचा सुविधाओं आदि का विश्लेषण किया गया। राज्य में कृषि के सभी उप क्षेत्रों को ध्यान में रखते हुए एक सतत विकास योजना तैयार करना। प्रत्येक जिले के लिए कृषि उत्पादन और किसानों की लाभप्रदता को बढ़ावा देने की रणनीतियों पर भी काम किया गया है। तदनुसार, जिला कृषि योजनाओं को पंचायती राज संस्थानों (पीआरआई) सर्वेक्षणों और सहभागी ग्रामीण मूल्यांकन के संचालन से शुरू करके नीचे से ऊपर के दृष्टिकोण के साथ विकसित किया गया है।[7]

प्रत्येक जिले के लिए कृषि विकास योजना का विवरण दस्तावेज में दिया गया है। इन योजनाओं में महाराजगंज की प्राकृतिक संसाधनों का अधिक कुशल उपयोग, गुणवत्ता वाले बीज और रोपण सामग्री का उपयोग, बीज उत्पादन, बीज प्रतिस्थापन और बीज उपचार, संतुलित उर्वरक अनुप्रयोग, मिट्टी के स्वास्थ्य का टिकाऊ प्रबंधन, एकीकृत पोषक तत्व और कीट प्रबंधन, कृषि के लिए नए दृष्टिकोण शामिल हैं। पशुधन क्षेत्र में, पशुओं के आनुवंशिक उन्नयन, चारा विकास और संस्थागत सुदृढ़ीकरण, वाणिज्यिक डेयरी फार्मिंग इकाइयों की स्थापना, मिनी-दूध प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना के लिए प्रोत्साहन आदि जैसी रणनीतियों को अपनाया गया है। मत्स्य पालन क्षेत्र में औसत उत्पादकता काफी कम मात्र 2.8 टन प्रति हेक्टेयर है, जिसे पुराने तालाबों के नवीनीकरण, नए तालाबों के निर्माण और नई हैचरी की स्थापना आदि गतिविधियों के माध्यम से 4 टन प्रति हेक्टेयर तक बढ़ाने की योजना बनाई गई है।

यद्यपि महाराजगंज का बड़ा क्षेत्र सिंचाई के अंतर्गत आता है, फिर भी कम जल उपयोग दक्षता के कारण कृषि क्षेत्र से अपेक्षित लाभ प्राप्त नहीं हो पाता है। जिला योजनाओं में नवीनतम कृषि जल प्रबंधन प्रौद्योगिकियों को अपनाकर, सतही जल सिंचाई की कुशल वितरण प्रणाली, उच्च मूल्य वाली फसलों और पानी की कमी वाले क्षेत्रों में ड्रिप और सिंप्रकलर सिंचाई को प्रोत्साहित करके जल उपयोग दक्षता में सुधार के लिए संभावित रणनीतियों पर काम किया गया है। कृषि विकास को आर्थिक लाभ में बदलने के लिए आईसीटी, मृदा विश्लेषण, बीज उपचार, भंडारण, विपणन, मूल्य संवर्धन आदि जैसे क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे और मानव संसाधन विकास पर भी ध्यान केंद्रित किया गया है।[8]

महाराजगंज जिले की अर्थव्यवस्था मुख्यत: कृषि पर आधारित है। जिले की अधिकांश भूमि का उपयोग कृषि प्रयोजनों के लिए किया जाता है। इसकी आधी से अधिक आबादी अपनी आजीविका कमाने के लिए कृषि में लगी हुई है। जिले में मुख्य कृषि उत्पाद गेहूं, चावल, गन्ना, आलू, आम, अमरूद, केला, सब्जियां आदि हैं। जिले के किसानों के बीच नई कृषि प्रौद्योगिकियों को अपनाने से विभिन्न कृषि वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने में मदद मिलती है। हर साल इन कृषि उत्पादों से आने वाले राजस्व का एक हिस्सा इसकी अर्थव्यवस्था में काफी हद तक मदद करता है। जिले का औद्योगीकरण बहुत कम है लेकिन इसमें कुछ कृषि आधारित और दैनिक उद्योग हैं। वर्ष 2006 में पंचायती राज मंत्रालय ने महाराजगंज को देश के 250 सबसे पिछड़े जिलों में से एक घोषित किया और वर्तमान में पिछड़ा क्षेत्र अनुदान निधि कार्यक्रम से धन प्राप्त कर रहा है। वर्ष 2020-21 में जिले का सकल घरेलू उत्पाद वर्तमान कीमत पर रू- 1461797 लाख, वर्ष 2011-12 के दौरान स्थिर कीमतों पर रु. 874229 लाख, 2020-21 की अवधि के दौरान जिले में शुद्ध घरेलू उत्पाद वर्तमान कीमत पर रुध- 1283750 लाख, वर्ष 2011-12 में स्थिर मूल्यों पर रु. 743282 लाख प्रति व्यक्ति आय या एनडीडीपी है। 2020-21 की अवधि के दौरान जिले में फैक्टर लागत वर्तमान कीमत पर रु- 40392 रु- वर्ष 2011-12 में स्थिर कीमतों पर रु 23287 है।[9]

समग्र विकास दर का अनुमान विभिन्न उप-क्षेत्रों में विभिन्न जिलों की क्षमता और उनकी भूमि उपयोग और समग्र रूप से सामाजिक स्वीकृति को ध्यान में रखते हुए लगाया गया है। ये जिला कृषि योजनाएं सभी क्षेत्रों में विकास दर बढ़ाने में सहायक होंगी। यदि परियोजनाओं और कार्यक्रमों को डिजाइन किए गए तरीके से अपनाया जाता है, तो डीएपी को अपनाने के बाद बागवानी सहित फसल क्षेत्र में वार्षिक वृद्धि दर 11.35 प्रतिशत अनुमानित की गई है। हालाँकि, डेयरी में 0.33 प्रतिशत और मत्स्य पालन में 0.725 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर केवल बेहतर दुधारू मवेशियों और नए पुनर्निर्मित तालाबों के साथ ही प्राप्त की जा सकती है। यह कम विकास दर इस कारण से है कि पांच साल की छोटी अवधि में राज्य में डेयरी उत्पादन की कुल मात्रा के मुकाबले केवल सीमित संख्या में डेयरियों में सुधार/स्थापना की जा सकी है। इसी तरह, एक योजना अवधि में मछली पालन के लिए सीमित संख्या में तालाबों का निर्माण किया जा सकता है। फिर भी, इस कम वृद्धि के बावजूद, आरकेवीवाई को अपनाने के बाद समग्र रूप से कृषि क्षेत्र की विकास दर 8.80 प्रतिशत प्रति वर्ष होने का अनुमान है।

निष्कर्ष

उत्तर प्रदेश भारत का कृषि महाशक्ति है। मुख्य रूप से कृषि प्रधान होने के कारण, उत्तर प्रदेश की अर्थव्यवस्था कृषि से काफी प्रभावित है, जो इसकी कुल आबादी के लगभग 65 प्रतिशत के भरण-पोषण का साधन है। अनिवार्य रूप से, राज्य की आर्थिक वृद्धि और विकास यूपी में कृषि क्षेत्र के विकास पर बहुत अधिक निर्भर है। यह देखा गया है कि वर्षों से समान प्रयास करने के बावजूद, महाराजगंज के विभिन्न हिस्सों में कृषि क्षेत्र में विकास की गति में काफी भिन्नता है। इसी ने हमें महाराजगंज में कृषि विकास में स्थानिक-अस्थायी असमानताओं का मूल्यांकन करने के लिए काम करने के लिए प्रेरित किया है। विकास के समग्र सूचकांक का उपयोग करते हुए, यूपी के सभी जिलों को तीन अलग-अलग समय बिंदुओं के लिए कृषि विकास के विभिन्न स्तरों में वर्गीकृत किया गया है। जिले के सभी कम और कम विकसित जिलों के लिए मॉडल जिलों और संभावित लक्ष्यों की पहचान करने के लिए भी काम किया गया है।

संदर्भ

1. भाटिया, वी.के., गुप्ता और एस.सी. राय (2004) छोटे क्षेत्रों में सामाजिक आर्थिक विकास का मूल्यांकन, परियोजना रिपोर्ट योजना आयोग, भारत सरकार, नई दिल्ली।
2. दुबे, एम., वी. मनोचा और एस. लाकड़ा (2012) हरियाणा में विकास के स्तर में क्षेत्रीय असमानताओं का सांख्यिकीय मूल्यांकन, आईएफआरएसए का इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कंप्यूटिंग, 2(2), 380-386।
3. हुडा, ई., वी., मनोचा, बी.के. हुडा और एन. तंवर (2017) हरियाणा में क्षेत्रीय कृषि और सामाजिक आर्थिक असमानताओं के प्रमुख आयाम, अनुसंधान में प्रगति, 10(6), 1-11.
4. अयंगर, एन.एस. और पी. सुदर्शन (1982) बहुभिन्नरूपी डेटा से क्षेत्रों को वर्गीकृत करने की एक विधि, आर्थिक एवं राजनीतिक साप्ताहिक, 18, 2047-2052।
5. नारायण, पी., एस.सी. राय और शांति सरूप (1991) उड़ीसा में विकास का सांख्यिकीय मूल्यांकन, जर्नल ऑफ इंडियन सोसाइटी ऑफ एग्रीकल्चरल स्टैटिस्टिक्स, 45, 249-278।
6. निजामुद्दीन, एमडी (2014) भारत में विकास के स्तर में क्षेत्रीय असमानताओं पर एक अनुभवजन्य अध्ययन: राज्यवार विश्लेषण, जीई-इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मैनेजमेंट रिसर्च, 2(8), 238-255।
7. सिंह, एस. और वी. मेहला (2016) भारतीय राज्यों में कृषि विकास स्तर की असमानताएँ, कृषि विज्ञान का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, 62(8), 3533-3535।
8. चेन, वाई., याकी, एल., हाओ, जेड., क्वाओझी, डब्ल्यू., यानझोंग, एल. (2022) खनन क्षेत्रों में भारी धातु-प्रदूषित खेती योग्य भूमि के प्रति किसानों का अनुकूल व्यवहार: किसानों की विशेषताओं का प्रभाव और धारणाओं की मध्यस्थ भूमिका, पर्यावरण अनुसंधान और सार्वजनिक स्वास्थ्य के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल 19(6718): 1-17.
9. कोस्टेंटिनी, वी., माजांती, एम., मोंटिनी, ए. (2013) पर्यावरणीय प्रदर्शन, नवाचार और स्पिलओवर। एक क्षेत्रीय NAMEA, पारिस्थितिक अर्थशास्त्र से साक्ष्य, 89(सी): 101-14.

जीवनी परक उपन्यास का उद्‌भव

मधु गुप्ता

शोधछात्रा, हिन्दी विभाग मगध विश्वविद्यालय बोधगया

हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में जीवनीपरक उपन्यास का विशेष स्थान है। हिंदी साहित्य के विधा में जीवनीपरक उपन्यासों की शक्ति लगातार बढ़ती जा रही है। लेखक, कवि, उपन्यासकार, निबंधकार, विद्वान व अनेक महापुरुषों के ऊपर जीवनियाँ लिखी गई है। हिंदी साहित्य में जीवनी परक उपन्यास लिखने की परंपरा है। जो इन संत, महात्मा, और महापुरुषों के जीवन को उपन्यास की कथा वस्तु में बांधकर पाठक के सामने प्रस्तुत करते हैं। ख्यातिप्राप्त और महान चरित्र को केंद्र में रखकर नायक और नायिका व अन्य वर्गों में जीवनीपरक उपन्यास लिखे जा रहे हैं। आधुनिक युग में इस परंपरा में कुछ कमी आई है। मुंशी प्रेमचंद, शरतचंद्र, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि लेखकों ने जो जीवनी पर उपन्यास लिखे, उनके केंद्र में समकालीन समाज, मध्यवर्ग, दलित, शोषित, स्त्री, किसान और अन्य लोग, जिन्हें हम सामाजिक और सांस्कृतिक तौर पर उत्पीड़न का समूह कहते हैं।

जीवनीपरक उपन्यासों का ऐतिहासिक आधार होता है। किंतु इन उपन्यासों में लेखकों का ऐतिहासिक वातावरण एवं घटना की अपेक्षा कथानक की ओर उन्मुख रहता है।

गोपाल राय के अनुसार

"ऐतिहासिक व्यक्तियों के जीवन पर आधारित उपन्यास वस्तुतः अतीताश्रित उपन्यास का ही एक प्रकार है। हिंदी में इस उपन्यास धारा की शुरुआत हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत 'बाणभट्ट की आत्मकथा' (1946 ई.) से हुई।"[1]

संत, महापुरुषों एवं साहित्यकारों के व्यक्तित्व के आधार पर जीवनीपरक और औपन्यासिक का किला खड़ा करते हैं। उपन्यासकारों ने पात्रों के चरित्र निर्माण के साथ कथा निर्माण के क्षेत्र में स्वतंत्रता पूर्वक कार्य करता है। प्रस्तुत उपन्यासों में नायक का चरित्र अनेक रूपों में व्यक्त होता है। उपन्यासों में अलग एक अन्य श्रेणी जीवनीपरक उपन्यासों में मौलिक विशेषता यह रहती है कि इनमें उपन्यासकार ने अपने विचारों के मध्य उस पात्र की बातें और कार्य निर्धारित होते हैं।

जीवनीपरक उपन्यासों के क्रमबद्ध कतिपय समालोचक वृंदावन लाल वर्मा के उपन्यास "झांसी की रानी" में जीवनी परक उपन्यास को हिंदी का प्रथम जीवनीपरक उपन्यास माना जाता है। जीवनीपरक उपन्यास के लेखक जिसमें अमृतलाल नागर, विशंभर नाथ उपाध्याय, भैरव प्रसाद गुप्त, रांगेय राघव, गिरिराज किशोर आदि कथाकारों के नाम उल्लेखनीय है।

रांगेय राघव ने जीवनी पर एक उपन्यास के क्षेत्र में अपनी मौलिक प्रस्तुति दी है। युग निर्माता संत, महात्मा, महापुरुषों तथा जीवनी साहित्य के श्रेष्ठ कवियों के चरित्र को केंद्र बिंदु में रखकर जीवनीपरक उपन्यासों का संसार फल- फूल रहा है।

मैथिल कोकिल कवि विद्यापति के जीवन चरित्र पर आधारित उपन्यास "लखिमा की आंखें" एक ब्राह्मण यात्री की स्मृति के आधार पर लिखा गया है। विद्यापति का संबंध मिथिला के शासकों से अधिक रहा है। विद्यापति, राजा शिव सिंह और कीर्ति सिंह के अधिक निकट थे। विद्यापति के व्यक्तित्व में बहुमुखी प्रतिभा थी। इनमें पांडित्य, कला, रसिकता और भावुकता का अद्‌भुत सामंजस्य था। यह उपन्यास विद्यापति के गीतों के सौष्ठव को रेखांकित करता है।

अमृतलाल नागर द्वारा रचित जीवनीपरक उपन्यास "खंजन नयन" सूरदास के जीवन पर आधारित है। इसमें सूरदास के कवि रूप और भक्त रूप को दिखाया गया है। इस उपन्यास में आंखों से कुछ भी ना देख पाने वाले सूरदास ने कृष्ण के लीलाओं का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। अमृतलाल नागर ने सूरदास को लौकिकता और अलौकिकता के धरातल पर सामान्य मनुष्य के समानांतर प्रतिष्ठित किया है। अंधे कवि की आंतरिक और बाह्य जिज्ञासा, छटपटाहट और जिजीविषा को बड़े मनोयोग से चित्रित किया है। इस जीवनीपरक एक उपन्यास में सिकंदर लोदी का आक्रमण तथा आगरा को राजधानी बनाने की ललक ने सूरदास के विकासोन्मुख व्यक्तित्व का चित्रण किया गया है।

गिरिराज किशोर ने गांधी जी के जीवनी पर "पहला गिरमिटिया" उपन्यास लिखा। गिरिराज किशोर इस जीवनी परक उपन्यास के लेखन के क्षेत्र में एक नया आयाम प्रस्तुत करते हैं। इस उपन्यास में महात्मा गांधी का दक्षिण अफ्रीका में संघर्ष को केंद्र में रखकर इस उपन्यास की रचना की गई है। महात्मा गांध ी 'राष्ट्रपिता' होने के साथ-साथ आज के इतिहास पुरुष भी हैं। इतिहास और उपन्यास का गांधी होते हुए भी गिरिराज किशोर के विजन के गांधी हैं। जो भारत का "पहला गिरमिटिया" है। गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका के गिरमिटिया की नीयत से अपने आप को जोड़ लिया है।

"गिरमिटिया पर अंगूठा लगा और लगाने वाला आदमी से गिरमिटिया बन गया द्य गिरमिटिया का मतलब काम और गुलामी, राशन शुरू। काम और गुलामी ज्यादा, राशन कम।"[2]

'तोड़ो कारा तोड़ो' जीवनीपरक उपन्यास नरेंद्र कोहली ने लिखा। यह उपन्यास स्वामी विवेकानंद की जीवनी पर आधारित है। नरेंद्र कोहली जी ने इसको छह खण्डों की श्रृंखला में विभाजित किया है। जीवनीपरक उपन्यास के क्षेत्र में यह रचना अद्‌भुत एवं मौलिक रचना शक्ति का परिचय देती है। नरेंद्र कोहली ने स्वामी विवेकानंद पर आधारित इस जीवनीपरक उपन्यास के 6 खण्डों का कल - क्रम इस प्रकार दिया है - 'तोड़ो कारा तोड़ो' प्रथम भाग निर्माण 1992, द्वितीय भाग साधना 1993, तृतीय भाग परिव्राजक 2003, चतुर्थ भाग निर्देश 2004, पंचम भाग संदेश 2009, षष्ठ भाग प्रसार में, पूर्ण किया गया है। इस जीवनीपरक उपन्यास में स्वामी विवेकानंद के अंतर्द्वंद्व, आत्मविश्वास, कर्तव्यनिष्ठ, प्रखर वक्ता और लोकनिष्ठा की प्रखर अभिव्यक्ति हुई है। नरेंद्र कोहली ने स्वामी विवेकानंद जी की जीवनी पर आधारित दूसरा महत्वपूर्ण उपन्यास "ना भूतों ना भविष्यति" देश के इतिहास और संस्कृति पर अद्वितीय छाप छोड़ने वाले विवेकानंद के व्यक्तित्व और उस युग पर लिखा गया उपन्यास है। इस उपन्यास में नरेंद्र कोहली ने स्वामी विवेकानंद के लक्ष्य, कर्म और उनके संघर्ष की कथा को चित्रित किया गया है।

जीवनी पर उपन्यासों के लेखक ने युग निर्माताओं को युग की सीमाओं के बीच देखते हुए मानवता के विकास में उनके साहित्यिक - सांस्कृतिक अवदानों का मौलिक मूल्यांकन किया है। इन जीवनीपरक उपन्यासों में तदयुगीन परिस्थितियाँ वर्णित महापुरुषों के व्यक्तित्व को उद्‌घाटित करने में सहायक सिद्ध हुई हैं।

सन्दर्भ सूची:-

1. हिन्दी उपन्यास का इतिहास - प्रोफेसर गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 6 वाँ संस्करण - 2016, पृष्ठ - 454 - 455
2. पहला गिरमिटिया - गिरिराज किशोर, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 1996, पृष्ठ संख्या - 12
3. रांगेय राघव के उपन्यासों का शास्त्रीय अनुशीलन - डॉ. लाल साहब सिंह, प्रकाशन: संजय बुक सेंटर, प्रथम संस्करण - 1998, पृष्ठ संख्या- 143

हिन्दी और भारतीय भाषाओं का विकास

शैलजा

एम०ए०, हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

सितम्बर के महीने में कुछ ऐसी विशेषता है कि वह सरकारी कार्यालयों एवं सार्वजनिक प्रतिष्ठानों में ताजगी पैदा कर देता है। चारो ओर फैला उत्सवी माहौल, उल्लास, सांस्कृतिक कार्यक्रम, प्रश्न मंच, वाद-विवाद प्रतियोगिताएं निबंध लेखन आदि की तैयारी के कारण हवा में रंग सा बिखेर देता है। हिन्दी दिवस 14 सितम्बर को तो मनाया जाता है, सारा पखवाड़ा ही समारोहों से भर जाता है। राजभाषा की महिमा में गोष्ठियां व परिसंवाद होते हैं। हिन्दी की उपयोगिता और महत्ता की चर्चा और प्रशंसा की धूम सी मच जाती है।

पर सच तो यह है कि आज भी वह वर्ग जिसका सांस्कृतिक वर्चस्व है उसके अंग्रेजी प्रेम के कारण नई-नई आशंकाएं और दुर्भावनाएं पनप रही हैं और इसको अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं का एक वर्ग लगातार हवा देता है। हिन्दी के अतिरिक्त दूसरी भारतीय भाषाएं भी इस मानसिकता की शिकार हो रही हैं। समूचे सार्वजनिक जीवन में अंग्रेजी लेखक एवं पत्रकार फतवा देते रहते हैं कि देश की सभी भाषाएं पिछड़ी हुई हैं, उनका शब्द भण्डार अपर्याप्त है, आज की जरूरतों के संदर्भ में उनका साहित्य भी अविकसित है।

इस तरह का दुष्प्रचार वर्षों से होता आ रहा है। और आश्चर्य तो यह है कि यही अंग्रेजी पत्र किसी एक भाषा को बजारू, अपरिपक्क या पिछड़ी कह कर या किसी एक क्षेत्रीय भाषा के साहित्य को सिर-आंखों पर चढ़ाकर भारतीय भाषाओं में भी चेष्टा की जाती हैं। इस तरह की टिप्पणियों से अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी विरोध की भावना फैलाने की चेष्टा की जाती हैं। देश की एकता के लिए खतरे से लेकर, विज्ञान के क्षेत्र ही नहीं, सुशिक्षित हिन्दी भाषी भी अंग्रेजी की जय जयकार करने को तत्पर रहते हैं। ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता यू. आर. अनन्तमूर्ति ने कुछ दिनों पहले कहा था कि भाषा की दरिद्रता की बात हमने अपनी सुविधा के लिए निकाली हैं। मैं मानता हूं कि कोई भी भाषा के प्रयोग से कोई संबंध नहीं होता है? यदि नौकरियों या पदोन्नति के सारे मार्ग या सार्वजनिक जीवन में ऊंचा उठने के लिए हिन्दी या भारतीय भाषाओं की जरूरत नहीं है तो वे कैसे विकसित होंगी?

हिन्दी के प्रति आज जिस प्रकार के दुराग्रह फैले हैं उसका बहुधा सही अनुमान लगाना महानगरों में कार्यरत लोगों को नहीं है पर दूरदराज के गांवों और कस्बों में लोगों की दिनचर्या में यही तीव्रता से महसूस किया जा सकता है। उन विकसित देशों में जहां अंग्रेजी के अलावा दूसरी भाषाएं बोली जाती हैं वहां कोई भी दवा या उपचार की वस्तु का बिकना अवैध है जहां क्षेत्रीय या स्थानीय भाषा भी प्रयुक्त न हो। इसी तरह आधुनिक जीवन की बहुतेरी सुविधाओं का एक सामान्य उपभोक्ता उपयोग आश्वस्त होकर नहीं कर सकता हैं। क्योंकि पैक की हुई चीजों पर लेबल या उसमें प्रयोग विधि के निर्देश अंग्रेजी में होते हैं। बचत के सामान्यार्थक माध्यम चाहे वे म्युचुअल फंड या निवेश अथवा बीमा की कंपनियां हों। उनका साहित्य अधिकतर अंग्रेजी में होता है। हमारी विधि -व्यवस्था भी ऐसी है कि किसी शिकायत या स्थिति से सारक्षण के लिए उसे वही कानून जानना है जो सब अंग्रेजी में छपते हैं। गांव-गांव में टीवी होने के बाद भी कार्यक्रमों के शीर्षक ज्यादातर अंग्रेजी में ही होते हैं। वे कार्यक्रम हिन्दी में ही क्यों न हों।

आज जापान, ताईवान, चीन, दक्षिणी कोरिया, थाईलैण्ड इन सभी ने अपनी भाषा से ही आर्थिक प्रगति की। यूरोपीय महाद्वीप के सबसे बड़े राज्य अंग्रेजी का प्रयोग नहीं करते थे। हमारे शहरों का तो यह हाल है कि आपको जापानी, फ्रैंच और जर्मन सीखने के केन्द्र तो मिल जाएंगे पर भारतीय भाषाओं के अध्ययन की सुविधा कहीं उपलब्ध नहीं होगी। यह केवल भारतीय भाषाओं की खासकर देवनागरी लिपि की विशिष्टता है कि वह जैसी लिखी जाती है वैसा ही उसका उच्चारण होता है। एक ओर जापानी, चीनी और कोरियाई भाषा चित्रात्मक होने पर भी वहां के वासी असुविधाओं के बावजूद उनसे प्यार करते हैं। पर हमारी भाषाओं के वैज्ञानिक विकास के बावजूद भी अंग्रेजी की अपेक्षा उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता है। जो अपनी चीजों पर गर्व नहीं कर सकते वे इस नई शताब्दी में सिर ऊंचा उठाकर चलने का दावा नहीं कर सकते।

संपन्न लोगों के घरों से और उनकी बातचीत के आधार के रूप में हिन्दी और अन्य भाषाएं धीरे-धीरे निर्वासित हो रही हैं। अंग्रेजी का प्रयोग चाहे वह खिचड़ी के रूप में हो, समाज में धनी लोगों के वर्ग या स्तर से जुड़ चुका है और परोक्ष रूप से यह स्थिति हिन्दी की प्रगति के मार्ग में रोड़ा बन रही हैं। ऐसा लगता है कि जब-जब औपचारिक अवसर आते हैं सबको खुश रखने के लिए सरकारी कार्यालयों में प्रतीकात्मक रूप से हिन्दी को अपनाने का दिखावा किया जाता है। सार्वजनिक समारोहों में राष्ट्रभाषा की अस्मिता, अपनी विशिष्ट पहचान या इसे एकता की जड़ कहना एक बात है इसके प्रति ममत्व दिखाना दूसरी बात है।

धीरे-धीरे पिछले कई वर्षों में हिन्दी की दशकों से प्रकाशित होती हुई प्रतिष्ठित पत्रिकाएं बंद हो गई। एक समय लगभग 40-50 वर्ष पहले हिन्दी में अनुवादों के प्रकाशन का प्रचलन इतना था और शरत चंद्र के उपन्यासों को इतना पढ़ा जाता था कि बहुत से पाठक उन्हें हिन्दी का लेखक मानते थे। आज क्षेत्रीय भाषाओं के अंग्रेजी अनुवादों की दुर्गति तो इतनी है कि वासुदेव नायर जिनको ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला था उसकी भी एक वर्ष में कुल मिलाकर 69

प्रतियां ही बिकी। इसी तरह हिन्दी के जो भी चर्चित उपन्यास अंग्रेजी में अनुवादित हुए उनको भी अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं द्वारा अनदेखा करने के कारण कोई महत्व न मिला। सरलता और व्यापकता के बावजूद भी अगले दशक में हिन्दी की क्या स्थिति होगी यह वर्तमान मानसिकता द्वारा ही निश्चित होगी।

इस बात की ओर श्री अनन्तमूर्ति ने कुछ दिनों पहले मुम्बई की एशियाटिक सोसाइटी के हाल में आयोजित साहित्य गोष्ठी में कड़े शब्दों में ध्यान दिलाया था। उन्होंने कहा था कि वर्तमान स्थिति अनुकूल न होने के बावजूद उन्हें विश्वास है कि हिन्दी और भारतीय भाषाएं वैश्वीकरण और अंग्रेजी की चुनौती स्वीकार कर सकती हैं। वे महसूस करते हैं कि भारत में अंग्रेजी लेखन को आवश्यकता से अधिक महत्व इसलिए दिया गया क्योंकि हमारे देश में अंग्रेजी ग्रंथों का एक बहुत बड़ा बाजार कायम हो गया है। क्षेत्रीय भाषाओं की ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा उन्होंने यह भी उदाहरण दिया कि ग्रांटा और न्यूयार्कर के कुछ अंकों में जो भारत की स्वतंत्रता के पच्चासवें वर्ष के उपलक्ष्य में और बाद में वर्षों तक निकाले गए थे उनमें भारतीय साहित्य की समीक्षा के नाम पर अंग्रेजी में लिखने वालों को ही महत्व दिया गया था। भारत में विदेशों से आयतित अंग्रेजी पुस्तकों का विपणन रू. 2000 करोड़ का पहुंच गया है। इसलिए भी इंग्लैण्ड और अमेरिका का आर्थिक स्वार्थ भारत में अंग्रेजी के फलने-फूलने से जुड़ा है। यह तथ्य नकारा नहीं जा सकता है।

बड़े-बड़े लक्ष्यों की बातें आज उतनी सार्थक नहीं है जितनी मानसिकता का प्रश्न। जब संविधान सभा ने 14 सितम्बर सन् 1949 में हिन्दी को राजभाषा बनाने का प्रस्ताव बहुत लंबी चर्चा के बाद स्वीकार किया था तब देश की 32 करोड़ जनसंख्या में 14 करोड़ हिन्दी भाषी थे और देवनागरी लिपि को अपनी भाषा में प्रयोग करने वाले तीन करोड़ से अधिक व्यक्ति थे। पर उसका समर्थन लगभग सभी अहिन्दी भाषी नेताओं ने एक स्वर में किया था जैसे एन. गोपाल स्वामी आयंगर, श्यामा प्रसाद मुखर्जी और कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी। प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को कोसने से नहीं चूकते जिन्होंने उनके अनुसार अपने निर्णायात्मक मत से हिन्दी को राजभाषा बनाया था। यह लांछन सत्य से दूर है और संविधान सभा के दस्तावेजों पर आधारित नहीं है।

शुरू-शुरू में हिन्दी दिवस मनाने की परिकल्पना यह थी कि जिस दिन हिन्दी को केन्द्र सरकार की राजभाषा बनाने का प्रस्ताव स्वीकार किया गया उस दिन की याद को एक अधूरे काम को पूरा करने के संकल्प दिवस के रूप में मनाया जाए। हिन्दी की उत्तरोत्तर प्रगति का ब्योरा लिया जाए और रास्ते में आने वाली बाधाओं से कैसे निपटा जाए। उस समय यह काम स्वयंसेवी संस्थाओं और अहिन्दी भाषी हिन्दी प्रेमियों के माध्यम से मूल रूप से सरकार के भरोसे छोड़ दिए गए हैं। स्वतंत्रता की आधी सदी के बाद भी देश की मुख्य भाषायी भूमिका इन्हीं सब कारणों से अंग्रेजी ने अपने हाथ में ली हुई है। हिन्दी को जो स्थान मिलना चाहिए जिसकी वह अधिकारिणी है तभी संभव है जब यह विषय, राजनैतिक स्वार्थों एवं दबावों से दूर, निष्पक्ष होकर हम सब सोच सकें।

संदर्भ सूची

- दैनिक ट्रिब्यून
- जनसत्ता
- नवभारत टाइम्स जनसत्ता
- इंडिया टुडे
- अच्छी हिन्दी: संभाषण एवं लेखन–तेजपाल चौधरी
- भारत सरकार की राजभाषा नीति–अरविन्द कुलश्रेष्ठ
- आधुनिक संदर्भों के परिपेक्ष्य में हिन्दी भाषा और साहित्य–आनंद मोदक

कबीर की प्रामाणिकता: मिथक, किंवदंती और प्रक्षेप

सिद्धार्थ कुमार

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

शोध सार:

मध्यकालीन संतों में कबीर बहुश्रुत और अग्रगण्य सन्त हैं। सामंतवादी व्यवस्था के खिलाफ संघर्षशव्यक्ति हैं। संत कबीर एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। लेकिन सामंत वादी व्यवस्था ने इन्हें ऐतिहासिक नहीं रहने दिया। संत कबीर ने कुरीतियों एवम वाह्यआडंबरों का डटकर विरोध किया। उनकी यही विरोधी नीति तत्कालीन धर्म के ठेकेदारों को हजम नहीं हुई, तो इनके जीवन को मिथकों एवं किंवदंतियों से तथा इनकी वाणी को प्रक्षिप्तों से भर दिया है। इसी बात की चर्चा आगे लेख मे करेगें।

बीज शब्द

1 किंवदंती क्या है?

2 कबीर के गुरु रामानन्द: किंवदंती

3 कबीर विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न: मिथक

कबीर ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। लेकिन कुछ लोगों के विचारधारा ने उन्हें ऐतिहासिक नहीं रहने दिया। हिंदू और मुस्लिम ने मिलकर कबीर के जीवन को मिथकों, किंवदंतियों और बहुत सारे चमत्कारों से ढक दिया है। उनके कृतित्व को प्रक्षिप्तों से वैचारिक और दार्शनिक स्तर पर विकृत करने की कोशिश की। इसका परिणाम यह हुआ कि कबीर के गुरु के रूप में सगुण वैष्णव ब्राह्मण रामानंद ऐतिहासिक तथ्य की तरह स्वीकार किए गए। एच. एच. विल्सन के बहाने प्रोफेसर पुरुषोत्तम अग्रवाल को स्वीकार करना पड़ा कि- "इन दो सौ सालों में इतने सारे और इतने परस्पर विरोधी कबीर हमारे सामने प्रस्तुत किए गए हैं कि ऐतिहासिक कबीर तक पहुंचना नामुमकिन सा लगने लगता है।[1]" लेकिन हाय-हाय करते हुए इसमें भी वह दोष बर्तानी भारत के पिछले दो सौ सालों की औपनिवेशिक आधुनिकता के अध्ययन को दे रहे हैं कि कबीर को रामानंद के शिष्य और वैष्णव होने की स्वीकृत में गहरी दरार डाल दी। वे यह जानना और मानना भूल गए हैं कि कबीर की ऐतिहासिकता के साथ जो भी गलत सही किया है वह भारतीयों ने किया है। अपने इन्हीं भारतीय पुरखों के बचाव की पशोपेश में अग्रवाल जी ने सारी संभावनाओं पर पानी फेरते हुए लिखा है- "इसलिए कबीर ही नहीं इनमें से किसी के बारे में भी शुद्ध अत: साक्ष्य के आधार पर ठेठ आधुनिक किस्म की जीवनी जिज्ञासा की दृष्टि तो असंभव है।[2]" पुरुषोत्तम अग्रवाल ने प्रक्षिप्तों के बचाव में लिखा- "कबीर की लोकमान्य रचनाओं को नकारने में उन असंख्य कबीर कवियों का अपमान निहित है, जिन्होंने अपनी सुंदर रचनाए रच कर उन पर अपने नाम की छाप छोड़ने के बजाय अपने त्याग और बलिदान को अमर कर दिया।[3]" प्रोफेसर पुरुषोत्तम अग्रवाल ने ऐसी प्रक्षिप्त रचनाओं का अपमान करके कबीर का सम्मान करने के दावे को व्यर्थ मानते हुए लिखा-जिस विवेक की कसौटी पर कसकर कबीर के श्रोताओं ने उप रचनाओं को कबीर रचना होने का गौरव दिया है, उसका अपमान करते हुए कबीर का सम्मान करने के दावे व्यर्थ हैं। इस तरह प्रोफेसर पुरुषोत्तम अग्रवाल कबीर की ऐतिहासिकता जीवन और वाणी की ऐसी दुर्दशा करने वालों के बचाव में उतर आए हैं। पहले ऐतिहासिक कबीर तक पहुंचने को नामुमकिन घोषित कर दिया, दूसरे उनकी जीवनी के वास्तविक संघर्ष को किंवदंतियों द्वारा अलौकिकताओं और चमत्कारों से भर दिया और तीसरे उनकी ओर से रचनाओं को उप-रचनाओं की जारज रचनाओं से स्थानापन्न कर दिया। कबीर विषयक इन किंवदंतियों और प्रक्षिप्तो को दोहराने की प्रवृत्ति हिंदी आलोचना की शुरुआत से ही दिखती है। ऐतिहासिक कबीर और उसके कृतित्व को किंवदंतियों और प्रक्षिप्तों के आधार पर समझने की सारी कोशिश व्यर्थ जाएगी। जो लोग और समाज कबीर के बारे में सच जानना चाहते हैं उनकी किंवदंती और प्रक्षिप्त पर झाड़ू फेरना पड़ेगा। झूठ का बचाव किसी हालत में नहीं किया जा सकता है।[4] इतिहास पर पर्दा डालने और झूठ के संस्कृतिकरण के अपने खतरे हैं। डॉ धर्मवीर के शब्दों में- "शब्दों के इस संस्कृतिकरण की पोल तत्काल खुल जाती है। इतिहास झाड़-झंकाड से हटा देता है। कबीर की सहलास की बात नहीं सुनी जाएगी तो दागता हुआ बाबर आएगा। दोनों में से किसी एक को जरूर सुनाई है क्योंकि इतिहास का पहिया किंवदंती और प्रक्षिप्त के बने पुराणों पर नहीं टिकता। इसलिए भारत के बारे में कोई पुस्तक लिखने से पहले विद्वानों को इस बात पर बल देना चाहिए कि इतिहास के किंवदंती और प्रक्षिप्त के सांस्कृतिक षडयंत्रों को नहीं। रही बात साहित्य की तो उसमें कल्पना, स्वप्न, स्मृति और अनुभूति को सम्मानजनक स्थान प्राप्त है उसमें इतिहास, पुरातत्व, आत्मकथा, स्मरण, पत्र और जीवनी की सारी व वस्तुनिष्ठता सुरक्षित है लेकिन उसमें दूर तक भी किंवदंती प्रक्षिप्त और पुराण के लिए कोई जगह खाली नहीं है।[5]"

कबीर के बारे में सामंती विद्वानों ने किंवदंतियों के सहारे अपने-अपने अनुसार गढ़ा है। पाश्चात्य विद्वान रेवरेंड एफ. ई. की. ने अपनी पुस्तक में 'ऐतिहासिक कबीर शीर्षक' से कबीर के बारे में लिखा- "हिंदुओं के सारे पूर्वाग्रह के बावजूद हमें यह मानना चाहिए की कबीर एक घरवारी आदमी थे।[6]" इस घर गृहस्थी में रेवरेंड एफ. ई. की. ने कबीर को महान नैतिक पुरुष माना है वे लिखते हैं कि निसंदेह है कबीर एक महान सदाचारी मनुष्य थे इसलिए उन्होंने सच्चरित्रता

का इतना जमकर प्रचार किया।[7] इस सच्चरित्रता को उन्होंने कबीर की भक्ति भावना से ओत-प्रोत पाया है जहां उनके ईश्वर से प्रेम में गृहस्थ जीवन वाले पति पत्नी का संबंध जुड़ता है।[8] डॉक्टर धर्मवीर द्वारा उद्धृत एफ.ई. की बातों से यह स्पष्ट माना जाता है कि कबीर जैसे संत गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हैं और गृहस्थ जीवन में ही रह कर अपना जीवन यापन करते हैं कबीर जुलाहे के काम में अपने आप को व्यस्त रखते हैं। इससे यह पता चलता है कि कबीर पारिवारिक जीवन में रहकर मनुष्य और मनुष्य के हित का पालन करते हुए समाज में फैले वाह्यआडंबर के खिलाफ आवाज बुलंद की।

रेवरेंड एफ. ई. की. ने मगहर में कबीर की मृत्यु के बारे में अच्छी जानकारी दी है। वे अपनी गवाही देते हुए लिखते हैं कि- कब्र का रख-रखाव एक मुसलमान जुलाहे परिवार के हाथ में है उनकी इस रिपोर्ट में कबीर की मृत्यु के बारे में ब्राह्मणों की फैलाई हुई उस अफवाह का पर्दाफाश हो जाता है कि हिंदुओं और मुसलमान में झगड़ा होने पर कबीर की मृत देह के बजाए वहां फूल रह गए थे। उसे, मुसलमान जुलाहे परिवार ने उन्हें बताया था कि फूलों की किंवदंती वाली बात गलत है उनके अनुसार कबीर का शव मुसलमानी रीति-रिवाज के अनुसार दफनाया गया था। जब कबीर गुजरे और उनकी मिट्टी को दफन किया गया उस समय राजा वीरसिंह कहीं दूर शिकार खेल रहे थे शिकार से वापस आने के बाद उन्होंने मांग रखी की कब्र खोद कर मिट्टी को निकाला जाए क्योंकि उनका हिंदू रीति-रिवाज के अनुसार दाह संस्कार किया जाएगा। लेकिन उनकी यह मांग मानी नहीं गई थी। 'रेवरेंड एफ ई' की के हवाले से डॉक्टर धर्मवीर यह बताते हैं कि- अपनी पुस्तक में यह भी रिपोर्ट दर्ज की है कि कहा जाता है कि शुरू में एक ही तुर्बत (समाधि) थी जिस हिंदू और मुसलमान दोनों ध्याते थे। और वहां एक महीने का लंबा मेला चलता था। बाद में झगड़ा पैदा हो गए शायद यही कारण है कि बाद में हिंदू समाधि स्थल भी बन गया।[9] बिल्कुल यह है जो बात कही जा रही है वह हो सकता है सही हो लेकिन शोध के दौरान वहां भ्रमण पर जाने के पर देखा गया कि बायीं ओर कबीर का मजार और उससे ही सटा हुआ कबीर के पुत्र कमाल (कमालुद्दीन) का मजार है और दाएं ओर पर 'सदगुरु कबीर समाधि मंदिर' नाम से उनका समाधि स्थल है।

कुछ किंवदंतियां यह भी गढ़ी गई हैं कि कबीर की मृत्यु के बाद हिंदुओं और मुसलमान में उनके शरीर को लेकर झगड़ा ना हो इसलिए उन्हें उनके शरीर के स्थान पर फूल रख दिया। जिसे हिंदू अपने अनुसार और मुस्लिम अपने अनुसार बांटकर मजार और मंदिर में तब्दील कर लिया। हमें तो यह कबीर के साथ सोची समझी चाल मालूम पड़ती है कभी ऐसा होता नहीं है वहां के जो भी सेवादार हैं उनसे बात करने के पश्चात पता चला कि सबको अपने अनुसार ईश्वर बनाने की आजादी है आप किसी की आस्था को ठेस नहीं पहुंचा सकते हैं तो मुस्लिम अपने अनुसार और हिंदू अपने अनुसार मजार और मंदिर में परिणति किया।

मगहर जाने के बाद कुछ अलग अनुभव हुआ कबीर चौरा के पीछे कुछ दूरी पर कबीर गुफा है और इस गुफा के बगल सती माया का मंदिर है वहां के जो भी सेवादार हैं उनसे जानकारी ली गई कि यह माया कौन है? तो उन्होंने बताया कि यह जब कबीर साहब काशी से मगहर आएं तब माया उनको ठगने आई वह उन्हें ठग नहीं पाई और कबीर ने अपने अंगूठे से यही दबा दिया तब से उसकी समाधि यहां पर है। ऐसी कहावत है कि मगहर में 12 वर्ष का सूखा पड़ा उस समय वहां पर कोई भी जीव टिकता नहीं था तब काशी से चार संतों को बुलाया गया जिसमें कबीर, रैदास, गोरखनाथ और गुरु नानक देव आए और तब यहां पर वर्षा हुई। देखा गया कि कबीर समाधि से लगभग 2 किलोमीटर दूरी पर गोरखनाथ धाम है लेकिन जब हिंदी साहित्य का इतिहास पढ़ा जाता है तो गोरखनाथ का समय कबीर और रैदास के बहुत पहले आता है फिर यह चारों एक साथ मगहर कैसे पहुंच जाते हैं? गोरखनाथ का समय राहुल सांकृत्यायन ने 9वीं सदी और आचार्य शुक्ल ने 13वीं सदी माना तब 14वीं सदी में कबीर से कैसे भेंट हो जाती है। हमें लगता है कि ऐसी बहुत सारी किंवदंतियां कबीर और अन्य संतों के बारे में गढ़ी एवम रची गयी हैं।

किंवदंती क्या है?

यह संस्कृत का बहुत ही जटिल शब्द है इस जटिल होने के कारण ही सम्मान दिया जाता है लेकिन हिंदी में इसे श्अफवाहश और अंग्रेजी में 'रूमर' कहा जाता है। संस्कृत के इस किंवदंती शब्द को छोड़कर जो वहां अनावश्यक रूप से प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका है। इसे सही संदर्भों में समझने के लिए हिंदी में अफवाह कहना ज्यादा मुनासिफ है। किंवदंती की वास्तविक खोल-बांध, हिप्पोक्रेसी, रीडल और कथनी-करनी के अंतर में जाकर होती है।

कोई भी किंवदंती दलित और गैर दलित में से किसके पक्ष में जाती है। जैसे- कबीर के गुरु रामानंद थे- यह किंवदंती गैर दलित के पक्ष में जाती है। वास्तविकता यह है कि कोई भी किंवदंती हमेशा शासक वर्ग के पक्ष में खड़ी हुआ करती है। और शासित वर्ग हमेशा इतिहास की सच के साथ जाना चाहता है, और उसका एक खास काम किंवदंतियों से लड़ने का हो जाता है।

कबीर के गुरु रामानंदः किंवदंतीः

किंवदंती उसे समाज में खड़ी हो सकती है जो पढ़ा-लिखा ना हो। पिछड़े और अनपढ़ समाजों में किंवदंतियों को ज्यादा प्रश्रय मिलता है, लेकिन आश्चर्य की बात है कि यहां पढ़ा लिखा गैर दलित वर्ग किंवदंतियों का ही सहारा लेता है। वह अपने वेदों और पुराणों के बारे में बहुत बारीकी से याद रखना है। और कबीर गुरु के बारे में किंवदंती का रास्ता पकड़ लेता है। एक गैर दलित लेखक हजारी प्रसाद द्विवेदी बहुत ही मासूम भोला-भाला बनाकर लिखते हैं कि- "सभी परंपराएं इस बात का समर्थन करती हैं कि कबीर दास का रामानंद के साथ संबंध है।[10]" वे परंपराओं पर ही क्यों आकर टिक गए हैं इतिहास के सच्चे स्वरूप को अपने पेट में ही क्यों डकार गए हैं। पांचो आचार्यों में से वेदांत की कौन सी परंपरा रहती है कि शुद्र/दलित का गुरु ब्राह्मण हो सकता है। अगर हो सकता है तो द्विवेदी जी को ब्रह्म सूत्र के भीतर से यह बात सिद्ध करनी चाहिए थी। दलित का गुरु गैर दलित हो सकता तो इसके प्रमाण द्रोणाचार्य और एकलव्य के गुरु-शिष्य में मिलते हैं। एकलव्य धनुर्विद्या ग्रहण करने के लिए जब द्रोणाचार्य के पास जाता है तो द्रोणाचार्य यह कहकर शिक्षा देने से मना कर देते हैं कि तुम शूद्र हो। वहां पर एक गैर दलित, दलित को शिष्य बनाने से बनने से इनकार कर देता है तब रामानंद और कबीर का गुरु शिष्य होना प्रक्षिप्त और किंवदंती बनकर रह जाता है और अब यह शोर बंद होना चाहिए कि कबीर रामानंद के शिष्य थे। तभी डॉक्टर धर्मवीर लिखते हैं कि-

"कबीर के गुरु मक्खी और मच्छर हो सकते थे, कबीर के गुरु कुत्ते और बिल्ली हो सकते थे, लेकिन रामानंद ब्राह्मण उनके गुरु कभी नहीं हो सकते थे।" रामानंद को कबीर का गुरु बताने में इतिहास के साथ साजिश हुई है। यह ब्राह्मणों द्वारा साहित्य में अपने वर्चस्व बनाए रखने की कोशिश है। यह वैसी ही कोशिश है जैसे आजकल अंबेडकर और गांधी को लेकर की जा रही है। यदि दलित लोग डॉक्टर अंबेडकर के बचाव में ढंग से नहीं लड़ सके तो कुछ दिन बाद हिंदू विद्वान यह सिद्ध कर देंगे कि डॉ अंबेडकर महात्मा गांधी के सबसे प्रिय शिष्य थे।[11]

कबीर विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हैं, मिथक है:

कबीर के संदर्भ में डॉक्टर श्याम सुंदर दास ने इस बात की पक्की पुष्टि करनी चाही की कबीर हिंदू थे। यही वजह है कि इन्होंने कबीर को हिंदू माता-पिता की संतान सिद्ध कर दिया। उन्होंने बिना तर्क-वितर्क किए हुए एक किंवदंती में विश्वास करते हुए लिखा है कि- "कहते हैं कि काशी में एक सात्विक ब्राह्मण रहते थे जो स्वामी रामानंद जी के बड़े भक्त थे। उनकी एक विधवा कन्या थी। उसे साथ लेकर एक दिन में स्वामी जी के आश्रम पर गए। प्रणाम करने पर स्वामी जी ने उसे पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया। ब्राह्मण देवता ने चौक कर जब पुत्री को वैधव्य निवेदन किया। तब स्वामी जी ने सखेद कहा कि मेरा वचन तो अन्यथा नहीं हो सकता है। परंतु इतने से संतोष करो कि इससे उत्पन्न पुत्र बड़ा प्रतापी होगा। आशीर्वाद के फलस्वरूप जब इस ब्राह्मण कन्या को पुत्र उत्पन्न हुआ तो लोक-लज्जा और लोकोपवाद के भय से उसने उसे लहरतारा तालाब के किनारे डाल दिया। भाग्यवश कुछ ही क्षण के पश्चात नीरू नाम का एक जुलाहा अपने स्त्री नीमा के साथ उधर से आ निकला। इस दंपति के कोई पुत्र ना था। बालक का रूप पुत्र के लिए लालायित दंपति के हृदय में चुभ गया और वे इसी बालक का भरण पोषण कर पुत्रवान हुए। आगे चलकर यही बालक परम भगवत भक्त कबीर हुआ।[12]" इस जनश्रुति/किंवदंती से यह पता चलता है कि डॉ श्याम सुंदर दास जो ऊल जुलूल की बातें बिना तर्क के कर रहे वह मिथ्या प्रतीत होती है। अगर विधवा ब्राह्मणी उनके पास जाती है तो दास को कैसे पता कि उसे पुत्र ही होगा उस जगह पर पुत्री भी तो हो सकती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह कबीर के संबंध में फिजूल की बातें कर रहे हैं।

गैर दलित लेखकों ने कबीर के बारे में जनश्रुतियों और गपोड़ों की कोई कमी बचा नहीं रखी है। कबीर के बारे में एक नये दलित लेखक डॉक्टर पीतांबर दत्त बड़थ्वाल ने अपनी पुस्तक 'योग प्रवाह' में लिखा है कि-विधवा ब्राह्मणी फुलवाड़ी में फूल चुन रही थी और स्वामी रामानंद के प्रश्न करने पर कि यह क्या है? उसने उत्तर दिया पेट। स्वामी रामानंद ने 'तथास्तु' कह दिया। ऐसी-ऐसी जनश्रुतियां खड़ी करके गैर दलित लेखकों ने यहां तक सिद्ध करने की कोशिश की है कि कबीर रामानंद के ही पुत्र थे। ऐसा कहने के पीछे उनका तर्क क्या है कि रामानंद की नैतिकता पर बुरा असर पड़ेगा फिर रामानंद विधवा ब्राह्मणी से संभोग करने वाले लंपट ब्राह्मण सिद्ध हो जाएंगे।

गैर दलितों की परंपरा रही है कि जब दलित समाज के संतों से उनकी नहीं बनी या उन्होंने उनकी नहीं सुनी तो उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के साथ प्रक्षिप्त और किंवदंती रचने में कोई कसर नहीं छोड़ी और कुछ हद तक सफल रहें, लेकिन आज का समाज इन सभी बिंदुओं पर रिसर्च कर सही क्या और प्रक्षिप्त क्या है। इस पर गंभीर विचार-विमर्श हो रहा है

संदर्भ ग्रंथ:

1. प्रो पुरुषोत्तम अग्रवाल, अकथ कहानी प्रेम: कबीर की कविता और उनका समय, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2009, पृष्ठ 192
2. डॉक्टर धर्मवीर, कबीर: खशम खुशी क्यों होय, वाणी प्रकाशन दरिगागंज नई दिल्ली, संस्करण 2013, आवृत्ति 2017, पृष्ठ 171
3. वही, पृष्ठ 172-173
4. वही, पृष्ठ173
5. डॉक्टर धर्मवीर, कबीर: खशम खुशी क्यों होय, वाणी प्रकाशन दरिगागंज नई दिल्ली, संस्करण 2013, आवृत्ति 2017, पृष्ठ173
6. डॉक्टर धर्मवीर, कबीर के कुछ और आलोचक, वाणी प्रकाशन दरिगागंज नई दिल्ली, संस्करण 2022, पृष्ठ 110
7. वही, पृष्ठ 110
8. वही, पृष्ठ 110
9. वही, पृष्ठ 119-120
10. डॉक्टर धर्मवीर, कबीर और रामानंद: किंवदंतियां, वाणी प्रकाशन दरिगागंज नई दिल्ली, संस्करण 2022, पृष्ठ 89
11. डॉक्टर धर्मवीर, कबीर के आलोचक, वाणी प्रकाशन दरिगागंज नई दिल्ली, संस्करण 2022, पृष्ठ 96
12. डॉक्टर धर्मवीर, कबीर के आलोचक, वाणी प्रकाशन दरिगागंज नई दिल्ली, संस्करण 2022, पृष्ठ 49

प्राचीन भारतीय इतिहास में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन

मधु

शोधार्थिनी, इतिहास विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ।

डॉ० अर्चना सिंह

शोध निर्देशिका, इतिहास विभाग, मेरठ कॉलिज, मेरठ।

सार-

प्रकृति और पारस्परिक सम्बन्धों के परिणाम को ही सृष्टि का प्रारम्भ माना जाता है, जिसमें नारी को 'प्रकृति' तथा नर को 'पुरुष' के रूप में सम्मिलित किया गया है सृष्टि के प्रारम्भ से ही नारी को अर्द्धशक्ति के रूप में पूज्यनीय माना गया है एवं उसे भार्या या गृहलक्ष्मी के रूप में सम्मान प्रदान किया गया है। मानव जगत् का प्रायः आधा भाग नारी जाति का है जिसका भारतीय संस्कृति के निर्माण एवं संवर्धन में आदि काल से ही गरिमामय एवं महत्वपूर्ण अपरिहार्य योगदान रहा है। प्राचीन एवं नवीन समाजों एवं संस्कृतियों के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन करने से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि स्त्रियों में ही वह क्षमता है जिसने न केवल मनुष्यों को जन्म दिया अपितु मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विकास को जन्म देकर आगे बढ़ाया। स्त्रियों ने ही सर्वप्रथम सभ्यता एवं संस्कृति की नींव डाली थी यही कारण है कि प्रारम्भिक समय की अनेक सभ्यतायें जैसे कि सिन्धु घाटी की सभ्यता में समाज का स्वरूप मातृसत्तात्मक था, इस सभ्यता की खुदाई के पश्चात हमें यह ज्ञात होता है कि इस काल में मातृदेवी की अराधना की जाती थी तथा समस्त घरों में मातृदेवी की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जिससे यह स्पष्ट है कि प्राचीन सभ्यताओं के काल में भी स्त्रियों को सर्वशक्ति एवं सर्वगुण सम्पन्न मानकर उसे सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया था। प्रारम्भ से ही कन्या, पत्नी तथा माँ के रूप में स्त्रियों का स्थान महत्वपूर्ण था। नारी को सदैव से ही सर्वशक्ति सम्पन्न माना गया है तथा विद्या, शील, ममता, यश और सम्पत्ति का प्रतीक समझा गया है यही नहीं वरन् समाज में नारी को इतना अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया कि उसके बिना अकेला पुरूष अपूर्ण और अधूरा समझा गया। वास्तव में स्त्री माता के रूप में भी त्याग, तप और प्रेम की त्रिवेणी है, जिसे इस त्रिवेणी के प्रेम जल में स्नान करने का सौभाग्य न मिला हो, उससे अधिक अभागा और दूसरा न होगा। आज भी दक्षिण की द्रविड़ भाषा में नारी के लिए सर्वमान्य सम्बोधन का शब्द अम्माइलु या अम्मा है। इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं है कि समाज का संगठन नारी से ही पूर्ण होता है तथा उसके बिना समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

प्रस्तावना-

भारत में महिलाओं की स्थिति सदैव एक समान नही रही है। इसमें युगानुरूप परिवर्तन होते रहे हैं। उनकी स्थिति में वैदिक युग से लेकर आधुनिक काल तक अनेक उतार-चढ़ाव आते रहे हैं तथा उनके अधिकारों में तदनरूप बदलाव भी होते रहे हैं। वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति सुदृढ़ थी, परिवार तथा समाज में उन्हे सम्मान प्राप्त था। उनको शिक्षा का अधिकार प्राप्त था। सम्पत्ति में उनको बराबरी का हक था। मध्यकाल में विदेशियों के आगमन से स्त्रियों की स्थिति में जबर्दस्त गिरावट आयी। अशिक्षा और रूढ़िया जकड़ती गई, घर की चाहरी दीवारी में कैद होती गई और नारी एक अबला, रमणी और भोग्या बनकर रह गई। आर्य समाज आदि समाज-सेवी संस्थाओं ने नारी शिक्षा आदि के लिए प्रयास आरम्भ किये। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक स्त्रियों की निम्न दशा के प्रमुख कारण अशिक्षा, आर्थिक निर्भरता, धार्मिक निषेध, जाति बन्धन, स्त्री नेतृत्व का अभाव तथा पुरूषों का उनके प्रति अनुचित दृष्टिकोण आदि थे। उन्नीसवीं सदी के मध्यकाल से लेकर इक्कीसवीं सदी तक आते-आते पुनः महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ और महिलाओं ने शैक्षिक, राजनीतिक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, प्रशासनिक, खेलकूद आदि विविध क्षेत्रों में उपलब्धियों के नए आयाम तय किये। आधुनिक भारत में महिलाएं राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, लोक सभा अध्यक्ष, प्रतिपक्ष की नेता आदि जैसे शीर्ष पदों पर आसीन हुई हैं। इस शोध-पत्र में भारतीय इतिहास में महिलाओं की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि निर्वाह अर्थव्यवस्था में पशुचारण की प्रधानता ने पितृात्मक सामाजिक संरचना के निर्माण में सहायता दी थी शुनः शेप एवं दिवालिए जुआरी के दृष्टांतों से स्पष्ट हो जाता है कि परिवार में पुरूष मुखिए का पूर्ण नियंत्रण था। महिलाओं को पासा व सुरा के साथ तीन प्रमुख बुराइयों में गिना जाता था। पुत्री का जन्म अशुभ माना जाता था। पितृसत्तात्मका के अनुरूप ही समाज की प्रमुख विशेषताएं भी थी-महिलाओं को पुरूषों के अधीन प्रदर्शित करना, उसके लिए परिवृता, त्याग, पवित्रता आदि आदर्शों को बाध्यकारी बनाना है इसके लिए कुछ कुप्रथाओं जैसे पर्दा, सती का पालन अनिवार्य बना दिया गया। ऐसा कहा गया कि जिस स्त्री का तीर्थ में स्नान करने की इच्छा हो उसे पति का चरणोदक पीना चाहिए।

विभिन्न धर्मग्रन्थों वेद मनुस्मृति आदि में भी नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण निराशापूर्ण किया गया है क्यों कि इनके रचयिता पुरूष ही थे। कार्लमार्क्स ने धर्म को अफीम इसी अर्थ में कहा था। हमारे शास्त्रकारों ने हिन्दुस्तान की आधी आबादी (नारी) को पतिव्रत धर्म का ऐसा अफीम खिलाया कि उसका नशा आज के वैज्ञानिक युग में भी उतरा नही है। घर की चहारदीवारी मे कैद नारी को भले ही समाज ने उत्कृष्ट स्थान न दिया हो वह निर्विवाद रूप से समाज का अभिन्न अंग है। सृष्टि के विकास का वह ही सूत्राधार बनती है। हर बच्चे की माँ ही उसकी प्रथम पाठशाला बनती है। परिवार के दिशा निर्धारण का वह आधार बनती है। इसलिए जब कभी भी इतिहास में निष्पक्ष होकर, उच्च आदर्शो से प्रेरित होकर स्त्रिओं की व्याख्या की गयी तो उन्हें समाज में प्रमुख स्थान दिया गया और यही कारण है कि वृहदारण्यक उपनिषद् में पत्नी की आदर्श छवि प्रस्तुत करते हुए उसे अर्द्धांगिनी कहा गया है। राजसूय यज्ञ के दौरान जिन लगभग एक दर्जन रत्नियों के घर राजा जाता था उनमें से 4 स्त्रियाँ होती थीं इसलिए तत्कालीन मात्रकुलीय रिवाजों को नजरअंदाज नही किया जा सकता। भारतीय समाज में आदर्श नारीत्व के उदाहरण अपाला, घोषा, गार्गी, लोपमुद्रा, मैत्रेयी आदि के रूपों से प्राप्त होते हैं। याज्ञवल्क्य गार्गी संवाद स्त्रियों को अज्ञानता की श्रेणी से अलग करता है। उपनिषदों में ब्रहमवादिनी महिलाओं के अच्छे उदाहरण मिलते है-

नारी को "मातृ देवो भव"

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता"

"महाशक्ति ज्योति विभूति, यह नारी सदा अजेय"

"शतपुत्र समा कन्या"

आदि कह कर इतिहास में उसका मान बढ़ाया गया है। अथर्ववेद में कहा गया है कि पति पत्नी के कर्तव्य एक दूसरे के लिए होते है। ब्राह्मण काल में सामाजिक व धार्मिक कल्याण के कार्यो में महिलाओं की उपस्थिति अनिवार्य थी। उत्तर वैदिक युग में शिक्षा का अधिकार छिनने से उनका सम्मान घटता गया। मौर्यकाल में कुछ स्तर सुधरा और प्रशासनिक सेवायें की। गुप्त युग में भी सम्मान रहा। वैष्णव धर्म, राजधर्म लक्ष्मी की प्रतिष्ठा से स्त्रियों का सम्मान बढ़ा। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के सिक्को पर राजा के साथ-साथ पत्नी लिच्छवि रानी का चित्र था। आक्रमणकारियों से महिलाओ की स्थिति बिगडी क्योकि वे इन्हे लूट का माल और मनोविनोद का साधन मानते थे। बाल विवाह, पर्दा प्रथा, जबरजस्ती सती होने की घटनायें बढी। व्यक्ति इनसे जल्दी छुटकारा पाने की कोशिश करने लगा। सूत्रकाल में महिलाओं के स्तर में काफी पतन हुआ। पुर्नविवाह, अंर्तजातीय विवाह, उपनयन संस्कार पर प्रतिबन्ध लगाने के साथ-साथ शिक्षा के अधिकार से भी महिलाओं को वंचित कर दिया गया। रामायण व महाभारत से समय के महाकाव्यकाल में कभी न मिटने वाले नारीत्व के आदर्श प्रस्तुत हुए। सीता की छवि आज भी आदर्श मानी जाती है। राजा दशरथ का कहना था-

"यह तप क्या होता है रानी, बस कन्या कर दिखलाती है। मां बाप जिसे दे देते है, उसकी ही वह हो जाती है।"

इस प्रकार इस युग में पत्नियां पति के लिये समर्पित होने के आदर्श से प्ररित थीं। सीता का स्वंयवर इस बात का सूचक था कि महिलाओं को अपना जीवनसाथी चुनने की पर्याप्त स्वतंत्रता थी। महाभारत में द्रोपदी का प्रकरण बहुपति प्रथा प्रचलित होने का सूचक थी। महाभारत में महिलाओं को सभी गलत कार्यो की जड़े माना गया है। दिल्ली सल्तनत और मुगलकाल में महिलाओं की स्थिति पहले की तुलना में काफी पतनशील हो गयी यद्यपि हिन्दू स्त्रियों का परिवार में सम्मान था किन्तु उनकी सामाजिक स्थिति निम्न हो गयी थी। शक्तिशाली मुस्लिमों द्वारा हिन्दू बेटियों से विवाह करके जबरजस्ती इस्लाम ग्रहण करवाया जाता था। सुरक्षात्मक कारणों से महिलायें पर्दा प्रथा बाल विवाह जैसी कुप्रथाओं से जकड़ी हुई थी और कन्या बाल हत्या का प्रचलन तेजी से था सती प्रथा जैसी कुरीतियों ने स्त्रियों की स्थिति अत्यंत दयनीय कर दी थी। वैश्यावृत्ति महिलाओं के उत्पीड़न का चरम बिन्दु थी। इस प्रकार ऐतिहासिक ग्रन्थों में जिन्हें धर्मग्रन्थ कहा जाता है आदि में जितनें भी उपदेश दिये गये हैं अधिकाशं जिनसे यही स्पष्ट होता है कि पुरूष ने नारी के लिये अमानवीय नियम बनाकर एक चक्रव्यूह में डाल दिया है। स्त्री को चाहिए की वह अपने पति द्वारा ताड़ना दिये जाने पर या पति के क्रोध करने पर भी क्रोध न करें। क्या स्त्री का कोई अस्तित्व नही? सब नियम, धर्म और कर्तव्य स्त्रियों के लिये ही बनाये गये हैं। स्त्रियों द्वारा आंखे मूदकर पुरूषों इन नियमो को स्वीकार कर लेने का परिणाम यह हुआ कि नारी पुरूष निर्मित नियमों धर्मों व कर्तव्यों के चक्रव्यूह में जकड़ती चली गई एवं यदि कभी नारी ने इस चक्रव्यूह से निकलने का प्रयास किया भी तो पुरूष निर्मित नियमों, रूढ़ियों अशिक्षा व अन्धविश्वास उसके मार्ग में रोड़ बनकर आ गये और उसका मार्ग पुनः अवरूद्ध हो गया।

प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास के पुरूष प्रधान भारतीय समाज ने महिलाओं के मानसिक स्तर को इतना प्रभावित किया कि उन्होनें स्वंम ही पुरूषों के वर्चस्व को स्वीकार कर लिया। परिवार में पुरूष व महिला के कार्यो, कर्तव्यों, अधिकारों आदि का स्पष्ट रूप से विभाजन कर दिया था। महिलाओं को सभी प्रकार के आर्थिक, राजनीतिक व शैक्षणिक अधिंकारो से वंचित कर दिया गया। उन्हें धैर्य, दया, त्याग समर्पण आदि मूल्यों को अपनाने की जरूरत पर ज्यादा जोर दिया गया था। निम्न वर्ग की महिलायें आर्थिक जरूरतों के कारण अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र थी। सल्तनत काल की तुलना में मुगलकाल राजनीतिक अैर सामाजिक दृष्टि से स्थिरता का युग था। मुस्लिम समाज में बाल विवाह पर्दाप्रथा जैसी घिनौनी प्रथाये थी। मध्ययुग में भक्तिकालीन और मुस्लिम सूफी संतो के प्रयासो से दोनो समुदायो की स्त्रियों की दशा में कुछ सुधार हुआ। मीराबाई ने कृष्ण भक्ति में लीन होकर सुन्दर भजन गाकर अमरत्व को प्राप्त किया। खानकाहो में पर्दे की शर्ते लागू थी। सल्लनत काल में रजिया, मुगल मे नूरजहाँ मुमताज, जेबुन्निशा आदि ने आदर्श स्त्री की भूमिका अभिनीत की। 18वीं शताब्दी में कन्या शिशु वध की प्रथा ने जोर पकडा। स्वच्छता और स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमो से अनजान होने के कारण इस युग की स्त्रियाँ अधिकांश समय बीमारी से ग्रस्त रहती थी और उत्साह का अभाव रहता था। मुस्लिम महिलाओ के जीवन को सुखमय बनाने का उल्लेख कुरान में मिलता है।

पुनर्जागरण काल में नारी की स्थिति

18वीं शताब्दी में सम्पूर्ण भारतीय समाज में सर्वत्र विभिन्न सामाजिक कुरीतियाँ और नैराषय था। भारतीय समाज धर्म, रूढ़ि और परम्पराओं के कठोर बन्धनों में जकड़ गया था। सर्वत्र अत्याचार, कुप्रथाओं का ही बोलबाला था, जिसमें नारी की स्थिति अधिक से अधिक निम्न स्तर की होती जा रही थी। इसी दौरान भारत की धार्मिक और राष्ट्रवादी चेतना अत्यधिक अंशों में सुशुप्त हो गयी थी। इन्हीं सभी कारणों से 19वीं सदी में एक नवीन बौद्धिक लहर चली, जिसके

फलस्वरूप जाग्रति के एक नये युग का सूत्रपात हुआ। अन्वेशण तथा तर्कवाद की भावना ने यूरोपीय समाज को एक प्रगति प्रदान की। यह सर्वमान्य तथ्य है कि "विकास एक सहज प्रक्रिया है जिस प्रकार गन्ने की नई फसल उगाने से पहले पेढ़ी जलायी जाती है वैसे ही पतन की चरम सीमा पर पहुंचा समाज कुछ प्रबुद्ध जनों के आत्ममंथन से उत्पन्न प्रेरणा से नवीन कलेवर धारणा करता है" यही 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भी हुआ। जब 18वीं शताब्दी में सर्वत्र अषान्ति का वातावरण था तथा सम्पूर्ण समाज अन्धकार में डूबा हुआ था, तब 19वीं शताब्दी में एक नवीन मध्यम वर्ग का उदय हुआ। यह नवीन शिक्षित मध्यम वर्ग तर्कवाद, विज्ञानवाद तथा मानववाद से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। इन्हीं पाश्चात्य शिक्षित भारतीयों ने इस नवज्ञान से प्रभावित होकर हिन्दू धर्म में सुधार किये, तभी भारत के धार्मिक एवं सामाजिक जीवन में नवचेतना का संचार हुआ। इसी सदी ने एक नवीन विचारधारा को जन्म दिया और भारत के समाज, धर्म, साहित्य तथा राजनीतिक जीवन को गम्भीरतापूर्वक प्रभावित किया। भारत में जागृति की इस प्रक्रिया को पाष्चात्य ज्ञान ज्योति से यथेष्ट बल मिला।

यह सर्वविदित तथ्य है कि अंग्रेजी राज का जो प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ा वह उन सभी प्रभावों से अलग था जो उस समय तक भारत पर हुए थे। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अंग्रेजों से पूर्व भी भारत पर अनेक विदेशी आक्रांताओं ने आक्रमण किया था तथा भारतीयों को हराकर भारत पर राज किया था परन्तु उस समय तक भारत ने कभी भी आत्मविश्वास नहीं खोया था और उसे सदैव यह आन्तरिक विश्वास था कि उसकी सभ्यता तथा संस्कृति अन्य विदेशी शासकों की संस्कृति से अधिक उत्तम है। प्राय: ऐसा हुआ कि अंग्रेजी शासकों से पहले भारत में जिन विदेशी शासकों का आगमन हुआ था उन्होंने भारतीय धर्म, संस्कृति तथा सभ्यता को अपना लिया था तथा वे भारतीय समाज का अभिन्न अंग बन गये। परन्तु जब भारतीय समाज एक निश्चल, निष्प्राण तथा अत्याधिक दयनीय था, उसी समय भारत का एक ऐसे आक्रान्ता से सामना हुआ जो न केवल रंग में श्वेत था अपितु अपने आपको सामाजिक तथा सांस्कृतिक रूप से अत्याधिक उत्तम समझता था। यद्यपि प्रारम्भ में ऐसा प्रतीत होता था कि सभ्यता की इस दौड़ में भारत पिछड़ जाएगा, परन्तु इसी समय पश्चिमी शिक्षा प्राप्त नवयुवकों ने न केवल हिन्दू धर्म तथा समाज से नाता तोड़ने से इंकार कर दिया वरन् हिन्दू धर्म तथा समाज में सुधार करने का बीड़ा भी उठाया। इसी के फलस्वरूप भारत की स्पन्दनशील जीवनी शक्ति पुन: जागृत और सक्रिय हुई। इसी समय मार्ग में भटके हुए भारतवासियों को पुन: सदमार्ग पर लाने और देश का पुर्ननिर्माण करने हेतु भारत में अनेक धार्मिक आन्दोलन चल पड़े, जिन्होंने देश में राजनीतिक तथा सांस्कृतिक पुनर्जागरण के उद्भव एवं प्रसार में योगदान किया।

अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजी शासन, पाश्चात्य संस्कृति, विदेशों से सम्पर्क, ईसाई पादरियों के धार्मिक प्रचार आदि के कारण भारत में जो पुनर्जागण की भावना आयी तथा उससे जो पुनरूद्धार आन्दोलन भारत में हुआ, उसने भारत के धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक, कलात्मक तथा राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया तथा जीवन के सभी अंगों में एक नवीन भावना का उद्भव किया। यद्यपि धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलनों का प्रारम्भ भारत में 14वीं शताब्दी में ही हो गया था किन्तु उस दौरान राजनैतिक परिस्थितियों के कारण वे आन्दोलन मृत प्राय: ही थे, तथा भारत की सभ्यता एवं संस्कृति पर भारतीयों के आत्मविश्वास की भावना अधिक समय तक नहीं रह सकी। इसी के परिणामस्वरूप भारत में धर्म सुधार आन्दोलन हुआ किन्तु यह धर्म सुधार आन्दोलन केवल धर्म सुधार तक ही सीमित नहीं था, वरन् समाज सुधार भी इन आन्दोलनों का मुख्य लक्ष्य था। धर्म भारतीय समाज का प्रारम्भ से ही केन्द्र बिन्दु रहा है तथा इसे समाज से पृथक नहीं किया जा सकता। हीगल ने भी कहा है कि पुनर्जागरण के बिना कोई धर्म सुधार सम्भव नहीं। भारतीय समाज और मुख्यत: हिन्दू समाज में अनेक सामाजिक कुरीतियों का समर्थन धर्म के आधार पर किया जाता था, जिससे साधारण व्यक्ति उन कुरीतियों को तोड़ने का साहस नहीं कर सकते थे। अत: इन सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करना धर्म का विरोध करना नहीं बल्कि इसके विपरीत अपने धर्म और समाज को शक्तिशाली बनाना था क्योंकि यही भारत में व्याप्त कुरीतियों को समाप्त भी कर सकता था, जिससे भारतीय समाज जो पतन के गर्त में पहुँच चुका था वह उससे निकलकर अपना उद्धार कर सके। यही नहीं वरन् भारतीय समाज पर जिन अन्धविश्वासपूर्ण सामाजिक कुरीतियों का दोषारोपण था, उन्हें भी समाप्त किया जा सके।

यदि हम निष्पक्ष दृष्टि से मूल्यांकन करें तो इस तथ्य की पुष्टि होती है कि पुनर्जागरण काल ही नारी की स्थिति में सुधार करने का प्रारम्भिक कदम था, जिसने समाज में नारी को महत्वपूर्ण स्थान दिलाने में सक्रिय भूमिका निभायी थी। इसी काल में समाज सुधारकों ने स्त्री उद्धार को ही अपने आन्दोलन का मुख्य लक्ष्य रखा था ताकि महिलायें जो कि समाज का 50 प्रतिशत है उनका कल्याण हो सके एवं यह समाज अर्द्धविकसित होने से बच जाये। यह ज्ञातव्य है कि पश्चिमी शिक्षा ने मध्यम वर्ग में एक नयी चेतना का विकास किया था जिससे उन्होंने नारी को समाज का महत्वपूर्ण भाग मानकर उसे उसके अधिकार दिलाने का दृढ़ संकल्प किया तथा अपने इस कार्य में उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई। अत: पुनर्जागरण ज्ञानबोध, जागृति, सांस्कृतिक नवजागरण, सुधारों, तर्कसंगत बातों और प्रगति का युग था, जिसकी चरम परिणति स्वतंत्रता और एकता की आवश्यकता के प्रति बढ़ती हुई चेतना में हुई।

19वीं शताब्दी में नारी-

19वीं शताब्दी में सती प्रथा बड़े स्तर पर महिलाओं के लिये अभिशाप बनी हुई थी। एक साध्वी स्त्री हेतु अपने पति की चिता पर सती होने के अतिरिक्त अन्य कोई दूसरा विकल्प नही बचा था। ऐसी विषम परिस्थिति में राजा राम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि उनकी सहायता के लिये आगे आये। प्रसिद्ध समाजसुधारक विवेकानन्द ने स्त्रियों में निहित अपार संभावनाओं को महसूस किया था इसीलिए उन्होने कहा था" 500 समर्पित व्यक्तियों द्वारा इस देश को सुधारने में 50 वर्ष लगेंगे लेकिन 50 समर्पित स्त्रियों के सहयोग से मै यह कार्य कुछ वर्षों में सम्पन्न कर सकता हूँ। "इस प्रकार 19वीं शताब्दी में राष्ट्र के विकास में उनकी जरूरत को महसूस किया जाने लगा था। महात्मा गाँधी ने कहा था" जिस सभ्यता में स्त्री जाति का सम्मान नही किया जाता उस सभ्यता का नाश निश्चित ही है संसार न केवल अकेले पुरूष से चल सकता है न अकेली स्त्री से इसके लिए तो एक दूसरे का सहयोग ही उपाय है।" भारतीय इतिहास में 19वीं सदी पुनर्जागरण का काल थी जिसमें पहले से चली आ रही महिलाओं की कुप्रथाओं कें विरूद्ध चेतना जागृत हुई और उनके स्तर में सुधार हेतु सकारात्मक माहौल बना। खुद महिलाओं ने जैसे रमाबाई रानाडे ने बाल विवाह विरोध और स्त्री शिक्षा प्रोत्साहन हेतु कार्य किया। विधवा पुर्नविवाह अधिनियम, सिविल मैरिज एक्ट, सती प्रथा पर रोक, दास प्रथा, शिशु हत्या पर रोक आदि ऐसी अनेक सामाजिक क्रियायें हुई जिन्होंने स्त्रियों को समाज में सम्मान जनक स्थान दिलाया। इनसें स्त्रियों के प्रति लोगों के नजरिये में बदलाव आया। आधुनिक युग में आकर स्त्रियों ने शिक्षा, ज्ञान विज्ञान, खेल जगत,

प्रशासनिक, राजनीतिक आदि क्षेत्रों में अपनी पहचान स्थापित कर ली है। वर्तमान में स्त्रियां, पुरूषों की तुलना में अधिक कुशल नजर आ रही हैं और उन्हें समाज में पहले की तरह हीन दृष्टि से नहीं देखा जाता है।

जेम्स मिल का यह कथन बहुत ही प्रासंगिक है "असम्भ्य समाज में स्त्रियों का अपमान होता है। जबकि सभ्य समाज में स्त्रियों का सम्मान। "यू.एन. ओ. महिला वर्ष, भारत सरकार द्वारा महिला सशक्तिकरण कार्यक्रम मनाया जाना महिलाओ के प्रति सम्मान है। इस प्रकार जैसे जैसे समाज सभ्य बनता गया महिलाओ का सम्मान बढता गया। बदलते हुये समय में महिलाओ के महत्व और प्रत्येक क्षेत्र में उनके योगदान को देखते हुये सकारात्मक सोच के साथ वैसी ही इतिहास लेखन किया जाना चाहिये। जैसे यूरोप में पुनर्जागरण, धर्म सुधार आंदोलन प्रभाव के कारण इतिहास लेखन धर्म दर्शन से अलग होकर मानवतावादी दृष्टिकोण की ओर उन्मुख हुआ। इतिहास का मार्क्सवादी लेखन रानियों, महारानियों, विदुषी महिलाओं के बजाये सामान्य कामकाजी महिलाओं का उल्लेख करता है। उनके कार्यो, उनकी सोच, उनकी भूमिका की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है। उनके त्याग और बलिदान को कदाचित भुलाया नही जा सकता है। उनकी सृजनात्मक शक्ति अनमोल है।

निष्कर्ष-

20वीं सदी के उत्तरार्द्ध और अब 21वीं सदी के प्रारम्भ में बराबरी व्यवहार वाले जोड़े बनने लगे हैं। नौकरी वाली नारी के साथ पुरूष की मानसिकता में बदलाव आया है। वर्तमान समय में भारतीय सरकार द्वारा महिलाओं के उत्थान के लिए अनेक कार्यक्रम एवं योजनाओं का संचालन तो की जा रहीं हैं लेकिन इन योजनाओं का क्रियान्वयन निचले स्तर तक उचित ढंग से न पहुँच सकने के कारण स्त्रियों को अपेक्षित लाभ नहीं मिल पा रहा है। यह सत्य है कि वर्तमान समय में स्त्रियों की स्थिति में काफी बदलाव आए हैं, लेकिन फिर भी वह अनेक स्थानों पर पुरुष-प्रधान मानसिकता से पीड़ित हो रही है। इस सन्दर्भ में युगनायक एवं राष्ट्रनिर्माता स्वामी विवेकानन्द का यह कथन उल्लेखनीय है- "किसी भी राष्ट्र की प्रगति का सर्वोत्तम थर्मामीटर है, वहाँ की महिलाओं की स्थिति। हमें नारियों को ऐसी स्थिति में पहुँचा देना चाहिए, जहाँ वे अपनी समस्याओं को अपने ढंग से स्वयं सुलझा सकें। हमें नारीशक्ति के उद्धारक नहीं, वरन् उनके सेवक और सहायक बनना चाहिए। भारतीय नारियाँ संसार की अन्य किन्हीं भी नारियों की भाँति अपनी समस्याओं को सुलझाने की क्षमता रखती हैं। आवश्यकता है उन्हें उपयुक्त अवसर देने की। इसी आधार पर भारत के उज्ज्वल भविष्य की संभावनाएँ सन्निहित हैं।"

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- द्विजेन्द्र नारायण झा (2004). डॉ. कृष्ण मोहन श्रीमाली, प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय 2004 ।
- नारी का मुक्ति संघर्ष (स्त्री विमर्श) के माधव पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड 2007
- एल0 पी शर्मा, मध्यकालीन भारत लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन आगरा 2006
- राजकुमार डॉ. नारी के बदले आयाम, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस 2005
- हरिशचन्द्र वर्मा मध्यकालीन भारत भाग-2 हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय 2005
- डॉ. एल. के. खुराना भारतीय इतिहास में महिलायें।
- वुमैन इन इण्डिया, प्रकाशन भारत सरकार।
- अमृत कौर, चौलेंज टू वुमैन।
- अनिता सिंह चौहान, भारत की गौरवाशाली नारियाँ, साहित्य संस्थान मोतिया पार्क, भोपाल 2008
- सुभाष सेतिया, स्त्री अस्मिता के प्रश्न, कल्याणी शिक्षा परिषद दिल्ली 2008।
- ऋग्वेद, स्वाध्याय मण्डल, द्वितीय संस्करण, पारडी, सूरत
- पारस्कर गृहसूत्र, कर्क जयराम, हरिहर, गदाधर, विश्वनाथ प्रणीत भाष्य पंचक संहित गुजराती प्रेस
- शतपथ ब्राह्मण, अच्युत ग्रन्थमाला, वाराणसी
- तैत्तिरीय संहिता, "सायण भाष्य, आनन्दाश्रम, संस्कृत सीरीज, पूना
- ऋग्वेद, स्वाध्याय मण्डल, द्वितीय संस्करण, परडी, सूरत
- यमस्मृति, स्मृतीनां समुच्चयः, आप्टे एच. आनन्दाश्रम, 1905
- अल्तेकर, ए.एस., "द पोजिशन आफ वुमेन इन हिन्दु सिविलाइजेशन, द्वितीय संस्करण, पृ० 198, दिल्ली, 1959

अभिमन्यु अनत की कहानियों में युगीन चेतना

डॉ० राकेश कुमार सिंह

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

अभिमन्यु अनत मॉरिशस के प्रख्यात साहित्यकार हैं। अभिमन्यु अनत कोरी कल्पना में जीने वाले साहित्यकार नहीं हैं। उनका साहित्य यथार्थ की पृष्ठभूमि पर आधारित है। उनका साहित्य युगीन समस्याओं, परिघटनाओं और विपदाओं से पाठक को रू-ब-रू करवाता है।

अभिमन्यु अनत अपने साहित्य की रचना अपने आस-पास के वातावरण से प्रेरित होकर करते हैं। अनत जी ने विपन्नता को भोगा था इसलिए आज सम्पन्नता के समय में वे सर्वहारा वर्ग के दु:ख-दर्दों को दूर करने के लिए तत्पर हैं। उन्होंने प्रेमचन्द्र की ही भांति सामान्य जनो-मजदूरों, कृषकों की शोषित जिन्दगी का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। वे अपने जीवन में भी हमेशा उनकी मदद के लिए आगे रहते हैं। "आज की उसकी सम्पूर्ण सम्पन्नता और समृद्धि के बावजूद उसका दिल बदला नहीं है। दृष्टि गरीब की है और भावनाएँ खेत में पसीना बहाते उस मजदूर की है, जिसने कोड़े सहे हैं और जिसमें उबर जाने की छटपटाहट है। दिल उतना ही कोमल और दयालु है, जितना किसी निर्धन बच्चे का होता है।

अनत जी मालिकों की शोषक-वृत्ति एवं पूंजीवादी व्यवस्था के निर्मम आलोचक है। परंपरा और आधुनिक के दो ध्रुवांतों के बीच मॉरिशस का प्रवासी भारतीय लटका हुआ है। यह पुरानेपन के व्यामोह को विस्मृत करने में हिंसक रहा है। नवीन वैज्ञानिक नवोत्थन की प्रगतिशील शक्तियों को अस्वीकार नहीं कर पा रहा है। नवपरिवर्तित जीवन संदर्भ और जागतिक स्थितियों के समानांतर वह अपने निजत्व को मोड़ देने के लिए उत्सुकता व्यक्त कर रहा है। अभिमन्यु अनत ने मॉरिशस की पृष्ठभूमि का जो चित्र खींचा है वह अद्वितीय है। मॉरिशस के भारतीय क्षेत्रों के ब्यौरों का चित्रण जितना विस्तृत है वहाँ के जीवन का संवेदनात्मक अंकन उतना ही सूक्ष्म है।

अभिमन्यु अनत का कथा साहित्य में अतुलनीय योगदान है। साहित्य की हर विधा में उन्होंने अपनी लेखनी चलाई है। उन्होंने कहानीयों के माध्यम से युगीन परिदृश्य को अभिव्यक्त किया है। प्रवास के दौरान भारत के लोगों के समक्ष आने वाली परेशानियों और समस्याओं पर गंभीरता से विचार किया गया है। विदेश में रहने के कारण भारतीयता को मन में बसाये लोगों का चित्रण करने के साथ ही प्रवास के दौरान बदलती मानसिकताओं पर मनोवैज्ञानिक रूप से अनत जी ने विचार किया है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है।

'खामोशी के चीत्कार' (1976) कहानी संग्रह में कुल तेरह कहानियाँ संग्रहित है- (1) 'माथे का टीका', (2) खामोशी के चीत्कार (3) स्वर्ग के उस पार (4) वापसी सूरज की (5) कोलाहल (6) नयी तलाश (7) मुसाफिर (8) द्विविधा (9) अस्वीकार (10) जहर और दवा (11) धमाका (12) सुलह (13) रात का पार्टी के बाद।

कहानी 'माथे का टीका' में ढोंगी पुजारी का चरित्र उघाड़ा गया है। समाज में धर्म के ठेकेदार के रूप में पूज्य माने जाने वाला पुजारी वास्तविकता में वेश्यागामी हैं वह पतित चरित्र का है। वह अपने माथे पर जो चन्दन का तिलक लगाता है उसे लेखक ने एलास्टोप्लास्ट का टुकड़ा कहा है जो उसके सिर पर दुष्कर्मों के प्रतीक रूप में चिपका दिये गए हैं।

'सुलह' कहानी में दाम्पत्य जीवन में आयी कटुवाहट और संशय को समाप्त कर वैचारिक वार्तालाप पर जोर दिया गया है। 'जहर और दवा' कहानी में पुत्र द्वारा पिता की प्रमिका से प्रेम कर अपने टूटते घर को बचाने का प्रयास किया जाता है। पिता की प्रेमिका से पुत्र का प्रेम एक पिता को पुन: अपनी पत्नी की तरफ लौटा देता है।

'द्विविधा' में विधवा विवाह के दौरान उठने वाले संशय और अन्तर्द्वंद्व को दिखाने के साथ ही विधवा-विवाह का समर्थन किया गया है। जिससे विधवा स्त्री के प्रति समाज की सोच में परिवर्तन आ सके। 'मुसाफिर' कहानी में नायिका नीलम के प्यार की बात परियों की रानी के प्यार द्वारा वर्णित हुई है। 'धमाका' कहानी का रूप एक प्रहसन का है। इसमें पति-पत्नी के कटु सम्बन्धों को प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी में एक ओर पति-पत्नी के संबंधों की कटुता की जानकारी मिलती है, वहीँ दूसरी ओर बेरोजगारी, राजनीति की नपुंसकता, स्वतंत्रता की कृत्रिमता आदि को युवा-आंदोलनकारियों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। उचित मांगों को कितने दमनात्मक ढंग से कुचला जाता है, यह धमाका कहानी में अश्रुगैस और हथगोले की कार्यविधि से स्पष्ट होता है।

'अस्वीकार' कहानी के माध्यम से समस्त मॉरिशसीय जीवन में व्याप्त राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं साहित्यिक क्षेत्र की वास्तविकता को अस्वीकार कर अवास्तविकता को ही सत्य मानकर जीवन-मूल्यों के प्रति अग्रसरित होने वाले लोगों पर व्यंगय किया है।

'रात की पार्टी के बाद' कहानी में मध्यम वर्ग की आर्थिक घुटन-टूटन को दर्शाया गया हैं आर्थिक निर्बलता के कारण पति-पत्नी के बीच होने वाले झगड़े को दिखाया गया हैं महँगाई की मार इस स्थिति को ओर अधिक भयावह कर देती हैं जब किसी खुशखबरी पर दोस्तों को पार्टी दी जाती है तब दोस्त बिना सोचे समझे खूब छककर खाते हैं और पीते हैं। बाद में रात की पार्टी के बाद दूसरे दिन विजू और माला के घर में उनके खाने के लिए मात्र सूखी रोटियाँ ही बची हैं, जिसे विजू किसी तरह खाता है।

'वापसी सूरज की' में अतीत को भूला न पाने का गम् किस कदर मनुष्य पर हावी हो जाता है उस का विश्लेषण किया गया है। इस कहानी का नायक लालमन है। उसकी पूर्व प्रेमिका ताहिरा रहती है बाद में प्रभा से उसकी शादी हो जाती है। जिससे तारा, मुकेश, गीता और नीला नाम की सन्तानें हुई हैं। यथार्थ-जीवन में आर्थिक कठिनाइयों से पीड़ित होकर लालमन समुद्र के किनारे गम भुलाने के लिए गया है। चट्टान की आड़ में बैठे बालक के अदम्य साहस एवं निष्ठा के साथ मछली फँसाने की विधि को वह देखता रहता है और अर्द्धरात्रि के होने पर लौटते हुए बालक से लालमन मछली खरीदकर घर की ओर चल देता है। सूर्यास्त से पूर्व का निकला हुआ लालमन रात्रि के अवसान के पश्चात् अपने घर के आँगन में सूरज की वापसी देखना चाहता है। जिजीविषा की प्रखर कठोरता के कारण व्यक्ति अतीत की सुखद स्मृतियों की ओर झाँककर परितोष प्राप्त करना चाहता है।

इंसान और मशीन (1976):- इसमें कुल 44 लघु -कथाएँ संग्रहीत है "(1) मुट्ठी में बन्द उजाला, (2) बड़ों से सीखा पाठा, (3) धृतराष्ट्र और शकुनि के बीच, (4) देश का कपड़ा, (5) भाग्यफल, (6) इन्सान और मशीन, (7) और जब बत्ती जली, (8) मंजिल के दो फासले, (9) अपना रंग, (10) नचिकेता, (11) मोह, (12) समय, (13) परिणाम, (14) प्रमाण-पत्र (15) फार्मूला, (16) भगवान जिन्दा है, (17) सच्चाई, (18) सूचना, (19) सबसे पहले कौन, (20) कीटाणु, (21) नन्हें मछुए का भाग्य, (22) वह, (23) मजदूर चूसी हुई ईख, (24) भय की खोज, (25) फैसला, (26) दूध, (27) इन्सान और कुत्ता, (28) कटुवाहट वियर की, (29) चारा, (30) उद्घाटन, (31) एकलव्य, (32) भिखारी, (33) जीवित मुर्दा (34) विदुर की साग, (35) अखबार, (40) शकुन्तला, (41) प्रभाव, (42) भीतर की बातें, (43) अपने लोग, (44) रंग। ये सारी लघु-कथाएँ मॉरिशस की सामाजिक, राजनीतिक-आर्थिक स्थिति पर व्यंग्य करने वाली हैं।

वह बीच का आदमी (1981):- इस कहानी संग्रह में कुल अठारह कहानियाँ संकलित है। 'वह बीच का आदमी' कहानी का नायक रामचरितर है। रामचरितर के गांव की जमीन सरकार हवाई अड्डा बनवाने के लिए लेना चाहती है और उसके बदले मुआवजा देने की बात भी करती है। गांव के दूसरे लोग इन सबके लिए तैयार हो जाते हैं इस पूरे खेल में सरकार का ही फायदा है। सरकार मुआवजा देकर लोगों के मुंह पर ताला लगा देती है और लोग भी मुआवजा लेकर सरकार से संघर्ष करना बंद कर देते हैं। परंतु रामचरितर घुटने नहीं टेकता है वह अन्त तक इसके विरूद्ध संघर्ष जारी रखता है। वह अपने और सरकार के बीच मुआवजे की राशि को हथियाने वाले सरकारी पदाधिकारियों की नाजायज लोभ दृष्टि को फलीभूत नहीं होने देना चाहता है।

इसी संग्रह की कहानी 'मानरक्षा' में बूढ़े माली धनवा की आर्थिक स्थिति को दिखाया गया हैं बूढ़ा माली जीवन पर अपने मालिक के बगीचे की सेवा करता रहा परंतु बूढ़ा हो जाने के कारण उसे नौकरी से हटा दिया जाता है। इसके कार्य को नजरअन्दाज कर उसके आगे की जिन्दगी कैसे बीतेगी की चिन्ता से बेपरवाह होकर उसका मालिक उसे नौकरी से हटा देता है। उसका मालिक सेवा-मुक्ति के समय उसे गुलदस्ता भेंट करता है। धनवा सोचता है सम्पूर्ण जीवन की संचित पूंजी सिर्फ गुलदस्ता। यह गुलदस्ता उसे अपनी मानरक्षा का अनुभव तो कराता ही है साथ ही गुलदस्ता देकर वास्तव में उसके जीवन भर की ईमानदारी पर व्यंग्य किया गया है।

'घर और अस्पताल के बीच' कहानी त्रिकोणीय प्रेम पर आधारित है। कहानी में शैलेन्द्र और आभा के मध्य प्रेम हैं आभा अपने प्रेम के प्रति ईमानदार एवं एकनिष्ठ है जबकि शैलेन्द्र ऐसा नहीं है। जब वह आभा के सम्पर्क में आया तो उसने कई वादें किये। परंतु वह इंतहाई झूठे साबित हुए। शैलेन्द्र बेवफा निकला। उसका संबंध आभा के अतिरिक्त अन्यत्र भी चल रहा है। इस पर आभा दु:खी तो होती है परंतु अपने जीवन को शैलेन्द्र के लिए विवश नहीं बनाती है। आभा अपने भाई की सलाह से शैलेन्द्र को छोड़ मदन से विवाह करने क लिए तैयार हो जाती है। 'अवलंब' कहानी मोहन और वंदना नाम के प्रेमी-प्रमिका के प्रेम की कहानी है। इनके बीच प्रेम ही इनके संबंधों की अस्थिरता का अवलंब है। 'पुनर्जन्म' इस कहानी में शंकर महतो नामक पात्र के जीवन की कथा के माध्यम से मनुष्य और प्रकृति के रोचक घटनाक्रम को जानने की जिजीविषा को व्यक्त किया गया है। जन्म-मरण का घटनाक्रम तथा पुन: नूतन जन्म या पुनर्जनम जैसे तथ्यों पर दार्शनिक रूप से विचार किया गया है।

उक्त कहानी संग्रह में समाज के प्रत्येक वर्ग की समस्याओं, आकांक्षाओं, अभिलाषाओं एवं संघर्षों पर प्रकाश डाला गया है। कहानी ही ऐसा माध्यम है जिसके जरिये सामाजिक कारणों पर अलग-अलग एवं भिन्न-भिन्न प्रकार से विचार किया जा सकता है। इस प्रकार देखा जाए तो ये सभी कहानियाँ किसी न किसी रूप में मनुष्य को समाज से जोड़ती है।

एक थाली समंदर (1987):- इस कहानी संग्रह में अनत जी की कुल चौबीस कहानियाँ संकलित है।

'एक थाली समंदर' शीर्षक कहानी में क्षमिया नामक वेश्या के एकनिष्ठ प्रेम को दिखाया गया है उसकी जिन्दगी में कई मर्द आते हैं फिर भी वह रामदतवा को ही प्रेम करती है। वह रामदतवा से किसी प्रकार की कोई कामना नहीं करती है बल्कि उसे देना ही चाहती है। 'घटाटोप अंधेरा' कहानी जेल में बन्द एक ऐसे कैदी की है जो अपने जीवन में आये 'घटाटोप अंधेरे' के विषय में सोच रहा है। वह सात वर्ष पश्चात् जेल से रिहा हो रहा है। रिहाई के दौरान वह अपनी प्रेमिका कल्याणी के विषय में सोच रहा है। इस कहानी का अन्त नहीं किया गया है। इसका निर्णय पाठकों पर छोड़ दिया गया है। 'क्षितिज' में तेरह वर्षीय बालक के अद्भुत चरित्र को उद्घाटित किया गया है।

'अंधेरे उजाले के बीच' कहानी अनत जी की बहुचर्चित कहानी है इस कहानी में अन्धे आश्विन से चित्रा विवाह कर लेती है क्योंकि आश्विन गिटार अच्छी बजाता है। आश्विन के अनुसार 'गाने वाले की सार्थकता उसके सुनने से होती है।' अपने पति से इस प्रकार की बात सुनकर चित्रा के मन में अपने सौन्दर्य की सार्थकता के विषय में 'अन्तर्द्वंद्व उत्पन्न हो जाता है। जब कोई बाहरी व्यक्ति उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करता है तब वह दिखने के लिए और उत्सुक हो जाती है। अपने पति की बात सुनकर उसे लगता है कि उसके पति के लिए उसका सुन्दर होना या न होना क्या मायने रखता हैं ऐसी स्थिति में सुन्दरता का कोई अर्थ नहीं रह जाता है।

अब कल आएगा यमराज (2003):- कहानी संग्रह में कुल बाईस कहानियाँ हैं जिनमें से आठ को लघु-कथा की श्रेणी में रखा जा सकता है। अब कल आएगा यमराज' कहानी एक ऐसी स्त्री की कहानी है। जिसका पति नशे के लिए तड़पता है। अपने पति को इस तड़प से बचाने के लिए वह अपने मंगलसूत्र को बेच उसके लिए व्यवस्था करती है।

'नयी तलाश' कहानी में नेताओं के झूठे आश्वासनों पर तीखा व्यंग्य किया गया है। "वह चुनाव का मौसम था। राजनीति की सरगरमी थी। बरसाती मेंढकों का बोलबाला था। हर जगह पर लाउडस्पीकर से आती हुई बिना शब्दों की अस्पष्ट आवाजें थी। वह आवाजें अब भी उसके कान में बज रही थी। बहुत सारी नौकरियाँ, सभी के लिए नौकरी, सभी बेकारों को नौकरी मिलेगी। शीघ्र मिलेगी। नौकरी! नौकरी! नौकरी!।" 'रिश्ते' कहानी में पति की शारीरिक कमी के कारण तलाक ले चुकी औरत पर सामाजिक रूप से उठते सवालों के कारण उसके अन्तर्मन की दुविधा को अभिव्यक्त किया गया है। 'अपने लोग' कहानी में 'नेताओं के चुनाव पूर्व वादे और जीतने के पश्चात् अहमन्यता और संवेदनशीलता का चित्रण किया गया है। 'कड़वी रोटी' में नौकरीपेशा पति-पत्नी के व्यस्ततम जीवन की कहानी है। 'वह आजादी' में दिखाया गया है, कि किस प्रकार दलगत निष्ठा के चलते समाज अलग-अलग खेमों में बंट जाता है। 'हैलो, मैं प्रधानमंत्री के दफ्तर से बोल रहा हूँ 'कहानी के माध्यम से 'एप्रोच' एवं नाम के आधार पर अपना काम साधने वाले मौकापरस्त लोगों पर व्यंगय किया गया है। 'राजनीति की अदालत' में मंत्री की पर्सनल सेक्रेटरी के अन्तर्द्वंद्व को दिखाया गया है। राजनीति में फैले किचड़ से वह मानसिक रूप से जूझती रहती है। वह सौन्दर्य लोलुप मंत्रियों के चारित्रिक व्यवहार पर व्यंग्य करती है। दलगत राजनीति की आपसी खींचातानी और पारस्परिक वैमनस्य से तंग आकर वह पुनः पत्रकारिता के पेशे को अपना लेती है। 'फिजुल' एक ऐसे युवक की कहानी है जो योग्यता के बावजूद सरकारी नौकरियों में फैले भ्रष्टाचार के कारण नौकरी प्राप्त नहीं कर पाता है। नौकरी न मिलने के कारण वह भी उसी का हिस्सा बन जाता है। 'अपना जहान' नामक कहानी दाऊद सुलेमान नामक पिता की है जो अपनी जीवन-भर की कमाई को अपने पुत्र के हाथों लुटते देखने के लिए अभिशप्त है। इसमें सम्पन्न युवा वर्ग के बीच मेहनत के मूल्य को समझाया गया है। इस प्रकार सभी कहानियाँ मॉरिशस के समसामयिक जीवन के यथार्थ को अपने युगीन परिदृश्य में अभिव्यक्त करने में पूर्ण रूप से सक्षम हो पायी है। सामाजिक यथार्थ के साथ सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का भी सजीव चित्रण हुआ है। इन कहानियों के माध्यम से आम जन-जीवन, उनके संघर्ष समाज में व्याप्त विसंगतियों, विद्रूपताओं, पूंजीपतियों के शोषण, महँगाई की मार, नारी-पुरुष संबंध, अन्तर्जातीय एवं अन्तर्धार्मिक विवाह की जटिलताओं एवं राजनीतिक भ्रष्टाचार पर बड़ी सूक्ष्मता से विचार किया गया है।

संदर्भ

1. तपती दोपहरी, अभिमन्यु अनत,
2. खामोशी की चीत्कार, अभिमन्यु अनत
3. मॉरिशस के नौ कवि, सं. अभिमन्यु अनत, भूमिका से
4. मॉरिशस का हिंदी साहित्य: एक समृद्ध परम्परा, डॉ. सतीश चन्द्र, आधारशिला प्रकाशन, संस्करण 2012
5. मॉरिशस का हिन्दी साहित्य: एक समृद्ध परम्परा
6. अभिमन्यु अनत: व्यक्तित्व एवं कृतित्व

अशोक का धम्मः एक अध्ययन

डॉ० नीरजा शर्मा

सहायक अध्यापक, बौद्ध अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश

प्राचीन भारतीय इतिहास में जिन प्रमुख व्यक्तित्व ने देश की गतिविधि और परिवर्तन के अलग-अलग धारों को सबसे अधिक प्रभावित किया उनमें अशोक एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अशोक को एक ऐसे शासन के रूप में माना जाता है, जिसने तत्कालीन में चल रही भिन्न-भिन्न मान्यताओं में परंपराओं के विरुद्ध होकर एक ऐसी नई दृष्टि प्रदान की जिसके माध्यम से उसने सभी को प्रभावित कर अपने युग का प्रतिनिधित्व किया। उसके काल की महानतम विशेषता इसी में रही थी कि उसने धम्म को पहचान कर भारतीय भूमिका में इसकी आवश्यकता को समझते हुए इसे सही रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। यद्यपि कुछ इतिहासकार अशोक को एक संकीर्ण और हठधर्मी व्यक्ति के रूप में मानते हैं। परंतु ऐसा कहना अनुचित होगा क्योंकि उसके जीवन के अंतिम उद्देश्यों में धार्मिक एवं धर्मनिरपेक्ष दोनों पक्षों का समान रूप से तालमेल देखा जा सकता है। अशोक के धम्म के संबंध में इतिहासकारों की अलग-अलग विचारधाराए हैं। आज हम अशोक के धम्म के विषय में जानने का प्रयास करेंगे। अशोक का धम्म उसकी स्वयं की खोज कहीं जा सकती है। संभवत: इसे हिंदू और बौद्ध चिंतन से अलग लिया गया हो परंतु अपने विस्तार के दौरान यह सम्राट द्वारा पद प्रदर्शन का ही एक प्रयास रहा होगा इसे व्यावहारिक एवं सहज होने के कारण साथ-साथ नैतिक रूप से भी देखा जा सकता है। अगर इसे बहुत धर्म के सिद्धांतों की पुनरावृत्ति माना जाए तो अशोक ने इसे स्वीकार किया होता, क्योंकि अशोक द्वारा कभी भी बौद्ध धर्म को दिए अपनी समर्थन को छुपाने का प्रयास नहीं किया गया। इस आधार पर हमें धर्म नीति को अलग रूप में देखने का प्रयास करना चाहिए।

बीज शब्द- साम्राज्य धम्म, अभिलेख, नीति, सामाजिक उत्तरदायित्व

मानवता को अशोक की सबसे महत्वपूर्ण देन धम्म की नीति थी जिसको वह चाहता था कि न केवल उसके साम्राज्य की प्रजा बल्कि उसके साम्राज्य के बाहर भी विश्व प्रसिद्ध कराए। धम्म का अभिप्राय इतिहासकारों ने भिन्न भिन्न दियाहै।अशोक के अभिलेखों के संदर्भ में धम्म का अनुवाद कई अर्थों में किया गया है तथा नैतिक नियम दया का नियम आदि। अपने द्वितीय शिलालेख में अशोक पूछता है कि "कियं चु धम्मे" अर्थात धर्म क्या है उसका वह स्वयं ही उत्तर देता है आपसिनवे बहुकथाने दया दाने सचये सोचये मादवे धम्म अर्थात भ्रष्टता से छुटकारा, अधिक भला, दया, दान, उदारता, सत्य, शुद्धता, मृदुलता यही धम्म है। उसका धम्म सामाजिक उत्तरदायित्व से संबंधित था, और एक ऐसा प्रयास है जिसमें विभिन्न वर्ग, जाति, समुदाय और सामाजिक संबंधों के प्रति स्वस्थ सामाजिक व्यवहार बनाए जा सकें। यह मानवतावादी रहा है और इसमें व्यक्ति की प्रतिष्ठा को मान प्रदान किया है। यह जीवन जीने का एक रास्ता था।इसका जीवन आधार नैतिकता और मानवीय मूल्य है ना कि सिद्धांत रूढ़ियां, परंपराएं धार्मिक पूजा अर्चना। यह सांप्रदायिक विरोधों को दूर कर स्वयं आत्मनिरीक्षण करने के लिए उत्साहित करता है क्योंकि वह स्वयं को एक ऐसे कार्य करने से रोकता है जो की दया और सत्य की राह में बाधक है। मझिमनिकाय के राहुलवाद सूत्र में जिसका अशोक ने भिक्षु भिक्षुणियों एवं सामान्य जनों के लिए पठनीय निर्धारित किया है। राहुलवाद सूत्र में बुद्ध के अनुसार आदमी को अपने शरीर,वाणी और चित्त के प्रत्येक कार्य का निरीक्षण करने की क्षमता होनी चाहिए। बुद्ध यह भी मानते हैं की आदमी अनुभव कर सकता है और उनको सुधार भी जा सकता है। ऐसा करके भविष्य में किए जाने वाले पाप कर्मों से स्वयं को बचाया जा सकता है। अशोक शक्ति द्वारा प्राप्त विजय की निंदा करता है क्योंकि युद्ध की विभीषिका का वह साक्षी रहा था, जिसके कारण उसे असीम दुख और पछतावा हुआ उसने प्रतिज्ञा की कि वह भविष्य में शक्ति के द्वारा नहीं बल्कि धर्म विजय के द्वारा अधिकार करेगा।

अशोक का धम्म नैतिक एवं सामाजिक है और इसमें विभिन्न धर्म का सार है। धम्म, धार्मिक अनुष्ठानों और आध्यात्मिक सिद्धांतों का परित्याग करता है और अपनी प्रकृति सार्वभौम है जो मानवता को राजत्व प्रदान करता है। सेनार्त के अनुसार अशोक का धर्म बौद्ध धर्म थिऔर इसमें अन्य दर्शन का अभाव था। क्योंकि अशोक के काल में यह धम्म एक नैतिक सिद्धांत था। अशोक के अभिलेखों में धम्म की जितनी भी विशेषताएं हैं वह बौद्ध पुस्तक धम्मपद में मिलती हैं। रोमिला थापर यह मानती है कि अशोक का धम्म उसकी स्वयं की खोज है और यह जीवन की राह है। जो की व्यवहारिक, सुविधाजनक, नैतिक है न कि बुद्धवादी। उनका यह विचार है धम्म जैसी संस्था की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी और इसकी आधिकारिक कर्तव्यों की प्रकृति कहती है कि धम्म शुद्ध धार्मिक नीति ही नहीं बल्कि इसमें आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक जीवन का व्यापक पहलू भी सम्मिलित है। अशोक ने यह भी बताया है कि धम्म के गुणों को व्यवहवत कैसे किया जाए। उसने बताया कि पशुओं की हिंसा बंद करके तथा किसी भी जीवित प्राणी को किसी प्रकार की चोट नहीं पहुंच कर, माता-पिता तथा बड़ों की आज्ञा का पालन कर, गुरुओं का आदर कर, सगे-सम्बन्धियों, जान-पहचान के लोगों, ब्राह्मणों, श्रमणों, दासों और भ्रतकों से

उचित व्यवहार कर, कम संचय, कम व्यय कर उपरोक्त गुणों का यह व्यालन किया जा सकता है। येरागुड़ी अभिलेख में लिखा हुआ भी है कि माता-पिता और वैसे ही बड़ों की आज्ञा का पालन अवश्य करना आवश्यक है। सभी मानव के प्रति दया प्रकट करनी चाहिए। सत्य बोलना चाहिए। प्राचीन रीति के अनुसार शिष्यों को गुरु का आदर करना चाहिए। तीसरी शिलालेख में यह भी उल्लिखित है कि माता-पिता की आज्ञा का पालन करना, अच्छे साधु का गुण है। मित्रों परिचितों बंधु-बान्धवों, ब्राह्मण और श्रमणों को दान देना चाहिए। प्राणियों की हिंसा से बचाना अच्छा है। अल्प व्यय व अल्पसंचय अच्छा है। इसी प्रकार सातवें शिलालेख में भी भाव शुद्ध पर जोर दिया गया है। यदि कोई दानशील है किंतु उसमें संयम चित्तशुद्धि कृतज्ञता तथा दृढ़ता नहीं है तो वह पतित है अधम है। ग्यारहवें शिलालेख एवं तेरहवें शिलालेखों में अशोक ने दासों और परिचारिकों के प्रति उदार व्यवहार पर जोर दिया है। इस प्रकार जैसे कि हमें दूसरे स्तंभ लेख से भी पता चलता है कि अशोक ने लोगों को चक्खुदान अर्थात आध्यात्मिक दृष्टि का दान दिया। उपर्युक्त सभी विचार अशोक के धम्म के सकारात्मक रूप के दिखाते हैं।

धर्म का नकारात्मक रूप

यदि हम अशोक के धम्म के नकारात्मक रूप को परिभाषित करेंगे तो एक शब्द अपासिनव में ही समाहित है।अपासिनव का अभिप्राय है असिनव का निषेध। स्तंभ अभिलेख तीन में अशोक ने कहा है चाण्डिय (प्रचंडता) नैष्ठूरयम् (क्रूरता), क्रोध (गुस्सा), मान (अहं) ईर्ष्या आदि असिनव के जन्मदाता है। धम्म सिद्धि के लिए इन आवेगों से छुटकारा अत्यंत आवश्यक है। इन कुत्सित वासनाओं के वशीभूत होकर मनुष्य दुष्कर्म के जाल में फंस जाता है।

धम्म दान- सकारात्मक और नकारात्मक के अतिरिक्त कुछ ऐसा ज्ञान भी अशोक ने दिया, जिनका पालन हमें नहीं करना चाहिए। वह है धम्मदान। ग्यारहवें शिलालेख में अशोक ने धम्मदान को सर्वश्रेष्ठ दान बताया है। सभी मनुष्यों को धम्मदान करना चाहिए। एक दूसरे की पारस्परिक सहयोग करना चाहिए, परस्परिक सहायता करनी चाहिए।

धम्ममंगल- नवें शिलालेख में अशोक ने धम्ममंगल की बात कही है। वह कहता है कि फिजूल संस्कार जो आपदाओं को दूर करने के लिए तथा भाग्यशाली होने के लिए किए जाते हैं वह बेकार हैं। धम्ममंगल जो वास्तविक मंगल है उसके करने पर जोर दिया है।

धम्म विजय- तेरहवें शिलालेख में अशोक ने धर्म विजय की तुलना साम्राज्य विजय से की है इसमें उसने अपने कलिंग विजय के विषय में अपने दुख को प्रकट किया है। उसने यह स्वीकार किया है कि धम्म के द्वारा जो विजय प्राप्त होती है वह स्नेहिल होती है। और हर जगह हर परिस्थिति में प्राप्त की जा सकती है। राजनीति तलवार के द्वारा नहीं वरन सत्य की विजय के द्वारा ही होती है। यही वास्तविक धर्म विजय है।

धर्म यात्रा- अशोक ने अनेक धर्म यात्रा की तथा सामान्य जनता को धम्म यात्रा के लिए भी प्रोत्साहित किया। इन यात्राओं में ब्राह्मण श्रमणों का दर्शन करना, उनको दान देना, वृद्धो के दर्शन करना, उन्हें दान देना, ग्रामीण जनों के दर्शन करना, उनका धर्म उपदेश देना तथा धार्मिक वार्तालाप करना आदि आते हैं।

आत्म निरीक्षण- अशोक के धम्म के अंतर्गत स्तंभ लेख तीन में अशोक ने आत्म निरीक्षण की बात कही है। उसके अनुसार आत्म निरीक्षण एक कठिन कार्य है। परंतु वह शील पर जोर देते हुए कहता है कि यदि हम स्वयं का परीक्षण करें तो निश्चित रूप से हम सन्मार्ग पर जा सकते हैं। क्योंकि हमारा चित्त कभी भी हमें गलत कार्य करने की प्रेरणा नहीं देता।

अशोक का धर्म वास्तव में सभी धर्मों का सार था। सातवें शिलालेख में उसने स्वयं कहा है कि वह चाहता है कि सब जगह सब संप्रदाय के लोग प्रेम संयम एवं शांत भाव से रहे। सभी संप्रदायों में संयम का भाव हो और चित्त शुद्ध का भाव हो। बारहवें शिलालेख में अशोक के सहिष्णु भाव और भी स्पष्ट तथा उभर कर आए हैं। इसलिए इस लेख को मानव इतिहास का उदात्ततम लेख कहा जा सकता है। इस लेख में अशोक कहता है कि वह सभी धार्मिक संप्रदायों और प्रवर्तकों, ग्रहस्थों का दान से विविध प्रकार की पूजा से सम्मान करता है। किंतु देवताओं का प्रिय दान या पूजा का उतना प्रभाव नहीं करता जितनी इस बात की की सभी संप्रदायों का सार वृद्धि हो क्योंकि संयम से होती है ऐसा करने से मनुष्य अपने संप्रदाय की उन्नति तथा दूसरे संप्रदाय का उपकार करता है। हमें मिलजुल के साथ रहना चाहिए।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है क्अशोक का धर्म सामाजिक नीति शास्त्र की एक व्यवहारिक संहिता थी। दर्शन से उसका कोई मतलब नहीं था। कई विद्वान अशोक के धम्म पर शंका व्यक्त करते हैं कि अशोक का धम्म बौद्ध धर्म था परंतु यह सत्य है कि जिस धम्म का प्रतिपादन अशोक ने किया था वह रूढ़िवादी, कर्मकांडवादी, बाह्यआडंबर, गूढ, क्रियावादी ,दर्शनमूलक और सूक्ष्म तत्वापेक्षी नहीं था। उसके धम्म में सर्वमान्य आचार तत्वों और नैतिक नियमों का समन्वय था। और यह अत्यंत सरल सुबोध, पवित्र, नैतिक और व्यावहारिक था।उसका धम्म सर्व मंगलकारी था, जिसका उद्देश्य प्राणी मात्र का उद्धार करना। "अनालभ्भो प्राणिनां अरिहिंसा भूतानां" सब प्राणियों के प्रति अहिंसा और "सर्व भूतानाम अक्षतिच संयमंच उसके धम्म के महत्वपूर्ण सिद्धांतों में से एक थे। सार्वभौमिकता, आडंबरहीनता, लोककल्याण, नैतिकता, उदारता, सहिष्णुता और मूल धार्मिक तत्वों पर बल अशोक की धम्म नीति की विशेषता थी। अशोक के धम्म में एक अच्छे नागरिक के गुण की शिक्षा थी। जिसके कारण अशोक ने राष्ट्रीय एकता की समस्या को सफलतापूर्वक सामना किया। धर्म के जिस मार्ग का अनुसरण अशोक ने किया उसे तत्कालीन समाज का आध्यात्मिक, साँस्कृतिक विकास हुआ। अशोक कल्पना लोक का प्राणी नहीं था, वह वास्तविकता पर जीता था। एक व्यवहारिक व्यक्ति था और संभव आदर्श के पीछे समाज और प्रशासन की आवेहलना नहीं की। सातवें शिलालेख में बड़े वास्तविक संतोष से वह लिपिबद्ध करता है कि मुझसे जो सत्कर्म बन पड़े हैं उनका प्रजा ने अनुसरण किया हैऔर उनका वह अनुसरण भी कर रही है। अशोक ने जिस धर्म का प्रचार किया वह उसके साम्राज्य के बौद्ध धर्म एवं बहु सांस्कृतिक लोगों के को राजनीतिक रूप से बंधी थी में सहायक रहा। अशोक का धम्म नैतिक एवं आचार व्यक्तियों के विभिन्न संबंधों के प्रति उनके कर्तव्यों, अहिंसा मनुष्य और अन्य जीवों के कल्याण की चिंता, तथा सभी समुदायों के मध्य एकता सहित आपसी समझ और परस्पर सम्मान पर आधारित था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- मुखर्जी राधा कुमुद अशोक दिल्ली मोतीलाल बनारसी दास 1974
- स्मिथ विंसेंट ए अशोक द बुद्धिस्ट एंपरर ऑफ इंडिया दिल्ली, लो प्राइस पब्लिकेशन, 1980
- पांडे राजबली प्राचीन भारत ,वाराणसी विश्वविद्यालय प्रकाशन 2006
- थापर रोमिला, अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन दिल्ली मैक कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड 1977
- किरण कुमार अशोक द किंग एंड द मैन, न्यू दिल्ली आर्य बुक इंटरनेशनल 2012
- त्रिपाठी हवलदार बौद्ध धर्म और बिहार पटना फतेहपुर द्वितीय संकरण 1998
- शर्मा आर एस प्राचीन भारत दिल्ली ओरिएंट ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड प्रथम प्रकाशन 200
- झा डी एन, भारत एक रूपरेखा मनोहर लाल दिल्ली 2017

चयनित योगाभ्यासों का छात्रों के समायोजन स्तर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

सत्यम तिवारी

पी-एच.डी. शोधार्थी, योग विभाग, श्री रावतपुरा सरकार यूनिवर्सिटी, रायपुर (छ.ग.)

डॉ० राधिका चंद्राकर

सहायक प्राध्यापक, योग विभाग, श्री रावतपुरा सरकार यूनिवर्सिटी, रायपुर (छ.ग.)

सारांश-

प्रस्तुत शोधकार्य का उद्देश्या छात्रों के समायोजन स्तर पर चयनित योगाभ्यासों के प्रभावों का अध्ययन करना था। इस हेतु उद्देश्यात्मक प्रतिचयन विधि के आधार पर 16-19 वर्ष के आयु वर्ग के कुल 142 किशोर छात्रों (कक्षा 10वीं से 12वीं) को प्रतिदर्षो के रूप में चयनित किया गया। तत्पश्चात् एक अन्य यादृच्छिक प्रतिचयन विधि प्रयुक्त करते हुए इन चयनित प्रयोज्यों को प्रयोगात्मक एवं नियंत्रित समूहों में विभाजित किया गया। इस अध्ययन हेतु पूर्व व पश्चात् प्रयोगात्मक नियंत्रित शोध अभिकल्प का उपयोग किया गया। प्रत्येक समूह में बराबर की संख्या (एन.-71) में प्रयोज्यों को सम्मिलित किया गया। नियंत्रित समूह को किसी भी प्रकार का यौगिक अभ्यास नहीं करवाया गया, उन्हे केवल प्रतिदिन टहलने का सुझाव दिया गया। जबकि, प्रयोगात्मक समूह के छात्रों को सप्ताह में 6 दिन 3 माह तक चयनित योगाभ्यासों का अभ्यास कुल 45 मिनट प्रतिदिन करवाया गया। इस अध्ययन के चरों के मापन हेतु 'ए.के.पी. सिन्हा एवं आर.पी. सिंह' द्वारा निर्मित एवं मानकीकृत कुल 60 कथनों (समायोजन के भावनात्मक, सामाजिक और शैक्षिक क्षेत्र में से प्रत्येक में 20 कथन) को शामिल की हुई 'स्कूली/विद्यालयीन छात्रों हेतु समायोजन सूची' (ए.आई.एस.एस.) का उपयोग किया गया। प्रस्तुत प्रयोगात्मक शोध आधारित प्राप्त पूर्व एवं पश्चात् ऑकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु 'युग्मित नमूना टी-परीक्षण' का उपयोग किया गया। परिणामत: सांख्यिकीय रूप से उच्च सार्थकता स्तर ($p<.001$) के साथ प्रयोगात्मक समूह के किशोर छात्रों के समायोजन स्तर में उल्लेखनीय सुधार देखा गया। इसका तात्पर्य यह हैं कि नियंत्रित समूह के प्रयोज्य छात्रों की तुलना में प्रयोगात्मक समूह के प्रयोज्य छात्रों में समायोजन के पूर्व और पश्चात् के ऑकड़ों के औसत के मध्य देखा गया महत्वपूर्ण अंतर चयनित योगाभ्यासों के प्रभाव के कारण है। तथापि, चयनित योगाभ्यास न केवल समायोजन क्षमता को विकसित करते हैं, बल्कि स्वास्थ्य को भी सकारात्मक रूप से प्रभावित करते है। निष्कर्षत: प्रस्तुत शोधअध्ययन के आधार पर यह पाया गया कि चयनित योग तकनीकों का नियमित अभ्यास सकारात्मक रूप से छात्रों के समायोजन संवर्द्धन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालने के साथ ही साथ संपूर्ण स्वास्थ्य एवं कल्याण को बनाए रखता हैं।

कूट शब्द- योग हस्तक्षेप, समायोजन स्तर, स्वास्थ्य, छात्र जीवन।

प्रस्तावना

हमारे जीवन की महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं में से समायोजन अत्यन्त आवश्यक व आधारभूत संकल्पना है जिसके आधार पर समाज के विभिन्न वर्गों में हमारा आचार-व्यवहार व उनसे प्रतिक्रियाओं का निर्धारण होता है। समायोजन शब्द जीव विज्ञान के 'अनुकूलन' का पर्यायवाची है। जिसका अर्थ है नवीन परिस्थितियों से अपना सामंजस्य बिठाना (शेफर, और शोबेन जेआर, 1956)। दैनिक जीवन में मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति समायोजन की प्रक्रिया के द्वारा ही करता है; प्रत्येक मनुष्य सतत् रूप से आवश्यकताओं की पूर्ति एवं लक्ष्य पर पहुँचने के लिए प्रयासरत् रहता है, इस अवस्था में उसके ऊपर निश्चित व्यवहार करने के लिए पर्यावरण का दबाव भी रहता है। समायोजन के द्वारा व्यक्तिगत एवं पर्यावरण माँग में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। अर्थात् समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति की आवश्यकताएं पूर्ण हो जायें, मानसिक द्वन्द्व न होने पाये तथा परिस्थितियों मे संतुलन बना रहे। छात्र विशेष के संदर्भ में देखा जाये तो समायोजित छात्र मुश्किल से मुश्किल परिस्थिति में भी आत्मविश्वास से उसका सामना कर सकते हैं। समायोजन करने वाले छात्र आपस में मित्रों के साथ तालमेल बिठाने लगते हैं व इनकी मित्र मंडली में विस्तार होता हैं। समायोजित जीवन होने से व्यक्ति राष्ट्र नव-निर्माण करने में सहायक होता है। थोड़े से समायोजन के साथ कई अनावश्यक संघर्षों और झगड़ों से बचा जा सकता है।

व्यक्ति को जीवन के हर पड़ाव पर समस्या का सामना करना होता है। जो व्यक्ति इन परिस्थितियों के अनुरूप अपने आप को समायोजित कर लेता है वह मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक अपना जीवन यापन कर पाता है। जब व्यक्ति इन परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता है तब जीवन में बहुत सी समस्याऐं जन्म लेती है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति के भीतर निराषा, तनाव, चिंता, अशान्ति, आत्महीन भाव, कुण्ठा आदि उत्पन्न हो जाती है। तदुपरान्त व्यक्ति का व्यवहार असंतुलित हो जाता है परिणामस्वरूप व्यक्ति विभिन्न प्रकार के मानसिक रोग से ग्रसित होता जाता है। समायोजन को प्रभावित करने वाले कारकों में पारिवारिक कुसमायोजन, तिरस्कार एवं उपेक्षा, दोषपूर्ण अनुशासन, अतिसंरक्षण, अत्यधिक स्नेह, के अतिरिक्त अंत:व्यैक्तिक संबंध भी समायोजन की क्षमता को नकारात्मक रूप से प्रभावित करते है। छात्र विशेष के संदर्भ में समायोजन के विविध आयामों में भावनात्मक, सामाजिक और शैक्षिक समायोजन सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते हैं जो कि छात्रों के सर्वांगिण विकास हेतु अतिआवश्यक समझे जाते है (महेश्वरी, और यादव, 2018; सिन्हा, और सिंह, 1971)।

विद्यार्थियों को केंद्रित करने वाली अधिकांश समस्याओं में शारीरिक विकास, शारीरिक उपस्थिति, पारिवारिक संबंध, विद्यालयीन संबंध, उच्चतम प्राप्तांकों की होर, के साथ ही घर पर समायोजन आदि प्रमुख देखी जा सकती है। किंतु, उक्त समस्याओं के कारण विद्यार्थियों द्वारा परिस्थितियों के साथ कुसमायोजन विद्यालयीन अनुपस्थिति, अल्प शैक्षणिक उपलब्धि, एवं अन्य खराब आदतों को जन्म दे सकता है।

तथापि, योग एक ऐसा प्राकृतिक उपाय हैं जो छात्रों को सचेत जागरूकता विकसित करने में मददगार साबित है और साथ ही विशेषत: योग के प्रयोग आधारित वैज्ञानिक साक्ष्य यह प्रमाण प्रस्तुत करते है कि योग समायोजन संवर्द्धन में मददगार साबित है एवं विद्यालयीन कार्यों सहित जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों में उच्चतम प्रदर्शन को प्रोत्साहित करता है। साथ ही योग तनाव एवं शैक्षिक चिंता से राहत प्रदान करते हुए समग्र कल्याण की भावना प्रदान करता है (सुब्रमण्यम, 1986)। योग की विभिन्न तकनीकों पर आधारित पूर्व अध्ययनों के परिणामत: भी यह पाया गा कि योग विद्यार्थियों में एकाग्रता विकसित करते हुए समायोजन में सुधार करने हेतु मददगार अभ्यास हैं (महेश्वरी, और यादव, 2018; देव, 2016; कुमार, 2016; तमिलसेल्वी, और थंगराजथी, 2013; कोठियाल, और जोशी)।

उद्देश्य:

प्रस्तुत शोधकार्य का प्रमुख उद्देश्य निम्नानुसार है-

- ''चयनित योगाभ्यासों का छात्रों के समायोजन स्तर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पना:

प्रस्तुत शोधकार्य हेतु निर्मित परिकल्पना निम्नानुसार हैं-

($H1_0$): ''चयनित योगाभ्यासों का छात्रों के समायोजन स्तर पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता हैं।"

शोध प्रविधि:

प्रतिदर्श- प्रस्तुत प्रयोगात्मक अध्ययन हेतु कुल 142 किशोर छात्रों का चयन प्रतिदर्श के रूप में किया गया जो कि 16-18 वर्ष आयु वर्ग से संबंधित है। उक्त प्रयोज्यों का चयन उद्देश्यात्मक प्रतिचयन विधि के उपयोग के आधार पर किया गया हैं।

प्रयुक्त उपकरण-

इन चयनित प्रयोज्य आधारित समायोजन स्तर के ऑकड़ों के संग्रहण हेतु 'ए.के.पी. सिन्हा एवं आर.पी. सिंह' द्वारा निर्मित एवं मानकीकृत कुल 60 कथनों (समायोजन के भावनात्मक, सामाजिक और शैक्षिक क्षेत्र में से प्रत्येक में 20 कथन) को शामिल की हुई 'स्कूली/विद्यालयीन छात्रों हेतु समायोजन सूची' (ए. आई.एस.एस.) का उपयोग किया गया। प्रस्तुत शोधकार्य के तहत उपयोग की गई यह समायोजन प्रश्नावली समायोजन के तीन क्षेत्रों- भावनात्मक, सामाजिक और शैक्षिक में अच्छी तरह से समायोजित माध्यमिक विद्यालय के छात्रों को खराब समायोजित छात्रों से अलग करने का प्रयास करती हैं (सिन्हा, और सिंह, 1971)।

प्रस्तुत शोधकार्य की क्रियाविधि- प्रस्तुत प्रयोगात्मक अध्ययन को संपन्न करने हेतु शोधकर्ता द्वारा सर्वप्रथम भारत के छत्तीसगढ़ राज्य के बिलासपुर जिले के सरकारी स्कूलों से कक्षा 10वीं से 12वीं के मध्य के कुल 142 छात्रों का चयन प्रयोज्यों के रूप में किया गया, जो कि 16-19 वर्ष के आयु वर्ग के किशोर छात्र थे। प्रतिदर्श का चयन करने हेतु दो प्रकार की प्रतिचयन विधियॉ- उद्देश्पूर्ण प्रतिचयन विधि, और यादृच्छिक प्रतिचयन विधि प्रयुक्त की गयी हैं। जिसके अंतर्गत उद्देश्पूर्ण प्रतिचयन विधि द्वारा कुल प्रयोज्यों का चयन किया गया तथा यादृच्छिक प्रतिचयन विधि इन चयनित प्रयोज्यों को प्रयोगात्मक एवं नियंत्रित समूहों में विभाजित किया गया। प्रत्येक समूह में बराबर की संख्या (एन.-71) में प्रयोज्यों को सम्मिलित किया गया। इस अध्ययन हेतु पूर्व व पश्चात् प्रयोगात्मक नियंत्रित शोध अभिकल्प का उपयोग किया गया। जिसके अनुसार पूर्व ऑकड़ों के संग्रहण हेतु दोनों ही समूहों के छात्र प्रयोज्यों को समायोजन प्रश्नावली भरवायी गई। इस प्रकार हस्तक्षेप के पूर्व ऑकडों का संग्रहण करने के पश्चात् इन दोनों समूहों में से नियंत्रित समूह को किसी भी प्रकार का यौगिक अभ्यास नहीं करवाया गया, उन्हे केवल प्रतिदिन टहलने का सुझाव दिया गया जबकि, प्रयोगात्मक समूह के छात्रों को 3 माह तक प्रतिदिन सप्ताह में 6 दिन योग हस्तक्षेप का अभ्यास 45 मिनट तक करवाया गया। तदुपरान्त, पश्चात् ऑकड़ों के संग्रहण हेतु पुन: दोनों ही समूहों के प्रयोज्यों से समायोजन प्रश्नावली भरवायी गयी।

योग हस्तक्षेप- प्रस्तुत अध्ययन में उपयोग किये गये योग हस्तक्षेप (शर्मा, 2014; शर्मा, 2018; ब्रम्हवर्चस, 2018; घरोटे, देवनाथ, और झा, 2014; दिगम्बर, 2017; सरस्वती, 2012; सरस्वती, 2006; सरस्वती, 2002) के तहत निम्न योग तकनीकों को सम्मिलित किया गया-

;kxkH;kl		Lke;kof/k
▪ योगाभ्यास के लिए प्रतिदिन का कुल समय	–	45 मिनट/सप्ताह में 6 दिन
▪ गायत्री महामंत्र	–	5 मिनट
▪ प्रज्ञा योग व्यायाम	–	7 मिनट
▪ अनुलोम–विलोम प्राणायाम	–	5 मिनट
▪ भ्रामरी प्राणायाम	–	5 मिनट
▪ विश्राम तकनीक–योगनिद्रा	–	20 मिनट
▪ शांतिपाठ		3 मिनट

सांख्यिकीय विश्लेषण- प्रस्तुत प्रयोगात्मक शोध आधारित प्राप्त पूर्व एवं पश्चात् ऑकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु 'टी-परीक्षण' (युग्मित नमूना टी-परीक्षण) का उपयोग किया गया हैं।

परिणाम-

परिकल्पना: 1 ($H1_0$): ''चयनित योगाभ्यासों का छात्रों के समायोजन स्तर पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता हैं।"

तालिका 1- समायोजन स्तर मापनी आधारित समूह वर्णनात्मक सांख्यिकी

Group Descriptives						
	Group	**N**	**Mean**	**Median**	**SD**	**SE**
Pre	Control	71	45.9	45.0	8.66	1.028
	Experimental	71	46.0	46.0	6.73	0.799
Post	Control	71	45.6	45.0	7.70	0.913
	Experimental	71	22.4	24.0	5.18	0.614

चुंकि, प्रस्तुत प्रयोगात्मक अध्ययन से प्राप्त ऑकड़ें सामान्य रूप से वितरित होने के कारण यहाँ पैरामीट्रिक परीक्षण के आधार पर सांख्यिकी विश्लेषण किया गया। तालिका-1 में दर्शायें गये प्रयोगात्मक एवं नियंत्रित समूहों में सम्मिलित प्रयोज्यों की कुल संख्या समान रूप से 71 है। इन प्रयोज्यों के पूर्व आंकड़ों पर आधारित, नियंत्रित समायोजन समूह का माध्य और मानक विचलन क्रमशः 45.9, व 8.66 पाया गया, जबकि पश्चात् आंकड़ों पर आधारित, नियंत्रित समायोजन समूह का माध्य और मानक विचलन क्रमशः 45.6, व 7.70 पाया गया। इन नियंत्रित समायोजन समूह के संदर्भ में पूर्व व पश्चात् आंकड़ों पर आधारित माध्य और मानक विचलन के मान के विश्लेषण के परिणामतः पूर्व-टेस्ट के प्राप्तांकों की तुलना में पोस्ट-टेस्ट के माध्य और मानक विचलन में 0.3 व 0.96 की कमीं के साथ थोड़ा अंतर पाया गया। इसी प्रकार, प्रयोज्यों के पूर्व आंकड़ों पर आधारित, प्रयोगात्मक समायोजन समूह का माध्य और मानक विचलन क्रमशः 46.0, व 6.73 पाया गया, जबकि पश्चात् आंकड़ों पर आधारित, प्रयोगात्मक समायोजन समूह का माध्य और मानक विचलन क्रमशः 22. 4 व 5.18 पाया गया। इन प्रयोगात्मक समायोजन समूह के संदर्भ में पूर्व व पश्चात् आंकड़ों पर आधारित माध्य और मानक विचलन के मान के विश्लेषण के परिणामतः पूर्व-टेस्ट के प्राप्तांकों की तुलना में पोस्ट-टेस्ट के माध्य और मानक विचलन में 23.6 व 1.55 की कमीं के साथ प्रमुख अंतर पाया गया।

तालिका 2- समायोजन स्तर मापनी आधारित युग्मित नमूने टी-टेस्ट

Paired Samples T-Test					
			statistic	**df**	**p**
ADJ_Ctr_Pre	ADJ_Ctr_Post	Student's t	0.463	70.0	0.645
ADJ_Exp_Pre	ADJ_Exp_Post	Student's t	27.734	70.0	< .001

तालिका-2 के अनुसार प्रयोज्य छात्रों के समायोजन स्तर प्रश्नावली के आधार पर संकलित पूर्व एवं पश्चात् आँकड़ों के वर्णनात्मक सांख्यिकीय विश्लेषण द्वारा प्राप्त माध्य, एवं मानक विचलन संबंधी परिणामों की विवेचना के पष्चात, इन्हीं प्राप्तांकों पर आधारित 'युग्मित नमूने टी-टेस्ट' (तालिका-2) के विश्लेषण के परिणामस्वरूप यह पाया गया कि नियंत्रित समायोजन समूह के पूर्व एवं पश्चात् प्राप्तांको का च मान 0.645 प्राप्त हुआ जबकि प्रयोगात्मक समायोजन समूह के पूर्व एवं पश्चात् प्राप्तांको का च मान <?.001 प्राप्त किया गया। अतएव नियंत्रित समायोजन समूह की तुलना में प्रयोगात्मक समायोजन समूह के पूर्व एवं पश्चात् प्राप्तांको का निश्चित विश्वास सीमा पर (या स्वतंत्रता की माप) प्राप्त परिगणित च मान के मध्य यह अन्तर ज सारणीमान से अधिक होने के कारण मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता (p <?.001) को प्रदर्षित करता है। जो कि प्रस्तुत शोधकार्य की तृतीय परिकल्पना (H_{10}) 'चयनित योगाभ्यासों का छात्रों

के समायोजन स्तर पर कोई सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता हैं' को निरस्त करते हुए इसके विकल्प के रूप में निर्मित दिषात्मक परिकल्पना (H_{11}) को स्वीकृति प्रदान करते हुए यह निष्कर्ष प्रदान करता है कि 'चयनित योगाभ्यासों का छात्रों के समायोजन स्तर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता हैं'। इसका तात्पर्य यह हैं कि नियंत्रित समूह के प्रयोज्य छात्रों की तुलना में प्रयोगात्मक समूह के प्रयोज्य छात्रों में समायोजन के पूर्व और पश्चात् के ऑकड़ों के औसत के मध्य देखा गया महत्वपूर्ण अंतर चयनित योगाभ्यासों के प्रभाव के कारण है।

इसी के साथ 'युग्मित नमूने टी-टेस्ट' के विश्लेषण के परिणामस्वरूप प्राप्त सांख्यिकीय आरेखों (Plots) क्रमशः चित्र-1 व 2 में दर्शायें गये 'समायोजन स्तर मापनी आधारित नियंत्रित समूह प्री-पोस्ट सांख्यिकीय आरेख' व 'समायोजन स्तर मापनी आधारित प्रयोगात्मक समूह प्री-पोस्ट सांख्यिकीय आरेख' के आधार पर भी परिणामों के मध्य अंतर को आसानी से समझा जा सकता है।

चित्रः 1- समायोजन स्तर मापनी आधारित नियंत्रित समूह प्री-पोस्ट सांख्यिकीय आरेख (Plots)

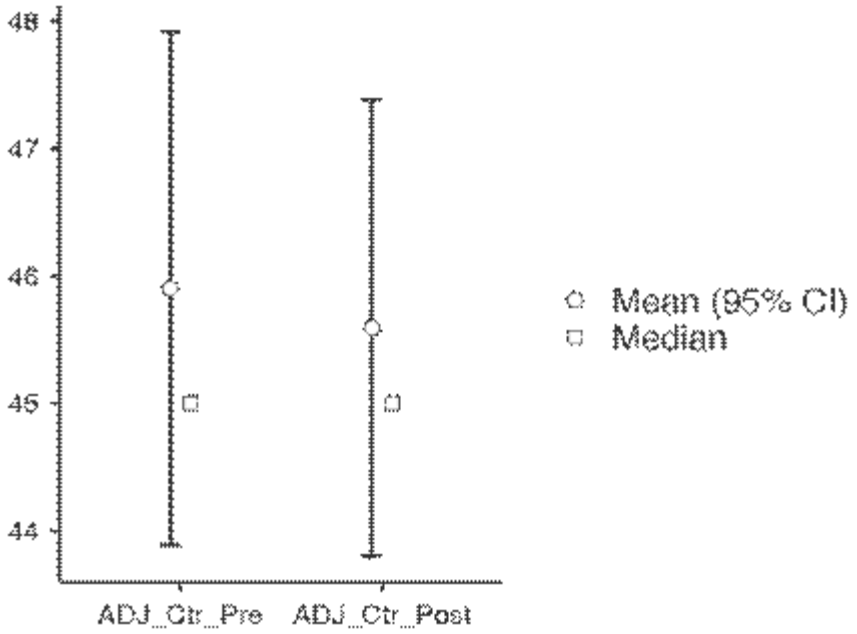

चित्रः 6- समायोजन स्तर मापनी आधारित प्रयोगात्मक समूह प्री-पोस्ट सांख्यिकीय आरेख (Plots)

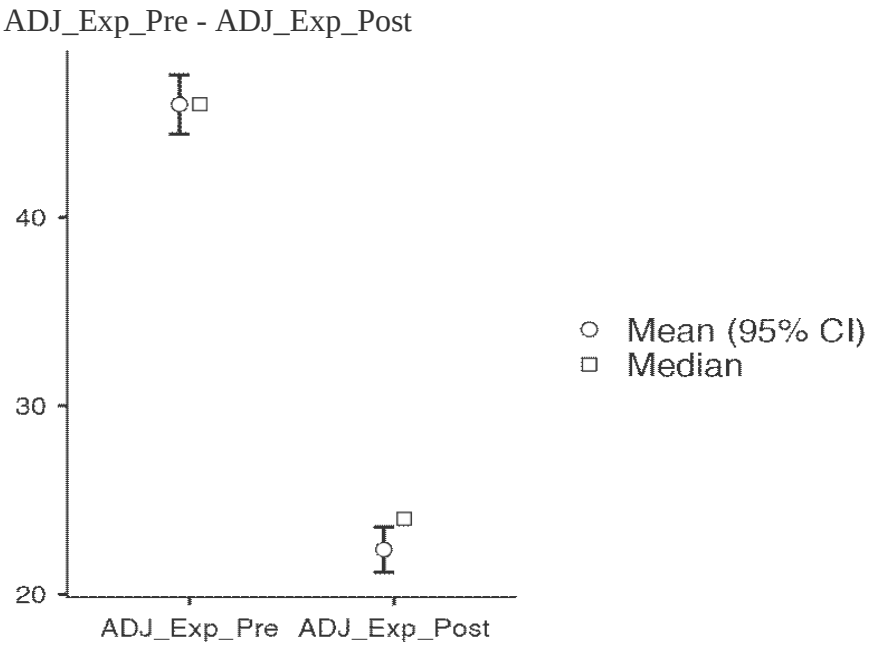

नोटः यहाँ "ADJ" से तात्पर्य समायोजन (Adjustment) से हैं।

परिणामों का विश्लेषण एवं व्याख्या:

उपरोक्त तालिकाओं द्वारा दर्षायें गये परिणामों से यह स्पष्ट तथ्य देखे जा सकते हैं कि योगाभ्यास का प्रयोगात्मक समूह एवं नियंत्रित समूह के मध्य समायोजन स्तर पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। जैसा कि नियंत्रित समायोजन समूह के पूर्व एवं पश्चात् प्राप्तांको का च मान 0.645 प्राप्त हुआ जबकि प्रयोगात्मक समायोजन समूह के पूर्व एवं पश्चात् प्राप्तांको का च मान <.001 प्राप्त किया गया जो कि निश्चित विश्वास सीमा पर प्राप्त परिगणित च मान के मध्य यह अन्तर ज सारणीमान से अधिक होने के कारण मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता (p <.001) को प्रदर्शित करता है।

वर्तमान में संपन्न विभिन्न पूर्व शोधअध्ययनों की समीक्षा से प्राप्त सबूत पर्याप्त रूप से यह सुझाव देते हैं कि योग एक ऐसा प्राकृतिक उपाय हैं जो छात्रों को सचेत जागरूकता विकसित करने में मददगार साबित है और साथ ही विशेषत: योग के प्रयोग आधारित वैज्ञानिक साक्ष्य यह प्रमाण प्रस्तुत करते है कि योग समायोजन संवर्द्धन में मददगार साबित है एवं विद्यालयीन कार्यों सहित जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों में उच्चतम प्रदर्शन को प्रोत्साहित करता है। साथ ही योग तनाव एवं शैक्षिक चिंता से राहत प्रदान करते हुए समग्र कल्याण की भावना प्रदान करता है (सुब्रमण्यम, 1986; महेश्वरी, और यादव, 2018; देव, 2016; कुमार, 2016; तमिलसेल्वी, और थंगराजथी, 2013; कोठियाल, और जोशी)। अलग-अलग योग तकनीकें जैसे ध्यान, प्राणायाम, विभिन्न आसनों का अभ्यास एवं विभिन्न योग तकनीको के संयोजन से निर्मित अत्यंत ही प्रभावकारी योग हस्तक्षेप आधारित विभिन्न प्रयोगात्मक शोधअध्ययनों से प्राप्त परिणाम समायोजन संवर्द्धन में योग की प्रभावी भूमिका से संबंधित साक्ष्यों को प्रदर्शित करते है (कोठियाल, और जोशी)। हालाँकि, समायोजन संवर्द्धन के साथ-साथ योगाभ्यास का स्वास्थ्य संबंधी लाभकारी प्रभाव भी देखे जा सकते है। प्रस्तुत अध्ययन से प्राप्त परिणाम भी योगाभ्यास करने वाले विद्यालयीन छात्रों में गैर योगाभ्यासी छात्रों के मध्य समायोजन स्तर में एक महत्वपूर्ण बदलाव दर्शाता है। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता हैं कि चयनित योगाभ्यासों (शर्मा, 2014; शर्मा, 2018; ब्रम्हवर्चस, 2018; घरोटे, देवनाथ, और झा, 2014; दिगम्बर, 2017; सरस्वती, 2012; सरस्वती, 2006; सरस्वती, 2002) के द्वारा छात्रों के समायोजन स्तर में वृद्धि होती है। हालाँकि योग शिक्षा 'समायोजन' को बेहतर बनाने में मदद करती है।

निष्कर्ष:

प्रस्तुत शोध अध्ययन से प्राप्त परिणामों एवं उनके विश्लेषण के आधार पर यह सुस्पष्ट है कि प्रतिदिन योगाभ्यास किशोर विद्यालयीन छात्रों के समायोजन स्तर में महत्वपूर्ण उल्लेखनीय सुधार करने में सक्षम तकनीक है। जैसा कि साक्ष्य आधारित उपरोक्त विश्लेषण एवं व्याख्या के तहत यह स्पष्ट किया गया हैं कि विद्यार्थियों को केंद्रित करने वाली अधिकांश समस्याओं में शारीरिक विकास, शारीरिक उपस्थिति, पारिवारिक संबंध, विद्यालयीन संबंध, उच्चतम प्राप्तांकों की होर, के साथ ही घर पर समायोजन आदि प्रमुख देखी जा सकती है। किंतु, उक्त समस्याओं के कारण विद्यार्थियों द्वारा परिस्थितियों के साथ कुसमायोजन विद्यालयीन अनुपस्थिति, अल्प शैक्षणिक उपलब्धि, एवं अन्य खराब आदतों को जन्म दे सकता है। तथापि प्रस्तुत अध्ययन से प्राप्त परिणाम यह प्रदर्शित करते हैं कि चयनित योगाभ्यास छात्रों में एकाग्रता एवं जागरूकता विकसित करने के साथ ही समायोजन संवर्द्धन में मददगार साबित है एवं विद्यालयीन कार्यों सहित जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों में उच्चतम प्रदर्शन को प्रोत्साहित करता है। साथ ही योग तनाव एवं शैक्षिक चिंता से राहत प्रदान करते हुए समग्र कल्याण की भावना प्रदान करता है। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता हैं कि प्रतिदिन योगाभ्यास किशोर छात्रों के समायोजन स्तर में उल्लेखनीय सुधार करते हुए संपूर्ण स्वास्थ्य एवं कल्याण को बढ़ावा देता है।

संदर्भ सूची-

[1] शर्मा, श्री राम आचार्य, (2014), गायत्री महाविज्ञान, तृतीय भाग, मथुरा, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, पृष्ठ संख्या- 320.

[2] शर्मा, श्री राम आचार्य, (2018), प्रज्ञा अभियान का योग-व्यायाम, ब्रम्हवर्चस, पृष्ठ संख्या- 14.

[3] ब्रम्हवर्चस, (2018), प्रज्ञा अभियान का योग व्यायाम, युग निर्माण योजना प्रेस, गायत्री तपोभूमि, मथूरा।

[4] घरोटे, एम. एल., देवनाथ, पी., और झा, वी. के., (2014), हठरत्नावली अ ट्रीटाइज ऑन हठयोगा ऑफ श्रीनिवासयोगी, द लोनावला योग इन्सट्यूट, लोनावला, पुणे, श्लोक संख्या- 2/26, 2/3, महाराष्ट्र, पृष्ठ संख्या- 50, 48।

[5] दिगम्बर, स्वामी (2017), हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति लोनावला, पुणे, भारत, श्लोक सं.- 65, श्लोक संख्या- 2/68।

[6] सरस्वती, एन. (2012), घेरण्ड संहिता: कमेंट्री आन द योगा टीचिंग ऑफ महर्षि घेरण्ड, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या-326, श्लोक संख्या- 5/79-84।

[7] सरस्वती, एस. एस., (2006), आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध, योग पब्लिकेषन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या- 412।

[8] सरस्वती, एस. एस., (2002), योग निद्रा, योग पब्लिकेषन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या-85-91।

[9] Sinha, A.K.P., and Singh, R.P., (1971). 'Adjustment Inventory for School Student (AISS)'. National Psychological Corporation: Agra.

[10] Shaffer, L. F., & Shoben Jr, E. J. (1956). The psychology of adjustment.

[11] Kumar, K. (2016). Approach of Yoga based lifestyle towards Social adjustment among Students. *International Journal of Yoga and Allied Sciences*, *5*(1), 18-23.

[12] Maheshwari, V., & Yadav, A. (2018). Effect of Yoga-Preksha meditation on adjustment among college going girls. *International Journal of yoga and allied sciences*, *7*(1), 45-51.

[13] Kothiyal, S., & Joshi, P. Effect of Yogic Practices on Adjustment Enhancement in School Students.

[14] Tamilselvi, B., & Thangarajathi, S. (2013). A Study on Effects of Yoga on Adjustment Problems of School Teachers. *Journal on Educational Psychology*, *7*(1), 43-50.

[15] Dev, K. (2016). A study on the effect of yogic intervention on self confidence emotional intelligence and adjustment of adolescents.

भारत में स्वास्थ्य और पर्यावरण स्वच्छता

सुरेन्द्र कुमार पंडित

शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

डॉ० मंजू झा

एसोसिएट प्रोफेसर, विश्वविद्यालय समाजशास्त्र विभाग, ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सार

भारत में पर्यावरणीय स्वच्छता एक प्रमुख सार्वजनिक स्वास्थ्य मुद्दा है। भारत में पर्यावरणीय स्वच्छता पर हाल के पारंपरिक अध्ययनों ने नियंत्रण रणनीतियों को प्राथमिकता देने के महत्व पर प्रकाश डाला है। बेहतर स्वच्छता में निवेश करने से संक्रामक रोगों की घटनाओं को कम करने और विकलांगता और शीघ्र मृत्यु को रोकने से महत्वपूर्ण आर्थिक और सामाजिक लाभ मिल सकते हैं। बेहतर स्वच्छता से स्वास्थ्य देखभाल की लागत भी कम हो सकती है, उत्पादकता बढ़ सकती है और बेहतर शैक्षिक परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। उचित लागत प्रभावी हस्तक्षेप रणनीतियों और भारतीय संदर्भ में उनके कार्यान्वयन से संबंधित अनुसंधान एक बड़ी चुनौती है। यह पत्र भारत में पर्यावरणीय स्वच्छता से संबंधित विभिन्न हस्तक्षेप रणनीतियों पर चर्चा करता है और देश की आवश्यकता के अनुसार इसे प्राथमिकता देने पर जोर देता है।

मुख्य-शब्दः नियंत्रण रणनीतियाँ, पर्यावरण स्वच्छता, भारत, प्राथमिकता।

परिचय

पर्यावरणीय स्वच्छता स्वच्छ वातावरण प्रदान करके और बीमारी के चक्र को तोड़कर समुदाय के स्वास्थ्य को बढ़ावा देने की परिकल्पना करती है। यह विभिन्न कारकों पर निर्भर करता है जिसमें लोगों की स्वच्छता की स्थिति, उपलब्ध संसाधनों के प्रकार, समुदाय की आवश्यकता के अनुसार नवीन और उपयुक्त प्रौद्योगिकियां, देश का सामाजिक-आर्थिक विकास, पर्यावरणीय स्वच्छता से संबंधित सांस्कृतिक कारक, राजनीतिक प्रतिबद्धता, क्षमता निर्माण शामिल हैं। पर्यावरण स्वच्छता के क्षेत्र में भारत अभी भी कई देशों से बहुत पीछे है।(1) भारत में गंदगी की स्थितियाँ भयावह हैं और 19वीं सदी के मध्य में लंदन में जो हुआ था, उसी तरह एक महान स्वच्छता जागरूकता की आवश्यकता है।(2) स्वच्छता में सुधार के लिए अनुवर्ती मूल्यांकन के साथ नई रणनीतियों और लक्षित हस्तक्षेप की आवश्यकता है।(3) समय की मांग है कि पर्यावरणीय स्वच्छता की मौजूदा प्रणाली की संरचना और कार्यप्रणाली के संबंध में पहचान की जाए और देश की आवश्यकता के अनुसार नियंत्रण रणनीतियों को प्राथमिकता दी जाए। ये प्राथमिकताएँ पानी की कमी, पर्यावरण से संबंधित स्वास्थ्य समस्याओं, तेजी से जनसंख्या वृद्धि, जल संसाधनों के असमान वितरण, प्रशासनिक समस्याओं से संबंधित मुद्दों, शहरीकरण और औद्योगीकरण, जनसंख्या के प्रवासन और तेजी से आर्थिक विकास से संबंधित मुद्दों के कारण विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं।[1]

वर्तमान परिदृश्य

अनुमान के अनुसार, अपर्याप्त स्वच्छता के कारण 2006 में भारत को लगभग +54 बिलियन या देश के सकल घरेलू उत्पाद का 6.4 प्रतिशत का नुकसान हुआ। इस आर्थिक प्रभाव का 70 प्रतिशत से अधिक या लगभग +38.5 बिलियन स्वास्थ्य से संबंधित था, जिसमें डायरिया के बाद तीव्र निचले श्वसन संक्रमण का योगदान 12 प्रतिशत था। स्वास्थ्य संबंधी प्रभाव के संबंध में साक्ष्य बताते हैं कि सभी विकासशील विश्व उपक्षेत्रों में सभी जल और स्वच्छता सुधार लागत-लाभकारी हैं।

मुख्य रूप से शहरीकरण के कारण भारत में पानी की क्षेत्रीय मांग तेजी से बढ़ रही है और अनुमान है कि 2025 तक, देश की 50 प्रतिशत से अधिक आबादी शहरों और कस्बों में रहेगी। जनसंख्या वृद्धि, बढ़ती आय और औद्योगिक विकास भी इस नाटकीय बदलाव के लिए जिम्मेदार हैं। राष्ट्रीय शहरी स्वच्छता नीति 2008 देश के शहरी क्षेत्रों में स्वच्छता को तेजी से बढ़ावा देने के लिए हालिया विकास था। भारत के शहरी विकास मंत्रालय ने नवंबर 2008 में अपनी राष्ट्रीय शहरी स्वच्छता नीति के हिस्से के रूप में सर्वेक्षण शुरू किया। ग्रामीण क्षेत्रों में, बुनियादी ढांचे के संचालन और रखरखाव के प्रभारी स्थानीय सरकारी संस्थानों को कमजोर माना जाता है और उनके पास अपने कार्यों को पूरा करने के लिए वित्तीय संसाधनों की कमी होती है। इसके अलावा, भारत के किसी भी बड़े शहर में निरंतर जल आपूर्ति नहीं होती है और अनुमान है कि 72 प्रतिशत भारतीयों के पास अभी भी बेहतर स्वच्छता सुविधाओं तक पहुंच नहीं है।[2]

हस्तक्षेप रणनीतियाँ

भारत में, विशेष रूप से 2000 के दशक की शुरुआत में, जल आपूर्ति और स्वच्छता में सुधार के लिए कई नवीन दृष्टिकोणों का परीक्षण किया गया है। इनमें 1999 से ग्रामीण जल आपूर्ति में मांग-संचालित दृष्टिकोण, समुदाय के नेतृत्व वाली कुल स्वच्छता, कर्नाटक में शहरी जल आपूर्ति की निरंतरता में सुधार के लिए सार्वजनिक-निजी भागीदारी और पानी तक पहुंच में सुधार के लिए महिलाओं को माइक्रोक्रेडिट का उपयोग शामिल है।

संपूर्ण स्वच्छता अभियान पंचायती राज संस्थानों, समुदाय-आधारित संगठनों और गैर-सरकारी संगठनों आदि की भागीदारी के साथ प्रभावी व्यवहार परिवर्तन के लिए सूचना, शिक्षा और संचार, क्षमता निर्माण और स्वच्छता शिक्षा पर जोर देता है। प्रमुख हस्तक्षेप क्षेत्र व्यक्तिगत घरेलू शौचालय, स्कूल स्वच्छता और स्वच्छता शिक्षा, सामुदायिक स्वच्छता परिसर, ग्रामीण स्वच्छता मार्ट द्वारा समर्थित आंगनवाड़ी शौचालय और उत्पादन केंद्र हैं। भारत सरकार का मुख्य लक्ष्य 2010 तक खुले में शौच की प्रथा को खत्म करना है। इस प्रयास को बढ़ावा देने के लिए, भारत सरकार ने पूरी तरह से कवर किए गए पीआरआई और उन लोगों के लिए नकद पुरस्कार के संदर्भ में प्रयासों को मान्यता देने के लिए निर्मल ग्राम पुरस्कार शुरू किया है। ऐसे व्यक्ति और संस्थान जिन्होंने अपने संचालन क्षेत्र में पूर्ण स्वच्छता कवरेज सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यह परियोजना जिले को कार्यान्वयन की इकाई के रूप में लेते हुए ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यान्वित की जा रही है।

एक हालिया अध्ययन में इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि कवरेज के निरंतर विस्तार और सेवाओं के उन्नयन के पूरक के लिए बेहतर घरेलू जल गुणवत्ता प्रबंधन को शामिल करने की नीति में बदलाव कई विकासशील देशों में एक लागत प्रभावी स्वास्थ्य हस्तक्षेप प्रतीत होगा। अधिकांश हस्तक्षेपों (कई हस्तक्षेपों, स्वच्छता और पानी की गुणवत्ता सहित) से डायरिया संबंधी बीमारी के स्तर में उल्लेखनीय रूप से कमी पाई गई, जिसका सबसे बड़ा प्रभाव स्वच्छता और घरेलू उपचार हस्तक्षेपों के लिए देखा गया। घरेलू स्तर पर पानी की गुणवत्ता में सुधार के लिए हस्तक्षेप स्रोत की तुलना में अधिक प्रभावी हैं। दुर्भाग्य से, विकासशील देशों में, सार्वजनिक स्वास्थ्य संबंधी चिंताएँ आमतौर पर संस्थागत सेटिंग, जैसे नगरपालिका सेवाओं, अस्पतालों और पर्यावरणीय स्वच्छता पर उठाई जाती हैं। समुदाय में रोग संचरण की श्रृंखला में सार्वजनिक संस्थानों के साथ-साथ घर को भी समान महत्व की संस्था के रूप में स्वीकार करने में अनिच्छा है। घरेलू स्वच्छता और सामुदायिक स्वच्छता के प्रबंधकों को सार्वजनिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के प्रयासों से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए एकजुट होकर कार्य करना चाहिए। भारत के हैदराबाद शहर में 800 से अधिक परिवारों के साथ गहन साक्षात्कार के माध्यम से एक सर्वेक्षण ने निष्कर्ष निकाला कि, भले ही वित्तपोषण की बाजार (रियायती नहीं) दरें प्रदान की जाएं, गरीब परिवारों का एक बड़ा हिस्सा पानी और सीवर नेटवर्क कनेक्शन में निवेश करेगा।[3]

पेयजल गुणवत्ता के लिए डब्ल्यूएचओ दिशानिर्देशों की भूमिका स्रोत से उपभोक्ता तक जल गुणवत्ता मूल्यांकन और प्रबंधन के लिए एक एकीकृत दृष्टिकोण पर जोर देती है। यह गुणवत्ता संरक्षण और संदूषण की रोकथाम पर जोर देता है और सक्रिय और सहभागी होने की सलाह देता है, और विकासशील देशों में उन लोगों की जरूरतों को पूरा करता है जिनके पास पाइप से सामुदायिक जल आपूर्ति तक पहुंच नहीं है। दिशानिर्देश एक आवश्यक लक्ष्य के रूप में जलजनित संक्रामक रोग को रोकने के लिए माइक्रोबियल गुणवत्ता के रखरखाव पर जोर देते हैं। इसके अलावा, वे रासायनिक विषाक्त पदार्थों और सार्वजनिक स्वास्थ्य चिंता के अन्य प्रदूषकों से सुरक्षा का भी समाधान करते हैं।

जब स्वच्छता की स्थिति खराब होती है, तो जल प्रदूषण की मात्रा की परवाह किए बिना जल की गुणवत्ता में सुधार का प्रभाव न्यूनतम हो सकता है। यदि प्रत्येक संचरण मार्ग अकेले डायरिया रोग को बनाए रखने के लिए पर्याप्त है, तो एकल-मार्ग हस्तक्षेपों का न्यूनतम लाभ होगा, और अंततः एक हस्तक्षेप केवल तभी सफल होगा जब सभी पर्याप्त मार्गों को समाप्त कर दिया जाएगा। हालाँकि, जब बीमारी को बनाए रखने के लिए एक मार्ग महत्वपूर्ण है, तो सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रयासों को इस महत्वपूर्ण मार्ग पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। पानी की गुणवत्ता में सुधार का सकारात्मक प्रभाव अच्छी स्वच्छता स्थितियों के तहत रहने वाले परिवारों पर सबसे बड़ा है, जब स्वच्छता को सामुदायिक स्तर पर मापा जाता है तो यह प्रभाव सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण होता है, लेकिन जब स्वच्छता को घरेलू स्तर पर मापा जाता है तो यह प्रभाव महत्वपूर्ण नहीं होता है। बहुत खराब पर्यावरणीय स्वच्छता वाले पड़ोस में पीने के पानी की गुणवत्ता में सुधार का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा; हालाँकि, बेहतर सामुदायिक स्वच्छता वाले क्षेत्रों में, फीकल कोलीफॉर्म की सांद्रता को परिमाण के दो क्रमों तक कम करने से दस्त में 40 प्रतिशत की कमी आएगी। निजी मलमूत्र निपटान प्रदान करने से दस्त में 42 प्रतिशत की कमी आने की उम्मीद है, जबकि घर के आसपास मलमूत्र को नष्ट करने से दस्त में 30 प्रतिशत की कमी आएगी। निष्कर्ष बताते हैं कि यदि विकासशील देशों में शिशु स्वास्थ्य में सुधार करना है तो जल आपूर्ति और स्वच्छता दोनों में सुधार आवश्यक है। उनका यह भी तात्पर्य है कि यह महामारी विज्ञान नहीं बल्कि व्यवहारिक, संस्थागत और आर्थिक कारक हैं जिन्हें हस्तक्षेप की प्राथमिकता सही ढंग से निर्धारित करनी चाहिए। एक अन्य अध्ययन में इस बात पर प्रकाश डाला गया कि उपयोग के बिंदु पर जल उपचार के लिए जल की गुणवत्ता में हस्तक्षेप पहले की तुलना में अधिक प्रभावी पाया गया, और कई हस्तक्षेप (संयुक्त जल, स्वच्छता और स्वच्छता उपायों से मिलकर) एकल के साथ हस्तक्षेप की तुलना में अधिक प्रभावी नहीं थे। फोकस. अध्ययनों से पता चला है कि हाथ धोने से दस्त की घटनाओं को लगभग 30 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है। यह महत्वपूर्ण कमी कम आय वाले क्षेत्रों में स्वच्छ पानी उपलब्ध कराने के प्रभाव के बराबर है।4

सुरक्षित जल आपूर्ति की कमी, खराब पर्यावरणीय स्वच्छता, मानव मल का अनुचित निपटान और खराब व्यक्तिगत स्वच्छता भारत में डायरिया रोगों को बनाए रखने और फैलाने में मदद करती है। चूँकि डायरिया संबंधी बीमारियाँ 20-25 रोगजनकों के कारण होती हैं, टीकाकरण, हालांकि एक आकर्षक रोग निवारण रणनीति है, संभव नहीं है। हालाँकि, चूँकि अधिकांश बचपन के दस्त विब्रियो कोलेरा, शिगेला डिसेन्टेरिया टाइप 1, रोटावायरस और एंटरोटॉक्सिजेनिक एस्चेरिचिया कोली के कारण होते हैं, जिनमें रुग्णता और मृत्यु दर अधिक होती है, महामारी के नियंत्रण के लिए इन जीवों के खिलाफ टीके आवश्यक हैं। भारत में बचपन में होने वाली दस्त संबंधी बीमारियों के नियंत्रण के लिए उचित बजटीय आवंटन के साथ मजबूत राजनीतिक इच्छाशक्ति आवश्यक है।

समुदाय-आधारित प्रबंधन दृष्टिकोण

राष्ट्रीय जल नीतियां समुदाय-आधारित प्रबंधन दृष्टिकोण में स्थानांतरित हो रही हैं क्योंकि स्थानीय अधिकारी उपयोगकर्ताओं के साथ दैनिक संपर्क में हैं, जिनमें से लगभग 50 प्रतिशत महिलाएं हैं। ऐतिहासिक रूप से, राष्ट्रीय नीति का ध्यान जल क्षेत्र में निवेश के वितरण से हटकर जल एजेंसियों के पुनर्गठन और निजी या स्वैच्छिक एजेंसियों की क्षमता के निर्माण पर केंद्रित हो गया है। स्थानीय संदर्भ स्थानीय परिस्थितियों में अधिक कुशल और प्रभावी प्रतिक्रिया की अनुमति देता है। स्थानीय संस्थाएँ और समूह स्थानीय भागीदारी के लिए बेहतर ढंग से सुसज्जित हैं। अविकसित क्षेत्रों में गरीब लोगों की आर्थिक और व्यक्तिगत क्षमता को मजबूत करने के लिए स्थानीय जल संसाधन योजना बहुत महत्वपूर्ण है। गुजरात राज्य में महेसाणा, बनासकांठा और साबरकांठा का अनुभव इस सीखे गए सबक का समर्थन करता है। गुजरात में जल संसाधन विकास में बाधाओं में से एक को सार्वजनिक जल सेवाओं की बढ़ती मांग और क्षेत्र की सुदूरता और केंद्रीय एजेंसियों की वित्तीय सीमाओं के कारण सेवाओं के अपर्याप्त प्रावधान के रूप में पहचाना जाता है। बुनियादी ढांचे का रखरखाव भी ख़राब है।[5]

निजी मलमूत्र निपटान प्रदान करने से दस्त में 42 प्रतिशत की कमी आने की उम्मीद है, जबकि घर के आसपास मलमूत्र को नष्ट करने से दस्त में 30 प्रतिशत की कमी आएगी। निष्कर्ष बताते हैं कि यदि विकासशील देशों में शिशु स्वास्थ्य में सुधार करना है तो जल आपूर्ति और स्वच्छता दोनों में सुधार आवश्यक है। उनका यह भी तात्पर्य है कि यह महामारी विज्ञान नहीं बल्कि व्यवहारिक, संस्थागत और आर्थिक कारक हैं जिन्हें हस्तक्षेप की प्राथमिकता सही ढंग से निर्धारित करनी चाहिए।[6]

पेयजल आपूर्ति की उपलब्धता में वृद्धि के अनुरूप जलजनित रोगों के कारण रुग्णता और मृत्यु दर में गिरावट नहीं आई है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि स्वच्छता की कमी के कारण होने वाली बीमारियों का बड़ा बोझ छोटे बच्चों पर पड़ता है। भारत में अभी भी डायरिया के कारण 5 वर्ष से कम उम्र के 0.4 से 0.5 मिलियन बच्चों की मौत हो जाती है। जबकि पूरे देश में पिछले कुछ वर्षों में शिशु मृत्यु दर और 5 साल से कम उम्र की मृत्यु दर में गिरावट आई है, कई राज्यों में, ये हाल के वर्षों में स्थिर हो गए हैं। इसका एक कारण व्यक्तिगत और घरेलू स्वच्छता, विशेषकर छोटे बच्चों की देखभाल और जन्म के आसपास की स्थितियों में सुधार करने में महत्वपूर्ण प्रगति करने में विफलता है।[7]

अन्य विकास

भारत में सतही और भूजल का 90 से 95 प्रतिशत हिस्सा कृषि क्षेत्र का है, जबकि शेष उद्योग और घरेलू क्षेत्र का है। साथ ही उपरोक्त मुद्दों से निपटने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए जा रहे हैं। जल संसाधन प्रबंधन के मोर्चे पर, राष्ट्रीय जल नीति, 2002 राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर अच्छी तरह से विकसित सूचना प्रणालियों की आवश्यकता को पहचानती है, उपयोग के लिए गैर-पारंपरिक तरीकों जैसे इंटरबेसिन ट्रांसफर, कृत्रिम पुनर्भरण, खारे या समुद्र के अलवणीकरण पर जोर देती है। उपयोग योग्य जल संसाधनों को बढ़ाने के लिए जल, साथ ही पारंपरिक जल संरक्षण प्रथाओं जैसे वर्षा जल संचयन आदि। यह व्यापक मृदा संरक्षण, जलग्रहण क्षेत्र उपचार, वनों के संरक्षण और वन आवरण को बढ़ाने और चेक बांधों के निर्माण के माध्यम से वाटरशेड प्रबंधन की भी वकालत करता है। यह नीति इस क्षेत्र के लिए संस्थागत व्यवस्थाओं को पुनर्गठित और पुनर्गठित करने की संभावित आवश्यकता को भी पहचानती है और मौजूदा बुनियादी ढांचे को बनाए रखने की आवश्यकता पर जोर देती है।[8]

हालाँकि पूरे देश में जल आपूर्ति, स्वच्छता और स्वास्थ्य से संबंधित इक्विटी मुद्दों पर कोई व्यापक अध्ययन नहीं किया गया है, अधिकांश विकासशील देशों में इस क्षेत्र को प्रभावित करने वाले सामान्य इक्विटी मुद्दे भारत के लिए भी सही हैं। इसके अलावा, भारत में जल और स्वच्छता क्षेत्र के आर्थिक मूल्य पर व्यापक अध्ययन भी मौजूद नहीं है।

आरडब्ल्यूएसएस, यूडब्ल्यूएसएस, स्वास्थ्य के संकेतकों की संयुक्त रूप से निगरानी करने के लिए ग्रामीण जल आपूर्ति और स्वच्छता (आरडब्ल्यूएसएस) और शहरी जल आपूर्ति और स्वच्छता (यूडब्ल्यूएसएस) एजेंसियों को अपने स्वास्थ्य और शिक्षा समकक्षों के साथ हाथ से काम करने की आवश्यकता को दोहराना महत्वपूर्ण है। शिक्षा, गरीबी और समानता संबंधित क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति करने के लिए मौजूदा स्वास्थ्य संवर्धन और शिक्षा कार्यक्रमों को अधिक प्रभावी बनाया जाना चाहिए और स्वच्छता में सुधार के लिए आवश्यक व्यवहार परिवर्तन प्राप्त करने के लिए तैयार किया जाना चाहिए।[9]

शहरी स्वच्छता

भारत में उचित स्वच्छता के बिना शहरी आबादी का प्रतिशत 63 प्रतिशत है। 11वीं पंचवर्षीय योजना में 2012 तक शहरी जल, शहरी सीवरेज और ग्रामीण स्वच्छता की 100 प्रतिशत कवरेज की परिकल्पना की गई है। हालांकि 11वीं योजना में जल आपूर्ति और स्वच्छता में निवेश में 10वीं योजना की तुलना में 221 प्रतिशत की बढ़ोतरी होने की संभावना है, लेकिन लक्ष्य पूरा नहीं हुआ है। प्रदान किए जा रहे पानी की गुणवत्ता, या स्थापित की जा रही प्रणालियों की स्थिरता दोनों को ध्यान में न रखें। सूचना, योजना और निर्णय समर्थन प्रणालियों तक त्वरित पहुंच सुनिश्चित करने के लिए शहरी शासन और प्रबंधन में सूचना प्रौद्योगिकी अनुप्रयोगों के उपयोग पर बढ़ता जोर पर्यावरण स्वच्छता से संबंधित प्राथमिक चिंता के क्षेत्र हैं। यूडब्ल्यूएसएस में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन को भी एक महत्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में देखा जा रहा है। नगरपालिका अपशिष्ट प्रबंधन और प्रबंधन पर कानून अक्टूबर 2000 में पारित किया गया है। ठोस अपशिष्ट प्रबंधन पर कुछ रणनीतियों में शहर-वार मास्टर प्लान तैयार करना, नगरपालिका कर्मचारियों का प्रशिक्षण, आईईसी और जागरूकता सृजन, समुदाय-आधारित और गैर-सरकारी संगठनों की भागीदारी, स्थापना शामिल है। और गैर सरकारी संगठनों और निजी क्षेत्र के माध्यम से खाद संयंत्रों का संचालन, वाणिज्यिक संचालन और निजी क्षेत्र की भागीदारी पर जोर देने के साथ कुछ राज्य संरचनाओं जैसे राज्य खाद विकास निगमों की क्षमताओं में वृद्धि। आवास के प्रकार, घनत्व और निपटान लेआउट, गरीबी की स्थिति और नेटवर्क सेवाओं तक पहुंच में भिन्नता से शहर के विभिन्न हिस्सों में या एक ही पड़ोस में स्वच्छता के लिए अलग-अलग समाधान सामने आएंगे।[10]

चुनौतियां

1. वितरण प्रणालियों में जल के प्रदूषण की रोकथाम,
2. पानी की बढ़ती कमी और पानी के पुन: उपयोग और संरक्षण की संभावना,
3. नवीन कम लागत वाली स्वच्छता प्रणाली लागू करना
4. शहरी और अर्धशहरी क्षेत्रों के लिए स्थायी जल आपूर्ति और स्वच्छता प्रदान करना
5. देश में क्षेत्रों के भीतर असमानताओं को कम करना
6. जल एवं स्वच्छता सेवाओं की स्थिरता।

एमडीजी लक्ष्यों को पूरा करने में निहित सार्वजनिक स्वास्थ्य चुनौती यह सुनिश्चित करना है कि सुधारों के परिणामस्वरूप गंभीर जोखिम वाली आबादी के लिए पानी और स्वच्छता तक पहुंच हो। कम लागत, सरल और स्थानीय रूप से स्वीकार्य जल और स्वच्छता हस्तक्षेपों की उपलब्धता सुनिश्चित करने और इन दृष्टिकोणों को स्कूलों, बाजारों और स्वास्थ्य सुविधाओं जैसे मौजूदा सामाजिक संस्थानों में एकीकृत करने के लिए नवीन दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

कम सब्सिडी, अधिक घरेलू भागीदारी, प्रौद्योगिकी विकल्पों की श्रृंखला, महिलाओं के लिए स्वच्छता परिसरों के विकल्प, ग्रामीण जल निकासी प्रणाली, आईईसी और जागरूकता निर्माण, गैर सरकारी संगठनों और स्थानीय समूहों की भागीदारी, वित्त की उपलब्धता, मानव संसाधन विकास के साथ कम लागत वाली स्वच्छता प्रणाली का कार्यान्वयन।, और स्कूल की स्वच्छता पर जोर विचार किए जाने वाले महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं। इसके अलावा निजी भागीदारी और सार्वजनिक-निजी भागीदारी के उचित रूप, भारतीय संदर्भ में एक मजबूत क्षेत्र नीति का विकास और राजनीतिक प्रतिबद्धता के साथ स्थिरता पर जोर परिवर्तन लाने के लिए आवश्यक शर्तें हैं।

संदर्भ

1. पांडवे एचटी. (2008) पर्यावरणीय स्वच्छता: भारत में एक उपेक्षित मुद्दा। इंडियन जे ऑक्युप एनवायरन मेड ;12:40.
2. माजरा जेपी, गुर ए. (2008) भारत को एक महान स्वच्छता जागृति की आवश्यकता है। इंडियन जे ऑक्युप एनवायरन मेड; 12:143.
3. कुमार एसजी, जयारामा एस. (2009) भारत में स्वच्छता विफलता से संबंधित मुद्दे और भविष्य के परिप्रेक्ष्य। इंडियन जे ऑक्युप एनवायरन मेड. ;13:104.
4. हटन जी, हॉलर एल, बार्ट्राम जे. (2007) जल आपूर्ति और स्वच्छता हस्तक्षेप का वैश्विक लागत-लाभ विश्लेषण। जे जल स्वास्थ्य.;5:481-502.
5. हॉलर एल, हटन जी, बार्ट्राम जे. (2007) वैश्विक स्तर पर पानी और स्वच्छता सुधार की लागत और स्वास्थ्य लाभ का अनुमान लगाना। जे जल स्वास्थ्य. ;5:467-80.
6. फ्यूट्रेल एल, कोलफोर्ड जेएम, (2005) जूनियर विकासशील देशों में जल, स्वच्छता और स्वच्छता: हस्तक्षेप और दस्त - एक समीक्षा। जल विज्ञान प्रौद्योगिकी. 2005;52:133-42.
7. क्लासेन टी, रॉबर्ट्स आई, रैबी टी, श्मिट डब्ल्यू, केयर्नक्रॉस एस.(2006) दस्त को रोकने के लिए पानी की गुणवत्ता में सुधार के लिए हस्तक्षेप। कोक्रेन डेटाबेस सिस्टम रेव.;3:सीडी004794।
8. नाथ के.जे. (2003) घरेलू स्वच्छता और पर्यावरणीय स्वच्छता: भारत के लिए एक देश स्थिति विश्लेषण। इंट जे एनवायरन हेल्थ रेस, 3;13:एस19-28।
9. डेविस जे, व्हाइट जी, दामोडोरन एस, थॉर्स्टन आर. (2008) शहरी भारत में जल आपूर्ति और स्वच्छता तक पहुंच में सुधार: जल और स्वच्छता बुनियादी ढांचे के विकास के लिए माइक्रोफाइनेंस। जल विज्ञान प्रौद्योगिकी.;58:887-91.
10. सोबसी एमडी, बार्ट्राम एस. (2038) नई सहस्राब्दी में पानी की गुणवत्ता और स्वास्थ्य: पेयजल गुणवत्ता के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन के दिशानिर्देशों की भूमिका। फोरम न्यूट्र. ;56:396-405।

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में ब्रह्म समाज का योगदान

यशवीर सिंह

शोधार्थी, इतिहास विभाग, राजकीय स्नाकोत्तर महाविद्यालय, बाजपुर (उधम सिंह नगर)

19 वीं शताब्दी में अंग्रेजी शिक्षा के कारण बंगाल के शिक्षित युवको का ध्यान हिन्दू धर्म में व्याप्त बुराइयों एवं अन्धविश्वासों की तरफ गया। बंगाली बुद्विजीवियों में राजा राममोहन राय और उनके अनुयायियों ने पाश्चात्य संस्कृति का अध्ययन करते हुए उसके बुद्विवादी एवं प्रजातान्त्रिक सिद्वातों व भावनाओं को आत्मसात किया। इन बुद्विजीवी प्राणियों में राजा राममोहन राय प्रमुख थेए जो हिन्दु धर्म में सुधार लाना चाहते थे। उसके लिए उन्हें ऐसी संस्था की आवश्यकता थी जो उनके विचारों को जन सामान्य तक पहुंचाएं और वह शुद्वता औपनिशादिक सत्यों पर आधारित हो। ब्रह्म समाज उनके इसी विचार का परिणाम था।[1]

20 अगस्तए 1828 को राजा राममोहन राय ने कलकत्ता में ब्रह्म समाज की स्थापना की।[2] अद्वैतवादी हिन्दु संस्था ब्रह्म समाज का स्वरूप भारतीय था। इसके अधिवेशन में पाठ होता था। ब्राह्मण वेदों का पाठ पर्दे के भीतर से करते थे। उत्सवानंद उपनिषदों का पाठ करते थे और रामचन्द्र विद्यावागीश उसका अर्थ बंगला में समझाते थे। कभी-कभा राममोहन रचित उपदेशों का पाठ भी होता था। अधिवेशन की समाप्ति के पूर्व नियम पूर्वक प्रार्थना होती थी।[3]

ब्रह्म समाज की स्थापना के दो वर्ष बाद 1830 में राममोहन राय इंग्लैण्ड चले गये। जहाँ 27 सितम्बर, 1833 को ब्रिस्टल में ही उनका निधन हो गया।[4] राममोहन राय के बाद देवेन्द्रनाथ टैगोर ने ब्रह्म समाज को पुनर्जीवित किया। देवेन्द्र नाथ की भी अपनी एक सभा थी "तत्व वोधिनी सभा"। 1842 में यह सभा ब्रह्म समाज में मिला दी गई और देवेंद्र नाथ के सभी अनुयायी ब्रह्म समाजी हो गए।[5]

देवेंद्रनाथ ने 1857 में केशव चंद्र सेन को ब्रह्म समाज का सदस्य बनाया व 1862 ई० में आचार्य पद पर नियुक्त किया।[6] आचार्य केशवचंद्र सेन ने ब्रह्म समाज को अत्यधिक लोकप्रिय बनाया और इसे अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान किया। बाद में केशवचंद्र सेन के उदारवादी विचारों के कारण ब्रह्म समाज में फूट पड़ गई और 1865 ई० में देवेंद्रनाथ टैगोर ने केशवचंद्र सेन को ब्रह्म समाज से निष्कासित कर दिया। परिणामता 1866 में ब्रह्म समाज के पहले विभाजन के बाद देवेंद्रनाथ ने "आदि ब्रह्म समाज" बनाया तथा केशवचंद्र सेन ने भारतीय ब्रह्म समाजध। 1872 में केशवचंद्र सेन ने प्रयासों से "ब्रह्म विवाह अधिनियम पारित हुआ। जिसमे विवाह की न्यूनतम आयु लड़के के लिए 18 वर्ष एवं लड़की के लिए 14 वर्ष निर्धारित की गई,[7] लेकिन 1878 ई० में सेन ने अपनी 13 वर्षीय पुत्री का विवाह कूचबिहार के राजा से कर दिया। जो ब्रह्म विवाह अधिनियम का उल्लंघन था। अत:1878 ई० में ब्रह्म समाज में दूसरा विभाजन हुआ और दूसरे गुट ने साधारण ब्रह्म समाज की स्थापना की। इस अलगाव का सबसे बड़ा प्रभाव यह पड़ा की ब्रह्म समाज की सदस्य संख्या दिन प्रतिदिन कम होती चली गई।[8]

राजा राममोहन राय के समय ब्रह्म समाज का उद्देश्य भारत के प्राचीन सत्यों का समन्वय यूरोप के नवीन अनुसंधानों के साथ करना था। इतना ही नहीं ईसायत के आक्रमणों से हिंदुत्व की रक्षा करना भी ब्रह्म समाज का प्रमुख उद्देश्य था। राममोहन के नेतृत्व में ब्रह्म समाज के सिद्वातों और कार्यों में असंदिग्ध सांस्कृतिक राष्ट्रीयता थी, राजनीतिक राष्ट्रीयता इसी का विकसित रूप थी। देवेंद्रनाथ के नेतृत्व में ब्रह्म समाज की राष्ट्रीयता के साथ प्रतिबद्वता में भावी समय में आने वाले विचलन का बीजारोपण देखा जा सकता है। राममोहन के समय ब्रह्म समाजी जहां वेदों व उपनिषदों पर अचल आस्था रखते थे वही देवेंद्रनाथ के समय इन ग्रंथो के ज्ञान पर भी पाश्चात्य प्रभाव से शंका उठाने की इजाजत मिल गई। इन्हीं के समय से भारत के जन सामान्य के मध्य ब्रह्म समाज की गतिविधियों के संदर्भ में इस संदेह का बीजारोपण हो गया कि यह हिंदू समाज को एक साथ ईसायत में दीक्षित करने का आयोजन मात्र भर है।

केशवचंद्र सेन के समय में इस संदेह ने विश्वास का रूप ले लिया। केशव और उनके अनुयायियों का प्रेम ईसायत के प्रति था न कि भारतीय राष्ट्रीयता के, लेकिन उनका पक्ष लिया जाये तो इतना मात्र कहा जा सकता है कि केशव और उनके अनुयायी भारत का कल्याण ईसायत को अपनाने में समझते थे।

इस तरह यह स्पष्ट है, कि भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की दृष्टि से ब्रह्म समाज आंदोलन अपने आरंभ से ही उपयोगी था। बाद के दिनों में यह इस दृष्टि से न केवल अनुपयोगी, वरन घातक भी सिद्व होने लगा था। यही कारण रहा कि ब्रह्म समाज के अनुयायी हिंन्दू समाज व राष्ट्रवादी विचारधारा से अलग हो गए। कालांतर में देश के राजनैतिक पुनर्जागरण के प्रति उनका कोई उल्लेखनीय योगदान नहीं देखने को मिला। इस निषेधात्मक पहलूओं के वावजूद भी ब्रह्म समाज के भारतीय संस्कृति को दिए गए योगदान को नकारा नहीं जा सकता। ब्रह्म समाज ने मूर्ति पूजा का बहिष्कार किया। अवतारवाद को नहीं माना और लोगों का ध्यान उस निराकार, निर्विकार एक ब्रह्म की ओर आकृष्ट किया जिसका निरुपण वेदांत में हुआ है। इस समाज की सबसे बड़ी विशेषता सभी धर्मों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण एवं उदार दृष्टिकोण है।

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में राजा राममोहन राय का योगदान

22 मई 1772 को बंगाल के हुगली जिले के राधानगर गाँव के एक ब्राह्मण परिवार में राजा राममोहन राय का जन्म हुआ।[9] आरंभिक शिक्षा-दीक्षा के बाद अरबी व फारसी पढ़ने के लिए पटना चले गएए जहां इस्लाम के अध्ययन ने उनके मन में मूर्ति पूजा व वहुदेववाद के विषय में शंका को जन्म दिया और मूर्ति पूजा से उनका विश्वास ही उठ गया। सन 1803 में उनकी "तुहफात- उल-मुवाहिदीन" नामक पुस्तक फारसी भाषा में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में उन्होंने मूर्ति पूजा का खंडन किया और एकेश्वरवाद की प्रशंसा। राजा राम मोहन राय ने मूर्ति पूजा को समाज के ताने-बाने को नष्ट करने वाला बतलाय।[10] उन्होंने केवल हिंदुओं में प्रचलित मूर्ति पूजा की ही आलोचना नहीं की बल्कि ईसाइयों के द्वारा ईसा मसीह की मूर्तियों की पूजा की भी आलोचना की। उन्होंने प्रोटेस्टेंटों के इस विश्वास का भी खंडन किया कि उनका ईश्वर ईसा के रूप में हाड़-मांसधारी मनुष्य के रूप में अवतरित हुआ।[11] 1816 में उन्होंने "वेदांत सार" का प्रकाशन किया। इसमें मूलत: अनेक देवी देवताओं की पूजा और कर्मकांड से युक्त धर्म के स्थान पर एकेश्वरवादी वेदांत के धर्म को अपनाने पर वल दिया। राय के मूर्ति पूजा के विरोध करने व एकेश्वरवाद के समर्थन ने ईसाई धर्म प्रचारक विलियम एडम पर इतना गहरा प्रभाव डाला कि वह रिवीटेरियन ईसाई धर्म छोड़कर राममोहन राय के एकेश्वरवाद को अपना लिया।[12]

राजाराम मोहन राय ने हिन्दू समाज की अनेक कुरीतियों विशेषकर सती प्रथा के विरुद्व आवाज उठाई। सती प्रथा को उन्होंने मनु, याज्ञवलक्य, काव्यायन, अंगिरा, विष्णु, नारद, बृहस्पति और व्यास की स्मृतियां व टीकाओं के आधार पर ही हिंदू विधि-विधान से असंगत सिद्व किया। इससे ऐसा जनमत निर्मित हुआ कि लॉर्ड विलियम बैंटिक ने 1828 में इस प्रथा को अवैध घोषित कर दिया।[13] राम मोहन राय का यह कार्य भारतीय नागरिकों की सामाजिक स्वतंत्रता की दिशा में मील का पत्थर माना जाता है। इसके अतिरिक्त राय ने भारत में बाल-विवाह व बहु-विवाह का विरोध किया। विधवा विवाह की बात कही तथा स्त्री-पुरुष के समानाधिकार की वकालत की।

राजा राममोहन राय ने भारत में प्रचलित जाति प्रथा को लोकतंत्र विरोधी और अमानवीय होने के साथ-साथ राष्ट्रीय विरोधी भी स्वीकार किया। उनकी दृष्टि में पारस्परिक एकता के अभाव का कारण जाति-पाति व्यवस्था ही है।[14] प्रजातंत्र और मानवीय मूल्यों के संदर्भ में भारत की इस कुप्रथा पर विचार कर मानो भारत में आधुनिक राष्ट्रवाद की नींव डाल रहे थे।

राय ने जनता को वैधानिक उपायों के द्वारा अपने अधिकारों की रक्षा करना सिखाया। जनता को अपने अधिकारों और राजनीतिक व्यक्तित्व का कोई ज्ञान नहीं था और न ही कोई यह सोच पाता था कि सरकार के सामने अपनी कठिनाइयों के निवारण के लिए मांगे रखी जा सकती है। राय ने अपने मित्रों के हस्ताक्षर युक्त एक ज्ञापन 31 मार्च 1823 को कोलकाता के सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया और यह मांग की गई कि गवर्नर जनरल एडम्स द्वारा जारी उस अध्यादेश को अस्वीकार किया जाए जिसके द्वारा प्रेस की स्वतंत्रता पर पाबंदियां लगाई गई थी।[15] हालांकि यह ज्ञापन न्यायालय द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया तत्पश्चात प्रिवि काउंसिल में इसकी अपील की गई किंतु निराशा ही हाथ लगी। यदपि राय का यह प्रयत्न भारत के राजनीतिक पुनर्जागरण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण था। यह दोनों ज्ञापन भारतीय स्वतंत्रता के एरियों पैजिटिका कहे जाते हैं।[16]

राममोहन राय के चिंतन व कार्यों का भारतीय पुनर्जागरण पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त उनके कार्यों ने प्रारम्भिक राष्ट्रवादी विचारो के उदय को अनुकूल वातावरण प्रदान किया। जिन्होने आगे चलकर राष्ट्रवादी अवधारणा को जन्म दिया।

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में देवेंद्रनाथ टैगोर का योगदान

राममोहन राय के सन 1830 में इंग्लैंड चले जाने और वहीं पर 1833 में उनकी मृत्यु के बाद कुछ समय तक ब्रह्म समाज का नेतृत्व पंडित रामचंद्र विद्यावागीस ने किया। तत्पश्चात इसका नेतृत्व देवेंद्रनाथ टैगोर के हाथों में आ गया। देवेंद्रनाथ की आत्मकथा से ज्ञात होता है कि अपनी दादी की मृत्यु के बाद अवसाद ग्रस्त हो उठे थे तथा सारा संसार उन्हें असत्य लगने लगा था। इस दौरान उन्हें राममोहन राय द्वारा संपादित ईशोपषिद से शांति प्राप्त हुई और राममोहन राय के एकेश्वरवादी मत को स्वीकार कर लिया।

30 अप्रैल 1843 को देवेंद्रनाथ ने तत्व बोधिनी पाठशाला की स्थापना की। इस पाठशाला का उददेश्य ब्रह्म समाज के प्रचारको को बौद्विक और आध्यात्मिक प्रशिक्षण देना था। साथ ही एलेक्जेन्डर डफ के नेतृत्व में कोलकाता में तेजी से फैल रहे ईसायत के प्रचार को रोकना इसका उद्देश्य था।[17] भारत के राजनीतिक पुनर्जागरण की दृष्टि से देवेंद्रनाथ के नेतृत्व में यह ब्रह्म समाज का एक सकारात्मक पहलू माना जा सकता है। भारतीय पुनर्जागरण में वैज्ञानिक दृष्टि पर आधारित तार्किक बुधद्वि का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। देवेंद्रनाथ ने धर्म ग्रंथो को बिना तर्क के मानने से इनकार कर दिया। उनका मानना था कि वेदों और उपनिषदों की बातों को वहीं तक स्वीकार किया जा सकता है जहां तक वह विवेक आधारित हो। कर्मकांड और मूर्ति पूजा को व्यर्थ मानने वाले देवेंद्रनाथ ने अपने पिता के श्राद्व में भाग लेने से इनकार कर दिया था। देवेंद्रनाथ ने मूर्ति पूजा तथा वहुदेववाद के विरुद्ध ब्रह्म समाज को दार्शनिक आधार प्रदान किया।

देवेंद्रनाथ के समय ब्रह्म समाज ने ईसाई धर्म के भारत में प्रसार के विरुद्व प्रतिक्रिया व्यक्त की। भारतीय राष्ट्रवाद को यह एक विशेष योगदान कहा जा सकता है। देवेंद्रनाथ का मानना था कि भारत को ईसाई धर्म की कोई आवश्यकता नहीं है। देवेंद्रनाथ ने रचनात्मक तरीके से भी ईसाई मिशनरियों का विरोध किया। हिंदू बालकों को ईसाई पाठशालाओं के समान निशुल्क शिक्षा प्रदान करने के लिए 'हिंदू हितैषी विद्यालय' की स्थापना की। तत्व वोधिनी पत्रिका के माध्यम से देवेंद्र नाथ ने ईसाई धर्म की त्रुटियों को उजागर किया। इसका परिणाम यह रहा कि सुशिक्षित युवाओं ने ईसाई धर्म अंगीकार नहीं किया। भाषा के क्षेत्र में भी देवेंद्रनाथ ने राष्ट्रीय दृष्टि का पक्ष लिया। अंग्रेजी भाषा के अच्छे जानकार होते हुए भी उन्होंने बंग्ला के प्रयोग पर बल दिया। अपने भतीजे ज्ञानेंद्र मोहन ठाकुर को भी ब्रह्म समाज की बैठकों में अंग्रेजी में बोलने की अनुमति नहीं दी।[18]

इतना सब कुछ होते भी भारत के राजनीतिक जागरण में देवेंद्रनाथ का योगदान प्रभाव की दृष्टि से सीमित रहा। इसका सबसे बड़ा कारण उनका आध्यात्मिक क्षेत्र में अधिक सक्रिय होना था। किंतु उनके महत्व को नकारा नहीं जा सकता। उन्होंने अपने ढंग से राष्ट्रीयता के विकास में योगदान दिया था।

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में केशवचंद्र सेन का योगदान

ब्रह्म समाज को अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान करने वाले केशव की रुचि प्रारंभ से ही समाज सुधार की ओर रही। उन्होंने 1855 में 'कालू टोला इवनिंग स्कूल' तथा 1857 में 'सद्भावना बंधु मंडल' जैसी संस्थाओं की स्थापना की। 1857 में मात्र 19 वर्ष की अवस्था में देवेंद्रनाथ से ब्रह्म समाज की सदस्यता ग्रहण कर 1862 में अपनी योग्यता के बल पर केशव आचार्य नियुक्त हुए।

केशवचंद्र सेन स्त्री शिक्षा व विधवा विवाह के समर्थक तथा मदिरापान के आलोचक थे। उनकी दृष्टि से बहु विवाह उचित नहीं था। केशव ने अनेक अंतर-जातीय विवाहों को संपन्न कराने में योगदान दिया। यह कार्य राष्ट्रीय एकता में बाधा डालने वाले सबसे प्रमुख तत्व जातिवाद के विरुद्ध क्रांति का आरंभ कहा जा सकता है। सामान्य रूप से केशव ने ब्रह्म समाजियों से यह अपेक्षा रखी कि जाति का परित्याग करें, मूर्ति पूजा का परित्याग करेंए जनेऊ धारण न करेंए अपने घर की महिलाओं की ज्ञान वृद्वि करने में सहयोग दें।[19] केशव के इस सुधारवादी कार्यों ने लोगों को जागरूक किया और राष्ट्रवादी अवधारणा के इन विरोधी तत्वों पर प्रहार किया। साथ ही अनेक हिंदू ईसाई होने से बच गए क्योंकि उन्हें ब्रह्म समाज के सिद्वांत अपने देश के एक परिष्कृत और तर्क संगत धर्म सिद्वांत ईसाई धर्म से अधिक श्रेष्ठ लगे।[20]

अनेक विद्वानों का ऐसा मूल्यांकन रहा है कि वे प्रछन्नता: ईसाई ही थे। इसमें दृष्टि सत्यांश तो है पर यह पूर्ण सत्य नहीं। केशव ने स्कॉट मानक्रीफ के भारतीय संस्कृति तथा भारतीय नारी के संदर्भ में अपमानजनक उदगारों के प्रत्युत्तर में "ईसा मसीह, यूरोप और एशिया" विषय पर कोलकाता मेडिकल कॉलेज थिएटर में मई 1866 में एक व्याख्यान दिया था। उन्होंने यह सिद्व किया कि ईसा भी एशिया के वासी थे और उनके स्वभाव के गौरवपूर्ण पक्षों के लिए उनका एशियावासी होना ही मुख्य कारण है। भारतवासी भी ईसा की तरह ही एशियाई है।[21] पाँच माह बाद कोलकाता के टाउन हॉल में अपने दूसरे व्याख्यान में उन्होंने ईसाई धर्म को अन्य धर्म की भांति एक धर्म तथा ईसा मसीह को अन्य महापुरुषों के समान एक महापुरुष कहा। इससे इस भ्रम का निवारण हो जाता है कि केशव की दृष्टि में ईसाई धर्म व ईसा सर्वोच्च थे। केशव के इन प्रयासों से अंग्रेजी पढ़ा लिखा भारतीय युवा वर्ग जो तीव्र गति से अपने धर्म व संस्कृति से विमुक्त हो रहा थाए अपनी दीन भावना से मुक्त हो उठा था। अपने धर्म व संस्कृति के प्रति जागृत हो उठा। जो कहीं ना कहीं राष्ट्रवादी विचारों के निर्माण में सहायक सिद्व हुआ। इतना सब होते हुए भी भारत के राजनीतिक पुनर्जागरण में केशव का योगदान सीमित रहा। इसका कारण यह था कि उन्होंने धार्मिक और नैतिक बातों पर ही अपना ध्यान मुख्यत: केंद्रित रखा और जानबूझकर राष्ट्रवादी विचारधारा से दूर रहे।[22]

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में ईसायत का प्रचारए ईसाई प्रचारको व भारतीय अंग्रेजी पढ़े-लिखे वर्ग द्वारा हिंदू धर्म की निंदाए भत्सर्ना व यूरोपीय क्रांतिकारी विचार आदि ने हिन्दुत्व की नीव को झकझोर कर रख दिया। फलस्वरूप ब्रह्म समाज अस्तित्व में आया। ब्रह्म समाज की स्थापना राजा राममोहन राय ने की किन्तु इसकी विकास यात्रा में देवेन्द्रनाथ ठाकुर व केशवचन्द्र सेन भी जुड़े। ब्रह्म समाज विवेक सम्मत धर्म की खोज की आवश्यकता को लेकर विकसित हुआ था। राजा राममोहन राय के चिन्तन और कार्यों से भारत के पुनर्जागरण पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। राजा राम मोहन राय के नेतृत्व में ब्रह्म समाज के सिद्वांतो और कार्यों में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता थी। राजनीतिक राष्ट्रीयता इसका ही विकसित रूप थी। देवेन्द्रनाथ के समय में ब्रह्म समाज की राष्ट्रीयता के साथ प्रतिबद्धता में शिथिलता आने से आने वाले विचलन का बीजारोपण हुआ। लोगों में इस सन्देह का बीजारोपण होने लगा कि ब्रहा समाज हिन्दू समाज को एक साथ ईसायत में मिश्रित करने का आयोजन मात्र है। केशव के समय में इस सन्देह भी जड़ें और गहरी हो गई। इसके पीछे केशव का ईसा व ईसाई धर्म के प्रति अगाध प्रेम उत्तरदायी था किन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी देवेन्द्र एवं केशव के महत्व को कर्म नहीं किया जा सकता। केशव के प्रयास को भावी भारत के राजनीतिक लक्ष्यों की दृष्टि में परखा जाए तो वैज्ञानिक दृष्टिए प्रभातवाद तथा धर्मनिरपेक्षता वाद के उन आदर्शों के बीज उसमें मिलते हैं जो कि स्वत: भारत के संविधान में स्वीकृत किये गये थे।

सन्दर्भ:

1. दिनकर, रामधारी० सिंह०: संस्कृति के चार अध्याय, पृ०540
2. पाण्डे, एस०के०: आधुनिक भारत, पृष्ठ 187
3. शास्त्री, शिवनाथ: हिस्ट्री ऑफ ब्रह्म समाज जिल्द-1
4. पाण्डे, एस० के०: आधुनिक भारत, पृष्ठ-188
5. दिनकर, रामधारी० सिंह०: संस्कृति के चार अध्याय, पृ० 542-543
6. पाण्डे, एस० के०: आधुनिक भारत, पृष्ठ 188
7. ग्रोवर, बी०एल०: आधुनिक भारत का इतिहास, पृष्ठ 272-73
8. फरक्यूहार, जे०एन० माडर्न रिलीजियरा मूवमेण्ट इन इंडिया, पृ० 50-57 (8)
9. पाण्डे, एस० के०: आधुनिक भारत, पृष्ठ 186-87
10. दि इंगलिश वर्क्स आफ राजा राम मोहन राय जिल्द-1, पृ०61
11. दि कल्चरल हैरिटेज ऑफ इण्डियाए खण्ड-4, पृ० 618
12. इकबाल: राम मोहन राय- ए बायोग्राफिकल इन्क्वायरी इन टू दि मेकिंग ऑफ माडर्न इण्डिया खण्ड-1.पृ०246

13. ग्रोवर, बी०एल०: आधुनिक भारत का इतिहास, पृष्ठ 119 -20
14. दि फादर ऑफ माडर्न इण्डिया स्मारक ग्रन्थ भाग-2, पृ०75
15. मेमोरियल टूए दि सुप्रीम कोर्ट राम मोहन राय हिज लाइफ, राइटिंग्ज ए.ड स्पीच्चेज, 70 30-45
16. दि कल्चरल हैरिटेज ऑफ इण्डिया, पृ०621
17. शास्त्री, एस०एन०: पूर्वोक्त, पृ० 99
18. गुप्तए,० सी०: स्टडीज इन बंगाल रिनेसा, पृ०39
19. चन्द, तारा: पूर्वोक्त पृ०350
20. मजूमदार, प्रताप० चन्द०: दि लाइफ एण्ड टीचिंग्स ऑफ केशव चन्द्र सेन
21. उदधृत्, मजूमदार, प्रताप० चन्द०: दि लाइफ एण्ड टीचिंग्स ऑफ केशव चन्द्र सेन, पृ० 88
22. पालए विपिन० चन्द्र०: मैमायर्स ऑफ माइ लाइफ एण्ड टाइम्स खण्ड-1, पृ० 233

जाम्भाणी दर्शन के प्रसार में संचार साधनों की भूमिका: एक अध्ययन

डॉ० मनबीर

शोधार्थी, जाम्भाणी साहित्य एवं प्राध्यापक, शिक्षा विभाग, हरियाणा

संचार

संचार ही जीवन है, संचार शून्यता ही मृत्यु है। आधुनिक जनजीवन और सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था का ताना बाना जनसंचार साधनों द्वारा सुव्यवस्थित हैं। वे जनता, समाज, राष्ट्र के सजग प्रहरी हैं। संचार व्यवस्था समाज की प्रगति, सभ्यता और संस्कृति के विकास का माध्यम है। असभ्य को सभ्य, संकीर्ण को उदार तथा नर को नारायण बनाने की अभूतपूर्व शक्ति संचार में ही निहित है। इसके बिना मानव गरिमा की कल्पना नहीं हो सकती। संचार ही तथ्यों और विचारधाराओं के विनिमय का विस्तृत क्षेत्र है।

आहार, निद्रा, भय और मैथुन तो सभी जीवों में होते हैं। मात्र चिंतन-मनन, कथन श्रवण एवं आत्म-अभिव्यक्ति की क्षमता से संबंधित संचार कला ने ही मानव को सृष्टि में सर्वोच्च स्थान पर सुप्रतिष्ठित बना दिया है। शिक्षा के प्रसार, जनजागरण तथा संचार साधनों की उपलब्धता ने मानव को सक्षम बना दिया है कि वह अधिक से अधिक जानकारी रके, हर विषय की गहराई में जाय। विलियम हेले के अनुसार, च्च्हर कोई जानकारी की आजादी पर तब तक विश्वास करता है, जब तक वह जानकारी उसके कुद के निहित स्वार्थ को पूरा करती है, भले ही वह मंत्री हो या मजदूर नेता, किसी धर्म का मठाधीश हो या सरकार या किसी संस्था का पदाधिकारी।ज्ज

संचार के रूपों में अंत:व्यक्तिक संचार से लेकर जनसंचार तक को शामिल किया गया है। जो अलग-अलग शैली और विविध रूपों में मानव जीवन के आचरण को प्रभावित करते हैं। अनिल कुमार ने अपने अध्ययन (कुमार 2015 : 184-185)में लिखा है कि "संचार माध्यमों के कारण ग्रामीण जीवन के सामाजिक-सांस्कृतिक पहलू, सामाजिक संस्थाओं-परिवार, विवाह, सामाजिक संस्तरण, शिक्षा, जाति आदि के साथ ही ग्रामीण अभिवृत्तियों-सामूहिकता, पारस्परिक सहयोग, पारस्परिक अवलंबन, मितव्ययिता, संचय, धार्मिकता और सामाजिक नियंत्रण आदि में निरंतरता की अपेक्षा परिवर्तन अधिक देखा जा रहा है।"

समाज में व्याप्त दोहरा जीवन, दोहरी नीतियां, ढोंग, अंधविश्वास, अंधेरगर्दी, मदान्धता को मिटाने में जनसंचार साधन अहम भूमिका निभाते हैं। योगयता और क्षमता के स्थान पर पैरवी और पैसा के प्रभाव को समाप्त कर नैतिक और बौद्धिक ईमानदारी का वातावरण इनसे ही निर्मित हो सकता है। जनसंचार मानव की प्रगति के प्रचार-प्रसार का प्रमुख माध्यम है जो दानव को मानव बना सकता है।

जांभाणी दर्शन

आज से 572 वर्ष पूर्व राजस्थान के नागौर जिले के पीपासर गांव में जन्में महापुरूष एवं विश्व के प्रथम पर्यावरणविद गुरू जंभेश्वर जी ने अपनी दूरदृष्टि की बदौलत अपने अनुयायियों को पर्यावरण व प्रकृति संरक्षण का संदेश दिया था। पर्यावरण व प्रकृति के अलावा उन्होंने लोगों को जीवन में स्वच्छता तथा कर्म के मार्ग पर चलने की शिक्षा भी दी ताकि लोग सरलतापूर्वक जीवन जीते हुए इस दुनिया से विदा हों। गुरू जंभेश्वर जी ने अपनी शिक्षाओं से आलसी, कामचोर, कर्महीन, बेकार, मूर्ख, मांसाहारी, मलिनता का जीवन जीने वाले लोगों को कर्म की महता बताई तथा उन्हें प्रकृति, वन्य जीवों के प्रति दया व जीवन में स्वच्छता अपनाने की ओर अग्रसर किया। अपनी ताकिर्क व वैज्ञानिक सोच के फलस्वरूप उन्होंने लोगों से च्च्जीव दया पालणी, रूंक लीलो नहीं घावे (वन्य जीवों पर दया रखनी तथा पेड़ नहीं काटना)ज्ज् जैसे नियम पर विशेष जोर देने का आग्रह किया। उनके द्वारा प्रतिपादित नियम तथा उपदेशों का ही प्रभाव था कि सन 1730 में जोधपुर के गांव खेजड़ली में 363 स्त्री, पुरूषों व बच्चों ने पेड़ों की रक्षा में हंसते-हंसते अपने प्राण न्यौछावर कर दिए। वृक्षों के लिए शहीद होने की यह घटना इतिहास में ही नहीं बल्कि विश्व में भी अनूठी है। इस घटना में प्रथम शहीद हुई महिला अमृताबाई का नारा था च्च्सर सांठे रूंक रहे तो भी सस्तो जाणज्ज् यानि अगर सिर कटाने से पेड़ बचता है तो भी यह सौदा सस्ता है, उनका पर्यावरण के प्रति प्रेम की असीम विशालता का ही संकेत है। इस घटना के बाद से यह सिलसिला बदस्तूर जारी है। वृक्षों की रक्षा के साथ-साथ वन्य प्राणियों की रक्षा के लिए भी सैंकड़ों की संख्या में उनके अनुयायियों ने अपने प्राण दिए हैं। पर्यावरण की महता किस कदर उनकी शिक्षाओं में समाहित है इसका पता उनकी एक शिक्षा से चलता है जिसमें उन्होंने मृत व्यक्ति को जलाने की बजाय दफनाने की बात कही है ताकि पेड़, प्रकृति व पर्यावरण को नुकसान ना हो। उन्होंने अपने द्वारा उच्चरित शब्दवाणी में जगह-जगह वनस्पति, जीव जंतु तथा प्रकृति के प्रति मनुष्य को उदार भावना रखने के लिए प्रेरित किया ताकि धरती पर प्राकृतिक संतुलन बना रहे। सबदवाणी के अतिरिक्त गुरू जंभेश्वर महाराज ने सरल एवं सार्थक मानव जीवन के लिए प्रतिपादित 29 धर्म नियमों में भी "जीव दया पालणी, रूंख लीलो

नहीं घावेज्ज् अर्थात जीवों के प्रति दयाभाव व हरे वृक्ष नहीं काटना है, कहकर इसे मानव जीवन का अनिवार्य धर्म नियम घोषित किया। गुरू जी के सिद्धांतों तथा जीव रक्षा नियमों को बिश्रोई समाज सदियों से अक्षरश: पालन करता आया है। गुरू जंभेश्वर जी के पर्यावरण संरक्षण संदेश तथा उनसे प्रेरित घटनाओं के कारण आज देश में ही नहीं विदेशों में भी पर्यावरण को बचाने के लिए गुरू जी की शिक्षाओं तथा उनके अनुयायियों से प्रेरणा लेने की बात कही जा रही है। फ्रांस के पेरिस विश्वविद्यालय से एक शोधार्थी मारिया द्वारा बिश्रोई समाज व उनके वन्य जीवों के साथ संबंधों पर शोध के लिए प्रेरित होना, फ्रांस के मशहूर फोटो पत्रकार फ्रेंक वोगल द्वारा फ्रांस के अलावा अन्य देशों में फोटो प्रदर्शनी का आयोजन करना, पेरिस स्थित मेट्रो स्टेशन पर उनकी शिक्षाओं से जुड़ी स्थायी प्रदर्शनी का होना, बीबीसी रेडियो व टेलिविजन, विभिन्न सोशल एवं प्रिंट मीडिया, डिस्कवरी एवं फ्रांस के राष्ट्रीय चौनल जैसे अनेकों अंतर्राष्ट्रीय जनमाध्यमों द्वारा जांभाणी शिक्षाओं का प्रदर्शन जाहिर करता है कि वर्तमान में ये शिक्षाएं मानव समाज का पथ प्रदर्शन करने के लिए कितनी आवश्यक हैं। इस तरह उपरोक्त तथ्य यह बताने में सक्षम हैं कि जांभाणी विचारधारा आज इतने सालों बाद भी विभिन्न माध्यमों व स्त्रोंतों से प्रभावी रूप में प्रसारित हो रही हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र में जांभाणी दर्शन के प्रसार में विभिन्न संचार माध्यमों की भूमिका तथा उनके द्वारा निर्दिष्ट जांभाणी संस्कृति, शिक्षा, विचारधारा एवं दर्शन की विवेचना की गई है।

नेपाल के डा. अच्युत अर्यल (Aryal: 2014) ने साईंटिफिक जर्नल ऑफ इंटरनेशनल रिसर्च (Scientific Journal of International Research) में प्रकाशित अपने शोध पत्र ''बिश्नोई कम्युनिकेशन फॉर परफेक्ट लाइफ, डेथ एंड एनलाइटनमेंट'' (Bishnoi communication for Perfect Life, Death and Enlightenment) में बिश्नोई धर्म की प्रासंगिकता का उल्लेख करते हुए लिखा है- "हिंदू धर्म का बिश्नोई संप्रदाय बहुत ही व्यावहारिक, साधारण, सरल, प्रकृति प्रेमी व प्रकृति संरक्षण को समर्पित संप्रदाय है, जिसकी स्थापना दूरदर्शी एवं महान संत गुरु जंभेश्वर जी ने सन् 1485 में राजस्थान के थार मरूस्थल में रेत के टीले पर जिसे संभराथल धोरा कहा जाता है, पर की थी। 29 नियमों पर आधारित इस संप्रदाय में न केवल इंसानों के बीच प्रेम, शांति व भाईचारा कायम करने पर जोर दिया गया है, बल्कि प्रकृति, वन्य जीवों तथा वृक्षों के साथ मधुर संबंध रखने का उल्लेख है। गुरु जंभेश्वर जी ने अन्य धर्मो व प्रकृति के साथ प्यार व सद्भावना का बर्ताव करते हुए शांतिपूर्वक जीवन जीने का संदेश देने के लिए धर्म का सहारा लिया था। जैसाकि सांस्कृतिक मान्यताएं संचार का आधारभूत विषय है, उसी प्रकार बिश्नोई धर्म का सांस्कृतिक महत्व प्रेम, शांति, दयालुता, सरल जीवन, दया, ईमानदारी, क्षमा, परिश्रम व अच्छा नैतिक चरित्र, आंतरिक व बाह्य शुद्धता के बारे में सिखाता है। बिश्नोई प्रकृति प्रेमी लोग हैं तथा भारत के पहले पर्यावरणविद् हैं। 29 नियमों के अलावा गुरू जंभेश्वर जी की शिक्षाएं उनके द्वारा विभिन्न अवसरों पर विभिन्न लोगों को अलग-अलग संदर्भो में कहे गए 120 शब्दों में निहित हैं जो एक प्रकार से सभी धर्मो व संप्रदायों की महत्वपूर्ण शिक्षाओं का मिश्रण है।"

अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका जर्नल ऑफ वैष्णव स्टडीज (The Indian Desert: 2010) में प्रकाशित शोध पत्र "बिश्नोई : एन इको-थियोलोजिकल न्यू रिलीजीयस मूवमेंट इन द इंडियन डेजर्ट" (Bishnoi: An eco-theological new religious movement in the Indian desert) में लेखक लिखता है कि बिश्नोई धर्म के अनुयायियों के व्यवहार में शामिल एवं अनेक उदाहरणों पर आधारित पर्यावरणवाद से यह स्पष्ट है कि उनमें गुरू जंभेश्वर की धार्मिक प्रेरणा गत कई शताब्दियों से पूरी तरह समाई हुई है। यही कारण है कि बिश्नोई बाहरी लोगों के शिकार अभियानों पर आने का डटकर प्रतिरोध करते हैं। वन्य जीवों की रक्षा को धर्म मानने का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है कि हिरण तथा अन्य पशु दोपहर के बाद तथा शाम होने से पूर्व बिश्नोई घरों के निकट विचरण करने लगते हैं क्योंकि यह समय शिकार का होता है। इस तरह बिश्नोई धर्म पर्यावरणवाद का सबसे बड़ा उदाहरण है जो उनकी धार्मिक क्रियाओं की जड़ों में समाया हुआ है।

कनाडा की शोधकर्ता एलेक्सि रिशर्ट (Reichert : 2013) ने अपने शोध पत्र "बिश्नोईज्म : एन इको धर्मा ऑफ द पीपल हू आर रेडी टू सेक्रीफाइस दीयर लाइवस टू सेव ट्री एंड एनीमल्स" (Bishnoism: An Eco Dharma of the People Who are Ready to Sacrifice their Lives to Save Tree and Animals) में बिश्नोई धर्म के प्रकृति तथा वन्य जीवों के संरक्षण के प्रति दृष्टिकोण की तुलना हिंदू धर्म, उपनिषद् तथा जैन धर्म की मान्यताओं व धारणाओं के साथ की है। उन्होंने अपने लेख में लिखा है, यह सही है कि बिश्नोई धर्म के अनुयायी पेड़ों तथा वन्य जीवों के प्रति आत्म बलिदान देने में विख्यात है लेकिन इसे पूरी तरह विशिष्ट नहीं ठहराया जा सकता। क्योंकि हिंदू धर्म, उपनिषदों तथा जैन धर्म में भी वन्य जीवों के लिए बलिदान करने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। हालांकि लेखिका निष्कर्ष में यह लिखती है कि बिश्नोईयों के जो शारीरिक एवं आत्मिक संबंध वन्य प्राणियों के साथ हैं, वैसा उदाहरण किसी और धर्म में नजर नहीं आता। जैन धर्म तथा उपनिषदीय धारणाओं की तरह बिश्नोई केवल बलिदान की भावना को महज आंतरिक रूप से ग्रहण करने का प्रदर्शन ही नहीं करते, बल्कि समय-समय पर वे इसे व्यावहारिक रूप भी देते रहे हैं।

अंग्रेज अधिकारी एवं लेखक मैल्कम ल्याल डार्लिंग (Malcolm Lyal Darling), सी.आई.ई., इंडियन सिविल सर्विस, ने "विजडम एंड वेस्ट इन दि पंजाब विलेज" (Wisdom and Waste in the Punjab Village) जो हम्फ्रे मिलफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा सन् 1934 में प्रकाशित की गई थी, के पृष्ठ संख्या 150-52 पर तत्कालीन पंजाब प्रांत के सदलपुर गांव में बसने वाले बिश्नोई अनुयायियों की विशेषताओं एवं जीवन शैली का चित्रण करते हुए लिखा है- "सदलपुर जो एक बड़ा गांव था तथा जिसकी सभी छह पट्टियां ऊंची-ऊंची थी। गांव के बारे में जो खास बात थी वो इसकी पट्टियों की ऊंचाई नहीं, बल्कि इसका धर्म था। इसमें एक विशेष हिंदू तबके के लोग रहते थे जो बिश्नोई कहलाते थे। हमने वहां पर उपस्थित बिश्नोई धर्म पुजारी से सुना कि कोई भी हिंदू बिश्नोई बन सकता है। सदलपुर गांव में ब्राह्मण, जाट, बनिया तथा चमार समेत सभी जातियों के लोग रहते थे। लेकिन कोई एक बार बिश्नोई बन जाता तो उसकी मूल जाति का महत्व समाप्त हो जाता। वे 29 नियमों की पालना करते हैं जिनमें मुख्य हैं-जो रोटी काता है यानि जिसकी उम्र पांच साल से उपर है, प्रात:काल में भोजन करने से पूर्व स्नान करेगा। संस्कार शुद्धिकरण का महत्व पूरे हिंदू समाज के लिए तो है ही वहीं बिश्नोईयों के लिए इसका दोहरा महत्व है। इस बारे में एक कहावत भी है कि 'अगर बीस ऊंटों की टोली में बिश्नोई का भोजन पहले ऊंट पर है तथा बीसवें ऊंट को अगर अपवित्र व्यक्ति द्वारा छू लिया जाता है तो उस भोजन को फेंक दिया जाना चाहिए।' पीने का पानी कपड़े द्वारा छान कर पीना चाहिए ताकि कोई जीव साथ न चला जाए।

अमावस्या व पूर्णिमा के दिन हल व चरखा नहीं चलाया जा सकता। तंबाकू, भांग, अफीम तथा मांस खने के अलावा नीले वस्त्र पहनने की अनुमति नहीं थी। हालांकि इस अंतिम नियम की व्याख्या कोई नहीं कर सका। व्यभिचार, चोरी तथा निंदा करने की विशेषतौर पर मनाही थी। इसके अलावा अर्द्ध-मरूस्थली प्रदेश यानि सदलपुर गांव में वृक्षों को न काटना एक बुद्धिमानी भरा नियम है। बकरियों के बेचने पर मनाही थी, क्योंकि कम भोजन पर अच्छा दूध देने के कारण वो एक तरह से गरीब व्यक्ति की मित्र थीं। संप्रदाय के संस्थापक जांभा नाम के एक साधु थे, जो सन् 1450 के आस-पास बीकानेर में रहते थे, जो अब विष्णु अवतार के रूप में पूजे जाते हैं। साल में दो बार उनके गांव (मुखाम) लोग तीर्थ यात्रा के लिए जाते हैं।"

कनाडा के ओटावा विश्वविद्यालय की शोधकर्ता एलेक्सि रिशर्ट (Reichert: 2015) ने "सेखरड ट्रीज, सेखरड डियर, सेखरड डयूटी टू प्रोटेक्ट : एक्सपलोरिंग रिलेशनशिप बिटवीन हयूमनस एंड नॉनहयूमनस इन द बिश्नोई कम्युनिटी" (Sacred Trees, Sacred Deer, Sacred Duty to Protect: Exploring Relationships between Humans and Nonhumans in the Bishnoi Community) नामक विषय पर शोध कार्य किया था। एलेक्सि ने शोध के दौरान भारत के 12 से ज्यादा गांवों व शहरों का दौरा किया जहां पर बिश्नोई रहते थे। इस दौरान शोधार्थी ने बिश्नोईयों की जीवन शैली, उनके सामाजिक व धार्मिक क्रियाकलापों का बारीकी से अवलोकन किया तथा शोध प्रबंध के निष्कर्ष में लिखा कि बिश्नोई प्रकृति तथा वन्य जीवों के प्रति पूरी तरह से समर्पित हैं। ऐसा समर्पण अन्य किसी भी धर्म व संप्रदाय में देखने को नहीं मिलता। वह लिखती है कि बिश्नोई धर्म में वन्य प्राणी तथा व्यक्ति एक दूसरे के पूरक हैं। उनकी मान्यता है कि एक दूसरे के विकास के लिए दोनों के बीच स्वाभाविक संबंध होने आवश्यक हैं। बिश्नोई वृक्षों तथा वन्य जीवों के संरक्षण को व्यक्तिगत व धार्मिक कर्तव्य मानते हैं। अपने कर्त्तव्य तथा धर्म का अनुसरण उनका भगवान के प्रति समर्पण जाहिर करता है। वे अपने कर्तव्य के प्रति इतने समर्पित हैं कि पेड़ों तथा वन्य जीवों को बचाने के लिए मरने व मारने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। इस तरह आत्म बलिदान के लिए तैयार रहना बिश्नोई धर्म के अनुयायियों की मुख्य विशेषता है। एलिक्स ने अपने शोध प्रबंध में गुरू जंभेश्वर जी द्वारा प्रतिपादित 29 नियमों तथा उनकी मनुष्य जीवन के लिए प्रासंगिकता व मुख्य शिक्षाओं का विवरण भी दिया है।

फ्रांस के पेरिस विश्वविद्यालय की शोध छात्रा सुश्री फ्रेंच मारिया "बिश्नोई समाज व वन्य जीवों के संबंध" विषय पर शोध कार्य कर रही है। वर्ष 2014 में मारिया के हिसार प्रवास के दौरान प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने उनका साक्षात्कार लिया था। इस दौरान उन्होंने अपने विषय पर विस्तार से बातचीत की थी। मारिया ने बताया कि वो इंसानों व वन्य जीवों के संबंधों पर काम करने की इच्छुक थी। दूसरा, मैं यहां पर अपने अभिभावकों के साथ पहले भी आ चुकी हूं। इस दौरान यहां के लोगों, रीति-रिवाजों, संस्कारों, संस्कृति व जीवन शैली आदि ने काफी प्रभावित किया था। इसलिए जब मैंने फ्रेंच टीवी पर बिश्नोई समाज व वन्य जीवों के संबंधों पर आधारित डाक्यूमेंट्री देखी तो फैसला कर लिया कि मैं इसी विषय पर अपना शोध करूंगी। हालांकि अमेजन, दक्षिणी अफ्रीका आदि देशों में इंसानों व वन्य जीवों के बीच घनिष्ठता देखने को मिलती है लेकिन जैसा संबंध बिश्नोई समाज व वन्य जीवों के बीच है वैसा दुनिया भर में कहीं नजर नहीं आता। इसलिए मुझे इस विषय पर काम करने पर ज्यादा विचार नहीं करना पड़ा।

मारिया ने बताया कि बिश्नोई समाज को मैंने काफी नजदीकी से अवलोकन किया है तथा अभी इस बारे में काफी कुछ किया जाना है। लेकिन जहां तक मैंने देखा है कि उनको वन्य जीवों से बेहद प्यार है। हालांकि ऐसी काफी कुछ बातें हैं जो हिंदू समाज में भी प्रचलित हैं जैसे गाय को भोजन खिलाना, आवारा जानवरों को खाना देना तथा उनकी सेवा करना आदि। यह अपने आप में काफी अच्छा है कि बिश्नोई पशु पक्षियों को अपने परिवार के सदस्य के रूप में स्थान देते हैं तथा एक सदस्य की तरह उनसे प्यार व उनकी देखभाल करते हैं। जिन-जिन गांवों में बिश्नोई समाज के लोग रहते हैं वहां पालतू व वन्य-जीव बहुतायत में देखे जा सकते हैं। यही नहीं इन स्थानों पर रहने वाले वन्य जीव व इंसानों के संबंध निश्चित रूप से आकर्षित करने वाले हैं। ऐसा संबंध शायद ही कहीं और देखने को मिले।

फ्रेंक वॉगेल जो फ्रांस के एक मशहूर अंतर्राष्ट्रीय फोटो पत्रकार हैं के द्वारा लिकित पुस्तक "बिश्नोई : इनवायरनमेंटलिस्ट सिंश द फिफ्टिंथ सेंचुरी" (Bishnois: Environmentalists since the 15th Century) में लेखक ने बिश्नोई समाज की विविध जीवन शैली व संस्कृति को आकर्षक चित्रों से तथा उनके द्वारा पेड़ों एवं वन्य जीवों के संरक्षण के लिए किए गए प्रयासों व इनसे जुड़े अनेक दृष्टांतों को विषयक रूप में उल्लेक किया है। उनके अनुसार मानव तथा प्रकृति के परस्पर सहसंबंधों का उदाहरण बिश्नोई समाज के अलावा कोई दूसरा नहीं हो सकता। वॉगेल ने बिश्नोई समाज को दुनिया का पहला पर्यावरणविद् समाज कहा है। उन्होंने लिखा है कि बिश्नोई समाज सह-अस्तित्व, समानता, समभाव जैसे सिद्धांतों में विश्वास करने वाला एक अद्वितीय समाज है। इसके अलावा वॉगेल ने बिश्नोई समाज की विशिष्ट विशेषताओं को समेटे चित्रों के द्वारा विभिन्न देशों में अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों का आयोजन भी किया है तथा पेरिस के मेट्रो स्टेशन पर स्थायी रूप से ऐसे चित्रों को प्रतिस्थापित किया है जो समाज की कार्य शैली, विशिष्टता, उत्कृष्टता एवं उसके अनूठे व विविध रूप से दुनिया को अवगत करा रहे हैं। उनके द्वारा लिए गए कुछ विशिष्ट चित्रों को अंतर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं ने भी प्रकाशित किया है। वॉगेल ने बिश्नोई समाज के उपर एक डाक्यूमेंट्री फिल्म "द बिश्नोई-इको वेरियरस" का भी निर्माण किया है।

अमरीका के न्यूयार्क टाइम्स समाचार पत्र के प्रतिनिधि संजय हजारिका ने वर्ष 1990 में अपने एक लेख में "सेक्ट इन इंडिया गार्डस डेजर्ट वाइल्डलाइफ"(Sect in India Guards Desert Wildlife) में बिश्नोई समाज को प्रकृति प्रहरी तथा वन्य जीवों का रखवाला बताया है। उन्होंने लिखा है कि राजस्थान के थार मरूस्थल जैसे गंभीर उष्ण एवं शुष्क क्षेत्रों में निवास करने वाले बिश्नोई वनस्पति तथा वन्य जीव-हिरण, नील गाय, चीतल, खरगोश, कबूतर आदि वन्य प्रजातियों के साथ संतान जैसा स्नेह रखते हैं तथा बड़े ही प्यार एवं आत्मीय भाव से उनका पालन-पोषण करते हैं। उनके अनुसार उपरोक्त अनुकूल परिस्थिति के चलते ही बिश्नोई समुदाय जिन इलाकों में बसता है वहां पर वन्य प्राणी तथा वृक्ष रेगिस्तान होने के बावजूद बहुतायत में मिलते हैं। लेखक ने अपनी रचना में बिश्नोई समाज के संस्थापक गुरु जंभेश्वर जी महाराज तथा उनके द्वारा प्रतिपादित 29 नियमों के बारे में जानकारी देने के अलावा समाज की जीवन शैली, संस्कृति, संस्कार तथा मान्यताओं बारे भी चर्चा की है। इसके अलावा वृक्षों की रक्षार्थ घटित केजड़ली बलिदान घटना का संक्षिप्त विवरण भी उपरोक्त लेख में मिलता है।

इंटरनेट पर एक वेबसाइट https://currentaffairs.adda247.com/ जो विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं में हिस्सा लेने वाले परीक्षार्थियों के लिए महत्वपूर्ण जानकारियां उपलब्ध कराती है, पर लेखक सुमित शर्मा ने 11 सितंबर 2023 को राष्ट्रीय वन शहीदी दिवस के बारे में लिखे एक लेक में केजड़ली बलिदान को रेखांकित किया है जिसमें बिश्रोई समाज के 363 स्त्री पुरूषों ने वृक्षों की रक्षा में अपने प्राण न्यौछावर किए थे। उन्होंने लिखा कि किस तरह साल 1730 में जोधपुर के महाराज अभय सिंह के आदेश पर राज कर्मचारी बिश्रोई गांव केजड़ली में वृक्ष काटने गए थे जिसका ग्रामीणों ने कड़ा विरोध किया तथा अमृता देवी के नेतृत्व में वृक्षों को बचाने के लिए उनसे लिपट गए। अमृता देवी ने कहा कि उनका धर्म वृक्ष काटने की आज्ञा नहीं देता, इसलिए वे वृक्ष काटने नहीं देंगे। इससे गुस्साए सैनिकों व कर्मचारियों ने पेड़ों से लिपटी अमृता देवी व उसकी तीन पुत्रियों पर कुल्हाड़े चला दिए जिससे वो विश्व की प्रथम महिला बनीं जो वृक्षों की रक्षा में शहीद हुई। अमृता देवी के बाद एक-एक करके 363 बिश्रोई स्त्री पुरूष शहीद हो गए। इस क्ररुर नरसंहार से व्यथित होकर राजा अभय सिंह ने अपने सैनिकों को वापस बुला लिया तथा बिश्रोई धर्म के अनुयायियों से क्षमा याचना की तथा भविष्य में इस तरह की घटना पुनः नहीं दोहराने का संकल्प किया। अतः इसी महाबलिदान के उपलक्ष्य में वर्ष 2013 में भारत सरकार के पर्यावरण मंत्रालय ने 11 सितंबर को राष्ट्रीय वन शहीदी दिवस घोषित किया। इंडिया टुडे पत्रिका ने भी अपने इंटरनेट संस्करण में "How one tragic event shaped India's environmental legacy" शीर्षक से प्रकाशित लेख में केजड़ली बलिदान की नायिका अमृता देवी बिश्रोई तथा उसके द्वारा वृक्षों हेतु किया गया बलिदान और उसकी अगुवाई में केजड़ली में हुए आंदोलन को विस्तार से लिखा है।

अतः जाहिर है कि विदेशी शोधार्थियों, लेखकों व अन्य रचनाशील व्यक्तित्व ने बिश्नोई समाज की संस्कृति, विचारधारा, दर्शन, मान्यताओं, परंपराओं तथा विशिष्टताओं को लेखों, शोधों, चित्रों, फिल्मों के अतिरिक्त विभिन्न जनमाध्यमों के द्वारा दुनिया के समक्ष प्रभावी रूप में प्रस्तुत किया है। जिससे बिश्नोई समाज एवं इसके संस्थापक गुरु जंभेश्वर जी महाराज के बारे में विश्व को ज्ञान हो पाया है। इस तरह गुरुजी की वाणी एवं बिश्नोई समाज के वैविध्य को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ले जाने व उसके प्रचार प्रसार को आगे बढ़ाने में विविध जनमाध्यमों की महती भूमिका रही है।

संदर्भ-सूचीः

1. बिश्नोई, डा. किशनाराम एवं बिश्नोई, डा. नरसीराम (2011) : धर्म एवं पर्यावरण (भाग-1) : नई दिल्ली : अरिहंत प्रकाशन
2. अंकित, डा. अनिल के राय : संचार के सात सोपान : नई दिल्ली : यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन
3. माहेश्वरी, डा. हीरालाल (2012) : जाम्भोजी : नई दिल्ली : साहित्य अकादमी
4. माहेश्वरी, डा. हीरालाल (2011) : श्री जाम्भोजी और जम्भवाणी मीमांसा : अबोहर (फिरोजपुर) : श्री गुरू जंभेश्वर साहित्य सभा
5. अमर ज्योति (2014) : अंक-6, जून 2014, हिसार : संपादक डॉ. सुरेंद्र कुमार बिश्नोई
6. अमर ज्योति (2014) : अंक-7, जुलाई 2014, हिसार, वही।
7. Aryal, Achyut et al. (2014): Bishnoi Communication for Perfect Life, Death and Enlightenment: Scientific Journal of International Research, 2(1) at www.sjoir.blogspot.com
8. Darling, Malcolm L.(1934): Wisdom and Waste in the Punjab Village:150-152
9. Reichert, A. (2013): Bishnoism: An Eco Dharma of People Who Are Ready to Sacrifice their Lives to Save Trees and Wild Animals: Bhatter College Journal of Multidisciplinary Studies, 3, P. 19-31
10. Reichert, A. (2015): Sacred Trees, Sacred Deer, Sacred Duty to Protect: Exploring Relationships between Humans and Nonhumans in the Bishnoi Community: Ottawa: Canada University
11. The Indian Desert (2010): Published in the Journal of Vaishnava Studies, 19.1
12. Vogel, Franck (2012): Bishnois: Environmentalists since the 15th Century
13. Sanjay Hazarika, "Sect in India Guards Desert Wildlife", The New York Times, February, 2, 1993
14. https://currentaffairs.adda247.com/national-forest-martyrs-day-2023/
15. https://www.indiatoday.in/education-today/gk-current-affairs/story/how-one-tragic-event-shaped-indias-environmental-legacy-2434138-2023-09-11

विभिन्न युगों में महिलाओं की स्थिति

विमल भारती

शोध-प्रज्ञा, इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा

प्रो० माधव चौधरी

पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सार

महिलाओं की स्थिति में हर युग में विभिन्नता रही है। हाल के वर्षों में वैश्वीकरण और व्यावसायीकरण के कारण महिलाओं की भूमिका में कुछ बड़े बदलाव आये हैं। यह पत्र इस बात की जांच करता है कि आधुनिक भारतीय समाज में समानता, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, विवाह और पारिवारिक जीवन, नस्ल और लिंग, धर्म और संस्कृति के संबंध में महिलाओं की स्थिति बनी हुई है या बिगड़ गई है। इसमें यह भी पता लगाया गया है कि जैसे-जैसे 21वीं सदी में समाज विकसित हुआ है, इतने सारे संवैधानिक प्रावधानों के बाद महिलाओं की स्थिति और सम्मान में गिरावट आई है, इसके पीछे कौन-कौन से कारण हैं, इन्हीं स्थितियों का विश्लेषण इस पत्र के माध्यम से करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्दः समाज, स्थिति, अधिकार, भागीदारी, पितृसत्ता, समुदाय।

परिचय

सभ्यता की भावना को समझने और इसकी उत्कृष्टताओं की सराहना करने और इसकी सीमाओं को समझने का सबसे अच्छा तरीका इसमें महिलाओं की स्थिति के इतिहास का अध्ययन करना है। जहां तक शिक्षा का सवाल है, प्राचीन भारतीय महिलाओं को शिक्षा का अधिकार दिया गया था परन्तु मध्यकाल में उन्हें शिक्षा के अधिकार से वंचित किया गया।

1947 के बाद महिलाओं ने भी स्वतंत्रता का आनंद लिया और इनकीं सार्वजनिक जीवन में भागीदारी से पता चलता है कि एक समुदाय में न्याय की भावना और उसके क्रियाओं का विकास हुआ। विवाह के नियम और रीति-रिवाज साथी के मूल्यांकन के लिए मार्गदर्शक के रूप में कार्य करते हैं। परिवार की खुशी और सफलता के लिए उनका सहयोग जरूरी था। महिलाओं को जीवन में अपना साथी चुनने की आजादी मिलने लगी थी। उनके घर का प्रबंधन और उनके मालिकाना अधिकारों की मान्यता मनुष्य की स्वयं, धन, शक्ति और कब्जे के प्राकृतिक प्रेम को नियंत्रित करने की क्षमता को इंगित करती है, जो हर इंसान के दिल में बहुत गहराई से निहित है। हमारे अध्ययन की अवधि के दौरान महिलाओं की स्थिति और प्रस्थिति स्थिर नहीं रही। जहां महिलाओं को सम्मान दिया जाता है वहां देवता प्रसन्न होते हैं, यह केवल एक आदर्श बनकर रह गया और वास्तविक व्यवहार में उनके साथ शूद्र जैसा व्यवहार किया गया। वह बचपन में अपने माता-पिता, एक वयस्क के रूप में, अपने पति और एक विधवा के रूप में अपने बेटों के प्रभाव में थी। महिलाओं की स्वतंत्रता भी सीमित मिली थी। यदि वह लड़की है, युवा महिला है या वृद्ध है तो वह अपने घर में भी स्वतंत्र रूप से कुछ नहीं कर सकती। उसकी स्थिति और प्रस्थिति में धीरे-धीरे गिरावट आ रही थी। प्राचीन भारतीय समाज स्त्री-पुरुष की समानता स्थापित करने में असमर्थ पाया गया। मध्यकाल और आधुनिक काल में उसकी स्थिति और प्रस्थिति में अधिक गिरावट आई। जो देश महिलाओं का सम्मान नहीं करते वे कभी महान नहीं बने। हमारी जाति के इतने पतित होने का मुख्य कारण यह है कि शक्ति की इन सजीव प्रतिमाओं के प्रति हमारे मन में कोई आदर नहीं है। यदि हम उन महिलाओं की प्रशंसा नहीं करते हैं जो दिव्य मां का जीवंत उदाहरण हैं, तो यह मत सोचिए कि हमारे पास उठाने का कोई और तरीका है।[1]

आदिम समुदायों में महिलाओं की स्थिति को लेकर बहस चल रही है. यह विचार कि आदिम लोग बर्बर थे, कुछ लोगों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि महिलाएँ पुरुषों के अधीन थीं। प्रारंभिक असभ्य समाजों में समुदाय अभी तक बर्बरता से उभरे नहीं थे और महिलाओं पर पुरुषों के अत्याचार पर शायद ही कोई रोक थी। आदिम जीवन में सफलता के लिए शारीरिक शक्ति एक अनिवार्य तत्व थीं और पुरुष इसमें महिलाओं की तुलना में अधिक मजबूत होते थे। इस प्रकार शारीरिक शक्ति और मांसपेशियों की शक्ति ने स्वाभाविक रूप से महिलाओं पर पुरुष की स्थायी श्रेष्ठता स्थापित कर दी। इसलिए वैदिक युग के दौरान सभ्यता की शुरुआत में हिंदू समाज में महिलाओं की जो स्थिति थी, वह उससे कहीं बेहतर है जिसकी हम आमतौर पर अपेक्षा करते हैं। वैदिक काल में समाज ने भोजन संग्रहण और शिकार की स्थिति को अवश्य ही पीछे छोड़ दिया था। महिलाओं को सम्मान का स्थान प्राप्त था क्योंकि उत्पादन प्रक्रिया में उनकी भागीदारी आवश्यक मानी जाती थी। इस दौरान पति-पत्नी को दम्पति कहा जाता है। यह उस समाज का द्योतक है जिसमें लिंगों के बीच संबंध पारस्परिकता और गतिविधि के संबंधित क्षेत्रों में स्वायत्तता पर आधारित थे। वे यज्ञ अनुष्ठानों में समान रूप से भाग लेते थे, महिलाएँ अक्सर लोक सभा से

जुड़ी रहती थीं और उसके विचार-विमर्श में भाग लेती थीं, लेकिन आधुनिक समय में स्थिति इतनी खराब हो गई कि पंचायत स्तर पर सरकार ने महिलाओं को तैंतीस प्रतिशत आरक्षण दिया है, लेकिन जनता द्वारा चुने जाने के बाद वे अपनी शक्ति का उपयोग नहीं करती हैं, उनके पति उनकी जगह काम करते हैं। यदि हम परवर्ती संहिताओं के काल को देखें तो नारी संतोषजनक स्थिति में है। घर की जिम्मेदारियों और कर्तव्यों में महिला को पुरुष के बराबर का भागीदार माना जाता था।

महिलाओं के उपनयन (दीक्षा समारोह) के बाद उन्हें वैदिक अध्ययन में दीक्षित किया गया। सीता को संध्या प्रार्थना करने के रूप में वर्णित किया गया था। महिला धर्म के मार्ग में बाधक नहीं थी तथा धार्मिक संस्कारों एवं समारोहों में उसकी उपस्थिति एवं सहयोग नितांत आवश्यक था। 500 ईसा पूर्व की शुरुआत में लड़कियों के लिए उपनयन को हतोत्साहित किया जाने लगा और यह घोषित किया गया कि विवाह महिलाओं की सामान्य स्थिति और गरिमा पर विनाशकारी परिणाम था।

कृषि, कपड़ा, धनुष, तीर और अन्य युद्ध सामग्री का निर्माण जैसी उत्पादक गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी वैदिक युग में महिलाओं की स्वतंत्रता और बेहतर स्थिति के मूल में थी। उनकी स्थिति तब ख़राब होने लगी जब गुलाम आबादी या शूद्रों से सस्ता या जबरन श्रम समाज को उपलब्ध होने लगा। महिलाओं की विवाह योग्य आयु 16 या 17 से घटाकर 18 या 19 करना और सती प्रथा स्पष्ट रूप से उनकी स्थिति में गिरावट के परिणाम थे। महिलाओं की स्थिति में गिरावट 300 ईसा पूर्व से शुरू हुई। उन्हें चंचल दिमाग वाला माना जाता है, जिन्हें आसानी से किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा जीता जा सकता है जो सुंदर हो और अच्छा गा और नृत्य कर सकता हो। महाभारत के अनुशासन पर्व में हमें बताया गया है कि युधिष्ठिर ने भीष्म से महिलाओं के स्वभाव के बारे में ज्ञान देने की प्रार्थना की थी। उन्होंने वक्तव्य के साथ अपनी प्रार्थना की शुरुआत की। ऐसा कहा जाता है कि महिला सभी बुराइयों की जड़ होती है और वह संकीर्ण सोच वाली होती है। भीष्म सहमत हो गए और लालच दिया। वह प्रलोभन का विरोध करने के लिए पर्याप्त इच्छा शक्ति से संपन्न नहीं है। उसे सदैव पुरुषों द्वारा सुरक्षा की आवश्यकता रहती है। महाभारत में अन्यत्र भी हम भीष्म को उनकी प्रशंसा करते हुए पाते हैं। महिलाओं की हमेशा पूजा की जानी चाहिए और उनके साथ प्यार से पेश आना चाहिए। क्योंकि जहां महिलाओं का सम्मान किया जाता है, वहां देवताओं को प्रसन्न किया जाता है। जहां स्त्रियों की पूजा नहीं होती, वहां सभी कार्य निष्फल हो जाते हैं। यदि किसी परिवार की महिलाएँ अपने साथ होने वाले व्यवहार के कारण दु:ख और आँसू बहाती हैं, तो वह परिवार शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।[2]

महाभारत में महिलाओं के संबंध में विरोधाभासी वक्तव्य महिलाओं के स्वभाव में समाज के आत्मविश्वास की कमी को दर्शाता है। यद्यपि यह आदर्श नारीत्व में स्पष्ट था और महिलाओं को पवित्रता, धार्मिकता और आध्यात्मिकता के प्रतीक के रूप में मान्यता देता था। तारा, सीता, द्रौपदी, अहल्या और मंदोदरी ये पाँच आदर्श और पूजनीय स्त्रियाँ हैं। जन्मजात लोकतंत्रवादी बुद्ध का रवैया किसी भी तरह से अलग नहीं था, हालांकि उन्होंने महिलाओं को मठवासी जीवन का अधिकार दिया और नन का आदेश दिया। जलका कहानियों में समानता में एक नैतिक स्त्रीत्व की ओर इशारा किया गया है। जातक के अनुसार "इंद्रियों के सभी जालों में से जो अज्ञानता असावधान लोगों के सामने रखती है, सबसे कपटी, सबसे खतरनाक और सबसे आकर्षक महिला है।" महिलाओं के प्रति बौद्ध धर्म की सहानुभूति की चाहत इस विश्वास पर आधारित थी कि एक महिला पुरुष की तुलना में दुनिया के अधिक निकट है।[3]

ऋग्वैदिक काल में महिलाएँ समाज के बौद्धिक जीवन में भाग लेती थीं। उपनयन संस्कार के बाद यह लड़कों की तरह ही नियमित रूप से होता था। उन्होंने अपनी शादी तक अपना समय वैदिक धर्मशास्त्र और दर्शन में विशेषज्ञता के लिए समर्पित कर दिया। विवाह के बाद यज्ञोपवीत संस्कार में पति-पत्नी दोनों समान रूप से भाग लेते थे। कुछ वैदिक ऋचाओं के रचयिता का श्रेय महिलाओं को दिया जाता है और वास्तव में ऐसी बीस महिला लेखिकाएँ हैं। इन हस्तियों ने दार्शनिकों के रूप में महान ख्याति प्राप्त की। उपनिषद काल में उच्च बौद्धिक योग्यता वाली महिलाओं का उल्लेख मिलता है। गार्गी मैत्रेयी इसका एक उदाहरण है। याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेय को अपने पति के साथ व्यक्तिगत आत्मा के साथ सार्वभौमिक आत्मा के संबंध पर दार्शनिक चर्चा करते हुए दर्शाया गया है। ये उदाहरण बौद्धिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों की उस ऊंचाई को प्रदर्शित करते हैं जहां तक महिलाएं पहुंच सकती हैं। कुछ महिलाएँ अध्यापन कार्य में लग गईं और उन्हें उपाध्याय कहा जाने लगा। महिला शिक्षक को दर्शाने के लिए नया शब्द गढ़ना पड़ा, जिससे पता चलता है कि महिला शिक्षक असंख्य थीं। पुराणों में भी महिला शिक्षकों की बात की गई है और भागवत में दक्षिणायन की दो बेटियों को धर्मशास्त्र और दर्शनशास्त्र में विशेषज्ञ के रूप में संदर्भित किया गया है। महिलाओं की शिक्षा के बारे में यह उच्च टिप्पणी लंबे समय तक जारी नहीं रह सकी। 300 ईसा पूर्व के बाद स्थिति बदल गई और महिलाओं को पढ़ाई के अधिकार से वंचित कर दिया गया। यह संभव है कि संपन्न परिवारों में लड़कियों को शैक्षिक अवसरों से वंचित नहीं किया गया हो। चूँकि लड़कियों के लिए उच्च शिक्षा की अनुमति नहीं थी, इसलिए उन्हें प्रारंभिक काल से ही संगीत, नृत्य और चित्रकला जैसी ललित कलाओं का प्रशिक्षण दिया जाता था। वास्तव में उन्हें स्त्रैण उपलब्धियों के रूप में पहचाना गया।[4]

विवाह: हिंदू लेखक स्त्री के विवाह को बहुत महत्व देते हैं। नारी पुरुषार्थ का स्रोत है, न केवल धर्म, अर्थ और काम, बल्कि मोक्ष भी। यह एक सामाजिक एवं धार्मिक कर्तव्य एवं आवश्यकता थी। यह लड़कियों के लिए अनिवार्य था क्योंकि अविवाहित महिला के रास्ते में अधिक गड्ढे होंगे। आधुनिक काल में भी सोच वैसी ही है. हालाँकि समाज बदल गया है, काम करने और रहने के तरीके बदल गए हैं। वैदिक युग में लड़कियों का विवाह सामान्यत: युवावस्था के बाद किया जाता था। महाभारत सुविकसित और वयस्क लड़कियों के विवाह का पक्षधर है। द्रौपदी, कुंती, सीता, उत्तरा और देवयानी भी अपने विवाह के समय पूरी तरह से वयस्क थीं, हालांकि शुरुआती समय में लड़कियों के लिए शादी से पहले पूरी तरह वयस्क होना सामान्य बात थी।[5]

संपत्ति का अधिकार महत्वपूर्ण है क्योंकि विकास हमारे सामने उस आर्थिक स्वतंत्रता और समृद्धि को उजागर करता है जिसका महिलाओं को समाज में आनंद मिलता था। प्राचीन काल में महिलाओं को बराबर का आर्थिक अधिकार मिला हुआ था तथा धीरे-धीरे समाज में उसकी स्थिति में गिरावट आती गई। जोड़े घर के साथ-साथ संपत्ति के संयुक्त मालिक थे। विवाह के समय पति घोषणा करता है कि वह आर्थिक मामलों में अपने साथी के अधिकारों और हितों का उल्लंघन नहीं करेगा। संयुक्त कब्जे ने उसके कई अधिकार और विशेषाधिकार सुरक्षित कर दिये। यह उसे पति के विरुद्ध भरण-पोषण का पूर्ण अधिकार देता है। कुल मिलाकर हिंदू न्यायविदों ने परिवार की संपत्ति के स्वामित्व में महिलाओं को उनके पतियों के साथ पूर्ण समानता सुनिश्चित करने के लिए कभी

भी ईमानदार प्रयास नहीं किया। हालाँकि, स्वतंत्र भारत ने महिलाओं के प्रति इस गंभीर अन्याय को सुधार लिया है। कानून निर्माताओं ने श्रीधना (महिलाओं की विशेष संपत्ति) पर पत्नी के दावों को मान्यता दी है, जिसमें दुल्हन की कीमत, विवाह के बाद भी पति द्वारा दिए गए उपहार शामिल थे। बाद में जमीन जायदाद को श्रीधन में शामिल किया जाने लगा। श्रीधन की विरासत से संबंधित कानून अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग थे। यदि कोई महिला नि:संतान मर जाती है और यदि उसका विवाह स्वीकृत नियमों के अनुसार नहीं होता है, तो श्रीधन उसके माता-पिता या भाई को हस्तांतरित हो जाता है; अन्यथा यह उसके बच्चों को विरासत में मिला था। पूर्वी भारत में भाई कम बेटियाँ पैतृक संपत्ति की हकदार थीं। 300 ईसा पूर्व के बाद स्थिति बदल गई। भाइयों वाली बहनों ने विरासत में हिस्सा लेने से इनकार कर दिया। स्वतंत्र भारत में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के अनुसार पुरखों से विरासत में मिली संपत्ति में बेटियों को भी बराबर का हिस्सा मिलता है। लेकिन कुछ सामाजिक दबाव और लोगों के कारण लड़कियों की मानसिकता ऐसी बन जाती है कि वे संपत्ति में से अपना हिस्सा नहीं लेतीं। 21वीं सदी में भारतीय लड़कियों के मध्यवर्ग की यही स्थिति है।[6]

तलाक: पवित्र कानून कहता है कि एक बार सात कदम एक साथ उठाने के बाद विवाह बंधन अटूट होता है। तलाक के लिए कोई जगह नहीं थी. एक गलती करने वाली पत्नी को उसके अधिकांश अधिकारों से वंचित कर दिया गया; फिर भी मांग करने पर पति को उसका भरण-पोषण करना पड़ता था। हालाँकि, वह दोबारा शादी नहीं कर सकीं। धर्म सूत्र साहित्य की सावधानीपूर्वक जांच से पता चलता है कि ईसाई युग की शुरुआत से पहले कुछ निश्चित परिस्थितियों में पत्नी/पति को छोड़ने की अनुमति थी। यदि पत्नी नपुंसक, पागल या असाध्य या संक्रामक रोग से पीड़ित पति को छोड़ दे तो मनु उसे दोषी नहीं ठहराते। मनु ऐसी पत्नी के पुनर्विवाह की अनुमति देते हैं। विवाह, अनुबंध और तलाक के मामलों में कौटिल्य महिलाओं के प्रति अधिक उदार हैं। एक महिला तब पुनर्विवाह कर सकती है जब उसका पति लंबे समय तक विदेश में हो, यदि वह असाध्य रोग से पीड़ित हो या बांझ हो, यदि वह जाति से बाहर हो गया हो, यदि उसका चरित्र बुरा हो या उच्च राजद्रोह का दोषी हो या उसकी बांझपन के लिए खतरनाक हो या यदि वह पुत्रों को जन्म देने में असफल रही।[7]

परिभाषित परिस्थितियों में पत्नी को दूसरे पति के साथ अनुबंध करने की अनुमति देना, पत्नी के हित के प्रति सहानुभूतिहीन प्रतीत होता है। उपरोक्त सभी नियमों को गुप्त काल में पूर्णतया भुला दिया गया जब उच्च वर्ग के लोगों के लिए तलाक लगभग असंभव हो गया। आधुनिक समय में तलाक आसानी से संभव है। भारतीय पैनल कोड ने महिलाओं को ऐसे अधिकार दिए हैं लेकिन भारतीय मध्यवर्गीय समाज तलाकशुदा महिलाओं को श्रेणियों में हीन मानता है और दोष उसी के सिर पर आता है।

वेश्यावृत्ति: प्राचीन भारत में महिलाओं का एक वर्ग था जो पुरुषों के साथ स्वतंत्र रूप से घुलमिल जाता था। वे उन प्रतिबंधों से मुक्त थे जिनका पालन मैट्रन को करना पड़ता था। उन्हें गणिका (वेश्या) और वैश्या (वेश्या) कहा जाता है। साहित्य में वेश्या को सुन्दर, निपुण एवं धनी के रूप में चित्रित किया गया है। महिलाएं प्रसिद्धि और सम्मान की स्थिति का आनंद ले रही हैं। उन्हें चौसठ कलाओं में पूरी तरह से प्रशिक्षित किया जाता था। इनमें संगीत, नृत्य, गायन और अभिनय आदि शामिल थे। गणिकाएं या वेश्याएं एक महान सामाजिक प्रतिष्ठा का आनंद लेती थीं और आधुनिक औद्योगिक शहरों में ऐसी महिलाओं के साथ उनकी कोई समानता नहीं थी। वे संगीत और नृत्य जैसी ललित कलाओं में विशेष रूप से निपुण थे। उन्हें उन कलाओं में उनकी विशेषज्ञता के साथ-साथ उनके सार्वजनिक उपकार के लिए लोगों द्वारा सम्मानित किया गया था।

विधवाएँ: एक सुसंस्कृत समाज विधवाओं को लगभग अयोग्य मानता था, उन्हें अपमानित करता था और उनके रूप को भी अशुभ मानता था। सती प्रथा जीवन के लिए अपमानजनक है। यह सच है कि उन्हें अपने अधिकार में संपत्ति रखने की अनुमति दी गई थी, लेकिन इससे उनकी स्थिति में सुधार नहीं हुआ। ऋग्वेद में विधवा के संबंध में साक्ष्य उसकी स्थिति के बारे में कोई भी अनुमान लगाने के लिए बहुत कम हैं। यदि सामान्य रूप से महिलाओं द्वारा प्राप्त स्थिति कोई मार्गदर्शक है, तो यह कहा जा सकता है कि विधवा की स्थिति बहुत बेहतर थी। विधवा पुनर्विवाह और पति की संपत्ति में विधवाओं के अधिकार को बरकरार रखने के सवाल पर चर्चा वैदिक काल में सती प्रथा के न होने का एक और प्रमाण है।[8]

भारत में महिलाओं की स्थिति को बढ़ाने के लिए भारत के संविधान में कुछ विशेष प्रावधान शामिल किये गये हैं। जैसे- 1950 में लोकतांत्रिक संविधान की शुरुआत के साथ, इसने महिलाओं को समान सामाजिक और राजनीतिक अधिकार प्रदान किए। कुछ संवैधानिक प्रावधान हैं: i. अनुच्छेद 14 गारंटी देता है कि राज्य कानून के समक्ष समानता और कानूनों के समान संरक्षण से इनकार नहीं करेगा, ii. अनुच्छेद 15 लिंग के आधार पर किसी भी नागरिक के खिलाफ भेदभाव पर रोक लगाता है: और अनुच्छेद 15 (3) राज्य को महिलाओं और बच्चों के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव करने का अधिकार देता है, iii. अनुच्छेद 16 सार्वजनिक रोजगार के मामले में अवसर की समानता प्रदान करता है। vi. राज्य अपनी नीति को पुरुषों और महिलाओं के लिए समान रूप से आजीविका के पर्याप्त साधनों का अधिकार सुनिश्चित करने की दिशा में निर्देशित करेगा (अनुच्छेद 39 (ए)); और पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए समान काम के लिए समान वेतन (अनुच्छेद 39 (डी)), v. राज्य काम की उचित और मानवीय परिस्थितियों को सुरक्षित करने और मातृत्व राहत के लिए प्रावधान करेगा (अनुच्छेद 42), vi. भारत के सभी लोगों के बीच सद्भाव और समान भाईचारे की भावना को बढ़ावा देना और महिलाओं की गरिमा के लिए अपमानजनक प्रथाओं का त्याग करना (अनुच्छेद 51(ए)(ई)), vii. प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा भरी जाने वाली सीटों की कुल संख्या का कम से कम एक तिहाई (अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों की संख्या सहित) महिलाओं के लिए आरक्षित किया जाना चाहिए और ऐसी सीटें होनी चाहिए। एक पंचायत में विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों को चक्रानुक्रम द्वारा आवंटित (अनुच्छेद 243 डी(3))। viii. प्रत्येक स्तर पर पंचायतों में अध्यक्षों के पदों की कुल संख्या का एक तिहाई से कम नहीं महिलाओं के लिए आरक्षित किया जाएगा (अनुच्छेद 243 डी (4))।

विधायी प्रावधान

समान अधिकार सुनिश्चित करने, सामाजिक भेदभाव और विभिन्न प्रकार की हिंसा और अत्याचारों का मुकाबला करने और विशेष रूप से कामकाजी महिलाओं को सहायता सेवाएँ प्रदान करने के उद्देश्य से सरकार द्वारा विभिन्न विधायी उपाय लागू किए गए हैं। संवैधानिक जनादेश को कायम रखने के लिए,

महिलाएं हत्या, डकैती, धोखाधड़ी आदि जैसे अपराधों की शिकार हो सकती हैं, जो अपराध विशेष रूप से महिलाओं के खिलाफ निर्देशित होते हैं, उन्हें 'महिलाओं के खिलाफ अपराध' के रूप में जाना जाता है, जिन्हें दो श्रेणियों के तहत वर्गीकृत किया गया है, 'भारतीय अपराध' के तहत पहचाने गए अपराध पैनल कोड जैसे बलात्कार, अपहरण या विभिन्न प्रयोजनों के लिए अपहरण, दहेज के लिए हत्या या उनके प्रयास, मानसिक और शारीरिक यातना, छेड़छाड़, यौन उत्पीड़न और लड़कियों का आयात आदि।

महिलाओं के लिए विशेष पहल

इस संबंध में कुछ विशेष पहल की गई हैं: प्रथम, राष्ट्रीय महिला आयोग जनवरी 1992 में, महिलाओं के लिए प्रदान किए गए संवैधानिक और कानूनी सुरक्षा उपायों से संबंधित सभी मामलों का अध्ययन और निगरानी करने और जहां भी आवश्यक हो संशोधन का सुझाव देने के लिए मौजूदा कानून की समीक्षा करने के लिए एक विशिष्ट जनादेश के साथ इस वैधानिक निकाय की स्थापना की गई थी। द्वितीय. स्थानीय स्वशासन में महिलाओं का आरक्षण। संसद द्वारा 1992 में पारित 72वें और 73वें संवैधानिक संशोधन अधिनियमों के तहत सभी ग्रामीण और शहरी स्थानीय निकायों में सभी निर्वाचित कार्यालयों में महिलाओं के लिए कुल सीटों में से एक तिहाई सीटें सुनिश्चित की गईं। तृतीय, बालिकाओं के लिए राष्ट्रीय कार्य योजना (1991-2000 ई.)9 कार्य योजना का उद्देश्य बालिकाओं के अस्तित्व, संरक्षण और विकास को सुनिश्चित करना है, जिसका मुख्य लक्ष्य बालिकाओं के लिए एक अच्छा भविष्य बनाना है। चतुर्थ, महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए राष्ट्रीय नीति, 2001 मानव संसाधन विकास मंत्रालय में महिला एवं बाल विकास विभाग ने वर्ष 2001 में 'महिला सशक्तिकरण के लिए राष्ट्रीय नीति' तैयार की है। इस नीति का लक्ष्य महिलाओं की उन्नति, विकास करना और महिलाओं का सशक्तिकरण है।

भारतीय समाज में, इस तथ्य का बहुत कम महत्व है कि कुल मिलाकर, पुरुषों और महिलाओं में अलग-अलग गुण होते हैं, वे एक-दूसरे के पूरक होते हैं और उनका रिश्ता श्रेष्ठ और अधीनस्थ का नहीं होना चाहिए। पुरुषों की अधिक बाहुबल शक्ति की तुलना में महिलाओं में देखभाल और पालन-पोषण करने की क्षमता अधिक होती है। महिलाएं अधिक समय तक जीवित रहती हैं और अधिक तनाव झेल सकती हैं; उनमें अधिक धैर्य और दृढ़ता है। उनमें अहंकार कम होता है, और सेवा देने की क्षमता अधिक होती है, और ये ऐसे गुण हैं जो अस्तित्व का सार बनाते हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि मानव विकास में महिलाओं की भी समान भागीदारी है। वह मानव जाति का आधा हिस्सा है. लेकिन समाज में उसकी कमी है। मध्यकालीन भारतीय समाज में महिलाओं का उतना सम्मान नहीं किया जाता जितना कि प्राचीन भारतीय समाज में किया जाता था। आधुनिक समाज में भी महिलाओं के प्रति बहुत अपराध देखने को मिलते हैं जबकि महिलाओं के विकास एवं सुरक्षा हेतु संविधान में कई प्रावधान किए गए हैं। जाहिर है कि समाज में सम्मानजनक स्थान पाने के लिए संवैधानिक प्रावधान पर्याप्त नहीं हैं। महिलाओं के साथ-साथ पुरुषों की मानसिकता में भी कुछ बदलाव की जरूरत है। हर कोई यह समझने की कोशिश करता है कि समाज में श्रम का विभाजन है, समाज में हर ध्रुव द्वारा कुछ आवश्यक भूमिका निभाई जाती है, तो हम महिलाओं को पुरुषों से गौण क्यों मानते हैं। आधुनिक समय में प्रौद्योगिकी विकसित हुई, वैश्वीकरण और व्यावसायीकरण अस्तित्व में आया लेकिन महिलाओं की स्थिति और स्थिति में गिरावट आई है।

संदर्भ

1. मूर्ति एच.वी., श्रीनिवास, भारत का इतिहास भाग-1. लखनऊ: ईस्टर्न बुक कंपनी, (2006)
2. आप्टे प्रभा, भारतीय समाज में महिलाएँ, नई दिल्ली: कॉनकॉर्डिया पब्लिशिंग हाउस, (1996)
3. देशपांडे सुनील और सेठ सुनीता, भारतीय समाज में महिला सशक्तिकरण की भूमिका और स्थिति, जे इंटरनेशनल रेफर्ड रिसर्च जर्नल, 1(17), 24-27, (2009)
4. धनोआ रितु.,भारत में महिला मानवाधिकारों का उल्लंघन, रेस. जे.इंटरनेशनल जर्नल इन मल्टीडिसिप्लिनरी एंड एकेडमिक रिसर्च, 1(4), 1-8 (2012)
5. आहूजा राम, भारतीय सामाजिक व्यवस्था, जयपुर: रावत प्रकाशन, (1993)
6. सुगुना एम., भारत में शिक्षा और महिला सशक्तिकरण, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च, 1(8), 198-204 (2011)
7. वही, पृ. 205
8. धनखड़, सुशीला. हरियाणा में महिलाओं की स्थिति: दलित और गैर-दलित महिलाओं का तुलनात्मक अध्ययन", डिस. रोहतक एम.डी.यू., (2011)
9. दास इरा., महिलाओं की स्थिति: भारत का उत्तर पूर्वी क्षेत्र बनाम भारत, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइंटिफिक एंड रिसर्च पब्लिकेशन्स, 3(1), (2013)

माध्यमिक स्तर के स्वः अध्ययन करने वाले एवं ट्यूशन पढ़ने वाले छात्रों के अभिप्रेरणा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन (मुजफ्फरपुर जिला के संदर्भ में)

रेखा सिन्हा

शोध छात्रा, शिक्षा विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

डॉ० शगुप्ताह जबीं

असिस्टेंट प्रोफेसर, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

सारांशः-

वर्तमान समय में स्वः अध्ययन के साथ-साथ ट्यूशन का भी प्रचलन बढ़ा है। माध्यमिक स्तर पर और भी ज्यादा हो रहा है। अतः माध्यमिक स्तर के स्वः अध्ययन करने वाले एवं ट्यूशन पढ़ने वाले छात्रों के अभिप्रेरणा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए मुजफ्फरपुर जिले के माध्यमिक विद्यालय के छात्रों पर टी.आर. शर्मा के अभिप्रेरणा मापनी का प्रयोग कर आँकड़े संग्रहित किये गए जिसका परिणाम प्राप्त हुआ कि अभिप्रेरणा स्तर का प्रभाव लिंग एवं ट्यूशन पर दिखता है।

स्वः अध्ययन क्या है? (Self Study):-

स्व0 अध्ययन का अर्थ स्वयं अध्ययन करना। हम इसका अर्थ है छात्रों को कही से कुछ पुदने या सीखने की आवश्यकता नही है, सब खुद पढ़ो यह स्व अध्ययन नही है। बल्कि स्व अध्ययन वह है जहाँ हम कहीं से अध्ययन करें स्कूल से आस-पास से बड़ो से आदि जो इस क्षेत्र से संबंधित हो, उन सबों के मार्गदर्षन के साथ-साथ खुद भी अध्ययन करना। इन सबों के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके खुद से पढ़ना ही स्व अध्ययन होता है।

होम ट्यूशन क्या हैं? (Home Tuition):-

यह शिक्षा वह माध्यम है जो स्कूल के अतिरिक्त कम समय के लिए पढ़ाई करना। इसमें घर या किसी सेंटर पर जिसमें पहले से ही टाइम पिगमक होता है। इसमें बच्चे अपनी सभी लेसन की समस्याओं का Dis बने करते है जो वह स्कूल में नही कर पाते है। ट्यूशन पढ़ाने वाले को टयूटर कहते है। जो बच्चे की समस्याओं को समाधान करने की कोशिश करता है।

अभिप्रेरणा एवं अभिप्रेरणा स्तर? (Motivation and motivation stages):-

अभिप्रेरणा शब्द की उत्पत्ति Lat in "kCn Moten या Mover से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ है "गति करना" यानि जब Move किसी भी प्रकार के अधिगत के लिए Motivation की आवश्यकता होती है, इसके बिना किसी भी लक्ष्य की प्राप्ति नही कर सकता है।

कार्टरगुड के अनुसार "किसी भी क्रिया को आरंभ करने जारी रखने और नियमित करने की प्रक्रिया अभिप्रेरणा" कहलाती है।

मैक्डुगल के अनुसार अभिप्ररेणा वह मानसिक और शारीरिक मनोदशा है जिससे जो किसी क्रिया करने के लिए प्रेरित करती है।

लावेल के अनुसार अभिप्रेरणा वह मनोवैज्ञानिक एवं आतंरिक प्रक्रिया है जो हमारे आवष्यकता उत्पन्न होती है और तब तक चलती है जब तक संतुष्ट नही हो जाती है"

अभिप्रेरणा स्तर (stages of motivation):-

वैसे तो अभिप्रेरणा की तीन स्तर होते है:-

(i) आवश्यकता(Need)

(पप) चालक/प्रणोद(Drive)

(iii) प्रोत्साहन/उद्दीपक(Incentive)

आवश्यकता:-

(i) जब बच्चे कुछ करने की आवश्यकता होती है तब कोई कार्य करने के लिए प्रेरित होकर पुरूष करता है। बच्चे में पढ़ने की चाहत हो गीत भी Motivate होकर अपनी आवश्यकता के लिए आगे आता है।

(ii) प्राणी में जब आवश्यकता उत्पन्न होती है तो वह पहले से अधिक सक्रिय हो जाता है। इस सक्रियता को चालक कहते है।

(iii) सक्रियता से प्राणी अपनी आवश्यकता की ओर आकर्शित होता है और इसकी प्राप्ति से आवश्यकता को सन्तुश्ट होने के लिए अपनी कमी को दूर करता है और लक्ष्य की प्राप्ति करता है।

संबंधित साहित्य:-

सुलेमान कैसर एवं हुसैन इश्तियाक (2013) ने कोहारहिवीजन पाकिस्तान में गणित के विशय में माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि पर निजी ट्यूशन का प्रभाव विशय पर अध्ययन किया। आँकड़ो के विश्लेषण के बाद यह निष्कर्श कि माध्यमिक विद्यालय स्तर पर गणित विशय में छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि पर निजी ट्यूशन का महत्वपूर्ण सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

गफूर कून्नतोदी एवं सुन्नु मेली मुहम्मद (2007), ने "माध्यमिक स्कूल के विज्ञान के छात्रों की उपलब्धि परलिजी ट्यूशन का प्रभाव" का अध्ययन किया। प्रस्तुत षोध के निष्कर्षो से पता चलता है कि ट्यूशन का प्रभाव गणित उपलब्धि पर पड़ता है।

उद्देश्य (Objective):-

1. ट्यूशन पढ़ने वाले छात्रों की अभिप्रेरणा स्तर ज्ञात करना।
2. स्व अध्ययन करने वाले छात्रों की अभिप्रेरणा स्तर ज्ञात करना।
3. दोनो तरह के छात्रों की अभिप्रेरणा स्तर का तुलना करना।

उद्देश्य:-

1. लिंग के आधार पर बालक एवं बालिकाओं की अभिप्रेरणा स्तर में कोई सार्थक अंतर नही है।
2. स्वयं अध्ययन करने वाले एवं ट्यूशन पढ़ने वाले बालक एवं बालिकाओं की अभिप्रेरणा स्तर में कोई सार्थक अंतर नही है।

सीमांकन:- इस शोध का सीमांकन मुजफ्फरपुर के एक ग्रामीण माध्यमिक विद्यालय तक सीमित है।

शोध-विधि (Method of Research):- वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया।

समग्र:- मुजफ्फरपुर के ग्रामीण क्षेत्र से Higher Secondary School Majhauliya,Minapur के सरकारी विद्यालय के छात्रों का चयन किया गया है।

प्रतिदर्श एवं प्रतिदर्ष चयन:- माध्यमिक विद्यालय दसवीं (Xth) के छात्रों के स्व: अध्ययन करने वाले एवं ट्यूशन पढ़ने वाले दोनो तरह के छात्रों का चयन किया गया है। इसमें सम्भाश्य पद्धति (Random or probability sampling technique) के आधार पर 40 निदर्ष का चयन किया गया है।

उपकरण (Tools) Dr. T.R Sharma द्वारा तैयार किया गया उपकरण से छात्रों की अभिप्रेरणा स्तर को मापा गया है। इसकी विश्वसनीयता 0.697 है जो कि प्रमाणिकृत है।

आँकड़ा संग्रह:- प्ररीक्षण विधि के आँकड़ा संग्रह किया गया है।

आँकड़ा विश्लेषण:- इस शोध में आंकड़ा विश्लेषण के लिए मात्रात्मक विधि (iQuantative and iQualitative Method) का प्रयोग किया गया है।

टेबल-1.1

T-TEST CRITERIA=CT (0.95).

Group Statistics									
	Group	N	Mean	Std. Deviation	S.E Mean	SED	T	Df	विष्वासस्तर 0.05 का मान
Motivation	Male	12	19.42	3.55	1.03	1.57	3.29	38.00	2.02
	Female	28	24.57	4.89	.93	1.38			

प्रस्तुत विश्लेषण में विश्वास्तर 0.05 परज का मान टेबल में 2.02 है जो प्राप्तज मान 3.29 से कम है। इस कारण अध्ययन के आधार पर बालक एवं बालिकाओं के अभिप्रेरणा स्तर में कोई सार्थक अन्तर है। अत: वर्तमान शोध हेतु निर्धारित परिकल्पना (1) असत्य सिद्ध हुई किलिंग के आधार पर बालक एवं बालिकाओं की अभिप्रेरणा स्तर में कोई सार्थक अंतर नही है।

टेबल-1.2

T-TEST CRITERIA=CI (0.95)

Group Statistics							
	Group N Mean	Std. Deviation	S.E Mean	SED	T	Df	विष्वासस्तर 0. 05 का मान
tivation	Self Study 20 20.20	4.27	.96	1.35	4.19	38.00	2.02
	Home tuition 20 25.85	4.25	.95	1.35			

प्रस्तुत विश्लेषण में विश्वास्तर 0.05 परज का मानटेबल में 2.02 है जो प्राप्तजमान 4.19 से कम है। इस कारण अध्ययन के आधार पर बालक एवं बालिकाओं के उपलब्धि स्तर में कोई सार्थक अन्तर नही है। अत: वर्तमान शोध हेतु निर्धारित परिकल्पना (2) असत्य सिद्ध हुई कि स्वयं अध्ययन करने वाले एवं ट्यूशन पढ़ने वाले बालक एवं बालिकाओं की अभिप्रेरणा स्तर में कोई सार्थक अंतर नही है।

निष्कर्ष:-

उपरोक्त विष्लेशण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ट्यूशन का प्रभाव छात्रों के अभिप्रेरणा स्तर पर पड़ता है। अत: जो छात्र पढ़ने में कमजोर है, उनको ट्यूशन कराने से उनमें अभिप्रेरणा स्तर ऊँचा रहता है है और वे अच्छा सिखते है।

छात्रों में लिंग के आधार पर अभिप्रेरणा स्तर में अन्तर देखा गया है। अत: वर्तमान शोध के आधार पर बालकों को ही अभिप्रेरित करने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ:-

1. मंगल, एस. के. (2013) शिक्षा मनोविज्ञान, दिल्ली: पीएचआईलर्निग।
2. सुलेमान, एम. एवं कुमार, डी. (2011) मनोविज्ञान, समाज शास्त्र तथा शिक्षा में षोध विधियाँ, पटना: जनरल बुक एजेन्सी।
3. Garrett, Henry E. (2011) Statistics in Psychology and Education, Ludhiyana : Kalyani Publishers
4. सुलेमान कैसर एवं हुसैन इश्तियाक (2013)https://www.researchgate.net/2-1-2022.
5. गफूर कून्नतोदी एवं सुन्नु मेली मुहम्मद (2007)https://researchgate.netèkeffect of private tuition on achievement in science of secondary school pupils/2-1-2022.

पाञ्चरात्र संप्रदाय की प्राचीनता

नवीन

शोध छात्र, इतिहास विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

परिचय

भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति पर पाञ्चरात्र शास्त्र का अपना तहत्वपूर्ण प्रभाव है। परंम्परा में वैष्णव सम्प्रदाय के दो मुख्य भेद बताए गए है लेकिन हयशीर्ष संहिता में पाञ्चरात्र आगम, वैखानस आगम के अतिरिक्त भागवत आगम का भी उल्लेख मिलता है।[1] किन्तु भागवत आगम के विषय में अन्यतर कही विवरण उपलब्ध नहीं होता अत: वैष्णव आगम के दो मुख्य भेद माने गए है वैखानस आगम एवं पाञ्चरात्र आगम। पाञ्चरात्र संप्रदाय को अत्यन्त प्रचीन सिद्धान्त माना गया है। इस सिद्धन्त की प्रचिनता रहस्य में डूबी हुई है। विट्ठानों ने जितना ध्यान वैदिक साहित्य पर दिया उतना आगम साहित्य पर नहीं दिया। पूर्व एवं पश्चिम दोनों के कुछ प्रतिष्ठित विट्ठानें ने पाञ्चरात्र शास्त्र पर ध्यान दिया किन्तु यह ध्यान पर्याप्त नहीं है

पाञ्चरात्र संप्रदाय की प्राचीनता से संबंधित साक्ष्यों का विश्लेषण

इसकी प्राचीनता के विषय में विद्वानों में काफी मतभेद है। पाञ्चरात्र की प्राचीनता के विषय में कुछ प्रमाण प्राचीन तमिल साहित्य में भी उपलब्ध होते हैं। शिलप्पाधिकारम तथा परिपदल में गुरूडध्वज, संकर्षण, वासुदेव तथा अनिरूद्ध की प्रतिमाओं का निर्देश देखते हैं।[2] परिपदल का निर्माण काल ईस्वी सन् की द्वितीय शताब्दी कहा गया है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ईसा की द्वितीय शताब्दी के समय पाञ्चरात्र शास्त्र दक्षिण भारत में प्रचलित था।

आर० जी० भंडारकर ने सबसे पहलें पुरातात्विक सामग्री (घोसुण्डि, नानाघाट तथा वेशनगर नामक शिलालेख) के आधार पर इसकी प्रचीनता को ई० पू० तृतीय शताब्दी से पूर्व ही पाञ्चरात्र शास्त्र का होना प्रमाण भूत माना है।[3]

ई० पू० चतुर्थ शताब्दी में चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में भारत आये हुए यवन मेगस्थनीज ने सौरसेनीय किसी क्षेत्रिय को वासुदेव का अराधक बताया है जिससे चन्द्रगुप्त मौर्य के समय पाञ्चरात्र शास्त्र का प्रचलित होना सिद्ध होता है।[4]

ब्रह्मसूत्र के अविरोधाध्याय नामक द्वितीय अध्याय के द्वितीय पाद में सांख्य, वैशेषिक, जैन, सर्वास्तिवाद आदि मतों के युक्तियुक्त खण्डन के क्रम में पाञ्चरात्र मत के खण्डन का भी निर्देश देखते हैं।[5] ब्रह्मसूत्र का रचना काल विक्रम पूर्व षष्ठ शताब्दी से पूर्व कहा गया है। फलत: ब्रह्मसूत्र में उल्लेख होने के कारण पाञ्चरात्र प्रक्रिया को ई० पू० षष्ठ शताब्दी से प्राचीन मानने में कोई हानि नहीं है।

महान वैयाकरण आचार्य पाणिनि ने वासुदेव शब्द की व्युत्पत्ति के लिए वासुदेवार्जुनाभ्या वुन् सूत्र की कल्पना की है।[6] अत: हम कह सकते हैं कि पाणिनि के काल से पूर्व पाञ्चरात्र शास्त्र समाज में विघमान एवं प्रचलित था।

अशोक कुमार कालिया ने अपने अध्ययन में साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्रोतों के आधार पर इसकी प्राचीनता ई० पू० पांचवी शताब्दी स्वीकारी है।[7] प्रस्तुत अध्ययन में हम शतपथब्राह्मण एवं महाभारत को ही आधार मानकर इसकी प्राचीनता पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

सर्वप्रथम पाञ्चरात्र शब्द का उल्लेख हमें शतपथब्राह्मण में मिलता है।[8] इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शतपथब्राह्मण की रचना के समय पाञ्चरात्र का उदभव हो चुका था। लेकिन इसके रचना काल के विषय में विद्वानों में मतभेद है फिर भी मुख्यत: इसका रचना काल छठीं से पांचवीं शताब्दी ई० पू० माना जाता है। इससे यह भी आभास होता है कि यह संप्रदाय इससे पहलें का है। दूसरा उल्लेख हमें महाभारत में मिलता है। सामान्यत: विण्टरनित्ज ने इसका रचना काल 400 ई० पू० से लेकर 400 ई० स० तक माना है। महाभारत युद्ध की तिथि के विषय में भी विद्वान में मतभेद है। लेकिन बी० बी० लाल एवं एच० सी० राय चौधरी ने युद्ध की जो तिथियां बताई है उन पर हम अधिक विश्वास कर सकते हैं, लेकिन इसे अन्तिम भी नहीं माना जा सकता। बी० बी० लाल ने महाभारत के युद्ध की तिथि 836 ई० पू० बताई है[9] जबकि एच० सी० राय चौधरी ने इसकी तिथि 900 ई० पू० मानते हैं।[10] वहीं महाभारत[11] में एक उल्लेख हुआ है जिसमें (भिष्म एवं युधिष्ठर का संवाद हैं) कहा गया है कि चित्रशिखण्डी नामक सात (मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, और वशिष्ठ) ऋषियों ने एकमत होकर पाञ्चरात्र शास्त्र को प्रकट किया। इसमें आगे यह भी कहा गया है कि राजा उपरिचर की मत्यु के बाद यह शास्त्र पृथ्वी पर से लुप्त हो जाएगा और नारद मुनि ने अपनी जिज्ञासा को दूर करने के लिए इस शास्त्र को फिर से पृथ्वी पर प्रकाशित किया। महाभारत में यह वर्णन है कि नारद मुनि ने पाञ्चरात्र शास्त्र को नारायण से श्वेत द्वीप पर पुन: प्राप्त किया। महाभारत के उपर्युक्त कथन से हम यह समझ सकते हैं कि पाञ्चरात्र संप्रदाय भीष्म के जीवन काल से भी प्राचीन है अर्थात इस तथ्य को ध्यान में रखकर यह अनुमान लगा सकते हैं कि भीष्म के जीवन काल से पहले ही यह शास्त्र लम्बे समय तक प्रचलित रहा और इसका अन्त भी उनके जीवन काल से पहले ही हो चूका था। अत: इस शास्त्र का उद्भव 1500 ई० पू०

से 900 ई० पू० के मध्य किसी समय माना जा सकता। एस० के अययंगर ने भी ऐतरेयब्राह्मण तथा शतपथब्राह्मण के आधार पर पाञ्चरात्र का काल ई० पू० दशम शताब्दी माना है।

इस प्रकार पाञ्चरात्र संप्रदाय के उदभव को समझने के लिए इसको दो भागों में बाट सकते हैं पहले में चित्रशिखंडी नामक ऋषियों ने इसका आरंभ मेरुपर्वत पर किया और दीर्घकाल के बाद इसका अन्त राजा उपरिचर वसु की मृत्यु के समय हो गया। दूसरे में नारद मुनि ने पुनः इस शास्त्र को श्वेत पर्वत से प्राप्त किया जो वर्तमान तक प्रचलित रहा है।

शाण्डिल्यसंहिता से भी महाभारत के कथन की पुष्टि होती जिसमें कहा गया है कि नारद मुनि ने विष्णु की अराधना कर पुनः इस शास्त्र को प्राप्त किया।[12] फिर नारद मुनि ने कही-कही इसको प्रकाशित किया। भीष्म ने तथा अन्य ने नारद की अराधना कर इसे प्राप्त किया। फिर उनकी उपासना से कर्दम मुनि ने तथा कर्दप से कपिल मुनि ने प्राप्त किया।

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर पाञ्चरात्र संप्रदाय के उदभव के विषय में मोटे तौर पर यह कह सकते है कि संभवतः इसका उद्भव 1500 ई० पू० से 1000 ई० पू० के मध्य किसी समय हुआ होगा।

संदर्भ ग्रन्थसूची

1. हयर्शीष संहिता, आदिकाण्ड- पी० भवन मोहन सांख्य तीर्थ, वीरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी, राजशाही, 1952 पृ० 7-10
2. वैखानस धूर्मसूत्र, भूमिका
3. भंडारकर, आर० जी०, वैष्णविज्म, शैविज्म, और अन्य धार्मिक संप्रदाय, भारतीय विद्या भवन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 5-10
4. वही, पृ० 5-20
5. ब्रह्मसूत्र, अध्याय 2, पाद 2, 22, पृ० 247
6. अष्टाध्यायी, अध्याय 4, श्लोक 3-95
7. कालिया, अशोक कुमार, पाञ्चरात्र परिशीलन, न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन, दिल्ली, 2007, पृ० 4-16
8. शतपथ ब्राह्मण, भाग 3, अनु० उपाध्याय गंगा प्रसाद, गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली, 2010, अ०, 16
9. यादव, के० सी०, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति, मनोहर पब्लिशर्जस, नई दिल्ली, 1982, पृ० 116-119
10. रायचौधरी, एच० सी०, प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास, किताब महल, इलाहाबाद, 2007, पृ० 7-8
11. महाभारत, श्री हरि महार्षि व्यास, अनुवादक, रामनारायण शास्त्री, गीता प्रेस गोरखपुर, 1980, शान्तिपर्व, अ०, 334-350
12. शाण्डिल्य संहिता, स० मालवीय सुधाकर, चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी, 2007, पृ० 26-40

वैदिक भारत में नारी चेतनाः एक अध्ययन

अशोक कुमार

इतिहास विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

हडप्पा सभ्यता के पतन के पश्चात भारत में वैदिक संस्कृति का विकास हुआ। इस संस्कृति की जानकारी के लिए वेद महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इतिहासकारों का मानना है कि 2500 ई० पू०- 2000 ई० पू० तक के बीच में वैदिक साहित्य रचा गया तथा इस समय वैदिक संस्कृति फली-फूली थी। वैदिक युग को दो भागों में विभाजित किया गया- ऋग्वैदिक काल और उत्तर वैदिक काल सर्वप्रथम ऋग्वेद की रचना की गई। ऋग्वैदिक काल से लेकर उत्तर वैदिक काल तक संस्कृति में समाज, धर्म और राजनीतिक रूप से बहुत परिवर्तन हुए। कुछ स्थानों पर आसानी से यह पता चल जाता है कि यह ऋग्वैदिक काल है तथा दूसरा उत्तर वैदिक काल। ऋग्वैदिक काल में आर्य सप्त-सिन्धु के आस-पास के प्रदेश में रहते थे जबकि उत्तर वैदिक काल तक आते-आते आर्यो ने अपना विस्तार सरस्वती और गंगा घाटी तक कर लिया था। ऋग्वैदिक संस्कृति की सम्पूर्ण जानकारी का स्त्रोत ऋग्वेद है। ऋग्वेद की रचना 500 से 1000 ई० पू० के लगभग मानी जाती है। इसमें 10 मण्डल तथा 1028 मंत्र हैं।[1] समस्त मंत्रों में ऋग्वैदिक आर्यो के राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक जीवन के बारे में जानकारी मिलती है। जिस समय आर्य भारत में आये उस समय वे एक जाति के रूप में संगठित थे। परन्तु बाद में आवश्यकता के अनुसार संपूर्ण समाज को चार वर्णो में विभाजित किया था। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में इस वर्ण व्यवस्था का स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है। परिवार को समाज और राजनीति की महत्वपूर्ण इकाई माना जाता था।

स्त्रियों को सम्मान और आदर की दृष्टि से देखा जाता था तथा उन्हें पुरुषों के समान बौद्धिक, आध्यात्मिक, सामाजिक और धार्मिक अधिकार प्राप्त थे। जिस परम्परा का आरम्भ ऋग्वैदिक युग में था वही परम्परा उत्तर-वैदिक युग में भी चलती रही। इस समय कुरुक्षेत्र, गंगा की उतरी और मध्य घाटी तक इस संस्कृति का विस्तार हुआ। इस युग में राजनीतिक संगठन के साथ-साथ नागरिकों के सामाजिक जीवन में भी क्रमिक विकास दृष्टिगत होता है। इस समय पारिवारिक जीवन ऋग्वेद काल के समान था।

परिवार पितृसत्तात्मक था। इस समय पति पत्नी के सम्बन्ध काफी सुखद थे। ऋग्वैदिक काल की वेशभूषा के अलावा चीर, चेवर और चेल नामक वस्त्र उत्तर वैदिक काल में प्रचलित हो गये। स्त्रियाँ कढ़ी हुई किनारीदार और विविध रंगो की साड़ियाँ पहनने लगी थी। ऋषियों और ब्रह्मचारियों की वेशभूषा यथावत रही। ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों को परिवार और समाज में जितना सम्माननीय और आदरपूर्वे स्थान प्राप्त था, उतना उत्तर वैदिक काल में नहीं रहा। इस समय पुत्री के जन्म पर उदासीनता प्रदर्शित की जाने लगी। ऐतरेय ब्राह्मण में पुत्री को कृपण कहा जाता था।

स्त्रियों की स्थिति

भारतीय इतिहास में प्राचीन समय से ही स्त्रियों की स्थिति पुरुषों के समान रही है। स्त्री को पुरुष की सहधर्मिणी माना जाता था। स्त्री के बिना कोई भी धार्मिक कार्य पूरा नहीं माना जाता था। कोई भी यज्ञ तभी सम्पन्न माना जाता था जब पति अपनी स्त्री के साथ उसमें सम्मिलित हो। स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त कर सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन में पुरुषों का सहयोग करती थी। समय के साथ सामाजिक परिस्थितियाँ बदलती गई और कालान्तर में स्त्रियों की स्थिति हीन हो गई, वे परदे में रहने लगी और सार्वजनिक जीवन से उनकी दूरी बढ़ती चली गई। किस प्रकार उनकी इस स्थिति में परिवर्तन आया यह ऐतिहासिक विषय विवेचना का विषय है।

वैदिक समाज भारतीय इतिहास का सर्वाधिक आदर्श समाज रहा है जिसमे महिलाओं को समस्त अधिकार प्राप्त थे। ऋग्वेद युग में योग्य कन्या सुख का कारण मानी जाती थी। ऋवेद में बताया गया है कि वैदिक समाज में कन्या को भी पुत्र के समान स्नेह एवं आदर प्राप्त था। वैदिक युग में ब्रह्मचर्य का अनुपालन करना लड़को की तरह कन्याओं के लिए भी जरूरी था क्योंकि कन्याओं का भी उपनयन संस्कार होता था। उपनयन संस्कार के पश्चात कन्याएं भी पुत्रों के समान ही शिष्टाचार करती थी। उपनयन संस्कार के बाद कन्याएं समुचित शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर सकती थी। अथर्ववेद मे बताया गया है कि यदि कोई कन्या उचित ढंग से शिक्षा प्राप्त कर लेती थी तो उसे विवाह के अनुकूल माना जाता था।

प्राचीन भारत में लोगों ने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि मानव जीवन रूपी गाड़ी के दो चाक हैं एक स्त्री व दूसरा पुरुष। दोनों चाक बराबर रहने चाहिये व साथ-साथ चलने चाहिए तभी जीवनरूपी गाड़ी अच्छी तरह चल सकती है। इसीलिए वैदिक साहित्य में स्त्री को पुरुष की अर्धांगिंनी कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में वर्णन आता है कि जो पत्नी है वह अपनी आत्मा का आधा भाग है। स्त्री को पुरुष की अर्धांगिंनी कहने का यह भी तात्पर्य हो सकता है कि पुरूष को इस बात का गर्व न हो जाय कि वह अधिक शारीरिक शक्ति रखता है इसलिए स्त्री पर उसका अधिकार रहना चाहिए। जब स्त्री उसका आधा अंग है तो अधिकृत का भाव ही खत्म हो जाता है। स्त्री व पुरुष पारिवारिक जीवन के दो पहलू हैं। परिवारिक सुख व शान्ति के लिये दोनों का समान अधिकार होना जरूरी है।

ऋग्वेद में स्त्री के गृहिणीपद का बहुत ही सुन्दर विवेचन किया गया है। 'जायेदस्तं' (स्त्री ही घर है) शब्दों द्वारा यह बताया गया है कि स्त्री ही गृह है।[3] जिसका उत्तरदायित्व स्त्री के उपर ही रहता था। गृह के साथ-साथ वह आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन में भी सहभागी थी। कभी-कभी स्त्रियाँ अपने पति के साथ युद्ध में भी जाती थी। खेल नृप की रानी विश्पला का पैर युद्ध में कट गया था। अश्विनीकुमार की कृपा से उसने लोहे के पैर लगवा लिये थे। मुद्गल की पत्नी मुद्गलानी या इन्दसेना ने डाकुओं से युद्ध किया और उनको हराकर अपनी गायें वापिस ली। स्त्रियाँ सेना में भी भरती होती थी क्योंकि ऋग्वेद में स्त्री योद्धाओं का भी उल्लेख आता है। इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक युग के सामाजिक जीवन में स्त्रियों का महत्वपूर्ण स्थान था।

शिक्षा- वैदिक युग में स्त्रियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त करती थी और याज्ञिक अनुष्ठान मे पुरूषों को सहयोग प्रदान करती थी। स्त्रियाँ वेद मंत्रों की रचयिता भी हैं जिनमें विश्ववारा, लोपमुद्रा, सिकता, रोमशा और घोषा के नाम उल्लेखनीय है।

'ब्रह्मचर्येव कन्यानं युवाविब्दते पतिम' वैदिक युग में शिक्षा के क्षेत्र में लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता था। गार्गी एवं मैत्रेयी ब्रह्मविद्या जो कि सर्वोच्च ज्ञान में पारंगत थी। गृहसूत्र मे बहुत से ऐसे मंत्र हैं जो कि महिलाओं द्वारा ही सम्पादित होते थे। जिनके बिना अग्निहोत्रा के कार्य पूर्ण नहीं हो सकते थे। पाणिनी एवं पतंजलि दोनों ने महिलाओं के लिए वैदिक ज्ञान को स्वीकार किया है। कथा क्षेत्र में कार्य करने वाली महिला 'कथी', ऋग्वैदिक ब्रह्ममृचा क्षेत्र की महिलाएं वृहतऋषि और 'मीमांसा' का अध्ययन व मीमांसा-सूत्र के ऋषि 'कृषतिस्ना' कहलाती थी।

उस समय हात्री (महिला छात्रायें) तथा उपाध्यायी (महिला शिक्षक) थे। बहुत सी स्त्रियाँ ऋचाओं की रचनाकार और कवियित्री के रूप में उद्यृत की गयी है। उनमें से कुछ ने वैदिक सहिताओं की रचना की। सर्व अनुक्रमणिका' में उद्यृत है कि लगभग 20 महिलाओं ने ऋग्वेद के लेखन में अपना योगदान दिया था। लोपामुद्रा, विश्ववारा, सिकता, घोषा इत्यादि ऋग्वेद के ऋचाओं की रचनाकार थी।[4]

ऋग्वेद के 10 भाग के 145 और 159 ऋचाओं की रचनाकार नि:सदेह रूप में महिलाएं हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में कुमारी गन्धर्वगृहीता का उल्लेख आता है जिसे परम विदुषी तथा वक्रता में अत्यन्त प्रवीण कहा गया है। उपनिषदों में मैत्रयी और गार्गी का विवरण मिलता है जो दर्शन तत्वज्ञान तथा तर्क में पारंगत थी। बृहदारण्यक उपनिषद के अनुसार मैत्रेयी याज्ञवल्क्य ऋषि की पत्नि थी जिसकी रूचि सांसारिक सुखभोग में न होकर आध्यात्म चिन्तन में उसके मुख से यह कहना कि उन अलंकारों तथा भौतिक सुखों को लेकर मैं क्या करू, जिससे मुझे अमरत्व (मोक्ष) प्राप्त नहीं हो सकता। भवभूति के अनुसार मैत्रेयी ने शास्त्रों की शिक्षा महर्षि वाल्मीकि से प्राप्त की थी। विदेहराज जनक की राजसभा में कुरु-पांचाल जनपदों के विद्वान एकत्रित होते थे। गार्गी भी उस सभा में गई थी और अपनी अगाध विद्वता तथा तर्कशक्ति द्वारा उसने याज्ञवल्क्य जैसे प्रकाण्ड विद्वान को शास्त्रार्थ में हराया था।[5] काशकृत्स्नी नामक एक विदुषी महिला ने मीमांसा दर्शन पर एक ग्रन्थ की रचना की थी और इस दर्शन पद्धति के विकास में विशेष रूप से योगदान दिया था। रामायण के अनुसार सीता प्रतिदिन वैदिक सूक्तों द्वारा प्रार्थना करती थी। प्राचीन भारत में स्त्रियों का विदुषी होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी क्योंकि पुरुषों के समान वे भी उपनयन संस्कार कर ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश किया करती थी और गुरुकुलों में निवास कर वेद शास्त्रों तथा विविध विद्याओं का अध्ययन करती थी। मनुस्मृति में कन्याओं के लिये भी यज्ञोपवीत का विधान किया गया है।

प्राचीन भारत में माता-पिता की इच्छा होती थी कि उनकी पुत्री 'पण्डिता' बने। इसीलिये बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि जो कोई यह चाहे कि मेरी दुहिता पण्डिता बने और सौ वर्ष की पूरी आयु प्राप्त करे, तो वह घी के साथ तिल और चावल पकाकर सेवन किया करे। "ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्" वाक्य में उल्लेखनिय है कि उच्च शिक्षा के बाद कन्या विवाह करे।

छात्राएं दो भागों में विभाजित थी- ब्रह्मवादिनी और दूसरी सोधादूहा।[6] पहली प्रकार की छात्राएं आजीवन नीतिशास्त्र, धर्म और दर्शन शास्त्र की छात्राएं थी तथा दूसरी प्रकार की कन्याएं विवाह के पूर्व तक छात्राएं रहती थी। स्त्रियों के लिये भी ब्रह्मचर्य -जीवन आवश्यकीय था। वैदिक युग में वर्णव्यवस्था ने अपना विकृतरूप धारण नहीं किया था चारो वर्णों में विवाह हुआ करते थे। ऋग्वेद में प्रेम विवाह का वर्णन भी मिलता है। कभी-कभी प्रेमियों को निराश भी होना पड़ता था जैसा कि उर्वशी के प्रति पुरुरवा के निराशपूर्ण वचनों से स्पष्ट होता है। श्यावाश्य ऋषि की प्रेम कहानी का वर्णन ऋग्वेद में आता है जिसमे कहा गया है कि श्यावश्य राजा रथवीति की राजकुमारी पर मोहित हो गये थे किन्तु राजकुमारी को न पाकर बहुत निराश होकर इधर-उधर भटकने लगे। हर्षातिरेक से मस्त देवता की स्तुति में उन्होंने मन्त्र कह डाले। मरूत ने उन्हें ऋषि की पदवी प्रदान की। इस पर श्यावाश्व ऋषि ने रात्रि की स्मृति की व उसको कहा कि मरूत की स्तुति राजा रथवीति तक पहुँचा दो तथा उसे कहो कि श्यावाश्व अभी तक राजकुमारी को भूला नहीं है। राजा रथवीति व उनकी रानी को जब पता लगा कि श्यावाश्य मरूत देवता की कृपा से ऋषि हो गया है। तब प्रसन्न होकर उन्होंने अपनी राजकुमारी का विवाह श्यावाश्य के साथ कर दिया।[7] राजा पुरूमित्र की कन्या शुन्ध्यु या कमद्यु के विमद् ऋषि से विवाह का उल्लेख है। सायणाचार्य ने ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के सूक्त प्रथम मंत्र का भाष्य करते हुए इस विवाह का वर्णन किया है। कमद्यु ने विमद को स्वयंवर सभा में पति चुना। जैसे ही विमद अपनी नयी पत्नी के साथ घर वापिस जा रहा था तब मार्ग में स्वयंवर में आये हुए अन्य राजाओं ने मिलकर उस पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में अश्विनीकुमार देवताओं ने विमद को सहायता दी तथा वधु को अपने रथ में बैठाकर उसे पति के घर पहुँचा दिया गया। घोषा जो कि राजकुमारी थी तथा ऋग्वेद के कितने ही मन्त्रों की दृष्टा थी, कुष्ठ रोग से पीड़ित थी। जिस कारण किसी ने उससे विवाह नहीं किया तथा वह प्रौढ़ावस्था की होने लगी। अश्विनी कुमार देवताओं की कृपा से उसका रोग दूर हो गया तथा उसने पुन: युवावस्था प्राप्त की। ऋषि के रूप मे उसकी कीर्ति पूरे भारतवर्ष में फैली तथा एक ऋषि के साथ ही उसका विवाह हुआ। घोषा ने अश्विनीकुमारों के उपकार के इस प्रकार शब्दों में दर्शाया है- "हे अश्विनी कुमारो मैं घोषा हर प्रकार से सौभग्यवती हो गई। मेरे विवाह के लिऐ वर भी प्राप्त हो गया। तुम्हारी दृष्टि से अनाज भी उत्पन्न हुआ है।" उसके पुत्र सुहस्त व भृगु भी ऋषिपद् को प्राप्त हुए। ऋग्वेद में उल्लेखित राजा ययाति का विवाह शुक्राचार्य की कन्या देवयानी से हुआ था।[8] अगिरस ऋषि की कन्या शश्वती ने असग राजा से विवाह किया। ऋग्वेद में वर्णित तथा उसके मंत्रों का द्रष्टा कक्षीवान् जो अशिज् नाम की दासी का पुत्र था, ने तृषया से विवाह किया था। इस प्रकार के उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में विभिन्न वर्णों का आपस में विवाह होता था। उच्च कुल की कन्या निम्न कुल के लड़के से भी विवाह कर सकता थी। बाद में ऐसे विवाहों को प्रतिलोम विवाह कहा जाने लगा तथा उनकी सन्तान चाण्डाल कहलाती थी।

वेदकालीन समाज मे एकपत्नी विवाह ही आदर्श माने जाते थे। ऋग्वेद में दम्पती शब्द का वर्णन मिलता है तथा कहीं-कहीं बहुपत्नी विवाह का भी उल्लेख किया गया है। तैतरीय संहिता, ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, उपनिषद् आदि में बहुपत्नी विवाह प्रथा का स्पष्ट उल्लेख मिलता है जिससे पता चलता है कि उस समय बहुपत्नी प्रथा भी प्रचलित थी। वैदिक युग में जिस प्रकार के युवा विवाह का वर्णन मिलता है उससे तत्कालीन समाज में विधवा-विवाह का प्रश्न इतना महत्वपूर्ण नहीं है।[9] फिर भी वैदिक-साहित्य में कई स्थानों पर इसका वर्णन मिलता है। ऋग्वेद- "हे नारी इस मृत पति को छोड़ कर इस जीवित संसार में जाओ तुमसे विवाहेच्छुक जो तुम्हारा दूसरा भावी पति है उसके पत्तीत्व को प्राप्त हो जाओ।" अथर्ववेद में भी एक स्थान पर विधवा विवाह का उल्लेख मिलता है- "जब स्त्री एक पति के पश्चात् दूसरे पति को प्राप्त होती है और वे दोनों पंचौदन अग्नि में डालते हैं तो उनका वियोग नहीं होता यदि दूसरा पति अग्नि में अज पंचौदन डालता है तो वह अपनी पुनर्विवाहित पत्नी के साथ समान लोक में रहता है।" यदि किसी स्त्री का पति मर जाता था और वह नि:सन्तान है तो उसे अधिकार था कि वह नियोग द्वारा सन्तान पैदा कर सके। नियोग द्वारा उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज पुत्र कहलाता था। कुछ विद्वानों का मत है कि वैदिक युग में बहुपति विवाह प्रथा भी प्रचलित थी। ऋग्वेद में एक स्थान पर वर्णन मिलता है कि एक पत्नी के कई पति भी होते थे। किंतु ब्राह्मण ग्रन्थों और संहिताओं ने प्राय: एक से अधिक पति की भर्त्सना की है तथा बहुपतित्व का विरोध किया है।[10]

मूल्यांकन- वैदिक युग में स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। जहां उनको सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त थे तो कही-कहीं यह भी पता चलता है कि उत्तर वैदिक युग में पुत्री के जन्म को ज्यादा अच्छा नहीं माना जाता था। नारी के सामाजिक स्तर के विषय में कुछ परस्पर विरोधी मत भी मिलते हैं। ऐतरेय और कौशितकी ब्राह्मणों में विदुषी स्त्रियों का उल्लेख है। ऋग्वैदिक काल में उल्लेख मिलता है कि अनेक शिक्षित स्त्रियों ने कवयित्रियों के रूप में समाज में प्रसिद्धि प्राप्त की थी। बाल विवाह का प्रचलन नहीं था। पुत्र के न होने पर पुत्रियाँ ही पुत्र के समान मानी जाती थी। बहुविवाह का प्रचलन होने से उनकी समाज में स्थिति का सम्मानजनक होने का पता चलता है। याज्ञवलय ऋषि की पत्नी ब्रह्म विद्या में रुचि रखती थी। उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति में कुछ परिवर्तन हुए। इस समय के कुछ ग्रंथों में स्त्रियों को जुए तथा शराब के समान दूषित, अनृत, निऋति बताया गया है। जो धार्मिक कार्य पहले स्त्रियों के बिना संभव नहीं थे अब पुरुषों द्वारा सम्पन्न किये जाने लगे। समाज में आध्यात्मिकता का एक नया रूप उभर कर आया। दर्शनशास्त्र के द्वारा धर्म की नई व्याख्या की गई। तप के द्वारा मोक्ष की प्राप्त के लिए महत्व दिया जाने लगा। तपस्या की प्रवृत्ति बढ़ गई। संसार त्याग एक आदर्श बनने लगा तो स्त्री जो इस त्याग में सबसे बड़ी बाधा थी उसको अनादर की दृष्टि से देखा जाने लगा। जबकि उस समय भी अनेक स्त्रियों द्वारा आजीवन ब्राह्मचारिणी रहने के प्रमाण मिलते हैं। जिन्होंने अपने ज्ञान व विद्या के द्वारा समाज में एक अमिट छाप छोड़ी। समाज को एक नया स्वरूप प्रदान किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. शर्मा, रीता, "प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास", शील सन्स, जवाहर नगर, जयपुर- 2004
2. जैन, कैलाश चन्द, "प्राचीन भारत का इतिहास", यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन दरियागंज नई दिल्ली- 2002
3. प्रसाद, ओमप्रकाश, प्रशान्त गौरव, "प्राचीन भारत का इतिहास एवं आर्थिक इतिहास", राजकमल प्रकाशन, प्रा०लि० पटना, 2006
4. ज्ञानी, शिवदत, "वेदकालीन समाजम चौखना", संस्कृति सीरीज ऑफिस, वारानसी- 1967
5. यादव, उषा, राजकिशोरसिंह, "प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति", विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा- 1983
6. मिश्र, जी० एस० पी०, "प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था", राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर- 1983
7. सिंह, राधेश्यामा, वैदिक भारत, "समाज संस्कृति एवं साहित्य", विश्वभारती पब्लिकेशन, नई दिल्ली- 2018
8. मिश्र, उर्मिला प्रकाश, "प्राचीन भारत में नारी", मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल- 1987
9. विद्यालंकार, सत्यकेतु, "प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग", श्री सरस्वती सदन, सफदरजंग इन्क्लेव, नई दिल्ली- 2019
10. मिश्र, जयशंकर, "प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास", हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना- 1986

उपेन्द्र दोषीक मनोज दासक कथा ओ कहिनीक विश्लेषण

भोगेन्द्र प्रसाद सिंह

शोधार्थी, यू०जी०सी०नेट/जे०आर०एफ०, विश्वविद्यालय मैथिली विभाग, ल०ना०मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

मैथिली साहित्यक जगतमे राष्ट्रवादी प्रतिष्ठित साहित्यकार 'उपेन्द्र दोषी' कथा आ काव्यक क्षेत्रमे सुप्रसिद्ध एवं यशस्वी कथाकारक रूपमे परिचित तऽ छलैथे, आब एहि मनोज दासक कथा ओ कहिनी (अनुवादक) संग एकटा विशिष्ट, हस्ताक्षर कविक रूपमे हमरा सभक बीच उपस्थित छथि।

हिनक ई मनोज दासक कथा ओ कहिनी (अनुवाद) पहिल संस्करण 1999 ई०मे साहित्य अकादेमी नई दिल्लीसँ प्रकाशित भेल अछि, एहि 261 पृष्ठक पोथीमे 42 गोट कथा संगृहीत अछि, जे थिक- अपहृत टोपीक रहस्य, चिड़ै, घरमुहाँ, चोर! चोर!! लजबिज्जीक गाछ, बिलाड़ि, अन्दरक दानव, जौंआँ, सितार आ हमर बेटी, इनार, बिहाड़ि छुटलापर, उत्थान, सात प्रवीण बन्धु, राति आ परात, तरूणगिरीक तपस्वी आ प्रवीण बन्धु, निपत्ता ओ साँझ, राय सिंहक डायरी, जग्गू मिसर आ उपग्रह, भुतहीकोठी मे एक राति, विषकन्याक कथा, घुन्ना शैतान, तेसर जीव, मनुख आ बानर, बाबुलपुरक साँढ़, अनेक फूल, अनेक, सीताक वर, लभुर्भा पर्वतपर मध्याह्न, शेष जगत, शशक-मनोविज्ञान, बाध, समुद्रक क्षुधा आविष्कार, कन्या, दुपहरि राति, मोमबत्ती, गुदगुदिया दाई, दुखान्तक शल्यक्रिया, तीन गोट महग भोट, रविवासरीय संगीत, एकटा दुखांतक दुखांत, वन- भ्रमण, सहानुभूति।

हमरा मिथिलामे खिस्सा-पेहानी काव्यक प्रमुख विधा थिक। मिथिलामे खिस्सा-पेहानी कहब आ सुनब बहुत पहिनहिसँ आबि रहल अछि। बुढ़-पुरान सभ बेदराकेँ खिस्सा-पेहानी सुनबैत आ सुनैत अछि, आ ओहिसँ मनोरंजन सेहो भेटैत अछि।

एखनो जे किछु बुढ़-पुरान सभ बँचल अछि, ओना तँ पहिलुक बुढ़-पुरान सभ मड़ि गेल, एखनो जे एक-आध बँचल अछि ओ ओहिना नमहर खिस्सा-पेहानी कहि कऽ मनोरंजन करैत अछि। ओएह खिस्सा सभ कथाक रूपमे विकसित भऽ गेल अछि। अन्तर एतबे अछि कथाक स्रष्टा केओ दोसर वक्ता केओ आन रहैत छलाह। कथा सुनौनिहार लोकनिकेँ पोथी पतरा उनिटएबाक कोनो जरूरी नहि किन्तु कथाकार सभ कथाक रचना कऽ लिपिबद्ध कऽ दैत छथि। आ पाठक वर्ग कथा पढ़ि अह्लादित होइत छथि। पूर्वमे सभटा राजा-महराजा, दैत्य, देवता, पशु, पक्षी, चिड़ै चटक कथा सभ रहैत छल। किन्तु आई-काल्हिक कथा साहित्यक अंग बनि गेल थिक जे सभकेँ रूचिकर आ दिशा निर्देशक बुझना जाइत अछि।

सर्व प्रथम हम एहि मनोज दासक कथा ओ कहिनीक चर्चा करए जा रहल छी। मनोज दासक कथा ओ कहिनी कथा संग्रह इंगित करैत कहैत छथि जे एहिमे संगृहीत कथा सभमे मनोज दासक कथा ओ कहिनीक कथा-वस्तु विद्यमान रहत। वस्तुतः कुल ब्यालिसोटा कथा-संग्रहकेँ हम पढ़ि गेलहुँ आ प्रायः सभ कथामे रोचकता अछिए। तेँ पूर्णतः सार्थक एकर नाम मनोज दासक कथा ओ कहिनी कथा अछि। एहिमे पहिल कथा संगृहीत अछि जकर पौराणिक आधार अछि मनोज दासक कथा ओ कहिनी शीर्षकहिमे लागल अछि।

कथाकार दोषी जीक पौराणिक व्यवहारक आधार पर समाजमे सिद्ध करबाक प्रयास कएलनि अछि- "अपहृत टोपीक रहस्य' शीर्षक कथामे कहल गेल अछि जे महाराणाक प्रसिद्धि एक निष्ठावान आ उदार व्यक्ति रूपमे छल। आतिथ्यमे हुनक बराबरी केओ नहि कय सकैत छल। हुनकर दूटा पोखरि नीक-नीक माछसँ भरल रहैत छलनि। बहुत रास गाय सेहो पोसने रहथि। साँचे महाराणा बाबू सभ तरहेँ सम्पन्न छलाह।"[1]

मनोज दासक कथा ओ कहिनीक मैथिलीक रूपान्तरक अनुबंध साहित्य अकादेमीसँ जखन हुनका भेटलनि तखन ओ आश्चर्यचकित रहि गेलनि। आ प्रशन्नतो भेलनि। हुनक साहित्य-लेखन मैथिली आ हिन्दी धरि सीमित अछि। आन भाषाक ज्ञान भले हो, मुदा ओहिमे साहित्य-रचनाक प्रवृत्ति नहि अछि। तेँ एहि अनुवाद-कार्यकेँ पाबि चकति भेलनि, आ संगहि खुशी सेहो भेलनि जे साहित्यक कार्यक क्षेत्रमे अनायासे बृद्धि भऽ गेलनि।

कथाकार दोषी जीक समाजमे पौराणिक व्यवहारक आधार पर सिद्ध करबाक प्रयास कयलनि अछि "चिड़ै शीर्षक कथामे कहल गेल अछि जे शिकारमे एकरहि कहै छै स्वर्णावसर। जँ कनेक धैर्य आ सावधानीसँ गोली लगाओल जाए तँ तीनू चिड़ै एकहि बेर खसि पड़त। ओहूना गोधूली बेलाक एहि सुन्दर समयमे जल्दी करबाक जरूरते की? राय साहेब कोनो ससरऽवला कीड़ा जकाँ नहुएँ-नहुएँ अपन स्थिति बदललनि आ निशान साधलनि।"[2]

मनोज दासक जन्म (1934) ई०मे भेल रहनि ताहि विशिष्ट कथा शिल्पीमे सँ छथि जिनका देश-विदेशमे बेस ख्याति भेटल छनि। ओड़िया आ अँगरेजीमे समान रूपेँ लिखनिहार मनोज दासक पहिल कृति चौदहे वर्षक वयसमे प्रकाशित भेल छल। पन्द्रह वर्षक वयसमे 'दिगंत' नामक पत्रिकाक आरम्भ कयलनि जे बादमे ओड़ियाक एकटा प्रमुख विचार-प्रधान सांस्कृतिक पत्रिकाक रूपमे स्थापित भऽ गेल।

कवि दोषी जीक व्यवहारक आधार पर समाजमे सिद्ध करबाक प्रयास कएलनि अछि। "घरमुहाँ शीर्षक कथामे कहल गेल छै जे डाक्टर साहाक वयस आब एकासी वर्षक भेलनि। एक दिन साँझ कऽ ओ अपन मुख्य सहायक डॉ. जयसूर्य आ किछु अन्य सहायक लोकनिकेँ अपन चेम्बरमे बजौलनि आ घोषणा कयलनि।"[3]

युवावस्थामे ई राजनीतिमे सेहो सक्रिय रहलाह आ एहि क्रममे हुनका जेहल सेहो जाय पड़लनि। बांगडुंगमे आयोजित एफ्रो-एशियाई छात्र परिषदमे सेहो 1956 ई० मे शामिल भेलाह।

कटकक एकटा महाविद्यालयमे चारि वर्ष धरि अध्यापन कयलाक बाद, 1963 ई०मे ई श्री अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी चल गेलाह आ' सम्प्रति ओतहि 'श्री अरविन्द अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र' मे अँगरेजी साहित्य प्राध्यापक छलैथ।

कवि दोषी जी समाजमे सिद्ध करबाक प्रयास कयलनि अछि- "चोर! चोर!! शीर्षक कथामे कहल गेल छै जे वृन्दावन दू दिनसँ किछु नहि खयने रहय। कारण भूखसँ व्याकुल ओकर बेटी अनु आ ओकर एक नान्हिटा बेटा अकस्मात् दू कोस दूरसँ ओकरा ओतय आबि गेलि रहैक। वृन्दावनकेँ प्रशन्नता छलैक आ अपनापर गर्व सेहो जे-जे ओ ओकरा घुरबासँ पहिने एक थारी भात खोआ सकत आ ओकर निवेदन सेहो स्वीकार कऽ सकत।"[4]

हिनक करीब सात गोट कथा-संग्रह अंग्रेजीमे आ' ओतबेक ओड़िया भाषामे प्रकाशित भऽ चुकल अछि। अपन कथा-संग्रह 'मनोज दासक कथा ओ कहिनी' पर वर्ष 1972 ई०क साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्राप्त कयलनि। एकर अतिरिक्त आनो-आन पुरस्कारसँ सम्मानित भऽ चुकल छथि।

कवि दोषी जी सिद्ध करबाक प्रयास कयलनि अछि- "लजबिज्जीक गाछ शीर्षक कथामे कहल गेल छै जे पूसक रातिक भोरक समय छल। इंस्पेक्टर राव एहि पहरमे कंबलक पूरा गर्मी लेमय चाहैत छलाह। तखनहि टेलिफोनक घंटी बाजल आ बजैत रहल। राव चाहलनि जे घंटी कोनहुना बंद भऽ जाय। ओ फूकि-फूकि कऽ ओकरा बंद कय देबय चाहैत छलाह। मने ओ टेलिफोनक घंटी नहि मोमबत्ती हो।"[5]

एहि पुरस्कृत कथा सभक रूपान्तरकार थिकाह मैथिली साहित्यक सुपरिचित कवि कथाकार श्री उपेन्द्र दोषी जनिक कतोको मैथिलीक कथा प्रकाशित अछि आ आन भाषा सभमे अनुदित सेहो। श्री दोषी लगभग बीस वर्षसँ ओड़िया भाषा-साहित्य, समाज आ' सभ्यता-संस्कृतिक निकट सम्पर्कमे रहि रहल छथि।

कवि दोषी जीक समाजमे पौराणिक व्यवहारक आधारपर सिद्ध करबाक चेष्टा कयलनि अछि- "बिलाड़ि शीर्षक कथामे कहल गेल अछि जे साँझक समय रहैक। घरमे कने-मने अन्हार रहैक। पहिल-पहिल नियुक्ति पत्र भेटल रहनि। हुनका गुणपुर जिलाक डिप्टी कलक्टरक पदपर ज्वाइन करबाक रहनि। माता जीक संगे लऽ जयबाक रहनि। माता जी भानस कयने रहथि नाना प्रकारक पूरी-पकवान, तीमन-तरकारी आ माछ-भातक सचार लगौने रहथि। ओहि असर पर विलाड़ि पहुँचकए अगिला पंजासँ नहुए-नहुए माछक एकटा कुटिया घीचय चाहलक।"[6]

साहित्य अकादेमीसँ प्रकाशित प्रस्तुत कथा-संग्रह मनोज दासक कथा कल्पनाशीलताक उत्कृष्ट उदाहरण थिक। मुदा ई कल्पना मात्र नहि थिक। ई नव अर्थवत्ता आ ठोस आधार लेने रहैत अछि। जेना-जेना कथा आगू बढ़ैत अछि, अर्थवत्ता आर गहींर होइत जाइत अछि आ' लगैत अछि जे मनोज दासमे अर्थवत्ता गस्सल अछि। विभिन्न स्थिति ओ परिदृश्य पर हुनक पकड़ मजगूत छनि। ओ कखनो कथामे व्यंग्य पुट दैत छथि तऽ कखनो करूणाक। संगहि ओ मानवीयताक कतेको पक्षकेँ सेहो उद्घाटित करैत छथि।

कवि दोषी जीक पौराणिक व्यवहारक आधारपर समाजमे सिद्ध करबाक प्रयास कएलनि अछि- "अन्दरक दानव शीर्षक कथामे कहल गेल छै जे चारि-पाँच वर्षक हमर दुलारू बेटी नीन पड़ि गेल रहय। हम ओकरा वचन देने रहिऐक जे जल्दीसँ-जल्दी एकटा असली बानर आनि देबौक। ओ अपन जीवनमे पहिल खेप एक सप्ताहक लेल अपन मायसँ फराक भऽ रहलि छलि। हमरा मोन छल जे हमर बंगलाक चौकीदार एकटा बानर पोसने रहय।"[7]

इएह कारण थिक जे हुनक 'आदमी आ बानर', 'अपन-अपन विवेक', 'कुबरा चोर', 'चुम्बन', 'बाबुलपुरक साँढ़', 'तेसर जीव', 'घुन्ना शैतान', 'हीरा', 'दोसराइत', 'नव खोज', 'मोमबत्ती', 'कुतूरीदाइ', 'लापता', 'हेरायल टोपीक रहस्य', 'चोर! चोर!!' आदि कथा अमिट प्रभाव छोड़ैत अछि आ' ई अनुभव करबैत अछि। जे लेखक साधारण होइतहुँ असाधारण छथि तथा सृजनशीलताक आयामकेँ विस्तार दैत छथि। इएह कारण थिक जे ई कथा सभ भाषिक सीमा टपि कऽ सार्वभौम भऽ गेल अछि।

कवि उपेन्द्र दोषी अपन विचार व्यक्त करैत कहलनि अछि एवं सिद्ध करबाक प्रयास कयलनि अछि- "जौआँ शीर्षक कथामे कहलनि अछि जे बड़ पुरान गप्प थिक। ई शताब्दी शुरूओ ने भेल छल। युवक ऋषिकेश चौधरी अपन गाम घुरल छलाह। गत तीन माससँ ओ कलकत्तामे छलाह। वसन्तक भोर रहैक। चारूकात हरियरी पसरल। कोइली सभ गाछक डारिपर बैसि कोनो राग अलापैत रहय। गामक बाध एखनहु जेना हरियरीक कोरमे ओंघाइत रहय।"[8]

कथाकार लोकनि कथामे स्त्रीक हास्य-व्यंग्य चित्रण कएने छथि। एहि छोट-छिन आलेखमे एक-एक कथापर संक्षिप्तो चर्चा करब सम्भव नहि भए सकल किन्तु हम त' इएह कहब जे संग्रहक सभ कथामे मनोज दासक कथा ओ कहिनीक परिचर्चा भेल अछि, रोचकता अछि। कोनो कथा पढ़य लागब तँ बीचमे छोड़बाक मोन नहि होएत। ओकर परिणाम धरि पहुँचव उताहुलता रहत। कथाक सभसँ पैघ गुण होइत अछि उपदेश।

कथाकारक ई पहिल कथा संग्रह थिक कथा सभमे पूर्ण परिपक्वता अछि। कथा सभ गुणसँ समन्वित अछि। हिनक कथा सभमे यथार्थता अछि जे कल्पनाक संयोगसँ चमत्कारक बनल अछि। अधिकांश कथा बुझि पड़ैत अछि लेखकक देखल पड़ेखल अछि। वस्तुतः कथामे सभ किछु सत्ये बुझना जाइत अछि मात्र नाम तारिख आ स्थान बदलल रहैत अछि। कथाकार उपेन्द्र दोषी रोचक कथा आ कविताक माध्यमसँ ग्रामीण समाजकेँ प्रेरित करैत छथि आ मैथिली साहित्यकेँ आगाँ बढ़बैत सुरभित करैत छथि।

सन्दर्भः

1. दोषी, उपेन्द्र, मनोज दासक कथा ओ कहिनी, प्रका० वर्ष 1999 ई०, पहिल संस्करण, प्रकाशित साहित्य अकादेमी नई दिल्ली पृ.- 09
2. ओएह, पृ.- 18
3. ओएह, पृ.- 25
4. ओएह, पृ.- 34
5. ओएह, पृ.- 38
6. ओएह, पृ.- 46, 47
7. ओएह, पृ.- 51
8. ओएह, पृ.- 54

दलित आत्मकथा और ओमप्रकाश वाल्मीकि

डॉ० रामाशंकर कुशवाहा

सहायक प्राध्यापक, दयाल सिंह कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय)

जब भी दलित आत्मकथाओं पर बात की जाती है तो हमारे सामने एक प्रश्न आता है कि जब साहित्य में आत्मकथा लेखन की परम्परा पहले से विद्यमान है। उसके मूल्यांकन की प्रक्रिया विद्यमान है। तो दलित आत्मकथाओं के मूल्यांनकन के लिए अलग से सौन्दर्यशास्त्र की जरूरत क्यों पड़ी? कहने के लिए तो हमारा हिंदी साहित्य ओजपूर्ण और समृद्ध है। अपनी पूर्णता में वह बहुत सिमटा हुआ है। हमारे इतिहासकार छंदशास्त्र और काव्य-कला के नाम से साहित्य का मूल्यांकन करते रहे और साजिशन हीरा डोम, भिखारी ठाकुर को अपने पैमाने से बाहर कर दिया। अब आप शात्रीय मूल्यांकन के उस तरीके के बारे में सोचिए जहां कल्पना में सौंदर्य है और यथार्थ के नाम पर कूड़ा है। आज जब हम उसे पढ़ते हैं तो हमारी गलत फहमी दूर हो जाती है। प्रथम दृष्टया ही समझ आ जाता है कि यह मूल्यांकन पद्धति एक वर्ग विशेष के लिए है। उनके विरेचन का का आस्वाद लेकर बहुजन भी विद्वान उछल रहे हैं। एक सत्य पूरे बहुजन समाज को स्वीकार करना होगा कि इस जजमानी व्यवस्था में अपने लिए कुछ नहीं है। यथार्थ लिखने वालों से डरे-सहमें पंडितजनों ने बहुजन लेखन को साजिश के साथ बाहर कर दिया। एक वर्ग को साहित्य और समाज, दोनों में कहीं भी स्थान नहीं दिया गया। दलित लेखक, चिंतक ओमप्रकाश वाल्मीकि जब यह कहते हैं कि 'हिंदी साहित्य में ढूंढने पर भी हमें अपना चेहरा दिखाई नहीं देता'[1] तो निश्चित तौर पर उनका यह सवाल स्थापित साहित्य और समाज को कटघरे में खड़ा करता है और इस तरफ इशारा करता है कि आप अपना इतिहास लिखने का बीड़ा उठाइए।

स्थापित साहित्य में अब तक जो हुआ है, उसको लेकर कुछ सवाल उठते हैं। मसलन आज तक साहित्य का आलोचक दलित विमर्श के बुनियादी सरोकारों और उद्देश्यों को समझने में विफल क्यों रहा? दलित साहित्यकार को अलग से सौंदर्यशास्त्र निर्मित क्यों करना पड़ा? क्या पहले के साहित्यिक मानदंड किसी वर्ग विशेष के लिए बनाए गए थे? क्या यह साहित्यिक भेदभाव इतिहास में जानबूझकर पैदा किया गया था? इन सब प्रश्नों का जवाब मांगते हुए ही दलित आत्मकथा साहित्य का जन्म हुआ और इनके मूल्यांकन के लिए अलग सौंदर्यशास्त्र की जरूरत पड़ी। ये आत्मकथाएँ व्यक्तिगत अनुभव नहीं बल्कि समाज में हो रहे जातिगत भेदभाव का जीवंत दस्तावेज हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि को अपनी योग्यता के अनुसार पोस्ट नहीं मिली तो आप उस अधिकारी की मानसिकता को समझ सकते हैं जिसके लिए एक इंजीनियर के ज्ञान से अधिक जाति महत्वपूर्ण थी।[2] एक इंजीनियर को स्टोर कीपर के पद पर रखा गया। इससे उनको मानसिक प्रताड़ना तो मिली ही, साथ ही देश एक प्रतिभावान व्यक्ति के योगदान से वंचित रह गया। दलित रचनाकारों द्वारा लिखा हुआ साहित्य इस देश में दबाए, सताए गए उन लोगों का प्रतिनिधित्व करता है, जो वर्षों से जानवर से भी बदतर जिन्दगी जीने को अभिशप्त हैं।

साहित्य में दलित विमर्श की पृष्ठभूमि एक लम्बे इतिहास की देन है जो अलग-अलग कालखंडों में अलग-अलग रूपों में दिखाई पड़ती है। आधुनिक काल में आकर यह महात्मा फूले, डॉ. आंबेडकर के विचार-चिंतन से होते हुए महाराष्ट्र के दलित पैंथर आन्दोलन से भी जुड़ी हुई है। 'दलित पैंथर, ने अपने घोषणा पत्र में 'दलित' को परिभाषित करते हुए कहा है कि दलित का अर्थ है 'अनुसूचित जाति, बौद्ध, कामगार, भूमिहीन, मजदूर, गरीब, किसान, खानाबदोश जातियाँ, आदिवासी और नारी समाज।'[3] आज हम देखते हैं कि जिस व्यापकता के साथ यह 'दलित' शब्द प्रचलन में आया था, उसी रूप में वह आज नहीं है। उसका दायरा बढ़ा है। आज इसका लक्ष्य ईश्वर के अस्तित्व को नकारकर तथा वर्ण व्यवस्था को खत्म करके मानव मात्र की समानता को स्थापित करना है। यह आंदोलन मानवतावाद में विश्वास करता है।

दलित साहित्य के प्रेरणा स्रोत डॉ. आंबेडकर ने अपनी आत्मकथा 'अमी करना झालो' लिखकर दलित लेखकों को आत्मकथाएँ लिखने के लिए प्रेरित किया। दलित लेखकों ने आत्मकथाओं के माध्यम से समाज में एक नई सोच और बदलाव लाने का प्रयास किया है। इस संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं- 'दलित चेतना का सीधा सरोकार 'मैं कौन हूँ' से बहुत गहरे तक जुड़ा हुआ है।.....यही चेतना साहित्य की प्रेरणा बनकर दलित साहित्य के रूप में दिखाई देती है, जिसमें मुक्ति, स्वतंत्राता के गंभीर सरोकार विद्यमान हैं। अनीश्वरवाद, अनात्मवाद, वैज्ञानिक दृष्टिबोध, पाखंड-कर्मकांड का विरोध, सामाजिक न्याय की पक्षधरता, वर्ण-व्यवस्था का विरोध, सामंतवाद का विरोध, पूंजीवाद, बाजारवाद का विरोध, साम्प्रदायिकता का विरोध, अधिनायकवाद का विरोध जैसे सवाल दलित साहित्य के सरोकारों में शामिल हैं।'[4]

आज दलित विमर्श का दायरा काफी बढ़ गया है। दलित रचनाकार लगभग सभी विधाओं में साहित्य लिख रहे हैं। धीरे-धीरे यह मुख्यधारा के साहित्य का अभिन्न अंग बन गया है, शूद्र, चांडाल, अवर्ण, अस्पृश्य, हरिजन आदि विशेषणों/उपनामों की दुखद ऐतिहासिक यात्रा के बाद 'दलित' शब्द वैचारिक आधार पर अपनी उपस्थिति का बोध कराने में सफल हुआ। इसमें शिक्षा का बहुत बड़ा योगदान रहा है। जिस समाज में उनको शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार तक नहीं था, उसी समाज में आज वे आवाज उठाने लगे हैं, विद्रोह करने लगे हैं, समानता, स्वतंत्रता की बात कर रहे हैं। दलित आत्मकथाओं में समाज में हो रहे जाति, लिंग, वर्ग के भेदभाव को जिस रूप में चित्रित किया गया है, उससे हमारे समाज का परिदृश और भी स्पष्ट हुआ है। समाज में जैसे-जैसे सामाजिक विषमता का "एहसास होता जाएगा, वैसे-वैसे दलित साहित्य की प्रासंगिकता और भी बढ़ती जाएगी। इस रूप में हम दलित आत्मकथाओं को चेतना जागरण करने का साहित्य भी कह सकते हैं। इसने अपने समकालीन समाज को मानवीय, मूल्यों की कसौटी पर परखा है।

'मेरे और तुम्हारे बीच/एक लंबा फासला है/जिसे लंबाई में नहीं/समय से नापा जाएगा।'[5] ओमप्रकाश वाल्मीकि जब 'जाति का दंश' लिख रहे होंगे तब उनके मन में शोषण की वेदनाएं उमड़ कर छलक रही होंगी। यह एक ऐसी व्यवस्था के खिलाफ आवाज है जो श्रम की एवज में शोषण देती है। पूरवा के किनारे बस्ती बसाने से लेकर जीने-खाने तक में उसे यह महसूस करवाया जाता रहा है कि तुम दोयम दर्जे के नागरिक हो। नारे में जो हिंदू हैं वह मंदिर में नहीं जा सकते। मंदिर की दहलीज पर उन्हें इंसानी हैसियत भी नहीं दी जाती थी। इसी सामाजिक सोच के बरक्स यह साहित्य निर्मित हुआ है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ख्वाबों में खोए नीरस विद्वान नहीं बल्कि खुशमिजाज और पुरलुत्फ आदमी थे।[6] वह समय और समाज को बहुत बारीकी से समझ रहे थे। उन्होंने 'जूठन' आत्मकथा लिखकर हिंदी दलित साहित्य में एक मील का पत्थर लगा दिया। आत्मकथा साहित्य में उन्होंने एक आधारशिला रख दी है। उसपर 'मुर्दहिया' जैसी रचनाएं मीनार बनाने का काम कर रही हैं। ऐसी रचनाओं के प्रभाव से साहित्य में फरेबी नजरें चुधियाने लगी हैं। उनकी इस रचना से वर्णाश्रमी साहित्य फीका लगता है। 'जूठन' पढ़ने के बाद तो लगा कि वर्णवादी चरित्र और चाल के सभी दांव-पेंचों को विश्लेषित करने को यह कृति काफी है। इस कृति ने हिंदी साहित्य के सवर्णवादी चरित्र को इतना भयभीत किया था कि कुछ आलोचकों ने इसे साहित्य की परिधि से बाहर करने के कई तर्क गढ़े। कई तीर चलाए पर 'जूठन' की रचनात्मक ताकत से कहीं ज्यादा उसके भोगे हुए यथार्थ ने पाठकों के बीच मजबूत स्थान बना लिया था।[17] एक बड़े वर्ग को उसके जीवन की तरह की कृति हाथ लग गई थी। लोगों ने उसे हाथों-हाथ लिया। उसे किसी षडयंत्र से नहीं रोका जा सका।

साहित्यिक समाज के बारे में अपना अनुभव बयां करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि ने लिखा है, 'साहित्य के भीतर एक सत्ता है जो अंकुरित पौधों को कुचल देती है।'[8] इसी कड़ी में उन्होंने राजेन्द्र यादव की तारीफ करते हुए लिखा है, 'राजेन्द्र यादव ने जिस स्नेह और प्यार के साथ मुझे छापा, मेरे लिए एक नया जन्म था, वरना मारने वालों ने कमी नहीं की थी।'[9] व्यवस्था में पकड़ और संसाधनों पर कब्जेदारी के कारण ऐसी कई प्रतिभाएं दबा दी गईं। लेखन के बाल्यकाल में ही कुचल दी गईं। जो स्कूल में पढ़ने नहीं दे रहे थे, वह लिखना कैसे सहन कर पाते। वहां जाति बड़ी चीज थी और आज भी है। ओमप्रकाश वाल्मीकि कई बार इसका दंश झेले थे। युवावस्था में उन्हें सवर्ण युवती से प्रेम हो गया था। उसे जब उनकी जाति पता चली तो 'वह रोने लगी।' वहां वाल्मीकि को लगा कि 'मेरा एस.सी. होना जैसे पाप था...हजारों साल की नफरत हमारे दिलों में भर गई।'[10] काम करने की जगह पर घर नहीं मिलता था। इसी प्रकार की यातनाओं ने उन्हें 'अतीत के गौरव गान के बजाय जन-सामान्य के दुख-दर्द' को लिखने की प्रेरणा दी। उन्होंने सहनशील होकर जो कुछ सहा था, देखा था, उसे लेखनी के माध्यम से उतार दिया। उनको इस बात का भान था कि 'बदलाव पलायन से नहीं संघर्ष और संवाद से आएगा।'[11] वह बदलाव के नायक बने। उनके पिता ने उनसे यही कहा था कि पढ़कर समाज को बदलना है। ओमप्रकाश वाल्मीकि उस बात को साबित कर दिए। इस बदलाव की समाज को जरूरत थी। वह उनकी पहल से, लेखन और चिंतन से आया।

'जूठन' का सामाजिक विश्लेषण बहुजन समाज के बड़े तबके की सच्चाई है। वाल्मीकि जी ने बड़ी जाति के छोटे बच्चों द्वारा बहुजनों के बड़े-बूढ़ों का नाम लेकर बुलाने का जो जिक्र किया है, वह तो अभी भी जारी है। प्रतिक्रिया में हमारे समाज के बढ़े-बूढ़े तक उनको नाम लेकर नहीं बल्कि बाबू और अन्य सम्मान जनक संबोधनों से बुलाते हैं। धर्म के नाम पर मूढ़ लोगों का पांव पूजने की बात का तो खैर क्या ही कहा जाय। वाल्मीकि जी ने एक जिक्र और किया है। स्कूलों में पढ़ाने वाले मास्टरों द्वारा बच्चों के लिए जाति सूचक संबोधनों का। मेरा अपना अनुभव भी यही है। मेरे स्कूल के किसी सवर्ण शिक्षक ने कभी भी मुझे नाम से नहीं बुलाया। मैं उनके लिए 'कोईरी' था। वह 'हरे कोइरिया' कहकर ही संबोधित करते थे। सामाजिक संरचना की जो बजबजाहट है, उसका बहुत ही सात्विक वर्णन 'जूठन' में मिलता है। शिक्षा के मंदिर में कोई 'चूहड़ा होके पढ़ने' नहीं जा सकता। क्योंकि किसी 'चूहड़े' के पढ़ने से स्कूल के मास्टर को दुख होता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपने मास्टर कालीचरण त्यागी[12] का बहुत सुंदर बिंब खींचा है। वह लिखते हैं- 'लेकिन कालीचरण मास्टर को देखते ही मेरी रूह कांप जाती थी। जैसे सामने से मास्टर नहीं कोई जंगली सूअर थूथनी उठाये चिंचियाता चला आ रहा हो।' उस गुरु की 'अपरंपार महिमा' और 'लोचन अनत उघाड़िया' के बारे में सोचिए। धन्य है भारत देश। यहां हमारे लेखक का दुख और उसकी कला, दोनों चरम पर हैं।

मास्टर जब किसी बच्चे को जातिगत संबोधन से बुलाते थे तो उनकी नकल कक्षा के सहपाठी भी उतारते थे। बरला इंटर कॉलेज में सूरजभान जगा (त्यागी) का बेटा ओमप्रकाश वाल्मीकि से जलता था। उसने बदला लेने के लिए जाति को आधर बनाया। वाल्मीकि जी को बुलाने के लिए 'चूहड़ा' शब्द का ही इस्तेमाल करता था। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि सूरजभान जगा के बेटे का व्यवहार मास्टरों के द्वारा वाल्मीकि जी के साथ किए गए व्यवहार का ही प्रतिफल था। उसका मन बढ़ा हुआ था। वह जानता था कि इस कार्य में मास्टर उसका साथ देंगे। यही कारण था कि वह भी शिक्षकों की तरह दावा करने लगा था- 'कितना भी पढ़ लियो, रहेगा तो चूहड़ा ही।' दुनिया में तमाम तरह की समस्याएं हैं। लेकिन यह समस्या भूख और गरीबी से भी अधिक क्रूर और भयावह है, जिसमें शिक्षक बुराई को संरक्षण देता है। निरपराध सुरजन सिंह पर मास्टर लात-घूसे की बरसात करने लगते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आवेगमयी टिप्पणी -'कभी-कभी लगता है जैसे क्रूर आदिम समाज में सांस लेकर पले-बढ़े हैं'- आइने का काम करती है।

'जूठन' शीर्षक प्रतीकात्मक है। यह एक ऐसी अमानवीय व्यवस्था का बोध कराता है जिसमें पेट भरने के लिए बचा-खुचा खाना पड़ता है। कई बार जो कूड़े के ढेर पर फेंक दिया जाता है, उसमें से चुनकर खाना पड़ता है। इस चुनने में भी गालियां और लात-घूसे मिलते हैं। फेंका हुआ उठाकर खाने के लिए समय निर्धारित होता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने बहुत कातर होकर लिखा है- 'आज जब मैं इन बातों के बारे में सोचता हूं तो मन के भीतर कांटे उगने लगते हैं, कैसा था जीवन।'[13] इस व्यवस्था की परतें उधेड़ने के साथ दलित समाज की उन समस्याओं का भी जिक्र किया है जिनके कारण समाज 'जूठन' खाने को बाध्य है।

एक बात और है। कार्य करने के साथ सावधानी भी जरूरी है। उदार सवर्णवाद और उनके द्वारा संचालित मार्क्सवाद शोषण के लिए माफी मांगने वाला तंत्र नहीं बल्कि वर्णवादी व्यवस्था का सुरक्षा कवच है। वह दलित साहित्य का लेखन अपनी दुकान चमकाने के लिए कर रहे हैं। यह कुछ उसी तरह की 'शिफ्टिंग है, जैसे कि दल-बदल में होती है। उनकी मानसिक बुनावट में कोई परिवर्तन नहीं। जहां मौका मिलता है, उनको लगता है कि यहां भेद-भाव करना चाहिए, वहां वह करते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि सावधान थे। प्रो. अजय तिवारी ने एक संगोष्ठी में वक्तव्य देते समय दलित साहित्य को 'पीड़ा का विज्ञापन'[14] कहा था। सौभाग्य से वहां ओमप्रकाश वाल्मीकि मौजूद थे। उन्होंने जवाब देते हुए अपने वक्तव्य में कहा था- 'अजय तिवारी का 'केश वामपंथी' है लेकिन

उनकी आंखों पर ब्राह्मणवाद का चश्मा चढ़ा है। दलित साहित्य और दलित आंदोलन साथ-साथ चल रहे हैं। सारी गड़बड़ इसलिए हो रही है कि इसमें जातिवाद और मार्क्सवाद घुसेड़ा जा रहा है।'[15] ओमप्रकाश वाल्मीकि इस साजिश को समझ रहे थे। इसलिए वह कहते थे कि 'फासलों को लंबाई में नहीं, समय में' नापा जाना चाहिए। 'समय' अभी भी 'फासले मिटा नहीं पाया' है। बदलाव दिखावटी है। तभी तो साहित्यिक समाज से उनको पूछना पड़ा कि 'जाति ही मेरी पहचान क्यों? कई मित्र मेरी रचनाओं में मेरे लाउडनेस, एरोगैंट हो जाने की ओर इशारा करते हैं। उनका इशारा होता है कि मैं संकीर्ण दायरे में कैद हूं। साहित्यिक अभिव्यक्ति को व्यापक अर्थों में ग्रहण करना चाहिए। संकीर्णता से बाहर आना चाहिए। यानी मेरा दलित होना और किसी भी विषय पर अपने परिवेश, अपनी सामाजिक-आर्थिक स्थिति के अनुसार दृष्टिकोण बनाना ऐरोगैंट हो जाना है, क्योंकि मैं उनकी नजर में सिर्फ एस.सी. हूं, दरवाजे के बाहर खड़ा रहने वाला।'[16] हमारी जिम्मेदारी है कि किसी बहकावे में न आते हुए बाजार के नियमों पर चलें।

संदर्भ

1. रामचंद्र- दलित साहित्य की वैचारिकी 'लेख', साहित्य का नया सौंदर्यशास्त्र, सं. देवेन्द्र चौबे, कितबाघर प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 174।
2. 'भारतीय समाज की क्रूर व्यवस्था व्यक्ति की योग्यता को नकार रही थी...भले ही उसकी विद्वाता आकाश जितनी ऊंचाई पा जाए।' ओमप्रकाश वाल्मीकि- जूठन, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, पृ. 80।
3. चंद्रकुमार वरठे- दलित साहित्य आंदोलन, रचना प्रकाशन, जयपुर, पृ. 108।
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि- दलित चेतना और हिंदी कथा साहित्य -लेख-, समकालीन जनमत, अक्टूबर-दिसंबर 2002, पृ. 52-53।
5. ओमप्रकाश वाल्मीकि- जाति का दंश, पृ. 23।
6. ओमप्रकाश वाल्मीकि: व्यक्तित्व, विचार और सृजक, पृ. 30।
7. वही. पृ. 43-44।
8. वही. पृ. 258
9. वही. पृ. 267।
10. वही. पृ. 177।
11. राजकिशोर-सं- आज के प्रश्न-6, हरिजन से दलित, वाणी प्रकाशन, संस्करण, 2008,- पृ. 85।
12. पश्चिमी उत्तरप्रदेश में भूमिहार लोग 'त्यागी' लिखते हैं।
13. ओमप्रकाश वाल्मीकि- जूठन, पृ. 51।
14. दलित साहित्य एवं संस्कृत अकादमी, देहरादून, 10 जून 2006।
15. वही.।
16. राजकिशोर-सं- आज के प्रश्न-6, हरिजन से दलित, वाणी प्रकाशन, संस्करण, 2008,- पृ. 25।

कैशिकी वृत्तिः सिद्धांत एवं व्यवहार

डॉ० लता शर्मा

सह आचार्य संस्कृत, गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर

साहित्य न केवल अतीत तथा वर्तमान के समाज संस्कृति एवं परम्पराओं का परिचायक होता है, अपितु भविष्य के मार्ग का प्रशास्ता भी होता है। साहित्य की दृष्टि से हम सम्भवतः विश्व में श्रेष्ठ साहित्य के धनी हैं और संस्कृत सर्वाधिक समृद्ध भाषा है। क्योंकि अधिकांश महत्वपूर्ण साहित्यिक धरोहर इस भाषा में ही निबद्ध है। संस्कृत की साहित्य परम्परा में महाकाव्य, खण्डकाव्य, कथा, आख्यायिका, चम्पू रूपक एवं गद्यादि का सुसमृद्ध एवं विशाल भण्डार एवं अनेकों सुन्दर रचना-विधाएँ इस भाषा की परिपूर्णता की द्योतक है। यद्यपि ये सभी विधाएँ अपनी-अपनी विशेषताएँ रखती है, जो परस्पर अतुलनीय है तथापि संस्कृत के विद्वत् समाज में प्रारम्भ से ही रूपक लेखन प्रतिभा तथा प्रतिष्ठा का विषय रहा हैं और इसे श्रेष्ठ विधा के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है।

काव्येषु नाटक रम्यम्

संस्कृत में रूपकों की प्रचुर मात्रा में रचना के मूल में यही मान्यता रही है। स्वभावतः जब कोई रचना-विधा प्रचलित होती है तो तत्सम्बन्धी लक्षण ग्रन्थ भी रचे जाते हैं ,जो उसे मर्यादित एवं श्रेष्ठ बनाते हैं। संस्कृत में भी ऐसे ही विद्वत्तापूर्ण, प्रौढ़ लक्षण-ग्रन्थों की विशाल राशि है।

इसी परम्परा में संस्कृत साहित्य में विभिन्न रूपक विषयक संरचना तथा रंगमंच पर उनके अभिनय से सम्बद्ध विधि-विधानों का निर्देश करने वाली विधा नाट्यशास्त्र के अन्तर्गत परिगणित की जाती है। वर्तमान उपलब्ध साहित्य में इसका आकर-ग्रन्थ भरतमुनि का नाट्यशास्त्र प्राचीनतम एवं श्रेष्ठ है। परवर्तीकाल में इस पर टीकाओं तथा स्वतन्त्र रूप से मौलिक ग्रन्थों की रचना की एक सुदीर्घ एवं समृद्ध परम्परा परिलक्षित होती है।

रूपकों के प्रसंग में नाट्यशास्त्र जिन तत्त्वों की मौलिकता एवम् आधारभूतता को स्वीकार करता है, उनमें एक तत्व वृत्ति भी है।

वृत्ति-अर्थ एवं स्वरूप विषयक अवधारणा-

"वृतु वर्तने" धातु से क्तिन् प्रत्यय पूर्वक वृत्ति शब्द निष्पन्न होता है। किसी भी वस्तु अथवा विधादि के निर्माण हेतु कुछ आधारभूत तत्वों की आवश्यकता होती है। रूपक में भी यही व्यवस्था होती हैं। जैसे कथावस्तु के अभाव में किसी भी साहित्यिक कलेवर की कल्पना असंभव है, उसी प्रकार की आधारभूतता वृत्तियों की हैं, अर्थात वृत्तियों के अभाव में काव्य-कल्पना ही सम्भव नहीं। यह दृश्य तथा श्रव्य दोनों ही काव्य में मूलभूत है। इसलिए ही भरत आदि नाट्घ्याचार्यो के द्वारा वृत्तियों को नाट्यमातरः की संज्ञा दी गयी विभिन्न विद्वानों द्वारा इस वृत्ति तत्व को परिभाषित किया गया है। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत ने नाट्य के प्रयोगों में और रूपकों के अभिनय में नाना भावों से समन्वित व्यापारों को वृत्ति की संज्ञा दी हैं। वृत्तियां काव्य-रचना में आधार का कार्य तो करती ही हैं, विभिन्न रसों एवं भावों को रिथरता भी प्रदान करती है। शरीर, वाणी तथा मन की चेष्टावृत्तियां है, जो समस्त लोक में व्याप्त हैं और नाट्य की विशेष उपकारिणी हैं। इन शब्दों के माध्यम से अभिनव गुप्त ने भरत के मत को और अधिक स्पष्ट किया है।

नाट्य की दृष्टि से शरीर, वाणी तथा मन की चेष्टायों का तात्पर्य आंगिक, वाचिक तथा मानसिकादि अभिनय हैं, तदनुरूप वृत्तियों में समस्त प्रकार के अभिनय का समावेश हो गया अर्थात् अभिनवगुप्त ने समस्त कार्य व्यापार को वृत्ति की श्रेणी में स्थापित करते हुए इन्हें आधारभूत तत्व सिद्ध किया है; क्योंकि इनसे भिन्न तो कोई कर्म है ही नहीं और चेतन का कोई भी अंश, कोई भी क्षण क्रियाशून्य नहीं रहता, अतः इस दृष्टि से तो सर्वत्र व्याप्त होकर वृत्तियाँ आधारभूत बनी ही, इसके अतिरिक्त समस्त रस तथा भावों में इनकी उपस्थिति भी इनकी व्यापकता को प्रदर्शित करती है। अतएव वृत्ति का साम्राज्य काव्य-जगत् में अबाध रूप से है।"

धनंजय ने इसे नायक व्यापार से अभिहित किया है। नायक से उनका तात्पर्य समस्त पात्रों से ही प्रतीत होता है, अतः धनंजय ने सभी पात्रों के प्रवृत्ति रूप व्यापार को वृत्ति कहा है।

संख्या की दृष्टि से वृत्तियों की संख्या को सामान्यतः चार स्वीकार किया गया है- भारती, सात्त्वत्ती, कैशिकी और आरभटी।

इन वृत्तियों में भारती शब्द-वृत्ति और शेष तीन अर्थ-वृत्तियां हैं। यह वृत्ति-तत्व दृश्य तथा श्रव्य दोनों प्रकार के काव्यों में अत्यन्त गहत्त्वपूर्ण एवं मूलभूत है; क्योंकि दृश्य काव्य अथवा अभिनय काव्य तो कार्य व्यापार स्वरूप ही हैं, अतः वह तो वृत्ति का क्षेत्र ही हैं। इसके अतिरिक्त अनभिनयकाव्य भी वृत्तियों के अभाव में सम्भव नहीं, क्योंकि अनभिनयकाव्य भी मूलतः कवि के हृदय में वर्णनीय रूप से अवस्थित कायिक, वाचिक तथा मानसिक व्यापार ही है। अभिनेय काव्य में वर्णित पात्रों की चेष्टाओं के तुल्य अनभिनेय काव्य में वर्णित चेष्टाएँ भी वृत्ति रूप ही है। इस प्रकार काव्य में कथा प्रवाह हो अथवा लालित्य एवं रसोत्पत्ति सभी कुछ वृत्ति का विषय है अतएव यही नाट्य की उत्पादिका है और इसी कारण नाट्यमातरः है की संज्ञा से भूषित भी।

वृत्ति के प्राय: सर्वसम्मत निम्न प्रभेद हैं-

भारती वृत्ति

सारवती वृत्ति

कैशिकी वृत्ति

आरभटी वृत्ति

अब नाट्यशास्त्रीय परम्परा में सामान्यत: स्वीकार्य उपर्युक्त वृत्तियों के स्वरूप और भेदोपभेदों के सम्बन्ध में दृष्टिपात करते हैं-

भारती वृत्ति- यह शब्द वृत्ति है अर्थात इसमें वाचिक व्यापार की प्रधानता है। भरत की उत्पत्ति विषयक अवधारणा के अनुसार मधुसूदन से युद्ध करते हुए मधु-कैटभ ने अनेक प्रकार के अधिक्षेप युक्त कठोर वृत्ति वाक्यों का प्रयोग किया, तब मधुसूदन के द्वारा पृथ्वी पर पैर को अधिक तीव्रता से रखने एवं वाद विवाद से भारती वृत्ति निर्मित हुई। यह वाक्य-भूयिष्ठा है तथा मूलत: नाट्य के लिए ही इसका निर्माण किया गया है।

सान्त्वती वृत्ति- उत्पत्तिगतमान्यतानुसार विष्णु के धनुष की तीव्रतर वृत्ति का उद्भव कल्पित किया गया है। इससे इस वृत्ति की प्रकृति स्वत: ही स्पष्ट हो जाती है। यह सत्वगुण अर्थत् सर्वप्रशंसित अचित आचरण वाले पात्रों से युक्त होती है। हर्ष से उत्कट अथवा शोकमय भावों से रहित होती है। भरत इसे वीर, रौद्र एवं अद्भुत रसों से समन्वित करते हैं। जबकि रामचन्द्र गुणचन्द्र ने इसमें शम को भी स्थान दिया है। उन्होंने वीर में भी युद्धवीर, दानवीर आदि सभी का ग्रहण किया है।" धनंजय को भरत का मत ही स्वीकार है।

कैशिकी वृत्ति- चारों वृत्तियों में सर्वाधिक लालित्यपूर्ण एवं रस-सम्पन्न यही वृत्ति है। गीतिप्रधान सामवेद से इसकी उत्पत्ति स्वीकार करना इसके सुरुचिपूर्ण एवं लालित्य-समन्वित होने का प्रमाण है। भरत का मत है कि लीला समन्धित विचित्र अंगहारों को करते हुए भगवान ने जब केश बांधे तो कैशिकी वृत्ति की उत्पत्ति हुई।

इस सम्पूर्ण विवेचन का व्यावहारिक दृष्टि से अवलोकन स्पष्ट करता है कि प्रारम्भ में सम्भवत: काव्यादि में उद्धत रसों का ही बाहुल्य होता था, किन्तु जब समयानुसार कुछ रंजक व्यापार की आवश्यकता अनुभव हुई तब कैशिकी का समावेश किया गया। स्वयं भरत इस तथ्य को अलौकिक सन्दर्भ देते हुए स्पष्ट करते है कि काव्य के निर्माण के उपरान्त इन्द्र ने उनसे कैशिकी के प्रयोग का आग्रह किया अर्थात् आरम्भ में तीन ही वृत्तियां थी। पुन: भरत द्वारा याचना करने पर ब्रघ्ह्मा ने इन्हें यह वृत्ति प्रदान की, जिसकी प्रेरणा ब्रह्मा को शिव से प्राप्त हुई थी।

केशबन्धन से ही इसका नाम कैशिकी रखा गया, जो कि शनै:शनै: संग्राममूलक वातावरण को त्यागकर श्रृंगारपरक वातावरण की व्याख्या करने लगी। भरत स्वयं प्रथम अध्याय में ऐसा ही उल्लेख प्रस्तुत करते हैं जिसमें इस वृत्ति की महत्ता लालित्य और सौन्दर्यरूप प्रकट होता है। उन्होंने इसे श्रृंगाररस से उत्पन्न माना है। यह अत्यन्त कोमल प्रकृति वाली है, जबकि पुरुष प्राय: कोमल भावों को पूर्णत: अभिव्यक्त करने में समर्थ नहीं अत: इसकी मनोहरता एवं कोमलता तब ही बनी रह सकती है, जब स्त्रियां इसका प्रयोग करें।

आरमटी वृत्ति- भरत की उत्पत्ति विषयक मान्यता यह स्वीकार करती है कि मधु-कैटभ से युद्ध करते हुए जब मधुसूदन में आवेश एवम् संवेग आदि मनोभाव उत्पन्न हुए तो आरभटी वृत्ति का आविर्भाव हुआ।

आर" का अर्थ होता है- "चाबुक" और "भट" से तात्पर्य "योद्धाओं" से है। अर्थात जिसमें चाबुक के सदृश भट अथवा योद्धा हों और उन्हीं के गुणों का बाहुल्य हो, वह आरंभ वृत्ति होती है।" इससे इस वृत्ति की उद्धत रसवाली प्रकृति का प्रकाशन होता है।

कैशिकी के सैद्धान्तिक विवेचन के प्रसंग में एक तथ्य जो विशेषत: अभिव्यक्त होता है, वह है-नाट्यचार्यों की इस विस्तृत एवं अविराम परम्परा में मौलिक चिन्तन का प्राय: अभाव। सम्पूर्ण सुविस्तृत परम्परा में आचार्य भरत, उनके टीकाकार-अभिनव गुप्त और लगभग उनके ही समकालीन आचार्य धनंजय ही मौलिक चिन्तक आचार्यों के रूप में हमारे समक्ष प्रकट होते हैं। दो जैनाचार्य रामचन्द्र और गुणचन्द्र को भी इस परिधि में अंशत: सम्मिलित किया जा सकता है। शेष सम्पूर्ण आचार्य परम्परा इन आचार्यों के मन्तव्यों, विचारों और अवधारणाओं को ही यथावत् अथवा यत्किंचित् परिवर्तन सहित अंगीकार करके अपने कर्तव्य की इतिश्री समझती रही और यह प्रतिच्छाया इनके द्वारा अभिव्यक्त भावों पर ही नहीं पड़ी, अपितु इनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों पर भी स्पष्टत: परिलक्षित होती है। पूर्वोक्त तीनों आचार्यों के शब्दों को पृथकश: अथवा सम्मिलित रूप से परवर्ती आचार्यों द्वारा यद्क्रिचित् शाब्दिक और आर्थिक परिवर्तन के साथ अपने ग्रन्थों में संकलित किया जाता रहा। यत्र तत्र अभिनवगुप्तपादाचार्य जैस: प्रौढ विद्वान् भी आचार्य भरत के मूल मन्तव्य के अवबोधन में समर्थ नहीं हो पाते हैं, ऐसा स्पष्टत: प्रतीत होता है। नर्मविषयक अवधारणा को इस दृष्टि से उद्धृत किया जा सकता है। आचार्य भरत नर्म को श्रृंगार के दोनों पक्षों अर्थात् संयोग एवं विप्रलम्भ के संदर्भ में व्याख्यायित करने का प्रयास करते हुए प्रतीत होते हैं। परन्तु अभिनवगुप्त वैचारिक धरातल पर उनसे समन्वय न करने के कारण वहीं नर्म के तीन भेदों का व्याख्यान स्वीकार करते हैं। तत्पश्चात् समग्र नाट्यशास्त्रीय परम्परा में किसी भी अन्य आचार्य को नर्म को श्रृंगार के द्वितीय पक्ष से सम्बद्ध करने का विचार ही नहीं आता है। फलस्वरूप नर्म मात्र एकपक्षीय होकर रह जाता है। निश्चित रूपेण यह आचार्य भरत के व्यापक और उदारवादी दृष्टिकोण के साथ प्रमादपूर्ण अन्याय हुआ है, ऐसा मेरा सुदृढ विश्वास है।

दशरूपक के रचयिता आचार्य धनंजय नर्म को अष्टादशधा विभाजित कर उसको विस्तृत आधार प्रदान करने का प्रयास करते हैं। यह नि:संदेह उनका मौलिक चिन्तन प्रतीत होता है और इस कारण सम्पूर्ण परवर्ती नाट्यशास्त्रीय परम्परा में कतिपय संशयों को भी उत्पन्न करता है। आचार्य धनंजय नर्म की परिभाषा के अवसर पर जिस मूल अवधारणा को अभिव्यक्त करते हैं। निश्चय ही वहाँ श्रृंगार का संयोग पक्ष ही इन सब के मूल में होना याहिए। यह स्वभाविक ही है क्योंकि नर्म यहाँ बीज है और उसके भेद उसका ही पल्लवित और पुष्पित रूप। नर्म प्रकृति है और भेद-प्रभेदों के मूल में भी श्रृंगार अर्थात् पक्ष को स्वीकार किया जाना चाहिए था ,परन्तु धनंजय इन सबका जनक या मूल हास्य को स्वीकार करते हैं। जैसा कि उनकी परिभाषा से स्पष्ट भी होता है। उनकी यह व्यवस्था विचारणीय एवं गवेषणीय है।

धनंजयसम्मत नर्म के प्रथम भेद हास्याश्रित नर्म पर यदि दृष्टिपात करें, तो वहाँ हास्य की प्रधानता तथा उससे सम्बद्ध श्रृंगार का अवबोध होता है अर्थात शुद्ध हास्य वहां ग्रन्थकार को अभिप्रेत प्रतीत नहीं होता और वास्तव में उनका यह दृष्टिकोण उनकी नर्मविषयक मूल अवधारणा के अनुरूप ही है। धनंजय और सम्पूर्ण परम्परा में कैशिकी के प्रसंग में श्रृंगार और हास्य दोनों ही रसों की सत्ता को समान रूप से स्वीकार किया है, परन्तु नर्म के सम्पूर्ण भेदोपभेदों के व्यूह में शुद्ध हास्य को कैशिकी से प्रत्यक्षत: किस प्रकार सम्बद्ध किया जा सकता है? हम यह देख ही चुके है कि धनंजय चार मूल रसों के प्रसंग में श्रृंगार का भी कथन करते हैं तथा हास्य उनकी दृष्टि में उसका विस्तार ही है। प्रकारान्तर में श्रृंगार यहाँ प्रधानत: विवक्षित है और हास्य गौणत:। तो क्या ऐसी सम्भावना नहीं है कि कैशिकी के प्रसंग में भी उनकी ऐसी ही अवधारणा रही हो अर्थात् श्रृंगार के विस्तार के रूप में ही हास्य यहाँ भी उनको अभिप्रेत रहा हो, स्वतंत्र रूप में नहीं? परन्तु ऐसा सम्भव भी हो तब भी हास्य रस के स्वतंत्र अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह अंकित करना चाहे प्रसंग रसों का हो अथवा कैशिकी का स्वयं में अनेक आपत्तियों और संशयों का जनक तो होगा ही, क्योंकि रसों की संख्या के अवसर पर वे स्वयं ही स्पष्ट रूप से नाट्य में आठ रसों की सत्ता का कथन करते हैं, चार रसों का नहीं।

कैशिकी के द्वितीय भेद नर्मस्फिंज के मूल स्वरूप के सम्बन्ध में तो प्राय: समस्त नाट्यचार्य सहमत हैं, परन्तु आचार्य अभिनवगुप्त उसको जिस रूप में व्याख्यायित करते हैं, वह कुछ औचित्यपूर्ण सा प्रतीत नहीं होता है। अभिनवभारती में इसके भयपूर्ण अवसान की उनकी व्याख्या संकुचित सी प्रतीत होती है। सम्भवत: नाटिका नामक रूपक भेद को आधार बनाकर ही उन्होंने आचार्य भरत की नर्मस्फिंज विषयक मान्यता पर अभिनवभारती का प्रणयन किया है और इस प्रसंग में वह रत्नावली को उद्धृत भी करते हैं। नाट्यशास्त्र के क्षेत्र में सम्भवत: उनको मूल स्तम्भ के रूप में स्वीकार किये जाने के कारण प्राय: सम्पूर्ण परम्परा उनकी इस व्याख्या को यथावत् स्वीकार करती रही। उनके समकालीन आचार्य धनंजय के अनुज धनिक का भी ऐसा ही दृष्टिकोण है, जो उनके द्वारा दिये गये उदाहरण से स्पष्ट होता है। वास्तव में भयावसान से आचार्य भरत का आशय तात्कालिक रूपेण नायक एवं नायिका के निकट भविष्य में पुर्नसंयोग की पूर्ण असम्भावना से उत्पन्न भय हो सकता है। यह स्थिति ही वस्तुत: नर्मस्फिंज की दूसरी अनिवार्य योग्यता है. अत: इसको पूर्वनायिकाकृत कहकर पूर्वनायिका से प्रत्यक्षत: सम्बद्ध कर देना कुछ अनुचित सा तथा भरत के व्यापक दृष्टिकोण के अनुरूप प्रतीत नहीं होता, क्योंकि यदि ऐसा स्वीकार करते हैं तो कैशिकी का यह भेद रूपकों के मात्र दो नायिकाओं और उनके मध्य परस्पर प्रतिकूल परिस्थितियों के भाव तक सीमित हो जाएगा।

कैशिकी वृत्ति के अन्तिम भेद अर्थात् नर्मगर्भ के सम्बन्ध में भी सम्भवत: अभिनवगुप्त आदि का ऐसा ही मन्तव्य रहा है, जिसका आभास नाट्यग्रन्थों के उदाहरणों से होता है। अत: इसके सम्बन्ध में भी हमारा दृष्टिकोण नर्मस्फिंज के समान ही स्वीकार किया जाना चाहिए।

अब हम कैशिकी वृत्ति के व्यवहार पक्ष की ओर किंचित् दृष्टिपात करते हैं। कैशिकी विषयक सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में मृच्छकटिक का आलोडन करते समय हमे इस तथ्य को सदैव स्मरण रखना चाहिए कि सिद्धान्त और व्यवहार में वैसा ही स्वाभाविक अन्तर होता है जैसा कि एक ही प्रकार के बीज तथा उनसे उत्पन्न परस्पर किंचित् भिन्न स्वाभाविक आकार में संभव है। सिद्धान्त एक पक्ष है, तो व्यवहार उसका दूसरा पक्ष। व्यवहार को हम सिद्धान्त की प्रतिकृति के रूप में कदापि स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि सिद्धान्त स्वयं में साध्य नहीं होते। वे किसी रचना को परिमार्जित करने तथा सरल शैली में पाठकों अथवा दर्शकों की उत्सुकता को उद्‌घ्बुद्ध और विस्तृत करने तथा उसमें निरन्तरता बनाये रखने में एक आधारभूत रूपरेखा अथवा मार्गदर्शक निर्देशों की भूमिका का निर्वाह करने वाले अर्थात् साधन रूप होते हैं। वैसे भी रचना का अस्तित्व प्रधान होता है और सिद्धान्त का गौण। सर्वप्रथम रचनाओं का प्रणयन होता है और तत्पश्चात् सिद्धान्तों का अर्थात पहले लक्ष्यग्रन्थों की रचना होती है और उसके बाद उनके आधार पर लक्षणग्रन्थों की। पश्चात्वर्ती रचना-प्रक्रिया में लक्षण ग्रन्थ लक्ष्य-ग्रन्थों को अनुशासित करते हैं और लक्ष्य-ग्रन्थ काल एवं देश की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप लक्षण-ग्रन्थों को। यह घात प्रतिघात ही साहित्य को विकास, गति और जीवन्तता प्रदान करता है।

एक तथ्य यह भी विशेषत: ध्यातव्य है कि नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में शूद्रक के मुछकटिक से पूर्व मात्र भरत का नाट्यशास्त्र ही रहा होगा, शेष समस्त नाट्यशास्त्रीय परम्परा उनसे परवर्ती ही है और अपनी रचना में रंगमंच पर शयन क्रिया के प्रदर्शनादि के रूप में नाट्यशास्त्र के कतिपय नियमों की जिस प्रकार से वे अवहेलना करते हैं, उससे शास्त्रीय नियमों के प्रति उनकी अंधश्रद्धा भक्ति भी अभिव्यक्त नहीं होती है। इस सन्दर्भ में यह भी सत्य है कि नाट्यशारत्र से वे परिचित अवश्य थे और आपवादिक रूप में यत्र-तत्र प्राप्त होने वाले गौण से स्थलों के अतिरिक्त अन्यत्र उन्होंने नियमों का अत्यधिक सफल और सोद्देश्य प्रयोग किया है। कैशिकी वृत्ति के चारों प्रधान भेद उनकी इस सफलता को प्रतिबिम्बित करते हैं। इनमें भी अन्तिम भेद अर्थात् नर्मगर्भ का निबन्धन उन्होंने जिस नाट्य-नैपुण्य और व्युत्पन्न मतित्त्व के साथ प्रधान कथा में ग्रथित किया है, यह स्वयं में विलक्षण और अद्‌घ्भुत प्रतीत होता है। सम्पूर्ण संस्कृत-रूपक साहित्य में मुझे ऐसा अन्य प्रयोग दृष्टिगोचर नहीं होता। वास्तव में यह अनुपम तथा अप्रतिम है और इसकी जितनी भी प्रशंसा की जाए वह अल्प ही है।

भवभूति शूद्रक के लगभग 700 वर्ष पश्चात् के आचार्य है और धनंजय के अधिक निकट। अत: मालतीमाधवम् में नियमों का सामान्य निर्वहन ही उपलब्ध है। शूद्रक की भांति कहीं भी, किसी भी भेद का विलक्षण प्रयोग भवभूति ने नहीं किया है।

मृच्छकटिक के प्रसंग में जब हम नर्म के अष्टादश भेदों को आधार स्वीकार कर उहापोह करते हैं, तब हमें इस तथ्य को विस्मृत नहीं कर देना चाहिए कि मृच्छकटिक और दशरूपक की रचना में अनेक शताब्दियों का अन्तर रहा होगा। कोई भी श्रेष्ठ रचना देश एवं काल की सीमाओं से ऊपर होती है और कवि की स्वाभाविक रचना-प्रकिया में शास्त्रीय नियम उसका भक्त के समान अनुगमन करते हैं। इसी कारण धनंजय के पर्याप्त परवर्ती होते हुए भी उसके द्वारा निर्धारित नियमों का प्राय: सफल निर्वाह हमें मृच्छकटिक में भी निर्बाध रूप से परिलक्षित होता है। इससे शूद्रक की श्रेष्ठ रचना-कुशलता और मृच्छकटिक की कालजेयता एवं जीवन्तता ही ध्वनित होती है।आचार्य धनंजय द्वारा कहे गए नर्म के भेदों एवं प्रभेदों का प्रकरण ग्रन्थों में अन्वेषण करने पर कुछ स्थलों पर ऐसी संशयात्मक स्थिति अवश्य उत्पन्न हो सकती है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के अमुक स्थल अथवा अंश को किस भेद प्रभेद से सम्बद्ध किया जाये? साथ ही एक ही उदाहरण के दो भेदों का प्रतिनिधित्व करने की सम्भावना को भी पूर्णत: अस्वीकार नहीं किया जा सकता तथापि प्रथम तो ऐसे प्रसंग कम ही हैं। द्वितीयत: यदि ऐसा अनुभव भी हुआ है तो मेरा प्रयास प्रधानता के आधार पर निर्णय करने का रहा है।

यह प्रश्न अवश्य विचारणीय है कि प्रकरणों के शुद्ध हास्य और श्रृंगाराभास से सम्बद्ध स्थलों का अन्तर्भाव नर्म के किस भेद-प्रभेद में संभव है? जैसा कि हम पूर्व में भी इंगित कर चुके हैं कि शुद्ध हास्य का प्रसंग धनंजय की नर्म विषयक अवधारणों के प्रत्यक्षत: अनुकूल प्रतीत नहीं होता है। जहाँ कैशिकी का प्रयोग हो, वहाँ हास्य न हो यह तो सम्भव है, किन्तु यदि हास्य का प्रयोग हो और कैशिकी का अस्तित्व न हो यह संभव नहीं है। अत: प्रकरण ग्रन्थों के शुद्ध हास्य से सम्बद्ध स्थलों में कैशिकी की सत्ता तो अवश्य ही है, उसके अस्तित्व को कथमपि अस्वीकार नहीं किया जा सकता। ऐसा ही कथन श्रृंगाराभास से सम्बद्ध स्थलों में भी कहा जा सकता है। इस संदर्भ में अनेकों स्थल द्रष्टव्य हैं। मेरा विचार है कि ऐसे स्थलों को हम कैशिकी के भेदोपभेदों के आग्रहपूर्ण दृष्टिकोण से न देखें। अपितु उनमें कैशिकी की मूल भावना का ही अनुसंधान करने का प्रयास करें और तब हम भेदोपभेदों के विवाद से ऊपर उठकर कैशिकी वृत्ति को सामान्य रूप में ही स्वीकार कर सकते हैं। इस प्रकार कैशिकी के शुद्ध हास्य एवं श्रृंगारभासादि से सम्बद्ध समग्र अंशों का भी सर्वसम्मत समाधान प्रस्तुत कर सकते हैं। निष्कर्षत: कैशिकी के आधार पर प्रकरण ग्रन्थों का यह अवलोकन सार्थक प्रतीत होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अभिनव भारती - नाट्यशास्त्र से उद्धृत

1. आचार्य भरत - डॉ शिवचरण शर्मा, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
2. दशरूपक - धनञ्जय, डॉ वैद्यनाथ पाण्डेय, मोतीलाल बनारसी दास
3. नाट्य दर्पण - रामचंद्र गुण चंद्र, आचार्य विश्वेश्वर, हिंदी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली
4. नाटकलक्षणरत्नकोश- सागरनन्दी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
5. नाट्यशास्त्र - आचार्य भरत, आचार्य मधुसूदन शास्त्री, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
6. भारतीय नाट्य सिद्धांत -उद्भव और विकास - डॉ नगेन्द्र, ओरियंटल बुक डिपो, दिल्ली
7. मृच्छकटिक - शूद्रक, रमाशंकर त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी
8. संस्कृत साहित्य का इतिहास - कृष्ण चौतन्य, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी
9. हन्दी नाट्यशास्त्र -आचार्य भरत, बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान
10. The Mrichachhakatika of Sudraka- M.R.Kale, Motilal Banarasi Das, Delhi

दुनिया की सबसे प्रेरणादायक महिला जिसने आपने तीन कुल को उउजागर कर विश्वको मार्गदर्शन दिया- मैडम क्यूरी

डॉ० ट्विंकल तिवारी

असिस्टेंट प्रोफेसर, मा आशापुरा कॉलेज ऑफ एजुकेशन, भुज-कच्छ, गुजरात, भारत

मैडम क्यूरी एक ऐसी प्रमुख शख्सियत थीं, जिन्होंने विदेशी धरती पर जन्म लेने के बावजूद भारतीय संस्कृति की इस उक्ति को चरितार्थ किया कि 'बेटी एक नहीं बल्कि तीन कुलकी तारणहार होती है।' उन्होंने आर्थिक, शैक्षणिक रूप से अपने माता-पिता, भाई-बहनों की बात सुनी और उच्च शिक्षा प्राप्त की। विवाह के बाद उन्होंने अपने पति के साथ शोध कार्य किया और उनके साथ विश्व की सर्वोच्च प्रसिद्धि (नोबेल पुरस्कार) प्राप्त की। इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अपनी बेटियों का भी नाम रोशन किया और कई पुरस्कार भी जीते। भले ही वे उस समय पश्चिमी सभ्यता में थे, उन्हें कई समस्याओं का सामना करना पड़ा, लेकिन उन्होंने अथक परिश्रम कर उच्च शिक्षा और उत्कृष्ट समाजोपयोगी अनुसंधान किये। उनके महान होने का एक बड़ा उदाहरण और भारतीय परंपरा के अनुसार एक महिला अपने परिवार के लिए क्या नहीं कर सकती है, उन्होंने उन महिलाओं को सटीक मार्गदर्शन दिया जो केवल शिकायत करती हैं कि परिवार सँभालना एक काम है और वौ महिलायें जो वास्तव में कठिन परिस्थितियोंका सामना कर रही है।

- वह नोबेल पुरस्कार जीतने वाली पहली महिला थी
- वह दो बार नोबेल पुरस्कार पाने वाले पहले व्यक्ति थे,
- वह दो अलग-अलग वैज्ञानिक क्षेत्रों में नोबेल पुरस्कार जीतने वाले पहले व्यक्ति थे।
- वह अपने पति पियरे क्यूरी के साथ नोबेल पुरस्कार साझा करने वाली पहली व्यक्ति थीं।
- वे दुनिया के पहले परिवार हैं जिन्हें पांच नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।
- वह 1906 में पेरिस विश्वविद्यालय में पहली महिला प्रोफेसर बनीं।

मारिया सैलोमिया स्कोलोडोव्स्का-क्यूरी का जन्म: 7 नवंबर 1867 को हुआ था और वह 67 साल तक जीवित रहीं। उनकी मृत्यु: 4 जुलाई 1934 को हुई। मैरी क्यूरी के नाम से मशहूर, वह एक पोलिश और प्रकृतिवादी-फ्रांसीसी भौतिक विज्ञानी और रसायनज्ञ थीं। जो रेडियोएक्टिव पर बहुत ही बुनियादी शोध में शामिल थे। वह नोबेल पुरस्कार पाने वाली पहली महिला थीं, दो बार नोबेल पुरस्कार पाने वाली पहली व्यक्ति थीं और दो अलग-अलग वैज्ञानिक क्षेत्रों में नोबेल पुरस्कार पाने वाली पहली व्यक्ति थीं। उनके पति, पियरे क्यूरी, उनके पहले नोबेल पुरस्कार सहयोगी थे, जिससे वे नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले पहले पति-पत्नी बन गए, और क्यूरी परिवार को पांच नोबेल पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। 1906 में, वह पेरिस विश्वविद्यालय में प्रोफेसर बनने वाली पहली महिला बनी (जोन्स, 2011)।

उनका जन्म रूसी साम्राज्य के पोलैंड राज्य, वारसॉ (पोलैंड) में हुआ था। मारिया स्कोलोडोव्स्का (मैडम क्यूरी) अपने पिता और माता, लोकप्रिय शिक्षक बोगुस्का ब्रोनिस्लावा और व्लाडिसलाव स्कोलोडोव्स्की की पांचवीं संतान थीं। (एस्ट्रेचर, 1938)। पितृसत्तात्मक और मातृसत्तात्मक दोनों पक्षों की ओर से, पोलिश राष्ट्रीय युद्धों में राष्ट्र की स्वतंत्रता की बहाली के लिए प्रतिबद्धताओं के परिणामस्वरूप पारिवारिक संपत्ति और भाग्य का नुकसान हुआ। (माजोवीकी कोर्जनी मारी, 2008)।

गणित और भौतिक विज्ञान पढ़ाने वाले व्लाडिसलाव स्क्लोडोव्स्की ने मारियाको पुरस्कार देने का फैसला किया। रूसी अधिकारियों द्वारा पोलिश स्कूलों से प्रयोगशाला शिक्षा को हटाने का निर्णय लेने के बाद, वह घर पर रसायन विज्ञान उपकरण लाए और इसका उपयोग करके अपने बच्चों को पढ़ाया। वास्तव में क्यूरी बहुत भाग्यशाली थे कि उन्हें बचपन में इतने महान पिता मिले। जिन्होंने बच्चों को शिक्षित करने के लिए घर पर एक छोटा प्रायोगिक स्कूल बनाया (मैरी क्यूरी-पोलिश गर्लहुड (1867-1891) भाग 1, 2011)। मारिया के जन्म से कुछ समय पहले मारिया की माँ ब्रोनिस्लावा वारसॉ में एक स्थानीय बोर्डिंग स्कूल चलाती थीं; मारिया के जन्म के बाद अस्थमा से उनकी मृत्यु हो गई। मैरी के पिता नास्तिक थे, उनकी माँ एक कट्टर कैथोलिक थीं ("मैरी क्यूरी-पोलिश गर्लहुड (1867-1891) भाग 2"। 2011; रॉबर्ट विलियम रीड 1974)

उन्होंने वारसॉ में क्लैंडेस्टाइन फ्लाइंग यूनिवर्सिटी में अध्ययन किया जहां उनका प्रायोगिक वैज्ञानिक प्रशिक्षण बढ़ाया गया। उस समय उनकी उम्र 24 वर्ष थी। इस विश्वविद्यालय को चुनने का एक दिलचस्प कारण है, आमतौर पर हमारी धारणा यह है कि भारत को छोड़कर कहीं भी लिंग भेदभाव नहीं होता है। हमारे देश की पहली महिला शोधकर्ता कमला को भी यह सहना पड़ा था। इसी तरह क्यूरी अपनी उच्च शिक्षा पोलैंड में करना चाहते थे, लेकिन 12

जून 1883 को उन्होंने स्वर्ण पदक के साथ अपना डिप्लोमा प्राप्त किया। अवसाद के कारण, या किसी अज्ञात कारण से, अगले वर्ष वह उसे अपने पिता के ब्रह्मचारी रिश्तेदारों के पास गाँव ले गया और एक वर्ष तक अपनी ओर से आगे की पढ़ाई के लिए उनसे बातचीत की। उन्होंने अपने पिता के साथ प्रशिक्षण लिया, फिर वारसॉ में रहे और एक छात्र के रूप में शिक्षा ली। उन्होंने एक ट्यूटर के रूप में भी काम किया लेकिन एक महिला होने के कारण उन्हें स्थायी ट्यूटर के रूप में नहीं चुना जा सका। और अंततः उन्होंने 1891 में उच्च शिक्षा के लिए अपनी बड़ी बहन ब्रोनिस्लावा के साथ पेरिस जाने का फैसला किया। वहां उन्होंने उच्च डिग्रियां प्राप्त कीं और अपना वैज्ञानिक कार्य जारी रखा। 1895 में उन्होंने फ्रांसीसी भौतिक विज्ञानी पियरे क्यूरी से शादी की। गौर करने वाली बात है कि वे एक फ्रांसीसी भौतिक विज्ञानी से शादी करने के लिए सहमत हुए। शोध के क्षेत्र में अग्रणी कार्य के लिए उन्होंने अपने पति के साथ नोबेल पुरस्कार जीता। जो 1903 में प्राप्त हुआ था (मैरी क्यूरी और रेडियोएक्टिव, 1903 में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार)। जिसमें उन्होंने वैज्ञानिक हेनरी बेकरेल के साथ मिलकर रेडियोएक्टिव विषय को समझा और इसके सिद्धांतों पर एक शोध पत्र तैयार किया। मानो प्रकृति को उनकी यह उपलब्धि पसंद नहीं आई होगी, मैडम क्यूरी के जीवन में कठिनाई का पहाड टूट गया। 1906 में पियरे क्यूरी (उनके पति) की पेरिस में एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई। भारतीय और फ्रांसीसी परंपरा के अनुसार वह विधवा हो गये। लेकिन उन्होंने आने वाली परेशानियों के आगे घुटने नहीं टेके। उनका शोध कार्य जारी रहा और प्रकृति ने शायद उनकी किस्मत में दुनिया की पहली घटनाक्रमका साक्षी बनना लिखा था। केवल एक दशक बाद, मैरी क्यूरी को 1911 में दूसरी बार रसायन विज्ञान में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। (रसायन विज्ञान में नोबेल पुरस्कार, 1911) यह नोबेल पुरस्कार उन्हें पोलोनियम और रेडियम नामक धातु पर शोध के लिए दिया गया था। उन्होंने स्वयं ही उसे अलग करनेकी तकनीकें ईजाद कीं और उनका सफलतापूर्वक प्रयोग भी किया। उनके मार्गदर्शन में उन्होंने दुनिया में पहली बार नियोप्लाज्म (मांसपेशियों की अनुचित वृद्धि) के इलाज की विधि विकसित की। उन्होंने अपनी और अपने पति की याद में 1920 में पेरिस में "क्यूरी इंस्टीट्यूट" की स्थापना की। इसके बाद उन्होंने 1932 में वारसॉ में क्यूरी इंस्टीट्यूट भी शुरू किया। ये दोनों पेरिस में प्रमुख चिकित्सा अनुसंधान केंद्र बने हुए हैं (गोल्डस्मिथ, 2005)। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान, उन्होंने एक मोबाइल रेडियोग्राफी इकाई के विकास पर काम किया, जिसने फील्ड अस्पतालों में एक्स-रे सेवाएं उपलब्ध करवाई। आज जब हमारे देश में नेता किसी मोबाइल रेडियोग्राफी यूनिट का उद्घाटन करते हुए फोटो खिंचवाते हैं तो ऐसा होता है कि लगभग 100 साल पहले एक महिला शोधकर्ता ने यह विचार दिया था।

वह एक फ्रांसीसी नागरिक थे लेकिन अपने उपनाम स्कोलोडोव्स्का और क्यूरी दोनों का इस्तेमाल करते थे और अपने देश प्रेम और परिवार प्रेम को कभी नहीं भूले। उन्होंने अपनी बेटियों को पोलिश भाषा सीखने की अनुमति दी और उन्हें पोलैंड के डौराटा तक मार्गदर्शन भी दिया। उन्होंने खोजे गए पहले रासायनिक तत्व का नाम अपने मूल देश पोलैंड के नाम पर पोलोनियम रखा। मैरी क्यूरी की मृत्यु 1934 में, 66 वर्ष की आयु में, प्रथम विश्व युद्ध में उनकी वैज्ञानिक खोजों और उनके रेडियोलॉजिकल कार्यों से विकिरण के संपर्क के कारण होने वाले अप्लास्टिक एनीमिया के कारण फ्रांस के पैसी (हाउते-सावोई) के सैन्सलेमोस सेनेटोरियम में हो गई। नोबेल पुरस्कार के साथ-साथ उन्हें कई अन्य सम्मान और स्मृति चिन्ह भी प्राप्त हुए; 1995 में वह पेरिस पेंथियन में प्रतिष्ठित होने वाली पहली महिला बनीं और पोलैंड के राष्ट्रपति ने अंतर्राष्ट्रीय रसायन विज्ञान वर्ष के दौरान 1995 को रसायन विज्ञान का राष्ट्रीय वर्ष घोषित किया। वह कई जीवनियों का विषय रहे हैं (गोल्डस्मिथ, 2005)।

इन सभी परेशानियों और समाज से पर्याप्त सहयोग न मिलने के बावजूद, परिवार ने राष्ट्रवाद में अपनी संपत्ति खो दी, पति की आकस्मिक परिस्थिति में मृत्यु हो गई, विश्व युद्ध की मुसीबतें आई, मैडम क्यूरी ने साबित कर दिया कि यदि इच्छा शक्ति मजबूत हो तो व्यक्ति, अपेक्षित परिणाम प्राप्त कर सकता है

संदर्भ सूचि

1. Jones] Daniel (2011)- Roach] Peter_ Setter] Jane_ Esling] John (eds-)- Cambridge English Pronouncing Dictionary (18th ed-)- Cambridge University Press- ISBN 978&0&521&15253&2-
2. Estreicher] Tadeusz (1938)- "Curie] Maria ze Sklodowskich"- Polski slownik biograficzny] vol- 4 (in Polish)- p- 111
3. WojciechA- Wierzewski (21 June 2008)- "Mazowieckie korzenie Marii" ¹Maria's Mazowsze Rootsº- Gwiazda Polarna- 100 (13)% 16–17
4. "Marie Curie – Polish Girlhood (1867–1891) Part 1"-American Institute of Physics-Archived from the original on 2 November 2011- Retrieved 7 November 2011
5. "Marie Curie – Polish Girlhood (1867–1891) Part 2"-American Institute of Physics-Archived from the original on 2 November 2011- Retrieved 7 November 2011-_ Robert William Reid (1974)-
6. Marie Curie- NewAmerican Library- p- 24- ISBN 978&0&00&211539&1-Archived from the original on 11 June 2016- Retrieved 15 March 2016-
7. "Marie CurieAnd the radioactivity] The 1903 Nobel Prize in Physics"- nobelprize-org-Archived from the original on 30 July 2018- Marie called this radiation radioactivity—'radio' means radiation-
8. Her 1911 Nobel Prize in Chemistry was granted to "Marie Sklodowska Curie" File%Marie Sklodowska&Curie's Nobel Prize in Chemistry 1911-jpg-
9. Goldsmith] Barbara (2005)- Obsessive Genius% The Inner World of Marie Curie- W- W- Norton & Company- p- 149- ISBN 978&0&393&05137&7-
10. "IEEE Marie Sklodowska&CurieAward"- corporate&awards-ieee-org- Retrieved 14 November 2023-
11. Borzendowski] Janice (2009)- Sterling Biographies% Marie Curie% Mother of Modern Physics- Sterling Publishing Company] Inc- p- 37- ISBN 978&1&4027&5318&3-
12. "Scientific NotesAnd News"- Science- 25 (647)% 839–840- 907- Bibcode% 1907Sci-25--839- doi%10-1126@science-25-647-839-

Fig. ૧ મેડમ ક્યુરી

Fig. ૨ મેડમ ક્યુરી અને પેરી ક્યુરી

Fig. ૩ Nobel Prize ૧૯૦૩

'जोधपुर में विदेशी नागरिकों के साथ भारत में अपराध भय पर एक अध्ययन'

शुभम गौड़

स्नातकोत्तर छात्र, अपराध विज्ञान और पुलिस अध्ययन, सरदार पटेल पुलिस, सुरक्षा और डांडिक न्याय विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान।

डॉ० स्विकार लामा

सहायक प्रोफेसर, अपराध विज्ञान और पुलिस अध्ययन विभाग, सरदार पटेल पुलिस, सुरक्षा और डांडिक न्याय विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान

जयेश कुमार

डॉक्टरल रिसर्च स्कॉलर, अपराध विज्ञान और पुलिस अध्ययन, सरदार पटेल पुलिस, सुरक्षा और डांडिक न्याय विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान

शोध सार

अपराध विज्ञान के विषय में, अपराध का डर एक महत्वपूर्ण विषय है जिस पर शोध किया जाना चाहिए। अपराध के डर का विषय अपराध विज्ञान क्षेत्र में शोध के लिए एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। पर्यटन (विदेशियों) के क्षेत्र में किया गया यह शोध बताता है कि अनुभवजन्य साक्ष्य हैं कि पर्यटन अपराध में वृद्धि में योगदान देता है। शोध प्रबंध अनुसंधान पर केंद्रित है जिसका उद्देश्य भारत आने वाले विदेशियों के बीच अपराध के डर और पर्यटकों (विदेशियों) के उत्पीड़न की प्रकृति का आकलन करना है।

परिचय

अपराध के अध्ययन में हाल ही में एक नई घटना आकार ले रही है, जबकि अपराध विज्ञान और पीड़ित विज्ञान के क्षेत्र के शोधकर्ता अपराधी और उसके पीड़ित के सभी पहलुओं का अध्ययन करते हैं। अब वे यह खोज रहे हैं कि अपराध का डर हमारे समाज में एक बहुत ही वास्तविक समस्या के रूप में उभर रहा है। अपराध का डर एक गंभीर सामाजिक समस्या रही है जिसका अध्ययन लगभग 40 वर्षों से किया जा रहा है। प्रारंभिक शोधकर्ताओं ने अपराध के डर के संचालन और संकल्पना पर ध्यान केंद्रित किया, विशेष रूप से इस बात पर ध्यान केंद्रित किया कि अपराध का डर क्या था (और क्या नहीं) और अपराध के डर का सर्वोत्तम दोहन कैसे किया जाए। आज समाज में अपराध का भय एक अत्यंत प्रचलित एवं ज्वलंत मुद्दा बन गया है। आज ऐसे कई लोग हैं जो अपराध पर अपना डर और चिंता व्यक्त करते हैं, एवं स्वयं के पीड़ित होने की चिंता व्यक्त करते हैं। केवल अपराध होने का डर भी व्यक्ति की दैनिक गतिविधियों में बाधा डाल सकता है।

अपराध का डर

अपराध के डर से तात्पर्य अपराध का शिकार होने के डर से है। यह एक भावनात्मक प्रतिक्रिया है जो खतरे की भावना और शारीरिक नुकसान के बारे में चिंता की विशेषता है। वर्षों से, शोधकर्ता अपराध के डर की संकल्पना और इसे परिभाषित करने के सर्वोत्तम तरीके के साथ संघर्ष कर रहे हैं, और इस बात पर बहस कर रहे हैं कि क्या अपराध के डर को एक भावना के रूप में या जोखिम के माप के रूप में समझा जाना चाहिए। ऐतिहासिक रूप से, अपराध के डर को लंबे समय से ष्जोखिमष् के रूप में परिभाषित किया गया है। दूसरे शब्दों में, इसकी कितनी संभावना है कि कोई व्यक्ति किसी विशेष अपराध का शिकार होगा (फेरारो, 1995; फेरारो और लाग्रेंज, 1987; लाग्रेंज, फेरारो, और सुपांसिक, 1992)। कई अध्ययनों (मेस्च, 2000; राडर, मे, और गुडरम, 2007; राउंट्री एंड लैंड, 1996; वॉर, 2000; वायंट, 2008) के बाद, कई शोधकर्ताओं ने निर्धारित किया कि अपराध का डर संभावित उत्पीड़न के प्रति भावनात्मक प्रतिक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाना चाहिए जबकि "कथित जोखिम" को पीड़ित होने के जोखिम की संभावना के रूप में परिभाषित किया

जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, किसी को लगता है कि उसके शिकार बनने के जोखिम की संभावना (यानी, अनुमानित जोखिम) इस बात को प्रभावित कर सकती है कि कोई व्यक्ति अपराध से कितना डर सकता है।

अपराध का डर एक सामाजिक घटना है जो जीवन की गुणवत्ता पर हानिकारक प्रभाव डाल सकती है। यह व्यक्तिगत स्तर पर मानसिक जटिलता, चिंता और अन्य मनोवैज्ञानिक समस्याओं को जन्म दे सकता है। सामाजिक स्तर पर, इसका परिणाम पूर्वाग्रह और अलगाव हो सकता है। यह असुरक्षा अब एक महत्वपूर्ण नीतिगत चिंता बन गई है। अपराध का डर उन लोगों को प्रेरित करता है जो अधिक समृद्ध हैं, अपनी और अपने सामान की सुरक्षा के लिए उपाय करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप शायद आपराधिक गतिविधियों का रुझान कम अमीर व्यक्तियों की ओर हो जाता है। डर कुछ सार्वजनिक स्थानों को दुर्गम बना सकता है, जिससे स्थानीय आर्थिक वृद्धि और विकास में काफी बाधा आ सकती है।

अपराध का डर कई कारकों पर निर्भर करता है, इन्हें निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है:

(i) असुरक्षा, (ii) पर्यावरणीय संकेत और स्थितियाँ, (iii) अपराध और उत्पीड़न का व्यक्तिगत ज्ञान, (iv) पुलिस और आपराधिक न्याय प्रणालियों में विश्वास, (v) व्यक्तिगत जोखिम की धारणा, और (vi) विभिन्न अपराधों की गंभीरता।

विदेशियों में अपराध का भय

अपराध के डर को लेकर पर्यटन क्षेत्र लगातार एक कठिन बहस में उलझा हुआ है। पर्यटन और अपराध के बीच संबंध की जांच कोई हाल की घटना नहीं है। देश की बढ़ती आशंका विदेशी नागरिकों की सुरक्षा को लेकर है। हालाँकि, जबकि पिछले अध्ययनों ने यात्रा व्यवस्थाओं पर प्रमुख घटनाओं के प्रभावों की जांच की है, विदेशी व्यक्तियों के बीच अपराध की धारणा और अन्य सुरक्षा चिंताओं के बारे में पूछताछ करने का सीमित प्रयास किया गया है, जिसमें उनके ज्ञान का स्तर और आपराधिक गतिविधियों के बारे में चिंता भी शामिल है। विद्वानों के अध्ययन ने विदेशियों के बीच अपराध के डर या सुरक्षा की धारणा पर ध्यान केंद्रित नहीं किया है।

यह शोध भारत घूमने आने वाले विदेशियों के बीच अपराध के डर को लेकर है. भारत अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, विशिष्ट मंदिरों, विविध जीवों और कई अभयारण्यों के लिए प्रसिद्ध है, जो बड़ी संख्या में पर्यटकों को आकर्षित करते हैं। यात्रा और अन्वेषण के कई अवसरों और साहसिक अनुभवों की एक विस्तृत श्रृंखला की पेशकश के कारण विदेशी लोग भारत आने के लिए उत्सुक हैं। हाल के दिनों में, अधिक आगंतुकों को आकर्षित करने और यात्राओं की संख्या बढ़ाने के लिए विभिन्न पर्यटन स्थलों में कई सुधार किए गए हैं।

भारत विदेशियों के लिए एक लोकप्रिय पर्यटन स्थल है, लेकिन विदेशियों के खिलाफ अपराध को लेकर चिंता भी बढ़ रही है। इससे अंतर्राष्ट्रीय आगंतुकों में भय और असुरक्षा की भावना पैदा हुई है। यह शोध उन दृष्टिकोणों और कारकों की जांच करने के संदर्भ में महत्वपूर्ण है जो विदेशियों की व्यक्तिगत सुरक्षा और अपराध का शिकार होने के उनके डर को प्रभावित करते हैं। अनुसंधान आप्रवासियों के बीच अपराध के डर के साथ-साथ इसकी उत्पत्ति और परिणामों के बारे में गहन जानकारी और समझ प्राप्त करने की सुविधा प्रदान करता है।

साहित्य समीक्षा

शोधकर्ताओं द्वारा पर्यटन और अपराध के बीच संबंधों पर शोध कोई नई घटना नहीं है। 25 से अधिक वर्षों से इस साहित्य में विभिन्न प्रकार के अध्ययन बताए गए हैं।

यह सवाल कि क्या पर्यटक क्षेत्र आपराधिक गतिविधि के क्षेत्र हैं, विभिन्न स्थानों पर नियमित रूप से एक शोध विषय रहा है। उदाहरण के लिए, मियामी में एक प्रारंभिक अध्ययन में, मैकफेटर्स और स्ट्रॉन्ग (1974) ने पाया कि उच्च पर्यटक सीजन में संपत्ति अपराध की दर में वृद्धि हुई। जज (1975) ने मेक्सिको में एक समान क्षेत्र संबंध की रिपोर्ट दी। अन्य क्षेत्र जहां बढ़ती अपराध दर को पर्यटन विकास के उप-उत्पाद के रूप में पहचाना जाता है, उनमें हवाई (फूजी और माक, 1979) और टोंगा (अर्बानोविज, 1977) शामिल हैं। ये और बाद के अध्ययन (चेसनी-लिंड, लिंड और शैफस्मा, 1983; फूजी और माक, 1980; पिजाम, 1982) सुझाव देते हैं कि हालांकि पर्यटक क्षेत्र की विशेषताओं और विभिन्न अपराधों के अनुसार भिन्नताएं हो सकती हैं, किन्तु पर्यटक क्षेत्रों में अपराध दर अक्सर अधिक होती है।

शोध का विषय पर्यटकों (विदेशियों) की उत्पीड़न का अनुभव करने की प्रवृत्ति है। इस धारणा के विपरीत कि आगंतुकों को जिस स्थान पर वे जा रहे हैं वहां की स्थानीय आबादी के समान ही अपराध का अनुभव होगा, उनके अलग-अलग व्यवहार प्रतिरूप अन्यथा संकेत देते हैं। इस प्रकार, इलियट और रयान, (1993, पृष्ठ 177) का तर्क है कि पर्यटकों को आंशिक रूप से आपराधिक उत्पीड़न के प्रति संवेदनशील माना जा सकता है, क्योंकि वे अपनी पोशाक में स्पष्ट होते हैं और पोर्टेबल धन की वस्तुएं रखते हैं। वे निश्चिंत और सतर्क हैं। अपराधी के पकड़े जाने पर उन पर आरोप लगाने की संभावना भी कम होती है।श इसी प्रकार, पीड़ित साहित्य में जीवनशैली के संदर्भ में जोखिम की व्याख्या करने वाले सिद्धांत विशेष रूप से प्रासंगिक प्रतीत होंगे (गॉटफ्रेडसन, 1986)। यह स्पष्ट है कि पर्यटक अपेक्षाकृत समृद्ध होते हैं, विशेषकर गरीब देशों में, और इसलिए स्थानीय अपराधियों के लिए आकर्षक लक्ष्य हो सकते हैं। इसके अलावा, पर्यटक जोखिम भरे स्थानों से अनजान हो सकते हैं और 'लापरवाही की संस्कृति' का प्रदर्शन कर सकते हैं, ऐसे तरीकों से व्यवहार कर सकते हैं जो घर पर व्यवहार के लिए असामान्य हैं। उदाहरण के लिए, वे घर के अंदर कम समय और सड़कों पर अधिक समय बिता सकते हैं', यह आदत जोखिम से निकटता से जुड़ी हुई है (गॉटफ्रेडसन, 1984)। अनुभवजन्य साक्ष्य इस बात की पुष्टि करते हैं, उदाहरण के लिए, चेसनी-लिंड और लिंड (1986) ने पाया कि हवाई में पर्यटकों को स्थानीय लोगों की तुलना में संपत्ति अपराध, डकैती और बलात्कार का खतरा अधिक था।

आतंकवाद, हालांकि परिभाषित किया गया है, एक नकारात्मक प्रभाव वाला पर्यटन मांग का एक कारक है (मिहालिक, 2002); जहां आतंकवादी समूह मीडिया के माध्यम से वैश्विक दर्शकों तक तात्कालिक पहुंच का उपयोग करके अपने उद्देश्यों के लिए प्रचार प्राप्त करने के लिए पर्यटन उद्योग की अनूठी भेद्यता को उजागर करते हैं (सोनमेज और ग्रेफ, 1998)। पर्यटन को आतंकवादी समूहों के लिए एक तैयार लक्ष्य के रूप में देखा जाता है जो पर्यटकों को संसाधनों का लाभ उठाने या मौजूदा अभिजात वर्ग पर राजनीतिक लाभ प्राप्त करने के लिए उपयोगी और प्रभावी उपकरण के रूप में उपयोग करते हैं (रिक्टर

एंड वॉ, 1986)। इसके अलावा, उद्योग की प्रकृति पर्यटकों को विशेष स्थानों पर केंद्रित करती है, जिससे वे आतंकवादियों के लिए अपेक्षाकृत आसान लक्ष्य बन जाते हैं।

अनुसंधान क्रियाविधि

अध्ययन की योजना विदेशियों में अपराध के डर की समस्या और अपराध के डर के कारणों का पता लगाने और यह देखने के लिए बनाई गई थी कि यह समस्या विदेशियों को कैसे प्रभावित करती है। शोधकर्ता द्वारा शोध के लिए वर्णनात्मक पद्धति का उपयोग किया गया हैं। अनुसंधान परियोजना के लिए अध्ययन क्षेत्र जोधपुर (शहर) है। शोध का प्रतिरूप संख्या जोधपुर शहर के 60 विदेशियों का सैंपल है जो पर्यटक स्थलों और होटलों में आकस्मिक नमुनालकरण पद्धति के माध्यम से किया गया था। चयनित पर्यटकों के साथ बातचीत करने के लिए शोधकर्ता ने साक्षात्कार अनुसूची तकनीक का उपयोग किया है। शोधकर्ता ने जोधपुर शहर का दौरा करने वाले विदेशियों पर अध्ययन किया। डेटा का विश्लेषण करने के लिए बुनियादी वर्णनात्मक सांख्यिकी का उपयोग किया गया।

अनुसंधान प्रश्न

- विदेशियों में अपराध के डर और डर कारण क्या हैं?
- विदेशियों में अपराध के डर के परिणाम क्या हैं?

अध्ययन का उद्देश्य

- जोधपुर में विदेशियों के बीच भारत में अपराध के डर के स्तर का आकलन करना
- विदेशियों में अपराध के डर के कारणों का पता लगाना।
- विदेशियों में अपराध के डर के परिणामों का पता लगाना।

आंकड़ो विश्लेषण

प्रतिवादी का लिंग	पुरुष	18	30%
	महिला	42	70%
	अन्य	0	0%
आयु	15 से 24	10	16%
	25 से 34	18	30%
	35 से 44	10	16%
	45 से 54	2	3%
	55 से 64	14	23%
	65 से 74	6	10%
नागरिकता	कनाडा	8	13%
	ब्रिटेन	18	30%
	स्पेन	4	7%
	जर्मनी	8	13%
	बेल्जियम	4	7%
	अमेरिका	10	17%
	नीदरलैंड	2	3%
	फ्रांस	6	10%
यात्रा की अवधि	2 महीने से कम	46	77%
	2 से 6 महीने	10	17%
	6 से 12 महीने	2	3%
	1 से 2 साल	2	3%
पीड़ित होने की चिंता	बिल्कुल भी चिंतित नहीं हूं	18	30%
	मुझे चिंता नहीं	24	40%
	तटस्थ	16	27%
	थोड़ा चिंतित हूं	2	3%
	बहुत चिंतित	0	0%
यात्रा केन दौरान किसी भी समय शिकार हुए	हाँ	0	0%
	नहीं	60	100%

वह शहर/कस्बा जहां विदेशियों को अपराध का शिकार होने का सबसे अधिक डर महसूस हुआ	दिल्ली	20	34%
	कहीं भी नहीं	24	40%
	जयपुर	4	7%
	मुंबई	6	10%
	जोधपुर	2	3%
	नासिक	2	3%
	अहमदाबाद	2	3%
डर का कारण	अपराधों की संख्या अधिक	2	5%
	गली में झगड़ा	4	11%
	जेब कटना	2	5%
	विशाल जनसंख्या	14	39%
	लोगों का रवैया	2	6%
	मीडिया द्वारा चित्रण	8	22%
	गरीबी	2	6%
	शहर/कस्बे का विशाल आकार	2	6%
विदेशी यात्री किस तरह के लोगों से सबसे ज्यादा डरते हैं	पेशेवर अपराधी	46	77%
	भिखारी	8	14%
	आवारा	2	3%
	टैक्सी/कैब ड्राइवर	2	3%
	होटल के कर्मचारी	2	3%
यात्रा योजना पर डर का प्रभाव	कोई प्रभाव नहीं	32	53%
	कम प्रभाव	14	23%
	तटस्थ	4	7%
	प्रभाव	4	7%
	संपूर्ण प्रभाव	6	10%

अनुगामी महीने में उत्पीड़न का डर	बिल्कुल नहीं संभावित	32	53%
	संभावना नहीं	0	0%
	तटस्थ	22	37%
	संभावित	4	7%
	बहुत संभावना है	2	3%
भारत में विदेशी कितना असुरक्षित महसूस करते हैं	बहुत असुरक्षित	6	10%
	असुरक्षित	12	20%
	तटस्थ	16	27%
	सुरक्षित	18	30%
	बहुत सुरक्षित	8	13%
क्या उन्हें लगता है कि विदेशियों के अपने देश की तुलना में भारत में अपराध का स्तर क्या है?	अपने देश से भी ऊंचा	14	23%
	अपने देश से भी नीचे	6	10%
	उनके देश के समान	24	40%
	नहीं जानतीं	16	27%
दिन के समय होटल/गेस्ट हाउस के बाहर विभिन्न स्थानों पर असुरक्षित महसूस होना।	बहुत असुरक्षित	0	0%
	असुरक्षित	12	20%
	तटस्थ	20	33%
	सुरक्षित	16	27%
	बहुत सुरक्षित	12	20%
रात के समय अपने होटल/गेस्ट हाउस के बाहर	बहुत असुरक्षित	2	3%
	असुरक्षित	18	30%
	तटस्थ	20	34%
	सुरक्षित	12	20%
	बहुत सुरक्षित	8	13%

अपराध और असामाजिक व्यवहार से निपटने में पुलिस विफल है	पूर्णतः सहमत	0	0%
	सहमत	6	10%
	तटस्थ	28	46%
	असहमत	4	7%
	पूर्णतया असहमत	4	7%
	नहीं जानतीं	18	30%
उत्पीड़न को रोकने के लिए व्यवहार में बदलाव	हाँ	44	73%
	नहीं	16	27%
क्या विदेशियों को अपराध से सुरक्षा के लिए यात्रा के दौरान अपने साथ कोई उपकरण रखना चाहिए	हाँ	16	27%
	नहीं	44	73%
व्यवहार और युक्ति बदलने से चिंता कम रहती है?	हाँ	26	43%
	नहीं	34	57%
उत्तरदाता ने आत्म-सुरक्षा के लिए जो तकनीकें अपनाईं	स्थिति के प्रति सचेत/जागरूक रहें	4	6%
	कुछ नहीं	24	40%
	शालीनता से कपड़े पहनें	4	6%
	रात के समय बाहर निकलने से बचें	10	17%
	अकेले बाहर न जाएं	10	17%
	अजनबियों से बात नहीं करना	4	7%
	स्थिति से अवगत	4	7%
किस अपराध को लेकर चिंता	चोरी	22	36%
	डकैती	10	17%
	मादक पदार्थों की तस्करी के लिए दोषी ठहराया गया	2	3%
	शारीरिक हमला किया जा रहा है	4	7%
	यौन उत्पीड़न का शिकार होना	16	27%
	आतंकी हमला	6	10%
असुरक्षित महसूस करने के कारण	अपरिचित वातावरण	4	20%
	अधिक पितृसत्तात्मक समाज	4	20%
	लोग नस्लीय हैं	2	10%
	ख़राब स्ट्रीट लाइट	4	20%
	गरीब लोग	4	20%
	मीडिया का चित्रण	2	10%

निष्कर्ष

विदेशी पर्यटकों के बीच अपराध के डर पर किए गए इस शोध से पता चलता है कि यात्री उत्पीड़न के प्रति संवेदनशील होते हैं। घरेलू या स्थानीय लोगों की तुलना में विदेशी आगंतुकों के अपराध का शिकार होने की संभावना अधिक होती है। मुख्य उत्तरों और शोध के अध्ययन से, यह निर्धारित किया जा सकता है कि अप्रवासियों के बीच अपराध का डर विकसित करने में कई प्रासंगिक चर हैं। विदेशियों के बीच अपराध के डर की मात्रा निर्धारित करने में प्राकृतिक निगरानी, पुलिस, गार्ड, गाइड की प्रासंगिकता, ये सभी पहलू विदेशियों के बीच अपराध के डर को कम करते हैं। यह पता चला है कि महिला विदेशियों में मुख्य रूप से यौन संबंधी अपराध में पुरुषों की तुलना में अपराध का डर अधिक होता है। शोध इस विचार की भी पुष्टि करता है कि पुरुषों की तुलना में महिलाओं में अपराध का डर अधिक होता है और यह पुरुष और महिलाओं के जन्मजात गुणों से जुड़ा होता है।

प्राथमिक उत्तरों में अपराध घटित होने की सबसे खराब स्थिति में लिंग भिन्नता के बारे में भी जानकारी दी गई। जहां पुरुष ज्यादातर सार्वजनिक स्थानों पर चोरी करने और लूटे जाने या ठगे जाने को लेकर चिंतित रहते हैं, वहीं महिलाएं मुख्य रूप से यौन हमलों को लेकर चिंतित रहती हैं। अध्ययन से पता चलता है कि महिलाएं चोरी और डकैती सहित कई आपराधिक स्थितियों के परिणामस्वरूप चिंता का अनुभव करती हैं, जिसमें उन्हें यौन उत्पीड़न का भी खतरा होता है। अधिकतर महिला उत्तरदाताओं और कुछ पुरुष उत्तरदाताओं ने संकेत दिया कि वे रात में यात्रा नहीं करते हैं और खुद को खतरे में नहीं डालते हैं क्योंकि वे किसी भी अपराध से बचने के लिए हमेशा अवांछित गतिविधियों से दूर रहते हैं।

मीडिया और अन्य अप्रत्यक्ष अनुभव के माध्यम से प्रचारित अपराध विदेशियों के बीच चिंता की डिग्री को बढ़ाते हैं क्योंकि प्राथमिक शोध इस परिणाम का समर्थन करता है कि अधिकांश उत्तरदाताओं ने इस बात पर प्रकाश डाला कि मीडिया रिपोर्ट, सुनी हुई कहानियां और पीड़ित की व्यक्तिगत जानकारी ने अपराध के भय के स्तर को बढ़ा दिया है।

दूसरी ओर आतंकवादी हमलों का डर अधिकतर विदेशियों में पाया गया। चूंकि भारत की आबादी बहुत ज्यादा है, इसलिए ज्यादातर विदेशी लोग शहरों, ट्रेन या किसी सार्वजनिक स्थानों पर बहुत ज्यादा भीड़ देखकर चिंता महसूस करते हैं। दिल्ली, वाराणसी, मुंबई, जयपुर ऐसे प्रमुख शहर हैं जहां विदेशियों को सबसे ज्यादा डर लगता है क्योंकि यहां आबादी बहुत ज्यादा है और अपराध दर भी अधिक है।

हालाँकि कुल मिलाकर विदेशी पर्यटकों को लगता है कि भारत सुरक्षित देश है और वे भारत में कहीं भी आसानी से आ-जा सकते हैं। शोध के मुताबिक ज्यादातर पर्यटक समूह में घूमना पसंद करते हैं। ज्यादातर विदेशी लोग अपने परिवार और दोस्तों के साथ घूमना पसंद करते हैं, वे गाइड और होटलों की प्री बुकिंग के साथ समूह में आने को प्राथमिकता देते हैं।

अध्ययन से पता चलता है कि अधिकांश विदेशी पर्यटकों में अपराध का शिकार होने को लेकर कुछ हद तक डर होता है। उत्तरदाताओं के अनुसार, वे जोधपुर में सुरक्षित महसूस करते हैं; उनका मानना है कि जोधपुर में अपराध चोरी, दुर्व्यवहार आदि जैसे छोटे अपराधों तक ही सीमित हैं। वे यह भी सोचते हैं कि जोधपुर में लोग सामाजिक और मृदुभाषी हैं, इसलिए सड़क या ऐतिहासिक स्थान पर सुरक्षा की भावना काफी अधिक है। निष्कर्षत:, जोधपुर में अपराध का डर न्यूनतम है।

सुझाव:

विदेशियों में अपराध का डर कैसे कम करें:

- प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह अपने शहरों और विशेष रूप से ऐतिहासिक स्थानों पर जहां ज्यादातर विदेशी लोग आते हैं, एक स्वस्थ, सुरक्षित और संरक्षित वातावरण बनाएं।
- जनता में जागरूकता पैदा करें और पर्यटन और अर्थव्यवस्था के संबंध के बारे में बताएं कि पर्यटन किस प्रकार आर्थिक विकास में मदद करता है।
- पुलिस कर्मियों और सुरक्षा गार्डों की संख्या बढ़ाएँ, दिन और रात में गश्त बढ़ाएँ। पुलिस द्वारा विदेशियों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध और प्रभावी संचार बनाए रखें।
- अपराध के हॉटस्पॉट का पता लगाएं और स्थान के अनुसार काम करें।
- बढ़ी हुई रोशनी, सार्वजनिक स्थान सुरक्षा उन्नयन और सीसीटीवी जैसे लक्ष्य सख्त उपाय भी अपराध और अपराध के डर को कम करने में मदद कर सकते हैं।
- नियमित गश्त/कर्मचारियों की सीसीटीवी कवरेज की उच्च दृश्यता।
- स्थानीय समाचार पत्र/रेडियो स्टेशन के साथ सकारात्मक अभियान विकसित करना।
- क्षेत्र में अपराध दर और असामाजिक व्यवहार को कम करें जिससे विदेशियों के बीच अपराध के डर को कम करने में मदद मिलेगी।
- विशेष रूप से उस क्षेत्र में जहां विदेशी लोग आते हैं, पड़ोस की निगरानी और सड़क वार्डन कार्यक्रम विकसित करना।
- विदेशियों की सुरक्षा के लिए श्क्या करें और क्या न करेंश दिशानिर्देश जारी करें और सभी पर्यटकों और रेस्तरां, होटल, टैक्सी कैब, सार्वजनिक स्थान, गाइड को प्रदान करें।
- सरकार को पर्यटकों की सुरक्षा के लिए कोई नीति बनानी चाहिए और उसे लागू करना चाहिए।
- सरकार को पर्यटकों की मदद के लिए एक विशेष टोल फ्री हेल्प लाइन पोर्टल शुरू करना चाहिए।

संदर्भ सूची

फेरारो, के.एफ. (1996)। वुमन्स फियर ऑफ विक्टमाइजेसन: शैडो ऑफ सेक्सुअल असॉल्ट। सोशल फोर्सेस 75(2), 667-690।

फेरारो, के.एफ., और लाग्रेंज, आर.एल. (1988)। पुराने पीपल ऑफरेड ऑफ क्राइम। जर्नल ऑफ ऐजज स्टडीज, 2(3), 277-287।

लाग्रेंज, आर.एल., फेरारो, के.एफ., और सुपांसिक, एम. (1992)। पार्शिवद रिस्क एंड फियर ऑफ क्राइम: रोल ऑफ सोशल एंड फिजिकल इनसिविलिटीज। जर्नल ऑफ रिसर्च इन क्राइम एंड डिलिनक्वेंसी, 29(3), 311-334।

मेस्च, जी.एस. (2000)। परसेप्शन ऑफ रिस्क, लाइफस्टाइल ऐक्टिविटीस, एंड फियर ऑफ क्राइम। डेवियंट बिहेवियर, 21(1), 47-62।

राडार, एन.ई., मई, डी.सी., और गुड्रम, एस. (2007)। एन एम्पेरिकल एसेसमेंट ऑफ द ष्थ्रेट ऑफ विक्टमाइजैशनष: कंसीड्रिंग फियर ऑफ क्राइम, पर्सीव्ड रिस्क, एवॉइडेंस एंड डिफेनसिव बव्हिऑनर। सोशियोलॉजीकल स्पेक्ट्रम, 27(5), 475-505।

राउंट्री, पी.डब्ल्यू., और लैंड, के.सी. (1996)। पर्सीव्ड एविडेंस ऑफ काँसेपटूअली डिस्टिंक्ट रिएक्शन इन सर्वे डाटा। सोशियल फोर्सेस 74(4), 1353-1376।

वॉर्र, एम. (2000). फियर ऑफ क्राइम इन द यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका : एवेनुएस फॉर रिसर्च एण्ड पॉलिसी। क्रिमिनल जस्टिस, 4(4), 451-489.

वायंट, बी.आर. (2008)।मल्टीलेवल इंपेक्टस् ऑफ पर्सीव्ड इनसिविलिटीज एण्ड पर्सेप्शनस् ऑफ क्राइम रिस्क ओं फियर ऑफ क्राइम: आइसोलेटींग एंडोजीनियस इम्पैक्टस्। जर्नल ऑफ रिसर्च इन क्राइम एंड डिलिनक्वेंसी, 45(1), 39-64।

मैकफेटर्स, एल.आर., और स्ट्रॉन्ग, डब्ल्यू.बी. (1974)। क्राइम एस एन एनवायरनमेंटल एक्सटर्नलिटी ऑफ टूरिजमः मियामी, फ्लोरिडा। लैंड एक्नामिक्स, 50(3), 288-292।

जुड , जि. डी . (1975). टुरिजम एण्ड क्राइम इन मेक्सिको। सोशल क्वातर्ली, 324-330।

फूजी, ई. टी., और माक, जे. (1979)। द इम्पैक्टस् ऑफ ऑल्टर्नटिव रिजनल डेवलपमेंट स्तरटेजिस ओं क्राइम रेट्स : टुरिजम वस् ऐग्रिकल्चर इन हवाई। द अनल्स ऑफ रिजनल साइंस, 13, 42-56।

अर्बनोविक्ज, सी.एफ. (1977)। टुरिजम इन टोंगाः ट्रबल्ड टाइम्स (पृ. 83-92)। यूनिवर्सिटी ऑफ पेंसिल्वेनिया प्रेस।

चेस्नी-लिंड, एम., लिंड, आई. वाई., और शेफस्मा, एच. (1983)। सैल्यन्ट फैक्टर्स इन हवाई'स् क्राइम रेट। मनोआ, हाईः यूनिवर्सिटी ऑफ हवाई।

फूजी, ई.टी., और माक, जे. (1980)। टुरिजम एण्ड क्राइमः इम्प्लिकैशन फॉर रीजनल डेवलपमेंट पॉलिसी। रीजेनल स्टडीस , 14(1), 27-36.

पिजम, ए. (1982)। टुरिजम एण्ड क्राइमः इस देयर ए रीलैशन्शिप ? जर्नल ऑफ ट्रैवल रिसर्च, 20(3), 7-10।

केली, बी. टी. (1997)। एपीडएमिऑलोजी ऑफ सीरीअस वाइलन्स। यू एस डिपार्ट्मन्ट ऑफ जस्टिस प्रोग्राम्स, ऑफिस ऑफ जूवेनाइल जस्टिस एण्ड डिलिनक्वेंसी प्रीवेन्शन।

इलियट, एल.आई.एस.ए., और रयान, सी.एच.आर.आई.एस. (1993)। द इम्पैक्ट ऑफ क्राइम ओं कोर्सीकन टुरिजमः ए डिसक्रीपतिव असेस्मेंट, 3, 287-293।

गॉटफ्रेडसन, एम. आर. (1986)। सबस्टेनसीव कान्ट्रब्यूशनस् ऑफ विक्टमजैशन सर्वेस। क्राइम एण्ड जस्टिस, 7, 251-287.

मिहालिक, टी. (2002)। टुरिजम एण्ड इकनॉमिक डेवलपमेंट इसुस। टुरिजम एण्ड डेवलपमेंट : कान्सेप्टस् एण्ड इसुस, 81-111।

सोनमेज, एस.एफ., और ग्रेफ, ए.आर. (1998)। इन्फ्लूअन्स ऑफ टेररिजम रिस्क ओंफ फोरेन टुरिजम डिसिशन। एनल्स ऑफ टूरिज्म रिसर्च, 25(1), 112-144।

रिक्टर, एल.के., और वॉ जूनियर, डब्ल्यू.एल. (1986)। टेररिजम एण्ड टुरिजम आस लाजिकल कॉम्पनीऑनस। टुरिजम मैनिज्मन्ट, 7(4), 230-238.

21वीं सदी में राज्य और राज्य की प्रासंगिकता पर महात्मा गांधी के विचार

सुभाष चन्द उपाध्याय

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

सार-संक्षेप:

महात्मा गाँधी एक व्यवहारिक राजनीतिक चिंतक थे। उन्होंने भारत की वर्तमान स्थिति पर अपने विचार व्यक्त किए। पश्चिमी या यूरोपीय देशों पर ध्यान केंद्रित करने के बाद, उन्होंने राज्य प्रणाली की आलोचना की। महात्मा गाँधी की धारणाएँ हिंदू धर्म, औपनिवेशिक राज्य के अनुभव, कुछ पश्चिमी दार्शनिकों जैसे कई कारकों से प्रभावित हैं। राज्य के बारे में उनका दृष्टिकोण आलोचनात्मक है। गांधीजी ने राज्य के व्यापक कार्य-क्षेत्र का समर्थन नहीं किया। वे ग्राम-स्तर के स्वेच्छा प्रेरित सहयोग पर बल देते थे। महात्मा गाँधी का मानना था की राज्य एक आत्मा रहित मशीन और हिंसा का सुव्यवस्थित रूप है जो समाज के लिए हानिकारक हैं। इसलिए गांधीजी राज्यविहीन लोकतंत्र को आदर्श समाज मानते थे। प्रस्तुत शोध आलेख में राज्य की वर्तमान समय में अपरिहार्यता और इस पर महात्मा गाँधी के विचारों का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द: गांधी की राज्य की अवधारणा, आधुनिक सभ्यता, दार्शनिक अराजकतावादी।

प्रस्तावना:

गांधीजी मूलत: धार्मिक, मानवतावादी, कर्मयोगी और अन्त: प्रेरणा के पुरुष थे। उन्होंने वर्तमान भारत में वास्तविक स्थिति का सामना करते हुए विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में अपने विचारों को विकसित किया। गांधीजी ने राजनीतिक विचारों का बहुत कम अध्ययन किया था लेकिन जो कुछ भी उन्होंने पढ़ा वह उन्होंने अच्छी तरह आत्मसात कर लिया इसलिए उनके विचार आज भी प्रासंगिक है। गांधीजी एक प्रसिद्ध भारतीय राजनीतिक नेता थे जिन्होंने राजनीतिक चिंतन को पुस्तक से व्यवहारिकता के धरातल पर उतार दिया। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रवादी आंदोलन का नेतृत्व किया। भारत के विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक और स्वाधीनता अभियानों में उनकी भागीदारी महत्वपूर्ण थी। जिसके तहत उनके राज्य की अवधारणा को एक नई धारणा माना जाता है। जिसमें उन्होंने राजनीतिक विचार को विकसित करने के अपने दृष्टिकोण का वर्णन किया। इस विशिष्ट दृष्टिकोण में उदारवाद, आदर्शवाद, व्यक्तिवाद और दार्शनिक अराजकतावाद जैसे सभी समकालीन आवश्यक विचारों का सम्मिश्रण है। पारंपरिक रूप से महात्मा गाँधी, प्लेटो और अरस्तू जैसे राजनीतिक दार्शनिक नहीं थे। ग्रीक दार्शनिकों से परे, मनुष्य के वास्तविक समस्याग्रस्त मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करने के बाद उन्होंने उसके निराकरण हेतु अपना विचार दिए। अहिंसा गांधीजी के राजनीतिक दर्शन का मुख्य बिंदु है। गांधीजी के अनुसार सच्ची अंहिसा वह है जो नि:स्वार्थ और निरपेक्ष हो। गांधीजी की अहिंसा में कायरता के लिए कोई स्थान नहीं है।

राज्य संबंधी महात्मा गाँधी की व्याख्या:

महात्मा गाँधी द्वारा राज्य की धारणा का वर्णन करने के लिए महात्मा गाँधी नें सार्वभौमिक सत्य का सहारा लिया और बताया कि, राज्य केंद्रित और संगठित रूप में हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है। महात्मा गाँधी भारतीय आधुनिक राजनीतिक युग के महत्वपूर्ण विद्वानों में से एक थे। उनके सामाजिक और राजनीतिक विचारों ने भारतीय राजनीति, भारतीय सामाजिक सुधार और भारतीय विकास प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनका मानना था कि जब राज्य की शक्ति में वृद्धि होगी तो राज्य हानिकारक संस्थान होगा। उनके अनुसार, मनुष्य में आत्मा होती है, लेकिन राज्य एक आत्मा रहित मशीन है। इसलिए राज्य हिंसा की शक्ति को लागू कर सकता है। राज्य की जटिल संरचना और उसके कार्यों के कारण राज्य मानवीय नैतिकता का विकास नहीं कर सकता है। यह संस्था व्यक्ति की स्वतंत्रता को नुकसान पहुंचाती है।

महात्मा गाँधी के अनुसार राज्य व्यक्तिगत निर्णय लेने के लिए एक हस्तक्षेपवादी है। व्यक्ति राज्य पर अधिक निर्भर है, क्योंकि राज्य निर्णय लेने वाला उच्च निकाय है। व्यक्ति राज्य के कार्यों पर निर्भर है। राज्य पूरे समाज को एक आत्मा रहित संस्था के रूप में संचालित करने के लिए शासक के रूप में कार्य करता है। राज्य व्यक्ति की भावना और प्रेरणा को नकारता है। राज्य निष्ठा के लिए हिंसात्मक तरीके को लागू कर सकता है। राज्य न केवल भौतिक शक्ति का प्रयोग करता है बल्कि समाज के सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र के संदर्भ में नियंत्रण भी चाहता है।

राज्य एक अमूर्त संस्था है। इसमें बल का उपयोग करने के लिए प्रत्यक्ष भागीदारी है। राज्य कानून, नियमों और विनियमों के कार्यान्वयन के माध्यम से हिंसा का उपयोग कर सकता है। महात्मा गाँधी के अनुसार राज्य का गठन बल को लागू करने के लिए होता है। महात्मा गाँधी ने राज्य-संप्रभुता की शक्ति का विरोध किया था क्योंकि राज्य विभिन्न दृष्टिकोण से हिंसा को लागू कर सकता है:

1. युद्ध की घोषणा के माध्यम से।
2. दंड प्रणाली के माध्यम से।
3. शोषणकारी आर्थिक प्रणाली के माध्यम से।

महात्मा गाँधी को पश्चिमी देशों से आक्रामक भूमिका का सामना करना पड़ रहा था। उन्होंने सरकार के संसदीय स्वरूप के महत्व से इनकार किया। धन की लूट, शक्ति का प्रयोग और विचारधारा का निर्माण युद्ध के पीछे के मुख्य कारण थे। प्राचीन काल से ही मनुष्य इस नीति का पालन करता रहा है। इसलिए महात्मा गाँधी मानते थे कि आधुनिक सभ्यता और हिंसा दोनों शब्द एक-दूसरे के पूरक हैं।

महात्मा गाँधी द्वारा राज्य की आलोचना:

महात्मा गाँधी ने राज्य की धारणा की आलोचना की। उनका मानना है की व्यक्ति आत्म-जागरूक और नैतिक प्राणी हैं। इसलिए वे राज्य जैसी अनैतिक संस्था को समायोजित करने में असमर्थ हैं। मनुष्य को राज्य के बजाय वैकल्पिक सामाजिक संरचना प्रणाली की कल्पना करनी होगी। आम तौर पर गांधीजी ने 1920 के दशक से पहले राज्य की सकारात्मक भूमिका को स्वीकार किया, 1920 के दशक के बाद उन्होंने राज्य की भूमिकाओं को पूरी तरह से अस्वीकार कर दिया। अहिंसा दर्शन से, गांधीजी को राज्यविहीन अहिंसात्मक लोकतंत्र की कल्पना करने के लिए प्रेरित किया गया था। उनका मानना था कि राज्य हिंसा में निहित है और इसलिए अनिवार्य रूप से उत्पीड़न और शोषण का एक साधन है। राज्य बल का उपयोग करता है, और इसके अस्तित्व को नैतिक रूप से उचित नहीं ठहराया जा सकता है, हिंसा के उपयोग से राज्य व्यक्ति की व्यक्तित्व को नष्ट करके प्रगति में बाधा डालता है (भट्टाचार्य, 2010, 412)।

महात्मा गाँधी ने स्पष्ट रूप से राज्य और समाज में अंतर किया था। वास्तव में उन्होंने पूर्ण व्यक्तिगत स्वतंत्रता को मूर्त रूप दिया। सामाजिक नियंत्रण की आवश्यकता के बारे में बात करने के बाद, उन्होंने राज्य के चरम स्तर तक पहुंचने के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर जोर दिया। उन्होंने राज्य की पूर्ण शक्ति और जिम्मेदारी की निंदा की। हालाँकि राज्य के पास एक कानूनी शक्ति है, लेकिन लोगों के पास वास्तविक रूप से संप्रभु शक्ति है। गांधीजी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को अधिक महत्व देते रहे हैं लेकिन वे सामाजिक नियंत्रण की आवश्यकता पर चिंतित थे। उन्होंने व्यक्तिगत और राज्य संबंधों पर परस्पर निर्भरता का समर्थन किया।

दोनों विपरीत प्रवृत्तियाँ उनके राजनीतिक विचारों पर ध्यान केंद्रित कर रही हैं। आदर्शवाद और यथार्थवाद के मिश्रण को महात्मा गाँधी के राजनीतिक विचार में वर्णित किया जा सकता है। वह आदर्शवाद के अर्थ में एक राजनीतिक अराजकतावादी थे, दूसरे अर्थ में वे एक यथार्थवादी थे। वह आदर्शवाद के दृष्टिकोण से एक अराजकतावादी थे। उन्हें प्रबुद्ध अराजकता का समर्थन प्राप्त था। सब एक-दूसरे के शासक हैं। महात्मा गाँधी ने प्रस्ताव दिया कि आदर्श राज्य में कोई राजनीतिक शक्ति नहीं है, क्योंकि राज्य का कोई अस्तित्व नहीं है। जब हम मानते हैं कि गांधीजी एक यथार्थवादी सिद्धांतकार थे-उन्होंने सचेत रूप से संकेत दिया कि व्यक्ति का आदर्श जीवन पूरी तरह से लागू नहीं होता है। उनका पूर्ण लक्ष्य एक राज्यविहीन समाज का निर्माण करना था, लेकिन वे अन्य अराजकतावादी सिद्धांतकारों की तरह राजनीतिक शक्ति की पूरी तरह से उपेक्षा नहीं करते हैं। उनका मानना था कि समाज में ऐसे कुछ मामले हैं जिन्हें राजनीतिक शक्ति के प्रभाव के बिना लागू किया जाता है। उन्होंने सीमित सरकार का समर्थन किया। उन्होंने थोरो के विचारों का समर्थन किया-सबसे अच्छी सरकार है, जो सबसे कम शासन करती है। उन्होंने सरकार की सत्ता को सीमित करने पर बल दिया। उन्होंने सरकार की केंद्रीकरण प्रक्रिया का विरोध किया। उन्होंने सरकार के विकेंद्रीकरण पर विचारों का सही समर्थन किया। विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया भौगोलिक, क्षेत्रीय और तकनीकी होनी चाहिए। उन्होंने पंचायत स्तर पर स्वशासन का समर्थन किया। महात्मा गाँधी राज्य व्यवस्था के अस्तित्व से पूरी तरह से इनकार नहीं करते हैं। उन्होंने देखा कि यह हिंसा का प्रतीक है। व्यक्तियों की विकास प्रक्रिया में राज्य मुख्य बाधा है। वह भविष्य में भारत में एक राज्य-रहित समाज का निर्माण करना चाहते थे, जहाँ हिंसा का कोई अस्तित्व न हो।

गांधीजी थोरो की तरह, राज्य को हिंसा पर आधारित एक अनिवार्य बुराई मानते थे। तथा उस शासन व्यवस्था को सबसे अच्छा मानते थे जो लोगों की स्वतंत्रता मं कम से कम बाधा डाले। गांधीजी के मत में...

(i) राज्य का मूल हिंसा में है।
(ii) वह मनुष्य के व्यक्तित्व और स्वतंत्रता का अतिक्रमण करता है।
(iii) एक अहिंसक समाज में राज्य एक अनावश्यकता ही होगी। एक आदर्श स्थिति में कोई राजनीतिक सत्ता नहीं होती, क्योंकि उसमें कोई राज्य नहीं होता।

राज्य के संबंध में महात्मा गाँधी और कार्ल मार्क्स के मध्य वैचारिक समानताएँ और असमानताएँ:

महात्मा गाँधी और मार्क्स दोनों ही राज्य तंत्र का उन्मूलन चाहते थे। कार्ल मार्क्स के अनुसार, राज्य पूंजीपतियों की कार्यकारी समिति है। गांधी के अनुसार, राज्य क्रूर शक्ति के अवतार के लिए एक शैतान है। आदर्श राजनीतिक व्यवस्था पर महात्मा गाँधी के विचार में न तो हिंसा का कोई उपयोग है, न ही किसी दमन नीति का, केवल अहिंसा का तरीका है जो समाज में लागू किया जाएगा। समकालीन सामाजिक और राजनीतिक विचारों को महात्मा गाँधी ने केंद्रीकृत शक्ति का विरोध करते हुए अन्याय के रूप में वर्णित किया था, लेकिन वे संपूर्ण राज्य-प्रणाली को समाप्त नहीं करना चाहते थे। हमें मार्क्स और गांधी जी की धारणाओं के बीच कुछ समानताएं मिलती हैं-

1. गांधी और मार्क्स दोनों ने राज्य को हिंसा करने वाली संस्था के रूप में वर्णित किया।
2. दोनों एक संस्था के रूप में राज्य की यांत्रिकता पर ध्यान केंद्रित करते हैं।
3. गाँधी और मार्क्स दोनों ही राज्यविहीन एवं वर्गविहीन समाज बनाने के लिए राज्य को समाप्त करना चाहते थे।
4. दोनों राज्य को एक अपरिवर्तनीय संस्थान मानते हैं जिसकी प्रकृति में परिवर्तन नही हो सकता।

दोनों राजनीतिक विचारकों के बीच कुछ विषमताएँ:

1. मार्क्स ने वर्ग पर अत्यधिक ध्यान केन्द्रित किया हैं अतएव मार्क्स वर्ग संघर्ष को अनिवार्य मानते हैं जबकि गाँधीजी का वर्ग संघर्ष में विश्वास नही था।
2. मार्क्स भौतिकवादी थे, वहीं महात्मा गाँधी आध्यात्मिक थे।
3. अहिंसा, सत्य, ट्रस्टीशिप, महात्मा गाँधी के कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं- वर्ग संघर्ष, ऐतिहासिक भौतिकवाद, द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, अधिशेष मूल्य का सिद्धांत, सर्वहारा वर्ग की तानाशाही कार्ल मार्क्स के मूल सिद्धांत हैं।

राम राज्य: महात्मा गाँधी की राज्य संबंधी अवधारणा

21वीं सदी में राज्य की गांधीवादी अवधारणा बहुत महत्वपूर्ण है। वास्तव में वे अहिंसा और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के उपासक हैं। उन्होंने सीमित शासन और राज्यविहीन समाज का प्रस्ताव रखा। गांधीजी बहुलवादी समाज में विश्वास करते हैं। वह धार्मिक सद्भाव पर ध्यान केंद्रित करते हैं। वह जानते हैं कि लोगों को कैसे एकजुट किया जाए। वह तर्कवाद का पालन करते हैं। उनका रामराज्य एक आदर्श है न कि एक प्रतीक। राम शांति और नैतिकता के प्रतीक हैं। सभी एक-दूसरे का सम्मान करते हैं और एक-दूसरे से प्यार करते हैं। लेकिन सवाल यह है कि यह कैसे संभव है? कभी-कभी हम कह सकते हैं कि वे एक आदर्शवादी विचारक हैं, लेकिन उनका विचार श्रेष्ठ है। उनके पास अद्भुत व्यक्तित्व है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों का आनंद लेता है-ये अधिकार नैतिकता और मानदंडों पर आधारित हैं। उनका मतलब एक हस्तक्षेपवादी के रूप में राज्य की भूमिका से नहीं है। हम देखते हैं कि कैसे राजनीतिक दल लोगों पर नियम लागू करने के लिए नागरिकों या सरकारी नीतियों को प्रभावित कर रहे हैं। राज्य की गांधीवादी अवधारणा पर शिक्षाविदों, राजनीतिक विचारकों, शोध विद्वानों द्वारा चर्चा की गई है। धार्मिक समूह, वर्ग, जातीय, जनजातीय जैसे विभिन्न संघर्ष हैं-ये सभी गांधीवादी विचारों के प्रभाव के बाद एकजुट हो सकते हैं। सांप्रदायिक एकता, अस्पृश्यता को दूर करने, ग्रामीण उद्योगों का निर्माण, बुनियादी शिक्षा, महिलाओं का समग्र विकास, लोगों के बीच आर्थिक समानता-इन सभी के बारे में उनके विचारों को न केवल भारत में प्राथमिकता दी जाती है, बल्कि पूरी दुनिया में इसकी आवश्यकता है। सामूहिक विनाशकारी हथियारों के उपयोग का विरोध करना, परमाणु हथियारों से संबंधित प्रयोग, गांधी जी के बहुत महत्वपूर्ण विचार हैं। उनका दावा है कि सीमित प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग किया जाएगा और फिर आने वाली पीढ़ी को लाभ होगा। यही कारण है कि वे सतत विकास के समर्थक हैं। मशीन उद्योगों का अत्यधिक उपयोग, मनुष्य की भव्य जीवन शैली-उन्होंने इस प्रकार के व्यवहार का विरोध किया। वह प्रदूषण विरोधी वातावरण के समर्थक हैं।

महात्मा गाँधी के राज्य रहित समाज का निहितार्थ:

महात्मा गाँधी दुनिया के मूल्यवान विचारकों और प्रसिद्ध व्यक्तित्वों में से एक हैं। वह प्रेम, सत्य, अहिंसा, स्वशासन, व्यक्ति के अधिकारों पर आधारित आदर्श समाज के निर्माण पर ध्यान केंद्रित करते हैं। भीखु पारेख के शब्द में श्हालांकि वे हिंदू धर्म, ईसाई धर्म और जैन धर्म से बहुत प्रभावित थे, उनके धार्मिक विचार उन सभी से परे थे और अपने आप में एक वर्ग में थे, भगवान में विश्वास स्पष्ट रूप से इसका आधार था।श मूल रूप से समकालीन सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों पर गांधी के विचार उदार शब्द पर केंद्रित थे, जहां व्यक्ति राज्य-रहित समाज से अपने विशेषाधिकार प्राप्त करता है। महात्मा गाँधी ने हरिजन में कहा था "as to whether in an ideal society] there should be any or no government" मुझे नहीं लगता, हमें इस समय इस बारे में चिंता करने की आवश्यकता है। अगर हम ऐसे समाज के लिए काम करने के लिए तैयार हैं, तो यह धीरे-धीरे अस्तित्व में आ जाएगा, जिससे लोगों को इसका लाभ मिल सकता है। यूक्लिड की रेखा बिना चौड़ाई के एक है लेकिन अब तक कोई भी इसे खींचने में सक्षम नहीं हुआ है और न ही कभी होगा। फिर भी आदर्श रेखा को ध्यान में रखते हुए ही हमने ज्यामिति में प्रगति की है। यहाँ जो सच है वह हर आदर्श के लिए सच है" (हरिजन,15-09-46)। व्यक्ति की प्रधानता में गांधी जी के विश्वास ने उन्हें बहुसंख्यक शासन पर आधारित स्व-शासित और आत्मनिर्भर ग्रामीण समुदायों से बने वास्तव में अहिंसक राज्य की अवधारणा के लिए प्रेरित किया। हिंद स्वराज (1909) में उनका कहना है कि सच्ची स्वतंत्रता तभी संभव होगी जब आधुनिक सभ्यता पूरी तरह से नष्ट हो जाएगी और सरकारों, संसदों, रेलवे और परिवहन के अन्य तेज साधनों, मशीनरी, डॉक्टरों, वकीलों और सशस्त्र बलों के बिना एक नया समाज बनाया जाएगा, जिसमें हिंसा को लोगों द्वारा पूरी तरह से त्याग दिया जाता है और निष्क्रिय प्रतिरोध के माध्यम से उनके द्वारा अधिकार का विरोध किया जाता है (बंदोपाध्याय, 123-124)। 1915 में भारत लौटने के बाद गांधी ने लगातार कई अवसरों पर सरकार के सभी रूपों के लिए अपनी नापसंदगी व्यक्त की, इस प्रकार राज्य की गांधी जी की अस्वीकृति दो शास्त्रीय अराजकतावादी तर्कों पर आधारित है: राज्य एक ऐसे प्राधिकरण का प्रतिनिधित्व करता है जो व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए खतरा पैदा करता है जो सभी संस्थानों से ऊपर है, और राज्य एक संगठित रूप में हिंसा (स्पष्ट रूप से लोगों पर की गई) का प्रतिनिधित्व करता है।

महात्मा गाँधी द्वारा यूरोपीय सभ्यता/आधुनिक सभ्यता की आलोचना:

महात्मा गाँधी का मतलब सभ्यता को उन्नत तकनीक, हथियारों के उपयोग, भौतिकवाद के उपयोग आदि के मिश्रण के रूप में नहीं है। वह यांत्रिक कारण के लिए उपयोग किए जाने वाले भौतिकवाद को इंगित करता है। सीविलाइजेशन वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति, उत्पादन की व्यापक प्रक्रिया, संचार प्रणाली के विकास में विश्वास करता है। इस प्रकार मनुष्य मानवीय और नैतिकता से यांत्रिक रूप में बदल गया, जिसे मनुष्य का प्राकृतिक रूप होने का दावा किया जाता है। उन्होंने सभ्यता की प्रक्रिया की कड़ी निंदा की। महात्मा गाँधी ने आधुनिक सभ्यता का विचार विभिन्न पश्चिमी सिद्धांतकारों से लिया, उदाहरण के लिए रूसो, टॉल्स्टॉय, रस्किन। आम तौर पर हम आधुनिकीकरण की सकारात्मक भूमिका को स्वीकार करते रहे हैं, लेकिन गांधी जी इस दृष्टिकोण से असहमत थे। महात्मा गाँधी ने इस बात पर ध्यान केंद्रित किया कि आधुनिक प्रौद्योगिकी का उपयोग मनुष्य के विकास की प्रक्रिया नहीं है।

महात्मा गाँधी ने यूरोपीय सभ्यता को देखा। उनका मानना था कि यूरोपीय सभ्यता एक आधुनिक सभ्यता है। उन्होंने आधुनिक सभ्यता की आलोचना की। उनका ध्यान यूनाइटेड किंगडम की औद्योगिक क्रांति और फ्रांस की राजनीतिक क्रांति की ओर महत्वपूर्ण था। उन्होंने तर्क दिया कि पूँजीवाद का विकास औद्योगिक क्रांति का प्रत्यक्ष प्रभाव था। गांधीजी की अपनी राय में, उन्होंने आधुनिक सभ्यता का विरोध किया। उन्होंने कई यूरोपीय देशों में आधुनिक सभ्यता

प्रक्रिया के अनुकूलन की आलोचना की। आधुनिक पश्चिमी सभ्यता के प्रति उनका रवैया विकृत, हिंसक, आत्म-केंद्रित, स्वार्थ और वस्तुनिष्ठता की कमी से भरा था। उन्होंने अपनी आत्मकथा श्द स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरिमेंट विद ट्रुथश में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि कैसे पश्चिमी सभ्यता मानव विकास की प्रक्रिया को बुरी तरह प्रभावित करती है। आधुनिक सभ्यता के प्रति उनका दृष्टिकोण आलोचनात्मक था। आधुनिक सभ्यता अमानवीय, अप्रासंगिक थी।

आधुनिक सभ्यता की अवधारणा गांधी जी के दृष्टिकोण के मूल भागों में से एक है। उन्होंने आधुनिक सभ्यता का उल्लेख किया जिसे यूरोपीय सभ्यता कहा जाता है। हम आम तौर पर अधिकार, समानता और उदार लोकतंत्र के सकारात्मक प्रभावों को स्वीकार करते हैं। लेकिन महात्मा गाँधी ने उन शब्दों के सकारात्मक प्रभाव को नजरअंदाज कर दिया। आधुनिक औद्योगिक सभ्यता की परिभाषा वास्तव में एक विवादास्पद मुद्दा है क्योंकि यह अक्सर तर्कवाद, धर्मनिरपेक्षता, औद्योगीकरण, वैज्ञानिक संस्कृति, व्यक्तिवाद, प्रकृति की तकनीकी महारत, वैश्वीकरण और उदार लोकतंत्र की दिशा में ड्राइव जैसी विभिन्न विशेषताओं के बारे में परस्पर विरोधी तर्कों और प्रतिवादों का प्रतीक है। इसके गुण और अवगुणों के बावजूद, वास्तव में आधुनिक सभ्यता का अधिकांश हिस्सा जो हमें सदियों से विरासत में मिला है, वह वैचारिक और संरचनात्मक दोनों रूप से एक पश्चिमी निर्माण है और इसलिए गैर-पश्चिमी समाजों में इसकी अप्रयुक्त उपयोगिता और प्रासंगिकता के बारे में एक गंभीर जांच के लिए खड़ा है, जहां सदियों से जीवन का ध्यान हमेशा सत्ता और आक्रामकता में उलझने के बजाय त्याग और मोक्ष का रहा है। और यह इस संदर्भ में है कि गांधी श्आधुनिकताश के एक प्रखर आलोचक के रूप में उभरे क्योंकि उन्होंने सदियों से भारतीय समाज द्वारा झेली गई बुराइयों और बुराइयों का समाधान लाने के लिए पश्चिमी लोकाचार और विकास के मॉडल का पालन करने के खतरे की कल्पना की (चट्टोपाध्याय, 2012, 51-52)।

महात्मा गाँधी पूँजीवाद और औद्योगिक समाज के खिलाफ थे। ये आधुनिक सभ्यता के प्रभाव हैं। पश्चिम के खिलाफ गांधी के मामले की उचित समझ के लिए, हमें गांधी और हैबर्मास दोनों की वैधता के असत्य के प्रति प्रतिक्रिया, स्वर्गीय पूंजीवादी राज्य के दावों, जिनकी साम्राज्यवादी और फासीवादी अभिव्यक्तियों ने उन्हें पश्चिमी उदार लोकतंत्र की झूठी नींव का खुलासा किया, को आलोचनात्मक रूप से आंकना होगा। नीचे से ऊपर की ओर देखने पर, दिवंगत पूंजीवादी राज्य के विरोधाभास विश्व पूंजीवादी प्रणाली के केंद्र की तुलना में परिधि में पहले देखे गए थे। (पैंथम, 2015, 326)

निष्कर्ष:

गांधीजी सत्य, अहिंसा, स्वतंत्रता, समानता, नैतिकता और मनुष्य की नैतिकता में विश्वास के समर्थक थे। उन्होंने आक्रामकता या किसी भी प्रकार के उत्पीड़न से इनकार किया। उन्होंने एक ऐसे आदर्श राज्य को मान्यता दी, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति शांति से रहे, किसी भी प्रकार की हिंसा न हो। उन्होंने आदर्श राज्य को श्रामराज्यश के रूप में वर्णित किया जहां धार्मिक समूह समान हैं। उन्होंने मानवता और मूल्य की कमी के कारण लोकतंत्र के पश्चिमी रूप की आलोचना की। उन्होंने साम्यवाद और फेसिसिज्म का अवलोकन किया, और सीधे आलोचना की जैसे कि सत्तावादी का रूप। हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं कि वह अराजकतावाद के समर्थक थे। उनका आदर्श समाज संतुलन और सद्भाव से भरा है, हर व्यक्ति आत्मनिर्भरता और स्वच्छ और स्वच्छ वातावरण में रहता है। व्यक्तिगत हित सामूहिक हित से कम महत्वपूर्ण है। उन्होंने ग्रामीण विकास और ग्रामीण आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था पर भी ध्यान केंद्रित किया। गांधीजी एक महान विचारक थे, उनके विचारों में बहुत विशिष्टता है। उनका शांति का उपदेश आधुनिक राज्य प्रणाली में बहुत लोकप्रिय है। महिलाओं का सशक्तिकरण, विकास के लिए विकेंद्रीकरण, गांधीवादी सिद्धांत के सभी महत्वपूर्ण सिद्धांत। हालाँकि उनके विचार को भारतीय संदर्भ में गहराई से समझाया गया था, लेकिन कुछ सिद्धांत 21वीं सदी में बहुत लोकप्रिय हैं। राज्य प्रणाली के भीतर मानवता, निष्ठा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, ये सभी महत्वपूर्ण हैं।

संदर्भ:

- बंदोपाध्याय, जयंतनुजा. गांधी का सामाजिक और राजनीतिक विचार. प्रगतिशील प्रकाशक, कोलकाता, 2014।
- बंदोपाध्याय, तरुण कुमार. "मोहनदास कोरोमचंद गांधी राष्ट्रभबना". अशोक कुमार मुखोपाध्याय (संपादन) भारतीय राष्ट्रचिंत परिचय, पश्चिम बंगाल राज्य पुस्तक बोर्ड, कोलकाता, 2013।
- शिबाजी प्रतिम "महात्मा गांधी: मौलो प्रसना मौला भावना" इन सत्यब्रत चक्रवर्ती (संपादन) भारतवर्ष ओ राष्ट्रभबना, प्रकासन अकुशा, कोलकाता, 2014।
- चक्रवर्ती, विद्युत और पांडे, राजेंद्र कुमार. आधुनिक भारतीय राजनीतिक विचार पाठ और संदर्भ. सेज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009।
- चट्टोपाध्याय, पंचानन. "गांधीवाद और मार्क्सवाद". अन्नपूर्णा नंदा (संपादन) गांधी इन द मिलेनियम, एवेनेल प्रेस, कोलकाता, 2020।
- चट्टोपाध्याय, तपन "गांधी: रजनीकांत ओ सामाजिक दर्शन". राधारमण चक्रवर्ती (संपादन) भारतीय राष्ट्रचिंत विकास ओ रजनीकांत आंदोलन, प्रोग्रेसिव पब्लिशर्स, कोलकाता, 2009।
- डे, राखाकृष्ण. "मोहनदास कोरोमचंद गांधी". नेमई प्रामाणिक (संपादन) आधुनिक भारत सामाजिक ओ रजनीकांतिक भावना, छाया प्रकाशनी, कोलकाता, 2017।
- गाबा, ओम प्रकाश. भारतीय राजनीतिक विचार, मयूर पेपरबैक, नई दिल्ली, 2019।
- गुहा, रामचंद्र. मेकर्स ऑफ मॉडर्न इंडिया, पेंगुइन? वाइकिंग, नई दिल्ली, 2010।
- पैंथम, थॉमस. "उदार लोकतंत्र से परे: महात्मा गांधी के साथ सोच". थॉमस पैंथम और केनेथ एल. डॉयच (संपादन) आधुनिक भारत में राजनीतिक विचार, सेज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015।
- www.gandhiasramsevagram.org
- http:èkèkegyankosh.ac.inèkbitstreamèk 123456789èk63118èk2èkUnit-2.pdf
- https:èkèkrrjournals.comèkwp-contentèkuploadsèk2019èk02èk404-408 RRIJM190402090.pdf
- www.mkgandhi.orgèkebksèkIndia-Dreams.PDF
- www.mkgandhi.orgèkebksèkGandhihislifeandthowts.pdf

समुद्रगुप्त की भारत विजय और राष्ट्र विस्तार: एक अध्ययन

वीरेन्द्र कुमार कुशवाहा

शोधार्थी (इतिहास विभाग), भूपेंद्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा

सारांश

समुद्रगुप्त गुप्त वंश के सम्राट थे। हालांकि इतिहासकार निश्चित रूप से निश्चित नहीं हैं कि वह कब सिंहासन पर बैठे या उनकी मृत्यु हो गई, आम तौर पर उनके शासन के वर्ष 335 और 375 ईस्वी के बीच बताए जाते हैं। इन वर्षों के दौरान, समुद्रगुप्त ने अपने साम्राज्य को उत्तरी भारत के कई राज्यों में से एक से लेकर भारत के उत्तरी तीसरे भाग और उस महाद्वीप के पूर्वी तटों तक फैले एक विशाल साम्राज्य में बदल दिया। इसी कारण से उन्हें भारत का नेपोलियन कहा जाता है। एक कुशल विजेता होने के अलावा, उन्होंने वीणा नामक एक तार वाद्ययंत्र भी बजाया।

गुप्त साम्राज्य को प्राचीन भारत के स्वर्ण-युग के रूप में जाना जाता है। इस प्रशासन, अर्थ, प्रौद्योगिकी और कला के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई।

मूल शब्दः इसमुद्रगुप्त, गुप्त वंश, साम्राज्य, स्वर्ण-युग, एकीकरण

परिचय

समुद्र गुप्त (मृत्यु 380 ई.) लगभग 330 से 380 ई. तक भारत का एक छत्र सम्राट था। उन्हें आम तौर पर "इतिहास के स्वर्ण युग" के "आदर्श राजा" का प्रतीक माना जाता है, जैसा कि शाही गुप्त काल (320-510 ईस्वी) को अक्सर कहा जाता है। राजा का पुत्रचंद्र गुप्त प्रथम और लिच्छवी राजकुमारी कुमारदेवी, उन्हें एक बलिष्ठ योद्धा, एक कवि और एक संगीतकार के रूप में चित्रित किया गया है, जिन्होंने "युद्ध में प्राप्त सैकड़ों घावों के निशान" प्रदर्शित किए। कई मायनों में उन्होंने नायक की भारतीय अवधारणा को मूर्त रूप दिया।

समुद्र गुप्ता को उनके पिता ने अन्य दावेदारों की तुलना में सम्राट के रूप में चुना था और जाहिर तौर पर उन्हें अपने शासन के पहले वर्षों में विद्रोहों का दमन करना पड़ा था। राज्य को शांत करने के लिए, जो संभवतः तब इलाहाबाद (वर्तमान उत्तर प्रदेश राज्य में) से लेकर बंगाल की सीमाओं तक पहुंच गया था, उसने अब दिल्ली के पास अपने उत्तरी आधार से विस्तार के लिए युद्धों की एक श्रृंखला शुरू की। कांचीपुरम के दक्षिणी पल्लव साम्राज्य में, उन्होंने राजा विष्णुगोपा को हराया, फिर उन्हें और अन्य पराजित दक्षिणी राजाओं को श्रद्धांजलि के भुगतान पर उनके सिंहासन पर बहाल किया। हालाँकि, कई उत्तरी राजाओं को उखाड़ फेंका गया और उनके क्षेत्रों को इसमें शामिल कर लिया गयागुप्त साम्राज्य. समुद्र गुप्त की शक्ति के चरम पर, उन्होंने गंगा (गंगा) नदी की लगभग पूरी घाटी को नियंत्रित किया और पूर्वी बंगाल, असम, नेपाल, पंजाब के पूर्वी हिस्से और राजस्थान के विभिन्न जनजातियों के शासकों से श्रद्धांजलि प्राप्त की। उसने अपने अभियानों में 9 राजाओं को नष्ट कर दिया और 12 अन्य को अपने अधीन कर लिया।

इतिहासकार एवी स्मिथ समुद्रगुप्त को भारत का नेपोलियन भी कहते हैं। उसके पास बेहतर सैन्य कौशल था और वह एक महत्वाकांक्षी शासक था। हरिसेना द्वारा रचित इलाहाबाद स्तंभ शिलालेख, समुद्रगुप्त अभियान और विजय का एक विश्वसनीय स्रोत है। वह गुप्त वंश का सबसे महान राजा था, जिसने सबसे लंबे समय तक यानी 40 वर्षों तक शासन किया।

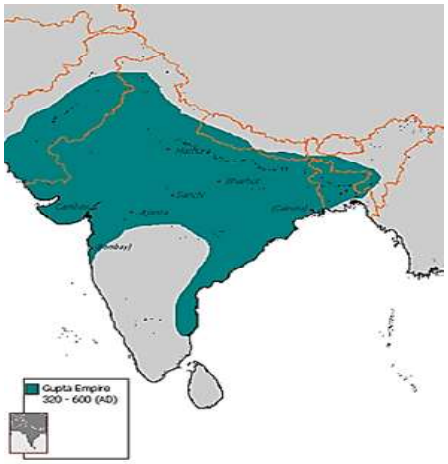

गुप्त साम्राज्य ने भारत के अधिकांश भाग पर शासन किया

उनके उत्तराधिकारी राजा चंद्रगुप्त द्वितीय थे। उसने कई उत्तर भारतीय राजाओं को हराया और उनके क्षेत्रों को अपने साम्राज्य में मिला लिया। उन्होंने पल्लव साम्राज्य की ओर बढ़ते हुए, भारत के दक्षिण-पूर्वी तट पर मार्च किया। उन्होंने कई सीमावर्ती राज्यों और आदिवासी कुलीनों को भी अपने अधीन कर लिया। इसका साम्राज्य पश्चिम में रावी नदी से लेकर पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी तक और उत्तर में हिमालय की तलहटी से लेकर दक्षिण पश्चिम में मध्य भारत तक है। दक्षिण-पूर्वी तट के कई शासक इसकी सहायक नदियाँ थे।

सिंहासन पर बैठने के कुछ ही समय बाद, समुद्रगुप्त ने अपनी सीमाओं से परे कई राज्यों और गणराज्यों पर विजय प्राप्त करके गुप्त साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार करने का निर्णय लिया। उनकी सैन्य जीतों की सफलता के कारण प्रसिद्ध ब्रिटिश इतिहासकार विंसेंट स्मिथ ने उन्हें "भारत का पहला नेपोलियन" कहा। उनकी सैन्य विजयों का विवरण नीचे दिया गया है:

समुद्रगुप्त की विजय यात्रा

उत्तर भारतीय अभियान

उनके शासनकाल का पहला वर्ष "आर्यावर्त" नामक योजना के तहत गंगा के प्रांतों को अपने अधीन करना था। उन्होंने दो बार उत्तर में अपने अभियानों का नेतृत्व किया; पहले में समुद्रगुप्त ने तीन राजाओं को परास्त किया और दूसरे में उसने नौ राजाओं को हराया। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने चंबल में अपना रास्ता बना लिया, क्षेत्र के सभी राजाओं को मार डाला और अपने क्षेत्र को गुप्त साम्राज्य का हिस्सा बना लिया। जैसा कि प्रयाग प्रशस्ति की 14-21 पंक्तियों में बताया गया है, समुद्रगुप्त ने ऊपरी गंगा घाटी के शासक (शायद बुलन्दशहर क्षेत्र में अज्ञात राजा कोटा) पर हमला किया और उसे हराया और फिर उत्तरी भारत में नौ राजाओं को हराया।

इलाहाबाद शिलालेख के अनुसार, अपने उत्तरी अभियानों के दौरान, उसने नौ राजाओं को हराया और उन्हें अपने राज्य में मिला लिया और इसे उसने "दिग्विजय" कहा। उसने आर्यावर्त के नौ राजाओं को हराया: नंदिन, बलवर्मन, नागसेन, रुद्रदेव, चंद्रवर्मन, मथिला, गंगापतिनाग, नागदत्त और अच्युता।

दक्षिण भारतीय अभियान

उत्तर में अपनी शक्ति को मजबूत करने के बाद, समुद्रगुप्त ने अपना ध्यान दक्षिण की ओर लगाया और एक अभियान चलाया और उनकी सेना ने लगभग 3,000 मील की यात्रा की। उसने दक्षिण भारत के बारह राजाओं को हराया। लेकिन उसने इसे वापस रख दिया. ये राजा उनके जाल में फंस गए और सम्मान पाने के लिए राजी हो गए. उन्होंने इसे "धर्मविजय" कहा। समुद्रगुप्त ने दक्षिण भारत के 12 राजाओं को हराया था:

1. कोसल के महेंद्र,
2. महाकांतारा के व्याघ्रराज,
3. कोवराला के मंथराज,
4. पिस्तापुरा के महेंद्र,
5. कोट्टुरा के स्वामीदत्त,
6. यारंदापल्ली का दमन,
7. कांची के विष्णुगोपा,
8. वेंगी के हस्तिवर्मन,
9. अवमुक्त के नीलराज,
10. पलक्कड़ के उग्रसेन,
11. देवराष्ट्र के कुबेर,
12. कुस्तलपुरा के धनंजय।

वन एवं जनजातीय क्षेत्रों में अभियान

उत्तरी और दक्षिणी राज्यों पर विजय प्राप्त करने के बाद समुद्रगुप्त आदिवासी और वन क्षेत्रों की ओर बढ़ा। यह वर्तमान में मध्य प्रदेश के जबलपुर और डेक्कन में स्थित है। इलाहाबाद प्रशस्ति की पंक्ति 22 उनके अभियान का विवरण प्रदान करती है और बताती है कि वन साम्राज्य के राजाओं को गुलाम बना लिया गया था और साथ ही पराजित राजाओं को गुप्त सम्राट ने अपने क्षेत्र पर शासन करने के लिए नियुक्त किया था।

विजित प्रदेशों के प्रति नीति

समुद्रगुप्त ने विजित राज्यों के प्रति अलग-अलग नीति अपनायी। आर्यावत के राज्यों का उसने पूर्ण उन्मूलन करके उन पर अधिकार कर लिया और अपने साम्राज्य का विस्तार किया।

आर्यावर्त के राज्यों के विपरीत दक्षिणापथ के राज्यों को उसने कृपापूर्वक छोड़ दिया। उसकी दक्षिण विजय की नीति ग्रहण (शत्रु पर अधिकार), मोक्ष (शत्रु को मुक्त करना) और अनुग्रह (राज्य को लौटाकर शत्रु पर दया करना) पर आधारित थी। यह प्रतीत होता है कि सुदूर राज्यों पर नियंत्रण स्थापित करने में व्यवहारिक बाधायें आ सकती हैं, ऐसा सोचकर उसने दक्षिणापथ के राज्यों पर अधिकार नहीं किया।

उसके दक्षिणापथ अभियान का उद्देश्य आर्थिक भी हो सकता था। पूर्वी घाट पर स्थित राज्यों के राजाओं का राजकोष सम्पन्न रहा होगा और समुद्रगुप्त उस कोष को प्राप्त करने के लिए ही दक्षिण गया होगा। दक्षिण के पश्चिमी घाट में वाकाटक शासकों के साथ उसने कोई संघर्ष नहीं किया, इससे प्रतीत होता है कि गुप्तों और वाकाटकों के मध्य कोई अनाक्रमण सन्धि रही होगी, जो कालान्तर तक चलती रही थी।

आटविक राज्यों को उसने अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया। उसकी विजयों ने अन्य स्वतन्त्र जातियों और सीमान्त प्रदेश के राजाओं को भयभीत कर दिया था। इन सीमान्त राज्यों ने उसे कर प्रदान करके, उसकी आज्ञा का पालन करके, उसके प्रति विनीत भाव धारण करके तथा समय-समय पर समुद्रगुप्त की राजसभा में उपस्थित होकर समुद्रगुप्त को प्रसन्न किया।

इस प्रकार उसने नीति निपुणता का परिचय दिया। उसने विभिन्न प्रदेशों के लिए भिन्न- भिन्न नीतियों को अपनाया, जो उसकी सबसे बड़ी दूरदर्शिता थी।

मूल्यांकन

समुद्रगुप्त एक शक्तिशाली शासक और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। भारत के विशाल क्षेत्र पर विजय प्राप्त करने के बावजूद उसने उत्तर भारत के राज्यों को ही अपने केन्द्रीय शासन के अधीन रखा। उसने दूरस्थ विजित क्षेत्रों को अपने सीधे नियन्त्रण में करने का प्रयास नहीं किया, जो उसकी दूरदर्शिता को प्रकट करता है। उसने उत्तरी भारत को मजबूत केन्द्रीय शासन से एकता प्रदान कर एक महान साम्राज्य की नींव रखी। उसकी सफलता उसके सैनिक अभियानों का परिणाम थी। उसके अभिलेखों एवं सिक्कों में शत समर आदि शब्दों द्वारा उसकी निरन्तर युद्धरतता का वर्णन किया गया है। सिक्कों में उसके लिए अप्रतिरथ, कृतान्त परशु, व्याघ्र पराक्रम, पराक्रमांक आदि विरूदों का प्रयोग किया गया है।

समुद्रगुप्त महान सेनानायक, कुशल राजनीतिज्ञ और शक्तिशाली शासक होने के साथ-साथ साहित्य और कला का ज्ञाता भी था। उसके सिक्कों में उसे वीणा बजाते हुए दिखाया गया है। प्रयाग प्रशस्ति में उसे कविराज और शास्त्रतत्वज्ञ आदि कहा गया है। उसके द्वारा चलाये गए सोने के सिक्कों की कलात्मक बनावट भी उसकी कलात्मक अभिरूचि को प्रकट करती है।

प्रयाग प्रशस्ति में उसे विद्वानों का महान संरक्षक बताया गया है। प्रयाग प्रशस्ति का लेखक हरिषेण उसका दरबारी कवि था। बौद्ध अभिलेखों से भी पता चलता है कि उसने बौद्ध विद्वान वसुबन्धु को अपना मंत्री नियुक्त किया था। अभिलेखों में उसकी दानशीलता और दयालुता का भी वर्ण न किया गया है।

गुप्त वंश के शासकों में समुद्रगुप्त एक शक्तिशाली सेनानायक और साम्राज्यवादी शासक के रूप में प्रसिद्ध है। चन्द्रगुप्त प्रथम और कुमारदेवी के पुत्र होने के कारण उत्तर भारत के दो प्रमुख वंशों गुप्त और लिच्छवी वंश का राज्य उसे उत्तराधिकार में मिला था, जिसका अपनी विजयों द्वारा विस्तार करने के साथ-साथ उसे संगठित और सुरक्षित करने का महान कार्य भी समुद्रगुप्त ने किया। समुद्रगुप्त के दिग्विजय और व्यक्तित्व के बारे में प्रमुख स्त्रोत प्रयाग प्रशस्ति और उसके द्वारा चलाये गए सिक्के हैं।

समुद्रगुप्त ने अपनी दिग्विजय से भारत की विलुप्त एकता की पुनः स्थापना की। उसकी दिग्विजय के तीन प्रमुख परिणाम हुए-

1. साम्राज्य स्थापना- गुप्त साम्राज्य में आर्या वर्त और मध्य प्रदेश प्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित हो गए।
2. प्रभाव क्षेत्र की स्थापना-उसके साम्राज्य से अधिक विस्तृत उसका प्रभाव क्षेत्र था, जिसमें दक्षिणपथ तथा पूर्व और पश्चिम के सीमान्त प्रदेश थे, जो उसकी अधीनता स्वीकार करते थे।
3. मैत्री क्षेत्र- विदेशी शासकों से उसके मैत्री सम्बन्ध स्थापित हुए थे। महान विजेता होने के साथ-साथ समुद्रगुप्त साहित्य, कला और संगीत का ज्ञाता और संरक्षक भी था।

समुद्रगुप्त ने अपने उत्तराधिकारियों के लिए सांस्कृतिक, बौद्धिक और भौतिक सम्पन्नता से पूर्ण एक विस्तृत साम्राज्य की नींव रखी।

निष्कर्ष

तीसरी सदी में भारत अनेक छोटे राज्यों में बँटा था, जिनमें से पूर्वी भारत में गुप्त वंश का उदय हुआ। गुप्त वंश का इतिहास उसके अभिलेखों, सिक्कों और तत्कालीन साहित्य विशेष रूप से पुराणों से ज्ञात होता है।

समुद्रगुप्त का क्षेत्र उत्तरी हिमालय से दक्षिणी नर्मदा नदी तक और पूर्वी ब्रह्मपुत्र से पश्चिमी चंबल तक फैला हुआ था। यह उल्लेखनीय है कि उन्होंने व्यक्तिगत रूप से भी लड़ाइयों में भाग लिया और उन लड़ाइयों में जीत हासिल की जो अक्सर सामने से आयोजित की जाती थीं। हरिकृष्ण के दरबारी कवि के अनुसार समुद्रगुप्त एक निडर योद्धा, सैकड़ों युद्धों का नायक था। वह निस्संदेह एक विशाल साम्राज्य का निर्माण करने में बहुत सफल रहा और उसने घोड़े (अश्वमेध) की बलि देकर अपनी जीत का जश्न मनाया।

सन्दर्भ

1. राय चौधरी, हेमचन्द्र-पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शियेंट इंडिया, नई दिल्ली, 1996
2. स्मिथ, विन्सेंट-अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, आक्सफोर्ड, 192
3. गुप्त, परमेश्वरी लाल-गुप्त साम्राज्य, वाराणसी, 2011
4. मजूमदार, रमेशचन्द्र एवं अल्तेकर, ए.एस.- सम्पादित द वाकाटक-गुप्त एज, दिल्ली, 1946
5. बनर्जी, राखाल दास- द एज ऑफ इम्पीरियल गुप्ताज,वाराणसी, 1933
6. मजूमदार, रमेश चन्द्र- श्रेण्य युग, नई दिल्ली, 1984
7. उपाध्याय, वासुदेव- गुप्त साम्राज्य का इतिहास, 1957
8. थापर, रोमिला- भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1975
9. शर्मा, रामशरण- प्रारम्भिक भारत का परिचय, नई दिल्ली, 2009
10. झा, द्विजेन्द्र नाथ एवं श्रीमाली, के.एम.- प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली, 1994

समावेशी शिक्षा पर एनईपी का प्रभाव: विविध शिक्षार्थियों के लिए पहुँच और अवसरों पर एक अध्ययन

डॉ० बृजेन्द्र पाण्डेय

सहायक प्राध्यापक, मानव संसाधन विकास केन्द्र, पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर

सारांश

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 हमारी शिक्षा प्रणाली की नवीनतम दूरदर्शी नीति है। यह दूरदर्शी कदम हमारी शिक्षा प्रणाली को समता और समानता की दिशा में एक बड़ा कदम उठाने की ओर ले जाता है। मुख्यधारा की शिक्षा में समावेशन एनईपी-2020 का केंद्रीय विचार है। प्रत्येक नीति के वास्तविक क्षेत्र में क्रियान्वयन के पीछे सदैव प्रश्नचिन्ह लगा रहता है। इसे उपायों के साथ कम किया जाना चाहिए और सभी उपायों को बेहतर तरीके से सभी हितधारकों, शिक्षकों और अभिभावकों द्वारा चुनौतियों का सामना करना चाहिए। 'सभी के लिए सीखना' इस शिक्षा नीति का छिपा हुआ आदर्श वाक्य है और समावेशी शिक्षा के उद्देश्यों के माध्यम से इसे पूरा किया जाएगा।

नियमित कक्षाओं का वर्तमान परिदृश्य एनईपी-2020 के दृष्टिकोण से थोड़ा अलग है। शिक्षा व्यवस्था में कहीं न कहीं भागीदारी की कमी, अवसरों की कमी, बुनियादी ढांचे की कमी और मानवता की कमी भी देखी जाती है। समावेशी शिक्षा की दिशा में ये बड़ी चुनौतियां हैं लेकिन एनईपी-2020 ने न्यायसंगत और समावेशी शिक्षा के लिए सौम्य और प्रभावी सुझाव दिए हैं। प्रत्येक क्षेत्र में संसाधनों, बुनियादी ढाँचे, अवसरों की उपलब्धता और मनुष्यों के समर्थन के उपाय निश्चित रूप से शिक्षा प्रणाली की कमी को पूरा करेंगे।

समावेशी शिक्षा के संबंध में एनईपी-2020 द्वारा दिए गए कुछ सुझाव पहले से ही आरटीई-2009 अधिनियम, एनपीई-1986, एनपीई-1968 और आगे की नीतियों में दिए गए थे, लेकिन नियमित कक्षा में कार्यान्वयन के समय सभी सिफारिशें उचित नहीं हैं और इसलिए उन्हें लागू किया जाता है। उस तरह की समस्याओं को दूर करने के बेहतर उपाय के लिए चुनौतियों पर जोर दिया जाना चाहिए। एनईपी-2020 शिक्षा प्रणाली में अंतर को भरने के लिए सतत आर्थिक और विकासात्मक लक्ष्यों पर भी केंद्रित है। यह अध्ययन समावेशी शिक्षा, उनकी हालिया चुनौतियों और इसकी गड़बड़ियों को हल करने के उपायों के बारे में एक तीव्र दृष्टिकोण देता है। यहां तक कि यह अध्ययन वर्तमान शिक्षा प्रणाली की चुनौतियों को भी दर्शाता है जो एनईपी-2020 की दूरदर्शिता से कम हो जाएंगी।

मूल शब्दः समावेशी शिक्षा, शिक्षा प्रणाली, एनईपी-2020, शिक्षार्थी, समानता और समता

परिचय

शिक्षा हम सभी के जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और हम सभी को अपनी उच्चतम क्षमता तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त करती है। एक शिक्षित व्यक्ति ही समाज में एक महान नागरिक बन सकता है। आधुनिक, विकसित और औद्योगीकृत दुनिया शिक्षा के पहियों पर चल रही है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, पूरे भारत में परिवारों में विकास का एक प्रमुख उत्प्रेरक है। एनईपी 2020 बुनियादी ढांचे के समर्थन के माध्यम से हमारी स्कूली शिक्षा प्रणाली में समावेशी शैक्षिक संरचना और समावेशी शैक्षिक संस्कृति को विकसित करने और सभी व्यक्तियों के लिए सम्मान, सहानुभूति, सहिष्णुता आदि जैसे मानवीय मूल्यों पर सामग्री को शामिल करते हुए पाठ्यक्रम में संबंधित बदलाव करने पर जोर देती है। एनईपी गुणवत्ता प्रदान करने के महत्व को पहचानता है।

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को शिक्षा के सभी स्तरों पर अन्य बच्चों की तरह ही शिक्षा प्रदान की जाती है। यह नीति सुनिश्चित करती है कि विशेष आवश्यकता वाला प्रत्येक बच्चा सार्थक और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का हकदार हो। समावेशी शिक्षा शिक्षा का एक नया दृष्टिकोण है जो परंपरागत रूप से बहिष्कृत समूहों के लिए एक छत के नीचे शिक्षा तक पहुंच पर जोर देती है- विशेष रूप से विकलांग और बिना विकलांग बच्चों और अल्पसंख्यक भाषा बोलने वाले आदि। इस प्रकार, समावेशी शिक्षा विकलांग बच्चों के खिलाफ भेदभाव को कम करने और बढ़ावा देने में काफी मदद कर सकती है। शिक्षा और देखभाल तक समानता, पहुंच और अधिकार। इसके लिए जरूरी है कि स्कूल ऐसी शिक्षण विधियों को पाठ्यक्रम में शामिल करने का प्रयास करें।

समावेशी शिक्षा ऐसी शिक्षा व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत शारीरिक रूप से विकलांग तथा सामान्य विद्यार्थी एक साथ सामान्य कक्षा में शिक्षा ग्रहण करते हैं। अपाहिज बालकों को थोडा ज्यादा ध्यान रखा जाता है। इस प्रकार समावेशी शिक्षा अपंग बालकों के पृथक्कीकरण के विरोधी व्यावहारिक समाधान है।

नीति विकलांग व्यक्तियों के अधिकार (आरपीडब्ल्यूडी) अधिनियम, 2016 के अनुसार सीडब्ल्यूएसएन के प्रावधानों की वकालत करती है। एनईपी 2020 स्कूली शिक्षा के सभी चरणों में सीडब्ल्यूएसएन को शामिल करने और समान भागीदारी की सिफारिश करते हुए समावेश के लिए एक संपूर्ण स्कूल दृष्टिकोण का समर्थन करता है। स्कूल परिसरों और संसाधन केंद्रों का संसाधन, विशेष शिक्षकों की नियुक्ति, शिक्षकों और विशेष शिक्षकों की क्षमता निर्माण, शिक्षण-शिक्षण सामग्री और कला, खेल और व्यावसायिक शिक्षा आदि जैसी सह-पाठ्यचर्या संबंधी गतिविधियाँ, इस प्रकार सभी शिक्षार्थियों को 21वीं सदी के कौशल से लैस करना।

सीडब्ल्यूएसएन के लिए समावेशी शिक्षा पूर्ववर्ती सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) आरटीई और आरएमएसए योजनाओं के प्रमुख हस्तक्षेपों में से एक रही है। निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम, 2009 सीडब्ल्यूएसएन सहित सभी बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा का आदेश देता है।

यह अधिनियम एक कानूनी ढांचा प्रदान करता है जो 6-14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य प्रवेश, उपस्थिति और प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने का अधिकार देता है। आरटीई अधिनियम की धारा 3 (2) विकलांग बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा पर जोर देती है। 2012 के संशोधन के अनुसार, यह भी अनिवार्य है कि, एकाधिक और/या गंभीर विकलांगता वाले बच्चे को घर आधारित शिक्षा का विकल्प चुनने का अधिकार है। माध्यमिक और वरिष्ठ माध्यमिक स्तर पर सीडब्ल्यूएसएन की शैक्षिक आवश्यकताओं को संबोधित करने के लिए, माध्यमिक स्तर पर विकलांगों के लिए समावेशी शिक्षा (आईईडीएसएस) की योजना लागू की गई थी।

इस योजना का उद्देश्य प्राथमिक स्कूली शिक्षा के आठ साल पूरे करने वाले सभी विकलांग छात्रों को माध्यमिक स्तर (कक्षा IX से XII) पर सामान्य शिक्षा प्रणाली में एक समावेशी और सक्षम वातावरण में माध्यमिक स्कूली शिक्षा के चार साल पूरे करने का अवसर प्रदान करना है। विकलांग बच्चों के लिए एकीकृत शिक्षा (IEDC) के CSS के स्थान पर 1-4-2009 से "माध्यमिक स्तर पर विकलांगों के लिए समावेशी शिक्षा" (IEDSS) की एक केंद्र प्रायोजित योजना लागू की गई है। आईईडीएसएस योजना का उद्देश्य आठ साल की प्रारंभिक शिक्षा पूरी कर चुके विकलांग बच्चों को नियमित स्कूलों में समावेशी माहौल में माध्यमिक स्तर (कक्षा IX से XII) में अपनी शिक्षा जारी रखने में सक्षम बनाना है। 1966 में कोठारी आयोग ने विकलांग बच्चों को नियमित स्कूलों में शिक्षा देने के महत्व पर प्रकाश डाला था।

1. 1974 में, भारत सरकार ने विकलांग बच्चों के लिए एकीकृत शिक्षा (IEDC) कार्यक्रम शुरू किया, जो समावेशन की दिशा में पहला औपचारिक कदम था। केंद्र सरकार द्वारा प्रायोजित, इस योजना का उद्देश्य विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को नियमित स्कूलों में शैक्षिक अवसर प्रदान करना है और उम्मीद है कि इससे उनकी प्राप्ति और ठहराव में सुविधा होगी।
2. सीडब्ल्यूएसएन के लिए समावेशी शिक्षा पूर्ववर्ती सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) आरटीई और आरएमएसए योजनाओं के प्रमुख हस्तक्षेपों में से एक रही है। यह छात्र-उन्मुख गतिविधियों का समर्थन करता है, जिसमें सीडब्ल्यूएसएन की पहचान और मूल्यांकन, सहायता, उपकरण, सुधारात्मक सर्जरी, ब्रेल किताबें, बड़े प्रिंट वाली किताबें, वर्दी और चिकित्सीय सेवाएं शामिल हैं।

भारत सरकार ने समावेशी शिक्षा को लागू करने को प्राथमिकता दी है। इसे सफलतापूर्वक लागू करने के लिए कानून, कार्यक्रम आदि बनाए गए हैं, लेकिन नीतियों और उनके कार्यान्वयन के बीच अभी भी बहुत बड़ा अंतर है। भारत में समावेशी शिक्षा नीतियों के प्रभावी कार्यान्वयन के रास्ते में कई बाधाएँ हैं। भारतीय जनसंख्या की प्रकृति, विविधता, संरचना, जीवन की गुणवत्ता, साक्षरता दर और गरीबी सूचकांक को देखते हुए, भारत में समावेशी शिक्षा का कार्यान्वयन बहुत मजबूत जंजीरों से बंधा हुआ है।

समावेशी शिक्षा की चुनौतियाँ

समावेशी शिक्षा वह क्षेत्र है जिसमें किसी भी नीति के सुझाव या सिफारिश में चुनौतियों की संख्या के कारण अधिकतम कार्यान्वयन शेष रहता है। चूँकि समावेशी शिक्षा ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है, अलग शिक्षा से लेकर समावेशी शिक्षा तक। पृथक शिक्षा से एकीकृत शिक्षा और एकीकृत से समावेशी शिक्षा तक की यह यात्रा बहुत प्रभावशाली और सार्थक है। पहले विशेष आवश्यकता वाले व्यक्तियों को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था, फिर समय-समय पर इसमें सुधार होता गया, जिससे यह समूह बुनियादी पूर्ति से संतुष्ट हो गया और समय के साथ मुख्यधारा में जुड़ गया; बच्चों के हर समूह को करीब लाता है। एक छत के नीचे दोनों समूहों के साथ समान व्यवहार किया जाता है लेकिन अलग-अलग परिस्थितियों में। आखिरकार देश की आजादी के बाद; कई नीतियों और आयोगों ने एकीकृत या विशेष शिक्षा के बजाय क्षेत्र में समावेशी शिक्षा के बारे में सुझाव दिया। आवश्यक लोग निश्चित रूप से अपनी विशेष आवश्यकता को पूरा करने के लिए विशेष शिक्षा से संतुष्ट हैं लेकिन एक ही छत के नीचे सभी के साथ समान व्यवहार किया जाता है जिसका लोगों को पालन करना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1968 में क्षेत्रीय असंतुलन, सामान्य स्कूल प्रणाली, लड़कियों के लिए शिक्षा, अल्पसंख्यकों के लिए शिक्षा और मुख्यधारा की शिक्षा में सभी बच्चों के लिए सुविधाओं के संबंध में शैक्षिक अवसरों की समानता के बारे में सुझाव दिया गया है; यदि किसी को इससे अधिक सुविधा की आवश्यकता है तो उसे प्रदान किया जाना चाहिए। यहां तक कि इस तरह की सिफारिशें आगे के शैक्षिक नीति दस्तावेजों जैसे एनपीई-1986, पीओए-1992, एनसीएफ-2005 और एनईपी-2020 में भी दी गई हैं। लेकिन आवश्यकताओं को उचित ठहराने के दृष्टिकोण की व्यावहारिकता के कारण कार्यान्वयन में बड़ी कमी है। कहीं न कहीं सीडब्ल्यूएसएन, विकलांग व्यक्तियों, अल्पसंख्यक समूहों, महिलाओं और अन्य सभी लोगों सहित सभी की स्वीकार्यता में समावेशी शिक्षा के हमारे उद्देश्य की कमी है। समावेशी शिक्षा के लिए बड़ी संख्या में चुनौतियाँ खड़ी हुई हैं और उन सभी चुनौतियों को पूरा करने के लिए एनईपी-2020 इसे बढ़ाने के उपाय ला रहा है।

एक नजर में शिक्षार्थियों के लिए उपलब्धता और अनुकूल वातावरण बनाने में हितधारकों, शिक्षकों और अभिभावकों के सामने आने वाली चुनौतियाँ हैं। यहाँ तक कि शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भी शिक्षकों को इस प्रकार के विशेष कौशल नहीं सिखाये जाते; इसलिए, शिक्षक किसी बिंदु पर कक्षा में बच्चे को संभालने में विफल हो जाएंगे। कहीं न कहीं, संस्थानों में बुनियादी ढांचे की कमी और प्रशासन में आर्थिक कमी विशेष बच्चों के लिए अवसरों और भागीदारी की हानि का कारण बनती है।

एनईपी-2020 में समावेशी कक्षाओं और समावेशी समाज के संबंध में वर्तमान शिक्षा प्रणाली में समस्याओं के समाधान के बारे में सुझाव दिया गया है। एनईपी-2020 में जो उपाय दिए गए हैं, उन्हें सफलतापूर्वक लागू किया जाएगा, जिससे शिक्षा प्रणाली में अधिकतम समाधान प्राप्त किया जा सकेगा।

समावेशी शिक्षा का ऐतिहासिक दृष्टिकोण

नियमित कक्षाओं और संस्थानों में समावेशिता के उत्थान के साथ शिक्षा प्रणाली का एक पदानुक्रम है। प्राचीन काल में यदि व्यक्ति विकलांग या किसी प्रकार की कमी से ग्रस्त हो तो उसे शिक्षा प्रणाली से बहिष्कृत कर दिया जाता था; समाज से बहिष्कृत कर दिया गया. उस समय तक समूहों को मुख्यधारा से अलग कर दूसरे क्षेत्र और समुदाय में अलग से सुविधा प्रदान की जाती है। इस प्रकार की विसंगति को दूर करने के लिए शैक्षिक नीतियों में विशेष समूहों को मुख्यधारा में शामिल करने का सुझाव दिया गया, लेकिन सुविधाएँ और व्यवहार अलग-अलग आवंटित किए गए।

पिछले दो दशकों से; एक छत के नीचे मुख्यधारा की शिक्षा में सभी को समान रूप से शामिल करने के लिए समावेशिता के दृष्टिकोण को बढ़ाया गया। इस प्रकार प्रत्येक संस्थान में संसाधनों, बुनियादी ढाँचे और जनशक्ति की उपलब्धता का जानबूझकर विस्तार किया जाता है। भागीदारी, प्रतियोगिता, परीक्षा, मूल्यांकन आदि से संबंधित चुनौतियाँ फोकस में हैं और हाल ही में एनईपी-2020 ने हमारी शिक्षा प्रणाली को दूर करने और बेहतर बनाने के लिए इन चुनौतियों से संबंधित उपाय सुझाए हैं।

एनईपी-2020 समाज में समानता और समता द्वारा समावेशी शिक्षा प्रणाली और समावेशी समाज बनाने का मार्ग दिखाता है। समाज के सभी सदस्यों की अपनी जिम्मेदारी है कि वे उनकी देखभाल करें और दूसरों को भी जरूरतमंदों को आरामदायक माहौल मिले। शिक्षा प्रणाली में एकरूपता से समाज में रहन-सहन, मानवीय रिश्तों और समाज के अनुकूल वातावरण में नवीनता आती है।

समावेशी शिक्षा के संबंध में शिक्षार्थियों की आवश्यकताएँ

शिक्षार्थियों की नवीनतम चुनौती नियमित कक्षा व्यवस्था में संसाधनों का संवर्धन और बुनियादी जरूरतों की पूर्ति है। कुछ सामाजिक बाधाएँ बच्चों को सामाजिक मंचों पर अधिक असहज बना देती हैं। स्कूली शिक्षा प्रणाली की कठोरता उन्हें कक्षा में सीखने की प्रक्रिया के प्रति और अधिक हतोत्साहित करती है, कहीं न कहीं यह जनता में आंतरिक घुटन पैदा करती है। प्रमुख चुनौती शिक्षण-अधिगम सामग्री और अनुदेशात्मक रणनीतियों की कमी को लेकर है, जिसके कारण विद्यार्थियों में गलत संचार उन्हें निराश और लक्ष्यहीन बना देता है।

एनईपी-2020 के सुझावों के माध्यम से इन सभी समस्याओं को बड़े पैमाने पर कम किया गया है। यह विभिन्न वाद्य, डिजिटल उपकरणों के साथ उपयोग की जाने वाली उचित रणनीतियों के माध्यम से शिक्षण-अधिगम सामग्री की उपलब्धता, उचित संचार और निर्देशों के आदान-प्रदान में बदलाव लाता है। शिक्षकों और अन्य प्राधिकारियों से अनुकूल वातावरण और प्रेरणा लेकर विशेष बच्चों की स्वीकृति और प्रोत्साहन से सामाजिक बाधाओं को कम किया जा सकता है। इस तरह वे नियमित बच्चों के साथ सुरक्षित और एकजुटता महसूस करते हैं। वे दूसरों की तरह सामान्य महसूस करते हैं और यहां तक कि काम के लिए आंतरिक प्रेरणा और प्रयासों को भी निश्चित रूप से बढ़ावा मिलेगा। सभी को समान अवसर और जरूरतमंदों को समानता के संदर्भ में उतनी सहायता प्रदान की जानी चाहिए। वर्तमान पीढ़ी को समानता से पहले समता की आवश्यकता है; इससे निश्चित रूप से हमारी शिक्षा प्रणाली में सुधार होगा।

समावेशी शिक्षा में हितधारकों की भूमिका

पाठ्यक्रम निर्माताओं, नीति निर्माताओं और शिक्षाविदों ने शिक्षा प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और समावेशी शिक्षा आजकल इसमें नया दृष्टिकोण है। इसलिए, सभी हितधारकों को इसके बेहतर परिणाम के लिए ईमानदारी से विचार करना होगा। मुख्यधारा की शिक्षा में विशेष बच्चों का लचीलापन और स्वीकार्यता उनके गुणवत्तापूर्ण प्रदर्शन से बच्चों के विकास को रोकती है। किसी भी संस्थान के प्रबंधन और प्रशासन में प्रशासकों की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है, प्रशासकों के लिए एक बड़ी चुनौती यह होती है कि संस्थान में किसी को किसी प्रकार की विकलांगता तो नहीं है या फिर विशिष्ट बुनियादी ढांचे और अन्य सुविधाओं के लिए तैयारी नहीं है या नहीं। अचानक से अगर उसमें कोई एडमिशन कराना हो तो तेजी से उन्हें कैंपस में सारी सुविधाएं जुटानी पड़ती हैं।

व्यावहारिकता में, यह पूरी तरह से संभव नहीं होगा क्योंकि सिस्टम में विभिन्न परिस्थितियों को संसाधित करना होता है और इसमें समय लगता है। किफायती खर्च और फंडिंग के मुद्दे परिसर की समावेशिता को पूरा करने के लिए प्रबंधन प्रणाली की चुनौतियों को बढ़ा रहे हैं।

एनईपी-2020 ने इस चुनौती के संबंध में उपाय सुझाया है; यह सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक स्कूल और कॉलेज में विशेष बच्चों के लिए बुनियादी सुविधाएं होनी चाहिए और एक समावेशी परिसर होना चाहिए। तभी संस्था की प्रामाणिकता बनी रहेगी अन्यथा निरीक्षणात्मक ग्रेड कम हो जाएगा। यहां तक कि लोग समस्या के लिए मुद्दा उठाने और उसका समाधान निकालने से भी खुद को रोक रहे हैं। उस समस्या में माता-पिता, शिक्षकों और स्कूल प्रबंधन समिति और उच्च शिक्षा समिति के अन्य समिति सदस्यों की भी भूमिका है।

समावेशी शिक्षा पर शिक्षकों का चिंतन

शिक्षा के हर अनुशासन में शिक्षकों का दृष्टिकोण बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि नीति निर्माता और पाठ्यक्रम निर्माता शिक्षा के संबंध में मानदंड और नियम बनाते हैं और बच्चे उस नए पाठ्यक्रम को सीख रहे हैं लेकिन इन दोनों समूहों के बीच का सेतु शिक्षक हैं; वे सैद्धांतिक कार्यों को बच्चों के सामने वास्तविक दुनिया में लागू करने के लिए जोड़ते हैं। अत: समावेशी शिक्षा पर शिक्षक की भूमिका एवं चिंतन अनिवार्य है। विशेष शिक्षार्थियों के लिए शिक्षकों की शैक्षणिक प्रथाओं के संदर्भ में चुनौतियाँ हैं। विशेष बच्चों के साथ व्यवहार करने और तदनुसार उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए शिक्षकों में प्रशिक्षण और निर्णय का अभाव। शिक्षकों को वास्तविक कक्षाओं में कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है, इसलिए सेवा-पूर्व और सेवाकालीन शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों में विशेष प्रशिक्षण की बहुत आवश्यकता है।

एनईपी-2020 सेवा पूर्व और सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों की इस कठिनाई का जीवंत समाधान है। एकीकृत शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम (आईटीईपी) एनईपी-2020 द्वारा प्रतिपादित है जो शिक्षक शिक्षा में समावेशी शिक्षा से संबंधित समस्याओं का अंतिम समाधान लाता है। एनईपी-2020 के नए सुझावों के साथ बैचलर ऑफ एजुकेशन (बी.एड.) इन स्पेशल एजुकेशन का दो वर्षीय पाठ्यक्रम भी आया है। यदि इन मार्गों को गहनता से कार्यान्वित किया जाता है और ठीक से पालन किया जाता है तो चुनौतियाँ बहुत कम समय में कम हो जाती हैं।

निष्कर्ष

भारत में समावेशी शिक्षा प्रणाली के सफल कार्यान्वयन के लिए, माता-पिता, शिक्षकों और यहां तक कि विकलांग बच्चों को भी इस प्रणाली के बारे में शिक्षित करना होगा और इसके लाभों से अवगत कराना होगा। ये लोग कार्यान्वयन प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि वे नियमित आधार पर विकलांग बच्चों के साथ बातचीत करते हैं और उनके आस-पास का माहौल बनाते हैं। विकलांग बच्चों को भी जिस समुदाय में वे रहते हैं, वहां अन्य लोगों के साथ समान स्तर पर समावेशी, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त होती है। विकलांगताएं सीखने के अवसरों तक पहुंच और शिक्षार्थी की पूर्ण क्षमता की उपलब्धि को प्रभावित करती हैं। इसलिए एक लचीली शिक्षा प्रणाली तैयार करना जरूरी है जो सीडब्ल्यूएसएन की व्यक्तिगत जरूरतों और क्षमताओं को पूरा करे। न्यायसंगत, समावेशी और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा बाधाओं की पहचान करती है और उन्हें दूर करने का प्रयास करती है, अपनेपन की भावना को बढ़ावा देती है और सभी शिक्षार्थियों के लिए सफलता के साथ बेहतर शिक्षण परिणामों की बुनियाद रखती है।

यह अध्ययन विशेष रूप से समावेशी शिक्षा से संबंधित चुनौतियों और उपायों को प्रतिबिंबित कर रहा है। समावेशी शिक्षा का शैक्षिक पदानुक्रम भारत की स्वतंत्रता से इसके महत्व को दर्शाता है। जैसे कि एनपीई-1968, एनपीई-1986, पीओए-1992, एनसीएफ-2005, आरटीई-2009 और अंत में एनईपी-2020 समावेशी शिक्षा के लिए विभिन्न रास्ते सुझा रहे हैं। लेकिन कार्यान्वयन में कमी के कारण नियमित कक्षाओं में शिक्षा प्रणाली में हमेशा अंतर बना रहता है। कहीं न कहीं NEP-2020 के अनूठे तरीके समावेशी शिक्षा में और बेहतरी की उम्मीद जगाते हैं। चूंकि एनईपी-2020 आईटीईपी कार्यक्रम की समस्याओं का समाधान करता है, इसलिए विशेष बी.एड. सेवापूर्व और सेवाकालीन शिक्षक शिक्षा के कार्यक्रम और प्रशिक्षण कार्यक्रम। इस नीति में शिक्षार्थियों की जरूरतों पर ध्यान केंद्रित किया गया है क्योंकि यह समावेशी शिक्षा की चुनौतियों और सापेक्ष उपायों को दर्शाता है। निश्चित रूप से, ये तरीके भारत में आदर्श समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देंगे।

सन्दर्भ

1. प्रेस सूचना ब्यूरो भारत सरकार सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय https://pib.gov.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=681062
2. Bhat, M. U. (2017). Inclusive Education in India: Issues, Challenges and Prospects. The Communication, 138-142.
3. B.Venkateshwarlu. (2021). A CRITICAL STUDY OF NEP-2020: ISSUES, APPROACHES, CHALLENGES, OPPERTUNITIES AND CRITICISM. INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH, 191-196.
4. Dr, R. P. (2020). NEW EDUCATION POLICY: QUALITATIVE (CONTENTS) ANALYSIS AND QWITTER MINING (SENTIMENT ANALYSIS). Journal of content, Community and Communication, 4-13.
5. Draft National Education Policy2019. (n.d.). Retrieved from https://innovate.mygov.in/wpcontent/uploads/2019/06/mygov15596510111.pdf
6. Hasan, M. (2018). Inclusive Education& Education for All. International Journal of Research and Analytical Reviews.
7. Hossain, A. (2021). Inclusive Education in India: Opportunities and challenges. International Journal of Creative Research Thoughts, 4487-4491.
8. Kothari, A. (2021). Rashtriya Shiksha Neeti-2020 Bharatiyata ka punarutthan. New Delhi: Prabhat Prakashan.
9. Lakshmi, R. (2018). Inclusive Education in India: Challenges and Prospects. IJIRMPS, 38-42.
10. Maryland Coalition for Inclusive Education. (2010). Retrieved from Inclusive Education Research & Practice: www.mcie.org
11. Mehta, S. (2020). Inclusive Education: Implementation with Effectiveness. BSSS Journal of Education, 47-67.
12. National Education Policy-2020. (n.d.). Retrieved from https://www.education.gov.in:
13. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
14. Peerzada, N. (2020). Inclusive Education. Insight: journal of applied research in education, 168-176.

हजारीप्रसाद द्विवेदी का संस्कृति-चिंतन

सतेन्द्र कुमार

हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

हिंदी साहित्य में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी मूलतः साहित्येतिहासकार, आलोचक, उपन्यासकार, निबंधकार और चिंतक के रूप में समादृत हैं। साहित्येतिहास, आलोचना, चिंतन और संस्कृति का सम्मिश्रण आचार्य द्विवेदी की लेखनी में जिस गांभीर्य और सहजता के साथ हुआ है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। द्विवेदी जी की दृष्टि मूलतः ऐतिहासिक- सांस्कृतिक है। नित्यानंद तिवारी के शब्दों में- "उनकी सांस्कृतिक दृष्टि प्रधानतः इतिहास के अनुशासन से परिभाषित है। जिसमें प्रसंगों की अनिवार्य भूमिका होती है।"[1] यद्यपि संस्कृति चिंतन द्विवेदी जी के संपूर्ण साहित्य में विद्यमान है तथापि निबंध साहित्य में उसकी अभिव्यक्ति अधिक मुखर और स्पष्ट रूप में हुई है। 'अशोक के फूल' 'आम फिर बौरा गये', 'मेरी जन्मभूमि', 'हिमालय', नाखून क्यों बढ़ते हैं?', 'भारतीय संस्कृति और हिन्दी का प्राचीन साहित्य', 'सभ्यता और संस्कृति', 'भारतीय संस्कृति की देन', 'भारतीय संस्कृति का स्वरूप', 'संस्कृति और साहित्य', 'संस्कृतियों का संगम', 'भारतवर्ष की सांस्कृतिक समस्या', 'हिन्दू संस्कृति के अध्ययन के उपादान', 'भारतीय संस्कृति' और 'भारतीय मेले' आदि द्विवेदी जी के विशुद्ध संस्कृति संबंधी निबंध हैं। साहित्य और संस्कृति के अध्ययन को द्विवेदी जी व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने के पक्षधर थे, अतः स्वाभाविक ही है कि संस्कृति को आचार्य द्विवेदी ने व्यापक अर्थ में ग्रहण और आत्मसात् करते हुए व्याख्यायित किया है। आचार्य द्विवेदी के शब्दों में "हमारे देश का सांस्कृतिक इतिहास इस मजबूती के साथ अदृश्य काल-विधाता के हाथों सी दिया गया है कि उसे प्रादेशिक सीमाओं में बाँधकर सोचा भी नहीं जा सकता। उसका एक टाँका यदि काशी में दीख गया तो दूसरा बंगाल में और तीसरा उड़ीसा में दीख जायेगा, और चौथा यदि मालाबार में या सिंहल में दीख जाय तो कुछ भी आश्चर्य करने की बात नहीं रहेगी।"[2] स्पष्ट है कि द्विवेदी जी भारतीय साहित्य और संस्कृति के अध्ययन को प्रांतीय सीमाओं में बाँधकर देखने के समर्थक नहीं हैं अपितु वे एक व्यापक ऐतिहासिक सांस्कृतिक परिवेश में साहित्य और संस्कृति के अध्ययन पर जोर देते हैं। द्विवेदी जी अपने संस्कृति चिंतन में एक ओर वेद, पुराण, उपनिषद् आदि शास्त्रों के माध्यम से प्राचीन भारतीय मनीषा का विश्लेषण करते हैं तो दूसरी ओर शास्त्र-ग्रंथों से परे रीति-रिवाजों, मेलों, व्रतों, उत्सवों, मिथकों, लोकभाषा, लोकसाहित्य, मुहावरों, कहावतों, लोकोक्तियों, किंवदंतियों, आचार-विचार, व्यवहार, अनुभूतियों आदि का जीवंत स्वरूप हमारे समक्ष उपस्थित करते हैं। 'संस्कृति-चिंतन' अवधारणा के रूप में आधुनिक घटना है। धर्म, दर्शन, भाषा, समाज, राजनीति, शास्त्र, लोक सब 'संस्कृति' शब्द में समाहित हो जाते हैं। द्विवेदी जी के संस्कृति चिंतन में इन सबका संश्लिष्ट रूप उपस्थित है। अपने निबंधों में द्विवेदी जी ने संस्कृति को नाना ढंगों से परिभाषित और व्याख्यायित करने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार- "नाना ऐतिहासिक परंपराओं के भीतर से गुजरकर और भौगोलिक परिस्थितियों में रहकर संसार के भिन्न-भिन्न समुदायों ने उस महान मानवी संस्कृति के भिन्न-भिन्न पहलुओं का साक्षात्कार किया है। नाना प्रकार की धार्मिक साधनाओं, कलात्मक प्रयत्नों और सेवा, भक्ति तथा योगमूलक अनुभूतियों के भीतर से मनुष्य उस महान सत्य के व्यापक और परिपूर्ण रूप को क्रमशः प्राप्त करता जा रहा है, जिसे हम 'संस्कृति' शब्द द्वारा व्यक्त करते हैं।"[3] द्विवेदी जी के संस्कृति चिंतन के केंद्र में मानवतावादी दृष्टिकोण है। मनुष्य का आंतरिक विकास ही दृष्टिगत रखना द्विवेदी जी की दृष्टि में संस्कृति का प्रधान लक्ष्य है। अपने संस्कृति-चिंतन में द्विवेदी जी ने मनुष्य के इस 'आंतरिक विकास' को भिन्न-भिन्न शब्दों से रेखांकित किया है।

सभ्यता और संस्कृति के पारस्परिक संबंध पर विचार करते हुए द्विवेदी जी मनुष्य की बाह्य व्यवस्थाओं को सभ्यता और उसके आंतरिक विकास को संस्कृति मानते हैं। यहां ध्यातव्य है कि द्विवेदी जी की दृष्टि में सभ्यता और संस्कृति एक दूसरे से भिन्न या विरोध न होकर पारस्परिक रूप से संबद्ध हैं। इतिहास-बोध, ज्ञान विज्ञान और जीवन शैली में परिवर्तन के परिणामस्वरूप बाह्य व्यवस्थाओं में परिवर्तन हुआ है तो इसके साथ ही मनुष्य के भावों, अनुभूतियों में भी परिवर्तन होता गया है। अर्थात् 'ज्ञान प्रसार के साथ भाव प्रसार' भी हुआ है। स्पष्ट है कि सभ्यता और संस्कृति का एक-दूसरे के प्रति कोई विरोध भाव नहीं है अपने संस्कृति चिंतन के केंद्र में द्विवेदी जी इस 'अविरोधी भाव' को सर्वाधिक महत्व देते हैं। उनके अनुसार धर्म और संस्कृति का मूलभाव 'अविरोध' ही है। विरोध भेदमूलक बुद्धि का व्यवसाय है तो अविरोध का संबंध अभेदानुभूति से है। द्विवेदी जी की दृष्टि में यह अविरोधी भाव न केवल भारतीय संस्कृति में विद्यमान है, अपितु विश्व संस्कृति के संबंध में भी यह उतना ही सत्य है। द्विवेदी जी के अनुसार "भारतीय संस्कृति- और कोई भी अन्य संस्कृति (अगर 'संस्कृति' शब्द को विशेषण बिना कहा ही न जा सके!)- विश्वजनीन सत्य की विरोधी नहीं है।"[4]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी मनुष्य के सर्वोत्तम चिंतन-मनन के मूर्त रूप को संस्कृति मानते हैं। मनुष्य ने अपनी ऐतिहासिक विकास यात्रा में जो भी सर्वोत्तम चिंतन किया है वह चित्र, मूर्ति, स्थापत्य, संगीत, साहित्य, नाटक, कविता, धर्म, दर्शन, आचार-व्यवहार आदि के रूप में मूर्तिमान होकर अभिव्यक्त हुआ है। ध्यान देने की बात यह है कि मनुष्य ने इतिहास में जो कुछ भी सोचा समझा है, वह सब संस्कृति नहीं है। संस्कृति के अंतर्गत वही है जिससे मनुष्य के अंतर का विकास हुआ है, उसका सर्वोत्तम प्रकाशित हुआ है, उसका अविरोधी भाव कुछ और प्रबल हुआ है, वह पशु- सुलभ धरातल से कुछ ऊपर उठ पाया है आदि। आचार्य द्विवेदी ने भारतीय संस्कृति के संबंध में अपने मानवतावादी सार्वभौम दृष्टिकोण को ही अभिव्यक्त किया है। आचार्य द्विवेदी सर्वप्रथम तो किसी देश विशेष और जाति विशेष की संस्कृति की अवधारणा को नकारते हैं। उनके विचार में किसी देश या जाति की संस्कृति में मौलिकता या विशुद्धता

जैसे कोई चीज नहीं होती। द्विवेदी जी के शब्दों में "भारतीय संस्कृति पर कुछ कहने से पहले मैं "एक निवेदन कर देना कर्तव्य समझता हूँ कि मैं संस्कृति को किसी देश विशेष या जाति विशेष की अपनी मौलिकता नहीं मानता। मेरे विचार से सारे संसार के मनुष्यों की एक सामान्य मानव संस्कृति हो सकती है।"[5] द्विवेदी जी का संस्कृति चिंतन प्रगतिशील है। अपने संस्कृति-चिंतन के केंद्र में द्विवेदी जी ने किसी धर्म, जाति और देश को न रखकर मनुष्य मात्र को रखा है। 'मनुष्य मात्र के कल्याण की भावना को ध्यान में रखकर संस्कृति का जो विवेचन-विश्लेषण होगा, वह निश्चय ही संकीर्णताओं से मुक्त होगा और उसका स्वरूप प्रगतिशील होगा। द्विवेदी जी के लिए मनुष्य और उसका कल्याण सर्वोपरि है। यही कारण है कि द्विवेदी जी 'वैश्विक धरातल पर एक स्टैंडर्ड मन' की खोज करते हैं और उसकी आवश्यकता पर जोर देते हैं। आचार्य द्विवेदी भारतीय संस्कृति को कोई विशिष्ट महत्व न देकर विश्व-संस्कृति के अंग के रूप में ही उसका अध्ययन-विश्लेषण करते हैं। द्विवेदी जी के अनुसार विश्व-संस्कृति में भारत ने जो विशिष्ट योगदान दिया है, वही भारतीय संस्कृति है! वर्तमान वैश्विक सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियों में जब अलग-अलग देशों और समाजों में राष्ट्रवाद, संस्कृति की विशुद्धता, एक देश एक संस्कृति, संस्कृति की अखण्डता और विशुद्धता का जोर बढ़ रहा है, तब द्विवेदी जी का संस्कृति चिंतन और प्रासंगिक, और महत्वपूर्ण हो जाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान संस्कृति की विशुद्धता, अखण्डता आदि का विचार अपने जोर पर था, जिसके परिणामस्वरूप लाखों-करोड़ों लोगों का जनसंहार हुआ। ऐसी ही वैश्विक परिस्थितियों में द्विवेदी जी का निबंध 'अशोक के फूल' प्रकाशित हुआ था, जिसमें द्विवेदी जी ने संस्कृति की अखंडता, विशुद्धता के विचार को स्पष्टतः नकारते हुए कहा- "मनुष्य की जीवनी-शक्ति बड़ी निर्मम है, वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों को रौंदती चली आ रही है। न जाने कितने धर्माचारों विश्वासों, उत्सवों और व्रतों को धोती- बहाती यह जीवनधारा आगे बढ़ी है। संघर्षों से मनुष्य ने नयी शक्ति पायी है। हमारे सामने समाज का आज जो रूप है, वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग' का रूप है। देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बात की बात है। सब कुछ में मिलावट है, सब कुछ अविशुद्ध है।'[6] वर्तमान सामाजिक व्यवस्था और सांस्कृतिक परिवेश की निर्मिति में द्विवेदी जी ने अनेक उपादानों के सम्मिश्रण को उत्तरदायी माना है। संस्कृति का विकास एक निरंतर गतिशील प्रक्रिया है जिसका स्वरूप देशकाल की ऐतिहासिक-भौगोलिक परिस्थितियों के भीतर से संगठित होता है। सांस्कृतिक विकास की गतिशील प्रक्रिया में विभिन्न सामाजिक समुदाय एक-दूसरे के संपर्क में आते है। संपर्क के परिणामस्वरूप धार्मिक मान्यताओं मूल्यों, रीति रस्मों, आचार-व्यवहार, रहन-सहन, खान-पान आदि विभिन्न क्षेत्रों में आदान-प्रदान होता रहता है, कुछ ग्रहण किया जाता है, कुछ छोड़ा जाता है। इसी ग्रहण-त्याग की प्रक्रिया में 'विशुद्धता' का तत्व जाता रहता है और जो निर्मित होता है, वही द्विवेदी जी की दृष्टि में संस्कृति का सही रूप है जो 'विशुद्धता' और 'अखंडता' जैसे विशेषणों से रहित होता है। इसी व्यापक और गंभीर सांस्कृतिक दृष्टि को केन्द्र में रखकर द्विवेदी जी ने भारतीय संस्कृति का अध्ययन-विश्लेषण किया है। द्विवेदी जी ने अनेक उद्धरणों, प्रसंगों, घटनाओं आदि से सिद्ध किया है कि भारतीय सांस्कृतिक परिदृश्य अनेक आर्य और आर्येतर उपादानों का सम्मिश्रण है। अर्थात् भारतीय संस्कृति के बनने में आर्य, द्रविड़, यवन, असुर, दैत्य, दानव, दास, शक, हूण, यक्ष, गंधर्व, किन्नर, विद्याधर आदि मानव मंडलियों का योगदान है। रवीन्द्रनाथ ने सही ही इस देश को 'महामानव समुद्र' कहा है आचार्य द्विवेदी के शब्दों में "इस प्रकार मूल में भारतीय संस्कृति कई बलवती सभ्यताओं के योग से बनी। आर्य-द्रविड़ और यक्ष नाग सभ्यता की त्रिवेणी से इस महाधारा का आरम्भ हुआ। बाद में अन्य अनेक सभ्य, अर्द्ध- सभ्य और अल्प सभ्य जातियों की संस्कृतिय धर्म-मत, आचार, परम्परा और विश्वास इसमें घुसते गये।'[7] भारतीय संस्कृति के अध्ययन में आचार्य द्विवेदी ने संस्कृति की समन्वयकारी प्रकृति और आगे रखा और साथ ही आर्य और आर्येतर उपादानों, लोक और शास्त्र के अध्ययन में द्विवेदी जी ने आर्येतर उपादानों और लोक के योगदान का महत्व स्थापित किया। यही उनकी साहित्य, संस्कृति और कला के क्षेत्र में 'दूसरी परंपरा की खोज' थी, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय संस्कृति साहित्य और कला का नवीन रूप प्रत्यक्ष हुआ। मनुष्य के सर्वोत्तम चिंतन के जिस रूप को द्विवेदी जी संस्कृति मानते हैं और विश्वस्तर पर उसे प्रतिष्ठित होते हुए देखना चाहते हैं, वह आदर्श 'विश्वजनीन संस्कृति' चाहे संसार में अभी तक अस्तित्व में न आयी हो किंतु द्विवेदी जी का दृष्टिकोण इस संबंध में आशावादी है। उनकी दृष्टि संभावना की ओर है, आशा की ओर है, मनुष्य की जिजीविषा की ओर है तो जब तक संभावना, आशा और जिजीविषा है विश्वजनीन संस्कृति का आदर्श और उसकी प्रेरणा जीवंत रहेगी!

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1- तिवारी, नित्यानंद:- हजारीप्रसाद द्विवेदी एक जागतिक आचार्य (संपा०-श्रीप्रकाश शुक्ल), सेतु प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या- 49

2- द्विवेदी, मुकुन्द (संपा.):- हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली. भाग- 9, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, चौथा संस्करण: 2013, पृष्ठ संख्या 176

3- "वही, पृष्ठ संख्या- २००.

4- "वही पृष्ठ संख्या- २२1

5- "वही पृष्ठ संख्या- 199-200

6- "वही पृष्ठ संख्या- 23

7- "वही पृष्ठ संख्या- 198.

केदारनाथ सिंह के काव्य में बिंब-विधान

डॉ० प्रमोद कुमार द्विवेदी

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, श्यामलाल महाविद्यालय (सांध्य) दिल्ली विश्वविद्यालय

हिंदी कविता के क्षेत्र में काव्य-बिंब पर विचार आधुनिक काल में आरंभ हुआ। आधुनिक काल से पहले काव्य-विवेचन में बिंब को आधार नहीं बनाया जाता था। प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र में यह दिखाई नहीं देता। इस संबंध में डॉ. केदारनाथ सिंह लिखते हैं- ''भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा में 'बिंब' शब्द अपेक्षाकृत नया है। पुराने लक्षण-ग्रंथों में इस शब्द का उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। केवल दृष्टांत अलंकार की चर्चा में बिंब-प्रतिबिंब भाव का उल्लेख मिलता है। जिसका आधुनिक कविता के बिंब से कोई संबंध नहीं है।''[1] डॉ. नगेन्द्र भी बिंब पर विचार करते हुए यही मानते हैं कि ''जिस रूप में बिंब का विवेचन यूरोप के साहित्य के अन्तर्गत वर्तमान शती में हुआ उस रूप में भारतीय काव्यशास्त्र में नहीं मिलता।''[2]

बिंब शब्द का जन्म मूलतः लैटिन के 'इमेगो' शब्द से हुआ है। 'इमेगो' का अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द 'इमेज' है। 'बिंब' इसी अंग्रेजी शब्द 'इमेज' का हिंदी पर्याय है। इस शब्द का तात्पर्य अर्थचित्र, छाया, प्रतिमूर्त्ति, अनुकृति, प्रतिछाया आदि से लगाया जाता है। बिंब को परिभाषित करते हुए आई. ए. रिचर्डस ने लिखा है- ''बिंब एक दृश्यचित्र, संवेदना की एक अनुकृति, एक विचार, एक मानसिक घटना, एक अलंकार अथवा दो अनुभूतियों के तनाव से बनी एक भाव-स्थिति कुछ भी हो सकता है।''[3] केदारनाथ सिंह बिंब की परिभाषा देते हुए लिखते हैं- ''बिंब वह शब्द-चित्र है जो कल्पना के द्वारा ऐन्द्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है।''[4]

आधुनिक काल में 'बिंब' को कविता के सबसे महत्त्वपूर्ण शैल्पिक उपकरणों में से एक माना गया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे बहुत महत्त्व दिया। वे लिखते हैं- ''काव्य में अर्थग्रहण मात्र से काम नहीं चलता, बिंब-ग्रहण अपेक्षित होता है।''[5] केदारनाथ सिंह इसके महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए लिखते हैं- ''प्राचीन काव्य में जो स्थान 'चरित्र का था, आज की कविता में वही स्थान बिंब अथवा 'इमेज' का है।''[6]

समय के साथ कविता के बिंब-विधान में भी परिवर्तन उपस्थित होता रहता है। हर युग का कवि एक ही प्रकार के बिंबों का निर्माण नहीं करता है। इस परिवर्तन और विकास को रेखांकित करते हुए केदारनाथ सिंह ने लिखा है- ''मानवीय-संस्कृति का इतिहास चेतना के विकास का इतिहास है। इस विकास के साथ-साथ काव्यात्मक बिम्बों के स्वरूप तथा पद्धति में भी अंतर आता गया है। यह विचित्र बात है कि काव्य में बिंबों का अंतरावलम्बन उसी प्रकार चलता रहता है, जिस प्रकार जीवन में संस्कृतियों का।''[7]

छठे दशक में नई कविता के कवियों के रूप में जब केदारनाथ सिंह और उनके अन्य समकालीन कवियों का उभार हुआ था तो कविता का विशेष बल 'नवीन बिम्बों' के परिचय के माध्यम से 'हमारी ऐन्द्रिक चेतना को वृहत्तर यथार्थ के साथ संयुक्त' करने पर था। तीसरा सप्तक के अपने वक्तव्य में केदारनाथ सिंह ने इस संबंध में लिखा है- ''...मानव संस्कृति के विकास में कवि का योग दो प्रकार से होता है- नवीन परिस्थितियों के तल में अंतःसलिला की तरह बहती हुई अननुभूत लय के आविष्कार के रूप में तथा अछूते बिंबों की कलात्मक योजना के रूप में। पहले में कवि का व्यक्तित्व मुखर होता है, दूसरे में वस्तु-जगत् के साथ उसका अधिकाधिक संबंध। लय के आविष्कार के द्वारा वह मानवीय संवेदना को व्यापक बनाता है और नवीन बिम्बों के परिचय से हमारी ऐन्द्रिय चेतना को वृहत्तर यथार्थ के साथ सम्पृक्त करता है।''[8]

ऐन्द्रिय आधार पर बिंब के भेदों में दृश्य बिंब का स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। आधुनिक हिंदी कविता में जिन कवियों ने दृश्य बिंब का बहुत सशक्त और प्रभावशाली प्रयोग किया है उनमें केदारनाथ सिंह अग्रणी हैं। केदारनाथ सिंह को हम बिंबवादी कवि के रूप में भी देखते हैं। इनकी कविताओं में दृश्य-बिंबों की बहुलता है। दृश्य-बिम्ब किसी भी वस्तु की विभिन्न क्रियाओं एवं उसकी समग्र चेष्टाओं को चित्रांकित करने में पूर्णतः समर्थ होता है। दृश्य-बिंब के दो प्रारूप परिलक्षित होते हैं- पहला वस्तु का मूर्तीकरण तथा दूसरा उसकी विविध क्रिया-कलापों एवं चेष्टाओं का मूर्तीकरण। उनके काव्य संग्रहों अभी बिल्कुल अभी, यहाँ से देखो, जमीन पक रही है, अकाल में सारस, बाघ, उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ, ताल्सटॉय की साइकिल आदि में उनके द्वारा दृश्य बिंबों का प्रभावशाली अंकन हुआ है।

केदारनाथ सिंह के बिंब-निर्माण-कौशल का प्रमाण उनके द्वारा निर्जीव वस्तुओं में भी सजीव का आरोपन करना है। 'ईश्वर और प्याज' शीर्षक कविता में वे पृथ्वी को कत्थई गोल प्याज के सादृश्य बनाते हैं। उनका मानना है कि ईश्वर किसी भी स्थान पर हो या नहीं किंतु जिस जगह आस्था एवं विश्वास है वहाँ ईश्वर जरूर होता है। पृथ्वी की तुलना प्याज से होने पर पाठक अपने मन की आँखों से पृथ्वी का रूप देखने लगता है-

''उधर छिल चुकने के बाद
अब पृथ्वी जैसा गोल कत्थई प्याज
मेरी हथेली पर था
और ईश्वर कहीं और हो या न हो

उन आँखो में जरूर कहीं था
मेरे छोटे-प्याज में
अपना वजूद खोजता हुआ''[9]

काव्य-बिम्ब में नए उपमानों को मिलाने से बिम्ब अधिक प्रभावशाली हो जाते हैं। दृश्य बिम्ब का उदाहरण हम वहाँ देख सकते हैं जब कवि एक तीव्र ज्वाला की तुलना करने के लिए 'एक तनी हुई लम्बी आग की रस्सी' का उपयोग करता है। इस दृश्य बिम्ब में आग एवं संगीत दोनों का मिला-जुला स्वर आभासित हुआ है-

''मेरी स्मृति में आज भी
एक दहकता अग्निकुंड है
एक तनी हुई लम्बी आग की रस्सी
जिस पर चलना था आदमी को
और वह पूरा माहौल द्रुत लय में
बज रहा था ढोल की तरह''[10]

केदारनाथ सिंह काव्य-बिंब का चयन करते समय उसे आदिम-विकास की परंपरा में जाकर खोजते हैं। उन्हें अरावली की झाड़ियों में उगने वाली झरबेरियों की स्मृति हो आती है जिन्हें मानो सभ्यता की सूची से बहुत पहले ही काटकर फेंक दिया गया हो। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि झरबेरियाँ संभ्रांत वर्ग की नहीं अपितु सर्वहारा वर्ग के पसंद की वस्तु है जिसे आदिम काल से लेकर आज तक उतने ही चाव से पसंद किया जा रहा है। आदिम काल में मनुष्य अपने जीविका का उपार्जन करने के लिए प्रकृति पर ही निर्भर था। यह निर्भरता कवि को आश्वस्त करती है कि कम-से-कम आज भी पृथ्वी पर झरबेरियाँ होती हैं। इसके माध्यम से कवि दृश्य-बिम्ब का समायोजन करता है-

''अरावली की इन झाड़ियों में
मैं बरसों से देख रहा हूँ
झरबेरियाँ तोड़ने का यह लहूलुहान जलसा
और जब भी देखता हूँ
यह भूला हुआ सच परेशान करता है मुझे
कि ये वही झरबेरियाँ हैं
जिन्हें शायद सभ्यता के पहले दिन
सूची से काटकर पेंक दिया गया था बाहर''[11]

दु:ख एक भाववाचक संज्ञा है एवं अमूर्त है किंतु केदारनाथ सिंह दुख का मूर्तीकरण करने के प्रयास में उसकी समानता नाखून से कर देते हैं जिसमें एक प्रकार की चुभन है और यह नाखून की तरह पैनी भी है-

''लिखूँगा-मेरे शहर में दुख रोज-बरोज
नाखून की तरह बढ़ता जा रहा है
मेरा पड़ोसी अक्सर जग पड़ता है आधी रात
और चिल्लाता है-बचाओ बचाओ
शायद उसने दुख को देख लिया है
लिखूँगा कि उससे संपर्क किया जाए

ताकि दुख का-

दुनिया को सारे दुख की जड़ का
पता चल सके''[12]

कवि शाम के हल्के पीले होने अर्थात् पियराने की कल्पना साँझ के कटोरे से कर लेता है। इस कल्पना से सूर्यास्त के समय होने वाला बिम्ब आँखों के समक्ष दृश्यमान हो जाता है-

''साँझ के कटोरे में
देखी मैंने दिन की जरा-भीख।''[13]

इनके द्वारा 'बाघ' शीर्षक से रचित कविताओं में बाघ के कई बिम्ब देखने को मिल जाते हैं। इनमें 'एक जिंदा और सुच्चा बाघ' जाने वाली बैलगाड़ियों को चुपचाप खड़ा होकर देखता है। उसे घूमते हुए गोल पहिये सांस की धीमी गति के समान लगते हैं। यहाँ कवि ने दृश्य-बिंब के प्रयोग से बैलगाड़ी के पहिये एवं साँस दोनों की गति को एक-दूसरे से उपमित कर दिया है-

''इस बार जाती हुई बैलगाड़ियों से
उसे हो गया प्यार
उसे अच्छे लगे गोल-गोल
घूमते हुए पहिये
उसे सांस की तरह लगी
वह धीमी-धीमी गति
जोकि पहियों से झर रही थी
वह खड़ा-खड़ा
एकटक देखता रहा
जाती बैलगाड़ियों को''[14]

केदारनाथ सिंह की कविताओं में दृश्य रूप मानवीकरण के साथ कुछ इस तरह दिखाई देता है-

''वह जो दढ़ियल समुद्र
सब जानता है
कि वही- सिर्फ वही जानता है
कि तट पर बिखरे हुए बालू के कणों में
वह कौन-सा कण है
जिसके भीतर बंद है उस पहले जहाज के लंगर के निशान
और खून के वे छींटे
जो वहां गिरे थे पहली बार पुरखों की पीठ से
कोड़ों से छिलकर''[15]

केदारनाथ सिंह ने इस कविता में समुद्र के मानवीकरण रूप को परिलक्षित किया है। इस कविता में प्रस्तुत दृश्य-बिंब पाठक की आँखों के सामने 'दढ़ियल समुद्र' के मानवीकरण रूप में दिखाई देता है। इन्होंने अपने काव्य के द्वारा रंग सभ्यता के अनेक दृश्य बिंबों को मूर्त रूप प्रदान किया है, जो इनकी इस कविता में देखा जा सकता है-

''भूरी और उदास
वह एक जर्जर-सी पाण्डुलिपि थी
शायद पिछली सदी की''[16]

केदारनाथ सिंह ने यहाँ पाण्डुलिपियों की जर्जरता के माध्यम से दृश्य-बिंब को प्रस्तुत किया है। यहाँ पाण्डुलिपियों के भूरे रंग की सभ्यता उसकी जर्जरता और प्राचीनता को बताती है। आगे इसी कविता में कवि ने पाण्डुलिपियों के मानवीकरण के द्वारा उनके नितांत अकेलेपन की त्रासदी को कुछ इस तरह से प्रस्तुत किया है-

''अकसर सोचता हूँ
वह क्या होता है उनकी स्याही में
कि पन्ना-पन्ना बिखर जाने के बाद भी
वे सदियों तक ताकती रहती हैं
किसी राहुल की राह
किसी तिब्बत के मठ में''[17]

केदारनाथ सिंह ने इस कविता में पाण्डुलिपियों के माध्यम से दृश्य-बिंब को प्रस्तुत किया है, कैसे पाण्डुलिपियों के माध्यम से मनुष्य के बिखरने और पुनः उसके जीवन में आगे बढ़ने की आकांक्षाओं का मानवीकरण किया गया है। दृश्य-बिम्ब ही वह टूटन है, जिसके माध्यम से केदारनाथ सिंह पाठक से मुखातिब हो पाते हैं।

केदारनाथ सिंह की कविताओं में रेल में यात्रा कर रही भीड़, बाजार, बसों में सामान की तरह भरे हुए लोगों के दृश्य-बिंब देखे जा सकते हैं-

''तुम्हें नूर मियाँ की याद है
गेहुएँ नूर मियाँ
ठिगने नूर मियाँ

रामगढ़ बाजार से सुरमा बेच कर
सबसे अंत में लौटने वाले नूर मियाँ।''[18]

इस कविता को पढ़ते हुए नूर मियाँ का प्रतिबिम्ब अपने-अपने तरीके से देखा जा सकता है। कवि द्वारा रचे गये बिंब को पाठक अपने अनुभव के आधार पर ग्रहण करता है। इन्होंने अपनी कविता 'बनारस' में दृश्य-बिंब को कुछ इस तरह से प्रस्तुत किया है-

''इस शहर में धूल
धीरे-धीरे उड़ती है
धीरे-धीरे चलते हैं लोग
शाम धीरे-धीरे होती है
धीरे-धीरे बजते हैं घंटे
शाम धीरे-धीरे होती है''[19]

इस कविता में पूरे बनारस के बिंब को दर्शाया गया है। यहाँ एक और बनारस का दृश्य पाठक के सामने प्रस्तुत होता है।

इस प्रकार केदारनाथ सिंह के काव्य में बिम्ब-विधान का विवेचन करते हुए हम देखते हैं कि उनकी कविता बिम्बधर्मी कविता है और इसके अंतर्गत उन्होंने नवीन दृश्य बिम्बों का बहुत कुशल और सार्थक प्रयोग किया है। यह उनके काव्य को शिल्पगत उत्कर्ष भी प्रदान करता है और उसकी अर्थवत्ता को भी सघन बनाता है।

संदर्भ-

1. केदारनाथ सिंह, आधुनिक हिंदी कविता में बिंब-विधान, पृ. 13
2. डॉ. नगेन्द्र, काव्य-बिंब, पृ. 44
3. उद्धृत, केदारनाथ सिंह, आधुनिक हिंदी कविता में बिंब-विधान, पृ. 27
4. केदारनाथ सिंह, वही, पृ. 23
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि (भाग-1), पृ. 145
6. केदारनाथ सिंह, तीसरा सप्तक (सं. अज्ञेय), पृ. 116
7. वही, पृ. 122
8. केदारनाथ सिंह, तीसरा सप्तक, पृ. 128
9. वही, तालस्ताय और साइकिल, पृ. 32
10. वही, पृ. 43
11. वही, पृ. 58
12. वही, पृ. 80
13. वही, पृ. 121
14. वही, बाघ, पृ. 121
15. वही, तालस्ताय और साइकिल, पृ. 32
16. वही, पृ. 16
17. वही, पृ. 18
18. वही, यहाँ से देखो
19. वही, यहाँ से देखो

हिंदी उपन्यासों में चित्रित कश्मीर और कश्मीरी समाज

कृष्णा अनुराग

शोधप्रज्ञ, हिंदी विभाग, ल.ना.मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

प्रो० राजेंद्र साह

विभागाध्यक्ष, विश्वविद्यालय हिंदी विभाग, ल.ना.मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

कश्मीर का एक मुक्कमल इतिहास श्राजतरंगिणीश के समय से ही निरन्तर लिखित रूप में प्राप्त होता रहा है। किंवदंतियों को अगर सत्य माना जाये तो चंद्रकांता कश्मीर की उत्पत्ति के समय से ही अलग- अलग जातियों के टकराव की बात स्वीकार करती हैं। उन्होंने लिखा है- "जलोदद्भव जब अपनी राक्षसी वृत्तियों के कारण, किनारों पर रहते नाग, निषाद, दर्द, भुट, भिक्ष आदि आदिवासी जातियों का संहार करने लगा, तो भीषण यंत्रणाओं से त्रस्त राजा नील ने, जो उन दिनों नागों का राजा था, पिता कश्यप ऋषि के पास कनखल जाकर अरदास की, कि उन्हें जलोद्भव से मुक्ति दिलाई जाए।"[1] ऐसे तमाम प्रसंगों से हिंदी उपन्यास भरे पड़े हैं जिनसे कश्मीर के सामाजिक ताने बाने को समझा जा सकता है। आदिकाल से वर्तमान काल तक कश्मीरी समाज में वर्ण- व्यवस्था की दिशा और दशा क्या रही, इसका संवेदनात्मक और तथ्यात्मक वर्णन हिंदी उपन्यासों में मिलता है। इस आलेख के माध्यम से इस बात का पता लगाने की कोशिश की गई है कि कश्मीर के सामाजिक ताने-बाने ने कश्मीर को बेहतर बनाने या बिगाड़ने में क्या योगदान दिए। कश्मीर आज जिन परिस्थितियों से जूझ रहा है, कहीं उनके पीछे पूर्वकाल की सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक, सांस्कृतिक मान्यताएं तो जिम्मेदार नहीं? इस आलेख में इन्हीं बिंदुओं के उत्तर विस्तारपूर्वक तथ्यात्मक ढंग से देने की कोशिश की गयी है।

आज जब कुछ कश्मीरी लेखक और कवि यह कहते हैं कि कश्मीर में इस्लाम के आगमन से पहले तक सब कुछ ठीक था और तथाकथित ऊँची-नीची जातियों के बीच भी भेद नहीं था तब यह जरूरी हो जाता है कि इस बात की पड़ताल की जाए कि क्या यह सत्य है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि मंगोल लुटेरे जलकदर खान (दुलचा) ने चौदहवीं शताब्दी में कश्मीर को लूटने के लिए भयानक आक्रमण किया और श्रीनगर को तहस-नहस कर के चला गया। ऐतिहासिक उपन्यासकार शत्रुघ्न प्रसाद अपने उपन्यास 'कश्मीर की बेटी' में इस घटना का जिक्र करते हुए यह बतलाते हैं कि जब तत्कालीन राजा सहदेव ने राज्य को दुलचा के आक्रमण से बचाने हेतु जनता से कर के रूप में सहयोग मांगा तब पंडित प्रवरदेव स्वामी ने कहा था- "मैं प्रायोपवेशन पर बैठूंगा। परिणाम मंगलकारी होगा। नहीं तो ये राजा, महाराजा, सम्राट, ब्राह्मणों से कर लेना आरंभ कर देंगे।"[2] आपदकाल में राज्य के शीर्ष पंडित का यह वक्तव्य यह स्पष्ट करता है कि उस दौर में भी राज्य से ऊपर अपने वर्ण का स्वार्थ पंडितों पर हावी था। इतना ही नहीं, जब प्रवरदेव स्वामी के अपने दामाद मुकुल भट्ट (जो तब राज्य के मुख्यमंत्री थे) ने कहा कि राजा ब्राह्मण है उसका उत्तर देते हुए प्रवरदेव स्वामी कहते हैं-.

"राजा अब लोहर क्षत्रिय कुल से जुड़ गए हैं। ब्राह्मण हम हैं। हम राज्य की रक्षा के लिए नगर के, अष्ट भैरवों की पूजा करते हैं, शिव एवं शक्ति की उपासना करते हैं। सहित्य एवं साहित्य शास्त्र की रचना करते हैं। भामह, वामन, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त सभी पंडित हैं। हमसे और क्या चाहिए?"[3] यह विचारणीय है कि जब राजा के प्रति ब्राह्मणदेव के ऐसे उद्गार थे तब उस दौर में तथाकथित दलितों की स्थिति कितनी तकलीफदेह रही होगी। कोई भी राज्य गुलाम तब ही बनता है जब वहां की राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक व्यवस्थाएं बिल्कुल बेपटरी हो जाएं, कश्मीर में भी वही हुआ। तथाकथित नीची जाति के लोगों से ब्राह्मण और शासक वर्ग ने पशुओं की तरह व्यवहार किया जिसका खामियाजा कश्मीरी जनता को गुलाम बनकर उठाना पड़ा। जब एक तथाकथित दलित ब्राह्मणदेव के द्वार पर अपनी बेटी की समस्या ले कर आता है तब पंडित प्रवरदेव कहते हैं- ष्मैं मनु और पराशर नहीं हूँ। शुद्र की दासी-पुत्री पर मैं क्या विचार करूँ? जैसा चाहो वैसे रखो।"[4] इन उदाहरणों से हम कश्मीर की तत्कालानी सामाजिक परिस्थितियों का मूल्यांकन कर सकते हैं। सम्भवत: यह समाजिक वैमनस्य और विद्वेष एक महत्त्वपूर्ण कारक रहा जिसकी वजह से कश्मीर गुलाम हुआ।

अशोक पांडे लिखते हैं- "कश्मीरी पंडितों की उस समय की त्रासदी को इस रूप में समझा जाना चाहिए। अपने विशेषाधिकार को सुरक्षित रखने के लिए समाज को जिस तरह उन्होंने खांचों में बांटकर शेष जातियों को हाशिये पर डाल दिया था, स्वाभाविक था कि इस त्रासदी में उन्हें कोई सहयोद्धा या सहभोक्ता नहीं मिला।"[5]

अपने को कश्मीर का मूलनिवासी बताने वाले कश्मीरी पंडितों और शासक वर्ग ने समाज के भीतर एक ऐसी गहरी और चौड़ी खाई का निर्माण किया था जिसमें नीची कही जाने वाली जातियों की जिंदगी नरक में रहने से भी बदतर हो गयी थी। अशोक पांडे एक और तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए लिखते हैं- "क्षेमेन्द्र के विवरणों से अंदाजा लगाया जा सकता है कि राजा, डामरों और कायस्थों के दुश्चक्र में आम किसानों की स्थिति बेहद दयनीय थी। जहाँ दरबारी जन तली हुई मछली खाते हैं, शराब पीते हैं और इत्र- फुलेल लगाकर आनन्द करते हैं, वहीं आम किसान जौ के छिलके और उपलाक्ष (कड़वे स्वाद वाली एक सब्जी) खाकर जीवन गुजारते हैं।"[6]

यहाँ एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रस्तुत करना समीचीन जान पड़ता है कि कश्मीर का पहला विदेशी शासक रिनछेन (भोट देश का राजकुमार) जिसने बाद में इस्लाम धर्म अपना लिया वह भी महारानी कोटा देवी से विवाह के उपरांत शैव धर्म में दीक्षित होना चाहता था। इस्लाम धर्म अपनाने से पहले रिनछेन पंडित प्रवरदेव स्वामी के पास जा कर कहता है- "यदि आपकी कृपा हो जाये तो मेरी विवशता समाप्त हो जाये। राजभवन की राजरानी शैव हैं। प्रजा शैव है। मुझे भी शैव हो जाना चाहिए। मुझे दीक्षा दें।"[7] इसके जवाब में पंडित प्रवरदेव स्वामी कहते हैं- "मैं असमर्थ हूँ, राजा रिनछेन!"[8] इस घटना से व्यथित रिनछेन ने सैयद बुलबुलशाह से इस्लाम धर्म की दीक्षा ले ली। यह विचारणीय है कि अगर तब पंडित प्रवरदेव ने अपना वर्ण अहंकार और अपना स्वार्थ त्याग कर रिनछेन को शैव धर्म में दीक्षित किया होता तो कश्मीर का आज जैसा स्वरूप है क्या वैसा ही रहता? यह सर्वविदित है कि रिनछेन (सुल्तान सदरुद्दीन) के बाद ही शाहमीर वंश ने कश्मीर पर कब्जा जमाया। अगर पंडित प्रवरदेव यह ऐतिहासिक गलती नहीं करते तो सम्भव है कि कश्मीर का इतिहास और स्वरूप कुछ और ही होता। रिनछेन के इस्लाम अपनाने के बाद से ही शाहमीर का कद दरबार में लगातार बढ़ता गया और अंतत: कश्मीर की सत्ता पर उसका कब्जा हो गया और यहीं से कश्मीर के परतन्त्र होने की गाथा शुरू होती है। कश्मीर लगभग छह सौ वर्षों तक गुलाम रहा। पहले शाहमीर वंश, फिर मुगल शासन का दौर, तब अफगानों की बर्बरता और उसके बाद सिक्खों और डोगरों का राज कश्मीर ने देखा। इन छह सौ वर्षों में कई उतार चढ़ाव आये लेकिन इस दौर में भी यह बात स्पष्ट रूप से दिखती है कि कुलीन ब्राह्मण वर्ग ने अपने विशेषाधिकार को बचाये रखा। विषम और विपरीत परिस्थितियों में जब उनके समक्ष अस्तित्व बचाने का संकट था तब भी उन्होंने उस सामाजिक खाई को पाटने की कोशिश नहीं की जो कश्मीरी समाज के रोमख्रोम में व्याप्त थी। इतनी ही नहीं सिकन्दर बुतशिकन आदि शासकों के दमन के कारण धर्म परिवर्तन कर लेने वाले ब्राह्मणों से भी उन्होंने अछूत की तरह व्यवहार किया और उन्हें दोबारा हिन्दू धर्म में दीक्षित करने से स्पष्ट रूप से मना कर दिया। इस दौर में ब्राह्मणों ने सामाजिक विभेद का और विस्तार ही किया फलस्वरूप ब्राह्मणों में भी नई जातियाँ- उपजातियों बनीं। 'गोर', 'कारकुन', 'लेजीबट्ट' आदि का प्रचलन इसी काल में शुरू हुआ जो कालांतर में और बढ़ता ही चला गया परिणामस्वरूप 'गोर' और 'कारकुन' के बीच रोटी-बेटी का सम्बंध बिल्कुल खत्म हो गया। यह भी जान लेना आवश्यक है कि शासकीय सेवा में जो लोग कर्मचारी, अनुवादक, क्लर्क आदि हुए वे पहली श्रेणी के ब्राह्मण हुए और उन्हें ही 'कारकून' कहा गया, दूसरी श्रेणी के ब्राह्मण वे हुए जिन्होंने संस्कृत धर्मग्रंथों का अध्ययन किया और धार्मिक क्रियाकलापों में संलिप्त रहे वे ही 'गोर कहलाये।

इस्लाम अनुयायी शासकों के दौर में ही कश्मीरी समाज में एक बड़ा परिवर्तन यह हुआ कि दलित, शोषित, वंचित और पिछड़ी जातियों के लोगों ने सूफी संतों के चमत्कारों से प्रभावित हो इस्लाम मत को स्वीकार लिया। इसके पीछे एक बड़ा कारण यह भी था कि उन्हें हिन्दू धर्म में वह सम्मान नहीं मिल रहा था जिसकी उन्हें अपेक्षा थी। इसीलिए यह कहना भी बिल्कुल सही नहीं होगा कि शासकों ने तलवार की नोक पर कश्मीर में धर्मांतरण करवाया। धर्मांतरण के पीछे तब की सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियां ये भी जिम्मेदार थीं।

कश्मीर में इस्लाम के आगमन से एक नई तरह की सामाजिक संरचना का विकास हुआ। कालांतर में धर्मान्तरित मुसलमानों ने ही कश्मीरी पंडितों का भयानक दमन किया। इन सभी महत्त्वपूर्ण बिंदुओं को अशोक पांडे ने अपनी पुस्तक में रेखांकित किया है। सिक्खों के शासनकाल में एक बार फिर कश्मीरी समाज मे पंडितों का वर्चस्व बढ़ा। यह महत्त्वपूर्ण है कि इतने वर्षों का तक गुलामी की जंजीरों में बंधे रहने के बावजूद कश्मीरी पंडितों ने सिक्ख शासन के दौरान भी समन्वयवादी नीति नहीं अपनाई और अपनी श्रेष्ठता साबित करने के चक्कर में समाज को बांटने का ही प्रयास किया। राज्य के तमाम बड़े पदों पर आसीन कश्मीरी पंडितों ने अपनी ऐतिहासिक गलतियों से कोई सबक नहीं लिया।

हिंदी उपन्यासों में इसका विस्तृत और व्यापक चित्रण है कि श्रीनगर में रहने वाले कुलीन ब्राह्मणों को छोड़ कर गाँव में गुजर बसर करने वाले हिंदुओं का जीवन दोयम दर्जे का था लेकिन कश्मीरी पंडितों ने उनके उत्थान के लिए कुछ भी नहीं किया। गांव के गरीब हिन्दू और मुसलमान श्रीनगर के बड़े पंडित परिवारों में बावर्ची से लेकर नौकर तक के काम किया करते थे। डोगरा राज्य में भी यह सिलसिला बदस्तूर जारी रहा।

हिंदी उपन्यासों में मुसलमानों के हिन्दू परिवारों के नौकर होने के कई उदाहरण दिखलाई पड़ते हैं। एक उदाहरण त दृष्टव्य है-

"यों गुलकाका आया था नौकर की हैसियत से सौदा सुलुफ लाने, पर बन गया धीरे-धीरे घर का सदस्य, बच्चों का काका, राजनाथ का राजदार।"[9] इस उदाहरण से यह तो निश्चितरूपेन स्पष्ट होता है कि तब हिन्दू मुसलमानों के बीच दिलों में दरार नहीं पड़ी थी। यद्यपि सामाजिक असामनता की खाई तब ज्यादा ही चौड़ी थी। डोगरा शासन के पतनकाल में जब राजशाही के खिलाफ आवाज उठनी शुरू हुई तब भी लड़ाई समाज के दो वर्ग यथा गरीब और अमीर के मुद्दे पर ही शुरू हुई। एक तरफ किसान, मजदूर, काश्तकार आदि का जीवनस्तर पशुओं से भी गया- गुजरा था वहीं दूसरी तरफ रईस पंडितों और सैय्यदों के घरों में सोने चांदी, जवाहरात की कोई कमी न थी। यही कारण क है कि जब डोगरा शासन के खिलाफ आंदोलन भड़का तब राज्य में बड़े ओहदों पर काबिज मुसलमानों ने भी इस आंदोलन को दबाने की ही कोशिश की।

मुसलमानों के प्रतिनिधिमंडल ने राजा से मुलाकात कर उन्हें आश्वासन दिया था कि वे उनके शासन में ही विश्वास रखते हैं। दूसरी तरफ कश्मीरी पंडित थे जिनकी भूमि भूमि सुधार कानून' लागू होने के बाद छीन गयी थी। ऐसी स्थिति में भी पंडितों ने सामाजिक दूरियों को मिटाने के प्रयास नहीं किये। अपनी जमीन छीन लिए जाने के बाद वे जब काश्तकारों को अपनी बराबरी में खड़ा देखते तो उनके अहंकार को ठेस पहुंचती थी। चंद्रकांता लिखती हैं- "क्या करते नित्यानन्द भी, वक्त की करवट ने उनका सिंहासन हिला दिया था। उम्रभर जो लोग पाँव देखकर बात करते थे, वही अब आँख में आँख डालकर बात करने लगे हैं। आखिर सहने की भी एक सीमा होती है न!"[10] यहाँ एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य जोड़ देना आवश्यक है कि जो कुलीन और रईस कश्मीरी पंडित परिवार अपनी ही बिरादरी में 'गोर' और 'लेजिबट्ट' से वैवाहिक संबंध नहीं स्थापित करते थे वे ही रईस मुसलमानों के साथ थोड़ी आनाकानी के बाद अपनी बेटियों का विवाह करने के लिए राजी हो जाते थे। वहीं दूसरी ओर अगर कोई निम्न वर्गीय हिन्दू लड़की

और निम्न वर्गीय मुसलमान लड़के के बीच वैवाहिक संबंध स्थापित हो जाता तो उसपर हाय-तौबा मच जाती। चंद्रकांता तथा अन्य लेखकों ने अपने उपन्यासों में इसका सविस्तार चित्रण किया है।

निष्कर्षरूप से यह कहा जा सकता है कि कश्मीरी समाज सदियों से संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। तेरहवीं- चौदहवीं शती में जब वादी में शैव धर्मावलम्बियों का बाहुल्य था तब भी समाज में समन्वय नहीं था। ऊँच नीच की भावना तब भी अपने चरम पर थी। उसके बाद के कालों में भी जब धर्मांतरित मुसलमानों का बाहुल्य हुआ तो नए प्रकार की परिस्थितियां और चुनौतियों का सामना कश्मीरी समाज को करना पड़ा। इसी कड़ी मैं हम देखते हैं कि कैसे वादी में शैव धर्मावलम्बियों की संख्या घटती चली गयी और मुसलमानों, जिसमे शिया और सुन्नी दोनों ही हैं उनकी संख्या लगातार बढ़ती चली गयी। कश्मीर केंद्रित हिंदी उपन्यासों का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है कि कश्मीरी पण्डित समाज एक तरफ खुलेपन को स्वीकार करता था, जिसे हम मुसलमान नौकरों का हिन्दू घरों में अबाध प्रवेश के रूप में देख सकते हैं वहीं दूसरी ओर पण्डित समाज की अपनी संकीर्णताएं भी थीं जिसके कारण वह सिमटता ही चला गया। और आज स्थिति यह है कि वादी में पण्डितों की संख्या बेहद कम रह गयी है।

मुसलमान शासकों ने भी कश्मीरी समाज पर एक विशेष प्रभाव डाला जिसका चित्रण हिंदी उपन्यासों से लेकर इतिहास की पुस्तक श्कश्मीरनामाश और श्कश्मीर और कश्मीरी पंडितश में स्पष्ट है। जिस समाज में केवल शैव और बौद्ध थे उसमें धर्मान्तरित मुसलमानों ने भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। कालांतर में शैव, बौद्ध और इस्लाम मतावलंबियों ने अपने स्तर पर कश्मीरी समाज को एकसूत्र में बांधने की कोशिश भी की परन्तु कई सामाजिक कारणों से हिन्दू-मुसलमानों के बीच दरार बढ़ती ही चली गयी और कश्मीरी समाज धीरे- धीरे विखण्डित होता गया। यही कारण है कि आज वादी में हिंदुओं और बौद्धों की संख्या इतनी कम रह गयी है कि कश्मीरी समाज मे उनकी कोई गिनती ही नहीं होती। अब कश्मीरी समाज के नाम पर वहाँ सिर्फ मुसलमान ही रह गए हैं जो कश्मीर की ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं का निर्वहन कर रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1) चंद्रकांता, कथा सतीसर, पृष्ठ-13, राजकमल पपरबैक्स
2) शत्रुन प्रसाद, कश्मीर की बेटी, पृष्ठ-18, सत्साहित्य प्रकाशन
3) शत्रुन प्रसाद, कश्मीर की बेटी, पृष्ठ-12, सत्साहित्य प्रकाशन
4) शत्रुन प्रसाद, कश्मीर की बेटी, पृष्ठ-86, सत्साहित्य प्रकाशन
5) अशोक पांडे, कश्मीर और कश्मीरी पंडित, पृष्ठ-55, राजकमल पपरबैक्स
6) अशोक पांडे, कश्मीर और कश्मीरी पंडित, पृष्ठ-43, राजकमल पपरबैक्स
7) शत्रुन प्रसाद, कश्मीर की बेटी, पृष्ठ-207, सत्साहित्य प्रकाशन
8) शत्रुन प्रसाद, कश्मीर की बेटी, पृष्ठ-207, सत्साहित्य प्रकाशन
9) चंद्रकांता, यहाँ वितस्ता बहती है, पृष्ठ-47, वाणी प्रकाशन
10) चंद्रकांता, यहाँ वितस्ता बहती है, पृष्ठ-39, वाणी प्रकाशन

मिथिलेश्वर का उपन्यास यह अंत नहीं और जाति-व्यवस्था का यथार्थ

डॉ० मनीष कुमार चौधरी

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, दौलतराम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय समाज विविध जातियों में जकड़ा हुआ है। यह व्यवस्था पुरातन काल से समाज में व्याप्त है। प्रारम्भ में जाति व्यवस्था कर्म पर आधारित थी लेकिन कालान्तर में जन्म आधारित होती गयी जिससे जाति-प्रथा का प्रचलन बढ़ता गया। शुरुआत में इस जाति व्यवस्था का परिणाम समाज के लिए सुखद था। अलग-अलग जातियों के लोग अपने-अपने कार्यों से एक दूसरे की मदद और आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। सामाजिक व्यवस्था में एक जाति दूसरे पर आधारित होती थी जिससे सौहार्द का वातावरण कायम था। अंग्रेजी शासन ने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए समाज में जातिवाद का विष घोल दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजनेताओं एवं राजनीतिक दलों ने सत्ता का सुख भोगने के आपसी सौहार्द को इस कदर तोड़ा कि प्रत्येक जाति और धर्म आपस में एक दूसरे के दुश्मन बन गये। आज के समय में जातिवाद एक बीमारी के रूप में समाज में उपस्थित है। मिथिलेश्वर के उपन्यासों में जाति व्यवस्था के विविध संदर्भ दिखाई देते हैं।

मिथिलेश्वर के उपन्यास 'युद्धस्थल' में जब कस्बे के होटल में कुछ ऊँची जाति के लोग खाना खा रहे थे तभी निम्न जाति के कुछ लोग खाने के लिए होटल में आ जाते हैं और होटल मालिक से खाना लगाने के लिए कहते हैं। होटल मालिक ने डोम जाति के लोगों को समझाया कि बाबू साहब लोग खाना खाकर चले जाएँ उसके बाद तुम लोग खाना। ''उन्होंने होटल मालिक से कहा होटल में भेद-भाव कैसा? जो पैसा देगा, वह खाएगा। जल्दी खाना लगाओ, नहीं तो तुम्हारी हंडी-तसली उठाकर सड़क पर फेंक देंगे।'' ''होटल का मालिक चिंतित हो गया। अपरिचित ग्राहकों के आने पर वह आसानी से निपट लेता था लेकिन स्थानीय और एक दूसरे से परिचित लोग आकर उसे मुसीबत में डाल देते थे। होटल का मालिक जानता था, अगर डोमों को वह बाबू लोगों के साथ खिलाता है तो बाबू लोग उस पर जरूर बिगड़ेंगे और नहीं खिलाता है तो ये डोम उसे बेइज्जत करेंगे। लेकिन इसी वक्त होटल के मालिक को एक बात सूझी। वह डोमों को बिठाकर अपने होटल के बगल वाले धोबी के पास पहुंचा। धोबी को समझा-बुझाकर अपने साथ ले आया। अब होटल का मालिक अलग बैठ गया। उसके समझाएं अनुसार धोबी डोमों को खाना परोसने लगा। लेकिन यह क्या? धोबी द्वारा खाना परोसा जाता देख डोम गाली बकते हुए उठ खड़े हुए। वे धोबी को पहचानते थे। होटल के मालिक पर बरसते हुए बोले, 'साला हमारा खाना धोबी से परसवाता है..... हमारा धर्म बिगाड़ता है..... हम धोबी का छुआ नहीं खाएंगे.... कमीना हरामजादा बदमाश

''होटल के मालिक को मन ही मन खुशी हुई। वह सुनता रहा, डोम उसे गालियां बकते हुए वहां से चले गए।''[1]

'यह अंत नहीं' उपन्यास के माध्यम से जाति-व्यवस्था को प्रमुखता से उद्घाटित किया गया है। उपन्यास में एक गाँव जिसका नाम 'खवासडीह'है जिसमें भारतीय समाज में व्याप्त जाति-व्यवस्था के विविध रूप देखे जा सकते हैं। यह गाँव बड़घ्टोली और कहार टोली में विभाजित है। बड़घ्टोली में उच्च जाति (सवर्ण) के लोग रहते हैं तथा कहार टोली में पिछड़ी जाति के लोग रहते हैं। भारतीय समाज में प्रत्येक जाति के अलग-अलग कार्य होते हैं, जैसे- ब्राह्मण का काम शिक्षा देना तथा पूजा-पाठ कराना, क्षत्रिय का कार्य रक्षा करना, धोबी का काम कपड़ा धोना, बढ़ई का काम लकड़ी से उपयोगी वस्तु बनाना तथा नाई का काम बाल काटना और कुम्हार का काम मिट्घ्टी के बर्तन बनाना। गाँव में कुछ ऐसी भी जातियाँ थी जिनका अपना कोई व्यवसाय नहीं है। 'यह अंत नहीं' उपन्यास के माध्यम से समाज में व्याप्त जाति-व्यवस्था के यथार्थ को अभिव्यक्त किया गया है-

''चुनिया के पिता नरोत्तम कहार गाँव के अल्पसंख्यकों में से था। कहार-टोली के सात-आठ घरों में से एक था। उन कहारों के जिम्मे खेती के लिए अपनी कोई जमीन नहीं तथा नाई, धोबी, बढ़ई, कुम्हार आदि जातियों की भांति अपना कोई जातिगत व्यवसाय नहीं। अपनी आजीविका चलाने के लिए उन्हें जोतदारों के यहाँ बनिहार-चरवाह बनना पड़ता। बरातों में पानी भरना तथा पालकी ढोना होता।''[2]

भारतीय समाज में सजातीय विवाह की परम्परा है। लोग अपनी जाति में विवाह के पूर्व एक दूसरे की जाति का पता लगाने के बाद ही शादी करते हैं। 'यह अंत नहीं' उपन्यास का पात्र नरोत्तम जो कहारटोली का है अपनी बेटी चुनिया का विवाह पहाड़पुर के जोखन के साथ करने से पहले उसकी जाति की पड़ताल करता है। जो इस कथन से परिलक्षित होता है-

> *''बुन्तु और नरोत्तम ने जो तथ्य संगृहित किए उसके अनुसार सचमुच जोखन कहार पिता और रजवारिन माता से पैदा हुआ था। हालाँकि रजबार और कहार एक दूसरे से मिलती-जुलती जातियाँ थी, लेकिन समाज में दोनों की अलग पहचान थी। उनमें एक दूसरे के साथ शादी-ब्याह का प्रचलन नहीं था। वैसे दोनों एक जनमिहाँ नहीं, दो जनमिहाँ ही जातियाँ थीं (जिस जाति में पति के मरने के बाद पत्नी दूसरी शादी नहीं करती वह एक जनमिहाँ जाति मानी जाती है। इसके विपरीत पति के मृत्यु के बाद जिस स्त्री दूसरी शादी कर लेती है वह दो जनमिहाँ जाति होती है।) जाति के आधार पर जोखन को नकारने का विचार नरोत्तम और उसके परिवार को वाजिब नहीं जान*

पड़ा। जोखन का बाप अगर रजवार होता तो वह बात सोचने वाली होती। बाप तो असली कहार था। फिर माँ के रजवारिन होने से क्या? जाति और वंश तो बाप से चलता है? अपने गाँव और जवार में जोखन कहार के रूप में प्रसिद्ध है, रजवार के रूप में नही। उसकी मायभामहतारी भी तो कहारिन ही है। यह कोई बड़ी बात नहीं। इसे अनदेखी कर शादी करनी है। ऐसी शादियाँ होती रही हैं।''[13]

'यह अंत नहीं' उपन्यास में जोखन और चुनिया रघुनाथपुर में आरा के कल्लन सेठ के मछली वाले तालाब की देखभाल करते हैं। पति-पत्नी को बाहर से आया जानकर गाँव वाले इनका परिचय पूछते थे। उसकी जाति की पूछकर उसके बाद उसके प्रति अपना दृष्टिकोण बनाते हैं।

''जवाब में उस आगन्तुक द्वारा अपनी बिरादरी बताने के बाद ही पूछने वाले उसके प्रति अपना व्यवहार निर्धारित करते.....। अगर पूछने वाले का बिरादरी का होता था तो वे उसके प्रति आत्मीयता का रूप प्रकट करते, अन्यथा उसे दूसरी बिरादरी का जान टरका देते।''[14]

रघुनाथपुर गाँव में अलग-अलग जाति के लोग रहते हैं। ये जातियाँ जीविकोपार्जन के लिए अलग-अलग व्यवसाय करते हैं।

''बड़टोली के लोगों की जीविका के मुख्य स्रोत उनके खेत थे, मगर नन्हटोली के लोगों की जीविका रोज-मजदूरी, बनिहारी-चरवाही और अपने जातिगत पेशे पर अवलम्बित थी। बढ़ई, कुम्हार, नाई, धोबी, डोम, चमार, कानू, दुसाध, पासी, ग्वाला आदि जातिगत पेशे से ही वे जीते थे...।''[15]

रघुनाथपुर गाँव में अलग-अलग जातियों के लोग रहते हैं, बड़टोली में बड़ी जाति के लोग एवं नन्हटोली में छोटी जाति के लोग रहते हैं। इस गाँव में प्रमुख रूप से दो जातियों का बोध होता था लेकिन अन्दर की स्थिति इससे भिन्न थी। बड़ी जातियाँ एक-दूसरे से उच्च होने का दावा करती तथा एक दूसरे से दूरी बनाकर जीती थी। ब्राह्मण, राजपूत और भूमिहार जातियों में तय नहीं हो पाता था कि इनमें से कौन ऊंची जाति है और कौन निम्न जाति है।

''बड़ी और छोटी जातियों के बीच भी ऐसी अनेक जातियाँ थीं, जो जातिगत धरातल पर एक दूसरे से बड़ी और छोटी की दूरी बनाकर जीती थीं। बड़ी जातियों के ब्राह्मण, राजपूत, और भूमिहार आपस में यह तय नहीं कर पाते कि उनके बीच बड़ा कौन है और छोटा कौन....? ब्राह्मण और भूमिहार को लेकर तो रघुनाथपुर में काफी अनबन थी। जहाँ रघुनाथपुर के ब्राह्मण, भूमिहार को एक स्वतंत्र जाति मानते थे वहाँ भूमिहार अपने को ब्राह्मण घोषित कर अपने पूजापाठ आदि के कार्य स्वयं सम्पन्न करते।''[16]

इन छोटी जातियों में भी जातिगत दूरियाँ अधिक होती हैं। कोइरी, कुर्मी, यादव और तेली अन्य छोटी जातियाँ जैसे कुम्हार, बढ़ई, नाई, भर और केवट जातियों से अपने को ऊँचा समझते हैं। निम्न जातियों में डोम, चमार, दुसाध, मुसहर और गोंड में भी जातिगत दूरियाँ हैं। डोम, चमार सबसे निम्न जाति मानी जाती है। लेकिन ये छोटी जातियाँ अपने से नीचे जाति खोज लेती हैं। डोम और चमार जातियाँ धोबी जाति को अपने से निम्न जाति मानते हैं।

''छोटी जातियों के बीच पर्याप्त जातिगत दूरियाँ थीं। कोइरी, कुरमी, यादव और बनिया अन्य छोटी जातियों से अपने को पृथक महसूस करते....। छोटी जातियों के बीच डोम, चमार, दुसाध और मुसहर सबसे छोटे समझे जाते .....। डोम चमार का बनाया कोई नहीं खाता ....। डोम-चमार भी सबका बनाया खा लेते, लेकिन धोबी का बनाया वे भी नहीं खाते। धोबी को वे अपने से भी निकृष्ट जाति का समझते।

रघुनाथपुर की विभिन्न जातियों की जातिगत विशेषताएँ और रीति-रिवाज भी एक दूसरे से कुछ पृथक थे। लोगों के गुण-दोष-निर्धारण में उनकी जाति को पहले स्थान पर रखा जाता था। यह उस जाति का है तो वैसा होगा ही, इस मान्यता पर लोग डटे रहते।''[17]

'माटी कहे कुम्हार से'उपन्यास में जाति व्यवस्था को प्रमुखता से उठाया गया है। इस उपन्यास में दो अलग-अलग जातियों के युवक-युवतियों की आपसी सहमति से घर से भागकर शादी कर लेने का उल्लेख किया गया है। जिसमें कलावती नामक ब्राह्मण युवती और बिसुनदेव नामक यादव युवक का प्रेम-विवाह ब्राह्मण वर्ग की युवती के परिवार जनों को नागवार गुजरा। अपने से छोटी जाति में शादी को अपनी इज्जत के खिलाफ मानते हैं। वे गुस्से से कहते हैं-

''अब हम गाँव में कौन मुँह दिखाएंगे। इसने तो हमारी सारी मरजाद मिटी में मिला दी।''

''अब हमें इसे काट कर फेंक देना चाहिए.....।''

''नहीं, मार कर जला देना ठीक होगा.....''

''सबसे बढ़िया घटिया कर गाड़ देना रहेगा.....।''

''हरामी विसुनदेवा को भी इस करनी का मजा चखा देना होगा.....।''

''हमारी इज्जत पर डाका डालने वाले विसुनदेवा को अब हमें जीवित नहीं छोड़ना....।''[18]

हमारे समाज में सजातीय विवाह की परम्परा व्याप्त है इसके विरुद्ध जाने वाले को समाज में दण्ड का प्रावधान है। उन्हे ऑनर किलिंग में अपनी जान भी गवानी पड़ती है। सदियों से चली आ रही रूढ़िवादी परम्परा को समाज से मिटाने के लिए आवश्यक कदम उठाने की जरूरत है।

इस तरह के जातिवाद को राजनेता और राजनीतिक दल अपने फायदे के लिए खूब हवा देते हैं। वह जाति के नाम पर अपना उल्लू सीधा करते हैं। एक नेता जो अपने स्वार्थ के लिए जाति की व्याख्या कुछ इस प्रकार करता है -

''अरे भाई, हम जिस जाति के हैं अंततः उस जाति के बीच ही हमें जीना है। शादी-ब्याह, जीनी-मरनी सब जाति में ही होना है, इसलिए जाति की भलाई से बढ़कर कोई कार्य नहीं। मौके पर अपनी जाति ही सहायक होती है, दूसरी जाति नहीं।''

''हमारे जाति वालों की नींद देर से खुली है। जिन जातियों ने पहले ही अपने को संगठित कर लिया, देख लीजिए आज उनकी स्थिति क्या है? सत्ता में वही बने हुए हैं। बड़े-बड़े पदों पर उनके लोग आसीन हैं.....। राज्य में मुख्यमंत्री से लेकर केंद्र के अनेक महत्वपूर्ण विभागों के मंत्री तक वही हैं। इस मामले में हम उनसे अभी बहुत पीछे हैं..... हम मजबूती से संगठित हो जाएं तो राज्य सरकार में हमारी महत्वपूर्ण भागीदारी से कोई हमें वंचित नहीं कर मकता.....''[19]

राजनेता अपना वोट बैंक जाति के आधार पर बनाते हैं और वह इस जाति व्यवस्था के पोषक हैं। वे जनता को इसी में उलझाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। लोग उस नेता की जीत में अपनी जीत देखते हैं। विकास एवं अन्य अनेक मुद्दों की तरफ जनता का ध्यान नहीं जाता है। नेता जनहित के पैसों को अपने विकास में लगा देता है।

भारत में स्वतंत्रता के बाद जमींदारी उन्मूलन के द्वारा जमींदारी प्रथा को समाप्त कर दिया गया किन्तु असमानता तब भी बनी रही। जमींदार अनेक तरीकों से अपनी जमीन को बचाने में सफल रहा। उनकी वह सामंतवादी प्रवृत्ति बनी रही। समाज के कमजोर वर्ग पर उनका अत्याचार अनवरत जारी रहा। वह कमजोर वर्ग पर शोषण और जुल्म करता रहा।

सूचना क्रांति अनेक आंदोलनों एवं लोकतांत्रिक व्यवस्था के कारण इन लोगों में चेतना का विकास हुआ। इन लोगों की जागरुघ्कता और इनकी संगठित शक्तियों के कारण शोषितों के प्रति जो आवाज बुलंद हुई उसका असर स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। के. नाथ का विचार है कि- ''यहाँ का दलित आन्दोलन अस्पृश्यता के खिलाफ नहीं लड़ा गया बल्कि यहाँ पर हारी-बेगारी, नार-बियाना, बंधुआ मजदूरी, बटाईदारी प्रथा व सामंतों के शोषण के खिलाफ आन्दोलन खड़ा हुआ। वर्तमान में नक्सलवाद उसी का रूप है।''[10]

सामंती और जमींदारी प्रथा सर्वाधिक बिहार में है। ज्यादातर सामंत और जमींदार उच्च जातियों के लोग होते थे। ये उच्च जातियाँ छोटी जातियों का शोषण अलग-अलग तरह से करती हैं। उच्च जाति के लोगों के सामने निम्न जाति के लोग खाट पर नहीं बैठ सकते थे। उनके घर की बहू, बेटियों को ऊँची जाति के लोग अपनी जागीर समझते थे। उन्हें बेगारी करने के लिए मजबूर किया जाता था। शादी के बाद उनकी बेटियों को उच्च जाति के लोगों के सामने पैदल जाना पड़ता था। इसी शोषण के कारण नक्सलवाद का जन्म होता है। नक्सलवाद का उद्घ्देश्य था जमींदारों तथा सामंतों के शोषण से मुक्ति। इसका समर्थन राजनीतिक दलों ने भी किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मिथिलेश्वर ने अपने उपन्यासों में बिहार की जाति-व्यवस्था के यथार्थ को बहुत गहराई से अंकित किया है।

संदर्भ

1. मिथिलेश्वर, युद्धस्थल, पृ. 110
2. वही, यह अंत नहीं, पृ. 8
3. वही, पृ. 105
4. वही, पृ. 228
5. वही, पृ. 194
6. वही, पृ. 228
7. वही
8. वही, पृ. 7
9. वही, पृ. 182
10. के. नाथ, बयान (पत्रिका), अंक 79, फरवरी 2013, पृ. 35

साहित्य और सिनेमा का अर्न्तसंबंध

डॉ० नंदिनी तिवारी

प्राध्यापक हिंदी शा.बिलासा कन्या महा. बिलासपुर (छ.ग.)

डॉ० संजय कुमार तिवारी

सहा. प्राध्यापक राजनीति शास्त्र शा.जे.पी.वर्मा स्ना. कला एवं विज्ञान महा. बिलासपुर (छ.ग.)

बीज शब्द- सिनेमा और साहित्य, साहित्य समाज और सिनेमा, साहित्य और सिनेमा के उत्तरदायित्व, भारतीय कलाएँ, सिनेमा: आधुनिक कलारूप।

सारांश- साहित्य शब्द सहित के भाव से नि:सृत होकर अपनी सार्थकता और सृजनशीलता से समाज के मनोरंजन, ज्ञान, जानकारी और आनंद का विषय आरंभ से ही रहा है। इसी के विकसित रूप में नाट्यकला है जो -श्य-श्रव्य काव्य होने के कारण अधिक प्रभावी रूप में सामने आती है। आधुनिक युग में सिनेमा -श्य-श्रव्य का अत्याधुनिक रूप है। ये सभी कलारूप मुख्यत: समाज पेक्षी हैं और समाज हित में, राष्ट्रहित में, मानवता के कल्याण के लिए इन साधनों का प्रयोग होना चाहिए।

साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है। अर्थात् समाज में घटित घटनाओं का प्रत्यक्षीकरण हम उसके साहित्य में कर सकते है। वस्तुत: साहित्य की भूमिका दर्पण से भी एक कदम आगे समाज में व्याप्त स्थितियों, परिस्थितियों, विंडबनाओं आदि का चित्रण मात्र ही नहीं है अपितु इनके समाधान के सुझाव और प्रयास दर्शाने में भी है। क्योंकि साहित्य सामाजिक सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। मानवीय विचारों और भावनाओं को समुचित दिशा और गतिशीलता प्रदान करना साहित्य का महत्वपूर्ण कार्य रहता है। किसी भी राष्ट्र के इतिहास को उठाकर देखा जा सकता है कि उस राष्ट्र के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक प्रत्येक परिवर्तन की पृष्ठभूमि में साहित्य की क्रियाशीलता होती है। जब-जब समाज में विषमताओं का जन्म होता है, नैतिक और मानवीय मूल्यों का ह्रास होता है तब-तब साहित्य समुचित दिशा-निर्देश देता है और जनमानस की राह प्रशस्त करता है।

साहित्य शब्द संस्कृत 'सहित' शब्द से निर्मित है अर्थात् लोक कल्याण के लिए साहित्य-सर्जन होता है। विद्वानों के अनुसार- ''हितेन सह सहित तस्य भव:''। इसलिए साहित्य का उद्देश्य समाज हित है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण के शब्दों में समझें तो- ''केवल मनोरंजन न कवि का कार्य होना चाहिए, उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।'' विद्वानों द्वारा साहित्य की अनेक परिभाषाएँ दी गयी हैं संस्कृत आचार्यो द्वारा काव्य की आत्मा के रूप में रीति, ध्वनि, वक्रोति अथवा रस को माना है और इनसे युक्त रचना ही साहित्य या काव्य की श्रेणी में आती है। आधुनिक हिंदी के आचार्यो में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार- ''कविता जीवन और जगत् की अभिव्यक्ति है।'' या जयशंकर प्रसाद के शब्दों में- ''काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है।'' अर्थात् साहित्य समाज, जीवन, जगत् और सरल शब्दों में हम कह सकते हैं कि साहित्य सामाजिक अनुभवों की भावात्मक अभिव्यक्ति है। वस्तुत: साहित्य का क्षेत्र अति व्यापक है और समस्त परिभाषाएँ अव्याप्ति या अति व्याप्ति के दोष के अंतर्गत आ जाती हैं परन्तु सह निर्विवाद सत्य है कि साहित्य समाज पेक्षी है और समाज के प्रति उत्तरदायी भी।

साहित्य के अन्तर्गत भाव, कल्पना, बुद्धि एवम् शैली तत्वों की परिगणना की जाती है। भाव तत्व जहाँ साहित्य की आत्मा कहा जाता हैं वहीं कल्पना तत्व रचनाकार को स्वतंत्रता प्रदान करता है कि वह किसी भी साधारण से -श्य को विशिष्ट में रूपान्तरित कर सकता है। कल्पना तत्व के ही आधार पर रचनाकार स्वानुभूत और परानुभूत घटनाओं का प्रभावशाली चित्रण कर पाठक या श्रोता के हृदय को आकर्षित कर पाता है। बुद्धि और शैली तत्व साहित्य के प्रस्तुतिकरण के प्रमुख तत्व हैं और इन्हीं के द्वारा साहित्यकार की पृथक इयन्ता निर्मित होती है। इन सभी तत्वों के संयोजन से निर्मित साहित्य भावो और विचारों को मूर्त रूप प्रदान करता है। शास्त्र के स्तर पर जो बौद्धिक विमर्श समाज के एक बड़े वर्ग की पहुंच से दूर रहते हैं वे ही साहित्य की श्रेणी में प्रवाहित होकर जन मानस में प्रचलित हो जाते हैं। तुलसीदास जी की 'रामचरित मानस' के उदाहरण से हम समझ ही सकते हैं कि किस प्रकार उन्होंने सभी शास्त्रों के निचोड़ को कथा रस में पिरोकर भारतीय जनमानस का कंठहार बना दिया है।

इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि प्रत्येक युग में प्रत्येक राष्ट्र में विराट परिवर्तनों की पृष्ठभूमि साहित्य द्वारा निर्मित होती है। सच्चा साहित्यकार स्वप्न -ष्टा होता है, कालजयी होता है। समाज और व्यक्ति को दिशा-निर्देश देने हेतु दूर -ष्टि का होना आवश्यक है और सच्चे साहित्यकारों को अपने समय में विरोधों का सामना जरूर करना पड़ता है। कबीर जब बाहयाडंबर और सामाजिक धार्मिक विकृतियों के विरूद्ध अवाज उठाते हैं तो उन्हें अपमान और अवहेलना सहन करना पड़ता है। तुलसीदास जी को 'रामचरितमानस' और स्वयं के प्राणों की रक्षा के प्रयास करने पड़े थे। राजा राममोहन राय जब समाज सुधार के प्रयास करते हैं तो उन्हें भी सामाजिक विरोध झेलना पड़ा था। प्रेमचंद अपनी कलम की ताकत से समाज में वैचारिक क्रांति लेकर आते हैं और ये ही वैचारिक आंदोलन परिवर्तन की लहर लेकर आते हैं।

आधुनिक युग में गद्य के विकास के बाद सिनेमा का आगमन भारतीय साहित्य की दूसरी महत्वपूर्ण और चमत्कारी घटना है। -श्य और श्रव्य दोनों ही पक्ष होने के कारण सिनेमा जनसमूह के प्रबल आकर्षण का कारण बना। भारत में इससे पूर्व -श्य-श्रव्य माध्यम के रूप में नाट्यकला का सुदीर्घ इतिहास है। ईसा से 2500 वर्ष पूर्व भरतमुनि 'नाट्यशास्त्र' जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना कर चुके थे। शास्त्र-निर्माण से पूर्व नाट्य परम्परा निश्चित ही दीर्घकाल से परिचालित रही होगी। ''जयशंकर प्रसाद नाट्यकला का उद्‌भव वैदिककाल से ही मानते हैं।'' प्रसिद्ध सिनेमा आलोचक अनुपम ओझा के शब्दों में ''चौसठ कलाओं में भी स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत और रंगमंच को विशेष स्थान प्राप्त है। नाट्य को काव्य और कला दोनों में समान स्थान प्राप्त है। भरतमुनि नाट्य के लिए -श्य काव्य शब्द का प्रयोग करते हैं। वास्तव में सिनेमा -श्य काव्य का ही विकास है।''

वस्तुतः सिनेमा विभिन्न कलाओं का सम्मिश्रित रूप है। कला लेखन से लेकर आधुनिक तकनीक का प्रयोग कर सिनेमा आधुनिक युग में एक प्रभावशाली माध्यम के रूप में प्रचलित है। भारत में रंगमंच का इतिहास भी सिनेमा के इतिहास से हजारों वर्ष पूर्व का है। भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में भी नाट्य परम्परा का उल्लेख मिलता है। वस्तुतः नाटक और रंगमंच भारत में वैदिक काल के दौरान प्रचलित रहे होंगे। तभी नाटक को पांचवा वेद की संज्ञा से भी अभिहित किया गया। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में इस घटना का उल्लेख भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र में मिलता है कि देवताओं की विनती पर ब्रह्मा ने जन मनोरंजनार्थ ऋग्वेद से रस लेकर पांचवे वेद अर्थात् नाटक की उद्‌भावना की। इसे शिवजी द्वारा तांडव नृत्य और पार्वती जी द्वारा लास्य प्रदान किया गया।

यह उद्‌भावना सिद्ध करती है कि अनेक कलाओं के सम्मिश्रण से युक्त नाट्यकला -श्य-श्रव्य काव्य का आरंभिक रूप रहा होगा। वर्तमान काल में सिनेमा इसी -श्य-श्रव्य काव्य का अत्याधुनिक रूप बनकर विकास कर रहा है।

आज हिंदी सिनेमा अपनी 100 वर्षों की यात्रा पूर्ण कर अपनी बहुआयामी छवियों का प्रदर्शन कर देश-विदेश में अपनी प्रसिद्धि के झंडे फहरा रहा है। दादा साहब फाल्के ने सन् 1912 में 'राजा हरिशचंद' नाम से पहली भारतीय फिल्म बनाई। यह संस्कृत महाकाव्य के तत्वों से ही कथा सूत्र ग्रहण करता है। अपने प्रगतिकाल में सिनेमा ने शरबचंद्र, प्रेमचंद, रवीन्द्रनाथ टैगोर, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, फणीश्वरनाथ रेणु से लेकर आधुनिक युग में मन्नू भंडारी की रचनाओं पर फिल्म निर्माण हुआ है। वस्तुतः साहित्य और सिनेमा का आंतरिक गठन परस्पर जुड़ा हुआ है। सिनेमा साहित्य से ही कथा-गीत-संवाद-शैली आदि ग्रहण करता है। परंतु सिनेमा का अपना एक पृथक कला-जगत भी है। उसकी अभिव्यक्ति के स्तर अलग-अलग बिंबों से मुखरित होते हैं। संवादों से पर भी, कथा से इतर भी यहाँ अभिव्यंजना के अलग धरातल -ष्टिगोचर होते हैं। आधुनिक तकनीक के प्रयोग से सिनेमाई कला का रूप और भी प्रखर होकर निखर आया है। यह अपनी सम्मोहक क्षमता से दर्शकों के मन और बुद्धि पर अधिकार जमा लेता है।

आदिकाल से ही मनुष्य मस्तिष्क की क्षुधापूर्ति के लिए कला प्रशंसक रहा है। मानवीय मूल्यों के संरक्षण और संवर्द्धन में कलाओं की महती भूमिका रही है। साहित्य, संगीत, नाट्य, शिल्प, चित्र आदि कलाओं के विविध हैं और इन सभी के सम्मिश्रण से निर्मित सिनेमा आधुनिक युग की सर्वाधिक सशक्त कला माध्यम बनकर उभरा है। सिनेमा -श्य-श्रव्य कला माध्यम है और आधुनिक प्रौद्योगिकी के सहारे एक बेहद सशक्त और प्रभावशाली माध्यम के रूप में -ष्टिगोचर होता है। अपने आरंभिक नाट्य रूप से आगे चलकर सृष्टि रचने में सक्षम सिद्ध हुआ है। सिनेमा और साहित्य परस्पर पूरक है और अन्योन्याश्रित सम्बंध-निर्वहन करते हैं तथापि आज का युग सिनेमा-जगत की सफलता का है। यदि इस दौर में भी साहित्य और सिनेमा सार्थक गठबंधन बनाए रख पाते हैं तो सिनेमाई आकर्षण और साहित्य की सहित भावना मिलकर समाज के लिए कल्याणकारी भूमिका निभा सकते हैं।

सिनेमा और साहित्य दोनों ही कला जगत के महत्वपूर्ण उपादान हैं। दोनों ही अपने मूलरूप में मनोरंजन के साथ-साथ सामाजिक दायित्वों के निर्वहन हेतु समुचित ज्ञान प्रदान करते हैं। दोनों ही माध्यम समाज-सापेक्ष हैं और अपनी अनुभूति का आधार समाज से ही ग्रहण करते हैं। समाज के विकास के साथ-साथ ही साहित्य भी विकसित होता गया और समाज-निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता रहा है।

सिनेमा अपेक्षाकृत नवीन और आधुनिक विद्या है परंतु इसके मूल में भी साहित्य ही निहित है। कथा, संगीत और भाव के बिना तो हम सिनेमा की कल्पना ही नहीं कर सकते हैं ये सारी सामग्री सिनेमा भी साहित्य से ही प्राप्त करता है और अन्ततः समाज तो इन दोनों की अनुभूति का मूल आधार है ही। सामाजिक अनुभव ही रचनाकार की अनुभूति का कारण बनते हैं और यही अनुभूति रचनाकार की वैचारिक और मानसिक भट्टी में गलकर अभिव्यक्ति का नया आकार ग्रहण करती है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि साहित्य और सिनेमा एक-दूसरे से पृथक नहीं है। साहित्य तो सिनेमा का मूल आधार है ही परंतु साथ ही आधुनिक युग का प्रभावी माध्यम होने के कारण सिनेमा अपना पृथक और मौलिक अस्तित्व भी रखता है। साहित्य और सिनेमा दोनों ही समाजोन्मुखी हैं और समाज से ही सामग्री ग्रहण करते हैं और समाज के प्रति उत्तरदायी भी हैं। सिनेमा जैसे महत्वपूर्ण साधन का उपयोग भी समाज के वैचारिक सुधार और नैतिकता, मानवीयता के संरक्षण और सवंर्धन हेतु होना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. जालिंदर इंगले, साहित्य और सिनेमा, गौरव बुक्स कानपुर, पृष्ठ 155.
2. अनुपम ओझा, भारतीय सिनेमा सिद्धांत, राजकमल प्रकाशन, विवेक दुबे, हिंदी साहित्य और सिनेमा, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली
3. संपादक मृत्युंजय, सिनेमा के सौ बरस, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली
4. आलोक पांडेरा, समाज में सिनेमा, (मीडियम-विमर्श सिनेमा-विशेषांक-1, दिसंबर 2012)

भारत में सुशासन एवं पारदर्शिता एक चुनौती

डॉ० माया यादव

सहायक अध्यापक (राजनीति विज्ञान), शासकीय जेपी वर्मा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

सारांश- 15 अगस्त 1947 को स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात भारत में स्वतंत्रता समानता एवं न्याय पर जनतांत्रिक शासन प्रणाली की नींव रखी गई और उम्मीद की जाने लगी की पारदर्शिता एवं उच्च नैतिक आधार प्रदेश में सुशासन स्थापित होगा वास्तव में प्रत्येक सरकार का अपने राष्ट्र और जनता के प्रति कर्तव्य भी होता है इस स्वप्न को साकार करने के लिए ए सी बी ई डी, सी बी आई और सीआईडी संस्थाओं की स्थापना की गई। आवश्यकता अनुसार समय-समय पर भ्रष्टाचार निरोधक कानून सूचना अधिकार लोक सेवा गारंटी अधिनियम सिटीजन चार्टर जैसे कठोर कानून का निर्माण कर शासन प्रशासन पारदर्शिता लाने का प्रयास भी किया गया किंतु इस दशा दिशा में आज भी वंशी सफलता नहीं मिल पाई है सास को तथा प्रसाद को हम जनता का सेवक बनना चाहते थे वह व्यवहार में उनके मालिक वह तथापि यह संतोष का विषय है कि विभिन्न देशों में सुशासन एवं पारदर्शिता का सर्वे करने वाली अंतर गठन शब्द जस्टिस प्रोजेक्ट वजन की ओपन गवर्नमेंट इंडेक्स की रिपोर्ट सूचकांक 2021 में भारत 139 देशों और न्यायक्षेत्रों में से 79वें स्थान पर था विश्वास है जिस तरह से शासन के क्रियाकलापों में खुलापन पारदर्शिता के कठोर मापदंडों को अपनाने का प्रयास किया जा रहा है सफलता एक दिन अवश्य मिलेगी।

प्रस्तावना- शान अपने आप में तटस्थ शब्द है जबकि सुशासन में गुणवत्ता से संबंध सकारात्मक विशेषताएं और मूल्य निहित होते हैं सुशासन एक गतिशील अवधारणा है और सुशासन के पहलुओं को परिभाषित करने में बड़ी मात्रा में व्यक्तिगत निष्ठा समिति समाविष्ट होती है सुशासन से तात्पर्य किसी सामाजिक इकाई जैसे निगम राज्य सरकार आदि को इस पर चलना कि वह वांछित परिणाम देश सुशासन के अंतर्गत बहुत सी चीज आती है जिनमें अच्छा बजट सही प्रबंधन कानून का शासन सदाचार आदि इसके विपरीत प्रदर्शित की कमी का संपूर्ण अभाव जंगल राज लोगों की कम भागीदारी भ्रष्टाचार का बोलबाला आदि दुशासन के लक्षण हैं।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम यूएनडीपी सुशासन की आठ मुख्य विशेषताओं मान्यता प्रदान करता है

1) सहभागिता पूर्ण
2) सर्वसम्मति उन्मुख
3) पारदर्शी
4) उत्तरदाई
5) अनुक्रियात्मक प्रभावी और कुशल
6) समतापूर्ण और समावेशी
7) कानून के शासन का पालन करने वाला

विषय वस्तु- सुशासन सरकार के तीन लक्षण है-

1)पारदर्शी 2)जवाब देही एवं 3)उत्तरदाई सरकार यह तीनों ही लोकतांत्रिक सरकार के मूलाधार हैं सरकार मुख्यत: जनता के लिए कार्य करती है तथा उन्हें सामाजिक आर्थिक एवं सामान्य सेवाएं प्रदान करती हैं यह सेवाएं नागरिक केंद्रित होने के कारण नागरिकों द्वारा बहुत आए में प्रदान की जाती है इस प्रकार भारत में शासन संबंधी मुद्दे के प्रमुख कारण है-

1) कानून संबंधी और न्यायिक मुद्दे- विलंबित न्याय वाद विचार, अधीनता से जुड़े मुद्दे, न्यायपालिका से जवाब देही का अभाव, जीवन और व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए संकट।
2) पर्यावरणीय और सामाजिक मुद्दे-जनसंख्या के एक बड़े भाग को मूल सुविधाएं भी प्राप्त नहीं होना, सामाजिक धार्मिक जाति और लैंगिक संबंधता के कारण उनका बहिष्कार, निर्धन लोगों जिन्हें प्रशासन में भागीदारी के बहुत कम अवसर मिलते हैं और विशेष कर भौतिक पर्यावरण में विशेष कर शहरों में गिरावट आदि है।
3) राजनीतिक मुद्दे- राजनीति का अपराधीकरण, राजनीति शक्ति का दुरुपयोग ,विकेंद्रीकरण की बातें कागजों में अधिक क्रियाएं में कमी है।
4) प्रशासनिक मुद्दे प्रशासनिक मुद्दे-राजकीय मशीनरी में संवेदनशीलता पारदर्शिता का अभाव ,नौकरशाही द्वारा देरी, पारदर्शिता और जवाब देही में वृद्धि करने वाले परिवर्तनों का प्रतिरोध।
5) आर्थिक मुद्दे- अर्थव्यवस्था का कम प्रबंध ,वित्तीय असंतुलन, क्षेत्रीय असमानताएं।

भारत में सुशासन की पहल-

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है लोकतंत्र की सफलता पारदर्शिता पर निर्भर करती है भारत में सरकार के कार्यों में पारदर्शिता लाने व उत्तरदायित्व को बढ़ावा देना भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने की उद्देश्य से सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 लाया गया यह अधिनियम 15 जून 2005 को अधिनियमित हुआ अधिनियमित होने के 120 दिन बाद 12 अक्टूबर 2005 से यह अधिनियम आम नागरिकों के लिए क्रिया वनीत हुआ यह अधिनियम सरकार को अधिक जवाब दे बनता है यह कानून नागरिकों को सरकार की गतिविधियों के बारे में जानकारी देने के लिए एक बड़ा कदम है।

सुशासन की संक्षिप्त रूप में निम्न व्याख्या की जा सकती है

1) विकेंद्रीकरण और जन भागीदारी
2) वित्तीय प्रबंधन और बजट सुचिता
3) नागरिक चार्टर
4) नागरिक के शिकायतों का निवारण
5) आईसीटी उपकरण का प्रयोग
6) पारदर्शिता और जवाब देही के उपाय
7) सूचना के अधिकार निर्बल वर्गों और पिछले क्षेत्र के लिए कार्यक्रम विकसित करना
8) प्रक्रियाओं और कार्य पद्धति का सरलीकरण
9) सार्वजनिक सेवा में भ्रष्टाचार कम करने के उपाय मीडिया की पारदर्शिता आदि।

निष्कर्ष- सूचना सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 पारित होने से सरकारी विभागों द्वारा महत्वपूर्ण सूचनाओं को छुपाने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने सरकारी तंत्र एवं जनता के बीच की दूरी कम करने प्रशासनिक कार्यों की अनियमित को रोकने देश में सुशासन एवं पारदर्शिता लाने सरकारी एवं अन्य एजेंटीयों की जवाब दे ही सुनिश्चित करने सरकारी कामकाज एवं खर्चे पर जनता की पहली नजर स्थापित करने भ्रष्टाचार को कम करने सरकारी दस्तावेजों का निरीक्षण लोक निर्माण कार्य का निरीक्षण आदि में बहुत उपयोगी साबित हुआ है किंतु समस्या केवल इस बात की है कि इस अधिनियम का उपयोग को लोग अपने फायदे के लिए एवं प्रशासन के काम में रोड पैदा करने के लिए कर रहे हैं एवं अतर्कसंगत प्रश्नों के माध्यम से उक्त अधिनियम का सहारा लेकर अर्चना पैदा कर रहे हैं अत: आवश्यकता इस बात की है कि जिस पुनीत उद्देश्य से उक्त अधिनियम को पारित किया गया था उन्हें उद्देश्यों में इनका सहारा लिया जाए तो निश्चित रूप से सुशासन में जवाब देही एवं प्रशासन के कार्यकलाप में पारदर्शिता लाने में यह अधिनियम बहुत ही उपयोगी फायदेमंद एवं मिल का पत्थर साबित होगा।

संदर्भ ग्रंथ-

1. डॉ जे एन पांडे ख्र भारत का संविधान।
2. डॉ जक जौहरी, भारत का संविधान।
3. विश्व के प्रमुख संविधान, आर. सी अग्रवाल।
4. डॉ सुरेंद्र सिंह, सूचना का अधिकार, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी।
5. देवेंद्र कुमार सिंह, सूचना का अधिकार अधिनियम 2005.
6. जनक सिंह मीणा, भारत में प्रशासनिक सुधार एवं सुशासन
7. नित्येंद्र नाथ सिंह, भ्रष्टाचार और लोकसत्ता करता।
8. शिवाली अग्रवाल, भ्रष्टाचार और सुशासन

किशोरावस्था के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर तनाव का प्रभाव

बबली कुमारी

शोधार्थी, शिक्षा विभाग, ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

डॉ० कनक लता सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, डी.बी.के.एन. कॉलेज, नरहन, समस्तीपुर

सार-संक्षेप

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में गम्भीर समस्या उत्पन्न हो गई है। शिक्षा प्रशासन मूलभूत शैक्षिक समस्याओं से अनभिज्ञ है तथा प्रबन्धक समितियाँ शिक्षा की ओर से पूर्णतया विमुख है। शिक्षकगण अपने शैक्षिक कर्त्तव्यों के पालन में अभिरूचि नहीं लेते। विद्यार्थी अनुशासनहीन एवं उदण्ड हो गये हैं। उनका एकमात्र उद्देश्य इस तनाव युक्त मस्तिष्क से येन-केन प्रकारेण परीक्षा उतीर्ण करना हो गया है। आजकल अधिकांश विद्यार्थी भौतिक सुख-सुविधाओं एवं दृश्य-श्रव्य यन्त्रों के माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इन यन्त्रों के माध्यम से सूचनात्मक ज्ञान प्राप्त करना सरल हो गया है। जिससे छात्रों को व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाता। इससे विद्यार्थियों में प्रतिस्पर्धा, द्वेष, ईर्ष्या आदि अवगुणों का आविर्भाव हो रहा है। परिणामस्वरूप छात्र तनाव युक्त हो रहे हैं। जाहिर है कि इससे छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि भी प्रभावित होती है। सूचना, संचार एवं तकनीक के इस युग में विद्यार्थियों पर मानसिक दबाव में काफी अभिवृद्धि हुई जिससे तनाव छात्रों को अपनी असफलता तक घेरे रहता है। इस तनाव से छुटकारा पाने के लिए स्वाध्याय, मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक विधियों के द्वारा शिक्षण को सरल, सुबोध तथा कौशलात्मक विकास की आवश्यकता है। क्योंकि तनावशील किशोरवय में शैक्षिक उपलब्धि पाना सरल, सहज और आसान नहीं रह गया है। आये दिन देखने को मिलता है कि माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, केन्द्रीय शिक्षा बोर्ड एवं इस स्तर के प्रतियोगी परीक्षाओं आदि के परिणाम आने पर बहुत से विद्यार्थी निराश हो जाते हैं और वह तनाव में आने के कारण आत्महत्या तक कर लेते हैं। अत: किशोरवय के विद्यार्थियों में तनाव का काफी असर देखा जाता है।

शब्द कुंजी: तनाव, शैक्षिक उपलब्धि, प्रतिस्पर्द्धा, कौशलात्मक विकास आदि।

प्रस्तावना

वर्तमान की जड़ अतीत में होती है। भारत का अतीत अत्यन्त गौरवशाली था। हमारी संस्कृति धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत थी। हमारे पूर्वजों ने जीवन को व्यापक दृष्टिकोण से देखा और 'सर्वभूर्त वितेरता' होना ही अपना कर्त्तव्य समझा। प्राचीन भारत में शिक्षा का प्रारम्भ अतीत में हो चुका था। हमारे प्राचीन शिक्षाविदों ने मानव जीवन की सार्थकता एवं सामाजिकता, वयैक्तिकता, राष्ट्रीयता, उपादेयता आदि अनिवार्य तत्वों की शिक्षा में उचित व्यवस्था की, जिससे समाज उत्तरोतर गतिशील बना रहे। समाज की गतिशीलता का आधार शिक्षा थी। शिक्षा ही वह साधन था जो समाज की आवश्यकताओं, अनिवार्यताओं और मूल्यों को स्थापित, परिमार्जित तथा संरक्षित करने में समर्थ थी समाज में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव शिक्षा के स्वरूप पर पड़ता था। देश काल और परिस्थितियों के अनुरूप शिक्षा के स्वरूप, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों, प्रविधियों आदि में बदलाव होता रहा है। जिससे कि समाज की संस्कृति और मूल्य पुनर्जीवित और विकसित होते रहे। अतएव देश विशेष में एक युग में ही शिक्षा का स्वरूप एक प्रकार का हो सकता है और दूसरे काल में दूसरे तरह का। हमारी भारतीय शिक्षा बहुत विस्तृत और व्यापक है, यह शिक्षा प्रणाली किसी विदेशी प्रणाली पर आधारित नहीं थी अपितु भारत की पूर्ण झलक प्रतिविम्बित होती है। उस समय भारत ज्ञान-विज्ञान में विश्वगुरू था। ज्ञातव्य है कि किसी भी प्रकार के तनाव से छात्र प्रभावित नहीं थे। आत सभी स्तर के छात्र विशेषकर किशोरवय के छात्र तनाव से घिरते नजर आ रहे हैं।

संसार में प्राणी जगत में सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य है उसमें अनेक गुण विद्यमान होने के कारण वह सबसे बुद्धिमान माना जाता है। उसमें अनेक शक्तियाँ व गुणों का विकास होता है। उसमें एक ऐसा तत्व या गुण पाया जाता है उसके आधार पर हर वस्तु व चीज को जान लेता है। वह है जिज्ञासा इसके आधार पर उसने अनेक खोज व आविष्कार किये हैं जिसे जब मनुष्य किसी चीज को पाने की या अपनी इच्छानुसार किसी से व्यवहार की अपेक्षा करता है और वह उसे नहीं मिल पाता है तो उसमें हलचल उत्पन्न हो जाती है। इससे उसमें तनाव उत्पन्न हो जाता है।[1]

तनाव व्यक्ति की वह मनोशारीरिक दशा है, जो व्यक्ति में उत्तेजना व असन्तुलन उत्पन्न कर देता हैं अर्थात व्यक्ति कार्य भी करता है और परेशान भी रहता है। इस प्रकार विभिन्न इच्छाएं, लक्ष्य की पूर्ति, अपमान, शारीरिक कमी, अतिरिक्त कार्यभार आदि से तनाव उत्पन्न हो सकता है।

व्यक्ति के अन्दर आवश्यकता ऐसी चीज है जो उसमें तनाव की स्थिति उत्पन्न कर देती है। जब ये आवश्यकता हमारी पूर्ण हो जाती है तो हमें सुख प्राप्त होता है। वही जब आवश्यकता पूर्ण नहीं होती है तो हमें दु:ख व कष्ट मिलता है। इसी तरह किशोरवय के छात्रों को अपने जीवन से काफी अपेक्षाएँ होती हैं जिसे वे प्राप्त करना चाहते हैं तथा वह प्राप्त नहीं होने का डर उनमें तनाव उत्पन्न कर देता है।

वर्तमान परिदृश्य में वैसे तो सभी लोगों में लेकिन विशेषकर किशोरवय में धौर्य की कमी देखा जाता है। अगर कोई समस्या आ खड़ी हुई तो वे तुरंत तनाव में आ जाते हैं जबकि उन्हें यह बोध होना चाहिए कि संघर्ष द्वारा इससे निपटे जा सकते हैं। समय की गतिशीलता का बोध ही मनुष्य को कठिन से कठिन परिस्थिति में आश्वस्त करता है कि वर्तमान के दुर्दिन (बुरे दिन) बीत जाएंगे और भविष्य में अच्छे दिन अवश्य आयेंगे। इस प्रकार बुरे दिन व्यक्ति में तनाव पैदा कर देते हैं।[2]

सामान्य रूप से हम तनाव का अनुभव तब करते हैं जब समस्याओं को सुलझाने के हमारे द्वारा किये गये साधारण प्रयत्न सफल नहीं होते हैं। वास्तव में तनाव का अनुभव एक नितान्त व्यक्तिगत मसला है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में आई समस्यात्मक स्थितियों में समायोजन अपने तरीके से करता है और सफलतापूर्वक जीवनयापन करता है। समस्याओं से निपटने के इन्हीं व्यक्तिगत तरीकों में जब अवरोध होता है तब व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है। तनाव को प्रत्यक्षीकृत खतरों के रूप में भी व्यक्त किया जाता है अर्थात् जब व्यक्ति किसी स्थिति में अपने लिए खतरा देखता है, तो उसे तनाव होता है। स्थिति में खतरे का प्रत्यक्षीकरण उद्दीपक स्थिति से सम्बन्धित कारकों तथा व्यक्ति से सम्बन्धित कारकों (व्यक्ति के ज्ञानात्मक स्त्रोत, समायोजी प्रक्रिया तथा व्यक्तिगत लक्षण) दोनों पर निर्भर करता है।[3]

तनाव या कसाव हमारे सबके जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। हम सब इसके शिकार होते रहते हैं। कभी एक साधारण मात्रा में उभरकर हमारे जीवन की घटनाओं को प्रभावित करता है और कभी यह गम्भीर रूप धारण करके हमारे जीवन में उथल-पुथल मचा देता है, हमारी जीवन शैली में बदलाव ला देता है और हमारे मानसिक सन्तुलन पर आघात करता है। यह मानना पड़ेगा कि यह जब अनुकूलनतम मात्रा में होता है तो हमारे व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक एवं लाभप्रद होता है, किन्तु जब यह अनुकूलनतम मात्रा जो विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न होती है, बढ़ जाती है तो यह स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं उत्पन्न कर देती है और हम बीमारी की ओर अग्रसर हो जाते हैं।

वर्तमान युग को तनाव और चिंता के युग के रूप में जाना जाता है। तनाव उम्र, वर्ग, लिंग, नस्ल, जाति, धर्म आदि के बावजूद लगभग हर व्यक्ति को प्रभावित कर रहा है। यह प्रकृति में अत्यधिक व्यक्तिवादी है। कुछ व्यक्ति अधिक तनाव का अनुभव करते हैं और अन्य नहीं। छात्र जीवन में, बच्चे अपने जीवन में एक निश्चित मात्रा में नवीनता, उत्साह और उत्तेजना की लालसा रखते हैं। छात्र निश्चित मात्रा में अनिश्चितता, चिंता और दबाव पर कामयाब हो सकते हैं। यह उन्हें काम करने, सफल होने और जीवन में कुछ हासिले करने के लिए प्रेरित करता है। उनकी ध्यान केंद्रित करने और खुद को आगे बढ़ाने की क्षमता थोड़ी और बढ़ जाती है। इस घटना को यूस्ट्रेस कहा जाता है, जिसका अर्थ है अच्छा तनाव। इसे सकारात्मक तनाव के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। यह छात्रों के दैनिक जीवन में दक्षता को बढ़ाता है। भले ही जीवन उन पर मांग कर रहा हो, वे उन चुनौतियों पर नियंत्रण महसूस करते हैं। अगर ये मांगें एक ऐसे बिंदु पर पहुंच जाती हैं जहां उन्हें लगता है कि वे हार रहे हैं या सामना करने की क्षमता खो चुके हैं। ऐसी स्थिति को संकट कहा जाता है। जब छात्र संकट का अनुभव करते हैं, तो वे अभिभूत महसूस करते हैं और उनका जीवन बहुत अधिक दबाव, भय, घबराहट और चिंता के कारण नियंत्रण से बाहर हो जाता है जिसका नकारात्मक प्रभाव उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ता है।[4] परिणामत: कह सकते हैं कि तनाव विद्यार्थी जीवन में एक सीमा तक होने पर उनके जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक होता है किन्तु तनाव की सीमा बढ़ जाने पर वह उनके शारीरिक, मानसिक के साथ-साथ उनकी शैक्षिक उपलब्धि एवं आकांक्षा स्तर दोनों पर नकारात्मक प्रभाव डालने लगता है।

निष्कर्ष

शैक्षणिक उपलब्धि के आधार पर ही किशोरवास्था के विद्यार्थी अपने जीवन का मार्ग निर्धारित करता है। मार्ग का निर्धारण अच्छी शिक्षा पर निर्भर करता है। आज के जटिल समाज में विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति को काफी संघर्ष करना पड़ता है। हमारा जीवन चुनौतियों और संघर्षों से भरा हुआ है। बचपन से ही हमें जीवन की विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है। व्यक्ति जीवन की इस लड़ाई को जितने बेहतर ढंग से लड़ता है, उतनी ही बेहतर सफलता उसे प्राप्त होती है। बुनियादी जरूरतों के अलावा भी हम जीवन में बहुत कुछ चाहते हैं और यह चाहत हमें हर पल संघर्ष करने के लिए प्रेरित करती है। लेकिन कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हम जिस उद्देश्य को चाहते हैं, जिसके लिए हम दिन-रात मेहनत करते हैं, उसे प्राप्त नहीं कर पाते हैं। जब हमें वह नहीं मिलता जो हम चाहते हैं तो मानसिक द्वंद उत्पन्न होता है जो तनाव का कारण बनता है। इसी प्रकार वर्तमान परिदृश्य में हर विद्यार्थी प्रतिदिन नए पाठ्यक्रमों के बोझ, स्कूल की गतिविधियों की व्यस्तता और काम के बढ़ते दबाव के कारण चिंतित नजर आता है जिसका प्रभाव उसके शैंक्षिक उपलब्धि पर भी पड़ता है।

संदर्भ:

1. पाल, दीपंकर (2017): इफैक्ट ऑफ स्ट्रेस ऑन एकेडमिक एचीवमेन्ट ऑफ अन्डरग्रेजुएट स्टुडेन्ट्स इन त्रिपुरा, शोध प्रबन्ध, शिक्षाशास्त्र, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कालकत्ता
2. मालाथी, एस0 (1996): स्ट्रैस एण्ड टाइम मैनेजमेन्ट ऑफ कॉलेज स्टुडेन्ट्स, शोध प्रबन्ध, शिक्षाशास्त्र, मद्रास विश्वविद्यालय, मद्रास
3. लाल, कृशन (2014): एकेडमिक स्ट्रैस एमन्ग एडोलेसेन्ट इन रिलेशन टु इंटेलीजेन्स एण्ड डेमोग्राफिक फैक्टर्स, अमेरिकन इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन ह्यूमैनिटीज, आर्ट्स एण्ड सोशल साइंसेज, 5(1), 123-129,
4. विल्क्स, एस0ई0 (2008): रेजिलिएन्स एण्ड एकेडेमिक स्ट्रैस: द मॉडरेटिंग इम्पैक्ट ऑफ सोशल सपोर्ट एमन्ग सोशल वर्क स्टुडेन्ट्स, एडवान्स इन सोशल वर्क, 9(2), 100-125

उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत किशोर विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता एवं उनके सामाजिक सामायोजन का तुलनात्मक अध्ययन

रबिन्द्र पासवान

शोधार्थी, शिक्षाशास्त्र विभाग, ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

प्रो० नवीन रंजन रवि

प्राचार्य, मिल्लत शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, मधुबनी

सार-संक्षेप

संवेगात्मक परिपक्वता और सामाजिक समायोजन विद्यार्थी जीवन से ही आना चाहिए। यदि विद्यार्थी में सकारात्मक संवेगात्मक परिपक्वता एवं सामाजिक समायोजन नहीं है तो सामाजिक परिस्थिति में उत्पन्न होने वाले द्वंद्व एवं मन के भीतर चल रहे द्वंद्व के परिणामस्वरूप वह विघटन का शिकार हो जाता है। लेकिन यदि कोई संवेगात्मक परिपक्वता और सामाजिक समायोजन के साथ वैज्ञानिक सोच अपनाकर अपनी समस्याओं का समाधान कर ले तो वह सफलता की सीढ़ियां चढ़ने लगता है। प्रत्येक समस्या के समाधान के लिए वह 'क्या', 'क्यों', 'कहां', 'कैसे', 'कौन' आदि प्रश्नों के उत्तर खोजता है, फिर उपलब्ध सीमित साधनों से ही सफलता प्राप्त करने का प्रयास करता है। उसकी हताशा, क्रोध आदि को कम करने का उपाय ढूंढता है। यह कहा जा सकता है कि इस छात्र अवस्था में संवेगात्मक परिपक्वता और सामाजिक समायोजन के बिना भावी जीवन की तैयारी की कल्पना करना बेकार होगा। जिस प्रकार मानसिक परिपक्वता के अभाव में नया ज्ञान प्राप्त करना कठिन होता है, उसी प्रकार संवेगात्मक परिपक्वता और सामाजिक समायोजन के अभाव में भविष्य की सही नींव नहीं रखी जा सकती।

शब्द कुंजी: किशोरावास्था, संवेगात्मक परिपक्वता, सामाजिक समायोजन, उपलब्धि आदि।

प्रस्तावना

शिक्षा मानवीय गुणों को विकसित करने की प्रक्रिया है। इसके माध्यम से मनुष्य की अंतर्निहित क्षमताओं का विकास किया जाता है और उसे सामाजिक रूप से स्वीकार्य बनाया जाता है। शिक्षा अनुभव और कौशल के माध्यम से छात्रों की जन्मजात शक्तियों, विशेषताओं, रुचियों और प्रवृत्तियों में परिवर्तन करती है और स्वभाव, मानसिक स्तर, रुचि, बौद्धिक क्षमता, व्यक्तित्व आदि का विकास करती है। उच्च माध्यमिक स्तर में छात्रों की अवस्था किशोरावस्था की होती है। इस समय किशोर अपने शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक परिवर्तनों को नियंत्रित करके खुद को समायोजित करने का प्रयास करता है। शिक्षा ही छात्रों को सभ्य बनाती है तथा उचित आचरण करना सिखाती है। अच्छे समायोजन वाला छात्र भविष्य में सफल होता है।

किशोरावस्था के दौरान शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक संतुलन बिगड़ने लगता है और समायोजन संबंधी कई समस्याएं भी उत्पन्न होने लगती हैं। इस समय उसके शरीर में होने वाले बदलावों के कारण वह विद्यालय में भी अपने दोस्तों, सहपाठियों और शिक्षकों के प्रति असमायोजित महसूस करता है। इस अवस्था में भावनाएँ अनियंत्रित होती हैं और उनमें कई उतार-चढ़ाव आते हैं, इसलिए ऐसी अवस्था में किशोरों के लिए अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखना और खुद को समायोजित करना बहुत मुश्किल होता है। समायोजन क्षमता एक जटिल मनोवैज्ञानिक अवधारणा है और इसका विकास जीवन में धीरे-धीरे परंतु निरंतर होता रहता है। परिवार में सकारात्मक वातावरण के माध्यम से किशोरों में उच्च समायोजन क्षमता विकसित की जा सकती है। परिवार के वातावरण में तालमेल बिठाने की क्षमता एक ऐसी अवधारणा है जो किशोरों के लिए उनकी वर्तमान चुनौतियों और कठिन परिस्थितियों के साथ उचित संतुलन स्थापित करके एक कुशल और सफल जीवन जीने के लिए प्रेरणा का स्रोत बनती है। परिवार के बाद विद्यालय ही एकमात्र ऐसा कारक है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किशोरों के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और नैतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अत: माता-पिता के साथ-साथ शिक्षकों का भी यह विशेष दायित्व है कि वे किशोर विद्यार्थियों के समक्ष ऐसे तथ्य, कारक, अनुभव, कार्य एवं व्यवहार प्रस्तुत करें जिससे वे देश के भावी निर्माता बन सके।

प्रत्येक मनुष्य अपनी संवेग से जुड़ा होता है। हालाँकि उनकी संवेगात्मक अभिव्यक्तियाँ उन स्थितियों के कारण भिन्न हो सकती हैं जिनका वे अपने दैनिक जीवन में सामना करते हैं। हर इंसान के जीवन में संवेग महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह कहना उचित होगा कि संवेगात्मक संघर्ष के अनुभव के बिना किसी भी इंसान का जीवन बेकार हो जाता है। इसका कारण यह है कि संवेग रोमांच के साथ-साथ उत्साह भी लाती है जो किसी के जीवन को आनंदमय और रंगीन बनाती हैं। संवेग मानवीय कार्यप्रणाली का आवश्यक पहलू है। यह व्यक्तिगत अनुभव के आवश्यक क्षेत्रों में से एक है जो विभिन्न स्थितियों, संज्ञानात्मक और साथ ही शारीरिक के बीच बहु-पक्षीय बातचीत के कारण होता है।[1] प्रत्येक सफल व्यक्ति के पीछे उनकी संवेग पर प्रबंधन का कौशल होता है, साथ ही संवेग को बढ़ाने वाली स्थितियों को संभालने के लिए व्यावहारिक कौशल और अन्य लोगों को प्रबंधित करने का उनका कौशल होता है।[2] संवेगात्मक रूप से परिपक्व व्यक्ति का जीवन उनके नियंत्रण में होता है।[3] किसी भी संवेग का आशावादी या निराशावादी दृष्टिकोण किसी भी व्यक्ति द्वारा सामना की जाने वाली परिस्थिति पर निर्भर करता है। मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन में संवेग प्रेरक शक्ति के रूप में कार्य करती हैं। किसी व्यक्ति की सोच, महत्वाकांक्षा, कार्य और अपेक्षाएं संवेग से प्रभावित होती हैं।[4] संवेग मनुष्य के व्यवहार में मार्गदर्शक एवं प्रत्यक्ष के रूप में सहायता करती हैं। यह व्यक्ति के जीवन के सभी चरणों का मार्गदर्शन भी करता है। संवेग उत्तेजनाओं की एक संपूर्ण स्थिति है जो शारीरिक क्रियाओं की अस्थिर स्वरूप से जुड़ी होती है। यह उत्तेजना विशेष स्तर की अनुभूति के साथ चेतना प्रदान करती है और व्यक्ति को कार्यों में स्थानांतरित होने के लिए प्रेरित करती है। बचपन में संवेग का असंतुलन प्रत्यक्ष रूप से विकृत और असमायोजि व्यक्तित्व में बदल सकता है।

सामाजिक समायोजन दूसरों द्वारा शोषण से बचने के लिए अनुकूल संबंध विकसित करने की क्षमता है। समुदाय में प्रत्येक व्यक्ति अपने आप को जिस भी वातावरण में पाता है, उसमें समायोजित होने के लिए अपनी पूरी कोशिश करता है, सामाजिक समायोजन को दूसरों के साथ सकारात्मक संबंध विकसित करने के साथ-साथ अन्य लोगों से अलग होने की क्षमता के रूप में वर्णित किया जाता है। सामाजिक समायोजन को व्यक्तियों के चरित्र-चित्रण में एक मौलिक मनोवैज्ञानिक पहलू के रूप में पहचाना गया है। छात्रों में अनुकूलन की क्षमता होनी चाहिए, जो उन्हें जिम्मेदार नागरिक के रूप में विकसित करने में सक्षम बनाएगी। परिणामस्वरूप, ये सभी किशोर छात्रों के लिए समान रूप से उपयुक्त हैं। वे इस अवधि में तनाव और तूफान सहन नहीं कर सकते क्योंकि वे पारस्परिक संबंधों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। वे बस अपने जीवन में संघर्ष करते हैं और चुनौतियों का सामना करते हैं। वे खुद को दूसरों से अलग कर सकते हैं और कभी-कभी नकारात्मक विचारों और व्यवहार में लिप्त हो सकते हैं। परिणामस्वरूप, आज के परिवेश में सामाजिक समायोजन महत्वपूर्ण है।

समाज में समायोजित करने की तकनीकों को एक प्रक्रिया के रूप में समझाया जाता है, जिसके द्वारा एक व्यक्ति अनुकूलन की गुणवत्ता या उसकी सफलता या विफलता की परवाह किए बिना खुद को और अपने परिवेश को समायोजित करता है। यह व्यवहार का एक स्वरूप है जो रोजमर्रा की स्थितियों जैसे घर, स्कूल, नौकरी, बड़े होने और उम्र बढ़ने पर देखा जाता है। यह मौलिक इच्छाओं को नियंत्रित करने, अपनी क्षमताओं पर भरोसा करने और वांछित परिणाम प्राप्त करने में सहायता करता है। परिणामस्वरूप, समायोजन स्व-निर्देशित बौद्धिक, भावनात्मक, सामाजिक, शारीरिक और व्यावसायिक विकास और प्रगति को प्रोत्साहित करता है। वह मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया जिसके द्वारा लोग दैनिक जीवन की माँगों और बाधाओं का प्रबंधन या उनसे निपटते हैं, समायोजन कहलाती है। यह अनुरूपता का प्रतीक है और इसका संबंध इस बात से है कि एक व्यक्ति अपने परिवेश और जीवन की मांगों के साथ कैसे तालमेल बिठाता है।[5]

परिवार का बच्चे के समायोजन, पारिवारिक मूल्यों और कई अन्य कारकों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। परिवार एक सामाजिक संगठन है जिसमें व्यक्ति ईमानदार दृष्टिकोण, मूल्यों, स्नेह और कल्याण के साथ-साथ सदस्यों के अनुकूलन और सफलताओं से बंधे होते हैं।[6]

किशोरावस्था की अवधि के दौरान भावनाओं में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं जैसे मूड और भावनाओं में परिवर्तन, भावनात्मक उतार-चढ़ाव जिसके कारण आंतरिक संघर्ष, दूसरों के प्रति संवेदनशीलता, आत्म-चेतना आदि होती है। किशोरावस्था के दौरान महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं जैसे पहचान की तलाश करना, अधिक स्वतंत्रता की तलाश, घर और स्कूल दोनों में जिम्मेदारी की तलाश करना, जीवन में नए अनुभवों की तलाश, दोस्तों द्वारा अधिक प्रभाव डालना, यौन पहचान विकसित करना और तलाशना। इन परिवर्तनों के कारण किशोरों को अक्सर अपने दैनिक जीवन में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। किशोर सही और गलत के बारे में अधिक सोचते हैं और मूल्यों और नैतिकता का एक मजबूत समूह विकसित करते हैं। वे अपने कार्यों, निर्णयों और परिणामों के लिए स्वयं जिम्मेदार होना भी सीखते हैं।

प्रस्तुत शोध सुनिश्चित उद्देश्यों एवं निर्धारित उपकल्पनाओं के आधार पर संपादित किया गया है। उच्च माध्यमिक स्त्र के कुल 250 छात्र एवं 250 छात्राएँ अर्थात् कुल 500 विद्यार्थियों का चयन सरल यादृच्छिक लॉटरी न्यादर्श विधि द्वारा पश्चिम चंपारण जिला के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों से किया गया है तथा सिंह एवं भार्गव द्वारा निर्मित संवेगात्मक परिपक्वता मानी का प्रयोग कर शोध कार्य पूर्ण किया गया है। वर्तमान शोध के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष निम्नलिखित है:

- उच्च माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की संवेगात्मक परिपक्वता में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
- उच्च माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं के समायोजन में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
- उच्च माध्यमिक स्तर की छात्राओं की संवेगात्मक परिपक्वता व समायोजन में सार्थक अंतर नहीं है।
- उच्च माध्यमिक स्तर की छात्राओं की संवे गात्मक परिपक्वता व व्यक्तित्व में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
- शहरी उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत उच्च तथा निम्न संवेगात्मक परिपक्वता वाले छात्रों का उनके सामाजिक समायोजन के बीच कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं पाया गया है।
- शहरी उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत उच्च तथा निम्न संवेगात्मक परिपक्वता वाले छात्राओं का सामाजिक समायोजन के बीच कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं पाया गया है।

- ग्रामीण उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत उच्च तथा निम्न संवेगात्मक परिपक्वता वाले छात्रों का उनके सामाजिक समायोजन के बीच महत्वपूर्ण सहसंबंध नहीं पाया गया है।
- ग्रामीण उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत उच्च तथा निम्न संवेगात्मक परिपक्वता वाले छात्राओं का उनके सामाजिक समायोजन के बीच महत्वपूर्ण सहसंबंध नहीं पाया गया है।

निष्कर्ष

आज की प्रतिस्पर्धी दुनिया में कठिनाइयों और चिंताओं के बिना आराम से जीवन जीना बहुत कठिन है। जीवन की जटिलताएँ दैनिक जीवन में चिंता, तनाव, निराशा और संवेगात्मक परेशानी जैसी कई मनोदैहिक समस्याओं को जन्म देती हैं। इन स्थितियों से निपटने के लिए उच्च स्तर की संवेगात्मक परिपक्वता हासिल करना आवश्यक है। संवेगात्मक परिपक्वता व्यक्तित्व के स्वरूप का प्रभावशाली पहलू नहीं है बल्कि यह किशोरों के विकास की गति को नियंत्रित करने में मदद करता है। परिपक्व संवेगात्मक व्यवहार का विचार किशोर के सामान्य संवेगात्मक विकास से जुड़ा है। यदि हम संवेगात्मक रूप से परिपक्व किशोरों के संबंध में बात करें तो यह देखा जा सकता है कि उनमें स्वयं के साथ, अपने परिवार के सदस्यों, विद्यालय में सहकर्मी समूहों, अपने समाज और जिस संस्कृति में वे रहते हैं, उसके साथ प्रभावी ढंग से तालमेल बैठाने की क्षमता होती है। यह अवश्य कहा जाना चाहिए कि परिपक्वता का अर्थ न केवल इस प्रकार के दृष्टिकोण और कार्य करने की क्षमता है, बल्कि उनका पूरी तरह से आनंद लेने की क्षमता भी है। मनुष्य अपने जन्म से संवेगात्मक रूप से परिपक्व नहीं होता है बल्कि यह उसके रिश्तों के माध्यम से परिपक्व होता है जिसमें माता-पिता की परवरिश और जीवन के अनुभव शामिल होते हैं। जाहिर है कि संवेगात्मक परिपक्वता वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्तित्व शारीरिक और आंतरिक व्यक्तित्व दोनों में संवेगों, स्वास्थ्य की बेहतर समझ के लिए लगातार प्रयास कर रहा है। अतः किशोरवय में कुशल मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। माता-पिता एवं शिक्षक यदि किशोरवय को कुशलतापूर्वक मार्गदर्शन करते हैं तो उनमें उच्च संवेगात्मक परिपक्वता आती है तथा उनका बेहतर सामाजिक समायोजन भी होता है।

संदर्भः

1. मार्गन, सी. एवं अन्य (1999), इन्ट्रोड्यूश टू साइकोलोजी, टाटा मैकग्राहिल, पृ. 341
2. सिंगारवेलू, एस. (2007) इमोशनल इंटेलिजेन्स ऑफ स्टूडेन्ट टिचर एट प्राइमरी लेवल, एआईएईआर, 07, पृ. 49-51
3. गोलमेन, डी, (1995), इमोशनल इंटेलिजेन्स, बेनटॉम बुक्स, न्यूयार्क, पृ. 121
4. चौमर्बलेन, भी. सी. (1960) एडोलसेन्स टू मैच्यूरिटी, द बेडली हेड, लंदन, पृ. 78
5. बोरिंग एंड लैंग फेल्ड (1948) फाउन्डेशन ऑफ साइकोलोजी, जॉन विले एण्ड सन्स, न्यूयार्क, पृ. 97
6. ओगेमा, ओ. एच. (2012) ए स्टडी ऑफ द इमोशनल इंटेलिजेन्स एण्ड लाइफ एडजस्टमेन्ट ऑफ सिनियर सेकेन्डरी स्कूल स्टूडेन्ट, इंटरनेशनल एकेडमीक कान्फ्रेन्स, यूएसए, पृ. 77

उच्च विद्यालयों के छात्रों के आत्मसम्मान का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव

फराह नाज

शोध-प्रज्ञा, शिक्षा विभाग, ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

डॉ० मो0 अरशद हुसैन

असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, डी.बी.के. एन. कॉलेज, नरहन, समस्तीपुर

सार-संक्षेप

आत्मसम्मान एक सफल सुखी जीवन का आधारभूत तत्त्व है। व्यक्ति आत्मसम्मान के अभाव में सफल तो हो सकता है, बाह्य उपलब्धियों भरा जीवन भी जी सकता है, किंतु वह अंदर से भी सुखी, संतुष्ट और संतृप्त होगा, यह संभव नहीं है। आत्मसम्मान के अभाव में जीवन एक गंभीर अपूर्णता व रिक्तता से भरा रहता है। यह रिक्तता एक गहरी कमी का अहसास देती है और जीवन एक अनजानी-रिक्तता, एक अज्ञात पीड़ा, असुरक्षा और अशांति से बेचैन रहता है। आत्मसम्मान का बाहरी उपलब्धियों और सफलताओं से बहुत अधिक लेना-देना नहीं है। आत्म सम्मान स्वयं की सहज स्वीकृति, स्व-प्रेम और स्व-सम्मान की व्यक्तिगत अनुभूति है, जो दूसरों की प्रशंसा, निंदा और मूल्यांकन आदि से स्वतंत्र है। वस्तुतः आत्मसम्मान व्यक्ति का अपनी नजरों में अपना मूल्यांकन है और अपनी मौलिक अद्वितीयता की आंतरिक समझ और इसकी गौरवपूर्ण अनुभूति है। यह अपने साथ एक सहजता का स्वस्थ और सामंजस्यपूर्ण भाव है, जो जीवन के हर क्षेत्र में हमारी गुणवत्ता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। वस्तुतः जीवन में सफलता और प्रसन्नता की अनुभूति का आधार आत्मसम्मान की स्वस्थ भावदशा ही है।

मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार ये चार अमूर्त तत्त्व ही मनुष्य को अन्य प्राणियों से अलग कर देते हैं। इनमें मन सबसे प्रबल है। वह अपनी वृत्तियों (सत, रज, तम) के अनुरूप मनुष्य के व्यवहार को वांछित अथवा अवांछित बना देता है। बुद्धि भी मन की वृत्तियों के अनुरूप ही कार्य करने लगती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी यदि मानसिक सन्नद्धता अथवा तैयारी पर विचार किया जाय तो जिस प्रकार मन की तीन वृत्तियाँ होती हैं, उसी प्रकार मन की तीन स्थितियाँ भी चेतन, अर्द्धचेतन तथा अचेतन मन होती है। इनमें से आत्मसम्मान का सम्बन्ध चेतन मन या मस्तिष्क से है, परन्तु विद्यार्थियों के मन में कुछ-न-कुछ विचार चलते ही रहते हैं। ऐसी स्थिति में अचेतन मन में चल रहे विचारों को बाहर निकालकर उनके स्थान पर उन विचारों को लाना होता है जिससे उनमें आत्मसम्मान की भावना को विकसित कर सके। यह परिवर्तन कहने मात्र से नहीं होता, अपितु विद्यार्थियों को कोई न कोई ऐसी बात कहनी पड़ती है जो देखने या सुनने में अच्छी लगे या रोचक हो अथवा जिस पर विचार करने के पश्चात् ही प्रतिक्रिया व्यक्त की जा सके। आत्मसम्मान के विकास के आधार पर ही छात्रों को उसके औपचारिक ज्ञान की संकुचित सीमाओं से निकाल सकते हैं, जिसका सकारात्मक प्रभाव उनके शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ेगा।

वर्तमान में निजी विद्यालयों को सरकारी विद्यालयों से अपेक्षाकृत अनुशासन, चरित्र-निर्माण, कर्त्तव्यनिष्ठा, उत्तरदायित्व, सहकारिता तथा नेतृत्त्व की शिक्षा देने में बेहतर शिक्षा केन्द्र माना जाता है। इन विद्यालयों में छात्रों के सर्वांगीण विकास के साथ-साथ उनमें आत्मसम्मान की भावना का विकास भी कराया जाता है। आत्मसम्मान के विकास से छात्रों में आत्मविश्वास भी बढ़ता है। वहीं सरकारी विद्यालयों के छात्रों में आत्मसम्मान की भावना का विकास नहीं हो पाता है क्योंकि सरकारी विद्यालयों के छात्रों में आत्मविश्वास पनप नहीं पाता है। चूँकि सरकारी विद्यालयों में छात्रों में अनुशासन, चरित्र-निर्माण, कर्त्तव्यनिष्ठा, सेवा भाव आदि का पाठ नहीं पढ़ाया जाता है और न ही छात्रों की गतिविधियों पर ध्यान दिया जाता है। इसका प्रभाव छात्रों के शैक्षिक उपलब्धि पर भी पड़ता है।

प्रस्तावना

आत्म-सम्मान को स्वयं की सकारात्मकता, आचार-विचार, व्यवहार, सोच, संस्कार, अभ्यास तथा स्वयं के दृष्टिकोण में सुधार और ध्यान से बढ़ाया जा सकता है। आत्म-सम्मान जितना गहरा, मजबूत व सकारात्मक होगा उसका परिणाम उतना ही अच्छा होगा। विद्यार्थी को अच्छे अंकों की प्राप्ति, अभिव्यक्ति कौशलता, निर्णय लेने की क्षमता, कायों को व्यवस्थित, योजनाबद्ध करने की क्षमता का विकास और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता सुदृढ आत्म-सम्मान का ही परिणाम है।

आत्म-सम्मान व्यक्ति का किसी कार्य को पूरा करने के लिए उसकी आंतरिक शक्तियों, योग्यताओं एवं उत्साह पर आधारित होता है। आत्म-सम्मान के द्वारा ही आत्म प्रकाशन किया जा सकता है। आत्म प्रकाशन आत्म-सम्मान में सहायक होता है। विद्यार्थी के जीवन में आत्म-सम्मान सफलता की एक महत्त्वपूर्ण कुन्जी का कार्य करता है। कई बार ऐसा होता है कि शारीरिक रूप से कोई विद्यार्थी स्वस्थ होता है, मानसिक रूप से भी शक्तिशाली है परन्तु आत्म-सम्मान की कमी के कारण वह अपने शक्तियों का लाभ नहीं उठा पाता है, क्योंकि किसी विद्यार्थी की अपनी शक्तियाँ इतनी प्रबल नहीं होती जितनी प्रबल आत्म-सम्मान की शक्ति होती है। एक कमजोर शरीर से निर्बल या अपंग विद्यार्थी आत्म-सम्मान की शक्ति के सहारे बहुत ऊँचाइयों तक पहुँच जाता है। आत्म-सम्मान की शक्ति ही विद्यार्थी के द्वारा बड़े-बड़े कार्य करा देती है। ऐसे कार्य जो असंभव प्रतीत होते हैं। देखने में जो विद्यार्थी अक्सर मामूली लगते हैं और उन्हें अयोग्य समझा जाता है वह कभी कभी अपने से अधिक योग्य समझे जाने वाले बुद्धिमान विद्यार्थियों से भी बड़े और चकित कर देने वाले कार्य कर दिखाते हैं। ईश्वर ने प्रत्येक विद्यार्थी का स्वास्थ्य, बुद्धि, शक्ति एवं साधन सम्पन्न शरीर दिया है। इस ईश्वर प्रदत्त शरीर से विद्यार्थी अनेक ऐसा कार्य कर सकता है, जो असम्भव लगते हैं। यह आत्म-सम्मान की शक्ति से ही हो सकता है।

आत्म-सम्मान की शक्ति असम्भव को सम्भव कर देती है। आत्म-सम्मान किसी भी तरह की कठिनाई पार करने के लिए जरूरी है। यह विजय की चाबी है। आत्म-सम्मान नहीं होता तो किसी भी विद्यार्थी के लिए लक्ष्य असंभव हो जाता है। जिसने भी कहीं अच्छा कार्य किया है उसमें आत्म-सम्मान कूट-कूट कर भरा था। आत्म-सम्मान की कमी ही असफलता का एक मात्र कारण होती है। जब आत्म-सम्मान जाग उठता है तो विद्यार्थी की सोई हुई शक्तियाँ जाग उठती है। जिसके अन्दर आत्म-सम्मान नहीं है, वह जीवन में सफलताओं के शिखर तक नही पहुँच सकता। जो सफलता पर संदेह करेगा उसे सफलता कभी नहीं मिल सकती है। सफलता उसी को मिलती है जिसे सफलता पर विश्वास होता है। आत्म-सम्मान के बिना तो ईश्वर या देवता भी किसी की सहायता नहीं कर सकते। जीवन में महान कार्य वह लोग ही करके दिखा सकते हैं जिनमें आत्म-सम्मान हैं। जिनमें आत्म-सम्मान नहीं है वह कुछ नहीं कर सकता। आत्म-सम्मान ही विद्यार्थी को लक्ष्य की ओर एवं प्रगति की ओर अग्रसर करता है। संदेहशील और शंकालू विद्यार्थी पिछड़ जाते हैं। यह शक्ति व्यक्ति की अपनी शक्ति है क्योंकि जब यह एक विद्यार्थी में बढ़ती है तो उसकी प्रत्येक कार्य में कार्य शक्ति बढ़ जाती है। जो विद्यार्थी आत्म-सम्मान की शक्ति के साथ आगे बढ़ते हैं बाधाएँ उनके सामने से स्वयं हट जाती है। जिनमें आत्म-सम्मान होता है वह असंभव कार्य कर दिखाते हैं। आत्म-सम्मान एक विद्यार्थी के जीवन में पथ प्रदर्शक शक्ति है जिसके प्रकाश में विद्यार्थी सफलता के मार्ग पर बढ़ता है और कभी भटकता भी नहीं है।[1]

आत्म-सम्मान के अभाव में एक विद्यार्थी का सारा ज्ञान, सारी योग्यताएँ व्यर्थ हो जाती हैं। अत: आवश्यक है कि एक विद्यार्थी के अन्दर अपने लक्ष्य के प्रति दृढ संकल्प हो तथा एकाग्र मन से कार्य करता रहे जिससे निश्चित ही सफलता मिलेगी। आत्म-सम्मान की कमी से विद्यार्थी अपने को कमजोर मानने लगता है परिणामस्वरूप वह हर लक्ष्य को अपने पहुँच से बाहर मानने लगता है।[2]

आत्म-सम्मान एक विद्यार्थी को परिस्थितियों का विश्लेषण करने के योग्य बना देती है क्योंकि जब एक विद्यार्थी अपने परिस्थितियों का विश्लेषण करना जान जाता है तब उसके सामने बाधाएँ कम आती हैं। इससे विद्यार्थी को अपूर्व बल प्राप्त होता है। आत्म-सम्मान एक बालक को फौलादी बना देता है, जिससे उसके क्रिया-कलापों में दुगुनी शक्ति आ जाती है। प्रत्येक विद्यार्थी को यह समझना चाहिए कि आत्म-सम्मान मन का सेनापति होता है और जब सेनापति उत्साह से भर जाता है, तो फिर उसकी सेना का संचालन तीव्र वेग से होता है तथा कठिनाइयाँ हार मानकर पराजय स्वीकार कर भाग जाया करती है तब साहस उसके शक्तियों को संचालित करता है। बहुत से विद्यार्थी सिर्फ इसलिए असफल हो जाते हैं क्योंकि वह अपनी सारी क्षमताओं का उपयोग नहीं कर पाते हैं, उनमें उन विद्यार्थियों जैसा आत्म-सम्मान नहीं होता जो अपनी सारी शक्तियों को बिना किसी शंका या संशय के एक बार में लगा देते हैं।

भय एवं शंका को मन से निकाल कर परिस्थिति का विश्लेषण करना चाहिए क्योंकि शक्ति महत्वाकांक्षा को उदार रूप से कार्यशील बनाती है, हमारे सामने हमारा लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिए और आत्म-सम्मान दृढ़ होना चाहिए। हमारे विचार ही हमारे व्यक्तित्व के अंश हैं। यदि विचार हमारे मन की गहराई से अलग नहीं निकलते हैं तो हमारा व्यक्तित्व प्रेरणा नहीं प्राप्त कर सकता है।[3]

आत्म-सम्मान से युक्त विद्यार्थी के अन्दर एक अदम्य आकांक्षा एवं सतत् प्रयत्न करने की क्षमता तथा इच्छा शक्ति होती है क्योंकि विद्यार्थी तभी अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है जब उसके अन्दर महान् लक्ष्य प्राप्त करने की प्रेरणा सतत् हो। लेकिन इसके लिए विद्यार्थी को अपने ऊपर भरोसा करना होगा। योग्यता के बिना सारे आदर्श खाली है। परिस्थिति प्रत्येक विद्यार्थी को सब कुछ सिखा देती है। जिस तरह रस्सी के बार बार आने जाने से पत्थर पर भी निशान बन जाया करता है। जीवन की समस्त उपलब्धियों का उद्गम निश्चय इच्छा शक्ति से होती है। जो इच्छा बालक के मन में होगा, उसी के आधार पर वह रात-दिन क्रियाशील रहेगा। सतत् प्रयत्न किसी भी इच्छा को अधूरा नही रहने देता है लेकिन वह आत्म-सम्मान के साथ हो। प्रत्येक विद्यार्थी के अन्दर आत्म-सम्मान वह शक्ति है जो एक बार जागने पर बालक को सफल एवं सुसंस्कृत बना देती है। आत्म-सम्मान की उन अनंत संभावनाओं का द्वार खोल देता है जो प्रत्येक विद्यार्थी को उच्च से उच्च स्तर की ओर ले जाता है, तथा उसकी शक्तियाँ सहस्त्र गुनी हो जाया करती है तथा भय के कुहरे से ढका पथ, आशंकाओं के अंधकार में लुप्त क्षमताओं, किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गयी प्रयत्नशीलता सब कुछ आत्म-सम्मान की किरणों के रूप में एक विद्यार्थी में जगमगाने लगती है।

आत्म-सम्मान के द्वारा ही असंभव प्रतीत होने वाले कार्य संभव हो जाता है। ऐसे कई विद्यार्थी जीवन में बड़े साधारण दिखते हैं लेकिन अकस्मात वह किसी कार्य में अद्वितीय रूप से सफल होकर चकित कर देते हैं। आत्म-सम्मान ही उसे दूसरों से अधिक सफल बना देता है और उन्हें सफलता की ऊँची चोटी पर चढ़ने में सहायता करता है। आत्म-सम्मान के द्वारा ही असंभव प्रतीत होने वाले कार्य संभव हो जाते हैं। यदि विद्यार्थी में आत्म-सम्मान की कमी हो तो वह अपना मूल्यांकन अपनी शक्ति के अनुसार न कर अपनी दुर्बलताओं के अनुसार करता है वह अपना महत्त्व विजय से मापने के बजाय अपनी पराजय से मापता है। बहुत से विद्यार्थी अपने विजय की आकांक्षाओं को केवल स्वप्न समझते हैं, वह उन्हें अपने जीवन का एक अंग बना लेते हैं। ऐसे लोग जीवन में आगे नहीं बढ़ पाते वास्तविक सामर्थ्य तो आत्म-सम्मान द्वारा उत्पन्न होता है।

कुछ विद्यार्थी सामर्थ्य होते हुए भी आत्म-सम्मान के अभाव के कारण असफल होते हैं क्योकि आत्म-सम्मान युक्त एवम् आत्म-सम्मान रहित विद्यार्थी में धरती और आकाश का अन्तर है। आत्म-सम्मान से रहित विद्यार्थी का जीवन निरन्तर पराजय की ओर रहता है जबकि आत्म-सम्मान से युक्त विद्यार्थी का जीवन अविराम गति से विजय की ओर अग्रसर होता रहता है। इस पृथ्वी पर जो भी महान् कार्य हुए सब आत्म-सम्मान के बल पर हुए हैं। जिन विद्यार्थी में आत्म-सम्मान नहीं वह न तो लक्ष्य का निर्धारण कर सकते और न उसे प्राप्त करने का रास्ता खोज सकते हैं।

एक विद्यार्थी में असफलताओं का कारण आत्म-सम्मान का अभाव होता है। क्योकि संशय सदैव ही विफल और अन्त में बुरी तरह नष्ट होता है। इसी प्रकार निराशापूर्ण विद्यार्थी भी किसी कार्य में सफल नहीं हो सकता। उन्नति करने वालों को सबसे पहले हृदय के अन्दर ही सफलता का बीजारोपण करना होगा। अधूरे आत्म-सम्मान के कारण विद्यार्थी अपना जीवन नष्ट कर देता है। अपने सामर्थ्य पर अटूट निष्ठा सफलता की प्रथम शर्त है। कोई भी विद्यार्थी आत्म-सम्मान के अभाव में प्रगति के पथ पर आगे नहीं बढ़ सकता क्योंकि एक विद्यार्थी का संकुचित विचार उसे अपने सीमा- बंधन में बाँधे रखता है। उन्हें लांघकर जब तक एक विद्यार्थी आत्म-सम्मान रूपी पथ पर पग नहीं रखता वह अपनी आशा अकांक्षाओं के स्वप्न को पूरा नहीं कर सकता।

आत्म-सम्मान किसी विद्यार्थी में तभी रह सकता है जब उस विद्यार्थी के अन्दर अहंकार की भावना नहीं होगी। क्योंकि एक विद्यार्थी जो कुछ सोचता है उसी को शब्दों में प्रकट करता है। उसका स्वभाव उसका आदर्श उसके शब्दों से ही प्रकट होता है। यह सही है कि चेहरा विचारों का दर्पण होता है, परन्तु विद्यार्थी जीवन में उसके विचार ही लक्ष्य का प्रतिबिम्ब होता है।

वास्तव में अन्त: करण से निकले हुए शब्दों में अधिक शक्ति होती है क्योंकि जीवन को प्रेरणामय बनाने वाली शब्द शक्ति है। प्रत्येक विद्यार्थी को इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि अहंकार पाल कर आत्म-सम्मान का विकास नही किया जा सकता है। आत्म-सम्मान प्रतिज्ञा की असीम शक्ति है जो तभी प्राप्त हो सकती है जब एक विद्यार्थी अपने अंदर से भय, संकोच, घबराहट को त्याग कर यह कहे कि मैं यह कार्य कर सकता हूँ।[4]

जब विद्यार्थी को यह ज्ञान हो जाता है कि वह दिव्य शक्ति का जिसे आत्म-सम्मान कहते हैं एक भाग है। उसका उस असीम शक्ति से अविच्छिन्न सम्बन्ध है तो उसे अपने अन्दर एक दैवीय बल की अनुभूति होने लगती है उसके लिए कोई भी कार्य ऐसा नहीं रह जाता जो उसके सामर्थ्य से बाहर हो, तब उसकी निर्बलता नष्ट हो जाती है, और आत्म-सम्मान उसके कण-कण में, उसके अन्तरात्मा में आ जाती है। तभी एक विद्यार्थी को सफलता की कुंजी मिल जाती है अर्थात् आत्म-सम्मान ही वह शक्ति है जिसके परिणामस्वरूप एक छात्र बड़े से बड़े लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। एक विद्यार्थी को आत्म-सम्मान सदैव उत्साही एवं साहसी बनाए रखता है क्योंकि जब विद्यार्थी उत्साहहीन हो जाता है तो उसके निर्णय की शक्ति घट जाती है। विद्यार्थी जो कमजोर समझा जाता है वह भी प्ररेणा एवं प्रोत्साहन से किसी भी क्षेत्र में अच्छी उपलब्धि कर देता है। यदि विद्यार्थी को सही प्रशिक्षण दिया जाय तो वह निराशा जैसे विकृत विचारों को कुछ ही क्षणों में अपने मन से दूर करने का सफलतापूर्वक प्रयत्न कर सकता है। वह मन के द्वार को खोलकर अन्धकार दूर करता है तथा प्रसन्नता रूपी सूर्योदय का अनुभव कर सकता है। वह अपना जीवन सफल बना सकता है। एक विद्यार्थी को स्वयं अपने को पहचानने की सबसे बड़ी शक्ति आत्म-सम्मान है। इसके द्वारा वह जो चाहता है वह प्राप्त कर लेता है। एरोडो विल्सन ने भी लिखा है कि छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि उनके आत्म सम्मान से अत्यधिक प्रभावित होती है। उच्च आत्म सम्मान वाले उच्चतम ग्रेड प्राप्त करते हैं।[5]

निजी एवं सरकारी उच्च विद्यालय के विद्यार्थियों के आत्म-सम्मान में अन्तर होता है। निजी उच्च विद्यालय के विद्यार्थियों में आत्म-सम्मान सरकारी उच्च विद्यालय के विद्यार्थियों के आत्म-सम्मान की अपेक्षा उच्च पायी जाती है। आत्म-सम्मान उच्च पाया जाने का मुख्य कारण सामाजिक-आर्थिक, पारिवारिक एवं विद्यालय वातारण का अच्छा होना है। मानसिक तथा विद्यालय के स्तर, खुशी तथा सन्तोष, शारीरिक आकार के योगदान के साथ-साथ माता-पिता एवं शिक्षक द्वारा अभिप्रेरित किया जाना तथा पारिवारिक वातावरण, विद्यालयी वातावरण तथा सामाजिक-आर्थिक स्तर का भी प्रभाव हो सकता है। जाहिर है कि निजी विद्यालयों के छात्रों में आत्मसम्मान अपेक्षाकृत उच्च होता है तथा शैक्षिक उपलब्धि भी उच्च होती है। अर्थात् आत्म सम्मान एवं शैक्षिक उपलब्धि में सकारात्मक संबंध है।

निष्कर्ष

शिक्षा जगत में कुछ कालांतर पर विभिन्न आयोगों का गठन होता रहता है जो समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षा को बदलने की अनुशंसा करते रहते हैं। इन अनुशंसाओं के अध्ययन के परिणामस्परूप निजी एवं सरकारी शिक्षा पद्धतियों के समन्वय में एक नई प्रणाली विकसित हुई जिससे शिक्षा का पाठ्यक्रम, ज्ञान कौशल आदि शैक्षिक उद्देश्य की मदद से छात्रों में आत्मसम्मान को बढ़ाया जाता है। निजी विद्यालय एवं सरकारी विद्यालय के शैक्षिक प्रबंधन, अनुशासन में अंतर होता है। दोनों विद्यालयों के छात्रों के व्यक्तित्व व शैक्षिक उपलब्धि में अंतर होता है। वर्तमान शोध के आधार पर स्पष्ट हुआ है कि उच्च विद्यालयों के छात्रों के आत्मसम्मान एवं शैक्षिक उपलब्धि के बीच सकारात्मक संबंध है। उच्च विद्यालय स्तर पर अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं के आत्मसम्मान एवं शैक्षिक उपलब्धि के बीच सकारात्मक संबंध है। ज्ञातव्य है कि उच्च आत्म सम्मान के परिणामस्वरूप बेहतर शैक्षिक उपलबिध होती है और इसके विपरीत निम्न आत्म सम्मान के परिणामस्वरूप शैक्षिक उपलब्धि निम्न होती है।

संदर्भ:

1. एडलर, ए. (1927): द प्रैक्टिस एण्ड थ्योरी ऑफ इन्डीविजुअल साइकोलोजी, हॉरकोर्ट, न्यूयार्क, पृ. 79
2. मैसलो, ए. (1971): द फादर रिसर्चस ऑफ ह्यूमन नेचर, विकिंग प्रेस, न्यूयार्क
3. वही
4. श्रीवास्तव, डी. एन. (2005): मनोवैज्ञानिक निर्धारण,' विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृ. 415
5. विल्सन, एडेरी (2017): छात्रों के शैक्षणिक आत्म सम्मान और शैक्षणिक उपलब्धि के बीच संबंध का अध्ययन, इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ साईंस एण्ड रिसर्च

मधुलिमये का जीवन दर्शन और मजदूरः एक पुनरावलोकन

डॉ० अजीत प्रताप सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास, रमाबाई राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अकबरपुर, अम्बेडकर नगर, उ.प्र.-224122

डॉ० पूनम

असिस्टेंट प्रोफेसर, गृह विज्ञान, रमाबाई राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अकबरपुर, अम्बेडकर नगर, उ.प्र.-224122

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और समाजवादी आंदोलन का इतिहास जिन महान सेनानियों के उल्लेख के बिना सदैव अधूरा रहेगा उनमें मधु लिमये का नाम प्रमुख है। मधुलिमये अग्रिम पंक्ति के नेता, स्वतंत्रता सेनानी, विद्वान, समीक्षक, सांसद और समाज सुधारक थे। जिन्होंने समाजवाद को अपना जीवन दर्शन बनाया। मधुलिमये ने महात्मा गांधी, डॉ. लोहिया की राजनीति की सन्त परम्परा को आगे बढाया। वह अखिल भारतीय नेता थे, जिन्होंने सत्ता की चमक-धमक से परे सिद्धांत और संगठन की आदर्श राजनीति की। वे सामान्य जन के दुख-दर्द के प्रवक्ता थे। मधुलिमये का जन्म 01 मई 1922 ई. को पुणे के प्रख्यात संगीतज्ञ रामचन्द्र महादेव लिमये के पुत्र के रूप में हुआ, 'पूत के पांव पालने में ही दिखने लगते है" उक्त उक्ति को चरितार्थ करते हुये अल्पायु मे ही अनथक परिश्रम व लगन और तन्मयता से साहित्य, कला व इतिहास में मजबूत पकड़ बना ली थी। विद्यार्थी जीवन में वह श्रीधर महादेव जोशी के सम्पर्क में आये, धीरे-धीरेकांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के स्टडी सर्किल और रचनात्मक कार्यक्रमों से इस तरह जुड़े कि महाराष्ट्र में बौद्धिक और रचनात्मक परिवर्तनकारी गतिविधियों के पर्याय बन गये।

इस आलेख का उद्देश्य मधुलिमये के सार्वजनिक योगदान को कुछ खण्डों में विभक्त करके प्रस्तुत करना है-

1. भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में मधुलिमये की सक्रिय सहभागिता।
2. गोवा आंदोलन में मधुलिमये का योगदान।
3. संसदीय कार्यवाहियों में निर्भिकतापूर्ण योगदान।
4. समाजवादी आन्दोलनों में मधुलिमये की भूमिका।
5. सामाजिक न्याय और मधुलिमये।
6. मधुलिमये का साहित्य, कला(संगीत और नृत्य) प्रेम व रचनात्मक लेखन कार्य।

31 दिसम्बर 1938 को मधुलिमये ने अपने साथियों के साथ अपना पूरा जीवन स्वतंत्रता और समाजवाद के लिये समर्पित करने का निर्णय लिया। उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि सम्पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति हमारा सर्वोच्च ध्येय है, लेकिन समाजवाद की स्थापना के बिना देश की गरीबी नहीं मिटेगी तथा देश का चतुर्दिक विकास भी सम्भव नहीं होगा। साल 1939 में मधुलिमये की मुलाकात लोहिया से हुयी। उनकी प्रतिबद्धता और देश व समाज के प्रति सोच से लोहिया काफी हद तक प्रभावित हुये। मधुलिमये को युद्ध विरोधी गतिविधियों, अभियान के कारण ब्रिटिश हुकूमत ने गिरफ्तार किया और एक वर्ष तक जेल में रखा। जेल से रिहाई के बाद वे पूरी तरह स्वतंत्रता संग्राम की धार को तेज करने में लग गये। अंग्रेजों भारत छोड़ों आन्दोलन (1942) में भूमिगत रहकर क्रांतिकारी गतिविधियों को बनाने का काम किया। मधुलिमये 13 महीनों तक पुलिस की पहुंच से बचते रहे परन्तु बाद में उन्हें बड़ी असहनीय यातनायें दी थी क्योंकि बहुत ही मुश्किलों से गिरफ्तार कर पायी थी। बर्फ की सिल्ली पर निर्वस्त्र लिटाया गया, खाना और पानी बहुत दिनों तक नहीं दिया गया। लेकिन उन्होंने अद्भुत जीवटता का परिचय देते हुये न तो हार मानी और न ही स्वतंत्रता संघर्ष के पथ से विचलित हुये। उन्होंने केवल पच्चीस वर्ष की आयु में एंटवर्थ (वेल्जियम) में आयोजित सोशलिस्ट इण्टरनेशनल सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व करते हुये धाक जमा जमा दिया। इसके बाद उन्हें दुनिया के विभिन्न हिस्सों में उद्बोधन के लिए बुलाया गया। 1952 में ऐतिहासिक पंचमढ़ी सम्मेलन में समाजवादी पार्टी के संयुक्त मंत्री चुने गये। आजादी के आन्दोलन के बाद मधुलिमये गोवा मुक्ति के लिए गोवा गये तब उनपर भीषण लाठीचार्ज हुआ और गंभीर चोट के कारण बेहोशी की हालत में गिर जाने के कारण 25 जुलाई 1955 को पुर्तगाली पुलिस ने जिस तरह से उन्हें उठाकर ले गयी उससे प्रत्यक्षदर्शियों ने अनुमान लगाया कि मधुलिमये की मृत्यु हो गयी है। उनके पड़ोसी चंपा जी को शोक संवेदना देने के लिए (बंबई) पहुँचने लगे काफी दिनों के बाद जिन्दा हैं कि पुष्टि हुई। 12वर्ष की सजा सुनाई गई, पुर्तगाली जेलें सत्याग्रहियों से भर गयीं। अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग और पोप के हस्तक्षेप के कारण मधुलिमये को मजबूर होकर 12 फरवरी 1957 में आजाद किया गया। स्वतंत्रता आंदोलन में तकरीबन चार साल (1940 से 45 के बीच), गोवा मुक्ति संग्राम में पुर्तगालियों के अधीन उन्नीस महीनें (1955 में 12 साल की सजा सुना दी गई),

और आपातकाल के दौरान उन्नीस महीने मीसा के तहत (जुलाई 1975-फरवरी 1977) वे कयी जेलों में रहे, लिमये तीसरी, चौथी, पांचवीं व छठी लोकसभा के सदस्य रहे,पर तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी द्वारा अनैतिक तरीके से पांचवीं लोकसभा के कार्यकाल बढाये जाने के विरोध में उन्होंने अपनी सदस्यता से इस्तीफा दे दिया था। जब वे गोवा जेल में थे तो उन्होंने लिखा है कि गांधी जी ने मेरे जीवन को कितनी गहराई से बदल दिया है।उन्होंने मेरे व्यक्तित्व और इच्छाशक्ति को कितनी गहराई में आकार दिया है।

गोवा मुक्ति संग्राम के बाद मधुलिमये मजदूरों, वंचितों, शोषित व कमजोर तबकों तथा समाजवादी आन्दोलन के लिए निरन्तर काम करने लगे। उनकी लोकप्रियता दिन-ब-दिन बढ़ने लगी। मधुलिमये ने भारतीय श्रम आंदोलन को भी गति और ताकत दी। श्रमिक संगठनों को समाजवादी आंदोलन से जोड़ने के प्रयास में लगकर 1954 मे अपने मार्गदर्शन में म्यूनिसिपल मजदूर यूनियन के गठन को साकार रूप दिया। अप्रैल 1961 मंन उन्होंने होटलों में काम करने वाले श्रमिकों को संगठित कर न्यूनतम वेतन तय करने की लड़ाई लड़ी और इसके निर्णायक परिणाम निकले। जार्ज फर्नांडीस का मानना था कि श्रमिकों के मामले में मधुलिमये का योगदान जितना संगठनात्मक था उससे अधिक वैचारिक था।वह म मानते थे कि मजदूरों को मजबूत किये बिना उद्योगों को मजबूती नहीं मिल सकती। इसे संयोग ही कहा जा सकता है कि मजदूरों के शुभचिंतक लिमये की जयंती और मजदूर दिवस एक ही दिन पड़ते हैं। 1964 में वह बिहार के की मुंगेर से लोकसभा सदस्य के लिए निर्वाचित हुए। उन्होंने संसद में जयंति शिपिंग कम्पनी घोटाले समेत कई घोटालों का पर्दाफाश किया। 1967 में वे पुनः जीते और संसदीय दल के नेता बने। उन दिनों डॉ.राम मनोहर लोहिया और जार्ज फर्नांडिस भी लोकसभा के सदस्य थे। सामाजिक न्याय के शीर्ष पुरुष डा.लोहिया की सहमति से लिमये संसदीय दल के नेता बने थे। नेता पद उनकी योग्यता, त्याग और सामाजिक न्याय के प्रति उनकी प्रतिबद्धता का पुरस्कार था। डा. लोहिया मानते थे कि मधुलिमये मजबूती से सामाजिक न्याय के संदेश को सदन के बाहर और भीतर रखते हैं। यह अघोषित रूप से खुद डा.लोहिया की ओर से मिला पुरस्कार था। लिमये के जीवनी लेखक डा. सुनीलम ने भी लिखा है कि- 'सामाजिक न्याय के मसले पर लिमये किसी से भी लोहा लेने के लिए सदा तैयार रहते थे। उन्होंने डा. लोहिया के 'पिछड़ा पावै सौ में साठ' के नारे को संगठन में अमलीजामा पहनाने का काम किया।' 1968 में मधु को सोशलिस्ट पार्टी का राष्ट्रीय अध्यक्ष बनाया गया। 1973 में जब मधुलिमये बिहार के बाका से चुनाव लड़ रहे थे, तो तत्कालीन मुख्यमंत्री व कांग्रेसी नेता दारोगा राय ने क्षेत्रवाद का विचित्र स्वरूप पेश करते हुये विरोध करना शुरू किया, वे अपनी सभाओं में बोलते थे- 'मधु लिमैय्या, बम्बईया'। इस पर लिमये के मित्र जार्ज फर्नांडीज ने धारदार भाषण दिया था, और चुटकी ली थी, 'गनीमत है कि दारोगा जी चम्पारण आंदोलन के वक्त परिदृश्य में नहीं थे, नहीं तो गांधी को बिहार की सीमा में घुसने ही नहीं देते। अच्छा हुआ कि श्रीमान त्रेता युग में पैदा नहीं हुये, नहीं तो अयोध्या के राम का विवाह जनकपुर (नेपाल) की सीता से कभी होने ही नहीं देते। मुझे तो चिंता होती है कि दारोगा जी का यही रवैया रहा तो दूसरे गांव जाकर विवाह ही नहीं कर पायेंगे, और आधे युवक-युवती कंवारे रह जायेंगे। यह क्षेत्रवाद का जहर हमें रसातल में पहुंचा देगा। बस, मधुलिमये के पक्ष में गजब के जनसमर्थन का माहौल बना और उन्होंने दो बार (71 का उपचुनाव और 77 का आमचुनाव) इस संसदीय का प्रतिनिधित्व किया।

मधुलिमये ने दुनिया को बताया कि संसद में बहस कैसे की जाती है। वह प्रश्न काल और शून्य काल के अनन्य स्वामी हुआ करते थे। जब भी जीरो आवर होता, सारा सदन सांस रोककर एकटक देखता था कि मधुलिमये अपने पिटारे से कौन-सा-नाग निकालेंगे, और किस पर छोड़ देंगे। मशहूर पत्रकार और एक समय के लिमये के नजदीकी रहे डा.वेद प्रताप वैदिक के अनुसार- ''मधु जी गजब इंशान थे। जबरदस्त प्रश्न पूछना और मंत्री के उत्तर पर पूरक सवालों की मशीनगन से सरकार को ढ़ेर कर देना मधुलिमये के लिए बांये हाथ का खेल था।" वह बताते है कि- ''होता यूं था कि डा.लोहिया प्रधान मल्ल की तरह खम ठोकते और सारे समाजवादी भूखे शेर की तरह सत्ता पक्ष पर टूट पड़ते और सिर्फ आधा दर्जन सांसद बाकी पांच सौ सदस्यों की बोलती बंद कर देते। मैं तो उनसे मजाक में कहा करता था कि आपका नाम मधुलिमये है लेकिन आप बड़े कटुलिमये हैं।" मधुलिमये के संसदीय जीवन को तो स्वर्णाक्षरों से लिखने योग्य है। उन्हें संसदीय नियमों एवं परम्पराओं का इतना गहरा ज्ञान था कि जब वे कोई प्रश्न उठाते थे स्पीकर को भी आमतौर पर उनके तर्क को काटने का साहस नहीं होता था। एक बार संसद का पूरा सत्र ही मधुलिमये के नाम हो गया था, क्योंकि उस पूरे सत्र में हर दिन मधुलिमये द्वारा संसद में उठाये गये प्रश्न ही चर्चा के केंद्र में थे। उस समय की दिनमान पत्रिका, जो साठ के दशक में देश की सबसे लोकप्रिय पत्रिकाओं में एक थी, उसने शीर्षक ही लिखा था ''मधु सत्र"। लिमये के संसदीय ज्ञान और बौद्धिक योग्यता का यह आतंक था कि जब वे एक अटैची लेकर संसद में जाते थे तो उनके मंत्री भयभीत हो जाते थे कि पता नहीं कौन सा रहस्य लिमये के पिटारे से निकलने वाला है, और जाने किस मंत्री की नौकरी जायेगी। मधुलिमये के कार्य की विशेषता यह थी कि जो सवाल उठाते थे उसे निर्णायक हल तक ले जाते थे और कई मामलों को तो उन्होंने लगातार कई सत्रों तक उठाया तथा शक्तिशाली सरकारों को भी कार्यवायी करने को लाचार कर दिया।

आपातकाल में उन्होंने सामूहिक प्रतिकार का स्वर बुलंद किया। उन्हें महासमुंद से गिरफ्तार कर नरसिंह गढ़ के कारागार में रखा गया, कारावास के दौरान उन्होंने चिन्तन-मनन, अध्ययन और विचारों को और अधिक व्यापक बनाकर समय का सदुपयोग किया। मधु जनता पार्टी के महामंत्री बनाये गये।वे चाहते तो जनता पार्टी सरकार में कोई भी पद ले सकते थे, किन्तु वह तो गृहस्थ संन्यासी थे। उधर समाजवादियों को भी डर लगा रहता था कि पता नहीं कुर्सी की दौड़ में जीतने के लिए उनकी वक्ती तिकड़मबाजियां मधुलिमये को कितनी नागवार गुजरे। लोभ और भौतिक सुख सुविधाओं की आकांक्षाओं से हटकर एक सिद्धांत एवं आदर्श के लिए जीने वाले मनीषी की तरह हमेशा त्याग का वरण किया।

चौधरी चरण सिंह को प्रधानमंत्री बनाने में उनका योगदान स्लाघनीय है।वह चलते-फिरते ज्ञान-कोष थे। उनकी सादगी और सहजता को शब्दों में नहीं व्यक्त किया जा सकता। वह सादा जीवन उच्च विचार की प्रतिमूर्ति थे। एक घटना का उल्लेख करना समीचीन होगा कि जब मधुलिमये के साथी रघु ठाकुर को 1973 में तत्कालीन सरकार के द्वारा, पुलिस के हड़ताल कराने के आरोप में राष्ट्रीय सुरक्षा कानून में गिरफ्तार कर, भोपाल जेल में निरुद्ध किया था रघु ठाकुर के सामने की बैरक में एक मुसलमान को जिसे पाकिस्तानी नागरिक के नाम पर गिरफ्तार कर जेल में रखा गया था। वह रात में बैरक बंद होने के बाद सीखचों के पास खड़े होकर जोर-जोर से रोते थे, उनका लगभग यह दैनिक कार्य था।एक दिन रघु ठाकुर ने उनसे पूछा कि आप रोते क्यों हैं? क्या आपको कोई शारीरिक कष्ट है? उन्होंने बताया कि 1947 में जो बँटवारा हुआ तब मैं छोटा था मेरी बड़ी बहन की ससुराल पूर्व के भारत और विभाजन के बाद के कराची (पाकिस्तान) में थी, जब बहन ससुराल जा रही थी उसके साथ कराची चले गये फिर विभाजन हो गया, आना जाना लगभग बन्द हो गया।कयी बर्षों

बाद जब हालत सामान्य हुये तब वीजा लेकर भोपाल अपने घर आकर तांगा चलाने लगा, शादी हो गयी बच्चे हो गये, और यहीं रहने लगे। 1965 के भारत-पाकिस्तान युद्ध के समय सरकार के द्वारा देश में पाकिस्तान से आये हुये लोगों की वैधानिकता की जांच परख शुरू की गयी और इसी समय वीजा अवधि समाप्त होने के बाद वापिस नहीं जाने के आरोप में पाकिस्तानी नागरिक मानकर जेल में बन्द कर दिया गया, तभी से कारावास में निरुद्ध हूँ। पाकिस्तानी सरकार उन्हें वापस नहीं लेना चाहती थी और भारत सरकार की नजर में वो पाकिस्तानी थे। जेल में आये हुये उन्हें कयी वर्ष गुजर गये, उन्होंने अपने बच्चों को भी वर्षो से नहीं देखा। रघु ठाकुर ने इस असहाय की व्यथा को जेल से ही मधुलिमये को पत्र में लिखकर भेजी। यह मधु का बड़प्पन था कि एक छोटे से पदाधिकारी के पत्र को पढ़कर बहुत ही संजीदगी से संसद में सवाल उठाया, इसका परिणाम यह हुआ कि न केवल भाईजान छूटे बल्कि विभिन्न जेलों में गिरफ्तार 50 लोग और भी रिहा हुये, साथ ही सभी को भारत की नागरिकता भी मिल गयी।

मधुलिमये 1982 में सक्रिय राजनीति से अलग हो गये।उनका पंडारा मार्ग पर स्थित आवास समाजवादियों की पाठशाला थी। वे राजनेताओं की उस लीग से ताल्लुक रखते थे, जो आजादी के बाद भारत में भारतीय भाषाओं को गौरव का स्थान देना चाहती थी। वह डा.राम मनोहर लोहिया के अनुयायी थे, जिन्होंने 'अंग्रेजी हटाओ' का नारा दिया था। लेकिन उनका अंग्रेजी विरोधी रुख अंग्रेजी किताबों के सम्पर्क में आने के खिलाफ नहीं था। लिमये जैसे नेता केवल प्रशासन, न्यायपालिका और शिक्षा में भी अंग्रेजी के प्रभाव को कम करना चाहते थे, क्योंकि इससे वंचित गरीब भारतीयों का मताधिकार समाप्त हो गया। लिमये के लिए शब्द राजनीतिक संघर्ष में हथियार थे-चाहे हिंदी में, अंग्रेजी या मराठी भाषा में, लेकिन वे भी इसके बचाव में आये, जब वह जेल में थे। वह कहा करते थे कि जिन कारणों का वे समर्थन करते हैं, उनके लिए उन्हें खुशी-खुशी जेल हो सकती है, अगर किताबों का साथ दिया जाय, खासकर महाभारत और शेक्सपियर की सम्पूर्ण रचनायें। उनके पछतावे में अंग्रेजी के अलावा एक दक्षिण भारतीय भाषा और एक यूरोपीय भाषा सीखने के लिए समय की कमी थी। उनके पास उन प्रयासों के लिए कभी समय या फुर्सत नहीं थी। इतिहास में व्यक्ति की भूमिका, भारत की विदेश नीति की समस्याएं, संसद, न्यायपालिका, और दल: राजनीति का एक इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम आदि उनकी पुस्तकें बर्थ आफ नान कांग्रेसिज्म एण्ड जनता पार्टी एक्सपेरिमेंट दो खण्डों में, इसलिए महाराष्ट्र में इस दिलचस्प मोड़पर देखने लायक है, जब एक धुर-दक्षिण पंथी और दो मध्यमार्गी संगठनों का गठबंधन राज्य पर शासन करता है। इसी तरह, अन्य दो पुस्तकें धार्मिक कट्टरता: आदेशित राज्य के लिए एक खतरा और समकालीन भारतीय राजनीति और जाति को उपकरण के रूप में उपयोग करके विभाजनकारी राजनीति के विकास से निपटती है और राष्ट्र के समक्ष उपस्थित चुनौतियों पर ऐतिहासिक प्रकाश डालती हैं। लिमये ने अपने लेखन के लिए व्यापक राष्ट्रीय और अन्तर्राजीय पाठकों की परवाह की,विशेष रूप से उनके विश्लेषणात्मक तर्कों के लिए जो राजनीतिक, कानूनी और संवैधानिक रूप से स्तोत्र ग्रन्थों पर आधारित थे, जो आमतौर पर अंग्रेजी में लिखे गये थे। सक्रिय राजनीति से हटने के बाद, उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन, महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू: ए हिस्टोरिक पार्टनरशिप, प्राइम मूवर्स जैसी 25 अंग्रेजी भाषा की पुस्तकों की एक किस्म लिखी। उनकी हर पुस्तक अपने आप में दस्तावेज है। आजादी के बाद की राजनीति, अगस्त क्रांति, भारतीय राष्ट्रीय लोकदल जैसी तीन दर्जन पुस्तकों के लेखक मधुलिमये ने भारतीय बौद्धिक जनता की सोच को व्यापक बनाया। मधुलिमये भाषा के साथ-साथ कलाप्रेमी भी थे। 'महाभारत' पर तो उनको अधिकार सा था। संस्कृत भाषा और भारतीय बोलियों के बहुत जानकर थे। 'संगीत' और 'नृत्य' की बारीकियों को भी बखूबी समझते थे। जानीमानी नृत्यांगना सोनल मानसिंह उनकी नजदीकी दोस्त हुआ करती थीं। सोनल के अनुसार- ''उस जमाने में राजनीतिज्ञ इतने नीरस और गैर कलात्मक नहीं होते थे। पहली मुलाकात के बाद मधु जी ने इच्छा जाहिर की कि मैं लोधी गार्डन में टहलने के बाद सुबह नास्ते के लिए उनके घर आऊं। मैं जब पहुंची तो घाघरा और टी-शर्ट पहने हुयी थी। मुझे देखने के बाद उन्होंने 'शाकुंतलम' से श्लोक पढ़ना शुरू कर दिया और बोले कि तुम एकदम शकुंतला जैसी लग रही हो। जब भी मैं उन्हें फोन करती तो उनकी पत्नी चंपा फोन उठातीं और हंसते हुये कहतीं ये लो तुम्हारी गर्लफ्रैंड का फोन है।

पदलोलुपता, भ्रष्टाचार, परिवारवाद, कट्टर जातिवाद से ओतप्रोत आज की राजनीति में मधुलिमये जैसे नेता की याद साफ हवा के झोंके जैसे ही है, हालांकि अन्य राजनीतिक दलों में भी पचास और साठ के दशक में मधुलिमये जैसे नि:स्वार्थी नेता हुआ करते थे। इस मामले में इस देश की मौजूदा राजनीतिक जमीन आज लगभग बंजर भूमि जैसी हो गयी है। वर्तमान में किसी पार्टी, दल में कोई अच्छा नेता भी है तो वह अपवाद स्वरूप ही है। आज के नेता कहते कुछ है और निजी जीवन में करते कुछ और हैं। मधुलिमये के निधन (1995) के बाद प्रसिद्ध पत्रकार प्रभाष जोशी ने लिखा था कि ''स्वास्थ्य इतना खराब, लेकिन घर में कूलर, एयरकंडीशनर, फ्रीज और टेलीविजन। ऐसी कोई सुविधा नहीं, जो किसी भी सांसद, विधायक ही नहीं, निम्न मध्य वर्ग के नौकरी पेशा आदमी के घर होती है लेकिन इसके बावजूद त्याग का अहं, किसी प्रकार की कोई दीनता। और इस वैचारिकता में इतनी आस्था और उसकी श्रेष्ठता का इतना साहस कि उम्र भर गैर कांग्रेसवाद चलाने के बाद आखिर में लिखा कि शुद्ध और पुनर्जीवित कांग्रेस देश की बेहतरी के लिए जरूरी है।ऐसे जीने और सोचने के लिए निष्ठा, आस्था और साहस चाहिए। मधुलिमये में वह सब था। ऐसा कोई आदमी दिखे तो बताना, उसे मैं सामने रखकर अपने बचे हुए साल जी लूंगा।' मधुलिमये में नैतिकता और ईमानदारी कूट-कूट कर भरी थी। इसका उदाहरण जब उनका संसद में पांच वर्ष का कार्यकाल खत्म हो गया तो उन्होंने जेल से ही अपनी पत्नी को पत्र लिखा कि तुरंत दिल्ली जाओ और सरकारी घर खाली कर दो। चंपा जी की भी उनमें असीम निष्ठा थी कि वह मुंबई से दिल्ली पहुंची और वहां से उन्होंने सामान निकालकर सड़क पर रख दिया। उनको ये नहीं पता था कि अब कहाँ जायें। एक पत्रकार मित्र जो समाजवादी आंदोलन से जुड़े हुए थे, वहां से गुजर रहे थे। उन्होंने उनसे पूछा कि आप यहां क्यों खड़ी हैं? जब उन्होंने सारी बात बतायी तो उन्हें अपने घर ले गये। पारदर्शी स्पष्ट व्यक्तित्व के स्वामी थे मधुलिमये। ईमानदारी उनमें इस हद तक भरी हुयी थी जिसकी आज के युग में कल्पना नहीं की जा सकती।

उन्होंने समाजवाद को भारतीय लोक जीवन की अपरिहार्य आवश्यकता बताया और देश की समस्याओं के कारण-निवारण की तार्किक समीक्षा प्रस्तुत की। वह अनिकेतन जीये। उनके जीवन दर्शन से जनहित में मेधा व ज्ञान का प्रयोग करने, सादगी, त्यागमयी व सैद्धांतिक जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है। आज मधुलिमये अपने जीवन काल से अधिक प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। आज उसी मर्यादा, सलीके व सदाशयी लोक व्यवहार का संसदीय राजनीति में सर्वथा अभाव दिखायी दे रहा है। उनकी अपार स्मृतियाँ हैं, सैकड़ों घटनायें हैं,जिनका स्मरण दिलोदिमाग में घूमता रहती हैं। हम अगर विचार-विनिमय,बहस व विमर्श की चिरस्थापित स्वस्थ परिपाटी को पुन: सजीवता दे पाये, तो जम्हूरियत की नासाज की रूह की थोड़ी तीमारदारी हो जायेगी, और यही होगी लिमये के प्रति सच्ची व श्रद्धापूर्वक भावाजंलि होगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. मधुलिमये की संक्षिप्त राजनीतिक जीवनी-कुरबान अली Academia-edu-।
2. डॉ.मस्त राम कपूर-डॉ.राम मनोहर लोहिया।
3. लियोनार्ड ए। गार्डन (1988) ''प्राईम मूवर्स: इतिहास में व्यक्ति की भूमिका, मधुलिमये द्वारा" द जर्नल ऑफ एशियन स्टडीज 47(3): 683-684 डी ओ ई: 102307ध्2057064 जे एस टी ओ आर 2057064।
4. छठी लोकसभा सदस्य बायो प्रोफाइल-लिमये, श्री मधु।
5. विपन चंद्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी-आजादी के बाद का भारत, हिंदी माध्यम कार्यन्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, (अगस्त-2015) मानवाधिकार और मौलिक स्वतंत्रता पर केस स्टडीज:एक विश्व सर्वेक्षण। टवस.3.1987
6. मधुलिमये-गोवा लिबरेशन मूवमेंट एंड मधुलिमये।
7. चंपा लिमये (1996) गोवा मुक्ति आंदोलन और मधुलिमये। बी.आर. प्रकाशन निगम, ISBN -9788170189008।
8. मधुलिमये-अगस्त क्रांति
9. अमृत प्रभात- दैनिक समाचार पत्र, 01.05.1995
10. समाजवादी बुलेटिन, मई 2002-लोहिया ट्रस्ट, लखनऊ,उ.प्र.।

ब्रिटिश काल में शिक्षा का महत्व एक आलोचनात्मक अध्ययन

प्रीति सुमन

इतिहास विभाग, वीर कुँवर सिंह विष्वविद्यालय, आरा

सारांश:- भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रसार ब्रिटिश शासनकाल में आरंभ हुआ। औपनिवेशिक शासन की स्थापना से पूर्व भारत शिक्षा के क्षेत्र में काफी पिछड़ा हुआ था। केवल कुछ बड़े नगरों और कस्बों में कुछ स्कूल स्थापित थे। ईस्ट इंडिया कंपनी ने शासन के प्रारंभिक दिनों में भारत में शिक्षा के विकास के लिए कोई प्रयत्न नहीं किए क्योंकि आरंभ में वे व्यापारी बनकर आए थे। अत: राजनीति में उनका हस्तक्षेप इतना नहीं था। भारत में उनकी जड़े मजबूत नहीं हुई थी। उन्हें भय था कि कहीं भारतीय जनता विद्रोह करके उन्हें भारत से खदेड़ न दे। उनका भारत में शिक्षा के विकास का उद्देश्य शिक्षित भारतीयों की संख्या बढ़ी।

बीज शब्द:- औपनिवेशिक शासन, हस्तक्षेप, प्रशासनिक पद, आधुनिक शिक्षा, चार्टर एक्ट।

प्रस्तावना:-

शिक्षा का माध्यम:- प्राच्य-आंग्ल विवाद:-भारत में दी जाने वाली आधुनिक शिक्षा का माध्यम क्या होना चाहिए इस संबंध में लॉर्ड विलियम बैंटिक के शासन काल में 1829 ई० से लेकर 1835 ई० तक एक लम्बा विवाद चलता रहा। लार्ड मैकाले तथा उनके समर्थक यह चाहते थे कि पश्चिमी शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होना चाहिए। दूसरी ओर H.H. विल्सन एवं उनके समर्थक यह चाहते थे कि शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषाएँ होनी चाहिए। लम्बे विवाद के बाद 1835 ई० में सरकार ने यह निर्णय लिया कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होगा।

अधोमुखी निस्यंदन का सिद्धांत:- यह शिक्षा का सिद्धांत लॉर्ड आकॅलैण्ड ने दिया। इस सिद्धांत के अनुसार अगर उच्च वर्ग को सबसे पहले शिक्षित किया जाए तो इस वर्ग के शिक्षित होने पर छन-छन कर शिक्षा का प्रभाव जन साधारण तक पहुँचेगा।

1854 ई० का शिक्षा का चार्ल्सवुड का डिस्पैच:- वुड डिस्पैच को भारतीय शिक्षा का मैग्नाकार्टा कहा जाता है। इसकी प्रमुख सिफारिशें थे कि सरकार पाष्चात्य शिक्षा, कला, दर्शन, विज्ञान व साहित्य का प्रसार करें। उच्च शिक्षा के लिए माध्यम अंग्रेजी हो किंतु देशी भाषाओं को भी प्रोत्साहित किया जाए। लंदन विश्वविद्यालय के आधार पर कलकत्ता, बम्बई, मद्रास में तीन विश्वविद्यालय स्थापित किए जाए। अध्याक प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना की जाए। महिला शिक्षा को बढ़ावा दिया जाए।

हंटर शिक्षा आयोग (1882-1883):- 1882 ई० में रिपन के काल में W.W. हंटर की अध्यक्षता में एक आयोग शिक्षा के क्षेत्र में 1854 ई० के बाद हुई प्रगति की समीक्षा के लिए नियुक्त किया गया। इसका कार्य केवल प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की समीक्षा करना था। इसके प्रमुख सुझाव थे:-

प्राथमिक शिक्षा पर विषेष ध्यान दिया जाए तथा प्राथमिक स्कूलों का नियंत्रण जिला और नगर बोर्डों को दिया जाए।

माध्यमिक शिक्षा के दो खण्ड हो। एक में साहित्यिक शिक्षा हो जो विश्वविद्यालय में प्रवेश परीक्षा के लिए विद्यार्थियों को तैयार करें। दूसरी में व्यावसायिक व व्यापारिक जीवन की शिक्षा दी जाए आयोग के सुझाव पर 1882 ई० में पंजाब और 1887 ई० में इलाहाबाद विष्वविद्याल स्थापित किए गए।

रैले कमीशन 1902:- 1902 ई० में सर टॉमस रैले की अध्यक्षता में विश्वविद्यलय आयोग की स्थापना की गई। इसमें दो अन्य भारतीय सदस्य थे। सैय्यद हुसैन बिलग्रामी, गुरूदास बैनर्जी। इसको केवल विश्वविद्यालयों पर सुझाव देना था। रैले कमीशन के सुझाव के आधार पर 1904 ई० में भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम पारित किया गया।

इसके मुख्य प्रावधान:- विश्वविद्यायों में अध्ययन तथा शोध के लिए प्रोफेसरों और लेक्चरर की नियुक्ति करनी चाहिए। विश्वविद्यालयों के उपसदस्यों की संख्या 50 से कम तथा 100 से अधिक नहीं होनी चाहिए तथा उनका कार्यकाल आजीवन ना होकर 6 वर्ष होना चाहिए।

इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल 1910:- गोपाल कृष्ण गोखले:- 1910 ई० में गोपाल कृष्ण गोखले ने अपना प्रस्ताव रखते हुए 6 से 10 वर्ष की आयु वाले बच्चों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा शुरू करने की मांग की।

सैडलर आयोग 1917:- सरकार ने 1917 ई० में कलकत्ता विष्वविद्यालय की समस्याओं के अध्ययन हेतु लॉर्डस विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० एम. ई. सैडलर की अध्यक्षता में एक आयोग नियुक्त किया। इस आयोग का विचार था कि अगर विश्वविद्यालय की शिक्षा में सुधार करना है तो माध्यमिक शिक्षा का सुधार आवश्यक है। इस आयोग ने 12 वर्ष की स्कूल शिक्षा व इण्टरमिडियट परीक्षा के बाद विश्वविद्यालय में प्रवेश हो। स्नातक पाठ्यक्र तीन वर्ष का हो। महिला शिक्षा के विकास पर विशेष जोर दिया गया। (1916) मैसूर, (1916) बनारस, (1921) लखनऊ, 1922 ई० में दिल्ली विश्वविद्यालय की स्थापना हुई।

हार्टोग समिति 1929 ई०:- शिक्षा के स्तर में आ रही गिरावट को रोकने के लिए सरकार ने 1929 ई० में सर फिलिप हार्टोग की अध्यक्षता में एक समिति की नियुक्ति की गई। इसने निम्नलिखित सुझाव:- प्राथमिक शिक्षा पर बल किंतु इसे अनिवार्य करने की निंदा की। ग्रामीण छात्रों को मिडिल स्कूल तक की शिक्षा देने के बाद कॉलेजों में प्रवेश के स्थान पर उन्हें व्यावसायिक और औद्योगिक शिक्षा दी जाए। इस समिति की सिफारिश के आधार पर 1935 ई० में ''केन्द्रीय शिक्षा सलाहाकर बोर्ड (CABE) का पुर्नगठन किया गया।

मूल शिक्षा की वर्धा योजना:- 1937 ई० में गांधी जी ने अपने पत्र 'हरिजन' में शिक्षा पर एक लेख प्रकाशित किया और वर्धा में एक अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन में उन्होंने बुनियादी शिक्षा की वर्धा योजना प्रस्तुत की। इस योजना का मूल सिद्धांत यह था कि बच्चों को 7 साल तक मातृभाषा में व अनिवार्य शिक्षा दी जाए। द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू होने के कारण वर्धा योजना लागू नहीं हो सकी।

सार्जेण्ट योजना 1914 ई०:- इसकी मुख्य सिफारिशे थी- देश में प्राथमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालय स्थापित किए जाएं। 6-11 वर्ष तक के बच्चों के लिए नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा हो। 11-17 वर्ष तक अतिरिक्त शिक्षा व्यवस्था की जाए। इस योजना के अंतर्गत 40 वर्ष के भीतर देश में शिक्षा का पुनर्निर्माण किया जाना था।

ब्रिटिश कालीन शिक्षा का मूल्यांकन:- ब्रिटिश कालीन शिक्षा के मूल्यांकन के संबंध में शिक्षा शास्त्रियों में बड़ा मतभेद हैं। कुछ लोग इसे अपने गुणों तथा लाभों के कारण एक वरदान मानते हैं और कुछ लोग इसे भारत के लिए एकदम अनुपयुक्त और यहाँ की संस्कृति, सभ्यता, आवश्यकताओं के विपरीत और हानिकारक समझते।

गुण तथा लाभ:- अंग्रेजी माध्यम के कारण भारतीयों को विदेशों के इतिहास के बारें में जानकारी प्राप्त हुई। वे रूसों, वालटेयर, स्पैंसर आदि के लेखों से बहुत प्रभावित हुए। पश्चिमी शिक्षा के प्रसार के कारण भारतीयों में प्रचलित अंधविश्वास को दूर किया जा सका। शिक्षा के प्रसार के चलते भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना का तीव्रता से प्रसार हुआ तथा उन्हें स्पष्ट हो गया कि अंग्रेजी सरकार भारतीयों का किस हद तक शोषण कर रही हैं।

बहुत से शिक्षा शास्त्रियों का मानना है कि ब्रिटिश कालीन शिक्षा से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक हुई है। जिनमें से निम्नलिखित मुख्य हैं:-

त्रुटियाँ:- अधिकांश स्कूल जो खुले हुए थे, वे प्राइमरी स्तर तक थे। भारत में मिडिल और हाई स्कूलों की संख्या बहुत कम थी। विद्यार्थियों की शिक्षा नाममात्र थी। इसका कारण यह था कि लोग शिक्षा के महत्व को नहीं समझते थे। उस समय शिक्षा बहुत महंगी थी। अत: इसे धनी वर्ग के लोग ही प्राप्त कर सकते थे। स्त्री शिक्षा बहुत पिछड़ी हुई थी।

निष्कर्ष:-

अत: ब्रिटिश कालीन शिक्षा में उपरोक्त हानियाँ अथवा दोष होते हुए भी हमें यह मानना पड़ेगा कि इस शिक्षा ने भारत में एक नवीन युग का आंरभ किया और भारत को आधुनिक सभ्य देशों की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया।

संदर्भ सूची:-

1. Dayal B. : The Development of Modern Indian Education (1953)
2. Mukerjee, S.N. : History of Education in India (1957)
3. NurullahAnd Naik: History of Education in India during the British Period (1956).
4. Basu,Aparna: Growth of EducationAnd Political Development in India: (1895-1920).
5. Challenge of EducationA Policy Perspective, (1985).
6. Basu, B.D. : History of Education in India Under the Rule of East Indian Company, (Calcutta, 1935).
7. Mahmood, Syed: History of English Education in British India (1781-1893,Aligarh, 1895)

भाषिक अभिव्यक्ति के रूप वैविध्य

डॉ० स्वाति पाण्डेय

सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, छोटानागपुर महाविद्यालय, रामगढ़

भाषा विचारों का वाहक है। मनुष्य जो कुछ बोलता, समझता या अनुभव करता है उसकी अभिव्यक्ति भाषा में होती है। अतः भाषा मनुष्य के सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन का प्रतिबिम्ब है। भाषा के माध्यम से ही किसी युग की विशेषताओं का सच्चा आकलन होता है। वस्तुतः किसी रचनाकार की भाषा का मूल उत्स उसकी अनुभूति से संबंधित होता है। किसी भी रचना की भाषा के विवेचन के लिए यह आवश्यक है कि रचनाकार के पारिवारिक, सामाजिक-सांस्कृतिक तथा अध्ययन-मनन और चिंतन की गहराई में पैठा जाए। रचनाकार अपनी रचनाओं में स्वयं को किसी न किसी रूप में रूपायित करता है, इसलिए वह व्यक्ति को समष्टि में समाहित करता है तभी उसकी रचना सफल होती है। गद्यात्मक हो अथवा पद्यात्मक साहित्य, कथा का समावेश किसी न किसी रूप में साहित्यकार अपनी प्रतिभा के आधार पर अवश्य ही सृजन करता चलता है।

'कथा' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'कथ' धातु से माना गया है जिसका साधारण अर्थ है कथनीय या कहने योग्य। कथा शब्द स्त्रीलिंग है। कहानी सुनना-सुनाना भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध है। कथा का अर्थ कहानी है। उपन्यास, कहानी और निबंध की भाषा को कथा-भाषा कहा जाता है। नाटक की कथा को व्यक्त करने के लिए जो भाषा प्रयुक्त होती है उसे नाट्य-भाषा कहा जाता है। उपन्यासकार के मन में अनेकों भाव हैं उस भाव को व्यक्त करने के लिए भाषा ही न हो तो वह व्यक्त कैसे करेगा। कथा-भाषा का होना अत्यधिक आवश्यक है। भाषा के बिना साहित्य की रचना असंभव है। भाषा-साहित्य का माध्यम है। 'माध्यम' के लिए अंग्रेजी आलोचना में 'मीडियम', 'वेहिकल' जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है।

वस्तुतः कथा में 'कहानी सुनाना' कथाकार का प्राथमिक उद्देश्य है और इसके लिए कथाकार को भाषा की आवश्यकता होती है। भाषा के व्याकरण के नियम इस विन्यास को रूप देते हैं। हिंदी में वाक्य-विन्यास का मानक रूप कर्त्ता-कर्म-क्रिया है। आधुनिक उपन्यास और कहानी में यह विन्यास ज्यादा दूर तक नहीं टिक पाता है क्योंकि कहानी सुनाने में कथाकार की व्यंजना भी शामिल होती है। यहीं से यह कथा गद्य सर्जनात्मक होता है। कथा जब भी पढ़ी जाए वह उसी समय का लगे यह आवश्यक है। कथा जब महाकाव्य में कही जाती थी तो वहाँ वर्णना शक्ति आवश्यक होती थी। काव्य-भाषा और कथा-भाषा में अंतर है। कथा में जो भाषा प्रयुक्त होती है वह कोई अलग नहीं होती बल्कि वह तो पहले से ही समाज में विद्यमान है। इसी को कथाकार एक सौंदर्यबोध का रूप देने का प्रयास करता है। भाषा के विकास में ध्वनि का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। ध्वनि का ही विकसित रूप भाषा के रूप में है। कम्पन से ध्वनि पैदा होती है। यह कम्पन सबसे पहले ऋषियों-मुनियों द्वारा महसूस किया गया था। इसी ध्वनि को सुनने से 'श्रुति' शब्द बना है।

प्रत्येक कला रचनात्मक होती है, इसलिए वह साहित्यकार से विशिष्ट कौशल की माँग करती है। साहित्यकार अपने कौशल को अपनी रचना में प्रस्तुत करता है, उसके उपकरणों तथा तत्वों का सही प्रयोग कर अपने साहित्य को समृद्ध बनाता है। भाषा शब्द संस्कृत की भाष् धातु से बना है जिसका अर्थ है- 'व्यक्त वाणी' या 'कहना'। किसी भी वस्तु की सही-सही वैज्ञानिक परिभाषा दे पाना मुश्किल है। मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते उसे समाज में रहते हुए राय-मशवरा की जरूरत होती है। सामान्य रूप में भावाभिव्यक्ति के सभी साधनों को भाषा की संज्ञा दी जाती है। भाव को इन्द्रियग्राह्य बनाने के लिए नाटक में 'परा' और 'पश्यन्ति' दो प्रकार की भाषा मानी गई है। परा का संबंध देवभाषा से है जो अलौकिक है परंतु पश्यन्ति लौकिक है जिसका प्रयोग दृश्य मानव विभिन्न प्रपंचों के माध्यम से अमूर्त्त भाषा को, अमूर्त्त कथा को वस्तु का रूप देकर इन्द्रिय-ग्राह्य बनाता है। भाषा की इकाई के रूप में ध्वनि एवं शब्द में विद्वानों का मतभेद होने पर भी शब्द को ही भाषा की इकाई मानी गई है। महाकवि तुलसी ने भाव को अपरिमित मानते हुए अक्षर (वर्ण) और शब्द को एकाकार कर दिया है। भावाभिव्यक्ति के संदर्भ में वक्ता अनेक माध्यमों का सहारा लेते हैं जैसे- स्पर्श कर, चुटकी बजाकर, आँख दबाकर, ऊँगली के इशारों द्वारा, मुख के विभिन्न अंगों के सहयोग से ध्वनि उच्चारण करके आदि।

पाणिनि की अष्टाध्यायी महाभाष्य में महर्षि पतंजलि ने भाषा की परिभाषा देते हुए कहा कि जो वाणी से व्यक्त हो उसे भाषा की संज्ञा दी जाती है-

'व्यक्ता वाची वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाचः।'

ऋग्वेद में कहा गया है कि वाक् तत्व या भाषा ही वह दिव्य ज्योति है जो मानव को ऋषि या देवता बनाती है-

"अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेमिरूत मानुषेभिः।
यं कामये ते तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं ते सुमेधाम्।।"[1]

आज की सभी साहित्यिक विधाओं की रचना लिखित भाषा में होती है परंतु इस लिखित भाषा से पूर्व उच्चरित बोली का स्थान रहा है। उच्चरित बोली का कोई स्थिर रूप तथा संग्रहणीय रूप नहीं रहने के कारण आज की तरह उसका समग्र अध्ययन संभव नहीं था परंतु आज के वैज्ञानिक युग में अनेकानेक वैज्ञानिक उपकरणों के माध्यम से उच्चरित भाषा का भी स्थिरीकरण के कारण उसका भी अध्ययन संभव हो रहा है। भाषा के लिखित रूप में भी वैज्ञानिक उपकरणों के कारण लेखन संबंधी त्रुटियों का निराकरण हो रहा है। अब संस्कृत भाषा न तो 'कूपजल' है और न ही भाषा 'बहता नीर' है, अपितु दोनों की

विशेषताएँ एक-दूसरे में समाहित हो चुकी हैं। मनुष्य जो कुछ सोचता-विचारता है, उसको भाषा के द्वारा अभिव्यक्त करता है। अत: भाषा के बिना वह मानव पशुतुल्य है।

प्रत्येक साहित्यकार के अस्त्र शब्द ही होते हैं। शब्द का कोई अर्थ नहीं होता है। प्रत्येक शब्द का लाक्षणिक अर्थ प्रयोक्ता द्वारा भरा जाता है जो कालांतर में रूढ़ अर्थ लेकर कोशों में स्थान पा जाते हैं। लाक्षणिकता का संबंध प्रतीक से, प्रतीक चिन्हों से संपृक्त रहता है। उपन्यास शब्द भी लाक्षणिकता एवं प्रतीकार्थ से विलग नहीं है उपन्यास शब्दकोशों में गद्य साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में विद्यमान है जिसमें व्याप्त लाक्षणिकता एवं प्रतीकात्मकता परंपरागत परिभाषाओं एवं उपन्यास के तत्त्वों के आधार पर पहचान करते हैं। शब्दों के महत्व को प्राचीन ग्रन्थकार दण्डी ने 'काव्यादर्श' के प्रथम छंद में कहा है-

"इदमन्धंतम: कृत्स्नं जायते भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।।"[2]

स्पष्ट है कि शब्द (भाषा) के माध्यम से ही हम संसार का ज्ञान प्राप्त करते हैं। प्रत्येक साहित्यकार को अर्थ संधान हेतु शब्दों से क्रीड़ा करना पड़ता है। शब्द ही साहित्यकार का हथियार होता है जिनके नवीन प्रयोग के पैंतरे से वह सफलता प्राप्त करना चाहता है। विष्णु प्रभाकर जी का प्रयत्न अर्थ को शब्द देना रहा है। उनके अनुसार- "मेरे शब्द मुखौटे नहीं लगाते, अर्थ की तलाश में भी नहीं भटकते, क्योंकि मेरा प्रयत्न अर्थ को शब्द देना रहा है, शब्द के अर्थ ढूँढना नहीं।"[3]

यदि किसी कृति की भाषा का परीक्षण करना हो तो सर्वप्रथम यह देखना चाहिए कि शब्दों के प्रयोग से कलाकार ने शब्दों के सामान्य अर्थ के अतिरिक्त कहाँ और कितनी अर्थ गरिमा प्रदान की है। यदि हम शब्दों के सीमित अर्थ के आधार पर कलाकार के विचारों और अभिव्यक्ति की इतिश्री मान लेंगे तो कलाकार के साथ अन्याय ही होगा। मानव का समस्त ज्ञान वैभव भाषा के ही माध्यम से सुरक्षित रहता है। किसी भी युग की प्रगति, चिंतन तथा ज्ञान का सच्चा आकलन यदि संभव है तो उस युग की भाषा के अध्ययन से ही। भाषा विचारों को वहन करती है, इसके अतिरिक्त भाषा का और कोई अन्य महत्व नहीं है। मनुष्य विभिन्न प्रकार की भाषाओं एवं उनकी भंगिमाओं द्वारा अपने मनोभावों को व्यक्त करना चाहता है और दूसरों तक पहुँचाना चाहता है। भाषा के संबंध में अज्ञेय जी कहते हैं- "कला-माध्यमों में भाषा का माध्यम सबसे अधिक कृत्रिम है, इसमें स्वतंत्र अस्तित्व रखने वाला कुछ भी नहीं है। शब्द का आत्यंन्तिक या अपौरुषेय अर्थ नहीं है, अर्थ वही और उतना ही है जितना हम उसे देते हैं बल्कि देने की प्रतिज्ञा कर लेते हैं।"[4]

कथाभाषा में काव्यभाषा के गुण आने से उसमें नई चमक आ जाती है। काव्यभाषा की समस्त विशेषताएँ यदि उपन्यास की भाषा में बिम्बात्मकता, संकेतात्मकता, सटीकता, भाव व्यंजकता, लय एवं नाद-सौंदर्य, अलंकार जैसे गुण रहे तो कथ्य को मूर्त्त बना देना संभव है। उपन्यास में कभी-कभी पात्र भी परिवेश में बदल जाते हैं, कभी परिवेश पात्र में। दोनों की एकात्मकता में साहित्यकार की पारदर्शिता के संकेत मिलते हैं। देहात के लोगों का अज्ञानजन्य सामाजिकता, सादगी तथा धूर्त्तता अपशब्द और संगीत उपन्यासों में सहजता से स्वीकार किया जा सकता है। उपन्यास का शिल्प जैसा भी हो, उसकी श्रेष्ठता और सफलता की पहचान रोचकता के आधार पर ही होती है। उपन्यासों की लोकप्रियता उसकी रोचकता को दर्शाती है तथा यही उनके औपन्यासिक शिल्प की सफलता एवं सर्वस्वीकृति है। लोक-मानस और लोक-चेतना की सफलता लोकभाषा में ही संभव है। जनभाषा के शब्दों की अर्थवत्ता, मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ तथा कहावतों से व्यंजकता एवं संप्रेषणीयता आती है। इनसे लोकरंग उभर कर सामने आता है और उसे समझने में आसानी होती है। उपन्यासकार में शब्दों को पकड़ने की अपनी अद्‌भुत क्षमता होती है। वे बड़ी संख्या में दुरूह शब्दों के साथ-साथ लोक-प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग करते हैं।

प्रत्येक रचना में वस्तु-विधान की अगली सीढ़ी कथा-भाषा एवं उन उपकरणों से है जिसके माध्यम से कथा-भाषा को सशक्त और संप्रेषणशील बनाया जाता है। जिस प्रकार रसात्मक स्थल की भाषा काव्य-भाषा बनती है, उसी प्रकार गद्य-विधा में विशेषकर उपन्यास और कहानी विधा में कथा रस की भाषा कथाभाषा कहलाती है। काव्य-भाषा की ही भाँति आधुनिक कथाभाषा भी अपने निरूपण में अनेक उपकरणों की सहायता लेकर, उनको एकीकृत कर कथाभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होकर उपन्यास की कथा में गति प्रदान कर सामाजिक यथार्थ की पहचान कराती है। शब्द, वाक्य, शब्द-शक्तियाँ, प्रतीक, बिम्ब, मिथक, प्राकृतिक एवं वस्तु-ध्वनि, आदि कथावस्तु के उपकरण हैं।

कथाभाषा के मुख्य उपकरणों में से एक है स्वयं कहानी कहने वाले की भाषा। कथा कहने के लिए बुनियादी उपकरण है- शारीरिक भाषा, भाव-भंगिमाएँ, आवाज, तौर-तरीके, शब्द क्रीड़ा, प्रवाहमयी भाषा, शब्दावली, सामान्य ज्ञान, स्थिति के हिसाब से तुरंत निर्णय लेना आदि।

रचनात्मक भाषा शैली के इतिहास पर ध्यान देने पर ज्ञात होता है कि भाव अभिव्यंजना में आदर्श और महिमामंडल का नमूना दिखता है। फलत: इस खेमे के कलाकारों के शब्द ऐसे हैं जैसे वे अस्पष्ट अमूर्त्त और बेजान संवेदना के हों। कथाभाषा सुनकर, खासकर रचनात्मक स्तर की भाषा से संकेत ग्रहण की क्रिया तो होती है, वक्ता की क्रियाशीलता और मनोदशा भी प्रकट होती है। उपन्यास में पात्र बोलते समय विभिन्न प्रकार की शारीरिक क्रिया, अंग-भंगिमा, श्वास-नि:श्वास, मुखमुद्रा, दृष्टिभंगिमा आदि के माध्यम से कथाभाषा की सम्प्रेषणीयता में नाटकीयता के माध्यम से जीवंतता को सबल बनाते हैं। उपन्यासों की कथाभाषा में व्यापक स्तर पर शब्द संयोजन होते हैं जिससे भाषा में संक्षिप्तता एवं भावों में व्यंजना शक्ति आती है। विराम चिह्नों के प्रयोग भी इसमें सहायक होते हैं। काव्य की भाषा तथा उपन्यास की भाषा (गद्य की भाषा) में मौलिक अंतर यह है कि काव्य (पद्य) की भाषा में उच्चरित रूप के अनुसार अर्थ और भाव का निर्धारण होता है, लिखित के अनुसार नहीं। यदि इसका अनुवाद किया जाए या अन्य भाषा में इसे अनूदित किया जाए तो न तो यह सही-सही अनुवाद हो सकता है और न ही काव्यगत आस्वाद ही मिल पाता है। कथाभाषा का लिखित रूप ही सबकुछ होता है। इसलिए कथाभाषा में स्वाभाविकता की रक्षा का प्रयास कविता की अपेक्षा अधिक करना पड़ता है। कथा का सम्भाषण साधारणतया स्थानीय सामाजिक जीवन एवं पात्र तथा परिवेश पर आधारित होता है। शब्द चयन, वाक्य गठन एवं उच्चारण के अनुरूप ही गद्य भाषा के लिखित रूप में मौजूद रहना स्वाभाविक होता है अत: कथाभाषा का सटीक अनुवाद संभव है।

प्रत्येक भाषा अपनी शक्ति एवं जीवंतता तथा सतत् विकासशीलता के लिए अपने-अपने शब्दों को अपर्याप्त मानते हुए अन्य भाषाओं के शब्दों को अपने में आत्मसात करती रहती है। दूसरी भाषा से गृहीत तत्सम शब्दों को या तो उसी रूप में अथवा परिवर्तित रूप में अपने में समाहित करती है। शब्दकोशों में

प्राप्त शब्द या तो साहित्य सर्जना से विलग होते जाते हैं अथवा अर्थवत्ता खो जाने के कारण साहित्यकार उससे विलग हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में साहित्यकार अप्रचलित शब्दों को भी झाड़-पोछ कर उपसर्ग, प्रत्यय और संधि के माध्यम से शब्दों में नई भंगिमा भरकर आवश्यकतानुसार प्रयोग में लाते हैं। उपन्यास की भाषा अपनी अर्थवत्ता के विकास के लिए नाट्यभाषा और काव्यभाषा के निकट भी आने की कोशिश कर काव्यात्मक और दृश्यात्मक गुणों को अपने में समेटकर चित्रमयता के रूप में पाठकों के समक्ष अपने को प्रस्तुत करना चाहती है। उपन्यास में व्यक्ति, वस्तु, मूर्त्त-अमूर्त्त तत्त्वों की गति में छन्द के भीतर के स्पन्द और बाहर के बारीक तत्त्वों को भी पकड़ने की अद्‌भुत क्षमता होती है।

रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि भाषा के दो पक्ष होते हैं- एक सांकेतिकता (सिंबोलिक) और दूसरा बिम्बाधायक। उन्होंने वर्णनात्मक स्थलों के लिए बिम्बात्मक भाषा को आवश्यक बताया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार काव्य की भाषा का दूसरा महत्त्वपूर्ण अंग उसका चित्रमय होना माना है। "वस्तुतः भाषा में भाषातीत को प्रतिष्ठित करने के लिए साहित्य भाषा में प्रधानतः दो चीजें मिलाती है, चित्र और संगीत। अतः चित्र और संगीत ही साहित्य के प्रधान उपकरण हैं। चित्र भाव को आकार देता है और संगीत भाव को गति देता है। चित्र देह है और संगीत प्राण।"[5]

कथा-भाषा में स्वाभाविक प्रवाह, सरलता एवं गंभीरता जैसे गुण होने के कारण उपन्यासों, कहानियों में संवेदना का रूप सुरक्षित रहता है। भाषा ही पात्रों के व्यक्तित्व को साकार रूप प्रदान कर, उसका अंतरंग चित्रण करके उसके सूक्ष्म अध्ययन के माध्यम से उसकी व्याख्या करती है। उच्चवर्ग, निम्नवर्ग, शहरी और ग्रामीण नागरिक, स्त्री-पुरुष के बौद्धिक और मानसिक बुद्धि को पृथक् करने में कथाकार भाषा का प्रयोग बखूबी करता है। भाषा काव्य का भी माध्यम है। भाषा को काव्य का माध्यम मानने वालों के दो वर्ग हैं पहले वर्ग में वे साहित्यकार हैं जिनका ध्यान शब्दों पर है दूसरे वर्ग में वे हैं जिनका ध्यान संपूर्ण भाषा है। शब्द के स्थान पर भाषा को माध्यम माननेवालों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी लिखते हैं- "भाषा साहित्य का वाहन है।"[6] आडेन के अनुसार- "कवि वह पिता है जो भाषा के द्वारा ढोई जाने वाली कविता को उत्पन्न करता है।"[7] भाषा को माध्यम मानना काव्यशास्त्रीय एवं भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से संगत नहीं है। भाषा का विकास अनुभूति का विकास है। भाषा एक साथ द्विविध कार्य संपादित करती है। पहला तो यह विचार को संचालित करता है, दूसरा यह अनुभूति के परिष्करण की ओर यह अग्रसर रहती है।

संदर्भ सूची:

1. शर्मा, डॉ० गंगा सहाय. ऋग्वेद मंडल-10. सूक्त 125.
2. आचार्य, दण्डी:, काव्यादर्श:, व्याख्याकार आचार्य श्रीरामचंद्र मिश्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथमः परिच्छेदः, पृ० 04.
3. प्रभाकर, विष्णु. धर्मयुग. 01 मार्च 1981, पृ० 44.
4. सिंह, डॉ० रविनाथ. नई कविता की भाषा. बम्बई: हिन्दी साहित्य संसद, 1976, पृ० 120.
5. तिवारी, डॉ० सियाराम. काव्यभाषा. दिल्ली: दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, 1976, पृ० 190.
6. द्विवेदी, डॉ० हजारी प्रसाद. साहित्य में व्यक्ति और समष्टि. बम्बई: विचार प्रवाह, 1959, पृ० 135.
7. आडेन, उद्धत. एलिजाबेथ ड्रिउ. न्युयार्क: पोयट्री, 1964, पृ० 19-21.

श्रीगीतगोविन्द की विषय-प्रवेष एवं टीकायें

डॉ० रामप्रवेश कुमार

आचार्य संस्कृत विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

श्वेता कुमारी

शोधार्थी, संस्कृत विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

सार:-

किसी भी ग्रन्थ को पढना अधिकतर सहज होने पर भी गम्भीर भावार्थ समझना उतना सहज नहीं है। जो इस ग्रन्थका अधिकारी नहीं है, उसके लिए तो भावार्थ ग्रहण करना नितान्त असम्भव है। इसीलिए सभी प्राचीन ग्रन्थोंके प्रारम्भ में अधिकारी और अनधिकारी की बात बतलायी गयी है। किसी-किसी महानुभाव ग्रन्थकार ने अनधिकारियों को उन-उन ग्रन्थों को पाठ करने में, जिसके लिए वे अनधिकारी हैं, शपथ देकर उनको पढ़ने के लिए निषेध किया है।

प्रस्तावना:-

पूज्यपाद श्रीजयदेव गोस्वामीने भी अपने ग्रन्थ के सर्वप्रथम मन्नमंगलाचरण में ही अधिकार की बात स्पष्ट कर दी है-

यदि हरिस्मरणे सरसं मनः
यदि विलास-कलासु कुतूहलम्।
मधुर-कोमल-कान्त पदावली
शृणु तदा जयदेव-सरस्वतीम्।।

अर्थात् उन्होंने कहा है कि श्रीहरि की सुखद स्मृति की यदि मन में इच्छा हो अथवा यदि तुम हरिका प्रीतिपूर्वक स्मरण करना चाहते हो अथवा श्रीहरि के विलास-नैपुण्यको जानने का हृदय में कौतूहल हो, तो तुम इस ग्रन्थ का पाठ करो, अन्यथा तुम इस ग्रन्थ का पाठ मत करो। मेरी यह कोमलकान्त पदावली तुम्हारे निकट जितनी भी मधुर और कोमल हो, तुम अनधिकारी इसका पाठ मत करो। यदि तुम्हारे हृदयमें कौतूहल हो और उनके रासविलास को जानने की इच्छा हो, तो मेरी कोमलकान्त पदावली तुम्हारे निकट बहुत ही मधुर, कोमल और अत्यन्त कमनीय विवेचित होगी।

इतना स्पष्ट करने के बाद भी अनधिकारियो।के निकट श्री जयदेव कवि पार नहीं पा सके। उनके मधुर एवं अलंकृत भाषा के आकर्षण के कारण वे इस ग्रन्थ का पाठ करते हैं और अन्त में उसका यथार्थ भावार्थ या मर्म ग्रहण करने में असमर्थ होकर अभद्र की भाँति कविकुल चूड़ामणि श्रीजयदेवको ही गालीगलौज करते हैं। ऐसा तो होगा ही। वे तो श्रीहरि को नहीं पहचानते, वे हरि की मधुर स्मृति के निकट भी जाना नहीं चाहते। वे केवल स्वयं को समझते हैं। वह भी देहेन्द्रियात्मक स्वयं को समझते हैं। वे अपने शरीर और इन्द्रियों को सुखकर समझकर उसे ही चरम सुख मानते हैं। वैसे काम के किंकर-जन श्रीजयदेव गोस्वामी द्वारा वर्णित अप्राकृत प्रेम के व्यापार को क्या समझेंगे? इसलिए परम पूज्यनीय श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी ने श्रीचौतन्यचरितामृत में कहा है-

''काम प्रेम दोंहाकार विभिन्न लक्षण।
लौह आर हेम जैछे स्वरूप-विलक्षण।।
आत्मेन्द्रिय-प्रीति-इच्छा तारे बलि 'काम'।
कृष्णेन्द्रिय-प्रीति-इच्छा धरे 'प्रेम' नाम।।
कामेर तात्पर्य-निज संभोग केवल।
कृष्णसुख-तात्पर्य-प्रेम महाबल।।''

तात्पर्य यह है कि लौकिक काम और अप्राकृत प्रेम–इन दोनोंके लक्षण अलग-अलग हैं। लौकिक काम लोहे के समान है तथा अप्राकृत प्रेम सोने के समान है। अपनी इन्द्रियों के लिए सुखकर स्पृहा को काम कहते हैं। किन्तु श्रीकृष्णेन्द्रिय-प्रीतिको विशुद्ध प्रेम कहते हैं। केवल अपना संभोग ही काम का तात्पर्य है और श्रीकृष्ण को सुखी बनाना ही महाबलवान प्रेम का उद्देश्य होता है।

श्रील कविराज गोस्वामी के इस गम्भीर आशय को कितने लोग समझने में समर्थ हैं? विशेषकर जो अपने इन्द्रियतर्पण में ही सदा व्यस्त हैं, वे इसे समझ नहीं सकते हैं। इसीलिए श्रीराधाकृष्णके अप्राकृत प्रेम की लीला भी उनके निकट कामवासना के खेल के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। यदि वे श्रीराधाजी एवं उनकी सखियों के समान लोकधर्म, वेदधर्म, देहधर्म इत्यादि को सर्वथा त्यागकर किसी को प्रेम कर पाते, तो वे इन लीलाओं की तत्त्वकथा से एक दिन अवश्य अवगत हो पाते। क्योंकि ऐसा होने पर ही वे समझ सकते कि आत्मसुख की कामना नहीं रखकर भी निस्वार्थ प्रेम किया जा सकता है।

इसी नि:स्वार्थ अप्राकृत प्रेम की शिक्षा देने के लिए ही वैष्णव कविगण लेखनी को धारण करते हैं। कविकेशरी श्रीजयदेव ने भी यही किया है। क्योंकि स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण इस नि:स्वार्थ अप्राकृत प्रेम के वशीभूत हो जाते हैं। वे इतने वशीभूत हो जाते हैं कि जहाँ भी वे ऐसी प्रीति की गन्ध पा लेते हैं, वे उनके चरणों में गिरकर 'देहि पदपल्लवमुदारं' कहनेके लिए भी प्रस्तुत रहते हैं। श्रीजयदेव कवि की जीवनलीला का अनुशीलन करने पर यह देखा जाता है कि श्रीजयदेव गोस्वामी अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के अधीश्वर श्रीब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर के मुख से कैसे यह बात कहलावें। ऐसा सोचकर वे अत्यन्त अस्थिर और व्याकुल हो उठे। कितनी ही बार ऐसा लिखूँ, लिखूँ, अभिलाषा करके भी यह चरण (चतुर्थ) किसी प्रकार भी लिखने में समर्थ नहीं हुए। वे श्रीकृष्ण को स्वयं-भगवान् समझते थे। इस ऐश्वर्यीाव के कारण ही वे ऐसा नहीं लिख सके। किन्तु भक्तवत्सल भगवान् ने स्वयं उनका वेश धारणकर अपने हस्त से स्वर्णाक्षरों में उस चतुर्थ चरण को ''देहि पदपल्लवमुदारं'' लिखकर पूरा कर दिया और साथ ही साथ अपने भक्तवात्सल्य की बात दुंदुभिवाद्य की भाँति सर्वत्र घोषणा कर दी।

कलिपावनावतार श्रीचौतन्य महाप्रभु गम्भीरा में बैठकर श्रीस्वरूप दामोदर एवं रामानन्दराय के साथ एकान्त निर्जन गम्भीरा में जिन कतिपय रसग्रन्थों का रसास्वादन करके आनन्द में विह्वल हो उठते थे, श्रीजयदेव गोस्वामी का गीतगोविन्द उनमें से अन्यतम एक है। श्रील कविराज गोस्वामी के मुखसे ही हम इस विषय को जानते हैं-

चण्डीदास विद्यापति, रायेर नाटक गीति
कर्णामृत श्रीगीतगोविन्द।
स्वरूप-रामानन्द-सने, महाप्रभु रात्रिदिन
गाय सुने परम-आनन्द।।

इसमें कुछ ऐसे गम्भीर भाव हैं, जिनकी हम विशेष रूप से चिन्ता कर सकते हैं। श्रीचौतन्यमहाप्रभु स्वयं भक्ति का आचरणकर भक्ति की शिक्षा देने के लिए अवतीर्ण हुए हैं। वे ऐसे निर्जन और गोपनीय गम्भीरा में मात्र दो-एक अपने अन्तररंग भक्तों को लेकर इन सब ग्रन्थों का अनुशीलन-रसास्वादन क्यों करते थे? यहाँ भी उसी अधिकार की बात कही गयी है। अधिकन्तु इन सब रसग्रन्थों का अनुशीलन करने के लिए स्थान की बात भी अभिव्यक्त हुई है। श्रीमन्महाप्रभु साधारण स्थानमें साधारण लोगों के समाज में जो संकीर्तन करते, वह केवल नामसंकीर्तन तथा रससंकीर्तन गम्भीरा (गुप्त-गृह) में केवल श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी एवं राय रामानन्द के साथ ही करते। श्रीधाम नवद्वीप में भी यही नियम था। वहाँ भी संकीर्तन होता था। किन्तु रात में श्रीनिवास के घर में द्वार बन्द करके होता था। जगद्गुरु श्रीगौरान्नदेवकी यही सर्वश्रेष्ठ शिक्षा है। अधिकारी होकर इस ग्रन्थ का गुप्त रूप से अनुशीलन करो। इससे तुम्हारा परम कल्याण होगा और प्रेमभक्ति के अधिकारी होओगे। अन्यथा भक्त और भगवान् के निकट अपराधी होकर तुम अध:पतित हो जाओगे। भगवान् श्रीकृष्ण शक्तिमान् हैं और श्रीमती राधिका उनकी पराशक्ति हैं। श्रीराधिका एवं श्रीकृष्ण की लीला–शक्ति और शक्तिमानकी लीला है। कामगन्धहीन अप्राकृत प्रेम की लीला है। यह बात तो बहुत से लोग जानते हैं एवं जिन ग्रन्थों में यह लोकपावनी लीला लिपिबद्ध हुई है, भक्ति अनुष्ठान के अंग के रूप में उसका वे अनुशीलन भी करना चाहते हैं। किन्तु संस्कृत भाषा में अनभिज्ञ होने के कारण उसका भावार्थ के साथ पाठ नहीं कर पाते।

सच्चिदानन्द पूर्ण कृष्णेर स्वरूप।
एकई चिच्छक्ति तार धरे तिन रूप।।
आनन्दांशे ह्यादिनी सदंशे सन्धिनी।
चिदंशे संवित् जारे ज्ञान करि जानि।।
ह्यादिनीर सार प्रेम, प्रेमसार भाव।
भावेर पराकाष्ठा-नाम महाभाव।।
महाभाव-स्वरूपा श्रीराधा ठाकुरणी।
सर्वगुणखनि कृष्णकान्ता-शिरोमणि।।

श्रीगीतगोविन्द आजकल शिक्षित समाज में शृंगाररसात्मक सुमधुर काव्य के रूप में ही प्रसिद्ध है और उसके प्रणेता पूज्यपाद श्रीजयदेव गोस्वामी एक असाधारण कवि के रूप में हैं। परन्तु श्रीगीतगोविन्द काव्य होने पर भी केवल छनदोबद्ध रसात्मक वाक्यस्वरूप लोकप्रसिद्ध आलंकारिक काव्य नहीं है। जयदेव गोस्वामी स्वयं कवि होनेपर भी सुमधुर पदविन्यास करने में कुशल रचनाकार और स्वभाव विकासक केवल कविमात्र नहीं हैं। श्रीगीतगोविन्द सर्ववेद का सार एवं श्रीजयदेव गोस्वामी सर्ववेद विशारद परम साधक और सिद्ध भी हैं। पाठकगण श्रीगीतगोविन्द का पाठ करने से पूर्व या आरम्भ में यह देखेंगे कि ग्रन्थकार ने अपने इष्टदेवता के स्मरणरूप मंगलाचरण में यही लिखा है–

''राधा-माधवयो र्जयन्ति यमुनाकूले रह: केलय:।''

अर्थात् श्रीयमुनापुलिन में श्रीराधामाधव की गम्भीर एवं सुगूढ़ विहारलीला सर्वोपरि विराजमान हो रही है। द्वितीय श्लोक में उनके वर्णनीय विषयका परिचय दिया है-

''श्रीवासुदेव-रतिकेलि-कथा-समेतमेतं करोति जयदेव-कवि: प्रबन्धम्।''

अर्थात् जयदेव कवि श्रीवासुदेव ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर की परम आनन्दमय रतिविहार का अवलम्बन करके यह प्रबन्ध लिख रहे हैं। जैसा कि हमने पहले कहा है, तृतीय श्लोक में उन्होंने इस ग्रन्थ का अधिकारी भी निर्णय किया है–

यदि हरिस्मरणे सरसं मना
यदि विलासकलासु कुतूहलम्।
मधुर-कोमल-कान्त-पदावलीं
शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्।।

अर्थात् यदि हरि स्मरण करने में मनको अनुरक्त करना चाहते हो अथवा तुम्हारा मन हरिस्मरण में अनुरक्त है और यदि उस लीलारस को आस्वादन करने का कौतूहल हो अर्थात् यदि एकान्तिक अभिलाषा हो तभी सुमधुर कोमलकान्त पदावलीयुक्त जयदेव के अप्राकृत काव्य का श्रवण करो। श्रीजयदेव गोस्वामी ने इस अप्राकृत काव्य में श्रीराधामाधाव के अप्राकृत प्रणय का मनोज्ञ (सुन्दर) वर्णन किया है। शृंगाररस के विप्रलम्भ तथा संभोग दोनों पक्षों का चरमोत्कर्ष इसी गीतिकाव्य में दृष्टिगोचर होता है। कवि की मान्यता यह है कि विप्रलम्भ द्वारा परिपुष्ट संभोग शृंगार-रसिक, सिद्ध-महापुरुषों एवं भक्तिसाधकों को अधिक सुखप्रद प्रतीत होता है। अधिकारी के निर्णय के सम्बन्ध में श्रीमद्भगवद्गीता के अट्ठारहवें अध्याय के ६७-६८ श्लोकों में स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने अन्तरंगन्नभक्त अर्जुन को गीता के श्रवण एवं कीर्तन का अधिकारी और अनधिकारी का उपदेश दिया है।

इदन्ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति।।

जो लोग श्रद्धालु नहीं हैं, मेरे प्रति शुद्धभक्ति नहीं है, जो अनधिकारी हैं, ऐसे लोगों को यह मेरा अत्यन्त रहस्यपूर्ण ज्ञान और विज्ञान उन्हें श्रवण मत कराओ।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति। भक्तिं मयि परांकृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः।

अर्थात् जो लोग मेरे इस परमगुह्यतम गीता के अत्यन्त रहस्यपूर्ण ज्ञान विज्ञान का अत्यन्त श्रद्धालु भक्तों को श्रवण कराते हैं, इस प्रकार अन्त में वे मुझे ही प्राप्त होते हैं। इसलिए पहले श्लोक में अनधिकारी और दूसरे श्लोक में अधिकारी की बात की है। श्रीजीवगोस्वामी ने भी श्रीगोपालचम्पू सुनने के लिए अनधिकारी और अधिकारी का स्पष्ट रूप से विवेचन करते हुए अनधिकारी, भक्तिरहित, श्रद्धारहित, व्यक्तियों को उक्त ग्रन्थ पढ़ने-सुनने के लिए निषेध किया है। इसी प्रकार हमारे अन्यान्य गोस्वामियों ने भी स्वरचित ग्रन्थों को न पढ़ने के लिए निषेध किया है।

श्रीजयदेव गोस्वामीने कलियुग की मानव प्रकृति को भलीभाँति समझा था। उन्होंने यह समझा था कि कलियुग के मनुष्य बाह्य आवरण के सौन्दर्य को देखकर ही मुग्ध होते हैं। आवरण का सौन्दर्य नहीं देखने से अर्न्तनिहित परम हितकर औषधकी भी अवहेलना करते हैं। इसीलिए श्रीजयदेव कविने वैष्णवोचित सब जीवों के प्रति सदय होकर भवरोग की एकमात्र औषधिस्वरूप एवं अप्राकृत चिन्मय रस का आस्वादन करने के लिए अद्वितीय अवलम्बनस्वरूप अप्राकृत परम सुमधुर अपने भावों को आपात मधुर प्राकृत-शृंगाररस के आवरण में लपेटकर उसे काव्य के रूप् में प्रकाश किया है। पाठकगण अब अच्छी तरह से समझ सकते हैं कि श्रुति में जो रस जीव के स्थिर आनन्द का हेतु निर्दिष्ट हुआ है, श्रीगीतगोविन्द उसी अप्राकृत सुमधुर रस का काव्य है। प्राकृत शृंगाररस का यह काव्य नहीं है। इसीलिए यह काव्य होने पर भी अखिल श्रुतियों का सार स्वरूप है। रसतत्त्वविद् कविकुल-तिलक श्रीजयदेव गोस्वामी ने कभी श्रीकृष्णके विरह में श्रीराधा को उत्कृष्ट अभिमान के द्वारा ईर्ष्यान्वित किया है, कभी निदारुण दुःख से अविश्रान्त क्रन्दन कराया है, कभी श्रीराधा के विरह में श्रीभगवान् को भी अत्यन्त व्याकुल कर दिया है। केवल यही नहीं, स्वयं-भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरको श्रीराधाजी के चरणों को पकड़कर 'देहि पदपल्लवमुदारं' ऐसा कहलाया है। इसी में भक्तों को अत्यन्त उन्नात भगवत् प्रेम और भगवान् का चूड़ान्त भक्तवात्सल्य प्रकटित हुआ है। यही अखिल श्रुतियों का सार स्वरूप है। श्रुतियों ने कहा है कि वे परमात्मा जिसको चाहते हैं वही उनको प्राप्त होते हैं-

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।।

भगवान् श्रीकृष्ण आनन्दघनमूर्त्ति हैं। जीव भी सब समय केवल आनन्द का ही अनुसन्धान कर रहा है, उसे प्राप्त नहीं कर पा रहा है। किन्तु जिस दिन जीवों का ऐसा सौभाग्य उदित होगा, उसी दिन अर्थात् जिस समय भक्तों के अन्तर्निहित भावों को देखकर भगवान् स्वयं अपने को ज्ञात करा देंगे, उसी दिन अपने सौभाग्य के बल से स्वयं आनन्द भी उनका अनुसन्धान करेगा। साधक भक्त अपने हृदय में कृष्णाकर्षणी प्रेमभक्ति संचयकर अपने घर में बैठा रहेगा और प्रेमलोलुप आनन्दमय श्रीकृष्ण उसके निकट जाने के लिए परम व्याकुल हो उठेंगे। अपराधी की भाँति अनुनय विनय करेंगे–देहि पदपल्लवमुदारं। यही निखिल श्रुतियों का सार स्वरूप है। श्रुतियाँ कहती हैं–ब्रह्म जितना निकट है उतना दूर भी है।

श्रीगीतगोविन्द की निम्नलिखित छह प्रसिद्ध टीकाएँ प्राप्त होती हैं-

१. रसमेजरी–इसके प्रणेता महामहोपाध्याय शंकरमिश्र हैं। उन्होंने इस टीका का प्रणयन श्रीशालीनाथ की प्रेरणासे किया था।
२. रसिकप्रिया–इस व्याख्या के प्रणेता कुम्भनृपति कुम्भकरण थे। ये मेवाड़ के राजा थे। इनके राज्यकाल का समय ईसा की चौदहवीं शताब्दी का प्रथम चरण माना जाता है।
३. सेजीवनी–इसके प्रणेता वनमाली भट्ट हैं।
४. पदद्योतनिका–इसके प्रणेता नारायण भट्ट हैं।
५. बालबोधिनी–इसके प्रणेता श्रीपुजारी गोस्वामी हैं।
६. दीपिका–इसके प्रणेता आचार्य गोपाल हैं।

निष्कर्ष

श्रीजयदेव कवि ने इस मधुर-काव्य में गान्धर्व-विद्या का कौशल, ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीश्यामसुन्दर के चिन्तन-स्मरण का समस्त रहस्य, सम्भोग और विप्रलम्भ दोनों प्रकार के शृंगाररस का विस्तृत विवेचन तथा काव्य-प्रणय की प्राचीन पद्धति, सभीका मणिकोचन न्याय से सन्निवेश किया है। उन्होंने स्वयं कहा है–'सानन्दाः परिशोधयन्तु सुधियः श्रीगीतगोविन्दतः' (१२/२४/११) इस चतुर्थ चरण का यह भी अभिप्राय है कि इन समस्त वस्तुओं का पूर्णतः शुद्धरूप इस गीतगोविन्द काव्य में ही एकमात्र उपलब्ध हो सकता है।

संदर्भ-

1. गीतगोविन्द 7/16/2 रसमंजरी टीका सहित
2. गीतगोविन्द 9/18/2
3. गीतगोविन्द 7/15/1
4. गीतगोविन्द; मंगलपाठ
5. गीतगोविन्द 6/13/2-3 पर पदद्योतनिका टीका
6. कृष्णकर्णामृत; पद्य 112
7. द्रष्टव्य; कृष्णकर्णामृत, सं० एम०के०डे०, भूमिका भाग, पृ० 4
8. कृष्णकर्णामृत; 93

समाज और कविता दोनों जेंडर न्यूट्रल हों

कविता भाटिया मेहता

हिंदी विभाग, मिरांडा हाउस, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

लिंग या जेंडर एक सामाजिक-सांस्कृतिक शब्द है जो समाज में स्त्रियों और पुरुषों के समस्त कार्यों और व्यवहारों को पारिभाषित करता है। जेंडर/ लिंग आधारित विषय पर चर्चा नारीवादी आंदोलन की दूसरी लहर 1960-80 के दशक के दौरान शुरू हुई। यों नारीवादी आंदोलन की शुरुआत वर्ष 1848 में आरंभ हो चुकी थी। पश्चिम और भारतीय सभी नारीवादी आंदोलनों ने लिंगवाद के उन्मूलन और न्यायिक व्यवस्था के तहत स्त्रियों के लिए समान आधिकारों की मांग की लड़ाई लड़ी। किसी भी समाज में लैंगिक समानता का न होना असंतुलन को बढ़ावा देता है और वह समाज एक अस्वस्थ समाज ही होता है। 'जेंडर न्यूट्रल, का अर्थ है- समाज में स्त्री और पुरुष दोनों को समान अधिकार व समान अवसर मिले।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री को अपनी तरह से जीने और अपने को व्यक्त करने को नकारती है जबकि स्त्री सदा से ही पुरुषों से जेंडर सहयोग की अपेक्षा करती रही है। नारीवादी आंदोलन (पहली लहर- 1848-1920) में अमेरिकी महिलाओं ने महिलाओं की समानता की पुष्टि और मतदान के अधिकार सहित विशिष्ट अधिकारों की मांग की। पश्चिम में स्त्रियों को वोट डालने की इजाजत नहीं थी और साथ ही आर्थिक क्षेत्र में भी काम का पारिश्रमिक पुरुषों की अपेक्षा कम मिलता था। यही नहीं, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रों में पितृसत्ता द्वारा स्त्रियों के लिए समाज अवसरों और अधिकारों की मांग को अनसुना कर स्त्रियों के साथ उसका रवैया भेदभावपूर्ण ही रहा। वर्ष 1963 में बेट्टी फ्रीडन की पुस्तक 'द फेमिनिन मिस्टिक, प्रकाशित हुई। उस समय स्त्रियाँ पत्नी और माँ के रूप में अपनी परंपरागत सीमाओं से जूझ रही थी। ऐसे समय में नारीवादियों (दूसरी लहर- 1963-1980) ने समाज में पारंपरिक लिंग भूमिकाओं के पुर्नमूल्याँकन और लिंगवादी भेदभाव को समाप्त करने का आह्वान किया। इसी क्रम में जूडिथ बटलर पितृसत्ता पर चोट करती अपनी पुस्तक ' जेंडर ट्रबल' में कहते है-' हम न केवल बार- बार बोलने के तरीकों से, बल्कि करने के तरीकों से भी लिंग का पुनरुत्पादन करते हैं।' वह मानते है ' जेंडर बाइनरी' समाज द्वारा निर्धारित कैटेगरी है क्योंकि 'जब हमें लड़की कहा जाता है तो हम लड़कीवाद के उस दायरे में प्रवेश कर जाते हैं जो लंबे समय से बना हुआ है। परंपराओं की एक लंबी शृंखला, कभी-कभी विरोधाभासी, जो समाज के भीतर लड़कीपन को स्थापित करती है।' जूडिथ एक प्राकृतिक और आवश्यक पहचान के रूप में महिला की अवधारणा पर पारंपरिक नारीवाद की निर्भरता को चुनौती देते है तथा साथ ही वह लिंग की प्रदर्शनात्मक प्रकृति और सामाजिक तथा सांस्कृतिक निर्माणों की पड़ताल भी करते है जो पहचान की हमारी समझ को आकार देती है। सीमोन द बोउवार का प्रसिद्ध कथन- 'स्त्री पैदा नहीं होती, बनायी जाती है' समाज के इसी सत्य और विडंबना को सामने लाता है।

भारतीय नारीवाद आंदोलन काफी हद तक पश्चिमी नारीवादी आंदोलनों से प्रभावित था। भारतीय समाज पितृसत्तात्मक समाज रहा है, जहां आरंभ से ही स्त्रियों की दशा दयनीय रही है। पुरुष अपनी वर्चस्वशाली सत्ता को बनाए हुए स्त्री को कमतर और दोयम दर्जा देता रहा है। समाज में स्त्री आरंभ से ही कन्या भ्रूण हत्या, स्त्री शिक्षा, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, स्त्रियों का यौन उत्पीड़न आदि समस्याओं से जूझती रही है। बाद के वर्षों में समान मजदूरी, लैंगिक समानता और समान अधिकारों की प्राप्ति के लिए वह संघर्षरत रही है। भारत में नारीवादी आंदोलन 19वीं शताब्दी के मध्य आरंभ हुआ, उस समय कई समाज सुधारकों ने स्त्री संबंधी सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध उसके अधिकारों के लिए आवाज उठाई साथ ही सावित्रीबाई फुले, ताराबाई शिंदे एवं पंडित रमाबाई जैसी महिला कार्यकर्ताओं ने स्त्री असमानता का विरोध करते हुए स्त्री के पक्ष में आवाज बुलंद की। स्वतंत्रता आंदोलन के समय कई महिला संगठन उभरे, जिनके प्रयासों से स्त्री ने चौखटे मे फिट कर दी गयी अपनी भूमिका के खिलाफ आजादी की लड़ाई में पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर अपने बदले हुए स्वरूप को प्रस्तुत किया। ऐसे समय में दुर्गाबाई देशमुख और सरला देवी चौधरानी की सक्रिय भूमिका महत्व पूर्ण रही। आजादी के पश्चात स्त्री ने पारिवारिक व सामाजिक दायित्व निभाने के साथ आर्थिक क्षेत्र में भी कदम रखा। ऐसे में कार्य स्थल पर उत्पीड़न, उच्च पदों पर स्त्री भर्ती आदि के साथ संपत्ति संबंधी समान अधिकारों के लिए भी उसे संघर्ष करना पड़ रहा है। वर्ष 1990 के पश्चात इंटरनेट के उद्भव ने स्त्री को 'अपना स्पेस' तो दिया ही साथ ही अपने सुख-दुखात्मक मनोभावों को व्यक्त करने का मंच भी दिया। स्त्री सशक्तिकरण की दिशा में उभरा एक क्रांतिकारी सोशल मीडिया आंदोलन 'रु मी टू' आंदोलन था। दुनिया भर की महिलाएं इस आंदोलन का हिस्सा बनी जिस समाज में मर्दवाद अपने जहरीले रूप में मौजूद है वहाँ उन्होंने अपने जीवन के किसी मोड़ पर भोगी गयी यौन प्रताड़ना व यौन शोषण को इस मंच पर बेझिझक व बेखौफ होकर अभिव्यक्त किया।

समाज स्त्री 'लिंग' के साथ सदा से ही उदासीन व उपेक्षित बना रहा। इसका कारण समाज की संरचना का पितृसत्तात्मक होना था। साहित्य में भी इसी विचार और धारणा को देखा जा सकता है। स्त्री कविता यथार्थ व जीवन के सहज अनुभवों को अपनी कविता का विषय बनाती है। पितृसत्ता के अंतर्विरोधों और विसंगतियों के प्रति विद्रोहात्मक प्रतिक्रिया का स्वर उनकी कविता में सुना जा सकता है। साहित्य में स्त्री विमर्श व स्त्री की स्वाधीनता से जुड़े प्रश्न, उसकी चिंताएं, उसके स्वप्न महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं। यह सच है स्त्री मुक्ति का प्रश्न, उसकी आकांक्षाएं, पीड़ा एवं व्यथा एक भिन्न संसार रचती है। इसी क्रम में प्राचीन काल से लेकर अब तक तक स्त्री कविता ने स्त्री सशक्तिकरण की एक लंबी यात्रा तय की है। वह केवल वस्तुस्थिति का नकार भर न होकर अपनी क्षमताओं को पहचानने, उसे विकसित करने और अपने को पुनः गढ़ने- यानि अपने स्व को फैलाकर पूरी सृष्टि को अपने में समेटने की कोशिश है।

सामाजिक व्यवस्था के क्रूर शोषणतंत्र ने सबसे अधिक स्त्री और दलित को मुख्यधारा से परे कर हाशिए पर धकेलने की कोशिश की है। इनमें भी सबसे जटिल व संश्लिष्ट स्थिति स्त्री की है। ऐसे में शोषणकारी सामाजिक व्यवस्था के विविध रूप, स्त्री की अनसुनी आवाज, उसकी पीड़ा और इन सबसे ऊपर उसका विद्रोह- इन सब दृष्टियों से स्त्री कविता विशेष अध्ययन की मांग करती है। इस संदर्भ में प्रश्न यह है कि क्या स्त्री कविता की रचना केवल अपनी छिपी आकांक्षाओं और पुरुष समाज से शिकायत कर अपनी पीड़ा बयान कर समाज से सहानुभूति पाने व स्त्री विमर्श को सामने लाने के लिए ही करती हैं? स्त्री कविता को हमेशा इसी सीमित और तयशुदा एकांगी दृष्टिकोण से देखे जाने की पूर्व परंपरा को ही हम ढो रहे हैं। जबकि दिलोदिमाग की संकीर्णता के ढांचे को तोड़कर देखें तो स्पष्ट होता है की आरंभ से लेकर अब तक की स्त्री कविता में परस्पर जुड़े हुए कई सरोकार और चिंताएं हैं।

आरंभिक स्त्री कवयित्रियों में रामकुमारी हो या प्रतापकुँवरि बाई, तोरन देवी शुक्ल 'लली' अथवा सुभद्राकुमारी चौहान- इन सबने लैंगिक ध्रुवीकारण को तोड़ते हुए अपनी कविताओं में स्त्री के समान अधिकारों की मांग के साथ मातृभूमि की वंदना, देशानुराग, कृषक व मजदूर वर्ग के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया। वहाँ केवल घुटती हुई, आँसू बहाती स्त्री नहीं है बल्कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था से मुक्ति की आकांक्षा के साथ उनकी रचनाओं में परिवार, समाज और राष्ट्र की चिंताएँ भी गहरे रूप में मौजूद है। इससे इंकार नहीं कि स्त्री कविता में अपने 'स्वत्व' को पाने की कोशिश है तो स्वप्नों का मुक्त वातायन भी। पितृसत्ता की जकड़न से मुक्ति का उत्सव रचती स्त्री भी है जो 'स्त्री केवल स्त्री नहीं, मनुष्य भी है'- की घोषणा करती दिखती है।

प्रश्न यह भी है कि स्त्री कविता को 'स्त्री कविता' क्यों कहा जाय? 'स्त्री कविता' कहते ही उसे लेकर हम बायस्ड क्यों हो जाते हैं? जबकि समाज और कविता दोनों जेंडर न्यूट्रल होने चाहिए। यदि हम साहित्येतिहास को खंगाले तो पाते है कि ऐतिहासिक विकासक्रम में स्त्री की स्वायत पहचान बनने ही नहीं दी गयी। जीवन के अनेक क्षेत्रों में लिंग-असमानता के कारण पुरुष शक्तिशाली सर्वोपरि सत्ता बन गया और स्त्री इस शोषण की शिकार। पश्चिमी आलोचक मिल ने 'द सबजेक्शन ऑफ विमेन' में स्त्री-पुरुष के पूर्ण समानता के सिद्धांत को कायम किए जाने की वकालत की, सिद्धांत ऐसा जो न एक पक्ष को कानूनी सत्ता या सुविधा दे और न ही दूसरे को अशक्त बनाए।

समकालीन कवयित्रियों गगन गिल, कात्यायनी, अनामिका, सविता सिंह, नीलेश रघुवंशी, निर्मला पुतुल, सुशीला टाकभौरे आदि ने अपनी कविताओं में साहित्य जगत के सम्मुख समाज के जेंडर्ड स्ट्रक्चर, स्त्री कविता में स्त्री की एक मनुष्य के तौर पर पहचाने जाने की जद्दोजहद, जेंडर सेंसिटिव के बजाय जेंडर न्यूट्रल समाज की जरूरत पर बल तथा स्त्री के संशलिष्ट अनुभव जैसे प्रासंगिक प्रश्नों को रखा हैद्य इन सभी ने सामाजिक इकाई के तौर पर स्त्री की अपनी सशक्त पहचान के मुद्दे पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है। अनामिका की चर्चित कविता 'स्त्रियाँ' में लैंगिक भेदभाव को नकारती स्त्री की यही मांग है- 'एक दिन हमने कहा/भी इंसान हैं-/ हमें कायदे से पढ़ो एक-एक अक्षर / जैसे पढ़ा होगा बी.ए के बाद / नौकरी का पहला विज्ञापन!'

यही नहीं समकालीन हिंदी कविता के वरिष्ठ कवियों अशोक वाजपेयी, लीलाधर मंडलोई, मंगलेश डबराल तथा कई नए कवियों की काव्य दृष्टि समावेशी है, अर्थात उनकी कविताओं में स्त्री-पुरुष अलग-अलग न होकर एक है। पुरुष और स्त्री की समानता को एक मूलभूत मानवीय सिद्धांत मानते हुए 'जेंडर न्यूट्रल' की बात सभी रचनाकारों ने स्वीकार की है।

अनामिका और सविता सिंह की कविता में मानव मुक्ति का व्यापक कैनवास है तो नीलेश की कविता सामाजिक शोषण के विभिन्न रूपों को उजागर करती है। निर्मला पुतुल और सुशीला टाकभौरे की कविताएं भी व्यापक सामाजिक बिम्ब को दर्शाती हैं। निर्मला पुतुल जल, जंगल और जमीन के क्षय तथा नष्ट होते पर्यावरण को लेकर गंभीर है तो कात्यायनी और गगन गिल की राजनीतिपरक कविताएं हिंदी कविता में विशेष स्थान रखती हैं। इस संदर्भ में पुरुष रचनाकारों ने भी स्त्री कविता संबंधित शोध अध्ययन को एक नया ठोस रूप दिया है। कवि लीलाधर मंडलोई कविता को अलग-अलग खानों में बांटकर देखने की परिपाटी से बिल्कुल असहमत है तो कवि जीतेंद्र श्रीवास्तव एक ऐसे समाज और परिवेश की कामना करते है जिसमें मूल्यांकन का आधार जाति, लिंग और धर्म न हो। युवा कवि अच्युतानंद मिश्र समय की मांग के अनुसार जेंडर न्यूट्रल के लक्ष्य को पाने की बात करते है।

नीलेश रघुवंशी स्पष्ट कहती है कि- "कविता को फाँकों में बदलने की जरूरत मुझे महसूस नहीं होती क्योंकि इससे हमारी दृष्टि तो विभाजित होगी ही, कविता की चुनौतियाँ भी कमतर होगी।" (स्त्री-कविता: पहचान और द्वन्द्व, रेखा सेठी पृ० 106) कात्यायनी स्त्री की पहचान एक 'व्यक्ति' रूप में किए जाने की हिमायती है साथ ही वह इस बात पर भी बल देती है कि स्त्री का संघर्ष एक नागरिक की हैसियत से सभी संघर्षशील अस्मिताओं में अपना विलय कर देने में ही है। (उपर्युक्त, पृ० 51) सुशील टाकभौरे भी स्त्री कविता को केवल स्त्रीवादी नजरिए से देखे जाने का विरोध करती है। इस गंभीर विषय पर बात करते हुए याद आता है जर्मेन ग्रीयर की पुस्तक 'द फीमेल यूनिक' में इब्सन के डॉल हाउस का नोरा-हैल्मर संवाद। जिसमें नोरा हैल्मर के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहती है कि- "मैं मानती हूँ कि सबसे पहले मैं मनुष्य हूँ ... उतने ही जितने तुम हो, और हर सूरत में मैं वह बनने की कोशिश तो करूंगी ही।"

स्त्री कविता में अपने मन की गाँठे खोलती स्त्री अपने तनावों से जूझती, अपने वजूद की तलाश करती दिखती है पर साथ ही इनमें पूरा समाज और जीवन भी समाया है। सामाजिक समता के सवालों को उठाना और लैंगिक दृष्टि से भेदभाव का चित्रण समकालीन हिंदी कविता में बखूबी मिलता है। स्त्री को 'अर्धांगिनी' कहकर उसे सदा घर की गृहिणी और पुरुष की दासी ही समझा गया। इस मोहक विशेषण तले अपने साथ होते शोषण को नकारती स्त्री रजनी तिलक की कविता में विद्रोह भरे स्वर में कह उठती है- 'गृहिणी घर की स्वामिनी/ अर्धांगिनी नहीं, पूरी है / जीती जागती पूरा शरीर / जिसका अपना मस्तिष्क है / दो हाथ दो पाँव...' (प्रतिरोध का स्त्री स्वर- सम्पादन: सविता सिंह, पृ० 119)

लिंग असमानता पुत्र और पुत्री में भेद देखती है। तभी तो आरंभ से लेकर आज तक परिवार में पुत्र जन्म को उत्सव की तरह देखा जाता है। वंश वृद्धि का कारक मान उसे कन्या की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया जाता है। कवयित्री शुभा कहती हैं- 'आखिर लिंग देखकर ही / माता-पिता थाली बजाने लगते है / दाईयां नाचने लगती हैं / लोग मिठाई के लिए मुँह फाड़े आने लगते हैं... हमारे शास्त्र, पुराण, महान धार्मिक कर्मकांड, मनोविज्ञान / मिठाई और नाते-रिश्तों के योग से / लिंग इस तरह स्थापित हुआ / जैसे सर्वशक्तिमान सृष्टिकर्ता'(प्रतिरोध का स्त्री स्वर: सविता सिंह, पृ० 17)

भाषा के संदर्भ में भी जेंडर भेदभाव देखने को मिलता है। भाषा के दो स्तर माने जाते है- विचार और अनुभूति। विचार , सार्वजनिक 'स्पेस' में स्थापित

होता है। पर सवाल यह है कि सार्वजनिक स्पेस में स्त्रियों को बोलने और विचार-विमर्श की कितनी जगह मिलती है? अधिक बोलने वाली और, अपने विचारों को जोरदार स्वर देने वाली अथवा अधिकारों की बात करने वाली स्त्रियों को 'वाचाल', 'बहस करने वाली', उद्दंड स्त्री माना जाता है। पुरुष को शक्ति और सत्ता से जोड़ा गया तो स्त्री सत्ताहीन ही बनी रही। साथ ही ध्यातव्य है संस्कृत नाटकों में स्त्रियों के संवाद संस्कृत में न होकर पालि, प्राकृत अथवा देशज भाषा में रखे जाते थे।- यहाँ भी लिंग के आधार पर भेदभाव? यही नहीं साहित्य के विविध क्षेत्रों नाटक, व्यंग्य, आलोचना, निबंध आदि में स्त्री नाम नदारद या बहुत कम मिलेंगे। इस संदर्भ में चंद्रा सदायत कहती है- "हिंदी में स्त्री-लेखन के बारे में प्राय: यह कहा जाता है कि उसका क्षेत्र सीमित है, वह घर-परिवार, प्रेम दाम्पत्य और बच्चों की दुनिया तक सीमित है। यह बात सही नहीं है। क्या मन्नू भंडारी का 'महाभोज', महाश्वेता देवी का 'जंगल के दावेदार', कृष्णा सोबती का 'जिंदगीनामा', और नासिरा शर्मा का 'जिंदा मुहावरे' आदि उपन्यास घर-परिवार की समस्याओं तक सीमित है? इन उपन्याओं में भारतीय समाज की व्यापक सामाजिक-राजनीतिक और सांस्कृतिक समस्याओं तथा वास्तविकताओं की गंभीर रचनात्मक छानबीन और अभिव्यक्ति है।... एक आश्चर्य की बात तो यह है कि हिंदी में जब पुरुष रचनाकार घर-परिवार, प्रेम, दाम्पत्य और बच्चों पर कविताएं, कहानियाँ, उपन्यास आदि लिखते हैं तो उसे रचनात्मक उपलब्धि कहा जाता है, लेकिन जब इन्हीं विषयों पर स्त्रियाँ लिखती हैं तो उनके रचना-संसार को सीमित कहा जाता है।' (स्त्री अस्मिता: साहित्य और विचारधारा, संपा० जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह पृ० 198)

साहित्य के अलावा ज्ञान-विज्ञान, खेल, व्यवसाय आदि क्षेत्रों में भी उच्चता के शिखर पर पहुँचने वाले केवल पुरुष नाम ही याद आएंगे और याद रखे जाएंगे। 'मिसाइल मैन'- ए पी जे अब्दुल कलाम जो सब जानते है पर हम में से कितने लोग मिसाइल वुमन ऑफ इंडिया-टेसी थॉमस को जानते हैं? लिंग भेद पर अपनी आवाज उठाने और समाज में जागरूकता बढ़ाने में '50 मिलियन मिसिंग अभियान' की संस्थापक रीता बनर्जी, उपन्यास 'वन-एंड-ए-हाफ वाइफ' की लेखिका मेघना पंत भी चर्चित होकर भी लिंग-भेद का शिकार है। वर्ष 2017 के एक सर्वेक्षण के अनुसार यह कहा गया कि बहुसंख्यक पुरुष कार्यस्थलों में कार्यरत महिलाओं के लिए स्त्री होने के कारण कार्यस्थल पर आगे बढ़ना तो कठिन है ही, साथ ही इन्हें लैंगिक भेदभाव का शिकार भी होना पड़ता है।

वस्तुत: किसी भी समाज की तरह कविता अथवा साहित्य का मूल्यांकन स्त्री-पुरुष के खाँचों में अलग-अलग न कर स्वतंत्र मनुष्य / रचनाकार के तौर पर होना चाहिए। जीवन, समाज और साहित्य में समानता की स्थिति ही आदर्श स्थिति होगी।

पर्यावरणीय नैतिकता की समकालीन उपादेयता

मनीषा मिश्रा

शोध छात्रा, दर्शनशास्त्र विभाग, दी. द. उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

पर्यावरणीय नैतिकता मानव के आचरण और उसके व्यवहार का निर्धारण सम्पूर्ण सृष्टि के परिप्रेक्ष्य में करता है। मानव अपनी विकास यात्रा में भौतिक रूप से जितना अधिक समृद्ध हुआ, उतना ही अधिक अनेक समस्याओं को उत्पन्न करने की ओर प्रवृत्त भी हुआ है और वर्तमान में सर्वाधिक गंभीर समस्या पर्यावरण संकट की है, जिसने सारे पारिस्थितिकीय तंत्र के संतुलन को पूरी तरह से प्रभावित किया है। इसका महत्वपूर्ण कारण मनुष्य का स्वंय को सम्पूर्ण प्रकृति से एक अलग विशिष्ट इकाई समझना जबकि वह स्वयं इस विशाल प्राकृतिक तंत्र का एक छोटा सा घटक है, अपनी इसी स्वार्थपूर्ण भ्रामक सोच के कारण उसने प्रकृति का मनचाहे रूप से दोहन और शोषण किया।

धुँए से भरा हुआ आकाश, झुलसती पृथ्वी, विशैली हवा, सिकुड़ते वन सम्प्रदा, दूषित नदियाँ जहाँ दिन-प्रतिदिन प्रकृति का दम घुटता जा रहा है और जीवन अपना वास्तविक अस्तित्व खोता जा रहा है। विनाश और विध्वंस जीवन की नियति नहीं है, जो कुछ हो रहा है, हमारे द्वारा जो कुछ किया जा रहा है, हम स्वंय इसके अपराधी है, जीवन का गला घोटने के लिए। भू-वैज्ञानिकों का अनुमान है कि पृथ्वी का अस्तित्व पाँच सौ अरब वर्ष है लेकिन तब तक क्या हम जीवन को जिंदा रहने देगे? अपने पर्यावरण की सुरक्षा कर हम अपने जीवन को सम्वृद्धिशाली बना सकते है, विनाश और विध्वंस की यह स्थिति हमारी सृष्टि है, जिसे हम सृजनशील प्रवृत्ति में भी परिवर्तित कर सकते है। हमें अपने जीवन का आनन्द लेते हुए जीना है, तो यह करना ही होगा।

पृथ्वी का अधिकांश भाग आज पारिस्थितिकी असंतुलन की भयावह स्थिति से गुजर रहा है या भयावह स्थिति में पहुँच गया है। जीवन प्रदायनी पृथ्वी अपनी उत्पत्ति के साथ प्राणतत्व के उद्‌भव और वर्तमान स्थिति तक इसका निरंतर उपभोग एवं उपयोग होता रहा है। मानव प्रकृति का अभिन्न अंग है जो अपने जीवन और अस्तित्व के लिए अपनी प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति हेतु प्रकृति पर निर्भर है।

प्रकृति के मूर्तस्वरुप के अन्तर्गत समस्त पृथ्वी, वनस्पतियाँ, जीव-जन्तु, जलस्रोत, सम्पूर्ण वायुमंडल एवं आकाश सभी का अपना एक निश्चित भाग है, और इनके बीच एक सन्तुलन चक्र विद्यमान जो एक सर्वमान्य नियम के अधीन होकर परस्पर एक-दूसरे से सम्बंधित रहकर एक स्वस्थ एवं स्वच्छ पर्यावरण का निर्माण करते है, इस समस्त जीवन चक्र के उचित नियंत्रण में मानव की केन्द्रीय एवं संभाव्य भूमिका है। लेकिन मानव अपनी स्वार्थपूर्ण प्रवृत्ति, विवेकहीन, लालची तथा उपभोगवादी मानसिकता से प्रेरित होकर पर्यावरण को गंभीर रूप से दूषित कर उसे विकृत कर दिया है। विकृति और प्रदूषित पर्यावरण आज विश्वपटल पर चिन्ता का विषय बन गया है।

वर्तमान में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या ने समस्त मानव के समक्ष उसके अस्तित्व के लिए एक भयावह संकट की स्थिति उत्पन्न कर दिया है, और यह स्थिति इतनी विकट हो गई है कि पर्यावरण प्रदूषण की समस्या आज सम्पूर्ण विश्व के लिए सर्वोपरि बन गया है। भौतिकतावादी युग में चिंतन का दृष्टकोण हमेशा से एकांगी रहा है, अपनी सुख-सुविधा के लिए हमेशा से प्रयत्न करने वाला मानव जिसे यह कदाचित् आभास नहीं था, कि इस भोग-विलास की कीमत इतनी मँहगी हो सकती है। अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण वह प्रकृति की समस्त व्यवस्थाओं को अनदेखा करता गया, स्थिति आज इतनी खराब हो गई है कि उसे अपनी अगली पीढ़ी के अस्तित्व पर ही संकट दिखाई देने लगा ऐसी स्थिति में पर्यावरण सुरक्षा के लिए प्रयत्नशील होने के सिवाय उसके पास कोई अन्य विकल्प नहीं बचा है।

पर्यावरण-संरक्षण एवं पर्यावरणीय नैतिकता सम्बधी मुद्दों पर आज जो बातें विश्वपटल पर व्यापक रूप से हो रही है, वह समस्त मानवता एवं सरकार के लिए एक आवश्यक पहलु है जिसपर सम्पूर्ण विश्व और मानव सभ्यता की सुरक्षा और उसका विकास आश्रित है। पर्यावरण प्रदूषण ने मानव के अस्तित्व एवं प्रकृति के स्वरूप पर ही संकट उत्पन्न कर दिया है। मानव ने अपनी भोगवादी अभिलाषा, एवं अतृप्त होने वाली महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर कुछ गलत निर्णय लिए परिणामस्वरुप मानव और प्रकृति के बीच एक असंतुलन व्यापत हो गया। अपने द्वारा किये गये कार्यों के कुप्रभावो, कुत्सित प्रयासों को रोकने तथा स्वंय और प्रकृति दोनों को सुरक्षित, उसे व्यवस्थित कर उसे अपनी पूर्व स्थिति में लाने हेतु अनेक योजनायें प्रारम्भ की गई है और साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए आज सम्पूर्ण मानव समाज एकत्र हुआ है और यह स्थिति इस बात को दर्शाता है कि मानव पर्यावरणीय नैतिकता सम्बन्धी भावों को पुनः जागृति करने के लिए चितिंत है।[1]

पर्यावरण प्रदूषण एक गंभीर समस्या है, इस विषय पर आज जिस प्रकार बातें हो रही है और मानव इसे लेकर आज जितना गंभीर है, ऐसी परिस्थिति हमें केवल इस समय दिखाई पड़ रही हैं, इससे पहले पर्यावरण जागरूकता सम्बन्धी प्रयास बहुत कम ही दृष्टिगत होते थे।

मानव पर्यावरण का एक एक अभिन्न अंग है, वह इससे स्वतंत्र नहीं बल्कि इसका एक अवयव है। वायु, जल, पृथ्वी, आकाश, वनस्पतियाँ, पशु-पक्षी, पेड़-पौधों, मानव इन सबसे मिलकर एक स्वस्थ पर्यावरण का निर्माण होता है और इन सबके बीच प्रकृति ने एक संतुलित व्यवस्था स्थापित किया है, जिसमें सबका अपना भाग है, ताकि पृथ्वी पर सबका अपना एक संतुलनमय जीवन चलता रहे। लेकिन जहाँ यह संतुलन समाप्त होता है वही से पर्यावरणीय संकट

एक ज्वलन्त विषय के रूप में उभरकर सामने आ जाता है, यह स्थिति कैसे उत्पन्न हुई है? इसका एकमात्र उत्तर मानव का प्रकृति के प्रति कतिपय अनैतिक आचरण, उसका प्रकृति के प्रति एकांगी दृष्टिकोण इस संकट का एकमात्र कारण हमें दिखाई देता है।

नीतिशास्त्र मानव जीवन में आदर्शों की स्थापना करता है साथ ही समाज और व्यक्ति दोनों को एक सही दिशा में अग्रसर होने के लिए नियमों की व्याख्या भी करता है, जिनका सैद्धान्तिक महत्व होने के साथ-साथ अपना व्यावहारिक प्रयोजन की स्पष्ट है।[2]

पर्यावरणीय समस्याओं को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि मानव के अस्तित्व पर जो संकट उत्पन्न हुआ है इसके समाधान हेतु व्यावहारिक नीतिशास्त्र की एक शाखा के रूप में पर्यावरणीय नैतिकता का विकास हुआ है।

व्यावहारिक नैतिकता के जिस आधुनिक युग में हम जी रहे है, जिसमें 'कुछ कहने' की अपेक्षा 'कुछ करना' अधिक महत्व रखता है। पर्यावरणीय नैतिकता पर्यावरणीय संकट के निवारण हेतु व्यावहारिक नीतिशास्त्र की एक शाखा के रूप में आवश्यक है। क्योंकि पर्यावरण असंतुलन के मूल कारणों का अनुसंधान किये बिना इसका समाधान नहीं सुझाया जा सकता है।

प्राय: दार्शनिक दृष्टिकोण को अपनाते हुए हमें प्रकृति और मानव के पारस्परिक सम्बन्धो का विश्लेषण करना होगा परिणामस्वरूप यह परिलक्षित होगा कि प्राचीनकाल में पर्यावरण संकट क्यों नहीं था, पारिस्थितिकी असंतुलन की बाते क्यों नहीं हो रही थी, वह स्थिति कौन सी है जिसके कारण मानव अस्तित्व के समक्ष यह स्थिति उत्पन्न हो गयी है। कि उसका अस्तित्व ही संकटग्रस्त हो गया है।

प्राचीनकाल में प्रकृति और मानव दोनों की बीच मैत्री सम्बन्ध था, धार्मिक एवं अध्यात्मिक भाव के कारण लोग प्रकृति की पूजा करते थे, उसे मातृत्व देवी कह कर संबोधित किया जाता रहा है जहाँ प्रकृति को समस्त जीवन का मूल आधार माना गया है और आज प्राय: हमें इसी भाव की कमी दिखाई देती है।

भारतीय संस्कृति हो चाहे पाश्चात्य संस्कृति दोनों में प्रकृति के अंधाधुन्ध दोहन उसके शोषण की बातों का समर्थन नहीं किया गया है। बल्कि समस्त जैविक सत्ताओं के प्रति सांमजस्यपूर्ण, सुसंगत सम्बन्ध की स्थापना का समर्थन किया गया है। पर्यावरण के प्रति सनातन संस्कृति सदैव मानवकेन्द्रित न होकर समग्रतावादी रही है, वेद और उपनिषद् में प्रकृति को श्रेष्ठ एवं उच्च स्थान प्राप्त है जहाँ मानव को अपने जीवन और अस्तित्व के लिए अनेक प्राकृतिक शक्तियों की आवश्यकता एवं अनिवार्यता को स्वीकार किया गया है।

मानव और समाज के विकास क्रम पर यदि हम दृष्टि डाले तो प्राचीन काल का मानव प्रकृति पर पूर्णरूप से आश्रित था, मानव और प्रकृति के बीच का सम्बन्ध सांमजस्यपूर्ण एवं समन्वयकारी था तब कोई संकट उत्पन्न नहीं हुआ परन्तु मानव जब से आर्थिक व्यक्ति बना वह विलासितापूर्ण जीवन जीने के लिए अग्रसर हुआ और इस सुविधाभोगी प्रवृत्ति के कारण वह अपनी मूलभूत आवश्यकता में अतिशय वृद्धि करता गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि वह प्रकृति का अत्याधिक शोषण करता चला गया और यहीं से पारिस्थिकीय असंतुलन का प्रारम्भ होता है और यही से जीवन और अस्तित्व के समक्ष संकट की स्थिति बनने लगी।

मानव प्रकृति को माँ कह कर संबोधित करता है जहाँ प्रकृति उसकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति उपहार स्वरुप स्वयं उसे भेट में देती है परन्तु जब से मानव ने अपनी बुद्धि का प्रयोग भौतिकतावादी विचारधारा से प्रेरित होकर किया तब से वह प्रकृति को अपनी दासी समझता है और प्रकृति का अत्याधिक शोषण कर वह विकास यात्रा पर निरन्तर अग्रसर होता जा रहा है।

चाहे भारतीय दर्शन हो या भारतीय संस्कृति यहाँ सदैव मानव और प्रकृति के बीच अद्वैत सम्बन्ध की बात होती रही है मानव प्रकृति का ही एक अंश है, इससे पृथक उसके अस्तित्व की कोई कल्पना सम्भव नहीं है तथा प्रकृति का अंश होने के कारण उसका यह कर्तव्य बन जाता है कि वह समस्त जीव, वनस्पति के साथ-साथ स्वयं के कल्याण की कामना हेतु उत्तम कार्य करें।

सृष्टि उत्पत्ति की यदि हम बात करे तो वैदिक कालीन सृष्टि अवधारणा यह थी कि मानव और प्रकृति के बीच एक समन्वयात्मक सम्बन्ध है और सृष्टि एक यज्ञीय पुरूष की रचना के रुप में है, जिसने अपने शरीर से पृथ्वी, वायु, जल, प्रकाश और अतंरिक्ष की रचना की है और इन तत्वों के साथ मानव का भी निर्माण किया, मानव अन्य तत्वों की भाँति हैं वह इनसे विशिष्ट और श्रेष्ठ नहीं इसीलिए उसे अपने कल्याण के साथ-साथ इन तत्वों के कल्यार्थ हेतु अपने समस्त कार्यों का सम्पादन करना चाहिए। यज्ञ कार्य के लिए वह वृक्षों से लकड़ी अवश्य प्राप्त करे परन्तु यह भी सोचता रहें कि इससे स्वर्ग व अन्तरिक्ष को कोई हानि न पुहँचे[3]।

उपनिषद् में प्रकृति और जीवों के बीच अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध का उल्लेख किया गया है। जहाँ सम्पूर्ण जगत के बीच एक तात्विक अभेद है जो परम सत्य के साक्षात्कार के लिए आध्यात्मिक मार्ग प्रसस्त कराते है, जो ज्ञानरूप, नित्यसत, विशुद्ध आनन्द स्वरूप है और यह मार्ग मानव के लिए हमेशा से अभीप्सित है

असतो मा सद्गम्य तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्भा अमृतं गमय[4]

वैदिक कालीन मानव प्रकृति के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करने हेतु उसे देव तुल्य समझ कर उसकी उपासना करता हैं द्यावा- पृथ्वी, अग्नि, पर्जन्य, ऊषा, मित्र, वरूण, सभी देवरूप में पूज्यनीय है जो हमारे समक्ष प्राकृतिक शक्ति के रूप मे अभिव्यक्त है।

सूर्य को विश्व की आत्मा कहा गया है-

सूर्य: आत्मा जगत: तस्थुष: च।[5]

पृथ्वी को माता, जल को माता के रूप में स्थान दिया गया है।

नमोमात्रे पृथिव्यै 'आपो अस्मान् मातर: शुन्धयन्तु'।[6]

वैदिक काल में ऋत् की अवधारणा ऋषियों की उस धारणा का पोषण करते है, जिनके द्वारा प्राकृतिक सत्ताओं में संतुलन और सामंजस्य स्थापित कराने के लिए उनकी आराधना हुआ करती थी प्रारम्भ से ही वृक्ष और वनस्पतियों का स्थान सदैव से उच्च रहा है। पंतजलि कृत महाभाष्य में पौधों को भोजन, ऊर्जा, वस्त्र, आश्रय, और औषधि का स्तोत माना गया है।

एक स्वस्थ समाज और स्वस्थ पर्यावरण के निर्माण हेतु मानव को अपना जीवन इस प्रकार व्यवस्थित करना होगा जहाँ समाज के सभी वर्ग के बीच आपसी सहमति और सांमजस्य की स्थापना हो सके साथ ही प्रकृति और उनके बीच पर्यावरणीय मैत्री सम्बंध भी सम्भव हो सके।

इस सम्बन्ध में विलियम 'रकेल्शॉस' कहते है कि- "प्रकृति सबको मुफ्त भोजन उपलब्ध कराती है, यदि हम अपनी भूख पर काबू रखें तो।"

पर्यावरण संकट की स्थिति को देखते हुए हमें भारतीय संस्कृति के आधारभूत जीवन मूल्यों, जीवनदशाओं को अपनाये जाने की नितान्त आवश्यकता है, क्योंकि यह संस्कृति केवल भारत की नहीं अपितु सम्पूर्ण मानवमात्र की है। वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए हमारे ऋषियों द्वारा सम्पूर्ण मानवता के समक्ष जो प्रयोग, भाव, ज्ञान, प्रतीक चेतना का विकास किया गया है उसे हमें स्वीकार करना होगा साथ ही अपने जीवन में उतार कर उसका अनुसारण अपने आचरण में करना होगा क्योंकि इसी में सम्पूर्ण मानवता का कल्याण निहीत है और इसके साथ ही समन्वयमूलक दृष्टि से विविधता में एकता की भावना भी इसी संस्कृति में देखने को मिलती है इस कारण समस्त सृष्टि एक ही चौतन्य आत्मत्व का विस्तार स्वरुप है प्राणिमात्र के कल्यार्थ वह इसी सत्ता का अन्वेषण करती है।[7]

इस आध्यात्मिक प्रवृत्ति से प्रेरित होकर यदि हम प्रकृति के साथ अपने सम्बन्ध बनायेगें तब प्रकृति के साथ हमारे सम्बन्ध कभी भी खराब नहीं हो सकते हमारे द्वारा कुछ अनुचित व्यवहार होने पर ही पर्यावरणीय संकट की उत्पत्ति होना स्वाभाविक है। यदि हम दृष्टि डाले तो ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक काल प्रगतिशील मानव का है, अतिप्राकृतिक, आध्यात्मिक और पारलौकिक सिद्धान्तों, सत्ताओं व मान्याताओं का उन्मुल कर जब वह वैज्ञानिक प्रगति को अपनाता है और प्रकृति का मनमाने तरीके से उसका अन्धाधुन्ध शोषण करना प्रारम्भ करता है तब स्थिति इतनी खराब हो जाती है कि स्वंय उसका ही पर्यावरण उसके जीवन और अस्तित्व के लिए संकटपूर्ण बन जाता है। अस्तित्व के समक्ष खड़े इस संकट की स्थिति ने मानवतावादियों एवं पर्यावरणविदों का ध्यान प्रकृति और मानव के पारस्परिक सम्बन्धों के पुनर्मूल्याकंन की तरफ ले गया जिस महत्व का उल्लेख प्राय: हमारे ऋषि मुनि किया करते थे। जहाँ प्रकृति और उसके तत्वों के प्रति विशेष भाव अपने आप दिखाई पड़ता था। साथ ही जनमानस में भी इन तत्वों के प्रति प्रेम और अनुराग की भावना व्याप्त थी। पृथ्वी (अग्नि) ही ऋग्वेद है, वायु (अन्तरिक्ष) ही यजुर्वेद है तथा सूर्य (घुलोक) ही सामवेद है प्राय: इस भाव से ओतप्रोत जनमानस की भावना थी।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि सभी मूर्तिमान पदार्थ ऋग्वेद (अग्नि) से उत्पन्न होते है। सब गतियाँ यजु: (वायु) से उत्पन्न होती है तथा सप्त तेज साम (सूर्य) से उत्पन्न होते है।8 मानव मन में आज इसी भाव की नितान्त आवश्यकता है।

इस प्रकार सृष्टि के सभी उपादान एक निश्चित प्राकृतिक व्यवस्था के अधीन संतुलन स्थापित करते हुए पर्यावरण का निर्माण करते है इसी क्रम में मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्यस्मृति में कहा गया है कि विधि पूर्वक अग्नि में छोड़ी हुई आहुति सूर्य को प्राप्त होती है, सूर्य से वृष्टि, वृष्टि से अन्न और अन्न से प्रजाएँ होती है।[9]

पर्यावरण असन्तुलन एवं पर्यावरण प्रदूषण की जिस तात्कालिन पारिस्थिति से सम्पूर्ण विश्व आक्रान्त है यह उसी अतृप्त मनुष्य के कर्मो की देन है जो प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की अदम्य लालसा रखता है।

प्राचीन धर्मशास्त्रों में जिन विधि-निषेध का उल्लेख मिलता है यदि उनका पालन मानव ने अपने आचरण में किया होता तो आज जिस समस्या का सामना उसे करना पड़ रहा है ऐसा नहीं होता क्योंकि प्राचीन काल के धर्मशास्त्रकार पर्यावरण के प्रति जागरूक एवं अत्यन्त संवदेनशील थे।

निष्कर्षत: यह कहा जाता है कि जहाँ नीतिशास्त्र मानव केन्द्रित मूल्यों की बात करता है, वही पर्यावरणीय नैतिकता सृष्टि केन्द्रित मूल्यों की बात करता है, जो एक विश्व-दृष्टि है, जिसमें सम्पूर्ण पृथ्वी के साथ, समग्र मानव और विश्व समाहित है। जहाँ मनुष्य के साथ अन्य प्राणी और उनके जीव मूल्यों को स्वीकार कर प्रत्येक के अस्तित्व एवं उसकी महत्ता को स्पष्ट रूप से व्याख्यायित किया जाता है, समस्त जीव पारिस्थितिकीय समुदाय के जीवित सदस्य के रूप में एक-दूसरे के साथ बंधे हुए है तथा एक दूसरे पर निर्भर भी है ऐसी भावना का अवबोध होते ही मानव जीवन में नैतिकता कर्तव्य का उद्भव होता है। तात्कालीन परिस्थिति को देखते हुए आज ऐसे नैतिक भावना की अत्यन्त ही आवश्यकता है क्योंकि इसके अभाव में जीवन न तो आगे की ओर बढ़ रहा है और न ही जीवन की सुरक्षा एवं संरक्षण सभंव है।

नार्बर्ट वीनर के अनुसार- "हमने अपने पर्यावरण को इस हद तक बदल दिया है कि अब इस नये वातावरण में रहने के लिए हमें खुद को ही बदलना होगा।[10] ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई इस पर मानव को सोचना होगा। जब हम जीवन मूल्यों की बात करते है तब ऐसा प्रतीत होता है कि मूल्य सभी जीवित प्राणियों में अन्तर्निहित है और इसका आधार गहन पारिस्थितिकी है जो वास्तव में आध्यात्मिक है।

'प्रकृति' और 'स्व' या 'आत्मा' एक है। प्रकृति और आत्मा को एक रूप देना ही आत्मा का विस्तार है अर्नेनीस ने प्रकृति और आत्मा की एकाकारता पर बल देते हुए कहा है कि आत्मा के विस्तार और गहराई में प्रकृति के सुरक्षित होने की चिन्ता का भी विस्तार हो जाता है, और जब ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है तब इसका अर्थ यह हुआ कि अपनी ही सुरक्षा करना है, मनुष्य जब सांस लेने में किसी प्रकार का नैतिक दबाव अनुभव नहीं करता तब वह स्वाभाविक रूप से साँस लेता है, उसी प्रकार आत्मविस्तार की अवस्था में जब हम अन्य प्राणियों को अपने में समाहित कर लेते है तो उनकी सुरक्षा के लिए किसी अन्य नैतिक उपदेश की आवश्यकता नहीं रह जाती है, और स्थिति ऐसी बन जाती है कि मानव बिना किसी नैतिक दबाव के प्रकृति की सुरक्षा करना अपना स्वाभाविक कर्तव्य समझता है यही अनुभव प्रत्येक व्यक्ति को करना है कि आत्मा और प्रकृति एक है तो स्वाभाविक रूप से हमारा व्यवहार कठोर पर्यावरणवादी नैतिकता का पालन कर सकता है।[11]

हमने अनेक प्रयास किये है आत्मसुख की प्राप्ति के लिए परन्तु प्रकृति के साथ अपने भावात्मक सम्बन्ध जोड़ने के प्रयास शायद ही कभी किये हो आज आवश्यकता इस बात की है कि हम प्रकृति के साथ अपने भाव भरे सम्बन्धों को समझें, साथ ही इसे अन्य तक पहुँचाये उनके साथ अपने मैत्री सम्बन्धों को समझाने का प्रयास करे। स्वयं इसका अनुपालन करते हुए दूसरों के द्वारा भी इसका पालन सम्भव हो सके ऐसी स्थिति का सृजन करे और यही मानस परिवर्तन पर्यावरणीय नैतिकता की समकालीन उपादेयता है।

संदर्भ-सूची:

1. सिन्हा, मेघा, पर्यावरणीय समस्या और समाधान, वैदना पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2001 पृ० 35।
2. दीक्षित, डॉ० राजीव, पर्यावरण दर्शन, निखिल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा, 2020 पृ० 216।
3. द्यामा अभिलेखी: अन्तरिक्षं या हिंसी: पृथित्या सम्भव-वृहदारण्यक
4. वृहदारण्यक उपनिषद् 1.3.27।
5. यजुर्वेद 36.24।
6. पंतजलि महाभाष्य, 4.1.64।
7. हिन्दुस्तान, लखनऊ 05 जून 2009 पृ०
8. मोहन नरेन्दर, भारतीय संस्कृति, प्रभाव प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003 पृ० 10-11
9. मोहन नरेन्दर, भारतीय संस्कृति, प्रभाव प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003 पृ० 9
10. ऐतरेय ब्राह्मण 5.32
11. मिश्र डॉ० हृदयनारायण, नीतिशास्त्र, के प्रमुख सिद्धान्त, शेखर प्रकाशन इलाहाबाद 2008, पृ० 396।

व्यक्तित्व और ईश्वर की समस्या

विपिन कुमार गुप्ता

शोध छात्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

धर्म-दर्शन में अत्यन्त विवादपूर्ण प्रश्न है कि ईश्वर व्यक्तित्वपूर्ण है अथवा व्यक्तित्वहीन है? सर्वप्रथम 'व्यक्तित्व' का क्या अर्थ है, यह स्पष्ट करना आवश्यक है। सामान्यतया व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के विशिष्ट गुणों से लिया जाता है। इसी प्रकार कभी-कभी व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के वाह्य रूप से भी समझा जाता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के मानसिक और शारीरिक गुणों का संगठन समझा जाता है। इस दृष्टि से ईश्वर को व्यक्तिपूर्ण नहीं कहा जा सकता है क्योंकि ईश्वर में मन और शरीर का समन्वय नहीं हुआ है। अतएव ईश्वर को साधारण मनोवैज्ञानिक अर्थों में व्यक्तित्वपूर्ण कहना अनुचित एवं भ्रामक है।

धर्मदार्शनिकों ने ईश्वर को आत्मचेतन सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित किया है तथा यह माना जाता है कि आत्म चेतना का रहना व्यक्तित्व का सूचक है। चेतन सत्ता होने के कारण ही मनुष्य को व्यक्तित्वपूर्ण माना जाता है। इसी प्रकार आत्मचेतन होने के कारण ईश्वर को भी व्यक्तित्व पूर्ण मान लिया जाता है। जे. एम.ई. मैक्टागार्ट व्यक्तित्व और आत्म चेतना को आवश्यक रूप से संबंधित माना है। व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं-

"In calling him (God) personal I mean to assert that he is self-conscious, that he has that awareness of his own existence which I have of my existence."

ध्यातव्य है कि आत्म चेतना को व्यक्तित्व का प्रमुख लक्षण माना जाता है परन्तु आत्म चेतना की ही व्यक्तित्व का पर्याय मान लेना उचित नही हैं। व्यक्तित्व के अन्य महत्वपूर्ण लक्षणों में संकल्प की स्वतंत्रता उल्लेखनीय है। ईश्वर पूर्णतया स्वतंत्र है तथा वह स्वेच्छापूर्वक कार्य करता है एवं निर्णय करता है। ईश्वर ने विश्व की रचना अपनी स्वतंत्रता के कारण ही की है। ईश्वर का व्यक्तित्व अनन्य है इसलिए ईश्वर के व्यक्तित्व में विशिष्ट लक्षण विद्यमान है। स्पष्टत: ईश्वर को व्यक्तित्वपूर्ण एक विशिष्ट अर्थ में ही कहा जाता है क्योंकि यदि उसे साधारण अर्थों में व्यक्तित्वपूर्ण माना जाय तब वह सामान्य व्यक्ति की तरह देश-काल सीमित हो जाएगा जबकि ईश्वर देश-कालातीत है। जहां तक मानवीय व्यक्तित्व और ईश्वर के व्यक्तित्व में संबंध का प्रश्न है, मानवीय व्यक्तित्व आत्म चेतन होते हुए भी आत्म-नियंत्रण से युक्त होता है। जबकि ईश्वर के व्यक्तित्व पर किसी का भी नियंत्रण नहीं होता है। जिस प्रकार ईश्वर संकल्प-स्वातंत्र्य से युक्त होता है। उसी प्रकार मानवीय व्यक्तित्व भी संकल्प की स्वतंत्रता से युक्त होता है। इस प्रकार मानवीय व्यक्तित्व और ईश्वरीय व्यक्तित्व में समानता देखी जा सकती है।

ईश्वरीय व्यक्तित्व एवं मानवीय व्यक्तित्व में कुछ समानता होते हुए अंतर भी है। दोनों के मध्य अंतर स्पष्ट करते हुए हम कह सकते हैं कि ईश्वर एक स्रष्टा है तथा ईश्वर ने विश्व की रचना की है जबकि मनुष्य सृष्टि का एक भाग है। ईश्वर नें विश्व के शुभ-अशुभ विषयों का निर्माण किया है। मनुष्य को स्रष्टा नहीं माना जा सकता है। इसी प्रकार मानवीय स्वरूप के विपरीत ईश्वर अनादि, अनन्त, शाश्वत् और नित्य है जबकि मनुष्य आदि-अंतयुक्त, सीमित और मरणशील है।

धर्मदार्शनिकों ने ईश्वर को असीमित, अपरिमित और पूर्ण सत्ता माना है। ईश्वर के व्यक्तित्व के विपरीत मानवीय व्यक्तित्व अपूर्ण एवं सीमित है। मनुष्य अपनी बुद्धि एवं कल्पना के द्वारा अपने समक्ष उपस्थित समस्याओं का समाधान करता है परंतु कभी-कभी उसे इन समस्याओं का समाधान करने में अक्षमता, असहायता, बाध्यता, विवशता और सीमा की अनुभूति होती है। जहां तक ईश्वर का प्रश्न है, पूर्ण सत्ता होने के कारण वह किसी भी प्रकार की बाध्यता और नियंत्रण से पूर्णतया मुक्त है। मनुष्य की भाँति ईश्वर मन और शरीर से युक्त सत्ता नहीं है।

ब्राइटमैन नें लिखा है-

"If there is a personal God, Controlling the whole Universe, it is obvious by childish to think of him as localised in any sort of body, youthful or aged."

उल्लेखनीय है कि ईश्वर और मनुष्य दोनों ही चेतन सत्ता है परन्तु दोनों की चेतना में भी अंतर है। ईश्वर की चेतना असीम और पूर्ण है जबकि मनुष्य की चेतना आंशिक और अपूर्ण है। मनुष्य जहां आत्मचेतन तत्व है वहीं ईश्वर परम चेतन या अनन्त चेतन सत्ता है। वैसे ईश्वर को धर्म का केन्द्रबिन्दु माना जाता है, इसलिए धार्मिक दृष्टि से ईश्वर को व्यक्तित्वपूर्ण माना जाता है। धर्मदार्शनिकों के अनुसार धार्मिक तत्वों जैसे ज्ञानात्मक, भावनात्मक और क्रियात्मक पहलुओं का आधार एक व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर ही हो सकता है। धर्म के अंतर्गत ईश्वर को उपास्य माना जाता है और मनुष्य उपासक है जो ईश्वर की उपासना करता है। इस प्रकार मनुष्य और ईश्वर के मध्य उपासक और उपास्य का संबंध होता है। ईश्वर को दयालु, कृपालु, करूणामय और क्षमाशील माना जाता है जो अपने भक्त की उपासना से प्रसन्न होकर उसे अपनी कृपा प्रदान करता है। इसलिए उपरोक्त धार्मिक अपेक्षाओं की पूर्ति हेतु ईश्वर का व्यक्तित्वपूर्ण होना एक धार्मिक आवश्यकता है अन्यथा मनुष्य को धार्मिक संतुष्टि नही प्राप्त हो सकती है। यही कारण है कि विश्व में प्रचलित अधिकांश धर्मों में ईश्वर को

व्यक्तित्वपूर्ण माना जाता है तथा ईश्वर की प्रार्थना को धर्म का अनिवार्य अंग माना जाता है। इस प्रकार भक्त और उपासना की भावनाएं तभी संतुष्ट हो सकती हैं जबकि ईश्वर व्यक्तित्वूर्ण हो तथा वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, शुभ, दयालु और कृपालु हो।

धार्मिक व्यक्ति धर्म के अन्तर्गत ईश्वर के व्यक्तित्व से परिचित होना चाहता है तथा ईश्वर के स्वरूप को जानने के प्रयास में ईश्वर के स्वरूप को जानने के प्रयास में ईश्वर के व्यक्तित्व का आरोपण करता है। गैलवे ईश्वर के व्यक्तित्व पर जोर देते हुए लिखते हैं-

"...If God be not personal... the whole development of the religious consciousness in man must be pronounced to be an illusion."

इस प्रकार स्पष्ट है कि अनेक धर्म दार्शनिकों ने ईश्वर को व्यक्तित्वपूर्ण मानते हुए ईश्वर पर अनेक गुणों का आरोपण किया है तथा ईश्वर को नित्य शाश्वत, अनादि, असीमित, पूर्ण, करूणामय, दयालु, कृपालु, क्षमाशील तथा शुभ माना है।

उपरोक्त मत के विपरीत धर्म दार्शनिकों का एक वर्ग ऐसा भी है जो कि ईश्वर को व्यक्तित्व रहित मानता है तथा व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर की धारणा का खंडन करता है। उनका तर्क है कि ईश्वर को व्यक्तित्वपूर्ण मानने से उसकी असीमितता बाधित होती है। मनुष्य एक ससीम सत्ता है, इसलिए उसे व्यक्तित्वपूर्ण मानने में कोई तार्किक कठिनाई नहीं है परन्तु ईश्वर के साथ यह सत्य नहीं है। व्यक्तित्व ससीमता का प्रतीक है अतएव ईश्वर पर व्यक्तित्व का आरोपण करने से वह ससीम हो जाता है। एक सीमित ईश्वर की धारणा ईश्वर के स्वरूप के साथ सुसंगत नही है। इस प्रकार व्यक्तित्व का आरोपण करके हम प्रकारान्तर से ईश्वर की सत्ता का खंडन करते हैं।

पुनः ईश्वर पर व्यक्तित्व के आरोपण का खंडन करते हुए यह कहा जाता है कि व्यक्तित्व आत्म और अनात्म में विरोध की भावना को प्रस्तावित करता है। लॉटजे के अनुसार व्यक्तित्व आत्म और अनात्म के विरोध पर आधारित हो ईश्वर के अंदर आत्म और अनात्म का विरोध समाविष्ट नहीं है क्योंकि ईश्वर समस्त विरोधों से परे है। ईश्वर समस्त वस्तुओं का आधार है, सभी वस्तुएं ईश्वर पर निर्भर हैं, ईश्वर किसी पर निर्भर नहीं है। वह निराधार, स्वतंत्र और निरपेक्ष है तथा व्यक्तित्व रहित है।

ईश्वर के व्यक्तित्व का खंडन करने वाले धर्म दार्शनिक जैन धर्म और बौद्ध धर्म का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि धर्म के लिए ईश्वर का व्यक्तित्वपूर्ण होना अनिवार्य नहीं है। अन्यथा ईश्वरविहीन धर्मों को धर्म की संज्ञा ही न दी जाती। रैशडल ने ईश्वर के व्यक्तित्व के विरूद्ध सबल आक्षेप किया है। ईश्वर के साथ व्यक्तित्व की कल्पना करना अन्याय है। व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर को असीम मानना तर्कपूर्ण नहीं है क्योंकि व्यक्तित्व असीमता का विरोधी है। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तर्कों के द्वारा न तो ईश्वर को व्यक्तित्वपूर्ण प्रमाणित किया जा सकता है। धर्मदार्शनिकों ने ईश्वर को सृष्टि कर्ता मानते हुए विश्व में व्याप्त व्यवस्था और सामंजस्य के आधार पर ईश्वर के व्यक्तित्व की कल्पना की है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि ईश्वर के व्यक्तित्व से संबंधित मान्यताएं भावना और श्रद्धा पर आधारित है। यदि हमारा मुख्य दृष्टिकोण मूल्यात्मक है तो हम ईश्वर को व्यक्तित्वयुक्त मानना चाहेंगे। भावना प्रधान व्यक्ति भी ईश्वर को व्यक्तित्वूर्ण मानेगा। इसी प्रकार तर्क प्रधान और ज्ञानी व्यक्ति ईश्वर को व्यक्तित्व रहित मानेगा। पूर्ण एवं निरपेक्ष ईश्वर में व्यक्तित्व का आरोपण नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि रूचि, प्रवृत्ति एवं परंपरा के अनुसार व्यक्ति ईश्वर की भिन्न-भिन्न रूपों में कल्पना करते हैं।

व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर की धारणा में अनेक आत्मविरोध और विसंगतियां दिखाते हुए आलोचक कहते हैं कि 'व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर अपरिमित और नित्य है'- यह आत्म विरोधी प्रकथन है। जो व्यक्तित्वपूर्ण है, वह परिमित और नित्य है तथा जो अपरिमित और नित्य है, वह निर्वैयक्तिक और निर्गुण है। यदि ईश्वर के अपरिमित व्यक्तित्व में सभी प्रक्रियाएं एक साथ निहित हैं तो 'प्रक्रिया' का अर्थ ही विकृत हो जाएगा और ईश्वर की अपरिमितता और अनन्तता भी बाधित होगी। प्रक्रिया शब्द से विकास क्रम और पूर्वापर संबंध द्योतित होता है। जहां तक ईश्वर के व्यक्तित्व का प्रश्न है उसमें विकास क्रम और पूर्वापर संबंध को स्वीकार नहीं किया जा सकता। विकास क्रम की अनन्तता के अभाव में ईश्वर का अपरिमित व्यक्तित्व खंडित हो जाएगा। इसी प्रकार यदि ईश्वर का अपरिमित व्यक्तित्व मनुष्य के परिमित व्यक्तित्व से भिन्न है तो दो स्वतंत्र व्यक्तित्व एक-दूसरे को सीमित कर देंगे। कुछ आलोचकों के अनुसार अपरिमित पद अभावात्मक है। गुण भाव में रहते हैं न कि अभाव में। इस प्रकार 'अपरिमितता' से निर्गुण ईश्वर की सिद्धि होती है। व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर की धारणा का पोषण करने वाले धर्म-दार्शनिकों का कथन है कि 'व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर अपरिमित और नित्य है' यह धार्मिक अभिकथन होने के कारण तर्कातीत है और तर्कीय आत्मविरोध से मुक्त है। अपरिमित ईश्वर भक्त की प्रगाढ़ धार्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है।

ईश्वर के व्यक्तित्व में अनेक नैतिक गुणों के आरोपण को भी आलोचक दोषपूर्ण मानते हैं और कहते हैं कि ईश्वर में नैतिक गुणों के आरोपण से 'मनुष्यत्वारोपणदोष' चला आता है। गुणों से ईश्वर सीमित हो जाता है और सीमितता से ईश्वर का ईश्वरत्व बाधित होता है। संभवतः इसी को दृष्टि में रखकर स्पिनोजा ने कहा था कि ज्यों-ज्यों ईश्वर में गुणों का आरोण होता जाता है, त्यों-त्यों वह सीमित होता जाता है। जो सगुण है, वह सीमित है और जो असीमित है, वह निर्गुण है। ईश्वर के नैतिक गुणों की आलोचना करते हुए कहा गया है कि यदि ईश्वर शुभ, प्रेम, दया, करूणा, और न्याय का एकायन है तो विश्व में अशुभ, घृणा, क्रूरता, निर्ममता और अनियमितता का दर्शन क्यों होता है? यदि ईश्वर पूर्ण है तो उसे ऐसे जीवों को उत्पन्न नहीं करना चाहिए था, जो विश्व में आकर अशुभ पैदा करते हैं और प्रेम, दया और न्याय पर चोट पहुंचाते हैं। यदि ईश्वर को ऐसा पूर्व ज्ञान नहीं था तो उसे पूर्ण और सर्वज्ञ नहीं कहा जा सकता। यदि ईश्वर ने जानबूझकर ऐसे जीवों को जन्म दिया तो उसे शुभ, दया, न्याय और प्रेंम का पारावार नहीं सिद्ध किया जा सकता। यदि घृणा, अशुभ, क्रूरता और अन्याय का की ईश्वरेत्तर कारण है तो ईश्वर सीमित हो जाएगा और इस प्रकार अनुपास्य सिद्ध होगा। पुनः समान से समान की उत्पत्ति होती है- "Like produces like"। इस आधार पर शुभ से शुभ की ही उत्पत्ति हो सकती है। यदि ईश्वर शुभ है तो वह विश्व में शुभ को ही जन्म दे सकता है परंतु विश्व में, अशुभ की कोई कमी नहीं है। इस अशुभ का कारण कौन है? शुभ ईश्वर अशुभ का कारण कैसे माना जा सकता है। यहीं से एक और समस्या का जन्म होता है और वह है 'अशुभ की समस्या'। जिसका अभी तक संतोषजनक एवं युक्तियुक्त समाधान मिल पाना शेष है।

संदर्भ सूची-

1. J.M.E. Mctaggart: Some Dogmas of Religion.
2. Brightman: A Philosophy of Religion.
3. George Galloway: Philosophy of Religion.
4. John Hick: Philosophy of Religion.
5. Hugo Meynell: God and the World.
6. S. Radhakrishnan: Eastern Religions and Western Thought
7. Alvin Plantiga: God and Other Minds
8. George Mavrodes: God and Verification

नक्सलवाद तथा मानवाधिकार: एक समीक्षा

रेणु बाला गुप्ता

व्याख्याता, दुर्गा देवी उच्च माध्यमिक विद्यालय, मालाखेड़ा, अलवर

1967 में नक्सलवाड़ी, फोंरीवाड़ी और फांसीदेवा थाना के अन्तर्गत चाय बागान के मजदूरों ने अत्यचार एवं शोषण के विरूद्ध आवाज उठाई जिसके चलते रक्तपात की घटना हुई ठीक उसी समय नक्सलवाड़ी नामक स्थान भारत में चर्चित होकर सामने आ गया। अब अत्याचार सहन कर रहे मजदूरों ने संघर्ष का विगुल फूँकना शुरू कर दिया तथा यहाँ के हर संघर्ष को नक्सली संघर्ष के रूप में देखा जाने लगा। वर्तमान काल में भी यहाँ के चाय बागानों में बिहार राज्य के निकटवर्ती स्थानों से, झारखण्ड राज्य के छोटानागपुर, संथालपरगना एवं मध्य प्रदेश के आदिवासी अंचलों से बड़ी तायदाद में आदिवासी मजदूर काम करने के लिए लाये जाते हैं, जो कि अंग्रेजी राज के समय से चला आ रहा है। इन मजदूरों का लम्बे समय से शोषण किया जाता रहा था। जिसका विस्फोट 1967 में हुआ। हालांकि इसके पूर्व भी यहाँ पर बेनामी जमीनों पर कब्जा के लिए भूमिहीन लोगों ने कठोर संघर्ष किया था। यहाँ के जमींदारों से बहुत सी जमीन बेदखल कर भूमिहीनों ने जबरन कब्जा कर लिया एवं एक तरह से जमीन कब्जा करना यहाँ का रिवाज बन गया। यहाँ एक से दो एकड़ जमीन जोतने वाले किसानों की संख्या लगभग 42% है तथा आज आधे से अधिक लोग भूमिहीन हैं। सिंचाई की समस्या का उचित प्रबंध भी इस क्षेत्र में नहीं है, हालाँकि इन समस्याओं से निजात पाना कोई बड़ी बात नहीं है। चूँकि यहाँ की पहाड़ी नदियों के जरिये सिंचाई की व्यवस्था की जा सकती है, परन्तु इस समस्या को सुलझाने के लिए किसी भी तरह का प्रयास सरकार द्वारा नहीं किया गया, जिसके परिणामस्वरूप यहाँ के किसानों, मजदूरों के मन में सरकार के प्रति सुलग रहे विरोधी भावों का विस्फोट होना स्वाभाविक था; जो 1967 में भारत के किसान विद्रोह के रूप में समाने आया। नक्सलवादी विचारधारा मार्क्सवाद, लेनिनवाद, माओत्सेतुंग के विचारों से मिलती-जुलती है एवं संचालित होती है। समाज से साम्यवाद की दहलीज पर पहुँचने के पहले यह दर्शन जनवादी राज की आवश्यकता को अपना आधार मानता है। यह एक सामाजिक-राजनीतिक दर्शन है। जिससे साम्राज्यवादी समाज की कल्पना की जा सकती है। भारत के संदर्भ में इसी दर्शन को नक्सलवाद का दर्शन कहा जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। इस ढंग से विद्रोह चूँकि, नक्सलवाड़ी से प्रारंभ हुए अत: इस वाद का नाम नक्सलवाद के नाम से जाना जाने लगा।

इन क्रांतिकारियों ने माओत्सेतुंग, हिटलर, मुसोलिनी इत्यादि क्रांतिकारियों की विचारधाराओं को उजागर कर अपनी क्रांति को आगे बढ़ाना प्रारंभ कर दिया। 'राजसत्ता का जन्म बन्दूक की नली से होता है, हम गरीबों का राज बनाकर रहेंगे।' ये नक्सली हथियारबंद संघर्ष को अपना मूल मंत्र मानते हैं। सी.पी.एम. के नेता चारू मजूमदार और कानू सान्याल के नेतृत्व में नक्सवाड़ी में किसानों ने सामंतवादी, जमींदारों और उनकी सत्ता के खिलाफ 1967 में सशस्त्र विद्रोह किया, जिसमें सामंती विचारधारा के कई जमींदार एवं उनके पाले हुये गुण्डे मौत की बली चढ़ गये, हालाँकि इस जंग में कई संघर्षशील किसान भी शहीद हो गये। इस किसान विद्रोह के आगोश में राजसत्ता की कील छिपी हुई थी जिसे चारू मजूमदार ने चिह्नित किया और उसे अपनी क्रांतिकारी लाइन दी। नक्सलवादी विचारधारा के लोग आज भी यह महसूस करते हैं कि वर्तमान सरकार सामंतवादी विचारधारा से ही संचालित होती है। अत: तत्कालीन राजसत्ता को हटाकर जनवादी सत्ता कायम करना ही पहला कार्य है। इसी को लक्ष्य मानकर नक्सवादी प्रवृत्तियाँ जारी है। नक्सलवाड़ी, फांसीदेवा और फोंरीवाड़ी के 290 वर्ग मील में फैले क्षेत्र के किसानों का संगठन बनाया गया। गाँव-गाँव में परम्परागत हथियारों से भरपूर दस्तों का गठन किया गया। करीब 18 हजार किसान नामजद होकर संगठन में शामिल हुये। संगठन के द्वारा जोतदारों की जमीन कब्जा की जाने लगी। उससे सम्बंधित कागजातों को नष्ट किया जाने लगा, जिसके द्वारा जमींदार उन नाजायज जमीन को सही बताया करते थे तथा किसानों को ऋण के भार से जकड़े रहते थे। इतना ही नहीं इन सामंती प्रवृत्ति के लोगों के घरों में घुसकर उनके हथियार, धन आदि छिने जाने लगे। इस तरह उन लागों ने अपनी समानान्तर सरकार ही कायम कर ली।

1967-1970 के दशक तक बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र केरल तमिलनाडु, पंजाब, गुजरात, त्रिपुरा एवं मणिपुर में कई घटनाएँ हुई जिनमें किसानों का संघर्ष स्पष्ट रूप से सामने आया। बिहार के मुसहरी, आंध्र प्रदेश के काकुलम, उत्तर प्रदेश के लखीमपुर आदि जगहों में नक्सलवाद का स्पष्ट विस्तार एवं विकास, एक मील का पत्थर साबित हुआ। 26 अक्टूबर, 1967 को चारू मजूमदार ने 'देशव्रती' पत्रिका के माध्यम से लेख के द्वारा तमाम काम्यूनिस्ट विचारधारा के क्रांतिकारियों का आह्वान किया कि संशोधनवाद और वर्ग सहयोग की राजनीति से संघर्ष करते हुए कृषि क्रांति का संचालन करते हुए एक राजनीतिक पार्टी का निर्माण करें जिसके प्रमुख उद्देश्य एवं दिशायें ये हैं-

1. यह संघर्ष उठ खड़ा हुआ है एकमात्र संशोधनवाद के खिलाफ संघर्ष करने के लिए।
2. किसानों को उस सशस्त्र हमले के लिए तैयार किया है, जिससे अपने हाथों से बनाये हथियार पर और उस हथियार के सहारे ही उन्होंने अग्नेय शस्त्र छीन लिये हैं।
3. संशोधनवाद के खिलाफ यह संघर्ष किया जा सकता है, माओ की विचारधारा के जरिये और आम किसानों द्वारा इस विचारधारा को ग्रहण कर और अमल में लाकर।

4. किसानों ने जमीन या फसल के लिए संघर्ष नहीं किया है, न ही राजसत्ता के लिए।
5. किसानों ने सशस्त्र संघर्ष किया, क्रांतिकारी राजतंत्र के सशस्त्र हमले के खिलाफ।

1969 में सी.पी.आई.एम. से अलग होकर चारू मजूमदार ने सी.पी.आई.(एम०एल०) बनाई और फिर कन्हाई चटर्जी भी उसी में शामिल हुये। सन् 1969 में बिहार में प्रथम नक्सली संगठन सी.पी.आई. (एम०एल०) का प्रादुर्भाव मुजफ्फरपुर जिले के मुसहरी प्रखंड में हुआ, जिसकी स्थापना कामरेड सत्यनारायण सिंह ने की थी। 1968 से 71 के बीच मुजफ्फरपुर, भोजपुर, सिंहभूम तथा मुंगेर जिलों में नक्सली आन्दोलन फैल चुका था। उचित भौगोलिक पृष्ठभूमि मिलने के कारण तत्कालीन दक्षिण बिहार के पलामू, चतरा, धनबाद, गिरीडिह, लोहरदगा, राँची, हजारीबाग, गुमला इत्यादि जिले इनके चपेट में आ गये। जहाँ तक नक्सलवाद की कानून और व्यवस्था विषय के पहलू का सम्बंध है, मेरा मानना है कि यह कार्य केवल सरकार का है, क्योंकि नागरिकों के जीवन और संपत्ति की रक्षा करने का अधिकार और कर्त्तव्य उसी का है और उसके लिए आवश्यक साधन भी उसके ही पास है। मैं मानता हूँ कि खासकर एक कमजोर शासन के संदर्भ में, अगर नक्सलवाद के विरूद्ध कोई निजी संगठन उभरकर सामने आ जायेगा तो यह गृह युद्ध के रूप में भी बदल सकता है। अत: इसके कारण एवं समाधान के लिए समस्याओं का निराकरण जरूरी है। सन् 1970 में भोजपुर के एकवारी गाँव में मास्टर जगदीश महतो और राम नरेश राम ने सी.पी.आई. (एम०एल०) की नींव डाली। संदेश एवं सहार प्रखंड सोन नदी से सटा हुआ है तथा इसके उस पार पटना जिला प्रारंभ होता है। अत: पटना जिले में नक्सलवाद का प्रादुर्भाव यहीं से हुआ।

सामाजिक असमानता के विरोध में संगठित नक्सलवाद अपनी हिंसक वारदातों को अंजाम देने के कारण अब राष्ट्रीय समस्या बन गया है। यह समझ से बाहर है। बहरहाल नेपाल की तराई से लेकर दक्षिणी प्रदेश आंध्र प्रदेश तक नक्सललियों का आतंक व्याप्त है। बिहार, झारखण्ड, छत्तीसगढ़ में तो इनका साम्राज्य है। नक्सली हिंसा के कारण करोड़ों की राष्ट्रीय सम्पत्ति का नुकसान हो रहा है। इन दिनों आम जनता के साथ-साथ अर्द्धसैनिक बल के जवान भी नक्सलयिों का शिकार हो रहे हैं। पूरे क्षेत्र में नक्सलावाद फैल गया है और सामानांतर सरकार की भूमिका निर्वाह कर रहा है। दु:खद स्थिति तो यह है कि सैकड़ों ग्रामीण इनकी मदद के लिये तैयार बैठे हैं और उनके आह्वान पर मर मिटने को तैयार हैं। पुलिस प्रशासन भी विवश है। नक्सलयिों से टक्कर लेने के लिये ग्रामीणों से उलझना मानवाधिकार आयोग की नजर में एक अपराध है। सरेआम ट्रेन अगवा कर लेना या किसी स्टेशन को अपने कब्जे में कर लेना, अतिसंवेदनशील जेल तोड़कर अपने सैकड़ों साथियों को मुक्त करा लेना, सैकड़ों जवानों की गस्ती दल पर हमला करना या फिर समाज को हिंसा के सहारे अपने अनुकूल चलाना, एक प्रकार से संप्रभुता को चुनौती है। इसे हल्के ढंग से लेना नि:संदेह देश की अस्मिता के लिये घातक है। नक्सलियों की बढ़ती वारदातों से राज्य सरकार अकेले नहीं निपट सकती। राज्य सरकार के पास वे साधन नहीं हैं, जिनसे नक्सली हमलों को प्रभावी ढंग से निपटा जा सके। आज स्थिति इतनी भयावह हो गई है कि नक्सली हमले में अर्द्धसैनिक बल के जवानों की आए दिन मौत हो रही है। नक्सली हिंसक वारदातों से जनजीवन अस्त-व्यस्त हो रहा है और प्रशासन कुछ भी कर पाने में विफल रही है।

आए दिन वारदातें, आखिर ये क्या हो रहा है? और यही ऊहापोह की स्थिति का नक्सली फायदा उठाकर बच निकल जाते हैं। झारखंड, बिहार और छतीसगढ़ में स्थिति बेकाबू है नक्सलियों से आम जनता बुरी तरह परेशान है। नक्सलियों से निपटने के लिये केन्द्र सरकार को कारगर कदम उठाने की जरूरत है। ताकि भटके युवक-युवतियाँ राष्ट्र की मुख्यधारा में फिर से वापस आ सकें। सरकार की जनकल्याणकारी नीतियों से भ्रष्टाचार भी नक्सलियों के लिए पोषक रहा है। उनके पास अत्याधुनिक हथियार, गोला-बारूद का पर्याप्त भंडार है जिसके सहारे वे कहीं भी, कभी भी बारूदी विस्फोट करने में सक्षम हैं। ग्रामीणों के वेश में शैतान रूपी नक्सलियों को पहचानना आसान नहीं है। उदाहरण के लिये बिहार में जमुई जिले में हजारों नक्सलियों ने रेलवे स्टेशन पर ताडंव किया और प्रशासन के सामने गाँव में चले गए। उस गाँव में केवल कुछ हजार लोग रहते हैं। ऐसे में यही माना जाना चाहिए कि सभी ग्रामीण या तो नक्सल हैं या उसके समर्थक, पर सरकार सभी के साथ सख्ती तो नहीं कर सकती। क्योंकि इनके वोट बैंक भी तो वही हैं और वह अगर कार्रवाई करती तो मानवाधिकार पर भी तो प्रश्न चिन्ह लगता।

वस्तुत: नक्सलवाद एक बहुत बड़ी राष्ट्रीय चुनौती के रूप में उभरता जा रहा है, जहाँ इसका समाधान करना असंभव नहीं तो कठिन जरूर है। भ्रष्टाचार, गरीबी और अन्याय के मारे भटक रहे बेरोजगार युवक-युवतियों को इनके चंगुल से बचाना समय की माँग है। समाज की मुख्यधारा में लाने के लिये सख्ती के साथ-साथ कल्याणकारी योजनाएँ लागू करने की जरूरत है। विदेशों से मिल रही सहायता से नक्सलियों का जंजाल पूरे देश में फैलता जा रहा है और उसमें गरीब-बेबस युवक-युवतियाँ आसानी से फंस रहे हैं। वक्त की नजाकत है कि समाज के गरीब वर्ग के युवक-युवतियों को नक्सलवादी चंगुल से बचाया जाए। रोजगार सृजन कर, भ्रष्टाचार के मारे अन्याय को झेल रहे इन ग्रामीणों को मुख्यधारा में शामिल करना सरकार की प्राथमिकता होनी चाहिए। विदेशी सहायता पर चलने वाले शीर्ष नक्सलियों को कड़ी सजा देने की कोशिश होनी चाहिए। न्याय की विलम्बता से कट्टर नक्सली अपने को सुरक्षित निकालने में सफल होते रहे हैं इसके लिये भी अलग त्वरित न्याय प्रदान करने की जरूरत है। जहाँ तक मानवाधिकार का सवाल है तो मानव सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ कीर्ति समझा जाता है। इसलिये मनुष्यों के समुचीत विकास एवं उत्थान के लिये यह आवश्यक है कि उसे जन्म के उपरांत ही कुछ-मूलभूत अधिकार स्वत: ही प्राप्त हो जाए और यह समाज तथा सरकार का पुनित कर्त्तव्य या उत्तरदायित्व होता कि वह प्रत्येक व्यक्ति को समाज में सम्मान और सुरक्षा के साथ-साथ जीवन व्यतीत करने के लिये सभी साधन और अवसर उपलब्ध कराये सामान्य अर्थों में मानवाधिकार से तात्पर्य होता है कि मानव चाहे वह किसी भी लिंग, वर्ग, जाति का हो। किसी देश, प्रदेश या क्षेत्र में रहता है। अथवा किसी भी धर्म, सम्प्रदाय या मत का मानने वाला हो, गरीब हो या अमीर सभी को अपने समुचित विकास, संरक्षण और सम्मानजनक जीवन जीने का अधिकार जन्म के साथ ही मौलिक रूप से प्राप्त हो जाता है। भारत के संविधान में सभी देशवासियों को मौलिक अधिकारों को बिना किसी भेद-भाव के प्रदान किये जाने का प्रावधान भी इसी उद्देश्य से किया गया है। वास्तव में हमारे समाज में ऐसे समाज की परिकल्पना की गई है; जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय तथा प्रतिष्ठा और अवसर की समानता पर आधारित है। इसलिये इसमें लोकतंत्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता के लिये प्रतिष्ठता को भी रेखांकित किया गया है। स्वतंत्रता और समानता ही वास्तविक अर्थों में हामरे संविधान की मूल आत्मा

है जिन्हें मौलिक अधिकारों के रूप में विशेष रूप से संविधान में स्थान दिया गया है। मौलिक अधिकारों के वही तत्व मानव अधिकारों के श्रेणी में आते हैं जिनके अतिक्रमण पर कोई भी नागरिक इनके रक्षा के लिए न्यायपालिका का दरवाजा खटखटा सकता है।

मानवाधिकार के सम्बन्ध में यदि अपने भारतीय संस्कृति के अतीत को पलट कर देखें तो पता चलता है कि पुरातन समय में भी हमारे यहाँ मानवाधिकारों के संरक्षण एवं सम्वर्द्धन के लिए पर्याप्त ध्यान दिया गया है। '' वसुधैव कुटुम्बकम'' का सार्वभौमिक सिद्धांत ही हमारी भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र रहा है। जिसमें न केवल अपने देश के लोग बल्कि संपूर्ण संसार के सभी प्राणियों को एक ही परिवार का सदस्य माना गया है। हमारे वेदों, शास्त्रों, उपनिषद्ों, नीति ग्रंथों में अनेकानेक स्थानों पर संसार के सभी प्रणालियों में समानता के सिद्धांत अपनाने संबंधी असंख्य दृष्टांत लिखते हैं। हमारे पौराणिक ग्रंथ यह प्रमाणित करते हैं कि वैदिक काल में हमारे यहाँ स्त्रियों एवं पुरूषों को समान अधिकार प्राप्त रहे हैं। भारतीय संस्कृति में शासक को प्रजा के प्रति जबावदेह बनाया गया है तथा प्रजा का प्रत्येक कष्ट दूर करना राजा का परम कर्त्तव्य निर्धारित किया गया है। निर्धारित नियमों और कानूनों के समक्ष समानता की अवधारणा भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र रहा है। हमारे धर्म ग्रंथों में ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं जिससे पूरी तरह यह सिद्ध होता है कि कि मानवाधिकार की परिकल्पना और व्यवहारिक जीवन में उसका समावेश भारतीय संस्कृति का आधारभूत गुण रहा है।

दुनिया के अन्य देशों में भी मानवधिकार संरक्षण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रही है। मानवधिकार की संकल्पना विभिन्न देशों में विभिन्न नामों से प्रचलित रही है। उदाहरण के लिए इसे इंगलैंड में मैग्नाकार्टा (डंहदंबंतजं 1215) फ्रांस में मानवाधिकार घोषणा पत्र, तथा अमेरिका में ॅपसस वि त्पहीजे 1791 में के नाम से जाना जाता है। इसी परिप्रेक्ष्य में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा संपूर्ण विश्व के प्रत्येक मानव के लिए मानवाधिकार घोषणा पत्र नागरिकों को मूलभूत अधिकार प्रदान करने के उद्देश्य से जारी किया गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 10 दिसम्बर, 1948 को जारी मानवाधिकार घोषणा पत्र में सभी देशों के प्रत्येक व्यक्ति को कम-से-कम 30 अधिकारों को प्रदान करने की घोषणा की गई जिन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया गया है-

1. आर्थिक अधिकार:- जिनके अन्तर्गत सभी व्यक्तियों को भोजन, वस्त्र, मकान, रोजगार और सामान्य जीवन स्तर सुनिश्चत करना है। इन सभी अधिकारों को सभी नागरिकों को उपलब्ध कराना संबंधित देशों के सरकारों का मूलभूत दायित्व बताया गया है।
2. राजनीतिक अधिकार:- दूसरी श्रेणी में राजनीतिक अधिकारों को सम्मिलित किया गया जिनके अन्तर्गत कानून के समक्ष सभी को बराबर माना गया है। इस अधिकार के अन्तर्गत लोगों को अपना विचार व्यक्त करने का अधिकार, चुनाव और शासन में भागीदारी का अधिकार तथा संगठन बनाकर शांतिपूर्ण सभा करने की स्वतंत्रता दी गई है।
3. सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार:- तीसरी श्रेणी के अन्तर्गत सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों को रखा गया जिसके माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति को शैक्षिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने की आजादी दी गयी है।

भारत में भी इसी आधार पर सभी देशवासियों को सहज और प्राकृतिक रूप से प्राप्त होने वाले इन सभी अधिकारों को उपलब्ध कराने के लिए व्यापक प्रयास किये गये। भारत के नागरिकों को संविधान के भाग-3 में प्राप्त मूल अधिकार भी मानवाधिकारों के उद्देश्य से अन्तर्निहित किए गये हैं। कहा जाता है। इन अधिकारों के अतिरिक्त संविधान के भाग-4 में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों का उल्लेख किया गया है। जिसमें निर्देशों तथा अनुदेशों की लम्बी सूची शामिल की गई है। जिनके अनुसरण किये जाने की अपेक्षा केन्द्र तथा राज्य सरकारों से की जाती है। संविधान के ये दोनों भाग संविधान की अंतरात्मा हैं। वास्तव में मानव होने के नाते प्रत्येक नागरिक को भोजन, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा सामान्य नागरिक सुविधाओं एवं सुरक्षा युक्त जीवन जीने का हक है। हमारा यह हक कोई छीन न सके इसका उत्तरदायित्व सरकार का है। वैसे अपने अधिकारों की रक्षा के लिए लोग न्यायालय की शरण ले सकते हैं। भारत में न्यायपालिका द्वारा मानवधिकार की संरक्षण की दिशा में अपने उत्तरदायित्व का निर्वहण कई महत्वपूर्ण फैसले प्रदान करके किया गया है, लेकिन यह सत्य है कि सामान्यत: पीड़ित व्यक्ति को न्यायपालिका से न्याय मिलने में काफी समय लग जाता है तथा सभी व्यक्ति न्यायालय की शरण लेने में समर्थ भी नहीं होते। इसी कटु सत्य को ध्यान में रखते हुए मानवाधिकार हनन से संबंधित मामलों को त्वरित गति से विस्तारित करने के उद्देश्य से 1993 में भारत में मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम बनाया गया, जिसमें मानवाधिकारों की संरक्षण के लिए राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग तथा राज्य मानवाधिकार आयोग के अतिरिक्त जिला मानवाधिकार आयोग के गठन की व्यवस्था की गई है। इस अधिनियम में की गई व्यवस्थाओं के अंतर्गत देश में अक्टूबर, 1993 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग गठित किया गया और विभिन्न राज्यों में राज्य मानवधिकार आयोग का गठन कर इस व्यवस्था को अधिक प्रभावशाली बनाने का प्रयास किया जाता रहा है।

मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 के अन्तर्गत बनाये गये प्रावधानों के अनुसार राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन केन्द्र सरकार करेगा। इस आयोग में निम्नलिखित सदस्य होंगे-

(क) अध्यक्ष या सभापति जो उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश रहा हो,

(ख) एक सदस्य जो उच्चतम न्यायालय का न्यायधीश है, या रहा हो,

(ग) एक सदस्य उच्चन्यायालय का मुख्य न्यायाधीश रहा हो,

(घ) दो सदस्यों की नियुक्ति ऐसे व्यक्तियों में से की जायेगी जिन्हें मानवाधिकार का ज्ञान व्यवहारिक हो,

(ड़) इस अधिनियम की धारा 12 कृत्यों के निष्पादन हेतु निम्नलिखित व्यक्तियों को भी आयोग का सदस्य बनाया जायेगा-

(i) राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग का अध्यक्ष,

(ii) राष्ट्रीय अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के आयोगों का अध्यक्ष,

(iii) राष्ट्रीय महिला आयोग का अध्यक्ष इत्यादि।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का एक महासचिव होगा जो आयोग का मुख्य कार्यकारी अधिकारी होगा। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का मुख्यालय दिल्ली में होगा। इस आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जायेगी। अध्यक्ष का कार्यकाल 5 वर्ष या 70 वर्ष आयु प्राप्त करने तक (जो भी

पहले होगा)उसे पांच वर्षो की दूसरी अवधि हेतु पुन: नियुक्त किया जा सकेगा। आयोग का अध्यक्ष या सदस्या अपने कार्यकाल के समापन के बाद केन्द्र या राज्य प्रशासन द्वारा किसी पद पर नियोजन हेतु अयोग्य होगा। अध्यक्ष या सदस्य अपने पद से हटाया भी जा सकता है। सिद्ध दुर्व्यवहार या अक्षमता के आधार पर राष्ट्रपति उसे उसके पद से हटा सकता है लेकिन हटाने से पूर्व उच्चतम न्यायालय की जांच रिपोर्ट अपेक्षित होगा। निम्न आधाारों पर अध्यक्ष या सदस्य को हटाया जा सकेगा जैसे–अपने पद की अवधि में अपने कर्त्तव्यों के अतिरिक्त किसी रोजगार करने पर, मानसिकता या शारीरिक अयोग्यता के कारण कार्य करने में अयोग्य होने पर, किसी सक्षम न्यायालय द्वारा अस्वस्थ चरित्र का घोषित होने पर तथा किसी अपराध में सिद्ध दोष या मुजरिम होने तथा जेल जाने के कारण, जो राष्ट्रपति के मत में अनैतिक हो।

भारत में मानवाधिकार आयोग को न्यायालय का दर्जा दिया गया है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के जांच का क्षेत्र काफी विस्तृत रखा गया है। आयोग द्वारा स्वयं पहल करके अथवा किसी पीड़ित या अन्य व्यक्ति की याचिका पर जांच की जाती है। इसके अतिरिक्त मानवाधिकार के उल्लंघन के मामलों में लोक सेवकों की लापरवाही में मानवाधिकार हस्तक्षेप कर सकता है। पुलिस बलों द्वारा किये गये अत्याचार, पुलिस हिरासत में मौत, बलात्कार, पर्यावरण संबंधी मुद्दे बाल एवं बंधुआ मजदूरी, क्रुर अमानवीय तथा असम्मानजनक बर्ताव की जांच को मानवाधिकार आयोग प्राथमिकता देती है। किसी भी प्रकार के मूल अधिकार का हनन और इससे जुड़े मुद्दों पर भी आयोग विशेष रूप से जाँच करने को प्राथमिकता देता है। इसके अतिरिक्त महिलाओं, बच्चों, विकलांगों तथा अनुसूचित जाति और जनजाति अथवा समाज के कमजोर वर्गो के अत्याचार संबंधी मामलों को भी मानवाधिकार आयोग द्वारा विशेष महत्व दिया जाता है।

इस प्रकार मानवाधिकार आयोग का मुख्य उद्देश्य देश के सभी नागरिकों को मूलभूत अधिकारों की रक्षा करना तथा मानवाधिकार का उल्लंघन करने वाले को समुचित दंड दिलाकर भविष्य में इस प्रकार के कुकृत्यों के पुनरावृत्ति को रोकना है।

संदर्भ स्रोत:

1. समरेश, ''नक्सलवादी का किसान आंदोलन'' जनमत, किसान अंक, फरवरी 86
2. नवेन्दु श्रीकांत, बिहार सफर नक्सलवाद का, पाटलिपुत्र टाइम्स, 8 दिसम्बर 85
3. प्रकाश लुईस, जनशक्ति मध्य बिहार में नक्सवाली आन्दोलन
4. अशोक कुमार मंडल, बिहार में वामपंथी आन्दोलन का इतिहास 1939–1960
5. Kalyan Mukherjee, Rajendra Singh Yadav, Naxalism in the plains of Bihar.
6. Dr. Ajay Kr. Singh,Naxalism in Bihar.
7. ''देशव्रती'' 4 दिसम्बर, 1969
8. आमने–सामने, श्री जयप्रकाश नारायण
9. आमने–सामने जयप्रकाश नारायण, पृ०–7
10. व्हीन ऑफ हिस्ट्री (इजिहास चक्र) डॉ० राममनोहर लोहिया
11. जातीय सेनाएँ–विकास कुमार झा, माया मई, 84
12. विशेष शाखा से प्राप्त जानकारी के अनुसार
13. हिन्दुस्तान–प्रेमचन्द्र कुमार मिश्रा– 10 सितम्बर– 2001
14. प्रभात खबर, बिहार विशेषांक, 7 अप्रैल, शनिवार, 2001
15. हिन्दुस्तान, पटना, 22 जनवरी 1988
16. अजीत कुमार, बिहार में नक्सलवादी आन्दोलन का इतिहास।

अथर्ववेद में वर्णित दैवी चिकित्सा

डॉ० उपेन्द्र पंडित

एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत विभाग) एम०एच०एम० कॉलेज, सोनवर्षा, सहरसा, बिहार

वैदिक साहित्य भारतीय संस्कृति की एक प्रामाण्य अमूल्य निधि है। लोक-कल्याण के क्षेत्र में वह जितना व्यापक है, उतना ही व्यवहारिक भी है। जन-कल्याण के लिए इसमें अत्यंत गंभीर चिंतन निहित है। वेदों में प्रचुर मन्त्र-भंडार हैं। जो अभी तक विशेषज्ञों द्वारा उपेक्षित है। इन तथ्यों के भंडार को जनसामान्य के समक्ष प्रस्तुत करना अत्यंत आवश्यक है। भारतीय परंपरा के प्राचीनतम ग्रंथ के रूप में वेदों की महिमा सर्वदा महिमामंडित होती रही हैद्य सायणाचार्य के अनुसार "इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोर्लोकिकमुपायं यो ग्रंथा वेदयति सः वेदः" अर्थात् अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति तथा अनिष्ट के निवारण के लिए विभिन्न अलौकिक विषयों का ज्ञान वेद से ही प्राप्त होता है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद के रूप में प्राचीन संस्थाओं को चार वर्गों में विभाजित किया गया है। लौकिक सामग्री का प्राचुर्य होने के कारण अथर्ववेद अन्य वैदिक संहिता में अन्यतम है। आयुर्वेदिक चिकित्सा की दृष्टि से अथर्ववेद का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। अथर्ववेद में आयुर्वेद के प्रायः सभी अंगों और उपांगोका विस्तृत वर्णन मिलता है। चिकित्सा संबंधित विषय अथर्ववेद में प्राचुर्यता से विद्यमान है। अथर्ववेद में चार प्रकार की विशिष्ट चिकित्सा पद्धतियों का वर्णन मिलता है।[२] यह चार चिकित्सा पद्धतियां हैं- आथर्वणी चिकित्सा, आङ्गिरसी चिकित्सा, देवी चिकित्सा तथा मनुष्यजा चिकित्सा।

देवी चिकित्सा का तात्पर्य एवं परिचय-

'आप' अर्थात् जल, तेज, वायु इत्यादि के द्वारा जो चिकित्सा की जाती है, वह देवी चिकित्सा के अंतर्गत आती है। जल चिकित्सा, सूर्यकिरण चिकित्सा, वायु चिकित्सा, विद्युत चिकित्सा आदि सब दैवी चिकित्सा के प्रकार है। सूर्य, चंद्र, वायु आदि के साक्षात् संबंध से यह चिकित्सा होती है और इस प्रकार के चिकित्सा से आश्चर्यकारक गुण प्राप्त होते हैं। इसलिए इसकी उपयोगिता अधिक है। इसके अतिरिक्त देव यज्ञ अर्थात् हवन आदि द्वारा जो चिकित्सा होती है, उसका भी समावेश इसमें होता है।

पृथ्वी आदि पंच तत्वों को देव कहते हैं। सूर्य, चंद्र आदि भी वैदिक देव हैं, अतः मृद्-चिकित्सा (मिट्टी से चिकित्सा) सूर्य चिकित्सा (सूर्य किरणों से चिकित्सा) जल चिकित्सा आदि चिकित्सायें दैवी चिकित्सा के अंतर्गत आती हैं। आधुनिक विज्ञान के अनुसार इसे प्राकृतिक चिकित्सा या Naturopathy कहते हैं।

संक्षेप में देवी चिकित्सा वर्णन

सूर्य चिकित्सा- वैदिक वांग्मय के आदि ग्रंथ ऋग्वेद के चिकित्सा विज्ञान विषयक मंत्रों का अध्ययन किया जाए तो ऐसे अनेकों मंत्र प्राप्त होते हैं, जिससे चिकित्सा विज्ञान की वर्तमान क्षेत्र की परिधि और अधिक विस्तृत हो सकती हैद्य सूर्य किरणों से चिकित्सा के विषय में ऋग्वेद में उल्लेख प्राप्त होता है कि 'उदय होते हुए सूर्य से जो अवरक्त (हल्की लाल) किरणें निकलती हैं, उन किरणों में जीवनी शक्ति होती है। इन किरणों में रोगों को नष्ट करने की क्षमता होती है।[३] अथर्ववेद में एक मंत्र में वर्णन है श्उदय होता हुआ सूर्य हृदय रोग और रक्त हीनता दूर करता है।[४] वहीं एक मंत्र में वर्णित है श्उदय होते हुए सूर्य की किरणें अंगों की पीड़ा नष्ट करती है।[५]

जल चिकित्सा- 'जल' समस्त प्राणी जीवन का आधार है। समस्त संसार में प्राणी मात्र के द्वारा जो जल प्राण के रूप में धारण किया जाता है, वह जल सभी के लिए उपयोगी होने के कारण जीवन के परम तृप्ति दाता के रूप में जाना जाता है। अथर्ववेद में जल से चिकित्सा के विषय में अनेकों मंत्र प्राप्त होते हैं। जैसे एक मंत्र में वर्णित है आंख, पीठ, एडी, पांव आदि अंगों की पीड़ा भी जल से दूर होती है। जल वैद्य से भी उत्तम वैद्य और औषधि से भी उत्तम औषधि है।[६] जल चिकित्सा अत्यंत प्रभावकारी है।

जल की दिव्यता का आशय यह है कि वृष्टि से प्राप्त होने वाला और प्रवाहों में बहने वाला जल सब मनुष्यों को सुख और शांति दे और उस जल से हृष्ट एवं पुष्ट हुए मानव उत्तम पुरुषार्थ के द्वार उन्नत जीवन को प्राप्त करें।[७]

मृद् चिकित्सा- प्राकृतिक पदार्थों में मिट्टी का भी चिकित्सा की दृष्टि से महत्व है। अथववेद में मिट्टी को रोग नाशक बताया गया है। इसका मरहम की तरह लेपन भी किया जाता है और यह घाव को भी ठीक करती है।[८]

वायु चिकित्सा- मानव जीवन का आधार प्राणवायु है। यदि प्राणशक्ति का संरक्षण, पोषण और संवर्धन किया जाए, तो शरीर को व्याधियों से मुक्त किया जा सकता है। प्राणशक्ति श्वास के द्वारा वायु से ऑक्सीजन ग्रहण करती है और फेफड़ों में पहुंचा कर समस्त कोशिकाओं में शुद्ध वायु का संचरण करके पुष्ट करती है। यह प्राण शक्ति निः श्वास के द्वारा फेफड़ों में व्याप्त दूषित तत्व का बाहर निष्कासन करती है। प्राण को हि मातरिश्वा और प्राण वायु कहा गया है।[९] अथर्ववेद के एक मंत्र में वर्णित किया गया है कि प्राण अर्थात वायु में जो जीवनी शक्ति है वह हमें दीर्घायु प्रदान करें।[१०]

इस प्रकार से विविध प्राकृतिक उपादानों से चिकित्सा को ही 'दैवी' चिकित्सा कहा जाता है, इन उपादानों सम्पन्न चिकित्सा पद्धति अत्यंत परिणामकारी है।

संदर्भ-

1. तैत्तिरीय संहिता भाष्य भूमिका (सायणाचार्य कृत)
2. आथर्वणीरांगिरसीर्दैवीमनुष्यजा उत। औषधयः प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि।। अथर्ववेद शौनकीय 11.4.16
3. उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन उत्तरां दिवम्। हृदरोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाराय।। ऋग्वेद-1.50.11
4. अनु सुर्यमुदयताम हृद्योतो हरिमा च ते। अथर्ववेद-1.22.1
5. उद्यन् आदित्य रश्मिधि.....अंगभेद मशी तमः। अथर्ववेद- 9.8.22
6. यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पार्ष्णो प्रपदोश्च यत्। आपस्तत सर्वं निष्करण भिषजां सुभिषत्तमा।। अथर्ववेद - 6.24.2
7. सस्त्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्त्रुषीः। वरेण्यक्रतुरहमपो दैवी रूप ह्वये।। अथर्ववेद- 6.23.1
8. अरुस्त्राणमिदं महतपृथिव्याअध्युटभृतम्। अथर्ववेद- 2.3.5
9. अथर्ववेद- 11.4.15
10. अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे अथर्ववेद- 11.4.09

पॉपुलर कल्चर का बढ़ता दायराः भारतीय समाज में मीडिया और सोशलमीडिया से सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों में आ रहे परिवर्तन का अध्ययन

डॉ० बिभा कुमारी

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, वी एस जे महाविद्यालय, राजनगर (ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा)

आज समूचा विश्व तीव्र परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है, जिस ग्लोबल ग्राम में आज का व्यक्ति खड़ा है, वहाँ पलक झपकते परिदृश्य बदल जा रहा है। इसी तेजी से बदलते परिदृश्य में भारतीय परिदृश्य भी तीव्र गति से परिवर्तित हो रहा है। 'सर्वधर्म समन्वय' का भाव भारतीय संस्कृति की पहचान रही है। भारतीय साहित्य मानव मात्र के कल्याण को सदैव चित्रित करता आया है। इसका व्यापक परिप्रेक्ष्य और इसकी उदात्तता इसे विश्व-साहित्य में श्रेष्ठ स्थान दिलवाती है। भामह ने साहित्य की परिभाषा देते हुए कहा है-

"शब्दार्थौ सहितौ काव्यम"

भामह ने जब साहित्य की यह परिभाषा दी थी, शब्द और अर्थ के सहित भाव पर बल दिया था। भामह ने शब्द और अर्थ का सहित भाव भारतीय समाज और संस्कृति से ही लिया था। समाज और संस्कृति में साथ रहने और साथ निभाने की भावना इतनी सुदृढ़ थी की वह साहित्य की परिभाषा में भी आ गई। मानव-मात्र के हित को सर्वोपरि मानना भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। "संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र स्वरूप का नाम है, जो उस समाज के सोचने, विचारने, कार्य करने के स्वरूप में अंतर्निहित होता है।"[1] आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रथम कालखंड भारतेन्दु युग से ही साहित्य, संस्कृति और पत्रकारिता का समन्वय दिखाई देता है। इनके समन्वय से ब्रिटिश शासन के 'फूट डालो और शासन करो' की नीति का डटकर मुकाबला किया गया। यह नवजागरण का दौर था जहाँ एक ओर आधुनिकता, वैज्ञानिकता और तकनीकी से जुड़ना था तो वहीं दूसरी ओर अपनी जड़ों से जुड़कर रहना था। अपनी संस्कृति की उदात्तता को कायम रखना था तो इसमें आ गयी कतिपय संकीर्णताओं को निकाल फेंकना था। भारतेन्दु युग से आरंभ हुई समन्वय की यह प्रक्रिया अनवरत चलती रही। समय के साथ परिवर्तन होता रहा, तकनीकी का समावेश होता रहा। अभिव्यक्ति के माध्यमों में वृद्धि हुई। यातायात के साधनों एवं संचार के साधनों में निरंतर वृद्धि होती रही। इक्कीसवीं सदी तक आते-आते सम्पूर्ण विश्व का ही परिदृश्य बदल गया, ऐसे में भारत का परिदृश्य बदलना स्वाभाविक है। प्रिंट माध्यम एवं इलेक्ट्रोनिक माध्यम इन दोनों ही रूपों में मीडिया आज बहुत अधिक सक्रिय है। वह तेजी से बदलते समय की गति को पहचानता है और जन-जन तक उस गति की जानकारी पहुँचाता है। मीडिया के क्षेत्र में आरंभ में प्रिंट मीडिया ही था, आगे चलकर इलेक्ट्रोनिक मीडिया की शुरुआत हुई, पर इक्कीसवीं सदी में आकर डिजिटल मीडिया का भी आरंभ हो गया।

प्रिंट मीडिया के प्रमुख माध्यम समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ तो इलेक्ट्रोनिक मीडिया के प्रमुख माध्यम रेडियो, टेलीविजन निरंतर सामाजिक सभी पक्षों पर सूचना, जानकारी एवं जागरूकता का प्रसार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मीडिया जन-जन तक किसी घटना, उपलब्धि इत्यादि की जानकारी उपलब्ध करवाती है। समाज को जागरूक बनाने में भी मीडिया अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यदि वर्तमान समय की बात करें तो कोरोना नामक वाइरस से फैली इस वैश्विक महामारी के दौर में मीडिया ने जन-जन को इस वाइरस से बचाव के प्रति जागरूक किया। इससे स्पष्ट होता है कि साहित्य और संस्कृति के समान ही मीडिया का भी व्यापक उद्देश्य लोकहित है। मीडिया और साहित्य में सबसे बड़ा अंतर यह है कि साहित्य में कल्पना का विशेष स्थान है जबकि मीडिया में कल्पना की थोड़ी सी भी गुंजाइश नहीं है। इस बड़े अंतर के बावजूद भी वर्तमान संदर्भों में साहित्य, संस्कृति और मीडिया के मध्य समन्वय स्थापित होता जा रहा है। संकट के इस दौर में साहित्य के अध्ययन और सृजन दोनों में बढ़ोतरी हुई है, भारतीय संस्कृति में आरंभ से ही बाहर से आने पर जूते बाहर उतारने, वस्त्र परिवर्तित करने, हाथ-पैर धोने की परंपरा रही है। इस संदर्भ में भी बदलते परिद्श्यर्य में साहित्य, संस्कृति और मीडिया के समन्वय का उदाहरण प्राप्त होता है। साहित्य में लोकहित और लोकमंगल की भावना सदैव रही है। विश्व-कल्याण और मानव-कल्याण की भावना साहित्य और संस्कृति के केंद्र में युगों-युगों से रही है। साहित्य नैतिकता पर बल देती है। साहित्यकार की दृष्टि अत्यंत व्यापक होती है, वह काल और देश की परिधि के बाहर तक देखने की क्षमता रखती है। इसी व्यापक दृष्टि के कारण उसका लिखा साहित्य विश्व के हर मानव के लिए युगों-युगों तक कल्याणकारी होता है। आज मीडिया जन-जन के जीवन का अभिन्न हिस्सा बन गया है, जिसमें इंटरनेट शामिल है और इंटरनेट के माध्यम से आमलोगों के मध्य सोशल मीडिया भी एक अत्यंत सशक्त माध्यम बनकर उभरा है।

"नया मीडिया एक ऐसा मीडिया है जिसने फिल्म, छवियों, संगीत, बोले और लिखित शब्द जैसे पारंपरिक मीडिया को कंप्यूटर की इंटरैक्टिव शक्ति और संचार प्रौद्योगिकी विशेषकर इंटरनेट से जोड़ दिया है।"[2]

जिस प्रकार मीडिया के तमाम माध्यम आमलोगों तक सारी जानकारी पहुँचा रहे हैं, उसमें साहित्य और संस्कृति के अवयव और उद्देश्य भी शामिल हैं। मीडिया, साहित्य और संस्कृति का अंतर्संबंध पूरे विश्व में मानवता के संबंधों को प्रगाढ़ बनाने में अत्यंत सहायक सिद्ध हुआ है, जिससे भारतीय संस्कृति को विश्व स्तर पर विशेष पहचान मिली है। 'वसुधैव कुटुंबकम' का भाव भारतीय संस्कृति का मूल तत्व ही रहा है। वर्तमान मीडिया क्षणांश में ही किसी समाचार, जानकारी या सूचना को विश्व के कोने-कोने तक पहुँचा देता है। ऐसा करते समय मीडिया को विभिन्न देशों, विभिन्न समूहों तक पूर्ण निष्पक्षता और विश्वसनीयता से जानकारी पहुँचाकर अपने दायित्व का निर्वाह करना होता है। आज अनेक टीवी चौनल, यू ट्यूब चौनल, पोर्टल इत्यादि माध्यमों से भारतीय साहित्य और संस्कृति से संबंधित विशद ज्ञान, महत्वपूर्ण ग्रंथ, महत्वपूर्ण व्याख्यान इत्यादि सम्पूर्ण विश्व को उपलब्ध करवाया जा रहा है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति आभिजात्य और लोक की दो भिन्न धाराओं में बंटी हुई थी। वर्तमान समय में मीडिया के साथ समन्वय के उपरांत एक नवीन संस्कृति पॉपुलर कल्चर के नाम से विकसित हुई है। प्राचीन भारतीय संस्कृति आभिजात्य और लोक की दो भिन्न धाराओं में बंटी हुई थी। वर्तमान समय में मीडिया के साथ समन्वय के उपरांत एक नवीन संस्कृति पॉपुलर कल्चर के नाम से विकसित हुई है। पॉपुलर कल्चर के एक छोर पर आभिजात्य संस्कृति सुरक्षित थी, तो दूसरे छोर पर लोक-संस्कृति। इन दोनों संस्कृतियों के मध्य से विकसित होती हुई पॉपुलर कल्चर नामक संस्कृति हमें समन्वय की अनूठी उपलब्धि से अवगत कराती है।

साहित्य की जितनी भी विधाएँ हैं, यथा- कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक इत्यादि, इन सबमें नैतिक प्रेरणाओं के संचार पर विशेष बल दिया जाता है। ये प्रेरणाएँ अत्यंत सूक्ष्म रूप में संकेतों के माध्यम से साहित्य में गूँथे होते हैं। प्रत्यक्ष उपदेश साहित्य में से साहित्य-तत्व को कमजोर करता है, अतः इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता है कि साहित्य में प्रत्यक्ष उपदेशों से बचने का प्रयत्न किया जाय।

साहित्य, संस्कृति और मीडिया के समन्वय का सबसे सकारात्मक परिणाम यह है कि बढ़ते संचार माध्यमों की मदद से हाशिये पर के लोग लिखित रूप में तथा ऑडियो-वीडियो रूप में अपनी बात और अपना हुनर दुनिया तक पहुँचाने का साहस जुटा पा रहे हैं। साहित्य-सृजन में संलग्न हो रहे हैं। इन्हीं परिधि पर के लोगों द्वारा लिखित साहित्य वर्तमान संदर्भों में अस्मितामूलक साहित्य के रूप में उभरकर विश्व-साहित्य में अपनी खास पहचान बना रहा है। कल तक जो व्यक्ति, समाज में व्यक्ति-रूप में भी स्वीकृति नहीं प्राप्त कर पाया था, जाति और लिंग के आधार पर भेदभाव का शिकार हो रहा था, पीड़ाओं को सहता, अपने आँसुओं को पीकर घुट-घुट कर जीने को विवश था, आज उसके लिखे साहित्य को पूरी दुनिया के लोगों द्वारा पढ़ा जा रहा है। उसकी रचनाओं के अनुवाद हो रहे हैं। उसकी पुस्तकों का लोकार्पण हो रहा है, समीक्षाएँ लिखी जा रही हैं, विभिन्न चौनलों पर उसके साहित्य पर वृहत चर्चाएँ हो रही हैं, सेमिनार हो रहे हैं। वस्तुतः अस्मिता मूलक साहित्य के केंद्र में पहचान के संकट की समस्या है। उपेक्षित जीवन जीना कितना पीड़ादायी है यह अस्मितामूलक साहित्य के माध्यम से ज्ञात होता है। किसी व्यक्ति को व्यक्ति के रूप में स्वीकार न किया जाना उसके स्वाभिमान को छीनने का एक प्रयास रहा है।अस्मितामूलक साहित्य उसी पहचान को हासिल करने का एक प्रयास है। "अपनी पहचान का संकट प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हमारी साहित्य-चिंता का विषय बन गया है। यही कारण है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन से परिवर्तित देश जहां एक ओर सबकी चिंता का विषय है, वहीं दूसरी ओर साहित्य दृष्टि भी इसे लेकर नए मुहावरे गढ़ने में लगी हुई है।"[3]

किसी भी देश-समाज में बदलाव राजनैतिक, प्रशासनिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक बदलावों से ही आता है। हमारे देश ने राजतंत्र से लोकतंत्र तक की यात्रा की। आक्रमणों और पराधीनता का मुकाबला किया। परंतु लोकतंत्र की स्थापना के बाद भी समाज में अनेक स्तरों पर भेदभाव दिखाई दे रहा है। स्वतन्त्रता के वर्षों बाद भी अस्मिता हेतु संघर्ष करना पड़ रहा है, लोकतंत्र के अस्तित्व पर प्रश्न उठ रहे हैं। लोकतंत्र तो हर व्यक्ति- के वोट की कीमत बराबर गिनता है, फिर समाज में अभी तक समानता क्यों नहीं आ पाई है, लोग अभी तक अशिक्षित और बेरोजगार क्यों रह गए हैं। तमाम सरकारी योजनाएँ, पंचवर्षीय योजनाएँ बनती रहीं, जनता शिक्षा, चिकित्सा, रोजगार की उम्मीद में किसी तरह अपना जीवन काटती रही, पर उनकी उम्मीदें पूरी नहीं हो पाई। आँखों में स्वप्न लिए कितनी ही पीढ़ियाँ चली गईं। देश में जाति भेद, वर्ग भेद, वर्ण भेद बना ही रहा। भारतीय राजनीति जाने-अनजाने संकीर्ण होती जा रही है। जिस देश की नींव आदर्शों और सिद्धांतों पर रखी गई थी वहाँ स्थितियां निरंतर बदलती रहीं, आदर्श का स्थान घोर यथार्थ ने ले लिया। साहित्यकारों ने इन कठोर स्थितियों का सजीव चित्रण किया। जनता की मूलभूत आवश्यकताएं कहीं पीछे छूटती चली गई। देश में बदलाव होते रहे, साहित्य, संस्कृति और मीडिया उनसे प्रभावित होती रही, पर इन बदलावों से जमीनी स्तर पर कोई बड़ी उपलब्धि हासिल होती नहीं दिखी। पुरानी समस्याएँ समाप्त नहीं हो रहीं, और नई उत्पन्न हो रही हैं। एक साधारण व्यक्ति हर मतदान में अपना कीमती वोट इस उम्मीद में देता है कि इस बार सारी समस्याएँ दूर हो जाएँगी, पर समस्याएँ कहीं नहीं जातीं, पूर्ववत बनी रहती है।

"हमारा मतदान इसी खेप से उठेगा, उसी पेटी में डाला जाएगा, जिसमें हमारे पूर्वज अपनी आस्था विश्वास के हित में इसकी सुरक्षा करते थे। सत्ताएँ और शक्तियाँ जो भी कहती करती रहें।"[4]

ऐसे में साहित्य, संस्कृति और मीडिया आपसी समन्वय कर जन-जीवन के साथ खड़ी दिखाई देती है। आजादी के बाद जनता में प्रबल होती मोहभंग की स्थिति का जीवंत चित्रण साहित्यकारों ने किया है। ब्रिटिश शासन का अंत, देश की स्वतंत्रता, लोकतंत्र की स्थापना होने से सामान्य जन-जीवन में क्या सकारात्मक परिवर्तन हुए, यह विचारणीय प्रश्न है। यदि आम जनता की समस्याएं ज्यों की त्यों बनी ही रह गईं तो उसके लिए देश की आजादी का क्या अर्थ रह गया? अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए संघर्ष करता, छटपटाता व्यक्ति आवेदन पत्र लिए दफ्तरों में जाता है, एक से दूसरे, तीसरे, चौथे दफ्तरों में दौड़-भाग करता है, पर समस्याएँ फिर भी समाप्त होने को नहीं आती हैं। देश में आज भी आर्थिक विषमता चरम पर है, जिसका दुष्परिणाम किसानों की आत्महत्या के रूप में सामने आया है, लोग भूख से दम तोड़ रहे हैं। अभी तक पुरानी बीमारियों का उन्मूलन नहीं हो पाया है और नई बीमारियां आती जा रही हैं, कुपोषण की समस्या आज तक बनी हुई है।

परिवर्तन की यह तीव्र और नियमित प्रक्रिया इसलिए गति पकड़ रही है कि वैचारिकता में वृद्धि हो रही है। वास्तव में वैचारिकता और परिवर्तन में अन्योन्याश्रय संबंध है। एक की वृद्धि दूसरे की वृद्धि को गति प्रदान करती है। बढ़ती वैचारिकता साहित्य सृजन के लिए जमीन तैयार कर रही है। इस तरह

से नित्यप्रति वैचारिकता साहित्य का आकार ले रही है, साहित्य के माध्यम से वह विचार जन-जन तक प्रेषित हो रहा है। दूसरी तरफ मीडिया और साहित्य भी परस्पर एक-दूसरे को सहयोग कर आगे बढ़ने-बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो रही है। मीडिया के माध्यम से जब जन-जन तक सूचना, जानकारी, ज्ञान और विचार पहुँचते हैं, तब जमीनी स्तर पर व्यापक परिवर्तन होते हैं। कभी इलेक्ट्रोनिक मीडिया का सर्वाधिक सशक्त माध्यम रहा दूरदर्शन भारतीय साहित्य को जन-जन तक पहुँचाने का माध्यम बना। महाभारत, रामायण, बैताल-पचीसी, बृहतकथा, कथा सरितसागर, पंचतंत्र, गोदान, रन्नाभूमि, कर्मभूमि, निर्मला, भारत एक खोज, चंद्रलेखा, तमस, कब तक पुकारूँ, सिंहासन बत्तीसी, इत्यादि अत्यंत महत्वपूर्ण कृतियों पर धारावाहिक नाटक आदि का प्रसारण हुआ, जिससे जन-जन में साहित्य के प्रति गहरी अभिरुचि जागृत हुई। प्रिंट मीडिया के क्षेत्र में भी साहित्य और साहित्यकारों की उपस्थिति निरंतर बनी रही। धर्मवीर भारती, अज्ञेय, कमलेश्वर, राजेंद्र माथुर, मनोहर श्याम जोशी इत्यादि लेखकों ने साहित्य और पत्रकारिता के समन्वय में भरपूर योगदान दिया। भारतेन्दु युग में भारतेन्दु मण्डल के लेखकों द्वारा साहित्य और पत्रकारिता के समन्वय का कार्य जो आरंभ हुआ था उसे समकालीन साहित्यकारों ने ऊँचाई प्रदान की।

वर्तमान समय में मीडिया राजनीतिक, सामाजिक जीवन के साथ-साथ व्यक्ति के निजी जीवन का भी अत्यंत महत्वपूर्ण अंग बन गया है। आज हर क्षेत्र में मीडिया की उपस्थिति सक्रिय हुई है तथा आम आदमी भी इसकी महत्ता से भली-भाँति परिचित हो पाया है। शिक्षा, मनोरंजन, विज्ञान, निजी व सरकारी कार्यालय, बैंकिंग, रक्षा, चिकित्सा, उद्योग, वैश्विक बाजार, कृषि, मौसम, पर्यावरण, खेल, तकनीकी, सूचना प्रौद्योगिकी जैसे विविध और महत्वपूर्ण क्षेत्रों में मीडिया की भूमिका निरंतर बढ़ती ही जा रही है।

अत्यंत तीव्र गति से बदलते परिदृश्य में सामाजिक समन्वय की स्थापना बहुत बड़ी आवश्यकता बन गई है। साहित्य, संस्कृति और मीडिया इन सबकी समन्वित और सम्मिलित भूमिका से सकारात्मकता का संचार हो रहा है। परस्पर समन्वय और सहभागिता की स्थिति जनकल्याणकारी है। संस्कृति का प्रमुख उद्देश्य जनकल्याण है। यहाँ ध्यातव्य है कि संस्कृति में समय-समय पर विकृतियाँ भी आई हैं, और उन्हें दूर भी किया गया है। बदलते भारतीय परिदृश्य में बढ़ते बाजारवाद का संकट साहित्य, संस्कृति और मीडिया तीनों को ही प्रभावित कर रहा है। आज विश्व बाजार में भारतीय उपभोक्ता बहुत बड़े खरीददार के रूप में उभरे हैं। भारतीय ग्राहक जाने-अनजाने इस बाजारवाद की गिरफ्त में आ रहे हैं। बदलते भारतीय परिवेश में कहीं न कहीं आर्थिक संकट गहराता जा रहा है, विज्ञापनों की वृद्धि का प्रभाव जनमानस, साहित्य, संस्कृति पर पड़ रहा है। एक नई संस्कृति पनपती जा रही है जिसके केंद्र में बाजार और विज्ञापन है।

"विज्ञापन राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों के लिए आग में घी का काम कर रहे हैं। इन विज्ञापनों ने देश में एक नयी उपभोक्ता संस्कृति को जन्मा है।"[5]

बदलते भारतीय परिदृश्य में सिनेमा भी एक अत्यंत महत्वपूर्ण अवयव है। इसमें स्क्रिप्ट के माध्यम से साहित्य है, जिसमें समाज और संस्कृति का चित्रण है, हम तक नई जानकारियाँ लेकर आ रही है तो मीडिया भी है, तो सिनेमा वर्तमान समय का एक बहुत सशक्त माध्यम है देश की दशा और दिशा को जानने-समझने का। सिनेमा तमाम नई तकनीकियों, नई परिस्थितियों से जनता का साक्षात्कार करवाती है। सिनेमा वर्तमान समय का अत्यधिक सशक्त माध्यम है। अब तो छोटी-छोटी फिल्में भी अत्यधिक लोकप्रिय हो रही हैं, देश की वर्तमान स्थिति को साहित्य, संस्कृति और मीडिया के समन्वित रूप में आज हम देख पा रहे हैं।

"कह सकते हैं कि फिल्मों के अलंकरण में मल्टीमीडिया का अनूठा योगदान है। फिल्मों को कलाओं का कला कहा जा सकता है।"[6]

वर्तमान भारत के इस बदलते परिदृश्य के संदर्भ में साहित्यिक पत्रकारिता भारतीय समाज और संस्कृति के एक जरुरी अंग के रूप में उभर रहा है-

"साहित्यिक-पत्रिका की मूल प्रतिबद्धता देश की और भाषा विशेष की संस्कृति-साहित्यिक प्रगतिशील परंपरा के विकास के प्रति होनी चाहिए। आप साहित्यिकता पर बल देते हुए सामाजिकता को समाहित करते हैं साथ ही जनोन्मुखता की प्रवृत्तियों को प्रमुखता से उभारते हुए एक अभियान चलाते हैं क्योंकि साहित्यिक पत्रकारिता सामाजिक पत्रकारिता का ही एक अंग है।"[7]

साहित्य, संस्कृति और मीडिया का समन्वय हो रहा है, सभी निरंतर एक दूसरे से प्रभावित हो रहे हैं, एक-दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं। इस तेजी से बदलते भारतीय परिदृश्य में इनका समन्वय समाज को सूचना प्रदान करने में, जानकारी उपलब्ध करवाने में और जागरुक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

वर्तमान दौर मीडिया का दौर है, आज मीडिया की बढ़ती सक्रियता और लोकप्रियता सामाजिक- सांस्कृतिक मूल्यों को अत्यधिक प्रभावित कर रही है। मीडिया आजकी जरूरत बन गई है। सुबह उठने से लेकर रात में सोने तक समाज का प्रत्येक तबका मीडिया के प्रभाव में जी रहा होता है। कोई भी व्यक्ति आज मीडिया के प्रभाव से अछूता नहीं है। जन-जीवन का अभिन्न अंग बन गई है मीडिया। इस प्रकार आज मीडिया तथा सामाजिक जीवन के बीच गहरे सम्बन्ध बनते जा रहे हैं। मीडिया अपने शुरुआती दौर में प्रिंट मीडिया थी, और अखबार- पत्र- पत्रिकाओं के साथ मीडिया मजबूती पकड़ रही थी। कालांतर में प्रिंट मिडिया से दायरा विस्तृत हुआ। धीरे-धीरे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया दृश्य एवं श्रव्य माध्यमों के बीच से यात्रा करती हुई सम्पूर्ण समाज में सुस्थापित हो गई। यह दायरा जब और विस्तृत हुआ तो सोशल साइट्स भी इसकी परिधि में समा गए, और सोशल मीडिया इतना बहुमुखी बनकर उभरा कि लोग वाह! वाह! करने लगे। आज मीडिया जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। मीडिया समाज और संस्कृति को विभिन्न स्तरों पर प्रभावित कर रहा है। यहाँ तक कि आचार- विचार, रहन-सहन, तीज-त्यौहार इत्यादि को भी मीडिया ने बहुत हद तक प्रभावित किया है। आज सम्पूर्ण विश्व में जिस तेजी से पॉपुलर कल्चर का विकास और विस्तार हो रहा है उसमें मीडिया की बहुत बड़ी भूमिका है। आज समाज अपने सारे मानदंड प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मीडिया से प्रभावित होकर ही तय करता है। इस तेजी से बदलते समाज की धुरी मीडिया के हाथों में है। मीडिया ही सबकुछ निर्धारित करने लगी है, लोग कठपुतली की तरह उसके सूत्र से बँधे हुए बस हिलते डुलते प्रतीत हो रहे हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि आज मीडिया एक नए समाज का निर्माण कर रही है। मीडिया जो दिखाती है समाज उसे ही अपना लेती है। यही कारण है कि टेलीविजन धारावाहिकों में दिखाए गए दृश्यों को जीवंत करने के लिए महिलाएं वैसे ही वस्त्र- आभूषण आदि धारण करने लगती हैं। कई ऐसे उदाहरण भी दिखे जिनमें षड्यंत्रकारी या करामाती दृश्यों के अनुकरण का प्रयास लोगों ने किया। आज टेलीविजन के असंख्य चौनल होते जा रहे हैं, इनमें लगातार वृद्धि हो रही है, परंतु दिखाए जाने वाले कार्यक्रमों की गुणवत्ता में कोई बढ़ोतरी होती नहीं दिख

रही है। ऐसे में जिन कार्यक्रमों का प्रसारण होता है उनमें अधिसंख्य खानापूर्ति के साधन या टीआरपी बढ़ानेवाले होते हैं। आज समाचारों को भी सनसनीखेज और मसालेदार बनाकर प्रस्तुत करने की एक नई परंपरा शुरू की जा चुकी है। इन कार्यक्रमों ने सामाजिक जीवन को बहुत प्रभावित किया है। निश्चित रूप से आज समाज में मीडिया के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों को बड़ी ही सहजता से देखा जा सकता है। व्यक्ति और समाज की पूरी विचारधारा और जीवनशैली को मीडिया प्रभावित कर रही है। आज टेलीविजन चौनलों पर जिस प्रकार के कार्यक्रमों का प्रसारण हो रहा है उनसे एक ओर तो सामाजिक जागरूकता में बढ़ोतरी होती है, शिक्षा और स्वास्थ्य में सुधार के साथ साथ सामाजिक विकास के रास्ते खुलते हैं तो दूसरी तरफ इन्हीं कार्यक्रमों एवं इनके मध्य प्रसारित होने वाले विज्ञापनों से उपभोक्तावादी संस्कृति और बाजारवाद को बढ़ावा मिलता है। इन कार्यक्रमों में जिस तरह की घटनाएं घटित होती दिखाई जाती हैं, उनका समाज पर नकारात्मक प्रभाव भी पड़ता है। समाज में आज जीवनमूल्यों में निरंतर गिरावट आ रही है। विवाहेतर संबंध, पारिवारिक- सामाजिक षडयंत्र, हिंसा में वृद्धि आदि के कारण भारतीय सामाजिक -सांस्कृतिक व्यवस्था की जड़ें कमजोर होती जा रही हैं। भारतीय समाज के परंपरागत मूल्य, आदर्श और मान्यताओं को जैसे एक कोने में ढकेल दिया गया है। आज की मीडिया निस्संदेह समाज को जागरूक बना रही है पर वह हमारे पारिवारिक- सामाजिक, राष्ट्रीय सरोकारों को भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से चुनौती दे रही है। युवा पीढी की सम्पूर्ण क्षमता उसी दिशा में सक्रिय होगी जिसमें उसकी मानसिक धरातल की आरंभिक तहें निर्मित होंगी। आज की युवा पीढ़ी की सोच- समझ को आकार देने में मीडिया की बहुत बड़ी भूमिका है। आज इंटरनेट के कारण पूरी दुनिया से तो युवा पीढ़ी जुड़ गई है पर साथ साथ वह अपने परिवेश से बिल्कुल अलग हो गई है। आज युवाओं की जीवनशैली और व्यक्तित्व के निर्माण में इंटरनेट और सोशल मीडिया की भूमिका सबसे प्रमुख हो गई है। मीडिया और सोशल मीडिया के बढ़ते दायरे धीरे धीरे सम्पूर्ण समाज को अपने घेरे में ले लेने को आतुर है। इन परिस्थितियों में समाज और बाजार एक दूसरे में समाते जा रहे हैं। पुराने समय में बाजार बस्ती से बहुत दूर होते थे और इसीलिए समाज बाजार के चंगुल में नहीं फँसता था। जब नगरीकरण होना आरंभ हुआ तो बाजार बस्ती के निकट आने लगा और समाज बाजार के चंगुल में धीरे धीरे फँसने लगा। अब जब बाजार, मीडिया, सोशल मीडिया इत्यादि मोबाईल में उपलब्ध होकर मनुष्य की हथेली में आ गया है, पर कड़वी सच्चाई यह है कि आज मनुष्य पूरी तरह से बाजार की गिरफ्त में आ गया है, ऐसे में एक बड़ी जिम्मेदारी मीडिया की है कि वह समाज और बाजार के मध्य संतुलन बनाए। सोशल मीडिया की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसने आम और खास के बीच की दीवार को पूरी तरह से से गिरा दिया है। पॉपुलर कल्चर आम और खास के बीच से विकसित होकर इन दोनों को एक- दूसरे से जोड़ रहा था, परंतु सोशलमीडिया ने तो आम और खास का अंतर ही मिटा दिया। यानि पॉपुलर कल्चर को यदि इस यात्रा का पहला कदम मान लें तो सोशलमीडिया को गंतव्य कह सकते हैं। वर्तमान दौर मीडिया का दौर है, जिसमें सोशलमीडिया के शामिल होने से एक ओर आम लोगों को अपनी बात कहने का अवसर प्राप्त है तो दूसरी ओर उसे बहुत कुछ सीखने और जानने को मिला है। यदि समाज में आमलोगों तक जागरूकता पहुँचाने में मीडिया और सोशलमीडिया सफल सावित हो रहा है तो इसके नकारात्मक प्रभावों से बचाव करते हुए इसका स्वागत है। मीडिया और सोशलमीडिया ने आमलोगों को अपनी अभिव्यक्ति और प्रतिभा प्रदर्शन हेतु अवसर प्रदान किया। इंटरनेट वर्तमान समय की जरूरत बन गई है। विशेष रूप से कोविड 19 संक्रमण और लोकडॉन के दौर में जब अध्ययन- अध्यापन, सेमिनार- परिचर्चा इत्यादि ऑनलाइन होने लगे, तो इंटरनेट की आवश्यकता और अधिक हो गई। आज के दौर में व्यक्तिगत कार्य, कार्यालयी कार्य, सामाजिक कार्य इन सभी के लिए इंटरनेट की ही शरण में जाना पड़ता है। आज की पीढ़ी के युवक- युवतियों के विवाह की चर्चा भी मेट्रीमोनियल साइट्स पर होने लगी है। मीडिया और सोशलमीडिया ने आज सूचनाओं को सहजता से उपलब्ध करवा दिया है। समाज और संस्कृति मीडिया और सोशलमीडिया के प्रभाव में नया आकार ले रही है, आनेवाले समय में यह आकार अधिक स्पष्ट हो सकेगा जिसमें भारतीय समाज और संस्कृति का नया स्वरूप कुछ नए मूल्यों के निर्धारण के साथ अपने देशवासियों का स्वागत करेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Meaning of culture- Cambridge English Dictionary, अभिगमन तिथि श्रनसल 26, 2015, Wikipedia
2. नया मीडिया अध्ययन और अभ्यास, शालिनी जोशी, शिवप्रसाद जोशी, पेंगुइन प्रकाशन -2013, पृ. 5
3. रचना कि जमीन- वाणी प्रकाशन, पृ. 118
4. समय सरगम-कृष्णा सोबती, राजकमल पेपरबैक्स, पृ. 142
5. विज्ञापन बाजार और हिन्दी, कैलाशनाथ पांडे, वाणी प्रकाशन
6. भारतीय सिनेमा विविध प्रभावों कि खोज, इलेक्ट्रोनिक मीडिया और सिनेमा- रामप्रकाश द्विवेदी, प्रासंगिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृ. 163
7. ओमप्रकाश पांडे, 'प्रेरणा':साहित्यिक पत्रकारिता विशेषांक के बहाने साहित्यिक पत्रकारिता परिदृश्य, साहित्यिक पत्रकारिता का परिदृश्य, प्रेरणा पब्लिकेशन, पृष्ठ 302

स्वामी विवेकानंद का ईश्वर विचार: एक अध्ययन

डॉ. रश्मि कुमारी सिंह

स्वामी विवेकानंद अद्वैत वेदांती थे, पर उनके अद्वैतवाद का एकाएक विकास नहीं हुआ। सर्वप्रथम वे पान स्टुअर्ट मिल की पुस्तक, 'यस्सेज ऑन रेलीजन' द्वारा प्रभावित हुए। उसके बाद स्पेंसर के सिद्धांतों की ओर आकर्षित हुए। स्पेंसर के साथ पत्र व्यवहार का भी उन्होंने असफल प्रयास किया। प्रथम जीव, जगत व ईश्वर के प्रति उनकी संशयवादी विचारधारा थी, जिसका उल्लेख उन्होंने तत्कालीन विद्वान् दार्शनिक ब्रजेन्द्रनाथ सील से भी किया था। सील ने उन्हें शैली की रचनाओं को पढ़ाने के लिए प्रेरित किया।

स्वामी विवेकानंद के जीवन दर्शन पर जो दूसरा सबसे बड़ा प्रभाव पड़ा, वह शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत का था। स्वामी विवेकानंद के वेदांत की इन शिक्षाओं में अटूट आस्था थी। उनकी व्याख्या में भले ही कहीं अंतर प्रकट होता है, पर वे सच्चे अर्थो में एक विशुद्ध अद्वैतवादी थे।

विवेकानंद के दर्शन पर तीसरा सबसे बड़ा प्रभाव उनके गुरू श्री कृष्ण परमहंसदेवजी का था। उनका जीवन ही श्रीराम कृष्णदेव की शिक्षाओं को व्यवहार में चरितार्थ करने के लिए समर्पित था। श्री रामकृष्ण के अनुसार ईश्वर साक्षात्कार ही मनुष्य का अंतिम लक्ष्य है, जिसे आध्यात्मिक जीवन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। विषय वासना, कंचन-कामिनी का परित्याग आध्यात्मिक जीवन के ये निषेधात्मक पहलू हैं।

ईश्वर साक्षात्कार के लिए सांसरिक जीवन को त्यागने की कोई आवश्यकता नहीं है। उन्होंने स्वयं एक के बाद एक सभी धर्मों की दीक्षा ग्रहण की थी और देखा कि सबका परिणाम ईश्वर प्राप्ति में होता है। 29 जनवरी 1900 ई. को केलिफोर्निया में भाषण करते हुए उन्होंने कहा था, ''जो विचार मैं आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ वे मेरे गुरू के विचार हैं। उन विचारों को छोड़कर मेरे पास अन्य कोई मौलिक विचार नहीं है'' इस प्रकार हम देखते है कि श्री राम कृष्ण देव के जीवन और उनकी शिक्षाओं का स्वामी विवेकानंद के और दर्शन पर विशेष प्रभाव पड़ा है।

विवेकानंद की ईश्वर में गहरी आस्था है। तथा उनकी इस आस्था की अभिव्यक्ति उनके इस विश्वास में होती है कि वस्तुत ईश्वर में बिना आस्था रखे जीना असंभव है। ईश्वर भाव की अनिवार्यता पर बल देने की उपयुक्तता उनके लिए प्राय: स्पष्ट है ईश्वर भाव की अनिवार्यता उन्हें स्पष्ट इस सरल कारण के चलते प्रतीत होती है, कि उन्हें लगता है कि ईश्वर-भाव का निषेध असंभव है। यह संभव नहीं है कि इस जगत तथा आत्म की सत्ता को तो स्वीकार लें तथा ईश्वर की सत्ता को नकार दें। जगत् तथा आत्मा को सामान्यत: स्वीकार कर ही हमारा विचार अग्रसर होता है, किन्तु इस दोनों की यथार्थता के लिए उनके आधार रूप ईश्वर को स्वीकारना पड़ता है।

किन्तु इस स्थल पर बड़ा ही उपयुक्त प्रश्न उठ जाता है। यहाँ तो एक प्रकार से ईश्वर की सत्ता की अनिवार्यता को स्वीकार लिया गया है। यदि 'ईश्वर' में इस प्रकार की अनिवार्यता है तो ऐसा क्यों है कि सभी धर्मो तथा धार्मिक सम्प्रदायों द्वारा ईश्वर अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए युक्तियाँ दी जाती हैं। यदि ईश्वर अस्तित्व अनिवार्य है तो उसकी स्थापना के बौद्धिक निर्देश की आवश्यकता क्यों है?

विवेकानंद को ईश्वर-अस्तित्व की स्थापना के लिए बौद्धिक निर्देश प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि उन्हें यह विश्वास है कि 'ईश्वर' की साक्षात् अनुभूति सम्भव है। स्वामी रामकृष्ण को ईश्वर से साक्षात्कार की स्पष्ट अनुभूति थी। अत: वे ईश्वर अस्तित्व की स्थापना के लिए तर्क, युक्तियाँ, बौद्धिक निर्देश आदि की वस्तुत: आवश्यकता नहीं है क्योंकि ईश्वर की साक्षात् अनुभूति संभव है।

विवेकानंद के अनुसार 'ईश्वर' के सम्बन्ध में यह बात और अधिक प्रासंगिक है। ईश्वरीय अनुभूति की सम्भावना के रहते हुए भी ईश्वर अस्तित्व के पक्ष में प्रमाणों एवं युक्तियों की उपयोगिता कम-से-कम दो कारणों से तो है ही, ऐसा तो नहीं है कि जो चाहे जिस दिन चाहे, ईश्वर की अनुभूति प्राप्त कर ले।

उसके लिए तो वर्षो की कठिन साधना तथा आत्मानुशासन एवं चिन्तन की आवश्यकता होती है।

विवेकानंद कहते है कि ईश्वर अस्तित्व समर्थक साक्ष्य तो जगत में भरे पड़े हैं उनका कहना है कि 'जगत्' की व्याख्या बिना एक सर्वशक्तिमान 'कारण' को मानना संभव नहीं है। अत: हम एक प्रकार से उनके लिए एक ईश्वरीय निर्माता को मानने के लिए बाध्य हो जाते हैं। संसार में जो कुछ घटित होता है वह किसी कारण से घटित होता है, तथा जो घटित होता है उसका भी कुछ कार्यफल होता है। विवेकानंद कहते हैं कि यही कारण नियम है। यदि इस कार्य तथा कारण की शृंखलन पर विचार करें तो अन्तत:, हमें एक अंतिम एवं परम कारण ऐसा पर रूकना ही पड़ता है। वह परम कारण होगा जो अन्य सब कुछ का कारण तो है, किन्तु उसका कोई कारण नहीं है। विवेकानंद के अनुसार वही ईश्वर है। जो अपने अस्तित्व के लिए आत्मनिर्भर है उसका कोई कारण नहीं है। विवेकानंद ईश्वर अस्तित्व को स्थापित करने का एक आधार सभी वस्तुओं में निहित एकत्व को भी बना देते है।

विवेकानंद के अनुसार प्रेम का स्वरूप क्या है? हम किससे प्रेम करते है? सच पूछा जाय तो किसी 'अन्य से प्रेम नहीं करता बल्कि वह स्वयं' से प्रेम करता है। विवेकानंद कहते है।

प्रिय कोई अपने पति से पति के रूप में प्रेम नहीं करती, बल्कि अपने उस आत्म के लिए प्रेम करती है जिसे वह अपने पति में देखती है, कोई प्रिय अपनी पत्नी के पत्नी होने के कारण प्रेम नहीं करता बल्कि वह उससे इसी कारण प्रेम करता है क्योंकि वह अपने आपको अपनी पत्नी में देखता है। उनका कहना है कि प्रेम की ये व्यापक सम्भावना यह तो सिद्ध करती है प्रेम का चरम रूप शुद्ध एकत्व की अनुभूति है।

विवेकानंद ईश्वर अस्तित्व की कल्पना में एक कलाकार एक कवि, एक चिन्तशिल्पी आदि की उपमाओं का भी सहारा लेते है। उनका कहना है कि जिस प्रकार कविता के सौन्दर्य की समझ में उसके रचयिता 'कवि' की समझ निहित है, उसी प्रकार विश्व के सौन्दर्य की अनुभूति में उसके रचियिता ईश्वर की अनुभूति निहित है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि मानव के अन्तर में स्थित 'ईश्वर' की विद्यमानता ही उसे सदा 'ईश्वर' को खोजने तथा ईश्वर को पाने के लिए प्रेरित करती रहती है। मनुष्य उसकी खोज में भटकता रहता है पुन: उसी विन्दु पर वापस आ जाता है। जहाँ से प्रारम्भ करता है अर्थात हर ओर ईश्वर को ढूँढ़ने पुन: हम अपनी 'आत्मा' पर अपने अन्तर् में ही वापस आते है। इसका अर्थ है ईश्वर 'आत्मा' के निकट है, यह आत्मा जीवन प्राण में निहित सत्ता है। अत: विवेकानंद कहते है कि ईश्वर भाव अनिवार्य है क्योंकि 'होने' में ही 'अस्तित्व' में ही 'ईश्वर भाव' निहित है। उनकी मान्यता है कि ऐसे द्रष्टा हुए हैं जिन्हें ईश्वर की साक्षात् अनुभूति प्राप्त थी। व्यक्ति यदि प्रयत्न करे तथा कठोर साधना एवं ध्यान के मार्ग पर चले तो उसे भी ईश्वर की साक्षातानुभूति प्राप्त हो सकती है। उनके अनुसार 'ईश्वर' सभी तत्वों में निहित एकत्व है। अत: पूर्ण व्यापकता उसकी एक विशिष्टता है। ईश्वर को एक शाश्वत तत्व भी कहा गया है। ईश्वर 'काल' में 'कलिका' हो जाता है, जो हर काल में एक जैसा रहता है।

ईश्वर को परम शुभ कहा गया है। इसका अर्थ यह नहीं कि ईश्वर नैतिकता का चरम रूप है। क्योंकि ईश्वर के लिए नैतिकता का प्रश्न ही अप्रासंगिक है। ईश्वर में 'शुभ' 'अशुभ' का अन्तर देखना या भेद करना उपयुक्त नहीं क्योंकि ईश्वर इन सभी भेदों से परे है, ईश्वर को परम शुभ कहने का तात्पर्य है कि ईश्वर 'आनन्द रूप' है दुख रूप नहीं।

विवेकानंद का कहना है कि ईश्वर इसी कारण है कि उसी से सब कुछ प्रकट है। अत: ईश्वर एवं सृष्टि के बीच एक मौलिक बंधन है, एक एकत्व है जो हर क्षण अपने को व्यक्त करने को आतुर है।

विवेकानंद कहते है कि ''आप किसी भाषा में उसका विवरण नहीं दे सकते। सभी भाषायी प्रयत्न, जिनमें उसे पिता भाई या प्रिय, मित्र आदि कहा जाता है, वे सभी ईश्वर को विषयनिष्ठ बनाने के प्रयत्न हो जाते हैं और ऐसा किया नहीं जा सकता है। वह हर तत्व का शाश्वत विषय है।'' ईश्वर और जगत् में वही संबंध है जो हमारी आत्मा और शरीर में संबंध है।

अत: ईश्वर सर्वव्यापी, सर्वशुभ, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ हैं। इस युक्ति के अनुसार सबका समष्टि रूप ईश्वर सर्वशुभ अवश्य होगा। समष्टि रूप होने के कारण ईश्वर में सर्वविभुता, सर्वशक्तिमत्ता तथा सर्वज्ञता अवश्य पाई जायेगी।

दुनिया की आर्थिक समस्याएं: चिंता एवं चिंतन

डॉ० नवल किशोर बैठा

वरीय व्याख्याता, स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग, एम०जे०के० महाविद्यालय, बेतिया (पश्चिमी चम्पारण, बिहार)
बी०आर०ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सबप्राइम संकट

अमेरिका समेत कई विकसित अर्थव्यवस्था को अपने पैरों तले रौंद रहा वित्तीय संकट 6 अक्टूबर 2008 को दुनिया के शेयर बाजारों पर कहर बनकर टूट पड़ा। दलाल स्ट्रीट समेत विश्व के तकरीबन सभी स्टाक एक्सचेंज बिकवाली की आंधी के रूप में बरपे इस कहर का आसान शिकार बन गए और इनके सूचकांक भरभराकर चारों खाने चित्त हो गए। बंबई स्टाक एक्सचेंज के संबेदी सूचकांक सेंसेक्स और नेशनल स्टाक एक्सचेंज के निफ्टी का भी यही हाल रहा। कच्चे तेल की गिरती कीमतें भी शेयर बाजारों का सहारा बनने में नाकामयाब रहीं जिससे एक और सोमवार सेंसेक्स के मुंह पर गिरावट की कालिख पोतने में सफल रहा। सेंसेक्स की पहले की भी कई बड़ी गिरावटें इसी दिन के नाम दर्ज है।

अमेरिका के लिए मुसीबत बने सब प्राइम संकट के कारण सुरक्षित निवेश विकल्पों की तलाश में निवेशकों ने बाजार से जमकर धन निकासी की। इससे सेंसेक्स 724.62 अंक गिरकर दो वर्षों के न्यूनतम स्तर 11801.70 पर पहुंच गया। सेंसेक्स 19 सितम्बर 2006 के बाद पहली बार 12 हजार अंक के नीचे आया है। नेशनल स्टाक एक्सचेंज के निफ्टी की भी यही गति हुई। यह 215.95 अंक अर्थात 5.66 फीसदी का गोता लगाकर 3602.35 अंक पर बंद हुआ। सेंसेक्स शुक्रवार के 12526.32 अंक की तुलना में 12284.49 अंक पर कमजोर खुला। बिकवाली के दबाव के चलते यह उठने की सोच भी नहीं पाया। नीचे में 11732.97 अंक तक गिरने के बाद कारोबार की समाप्ति पर सेंसेक्स 5.78 प्रतिशत के नुकसान से 11801.70 अंक पर बंद हुआ। बिकवाली दबाव ने बीएसई के किसी भी वर्ग के सूचकांक को बढ़ने का मौका नहीं दिया। इसके मिडकैप में 7.13 प्रतिशत की गिरावट रही। इसका सूचकांक 333.57 अंक गिरकर 4344.23 अंक रह गया। स्मॉलकैप 378.47 अंक अर्थात 6.92 प्रतिशत के नुकासन से 5086.93 अंक पर बंद हुआ। सेंसेक्स में शामिल सभी तीस कंपनियों के शेयरों को झटका लगा। सेंसेक्स से जुड़ी तीस कंपनियों में बिकवाली का दबाव इतना अधिक था कि नुकसान वाली पहली बीस कंपनियों के शेयरों में पांच प्रतिशत से ज्यादा की गिरावट दर्ज की गई। अमेरिकी अर्थव्यवस्था की चिंता में आईटी कंपनियों के शेयर भी टूटे। सेंसेक्स में शामिल इस वर्ग की चारों बड़ी कंपनियों के शेयर औंधे मुंह नीचे आए। एशिया के अन्य बाजारों का भी बुरा हाल था। ब्रिटेन के शेयर बाजारों की स्थिति भी खराब रही। यहां का मुख्य सूचकांक एफटीएसई-100 को 233 अंक का झटका खाना पड़ा।

कच्चे तेल की कीमतें आठ माह के बाद पहली बार 90 डालर प्रति बैरल से नीचे आई है। ग्यारह जुलाई के 147.27 डालर प्रति बैरल के रिकार्ड भावों से तुलना की जाए तो कच्चा तेल 40 फीसदी तक टूट चुका है। ग्लोबल मंदी की आशंका ने इस सकारात्मक खबर का भी असर नहीं दिखाया। बाजार विश्लेषकों का कहना है कि शेयर बाजारों में यह दहशत बनी हुई है कि विदेशी संस्थागत तेजी से अपना धन निकाल सकते हैं। यही आशंका बाजारों पर भारी पड़ रही है।

सबप्राइम का संकट का जन्म कैसे हुआ?

अंतर्राष्ट्रीय बाजार का आकलन करने वाली एजेंसी डून एन ब्रांड स्ट्रीट (डी एंड बी) के अनुसार अमेरिका में वित्तीय संकट की शुरुआत हुई लोगों की आय कम होने से। उन्होंने लोन को वापस करने में देरी शुरू कर दी। एक अनुमान के अनुसार अमेरिका व यूरोपीय देशों में करीब 80 पर्सेंट लोगों का जीवन क्रेडिट कार्ड पर चलता है। जैसे ही अमेरिका में औद्योगिक उत्पादन गिरने लगा तो लोगों की आय कम होने लगी। इस कारण उन्होंने क्रेडिट कार्ड से लिए गये लोन देना बंद कर दिया। लोगों ने साफ कह दिया कि वे लोन वापस देने की स्थिति में नहीं है। इससे बैंकों व वित्तीय संस्थानों को घाटा होने लगा। कई बैंक व वित्तीय संस्थान तो बदहाल हो गए। खरीदारी कम होने से मांग कम हुई और प्रॉपर्टी व अन्य चीजों के दाम घटने लगे। फेडरल बैंक ने ब्याज दरों में कमी शुरू कर दी, ताकि लोग कम ब्याज दर पर नया लोन लेकर पुराना लोन वापस कर सकें। मगर इससे ज्यादा फर्क नहीं पड़ा है।

भारत पर सबप्राइम का असर

भारत का कुल एक्सपोर्ट करीब 140 अरब डॉलर का है, इसमें करीब 40 पर्सेंट का एक्सपोर्ट अमेरिकी व यूरोपीय कंपनियों को किया जाता है। आईटी सेक्टर में करीब 70 पर्सेंट कार्यों का ऑर्डर अमेरिकी व यूरोपीय कंपनियों से लिया जाता है। भारतीय शेयर बाजार में कुल 873 विदेशी निवेशक हैं, जिनमें

से अमेरिकी निवेशकों की संख्या 700 के करीब हैं। ये कुल कारोबार में 30 से 35 पर्सेंट तक की हिस्सेदारी रखते हैं। अमेरिका ने अपने व्यापार घाटा कम करने के लिए डॉलर को कमजोर करना शुरू कर दिया। इससे भारत के निर्यात को जोरदार झटका लगा। अमेरिका बाजार में खरीदारी घटने से भारतीय निर्यातकों को कीमतें गिरानी पड़ी। इससे निर्यातकों को लाभ मार्जिन कम हो गया। उन्होंने उत्पादन घटाना शुरू कर दिया। आईटी सेक्टर में आउटसोर्सिंग कम हो गई। अमेरिकी संस्थागत निवेशकों ने भारतीय शेयर बाजारों में अपने घाटे की भरपाई के लिए भारतीय शेयरों को उठाकर गिराना शुरू कर दिया ताकि मुनाफा कमाया जा सके। डीएंडबी के भारत में चीफ ऑपरेटिंग अफसर कुशाल संपत का कहना है कि भारत को रुपये की मजबूती से निपटना होगा, साथ ही नये बाजार खोजने होंगे। वरना धीरे-धीरे वह भी सबप्राइम की चेपट में बुरी तरह से आ सकता है।

बढ़ सकती है बेरोजगारी, छिन सकता है विदेशी बाजार

पूर्व वित्त सचिव डीसी गुप्ता के मुताबिक रुपये की कीमत में बढ़ोत्तरी एक तात्कालिक परिघटना है, इसलिए फिलहाल वेट एंड वाच की नीति अपनाई जानी चाहिए। करेंसी की मजबूती देश वासियों के लिए चिंता का सबब बनता जा रहा है। रुपये की बढ़ती कीमत से निर्यातकों का मुनाफा प्रभावित हो रहा है, विदेशी बाजार छिनने का संकट पैदा हो गया है और बेरोजगारी की आशंका बढ़ गयी है। आलम यह है कि यदि सरकार और रिजर्व बैंक ने समय रहते रुपये की बढ़ती कीमत पर लगाम नहीं लगाया तो कॉरपोरेट सेक्टर को होनेवाली क्षति की भरपाई करना मुश्किल हो जायेगा। निर्यातक से लेकर मिल मालिक तक ने सरकार से गुहार लगाई है कि रुपये की बढ़ती कीमत में तत्काल दखल दी जाये।

सबप्राइम का झटका

यह कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं है कि सबप्राइम बाजार से शुरू संकट का असर अब आईसीआईसीआई बैंक पर भी पड़ चुका है। वैश्वीकृत दुनिया में यह उम्मीद करना नादानी होगी कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर फैली बीमारी से भारतीय बैंक अछूते रहेंगे। वास्तविकता यह है कि हम अपनी अर्थव्यवस्था को जितना ही खालेंगे, हमारे बैंक भारत और विदेशों में, दोनों जगहों पर अंतर्राष्ट्रीय जोखिम का ज्यादा सामना करेंगे। हमें इस प्रकार के नुकसान के लिए तैयार रहना होगा। आईसीआईसीआई और अन्य बैंकों को अपने आंतरिक जोखिम प्रबंधन संबंधी नियामकों में सुधार करना चाहिए।

कहा जा रहा है कि यह बात समझना जरूरी है कि सबप्राइम बाजार में आईसीआईसीआई बैंक को कोई नुकसान नहीं है। जिस मौजूदा परिसंपत्ति का मूल्यांकन घटा है, वह वास्तव में विदेशी बैंकों द्वारा भारतीय कंपनियों को अधिग्रहण के लिए दिया गया ऋण है। यह पहले की तिमाहियों में ही दिये गये हैं। आईसीआईसीआई बैंक को मार्च की तिमाही के लिए भी अपना प्रावधान बढ़ाना होगा। विदेशी क्रेडिट डेरिवेटिव बाजार को 26.5 करोड़ डॉलर का झटका इसलिए लगा है क्योंकि आईसीआईसीआई बैंक भारतीय कंपनियों को ऋण देने वाले विदेशी बैंकों को क्रेडिट डिफॉल्ट स्वैप (सीडीएस) की बिक्री करता है। सीडीएस एक बीमा उत्पाद है जिसके बदले आईसीआईसीआई को प्रीमियम प्राप्त होता है।

इसके बदले, भारतीय डिफॉल्टर कंपनी का जोखिम मूल कर्ज देने वाले बैंक की जगह आईसीआईसीआई पर आ जाता है। इन उपकरणों और ऋण से जुड़े बांड्स जैसे अन्य उपकरणों का कारोबार किया जा सकता है। सबप्राइम संकट के कारण उनका बाजार मूल्य घटा है। आईसीआईसीआई बैंक की संयुक्त प्रबंध निदेशक चंदा कोचर का यह दावा सही है कि, 'उक्त नुकसान केवल उन परिसंपत्तियों की कीमतों में गिरावट का परिणाम है (बैंकिंग की भाषा में इसे मार्क टु मार्केट प्राइसिंग कहते हैं) और मौजूदा निवेश की वास्तविक ऋण गुणवत्ता में कोई खास क्षरण नहीं हुआ है', लेकिन यदि बाजार में बखेड़ा जारी रहता है तो प्रावधान बढ़ाने पड़ सकते हैं।

अब बोझ रिजर्व बैंक के कंधों पर आ गया है। भारतीय बैंकों के सबप्राइम संकट से सामना करने (और संभावित नुकसान) के बारे में रिजर्व बैंक ने कोई बयान नहीं दिया है। यह देखते हुए कि कई भारतीय बैंकों, खासकर सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की आईसीआईसीआई से भी ज्यादा शाखाएं विदेशों में हैं, इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि उनको भी इसी तरह का नुकसान झेलना पड़े।

संदर्भ

Jagadeesha: *Economic Recession and Management Strategies*, Mahamaya, Delhi, 2010.

P. Arunachalam: *Global Financial Crisis: Its Impact on Indian Economy*, Serials Pub, Delhi, 2010.

P. Arunachalam: *Marketing Management and Trade Policy*, Serials, Delhi, 2010.

Pami Dua: *Business Cycles and Economic Growth : An Analysis Using Leading Indicators*, Oxford University Press, 2004.

V. Krishna Moorthy: *Global Financial Crisis Recession and Beyond*, Yking Books, Delhi, 2010.

Prafull Chandra Jha: *Gain the Difference - How To Make Profit From Dealling In Shares At Different Stock Exchanges*, Taxmann, Delhi, 2009.

अमरकांत के उपन्यासों में अभिव्यक्त मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ

डॉ० कुमारी अंतिमा

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी, विभाग, श्यामाप्रसाद मुखर्जी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ० मीनू गेरा

हिंदी विभाग, श्यामाप्रसाद मुखर्जी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

हिन्दी के स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में अमरकांत महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वे प्रेमचंद के सामाजिक यथार्थवाद की धारा को आगे ले जानेवाले सर्वश्रेष्ठ कथाकारों में शामिल हैं। स्वतंत्रता के बाद भारतीय जनमानस में विकास के स्वप्न ने अपनी सशक्त जगह बना ली थी। भारत एक आशा और उम्मीद के मोड़ पर खड़ा था। स्वतंत्रता की रात्रि-बेला में दिल्ली में संविधान-निर्मात्री सभा को अपने संबोधन में पंडित जवाहरलाल नेहरु ने कहा था-

''वर्षों पहले हमने किस्मत के साथ बाजी लगाई थी, अब समय आ गया है कि हम अपनी प्रतिज्ञा को पूरी तरह न सही लेकिन काफी हद तक पूरा करें। मध्यरात्रि में जब सारी दुनिया सो रही होगी, भारत नई स्वतंत्रता लेकर जागेगा।...आज हम एक दुर्भाग्यपूर्ण अवधि को समाप्त कर रहे हैं और भारत को अपने महत्त्व का फिर एक बार एहसास हो रहा है। आज हम जिस उपलब्धि को मना रहे हैं। वह निरंतर प्रयास की उपलब्धि है, जिसके परिणामस्वरूप हम उन प्रतिज्ञाओं को पूरा कर सकें जिन्हें हमने कितनी बार लिया है।''[1]

26 जनवरी, 1950 को जब भारतीय गणतंत्र की स्थापना हुई तो उसका लक्ष्य था- एक आत्मनिर्भर, जाति-भेद रहित, सांप्रदायिकताविहीन लोकतंत्रात्मक भारत की स्थापना। तब भारत के प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था- ''मैं ऐसे भारत के लिए काम करूँगा जिसमें सबसे दरिद्र व्यक्ति भी महसूस कर सके कि यह उनका देश है और उसके निर्माण में उनकी प्रभावकारी आवाज है। यह ऐसा भारत होगा जिसमें न उच्च वर्ग होगा, न निम्नवर्ग। वह ऐसा भारत होगा जिसमें सारे समुदाय पूर्ण मेलजोल के साथ रहेंगे।''[2] किन्तु, स्वातंत्र्योत्तर भारत कई समस्याओं से त्रस्त रहा, जिन्हें अमरकांत अपने उपन्यासों की विषयवस्तु बनाते हैं। विशेषकर, भारतीय मध्यवर्ग और निम्नमध्यवर्ग का जीवन-यथार्थ उनके उपन्यासों में सशक्त रूप में उपस्थित दिखायी देता है। अमरकांत के कथा-साहित्य में निम्नमध्यवर्गीय जीवन के संबंध में आलोचक मधुरेश लिखते हैं- ''अपनी कहानियों की तरह अमरकांत अपने उपन्यासों में निम्नमध्यवर्गीय जीवन को संवेदनशीलता के साथ अंकित करते हैं।... अमरकांत अपने उपन्यासों में निम्नमध्यमवर्गीय मानस को पर्याप्त सहज और विश्वसनीय रूप में अंकित करने की कोशिश करते हैं।''[3]

अमरकांत ने पहला उपन्यास 'सूखा पत्ता' लिखा तो स्वतंत्रता के बाद किंतु परिवेश स्वतंत्रता पूर्व का ही रखा। इस परिवेश में कुछ मध्यवर्ग के युवक हैं जो क्रांतिकारी बनकर देश की बेहतर स्थिति के लिए संघर्ष करना चाहते हैं किंतु उनके समक्ष एक उचित मार्गदर्शन करने वाला कोई न होने के कारण वह कहते हैं-

''समाचार-पत्र अधिक पढ़ने के आदी न होते हुए भी हम गांधी जी के संबंध में लोगों से कमोबेश सुना करते। किंतु गांधी जी तथा उनके आंदोलन के महत्त्व को समझने की न हमारे पास बुद्धि थी और न इच्छा। हमारा क्रोध इतना अधिक और बचकाना तथा हमारा अध्ययन एवं ज्ञान इतना अल्प था कि आतंकवादी क्रांतिकारियों द्वारा अपनाया गया पथ हमको सर्वोत्तम प्रतीत होता। अत्याचारी अंग्रेजों तथा उनके पीट्ठुओं की दिन-दहाड़े हत्या करने, सरकारी खजानों, बैंकों और सरकार का साथ देने वाले धनी लोगों को लूटने तथा ऐसी ही कार्रवाइयां करते-करते अंत में फांसी पर लटक जाने से अधिक आकर्षक, महान और देशभक्ति का काम हमारे लिए कोई नहीं हो सकता था। हम जल्दी-जल्दी अपने को भगत सिंह, आजाद, बिस्मिल, अशपघकुल्ला आदि के रूप में देखने को उत्सुक थे।''[4]

अमरकांत मध्यवर्ग की समस्या चित्रित करते हैं और उस वर्ग के मूल्यों को दिखाना भी नहीं भूलते जिनके कारण वह समस्या को स्वयं ही आपस में दूर कर लेते हैं। बरसात जहाँ उच्च वर्ग के लिए मनोरंजनकारी है वहीं निम्न-मध्यवर्गीय अथवा मध्यवर्गीय परिवार के लिए समस्या क्योंकि इनके पास कई बार घर की समस्या होती है। अपने अथवा किराये का घर होने की स्थिति में भी कई बार यह बरसात उनको भिगो कर उनके अंतर्मन को जला देती है। 'सूखा पत्ता' के एक पात्र गंगाधारी बाबू के मकान के वर्षा में गिरने पर उनके मित्र द्वारा गंगाधारी बाबू के परिवार को आश्रय दिया जाता है जो मध्यवर्ग में उपस्थित सहयोग की भावना को प्रकट करता है। जाति भेद भी मध्यवर्ग की एक प्रमुख समस्या है। 'सूखा पत्ता' के कृष्ण और उर्मिला के परिवार भी इसी जाति भेद की समस्या के शिकार हैं जहाँ दोनों परिवारों में मित्रता होने के बावजूद कृष्ण और उर्मिला का विवाह केवल जातिगत भिन्नता के कारण नहीं हो

सकता है। 'आकाश पक्षी' उपन्यास एक उच्च वर्ग के परिवार की मध्यवर्गीय परिवार बनने की यात्रा और उस यात्रा के परिणामों की कहानी है। इस कहानी में जमींदार परिवार जिसके मुखिया 'बड़े सरकार' हैं; उसकी सत्ता छिन जाने के बाद की स्थितियों का चित्रण है। यह परिवार सत्ता समाप्त होने के उपरांत भी अहम् से भरा हुआ है। वह समस्या की स्थिति में जिन लोगों से सहायता और कर्ज लेते हैं उनको भी अपने से निम्न ही समझते हैं। एक किसान के संबंध में सोचते हुए नायिका बताती है- ''एक गरीब दुखिया किसान अपनी जमीन की लगान दे न पाया था। उसके घर में खाने को भी नहीं था, क्योंकि उस साल सूखा पड़ गया था और लोग भूख से मर रहे थे। उसको बड़े सरकार ने बुला भेजा। मैं उस बूढ़े किसान को अब भी देख सकती हूँ। उसका शरीर काँटा की तरह झुका था। काला भुजंग। उसकी छाती के बाल सपेद हो रहे थे। गिद्ध की तरह उसकी टाँगे मुड़ी हुई-सी थीं। वह हाथ जोड़कर खड़ा था और 'माई-बाप' कहकर गिड़गिड़ा रहा था। लेकिन बड़े सरकार उसको गंदी-गंदी गालियाँ दे रहे थे। फिर उनकी आँखें गुस्से से लाल हो गयीं और वह कारिंदे को आदेश देने के बजाय स्वयं ही उस पर टूट पड़े और उसको बुरी तरह मारने लगे। वह किसान इस तरह चिल्लाने लगा, जैसे बकरे को हलाल किया जा रहा हो।''[5]

यह दृश्य किसी भी व्यक्ति के हृदय को द्रवित कर सकता है किंतु नायिका की माँ कहती है कि- ''ये इसी लायक हैं। प्रजा लोग तो मार खाते ही रहते हैं। मार न खाए तो सिर पर सवार हो जाएँ।''[6]

इसी जमींदार माँ-बाप के द्वारा अपने सुख की खातिर अपनी ही बेटी का विवाह एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति से करा दिया जाता है।

'सुन्नर पांडेय की पतोह' एक ऐसा उपन्यास है जो उस मध्यवर्गीय स्त्री की संघर्ष गाथा को स्वर देता है जिसका पति घर छोड़कर कहीं चला गया है। इस जाने में कोई उद्देश्य नहीं अपितु पलायन निहित है। राजलक्ष्मी अपने घर में असुरक्षित महसूस करने के कारण अपना घर छोड़कर दूसरे मध्यवर्गीय परिवारों में काम करती है। इस काम करने की प्रक्रिया में उन परिवारों की विडम्बनात्मक त्रासदी की साक्षी भी बनती है। उसकी मृत्यु पर लेखक लिखता है-

''अनेक तरह के लोगों के यहाँ उसने काम किया। कोई नेता था, कोई अफसर, कोई व्यवसायी, कोई अध्यापक और कोई क्लर्क। और हर जगह लगभग एक ही दृश्य था। जो कुछ ऊपर से दिखाई देता उसका दूसरा रूप भीतर देखने में आता। बाहर से जो सभ्य, प्रतिष्ठित और साफ-सुथरे नजर आते, वे भीतर बेहद चीखते-चिल्लाते थे। लगभग सभी अपनी सीधी-सादी आज्ञाकारी और दिन-रात खटने वाली बीवियों को चौबीस घंटे कोसते रहते, उन्हें अन्य तरीकों से प्रताड़ित करते और दूसरे की बहू-बेटियों को अपने जाल में पँसाने की चालें चलते। घरों के अंदर औरतों की हालत दरबे में बंद मुर्गियों की तरह थी, जहाँ वे आपस में लड़ी, भुनभुनातीं, खीजतीं, रोती-कलपतीं और कराहतीं। लोग बाहर दूसरे को उपदेश देते और अपने जीवन में उन्हीं उपदेशों का उल्लंघन करते और पड़ोसियों को नीचा दिखाने की योजनाएं बनाते और छल, फरेब, कपट, जालसाजी, चापलूसी और धूर्तता से अधिक-से-अधिक धन कमाने और सफलता प्राप्त करने की कोशिश करते।''[7]

'काले उजले दिन' उपन्यास का पात्र एक मध्यवर्गीय युवक है जिससे उसकी सौतेली माँ नफरत करती है। उसे बचपन में परिवार का प्रेम नहीं मिलता इसी जीवन भर प्रेम को पाने के लिए संघर्ष करता है। शादी के बाद उसकी पत्नी कांति एक सामान्य मध्यवर्गीय स्त्री के रास्ते पर चलते हुए अपना पूरा जीवन अपने पति और परिवार को समर्पित कर देती है। कांति के विषय में नायक कहता है-''मैंने देखा कि प्यार, समर्पण एवं विश्वास ही कांति का जीवन था। वह मेरे प्रति या किसी के प्रति कोई दुर्भावना रख ही नहीं सकती थी। लेकिन मेरे मन में एक घोर निराशा दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही थी।''[8]

'बीच की दीवार' दो मध्यवर्गीय परिवारों की कहानी है जहाँ भौतिक दीवार के गिरने के बावजूद जातिगत विचारात्मक दीवार अपनी दृढ़ता से बनी ही रहती है। इन परिवारों के बीच उपस्थित दीवार के गिरने से आपस का प्रेम तो बढ़ता है, साथ ही साथ दीप्ति और मोहन का प्रेम भी गहरा होता है किंतु 'जाति-भेद' की दीवार इस प्रेम के बीच में आ जाती है जो अभी तक मध्यवर्ग एवं निम्न मध्यवर्ग से गयी नहीं है।

'ग्रामसेविका' उपन्यास में अमरकांत वहाँ के परिवेश एवं समाज के चित्रण द्वारा निम्न-मध्य वर्ग एवं मध्यवर्ग के समाज की अच्छाई और कमजोरी का चित्रण एक साथ करते हैं। इस गाँव के जमुना, रमैनी सहुआइन, जंगी एवं हरचरण जैसे चरित्रों को आज भी हर गाँव में आसानी से देखा जा सकता है। गाँव के परिवेश के संबंध में लेखक लिखते हैं- ''विशुनपुर गाँव छोटा नहीं कहा जा सकता, परन्तु उसमें कोई स्कूल नहीं था और लड़कों को पढ़ने के लिए रामगढ़ जाना पड़ता, जहाँ अस्पताल, थाना वगैरह भी थे। यह गाँव करीब-करीब अर्धवृत्ताकार पैला है, जिसके उत्तर में अहीरों का और दक्षिण में पासियों का टोला है। बीच में ब्राह्मणों, ठाकुरों और बनियों के मिले-जुले घर हैं। गाँव के सामने एक मैदान पैलता गया है, जो चरागाह के काम आता है। कुछ दूर जाने पर एक तालाब मिलेगा, जिसके किनारे एक पुराना और ठूँठ पीपल का पेड़ काँपता सा खड़ा है। गाँव में एक पगडंडी इठलाती हुई आती है और पेड़ के पास से होकर रामगढ़ की ओर चली जाती है। गाँव को कुछ सैलाबी भी कहना चाहिए। बरसात में बहुधा उसके चारों ओर पानी ही पानी हो जाता और काफी फसल का नुकसान हो जाता। लोगों को विशेष रूप से रबी की फसल पर निर्भर रहना पड़ता है। बहुत से लोग तो टोकरी बनाकर शहर में बेच आते या दूसरे गाँवों के खेतों या ईंट के भट्ठों पर मजदूरी करके गुजर-बसर करते।''[9]

ग्रामसेविका दमयंती की माँ टी.बी. होने पर पैसे और उपचार के अभाव में असमय ही मृत्यु को प्राप्त हो गयी। अपनी माँ के विषय में सोचते हुए दमयंती करुणा से भर उठती है-''उनको टी.बी. हो गया था। वह जानती थीं कि चूँकि उनकी दवा ठीक से नहीं हो पाएगी, इसलिए उनको अधिक दिन तक नहीं जीना है। कभी-कभी वह उसको तथा विनय को अंक में खींचकर बुरी तरह रोने लगती थीं।''[10]

यह कथन समाज के मुँह पर एक तमाचा है जो एक माँ को इतना बेबस बना रही है कि अपनी मृत्यु का इंतजार करते हुए अपने बच्चों की चिंता में घुली जा रही हो किंतु कुछ भी करने में सक्षम न हो। समाज के लिए आर्थिक प्रगति ही सब कुछ बन गया है किंतु मूलभूत सुविधाएँ भी उतनी ही आवश्यक हैं; यह उपन्यास इसे प्रस्तावित करता है।

वस्तुतः समुचित स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव स्वातंत्र्योत्तर भारत का एक बड़ा यथार्थ है। अमरकांत के उपन्यास 'इन्हीं हथियारों से' की भगजोगिनी के ससुर और पति दोनों टी.बी का शिकार होकर असमय ही मर जाते हैं। इस उपन्यास का परिवेश स्वतंत्रता-पूर्व का है। तब भगजोगिनी को लगता है कि देश के स्वतंत्र होने के बाद सबकुछ ठीक हो जाएगा। लेकिन 'ग्रामसेविका' उपन्यास में हम देखते हैं कि यथार्थ ऐसा नहीं है। ऐसा नहीं है कि स्वतंत्रता के बाद विकास नहीं हुआ, पर इसका लाभ अधिकतर साधन-संपन्न वर्गों को ही मिला।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अमरकांत के उपन्यासों में स्वातंत्र्योत्तर भारत का जीवन-यथार्थ सशक्तता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। उनकी दृष्टि मूलतः मध्यवर्गीय और निम्नमध्यवर्गीय जीवन-यथार्थ पर रही है और इस धरातल पर अनेक उपन्यास बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

संदर्भः-

1. उद्धृत, बिपिनचंद्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृ. 399
2. वही, पृ. 214
3. मधुरेश, हिंदी उपन्यास का विकास, पृ. 188-189
4. सूखा पत्ता, पृ. 49
5. आकाश पक्षी, पृ. 8
6. वही , पृ. 279
7. सुन्नर पांडे की पतोह, पृ. 55
8. काले-उजले दिन, पृ. 55
9. ग्रामसेविका, पृ. 11
10. वही

ग्रामीण विकास की अवधारणा, बाधाएँ एवं शिक्षा की भूमिका

डॉ० हुस्न आरा

सहायक प्राध्यापक-सह-सुपरवाइजर, राजनीति विज्ञान विभाग, डॉ० एल.के.भी.डी. कॉलेज, ताजपुर, समस्तीपुर

निराला कुमारी

शोधार्थी विश्वविद्यालय राजनीति विज्ञान विभाग, ललित नाराण मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा

सार

भारत देश गांवो का देश है यहां 70 प्रतिशत जनसंख्या गावों में निवास करती है जिसमें से 60 प्रतिशत लोग कृषि से ही अपना जीवन यापन करते है। कृषि से मानव, पशु-पक्षी सभी की आवश्यकताऐं पूरी होती है। ग्राम विकास की बाधाऐं पारम्परिक विधि से खेती करना, सिचाई सुविधाओं का पर्याप्त न होना, कृषि की नई तकनीक का ज्ञान न होना, यातायात के साधनों की कमी, पलायन, बिजली की सुविधाओं का अभाव, किसान निर्धनता व ऋणग्रस्तता से ग्रसित है। ग्रामिणों की आय बढ़ाने के लिए उनका शिक्षत होना आवश्यक है तभी सरकार द्वारा चलाई जा रही (पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम) योजनाओ की सम्पूर्ण जानकारी होगी तभी उनका लाभ उठाकर ही उनकी आय में वृध्द्धि होगी तभी निर्धनता का कुचक्र खत्म होगा। किसान खुशहाल होगा तो देश आर्थिक रूप से समृद्धशाली व सक्षम बनेगा।

कुंजीशब्दः निर्धनता, पंचवर्षीय योजनाऐं, पलायन, समृद्धशाली, कुचक्र व ऋणग्रस्ता।

प्रस्तावना

विश्व की कुल जनसंख्या का 17.5 प्रतिशत जनसंख्या वाला देश भारत गांवों का देश है। इसकी जनसंख्या 1.30 करोड़ के लगभग है देश की जनसंख्या का 70 प्रतिशत जनसंख्या गॉवों में निवास करती है। उसमें से 60 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर हैं। कृषि उत्पादन से ही मानव, पशु-पक्षी सभी की आवश्यकताओं की पूर्ती होती है। देश की जी.डी.पी. में भी 14.6 प्रतिशत कृषि का ही योगदान है। सरकार के बजट पर भी कृषि उपज का सीधा प्रभाव पड़ता है।

फसल ओलावृष्टि, अतिवृष्टि, अकाल, बाढ इत्यादि से प्रभावित होती है और उसका सीधा असर जनता को महँगाई के रूप में झेलना पड़ता है। वह सरकार को भी फसल का नुकसान होने पर बहुत बडी राशि किसानों को मुआवजे के रूप में चुकानी पड़ती है। यदि देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था लड़खड़ा जाती है या विकास नहीं कर पाती तो इसका पूरे देश की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है। अतः ग्रामीण विकास के लिए गांवों का समग्र विकास करना होगा।

ग्रामीण विकास की अवधारणा का सूत्रपात्र महात्मा गांधी के इस कथन से हुआ "भारत की आत्मा गांवों में बसती है जब तक गांवों का विकास नही होगा तब तक आत्मनिर्भर भारत का सपना साकार नहीं हो सकता इसी अवधारणा को स्वीकार करते हुए प्रथम पंचवर्षीय यजना में कृषि विकास को उच्च प्राथमिकता दी गई थी। लाल बहादुर शास्त्री जी ने "जय जवान जय किसान" का नारा देकर कृषि के महत्व को प्रतिष्ठित किया। ग्रामीण विकास में आर्थिक दशा में सुधार के साथ-साथ सामाजिक परिर्वतनों को शामिल करना होगा। ग्रामीण अवधारणा में ग्रामीण विकास, ग्रामीण क्षेत्रों मे कृषि, वानिकी, मत्स्य पालन, ग्रामीण उद्योग एवं हस्त कौशल तथा समाजिक व आर्थिक निमार्ण हेतु उपलब्ध भौतिक व मानवीय साधनों के संपूर्ण उपयोग द्वारा गांवों की जनता की आय व उनके जीवन स्तर में सुधार करके ही उनकी आय में वृद्धि की जा सकती है तभी देश समृद्धशाली राष्ट्र बनेगा।

ग्रामीण विकास की बाधाएँ

ग्रामीण ऋणगृस्तताः भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ऋणग्रस्तता एक विकट समस्या हैं। किसानो द्वारा जो ऋण अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जाते हैं लेकिन आय कम होने के कारण व अपनी उधारी चुका नहीं पाते हैं। जिससे ग्रमीण ऋणग्रस्तता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इससे यह पता चलता है कि भारत में जरूरतमंद किसानों भूमिहीनों एवं कृषक मजदूरों की हालत कितनी दुर्बल हैं। क्योंकि ग्रमीण लोग आय कम होने के कारण जो ऋण लेते है उसे अनुत्पाद कार्यों एवं उपभोग पर विवादो में सामाजिक प्रथाओं/रीति रिवाजों पर व्यय कर देते हैं। जिसके कारण व सूदखारों के शोषण का शिकार होकर अपनी बंधक जमीन को बेचने के लिए मजबूर हो जाते है जिससे समाज में भूस्वामी व भूमिहीन के रूप में समाज का विभाजन हो जाता है। सन् 2002

में भारत में कुल कृषक परिवारों का 49 प्रतिशत ऋणग्रस्त था, आत्म हत्या करने वालो में 15 प्रतिशत संख्या सीमांत किसानों व कृषक मजदूरों की थी। भारत के किसान के लिए यह कहावत ही "दादा कर्जा लेता है और नाती उसको चुकाता रहता है" अर्थात अशिक्षा, अज्ञानता तथा अन्धविश्वास के कारण वह ऋण के मकड घ्जाल से निकल नही पाता है।

किसानों की गरीबी: देश की लगभग एक तिहाई जनसंख्या गांवों मे निवास करती है। उनकी आजीविका का मुख्य साधन भी कृषि ही हैं। गॉवों के विकास में सबसे बड़ी बाधा गरीबी है। गरीबी मनुष्य के स्वाभिमान को ठेस पहुचाती है जिससे उसके व्यक्तित्व का भी सम्पूर्ण विकास नहीं हो पाता है। क्योंकि ग्रामीण लोग न्यूनतम जीवन स्तर को बनाये रखने के लिए चिकित्सा, रोटी, कपड़ा, मकान, चिकित्सा, व स्वास्थ आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते है। भारत में गरीब लोगों की आय औसत एक डॉलर से भी कम है। योजना आयोग ने उपभाग व्यय के अनुसार गरीबी की व्याख्या की उन व्यक्तिों को निर्धन माना हैं जो ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिदिन 2400 कैलोरी तथा शहरी क्षेत्रों में 2100 कैलोरी से कम उपभोग करते है। भारत में उड़ीसा, बिहार एवं उत्तर पूर्वी, राज्यों में अभी भी निर्धनता अनुपात बहुत ऊँचा है। 2005 में लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या गरीब थी राजस्थान का भी लगभग यही हाल था। 2015 के अनुसार यह प्रतिशत 33 प्रतिशत के करीब आ गया है। क्योंकि देश में आय असमानता बहुत ज्यादा जैसे कोरोना काल में 100 उद्योगपतियों की आय इतनी बढ़ी कि प्रत्येक भारतीय को 94000 रूपये दिये जा सकते हैं। इससे ज्यादा आय विषमता क्या होगी। भारत में अधिकांश गरीबी, दलित, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातीयों में पायी जाती है, क्योंकि सामाजिक पिछड़ेपन के कारण ये विकास की धारा से नहीं जुड़ पा रहे है। इसके लिए सामाजिक व राजनैतिक वातावरण भी उत्तरदायी है। जिसके कारण ग्रामीण लोग निर्धनता के कुचक्र से निकल नहीं पाते हैं।

पारम्परिक विधि से खेती करना: अभी भी अधिकांश गांवों में पारम्परिक तरीके से पशुओं की सहायता से खेती होती है। किसान परम्परिक फसल लेने की मानसिकता के कारण वो ही फसलें खेत में बोता है जिससे खेतों की उर्वकता कम हो जाती है। ज्यादा आय देने वाली या नकदी देने वाली फसलों का उत्पादन नहीं करता है। जिससे उसकी आय में वृद्धि नहीं हो पा रहा है। कुछ क्षेत्रों में आधुनिक उपकरणों ट्रेक्टर, ट्रोली, कल्टीवेटर व मशीनों से बीजीरोपण हो रहा हैं। लेकिन उपकरण मँहगे होने के कारण प्रत्येक किसान इनको खरीद नहीं पा रहे हैं। वह खाद, बीज मंहगे होने के कारण किसान खेती में ऊगाई फसल को ही अगली फसल के लिए बीज के रूप में काम लेता है किसान अब आधुनिक उपकरणों का उपयोग करने लगे है। लेकिन गरीब किसान की पहुंच से वे अभी दूर हैं।

सिंचाई की सुविधाओं पर्याप्त न होना: ग्रामीण क्षेत्र सिचाई के लिए नदी, नहरें, बांध नहीं हैं। पारम्परिक स्त्रोत कुंए तालाब व बावड़ी समाप्त होते जा रहे हैं। जिसके कारण किसानों को वर्षा के पानी पर ही निर्भर रहना पड़ता है। जिसका सीधा प्रभाव किसान की आय पर पड़ता है। अधिकांश प्रान्तों में पीने के लिए पानी नहीं है। कहीं पानी है भी तो वह मनुष्य और खेतों दोनों के लिए नुकसानदायक है।

पंचवर्षीय योजनाओं की जानकारी न होना: ग्रामीण लोगों को कर्मचारियों द्वारा योजनाओं की जानकारी नहीं दिये जाने के कारण ग्रामीण लोग इनका फायदा नहीं उठा पाते हैं। गांव में गिरदावर, पटवारी, ग्रामसेवक, स्वास्थ कर्मचारी पूरे समय गांव में न रहने के कारण ग्रामीण लोग शहरों में कार्यालय के चक्कर लगाते रहते हैं। लेकिन कोई सफलता न मिलने के कारण वह गरीब बने हुए है। वे अपना मन मसोक कर रह जाते है।

कृषि की नई तकनीकी का ज्ञान न होना: भारत का किसान अशिक्षित होने व दूर प्रान्तों में रहने के कारण नई तकनीकि के प्रयोग के अभाव में पिछड़ रहा है। जबकि देश में कृषि पर काफी ध्यान दिया जा रहा है। पंजाब, हरियाण, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश में नये कृषि यन्त्रों व कम पानी में सिचाई की फव्वारा पद्धती, बूंद-बूंद पद्धती अपना कर उनकी आय में काफी वृद्धि हो रही है। लेकिन सभी किसानों की आय में वृद्धि हो तभी खुशहाली आएगी।

यातायात के साधनों की कमी: यद्यपि काफी संख्या में गांवों मे प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के तहत सड़कों से जुड़ गये है लेकिन नदी, नालों व पुल न होने के कारण यातायात साधनों की कमी की वजह किसान अपनी फसलों को मंडियों तक नहीं ला पाते है। मजबूरी में व्यापारियों को बेच देते है जिससे उन्हे फसल का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है। कई बार तो फसल का लागत मूल्य भी नहीं मिल पाता है।

शिक्षा से ही ग्रमीण विकास की बाधाऐं दूर होंगी: अधिकांश ग्रामवासी अशिक्षत होने के कारण आज भी उन्हें सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं की जानकारी नहीं हैं जिसके कारण वह पुराने तरीको व उपलब्ध सुविधाओं के आधार पर ही अपना जीवन व्यतीत करने को मजबूर हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि क्षेत्रों, प्रौद्योगिकी क्षेत्र, शिक्षा, चिकित्सा, सुरक्षा के लिए हो रहे विकास इन सबकी जानकारी न होने कारण वह इसका लाभ नही उठा पा रहे है। अत: गांवों की जनसंख्या को शिक्षित करने के लिए शिक्षा की सुदृढ़ व्यवस्था, शिक्षकों की व्यवस्था, नवीन तकनीकी द्वारा विद्यालय की स्थापना होने पर ग्रामीण व शहरी क्षेत्र के मध्य अन्तर कम होगा लोगों को जानकारी होगी गिरदावर, पटवारी, ग्रामसेवक से भी ग्रामीण सवाल जबाव कर सकेगें। विशेष गॉवों में बालिका शिक्षा पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति की शिक्षा पर ध्यान देना होगा क्योंकि बालिका शिक्षा से पूरा परिवार शिक्षित होगा। शिक्षा ही वह ज्वाला है जो किसानों को शोषण से बचा सकती हैं। किसान सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं का समुचित लाभ उठा सकता है। स्त्री शिक्षा के साथ-साथ अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछडा वर्ग को भी शिक्षित करना होगा।

ग्रामीण विकास के लिए भारत सरकार द्वारा योजनाकाल से ही प्रयास किये जा रहे हैं। सामुदायिक विकास, सहकारी कृषि, स्थानीय सहभागिता, न्यूनतम आवश्यकता की अवधारणा, ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक आर्थिक ढाँचे को सुदृढ़ करने पर जोर निर्धनता उन्मूलन, रोजगार के नये अवसरों पर जोर भूमि सुधार, ग्रामीण स्तर पर लोगों की सहभागिता स्थानीय विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए विकास योजनाएँ शुरू करना, तेजी से अधिक समग्र एवं सतत् विकास, निर्धन एवं सीमान्त विशेषत: स्त्रियों का सशक्तिकरण एवं ग्रामीण आर्थिक संरचना का निर्माण है। जिससे क्षेत्रीय सामाजिक व आर्थिक विषमताए कम हो।

सुझाव

सरकार द्वारा काफी प्रयास किये जा रहे हैं। लेकिन यह तब तक सफल नहीं होगें जब तक यह पंक्ति में खड़े अन्तिम व्यक्ति तक नहीं पहुंचगे। मनरेगा मे होने वाले कार्यो में नहरो का निर्माण बाढ़ से बचाने के लिए जो नदियाँ सूखी है उनसे जोड़ना जिससे ग्रमीण क्षेत्रों को इसका लाभ सिंचाई के लिए मिलता

रहेगा जिससे अच्छी फसल होगी। कुओं व हैण्डपम्पों में भी पानी की आवश्यकता बढ़ेगी। अत: ग्रामीण लोग षिक्षित हो रहे सरकारी योजनाओं का लाभ उठा रहे हैं लेकिन सरकार को इसके लिए जमीन स्तर पर लाना होगा जिसे जिनके लिए योजनाएँ बनाई उन्हें उसका पूरा फायदा मिले। किसानों की आय बढ़ेगी तो किसान ऋण के कुचक्र में नहीं फँसेगा और इसमें किसान क्रेडिट कार्ड की भी विशेष भूमिका है। देश का किसान खुशहाल होगा तभी देश आर्थिक रूप से समृद्धशाली व सक्षम बनेगा। गांवों में विलेज इन्टरनेट पार्क बनाये जाए जिससे युवाओं का सारी जानकारी प्राप्त हो सके साथ में वो गांवो से शहरों की तरफ नहीं जाये। ग्रामीण लोगों का विकास और सुविधाओं में विश्वास हो उसमें भविष्य की सोच भी हो।

सन्दर्भ सूची

1. भारतीय अर्थव्यवस्था- डॉ.एल.एन. कोली, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा 2016 पृष्ठ न. 347 से 36
2. कृषि अर्थशास्त्र- डॉ.आर.के.गोविल, डॉ.एस दयाल लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा 2013 पृष्ठ न. 9, 183 से 184
3. ग्रामीण विकास एवं सहकारिता- डॉ.एच.आर.स्वामी, डॉ.बी.पी.गुप्ता 2016-17 आर.बी.डी. पब्लिशिंग हाउस जयपुर पृष्ठ संख्या 1.1 से 1.4, 3.3 से 3.4
4. भारत में आर्थिक पर्यावरण डां वी.पी.गुप्ता, डॉ.एच.आर.स्वामी. आर.बी.डी. प्रकाशन जयपुर 2011-12 पृष्ठ संख्या 29.1 से 29.9, 30.1 से 30.6 31.1 से 31. 10
5. भारत में आर्थिक पर्यावरण- प्रो.डी.आर.जट, डॉ.वी.के. वशिष्ठ, भिण्डा, दीपा जैन अजमेर बुक कम्पनी जयपुर 2009-10 पृष्ठ संख्या 26.1 से 26.11, 27.1 से 27.10, 28.1 से 28.2 तक
6. ग्रामीण विकास योजनाएं पृष्ठ न. 13 से 15
7. सहकारी चिन्तन एवं ग्रामीण विकास- डा.एम.डी. अग्रवाल डॉ. बी.पी.गुप्ता, डॉ.बी.एल माथुर, आर.बी.डी. प्रकाशन जयपुर 2011-2012 पृष्ठ संख्या 27.1 से 27.6

भारतीय दर्शन का इतिहास: एक विवेचन

प्रो० (डॉ०) मीरा कुमारी

प्रधानाचार्य, इतिहास विभाग, श्री अरविन्द महिला कॉलेज, पटना

सारांश

सभ्यता के प्रारम्भ से ही दर्शन विद्यावान् लोगों के बीच विशेष अभिरुचि का विषय रहा है। भारत में वेदों एवं उपनिषदों के समय से ही दार्शनिक जिज्ञासा एवं दार्शनिक चिन्तन का ज्ञानपिपासु पृच्छाशील विद्वानों और बुद्धजीवियों के बीच प्रचलित प्रतिष्ठित रहे। उदाहरण के लिए ऋग्वेद में जहाँ-तहाँ सृष्टि के प्रारम्भ, दृश्यमान जगत् के उपादान द्रव्य एवं रचयिता आदि के सम्बन्ध में काव्यात्मक ढंग से प्रश्न उठाये गये। प्रसिद्ध नारदीय सूक्त इस कोटि की प्रश्नाकुलता तथा जिज्ञासा का श्रेष्ठ निदर्शन है। यहाँ ध्यातव्य है कि ऋग्वेद भाषाबद्ध साहित्य का प्राय: सबसे प्राचीन उदाहरण है। ऋग्वेद का रचना-काल प्राय: 3000 से 1500 ई. पू. के बीच माना जाता है। प्राचीनतम उपनिषद् ईसा के आठवीं शती पूर्व की रचनाएँ माने जाते हैं। उनमें आत्मा के स्वरूप आदि से सम्बद्ध जिज्ञासा सर्वत्र मुखरित है। कहना नहीं होगा कि भारतवर्ष में घटित बाद के दर्शनों के विकास पर उपनिषदों का व्यापक और गम्भीर प्रभाव पड़ा।

मूल शब्द: भारतीय दर्शन, दार्शनिक जिज्ञासा, दार्शनिक चिन्तन

परिचय

ध्यान देने योग्य है कि दर्शन के इतिहास में उसकी परिभाषा, स्वरूप और उसकी प्रमुख समस्याओं की अवधारणा में परिवर्तन होते रहे हैं। प्राचीन काल में दार्शनिक चिन्तन के दो प्रमुख केन्द्र बने, एक भारत और दूसरा यूनान। इन दोनों क्षेत्रों में दर्शन की परिभाषा या परिकल्पना तत्त्व-सम्बन्धी मीमांसा अथवा तत्वज्ञान के रूप में की गयी। यहाँ ज्ञातव्य है कि प्राचीन काल में विज्ञानों का, भौतिक विज्ञान का भी, उदय नहीं हो सका था। फलत: विश्व-जगत् और जीवन से सम्बन्धित सारे प्रश्न दर्शन में समाहित होते थे। प्राचीन यूनान में थेलीज जैसे विचारकों ने यह प्रश्न पूछा कि दृश्यमान जगत् का मूल उपादान द्रव्य क्या है। विभिन्न दार्शनिकों ने उक्त प्रश्न के अलग-अलग उत्तर दिये। प्राचीन काल में आधुनिक किस्म की प्रयोग-विधियों का अविष्कार नहीं हुआ था, न दूरवीक्षण तथा अणुवीक्षण जैसे यन्त्रों का ही। उस युग में ज्ञान का स्रोत चक्षु आदि इन्द्रियाँ थीं और एक सीमा तक अनुमान करनेवाली बुद्धि। इन्द्रियों के अनुभव के आलोक में यूनान और अपने देश में भी यह कल्पना की गयी कि गोचर वस्तुओं का उपादान कारण पाँच या चार महाभूत हैं। यूनान के प्रारम्भिक विचारकों ने पानी, हवा, अग्नि में से एक या दूसरे महाभूत को मूल तत्त्व घोषित किया, जबकि भारतवर्ष में न्याय वैशेषिक दर्शनों ने पाँचों महाभूतों को मूल तत्त्व स्वीकर किया। उपनिषदों में महाभूतों का स्थान आत्मा या ब्रह्म ने ले लिया और दर्शन का विषय आत्मा के स्वरूप का निर्धारण बन गया। विश्व का मूलतत्व ब्रह्म या आत्मा है और दर्शन का उद्देश्य उक्त आत्मा के ज्ञान का सम्पादन है। इस प्रकार दर्शन को तत्वज्ञान के रूप में प्रकल्पित किया गया। यहाँ ध्यातव्य है कि जहाँ न्याय-वैशेषिक दर्शनों में प्रमेय अनेक हैं, वहाँ वेदान्त कही जाने वाली विचार- पद्धतियों में एकमात्र ज्ञेय तत्त्व आत्मा या ब्रह्म है।

तो, प्राचीनों के अनुसार दर्शन तत्वज्ञान है और आत्माज्ञान या आत्मान्वेषण। दर्शन की दूसरी प्रमुख शाखा ज्ञानमीमांसा है, जो ज्ञान के स्वरूप और साधनों पर विचार करती है। भारतवर्ष में इस शाखा का सबसे अधिक विकास न्यायदर्शन में हुआ, जिसने प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाणों को, अर्थात् उनके स्वरूप-निर्धारण को, चिन्तन का खघस विषय बनाया। बाहरवीं शताब्दी के बाद तो, तथाकथित नव्यन्याय के प्रवर्तन के बाद, न्यायदर्शन पूर्णतया प्रमाण मीमांसा में समाहित हो गया।

आज दर्शन की उक्त परिभाषा, यह कि दर्शन तत्त्वज्ञान या तत्त्वमीमांसा है, स्वीकार्य नहीं रह गयी है। जिसे हम तत्व कहते हैं, उसके अनेक रूप हैं। विश्व-जगत् में प्रधानता भौतिक तत्व या तत्वों की है। हमारी पृथ्वी, सौरमण्डल और असंख्य तारक-समूह भौतिक तत्वों से निर्मित है; यही बात हमारे शरीर एवं इन्द्रियों पर भी लागू है। आत्मा की सत्ता आज भी सन्दिग्ध बनी हुई है। किन्तु शरीर और भौतिक जगत् के विविध रूपों और निर्मायक तत्वों का अध्ययन विभिन्न भौतिक विज्ञान करते हैं। आज वैशेषिक दर्शन द्वारा दी गयी जल, वायु, अग्नि आदि की परिभाषाएँ प्रारम्भिक जान पड़ती हैं। प्राचीन यूनानी विचारकों और महर्षि कणाद को यह पता नहीं था कि जिसे हम वायु या जल कहते हैं, वह एक रासायनिक तत्त्व नहीं है, अपितु एकाधिक तत्वों का मिश्रण या यौगिक है। ध्यान देने की बात यह है कि यदि हम वेदान्त के इस सिद्धान्त को मानकर न चलें कि विश्व का मूलतत्त्व आत्मा या ब्रह्म है, तो यह स्वीकार करने का कोई कारण नहीं रह जाता कि दर्शन का विषय विश्व का मूल तत्त्व है। विश्व का मूल तत्व एक या अनेक कोटियों के परमाणु भी हो सकते हैं और ऋणात्मक एवं धनात्मक विद्युदणु या विद्युत-तरंगें अथवा चुम्बकीय क्षेत्र या और विद्युत क्षेत्र। निश्चय ही दर्शन इन तत्त्वों का अध्ययन नहीं कर सकता।

दर्शन के इतिहास से एक और बात सामने आती है। कहा गया है कि 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' (हर मष्तिक या खोपड़ी में अलग बुद्धि या विचार होते हैं) और यह कि 'नैको मुनिर्यस्य वच: प्रमाणम्' (कोई एक भी मुनि नहीं जिसका वचन प्रमाण हो) तात्पर्य यह है कि विभिन्न दार्शनिक विचारकों ने अलग-अलग मत प्रतिपादित किये हैं।

प्राचीन काल में अपने देश में छह आस्तिक और उतने ही नास्तिक दर्शन बने। बाद में वेदान्त कहे जाने वाले दर्शन के अन्तर्गत भी लगभग उतने ही सम्प्रदाय बन गये, शैव-शाक्त दर्शन अलग बने। यदि हम पश्चिम की ओर देखे तो वहाँ प्राचीन यूनानी विचारकों से शुरू करके अब तक कई दर्जन दार्शनिक सम्प्रदाय बन-बिगड़ चुके हैं। यह स्थिति होने के कारण दर्शन के इतिहास में कई बार यह प्रश्न उठाया गया कि दार्शनिकों के बीच ऐसे भयंकर मतभेद क्यों होते हैं। (अपने देश में काफी पूर्व सम्भवत: ईसा की दूसरी शताब्दी में- नागार्जुन ने समस्त व्याख्यात्मक प्रत्ययों या अवधारणाओं का खण्डन करते हुए दर्शन की चिन्तन प्रणाली के आगे प्रश्न-चिह्न लगाया)। आधुनिक यूरोपीय दर्शन के जन्मदाता फ्रांस के दार्शनिक देकार्त ने उक्त प्रश्न से उलझते हुए यह प्रतिपादित किया कि दर्शन को गणित की पद्धति अपनानी चाहिए जहाँ संशय-संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रहती।

पश्चिम के दार्शनिक-इतिहास में यह प्रश्न बाद में भी कई बार उठाया गया है। इसका प्रमुख कारण विज्ञान की निरन्तर घटित होती हुई प्रगति, जिसने आज की अभूतपूर्व औद्योगिक उन्नति एवं तकनीकी सफलताओं को सम्भव बनाया है, रही है। योरोप के चिन्तकों ने इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि दर्शन के क्षेत्र में क्यों निरन्तर मतभेद बने रहते हैं और क्यों वहाँ विज्ञान की प्रगति होती दिखाई नहीं देती, अनेकविध सुझाव दिये हैं। इस सन्दर्भ में यहाँ प्रसिद्ध दार्शनिक बर्ट्राण्ड रसेल का उल्लेख किया जा सकता है। दर्शन के उस विभाग या शाखा के सामने, जिसे तत्व-मीमांसा कहते हैं, तथाकथित तर्कनिष्ठ अनुभववादियों और भाववादियों (Logical Empiricists or Positivicsts) ने विशेष प्रखर और गम्भीर या ख़तरनाक प्रश्न-चिह्न लगाया।

यह सर्वविदित है कि वैज्ञानिक मन्तव्यों की परीक्षा-इन्द्रिय अनुभव में उपलब्ध अर्थात् गोचर तथ्यों की कसौटी पर की जाती है। स्थिति यह है कि परम्परागत तत्व मीमांसा के अधिकांश वक्तव्यों या मन्तव्यों की वैसी परीक्षा सम्भव नहीं है। यही कारण हैं कि तत्त्व-मीमांसा के सिद्धान्त ऐसी अटकलबाजियों का रूप ले लेते हैं, जिनका गोचर तथ्यों से सम्बन्ध नहीं जुड़ पाता। यही मूल कारण है कि प्राचीन कल्पनाविलासी दर्शन एक-दूसरे का खण्डन करते हुए किसी भी मुद्दे पर एकमत नहीं हो पाते। हमारी विश्व-सम्बन्धी अवधारणाओं का सही आधार वैज्ञानिक अनुसन्धान एवं सिद्धान्त ही हो सकते हैं। कहना नहीं होगा कि वैज्ञानिक अन्वेषण-प्रणाली का महत्त्व उसकी सफलताओं द्वारा निर्मित प्रौद्योगिक तथा तकनीकी प्रगति से प्रमाणित है। तर्कनिष्ठ अनुभववादियों ने परम्परागत दर्शन की आलोचना करते हुए उसे आघात देनेवाली सबसे अधिक तीक्ष्ण बात यह कही कि तत्त्व-मीमांसा के कथन न केवल सही होते हैं, अपितु निरर्थक होते हैं। सार्थक कथन केवल वे हैं जिनका गोचर तथ्यों की कसौटी पर निरीक्षण किया जा सके। चूँकि परम्परित तत्त्व-मीमांसा के वक्तव्य (जैसे, आत्मा अमर है, दुनिया का रचयिता ईश्वर है, हम इस जन्म में पिछले जन्म के कर्मों का फल भोगते हैं, आदि) गोचर अनुभव या इन्द्रियज्ञान द्वारा परीक्षणीय नहीं होते-जैसे कि विज्ञान के कथन होते हैं- इसलिए वे अर्थहीन माने जाने चाहिए। तात्पर्य यह है कि अपने मन्तव्यों की परीक्षा में विज्ञान जिस प्रणाली का उपयोग करता है वही प्रणाली विश्वसनीय ज्ञान दे सकती है। दर्शन वैज्ञानिक अन्वेषण-प्रणाली का आश्रय नहीं लेता, इसलिए उसकी प्रगति होती नहीं दिखाई देती और वह निरन्तर मतभेदों का क्रीड़ाक्षेत्र बना रहता है। निष्कर्ष यह है कि दर्शन का कोई मन्तव्य निश्चयात्मक नहीं हो पाता।

दर्शन और युगीन संस्कृति

ऊपर हमने तर्कनिष्ठ अनुभववादियों का दर्शनविरोधी मन्तव्य प्रस्तुत किया है। उनके मतानुसार यह कथन कि 'ईश्वर जगत् का कर्ता है' अथवा 'मृत्यु के बाद आत्मा स्वर्ग या नरक में जाती है' न सही कहा जा सकता है न गलत, वह वास्तव में निरर्थक है।

यहाँ एक अजीब स्थिति सामने आती है। तर्कनिष्ठ अनुभववादियों का उक्त मन्तव्य एक प्रकार का दार्शनिक मतवाद है, न कि वैज्ञानिक। सार्थक कथन की यह परिभाषा और कसौटी कि वह इन्द्रियबोध द्वारा परीक्षणीय हो, स्वयं अपने पर लागू नहीं होती; उक्त कसौटी या परिभाषा किसी गोचर तथ्य द्वारा सत्यापनीय या परीक्षणीय नहीं है। वास्तव में वह एक प्रस्ताव मात्र है। यह प्रस्ताव हमें रुचिकर लगता है तो इसलिए कि आज हम विज्ञान की सफलता से नितान्त अभिभूत महसूस करते हैं। विज्ञान आज के युग का सबसे बड़ा सरोकार और चमत्कार है। वह दर्शन पर हावी है। ध्यातव्य है कि पश्चिम देशों में विज्ञान दर्शन नाम की दर्शन की एक नयी शाखा ही गठित हो गयी है, जिसका विशेष अनुशीलन किया जा रहा है। तथ्य यह है कि किसी भी देश या युग का दर्शन संस्कृति के उस क्षेत्र या उन क्षेत्रों को अपना विषय बनाता है जो उस देश या युग के लोगों को महत्त्वपूर्ण जान पड़ते हैं। उदाहरण के लिए, हमारे देश के प्राचीन काल में बुद्धि सम्पन्न विचारकों का सबसे बड़ा सरोकार मोक्ष था। फलत: यहाँ मोक्ष के सम्बन्ध में नितान्त गम्भीर और विविध चिन्तन हुआ। सांख्य और वेदान्त ने मोक्ष की एक अवधारणा पल्लवित की, जैनों और बौद्धों ने दूसरी अवधारणाएँ निरूपित कीं। उक्त तीनों के अनुसार किसी-न-किसी रूप में जीव-मुक्ति सम्भव है, जबकि रामानुज आदि भक्त दार्शनिकों के मत में वैसी मुक्ति सम्भव नहीं है। इसी प्रकार मोक्ष के साधनों के बारे में अनेक मत प्रतिपादित किये गये और अनेक मार्गों की सिफारिश की गयी-जैसे ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग, भक्तिमार्ग, योगमार्ग और अनेकविध तान्त्रिक साधनाएँ। राजनीति के क्षेत्र में हमारे देश में प्राय: राजतंत्र चला। यूनान में मुख्यत: गणराज्य विकसित हुए। फलत: वहाँ के दार्शनिकों ने राज्य के स्वरूप और आदर्शों पर अनेकविध चिन्तन किया। वर्तमान योरप में भी जनतन्त्र, समाजवाद, साम्यवाद, आदि अनेक राजनीतिक विचारधाराओं का प्रतिपादन हुआ। पश्चिमी देशों में यूनानियों के समय से ही नीतिशास्त्र एक महत्वपूर्ण दार्शनिक अनुशासन रहा है। अपने देश के दार्शनिक मोक्ष-दर्शन में इतनी अधिक रुचि लेते थे कि उन्होंने नैतिकता तथा राज्य-सम्बन्धी प्रश्नों को महत्त्व नहीं दिया। कर्तव्याकर्तव्य, राज्य आदि के सम्बन्ध में सोचने का भार स्मृतिकारों पर डाल दिया गया, जो चिन्तन एवं विमर्श की अपेक्षा उपदेश ही अधिक करते रहे।

दर्शन की भारतीय अवधारणा

ऊपर हमने तर्कनिष्ठ अनुभववाद का जिक्र किया। तत्त्व-दर्शन का निराकरण करते हुए उक्त वाद के समर्थकों ने दर्शन को पुन: परिभाषित किया। उनके अनुसार दर्शन का कार्य प्रत्ययात्मक विश्लेषण (conceptual analysis) है। दर्शन विभिन्न प्रत्ययों एवं वाक्यों या प्रकथनों का विश्लेषण इस दृष्टि से करता है कि उनका इन्द्रिय अनुभव अथवा गोचर जगत से सम्बन्ध स्पष्ट किया जाये। जिस कथन का सम्बन्ध गोचर जगत से नहीं दिखाया जा सकता, उसके बारे में यह शंका होनी चाहिए कि वह सार्थक भी है या नहीं। उसी प्रकार विभिन्न दूसरे सम्प्रत्ययों का भी विश्लेषण होना चाहिए। व्यवहार में तर्कनिष्ठ अनुभववादियों ने अपना ध्यान मुख्यतया विज्ञान के प्रत्ययों और कथनों पर केन्द्रित किया। उनके मत में नीतिशास्त्र, धर्म आदि के क्षेत्रों से सम्बन्धित कथन

अनुभव-जगत से सम्बन्ध न रखने के कारण दार्शनिक विश्लेषण का विषय नहीं होते; दर्शन वैसे कथनों की निरर्थकता ही संकेतित कर सकता है। दूसरे महायुद्ध का अन्त होते-होते तर्कनिष्ठ अनुभववाद स्वयं ही निराकृत होने लगा। विचारकों ने यह पाया कि जहाँ एक ओर उक्त सिद्धान्त आन्तरिक विसंगतियों से पीड़ित है, वहीं दूसरी ओर वह हमारे नैतिक निर्णयों के बारे में कोई प्रामाणिक कथन करने में हिचकता है। मानव-जाति की नैतिक एवं अध्यात्मिक जरूरतों और अनुभवों की उपेक्षा करने वाला दर्शन कालान्तर में स्वयं को बदनाम कर लेता है।

यह कहना काफी नहीं कि हमारे नैतिकता-सम्बन्धी कथन ऐन्द्रियबोध द्वारा सत्यापनीय या परीक्षणीय नहीं हैं और इसलिए निरर्थक हैं। नैतिकता के बिना मनुष्य अर्थपूर्ण (विशेषत: सामाजिक) जीवन नहीं जी सकता। यही बात आध्यात्मिक तथा सौन्दर्यपरक मूल्यों पर लागू होती है। वास्तव में दर्शन जीवन-मूल्यों की उपेक्षा नहीं कर सकता। उसकी दृष्टि में वैज्ञानिक बोध भी एक प्रकार का मूल्य है, किन्तु वह बोध एकमात्र मूल्य नहीं है।

सम्प्रत्ययों (concepts) का स्पष्टीकरण भी सरल व्यापार नहीं है। तर्कनिष्ठ अनुभववाद के विरुद्ध इग्लैण्ड के ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में एक अन्य दार्शनिक सम्प्रदाय का उदय हुआ जो प्रत्ययों आदि के विश्लेषणात्मक बोध के लिए बोलचाल की भाषा का आश्रय लेता है। यहाँ इन विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों का विवरण देना अभीष्ट नहीं है। इस सन्दर्भ में हम दो एक अपेक्षित बातें कहकर आगे बढ़ेंगे। हम मानते हैं कि किसी भी प्रत्यय या अवधारणा का विश्लेषण खास प्रयोजन या दृष्टि का अपेक्षी होता है। हमारी मान्यता है कि दर्शन की विशेष दृष्टि मूल्य-परक होती और होनी चाहिए। उदाहरण के लिए हम कारणता के प्रत्यय का विश्लेषण इस दृष्टि से करते हैं कि ज्ञान-प्राप्ति के अनुष्ठान में हम उसकी उपयोगिता और महत्त्व को ठीक-ठाक आँक सकें। किसी कथन के ठीक अभिप्राय का निश्चय, जो विश्लेषण द्वारा सम्भव होता है, यह जानने के लिए किया जाता है कि वह कथन कहाँ तक यथार्थ या वास्तविकता को पकड़ता या पकड़ पाता है। वैज्ञानिक बोध का विश्लेषण भी इसी दृष्टि से किया जाता है-अर्थात यथार्थ की सम्बद्धता में उसकी सत्यता या सत्यांश का निर्धारण करने के लिए। जिसे हम विज्ञान-दर्शन कहते हैं उसका, दर्शन की निजी दृष्टि में यही उपयोग है कि वह वैज्ञानिक शोध के स्वरूप और सीमाओं की समुचित अवगति या जानकारी दे। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दर्शन का मुख्य कार्य विभिन्न कोटियों के बोधों या अनुभवों की समीक्षात्मक अवगति है। यहाँ याद रखना चाहिए कि दर्शन उसी अनुभव का विचार कर सकता है जो भाषाबद्ध किया जा चुका है, अर्थात् प्रकथनों के रूप में प्रकट हो चुका है।

किन्तु विज्ञान-दर्शन, जो वैज्ञानिक बोध की समीक्षा करता है, विज्ञान की सहायक विद्या मात्र नहीं है। दर्शन का उद्देश्य साक्षात् रूप में वैज्ञानिक अन्वेषणों को अग्रसर करना भी नहीं है। तात्पर्य यह है कि दर्शन नामक विद्या विज्ञान की परिचारिका भर नहीं है। माना जा सकता है कि वैज्ञानिक अन्वेषण महत्त्वपूर्ण वस्तु है, आज के युग में यह बात स्वयं सिद्ध जान पड़ती है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि वर्तमान युग में जीवन के दूसरे मूल्यों और उनका अन्वेषण महत्वपूर्ण नहीं रहे। हम जानते हैं कि काव्य, कला, संगीत तथा नैतिकता मानव-जीवन के लिए सदा से महत्त्वपूर्ण रहे हैं और आगे भी रहेंगे। दर्शन हमारे सभी ऐसे मूल्यों के स्वरूप का विचार करता है जो मानव एवं जीवन को गुणात्मक उत्कर्ष देने वाले हैं। हम मानते हैं कि वैज्ञानिक शोध एवं चिन्तन भी केवल व्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी नहीं हैं, वे मानव बुद्धि या मस्तिष्क को गुणात्मक वैशिष्ट्य भी प्रदान करते हैं। वास्तव में वह प्रत्येक क्रिया को, जो केवल उपयोगिता के लिए नहीं होती अपितु मानव-व्यक्तित्व को गुणात्मक उत्कर्ष देने वाली होती है, दर्शन का विषय है। उपयोगी क्रियाएँ धन-सम्पत्ति तथा शक्ति के लिए अनुष्ठित होती हैं। वे मुख्यत: मनुष्य के भौतिक तथा जैवी जीवन को प्रभावित करती हैं, वे खास तरह के मनोभावों की पुष्टि के लिए ही हितकर होती हैं। किन्तु वे व्यक्तित्व का गुणात्मक विकास करती हैं, इसमें सन्देह है। हमारे व्यक्तित्व का वैसा विकास निष्काम भाव से ज्ञान-सम्पादन, नैतिक कर्म (जिसका उद्देश्य न्याय- धर्म की रक्षा एवं परहित-साधन होता है) तथा काव्य- साहित्य एवं कलाओं के आस्वाद द्वारा घटित होता है। हम मानते हैं कि दर्शन का कार्य उन सब मानवीय क्रियाओं की समीक्षित चेतना है, जिनका लक्ष्य गुणात्मक उत्कर्ष की प्राप्ति है-अथवा ऐसे आनन्द की प्राप्ति जो व्यक्तित्व की गुणात्मक ऊर्ध्व गति से सहचरित रहता है। विशेषत: काव्य-साहित्य और विभिन्न विद्याओं का अनुशीलन उक्त कोटि की क्रियाएँ हैं।

नैतिक कर्तव्य का पालन प्राय: सदैव सन्तोषकर होता है, भले ही उस कर्तव्य पालन के लिए धन, समय, शक्ति आदि का कष्टकर व्यय करना पड़े। कर्तव्य-पालन का सुख दूसरे सुखों से भिन्न कोटि का होता है। वह अन्तरात्मा का सुख होता है। जो महाप्राण व्यक्ति को अपने स्वार्थ का हनन करके परहित-साधना करता है, उसे खघस तरह का आनन्द होता है। गुणात्मक दृष्टि से यह आनन्द उच्चतर नैतिक धरातल पर संक्रमण या विचरण करने का आनन्द है। तात्पर्य यह है कि स्वभावत: अपनी चेतना-वृत्तियों के उत्थान की कामना करता है। जब कोई ग्रन्थ, कलाकृति या शास्त्रीय आलेख हमारी चेतनाओं को वैसे उन्नयन या उत्थान का अवसर देता है तो वह रुचिकर एवं आनन्दप्रद प्रतीत होता है।

हमारी धारणा के अनुसार उक्त कोटि के गुणात्मक प्रभेदों को देखना, समझना-और समझाने के लिए व्याख्या-सूत्रों की उद्भावना करना-दर्शन का प्रमुख कार्य है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जहाँ विभिन्न भौतिक विज्ञान अपने क्षेत्र के तत्वों या शक्तियों का मात्राधर्मी अध्ययन करते हैं, वहाँ दर्शन की विभिन्न शाखाएँ विभिन्न कोटियों के गुणात्मक प्रभेदों का अनुशीलन करती हैं। विज्ञान का बोध हमें वस्तुओं एवं शक्तियों पर नियंत्रण की क्षमता देता है, दर्शन का कोई अंग वैसी क्षमता नहीं देता। वह केवल हमारी दृष्टि या चेतना का विस्तार एवं गुणात्मक परिष्कार करता है। इस परिप्रेक्ष्य में देखने पर हम पायेंगे कि जिन्हें हम मानवीय विद्याएँ कहते हैं। अर्थात नर विज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि-उनकी स्थिति कहीं भौतिक विज्ञानों और दर्शन के बीच में है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जहाँ विज्ञान और यहाँ हमारा मतलब मुख्यत: भौतिक विज्ञानों से है, हमें भौतिक परिवेश पर अर्थात प्राकृतिक जगत पर नियन्त्रण की क्षमता देता है, वहीं दर्शन का कार्य हमारे गुणात्मक बोध और जीवन को आगे बढ़ाता है। कहना ना होगा कि यह बोध और क्रियाएँ हमारे आन्तरिक, प्रतीकबद्ध या भाषाश्रित जीवन का अंग हैं।

क्या दर्शन आत्मज्ञान है?

प्राचीन उपनिषद् अथवा वेदान्त और दूसरे भारतीय दर्शन भी यह प्रतिपादित करते हैं कि मोक्ष के साधक को आत्मज्ञान सम्पादित करना चाहिए। फलत: भारतवर्ष में क्रमश: यह मत ग्राह्य हुआ कि दर्शन का प्रमुख लक्ष्य आत्म-बोध है-जो मोक्ष प्राप्ति का अन्यतम साधन है। ध्यातव्य है कि भारतीय दर्शन मनुष्य में ही नहीं, पशु-पक्षियों एवं कीट-पतिंगों में भी समान आत्माओं की उपस्थिति मानता है। इसके विपरीत ईसाई धर्म में माना जाता है कि आत्मा केवल मनुष्य

में होती है, अन्य प्राणियों में नहीं। भारतीय दर्शन के सन्दर्भ में दूसरी महत्व की बात यह है कि आत्मा एकरूप, निर्विकार मानी जाती है। उसके स्वरूप को सदा के लिए जान लिया जा सकता है। हमारा मत इस परम्परागत मन्तव्य से भिन्न है। हमारे अनुसार साहित्य और दर्शन दोनों का विषय मनुष्य है। साहित्य में हम प्रकृति तथा दूसरे जीवों को मनुष्य की दृष्टि से देखते और बोध का विषय बनाते हैं। तुलसीदास ने कहा कि काव्य साहित्य का वास्तविक कार्य ईश्वर का गुणगान होना चाहिए न कि प्राकृत नर का। इसके विपरीत हम साहित्य में मनुष्य को ही प्रतिष्ठित करने की सिफारिश कर रहे हैं। राम और कृष्ण वहीं तक काव्य साहित्य के विषय बन सके, जहाँ तक उन्होंने मनुष्योजित कार्य-कलाप किये।

इस प्रकार-जैसा कि अंग्रेजी कवि पोप ने कहा है-हमारे और दर्शन के, अध्ययन-अनुशीलन का प्रमुख, शायद एकमात्र, विषय मनुष्य है। और यहाँ यह दृष्टव्य है कि मनुष्य एक ऐतिहासिक एवं विकासशील प्राणी है। मनुष्य का ज्ञान निरन्तर विकसित हो रहा है, जिसका मतलब है कि उसकी चेतना निरन्तर प्रसरणशील है। यह चेतना तथ्य-जगत से सम्बन्धित रहती है, और मूल्य-जगत से भी। तात्पर्य यह कि मनुष्य का जगत्-बोध, आत्म-बोध एवं मूल्य-बोध ये सब निरन्तर परिवर्तित और विकसित हो रहे हैं। प्राचीन संस्कृत भाषा में जहाँ 'संसार' एवं 'जगत्' विश्व की गतिमयता को रेखांकित करते हैं, वहाँ पृथ्वी के 'अचला' जैसे नाम यह बताते हैं कि प्राचीन लोग धरती की गतिमयता से परिचित न थे। मतलब यह है कि आज का खगोलशास्त्र प्राचीन खगोलविद्या से भिन्न है, इसी प्रकार हमारा प्रकृति-जगत का ज्ञान निरन्तर बदलता-विकसता रहा है। वैसे ही हमारे मूल्यबोध में भी परिवर्तन हुआ है, होता रहा है। आज के जनतन्त्री युग में हम यह स्वीकार नहीं करते कि तथाकथित राजा या शासक में देवता निवास करता या करती है, या यह कि वह मनुष्य रूप में देवता होता है। इसी प्रकार आज हम स्त्री के सतीत्व को उतना महत्व नहीं देते और न नौकरों की नमकहलाली पर ही निर्भर कर पाते हैं। आज फैक्ट्री के मजदूर यूनियन बनाते और विद्रोह का पाठ पढ़ते हैं। आज के बेटा-बेटी माता-पिता का उतना आज्ञा-पालन और सेवा नहीं करते जैसा कि श्रवण कुमार की और राम की कथा में प्रतिफलित है।

आज हम वेदों और शास्त्रों में भी पूर्व युगों की जैसी आस्था नहीं रखते। आज के अनेक हिन्दू मृतक बाप-दादा का श्राद्ध करना, उनके उपलक्ष्य में प्रतिवर्ष ब्राह्मणों को खिलाना आवश्यक कर्तव्य नहीं मानते। तात्पर्य यह है कि आज का नीतिबोध पुराने युगों से नितान्त भिन्न होता जा रहा है। ध्यान देने की बात यह है कि इस परिवर्तित मूल्यबोध और जगतबोध का भी वाहक मनुष्य होता है। इस मनुष्य का, इन्हीं कारणों से, चेतनाधर्मी स्वभाव या स्वरूप बदलता जा रहा है। दर्शन इस बदलते विकसित होते हुए चेतनाधर्मी मनुष्य के स्वरूप का अध्ययन-अनुशीलन है। जहाँ विभिन्न मानवीय विज्ञान उक्त मनुष्य को यथार्थ स्थिति या यथार्थता को पकड़ने की कोशिश करते हैं, वहाँ दर्शन उसका अनुशीलन मनुष्य के गुणात्मक विकास की दृष्टि से करता है। एक और बात है। दर्शन जिस मनुष्य का अध्ययन करता है वह मात्र इन्द्रियगोचर भौतिक इकाई नहीं है। मनुष्य नाम का प्राणी अपनी विकासमान, चेतनाधर्मी संस्कृति का वाहक है; उस संस्कृति का जो मुख्यतया भाषा आदि के प्रतीकों में रूप में लाभ करती है और जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी विरासत के रूप में संक्रान्त होती चलती है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि दर्शन का विषय मनुष्य की वे प्रतीकबद्ध संस्कृतिक क्रियाएँ अथवा संस्कृतिक रचनाएँ हैं जो प्रतीकों का आश्रय लेकर अपने को आपेक्षिक अर्थ में स्थिर बनातीं चलती हैं। दर्शन मनुष्य का अध्ययन है, लेकिन वह मनुष्य के भौतिक अस्तित्व या व्यक्तित्व का अध्ययन नहीं करता। इसके विपरीत वह मनुष्य की उन संस्कृतिक क्रियाओं का अनुशीलन करता है जो उसमें गुणात्मक उत्कर्ष का आधान करती हैं। इस अर्थ में दर्शन मनुष्य की उच्चतम संस्कृतिक क्रियाओं की आत्मचेतना है। दर्शन मनुष्य के संस्कृतिक आत्म (Cultural self) का अनुशीलन और बोध है।

दर्शन का प्रस्थान बिन्दु

नैतिक बोध की भाँति अध्यात्म अथवा रिलीजन के क्षेत्र में भी मनुष्य का मूल्यबोध बदल रहा है। आज हम उस कर्मयोगी सन्त को, जो गाँधी की भाँति जनहित में त्याग का जीवन व्यतीत करता है, अधिक मान्यता देते हैं-उस सन्त की अपेक्षा जो हिमालय की कन्दराओं में प्रविष्ट होकर मोक्ष-साधना करने का आडम्बर करता है। द्रष्टव्य है कि परम सन्त रामकृष्ण परमहंस ने अपने प्रिय शिष्य स्वामी विवेकानन्द को देश को नया जागरण-सन्देश और विवेक देने की प्रेरणा दी थी। दर्शन का एक महत्वपूर्ण अंग, कहना चाहिए उसका आधारभूत अनुशासन, ज्ञान-मीमांसा है, जिसमें ज्ञान के सम्पादन एवं प्रमाणीकरण की प्रक्रियाओं पर विचार होता है इधर घटित हुई विज्ञान की अभूतपूर्व प्रगति ने दार्शनिक जगत् में खलबली उत्पन्न कर दी है। प्रश्न उठता है कि दार्शनिक विचारकों के बीच इतने अधिक मतभेद क्यों बने रहते हैं? इस प्रश्न का समुचित समाधान दर्शन की ज्ञान-मीमांसा नामक शाखा को दूरगामी, तलस्पर्शी आत्म-समीक्षण की चुनौती और प्रेरणा देता है।

प्रश्न है, अन्ततः दर्शन के वक्तव्य किस चीज के बारे में होते हैं? दर्शन के किसी क्षेत्र में परस्पर विरोधी या भिन्नता रखने वाले वक्तव्यों या प्रकथनों के बीच सही-गलत का कैसे निर्णय किया जाये? क्या दर्शन के किसी क्षेत्र में निश्चयात्मक ज्ञान हो सकता है? क्या दर्शन के क्षेत्र में कुछ ऐसे तत्व होते हैं, जिनके आधार पर विभिन्न मन्तव्यों को सही या गलत अथवा अंशतः सत्य घोषित किया जा सके? ये बड़े प्रश्न हैं, इन और ऐसे प्रश्नों पर प्रत्येक युग के विचारकों को नये सिरे से सोचना पड़ता है। आज हमारे देश के दर्शन में गतिरोध की स्थिति है। यदि हमारे विचारक उक्त प्रश्नों पर जिम्मेदारी से और स्वतंत्र भाव से, पूर्व और पश्चिम की इधर तक की दार्शनिक प्रगति के आलोक में, गम्भीर चिन्तन शुरू करें तो निश्चय ही हमारे दर्शन को नयी गति और मौलिक दिशा या दिशाएँ प्राप्त हो सकती हैं।

कुछ पुराने शिक्षक यह मान्यता रखते हैं कि दर्शन के प्रश्न और समस्याएँ सर्वकालिक हैं और यह कि उनके बारे में प्राचीन युगों का चिन्तन आज भी उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि पूर्व युगों में था। इस मानसिकता को पालते हुए दर्शन के कुछ विद्यार्थी और पोषक यह समझते हैं कि दर्शन के विशिष्ट क्षेत्र में नये चिन्तन की अपेक्षा नहीं है और यह कि प्राचीन दर्शनों का अनुशीलन जीवन की अर्थवत्ता एवं लक्ष्य के बारे में सर्वकालीन प्रासंगिकता रखता है।

किन्तु यह धारणा सर्वथा स्वीकार करने योग्य नहीं है। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि प्राचीन विचारकों द्वारा संकेतित धर्म, अर्थ तथा काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ आज भी सर्वग्राह्य हैं। किन्तु तथ्य यह है कि प्रत्येक युग और समाज उक्त पुरुषार्थ को अपने ढंग से परिभाषित तथा व्याख्यायित करता है। हमारे प्राचीन स्मृतिकार तथा धर्मसूत्रों के प्रणेता समाज-व्यवस्था और व्यक्ति-जीवन की चर्या के बारे में कुछ विचार रखते थे, आज वे विचार अपने मूल रूप

में ग्रहण नहीं किये जा सकते। आज विभिन्न कार्यक्षेत्रों में रिटायरमेण्ट अथवा सेना-निवृत्ति की अवस्था स्वीकार की जा सकती है, सम्भवत: पुराने युगों में तुलनीय नियम नहीं थे। उस समय आदर्श स्थिति यह समझी जाती थी कि व्यक्ति पचास वर्ष पार करते हुए वानप्रस्थी बन जाए और इसके बाद संन्यासी। आज जनसंख्या के विस्फोट के युग में धरती पर ऐसे स्थान नहीं रह गये हैं जहाँ वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रमों में प्रविष्ट होने वाले जन फल आदि का आहार लेते हुए जीवन-यापन कर सकें। यों आज भी श्री अरविन्द, महर्षि रमण तथा गाँधी जी के कुछ अनुयायी आश्रमों में रहने की सुविधा पा सके हैं, किन्तु वस्तुत: वैसी सुविधाएँ हर किसी को उपलब्ध नहीं हैं। निष्कर्ष यह कि इतिहास के बदलते माहौल में हमारी जीवन सम्बन्धी समस्याओं एवं मान्यताओं का स्वरूप भी बहुत कुछ बदल गया है। ध्यातव्य है कि हमारे दर्शन और हिन्दू-संस्कृति के अन्यतम व्याख्याता डॉ० राधाकष्णन् प्राचीन अर्थ में न वानप्रस्थी बने न संन्यासी।

निष्कर्ष

दार्शनिक चिन्तन के उपयोग को समझने की कोशिश में प्रस्तुत लेखक ने यह अभिमत प्रकट किया है कि दर्शन किसी संस्कृति का आत्मावगति (self-awareness) है। उक्त मान्यता को हम दो उदाहरण देकर स्पष्ट करेंगे। आज का युग जनतन्त्र का युग कहा जाता है। जनतंत्र के तहत प्राय: समस्त नागरिकों को समान अधिकार होते हैं। आदर्श जनतंत्र में समस्त नागरिकों, विशेषत: उनकी सन्तानों को समान सुविधाएँ उपलब्ध होनी चाहिए। इन सुविधाओं में शिक्षा तथा योग्यता के अनुरूप जीविका की सुविधाएँ मुख्य हैं। दूसरे, वर्तमान युग में जाति या वर्ग-विशेष के अन्तर्गत जन्म लेने को महत्व नहीं दिया जाता। यह दूसरी बात है कि प्रत्येक बालक को उसके स्वाभाविक रुझानों एवं योग्यता के अनुरूप शिक्षा एवं कार्य-क्षेत्र का प्रावधान उचित समझा जाता है। जन्मना जाति का सिद्धान्त आज किसी सभ्य समाज में ग्राह्य नहीं माना जाता। जर्मनी के तानाशाह हिटलर का विचार था कि जर्मन लोगों तथा आर्य-जातियों को इतर समूहों पर शासन करने का जन्मसिद्ध अधिकार है। हिटलर ने यहूदी कहे जाने वाले जन-समूहों को जर्मनी से निकाल बाहर करने की पेशकश की। ध्यातव्य है कि कथित यहूदी जाति के सदस्य विशेषत: इधर के इतिहास में, विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य करते रहे हैं। उदाहरण के लिए इधर वैज्ञानिक अन्वेषण एवं आर्थिक राजनीतिक व्यवस्था के सम्बन्ध में कई जर्मनी विचारकों ने उल्लेखनीय नये विचार दिये हैं। यह एक ऐतिहासिक संयोग है कि बीसवीं शती के कतिपय प्रख्यात वैचारिक नेता यहूदी थे, जैसे मनोविज्ञान के क्षेत्र में फ्रायड, आर्थिक-रातनीतिक क्षेत्र में कार्ल मार्क्स और भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में अलबर्ट आइन्स्टाइन।

सन्दर्भ

1. Adamson, Peter (10 February 2022). Byzantine and Renaissance Philosophy: A History of Philosophy Without Any Gaps, Volume 6. Vol. 6. Oxford University Press. ISBN 978-0-19-266992-6.
2. Adamson, Peter; Ganeri, Jonardon (2020). Classical Indian Philosophy: A History of Philosophy Without Any Gaps, Volume 5. Oxford University Press. ISBN 978-0-19-885176-9.
3. Adamson, Peter (September 2019). Medieval Philosophy. A History of Philosophy Without Any Gaps. Vol. 4. Oxford University Press. ISBN 978-0-19-884240-8.
4. Adamson, Peter (2015). Philosophy in the Hellenistic and Roman Worlds. A History of Philosophy Without Any Gaps. Vol. 2. Oxford University Press. ISBN 978-0-19-872802-3.
5. Adamson, Peter (2016). Philosophy in the Islamic World. A History of Philosophy Without Any Gaps. Vol. 3. Oxford University Press. ISBN 978-0-19-957749-1.
6. Adamson, Peter (21 April 2023). Studies on Early Arabic Philosophy. Taylor & Francis. ISBN 978-1-000-94696-3.
7. Andrea, Alfred J.; Overfield, James H. (1 January 2015). The Human Record: Sources of Global History, Volume I: To 1500. Cengage Learning. ISBN 978-1-305-53746-0.
8. Anstey, Peter R.; Vanzo, Alberto (31 January 2023). Experimental Philosophy and the Origins of Empiricism. Cambridge University Press. ISBN 978-1-009-03467-8.
9. Armstrong, A. H. (April 1967). The Cambridge History of Later Greek and Early Medieval Philosophy. Cambridge University Press. ISBN 9780521040549.
10. Ayduz, Salim; Dagli, Caner (2014). The Oxford Encyclopedia of Philosophy, Science, and Technology in Islam. Oxford University Press. ISBN 978-0-19-981257-8.
11. Baird, Forrest (3 October 2017). Philosophic Classics: Asian Philosophy, Volume VI. Routledge. ISBN 978-1-351-21744-6.
12. Baker, Patrick (29 September 2015). Italian Renaissance Humanism in the Mirror. Cambridge University Press. ISBN 978-1-107-11186-8.
13. Baldassarri, Fabrizio; Blank, Andreas (25 May 2021). Vegetative Powers: The Roots of Life in Ancient, Medieval and Early Modern Natural Philosophy. Springer Nature. ISBN 978-3-030-69709-9.
14. Banhatti, G. S. (1995). Life and Philosophy of Swami Vivekananda. Atlantic Publishers & Dist. ISBN 978-81-7156-291-6.
15. Barmann, Lawrence F. (27 April 1972). Baron Friedrich Von Hügel and the Modernist Crisis in England. CUP Archive. ISBN 978-0-521-08178-8. Archived from the original on 22 June 2023. Retrieved 16 June 2023.
16. Beaney, Michael (20 June 2013). The Oxford Handbook of The History of Analytic Philosophy. OUP Oxford. ISBN 978-0-19-166266-9.
17. Beiser, Frederick C. (1987). The Fate of Reason: German Philosophy from Kant to Fichte. Harvard University Press. ISBN 9780674020696.
18. Beiser, Frederick (25 August 2011). "Review of Nineteenth Century Philosophy: Revolutionary Responses to the Existing Order". Notre Dame Philosophical Reviews. University of Notre Dame. Archived from the original on 18 June 2023. Retrieved 18 June 2023.
19. Bell, Richard H.; Fernback, Jan (2015). Understanding African Philosophy: A Cross-cultural Approach to Classical and Contemporary Issues. Routledge. ISBN 978-1-135-94866-5.
20. Belo, Catarina Carriço Marques de Moura (2007). Chance and Determinism in Avicenna and Averroës. BRILL. ISBN 978-90-04-15587-9.
21. Blackson, Thomas A. (6 January 2011). Ancient Greek Philosophy: From the Presocratics to the Hellenistic Philosophers. John Wiley & Sons. ISBN 978-1-4443-9608-9.

यौन हिंसा पर सामाजिक एवं न्याय प्रतिक्रिया, नीति सुधार के उपाय

कमल किशोर

(एलएल0एम0, यू0जी0सी नेट) असिस्टेन्ट प्रोफेसर-क्लासिक कालेज ऑफ लॉ बरेली (उत्तर प्रदेश)

शोध सारंश

पीड़ितों पर यौन हिंसा के विनाशकारी प्रभावों को न केवल प्रभावी पेशेवर प्रतिक्रियाओं से, बल्कि अर्ध पेशेवरों और समुदाय आधारित संगठनों के योगदान से भी कम किया जा सकता है। यह शोध पत्र पीड़ितों के लिए सुधार की सुविधा के साधन के रूप में यौन हिंसा और समुदाय आधारित दृष्टिकोणों के लिए जवाबदेही की प्रणालियों पर केंद्रित है। ये दृष्टिकोण तीन महत्वपूर्ण कार्य करते हैं समुदाय के सदस्यों और सेवा प्रदाताओं को शिक्षित करना, पीड़ितों को सहायता प्रदान करना और संस्थागत क्षमता को मजबूत करना। ये दृष्टिकोण पीड़ितों की अपनी जरूरतों को पूरा करने, संगठनात्मक क्षमताओं को विकसित करने और व्यक्तिगत अभिनेताओं और संस्थानों को शामिल करके जवाबदेही को आगे बढ़ाने की क्षमता को बढ़ा सकते हैं। सामुदायिक सम्पर्क के लिए, शोध पत्र का पहला और दूसरा भाग व्यक्तियों और बड़े पैमाने पर समुदाय पर यौन हिंसा के प्रभावों का वर्णन करता है।

Keywords:- यौन हिंसा, सामाजिक एवं न्याय, मानव अधिकार

प्रस्तावना

महिलाओं के खिलाफ हिंसा मानवाधिकारों के सबसे व्यापक उल्लंघनों में से एक है। इसमें शारीरिक, यौन, मनोवैज्ञानिक और आर्थिक दुर्व्यवहार शामिल हैं, और यह उम्र, जाति, संस्कृति, धन और भूगोलिक सीमाओं को पार करता है। इस प्रकार की हिंसा के दूरगामी परिणाम होते हैं, जो परिवारों और समुदायों को नुकसान पहुँचाते हैं। लिंग आधारित हिंसा न केवल मानवाधिकारों का उल्लंघन करती है, बल्कि उत्पादकता में बाधा डालती है, मानव पूंजी को कम करती है और आर्थिक विकास को कमजोर करती है। हालाँकि हिंसा के संपर्क में आने वाली महिलाओं की दरें एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न होती हैं, लेकिन आँकड़े बताते हैं कि महिलाओं के खिलाफ हिंसा एक सार्वभौमिक घटना है और महिलाओं को उनके घरों के अंदर और बाहर दोनों जगह अलग-अलग तरह की हिंसा का सामना करना पड़ता है। यौन हिंसा पूरी दुनिया में होती है। हालाँकि अधिकांश देशों में इस समस्या पर बहुत कम शोध किया गया है। लेकिन उपलब्ध डेटा बताते हैं कि कुछ देशों में लगभग चार में से एक महिला को अपने सगे संम्बधियों के द्वारा यौन हिंसा का सामना करना पड़ता है, और एक तिहाई किशोर लड़कियाँ अपना यौन शोषण जबरदस्ती होना बताती हैं। यौन हिंसा का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है। शारीरिक चोट पहुँचाने के साथ-साथ, यह यौन और प्रजनन स्वास्थ्य समस्याओं की एक श्रृंखला के बढ़ते जोखिम से जुड़ा है, जिसके तत्काल और दीर्घकालिक दोनों तरह के परिणाम हो सकते हैं। मानसिक स्वास्थ्य पर इसका प्रभाव इसके शारीरिक प्रभाव जितना ही गंभीर हो सकता है, और यह उतना ही लंबे समय तक चलने वाला हो सकता है। यौन हिंसा के बाद होने वाली मौतें आत्महत्या, एच0आई0वी0 संक्रमण या हत्या जिसके परिणामस्वरूप हो सकती हैं। बाद में यौन हमले के दौरान या उसके बाद, सम्मान की रक्षा के लिए हत्या के रूप में हो सकती है। यौन हिंसा पीड़ितों की सामाजिक भलाई को भी गहराई से प्रभावित कर सकती है व परिणामस्वरूप व्यक्तियों को उनके परिवारों और अन्य लोगों द्वारा कलंकित और बहिष्कृत किया जा सकता है। जबरन सेक्स करने से अपराध ी की यौन संतुष्टि हो सकती है, हालांकि इसका अंतर्निहित उद्देश्य अक्सर पीड़ित व्यक्ति पर शक्ति और प्रभुत्व का प्रदर्शन होता है।

यौन हिंसा

यौन हिंसा की परिभाषा इस प्रकार है कोई भी यौन कृत्य, यौन कृत्य करवाने का प्रयास, अवांछित यौन टिप्पणियाँ या प्रस्ताव, या किसी व्यक्ति की कामुकता के विरुद्ध जबरदस्ती का उपयोग करके तस्करी या अन्यथा निर्देशित कार्य, चाहे पीड़ित के साथ उनका कोई भी संबंध हो, किसी भी परिस्थिति में, जिसमें घर और काम शामिल हैं, लेकिन इन्हीं तक सीमित नहीं है। जबरदस्ती में बल की एक पूरी श्रृंखला शामिल हो सकती है। शारीरिक बल के अलावा, इसमें मनोवैज्ञानिक धमकी, ब्लैकमेल या अन्य धमकियाँ शामिल हो सकती हैं उदाहरण के लिए, शारीरिक नुकसान की धमकी, नौकरी से निकाल दिए जाने की धमकी या इच्छित नौकरी न मिलने की धमकी। यह तब भी हो सकता है जब पीड़ित व्यक्ति सहमति देने में असमर्थ हो उदाहरण के लिए, नशे में, नशे में, सो रहा हो या मानसिक रूप से स्थिति को समझने में असमर्थ हो। यौन हिंसा में बलात्कार शामिल है, जिसे योनि या गुदा में शारीरिक रूप से बलपूर्वक या अन्यथा बलपूर्वक प्रवेश के रूप में परिभाषित किया जाता है भले ही यह हल्का हो लिंग, शरीर के अन्य अंगों या किसी वस्तु का उपयोग करके। ऐसा करने का प्रयास बलात्कार के प्रयास के रूप में जाना जाता है। दो या अधिक अपराधियों द्वारा किसी व्यक्ति के साथ बलात्कार को सामूहिक बलात्कार के रूप में जाना जाता है। यौन हिंसा में यौन अंग से जुड़े अन्य प्रकार के हमले भी शामिल हो सकते हैं, जिसमें मुंह और लिंग, योनी या गुदा के बीच बलपूर्वक संपर्क शामिल है।

यौन हिंसा के रूप और संदर्भ

विभिन्न परिस्थितियों में यौन हिंसा की एक विस्तृत श्रृंखला हो सकती है। इनमें शामिल हैं, उदाहरण के लिए विवाह या डेटिंग संबंधों के भीतर बलात्कार अजनबियों द्वारा बलात्कार सशस्त्र संघर्ष के दौरान व्यवस्थित बलात्कारय अवांछित यौन प्रस्ताव या यौन उत्पीड़न, जिसमें एहसान के बदले में सेक्स की मांग करना शामिल है मानसिक या शारीरिक रूप से अक्षम लोगों का यौन शोषण या बच्चों का यौन शोषण बच्चों की शादी सहित जबरन शादी या सहवासय गर्भनिरोधक का उपयोग करने या यौन संचारित रोगों से बचाव के लिए अन्य उपाय अपनाने के अधिकार से इनकार करना या जबरन गर्भपात या महिलाओं की यौन अखंडता के खिलाफ हिंसक कृत्य, जिसमें महिला जननांग विकृति और कौमार्य के लिए अनिवार्य निरीक्षण शामिल है या यौन शोषण के उद्देश्य से जबरन वेश्यावृत्ति और लोगों की तस्करी। यौन शोषण के लिए तस्करी की कोई सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत परिभाषा नहीं है। यह शब्द यौन कार्य के लिए देशों के बीच और देशों के भीतर लोग आमतौर पर महिलाओं, के संगठित आंदोलन को शामिल करता है। इस तरह की तस्करी में प्रवास की अनुमति देने या व्यवस्था करने की शर्त के रूप में किसी प्रवासी को यौन क्रिया में मजबूर करना भी शामिल है। यौन तस्करी में जबरन कर्ज के माध्यम से शारीरिक जबरदस्ती, धोखे और बंधन का उपयोग किया जाता है।

महिलाओं के अधिकार

देश भर में बलात्कार के कई मामलों ने एक बार फिर आपराधिक न्याय प्रणाली की विफलताओं को उजागर किया है। सरकार द्वारा कानून में संशोध न करने और बलात्कार और यौन हिंसा के पीड़ितों के लिए न्याय के उद्देश्य से नए दिशा-निर्देश और नीतियाँ लागू करने के लगभग छह साल बाद भी, लड़कियों और महिलाओं को ऐसे अपराधों की रिपोर्ट करने में बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है। पीड़ितों को दोषी ठहराना आम बात है, और गवाहों और पीड़ितों की सुरक्षा के लिए कानूनों की कमी के कारण हाशिए के समुदायों की लड़कियाँ और महिलाएँ उत्पीड़न और धमकियों के प्रति और भी अधिक संवेदनशील हो जाती हैं। सितंबर से शुरू होकर, भारत के मीडिया और मनोरंजन उद्योगों की कई महिलाओं ने मी-टू अभियान के तहत कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न और हमले के अपने अनुभव सोशल मीडिया पर साझा किए। इन सार्वजनिक खातों में, आरोपियों के नाम बताए गए, उचित प्रक्रिया की विफलताओं, मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की कमी और पीड़ितों के लिए सहायता, और कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न अधिनियम 2013 को पूरी तरह से लागू करने की तत्काल आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया, जो कार्यस्थल पर शिकायतों की जाँच और निवारण के लिए एक प्रणाली निर्धारित करता है। कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम 2013, विशाखा और अन्य बनाम राजस्थान राज्य के दिशानिर्देश जारी होने के सत्रह वर्ष बाद, संसद अपनी गहरी नींद से जागी और कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013 पारित किया। अधिनियम का अनुप्रयोग दिशानिर्देशों की तुलना में बहुत व्यापक है, लेकिन सरसरी तौर पर देखने पर पता चलता है कि इसका मूल ढांचा विशाखा दिशानिर्देशों से उधार लिया गया है। पीड़ित महिलाओं में आयु और रोजगार की स्थिति से परे महिलाओं की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है, जबकि कार्यस्थल में कॉर्पोरेट और निजी स्थानों के साथ-साथ संगठित और असंगठित दोनों क्षेत्र शामिल हैं। शिकायतों की जांच और निवारण के लिए विशिष्ट समय-सीमा निर्धारित की गई है। अधिनियम के प्रावधानों का पालन न करने पर 50,000 रुपये तक के जुर्माने सहित दंड का प्रावधान किया गया है। अधिनियम की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि नियोक्ता द्वारा लिखित आदेश के तहत 10 या अधिक कर्मचारियों वाले प्रतिष्ठानों में आंतरिक शिकायत समिति (आई0सी0सी0) की स्थापना की जाती है।

इस समिति में एक पीठासीन अधिकारी, जो एक वरिष्ठ महिला कर्मचारी होगी, एक बाह्य सदस्य होगा जो नियोक्ता या किसी अन्य उच्च अधिकारी के अनुचित प्रभाव से बचाएगा, तथा दो अन्य सदस्य होंगे। स्थानीय शिकायत समिति (एलसीसी) एक समिति है जो ऐसे प्रतिष्ठानों से कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न की शिकायतें प्राप्त करती है, जिनके पास आंतरिक शिकायत समिति नहीं है, क्योंकि उनमें 10 से कम कर्मचारी हैं, या जहां शिकायत स्वयं नियोक्ता के विरुद्ध है। यह समिति असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं या घरेलू कामगारों के लिए महत्वपूर्ण है।

अप्रैल में, सरकार ने 12 वर्ष से कम उम्र की लड़की से बलात्कार के दोषियों के लिए मृत्युदंड की सजा का प्रावधान करते हुए एक अध्यादेश पारित किया। नये अध्यादेश में लड़कियों और महिलाओं के बलात्कार के लिए न्यूनतम सजा भी बढ़ा दी गई है। यह अध्यादेश दो प्रमुख मामलों के बाद व्यापक आलोचना और विरोध का जवाब था। एक में, सत्तारूढ़ भाजपा के कुछ नेताओं और समर्थकों ने जम्मू और कश्मीर राज्य में 8 वर्षीय मुस्लिम बच्ची का अपहरण, दुर्व्यवहार, बलात्कार और हत्या के कथित हिंदू अपराधियों का बचाव किया। दूसरा उत्तर प्रदेश राज्य में था, जहां अधिकारी न केवल 17 वर्षीय लड़की के बलात्कार के आरोपी भाजपा विधायक को गिरफ्तार करने में विफल रहे, बल्कि कथित तौर पर पुलिस हिरासत में उसके पिता की पीट-पीट कर हत्या कर दी।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की रिपोर्ट

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (एन0एच0आर0सी0) भारत ने यौन उत्पीड़न की बढ़ती घटनाओं पर गंभीर चिंता व्यक्त की है और इस संबंध में स्वतरू संज्ञान लिया है। इस संबंध में मीडिया रिपोर्टों का स्वतः संज्ञान लेते हुए आज केंद्र, राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों को नोटिस जारी कर ऐसे मामलों से निपटने के लिए एसओपी और निर्भया फंड के उपयोग पर रिपोर्ट मांगी गई है। आयोग ने पाया है कि इस बुराई से छुटकारा पाने के लिए सभी हित धारकों को एक साथ मिलकर काम करने की सख्त जरूरत है। आयोग ने नोटिस जारी करते हुए आगे कहा कि दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र, जिसने सबसे लंबा लिखित संविधान अपनाया है और जिसकी लैंगिक समानता की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है, आज महिलाओं के लिए सबसे असुरक्षित माहौल होने के लिए आलोचनाओं का शिकार हो रहा है। महिलाओं के खिलाफ बलात्कार, छेड़छाड़, लिंग आधारित भेदभाव और इस तरह के अन्य अत्याचारों की घटनाएं दुर्भाग्य से मीडिया की नियमित सुर्खियां बन गई हैं।

आयोग ने कहा है कि इन घटनाओं में वास्तव में पीड़ितों के मानवाधिकारों का उल्लंघन शामिल है। वह इस मुद्दे की गंभीरता से भली-भांति परिचित है। राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकारों के संरक्षण और संवर्धन के लिए सर्वोच्च निकाय होने के नाते, वह इस मामले में हस्तक्षेप करना आवश्यक समझता है, ताकि यह समझा जा सके कि राज्य एजेंसियों और अन्य हितधारकों की ओर से कहां कमी रह गई है और तत्काल क्या किया जा सकता है। महिलाओं को किसी भी प्रकार के भेदभाव और उत्पीड़न का सामना न करना पड़े, यह सुनिश्चित करने के लिए संवैधानिक और वैधानिक प्रावधान हैं, लेकिन एक चिंताजनक प्रवृत्ति यह दर्शाती है कि देश भर में महिलाओं के जीवन, स्वतंत्रता, सम्मान और समानता के अधिकार का उल्लंघन होने के कारण चीजें बदतर होती जा रही हैं।

समन्वित आपराधिक न्याय प्रतिक्रिया के लिए सभी आपराधिक न्याय एजेंसियों द्वारा साझा समझ की आवश्यकता होती है कि प्रभावी प्रतिक्रिया सुनिश्चित करने के लिए क्या आवश्यक है। समन्वित प्रणाली के विभिन्न भागों में लोगों द्वारा की जाने वाली कार्रवाइयों को, उनके कार्यों के बावजूद, सामान्य सिद्धांतों द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए। अद्यतन मॉडल रणनीतियों और व्यावहारिक उपायों के पाठ में मार्गदर्शक सिद्धांतों के एक सेट पर सहमति व्यक्त की गई है। इन्हें मानकों या पूर्वापेक्षाओं के रूप में देखा जा सकता है जो संबोधित करने के लिए किसी भी कार्रवाई के विकास को सूचित करना चाहिए महिलाओं के विरुद्ध हिंसा । अद्यतन मॉडल रणनीतियों और व्यावहारिक उपायों में पहचाने गए मार्गदर्शक सिद्धांत राज्यों को महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के लिए अपराध की रोकथाम और आपराधिक न्याय प्रतिक्रियाओं के रणनीतिक उद्देश्यों की पहचान करने में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं और इसमें निम्नलिखित शामिल हैं।

अपराध रोकथाम और आपराधिक न्याय प्रतिक्रिया प्रभावी होनी चाहिए-

- मानवाधिकार आधारित
- पीड़ित-केंद्रित
- अपराधी की जवाबदेही सुनिश्चित करें अपराध रोकथाम और आपराधिक न्याय कार्य योजना के कार्यान्वयन के लिए आवश्यक है व्यापक कानूनों और नीतियों द्वारा समर्थित समन्वित, व्यवस्थित और निरंतर दृष्टिकोण
- सभी प्रमुख हितधारकों की भागीदारी और सहभागिता को बढ़ावा देना
- निरंतर और पर्याप्त संसाधनों की प्रतिबद्धता
- निगरानी और निरीक्षण तंत्र विकसित करना
- महिलाओं के विभिन्न समूहों की अलग-अलग आवश्यकताओं को ध्यान में रखना

भारत के अधिकांश भागों में यौन हिंसा को आमतौर पर अनुसंधान का उपेक्षित क्षेत्र माना जाता है, फिर भी साक्ष्य बताते हैं कि यह काफी हद तक एक सार्वजनिक समस्या है। इस घटना को समझने और इसे रोकने के लिए बहुत कुछ उपाय एवं सार्थक प्रयास करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

यौन हिंसा एक आम और गंभीर सार्वजनिक समस्या है जो हर साल दुनिया भर में लाखों लोगों को प्रभावित करती है। यह कई सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक संदर्भों में काम करने वाले कई कारकों से प्रेरित है। महिलाओं के खिलाफ यौन हिंसा के मूल रूप से लैंगिक असमानता है। कई देशों में, यौन हिंसा के अधिकांश पहलुओं पर अंकड़ो की कमी है, और यौन हिंसा के सभी पहलुओं पर शोध की हर जगह बहुत अवश्यकता है। हस्तक्षेप भी उतना ही महत्वपूर्ण है। ये विभिन्न प्रकार के होते हैं, लेकिन सबसे जरूरी हैं यौन हिंसा की प्राथमिक स्थर पर रोकथाम, महिलाओं और पुरुषों दोनों को लक्षित करना, यौन उत्पीड़न के पीड़ितों का समर्थन करने वाले तथा बलात्कार के अपराधियों को पकड़े जाने और दंडित किए जाने की संभावना को और अधिक बढ़ाने के उपाय करना और सामाजिक मानदंडों को बदलने और महिलाओं की स्थिति को ऊपर उठाने की रणनीतियाँ बनाना। संसाधन विहीन सेटिंग्स के लिए हस्तक्षेप विकसित करना और औद्योगिक और विकासशील दोनों देशों में कार्यो का कठोर मूल्यांकन करना महत्वपूर्ण है। यौन उत्पीड़न के पीड़ितों का समर्थन करने में स्वास्थ्य चिकित्सकों की बड़ी भूमिका है चिकित्सकीय और मनोवैज्ञानिक रूप से अभियोजन पक्ष की सहायता के लिए सबूत इकट्ठा करना। स्वास्थ्य क्षेत्र उन देशों में काफी अधिक प्रभावी है जहाँ मामलों के प्रबंधन और सबूत इकट्ठा करने के लिए नियम और दिशा-निर्देश हैं, जहाँ कर्मचारी अच्छी तरह से प्रशिक्षित हैं और जहाँ न्यायिक प्रणाली के साथ अच्छा सहयोग है। अंत: यौन हिंसा को समाप्त करने के लिए सरकारों और समाज के लोगों की मजबूत प्रतिबद्धता और भागीदारी के साथ-साथ कई क्षेत्रों में समन्वित प्रतिक्रिया की आवश्यकता है।

संदर्भ:-

जहां अन्यथा निर्दिष्ट न किया गया हो, वहां महिला शब्द में लड़कियां भी शामिल हैं
हकीमी एम एट अल. सद्भाव के लिए मौनरू मध्य जावा में घरेलू हिंसा और महिलाओं का स्वास्थ्य .योग्याकार्ता, गदजाह माडा विश्वविद्यालय, 2001
स्विस एस एट अल. लाइबेरियाई नागरिक संघर्ष के दौरान महिलाओं के खिलाफ हिंसा। जर्नल ऑफ द अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन, 1998, 625-629
एन0एच0आर0सी0 वेबसाइट
ए0 आई0 आर0 1997
एन0एच0आर0सी0 वेबसाइट
एनएचआरसी रिपोर्ट 2 दिसंबर 2019
महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की रोकथाम और आपराधिक न्याय प्रतिक्रियाओं को मजबूत करना
महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की रोकथाम और आपराधिक न्याय प्रतिक्रियाओं को मजबूत करना

समान नागरिक संहिता

आदित्य चतुर्वेदी

एलएल.एम, (गोल्ड मेडलिस्ट) नेट, जेआरएफ

सारांश

एक समान सिविल संहिता की विशेषता:- भारत विभिन्न संस्कृतियों वाला देश है। यहां भिन्न भिन्न जाति धर्म भाषा एवं संस्कृति के लांग निवास करते हैं। यह सबकुछ होते हुए भी भारत विभिन्नता में एकता का प्रतीक है। यहां के निवासियों में प्रेम बंधुत्व की भावना निहित है। विभिन्न जातियों एवं सुमुदायों में भिन्न भिन्न रीति रिवाज प्रथाए रूढ़ियां संस्कार आदि प्रचलित होते हुए भी वह शांति और भाईचारे से एक दूसरे के साथ रहना पसंद करते हैं। कभी कभी मतभेद या विवाद हो भी जाता है तो वह मात्र निजी स्वार्थ अथवा भ्रमवश होताहै। इस भ्रम को भी मिटाने का प्रयास आरम्भ से किया जाता है। यह कहा जाता रहा है कि भारत जैसे सुसंस्कत एवं अध्यात्मिक प्रवत्ति वाले देश में समस्त नागरिकों के लिए क्यों न एक समान सिविल संहिता बना दी जाये। इससे सभी के साथ न केवल एक जैसा व्यवहार होगा अपितु उनमें प्रेम और बंधुत्व की भावना और भी अधिक प्रगाढ़ होगी यह विचार उचित भी लगता है। जब प्रकति से सभी मनुष्य नर एवं नारी एक समान हैं तो फिर विधिक दष्टि से भेदभाव क्यों ? हिन्दु नारी यदि एक ही समय में एक ही पुरुष से विवाह कर सकती है उसका अपने पति पर एकाधिकार होता है। तो फिर मुस्लिम पुरुष को एक समय में एक साथ चार स्त्रियों से विवाह करने का अधिकार देने का क्या औचित्य है? कई प्रगतिशील विचार वाली मुस्लिम महिलाओं द्वारा जब जब इस व्यवस्था का विरोध किया गया तब तक शरियत की आढ़ लेकर इस विरोध को कुचल दिया गया यदि हिन्दु नारी तलाक के बाद भी अपने पूर्व पति से भरणपोषण पाने की हकदार होती है तो फिर मुस्लिम नारी क्यों नहीं क्या यह नारी के साथ अत्याचार नहीं है?

संकेत शब्द समान सिविल संहिता कल्याणकारी राज्य

भारत न केवल सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य है अपितु एक लोक कल्याणकारी राज्य भी है। लोक कल्याणकारी राज्य के कारण उसका प्रथम कर्तव्य देश की जनता के हितों की रक्षा करना और उनके लिए कल्याणकारी योजना तैयार करना है। उसका लक्ष्य बहुजन हिताय बहुजन सुखाय है। भारत के अतीत के सम्बन्ध में यह उपयुक्त भी है। एक लम्बी दास्तां के कारण भारतवासी शारीरिक मानसिक सामाजिक आर्थिक राजनीतिक आदि सभी दृष्टियों से अविकसित रह गया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति एवं संविधान की प्रायोजिता के समय प्रत्येक भारतवासी न केवल चौन की सांस ली थी अपितु मुक्त वातावरण में स्वच्छन्द जीवनयापन का स्वप्न भी संजोया था हमारे संविधान निर्माता भी इसके प्रति पूर्णरुप से सजग थे। उन्होंने नागरिकों को कई मूलभूत अधिकार एवं स्वतन्त्रताए प्रदान कर उनकी आशाओं एवं आकांक्षाओं को मूर्तरुप देने का प्रयास भी किया इन्हीं आशाओं और आकांक्षाओं को हमने राज्य के नीति निर्देशक तत्व के नाम से सम्बोधित किया ।

डा0 भीमराव अम्बेडकर के शब्दों में

यह भारतीय संविधान की अनोखी विशेषताएं हैं। इसमें एक कल्याणकारी राज्य का लक्ष्य निहित है। उन्होंने आगे कहा हमारा संविधान संसदीय लोकतन्त्र की स्थापना करता है। संस्दीय लोकतन्त्र से अभिप्राय है कि एक व्यक्ति एक वोट हमारे कई लक्ष्य हैं। राजनीतिक लोकतन्त्र की स्थापना का लक्ष्य है तो आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना का भी। आर्थिक लोकतन्त्र स्थापित करने के कई मार्ग हैं। हमने एक ऐसा मार्ग अंगीकृत किया है जो देशकाल एवं परिस्थितियों की कसौटी पर खरा उतरने के लिए प्रबुद्ध एवं चिन्तनशील समाज के लिए पर्याप्त अवसर छोड़ता है। अनुच्छेद 26 से 51 तक विभिन्न नीति निर्देशक तत्वों का उल्लेख किया गया है अध्ययन एवं प्रकृति की दष्टि से कभी कभी इन नीति निर्देशक तत्वों को निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

1. समाजिक और आर्थिक न्याय सम्बन्धी नीति निर्देशक तत्व
2. समाजिक सुरक्षा सत्बंधित नीति निर्देशक तत्व
3. स्माज कल्याण सम्बन्धी निदेशक तत्व
4. अर्न्तराष्टीय शांति और सुरक्षा सम्बन्धी निर्दशक तत्व

शाहबानों के मामले में जब उच्चतम न्यायालय ने ऐसा विचार उत्पन्न किया तो संसद ने मुस्लिम स्त्री; तलाक पर अधिकारों का संरक्षणद्ध अधिनिय 1985 पारित कर नारी के हितों की बलि देते हुए अपनी राजनीतिक आकांछाओं की पूर्ति कर ली । यदि हम गहराई से चिन्तन करें तो धर्म और शरीयत इसमें कहीं आडे नहीं आते।

जहां तक धार्मिक स्वतन्त्रता का प्रश्न है यह अनुच्छेद 25 द्वारा प्रगतिभूत एवं संरक्षित है। अनुच्छेद 44 इसमें कहीं व्यवधान पैदा नहीं करताक्योंकि अनुच्छेद 25 का खण्ड 2 धार्मिक आचरण से सम्बंधित लौकिक क्रियाकलाप का बचाव करता है। यह मात्र एक भ्रम है कि-

1. अनुच्छेद 44 अनुच्छेद 25 द्वारा प्रतिभूत धर्म की स्वतन्त्रता के अधिकार का अतिक्रमण करता है।: एवं
2. समान सिविल संहिता की व्यवस्था अल्पसंख्यकों के लिए अत्याचार पूर्ण है।

संविधान प्रारुप समिति के सदस्य कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने संविधान सभा में अपने विचार व्यक्त करते हुए स्पष्ट शब्दों में यह कहा था कि तुर्की और इजिप्ट जैसे देशों में भी अल्पसंख्यको को ऐसे अधिकार उपलब्ध नहीं है। उन्होंने तो यहां तक कहा कि जब शरियत अधिनियम पारित किया गया था तब भी कच्छीमेनन उससे असंतुष्ट थे।

असंतोष की इस आसग को अब और अधिक दबाया नहीं जा सकता। अब पुरुप और स्त्री मुसलमान के बीच अन्तर एवं भेदभाव को समाप्त करने का समय आ गया है। अनुच्छेद 44

यहां यह उल्लेखनीय है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा समान सिविल संहिताकरण के सम्बन्ध में कोई निर्देश जारी नहीं किये गये हैं।

हज्बेण्ड बनाम वाईफ के मामले में केरल उच्च न्यायालय द्वारा यह प्रतिपादित किया गया कि विवाह विच्छेद के मामलों में वैवाहिक क्रूरता एक रुप की होनी चाहिए अर्थात क्रूरता को हिन्दू मुस्लिम ईसाई अथवा अन्य सम्प्रदायों के लिए भिन्न भिन्न नहीं माना जा सकता हिन्दू क्रूरता मुस्लिम क्रूरता ईसाई क्रूरता जैसी कोई क्रूरता नहीं हो सकती।

देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के टिप्पणी और सिफारिश के कारण समान नागरिक संहिता फिर चर्चा और बहस का विषय बन रहा है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने मायरा उर्फ वैष्णवी विलास और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य रिट सी संख्या 14896 वर्ष 2021 में 16 अन्य रिट याचिकाएं निर्णीत दिनांक 18 नवम्बर 2021 के मामले तो दिल्ली उच्च न्यायालय ने सतप्रकाश मीणा बनाम अल्का मीणा सी आर पी 1/2021 एवं सी एम अपील 332/2021 निर्णीत दिनांक 07.07.2021 के ममले में उठाये गये प्रश्नों के सन्दर्भ में अनुभव किया कि यदि देश में समान नागरिक संहिता लागू होता तो इन प्रश्नों जैसा प्रश्न न्यायालय के समक्ष नहीं आते या कम आते। दोनों ही मामलों के विद्वान एकलपीठ ने केन्द्र सरकार से सिफारिश किया कि वह देश में समान नागरिक संहिता शीघ्र लागू करने पर विचार करे और इस निमित्त कोई समिति/आयोग का गठन करे। साथ ही साथ दिल्ली उच्च न्यायालय अश्विनी कुमार उपाध्याय बनाम भारत संध और अन्य 2021 नामक एक जनहित याचिका पर भी सुनवाई कर रहा है। जिसमें मांग किया गया है कि समान नागरिक संहिता के निर्माण हेतु तीन महीने के भीतर एक विशेषज्ञ समिति या आयोग गठित करने के लिए केन्द्र सरकार को निर्देश दिया जाये तो जोसे पौले काउंटिन्हों बनाम मारिया लुजिया वेलेंटीना परेरिया और एक अन्य एआईआर 2019एस सी 1035 आनलाइन के मामले में स्वयं उच्चतम न्यायालय भी देश के लिए एक समान नागरिक संहिता की नितान्त आवश्यकता और इसके आज तक न बन पाने पर टिप्पणी कर चुका है।

वस्तुत: देश में समान नागरिक संहिता को लागू किए जाने का प्रश्न इसे संविधान के अनुच्छेद 44 में शामिल होने के पूर्व से ही लम्बी बहस और चर्चा का विषय बना हुआ है। संविधान सभा में व्यापक बहस के बाद संविधान में शामिल समान नागरिक संहिता के बारे में केवल इतना कहा गया है कि राज्य भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा। चूंकि यह अनुच्छेद संविधान के भाग 4 राज्य के नीति निदेशक तत्व अनुच्छेद 36 से 51 एवं 51क के अन्तर्गत आता है इसलिए इस अनुच्छेद को न्यायालीय आदेश से प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता है और इसका प्रभाव इतना है कि समान नागरिक संहिता को लागू करने का राज्य प्रयास करेगा। यह भी एक कड़वा सच है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के सात दशक बाद भी गोवा राज्य को छोड़कर देश के किसी भी राज्य ने ऐसा प्रयास नहीं किया है। हां उच्चतम न्यायालय और देश के अनेक उच्च न्यायालय भले ही अपने समक्ष उत्पन्न समस्याओं /वादों के निस्तारण के अनुक्रम में राज्यों एवं केन्द्र सरकार को अनुच्छेद 44 की याद दिलाई है। इलाहाबाद और दिल्ली उच्च न्यायालय का हाल का निर्णय/निर्देश भी इसी कड़ी का एक और कदम माना जा सकता है।

मो0 अहमद खान बनाम शाहबानों बेगम एआईआर 1985 सुको 945 के मामले में मुख्य न्यायाधीश वाई वी चन्द्रचूड़ की अध्यक्षता वाली संविधान पीठ ने मो0 अहमद खान की अपील को निरस्त करते हुए न केवल शाहबानाकें के मामले में उच्च न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की अपितु धारा 127 के अन्तर्गत भरणपोषण में वृद्धि के लिए आवेदन करने का भी अधिकार दिया तब यद्यपि संविधान पीठ ने एक समान नागरिक संहिता और मुस्लिम व्यक्तिगत विधि में सुधार की आवश्यकता बताई किन्तु सरकार को एक समान नागरिक संहिता बनाने का निर्देश नहीं दिया। फिर भी न्यायालय ने यह अवश्य स्पष्ट कर दिया कि दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान सभी धर्मों पर समान रुप से लागू होंगें चाहे वह हिन्दू हों या मुसलमान या फिर अन्य धर्मावलम्बी तब संविधान पीठ ने अनुच्छेद 44 को एक डेड लेटर बताते हुए यह सम्प्रेषण दिया था कि यह राष्टीय एकता को बढ़ाने में मददगार होगा। फिर भी इसके लिए आजतक कोई प्रयास नहीं किया गया।

श्रीमती सरला मुदगल अध्यक्ष कल्याणी और अन्य बनाम भारतसंघ और अन्य 1995 3एससीसी 635 का है। जिसमें न्यायालय ने अनुच्छेद 44 के अन्तर्गत एकसमान नागरिक संहिता हेतु भारत सरकार से निवेदन किया कि किन्तु चूंकि इस मामले में दोनों पक्षकार मुस्लिम नहीं थे अत: इस निर्णय का विरोध अधिक नहीं हुआ वस्तुत: इस मामले में तीन याचिकाकर्ता हिन्दू सुनीता गीता रानी सुष्मिता महिलाओं के पतियों ने इस्लाम धर्म स्वीकार करके दूसरी शादी कर ली थी न्यायालय ने ऐसे विवाह को शून्य और भारतीय दंड संहिता की धार 494 के अन्तर्गत दण्डनीय घोषित किया। इन दोनों निर्णयों के बीच महर्षि अवधेश बनाम भारत संघ 1994 एससीसी के ममले का भी उल्लेख किया जा सकता है। जिसमें याची ने अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय से अन्य उपचारों के साथ साथ मांग की कि भारत के सभी नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता बनाने के लिए प्रतिउत्तरदाता के विरुद्ध एक परमादेश जारी किया जाये। न्यायालय संक्षेप में ही प्रश्नों को विधायिका के क्षेत्र का विषय बताते हुए निरस्त करना चाहा।

अश्विनी उपाध्याय बनाम भारत संघ 2015 के जनहित वाद में यही बात पुन: दोहरायी गयी जिसमें न्यायमूर्ति टी एस ठाकुर मुख्य न्यायाधीश और न्यायमूर्तिगण ए के सीकरी तथा आर भानुमति की पूर्णपीठ ने 7 दिसम्बर 2015 को स्पष्ट किया कि अनुच्छेद 44 के अन्तर्गत एक समान नागरिक संहिता के निर्माण के लिए या अनुच्छेद 44 को प्रभावी बनाने के लिए न्यायालय संसद को निर्देश परमादेश जारी नहीं कर सकती। अब इस मामले में न्यायालय का यही दृष्टिकोण है।

तीन बड़े ममाले शाहबानों सरला मुदगल और शायरा बानों का मामला मुस्लिम व्यक्तिगत विधि के अर्न्तगत भरणपोषण धर्म परिवर्तन एवं विवाह तथा तीन तलाक को लेकर था जिसे लेकर एक समान नागरिक संहिता की मांग उठी यदि किसी किसी सम्प्रदाय की व्यक्तिगत विधि में कोई कमी या विसंगति है तो उसे संशोधन या निर्वसन द्वारा दूर किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- हज्बेण्ड बनाम वाईफ के मामले में केरल उच्च न्यायालय
- मायरा उर्फ वैष्णवी विलास और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य
- सतप्रकाश मीणा बनाम अल्का मीणा सी आर पी 1/2021 एवं सी एम अपील 332/2021
- अश्विनी कुमार उपाध्याय बनाम भारत संध और अन्य 2021
- मो0 अहमद खान बनाम शाहबानों बेगम एआईआर 1985 सुको 945
- श्रीमती सरला मुदगल अध्यक्ष कल्याणी और अन्य बनाम भारतसंघ और अन्य 1995 3एससीसी 635
- महर्षि अवधेश बनाम भारत संघ 1994 एससीसी
- अश्विनी उपाध्याय बनाम भारत संघ 2015

महादेवी वर्मा के साहित्य में सांस्कृतिक मूल्य

प्रा० सुनीलकुमार मावस्कर

सहा-प्राध्यापक/हिन्दी विभाग, श्री शिवाजी महाविद्यालय, अकोला

नितीशास्त्र उपयोग नैतिक में संस्कृति शब्द का उपयोग गुणों से युक्त आचरण के रूप में समाहत है। यह मानव के उच्च विचार और उदात्या आचार को प्रस्तुत करके उन्नत अवस्था पर ले जाता है। इसी आधार पर मनुष्य ने विविध क्षेत्रों में आशातीत प्रगति की है। मानव-निर्मित यह संस्कृति एक पीढ़ी से इसरी पीढ़ी हस्तांतरित होनी हुई मूल्यों को गतिमान करती है। कहा जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति संस्कृति के आदर्श अर्थात जीवन-मूल्यों के अनुरूप ही समाज में व्यवहार करता है। इसकी उपेक्षा करके व्यक्ति समाज से कट जाता है। समाजीकरण के द्वारा वह संस्कृति को सीखता है। इसी आधार पर वह पशुओं से ऊपर उठता है।

भारतीय संस्कृति सरकारों के कारण श्रेष्ठ है। इस संदर्भ में महादेवी वर्मा लिखती है- भारत एक ऐसा व्यक्तित्व-संपन्न राष्ट्र है जिसके प्राकृतिक परिवेश में मानव जीवन की विशिष्ट संस्कार-पद्धति रही है। जीवन के परिष्कार-क्रम में मनुष्य की जो महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ होती हैं, उन्हें स्थूल रूप से धर्म, दर्शन, साहित्य, कला शासन, नीति, आचार शु्ा आदि शीर्षकों में विभाजित कर सकते हैं। परन्तु ये भिन्न जान पड़ने वाली उपलब्धियाँ एक ही संस्कृति शरीर के अवयव होने के कारण मूलत: एक ही कही जायेंगी। इसी कारण हम सबकी समग्रता भारतीय संस्कृति की संज्ञा मेंए अन्तर्निहित है।[१]

महादेवी वर्मा ने ऐसे पात्रों को लेकर अपने संस्मरणात्मक एवं जीवनीपरक निबंध लिखे है जो अतिसामान्य होने पर भी सांस्कृतिक मूल्यों के कारण प्रेरणास्पद बने हुए हैं। रामा, घीसा ठकुरी बाबा, चीनी फेरीवाला, साबिया, भक्तिल, भाभी, बिट्टो, लछमा, गुगिया ये सब श्रमिक-मजदूर और निम्न वर्ग से आते हैं लेकिन सांस्कृतिक मूल्यों को संराक्षत और संवर्धित करके ये अपना प्रभाव छोड़ जाते हैं। महादेवी वर्मा ने इन संस्मरणात्मक निबंधों के माध्यम से यह संदेश दिया है कि आशक्षित, दलित, शोषित और विकलांग होते हुए भी ये पात्र सांस्कृतिक मूल्यों को संसाध धारण करके किसी भी महान और आदर्श व्यक्ती की तुलना में एक कदम आगे हैं। इनके कारण जीवन मूल्य सुरक्षित है तथा भारतीय संस्कृति जीवत है। ये ऐसे पात्र है जो समाज से प्रताड़ित और अपमानित होकर भी अच्छाई का साथ नहीं छोड़ते। महादेवी वर्मा ने उन पात्रों को सांस्कृतिक मूल्यों के धारणकर्ता के रूप में दिखाकर उनके उदात्त गुणों को समाज के विकास के लिए महत्वपूर्ण बताया है।

लछमा कर्मठ पहाडी महिला है। उसका विवाह अविककाम मानसिक स्थिति वाले व्याक्ति से कर दिया जाता है लेकिन वह बुध्दिए परिश्रम और कर्मठ व्यक्तित्व से देवर और जेठ की आँखों में सलती है। वह पति के अधिकार का भार अपने कंधे पर ले लेती है। यह बान देवर और जेठ को नहीं भाती इसलिए उसे मार-मार कर अधमरा कर देते हैं। वह मायके में जाकर अपना जीवन-निर्वाह करती है। वहाँ उसकी भाभी एक माह के बालक को उसकी गोद में रखकर मृत्यु को वरन कर लेती है। लछुमा उस बच्चे को पाल पोसकर बड़ा करती है। वह पति को भी मायके में रखना चाहती है। लेकिन स्वार्थी ससुराल वाले इसके लिए तैयार नहीं होने लछमा में सेवा, समर्पण, त्याग, करुणा, परोपकार, आतिथ्य- प्रेम का जोए असाधारण गुण है वह महादेवी के लिए आद्वितीय है। उनके शब्दों में- लछमा में मैंने अविचालित रहने की शक्ति देखी है और बड़े-बड़े अपकार को क्षमा कर देने की उदारता भी। वह न दूसरों की निंदा करके हल्की बनती है और न अपनी सफाई देकर आत्मविश्वास की न्यूनता प्रकट करती है। उसका दर्पण जैसा मन स्वर्य ही अपनी स्वच्छता का प्रमाण है।

एक चीनी फेरी वाला उनके जीवन में भाई बनकर आता है और भाशा व संस्कृति के भेद मिटाकर आत्मीयता का आदर्श आख्यान बन जाता है। महादेवी वर्मा लिखती है- "जो कथाएँ हृदय का बांध तोड़कर, दूसरों को अपना परिचय देने के लिए वह निकलती है, वह प्राय: करुण होती हैं और करुणा की भाषा शब्दहीन रहकर भी बोलने में समर्थ है।

धोबन बिबिया रूप और गुण दोनों से लोगों को आकार्षित करने की क्षमता रखती थी। कर्म को वह पूजा समझती और उसमें ही आनंद की अनुभूति करती है।

महादेवी वर्मा ने जहाँ एक ओर श्रमिक, अकुलीन असभ्य, आशिक्षित व्यक्तियों को केंद्र में रखाकर यह समझाने का प्रयास किया है कि अत्यंत सामान्य दिखने वाले इन उपेक्षित लोगों ने सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा का भार जीवित अपने कंधों पर लिया है जिससे मानवता जीवित है, वहीं "पंथ के साथी" के माध्यम से अग्र पीढी के प्रेरणास्पद चरित्र और समकालीन साहित्यकारों के मूल्यों को संजोकर संस्मरण की रचना की है। साहित्य साधना के लिए जीवन को समर्पित करने वाले- रवीन्द्रनाथ टैगोर के साथ साथ मैथिलीशरण गुप्त सुभदा कुमारी चौहान, निराला, प्रसाद पंत एवं सियारामशरण गुप्त कोउजागर किया है। उनके शब्दों में अपने अंग्रजों और सहयोगियों के संबंधमें अपने आपको दूर रखकर कुछ कहना सहज नहीं होता। मैंने साहस तो किया है पर ऐसे संस्मरण् के लिए आवश्यक निर्लिप्तता या असंगतता मेरे लिए संभव नहीं है। मेरी दृष्टि से शीशे में जैसे दिखाई देते हैं, उससे वे बहुत उज्ज्वल और विशाल हैं। इसे मानकर पढ़ने वाले ही उनकी कुछ झलक पा सकेगें।[४]

महादेवी वर्मा ने मानवेतर पात्रों में भी जीवन-मूल्यों की तलाश की है। पंचतंत्र के माध्यम से मानव को उपदेश देने की परम्परा अत्यंत प्राचीन है। मानव की तुलना में पशु-पक्षियों में सांस्कृतिक मूल्यों का संधान बराबर जारी रहा है। महादेवी वर्मा के अनुसार, "मेरे अतीत बचपन के कोहरे में जो रेखाएँ अपने

संपूर्ण ममत्व के कोहरे में जो रेखाएँ अपने संपूर्ण ममत्व के विविध रंगों में उदय होने लगती है, उनके आधारों में तीन ऐसे भी जीव हैं जो मानव समष्टि के सदस्य न होने पर भी मेरे स्मृति में छपे से हैं। निक्की नेवला, रोजी कत्ता और और रानी घोडी।[५] पशु-पक्षियों के साथ मानवीय संबंध शुरू से ही रहे हैं। लेकिन स्वार्थी मानव ने उसका शोशन ही किया है। इस तथ्य से व्यथित महादेवी वर्मा लिखती है, "स्मृति-यात्रा में पशु-पक्षी ही मेरे प्रथम संगी रहे हैं किंतु इसे दुर्योग ही कहा जाएगा कि मनुष्य ने उनसे वह प्राथमिकता अनायास छीन ली।[६]

महादेवी ने पशु-पक्षियों का भी एक परिवार बसा लिया था। मोर-मोरनी का एक जोड़ा नीलकंठ व राधा के नाम से उनका यहाँ पल रहा था। एक दिन उनके यहाँ सर्प आकर खरगोश के बच्चे को दबोच लिया। उसकी चीं-चों की ध्वनि सुनकर नीलकंठ ने द्रुतगति से फन पर प्रहार करके उस बचाया व सर्प के दो टुकड़े कर दिए। महादेवी वर्मा लिखाती है कार्तिकेय ने अपने युद्ध-वाहन के लिए मयूर को क्यों चुना होगा, यह उस पक्षीका रूप और स्वभाव देखकर समझ में आ जाता है।[७] जब उस नीलकंठ की मृत्यु हुई तब उसे अपने शाल में लपेटकर महादेवी ने उसे गंगा में प्रवाहित किया। उसके साथ उनकी पारिवारिक प्रीति जो जुड़ गयी थी।[८]

इसी तरह छात्रावास के दिनों में कुक्कुट-शावक के अचानक गायब होने से वह दुखी हो गयी थीं और फिर थोड़ी देर बाद उसकी उपलब्ध से न केवल रोमांचित हुईए वरन् उसके संरक्षण के बारे में चौकस प्रबंध के लिए चिंतन करने लगी। गिलहरी से उनकी आत्मीयता रही। उसे वे प्रेम से गिल्लू कहती थी। जब मोटर-दुर्घटना से वे अस्पताल में रही तब इस गिल्लू ने उसकी अभुतपूर्वक सेवा की। उनके शब्दों में मेरी अस्वस्थता में वह तकिये पर सिरहाने बैठकर अपने नन्हें-नन्हें पंजों से मेरे सिर व बालों को इतने हौले-हौले सहलाता रहता कि उसका हटना एक परिचारिका के हटने के समान लगा।[९] इतना ही नहीं उन्होंने कौए के संदर्भ में फैले लोकापवाद का खण्डन किया है- "बेचारे हमारे पुरखे गरुड़ के रूप में आ सकत हैं, न मयूर के न हँस को उन्हें पितर-पक्ष में हमसे कुछ पाने के लिए काक बनकर ही अवतीर्ण होना पड़ता है। काव-काव करने की अवमानना के अर्थ में ही प्रयुक्त करते हैं।[१०]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि महादेवी वर्मा के साहित्य में सांस्कृतिक मूल्यों की सुरक्षा और विकास का पूरा-पूरा ख्याल रखा गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१- महादेवी साहित्य भाग- 1 -संपादक -ओंकार शरद, पृ.42
२- अतित के चलचित्र- महादेवी वर्मा, पृ. 97
३- स्मृति की रेखाएँ- महादेवी वर्मा, पृ. 87
४- पथ के साथीए महादेवी वर्माए दो शब्द पृ. 1
५- मेरा परिवार- महादेवी वर्मा, पृ. 89
६- मेरा परिवार- महादेवी वर्मा, पृ. 13
७- मेरा परिवार- महादेवी वर्मा, पृ. 29
८- मेरा परिवार- महादेवी वर्मा, पृ. 32 - 34
९- मेरा परिवार- महादेवी वर्मा, पृ. 35
१०- मेरा परिवार- महादेवी वर्मा, पृ. 35

स्त्री-मुक्ति और जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास

धर्मा रावत

असिस्टेंट प्रोपेसर, हिंदी विभाग, श्यामलाल महाविद्यालय (सांध्य)

हिंदी उपन्यास-परम्परा में जैनेन्द्र कुमार एक विशिष्ट स्थान रखनेवाले उपन्यासकार के रूप में जाने जाते हैं। वे हिंदी उपन्यास की विकास-यात्रा में प्रायड के मनोविश्लेषणवाद पर आधारित मनोवैज्ञानिक उपन्यास के प्रणेता के रूप में समादृत हैं। वे हिंदी उपन्यास में स्त्री-मुक्ति के प्रश्न को संबोधित करने वाले में आरंभिक उपन्यासकारों में सर्वप्रमुख हैं। हालाँकि उनके पूर्व भी प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद अपने कथा-साहित्य में स्त्री-स्वतंत्रता के प्रश्न को उठा चुके थे, लेकिन उनका परिप्रेक्ष्य मुख्य रूप से सामाजिक और राजनीतिक था। जैनेन्द्र ने इसके अतिरिक्त एक भिन्न स्तर पर भी इस प्रश्न को संबोधित किया। यह भिन्न स्तर विवाह, प्रेम और काम-भाव का था। विवाह, प्रेम और काम के स्तर पर जैनेन्द्र के उपन्यासों में स्त्री-मुक्ति की अभिव्यक्ति को हम उनके उपन्यासों परख, सुनीता, त्यागपत्र, सुखदा, कल्याणी, विवर्त, व्यतीत, अनन्तर, जयवर्द्धन, मुक्तिबोध, दशार्क आदि के अनुशीलन के माध्यम से देख सकते हैं।

स्त्री-मुक्ति के संदर्भ में 'विवाह' एक विचारणीय प्रसंग है। कई बार विवाह को स्त्री-मुक्ति की दृष्टि से बाधक माना गया है। किन्तु जैनेन्द्र विवाह को नैतिक एवं मर्यादित संस्था के रूप में देखते हैं। वे मानते हैं कि एक स्त्री कई पुरुषों द्वारा भोगे जाने के लिए नहीं बनी है। वे स्त्री को एक पुरुष की सहचरी के रूप में देखते हैं और यह मानते हैं कि उसकी पूर्णता माँ बनने में है। यह विवाह के माध्यम से ही संभव हो पाता है। इसलिए जैनेन्द्र विवाह को भारतीय संस्कृति के सर्वोत्तम तत्त्व के रूप में देखते हैं। वे विवाह को सृष्टि की प्रक्रिया को निष्पन्न करने वाले एक सामाजिक दायित्व के रूप में देखते हैं। विवाह के संबंध में अपने विचार को प्रकट करते हुए वे लिखते हैं- ''वह विवाह ही है जो हमें संसार में पहुँचाने का रास्ता देता है। अगर हम उसमें प्रवेश करने से पूर्व यह श्रद्धा मन में भर सकें कि इस मार्ग का संसार पर अन्त नहीं है, तो उसमें भय के समर्थन का कोई कारण शेष नहीं रहता। यह बाल-हठ है कि कोई कहे कि बीस से अगले इक्कीसवें वर्ष में प्रवेश करूँगी या करूँगा ही नहीं। यह सिर्प अहंकार है, क्योंकि बीस की पूर्णता होते ही इक्कीसवाँ वर्ष अपने-आप उस पर आ जाएगा।''[1]

प्रेम को जैनेन्द्र एक बहुत महत्त्वपूर्ण भावना मानते हैं। वे इसे स्व-केंद्रित भाव नहीं मानते हैं। वे इसे त्याग-भाव से युक्त पर की भावना से जोड़ते हैं। वे प्रेम को मुक्ति से युक्त आत्मिक शक्ति मानते हैं। प्रेम के संबंध में उन्होंने लिखा है- ''प्रेम जो कब्जा चाहता है, वैसे प्रेम की छूट समाज के लिए अनिष्टकर है। प्रेम में यदि इस आधिपत्य की आकांक्षा है- यह कि वह मेरी है, मेरी ही है, मेरी हो जाए- तो इस प्रेम में, विश्वास रखे, मैं है, मैल है। स्वच्छ और वास्तव प्रेम इस प्रकार की आधिपत्य-आकांक्षा से कुछ संबंध नहीं रखता है।''[2]

काम के प्रति विभिन्न धर्मो और समाज की सामान्यत: नकारात्मक दृष्टि रही है। इसे पाप तक से जोड़ा गया है। काम के संबंध में भी जैनेन्द्र सकारात्मक दृष्टि अपनाते हैं। वे इसे एक नैसर्गिक और स्वाभाविक क्रिया मानते हैं। वे लिखते हैं- ''स्त्री-पुरुष के आकर्षण और मैथुन को अपवित्र नहीं माना जा सकता, क्योंकि वह सृष्टि का स्वाभाविक धर्म है। लेकिन उसकी शर्त यही है कि वह संयमित रहे तभी वह नैतिक माना जा सकेगा। यह काम भी केवल प्रेम के द्वारा जीता जा सकता है, किसी और साधन से नहीं।''[3]

जैनेन्द्र के विभिन्न उपन्यासों में विवाह, प्रेम और काम को लेकर उनकी दृष्टि की भी अभिव्यक्ति दिखाई देती है और इन तीनों धरातलों पर स्त्री-मुक्ति के प्रश्न से संवाद भी दिखायी देता है। अपने उपन्यास 'परख' में जैनेन्द्र इसी विचार-क्रम में लिखते हैं- ''प्रेम जीवन को बहलाने की वस्तु तो बन सकती है, लेकिन जीवन उसके लिए स्वाहा नहीं किया जा सकता। जीवन तो दायित्व है, और विवाह वास्तव में उसकी पूर्णता की राह-उसकी शर्त।''[4]

जैनेन्द्र प्रेम की तुलना में विवाह को वरीयता देते हैं। उनके अनुसार प्रेम की तुलना में विवाह अधिक पवित्र है और उसका स्थान कहीं अधिक ऊँचा है। वे प्रेम को एक आवेगजन्य भाव मानते हैं जिसपर जीवन को निर्भर नहीं किया जा सकता। जबकि प्रेम एक गंभीर दायित्व है। इस संबंध में उन्होंने लिखा है- ''इस दायित्व से एक ख्याल, एक भावना में बहकर कैसे छुट्टी पायी जा सकती है। प्रेम को इस दायित्वपूर्ण विवाह की बात में कैसे दखल देने दिया जाए? जीवन प्रेम से ज्यादा महत्त्व की ज्यादा ऊँची और पवित्र चीज है। प्रेम, जो अन्त में केवल एक आवेग, एक भाव है, उस पर जीवन कैसे निछावर कर दिया जाए?''[5]

विवाह को जैनेन्द्र कुमार ने एक सामाजिक संस्था माना है। इस संस्था को विवाहेत्तर रिश्ते क्षतिग्रस्त कर देते हैं। इस संदर्भ में जैनेन्द्र लिखते हैं- ''विसर्जन सम्पूर्ण हो तो फिर वह व्यक्ति के उपलक्ष्य से होकर भी उसके पास ही नहीं रूक पाता, वह तो भगवान के पास ही पहुँचता है। इसलिए सचमुच पति के अनन्तर भी पत्नी के पास देने को अर्ध्य रह ही जाता है। पति में से अपनी सम्पूर्णता पत्नी नहीं प्राप्त कर सकती। पति को तो इसलिए द्वार कह सकते हैं कि जिसमें से होकर उसका शेष की ओर-अखिल की ओर-संबंध बढ़ता और फैलता है। पति पर बंद होकर तो विवाह पत्नी के लिए कारागार की व्यवस्था का रूप ही बन जाता है। गृहस्थाश्रम कारागार नहीं है, बल्कि मुक्ति का द्वार होने के लिए है।''[6]

जैनेन्द्र के कई उपन्यासों की नायिकाएँ विवाह संस्था की नैतिकता को तोड़ती दिखायी देती हैं। ऐसी स्त्री चरित्रों में 'परख' की कट्टो 'सुखदा' की सुखदा, 'सुनीता' की सुनीता, 'त्यागपत्र' की मृणाल, 'कल्याणी' की कल्याणी, 'दशार्क' की रंजना आदि शामिल हैं। यदि हम इन उपन्यासों को देखें तो हम पाएँगे

कि इन उपन्यासों में जैनेन्द्र अपनी नायिकाओं को विवाह के बाद भी अन्य पुरुष से प्रेम करने की छूट देते हुए दिखायी देते हैं। लेकिन उनकी यह छूट भाव के स्तर ही सीमित है। वे शारीरिक स्तर पर प्रेम की छूट देते दिखायी नहीं देते। हम कह सकते हैं कि वे कामरहित प्रेम की छूट विवाह के बाद भी देते हैं।

जैनेन्द्र के उपन्यासों में जो विवाह, प्रेम और काम के स्तर पर स्त्री-मुक्ति का स्वर दिखायी देता है उसका एक महत्त्वपूर्ण पहलू मनोविज्ञान है। हम सभी इस बात से परिचित हैं कि जैनेन्द्र हिंदी कथा-साहित्य में मनोविश्लेषणवादी प्रविधि अपनाने वाले प्रथम कथाकार हैं। इस प्रविधि के माध्यम से ही वे व्यक्ति के अन्तर्मन में प्रवेश करते हैं। इस दृष्टि से उनके प्रथम उपन्यास 'परख' की नायिका कट्टो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। कट्टो ग्रामीण जीवन से जुड़ी हुई है, लेकिन वह साक्षर है। कट्टो सत्यघन के प्रति आकर्षित होती है। लेकिन सत्यघन बिरादरी और समाज के भय से उसकी उपेक्षा करता है। कट्टो के भीतर मुक्ति-चेतना है लेकिन वह मन के स्तर तक सीमित है। वह सजना-सँवरना चाहती है, स्वच्छंदतापूर्वक जीना चाहती है लेकिन बाल-विधवा होने के कारण समाज से उसे ऐसी इजाजत नहीं है। किन्तु कट्टो की मुक्ति-चेतना पल्लवित-पुष्पित होती रहती है और वह विधवा होने के बावजूद इस बंधन को तोड़कर बिहारी से विवाह कर लेती है।

जैनेन्द्र के दूसरे उपन्यास 'सुनीता' की केन्द्रीय चरित्र सुनीता हिंदी उपन्यास की एक बहुचर्चित चरित्र है। काम-चेतना और काम-कुंठा के संदर्भ में उसकी काफी चर्चा हुई है। सुनीता में स्त्री-मुक्ति की भीतरी बेचौनी दिखाई देती है। सुनीता श्रीकांत की पत्नी है पर वह घर की चाहरदीवारी को लांघने की आकांक्षा रखती है। श्रीकांत का एक मित्र है हरिप्रसन्न। सुनीता एक मिशन पर हरिप्रसन्न के साथ जाती है और जंगल में वह स्वयं को हरिप्रसन्न के समक्ष पूर्णतः निर्वस्त्र कर देती है। लेकिन हरिप्रसन्न लज्जा और ग्लानिवश वहाँ से चला जाता है। इस उपन्यास में भी जैनेन्द्र मनोवैज्ञानिक प्रविधि अपनाते हैं। श्रीकांत का मानना है कि जब दो व्यक्तियों के बीच तीसरे व्यक्ति का आगमन होता है तभी वास्तविक प्रेम की उपलब्धि संभव हो पाती है। श्रीकांत की यह सोच उसके प्रयत्नों के कारण सफल भी होती है। इसके माध्यम से सुनीता को अपने वास्तविक रूप की परख होती है। हरिप्रसन्न के सामने उसका निर्वस्त्र हो जाना एक आवेग का परिणाम मात्र होता है।

इसी प्रकार जैनेन्द्र के कई अन्य स्त्री चरित्रों मृणाल (त्यागपत्र), अनिता (व्यतीत), रंजना (दशार्क), सुखदा (सुखदा), कल्याणी (कल्याणी), मोहिनी (विवर्त), इला (जयवर्धन), धारिणी (तपोभूमि) में भी हम मनोविश्लेषणवादी पद्धति को लक्षित कर सकते हैं। ये सभी नायिकाएँ कुंठित एवं आत्मपीड़ित जीवन व्यतीत करती हैं और अपने लिए सही रास्ते के निर्माण में असफल दिखाई देती हैं। इनमें 'त्यागपत्र' उपन्यास की मृणाल बहुत महत्त्वपूर्ण स्त्री-चरित्र है। मृणाल एक सुसभ्य परिवार की युवती होती है। विवाह के उपरान्त वह पति द्वारा त्याग दी जाती है। एक कोयलेवाला उसकी जान बचाता है। इस उपकारवश वह उसे अपना तन सौंप देती है, किन्तु उसे वह अपना मन नहीं सौंप पाती।

समग्रतः जैनेन्द्र के उपन्यास में हम यह लक्षित करते हैं कि विवाह, प्रेम और काम के स्तर पर उनमें स्त्री-मुक्ति का स्वर सुनायी देता हुआ दिखाई देता है।

संदर्भः

1. जैनेन्द्र कुमार, काम, प्रेम और परिवार, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014, पृ. सं. 17
2. वही, परख, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृ. सं. 65
3. ज्योतिष जोशी, जैनेन्द्र और नैतिकता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृ. सं. 79
4. जैनेन्द्र कुमार, परख, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृ. सं. 66
5. वही
6. जैनेन्द्र कुमार, काम, प्रेम और परिवार, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014, पृ. सं. 18

वैश्विक परिदृश्य में पर्यावरण पर गांधीजी के विचारो की प्रासांगिकता

राखी भारती

विषय-राजनीति विज्ञान, आर्य नगर भिलाई छ. ग.

रामकुमारी

विषय-राजनीति विज्ञान, ओमपुर रजगामार, कोरबा, छ.ग.

सारांश- गांधी जी ने प्राकृतिक संसाधनों के महत्व एवं उसके संरक्षण पर जोर दिया था। वर्तमान काल में गांधीवादी दर्शन का महत्व भली-भांति महसूस किया जा रहा है। अत: वैश्विक स्तर पर शहरीकरण तथा विशेष तौर पर भारत में शहरीकरण के कारण हानिकारक प्रभावों का सामना कर रहा है, जिसकी कल्पना गांधी जी ने बहुत पहले की थी। गांधीजी का पर्यावरण के लिए संदेश था कि पृथ्वी, वायु, भूमि एवं जल हमारे पूर्वजों से प्राप्त सम्पत्तियां नहीं है। वह तो हमारे बच्चों की धरोहर हैं। वे जैसे हमें मिला है, वैसे ही उन्हें भावी पीढ़ियों को सौंपना होगा।

शब्दकुजीं- गोचर, जैव विविक्तता, पर्यावरण प्रदुषण, किरगिस्तान, बेलारूस, चीन, कंबोडिया।

प्रस्तावना- मनुष्य प्रजाति ने प्रकृति के प्रति जो, लापरवाही, उपेक्षा, असंवेदनशीलता व स्वार्थी प्रवृति का भाव रखने के कारण, मनुष्य द्वारा किए गये शोषण के विरूद्ध प्रकृति ने विद्रोह कर दिया है। आज पृथ्वी विनाश के कगार पर है एवं यह विचलन पर्यावरण के लिए गंभीर संकट बन गया है। पर्यावरण संबंधी चिंताओं की गहरी निराशा के बीच एक बड़ा सवाल यह है कि वह इंसान कहां खो गया है, जो खुद कट कर भी पेंड़ो को कटने से रोकता था? गोचर भूमि का एक टुकड़ा भी किसी को हड़पने नहीं देता था। जिनके लिए पानी का एक बुंद भी जिंदगी जितना कीमती थी। पर्यावरण संरक्षण हेतु समय-समय पर मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन हुए जैसे 1972 का स्टाकहोम सम्मेलन, 1992 का रियोडी जनेरियो, आदि। इसके जरिए राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों एवं घोषणाओं के उद्देश्यों को प्राप्त करने का यह माध्यम है। रूस, बेलारूस, चीन, कंबोडिया, इथियोपिया, ईरान, सीरिया, किरगिस्तान जैसे देश इस सम्मेलन में अनुपस्थित रहे। इस संदर्भ में भी भारत का मत यह रहा कि यह अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण कानून, समानता के मूलभूत सिद्धान्त को स्पष्ट नहीं करता एवं स्वच्छ, स्वस्थ्य और विकास शब्द को स्पष्ट परिभाषित नहीं करता। वहीं महासचिव एंटोनियो गुटेरस ने इस प्रस्ताव का पूर्ण स्वागत करते हुए कहा है कि जलवायु परिवर्तन जैव विविक्तता, पर्यावरण प्रदुषण का सामना करने के लिए सयुक्त राष्ट्र के सदस्य देश एक जुट हो सकते हैं। वैश्विक स्तर पर पर्यावरण संकट को देखते हुए राष्ट्र संघ का यह कदम एक ऐतिहासिक घटना कहा जा सकता है। पर्यावरण समस्या को ध्यान में रखते हुए संयुक्त राष्ट्र महासभा ने प्रस्ताव पारित कर स्वच्छ पर्यावरण को मान्यता दी है। इस प्रस्ताव पत्र में 193 सदस्य देशों में से 161 सदस्य देशों ने मतदान कर अपनी स्वीकृत दी। भारत देश भी सदैव से स्वच्छ एवं बेहतर पर्यावरण को संरक्षित करते हुए अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण संरक्षण में सहयोगात्मक योगदान दे रहा।

विश्व स्तर पर हो रहे पर्यावरण का क्षरण पृथ्वी के विनाश का कारण है। पिछले दशक की अपेक्षा पृथ्वी का पर्यावरण एक वृहद चिंता का विषय बनकर उभरा है। निरंतर हो रहे प्रदूषण इसका प्रमुख कारण है। प्राकृतिक पर्यावरण एक संरचित, संतुलित, सक्रिय एवं जटिल प्रक्रिया व तन्त्र है। तथा पर्यावरण प्रदूषण इसकी संरचना में आने वाला वह हानिकारक परिवर्तन है, जो इसके सभी दुसरे घटको को अवश्य रूप से प्रभावित करता है। मनुष्य की विकास की प्रकृति और अधिकतम उपभोग तितली प्रभाव को जन्म देता है। जो कि वृहत्तर स्तर पर जो वैश्विक स्तर पर प्राकृतिक सौदर्य को अप्रत्याशित परिणामों में बदल रहा है। आधुनिक समय में पर्यावरण के सभी घटकों पर मानवीय हस्तक्षेप बड़ रहा है। ग्रीन हाउस गैसे, कार्बनडाई आक्साइड, क्लोरो फ्लोरो कार्बन पर्यावरण को क्षति पहुचाने वाले प्रमुख कारण है। पैराबैगनी विकिरणों से पृथ्वी की रक्षा करने वाली ओजोन परत वर्तमान में हानिकारक विशैली गैसों से प्रभावित हो रही है। क्लोरीन, ब्रोमीन परमाणु वातावरणीय वायु के संपर्क में आकर जल एवं मृदा को प्रदूषित कर रहा है। नाइट्रोजन उर्वरको का अत्यक्तिक उपयोग, सुरसोनिक विमानों का उपयोग, परमाणु विस्फोट मृदा क्षय के कारण हैं। नदी, झील, तालाब, औद्यौगिकरण के कारण प्रदूषित हो रहे हैं। जिससे जल की उपयोगी क्षमता घट रही है। कृषि योग्य भूमि अक्तिक उर्वरकों के प्रयोग से क्षय हो रहा है। शहरों एवं बड़े महानगरों में सांस सम्बन्क्ती बिमारी वाहन से निकलने वाले सरपैंडिड पारटीकुलेट मैटर इसका कारण है। तेजी से वनों की कटाई ओजोन क्षय, हिम स्खलन, परमाणु विस्फोट, जलवायु परिवर्तन, वैश्विक तापमान में वृद्धि, पर्यावरण प्रदूषण आदि जैवविविक्तता एवं पृथ्वी में निवास कर रहे प्राणियों तथा जल, जंगल, जमीन को नष्ट करने का प्रमुख करण है। 5 जून, सन् 1972 को युनाइटेड नेशंस कान्फ्रेन्स आन ह्यूमैन एनवायरमैण्ट आरम्भ होने की तिथि को सन् 1973 में प्रथम विश्व पर्यावरण दिवस मनाया गया था। तब से प्रतिवर्ष हम 5 जून, को विश्व पर्यावारण दिवस मानते है तथा इसके साथ पर्यावरण को संरक्षित रखने के हेतु अनेक कार्यक्रमों एवं सम्मेलनों का आयोजन किया जाता है, परन्तु

वास्तविकता कुछ और ही है- प्रतिवर्ष 7 मिलियन लोगों की मृत्यु समय से पहले हो जाती है, जिसका प्रमुख कारण वायु प्रदुषण होता है। वहीं ग्लोबल वार्मिंग औद्योगिक क्रांति के बाद वैज्ञानिकों को आशंका है कि 2035 तक औसत वैश्विक तापमान अतिरिक्त 0.3 से 0.7 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ सकता है। जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमर्वक कन्वेंशन 2019, के अनुसार ग्लोबल वार्मिंग की वजह 2100 तक 80 फीसदी ग्लेशियर पिघल कर सिकुड़ रही है। इन 200 सालों में कार्बन उत्सर्जन बढ़ा है, उसमें अमेरिका का 30 प्रतिशत उत्सर्जन, युरोप का 30 प्रतिशत एवं चीन 20 प्रतिशत हिस्सा रहा है।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण के पांचवें सत्र में सतत् विकास लक्ष्यों को प्राप्त करनें के लिए एवं प्रकृति संबंधी कार्यों को सशक्त बनाने के लिए 14 प्रस्ताव प्रस्तुत किए है। जो इस प्रकार है:-

1. पारिस्थितिक तंत्र बहाली के लिए 2030, की भावना के रूप में यह प्रकृति आधारित ससमाधनों पर केंद्रित है। जिसमें उपयोग और प्रबंधन हेतु कार्यवाही शामिल है।
2. खनिज और क्तातु प्रस्ताव, सतत् झील प्रबंधन पर प्रस्ताव, नाइट्रोजन अपशिष्ट को कम करना, जैव विविधता और स्वास्थ्य पर प्रभाव, पशु कल्याण आदि प्रस्ताव को शामिल किया गया है।
3. प्लास्टिक प्रदुषण को समाप्त करने के लिए सरकारी वार्ता समिति आई.एन.सी. स्थापित करने हेतु 2022, से बाध्यकारी कानून की शुरूआत।
4. रसायन और अपशिष्ट के प्रबंधन पर प्रस्ताव।

भारत की पर्यावरण स्थिति रिपोर्ट 2022 के अनुसार:-

भारत में पर्यावरण को संरक्षित रखने हेतु पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 लागू किया गया है। जिसे 23 मई, 1986 को संसद द्वारा पारित किया गया है। सन् 1972 के स्टाकहोम में आयोजित मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में भारत सरकार का ध्यान पर्यावरण संरक्षण की तरफ खिंचा, इस परिप्रेक्ष्य हेतु 23 मई, 1986 को पूर्ण बहुमत से संसद में पर्यावरण संरक्षण अधिनियम पारित कर लागू किया गया। यह अधिनियम पूरे भारत में लागू है। भारत देश में भी अन्य देशों की तरह समय-समय पर पर्यावरण की स्थिति को लेकर राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय रिपोर्ट प्रकाशित होती है।

भारत का अंक 18.9 के साथ सबसे नीचे 180 वें स्थान पर रहा, जिसमें प्रक्तान मंत्री आवास एवं पेय जल के तहत 46.8 प्रतिशत एवं पेय जल की व्यवस्था 45 फिसदी तक रहा। कृषि कार्यों में किसानों की आय दुगनी करने का लक्ष्य 37 प्रतिशत ही रह गई, जो की 2012-13 के मुकाबले वृद्धि दर कम है। वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के उद्देश्य से 2022-23 तक देश के शहरों में सस्पेंडेड पार्टिकुलेट मेटर 2.5 का स्तर 50 माइक्रो ग्राम प्रति धन मीटर से नीचे लाने का लक्ष्य रखा गया था पर यह भी विफल रहा एवं नवीकरणीय उर्जा 56 प्रतिशत हासिल किया जा सका। वनाच्छादन के लक्ष्य को भारत के केवल 17 राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश ही निजी रूप से प्राप्त कर पाए। सतत विकास लक्ष्यों के संदर्भ में भारत 66 प्रतिशत, अंको के साथ दुनिया भर के 192 देशों में से 120 वें स्थान पर रहा। इन लक्ष्यों को प्राप्त कर पाने में कोरोना महामारी बाधक साबित हुआ। फिर भी भारत में पर्यावरण की कई समस्याऐं है, जैसे वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, भूमि प्रदूषण एवं कूड़ा-कचड़ा संबंधित प्रदूषण की समस्याऐं। भारत इन समस्याओं से निपटने के लिए दुनिया में सबसे तेजी से प्रगति कर रहा है, फिर भी विकसीत अर्थव्यवस्थाओं वाले देशों के स्तर तक आने में इस तरह के पर्यावरण की गुणवत्ता को सुधारने में लंबा सफर तय कर रहा है। बढ़ती जनसंख्या भारत के पर्यावरण क्षरण का प्रथम कारण है। दूसरा कारण शहरीकरण व औद्योगिकरण में अनियंत्रित वृद्धि बड़े पैमाने पर औद्योगिकरण विस्तार तथा तीव्रीकरण तथा जंगलों का नष्ट होना, कृषि भू-क्षरण, संसाधन रिधीकरण सार्वजनिक स्वास्थ्य, जैव विविधता, गरीबी एवं अजीविका सुरक्षा आदि पर्यावरण मुद्दों में शामिल है।

कुंभ मेले के दौरान प्रतिवर्ष गंगा नदी में काफी हद तक प्रदूषण होती है। यमुना नदी का भी यही हाल है। दिल्ली एवं कलकत्ता जैसे महानगर में वायु प्रदूषण के कारण 30 लाख, लोगों की मौत प्रति वर्ष हो रही है। प्राख्यात पर्यावरणविद् सुनिता नारायण का कहना कि वायु प्रदूषण कोई सीमा नहीं जानता है इसलिए एक-दूसरे पर अंगुली उठाने की कोशिशों से कोई सार्थक प्रगति होते नहीं दिख रहा है। स्वच्छ पर्यावरण का अधिकार प्रत्येक देश के नागरिकों का मानवाधिकार घोषित है। प्रत्येक सजीव मनुष्य एवं जीव-जन्तु पेड़-पौधे के बीच गहरा संबंध होता है और एक से प्रभावित होने पर दूसरा प्रभावित होता है। वैज्ञानिकों ने शोध में सिद्ध किया है कि वनस्पति की एक प्रजाति नष्ट होने से 28 जीव जन्तुओं के नष्ट होने का खतरा पैदा होता है। पूरे विश्व में लगभग 50 हजार से ज्यादा प्रजातियॉ नष्ट हो रही है। यह एक गंभीर एवं विचारणीय स्थिति है। सैद्धांतिक रूप से भले ही हमें स्वच्छ पर्यावरण का अधिकार है। परन्तु व्यवहारिक रूप में यह एक स्वप्न है, अनेक योजनाओं के क्रियान्वयन के बाद भी यह लक्ष्य से काफी दूर है। बॉब ब्राउन का कथन भविष्य या तो हरा होगा या तो नहीं होगा। मनुष्य की भौतिक इच्छाओं और आकांक्षओं ने इस तरह पर्यावरण को क्षति पहुँचाया है कि मानवजाती के शायद पहले के कुल मानव इतिहास की तुलना में पहुँचाया होगा। गांधी जी का कथन कि- अगर हम पर्यावरण को संरक्षित रख पाएंगे तभी वह हमारे आने वाली पीढ़ी को संरक्षित रख पाएंगे। अत: पर्यावरण से संबंधित गांधी जी ने निम्नलिखित विचार धाराएं दि है।

वायु प्रदूषण पर गांधी जी के विचार:- मनुष्य भोजन, पानी, के बिना कई दिन तक जीवित रह सकता है, लेकिन हवा के बिना जीवित नहीं रह सकता। गांधी जी ने वायु प्रदूषण को सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या, आध्यात्मिकता, स्वराज व शासन तथा शैक्षिक दृष्टिकोण के रूप में देखा है। 1918 में गांधी जी ने स्वच्छ वायु को स्वराज के नजरिये से देखा। 21वीं सदी में स्वच्छ हवा, पानी एवं अनाज स्वराज के मांग के सामान ही होगी। अगर वायु इसी तरह प्रदूषण का शिकार होता रहेगा, तब लोग निवास के लिए एक स्वच्छ वातावरण की ओर जाएगे, जो किमती होगी। आधुनिक सभ्यता के आलोचकों के अनुसार गांधी जी का कथन कि जहां हवा मुक्त नहीं है, मानव सभ्यता को प्रदूषण और पारिस्थतिक आपदा के बंधन से मुक्त कराना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

जल प्रदूषण पर गांधी जी के विचार:- गांधी जी ने उद्योगवाद और उपभोकतावाद का कड़ा विरोध किया, वह उनकी प्रवत्तियों से परिचित थे। अपने अन्य समकालीनों के विपरित, गांधी, औद्योगीकरण को अपरिहार्य ऐंतिहासिक आवश्यकता नहीं मानते थे। सादा जीवन, उच्च विचार के दर्शन में विश्वास रखने वाले थे। गांधीजी ने नदी प्रदूषण पर गहरी चिंता व्यक्त करते हुए मानव मल-मूत्र को नदियों में बहाये जाने के बजाए, उससे खाद् तैयार करने पर जोर दिया

था। गंगा के किनारो की गंदगी, नर्मदा के किनारों की गंदगी हरिद्वार, ऋषिकेश के रास्तों में मल-मूत्र तथा गंदगी से गांक्तीजी बहुत चिंतित थे। आज भी कुंभ के मेले में ढ़रों गंदगी होती है। जल संकट पर्यावरण संकट और भीषण खतरों से जूझ रही है, दुनिया को अगर अपना अस्तित्व बचाना है, तो आज गांक्तीदर्शन और विचारों को अपनाना होगा।

विकास एवं पर्यावरण पर गांक्ती जी के विचार:- गांधी जी ने स्थिरता एवं सतत् विकास के लिए बढ़ती इच्छाओं तथा जरूरतों के अक्तीन आधुनिक सभ्यता के खतरे की ओर 1987 में ब्रंडलैंड रिपोर्ट से पहले ही ध्यान दिलाया था। लंबी दूरी से लाये गए खाद्य पदार्थ के आवागमन से अक्तिक मात्रा में उर्जा का खपत के साथ कार्बन डाई-ऑक्साइड व ग्रीन हाउस गैंसों का उत्सर्जन होता है, जो जलवायु को बहुत हद तक प्रभावित करता है। उनका कहना था कि जब लोग अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए 10 या 20 किलोमीटर से ज्यादा दूर के संसाधनों का उपयोग करेगा, तब प्रकृति की अर्थव्यवस्था नष्ट होगी। इसलिए गांधी जी ने गैर कार्बन अर्थव्यवस्था पर बल दिया। गांधी जी का पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता व समझ को वर्तमान संदर्भ में समझने की आवश्यकता है।

स्वच्छ भारत अभियान तथा गांधी जी की प्रासांगिकता:- गांधी जी और उनके साथियों के सामने देश के ग्रामीणों के बीच सफाई और स्वच्छता की गंभीरता तब स्पस्ट हो गई, जब उन्होने चंपारण में कार्य शुरू किये। उनको यह समझ में आया की समुचित ग्रामीण शिक्षा के बीना स्थाई कार्य असंभव है। उन्होने अपनी पत्रिका नवजीवन तथा यंग इंडिया में लिखा कि किसान और उनके परिवार अनभिज्ञता और बेफिक्री के कारण गंदी और अस्वच्छ स्थितियों में रह रहें है। गांधी जी के लिए शौचालय की सफाई, खुले में शौच, गलियारों की सफाई और स्वच्छता, भारत में महत्वपूर्ण काम था। गांधी जी ने जिस भारत का सपना देखा था उसमें सिर्फ राजनीतिक आजादी ही नहीं थी बल्कि एक स्वच्छ एवं विकसित देश की कल्पना भी था। सफाई एवं स्वच्छता गांधी जी के पूरे जीवन में तथा जीवन के अंत तक प्राथमिकता बनी रहीं।

पर्यावरण सम्बन्क्तित भारतीय कानून-

भारतीय संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांतों (भाग-4) के अनुच्छेद-48 के अनुच्छेद-51क (छ) में कहा गया है कि, भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है की वह प्राकृतिक पर्यावरण वन, झील, नदी और वन्य जीव जन्तु की रक्षा करें और उसका संवर्द्धन करें एवं प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखें।

वृक्षा रोपड़ तथा गांधी जी के विचार:- गुलाम भारत में अंग्रेजी हुकुमत ने भारत के वनों को धन कमाने का साधन ही समझा था। जिसका गांधी जी ने कड़ा विरोध किया। गुजरात में अकाल तथा पानी के मुद्दे पर गांधीजी ने कहा कि सभी रियासतों को मिलकर, खाली भूमि पर पेड़ लगाने चाहिए। भारत में चिपको आंदोलन के प्रणेता चंडी प्रसाद भट, सुंदर लाल बहुगुणा, बाबा आमटे एवं मेधा पाटकर ने भी गांधीजी से ही प्रेरणा ली थी। गांधी का कहना था कि पेड़ कटना हिंसा करने के समान है। एक पेड़ कटना एक व्यक्ति की हत्या करने के समान है। यह विचार प्रकृति के प्रति उनका प्रेम ही था जो प्राकृतिक चिकित्सा के रूप में नजर आता है।

निष्कर्ष:- गांधी जी दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद दो वर्ष तक पूरे देश की यात्रा करते हुए महसूस हुआ कि सफाई और सामाजिक स्वच्छता बड़ी और लगभग अजेय समस्या है। जानकारी का अभाव इसका इकलौता कारण नहीं था, वह मानसिकता भी कारण था, जो लोगों को स्वस्थ्य एवं पर्यावरण पर प्रभाव डालने वाली इस सबसे गंभीर समस्या पर सोचने से रोकती थी। चंपारण के गांव में सफाई मुश्किल काम था। परन्तु चंपारण के दल में शामिल हुए डॉ. देव ने नियमित रूप से सड़को और मैदानों में झाड़ू लगाई, कुएं व तालाब भरे। जिससे धीरे-धीरे गांव के लोगों में भी आत्मनिर्भरता का वातावरण तैयार होने लगा। गांधी जी ने कई जनभावनाओं, बैठकों, छोटे समूहों, स्वंसेवकों, महिलाओं एवं आश्रमवासियों को संबोधित किया। कांग्रेस के प्रत्येक बड़े सम्मेलन में गांधीजी अपने भाषण में पर्यावरण का मुद्दा जरूर उठाते थे। वर्तमान में बढ़ती पर्यावरण समस्या आज पूरे विश्व की समस्या है। अहिंसा का गांधीवादी विचार, यदि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति से लेकर स्थानीय स्तर तक विभिन्न स्तरों पर अपनाया जाए, तो युद्धों और मिसाइलों के उत्पादन के कारण होने वाले कार्बन फुटप्रिंट को कम करने में उपयोगी हो सकता है।

संदर्भ ग्रंथ:-

1. संयुक्त राज्य संघ की वेबसाइट. मेडिकल जनरल ऑफ रिसर्च, 2019 महात्मा गांधी का जीवन।
2. मीना शीतल, 2022 "पर्यावरण और गांधी" आईएसबीएन नं. 9789356821361
3. डॉ. राजेंद्र प्रसाद, पर्यावरण और गांधी आईएसबीएन नं. 2320-2882.
4. अमर उजाला, 4 जून 2022 विश्व पर्यावरण दिवस पर गांधी के विचार।..
5. चन्द्रशेखर धर्माधिकारी गांधी विचार और पर्यावरण आईएसबीएन नं. 9788190623780
6. इंडिया. सरकार. भारत स्वच्छ भारत अभियान एक कदम स्वच्छता की ओर।
7. अयंकर सुदर्शन, 7 दिसंबर 2019 "स्वच्छता पर गांधी जी के विचार" जन आंदोलन योजना।
8. डॉ. शुभांगी राठी, स्वतंत्रता के बारे में गांधीवादी विचारों का महत्व।
9. सत्य नारायण साहूद्वार, 2019 स्वच्छ वायु पर गांधीवादी दर्शन।

पुस्तकालय में स्वचालन की भूमिका एवं महत्व

अशोक कुमार

ग्रंथपाल, प्रतिभा कॉलेज ऑफ एजूकेशन, बालसी सरायपाली, जिला- महासमुन्द (छ.ग.)

ABSTRACT:

शैक्षणिक संस्थाओं में पुस्तकालय का महत्व उसी प्रकार है जिस प्रकार शरीर में हृदय का होता है। इसलिए आवश्यकता इस बात का है कि विभिन्न व सभी प्रकार के पुस्तकालयों को आधुनिक तकनीकी से जोड़ कर इसे मजबूत किया जाये। चुंकि सम्पूर्ण विश्व कम्प्यूटर एवं सूचना तकनीकी के क्रांतिकारी दौर से गुजर रहा है और इन सभी के लिए पुस्तकालय एक आत्मा के रूप में कार्य करता है। अत: पुस्तकालय में कम्प्यूटर का प्रयोग कर स्वचालन करना एक प्रकार की अनिवार्यता बन चुका है। आधुनिक समाज सूचना क्रान्ति के दौर से गुजर रहा है। सूचनाएँ पिन्ट मिडिया जैसे फोनोग्राफ रिकार्डस फिल्मों की टेपों, माइक्रोफोर्म्स, रेडियों, टीवी, फैक्स मोबाइल फोन इंटरनेट, ई मेल ऑडियो कॉन्फ्रेसिंग आदि में उपलब्ध है। तथा वर्तमान समय में उपयोगकर्ताओं को विशिष्ट विषय में विस्तृत सूचनाएँ को सटीक, तीव्र व कम से कम समय में उपलब्ध कराने की आवश्यकता है। विशाल सूचनाओं को हस्तचलित और परम्परागत प्रणाली से व्यस्थित करने में अत्यधिक समय लगता है। अत: उपभोक्ताओं को कुशल और समयबद्ध सेवाएं प्रदान करने के लिए पुस्तकालयों को स्वचालित करने की तत्काल आवश्यकता है। इसी को देखते हुए पुस्तकालय में स्वचालन शब्द की उत्पत्ति हुआ है।

KEYWORDS: सूचना प्रौद्योगिकी स्वचालन, अधिग्रहण, प्रसुचीकरण परिचालन, सीरियल पर नियंत्रण प्रतिवेदन

प्रस्तावना-

स्वचालन शब्द, जिसका अंग्रेजी पर्याय ऑटोमेशन होता है, की उत्पत्ति ग्रीक शब्द ऑटोमोंस (Automons) से हुई है जिसका अर्थ ऐसी शक्ति से होता है, जिसमें स्वयं गति हो अथवा स्वचालित हो। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग डी. एस. हार्डर महोदय ने वर्ष 1936 में किया था पुस्तकालय स्वचालन से तात्पर्य है पुस्तकालय की परंपरागत गतिविधियों जैसे अधिग्रहण, प्रसुचीकरण, परिचालन, सिरियल नियंत्रण आदि का मशीनीकरण करना। दुसरे शब्द में ग्रंथालय स्वचालन का अर्थ कम्प्यूटर और अन्य प्रौद्योगिकियों का उपयोग करके पुस्तकालयों के कार्यों में मानव का कम से कम हस्तक्षेप करना। पुस्तकालय स्वचालन से कार्य में सरलता, परिशुद्धता, त्वरित सेवा, त्वरित डेटा प्रक्रियाकरण के अलावा श्रम, धन, एवं समय की बचत होती है।

डी. एस. हार्डर के अनुसार ' the Automatic handling of Part's between different stages of the production process"

अध्ययन के उद्देश्य:-

(1) आधुनिक समाज में पुस्तकालय में कम्प्यूटर के प्रभाव का वर्णन करना।
(2) पुस्तकालय स्वचालन की आवश्यकता एवं महत्व का वर्णन करना।
(3) पुस्तकालय स्वचालन के प्रयोग के विभिन्न क्षेत्रों पर चर्चा करना।
(4) स्वचालित पुस्तकालय की मुख्य विशेषताओं की व्याख्या करना।
(5) स्वचालित पुस्तकालय से होने वाले लाभों के बारे में वर्णन करना।

पुस्तकालय स्वचालन की आवश्यकता:-

(1) साहित्य विस्फोट और सूचनाओं की अधिकता।
(2) अधिक मात्रा में आँकड़ों और सूचनाओं को संभालना।
(3) सूचना और इसकी पुन: प्राप्ति की प्रक्रिया की तेजी।
(4) सूचना की खोज में लचीलापन।
(5) राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय व विशिष्ट डेटावेसों की खोज।
(6) वर्तमान सेवाओं में सुधार।
(7) कार्य की दक्षता एवं गति को बढ़ाना।
(8) नेटवर्कों, संसाधन सहभागिता व इन्टरनेट का प्रयोग।

पुस्तकालय स्वचालन के अनुप्रयोग के क्षेत्रः-

हस्तचलित पारंपरिक पुस्तकालय के कार्य जैसे अधिग्रहण, तकनीकी प्रक्रिया, परिचालन सीरियल्स नियंत्रण, देय- आदेय और संदर्भ सेवाएँ काफी समय लेती है। हालांकि ये सभी गतिविधियाँ पुस्तकालय के कार्य करने के लिए अनिवार्य है ये व्यावसायिक कर्मचारियों का काफी समय नष्ट करती है तथा हस्तचलित कार्य में विभिन्न गतिविधियों की पुनरावृत्ति हो जाती है। इस प्रकार स्वचालन का उद्देश्य इन गतिविधियों को एकीकृत करके कार्य की पुनरावृत्ति को रोकना है। एकिकृत पुस्तकालय प्रबंधन सॉफटवेयर पैकेज में उपलब्ध है जो पुस्तकालय स्वचालन में प्रयोग किया जा सकते है।

एकिकृत पुस्तकालय प्रबंधन प्रणाली

अधिग्रहण

प्रसुचीकरण

परिचालन

पत्र पत्रिका नियंत्रण

(अ) अधिग्रहणः- पुस्तकालय के अधिग्रहण प्रभाग में पाठ्य सामग्री (पुस्तकें इलेक्ट्रानिक, समाग्री, पत्र पत्रिकाएँ, नक्शे, चार्ट इत्यादि) प्राप्त किये जाते है।

अधिग्रहण प्रभाग के कार्य

(1) प्रलेखों का चयन।

(2) प्रलेखों के क्रयदेश बनाना।

(3) बिलों की प्राप्ति एवं उनका मिलान।

(4) परिग्रहण संख्या प्रदान करना।

(ब) प्रसुचीकरणः- पुस्तकालय में ग्रंथ प्राप्ति के बाद में उसे परिग्रहण संख्या प्रदान करने के पश्चात उनका वर्गीकरण एवं प्रसुचीकरण करके उन्हें तैयार किया जाता है। प्रसुचीकरण पुस्तकालय में संग्रहों की खिड़कियाँ होती हे जिनके स्वचालन का प्रभाव उनकी सेवाओं की गुणवत्ता पर लम्बे समय तक पड़ता है।

हस्तचलित वातारण में व्यावसायिकों का मुल्यवान सयम प्रसुचीपत्रक तैयार करने छांटने में और उन्हें पंक्तिबद्ध रखने में खर्च हो जाता है। जबकि स्वचलित प्रणाली में, एक बार प्रासंगिक आंकड़ों को तैयार करके कम्प्यूटर में उपलब्ध करा दिया जाता है। जिससे मानक प्रारूप में प्रसुची तैयार की जा सकती है।

(स) परिचालनः- परिचालन अनुभाग में उपभोक्ताओं और कर्मचारियों के बीच सीधा संपर्क होता है। और इसलिए कुशल और त्वरित सेवाओं की आवश्यकता होती है। परिचालन डेस्क में लेन देन विवरण जैसे निर्गम, वापसी, पुनः देय आरक्षित, ओवरड्यु आदि समय नष्ट करने वाले थकाऊ और त्रुटि की संभावना से भरे होते हैं। जबकि स्वचालन से पुस्तकालय को लाभ होता है। बारकोड सुविधाओं से परिचालन गतिविधियों में गति, दक्षता व सुधार के साथ साथ समय की भी बचत होती है।

परिचालन प्रभाग के कार्यः-

प्रलेखों का निर्गम

प्रलेखों का वापसी

प्रलेखों का नवीनीकरण

प्रलेखों की ऋण अवधि

प्रलेखों पर नियंत्रण

उपभोक्ताओं को सूचना संदेश देना

(द) पत्रिका नियंत्रणः- पत्रिकाओं का नियंत्रण एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें बड़ी संख्या में प्रकाशनों व उनके खर्चों का रखरखाव किया जाता है। इसके अतिरिक्त, पत्रिका नियंत्रण विभाग में रसीदों अनुस्मारक, पत्रिका वापिस न मिलने का दावा, अवधि परिवर्तन, आदि की समस्याओं का मानवीय रूप से क्रियान्वित करना पड़ता था। स्वचालन के आने से अधिकांश कार्य सरल व कुशलता से पूरे किए जा सकते हैं।

पत्रिका नियंत्रण विभाग के कार्यः-

पत्रिकाओं का शुल्क

ई- पत्रिकाओं और डेटावेस की सदस्यता सदस्यता / पत्रिका भाल्क का नवीनीकरण

गुम हुये अंकों का दावा करना

पत्रिकाओं का प्रतिस्थापन

प्रतिवेदनः- एकीकृत पुस्तकालय प्रबंधन प्रणाली का इस प्रकार प्रबंधन किया जाना चाहिए कि जिससे उपभोक्ताओं को अत्यधिक लाभ हो, सुरक्षा के समुचित उपाय हो एवं समय पर पुस्तकालय सामग्री प्राप्त हो सके।

प्रतिवेदन प्रभाग के कार्यः-

पुस्तकालय गतिविधियों से संबंधित प्रतिवेदन और सांख्यिकी आँकड़े।

सांख्यकिय सूचना विश्लेशण के उपकरण।

उपभोक्ताओं, प्रकाशकों और आपूर्तिकर्ताओं की सूची का रख रखाव।

स्टॉक की जाँच का प्रतिवेदन तैयार करना इत्यादि।

पुस्तकालय के स्वचालन लागु करने के निम्न लाभ होते हैः-

(1) कार्य में सरलताः- बड़े-बड़े कार्य जिन्हें करने में कर्मचारियों को अधिक समय तक लगाना पड़ता था वे स्वचालन की सहायता से सरलता से किये जा सकते हैं।

(2) कार्य में परिशुद्धताः- मानव यदि कोई कार्य करता है तो उसमें गलतियाँ होना स्वाभाविक है, लेकिन स्वचालन में गलती होने की कोई सम्भावना नहीं होती है।

(3) त्वरित सेवाः- संग्रह का पुस्तकालय में अनेक कार्य होते हैं जिन्हें मानव द्वारा करने में अत्यधिक समय लगता है। जैसे सत्यापन, ग्रंथसूची का संकलन आदि स्वचालन विधियों का उपयोग करके इन सभी साध्य असाध्य कार्यों को त्वरित गति से निपटाया जा सकता है।

(4) उत्तम सेवाः- पुस्तकालय में स्वाचालन जैसे कि माइक्रोफेमिंग तथा रिप्रोग्राफी आदि तकनीकियों के द्वारा पहले की अपेक्षा उत्तम सेवा प्रदान की जाती है। इसके साथ ही स्वचालित अनुक्रमणिकाकारण भीघ्र खोज प्रक्रिया तथा किसी मांगी गई सूचना तक भीघ्र पहुँचा जा सकता है।

(5) त्वरित डेटा प्रक्रियाकरणः- यदि डेटाओं का प्रक्रियाकरण कार्य मानव द्वारा किया जाय तो उसमें अत्यधिक समय लेता है परन्तु इलैक्ट्रानिक डेटा प्रोसैसिंग प्रणाली के द्वारा डेटाओं का प्रक्रियाकरण कार्य भीघ्रता से किया जा सकता है।

(6) श्रम एवं समय की बचतः- स्वचालित उपकरणों की सहायता से पुस्तकालय सम्बन्धी कार्य आसानी से किये जाते हैं जिससे आर्थिक रूप से धन की बचत तो होती ही है साथ ही मानवीय श्रम भी कम करना पड़ता है।

निष्कर्षः-

इस प्रकार हम संक्षेप में कह सकते है कि परम्परागत पुस्तकालय में अनेक तरह की समस्याऐं उत्पन्न होती है। जिसके अन्तर्गत सूचना को एकत्र करने की तथा उसी सूचना को संगठित करने में तथा साथ ही साथ संगठित सूचना को वितरित करने में जैसे सूचना प्रणाली आदि में समस्या आती है। तथा इसमें पुस्तकालय कर्मचारी का बहुत समय नष्ट हो जाता है। सूचना प्रौद्योगिकी के प्रयोग के कारण सूचना प्रणाली द्वारा सूचना को एकत्र करने में तथा उसे संगठित कर वितरित करने में आसानी होती हैं उसी प्रकार ग्रंथालय का स्वाचालन करके पुस्तकालय के कार्य जैसे अधिग्रहण, सुचीकरण परिचालन पत्र-पत्रिका नियंत्रण देयख्रअदेय, प्रतिवेदन आदि गतिविधियाँ को आसानी से सम्पन्न कराया जा सकता है।

संदर्भग्रंथ सूचीः-

1. लाल. सी., ग्रंथालय एवं आधुनिक प्रौद्योगिकी, एस. एल. पब्लिकेशन, नई दिल्ली.
2. शर्मा प्रहल्लाद, इंटरनेट और पुस्तकालय, ज्योति पब्लिकेशन, जयपुर
3. सिंह निरंजन एवं सिंह कल्पना, ग्रंथालय नेटवर्क, ग्रंथालय विज्ञान, 38.1 - 2 (2007) प्रिंट
4. www.ignou.ac.in
5. www.nios.ac.in
6. Sinha. A. K., computer application to library & information system

कुमाऊं की महिलाओं की संस्कृति और कला

शहनुमा पाशा

शोधार्थिनी (इतिहास विभाग) कुमाऊँ विश्वविघालय, नैनीताल

डॉ० विकास रंजन कुमार

शोध निर्देशक (इतिहास विभाग) कुमाऊँ विश्वविघालय, नैनीताल

सारांश- कुमाऊँ मंडल की महिलाओं की एक बहुत ही महत्तवपूर्ण कला अल्पना है। अल्पना कुमाऊँ क्षेत्र के घरों में बहुत ज्यादा दिखाई पड़ती है। इस क्षेत्र में बीते दो दशकों से शैलचित्रों की खोज की गई है। इनमें सबसे प्रसिद्ध उदियार और लवेशाप है। दुनिया भर में विख्यात चित्रकला की शैली पहाड़ी कलम कुमाऊँ की उत्पति है। छलारिया कुमाऊँ मंडल की महिलाओं का सबसे लोकप्रिय नृत्य है। यह क्षेत्र की मार्शल परंपराओं से जुड़ा हुआ है। ये उत्तराखंड राज्य का प्रशासनिक क्षेत्र भी है। हिंदी यहां की महिलाओं की आम बोलचाल की भाषा है। कुमाऊँनी यहाँ की मूल भाषा है। यहां पर महिलाएं 13 प्रकार की बोलियां बोलती हैं। जिनमें सिराली, सोरयाली, माझ, कूमैया, रौचौभैसी, जौहरी, गंगोला, दानपुरिया, अस्कोटी आदि आती हैं।

अध्ययन क्षेत्र- इसका अध्ययन क्षेत्र समस्त कुमाऊँ मंडल है। जिसमें कुमाऊँ की महिलाओं पर विशेषतया अध्ययन किया जाएगा।

प्रस्तावना- कुमाऊँ मंडल भारत के सबसे समृद्ध सांस्कृतिक क्षेत्रों में आता है। कुमाऊँनी संस्कृति की जड़े बहुत गहरी है। कुमाऊँ महिलाएं सजावटी कला रूप हो या पारंपरिक पोशाक वे परंपराओं, अनुष्ठानों और विरासत में समृद्ध है। कुमाऊँ संस्कृति दो वर्गों से संबंधित है। प्रथम सामान्य वर्ग तथा द्वितीय अभिजात वर्ग। सामान्य वर्ग को लोकसंस्कृति तथा अभिजात वर्ग को अभिजात संस्कृति कहा जाता है। सामान्य संस्कृति को निम्न वर्ग के लोगों ने सुरक्षित रखा है। इसमें लोक साहित्य के अनेक रूप लोक कथा, लोकगीत, जागर, आदि आते हैं। अभिजात वर्ग में ऐपड़ तथा बारबूँद आदि आते हैं। कुमाऊँ की महिलाएँ विभिन्न प्रकार के वस्त्र धारण करती हैं। पिछोड़ा कुमाऊँनी महिलाओं का उल्लेखनीय परिधान हैं। अल्पना कुमाऊँ की महत्तवपूर्ण कला है। विशुद्ध अल्पना विशेषतया भूमि पर अंगुलियों से बनाई जाती है। किन्तु कुछ अल्पनाएं ऐसी भी है जिन्हें कागजो वेदियों, चौराहे फाटकों पर तूलिका से निर्मित किया जाता है। यह एक भिन्न वर्ण प्रकीर्ण के अंतर्गत रखी जाती है।

अध्ययन कार्य- कुमाऊँनी संस्कृति असंख्य देवी-देवताओं की लोककथाओं और कहानियों में डूबी हुई है। कोई भी ऐसी नदी या पहाड़ नहीं है, जो लोककथा से जुड़े हुए ना हो। यहां की भाषा कुमाऊँनी है। कुमाऊँ अत्यंत मनमोहक और सुंदर क्षेत्र है। कुमाऊँ की महिलायें समाज में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। क्योंकि महिलाएं घरेलू काम के साथ खेती भी करती है। कुमाऊँ की महिलाएं देवी-देवताओं में भी बहुत विश्वास रखती है। कुमाऊँ के लोकप्रिय देवताओं में एरी शामिल है। सर पर जिनकी आंखें लगी हैं। कुमाऊँ की सबसे प्रसिद्ध देवी नैना देवी हैं। यहां के अन्य देवी-देवताओं में अन्यारी, उज्जयाली, भोलानाथ, गंगनाथ, नागनाथ आदि आते है। कुमाऊँ की महिलाएं अपनी संस्कृति के लिए पूरी दुनिया में मशहूर हैं। यहां की महिलाएं नाक तक सिंदूर लगाती हैं। तथा बड़ी-बड़ी नथ पहनती है। जो अपने आप में बहुत ही सुंदर लगता है। यहां की एक विशेष पोशाक है, जिसको पिछोड़ा कहा जाता है। इसके अंतर्गत महिलाएं पीले केसरिया रंग का लाल बिंदीदार दुपट्टा पहनती है।

पिछोड़ा और नथ महिलाओं की खूबसूरती को बढ़ा देती है। इनको देखकर पता लग जाता हैं कि यह महिलाएँ कुमाऊँ की हैं। यहाँ पर विभिन्न अवसरों पर महिलाएँ पिछोड़ा पहनती है। विवाहित महिलाएं ही पिछोड़ा पहनती है। यह पहली बार शादी के दिन पहना जाता है।

कुमाऊँनी महिलाओं की लोककला की बात की जाए तो कुमाऊँनी संस्कृति धार्मिक भावना से अनुप्राणित है। कुमाऊँनी लोककला कई वर्गों में विभाजित है। अल्पना बारबूँद, पट्टा ज्योति, डिकर तथा प्रकीर्ण। लोकभाषा में ऐपड़ को अल्पना की संज्ञा दी जाती है। अल्पना बनाने से पहले भूमि को गेरू या लाल मिट्टी से लीप लिया जाता है। अल्पना में पान, त्रिशूल, मछली, कमल, लताएं इत्यादि के चित्र बनाये जाते हैं। विभिन्न त्यौहारों पर देवताओं के प्रतीक निर्मित चित्र पट्टा कहलाते हैं। पर्वों पर मिट्टी से निर्मित मूर्तियां डिकर कहलाती हैं।

कुमाऊँ की महिलाएं भिन्न भिन्न अवसरों पर लोक नृत्य करती हैं। कुमाऊँ में आमोद-प्रमोद के रूप में मेलों के अवसर पर कई प्रकार के लोक नृत्य प्रचलित है। कुमाऊँ मंडल का कोई भी मेला ऐसा नहीं, जिसमें लोक नृत्य न होता हो। इन नृत्यों में छोलिया, झोड़ा, छपेली, चाँचरी प्रमुख है। वृत्ताकार घेरे में एक दूसरे का हाथ पकड़ कर कुमाऊँ की महिलाएं सर झुकाकर द्रुत गति से झूलती हैं। इसको ही झोड़ा कहते हैं। चाँचरी नृत्य में गाए जाने वाले गीतों के लय विलंबित होती है।

कुमाऊँ की महिलायें शुभ-अशुभ विश्वास तथा मान्यताओं में बहुत यकीन मानती हैं। कौवों का बोलना, सांपों की लड़ाई देखना, झाड़ू देना, रास्ता काटना, बिल्ली का रोना आदि अपशकुन माना जाता है। पुराने समय से ही यह क्षेत्र अपने अद्वीतीय धार्मिक क्षेत्र के रूप में दुनिया भर में प्रसिद्ध है। कुमाऊँ में विभिन्न धर्मो के लोग रहते हैं। फिर भी यहां की संस्कृति सभी धर्मो के लोगों को एक सूत्र में बांधे रखती है। कुमाऊँ के इन सभी धर्मो, देवी-देवताओं और उपासना पद्धतियों के अतिरिक्त अधिसंख्य जन समुदाय अपने इष्ट देवता, कुलदेवता और लोक देवी-देवताओं पर अगाध श्रद्धा और अटूट विश्वास रखता है। कुमाऊँ का शायद ही कोई ऐसा परिवार हो, जिसका कोई इष्ट देवता या कुलदेवता ना होता होगा।

कुमाऊँनी महिलाओं का भोजन बहुत ही सरल और पौष्टिक होता है। इनका भोजन हिमालय के वातावरण के अनुकूल होता है। इसमें दालें, सब्जी, दही, गेहुं, चावल, मंडवा तथा माँस शामिल है। वर्तमान समय में विभिन्न प्रकार के भोज्य व्यंजनों तथा पय पदार्थों के प्रयोग में आ जाने के करण कुमाऊँ में परम्परागत भोज्य व्यंजनों में परिवर्तन आ चुका है। शादी ब्याह के अवसर पर कुमाऊँनी व्यंजनों के स्थान पर बाहरी व्यंजन पनीर, पुलाव, कोफ्ता, छोले भटूरे आदि का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। लेकिन आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में प्राचीन समय से ही प्रचलित भोज्य पदार्थों का ही अत्यधिक प्रयोग किया जाता है।

संदर्भ सूची

1. उप्रेती, नाथूराम, कुमाऊँ की लोक कला, कुमाऊँनी संस्कृति, उपयोगी प्रकाशन, रुद्रपुर, प्रष्ठ-20-25
2. कुमाउनी संस्कृति, ना.बवउ, उत्तराखंडी नेहरू प्लेस एक्सटेंशन, सेंक्टर-153,नच, भारत
3. विकिपीडिया
4. दैनिक जागरण-समाचार पत्र
5. पोखरिया, देवसिंह, कुमाऊँ के लोकनृत्य, 1989, उत्तराखंड भाग-3 पृष्ठ-35-40
6. हेमा पंत, हर जिंदगी.कॉम मई 5,2022
7. पोखरिया, देवसिंह, लोक संस्कृति के विविध आयाम, मध्य हिमालय के संदर्भ में, पृष्ठ-23
8. अमर उजाला- दैनिक समाचार पत्र

वर्तमान भारतीय समाज में लोकतंत्र का महत्वः एक दार्शनिक विवेचन

डॉ० प्रेम कुमार

आईसीपीआर/जेआरएफ. भारत सरकार पीएच.डी सहायक प्रोफेसर (G.F.) दर्शनशास्त्र विभाग, एम. जे. के कॉलेज, बेतिया, बिहार

सार–

लोकतंत्र भारतीय समाज की आधारशिला है और इसके महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता। एक दार्शनिक अवधारणा के रूप में, लोकतंत्र समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के मूल्यों को दर्शाता है, जो मानव उत्कर्ष के लिए आवश्यक हैं। लोकतंत्र भारतीय समाज की आधारशिला है, जो सभी नागरिकों के लिए समान अधिकार और अवसर सुनिश्चित करता है। लोकतंत्र की अवधारणा भारतीय दर्शन में निहित है, विशेष रूप से बौद्ध धर्म और हिंदू धर्म की शिक्षाओं में। स्वतंत्रता और बंधुत्व लोकतंत्र के आवश्यक सिद्धांत हैं, जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक सामंजस्य को बढ़ावा देते हैं। लोकतंत्र शासन में जवाबदेही और पारदर्शिता सुनिश्चित करता है, जिससे सत्ता का संकेन्द्रण रुकता है। भारतीय लोकतंत्र चुनौतियों का सामना करता है, लेकिन इसके लचीलेपन और अनुकूलन की क्षमता ने इसके अस्तित्व को सुनिश्चित किया है। परिचयः भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, जिसकी आबादी 1.3 बिलियन से अधिक है। भारत में लोकतंत्र केवल सरकार का एक रूप नहीं है, बल्कि जीवन जीने का एक तरीका है। यह एक ऐसी प्रणाली है जो नागरिकों को निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने की अनुमति देती है, जवाबदेही सुनिश्चित करती है और व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा करती है। समानताः समानता लोकतंत्र का एक मूलभूत सिद्धांत है। यह सुनिश्चित करता है कि सभी नागरिकों को उनकी जाति, पंथ, लिंग या सामाजिक-आर्थिक स्थिति की परवाह किए बिना समान अधिकार और अवसर प्राप्त हों। समानता की अवधारणा भारतीय दर्शन में गहराई से निहित है, विशेष रूप से बौद्ध धर्म और हिंदू धर्म की शिक्षाओं में। बुद्ध ने सिखाया कि सभी मनुष्य समान हैं और समान सम्मान और करुणा के पात्र हैं। इसी तरह, "वसुधैव कुटुम्बकम" यानी दुनिया एक परिवार है की हिंदू अवधारणा सभी मनुष्यों की एकता और समानता पर जोर देती है।

कीवर्डः परिचय, लोकतंत्र का महत्व, निष्कर्ष।

परिचय

लोकतंत्र, ग्रीक शब्दों ष्डेमोसष (लोग) और ष्क्रेटोसष (शासन) से लिया गया है, जिसका अर्थ है लोगों द्वारा लोगों के लिए शासन। दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र भारत में, यह अवधारणा अपने विविध सांस्कृतिक, भाषाई, धार्मिक और सामाजिक-आर्थिक ताने-बाने के कारण विशेष महत्व रखती है। भारतीय संदर्भ में लोकतंत्र के महत्व को समझने के लिए इसके दार्शनिक आधारों, सामाजिक-राजनीतिक समानता को बढ़ावा देने में इसकी भूमिका, इसके ऐतिहासिक विकास और इसकी समकालीन चुनौतियों और संभावनाओं की खोज की आवश्यकता है।

लोकतंत्र के दार्शनिक आधार

लोकतंत्र के मूल में समानता का सिद्धांत निहित है, जहाँ निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्रत्येक व्यक्ति की आवाज को समान महत्व दिया जाता है। यह सिद्धांत भारत में गहराई से प्रतिध्वनित होता है, एक ऐसा समाज जो ऐतिहासिक रूप से जाति, वर्ग और लिंग रेखाओं के आधार पर विभाजित है। लोकतंत्र सार्वभौमिक मताधिकार, समान अधिकार और कानून के शासन जैसे तंत्रों के माध्यम से न्याय सुनिश्चित करना चाहता है, जिससे हाशिए पर पड़े समूहों को सशक्त बनाया जा सके और सामाजिक सामंजस्य को बढ़ावा मिले।

लोकतंत्र भाषण, अभिव्यक्ति, सभा और संघ की मौलिक स्वतंत्रता को बनाए रखता है, जो एक जीवंत नागरिक समाज को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण है। भारत में, ये स्वतंत्रताएँ संविधान में निहित हैं, जो नागरिकों को अपनी राय व्यक्त करने, शासन की आलोचना करने और सार्वजनिक जीवन में सक्रिय रूप से भाग लेने की जगह प्रदान करती हैं। लोकतंत्र का यह पहलू सुनिश्चित करता है कि व्यक्तिगत अधिकारों को सत्तावादी प्रवृत्तियों और मनमानी राज्य कार्रवाई से सुरक्षित रखा जाए।

लोकतांत्रिक शासन का केंद्र जवाबदेही का सिद्धांत है, जहाँ निर्वाचित प्रतिनिधि मतदाताओं के प्रति जवाबदेह होते हैं। निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में पारदर्शिता, सूचना तक पहुँच और निवारण के लिए तंत्र ऐसे आवश्यक घटक हैं जो नागरिकों और उनकी सरकार के बीच विश्वास को बनाए रखते हैं। भारत में, सूचना का अधिकार अधिनियम जैसे तंत्रों ने पारदर्शिता को बढ़ावा दिया है, नागरिकों को अपने कार्यों के लिए अधिकारियों को जवाबदेह ठहराने के लिए सशक्त बनाया है।

भारत में लोकतंत्र के सामाजिक-राजनीतिक निहितार्थ

भारत का लोकतंत्र अपनी विविध आबादी को समायोजित करता है, जिसमें विभिन्न जातीयताएँ, भाषाएँ, धर्म और संस्कृतियाँ शामिल हैं। चुनावी प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करता है कि नीति निर्माण में विविध आवाजें सुनी जाएँ, जो भारतीय समाज की बहुलतावादी प्रकृति को दर्शाता है। राजनीतिक दल और आंदोलन अक्सर पहचान-आधारित रेखाओं के साथ जुटते हैं, लोकतांत्रिक ढांचे के भीतर विशिष्ट समुदायों के अधिकारों और हितों की वकालत करते हैं।

भारत में लोकतंत्र दलितों, आदिवासियों, महिलाओं और धार्मिक अल्पसंख्यकों सहित हाशिए पर पड़े समुदायों को सशक्त बनाने में सहायक रहा है। सकारात्मक कार्रवाई की नीतियों, शिक्षा और रोजगार में आरक्षण और जमीनी स्तर पर राजनीतिक भागीदारी ने इन समूहों को अपने अधिकारों का दावा करने और सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता हासिल करने में सक्षम बनाया है। हालांकि, जातिगत भेदभाव, लैंगिक असमानता और क्षेत्रीय असमानता जैसी चुनौतियां समावेशी विकास में बाधा डालती रहती हैं।

भारत की धर्मनिरपेक्षता के प्रति प्रतिबद्धता, जो इसके संविधान में निहित है, धार्मिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करती है और विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच सद्भाव को बढ़ावा देती है। लोकतंत्र धार्मिक विभाजनों के पार संवाद, बातचीत और आम सहमति बनाने, सांप्रदायिक तनाव को कम करने और बहुलवादी समाज को बढ़ावा देने के लिए एक मंच प्रदान करता है। हालांकि, सांप्रदायिक हिंसा और धार्मिक ध्रुवीकरण की आवधिक घटनाएं एक विविध लोकतंत्र में धार्मिक सद्भाव की नाजुकता को रेखांकित करती हैं।

भारत में लोकतंत्र का ऐतिहासिक विकास

लोकतंत्र की ओर भारत की यात्रा 1947 में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से अपनी स्वतंत्रता के साथ शुरू हुई। डॉ. बी.आर. अंबेडकर और अन्य दूरदर्शी नेताओं के नेतृत्व में संविधान सभा ने एक संविधान का मसौदा तैयार किया, जिसमें मौलिक अधिकारों, सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार और एक संघीय लोकतांत्रिक संरचना की गारंटी दी गई। 1950 में संविधान को अपनाने से भारत की एक लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में औपचारिक स्थापना हुई।

स्वतंत्रता के बाद, भारत ने स्वतंत्र न्यायपालिका, स्वतंत्र प्रेस और बहुदलीय राजनीतिक प्रणाली सहित मजबूत लोकतांत्रिक संस्थाएँ विकसित कीं। नियमित अंतराल पर चुनाव सत्ता के शांतिपूर्ण हस्तांतरण को सुनिश्चित करते हैं और नागरिकों को अपने प्रतिनिधियों को जवाबदेह ठहराने का अवसर प्रदान करते हैं।

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, जिसकी आबादी 1.3 बिलियन से अधिक है। भारत में लोकतंत्र केवल सरकार का एक रूप नहीं है, बल्कि जीवन जीने का एक तरीका है। यह एक ऐसी प्रणाली है जो नागरिकों को निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने की अनुमति देती है, जवाबदेही सुनिश्चित करती है और व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा करती है। दार्शनिक दृष्टिकोण से, लोकतंत्र समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के विचारों में निहित है।

समानता लोकतंत्र का एक मूलभूत सिद्धांत है। यह सुनिश्चित करता है कि सभी नागरिकों को उनकी जाति, पंथ, लिंग या सामाजिक-आर्थिक स्थिति की परवाह किए बिना समान अधिकार और अवसर प्राप्त हों। समानता की अवधारणा भारतीय दर्शन में गहराई से निहित है, विशेष रूप से बौद्ध धर्म और हिंदू धर्म की शिक्षाओं में। बुद्ध ने सिखाया कि सभी मनुष्य समान हैं और समान सम्मान और करुणा के पात्र हैं (गौतम बुद्ध, 563-483 ईसा पूर्व)। इसी तरह, "वसुधैव कुटुम्बकम" (दुनिया एक परिवार है) की हिंदू अवधारणा सभी मनुष्यों की एकता और समानता पर जोर देती है (ऋग्वेद, 1500 ईसा पूर्व)। स्वतंत्रता स्वतंत्रता लोकतंत्र का एक और आवश्यक सिद्धांत है। यह सुनिश्चित करता है कि नागरिकों को उत्पीड़न के डर के बिना चुनाव करने, अपनी राय व्यक्त करने और अपने लक्ष्यों का पीछा करने की स्वतंत्रता है। स्वतंत्रता एक मौलिक मानव अधिकार है, और पूरे इतिहास में दार्शनिकों द्वारा इसके महत्व पर जोर दिया गया है। उदाहरण के लिए, जॉन स्टुअर्ट मिल ने तर्क दिया कि स्वतंत्रता मानव विकास और खुशी के लिए आवश्यक है (मिल, 1859)। भारत में, स्वतंत्रता की अवधारणा स्वामी विवेकानंद की शिक्षाओं में गहराई से निहित है, जिन्होंने व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आत्म-अभिव्यक्ति के महत्व पर जोर दिया (विवेकानंद, 1863-1902)। बंधुत्व बंधुत्व एक सिद्धांत है जो नागरिकों के बीच एकता और एकजुटता के महत्व पर जोर देता है। यह सुनिश्चित करता है कि नागरिक आम भलाई के लिए मिलकर काम करें और सामाजिक सामंजस्य को बढ़ावा दें। बंधुत्व भारतीय दर्शन का एक मूलभूत सिद्धांत है, विशेष रूप से महात्मा गांधी की शिक्षाओं में, जिन्होंने एकता और अहिंसक प्रतिरोध (गांधी, 1869-1948) के महत्व पर जोर दिया।

स्वतंत्रता लोकतंत्र का एक और आवश्यक सिद्धांत है। यह सुनिश्चित करता है कि नागरिकों को उत्पीड़न के डर के बिना चुनाव करने, अपनी राय व्यक्त करने और अपने लक्ष्यों का पीछा करने की स्वतंत्रता है। स्वतंत्रता एक मौलिक मानव अधिकार है, और पूरे इतिहास में दार्शनिकों द्वारा इसके महत्व पर जोर दिया गया है। उदाहरण के लिए, जॉन स्टुअर्ट मिल ने तर्क दिया कि स्वतंत्रता मानव विकास और खुशी के लिए आवश्यक है।

भाईचारा एक सिद्धांत है जो नागरिकों के बीच एकता और एकजुटता के महत्व पर जोर देता है। यह सुनिश्चित करता है कि नागरिक आम भलाई के लिए मिलकर काम करें और सामाजिक सामंजस्य को बढ़ावा दें। भाईचारा भारतीय दर्शन का एक मूलभूत सिद्धांत है, विशेष रूप से महात्मा गांधी की शिक्षाओं में, जिन्होंने एकता और अहिंसक प्रतिरोध (गांधी, 1869-1948) के महत्व पर जोर दिया।

लोकतंत्र शासन में जवाबदेही और पारदर्शिता सुनिश्चित करता है, सत्ता के संकेन्द्रण को रोकता है। यह शक्तियों के पृथक्करण, स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों और एक स्वतंत्र न्यायपालिका के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। सत्ता के दुरुपयोग को रोकने और यह सुनिश्चित करने के लिए जवाबदेही आवश्यक है कि सरकार लोगों के लिए काम करे।

चुनौतियाँ:

भारतीय लोकतंत्र भ्रष्टाचार, असमानता और सामाजिक अशांति सहित चुनौतियों का सामना करता है। हालाँकि, इसके लचीलेपन और अनुकूलन की क्षमता ने इसके अस्तित्व को सुनिश्चित किया है। भारतीय लोकतंत्र ने अनेक चुनौतियों का सामना किया है, जिनमें 1975 में इंदिरा गांधी द्वारा लगाया गया आपातकाल और 1992 में अयोध्या विवाद शामिल है।

लोकतंत्र व्यक्तियों को अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर प्रदान करता है, जिससे सामूहिक निर्णय लेने की प्रक्रिया को मजबूती मिलती है।

लोकतंत्र में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की गारंटी होती है, जिससे व्यक्ति अपने विचारों और अभिव्यक्ति को स्वतंत्र रूप से व्यक्त कर सकता है।

लोकतंत्र में समानता और न्याय के सिद्धांतों पर जोर दिया जाता है, जिससे समाज में सभी व्यक्तियों को समान अवसर और अधिकार मिलते हैं।

लोकतंत्र में सरकार और प्रशासन को उत्तरदायित्व और पारदर्शिता के साथ काम करना होता है, जिससे भ्रष्टाचार और अन्याय को कम किया जा सकता है।

लोकतंत्र में विभिन्न समूहों और वर्गों के बीच सामाजिक एकता और सौहार्द को बढ़ावा मिलता है, जिससे समाज में शांति और स्थिरता बनी रहती है।

दर्शनशास्त्रियों के विचार से दर्शन के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान भारतीय समाज में लोकतंत्र का महत्व इस प्रकार है:

1. जॉन लॉक के अनुसार, लोकतंत्र व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अधिकारों की रक्षा करता है।
2. ज्यां-जैक्स रूसो के अनुसार, लोकतंत्र में समाज के सभी सदस्यों की सहमति से निर्णय लेने की प्रक्रिया होती है।
3. अरस्तू के अनुसार, लोकतंत्र में नीति और न्याय के सिद्धांतों पर जोर दिया जाता है।
4. महात्मा गांधी के अनुसार, लोकतंत्र में सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों पर जोर दिया जाना चाहिए।
5. डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के अनुसार, लोकतंत्र में समानता और न्याय के सिद्धांतों पर जोर दिया जाना चाहिए।

इस प्रकार, दर्शनशास्त्रियों के विचार से दर्शन के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान भारतीय समाज में लोकतंत्र का महत्व व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समाज की सहमति, नीति और न्याय, सत्य और अहिंसा, और समानता और न्याय जैसे मूल्यों पर जोर देने में है।

इस प्रकार, दर्शन के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान भारतीय समाज में लोकतंत्र का महत्व बहुत अधिक है, क्योंकि यह समाज को सामूहिक निर्णय लेने की प्रक्रिया, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता और न्याय, उत्तरदायित्व और पारदर्शिता, और सामाजिक एकता और सौहार्द जैसे मूल्यों को प्रदान करता है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष में, दार्शनिक दृष्टिकोण से भारतीय समाज के लिए लोकतंत्र आवश्यक है। यह समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के मूल्यों को दर्शाता है, जो मानव उत्कर्ष के लिए आवश्यक हैं। लोकतंत्र सुनिश्चित करता है कि नागरिकों को समान अधिकार और अवसर, चुनाव करने की स्वतंत्रता और नागरिकों के बीच एकता और एकजुटता मिले। जैसा कि अरस्तू ने जोर दिया, लोकतंत्र सरकार का सबसे अच्छा रूप है, क्योंकि यह सुनिश्चित करता है कि सत्ता लोगों में निहित हो (अरस्तू, 350 ईसा पूर्व)। जबकि भारतीय लोकतंत्र चुनौतियों का सामना कर रहा है, इसकी लचीलापन और अनुकूलन की क्षमता ने इसके अस्तित्व को सुनिश्चित किया है।

वर्तमान भारतीय समाज में लोकतंत्र का महत्व को दर्शाने के लिए हमें इसे एक दार्शनिक दृष्टिकोण से देखना चाहिए, जिसमें इसकी दार्शनिक नींवें, सामाजिक-राजनीतिक प्रभाव, ऐतिहासिक संदर्भ, और आधुनिक चुनौतियां और संभावनाएँ की विशेषता पर जोर देना होगा। लोकतंत्र, एक शासन प्रणाली, जनता द्वारा, जनता के लिए, इसे अत्यंत महत्वपूर्ण बनाता है भारत जैसी राष्ट्रीयता, विविधता, और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के लिए। इस निबंध का उद्देश्य है कि वर्तमान भारतीय समाज में लोकतंत्र के महत्व और महत्व का विश्लेषण किया जाए, जिसमें इसके दार्शनिक मूल तत्वों, सामाजिक-राजनीतिक प्रभाव, ऐतिहासिक विकास, और आधुनिक चुनौतियों और संभावनाओं पर जोर दिया जाए।

वर्तमान भारतीय समाज में लोकतंत्र के महत्व को दार्शनिक दृष्टिकोण से समझा जा सकता है, जो इसके आधारभूत सिद्धांतों, सामाजिक-राजनीतिक निहितार्थों, ऐतिहासिक संदर्भ और समकालीन चुनौतियों पर गहराई से विचार करता है। शासन प्रणाली के रूप में लोकतंत्र का भारत जैसे राष्ट्र के सामूहिक भाग्य को आकार देने में गहरा महत्व है, जो अपनी विविधता, जटिलता और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के लिए जाना जाता है। इस निबंध का उद्देश्य समकालीन भारतीय समाज में लोकतंत्र की प्रासंगिकता और महत्व का विश्लेषण करना है, इसके दार्शनिक आधार और व्यावहारिक अभिव्यक्तियों पर जोर देना है।

संदर्भ:

1. अरस्तू। (350 ईसा पूर्व)। राजनीति।
2. गांधी, एम. के. (1869-1948)। सत्य के साथ मेरे प्रयोग।
3. गौतम बुद्ध। (563-483 ईसा पूर्व)। बुद्ध की शिक्षाएँ।
4. मिल, जे.एस. (1859). स्वतंत्रता पर।
5. ऋग्वेद। (1500 ई.पू.)। वेद।
6. विवेकानंद, एस. (1863-1902)। स्वामी विवेकानंद की संपूर्ण कृतियाँ।
7. अरस्तू। (350 ईसा पूर्व)। राजनीति।
8. गांधी, एम. के. (1869-1948)। सत्य के साथ मेरे प्रयोग।
9. गौतम बुद्ध। (563-483 ईसा पूर्व)। बुद्ध की शिक्षाएँ।
10. मिल, जे. एस. (1859)। स्वतंत्रता पर।
11. ऋग्वेद। (1500 ईसा पूर्व)। वेद।
12. विवेकानंद, एस. (1863-1902)। स्वामी विवेकानंद की संपूर्ण कृतियाँ।

सांख्य दर्शन के कार्यकारण सिद्धान्तः एक दार्शनिक विवेचन

डॉ० नीरा वर्मा

आईसीपीआर/जेआरएफ. भारत सरकार पीएच.डी **Cont.** *सहायक प्रोफेसर दर्शनशास्त्र विभाग, मारवाड़ी कॉलेज, रांची*

सार

हर घटना या घटित वस्तु का एक कारण होता है, और वह कारण फिर से अपने पूर्व कारण से उत्पन्न होता है। हर एक घटना, घटित या सृजित वस्तु उसके पूर्व कारणों का परिणाम होती है, और वह भी फिर से अपने अंतर्निहित कारणों के परिणाम होती है। सभी घटनाएँ नियमित, संबंधित और पूर्वनिर्धारित कारणों के परिणाम होती हैं। यह विश्व की स्थिति और व्यवस्था को समझने का एक तरीका है, जिसमें एक परिणाम के पीछे उसका कारण ढूंढने की कोशिश की जाती है। हमारे द्वारा किए जाने वाले क्रियाओं या निर्णयों के परिणाम क्या हो सकते हैं। सांख्य दर्शन का कार्यकारण सिद्धांत एक महत्वपूर्ण दार्शनिक प्रणाली है जो मन, शरीर, और प्रकृति के मेल से जुड़ा हुआ। सांख्य दर्शन का कार्यकारण सिद्धांत, जिसे 'कार्यकारण वाद' भी कहा जाता है, विशेषता से प्रकृति और पुरुष (जीवात्मा) के बीच के संबंध को समझाने का प्रयास करता है। यह दर्शनिक अनुशीलन अपने सिद्धांतों, प्रमाणों, और अपनी प्राचीनता के कारण महत्वपूर्ण है।

की-वर्डः परिचय, महत्व्व, मूल उद्देश्य, दर्शनशास्त्र पर प्रभाव, निष्कर्ष।

परिचय

कार्यकारण सिद्धांत वह सिद्धांत है जो कहता है कि हर घटना या घटित वस्तु का एक कारण होता है और वह कारण फिर से अपने पूर्व कारणों का परिणाम होता है, इसलिए यह एक अनंत चेन की प्रक्रिया है जिसमें कारण और कार्य का संबंध निरंतर होता रहता है। इस प्रकार, कार्यकारण सिद्धांत संसार में घटित हर घटना और प्रक्रिया के पीछे एक व्यापक सिद्धांत उपस्थित करता है, जो जीवन के समझने में मदद करता है और विशिष्ट प्राकृतिक और धार्मिक दर्शनों में व्याख्या किया जाता है। कार्यकारण सिद्धांत एक महत्वपूर्ण तत्त्व है जो विभिन्न विज्ञानों, दार्शनिक सिद्धांतों और विचारधाराओं में पाया जाता है। इसे 'कारण और परिणाम' का सिद्धांत भी कहा जाता है। यह सिद्धांत यह मानता है कि हर घटना या परिणाम के पीछे एक कारण होता है, और उस कारण के प्राप्त होने पर ही वह परिणाम संभव होता है। कार्यकारण सिद्धांत के अनुसार, सभी घटनाएँ नियमित, संबंधित और पूर्वनिर्धारित कारणों के परिणाम होती हैं। यह विश्व की स्थिति और व्यवस्था को समझने का एक तरीका है, जिसमें एक परिणाम के पीछे उसका कारण ढूंढने की कोशिश की जाती है।

इस सिद्धांत का अध्ययन विभिन्न शास्त्रों में होता है, जैसे कि दर्शनशास्त्र, वैज्ञानिक अध्ययन, और लोकप्रिय विचारधाराओं में। इसका उदाहरण सामाजिक, व्यावसायिक, और व्यक्तिगत स्तर पर भी देखा जा सकता है, जहां एक घटना के पीछे उसके कारणों की खोज की जाती है। इस प्रकार, कार्यकारण सिद्धांत हमें विश्व के संरचना और क्रम को समझने में मदद करता है, और हमारे जीवन में भी यह समझने में सहायक हो सकता है कि हमारे द्वारा किए जाने वाले क्रियाओं या निर्णयों के परिणाम क्या हो सकते हैं।

सांख्य दर्शन में कार्यकारण सिद्धांत का महत्व विशेष रूप से उसके विवेकात्मक और तात्त्विक परिप्रेक्ष्य में है। सांख्य दर्शन एक प्राचीन दर्शन है जो भारतीय दर्शनिक परंपरा में स्थान पाता है, और इसका मुख्य उद्देश्य मन, बुद्धि, और अहंकार की मुक्ति के मार्ग का प्रस्ताव करना है। संसार में होने वाले सभी घटनाओं और घटनाओं के पीछे एक कारण होता है। इसके अनुसार, सभी परिणामों का मूल कारण कार्य है, जो जीवात्मा के पुरुष और प्रकृति के गुणों के आदान-प्रदान से होता है।

सांख्य दर्शन में कार्यकारण सिद्धान्त एक मौलिक सिद्धान्त है जो विश्व की उत्पत्ति और विकास की व्याख्या करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, विश्व की उत्पत्ति प्रकृति (कारण) से हुई है, और यह प्रकृति ही विश्व की विकास और परिवर्तन का कारण है।

सांख्य दर्शन में कार्यकारण सिद्धांत का महत्व इसलिए है क्योंकि यह दर्शाता है कि जीवात्मा के प्रकार, जो अविकृत होता है, और प्रकृति, जो विकृत होती है, के बीच का सम्बन्ध कैसे आदान-प्रदान करता है। यह सिद्धांत संसार के व्यवस्था और आदर्शों को समझने में मदद करता है और उसे जीवन के विभिन्न पहलुओं से जुड़ा होने का संदेश देता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि तात्त्विक और दार्शनिक प्रणाली को समझने में संसार के प्रकार और उसके व्यवस्थाओं की गहराई से समझने में सांख्य दर्शन का कार्यकारण सिद्धांत मदद करता है।

सांख्य दर्शन में कार्यकारण सिद्धांत का मूल उद्देश्य मनुष्य के जीवन और संसार के स्वरूप को समझने में मदद करना है। इस दर्शन का मुख्य उद्देश्य है व्यक्ति को मोक्ष या मुक्ति प्राप्ति के लिए आत्मज्ञान प्रदान करना।

कार्यकारण सिद्धांत के अनुसार, संसार में होने वाली सभी घटनाओं और परिणामों के पीछे एक या अधिक कारण होते हैं। यह सिद्धांत समझाता है कि सभी दृश्यमान वस्तुएँ और घटनाएँ नियमित क्रम से होती हैं और उनके पीछे व्यक्ति या पुरुष के अचेतन प्रकृति के गुणों का आदान-प्रदान होता है। व्यक्ति को इस तत्त्व के माध्यम से आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया जाता है। इससे उसे अपने स्वभाव को और संसार की स्थिति को समझने में सहायता मिलती है। आत्मज्ञान के माध्यम से व्यक्ति अपने असली स्वरूप को समझता है और संसार के संघर्षों से मुक्त होता है। सांख्य दर्शन में कार्यकारण सिद्धांत का मूल उद्देश्य व्यक्ति की मुक्ति और आत्मज्ञान की प्राप्ति है।

यह तत्त्व दर्शनशास्त्र के विभिन्न पहलुओं पर गहरा प्रभाव डालता है:

1. दर्शनशास्त्र में कार्यकारण सिद्धांत वस्तुओं के परमार्थ स्वरूप और उनके मौलिक कारणों की समझ को स्थापित करने में मदद करता है। इसके माध्यम से विभिन्न दर्शनिक और धार्मिक प्रणालियों में वस्तुओं के आदान-प्रदान के प्रकार का विश्लेषण किया जाता है।
2. कार्यकारण सिद्धांत व्यक्ति के जीवन में होने वाली घटनाओं और कर्मों के परिणामों की समझ में मदद करता है। यह बताता है कि व्यक्ति के द्वारा किए गए कर्मों का उनके जीवन में कैसा परिणाम होगा।
3. यह सिद्धांत नैतिकता के प्रश्नों को समझने में सहायक होता है, क्योंकि यह बताता है कि अच्छे और बुरे कर्मों के परिणामों का संबंध कैसे होता है। इसके माध्यम से दर्शनशास्त्र नैतिक और धार्मिक जीवन के मौलिक सिद्धांतों की व्याख्या करता है।
4. कार्यकारण सिद्धांत विभिन्न उपायों और साधनाओं की प्राधान्यता बताता है जो व्यक्ति को आत्मज्ञान, मोक्ष या आध्यात्मिक प्रगति की दिशा में आगे बढ़ने में मदद कर सकते हैं।
5. दर्शनशास्त्र के माध्यम से कार्यकारण सिद्धांत संसार की व्यवस्था, स्थिति और उसके कारणों का विश्लेषण करता है। यह समझने में मदद करता है कि विश्व में कैसे नियमितता और आदान-प्रदान का सिद्धांत अपनाया जा सकता है।

इस प्रकार, दर्शनशास्त्र के विभिन्न पहलुओं पर कार्यकारण सिद्धांत गहरा प्रभाव डालता है और विचार को एक तात्त्विक एवं दार्शनिक स्तर पर समझाने में सहायक होता है।

कार्यकारण सिद्धान्त के मुख्य बिंदु हैं:

1. सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरुष दो मौलिक तत्व हैं जो विश्व की उत्पत्ति और विकास के लिए जिम्मेदार हैं। प्रकृति कारण है और पुरुष कार्य है।
2. कारण प्रकृति है जो कार्य को उत्पन्न करती है। कार्य पुरुष है जो कारण से उत्पन्न होता है।
3. कार्यकारण सिद्धान्त के अनुसार, विश्व की उत्पत्ति प्रकृति से हुई है और यह प्रकृति ही विश्व की विकास और परिवर्तन का कारण है।
4. सांख्य दर्शन में नियम और स्वतंत्रता का सिद्धान्त है जो कार्यकारण सिद्धान्त के साथ जुड़ा हुआ है। नियम प्रकृति के नियम हैं जो विश्व की उत्पत्ति और विकास को नियंत्रित करते हैं, जबकि स्वतंत्रता पुरुष की स्वतंत्रता है जो अपने निर्णयों और कार्यों के लिए जिम्मेदार है।
5. सांख्य दर्शन में ज्ञान और मोक्ष का महत्व पर जोर दिया जाता है। ज्ञान प्रकृति और पुरुष के बीच संबंधों को समझने में मदद करता है, जबकि मोक्ष पुरुष की स्वतंत्रता और प्रकृति से मुक्ति का प्रतीक है।

इस प्रकार, सांख्य दर्शन के कार्यकारण सिद्धान्त का एक दार्शनिक विवेचन है जो विश्व की उत्पत्ति और विकास की व्याख्या करता है और प्रकृति और पुरुष के बीच संबंधों को समझाता है।

सांख्य दर्शन का कार्यकारण सिद्धांत एक प्राचीन भारतीय दर्शन है जिसने मानव जीवन की मूलभूत समस्याओं के समाधान के लिए विशेष दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। यह दर्शन ज्ञान की प्राप्ति, दु:ख के कारणों का विश्लेषण, और मोक्ष की प्राप्ति के लिए एक सिद्धांत प्रस्तुत करता है। इसके महत्वपूर्ण अंग कार्यकारण सिद्धांत है, जो जगत के उत्पत्ति और विकास के कारणों का विवेचना करता है।

निष्कर्ष

सांख्य दर्शन में कार्यकारण सिद्धांत का निष्कर्ष यह है कि संसार में होने वाली सभी घटनाएँ और वस्तुएँ जिन दो मूल तत्त्वों के आदान-प्रदान से होती हैं उन्हें पुरुष और प्रकृति कहा जाता है।

सांख्य दर्शन में पुरुष को उच्चतम वास्तविकता माना जाता है क्योंकि पुरुष आत्मा को संदर्भित करता है, जो अविकृत, निर्विकार, नित्य और शुद्ध होता है। यह जीवात्मा को स्थानित करता है, जो ज्ञान, ज्ञान, और स्वतंत्रता का प्रतीक है।

प्रकृति स्थूल और सूक्ष्म रूप से सभी भौतिक और मानसिक प्रक्रियाओं का मूल है। यह अचेतन है और गुणों (सत्त्व, रज, तम) के संयोग से विकारी होती है। प्रकृति जगत की उत्पत्ति, स्थिति और संवर्धन की जिम्मेदारी संभालती है।

पुरुष और प्रकृति के इस संबंध को सांख्य दर्शन में श्कार्यकारण संबंधश के रूप में व्यक्त किया जाता है। प्रकृति के गुणों के संयोग से ही समस्त संसार में होने वाली विभिन्न घटनाएँ और वस्तुएँ होती हैं, जो पुरुष के द्वारा अनुभव की जाती हैं। इस प्रकार, पुरुष और प्रकृति के इस संबंध से सांख्य दर्शन में संसार की स्थिति और उसके कारणों का विवेचना की जाती है।

इस विश्लेषण में, हमने सांख्य दर्शन के कार्यकारण सिद्धांत के महत्वपूर्ण अंशों की समीक्षा की है। यह दर्शन प्रकृति और पुरुष के संबंध को स्पष्ट करता है और मनुष्य के अज्ञान के कारणों की विवेचना करता है जो उसे संसार में बंधन में डालते हैं। इसके माध्यम से हम सांख्य दर्शन की दृष्टि से जीवन के मूल समस्याओं का विश्लेषण कर सकते हैं और उन्हें समाधान के प्राथमिक दिशाओं में ले सकते हैं।

संदर्भ सूची:

1. सांख्यकारिका, ईश्वरकृष्ण, गीता प्रेस, गोरखपुर
2. सांख्य सूत्र, महर्षि कपिल, संस्कृत भाष्य के साथ, विशेषांक प्रकाशन, दिल्ली,
3. सांख्य दर्शन के सिद्धांत, पं. गोपीनाथ कविराज, रामनाथ कपूर और संस, दिल्ली, 1960
4. सांख्य सिद्धांत और तात्त्विक प्रकृति, आचार्य बालकृष्ण, अध्यात्मिक प्रकाशन, गोरखपुर, 1980
5. सांख्यदर्शनम् (संस्कृत में), स्वामी हर्षानन्द, गीता प्रेस, गोरखपुर, अनुमानित 1985
6. सांख्य और योग: एक दार्शनिक अध्ययन, डॉ. हरिशंकर प्रसाद शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, अनुमानित 1988
7. सांख्य दर्शन और कार्यकारण सिद्धांत, डॉ. बिनोद बिहारी मिश्र, राधा कृष्ण आश्रम, वाराणसी, 1990
8. सांख्य और भारतीय दर्शन, श्री राम शर्मा, भारतीय विचार संस्थान, नई दिल्ली, 1992
9. सांख्य और योगदर्शन, डॉ. राधाकृष्ण श्रीवास्तव, दिल्ली प्रकाशन, दिल्ली, 1995
10. सांख्य और तात्त्विक दर्शन, डॉ. विश्वनाथ पाण्डेय, प्राकृतिक और भौतिकी प्रकाशन, उज्जैन, 2008
11. सांख्य साधना, डॉ. रामप्रताप त्रिपाठी, दीपक प्रकाशन, जयपुर, 2010
12. सांख्य दर्शन का सार, आचार्य प्रभाकर मिश्र, समाज प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013

कवर्धा राज का ऐतिहासिक अध्ययन (सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में)

डॉ० चौलेश्वर चन्द्राकर

एम.ए., एम.फिल गोल्ड मेडलिस्ट पीएचडी. इतिहास सहायक प्राध्यापक (इतिहास विभाग) एन.डी.आर. महाविद्यालय, जोरापारा सरकण्डा, बिलासपुर, अटल बिहार बाजपेयी विश्वविद्यालय, बिलासपुर छत्तीसगढ़

छत्तीसगढ़ के चौदह रियासतों में कवर्धा एक प्रमुख रियासत थी जो सतपुड़ा की मैकल पर्वत श्रेणियों की तलहटी में बसी हुई है। यह प्राकृतिक सौन्दर्य से घिरा कवर्धा नगर आज भी आकर्षक बना हुआ है। कवर्धा राज का क्षेत्रफल 798 वर्ग मील था। कवर्धा राजवंश का संबंध मंडला के गौड़ राज परिवार से था।

कवर्धा रियासत के चौरा नामक ग्राम में एक मंदिर है जिसे वर्तमान में मड़वा महल कहते हैं। वहाँ शिलालेख है जिस पर नागवंशी 24 राजाओं की वंशावली दी गई है। यह लेख 1349 ई. का है। इससे स्पष्ट है कि, इस वंश का मूल पुरूष दसवीं शताब्दी के लगभग राज्य करता होगा। इस तरह यह मान्यता है कि कवर्धा के नागवंश (फणि नागवंश) की स्थापना लगभग 9वीं सदी ई. के प्रारंभ में हुई थी। इस वंश (फणि) का विवरण कवर्धा से लगभग 16 कि.मी. दूर चौरा नामक ग्राम के निकट जंगल में स्थित मड़वा महल मंदिर फणिवंशी राजा रामचंद्र द्वारा शिव मंदिर निर्माण के उपलक्ष्य में विक्रम संवत् 1406 (1349) में उत्कीर्ण किया गया था। रामचंद्र ने हैहय-वंशी राजकुमारी अंबिका देवी से विवाह किया था जिससे उसके अर्जन और हरिपाल नामक पुत्र हुये। इस शिलालेख में नागवंश की उत्पत्ति के बारे में बतलाया गया है। जान पड़ता है कि इस वंश के शासक पूर्व से ही हैहयों के मांडलिक हो गये थे। इसलिए विजित करने या करद राज्यों में गणना करने की आवश्यकता नहीं समझी गई।[2]

नागवंश अपनी उत्पत्ति जातुकर्ण ऋषि की कन्या मिथिला और नागराज से उत्पन्न अहिराज आदि पुरूष निरूपित किया गया है। अहिराज इस वंश का प्रथम राजा गिना जाता है। अभिलेखी जानकारी के अनुसार भी (चौरा का अभिलेख) इस वंश का प्रथम राजा "अहराज" था। अहिराज का पुत्र राजल्ल था। इसका पुत्र धरणीश्वर था, धरनीश्वर का पुत्र महिमदेव, महिमदेव का पुत्र सर्ववदन या (शक्तिचन्द्र) और उसका पुत्र गोपाल देव हुआ। चौरा के निकटवर्ती भोरमदेव मंदिर में मूर्ति के तले लिखा हुआ एक लेख मिलता है।' जिससे तत्कालीन राजा का नाम गोपालदेव और भुवनपाल राजा हुए। भुवनपाल का उत्तराधिकारी उसका पुत्र कीर्तिपाल था। कीर्तिपाल नि:सन्तान होने के कारण उसके बाद उसका भाई जयत्रपाल राजा बना। ये दोनों नलवंश के शासक बने। जयत्रपाल के मरने के बाद उसका वंशज महिपाल, राजा बना, महिपाल के बाद उसका बेटा विषमपाल राजा बना उसके पश्चात् क्रमश: जन्तु जनपाल, यशोराज राजा बना। यशोराज यशस्वी जान पड़ता है क्योकि उसके समय के लेख कंकाली और सहसपुर में पाये गये हैं। यशोराज का पुत्र कन्हड़ देव था। लक्ष्मी वर्मा के दो पुत्र थे जिनमें से बड़ा खडंगदेव गद्दी पर बैठा और उसकी परम्परा में क्रमश: भुवनैकमल्ल अर्जुन, भीम और भोज नामक राजा हुए। भोज के बाद लक्ष्मी वर्मा का प्रपौत्र लक्ष्मण राजा हुआ जिसका बेटा रामचन्द्र गद्दी पर बैठा जिसने मड़वा महल शिलालेख खुदवाया था। इसमें 1349 में राज्य किया। मड़वामहल मंदिर अभिलेख प्रशस्ति नामक यह रामचन्द्र राय था।[1]

छत्तीसगढ़ की चौदह रियासतों में से कवर्धा एक प्रमुख रियासत थी जो सतपुड़ा की मैकल पर्वत श्रेणियों की तलहटी में बसी हुई है। यह प्राकृतिक सौन्दर्य से घिरा कवर्धा नगर आज भी आकर्षक बना हुआ है। कवर्धा राज का क्षेत्रफल 798 वर्ग मील था। कवर्धा राजवंश का संबंध मंडला के गौड़ राज परिवार से था। उन्हीं के वंशज पंडरिया जमींदारी के भी शासक थे। प्रथा चली आई थी कि यदि कवर्धा या पंडरिया के शासक घराने में कोई उत्तराधिकारी जन्म् न ले तो एक दूसरे के परिवार से बालक गोद ले लेते थे और उसे ही उत्तराधिकारी बना देते थे।' अर्थात जब जब कवर्धा के राजा लोग नि:संतान स्वर्गवासी होते गए, तब तब पंडरिया जमींदारी के वंशज ही उस रियासत के उत्तराधिकारी निर्वाचित होते आये हैं। यह वंश मंडला के गोड़ राजाओं से अपना संबंध बतलाता है। पंडरिया जमींदारी के आदि शासक श्यामचन्द्र की आठवी पीढ़ी में दलशाह जमींदार हुए जिनके 3 पुत्र थे (1) पृथ्वीसिंह (2) महाबली सिंह (3) हरीसिंह। इन्हीं में से महाबली सिंह को कवर्धा राज (रियासत) का संस्थापक माना जाता है। यह राज्य इनके अधिकार में जिस भांति आया, उसका विवरण निम्नलिखित है।

पंडरिया के जमींदार पृथ्वीसिंह के देहांत होने पर उनके पुत्र गरूड़सिंह उत्तराधिकारी हुए उस समय महाबली सिंह उनके दीवान थे। उन्हीं दिनों मंडला नरेश और सागर नरेश की आपस में अनबन हो गई। उस समय पृथ्वीसिंह पंडरिया का जमींदार था। इसने अपने भाई महाबली सिंह को मंडला नरेश की मदद के लिए भेजा। इधर भोंदा के जमींदार ने भी मंडला नरेश को सहायता पहुँचाई।

किन्तु मंडला राजा की विजय हो गई और दी हुई सहायता के लिए पुरस्कार वितरण के वक्त आया तब महाबली सिंह ने भोंदा जमींदार को किसी तरह समझा बुझाकर मंडला जाने से रोक दिया और स्वयं मंडला जाकर घोषित कर दिया कि भोंदा का जमींदार तो भाग गया है। फल यह हुआ कि पुरस्कार में महाबलीसिंह को कवर्धा का रियासत मिल गई और भोदा के जमींदार ताकते रह गये। इस संबंध में दूसरी कहानी यह है कि दक्षिण कोशल में यह राजवंश

परततर्ती कलचुरि शासकों के समकालीन थे जो सुदूर वन प्रदेशों में राज्य करते थे। कवर्धा और खैरागढ़ क्षेत्र में इनका प्रत्यक्ष नियंत्रण था। ''सिंघण'' को मंडला नरेश महाराज शाह द्वारा खैरागढ़ क्षेत्र के लिए सामंत स्वीकार किया गया था। इसी प्रकार भोंदा के जमींदार भी गढ़ा मंडला के प्रति वफादारी रखते थे। कालान्तर में पंडरिया जमींदारी महाबलीसिंह ने सागर नरेश के विरूद्ध मंडला राजा की सहायता के प्रतिफलस्वरूप कवर्धा को प्राप्त किया था।

एक स्रोत से ज्ञात होता है कि महाबली सिंह को नागपुर के भोसला राजा रघुजी द्वारा, सैनिक सहायता पहुंचाने के उपलक्ष में पुरस्कार स्वरूप कवर्धा राज्य ई. सन् 1698-1755 के मध्य प्राप्त हुआ।[3]

कवर्धा राज शासक परिवार अपने आपको मंडला के गोड़ राजवंश का वंशज मानता है। और उनका मंडला और बिलासपुर जिले के पंडरिया जमींदारी परिवारों से भी रक्त संबंध है।

कवर्धा शाखा पंडरिया की तुलना में कनिष्ठ मानी जाती है। उत्तराधिकारी न होने की स्थिति में गद्दी पंडरिया के जमींदार के छोटे लड़के को देने की प्रथा थी। महाबलीसिंह ने कवर्धा का राज शासन लगभग 50 वर्षों तक किया। उसके पश्चात् उसके पुत्र उजियार सिंह ने 47 वर्षों तक राज्य किया। उजियार सिंह की मृत्यु के बाद टोकसिंह राजा हुआ पर अल्प काल में ही वह निस्पुत्र चल बसा। तब उसकी माता और फिर उसकी विधवा रानी ने राजकाज चलाया।[4]

यहाँ के राजाओं की वंशानुक्रम निम्नलिखित कालखण्डों में थी:-

राजवंश		कालयुग
1. महावली सिंह	-	सन् 1751 से 1801 ई. तक
2. उजियार सिंह	-	सन् 1801 से 1849 ई. तक
3. टोक सिंह	-	सन् 1849 से 1853 ई. तक
4. बदन कुंवर	-	(टोक सिंह की माता) जो बहादुर सिंह के वयस्क होते तक शासिका रही।
5. बहादुर सिंह	-	सन् 1866 से 1875 ई. तक
6. रजपाल सिंह	-	सन् 1875 से 1886 ई. तक
7. धूपकुंवर सिंह	-	(रजपाल सिंह की माता) सन् 1886 से 1908 ई. तक
8. यदुनाथ सिंह	-	सन् 1908 से 1920 ई. तक
9. श्रीराम देवी कुमारी कारण शासिका रही)	-	सन् 1920 से 1932 ई. तक (यदुनाथ सिंह की धर्मपत्नी की माता जो धर्मराजसिंह के अवयस्क होने के
10. धर्मराजसिंह	-	सन् 1932 से 1948 तक

कवर्धा राजाओं के संक्षिप्त इतिहास-

महाबली सिंह की मृत्यु के पश्चात् इनके पुत्र उजियार सिंह राज्याधिकारी हुए और ये 46 वर्ष तक राज्य करके सन् 1849 को परलोक सिधारे। ये बड़े न्यायशील राजा थे, इनकी न्यायप्रियता की प्रशंसा अभी तक होती है। उजियार सिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र टोकसिंह गद्दी पर बैठा। टोकसिंह केवल 4 वर्ष तक राज्य करके 39 वर्ष की अवस्था में नि:संतान मर गये, अतएव राजकाज पहले तो इनकी माता बदनकुंवर, तत्पश्चात् विधवा पत्नी धूपकुंवर चलाती रही। राज्य का उत्तराधिकारी कोई नहीं था। अतएव पंडरिया के ग्यारहवें जमींदार जवाहरसिंह के छोटे कुमार बहादुर सिंह सन् 1854 ई में यहां की गद्दी पर बैठाये गये परंतु वे भी सन् 1866 में नि:संतान स्वर्गवासी हो गये। इन्हीं के समय से यह राज्य ''फ्यूडेटरी स्टेट'' हुआ।

इसके पश्चात् पंडरिया के जमींदार ठाकुर रामसिंह के छोटे कुमार रजपालसिंह उत्तराधिकारी निर्वाचित किये गये परंतु ये उस समय अल्पवयस्क थे, अत: राज्य का कामकाज मृत राजा बहादुर सिंह की विधवा रानी रुपकुंवरी चलाती रही। रजपालसिंह ने वयस्क होते ही सन् 1875 ई. में रियासत का काम अपने हाथ में ले तो लिया, परंतु नौ वर्ष के पश्चात् रियासत (स्टेट) कोर्ट में आ गया। इसी बीच में सन् 1892 में इनका देहांत हो गया, इनकी दानवीरता प्रसिद्ध है।'

ऐसा कहा जाता है कि रजपाल सिंह उन सब दानों को कई बार दिया, जिनका वर्णन धर्मशास्त्रों में है। इसकी भी कोई संतान नहीं थी। अत: पंडरिया के जमींदार ठाकुर रजपालसिंह के द्वितीय पुत्र ठाकुर यदुनाथसिंह सन् 1892 ई. में राज्य (रियासत) के उत्तराधिकारी हुए। इनका राज्याभिषेक सन् 1908 ई. में नागपुर की प्रदर्शनी के समय हुआ। इन्हें सन् 1912 में राज्यशासन का सम्पूर्ण अधिकार भी मिल गया। तब से ये बड़े योग्यता पूर्वक राजकार्य चला रहे थे। सन् 1920 ई. में इनका भी देहांत हो गया।

यदुनाथ सिंह की सौजन्यता, प्रजावत्सला और उदार प्रियता प्रसिद्ध है। अपने राज्य काल के दौरान अनेक बार अपनी उदारता का परिचय दिया था।

सन् 1932 ई. में धर्मराज सिंह गद्दी पर बैठे। इनको अंग्रेजों ने श्रुलिंग चीफ पावर' दिया था। सन् 1941 में कवर्धा राज्य का क्षेत्रफल 805 वर्ग मील थी। उस समय आबादी 77253 थी। इसी समय कवर्धा राज में ठाकुर धरमराज सिंह शासन कर रहे थे। इस समय इनकी आयु 32 वर्ष थी। कवर्धा राज का संबंध अंग्रेजों से राजनीतिक एजेंट से पूर्वी राज का रेसिडेंट के माध्यम से बना हुआ था। सन् 1941 में ठाकुर धरमराज सिंह देश के मशहूर पब्लिक स्कूल, जिसे राजकुमार कॉलेज, रायपुर के नाम से जाना जाता है, के प्रबंध समिति के अध्यक्ष भी थे। इस दौरान अंग्रेजों की ओर से दो अंग्रेज अधिकारियों ने कवर्धा राज का निरीक्षण किया था। जिनका नाम क्रमश: कैप्टन फ्राई एवं श्री. बी. हे. था। इनके कार्यकाल में इस राज में अनेक कार्य हुए थे। ये अच्छे प्रशासक के नाम से छत्तीसगढ़ में प्रख्यात थे।

धर्मराज सिंह के कार्यकाल में अनेक भवनों का निर्माण किया गया था। धर्मराज सिंह ने राजनीतिक स्वतंत्रता गतिविधियों में भी क्रियात्मक हिस्सा लिया था। उन्होंने सुभाष चन्द्र बोस के समर्थन में कवर्धा राज से कई व्यक्तियों को कलकत्ता उनके फारवर्ड ब्लाक की स्थापना पर भेजा था। इन्होंने कवर्धा में ग्रामराज्य परिषद्ष् का गठन कर पात्री जी के आज्ञानुसार किया। धर्मराज सिंह सन् 1957-1959 तक कवर्धा के विधायक थे।

सन् 1958 में धरमराज सिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके दो पुत्र थे प्रथम विश्वराज सिंह, द्वितीय पुत्र यशवंत राज सिंह। प्रशासनिक रिपोर्ट के अनुसार धरमराज के पुत्र कुमार विश्वराज सिहं जबलपुर में अध्ययन कर रहे थे तथा धरमराज के छोटा भाई पदमराज सिंह (डबलिंग) में पढ़ने के लिए विदेश प्रवास पर थे। विश्वयुद्ध के समय कवर्धा राज से धनसम्पत्ति साथ ही व्यक्तियों के रूप में अंग्रेजों को सेवाएं उपलब्ध करायी गई थीं।

सन् 1944-1945 में कवर्धा राज में प्रमुख लोगों ने दौरा किया गया था जिनमें प्रमुख रूप से निम्न है-

1. रेसीडेन्ट श्री एच. जे. टाँड
2. मेजर एच. बिसकोय
3. राजा बहादुर (खैरागढ़ राज)
4. राजा साहेब (छुईखदान राज)

इसी समय खैरागढ़, छुईखदान रियासत के शासक साथ ही कवर्धा राज के शासक के साथ अंग्रेजों के राजनीतिक एजेंटों के साथ महत्वपूर्ण बैठक हुई। विश्वयुद्ध में कवर्धा राज से 38 सैनिक भर्ती किये गये थे।' यहां के राजा राम राज्य परिषद् के द्वारा चुनाव में विधायक बनते रहे। दो दशक पूर्व रानी शशिप्रभा देवी, जो कि विश्वराज सिंह की धर्मपत्नी है, कांग्रेस पार्टी में सम्मिलित होकर विधायक बनी थी। वर्तमान में राजपरिवार अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में समर्पित है। इनके सुपुत्र योगेश्वर राज सिंह कांग्रेस पार्टी के विधायक है।

कवर्धा राज का राजनीतिक इतिहास

फणी नागवंश

पौराणिक स्रोतों के अतिरिक्त मुद्रा साक्ष्यों से कुछ विद्वानों का यह मत है, कि इस वंश की स्थापना विदिशा में हुई तथा कलांतर में यही से वे पदमावती, कांतिपुरी तथा मथुरा में गये। अधिकांश विद्वान यह मानते है कि इस तीन स्थानों के नाग एक ही वंश से संबंधित थे।

विद्वानों के अनुसार नागवंश का संस्थापक 'वृषनाग' था । जिसने दूसरी शताब्दी ई. के अंतिम भाग में विदिशा में इस वंश की स्थापना की। वृषनाग का एक सिक्का यहां से प्राप्त हुआ था, जिसे ग्वालियर पुरातत्व संग्रहालय में संरक्षित किया गया है। सन् 1913-14 में बेसनगर में नागों के सिक्के मिले थे। वृषनाग के पश्चात् संभवत: "भीमनाग" शासक हुआ। ऐसा लगता है कि उन्होने अपनी राजधानी को विदिशा से पद्मावती स्थानांतरित किया। उसके सभी उत्तराधिकारी की राजधानी पद्मावती ही रही।

जायसवाल के अनुसार उसका शासनकाल तीसरी शताब्दी ई. के अंतिम भाग में समाप्त हुआ प्रतीत होता है।

पदमावती के अंतिम 6 नरेश क्रमश: (1) विभुनाग (2) रविनाग, (3) भवनाग, (4) प्रभाकर नाग (5) देवनाग, (6) गणपति नाग

इन सभी शासकों के सिक्के पवाया से मिले हैं। रविनाग का एक नये प्रकार का सिका एरण से प्रात्र हुआ है। भवनाग के सम्बन्ध में कुछ अधिक जानकारी हमें वाकाटकों के अभिलेखों से मिलती है। चम्पक (अमरावती जिला) से प्राप्त "प्रवरसेन द्वितीय" के ताम्रपत्र में गौतमीपुत्र वाकाटक का उल्लेख करते हुये लिखा है कि वह उन महाराज श्री भवनाग का दौहित्र था जो इन शिवों के वंश में उत्पन्न हुए, जिनका आरंभ इस प्रकार हुआ कि उन्होंने शिवलिंग को अपने कंधे पर वहन करके शिव को परितुष्ट किया था, जिसका राज्याभिषेक उस भगीरथी के पवित्र जल से हुआ था, जिसे उन्होंने पराक्रम से प्राप्त किया था और जिसने उस अष्वमेध यज्ञ का अभीष्ट स्थान प्राप्त किया था।

संभवत: गणपति नाग इस वंश का अंतिम शासक था, जिसे परास्त कर समुद्रगुप्त द्वारा नागराज्य को अपने साम्राज्य में मिला लिया गया। पद्मावती के नाग शासको के अतिरिक्त एक सिक्के में व्याघ्रनाग नामक अन्य नाग नरेश का पता चलता है। विदिशा तथा पद्मावती के अतिरिक्त पुराणों के अनुसार कांतिपुरी (आधुनिक कुतवार) में भी नागों की एक राजधानी थी। कुतवार से प्राप्त नागशासकों के 18956 सिक्कों की एक विशाल निधि से भी यही बात प्रमाणित होती है।

कवर्धा नागवंश की स्थापना लगभग १वीं शताब्दी ई. के प्रारंभ में हुई थी। फणिनागवंश का विवरण कवर्धा से लगभग 16 कि.मी. दूर चौरा नामक ग्राम के निकट जंगलों में स्थित मड़वा महल नामक मंदिर के निकट पड़े एक शिालालेख में मिलता है। (इसका उल्लेख पूर्व में भी किया गया है।) यह शिलालेख फणिनागवंशी राजा रामचन्द्र द्वारा शिवमंदिर निर्माण के उपलक्ष्य में विक्रम संवत् 1406 (1349 ई.) में उत्कीर्ण किया गया था। अभिलेख में इस नागवंश से लेकर रामचन्द्र तक सभी राजाओं की वंशावली दी हुई है।

इस अभिलेख में दी गई वंशावली के अनुसार इस वंश का पहला राजा अहिराज था, इसके बाद क्रमश: (2) राजल्ल (3) धरणीधर (4) महिमदेव, (5) सर्ववंदन या (शक्ति चन्द्र), (6) गोपालदेव, (7) नलदेव, (8) भुवनपाल, (9) कीर्तिपाल, (10) जपेत्र, (3) महिपाल, (12) विषमपाल (13) जान्हु, (14) जनपाल, (15) पशोराज, (16) कन्हड़देव, (17) बल्लभदेव, (18) खडगदेव, (19) भुवनैकमल्ल, (20) अर्जुन, (21) भीम, (4) भोज, (23) लक्ष्मण, (4) रामचन्द्र।

रामचन्द्र जो लक्ष्मण का पुत्र था, अभिलेख का नायक था, जिसने इस प्रशस्ति की रचना की।

फणिनागवंश के अस्तित्व के संबंध में कई प्रमाणों में से एक रायपुर शाखा के कलचुरि नरेश ब्रम्हादेव राय के शिलालेखों में मिलता है। एक अभिलेख के अनुसार ब्रम्हदेव राय के पिता रामदेव ने फणि नागवंशी राजा भोर्निगदेव को हराया था। ब्रम्हदेवराय का शासनकाल सन् 1402-1414 तक था, जिसका

उल्लेख उसके अभिलेख में हुआ है। इन्हीं के खल्लारी अभिलेख वि. सं. 1458 (ई. सन् 1401) के अनुसार इनके पूर्वज सिंहण ने शत्रु से 18 गढ़ जीत लिये थे। पहले ही शिवनाथ के उत्तर स्थित 18 गढ़ तथा दक्षिण की ओर स्थित 18 गढ़ का उल्लेख किया जा चुका है। इन गढ़ो का वर्णन बाबू रेवाराम एवं शिवदत्त शास्त्री द्वारा लिखित रतनपुर राज्य का इतिहास में किया गया है।

रतनपुर शाखा का अंतिम राजा रघुनाथ सिंह (ई. सन् 1732) था, जिसके शासनकाल में छत्तीसगढ़ पर मराठों का आक्रमण हुआ। नागपुर के रघुजी भोंसले ने अपने सेनापति भास्कर पंत के नेतृत्व में सन् 1742 ई. में रतनपुर पर विजय प्राप्त कर ली और इस तरह छत्तीसगढ़ से हैहयवंशी कलचुरियों का शासन लगभग 700 वर्ष बाद समाप्त कर दिया।

रायपुर शाखा के कल्चुरियों में अमरसिंह देव अंतिम नरेश थे, इनका राज्यकाल सन् 1750 ई. तक रहा। रतनपुर शाखा के एक नरेश कल्याण साय ने 48 गढ़ों को अपने अधीन किया था। जिसके अंतर्गत रायपुर क्षेत्र के भी गढ़ थे। इन्ही गढ़ों में सम्भवत: भोरमदेव क्षेत्र स्थित "चौरागढ़" भी रहा होगा। आज भी प्राचीन गढ़ी का वास्तु अवशेष विद्यमान है। जिसके चारों ओर परिखा बनी हुई है तथा समीप से ही सकरी (शंकरी) नदी बहती है। इसी नदी का पानी परिखा में भर दिया जाता रहा होगा।

इस क्षेत्र पर राजगोड़ों का भी प्रभुत्व था, जो वनांचलो में अवस्थित तथा योद्ध मूर्तियों से स्पष्ट है। ये राजगोंड़ गढ़ा मण्डला शाखा के थे।

गढ़ा मण्डला राजवंश

दक्षिण कोशल में यह राजवंश परवर्ती कल्चुरि शासकों के समकालीन थे जो सुदूर वन प्रदेशों में राज्य करता था। कवर्धा और खैरागढ़ क्षेत्र में इनका प्रत्यक्ष नियंत्रण था। 'सिंघण' को मण्डला के गोंड़ नरेश महराजशाह द्वारा खैरागढ़ क्षेत्र के लिए सामन्त स्वीकार किया गया था। इसी प्रकार भोंदा' के जमींदार भी गढ़ामण्डला के प्रति वफादारी रखते थे। कालांतर में पण्डरिया जमींदारी के महाबलीसिंह ने सागर नरेश के विरूद्ध मण्डला राजा की सहायता के प्रतिफलस्वरूप कवर्धा को प्राप्त किया था। एक खोत से ज्ञात होता है कि महाबली सिंह ने नागपुर के रघुजी भोंसले' को सैनिक सहायता पहुंचाने के पुरस्कारस्वरूप कवर्धा राज्य को ई. सन् 1698, 1755 के मध्य प्राप्त किया गया होगा।

मराठा काल

सन् 1741 ई. छत्तीसगढ़ के राजनीतिक इतिहास का परिवर्तन का काल माना जाता है। यह समय हैहयवंशी शासन, रायपुर शाखा के पतन के कगार पर है। इसी दौर में नागपुर के भोसला शासक रघुजी प्रथम के सेनापति पंत ने सन् 1741, 1742 में रतनपुर, रायपुर, दोनो स्थल के कल्चुरी शासकों को अपना अधिपत्य स्वीकार करवाया।

कवर्धा राज्य में गोड़ों के बाद इस क्षेत्र में मराठों ने शासन स्थापित करने का प्रयास किया लेकिन असफल रहे, जिनका केन्द्र नागपुर था। भोरमदेव क्षेत्र सहित समूचे छत्तीसगढ़ में इनका अधिपत्य स्थापित हो गया तथा अपने सामंतो को मराठों ने सूबेदार नियुक्त किया। इसके अतिरिक्त कई क्षेत्रीय शासक भी उभरकर सामने आये जो मराठो के करद राजा कहलाये। ई. सन् 1854 तक यह क्षेत्र मराठो के अधीन रहा लगभग 1854 में यह ब्रिटिश साम्राज्य का एक भाग बन गया।'

ब्रिटिश काल

सन् 1854 ई. में नागपुर राज्य को लार्ड की हड़पनीति के तहत ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बना लिया। नागपुर ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बनाने के बाद भी कई रियासत स्वतंत्र रूप से शासन करती थीं। सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ में शासन के लिए डिप्टी कमीशनर की नियुक्ति की गई थी। इस क्षेत्र में प्रथम डिप्टी कमिश्नर चर्ल्स इलियट थे। मराठा अधिकारी जिलेदार कहलाये। पहले जिलेदार अधिकारी कृष्णराव अप्पा थे। ब्रिटिश काल में इस क्षेत्र में उन्नति के साथ-साथ अवनति हुई।

निष्कर्ष:-

कवर्धा का सामाजिक इतिहास अत्यंत प्राचीन है। यह क्षेत्र गोंडवाना सभ्यता एवं संस्कृति से जुडा हुआ है। कर्वधा के भौगोलिक सीमा और सांस्कृतिक परिधि ने यहां के निवासियों को एक सूत्र में बांधकर रखा है।

कवर्धा रियासत राजवंष के इतिहास को यदि छत्तीसगढ़ का इतिहास कहा जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। इन रियासत और जमींदारी के राजवंश के गाथाएं इतनी रोचक और घटनात्मक है कि छत्तीसगढ़ का सारा भू-भाग भी पूर्ण प्रभावित छत्तीसगढ़ का नाम यहां के छत्तीसगढ़ किलों से है ही साथ ही साथ किलों (अर्थात् गढ़ों) के निर्माताओं से विशेष संबंधित हैं, जिन्होंने अपनी और क्षेत्र की सुरक्षा के लिए इनका निर्माण किया था। कवर्धा राज और के लिए आज भी अवशेष के रूप में मौजूद है और मौन भाषा में उनके निर्माताओं का यषोगान गा रहे हैं। छत्तीसगढ़ के इतिहास में उनका वैभव प्रतीक के रूप में आज भी वहां के मानस-पटल पर अंकित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1) गिरधर शार्मा-कवर्धा दर्पण, पृ. 17
2) हीरालाल सूची- इन्सक्रिप्सन इन द सेन्ट्रल प्राविसेंस एण्ड बरार, नागपुर 1932, लेख सूची क्र. 305
3) टेम्पल रिपोर्ट पृ. 46

4) हीरालाल सूची- इन्सक्रिप्शन इन द सेन्ट्रल प्रोविन एण्ड बरार, नागपुर 1932, लेख सूची क्रमांक 305
5) टेम्पल रिपोर्ट पृ. 46
6) ओरिजिनएण्ड हिस्ट्री ऑफ एण्टीक्वीटी ऑफ पंडरिया राज, बिलासपुर डिस्ट्रिक्ट, सेन्ट्रल प्राविसेंस, पृ. 4
7) टेम्पल रिपोर्ट पू. 46
8) छतीसगढ़ फेडयूटरी स्टेट गजेटियर, पृ. 33
9) पूर्वोक्त, पृ. 147
10) टेम्पल रिपोर्ट- पु. 46
11) कवर्धा राजमहल से प्राप्त दस्तावेज के आधार पर (श्रीमती शशिप्रभा देवी, पूर्व विधायक से जानकारी के अनुसार, दिनांक 10.07.2002)
12) धानुलाल श्रीवास्तव अष्टराज अंभोज, सन् 1925, पृ. 132
13) धानुलाल श्रीवास्तव अष्टराज अंभोज, सन् 1925, पृ. 132
14) रिपोर्ट ऑन दि एडमिनिस्ट्रेशन, दि कवर्धा स्टेट, सन् 1941, पृ. 1
15) रिपोर्ट ऑन दि एडमिनिस्ट्रेशन दि कवर्धा स्टेट सन् 1941 पृष्ठ ।
16) रिपोर्ट ऑन दि एडमिनिस्ट्रेशन दि कवर्धा स्टेट (२.प्र.१.) सन् 1944-45 पृ. 1
17) शशिप्रभा देवी से साक्षात्कार से जानकारी प्राप्त के आधार पर, दिनांक 10.07.2001
18) डॉ. राजकुमार शर्मा- मध्यप्रदेश के पुरातत्व का सन्दर्भ ग्रन्थ, सन् 1974, पृ. 27
19) डॉ. राजकुमार शर्मा मध्यप्रदेश के पुरातत्व का सन्दर्भ ग्रन्थ, सन् 1974, पृ. 274
20) पूर्वोक्त, पृ. १४
21) व्ही. व्ही. मिराशी का ई. ई. जिल्द 4, फलक 1, पृ. 123
22) व्ही. व्ही. मिराशी, खण्ड- 2, पृ. 578
23) बायू रेवाराम कायस्थ एवं शिवदत्त शास्त्री, रतनपुर राज्य का इतिहास, पृ. 49
24) रायपुर सेटलमेन्ट रिपोर्ट, 1869, पृ. 18
25) छत्तीसगढ़ फ्यूडेटरी स्टेट गजेटियर, पृ. 33
26) पूर्वोक्त, पृ. 147
27) रायपुर सेटलमेन्ट रिपोर्ट, 1869, पृ. 18
28) सीताराम शर्मा- पश्चिम दक्षिण कोशल की कला, सन् 1990, पृ. 27-28
29) सिलेक्शन फ्राम नागपुर रेसीडेन्सी, खण्ड-3, पृ. 7

भारतीय संस्कृति के उन्नयन में रामायण का योगदान

प्रो० मनोज कुमार

विश्वविद्यालय संस्कृत-विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

महर्षि वाल्मीकि विश्वकवियों में अग्रणी हैं, जिनकी वाणी एक देश-विशेष के प्राणियों का ही मंगल साधन नहीं करती, और न किसी काल-विशेष के जीवों का मनोरंजन करती है। कालक्रम में संस्कृत-साहित्य के विकास में आदिम होने पर भी वाल्मीकि की अमृतमयी वाणी में सौन्दर्य-सृष्टि का चरम उत्कर्ष है तथा महनीय काव्य-कला का चरम निदर्शन है। सुन्दरकाण्ड उनकी महनीय कला का सर्वश्रेष्ठ निदर्शन है। फ्रान्स के आदरणीय आलोचक फ्लाउवेर ने ''महनीय कला'' के लिए जिस आदर्श को काव्य-गोष्ठी में प्रस्तुत किया है, वह वाल्मीकि के इस काव्य में सुचारू रूप से अपनी अभिव्यक्ति पा रहा है। फ्लाउवेर की सम्मति में ''ग्रेट आर्ट'' महान कथा इन वस्तुओं की साधना तथा प्रसारण से मण्डित होती है।''[1]

मानव सौख्य की अभिवृति, दीन-आर्त जनों का उद्धार, परस्पर सहानुभूति का प्रसार हमारे और संसार के बीच सम्बन्ध के विषय में नवीन या प्राचीन सत्यों का अनुसन्धान, जिससे इस भूतल पर हमारा जीवन उदात्त तथा ओजस्वी बन जाय या ईश्वर की महिला झलके। यह लक्षण सुन्दरकाण्ड के ऊपर अक्षरशः घटित होता है। जीवन को ओजस्वी तथा उदात्त बनाने के लिए रामायण में जिन आदर्शों को वाल्मीकि ने अपनी अमर तूलिका से चिन्हित किया, वे भारतवर्ष के लिये मान्य और आदरणीय नहीं है, प्रत्युत वे मानव-मात्र के सामने उच्च नैतिक स्तर तथा सामाजिक उदात्तता की भावना को प्रस्तुत करते हैं।

वाल्मीकि का सुन्दरकाण्ड इस शाश्वत सत्य का उज्जवल उदाहरण है।

मानव-जीवन रेत-भीत्ति के समान शीघ्र ही ढहकर गिर जाने वाली वस्तु नहीं है। उसमें स्थायित्व है, पीछे आनेवाली पीढ़ियों को राह दिखाने की क्षमता है और यह सम्भव होता है- महनीय शोभन गुणों के कारण। जैसे उदात्तता अर्थ और काम की धर्मानुकूलता संकट के समय दीन का संरक्षण, विपत्ति के समय आघात से प्रताड़ित मानव को अपने बाहुबल से बचाना, शरणागत का रक्षण आदि। इन्हीं गुणों की प्रतिष्ठा जीवन में स्थायित्व तथा महनीयता की जननी होती है। ऐसे काव्य को हम शाश्वत काव्य का अभिधान दे सकते है। सुन्दरकाण्ड इस शाश्वत का काव्य का समुज्जवल निदर्शन है, क्योंकि वह मानव जीवन के स्थायी मूल्यवान् तत्वों को लेकर निर्मित किया गया है।

वाल्मीकि का यह महाकाव्य पृथ्वीतल को विदीर्ण कर उगने वाले उस विराट् वट्-वृक्ष के समान है, जो अपनी शीतल छाया से विश्व के समस्त मानवों को आश्रय देता हुआ प्रकृति की विशिष्ट विभूति के समान अपना मस्तक उपर उठाये खड़ा है। महाकाव्य प्रधानता वीररस प्रधान हुआ करते है, जिनमें युद्ध का घोष, विजय-दुन्दुभि का गर्जन तथा सैनिकों का तर्जन मानवों के हृदय में उत्साह तथा स्फूर्ति उत्पन्न किया करते हैं, परन्तु सुन्दरकाण्ड का माहात्मय वीर रस के प्रदर्शन में नही है। किसी देवचरित के वर्णन में भी रामायण का गौरव नहीं है, क्योंकि महर्षि वाल्मीकि ने जब आदर्श गुणों से मण्डित किसी व्यक्ति का परिचय पूछा तब नारद ने एक मानव को ही उन अनुपम गुणों का भाजन बतलाया- ''तेर्युक्तः श्रूयतां नरः''[2] सुन्दरकाण्ड नर-चरित्र का ही कीर्तन है। यह धार्मिक दृष्टि से प्राचीन संस्कृति, आचार, सत्य, धर्म, व्रत पालन विविध यज्ञों का महत्व आदि का पूरा इतिहास करता है। सामाजिक दृष्टि से यह पति-पत्नी के सम्बन्ध पिता-पुत्र के कर्तव्य, गुरू-शिष्य का पारस्परिक व्यवहार, भाई का भाई के प्रति कर्तव्य, गुरू-शिष्य का पारस्परिक व्यवहार, भाई का भाई के प्रति कर्तव्य, व्यक्ति का समाज के प्रति उत्तरदायित्व, आदर्श गृहस्थ जीवन की अभिव्यक्ति, इसमें पितृभक्ति, पुत्रप्रेम, भातृ-स्नेह एवं जनसाधारण में सौहार्द्र का सुन्दर चित्रण है।

सांस्कृतिक दृष्टि से यह रामराज्य का आदर्श, पाप पर पुण्य की विजय, लोभ पर त्याग का प्राबल्य, अत्याचार और अनाचार पर सदाचार की विजय, वानरों में आर्य संस्कृति का प्रसार, यज्ञादि का महत्व, जीवन में नैतिकता, सत्य प्रतिज्ञता और कर्तव्य के लिये बलिदान का आदर्श प्रस्तुत करता है। महर्षि वाल्मीकि की दृष्टि में चरित्र की मानवता की कसौटी है। चरित्र से युक्त मनुष्य को खोज तथा उसका विशद् वर्णन ही सुन्दर काण्ड का मुख्य उद्देश्य है। वाल्मीकि ने महर्षि नारद से यही जिज्ञासा की है।

चरित्रेण च को युक्तः

सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च
कश्चौकः श्च प्रियदर्शनः।''[3]

चरित्र ही मानव को देवता बनाता है। इस चरित्र का पूर्ण विकास मर्यादा पुरूषोतम रामचन्द्र में दृष्टिगोचर होता है। राम का चरित्र ही आर्य-चरित्र का आदर्श है। और वह मानवता की चरम अभिव्यक्ति है। राम में मानसिक विकास की ही पूर्णता लक्षित नहीं होती, अपितु शारीरिक सौन्दर्य का भी मंजुल पर्यवसान उसमें उपलब्ध होता है। राम महनीय हिमालय के समान अडिग तथा स्थिर खड़े होकर विपत्ति के दुर्वान्त तरंगों को अपने विशाल वक्षः स्थल के उपर सहते हैं। समबुद्धि तथा समदर्शी राम परिताप करने से कोसों दूर है।

राम सत्य तथा प्रतिज्ञा-पालन के महनीय व्रती हैं, इसी कारण वे संसार में महिमा-सम्पन्न माने जाते हैं। जाबालि ने राम को अयोध्या लौट जाने तथा सिंहासन पर आसीन होते के लिए किन युक्तियों का व्यूह नहीं रचा, परन्तु राम अपने सत्य से, पिता के सामने की गयी प्रतिज्ञा से रंचमात्र भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने बडेध् आग्रह से कहा कि न लोभ से, न मोह से, न अज्ञान से, मै सत्य के सेतु को न तोडूंगा और पिता के सामने प्रतिज्ञा का निर्वाह करूंगा।

नैव लोभान्न मोहाद्वा नचाज्ञानात् तमोऽन्वितः।
सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्यप्रतिश्रवः।।''[4]

वाल्मीकि समग्र राष्ट्र के हितचिन्तक कवित हैं। राष्ट्र का केन्द्र है- राजा। भारतीय राजा पाश्चात्य राजाओं के समान प्रजाओं की इच्छाओं का दलन करनेवाला, स्वेच्छाचारी नरपति नहीं होता; अपितु वह प्रजाओं का रंजक, प्रकृतिरंजक उनका हितचिन्तक तथा राष्ट्र का उन्नायक होता है। इसलिए उसके अभाव में राष्ट्र का कोई भी मंगल न सम्पन्न हो सकता है, न कोई कल्याण कल्पित हो सकता है।

वाल्मीकि ने राम के राज्य का जो सुखद तथा सुभग चित्रण किया है, वह राजनीतिशास्त्र को, एक अनुपम देन हैं राम राजनीति के महनीय उपासक थे। उनके समान नीतिमान् राजा दूसरा नहीं हुआ है-

''न रामसदृशो राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत।''[5]

इसलिए उनके द्वारा व्याख्याता तथा आचारित नीति ही राजाओं के लिए मान्य नीति है। अराजक जनपद में कृषि तथा गोरक्षा से जानेवाले सुरक्षित नहीं रहते। धनी प्राणी स्वच्छन्द रूप में कभी सोते नहीं, दस्यु दानवों के भय व्याप्त रहते हैं, इसलिए राजा की नितान्त आवश्यकता होती है।

इस प्रकार वाल्मीकि भारतीय साहित्य के हृदय के ही प्रकाशक आदिकवि नहीं हैं; बल्कि वे भारतीय संस्कृति के संस्कारक मनीषी भी है। कमनीय काव्य-कला उनके रामायण के पद्यों में स्वतः नाचती है और भारत की भव्य संस्कृति उनके पात्रों के द्वारा अपनी मनोरम झांकी दिखलायी है। इसलिए कविता-कल्पद्रुम के कमनीय कोकिल रूप वाल्मीकि का कूजन किसे आनन्दविभोर नहीं करता?

भारतीय संस्कृति के सामने पिता-पुत्र, भ्राता, भार्या, राजा तथा प्रजा के आदर्शों को प्रस्तुत करने का कार्य रामायण शताब्दियों से करता आया है। मर्यादा पुरूषोत्तम रामचन्द्र के चरित्र में इन आदर्शों का पुंज उपस्थित कर रामायण ने हमारे सामने एक विलक्षण आदर्श चरित्र प्रस्तुत किया है। इसकी समता कहीं भी नहीं मिलती। भारतीय संस्कृति मानव जीवन में चारित्र के ऊपर सर्वाधिक निष्ठा रखती है।

रामायण का कहना है कि चारित्रय ही मानव के उस सच्चे स्वरूप की पहचान है कि वह अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ है या नीच कुल में वह सच्चा वीर है अथवा वीरता की केवल डींग हॉकता है, वह शुचि है अथवा अशुचि।

निष्कर्षतः रामायण का उपदेश भारतीय संस्कृति का मेरूदण्ड है। रामायण के अनुशीलन तथा तदनुसार आचरण ने ही भारतीय संस्कृति को अत्यन्त उदात्त तथा गौरवमयी बनाया है।

संदर्भ-सूचीः-

1. Walter Peter. Appreciations: Style Page 38
2. वा.रा. 1.1, 7
3. वा.रा. 1.1.3
4. वही 10.19
5. शुक्रनीति 4.6.1346

महाविद्यालयीन ग्रंथालयों में डिजिटल संग्रह नीतिः एक अध्ययन

ओमप्रकाश राठौर

शोधार्थी, पुस्तकालयाध्यक्ष ज्ञानरोशनी लोक कल्याण संस्था खोखरा, जांजगीर जिला जांजगीर- चाम्पा (छ. ग.)

डॉ० आर० जी० यादव

शोध निर्देशक, पुस्तकालयाध्यक्ष, डी.पी. विप्र महाविद्यालय, बिलासपुर (छ. ग.)

सारांशः-

महाविद्यालयों की ग्रंथालय से शिक्षा में सहायता और ज्ञान में सुधार करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का अदा करती हैं। अध्ययन में चर्चा की गई है कि जटिल तकनीकी वातावरण के लिए स्वाभाविक प्रतिक्रिया के रूप में नई ग्रंथालय सेवाएँ कैसे विकसित हो रही हैं। ग्रंथालय और सूचना पेशेवर भी प्रौद्योगिकी द्वारा क्रांतिकारी बदलाव लाए हैं और इलेक्ट्रॉनिक युग की समस्याओं का सामना कर रहे हैं। प्रगति के परिणामस्वरूप सूचना सेवाओं के लगभग हर क्षेत्र में नाटकीय रूप से बदलाव आया है। इंटरनेट की पहचान जल्दी ही आसानी से सुलभ डिजिटल जानकारी बन गई है। ग्रंथालय सेवाओं की मूल अवधारणा और आवश्यक पहलुओं के साथ-साथ विभिन्न स्थापित और नई प्रकार की डिजिटल सेवाओं को रेखांकित करने वाली तकनीक पर इस अध्ययन में चर्चा की गई है।

शब्द सूचकः इलेक्ट्रॉनिक संग्रह, डिजिटल युग, ग्रंथालय सेवाएँ, सूचना प्रौद्योगिकी, संदर्भ सेवा।

भूमिकाः-

इंटरनेट और वेब प्रौद्योगिकी दुनिया भर में इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों को खोजने, नेविगेट करने और वितरित करने के लिए डिजिटल ग्रंथालय एवं ग्रंथालय नेटवर्किंग एक बेहतरीन तंत्र हैं। डिजिटल ग्रंथालय और ग्रंथालय नेटवर्किंग इन दोनों का प्राथमिक उद्देश्य उपयोगकर्ताओं की सूचना आवश्यकता को उपलब्ध पाठ्य सामग्रियों से पूरा करना है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी में उन्नति के नई-नई तकनीकियों और प्रभाव को अधिकतम करके डिजिटल ग्रंथालयों को अधिक से अधिक उत्तरदायी बनाई जा सकती है। वर्तमान के दौर में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के विकास ने सूचना प्रबंधन और सेवाओं के तरीके को प्रभावी रूप से बदल दिया है जिससे डिजिटलाइज्ड रूप में एक उपयोगी प्लेटफार्म अस्तित्व में आई है। एक कम्प्यूटर का उपयोग ग्रंथालय के अधिकांश दोहराए जाने वाले कार्यों को एक निश्चित समय में, कुशलतापूर्वक और समय बर्बाद किए बिना करने के लिए किया जा सकता है। ग्रंथालय के अधिकांश कार्य आपस में जुड़े हुए, अन्योन्याश्रित और परस्पर सहायक है।

अध्ययन का उद्देश्यः-

1. प्रस्तुत अध्ययन में ग्रंथालय में नेटवर्किंग की व्यवस्था के सांथ यूजर्स के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं एवम विविध सन्दर्भ ग्रंथ की डिजिटल प्लेटफॉर्म में प्राप्त होने वाली सुविधाओं को जानना।
2. ग्रंथालय के अंदर डिजिटल पुस्तकें वाली प्लेटफार्म में और भौतिक रूप से व्यवस्थित ग्रंथों के अध्ययन उपयोग पर क्या असर पड़ा है। यूजर्स के ज्यादा रुझान डिजिटल संसाधन पर है अथवा हार्डकॉपी पुस्तक पर उसको जानना।
3. ग्रंथालय में यूजर्स को देने वाली विभिन्न सेवाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करना।
4. विभिन्न ग्रंथालय नेटवर्किंग और डिजिटल ग्रंथालय साफ्टवेयर का संक्षिप्त अध्ययन करना।
5. ग्रंथालयों के विभिन्न समस्याओं को ज्ञात करना।
6. ग्रंथालयों के विकास के लिए सुझाव देना।

परिकल्पनाः-

1. डिजिटल ग्रंथालय और ग्रंथालय नेटवर्किंग के प्रबंधन से यूजर्स को नई-नई प्रकाशनों की पाठ्य सामग्रियों सहज रूप से प्राप्त हो रही है।

2. ग्रंथालय में नेटवर्किंग और डिजिटलाइज्ड होने से विद्यार्थियों एवम शोधार्थियों को स्व-अध्ययन में और भी अधिक रुचि रख रहें हैं।
3. नेटवर्किंग और डिजिटल ग्रंथालय के बेहतर संरचना से ग्रंथालय में यूजर्स की संख्या में बृद्धि हो रही हैं।
4. डिजिटल ग्रंथालय और नेटवर्किंग प्लेटफॉर्म की व्यवस्थित सुविधा के होने से यूजर्स अध्ययन के माहौल से प्रभावित होकर अधिकतम समय तक स्व-अध्ययन की ओर रुझान हो रही है।
5. ग्रंथालय में यूजर्स अधिक संख्या में अध्ययन लाभ लेने के लिए आकर्षित हो रहे हैं जिससे शिक्षा के स्तर में सुधार होने की संभावना है।
6. ग्रंथालय में भौतिक रूप से विभिन्न प्रकार के ग्रंथ, आवधिक पत्रिकाओं, दैनिक समाचार पत्रों, का भी समुचित उपयोग हो रही है।
7. डिजिटल ग्रंथालय एवम नेटवर्किंग प्लेटफॉर्म में विविध प्रकार के समसामयिक घटना चक्र अब आसानी से उपलब्ध हो रही है।
8. यूजर्स अपने मोबाईल से भी विभिन्न पाठ्य सामग्रियों को सरलता से एक्सेस कर रहें हैं।

शोध विधि एवम प्रतिदर्श का चयनः-

प्रस्तुत अध्ययन में ग्रंथालयों में व्यवस्थित निदर्शन विधि का उपयोग करते हुए विभिन्न ग्रंथालय नेटवर्किंग साफ्टवेयर और डिजिटल ग्रंथालय साफ्टवेयर को सेम्पल के रूप में ली गई है। इससे भौतिक रूप से पाठ्य सामग्रियों की उपयोग पहले से प्रभावित हुई है अथवा नहीं। इस समस्त बिंदुओं को अवलोकन करके अनुसंधान डेटा की प्रतिपूर्ति की गई है। इस अध्ययन से यह भी दिशा निर्देश मिलता है कि महाविद्यालय ग्रंथालयों में नेटवर्किंग और डिजिटल होने से प्रबंधन से सामान्य सेवा, तकनीकी सेवा और प्रशासनिक सेवा की स्थिति बेहतर होगी। प्रस्तुत शोध शीर्षक में यह नालेज गेप की पूर्ति का प्रयास की गई है कि महाविद्यालय ग्रंथालयों में ई-लाईब्रेरी और नेटवर्किंग में भौतिक रूप से पाठ्य सामग्रियों के उपयोग के विषय में अध्ययन करके इस विषय में गहराई से पता लगाया का प्रयास की गई है।

अध्ययन का क्षेत्रः-

1. प्रस्तुत अध्ययन में ग्रंथालय में उपयोग होने वाली विभिन्न ग्रंथालय नेटवर्किंग और चुने हुए डिजिटल साफ्टवेयर की अध्ययन करके अपने शोध को सीमित की गई है।
2. प्रस्तुत अध्ययन में इलेक्ट्रॉनिक रिसोर्स वातावरण में भौतिक रूप से व्यवस्थित पुस्तकों का यूजर्स के द्वारा उपयोग चुनाव का अध्ययन करके सीमित की गई है।

अध्ययन का महत्वः-

1. ग्रंथालय में ई-लाईब्रेरी और डिजिटलीकरण होने से यूजर्स को विभिन्न साफ्टवेयर के सुविधाओं से परिचित होंगे।
2. यूजर्स को व्यवस्थित प्लेटफार्म में वांछित रूप से अध्ययन सामग्रियों की साफ्ट कॉपी में एक ही जगह पर आसानी से प्राप्ति होगी।
3. प्रतियोगी परीक्षाओं की विभिन्न विषयों से संबंधित अनेक नवीन ग्रंथों, संदर्भ ग्रंथों, जर्नल्स, निश्चित अंतराल में प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं भी सुविधाजनक रूप से प्राप्त होगी।
4. समय के सदुपयोग के लिए इलेक्ट्रॉनिक रूप से विविध प्रकार के ज्ञान और विद्वतापूर्ण लिखी गई पाठ्य सामग्रियों की आडियो, वीडियो मटेरियल त्वरित रूप से प्राप्ति होगी।
5. विभिन्न जिले, राज्यों के साथ देश विदेश के दैनिक समाचार पत्र डिजिटल फॉर्म में सहज रूप से प्राप्त करने को सुविधा होगी।
6. परंपरागत रूप से पुस्तकों का अध्ययन उपयोग के सांथ ही सांथ डिजिटल ग्रंथालय और ग्रंथालय नेटवर्किंग से ज्ञान के संसाधनों में वृद्धि होगी।

डिजिटल युग में ग्रंथालय प्रबंधन की चर्चाः-

परिवर्तन के साथ-साथ विभिन्न अपेक्षाएँ, क्षमता और प्रणाली भी शामिल हैं। उदाहरण के लिए ग्रंथालयों के मामले में, ग्रंथालय प्रबंधकों को उपयोगकर्ताओं की लगातार विकसित होने वाली आवश्यकताओं और अपेक्षाओं का जवाब देना होता है क्योंकि सूचना प्रौद्योगिकी ने गतिविधियों को करने के सामान्य तरीके में, यहाँ तक कि डेटा या सूचना को संसाधित करने और उस तक पहुँचने के तरीके में भी पूर्ण परिवर्तन ला दिया है। शैक्षणिक ग्रंथालय विकसित हुए हैं और बदलते रहते हैं क्योंकि उनके उपयोगकर्ता बदल गए हैं। ग्रंथालय प्रशासकों से न केवल अपने ग्रंथालयों में परिचालन प्रदर्शन में परिवर्तन का प्रबंधन करने की अपेक्षा की जाती है, बल्कि उनसे व्यय और उसके औचित्य का हिसाब रखने की भी अपेक्षा की जाती है। ग्रंथालयों के प्रिंट से इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों की ओर बढ़ने के कारण प्रबंधन सॉफ्टवेयर और संसाधनों की सदस्यता पर बहुत अधिक धनराशि खर्च की जाती है। ग्रंथालयों के लिए बदलते समाज में प्रासंगिक बने रहना अनिवार्य हो गया है क्योंकि समाज लगातार तकनीकी प्रगति से प्रभावित हो रहा है। जैसा कि रंगनाथन ने ठीक ही कहा है, ग्रंथालय एक बढ़ता हुआ जीव है और इसलिए यह समाज के लिए एक मार्गदर्शक सिद्धांत बना हुआ है। अकादमिक ग्रंथालयों ने प्रिंट से डिजिटल प्रारूप में इस बदलाव में एक क्रांतिकारी बदलाव देखा है। कुछ साल पहले, ग्रंथालयों में सदस्यता मैनुअल थी और इसमें केवल प्रिंट प्रकाशन शामिल थे। यह एक समय लेने वाला काम था। लेकिन आजकल आईसीटी की मदद से, हर प्रिंट संसाधन को यूजीसी इन्फोनेट, इंडेस्ट और सीएसआईआर-एनकेजेडआरसी जैसे कई प्रारूपों वाले ई संसाधन से बदल दिया गया है। वर्तमान में, प्रमुख ग्रंथालयों ने परिवर्तन और डिजिटल रूप में को स्वीकार कर लिया है और इसलिए वे अब ई-सूचना, संसाधन और डेटाबेस की सदस्यता लेते हैं।

अधोलिखित प्रिंट संसाधन से इलेक्ट्रॉनिक संसाधन से व्यवस्था में बदलाव को दर्शाती है:-

1. प्रिंट फॉर्मेट में ग्रंथालय संसाधन जिसमें पुस्तकें, जर्नल्स, पत्रिका, समाचार पत्र प्रिंट संदर्भ स्रोत, सार डेटाबेस ILL/DL सेवाएँ, विभिन्न पुस्तक विक्रेताओं से सब्सक्राइब करना।
2. इलेक्ट्रॉनिक फार्मेट में ग्रंथालय श्रोत जिसमें ई बुक्स, ई जर्नल्स, ई मैगजीन,ई न्यूजपेपर, ई संदर्भ श्रोत, ग्रंथसूची एवम फूल टेक्स्ट डेटाबेस, इलेक्ट्रॉनिक श्रोत में लेख,विभिन्न कंसोर्टियम जैसे कि यूजीसी इंफोनेट डिजिटल लाईब्रेरी, इन्डेस्ट, NKRC, MCIT, DAE, RMED, DRDO, DeLcon, Cera, N-List प्रमुख रूप से है। इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों का उपयोग करने के कई लाभ हैं जैसे कि इसे खोजना और प्राप्त करना आसान है, इसे भौतिक ग्रंथालय के बाहर भी दूरस्थ रूप से एक्सेस किया जा सकता है, इलेक्ट्रॉनिक डेटा एक ही फाइल में कई वॉल्यूम को शामिल कर सकता है साथ ही इसमें वीडियो और ध्वनि सामग्री, ग्राफिक्स और बिलास शामिल हो सकते हैं, इलेक्ट्रॉनिक संसाधन का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसे एक साथ कई लोगों द्वारा एक्सेस किया जा सकता है और हाइपरलिंक के माध्यम से ग्रंथालय के कार्य घंटों के बाहर आसानी से संग्रहीत और निर्यात किया जा सकता है। विकलांग उपयोगकर्ताओं के लिए भी इसे एक्सेस करना सुविधाजनक है और इसे दूरदराज के क्षेत्रों में भी आसानी से एक्सेस किया जा सकता है। इस प्रकार, यह वर्तमान पीढ़ी की समय की आवश्यकता को देखते हुए प्रिंट से इलेक्ट्रॉनिक माध्यम में एक बहुत ही उपयोगी बदलाव है।

इसका एक मुख्य कारण रखरखाव लागत है जो सामग्री को डिजिटाइज करने में बहुत कम है। डिजिटाइज की गई सामग्री को त्रुटियों और डेटा के नुकसान के लिए खोजा और बदला जा सकता है। इसे सहयोगी कार्य के लिए आसानी से साझा किया जा सकता है। डिजिटल संग्रह सूचना को वस्तुतः व्यवस्थित करने में मदद कर सकते हैं। डिजिटल ग्रंथालयों को प्रिंट ग्रंथालयों से अलग तरीके से उन्नत किया जाता है क्योंकि वे ग्राफ, पत्रिकाएँ, लेख और अन्य डेटा के साथ लेखन प्रदान कर सकते हैं ताकि उपयोगकर्ता सभी सामग्रियों का एक साथ उपयोग करके उन्नत तरीके से सामग्री का उपयोग कर सके।

प्रिंट से डिजिटल में बदलाव भंडारण के दृष्टिकोण से भी सुविधाजनक है क्योंकि डिजिटल संग्रह के लिए केवल चार घटकों की आवश्यकता होती है:

1. रिपोजिटरी जो डिजिटल संग्रह के कच्चे बिट्स को संग्रहीत करने में मदद करती है
2. कैटलॉग डिजिटल संग्रह में जानकारी को अनुक्रमित करने में मदद करता है।
3. पहचानकर्ता प्रणाली- सामग्री स्थान और फोल्डर की पहचान करने में मदद करती है।
4. उपयोगकर्ता इंटरफेस जो उपयोगकर्ताओं को खोज, विजुअलाइजिंग, ब्राउजिंग और सामग्री वितरित करने में मदद करता है। इस प्रकार, उपयोगकर्ता ग्रंथालय के भौतिक स्थान में प्रवेश किए बिना ग्रंथालयों के पूरे संग्रह तक पहुँच सकते हैं और इससे उपयोगकर्ता का समय बचता है और साथ ही बेहतर शोध के लिए समय मिलता है।

यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि प्रिंट से डिजिटल ग्रंथालय में बदलाव आज के माहौल में एक आवश्यक बदलाव है क्योंकि इसकी मदद से पारंपरिक ग्रंथालयों में क्रांति आ गई है। यह बदलाव वेब-आधारित सेवाएँ और पूर्ण पाठ प्रदान करने में सक्षम है। ग्रंथालय अपने संग्रह साझा कर सकते हैं। यह एक वास्तविक गुण है जो इस आधुनिक समय के संदर्भ में ग्रंथालय सेवाओं में जोड़ा गया है। इस परिवर्तन में एक और बात महत्वपूर्ण है, वह है ग्रंथालय में ग्रंथालयाध्यक्षों की बदलती भूमिका। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, ग्रंथालयाध्यक्षों को ग्रंथालयों के बदलते परिवेश के साथ खुद को बहुत बदलना होगा। उन्हें समय-समय पर ई-पुस्तकें, ई-पत्रिकाएँ और ई-डेटाबेस जैसे बदलते इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों पर नजर रखने के लिए खुद को ढालना होगा। ग्रंथालयाध्यक्षों को सेवा से संबंधित, उपयोगकर्ता उन्मुख अनुप्रयोग, कार्यक्रम, निर्देश और सेवाएँ प्रदान करने के लिए स्वतंत्र रूप से या समूह में काम करने की आवश्यकता है। तकनीकी कौशल के अलावा, अब उपयोगकर्ता-उन्मुख सेवाओं के प्रति प्रतिबद्धता के लिए ग्रंथालयाध्यक्ष को अच्छे संचार कौशल की आवश्यकता है। ग्रंथालयाध्यक्ष के पास प्रिंट से इलेक्ट्रॉनिक सामग्री में परिवर्तन से निपटने के लिए निम्नलिखित कौशल होने चाहिए:-

1. डिजिटल संसाधनों के निर्माण और संरक्षण से लेकर कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर का आकलन, अनुशंसा और मूल्यांकन करने की क्षमता।
2. समय-समय पर तकनीकी परिवर्तनों को अपनाना।
3. शैक्षणिक ग्रंथालय और उनके कर्मचारी व्यक्तिगत स्पर्श के साथ सही जानकारी प्रदान करके सूचना चाहने वालों का नेतृत्व कर सकते हैं
4. लाइब्रेरियन एक सुविधाकर्ता, प्रशिक्षक, वेबसाइट निर्माता या प्रकाशक, शोधकर्ता और ज्ञान प्रबंधक के रूप में काम कर सकते हैं।

उपरोक्त के अलावा शैक्षणिक ग्रंथालयों द्वारा उपयोगकर्ताओं की जरूरतों और माँगों के अनुसार अपनाया गया है। वर्तमान युग में ग्रंथालय को विभिन्न भूमिकाएँ निभानी हैं। उनमें से एक सूचना गेटवे है जहाँ उपयोगकर्ता एप्लिकेशन, प्रोग्राम और उपयोगकर्ता इंटरफेस का उपयोग करके विभिन्न मुद्रित और डिजिटल सामग्री तक पहुँच सकते हैं, उसे बदल सकते हैं, ढूँढ सकते हैं और उसका उपयोग कर सकते हैं। एक अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र ग्रंथालयों द्वारा असाइनमेंट, प्रस्तुतियाँ, प्रोजेक्ट, रिपोर्ट और शोध पत्रों में शिक्षार्थियों की सहायता के लिए प्रदान किए जाने वाले उपकरण और सुविधा है। ग्रंथालय संकाय के लिए एक प्रशिक्षण केंद्र भी है जहाँ वे विभिन्न शिक्षण पाठ्यक्रम विकसित और कार्यान्वित कर सकते हैं जो दूरस्थ शिक्षा के लिए नामांकित शिक्षार्थियों को सक्षम बना सकते हैं। आजकल ग्रंथालय अधिक उपयोगकर्ता केंद्रित हो गए हैं, जो वेब प्रौद्योगिकी, ऑनलाइन ओपीएसी, डिजिटल संसाधन, उपयोगकर्ता इंटरैक्शन, ब्लॉग, विकिपीडिया, आरएसएस फीड, मल्टीमीडिया शेयरिंग, सोशल नेटवर्क, वर्चुअल संदर्भ सेवा, टैगिंग और बुकमार्क सेवाएँ प्रदान करते हैं।

एक और महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि ग्रंथालय कर्मचारियों को अपने दैनिक कार्य में रचनात्मक और नवीन ज्ञान की आवश्यकता है। यह दैनिक ताजा ज्ञान उन्हें ग्रंथालय के क्षेत्र में उभरते रुझानों के साथ वर्तमान और प्रासंगिक बने रहने में सक्षम बनाता है। लेकिन महत्वपूर्ण बात ग्रंथालय कर्मचारियों का निरंतर प्रशिक्षण है क्योंकि सूचना और प्रौद्योगिकी के युग में, रुझान बदलते रहते हैं। और इसलिए, कर्मचारियों के लिए उभरते युग के साथ प्रासंगिक बने रहना महत्वपूर्ण है। निरंतर प्रशिक्षण से उत्पादकता बढ़ेगी और ग्रंथालय कर्मचारी अपने कर्तव्यों को पूरा करने में अधिक प्रभावी और कुशल बनेंगे। संगठनों के लिए

ग्रंथालय से जुड़े कर्मचारियों के प्रशिक्षण में निवेश करना महत्वपूर्ण है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि संगठनों के लिए कुशल कार्यबल लाभकारी लाभों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

प्रशिक्षण के कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्र निम्नलिखित हैं जिन्हें संगठनों में स्थापित करने की आवश्यकता है:

1. आवश्यक कौशल का विकास और अधिग्रहण।
2. चयन, संरक्षण, अधिग्रहण, आयोजन और संग्रह करने की क्षमता।
3. नेटवर्क पर उपयोगकर्ता के अनुकूल इंटरफेस स्थापित करना।
4. सही समय पर और सही जगह पर सही उपयोगकर्ता के लिए सही जानकारी उपलब्ध कराना।
5. विभिन्न सूचना संसाधनों को संसाधित करने की क्षमता

विकसित देशों के ग्रंथालयों ने इन परिवर्तनों को बहुत पहले ही लागू कर दिया है, लेकिन विकासशील देश अभी भी इसे लागू करने की प्रक्रिया में हैं। ग्रंथालयों को नए वातावरण में नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। डिजिटल में प्रिंट जानकारी की उपलब्धता सीमित है।

ग्रंथालय का वातावरण। वे डेटाबेस का लाभ उठाने के लिए सदस्यता शुल्क का भुगतान करते हैं। पारंपरिक वातावरण में, ग्रंथालयों के पास सूचना स्रोत का हमेशा स्वामित्व होता है लेकिन डिजिटल वातावरण में सदस्यता अवधि समाप्त होने के बाद स्रोत अनुपलब्ध हो जाता है। ग्रंथालय सूचना का एकमात्र मालिक नहीं है। हालाँकि डिजिटल वातावरण के कई फायदे हैं फिर भी हर स्तर पर बदलाव लाना बहुत चुनौतीपूर्ण है क्योंकि लाइब्रेरियन को अपने उपयोगकर्ताओं को संतुष्ट करने के लिए प्रिंट और डिजिटल प्रारूपों को एक साथ प्रबंधित करना पड़ता है। और साथ ही, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि कार्यान्वयन से जुड़ी कई समस्याएं हैं क्योंकि ग्रंथालयों को अधिक धन उपलब्ध नहीं कराया जाता है, सॉफ्टवेयर, हार्डवेयर और इंटरनेट सुविधा जैसे पर्याप्त तकनीकी बुनियादी ढांचे की भी कमी है, तकनीकी और कम्प्यूटर कौशल की कमी है जो ग्रंथालयों के प्रिंट से इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप में कुल बदलाव में बाधा डालती है।

सुझाव:

1. डिजिटल युग में जिस प्रकार से कोई भी एप में नई फीचर के लांच होने से अपडेट करने की जरूरत होती है उसी प्रकार से ग्रंथालय में डिजिटल संग्रह को सुधार के लिए सरकार तथा महाविद्यालय प्रशासन को ग्रंथालय के प्रति त्वरित कार्य करने की विचार को अपडेट करने की आवश्यकता होगी।
2. संग्रह में वृद्धि करने के लिए संसाधन सहभागिता को नेटवर्किंग के द्वारा सशक्त करने की आवश्यकता होगी।
3. डिजिटल संग्रह में वृद्धि के लिए डिजिटल ग्रंथालय में पोस्ट ग्रेजुएट सर्टिफिकेट इन डिजिटल लाईब्रेरी या पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा इन लाईब्रेरी ऑटोमेशन एंड नेटवर्किंग डिप्लोमा या पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा इन डिजिटल लाईब्रेरी मैनेजमेंट अथवा पीजीडीसीए के सांथ ग्रंथालय विज्ञान में यूजीसी नेट/सेट अथवा पीएचडी डिग्रीधारी को ही ग्रंथालय में ग्रंथपाल पद में पदस्थ करनी चाहिए।
4. सूचना एवम प्रसारण मंत्रालय को एक योजना पारित करनी चाहिए जिससे कि देश भर में स्थित समस्त विश्वविद्यालय को एक ही नेटवर्क से जोड़कर कम से कम शुल्क पर संसाधन सहभागिता प्रदान करने की व्यवस्था बनानी चाहिए।
5. विदेश में स्थित टॉप 100 विश्वविद्यालयों की ग्रंथालय से हमारे देश के ग्रंथालय नेटवर्किंग से कनेक्ट करके कम शुल्क पर अध्ययन सामग्रियों को प्राप्त कर सकने की सुविधा के लिए सरकार को प्रयास करना चाहिए।
6. परंपरागत रूप से व्यवस्थित पाठ्य सामग्रियों को भी सुदृण करना आवश्यक होगी। संदर्भ ग्रंथों, प्रतियोगी पुस्तकें, विभिन्न लेखकों की पाठ्यपुस्तकें की अच्छी व्यवस्था के लिए सरकार के द्वारा प्रदान की गई अनुदान का हर साल ग्रंथालय मद में ही खर्च करनी चाहिए।
7. राज्य सरकार और यूजीसी से प्राप्त हुई अनुदान राशियों का ग्रंथालय में पाठ्यपुस्तकों, फर्नीचरों एवम साज सज्जा के लिए खर्च करने का सम्पूर्ण अधिकार कार्यरत लाइब्रेरियन के हांथो में ही होनी चाहिए। इस पर कॉलेजों के प्राचार्य एवम प्राध्यापकों की हस्तक्षेप न हों।
8. यूजीसी एवम राज्य उच्च शिक्षा विभाग को यह अनिवार्य किया जाना चाहिए कि सभी प्रायवेट महाविद्यालयों,अनुदान प्राप्त कॉलेजों एवम सरकारी कॉलेजों की ग्रंथालयों को कम्प्यूटरीकृत करें जिसमें डिजिटल ग्रंथालय, ग्रंथालय नेटवर्किंग, ग्रंथालय प्रबंधन साफ्टवेयर का उपयोग करें।

निष्कर्ष:-

1. ग्रंथालय नेटवर्किंग और डिजिटल मंच को इंटरनेट और वेब प्रौद्योगिकियों के लिए ही बनाये गए हैं। ग्रंथालयों को डिजिटल ग्रंथालय को हाईटेक व सुसज्जित करने के लिए विशेष अनुदान की अनुशंसा करना होगा।
2. महाविद्यालय ग्रंथालयों में ग्रंथालय नेटवर्किंग और डिजिटल ग्रंथालय का बहुत महत्वपूर्ण है। सूचना के भौतिक स्रोतों के संदर्भ को इसके विभिन्न लाभों के लिए डिजिटल में परिवर्तित किया जा सकती है जिससे इसकी उपयोग और आसान पहुंच हो सकती है।
3. ग्रंथालयों के पारंपरिक पाठ्य सामग्रियों का विशिष्ट महत्व है। इससे ही ग्रंथालय की भव्यता कायम रहती है। ग्रंथालय को सफल बनाने के लिए इनकी अच्छी व्यवस्थित होना आवश्यक है।
4. महाविद्यालय ग्रंथालय में सरकार के द्वारा विशेष फण्ड की अभाव से डिजिटलीकरण की प्रक्रिया धीमी पड़ रही है। शासन-प्रशासन को इस विषय पर कार्य करनी चाहिए।

5. महाविद्यालय ग्रंथालयों में डिजिटल ग्रंथालय साफ्टवेयर के प्रशिक्षितों को ही ग्रंथपाल में नियुक्त करना होगा। यदि मौजूद ग्रंथपाल प्रशिक्षित नहीं है तो सरकार के द्वारा प्रत्येक संभाग में विशेष प्रशिक्षण और कार्यशाला आयोजित करके प्रशिक्षित करने से ग्रंथपाल के कार्य में सार्थक परिणाम देखने को मिलेंगे।
6. कॉलेजों में पुरानी टाइटल नाम की पुस्तकें जो चलन में नहीं है उसे बाहर किया जाए। ग्रंथालय की समस्त रिकार्ड को हर साल अप-टू-डेट रखी जानी चाहिए।
7. सरकारी महाविद्यालय ग्रंथालय में ग्रंथपाल के समस्त पदों के सांथ ग्रंथालय कर्मचारियों को राज्य सरकार के द्वारा शीघ्र ही भर्ती करनी चाहिए। आवश्यकतानुसार एक चपराशी,दो बुक लिफ्टर, दो ग्रंथालय सहायक, एक रिकार्ड क्लर्क,एक कम्प्यूटर आपरेटर सेटअप में होनी चाहिए।
8. अधिकतर शासकीय महाविद्यालय ग्रंथालय की बहुंत दयनीय स्थिति होने के मुख्य कारण क्लर्कों और प्रोफेसरों को अतिरिक्त प्रभार देने के कारण से हुई है। वे दूसरे फील्ड के होने के कारण ग्रंथालय विज्ञान के व्यवसायिक व तकनीकी ज्ञान से पूर्ण नहीं होते हैं।
9. महाविद्यालय प्रबंधनों के द्वारा अधिकतर प्राइवेट कॉलेजों में ग्रंथालय मद में हर साल कोई खर्च नहीं करती। जितने भी सुविधा है वह सिर्फ कागजों और फाइलों में हैं। बहुंत से कॉलेजों में तो अध्ययनरत विद्यार्थियों के हिसाब से पुस्तकें भी नहीं हैं। डिजिटल ग्रंथालय और ग्रंथालय नेटवर्किंग की सुविधा ही नहीं है।

संदर्भ ग्रंथः-

1. भारद्वाज जी., राज कुमार (2019)। आधुनिक ग्रंथालय और प्रिंट को इलेक्ट्रॉनिक में डिजिटल बनाना। ग्रंथालय और सूचना विज्ञान में प्रगति (एएलआई हर्षे, यूएसए)
2. एस. चौहान, जे. जय करण सिंह और शर्मा, लोकेश (2018)। गतिशील बदलाव इलेक्ट्रॉनिक संसाधन। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मैनेजमेंट। खंड 1। सूचना प्रौद्योगिकी।
3. एस. कोलिंड, मारिया डी.डी. और कैर, पैट्रिक (2018)। डिजिटल रूप में इलेक्ट्रॉनिक पत्रिकाओं और संसाधनों का प्रबंधन। न्यूयॉर्क, यूएसएः रूटलेज।
4. गोपाल, के. (2017)। इलेक्ट्रॉनिक सूचना युग में डिजिटल ग्रंथालय।
5. मालवाड, एन.एम., एट अल. (एड.) (2016)। डिजिटल ग्रंथालयः सूचना का गतिशील भंडार। नई दिल्ली, न्यू एज इंटरनेशनल। डिजिटल
6. पाल, सुरेन्द्र कुमार और अबीडेन पी, सैनुल। (2015)। वेब 1.0 से वेब 4.0 तक लाइब्रेरियन ग्रंथालय सेवाओं की भूमिका बदलना। ई-ग्रंथालय खंड 3, अंक 2, विज्ञान अनुसंधान और जर्नल।
7. पाल, सुरेन्द्र कुमार और सोनकर, शरद कुमार और बलराम (2015)। प्रिंट से
8. ग्रंथालयों में इलेक्ट्रॉनिक संसाधनः एक प्रबंधन बदलाव और लाइब्रेरियन की बदलती भूमिका। बहुआयामी सूचना स्रोत और सेवाएँ, चुनौतियाँ पर राष्ट्रीय सम्मेलन की कार्यवाही। लखनऊ, भारत।
9. पाल, सुरेन्द्र कुमार (2011)। वेब 2.0ः शिक्षण और सीखने के लिए नया उपकरण। जर्नल ऑफ यंग लाइब्रेरियन एसोसिएशन। (खंड 7)।
10. श्मिट, कारी और डुलानी, क्रिस्टीन कोरिटनिक (2016)। प्रिंट से ऑनलाइन तकः सेंट्रलाइज्ड और सीरियल लाइब्रेरियन के साथ तकनीकी सेवाओं में सुधार।

अथर्ववेद और अग्निपुराण में गौसंरक्षण एवं गौचिकित्साविज्ञान

डॉ० श्याम बाबू शर्मा

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, रामदयालु सिंह महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

वैदिक समय से अद्यपर्यंत गौमहिमा अक्षुण्ण रहा है। ऋग्वेद में गायों को अंगिरस ऋषि की तपस्या का सुखद परिणाम दर्शाया है।[1] अथर्ववेद में उल्लेख है कि गाय पृथ्वी, आप तेज वायु और आकाश से प्रादुर्भूत हुई है।[2] गाय का दूध, घी, गौमूत्र, गोबर समष्टि के लिए अति लाभदायी हैं। गाय का दूध संपूर्ण विश्व की बड़ी शक्ति है, प्राण है और प्रत्यक्ष अमृत है और निस्तेज शरीरवाला व्यक्ति अत्यंत सुंदर और स्वस्थ बनता है।[3] आयुर्वेदीय ग्रंथ 'अष्टाङ्गहृदय' में कथन है कि गाय का दूध जीवनीय रसायन, कास और क्षतक्षीणयुक्त रोगियों के लिए हितकारी, मेधावर्धक, बलवर्द्धक है।[4] थकान, भ्रम, भेद, निस्तेजता, दम, खाँसी, अति क्षुधा, अति तृषा, अजीर्ण, ज्वर, मूत्र, कृच्छ्र और रक्तपित्त को मिटाने वाला है।[5] वेद में मनुष्य के दीर्घायुष्य के लिए हवन करने का विधान है। वेद में मनुष्य के दीर्धायुष्य के लिए हवन करने का विधान है।[6] इस हवन में घी की आहुति देनी चाहिए।[7] अग्नि में घी की आहुति देने से मनुष्य शुद्ध होकर उत्तम स्थान को प्राप्त करता है।[8] मनुष्य द्वारा प्रदीप्त अग्नि की ज्वाला आकाश तक जाती है और पापों और अप्रशस्त मार्ग से सभी का रक्षण करती है।[9] यहां यज्ञ द्वारा दोषों से रक्षण का विधान पर्यावरण शुद्धि का द्योतक है। हवन से गौ-घृत की आहुति से पर्यावरण शुद्ध होता है, (ऐसा विज्ञान ने सिद्ध किया है- Cow is the only animal purifies the air. if one spoon of pure ghee is poured on burning cow dung (in homa) they can produce one-ton of pure air.[11]

गौमूत्र भी मनुष्य के विविध रोगों में लाभदायी है। चरकसंहिता अनुसार पाण्डुरोगियों को गाय के दूध में गौमूत्र मिलाकर अथवा गौमूत्र में त्रिफला कवाथ में मिलाकर सात दिन तक देना चाहिए।[10] गौमूत्र एवं गोबर खेती के लिए उत्तम दवा और खाद है जिससे धान्य, फल पुष्प आदि उत्तम उत्पन्न होते है।[11]

मानव समुदाय के महान सौभाग्य को बढ़ाने वाली गाय को वेद में अवध्य कहा गया है।[12] कौटिल्य के मतानुसार गाय को हनन करने वाला, व्यक्ति वध्य है।[13] यहां गौमांस खाने का निषेध सूचित होता है। गौमांस तैयार होने में धान्य एवं पानी की मात्रा का अधिक व्यय होता है।

सांप्रत समय में गौवध करने वाला और गौमांस बेचने वाले के लिए कानून है लेकिन यह कानून और भी सख्त बनाने की जरूरत है।

गौसंरक्षण

समय सृष्टि के लिए अति कल्याणकारी गायों का संरक्षण एंव चिकित्सा संबंधी कतिपय उपायें अथर्ववेदों और अग्निपुराण में वर्णित है।

- ***गौशाला:*** अथर्ववेद के अनुसार गायें सुरक्षित रह सके इसलिए उत्तम, प्रशस्त और स्वच्छ गौशाला का निर्माण करना चाहिए।[14] -अर्थात् गायों को खुली जगह में नहीं रखना, और गौशाला को प्रतिदिन जल से स्वच्छ करना चाहिए। गौशाला में गायों के लिए शुद्ध उत्तम घास एवं धान्य का प्रबन्ध होना चाहिए। गौशाला में गायों को किसी भी प्रकार का भय नहीं होना चाहिए। गौपालक गायों के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करें। गायों को किसी भी प्रकार का रोग न हो इसलिए गोपालक को विशेष ध्यान रखना चाहिए।[15] अग्निपुराण के अनुसार गौशाला में विष, ग्रह रोग आदि को नाश करने के लिए देवदारू, वच, जटामांसी, गुग्गुल, हींग और सर्षप की धूनी है।[16] इस धूप से माखी - मच्छरादि जीव-जंतु से सुरक्षित रह सके। अग्निपुराण में गाय की ग्रीवा में घण्ट बांधने का विधान है,[17] जिसकी आवाज से गौशाला में सांप आदि भाग जाते है और गायें सुरक्षित रह सके।
- ***खुराक:*** ऋग्वेद और अथर्ववेद में यह विधान है कि-

सूयवसाखगवती हि भुया अधा
वयं भगवन्त: स्याम।
अद्धि तुणमध्न्ये विश्वदानीं पिबं शुद्धमुदकमाचरन्ती।।[18]

गायों को उत्तम जमीन में उत्पन्न घास, जवादि अन्न उत्तम जलस्थान का पवित्र एवं शुद्ध जल देना चाहिए। खाद्य पदार्थों का सत्त्व दूध में आता है। इसलिए घास एवं जल की शुद्धता अनिवार्य है। गायों को उत्तम घास एवं शुद्ध जल पर्याप्त मात्रा में देना चाहिए ताकि गायें पुष्ट बन सके।[19]

- ***गौरक्षक:*** गायें अधिक होने पर गौरक्षक अनेक होना चाहिए। अथर्ववेद में पाँच प्रकार के गोपालक का सूचना प्राप्त होता है। (1) गायों का पालन करने के लिए एक ऐसा अधिकारी हो जो पशुओं के सभी लक्षणों को जानता हो। (2) एक ऐसा रक्षक हो कि जो सभी गायें अपने-अपने नियत स्थान पर आ गई कि नहीं और उन सबको घास एवं पानी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हुआ कि नहीं- इस बात का ध्यान रखता हो। (3) एक ऐसा पालक होना चाहिए जो पशुओं का आरोग्यशास्त्र सम्यग् रूप से जानता हो जिससे गायों की चिकित्सा हो सके। (4) जब गायें गौचरभूमि से वापस गौशाला में आ जायें जब उनको घास आदि देने वाली स्त्री हो। (5) गायों का अनुकूल कार्य करने वाली एक स्त्री हो जो सभी गायों को अपने उचित स्थान पर रखे।[20] यहां शेष दो कार्य के लिए स्त्रियों को नियुक्त करने को कहा गया है। इसके पीछे यह उद्देश्य हो सकता है कि स्त्रियां पशुओं के योग्य प्रबंध पुरुषों से अधिक स्नेहपूर्वक करती है जिसका असर गौदूध की मात्रा पर होती है।

गौरक्षक गायों को गौशाला में किस तरह रखे इसके लिए कौटिल्य ने लिखा है- वृद्ध गाय, दूध देने वाली, गर्भिणी, पष्ठोही (पहलीबार प्रसूता हो) दूध न देने वाली- इस तरह पांच प्रकार की गायों का बीस-बीस का झूंड बनाकर एक गोपालक सौ गायों का पालन करें।[20] बीमार, पंगु, एक ही व्यक्ति द्वारा दुही जाने वाली गाय, कठिनाई से दुही जा सकने वाली गाय, अपने बच्चे को मारने वाली गायों का बीस-बीस का झूंड बनाकर एक गोपालक सौ गायों का पालन करें।[21] कौटिल्य द्वारा निर्देशित व्यवस्था गायों और गौरक्षक के लिए अति उपयोगी है।

- ***गायों को चराने ले जाना:*** गायों को गौशाला में पूरे दिन बाँधना उचित नहीं है। उन्हें चराने के लिए गौचरभूमि में ले जाना चाहिए। क्योंकि उनके आरोग्य के लिए शुद्ध हवा के साथ पर्याप्त मात्रा में सूर्यप्रकाश भी आवश्यक है।[22] ऐतरेय ब्राह्मण में कथन है कि मध्याह्न के समय में गर्मी अधिक हो तो गायों को छाया के नीचे रखना चाहिए।[23] अथर्ववेद में विधान है गौचरभूमि में गायें क्रमपूर्वक जानी चाहिए और एक साथ क्रमशः आनी भी चाहिए। जिससे गायें खो जाने का भय नहीं रहता। कौटिल्य के मंतव्य अनुसार गायों को रंग (वर्ण) के अनुसार दस-दस का झूंड बनाकर रक्षण करना चाहिए। गायों का निवास स्थान (गौचर) की दिशा, गौप्रचार (गायों की गति) अथवा गौसंख्या और गायों का रक्षण सामर्थ्य अनुसार निश्चित करना चाहिए।[24] वैदिक समय में गायें अधिक हो तो उसको पहचानने के लिए गाय के कानों पर नाना प्रकार के चिह्न बनाये जाते थे।[25]
- ***गौचरभूमि:*** अथर्ववेद में कथन है कि गौचरभूमि स्वच्छ होनी चाहिए, जहां उत्तम घास हो। अर्थात् गौचरभूमि जीव-जंतु रहित होनी चाहिए ताकि गायें सुरक्षित रह सके। गौचरभूमि हिंसक पशु और शिफारीयों के भय से मुक्त होनी चाहिए। कौटिल्य कहते है कि सांप और हिंसक पशुओं को डराने के लिए तथा गौचरभूमि का अनुमान करने के लिए गाय की ग्रीवा में घण्टी बांधना चाहिए।[26] अथर्ववेद में विधान है कि गौचरभूमि में गाय को कौआ आदि पक्षी उनकी पीठ पर बैठकर तकलीफ न दे इसलिए गौरक्षक को ध्यान रखना चाहिए। कविवर कालिदास विरचित रघुवंश काव्य में गौसेवा करते दिलीप राजा उनमें मच्छरादि जीव-जंतु से गाय का रक्षण करता है ऐसा उल्लेख है।[27] अथर्ववेद अनुसार गौचरभूमि में गायों को पानी पीने के लिए उत्तम जलस्थान होना चाहिए। यहां शुद्ध और पर्याप्त मात्रा में जल हो। अर्थात् जल अशुद्ध, मलिन, दुर्गन्धयुक्त न हो। कौटिल्य का मंतव्य है कि जलस्थान समतल और विस्तृत घाटवाला, कीचड़रहित, मगरहित होना चाहिए।
- ***गौदोहन:*** ऋग्वेद और अथर्ववेद में विधान है कि गौदोहक कुशल और सुहस्त वाला व्यक्ति हो जिससे गायों को तकलीफ न पहुँचे। यह व्यक्ति गायों के प्रति स्नेहभाव रखनेवाला होना चाहिए। गौदोहन के समय गाय के बछड़े को गाय के पास ले जाना, गाये आंखे बंद करके अपने बछड़े के मस्तक को स्नेहपूर्वक चाटती है जिससे दूध की मात्रा बढ़ती है।[18] ऋग्वेद अनुसार एक माता की दो गायें भी एक समान दूध नहीं देती। इसलिए सभी गायें एक समान दूध दे और दूध बढ़े, ऐसा आग्रह और प्रयत्न करना नहीं चाहिए। अर्थशास्त्र में जमीन, घास एवं जल के वैशिष्ट्य अनुसार गाय के दूध की मात्रा होती है, ऐसा विधान है।[29]

वैदिककाल में गायें दिन में तीन बार दुही जाती थी। प्रातः कालः (प्रातर्दोह), दोपहर से कुल पहले (सङ्गव) तथा सायंकाल (सायंदोह) में। कौटिल्य के मतानुसार गायों को वर्षा, शरद तथा हेमंत ऋतुओं में दोनों समय तथा शिशिर, वसंत और ग्रीष्म ऋतु में तीन समय दुहे।[30]

गौचिकित्सा

गायों का आरोग्य उत्तम रहना चाहिए क्योंकि एक गाय रोगीष्ट होने पर अन्य गायें भी रोगीष्ट बन सकती है जिससे रोगयुक्त दूध पीने वाला मनुष्य भी रोगी होता है। अथर्ववेद में पशुओं में रोग उत्पन्न होने के तीन कारण दर्शाये गये हैं- (1) गायों का खाने-पीने का प्रबंध ऋतु और उचित समय पर होना चाहिए। उसमें परिवर्तन करने से पशु रोगी होता है। (2) गाय को जुड़वा बच्चे होने से गाय के योनि आदि स्थानों पर ब्रण होता है। वहां प्रसूतिस्थान का विष लगने से गाय रोगीष्ट बनती है।[31] (3) मांसभक्षक गाय विशेषतः रोगीष्ट हो जाती है। गाय जब प्रसूता होती है तब गर्भस्थान का कतिपय हिस्सा बाहर गिरता है। गाय उस भाग को खाती है अतः रोगीष्ट बनती है।

गाय रोगीष्ट होने पर उत्तम वैद्य के पास जाना चाहिए। जिस वैद्य के पास अधिक मात्रा में औषधि हो, जो रोगी कृमिओं को नष्ट करता है।[32] वैद्य पवित्र हृदय वाला और शुभकर्मी होना चाहिए। वैद्य के निवासस्थान पर नित्य हवन होना चाहिए।[33] हवन से हवा शुद्ध होती है और गाय रोगमुक्त हो जाती है।

- ***सींग संबधी रोग:*** गाय को सींग में अथवा सींग के मूल में कोई व्रण हुआ हो तब तेल में से धानमक मिश्रित करके उनका पान कराना चाहिए। अदरख, बरिअरा, जटामांसी का कल्क बनाकर उसमें मधु मिश्रित करके पिलाना चाहिए।[34]

- ***कर्णशूल:*** गाय को कर्ण संबंधी कोई रोग हो जाय तब मजीठ, हींग तथा सेंधा नमक मिलाकर तेल सिद्ध करना। अथवा लहसून को तेल में डालकर सिद्ध करना। उस तेल को गाय के कान में डालने से कर्णशूल ठीक हो जाता है।
- ***मुखरोग, दंतशूल, जिह्वारोग:*** बिल्वमूल, अपामार्ग, धव का पुष्प पाठा और इन्द्रजौ को पीसकर गाय को दांत के भाग पर लेप करने से दंतशूल मिटता है। यह द्रव्यों का कवाथ और कल्क द्वारा सिद्ध किया गया घी का संपूर्ण मुखरोग और दन्तरोग में मालिश करना उत्तम है। जिह्वा रोग हुआ तो यह द्रव्यों में सेंधा नमक मिश्रित करके मालिश करना चाहिए।
- ***गलग्रह, हृदयशूल, बस्तिशूल, वातरोग, क्षयरोग:*** इस रोगों में गायों को अदरख, हल्दी, दारूहरदी, त्रिफला का काढा, घी और त्रिफला पिलाना चाहिए। 34 चरकसंहिता अनुसार गायों को बस्ती देनी चाहिए। मृदगपर्णी, माषपर्णी, धव, पाटल, महुआ का सार, दंतीमूल, चित्रक, पलाश, भूमिक, अजमोद, देवदारू और कडु के कवाथ से निर्मित बस्ति विशेषत: गायों के लिए हितकर है।[36]
- ***अतिसा:*** हल्दी, दारुहल्दी तथा पाठा का काढा बनाकर गायों को देना चाहिए।[36]
- ***कोष्ठरोग:*** संपूर्ण कोष्ठ के रोगों में श्वास, काम और शाखा के रोग में अदरख और भारंगी का काढा देना उचित है।
- ***वात-पित्त-कफ का अतिरेक:*** गायों को वायु का अतिरेक होने पर तेल का पान कराना चाहिए। जेठी मधु से सिद्ध किया गया तेल पित्त को हरने वाला है। कफज रोग में सोंठ, मिर्च, पिपरि का काढा बनाकर उसमें मधु मिश्रित करके हड्डी टूट जाय तो उसको जोड़ने के लिए प्रियंगु के साथ सेंधा नमक मिश्रित करके देना चाहिए।

गौसंरक्षण एवं गौचिकित्सा संबंधी उपायें यहां वर्णित है, वह सांप्रत समय में भी उपयोगी बन सकते है।

संदर्भ ग्रन्थ:

1. या अंगिरसस्तसेह चकु:। ऋग्वेद: सायणभाष्य वैदिक संशोधन मण्डल, पूना-1146 10-169.2
2. दिस्पृथिव्या अन्तरिक्षात्समुद्राग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे अथर्ववेद:। सं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारड. इ.स. 1141 9.1.1
3. महत्पयो विश्वरूपमस्या: समुद्रस्य त्वोत रेत आहु:। यत एति मधुकशा राणा तत्प्राणस्तदमृतं निविष्टम्।। अथर्ववेद:9.1.2
4. यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्। ऋग्वेद: 6.28.6, अथर्ववेद: 4.21.6
5. अष्टाङ्गहृदयम् - सं. प्रा. दिलीप एम. पण्डया-सरस्वती पुस्तक भण्डार, अहमदाबाद, अद्यतन आवृति-1999 सूत्र स्थान 4.21.22
6. अथर्ववेद: 3.11
7. घृतं ते अग्ने दिव्ये सघ्सस्थे घृतेन त्वां मनुरद्या समिन्धे।
8. यस्मिन्देवा अमृजत यष्मिन्मनुष्या उत।
9. देवो अग्नि: संकसुको दिवस्पृष्ठान्यारूहत्।
10. मुच्यमानो निरेणसोडमोजस्मां अशास्तया। एजन 12.2.12
11. क्षीरमूत्रं पिबेत गव्यं महिषमेव वा। पाण्डुरोगो मूत्रयुक्तं वा सप्ताहं त्रिफलारसन।। चरकसंहिता-व्याख्याकार-वैद्य दयाल परमार -सरस्वती पुस्तक भण्डार-अमदावा प्रथम आवृत्ति-2001-02, चिकिस्सा स्थान-16.64
12. अथर्ववेद: 3.14.3, 12.4.9. एवं पृ. 201.
13. ऋग्वेद: 1.164.7
    यजुर्वेद:-दयानन्द भाष्य- वैदिक मन्त्रालय, अजमेर 1921 13.85 अथर्ववेद: 7.73.8
14. अर्थशास्त्रम्-कोटिल्य: सं.- रघुनाथ सिंघ, चोखम्बा संस्कृत सीरज आफिस-वाराणसी प्रथम संस्करण वि. स. 2045, 2.29.16
15. सं वो गोष्ठेन सुषदा सं रय्या सं सुभूत्या। अथर्ववेद: 3.14.1
16. एजन 3.18
17. बलप्रद विषाणां स्याद्गृहे नाशाय धूपके:।
    देवदारू वचा मांसी गुग्गुलुर्हिङगुसर्षपा:।
    गहादिगदनाशाय एष धूपो गवां हित:।। अग्निपुराणम् सं. डॉ. घनश्याम त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग. सन्-1998, 292.33, 34
18. ऐजन - 292.34
19. ऋग्वेद: 1.164.40, अथर्ववेद: 7.73.11
20. अथर्ववेद: 3.14, 7.15
21. त्वष्टा येषां रूपधेयानि वेदस्मिन्तागोष्ठे सविता नि यच्छतु।
    इमं गोष्ठं पशव: सं स्त्रवन्तु बृहस्पतिरा नयतु प्रजानन्।
    सिनीवाली नयत्वाग्रमेषामाजग्मुषो अनुमते नि यच्छ।।
    अथर्ववेद: 2.26.1, 2

22. जरदगुधेनुगार्भिणीपष्ठौहीवत्सतरीणां समविभागं रूपशतमेकः पालयेत्।। अर्थशास्त्रम् 2.29.4
23. ऐतरेय ब्रह्मण-सायणभाष्य, ए. हॉग -मुंबई 1863, सायणभाष्यसहित, आनन्दाश्रम) पूना 3.18.14
24. वर्णारोधेन दशतीरक्षा । उपनिंवेशादिग्विभागो गौप्रचाराद् बलान्वयतो वा वां रक्षासामर्थ्याच्च। अर्थशास्त्रय् 12.26.39.
25. वैदिक साहित्य और संस्कृति - ले. आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, वाराणसी 1989. पृ. 456
26. अर्थशास्त्रम् 2.29.48
27. सर्पव्यालत्रासनार्थ गोचरनुपातज्ञानार्थ च त्रसूनां घण्टातूयं च बध्नीयुः। अर्थशास्त्रम् 2.29.22
28. रघुवंशम्-कालिदासः व्याख्याकार श्री हरगोविन्द मिश्र, चौखम्बा संस्कृत, संस्थान वाराणसी, षष्ठ संस्करण वि.स. 2049, 2.5
29. ऋग्वेदः 1.164.27, 28.29
30. भूमतृणोदकविशेषाद्धि क्षीरघृंतबुद्धिर्भवति। अर्थशास्त्रम् 2.26.37
31. अर्थशास्त्रम् 2.29.31
32. अथर्ववेदः 3.28.1
33. यत्रौषधीः समग्मत राजानः समितावि‌व।
विप्र स उच्यते भिषग् रक्षोहामीवचातन्।। ऋग्वेदः 10.17.6
35. शृङ्गमयेषु धेनुनां तैलं दधघात्ससैन्धवम्। अग्नि पुराणयम् 293.23.
36. अग्निपुराणम् 263.27.28
37. चरकसंहिता- सिद्धिस्थान-11.24,24
38. अतीसारे हरिद्रे द्वे पाठां चैव प्रदापयेत्। अग्निपुराणम् 293.28.

महिला सशक्तिकरण एवं सामाजिक परिवर्तन पर डॉ. अंबेडकर के विचार

डॉ० गुरदीप कौर

ऐसोसिएट प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान विभाग, श्री गुरु नानक देव खालसा कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सुरेंद्र सिंह

शोधार्थी, राजनीतिक विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वर्तमान युग में दलितों के अधिकार की तमाम बातों के साथ महिला अधिकारों की बात करना स्वाभाविक है, फिर महिला किसी भी धर्म या जाति की क्यों ना हो उसे पुरूष की परछाई के रूप में ही देखा जाता है दलित अत्याचार की बात करें तो पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं पर समाज में अत्याचार अधिक देखने को मिलता है, आज बदलते परिवेश को देखते हुए देश की उन्नति में आधार कही जाने वाली महिलाओं को जिस बराबरी और समानता के अनुरूप बाबासाहेब अंबेडकर ने देखा, उस रूप में किसी अन्य महापुरुष ने नहीं देखा। यूँ तो समय के साथ-साथ कई महापुरुषों ने महिलाओं के अधिकारों के लिए संघर्ष किया, लेकिन भारत के मूल दस्तावेजों में इन अधिकारों को दर्ज कराने का काम बाबासाहेब अंबेडकर ने किया, वह भी कड़े विरोध के बावजूद। इस पर विरोध उन लोगों की संकुचित मानसिकता को दर्शाता है। जिन्होंने हमेशा महिलाओं को दोयम दर्जे का स्थान दिया है। जिनके लिए महिला उनकी सम्पत्ति से अधिक कुछ नहीं। आज भी जब पूरा देश महिला सुरक्षा और 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' जैसे सशक्त संदेशों को दूर-दूर तक पहुंचाने के दावे करता है, ऐसे में इस बात को जानना और भी जरूरी हो जाता है, कि जो अधिकार बाबासाहेब आंबेडकर ने महिलाओं को दिए उन अधिकारों को वह कितना जानते हैं।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर एक महान नारीवादी चिंतक थे। उन्होनें अपने जीवनकाल में महिलाओं के सशक्तिकरण का एक मात्र हथियार महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता को माना है। उन्होनें अपनी रचनाओं में भारतीय महिलाओं की स्थिति के बारे में भी विस्तृत वर्णन किया है। उन्होंने बताया कि मनु से पूर्व भारत में महिलाओं की स्थिति सम्मानजनक थी। उन्होंने कहा कि मनु से पूर्व महिलाओं को शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार था। उनका विचार था कि देश में मनु ने महिलाओं की स्थिति को काफी दयनीय व चिंताजनक बना दिया। मनु की 'मनुस्मृति' से महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक विकास पर पूरी तरह से प्रतिबंध लग गया। आधुनिक युग में डॉ. अम्बेडकर ने महिलाओं को जागृत करने के लिए अनेक सम्मेलन किए। डॉ. अम्बेडकर ने 'मूकनायक' व 'बहिस्कृत भारत' इत्यादि समाचार-पत्रों के माध्यम से महिलाओं को उनके अधिकारों की प्राप्ति के लिए प्रेरित किया। 1941 में 'हिन्दू कोड बिल' के द्वारा भारत सरकार ने महिलाओं के सशक्तिकरण का प्रयास किया। डॉ. अम्बेडकर ने कानून मंत्री रहते हुए 'हिन्दू कोड बिल' का कार्य अपने हाथों में लिया लेकिन रूढ़ीवादी व मनुवादी लोगों ने इस बिल का विरोध किया।

भारत में महिलाओ की वास्तविक स्थिति बहुत ही दयनीय थी। मनुस्मृती महिलाओ को किसी भी तरह की आजादी नहीं देती थी। इसलिए डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने महिला सशक्तिकरण के लिए कई कदम उठाए। महिलाओं को और पूर्ण अधिकार दिलाने तथा उन्हें सशक्त बनाने के लिए सन 1951 में उन्होंने 'हिंदू कोड बिल' संसद में पेश किया। बाबा साहेब का मानना था कि सही मायने में प्रजातंत्र तब आयेगा जब महिलाओं को पैतृक संपत्ति में बराबरी का हिस्सा मिलेगा और उन्हें पुरूषों के समान अधिकार दिए जाएंगे। बाबा साहेब का दृढ. विश्वास था कि महिलाओं की उन्नति तभी संभव होगी जब उन्हें घर परिवार और समाज में सामाजिक बराबरी का दर्जा मिलेगा। शिक्षा और आर्थिक उन्नति उन्हें सामाजिक बराबरी दिलाने में मदद करेगी। बाबा साहब अंबेडकर ने संविधान मे महिलाओं को सारे अधिकार दिये, जिनसे उनको सामाजिक समानता व स्वतंत्रता मिले।

डॉ. अंबेडकर ने 11 अप्रैल, 1947 को लोक सभा में हिन्दू कोड बिल पेश किया। उन्होंने भारतीय समाज में नारी को पुनः प्रतिष्ठित करने हेतु यह बिल तैयार किया था इसके 9 भाग थे इसमें 139 धाराएँ और 7 सूचियाँ थी इस बिल में स्त्री को विवाह विच्छेद, अल्पायु में विवाह करने पर प्रतिबंध, जीवन साथी चुनाव एवं अंतर्जातीय विवाह का अधिकार, सम्पत्ति में बेटे और बेटी के बराबरी का अधिकार तथा गोद लेने एवं संरक्षता के अधिकार का प्रावधान था इसके बाद 16 अगस्त, 1951 को हिन्दू कोड बिल संसद में पेश किया गया कई दिनों तक बहस होती रही। पंडीत जवाहरलाल नेहरु ने हिन्दू कोड बिल के दुसरे भाग जो विवाह और तलाक से संबंधित था को ही पेश करने दिया गया 25 सितम्बर, 1951 को यह इसे पास कर दिया गया इससे हिन्दू वर्ग आपे से बाहर आ गये सरदार पटेल और डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने खुलकर विरोध किया अन्त में 26 सितम्बर 1951 को जवाहर लाल नेहरु ने इस बिल को बिना पास हुए वापस ले लिया।

डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर महिलाओं के हर समस्या से अवगत थे, और इन समस्याओं का निवारण करना चाहते थे इसलिए उन्होंने अपनी बीमारी से पीड़ित होते हुए भी हिंदू कोड बिल दिन-रात कड़ी मेहनत करके तैयार किया था। इस बिल में सदियों से प्रताड़ित, शोषित, वंचित महिलाओं के स्वतंत्रता पूर्ण जीवन यापन करने के अधिकार सुरक्षित थे। इस बिल में उत्तराधिकारी, विधवा विवाह, तलाक, गोद लेना, गुजारा, शिक्षा आदि से संबंधित बहुत सी समस्याओं का निवारण कानूनी रूप से कर दिया गया था यह बिल मृतक की विधवा, पुत्र और पुत्री को उसकी संपत्ति में बराबर का अधिकार दे रहा था, पुत्रियों को अपने पिता की संपत्ति में अपने भाइयों के समान हिस्सा दे रहा था, हिंदू पुरुषों को एक से अधिक शादी पर प्रतिबंध लगा रहा था, महिलाओं को तलाक का अधिकार दे रहा था, यह बिल बहुत सी कुर्तियों को नष्ट कर रहा था, जिनको कट्टरपंथी, मनुवादी लोग जिंदा रखना चाहते थे इस बिल का पूरे देश में जोरदार विरोध हुआ नेहरू मंत्रिमंडल के सदस्य की इसका विरोध कर रहे थे यहाँ तक कि राजेंद्र प्रसाद व सरदार पटेल जैसे नेता भी इस बिल का विरोध कर रहे थे संसद के अंदर व बाहर विरोध बढ़ता ही जा रहा था सनातनी धर्मावलंबियों के अनुसार यह बिल हिंदू रीति रिवाज परंपराओं और धर्मशास्त्रों के विरुद्ध बताया जा रहा था।

डॉ बाबासाहेब आंबेडकर हिंदू कोड बिल को पारित करवाने को लेकर काफी चिंतित थे उन्होंने कहा था 'मुझे भारतीय संविधान निर्माण से अधिक दिलचस्पी और खुशी हिंदू कोड बिल पास कराने में हैं' बाबासाहेब ने धर्म भ्रष्ट होने की दुहाई देने वाले सनातनी धर्मावलंबियों की एक विशेष सभा बुलाई बाबा साहब ने सभी के सवालों के जवाब धेर्य से तर्कपूर्ण दिए और इनको समझाया कि यह बिल समाजिक बुराइयों को नष्ट करेगा व महिलाओं की स्थिति में सुधार होगा, जिससे पूरे समाज का विकास होगा मगर अफसोस इन धर्मावलंबियों को कुछ समझ नहीं आया और अपनी बात पर अड़े रहे।

हिंदू कोड बिल पर काफी वाद-विवाद चला इसी दौरान इस बिल का विरोध करते हुए भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने अपने इस्तीफे की धमकी दे डाली और इसी के साथ ही हिंदू कोड बिल की मनु वादियों द्वारा हत्या कर दी गई इस घटना से बाबासाहेब बहुत दुखी हो गए क्योंकि वह महापुरुष ईमानदारी से मेहनत कर, अपने विवेक से अपने ज्ञान से कानून बनाकर समाज में फैली बुराइयों को नष्ट करना चाहते थे दिनांक 27 सितंबर, 1951 कानून मंत्री पद से बाबा साहब ने त्यागपत्र दे दिया बाबासाहेब ने यह कदम हिंदू कोड बिल को पारित नहीं करने क्या कारण है कुछ अन्य कारणों को ध्यान में रखते हुए उठाया था हालांकि बाद में इसी बिल को नेहरू सरकार ने अलग-अलग टुकड़ों में पारित करवा दिया था।

सैद्धांतिक रूप से यह समझना अति आवश्यक हैं, कि प्रत्येक सामाजिक कालखंड एवं नियत परिस्थितियों में समाज में शक्ति का कुल योग तो लगभग समान ही रहता है अंतर केवल उसके वितरण, क्रियान्वयन व उपभोग में होता है। अत: किसी एक वर्ग के पास अधिक शक्ति हो जाने से स्वत: ही दूसरे वर्ग की शक्ति में कमी आ जाती है, जैसे कि महिलाओं के साथ प्राय: सभी समाजों में हुआ भी है।

महिला सशक्तिकरण द्वारा ही सामाजिक आर्थिक संसाधनों पर नियंत्रण प्राप्त करने की सक्षमता का विकास हो सकता है जिससे उनमें अपने जीवन को स्वयं निर्देशित करने के साथ-साथ परिवार और समाज के विषयों में निर्णय लेने में भागीदारी भी सुनिश्चित होती है यह सामाजिक परिवर्तन के लिए आवश्यक भी है क्योंकि पुरुष प्रधान समाज में शक्ति वितरण की व्यवस्था अन्यायपूर्ण होने से महिलाओं को विकास की धारा से अलग रखती है अत: महिलाओं में शिक्षा का प्रसार कर उन्हें आत्मनिर्भर बना तथा उनमें निर्णय लेने की क्षमता का विकास करके ही महिला सशक्तिकरण को सम्भव किया जा सकता है वैसे सामाजिक शक्ति और सत्ता का हस्तांतरण आसान प्रक्रिया नहीं है लेकिन पुरुष और महिला के मध्य सत्ता का सामंजस्य बढ़ती जेंडर संवेदनशीलता, नारीवादी आन्दोलनों और विशेषकर महिलाओं में तेजी से बढ़ रही जागरूकता व शिक्षा के कारण महत्वपूर्ण होता जा रहा है वास्तव में समाजिक विकास व परिवर्तन प्रक्रिया महिला सशक्तिकरण विकासात्मक अवश्यंभावी भी है। डॉ. अंबेडकर ने एक सभा को संबोधित करते हुए कहा था 'जिस प्रकार पुरुषों को शिक्षा की आवश्यकता होती है वैसे ही महिलाओं को भी होती है यदि उन्हें पढ़ना लिखना आ गया तो तुम्हारी बहुत उन्नति होगी जैसे तुम वैसे तुम्हारी संतान भी होगी' डॉ. आंबेडकर इस तथ्य पर जोर देते थे, कि संतान सबसे पहले अपनी मां के ही संपर्क में आती है और यदि एक महिला शिक्षित हो गई तो परिवार के सभी सदस्य अपने आप शिक्षित हो जाएंगे अर्थात महिला का शिक्षित होना बेहद जरूरी है, जिससे ना केवल वह शिक्षित होगी अपितु परिवार को भी शिक्षित कर सामाजिक बदलाव की नीव भी रखेगी वैसे सभी समाज सुधार को ने महिला शिक्षक को उनके विकास में महत्वपूर्ण माना है लेकिन शिक्षा के साथ-साथ समाज में महिला की समान रूप से प्रभावित होने की अनिवार्य भी मानते हुए डॉ. अंबेडकर ने कहा था 'मैं समाज की उन्नति का अनुमान इस बात से लगाता हूं कि उस समाज की महिलाओं की कितनी प्रगति हुई है, महिला की उन्नति के बिना समाज एवं राष्ट्र की उन्नति असंभव है'।

डॉ. अंबेडकर चाहते थे कि हिन्दू समाज-व्यवस्था में ऐसी समानता स्थापित हो जहां स्त्री-पुरुष, ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा जैसी भेदभाव न हो डॉ. अंबेडकर ने दुखी होकर 28 सितम्बर 1951 को मंत्रीमंडल से त्याग पत्र दे दिया हिन्दू कोड बिल को कानूनी रूप दिये जाने की खतिर यह विधेयक मंत्रीमंडल में बना रहा और आगे चलकर खण्डों में विभक्त होकर पारित हुआ।

1. द हिन्दू मैरिज एक्ट 1955
2. द हिन्दू एस्सेशान एक्ट 1956
3. द हिन्दू एस्सेशान एक्ट 1956
4. द हिन्दू एस्सेशान एक्ट 1956

1. द हिन्दू मैरिज एक्ट 1955:- इस एक्ट में एक विवाह को वैधता दी है और दुसरे विवाह के लिए कानूनी रूप से दण्ड का प्रावधान एवं कन्या की विवाह की आयु 18 वर्ष कर दी गई।

2. द हिन्दू एस्सेशान एक्ट 1956:- इस एक्ट में एक विधवा को भी पुत्र या पुत्री गोद लेने का अधिकार दिया गया अपनी सम्पति को भी वह जिसको चाहे अपनी इच्छा अनुसार दे सकती है।

3. द हिन्दू एस्सेशान एक्ट 1956:- इस एक्ट के द्वारा माँ को अधिकार दिये गए है, कि वह अपने बच्चों के संरक्षक बदल सके नाबालिक बच्चे का संरक्षक नियुक्त करने में पत्नी की अनुमति आवश्यक है।

4. द हिन्दू एस्सेशान एक्ट 1956:- इस एक्ट द्वारा गोद लेने में लड़का या लडकी किसी को भी अपनी इच्छा अनुसार ले सकते है एक स्त्री अपने जीवन में किसी बच्चे को भी गोद ले सकती है अविवाहित लडकी या विधवा को भी गोद लेने का अधिकार दिया।

डॉ. अंबेडकर ने आधुनिक भारत की नारी की स्थिति में सुधार के लिए प्रयास न केवल ऐतिहासिक, मूल्यवान और मूलभूत महत्वपूर्ण है, बल्कि भारत के संदर्भ में ही नहीं विश्व के संदर्भ में अति प्रगतिशील है। उनके इन प्रयासों को हमें दो भागों में बांट कर देखना होगा पहला सैद्धांतिक स्तर पर किया गया प्रयास है। और दूसरा व्यवहारिक एवं क्रियान्वयन के स्तर पर लागू करने का प्रयास हैं। डॉ. अंबेडकर की शोधपरक और विश्लेषणात्मक दृष्टि ने सर्वप्रथम भारतीय नारी की स्थिति में हुए पतन के कारणों को जानने का प्रयास किया डॉ. अंबेडकर के अनुसार मनु द्वारा नारी विरोधी कानून बनाने के दो कारण हैं। पहला था, बौद्ध धर्म अपनाया जाना तथागत गौतम बुद्ध ने भिक्षुणी संघ की स्थापना करके स्त्री को ज्ञान परंपरा से जुड़ने का अवसर प्रदान किया, यह अभूतपूर्व प्रयास स्त्री स्वतंत्रता के लिए लिया गया अति प्रगतिशील कदम था, बुद्ध धर्म भिक्षुणी संघ की विदुषी भिक्षुणियों को 'थेरी' कहा जाता था। और उनके द्वारा लिखे गए अनुभवों के संकलन को 'थेरी गाथा' के नाम से जाना जाता था, स्त्री लेखन परंपरा का यह प्रथम ग्रंथ माना जाता है। मनु ने हिंदू धर्म के प्रचार प्रसार के लिए शूद्र-अतिशूद्र एवं नारी को शिक्षा से और आत्मबोध विकसित होने के अवसरों से वंचित किया और इसे धर्म के आदेश के रूप में लागू किया धर्मादेश को तोड़ने पर प्राणदंड, जिव्हा काटने, नाक और मुंख में पिघलता शीशा भरने जैसे दंड का विधान रखा गया। यह इसलिए कि ब्राह्मण शिष्टता पर आधारित वर्ण व्यवस्था व जाति व्यवस्था को यह वर्ग कहीं चुनौती ना दे सकें दूसरा कारण नारी की स्वतंत्रता ब्राह्मणवाद के वर्चस्व के लिए कहीं चुनौती ना बन सके, क्योंकि स्त्री स्वतंत्रता ऊँच-नीच के भेदभाव की दीवार को तोड़कर अपने मनचाहे पुरुषों से विवाह की मांग करती है ब्राह्मण वर्ग ने इसलिए सबसे प्रथम वर्ण के बाहर शादी विवाह का निषेध लगा दिया।

डॉ. बाबा साहब अंबेडकर ने भारतीय समाज में नारी और दलित नारी की दयनीय और दुरावस्था को पहचाना। उनका मानना था, कि समाज के उन्नत होने का मापदंड समाज के पुरुष न होकर स्त्रियां होती हैं। यही कारण है। कि उन्होंने कर्तव्यों के बोझ तले दबी छटपटाती नारी, दलित नारी को शोषण से मुक्त कराने, असमानता को दूर करने अस्मिता की रक्षा, अधिकारों की प्राप्ति एवं अन्य मोर्चों पर किए जाने वाले आंदोलनों को गति प्रदान करने उसे नई दिशा देने व अनेकानेक सुविधाएं दिलाने में अति महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

निष्कर्ष

डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर ने भारतीय समाज की महिलाओं की दयनीय दशा में सुधार के लिए अहम भूमिका निभाई हैं। उन्होंने समाज के दबे-कुचले वर्गों जिसमें दलित, महिलाएं आती हैं। को न्याय दिलाने का कार्य किया और समाज में गैर बराबरी की दीवार को तोडकर समानता का अधिकार दिलाया और लोगों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने के लिए प्रेरित किया डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर का मानना था, कि सामाजिक एकीकरण तब तक सम्भव नहीं है, जब तक कि सभी को सामाजिक समानता और स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती, डॉ. अंबेडकर ने एक ऐसे दर्शन का प्रतिपादन किया है, जिसे इस जगत में ही व्यावहारिक बनाया जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है, कि सभी महिला-पुरुष अपने को उनके दर्शन के अनुसार समायोजित करने का प्रयास करे। हमे उस समाज व्यवस्था के सिद्धांतो को व्यवहार में लाना चाहिए जो उनके दर्शन का लक्ष्य है।

संदर्भ सूची

1. शास्त्री, सोहनलाल, हिंदू कोड बिल और डॉ. अंबेडकर, सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली, 2018
2. पाण्डेय, घनपति आधुनिक भारत का इतिहास भाग-2 नई दिल्ली, 2017
3. अंबेडकर, बी.आर. हिंदू नारी का उत्थान और पतन, गौतम बुक सेंटर, 2009
4. मेघवाल, कुसुम, भारतीय नारी के उद्धारक : डॉ. बी. आर. अंबेडकर, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, 1995
5. सुमन, मंजू, दलित महिलाएं, सम्यक प्रकाशन, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली, 2014
6. सिंह, तेज अंबेडकरवादी स्त्री चिंतन, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
7. मेकवान, मार्टिन, मेरी कथा दलित यातना, संघर्ष और भविष्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
8. मेहरोत्रा, ममता, महिला अधिकार, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली, 2014
9. प्रो. वाशिष्ट, सरिता, महिला सशक्तिकरण, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली, 2010
10. डॉ. पूरणमल, दलित संघर्ष और सामाजिक न्याय, अविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स जयपुर, 2002

महादेवी की कविताओं विरह वेदना अभिव्यक्तिः एक अध्ययन

डॉ० देवेंद्र शुक्ल

स्नातकोत्तर विभागध्यक्ष, हिंदी विभाग, जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय शक्ति जिला जांजगीर चांपा, छत्तीसगढ़

सारांश

महादेवी वर्मा हिन्दी की प्रतिभावान कवयित्रियों में से एक है जिनकी गणना छायावाद के चार प्रमुख स्तम्भों में की जाती है। अनुभूतियां जब तीव्र होकर कवि हृदय से उच्छलित होती है तो उन्हे कविता के रूप में संजोया जाता है। महादेवी वर्मा ने मन की इन्ही अनुभूतियों को अपने काव्य में मर्मस्पर्शी, गंभीर तथा तीव्र संवेदनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है। महादेवी जी ने अपना काव्य वेदना और करूणा की कलम से लिखा उन्होने अपने काव्य में विरह वेदना को इतनी सघन्नता से प्रस्तुत किया कि शेष अनुभूतियां भी उनकी पीड़ा के रंगों में रंगी हुई जान पड़ती है। महादेवी का विरह उनके समस्त काव्य में विध मान है। वे वेदना से प्रारंभ करके वेदना में ही अपनी परिणति खोज दिखाई देती है। महादेवी जी की वेदनानूभूति संकल्पात्मक अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति है। उनकी काव्य की पीड़ा को मीरा की काव्य पीड़ा से बढकर माना गया है। महादेवी के काव्य का प्राण तत्व उनकी वेदना और पीड़ा रहे। वे स्वंय लिखती है,' दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बांधने की क्षमता रखता है।' महादेवी की विरह वेदना में परम तत्व की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। उनके काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य प्रिय से बिछुडना और उसे खोजने की आतुरता है। महादेवी जी ने अपने काव्य में आत्मा और परमात्मा के वियोग को विरहानुभूति के रूप में प्रस्तुत किया है।

मूल शब्दः महादेवी वर्मा, काव्य, विरह वेदना, छायावाद, अनुभूतियां, मर्मस्पर्शी, गंभीर, तीव्र संवेदनात्मक, प्रकाश, पीड़ा

छायावाद–व्योम की अरून्धती, एवं साहित्य की समस्त विधाओं की स्रष्टा महादेवी वर्मा ने अपनी प्रतिभा के प्रसाद से हिन्दी भारती के प्रासाद की भव्यता और सौन्दर्य–श्री की अभिवृद्धि के लिए स्तुत्य प्रयास किया है।

महादेवी की कविता में वेदना और करुणा की स्पष्ट झलक मिलती है। छायावादी की कल्पना प्रवणता, भावातिशयता, वेदनात्मक रहस्यवादिता आदि विविध विशेषताएँ इस कवयित्री में संगमित हो सकती हैं। अपनी करुण गाथा सुनाने के लिए महादेवी ऐसी पृष्ठभूमि तैयार कर लेती है कि वह जीवन में एकांत संगीत से लेकर वियोग तक की अनुभूतियों की व्यंजना स्पष्ट रूप से कर देती हैं। उन्होंने करुणा को ही सहचरी सदृश देखा और विरह में ही मिलन माना है। उनके जीवन में तो विषाद इस तरह भर गया है कि विषादहीन जीवन की कल्पना भी नहीं करती, तभी तो वह लिखती हैं–

''मैं नीर भरी दुःख की बदली
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना, इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली
मैं नीर भरी दुःख की बदली।''[1]

महादेवी ने अपने जीवन के विषाद को भगवान शंकर की भाँति ही पान कर लिया। उनका कंठ नीला अवश्य पड़ गया, लेकिन होठों की सहजंगिनी मुस्कान कभी लुप्त नहीं हुई।

सजल गीतों की गायिका एवं अज्ञात प्रियतम की आराधिका महादेवी वर्मा आधुनिक युग की 'मीरा' भी कही जाती हैं। आलोचकों ने इन्हें 'पीड़ावाद की कवयित्री' भी कहा हैं। महादेवी ने स्वयं लिखा है–

''दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँधे रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें मनुष्यता की सीढ़ी तक न पहुँचा सकें, किन्तु हमारा एक बूँद भी जीवन को अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। विश्व जीवन में अपने जीवन को, विश्व वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक–एक जल बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।''

इसी प्रसंग में वह आगे चलकर कहती हैं–''मुझे दुःख के दोनों ही रूप प्रिय हैं, एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बंधन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बंधन में पड़े असीम चेतना का क्रंदन है।''[2]

वे पीड़ा में प्रियतम और प्रियतम में पीड़ा को खोजती हैं। वे सदा मिटाने के अधिकार को अपने पास संभालकर रखने के लिए तत्पर रहती है। तभी तो वह कहती हैं–''पीड़ा मेरे मानस से भींगे पट-सी लिपटी है।''

महादेवी वर्मा की यह पीड़ा वैयक्तिक न होकर सामन्ती पाशों से बद्ध एवं सामाजिक रूढ़ियों से ग्रस्त भारतीय नारी जीवन की उन्मुक्त पीड़ा है। छायावादी काल में भारतीय नारी जीवन की सिसकती पीड़ा को जोड़ देना महादेवी के काव्य का भौतिक योगदान है। ''महादेवी जी की यह विशेषता है कि छायावाद ने व्यक्ति और समाज की जिस व्यापक असंतोष भावना को अभिव्यक्ति दी, उसमें उन्होंने भारतीय नारी के असंतोष, निराशा और आकांक्षा का स्वर भी जोड़ दिया।''[13]

कवयित्री को मिलन अभीष्ट नहीं, क्योंकि उसमें जड़ता है और क्रियाशीलता का अभाव है। वे शुरू से अंत तक विरह-गीत से जुड़ी रहीं। उनका कहना है–

''पर न अन्तिम छन्द का मैं अभी तक गा सकी हूँ।''

महादेवी ने दाम्पत्य भाव से उस असीम प्रियतम के प्रति अपने प्रेम की आकुलता हृदय से प्रकट की है। उनका यह भाव ही रहस्यवाद का रूप है। परमात्मा से अपनी अभिन्न राग जताते हुए कहती हैं–

''बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी,
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ।''[14]

जयशंकर प्रसाद ने सचमुच अनुभव किया था- 'मानव जीवन वेदी पर परिणय है– विरह–मिलन का।''

डॉ० इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है– ''छायावादी काव्य में प्रसाद ने यदि प्रकृति तत्त्व को मिलाया, निराला ने मुक्तक छन्द दिया, पन्त ने शब्दों की खराद पर चढ़ाकर सुडौल और सरस बनाया तो महादेवी जी ने उसमें प्राण डाले।''[15]

''महादेवी के विरह-गीत अपनी अनुपम अनुभूतियों और चित्रमयी व्यंजना के कारण हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि है।

आधुनिक युग की कवयित्री महादेवी वर्मा की कविताओं में विरह का ऐसा अविरल प्रवाह है, जो आज भी हम सबके लिए अस्पष्ट, जटिल एवं दुर्बोध ता का विषय बना हुआ है। कवयित्री ने स्वयं अपने इस वेदना भाव को 'पीड़ा', 'वेदना' आदि शब्दों में चित्रित किया है-

''मेरी मधुमय पीड़ा को कोई
पर ढूँढ़ न पाये।''
पा लिया मैंने किसे इस वेदना
के मधुर क्रय में,
बिछाती भी सपनों के जाल,
तुम्हारी वह करुणा की कोर
गई वह अधरों की मुस्कान,
मुझे मधुमय में पीड़ा में बोर।''[16]

उपरोक्त पंक्तियों में वेदना या पीड़ा के साथ 'मधुर' विशेषण का उल्लेख दृष्टिगोचर होता है। जैसे– 'मधुमय पीड़ा' वेदना के मधुर क्रय', 'मधुमय पीड़ा'।

वास्तव में पीड़ा या वेदना सुखकारी नहीं होती, फिर इसे मधुमय कहना अनुचित प्रतीत होता है। जो मधुमय होता है, वह तो सुखकारी, आनंद-प्रदायिनी और प्रसन्नता का द्योतक होता है। महादेवी की बातों से ऐसा लगता है कि एक ओर उनके हृदय में अपने प्रियतम के लिए अमित आह्लाद है तो दूसरी ओर उनसे न मिलने की अत्यधिक पीड़ा भी है। वह अपनी अधरों की मुस्कान में भी पीड़ा को ढूँढ़ने का प्रयास करती है। 'प्रेम' या 'प्रणय' में ही ऐसी नोंक–झोंक और 'मीठी या तीखी' बातों की अनुभूति होती है। सच्ची प्रेमिका को ही मधुमय और पीड़ा दोनों की अनुभूति एक साथ हो सकती है। महादेवी की इस 'मधुमय पीड़ा' को 'प्रेम' का पर्यायवाची कहा जा सकता है।

महादेवी का यह वदेना-भाव अन्य प्रणय भाव के ही समतुल्य है। उनकी वेदना का प्रादुर्भाव कहीं किसी की 'चितवन' तो कहीं किसी के 'अधरों की मुस्कान' को बताया जाता है।

निम्नांकित पंक्तियाँ इसी भाव को चित्रित करती हैं–

''पर शेष नहीं होगी यह मेरे
प्राणों की क्रीड़ा ।
तुमको पीड़ा में ढूँढा,
तुम में ढूँढूँगी पीड़ा।''[17]

आलोचकों ने इस 'पीड़ा' शब्द का जो अर्थ लगाया है, वह सही नहीं लगता महादेवी वर्मा के प्रसिद्ध व्याख्याता श्री विश्वम्भर मानव लिखते हैं-''अंतिम पीड़ा शब्द का अर्थ है–'पीड़ामय हृदय'। जिसके लिये इतनी पीड़ा सही है, उस निष्ठुर से मिलाया है, उसकी प्राप्ति पर वे अपने साथ उपकार करने वाली को भूल जाएँ, इतनी अकृतज्ञ महादेवी नहीं हैं। पर, लक्ष्य 'तुम' ही है, पीड़ा नहीं।''

वास्तव में यहाँ पीड़ा शब्द का अर्थ 'प्रणय' ही है। प्रेम की अनुभूति से ही कवयित्री को उस असीम प्रियतम की प्राप्ति होती है और वह उस प्रियतम में भी पीड़ा को खोजना चाहती है। हर प्रेमिका यह जानना चाहती है कि उसका प्रियतम भी उससे प्रेम करता है या नहीं? महादेवी जी के इस 'पीड़ा' शब्द के अर्थ प्रेम नहीं मानते हुए जैनेन्द्र जी इस पर आक्षेप करते हुए लिखते हैं ''घायल घाव नहीं चाहता है। मालूम होता है, उनकी गति घायल की है ही नहीं।''

श्री सतपाल बुध भी लिख डालते हैं–''अवश्य ही वेदना उनको प्रिय भी है और इसका उनके जीवन-दर्शन से अनिवार्य रूप से संबंध भी है। तो क्या जो बात किसी को प्रिय हो, वही उसका जीवन-दर्शन भी होगी? ऐसा आवश्यक है, किन्तु महादेवी जैसी परिपक्व बुद्धिशीला महिला के लिए आवश्यकता तो नहीं क्योंकि हम उनसे किसी सस्ती भावुकता की आशा नहीं कर सकते, और फिर कितनी ही कविताओं में वेदना साध्य बन गई है।''[8]

महादेवी अद्वैतवाद में विश्वास कर परमात्मा से एकाकार के बाद मोक्ष पाना नहीं चाहती, बल्कि वह तो द्वैतवाद युक्त प्रणय के मिथ्या अनुभव से ही संतुष्ट होना चाहती हैं। वह अपनी भावनाओं को निम्न पंक्तियों में दर्शाती है–

''प्रिय! मैं लेती बाँध मुक्ति
सौ-सौ लघुतम बन्धन अपने में,
तुम्हें बाँध पाती सपने में।''[9]

इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि कवयित्री ने 'वेदना' या 'पीड़ा' शब्द का उल्लेख 'प्रणय' यानि 'प्रेम' के अर्थ में ही किया है। अत: महादेवी के प्रेम में वेदना की अधिकता है।

महादेवी अज्ञात प्रियतम के चितवन से होकर वह हमेशा के लिए प्रेम के बंधन में बँध जाती है।

''इन ललचाई पलकों पर,
पहरा था जब वीड़ा का।
साम्राज्य मुझे दे डाला,
उस चितवन ने पीड़ा का।''

महादेवी अपने अलौकिक प्रेम में भी प्रकृति के विभिन्न अवयवों में, उसके क्रियाकलापों में अपने सपनों को साकार करना चाहती हैं–

''जिस दिन निखरे तारों से,
बोलीं किरणों की अलकें,
सो जाओ अलसाई हैं,
सुकुमार तुम्हारी पलकें।''

प्रियतम के आने की आहट उन्हें उमंग, उल्लास और माधुर्य से सराबोर कर देती है। बादलों का हँसना-मुस्कराना और बिजली का चमकना उनके प्रेम को द्विगुणित कर देते हैं।

पुलक–पुलक उर, सिहर–सिहर तन,
आज नयन आते क्यों भर–भर?
तुम विद्युत बन, आओ पाहुन!
मेरी पलकों में पग धर–धर।''

मिलनाकांक्षा से अभीष्ट मधुर स्वप्नों में गोते लगाती हुई कवयित्री लिखती हैं–

''अब असीम से हो जायेगा,
मेरी लघु सीमा का मेल।
देखोगे तुम देव, अमरता खेलेगी, मिटने का खेल।।''

अपने गीतिकाव्य के माध्यम से भी कवयित्री प्रियतम को रिझाने की कोशिश करती हैं–

'हे नभ की दीपावलियों,
तुम पल भर को बुझ जाना।
मेरे प्रियतम को भाता है,
तम के पर्दे में आना।।''

जब कवयित्री को यह आभास हो जाता है कि शरीर के रहते इस जीवन में प्रियतम का साक्षात्कार नहीं हो सकता तो वह बहुत व्यथित हो जाती हैं और कहती हैं–

''मिलन का नाम मत ले,
विरह में मै चिर हूँ।''

प्रेम की विभिन्न दशाओं का वर्णन वे बड़ी ही भावुकता से अपने काव्य में करती हैं। कभी गर्व भाव से तो कभी निर्वेद तो कभी दैन्य भाव से अपनी वेदना प्रकट करती है–

वह गर्व से कहती हैं–

''उनसे कैसे छोटा है,
मेरा यह भिक्षुक जीवन?''
उनमें अनन्त करुणा है,
इसमें असीम सूनापन।''

फिर निर्वेद भाव से कहती है–

''चिन्ता क्या है हे निर्मम बुझ
जाये दीपक मेरा।
हो जायेगा तेरा ही पीड़ा का
राज्य अँधेरा।।''

अपने दैन्यभाव में कवयित्री प्रियतम के असीम रूप में अपने को समाहित कर देना चाहती हैं–

''सिन्धु को क्या परिचय दें देव! बिगड़ते बनते बीचि विलास।
क्षुद्र हैं मेरे बुद्बुद् प्राण तुम्हीं में
सृष्टि तुम्हीं में नाश।।''

कवयित्री के हृदय का रूदन ही संभवत: 'मर्मर का रूदन' है। कवयित्री को अपने प्रियतम से जितना ही अनुराग है, उतना ही विरह-भाव से स्नेह भी है। वह विरह–वेदना से स्वयं तड़पती हैं, साथ ही संसार के दीन–दुखियों के प्रति भी अपनी संवेदना प्रकट करती हैं। उनके मन में व्यक्तिगत सम्पदा के प्रति निर्वेद का करूण भाव भी दृष्टिगोचर होता है।

कवयित्री अपने निर्गुण, निराकार, अलौकिक प्रियतम के साथ भी आँख मिचौली का खेल खेलती हैं तो कभी उनकी अस्पष्ट छवि प्रकृति के सौन्दर्य में पाती हैं–

''मैं फूलों में रोती वे बालारूण में मुसकाते,
मैं पथ में बिछ जाती वे सौरभ में उड़ जाते।''[9]

प्रियतम से प्रथम मिलन की बात वह स्पष्ट शब्दों में कहती है–

''झटक जाता था पागल बात,
धूलि में तुहिन-कणों का हार।
सिखाने जीवन का संगीत, तभी तुम आये थे इस पास।।''

इस प्रकार महादेवी वर्मा विरह-वेदना की कवयित्री है। जो प्रकृति अपने प्रियतम (पुरुष) से मिलने के लिए अनन्तकाल से व्यग्र दीखती है, महादेवी मानो उस की साक्षात् प्रतिमा थी।[10]

निष्कर्ष

महादेवी के काव्य में एक ओर विरह वेदना है तो दूसरी ओर आशामय जीवन है। वे दु:ख में भी सुख को देखती है तथा अपने प्रिय का स्मरण करते हुए खिल उठती है। इस आनन्द का कारण यह है कि कवयित्री अपने प्रिय के प्रेम से भरी हुई है। अपने प्रिय तक संदेश पंहुचाने के लिए कवयित्री छटपटाने लगती है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है महादेवी ने जिन भावों को केंद्र बनाकर कविता का सृजन किया है, वे मूलभूत भाव वेदना, प्रेम, रहस्य और दर्शन है।

कवयित्री ने अपने काव्य में अपने निजी जीवन और जगत से उपलब्ध सुख - दु:ख, हास्-रूदन, हर्ष-शोक तथा आनंद और करूणा की अभिव्यक्ति की है। उनके काव्य में विरह वेदना और प्रेम की मूक पीड़ा अत्यन्त मार्मिकता के साथ व्यक्त की गई है। अपनी विरहानुभूति में कल्पना, करूणा, सात्विकता, भावोद्रेक, आशावादी दृष्टिकोण आदि सम्मिलित करते हुए महादेवी जी ने अपने काव्य को सुसज्जित किया है।

अपनी विरहानुभूति में कल्पना, करूणा, सात्विकता, भावोद्रेक, आशावादी दृष्टिकोण आदि सम्मिलित करते हुए महादेवी जी ने अपने काव्य को सुसज्जित किया है। उनकी विरहानुभूति को देखकर उन्हे आधुनिक काव्य की मीरा कहा जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. महादेवी वर्मा–सन्धिनी, संस्करण–2004, लोकभारती प्रकाशन, 15 ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहबाद–1 द्वारा प्रकाशित पृष्ठ सं०–108–109
2. डॉ० शिवकुमार शर्मा–हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, चौदहवाँ संस्करण–1994 अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली–06, पृष्ठ सं०–502
3. डॉ० शिवकुमार शर्मा–हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, चौदहवाँ संस्करण–1994 अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-06, पृष्ठ सं०–503
4. महादेवी वर्मा–सन्धिनी, संस्करण–2004, लोकभारती प्रकाशन, 15 ए. महात्मा गाँधी मार्ग इलाहबाद-01 द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ सं०–81-82
5. डॉ० शिवकुमार शर्मा–हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, चौदहवाँ संस्करण–1994 अशोक प्रकाशन, नई सड़क दिल्ली–06, पृष्ठ सं० 503
6. डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त–साहित्यिक निबंध, लोक भारती प्रकाशन, महात्मा गाँधी मार्ग इलाहबाद-01, संशोधित नवम् संस्करण–1987, पृष्ठ सं०–768
7. महादेवी वर्मा–सन्धिनी, संस्करण–2004, लोकभारती प्रकाशन, 15 ए, महात्मा गॉधी रोड इलाहाबाद-01 द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ सं०–41
8. सं० डॉ० सत्यरंजन–साहित्य–संसार, त्रैमासिक, वर्ष–2, अंक–1, अप्रैल–जून, 1966, पृष्ठ सं० 23
9. सं० उपेन्द्र सेवक–आतंक–साप्ताहिक पत्रिका, दिसंबर 1997, पृष्ठ सं०–5
10. महादेवी वर्मा–सन्धिनी संस्करण–2004, लोकभारती प्रकशन, 15 ए, महात्मा गाँधी मार्ग इलाहबाद–1 द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ सं०–43

भारत में दलित मानवाधिकार: एक आलोचनात्मक विमर्श

ईश्वरी बृजवासी सूर्यवंशी

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, शासकीय टीसीएल पीजी कॉलेज, जांजगीर चांपा, छत्तीसगढ़

सारांश

मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो लोगों को सम्मान के साथ जीने और सभ्य जीवन जीने में सक्षम बनाते हैं। जीवन का अधिकार सबसे पहला अधिकार था जिसने मनुष्य को मान्यता दी।

भारत एक समृद्ध देश है जहाँ गरीब लोग हैं और बहुत सारी सामाजिक-आर्थिक असमानताएं हैं। दलित गांव के बाहर रहते थे और उनकी पानी की टंकियों तक पहुंच नहीं थी और उन्हें अपना व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता भी सीमित थी। दलित सभी संभावित क्षेत्रों में आंशिक रूप से सफल हुए, दलितों का काला पक्ष, फिर भी उन्हें कार्यस्थल पर सामाजिक भेदभाव और हिंसा का सामना करना पड़ता है। संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद दलित शोषण का आसान निशाना बनते रहे।

ह्यूमन राइट्स वॉच के एक रिपोर्ट के अनुसार, दलितों और स्वदेशी लोगों (जो अनुसूचित जनजातियों या आदिवासियों के रूप में जाने जाते हैं) वे लगातार भेदभाव, बहिष्कार, एवं साम्प्रदायिक हिंसा के कृत्यों का सामना कर रहे हैं। भारतीय सरकार द्वारा अपनाए गए कानून और नीतियाँ सुरक्षा के मजबूत आधार प्रदान करती हैं, लेकिन स्थानीय अधिकारियों द्वारा ईमानदारी से कार्यान्वित नहीं हो रही है।"

एमनेस्टी इण्टरनेशनल का कहना है, "यह भारतीय सरकार की जिम्मेदारी है कि जाति के आधार पर भेदभाव के खिलाफ कानूनी प्रावधानों को पूरी तरह से अधिनियमित और लागू करे।

इस शोधपत्र का उद्देश्य भारत में दलितों को सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों को प्रासंगिक बनाना और मानव अधिकारों को मुद्दों पर ध्यान देना है और इनका भारतीय संविधान और दलितों को अधिकारों पर कितना प्रभाव पड़ता है इसका मुल्यांकन करना है। इसमें मानवाधिकारों का दो दृष्टिकोणों से मूल्यांकन करने का प्रयास किया जाएगा जो दार्शनिक और ऐतिहासिक होगा। मानवाधिकार मानव जीवन का बहुत महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, क्योंकि ये मनुष्य को सभ्य और सम्मानजनक जीवन जीने में मदद कर सकते हैं।

मूल शब्दः मानवाधिकार, दलित, भारतीय संविधान, सामाजिक क्रान्ति

मानवाधिकार और दलित

संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा जारी 'मानवाधिकारों के सार्वभौम घोषणा-पत्र' में कहा गया है - "किसी भी व्यक्ति के साथ प्रताड़ना, क्रूरता, अमानवीयता एवं घृणित व्यवहार नहीं किया जाएगा।" भारतीय संविधान में भी सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के 6 मुख्य अधिकार दिए गए हैं। उन अधिकारों में मोटे तौर पर निम्न बातें शामिल हैं-[1] (i) समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18), (ii) स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19 एवं 21), (iii) शाोषण के विरूद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23 एवं 24), (iv) अंत:करण की और धर्म के अबाध रूप में मानने, आचरण, प्रचार करने की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 23 एवं 24), (v) अल्पसंख्यकों का अपनी संस्कृति, भाषा और लिपि को बनाए रखने तथा अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार (अनुच्छेद 29 एवं 30) और (vi) इन सभी मूल अधिकारों को प्रवर्तित करने के लिए संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)।

भारतीय संविधान की कई अन्य धाराएँ भी दलित सहित देश के सभी नागरिकों के मानवाधिकारों का संरक्षण करती हैं। मसलन, धारा 14 में सभी नागरिकों को समता का अधिकार दिया गया है, जिसमें कहा गया है- "राज्य भारत के अंदर हर किसी को विधि के समक्ष समानता एवं कानूनों की समान सुरक्षा से इंकार नहीं करेगा।" इसी तरह धारा 15 (1) में कहा गया है- (राज्य किसी नागरिक के साथ मात्र धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।" साथ ही धारा 15(2) में प्रावधान है- "दुकान, होटल, सार्वजनिक, मनोरंजन-स्थल, कुआँ, तालाब, स्नान घाट, सड़क, जनता के ठहरने के स्थान, जो अंशत: या पूर्णत: सरकारी निधि से संघारित हो, या आम जनता के उपयोग के लिए घोषित हों, के बावत किसी नागरिक को मात्र धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई रोक या शर्त नहीं होगी।" फिर धारा 16 (1) में कहा गया है, "राज्य के अधीन किसी रोजगार या नियुक्ति हेतु सभी नागरिकों के लिए अवसर की समानता होगी।" आगे 16 (2) में इसे और स्पष्ट किया गया है- "राज्य के अधीन किसी रोजगार या कार्यालय हेतु कोई नागरिक, धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग, वंश, जन्मस्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर अयोग्य नहीं होगा अथवा उसके साथ भेदभाव नहीं किया जाएगा। आगे धारा 17 में अस्पृश्यता निवारण की बात है और धारा 18 में शिक्षा एवं सेना को छोड़कर शोष सभी उपाधियों

का अंत किया गया है। इसके अतिरिक्त धारा 19-22 तक विभिन्न प्रकार की स्वतंत्रताएँ दी गई हैं, जैसे- अभिव्यक्ति एवं भाषण की स्वतंत्रता, भारत में कहीं भी आने-जाने की स्वतंत्रता, भारत में कहीं भी बसने की स्वतंत्रता, भारत में कहीं भी कोई व्यवसाय या नौकरी आदि करने की स्वतंत्रता, ससम्मान जीने के अधिकार आदि।

उक्त संवैधानिक प्रावधानों के अतिरिक्त संविधान की धारा 23 (1) भी मानवाधिकारों की दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण है, जिसमें दलितों के लिए समता एवं स्वतंत्रता के अधिकारों का प्रावधान है और बेकारी या बंधुआ मजदूरी एवं शोषण आदि के निषेध की बात कही गई है। इसके अतिरिक्त 'नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम', 1955 को लागू करके भी भारत सरकार ने अस्पृश्यता आदि कुप्रथाओं से निजात दिलाने के उपाय किए हैं। इस कानून की धारा 3 में धार्मिक अधिकार, धारा 4 में सामाजिक अधिकार, धारा 5 में अस्पताल आदि में भेदभाव न किए जाने का अधिकार, धारा 6 में वस्तुएँ बेचने एवं सेवाएँ देने का अधिकार दिया गया है और धारा 7 में अस्पृश्यता पर आधारित अपराधों के लिए दंड आदि की समुचित व्यवस्था की गई है। इसकी धारा 7 (1) (a) में स्पष्टत: कहा गया है- "जो कोई व्यक्ति संविधान के अनुच्छेद-17 के अधीन अस्पृश्यता उन्मूलन के कारण किसी व्यक्ति को प्राप्त किसी अधिकार के प्रयोग किए जाने पर विरोध स्वरूप या प्रतिशोध लेने की भावना से उसके जानमाल के विरूद्ध अपराध करता है, तो वह दो वर्ष की अवधि के कारावास से दंडनीय है, वह कम-से-कम दो वर्ष की अवधि के कारावास एवं जुर्माना से भी दंडनीय होगा।"

जाहिर है कि स्वतंत्र भारत में दलितों के मानवाधिकारों की रक्षा हेतु कई संवैधानिक प्रावधान किए गए हैं। मगर, हम इन प्रावधानों को व्यावहारिक धरातल पर उतारने में आज भी सफल नहीं हो पाए हैं। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में दलितों को आज भी कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

इनमें से कुछ समस्याओं की बानगी निम्न है :

(i) संविधान में अस्पृश्यता निवारण संबंधी कानूनी प्रावधान के बावजूद कहीं-कहीं अभी भी वर्ण-जाति आधारित अस्पृश्यता (छुआछूत) जारी है। उदाहरण के लिए वर्ष 2007 में बिहार राज्य अंतर्गत जहानाबाद जिले के घोसी ब्लाक में परावन पंचायत की नव-निर्वाचित मुखिया जयंती देवी (दलित वर्ग) को पंचायत सेवक (सचिव) रामवचन शर्मा ने कुर्सी पर नहीं बैठने दिया और उसे अपमानजनक जातिसूचक शब्दों से संबोधित कर जलील किया। इसके बाद मुखिया जयंती देवी ने थाने में अनुसूचित जाति-जनजाति अत्याचार अधिनियम के तहत (मई 2007 में) मामला दर्ज कराया। इधर, उत्तर प्रदेश के कुछ विद्यालयों में दलित वर्ग के लोगों द्वारा मध्याह्न भोजन बनाने के विरोध के कई मामले प्रकाश में आए। इन मामलों में विरोध करने वालों में उच्च जातियाँ ही नहीं, मध्यम जातियाँ भी शामिल थीं। छुआछूत की ऐसी भावना हिंदुओं के अलावा सिक्ख धर्म (मजहबी सिक्ख को जार सिक्ख अछूत समझते हैं और अमृतसर गुरूद्वारा में उनके लिए दरवाजा है), इस्लाम (अशरफ, अजलाफ एवं अजलान) तथा ईसाई धर्म में भी अछूत हैं।[2]

(ii) सैकड़ों वर्षों से भारत तथा कई अन्य देशों में दलितों के एक समुदाय 'मेहतर' द्वारा सिर पर मैला ढोने की प्रथा रही है। वे अपने हाथों से मल-मूत्र जमा करते हैं और उन्हें किसी बर्तन में डालकर सिर पर ढ़ोते हुए बाहर गंदे नाले आदि में फेंकते हैं। भारत सरकार ने इस अमानवीय प्रथा पर कानूनन रोक लगा दी है। मगर, व्यवस्था में कई जगहों पर यह प्रथा जारी है। भागलपुर (बिहार) जैसे छोटे शहरों में तो कई लोग दलित बच्चों से शौचालय एवं उसकी टंकी आदि साफ कराने का काम करवाते हैं। आर्थिक मजबूरी एवं जागरूकता का अभाव ऐसी घटनाओं की मुख्य वजह है, इसलिए इस दृष्टि से भी प्रयास करने की जरूरत है। साथ ही, सरकार का 2012 तक भारत को खुले में मल त्याग से भी मुक्ति दिलाने का जो लक्ष्य है, उस दिशा में भी अभी और अधिक जन-जागरूकता की जरूरत है।

(iii) दलित उत्पीड़न की घटनाएँ आए दिन जहाँ-तहाँ प्रकाश में आते रहती हैं। ऐसी ही कुछ घटनाएँ 2005-06 में हरियाणा के दुलीना/गोहाना जैसे गाँवों में घटी, जहां दलितों को दबंग जाटों ने मारा-पीटा और जिंदा जला दिया। वर्ष 2010 में बिहार में एक ऊँची जाति की बराती में कुर्सी पर बैठने के कारण एक दलित युवक को गोली मार दी गई। ऐसी कई घटनाएँ अक्सर अखबारों में आती रहती हैं। एक अनुमान के मुताबिक देश में हर एक घंटे में दो दलितों को हिंसक हमले का शिकार होना पड़ता है, प्रत्येक दिन दो दलितों की हत्या कर दी जाती है और दो दलितों के घरों में आग लगा दी जाती है।[3]

(iv) दलितों की एक अन्य समस्या जाति के आधार पर चिढ़ाना और मानसिक एवं शारीरिक उत्पीड़न देना है। हमारे समाज में प्रचलित 'मार-मार कर भंगी बनाने' की कहावत भी दलित उत्पीड़न से जुड़ी है। इसके अलावा प्राय: जाने-अनजाने चोरी-चमारी, चमार-चूहाड़ आदि शब्दों का प्रयोग कर दलितों को बदनाम एवं अपमानित किया जाता है। इसे रोकने के लिए हरिजन एक्ट बना है। लेकिन, कई बार जानकारी के अभाव में दलित इसका इस्तेमाल नहीं कर पा रहे हैं। कुछ मामलों में स्वार्थी तत्त्व दलितों के कंधे पर बंदूक रखकर इस एक्ट का बेवजह दुरूपयोग कर लेते हैं, इससे भी सामाजिक न्याय की भावना आहत होती है।

(v) दलितों की एक प्रमुख समस्या गरीबी है। लगभग 65-70 प्रतिशत दलित आज भी गरीबी-रेखा के नीचे गुजर-बसर कर रहे हैं। देश की कुल आबादी में 16 प्रतिशत दलित हैं, लेकिन उनके पास कुल खेती योग्य जमीन का केवल एक प्रतिशत हिस्सा ही है।[4] करीब तीन-चौथाई दलित भूमिहीन हैं। दलितों में बेरोजगारी की समस्या भी काफी विकराल है। यद्यपि, बंधुआ मजदूरी से उन्हें बहुत हद तक निजात मिल गई है, लेकिन वे अभी भी न्यूनतम मजदूरी, अनियमित काम और ज्यादातर कठिन शारीरिक काम आदि की समस्याओं से जूझ रहे हैं। मनरेगा की रोशनी भी गाँधी के अंतिम व्यक्ति (दलित/महादलित) तक कम ही पहुँच पाती है।

(vi) दलित महिलाओं को तो दोहरी मार झेलनी पड़ती है। एक तो दलित होने का दंश ही अपने आप में भयावह है और ऊपर से महिला होने की मजबूरी भी उसे परेशान करती है। इतिहास साक्षी है कि दिन के उजाले में छूआछूत बरतने वाले उच्च एवं मध्यम जातियों के लोग रात के अंधेरे में दलित महिलाओं का यौन-शोषण करते थे। आज भी दलित महिलाओं के बलात्कार प्राय: उच्च तथा मध्यम जातियों के पुरुषों द्वारा होता है।[5] दुर्भाग्य यह

है कि कई बार हमारी अदालतें भी ब्राह्मणवादी मानसिकता से ग्रसित होकर सवर्णों को दलित महिला से बलात्कार के जुर्म में बरी कर देती है कि सवर्ण दलितों को नहीं छू सकते!

(vii) हम जानते हैं कि भारतीय समाज की वर्ण-व्यवस्था के तहत दलितों को शिक्षा के अधिकारों से वंचित किया गया था। बाद में महात्मा बुद्ध, ज्योतिबा फूले, सावित्री बाई फूले, महात्मा गांधी, डॉ. भीमराव अम्बेडकर आदि के प्रयासों से दलितों को इस क्षेत्र में प्रवेश मिला। स्वतंत्र भारत में दलितों सहित सभी नागरिकों को शिक्षा के अवसर दिलाने के काफी प्रयास हुए हैं। इसके बावजूद दलितों की शिक्षा में अपेक्षित सुधार नहीं हुआ है। तभी तो 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में अनुसूचित जातियों की साक्षरता दर मात्र 37.4 प्रतिशत है और कई राज्यों की स्थिति इस राष्ट्रीय औसत से भी बदतर है। मसलन, दलितों की साक्षरता बिहार में मात्र 19.5 प्रतिशत, राजस्थान में 26.3 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश में 26.8 प्रतिशत, अरूणाचल प्रदेश में 31.6 प्रतिशत, मध्य प्रदेश में 35.1 प्रतिशत और उड़ीसा में 36.7 प्रतिशत है। बिहार में दलित महिलाओं की साक्षरता मात्र 7 प्रतिशत, राजस्थान में 8.3 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश में 10.7 प्रतिशत, मध्य प्रदेश में 18.1 प्रतिशत, उड़ीसा में 20.7 प्रतिशत, आंध्र प्रदेश एवं अरूणाचल प्रदेश में 20.9 प्रतिशत, हरियाणा में 24.2 प्रतिशत, कर्नाटक में 25.95 प्रतिशत और बंगाल में 28.87 प्रतिशत है। लेकिन, केरल में दलित पुरुषों की साक्षरता 85.2 प्रतिशत एवं दलित महिलाओं की साक्षरता 74.3 प्रतिशत और मिजोरम में दलित पुरुषों की साक्षरता 77.5 प्रतिशत एवं महिलाओं की साक्षरता 81.2 प्रतिशत इसका अपवाद ही है। यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है कि शिक्षा में प्रसार का लाभ पासवान (दुसाध), रविदास (चमार) एवं रजक (धोबी) आदि कुछ खास जातियों को ही ज्यादा मिला है। बहुत सी दलित जातियों, यथा-मुसहर, भंगी, मेहतर, नट, पासी आदि में साक्षरता एवं शिक्षा का स्तर आज भी काफी नीचे है। उदाहरण के लिए बिहार में मुसहर जाति में साक्षरता मात्र 2 प्रतिशत है और उनकी महिलाओं में यह मात्र 0.5 प्रतिशत है। आरक्षण का लाभ भी कुछ खास दलित को ही ज्यादा मिलता रहा है। यही सब देखते हुए बिहार की नीतिश सरकार ने निम्नवर्गीय दलितों को महादलित की श्रेणी में रखकर उनके लिए विशेष प्रावधान किए हैं, जिसका सकारात्मक फल मिल रहा है। लेकिन, अभी यह इस दिशा में बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

(viii) शिक्षण संस्थानों में दलित छात्र-छात्राओं के साथ भेदभाव अभी भी जारी है। इनमें कई नामी-गिरामी संस्थानों के नाम भी शामिल हैं। उदाहरण के लिए 2006-07 में ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज (एम्स), नई दिल्ली में दलितों के साथ भेदभाव का मुद्दा प्रकाश में आया। इस पर स्वास्थ्य मंत्रालय ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष प्रो. सुखदेव थोरात की अध्यक्षता में एक जाँच समिति गठित की। इस समिति ने अपने जाँच में पाँच चीजें पाई-[6]

(a) प्रशासन ने मंडल दो के विरूद्ध चले आंदोलन को हवा दी और समर्थन नहीं करने वाले विद्यार्थियों/स्टाफ को परेशान किया।
(b) शिक्षक अनुसूचित जाति/ जनजाति के विद्यार्थियों के प्रति उदासीनता बरतते हैं।
(c) परीक्षा के मूल्यांकन में अनुसूचित जाति/जनजाति के विद्यार्थियों के साथ भेदभाव किया जाता है।
(d) प्रशासन रेजिडेंट चिकित्सकों एवं अध्यापकों की नियुक्ति में आरक्षण नियमों का उल्लंघन करता है।
(e) अनुसूचित जाति-जनजाति के विद्यार्थियों को छात्रावास में कमरा देने, भोजन सुविधा, खेलकूद तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेने के मामले में अलग-थलग रखा जाता है।

(ix) दलित उत्पीड़न का मामला धर्मांतरण से भी जुड़ा हुआ है। मालूम हो कि 1956 ई. में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने नागपुर की दीक्षा भूमि में पाँच लाख दलितों के साथ हिंदू धर्म को छोड़कर बौद्ध धर्म ग्रहण किया था। इसी तरह कुछ वर्षों पूर्व भारतीय राजस्व सेवा की नौकरी को छोड़कर राजनीति में आए 'इंडियन जस्टिस पार्टी' के अध्यक्ष उदित राज ने नई दिल्ली के रामलीला मैदान में दस लाख दलितों का हिंदू धर्म से बौद्ध धर्म में धर्मांतरण करने की घोषणा की थी, लेकिन, सरकार ने उन्हें उक्त मैदान आवंटित नहीं किया और उदित राज सहित कुछ सौ लोग ही बौद्ध धर्म स्वीकार कर सके। ऐसे लोगों का मानना है कि हिंदू धर्म में रहते हुए दलितों के मानवाधिकार सुरक्षित नहीं हैं, इसलिए इस धर्म का त्याग करना जरूरी है। वैसे, जगजीवन राम, कांशी राम आदि अन्य दलित नेताओं ने हिंदू धर्म में ही दलितों के लिए सुरक्षित 'स्पेस' बनाने की बात कही है। इस विचारधारा पर भी कई लोग काम कर रहे हैं। दलित लेखक डॉ. धर्मवीर इस संबंध में अपने स्वतंत्र विचारों के लिए चर्चित हैं। उनका मानना है कि दलितों का हिंदू एवं बौद्ध दोनों धर्मों से अलग अपना स्वतंत्र धर्म है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि बिहार, झारखंड, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान एवं गुजरात आदि राज्यों में ईसाई मिशनरियों के द्वारा आदिवासियों के साथ-साथ दलितों का भी धर्मांतरण कराने की घटनाएँ प्रकाश में आती रही हैं। इसके कारण कई बार ईसाई एवं हिंदू समुदाय के बीच सांप्रदायिक झगड़े की नौबत भी आ जाती है। कुछ वर्ष पूर्व उड़ीसा में ग्राह्म एस. स्टेंस और उनके दो पुत्रों को जलाकर मार डालने की घटना के पीछे भी धर्मांतरण का विवाद ही थी। इसी तरह वर्ष-2009 में धर्मांतरण विवाद को लेकर कंधमाल (उड़ीसा) में बड़े पैमाने पर सांप्रदायिक दंगे हुए। इसलिए, यह जरूरी है कि लोभ-लालच या भय के सहारे किए गए धर्मांतरण पर रोक लगे, लेकिन स्वैच्छिक धर्मांतरण में कोई बाधा नहीं डाली जानी चाहिए।

निष्कर्ष

भारत में दलितों के मानवाधिकार का मामला सामाजिक न्याय के संघर्ष से जुड़ा है। जाति-व्यवस्था एवं वर्ण-व्यवस्था का उन्मूलन इसकी प्राथमिक शर्त है। इसके लिए गौतम बुद्ध, कबीर, ज्योतिबा फूले, सावित्री बाई फूले, महात्मा गाँधी, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, जयप्रकाश नारायण और डॉ. राममनोहर लोहिया आदि महापुरुषों ने अपने-अपने स्तर से प्रयास किया है। परिणामत: आज दलितों की स्थिति में बहुत कुछ बदलाव आया है। लेकिन, मंजिल अभी भी दूर है। अत:, हम सबों को मिलजूलकर इस दिशा में प्रयास करने की जरूरत है। जैसा कि कवि राम गोपाल बेवस लिखते हैं -

"उम्र खपा दी मसीहों ने/बेहतरी के लिए/फिर भी बदला नहीं जमाने का मिजाज/बदलना मुश्किल है, इस जमात को/किसी एक के लिए/ जरूरत है कि आज/ हर कोई भीम बने/मनु के अक्स को धरती से मिटाने के लिए।"[7] तो आइए हम भी अपना कुछ समय समाज की बेहतरी के लिए दें...!

संदर्भ सूची:

1. कश्यप, सुभाष; हमारा संविधान, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, पृ. 76-77.
2. शर्मा, सुभाष; 'दलितों और अल्पसंख्यकों के मानवाधिकार', भारत में मानवाधिकार, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, पृ.175.
3. ह्यूमनस्कोप, सितंबर 2001, मुंबई आवरण।
4. दुबे, अभय कुमार; 'अछूत की शिकायत', आधुनिकता के आईने में दलित, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 24.
5. शर्मा, सुभाष; 'दलितों एवं अल्संख्यकों के मानवाधिकार', भारत में मानवाधिकार, पूर्वोक्त, पृ. 175.
6. वही, पृ. 180.
7. बेवस, राम गोपाल; जिंदगीनामा, भारतीय प्रकाशन, भोपाल, 1999, पृ. 4-5.

जयशंकर प्रसाद के नाटक चन्द्रगुप्त में स्वातन्त्र्य-चेतना

डॉ० नीलम कुमारी

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

समाज तथा राष्ट्र के सन्दर्भ में कुछ तत्व ऐसे होते हैं जो मनुष्य के जीवन मूल्यों से जुड़े होते हैं। व्यक्ति की स्वाधीनता भी ऐसा ही एक तत्व है। किसी भी राष्ट्र अथवा व्यक्ति को सदा के लिए पराधीनता की बेड़ियों में नहीं बांधा जा सकता। पराधीनता की इन बेड़ियों को काटने के लिए स्वाधीनता की प्रबल भावना के कारण जन आन्दोलन का जन्म लेना भी स्वाभाविक ही था। भारत वर्ष में 19वीं शताब्दी के आरम्भ से ही विभिन्न आन्दोलन विकसित हुए जिनका एक मात्र उद्देश्य सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक विषमताओं तथा ब्रिटिश पराधीनता से व्यक्ति को मुक्त कराना था। देश के प्रत्येक नागरिक ने उस आन्दोलन में अपना सर्वस्व अर्पण किया था साथ ही देश का साहित्यकार भी इस संघर्ष में किसी से पीछे न था। सन् 1857 की क्रांति का हिन्दी साहित्य पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। आजादी के आन्दोलन के दौरान वैचारिक आजादी में साहित्य की भूमिका निर्विवाद रही। देश की स्वतंत्रता के लिए 1857 से लेकर 1947 तक क्रांतिकारियों, आन्दोलनकारियों के साथ ही लेखकों, कवियों और पत्रकारों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनकी रचनाएँ हमें प्रेरणा देती है कि हम स्वतंत्रता के मूल्य को बनाये रखने के लिए कृत संकल्पित रहें। प्रेमचन्द का उपन्यास रंगभूमि, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का नाटक भारत-दुर्दशा, जयशंकर प्रसाद का नाटक चन्द्रगुप्त देशप्रेम की भावना को जगाने के लिए रचे गए। प्रसाद का युग राष्ट्रीय आन्दोलन का युग था अत: उनकी रचनाओं में उपनिवेशवाद का विरोध मिलता है।

जयशंकर प्रसाद का समय शताधिक वर्षों तक परतन्त्र भारत की मुक्ति-संघर्ष का समय था। भारतीय संस्कृति के मानक बिन्दुओं को खण्डित कर भारतीय जनमानस को उसके गौरवशाली अतीत से काटने का जो कुचक्र विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा दीर्घकाल से चलाया जा रहा था स्वतन्त्रता-संघर्ष के साथ उस कुचक्र के प्रभाव से बाहर निकलने की बेचैनी भी उनके काल के समाज और साहित्य में मुखर होने लगी थी। आचरण, शील, शिक्षा, धर्म, संस्कृति, शक्ति और आध्यात्मिक-चेतना के शिखर को स्पर्श करने वाले स्वदेश की ऐश्वर्य-गाथा को समाज के सामने प्रस्तुत कर प्रसाद ने भारतीय समाज के राष्ट्रीय स्वाभिमान और आत्मगौरव को उत्प्रेरित करने का महनीय प्रयास अपनी रचनाओं के माध्यम से किया। भारतीय इतिहास के गौरवपूर्ण अतीत के महानायकों का स्मरण कराते हुए समकालीन समाज के समक्ष उन्होंने अनेक प्रेरणाप्रद प्रतिमान प्रस्तुत किये जिन्होंने तत्कालीन समाज में अतीत के प्रति अनुराग और गौरव की अनुभूति को पुन: प्रतिष्ठित करते हुए भावी भारत की स्वावलम्बी-स्वाभिमानी स्वातन्त्र्य-चेतना को प्राणवान बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। प्रसाद के नाटक उनके इस उपक्रम के जीवन्त प्रमाण हैं।

नाटक की यह विशेषता है कि वे श्रव्य भी होते हैं और दृश्य भी। ये सम्पूर्ण भावों का साधारणीकरण सम्भव करते हैं इसीलिए शिक्षित-अशिक्षित सभी प्रकार के लोगों पर ये अपना प्रभाव छोड़ने में सक्षम होते हैं। जो नाटककार सामाजिक या सामूहिक सम्बन्धों का जितनी संवेदना और गहराई के साथ साक्षात्कार करता है, वह अपने नाटकों में उतना ही अधिक युग और जीवन को समेट सकने की क्षमता रखता है। नाटकों के इसी विशेष गुण के कारण प्रत्येक युग में नाटक लिखने के पीछे तत्कालीन परिस्थिति का प्रमुख स्थान रहा है। प्रत्येक युग में प्रेरणा चाहे राजनीति की हो, अर्थ की हो या धर्म की, वह तत्कालीन समाज से ही प्राप्त होती है। इसके परिणाम स्वरूप ही देश की सभी आधुनिक भाषाओं के नाट्य-साहित्य का राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन में योगदान इस बात का स्पष्ट प्रमाण है।

आधुनिक युग के आरम्भ के साथ ही प्रखर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का प्रसार सम्पूर्ण देश में होना शुरू हुआ जिसे नवजागरण की संज्ञा दी गयी। यह वस्तुत: हमारी राष्ट्रीय अस्मिता की तलाश थी जो प्रसाद युगीन साहित्य में अपने चरम पर पहुँचती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद जयशंकर प्रसाद अपने नाटकों में एक जीवन्त सांस्कृतिक बोध लेकर उपस्थित होते हैं। "प्रसाद का महान योगदान इसमें है कि अपने नाटकों में उन्होंने एक भिन्न प्रकार की सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना का अन्वेषण किया, नाटक और रंगमंच दोनों को सर्जनात्मक स्तर प्रदान किया और सार्थक बनाया।"[1] प्रसाद का मन्तव्य था कि भारतीय संस्कृति ही मानवता को दिव्य स्वरूप प्रदान कर सकती है और इसके प्रति वे आस्थावान थे, अत: वे उसी के पुनर्जागरण की चेष्टा में संलग्न रहे। नवजागरण के व्यापक सांस्कृतिक सन्दर्भ उनकी रचनाओं में विशेष रूप से नाटकों में अभिव्यक्ति पाते हैं। अपने युग की हताशा और पराभव की क्षतिपूर्ति जितने मुखर रूप से वह नाटकों में करते हैं, उतनी और कहीं नहीं।

स्वतन्त्रता एक मनोभाव है, एक ऐसी चेतना है जिसके प्रस्थान बिन्दु में वैयक्तिकता और विस्तार में विश्व विद्यमान है। स्वतन्त्रता शब्द एक व्यापक अर्थ व्यंजित करता है जैसे- व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, सामुदायिक स्वतन्त्रता, राजनैतिक स्वतन्त्रता, आर्थिक स्वतन्त्रता, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता आदि। प्रसाद का युग स्वतन्त्रता का युग था। उनकी सभी रचनाओं में गाँधीवाद एवं राष्ट्रीय जागरण का सन्देश विद्यमान है। वे देशवासियों को विदेशी आतंक और कूटनीति से सावधान करते हैं तथा देशद्रोहियों को नैतिक फटकार लगाते हैं। स्वातन्त्र्य चेतना प्रसाद के प्राय: सभी नाटकों में विद्यमान है। उनका मानना था कि सामाजिक

समरसता और राष्ट्रीयता के लिए ये तीन कारण बाधक हैं- साम्प्रदायिकता की भावना, प्रादेशिकता के तनाव और लैंगिक असमानता। अपने प्रधान नाटकों में उन्होंने इन्हीं का समाधान देने का प्रयत्न किया है उनके नाटकों में राजनैतिक दासता से मुक्ति पाने का प्रयास दिखायी देता है। वे सांकेतिक भाषा में विदेशी शासन की पक्षपातपूर्ण, कुटिल और दमनकारी नीतियों से मुक्ति की प्रेरणा देते हैं। प्रसाद ने अतीतकाल के उन वीरतापूर्ण चरित्रों का चयन किया जिनमें राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए आत्म बलिदान की भावना कूट-कूट कर भरी थी। ऐतिहासिक कथानकों के माध्यम से उन्होंने नवजागरण के कार्यभारों को नाटकों में स्थान दिया और तत्कालीन ज्वलन्त समस्याओं के लिए समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया जिनमें स्वातन्त्र्य चेतना प्रमुख थी। इस चेतना को उनके नाटक विशेषकर 'चन्द्रगुप्त' के सन्दर्भ में क्रमशः हम देख सकते हैं।

'चन्द्रगुप्त' नाटक सन् 1931 में जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित बहुप्रशंसित नाटक है। "नाटककार का मुख्य उद्देश्य पराधीनता से मुक्ति के लिए प्रदेशों, क्षेत्रों, जातियों, धर्मों आदि की निजताओं, स्वातन्त्र्य कामनाओं और अहर्ताओं को भुलाकर विशाल आर्यावर्त्त को स्वाधीन और अजेय बनाना है।"[2] इसमें चरित्रों को पराधीनता के युग में राष्ट्रहित के लिए अनासक्त भाव से आत्मोत्सर्ग करने वाला प्रस्तुत किया गया है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक की विशेषता चाणक्य, अलका, चन्द्रगुप्त, राक्षस अथवा दण्डायन जैसे चरित्रों की निर्मिति में नहीं बल्कि इनके भीतर जल रही ज्वाला, अपमान, वितृष्णा, आकांक्षा और स्मृति के समन्वित नाटकीय विधान में है। इस नाटक का लक्ष्य पराधीनता से मुक्त सम्प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र का निर्माण है। अलका और कार्नेलिया के गीत प्रत्येक नागरिक के मन में अपनी राष्ट्रीय पहचान का भाव पैदा करते हैं। अलका पर्वतेश्वर से कहती है- "पराधीनता से बढ़कर विडम्बना और क्या है?"[3] इस नाटक का मूल भाव पराधीनता से मुक्ति हेतु देश को जगाकर संगठित करना है।

प्रसाद के नाटक चन्द्रगुप्त में गुप्तकाल का स्वर्णिम इतिहास भारत के अतीत गौरव को उद्घाटित करने के लिए चित्रित हुआ है। इस अतीत गौरव में वीरगाथाएँ हैं, वीर बालाओं का उत्सर्ग और संघर्ष है, भारत का उदात्त जीवनदर्शन है। इसमें व्यक्ति और राष्ट्र इस प्रकार एक में एक हैं कि उन्हें अलग-थलग करके नहीं देखा जा सकता। प्रसाद के इस नाटक में जातीय स्वाभिमान, आत्म-सम्मान, राष्ट्राभिमान, राष्ट्र गौरव आदि की अभिव्यक्ति हुई है। ऐसा करके प्रसाद ने तत्कालीन भारतीय जनता में देशाभिमान और देशप्रेम का उदात्त भाव भरने की सार्थक कोशिश की है। प्रसाद ने भारत के ही महान राष्ट्रनायकों, ऋषियों, तपस्वियों, वीरबालाओं एवं माताओं, दार्शनिकों और बलिदानियों की गौरव कथा अपने नाटकों में चित्रित की है। जिस देश में चन्द्रगुप्त मौर्य, समुद्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य जैसे अनेक वीर हुए हों, जिन्होंने अद्भुत वीरता, संगठन शक्ति, त्याग, बलिदान और दया धर्म का अनूठा इतिहास रचा हो, चाणक्य जैसे स्वाभिमानी तत्व चिन्तक, कूटनीतिज्ञ, पूरी आर्य जाति के गौरव के रक्षक, मानवीय व्यवस्था के संकल्पक और शाश्वत बुद्धि वैभव से परिपूर्ण ब्राह्मण हों, दण्डायन जैसे स्वाभिमानी, विरागी और संसार के समस्त वैभव को ठुकराने वाले तपस्वी हों, अलका, विजया, मन्दाकिनी, वासवी जैसी आर्य बालाएँ हों वह देश सबके लिए तो अनुकरणीय होगा ही और यहाँ की जनता के लिए गौरव का प्रबल आधार भी होगा। ऐसे देश में चन्द्रगुप्त और चाणक्य की तरह 'आर्य साम्राज्य' की रक्षा और उसकी उन्नति का भाव सभी देशवासियों के मन में भी होगा। विश्वसभ्यता के उत्स और ज्ञान सूर्य की प्रथम किरणों के उपहार से विभूषित इस देश के प्रति यदि कार्नेलिया जैसी विदेशी महिला में पवित्र भाव जगता है तो उसे किसी तरह अनुचित या अस्वभाविक नहीं कहा जा सकता। चन्द्रगुप्त नाटक में कार्नेलिया जब यह गीत गाती है- "अरुण यह मधुमय देश हमारा।"[4] तब वही अपने पिता सैल्युकस के आक्रमण की बात सुनती है तो व्यथित हो जाती है- "वही भारतवर्ष! वही निर्मल ज्योति का देश, पवित्र भूमि, अब हत्या और लूट से बीभत्स बनायी जायेगी। ग्रीक सैनिक इस शस्यश्यामला पृथ्वी को रक्त-रञ्जित बनावेंगे! पिता अपने साम्राज्य से सन्तुष्ट नहीं, आशा उन्हें दौड़ावेगी।"[5]

कार्नेलिया की यह पीड़ा और चिन्ता जायज है क्योंकि वह भारत की वास्तविक स्थिति से परिचित है। वह यहाँ के दार्शनिकों, संगीतज्ञों और वीरों की वीरता से भली-भाँति परिचित हो चुकी है। वह जानती है कि यह उदात्त सभ्यता और संस्कृति का देश है, इसे इस प्रकार किसी के द्वारा पद-दलित नहीं होना चाहिए। उसके भारत प्रेम में पिता-प्रेम टिक नहीं पाता है। वह सैल्युकस से तर्क करती है और चाहती है कि वह भारत पर आक्रमण न करें। इसके पीछे भी कार्नेलिया का भारत प्रेम ही प्रदर्शित होता है। कार्नेलिया की ही तरह अलका भी उस समय बहुत दुःखी और चिन्तित होती है जब उसे पता चलता है कि सैल्युकस के इस आक्रमण में उसका भाई आम्भीक उसकी मदद करेगा और एक बार फिर वह देश से विश्वासघात करके आर्यावर्त्त को पद-दलित करने की भूमिका निभायेगा। अलका तक्षशिला के वीरों को इस राष्ट्रघाती राजकुमार से सावधान करती है- "तक्षशिला के वीर नागरिकों! एक बार, अभी-अभी सम्राट चन्द्रगुप्त ने इसका उद्धार किया था, आर्यावर्त्त प्यारा देश ग्रीकों की विजय-लालसा से पुनः पद-दलित होने जा रहा है। तब तुम्हारा शासक तटस्थ रहने का ढोंग करके पुण्यभूमि को परतंत्रता की श्रृंखला पहनाने का दृश्य राजमहल के झरोखों से देखेगा।"[6]

'चन्द्रगुप्त' नाटक के ये दोनों उदाहरण यह प्रमाणित करते हैं कि प्रसाद ने अपने नाटकों में पुण्य भूमि भारत के प्रति उत्कट प्रेम उत्पन्न करने के लिए जहाँ पात्रों में भारत के प्राचीन गौरव और उसकी उदात्त संस्कृति के प्रति राग उत्पन्न किया वहीं वर्तमान की जनता में भी वही रागचेतना जगाई। अतीत के पात्र अपने से पहले के अतीत के वैभवशाली सांस्कृतिक जीवन का स्मरण करके जब वर्तमान की जनता के लिए एक संदेश देते हैं तब इतिहास खण्ड-खण्ड में न होकर एक निरन्तरता के रूप में अपनी सत्ता प्रमाणित करता है। इस दृष्टि से देखने पर पता लगता है कि प्रसाद एक ऐसे नाटककार हैं जिन्होंने भारतीय इतिहास को एक गतिशील निरन्तरता में चित्रित किया और उसे भारत की बीसवीं सदी की जनता के वर्तमान के लिए ऐसा अनुप्रेरक बनाया कि वह अपनी मुक्ति के सपने अपनी श्रेष्ठ आर्य परम्परा से अपने को तीव्र भाव से सम्बद्ध करके देखने लगी। इस प्रकार प्रसाद ने अपने समय की जनता को अतीत और वर्तमान से जोड़कर भविष्य के लिए नये ढंग से तैयार कर संघर्षशील बनाया। यह एक बड़ा और महत्त्वपूर्ण कार्य था जो जयशंकर प्रसाद जैसे प्रतिभावान नाटककार के द्वारा ही संभव हो सकता था।

यहाँ एक तथ्य यह भी उल्लेखनीय है कि प्राचीन आर्य संस्कृति और सभ्यता के प्रति अगाध अनुराग और उत्कट देश प्रेम वैसे तो प्रसाद के सभी नाटकों में व्यक्त हुआ है किन्तु चन्द्रगुप्त में इसका चित्रण विशेष रूप से किया गया है। भारत के सांस्कृतिक आदर्शों और अतीत गौरव का जैसा आकर्षक अंकन

'चन्द्रगुप्त' नाटक में हुआ है वैसा अन्यत्र दिखाई नहीं पड़ता है। प्रसाद के इस अतीत गुणगान का मुख्य उद्देश्य है वर्तमान भारतीयों में राष्ट्र प्रेम की उल्लासपूर्ण धारा प्रवाहित करके पराधीनता से मुक्ति के लिए संघर्ष करने के लिए तैयार करना। 'चन्द्रगुप्त' नाटक का प्रस्तुत गीत तो भारतीय स्वाधीनता संघर्ष का आह्वान गीत कहा जा सकता है-

"हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती, स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतन्त्रता पुकारती।
अमर्त्य वीरपुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो, प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो।।'"[7]

स्वतंत्रता की भावना से संबलित यह वह राष्ट्रीयता है जो मुक्ति का दायरा सीमित नहीं रखती। इस भावना में अपने राष्ट्र की मुक्ति का जितना बड़ा स्वर है, उससे कहीं बड़ा स्वर है समस्त राष्ट्रों की मुक्ति और स्वतंत्रता का प्रश्न। अलका आम्भीक से कहती है- "तक्षशिला मेरी नहीं और तुम्हारी भी नहीं; तक्षशिला आर्यावर्त्त का एक भू-भाग है; वह आर्यावर्त्त की होकर ही रहे, इसके लिए मर मिटो!"[8] तक्षशिला की मुक्ति आर्यावर्त्त की मुक्ति से जुड़ी हुई है, यही नहीं मगध और मालव की मुक्ति भी आर्यावर्त्त से जुड़ी हुई है। चाणक्य 'चन्द्रगुप्त' नाटक के आरम्भ में कहता है- "तुम मालव हो और यह मागध, यही तुम्हारे मान का अवसान है न? परन्तु आत्म-सम्मान इतने से ही सन्तुष्ट नहीं होगा। मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्यावर्त्त का नाम लोगे, तभी वह मिलेगा। क्या तुम नहीं देखते हो कि आगामी दिवसों में, आर्यावर्त्त के सब स्वतंत्र राष्ट्र एक के अनन्तर दूसरे विदेशी विजेता से पद-दलित होंगे?"[9] प्रसाद सम्पूर्ण आर्यावर्त्त की मुक्ति का, स्वतंत्रता का प्रश्न उठाते हैं और इस प्रकार भारत की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता की वकालत करते हैं। स्वाधीनता संघर्ष के दौरान जिस अखिल भारतीय संघर्ष और एकजुटता की आवश्यकता थी, उसकी स्पष्ट ध्वनि इन शब्दों में सुनी जा सकती है। यह प्रसाद की वह राष्ट्रीय चेतना है जो अपने और पराये के सीमित दायरों में नहीं बँधती, यहाँ तक कि उनकी राष्ट्रीय भावना अन्तर्राष्ट्रीयता तक विस्तृत होकर विश्व में भी, विश्वबन्धुत्व, विश्वप्रेम और विश्वकुटुम्ब तक की यात्रा करती है। मानव में दया, करुणा, स्नेह, ईमानदारी, भाईचारा आदि जैसे भावों के विकास की कामना करते हुए प्रसाद विश्व-मानवता का सपना देखते हैं और इस प्रकार वे राष्ट्र-भक्ति को विस्तार देते हैं। यह विस्तार सायास न होकर स्वाभाविक होता है और लगता है कि प्रसाद की चिन्ता का केन्द्र किसी एक व्यक्ति या एक राष्ट्र का सुख-दु:ख न होकर समूचे विश्व का सुख-दु:ख है। वे दु:खी मानवता के दु:ख-त्राण, सुख-समृद्धि और उत्थान-विकास के आग्रही रचनाकार हैं। वे समस्त भव-विग्रहों से मानवता को मुक्त कराना चाहते हैं। इसका कारण शायद यह है कि उन्होंने प्रथम विश्वयुद्ध की विभीषिका देखी है और उससे उनके मन में समूचे विश्व के हित की चिन्ता ने स्वाभाविक रूप से जन्म लिया है।

प्रसाद ने राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करने के लिए भारत के अतीत-गौरव का चित्रण जरूर किया है किन्तु उसे उन्होंने पुनरुत्थान की भावना का अंग नहीं बनने दिया। प्रसाद अतीत को जीना नहीं चाहते हैं अर्थात् वे यह नहीं चाहते हैं कि अतीत वर्तमान का नियामक बने लेकिन अतीत के श्रेष्ठ अंशों का अनुसरण और उससे सत्प्रेरणा अवश्य ग्रहण करना चाहते हैं। यह भारतीयों का सौभाग्य है कि उनका अतीत प्रेरणादायी है। यह उनका दुर्भाग्य है जिनका कोई सुनहला अतीत नहीं है। दरअसल प्रसाद ने अपने नाटकों में भारतीय अतीत को वर्तमान के अनुप्रेरक के रूप में चित्रित करके ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ भारतीयों के स्वाधीनता-संघर्ष को गति प्रदान की है। उन्होंने भारतीयों में मातृभूमि, जो कार्नेलिया की दृष्टि में मानवता की जन्मभूमि है, उसके प्रति प्रेम और उसके उद्धार के लिए विभिन्न पात्रों के माध्यम से उत्सर्ग का मार्ग सुझाया है। अलका के इस संवाद में मातृभूमि या जन्मभूमि के प्रति जो गहरी ममता है, वही ममता प्रसाद हर भारतीय के मन में देखना चाहते हैं- "मेरा देश है, मेरे पहाड़ हैं, मेरी नदियाँ हैं और मेरे जंगल हैं। इस भूमि के एक-एक परमाणु मेरे हैं और मेरे शरीर के एक-एक क्षुद्र अंश उन्हीं परमाणुओं के बने हैं, फिर मैं और कहाँ जाऊँगी यवन?"[10]

यदि गहराई से विचार किया जाय तो पता चलेगा कि प्रसाद ने सतही तौर पर न तो राष्ट्रीयता का प्रसार किया और न ही इतिहास को सामान्य दृष्टि से देखा बल्कि उन्होंने अपने समय के सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के खिलाफ एक बड़ी लड़ाई की तैयारी करने के लिए भारतीय अतीत से प्रेरणा ली और भारतीयों को पूर्ण मुक्ति के लिए तैयार किया। इस मुक्ति में राजनीतिक गुलामी से मुक्ति तो थी ही, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक मुक्ति भी थी। प्रसाद व्यापक अर्थों में स्वाधीन चेतना और मुक्त चेतना के रचनाकार हैं। राष्ट्रीयता और अतीत गौरव के सामान्य प्रशस्ति गायक नहीं। प्रायश्चित, कल्याणी-परिणय से शुरू हुई उनकी राष्ट्रीय चेतना राज्यश्री, विशाख, जन्मेजय का नागयज्ञ, अजातशत्रु और स्कन्दगुप्त जैसे नाटकों में उतरोत्तर विकसित एवं व्यापक होती हुई चन्द्रगुप्त में अपने चरम पर पहुँचती है।

निष्कर्षत: प्रसाद के इस नाटक के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि चन्द्रगुप्त नाटक में स्वातन्त्र्य-चेतना केवल देश को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त करने की चेतना तक ही सीमित नहीं है बल्कि उसमें समाज को रुग्ण करने वाली अनेक रूढ़ियों, कुण्ठाओं और दूषित विचारों से मुक्ति की चेतना भी निहित है जिन्होंने समाज और जीवन की सहज गति को अवरुद्ध कर रखा था। प्रसाद के नाटकों की विषय-वस्तु चयन पर हिन्दू राष्ट्रवाद के उत्थान जैसे आरोप भी लगते हैं और पश्चिम के प्रति अस्वीकार को उनकी सीमा मान लिया जाता है किन्तु तत्कालीन औपनिवेशिक सत्ता द्वारा जो सांस्कृतिक हमला हो रहा था उसमें स्वत्व की रक्षा के लिए भारतीय मनीषियों द्वारा अपने अतीत का गौरवगान और साथ ही साथ उसके मूल्यांकन द्वारा वर्तमान में अपनी अस्मिता की रक्षा तत्कालीन युगधर्म भी था जिसकी कुछ सीमाएँ अवश्य थी किन्तु स्वतंत्रता आन्दोलन में जनता की चेतना-निर्माण में इसकी अनिवार्य भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता। स्वाधीनता आन्दोलन ने साहित्य को जन चेतना की आधार भूमि प्रदान की। लगभग सभी भाषाओं के साहित्यकारों ने युग चेतना को गद्य और पद्य के माध्यम से आवाज दी। 1857 की क्रांति की असफलता के पश्चात् समाज में जो सन्नाटा व्याप्त हुआ, उस सन्नाटे को तोड़ते हुए साहित्यकारों ने जन भावनाओं को माध्यम बनाया। प्रत्येक व्यक्ति को मुक्ति संघर्ष एवं अधिकार चेतना की दृष्टि से जागृत करने का कार्य साहित्यकार अपनी लेखनी के माध्यम से करने लगा। सामाजिक, राजनीतिक, जातीय, धार्मिक, सांस्कृतिक सभी प्रकार के पहलुओं को साहित्य द्वारा अभिव्यक्ति दी जाने लगी। स्वाधीनता संग्राम के प्रभाव में रचे गये साहित्य में उस समय की सामाजिक व्यवस्था, राजनीतिक दलों तथा विचारधाराओं का स्वर स्पष्ट रूप से सुनाई देता है जिसका जीता जागता प्रमाण जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित चन्द्रगुप्त नाटक है।

सन्दर्भ सूची

1. जैन, नेमिचन्द्र, (1967), रंगदर्शन, अक्षर प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली, पृ. 198
2. मिश्र, सत्यप्रकाश, (2008), प्रसाद के सम्पूर्ण नाटक एवं एकांकी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. भूमिका
3. प्रसाद, जयशंकर, (1970), चन्द्रगुप्त, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पृ. 116
4. वही, पृ. 89
5. वही, पृ. 182
6. वही, पृ. 176-177
7. वही, पृ. 177
8. वही, पृ. 179
9. वही, पृ. 50-51
10. वही, पृ. 81

सोनभद्र की सांस्कृतिक एवं जैव तार्किक विविधता

डॉ० सर्वजीत सिंह

वनस्पति विज्ञान विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, शाहगंज, जौनपुर

सार

सोनभद्र भारत में ऊर्जा की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध है और प्राचीन काल से ही यहां बहुत समृद्ध सांस्कृतिक और जैविक विविधता रही है। जैव विविधता की समृद्धि का वर्णन विभिन्न साहित्य में किया गया है। सोनभद्र क्षेत्र में कोल गोंड, पनिका, बैगा, खैरवार जैसे कई आदिवासी समुदाय निवास करते हैं और भोजन, चारा चिकित्सा आदि के लिए विभिन्न प्रकार के पौधों के संसाधनों का उपयोग करते हैं। अस्थिर मानवीय गतिविधियों के कारण सोनभद्र की जैव विविधता काफी हद तक कम हो गई है। वर्तमान पेपर में पिछले दशक के दौरान जनजातीय समुदायों पर पौधों की जैव विविधता, खतरे के आकलन, संरक्षण और जातीय वनस्पति अध्ययन पर एक विस्तृत अध्ययन किया गया है, उपरोक्त अवधि के दौरान किए गए कार्यों को चित्रित किया गया है।

परिचय

जिला सोनभद्र उत्तर प्रदेश के सबसे बड़े जिलों में से एक है, जिसका कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 680961 हेक्टेयर है, जिसमें से 79937 हेक्टेयर शुद्ध क्षेत्रफल है, यह जिला राज्य के दक्षिण पूर्वी भाग में स्थित है, यह 23.520 से 25.320 उत्तरी अक्षांश और के बीच स्थित है। 82.720 से 83330 पूर्वी देशांतर यह जिला चंदौली मीरजापुर जिले से घिरा हुआ है, जिला राज्य (एम.पी.) की उत्तरी सीमा पर है और पूर्व में छत्तीसगढ़ है जबकि पश्चिम में झारखंड राज्य है।

जिला सोनभद्र उत्तर प्रदेश का एक महत्वपूर्ण जिला विंध्याचल क्षेत्र है जो अपने भौगोलिक आकार और जलवायु की विविधता के कारण पौधों की जैव विविधता में बहुत समृद्ध है। इन संसाधनों के कारण यह जिला वन और हर्बल संसाधनों में बहुत समृद्ध है, इसके भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 36% हिस्सा कवर किया गया है। शुष्क मिश्रित पर्णपाती प्रकार का जंगल जिसमें कई मूल्यवान वृक्ष प्रजातियाँ और औषधीय पौधों की 100 से अधिक प्रजातियाँ हैं। क्षेत्र के ग्रामीण और आदिवासी लोग अपनी सामान्य बीमारियों के इलाज के लिए बड़े पैमाने पर इन पेड़ों पर निर्भर हैं, जो उनकी सांस्कृतिक और विरासत में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। स्थानीय निवासी न केवल ईंधन, लकड़ी, खाद्य पदार्थ, फल, छोटी लकड़ी प्रदान करने के लिए बल्कि कई स्वास्थ्य समस्याओं के इलाज के लिए भी इन बहुउद्देशीय पेड़ों पर अत्यधिक निर्भर हैं।

सोन और बालोन नदियों की घाटियाँ चारों ओर गुफाओं में हैं जो आदिम निवासियों का सबसे आसान निवास स्थान थीं। यह क्षेत्र प्रागैतिहासिक काल के मानवों की गतिविधियों का केंद्र रहा है जो शैलचित्रों से स्पष्ट होता है। ये पेंटिंग मध्यपाषाण काल से लेकर पुरापाषाण काल तक की हैं। सोनभद्र जिसका प्राचीन नाम गुप्तकासी था, इसे प्राचीन राजा पोटारक ने बसाया था। पांचवीं शताब्दी में चंदेल राजपूत राजा ने विजय गढ़ किला बनवाया था। 18वीं शताब्दी के दौरान यह जिला सिंगरौली के बेनवंशी शासक के नियंत्रण में आ गया। ब्रिटिशकालीन मिर्जापुर जिले में वर्तमान मिर्जापुर और सोनभद्र जिला रोबर्टसगंज तहसील में शामिल था। 4 मार्च 1989 को सोनभद्र जिला मिर्जापुर से विभाजित हो गया।

सामग्री एवं विधियाँ:

पिछले दशकों के बीच सोनभद्र वन क्षेत्र में पुष्प विविधता पर एक व्यापक अध्ययन किया गया था। प्रत्येक पौधे का विस्तृत डेटा निर्धारित फील्ड बुक की सहायता से दर्ज किया गया। डेटा में संग्रह का डेटा, इलाके के नाम, स्थानीय नाम, वनस्पति नाम, परिवार, ऊंचाई, आदत और निवास स्थान, पत्तियों के प्रकार, फूल का रंग, फल आदि शामिल हैं।

इसी प्रकार, सोनभद्र क्षेत्र के आदिवासी क्षेत्र में एक जातीय वनस्पति सर्वेक्षण आयोजित किया गया और मानक प्रश्नावली की मदद से पौधों के औषधीय उपयोग, पौधों के पूर्व-आदिवासी नाम, उपयोग किए गए भाग, तैयारी / आवेदन की विधि, खुराक की अवधि आदि के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी दी गई।

सोनभद्र का जंगल

सोन नदी के उत्तर में जिले की स्थिति निचले गंगा के मैदानी नम पर्णपाती वन क्षेत्र में स्थित है। छोटा नागपुर शुष्क पर्णपाती वन क्षेत्र में सोनली के दक्षिण का भाग।

परिणाम

शोधकर्ता ने पिछले दशकों के दौरान सोनभद्र क्षेत्र का विस्तृत फ्लेरोस्टिक अध्ययन किया है, सोनभद्र में खेती और सजावटी पौधों को छोड़कर 730 से अधिक फूल वाले पौधे पाए जाते हैं। ये 730 एसपी 445 जेनक्रा और 111 परिवारों से संबंधित हैं।

तालिका 1

टैक्सा	मोनोकोट	डायकोट	कुल
परिवार	89	22	111
जीनस	344	101	445
प्रजाति	558	172	730

जीवन विश्लेषण से पता चलता है कि 730चे में से पेड़ 112 हैं, झाड़ियाँ 71 हैं, पर्वतारोही 81 हैं और जड़ी-बूटियाँ 466 हैं।

फूलों के रंग स्पेक्ट्रम से पता चलता है कि 730चे में से 196 पौधों में पीले फूल, 28 लाल 54 बैंगनी, 227 सफेद, 40 नीले 36 गुलाबी 5 नारंगी 5 बैंगनी फूल हैं।

औषधीय विविधता का नुकसान

सोनभद्र औषधीय पौधों में बहुत समृद्ध था। प्राचीन साहित्य में उल्लेख है कि सोनभद्र क्षेत्र में हजारों प्रकार के औषधीय पौधे उपलब्ध हैं। लेकिन वर्तमान में निवास स्थान के क्षरण के कारण सोनभद्र की पादप विविधता में गिरावट आ रही है, पौधों का मूल्यांकन आईयूसीएन, रेड लिस्ट श्रेणियों (2000) के अंतर्गत न केवल सोनभद्र के लिए बल्कि मध्य प्रदेश के लिए भी किया जाता है। छत्तीसगढ़ और झारखंड. इसलिए सोनभद्र क्षेत्र के प्राकृतिक आवासों को बचाने और अमूल्य औषधीय पौधों की विविधता को संरक्षित करने की तत्काल आवश्यकता है।

संरक्षण पादप विविधता

सोनभद्र की औषधीय पौधों की विविधता को संरक्षित करने के प्रयास में सोनभद्र क्षेत्र में कई जैव विविधता रिजर्व पार्क बनाए गए हैं। ऐसे कई औषधीय पौधे हैं जिन्हें पूर्व-स्थाने तरीकों से संरक्षित किया जाता है। कई अलग-अलग पौधों को विभिन्न समूहों जैसे जड़ी-बूटियों, झाड़ियों, लताएं, पेड़ और इमारती लकड़ी, पौधों द्वारा संरक्षित किया जाता है।

सोनभद्र के जनजातीय समुदाय

प्राचीन साहित्य में वर्णित कोल, गोंड, बैगा, पनिका और खरवार आदि जैसे कई आदिवासी समुदाय आज भी सोनभद्र वन क्षेत्र में निवास करते हैं। इन जनजातीय समुदायों की अपनी संस्कृति परंपराएं, मान्यताएं, रीति-रिवाज आदि हैं। ये बहुत गरीब और अशिक्षित हैं। वे वन क्षेत्र में और उसके आसपास निवास करते हैं और भोजन, चारा, ईंधन, दवा, डाई, गोंद, टैनिन, छप्पर, के लिए विभिन्न प्रकार के पौधों का उपयोग करते हैं। घर, और खेती के उपकरण आदि। वहां की कुल जनसंख्या कुल जनसंख्या का लगभग 50% है।

यह क्षेत्र जीवन के कुछ दिलचस्प तरीकों और मान्यताओं जैसे वर्जनाओं, टैटू, जादुई-धार्मिक मान्यताओं आदि के मामले में अद्वितीय है। पौधों के संबंध में आसपास के पौधे आदिवासी संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं और पौधों के बारे में जानकारी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचती रहती है। पीढ़ी केवल मौखिक लोककथाओं के माध्यम से और कईयों ने गुप्त रखी।

जंगल से लघु वन उपजों का संग्रहण और इन उपजों को निकट स्थानीय बाजार में बेचना उनकी अर्थव्यवस्था का मुख्य स्रोत है। आदिवासी लोग जंगलों के दूर-दराज के इलाकों में निवास करते हैं, जहां कोई संगठित आधुनिक चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं, वे मानव के साथ-साथ पशुधन और बीमारियों के इलाज के लिए स्थानीय रूप से उपलब्ध पौधों की प्रजातियों का उपयोग करते हैं। इसलिए, इससे पहले कि यह पारंपरिक ज्ञान हमेशा के लिए लुप्त हो जाए, इसे ठीक से प्रलेखित किया जाना चाहिए, इन विचारों को ध्यान में रखते हुए सोनभद्र में विभिन्न तुच्छ समुदायों पर एक व्यापक नृवंशविज्ञान अध्ययन किया गया और पाया गया कि उन्होंने विभिन्न प्रयोजनों के लिए विभिन्न प्रकार की पौधों की प्रजातियों का उपयोग किया है। मानव औषधि के रूप में पशु चिकित्सा, खाद्य डाई फाइबर, गोंद, मछली, जहर घरेलू उपकरण और जादुई-धार्मिक विश्वास आदि।

संदर्भ

1. खन्ना, के.के. कुमार, आनंद, दीक्षित, आर.डी. और सिंह, एन.पी. 2001, मध्य प्रदेश की वनस्पतियों के पूरक। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कलकत्ता।
2. मुद्गल, वी. खन्ना, के.के. और हाजरा, पी.के. 1997. फ्लोरा ऑफ मध्य प्रदेश (खंड 2)। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कलकत्ता।
3. सिंह, एन.पी. खन्ना, के.के. मुद्गल, वी. और दीक्षित, आर.डी. 2001. फ्लोरा ऑफ मध्य प्रदेश (खंड 3)। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कलकत्ता।
4. वेद, डी.के. किन्हल, जी.ए. रविकुमार, के. कर्नाट, मोहन, विजया शंकर, आर. और इंद्रेशा, जे.एच. (संस्करण) 2003. छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के औषधीय पौधों के लिए खतरा मूल्यांकन और प्रबंधन प्राथमिकता। एफआरएलएचटी बेंगलुरु।
5. वर्मा, डी. एम. बालाकृष्णन, एन.पी. एवं आर.डी. दीक्षित, आर.डी. 1993. फ्लोरा ऑफ मध्य प्रदेश (खंड 1)। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कलकत्ता।

आदिवासी कविता: चिंतन के आयाम

डॉ० शिवानी जॉर्ज

श्यामा प्रसाद मुखर्जी महिला महाविद्यालय, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

आदिवासी कविता उतनी ही पुरानी है जितना इस समुदाय का जीवन। वाचिक, गेय, सामूहिक एवं अलिखित परंपरा से गुजर कर आयी इस कविता का स्वाद अद्‌भुत है, ठीक उस पुरप्रवाह नदी के जल की तरह, जो अपने उद्‌गम स्थल से एक लंबी यात्रा तय कर अनेक रंगों, गंधों, स्मृतियों, बिंबो, सुख-दुखों और चुनौतियों को अपनी धार में समो लाती है। आदिवासी कविता में जीवन का राग है, वस्तुत: उसका स्वभाव कविता से अधिकगीत का है। इन गीतों में समष्टि की गाथाएं गूंजती हैं, इनकी रचना व्यक्तिगत अनुभवों से कहीं अधिक समुदायों के साझा अनुभवों से हुई है। आदिवासी कविता के ताने-बाने पर विचार करते हुए वंदना टेटे लिखती हैं कि,"लेकिन आदिवासी कविताओं की मूल प्रकृति 'गीत' की ही है, जिसका रचयिता कोई एक नहीं बल्कि पूरा समुदाय हुआ करता है।"[1]

पीड़ा और आनंद का सहज उच्चार करने वाली आदिवासी कविता के कलेवर और तेवर, दोनों ही में तथाकथित सभ्य और आधुनिक समाज के हस्तक्षेप से परिवर्तन हुआ है।कल तक जिसका रूप 'गीत' का था, आज वह 'कविता' के सांचे में ढली है; लंबी कविताएँ लिखी जा रही हैं।

सुशीला सामद, रामदयाल मुंडा, दुलाय चंद्र मुंडा, हरिराम मीणा, निर्मला पुतुल, वाहरू सोनवणे, वंदना टेटे, जसिंता केरकेट्टा, सरिता बड़ाइक, अनुज लुगुन, नीतिशा खलखो सरीखे कवियों ने समष्टिगत संवेदन को शब्दों से सजाया है। दुलाय चंद्र मुंडा कीएक कविता है- 'हम लोग कहां गुजर-बसर करेंगे', चंद पंक्तियाँ देखिए-

"पहाड़ तो जला दिया गया है पंडुक!
हम दोनों कहां अब चारा-पानी ढूंढेगे?
बावली तो तोड़ दिया है बुद्धु मछली!
हम दोनों कहां तैरकर अब गुजर-बसर करेंगे?"[2]

संपूर्ण मानवता की चिंता हम अक्सर रचनाओं में देखते आए हैं, पर इस कविता में मनुष्य ही नहीं, नभचर और जलचर का दुख भी दिख रहा है। आदिवासी दर्शन में प्राणी-मात्र की चिंता निहित है। आदिवासी जीवन-दर्शन क्या है? वे कौन से विचार या चिंतन सरणियां हैं जो आदिवासी सोच को वैशिष्ट्य प्रदान करती हैं? एक बड़ी पहचान है सामूहिकता। इस सामूहिकता में मनुष्य के साथ पूरी सृष्टि सम्मिलित है, पुरखों के अनुभव सम्मिलित हैं। "आदिवासी दर्शन व्यक्ति-केन्द्रित विचार और विचार-पद्धति में विश्वास नहीं करता। इसलिए वहां 'वाद' जैसा कुछ नहीं है। हाँ, पुरखे हैं और उनका चिंतन है, जिसके प्रति आदिवासी समाज और उसके साहित्यकारों का कृतज्ञता का भाव है।"[3]

आदिवासी जीवन की शक्ति है प्रकृति। प्रकृति के कण-कण के प्रति उनके यहाँ बंधुत्व भाव है, मेरा-तेरा' के स्थान पर 'हमारा' आदिवासियत की मूल चिंता है। 'आदिवासियत' को व्याख्यायित करते हुए कहा जा सकता है कि दुनिया भर के आदिवासी समाजों की मर्म-रचना में जड़ और चेतन प्रकृति के विविध अवयव - भूमि, पर्वत, प्रपात, झरने, नदियां, खग-विहग, जीव-जंतु, वनस्पतियां, पुरखे...सबका सहज सह-अस्तित्व है। इन समाजों की अभिलाषाएं, मान्यताएं, जीवन-दृष्टि और सौंदर्यबोध के निर्माण में उपर्युक्त तत्वों की महती भूमिका होती है। वे मानते हैं कि सब कुछ सबका है, साझा है। इससे भिन्न तथाकथित सुसंस्कृत समाजों में हजारों वर्षों से धर्म, राजनीति या आर्थिक प्रगति के नाम पर संसाधनों पर व्यक्तिगत या पूंजीगत अधिकार की धारणा बलवती रही है।

विगत सदी के अंतिम दशक में वैश्वीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण की नीति के चलते बाजार को बेहिसाब ताकत मिली है। आज सब कुछ बिकाऊ है और हर कोई खरीदार है। एक शुद्ध उपभोग आधारित संस्कृति पैर पसारने लगी है। इस कुहासे में हमारी नजर कुछ कम दूर तक देख पा रही है, या अगर देख रही भी है तो भावी संकट का आकलन नहीं कर पा रही है। आदिवासी लेखन में इस चिंता को परिलक्षित किया जा सकता है।

जीवनोत्सव के अनुपम चितेरे रामदयाल मुंडा बड़े चिंतक एवं लेखक हैं। 'वापसी, पुनर्मिलन और अन्य नगीत' आदि संग्रहों में संकलित इनकी कविताओं-गीतों में एक ओर जनजीवन की छवियाँ हैं, तो दूसरीओर जंगल-पहाड़-नदियों का रुदन भी है। 'जे नाची से बांची' का मंत्रघोष करने वाले इस कवि की लेखनी आदिवासी समुदाय के साझा दु:ख-सुख का बिंब उकेरती है।गंगा सहाय मीणा के शब्दों में "रामदयाल मुंडा आदिवासियत के सबसे बड़े कवि हैं।"[4] उनकी एक छोटी सी कविता है- असहायता'-

"नदी
ना, ना करती रह गई-
उस मनचले ने उसका

लूट लिया पानी।"[5]

यहाँ 'पानी' शब्द में निहित श्लेष को बारीकी से समझने की आवश्यकता है। प्रकृति की क्रोड़ में पलने वाला आदिवासी जीवन संसाधनों और मूल तत्वों की लूट का सदा से प्रतिरोध करता आया है। भारतीय परंपरा में नदियों को माता का स्थान दिया गया है, वे पुण्यसलिला हैं, जीवनदायिनी और पापनाशिनी हैं; परन्तु प्रकृति पर अंकुश कसने की मानव की इच्छा और भौतिकता की आंधी ने उसे लोलुपता की समस्त सीमाएं लांघने पर विवश कर दिया है। वह करणीय-अकरणीय के मध्य अंतर भूल कर उत्श्रृंखल हो गया है, 'मनचला' हो गया है।

'कथन शालवन के अंतिम शाल का' नामक कविता में शालवन का अंतिम वृक्ष जंगल का क्रमिक क्षरण देख रहा है। वह जानता है कि उसकी नियति भी अपने बंधुओं के समान पूर्वनिर्धारित है, उसे भी कट गिरना है बाजार के आँगन में। क्रमिक विनाश के प्रत्यक्षदर्शी उस अंतिम शाल वृक्ष का कथन है-

"वीरान शालवन!
कैसा विरोधाभास?
किंतु लगता है, कालक्रम में बहुत सी असंगतियों की तरह
यह असंगति भी लोग सह लेंगे
जंगल प्रकृति का नियामक है।
जंगल का आदमी जानता है
कि मैं उसी का विस्तार हूं।
उसकी व्यष्टि का समष्टि रूप।"[6]

'जंगल प्रकृति का नियामक है'...कैसी सत्योक्ति है यह! धरती को अपनी जड़ों से बांधे रखने वाला जंगल पर्यावरण संतुलन के लिए आवश्यक है। आज हम सभ्यता के अंधाधुंध में पृथ्वी के सिर-माथे सजी जंगल की धानी चूनर को खसोट रहे हैं, बिना पल भर रुक कर यह सोचे-समझे कि जिस पृथ्वी को हम माँ कहते हैं, वह माँ बिन चूनर के कैसी दिखेगी!

जंगल पेड़ों से वीरान हो रहा है, यह विरोधाभास अगर न खले तो ठहर कर सोचने की जरुरत है। जंगल केवल वृक्षों, लताओं-गुल्मों का वितान न होकर अनेक जीवों और प्रजातियों का अन्योन्याश्रित पर्यावास भी है। वहां किसी पेड़ के कटने को एकाकी घटना या केवल उस एक पेड़ के सन्दर्भ में नहीं देखा जा सकता, बल्कि उस समूचे पर्यावास पर इसके निहित प्रभावों का आकलन भी लाजमी है। आदिवासी समुदाय पर जंगलों के दुरुपयोग के आक्षेपों का जिक्र करते हुए कविता गहरा कटाक्ष करती है-

"जंगल का आदमी
जंगल काटकर बर्बाद कर रहा है,
इसलिए इसकी रक्षा होनी चाहिए।
और शायद इसीलिए इसकी रक्षा हो रही है,
टिंबर मर्चेंट्स के गोदामों में"[7]

यहाँ बरबस रेड इंडियन आदिवासियों के मुखिया सिएथल की पीड़ा कचोटने लगती है जिसे विवश होकर एक संधि करनी पड़ी परन्तु आदिवासी क्षेत्रों में घुसपैठ होता रहा। जिस बेरहमी और अदूरदर्शिता के साथ जंगलों का सफाया किया जा रहा है, उसका खामियाजा तो भुगतना ही होगा। कविता चेतावनी देती है-

"जंगल जो कि
एक खूबसूरत ख्वाब था हरियाली का
एक दिन किसी डरावने दु:स्वप्न सा
रूप धरे लौटेगा
बरसों मिमियाता घिघियाता रहा है जंगल
एक दिन चीता बन लौटेगा"[8]

हम आए दिन सुनते ही हैं कि हाथियों का झुंड गाँव में आ घुसा या तेंदुआ रिहाइशी इलाके में आ गया। कहीं ऐसा तो नहीं कि मनुष्यों ने ही उनके इलाकों में बस्तियां बसा लीं या उनके पर्यावास को खत्म कर दिया?

संथाली कवयित्रीनिर्मला पुतुल के कविता संग्रहों- 'नगाड़े की तरह बजते शब्द', 'बेघर सपने, और 'अपने घर की तलाश में आदि में स्त्री-जीवन की विविध छवियाँ, सांस्कृतिक विरूपीकरण के प्रति आक्रोश, प्रकृति के दोहन औरपरंपरा विलोपन की पीड़ा दिखाई पड़ती है। अनेक कविताएँ संथाल आदिवासियों के विघटन पर बात करती हैं।

सन 2000 में बिहार से पृथक झारखंड नामक राज्य अस्तित्व में आया। आदिवासी बहुल अंचल को अलगाकर नया राज्य बनाया गया। आदिवासी संदर्भ में यह एक बड़ी घटना रही लेकिन इस अवसर पर कवयित्री अपने बंधुओं को 'खुशी से नाचने' की बजाय 'थोडा सुस्ताकर बहुत कुछ सोचने' का सन्देश देती हैं।वे याद करती हैं उन पूर्वजों को, जिनकी आँखों में जल-जंगल-जमीन का सपना था, मुक्ति का सपना था; जिन्होंने संघर्ष किए, बलिदान दिए। आज

वे नहीं हैं, दिक्काल परिवर्तित है, परन्तु क्या आदिवासी जीवन में वांछित बदलाव आया? 'भाई मंगल बेसरा' नामक कविता की पंक्तियाँ मानो चेतावनी देती हैं, आगाह करती हैं-

"मंजिल नहीं है यह
जो दे रहा है मंजिल होने का भरम
एक पड़ाव है, तुम्हारी लम्बी यात्रा का
थक गए हो तो थोडा सुस्ता लो
पर देखना कहीं निश्चिन्त होकर सो मत जाना मेरे भाई!"[9]

समय की मार सहता हुआ संथाल परगना निर्मला पुतुल की कविताओं में मानवीकृत हो गया है। उसकी संस्कृति में पूँजी और बाजार का ऐसा दखल हुआ है कि सब कुछ गड्ड-मड्ड हो गया है-

"बाजार की तरफ भागते
सब कुछ गड्ड-मड्ड हो गया है इन दिनों यहाँ
उखड गए हैं बड़े-बड़े पुराने पेड़
और कंक्रीट के पसरते जंगल में
खो गयी है इसकी पहचान"[10]

आदिवासी कविताओं में स्त्री-मन की अनुगूंजें भी हैं। 'क्या तुम जानते हो', 'प्रकृति और स्त्री', 'आदिवासी लड़की', 'औरत' और 'दामिनी' जैसी विभिन्न कवियों की अनेक कविताएँपुरुष-प्रधान समाज में स्त्री की स्थिति का अंकन करती हैं।स्वयं को निज दृष्टि से देख पाने की बेचौनी स्त्री के भीतर रही है। निर्मला पुतुल कहती हैं-

"अपनी कल्पना में हर रोज
एक ही समय में स्वयं को
हर बेचौन स्त्री तलाशती है
घर प्रेम और जाति से अलग
अपनी एक ऐसी जमीन
जो सिर्फ उसकी अपनी हो"[11]

निर्मला जी की कविताएँ एक आदिम जीवन-पद्धति की नैसर्गिकता को बचाने का आह्वान करती हैं। परिवर्तन के प्रवाह में सब-कुछ बह जाय, इससे पूर्व कविता हमें बुलाती है कि थोड़ी सी नैसर्गिकता और कुछ अनुभूतियों को तो बचा ही लिया जाय, और वे हैं-

"जंगल की ताजा हवा
नदियों की निर्मलता
पहाड़ों का मौन
गीतों की धुन
मिटटी का सोंधापन
फसलों की लहलहाहट"[12]

ग्लोबल होती हुई दुनिया 'विश्वग्राम' के मुहावरे के द्वारा पूरी पृथ्वी की एकसूत्रता का भरम तो रचती है, पर इसके मूल्य 'वसुधैव कुटुंबकम' के विपरीत है। 1990-91 के आस-पास आए भूमंडलीकरण और मुक्त बाजार नेबड़े सूक्ष्म तरीके से हमारी आदतों को प्रभावित करना शुरू किया। क्षिति-जल-पावक-गगन-समीर जैसे पंचभूत भी अब बिक्री का सामान हो गए और हमारी आदतों/इच्छाओं में सेंधमारी करते नए उत्पाद अपनी जड़ें जमाने लगे-

"यह कहते हुए
शर्मिंदा महसूस कर रही हूँ
कि बाजार में घूमते
जब प्यास लगती है
तो पानी से ज्यादा
पेप्सी और स्प्राइट की तलब होती है
पता नहीं कब
हमारी प्यास में घुस गया यह सब"[13]

पानी के स्थान पर 'पेप्सी' की जरुरत महसूस होने लगना खतरे की घंटी है। लालसाओं और इच्छाओं के पहियों पर ही तो उपभोक्तावाद की गाड़ी चलती है!

हरिराम मीणा आदिवासी लेखन का जाना-माना नाम हैं। 'सुबह के इंतजार में', 'हाँ, चाँद मेरा है', 'रोया नहीं था यक्ष' आदि उनके काव्य संग्रह हैं। उनकी कविताओं में बिरसा मुंडा की याद है, सरदार सरोवर में डूबे आदिवासी भविष्य की चिंता है, रॉस आइलैंड के खंडहरों की पुकार है, अंडमान-निकोबार के जारवा और सेंटेनेली जनजाति की चिंता है, ओंग आदिवासियों के प्रश्न हैं। आदिवासी जन की एक मूल और मौलिक टेक है-

"पैदा नहीं हुआ था जब ऑर्केस्ट्रा
किसी सभ्यता, ज्ञान-विज्ञान व तकनीकी वगैरा का
वे बड़े हो चुके थे निकलकर धरती की कोख से
दावा इतना ही रहता आया कि माँ है वह उनकी
बड़ी कितनी भी हो जाए
बिछुड़ कैसे सकती है संतान अपनी माँ से"[4]

...वही सदा से चली आती मांग कि हमें अपनी जड़ों से अलग मत करो। लेकिन उनकी भाषा, संस्कृति और आदिम जीवन-शैली में हस्तक्षेप होता रहा। आज आदिवासी घोटुल वीरान हैं, मांदल के स्वर मौन हो चले हैं और सजीले समूह नृत्य किताबों के पन्नों या फिल्मी परदे पर अधिक दिखाई देते हैं।

मीणा जी की एक कविता है- 'सभ्यता के विस्तार के नाम पर हादसा' जो अंडमानी आदिवासियों को संबोधित है। कविता की पक्तियां पूछती हैं-

"देखो, तुम्हारे पेड़ गिर रहे हैं
समुद्र मैला हो रहा है
तटों पर प्लास्टिक की थैलियाँ बिखर रही हैं
मछलियाँ दूर चली गई
ऑक्टोपस छुप गए
सी-शेल टूट गए
और तुम चुप हो?"[5]

ऐसे ही भाव वंदना टेटे की कविता में भी द्रष्टव्य हैं। 'कोनजोगा' पहाड़ आस-पास के अन्य पहाड़ों की तरह तोड़ा जा रहा है, उसकी विशाल छाती पर घन ठोके जा रहे है, हथौड़े बरसा, जा रहे हैं। अपने संगियों से लेखिका पूछती हैं, इसका प्रतिराध क्यों नहीं किया जा रहा-

"पुरखा कथाओं में दर्ज
कोनजोगा टूट रहा है
हम क्यों चुप हैं
हम क्यों नहीं लड़ रहे हैं?"[6]

तथाकथित सभ्य संसार आदिवासियों पर भी 'सभ्य' हो जाने का दवाब बनाये हुए है। उनको अपनी जड़ों से काटने से पहले लम्बे-चौड़े वादे किये जाते हैं, वह भी अहसान जताते हुए-

"ओ रे
मानवता के आदिम नुमाइन्दों
तुम जंगली ढोर, गंवार हो
एक सलाह है तुम्हे सभ्य बनाने की
पुश्तैनी उबड़-खाबड़ धरा से हटाकर
रोपना होगा
मुख्यधारा की उर्वरा भूमि पर।"[7]

...लेकिन ये वादे और दावेक्या पूरे होंगे !उर्वरा भूमि के स्थान परकिसी महानगर का फुटपाथ इन विस्थापितों की रिहाइश बन जाएगा, उनके बच्चे और आने वाली नस्लें अपरिचय की धुंध में बिला जाएंगी, अपना आत्मसम्मान खोकर वे असमय प्रौढ़ और बूढ़े हो जाएंगे। इन घटनाओं को एक विस्तृत श्रंखला की कड़ियों के रूप में देखना होगा जो अंतत: एक जीवन-शैली के क्षरण और सांस्कृतिक वर्चस्ववाद के बायस बन जाते हैं। अपने पर्यावास से उजड़ा आदिवासी समुदाय धीरे-धीरे अपनी भाषा-संस्कृति और रीत-रिवाजों से दूर होता जाता है। बहुत संभव है कि इसका तात्कालिक प्रभाव नजर न आये पर आगामी पीढ़ियों तक पहुँचते-पहुँचते बहुत सी बातें छूट जाएंगी। कवयित्री वंदना टेटे इस बात पर उदास हैं, और चिंतित भी-

"टैटू तो हैं गोदने खो गए
आह! कितनी-कितनी सारी जानकारियां

छूट जाएंगी हमारे बच्चों से
क्योंकि नहीं लिखी गई हैं किताबें
इन पर, नहीं बने हैं सॉफ्टवेयर"[18]

प्राकृतिक और सांस्कृतिक अपरूपण की चिंता प्राय: सभी आदिवासी रचनाओं में मिलती है। ग्रेस कुजूर की कविताएँ लक्षित करती हैं कि फुटकल और कोयनार के गाछ, सखुआ, महुआ, गूलर, कयोंद न जाने कहाँ खो गए। अब आदिवासियों की बंसी में मछलियों की जगह ढोढा सांप फंसने लगे हैं, 'अखरा' में अब 'डमकच' और 'अँगनई' के सुर नहीं गूंजते। भोर पहर भिनसरिये कूटी जाने वाली ढेंकी की आवाज अब नहीं आती, न जाने किसने आजी के जांता की कीलें उखाड लीं है। पानी अब सर से ऊपर हो चुका है। अब साथी को आवाज देनी होगी-

"हे संगी!
तानो अपना तरकस
नहीं हुआ है भोथरा अब तक
बिरसा आबा का तीर"[19]

रोज केरकेट्टा की कविता में चित्रित बरगद का पेड़ लोकतंत्र की अद्‌भुत छवि रचता है। उसकी डालियों पर भांति-भांति के पक्षी और गिलहरी सरीखे जीव एक साथ रहते आये हैं, किसी को पहचान, भोजन और आवास का कोई संकट नहीं। कविता का निहितार्थ यह पूछना है कि क्या सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी, 'मनुष्य' इतना भी नहीं कर सकता?

लेकिन आदमी है कि उसकी भूख बढ़ती ही जाती है। उसकी लालसाएं और पृथ्वी के चप्पे-चप्पे पर अधिकार चाहती हैं। वनांचल और ग्रामांचल में शहर का औचक अतिक्रमण इसीलिए कवयित्री वंदना टेटे को अचंभित कर देता है। कल तक जहाँ लहलहाती फसलें खड़ी थीं; आज उसकी पृष्ठभूमि में ईंट-गारे का साम्राज्य है, जो असल में मनुष्य की सर्वग्रासी लालसा और पूंजीवादी ताकतों का साम्राज्य है-

"दूर तक फैले खेतों के
पीछे, जहाँ कल तक
धान हिलकोरें ले रहा था
उनके पार आज
गोपाल के लगाये घने
साल पेड़ों के झुण्ड के पीछे झांक रहा था
अठारह मजिला शहर।"[20] *..अरुण कमल की कविता 'नए इलाके में' की याद हो आती है।*

विस्थापन और प्रवास की समस्या ने आदिवासी समुदाय को गहरे तक प्रभावित किया है। इससे रिश्तों में टूटन पैदा होती है औरपरिवार के एकाकी बुजुर्गों की स्थिति त्रासद हो उठती है। सरिता बड़ाइक की कलम एक बुढ़िया आजी का मौन दु:ख बयां करती है,जिसके परिजन शहर की व्यस्ताओं में कहीं गुम हो गए हैं। धंसी आँखों में इंतजार का समंदर संभाले, पोपले मुंह जुगाली करती आजी ने बड़े कष्ट सहकर बेटे को बड़ा किया-पढ़ाया, और आज उससे दूना कष्ट सहकर प्रवासी हो गए अपनों की राह तक रही है। अकेली आजी गाय, मुर्गी...सभी से बतियाती है, पर शायद उसके इन्तजार की कोई मियाद नही-

"बेटा-बहू शहर में जाकर
डगर गाँव की भूल गए
पोंछे आंसू आँचल की कोर
गीत गाए
आजी।"[21]

रोजमर्रा की सहजानुभूति का अंकन आदिवासी कविता का श्रृंगार है और उसके सौन्दर्यबोध को किन्ही शास्त्रीय प्रतिमानों की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। बकौल हरिराम मीणा "आदिवासी कविता को विश्वास है अपने पर। वह शब्दों का नटी खेल नहीं है। वह शास्त्रीयता और जार्गन में छुपी बाँझ रचना नहीं होगी।"[22] कुछ ऐसी ही बातवाहरु सोनवणे कहते हैं। 'पहाड़ हिलने लगा है' की भूमिका में वे साधारण ग्रामीण, आदिवासी बंधुओं को अपनी कविताएँ सुनाने के उपरांत का अनुभव बताते हैं।ग्रामीणों-आदिवासियों ने कहा- "सही है भाई, बिलकुल सही है! सच है। ये कविता नहीं- यह तो हमारा जीवन ही है, जिसे तुमने जस का तस उतर कर रख दिया है।"[23] जीवन और कविता को एक-दूजे का प्रतिबिम्ब कर देना रचनाकार की बड़ी उपलब्धि है, भावसामर्थ्य का सूचक है।

वाहरू जी की एक छोटी सी कविता है 'आर'। 'आर' अर्थात 'खेत की मेड़'। चंद पंक्तियाँ देखिए-

"जाड़े की ठिठुरती ठंढ
दादा, हमें क्यों लगेगी ठंढ?
हम गरीब लोग

पेट की आग ही इतनी है
कि ठंढ लगती ही नहीं"[24]

पेट की आग बड़वाग्नि से भी बड़ी है, यह सुना था, लेकिन जीवन की कठिनाइयों और असमानता के विद्रूप को उपमानों में नवीन अर्थ भरकर इस कौशल से रेखांकित करना रचना के लोकोन्मुख होने का प्रमाण है।

महादेव टोप्पो, जसिंता केरकेट्टा, ओली मिंच, नीतिशा खलखो आदि कविगण आदिवासी जीवन पर लिखते रहे हैं। सम्यक दृष्टि से देखने पर हम समझ पाते हैं कि उनकी चिंता और चिंतन के दायरे में केवल आदिवासी समुदाय नहीं, बल्किसंपूर्ण जगत समाहित है।

आज का विश्व ग्लेशियर के टूटने, पर्यावरण-क्षरण, समुद्र के जल-स्तर में वृद्धि, ग्लोबल वार्मिंग, भू-स्खलन, आर्थिक-सांस्कृतिक वर्चस्व की लड़ाई, लैंगिक असमानता, बाजार पर एकाधिकार की होड़ और युद्ध सरीखी जिन गंभीर समस्याओं से जूझ रहा है, उसके निदान और उपचार के सूत्र आदिवासी कविताएँ हमें थामती हैं। यद्यपि समय की करवटों ने आदिवासी कविता को प्रभावित किया है, तथापि उसके भीतर की आदिवासियत कायम है। वंदना टेटे ठीक कहती हैं कि "आदिवासियत का दर्शन लाइलाज होती दुनिया का आखिरी और सबसे सटीक विश्वस्त उपचार है।"[25]

सन्दर्भ सूची

1. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ, संपादक- वंदना टेटे,प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2017, पृष्ठ- 7
2. वही, पृष्ठ-19
3. आदिवासी चिंतन की भूमिका, गंगा सहाय मीणा, अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2017, पृष्ठ- 88
4. वही, पृष्ठ-51
5. कलम को तीर होने दो, संपादिक- रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2015, पृष्ठ-36
6. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ, संपादक- वंदना टेटे, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2017, पृष्ठ- 59,60,61
7. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ, संपादक- वंदना टेटे, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2017, पृष्ठख्60
8. वही, पृष्ठ- 93-94 (उज्ज्वला ज्योति तिग्गा की कविता से)
9. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल,भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण- 2005, पृष्ठ-59
10. वही, पृष्ठ-26
11. वही, पृष्ठ-9
12. वही, पृष्ठ-77
13. बेघर सपने, निर्मला पुतुल, आधार प्रकाशन, पंचकूला-हरियाणा, प्रथम संस्करण- 2014, पृष्ठ-65
14. समकालीन आदिवासी कविता, संपादक- हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण -2013, पृष्ठ-108
15. सुबह के इंतजार में, हरिराम मीणा,अक्षर शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2008, पृष्ठ- 43-44
16. कोनजोगा, वंदना टेटे, प्यारा केरकेट्टा फाउन्डेशन, रांची, प्रथम संस्करण -2015, पृष्ठ- 93-94
17. सुबह के इंतजार में, हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2008, पृष्ठ- 41
18. कोनजोगा, वंदना टेटे, प्यारा केरकेट्टा फाउन्डेशन, रांची, प्रथम संस्करण -2015, पृष्ठ- 13
19. कलम को तीर होने दो, रमणिका गुप्ता (संपादिका), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2015, पृष्ठ-100
20. कोनजोगा, वंदना टेटे, प्यारा केरकेट्टा फाउन्डेशन, रांची, प्रथम संस्करण -2015, पृष्ठ- 75
21. नन्हे सपनों का सुख, सरिता बड़ाइक, रमणिका फाउन्डेशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2013, पृष्ठ-16
22. आदिवासी दुनिया, हरिराम मीणा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति- 2016, पृष्ठ- 204
23. पहाड़ हिलने लगा है, वाहरू सोनवणे, (रमणिका फाउन्डेशन के लिए प्रकाशित)शिल्पायन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, संस्करण-2009 (भूमिका-मनोगत, पृष्ठ-11)
24. वही, पृष्ठ- 25
25. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ, संपादक- वंदना टेटे, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2017, पृष्ठ-12 (भूमिका)

डॉ0 भीमराव अंबेडकर का महिलाओं के उत्थान में योगदानः एक अध्ययन

अलोक तिर्की

C/o- अनिल झा, मोहल्ला- चुनाभट्ठी, नाका नं0 8, पोस्ट- लक्ष्मीसागर, जिला- दरभंगा (बिहार)

डॉ0 अंबेडकर महिलाओं की उन्नति के प्रबल पक्षधर थे। उनका मानना था कि किसी भी समाज का मूल्यांकन इस बात से किया जाता है कि उसमें महिलाओं की क्या स्थिति है? दुनिया की लगभग आधी आबादी महिलाओं की है, इसलिए जब तक उनका समुचित विकास नहीं होता कोई भी देश चहुंमुखी विकास नहीं कर सकता। डॉ0 अंबेडकर का महिलाओं के संगठन में अत्यधिक विश्वास था। उनका कहना था कि यदि महिलाएं एकजुट हो जाएं तो समाज को सुधारने के लिए क्या नहीं कर सकती हैं? वे लोगों से कहा करते थे कि महिलाओं और अपने बच्चों को शिक्षित कीजिए। उन्हें महत्वाकांक्षी बनाइए। उनके दिमाग में यह बात डालिए कि महान बनना उनकी नियति है। महानता केवल संघर्ष और त्याग से ही प्राप्त हो सकती है। वायसराय की कार्यकारी परिषद् में श्रम सदस्य रहते हुए डॉ0 अंबेडकर ने पहली बार महिलाओं के लिए प्रसूति अवकाश (मैटरनल लिव) की व्यवस्था की।

संविधान प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में संविधान निर्माताओं में उनकी अहम भूमिका थी। संविधान में सभी नागरिकों को बराबर का हक दिया गया है। संविधान के अनुच्छेद 14 में यह प्रावधान है कि किसी भी नागरिक के साथ लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता। आजादी मिलने के साथ ही महिलाओं की स्थिति में सुधार शुरू हुआ। आजाद भारत के पहले कानून मंत्री के रूप में उन्होंने महिला सशक्तीकरण के लिए कई कदम उठाए। सन् 1951 में उन्होंने 'हिंदू कोड बिल' संसद में पेश किया।

डॉ0 अंबेडकर का मानना था कि सही मायने में प्रजातंत्र तब आएगा जब महिलाओं को पैतृक संपत्ति में बराबरी का हिस्सा मिलेगा और उन्हें पुरुषों के समान अधिकार दिए जाएंगे। उनका दृढ़ विश्वास कि महिलाओं की उन्नति तभी संभव होगी जब उन्हें घर परिवार और समाज में बराबरी का दर्जा मिलेगा। शिक्षा और आर्थिक तरक्की उन्हें सामाजिक बराबरी दिलाने में मदद करेगी।

डॉ0 अंबेडकर प्रायः कहा करते थे कि मैं हिंदू कोड बिल पास कराकर भारत की समस्त नारी जाति का कल्याण करना चाहता हूं। मैंने हिंदू कोड पर विचार होने वाले दिनों में पतियों द्वारा छोड़ दी गई अनेक युवतियों और प्रौढ़ महिलाओं को देखा। उनके पतियों ने उनके जीवन-निर्वाह के लिए नाममात्र का चार-पांच रुपये मासिक गुजारा बांधा हुआ था। वे औरतें ऐसी दयनीय दशा के दिन अपने माता-पिता, या भाई-बंधुओं के साथ रो-रोकर व्यतीत कर रही थीं। उनके अभिभावकों के हृदय भी अपनी ऐसी बहनों तथा पुत्रियों को देख-देख कर शोकसंतप्त रहते थे। बाबा साहेब का करुणामय हृदय ऐसी स्त्रियों की करुण गाथा सुनकर पिघल जाता था। कुछ लोगों के विरोध की वजह से हिंदू कोड बिल उस समय संसद में पारित नहीं हो सका, लेकिन बाद में अलग-अलग भागों में जैसे हिंदू विवाह कानून, हिंदू उत्तराधिकार कानून और हिंदू गुजारा एवं गोद लेने संबंधी कानून के रूप में अलग-अलग नामों से पारित हुआ जिसमें महिलाओं को पुरुषों के बराबर अधिकार दिए गए।

लेकिन डॉ0 अंबेडकर का सपना सन् 2005 में साकार हुआ जब संयुक्त हिंदू परिवार में पुत्री को भी पुत्र के समान कानूनी रूप से बराबर का भागीदार माना गया। इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि पुत्री विवाहित है या अविवाहित। हर लड़की को लड़के के ही समान सारे अधिकार प्राप्त हैं। संयुक्त परिवार की संपत्ति का विभाजन होने पर पुत्री को भी पुत्र के समान बराबर का हिस्सा मिलेगा चाहे वो कहीं भी हो। इस तरह महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने में डॉ.अंबेडकर ने बहुत सराहनीय काम किया।

वयस्क मताधिकार भी डॉ0 अंबेडकर का ही विचार था जिसके लिए उन्होंने 1928 में साइमन कमिशन से लेकर बाद तक लड़ाई लड़ी। इसका उस समय विरोध किया गया था। उस समय यूरोप में महिलाओं और अमेरिका में अश्वेतों को मताधिकार देने पर बहस चल रही थी। अंबेडकर ने वोट डालने के अधि कार के मुद्दे को आगे बढ़ाया। उन्होंने निर्वाचन सभा के सदस्यों को चेताया था कि भारतीय राज्यों को एक जगह लाने की उत्सुकता में वह लोकतंत्र के मूल सिद्धांतों से समझौता न करें। डॉ0 अंबेडकर ने संरक्षण आधारित लोकतंत्र के बजाय नए भारत के लिए अधिकारों वाले लोकतंत्र को चुना।

बाबा साहेब डॉ0 भीम राव अम्बेडकर का नाम पूरी दुनिया जानती है, जिन्होंने महिलाओं के लिए बहुत काम किए हैं। महिलाओं को स्वतन्त्रता से जीवन जीने जैसी अधिकार की वकालत कर अन्य अधिकारों को दिलाकर अहम भूमिका निभाई है। इनके साथ-साथ ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई फुले के योगदान को भी हम भुला नहीं सकते हैं। बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर ने भारतीय समाज की महिलाओं की दयनीय दशा में सुधार करने के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इसीलिए आज नारी हर क्षेत्र में अपना योगदान दे रही है। यदि हम बाबा साहब की विचारधारा को मानते हैं, तो हम महिलाओं के प्रति समानता का दृष्टिकोण अपनाते हैं, क्योंकि अम्बेडकर विचारधारा महिलाओं को पुरुष के समान सभी क्षेत्र में बराबरी का अधिकार देती है।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर एक महान नारीवादी चिंतक थे। नारी सशक्तिकरण में अम्बेडकर जी का बहुत बड़ा योगदान है। उन्होंने अपने जीवनकाल में नारी के सशक्तिकरण के लिए अनेक प्रयास किए। डॉ0 अम्बेडकर जी ने अपनी रचनाओं में भारतीय महिलाओं की स्थिति के बारे में विस्तृत वर्णन किया। उन्होंने बताया कि मनु से पूर्व भारत में महिलाओं की स्थिति सम्मानजनक थी। मनु से पूर्व भारत में महिलाओं को शिक्षा ग्रहण करने एवं धार्मिक कार्यों को सम्पन्न

करने का अधिकार था। मनु ने देश की महिलाओं की स्थिति को काफी दयनीय एवं चिंताजनक बना दिया। मनु की 'मनु-स्मृति से महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास को पूरी तरह प्रतिबंधित कर दिया गया। आधुनिक युग में डॉ0 अम्बेडकर जी ने महिलाओं को जागृत करने के लिए अनेक-सम्मेलन किए। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का नाम इतिहास की पुस्तकों में स्वर्ण अक्षरों में लिखा हुआ है। उनका जीवन सामाजिक सुधार एवं भारतीय सामाजिक एकीकरण की अनोखी मिसाल है। एक अछूत होकर भी भारत रत्न बाबा साहब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर एक चमकता हुआ सितारा बन गए। जिसके ज्ञान की ज्योति ने न केवल भारत में अपितु सम्पूर्ण विश्व में अपना प्रकाश फैलाया है।

महिलाओं की चिंताजनक स्थिति को देखते हुए अनेक अधिकार दिलाए। 1848 में ज्योतिबा राव फुले और सावित्री बाई फुले द्वारा पूना में महिलाओं के लिए पहला स्कूल खोल गया, जिसमें तथाकथित महान सांस्कृतिक विरासत में पली-बढ़ी महिलाओं ने विरोध किया। फुले दम्पत्ति ने सारा जीवन महिलाओं और दलितों की शिक्षा के लिए लगा दिया लेकिन डॉ0 अम्बेडकर ने महिलाओं के लिए जो किया वह भारत में अतुलनीय है। डॉ0 अम्बेडकर का समय वह समय था जब हमारा व्यवहार-शास्त्र संविधान बन रहा था। संविधान निर्मात्री सभा की बहसों में डॉ0 अम्बेडकर जी दलित, पिछड़े और महिलाओं (सर्व समाज की महिलाओं) के अधिकारों की लगातार पैरवी कर रहे थे। भारतीय हिन्दू समाज में महिलाओं की पुरुषों पर निर्भरता को वे समाप्त करना चाहते थे एवं महिलाओं को शिक्षित करने के पक्ष में थे। वे पिता की सम्पत्ति में महिलाओं के लिए पुत्र के बराबर अधिकार चाहते थे। पति की अशक्तता या अयोग्यता की स्थिति में वे महिलाओं को तलाक दिलाकर आजाद कराना चाहते थे।

'11 अप्रैल, 1947 को डॉ0 अम्बेडकर ने लोक सभा में हिन्दू कोड बिल पेश किया। उन्होंने भारतीय समाज में नारी को पुनः प्रतिष्ठित करने हेतू यह बिल तैयार किया था। इसके 9 भाग थे, इसमें 139 धाराएँ और 7 सूचियाँ थीं। इस बिल में स्त्री को विवाह विच्छेद, अल्पायु में ही विवाह करने पर प्रतिबंध , जीवन साथी चुनाव एवं अंतजार्तीय विवाह का अधिकार, संपत्ति में बेटे के बराबर बेटी का अधिकार तथा गोद लेने एवं संरक्षता के अधिकार का प्रावधान था। '16 अगस्त, 1951 को हिन्दू कोड बिल संसद में पेश किया गया। कई दिनों तक बहस होती रही। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने हिन्दू कोड बिल के दूसरे भाग जो विवाह और तलाक से ही संबंधित था, को ही पेश करने दिया। 25 सितम्बर, 1951 को यह पास कर दिया गया। इससे हिन्दू आपे से बाहर हो गए। सरदार पटेल और डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने खुलकर विरोध किया। अन्त में 26 सितम्बर 1951 को जवाहर लाल नेहरू ने इस बिल को बिना पास हुए वापस ले लिया। डॉ0 अम्बेडकर को बहुत दुख हुआ। हिन्दू कोड बिल पुरा पास न होने के कारण डॉ0 अम्बेडकर का स्वप्न भंग हो गया, जिसमें उन्होंने एक ऐसा भारत देखा था, जो कि न्याय, स्वतन्त्रता, समानता और बंधुत्व की सौगात लाने वाला था। डॉ0 अम्बेडकर चाहते थे कि हिन्दू समाज-व्यवस्था में ऐसी समानता स्थापित करें जहां स्त्री-पुरुष, ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा जैसे भेदभाव न हों। डॉ0 अम्बेडकर ने दुखी होकर 28 सितम्बर 1951 को मंत्रिमण्डल से त्याग पत्र दे दिया। हिन्दू कोड बिल को कानूनी रूप दिये जाने की खातिर यह विधेयक मंत्रिमण्डल में बना रहा और आगे चलकर खण्डों में विभक्त होकर पारित हुआ जैसे-

- द हिन्दू मैरिज एक्ट 1955 ने एक विवाह को वैधता दी, दूसरे विवाह के लिए कानूनन दण्ड का प्रावधान एवं कन्या की विवाह की आयु 18 वर्ष कर दी गई।
- द हिन्दू एक्सेशन एक्ट 1956 में एक विधवा को भी पुत्र या पुत्री गोद लेने का अधिकार दिया गया। अपनी सम्पत्ति को भी वह जिसको चाहे दे सकती है।
- द हिन्दू माइनारिटी एण्ड गार्जियनशिप एक्ट, 1956 के द्वारा माँ को अधिकार है कि वह अपने बच्चों के संरक्षक बदल सके एवं नाबालिक बच्चे का संरक्षक नियुक्त करने में पत्नी की अनुमति आवश्यक है।
- द हिन्दू एडोप्शन एक्ट, 1956 द्वारा गोद लेने में लड़का या लड़की किसी को भी ले सकते हैं। एक स्त्री अपने जीवन में किसी बच्चे को भी गोद ले सकती है। अविवाहित लड़की या विधवा को भी गोद लेने का अधिकार दिया गया।

डॉ0 अम्बेडकर ने स्त्रियों को कानूनन पुरुषों के बराबर अधिकार दिलवा कर उनमें नई चेतना की ज्योति जलाई। स्त्रियों को सामाजिक, वैधानिक और राजनैतिक स्तर पर पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हों और उन्हें हर क्षेत्र में अपनी उन्नति के बराबर अवसर प्राप्त हों। हिन्दुओं का पर्सनल लॉ (कानून) मुसलमान, ईसाई और पादरियों की भांति एक समान रूप से नहीं था। कानून की दृष्टि में हिन्दू बिल्कुल अलग-थलग बिखरे हुए थे। सम्पूर्ण भारत में हिन्दुओं का कोई भी विवाह, उत्तराधिकारी, दत्तक, निर्भरता या गुजारा आदि का कोई एक समान कानून नहीं था। विधवा को मृत पति की सम्पत्ति में कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। विधवा विवाह सम्पूर्ण जातियों में प्रचलित नहीं था और कई कुरीतियां प्रचलित थीं जिसे डॉ0 अम्बेडकर उन्हें दूर करवाना चाहते थे। डॉ0 अम्बेडकर ने राजनीतिक शब्दकोश एवं भारत के संविधान में महिलाओं के अधिकार को पूरी तरह से समाहित करने काअथक प्रयास किय, यथा-

अनच्छेद - 14 - राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में समान अधिकार एवं समान अवसर।

अनुच्छेद - 15 - लिंग के आधार पर भेदभाव पर रोक।

अनुच्छेद - 15(3) - महिलाओं के लिए विशेष उपबंध को निर्धारित न करना।

अनुच्छेद - 39 - जीवन निर्वाह के बराबर अधिकार एवं समान कार्य के लिए समान वेतन।

अनुच्छेद - 42 - मानवीय परिस्थिति एवं मातृलाभ।

अनुच्छेद - 46 - राज्य जनता के दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा तथा सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उसकी संरक्षा करेगा।

अनुच्छेद - 47 - राज्य अपने लोगों के पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊंचा करने तथा लोक स्वास्थ्य इत्यादि का प्रयास करेगा।

अनुच्छेद - 51(क)(स) - ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध हैं।

अनुच्छेद - 243(3), 243ट(3), 243र(4)- पंचायती राज व्यवस्था में सीटों का आवंटन उपलबध कराता है।

इस प्रकार शोषण के विरुद्ध अधिकार के साथ उन्हें भी धर्म की स्वतन्त्रता प्राप्त है। धारा 39 के अनुसार स्त्रियों के समान कार्य के लिए समान वेतन श्रमिक स्त्रियों के स्वास्थ्य की देखभाल आदि को निश्चित करने के निर्देश दिए गए हैं। डॉ0 अम्बेडकर भारतीय संविधान के मुख्य निमार्ता थे। संविधान 'एक समाज व्यवस्था को परिलक्षित करता है, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय और राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्रमाणित करेगा। बाबा साहब डॉ0 अम्बेडकर ने परिवार के स्तर से लेकर समाज के स्तर तक हर क्षेत्र में सुधार के लिए प्रयासरत रहे। स्त्रियों को सभी अधिकारों से वंचित किया गया था। राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक सभी अधिकारों में वह पुरुष के बहुत पीछे थी। क्योंकि मनु ने स्त्रियों के सभी अधिकार छीन लिए थे।

भारतीय महिला आन्दोलन की बात करते समय भारत की पहली शिक्षा नेत्री और अध्यापिका सावित्रीबाई फुले का जिक्र करना बहुत आवश्यक है। महिला आन्दोलन के बीजारोपण में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। भारतीय स्त्री की दशा सुधारने के लिए उन्होंने 1852 में 'महिला मंडल' का गठन कर भारतीय महिला आन्दोलन की प्रथम अगुआ भी बन गई। इस संगठन ने बाल विवाह, विधवा स्त्रियों पर किए जा रहे जुल्मों के विरोध में स्त्रियों को तथा अन्य समाज को मोर्चाबन्द कर सामाजिक बदलाव के लिए संघर्ष किया।

डॉ0 अम्बेडकर ने भी महिलाओं को अधिकार और सम्मान दिलाने के लिए कई आन्दोलनों का नेतृत्व एवं समर्थन किया। डॉ0 अम्बेडकर ने समाज की प्रगति में महिलाओं के महत्त्व को समझते हुए कहा है, 'मैं किसी समाज की प्रगति का अनुमान इस बात से लगाता हूँ, कि उस समाज की महिलाओं की कितनी प्रगति हुई है।' दलित महिलाओं की स्थिति और भी दयनीय थी, उन्हें जेंडर के साथ-साथ जाति आधारित शोषण का भी सामना करना पड़ता था। इसीलिए अम्बेडकर ने सवर्ण महिलाओं की समस्याओं के साथ-साथ दलित, पिछड़ी महिलाओं के प्रश्नों पर विशेष ध्यान दिया।

डॉ0 अम्बेडकर ने आधुनिक भारत की नारी की स्थिति में सुधार के लिए प्रयास न केवल ऐतिहासिक, मूल्यवान और मूलभूत महत्वपूर्ण हैं, बल्कि भारत के संदर्भ में ही नहीं विश्व के संदर्भ में अति प्रगतिशील है। उनके इन प्रयासों को हमें दो भागों में बाँटकर देखना होगा। पहला सैद्धांतिक स्तर पर किया गया प्रयास है और दूसरा व्यवहारिक एवं क्रियान्वयन के स्तर पर लागू करने का प्रयास। डॉ0 अम्बेडकर की शोधपरक और विश्लेषणात्मक दृष्टि ने सर्वप्रथम भारतीय नारी की स्थिति में हुए पतन के कारणों को जानने का प्रयास किया। डॉ0 अम्बेडकर के अनुसार - मनु द्वारा नारी विरोधी कानून बनाने के दो कारण थे। पहला था बौद्ध धर्म अपनाया जाना। तथागत गौतम बुद्ध ने भिक्षुणी संघ की स्थापना करके स्त्री को ज्ञान परम्परा से जुड़ने का अवसर प्रदान किया। यह अभूतपूर्व प्रयास स्त्री स्वतन्त्रता के लिए लिया गया अति प्रगतिशील कदम था। बुद्ध धर्म में भिक्षुणी संघ की विदुषी भिक्षुणियों को 'थेरी' कहा जाता था और उनके द्वारा लिखे गए अनुभवों के संकलन को थेरी गाथा के नाम से जाना जाता है। स्त्री लेखन परम्परा का यह प्रथम ग्रंथ माना जाता है।

मनु ने हिन्दू धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए शुद्र-अतिशुद्र एवं नारी को शिक्षा से और आत्मबोध विकसित होने के अवसरों से वंचित किया और इसे ध र्म के आदेश के रूप में लागू किया। धर्मादेश को तोड़ने पर प्राणदण्ड, जिव्हा काटने, कान और मुख में पिघलता शीशा भरने जैसे दण्ड का विधान रखा गया। यह इसलिए कि ब्राह्मण श्रेष्ठता पर आधारित वर्ण जाति व्यवस्था को यह वर्ग कहीं चुनौती न दे सकें। दूसरा कारण नारी की स्वतन्त्रता ब्राह्मणवाद के वर्चस्व के लिए कहीं चुनौती न बन सके, क्योंकि स्त्री स्वतन्त्रता ऊँच-नीच के भेदभाव की दीवारों को तोड़ कर अपने मनचाहे पुरुष से विवाह की माँग करती है। ब्राह्मण वर्ग ने इसलिए सबसे प्रथम वर्ण के बाहर शादी-विवाह का निषेध लगा दिया।

बाबा साहेब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने भारतीय समाज में नारी और दलित नारी की दयनीय और दुरावस्था को पहचाना। उनका मानना था कि समाज के उन्नत होने का मापदण्ड उस समाज के पुरुष न होकर स्त्रियां होती हैं। यही कारण रहा है कि उन्होंने कर्तव्यों के बोझ तले दबी छटपटाती नारी, दलित नारी को शोषण से मुक्त कराने, असमानता को दूर करने, अस्मिता की रक्षा, अधिकारों की प्राप्ति एवं अन्य मोर्चों पर किए जाने वाले आन्दोलनों को गति प्रदान करने और उसे अनई दिशा देने एवं अनेकानेक सुविधाएँ दिलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

बिल्कुल स्पष्ट है कि बाबा साहेब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर जी ने भारतीय समाज की महिलाओं की दयनीय दशा में सुधार के लिए अहम भूमिका निभाई है। उन्होंने समाज के दबे-कुचले वर्गों जिनमें दलित, महिलाएं एवं अन्य पिछड़ा वर्ग आते हैं, की पूरजोर वकालत किया और आवाज बने। इन्होंने समाज में हो रहे अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाई और लोगों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने के लिए प्रेरित किया।

संदर्भ सूची

1. कुशवाला, एस.के., इन ऑनर ऑफ भारत रत्न बाबा साहब, डॉ0 बी.आर. अम्बेडकर, 2017, पृ0 73
2. शास्त्री, सोहनलाल, हिन्दूकोड बिल और डॉ0 अम्बेडकर, नई दिल्ली, 2003, पृ0 12
3. पाण्डेय, धनपति, आधुनिक भारत का इतिहास, भाग-2, नई दिल्ली, 2007, पृ0 247
4. जैन, पुखराज, भारत का संवैधानिक विकास और भारतीय संविधान, दिल्ली, 2003, पृ0 97
5. अम्बेडकर, बी.आर., हिन्दू नारी का उत्थान और पतन, महाबौद्ध जनरल, कलकत्ता, 2011, पृ0 17
6. मेघवाल, कुसुम, भारतीय नारी के उद्धारक: डॉ0 बी.आर. अम्बेडकर, सम्यक प्रकाशन, 2004, पृ0 55
7. सुमन, मंजू, दलित महिलाएं, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ0 142

छात्रों का मानसिक स्वास्थ्य, रचनात्मकता और शैक्षणिक उपलब्धि के बीच सम्बन्ध

डॉ० ममता शर्मा

शोध-पर्यवेक्षिका, शिक्षा शास्त्र विभाग, सांई नाथ विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड

रवि आनन्द

शोधार्थी, शिक्षा शास्त्र विभाग, सांई नाथ विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड

सारांश:-

शिक्षा एक उद्देश्यपूर्ण तथा सामाजिक प्रक्रिया है, यह किन्ही पूर्ण निश्चित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर सम्पन्न की जाती है। ये उद्देश्य व्यापक एवं संकुचित दोनों प्रकार के हो सकते है। प्रत्येक शिक्षा प्रणाली के अपने कुछ निश्चित उद्देश्य होते है, हालाँकि उनमें कुछ विभिन्नतायें अवश्य देखने को मिलती है। उन्हें शिक्षा के सामान्य उद्देश्य कहते है। विद्यार्थियों को मानसिक रुप से स्वस्थ्य एवं सृजनात्मक बनाना ही शिक्षा के उद्देश्यों में प्रमुख स्थान रखता है। इसलिये प्रत्येक देश या शिक्षण संस्था का कर्त्तव्य है कि विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा दी जाये जिसमें मानसिक स्वास्थ्य एवं शाब्दिक सृजनात्मकता का विकास किया जा सके।

परिचय:-

मानसिक स्वास्थ्य की अवधारणा अत्यन्त प्राचीन एवं व्यापक है। पहले उस व्यक्ति को मानसिक रोगी समझा जाता था, जो समाज तथा परिवार एवं राष्ट्र विरोधी कार्य करता था, पर वह क्या कर रहा है, इसका पता उसे स्वयं नही होता था। दौरे पड़ना वस्त्रविहीन हो जाना, भूत-प्रेत के उत्पात का कारण माना जाता था और ऐसे विकारों को दूर करने के लिये तन्त्र-मन्त्र द्वारा मानसिक चिकित्सा की जाती थी।

अधिकांश छात्रों में आज भी ऐसा किया जाता है, वर्तमान समय प्रतियोगी है जिसमें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मानसिक रुप से स्वस्थ्य व्यक्ति/विद्यार्थी ही कुशल सृजनात्मक हो सकता है। अत: यह आवश्यक है कि मानसिक स्वास्थ्य शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया जाये, क्योंकि मानसिक रुप से स्वस्थ्य विद्यार्थी ही जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों में समाज को निर्देशित करने एवं राष्ट्र की सफलता तथा प्रगति के शिखर पर ले जाने में हमे सहायक होगा।

सृजनात्मकता मानव के विकास की प्रगति एवं धुरी हैं, सृजनात्मकता का गुण सभी व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न मात्रा में पाया जाता है, सृजनात्मक विद्यार्थी में बुद्धि, सामाजिक बोधगम्यता, सर्वेक्षण शीलता, संचरण शीलता आदि अनेक गुण पाये जाते है। इसलिये सृजनात्मकता का विकास करने के लिये सृजनात्मक शिक्षा की व्यवस्था ठीक प्रकार से होनी चाहिए।

मानवीय जीवन को सुखमय बनाने के लिये नवीन अविष्कार करने तथा समस्याओं का समाधान खोजने में सृजनात्मकता अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। वर्तमान समय में तीव्र गति से हो रहे वैज्ञानिक तकनीकि तथा औद्योगिक प्रगति व विकास तथा आधुनिकीकरण में मानव जीवन को इतना जटिल तथा समस्याग्रस्त बना दिया हैं कि इन समस्याओं के समाधान के लिये जीवन को प्रत्येक क्षेत्र में सृजनात्मकता की आवश्यकता महसूस की जाने लगी है।

समस्या की पृष्ठभूमि:-

मानसिक स्वास्थ्य एवं सृजनात्मकता का विकास यूँ तो अधिक परिलक्षित होता है जो व्यक्ति को नवीन अविष्कार करने में जटिल समस्याओं का समाधान करने में तथा जीवन को सुखमय बनाने में मानव को सहयोग करती है। स्नातक शिक्षा तक आते-आते बालकों में मानसिक स्वास्थ्य एवं सृजनात्मकता का अध्ययन करने में तथा जीवन को बालमय बनाने में मानव को सहयोग प्रदान करती है।

यह एक प्रक्रिया है जो कि सराहनीय अधिगम तथा विचार नवीनता का सृजन करती है। जिससे हम वाह्य जगत के उद्देश्यों तथा घटनाओं से सम्बन्धित होते है और इस अद्‌भूत और मनोहरी योग्यता को ही सृजनात्मकतापूर्ण मानसिक स्वास्थ्य की संज्ञा दी जाती है। वही मानसिक रूप से स्वास्थ्य सृजनात्मक मानव समाज देश एवं जाति के विकास एवं प्रगति के लिये आकर्षण भीड़ प्रदान करती है।

अत: प्रत्येक देश से यह अपेक्षा है कि वह मानसिक रूप से स्वस्थ्य एवं सृजनात्मक विद्यार्थियों का सृजन करे। और उन्हें उपर्युक्त पर्यावरण प्रदान कर उनकी शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबन्ध कर उनकी प्रतिभा विकसित करने का सुअवसर प्रदान करे। मानसिक रूप से स्वास्थ्य एवं सृजनात्मक विद्यार्थी भविष्य

में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्यक्तियों को निर्देशित करने तथा जाति, समाज एवं राष्ट्र को सफलता एवं प्रगति के शिखर पर ले जाने में सहायक हो सकेगे।

मानसिक स्वास्थ्यः-

'स्वास्थ्य' अथवा 'स्वस्थता' शब्द की चर्चा होते ही व्यक्ति की शारीरिक दशा की ओर ध्यान जाता है तथा यह समझा जाता है कि स्वस्थ व्यक्ति हर प्रकार से रोगमुक्त एवं हष्ट-पुष्ट होता है। परन्तु वास्तव में स्वास्थ्य या स्वस्थता शब्द केवल शारीरिक दशा के लिये ही प्रयुक्त नही होता वरन् मानसिक दशा के लिये भी समान रूप से प्रयुक्त होता है। शारीरिक स्वास्थ्य के समान ही व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य भी होता है। कुछ व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ्य होते है तथा कुछ व्यक्ति मानसिक रूप से अस्वस्थ होते है।

मानसिक स्वास्थ्य के कारकः-

मानसिक व्यवधान उत्पन्न करने वाले प्रमुख कारक निम्नलिखित है-

1. लगातार सामाजिक और आर्थिक दबाव
2. जैविक कारक
3. सामान्य मानसिक स्वास्थ्य विकार
4. अभिघातजन्य तनाव विकार (PTSD) के बाद
5. मनोव्यवस्था सम्बन्धी विकार
6. सिजोफ्रेनिया विकार

मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ एवं परिभाषाः-

मानसिक स्वास्थ्य व्यक्ति की एक दशा-विशेष का घोतक है। यह व्यक्ति की वह दशा है। जिसमें उसका वाह्य व्यवहार एवं मानसिक स्थिति सामान्य होती है। मानसिक स्वास्थ्य का सम्बन्ध अनेक बातों से होता है, जब व्यक्ति के व्यक्तित्व सम्बन्धी समस्त पहलू पूर्ण रूप से सही है, तब उस व्यक्ति को पूर्ण रूप से स्वस्थ माना जायेगा। व्यक्तित्व के किसी भी पक्ष के अव्यवस्थित एवं असामान्य होते ही व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य विगड़ जाता है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति जीवन की विभिन्न समस्याओं से सरलता से समायोजन कर सकता है।

मानसिक रूप से स्वस्थ्य व्यक्ति को अग्र लक्षण पाये जाते है।

- आत्म-निरीक्षण
- सामंजस्यता
- जीवन में नियमितता
- परिपक्वता
- सर्वांग जीवन
- अपने व्यवसाय से सन्तुष्ट
- सामाजिक सामजंस्यता

मानसिक अस्वस्थताः-

मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन ही अव्यवस्थित तथा असन्तुलित हो जाता है। ऐसा व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में समायोजन नही कर पाता तथा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में असफल रहता है। सामान्य रूप से वह अपनी असफलता का उत्तरदायी अपने आप को नही स्वीकार करता तथा अपनी असफलता का दोषी अन्य व्यक्तियों को ठहराता है और परिस्थितियों को प्रतिकूल कहकर स्वयं को दोषमुक्त करने का प्रयास करता है। इसके अतिरिक्त मानसिक रुप से अस्वस्थ व्यक्ति अपने मुख्य व्यवसाय को न तो अधिक महत्व ही देता है और न ही उसमें रुचि लेता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मानसिक अस्वस्थता व्यक्ति की वह भावपूर्ण स्थिति है जिसमें वह न तो सामान्य व्यवहार करता है और न ही सामान्य चिन्तन। मानसिक रुप से अस्वस्थ व्यक्ति न स्वयं सुखी एवं सन्तुष्ट रहता है और न ही अपने व्यवहार से दूसरो को सन्तुष्ट रख पाता है।

मानसिक अस्वस्थता के प्रकारः-

व्यवस्थित अध्ययन के लिये मानसिक अस्वस्थता के मुख्य प्रकारों या रुपों का उल्लेख करना अनिवार्य है उन्हें मानसिक अस्वस्थता के लक्षण भी कहा जा सकता है-

1. यौन-विकृतियाँ
2. सामान्य जीवन में विकृतियाँ
3. मनोस्नायविक विकृतियाँ
4. मनोविकृतियाँ

मानसिक अस्वस्थता का एक रुप समाज-विरोधी व्यक्तित्व भी माना जा सकता है। इस वर्ग के व्यक्ति समाज के निर्धारित मानदण्ड़ों के विरुद्ध जानबूझकर व्यवहार करते है। वास्तव में समाज विरोधी व्यक्ति जानता है कि अन्य व्यक्ति उससे क्या आशा रखते है। परन्तु वह जानबूझकर दुसरे व्यक्तियों की आषाओं के विरुद्ध कार्य करता है। वह सामान्य रुप से आज्ञा-पालन नही करता, झगड़ा करता है तोड़-फोड़ करने वाला होता है। वह दूसरों को सताता है और दूसरो को दुख: देकर स्वयं व्यक्तिगत् आनन्द प्राप्त करता है।

मानसिक अस्वस्थता के निदान के उपाय:-

मानसिक अस्वस्थता के विस्तृत अध्ययन के लिये मानसिक अस्वस्थता का निदान आवश्यक होता है। इस उद्देश्य से मानसिक अस्वस्थता के कारणों को जानने के लिये व्यक्ति के व्यक्तित्व से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण सूचनाओं की जानकारी प्राप्त करनी आवश्यक है।

- व्यक्ति की शारीरिक दशा
- पारिवारिक दश
- शैक्षिक दशा
- सामाजिक दशा
- आर्थिक दशा
- व्यावसायिक दशा
- व्यक्तित्व सम्बन्धी लक्षण
- दूषित वातावरण
- आनुवंशिकता
- अन्त: स्रावी ग्रन्थियॉ
- शारीरिक अपगंता
- शारीरिक पीड़न
- पारिवारिक कारक
- विद्यालयी कारक

उक्त दशाओं को दृष्टिगत् रखते हुये मानसिक अस्वस्थता का निदान किया जा सकता है। मानसिक अस्वस्थता का उपचार निम्न विधियों द्वारा किया जा सकता है।

- मनो-अभिनय विधि (Psycho-Drama)
- सामूहिक चिकित्सा पद्धति
- व्यावसायिक चिकित्सा पद्धति
- निद्रा चिकित्सा पद्धति
- मनोविश्लेषण
- अघात चिकित्सा पद्धति
- सुझाव एवं संकेत पद्धति
- सम्मोहन पद्धति
- पुनर्षिक्षण पद्धति
- शल्य चिकित्सा पद्धति

कोई भी व्यक्ति मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के नियमों एवं निर्देशों का पालन करके अपना मानसिक सन्तुलन बनाये रख सकता है। नियमित जीवन, पर्याप्त व्यायाम एवं योगाभ्यास तथा जीवन के प्रति सर्वांगीण दृष्टिकोण अपनाकर व्यक्ति अपना मानसिक सन्तुलन बनाये रख सकता है। तथा मानसिक अस्वस्थता से बच सकता है।

शैक्षिक निष्पादन

विद्यार्थियों की निरन्तर विकसित होती हुई योग्यताओं का मापन करना तथा उनको आगे बढने के लिये निष्पक्ष मूल्यांकन आवश्यक होता है। विद्यार्थी निश्चित समय में कितना ज्ञान किस रुप में प्राप्त किया है। जीवन की परिस्थितियों में उसे कहाँ तक स्थानान्तरित किया है। इत्यादि की जाँच शैक्षिक निष्पादन द्वारा की जाती है। शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति विद्यालयों में निश्चित पाठ्यक्रम के द्वारा की जाती है शिक्षक समय-समय पर यह जानने का प्रयास करता है कि कक्षा में दिये गये ज्ञान विद्यार्थियों में कहाँ तक ग्रहण कर लिया है। इस तरीके घटा शिक्षक विद्यार्थियों के शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये प्रेरित करता है। शैक्षिक निस्पादन वह परीक्षण है। जिसका निर्माण ज्ञान समूह में कौशल के मापन के लिये किया जाता है। विद्यालय में हम छात्रों को नवीन ज्ञान

प्राप्त करने के लिये शिक्षण कार्य करते है। और आशा करते है, कि नवीन ज्ञान की प्राप्ति से छात्रों को अपने भावी जीवन में समस्याओ से निपटने की क्षमता प्राप्त हो सके।

अतः कहा जा सकता है कि विभिन्न उपलब्धियों का केन्द्र बिन्दू शैक्षिक निष्पादन ही है। विभिन्न कक्षाओं के लिये पाठ्यक्रम में निर्धारित विषयवस्तु का अध्ययन करने वाले अध्यापक के लिये यह आवश्यक होता है कि वे यह जानने का प्रयास करे कि विषय में छात्र की क्या उपलब्धि हुई। अध्यापक अपनी कक्षा के प्रत्येक छात्र के विषय में यह जानने का प्रयास करे कि छात्रों में विषय सम्बन्धी ज्ञान किस सीमा तक प्राप्त कर लिया है। प्राप्त ज्ञान की मात्रा ही विद्यार्थियों का शैक्षिक निष्पादन कहलाता है।

छात्रों द्वारा अर्जित ज्ञान बोध कौशल अनुप्रयोग आदि योग्यताओं की मात्रात्मक अभिव्यक्ति से है या शैक्षिक प्रक्रिया प्रारम्भ करने से पूर्व छात्रों द्वारा शैक्षिक उद्देश्य निर्धारित किये जाने है, और उन उद्देश्यों को जिस सीमा तक प्राप्त किया है यही उसकी शैक्षिक निष्पादन को बताता है। शैक्षिक निष्पादन कक्षा के सम्पूर्ण पाठ्यचर्या के विद्यार्थियों द्वारा किया गया प्रयास ही शैक्षिक निष्पादन है। कक्षा के सम्पूर्ण पाठ्यचर्या के विद्यार्थियों द्वारा किया गया प्रयास ही शैक्षिक निष्पादन है।

सम्बन्धित साहित्य का अर्थः-

सम्बन्धित साहित्य से तात्पर्य अनुसंधान की समस्या से सम्बन्धित उन सभी प्रकार की पुस्तकों, ज्ञान-कोशों, पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध-प्रबन्धों एवं अभिलेखों आदि से है, जिनके अध्ययन से अनुसंधानकर्ता को अपनी समस्या के चयन, परिकल्पनाओं के निर्माण, अध्ययन की रुपरेखा तैयार करने एवं कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है।

पाल रतन सिरियोग (2018): ''विश्व स्तर पर विश्वविद्यालय के छात्रों के बीच मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों की बढ़ती आवृत्ति और गम्भीरता के साथ-साथ जापानी विश्वविद्यालय के छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य पर सीमित संसाधनों के साथ इस क्रास सेक्षनल अध्ययन में 03 विश्वविद्यालय के कुल 441 स्नातक छात्र में से लिये (इनके आत्मसम्मान, पारिवारिक आर्थिक स्थिति, लचीलापन व स्कूल के वर्ष पर अध्ययन हुये। आत्मसम्मान व परिवार की स्थिति चिन्ता से सम्बन्धित थी और तनाव आत्मसम्मान, पारिवारिक आर्थिक स्थिति तथा स्कूल के वर्ष से जुड़े थे। विश्वविद्यालय प्रशासकों और संकाय पर अध्ययन सकारात्मक प्रभाव डालता है।''

खान जावेद (2012): ''प्रमुख अवसाद एक मनोदशा विकार है जो अपर्याप्तता, निराशा और घटी हुयी गतिविधियों, निराषावाद, एनाडोनिया और उदासी के भावना की विशेषता है जहाँ ये लक्षण जीवन की गम्भीर रुप से बाधित व प्रतिकूल रुप से प्रभावित करते है कभी-कभी इस हद तक कि आत्महत्या का प्रयास किया जाता है। अवसाद के कारणों की विस्तृत समझ और अतिरिक्त प्रभावी उपचारों के विकास की खोज अत्यधिक महत्वपूर्ण है। निदानिक व पूर्व नैदानिक अध्ययनों से पता चलता है कि अवसाद के पैया फिजिकल में तनाव एक प्रमुख मध्यस्थ होता है।''

संदर्भ

1. डॉ. एच.के. कपिल, सांख्यिकीय गणना, प्रकाशक- विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
2. डॉ. गुप्ता एवं गुप्ता, उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, द्वितीय संस्करण, प्रकाशन- शारदा पुस्तक भवन, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद
3. डॉ. पी.डी. पाठक, भारतीय शिक्षा एवं उसकी समस्याएं, प्रकाशक- विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
4. शर्मा आ.ए. (2001), शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया, उच्च शिक्षा संस्थान, मेरठ
5. भारतीय आधुनिक शिक्षा (2000), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली

झारखण्ड राज्य में तीव्र औद्योकीकरण की संभावनाएं और विकास

तबस्सुम आरा

पी.एच.डी., भूगोल विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

सारांश

खनिज संसाधन की बहुलता के कारण झारखण्ड में अनेक खनिज आधारित उद्योगों का विकास हुआ है। कुल खनिज सम्पदा का 40 प्रतिशत से अधिक भाग झारखण्ड राज्य में विद्यमान है। आर्थिक समीक्षा 2011-12 के अनुसार राज्य की कुल आय में औद्योगिक क्षेत्र का योगदान (स्थिर मूल्य 2004-05 पर) लगभग 41 प्रतिशत है। यहाँ स्थापित अधिकांश उद्योग खनिज आधारित हैं। अतः यहाँ खनिजों पर आधारित अनेक उद्योग-धंधों का विकास हुआ है। टाटा आयरन एंड स्टील कम्पनी (TISCO), टाटा इंजीनियरिंग एवं लोकोमोटिव कम्पनी (TELCO), सिंदरी फर्टिलाइजर, हैवी इंजीनियरिंग कॉर्पोरेशन (HEC) राँची यहाँ के प्रमुख उद्योग हैं। यहाँ उत्पादित किए जाने वाले खनिज पदार्थों में लौह-अयस्क, मैंगनीज, कोयला और डोलोमाइट की बहुलता ने लौह-इस्पात उद्योग के विकास के लिए ठोस आधार प्रदान किया है। यहाँ ताँबा, गंधक, एस्बेस्टस, बॉक्साइट, अभ्रक, यूरेनियम तथा जस्ता आदि के उत्पादन के फलस्वरूप ताँबा उद्योग, विद्युत यंत्र उद्योग तथा एल्यूमीनियम उद्योग जैसे अनेक उद्योगों की स्थापना संभव हुई है।

प्रस्तुत शोध लेख में झारखण्ड राज्य में औद्योगीकरण की संभावना और विकास पर चर्चा की गई है।

मूल शब्दः झारखण्ड, खनिज संसाधन, खनिज आधारित उद्योग, विकास, उद्योग नीति, रांची, जमशेदपुर

प्रस्तावना

झारखण्ड पूर्वी भारत का एक राज्य है। राँची इसकी राजधानी है। झारखण्ड की सीमाएँ पूर्व में पश्चिम बंगाल, पश्चिम में उत्तर प्रदेश एवं छत्तीसगढ़, उत्तर में बिहार और दक्षिण में ओडिशा से लगती है। लगभग सम्पूर्ण प्रदेश छोटानागपुर के पठार पर अवस्थित है। सम्पूर्ण भारत में वनों के अनुपात में प्रदेश एक अग्रणी राज्य माना जाता है। क्षेत्रफल के आधार पर यह 15वां सबसे बड़ा राज्य है, और जनसंख्या के आधार पर 14वां सबसे बड़ा राज्य है। राज्य की आधिकारिक भाषा हिन्दी है। बिहार के दक्षिणी भाग को विभाजित कर झारखण्ड प्रदेश का सृजन किया गया है। इस प्रदेश के अन्य बड़े शहरों में धनबाद, बोकारो एवं जमशेदपुर शामिल हैं।

झारखंड के प्राकृतिक संसाधन, नीतिगत प्रोत्साहन और स्थान-विशिष्ट लाभ खनन और धातु निष्कर्षण, इंजीनियरिंग, लोहा और इस्पात, और रसायन जैसे क्षेत्रों में निवेश का समर्थन करते हैं। मौजूदा कीमतों पर, झारखंड का कुल जीएसडीपी 2021-22 में 3,61,381 करोड़ रुपये (49.48 बिलियन अमेरिकी डॉलर) रहा, जो वित्त वर्ष 2020 की तुलना में 5% अधिक है।

झारखंड कोयला (भारत के भंडार का 27.3%), लौह अयस्क (भारत के भंडार का 26%), तांबा अयस्क (भारत के भंडार का 18.5%), यूरेनियम, अभ्रक, बॉक्साइट, ग्रेनाइट, चूना पत्थर, चांदी, ग्रेफाइट, मैग्नेटाइट और डोलोमाइट जैसे खनिज संसाधनों से समृद्ध है। चूंकि झारखंड में देश की लगभग 40% खनिज संपदा है, इसलिए इसके व्यापक खनिज संसाधन खनन, धातु और संबंधित क्षेत्रों को निवेश के लिए विशेष रूप से आकर्षक बनाते हैं। झारखंड भारत का एकमात्र राज्य है जो कोकिंग कोल, यूरेनियम और पाइराइट का उत्पादन करता है। राज्य कोयला, अभ्रक, कायनाइट और तांबे का भी प्रमुख उत्पादक है। झारखंड भारत में टसर रेशम (एक गैर-शहतूत रेशम) का सबसे बड़ा उत्पादक है।

राज्य के कोयला भंडार का अनुमान लगभग 33 बिलियन टन है। देश में उत्पादित कुल स्टील का 20-25% झारखंड में उत्पादित होता है। वित्त वर्ष 22 में झारखंड ने 72 हजार टन चूना पत्थर का उत्पादन किया, जिसकी कीमत 3.5 करोड़ रुपये (US+ 0.42 मिलियन) थी।

राज्य देश में टसर रेशम (एक गैर-शहतूत रेशम) का सबसे बड़ा उत्पादक है, जिसकी कुल उत्पादन में 76.4% हिस्सेदारी है। 2018-19 में, राज्य में कच्चे रेशम का उत्पादन 2,375 मीट्रिक टन था।

उद्योग और आंतरिक व्यापार संवर्धन विभाग (डीपीआईआईटी) के अनुसार, वित्त वर्ष 2021 में झारखंड में संचयी प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) प्रवाह 792 मिलियन अमेरिकी डॉलर था और अक्टूबर 2019 और मार्च 2021 के बीच 2.64 बिलियन अमेरिकी डॉलर था। 2019 में, दायर आईईएम की संख्या 8 थी और प्रस्तावित निवेश की राशि 382 करोड़ रुपये (75.46 मिलियन अमेरिकी डॉलर) थी।

2019-20 में राज्य से कुल निर्यात 1,168.01 मिलियन अमेरिकी डॉलर रहा। 2020-21 में राज्य से निर्यात 1,622.31 मिलियन अमेरिकी डॉलर रहा।

झारखंड के मुख्य खनिज भंडार

झारखंड भारत का एक खनिज समृद्ध राज्य है। यह राज्य कोयला, लौह,अभ्रक, बॉक्साइट, चूना पत्थर, तांबा, ग्रेफाइट, और कई अन्य खनिजों का घर है।

- कोयला : झारखंड भारत का सबसे बड़ा कोयला उत्पादक राज्य है। यहाँ देश के कुल कोयला भंडार का लगभग 25% पाया जाता है। झारखंड में कोयले के कई प्रमुख क्षेत्र हैं, जिनमें झरिया, बोकारो, जामाडोबा, और पकरी बरवाडीह शामिल हैं।[8]
- लौह अयस्क: झारखंड भारत का दूसरा सबसे बड़ा लौह अयस्क उत्पादक राज्य है। यहाँ देश के कुल लौह अयस्क भंडार का लगभग 17% पाया जाता है। झारखंड में लौह अयस्क के प्रमुख क्षेत्र हैं, जिनमें नोआमुंडी, लोहरदगा, और मधुपुर शामिल हैं।
- अभ्रक: झारखंड भारत का सबसे बड़ा अभ्रक उत्पादक राज्य है। यहाँ देश के कुल अभ्रक भंडार का लगभग 80% पाया जाता है। झारखंड में अभ्रक के प्रमुख क्षेत्र हैं, जिनमें कोडरमा, गिरिडीह, और रांची शामिल हैं।
- बॉक्साइट: झारखंड भारत का दूसरा सबसे बड़ा बॉक्साइट उत्पादक राज्य है। यहाँ देश के कुल बॉक्साइट भंडार का लगभग 10% पाया जाता है। झारखंड में बॉक्साइट के प्रमुख क्षेत्र हैं, जिनमें चाईबासा और खूंटी शामिल हैं।

झारखंड के खनिज भंडार राज्य की अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण हैं। इन खनिजों से राज्य को भारी आय होती है, और ये राज्य के औद्योगिक विकास में भी योगदान देते हैं।

अर्थतन्त्र

झारखण्ड की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से खनिज, वन सम्पदा और पर्यटन से निर्देशित है। नीति आयोग के 'राष्ट्रीय बहुआयामी गरीबी सूचकांक आधार रेखा रिपोर्ट' के अनुसार, राज्य में 46.16 प्रतिशत लोग गरीब हैं। वर्ष 2018-19 में झारखण्ड का सकल राज्य घरेलू उत्पाद 2011-12 की कीमतों पर 2,29,274 लाख करोड़ रुपए था।

वित्त वर्ष 25 में झारखंड की जीडीपी 7.7% बढ़ने का अनुमान: आर्थिक सर्वेक्षण इसमें कहा गया है कि मुद्रास्फीति दर ज्यादातर छह प्रतिशत की सीमा के भीतर रही है, जो आरबीआई की निर्धारि एवं 2020-21 के वर्षो के विपरीत परिस्थितियों के बाद राज्य का विकास अब रफ्तार पकड़ चुका हैआगामी वर्ष (2024-25) में राज्य के विकास दर के 7.5 प्रतिशत रहने का अनुमान हैआने वाले वर्षो में इसके और तीव्र होने का अनुमान है।

देश के अन्य राज्यों के तरह झारखंड की अर्थव्यस्था में भी कृषि का एक महत्वपूर्ण स्थान हैराज्य के करीब आधे कामगार कृषि पर आश्रित हैं और राज्य के विकास दर में इसका योगदान 13.8 प्रतिशत है, लेकिन राज्य का यह क्षेत्र पिछड़ा रहा है। राज्य का केवल 17 प्रतिशत भाग शुद्ध बोया गया क्षेत्र है और उसके ज्यादातर भाग में सिर्फ एक फसल होती हैइसका शुद्ध बोया गया क्षेत्र करीब 1387 हजार हेक्टेअर है, लेकिन इसके केवल 426 हजार हेक्टेअर भूमि पर ही एक से ज्यादा फसल होती है। इस तरह से इसकी फसल की सघनता मात्रा 130.7 हैकृषि क्षेत्र में इसके उत्पादन एवं उत्पादकता में भी सुधार की काफी गुंजाइश है।

इस क्षेत्र के उत्पादन और उत्पादकता में सुधार से राज्य के विकास को कई तरह से गति मिलेगी, पहला- यह राज्य की आय को प्रत्यक्ष रूप से बढ़ाएगा। दूसरा- इस क्षेत्र के उत्पादन की वृद्धि से खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों एवं अन्य कृषि आश्रित उद्योगों को कच्चे पदार्थ आसानी से मिल जायेगा, जिससे इस राज्य में इस तरह के उद्योगों का विकास होगा और तीसरा- कृषि क्षेत्र के विकास से इस क्षेत्र में लगे कामगारों की आय में वृद्धि होगी और इस प्रकार उनके लिए आवश्यक वस्तुओं की मांग बढ़ेगी। इन वस्तुओं की मांग बढ़ने से ऐसे उत्पादों का उत्पादन करने वाले क्षेत्रों के उत्पादन में भी तेजी आयेगी।

कृषि के विकास के लिए सिंचाई के क्षेत्र का विस्तार किया जाना आवश्यक हैइसके विस्तार से शुद्ध बोये गये क्षेत्र का विस्तार होगा, ज्यादा बड़े क्षेत्र में एक से ज्यादा फसल का उत्पादन होने लग जायगा एवं कृषि की उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि होगी। सिंचाई के क्षेत्र के विकास के लिए सिंचाई के नए स्रोतों (जिसमें प्रमुख, मध्यम और लघु सिंचाई परियोजनाओं का निर्माण शामिल है) के निर्माण की दिशा में कार्य किया जाना चाहिए। चल रही सिंचाई परियोजनाओं को पूरा किया जाना चाहिए। सिंचाई के खराब या निष्क्रिय स्रोतों की मरम्मत की जानी चाहिए। एवं खेत में जल के उपयोग की दक्षता में सुधार और पानी की बरबादी को कम करने के लिए ड्रिप सिंचाई और स्प्रिंकलर जैसी जल बचत प्रौद्योगिकियों का कार्यान्वयन किया जाना चाहिए। इसके फलस्वरूप प्रति बूंद अधिक फसल का उत्पादन संभव हो सकेगा। इनके अतिरिक्त नमी संरक्षण और पानी का संरक्षण की विधि को भी ज्यादा से ज्यादा अपनाने की जरूरत है।

राज्य के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 17 प्रतिशत हिस्सा बंजर भूमि और वर्तमान परती भूमि हैइन भूमियों को भूमि समतलीकरण, भूमि विकास और भूमि विकास के उपयुक्त हस्तक्षेपों के माध्यम से खेती के तहत लाया जा सकता हैइससे भी राज्य के शुद्ध फसल क्षेत्र मे वृद्धि होगी एवं कृषि के उत्पादन एवं उत्पादकता मे वृद्धि होगीधान की गोड़ा किस्म, दाल, गोंदली, मडुआ (रागी या फिंगर मिलेट), और बाजरा जैसी फसलों में सूखा प्रतिरोधी क्षमता होती हैकम बारिश में भी ये फसल आसानी से हो जाते हैंऐसी फसलों के उत्पादन को प्रोत्साहित कर असामान्य मानसून की परिस्थिति से भी आसानी से निपटा जा सकता है। फसल उत्पादन की श्री विधि भी कम पानी में अच्छी फसल उत्पादन को सुनिश्चित करने में कारगर होगामिट्टी की उर्वरता को बनाये रखने और वर्तमान परती को कम करने के लिए फसल रोटेशन एक कारगर विधि हो सकती है। बागवानी के विकास, जिसमें फल एवं सब्जी का उत्पादन सम्मिलित है, के द्वारा भी राज्य में कृषि विकास संभव हो सकेगा।

निर्माण भी एक अत्यधिक श्रम-गहन गतिविधि है और इसका अन्य आर्थिक गतिविधियों के साथ घनिष्ठ संबंध है। राज्य में अवसंरचना को सुदृढ़ कर राज्य के विकास दर को तीव्रता प्रदान की जा सकती हैशैक्षिक संस्थानों और अस्पतालों/स्वास्थ्य केंद्रों के विकास के के द्वारा भी इस राज्य के विकास को गति प्रदान की जा सकती है। राज्य और कुछ पड़ोसी राज्यों के छात्र बड़ी संख्या में शिक्षा, विशेष रूप से उच्च शिक्षा के लिए देश के अन्य हिस्सों (विशेष

रूप से दिल्ली, महाराष्ट्र, कर्नाटक और तमिलनाडु) जाते हैं। इसी तरह से, इस राज्य के लोगों (रोगी और उनके परिचारक) के साथ पड़ोसी राज्यों के लोग बड़ी संख्या में देश के अन्य हिस्सों में (विशेष रूप से दिल्ली, मुंबई, बेंगलुरु, वेल्लोर और चेन्नई) चिकित्सा उपचार के लिए जाते हैं। इन दो क्षेत्रों का विकास इस राज्य को शिक्षा और चिकित्सा के लिए केंद्र बना सकता हैयह न केवल राज्य के लोगों के खर्च और कठिनाई को बचायेगा, बल्कि पड़ोसी राज्य के छात्रों और रोगियों (उनके परिचारकों सहित) को भी आकर्षित करेगा। यह इस राज्य में इनसे संबंधित कई अन्य तरह की आर्थिक गतिविधियों का सृजन करेगा।

निष्कर्ष

झारखंड में प्राकृतिक संसाधनों की एक विस्तृत विविधता है और यह अपने विशाल खनिज भंडार और मेहनती कार्यबल के कारण खनिज आधारित इकाइयों की स्थापना के लिए सबसे आकर्षक स्थलों में से एक है। झारखंड के भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 30% अत्यधिक जैव-विविधता वाले जंगलों से ढका हुआ है, इस प्रकार लघु वनोपज आधारित उद्योगों और आयुष केंद्रित इकाइयों के विकास के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करता है। राज्य में प्रमुख औद्योगिक घरानों, कई प्रतिष्ठित शैक्षणिक संस्थानों और प्रबंधन, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उत्कृष्टता के केंद्रों की समृद्ध उपस्थिति है।

झारखंड में उद्योंगों के विकास के लिए पर्याप्त संभावनाएं हैंयहां उद्योगों के लिए माकूल वातावरण औ औद्योगिक निवेश को बढावा देने के लिए निवेशकों को सुविधाएं और रियायतें देने की दिशा में सरकार लगातार प्रयास कर रही है.

झारखंड में कृषि आधारित उद्योंगों खासकर फूड प्रोसेसिंग के क्षेत्र में काफी संभावनाएं हैंयहां भी निवेश को बढ़ावा देने की जरूरत हैयहां भी सिंगल विंडो सिस्टम को कारगर तरीके से लागू किया जाए, ताकि यहां आने के लिए निवेशक आकर्षित हो सकें.

फरवरी 2021 में, राज्य में विकासात्मक चुनौतियों का समाधान करने के लिए सीएसआर निवेश और सर्वोत्तम प्रबंधन प्रथाओं को आकर्षित करने हेतु अनुकूल वातावरण बनाने के लिए सीएसआर नीति शुरू की गई थी।

सितंबर 2019 में झारखंड के साहिबगंज में निर्मित दूसरे मल्टी मॉडल टर्मिनल का उद्घाटन किया गया, जिसका निर्माण जल मार्ग विकास परियोजना (जेएमवीपी) के तहत गंगा नदी पर किया गया था।

दो विशेष आर्थिक क्षेत्र अधिसूचित किए गए हैं, पहला आदित्यपुर (जमशेदपुर से सटा हुआ) में ऑटोमोटिव उद्योग के लिए और दूसरा अडानी पावर (झारखंड) लिमिटेड में विद्युत उद्योग के लिए।

अप्रैल 2019 तक, 13,713 बस्तियाँ प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (पीएमजीएसवाई) के अंतर्गत पात्र थीं, जिनमें से 11,065 को मंजूरी दी गई और 10,661 बस्तियों को जोड़ा गया।

अप्रैल 2021 तक, झारखंड की कुल स्थापित बिजली उत्पादन क्षमता 2,547.87 मेगावाट थी, जिसमें निजी उपयोगिताओं के तहत 636.36 मेगावाट, 554.05 मेगावाट (राज्य उपयोगिताएँ) और 1,357.46 मेगावाट (केंद्रीय उपयोगिताएँ) शामिल थीं।

झारखंड की राजधानी रांची, तीव्र गति से बढ़ रही है और विस्तार कर रही है। वृद्धि हुई आर्थिक गतिविधियों और बुनियादी ढांचे के विकास के कारण व्यापक शहरीकरण हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप शहरी और अर्ध-शहरी क्षेत्रों का विस्तार हो रहा है।

आसानी से उपलब्ध जनशक्ति, प्रतिष्ठित तकनीकी, प्रबंधन और शैक्षिक संस्थानों, अच्छी परिवहन और संचार सुविधाएं और बिजली की स्थिति में सुधार, उद्यमियों के लिए आरआईए (रांची औद्योगिक क्षेत्र) क्षेत्र आकर्षक बनाता है लोगों के लाभ के लिए पर्याप्त रोजगार, ढांचागत और संस्थागत सुविधाओं को उत्पन्न करने के प्रयास किए जा रहे हैं। शहरीकरण के इस युग में, औद्योगिकीकरण और आधुनिकीकरण, वर्तमान पर्यावरण को संरक्षित और संरक्षित करने के लिए नहीं भूलना चाहिए।

सन्दर्भ

1. Desai V(2002), Small Scale Industries and Entrepreneurship DevelopmentMumbai, India: Himalaya Publishing House
2. Kalyani W, Chandralekha K(2002) Association between socioeconomic demographic profile and involvement of women entrepreneurs in the enterprise management, The Journal of Entrepreneurship
3. Government of India (2017),Economic Survey, Ministry of FinanceGovernment of Jharkhand (2017) Jharkhand Economic Survey 2016-2017, Planning-CumFinance Department (Finance) Government of Jharkhand
4. India (2017),Publication Division, New Delhi
5. Shiralashetti ASand Hugar S.S.(2207)Problems and Prospects of Women Entrepreneurship in North Karnataka District: A Case Study
6. The ICFAI Journal of Entrepreneurship Development VolI VI NO2
7. Singh U(20015) Government Initiatives Towards Skilling India
8. Jharkhand Journal of Social Development, VolVIII, No1 & 2
9. UNESCO, (2016), Youth and Skills: Putting Education to Work
10. www.jharkhand.gov.in
11. https:èkèkwww.ibef.orgèkindustryèkjharkhand-presentation#:~:text=Jharkhand%20accounts%20for%2020-25,share%20in%20the%20total%20output.
12. www.msde.gov.in www.nsda.gov.in www.nsdcindia.org

1857 के स्वतंत्रता संग्राम में रानी लक्ष्मीबाई का योगदानः एक विश्लेषण

अर्चना यादव

परास्नातक (इतिहास)

सारंशिका

1857 का स्वतंत्रता संग्राम भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसने ब्रिटिश शासन के खिलाफ भारतीय जनमानस में स्वतंत्रता की भावना को प्रज्वलित किया। इस संग्राम में रानी लक्ष्मीबाई का योगदान अद्वितीय और प्रेरणादायक था। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध अपने राज्य की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए वीरतापूर्वक संघर्ष किया। उनका नेतृत्व, साहस, और युद्ध कौशल भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक प्रेरणा स्रोत बने। रानी लक्ष्मीबाई ने 'लैप्स की नीति' के खिलाफ अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ी और ब्रिटिश सेना के खिलाफ झांसी के किले की रक्षा में अग्रणी भूमिका निभाई। उन्होंने अपनी सेना में महिलाओं को भी शामिल किया और युद्ध के मैदान में अद्वितीय साहस का प्रदर्शन किया। 1857 के संग्राम के दौरान, रानी ने झांसी और ग्वालियर की लड़ाइयों में ब्रिटिश सेना को कड़ी टक्कर दी। रानी लक्ष्मीबाई का योगदान न केवल सैन्य दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण था, बल्कि उन्होंने भारतीय समाज में महिलाओं के लिए संघर्ष और नेतृत्व की एक नई परिभाषा दी। उनका बलिदान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में अमर हो गया और उन्होंने आने वाली पीढ़ियों को राष्ट्रप्रेम, साहस, और स्वतंत्रता की लड़ाई के लिए प्रेरित किया।

इस शोध पत्र में, रानी लक्ष्मीबाई के योगदान का मूल्यांकन करते हुए उनके सैन्य नेतृत्व, सामाजिक प्रभाव, और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ उनकी संघर्षशीलता का विश्लेषण किया गया है।

की वर्ड्सः स्वतंत्रता संग्राम, लैप्स की नीति, ब्रिटिश साम्राज्यवाद और राष्ट्र प्रेम इत्यादि

प्रस्तावना

1857 का स्वतंत्रता संग्राम भारतीय इतिहास का एक ऐसा क्षण था जिसने भारत में ब्रिटिश शासन के खिलाफ व्यापक जनविद्रोह की नींव रखी। यह संग्राम न केवल भारतीय जनता के भीतर गहराई से दबी स्वतंत्रता की आकांक्षा का प्रतीक था, बल्कि इसमें कई वीर पुरुषों और महिलाओं ने अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति दी। इस संघर्ष की नायिकाओं में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। रानी लक्ष्मीबाई ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ अपने साहस, नेतृत्व और वीरता से न केवल झांसी की रक्षा की, बल्कि समस्त भारत के स्वतंत्रता सेनानियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन गई।

रानी लक्ष्मीबाई का जीवन संघर्ष और समर्पण की गाथा है। 1835 में जन्मी मणिकर्णिका ने कम उम्र में ही घुड़सवारी, तलवारबाजी और युद्ध कौशल में प्रवीणता हासिल की। उनका विवाह झांसी के राजा गंगाधर राव से हुआ, लेकिन राजा की मृत्यु के बाद, अंग्रेजों ने 'लैप्स की नीति' के तहत झांसी पर कब्जा करने का प्रयास किया। रानी लक्ष्मीबाई ने इस अन्यायपूर्ण नीति का दृढ़ता से विरोध किया और अपने राज्य की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए ब्रिटिश सेना के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया।

1857 का स्वतंत्रता संग्राम, जिसे 'सिपाही विद्रोह' या 'प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' भी कहा जाता है, कई स्थानों पर फैला हुआ था। रानी लक्ष्मीबाई ने इस संग्राम में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और अपनी वीरता के लिए जानी गई। उनका सैन्य कौशल और नेतृत्व क्षमता असाधारण थी। उन्होंने न केवल अपनी सेना का गठन किया, बल्कि महिलाओं को भी अपनी सेना में स्थान दिया। रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों के खिलाफ कई मोर्चों पर युद्ध लड़ा, विशेष रूप से झांसी की लड़ाई और ग्वालियर की लड़ाई में उनका नेतृत्व अद्वितीय था।

रानी लक्ष्मीबाई का योगदान इस संदर्भ में भी महत्वपूर्ण है कि उन्होंने भारतीय महिलाओं के लिए संघर्ष का नया मार्ग प्रशस्त किया। उस समय जब महिलाओं को सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों से वंचित रखा जाता था, रानी लक्ष्मीबाई ने अपने साहस और वीरता से यह सिद्ध कर दिया कि महिलाएं भी राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों की आहुति दे सकती हैं। उनका जीवन उस सामाजिक और सांस्कृतिक ढांचे को चुनौती देता है जो महिलाओं को सीमित भूमिकाओं में बांधता था।

इस शोध पत्र में, रानी लक्ष्मीबाई के योगदान का मूल्यांकन 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के व्यापक संदर्भ में किया जाएगा। इसमें उनके सैन्य नेतृत्व, रणनीतिक कौशल, और सामाजिक प्रभाव का विश्लेषण किया जाएगा। साथ ही, यह भी देखा जाएगा कि कैसे उनका संघर्ष ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ एक बड़े

आंदोलन का हिस्सा बना और कैसे उनके बलिदान ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की दिशा को प्रभावित किया। रानी लक्ष्मीबाई का संघर्ष न केवल एक स्थानीय विद्रोह था, बल्कि यह भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में महिलाओं के साहस और बलिदान का प्रतीक बन गया।

अंतत:, रानी लक्ष्मीबाई का जीवन और बलिदान यह संदेश देता है कि स्वतंत्रता की लड़ाई में न केवल पुरुषों का बल्कि महिलाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान है। उनके साहसिक नेतृत्व और संघर्ष ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को नई दिशा दी और वे सदैव भारतीय इतिहास में एक वीरांगना के रूप में स्मरण की जाती रहेंगी।

रानी लक्ष्मीबाई का सैन्य नेतृत्व

रानी लक्ष्मीबाई का सैन्य नेतृत्व 1857 के स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्वपूर्ण और प्रेरणादायक पहलू था। उनके साहस और युद्ध कौशल ने उन्हें उस समय की सबसे प्रमुख महिला योद्धाओं में से एक बना दिया। ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ उनका सैन्य नेतृत्व न केवल असाधारण था, बल्कि इसने महिलाओं की भूमिका को भी पुन: परिभाषित किया। जब ब्रिटिश सरकार ने 'लैप्स की नीति' के तहत झांसी पर कब्जा करने का प्रयास किया, तो रानी लक्ष्मीबाई ने बिना किसी डर के इसका विरोध किया और झांसी की स्वतंत्रता के लिए युद्ध की तैयारी शुरू की। उन्होंने अपनी सेना को संगठित किया और किले की सुरक्षा को मजबूत किया। अपने नेतृत्व में उन्होंने सेना में महिलाओं को भी शामिल किया, जो उस समय की सामाजिक मान्यताओं के खिलाफ था। रानी ने झलकारी बाई जैसी वीरांगनाओं को अपनी सेना में महत्वपूर्ण स्थान दिया, जिन्होंने युद्ध के दौरान महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। रानी लक्ष्मीबाई के सैन्य नेतृत्व की सबसे बड़ी विशेषता उनकी युद्ध रणनीतियों में दिखाई देती है। उन्होंने घुड़सवारी, तलवारबाजी और तोपखाने का कुशलतापूर्वक इस्तेमाल किया। झांसी के किले में ब्रिटिश सेना के खिलाफ युद्ध करते हुए उन्होंने अपने सैनिकों को प्रेरित किया और स्वयं युद्ध के मैदान में अग्रिम पंक्ति में लड़ीं। उन्होंने यह सिद्ध किया कि एक सक्षम नेता को केवल आदेश देने वाला नहीं होना चाहिए, बल्कि उसे अपने सैनिकों के साथ खड़ा होना चाहिए।

1858 में जब सर ह्यू रोज के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना ने झांसी पर आक्रमण किया, तो रानी लक्ष्मीबाई ने किले की रक्षा में कोई कसर नहीं छोड़ी। कई दिनों तक चले इस युद्ध में उन्होंने बड़ी वीरता से अपनी सेना का नेतृत्व किया। अंग्रेजों की विशाल सेना और आधुनिक हथियारों के बावजूद रानी लक्ष्मीबाई ने अदम्य साहस का प्रदर्शन किया। अंतत: झांसी का किला अंग्रेजों के हाथों में चला गया, लेकिन रानी लक्ष्मीबाई ने हार नहीं मानी।झांसी से निकलने के बाद, रानी ने ग्वालियर की ओर कूच किया, जहां उन्होंने तात्या टोपे और अन्य क्रांतिकारियों के साथ मिलकर अंग्रेजों का सामना किया। उनके नेतृत्व में ग्वालियर की लड़ाई भी ऐतिहासिक रही। 18 जून 1858 को कोटा की सराय में वीरगति प्राप्त करने तक उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई जारी रखी। रानी लक्ष्मीबाई का सैन्य नेतृत्व उस समय के लिए अद्वितीय था। उन्होंने साहस, दृढ़ संकल्प और नेतृत्व की मिसाल पेश की, जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक प्रेरणास्रोत बना। उनके नेतृत्व ने यह साबित किया कि महिलाएं न केवल घरेलू कार्यों तक सीमित हैं, बल्कि युद्ध और नेतृत्व में भी समान रूप से सक्षम हैं।

ग्वालियर की लड़ाई और रानी लक्ष्मीबाई का बलिदान

रानी लक्ष्मीबाई के जीवन की अंतिम और महत्वपूर्ण घटना ग्वालियर की लड़ाई थी, जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ साबित हुई। 1857 के विद्रोह के दौरान, रानी लक्ष्मीबाई ने झांसी को अंग्रेजों से बचाने के लिए वीरतापूर्वक संघर्ष किया, लेकिन जब झांसी अंग्रेजों के हाथों में चली गई, तो रानी ने हार नहीं मानी और विद्रोह को जारी रखने का निश्चय किया। इसके बाद उन्होंने ग्वालियर की ओर कूच किया, जो विद्रोहियों के लिए एक रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण स्थान था। ग्वालियर पर कब्जा करने का उद्देश्य अंग्रेजों के खिलाफ एक सुरक्षित और मजबूत आधार बनाना था, जहां से स्वतंत्रता संग्राम को नए सिरे से गति दी जा सके। रानी लक्ष्मीबाई ने ग्वालियर पहुंचकर तात्या टोपे और अन्य विद्रोहियों के साथ गठबंधन किया। उन्होंने ग्वालियर के महाराजा सिंधिया को हटाकर विद्रोहियों के पक्ष में ग्वालियर को नियंत्रित कर लिया। हालांकि, इस संघर्ष में सिंधिया ने ब्रिटिश सेना का समर्थन किया, जिससे ग्वालियर की लड़ाई और भी चुनौतीपूर्ण हो गई।अंग्रेजों ने ग्वालियर पर फिर से कब्जा करने के लिए अपनी सेना भेजी, जिसका नेतृत्व जनरल ह्यू रोज कर रहे थे। रानी लक्ष्मीबाई ने वीरतापूर्वक इस युद्ध का नेतृत्व किया और एक मजबूत प्रतिरोध किया। हालांकि, अंग्रेजों की सैन्य ताकत और आधुनिक हथियारों के सामने विद्रोहियों की स्थिति कमजोर पड़ने लगी। ग्वालियर की लड़ाई के दौरान रानी लक्ष्मीबाई ने बहादुरी का अद्वितीय प्रदर्शन किया। वे पुरुष वेश में घोड़े पर सवार होकर, तलवार और ढाल के साथ अंग्रेजों का सामना कर रही थीं। अंग्रेजों की बढ़ती सेना के बावजूद उन्होंने हार नहीं मानी और अंतिम समय तक अपने सैनिकों का हौसला बढ़ाती रहीं। 18 जून 1858 को ग्वालियर के पास कोटा की सराय में लड़ते हुए रानी लक्ष्मीबाई वीरगति को प्राप्त हुईं। उनकी मृत्यु भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए एक अपूरणीय क्षति थी, लेकिन उनका बलिदान स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में अमर हो गया। ग्वालियर की लड़ाई में रानी लक्ष्मीबाई का बलिदान यह दिखाता है कि उन्होंने न केवल अपने राज्य बल्कि पूरे भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया। उनका अदम्य साहस और वीरता भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक प्रेरणादायक प्रतीक बन गई, जिसने देशभर में स्वतंत्रता के लिए लड़ने वालों को प्रेरित किया।

रानी लक्ष्मीबाई का ऐतिहासिक महत्व

रानी लक्ष्मीबाई का ऐतिहासिक महत्व भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और समाज के सामाजिक ढांचे में परिवर्तन के संदर्भ में अत्यधिक महत्वपूर्ण है। 1857 के विद्रोह की प्रमुख नायिकाओं में से एक, रानी लक्ष्मीबाई ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष किया और अपने साहस, दृढ़ता और नेतृत्व क्षमता के लिए भारतीय इतिहास में अमर हो गईं। उनका योगदान सिर्फ एक क्षेत्रीय राज्य की रक्षा तक सीमित नहीं था, बल्कि उन्होंने भारतीय महिलाओं के लिए साहस और संघर्ष का एक नया आदर्श प्रस्तुत किया।

सबसे पहले, रानी लक्ष्मीबाई का ऐतिहासिक महत्व उनके असाधारण सैन्य नेतृत्व और वीरता में निहित है। जब अंग्रेजों ने 'लैप्स की नीति' के तहत झांसी पर कब्जा करने का प्रयास किया, तो उन्होंने न केवल इसका विरोध किया बल्कि अपने राज्य की रक्षा के लिए एक संगठित सेना का नेतृत्व भी किया। उन्होंने

घुड़सवारी, तलवारबाजी और युद्धकला में निपुण होकर खुद को एक योद्धा रानी के रूप में स्थापित किया। रानी लक्ष्मीबाई का यह सैन्य नेतृत्व और साहस उस समय की पारंपरिक सोच को चुनौती देता है, जब महिलाओं को युद्ध और राजनीतिक नेतृत्व में भाग लेने के योग्य नहीं माना जाता था।

दूसरे, रानी लक्ष्मीबाई का संघर्ष भारतीय महिलाओं के सामाजिक उत्थान का प्रतीक बन गया। उस समय जब भारतीय समाज महिलाओं को सीमित अधिकार और अवसर प्रदान करता था, लक्ष्मीबाई ने यह साबित किया कि महिलाएं भी नेतृत्व कर सकती हैं और राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए युद्ध लड़ सकती हैं। उनकी वीरता और बलिदान ने आने वाली पीढ़ियों की महिलाओं को प्रेरित किया और उन्हें सामाजिक रूढ़ियों से बाहर निकलने का हौसला दिया।

तीसरे, रानी लक्ष्मीबाई का ऐतिहासिक महत्व इस बात में है कि उन्होंने 1857 के स्वतंत्रता संग्राम को एक व्यापक जनांदोलन में बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके नेतृत्व ने झांसी को स्वतंत्रता संग्राम का एक प्रमुख केंद्र बनाया, और उनके संघर्ष ने देश के अन्य हिस्सों में भी विद्रोह की आग को भड़काने में योगदान दिया।

अंत में, रानी लक्ष्मीबाई का बलिदान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की प्रेरणादायक कथा बन गई। उनका नाम भारतीय इतिहास और संस्कृति में साहस, बलिदान और स्वतंत्रता के प्रतीक के रूप में जाना जाता है। उनकी गाथा साहित्य, कला और लोककथाओं में जीवित रही है और भारतीय समाज में वीरता और नारी शक्ति का प्रतीक बन गई है। इस प्रकार, रानी लक्ष्मीबाई का ऐतिहासिक महत्व न केवल एक योद्धा और नेता के रूप में है, बल्कि भारतीय महिलाओं के सामाजिक और राजनीतिक योगदान के पुनर्परिभाषा के रूप में भी है।

निष्कर्ष

1857 के स्वतंत्रता संग्राम में रानी लक्ष्मीबाई का योगदान भारतीय इतिहास के सबसे प्रेरणादायक और अद्वितीय अध्यायों में से एक है। उनका संघर्ष केवल एक राज्य, झांसी की रक्षा तक सीमित नहीं था, बल्कि उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ एक व्यापक आंदोलन का हिस्सा बनकर राष्ट्रीय स्वतंत्रता की भावना को प्रबल किया। रानी लक्ष्मीबाई ने अपने अद्वितीय साहस, सैन्य नेतृत्व और दूरदर्शिता से यह साबित किया कि भारतीय महिलाएं भी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। रानी लक्ष्मीबाई का योगदान विशेष रूप से इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि उन्होंने उस समय की सामाजिक और सांस्कृतिक रूढ़ियों को तोड़ा, जब महिलाओं को केवल घरेलू कार्यों तक सीमित रखा जाता था। उनका साहस और नेतृत्व भारतीय समाज में महिलाओं के उत्थान का प्रतीक बना। उन्होंने न केवल झांसी की स्वतंत्रता के लिए अंग्रेजों से लोहा लिया, बल्कि भारतीय महिलाओं के लिए एक नई प्रेरणा और साहस का स्रोत भी बनीं।रानी लक्ष्मीबाई का सैन्य नेतृत्व उनकी दूरदर्शिता, संगठन कौशल और युद्ध रणनीतियों का प्रमाण है। उन्होंने महिलाओं को भी सेना में शामिल कर उन्हें प्रशिक्षित किया, जो उस समय के लिए असाधारण था। उनके संघर्ष और बलिदान ने 1857 के विद्रोह को एक व्यापक जनांदोलन में बदलने में मदद की, और उन्होंने अन्य विद्रोहियों को प्रेरित किया। अंत में, रानी लक्ष्मीबाई का बलिदान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की अमर गाथा है। उनकी मृत्यु ने स्वतंत्रता संग्राम के लिए लड़ने वालों के हौसले को और मजबूत किया और उन्हें इतिहास के पन्नों में अमर कर दिया। उनके संघर्ष ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को प्रेरणा दी और स्वतंत्रता के लिए लड़ाई में एक मिसाल कायम की।

इस प्रकार, रानी लक्ष्मीबाई का योगदान न केवल 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण था, बल्कि उन्होंने भारतीय समाज को यह संदेश दिया कि स्वतंत्रता, सम्मान और आत्मनिर्णय के लिए संघर्ष किसी भी परिस्थिति में जारी रहना चाहिए। उनका जीवन और बलिदान आज भी भारतीय जनता के लिए प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है, और वे सदैव भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास में एक महान नायिका के रूप में जानी जाएंगी।

संदर्भ सूची

- चक्रवर्ती, गौतम। "द इंडियन म्यूटिनी एंड द ब्रिटिश इमेजिनेशन". कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2005।
- फ्रेजर, एल. हेस्टिंग्स। "रानी ऑफ झांसी: द वॉरियर क्वीन". ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2014।
- गुप्ता, पारुल। "रानी लक्ष्मीबाई: 1857 के विद्रोह की प्रतीक." 'जर्नल ऑफ इंडियन हिस्ट्री', खंड 92, अंक 1, 2018, पृष्ठ 25-40।
- मजूमदार, आर. सी। "द सिपोय म्यूटिनी एंड द रिवोल्ट ऑफ 1857". फर्मा के. एल. मुखोपाध्याय, 1957।
- मुखर्जी, रुद्रांग्शु। "अवध इन रिवोल्ट, 1857-1858: ए स्टडी ऑफ पॉपुलर रेजिस्टेंस". ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1984।
- रॉय, तपती। "इतिहास और किंवदंती में रानी लक्ष्मीबाई: झांसी की योद्धा रानी का पुनर्मूल्यांकन." "इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली", खंड 22, अंक 21, 1999, पृष्ठ 1252-1260।
- सागर, कृष्ण चंद्र। "रानी लक्ष्मीबाई ऑफ झांसी". नॉर्दर्न बुक सेंटर, 1994।
- सावरकर, विनायक दामोदर। "द फर्स्ट वॉर ऑफ इंडियन इंडिपेंडेंस, 1857-1859". मराठा पब्लिकेशंस, 1909।
- सिंह, हरलीन। "द रानी ऑफ झांसी: जेंडर, हिस्ट्री, एंड फेबल इन इंडिया". कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2014।
- सुडरलैंड, गिलियन। "द क्वीन सरेबेल्स: रानी ऑफ झांसी एंड द 1857 रिबेलियन". हार्पर कॉलिन्स, 2012।
- थरूर, शशि। सीइंग्लोरियस एम्पायर: व्हाट द ब्रिटिश डिड टू इंडिया". स्क्राइब पब्लिकेशंस, 2017।

आदी जनजाति में जन्म संस्कार (आदी लोकगाथाओं के परिप्रेक्ष्य में)

प्रो० श्याम शंकर सिंह

हिंदी विभाग, राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, रोनो हिल्स, दोईमुख, अरुणाचल प्रदेश

अकिन बोको

शोधार्थी, हिंदी विभाग, राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, रोनो हिल्स, दोईमुख, अरुणाचल प्रदेश

भारत देश के पूर्वी सीमांत पर स्थित अरुणाचल प्रदेश राज्य में आदी जनजाति का निवास स्थान है। यह जन संख्या की दृष्टि से पूरे राज्य की 26 प्रमुख जनजातियों में द्वितीय स्थान प्राप्त है। आदी जनजाति के अंदर ही 15 उपजनजातियाँ समाहित है। यह जनजाति अपने आपको 'आबोतानी' के वंशज स्वीकारती है।

'संस्कार' का शाब्दिक अर्थ 'शुद्ध करना' या 'संशोधन करना' होता है। अंग्रेजी में 'संस्कार' के लिए 'राइट', 'रिफाइनमेंट', 'ओर्डिनेशन', 'अपब्रिंगिंग' आदि शब्द प्रयोग में लाये जाते हैं। "संस्कार शब्द का अर्थ है किसी वस्तु का संशोधन करना, उत्तम बनाना तथा उसका परिष्कार करना।"[1] संस्कार के जरिए किसी अमूल्य वस्तु को भी बहुमूल्य बनाया जा सकता है। मनुष्य के संदर्भ में कहे तो जब किसी व्यक्ति के जीवन में शुद्ध, शांति और सफलता लाने के उद्देश्य से पूजा-अनुष्ठान द्वारा क्रिया-कलापों का आयोजन होता है तो उसे संस्कार कहा जाता है। इसी तरह संस्कार एक व्यक्ति विशेष से ही आरंभ होता है। उसके जीवन को संस्कार द्वारा व्यवस्थित व सफल अवश्य बनाया जा सकता है। परंतु संस्कार का प्रभाव या भूमिका एक व्यक्ति विशेष तक सीमित नहीं रहती है। इससे परिवार-गोत्र से लेकर सामाजिक जीवन में एकरूपता व एकता की भावनाओं का भी विकास होता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में संस्कारों का पालन करना बहुत आवश्यक है। व्यक्ति के जीवन से संबन्धित संस्कारों की संख्या को लेकर शास्त्रों में मतभेद है। हिन्दू धर्म में व्यक्ति के गर्भ से लेकर मृत्यु तक के लिए कुल सोलह(16) संस्कारों की गणना की जाती है। गौतम सूत्र में व्यक्ति के लिए चालीस(40) संस्कारों की व्यवस्था है। पारस्कर गृहसूत्र, वाराह गृहसूत्र, मनुस्मृति तथा बौधायन गृहसूत्र में तेरह(13) संस्कारों का विधि-विधान है। परंतु जिस प्रकार "मनुष्य के जीवन में मुख्य प्रभावशाली तीन ही घटनाएँ हैं, वे हैं- जन्म, विवाह एवं मृत्यु। इन्हीं तीनों से मानव-जीवन की सभी भावनाएँ ओत-प्रोत हैं। वह इन घटनाओं की उपेक्षा किसी भी देश अथवा परिस्थितियों में नहीं कर सकता।"[2] इसी प्रकार आदी समुदाय में भी जन्म, विवाह एवं मृत्यु से संबन्धित संस्कार ही पाये जाते हैं। इनमें से जन्म संस्कार को अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। क्योंकि इससे नवजात शिशु का भविष्य उज्ज्वल व सफल होता है, ऐसा विश्वास है। अतः आदी जनजाति से संबन्धित जन्म संस्कारों को निम्न प्रकार अध्ययन-विश्लेषण किया जा सकता है-

आदी समुदाय के बीच शिशु जन्म के दौरान कुछ नियम-संस्कारों का पालन करते हुए देखा जाता है। उन जन्म संस्कारों का आरंभ 'दोनी' यानी 'आबोतानी' के जन्मकाल से माना जाता है, जिसका वर्णन 'दोनी आजी दोयिङ आबाङ' नामक आदी लोकगाथा में बारीकियों से किया जाता है। सबसे पहले यदि बच्चे पैदा होने में देर हो रही हो तो प्रसव पीड़ा से जूझ रही उस गर्भवती महिला के घुटनों के बल एक 'रोकपी' (मुर्गी का अंडा) फुटाने दिया जाता है ताकि बच्चे जल्दी पैदा हो जाए। अगर प्रसव समस्या उससे भी ज़्यादा गंभीर हो तो 'ङीपोङ उयु मिरी' (प्रसव समस्या से संबन्धित ओझा) को घर बुलाकर अपनी जादुई शक्ति से जांच-पड़ताल करने दिया जाता है। उस दौरान 'मिरी' मंत्रोच्चारण के माध्यम से प्रसव प्रक्रिया में अवरोधक दुष्टात्मा 'ङीतअ-ङीपोङ' से वार्तालाप स्थापित करते हुए यह पता लगाते हैं कि प्रसव समस्या का कारण क्या है और उन दुष्टात्माओं की माँग क्या है। तत्पश्चात् ही दुष्टात्माओं की माँग के हिसाब से मुर्गी या कुत्ते की बलि चढ़ाकर 'ङीपोङ-उरोम ताकोम मोन्नाम' अनुष्ठान सम्पन्न किया जाता है। उस दौरान बलि के रूप में चढ़ाए गए मुर्गी या कुत्ते का रंग काला हो तो और अधिक शुभ माना जाता है। क्योंकि उन दुष्टात्माओं का पसंदीदा रंग काला माना जाता है। यदि बच्चे का जन्म सामान्य तरीके से हो रहा हो तो भी प्रसव के दौरान उस प्रसव पीड़ित स्त्री के सामने 'सुमपा' (एक विशेष लकड़ी से बनी तलवारनुमा छड़ी) अनिवार्य रूप से रख दिया जाता है। क्योंकि 'सुमपा' 'तामाक' नामक पेड़ की लकड़ी से बनता है और उस पेड़ को 'सेदी-मेलो' (सृष्टिकर्ता) से उत्पन्न 'दीनअ नानअ' (एक देवी का नाम) के पैर के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसलिए 'तामाक' पेड़ को 'दीनअ-नानअ' की भाँति पवित्र माना जाता है। आदी लोगों का यह मानना है कि प्रसव के दौरान उक्त दुष्टात्माएँ उस घर के इर्ग-गिर्द घूमती हैं जहाँ नवजात शिशु का जन्म हो रहा होता है। इसलिए उन दुष्टात्माओं को मार भगाने का काम 'सुमपा' (पवित्र छड़ी) निभाता है। इस बात का पता 'दोनी आजी दोयिङ आबाङ' आदी लोकगाथा की इन पंक्तियों से होता है-

"पदोङ दोनी अ आजी मअ,
आजी दीरी अम दीलन दोदम,
ओलो गोरलोङ अम गोरलन दोदम,
सेदी लोयिङ अ आसी तलो,
मेलो लोबो अ आलाङ तलो,
दोनी पूलुङ अम पूदो कुदम,
आजी पूलुङ अम पूदो कुदम,
ओलो बअलोङ अम बअदो कुदम,
कयुम मिसुम अ मोनअ बुलु,
करो मियाङ अ मोनअ बुलु,
सेदी दीनअ नानअ कअ,
नानअ लपाङ अ ञाङञाङ किङ,
मोनअ सुमपा अम लअयेङ बोमकाइ,
दोनी सुमपा अम लअयेङ बोमकाइ"[3]

भावार्थ: 'पदोङ नानअ' द्वारा 'दोनी' अर्थात् 'तानी' वंशज के पूर्वज 'आबोतानी' को जन्म देने के दौरान नवजात शिशु(दोनी) को 'सेदी लोयिङ-लोबो' नामक नदी में ले जाकर नहलाते समय 'मिसुम-मियाङ' नामक आध्यात्मिक जगत के लोगों ने 'सुमपा' छड़ी के जरिए 'दोनी' की रक्षा की थी।

आदी लोग यह भी मानते हैं कि यदि प्रसव के समय कोई भी पुरुष आस-पास रहता है तो बच्चे पैदा होने में दिक्कत आ जाती है। इसलिए उस समय पुरुषों को प्रसव स्थान के आस-पास रहने से मना किया जाता है। बच्चे के पैदा होते ही तुरंत उसकी नाभि को काटकर उसके हाथ-पैर में 'रिदिन' नामक जंगली लता की रस्सी बाँध दिये जाते हैं ताकि 'ङीतअ-ङीपोङ' दुष्टात्माएँ उस नवजात शिशु पर हमला न कर सके। उसी समय बच्चे का अस्थायी नाम भी अनिवार्य रूप से रख दिया जाता है वरना दुष्टात्माएँ उस नवजात शिशु पर हक जमाती हैं। 'रिदिन' बाँधने की प्रक्रिया को 'लजिन लाकजिन जिन्नाम' कहा जाता है। आदी लोगों का यह विश्वास है कि 'रिदिन' में 'सेदी-मेलो' (सृष्टिकर्ता) का वास है। क्योंकि इस लता को उसके (सृष्टिकर्ता) संतान के रूप में स्वीकारा जाता है। अत: 'रिदिन' को एक पवित्र धागा के रूप में प्रयोग किया जाता है। बच्चे जन्म के दिन 'ङीलुम' नामक दावत का आयोजन किया जाता है, जिसमें आस-पड़ोस के लोगों विशेषकर सभी बच्चों को बुलाकर मांस सहित भोजन कराया जाता है। यदि बच्चे का जन्म दोपहर बारह बजे के बाद हुआ तो 'ङीलुम' आयोजित करना अशुभ माना जाता है। ऐसी स्थिति में 'ङीलुम' अगले दिन को आयोजित किया जाता है। बच्चे के जन्म के तीसरे दिन एक विशेष प्रकार के दावत का आयोजन होता है, जिसे 'ओबो आरान/अराङ आबो' के नाम से जाना जाता है। उस विशेष दावत के चलते 'अक्काम' पत्ते में चावल-मांस बाँधकर आस-पड़ोस व रिश्ते-नाते के घरों में बाँट दिये जाते हैं। उस प्रक्रिया को 'पिमपेर ओरनाम' नाम से जाना जाता है। इस रिवाज का शुरुआत भी 'दोनी' के जन्म से आरंभ माना जाता है-

"पदोङ दोनी अ आजी मअ,
इङको दोमान अ आमान लोकयी,
आजी ङीरान अम रान्ना यनअ अमदोदम,
ओलो ङीरान अम रान्ना यनअ अमदोदम,
रेसिङ किरङु अ ङुदु किङ,
रेयाङ किरगा अ गापो किङ,
आजी ङीरान अम रान्ना तोकु,
ओलो ङीरान अम रान्ना तोकु"[4]

भावार्थ: 'दोनी' के पैदा होने के सुअवसर की खुशी व्यक्त करने के लिए उनके पिता 'यीदुम बोतअ' ने जंगल से 'पङु-पगा' नामक चिड़ियों का शिकार करके धूमधाम व सफलतापूर्वक 'ओबो आरान' दावत का आयोजन सम्पन्न किया और इसी तरह 'अङो-ताकार' (मानव) जगत में किसी नवजात शिशु को जन्म देने पर 'ओबो आरान' मनाना आरंभ हुआ।

वस्तुत: आदी समुदाय में 'ओबो आरान' के दिन को ही नवजात शिशु से संबन्धित सारे नियम-संस्कार सम्पन्न किया जाता है। उस दौरान नवजात शिशु के पारिवारिक संबंध से जुड़े लोग विशेषकर रिश्ते में नवजात शिशु के मामा-मामी लगने वाले 'रिदिन में बेशकीमती माला-मनका पिरोकर उस नवजात शिशु के गले में बाँधा जाता है, जिसे 'लीजिन जिन्नाम' या 'कोदाङ जिनपाक' कहा जाता है। क्योंकि मामा के अंदर अपने भांजे-भांजियों को किसी भी प्रकार की दुष्टात्माओं से रक्षा करने की शक्ति विद्यमान रहती है, ऐसा विश्वास किया जाता है। 'ओबो आरान' के दिन ही बच्चे का स्थायी नामकरण भी होता है। आदी लोगों में बच्चे का नामकरण उसके पैदा होने की स्थिति के हिसाब से होता है। जैसे बेटे की जरूरत में बेटा हुआ तो 'कालिङ/कामपो' (सुंदर) अथवा बेटी की जरूरत में बेटी हुई तो 'ओलाक/मीनाम' (इच्छा) आदि नाम रख दिया जाता है। इस दौरान बच्चे को ओढ़ने-बाँधने के लिए उपहार के रूप में रिश्तेदारों

से कई 'अकगुर-निताक' (पारंपरिक पोशाक) जमा हो जाते हैं। इस 'ओबो आरान' दिन का एक विशेष भाग 'अप्पोन' बनाना होता है। 'अप्पोन' नवजात शिशु को पीठ पर लादने-बाँधने में प्रयोग की जाने वाली रस्सी होती है जो बेंत से बनी होती है। 'अप्पोन' अमूमन गाँव के बुजुर्गों द्वारा बनाया जाता है। आदी लोगों में यह विश्वास है कि किसी नवजात शिशु को जब पहली दफा पीठ पर लादने का काम करता है तो 'अप्पोन' का ही प्रयोग किया जाना चाहिए। यह भी नवजात शिशु को दुष्टात्माओं से बचाने का काम करता है। क्योंकि 'अप्पोन' बेंत से बना हुआ होता है और बेंत सृष्टि निर्माण के आरंभिक काल में जंगली रस्सी के रूप में प्रथम बार उगने वाली रस्सी मानी जाती है। इसलिए बेंत को ताकतवर व मजबूती के प्रतीक स्वरूप स्वीकारा जाता है। आदी लोकगाथा में 'अप्पोन' बनाने की प्रक्रिया को इस प्रकार वर्णन किया जाता है-

"पदोङ दोनी अ आजी मअ,
इङको लोकयी आजी कूकु अम बअबअ नायनअ,
ओलो योयो अम गागा नायनअ अमदोदम,
आबो रेसिङ अ लअदुङ तलोक,
दोयिङ यीदुम अ बोतअ बुलु,
सोदोङ कीलुङ अम कितुङ काला,
सोदोङ योपी अम योलाप तूला,
सोदोङ अरी अम बोमपी तूला,
आजी कूकु अम बअबअ नापअ,
ओलो योयो अम गागा नापअ,
सोदोङ पोनताक अम पेतगाक लिकतो,
आजी पोनताक अम पेतगाक लिकतो"[5]

भावार्थः आदिमकाल में 'पदोङ नानअ' और 'यीदुम बोतअ' (दोनी के माता-पिता) के समय आजकल की तरह नवजात शिशु को अपने पीठ पर लादने के लिए कुछ आधुनिक उपकरण या सामग्री उपलब्ध नहीं थी। तब 'दोनी' के पिता 'यीदुम बोतअ' 'आबो रेसिङ' नामक ऊँचे पहाड़ से बेंत की रस्सी काटकर लाये जिससे 'अप्पोन' बनाकर नवजात शिशु 'दोनी' को पीठ पर लादने का काम आरंभ करवाया।

जन्म संस्कार प्रक्रिया के अंतिम चरण के रूप में 'ओबो आरान' के बाद अगले ही दिन को 'ब्यातबो ब्यातनाम' नियम सम्पन्न किया जाता है जिसमें 'ओबो आरान' में प्रयुक्त सामग्री व कचरे को गाँव के ऊपरी भाग में किसी स्थान पर फेंक दिया जाता है। 'ब्यातबो ब्यातनाम' को गाँव के ऊपरी भाग में इसलिए संपन्न किया जाता है क्योंकि इसे गाँव के निचले भाग में संपन्न करने पर दुष्टात्माएँ नवजात शिशु को खुद से कमतर समझकर आक्रमण करने की संभावना रहती है। इसी तरह आदी समुदाय में किसी नवजात शिशु के जन्म से संबन्धित संस्कारों का समापन हो जाता है।

संदर्भ सूची

1. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, लोक संस्कृति की रूपरेखा, लोकभारती प्रकाशन पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, पृष्ठ संख्या-11
2. डॉ० हरीश कुमार शर्मा, फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में लोक-संस्कृति, प्रकाशकः जास्मिन पब्लिकेशन 29/61, 1st फ्लोर, विश्वास नगर, दिल्ली-110032, प्रथम संस्करणः 2013, पृष्ठ संख्या-137
3. श्री पुनदोरोङ बोको, लोकगायक, गाँव कोमकार बुकसाङ, जिला अपर सिआङ, अरुणाचल प्रदेश, साक्षात्कार दिनांक-18/05/2023
4. श्री पुनदोरोङ बोको, लोकगायक, गाँव कोमकार बुकसाङ, जिला अपर सिआङ, अरुणाचल प्रदेश, साक्षात्कार दिनांक-18/05/2023
5. श्री पुनदोरोङ बोको, लोकगायक, गाँव कोमकार बुकसाङ, जिला अपर सिआङ, अरुणाचल प्रदेश, साक्षात्कार दिनांक-18/05/2023

हरकिशन सिंह और 1857 का विद्रोह

प्रो० (डॉ०) अरविन्द कुमार सिंह

प्रोफेसर, इतिहास विभाग, डी.के. कॉलेज, डुमरांव (बक्सर)

बिहार भारतीय सभ्यता-संस्कृति की क्रीड़ाभूमि रही है। यहां युगों-युगों तक मानव, विभूति के रूप में प्रकट हुए हैं। राष्ट्रीय संघर्ष के विविध चरणों में इसका स्थान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण एवं प्रेरणाप्रद रहा है। इसमें संदेह नहीं कि पलासी के युद्ध ने 1857 के विद्रोह की पृष्ठभूमि तैयार की।[1]

1857 के विद्रोह का नेतृत्व करने के लिए जितना यश और प्रतिष्ठा बाबू कुंवर सिंह[2] को है वहीं उनको प्रेरित करने वाले और अंग्रेजों को नाकों चने चबवाने वाले एक मध्यवर्गीय किसान के बेटे हरकिशन सिंह का जिक्र तक नहीं होता, बल्कि पूरे आरा जिले का जनमानस उसको गद्दार कहता है। यहां तक कि बिहार के प्रसिद्ध नाटककार श्री चतुर्भुज ने भी उसे अपने नाटक 'कुंवर सिंह' में एक गद्दार की भूमिका दी है। इस आलेख का उद्देश्य उन्हें सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का है। हरकिशन सिंह आरा जिले के भोजपुर परगने के बड़काडीह गांव के मध्यवर्गीय किसान परिवार के श्री ऐंदल सिंह का पुत्र था। 1857 के विद्रोह के समय वह कुंवर सिंह का विश्वासभाजन भी रहे।

सरकारी कागजातों के अनुसार हरकिशन सिंह पांच भाई थे–बड़े भाई राधे सिंह, दूसरे भाई हरकिशन सिंह, तीसरे भाई जयकिशन सिंह, चौथे भाई लक्ष्मी सिंह, और पांचवे भाई अनंत सिंह या आनंदी सिंह थे। कुंवर सिंह और उसके भाई दयाल सिंह में विद्रोह के पहले जब पारिवारिक कलह हुआ तो हरकिशन सिंह के भाई जयकिशन सिंह मारे गये थे। जगदीशपुर गढ़ से पश्चिम तरफ जो पोखर है उसे बाबू कुंवर सिंह ने दयाल सिंह का मकान तुड़वाकर बनवाया था। इस कार्य में हरकिशन सिंह ने कुंवर सिंह के आदेश का पालन किया था। यही कारण था कि कुंवर सिंह इनकों बहुत मानते थे और दूसरी तरफ दयाल सिंह या उनके बेटे रिपुभंजन सिंह बहुत खिलाफत करते रहते थे। हरिकिशन सिंह को गद्दार कहकर प्रचार करने का कार्य रिपुभंजन सिंह ने ही किया। किसी को उस समय विरोध करने की हिम्मत नहीं थी और सच बात तो यह है कि रिपुभंजन सिंह अंग्रेजों से मिल गये थे और उन्हें आजीवन पेंशन भी मिलती रही।[3]

आगे प्रस्तुत शोध पत्र में हरकिशन सिंह के बारे में कुछ कहने से पहले बाबू कुंवर सिंह की स्थिति का आंकलन करना आवश्यक है। सन् 1838 ई. तक बाबू कुंवर सिंह के ऊपर महाजनों का कर्ज 17 लाख रुपये का था जो 1857 तक 20 लाख पहुंच गया था। 1838 ई. में ही उन्होंने सरकार से प्रार्थना की थी कि उनकी जमींदारी सरकार अपने हाथों में ले ले और कर्ज की अदायगी लगभग 15 वर्षों में कर दे। उनके इस आवेदन की सिफारिश सर्वप्रथम शाहाबाद के जज श्री डेन्ट ने 15 अक्टूबर 1838 को सदर दीवानी अदालत से तथा 21 नवंबर 1854 को शाहाबाद के कलक्टर श्री ए.ए. स्विन्टन तथा पटना के कमिश्नर मि. टेलर ने 10 दिसंबर 1855 को रेवेन्यू बोर्ड के सेक्रेट्री के पास की। पुनः मि. टेलर ने 19 दिसंबर 1856 को रेवेन्यू बोर्ड को लिखा। रेवेन्यू बोर्ड बराबर उसे अनसुनी करता रहा। विद्रोह शुरू होने के पहले कुंवर सिंह ने 25 जून 1857 को एक लंबा आवेदन पत्र भेजा और सरकार से प्रार्थना की कि उन्हें डूबने से बचाये। लेकिन रेवेन्यू बोर्ड या सरकार इसे बराबर अनसुनी करती रही। विद्रोह में शामिल होने के बाद कुंवर सिंह ने मि. टेलर को लिखा कि ''मैं परिस्थितियों का शिकार हुआ हूं और मुझे बाध्य होकर विद्रोही बनना पड़ा है।'' बाबू कुंवर सिंह मि. टेलर के घनिष्ठ मित्रों में से थे। मि. टेलर को यह कभी उम्मीद नहीं थी कि बाबू साहेब विद्रोह में भाग लेंगे। उनकी स्थिति संकटग्रस्त थी और जमींदारी को महाजनों से बचाने का कोई रास्ता नजर नहीं था। यही कारण है कि कुंवर सिंह 1845 से ही सरकार विरोधी षड्यंत्रों में शामिल हो रहे थे और सच बात तो यह है कि विद्रोह शुरू होने के पहले अगर सरकार उनकी जमींदारी का प्रबंध अपने हाथों में ले लेती तो यह बात तय थी कि बाबू कुंवर सिंह विद्रोह में भाग न लेते।[4]

चन्द्रशेखर पाठक, जो एक इतिहासकार हैं ने 1921-22 में प्रकाशित अपनी पुस्तक ''सिपाही विद्रोह'' में लिखा है[5] कि ''वास्तव में बाबू साहेब या उनके आदमी विद्रोह में भाग लेने के लिए तैयार नहीं थे''। यदि होते तो स्वयं आरा के खजाने से रुपये पटना क्यों पहुंचा देते? उस समय लूट न लेते? कैदी जन बिगड़े थे तो उन्हें क्यों शांत करने न जाते और आग न लगा देते कि खूब धांय-धांय जलने लगती। बाबू साहेब का परिवार कभी भी इस पक्ष में नहीं था कि बाबू साहेब विद्रोह में भाग लें। लेकिन हरकिशन सिंह आरंभ में ही विद्रोह के पक्ष में थे। रणदलन सिंह और हरकिशन सिंह हमेशा उसे बलवाई सिपाहियों का सरदार बन जाने को कहते थे, किंतु उनकी बातें सुनकर वे अपने भाई दयाल सिंह और अमर सिंह से ही सलाह ले लेते थे। ये लोग बाबू साहेब को विद्रोह में शामिल होने से बराबर रोकते और कहते कि अंग्रेजों के विरुद्ध होने में हमारी भलाई नहीं है। इसी में बाबू साहेब अपने उत्तेजित मुसाहिबों को डांट-डपटकर चुप कर देते। उनकी राय इतनी जल्दी विद्रोही बन जाने की नहीं थी। इस बात की पुष्टि पुलिस कमिश्नर सैमुएल्स की रिपोर्ट से होती है जो 29 जनवरी 1858 को बंगाल सरकार को भेजी गयी थी। सैमुयेल्स के अनुसार कुंवर सिंह राजभक्त थे, लेकिन टेलर के क्रूर व्यवहार के कारण वे विद्रोही बन गए। जैसा कि 25 जून 1857 के कुंवर सिंह के आवेदन-पत्रों से पता चलता है।[6] उधर हरकिशन सिंह दानापुर के सिपाहियों से मिलने के लिए गये।

हरकिशन सिंह न सिर्फ सिपाहियों के मन की थाह ली बल्कि उन्हें खुल्लम-खुल्ला विद्रोही बनाकर आरा लाये और उन्होंने सिपाहियों को यह भरोसा दिया कि बाबू साहेब उनका नेतृत्व करने को तैयार हैं।[7]

उधर जब बाबू साहेब को विद्रोहियों के आरा पहुंचने की सूचना मिली तो उन्होंने अपने परिवार वालों एवं प्रिय मुसाहिबों तथा ब्राह्मणों को बुलाकर विचार विमर्श किया। के.के. दत्त ने लिखा है कि बाबू साहेब के विद्रोह में भाग लेने के प्रश्न पर उनके सलाहकारों में मतभेद था। हरकिशन सिंह के नेतृत्व में एक दल की सलाह थी कि बाबू साहेब विद्रोह का नेतृत्व करें और बाबू अमर सिंह सहित दूसरे दल का विचार था कि बाबू साहेब वर्तमान स्थिति में यथास्थिति पर कायम रहें, अर्थात् विद्रोह में भाग न लें लेकिन अंत में हरकिशन सिंह के गुट की जीत हुई।[8]

इस प्रकार कुंवर सिंह ने विद्रोही सिपाहियों का नेतृत्व ग्रहण किया और विद्रोही सिपाहियों ने बाकायदे उन्हें फौजी सलामी दी।[9]

3 अगस्त को आरा में मेजर से हार खाने के बाद विद्रोही सिपाहियों को 12 अगस्त को जगदीशपुर से भी हाथ धोना पड़ा। आयर की फौज से लेकर कंपनी सरकार की फौज द्वारा जगदीशपुर पर कब्जा कर लेने जितनी भी लड़ाइयां हुईं उन सभी में हरकिशन सिंह ने मुख्य रूप से भाग लिया था। इसके बाद वे बाबू साहेब के साथ सासाराम की पहाड़ियों की जंग में डट गये। इसी बीच उनकी गिरफ्तारी के लिए सरकार ने इनाम की घोषणा तीन हजार से बढ़ाकर पांच हजार कर दी थी।[10]

हरकिशन सिंह ने कुंवर सिंह का साथ नहीं छोड़ा। उनके मुकदमे की गवाही से यह बात स्पष्ट होती है कि सभी लड़ाइयों का नेतृत्व हरकिशन सिंह करते थे। आजमगढ़ की लड़ाई में विद्रोही सेना के सेनापति हरकिशन सिंह ही थे। उसमें सफलता पाने पर बाबू साहेब ने उन्हें सालारवर्ग की उपाधि दी। बाबू साहेब के साथ ही वे जगदीशपुर लौटे। उन्होंने बाबू साहेब के साथ शिवपुर घाट होकर गंगा पार की थी। बाबू कुंवर सिंह को तोप के गोला लगने के बाद उनकी मृत्यु के उपरांत हरकिशन सिंह की प्रधान व्यक्ति थे जिन्होंने अमर सिंह के नाम से राज्य का शासन व विद्रोह का नेतृत्व अपने हाथ में रखा जबकि अमर सिंह केवल नाम के प्रधान व्यक्ति थे।[11]

के.के. दत्त ने लिखा है कि ''बाबू साहेब के मरने के बाद अमर सिंह विद्रोहियों के नेता बनाये गए और अपने योग्यतम साथी हरकिशन सिंह के साथ वे युद्ध चलाते रहे। 16 मई, 1858 की पैदल सेना के मेजर लाहटपुर के अधीन सैनिकों का एक दल हरकिशन सिंह का मकान (वराढ़ी गांव) जला देने के लिए भेजा गया। उसी के साथ अरइला गांव भी जला दिया गया क्योंकि अरइला के निवासियों ने विद्रोहियों का साथ दिया था।''[12] हरकिशन सिंह द्वारा चलाये जा रहे युद्ध खासकर गुरिल्ला युद्ध से तंग आकर अंग्रेजों ने उसके पास समझौते का संदेश भेजा और इसके लिए तत्कालीन कलक्टर मनी ने खासतौर से पहल की। 25 नवंबर को वगेन जंगल के बाहर, जिसके पास ही गांव में हरकिशन सिंह का विद्रोहियों का दल था उनके कुछ प्रतिनिधियों से कलक्टर मनी ने सादत खां रिसालेदार को साथ लेकर विद्रोहियों से समझौता-वार्ता की, लेकिन वार्ता असफल रही।[13]

हरकिशन सिंह का युद्ध जारी रहा। सरकारी अधिकारी व उनके एजेंट ने विद्रोही नेताओं की धर-पकड़ के लिए जमीन आसमान एक कर डाला। अंततः 29 अगस्त 1859 को दुसह के समदह के नायक कोतवाल द्वारा बनारस जिलें के बधौल परगना के ग्राम दुनिया में हरकिशन सिंह को गिरफ्तार किया गया और आर.जे. रिचर्डसन (शाहाबाद के तत्कालीन प्रभारी जज) एवं विशेष आयुक्त के समक्ष मुकदमा चलाया गया और उसे फांसी की सजा दी गई।[14]

हरकिशन सिंह के पकड़े जाने पर उनके मुकदमे से प्रमाणित है कि वह कितना बड़ा देशभक्त, संगठनकर्ता एवं निष्ठावान और चरित्रवान पुरुष था। अभियोग था कि 27 जुलाई 1857 से लेकर अंत तक जब तक वे पकड़े नहीं गये तब तक हरकिशन सिंह ने ब्रिटिश सरकार के खिलाफ विद्रोह को उभारा और उसका नेतृत्व किया। दानापुर से विद्रोही सिपाही को आरा लाना और उनके द्वारा जेल का फाटक तुड़वाने तथा गुटबंदी करवाने का कार्य करवाना, कुंवर सिंह की मृत्यु के बाद विद्रोही सेना के सेनापतित्व करना तथा अमर सिंह के प्राधिकार में जगदीशपुर में स्वतंत्र शासन का संचालन करना इन्हीं के काम थे।[15]

आर.जे. रिचर्डसन ने अपने फैसले में लिखा है ''कैदी हरकिशन सिंह के हाथ में उस समय इतना अधिकार था कि इस बात की संभावना नहीं रह जाती कि कुंवर सिंह की जमींदारी को पट्टे पर लेने के अपराध में उनकी (हरकिशन सिंह) मौजूदगी में उनकी आज्ञा और अनुमति के बिना जगदीशपुर में जानकी सिंह, दीना दास, हरिहर पांडेय तथा भागवत दास को पकड़वा कर जान से मरवा डाला गया हो।''[16]

रिचर्डसन पुनः अपने फैसले में लिखता है, ''जुलाई 1857 में शाहाबाद में विद्रोह शुरू होने के बाद से ही हरकिशन सिंह का नाम प्रत्येक राजभक्त प्रजा के लिये आतंक व क्रूरता का प्रतिरूप था। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि इस जिले में विद्रोहियों ने जो रक्तपात और आतंक का राज्य कायम किया, उस काम में हरकिशन सिंह सभी विद्रोहियों में आगे रहे। उनका हुक्म कानून था। उन्होंने जो जुल्म और क्रूर कार्य किये थे सभी उनके अमानुषिक चरित्र के अनुकूल थे, जो सबको विदित है।'' इसलिए मेरी सिफारिश है कि उसे जगदीशपुर के चौक पर ले जाया जाये और जब तक उनका अंत नहीं हो तब तक फांसी पर लटकाया जाये।[17]

हरकिशन सिंह के पकड़े जाने के बाद अंग्रेज अधिकारियों को चिंता होने लगी कि ऐसा नहीं कि हरकिशन सिंह को साम्राज्ञी द्वारा थोपित क्षमादान का लाभ मिल जाये। उसके संबंध में पटना के कमिश्नर ने कई बार सरकार के सचिव को पत्र लिखा कि हरकिशन सिंह ही कुंवर सिंह की मृत्यु के बाद नेता है अतः उसे किसी भी स्थिति में नहीं छोड़ा जाना चाहिए। ''शाहाबाद के केवल पांच या छः प्रमुख नेताओं को छोड़ सभी को क्षमादान का लाभ दिया जाये''। इस आदेश का हवाला देते हुए पटना के कमिश्नर ने 23 दिसंबर 1859 को बंगाल के सचिव के नाम पत्र संख्या 323 लिखते हुए विद्रोहियों की सूची में प्रमुखता के अनुसार क्रमवार पेश की, जिसमें हरकिशन सिंह का नाम पहले स्थान में था। कमिश्नर ने लिखा कि किसी भी विद्रोही को छोड़ देना या क्षमादान देना कड़ी भूल होगी। फिर भी अगर सरकार की नीति इस प्रकार की है तो कम-से-कम निम्नलिखित सात विद्रोहियों को न छोड़ा जाए-प्रथम हरकिशन सिंह, दूसरा जीवधर सिंह, तीसरा मेघर सिंह, चौथा सीधा सिंह, पांचवां शिप्रसन्न सिंह, छठा अमर सिंह और सातवां देवी ओझा।

21 अक्टूबर, 1859 को कार्यकारी सचिव लुशिंगटन ने भारत सरकार के सचिव को लिखा, कि ''हरकिशन सिंह जिसे बनारस में गिरफ्तार किया गया है वह वास्तव में कुंवर सिंह की मृत्यु के बाद असली नेता है। लेफ्टीनेंट गवर्नर की राय है कि इसे फांसी की सजा दी जानी चाहिए। 12 दिसंबर, 1859 को बंगाल सरकार के सचिव ने कमिश्नर को तार भेजा कि केवल अमर सिंह को छोड़कर उन सभी को क्षमादान का लाभ मिलना चाहिए जो हत्या के अपराधी या हत्या के अपराधियों को शरण देने वाले न हों। इस पर पुनः पटना के कमिश्नर ने बक्सर कैंप से 18 दिसंबर को बंगाल सरकार के सचिव को पत्र लिखते हुए कहा कि उपरोक्त आदेश निःसंदेह इस भावना से दिये गये हैं कि कुंवर सिंह की मृत्यु के बाद अमर सिंह का नाम विद्रोहियों द्वारा लिया जाता रहा है। यह सोचना है कि अमर सिंह बड़ा प्रभावशाली नेता है, भूल है। वास्तविकता तो यह है कि उन्होंने इस विद्रोह में सक्रिय हिस्सा नहीं लिया। वे प्रायः अफीम तथा अन्य नशाओं में धुत रहते थे। वास्तव में शाहाबाद जिले में अगर इस विद्रोह में सक्रिय भाग लेने वाला और इसको आगे बढ़ाने वाला कोई था तो वो हरकिशन सिंह और उसके चार भाई थे। इन लोगों ने कुंवर सिंह का साथ बांदा, कानपुर और लखनऊ में दिया। साथ ही कुंवर सिंह को विद्रोह में लाने का श्रेय इन्हीं लोगों को है। अगर इन लोगों को क्षमादान का लाभ मिलता है तो एक भयंकर भूल होगी। अतः मुझे विश्वास है कि हमें आदेश होगा कि हम हरकिशन सिंह तथा उनके परिवारों का क्षमादान के लाभ से वंचित रखने में सफल होंगे।''[18]

इस प्रकार झूठे न्याय का ढकोसला रचकर हरकिशन सिंह को फांसी की सजा दी गयी। इनके अन्य चारों भाइयों को भी नहीं छोड़ा गया। पटना के कमिश्नर ने 8 मई, 1860 को बंगाल सरकार के सचिव को सूचित किया कि ''हरकिशन सिंह के सभी भाइयों को आजीवन कारावास या कालापानी की सजा दी गयी और उनकी सारी संपति कुर्क कर ली गयी।'' इन चारों भाइयों ने अलीपुर जेल से क्षमादान का लाभ पाने का आवेदन किया तो 25 जून, 1860 को पटना के कमिश्नर ने बंगाल सरकार के सचिव के पास रिपोर्ट लिखते हुए कहा कि इसके ऊपर लगाये गये सारे अभियोग प्रमाणित हैं, अतः उन्हें सजा से मुक्ति नहीं मिलनी चाहिए।[19]

जहां तक हरकिशन सिंह की शिक्षा का सवाल है, वह बहुत ही मामूली थी। वह बहुत कम पढ़ा लिखा था लेकिन उनकी बुद्धि तीक्ष्ण थी। इसकी चर्चा उसके मुकदमे की सुनवाई कर रहे जज आर.जे. रिचर्डसन ने इस प्रकार की है-''मैं प्रतिदिन मुकदमे की सुनवाई करने से पहले हरकिशन सिंह से कहता कि मुकदमे की पैरवी के लिए वकील रख ले। लेकिन उन्होंने साफ इंकार करते हुए कहा कि वह स्वयं गवाहों से बहस करेंगे और उन्होंने वह काम निपुणता से किया, गवाहों से असाधारण व कठोर बहस की।''[20]

सैनिक शिक्षा न रहते हुए भी उनमें सैनिक कुशलता के सभी गुण विद्यमान थे। वह स्वयं सैनिक कमाण्ड अपने हाथ में रखते, खाइयां खुदवाते और शस्त्रास्त्रों का निर्माण करवाते आदि। उनके मुकदमे में गवाह रणजीत राम सिपाही ने बयान दिया कि हरकिशन सिंह ने जो बटालियन खड़ी की थी उनके नाम उन्होंने अपने क्षेत्र के प्रसिद्ध इलाके के नाम पर रखे थे जैसे-करीसथ बटालियन, चौगाई बटालिन।[21] उन्होंने दो डिवीजन पलटनें भी बनायी थी। उनके नाम थे-हरजंग और फतहजंग। जहां तक प्रशासनिक क्षमता का सवाल है तो वह अद्‌भुत थी। राजस्व से न्याय तक का संचालन अपने अधीन करता था। वह स्वयं न्यायकर्ता के आसन पर बैठकर न्याय करता था जो सर्वमान्य होता था।

निष्कर्षतः जहां तक हरकिशन सिंह को आज तक विश्वासघाती व गद्‌दार कह कर बदनाम किया जा रहा है यह इतिहासकारों के लिए सोचनीय विषय है कि अब तक इतिहास लेखन के जरिए आम जनता में हरकिशन सिंह के बलिदान को प्रकाश में नही लाया जा सका। के.के. दत्त ने लिखा है, ''बिडंवना ही है कि कतिपय लोकगीतों और लोक कथाओं में हरकिशन सिंह को गद्‌दार की भूमिका दी गयी है।'' यह आरोप मूल कागजातों के साक्ष्य से प्रमाणित नहीं होता। सच बात तो यह है कि विद्रोहियों के साथ उनका घनिष्ठ प्रेम था और वे विद्रोह के प्रमुख व्यक्तियों में से थे।[21]

इस प्रकार हम देखते हैं कि 1857 का स्वातंत्र्य समर सही अर्थों में पूरे देश की आत्मा की गुलामी के विरुद्ध एक ऐसा विद्रोह था जिसमें सारे भेदांतर को भुलाकर लोगों ने ब्रितानी शासन के विरुद्ध बगावत का परचम लहराया और हंसते-हंसते शहीद हो गये। आज जब हम 1857 के स्वातंत्र्य समर की 150 वीं वर्षगांठ मना चुके हैं तब उन स्वातंत्र्य सेनानियों को भी याद करना हमारा फर्ज हो जाता है जिनकी शहादत को इतिहास के पन्नों में उतना महिमामंडन नहीं किया जा सका हो जिसके वे हकदार थे, मगर जिनके बलिदान की शौर्यगाथाएं जनमानस में आज भी विद्यमान हैं।

संदर्भ-सूची

1. के. के. दत्त, बिहार में स्वातंत्रय आंदोलन का इतिहास, खंड-1 पृ. 1
2. के. के. दत्त, कुंवर सिंह-अमर सिंह, तवारिखे उज्जैनिया।
3. सरकारी कागजात, बिहार राज्य अभिलेखागार, पटना।
4. के. के. दत्त, कुंवर सिंह-अमर सिंह, तवारिखे उज्जैनिया, पृ. 50-51
5. चन्द्रशेखर पाठक, सिपाही विद्रोह, पृ. 449-50, वही, पृ. 71
6. बिहार राज्य अभिलेखागार, पटना सचिवालय।
7. एच. पी. चट्‌टोपाध्याय, द सिपाव्य म्यूटिनी, ए सोशल स्टडी एवं एनालिसिस, पृ. 118-119
8. के. के. दत्त, कुंवर सिंह-अमर सिंह, तवारिखे उज्जैनिया, पृ. 118-19
9. वही, पृ. 119
10. बंगाल सरकार के नाम पटना कमिश्नर का पत्र दिनांक 2 सितंबर, 1859 बिहार राज्य अभिलेखागार एवं के. के. दत्त कुंवर सिंह-अमर सिंह तवारिख उज्जैनिया, पृ. 123

11. वही
12. वही, पृ. 208 आर. जे. रिचर्डसन, स्थानापन्न जज का निर्णय।
13. आरा के कलक्टर मनी का पत्र पटना के कमिश्नर के नाम 28 नवंबर, 1858।
14. के. के. दत्त, वही, पृ. 229
15. के. के. दत्त, वही, पृ. 239 हरकिशन सिंह के मुकदमे का विवरण।
16. वही, पृ. 259, आर. जे. रिचर्डसन, स्थानापन्न जज का निर्णय।
17. वही, पृ. 205, आर. जे. रिचर्डसन, स्थानापन्न जज का निर्णय।
18. पटना के कमिश्नर का बंगाल सचिव के नाम पत्र दिनांक 18 दिसंबर, 1859
19. बिहार राज्य अभिलेखागार
20. के. के. दत्त, वही, पृ. 259
21. के. के. दत्त, बिहार में स्वातंत्र्य आंदोलन का इतिहास, पृ. 61
22. के. के. दत्त, पृ. 125-126
23. 1857 : Essays From Economic and Political Weekly. New Delhi, Orient Longman, 2008.
24. Encyclopaedia of Indian War of Independence (1857-1947), Vols. 1 to 19/edited by M.K. Singh. New Delhi, Anmol, 2009.
25. Rethinking 1857/edited by Sabyasachi Bhattacharya. New Delhi, Orient Longman, 2007.
26. The 1857 Rebellion/edited by Biswamoy Pati. New Delhi, Oxford University Press, 2007.
27. Rebellion 1857/edited by P.C. Joshi. New Delhi, National Book Trust, 2007.
28. Lucknow 1857 (The Two Wars of Lucknow : The Dusk of An Era)/Roshan Taqui. Lucknow, New Royal Book, 2001.
29. The Great Uprising : India, 1857/Pramod K. Nayar. New Delhi, Penguin, 2007.
30. Encyclopaedia on Indian Mutiny of 1857, Vols. I to III/Shailendra Sengar. New Delhi, Anmol Pub., 2009.
31. 1857 Uprising : A Tale of an Indian Warrior: Translated from Durgadas Bandopadhyay's Amar Jivancharit/edited and translated by Kaushik Roy. New Delhi, Anthem Press, 2008.
32. 1857 : A Great Rebellion/Raj Kumar. New Delhi, Raj Pub., 2007.
33. The Mutiny and Its Impact 1857-1884/S. Ram and R. Kumar. New Delhi, Commonwealth, 2008.
34. The Great Indian Revolt of 1857 : Flames, Fire and Freedom/K.B. Srivastava. New Delhi, Regal Pub., 2007.
35. Revolt of 1857 and the Indian Freedom Movement/Krishan Mohan. Jaipur, Book Enclave, 1999.
36. India in 1857 : Before and After/edited by H.S. Bhatia. New Delhi, Deep and Deep, 2008.
37. 1857 An Illustrated History/compiled and edited by Som Prakash Verma. New Delhi, Oxford University Press, 2008.
38. Counterflows to Colonialism : Indian Travellers and Settlers in Britain 1600-1857/Michael H. Fisher. New Delhi, Permanent, 2004.
39. 1857 Select Documents : The Bengal Army, Vol. VII. New Delhi, Life Span, 2008.
40. Martyr Raja Nahar Singh: An Unsung Hero of 1857/Raj Pal Singh. New Delhi, Vishvabharti Pub., 2008.
41. In their Own Words : British Women Writers and India, 1740-1857/Rosemary Raza. New Delhi, Oxford University Press, 2006.
42. 1857 Select Documents, Volume IV. Punjab. New Delhi, Life Span Publishers and Distributors, 2008.
43. 1857 Select Documents, Volume II. Punjab-A. New Delhi, Life Span Publishers and Distributors, 2008.

बौद्धकालीन शिक्षण पद्धति का स्वरूप तथा वर्तमान समय में उसकी प्रासंगिकता: एक अवलोकन

कल्पना कुमारी

शोध छात्रा, बौद्ध अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्राचीन काल से ही भारत में ज्ञानार्जन के विभिन्न पद्धतियाँ प्रचलित रही हैं। कलांतर में स्थान और काल की आवश्यकतानुसार शिक्षण पद्धति में नई तकनीकों का प्रयोग शुरू हुआ। यह उल्लेखनीय है कि ब्राह्मण-व्यवस्था के समानान्तर बौद्ध शिक्षा व्यवस्था का उदय हुआ और यह स्वभाविक ही था कि बौद्ध शिक्षा व्यवस्था भी उन लोकप्रिय शिक्षण पद्धतियों को अपनायें, जो ब्राह्मण शिक्षा व्यवस्था में कंठाग्रीकरण, वाद-विवाद, अन्तर्मुखी-चिन्तन और शंका समाधान विधि पहले से प्रचलित था। बौद्ध शिक्षा पद्धति में इन विधियों का समायोजन इस प्रकार किया गया था कि शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से ईश्वर भक्ति, गैर धार्मिकता, व्यक्तित्व का विकास नागरिक और सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन तथा राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण और प्रसार बुद्धयुगीन शिक्षा के द्वारा किया जा सके।

प्राचीनकाल से शिक्षा का माध्यम मातृभाषा रही है। महावीर और गौतम बुद्ध ने भी शिक्षा का माध्यम क्रमशः प्राकृत और पालि को बनाया। भगवान बुद्ध ने स्पष्ट रूप से बुद्धवचन को सक्काय निरूति अर्थात् मगधी भाषा में ग्रहण करने की अनुमति प्रदान किये थे। आधुनिक बुनियादी शिक्षा में महात्मा गाँधी ने भी शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा में शिक्षा देने की प्रेरणा दी। जिस प्रकार शिशु के शारीरिक विकास के लिए मातृभाषा का माध्यम सहज, सुबोध, बुद्धिगम्य और ग्राह्य होता है।[1] गौतम बुद्ध ने शिक्षा के प्रचार माध्यम में भाषा के महत्व को परखते हुए प्रचलित बोलचाल की भाषा मगधी को अपनाया। गुप्तकाल में जब संयुक्त भाषा की लोकप्रियता बढ़ी तो समानुकूल बौद्ध धर्मावलम्बियों ने संस्कृत भाषा को बौद्ध धर्म में प्रतिष्ठित किया। बुद्ध काल से लेकर सम्राट कनिष्क के शासन काल तक मगध और कौसल प्रदेश की बोलचाल की भाषा पालि ही बौद्ध शिक्षा का माध्यम बनी रही।

स्त्रोतों से पता चलता है कि शिक्षालयों में मूल रूप से मौखिक शिक्षा देने की प्रचलन था परन्तु लिपि के आविष्कार होने पर शिक्षालयों में वर्णमाला के माध्यम से नवसिखुआ भिक्षुओं को शिक्षा दी जाने लगी। निश्चित रूप से लिपि के विकास ने शिक्षा पद्धति को प्रभावित किया होगा।

मौखिक शिक्षा पद्धति

ब्राह्मण शिक्षा पद्धति की भाँति बौद्ध शिक्षण व्यवस्था में मौखिक शिक्षण पद्धति को महत्त्व दिया गया है। ब्राह्मण शिक्षा व्यवस्था में वेदों को सुनकर स्मरण रखने की परम्परा थी। जहाँ ब्राह्मण शिक्षा व्यवस्था में वेद, वेदांग शिक्षा, कल्प व्याकरण, निरूक्त आदि पाठ्य विषय थे वहीं शिक्षा व्यवस्था के प्रारम्भ में केवल बुद्ध वचन ही पाठ्य विषय थे। इन बुद्ध वचनों का संकलन और सम्पादन 'त्रिपिटक' के रूप में अशोक के काल तक लगभग पूरा हो चुका था। अशोक ने अपने शासनादेश सम्बंधी अभिलेखों में त्रिपिटिक के कुछ ग्रंथों का आलेख किया है जो भाब्रु लेख में मिलता है।[2] कालांतर में अन्य बौद्ध ग्रंथ भी बौद्ध शिक्षा के लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण पाठ्य सामग्रियों में सम्मिलित हो गये। अभी भी ब्राह्मण धर्मानुयायियों के वेद की तरह त्रिपिटक भी अध्ययन और बौद्ध धर्म के प्रचार के दृष्टिकोण से सर्वोपरी थे। महावग्ग से ज्ञात होता है कि कोई भिक्षु जो पतिमोक्ख का नियम नहीं जानता था उसे नजदीक के भिक्षु से जानने की अनुशंसा थी। उसी तरह जो उपासक महत्वपूर्ण सुत्र जानना चाहता था वह जानकारी भिक्षु को आमंत्रित कर उसे सुनता था तथा याद करता था।[3] इससे प्रतीत होता है कि मौखिक शिक्षा का प्रचलन था। मौखिक शिक्षण पद्धति अनेक रूपों में प्रचलित थे। जिनमें कंठाग्रीकरन, प्रश्नोत्तर पद्धति, शंका समाधान, वाद-विवाद, व्याख्यान पद्धति आदि प्रमुख हैं।

कंठाग्रीकरण पद्धति

कंठाग्रीकरण पद्धति के प्रमाण ब्राह्मण शिक्षा व्यवस्था में पहले से ही मिलते हैं। यह विधि कम उम्र के ब्रह्मचारियों में लोकप्रिय थी। ऋषि-मुनियों और आचार्यों ने वेदों को छन्दों सहित कंठस्थ करनेवाले विद्वान 'क्षोत्रिय' कहलाते थे।[4] बौद्ध शिक्षा पद्धति ने भी कंठाग्रीकरण पद्धति का अनुसरण किया और सदियों तक बौद्ध धर्मावलम्बियों ने प्रभावशाली ढ़ंग से 'त्रिपिटक' को अपने जिह्वा पर जीवित रखा। बौद्ध स्त्रोतों से ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम सिंहल शासक बहगामनी के शासनकाल में 'बुद्ध वचन' को लिपिबद्ध किया गया, तब तक कंठाग्रीकरण पद्धति ही शिक्षा के मूल पद्धति बने रहे। कंठाग्रीकरण का अभ्यास बौद्ध विहारों में विनयधर, सोत्रांतिक आदि किया करते थे। बौद्ध विहारों में आर्य चतुष्टय; अष्ठांगिक मार्ग, दस कुशल, दस अकुशल कर्म आदि बौद्ध धर्म के मूल सिद्धांत का वाचन एवं स्मरण नियमित रूप से प्रब्रजित और उपसम्पन्न भिक्षु किया करते थे और पतिभोक्ख का पाठ पाक्षिक होता था। इसी कारण भिक्षुओं को लगभग ये सब कंठस्थ रहते थे। भिक्षुओं के अध्ययनशीलता तथा कंठाग्रीकरण के सम्बंध में मझिज्म पंचसूदनी में वर्णन मिलता है मझिज्म भाणक रेवात्थेर ने बीस

वर्ष के पश्चात् भी बिना अशुद्धि के पूरा मझिज्मनिकाय मौखिक सुना दिया था।[5] पंपचसूदनी के अनुसार ऐसे उपदेश रात भर होते थे जिसे श्रवक बड़े चाव से सुनते थे इसके लिए गाँवों एवं नगरों में संस्थागार होते थे।[6] बौद्ध भिक्षुओं ने पवित्र धर्माग्रन्थों की सुरक्षा बौद्ध शिक्षाओं से अपने को अनुशासित करने तथा अपने ज्ञान गरिमा की वृद्धि के लिए कंठाग्रीकरण की पद्धति को प्रमुखता से अपनाए रखा। जब तक लिपि की लोकप्रियता ने आंशिक रूप से अपदस्थ न कर दिया।

प्रश्नोत्तर पद्धति

ब्राह्मण शिक्षा व्यवस्था तथा बौद्ध शिक्षा व्यवस्था दोनों में प्रश्नोत्तर पद्धति के प्रमाण उपलब्ध है। बौद्ध शिक्षा व्यवस्था में भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक- उपासिका बुद्ध से प्रश्न करते थे तथा बुद्ध उनका उत्तर देकर उनको संतुष्ट करने का प्रयास करते थे। ऐसे अनेक प्रश्न एवं उत्तर जीवन एवं धर्म से सम्बंधित त्रिपिटक में उद्धत हैं। उल्लेखनीय है कि धर्म साधकों ने त्रिपिटक एवं अन्य पवित्र ग्रंथों को सुरक्षित रखने के लिए प्रश्नोत्तर जैसे लोकप्रिय पद्धति का उपयोग किया। भारतीय शिक्षा पद्धति के अनुशीलन से पता चलता है कि वेद, वेदांग, उपनिषद, महाभारत और गीता जैसे ग्रंथों में प्रश्नोत्तर के द्वारा अनेक गुढ़ प्रश्नों का समाधान किया गया है।

उपनिषद में प्रश्नोत्तर की लम्बी परम्परा दृष्टिगोचर होती है। खासकर प्रश्नोपनिषद में तो जीवन और जगत के सम्बन्ध में गूढ़ प्रश्नों की बाहुलता है। बौद्ध धर्मग्रन्थों में भी प्रश्नोत्तर विधि के साक्ष्य मिलते हैं बुद्ध के समय गुढ़ प्रश्नों को रखा जाता था और वे उसका उचित उत्तर देने का प्रयास करते थे। आलवक सूत्र में आलवक यज्ञ बुद्ध से प्रश्न करता है-मनुष्य ओध को कैसे तैरता है, संसार रूपी समुद्र कैसे पार करता है, वह दुख का अतिक्रमण कैसे करता है और वह परिशुद्ध कैसे होता है? बुद्ध उसका उत्तर देते हुए कहते हैं- श्रद्धा से ओध को तैरता है, संसाररूपी समुद्र को अप्रमाद पार करता है, वीर्य दुख का अतिक्रमण करता है, प्रज्ञा से परिशुद्ध होता है।[7] जातक में भी बुद्ध ने वर्तमान एवं अतीत से सम्बंधित जीवन कथाओं का वर्णन प्रश्नोत्तर पद्धति से किया है। इन कथाओं के माध्यम् से नैतिक शिक्षण को रोचक बनाकर बौद्ध धर्मावलम्बियों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता था।[8] थेर-थेरी गाथाओं में भी प्रश्नोत्तर पद्धति के संकेत मिलते हैं जिसमें अनेक थेर एवं थेरी के अतीत और वर्त्तमान जीवन से सम्बंधित कथायें है। रोहिणी और उसके पिता के संवाद बौद्ध संघ से सम्बंधित प्रश्नोत्तर रूप में है। रोहिणी से जब उसके पिता पूछते है कि श्रवण जन तुझे इतने प्रिय क्यों है? तो वह कहती है- वे श्रमणशील है श्रेष्ठ कर्म करने वाले हैं, प्रिय हैं।[9]

इस तरह विभिन्न स्त्रोतों से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि प्रश्नोत्तर पद्धति के द्वारा विषय-वस्तु को समझने में सुविधा होती थी इसलिए बौद्ध शिक्षा का माध्यम, इस विधि को भी बनाया गया इसके माध्यम से त्रिपिटक से लेकर परवर्ती बौद्ध साहित्य को सुरक्षित रखा गया।

वाद-विवाद पद्धति

इस पद्धति को शास्त्रार्थ पद्धति भी कहा जाता है। बौद्ध धर्म में ब्राह्मण शिक्षा पद्धति की तरह वाद-विवाद विधि काफी लोकप्रिय थी। इसके तर्कशैली को महत्व दिया जाता था। बुद्ध का अधिकांश समय शास्त्रार्थ में बीता था। उन्होंने अलारकलाम पुरणकस्सप, मक्खलिगोसाल, निगण्ठनाथ आदि अनेक आचार्यों से वाद-विवाद किया था जिसका उल्लेख सुत्तनिपात में है।[10] वाद-विवाद के क्रम में दुसरे सम्प्रदाय के विचारों की बड़ी तीव्रता के साथ खण्डन कर अपने विचारों की उच्चता स्थापित कर अपने अनुयायियों की संख्या में वृद्धि करते थे। हलाँकि बुद्ध ने अनुयायियों को इस प्रकार के व्यर्थ विखण्डावाद के व्यूह में फँसने का निरोध करते हुए चेतावनी दी है। बुद्ध की शास्त्रार्थ को सत्य की तलाश का माध्यम मानते थे न कि आपसी कटूता या कलह का।[11]

वाद-विवाद की शिक्षा-शिक्षालयों में विद्यार्थी के वक्तृत्व-शक्ति के विकास के लिए दी जाती थी। धार्मिक वाद-विवादों के लिए बौद्ध साहित्य में 'संस्थागार' 'कुटागार शाला' का उल्लेख है। वाद-विवाद पद्धति पर मैत्रेय द्वारा रचित सप्तदश भूमिशास्त्र योगाचार्य से इस पर काफी प्रकाश पड़ता है जिसका 44 ई. में चीनी भाषा में अनुवाद हुआ जो पंद्रह खण्डों में विभक्त है।[12] इस शास्त्रार्थ पद्धति के द्वारा धर्म का प्रचार तो होता ही था साथ ही वाद-विवाद भिक्षु-भिक्षुणियों में सत्यान्वेषण की प्रवृति का भी विकास होता था। सत्य का अन्वेषण वस्तुतः बौद्ध धर्म का मूलाधार है।

उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषणोपरांत ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ काल से आलोच्य काल तक वाद विवाद पद्धति बौद्ध शिक्षण व्यवस्था का मूलाधार था। क्योंकि शास्त्रार्थ के द्वारा न केवल पाठ्य विषय को प्रस्तुत करने की सुविधा थी बल्कि विषय का खुलासा भी होता था और भिक्षु-भिक्षुणियों को सम्बंधित विषय में आत्मविश्वास भी पैदा होता था।

शंका समाधान पद्धति

धर्मयात्रा के क्रम में गौतम बुद्ध अपने अनुयायियों द्वारा प्रस्तुत शंकाओं का समाधान करते हुए जीवन और जगत के सम्बंध में अनेक उपयोगी तथ्यों का सोदाहरण समाधान किया जिससे भिक्षु-भिक्षुणियों का काफी ज्ञार्नाजन हुआ। शंका समाधान के माध्यम से नीवन तथ्यों की जानकारी होती थी। शिक्षण के क्षेत्र में शंका समाधान सत्यानुवेषी प्रवृति का पुष्टपोषक रहा है। सुत्तनिपात में गौतम के शिष्यों द्वारा अनेक शंकायें प्रस्तुत की गई हैं और उन्होंने इसका बड़ी ही शालीनतापूर्वक समाधान किया है। समियसुत्त[13] में शंका समाधान किया गया है। सुत्तपिटक के दीर्घ, मज्झिम और अंगुतर निकाय में महापदान सुत्त जो बुद्ध और आनन्द के मध्य, नाम, रूप, वेदना, संज्ञा और संस्कार के सम्बंध में शंका और समाधान के माध्यम से बौद्ध दर्शन के गहन सिद्धांतों का अन्वेषण है।[14] सेलसुत्त[15], राहुलोवाद सुत्त[16] सदृश अनेक सुत्तो में बुद्ध के शिष्यों अतिरिक्त उपासक-उपासिकाओं द्वारा भी शंकाएँ उपस्थित की गई है और उनका बुद्ध ने समाधान किया हैं। वस्तुतः शंका समाधान पद्धति प्रश्नोत्तर पद्धति ही है अन्तर सिर्फ इतना है कि इसमें नये चीजों को उपस्थित किया गया हे।

परीक्षा पद्धति

ब्राह्मण शिक्षा व्यवस्था की भाँति बौद्ध शिक्षा व्यवस्था में भी परीक्षा पद्धति थी परन्तु परीक्षा आज की तरह लिखित नहीं होती थी। प्रव्रजित भिक्षु की अनेक तरह से परीक्षा ली जाती थी। उसके आचार व्यवहार की परख विनयपपिटक में उल्लिखित नियमों के आधार पर होती थी। अत: परीक्षा पद्धति मुख्य रूप से मौखिक ही होती थी। नालंदा विश्वविद्यालय में प्रवेश परीक्षा की व्यवस्था थी जो काफी कठिन था। प्रतियोगियों में दस में से मात्र दो या तीन छात्र ही नामांकन योग्य समझे जाते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणी का जीवन प्रव्रज्या से उपसम्पदा तक एक लम्बी परीक्षा की अवधि थी। भिक्षु-भिक्षुणियों के बौद्धिक विकास तथा चारित्रिक उपलब्धि की परीक्षा होती होगी। बहुत से विषयों में ब्राह्मण शिक्षा व्यवस्था की तरह प्रायोगिक परीक्षा भी ली जाती थी। विनय पिटक में उल्लेख है कि जीवक कुमार भ्रत्य औषधि विज्ञान, बाल्य चिकित्सा और रोग निदान के छात्र थे। आचार्य ने उन्हें ऐसे पौधे को ढूंढ लाने का आदेश दिया जो औषधि की दृष्टि से अनुपयोगी हो।[18] इस तरह परीक्षा पद्धति के द्वारा शिष्यों के मानसिक स्तर और बौद्धिक ज्ञान की परीक्षा ली जाती थी और उसे संघ व्यवस्था में उचित स्थान दिया जाता था।

वरीय शिष्यों द्वारा कनीय शिष्यों को शिक्षण दिये जाने की पद्धति

बौद्ध शिक्षा व्यवस्था में वरीय प्रतिभाशाली भिक्षु द्वारा कनीय भिक्षु को शिक्षा देने की भी व्यवस्था थी। इस व्यवस्था के तहत वरीय भिक्षु आचार्य या उपाध्याय की अनुपस्थिति में या उनके आदेश से कनीय भिक्षुओं को कक्षाओं में अध्यापन कार्य सम्पादित करते थे। इस व्यवस्था से वरीय भिक्षुओं को समझदारी एवं प्रतिभा विकसित होती थी और साथ ही शास्त्रार्थ के लिए उनमें आत्मविश्वास तथा वक्तृत्व शक्ति का विकास भी होता था। प्राचीन काल में भारतीय शिक्षा व्यवस्था में वरीय शिक्षार्थियों को विषयगत वेदुष्य का प्रशिक्षण इसी पद्धति से सहज भाव से दिया जाता था।[19]

वरीय छात्र द्वारा कनीय छात्र को पढ़ाने की प्रथा का उल्लेख ब्राह्मण एवं बौद्ध दोनों शिक्षण पद्धतियों में मिलते हैं। यह व्यवस्था भावी शिक्षक तैयार करने का समुचित प्रयास था। शिक्षा के दृष्टिकोण से इसका काफी महत्व था। इस तरह की व्यवस्था सभी विहारों एवं महाविहारों में रही होगी और इससे अनुशासनिक व्यवस्था में भी सहयोग मिलता था। अनेक विधि-विधानों एवं परम्पराओं के निर्माण के पीछे नैतिक जीवन का उत्थान और बौद्धिक ज्ञान का अभिवर्द्धन था।

इस प्रकार हम पाते हैं कि बुद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था में शिक्षण के माध्यम के रूप में बुद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था में शिक्षण के माध्यम के रूप में अनेक पद्धतियों को अपनाया गया जिसमें मौखिक शिक्षण पद्धति, कंठाग्रीकरण पद्धति, प्रश्नोत्तर पद्धति, वाद-विवाद पद्धति, शंका समाधान पद्धति, परीक्षा पद्धति और परीय छात्रों द्वारा कनीय छात्रों को शिक्षा देने की पद्धति प्रमुख है। इसके अलावे बौद्ध शिक्षण को सुगम एवं प्रभावी बनाने के लिए पालि के स्थान पर संस्कृत को महत्व दिया गया। बौद्ध शिक्षा व्यवस्था के शिक्षण पद्धति की इन विशेषताओं ने बौद्ध धर्म को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

संदर्भ सूची

1) कपाडिया; एच०आर०; जैव सिस्टम ऑफ एजुकेशन पृ० 227
2) भाब्रु शिलालेख
3) महावग्ग II-17.5.6
4) पाणिनी-अष्टाध्यायी-5.2.84
5) पपंचसूदनी, भाग-2-पृ०-91
6) पपंचसूदनी, भाग-2, पृ० 294
7) सुत्तनिपात, आलवक सुत्त- पृ. 3-4
8) जातकट्ठ कथा-भाग-1 पृ०-1
9) थेरी गाथाएँ, गाथा-67 पृ० संख्या-272-275
10) सुत्तनिपात, समियसुत्त-32
11) वही, सारिपुत्रसुत्त-32
12) वाटर्स, युआनच्वांग जिल्द-1 पृ० 355-56
13) सुत्तनिपात, समियसुत्त-513-517
14) महापदान सुत्त, दीर्घनिकाय
15) मज्झिम निकाय-2.5.3
16) वही 2.1.2, राहुलोवाद सुत्त -पंच धातुओं के सम्बंध में राहुल और बुद्ध के बीच शंका समाधान।
17) वाटर्स- ह्वेन्सांग 11-पृ. 165
18) विनयपिटक पृ.-266-74
19) रीज डेविड्स; बुद्धिस्ट-पृ. 199

आर्थिक विकास में मानव संसाधन प्रबंध की भूमिका

डॉ० गिरजा शंकर गुप्ता

सहायक प्राध्यापक, स्नातकोत्तर वाणिज्य विभाग, दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

शोध संक्षेपिकाः-

किसी भी संगठन के लिए मानव संसाधन प्रबंधन महत्वपूर्ण है जो कि संगठन के सिद्धान्तों को बनाये रखे और दुविधाओ, विवादों और संघर्षो के बिना विकास के वाछित उद्देश्य पूरा कर सके। आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में यदि कोई देश समाज, संस्था व उद्योग नयी तकनीकों को नहीं अपनायेगा तो वह इस दौर में पिछड़ जायेगा। अतः यह आवश्यक है कि, श्रमिकों, कर्मचारियों एवं अधिकारियों सहित समाज के प्रत्येक क्षेत्र में सभी लोग विकास के लिए प्रयत्न करें। 'विवेकानंद जी ने कहा है कि, भारत में जो व्यक्ति निम्न स्तर का जीवन व्यतीत कर रहा है, इसका कारण है अशिक्षा जिससे उनमें स्वयं के विकास की कोई इच्छा हीं नहीं रह जाती है। अतः भारत के नव निर्माण हेतु हमें शिक्षा के क्षेत्र में एवं बहुआयामी क्षमता जैसे तकनीकी शिक्षा, गृह उद्योग प्रबंध, कम्प्यूटर शिक्षा आदि से लोगों को परिचित कराना चाहिए। हमें शिक्षा के क्षेत्र में तेजी से विकास करना होगा क्योंकि आज भी देश में लगभग 24 प्रतिशत पुरुष तथा 46 प्रतिशत महिलायें अशिक्षित हैं। जब तक शत प्रतिशत साक्षरता नहीं होगा सर्वांगिण विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। अतः मानव संसाधन पूरी दक्षता के साथ कार्य तभी कर पायेगा जब सभी को उचित व पर्याप्त शिक्षा मिले।

कुंजी शब्दः- प्रतिस्पर्धात्मक युग, बहुआयामी क्षमता, कार्य संस्कृति, सहवीजी, मानवीय संगठन, प्रभावोत्पादकता, सामाजिक परिवर्तन, उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमण्डलीकरण, व्यवसायिक शिक्षा, आर्थिक विकास, प्राकृतिक संसाधनों, औद्योगिक विकास, सद्भावना

प्रस्तावनाः-

मानव संसाधन प्रबंधन किसी संगठन की संपत्ति होती है अर्थात उसका कार्यबल या कर्मचारियों के प्रबंधन में एक व्यवस्थित रणनीतिक दृष्टिकोण है। यह एक बहुआयामी प्रणाली है। इसका उद्देश्य संगठन में कर्मचारियों के कामकाज को सुव्यवस्थित करना और एक स्वस्थ कार्य संस्कृति को बनाये रखना है। यह संगठन का एक आवश्यक विभाग है जिसे मानव संसाधन प्रबंधकों द्वारा उत्साही मानव संसाधन पेशेवरों की एक जीवंत टीम के सहयोग से संचालित किया जाता है। मानव संसाधन प्रबंध से तात्पर्य है, किसी राष्ट्र की समस्त जनसंख्या के सभी गुणों एवं संपूर्ण क्षमता का विकास कर उसे राष्ट्र के हित के लिए उपयोग करना। जिस प्रकार किसी राष्ट्र में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कर उसके सर्वश्रेष्ठ रूप का उपयोग किया जाता है, उसी प्रकार राष्ट्र की संपूर्ण जनशक्ति की क्षमता में विकास कर इसका उपयोग राष्ट्र की उन्नति के लिए किया जा सकता है। किसी राष्ट्र का निर्माण तब तक संभव नहीं है जब तक की उसमें रहने वाले लोगों का चहुमुखी विकास नहीं होता। प्रबंध निरंतर चलनी वाली प्रक्रिया है जो समय के मांग के अनुसार परिवर्तित होता है। नये विचारों नई तकनीकों, नई विचार धाराओं, नये चिन्तन एवं नये प्रारूपों के साथ। प्रबंध की कार्य प्रणालियों में तेजी से परिवर्तन आ रहे हैं। प्रबंध के क्षेत्र में अनेक नवीन प्रवृत्तियां जन्म ले रही है। नई चुनौतियां उत्पन्न हो रही हैं तथा नये सामाजिक एवं नीतिगत मूल्यों का उदय हो रहा है। इस नये उत्तर दायित्वों एवं चुनौतियों से प्रबंध की भूमिका अत्यन्त गतिशील तथा सम्बन्ध अति 'सहवीजी' हो गये हैं। मानव की प्रकृति गतिशील होने के कारण मानव का प्रबंध करना हमेशा से ही चुनौतीपूर्ण रहा है। क्योंकि संसार में कोई भी दो व्यक्ति ऐसे नहीं है जो योग्यता क्षमता, भावनाओं तथा व्यवहार आदि में एक समान हो। ऐसी परिस्थिति उन्हें मशीन की भांति प्रयोग में नहीं लाया जा सकता। अतः उनके साथ व्यवहार करने और उनका प्रबंध करने में बहुत ही सावधानी बरतने की आवश्यकता है जोकि मानव संसाधन प्रबंध के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य है।)

मानव संसाधन प्रबंध का महत्वः-

किसी भी व्यवसाय की गतिविधि का प्रत्येक पहलु उसके मानवीय संगठन की दक्षता, अभिप्रेरणा तथा सामान्य प्रभावोत्पादकता द्वारा निर्धारित किया जाता है। प्रबंधक के सभी महत्वपूर्ण कार्यों में मानवीय संगठन का प्रबंध सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा अहम होता है क्योंकि सब कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि मानवीय संगठन का उपयोग कितनी कुशलता के साथ किया जा रहा है। संगठन का आकार तथा प्रकृति चाहे जो भी हो इनमें से प्रत्येक स्थिति में किसी न किसी मात्रा तक मानव संसाधन की विद्यमानता आवश्यक होता है। यही कारण है कि अधिकांश संगठनों में मानवीय संगठन के प्रभावी निष्पादन हेतु एक पृथक विभाग बनाया जाता है जिसे मानव संसाधन विभाग कहते हैं। किसी भी उपक्रम की गतिविधियां उनके द्वारा प्रारंभ से ही निर्धारित की जाती है। उपकम में कितने ही स्वचालित तथा आधुनिक उपकरण उपयोग में लायी जाती हों परन्तु वे तब तक अनुत्पादकीय ही बने रहेंगे जब तक मानवीय प्रयास की विद्यमानता तथा आय सही मार्ग दर्शन प्राप्त न हो। प्रौद्योगिकी तथा भौतिक इनक घटक किसी भी फर्म की गतिविधियों में निरन्तर महत्वपूर्ण क्षेत्र भूमिका निभाते हैं लेकिन अंतिम विश्लेषण में उनके क्षेत्र लोगों की ही गुणवत्ता होती है तथा वे अवसर जिन्हें वे क्षेत्र समय पर विकसित कर अपने चातुर्य का प्रयोग करते जिन कार्यों का प्रबंधन करते हैं अर्थात प्रबंधकीय कार्य क्षमता में मानवीय योगदान के महत्व को नजरअंदाज बीम नहीं किया जा सकता है। मानव संसाधन प्रभावी संगठन

के रूप में सभी को एक जुट करने का प्रयास करता है, जिससे उपक्रम की सफलता के प्रति वे अपना में सर्वोत्तम योगदान देने में समर्थ हो सके। मानव हैं संसाधन सभी स्तरों पर स्वस्थ संबंधों की स्थापना एवं अनुरक्षण तथा रोजगार सुनिश्चित कर सामाजिक संतुष्टि की अभिप्राप्ति को निश्चित करता है। इसके माध्यम से संगठन के कार्यों तथा लक्ष्यों की अधिकतम कार्य क्षमता एवं मितव्ययता के साथ निश्पत्ति की जाती है जिससे समाज में आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तन संभव हो सके। एक अनौपचारिक समाज में यह और अधिक प्रखर होते जा रहा है कि प्रत्येक संगठन में मानव ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व होते हैं। वे रणनीतियों तथा अविष्कारों का सृजन करते हैं जिसके लिए संगठनों का निर्माण किया जाता है। सम्पतियाँ वस्तुओं के संग्रहण को संभव बनाती है परन्तु मनुष्य उन वस्तुओं को मूर्त रूप देते हैं। ये केवल मानव ही होते हैं जो ऐसी व्यूह रचनाऐं करते हैं जो किसी भी देश व समाज के मूल्यवान उत्पादों तथा सेवाओं के उत्पादन को संभव बनाते हैं।

मानव संसाधन प्रबंधन का इतिहासः-

प्रारंभ काल में रोजगार का क्षेत्र काफी संकुचित था जो कालांतर में विशाल आकार लेते चला गया। सन 1990 के पश्चात उदारीकरण का प्रार्दुभाव होने से उद्योग, कारखाना एवं व्यवसाय के क्षेत्र का विस्तार गुणात्मक रूप से हुआ जिसके परिणाम स्वरूप रोजगार के अवसर में वृद्धि हुई। मानव संसाधन जो कि एक सीमित क्षेत्र में सिकुड़ा हुआ था उदारीकरण के पश्चात काफी फैलाव आया। उदारीकरण निजीकरण एवं भूमण्डलीकरण से रोजगार के स्वरूप में नया परिवर्तन आया रोजगार के स्वरूप एवं क्षेत्र में वृद्धि के कारण इनके समक्ष अनेक चुनौतिया उपस्थित हो गयी। सरकारी क्षेत्र के साथ साथ उद्योग, कारखाना एवं व्यवसाय के क्षेत्र में जहां रोजगार सीमित थे उदारीकरण के बाद इन क्षेत्रों में नये एवं आधुनिक स्वरूपों का सूत्रपात हुआ जिसके अन्तर्गत उद्योग, व्यापार, मार्केटिंग, विनियोग, कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर प्रोग्रामिंग, कन्सलटेंसी, करारोपण, बीमा, पशुपालन, आहार, होटल, आउट सोर्सिंग, इन्टीरियर डेकोरेशन, पर्यटन, ब्यूटीशियन, फैशन डिजाइनिंग, हास्य व्यंग्य, गायन, नृत्य, जन सम्पर्क, खेल आदि सभी क्षेत्रों मैं बड़े पैमाने पर रोजगार के नये अवसर दिखाई दे रहे हैं। रोजगार के इन आधुनिक साधनों ने जहां एक ओर रोजगार के साधनों में वृद्धि की है वहीं इनके स्वरूप में जटिलता आने से अनेक चुनौतियां भी उपस्थित हो गयी हैं। यही कारण है कि इन चुनौतियों पर विजय हासिल करने के लिए आज सशक्त मानव संसाधन की ने आवश्यकता है। यह सत्य है कि उदारीकरण के पश्चात रोजगार का स्वरूप बदला है और यदि रोजगार का स्वरूप इसी गति से बदलता रहा तो 2021 तक कुल रोजगार का 60 से 70 प्रतिशत भाग सेवा क्षेत्र में होगा और वह दिन दूर नहीं होगा जब विश्व के लोग भारत का में रोजगार के लिए प्रवेश करेंगे जबकि आज भारत का मानव संसाधन विदेश की ओर पलायन कर रहा है।

मानव संसाधन प्रबंधन का प्रशिक्षणः-

मानवीय संसाधनों का विकास उचित शिक्षण एवं प्रशिक्षण द्वारा ही संभव है। आज के वातावरण में के यह आव यक है कि विकास संबंधी आवश्यकताओं नव को पूर्ण करने हेतु शिक्षा की पद्धति को नया स्वरूप प्रदान किया जाय। शैक्षणिक क्षेत्र में बुनियादी बदलाव चित लाने के साथ साथ प्राथमिक स्तर से ही यदि व्यवसायिक शिक्षा की व्यवस्था किया जाय तो विकास से संबंधित से मूल भूत लक्ष्यों को प्राप्त करने में सुविधा होगी। महात्मा गांधी ने सर्वप्रथम शिक्षा के क्षेत्र में इस कमी को पहचाना और बुनियादी शिक्षा में श्रम को प्रतिष्ठित कर एक शिक्षा को उत्पादकता से जोड़ने का प्रयास किया। अब समय आ गया है कि आज दी जाने वाली शिक्षा केवल एवं शुद्ध ज्ञान अर्जन के लिए न होकर देश के आर्थिक विकास में मददगार साबित हो। शिक्षा द्वारा ही मानवीय गुणों का विकास होता है जिससे सक्षम व कुशल श्रम का निर्माण होता है। और ऐसे कुशल श्रम के हाथों जिम्मेदारी सौंपी जाती है तो निश्चित रूप से देश समाज व आर्थिक जगत का विकास होगा जैसे धन एक पूंजी है साधन है उसी प्रकार मानव भी एक पूजी है साधन है। उसे उचित शिक्षा देकर देश के मानव संसाधन का विकास कर सकते हैं। भारत में न तो प्राकृतिक संसाधनों की कमी है न ही मानव संसाधन की। यदि कमी है तो संसाधनों के सही प्रयोग की आज मानव संसाधन को मांग के अनुरूप तैयार करने तथा उसके उचित नियोजन करने की आवश्यकता है। व्यक्तियों में योग्यता एवं कौशल की भी कमी नहीं है यदि कमी है तो निष्ठा एवं ईमानदारी की। अतः आवश्यकता है कि नैतिक शिक्षा द्वारा मनुष्यों को प्राकृतिक संसाधनों के सही उपयोग की जानकारी देना जनसंख्या के बढ़ते दबाव से प्राकृतिक संसाधनों का दोहन भी पहले की अपेक्षा काफी तेजी से बढ़ा है अतः प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कम करते हुए उत्पादकता को बढ़ाने की आवश्यकता है।

वर्तमान परिदृश्यः-

आधुनिक विश्व के विकसित एवं महान देश भी कभी असम्य तथा अविकसित रहा है परन्तु विश्व समुदाय जब असभ्य व अविकसित थे तब भारत अपनी सभ्यता एवं विकास में सर्वोपरि था। किसी भी देश के आर्थिक व औद्योगिक विकास के लिए प्राकृतिक एवं मानवीय दोनों संसाधनों का कुशल उपयोग आवश्यक है। वस्तुतः देश में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का अपना स्वयं में कोई महत्व तब तक नहीं है जब तक कि उसका उपयोग मानवीय संसाधनों द्वारा नहीं किया जाता। भारत के मानवीय संसाधन के अन्तर्गत वर्तमान में 110 करोड़ से भी अधिक की जनसंख्या जो हमें विश्व में द्वितीय स्थान प्रदान करते हैं। इस जनसंख्या में 25.7 प्रतिशत जनसंख्या शहरी क्षेत्रों तथा 74.3 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है। कुल जनसंख्या में 14 वर्ष तक के बच्चों का प्रतिशत 36 है जबकि 7 प्रतिशत जनसंख्या 60 वर्ष से अधिक आयु के है। शेष 57 प्रतिशत जनसंख्या 15 से 50 वर्ष के लगभग है। यदि देश के कार्यशील जनसंख्या का निर्धारण करें तो यह बात स्पष्ट होती है कि 668 प्रतिशत कृषि, वन, मछली व बागान क्षेत्रों में, 10.6 प्रतिशत खनन व घरेलु उद्योग में, 74 प्रतिशत व्यापार व वाणिज्य में तथा शेष 15.2 प्रतिशत अन्य क्षेत्रों में कार्यशील है। जिस देश के पास लगभग 65 करोड़ काम करने वाले मजबूत हाथ हो और यदि उन हाथों को सही काम देने के लिए पर्याप्त साधन हो तो वह देश गरीब कैसे हो सकता है। आज कमी है तो सिर्फ उस मानव संसाधन को सही मार्ग दर्शन की और उन हाथों को पर्याप्त अवसर की जिस दिन सभी हाथों को काम मिल जायगा उस दिन भारत को विश्व के अग्रणी देशों के कतार में आने से कोई नही रोक सकता।

निष्कर्ष:-

मानव संसाधन प्रबंधन किसी भी संगठन की सफलता के लिये महत्वपूर्ण है। यह संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कर्मचारियों की क्षमताओं का उपयोग करने में मदद करता है। किसी व्यक्ति के व्यवहार को अवलोकित करना एक बात है और समझना दूसरी बात तथा इसे किसी निश्चित दिशा की ओर उन्मूख करने हेतु प्रभावित करना तीसरी बात है। मानवीय व्यवहार को समझने एव उसे प्रभावित करने के लिए मानवीय आवश्यकताओं की जानकारी होना नितांत आवश्यक है। मानव संसाधन जितना सशक्त होगा समुचा विश्व उतना ही उन्नत व खुशहाल होगा। किसी संगठन की प्रस्तुति उत्पादकता और लाभों की विशिष्टता उसे भीड़ से अलग करती है और सद्भावना प्राप्त करती है। मानव संसाधन प्रबंधन न केवल संगठन में विकास को बढ़ाता है, बल्कि कठिन बाजार में कंपनी के लिए एक गहरी प्रतिष्ठा हासिल करने में मदद करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Rao P- Subba & Human Resources] Management Konark Publishers Pvt- LTD Delhi – 1996
2. Ahuja K-K- Human Resource Management Kalyani Publishers Ludhiana] First edition&1997
3. Agrawal R-C- & Human Resource Management SBPD Publishig House] Agra& 2012
4. चतुर्वेदी सी.एल. मानव संसाधन प्रबंध श्री महावीर बुक डिपो (पब्लिकेशन) नई दिल्ली
5. मामोरिया डॉ चतुर्भज- मानव संसाधन प्रबंध, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा 2006
6. शर्मा प्रो. जी.डी.- मानव संसाधन प्रबंध, रमेश, बुक डिपो, जयपुर 2002
7. रूद्रदत्त के.पी.एम. सुन्दरम भारतीय अर्थव्यवस्था एस. चंद एंड कम्पनी राम नगर, दिल्ली, 2001 गुप्ता एस.सी- आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था एजुकेशनल पब्लिशर्स, जयपुर, 1999

प्रवासी महिला मजदूरों की कार्यस्थल पर स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन (जांजगीर-चांपा जिले के नवागढ़ विकासखण्ड के विशेष संदर्भ में)

डॉ० चेतानंद जांगडे

मेडिकल सोशल वर्कर, स्व. श्री लखीराम अग्रवाल स्मृति, शासकीय चिकित्सा महाविद्यालय, रायगढ़ (छ.ग.)

डॉ० एल.एस. गजपाल

प्राध्यापक, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल वि.वि. रायपुर (छ.ग.)

सूचक शब्द: प्रवास, कार्यस्थल, महिला, मजदूर, रोजगार, समस्या, शोषण।

सारांश: महिलाएं किसी परिवार तथा समाज की नींव होती है और आज के समय में तो महिलाएं घर-परिवार के दायित्वो का निर्वहन करते हुए उद्यमिता, नौकरी और कृषि आदि के क्षेत्रों में संलग्न होकर समाज के विकास में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। इसके अलावा भी अशिक्षित, अल्प शिक्षित या आर्थिक मंदी से ग्रसित परिवारों की महिलाएं स्थानीय क्षेत्र में मजदूरी से भी आगे बढकर प्रवासी मजदूरों के रूप में कार्य कर रही हैं। इन प्रवासी महिला मजदूरों की आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थिति निम्न होने के कारण तो इन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना ही पड़ता है बल्कि समाज की भेदभाव पूर्ण मानसिकता, अनुचित व्यवहार आदि के कारण भी इन्हें काफी संघर्ष करना पड़ता हैं। छत्तीसगढ़ शासन द्वारा स्थानीय महिला कौशल विकास के प्रयास निरंतर किये जा रहे हैं। स्थानीय स्तर पर कृषि व वन उपज आधारित रोजगार सृजन के प्रयास किये जा रहे हैं परन्तु अधिक आय की उम्मीद में श्रमिक काम के लिये दूसरे राज्यों में कार्य हेतु प्रवास पर जाते हैं। यह पलायन का स्वरूप मौसमी व आकस्मिक प्रवृत्ति का है हालांकि कुछ श्रमिक पूर्णकालिक पलायन भी करते हैं। यह शोध आलेख प्रवासी महिला मजदूरों की कार्यस्थल पर स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन शोधार्थी द्वारा संरचित साक्षात्कार अनुसूची (शोध उपकरण) के माध्यम से प्राप्त प्राथमिक तथ्यों पर आधारित हैं। जिससे नीतिगत नियोजन बनाने व मूल स्थिति को समझने में सहायता प्राप्त होगी।

प्रस्तावना: प्रवास स्थल पर विषम परिस्थिति में भी कार्य करना पड़ता है जिससे अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं फिर भी उसी वातावरण में विवश होकर कार्य करते है जिसका एकमात्र कारण परिवार की स्थिति में सकारात्मक सुधार हो सके क्योंकि उनका मानना है कि मजबूरी में ही सही पर कार्य की प्राप्ति तो है मूल निवास स्थल पर यदि कार्य की उपलब्धता होती तो फिर यहां आने की जरूरत ही क्यों पड़ती हम अपने मूल निवास स्थल पर ही खुशी-खुशी कार्य को करते परंतु हालात ऐसी हो गयी है कि ना चाहकर भी प्रवास करना पड़ रहा है क्योंकि इसके अलावा किसी भी प्रकार का विकल्प नही हैं। मूल निवास स्थल पर रोजी रोटी की अल्पता अर्थात रोजगार की कमी के साथ ही साथ कार्य कम समय के लिये ही उपलब्ध हो पाता है एवं कार्य के बदले मिलने वाली मजदूरी की राशि भी अपेक्षाकृत कम होती है जिससे परिवार पालन संबंधी समस्या आने लगती है एवं अधिक आय की प्राप्ति के उद्देश्य से प्रवास का सहारा लेना पड़ता हैं। इस अध्याय में प्रवासी महिला मजदूरों को उनके प्रवास स्थान पर कार्यस्थल और उसके बाहर होने वाले कठिनाईयों का वर्णन किया गया है जिसमे कार्यस्थल के अनुचित नियमों, वेतन, नशापान, कार्यावधि, मूलभूत सुविधा, अनुचित बाध्यता, शोषण आदि विषयों आंकड़ो का विस्तार पूर्वक विश्लेषण किया गया है जिसके कारण प्रवासी महिला मजदूरों को संघर्ष करना पड़ता है और अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं। खान[1] पलायन एक महत्वपूर्ण मानवीय क्रिया है और जनसंख्या के विकास एवं वितरण में परिवर्तन लाने वाले तीन प्रमुख कारकों में एक तीव्र जनसांख्यिकीय युक्ति हैं। पलायन का स्वरूप निरंतर बदलते रहता हैं तथा जो आज प्रवासी हैं वे कल निवासी हो सकते हैं वहीं आज जो निवासी हैं वे कल मजदूरी के लिये बाहर प्रवास कर सकते हैं। शर्मा[2] ने श्रमिकों के पलायन संबंधी अपने अध्ययनों में अविभाजित मध्यप्रदेश में पलायन की समस्या एवं इसके कारण तथा पलायनकर्ता श्रमिकों द्वारा अपनाए जाने वाले परिवहन के साधनों तथा श्रमिकों द्वारा पलायन पश्चात् किए जाने वाले कार्यों का विश्लेषण किया हैं।

छत्तीसगढ़ के श्रमिक अन्य राज्यों में ईट्ट निर्माण, भवन निर्माण, सड़क निर्माण, घरेलू कार्य उद्योग कृषि आदि क्षेत्र में मजदूरी कार्यो के लिये पलायन करते हैं इन श्रमिकों की दक्षता कम होती हैं जिस कारण 80 प्रतिशत से अधिक मजदूर अकुशल मजदूरी करते हैं। बैनर्जी[3] का अध्ययन भारत में ग्रामीण से नगरीय प्रवास एवं वैवाहिक प्रवास का अध्ययन दिल्ली एवं उसके निकटवर्ती क्षेत्रों के सदर्भ में चिब[4] का किन्नौर जिले में जनसंख्या प्रवास प्रतिरूप, प्रेमी[5] का भारत के बड़े नगरों में प्रवासी महिलाओं की श्रमशक्ति, पर आधारित हैं।

प्रवासी महिला मजदूरों की कार्य संबंधित स्थिति अक्सर विशेष चुनौतियों का सामना करती है, और उन्हें आर्थिक और सामाजिक संदर्भ में विभिन्न पहलुओं से गुजरना पड़ता है प्रवासी महिला मजदूरों को अपने श्रमिक अधिकारों की जागरूकता होनी चाहिए। उन्हें न्यूनतम मानक वेतन, काम की सुरक्षा, और आपातकालीन अवकाश का अधिकार होना चाहिए। ये महिलाएं अक्सर अन्य शहरों या क्षेत्रों में काम के लिए जाती हैं इसलिए उन्हें सुरक्षित और स्वास्थ्यपूरक आवास की आवश्यकता होती हैं। शिक्षा और प्रशिक्षण के अवसरों की सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है ताकि ये महिलाएं समृद्धि की ओर बढ़ सकें और उन्हें बेहतर रोजगार के लिए तैयार किया जा सके। कोमला[6] का अध्ययन बैंगलोर शहर के औद्योगिक निर्माण कार्य में संलग्न महिला श्रमिकों पर आश्रित हैं। प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं की या महिला श्रमिकों की आवश्यकता को महसूस किया गया हैं अर्थात् विभिन्न क्षेत्रों में महिला श्रमिकों की भूमिका महत्वपूर्ण रही हैं। आर्थिक गतिविधियों में महिलाओं की भूमिका औद्योगिक क्रांति के पश्चात तीव्रता से वृद्धि हुई हैं। त्रिपाठी एवं सिंगला[7] के अनुसार अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर को अधिक से अधिक मात्रा में वृद्धि करने का कार्य किया हैं सामाजिक सुरक्षा मुहैया कराने के महत्वपूर्ण एवं विशेष कार्य किया हैं।

साहित्य समीक्षा:

कैप्लो[8] के अनुसार प्रवास में निवास स्थान परिवर्तन निश्चित रूप से निहित है लेकिन व्यवसाय परिवर्तन आवश्यक नही है, यद्यपि आमतौर पर यह व्यवसाय परिवर्तन का कारण बनता हैं। प्रवास की मुख्य दिशा गांवों से नगरों की ओर गमन की है एवं स्थायी जनसंख्या वाले क्षेत्रों से औद्योगिक एवं वाणिज्यिक क्षेत्रों की ओर है। अधिक जनसख्या के दबाव वाले क्षेत्रों से कम जनसंख्या वाले क्षेत्रों की ओर है तथा नगरों के केन्द्रीय भागों से उनके बाहरी क्षेत्रों की ओर हैं।

सेन[9] ने श्रमिकों के पलायन संबंधी शोध अध्ययन में इस तथ्य को स्पष्ट किया है, कि छत्तीसगढ़ के मजदूरों का सामूहिक रूप से पलायन करने का इतिहास काफी पुराना है। लगभग एक सदी पुराना जो 19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में आये अकालो तथा बंगाल नागपुर रेल्वे बिलासपुर 1891 में स्थापित रेल लाइन से प्रारंभ होती हैं जिसके कारण अधिक से अधिक संख्या में यातायात के साधन के रूप में प्रयोग कर प्रवास करते रहे हैं।

हास[10] ने अपने अध्ययन मे दो तिहाई महिलाओं ने पलायन का मुख्य कारण विवाह को माना है जबकि पुरुषों में कुल का एक तिहाई प्रवास कार्य और व्यवसाय के कारण होता है, यह पुरुषों में प्रवास का सबसे बड़ा एवं मुख्य कारणों में से हैं। ऐसा माना गया है कि प्रवास में पुरूषों के साथ उनकी पत्नी को भी आवश्यक रूप से जाना ही पड़ता है चाहे उनकी इच्छा हो या ना हो या कहा जा सकता है कि इच्छा के विरूद्ध जाना ही पड़ता हैं। प्रवास का एक मुख्य कारण विवाह को माना गया है क्योंकि यदि देखा जाये तो सर्वप्रथम प्रवास विवाह पश्चात् ही प्रारंभ हो जाता हैं।

सेतिया[11] के अनुसार, प्रवास का प्रक्रम यदि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में विश्व स्तर पर दृष्टिगत किया जाये तो परिलक्षित होता है कि यह मानव सभ्यता और संस्कृति के उदय के साथ ही आरंभ हुआ हैं। प्रवास मानव सभ्यता के विकास एवं विस्तार का मुख्य कारण विशेष तौर पर रहा हैं। यदि एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर बसने की प्रक्रिया न होती तो मनुष्य अभी तक आदिमानव ही बना रहता मानव सभ्यता के विकास की कहानी प्रवास से ही शुरू हुई। प्रवास के द्वारा ही मनुष्य एक स्थान से अन्यत्र स्थान पर गमन करते हुये अपनी जीविकोपार्जन संबंधित सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करने का प्रयत्न करता हैं।

दीवान[12] का अध्ययन रायपुर क्षेत्र के शहरी अनौपचारिक क्षेत्र में श्रमिकों की आय और रोजगार पर आधारित हैं अध्ययन का उद्देश्य शहरी अनौपचारिक क्षेत्र में आय और रोजगार के सृजन की प्रक्रिया का अध्ययन करना, प्रवासन के संबंध में शहरी अनौपचारी क्षेत्र में श्रम बाजार व्यवहारों की जांच का अध्ययन करना, शहरी अनौपचारिक क्षेत्रों में श्रमिकों के कामकाजी और रहन-सहन की स्थिति का अध्ययन करना, गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले शहरी अनौपचारिक क्षेत्र के कामगारों के अनुपात के आंकलन का अध्ययन करना हैं।

गानीगर[13] का अध्ययन कर्नाटक में शहरी प्रवास के समाजशास्त्रीय अध्ययन पर केन्द्रित हैं प्रवास एक व्यवहारिक और सर्वव्यापी घटना हैं क्योंकि दुनिया भर में हम पाते हैं कि प्रवासन सामाजिक आर्थिक विकास में योगदान दे रहा हैं जो मनुष्य को एक क्षेत्र के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक उतार-चढ़ाव के अत्याचार से उबरने में सक्षम बनाता हैं। अध्ययन का उद्देश्य आयु, लिंग, वैवाहिक स्थिति, धर्म, जाति, शैक्षणिक पृष्ठभूमि, आय, पारिवारिक पृष्ठभूमि और बाहरी प्रवासियों की अन्य विशेषताओं का अध्ययन करना, प्रवास के स्वरूप और प्रेरक कारकों का अध्ययन करना, स्वयं के समायोजन संबंधी समस्याओं को अवगत करना, प्रवास पश्चात सुधार स्तर का मूल्यांकन करना हैं।

कर्मोकर[14] ने अपने अध्ययन में भिलाई नगर के महिला आप्रवास एक भौगोलिक विश्लेषण पर आधारित हैं जनसंख्या प्रवास की प्रवृत्ति जहां आर्थिक अवसरों में परिवर्तन का परिणाम है वहीं सांस्कृतिक विचरण एवं सांस्कृतिक एकता का भी प्रतीक हैं। "गांव एवं नगर की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में पर्याप्त विभिन्नताएं होती है, जिसके कारण ग्राम से नगर की ओर प्रवास अधिक महत्वपूर्ण हैं, समान्यत: पुरूषों के प्रवास में जहां आर्थिक उद्देश्य की प्रबलता होती हैं वहीं महिलाओं के प्रवास वैवाहिक एवं पारिवारिक गतिशीलता अधिक प्रभावशील रहे हैं भारत के नगरीय क्षेत्रों में विशेषकर उन नगरों में जहां बड़ी संख्या में आप्रवास हुआ था नगरीय विकास प्रक्रिया में तीव्र वृद्धि हुई"।

खैरकर[15] का अध्ययन पुणे शहर में आप्रवास पर एक भौगोलिक विश्लेषण पर केन्द्रित हैं वर्तमान में अधिकांश लोग शहरी क्षेत्रों में निवास करते हैं केवल अर्ध-शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की आर्थिक स्थिति निम्नतर हैं। अध्ययन में 500 उत्तरदाताओं का चयन किया गया हैं पुणे शहर में प्रवास के संपूर्ण अध्ययन की मुख्य विशेषताओं का समापन विभिन्न महत्वपूर्ण तथ्यों से ज्ञात होता हैं जो शहर की सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक विशेषताओं पर प्रकाश डालते हैं। पुणे शहर राज्य में दूसरा सबसे बड़ा शहर हैं जिसकी जनसंख्या लगभग 35 लाख हैं एवं ये आंकड़ें पुणे नगर निगम से प्राप्त हैं की गई हैं।

गजपाल[16] ने अपने अध्ययन में ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों की ओर जाने वाली जनसंख्या के प्रव्रजन के पीछे की मूल कारण कार्य, रोजगार अथवा व्यवसाय की तलाश पर आधारित हैं प्रव्रजन व्यक्ति या समूह की भौगोलिक सीमा से दूसरे भौगोलिक सीमा में कुछ उद्देश्य को लेकर जाने की प्रक्रिया हैं। इसमें

मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं आर्थिक विशेषताएं समाहित होती है ग्रामीण नगरीय प्रवास का संबंध विकासशील देश के रूप में भारत में विशेष महत्व रखता हैं। भारत की कुल जनसंख्या का 72.22 भाग ग्रामों में निवास करता है, जिसमें अधिकतर कृषि कार्य में संलग्न है छ. ग. भी एक ऐसा राज्य है जहां के श्रमिक देश के किसी भी कोने में पाये जा सकते हैं।

अग्रवाल[17] का अध्ययन रायपुर में लोहा और स्टील की री-रोलिंग मिलों में कार्य करने वाले श्रमिकों की आर्थिक स्थिति के अध्ययन पर आधारित हैं किसी देश की आर्थिक प्रगति के लिए रोजगार और आय को सर्वाधिक संतोषजनक और व्यापक रूप से स्वीकृत संकेतक माना जाता हैं वे ऐसे मापदण्ड हैं जिनके माध्यम से देश के विकास और स्थिति का मूल्यांकन किया जा सकता हैं अध्ययन प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है तथ्यों के संग्रहण में औपचारिक एवं अनौपचारिक साक्षात्कार का प्रयोग किया गया हैं। द्वितीयक आंकड़ों के रूप में प्रकाशित, अप्रकाशित लेख, रिपोर्ट एवं शोध समाग्री, जिला सांख्यिकी रिपोर्ट का प्रयोग किया गया हैं।

गजपाल[18] का अध्ययन समान्य शब्दों में अपने मूल निवास वाले स्थान से अन्य दूसरे स्थान पर जाकर रहने की प्रक्रिया हैं। "यह जटिल परंतु आधारभूत सामाजिक प्रक्रिया है जिसकी व्याख्या करना अत्यंत कठिन है प्रवास एक बहुआयामी प्रक्रिया है जिसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव आर्थिक विकास, जनशक्ति नियोजन, नगरीकरण और सामाजिक परिवर्तन पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता हैं। परिवर्तनशील सामाजिक परिवेश में जनसंख्या उत्प्रवास का किसी भी क्षेत्र के भूवैज्ञानिक संगठन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है इक्कसवीं सदीं में विशेष रूप से औद्योगिक विकास एवं भूमण्डलीकरण के दौर में प्रवास एक चुनौती एवं समस्या के रूप में सामने आ रही हैं"। भारत के सुदूर ग्रामों में संसाधनों का आभाव है ना पानी की पर्याप्त सुविधा है और ना जल की पर्याप्तता ना ही उचित आवागमन के साधन। देश के आजादी के 65 वर्षो में देश में एक भूखी और अशिक्षित श्रमिक नगरों में काम और नौकरी की तलाश में शहरों की ओर प्रस्थान करता हैं प्रवास मानव जीवन के लिए एक सार्वभौमिक विशेषता रही हैं।

उद्देश्यः

1. प्रवासी महिला मजदूरों की कार्यस्थल पर मजदूरी प्राप्ति का अध्ययन करना।
2. मूल निवास की तुलना में कार्यस्थल पर प्रचलित मजदूरी राशि का अध्ययन करना।
3. कार्यस्थल के निकट मदिरा दुकान की स्थिति का अध्ययन करना।
4. कार्यस्थल के निकट मदिरा दुकान होने पर होने वाली समस्याओं का अध्ययन करना।
5. कार्यस्थल पर मादक पदार्थों के सेवन का अध्ययन करना।
6. कार्यस्थल पर व्यवहारिक, मानसिक एवं शारीरिक समस्या का अध्ययन करना।
7. कार्यस्थल पर व्यवहारिक, मानसिक एवं शारीरिक समस्या के स्वरूप का अध्ययन करना।

अध्ययन क्षेत्र का चयन

अध्ययन क्षेत्र जांजगीर-चांपा जिले के श्रमिक प्रवास प्रभावित नवागढ़ ब्लॉक का चयन उद्देश्य पूर्ण निदर्शन द्वारा किया गया तत्पश्चात् नवागढ़ ब्लॉक के जनपद पंचायत से श्रमिक प्रवास प्रभावित कुल 109 गांव की सूची सूचना के अधिकार अधिनियम 2005 के द्वारा प्राप्त की गयी। इन 109 गांवों में से 4 (खैरताल, बुड़ेना, पोंडी एवं धाराशिव) गांव का चयन दैव निदर्शन के लॉटरी प्रणाली द्वारा किया गया हैं।

उत्तरदाताओं का चयन

अध्ययन हेतु 4 गांव खैरताल, बुडेना, पोंडी एवं धाराशिव के कुल 463 प्रवासी परिवारों को अध्ययन हेतु चिन्हित किया गया हैं। इन चिन्हित परिवारों में से लगभग 70 प्रतिशत (324) प्रवासी परिवारों का चयन समानुपातिक दैव निदर्शन के माध्यम से किया गया हैं। इन 324 प्रवासी परिवारों में से एक महिला प्रवासी का चयन उत्तरदाता के रूप में किया गया है भले ही उस परिवार में एक से अधिक महिला प्रवासी क्यों ना हो।

Øekd	ftyk	fodkl [k.M	p;fur xkeh	dy çokl h ifjokj	vè;;u gsrq p;fur ifjokj
1-	tkt xhj&pkik	नवागढ़	(1) खैरताल (2) बुडेना (3) पोंडी (4) धाराशिव	103 104 184 72	72 72 129 51
;kx				463	324

तथ्य संकलन की प्रविधि एवं उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में प्रवासी महिला मजदूरों की कार्यस्थल पर स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन करना है जिनमे तथ्यों के समुचित संकलन एवं अध्ययन की वस्तुनिष्ठता के लिए अध्ययनगत प्रवासी महिला मजदूरों से तथ्यों के संकलन हेतु शोध उपकरण के रूप में साक्षात्कार-अनुसूची का निर्माण किया गया हैं तथा साक्षात्कार एवं अवलोकन प्रविधि के द्वारा प्राथमिक तथ्यों का संकलन किया गया हैं। सामाजिक अनुसंधान के लिए तथ्य संकलन महत्वपूर्ण है तथ्य संकलन की प्रक्रिया में विभिन्न प्रविधियाँ और उपकरणों का उपयोग किया जाता है तथ्य संकलन के माध्यम से सामाजिक आंकड़ों का संग्रहण करना समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है, जिससे समाज में विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों और परिस्थितियों का अध्ययन किया जा सकता हैं।

कार्यस्थल पर मजदूरी की प्राप्ति

किसी भी व्यक्ति को उसके क्षमता तथा रुचि के अनुसार काम मिल पाना मुश्किल होता है आज भी समाज में कुछ ऐसे लोग हैं जो अधिक मजदूरी राशि पाने के लिए कठिन परिश्रम करने को तैयार है परंतु इस लायक कार्य उन्हें आसानी से नहीं मिलता अधिक मजदूरी राशि प्राप्त करने हेतु उन्हें अधिक परिश्रम करना पड़ता हैं। गजपाल[19] ने अपने अध्ययन में स्पष्ट किया है कि कार्यस्थल पर रोजगार मिलने का माध्यम सर्वाधिक रूप से पूर्व प्रवजकों द्वारा होता हैं। ऐसे में जांजगीर-चांपा जिले के महिलाओं को किस माध्यम से कार्यस्थल पर मजदूरी प्राप्त होता होगा इसके बारे में तालिका क्रमांक 01 में दर्शाया गया हैं -

तालिका क्रमांक-01: कार्यस्थल पर मजदूरी की प्राप्ति का माध्यम

Øekd	dk;LFky ij etnwjh dh izkfIr	vkofRr	izfr'kr
1-	पूर्व प्रवासी द्वारा	31	9.5
2-	दलाल, ठेकेदार एवं जमादार द्वारा	274	84.7
3-	स्वयं से	19	5.8
;kx		324	100

प्रवासी महिला मजदूरों को कार्यस्थल पर मजदूरी की प्राप्ति का माध्यम के सम्बन्ध में उपरोक्त तालिका से ज्ञात हुआ है कि 84.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार लोगो को दलाल/ठेकेदार/जमादार द्वारा क्योंकि नियोजको एवं प्रवासी महिला के बीच मध्यस्थता दलाल/ठेकेदार एवं जमादार द्वारा होती है जिसमें उन्हें कमीशन के रूप में अतिरिक्त आय की प्राप्ति होती हैं। 9.5 प्रतिशत लोगों को पूर्व प्रवासी द्वारा मजदूरी प्राप्त होता है अध्यनित प्रवासी महिला मजदूर द्वारा बतलाया गया कि पूर्व में प्रवास किये गये सहयोगी, रिश्तेदार द्वारा मजदूरी की प्राप्ति होती है जबकि 5.8 प्रतिशत ऐसे लोग भी है जिन्होंने इस प्रकार के मजदूरी का तलाश स्वयं किया हैं एवं कार्य को प्राप्त करने में अपेक्षाकृत अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ा हैं।

मूल निवास की तुलना में कार्यस्थल पर प्रचलित मजदूरी राशि की प्राप्ति

प्रवासी मजदूरों को अक्सर नए स्थानों पर रोजगार के लिए निरंतर प्रवास करना पड़ता है जिससे उन्हें उच्चतम मजदूरी राशि मिल सके। प्रवासी मजदूरों की मजदूरी राशि उनके जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत होती है जो उन्हें उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार करने में मदद करती है यह राशि उनके परिवार के लिए भी आर्थिक सुरक्षा का स्रोत बनती है और उन्हें समाज में सम्मान प्रदान करती हैं। मूल निवास की तुलना में प्रवास स्थल पर मजदूरी राशि की प्राप्ति महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह इन महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाती है और उन्हें समृद्धि की दिशा में अग्रसर करने में मदद करती हैं। भारत के हर गांव, कस्बे अथवा क्षेत्र में किसी न किसी प्रकार के मजदूरी या कार्यों का संचालन होता है परंतु अपने क्षेत्र के कार्यों में ऐसी क्या समस्याएं उत्पन्न होती है जिसके कारण मजदूरों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रवास करना पड़ता हैं। ली[20] ने प्रवास के निवास को स्थायी अथवा अर्धस्थायी परिवर्तन के रूप में माना है। इसमें दूरी से संबधित कोई प्रतिबंध नहीं है तथा यह स्वेच्छा से एवं अनिच्छा से हो सकता है साथ ही यह बाह्य एवं आंतरिक स्वरूप लिए हुए हो सकता हैं।

महिलाओं को अपने साथ-साथ अपने परिवार की भी जिम्मेदारियां होती है उनके ऊपर घर के कामों से लेकर बच्चों के लालन-पालन की जिम्मेदारी होती है फिर उनके सामने ऐसी क्या समस्या उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण वह अपने मूल निवास स्थान के मजदूरी अथवा कार्यों को छोड़कर अन्य शहरों में प्रवास कर मजदूरी का कार्य करती हैं इस समस्याओं को समझने के लिए तथा प्रवास हेतु आकर्षण के कारण को समझने के लिए तालिका क्रमांक 02 में मूल निवास की तुलना में प्रवास स्थल पर महिला मजदूरों को अधिक मजदूरी राशि की प्राप्ति होने के संबंध में आंकड़ों को दर्शाया गया हैं-

तालिका क्रमांक-02: मूल निवास की तुलना में कार्यस्थल पर प्रचलित मजदूरी राशि

Øekd	çpfyr etnwjh jkf'k ¼#i;s esa½	vkofUk	çfr'kr
1-	300 तक	64	19.7
2-	301– 400	124	38.3
3-	401 – 500	97	29.9
4-	500 से अधिक	39	12.1
;kx		324	100

मूल निवास की तुलना में कार्यस्थल पर मजदूरी राशि की प्राप्ति के सम्बन्ध में उपरोक्त तालिका से ज्ञात हुआ है कि सर्वाधिक 38.3 प्रतिशत प्रवासी महिला मजदूरों को 301 से 400 रुपये मजदूरी राशि की प्राप्ति होती है, 29.9 प्रतिशत प्रवासी महिलाओं की मजदूरी दर 401 से 500 रुपये मजदूरी राशि की प्राप्ति होती है, 19.7 प्रवासी महिलाओं की मजदूरी दर 300 रुपये तक मजदूरी राशि की प्राप्ति होती है जबकि 12.1 प्रवासी महिलाओं की मजदूरी दर 500 रुपये से अधिक हैं।

कार्यस्थल के निकट मदिरा दुकान की स्थिति

सर्व विदित है कि समाज पर उसके आसपास के माहौल का गहरा प्रभाव पड़ता है समाज के सदस्य जैसा देखते, सुनते या अनुभव करते हैं उनसे उसी प्रकार उनका आचरण परिलक्षित होता हैं। किसी भी परिवार में महिला उस परिवार के आधार होने के साथ-साथ बच्चों की प्रथम गुरु एवं उस परिवार को चलाने वाली होती है। जैसे उस महिला के संस्कार होते हैं उसके अनुरूप उसके परिवार के संस्कार बनते चले जाते हैं अर्थात् एक परिवार या समाज का संस्कार उस परिवार या समाज के महिलाओं पर निर्भर करता है ऐसे में प्रवासी महिला मजदूर के कार्यस्थल के निकट का माहौल सकारात्मक हो यह आवश्यक हो जाता है और ऐसा नहीं होने पर समाज को दुष्परिणाम का सामना करना पड़ता है और उस प्रवासी महिला मजदूर को भी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है इसलिए तालिका क्रमांक 03 में प्रवासी महिला मजदूरों के कार्यस्थल के निकट मदिरा दुकान होने की स्थिति को दर्शाया गया हैं-

तालिका क्रमांक-03: कार्यस्थल के निकट मदिरा दुकान होना

Øekd	efnjk nqdku gkuk	vkofÙk	çfr'kr
1-	हाँ	46	14.7
2-	नहीं	68	20.8
3-	ज्ञात नहीं	210	64.5
;kx		324	100

प्रवास स्थल में कार्यस्थल के निकट मदिरा दुकान होने के सम्बन्ध में 14.7 प्रतिशत प्रवासी महिला मजदूरों के अनुसार उनके प्रवास स्थल में कार्यस्थल के आस-पास मदिरा दुकान स्थित है, 20.8 प्रतिशत प्रवासी महिला मजदूरों के अनुसार उनके कार्य क्षेत्र के आस-पास कोई मदिरा दुकान नहीं है जबकि 64. 5 को ज्ञात ही नही है कि उनके कार्य स्थल के आस-पास कोई मदिरा दुकान है या नही।

कार्यस्थल के निकट मदिरा दुकान संबंधित होने वाली समस्याएं

मदिरा पान के संबंध में हम सभी जानते हैं कि अधिकतर घरेलू हिंसा या अन्य किसी भी प्रकार के लड़ाई झगड़े के मूल कारण में मदिरा सेवन होता हैं। मदिरा के सेवन करने से व्यक्ति स्वयं के नियंत्रण को खो देता है जिससे वह अनियंत्रित होकर अनेक दुष्कर्मों की ओर अग्रसर होता है और यहां तक की अपराध के लिए भी उत्साहित हो जाता है ऐसी स्थिति में यदि प्रवासी महिला मजदूरों के कार्य स्थल के निकट मदिरा दुकान होता है तो उसके वजह से इन महिलाओं को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं। रूक्मणी[21] का अध्ययन प्रवास स्थल में असुरक्षा का माहौल व्याप्त होने संबंधी व्याख्या की हैं। इसके संबंध में तालिका क्रमांक 04 में कार्यस्थल के निकट मदिरा दुकान होने पर होने वाली समस्याओं को दर्शाया गया हैं-

तालिका क्रमांक-04: कार्यस्थल के निकट मदिरा दुकान संबंधित होने वाली समस्याएं (n=46)

Øekd	समस्या की स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशत
1-	अनुचित वातावरण	09	19.6
2-	बच्चों पर बुरा प्रभाव	19	41.4
3-	जघन्य अपराध का डर	06	13.0
4-	चोरी,डकैती एवम् मारपीट की घटनाएं	12	26.0
;kx		46	100

प्रवासी महिला मजदूरों के कार्यस्थल के निकट मदिरा दुकान होने पर होने वाली समस्याओं के सम्बन्ध में 41.4 प्रतिशत प्रवासी महिला मजदूरों का कहना है कि कार्यस्थल के समीप मदिरा दुकान होने के कारण बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़ता है, एक तिहाई से अधिक 26 प्रतिशत प्रवासी महिला मजदूरों को चोरी, डकैती तथा मारपीट जैसी घटनाओं का डर बना रहता है, 19.6 प्रतिशत प्रवासी महिला मजदूरों को अनुचित वातावरण जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है जबकि 13 प्रतिशत प्रवासी महिला मजदूरों को जघन्य अपराध का डर बना रहता हैं। उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि जिन प्रवासी महिला मजदूरों के कार्यस्थल के निकट मदिरा दुकान है वे सभी किसी न किसी रूप से डर-डर के उस क्षेत्र में रहते हैं तथा यह डर उनके कार्यस्थल पर भी बना रहता हैं। इन महिलाओं से लिए साक्षात्कार में भी यही बात निकलकर आती है कि इनके लिए यह अत्यंत भयावह समस्या बन चुका है जिसके कारण ये महिलाएं गंभीर रूप से मानसिक पीड़ा से ग्रसित हैं।

मादक पदार्थों के सेवन का प्रकार

महिला मजदूर प्रवास के दौरान कार्यस्थल पर ही मादक पदार्थों का सेवन कर लेते हैं जिसका उन्हें लत लग चुका होता है इसलिए उन्हें तात्कालिक सुख तो प्राप्त हो जाता है परंतु इसके गंभीर दुष्परिणाम होते हैं। तालिका क्रमांक 05 में प्रवासी महिला मजदूर के कार्यस्थल पर सेवन करने वाले मादक पदार्थों के प्रकार का वर्णन किया गया हैं-

तालिका क्रमांक-05:

कार्यस्थल पर मादक पदार्थों के सेवन का प्रकार (n=324)

Øekd	eknd inkFkksZ ds lsou dk çdkj	gk¡		ugh¡		dqy	
		vk-	çfr-	vk-	çfr-	vk-	çfr-
1-	तंबाखू	165	50.9	159	49.1	324	100
2-	गुड़ाखू	244	75.3	80	24.7	324	100
3-	पान–मसाला, गुटखा	265	81.8	59	18.2	324	100
4-	बीड़ी, सिगरेट	42	12.9	282	87.1	324	100
5-	मद्यपान	16	4.9	308	95.1	324	100

कार्यस्थल पर मादक पदार्थ का सेवन करने वाली प्रवासी महिला मजदूरों के अनुसार 81.8 प्रतिशत प्रवासी महिला मजदूर पान-मसाला, गुटका का सेवन करती हैं जिनके पश्चात तीन चौथाई से अधिक 75.3 प्रतिशत महिला मजदूर गुड़ाखू को नित्य सेवन के रूप में अपनाती हैं, जबकि आधे 50.9 प्रतिशत प्रवासी महिला तंबाकू का सेवन करने को उचित समझती हैं तथा 12.9 प्रतिशत उत्तरदाता बीड़ी एवं सिगरेट का प्रयोग करती हैं मद्यपान सेवन के संदर्भ में पूछने पर 4.9 प्रतिशत प्रवासी महिला मजदूरों ने स्वीकार किया है कि वे मद्यपान का सेवन करती है परंतु कभी-कभी। समूह चर्चा के दौरान प्राप्त तथ्यों के अनुसार बहुत सी महिलाएं उपरोक्त मादक पदार्थों में से किन्हीं दो या उपरोक्त तीनों प्रकार के मादक पदार्थ के सेवन को स्वीकार किया हैं।

कार्यस्थल पर व्यवहारिक, मानसिक एवं शारीरिक समस्या होना

समाज में आज भी कहीं ना कहीं लिंग भेदभाव विद्यमान है जिसके कारण कार्यस्थल पर महिलाओं के साथ अनेक प्रकार के दुर्व्यवहार के घटनाएं उजागर होते रहते हैं ऐसे में अपने मूल स्थान को छोड़कर अन्य शहरों में तथा अन्य प्रांतो में प्रवास किए हुए महिला मजदूरों को किसी न किसी प्रकार से चाहे वह अभद्र कथन के माध्यम से हो, द्विभाषी शब्दों का प्रयोग करना हो, बुरी नजर से देखना, जाति सूचक शब्दों या अन्य आपत्तिजनक शब्दों का प्रयोग किया जाना हो या अन्य किसी माध्यम से मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जाना हो यह सभी घटना होते ही रहते हैं इसके संबंध में तालिका क्रमांक 06 में प्रवासी महिला मजदूरों के साथ कार्य स्थल पर होने वाले व्यवहारिक, मानसिक तथा शारीरिक समस्याओं की स्थिति को दर्शाया गया हैं-

तालिका क्रमांक-06:

कार्यस्थल पर व्यवहारिक, मानसिक, शारीरिक समस्या होना

Øekd	dk;LFky ij leL;k gksuk	vkofÙk	çfr'kr
1-	हाँ	252	77.8
2-	नहीं	72	22.2
;kx		324	100

कार्यस्थल पर व्यवहारिक, मानसिक तथा शारीरिक दुर्व्यवहार संबंधी समस्या होने के सम्बन्ध में उपरोक्त तालिका से ज्ञात हुआ है कि तीन चौथाई से अधिक 77.8 प्रतिशत प्रवासी महिला मजदूरों को कार्यस्थल पर व्यवहारिक, मानसिक तथा शारीरिक दुर्व्यवहार संबंधी समस्या होती है जबकि 22.2 प्रतिशत प्रवासी महिला मजदूरों को कार्यस्थल पर व्यवहारिक, मानसिक तथा शारीरिक दुर्व्यवहार संबंधी समस्या नही होती हैं।

कार्यस्थल पर व्यवहारिक, मानसिक, शारीरिक समस्या का स्वरूप

कार्यस्थल पर प्रवासी महिला मजदूरों को प्रताड़ित करने के लिए विभिन्न स्वरूपों का उपयोग किया जाता है जिन प्रवासी महिला मजदूरों को कार्य स्थल पर व्यवहारिक, मानसिक तथा शारीरिक दुर्व्यवहार संबंधी समस्या होती है इसके संबंध में तालिका क्रमांक 7.1 में दर्शाया गया है कि प्रवासी महिला मजदूरों को किन-किन प्रकार के व्यावहारिक, मानसिक एवं शारीरिक रूप से समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं-

तालिका क्रमांक-6.1: कार्यस्थल पर व्यवहारिक, मानसिक एवं शारीरिक समस्या का स्वरूप (n=252)

Øekd	dk;LFky ij lj{kk lcèkh leL;k dk Lo:i	gk		ugh		d|y	
		vk-	çfr-	vk-	çfr-	vk-	çfr-
1-	छेड़छाड़ संबंधित समस्या	114	45.2	138	54.8	252	100
2-	गाली–गलौज एवं अभद्र कथन का प्रयोग	166	65.9	86	34.1	252	100
3-	बुरी नजर से देखा जाना	172	68.3	80	31.7	252	100
4-	जाति सूचक शब्दों का प्रयोग कर अपमानित किया जाना	207	82.1	45	17.9	252	100
5-	मारपीट या हाथापाई जैसी घटना घटित होना	49	19.4	203	80.6	252	100
6-	द्वि–भाषी शब्दों का प्रयोग किया जाना	218	86.5	34	13.5	252	100
7-	जमादार, ठेकेदार या सुपरवाईजर द्वारा मानसिक शोषण किया जाना	180	71.4	72	28.6	252	100
8-	जमादार, ठेकेदार या सुपरवाईजर द्वारा शारीरिक शोषण किया जाना	228	90.5	24	09.5	252	100
9-	यौन शोषण से संबंधित समस्या	36	14.3	216	85.7	252	100

प्रवासी महिला मजदूरों के कार्यस्थल पर व्यवहारिक, मानसिक तथा शारीरिक दुर्व्यवहार संबंधी समस्या के स्वरूप के सम्बन्ध में 45.2 प्रतिशत प्रवासी महिला मजदूरों को छेड़छाड़ संबंधित समस्या का सामना करना पड़ता है, 65.9 प्रतिशत प्रवासी महिला मजदूरों के अनुसार उनके उनके सम्मुख गाली-गलौज एवं अभद्र कथन का प्रयोग किया जाता है जिससे उन्हे समस्या होती है 68.3 प्रतिशत प्रवासी महिला मजदूरों को बुरी नजर से देखा जाता हैं। उपर्युक्त तालिका में 82.1 प्रतिशत प्रवासी महिला मजदूरों के अनुसार उनके लिए जाति सूचक शब्दों का प्रयोग कर उन्हें अपमानित किया जाता है, 19.4 प्रतिशत प्रवासी महिला मजदूरों के साथ मारपीट या हाथापाई जैसी घटना घटित होती है जिसका उन पर गहरा नकारात्मक प्रभाव पड़ता हैं।

जिन्हें व्यवहारिक, मानसिक तथा शारीरिक दुर्व्यवहार संबंधी समस्या का सामना करना पड़ता है ऐसे प्रवासी महिला मजदूरों में 86.5 प्रतिशत प्रवासी महिला मजदूरों के प्रति द्वि भाषी शब्दों का प्रयोग किया जाता है, 71.4 प्रतिशत प्रवासी महिला मजदूरों के साथ जमादार, ठेकेदार या सुपरवाईजर द्वारा मानसिक शोषण किया जाता है 90.5 प्रतिशत प्रवासी महिला मजदूरों के साथ जमादार, ठेकेदार या सुपरवाईजर द्वारा शारीरिक शोषण किया जाता है जबकि 14.3 प्रतिशत प्रवासी महिला मजदूरों के साथ कार्य स्थल पर यौन शोषण संबंधित समस्या भी होती हैं।

निष्कर्ष: प्रवासी महिला मजदूरों की कार्यस्थल पर स्थिति कई जटिलताओं से भरी हुई है। आर्थिक शोषण, शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न, सामाजिक असमानता उनकी दैनिक जिंदगी को प्रभावित करते हैं। इस समस्या का समाधान समाज और सरकार दोनों की जिम्मेदारी है हमें उनके अधिकारों की रक्षा करनी होगी और उन्हें सशक्त बनाने के लिए ठोस कदम उठाने होंगे। इसके लिए जागरूकता बढ़ाना, नीतियों में सुधार करना और सामुदायिक समर्थन को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। तभी हम प्रवासी महिला मजदूरों के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन ला सकते हैं। प्रवासी महिला मजदूरों की कार्यस्थल पर स्थिति सुधारने के लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है सरकार, संगठनों, और समाज को मिलकर कार्य करना होगा। केवल तब ही हम इन महिलाओं के जीवन में सुधार ला सकते हैं और उन्हें एक सुरक्षित, समान और सशक्त भविष्य दे सकते हैं। इस दिशा में उठाए गए कदम न केवल प्रवासी महिलाओं के लिए, बल्कि समाज के समग्र विकास के लिए भी महत्वपूर्ण होंगे।

प्रवासी महिलाएँ अक्सर कम वेतन पर काम करती हैं, और उन्हें अपनी मेहनत का धनराशि नहीं मिलता। कई बार उन्हें बिना किसी अनुबंध के काम करना पड़ता है, जिससे उनके अधिकारों का हनन होता है। इस आर्थिक असमानता के कारण उनका जीवन स्तर गिरता है और वे आर्थिक सुरक्षा से वंचित रह जाती हैं। अधिकतर प्रवासी महिला मजदूरों को ऐसे कार्यस्थलों पर रखा जाता है जहाँ सुरक्षा के मानक पूरे नहीं होते। निर्माण कार्य, कृषि, घरेलू कामकाजी जैसे क्षेत्रों में उन्हें खतरनाक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। कई मामलों में, दुर्घटनाएँ और स्वास्थ्य समस्याएँ आम होती हैं, लेकिन उन्हें उचित चिकित्सा सहायता नहीं मिलती। प्रवासी महिलाएँ अक्सर मानसिक और यौन शोषण का शिकार होती हैं, कामकाजी वातावरण में भेदभाव, उत्पीड़न और दुरुपयोग के मामले बढ़ते जा रहे हैं। इन अनुभवों के कारण उनका मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित होता है, जिससे उनके काम करने की क्षमता में कमी आती है। प्रवासी महिला मजदूरों के लिए कानूनी सुरक्षा अक्सर अपर्याप्त होती है, कई बार वे अपने अधिकारों के प्रति अनजान होती हैं और उन्हें श्रम कानूनों की जानकारी नहीं होती। इससे उन्हें शोषण और भेदभाव का सामना करना पड़ता है। इसके लिए आवश्यक है कि उन्हें उनके अधिकारों के बारे में जानकारी दी जाए और कानूनी सहायता उपलब्ध कराई जाए।

सुझाव: प्रवासी महिला मजदूरों की प्रवासीय स्थिति में आवश्यक एवं प्रमुख रूप से सुधार की आवश्यकता है जिससे कि प्रवासी महिला मजदूर भी अपनी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में संपन्नता हेतु सकारात्मक भूमिका निभा सके। प्रवासीय स्थिति में अपेक्षाकृत रोजगार की अधिक उपलब्धता के कारण ही वहां पर अनावश्यक रूप से जनसंख्या में वृद्धि देखी जाती है जिसके कारण विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं। प्रवासी महिला मजदूरों के प्रवासीय स्थिति में सुधार हेतु सुझाव के रूप में समझाने का प्रयास किया गया हैं।

1. शासकीय और निजी क्षेत्र को रोजगार में बढ़ावा देने के लिए कार्य करना चाहिए नई उद्यमिता का समर्थन करना एवं उन्हें अधिक सहायता प्रदान करना चाहिए ताकि लोग स्थानीय रोजगार से अपना जीवन यापन कर सकें। महिला श्रमिकों को नए कौशलों का अधिग्रहण करने के लिए कौशल विकास प्रोग्राम्स को बढ़ावा देना चाहिए इससे वे अधिक प्रतिस्पर्धी बन सकते हैं और स्थानीय विकास में योगदान कर सकते हैं।
2. गाँवों में कृषि और ग्रामीण विकास को प्राथमिकता देना चाहिए ताकि श्रमिक वहाँ अच्छे रोजगार के लिए रुक सकें जो प्रवास को रोकने में सहायक हैं। स्थानीय उद्योगों को वित्तीय सहायता प्रदान करना चाहिए ताकि वे अधिक रोजगार बना सकें और लोगों को स्थानीय रोजगार का अवसर मिले।
3. सरकार को उन सभी सहायता योजनाओं का प्रचार-प्रसार करना चाहिए जो लोगों को स्थानीय रोजगार की दिशा में मदद कर सकती हैं। इससे लोग जानकारी हासिल कर सकें और योजनाओं का उपयोग कर सकें। महिलाओं को अधिक शिक्षा एवं तकनीकी योग्यता प्राप्त करने के लिए सुविधाएं प्रदान करना चाहिए, ताकि वे विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार के लिए योग्य हो सकें। महिलाओं को अधिक समर्थन प्रदान करना चाहिए ताकि उन्हें स्थानीय रोजगार के लिए सही अवसर मिले महिलाएं अक्सर अधिक समृद्धि और समाज में सहयोग करने में रूचि रखती हैं।
4. सरकार को योजनाओं को प्रबंधित करने में सक्षम बनाना चाहिए ताकि वे अपना लक्ष्य पूरा कर सकें और लोगों को स्थानीय रोजगार के लिए योजनाओं का उपयोग करने में सहायता कर सकें। ग्रामीण क्षेत्रों में उद्योग, कृषि, और अन्य क्षेत्रों में विकास को प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि लोग अपने गाँवों में ही सुरक्षित और सुस्त रोजगार प्राप्त कर सकें।

5. हालांकि स्वास्थ्य योजनायें केन्द्रीय एवं राज्य स्तर पर क्रियान्वित हैं परंतु उसका उचित लाभ, हितकारको को नही मिल पाता अत: स्वास्थ्य योजनाओं को उचित क्रियान्वयन पर जोर देना चाहिए।

संदर्भ:

1. Khan, J.H. (2004). *Internal Migration in Sahajahnpur District: A Socio-Economic and Structural Analysis*. Publishied Ph.D. Thesis Department of Geography Aligarh Muslim Uiversity.pp. 1-25.
2. Sharma, S.K. (1989). *Patterns of in-migration in Madhya Pradesh*, 1981, G.RJ. II (3). pp. 61-75.
3. Banerjee, B. (1986). Rural to Urban Migration and the Urban Labourer Market, *Himalaya Publishing House,* New Delhi.
4. Chib, S. S. (1985). *Pattern of population Migration in kinnowr District*, G.R.I., 17(2), pp. 68-75.
5. Premi, M. K. (1986). Migration to cities in India, In M. S. A. Rao (ed). Studies in Migration, New Delhi, *Monohar Publication*, pp. 39-83.
6. Komala, A. C. (2001). *Women labours in construction industry*. Publishied Ph.D. Thesis department of economics banglore university. pp. 1-28.
7. त्रिपाठी के. के. एवं सिंगला, एस. के., 'कोविड-19 के बाद ग्रामीण रोजगार में मनरेगा की भूमिका', कुरूक्षेत्र, नई दिल्ली, वर्ष-66, मासिक अंक-9, जुलाई 2020, पृ. 18.
8. थियोडोर, कैप्लो (1954). दि सोशियोलॉजी ऑफ वर्क- दि यूनिवर्सिटी ऑफ मिनिसाटो प्रेस मिनियापोलिस, पृ. 125.
9. सेन, इलीना (2001). संघर्ष के बीज-संघर्ष के बीच, सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 1-69.
10. Haas De, H. The migration and development pendulum: A critical view on research and policy. International Migration, 15 may 2012, 50 (3), pp. 8–25. https://doi.org/10.1111/j.1468-2435.2012.00755.x
11. सेतिया, सुभाष पलायन समस्या या सामान्य मानवीय प्रक्रिया, कुरुक्षेत्र, अंक-11, सितम्बर 2014, पृ. 10-11.
12. Diwan, A. (1995). *Income and Employment Of Labour in Urban Informal Sector : A Case Study Of Trade Sector In Raipur City*. Publishied Ph.D. Thesis Economics Department Pt. Ravishankar Shukla University, Raipur (C.G.). pp. 1-20.
13. Ganiger, Sunita V. (2001). *A Sociological Study Of Urban Out Migration In Karnataka*. Publishied Ph.D. Thesis Department of Post-Graduate Studies and Research In Sociology, Karnataka University, Dharwad. pp. 3-20.
14. Karmokar, R. (2002). *Bhilai Nagar me Mahila Aprawas: Ek Bhowgolik Vishleshan*. Publishied Ph.D. Thesis Bhugol Adhyananshala Pt. Ravishankar Shukla University, Raipur (C.G.). pp. 1-18.
15. Khairkar, V.P. (2002). *In Migration to The City of Pune: A Geographical Analysis*. Publishied Ph.D. Thesis Department of Geography University of Pune. pp. 1-27.
16. गजपाल, लुकेश्वर सिंह. (2005). छत्तीसगढ़ में प्रव्रजन: दुर्ग जिले के कृषि मजदूरों के विशेष संदर्भ में एक समाजशास्त्रीय अध्ययन. प्रकाशित शोध प्रबंध, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर. पृ. 1-24.
17. Agrawal, R.K. (2008). *A Study of Economics Condition of the Labours Working in Iron and Steel Re-rolling Mills in Raipur*. Publishied Ph.D. Thesis Department of Economics Pt. Ravishankar Shukla University Raipur (C.G.). pp. 1-26.
18. गजपाल, कमल नारायण. (2014). छत्तीसगढ़ राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में श्रम प्रवास करने वाले परिवारों में बच्चों की शैक्षिक समस्या पर एक अध्ययन. प्रकाशित शोध प्रबंध, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर. पृ. 1-20.
19. Gajpal, L.S. (2009). *Krishi Majduroon Ka Prawas.* Raipur: Singhai Publication. pp. 7-21.
20. Lee, E.S. (1966) *"A theory of Migration" Demography*, Vol. 3, pp. 47-57.
21 Sundari, S. and Rukmani, M.K. (1998). Costs and Benefits of Female Labour Migration, *Indian Journal of Social Work*; Vol. 8, pp. 766-790

कथेतर गद्य साहित्य में नारी आत्मकथाओं का अवदान

मधुबाला

शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिंदी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

प्रो. विजय कुमार

सह लेखक, विश्वविद्यालय हिंदी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

कथेतर विधा के अंतर्गत आत्मकथा कथात्मकता के गुणों को अपने में समाविष्ट किए रहती है। आत्मकथा साहित्य की एक ऐसी शाखा है, जिसमें अभिव्यक्त स्थान, व्यक्ति, परिस्थितियों अथवा घटनाएं पूर्णत: वास्तविकता के साये को समेटे रहती हैं, कल्पना या आदर्श का कोई वजूद नहीं रहता। बहुधा आत्मकथा को जीवनी का ही एक भाग अथवा हिस्सा मान लिया जाता है मगर यह उससे पृथक स्थान रखती है। प्रारंभ में लेखक या साहित्यकार आत्मकथा लिखने में परहेज करते थे, कालांतर में परिस्थितियां बदली और आत्मकथा लेखन की तरफ रुझान बढ़ने लगा तथा यह उपेक्षित विधा महत्ता को प्राप्त करने लगी।

भारतीय समाज व्यवस्था में जहां सदियों से पितृसत्तात्मक व्यवस्था कायम रही है, उसमें एक स्त्री या नारी पुरुष सत्ता के अधीन रहकर अपनी इच्छाओं एवं भावनाओं को कुचलते हुए संघर्षशील रही है। इतिहास गवाह है कि एक स्त्री पर शोषण या अत्याचार किस हद तक बरपाया जाता था। ऐसा समाज वह परिवेश जहां स्त्री पुरुष वर्ग की छाव तले और अपने अस्तित्व को शून्य बनाकर जीने को मजबूर थी वहां स्व की भावनाओं और इच्छाओं को प्रस्तुत करने की भला क्या आजादी मिलेगी? यदि उसे अस्तित्व शून्य समझ भी लिया जाए तो क्या वह विवेक शून्य तो नहीं थी? तर्क-वितर्क, भावनाएं, संवेदनाएं उसके हृदय को आलोड़ित किए रहते थे। अभिव्यक्ति की एक छटपटाहट बेचौन किये रहती थी। इसी क्रम में सहनशीलता की सीमाओं का सैलाब टूटने लगा तो साहित्य में अभिव्यक्ति या आपबीती का वर्णन कहीं ना कहीं किसी रूप में प्रकट हुआ। यही दौर शुरू होता है कथेतर विधा में स्त्री आत्मकथाओं का।

समाज द्वारा उपेक्षित एवं अनेकानेक विषम परिस्थितियों के बीच अपनी अस्मिता के लिए उसने संघर्ष प्रारंभ किया। समकालीन परिस्थितियों एवं सामाजिक दबाव के मध्य हर उपेक्षा को दरकिनार कर आत्मकथा को एक माध्यम के रूप में अपनाया, जिसमें एक नारी अर्थात लेखिका के लिए निर्भीकता व ईमानदारी का होना प्रमुख शर्त थी। शोषित व उत्पीड़ित महिलाओं ने पूर्ण साहस व प्रतिरोध का हवाला देते हुए आत्मकथा के रूप में पदार्पण किया। सन 1876 ई० में प्रकाशित राससुन्दरी की बांग्ला भाषा में लिखित पहली आत्मकथा 'आमार जीबोन' स्त्री जीवन की व्यवस्था को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती है, वैसा ही साहस मराठी, बांग्ला के बाद हिंदी की अनेक आत्मकथाओं में ध्वनित हुआ। आत्मकथाओं का अवलंबन पाकर स्त्री स्वयं झेली पीड़ाओं और यातनाओं को कमतर महसूस करने लगी दूसरी ओर आत्मकथाओं द्वारा पुरुष वर्ग के निजी एवं सार्वजनिक जीवन की पोल खोलने में भी पीछे नहीं रही।

हिंदी साहित्य में यदि प्रथम महिला आत्मकथाकर का जिक्र किया जाए तो दु:खिनीबाला रचित "सरला: एक विधवा की आत्म जीवनी" का उल्लेख करना उचित प्रतीत होगा जहां उसे पुरुष प्रधान समाज में जब महिला को अपने नाम से कोई पहचान नहीं मिला करती थी। 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में 'दुलाई वाली' की लेखिका बंगमहिला का वास्तविक नाम राजेंद्र बाला घोष था, इस नाम से साहित्यवेत्ता भी अज्ञात होंगे, जबकि बंगमहिला सर्व प्रचलित है। यह आत्मकथा 'स्त्री दर्पण' पत्रिका के जुलाई 1915 से मार्च 1916 तक कई अंकों में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुई थी। बाल विवाह और फिर विधवा विवाह जैसे अनेक समस्याओं से प्रताड़ित एक स्त्री सामाजिक तिरस्कार एवं अत्याचार को झेलती नजर आती है, कोई अपराध किए बगैर उसे कुलक्षिणी और अभागिन जैसे पदों से नवाजा जाता है।सामाजिक मर्यादा व प्रतिष्ठा के भय से महिला आत्मकथा लेखन में एक दीर्घ सन्नाटा छा जाता है। पुन: लगभग चार दशक व्यतीत होने पर सन् 1956 ई. में जानकी देवी बजाज की आत्मकथा श्मेरी जीवन यात्राश बोलकर लिखी गई थी, स्वरचित नहीं। 20वीं सदी के उत्तरोत्तर दशक में एक के बाद एक अनेक महिला आत्मकथाओं ने साहित्यिक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज कर विशिष्ट पहचान बनायी।

पद्मा सचदेव की 'बूंद-बावड़ी', चंद्रकिरण सौनरिक्सा कि 'पिंजड़े की मैना', डॉ प्रतिभा अग्रवाल की दो खंड में विभाजित आत्मकथा 'दस्तक जिंदगी की' एवं 'मोड़ जिंदगी का' कृष्णा अग्निहोत्री की 'लगता नहीं है दिल मेरा' कुसुम अंसल की 'जो कहा नहीं गया' मन्नू भंडारी की 'एक कहानी यह भी' प्रभा खेतान रचित 'अन्या से अनन्या', मैत्रेयी पुष्पा की 'कस्तूरी कुंडल बसै', और 'गुड़िया भीतर गुड़िया', रमणिका गुप्ता की 'हादसे' एवं सुशीला टॉकभौरे की 'शिकंजे का दर्द', समय और समाज की वास्तविकता एवं यथार्थता से रूबरू कराती है। स्त्री उत्पीड़न और प्रतिशोध की भावना का प्रमुख दस्तावेज प्रस्तुत कर देती हैं। इसी संदर्भ में अर्चना वर्मा ने कहा है, "आत्मकथा साहित्य से अधिक इतिहास की एक किस्म है और इतिहास की धारा में लेखक की निजी जगह के परिपेक्ष से सामाजिक प्रवृत्तियों का दस्तावेज कहीं जा सकती है।"[1]

'लगता नहीं है दिल मेरा' एक बेबाक आत्मकथा की श्रेणी में आती है, जिसमें कोई दूराव-छिपाव दृष्टिगोचर नहीं होता तो 'अन्या से अनन्या' में एक ऐसी स्त्री की कहानी है जो विलक्षण बुद्धिजीवी होकर भी आम स्त्री का जीवन व्यतीत करती है, अपनी कोई पहचान ना लेकर डॉ. सर्राफ के साथ अविवाहित स्त्री की तरह मगर उनके लिए पूर्णतया समर्पित।

'गुड़िया भीतर गुड़िया' मैत्रेयी पुष्पा की एक ऐसी आत्मकथा जो एक गृहिणी, मां, पत्नी के संघर्ष की पीड़ा को बयान करती है तो सुनीता जैन की 'शब्दकाया' पूरे जीवन की मार्मिक घटनाओं का ताना-बाना ईमानदारी पूर्वक प्रस्तुत करती है। मध्यवर्गीय परिवेश की गाथा को समेटे हुए "पिंजड़े की मैना" ईमानदारी व सहजतापूर्वक साहित्य में आत्मकथा के रूप में अग्रसर हो जाती है।

मन्नू जी की 'एक कहानी यह भी' दो लेखकों की समस्यामूलक दांपत्य जीवन की गाथा है वही 'हादसे' आत्मकथा का सटीक मूल्यांकन राजेंद्र यादव ने इन पंक्तियों में किया है, "सपनों, संघर्ष और साहस की यह कहानी 20वीं सदी के भारत का वह इतिहास है जिसे मुख्य धारा के इतिहासकारों ने बहुत अधिक महत्व नहीं दिया और जिसे खेतों खलिहानों और खदानों में रमणिका जी ने अपने यौवन और प्रौढ़ता के कागजों पर लिखा है इसे और अधिक कलात्मक बनाया जा सकता था, भाषा में प्रभावशाली प्रयोग किये जा सकते थे, मगर शायद जिंदगी से जूझते लोगों के पास इतनी फुर्सत कहां होती है?[2] पद्मा सचदेवा की 'बूंद-बावड़ी' आत्मकथा लेखिका की जिजीविषा और आत्मसंघर्ष की गाथा कह डालती है। एक स्त्री का व्यक्तित्व निर्माण पितृसत्तात्मक समाज की मर्यादाओं के मध्य सृजित होती है, जिसे पति-परमेश्वर और सती-सावित्री जैसे महान आदर्श बचपन की दहलीज से ही सिखाए जाते हैं। वर्तमान समय की शिक्षित भारतीय नारी की दशा और दिशा पूर्णतया परिवर्तित हो चुकी है। स्त्री आत्मकथा नारी के दृष्टिकोण उसके निर्णय, उनकी मुक्ति एवं स्वतंत्रता और उनके यथार्थ के वास्तविक अध्ययन को साबित करने का एक अमोघ शस्त्र है। मानसिक व शारीरिक रूप से पीड़ित व अपमानित एक स्त्री का आत्मसम्मान, गौरव और विश्वास जब आहत होता है तो यही दुख व पीड़ा हृदय की गहराइयों से निकल कागज तथा लेखनी का सहारा लेकर आत्मकथा के रूप में प्रकट होने लगता है। एक स्त्री के भीतर विराजमान लेखिका या कवयित्री का रूप परोक्ष बंधन को तिलांजलि देकर यथार्थ वास्तविकता की चादर ओढ़ लेता है।

जब-जब महिला आत्मकथाएं प्रकाशित होती हैं, साहित्य और समाज में भूचाल जैसा आ खड़ा होता है। लेखक की यह स्वतंत्रता पुरुष वर्ग में एक भय पैदा कर देती है कि एक स्त्री पितृ सत्तात्मक व्यवस्था के चंगुल से मुक्त होने का बिगुल बजा रही है। बदलते समाज एवं परिदृश्य में 21वीं सदी की महिला आत्मकथाकारों का लेखन एक सकारात्मक कदम है, जिससे एक समुन्नत एवं विकासशील समाज का निर्माण प्रारंभ हो रहा है, एक स्त्री की गरिमा, मान-सम्मान, अधिकार तथा आत्मविश्वास सरीखे मूल्यों का विकास होगा। जीवन संघर्ष को चित्रित करते हुए नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग हुयी और स्व की अस्मिता की पहचान के साथ व समाज की रूढ़िवादी मान्यताओं, रीति-रिवाज एवं परंपराओं के बंधन से स्वतंत्र होने का प्रयास करने लगी। कोई भी रचना समकालीन राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश से अछूती नहीं रह सकती। आत्मकथा लेखन स्त्री के मानवीय अधिकार एवं स्वतंत्रता की संघर्ष पूर्ण गाथा को व्यक्त कर देती है। आत्मकथाओं में इन लेखिकाओं ने जिस विवाह संस्था को मुक्ति का मार्ग समझा, जितने अरमानों के साथ स्वीकारा, उनकी आंतरिक पृष्ठभूमि किस हद तक भयावह होगी, उसकी कल्पना भी नहीं की होती हैं। आत्मकथा की नायिकाएं विवाह संबंध को किसी वस्त्र के समान पहनती बदलती नहीं चल देती, वरन घर-परिवार को तवज्जो देते हुए पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन भी करती हैं। उनके जेहन में यह बात कहीं ना कहीं समाविष्ट है कि दैहिक, शारीरिक और भावात्मक संबल के लिए घर परिवार ही अनिवार्य जरूरत है, तभी तो मैत्रेयी लिखती हैं ष्भले यह घर मेरे लिए युद्धस्थल बन जाए, मगर मेरे पास पाव तो इस जमीन पर जमे हैं। यहां खड़ी रहकर ही मैं बाड़े तोड़ने की ताकत पाती हूं। रास्ते निकालती हूं। मैं अपने मुक्ति वृक्ष को कहीं और जाकर क्यों रोपूं? छाया, ताजगी और ऑक्सीजन की जरूरत सबसे पहले मेरे घर को है। हां, ऐसा ही वृक्ष हर घर में हो, जिसमें स्त्री रहती है।"[3]

'अन्या से अनन्या' की प्रभा खेतान विवाहित डॉ. सर्राफ पर समर्पित अपने सर्वस्व जीवन को उनके घर परिवार के लिए भेंट चढ़ा देती हैं जैसा प्रभा जी कहती हैं "परिवार स्त्री की सबसे पुख्ता जमीन है। यदि इस जमीन पर खड़े होकर वह यथास्थिति के परिवर्तन के पक्ष में है और अन्य व्यापक सामाजिक जिम्मेदारियो को स्वीकारना चाहती हैं, तो इसे गलत क्यों कहा जाना चाहिए?"[4] 'एक कहानी यह भी' की आत्मकथाकर का राजेंद्र यादव के साथ कटु दांपत्य संबंध को स्वीकार कर बंधे रहना, प्रभा खेतान का डॉ. सर्राफ द्वारा उत्पीड़ित होते हुए अंत तक उनसे जुड़ाव तथा उनके कैंसरग्रस्त होने पर इलाज के लिए जी-जान से तत्परता, यह सभी आत्मकथाएं यह सिद्ध कर देती हैं कि स्त्री घर-परिवार के बीच रहकर ही नारी मुक्ति का मार्ग ढूंढती है, उससे संबंध विच्छेद कर नहीं। एक सफल उद्यमी तथा विलक्षण बुद्धिजीवी प्रभा खेतान का डॉ. सर्राफ से जुड़कर रहना कैसी मजबूरी थी? स्त्री आत्मकथाओं में संबंधों का ऐसा ताना-बाना जिससे अलग होना असंभव है। 21वीं सदी की लेखिकाओं ने आत्मकथा द्वारा समाज की ज्वलंत समस्याओं, प्रश्नों, विरोधाभासो तथा अंतर्विरोधों को तीखे अंदाज में प्रस्तुत किया है, जिससे आत्मकथा लेखन की विशिष्ट पहचान बन रही है। इन रचनाओं के माध्यम से स्त्री चेतना तथा अधिकारों के लिए आवाज बुलंद की है। लखनी के तीखे स्वर को शब्दों में बॉध स्त्री समाज की सुप्तावस्था को जागृत कर सकती हैं। फलस्वरूप आज स्त्रियों में आत्मसम्मान, अधिकार पाने की इच्छा व संकल्प विकसित हो रही है। स्त्री लेखिकाओं की आत्मकथा में नारी अस्मिता को बचाए रखना, आत्मसंघर्ष को पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत करना तथा राजनीतिक-सांस्कृतिक चेतना का स्वर अंकित है। सामाजिक मान-मर्यादाओं एवं बंधनो को परे हटाकर समाज, संस्कृति और धर्म की ओट में अन्याय सहती स्त्री ने सामाजिक एवं राजनीतिक क्रांति लाने का अदम्य साहस दिखलाया। स्त्री की चेतनाशीलता से सामाजिक व राजनीतिक स्वरूप में बदलाव आया ही है साथ में साहित्य का दायरा भी अधिक विस्तृत होता गया है। शिक्षित स्त्री के अंदर जागरूकता उत्पन्न हुई है और वह कई विषयों पर सहज व स्वाभाविक प्रतिरोध करती नजर आ रही है।

भले ही हम 21वीं सदी के तीसरे दशक में प्रवेश कर गए हैं पर भारतीय पुरुष समाज किसी बुद्धिमती स्त्री, साहित्यकार या प्रतिभाशाली स्त्री को आगे बढ़ता देखकर सम्माननीय दृष्टि नहीं रखता। उसके मन मस्तिष्क में संभोग या इस्तेमाल की वस्तु कहीं ना कहीं छिपी रहती है। प्रेम, बहकावा या फिर जोर-जबरदस्ती से अपने अधीन ही रखना चाहता है। स्नेह व प्रेम की आकांक्षिणी को वह चरित्रहीन करार देता है। आर्थिक रूप से सबल होने पर आज भी वह घर-गृहस्थी की दोहरी भूमिका निभाती है। महिला आत्मकथाकारों ने स्त्री जीवन के आर्थिक विकास व स्वावलंबन के विषय में अपनी रचनाओं में उल्लेख

किया है जो किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए आवश्यक है। उनका यही लक्ष्य रहा है कि एक ऐसे समाज का निर्माण हो, जिसमें स्त्री दमन-चक्र से मुक्त रहकर पुरुष की सहधार्मिणी हो, दोनों एक दूसरे के पूरक हो, दोनों के मानवाधिकारों की रक्षा का भाव हो। एक स्त्री को आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए अवसर अवश्य ही प्राप्त हो। इन रचनाओं के माध्यम से स्त्री जीवन की चेतना व विमुक्ति का स्वर मुखरित हो सकता है। महिला आत्मकथाएं नारी मुक्ति के स्वर में मानव-मूल्यों को वंदन करती रहेगी, अभिनंदन प्रकट करते हुए दिखाई देंगी। ये रचनाएं अपने जीवन को यंत्रणाओं की निजी अभिव्यक्ति न होकर संपूर्ण स्त्री समाज की वास्तविक स्थिति को चित्रण कर देती है।

निष्कर्षतः- कहा जाए तो कथेतर गद्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा में आत्मकथा अपनी दमदार उपस्थिति दर्ज कर रही है। ऐसी विधा जो मूलतः आत्मपरक एवं सत्य-यथार्थ पर विराजमान है भला वह कैसे जीवंतता को नहीं प्राप्त कर सकती। स्त्री आत्मकथाओं ने साहित्य जगत में अपनी पहचान कायम की है, दिनोदिन प्रगति की राह पर है। व्यक्तित्व उद्घाटन के लिए असीमित आजादी प्राप्त होती है, व्यतीत एवं समकालीन जीवन को अभिव्यक्त करने का अवसर प्रदान करती है। आत्मकथा में स्मृति के सहारे जीवन यात्रा को पुनर्जीवित किया जा सकता है। शब्दों के माध्यम से की गयी आत्माभिव्यक्ति साहित्य जगत को विपुल राशि से सुशोभित कर जाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. दिनेश द्विवेदी- हिंदी महिला कथाकारों की आत्मकथाएं: एक विवेचन, पृष्ठ -८ अद्वैत प्रकाशन
२. वही, पृष्ठ- ८५
३. मैत्रेयी पुष्पा: गुड़िया भीतर गुड़िया, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन-२००८, पृष्ठ- ३४३
४. प्रभा खेतान: उपनिवेश में स्त्री: मुक्ति कामना की दस वार्ताएं, पृष्ठ-११

हिन्दी शिक्षण का वैश्विक परिदृश्य

अजय कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, सत्यवती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वर्तमान समय में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी शिक्षण बहुत तेजी से हो रहा है। अधिकांश देशों के विश्वविद्यालयों में हिन्दी-शिक्षण की व्यवस्था है। भारतीय दूतावास और हिन्दी स्वैक्षिक संस्थाएं भी हिन्दी-शिक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। कई बार यह देखने को मिलता है कि स्वैक्षिक संस्थाएं सरकारी संस्थाओं से बेहतर काम करती है। भारत के अलग-अलग विश्वविद्यालयों से जाकर अनेक अध्यापक विदेशों में हिन्दी शिक्षण का कार्य बखूबी कर रहे हैं। प्रत्येक वर्ष लगभग एक हजार विद्यार्थी हिन्दी पढ़ने के लिए भारत आते हैं, इनमें से अधिकांश विद्यार्थी बीएचयू, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा, दिल्ली विश्वविद्यालय, हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, जेएनयू, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा में पढ़ने के लिए आते हैं।

हिन्दी-शिक्षण को कुछ भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों तरह के विद्वानों ने परिभाषित किया है जो कि इस प्रकार हैं- महात्मा गाँधी के अनुसार- "सुलेख व्यक्ति की शिक्षा का एक आवश्यक पहलू है।" इसी संदर्भ में पतंजलि का मत है- "भाषा हिन्दी शिक्षण वह व्यापार है जिसमें हम वर्णात्मक या व्यक्त शब्द द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं।" हिंदी शिक्षण पर कामताप्रसाद गुरु का मत है- "भाषा हिन्दी-शिक्षण वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों तक भली-भांति प्रकट कर सकता है।" पाश्चात्य विद्वानों में चोमस्की का कथन है- "बच्चों में भाषा हिन्दी-शिक्षण सिखाने की जन्मजात योग्यता है।" हिंदी शिक्षण पर किटसन के विचार- "किसी भाषा को पढ़ने और लिखने की अपेक्षा बोलना, सीखना सबसे छोटी पगडंडी को पार करना है।"

विदेशों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार की योजना के अंतर्गत केन्द्रीय हिन्दी संस्थान वर्षों से विदेशों से हिन्दी सीखने आए विद्यार्थियों के लिए कई पाठ्यक्रम चला रहा है। इस योजना के तहत विदेशी हिंदी-शिक्षण विभाग की 1991-92 में संस्थान के मुख्यालय आगरा में इसकी शुरुआत हुई। इसके पूर्व हिन्दी-शिक्षण का काम विदेशी छात्रों के लिए दिल्ली केंद्र पर आयोजित होता था। जबकि अब भारत सरकार ने हिन्दी-शिक्षण का यह काम आगरा स्थित मुख्यालय में करना शुरू कर दिया है। विदेशों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान के लिए कुछ चुने हुए विद्यार्थी हिन्दी सीखने के लिए प्रतिवर्ष भारत आते हैं।

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान का विदेशी हिन्दी-शिक्षण विभाग कुछ पाठ्यक्रम संचालित करता है जो कि निम्नलिखित है-

1. हिन्दी भाषा दक्षता प्रमाण-पत्र
2. हिन्दी भाषा दक्षता डिप्लोमा
3. हिन्दी भाषा दक्षता उच्च डिप्लोमा
4. हिन्दी भाषिक अनुप्रयोग डिप्लोमा

प्रत्येक जगह हिन्दी शिक्षण के वक्त यह देखा जाता है कि विदेशी छात्र हिन्दी भाषा की संरचना को सीखने में अधिक रूचि लेते हैं। भारत एक उभरता हुआ बाजार है और प्रत्येक व्यक्ति/विदेशी इस बाजार में अपनी दुकान/रोजगार लगाना चाहता है। इस दुकान/रोजगार को चलाने के लिए भारत में आपको हिन्दी भाषा तो आनी ही चाहिए। अध्यापक भी अपनी जिम्मेदारी समझते हुए विद्यार्थियों को ठीक से पढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। कई बार फिर भी कुछ शिक्षण बिंदुओं को विद्यार्थी ठीक से समझ नहीं पाते इसके कुछ कारण प्रस्तुत हैं- "पाठ्य-सामग्री का अभाव शिक्षण विधि की कमी, तकनीकी संसाधनों की कमी, मातृभाषा का व्याघात।"[1]

विदेशी छात्रों को हिन्दी-शिक्षण के तहत भाषा के विभिन्न कौशलों- श्रवण, भाषण, वाचन एवं लेखन का विकास करने का प्रयास किया जाता है। इसके अतिरिक्त विद्याथियों में हिन्दी साहित्य की विभिन्न शैलियों और विधाओं की जानकारी देकर अनेक विषय में एक समझ विकसित करने का यत्न भी किया जाता है। देखा जाए तो उच्च-स्तर पर हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में हिन्दी संरचना, हिन्दी का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन, भाषाओँ के परस्पर अनुवाद का सिद्धांत, हिन्दी साहित्य शिक्षण, भाषा शिक्षण एवं सामग्री सृजन जैसे विषयों में विद्यार्थी को प्रशिक्षित किया जाता है। भारतीय संस्कृति एवं दर्शन को विदेशी विद्यार्थियों के हिन्दी-शिक्षण से जोड़ दिया गया है।

अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिन्दी-शिक्षण की स्थिति अलग-अलग देशों में भिन्न-भिन्न हैं। सूरीनाम, फिजी मॉरीशस, ग्याना आदि देशों में हिन्दी का व्यापक प्रभाव है। हिन्दी प्रभावित इन देशों ने हिन्दी को भारतीय संस्कृति की सनातन ऐतिहासिक परंपरा और भावात्मक लगाव के रूप में चिन्हित किया है। श्रीलंका, बांग्लादेश, मलेशिया, इंडोनेशिया आदि देशों से हिन्दी सांस्कृतिक सामाजिक प्रेरणा के रूप में जुड़ी हुई है। रूस, अमेरिका, इंग्लैण्ड फ्रांस, जापान

आदि देशों में विदेशी भाषा के रूप में हिन्दी का अध्ययन अध्यापन सुचारू रूप से गतिशील है। सही में अगर देखा जाए तो किसी भी देश में विदेशी भाषा शिक्षण की स्थिति इस बात पर निर्भर करती है कि उस देश में भाषाई समाज के संवाद तंत्र में हिन्दी की भूमिका किस उद्देश्य से और कितना स्वीकार की जाती है, ये महत्वपूर्ण है।

विश्व के अलग-अलग देशों से हिन्दी शिक्षण के लिए भारत आने वाले विद्यार्थियों की मूल आवश्यकताएं क्या है? जाहिर-सी बात है कि कोई भी व्यक्ति तभी कोई काम करता है जब उसके जीवन में उस काम की आवश्यकता होती है। ठीक उसी प्रकार प्रत्येक विदेशी विद्यार्थी एक निश्चित आवश्यकता के तहत ही हिन्दी भाषा को सीखता है।

विश्व के विभिन्न देशों से हिन्दी सीखने आने वाले ये विद्यार्थी हिन्दी को एक नया वैश्विक स्वरूप और संदर्भ प्रदान करते हैं। हिन्दी शिक्षण को एक ही रूप में ये सभी सीखते हैं- "लेकिन इनके व्यवहार में हिन्दी का स्वरूप इनकी अपनी भाषाओँ की सुगंध और मिठास के लिए होता है।"[2] जहाँ पर अपनेपन का एहसास और मिठास होती है। वहाँ पर व्यक्ति जल्दी जुड़ जाता है। और यह जुड़ना दो भाषाओं, दो संस्कृतियों का जुडना है। हिन्दी भाषा यह जुड़ने-जोड़ने का काम बखूबी करती आयी है।

विश्व के कोने-कोने से आए हुए ये विद्यार्थी हिन्दी को पसंद करते हैं। उसे सीखना चाहते हैं। पढना चाहते हैं। हिन्दी में रिक्शेवाले से सब्जीवाले से बातचीत, दुकानदार से अपने साथियों से सभी यह कहते हुए सुने जाते हैं कि- "हमें बाजार की भाषा व्यवहार की भाषा चाहिए।"[3] वे कहते हैं- "हमें बाजार चलते हुए लोगों से बात करना अच्छा लगता है। सिर्फ कक्षा में पढ़ाई जानने वाली भाषा नहीं चाहिए।"[4] हमें इस बात पर गौर करना होगा कि हिन्दी-शिक्षण अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य के सच्चे कर्ता-धर्ता ये विद्यार्थी है। जब हम हिन्दी शिक्षण के वैश्विक परिदृश्य हिन्दी की बात करते हैं तो मुझे लगता है कि हमें सिर्फ केन्द्रीय हिन्दी संस्थान या अन्य हिन्दी शिक्षण के संस्थाओं में पढ़ाई जाने वाली मानक भाषा हिन्दी को ही सिर्फ नहीं देखना है, बल्कि इन विद्यार्थियों द्वारा सीखी हुई संपर्क हिन्दी व्यावहारिक हिन्दी जो इनके मध्य संपर्क सूत्र का कार्य करती है पर विशेष ध्यान देना है। अत: यह संपर्क भाषा हिन्दी ही हिन्दी का वैश्विक परिदृश्य है।

विश्व में हिन्दी शिक्षण को बढ़ावा मिल रहा है जिसका एक उदाहरण अमेरिकी विद्वान डॉ०शोमर के शब्दों में यहाँ प्रस्तुत है- "अमेरिका मे हीं 113 विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में हिन्दी अध्ययन की सुविधाएँ उपलब्ध हैं जिनमें 13 तो शोध स्तर के केंद्र बने हुए हैं। आंकड़े बताते हैं कि इस समय विश्व के 143 विश्वविद्यालयों में हिन्दी शिक्षा की विविध स्तर पर व्यवस्था है।"[5] अमेरिका आज बेहतर शिक्षा, श्रेष्ठ टेक्नालोजी, दूर-संचार के क्षेत्र में दुनियां में सबसे आगे है। वहाँ भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार का प्रयास जारी है। दिन-प्रतिदिन वहाँ हिन्दी का प्रभाव बढाता जा रहा है। अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति जार्ज बुश ने राष्ट्रीय सुरक्षा भाषा कार्यक्रम को संबोधित करते हुए अपने देशवाशियों से हिन्दी भाषा सिखने को कहा। अमेरीकी राष्ट्रपति का संबोधन कुछ इस प्रकार था कि- "हिन्दी ऐसी विदेशी भाषा है जिसे 21वीं सदी में राष्ट्र-सुरक्षा और समृद्धि के लिए अमेरिका के नागरिकों को सीखना चाहिए।"[6] अमेरिका हमेशा से अपनी भाषा और पहचान को लेकर सजग रहा है। ऐसी सजगता में हिन्दी शामिल हो रही है ये हमारे लिए गर्व की बात है।

विश्व के जिन-जिन देशों में हिन्दी शिक्षण का काम होता है उन देशों को पठन- पाठन की दृष्टि से कुछ इस प्रकार विभाजित किया गया है-

1. जहाँ भारतीय मूल के लोग अधिक संख्या में रहते हैं जैसे पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, म्यांमार, श्रीलंका, मालदीव आदि।
2. भारतीय संस्कृति से प्रभावित दक्षिण पूर्वी एशियाई देश जैसे इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड, चीन, मंगोलिया, कोरिया, तथा कनाडा।
3. जहाँ हिन्दी को विश्व की आधुनिक भाषा के रूप में पढाया जाता है, जैसे- अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा और यूरोप के देश।
4. अरब तथा अन्य इस इस्लामी देश, जैसे- संयुक्त अरब अमीरात/दुबई अफगानिस्तान, कतर, मिस्र, उज्बेकिस्तान, कजाकिस्तान आदि।

मॉरीशस में हिन्दी की बात करें तो हिन्दी बैठकों अर्थात हिन्दी की पढ़ाई कराने वाले स्कूल तथा पढ़ने की पाठशाला ही प्रारम्भ में केंद्र बिंदु थे। इन्हीं बैठकों में गिरमिट कुली मजदूर शाम को कारखानों से वापस आने पर एकत्रित होते थे और कई बातों के साथ-साथ कथा-भागवत, रामायण और हिन्दी की चर्चा हुआ करती थी। सही मायने में देखा जाए तो वो हिन्दी 'स्मृतियों की हिन्दी' थी। ये वो लोग थे जिन्होंने अपनी संस्कृति, सभ्यता और भाषा को मॉरीशस तक इसलिए बचा पाए क्योंकि ये तीनों सिर्फ बातें ही नहीं, बल्कि जीवन का हिस्सा थे। इसी स्थान से हिन्दी गई तो धर्म गया, का उद्घोष हुआ था। "इस देश में आज के हिन्दी शिक्षण-प्रशिक्षण के लिए चार संस्थाएं कार्य कर रही है। जिनमें हिन्दी प्रचारिणी सभा, आर्य सभा, आर्य रवि वेद सभा एवं महत्मा गाँधी संस्थान इत्यादि।"[7]

रूस, कोरिया, मंगोलिया, चीन जापान, पोलैंड आदि देशों में हिन्दी-शिक्षण की व्यवस्था है। इन देशों में हिन्दी ना ही बोली-सुनी/संवाद की भाषा है और ना ही सांस्कृतिक पहलुओं में प्रयोग की जाती है- "यहाँ हिन्दी सिखाने वाले लोग विदेशी ही हैं जो विदेशी भाषा के रुप में हिन्दी पढते हैं यहाँ हिन्दी के प्रति काफी रूचि दिखाई देती है। ये लोग दैनिक व्यवहार के लिए हिन्दी नहीं सीखते वे तो इस भाषा के माध्यम से इसके विपुल साहित्य का अध्ययन करना चाहते हैं, भारतीय दर्शन का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं और इस देश की प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को जानना चाहते हैं। नौकरी मिल जाए तो सोने पर सुहागा है।"[8]

अत: इससे पता चलता है कि पूर्वी यूरोप के देशों में हिन्दी शिक्षण व्यक्तिगत रूचि या किसी विशेष उद्देश्य से सीखी जाती है ना कि सामाजिक सन्दर्भों का दायरा बढ़ाने के लिए सामाजिक स्तर पर हिन्दी व्यवहार में नहीं प्रयोग की जाती है। सूरीनाम में भी हिन्दी शिक्षण विद्यालयी तथा विश्वविद्यालय स्तर पर चल रहा है। अत: कहा जा सकता है कि वैश्विक स्तर पर हिन्दी शिक्षण का कार्य तेजी से चल रहा है और इसी का परिणाम है कि हिन्दी विश्व के कई देशों में अपना स्थान बनाने में गतिमान है।

संदर्भ-सूची

1. शैक्षणिक उन्मेष, प्रवेशांक/त्रैमासिक पत्रिका, (सं.) नन्द किशोर पांडेय, केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, उ. प्र., सितम्बर-नबम्बर-2017, पृ. 28
2. भूमंडलीकरण के दौर में हिन्दी, कृष्ण कुमार यादव, साहित्य कुंज, जनवरी-2009, पृ. 61
3. विदेशों में हिन्दी का बढता प्रभाव, राकेश शर्मा निशीथ, सृजनगाथा, अक्टूवर-2006 , पृ. 89
4. भाषा/द्विभाषिक पत्रिका, (सं.) अनिता डगोरे, (लेखक) उमेश कुमार सिंह, नई दिल्ली, जुलाई-अगस्त-2018, पृ. 89
5. आजकल/भाषिक पत्रिका, (सं.) फरहत परवीन, (लेखक) कृष्ण कुमार गोस्वामी, अगस्त-2018, नई दिल्ली, पृ. 30
6. वही, पृ. 31
7. भाषा/द्विभाषिक पत्रिका, (सं.) अनिता डगोरे, (लेखक) उमेश कुमार सिंह, नई दिल्ली, जुलाई-अगस्त-2018, पृ. 105
8. भूमंडलीकरण के दौर में हिन्दी, कृष्ण कुमार यादव, साहित्य कुंज, जनवरी-2009, पृ. 63

मौर्य साम्राज्य में कला का विकासः प्राचीन भारत की सांस्कृतिक यात्रा

डॉ० कामाख्या नारायण तिवारी

असिस्टेंट प्रोफेसर, बौध अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

मौर्य साम्राज्य जिसका समय काल लगभग 322–185 ईसा पूर्व था। यह दौर भारतीय प्राचीन इतिहास में एक महत्वपूर्ण युग को चिह्नित करता है, जिसमें स्थिर राज्य व्यवस्था और बौद्ध कला का विकास हुआ है। यह शोध पत्र मौर्य साम्राज्य और बौद्धकला के अंतर्संबंध की पड़ताल करने का प्रयास करेगा, इस पत्र में इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि मौर्य साम्राज्य के राजाश्रय ने बौद्ध शिक्षाओं और मूल्यों को व्यक्त करने वाली विशिष्ट शैलियों के विकास को सुविधाजनक बनाया। प्रमुख उदाहरणों में अजंता की गुफाएं, जिसे चट्टानों को काटकर बनाया गया है, सांची स्तूप और अशोक के स्तंभ जैसे विश्व प्रसिद्ध कलाओं का विकास भी इस दौर को महत्वपूर्ण बनाता है। मौर्य साम्राज्य ने न केवल बौद्ध धर्म के प्रसार में योगदान दिया, बल्कि राजाश्रय के माध्यम से विकास में भी योगदान दिया, जिसने अंततः प्राचीन भारत के सांस्कृतिक परिदृश्य को विराट आकार देने में बहुमूल्य योगदान प्रदान किया।

बीज शब्दः मौर्य साम्राज्य, बौद्ध धर्म, बौद्धकला, अशोक, सांची स्तूप, भारतीय इतिहास, कला इतिहास, प्राचीन भारतीय परंपरा

परिचय

322 से 185 ईसा पूर्व तक मौर्य साम्राज्य का विकास हुआ, यह दौर भारतीय प्राचीन इतिहास के कुछ स्वर्णिम और महत्वपूर्ण काल के रूप में देखा जा सकता है, यह काल महत्वपूर्ण राजनीतिक एकता और सांस्कृतिक प्रगति का प्रमाण है। चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा स्थापित, इस साम्राज्य ने विविध क्षेत्रों के लोगों को एक साथ लेन का कार्य किया एवं एक जीवंत सांस्कृतिक परंपरा को बढ़ावा देने का कार्य भी किया। यह वही काल था, जिसमें बौद्ध धर्म का उद्भव और प्रसार भी देखा गया, छठी शताब्दी ईसा पूर्व में सिद्धार्थ गौतम द्वारा प्रतिपादित मार्ग और आध्यात्मिक दार्शनिक परंपरा का विकास हुआ। बौद्ध धर्म ने नैतिक आचरण, करुणा और आत्म ज्ञान की खोज पर जोर दिया। इस समय अवधि के दौरा न बौद्ध धर्म के सबसे उल्लेखनीय संरक्षक अशोक थे, जो कलिंग युद्ध के बाद साम्राज्य के सिंहासन पर बैठे, इस युद्ध ने उन पर गहरा प्रभाव डाला और बौद्ध धर्म के प्रति विशेष श्रद्धा उत्पन्न किया। उन्होंने बौद्ध दर्शनों के प्रचार और विकास के लिए कला और वास्तुकला के विकास के लिए नियोजित कदम उठाए, कई स्मारकों, स्तूपों और शिलालेखों का निर्माण करवाया, जो धर्म के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाते थे। यह शोध पत्र मौर्य साम्राज्य और बौद्ध कला के बीच गतिशील परस्पर परंपरा की पड़ताल करेगा, मौर्यकालीन राजाश्रय एवं संरक्षण ने न केवल बौद्ध शिक्षाओं के प्रसार को आगे बढ़ाया बल्कि एक विशिष्ट सांस्कृतिक परंपरा को कला के रूप में विकसित करने कार्य किया, जिसने भारत से बाहर की संस्कृतियों को भी अपने वैभव से प्रभावित किया है।

मौर्य साम्राज्य का एकीकरण और सांस्कृतिक विश्लेषण

मौर्य साम्राज्य को शिखर तक पहुँचाने में, चंद्रगुप्त मौर्य की राज्य आधारित संगठन क्षमता और उनके सलाहकार चाणक्य द्वारा प्रतिपादित केंद्रीकृत प्रशासन व्यवस्था एक आधार तैयार करने का कार्य करती है, जो इससे पहले छोटे छोटे राज्यों में बंटे हुए थे। मौर्य साम्राज्य की शासन व्यवस्था जिसमें कुशल नौकरशाही, बुनियादी ढांचे और एक समान कानूनी प्रणाली थी जिसके कारण विशाल क्षेत्र में व्यापार और संचार की सुविधा हुई। इस राजनीतिक स्थिर ताने सांस्कृतिक क्रियाओं के लिए अनुकूल वातावरण बनाया। मौर्य साम्राज्य ने कला, दर्शन और धर्म के आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया। यह सांस्कृतिक वातावरण बौद्ध कला के विकास में महत्व पूर्ण था, क्योंकि कलाकारों और कारीगरों ने स्थानीय शैलियों को बौद्ध विषयों के साथ जोड़कर विभिन्न प्रकार की शैलियों को विकसित किया। मौर्य साम्राज्य के एकीकरण ने न केवल एक समृद्ध कलात्मक विरासत के विकास के लिए मंच तैयार किया बल्कि एक माहौल भी तैयार भी किया जिसमें बौद्ध धर्म विकास कर सके और विविध परंपरा के जनसामान्य तक इसका प्रसार होता रहे।

सम्राट अशोक द्वारा बौद्ध विचार का शासन के माध्यम से संरक्षण

अशोक का शासनकाल बौद्ध धर्म के लिए एक ऐतिहासिक क्षण था,जिसने इसे एक क्षेत्रीय भावना से एक अखिल भारतीय स्तर पर प्रसिद्धि दिलवाने का कार्य किया। कलिंग युद्ध की तबाही देखने के बाद बौद्ध धर्म के प्रति आकर्षित होने के बाद, अशोक ने इसे शासन के मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में अपनाया। उन्होंने अपनी नीतियों और सार्वजनिक कार्यों के माध्यम से करुणा, अहिंसा और धर्म के मूल्यों को बढ़ावा देने का प्रयास किया। अशोक के शिलालेख, जो उसके पूरे साम्राज्य में पत्थर के खंभों और चट्टानों पर खुदे हुए मिलते हैं,अशोक द्वारा समर्थित नैतिक शासन के उनके दृष्टिकोण को स्पष्ट करते थे और बौद्ध

शिक्षाओं के प्रसार के जिवंत रूप में निरंतर काम करते रहे हैं। इन शिलालेखों में नैतिक आचरण,अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता के महत्व और सभी जीवित प्राणियों के कल्याण पर जोर दिया गया। अशोक द्वारा पोषित कार्यों में स्तूपों, मठों और अन्य धार्मिक स्मारकों का निर्माण भी था, जिसमें एक स्थायी वास्तुशिल्प शैली का विकास हुआ। उनके राज्य कलाकारों, शिल्पकारों और भिक्षुओं को आकर्षित किया, जिससे कला और धर्म को बढ़ावा मिला, जिसने बौद्ध विषयों को प्रतिबिंबित करने वाली मूर्तियां, हस्त शिल्प और पेंटिंग बनाई गयी। इस अभूत पूर्व संरक्षण से न केवल बौद्ध धर्म की स्थिति को ऊंचाई मिली बल्कि एक समृद्ध कला परंपरा भी स्थापित हुई, जिसने आने अगली पीढ़ियों को भी प्रभावित किया।

मौर्यकाल में बौद्ध दर्शन द्वारा प्रेरित कला में वास्तुशिल्प का विकास

मौर्यकाल के स्थापत्य कला के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस युग की सबसे महत्वपूर्ण संरचनाओं में से एक सांची स्तूप है, जो मौर्य स्थापत्य शैली और बौद्ध प्रतीक का एक प्रसिद्ध उदाहरण है। स्तूप एक अर्ध गोलाकार गुंबद, जटिल न क्काशी दार प्रवेश द्वारों से सुशोभित है जिन्हें तोरण के नाम से जाना जाता है। ये प्रवेश द्वार बुद्ध के जीवन और जातक कथाओं के विभिन्न दृश्यों को दर्शाते हैं, जो बुद्ध के पिछले जीवन की कथाएँ हैं। विस्तृत नक्काशीयुक्त कला, जिससे स्तूप न केवल एक धार्मिक स्मारक बन जाता है, बल्कि आम जनता के लिए एक शैक्षिक उपकरण का भी कार्य करता है। इसी तरह, अजंता और एलोरा जैसी चट्टानों को काटकर बनाई गई गुफाएं, उस समय की समृद्ध कला प्रतिभा को दर्शाती हैं। ये गुफाएँ बौद्ध भिक्षुओं के लिए आश्रय के रूप में काम करती थीं और अपने आश्चर्यजनक भित्तिचित्रों और मूर्तियों के लिए प्रसिद्ध है, जो बुद्ध और विभिन्न बोधिसत्वों के जीवन को दर्शाते हैं। इन गुफाओं में हीनयान और महायान परंपरा का फर्क आप आसानी से समझ सकते हैं। इन कलाकृतियों के जीवंतरंग और जटिल कारीगरी कौशल और दृश्यकला के माध्यम से बौद्ध शिक्षाओं को व्यक्त करने की उनकी कला को दर्शाते हैं। ये वास्तुशिल्प आध्यात्मिकता और कला के अन्तर्सम्बन्धों को दर्शाते हैं, जो बौद्धकला की एक समृद्ध विरासत की के रूप में हमें प्रेरणा देती रहती है।

अशोक की प्रेरणा से स्थापित स्तम्भ का विश्लेषण

अशोक की प्रेरणा से स्थापित स्तंभ मौर्य साम्राज्य की वैचारिक चेतना के स्मारकीय प्रतीक के रूप में खड़े हैं। पूरे साम्राज्य में ये स्तंभ बलुआ पत्थर से बनाए गए हैं और इन में जटिल हस्तकला, शिलालेख और प्रतीकों का रूपांकन है। प्रत्येक स्तंभ के शीर्ष पर अक्सर जानवरों की हाथों के माध्यम से उकेरी हुई आकृतियाँ शामिल होती हैं, अशोक द्वारा स्थापित सबसे प्रसिद्ध सिंह स्तंभ है, जिसे आगे चलकर भारत के राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में इस्तेमाल किया गया। स्तंभों पर ब्राह्मी लिपि में लिखे शिलालेख, नैतिक आचरण, धर्म के महत्व और धर्म के प्रचार पर जोर देते हैं। ये स्तंभ न केवल अशोक की नीतियों की सार्वजनिक उद्घोषणा के रूप में स्थापित हुए बल्कि अहिंसा और करुणा के प्रति उनकी प्रतिबद्धता के प्रचार के रूप में भी काम करते थे। स्तंभों की कलात्मकता, उनकी विस्तृत न क्काशी मौर्यकाल के दौरान उच्च स्तर की शिल्प कौशल को दर्शाती है। अशोक के शासन काल में महत्वपूर्ण स्थलों को चिह्नित किया गया और उन स्तंभों को वहा लगाया गया।

अन्य देशों में बौद्ध कला और दर्शन का प्रसार

मौर्य साम्राज्य की कला विरासत इसकी भौगोलिक सीमाओं से कहीं आगे तक फैली हुई थी, जिसने पूरे एशिया में बौद्ध कला के विकास को प्रेरित और प्रभावित किया। मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद भी, इस अवधि के दौरान रखी गई नींव बाद की शताब्दियों में भी बौद्ध कला को आकार देती रही हैं। व्यापार मार्गों ने बौद्ध धर्म के प्रसार और सांस्कृतिक आदान-प्रदान को सुविधाजनक बनाया। जिससे गांधार और मथुरा जैसी विशिष्ट क्षेत्रीय शैलियों का उदय हुआ। गांधार कला, जो अपने ग्रीको-रोमन प्रभावों की विशेषता के कारण प्रसिद्ध रही है उसने यथार्थवादी मानव रूपों और जटिल निर्माण शैली का परिचय दिया, जबकि मथुरा कला ने अधिक स्वदेशी शैली पर जोर दिया। इन क्षेत्रीय परम्पराओं में स्थानीय कला परंपरा भी शामिल थीं। इसके अतिरिक्त, पूरे एशिया में बौद्ध भिक्षुओं और कारीगरों के प्रवास ने मौर्य कला शैलियों का प्रसार किया, जिसका प्रभाव मध्य एशिया, चीन और दक्षिण पूर्व एशिया जैसे क्षेत्रों पर पड़ा। इन क्षेत्रों में बने मंदिर, स्तूप और मठ परिसर अक्सर मौर्य वास्तुकला और प्रतिमा विज्ञान के तत्वों को प्रदर्शित करते हैं, जो इस प्रारंभिक काल के स्थायी प्रभाव का प्रदर्शन करते हैं। मौर्यकालीन परंपरा विभिन्न समाजों में धार्मिक अभिव्यक्ति और कला परंपराओं को आकार देने में संस्कृति के महत्व को भी रेखांकित करती है।

बौद्ध कला में प्रतीकों की प्रासंगिकता

किसी भी कला परंपरा के विकास में यह अति महत्वपूर्ण हो जाता है की वह कल परंपरा किन मूल उद्देश्यों को आधार बनाकर अपनी कला का विकास करेगी, मौर्य कालीन परंपरा ने इस मूल उद्देश्य में बौद्धकला के प्रतीक और प्रतिमा विज्ञान पर जोर दिया जो बेहद समृद्ध रही, जिसने बौद्ध धर्म की शिक्षाओं और मूल्यों को व्यक्त करने का काम किया है। सामान्य चिन्ह, जैसे कि कमल का फूल, पवित्रता और ज्ञानोदय का प्रतीक है, जो पुनर्जन्म के चक्र से बुद्ध के उद्भव का प्रतीक है। पहिया (धर्मचक्र) बुद्ध की शिक्षाओं और आत्म ज्ञान के मार्ग का प्रतीक है, जबकि स्तूप अक्सर ब्रह्मांड और बुद्ध के भौतिक अवशेषों का प्रतीक रहा है। प्रत्येक विकसित वास्तुकला अर्थ से ओत-प्रोत है। जिसमे चिंतन और विकसित समझ को स्पष्ट देखा जा सकता है। इसके अलावा, बोधिसत्वों का चित्रण- प्रबुद्ध प्राणी जो दूसरों की मदद करने के लिए पुनर्जन्म के चक्र में रहना चुनते हैं ख़ बौद्ध दर्शन के महायान परंपरा और करुणा के आदर्शों को दर्शाता है। कलाकार अक्सर अलग-अलग आकृतियों को अलग करने के लिए विशिष्ट प्रतीक चिन्हों का उपयोग करते हैं, जिसमे विशिष्ट शिक्षाओं को व्यक्त करने के लिए उपयोग में की जाने वाली अनूठी बुद्ध की मुद्राएं (हाथ के इशारे), बैठने का तरीका इत्यादि। इस दृश्य भाषा ने कला की अभिव्यक्ति ने एक समृद्ध परंपरा का निर्माण किया जो क्षेत्रीय सीमाओं को पार कर बौद्ध सिद्धांतों की अन्य समाज को साझा करने और समझ को बढ़ने में उपयोगी साबित हुई।

क्षेत्रीय परंपरा की विविधताओं का समावेश

जैसे-जैसे बौद्ध धर्म का विकास पूरे एशिया महाद्वीप में फैला, इसे विविध संस्कृतियों और परंपराओं का सामना करना पड़ा, इस विकास से इस की कलात्मक शैली पर क्षेत्रीय विविधताएं का प्रभावभी पड़ा। प्रत्येक संस्कृति ने बौद्ध कला में अपने दृष्टिकोण और कला परंपराओं को समाहित करने का कार्य किया, जिसके परिणाम स्वरूप अलग-अलग शैलियों और रूप में बौद्धकला का विकास हुआ। उदाहरण के लिए, ग्रीको-रोमन सौंदर्य शास्त्र से प्रभावित गांधार कला ने पहले भारतीय कला में पाए जाने वाले शैली से भिन्न, कला में शिल्प के माध्यम से मानव शरीर को यथार्थ वादी रूप में पेश किया। इसके विपरीत, मथुरा कला ने अपनी कला शैली के साथस्थानीय परंपराओं पर जोर दिया, जिसमें बुद्ध को एक आदर्श शरीर के साथ चित्रित किया गया जो भारतीय सौंदर्य शास्त्र के अनुरूप था। दक्षिण पूर्व एशिया में और अधिक अनुकूल देखा गया, बौद्ध मंदिर डिजाइनों में स्वदेशी कला और वास्तुकला के तत्वों को शामिल किया गया, जैसे कि अंग कोरवाट में मंदिर परिसर, जो हिंदू मंदिर की शैली में विकसित हुआ। ये क्षेत्रीय विविधतान केवल स्थानीय कला परंपराओं को दर्शाती हैं बल्कि विभिन्न सांस्कृतिक संदर्भों में बौद्ध शिक्षाओं की अनुकूलता को भी दर्शाती है। स्थानीय शैलियों ने प्रत्येक क्षेत्र की कला परंपरा को समृद्ध किया। बौद्धकला में इस विविधताने अंतत: एक समृद्ध और बहुआयामीपरंपरा में योगदान दिया जो दुनिया भर के अनुयायियों के साथ एक जीवंत परंपरा और विरासत के रूप में मौजूद है।

सांस्कृतिक और ऐतिहासिक प्रभाव

प्राचीन भारतीय समाज में बौद्ध धर्म की भूमिका

प्राचीन भारतीय समाज के सामाजिक ताने-बाने में बौद्ध धर्म ने सांस्कृतिक, नैतिक और राजनीतिक रूप से प्रभावित और समृद्ध किया। बौद्धकला और वास्तुकला का प्रचार न केवल आस्था की अभिव्यक्ति के रूप में बल्कि छोटे छोटे केंद्रों के रूप में भी हुआ जहां लोग धार्मिक और सामाजिक उद्देश्यों के लिए एकत्र होते थे। मठ, स्तूप और सार्वजनिक स्थल सामाजिक गतिविधियों के केंद्र बिंदु बने, जिससे सामाजिक पहचान और साझा मूल्यों की भावना को बढ़ावा मिला। बौद्ध शिक्षाओं में व्याप्त करुणा और नैतिक आचरणने सामाजिक मानदंडों को भी प्रभावित किया, जिसने व्यक्तियों को दयालु बनने और सेवा के कार्यों में लगे रहने के लिए प्रोत्साहितकिया। बुद्ध के जीवन और बोधिसत्व की कहानियों को दर्शाने वाली कलाकृतियाँ लोगों के बीच भक्ति और नैतिक कार्यों को प्रेरित किया है। कला और आध्यात्मिकता के बीच इस संबंध ने दैनिक जीवन में बौद्धधर्म के महत्व को मजबूत करने का कार्य किया, इन शिक्षाओं ने नैतिक मानकों और सामाजिक व्यवहारों को आकार देने का कार्य किया। परिणामस्वरूप, बौद्धकला शैली ने बौद्ध मूल्यों के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

बौद्ध दर्शन और कला का राजनीतिक विचारधारा पर सकारात्मक प्रभाव

मौर्य साम्राज्य के दौरान निर्मित कला उनके शासकों, विशेष कर सम्राट अशोक की राजनीतिक विचारधाराओं और उनकी सामाजिक दृष्टिकोण को दर्शाती है। धर्म और नैतिक शासन के प्रति उनकी प्रतिबद्धता न केवल उनके शिलालेखों के माध्यम से बल्कि उनके शासनकाल के दौरान शुरू की गई विभिन्न कला परम्परा के माध्यम से भी व्यक्त की गई। बौद्ध स्मारकों औरशिला लेखों के सार्वजनिक प्रदर्शन ने एक शासक के रूप में उनके अधिकार और दृढ़ता को व्यक्त करने का काम किया, उन्होंने अपने शासनाधीन प्रजा के कल्याण को प्राथमिकता दी। सम्राट अशोक ने कलिंग युद्ध की त्रासदी के बाद जिस प्रकार का बदलाव अपने साम्राज्य मेंकिया उससे यह प्रतीत होता है की उनका लक्ष्य मौर्य साम्राज्य को एक साझा नैतिक ढांचे के अंतर्गत एक जुट करना था। अशोक कीप्रेरणा बुद्ध से प्रेरित थी, उनके द्वारा किये गए कार्यों में से अहिंसा, करुणा और नैतिक आचरण के आदर्शों की झलक दिखाए पड़ती है। मौर्यकल की शासन व्यवस्था यह दर्शाती है कि कैसे शासकों नेअपने मूल्यों और आकांक्षाओं को अपनी प्रजा तक पहुँचाने के लिए सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के उपकरणों का उपयोग किया। यहभविष्य के शासकों को अपने शासन में समान दर्शन अपनाने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार, मौर्यकाल में कला और राजनीतिक विचारधारा के बीच परस्पर सम्बन्ध, सामाजिक मूल्यों और बौद्ध दर्शन के गहरे प्रभाव को उजागर करती है।

निष्कर्ष

बौद्ध संस्कृति और कला के साथ मौर्य साम्राज्य के संबंधों की पड़ताल से सांस्कृतिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक अंतर्संबंधों की समृद्ध विकसित परंपरा के बारे में हमे पता चला। साम्राज्य के विविध क्षेत्रों और लोगों ने संगठित रूप से बौद्ध धर्म के फलने-फूलने के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया, जबकि सम्राट अशोक के राजाश्रय ने स्थापत्य कला की एक मौलिक शैली को स्थापित किया। बौद्ध परंपरा से सम्बंधित प्रमुख स्मारक, जैसे सांची स्तूप और अशोक स्तंभ, आध्यात्मिकता और कला की अभिव्यक्ति के बीच परस्पर क्रिया का उदाहरण देते हैं, जिनसे करुणा और शासन के नैतिक सिद्धांतों का पता चलता है। इसके अलावा, मौर्य कला का प्रभाव इसकी भौगोलिक सीमाओं से परे अन्य देशों में भी फैला। बौद्ध कला में निहित प्रतीकवाद और प्रतिमा निर्माण शैली ने एक बौद्ध सिद्धांतों के प्रचार में सुविधा प्रदान की, जिससे विविध संस्कृतियों के बीच साझा समझ को बढ़ावा मिला। चूँकि बौद्धधर्म आज भी करोड़ों लोगों को प्रेरित कर रहा है, मौर्यकाल में निहित कला शैली एक जिवंत विरासत के रूप में आध्यात्मिक अभिव्यक्ति और सांस्कृतिक पहचान के माध्यम से कला की स्थायी शक्ति का प्रमाण बनी हुई है।

संदर्भ

- बेक, रोजर. एशिया का इतिहास. छठा संस्करण. पियर्सन, 2016।
- Dhavalikar, M- S- "भारत में बौद्ध कला और वास्तुकला।" भारतीय ऐतिहासिक समीक्षा, खंड. 27, नहीं. 2, 2000, पृ. 117-134.

- फाल्क, बारबरा। "अशोक: एक महान सम्राट की विरासत।" एशियाई अध्ययन जर्नल, खंड. 60, नहीं. 1, 2001, पृ. 51-74.
- क्रामरिश, स्टेला। भारतीय मूर्तिकला. न्यूयॉर्क: द मैक मिलन कंपनी, 1941।
- मित्रा, ए. "अशोक के स्तंभ: एक अध्ययन।" जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड, नहीं। 3, 1990, पृ. 219-232.
- Rajagopal, S. भारत के गुफा मंदिर: उनकी कला और वास्तुकला। दिल्ली: इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, 2006।
- श्रीनिवास, डी. "भारत में बौद्ध धर्म और कला।" कला पत्रिका, खंड. 52, नहीं. 2, 1993, पृ. 18-25.
- चचेरेभाई, लुईस। बौद्धकला: एक सामाजिक इतिहास। टेम्स और हडसन, 2005।
- राइस डेविड्स, टी.डब्ल्यू. बौद्ध धर्म: एक आधुनिक परिप्रेक्ष्य। लंदन: एलन एंड अनविन, 1976।
- मित्रा, एस. सांची का महान स्तूप: इसका इतिहास और वास्तुकला। नई दिल्ली: भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, 1995।
- हॉल, जेम्स. कला में विषयों और प्रतीकों का शब्दकोश। हार्पर एंडरो, 1974.
- लाल, एस.पी. भारत की बौद्धकला: प्रारंभिक काल से आज तक। नई दिल्ली: ए पी एच प्रकाशन, 2001।
- सिन्हा, आर. प्राचीन भारत की कला: एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2008।
- तिवारी, बी. मौर्यकला और वास्तुकला: इसके विकास का एक अध्ययन। Varanasi: Vishwavidyalaya Prakashan, 2004.
- देहजिया, विद्या. भारतीय कला. फिदोन प्रेस, 1997।

नागार्जुन प्रतिपादित शून्यवादः एक अवलोकन

डॉ० मोहन मिश्र

पोस्ट डॉक्टोरल फेलो (PDF), पालि-अध्ययन केन्द्र, केन्द्रियसंस्कृत विश्वविद्यालय, लखनऊ परिसर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

शून्यवाद बौद्धदर्शन का एक अत्यन्त प्रसिद्ध एवं महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। नागार्जुनाचार्य इस सिद्धान्त के जन्मदाता नहीं कहे जा सकते, क्योंकि इसका उल्लेख और प्रतिपादन नागार्जुन के पूर्वकालिक महायान सूत्रों में जिनमें कुछ सूत्र आचार्य अश्वघोष के भी पूर्वकालिक हैं और आचार्य अश्वघोष के दर्शन में भी मिलते हैं। यद्यपि आचार्य नागार्जुन शून्यवाद के मूलप्रवर्तक नहीं हैं, तथापि वे इस वाद को सम्प्रदाय का रूप देने वाले प्रथम आचार्य हैं। शून्यवाद के असम्बद्ध और अस्तव्यस्त विचारों को सर्वप्रथम दार्शनिक रूप में पूर्ण विकसित करने एवं उनको सुसम्बद्ध और सुसंगृहीत करने के पश्चात् अपने मौलिक विचारों से उन्हें पुष्ट करके शून्यवाद को प्रतिष्ठित दार्शनिकसम्प्रदाय का स्वरूप प्रदान करने का सम्पूर्ण श्रेय आचार्य नागार्जुन को ही है।

महायान सम्प्रदाय के किसी भी मत का कोई भी मुख्य सिद्धान्त ऐसा नहीं है, जो बीजरूप से आचार्य अश्वघोष के दर्शन में विद्यमान नहीं है। तत्त्व बुद्धिग्राह्य नहीं है। जब कोई बुद्धि की सीमा पार कर आगे बढ़ता है तो वह बुद्धज्ञान की ओर अग्रसर होता है। किन्तु ज्ञान बुद्धि का विनाश नहीं है। बुद्धि की सहायता से ही हम ज्ञान की ओर बढ़ सकते हैं। यदि हम बुद्धि का गला घोट दें तो ज्ञान का द्वार हमारे लिए सदा के लिए बन्द हो जाएगा। स्वयं ज्ञान ही अविद्या के कारण बुद्धिरूप से भासित होता है। स्वयं तत्त्व अविद्या के कारण संसार रूप से भसित होता है। अश्वघोष कहते हैं कि जिस प्रकार समुद्र का शान्त जल वायु के प्रभाववश, अनेक तरंगों के रूप में प्रतीत होता है, उसी प्रकार विशुद्धज्ञानरूपी तत्त्व, अविद्या के कारण, अनेक परिमित बुद्धियुक्त व्यवच्छिन्न जीव के रूप में भासित होता है। मूल तत्त्व 'भूततथता' वास्तव में निर्विकल्प, निर्विकार और निरूपाधि है। अविद्यामिश्रित होते ही 'भूततथता' सविकल्प, सविकार और 'सोपाधितथता' के रूप में प्रतिभासित होती है। विषयी जीव और विषय जगत् के रूप में भासित यह सम्पूर्ण संसार इसी 'सोपाधितथता' की लीला है। संसार व्यवहारतया सत्य होते हुए भी परमार्थतया मिथ्या है, क्योंकि बुद्धि द्वारा न यह 'सत्' सिद्ध किया जा सकता है, न 'असत्', न 'उभय', तथा तत्त्व भी, बुद्धि द्वारा पूर्णतया प्रतिपादित न होने के कारण, बुद्धि, की 'शून्य', 'अशून्य', 'शून्याशून्य' और 'शून्याशून्यभिन्न' रूपी चार कोटियों द्वारा ग्राहय न होने के कारण 'चतुष्कोटिविनिर्मुक्त' और 'अनिर्वचनीय' है तथा केवल स्वानुभूति का विषय है- यह सिद्धान्त शून्यवाद या माध्यमिक सम्प्रदाय द्वारा विकसित किया गया।

शून्यवादी स्वयं को माध्यमिक मानते हैं। माध्यमिक शब्द का अर्थ मध्यम मार्गानुयायी है। सत्त्व (सत्ता) और असत्त्व (असत्ता) के मध्य स्थित होना माध्यमिक है। समस्त धर्म परमार्थतः (सत्यतः) सत् नहीं हैं और संवृतितः (व्यवहारतः) असत् भी नहीं हैं, ऐसी मान्यता वाले 'माध्यमिक' कहलाते हैं। यह मध्यम मार्ग, अरस्तू के 'स्वर्णिम मध्यम' (Golden mean), हीगल के 'सम्पक्ष' (Synthesis), तथा वेदान्त के 'समन्वय' की भाँति सत् और 'असत्' शून्य और अशून्य, भाव और अभाव पुण्य और अपुण्य आदि समस्त द्वन्द्वों में अर्थात् पक्ष और विपक्ष दोनों में सूत्ररूप से व्याप्त रहकर उनको जीवन और ज्योति देता हुआ, उनका आधार और अधिष्ठान बनता हुआ भी उनसे विलक्षण और परे है। यही तथागताभिसम्बुद्ध मध्यमा प्रतिपदा है। इसके पूर्ण विकास का श्रेय माध्यमिकदर्शन को ही है, यहाँ ध्यातव्य है कि मध्यममार्ग पक्ष और विपक्ष रूपी दो अन्तों के बीच में सविकल्प बुद्धिग्राह्य मार्ग नहीं है। इसे 'मध्यम मार्ग' कहना वाणी का आडम्बर मात्रा है। यह तो बुद्धिगम्य एवं अनुभूति का विषय है, छुरे की धार पर चलने के समान कठिन एवं उपनिषद्दर्शित श्दुर्गम पथश है। इस मार्ग को बुद्धि की कोटि समझना बड़ी भूल है। समाधिराजसूत्र में कहा गया है- पण्डित पक्ष और विपक्ष रूपी दोनों अन्तों को पार करके मध्यस्थान में रहकर नहीं ठहरता, वह उसे भी पार कर जाता है।

माध्यमिक द्विविध हैं, यथा- 1. स्वातन्त्रिक माध्यमिक- इनके भी दो भेद हैं, यथा-(क) सूत्राचार स्वातन्त्रिक माध्यमिक- व्यवहार की स्थापना सौत्रान्तिक दर्शन की भाँति करने के कारण इन्हें सौत्रान्तिक स्वातन्त्रिक माध्यमिक भी कहते हैं। आचार्य भावविवेक एवं ज्ञानगर्भ आदि इस मत के प्रमुख आचार्य हैं।

इन्हें व्यवहार में वाह्यार्थ की सत्ता स्वीकार्य है। इन्द्रियजन्य ज्ञान मिथ्याकार नहीं होते, अपितु सत्याकार होते हैं। तत्तद् ज्ञान तत्तद विषयाकार ग्रहण करते हैं। ये पूर्वापरकालिक कार्यकारणभाव मानते हैं, समकालिक नहीं। इनका कार्य और कारण एक काल में समवस्थान नहीं होता।

(ख) योगाचार स्वातन्त्रिक माध्यमिक- ये निःस्वभवतावादी माध्यमिक होते हुए भी व्यवहार की स्थापना योगाचार दर्शन की भाँति करते हैं। इसलिए ये योगाचार स्वातन्त्रिक माध्यमिक कहलाते हैं। ये व्यवहार में बाह्यार्थ की सत्ता नहीं मानते, अतः तीनों धातुओं को विज्ञप्तिमात्र व्यवस्थापित करते हैं। आचार्य शान्तरक्षित, कमलशील आदि इस मत के प्रमुख आचार्य हैं।

2. प्रासङ्गिक माध्यमिक- यह नामकरण भोटदेशीय विद्वानों द्वारा किया गया है, भारतीय ग्रन्थों में यह नामकरण नहीं मिलता। ये केवल 'प्रसङ्ग' का प्रयोग करते हैं। समस्त भारतीय दर्शनों में अपने मत की स्थापना तथा परपक्ष के निषेध की प्रवृत्तिदृष्टिगत है। माध्यमिक समस्त धर्मों को निःस्वभाव (शून्य) मानते हैं। प्रासंगिकों के अनुसार जब हेतु साध्य पक्ष आदि सभी शून्य हैं तो यह अनुचित है कि साध्य मानकर उसे हेतु प्रयोगादि द्वारा सिद्ध किया जाए। इस स्थिति में जो दार्शनिक हेतुओं द्वारा वस्तुसत्ता सिद्ध करते हैं, उनके प्रयोगों में दोष दिखलाकर यह सिद्ध किया जाए कि उनके साधन उनके साध्य को करने में असमर्थ हैं। जब स्वभाव सत्ता (वस्तुसत्ता) सिद्ध नहीं होगी तो यही निःस्वभावता की सिद्धि होगी। अर्थात् स्वभवसत्ता का निषेध ही निःस्वभावता की सिद्धि है। इसलिए माध्यमिकों को केवल परपक्ष का निराकरण मात्र करना चाहिए। अतः परपक्ष निराकरणमात्र पर जोर देने के कारण ये प्रासंगिक माध्यमिक कहलाते हैं।

आचार्य चन्द्रकीर्ति इस दर्शन के प्रवर्तक हैं। आचार्य शान्तिदेव, दीपंकरश्रीज्ञान आदि अनेक भारतीय मनीषियों नें इस मत का विकास किया। भोट देशीय चार (ञिङ्मा, कर्ग्युद, साक्या और गेलुक) सम्प्रदायों में अनेक मूर्धन्य विद्वान हुए जो प्रासंगिक माध्यमिक दर्शन से प्रेरित रहे। वस्तुतः प्रासंगिक माध्यमिक दर्शन अवैदिक बौद्धदर्शन के विकास का चरम है और निश्चय ही यह न केवल भारतीय दर्शनों अपितु अन्य वैश्विक दर्शनों में अद्वितीय है।

दोनों माध्यमिकों का आग्रह है कि वे ही आचार्य नागार्जुन और आचार्य आर्यदेव के विचारों को उचित परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते हैं।

सद्धर्मपुण्डरीक के अनुसार जो पुरुष यह नहीं जानते कि जगत् का अर्थ अन्योन्यापेक्षा या परस्परसम्भवन है, वे प्रतीत्यसमुत्पाद का अर्थ नहीं समझते तथा जात्यन्धों की भाँति संसार के दुःखमय आवागमन चक्र में भ्रमण करते रहते हैं। जो यह जानते हैं कि सम्पूर्ण जगत्पदार्थ व्यावहारिक और स्वभावशून्य हैं, वे बुद्धज्ञान की ओर या बोधि की ओर अग्रसर होते हैं। जो सम्पूर्ण धर्मों को माया और स्वप्नवत् मिथ्या, कदली स्कन्धवत् निःसार तथा समस्त पदार्थो को बन्धमोक्षहीन मानते हैं। जो पारमार्थिकदृष्टि से संसार और निर्वाण में कोई भेद नहीं तथा इस सृष्टि से सब सम हैं, सर्वदा सम हैं, समत्व का ही सार्वभौम साम्राज्य है, वे सम्बुद्ध, शिव और अमृत स्वरूप निर्वाण का साक्षात्कार करते हैं।

किसी भी बुद्धिगम्य वस्तु को तत्त्व मानते ही उसकी नैसर्गिक आपेक्षिक स्थिति स्वयं ही अन्तर्निहित विरोध को जन्म देगी और यह विरोध उस वस्तु को सत्य कहलाने के दावे का गला घोट देगी। 'सत्य' रूपी सिंह- चर्म ओढ़े वह पदार्थ वास्तव में 'मिथ्या' रूपी गर्दभ निकलेगा। किसी वस्तु का बुद्धिगम्य होना ही उसके पारमार्थिक मिथ्यात्व का द्योतक है। अतः बुद्धिगम्य सब पदार्थ वास्तविक सत्ताशून्य अर्थात् स्वभावशून्य हैं। उनकी सत्ता आपेक्षिकी है। स्कन्ध, पुद्गल, बोधिसत्त्व, महायान, प्रज्ञापारमिता, यहाँ तक कि स्वयं बुद्ध और निर्वाण भी जहाँ तक बुद्धिग्राह्य हैं, मिथ्या और स्वभावशून्य सिद्ध होते हैं। यदि निर्वाण से भी विशिष्ट कोई अन्य पदार्थ बुद्धि द्वारा सोचा जा सके तो वह भी मिथ्या ही होगा।" बुद्धि द्वारा विवेचित समस्त पदार्थ स्वप्नवत्, प्रतिध्वनित, प्रतिबिम्बित, मायावत् स्वभावशून्य हैं।

शतसाहस्रिकाप्रज्ञापारमितासूत्र भी समस्त धर्मों को, सब बुद्धिगम्य पदार्थों को, स्वभावशून्य मानता है। समस्त धर्म मायोपम हैं, स्वप्नोपम हैं, प्रतिश्रुतकोपम हैं तथा प्रतिभासोपम हैं। न उत्पत्ति है, न निरोध है, न हानि है, न बुद्धि है, न संसार है, न निर्वाण है, न भाव है, न अभाव है, न शून्य है, न अशून्य है।

लंकावतार, ललितविस्तर, समाधिराज एवं सुवर्णप्रभाससूत्र भी एक स्वर से समस्त बुद्धिग्राह्य धर्मों को स्वप्न, मरीचिका, माया, शशशृंग, वन्ध्यापुत्र, गन्धर्वनगर, द्विचन्द्रदर्शन, प्रतिबिम्ब, प्रतिध्वनि, तैमिरिकदृष्टि, अलातचक्र, इन्द्रजाल आदि के समान असत्य मानते हैं।

बुद्धि केवल विकल्प, विकार, अपेक्षा, भेद, व्यवच्छेद, द्वैत को ग्रहण कर सकती है, तत्त्व या सत्य को कदापि नहीं। सम्पूर्णलोकव्यवहार बुद्धि की चार कोटियों में समाहित होता है। चार कोटियाँ हैं- (1) सत् या श्अस्तिश, (2) असत् या 'नास्ति', (3) सदसत् या 'अस्ति च नास्ति च', और (4) सदसद्भिन्न या श्न चास्ति न च नास्ति। इन चार कोटियों के जाल में फँसे रहने के कारण साधारण जीव तत्त्व साक्षात्कार हेतु विशुद्धज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करते।

आचार्य नागार्जुन की नितान्त सूक्ष्म तर्क पद्धति के समक्ष सम्पूर्ण जागतिक पदार्थ तथा समस्त बौद्धिक धारणाएँ स्वभावशून्य और मिथ्या प्रतीत होती हैं। गति, कारण, कार्य, स्वभाव, कर्म, बन्ध, मोक्ष, आर्यसत्यचतुष्टय सद्धर्म और स्वयं बुद्ध तक मिथ्या प्रतीत होते हैं। किन्तु व्यवहार रूप में सत्य हैं।

आचार्य अपने महान् ग्रन्थ "माध्यमिककारिका" के मंगलाचरण में ही अपने प्रसिद्ध "अष्ट निषेध' प्रस्तुत करते हुए कहते हैं- पारमार्थिक दृष्टि से (1) न निरोध है, (2) न उत्पत्ति है, (3) न अनित्य है, (4) न नित्य है, (5) न एक है, (6) न नाना है, (7) न आना है, (8) न जाना है। जो लौकिक रूप से 'प्रतीत्यसमुत्पादचक्र' दुःखमय भवचक्र है, वास्तविक दृष्टि से वही पद मंगलमय एवं परमानन्दस्वरूप 'तत्त्व' है जहाँ समस्त प्रपञ्च शान्त हो जाते हैं।

आचार्य नागार्जुन अजातिवाद से अपना ग्रन्थारम्भ करते हैं। प्रथम कारिका में वे कहते हैं कि- कोई भी पदार्थ कभी, कहीं और कदापि उत्पन्न नहीं हो सकता, कोई पदार्थ न अपने आप स्वतः उत्पन्न हो सकता है, न परतः न अपने और दूसरे दोनों के कारण और न विना कारण।"

आचार्य नागार्जुन तत्त्व की सत्ता स्वीकार कर उसका लक्षण स्पष्ट करते हैं जो विशुद्धज्ञान द्वारा अपरोक्षानुभूति से साक्षात् किया जा सके, जहाँ सापेक्ष बुद्धि कीसमस्त कोटियाँ और धारणाएँ सम्पुष्ट होकर शान्त हो जायँ, जो सम्पूर्णप्रपञ्च से शून्य हो, जहाँ मानवी बुद्धि के सारे विकल्प, तर्क, वितर्क, विचार, सन्देहादि विलीन होजाएँ, और जो अद्वय रूप विशुद्धज्ञानस्वरूप हो, वही तत्त्व है।

सदर्भ-संकेत-

1. बौद्धदर्शन और वेदान्त, डॉ. चन्द्रधर शर्मा, विजनविभूति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1994।
2. महायान श्रद्धोत्पादशास्त्र, सुजुकी, पृ0 112, रिचर्ड, पृ0 10।
3. रिचर्ड, पृ0 10।
4. रिचर्ड, पृ0 8।
5. रिचर्ड, पृ0 8।
6. रिचर्ड, पृ0 11-12।
7. न सन्नासन्नसदसन्न..... माध्यमिका विदुः। बोधिचर्यावतार पञ्जिका, पृ. 174।
8. तस्मातुभे अन्त विवर्जयित्वा मध्येपि स्थानं न करोति पण्डितः। समाधिराजसूत्र, पृ. 30।
9. बौद्धदर्शन प्रस्थान, पृ. 190, प्रो0 रामशंकर त्रिपाठी, केन्द्रिय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी-1997।
10. सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ. 1431
11. यदि निर्वाणादप्यन्यः कश्चिद्धर्मो विशिष्ट तरः स्यात् तमप्यहं नायोप्यहं स्वप्नोपमिति वदेयम्।
    -अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता, पृ. 40।

12. वहीं, पृ. 32, 196, 298, 205, 279, 483, 484 आदि।
13. शतसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता, T. 319, 120, 185, 262।.
14. पृ. 22, 51, 62, 84, 90-95, 105 आदि।
15. ललितविस्तर, पृ. 176, 177, 181।
16. समाधिराजसूत्र, पृ. 27, 29।
17. सुवर्णप्रभाससूत्र, पृ. 31, 32, 44।
18. चतुष्कोटिकं च महामतेलोकव्यवहारः।- लंकावतार, पृ. 188।
19. चतुष्कोटिकं च महामते लोकव्यवहारः।- लंकावतारसूत्र, पृ.188।
20. अनिरोधमनुत्पाद.....वदतां वरम्ध्माध्यमिककारिका, पृ. 11।
21. न स्वतो नापि.....क्वचन केचन।। माध्यमिककारिका, 1/1।
22. अपरप्रत्ययं शान्तंतत्त्वस्य लक्षणम्।। माध्यमिककारिका, 18/9।

राजस्थान के हाड़ौती क्षेत्र में बौद्ध धर्म के पुरास्थलों का अध्ययन

डॉ० ईश्वर दान

असिस्टेण्ट प्रोफेसर इतिहास विभाग, सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भारत में बौद्ध धर्म का जन्म ईसा पूर्व 6वीं शताब्दी में हुआ था और तब से यह भारत की सांस्कृतिक और धार्मिक विरासत का एक अभिन्न अंग बन गया है। बौद्ध धर्म और राजस्थान का घनिष्ठ संबंध रहा है। राजस्थान की धरती के गर्भ में बौद्ध धर्म के अनेक प्रमाण पाए गए हैं। अलवर में बैराठ, झालावाड़ में कोल्वी और दौसा में भांडारेज में कई बौद्ध मठ या परिसर स्तूप अवशेष मौजूद हैं, जो बताते हैं कि राजस्थान भी बौद्ध साधना का प्रमुख केंद्र रहा है। हालांकि बुद्ध का आगमन राजस्थान में नहीं हुआ। लेकिन मौर्य सम्राट अशोक के समय बौद्ध धर्म अपना लिए जाने के कारण बौद्ध धर्म मगध से लेकर तक तक्षशिला, काबुल तथा कांधार होता हुआ बैक्ट्रिया तक पहुँच गया। इसलिए स्वाभाविक ही था कि इस मार्ग में पढ़ने वाले राजस्थान के क्षेत्र में भी बौद्ध धर्म का विकास होता। राजस्थान में बौद्ध धर्म मौर्य साम्राज्य के उत्थान चौथी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर गुप्त साम्राज्य के पतन पांचवीं शताब्दी तक विद्यमान रहा। यहाँ के पुरातत्विक सर्वेक्षण के दौरान कई ऐसे स्थल जहाँ से बौद्ध स्मारकों के प्रमाण बताते हैं कि इस क्षेत्र में भी बौद्ध भिक्षुओं ने बड़ी संख्या में विहारों, मठों, स्तूपों, चौत्यों तथा मूर्तियों का निर्माण किया। बैराठ, रैढ़, चित्तौड़, लालसोट, कोलवी, पुष्कर तथा रंगमहल आदि स्थल बौद्धों के बड़े केन्द्र थे।

इसका प्रमुख प्रमाण राजस्थान के जयपुर से उत्तर में 75 किलोमीटर दूर अरावली की पहाड़ियों के बीच में बैराट स्थल है जहाँ की भीम की डूंगरी बीजक की पहाड़ी से प्राप्त भाबरू शिलालेख से प्राप्त होते हैं। लेकिन कुछ स्थानों से बौद्ध स्तूपों के अवशेष पहचाने जा सकते हैं। राजस्थान में कई स्थलों की पुरातत्विक खुदाई में बौद्ध मूर्तियां भी प्राप्त हुई है। कुछ ऐसे स्थान भी है जहाँ से बौद्ध धर्म के प्राचीन स्मारक, गुफाएं और शिलालेख मिले हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि राजस्थान का दक्षिण पूर्वी भाग जो मालवा से सटा हुआ क्षेत्र है जिसमें बूंदी, कोटा, झालावाड़ और बाराँ जिले शामिल हैं । कोल्वी व निकटवर्ती विनायगा आदि स्थलों से प्राप्त बौद्ध गुफाओं व चौत्यों से बौद्ध धर्म के विश्वासों का पता चलता है। राजस्थान के जनमानस पर बौद्ध धर्म का अत्यंत व्यापक और गहरा प्रभाव पड़ा।

प्रस्तुत शोध पत्र में हाड़ौती क्षेत्र में शोधार्थी द्वारा सर्वेक्षण तथा प्रकाशित रिपोर्टों, पुस्तकों तथा अन्य विद्वानों के शोध से प्राप्त सर्वेक्षित पुरास्थलों का विभिन्न जिलों के आधार पर विवरण प्रस्तुत किया गया है, जिसमें विभिन्न पुरास्थलों की अवस्थिति, भौगोलिक स्थिति, आकार, सांस्कृतिक अनुक्रम व पुरावशेष तथा वर्तमान में स्थिति आदि के परिप्रेक्ष्य में प्रकाश डाला गया है।

कोल्वी 24°01'18'' उ.अं., 75°84'88'' पू.दे. (आरंभिक ऐतिहासिक काल, पूर्वमध्यकालीन)

यह गाँव झालावाड़ जिला मुख्यालय से 87 किमी दूर है। बौद्ध गुफाएं और स्तूप यहां के मुख्य आकर्षण हैं। ये चट्टानों में काटी गई मौलिक गुफाएं खुदाई के दौरान मिली है। बुद्ध की गजरूप संरचना और स्तूप पर सुंदर नक्काशी गुफाओं की सुंदरता को और बढ़ाते हैं। गुफाएं भारतीय भारतीय पुराततव सर्वेक्षण विभाग की देखरेख में हैं।[1] 50 गुफाओं में केवल एक चौत्यकक्ष है जिसके अंदर ध्यानमग्न बुद्ध की प्रतिमा स्थित है। यहां बौद्ध धर्म के हीनयान और महायान के स्थापत्य हैं। इसे चट्टानों को कुरेदकर बनाया गया है। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेन त्सांग ने भी इस जगह का अपने ट्रैवलॉग में जिक्र किया था। इसका जिक्र सबसे पहले इम्पे (1854)[2] और बाद में ए. कनिघंम[3] द्वारा किया गया। यहाँ बुद्ध की मूर्तियाँ हैं। सबसे ऊँची 12 फीट की उपदेश मुद्रा वाली बुद्ध की खड़ी मूर्ति है। बुद्ध की गजरूप संरचना और स्तूप पर सुंदर नक्काशी है। गुफाओं में केवल एक चौत्यकक्ष है जिसके अंदर ध्यानमग्न बुद्ध की प्रतिमा स्थित है (छायाचित्र सं. 1)। यहाँ बौद्ध धर्म के हीनयान और महायान के स्थापत्य हैं।[4] यहाँ की बहुमंजिला संरचनाओं वाली बौद्ध गुफाएँ 300 से 900 ईस्वी के बीच की है।[5] कोल्वी गाँव कई गाँवा से घिरा हुआ हैं इस स्थान के मूल निवासियों में बौद्ध धर्म की छाप देखी जा सकती है।

बिनायगा (24°03'20'' उ.अं., 75°5'23'' पू.दे. पूर्व मध्यकाल

यह पुरास्थल झालावाड़ जिला मुख्यालय से 92 कि.मी. दूर पचपहाड़ तहसील में गुरदिया कला पंचायत में कोल्वी पुरास्थल से 5 कि.मी. दूर उत्तर दिशा में बिनायगा गाँव में स्थित है। बिनायगा गाँव से पूर्व में लेटेराईट उच्च भूमि में 20 चट्टानों को काटकर निर्मित लगभग 20 बौद्ध गुफाएँ हैं। इस स्थल पर कच्चे मार्ग द्वारा पैदल पहुँचा जा सकता है। यहाँ का भू.परिदृश्य पहाड़ी क्षेत्र एवं भूमिगत जल का स्तर लगभग 15 मी. है। इस पुरास्थल का परिमाप लगभग 1 हेक्टेयर (100×100 मी.) है। यहाँ आठवीं और नौंवी शताब्दी की बौद्धकालीन गुफाएँ है(छायाचित्र सं. 2) । इसे सर्वप्रथम 18वीं सदी में भा.पु.सं. के निदेशक ए कनिंघम ने खोजा था।[6]

इन गुफाओं में स्तूप व चौत्यग्रह के समान आकृति का निर्माण किया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह क्षेत्र बौद्ध धर्म के अनुयायियों द्वारा आवासित था। यह पुरास्थल भा.पु.सं. जयपुर वृत्त द्वारा संरक्षित है।[7]

गुनाई (24°00'16'' उ.अं. 75°51'37'' पू.दे.) ऐतिहासिक काल

यह पुरास्थल झालावाड़घ जिले की डग तहसील में कोल्वी पुरास्थल से 4 कि.मी. दूर पूर्व दिशा में स्थित है। यह सरकारी अधिकार युक्त सार्वजनिक भूमि है। इस स्थल पर कच्चे मार्ग द्वारा पैदल पहुँचा जा सकता है। यहाँ का भू.परिदृश्य कठोर भूमि युक्त मैदानी क्षेत्र एवं भूमिगत जल का स्तर लगभग 20 मी. है। इस पुरास्थल का परिमाप लगभग 2 हेक्टेयर (200×100 मी.) है। यहाँ बौद्ध धर्म की महायान शाखा से संबंधित ऐतिहासिक कालीन गुफाएँ मिली हैं।[8]

निरंजनी गुफाएँ डग (23°55'31'' उ.अं., 75°50'17'' पू.दे.) पूर्व मध्यकाल

यह पुरास्थल झालावाड़घ जिले गंगधार तहसील में डग कस्बे के दक्षिण में गाँव से 10 मी. दूर पूर्व दिशा में निरंजनी शिवमठ के निकट स्थित है। यह भू.वैज्ञानिक दृष्टि से मालवा के पठार का हिस्सा है। यहाँ का भू.परिदृश्य उपजाऊ मैदानी क्षेत्र एवं भूमिगत जल का स्तर लगभग 18 मी. है। यह सरकारी अधिकार युक्त सार्वजनिक भूमि है। इस स्थल पर कच्चे मार्ग द्वारा पैदल पहुँचा जा सकता है। इस पुरास्थल का परिमाप लगभग 1 हेक्टेयर (85×120 मी.) है। मानवीय निर्माण गतिविधियों के कारण पुरास्थल को क्षति पहुँची है। यहाँ एक छोटी कक्षनुमा गुफा है, जिसका आकार 3.5×5 मी है। इसकी सपाट छत स्तंभों पर आधारित है। अदंरूनी भाग अलंकरण विहीन है। शैलीगत विशेषताओं के आधार पर इस गुफा का कालक्रम लगभग 9वीं.10वीं शताब्दी ई. माना जा सकता है। यह भूमि भा.पु.सं. के संरक्षण में है।[9]

हथियागोड़ (24°06'52'' उ.अं., 76°51'04'' पू.दे.) ऐतिहासिक काल

यह पुरास्थल झालावाड़ जिले की डग तहसील में पगडिघ्या गाँव के 3 कि.मी. दक्षिण में हथियागौड पहाड़ी पर स्थित है। यहाँ का भू.परिदृश्य उपजाऊ मैदानी क्षेत्र एवं भूमिगत जल का स्तर लगभग 20 मी. है। इस पुरास्थल का परिमाप लगभग 2 हेक्टेयर (200×100 मी.) है। मानवीय निर्माण गतिविधियों के कारण पुरास्थल को क्षति पहुँची है। यहाँ से ऐतिहासिक कालीन बौद्ध गुफाओं के प्रमाण मिले हैं (छायाचित्र सं. 3)। इनमें एक गुफा की छत मेहराबयुक्त तथा निकट में चौकोर चबुतरे पर स्तुप निर्मित है।[10] ये गुफाएँ 7–8 वीं शताब्दी में बौद्ध भिक्षुओं के निवास एवं पूजा हेतु बनवाई गई थी। इससे हाड़ौती क्षेत्र में बौद्ध धार्मिक विश्वासों के प्रचलन के प्रमाण मिलते हैं।

शेरगढ़ (24°42'25'' उ.अं., 76°32'26'') पूर्व मध्यकाल

बाराँ से करीब 60 कि.मी. दूर अटरू तहसील में परवन नदी पर स्थित पुरास्थल जिसे कोषवर्धन कहा जाता है। यह पुरास्थल शेरगढ़ से 400 मी. दूर दक्षिण दिशा में स्थित है। यह सरकारी अधिकार युक्त सार्वजनिक भूमि है। यहाँ का भू.परिदृश्य उपजाऊ मैदानी क्षेत्र एवं भूमिगत जल का स्तर लगभग 15 मी. है। इस पुरास्थल का परिमाप लगभग 3 हेक्टेयर (200ञ150 मी.) है। यहाँ से प्राप्त अभिलेख[11] के अनुसार 790 ई. में शेरगढ़ पर सामंत देवदत शासन करता था। जिसने यहाँ बौद्ध विहार व मन्दिर का निर्माण करवाया था। 11वीं सदी में सोमनाथ मन्दिर का प्रारम्भिक निर्माण किया गया। यहाँ 11वीं सदी का लक्ष्मी नारायण मन्दिर आज भी सुरक्षित है, जिसकी गर्भगृह, अंतराल, मण्डप एवं मुखमण्डल प्रमुख हैं।[12] यहाँ के एक अभिलेख में धार के शासक वकपती से नर्वर्मन तक वंशावली लिखी है। शेरगढ़ दुर्ग राजस्थान में जल दुर्ग का महत्वपूर्ण उदाहरण है। शेरगढ़ में बोरखेड़ी दरवाजे की बाई ओर सीढ़ियों के नीचे एक ताक में कोशवर्धन नाम से नागवंशी राजा देवदत्त का विक्रम संवत 847(790 ई०) का संस्कृत भाषा का एक लेख उत्कीर्ण है, जिसमें बौद्ध विहार एवं स्तूप बनाने का उल्लेख मिलता है।

यहाँ तीन जैन मन्दिर प्रतिमाओं पर 11वीं सदी के लेख उत्कीर्ण हैं।[13] यहाँ पाये गए 1867 वि.सं. के एक लेख से ज्ञात होता है कि पहले शेरगढ़ का नाम बरसाना था। दुर्ग की प्राचीन एवं बुर्जे अभी भी सुरक्षित स्थिति में है। दुर्ग के पुरातत्व विभाग के संरक्षण मे संरक्षित स्मारक बनाया गया है। यहाँ शेरगढ़ अभ्यारण में मुख्यत: लोमड़ी चीतल, सांभर, भालू एवं बघेरा आदि वन्य जीव पाये जाते हैं।

नगर(कार्कोट)– हाड़ौती के समीपवर्ती स्थल नगर(कार्कोट) टोंक में ई.पू. की चौथी शताब्दी से ईसा की दसवीं शताब्दी तक की संस्कृति के प्रमाण मिले हैं। यहाँ से बड़ी संख्या में मालव सिक्कें और आहत मुद्राएं मिली हैं।[14] यह स्थल मालव गणराज्य की राजधानी माना जाता है।[15] नगर से प्राप्त 6000 से अधिक सिक्कों के भण्डार में अधिकांश सिक्कों पर अशोक कालीन ब्राह्मी लिपि में लगभग 40 राजाओं के नाम अंकित किये गए हैं। सबसे प्राचीन सिक्के पर जय मालवा लिखा हुआ है। बहुत सारे सिक्कों पर बौद्ध धर्म के प्रतीकों जैसे. बोधि वृक्ष, रेलिंग व चक्र आदि का भी अंकन किया गया है। इन्हीं के आधार पर कार्लाइल, इसे बौद्ध कालीन शहर की संज्ञा देते हैं। नगर(कार्कोट) उत्खनन में सिंहावरूढ़ देवी दुर्गा का प्राचीन अंकन शुंग कालीन कला का उदाहरण है। यहाँ से प्राचीन महिषासुर मर्दिनी की मृण्मूर्ति प्राप्त हुई है, जो देवी का 2000 वर्ष पूर्व का प्राचीनतम अंकन है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता हे कि ईसा की आरम्भिक शताब्दियों के दौरान नगर एक प्रमुख राजनीतिक और आर्थिक केन्द्र था। साथ ही इस क्षेत्र में देवी शक्ति पूजा और धार्मिक विश्वासों को परिलक्षित करता है।

पोल डूंगर गाँव (24°15'46'' उ.अं., 76°15'54'' .दे.) पूर्व मध्यकाल

यह पुरास्थल झालावाड़घ जिले की सीमा पर मंदसौर जिले में खर्खेदा गाँव के निकट स्थित है। यह सरकारी अधिकार युक्त सार्वजनिक भूमि है। इस स्थल पर कच्चे मार्ग द्वारा पैदल पहुँचा जा सकता है। यहाँ का भूपरिदृश्य उपजाऊ मैदानी क्षेत्र एवं भूमिगत जल का स्तर लगभग 20 मी. है। इस पुरास्थल का परिमाप लगभग 2 हेक्टेयर (200×100 मी.) है। मानवीय निर्माण गतिविधियों के कारण पुरास्थल को क्षति पहुँची है। यहाँ पूर्व मध्यकाल लगभग 100 गुफाएँ मिली है, जिनमें दो चौत्य तथा अन्य विहार है। हीनयान सम्प्रदाय से संबंधित इन गुफाओं के स्तंभ और छत गिर गए हैं।

खेजडिघ्याभोप (24°04'02''उ.अं.,75°44'15'' पू.दे.) ऐतिहासिक काल व पूर्व मध्यकाल

यह पुरास्थल झालावाड़घ व मध्यप्रदेश के मदसौर जिले की सीमा पर (से 10 कि.मी. दक्षिण) खेजडिघ्या भोप गाँव से 400 मी. दूर दक्षिण दिशा में स्थित है। यह सरकारी अधिकार युक्त सार्वजनिक भूमि है। इस स्थल पर कच्चे मार्ग द्वारा पैदल पहुँचा जा सकता है। यहाँ का भूपरिदृश्य उपजाऊ मैदानी क्षेत्र एवं भूमिगत जल का स्तर लगभग 20 मी. है। इस पुरास्थल का परिमाप लगभग 0.7 हेक्टेयर (70ञ100 मी.) है। यहाँ पर बौद्ध गुफाएँ मिली है।

आरम्भिक ऐतिहासिक काल में पहली बार व्यापार, वाणिज्य का पुनरुत्थान देखने को मिलता है। राज्य निर्माण की प्रक्रिया, जैन एवं बौद्ध जैसे धार्मिक आन्दोलनों, द्वितीय नगरीकरण एवं लौह तकनीक आदि के फलस्वरूप व्यापारिक गतिविधियों को बढ़ावा मिला। इस काल में उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ दो प्रमुख आंतरिक व्यापारिक मार्गों के रूप में विकसित हुए। उत्तरापथ, उत्तर भारत का प्रमुख व्यापारिक मार्ग था। यह उत्तर.पश्चिम से लेकर सिंधु, गंगा मैदान होता हुआ बंगाल की खाड़ी में स्थित ताम्रलिपि बंदरगाह तक जाता था। उत्तरापथ को एक अन्य मार्ग राजस्थान से जोड़ता था, जहाँ पर से खनिज, धातु तथा अर्धबहुमूल्य पत्थर व्यापार के द्वारा लाये जाते थे।[16] अत: धातु एवं खनिजों के स्रोत वाले इस क्षेत्र के लिए यह मार्ग महत्वपूर्ण था।

दक्षिणापथ मार्ग से गंगा घाटी एवं विंध्य पर्वत व श्रृंखला में स्थित संसाधन, लौहा, तांबा तथा अन्य पत्थरों को लाया जाता था। इन महत्वपूर्ण स्थलीय एवं नदीय मार्गों के अतिरिक्त फीडर रुटस एवं बौद्ध भिक्षुओं की लम्बी पैदल यात्रओं ने भी व्यापारिक गतिविधियों को प्रोत्साहन दिया।

आंतरिक मार्ग बाहरी व्यापारिक मार्गों से जुड़े हुए थे, जिससे उपमहाद्वीप के अन्य क्षेत्रों से सम्बन्ध को उत्तरी ईरान, अफगानिस्तान एवं तक्षशिला को जोड़ने वाले स्थल मार्ग महत्वपूर्ण थे, क्योंकि इसके सहारे सोना, चांदी, लाजवर्द जैसी बहुमूल्य वस्तुओं का आयात होता था।

छायाचित्र सं. 1 कोल्वी की रॉक.कट बौद्ध गुफा में स्थित पद्मासन गौतम बुद्ध की मूर्ति।

छायाचित्र सं. 2 बिनायगा की रॉक-कट बौद्ध गुफाएँ, चौत्य

छायाचित्र सं. 3 हथियागौड़ की रॉक-कट बौद्ध गुफाएँ

References-

1 आई.ए.आर., 1991-92, पृ- 311

2 जर्नल ऑफ द बॉम्बे ब्रान्च ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी, वो. 5, 1854, पृ. 336

कनिंघम (रिपोर्ट ऑफ 1864-65, 1972), पृ. 130

3 एक्ट नं., LXXI ऑफ 1951 डेटड 28.11.1951, ए. कनिंघम, आर्कियॉलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, रिर्पोटस, 1862.-63, 64-65, वो.।।, (रिप्रिंट वाराणसी 1972), पृ. 18-23

4 कनिंघम (रिपोर्ट ऑफ 1864.65, 1972), पृ. 130

5 निकी चतुर्वेदी, 'इवोल्यूशन ऑफ बुद्धिज्म इन राजस्थान', प्रोसीडिंग्स ऑफ इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, वो- 73, 2012, पृ- 159-160

6 ए. कनिंघम, पूर्वोक्त, पृ. 18.23

7 चन्द्रमणि सिंह (संपा.) प्रोटेक्टेड मॉन्यूमेंटस ऑफ राजस्थान, जयपुर, 2002, पृ. 35.50

8 निकी चतुर्वेदी, पूर्वोक्त, पृ. 159.160

9 देबाल मित्र, बुद्धिस्ट मॉन्यूमेंटस , नई दिल्ली, बुक्स एण्ड बुक्स, 1971, पृ. 35

10 बी.एम.एस. परमार, 'राजस्थान में बौद्ध कला के कतिपय अल्पगत साक्ष्य', सूजस संस्कृति, जयपुर, 2006, पृ. 16

11 एपिग्राफिया इण्डिका, वो. 23, न्यू दिल्ली, 1984, पृ. 25

12 इण्डियन एण्टिक्वरी, वो. 24, न्यू दिल्ली, 1885, पृ. 88

13 के.सी. जैन, एंशियट सिटीज एण्ड टाउन्स ऑफ राजस्थान, दिल्ली, 1972, पृ. 25-60

14 ए.सी.एल. कार्लेयल, 'रिपोर्ट ए टूर इन ईस्टर्न राजस्थान इन 1871.72', आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया रिपोर्ट 6, 1878, पृ. 107.08

15 ए.सी.एल. कार्लाइल, पूर्वोक्त, 107.108

16 एन. लाहिरी, द आर्कियोलॉजी ऑफ इण्डियन ट्रेड रूट्स, दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1992, पृ. 367.77

हरिराम मीणा की कविताओं का संबोध्य

डॉ० प्रणव कुमार ठाकुर

आदिवासी जीवन के विभिन्न पक्षों को लेकर लेखन एवं चिंतन की दिशा में हरिराम मीणा काफी समय से सक्रिय रहे हैं। अब तक इनके दो कविता-संग्रह 'हाँ चांद मेरा है' (1999), 'सुबह के इंतजार में' (2006), एक प्रबंध काव्य 'रोया नहीं या यक्ष' (2003), दो यात्रा वृतान्त 'साइबर सिटी से नंगे आदिवासी तक' (2001) तथा 'जंगल जंगल जलियांवाला', एक उपन्यास 'धूणी तपे तीर' (2008) एवं विमर्श की पुस्तक 'आदिवासी दुनिया' (2013) प्रकाशित हो चुकी है। 'हाँ, चाँद मेरा है' संग्रह में आदिवासी जीवन पर छिटपुट रूप में ही कविताएँ हैं जबकि 'सुबह के इंतजार में' संग्रह का एक भाग आदिवासी दृष्टि, सौंदर्य-बोध, अस्तित्व-संकट से संबंधित कविताएँ हैं जबकि दूसरा भाग आदिवासी के अलावा जीवन के अन्य पक्षों से जुड़ा हुआ है। हरिराम मीणा ने भारतीय मिथकों पर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इसी क्रम में कालिदास की प्रसिद्ध कृति 'मेघदूत' के मिथकों को आधुनिक संदर्भ में पुनर्व्याख्यायित करते हुए उन्होंने चर्चित प्रबंध काव्य 'रोया नहीं था यक्ष' लिखा। ब्रिटिशकालीन आदिवासी संघर्षों पर उन्होंने शोधपरक कार्य किया। इस शोध को उन्होंने यात्रा वृत्तान्तिक विधा 'जंगल जंगल जलियांवाला' शीर्षक से लिपिबद्ध किया। इस पुस्तक में वर्णित घटनाएँ 1913 एवं 1922 की है जिनमें ब्रिटिश व सामंती फौजों से संघर्ष करते हुए करीब साढ़े तीन हजार आदिवासी शहीद हुए। मध्य भारत के राजस्थान एवं गुजरात के आदिवासियों के बीच यह जालियांवाला जैसी घटनाओं के नये संस्करण के रूप में जाना जाता है। आदिवासी संघर्ष और बलिदान की घटनाओं पर मानगढ़ पर्वत (बांसवाड़ा, राजस्थान) हुए व्यापक जनसंहार पर आधारित उनका महत्त्वपूर्ण उपन्यास 'धूणी तपे तीर' है। यह उपन्यास काफी चर्चित हुआ है जो कि आदिवासी शोषण के साथ-साथ आदिवासी जीवन एवं संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को भी रोचकता के साथ प्रस्तुत करता है।

'सुबह के इंतजार में' कविता-संग्रह को दो शीर्षकों 'आदिवासी' एवं 'आसपास' के रूप में विभाजित किया गया है। 'सुबह के इंतजार में' की कविताएँ हमारी आज की जिंदगी के अनेक बुनियादी सवालों और सरोकारों को उजागर करती हैं। ये बार-बार और अलग अंदाज में हमसे यह पूछती हैं कि हमारी इंसानी ऊँचाइयों को क्या हुआ और हम कहाँ खड़े हैं? हमारे वर्तमान जीवन की इन्हीं विडम्बनाओं को वे अण्डमान निकोबार द्वीप में अवस्थित आदिवासियों यथा ओंग, जारवा, सेंटेनली आदि के माध्यम से सामने लाते हैं। तथाकथित सभ्य समाज के हस्तक्षेप से आए उनके जीवन में बदलावों को भी रेखांकन करने का प्रयास किया गया है।

'रोया नहीं था यक्ष' प्रबंधात्मक लंबी कविता है। समाज में पूँजीपति सामान्य जनता का शोषण किस तरह से कर रहे हैं इसका चित्रण मिथकीय काव्य-विन्यास में किया गया है। यक्ष ने कुबेरवादी सामंती व पूँजीवादी व्यवस्था के विरूद्ध बिगुल बजाया। इस प्रतिरोध में उनकी पत्नी यक्षिणी ने स्त्री जाति की प्रतिनिधि के रूप में उसका साथ दिया।

'हाँ चाँद मेरा है' 'मीरा पुरस्कार' से सम्मानित हरिराम मीणा का काव्य-संग्रह बहुत चर्चित रहा है। इसमें कवि ने मेवाड़ अंचल में अरावली पर्वतमालाओं की काली घाटियों में अस्तित्व बचाने के संघर्ष में जूझती निर्मल हृदयी 'भीलणी' के जीवन के प्रति मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान किया है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में मनुष्य जब संवेदनाशून्य होता जा रहा है, तब कवि भीलणी की आर्थिक दुर्दशा से अवगत कराते हैं-

"फटा घाघरा तन से लिपटा
तारतार चोली
लज्जा की रक्षा करती
अंतिम साँसें रोक ओढ़नी"

इन पंक्तियों के माध्यम से आदिवासी की आर्थिक विद्रूपता के प्रति संवेदना को उकेरा है। मनुष्य की मुक्ति की छटपटाहट सदियों से बरकरार है, फिर भी उसके प्रति संवेदनाएँ क्षीण होती जा रही हैं-

"दरारों से बाहर आने को प्रयासरत
नंग-धड़ग
कंकाल कुछ बड़े
कुछ छोटे
कुछ नर कुछ मादा।
बिना किसी रक्त, गोश्त, खाल और नाड़ियों के
ठोस हड्डियों से बने एक से ये नर कंकाल

शायद जूझ रहे हों
शताब्दियों से अपनी मुक्ति के लिए।"[2]

आदिवासियों के प्रति मुख्यधारा के समाज का नजरिया प्राय अराजक रहा है। वे आदिवासी को सामान्य मनुष्य की श्रेणी में नहीं गिनते। कई बार तो इस समाज को बगैर नजदीक से देखे अपने मन में भ्रान्त धारणा बना लेते हैं। वर्तमान समय में लोग आदिवासी को कौतूहल भरी नजरों से इस प्रकार देखते हैं जैसे वे म्यूजियम की वस्तु हों। दुर्लभ अण्डमान के आदिवासियों को देखकर तो ऐसी हरकत करते हैं मानो कोई विरल वन्य जीव देख लिया हो। हरिराम मीणा आदिवासियों के प्रति इस तमाशाई पर्यटकीय दृष्टिकोण को स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं-

"हमें बन्दरों की तरह मान
खाद्य-सामग्री देने का
ताकि, खींच सकें वे फोटो
और फिर दिखाते रहें जिंदगी भर
कि हम भाग्यशाली हैं
जो देख आए
अण्डमान के नंगे आदिवासियों को"[3]

आदिम समाज प्राय: दुर्गम एवं निर्जन क्षेत्र में शांतिपूर्वक रहते हैं। तथाकथित सभ्य समाज के पहरेदारों के छल एवं कपटपूर्ण रवैया उन्हें ऐसी यातनादायक जीवन जीने को बाध्य किया। स्वाधीनता एवं अभिमान की चाह ने ही उन्हें कठिन जीवन स्थितियों के विकल्प को बेहतर समझा। किन्तु प्रकृति के साथ आदिवासियों के आत्मीय जीवन संबंधों में तब दरार आती जब बाहरी हस्तक्षेप शुरू होने लगता है। औपनिवेशिक सत्ता का अपने स्वार्थों के लिए आदिम समाज के परंपरागत हक में दखल देने के साथ ही आदिवासी के शांत जीवन में हलचल आरंभ हो जाती है। कठिन प्राकृतिक स्थितियों एवं खूँखार जानवरों को भी उन्होंने अपने अनुकूल बना लिया। किन्तु स्वार्थी मनुष्य के मशीनी ताकत के आगे कालांतर में वे असहाय हो गये

"मगर-
जिन्होंने हमें गोलियों से भूना
-वे इंसान थे।
जिन्होंने हमें टापुओं में इधर-उधर खदेड़ा
-वे इंसान हैं!
और जो हमारी नस्ल को उजाड़ेंगे
-वे इंसान होंगे।।।"[4]

दिकुओं का आदिवासी क्षेत्र में प्रवेश से सिर्फ उनके जीवन में ही नहीं बल्कि प्रकृति एवं अन्य प्राणियों के शान्त जीवन में भी दखल देना शुरू कर दिया। हरिराम मीणा की 'रॉस आईलैण्ड के खण्डरों से' नामक कविता मानवेत्तर प्राणी एवं पर्यावरण पर असन्न संकट को ही उजागर करते हैं।

आदिवासियों का प्रकृति के साथ रागात्मक संबंध परंपरा से जगजाहिर रहा है। जल, जंगल व जमीन जैसे मौलिक अधिकार उनके अस्तित्व का अनिवार्य पहलू हैं। किन्तु आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में जो समुदाय सबसे ज्यादा लहू-लूहान हुआ है वह आदिम समुदाय ही है। विकास एवं राष्ट्र की प्रगति के नाम पर हमेशा उन्हें ही बलि का बकरा बनाया जाता है। जिस जमीन पर आदिवासी समुदाय का पुश्तैनी संबंध वर्षों से रहा है, कई बार सिर्फ दस्तावेज या किसी अन्य प्रमाण के अभाव में उन्हें अपने जमीन से हाथ धोना पड़ा है। शिक्षा से दूरी एवं सभ्य समाज की कुटिल प्रवृत्ति को न समझ पाने के कारण कई बार उन्हें अपनी ही जमीन से बेदखल होना पड़ता है क्योंकि कानून एवं न्याय-प्रणाली प्रमाण को ही वास्तविक मानती है। आदिवासियों के साथ समाज का रवैया काफी छद्मपूर्ण रहा है। समाज के पहरेदार कभी उन्हें सभ्य बनने के नाम पर तो कभी मुख्यधारा में शामिल होने के नाम पर तरह तरह के दुष्चक्र रचकर परंपरागत अधिकारों से बेदखल करने की कोशिश में लगे रहते हैं-

"ओ रे
मानवता के आदिम नुमाइंदो
तुम जंगली ढोर, गँवार हो
एक सलाह है तुम्हें सभ्य बनाने की
पुश्तैनी ऊबड़-खाबड़ धरा से हटाकर
रोपना होगा
मुख्य धारा की उर्वरा भूमि पर।"[5]

आदिवासियों के परंपरागत जमीन को कब्जा कर मुख्यधारा का समाज ऐश्वर्यपूर्ण जीवन जीता है वहीं आदिम समुदाय अपने ही परिवेश में शरणार्थी बन जाने की नियति को भोगते हैं। दूसरों के दखल से न केवल आदिवासियों की इस समुदाय में विस्थापन की प्रक्रिया शुरू होती है बल्कि विस्थापित लोग नारकीय जीवन जीने को अभिशप्त होते हैं। अपने जमीन से विस्थापित होकर आदिवासी महानगरीय स्लम जीवन व्यतीत करने को बाध्य होते हैं-

"मुझे नजर आते हैं
फुटपाथी डेरे, झोपड़पट्टी
कचरे के ढ़ेर पर आँखें गड़ाए मासूम बच्चे
प्रौढ़ होता यौवन
बूढ़ा होता प्रौढ़पन
भूख व बीमारी से खोखला
वक्त से पहले चुपचाप खत्म होता जीवन।"[6]

दरअसल आदिवासियों में विस्थापन की समस्या का मूल कारण पूँजीवादी शक्तियों का सत्ता तंत्र से मजबूत गठजोड़ है। दूसरी ओर इस जमात के आपसी एक्य का अभाव भी अपने संसाधनों को सुरक्षित करने की दिशा में व्यवधान बनकर आता है।

आदिवासी समाज से मुख्यधारा के समाज का रिश्ता करीबी का नहीं रहा है। परिवेशगत दूरी ने आदिवासियों को अबूझ पहेली बना डाला तथा इन्हें तरह-तरह की संज्ञाओं (असुर, जंगली वनवासी, जंगल के राजा, राक्षस आदि) द्वारा उपहास का पात्र बना डाला। इतना ही नहीं आदिवासी स्त्री के प्रति रोमानी नजरिया दिकू समाज में हमेशा से मौजूद रहा है। आदिवासी स्त्री की उन्मुक्त जीवनशैली की मनगढ़न्त कथा-उपकथाएँ तथाकथित सभ्य लोगों के बीच आज भी विद्यमान हैं। रामशरण जोशी जैसे प्रतिष्ठित बुद्धिजीवी जब 'हंस' पत्रिका में वर्षों पहले अपने संस्मरण में आदिवासी स्त्री के दैहिक भोग को चटकारे लेकर विस्तृत वर्णन करते हुए गर्वान्वित महसूस करते हैं तो आम आदमी की नीयत गरीब एवं असहाय आदिवासी स्त्रियों के प्रति क्या होगी, इसका अंदाजा लगाया जा सकता है। स्त्री-सशक्तीकरण के इस युग में आदिवासी स्त्री की श्रमशील सुघड़ जिन्दगी की ओर पुरुषों की रुचि तो बिल्कुल नहीं रह गयी है।

गैर-आदिवासियों का नजरिया आदिवासी समाज के प्रति अक्सर अविश्वसनीय रहा है। खासतौर से वे आदिवासी परिवेश एवं स्त्री के सौंदर्य का वर्णन करते हुए कल्पना के आकाश पर आरुढ़ नजर आते हैं। यदि वे आदिवासियों के जीवन एवं संकट से सचमुच सरोकार रखेंगे तो उन्हें पता चलेगा कि उनका जीवन कितना कष्टप्रद एवं दुरुह है। जिस श्रम-सौंदर्य का वर्णन करते हुए प्रगतिवादी कवि अघाते नहीं फिरते, वह सौंदर्य इनके यहाँ कई बार तो सहज रूप में दृष्टगत होता है। अतः समकालीन हिंदी कविता आदिवासी स्त्री जीवन एवं उनके संकटों की गहरी समझ के लिए सौंदर्यशास्त्र के नये आख्यान रचने पर बल देती है, जो कि परम्परागत सौंदर्यशास्त्र से भिन्न है और बिल्कुल अलग भी-

"अहा,
क्या कहना कवि
तुम्हारे सौन्दर्य-बौध का
जिन्हें तुम उन्नत उरोज कहते हो
प्यार-सा दिल है उनकी जड़ों के बीच
कँटीली झाड़ियों में फँसा हुआ
घिरा है थूहड़ के कुजों से
चारों ओर पसरा विकट जंगल
जंगल में हिंसक जानवर
जहरीले साँप-गोहरे-बिच्छू
इस केनवास में
उस लड़की की तस्वीर बनाओ कवि"[7]

हरिराम मीणा की यह कविता आदिवासी स्त्री के प्रति रोमानी दृष्टि के विरोध में यथार्थपरक नजरिया अपनाने का आग्रह भद्र समाज से करता है। तथाकथित भद्र वर्ग अपने सीमित परिधि, कमरे के भीतर रहकर ही आदिवासी स्त्री के प्रति मिथ रचकर अपने कलात्मक सौंदर्य-बोध पर मुग्ध होता रहता है जबकि सच्चाई इसके ठीक विपरीत है। अपने अस्तित्व के लिए आदिवासी स्त्री को न केवल जंगल के हिंसक जानवरों से संघर्ष करना पड़ता है बल्कि मानव के हिंसक आचरणों से भी, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. हाँ, चाँद मेरा है, हरिराम मीणा, पृ. 15
2. वही, पृ. 55
3. सुबह के इंतजार में, हरिराम मीणा, पृ. 39
4. वही, पृ. 33
5. वही, पृ. 41
6. वही,
7. सुबह के इंतजार में, पृ. 17-18

ग्रामीण समाज के विपणन प्रतिमानः एक समाजशास्त्रिय मूल्यांकन

डॉ० संगीता कुमारी

तदर्थ व्याख्याता, समाजशास्त्र विभाग, जे. डी. विमेनस कालेज, पटना

शोध-सार

विभिन्न लोगों और व्यवसायों से जुड़े पेशेवरों के लिए ''ग्रामीण विपणन'' के अलग-अलग मायने हैं। मसलन कुछ संगठनों और एजेंसियों के लिए इसका मतलब ग्रामीण क्षेत्रों में उपभोक्ताओं के लिए उत्पादों का विपणन हो सकता है। अन्य के लिए इसका तात्पर्य शहरी उपभोक्ताओं को ग्रामीण उत्पादों का विपणन है। प्रस्तुत लेख काफी हद तक दूसरे विषय पर ही केंद्रित है। मोटे तौर पर ग्रामीण उत्पादों को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है- कृषि और गैर-कृषि। कृषि उत्पादों में सभी प्रकार के कृषि उत्पाद शामिल हैं, जैसे- अनाज, दालें, तिलहन, रेशे जैसे- कपास और पटसन, विभिन्न प्रकार के मसाले, बागवानी उत्पाद जैसे- फल, सब्जियां और फूल, पशु मूल के उत्पाद जैसे- दूध और डेयरी उत्पाद, अंडा, ऊन, मांस, मछली आदि।

मूल-शब्दः- कृषि, ग्रामीण, विपणन, विपणन, कृषि उत्पादों

प्रस्तावना

ग्रामीण मूल के गैर-कृषि उत्पादों में हस्तनिर्मित और कुटीर उत्पादों की एक विशाल विविधता शामिल है जैसे- हाथ से बुने वस्त्र और शिल्प, चमड़े, लकड़ी, धातु और मिश्र धातु से बनी वस्तुएं आदि। कृषि उत्पादन अधिक क्षेत्र विशेष हैं जबकि कुटीर उत्पाद अपेक्षाकृत छोटे समूहों में सकेंद्रित हैं। हालांकि दोनों प्रकार के उत्पादों के विपणन लिए शहरी क्षेत्र और निर्यात महत्वपूर्ण हैं। फिर भी इस क्षमता को हासिल करने के मार्ग में कई बाधाएं हैं।

ग्रामीण विपणन में आने वाली बाधाएं

कृषि और बागवानी उत्पाद अक्सर जल्दी खराब होने वाले होते हैं। इसलिए इनकी ताजगी और अन्य गुणवत्तापूर्ण पहलुओं को बनाए रखने के लिए तेज और कुशल परिवहन, भंडारण और यहाँ तक कि प्रसंस्करण की भी आवश्यकता होती है। ग्रामीण विपणन की प्रमुख बाधाओं में से एक भौतिक पहुँच है। ग्रामीण उत्पादकों को अपने उत्पादों को बाजारों तक ले जाना मुश्किल लगता है और साथ ही, उनको ग्रामीण स्थानों में उपयोग की आवश्यकता वाली विभिन्न आगतों जैसे उपकरण, मशीन, स्पेयर पार्ट्स (अतिरिक्त कलपुर्जे), सर्विसेज (सेवाओं), रसायनों आदि जिनका उत्पादन औद्योगिक स्थानों में होता है, तक पहुँच में भी कठिनाई होती है। किसी भी ग्रामीण उत्पाद के लिए उपभोक्ता बाजारों तक पहुँचने के लिए या उपभोक्ताओं और विपणन चौनल के सदस्यों के लिए ग्रामीण बाजारों तक पहुँचने के लिए साल भर कनेक्टिविटी और परिवहन आवश्यक है।

बागवानी उत्पाद जल्दी खराब होने वाले होते हैं और कटाई के तुरंत बाद उनका बाजारों या प्रसंस्करण केंद्रों तक पहुँचना आवश्यक होता है। कुटीर उत्पाद नाजुक या भंगुर हो सकते हैं। परिवहन के खराब साधनों का अर्थ है पारगमन में उत्पादों की गुणवत्ता और मात्रा का नुकसान। आमतौर पर ये काम बिचौलिए करते हैं और वे इन पर आने वाली लागतों को ग्राहकों पर डालते हैं या किसानों को उत्पादों की कम कीमत की पेशकश करते हैं। दूसरी तरफ, बिजली की उपलब्धता ग्रामीण क्षेत्रों में खेती, लघु-स्तरीय निर्माण, कुटीर उद्योग, खाद्य प्रसंस्करण और कई सेवाओं सहित व्यापक आर्थिक गतिविधियों का आधार बनाती है। विश्वसनीय और कुशल बिजली आपूर्ति की कमी उत्पादन को प्रभावित करती है विशेष रूप से संचालन में विस्तार या उत्पादकता में सुधार लाने के लिए।

बहुधा ग्रामीण उत्पादकों को ग्राहकों की प्राथमिकताओं में बदलाव के बारे में जानकारी नहीं होती है और न ही वे विपणन कौशल में पटु होते हैं। संचार विपणन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। किसी भी विपणन योजना के लिए उत्पादों, कीमतों, उपभोक्ता प्राथमिकताओं, बाजार के माहौल, प्रतिस्पर्धियों, वैकल्पिक और एवजी उत्पादों के बारे में जानकारी आवश्यक है। इसके अलावा, यह तब मदद करता है जब उत्पादकों या विपणक के पास वास्तविक समय के आधार पर चाहे नहीं हो पर नियमित और छोटे अंतरालों पर ऐसी विपणन जानकारी तक पहुँच होती है। संचार के पारंपरिक माध्यम जैसे प्रिंट मीडिया, टेलीविजन और रेडियो दशकों से मौजूद हैं पर कनेक्टिविटी का एक अधिक प्रभावी और तेज माध्यम इंटरनेट है। ब्रॉडबैंड के माध्यम से इंटरनेट तक पहुँच एक और बाधा है जिसका सामना ग्रामीण उत्पादक और विपणक करते हैं।

ग्रामीण विपणन में दूसरी समस्या है बिक्री के लिए उत्पादों की कम मात्रा में उपलब्धता। भारत के 80 प्रतिशत से अधिक किसान छोटे और सीमांत हैं जिनके पास बाजार के लिए व्यक्तिगत तौर पर बहुत कम लेकिन सामूहिक रूप से काफी बड़ा अधिशेष होता है। कारीगरों का काम अधिक समय लेने वाला

होता है और वे आमतौर पर एक निश्चित समय में सीमित संख्या में ही वस्तुओं का उत्पादन करने में सक्षम होते हैं। इन कारणों की वजह से ग्रामीण उत्पादकों की मोल-भाव की क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है भले ही जब उनके सौदे की लागत बढ़ ही क्यों न जाती हो।

इन चुनौतियों पर काबू पाना ग्रामीण विपणन प्रणाली का मूल मसला है। एक कुशल विपणन प्रणाली के लिए भौतिक और डिजिटल बुनियादी ढांचे में भारी निवेश की आवश्यकता होती है जिससे ग्रामीण उत्पादकों का शहरी बाजारों से लॉजिस्टिक और इलेक्ट्रॉनिक रूप से जुड़ने और संपर्क स्थापित करने में मदद करती है। इसके लिए सम्बंधित व्यक्तियों को उपभोक्ता की आवश्यकताओं को समझना, मांग और आपूर्ति के रूझान और मूल्य निर्धारण की गतिशीलता जैसे विपणन कौशल प्रदान करने के लिए भी निवेश की आवश्यकता होती है। अत: अंतत: चूंकि भारत में अधिकांश छोटे किसान हैं और कारीगरी का काम व्यक्तिगत या पारिवारिक स्तर पर होता है इसलिए बड़े पैमाने पर उत्पादन से लागत में किफायत के लिए उन्हें समूहों में व्यवस्थित करना महत्वपूर्ण है। एक ओर जहाँ कई एजेंसियां जैसे सरकारें, निजी कॉरपोरेट संस्थाएं, नागरिक समाज संगठन और अन्य अहम् भूमिका निभा रहे हैं वहीं भारत सरकार इन सभी क्षेत्रों में अग्रणी रही है। आगे के अनुच्छेदों में हमने कुछ प्रमुख क्षेत्रों पर प्रकाश डाला है जिनमें सरकार विभिन्न योजनाओं के माध्यम से भारी मात्रा में निवेश कर रही है और जिसमें ग्रामीण विपणन को एक प्रभावी प्रोत्साहन देने की क्षमता है।

सामान्य भौतिक अवसंरचना

सड़क, पुल, रेलवे, बिजली और ईंधन जैसे भौतिक या ठोस बुनियादी ढाँचे उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच परिवहन, भंडारण और भौतिक पहुँच को सक्षमक रने के लिए महत्वपूर्ण हैं। अक्सर इस तरह के बुनियादी ढाँचे के सार्वजनिक वस्तुओं की श्रेणी में आने के कारण इसमें सरकारी निवेश महत्वपूर्ण होता है।

प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (पीएमजीएसवाई) भारत सरकार का एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है जिसे राज्य सरकारों के योगदान से लागू किया गया है। इसका उद्देश्य सड़कों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में कनेक्टिविटी प्रदान करना है। इस योजना में मैदानी इलाकों में 500 तक और विशेष श्रेणी के राज्यों और रेगिस्तानी क्षेत्रों में 250 और उससे अधिक आबादी वाली सड़क से न जुड़ी बसावटों को बारहमासी सड़कें प्रदान करने; चयनित थ्रु रूटों और प्रमुख ग्रामीण संपर्कों का उन्नयन; और फिर बसावटों को ग्रामीण कृषि बाजारों, उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों और अस्पतालों से जोड़ने की परिकल्पना की गई थी।

पीएमजीएसवाई को ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा पीएमजीएसवाई-I, II और III के रूप में लागू किया गया है। 2000-01 से 2020 तक योजना के तहत स्वीकृत कुल सड़क की लंबाई लगभग 6.44 लाख किमी है, जिसमें 1.57 लाख से अधिक बसावटें शामिल हैं। पीएमजीएसवाई-III विशेष उल्लेख के योग्य है क्योंकि इसका उद्देश्य ग्रामीण कृषि बाजारों, उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों और अस्पतालों को बारहमासी सड़क संपर्क प्रदान करना है। सड़कों द्वारा ग्रामीण कृषि बाजारों के लिए गांवों से शहरी केंद्रों तक कृषि उपज के बेहतर परिवहन की सुविधा और ग्रामीण क्षेत्रों में आगतों की बेहतर पहुँच को सक्षम बनाने की आशा की जाती है। 2019 में अरम्भ पीएमजीएसवाइ- III में 1.25 लाख कि0मी0 की सड़कों के निर्माण का लक्ष्य है। 2019-20 के केंद्रीय बजट में पीएमजीएसवाई के लिए 15,000 करोड़ रूपये की राषि आवंटित की गई है।

ग्रामीण विद्युतीकरण में निवेश वर्तमान में दो योजनाओं के माध्यम से चल रहा है- विद्युत मंत्रालय के तहत आने वाली दीन दयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना (डीडीयूजीजेवाई), और प्रधानमंत्री सहज बिजली हर घर योजना (सौभाग्य)।

डीडीयूजीजेवाई के तहत ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि और गैर-कृषि फीडरों को अलग-अलग किया गया है जिसके बाद इसमें तत्कालीन राजीव गांधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना (आरजीवीवीवाई) के ग्रामीण विद्युतीकरण लक्ष्यों को शामिल करने के अलावा ट्रांसमिशन और वितरण को मजबूत किया गया और बढ़ाया गया है। फीडरों का पृथक्करण कृषि में आपूर्ति को विनियमित करने में सक्षम बनाता है जिससे कि कृषि उपयोगकर्ता अपनी मांग को पूरा करने में सक्षम होते हैं विशेष रूप से सर्वाधिक बिजली की खपत के समय में जबकि घरों को कृषि की सर्वाधिक मांग के दौरान किसी भी समस्या का सामना किए बिना निरंतर बिजली आपूर्ति मिलती है। वर्ष 2019-20 के केंद्रीय बजट में डीडीयूजीजेवाई को 3600 करोड़ रूपये की राशि आवंटित की गई थी। सौभाग्य योजना विशेष रूप से सफल रही है क्योंकि लगभग 100 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों को बिजली कनेक्शन प्रदान किया गया है।

भौतिक विपणन अवसंरचना

सड़कों और बिजली के अलावा सरकार ने फसल कटाई के बाद के कृषि विपणन के बुनियादी ढांचे और बाजारों में भी निवेष किया है। 2013 में विभिन्न केंद्रीय योजनाओं को जारी रख के और उनका एकीकरण करके भारत सरकार द्वारा कृषि विपणन के लिए एकीकृत योजना शुरू की गई थी। कृषि विपणन बुनियादी ढांचे (एएमआई) की उप-योजना बनाने के लिए ग्रामीण भंडारण योजना और कृषि विपणन बुनियादी ढांचे के विकास/ सुदृढ़ीकरण, ग्रेडिंग और मानकीकरण की पुरानी योजनाओं का विलय कर दिया गया था।

एएमआई उप-योजना की परिकल्पना वेयरहाउसिंग, कोल्ड स्टोरेज, प्राथमिक प्रसंस्करण, रेफ्रिजरेटेड वैन, गुणवत्ता परीक्षण, ग्रेडिंग, छंटाई, पैकेजिंग आदि में पूंजीगत निवेष के 33.33 प्रतिषत की सब्सिडी के रूप में की गई है जो सब्सिडी राशि की उच्चतम सीमा के अधीन है। उप-योजना 2018-20 के लिए नए परिचालन दिशानिर्देश विभिन्न प्रकार के कृषि और वन उत्पादों की सही देखभाल और प्रबंधन के लिए विपणन बुनियादी ढांचे के विकास पर ध्यान केंद्रित करते हैं, फसल कटाई के बाद के बुनियादी ढांचे के लिए नवीन प्रौद्योगिकियां प्रदान करते हैं, कृषि उपज के लिए वैकल्पिक और प्रतिस्पर्धी विपणन चौनल विकसित करते हैं, छोटे आकार की प्रसंस्करण इकाइयों को जो व्यक्तिगत किसानों या समूहों जैसे कृषक उत्पादक संघ यानी एफपीओ द्वारा चलाई जा सकती हैं, प्रोत्साहन देते हैं। इसके अलावा, इन दिशानिर्देशें के अनुरूप वैज्ञानिक आधार पर भंडारण सुविधाओं का निर्माण करना, उपभोक्ताओं और किसानों के साथ-साथ राष्ट्रीय कृषि बाजार (ई-नाम) के बीच सीधे संपर्क के लिए ग्रामीण हाट विकसित करना, इलेक्ट्रॉनिक नेगोशिएबल वेयरहाउस रिसीप्ट सिस्टम

(ई-एनडब्ल्यूआरएस), वायदा व्यापार (फ्यूचर ट्रेडिंग), इलेक्ट्रॉनिक वेयरहाउस रसीद पर वित्तपोषण आदि सुनिश्चित करना शामिल है। जिसके माध्यम से किसानों को बेहतर मूल्य प्राप्त होता है।

यह गौरतलब है कि योजना का दायरा पशुधन, मुर्गीपालन और वन उपज जैसे संबद्ध क्षेत्रों तक बढ़ा दिया गया है। किसान उत्पादक संगठनों (एफपीओ) के साथ-साथ उन्नत विपणन गतिविधियों जैसे वायदा कारोबार और नेगोशिएबल वेयरहाउस इलेक्ट्रॉनिक रसीद वित्तपोषण का भी उल्लेखनीय संदर्भ है।

ग्रामीण क्षेत्र में कृषि विपणन को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने ग्रामीण आवधिक बाजारों या हाटों के पास खुदरा बाजारों को विकसित करने के लिए ग्रामीण कृषि बाजार (GrAM) योजना शुरू की जो एकत्रीकरण के उद्देश्य को पूरा करेगी और कृषि उत्पाद विपणन समिति एपीएमसी के लिए फीडर बाजारों में बदल जाएगी। देश में ग्रामीण आवधिक बाजारों की संख्या लगभग 22,000 होने का अनुमान है और वे छोटे किसानों द्वारा उपज के विपणन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

किसानों की आय को दोगुना करने के लिए गठित समिति ने एक ''नई बाजार संरचना'' का सुझाव दिया है जिसमें ग्रामीण कृषि बाजारों को एकत्रीकरण, लाजिस्टिक्स, प्री-कंडीशनिंग, परिवहन और स्थानीय खुदरा के लिए हब के रूप में विकसित किया जाएगा जो अंततः ई-राष्ट्रीय कृषि बाजार (ई-नाम) से जुड़ा होगा या प्राथमिक या द्वितीयक थोक बाजारों या फिर निर्यात बाजारों से। ''नई बाजार संरचना'' को चित्रात्मक रूप से ऊपर दर्शाया गया है।

2018-19 के वार्षिक बजट में ग्रामीण कृषि बाजारों और कृषि उत्पाद विपणन समितियों (एपीएमसी) के विपणन बुनियादी ढांचे के उन्नयन के लिए 2000 करोड़ रूपये का आवंटन किया गया।

उपरोक्त सभी गतिविधियां कृषि-भूमि स्तर पर कृषि उत्पादों के मूल्य संवर्धन में सहायक हैं जिससे उनके विपणन में सुविधा होती है और किसानों को उपज से बेहतर आमदनी सुनिश्चित होती हे। एफपीओ के सामान्य सुविधा केंद्रों पर एकत्रीकरण, केंद्रीकृत प्रसंस्करण, पैकेजिंग और ब्रांडिंग बड़े पैमाने के कारण दक्षता लाती है जिससे लागत कम होती है और विपणन को बढ़ावा मिलता है।

गैर-कृषि या कुटीर उत्पादों के लिए सरकार की ऐसी योजनाएं हैं जो शिल्पमेलों में भागीदारी को प्रोत्साहित करके विपणन को सुगम बनाने की सुविधा प्रदान करती हैं। कपड़ा मंत्रालय के माध्यम से केंद्र सरकार केंद्रीय या राज्य हस्तशिल्प निगमों और सरकार के अधीन अन्य एजेंसियों को मेट्रो शहरों, राज्यों की राजधानियों और पर्यटन और वाणिज्यिक रूप से महत्वपूर्ण स्थानों में शिल्प बाजार आयोजित करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करती है।

गांधी शिल्प बाजार (जीएसबी) या हस्तकौशल बाजार प्रदर्शनियां, राष्ट्रीय हस्तशिल्प मेला आयोजित करने या अन्य संगठनों द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में भाग लेने में सहायता प्रदान की जाती है। इसी तरह की सहायता विदेशी बाजारों में विपणन, अंतर्राष्ट्रीय आयोजनों और निर्यात के लिए भी प्रदान की जाती है।

डिजिटल असवंरचना

डिजिटल अवसंरचना के महत्व को महसूस करते हुए भारत सरकार ने 2011 में राष्ट्रीय ऑप्टिक फाइबर नेटवर्क लांच किया जिसका नाम 2015 में बदलकर भारतनेट परियोजना कर दिया गया। यह पहल दुनिया की सबसे बड़ी ग्रामीण ब्रॉडबैंड कनेक्टिविटी परियोजना के रूप में है जिसे भारत ब्रॉडबैंड नेटवर्क लिमिटेड द्वारा कार्यान्वित किया जा रहा है। इसके माध्यम से सरकार का लक्ष्य लगभग 2.5 लाख ग्राम पंचायतों को हई स्पीड ब्रॉडबैंड कनेक्टिविटी प्रदान करना है। भारतनेट के पहले चरण में लगभग 1.2 लाख ग्राम पंचायतों को दिसम्बर 2017 तक कनेक्टिविटी प्रदान की गई थी। दूसरा चरण वर्तमान में प्रगति पर है। 2019-20 केंद्रीय बजट में डिजिटल इंडिया कार्यक्रम के लिए 6806 करोड़ रूपये आवंटित किए गए जिसमें से 300 करोड़ रूपये। प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान के लिए आवंटित किए गए हैं। जून 2020 तक लगभग 1.73 लाख ग्राम पंचायतों को जोड़ने के लिए 5.25 लाख कि0मी0 फाइबर ऑप्टिक केबल बिछाई जा चुकी है, जिनमें से 1.60 लाख ग्राम पंचायतों में ये सेवा प्रदान करने के लिए तैयार हैं। प्रत्येक ग्राम पंचायत को पांच कनेक्शन मिलने की उम्मीद की जाती है।

कई कॉरपोरेट और निजी क्षेत्र के संगठन, सहकारी समितियां और नागरिक समाज संगठन ग्रामीण कारीगरों को दुनिया भर के ग्राहकों से जोड़ने के लिए ऑनलाइन माध्यम का उपयोग कर रहे हैं। यह काफी हद तक इंटरनेट कनेक्टिविटी के कारण संभव हुआ है। ब्रॉडबैंड से जुड़े जीपीएस से ई-बैंकिग, ई-हेल्थकेयर, ई-कॉमर्स और ई-एजुकेशन को सक्षम किया जा सकता है। ऐसी अवसंरचना इंटरनेट सेवा प्रदाताओं, केबल टीवी ऑपरेटरों और सूचना प्रदाताओं के लिए एक सक्षम आधार तैयार करती है। इस प्रकार सरकार ने डिजिटल बुनियादी ढांचे को एक सार्वजनिक वस्तु के रूप में परिवर्तित कर दिया है जो फिर से निजी निवेश को आकर्शित करता है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में एक सशक्त आभासी आर्थिक चक्र बन जाता है।

कौशल और संगठन

लोगों में विपणन कौशल का विकास और संगठनों के गठन में सहायता करना हालांकि पूरी तरह से विपणन के बुनियादी ढांचे का हिस्सा नहीं है लेकिन ग्रामीण विपणन की सफलता के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। विपणन एक परिष्कृत कार्य है और इसमें उपभोक्ता की प्राथमिकताओं, रूचि और उससे होने वाले बदलावों को समझने जैसे पहलू शामिल हैं। एक अच्छे विपणनकर्ता से प्रतिस्पर्धी परिदृष्य को परिभाषित करने और समझने, उत्पाद विकास, पैकेजिंग, ब्रांडिंग, स्थिति निर्धारण, उपभोक्ता वर्गीकरण और लक्ष्यीकरण, मूल्य निर्धारण, वितरण के बारे में निर्णय लेने की अपेक्षा की जाती है। विपणन के सिद्धांतों को खाद्यान्न जैसी सरल और सामान्य वस्तु से लेकर अति कलात्मक हस्तशिल्प, हाथ से बुने हुए वस्त्र और कलाकृतियों पर लागू किया जा सकता है।

भारत सरकार ने युवाओं में कौशल विकास को बढ़ावा देने के लिए निर्णायक कदम उठाए हैं। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (पीएमकेवीवाई) एक अभूतपूर्व योजना है जिसका उद्देश्य है:-

- कौशल का विकास
- शिक्षुता को बढ़ावा देना
- उद्यमिता का विकास
- शिक्षुता और प्रशिक्षण
- आजीविका संवर्धन के लिए कौशल अधिग्रहण और ज्ञान जागरूकता
- औद्योगिक मूल्य संवर्धन के लिए कौशल सुदृढ़ीकरण पीएमकेवीवाई को 2019-20 के केंद्रीय बजट में 2785 करोड़ रूपये आवंटित किए गए थे। पीएमकेवीवाई मूल्यांकन और प्रमाणन के माध्यम से पूर्व शिक्षण को मान्यता देने के अलावा युवाओं को अल्पकालिक कार्यक्रमों और विशेष परियोजनाओं में प्रषिक्षित करता Gsa

कुशल व्यक्तियों के अलावा विपणन को संगठनात्मक समर्थन की भी आवश्यकता होती है। इस तरह का समर्थन ग्रामीण उत्पादकों के उत्पादन को एकत्रित करने के रूप में हो सकता है जिससे कि बड़े पैमाने पर उत्पादन से लागत में किफायत मिले। इसके अलावा, ये बाजार तक पहुँच को सक्षम करने, आगत सामग्री तक पहुँच, प्रशिक्षण आदि के रूप में भी हो सकता है। इस मोर्चे पर कृषि उत्पादकों के लिए सरकार द्वारा किसान उत्पादक संगठनों (एफपीओ) या किसान उत्पादक कंपनियों (एफपीसी) को विकसित करने पर दिया गया प्रोत्साहन सही दिशा में एक कदम है। एफपीओ समूह खेती या उपज एकत्रीकरण को सक्षम बनाता है जिसके परिणामस्वरूप किसान मोल-भाव करने में समर्थ होते हैं, लागत घटती है और वे प्रसंस्करण, ब्राडिंग और खुदरा बिक्री जैसी मुल्यश्रृंखला गतिविधियों को शुरू कर सकते हैं।

वर्ष 2019-20 के केंद्रीय बजट ने 2019-20 और 2023-24 के बीच देश में 10,000 एफपीओ बनाने के लक्ष्य के साथ ''किसान उत्पादक संगठनों के गठन और संवर्धन" की एक केंद्रीय योजना की घोषणा की। इस कार्य के लिए 4496 करोड़ रूपये का प्रावधान किया गया था। मार्च 2020 तक देश में लगभग 6,000 एफपीओ का गठन किया गया। इन एफपीओ को सरकार, नाबार्ड, राज्य सरकारों और नागरिक समाज संगठनों द्वारा प्रोत्साहन दिया गया। इसी तरह हस्तशिल्प के लिए कपड़ा मंत्रालय के पास दस्तकार सशक्तीकरण योजना है जो स्वयंसहायता समूहों (एसएचजी), कारीगर समूहों या सहकारी समितियों को उन स्थानों पर विकसित करने पर केंद्रित है, जहाँ कारीगर स्थित हैं। वर्ष 2019-20 के केंद्रीय बजट में राष्ट्रीय हथकरघा विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय हस्तषिल्प कार्यक्रम के लिए क्रमशः 495.32 करोड़ रूपये और 357.50 करोड़ रूपये आवंटित किए गए। यह परिकल्पना की गई है कि क्लस्टर विकास और समूह गठन कारीगरों को उद्यमियों के रूप में विकसित करने, उनके संचालन में दक्षता लाने और प्रतिस्पर्धा में सुधार करने के अलावा उन्हें सीधे बाजारों से जुड़ने के लिए एक मंच प्रदान करने में सक्षम बनाएगा।

अवरोध और आगे बढ़ने का मार्ग

उपरोक्त जानकारी से पता चलता है कि कैसे सार्वजनिक निवेश ग्रामीण विपणन हेतु बुनियादी ढांचे के विकास-सड़कें बिछाने, बिजली उपलब्ध कराने तक से लेकर बाजार परिसर के निर्माण तक में लग रहा है। यह अपने आप में एक बड़ा फर्क लाता है क्योंकि यह विपणन का सबसे महत्वपूर्ण घटक 'बाजार तक पहुँच' प्रदान करता है। फिर भी यह देखा गया है कि कुछ योजनाओं का लाभ नहीं उठाया जाता है। उदाहरण के लिए ग्रामीण कृषि बाजार (ग्राम) योजना के लिए 2000 करोड़ रूपये आवंटित किए गए थे लेकिन देखा जाए तो इसका कार्यान्वयन बहुत खराब रहा है क्योंकि कोई राज्य सरकार इसके लिए आगे नहीं आई। ग्रामीण हाटों पर लेखक के अपने संक्षिप्त शोध से पता चलता है कि देश भर में हाटों में जबर्दस्त विविधता है। कहीं साप्ताहिक बाजार है तो कहीं दैनिक बाजार। कुछ राज्यों में बाजार के लगने के लिए एक निर्दिष्ट स्थान होता है, अन्य में स्थान बदलता रहता है। संपत्ति के अधिकार और उस भूमि के स्वामित्व के बारे में बहुत कम स्पष्टता है जिस पर बाजार लगता है। इसके अलावा, अलग-अलग जगहों पर आवधिक बाजार विभिन्न संस्थानों के नियंत्रण में होते हैं जैसे पंचायतों से लेकर नगर निगमों तक और कुछ राज्य सरकार के मंत्रालयों तक। वे अक्सर एक तरह से असंगठित बाजार होते हैं। इसलिए चुनौती बुनियादी ढांचे के संदर्भ में ग्रामीण कृषि बाजार (ग्राम) विकसित करने से पहले कानून और नियम तैयार करने की है।

हालांकि यह समझने की आवश्यकता है कि 'विपणन' शब्द बहुत व्यापक है विशेष तौर पर जब इसे प्रबंधकीय अर्थ में लिया जाता है और यहीं पर विपणन कौशल बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। मसलन जब हस्तशिल्प या हथकरघा उत्पादों को ''विपणन" किया जा रहा हो तो उसे उपभोक्ताओं की रूचियों को देखते हुए किया जाना चाहिए। इसलिए एक हस्तनिर्मित परिधान को फैशन, सुविधा या जीवनशैली के अनुरूप होना चाहिए जबकि एक हस्तशिल्प का बखान अक्सर उपयोगिता के बजाय सौंदर्यपरकता, कुलीन अभिरूचि और अनुष्ठान के रूप में करना पड़ सकता है। इसके लिए बिल्कुल भिन्न कौशल विधाओं की आवश्यकता होती है जो पेशेवर व्यक्तियों के पास होती है।

किसानों और कारीगरों से इन कौशल और क्षमताओं को विकसित करने की अपेक्षा करना बहुत ही कठिन है खासकर जब उन्हें उत्पादन पर बहुत ध्यान देना पड़ता है और उत्पादन जोखिमों से भी जूझना पड़ता है। किसानों को बाजारों से जोड़ने के कुछ बेहद सफल मॉडलों में से एक गुजरात सहकारी दुग्ध विपणन संघ (जीसीएमएमएफ) है, जहाँ किसान बड़े पैमाने पर दूध उत्पादन का ध्यान रखते हैं जोकि उनकी ताकत है जबकि विपणन की जिम्मेदारी पेशेवरों को दी गई है लेकिन वह संगठन जो विपणन को नियंत्रित करता है उसके बोर्ड स्तर पर नेतृत्व किसानों का है।

निष्कर्ष

ग्रामीण विपणन शब्द का प्रयोग विभिन्न संगठनों द्वारा अलग-अलग ढंग से किया गया है। इस लेख में ग्रामीण विपणन का फोकस ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादित उत्पादों के शहरी और अन्य बाजारों में विपणन पर है। ग्रामीण उत्पादकों को विविध उपभोक्ता समूहों वाले शहरी बाजारों तक पहुँचने, समझने और उनसे जुड़ने में अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा है। इसके अलावा, ग्रामीण उत्पादक छोटे भूमिधारक और कारीगर होते हैं जो मोल-भाव की शक्ति और बड़े पैमाने

पर उत्पादन की कमी की समस्याओं का सामना करते हैं। सड़कों और बिजली से सम्बंधित सरकारी योजनाओं से भौतिक पहुँच के मुद्दे सुलझाए जा रहे हैं जबकि डिजिटल बुनियादी ढांचे में निवेश में उपभोक्ताओं और उत्पादकों को आभासी (वर्चुअल) मोड में सीधे संपर्क में लाने की क्षमता है। किसान और कारीगर समूह जैसे एसएचजी, एफपीओ और क्लस्टर विकास पैमाने और मात्रा की समस्याओं का समाधान करते हुए एकत्रीकरण को सक्षम बनाते हैं। हालांकि उपभोक्ताओं और उनकी बदलती रूचियों और प्राथमिकताओं को समझने के लिए एक पेशेवर दृष्टिकोण की आवश्यकता है। भारत सरकार कौशल विकास पर एक सराहनीय कार्यक्रम संचालित कर रही है। विपणन से जुड़े पेषेवर लोगों की कमी को दूर करने के लिए विपणन क्षेत्र में विशेष रूप से अधिक पाठ्यक्रमों, इंटर्नषिप और भिक्षुता को शामिल करना मददगार हो सकता है।

संदर्भ-सूची

1. एबी कीथ, ए कान्स्टिटूशनल हिस्ट्री ऑफ इंडिया 1600-1935, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1961, पृष्ठ 4-5
2. एसआर मेहरोत्रा, टूवर्ड्स इंडियास फ्रीडम एण्ड पार्टिशन, रूपा, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 202.
3. लक्ष्मी सुब्रमण्यन, हिस्ट्री ऑफ इंडिया 1707-1857, ओरिएंट ब्लैकस्वान नई दिल्ली, 2010, पृ. 91.
4. एसआर मेहरोत्रा, पू. उ., पृष्ठ 203
5. स्नेह महाजन, इंपीरियलिस्ट स्ट्रेटेजी एंड मॉडरेट पॉलिटिक्स: इंडियन लेजिस्लेचर एट वर्क 1909-1920, चाणक्य प्रकाशन, दिल्ली, 1983, पृष्ठ 17।
6. सर बार्टले फ्रेरे (1815-84) ने सिंध के मुख्य आयुक्त, वायसराय काउंसिल के सदस्य और बॉम्बे के गवर्नर के रूप में कार्य किया।
7. स्नेह महाजन, पू. उ., पृष्ठ 18
8. चंद्रपाल सिंह, "कान्स्टिटूशनल रेफॉर्म्स ऐज द न्यू इम्पीरीअल पॉलिसी: मैकिंग ऑफ द इंडियन कौन्सिल्स ऐक्ट ऑफ 1861 'prime prime हिस्ट्री टूडै, संख्या 18, 2017
9. वुड टू एल्गिन, 28 अगस्त 1862 को पूर्वोक्त में उद्धृत किया गया है।
10. स्नेह महाजन, पू. उ., पृष्ठ 21.
11. पूर्वोक्त, पृ. 26.
12. परदमन सिंह, लॉर्ड मिंटो एण्ड इंडियन नैशनलिजम, चुग प्रकाशन, नई दिल्ली, पी।
13. एसआर मेहरोत्रा, पू. उ., पृष्ठ 214.
14. कार्ल ब्रिज, होलि्ंडग इंडिया टू द एम्पायर: द ब्रिटिश कंजर्वेटिव पार्टी एंड द 1935 कॉन्स्टिट्यूशन, स्टर्लिगन्यू डेल्ही आई, 1986, पृष्ठ IIA.

भारतीय न्यायपालिका में अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता: एक विश्लेषण

डॉ० सरोज वर्मा

एल.एल.एम्, पीएच.डी. (लॉ)

सारांश

अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता का मुद्दा अपने आप में कानूनी, नैतिक और नैतिक चिंताओं के साथ आता है। भारत में, न्यायालयों ने ऐसे साक्ष्य की स्वीकार्यता के पक्ष में निर्णय सुनाकर इस मुद्दे को सुलझाया है। दूसरी ओर, मध्यस्थता में, मुद्दा कम सुलझा हुआ है। न्यायिक निर्णयों और मध्यस्थ पुरस्कारों के बाध्यकारी मूल्य की कमी के कारण, मध्यस्थ न्यायाधिकरण कानूनी और तथ्यात्मक दृष्टिकोण से मुद्दे का गहन विश्लेषण करने में सक्षम हैं। मध्यस्थ न्यायाधिकरण समानता और निष्पक्षता जैसे कारकों को ध्यान में रखते हुए एक सचेत निर्णय लेते हैं। भारतीय न्यायालय अधिक कठोर हैं और निर्णयों में निर्धारित नियमों का पालन करते हैं। यह पत्र भारतीय न्यायपालिका और मध्यस्थ न्यायाधिकरणों के दृष्टिकोण में अंतर को उजागर करता है। अंत में, दोनों प्रथाओं की तुलना इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए की जाती है कि कौन सा दृष्टिकोण न्याय, समानता और निष्पक्षता का पक्षधर है।

मूल शब्दः भारतीय न्यायपालिका, अवैध, साक्ष्य, स्वीकार्यता, मध्यस्थता, विश्लेषण

परिचय

शब्द 'साक्ष्य' लैटिन मूल "एविडेरे" से लिया गया है जिसका अर्थ है, "स्पष्ट रूप से दिखाना; पता लगाना; साबित करना"। साक्ष्य की स्वीकार्यता और प्रासंगिकता साबित करने के लिए कानून द्वारा विस्तृत प्रावधान निर्धारित किए गए हैं। साक्ष्य से संबंधित प्रक्रियात्मक और मूल अधिकारों को निर्धारित करने वाले व्यापक प्रावधानों के बावजूद, साक्ष्य कानून में विवादास्पद क्षेत्रों में से एक अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता है। इस मुद्दे के लिए अलग-अलग क्षेत्रों के अपने-अपने समाधान सामने आने के साथ, न्यायशास्त्र इस पर सहमत नहीं है। हम अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को स्वीकार करने के लिए भारतीय न्यायपालिका द्वारा अपनाई गई प्रथाओं को देखेंगे। बाद में, हम मध्यस्थता में अपनाई गई प्रथाओं के साथ इसकी तुलना करेंगे।

अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य क्या है?

इससे पहले कि हम अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता के रुझानों में तल्लीन हों, हमें इस बात पर चर्चा करनी चाहिए कि साक्ष्य को अवैध रूप से कब वर्गीकृत किया जाता है। शाब्दिक व्याख्या का उपयोग करते हुए, हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि साक्ष्य को 'अवैध रूप से प्राप्त' तब कहा जाता है जब कानूनी कार्यवाही या मध्यस्थता में कोई पक्ष कानून के उल्लंघन में साक्ष्य प्राप्त करता है।

उदाहरण के लिए: X और के बीच एक सिविल मुकदमे में वादी X अवैध रूप से के घर के परिसर में प्रवेश करता है और एक दस्तावेज चुराता है जो की दोषीता को साबित करता है। इस तरह के साक्ष्य साक्ष्य अधिनियम की धारा 7, 8, आदि (अध्याय II) के तहत प्रासंगिक हो सकते हैं।

हालांकि, यह ध्यान रखना उचित है कि दस्तावेज प्राप्त करने के लिए, वादी 'X' ने भारतीय दंड संहिता की धारा 447 के तहत दंडनीय आपराधिक अतिचार का अपराध किया। क्या न्यायालय को एक दस्तावेज पर विचार करना चाहिए जो अपराध करके प्राप्त किया गया था, यहाँ विवादास्पद प्रश्न है। एक आपराधिक कार्यवाही में, व्यक्ति "पर हत्या करने का आरोप है। पुलिस अधिकारी" के स्वामित्व वाले घर में कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना अवैध तलाशी और जब्ती करते हैं। परिणामस्वरूप, पुलिस अधिकारियों को "द्वारा इस्तेमाल किया गया हत्या का हथियार मिल जाता है। यह हत्या का हथियार साक्ष्य अधिनियम के तहत प्रासंगिक है।

हालांकि, जब हम साक्ष्य प्राप्त करने के साधनों को देखते हैं, तो इसकी स्वीकार्यता से संबंधित प्रश्न उठते हैं। अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य के मुद्दे से जुड़े कई कानूनी, नैतिक और नैतिक प्रश्न आसानी से देखे जा सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति कुछ सबूत प्राप्त करने के लिए कानून का उल्लंघन कर रहा है, तो उस सबूत को अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। कुछ तरीकों को वर्गीकृत किया गया है जिसके माध्यम से सिविल और आपराधिक दोनों कार्यवाही में अवैध रूप से साक्ष्य प्राप्त किया जाता है। "गुप्तचर, अवैध तलाशी, किसी व्यक्ति के शरीर का उल्लंघन" आदि जैसे तरीके।

भारतीय न्यायपालिका कई बार इस मुद्दे का सामना करती है जहां सबूत अवैध रूप से प्राप्त किए गए हैं, खासकर "सीटी बजाने वालों, पुलिस एजेंसियों और जांच एजेंसियों द्वारा अवैध तलाशी करने और सरकारी मशीनरी आदि से अनुग्रह प्राप्त करने की कोशिश करने वालों" द्वारा। आपराधिक प्रक्रिया संहिता विभिन्न सुरक्षा उपाय निर्धारित करती है जिनका पुलिस को अभियुक्तों के खिलाफ सबूत खोजने के लिए पालन करना होता है। कभी-कभी, इन प्रावधानों

का पालन नहीं किया जाता है, जिसके कारण पुलिस अधिकारियों द्वारा की गई तलाशी को 'अवैध' घोषित कर दिया जाता है। फिर भी, इस प्रकार प्राप्त साक्ष्य अपने आप में अग्राह्य नहीं है।

कभी-कभी, इन प्रावधानों का पालन नहीं किया जाता है, जिसके कारण पुलिस अधिकारियों द्वारा की गई तलाशी को 'अवैध' घोषित कर दिया जाता है। फिर भी, इस तरह से प्राप्त साक्ष्य अपने आप में अस्वीकार्य नहीं है।

अब हम अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को स्वीकार करने के संबंध में भारतीय न्यायपालिका और मध्यस्थ न्यायाधिकरणों द्वारा अपनाए गए रुझानों पर विचार करेंगे।

भारतीय न्यायपालिका में अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता

हम जिस प्रश्न पर विचार कर रहे हैं, वह यह नहीं है कि अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य प्रासंगिक है या नहीं, बल्कि प्रश्न यह है कि भारतीय न्यायपालिका के अनुसार यह स्वीकार्य है या नहीं। भारत के दसवें विधि आयोग ने 1983 में अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य पर एक रिपोर्ट प्रस्तुत की।

विधि आयोग की 94वीं रिपोर्ट (जिसे आगे 'रिपोर्ट' कहा जाएगा) ने मुख्य मुद्दे को सटीक रूप से इंगित करते हुए कहा कि "किसी विशिष्ट वैधानिक या संवैधानिक प्रावधान की अनुपस्थिति के कारण जो विशेष प्रकार के साक्ष्य को बाहर करने का प्रावधान करता है, यह तथ्य कि साक्ष्य अवैध रूप से प्राप्त किया गया था, आपराधिक मुकदमे में उसके प्रवेश के संबंध में कोई महत्व नहीं रखता है"। चूंकि इस पर कोई प्रावधान नहीं है, इसलिए अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता का प्रश्न न्यायालयों के निर्णय के लिए छोड़ दिया गया है। रिपोर्ट ने चार अलग-अलग श्रेणियों के देशों और अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य से निपटने के उनके तरीकों की पहचान की।

पहली श्रेणी के देश: अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को स्वीकार्य माना जाता है क्योंकि ऐसा कोई कानून मौजूद नहीं है जो इस आधार पर साक्ष्य को बाहर करता हो कि यह अवैध तलाशी या जब्ती के तहत प्राप्त किया गया था, या अन्यथा अवैध रूप से प्राप्त किया गया था।

दूसरी श्रेणी के देश: साक्ष्य प्राप्त करने में अवैध या अनुचित तरीकों का उपयोग इस सीमा तक प्रासंगिक माना जाता है कि न्यायालय ऐसे साक्ष्य को अस्वीकार कर सकता है। तीसरी श्रेणी के देश: एक विशिष्ट वैधानिक प्रावधान मौजूद है जो अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को बाहर रखता है।

चौथी श्रेणी के देश: संवैधानिक गारंटी या ऐसी संवैधानिक गारंटी के न्यायिक निर्माण के माध्यम से अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य का बहिष्कार। रिपोर्ट के अनुसार, भारत एक प्रथम श्रेणी का देश है।

भारतीय न्यायपालिका में अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता के बारे में कानून की स्थिति बिल्कुल स्पष्ट है। अनेक मामलों के कानूनों के माध्यम से, अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को भारत में स्वीकार्य माना जाता है। हालाँकि, अवैध तरीकों से साक्ष्य प्राप्त करने वाले पुलिस अधिकारी या व्यक्ति को मुआवजे के रूप में कुछ दंड दिया जाता है। रिपोर्ट ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम में धारा 166 ए को शामिल करने की सिफारिश की, जो अदालतों को किसी भी अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को स्वीकार करने से इनकार करने की शक्ति प्रदान करेगी, यदि अदालत का मानना है कि साक्ष्य एकत्र करने के साधनों की प्रकृति न्याय प्रशासन को बाधित करेगी।

दूसरी श्रेणी के देश: साक्ष्य प्राप्त करने में अवैध या अनुचित तरीकों का उपयोग इस सीमा तक प्रासंगिक माना जाता है कि न्यायालय ऐसे साक्ष्य को अस्वीकार कर सकता है।

तीसरी श्रेणी के देश: एक विशिष्ट वैधानिक प्रावधान मौजूद है जो अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को बाहर रखता है।

चौथी श्रेणी के देश: संवैधानिक गारंटी या ऐसी संवैधानिक गारंटी के न्यायिक निर्माण के माध्यम से अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य का बहिष्कार।

रिपोर्ट के अनुसार, भारत एक प्रथम श्रेणी का देश है।

भारतीय न्यायपालिका में अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता के बारे में कानून की स्थिति बिल्कुल स्पष्ट है। अनेक मामलों के कानूनों के माध्यम से, अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को भारत में स्वीकार्य माना जाता है। हालाँकि, अवैध तरीकों से साक्ष्य प्राप्त करने वाले पुलिस अधिकारी या व्यक्ति को मुआवजे के रूप में कुछ दंड दिया जाता है। रिपोर्ट ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम में धारा 166 ए को शामिल करने की सिफारिश की, जो अदालतों को किसी भी अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को स्वीकार करने से इनकार करने की शक्ति प्रदान करेगी, यदि अदालत का मानना है कि साक्ष्य एकत्र करने के साधनों की प्रकृति न्याय प्रशासन को बाधित करेगी।

ज्ञानेश्वर बनाम महाराष्ट्र राज्य में, प्रतिवादियों ने धारा 165 सीआरपीसी के तहत तलाशी की आड़ में याचिकाकर्ता के घर की अवैध रूप से तलाशी ली। यह प्रावधान राज्य अधिकारियों को मजिस्ट्रेट से तलाशी वारंट के बिना अत्यावश्यक मामले में तलाशी लेने में सक्षम बनाने के लिए लागू किया गया है।

हालाँकि, संहिता में उल्लिखित कुछ प्रक्रियाओं का पालन करना अभी भी अनिवार्य है। न्यायालय ने पाया कि अधिकारियों ने उस समय प्राप्त गुप्त सूचना को नोट नहीं किया और धारा 165 सीआरपीसी के प्रावधानों का भी पालन नहीं किया। न्यायालय ने माना कि तलाशी अवैध थी और राज्य को मुआवजा देना चाहिए। यह एक ऐसा मामला है जहाँ न्यायालय प्रतिवादियों से अवैध तलाशी और जब्ती करने के लिए एक निश्चित राशि का भुगतान करने के लिए कह सकता है, हालाँकि, यदि यह प्रासंगिक है तो ऐसी तलाशी से प्राप्त साक्ष्य पर भी विचार कर सकता है।

मध्यस्थता में अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता

भारतीय न्यायिक कार्यवाही के विपरीत, साक्ष्य की स्वीकार्यता किसी कानून या कानूनों के समूह द्वारा शासित नहीं होती है। भारत में, साक्ष्य अधिनियम में मध्यस्थता कार्यवाही के लिए इसकी प्रयोज्यता पर एक स्पष्ट रोक है। मध्यस्थ कार्यवाही और न्यायिक कार्यवाही के बीच कई अंतर करने वाले कारक हैं। मध्यस्थ कार्यवाही में, समग्र प्रक्रियात्मक ढांचा पूर्व-सहमति वाले संस्थागत या संविदात्मक नियमों, स्थानीय मध्यस्थता कानून और किसी भी पक्ष द्वारा

मध्यस्थता शुरू करने के बाद जारी किए गए श्प्रक्रियात्मक आदेशश के संयोजन द्वारा शासित होता है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम मध्यस्थता को अपने दायरे से बाहर रखता है। यहां तक कि न्यायपालिका के फैसले भी मध्यस्थ न्यायाधिकरण पर बाध्यकारी नहीं हैं। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 19(2) में कहा गया है कि मध्यस्थ न्यायाधिकरण अपनी कार्यवाही के संचालन के लिए मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया पर सहमत होने के लिए स्वतंत्र हैं। 19(4) में कहा गया है कि न्यायाधिकरण के पास किसी भी साक्ष्य की स्वीकार्यता, प्रासंगिकता, भौतिकता और वजन निर्धारित करने की शक्ति है, बशर्ते कि इसके विपरीत कोई समझौता हो।

ऐसी परिस्थितियों में, मध्यस्थ न्यायाधिकरण अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता कैसे निर्धारित करता है? यहाँ तक कि SIAC, LCIA, UNCITRAL आदि जैसी प्रसिद्ध संस्थाओं द्वारा दिए गए मध्यस्थ नियमों में भी ऐसे प्रावधान नहीं हैं जो साक्ष्य को स्वीकार करने या बाहर करने की प्रक्रिया प्रदान करते हों। इसके बजाय, मध्यस्थ नियम साक्ष्य की स्वीकार्यता, प्रासंगिकता, भौतिकता और वजन का पता लगाने में न्यायाधिकरणों को व्यापक विवेक देते हैं। ऊपर उल्लिखित मध्यस्थ संस्थाओं में निम्नलिखित प्रावधान हैं:

संयुक्त राष्ट्र आयोग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार कानून (UNCITRAL) मध्यस्थता नियम, 2010: अनुच्छेद 27(4) में कहा गया है कि न्यायाधिकरण "प्रस्तुत साक्ष्य की स्वीकार्यता, प्रासंगिकता, भौतिकता और वजन का निर्धारण करेगा।"

सिंगापुर अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता केंद्र (SIAC) मध्यस्थता नियम, 2016: SIAC के नियम 19.2 में कहा गया है कि न्यायाधिकरण "सभी साक्ष्य की प्रासंगिकता, भौतिकता और स्वीकार्यता का निर्धारण करेगा। न्यायाधिकरण को ऐसा निर्धारण करने में किसी भी लागू कानून के साक्ष्य के नियमों को लागू करने की आवश्यकता नहीं है।"

लंदन कोर्ट ऑफ इंटरनेशनल आर्बिट्रेशन (LCIA) नियम, 2020: नियम 22.1(vi) में कहा गया है कि न्यायाधिकरण "यह तय करने के लिए स्वतंत्र है कि तथ्य या विशेषज्ञ की राय के किसी भी मुद्दे पर किसी पक्ष द्वारा प्रस्तुत किसी भी सामग्री की स्वीकार्यता, प्रासंगिकता या वजन के संबंध में साक्ष्य के किसी भी सख्त नियम (या किसी अन्य नियम) को लागू करना है या नहीं; और वह समय, तरीका और रूप तय करना जिसमें ऐसी सामग्री का पक्षों के बीच आदान-प्रदान किया जाना चाहिए और मध्यस्थ न्यायाधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए।"

यहां तक कि अगर हम एमसीआईए जैसे भारतीय मध्यस्थ संस्थानों को भी लें, तो हम पाते हैं कि साक्ष्य के मामले में मध्यस्थ न्यायाधिकरणों को व्यापक विवेक दिया जा रहा है।

मुंबई सेंटर फॉर इंटरनेशनल आर्बिट्रेशन (एमसीआईए) नियम, 2016: नियम 25.1 में कहा गया है कि एक मध्यस्थ के पास "किसी भी साक्ष्य की स्वीकार्यता, प्रासंगिकता, भौतिकता और वजन, जिसमें साक्ष्य के सख्त नियमों को लागू करना है या नहीं, यह निर्धारित करने की शक्ति है। न्यायाधिकरण साक्ष्य के किसी भी नियम को लागू करने के लिए बाध्य नहीं होगा"।

निश्चित रूप से, कानूनों या मध्यस्थ नियमों में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो उल्लेख करता हो कि मध्यस्थ कार्यवाही में किस तरह का साक्ष्य स्वीकार्य है। फिर भी, मध्यस्थ न्यायाधिकरण अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता में साक्ष्य लेने पर अंतर्राष्ट्रीय बार एसोसिएशन (आईबीए) नियमों का संदर्भ ले सकते हैं जो अनुच्छेद 9 में साक्ष्य की स्वीकार्यता और मूल्यांकन के लिए प्रावधान करता है। अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य पर, आईबीए नियम अनुच्छेद 9 (3) में कहा गया है कि "मध्यस्थ न्यायाधिकरण किसी पक्ष के अनुरोध पर या अपने स्वयं के प्रस्ताव पर, अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को बाहर कर सकता है"। आईबीए समीक्षा कार्य बल 2020 ने उन विशिष्ट परिस्थितियों को निर्धारित नहीं किया है जिनमें ऐसे साक्ष्य को बाहर रखा जाना चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि इस मुद्दे पर कोई स्पष्ट सहमति नहीं थी। वास्तव में, अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की श्रेणियों को निर्धारित करना असंभव लगता है जिन्हें बाहर रखा जाना चाहिए या शामिल किया जाना चाहिए।

अतीत में, मध्यस्थ न्यायाधिकरणों ने विभिन्न पहलुओं पर विचार किया जैसे कि

- क्या साक्ष्य प्रस्तुत करने वाला पक्ष अवैधता में शामिल था,
- क्या साक्ष्य की अनुमति देना आनुपातिक था,
- क्या साक्ष्य महत्वपूर्ण और परिणाम-निर्धारक था,
- क्या साक्ष्य सार्वजनिक लीक के माध्यम से सार्वजनिक डोमेन में आया था, और अवैधता की स्पष्टता और गंभीरता।

मध्यस्थता अभ्यास की प्रकृति और कानून और मिसाल की कमी के कारण अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता के मुद्दे पर विरोधाभासी मध्यस्थ पुरस्कार सामने आए हैं। ऐसा कहा जा रहा है, न्यायाधिकरणों से आग्रह किया जाता है कि वे भौतिक तथ्यों के आधार पर मामले की सटीक तस्वीर बनाने का प्रयास करें, लेकिन इससे अवैध गतिविधियों को बढ़ावा नहीं मिलना चाहिए।

अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता पर निर्णय लेने से पहले, मध्यस्थ न्यायाधिकरण को तीन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करना चाहिए:

क्या साक्ष्य किसी ऐसे पक्ष द्वारा अवैध रूप से प्राप्त किया गया है जो इससे लाभ उठाना चाहता है? यह तर्क दिया गया है कि न्यायाधिकरण को यह मान लेना चाहिए कि अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य अस्वीकार्य है।

हालाँकि, यदि अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य किसी निष्पक्ष पक्ष के हाथों से न्यायाधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, तो ऐसे साक्ष्य को प्रथम दृष्टया माना जाना चाहिए। निष्पक्ष पक्ष वह है "जो कार्यवाही में पक्ष नहीं है और इसके परिणाम से कुछ भी हासिल या खो नहीं सकता है।"

यदि अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य से लाभ उठाने की इच्छा रखने वाला पक्ष स्वच्छ हाथों से आता है, तो साक्ष्य संभवत: इस प्रश्न को पारित कर देगा। 'स्वच्छ हाथों' का सिद्धांत मध्यस्थता के क्षेत्र में एक प्रसिद्ध सिद्धांत है जो कहता है कि किसी भी पक्ष को अपने स्वयं के कदाचार से लाभ नहीं उठाना चाहिए।

क्या गलत तरीके से प्रकट किए गए दस्तावेज को अस्वीकार्य के रूप में अस्वीकार करने में सार्वजनिक हित का पक्ष है? न्यायाधिकरण को मध्यस्थ सीट की सार्वजनिक नीति के आधार पर स्वीकार्यता का निर्धारण करना होगा जहां पुरस्कार को मान्यता मिलेगी और सभी प्रासंगिक क्षेत्राधिकार जहां पुरस्कार को लागू किया जाना चाहिए। UNCITRAL मॉडल कानून की धारा 34(2), जिसे अधिकांश राज्यों ने अपनाया है, में कहा गया है कि यदि कोई निर्णय मध्यस्थ न्यायाधिकरण की सीट के राज्य की सार्वजनिक नीति के साथ विरोधाभासी है, तो उसे रद्द किया जा सकता है। न्यायाधिकरणों को सार्वजनिक नीति संबंधी विचारों को ध्यान में रखना चाहिए, जैसे कि कानूनी पेशेवर विशेषाधिकार, राजनयिक प्रतिरक्षा और अनुल्लंघनीयता।

क्या न्याय का हित गलत तरीके से प्रकट किए गए दस्तावेज को स्वीकार करने के पक्ष में है?

मध्यस्थ न्यायाधिकरणों को कई सिद्धांतों और हितों के बीच संतुलन बनाने की आवश्यकता है जो प्रत्येक दिए गए मामले के विशिष्ट तथ्यों के आधार पर संघर्ष कर सकते हैं। सिद्धांतों में न्यायाधिकरण के कर्तव्यों को निष्पक्ष और न्यायसंगत तरीके से पूरा करने की आवश्यकता शामिल है जो एक ऐसा निर्णय देता है जो स्पष्ट रूप से सही है, साथ ही प्रक्रियात्मक अखंडता और हथियारों की समानता के सिद्धांत के हितों को संतुलित करता है।

इसके अतिरिक्त, न्यायाधिकरणों को अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता निर्धारित करते समय दो महत्वपूर्ण कारकों पर भी विचार करना चाहिए: सद्भावना का

सिद्धांत, और हथियारों की समानता का सिद्धांत

मध्यस्थता प्रक्रिया में सद्भावना का सिद्धांत मध्यस्थता के लिए समझौते से उपजा है।

अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता में साक्ष्य लेने पर प्ठ। नियमों की प्रस्तावना में भी उल्लेख किया गया है कि "साक्ष्य लेने का कार्य इस सिद्धांत पर किया जाएगा कि प्रत्येक पक्ष सद्भावना से कार्य करेगा"।

न्यायाधिकरण को यह तय करना है कि अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को शामिल करना सद्भावना के सिद्धांत का उल्लंघन होगा या नहीं। अब, 'हथियारों की समानता के सिद्धांत' पर आते हैं। इसका अर्थ है कि न्यायाधिकरण को पक्षों की समानता की सुरक्षा सुनिश्चित करनी होगी और इसके लिए न्यायाधिकरणों को उनके बीच समानता लागू करने की आवश्यकता होगी।

यह निष्पक्षता के सिद्धांत से निकटता से संबंधित है जिसे प्रत्येक निर्णायक निकाय लागू करना चाहता है।

यह सिद्धांत अनिवार्य करता है कि कार्यवाही में दोनों पक्षों को अपने तर्क प्रस्तुत करने का उचित अवसर दिया जाना चाहिए जिसमें साक्ष्य शामिल हैं, लेकिन यह दूसरे पक्ष को दूसरे पक्ष के संबंध में पर्याप्त नुकसान में नहीं डालने के अधीन है।

विभिन्न मध्यस्थ पुरस्कार हैं जिन्होंने अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता के मुद्दों पर निर्णय लिया है। मुख्य रूप से दो दृष्टिकोण अपनाए जाते हैं: बहिष्करण और समावेशन।

बहिष्करण दृष्टिकोण में, न्यायाधिकरण अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को रिकॉर्ड पर न लेकर बहिष्कृत करते हैं। जबकि, समावेशन दृष्टिकोण में, न्यायाधिकरण अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को स्वीकार करते हैं। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि इस अध्याय का ध्यान विभिन्न अधिकार क्षेत्रों से मध्यस्थ पुरस्कारों पर है। मीथेनेक्स कॉर्प बनाम यूएसए में दावेदार के जांचकर्ता ने 'डंपस्टर डाइविंग' में भाग लिया और उसके प्रतिस्पर्धियों की फाइलें चुरा ली गईं। न्यायाधिकरण ने कहा कि साक्ष्य कई महीनों में कई बार अवैध रूप से अतिक्रमण करके प्राप्त किए गए थे और उस साक्ष्य को स्वीकार करना UNCITRAL नियमों द्वारा लगाए गए सद्भावना के सामान्य कर्तव्य का उल्लंघन होगा और वास्तव में, अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता में भाग लेने वाले सभी लोगों पर इसका दायित्व है, जिसके बिना यह काम नहीं कर सकता।

दोनों पक्षों का यह कर्तव्य था कि वे "इन मध्यस्थता कार्यवाहियों के दौरान सद्भावनापूर्वक आचरण करें तथा अपने बीच समानता का सम्मान करें, 'समान व्यवहार' तथा प्रक्रियात्मक निष्पक्षता के सिद्धांतों की भी UNCITRAL नियमों के अनुच्छेद 15(1) द्वारा अपेक्षा की जाती है"। परिणामस्वरूप, न्यायाधिकरण ने विवादित दस्तावेजों को साक्ष्य के रूप में स्वीकार करने से इनकार कर दिया।

कैराट्यूब बनाम कजाकिस्तान, में दावेदार ने ग्यारह दस्तावेजों को पेश करने का प्रयास किया, जिन्हें कजाकिस्तान सरकार की आईटी प्रणाली की हैकिंग के परिणामस्वरूप इंटरनेट पर सार्वजनिक रूप से उपलब्ध कराया गया था। हैकर्स ने "कजाखलीक्स" नामक वेबसाइट पर लगभग 60,000 दस्तावेज अपलोड किए थे। न्यायाधिकरण ने सभी गैर-विशेषाधिकार प्राप्त लीक दस्तावेजों को स्वीकार करने की अनुमति दी, लेकिन सभी अवैध रूप से लीक किए गए विशेषाधिकार प्राप्त दस्तावेजों को रिकॉर्ड से बाहर कर दिया, यह पाते हुए कि न्यायाधिकरण को विशेषाधिकार प्राप्त दस्तावेजों को अधिकतम सुरक्षा प्रदान करनी चाहिए।

कोनोकोफिलिप्स बनाम वेनेजुएला, में प्रतिवादी, पुरस्कार दिए जाने के बाद, विकीलीक्स द्वारा लीक किए गए साक्ष्य पर भरोसा करना चाहता था। ऐसे साक्ष्य को अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है, भले ही वह पहले से ही सार्वजनिक हो। पैनल में शामिल अधिकांश मध्यस्थों ने मामले को फिर से खोलने और मामले का निर्धारण करने से इनकार कर दिया क्योंकि केवल पुरस्कार का निष्पादन लंबित था। फिर भी, एक मध्यस्थ जिसका नाम प्रो. जॉर्जेस अबी-साब है, ने यह कहते हुए अपनी असहमति व्यक्त की कि प्रतिवादी ने मजबूत साक्ष्य प्रस्तुत किए, जो मध्यस्थता कार्यवाही के लिए महत्वपूर्ण थे। परिणामस्वरूप, उन्होंने अपने असहमतिपूर्ण दृष्टिकोण में कहा कि विवाद को सार्वजनिक नीति के आधार पर फिर से खोला जाना चाहिए क्योंकि इसके अस्तित्व और प्रासंगिकता की अनदेखी करने से न्याय का मजाक उड़ेगा।

भारतीय न्यायपालिका और मध्यस्थता में अपनाई जाने वाली प्रथाओं का तुलनात्मक अध्ययन

जैसा कि पहले देखा गया है, भारतीय न्यायपालिका अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को स्वीकार करने के पक्ष में है। दूसरी ओर, मध्यस्थ न्यायाधिकरणों के पास एक ही मुद्दे पर परस्पर विरोधी पुरस्कार हैं।

भारतीय न्यायपालिका स्टेयर डेसिसिस के सिद्धांत का पालन करती है। इससे अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता के बारे में एक समान निर्णय हुए हैं। मध्यस्थ न्यायाधिकरणों के मामले में ऐसा नहीं है। मध्यस्थता में, न्यायाधिकरण किसी अन्य न्यायिक निर्णय या मध्यस्थ पुरस्कारों से बंधे नहीं होते हैं। पुरस्कार की प्रवर्तनीयता और मान्यता की चिंताएँ निश्चित रूप से बनी रहती हैं। हालाँकि, भारतीय न्यायपालिका ने हाल के दिनों में विभिन्न ऐतिहासिक निर्णयों के माध्यम से एक गैर-हस्तक्षेपवादी दृष्टिकोण अपनाया है। यह बहुत ही असंभव है कि भारतीय न्यायपालिका किसी पुरस्कार को मान्यता देने या लागू करने से केवल इसलिए इनकार कर दे क्योंकि मध्यस्थ न्यायाधिकरण ने अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को स्वीकार करने या अस्वीकार करने का विकल्प चुना है। चूँकि मध्यस्थता सर्वसम्मति से होती है, इसलिए न्यायाधिकरण मध्यस्थता समझौते के प्रति निष्ठा की शपथ लेते हैं। इसका मतलब यह है कि अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता पक्षों के बीच समझौते, मध्यस्थता कार्यवाही को नियंत्रित करने के लिए पक्षों द्वारा चुने गए नियमों या कानूनों आदि पर निर्भर करती है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, अधिकांश नियम और प्रक्रियात्मक कानून मध्यस्थ न्यायाधिकरणों को अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता पर निर्णय लेने की स्वतंत्रता देते हैं। अब, यह मध्यस्थों पर निर्भर करता है कि वे बहिष्करण नियम लागू करना चाहते हैं या समावेशन नियम।51 भारत में, अधिकांश मध्यस्थ न्यायपालिका के भूतपूर्व सदस्य होते हैं। इसलिए, भले ही न्यायपालिका के निर्णय न्यायाधिकरण पर बाध्यकारी न हों, मध्यस्थ भारतीय न्यायपालिका द्वारा अपनाए गए न्यायशास्त्र का पक्ष लेते हैं।

न्यायपालिका और मध्यस्थता के तरीकों में एक बड़ा अंतर यह है कि न्यायपालिका अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को स्वीकार करती है क्योंकि इसे बाहर करने के लिए कोई वैधानिक या संवैधानिक प्रतिबंध नहीं है। ऐसा तर्क उथला है और इसमें विभिन्न कारकों पर विचार नहीं किया जा सकता है जिन्हें मध्यस्थ न्यायाधिकरण आमतौर पर लेते हैं। मध्यस्थता में एक बेहतर स्थिति ली जाती है जहाँ न्यायाधिकरण सार्वजनिक नीति, ऐसे साक्ष्य लाने वाले पक्ष के हित, सद्भावना, निष्पक्षता आदि जैसे कई कारकों पर विचार करेंगे। न्यायाधिकरण के समक्ष लाए गए अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की उच्च स्तर पर जांच की जाती है और यदि यह उपर्युक्त कारकों में से किसी का भी उल्लंघन करता है तो इसे स्वीकार्यता से वंचित किया जा सकता है। दूसरी ओर एक कठोर अनुबंध देखा जा सकता है, जहाँ न्यायपालिका शामिल पक्षों के हित, हथियारों की समानता के सिद्धांत आदि जैसे कारकों को ध्यान में रखे बिना अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य पर विचार करती है। जब मामला आपराधिक प्रकृति का होता है, तो स्थिति की गंभीरता और भी खराब हो जाती है क्योंकि पूरा राज्य तंत्र आरोपी को अपराध का दोषी साबित करने की कोशिश करता है। ऐसी कार्यवाही तब अनुचित और असंतुलित हो जाती है जब प्राधिकारियों द्वारा प्रक्रियागत उचित प्रक्रिया का पालन नहीं किया जाता है और न्यायालय राज्य प्राधिकारियों पर नाममात्र जुर्माना लगाकर तथा साक्ष्य को स्वीकार करके इसे सामान्य बना देते हैं।

भारतीय न्यायपालिका को समानता और निष्पक्षता का समर्थन करने वाले तर्कों पर विचार करना चाहिए तथा अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता की अधिक जांच करनी चाहिए। अभियुक्त या प्रतिवादी को अभियोजन पक्ष या दावेदार के साथ अनिवार्य रूप से समान स्थान पर नहीं रखा जाता है, जब केवल एक ही दूसरे की कीमत पर सिस्टम से लाभ उठा सकता है। ऐसी प्रणाली में बदलाव की आवश्यकता है, जिसकी लंबे समय से आवश्यकता है।

निष्कर्ष

भारतीय न्यायपालिका द्वारा अपनाई जाने वाली प्रथाएं केवल एक कारण पर आधारित हैं कि अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता पर कोई संवैधानिक या वैधानिक रोक नहीं है। इसलिए, भारतीय न्यायपालिका मामले से इसकी प्रासंगिकता के अधीन अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य को स्वीकार करने के पक्ष में है। इस दृष्टिकोण की स्वयं विधि आयोग ने आलोचना की थी। रिपोर्ट में भारतीय साक्ष्य अधिनियम में धारा 166ए को शामिल करने की सिफारिश की गई है, जो अदालतों को किसी भी अवैध या अनुचित तरीके से प्राप्त साक्ष्य को स्वीकार करने से इनकार करने की शक्ति प्रदान करेगी, यदि अदालत का मानना है कि साक्ष्य एकत्र करने के साधनों की प्रकृति न्याय प्रशासन में व्यवधान पैदा करेगी। आयोग की इस सिफारिश को संसद ने नहीं अपनाया।

हालांकि, यह आवश्यक नहीं है कि ऐसी सिफारिश को शामिल किया जाए। न्यायपालिका, विभिन्न मध्यस्थ न्यायाधिकरणों की तरह, अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता से इनकार करने के लिए समानता के सिद्धांत और निष्पक्षता के सिद्धांत जैसे कारणों के साथ आ सकती है। केवल इसलिए कि कानून इसकी स्वीकार्यता पर चुप है, इसका मतलब यह नहीं है कि अदालतें इस मुद्दे के बारे में अधिक सतर्क नहीं हो सकती हैं। मध्यस्थ न्यायाधिकरण अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य से संबंधित मामलों में अधिक सफल रहे हैं क्योंकि वे मामले दर मामले के आधार पर इसकी स्वीकार्यता पर निर्णय लेते हैं। भारतीय न्यायपालिका को भी कुछ ऐसा ही करना चाहिए।

संदर्भ

1. Dr. Nageshwar Rao, The Indian Evidence Act 30 (LexisNexis 2019).
2. The Indian Evidence Act, 1872, Chapter II, No. 1, Acts of Parliament, 1872 (India).
3. The Indian Penal Code, 1860, §447, No. 45, Acts of Parliament, 1860 (India).
4. S.N. Jain, Admissibility of Illegally Obtained Evidence, 22 JILI 322, 322 (1980).
5. Ashwini Vaidialingam, Authenticating Electronic Evidence: §65B, Indian Evidence Act, 1872, 8 NUJS L Rev 43, 59 (2015).
6. Criminal Procedure Code, 1973, Chapter XII, No. 2, Acts of Parliament, 1974 (India).
7. Law Commission of India, 94th Report on Evidence Obtained Illegally or Improperly: Proposed Section 166A, Indian Evidence Act, 1872, (1983).
8. Law Commission of India, 94th Report on Evidence Obtained Illegally or Improperly: Proposed Section 166A, Indian Evidence Act, 1872, 4 (1983).
9. Pooran Mal v. Director of Inspection, [1974] 1 SCC 345.
10. R.M. Malkani v. State of Maharashtra, 1973 AIR 157.
11. Dnyaneshwar v. State of Maharashtra, 2019 SCC OnLine Bom 4949.
12. Indian Evidence Act, 1872, §1, No. 1. Act of Parliament 1872 (India).

13. Indian Evidence Act, 1872, §19(2), No. 1. Act of Parliament 1872 (India).
14. Indian Evidence Act, 1872, §19(4), No. 1. Act of Parliament 1872 (India).
15. IBA Rules on the Taking of Evidence in International Arbitration, 2020, Art. 9(3).
16. Tobias Zuberbühler, Dieter Hofmann, et al., IBA Rules of Evidence: Commentary on the IBA Rules on the Taking of Evidence in International Arbitration 206 (2nd Ed. Schulthess Juristische Medien AG 2022)
17. Cherie Blair and Ema Vidak-Gojkovic, WikiLeaks and Beyond: Discerning an International Standard for the Admissibility of Illegally Obtained Evidence, 33(1) FILJ 235, 241 (2018).
18. Nicaragua v. United States of America, [1986] ICJ Rep 392.
19. Shubham Gandhi, Illegally Obtained Evidence In International Arbitration: Examining The Admissibility, 1 RFMLR 1, 6 (2021).
20. UNCITRAL Model Law, 1885 with amendments as adopted in 2006, Art. 34(2).
21. Gary Born, International Commercial Arbitration §8.02 (3rd ed. Wolters Kluwer 2021).
22. IBA Rules on the Taking of Evidence in International Arbitration 2020, Preamble.
23. Frédéric G. Sourgens, Kabir Duggal, et al., Evidence in International Investment Arbitration, 246 (Oxford University Press 2018).
24. Fabien Rutz, Admissibility of unlawfully obtained evidence in international arbitration in Switzerland, SAA CAS 1, 8 (2020).
25. Ferrari And Rosenfeld, Handbook Of Evidence In International Commercial Arbitration: Key Concepts And Issues 260 (Kluwer Law International 2022)
26. Peter Ashford, The Admissibility of Illegally Obtained Evidence, 85(4) IJAMDM 377, 380 (2019).
27. Shubham Gandhi, Illegally Obtained Evidence In International Arbitration: Examining The Admissibility, 1 RFMLR 1, 7 (2021).
28. Vidya Drolia v. Durga Trading Corporation, (2021) 2 SCC 1

महिला सशक्तिकरण की अवधारणा और भारत

श्रीमती कविता

सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र,,राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा

सारांश - महिला सशक्तिकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य महिलाओं को उनके अधिकारों और स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए सक्षम बनाना है। यह एक महत्वपूर्ण विषय है जो समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार करने के लिए काम करता है। इस शोध में महिला सशक्तिकरण का अर्थ, मुख्य उद्देश्य, उद्भव, लाभ, आवश्यक कदम, चुनौतियाँ आदि पर प्रकाश डाला गया है। नारी सशक्तिकरण ही किसी भी राष्ट्र को प्रेरित करने वाला प्रेरण पुंज है। यदि देश की नारी कमजोर है तो देश भी कमजोर है और नारी सशक्त है तो देश सशक्त है। देश की कुल आबादी लगभग आधा हिस्सा (48%) महिलाओं का है। स्पष्ट है कि भारत में महिलाएँ महत्वपूण भूमिका निभा रही हैं।

मुख्य शब्द - महिला सशक्तिकरण, घटक, उद्देश्य, चुनौतियाँ, समाधान।

प्रस्तावना

महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया महिलाओं की व्यक्तिगत चेतना और आत्मसम्मान की भावना से प्रारम्भ होती है और जीवन के विभिन्न पक्षों से संबंधित संसाधनों तक पहुँच और उन पर नियंत्रण स्थापित होने तक चलती रहती है। महिला सशक्तिकरण का आशय है कि महिलाओं हेतु सामाजिक सुविधाओं की उपलब्धता, राजनैतिक और आर्थिक नीति निर्धारण में भागीदारी, संसाधनों तक पहुँच, समानता का अधिकार।

महिला सशक्तिकरण वर्तमान में आवश्यक है क्योंकि यह सर्वविदित है कि हमारे समाज में वैदिक काल से लेकर आज तक महिलाओं के साथ भेदभाव किया जाता रहा है। विश्व के अधिकांश देशों में महिलाओं की दशा को लेकर सिद्धान्त और व्यवहार के बीच अंतर देखने को मिलता है। सदैव महिलाओं को उनके मूलभूत अधिकारों से वंचित किया जाता रहा है। इन समस्याओं के निराकरण हेतु महिलाओं का सशक्त व अपने अधिकारों के प्रति सजग होना आवश्यक है।

महिला सशक्तिकरणः परिभाषा

1. महिला सशक्तिकरणः "महिलाओं को उनके अधिकारों और स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए सक्षम बनाने की प्रक्रिया।" - संयुक्त राष्ट्र
2. महिला सशक्तिकरणः "महिलाओं को अपने जीवन के निर्णय लेने की क्षमता और स्वतंत्रता प्रदान करना।" - विश्व बैंक
3. महिला सशक्तिकरणः "महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार करने के लिए किए गए प्रयास।"- यूनेस्को
4. महिला सशक्तिकरणः "महिलाओं को अपने अधिकारों के लिए लड़ने और अपनी स्थिति में सुधार करने के लिए सक्षम बनाना। - ह्यूमन राइट्स वॉच
5. महिला सशक्तिकरणः 'महिलाओं की स्वायत्तता, स्वतंत्रता और समानता की प्राप्ति के लिए किए गए प्रयास। - भारत सरकार

महिला सशक्तिकरण के मुख्य घटक

1. शिक्षा
2. आर्थिक स्वतंत्रता
3. सामाजिक समानता
4. राजनीतिक भागीदारी
5. स्वास्थ्य और कल्याण
6. न्याय और अधिकार
7. सामाजिक सुरक्षा
8. आर्थिक अवसर

महिला सशक्तिकरण का उद्भव

महिला सशक्तिकरण का उद्भव एक लंबी और जटिल प्रक्रिया है, जिसमें कई ऐतिहासिक घटनाएं, आंदोलन और व्यक्तियों का योगदान है। यहाँ कुछ महत्वपूर्ण मील के पत्थर हैं-

1. पुनर्जागरण (16वीं शताब्दी): इस अवधि में महिलाओं की शिक्षा और सामाजिक स्थिति में सुधार के लिए पहले प्रयास हुए।
2. ओद्योगिक क्रांति (18वीं-19वीं शताब्दी): महिलाएं कारखानों में काम करने लगीं और उनकी आर्थिक स्वतंत्रता में वृद्धि हुई।
3. महिला अधिकार आंदोलन (1848-1920): अमेरिका और यूरोप में महिलाओं ने मतदान के अधिकार और समानता के लिए संघर्ष किया।
4. संयुक्त राष्ट्र की स्थापना (1945): संयुक्त राष्ट्र ने महिला अधिकारों को विश्व स्तर पर प्रोत्साहित किया।
5. महिला मुक्ति आदोलन (1960-1980): अमेरिका और यूरोप में महिलाओं ने समानता, शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया।
6. बीजिंग घोषणा (1995): संयुक्त राष्ट्र ने महिला अधिकारों के लिए एक वैश्विक घोषणा पत्र जारी किया।
7. संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्य (2015): महिला सशक्तिकरण को विश्व स्तर पर एक प्रमुख लक्ष्य बनाया गया।

भारत में महिला सशक्तिकरण का उद्‌भव

1. राजा राममोहन रॉय (1772-1833): उन्होंने महिला शिक्षा और विधवा पुनर्विवाह के लिए काम किया।
2. महात्मा गांधी (1869-1948): उन्होंने महिला अधिकारों और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया।
3. भारतीय संविधान (1950): इसमें महिलाओं को समानता और अधिकार दिए गए।
4. महिला सशक्तिकरण कार्यक्रम (1970-1980): भारत सरकार ने महिला सशक्तिकरण के लिए कई कार्यक्रम शुरू किए।

महिला सशक्तिकरण: उद्देश्य

1. महिलाओं को शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करना।
2. महिलाओं को समाज में समानता और न्याय प्रदान करना।
3. महिलाओं को राजनीतिक और सामाजिक निर्णय लेने में भागीदारी का अवसर प्रदान करना।
4. महिलाओं को हिंसा और भेदभाव से मुक्त करना।

महिला सशक्तिकरण: आवश्यक कदम

1. शिक्षा और जागरूकता कार्यक्रम।
2. आर्थिक अवसरों को प्रदान कराना।
3. सामाजिक और राजनीतिक भागीदारी।
4. कानूनी संरक्षण और न्याय।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के विचार

डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर महिला सशक्तिकरण के मजबूत समर्थक थे। उनका मानना था कि महिलाओं में जागृति आई तो वह अस्पृश्य समाज के लिए बड़ी क्रांति हो सकती है। उन्होंने महिलाओं की संगठित संस्था पर जोर दिया और कहा कि सामाजिक कुरीतियों को नष्ट करने में महिलाओं का बड़ा योगदान हो सकता है।

डॉक्टर अम्बेडकर ने महिला सशक्तिकरण के लिए कई कदम उठाए। उन्होंने 1938 में नागपुर में दलित महिलाओं के लिए रमाबाई अम्बेडकर महिला संघ की स्थापना की। इस संघ ने दलित महिलाओं के लिए रात्रि स्कूल शुरू करने का फैसला लिया।

इसके अलावा, डॉक्टर अम्बेडकर ने महिलाओं के अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी और उन्हें समाज में समानता के अवसर प्रदान करने के लिए काम किया। उन्होंने महिलाओं की शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता पर जोर दिया और कहा कि महिलाएं अपने पुरुष साथियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर सकती हैं।

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार -

1. महिलाओं में जागृति आई तो वह अस्पृश्य समाज के लिए बड़ी क्रांति हो सकती है।
2. महिलाओं की संगठित संस्था यर जोर देना चाहिए। महिलाओं को शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करनी चाहिए।

महिला सशक्तिकरण: लाभ

1. समाज में समानता और न्याय।
2. आर्थिक विकास और स्थिरता।
3. राजनीतिक और सामाजिक स्थिरता।
4. महिलाओं के स्वास्थ्य और कल्याण में सुधार।

महिला सशक्तिकरण: चुनौतियाँ

भारत में महिला सशक्तिकरण एक जटिल और बहुस्तरीय मुद्दा है। एक ओर महिलाएं अब पहले से अधिक शिक्षित हैं, आर्थिक रूप से स्वतंत्र हैं और राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में भाग ले रही हैं। लेकिन दूसरी ओर महिलाओं को अभी भी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है जैसे कि लिंग आधारित भेदभाव, घरेलू हिंसा और शिक्षा और रोजगार में असमानता।

भारत में महिला सशक्तिकरण की स्थिति में सुधार के लिए कई कदम उठाए गए हैं जैसे कि महिला आरक्षण विधेयक, महिला सशक्तीकरण कार्यक्रम और महिला अधिकारों की रक्षा के लिए कानूनी प्रावधान। फिर भी महिला सशक्तिकरण की दिशा में अभी भी बहुत काम करना शेष है।

1. लिंग आधारित भेदभाव: महिलाओं को अभी भी समाज में कई तरह के भेदभाव का सामना करना पड़ता है।
2. घरेलू हिंसा: महिलाओं को घरेलू हिंसा का सामना करना पड़ता है।
3. महिलाओं को शिक्षा और रोजगार में असमानता का सामना करना पड़ता है।

महिला सशक्तिकरण: समाधान

1. शिक्षा और जागरूकता: महिलाओं को शिक्षा और जागरूकता के माध्यम से सशक्त बनाना।
2. आर्थिक स्वतंत्रता: महिलाओं को आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करना।
3. राजनीतिक और सामाजिक भागीदारी: महिलाओं को राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में भाग लेने का अवसर प्रदान करना।

सकारात्मक परिवर्तन

1. शिक्षा में वृद्धि: महिलाओं की शिक्षा में वृद्धि हुई है जिससे उन्हें अपने जीवन में बेहतर अवसर मिल रहे हैं।
2. आर्थिक स्वतंत्रता: महिलाओं को आर्थिक स्वतंत्रता मिल रही है जिससे वे अपने जीवन के निर्णय ले सकती हैं।
3. राजनीतिक भागीदारी: महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी में वृद्धि हुई है जिससे वे अपने समुदाय में नेतृत्व की भूमिका निभा सकती हैं।
4. सामाजिक जागरूकता: महिला सशक्तिकरण के बारे में सामाजिक जागरूकता बढ़ी है जिससे लोग महिलाओं के अधिकारों के बारे में जागरूक हो रहे हैं।

भारत सरकार के द्वारा महिला सशक्तिकरण की दिशा में विभिन्न योजनाओं को संचालित किया जा रहा है-

1. महिला स्वयं सहायता समूह (एसएचजी) योजना
2. महिला उद्यमिता निधि योजना
3. प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना
4. महिला एवं बाल विकास (डब्ल्यूसीडी) मंत्रालय की योजनाएँ
    - बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना
    - सुकन्या समृद्धि योजना
    - इंदिरा गांधी मातृत्व सहयोग योजना
    - महिला शक्ति केंद्र योजना

निष्कर्ष -

विवेचन से स्पष्ट है कि महिला सशक्तिकरण एक सतत प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और व्यक्तिगत स्तर पर सशक्त बनाना है। इसके माध्यम से महिलाएँ अपने जीवन के सभी पहलुओं पर नियंत्रण प्राप्त कर सकती हैं। भारत में महिला सशक्तिकरण की दिशा में निरन्तर कार्य किया जा रहा है सरकार द्वारा महिलाओं की शिक्षा, स्वावलम्बन, आर्थिक स्वतंत्रता, स्वास्थ्य अधिकारों, सामाजिक रूढ़िवादिता को नष्ट करने के लिए अनेक योजनाएँ पंचायती, ग्रामीण और शहरी स्तरों पर संचालित की जा रही है। सरकार के साथ-साथ गैर सरकारी संगठनों द्वारा चलाए जा रहे अलग-अलग कार्यक्रम और पहल है जो इस लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में काम करते हैं। भारत में महिला सशक्तिकरण की दिशा में बहुत काम हो चुका है जिन्होंने हर साल लाखों महिलाओं के जीवन पर सकारात्मक प्रभाव डाला है। हालांकि अभी भी बहुत प्रगति की जानी शेष है।

संदर्भ सूची

1. राकेश कुमार आर्य (2020) - महिला सशक्तिकरण और भारत, डायमण्ड पॉकेट बुक्स लिमिटेड (दिल्ली)
2. योगेन्द्र शर्मा (2022) - महिला सशक्तिकरण दशा और दिशा, लोकभारती प्रकाशन (दिल्ली)
3. राखी रघुवंशी (2018) - महिला सशक्तिकरण प्रकृति एवं स्वरूप, अकेडमिक पब्लिकेशन (डच)
4. रैपापार्टे, जे. (1984), सशक्तिकरण में अध्ययन: मुद्दे का परिचय, 'मानव सेवा में रोकथाम', न्यूयार्क पब्लिकेशन, पृ.सं. 3-7
5. Beijing (1995) – 'World Conference on Women', conference report A/conf.177/20/rev.1, www.unwomen.org
6. Hashmi, Schuler and Reelay (1996) : 'Self help groups and Grameen Bank What are theDifference', Sage publication, vol 2 pp. 37
7. IFAD (2013) Annual Report : Rural Women Development and International Development Agencies, www.ifad.org
8. Wollstonecraft Mary 1792 'A Vindication of the Rights or Women' Penguin classics revised edition 2, pp. 216-220

पूर्विकता का सिद्धांत एवं इसकी उपयोगिता

श्री सुधांशु शेखर

बिसेन एलएलएम, नेट-जेआरएफ

प्रस्तावना:

पूर्विकता के सिद्धांत की अवधारणा संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 48 द्वारा निर्धारित की गई है।

- यह धारा क्वि प्रायर एस्ट टेम्पोर पोटियोर एस्ट ज्यूर (qui prior est tempore potior est jure) कहावत पर आधारित है, जिसका अर्थ है कि जो समय से पहले होता है, वह कानून में बेहतर होता है। अंतरक संपत्ति के साथ किसी भी बाद के लेनदेन द्वारा अंतरिती के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाल सकता है।
- संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 48, प्राथमिकता के सिद्धांत को बताती है. यह सिद्धांत, 'क्वि प्रायर एस्ट टेम्पोरे पोटिओर एस्ट जूर' (जो समय में पहले है वह कानून में बेहतर है) कहावत पर आधारित है।
- इस धारा के मुताबिक, जब एक ही संपत्ति को कई बार हस्तांतरित किया जाता है, तो पहले हस्तांतरित व्यक्ति के अधिकार बाद के हस्तांतरित व्यक्ति के अधिकारों पर प्रबल होते हैं.
- अगर कोई व्यक्ति अलग-अलग समय पर एक ही संपत्ति में या उस पर अधिकार सृजित करने का दावा करता है, तो बाद में सृजित अधिकार पहले सृजित अधिकारों के अधीन होंगे।
- इस धारा के मुताबिक, अगर किसी संपत्ति पर बंधक है, तो पहले बंधककर्ता के हित दूसरे बंधककर्ता पर प्रबल होंगे।
- इस धारा के तहत, अगर कोई व्यक्ति किसी संपत्ति पर बाद में लेन-देन करता है, तो इससे हस्तांतरक के अधिकारों पर कोई असर नहीं पड़ सकता।

पूर्विकता का सिद्धांत:

- यह सिद्धांत प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों से लिया गया है जिसमें कहा गया है कि यदि दो अलग-अलग व्यक्तियों के पक्ष में अधिकार अलग-अलग समय पर स्थापित किये जाते हैं, तो समय के संदर्भ में लाभ प्राप्त करने वाले को, कानून के अनुसार भी लाभ प्राप्त होगा। हालाँकि यह सिद्धांत केवल उन मामलों में लागू होता है जहाँ शामिल पक्षों की परस्पर विरोधी इक्विटी अन्यथा समान होती हैं।
- यह धारा एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत प्रस्तुत करती है कि कोई व्यक्ति अपने पास पहले से मौजूद उपाधि से अधिक बड़ी उपाधि का दावा नहीं कर सकता।
- जब कोई अंतरक एक ही संपत्ति को एक से अधिक अंतरिती के पक्ष में अंतरित करता है, तो प्रत्येक अंतरिती पूर्व अंतरिती के रूप में अपने अधिकार के साथ संपत्ति का उपभोग करेगा।
- इस सिद्धांत के तहत, यदि किसी व्यक्ति ने पहले से ही संपत्ति का अंतरण कर दिया है, तो वह अपने अनुदान को नजरअंदाज नहीं कर सकता है और संपत्ति को उन अधिकारों से मुक्त नहीं मान सकता है जो पहले लेनदेन में स्थापित किये गए थे।

उदाहरण:

- X स्थावर संपत्ति का मालिक है। उसने जून के महीने में उस संपत्ति को Y के पास बंधक रख दिया। बाद में जुलाई में X ने उसी संपत्ति को Z को अंतरित कर दिया। इस मामले में, सभी आवश्यक कार्यवाहियाँ पूर्ण हो चुकी हैं और पूर्विकता के नियम के अनुसार, Y को से पहले संपत्ति के सभी अधिकार मिलेंगे। ऋण के भुगतान में चूक की स्थिति में, बंधकदार संपत्ति बेच सकता है क्योंकि पाश्चिक अंतरण पहले वाले अंतरण के अनुसार है।

सिद्धांत की अनिवार्यताएँ:

यह सिद्धांत TPA की धारा 48 के तहत प्रदान किया गया है और इसके संघटक हैं:

- यह केवल स्थावर संपत्ति पर लागू होती है।
- एक अंतरक और एक से अधिक अंतरिती होने चाहिये।
- अंतरण अलग-अलग समय पर किया जाना चाहिये था और अंतरिती के पास अधिकार सृजित करने चाहिये थे।

निर्णयज विधि:

- दुरईस्वामी रेड्डी बनाम अंगप्पा रेड्डी (1945) मामले में मद्रास उच्च न्यायालय ने माना कि भले ही पूर्व अंतरक के दस्तावेज बाद में पंजीकृत हों, फिर भी उसे बाद के अंतरिती पर प्राथमिकता दी जाएगी।
    - यह बात तब भी सत्य है जब बाद वाले अंतरिती को पिछले लेनदेन के बारे में कोई जानकारी नहीं थी।
- SFL इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम रिलायंस कैपिटल लिमिटेड (2015): कंपनी अधिनियम, 1956 में धारा 529। विशेष रूप से बंधक संपत्तियों पर प्राथमिकताओं के अधिकार प्रदान नहीं करती है। ऐसी परिस्थितियों में TPA की धारा 48 लागू होती है। पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने तद्नुसार माना कि पहले प्रभारी धारक का दावा दूसरे प्रभारी धारक के दावे पर प्रबल होगा।
- चौथ मल बनाम हीरा लाल

  इस मामले में, जनवरी 1932 में एक प्रतिवादी के पक्ष में भूमि की बिक्री का समझौता निष्पादित किया गया था, हालांकि, बिक्री विलेख मई 1932 में निष्पादित किया गया था। निष्पादन की अवधि के दौरान यानी फरवरी 1932 में, संपत्ति के मालिक ने वादी के पक्ष में उसी भूमि का एक उपभोक्ता बंधक निष्पादित किया। इस मामले में, अदालत ने माना कि उपभोक्ता बंधक को बाद के बिक्री विलेख पर प्राथमिकता दी जाएगी। अदालत ने यह देखा कि यदि पक्षकारों ने संपत्तियों का कब्जा हस्तांतरिती को सौंपने का इरादा किया और उसे सौंप दिया, तो बिक्री विलेख को छोड़ देने मात्र से कोई प्रभाव या परिणाम नहीं होगा। यह माना गया कि केवल हस्तांतरण से संपत्ति में कोई अधिकार या शीर्षक नहीं मिलता है। यह विलेख के निष्पादन की तिथि पर निर्भर करता है। विलेख पंजीकृत होना भी अनिवार्य नहीं है क्योंकि इससे कोई अधिकार नहीं बनता है।
- आईसीआईसीआई बैंक बनाम सिडको लेदर (2006) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने परिसमापन की स्थिति में किसी कंपनी के सुरक्षित लेनदारों के बीच परस्पर प्राथमिकता पर विस्तार से चर्चा की है। न्यायालय ने माना कि संसद को टीपीए की धारा 48 की शर्तों पर विचार करना चाहिए। उक्त प्रावधान के अनुसार, पहले भार धारक के दावे को दूसरे भार धारक के दावे पर प्राथमिकता दी जाएगी, जो बंधककर्ता की संपत्ति से वसूल किया जाएगा, पहले भार धारक को पहले भुगतान किया जाएगा। न्यायालय ने यह भी कहा कि सामान्य कानून के तहत प्रदान किया गया विशिष्ट प्रावधान उन सभी मामलों में लागू होगा, जहाँ विशेष कघनून में विभिन्न प्रकार के सुरक्षित लेनदारों के बीच संविदात्मक और अन्य वैधानिक अधिकारों के लिए कोई विशेष प्रावधान शामिल नहीं है।

पूर्विकता के सिद्धांत के अपवाद:

पूर्व बंधक का स्थगन:

- TPA की धारा 78 पूर्विकता के सिद्धांत का अपवाद है।
    - पूर्व बंधक का स्थगन- जहाँ कि किसी पूर्व बंधकदार के कपट, मिथ्या व्यपदेशन या घोर उपेक्षा से कोई अन्य व्यक्ति बंधक-संपत्ति की प्रतिभूति पर धन उधार देने के लिये उत्प्रेरित हुआ है, वहाँ वह पूर्व बंधकदार उस पाश्चिक बंधकदार के मुकाबले में स्थगित कर दिया जाएगा।
    - इस प्रावधान के तहत, यदि पूर्व बंधकदार कोई धोखाधड़ी, घोर उपेक्षा या दुर्व्यपदेशन करता है और किसी व्यक्ति को उसी संपत्ति के लिये प्रतिभूति राशि देने के लिये उत्प्रेरित करता है, तो पूर्व बंधकदार को पाश्चिक बंधकदार के लिये स्थगित कर दिया जाता है।
    - परिणामस्वरूप, पाश्चिक बंधकदार को पूर्व बंधकदार की तुलना में संपत्ति के अधिकारों में प्राथमिकता मिलेगी।
    - पूर्व अंतरण में विधिक प्रक्रिया का अननुपालन करना:
    - यह मानते हुए कि पूर्व अंतरण किया गया है और कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुरूप नहीं है, तो पाश्चिक अंतरण को पूर्व अंतरण से पहले के सभी अधिकार दिये जाएँगे।
    - उदाहरण के लिये, A ने 5 वर्ष की अवधि के लिये ठ के पक्ष में स्थावर संपत्ति का पट्टा विलेख निष्पादित किया, लेकिन इसे पंजीकृत नहीं कराया, जो अनिवार्य था। बाद में, A ने वही संपत्ति C को बेच दी। यहाँ,C के अधिकारों को B के अधिकारों पर प्राथमिकता दी जाएगी।

विबंध:

- इस स्थिति के लिये, यदि पूर्व अंतरिती को पाश्चिक अंतरण के बारे में कुछ जागरूकता थी, तो पाश्चिक अंतरण को प्राथमिकता मिलेगी।

पंजीकरण द्वारा:

- प्रत्येक लिखत अपने निष्पादन की तिथि से अपना अनुसरण शुरू करता है। ऐसी स्थिति में जहाँ पाश्चिक विलेख एक ही तिथि पर किये जाएँ और निष्पादन का आदेश अस्पष्ट हो, तो सभी विलेख एक साथ किये जाएँगे।
- इसके अतिरिक्त, ऐसी स्थितियों में जहाँ दो विलेखों में अलग-अलग तिथियाँ होती हैं और उन्हें विभिन्न दिनों में पंजीकृत किया जाता है, तो ऐसी स्थिति के लिये, प्राथमिकता विलेखों की तिथियों पर होगी, न कि उनकी विशेष पंजीकृत तिथियों पर।

सूचना द्वारा:

- सूचना की उपस्थिति का तात्पर्य तथ्यों से परिचित होना है। इसलिये, जब एक वास्तविक संविदा, चाहे मौखिक हो या लिखित, संपत्ति की बिक्री के लिये बनाया गया है, और आगे तीसरा पक्ष पूर्व आदान-प्रदान की सूचना के संबंध में संपत्ति खरीदता है, पूर्व आदान-प्रदान के तहत दावा करने वाले पक्ष की उपाधि को पाश्चिक खरीदार पर प्राथमिकता मिलेगी। हालाँकि, समय पर जो आदान-प्रदान किया गया है वह वास्तविक होना चाहिये।

- रजिस्ट्रेशन अधिनियम, 1908 की धारा 50 भी पंजीकृत दस्तावेज के विभिन्न वर्गीकरण प्रदान करती है जो अपंजीकृत दस्तावेज के विरुद्ध प्रभाव डालने के लिये स्थावर संपत्ति के संबंध में है। नतीजतन, उन स्थितियों में जहाँ पंजीकृत विलेख के धारक को पूर्व अपंजीकृत विलेख की सूचना थी, निष्पादन के समय, पाश्चिक धारक के पंजीकृत विलेख को उसके विलेख के कारण किसी अपंजीकृत विलेख के अगले धारक पर प्राथमिकता देता है क्योंकि उसे पंजीकृत नहीं किया जाना चाहिये।

न्यायालय द्वारा:

- यदि या जब न्यायालय आगामी अंतरण या दूसरा अंतरण लेने का आदेश देता है या डिक्री पारित करता है, तो ऐसा अंतरण पिछले अंतरण पर प्रबल होगा और बाद के अंतरण के अधिकारों को प्राथमिकता दी जाएगी। अत: ऐसे मामलों में पूर्विकता का नियम लागू नहीं होगा।

निष्कर्ष:

धारा 48 न्यायालय को उन स्थितियों में निर्णय लेने में सहायता करती है जहाँ स्थावर संपत्ति की बिक्री से अधूरे या परस्पर विरोधी अधिकार उत्पन्न होते हैं। यह किसी विशेष संविदा या आरक्षण के अभाव में पूर्व अंतरिती के अधिकारों की रक्षा करता है।

संदर्भ

1. *https:// Indianlegalsolution.com/the-doctine-of-priority-in-tpa-1882/*
2. *https://www.studocu.com/in/document/karnataka-state-law-university/property-law/doctline-of-priority/8790100*
3. *https://thenationaltv.com/Tech/doctline-of-priority-meaning-under-property-law*
4. *https://www.pathlegal.in/Doctrines—principles-udner-the-Property-Laws-blog-922*
5. *https://www.linkedin.com/palse/doctline-priorty-rajesh-a/*
6. *https://papers.ssrn.com/sol3/papers.cfm?abstract_id=3859143&download=yes*

हिन्दी कथा साहित्य और किन्नर विमर्श

डॉ० निधि श्रीवास्तव

सहायक आचार्य - हिन्दी विभाग कौशाम्बी डिग्री कालेज, कौशाम्बी

हिन्दी साहित्य के विशाल धरातल का एक हिस्सा 'किन्नर साहित्य' जिसको आज तक अनछुआ पहलू समझकर जिसे हाशिये से भी छोड़ दिया गया हो ऐसे 'किन्नर साहित्य' पर कलम के कलाकारों का ध्यान अब केन्द्रित हो चुका है। क्योंकि यह साहित्य एक ऐसा साहित्य है कि जिसे 'किन्नर विमर्श' के साथ जोड़कर उसमें किन्नरों की मात्र वेदना को ही नहीं अपितु उसके प्रति संवेदना को भी उजागर किया गया है।

प्रस्तावना

'किन्नर' अर्थात् 'हिजड़ों' की कई श्रेणियाँ होती हैं। हिजड़ों के लिए 'किन्नर' शब्द परिष्कृत शब्दावली में प्रयुक्त होता है। जिसे समाज ने 'तीसरी' दुनिया के रूप में पहचान दे दी है। ऐसे 'किन्नर' शब्द के अलग जगह पर, अलग समाजों और भाषाओं में विविध नाम हैं। 'हिजड़ा' मूल उर्दू शब्द है। यह भी 'हिजर' इस अरेबिक शब्द से आया हुआ है। 'हिजर' यानि अपना समुदाय छोड़ा हुआ। यानि स्त्री-पुरुषों के समाज से बाहर निकलकर स्वतंत्र समाज बनाकर रहनेवाला। पूरे देश में हिजड़ा समाज का स्थान कई जगह पर मिल जाता है। अलग-अलग भाषाओं में उसके लिए अलग-अलग शब्दों का प्रावधान है। अलग-अलग राज्यों के हिसाब से उनका इतिहास और संस्कृति भी जरा अलग है। ''उर्दू और हिन्दी में 'हिजड़ा' शब्द है। इसके साथ ही उर्दू में 'ख्वाजासरा' भी कहा जाता है हिजड़ों को। अपने प्राचीन ग्रंथों में 'किन्नर' शब्द की संकल्पना है। इस वजह से हिजड़ों को हिन्दी में 'किन्नर' भी कहते हैं।[1]

किन्नर' शब्द भले ही किसी जाति ''किन्नोर' विशेष के साथ जुड़ा हो, परंतु यहाँ 'किन्नर' शब्द उसके साथ जोड़ा गया है जिसका समावेश जाति से बेदखल किए गये उस इन्सान के लिए है जिसे 'थर्ड जेन्डर' के रूप में पहचाना गया है। यह पहचान ऐसे लोगों के साथ जुड़ी है जो न स्त्री है और न ही पुरुष। हमारा समाज स्त्री और पुरुष इन दो स्तंभों पर खड़ा है। जिसे समाज ने स्वीकृत किया है। समाज के साथ-साथ कला और साहित्य के अंतर्गत भी किन्नर समाज हमेशा ही उपेक्षित रहा है। फिल्मों के माध्यम से भी किन्नरों के कई प्रसंग, उनके किरदारों का चरित्रांकन किया गया है लेकिन उसे किसी संजीदा किस्म के रूप में नहीं। कुछ अपवाद के रूप में छोड़कर अगर कहा जाये तो ऐसे चरित्रांकन का प्रयोग हास्य-व्यंग्य के लिए ही खास तौर पर किया गया है।

हिन्दी साहित्य में किन्नर विमर्शः-

हिन्दी साहित्य में किन्नर विमर्श अभी अपरिपक्व अवस्था में है। समाज की वैचारिकी इन्हें स्वीकारने में हिचक रही है। आधुनिक दौर में उपजे 'विमर्श' के और अस्मिताओं के आंदोलनों का प्रभाव किन्नरों की स्थिति पर भी पड़ा है। किन्नरों की मानसिक प्रताड़ना को साहित्य के माध्यम से समाज के सामने रखा जाने लगा है। हिन्दी साहित्य में 'किन्नर विमर्श' अभी-अभी सामाजिक समानता के अधिकार दिलाने में साहित्य का हाथ काफी महत्वपूर्ण भूमिका का रूप निभा सकता है। अगर इसमें आवश्यकता है तो इसके लेखन की, ऐसे लेखन पर स्वतंत्र विमर्श की।

बहुवर्गीय सामाजिक संरचना के स्तर पर मूल संरचना में हमारा समाज स्त्री और पुरुष इन दो मुख्यधारा के रूप में बँटा हुआ है। इन दो धारा के बीच एक ऐसा वर्ग है जो न स्त्री है और न पुरुष, किन्तु फिर भी वह समाज का एक अभिन्नअंग रहा है, जिसे समाज ने हमेशा तिरस्कार की नजर से ही देखा है। यह ऐसा समुदाय है जिनकी स्थिति अत्यंत दयनीय है, उनकी झोली में असीम पीड़ा के अलावा और कुछ नहीं है, जिससे हमारा समाज मीलों दूर है।

'यमदीप' उपन्यास का कथानक हिजड़ा नाजबीबी के इर्द-गिर्द घूमता है। वह इस उपन्यास की नायिका है। जब से उनका जन्म हुआ तब से लेकर घर-परिवार सब परेशान से हैं। क्योंकि बच्चा हिजड़ा है, फिर भी मां तो उनसे बहुत प्यार करती है। वह पढ़ाई में तेज थी लेकिन आठवीं में पढ़ते वक्त कुदरत के करिश्मे के कारण आगे नहीं पढ़ पाई। क्योंकि उसके शरीर में स्त्री पुरुष के अंग दिखाई देने लगे। समाज के डर के कारण मां-बाप हमेशा सोच रहे थे कि इसका क्या करें? इसके समाधान हेतु वह हिजड़ों की दुनिया में आ गयी। इस उपन्यास में नाजबीबी के जीवन से जुड़ी अनेक समस्याओं का चित्रण किया ही है।[2]

सन् 2010 में प्रदीप सौरभ ने 'तीसरी ताली' उपन्यास के माध्यम से किन्नरों के जीवन के तहों की खुलकर अभिव्यक्ति की है। इस उपन्यास की कथा का प्रारंभ दिल्ली की सिद्धार्थ हाउसिंग इन्कलेव सोसायटी से कर के इसकी परिणति किन्नरों के तीर्थस्थल कूवगम में करते हैं। और इस बहाने वे कहे जाने वाले सभ्य समाज केसाथ-साथ लेरिवयंस आदि की भी चर्चा करते हैं। यह उपन्यास ऐसे अवांछित प्रसंग को उठाता है, जिन पर बात करना भी सभ्य समाज को गवारा नहीं है। इस उपन्यास में समाज में फैली तीसरे लिंग के प्रति अवहेलना, तिरस्कार, अपमान आदि को उभारकर इस के प्रति लोगों के जीवन की बारीकियों को खोलने का प्रयास किया गया है। प्रदीप सौरभ ने किन्नरों को कुछ धंधे को अपनाने की मजबूरी के साथ उससे जुड़ी समस्याओं को भी निरूपित किया है।[3]

महेन्द्र भीष्म का ''किन्नर कथा' एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। यह सन् 2014 में प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास में लेखक ने एक राजवंश में जन्मी हुई किन्नर लड़की सोना के जीवन संघर्ष की कथा का निरूपणकिया है। इस उपन्यास में किन्नरों की समस्याओं, उनके अधिकारों की उपेक्षा तथा झूठी शान के नाम पर पारिवारिक सदस्यों द्वारा सोना उर्फ चंदा तथा तारा से किए गए अन्याय को सामने लाया गया है।[4]

'किन्नर कथा' के बाद एक नया उपन्यास 'मैं पायल' सामने आया है। जो एक नए विषय, समाज में उपेक्षित, उपहास के पात्र माने जाते वर्ग हिजड़ाओं, जिन्हें परिमार्जित भाषा में किन्नर कहा जाने लगा है, उनकी वेदना, दुष्वारियों, परिवार-समाज में उनके प्रति नजरिये की अंतर्कथा इस उपन्यास में है। परिणामत: यह उपन्यास पाठक के मन को किन्नरों की असीम पीड़ा का अनुभव कराते हुए झकझोर कर रख देने की क्षमता रखता है। वस्तुत: लेखक उपन्यास के प्रारंभ से अंत तक पाठक को भावों की सरिता में से विप्लावित करने की क्षमता के परिपूर्ण हैं। इस क्षमता के साथ ही वे किन्नरों की समस्याओं का अद्‌भुद चित्रित करते हैं।

सुविख्यात लेखिका निर्मला भुराड़िया का उपन्यास 'गुलाम मंडी' ऐसा उपन्यास है, जिसमें गहनतम संवेदना के स्तर पर गुलामी के दंश को बड़ी कुशलता के साथ अभिव्यक्त किया है। उपन्यासकार की इस एक ज्वलंत विषय के बहाने कोशिश है कि इसके आसपास और साथ-साथ जो भी विकराल समस्याएँ हैं उन्हें समेटा जाए। 'गुलाम मंडी' में समाज के सर्वाधिक तिरस्कृत वर्ग किन्नर से लेकर जिस्म फरोशी और मानव तस्करी की निर्मोही और भयावह दुनिया को भी इसमें उकेरा गया है।

ललित शर्मा की रतियावन की चेली', डॉ. लवलेश दत्त की 'नेग', गरिमा संजय दुबे की 'पन्ना बा', श्रीकृष्ण सैनी की 'हिजड़ा', पूनम पाठक की 'किन्नर', पारस दासोत की 'गलती जो माफ नहीं' कहानियों का कलेवर लघु है। सभी का कथानक किनर जीवन पर आधारित है। रतियावन की चेली' कहानी यद्यपि आत्मकथात्मक शैली में हिजड़ों पर ही लिखी है पर इसमें बाकी समस्याओं के साथ बताया है कि समाज भले ही तिरस्कार करे, पर यदि हम अपना स्वभाव नहीं बदलेंगे तो समाज भी सम्मान नहीं करता है। शर्त यह है कि स्वभाव व व्यवहार सकारात्मक हो। पार्वती इसका अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है।[5]

इसी प्रकार महेंद्र भीष्म की त्रासदी हिजड़ों की त्रासदी की कहानी है। वहीं संजय गरिमा दुवे की कहानी 'पन्ना बा' संस्मरणात्मक कहानी है जो किन्नर योनि के प्रति समाज की जिज्ञासा, उनकी विविध मान्यताओं, समाज की नफरत को प्रस्तुत करने के साथ आह्वान करती है कि समाज इन्हें सम्मान व जीने का अधिकार दे। श्रीकृष्ण सैनी की हिजड़ा कहानी में उनके जीवन के विविध पक्षों को उकेरा है।

अंजना वर्मा की कहानी 'कौन तार से बीनी चदरिया' हिजड़ों पर आधारित कहानी है। इसमें कथाकार ने मानवीय संबंधों की सहज बुनावट की है। इसकी कथावस्तु में हिजड़ों की समस्या को तो उठाया ही गया है साथ ही उनके परिवार की दयनीयता को भी उभारा है जो समाज से नकारे जाने के भय से अपनी जन्मी संतानों से दूर हो जाते हैं, दिन के उजाले में उनसे संबंध भी नहीं रखते। हिजड़ों का जन्म भी तो समाज से ही होता है। उनके भी माता-पिता होते हैं, एक अपूर्णता का अहसास उनसे माता-पिता का प्यार, दुलार, परिवार और समाज सब कुछ छीन लेता है। समाज उनको हेय दृष्टि से देखता है।

संकल्प मार्मिक कहानी हैं इसका कथ्य भी किन्नर जीवन पर आधारित है। यह एक ऐसे किन्नर को केंद्र में रखकर लिखी गयी है। जो अविकसित जननांग के साथ पैदा होता है। उसे शल्य-क्रिया द्वारा स्त्री या पुरुष में तब्दील किया जा सकता है। माधुरी यानी मधुर के साथ समाज में वही व्यवहार होता है जो अन्य किन्नरों के साथ किया जाता है। धनाभव, निर्धनता, विपरीत परिस्थितियाँ सभी से लड़कर स्वयं कठिन परिश्रम कर पैसा एकत्रित कर शल्य-क्रिया द्वारा अपने को स्त्री शरीर में परिवर्तित करा किन्नरों के अभिशप्त जीवन से मुक्ति पा जाती है। इस प्रकार हम देखते है कि साहित्य में भी किन्नर उपेक्षित ही रहे हैं।

निष्कर्ष

हिन्दी साहित्य के वट वृक्ष में से एक छोटी-सी साख जिनकों वर्तमान आधुनिक साहित्य में थोड़ी-सी ही सही पर कहीं पर तो इसे जगह देने वाला हिन्दी साहित्य एवं साहित्यकारों ने 'किन्नर-साहित्य' को विमर्श के रूप में उजागर किया है। इसमें उपरोक्त उपन्यासों, कहानियां, अन्य पत्र-पत्रिकाओं के लेख, संपादकीय विवेचनों, आत्मकथाओं आदि के रूप में इस किन्नरों से जुड़े हुए पक्ष को समाज की उस अनछुई गहराई तक पहुँचने का प्रयास किया गया है। यह प्रयास मासज में किन्नरों की स्थिति को सुधारने के लिए यह प्रकाश स्तम्भ का कार्य करेगा और साहित्यिक सुधिजनों के मध्य साहित्यिक-बौद्धिक अभिरूचि उत्पन्न करने वाला मील का पत्थर सिद्ध होगा। समाज का ही एक अभिन्न अंग मानकर मानवीय समुदाय में उसको अपना अस्तित्व महसूस हो इसी उद्देश्य से इस विमर्श की ओर प्रकाश डाला गया है।

संदर्भ

1. वाणी प्रकाशन समाचार, पत्रिका-दिसम्बर-2017, पृ0 4।
2. माधव, नीरजा, यमदीप- सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली-2009, पृ0 12।
3. सौरभ, प्रदीप, तीसरी ताली- वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2011, पृ0 178।
4. भीष्म, महेन्द्र, किन्नर कथा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2014, पृ0 18।
5. वाङ्मय (त्रैमासिक हिंदी पत्रिका): खण्ड-एक, थर्ड जेंडर,: हिन्दी कहानियाँ।

वैश्वीकरण परिपेक्ष्य में नयी शिक्षा नीति 2020

विभा कुमारी

शोध-छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, ऊ.प्र.

शोध-सार

शैक्षिक वैश्वीकरण का अर्थ शिक्षा के फैलाव एवं विस्तार से है। शिक्षा के क्षेत्र में विस्तार करना ही शैक्षिक वैश्वीकरण है। शिक्षा के वैश्वीकरण द्वारा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की व्यवस्था करना आसान हो जाएगा। इसके अन्तर्गत विश्व व्यवस्था के बारे में अवलोकन करते हुए नयी शिक्षा नीति का अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा है? भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर प्रभाव, उद्देश्य और कमियाँ के बारे में प्रकाश डालेंगे।

मूल-शब्द:- नयी शिक्षा नीति, विश्व व्यवस्था, अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था, अर्थव्यवस्था, समाजवादी देश

प्रस्तावना

विश्व व्यवस्था को समझने के लिए इसको चार भागों में विभाजित करते हैं-

1. पूँजीवादी देश: (1st World) (प्रथम विश्व)

इसके अंतर्गत हम पूँजीवादी देशों को सम्मिलित करते हैं, जो कि आर्थिक रूप से सम्पन्न हैं और उनकी अर्थव्यवस्था मजबूत होती है। वैसे देश सामाजिक हित को ज्यादा तरजीह ना देकर व्यक्ति के हितों को ज्यादा बल देते हैं। इसके अन्तर्गत हम संयुक्त राज्य अमरीका को ले सकते हैं।

2. समाजवादी देश (2nd World): (द्वितीय विश्व)

समाजवादी देश के अन्तर्गत उन देशों को सम्मिलित किया जाता है, जो कि व्यक्तिगत हितों से ज्यादा सामाजिक हित पर ज्यादा बल देते हैं। इनका बल सामाजिक कल्याण पर जोर देना होता है। 1990-1991 में सोवियत संघ के विघटन के पश्चात् समाजवाद का लगभग अन्त हो चुका है। इसके अन्तर्गत हम क्यूबा को सम्मिलित कर सकते हैं।

3. तृतीय विश्व: (अल्पविकसित/विकासशील देश)

इसके अन्तर्गत हम अंग्रेजों के औपनिवेशिक शासन से 1950 के दशक में आजाद हुए देशों को सम्मिलित करते हैं। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की स्थापना 1961 ई० में की गई है।

4. चतुर्थ विश्व (खाड़ी देश)

इसके अन्तर्गत हम ऐसे देशों को सम्मिलित करते हैं जो कि आर्थिक रूप से सम्पन्न है, लेकिन वे अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य देशों पर निर्भर है। इसके अन्तर्गत सऊदी अरब, ईरान और इराक को सम्मिलित करते हैं।

1990 ई० के पूर्व विश्व दो-ध्रुवीय व्यवस्था में विभाजित था, लेकिन 1990 ई० से 2000 ई० तक एक-ध्रुवीय विश्व व्यवस्था के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था दृष्टिगोचर हो रही थी, लेकिन वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था दृष्टिगोचर हो रही थी, लेकिन वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था बहु-ध्रुवीय की ओर जा रहा है। आज शक्ति का केन्द्रीकरण एक देश में केन्द्रित ना होकर विभिन्न देशों में विभाजित है।

वैश्वीकरण और शिक्षा:

शैक्षिक वैश्वीकरण का अर्थ है शिक्षा के फैलाव एवं विस्तार से है। शिक्षा के क्षेत्र का विस्तार करना ही शैक्षिक वैश्वीकरण है। शैक्षिक वैश्वीकरण का आशय तकनीकी, आर्थिक, ज्ञान, नैतिक मूल्यों एवं अपने विचारधारा को विश्व में प्रचार-प्रसार करना है।

वैश्वीकरण में एक देश अपनी गतिविधियों से समस्त विश्व को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। अगर किसी देश में गोरे और काले लोगों में असमानता होती है या देश के नागरिकों के मौलिक अधिकारों का हनन होता है तो वह समस्या संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाया जाता है। जहाँ सभी देश के प्रतिनिधि होते हैं। जिस कारण से इस समस्या का वेश्वीकरण हो जाता है, अर्थात् अब यह समस्या सिर्फ एक देश की नहीं अपितु विश्वभर की हो जाती है।

शैक्षिक वैश्वीकरण के उद्देश्य:

शैक्षिक वैश्वीकरण के माध्यम से विश्व में एकजुटता लाना है जिससे वैश्विक समस्याओं का सामना मिलकर किया जा सके। इसका मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार है-

- ज्ञान और आर्थिक स्रोतों का खोज एवं विस्तार करना।
- विश्व में उत्पन्न वैश्विक समस्याओं का समाधान करना है।
- अन्तर्राष्ट्रीय सम्प्रभुता की रक्षा करना एवं विश्व में शान्ति व्यवस्था कायम करना।

शैक्षिक वैश्वीकरण क्या है?

एक देश की शिक्षा का विस्तार अन्य देशों में भी करना शैक्षिक वैश्वीकरण का एक भाग है। संयुक्त राष्ट्र संघ में निरंतर शिक्षा से सम्बन्धित सम्मेलन होते रहते हैं जिसमें शिक्षा के वैश्वीकरण को लेकर सभी देशों के प्रतिनिधि विचार-विमर्श करते रहते हैं।

- Digital Learning Week (डिजिटल शिक्षण सप्ताह मुख्यालय), 2-5 सितंबर 2024, यूनेस्को, हेडक्वार्टर, पेरिस
- International Literary Day (अतर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस), 8 सितम्बर
- पेरिस 2024: यनेस्को ने देशों से शारीरिक शिक्षा में और अधिक निवेश करने का आह्वान किया।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा निरंतर प्रयास किया जा रहा है।

वैश्वीकरण का भारतीय शिक्षा प्रणाली पर प्रभाव:

सदियों पहले चलने वाली हमारी गुरुकूल शिक्षा पद्धति थी। गुरुकूल पद्धति विख्यात थी जहाँ प्रत्येक स्वदेशी तथा विदेशी लोग भी आया करते थे। तक्षशिला और नालन्दा विश्वविद्यालय इसके उदाहरण है।

भारत के महान गणितज्ञ आर्यभट्ट, नागार्जुन, महर्षि चरक, पतंजलि ऋषि इत्यादि ने दुनिया को नये अविष्कार दिये हैं। वर्तमान समय में डिजिटल शिक्षा को बढ़ावा दिया जा रहा है।

आजादी के समय से 2020 तक Higher Education भारत के उच्चतर शिक्षा संस्थानों Institution in India में जो विकास हुआ उसका एक डाटा बनाना चाहता हूँ।

	1950&51	2020
IITs	0	20
IIMS	0	20
AIIMS	0	16
Central Universities	28	53
State Universities	2	412
Private Universities	0	361

संयुक्त राष्ट्र संघ में शिक्षा के वैश्वीकरण को लेकर निरंतर सम्मेलन होते रहते हैं।

- वैश्वीकरण का शिक्षा का प्रभाव UNO के द्वारा Digital Education से Quality Education को बढ़ावा मिलता है।
- वर्तमान समय में अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव बढ़ा है। स्वयं प्रभा शिक्षा वाहनी जैसे Digital Forum के माध्यम से शिक्षा दी जाती है।
- नयी शिक्षा नीति, 2020 के द्वारा चार वर्षीय डिग्री कोर्स की व्यवस्था की गई है।
- अन्तर्विषयक उपागम अध्ययन को बढ़ावा दिया गया है।

वैश्वीकरण क्या है?

1990-1991 ई० में भारत में आर्थिक विकास की समस्या उत्पन्न हो गयी थी। उस परिस्थिति में पी० वी० नरसिम्हाराव और मनमोहन सिंह के नेतृत्व में नयी आर्थिक नीति की शुरुआत की गई। जिसके फलस्वरूप आर्थिक विकास को बढ़ावा दिया जा सका है।

वैश्वीकरण को समझने के लिए उसको तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. उदारीकरण (Liberalçation)
2. निजीकरण (Privitçation)
3. वैश्वीकरण (Globalçation)

1. उदारीकरण (Liberalçation)

उदारीकरण के निर्णय-निर्माण (Decision making) का अधिकार सरकार का होगा।

- निर्णय-निर्माण या नीति निर्माण (Policy making) सरकार के द्वारा किया जाता है।
- खुले बाजार (Open market system) को बढ़ावा मिलता है।
- आर्थिक उदारीकरण के पश्चात् व्यापार अपनी इच्छानुसार कर सकते हैं।
- उदारीकरण के द्वारा FDI (Foreign direct investment) विदेशी निवेश/ विदेी मुद्रा को बढ़ावा दिया जाता है।
- इसके फलस्वरूप घरेलू बाजार का ह्रास होता है।

2. निजीकरण (Privitzation)

निजीकरण में वितरण निजी क्षेत्र के हाथ में होता है। राज्य द्वारा दशा और दिशा निर्धारित की जाती है।

- इसमें सार्वजनिक क्षेत्र (Public sector) के अलावा निजी क्षेत्र (Private sector) दोनों स्वतंत्र रूप से कार्य करेंगे।
- उत्पादन (Production) और वितरण (Distribution) के साधनों पर व्यक्ति/संस्था का अधिकार होता है।

3. वैश्वीकरण (Globalzation)

वैश्वीकरण में पूरा विश्व एक घर है। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् राष्ट्र संघ की स्थापना की गयी। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गयी। किसी भी देश में समस्या उत्पन्न होती है तो पूरा विश्व इसका समाधान करता है। इसके अन्तर्गत लोगों, कम्पनियों और सरकारों के बीच बातचीत का एकीकरण है।

- कोई भी देश बिना विजा के एक-दूसरे देश में व्यापार कर सकते हैं। जिससे व्यापार करना आसान हो जाता है।
- अगर किसी देश में श्वेत-अश्वेत लोगों में असमानता होती है या देश के नागरिकों के मौलिक अधिकारों का हनन होता है तो वह समस्या संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाया जाता है। जहाँ सभी देश के प्रतिनिधि होते हैं। जिस कारण से उस समस्या का वैश्वीकरण हो जाता है।

विशेषताएँ

शिक्षक बच्चों के भविष्य का निर्माण करते हैं। इस नेक काम के कारण ही भारत में शिक्षक को सबसे ज्यादा सम्मान दिया जाता है। वर्त्तमान समय में शिक्षकों के अधिकारों की स्थिति वैसी नहीं है जैसी होनी चाहिए और इसके परिणामस्वरूप शिक्षकों की गुणवत्ता और उत्साह वांछित कसौटी को प्राप्त नहीं कर पाता है। नयी शिक्षा नीति की निम्नलिखित विशेषताएँ निम्न प्रकार है-

गुणवत्तापूर्ण विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय की शिक्षा व्यवस्था हेतु एक नया और भविष्योन्मुखी दृष्टिकोण को अपनाया गया है। शिक्षा के बिना सामाजिक विकास असंभव है। इसके माध्यम से समानता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व की भावना स्थापित करने पर बल दिया गया है।

नयी शिक्षा नीति में शिक्षा का उद्देश्य, अच्छे चिंतनशील, बहुमुखी प्रतिभा का विकास करना है।

सम्बद्ध कॉलेज (एफिलिएटेड) कॉलेज की प्रणाली समाप्त होगी। प्रत्येक सम्बद्ध विश्वविद्यालय अपने सम्बद्ध कॉलेज के मार्गदर्शन के लिए उत्तरदायी होगा ताकि वे अपनी क्षमताओं को विकसित कर सके तथा अकादमिक और पाठ्यक्रम सम्बन्धी मामलों में न्यूनतम मानदंड और दक्षता को प्राप्त करस सके।

इसके अन्तर्गत लचीली पाठ्यक्रम संरचनाएँ बनाने पर बल दिया गया है। आज की कठोर अनुशासनात्मक सीमाओं को हटाकर आजीवन सीखने की संभावनाओं पर बल दिया गया है।

डिग्री कार्यक्रमों की समय और संरचना में परिवर्तन किया गया है। स्नातक की उपाधि 3 या 4 वर्ष होगी। 1 साल पूरा करने पर सर्टिफिकेट या 2 साल पूरा करने पर डिप्लोमा या 3 साल के कार्यक्रम के बाद स्नातक की डिग्री। 4 वर्षीय स्नातक प्रोग्राम जिसके अन्तर्गत बहु-विषयक शिक्षा को बढ़ावा दिया जाएगा, क्योंकि इस दौरान यह विद्यार्थी की रुचि के अनुसार चुने हुए मेजर (Major) और माइनर (Minor) पर ध्यान केन्द्रित करने के अलावा बहु-विषयक अध्ययन पर जोर दिया जाता है।

अकादमिक क्रेडिट बैंक (ए०बी०सी०) स्थापित किया जाएगा जो अलग-अलग मान्यता प्राप्त उच्चतर शिक्षण संस्थाओं से प्राप्त क्रेडिट को डिजिटल रूप से संकलित करेगा ताकि प्राप्त क्रेडिट के आधार पर उच्चतर शिक्षण संस्थान द्वारा डिग्री दी जा सके।

उच्चतर शिक्षण संस्थानों में स्टार्ट-अप, इक्यूबेशन सेंटर, प्रौद्योगिकी विकास केन्द्र, अन्तर-विषयक अनुसंधान की स्थापना पर बल दिया जा रहा है।

सामाजिक-आर्थिक रूप से वंचित पृष्ठभूमि के छात्रों को उच्चतर शिक्षा तक सफलतापूर्वक पहुँचने के लिए सभी छात्रों के लिए व्यावसायिक अकादमिक और कैरियर परामर्श उपलब्ध होगा साथ ही उनके शारीरिक मानसिक और भावनात्मक कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए भी परामर्श देंगे।

ग्रामीण क्षेत्रों में बेहतर व्यवस्था बनाने के लिए आवश्यकतानुसार छात्रावास की सुविधाएँ बढ़ाई जाएगी। सबसे बुनियादी कदम के रूप में सभी उच्चतर शिक्षण संस्थान स्वच्छ पेयजल, स्वच्छ शौचालयों, ब्लैकबोर्ड, कार्यालय, शिक्षण सामग्रियाँ पुस्तकालय जैसे बुनियादी सुविधाओं से युक्त होगी।

- वर्ष 2005 तक विद्यालय और उच्चतर शिक्षा प्रणाली के माध्यम से कम-से-कम 50 प्रतिशत विद्यार्थियों को व्यावसायिक शिक्षा का अनुभव प्रदान किया जाएगा।
- नयी शिक्षा नीति से ओडीएल मोड के माध्यम से भी व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को संचालित करने की संभावना तलाश की जाएगी।
- बोर्ड ऑफ गवर्नर्स (बी०ओ०जी०) स्थापित किया जाएगा। जिसके अन्तर्गत सभी उच्चतर शिक्षण संस्थानों को प्रोत्साहन, समर्थन और सलाह दी जाएगी तथा उनका उद्देश्य वर्ष 2035 तक सशक्त बी०ओ०जी० का निर्माण करना होगा।

सम्पूर्ण साक्षरता के लिए प्रौढ़ शिक्षा और जीवनपर्यंत सीखना ताकि 100 प्रतिशत साक्षरता की प्राप्ति हो सके।

नयी शिक्षा नीति के द्वारा भारतीय भाषाओं, कला और संस्कृति का विकास करना है। भारत की सांस्कृतिक विरासत भारत को अनमोल बनाती है। नयी शिक्षा नीति आज के समय के अनुसार सही है, लेकिन बिहार जैसे पिछड़े राज्य में उसे लागू करने में यहाँ के शिक्षकों और छात्रों के पास समस्याएँ उत्पन्न होती है जैसे विशिष्ट शिक्षक का अभाव, छात्रों का उदासीन रवैया, छात्र अभी तक इसे पूर्ण रूप से समझने में समर्थ पाता है।

वैश्वीकरण का भारतीय शिक्षा प्रणाली पर नकारात्मक प्रभाव:

वर्तमान शिक्षा पद्धति हमें विकास की तरफ ले जाने के बदले पीछे धकेल रही है, जिसे हम अपना सौभाग्य समझ रहे हैं। अंग्रेजों ने जिस शिक्षा पद्धति को भारत में लागू किया था, उससे काफी नकारात्मक परिणाम सामने आए हैं।

भारत में ग्रेडिंग सिस्टम को बढ़ावा दिया जाता है, जहाँ विद्यार्थियों के बुद्धिमता को केवल परीक्षा में प्राप्त हुए अंकों से मापा जाता है।

आज के सभी स्कूल-कॉलेजों में पढ़ाई के लिए बच्चों पर इतना अधिक बोझ बनाया जाता है कि उससे विद्यार्थियों की मनोस्थिति पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। ऐसी कई खबरें हमें सुनने को मिल जाएंगी कि किसी विद्यार्थी ने अच्छे अंक प्राप्त ना करने के कारण अथवा फेल हो जाने के कारण आत्महत्या कर ली हो।

यह आज की विफल शिक्षा पद्धति ही है, जिसके परिणामस्वरूप विद्यार्थियों को अपने जीवन से ज्यादा महत्वपूर्ण परीक्षा में पास होना लगता है।

भारत के युवा अपने देश के शिक्षण संस्थाओं से अध्ययन करके विदेश चले जाते हैं, जिससे ब्रेन ड्रेन की समस्या उत्पन्न होती है।

भारत संयुक्त राज्य अमेरिका की तरह नयी शिक्षा नीति, 2020 को लागू कर दिया गया है।

विकसित देश आर्थिक रूप से मजबूत है उनके पास आधारभूत संरचना पर्याप्त होते हैं, लेकिन भारत में ऐसे बहुत से कॉलेज हैं जिनमें बच्चों को बैठने के लिए पर्याप्त क्लास रूम नहीं है।

- डिजिटल एजुकेशन पर बल दिया जा रहा है परन्तु बहुत से कॉलेज में क्लास रूम में पर्याप्त पंखा की भी व्यवस्था नहीं है।
- नयी शिक्षा नीति को लागू करना ही पर्याप्त नहीं होगा, बल्कि उसे सही ढंग से क्रियान्वयन के लिए पर्याप्त क्षमता भी विकसित करना होगा। ऐसा शिक्षक, छात्र और सरकार के सहयोग से ही संभव हो पायेगा।

भारतीय अपने देश के उच्च शिक्षण संस्थाओं से अध्ययन करके वे विदेश चले जाते हैं, जिससे ब्रेन ड्रेन की समस्या उत्पन्न होती है।

निष्कर्षः

शैक्षिक वैश्वीकरण शिक्षा की गुणवत्ता में वृद्धि करने का एक उत्तम मार्ग है, जिसके द्वारा शिक्षा से जुड़े समस्त पहलुओं का प्रचार-प्रसार किया जाता है। जिससे उस देश का वर्चस्व अन्य देशों की तुलना में अधिक होता है। वैश्वीकरण एक विश्वस्तरीय प्रक्रिया है और इसका सम्बन्ध विश्व के समस्त गतिविधियों से होता है।

भारत सरकार द्वारा शोध-संस्थाओं की स्थापना और इसमें आधुनिक सुविधाएँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराया जाय ताकि युवाओं को अपनी प्रतिभा इस्तेमाल करने के लिए विदेश ना जाने पड़े। यदि किसी युवा को अपने देश में सारी सुविधाएँ उपलब्ध हो जायेगा तो कोई युवा विदेश क्यों जाना चाहेगा? आधुनिक टेक्नोलॉजी उच्च शिक्षण संस्थाओं में उपलब्ध कराया जाये।

संदर्भ सूचीः

1. ग्लोबलाइजेश एण्ड हायर एजुकेशन इन इंडिया, बाय रिलिज्ड अक्टूबर, 2011, सम्पादकः पियर्सन इण्डिया, ISBN: 9788131799246
2. ग्लोबलाइजेशन एण्ड हायर एजुकेशन इन इंडिया, लेखक KSHEC, सम्पादकः पियर्स एजुकेशन इण्डिया, ISBN: 8131775925
3. एसेस्मेंट, एक्रीडिशन एण्ड रैंकिंग (Ranking) मैथेड्स फोर हायर एजुकेशन इंस्ट्च्यूट्स इन इण्डियन, करेन्ट फाइन्डिंग्स एण्ड फ्यूचर चायलेंजेज, लेखक (Author): पी० एल० शार्न्या, सम्पादक-ISBN: 1681088185
4. हैण्डबुक ऑन ग्लोबलाइजेशन एण्ड हॉयर एजुकेशन्स सम्पादकः एडवर्ड एलग्र, ISBN: 0857936239
5. एजुकेशन इन इण्डियाः इम्पैक्ट ऑफ ग्लोबलाइजेशन एण्ड आई०सी०टी०, लेखकः डॉ० सुमन्थ एस० हरिमथ, सम्पादकः ब्ल्यू डायमण्ड, सम्पादक- ISBN कैटेगरी एजुकेशन
6. अग्रवाल, एस0 के0, (1981), शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिकशास्त्रीय सिद्धांत, मेरठः माडर्न पब्लिशर्स।
7. अग्रवाल, उमेश चन्द्र, (2008), सर्व शिक्षा अभियानः योगदान एव अपेक्षायें, नई आधुनिक भारतीय शिक्षा, (2003), जुलाई, नई दिल्लीः एन0 सी0 ई0 आर0 टी0।
8. अग्रवाल, डॉ0 नीता एवं त्रिपाठी, डॉ0 आकांशा, (2013), मानव विकास, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
9. अग्रवाल, हिमांशु बाला, (2001), भारतीय शिक्षा का इतिहास तथा समस्याएँ, इलाहाबादः आलोक प्रकाशन।
10. बालगोपालन, शारदा, (2010), शैक्षिक विकास, मेरठः रस्तोगी पब्लिकेशन्स।
11. आधुनिक भारतीय शिक्षा, (2005), जनवरी, नई दिल्लीः एन0 सी0 ई0 आर0 टी0।

सूर काव्य और रामचरितमानस में अभिव्यक्त जीवन मूल्य

डॉ० अमित कुमार

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, बी.डी. कॉलेज, पटना

पश्चिमी काव्य-मर्मज्ञ एवं कवि विलियम वड्र्सवर्थ ने प्रश्न किया कवि कौन है? और स्वयं ही उसका उत्तर देते हुए लिखा कि ''जिसमें साधारण मनुष्य की अपेक्षा अधिक जीवंत संवेदनशीलता, उमंग और कोमलता होती है, जिसे मानव प्रकृति का समधिक ज्ञान होता है, जिसकी आत्मा व्यापक होती है, जो अपने ही भावों और इच्छाओं से प्रसन्न रहता है और दूसरों की अपेक्षा आत्मगत जीवन-चेतना में अधिक रस लेता है, जो अपने भावों और इच्छाओं के समान ही विश्व के व्यापारों में अभिव्यक्त भावों और इच्छाओं पर विचार कर उल्लसित होता है।"[1]

ऐसी ही कवि प्रतिभा के मानदण्डों पर, एक ही समय में हिंदी जगत में दो कवि हुए। ये दोनों यशस्वी कलाकार थे-सूर और तुलसी। इन्होंने मृदुसंशोधक निपुण वैद्य की भांति रोगी की नाजुक स्थिति की ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त कर उसकी रुचि के अनुसार उचित पथ्य की व्यवस्था की। ये दोनों कवि भारतीय साहित्य और संस्कृति गगन के प्रचण्ड सूर्य हैं। साहित्य कल्पतरु के ये उत्कृष्ट पुष्प हैं। हम उन्हें एक युग की विभूति नहीं कह सकते हैं क्योंकि उन्होंने आने वाले अनेक युगों पर अपने व्यक्तित्व की छाप अंकित कर दी है। हिंदी साहित्य धारा के इन दैदीप्यवान नक्षत्रों के प्रकाश से साहित्याकाश अनन्तकाल तक प्रकाशित होता रहेगा।

इन दोनों कवियों की कविता पर विचार करते हुए यह प्रश्न सहज ही जागृत होता है कि इनकी कविता किस वर्ग के लिए है? क्या आज उसकी उपादेयता है? इन प्रश्नों से विभिन्न विचारकों एवं काव्य-मर्मज्ञों ने जूझने का प्रयत्न किया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है- ''यह रामचरितमानस भक्ति की प्रतिपादक ग्रंथ है और भक्ति का प्रचार ही इसका उद्देश्य है।''[2] वे अन्यत्र लिखते हैं- ''सूर भक्त थे।"[3] ... ''सूर सागर और कुछ नहीं, शुरू से अंत तक भगवत लीला का वर्णन है।''[4]

इस प्रकार से अनेक आलोचकों ने रामचरितमानस एवं सूरकाव्य को धार्मिक साहित्य कह कर केवल भक्तगणों तक इसकी सीमा को बंधक करने का प्रयास किया।

इसी तरह कुछ आलोचकों का मानना है कि इनके नायक राजन्य वर्ग के पात्र हैं। अत: यह काव्य सामंती वर्ग का ही साहित्य है। कुछ साहित्य-मर्मज्ञ यह भी कह सकते हैं कि इसमें शूद्र एवं नारी विरोधी विचार हैं। अत: यह प्रतिष्ठित वर्ग के लिए एवं स्त्रियों के विरोध का काव्य है।

अत: इन कवियों की रचनाओं के गहन अध्ययन की आवश्यकता है क्योंकि इनकी रचनाओं का सौंदर्य समुद्र की उच्छलित तरंगों में नहीं है बल्कि उस प्रशांत अतल में है जहाँ चिर पिपासु संसार संतप्त पथिक को अलौकिक आनंद की प्राप्ति होती है। ये लोग भक्त अवश्य थे, किंतु भक्ति इनका साधन था, साध्य नहीं। ये अपने प्रमुख चरित्रों को सामंती वर्गों से चुनते अवश्य हैं किंतु इसका उद्देश्य सामंती वर्ग के रहन-सहन, उनके जीवन मूल्यों को उद्घाटित करना नहीं था ''भक्ति काव्य में एक नया संसार पाने का यत्न किया, सामंती समाज की विलासी प्रवृत्तियों का निषेध करते हुए इसे चरित्रों के माध्यम से प्रमाणित करने का यत्न किया गया, गुण-कर्म के द्वारा जिसे लीला भी कहा गया।''[5] सूर का बैकुंठ, तुलसी का रामराज्य इसी का परिणाम है। यह उनका दिवास्वप्न है जिसे वे राजनीतिक शासन के विकल्प रूप में प्रस्तुत करना चाहते थे।

सूर सामंती सीमाओं का अतिक्रमण करते हैं। सूर राधा-गोपिकाओं को मध्यकालीन सामंती सीमाओं से बाहर निकालकर प्रकारांतर से अपने समय के शरीरवाद को चुनौती देते हैं। वे गोकुल के लगभग सभी पात्रों का सामाजिकीकरण करते हैं, उन्हें जीवन की खुली-निर्बंध भूमि में उतारते हैं। यमुना के कूल-कछार, वंशीवट, वृंदावन, खुले चरागाह- सब कुछ जैसे सामंती राज प्रसादों को नकारता चलता है। कवि का यह निषेध गहरे मानवीय सरोकार से उपजा है और इसीलिए अधिक सराहनीय है। गांव में इधर-उधर दौड़ते हुए सफेद गायों के बछड़ों से शोभित ब्रज गोदोहन के शब्दों से झंकरित है, वंशी ध्वनि से प्लवित है। भारत के किसी भी गांव के गोधूली का यह चित्र है। नगर में यह कहाँ? कृष्ण का मन व्याकुल हो रहा है-

''ऊधो मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
हंस सुता की सुंदर कगरी अरु कुंजनि को छाहीं।।
वै सुरभी वै बच्छ दोहनी खरिक दुहावन जाही।"
''जबहि सुरति आवति वा सुख को जिय उमगत तन नाहीं।"

सूर का पूरा काव्य नागर और राजधानी सभ्यता का विरोधी है, केंद्रीकरण, नगरीकरण के विरुद्ध गांव और गोचारण का समर्थक है। वहाँ के राजा का अपने गांव, वहाँ की गायों, फूलों, आमों, पर्वत, पठारों आदि के बारे में सोचना व उसे न भूल पाना सामंती सीमाओं का अतिक्रमण ही तो है।

उघर महाकवि गोस्वामी जी भी राजपरिवार की कथा उठाते अवश्य हैं लेकिन उसका भी निर्वाह सामंती मूल्यों के अतिक्रमण में ही करते हैं। तुलसी पर जातिगत हीनता और अकुलीनता पर कटाक्ष का आक्षेप किया जाता है। उन्होंने प्रशंसा पाने के लिए पुरोहित वर्ग की खुशामद नहीं की, स्वयं कुलीन बनकर पैर नहीं पुजाये। उन्होंने समाज से इतर जनों का पक्ष लिया और राम के प्रेम के आधार पर उनकी समानता की घोषणा की। उनकी भक्ति का यह सामंत विरोधी मूल्य ही है। जब राम चित्रकूट पहुँचते हैं तो कोल-किरातों से घुल मिल जाते हैं-

''यह सुधि कोल किरातन्ह पाई।
हरषे जनु नव निधि घर आई।।
कंद मूल फल भरि भरि दोना।
चले रंग जनु लूटन सोना।।"

राम के अयोध्या लौटने पर जब निषाद विदा होता है तब राम स्वयं कहते हैं-

''तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता।
सदा रहेछु पुर आवत जाता।।"

तुलसी के रामराज्य में चारो वर्ण के लोग एक ही घाट पर स्नान करते हैं अर्थात् कोई छुआछूत नहीं है:

''राजघाट सब विधि सुंदर बर।
मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर।।
तीर तीर देवन्ह के मंदिर।
चहुँ दिसि तिन्ह के उपबन सुंदर।।"

तुलसी का रामचरितमानस सामंत विरोधी मूल्यों का ही काव्य है। वे स्पष्ट घोषणा करते हैं:

''जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।"

ऐसी ही खीझ सूरदास की गोपियों द्वारा व्यक्त होती है-

''कैसे के हौं दरसन पाऊँ।
सुनि पथिक उहि देस द्वारिका जो तुम्हारे संग जाऊँ।"

यह खीझ सूरकालीन जनता की ही खीझ है। तुलसी के रामराज्य एवं सूर के गोकुल में समता एवं भ्रातृत्व का जो संसार है वह पौराणिक अतीत के ताने-बाने से गढ़ा गया है, किंतु उसमें युगीन विषमता एवं कटुता के संसार को तिरोहित कर भविष्य में आदर्श संसार पाने की बेचैनी कसमसाती है। इन कवियों में दो प्रकार के सामंत चित्रित हैं- लोक विरोधी एवं लोक हितैषी। इन कवियों ने लोक विरोधी सामंतों को खलनायक की भूमिका में उतारा है तथा लोक हितैषी सामंतों को नायकत्व की जिम्मेदारी सौंपी है। लोकहितैषी सामंत अधिक स्पृहणीय हैं जो सत्ता से उदासीन रहकर जनता में स्वयं को घुलामिला देते हैं। राजतिलक से वंचित राम, गोकुल के ग्वालों को राक्षसों से बचाने वाले तथा उनके साथ कलेवा बाँटकर खानेवाले कृष्ण अपनी संघर्षशीलता, मानवीयता एवं सामाजिकता के कारण ही भक्तिकाव्य के आदर्श नायक हैं, सामंती कुलीनता के कारण नहीं। जहाँ सूर ने राजवंशी नायक की दीर्घकालिक काव्य-परंपरा को तोड़कर पशुपालक, गोचारक कृष्ण को नायकत्व सौंपा तो वही तुलसी ने राज-सत्ता से च्युत राम को जो कि समाज सेवा का ही व्रत लेते हैं। सूर ने सामान्य जनता के पक्ष में राजन्य वर्ग की दुर्नीति के विरोध की लीलाएँ रचीं।

जब द्रौपदी के चीरहरण का तमाशा समस्त राजन्य वर्ग देख रहा था तब बचाव की विकलता या तो प्रजा में थी- 'पड़े वज्र या नृपति सभा पै कहत प्रजा अकुलानि' या कृष्ण में जो अनाथनि के संगी हैं। बसन प्रवाह के बाद हर्षित जनता कृष्ण का जय-जयकार करने लगती है- जय-जयकार भयौ त्रिभुवन में जब द्रौपदी उबरी। जनता का हर्ष सामंती कुकृत्यों की विफलता की स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। वहीं रामचरितमानस की जनता भी अपने राजा की नुक्ताचीनी करने में नहीं डरती है। राम को बनवास मिलता है इसलिए प्रजा दु:खी है। वे दशरथ को कोसते हैं-

''एक कहहिं भलभूप न कीन्हा।
बरु बिचारि नहिं कुमतिहि दीन्हा।
जो हठि भएउ सकल दुख भाजनु।
अबला बिबस ग्यानु गुनु गाजनु।।"

मध्ययुग में एक राजा के बुरे काम के लिए निंदा करना साहस का काम था। तुलसी राजा दशरथ की प्रजा के माध्यम से उस दमन और अत्याचार के युग में प्रजा में एक नई चेतना भरते हैं। रामचरितमानस में हम देखते हैं कि राजा प्रजा के लिए चिंतित हैं और प्रजा राजा के लिए। तुलसी का यह संदेश प्रगतिशील है।

लोकविरोधी सामंतों के प्रतिनिधि रावण एवं कंस हैं उनको मारने की प्रतिज्ञा कृष्ण एवं राम करते हैं। रावण राम का विरोधी है। तुलसी के सारे मूल्यों के विरोध का वह प्रतीक है। राम साधनहीन होकर भी साधनों से परिपूर्ण रावण का वध करते हैं। इसी तरह कृष्ण भी समृद्धि एवं वरदान के मालिक कंस का वध करते हैं। मानवता एवं दानवता के युद्ध में मानवता जीतती है। राम-कृष्ण की जीत महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण यह है कि मानवता जीतती है। राम

की लड़ाई में उनका साथ देने कोई सामंत नहीं आता। उन्हें सहयोग और सम्मान बंदर-भालू से मिलता है। गिद्ध एवं गिलहरी भी अत्याचारों की तुलना में मजबूत हो जाते हैं।

राम व्यक्ति केंद्रित सामंती व्यवस्था का निषेध करते हैं और उसके स्थान पर समाज को स्वीकृति देते हैं। मध्यकाल में पूरी व्यवस्था शासक को केंद्र में रखकर परिचालित थी और तुलसी जानते हैं कि उसके अभिशाप क्या हैं? ''केहि विधि मरहि बिस्व दुखदाता" के द्वारा तुलसी ने व्यंजित किया है कि रावण का वध राम अपनी वैयक्तिक शत्रुता के कारण नहीं करते हैं बल्कि दिखाते हैं कि वह समाज का शत्रु था। राम असुरों का संहार करते हैं तो उधर कृष्ण भी कागासुर, सकरासुर, तृणावर्त, बकासुर, अघासुर, जरासंध, पूतना, कंस को मारते हैं जिससे उनका कर्म भरा सामाजिक व्यक्तित्व सामने आता है। तभी वे श्रेष्ठ नायक हैं। हमारे लिए प्रासंगिक हैं। सूर काव्य राजाओं, रईसों की भोगवादी, शरीर-सुखवादी जीवन-शैली को नकारता है। इसमें औरतों से ठसाठस भरे हरम पर तीखी टिप्पणियाँ हैं। सोलह हजार पटरानियाँ पालने वाले कृष्ण की रसलोलुपता पर गोपियों का यह कटाक्ष भोगवाद पर एक हमला भी है:

''मधुप रावरी पहिचानी।
बास रस लै अनत बैठे, पुहुप की तजि कानी।।
बाटिका बहुत विपिन जाके, एक जौ कुम्हलानि।
फूले-फले सघन कान, कौन तिनकी हानि।।"

सूर अपने समय के विलास-जर्जर समाज को देहवाद और भोगवाद की संकीर्ण गलियों से बाहर निकालकर वृंदावन के उन्मुक्त विस्तार में ले आते हैं। यहाँ बड़े-छोटे का, शासक-शासित का भेद ही खत्म हो गया है। सूर का आघात गैर बराबरी की बुनियादी अवधारणा पर ही है:

''खेलन में काकौ गुसैयाँ।
हरि हारे जीते सुदामा, बरबस ही कल करत रिसैयौं।
जाति-पाँति हमसे बड़ नाहीं, नाहीं अधिक तुम्हारे गैयाँ।

इसी तरह राम भी अपने बाल समाज को छोड़कर आने को तैयार नहीं हैं-

''भोजन करत बोल जब राजा।
नहिं आवत तजि बाल समाजा।"
''कौसल्या जब बोलन जाई।
ठुमुक ठुमुक प्रभु चलहिं पराई।"

ये दोनों कवि भक्त थे, लेकिन इनका काव्य भक्तजनों मात्र का काव्य नहीं है। भक्ति उस युग का मुहावरा थी जैसे आज राजनीति। मध्ययुग में हर कार्य का निर्धारण धर्म के द्वारा ही किया जाता था। अत: इन कवियों ने भक्ति के आवरण में उस युग के यथार्थ को सामने रखा। आज किसी लेखक के राजनीति प्रयोग के कारण क्या उसके काव्य को राजनीति विज्ञान की पुस्तक कहकर साहित्य से बाहर किया जा सकता है? क्या आने वाले समय में उसकी सीमाओं को बांधकर साहित्य से बाहर किया जा सकता है? यदि नहीं तो इन कवियों का काव्य भी धर्मावरण बद्ध होते हुए भी सभी के लिए ग्राह्य है। तुलसी भक्ति का कोरा उपदेश नहीं देते। उनकी साधना जीवन की, जगत की स्वीकृति प्रदान करती है। तुलसी सियाराममय सब जग जानी कहकर इस जगत की सत्यता को रेखांकित करते हैं। तुलसी एवं सूर की भक्ति किसी को संन्यासी या पुजारी बनाने के लिए नहीं है। उनकी भक्ति लोक से जुड़ना चाहती है, जीवन जगत से प्यार करने का संदेश देती है। प्रो. मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है ''रामचरितमानस की कलात्मक श्रेष्ठता और उसके भाव की व्यापकता का रहस्य उसके चरित्रों, जीवन-व्यवहारों, जीवन-मूल्यों और भावों की मानवीयता में है न कि उसकी धार्मिकता में।''[6] मानवता और त्याग के कारण ही उनकी साधना लोक साधना है। उनकी लोक-साधना में शास्त्रमत का महत्व अधिक होते हुए भी वह कहीं-कहीं इससे स्वतंत्र भी है। जहाँ उनकी साधना शास्त्रमत से निकल गई है वहाँ काव्य का मानवीय चित्र उभरकर सामने आया है। तुलसी एवं सूर की लोक-साधना से उनकी लोकप्रियता का सवाल जुड़ा है। अगर वे इस लोक को छोड़कर परलोक की साधना करते तो लोक जीवन के कवि कहलाने के अधिकारी न बनते बल्कि एक भक्त ही रह जाते। ये कवि धर्मसाधना के नहीं लोक साधना के कवि हैं इनके काव्य में लोक कहीं गहरे तक छिपा है। तभी तो डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने कहा है- ''तुलसी की लोकप्रियता का आधार धर्मभीरुता नहीं है। देश में कोई मंदिर न जाए कीर्तन न करे, तब भी उनकी कविता लोकप्रिय रहेगी क्योंकि उनकी कविता जिंदगी के लिए संदर्भवान है।''[7]

मानस में मर्यादा और विवेक, सगुण और निर्गुण, आदर्श और नीचता हास्य और करुणा, मनुष्यत्व और देवत्व एक साथ मिलते हैं इसलिए यह ग्रंथ ज्यादा लोकप्रिय है। मानस कोरा आदर्श को स्थापित करने वाला ग्रंथ नहीं है। तुलसी अगर राम महिमा में ही फँसे रहते तो मानस उबाऊ हो सकता था। लेकिन यहाँ राम की महिमा के साथ-साथ रावण, मारीच आदि की दुष्टता भी है। राम अवतारी हैं तो मानव की तरह रोने वाले भी हैं- ''भक्तिकाव्य का सबसे उल्लेखनीय पक्ष ही है- अवतार... भक्त कवि जानते हैं कि मनुष्य रूप में अवतरित होकर ही देवत्व को विश्वनीयता मिल सकती है।''[8] सूरदास ने भी सहज संवेद्य सामंजस्य-ज्ञान के सहारे अध्यात्म, धर्म और दर्शन के जीवंत सत्यों और मूल्यों को मानवीय कल्पना एवं चेतना का अभिन्न अंग बना दिया है। डा. मैनेजर पाण्डेय का कहना है- ''सूरदास ने अपने काव्य में जीवन के धर्म और धार्मिक जीवन का सुंदर सामंजस्य उपस्थित किया है जिसमें जीवन का रस है और भक्ति का रस भी।''[9] इनके काव्य में उपदेश की प्रवृत्ति कम है। यहाँ भी कृष्ण में देवत्व का मानवीकरण है जिसके आधार पर सूर सहज मनुष्य की भूमि पर रसिकता को नई अर्थ दीप्ति देते हैं- कृष्ण को कर्म की भूमि पर उतारकर। (गोवर्धन-लीला के माध्यम से सूर ने एक नई दीप्ति दी है कि कृष्ण लोकरंजक के साथ-साथ लोकरक्षक भी हैं) ग्वाल-बाल सब पारस्परिक वार्ता करते हैं कि कृष्ण ने इंद्र से व्यर्थ ही संघर्ष किया, पर कृष्ण अपने संकल्प को उचित मानते हैं। कृष्ण एक ऐसी मूर्ति को अपने पुरुषार्थ से ध्वस्त करते हैं जो अगोचर है और त्रास दिखाकर शासन करती है। इसके स्थान पर वे सामने उपस्थित गोचर गोवर्धन की पूजन-परंपरा का शुभारंभ करते हैं। इससे कृष्ण के रक्षक व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा होती है।

इस पूरे प्रसंग से गोकुल में उत्सव का वातावरण है-

''घरनि-घरनि ब्रज होति बधाई
सात बरस को कुंवर कन्हैया, गिरिधर धरि जीत्यौ सुरराई,
गर्व सहित आयौ ब्रज बोरन, यह कहि मेरी भक्ति घटाई।।"

सूरदास के लोकरक्षक श्याम गरीबनि हूँ के ग्राहक हैं, अनाथों के नाथ हैं। लोकहित में वे गोवर्धन धारण करते हैं, राक्षस-राक्षसियों का वध करते हैं, कालिया नाग का मर्दन करते हैं। उनका स्वभाव है लोगों के बचाव में खड़ा होने का ''जब-जब भीर परि-संतनि कौ, चक्र सुदरसन तहाँ संभारयो।" इसी तरह तुलसी के राम भी सज्जनों पर आये संकट का निराकरण करने के लिए ही जन्म लेते हैं। इस तरह इन कवियों की भक्ति सामान्यीकृत है। इनकी भक्ति में न छोटे-बड़े का भेद है न ऊँच-नीच का। वह दुर्लभ ब्रह्म को सुलभ बनाती है। एक गोपी का कथन है-

''कैसे के हौं दरसन पाऊँ
सुनहु पथिक उहि देस द्वारका जो तुम्हारे संग जाऊँ।"

कृष्ण की लीलाएँ दो प्रकार की हैं- असुर संहारक एवं माधुर्यमयी। माधुर्यमयी लीला में कृष्ण की जनमनभावन छवि उभरती है।

उधर तुलसी की चिंता लोक की चिंता है। उनकी भक्ति, उनका काव्य लोक के लिए है। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने कहा है- ''तुलसी के काव्योत्कर्ष का आधार लोक-सामान्य भाव-भूमि पर चित्रित राम का मानवीय रूप है, जिसे उन्होंने अपने युग के आदर्शों के अनुरूप निर्मित किया है।''[10]

राम अन्याय के विरुद्ध लगातार संघर्षशील हैं। राम का रामत्व उनकी संघर्षशीलता में है न कि देवत्व में। राम के संघर्ष से साधारण जनता को एक नई शक्ति मिलती है। कभी न हारने वाला मन, हजारों विपत्तियों से घिरा है, लक्ष्मण को शक्ति लगी है, पत्नी दुश्मनों के घेरे में है। राम रोते हैं, बिलखते हैं पर हिम्मत नहीं हारते हैं। निराला के शब्दों में कहें तो 'वह एक और मन रहा राम का जो न थका।' सामंती युग में ऐसे चरित को स्थापित करना जो मानव हित में लड़ता है, परोक्ष रूप से उस समाज में पिसनेवालों को प्रेरणा और शक्ति ही देना है।

तुलसी के राम देवता हैं पर वे स्वर्ग में बैठकर अप्सराओं का नृत्य देखने वाले निष्क्रिय देवता नहीं हैं। उनके राम लोकजीवन में घुले हुए राम हैं। तुलसी ने राम को राजमहल की दुनिया से निकालकर संघर्ष की ही दुनिया में चित्रित किया है। राम के पैर तपती धूप में जलते हैं। राम सहज भाव से निषाद से मिलते हैं और उसे भरत के समान बताते हैं, शबरी से संबंध रखते हैं। राम का व्यवहार सबको लुभाता है, आश्चर्य में डालता है। राम की महानता उनके व्यवहार में ही है। वे आदर्श भाई, आदर्श मित्र, आदर्श पति होने के साथ-साथ आदर्श शत्रु भी हैं। वे रावण को बार-बार समझाते हैं। उसकी मृत्यु पर लक्ष्मण को उसके पास शिक्षा के लिए भेजते हैं। मरते से क्या दुश्मनी का वे निर्वाह करते हैं। रामचरितमानस में एक आदर्श समाज का सपना एवं एक आदर्श चरित्र का निर्माण है। राम के खाने-पीने में कोई राजसी ठाट-बाट नहीं है। जिस युग में राजा राज्य जीतने के लिए खून बहाते थे, मानव मानव से लड़ते थे, वहीं तुलसी के राम पिता की आज्ञा पर राजपाट त्याग देते हैं। तुलसी के राम राजगद्दी के लिए भाई की हत्या नहीं करते बल्कि स्वयं ही उसका त्याग कर देते हैं। उनकी लोकोन्मुखता का सबसे बड़ा उदाहरण यह है कि वे विपत्ति में भी साधारण समझे जाने वाले लोगों से ही सहायता मांगते हैं। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का कहना है, ''ईश्वर में पूरी आस्था और मनुष्य का पूरा सम्मान ये दोनों दृष्टियाँ तुलसी में एक दूसरे से जुड़ी हुई है।''[11] लक्ष्मण विलाप के समय वे कहते हैं-

''अस बिचारि जिऊँ जागहु ताता।
मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।"

इस तरह राम मानवता के प्रतीक हैं। मुक्तिबोध ने कहा है कि तुलसी के राम अपने युग की सीमाओं के बीच रहते हुए भी सामंती ढाँचे को तोड़ते हैं। सीता को डॉ. नगेन्द्र ने गुड़िया कहा है। लेकिन सीता राम के प्रति समर्पित हैं। वे पति के साथ ही राजभवन के सुख को छोड़ देती है। अगर वे अयोध्या में रहतीं तो एक भोग्यानारी के सिवा कुछ न रहतीं। राम भी अपनी पत्नी के लिए दिन रात एक कर देते हैं। अतः सीता को गुड़िया कहना उचित नहीं है।

तुलसी का रामचरितमानस लोकजीवन का काव्य है यही कारण है कि वे शम्बूक वध का प्रसंग छोड़ देते हैं, तुलसी ने सीता निष्कासन का प्रसंग भी छोड़ दिया है। यह तुलसी की प्रगतिशील और समाज के प्रति गहरी प्रतिबद्धता को रेखांकित करने वाली दृष्टि है। तुलसी काव्य में मंगल, सोरहा, मुंडन, कलेऊ आदि लोक जीवन से ही उठाए गए हैं। ये उनकी लोकजीवन की और उन्मुख दृष्टि का परिणाम है।

वहीं सूर भी गोदोहन, रास-प्रसंग, वंशीवादन तथा ग्राम-संस्कृति से जुड़े लोक-उपादानों का भरपूर उपयोग करते हैं। इसमें दार्शनिक सीमाओं का अतिक्रमण करके रचनात्मक संवेदन के अधिक प्रवाही मार्ग में स्वयं को अंतरित किया है जिस कारण उन्हें, हम आज भी अपने निकट पाते हैं। गोवर्धन के द्वारा आकाश पूजा के स्थान पर पृथ्वी पूजन का यह शुभारंभ है। होरी-फाग-चाँचरि, राग, उत्सव, टोना टोटका, जाइ, तीन, नृत्य रास आदि के मार्मिक वर्णन के साथ-साथ मांगलिक अवसर, बंधते बंदनवार, लगन, मुहूर्त आदि सांस्कृतिक परिवेश को उजागर करना सूर की लोकदृष्टि का परिणाम है।

''खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी।
गये श्याम रवि-तनया के तट, अंग लसति चंदन की खोरी।।
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन विसाल भाल दिए रोरी।।"

फागलीला, होरी, बसंत, झूलन आदि के दृश्य ब्रज संस्कृति की याद दिलाते हैं। इसी लोक सामान्य से जुड़ने के कारण सूर आज भी प्रासंगिक हैं। प्रतीक जगत, बिंब-विधान, शब्दराशि सब ब्रजमंडल की लोकसंस्कृति का प्रक्षेपण करते हैं। कृष्ण की सामाजिकता भी ग्वाल-जीवन से जुड़ी है। प्रायः संस्कृति के निर्माण में अभिजात वर्ग को प्रमुखता दी जाती है। पर भारतीय जीवन में कृषक समाज की बहुलता और संस्कृति की पुनर्रचना में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण

है। चरवाही का क्षेत्र वृंदावन, कृष्ण के लिए स्वच्छंदता, प्रेम, कर्तव्य एवं संघर्ष का क्षेत्र है। वे इसे देखकर मुग्ध हो जाते हैं ''वृंदावन मोको अति भावत।" गाय एवं गोपियाँ दोनों से उन्हें प्रेम है और यह वृंदावन दोनों की प्रणय भूमि है। डॉ. मैनेजर पाण्डेय का कथन है- ''सूरसागर में किसान- जीवन से संबंधित जो मुहावरे कहावतें और लोकोक्तियाँ मिलती हैं वे आज भी किसानों में प्रचलित हैं। ... जो आलोचक कहते हैं कि कविता की भाषा उर्दू की तरह मुहावरेदार नहीं होती है वे सूर की कविता पढ़कर अपना भ्रम दूर कर सकते हैं।''[12] ये मुहावरे आदि सूर के लोकजीवन से जुड़ने का ही परिणाम है-

''आए जोग सिखावन पांड़े।
परमारथी पुराननि लादे ज्यों बनजारे टांड़े।"
''कहो मधुप, कैसे समायंगे एक म्यान दो खांड़े।
कह षटपद, कैसे खैयतु है हाथिन के संग गांड़े।।"

किसानों से संबंधित गाय एवं उसके विभिन्न नाम, गोदोहन एवं बालकों में नया काम सीखने की स्वाभाविक ललक, गोचारण संस्कृति से प्रेम की संस्कृति का विकास सूर काव्य की प्रमुख विशेषता है। पशु भी मनुष्य के परिवार के सदस्य जैसे हो जाते हैं। वे भी प्रेम की भाषा समझते हैं। किसान जीवन की पहचान खेती से होती है। खेती की पूरी प्रक्रिया का चित्र सूर काव्य में है:

''प्रभु जू यौं कीन्हीं हम खेती बंजर भूमि गाउ हर जोते,
अरु जेती की तेती काम क्रोध दोउ बैल बली मिली,
रज तामस सब कीन्हौ।।"

क्रीड़ा भी गोचारण संस्कृति का अंग है। सूर के यहाँ क्रीड़ा में गैर बराबरी का भेद नहीं है। असुर-संहार चारागाह को निरापद बनाने का क्रम भी है और अलौकिक धर्म-निर्वाह भी। इसलिए कहा जा सकता है कि गोचारण लोक कार्य और भागवत् कर्म का सम्मिलित अनुष्ठान है। लोक-शक्ति में उनकी आस्था लोकधर्म और लोक-सामर्थ्य में सूर के विश्वास को उजागर करती है। गोचारण समूह की क्रियाओं का विकास है। इसमें मित्रता एवं सहज जीवन का विकास हुआ है। गोचारण के भीतर ही कृष्ण का लोक नायकत्व उभरता है। गोचारण में सामूहिकता, खेलने में सामूहिकता, माखनचोरी में सामूहिकता से अभिप्राय यह है कि उनके जीवन में व्यक्तिगत कुछ नहीं। कृष्ण का कलेवा बाँटकर खाने का अद्‌भुत उदाहरण है-

''सानि-सानि दधि भात लियी कर सुहृद सखनि कर देत।
मध्य गोपाल मंडली मोहक छाक बाँटि के लेत।"

सूरसागर में ब्रज की संपूर्ण जनपदीय संस्कृति का चित्रण है। इस तरह सूर ने लोक-विश्वासों को ही अपने काव्यानुभूति का विषय बनाया है और यह उनकी लोकचिंता एवं चेतना के बिलकुल अनुरूप है। यह गोचारण संस्कृति उदात्त सामंती मूल्यों-भाईचारा, बंधुत्व, पारिवारिकता, सामाजिकता आदि को आत्मसात करती है तथा पतनशील सामंती मूल्यों को नकारती है। नंद एक छोटे सामंत हैं, लेकिन उन्होंने गोकुल को बंधुत्व के एक सूत्र में बांध रखा है। सूर की निष्ठा कंस की सामंती संस्कृति के साथ नहीं, नंद और कृष्ण की उपार्जित संस्कृति के साथ है।

तुलसी के पास समाज के बारे में एक व्यापक दृष्टिकोण है। रामराज्य उनके आदर्शमय समाज का एक यूटोपिया है। ऐसा ही सूर का गोकुल जीवन-महोत्सव का स्थान है। तुलसी वर्णाश्रम में पूर्णत: आस्था रखने वाले कवि हैं। शुक्ल जी के अनुसार तुलसी आर्य धर्म को छिन्न-भिन्न होने से बचाने वाले कवि हैं। चूंकि लोग अपने कर्म से हट गए इसलिए समाज विखंडित हो रहा है। मानवीय मूल्यों के लोप का कारण कलियुग है। कबीर आदि के लिए प्रेम और समतामूलक समाज महत्वपूर्ण है जबकि तुलसी के लिए आदर्शमय समाज वांछनीय। कबीर बनी-बनाई समाज व्यवस्था पर ही प्रहार करते हैं पर तुलसी राम राज्य का एक नया समाज प्रस्तुत करते हैं। तुलसी की महानता निर्गुण संतों को गलियाने या शूद्रों को अधम घोषित करने में नहीं है बल्कि उनकी महानता मानव-जीवन के संघर्ष, आशाओं-आकांक्षाओं को व्यक्त करने में है। रामकया की महत्ता उसकी मार्मिकता और करुणा में है। तुलसी का साध्य रामराज्य की प्राप्ति है जहाँ ''दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहीं कहाहुँ व्यापा।।" है।

तुलसी का उद्देश्य राम और रावण जैसे विरोधाभास को दिखाने में नहीं है बल्कि इस विरोधाभास में जीतता कौन है उसे दिखाना ज्यादा जरूरी मानते हैं। कैकेयी भी अपनी ईर्ष्या पर पछताती है। इस तरह तुलसी का रामचरितमानस मानवता को जगाने का उद्देश्य रखता है, दुष्टता को खत्म करने के लिए समर्पित है।

कवितावली तो तुलसी द्वारा यथार्थ की महागाथा है जहाँ भूख, दरिद्रता का नग्न यथार्थ उजागर हुआ है। तुलसी को शूद्र एवं नारी विरोधी कहा जाता है वे कहते हैं-

''पूजिय विप्र सील-गुन हीना।
सूद्र न गुणग्न ग्यान प्रबीना।।"

तुलसीदास वर्णाश्रम व्यवस्था में पूर्णत: आस्था रखने वाले कवि हैं। इसमें संदेह और बहस की गुंजाइश नहीं है। वर्णाश्रम व्यवस्था में शूद्र सबसे नीचे है इसलिए उसका काम है तीनों वर्गों की सेवा करना। शूद्र अगर ब्राह्मणों को उपदेश देने लगे, जनेऊ पहने और कुदाल चलाए तो यह घोर कलियुग है-

''सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना।
मेलि जनेऊ लेहि कूदाना।।"

क्या कुदाल और जनेऊ में समन्वय नहीं हो सकता है? दूसरी तरफ तुलसी में शबरी, निषाद को जगह देने का भाव है, उनके राम सबका आदर करते हैं फिर शूद्र के विरोधी कैसे हो सकते हैं? बात सही है, भक्ति के क्षेत्र में तुलसी वर्णाश्रम व्यवस्था को तोड़ते हैं। तुलसी ने शबरी, निषाद की चिंता की है

पर उनके समाज की चिंता नहीं की है। व्यक्तिगत स्तर पर वे शूद्र एवं नारी को जगह देने की बात करते हैं। जिस कवि ने अपनी कविताओं के जरिए एक कठिन दौर के हताश-निराश जनता को संभाला उसे सांस्कृतिक संबल प्रदान किया, वह जातिवाद का प्रचारक कैसे हो गया समझना मुश्किल है। तुलसीदास को आज के रामभक्तों की तरह मस्जिद से घृणा नहीं है वे मस्जिद में भी सोने को तत्पर हैं। तुलसी तो मानते हैं कि जातियाँ दो ही हैं- एक मालिक की, एक नौकर की। तुलसी की वर्णव्यवस्था जन्मना न होकर कर्मणा भी है।

''कोउ न काउ सुख-दुख करि दाता।
निज कृत कर्म भोगि सब भ्राता।।"

रामचरितमानस में तुलसी ब्राह्मणों पर भी व्यंग्य करते हैं-

''विप्र निरच्छर लोलुप कामी।
निराचार सठ वृषली स्वामी।।"

इस प्रकार तुलसी की दृष्टि में सार्वजनिक फांक मिलती है। यही फांक उनकी स्त्री संबंधी दृष्टिकोण में भी है। यह सही है कि मानस एक प्रबंध काव्य है। इसमें सभी पात्रों के विचार अपने चरित्र और परिस्थिति के अनुसार हैं। भरत कहते हैं:

''बिधिहु न नारि हृदय गति जानी
सकल कपट अध अवगुन खानी।।'

षडयंत्र मंथरा एवं कैकेयी करती हैं और भरत पूरे नारी समुदाय को कपटी और अवगुण की खान बताते हैं। किसी एक की गलती पर पूरे समाज को गाली देना कहाँ का न्याय है? स्पष्टत: भरत का दृष्टिकोण नारी के प्रति पुरुषवादी मानसिकता से ग्रसित है। उधर अमानव का प्रतीक रावण भी नारी के प्रति ऐसी ही दृष्टिकोण रखता है:

''नारी स्वभाव सत्य कवि कहहीं।
अवगुन आठ सदा उर रहहीं।।"

स्पष्टत: तुलसी के मानव और अमानव नारी के प्रति एक ही दृष्टिकोण रखते हैं। कवि उक्ति है:

''महावृष्टि चलि फूट कियारी।
जिमि स्वतंत्र भई बिगरहिं नारी।।"

यहाँ तुलसी नारी की स्वतंत्रता के खिलाफ हैं। जिस युग में सरेआम नारियों का अपहरण होता हो। सामंत गुप्तचरी करवाकर सुंदर नारियों की टोह लेते हों, स्त्री के लिए ही युद्ध लड़े जाते होंय उस समाज में नारी स्वतंत्रता का तर्क नारी विरोध में ही जाता है। नारी स्वतंत्रता को लेकर तुलसी के मन में एक द्वंद्व रहा है:

''कत विधि सृजी नारी जगमाहीं।
पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।।"

तुलसी के राम अहिल्या का उद्धार करते हैं। उनका सबसे पहले कैकेयी से जाकर मिलना, उन्हें ग्लानिमुक्त करने के लिए ही है। एक पत्नीव्रत का पालन भी नारी को सम्मान देने के लिए ही है। दशरथ ने बहु विवाह किया था। लेकिन राम इस भोगवादी मनोवृत्ति को नकार देते हैं। शबरी के जूठे बेर खाना नारी एवं शूद्र का ही सम्मान है। तुलसी मानवीयता के आधार पर सबको सम्मान देते हैं पर उनकी विचारधारा एक खास वर्ग के समर्थन में खड़ी होती है। उनकी संवेदना नारी और शूद्र के साथ है पर विचारधारा विरोधी। यह सर्जनात्मक फाँक कबीर से लेकर टालॅस्टाय तक सभी में मिलती है जिसके कारण टॉलस्टाय अन्ना को खलनायिका बनाने के बजाय नायिका बना देते हैं। प्रेमचंद भी अपनी संवेदना से जुड़ने के कारण ही होरी को नहीं बचा पाते हैं। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है- ''यदि आज वर्ण-व्यवस्था का समर्थन करने के लिए तुलसी का इतना विरोध हो रहा है तो वह अनुचित नहीं है। हमें तुलसी की कविता के इस दोष से बचने की नहीं बल्कि उसके दूषित प्रभाव को दूर करने की जरूरत है।''[13] तुलसी की लोकसाधना के दो पहलू हैं। पहला संवेदना को छूकर निकलता है जो कि प्रगतिशील है और दूसरा विचारधाराबद्ध है जो कि प्रतिक्रियावादी है। तुलसी की संवेदना और विचारधारा में एकता नहीं होने के कारण ही अंतर्विरोध पैदा हुआ है। प्रो. मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है- ''गलत विचारधारा महान से महान लेखक को भी किसी न किसी रूप में कमजोर करती है। तोल्सतोय और प्रेमचंद की रचनाएँ भी ऐसे प्रभावों से नहीं बच पाई है।''[14]

दूसरी तरफ नारी सूर साहित्य की धुरी है। यशोदा माँ और पत्नी दोनों भूमिकाओं में स्वतंत्र है। घरेलू कार्यों में नंद उनकी सलाह लेते हैं। शिशु-पालन, अनुशासन आदि में उनका कार्य हस्तक्षेप मुक्त है। गोपियों का प्रेम असमानता के खिलाफ एक विद्रोह है।

इसमें स्त्री-पुरुष का सामाजिक भेद समाप्त हो जाता है। गोपियाँ उस पारिवारिक मान-मर्यादा, कुल-कानि को भी तोड़ देती है जिनसे पुरुष प्रभुत्ववादी पारिवारिक-सामाजिक मूल्य पैदा होते हैं। उनका प्रेम खुले मन का नैसर्गिक तरंग है। नारी के पारिवारिक-सामाजिक अस्तित्व को प्रतिष्ठा देने के पीछे जनतांत्रिक मूल्यों पर आधारित परिवार उनकी दृष्टि में था। जो आज भी सूर काव्य की सबसे बड़ी देन साबित हो सकता है। भ्रमरगीत में एक उद्धव का अनेक गोपियों से पराजित होना जनतांत्रिक मूल्य है।

सूर साहित्य में दूसरा जनतांत्रिक मूल्य है- स्वतंत्रता। गोपियों ने इसे व्यवहार में उतारा। वर्जनाओं से परे जाने की कोशिश इसी कारण है। विरह में दग्ध होना उन्हें कबूल है पर मान-सम्मान त्याग कर मथुरा जाना नहीं। उनका वृंदावन-मथुरा तक आना जाना है, कोई रोक-टोक नहीं है। वे न तो मंत्रों में देवियों

की तरह पूजी जाना पसंद करती हैं और न सात पर्दों की ओट में रहना। वे अपनी आकांक्षा, रूदन, क्रोध और प्रेम कुछ नहीं छिपाती हैं। पुरुषों के समकक्ष होने में सबसे बड़ी बाधा रही है लज्जा। गोपियों की सफलता सामाजिक समता के लिए इस लज्जा को नियंत्रित करने में है। आचार्य शुक्ल ने गोपियों के वियोग को खाली-बैठे का काम-सा कहा है। लेकिन यह उचित नहीं है क्योंकि सूर नारी अस्मिता के भी कवि हैं। गोपियाँ गाय दुहते समय, मक्खन बिलोते समय, दही बेचते समय कृष्ण को याद करती हैं। उनका प्रेम लोक संस्कृति की अपनी चीज है जिसमें समर्पण है तो मान-स्वाभिमान भी। वे मथुरा नहीं जाती हैं, इसलिए कि वहाँ कृष्ण ने सोलह हजार सौतों को पाल रखा है। कृष्ण की याद में गोपियाँ तिल-तिल कर टूटती हैं पर अपनी प्रतिष्ठा गंवाकर कृष्ण से मिलने मथुरा नहीं जातीं। यह मानिनी नारी का चरित्र है। सामंती व्यवस्था में नारी-अस्मिता पर खतरे मंडराते हैं, सूर उन खतरों के बीच से मानिनी नारी के आत्म-सम्मान को उभारते हैं तथा आत्म-सम्मान के प्रश्नों को उसकी अस्मिता से जोड़ते हैं। भ्रमरगीत में गोपियाँ नायिका हैं, मात्र राधा नहीं। इसके जरिए सूर ने पूरे नारी-समूह को सम्मान दिया है। सूर की यह जनतांत्रिक एवं अस्मितावादी नारी दृष्टि आज के युग में भी भोग्या समझी जानी वाली स्त्री की स्वतंत्रता की मांग करती है तथा समाज के सामने एक मॉडल रखती है।

छूआछूत, वर्ग-भेद आदि की कबीर जैसी लाठी मार शैली सूर के यहाँ नहीं है। सूर की शैली हास-परिहास के कथात्मक संदर्भ द्वारा अनुभूति और संवेदना की घूँटी पिलाकर रोग का उपचार करने की है:

''पाँड़े नहिं भोग लगावन पावै।
करि-करि पाक जबै अर्पत है, तबही तब छवै आवै।"

शुचिता पर आधारित वर्ण एवं जाति के असमानतावाद पर सूर की यह काव्योक्ति छुआछूतवादियों को लज्जित कर संकीर्णता से छुट्टी दिलाने एवं सबको समान समझने वाले बोध-निर्माण का उपाय है। सूर की कविता के सामने बंधुत्व एवं भाई चारे का लक्ष्य था। गोपों द्वारा गोवर्धन पर्वत के नीचे अपनी लाठी अड़ा देना रक्षा के सामूहिक दायित्व को ही उभारता है।

तुलसी एवं सूर का काव्य जन के लिए ही है इसका सबसे बड़ा प्रमाण इनकी भाषा है। तुलसी संस्कृत के भी मर्मज्ञ हैं फिर भी अपनी रचना लोकभाषा में करते हैं, यह बहुत बड़ी बात है। ये कवि यदि भक्ति करने वाले ही होते तो लोकभाषा से इन्हें कोई मतलब नहीं होता। इन्होंने लोकभाषा को अपनाकर लोक से भाषा के रिश्ते को रेखांकित किया। लोकभाषा को कवि की भाषा में स्थापित किया। तुलसी आदि की भाषा जितनी लौकिक है उतनी शास्त्रीय भी।

इस प्रकार अपने तमाम अंतर्विरोधों के बावजूद सूर एवं तुलसी महान कवि हैं जिन्होंने सामंत वर्ग के चरित्रों को उठाकर भी लोक के लिए ही साहित्य रचना की। सूर एवं तुलसी के पारिवारिक आयाम आज टूटते परिवारों के लिए प्रासंगिक हैं। टूटते संबंधों को प्रगाढ़ बनाने की प्रेरणा हमें इनके काव्य से मिले तो कहना होगा कि यह काव्य भारतीय समाज के सर्वथा अनुकूल है और देश की स्वस्थ परंपरा को जीवित रखने में सहायक सिद्ध हो सकता है। आज के युग में वेद शास्त्र का प्रमाण नहीं चाहिए, उसे लोक व्यवहार की आधारभूमि अपेक्षित है और यह दृढ़भूमि इनके काव्य में उपस्थित है। इनका रामराज्य एवं गोकुल एक आकांक्षित व्यवस्था का स्वप्न है। जनता के मनोबल को ऊँचा उठाने के लिए, उनके भीतर सुव्यवस्था की अपेक्षाओं को जन्म देने के लिए ही सूर एवं तुलसी यूटोपिया की रचना करते हैं जो आज भी जनआकांक्षित है।

संदर्भ

1. विलियम वड्र्सवर्थ, प्रिफेस टू लिरिकल बैलड्स, (पाश्चात्य आलोचना, निर्मला जैन), पृ.94
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी (लेख, तुलसी संदर्भ और दृष्टि, सं. केशव प्रसाद सिंह), बंदे वाणी विनायकौ, पृ.1
3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, सूर-साहित्य, पृ.106
4. वही, पृ.108
5. प्रेमशंकर, भक्ति काव्य का समाजशास्त्र, पृ.58
6. प्रो. मैनेजर पाण्डेय, शब्द और कर्म, पृ.106
7. डा. विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसीदास, भूमिका से।.
8. प्रेमशंकर, भक्तिकाव्य का समाजशास्त्र, पृ.19
9. प्रो. मैनेजर पाण्डेय, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, पृ.256
10. डा. विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसीदास, पृ.19
11. डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ.49
12. प्रो. मैनेजर पाण्डेय, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, पृ.302
13. डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ.77
14. प्रो. मैनेजर पाण्डेय, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, पृ.81

शैव, शाक्त, वैष्णव और बौद्ध परंपराओं में ईश्वरवाद और अनीश्वरवाद का तुलनात्मक विश्लेषण

डॉ० दीपक कुमार गुप्ता

असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, लक्ष्मीबाई कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सारंश

हमारे दैनिक जीवन में विभिन्न धार्मिक और दार्शनिक परंपराओं से जुड़ी अवधारणाओं का गहन प्रभाव पड़ता है। इन परंपराओं के द्वारा दी गई जीवन, मृत्यु, मोक्ष और आत्मा की अवधारणा हमारे दृष्टिकोण और जीवन की दिशा को आकार देती है। भारत में शैव, शाक्त, वैष्णव और बौद्ध परंपराएँ इस प्रकार की गम्भीर आध्यात्मिक धारा का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो ईश्वरवाद और अनीश्वरवाद के विभिन्न रूपों को प्रस्तुत करती हैं। शैव, शाक्त और वैष्णव परंपराएँ एक सर्वोच्च दिव्य सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार करती हैं, जिसमें ईश्वर के साथ भावनात्मक और व्यक्तिगत संबंध की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके विपरीत, बौद्ध धर्म में ईश्वर के अस्तित्व को नकारा जाता है और मुक्ति को व्यक्तिगत प्रयासों और नैतिक अनुशासन के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। इस शोध में इन चार परंपराओं का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि आस्तिक परंपराएँ अधिक समग्र और भावनात्मक दृष्टिकोण प्रदान करती हैं, जबकि बौद्ध धर्म एक अधिक व्यक्तिवादी मार्ग प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द (कीवर्ड्स): शैववाद, शाक्तवाद, वैष्णववाद, बौद्ध धर्म, ईश्वरवाद, अनीश्वरवाद, मुक्ति, भक्ति, आध्यात्मिक मार्ग

यह सर्वविदित है कि भारत एक आध्यात्मिक भूमि का सीमांकन है। इसके आध्यात्मिक भूमि पर अनेक दार्शनिक और धार्मिक परम्पराये विकसित हुई जो अपने मत के अनुसार अद्वितीय वैचारिक सिद्धान्तों में प्रस्तुत किया। इनके सिद्धान्तों में प्रकृति, दुख, सुख, आत्मा, ईश्वर, मुक्ति के मार्ग आदि की विशद व्याख्या प्रस्तुत की गई है। एक दार्शनिक और धार्मिक दृष्टिकोण से शैव, शाक्त, वैष्णव और बौद्ध धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। वैसे तो एक स्थान पर इन सभी के दृष्टिकोण का मिलन बिंदु है, परन्तु वहाँ तक पहुंचाने का अपना अलग-अलग मार्ग एवं दृष्टिकोण है। उदाहरण के लिए बौद्ध धर्म से परम्पराये, नैतिक नियम तथा आध्यात्मिक चिंतन में समानता है,परन्तु आत्म-साक्षात्कार और मोक्ष प्राप्ति तथा आध्यात्मिक और धार्मिक सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न है।

शैव, शाक्त और वैष्णव धर्म की आस्तिक प्रणालियाँ यह स्वीकार करती है कि एक सर्वोच्च सत्ता का अस्तित्व है, जो जीवन के अर्थ,उद्देश्य और पूर्णता का अंतिम स्रोत है।[1] जबकि बौद्ध धर्म ईश्वरवादी ढाँचे को अस्वीकार करते हुए, इस विचार को अस्वीकार करता है कि कोई एक सर्वोच्य, शाश्वत सत्ता है या नित्य दिव्य चेतना है। बौद्ध दर्शन क्षणिकवाद को प्रतिपादित करते हुए यह सर्वत्र अनित्यता या परिवर्तनशीलता को ही सत् मानता है।[2]

यदि उक्त दोनों प्राणालियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि आस्तिक प्राणालियाँ बौद्ध धर्म की तुलना में जीवन, धर्मशास्त्र और तत्वमीमांसा के प्रति अधिक व्यापक और पूर्ण दृष्टिकोण प्रदान करती है। शैववाद, शक्तिवाद और वैष्णववाद में 'दिव्य' का चेतना, व्यक्तिगत भक्ति और सर्वोच्च सत्ता के साथ भावनात्मक रूप से पूर्ण सम्बन्ध पर जोर देना, मानव अनुभव को अधिक समृद्धि तथा अत्यधिक सूक्ष्म समझ प्रदान करता है। जबकि इसके विपरीत बौद्ध धर्म का अनिश्वरवादी ढाँचा वास्तविकता एवं स्वयं की प्रकृति के बारे में मूल्यवान अंर्तदृष्टि प्रदान करने तथा मानवीय स्थिति का संतोषजनक और भावनात्मक विवरण प्रदान करने में असफल रहता है।

यहाँ उक्त दोनों सम्प्रदाय अपने-अपने विचार से भारत की आध्यात्मिक विरासत को विकसित करते है। यहाँ इनके तुलनात्मक विवेचन से ही हम तत्वमीमांसा, धार्मिक और आध्यात्मिक आयामों का परीक्षण कर सकते हैं। जिसके लिए हमें शैव, वैष्णव, शक्ति और बौद्ध पम्पराओं का परीक्षण करना आवश्यक है।

हिन्दू धर्म का एक प्रमुख सम्प्रदाय शैव धर्म है। जिसमें शिव की सर्वोच्च सत्ता स्वीकार की जाती है तथा इनकी पूजा अर्चना की जाती है।[3] शैव धर्म की आध्यात्मिक समृद्धि शिव के दिव्य ऊर्जा की अभिव्यक्ति के रूप में प्राप्त होती है, जिससे इस जगत का आविरभाव हुआ है।[4] इस परम्परा के केन्द्र में सार्वभौमिक चेतना की अवधारणा है। जहाँ शिव दोनों ही जगत यथा पारलौकिक तथा प्रकट दुनिया का प्रतिनिधित्व करते हुए निराकार, निरपेक्ष तथा अविभाज्य है। शैव धर्म में मोक्ष इस अर्थ में प्राप्त किया जाता है कि व्यक्तिगत आत्मा स्वाभाविक रूप से सर्वोच्च चेतना अर्थात् 'परम शिव' से जुड़ी हुई है। इस प्रकार स्वयं और ब्रह्मांड के बीच दिव्य एकता में यह विश्वास अस्तित्व की गहन और समग्र समझ प्रदान करता है। बौद्ध धर्म के विपरीत, जो स्वयं के अस्तित्वहीन होने और निर्वाण प्राप्त करने की इच्छा की समाप्ति पर जोर देता है, शैव दर्शन में जगत की वास्तविकता और आत्मा की दिव्य प्रकृति की पुष्टि करता है।

शैव दर्शन में ध्यान और भक्ति के माध्यम से शिव के साथ मिलन की संभावना और दिव्य कृपा पर जोर, व्यक्तिगत प्रयास के माध्यम से आत्म-मुक्ति की बौद्ध खोज की तुलना में अधिक सम्बन्धपरक और आध्यात्मिक रूप से पूर्ण मार्ग प्रदान करता है।

इसी प्रकार शक्तिवाद, जो दिव्य 'माँ' या 'शक्ति' को परम वास्तविकता के रूप में मानते है, जो एक गहन और भावनात्मक रूप से समृद्ध आध्यात्मिक मार्ग प्रदान करता है। ये शक्ति को दिव्य ऊर्जा, सृजन संरक्षण तथा विनाश के पीछे गतिशील शक्ति के रूप में स्वीकार करते है। शक्तिवाद में 'दिव्य' अमूर्त नहीं है बल्कि 'देवी' के रूप में स्वीकार किया जाता है, जो दयालु और उग्र दोनों है। शक्ति की पूजा में दिव्य के साथ एक घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होता है। जहाँ साधक अपनी व्यक्तिगत ऊर्जा को देवी की ब्रह्मणीय ऊर्जा के साथ मिलन करता है। व्यक्तिगत भक्ति और अनुष्ठानों द्वारा चिन्हित दिव्य के साथ यह सम्बन्ध, संसारिक इच्छाओं से अलगाव के माध्यम से दुख की समाप्ति पर, बौद्ध धर्म के ध्यान की तुलना में अधिक सुलभ और भावनात्मक रूप से परिष्कृत मार्ग प्रदान करता है। यहाँ यदि बौद्ध दर्शन की बात की जाए तो वह भौतिक दुनिया से लगाव पर काबू पाने के महत्व को अत्यधिक तर्कसंगत स्वीकार करता है। जबकि शक्तिवाद जगत को एक दिव्य अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार करता है, जहाँ दिव्य-स्त्री अस्तित्व के प्रत्येक पहलू में मौजूद है।

इस श्रृंखला में वैष्णववाद, जो भगवान विष्णु और उनके अवतारों, विशेष रूप से 'राम' और 'कृष्ण' की पूजा के इर्द-गिर्द घूमता है, मुक्ति के प्राथमिक मार्ग के रूप में भक्ति या भक्ति के महत्व पर विशेष बल देता है।[5] वैष्णवाद में ईश्वर को जगत में सक्रिय रूप से शामिल माना जाता है, जो ब्राह्मण्डीय व्यवस्था को बनाए रखने तथा मनुष्यों को मुक्ति की ओर मार्गदर्शन करने के लिए अवतारों के माध्यम से हस्तक्षेप करते हैं।[6] ईश्वरीय कृपा की अवधारणा वैष्णववाद का केंद्रीय सिद्धांत है, जो भक्त की व्यक्तिगत ईश्वर के साथ सम्बन्ध, प्रेम, समर्पण और विष्णु की दयालु प्रकृति में विश्वास पर आधारित है।[7] यह सिद्धांत की ईश्वर व्यक्तियों को मोक्ष प्राप्त करने में मदद करने के लिए मानव रूप धारण करते हैं, बौद्ध धर्म के गैर-ईश्वरवादी दृष्टिकोण से पूर्णत: भिन्न है, जहाँ ईश्वर या ईश्वरीय हस्तक्षेप में कोई विश्वास नहीं है। बौद्ध धर्म में मुक्ति का मार्ग पूरी तरह से व्यक्तिगत प्रयास और आत्म-अनुशासन पर निर्भर करता है। जिसे अधिक विचारशील और भावनात्मक रूप से दूर के दृष्टिकोण के रूप में देखा जा सकता है।[8] दूसरी ओर वैष्णववाद व्यक्तियों के मुक्ति की और मार्गदर्शन करने के लिए विष्णु की दिव्य कृपा पर भरोसा करने की अनुमति देकर अधिक आरामदायक और सुलभ आध्यात्मिक मार्ग प्रदान करता है।

इस क्रम में बौद्ध दर्शन, एक मूल्यवान नैतिक प्रणाली और आंतरिक शांति की ओर ले जाने वाला मार्ग प्रस्तुत करते हुए, स्थायी आत्मा की अस्वीकृति तथा एक सृष्टिकर्त्ता ईश्वर की अस्वीकृति के कारण उपरोक्त आस्तिक परम्पराओं से मौलिक रूप में भिन्न है। मुक्ति का बौद्ध मार्ग, जिसे 'निर्वाण' के रूप में जाना जाता है, इच्छा, आशक्ति और अज्ञानता की समाप्ति के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। इस मार्ग का अपना गुण है, जिसमें शैववाद, शक्तिवाद और वैष्णववाद में पाए जाने वाले सम्बन्ध परक पहलू का अभाव है, जहाँ 'दिव्य' न केवल वास्तविक है बल्कि मानव मुक्ति की प्रक्रिया में गहराई से शामिल भी है। बौद्ध धर्म में, 'मुक्ति' दु:ख की समाप्ति की ओर एक स्वतंत्र यात्रा है, जिसे आस्तिक परम्पराओं में दिव्य की सकारात्मक पुष्टि की तुलना में अधिक नकारात्मक या शून्यवादी दृष्टिकोण के रूप में देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म में एक व्यक्तिगत ईश्वर की अनुपस्थिति व्यक्ति को भावनात्मक और आध्यात्मिक समर्थन से वंचित करती है, जो अन्य तीन परम्पराओं में एक प्रेमपूर्ण देवता के प्रति भक्ति प्रदान करती है।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर यह निर्धारित किया जा सकता है कि भारत का धार्मिक और दार्शनिक परिदृश्य आध्यात्मिक परम्पराओं की असाधारण विविधता से युक्त है। जो जगत की प्रकृति, स्वयं और मुक्ति की मार्ग पर अपना विशिष्ट दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इन परम्पराओं में शैव, शक्ति और वैष्णवाद हिन्दू धर्म के प्रमुख आस्तिक सम्प्रदायों के रूप में सामने आते हैं। जो एक सर्वोच्च देवता की पूजा और दिव्य हस्तक्षेप एवं कृपा में विश्वास पर आधारित है। इसके विपरीत, बौद्ध, धर्म जिसकी भारत में उपनिषदिक विचारों में भी गहरी जड़े हैं, एक गैर आस्तिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है। जो एक व्यक्तिगत ईश्वर के अवधारणा का खण्डन करता है तथा दु:खों से मुक्ति पाने के साधन के रूप में व्यक्तिगत प्रयास और नैतिक अनुशासन पर ध्यान कन्द्रित करता है।[9] इन चार परम्पराओं शैव, शक्ति, वैष्णववाद और बौद्ध धर्म का तुलनात्मक विश्लेषण यह दर्शाता है कि प्रत्येक धर्म एक गहन आध्यात्मिक मार्ग प्रदान करता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से शैव दर्शन समृद्ध और जटिल है,जो मानता है कि सम्पूर्ण ब्रह्मांड शिव की दिव्य ऊर्जा का प्रकटीकरण है।[10] यह विचार विशेष रूप से कश्मीर शैववाद जैसे अद्वैत शैव परम्पराओं में व्यक्त किया गया है। जो यह मानते हैं कि शिव अन्तर्निहित एवं पारलौकिक दोनों है। इस दृष्टिकोण से शिव निराकार और साकार दोनों है। जो समस्त सृष्टि में व्याप्त ब्राह्माडीय ऊर्जा का प्रतीक है। शैव दर्शन के अनुसार व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है। व्यक्ति का यह अहसास कि व्यक्तिगत आत्मा स्वाभाविक रूप से ईश्वर से जुड़ी हुई है, स्वयं और ब्रह्मांड अलग नहीं है, बल्कि शिव के दिव्य सार में एकीकृत है, 'मोक्ष' कहलाता है।

बौद्ध धर्म के विपरीत, जो गैर अस्तित्व पर जोर देता है, एक स्थायी आत्मा और इच्छा की समाप्ति के मार्ग के रूप में निर्वाण में, शैव धर्म स्वयं और दुनिया की दिव्यता की पुष्टि करता है। शैव धर्म में संसार को भ्रम या अस्तित्व की वस्तु के रूप में नहीं देखा जाता बल्कि शिव की ऊर्जा, ऊर्जा की एक दिव्य लीला के रूप में देखा जाता है।

इस प्रकार स्वयं और ब्रह्मांड की दिव्य एकता में विश्वास, शैव दर्शन को अलग पहचान देता है। जो अस्तित्व का अत्यतं सकारात्मक और समावेशी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जहाँ मुक्ति को तो स्वीकार किया जाता है परन्तु जगत को अस्वीकार नहीं किया जाता है। शैव धर्म ईश्वरीय कृपा और मोक्ष पर अत्यधिक जोर देता है। ध्यान, भक्ति और अनुष्ठान के माध्यम से शिव के साथ मिलन की सम्भावना भक्त और शिव के बीच रिश्ते को अत्यधिक प्रगाढ़ बना देता है। भक्त और शिव के बीच का रिश्ता बहुत ही व्यक्तिगत और सम्बन्धपरक है, जिसमें ईश्वर को एक प्रेमपूर्ण, दयालु शक्ति के रूप में देखा जाता है, जो व्यक्ति को मोक्ष की ओर ले जाता है। ईश्वरीय कृपा पर यह जोर बौद्ध धर्म के व्यक्तिगत प्रयास और आत्म-अनुशासन पर ध्यान केन्द्रित करने के साथ, बिल्कुल विपरीत है। बौद्ध धर्म में मुक्ति का मार्ग मुख्य रूप से एकांत है, जहाँ साधक को दुख से छुटकारा प्राप्त करने के लिए अपने स्वयं के प्रयासों

पर निर्भर रहना पड़ता है। यह दृष्टिकोण बौद्धिक रूप से कठोर हो सकता है, इसमें वह गर्मजोशी और भावनात्मक तृप्ति का अभाव है जो ईश्वर के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध से आती है, जैसा कि शैव धर्म में पाया जाता है।

उल्लेखनीय है कि शक्तिवाद, शैववाद के साथ कई आध्यात्मिक समानाताएं साझा करता है, विशेष रूप से इस दृष्टिकोण में कि ब्रह्मांड दिव्य ऊर्जा की अभिव्यक्ति है। परन्तु शक्तिवाद दिव्य के स्त्री पहलू पर विशेष जोर देता है।[1] इसमें देवी केवल पुरुष दिव्य की पूरक नहीं है, बल्कि ब्राह्माडीय प्रक्रिया के लिए जिम्मेदार प्राथमिक शक्ति है। शक्ति भी अंतर्निहित और पारलौकिक दोनों होती है। जो भौतिक दुनिया के रूप में प्रकट होती है और साथ ही इससे परे भी रहती है। शक्ति की पूजा में भी ईश्वर के साथ एक करीबी, व्यक्तिगत सम्बन्ध शामिल होता है जहाँ साधक अपनी व्यक्तिगत ऊर्जा को देवी के ब्रह्माडीय ऊर्जा के साथ मिलना चाहता है।[2] यह सम्बन्ध भक्ति अनुष्ठान और कभी-कभी कुंडलिनी योग जैसी गूढ़ प्रथाओं द्वारा चिन्हित होता है, जहाँ साधक अपने भीतर दिव्य ऊर्जा को जागृत करता है।

इस प्रकार शक्तिवाद में दिव्य स्त्रीत्व पर जोर भौतिक जगत के प्रति एक अनुष्ठान अनूठा दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। जबकि बौद्ध धर्म सिखाता है कि भौतिक जगत से लगाव दुख का स्रोत है तथा निर्वाण प्राप्त करने के लिए इससे दूर रहना चाहिए। शक्तिवाद के अनुसार यह ब्रह्मांड शक्ति की ऊर्जा की अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाता है। जगत की यह सकारात्मक पुष्टि बौद्ध धर्म के सांसारिक इच्छाओं से अलगाव पर ध्यान केंद्रित करने की तुलना में मुक्ति के लिए अधिक सुलभ और भावनात्मक रूप से पुरस्कृत मार्ग प्रदान करता है।

शैववाद की भाँति वैष्णववाद की तत्वमीमांसा भी शविष्णुश को पारलौकिक और सर्वव्यापी दोनों रूपों में प्रस्तुत करती है। जिसमें जगत विष्णु की दिव्य शक्ति की ही अभिव्यक्ति है। कुछ अन्य परम्पराओं के अवैयक्तिक निरपेक्ष के विपरीत, विष्णु एक व्यक्तिगत देवता है, जो अपने भक्तों को जीवन में गहराई से शामिल है। वैष्णव धर्म की भक्ति परम्परा ईश्वर के साथ एक सीधा और भावनात्मक रूप से पूर्ण सम्बन्ध स्थापित करता है। ईश्वरीय कृपा की अवधारणा में भक्त विष्णु की इच्छा के आगे समर्पण करता है, मोक्ष के मार्ग पर उनका मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए उनके दयालु स्वभाव पर भरोसा करता है। ईश्वरीय कृपा और हस्तक्षेप पर यह जोर बौद्ध दृष्टिकोण से बिल्कुल अलग है, जहाँ व्यक्तिगत ईश्वर या ईश्वरीय हस्तक्षेप में कोई विश्वास नहीं है।

वैष्णव धर्म में अवतारों का विचार, हिन्दू परम्परा में एक अनूठा आयाम जोड़ता है। जो यह मानता है कि विष्णु ब्राह्माडीय व्यवस्था को बहाल करने और प्राणियों को मुक्ति की ओर ले जाने के लिए मानव रूप धारण करते हैं।[3] यह विश्वास की 'दिव्य' व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त करने में मदद करने के लिए जगत में सक्रिय रूप से हस्तक्षेप करते है, एक सुविधाजनक और सुलभ आध्यात्मिक मार्ग प्रदान करता है।[4] जहाँ व्यक्ति 'दिव्य' की कृपा और मार्गदर्शन पर भरोसा करता है। यह विचार बौद्धों से विपरीत है, जहाँ व्यक्ति को मुक्ति प्राप्त करने की लिए पूरी तरह अपने स्वयं के प्रयास पर निर्भर रहना होता है।

उल्लेखनीय है कि बौद्ध धर्म भी एक मूल्यवान नैतिक प्रणाली और आन्तरिक शांति की ओर जाने वाला मार्ग प्रदान करते हुए, स्थायी आत्मा की अस्वीकृत और एक निर्माता ईश्वर में अविश्वास से आस्तिक परम्पराओं से मौलिक रूप से भिन्न है। बौद्ध धर्म का मुख्य सिद्धान्त 'चार आर्य सत्य' है जो यह बताता है कि दुख जीवन का एक अंतर्निहित हिस्सा है तथा दुख, इच्छा और आसक्ति के कारण होता है।[5] मुक्ति का मार्ग से जिसे 'अष्टांगिक मार्ग' के रूप में जाना जाता है, में नैतिक जीवन, ध्यान, इच्छा तथा अज्ञानता को समाप्त करने के मार्गों का वर्णन है। जिससे निर्वाण प्राप्त होता है, जो जन्म तथा पुनर्जन्म (संसार) के चक्र से मुक्ति की स्थिति है।

उपयुर्क्त वर्णन के पाश्चात् यह कहा जा सकता है कि बौद्ध धर्म मुक्ति की ओर एक अनुशासित और नैतिक मार्ग प्रस्तुत करता है परन्तु इसका गैर-ईश्वरवादी ढाँचा और निर्वाण प्राप्त करने के लिए व्यक्तिगत प्रयास पर जोर देना, इसके आध्यात्मिक दायरे को सीमित करता है। भौतिक दुनिया से इच्छा और अलगाव की समाप्ति पर बौद्ध धर्म का ध्यान, दुख को सम्बोधित करने में मूल्यवान होने के साथ-साथ अन्ततः मुक्ति की ओर एक अधिक एकांत और अमूर्त यात्रा प्रस्तुत करता है। इसके विपरीत शैववाद, शक्तिवाद और वैष्णवाद की आस्तिक परम्पराएँ मुक्ति की प्रक्रिया में दिव्य चेतना, भक्ति और अनुग्रह की भूमिकाओं को उजागर करके एक अधिक व्यापक और पूर्ण आध्यात्मिक मार्ग प्रदान करती हैं। ये परम्पराये जगत और स्वयं दोनों की वास्तविकता को दिव्य अभिव्यक्तियों के रूप में पुष्टि करती है, जिससे अस्तित्व की गहरी आध्यात्मिक समझ मिलती है। इसके अलावा, इन परम्पराओं में एक व्यक्तिगत देवता के साथ भावनात्मक रूप से समृद्ध सम्बन्ध एक जुड़ाव, गर्मजोशी और समर्थन की भावना को बढ़ाना देता है, जो गैर-ईश्वरवादी बौद्ध ढांचे में अनुपस्थित है। इसी प्रकार चाहे वह शैव धर्म में शिव की सर्वव्यापी प्रकृति हो, शक्तिवाद में शक्ति की गतिशील स्त्री शक्ति हो या वैष्णवाद में अपने अवतारों के माध्यम से विष्णु का दयालु हस्तक्षेप हो, ईश्वरीय मानवीय अनुभव में अन्तरंग रूप से शामिल है, जो अनुग्रह और भक्ति के माध्यम से आत्माओं को मुक्ति की ओर ले जाता है। यह दिव्य भागीदारी विश्वास, आराम और आध्यात्मिक संतुष्टि प्रदान करती है। जिससे आध्यात्मिक पूर्णता के लिए एक अधिक सुलभ और संबन्धपरक मार्ग बनता है। अतः शैव, शाक्त और वैष्णव के आस्तिक मार्ग, ईश्वरीय कृपा और आत्मा के परम तत्व के सम्बन्ध पर जोर देते हुए, बौद्ध धर्म के अधिक व्यक्तिवादी और पृथक दृष्टिकोण की तुलना के में अधिक समग्र और भावनात्मक रूप से समृद्ध दृष्टिकोण प्रस्तुत करते है।

संदर्भ

1 Walpola Rahula, What the Buddha Taught (New York: Open Road + Grove/Atlantic, 2007), 20-30.

2 Rupert Gethin, The Foundations of Buddhism (Oxford: OUP Oxford, 1998), 20-35.

3 David Kinsley, Hindu Goddesses: Visions of the Divine Feminine in the Hindu Religious Tradition (Delhi: Motilal Banarsidass Publ., 1998), 45.

4 Arvind Sharma, The Philosophy of Religion and Advaita Vedanta: A Comparative Study in Religion and Reason (University Park: Penn State Press, 2008), 117.

5 Sharma, The Philosophy of Religion, 145.

6 A. Ghosh, "Krishna: A Sourcebook. Edited by Edwin F. Bryant," The Journal of Hindu Studies 2, no. 1 (2009): 127, doi:10.1093/jhs/hip002.
7 Walpola Rahula, *What the Buddha Taught* (New York: Open Road + Grove/Atlantic, 2007), 112.
8 Steven Collins, Selfless Persons: Imagery and Thought in Theravada Buddhism (Cambridge: Cambridge University Press, 1982), 105.
9 Sharma, *The Philosophy of Religion, 150.*
10 Gavin D. Flood, An Introduction to Hinduism (Cambridge: Cambridge University Press, 1996), *170.*

फुटनोट

1 Kinsley, *Hindu Goddesses*, 12.
2 Douglas R. Brooks, Auspicious Wisdom: The Texts and Traditions of Úrividyâ Úâkta Tantrism in South India (Albany: SUNY Press, 1992), 123.
3 Freda Matchett, "Krsna: Lord or Avatara?," 2013, 120, doi:10.4324/9780203037089.
4 Klostermaier, *A Survey of Hinduism*, 205.
5 Rahula, *What the Buddha Taught, 30.*

प्रेमचंदजी की कहानियों में ग्रामीण परिवेशः मुख्य रूप से किसान जीवन व उनकी समस्याएं

अजय कुमार शर्मा

शोधार्थी, महाराजा सूरजमल बृज विश्वविद्यालय, भरतपुर

सार

हिंदी कहानियों का प्रारंभ अनादि काल से चला आ रहा है। कहानियों का संबंध हमारे पौराणिक युगों से रहा है। कहानियां मनुष्य जीवन के मनोरंजन का सर्वप्रथम सदनों में से एक है जब कहानियों के लेखकों की बात की जाती है उस समय अनेक कहानीकारों के नाम हमारे सामने आते हैं परंतु हमारे मानस पटल कहानियों के नाम से सर्वप्रथम एक बिम्ब उभरता है। कहानीकार मुंशी प्रेमचंद जी! प्रेमचंद जी वास्तव में कहानी चरित्र सिद्ध करते हैं। उनका महत्व तो इस बात से सिद्ध होता है कि उनके नाम से ही कथा युगों का नाम पड़ा कहानीकार के रूप में प्रेमचंद जी का अध्ययन करते हैं, तो पाते हैं कि उनको कहानी सम्राट कहने में उनको किसी को शंका नहीं होनी चाहिए वह वास्तव में इस उपाधि को अलंकृत करते हैं। जब हम प्रेमचंद जी लगभग 300 कहानियों का सारांश अध्ययन के उपरांत पाते हैं कि वह प्रारंभ में आदर्शवाद की तरफ उनका सुझाव था बाद में उनका सुझाव यथार्थवाद की तरफ है। उनकी कहानियों में आदर्शोन्मुख, यथार्थवाद है। प्रेमचंद जी ने अपनी सभी कहानियों में चाहे कुछ अंशतः ही वर्णन हो पर ग्रामीण चित्रण अवश्य प्राप्त होता है। और कुछ कहानी तो पूरी की पूरी ग्रामीण परिवेश पर ही आधारित है, जो ग्रामीण चित्रण प्रेमचंद जी ने अपने कहानियों में किया वह अन्य दुर्लभ है। आज हमारी कल्पना में जो वर्णन उभरता है वह प्रेमचंद जी ने कई दशक पहले कर दिया।

शब्दकोशः अनादिकाल, पौराणिक, मानसपटल, बिम्ब, सम्राट, सारांश, अलंकृत, परिवेश, दुर्लभ, दशक।

प्रस्तावनाः- प्रेमचंद का वास्तविक नाम धनपत राय श्रीवास्तव था इनका जन्म 31 जुलाई सन् 1880 में बनारस राज्य के लमाही गांव में हुआ तथा मृत्यु के 56 साल की आयु उपरांत 8 अक्टूबर सन् 1936 को हुई। प्रेमचंद की हिंदी और उर्दू सामाजिक कथा साहित्य में अग्रणी थे उर्दू में लेखन नवाब राय नाम से किया करते थे। उन्होंने 1907 में सोज ए वतन (राष्ट्र का दुःख) नामक पुस्तक में पांच लघु कहानियों का अपना पहला संग्रह प्रकाशित किया। जिसको अंग्रेजी सरकार ने जप्त कर लिया उसके बाद से नवाब राय जी ने हिंदी में प्रेमचंद नाम से लेखन प्रारंभ किया। इनके पिता का नाम अजायब लाल जो की पेशों से डाकघर के कलर्क थे तथा उनके दादा का नाम गुरुसहाय राय था। वे व्यवसाय से पटवारी थे। उनकी माता का नाम आनंदी देवी था जो की करौनी गांव की रहने वाली थी। उनकी पत्नी का नाम शिवरानी देवी था जो की बाल विधवा थी तथा फतेहपुर के पास एक गांव के जमींदार की बेटी थी प्रेमचंद की शिक्षा में भी संघर्ष रहा 1890 के दशक के मध्य प्रेमचंद जी एक दिन के छात्र के रूप में बनारस के क्वींस कॉलेज में दाखिला लिया।

1897 में उनके पिता की मृत्यु के बाद में मैट्रिकुलेशन की परीक्षा सेकंड डिवीजन के साथ पास करने में कामयाब रहे।

सन् 1900 में प्रेमचंद जी ने सरकारी जिला स्कूल बहराइच में घ्20 के मासिक वेतन पर सहायक शिक्षक की नौकरी की सन् 1919 में प्रेमचंद जी ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से ठण। की डिग्री प्राप्त की हिंदी भाषा में सन् 1919 में प्रेमचंद का पहला प्रमुख उपन्यास सेवा सदन प्रकाशित हुआ इनके तीन संताने हुई श्रीपत राय, अमित राय, कयला देवी।

8 फरवरी 1921 को उन्होंने गोरखपुर में एक बैठक में भाग लिया जहां महात्मा गांधी ने लोगों से असहयोग आंदोलन के तहत सरकारी नौकरियों से इस्तीफा देने के लिए कहा तब अनेक जिम्मेदारियां के बावजूद अपनी पत्नी की सहमति से नौकरी से त्यागपत्र दे दिया।

प्रेमचंद जी ने हिंदी फिल्म उद्योग में अपनी किस्मत आजमाने के लिए 31 मई 1934 को मुंबई पहुंचे उन्होंने प्रोडक्शन हाउस अजंता सिनेटोन के लिए एक पटकथा लेखन की नौकरी स्वीकार कर ली थी वह दर में रहे और फिल्म मजदूर की पटकथा लिखी।

प्रेमचंद 1936 में लखनऊ में प्रगतिशील लेखक संघ के पहले अध्यक्ष सुने गए कई दिनों की बीमारी के बाद और पद पर रहते हुए ही 8 अक्टूबर 1936 को उनकी मृत्यु हो गई।

प्रेमचंद जी की प्रमुख रचनाएंः-

प्रेमचंद जी ने लगभग 300 कहानी लिखी जिनका प्रकाशन मानसरोवर भाग 1 से 8 तक में संग्रह कर करवाया।

प्रमुख कहानियां-

अंधेर, अनाथ लड़की, अपनी करनी, अमृत, अलग्योझा आखरी तोहफा, आखरी मंजिल, आत्म संगीत, आत्माराम, दो बैल की कथा, आल्हा, इज्जत का खून, इस्तीफा, ईदगाह, ईश्वरी न्याय, उद्धार, एक आज की कसर, एक्ट्रेस, कप्तान साहब, कर्मो का फल, क्रिकेट मैच, कवच, कातिल, कोई दुख नहीं हो

तो बकरी खरीद ला कौशल, खुदी, गैरत की कतार, गुल्ली-जुलूस, डंडा, घमंड का पुतला, ज्योति, जेल, झांकी, ठाकुर का कुआं तेंतर, त्रिया चरित्र, तांगे वाले की बड, तिरसूल, दंड दुर्गा का मंदिर, देवी, दूसरी शादी, दिल की रानी, दो सखियां, धिक्कार, नडर की नबी का नीति निर्वाह, नरक का मार्ग, नैराश्य, नशा, नसीहतों का दफ्तर, नाग पूजा, नादान दोस्त, निर्वासन पंच परमेश्वर,पत्नी से पति, पुत्र प्रेम, पेपुजी, प्रतिशोध प्रेमसूत्र, पर्वत यात्रा, प्रायश्चित। परीक्षा, पूस की रात बैंक का दिवाला, बेटों वाली विधवा, बड़े घर की बेटी, बड़े बाबू,बड़े भाई साहब, बंद दरवाजा, बांका जमींदार बोहनी, मैक, मंत्र, मंदिर और मस्जिद, मानवन मुबारक बीमारी, ममता, मां, माता का हृदय, मिलाप मोटे राम जी शास्त्री, स्वर्ग की देवी, राजहठ, राष्ट्र का सेवक, लैला वफा का खजर, वासना की कढ़ाईया, विजय, विश्वास शंखनाद, शुद्र शराब की दुकान, शांति, शादी की वजह, स्त्री और पुरुष, स स्वागं, सभ्यता का रहस्य, समर यात्रा, समस्या, सैलानी बंदर , स्वाभिमानी, सिर्फ एक आवाज, सोहाग का शव, सौत, होली की छुट्टी,नमक का दरोगा, सवा शेर गेहूं, मुक्तिधन, गृह-दाह बुद्ध का दाम,कफन आदि।

उपन्यास- सेवा सदन, प्रेमाश्रय, रंगभूमि, निर्मला कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि गोदान, मंगलसूत्र (अपूर्ण)।

नाटक- संग्राम, कर्बला, प्रेम की वेदी।

अलौकिक व्यक्तित्व- सदा एवं सरल जीवन के धनी प्रेमचंद का व्यक्तित्व संपूर्ण सारांश में हम अलौकिक रूप में प्राप्त करते हैं उनके जीवन में विषमताओं और कटुताओं का प्रभाव रहा परंतु कभी भी उन्होंने हार नहीं मानी उन पर विजय प्राप्त की प्रेमचंद जी हसौद स्वभाव की थे जीवन में विपरीत परिस्थितियों में भी बहादुर्ता से कार्य करते थे वह पूर्व जीवन शक्ति के घोतक थे हमेशा मित्रों के प्रति उदार भाव था वास्तव में भी उच्च कोटि के उनको ग्रामीण जीवन से मनुष्य बहुत ज्यादा थे लगाव था वह बाह्य आडंबर एवं दिखाए के विरोधी थे तथा स्वावलंबी थे जीवन के प्रति आगाद आस्था रखते थे परंतु ईश्वर के बारे में आस्था वादी नहीं बन सके तथा धीरे-धीरे विषम परिस्थितियों के कारण अनीश्वरवादी बन गए थे प्रेमचंद जी ने जैनेंद्र को लिखा तुम आस्तिकता की ओर बढे जा रहे हो जा ही नहीं रहे हो बल्कि पक्का भगत बनते जा रहे हो मैं संदेह से पक्का नास्तिक बनता जा रहा हूं मृत्यु से कुछ घंटे पहले भी उन्होंने जैनेंद्र से कहा था जिनेंद्र लोग ऐसे समय में ईश्वर को याद करते हैं। मुझे भी याद दिलाई जाती है पर मुझे अभी तक ईश्वर को कष्ट देने की आवश्यकता महसूस नहीं हुई। "वास्तव" में उनका शानदार व्यक्तित्व था।

प्रेमचंद जी की कहानियों में ग्रामीण परिवेश: जब प्रेमचंद जी की कहानियों में ग्रामीण चित्रण की बात आती है तो सभी कहानियों में कुछ में तो अंशत: तथा कुछ में संपूर्ण चित्रण उपलब्ध हैं हम कुछ कहानियां की वर्णन स्वरूप जानकारी देगी उनकी पूस की रात कहानी ग्रामीण चित्रण एवं किसान जीवन की श्रेष्ठ कहानी है इस उदाहरण से जानेंगे की हल्कू ही आकर अपनी बीवी से कहा शहना आया है। लाओ जो रुपए रखे हैं उसे दे दो किसी तरह गर्दन तो छूटे मुन्नी बहुत झाडू लग रही थी पीछे फिर कर बोली तीन ही तो रुपए हैं। "दे दूं कंबल कहां से आएगा" यहां पर जब गांवों मैं जब महाजन रुपए लेने आता है तब भी वही मजदूरी गांव के लोगों के मुख पर स्पष्ट झलकती है जैसे मुन्नी की झलक रही है।

ईदगाह कहानी में ईद जैसे महत्वपूर्ण त्यौहार को आधार बनाकर ग्रामीण मुस्लिम जीवन का सुंदर चित्र प्रस्तुत किया गया है हामिद का चरित्र हमें बताता है कि अभाव उम्र से पहले बच्चों में कैसे बड़ों जैसी समझदारी पैदा कर देता है।

प्रेमचंद जी की कफन कहानी बहुस्तरीय कहानी है जिसमें धीसू और माधव की बेबसी अमानवीयता और निकम्पेन के बहाने सामन्ती औपनिवेशिक गठजोड़ के दौर की सामाजिक आर्थिक संरचना और अमानवीय रूप का पता मिलता है।।

सवा सेर गेहूं कहानी प्रेम जी की शहर के साथ ही गांव में हावी साहुकारी व्यवस्था और किसानों के दर्द को उकेरती कहानी है इस कहानी में यह प्रश्न उठाया की आखिर कब तक किसान साहूकारों द्वारा कुछ ला जाता रहेगा राह ए नजात कहानी मैं प्रेमचंद जी ने खेती का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है तथा बताया छोटी-छोटी बातों पर क्रोध करना रंजिश रखता यह बेतुकी बातें हैं जो गांव में आम समस्या है। उनका चित्रण कहानी में किया गया है।

प्रेमचंद जी की पंचायत कहानी में यह बताया की अनुकूल परिस्थितियों के आने पर मनुष्य का हृदय परिवर्तन हो जाता है और वह अपनी कुवृत्तियों का त्याग करके सद्वृतियों की ओर अग्रसर होता है यदि ग्रामीण जीवन दूषित हो गया है तो निराश होने का कोई कारण नहीं है प्रयास करने पर ग्रामीण जीवन को सुखी बनाए जा सकता है।

घास वाली कहानी में प्रेमचंद जी ने मुलिया नामक नारी पात्र से पतिव्रता औरत का उदाहरण पेश किया और चौन सिंह को सही रहे की और अग्रसर किया गांव में आए दिन ऐसी घटनाएं होती रहती हैं परंतु मुलिया औरत सही रहे पर लाने वाली बहुत कम है कहानी में ग्रामीण परिवेश का बड़ा ही मार्मिक प्रसंग हमारे सामने उभरा है और कहानी में यह शिक्षा दी की "उसन और जवानी" चंद दिनों के मेहमान हो परंतु आचरण आजीवन की कमाई है यह एक महंगा शौक है जो हर कोई नहीं कर सकता। नजात कहानी हिंदी में सद्गति के नाम से प्रकाशित हुई थी एक जरूरतमंद कई दिनों का भूखा प्यासा गरीब चमार किसी काम से ठाकुर के यहां आता है ठाकुर उसे लकड़ी काटने के काम पर लगा देता है सख्त गर्मी से बेहाल वह लकड़ी काटता है और अपनी थकान मिटाने के लिए बीच-बीच में चिलम पीता रहता है लेकिन काम समाप्त होने से पहले ही वह इतना थक जाता है की मर जाता है उसे मरे हुए चमार की लाश से ठाकुर जिस तरह हैं जान छुड़वाता है वह बहुत मार्मिक है। आज भी कितने ही बेबस लाचार व्यक्ति इसकी मौत प्राप्त गांव में करते हैं। गांव में ऐसा देखने को मिलता है।

प्रेमचंद जी की कहानियों में किसान जीवन और उनकी प्रमुख समस्याएं:-

किसान उनकी जिंदगी उनकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति प्रेमचंद जी की कथा साहित्य की बहुत दिलचस्प विषय रहे हैं उनको कहानियों में किस की चहल-पहल हमेशा नजर आएगी यहां कुछ कहानियों वर्णन से किसानों की समस्याओं एवं किसान जीवन को जानकारी प्राप्त करेंगे।

दो बैलों की कहानी हीरा और मोती नाम के दो बैलो के गिर्द घूमती है दोनों बैल अपने मालिक से अलग होने के बाद बहुत सारी समस्याओं का सामना करते हैं। लेकिन कभी एक दूसरे का साथ नहीं छोड़ते और आखिरकार वापिस अपने पुराने मालिक के पास ही चले जाते हैं। कहानी में किसान जीवन का चित्रण हुआ और उनकी समस्याएं पशुपालन में आर्थिक समस्याएं कृषि में आने वाली समस्याओं का बखुली चित्रण कहानी में किया गया हैं।

पूस की रात कहानी में किसान जीवन की समस्याओं पर आधारित सर्वश्रेष्ठ कहानी है। हल्कू नामक किसान पात्र से सम्पूर्ण किसान जाती का रेखांकन प्रेमचंद जी ने किया है कि किस प्रकार किसान अपनी आजीविका का निर्वाह समस्याओं से जुझते हुए करता है। पौष के माह में वह किस प्रकार खेत में सर्दी में ठिठुरता हुआ सिंचाई करता है। कैसे वह हाड़ कांपती सर्दी को सहन करता है। और जमींदार के कर्ज को किस प्रकार अदा करता है। आदि समस्याओं का वर्णन किया है।

सवा सेर गेहूं शहर के साथ ही गांव में हावी साहूकारी व्यवस्था और किसानों के दर्द को उकेरती कहानी है प्रेमचंद जी इस कहानी साहूकारी व्यवस्था के बोझ तले लगातार दबाते जा रहे और पीड़ित किये जा रहे किसानो के दर्द को उकेरा और सवाल उठाया कि आखिर कब तक किसान साहूकारों द्वारा कुचला जाता रहेगा। अत: कहानी जीवन एवं उनकी समस्याओं का मार्मिक चित्रण किया गया है।

राह ए नजात प्रेमचंद जी की झींगू महतो एवं बुद्धू गडरिया के बीच पनपी यह रंजिश इतनी लंबी चली की एक दिन वह भी आया जब दो वक्त की रोटी के लिए भी संघर्ष करना पड़ा यह आज भी किसानों की आम समस्या देखने को मिलती है कहानी में किसान जीवन व समस्याओं को उजागर किया है।

बांका जमींदार प्रेमचंद भी किसान परिवेश इस प्रकार कहानी है एक कत्ल का मुकदमा जीतने की एवरेज में वकील ठाकुर प्रद्युमन सिंह उस मोजे को नजराने के तौर पर पा जाते हैं जिसे वह बहुत अर्से से पसंद करते आ रहे थे मौज मिलने पर वह रिआया के साथ इतनी सक्ति करते हैं कि गांव कई बार उजड़ता है और बसता है फिर एक कोम उसे गांव में आकर बस्ती है जो ठाकुर साहब को लोहे की चने चबवा देती है यह कहानी भी किसान जीवन एवं उनकी समस्याओं को उजागर करती है।

निष्कर्ष: प्रेमचंद जी को कहानी सम्राट उनके ग्रामीण परिवेश चित्रण एवं किसान समस्याओं के चित्रण को देखते हुए कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। प्रेमचंद जी ने कहानियों में जो ग्रामीण परिवेश का चित्रण किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। ग्रामीण चित्रांकन का सूक्ष्म से सूक्ष्म चित्रण सरल शब्दों में उन्होंने अपनी कहानियों में बखूबी निभाया। उनकी समस्याओं को समझ में व्यापक रूप से उभर सभी लोगों को उनकी समस्याओं की ओर दृष्टांकन किया।

उपर्युक्त सभी प्रकार हमने उनकी कहानियों में ग्रामीण परिवेश में किसान जीवन एवं उनकी समस्याओं को विस्तृत एवं व्यापक रूप से जन एवं समझा है अन्यत्र ऐसा चित्रण प्रेमचंद जी ने किया वह अप्राप्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. प्रेमचंद, मानसरोवर भाग 4 (सवा सेर गेहूं), सरस्वती प्रेस इलाहाबाद, वाराणसी दिल्ली, संस्करण 1970, पृष्ठ 190
2. प्रेमचंद, मानसरोवर भाग 4 (सद्गति), सरस्वती प्रेस इलाहाबाद, वाराणसी दिल्ली,संस्करण 1970, पृष्ठ 26
3. संपादक, महेंद्र कुलश्रेष्ठ- प्रेमचंद: कहानी का श्रेष्ठ (कफन) शिक्षा भारती, कश्मीरी गेट दिल्ली, पृष्ठ संख्या 119
4. बाबू गुलाब राय (मूल लेखक) संवर्धन- संपादक प्रोफेसर- विशंभर अरुण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा संस्करण 2005, पृष्ठ संख्या 106
5. संपादक: महेंद्र कुलश्रेष्ठ, प्रेमचंद कहानी का श्रेष्ठ (पूस की रात), शिक्षा भारती कश्मीरी गेट दिल्ली, पृष्ठ संख्या 61
6. प्रेमचंद:-क्षितिज कक्षा 9 दो बैलों की कथा
7. संपादक: महेंद्र कुलश्रेष्ठ, प्रेमचंद कहानी का श्रेष्ठ (ईदगाह), शिक्षा भारती कश्मीरी गेट दिल्ली, पृष्ठ संख्या 116
8. मानसरोवर भाग 1, प्रेमचंद- घास वाली
9. Prem chand ke sav Afsane
   प्रेमचंद: राह ए नजात
10. प्रेमचंद: अफसाने बांका जमींदार
11. प्रेमचंद: जीवन परिचय: विकिपीडिया भारतीय हिंदी और उर्दू के कहानीकार, (1980-1936)

बिहार में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव: एक विश्लेषण

डॉ० ब्रजनंदन प्रसाद

उच्च माध्यमिक शिक्षक, प्रोजेक्ट एमपीएस, कन्या इंटर विद्यालय, हिसुआ, नवादा, बिहार

प्रस्तावना

जलवायु परिवर्तन एक ऐसा वैश्विक संकट बन चुका है जिसे अनदेखा करना अब संभव नहीं है। यह केवल पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न नहीं करता, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी गहरे असर डालता है। भारत के विभिन्न हिस्सों में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को महसूस किया जा रहा है, और बिहार भी उन राज्यों में से एक है जो इस बदलाव से बुरी तरह प्रभावित हो रहे हैं। बिहार, जो मुख्यत: कृषि-आधारित राज्य है, जलवायु परिवर्तन के कारण सूखा, बाढ़, अत्यधिक गर्मी, और फसल नष्ट होने जैसी समस्याओं का सामना कर रहा है। यह लेख बिहार में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों पर एक व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करेगा।

जलवायु परिवर्तन का परिचय

जलवायु परिवर्तन का अर्थ है पृथ्वी के वायुमंडलीय तापमान, वर्षा के पैटर्न, समुद्र स्तर, और मौसम में होने वाले परिवर्तनों में स्थायी बदलाव। यह बदलाव मुख्य रूप से मानवीय गतिविधियों जैसे कार्बन उत्सर्जन, वनों की अंधाधुंध कटाई, और औद्योगिकीकरण के कारण हो रहा है। जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम के पैटर्न में अनियमितताएँ, अधिक तूफान, बाढ़, सूखा, और अत्यधिक गर्मी जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। यह न केवल पर्यावरण पर असर डालता है, बल्कि आर्थिक और सामाजिक जीवन को भी प्रभावित करता है।

बिहार में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

बिहार, जो भारतीय उपमहाद्वीप के पूर्वी हिस्से में स्थित है, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से अत्यधिक प्रभावित हो रहा है। राज्य की लगभग 80% जनसंख्या कृषि पर निर्भर है, और जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि की उत्पादकता में गिरावट आई है। इसके अलावा, बिहार में बाढ़ और सूखा जैसी आपदाएँ भी बढ़ी हैं, जो राज्य की अर्थव्यवस्था और लोगों की आजीविका पर प्रतिकूल असर डालती हैं।

1. बाढ़ और जलप्रदूषण

बिहार में बाढ़ एक पुरानी समस्या रही है, लेकिन जलवायु परिवर्तन के कारण यह समस्या और अधिक गंभीर हो गई है। हर साल मानसून के दौरान राज्य के विभिन्न हिस्सों में बाढ़ की घटनाएँ होती हैं, जो कई गांवों और शहरों को प्रभावित करती हैं। गंगा, कोसी, बागमती, और घाघरा जैसी नदियाँ अक्सर उफान पर रहती हैं, और इनके जलस्तर में वृद्धि के कारण बाढ़ आती है।

जलवायु परिवर्तन के कारण इन नदियों के प्रवाह में अनियमितता आई है, जिससे बाढ़ के खतरे में वृद्धि हुई है। भारी वर्षा और बढ़ते जलस्तर के कारण नदियाँ अपनी सामान्य सीमा से बाहर बह जाती हैं और कृषि भूमि, आवासीय क्षेत्र, और बुनियादी ढांचे को प्रभावित करती हैं। विशेष रूप से कोसी नदी के क्षेत्र में हर साल बाढ़ की घटनाएँ अधिक होती हैं, जिससे बड़ी संख्या में लोग विस्थापित होते हैं और उनकी संपत्ति का नुकसान होता है।

2. सूखा और जल संकट

बिहार में बाढ़ के साथ-साथ सूखा भी एक महत्वपूर्ण समस्या बन चुकी है। जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा का पैटर्न अनियमित हो गया है, जिससे वर्षा की कमी के कारण सूखा पड़ता है। राज्य के दक्षिणी और पश्चिमी हिस्सों में पानी की भारी कमी हो जाती है, जिससे कृषि पर प्रतिकूल असर पड़ता है।

बिहार के कृषि क्षेत्र में अधिकांश फसलें वर्षा पर निर्भर होती हैं। सूखा के कारण खाद्यान्न उत्पादन में भारी गिरावट आई है, और किसान अपनी आजीविका को बनाए रखने में कठिनाई का सामना करते हैं। सूखा से न केवल खाद्यान्न उत्पादन प्रभावित होता है, बल्कि पानी की कमी से पीने के पानी की समस्या भी बढ़ जाती है, जिससे ग्रामीण इलाकों में गंभीर जल संकट उत्पन्न होता है।

3. वातावरणीय परिवर्तन और स्वास्थ्य संकट

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव बिहार के स्वास्थ्य क्षेत्र पर भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अत्यधिक गर्मी और उष्णकटिबंधीय तापमान में वृद्धि के कारण स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ बढ़ी हैं। उच्च तापमान के कारण लोग गर्मी से संबंधित बीमारियों जैसे लू, हीटस्ट्रोक, और डिहाइड्रेशन का शिकार हो रहे हैं।

साथ ही, वर्षा के पैटर्न में परिवर्तन के कारण मच्छरों और अन्य बीमारी फैलाने वाले कीटों की संख्या में भी वृद्धि हो रही है, जिससे मलेरिया, डेंगू, और चिकनगुनिया जैसी संक्रामक बीमारियाँ अधिक फैलने लगी हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण स्वच्छ जल की आपूर्ति भी प्रभावित हो रही है, जो पानी से संबंधित रोगों के प्रसार को बढ़ावा दे रहा है।

4. कृषि पर असर

बिहार की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है। जलवायु परिवर्तन ने यहां की कृषि प्रणाली को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। सूखा, अत्यधिक वर्षा, अनियमित मानसून, और बढ़ते तापमान के कारण कृषि उत्पादकता में गिरावट आई है।

बिहार में रबी और खरीफ फसलों की खेती प्रमुख रूप से होती है, लेकिन जलवायु परिवर्तन के कारण इन फसलों का उत्पादन घट गया है। समय से पहले या देर से वर्षा होने से फसलें प्रभावित होती हैं, और किसान असमय बुवाई या कटाई करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। इसके अलावा, जलवायु परिवर्तन ने खाद्यान्न उत्पादन की असुरक्षा को बढ़ा दिया है, जिससे खाद्य संकट की स्थिति उत्पन्न हो रही है।

5. आर्थिक प्रभाव

जलवायु परिवर्तन के कारण बिहार की अर्थव्यवस्था पर भी गंभीर असर पड़ा है। राज्य में कृषि क्षेत्र की गिरती उत्पादकता और बार-बार आने वाली आपदाओं के कारण राज्य का सकल घरेलू उत्पाद (GDP) प्रभावित हो रहा है। बाढ़ और सूखा से किसानों का नुकसान हो रहा है, जिसके कारण उनकी आय में गिरावट आई है।

इसके अलावा, जलवायु परिवर्तन से प्रभावित क्षेत्रों में रोजगार की स्थिति भी बिगड़ गई है। कृषि के अलावा, बिहार में पशुपालन, मछली पालन, और हस्तशिल्प उद्योग जैसे अन्य क्षेत्र भी प्रभावित हो रहे हैं, जिससे राज्य की आर्थिक स्थिति पर दीर्घकालिक प्रभाव पड़ सकता है।

जलवायु परिवर्तन के लिए बिहार की तैयारियाँ

बिहार सरकार ने जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए कई कदम उठाए हैं। जलवायु परिवर्तन के लिए राज्य ने एक विशिष्ट योजना तैयार की है, जिसमें बाढ़ प्रबंधन, सूखा प्रबंधन, और जल संरक्षण पर जोर दिया गया है।

राज्य ने जल संसाधनों के संरक्षण और वर्षा जल संचयन को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न योजनाएँ शुरू की हैं। इसके अलावा, सरकार ने जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को समझने और इससे निपटने के लिए कृषि क्षेत्र में अधिक लचीला उपायों को अपनाया है, जैसे कतवनहीज-तमेपेजंदज फसलें और बेहतर सिंचाई प्रणालियाँ।

बिहार में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव: आँकड़े और तथ्यों का विश्लेषण बिहार, जो भारत के सबसे अधिक कृषि-निर्भर राज्यों में से एक है, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से गहरे प्रभावित हो रहा है। यह राज्य पहले ही बाढ़ और सूखा जैसी प्राकृतिक आपदाओं का शिकार रहा है, और जलवायु परिवर्तन इन घटनाओं की तीव्रता और आवृत्ति को बढ़ा रहा है। इस लेख में हम बिहार में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के बारे में महत्वपूर्ण आँकड़े और तथ्यों का विश्लेषण करेंगे।

1. वर्षा का पैटर्न और सूखा

जलवायु परिवर्तन के कारण बिहार में वर्षा के पैटर्न में अनियमितता आई है, जिससे सूखा और जल संकट जैसी समस्याएँ बढ़ी हैं।

सालाना वर्षा में अनियमितता: बिहार में औसत वार्षिक वर्षा 1200-1500 मिमी के बीच होती है। लेकिन जलवायु परिवर्तन के कारण यह वर्षा असमान रूप से वितरित हो रही है, जिससे बाढ़ और सूखा दोनों की घटनाएँ बढ़ रही हैं। राज्य के कई हिस्सों में मानसून की देर से शुरुआत और वर्षा की कमी देखी जा रही है।

सूखा की घटनाएँ: बिहार के 38 जिलों में से 18 जिले सूखा प्रभावित हैं। 2000 से 2019 के बीच, बिहार में औसतन 4 से 5 वर्षों में सूखा की घटनाएँ दर्ज की गई हैं। उदाहरण के लिए, 2016 और 2019 में राज्य में गंभीर सूखा पड़ा था, जिसने कृषि उत्पादकता पर भारी प्रभाव डाला था।

2. बाढ़ और जलस्तर में वृद्धि

बिहार में बाढ़ एक पुरानी समस्या है, लेकिन जलवायु परिवर्तन ने इसके प्रभाव को और भी बढ़ा दिया है। जलवायु परिवर्तन के कारण नदियों के जलस्तर में वृद्धि और बर्फीली पर्वतों से पानी का अधिक प्रवाह हो रहा है, जिससे बाढ़ की घटनाएँ बढ़ी हैं।

बाढ़ प्रभावित क्षेत्र: बिहार में हर साल औसतन 20 से 25% क्षेत्र बाढ़ से प्रभावित होता है। 2008 में आई बाढ़, जिसमें 1.5 करोड़ लोग प्रभावित हुए थे, इसका प्रमुख कारण असामान्य रूप से अधिक वर्षा और गंगा, कोसी, बागमती, और घाघरा जैसी नदियों के उफान पर आना था। इसके बाद 2017 और 2020 में भी बाढ़ ने राज्य को गंभीर रूप से प्रभावित किया।

कोसी क्षेत्र: बिहार के कोसी क्षेत्र में बाढ़ की घटनाएँ और भी अधिक हैं, क्योंकि यहाँ की नदियाँ अक्सर अपनी सीमा पार कर जाती हैं। कोसी में पानी का बहाव बढ़ने के कारण 2008 में आई बाढ़ ने लगभग 5 लाख हेक्टेयर कृषि भूमि को प्रभावित किया और 1.5 लाख से अधिक लोग विस्थापित हुए।

3. कृषि उत्पादन में गिरावट

बिहार की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है, और जलवायु परिवर्तन इसका सबसे बड़ा शिकार बन चुका है। अनियमित मानसून, अत्यधिक गर्मी, और सूखा जैसी घटनाओं के कारण राज्य में कृषि उत्पादन प्रभावित हो रहा है।

कृषि पर प्रभाव: जलवायु परिवर्तन के कारण बिहार में मुख्य फसलों जैसे धान, गेहूं, मक्का, और दालों की उत्पादकता में गिरावट आई है। उदाहरण के लिए, 2015 में सूखा के कारण राज्य में धान उत्पादन में 20% की गिरावट आई थी।

कृषि संकट: 2020 में बिहार में भारी बाढ़ के कारण लगभग 35 लाख हेक्टेयर भूमि प्रभावित हुई थी, जिसमें लगभग 5 लाख हेक्टेयर फसलें पूरी तरह से नष्ट हो गई थीं। इससे राज्य के लाखों किसानों की आजीविका पर प्रतिकूल असर पड़ा।

4. स्वास्थ्य पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन के कारण बिहार में स्वास्थ्य संकट भी बढ़ा है। अत्यधिक गर्मी, सूखा और अनियमित वर्षा ने बीमारियों के प्रसार को बढ़ावा दिया है।

तापमान में वृद्धि: बिहार में औसत तापमान में वृद्धि हो रही है। 1970 से 2020 के बीच, राज्य में औसत तापमान में 1.3 डिग्री सेल्सियस का इजाफा हुआ है, और इस कारण हीटस्ट्रोक, डिहाइड्रेशन, और लू जैसी समस्याएँ बढ़ी हैं।

संक्रामक रोगों का प्रसार: जलवायु परिवर्तन के कारण मच्छरों और अन्य रोगों के फैलाव में वृद्धि हो रही है। मलेरिया, डेंगू, चिकनगुनिया जैसे रोगों में 20% तक वृद्धि हो चुकी है। 2017 में डेंगू के मामले बिहार में दोगुने हो गए थे।

स्वच्छ जल संकट: वर्षा का असमान वितरण और सूखा के कारण बिहार में पीने के पानी की भारी कमी हो गई है। 2019 में, राज्य के लगभग 25% हिस्से में पानी की गंभीर कमी का सामना किया गया था, जिससे स्वास्थ्य संकट और भी बढ़ा।

5. आर्थिक प्रभाव

जलवायु परिवर्तन के कारण बिहार की अर्थव्यवस्था भी प्रभावित हो रही है, विशेष रूप से कृषि क्षेत्र में।

अर्थव्यवस्था में गिरावट: कृषि संकट के कारण राज्य के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में गिरावट देखी गई है। बिहार का कृषि क्षेत्र राज्य के कुल GDP का लगभग 35% योगदान करता है, और जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि उत्पादकता में गिरावट ने राज्य की आर्थिक स्थिति को प्रभावित किया है।

किसानों की आय में कमी: 2020 में बाढ़ और सूखा के कारण किसानों की आय में औसतन 25-30% तक कमी आई। 2019 में सूखा और 2020 में बाढ़ के कारण लगभग 50,000 करोड़ रुपये का नुकसान हुआ था।

6. जलवायु परिवर्तन के लिए राज्य सरकार की तैयारी

बिहार सरकार ने जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिए कुछ योजनाएँ शुरू की हैं, जिनमें जलवायु परिवर्तन के लिए एक विशेष कार्ययोजना, जल संरक्षण, सिंचाई प्रणालियों का सुधार, और आपदा प्रबंधन शामिल हैं।

जलवायु परिवर्तन कार्ययोजना: बिहार सरकार ने जलवायु परिवर्तन की चुनौती से निपटने के लिए 2017 में "बिहार राज्य जलवायु परिवर्तन कार्ययोजना" तैयार की है, जिसमें बाढ़ और सूखा प्रबंधन, जलवायु संवेदनशील कृषि तकनीकों को बढ़ावा देने और जलवायु संकट से प्रभावित क्षेत्रों में नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग बढ़ाने की योजना है।

वर्षा जल संचयन: जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए बिहार में वर्षा जल संचयन के कई उपाय किए जा रहे हैं। 2018 में राज्य सरकार ने ष्बिहार जल जीवन मिशनष् शुरू किया था, जिसका उद्देश्य जल संसाधनों का संरक्षण और वितरण सुधारना है।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन बिहार के लिए एक गंभीर चुनौती बन चुका है। राज्य के कृषि, जल संसाधन, स्वास्थ्य, और अर्थव्यवस्था पर इसके प्रतिकूल प्रभाव बढ़ते जा रहे हैं। हालांकि राज्य सरकार और स्थानीय प्रशासन द्वारा कुछ उपाय किए गए हैं, लेकिन जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिए व्यापक और दीर्घकालिक उपायों की आवश्यकता है। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को देखते हुए बिहार में कृषि, जल संरक्षण, और आपदा प्रबंधन के क्षेत्रों में अधिक निवेश और तकनीकी नवाचारों की आवश्यकता है।

बिहार में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को लेकर विभिन्न आँकड़े और तथ्यों ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह राज्य गंभीर जलवायु संकट का सामना कर रहा है। जलवायु परिवर्तन से न केवल कृषि उत्पादन में गिरावट हो रही है, बल्कि स्वास्थ्य, जल संसाधन, और राज्य की अर्थव्यवस्था भी प्रभावित हो रही है। हालांकि राज्य सरकार द्वारा कुछ कदम उठाए गए हैं, लेकिन जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न संकट को प्रभावी रूप से निपटने के लिए दीर्घकालिक, समग्र और प्रभावी उपायों की आवश्यकता है।

संदर्भ

- Climate Change and Agriculture in Bihar," Bihar State Action Plan on Climate Change, 2021.
- Impact of Floods and Drought on Bihar's Economy," Bihar Economic Survey, 2022.
- Water Crisis in Bihar," Bihar Water Resources Department, 2023.
- Public Health Impacts of Climate Change in Bihar." Indian Journal of Environmental Health, 2022.

मेहरुन्निसा परवेज के उपन्यास 'समरांगण' में चित्रित विश्वासघात एवं उसके दुष्परिणाम

अपराजिता राय

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर

सुख, समृद्धि एवं सत्ता की प्राप्ति के लिए मनुष्य बेचौन रहता है व्यक्तिगत स्वार्थ और प्रलोभनों के कारण वह वाद-विवाद, ईर्ष्या-द्वेष, घृणा जैसे दुर्गुणों का शिकार हो जाता है। फलतः अपने निहित स्वार्थ पूर्ति के लिए वह अपने प्रिय जनों के साथ भी विश्वासघात करता है। "मानव इतिहास हमेशा गद्दारी से ही लिखा गया है।"[1] इतिहास में ऐसे अनगिनत घटनाओं का वर्णन है। विश्व के प्रायः सभी समाज एवं धर्मों में इसे निंदनीय माना गया है। क्योंकि मनुष्य के इस दुर्गुण के कारण उसके परिवार एवं समाज नष्ट हो जाते हैं, देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ दिए जाते हैं, समाज और राष्ट्र का इतिहास बदल जाता है।

मेहरुन्निसा परवेज ने अपने उपन्यास 'समरांगण' में मानवों के इस दुर्गुण को चित्रण कर उसके दुष्परिणामों का भी आकलन करने का सफल प्रयास किया है। उपन्यास का कथावस्तु और घटनाक्रम १८५७ ई० के आस-पास का है। भारत के प्रथम स्वतंत्रता का युद्ध चल रहा था। बादशाह बहादुरशाह जफर के बेटे मिर्जा मुगल और बरेली के पठान सूरमा बख्त खान को मुगल सेना और क्रांतिकारियों की सेना का संयुक्त रूप से सेनापति बनाकर युद्ध लड़ा जा रहा था। अपनी सूझ-बूझ से दोनों ने अंग्रेजों के सैनिकों के दाँत खट्टे कर दिये। दिल्ली को स्वतंत्र घोषित कर लाल किला पर क्रांति का झंडा फहरा दिया गया। "बीस दिनों तक दिल्ली पूर्ण रूप से स्वतंत्र रही लेकिन इक्कीसवें दिन कुछ गद्दारों की मदद से सारे देश के अंग्रेजों ने एकजुट होकर दिल्ली पर धावा बोला।"[2] इन गद्दारों मे "बहादुरशाह जफर का समधी मिर्जा इलाही बख्श"[3] भी था। मुगल सेना और अंग्रेजों के बीच इस भयंकर युद्ध में जीत अंग्रेजों की हुई। अंग्रेजी सेना के "मेजर हडसन ने बहादुरशाह जफर के बेटे मिर्जा मुगल को तथा दोनों पोते खिदिर सुल्तान और अबू बकर को बेइज्जत करके सार्वजनिक रुप से नंगा करके गोलियों से भून दिया था।"[4] जनता के आक्रोश, चीत्कार और क्रन्दन से सारे लोग उत्तेजित हो गये। अंग्रेजी सैनिकों के अत्याचार के विरूद्ध लोगों ने अपने सारे हथियार उठा लिए। अंग्रेजी सैनिकों ने कत्लेआम कर निर्ममता पूर्वक इस विद्रोह को दबा कर हिंन्दुस्तान को गुलामी के जंजीर में जकड़ दिया।

उपन्यास का मुख्य पात्र पंडित गोपीलाल का दिल्ली के पराठेवाली गली में मिठाई की एक प्रसिद्ध दुकान थी। वह मूल रूप से कश्मीरी था एवं घंटाघर के पास की गली के एक मकान में रहता था। कुछ आवश्यक कार्यवश उसके माँ-पिताजी गाँव चले गए थे। किन्तु उसकी नवविवाहिता पत्नी सुहासनी उसके साथ थी। गदर के कारण शहर में चारों ओर मार-काट और लूट-पाट मची हुई थी। ऐसे ही विषम परिस्थितियों में अपना सब कुछ छोड़कर गोपीलाल अपनी पत्नी के साथ जान बचाने के लिए रात के घने अंधेरे में अपनी गाँव जाने के लिए निकल पड़ा। हर कदम पर उसके जान जाने का डर था। संयोगवश उसकी मुलाकात पिंडारियों के सरदार बंगाली सिंह से हुआ, जो जबलपुर जा रहा था। गोपीलाल अपने पत्नी सुहासनी के सोने का कंगन बंगाली सिंह को देकर उसके साथ जबलपुर के लिए निकल पड़ा। रास्ते में दोनों की गहरी जान-पहचान हो गई। गोपीलाल के रहन-सहन एवं उसके बुद्धिमत्ता को देख बंगाली सिंह काफी प्रभावित हो गया। कई दिनों की यात्रा के बाद सभी लोग नर्मदा के तट पर पहुँच गये। गोपीलाल नर्मदा स्नान के लिए बेचौन हो उठे। सुहासनी को वहीं बैलगाड़ी के पास बैठने को कह कर वह स्नान करने चला गया। वहाँ उसकी मुलाकात बूंदाजान नामक एक अपूर्व सुन्दरी से हुई। बूंदाजान एक नौटंकी कम्पनी की प्रसिद्ध नृत्यांगना थी। उसे देख कर गोपीलाल सम्मोहित सा हो गया। "पहली बार किसी नारी-सौन्दर्य ने उन्हें इतना प्रभावित किया था।"[5] बूंदाजान की सुन्दर छवि उसके मन में समाहित हो गया था। स्नान कर वह जब लौटा, काफी देर हो चुकी थी। इस अनजान शहर में जहाँ कोई अपना नही था, रहने का कोई ठौर-ठिकाना नही था और पास में पैसे भी नही थे - यह सोच कर अकेली सुहासनी चिंता से व्याकुल हो गई थी। विपत्ति के ऐसे दिनों में बंगाली सिंह ने मिट्ठू सिंह जी से मिलने का सुझाव दिया। अपने उज्जवल भविष्य के लिए गोपीलाल सुहासनी के साथ मिट्ठू सिंह जी से मिलने निकल पड़े। मिट्ठू सिंह और उनकी पत्नी लता काफी उदार, सहृदय और सज्जन थे। वह शहर के गणमान्य व्यक्ति थे। गोपीलाल की दयनीय स्थिति को देख कर उन्होंने अपने घर में आश्रय देकर व्यापार करने के लिए उचित पैसे भी दिये। व्यापार करने के सारे तरीके बताकर उसने गोपीलाल को अंग्रेजों की छावनी में सब्जी पहुँचाने का काम सौंप दिया। अंग्रेजों के मेस से लेकर बंगलों तक सारा सामान पहुँचाने का ठेकेदार मिट्ठू सिंह जी थे। अपनी सूझ-बूझ से गोपीलाल कुछ ही दिनों में सबके प्रिय बन गये। गोपीलाल के रूप में मिट्ठू सिंह जी को एक विश्वासपात्र, चतुर एवं बुद्धिमान व्यक्ति मिल गया था। मिट्ठू सिंह जी निःसंतान थे। अतः वह उससे पुत्रवत् स्नेह करने लगे। सुहासनी ने मिट्ठू सिंह के घर की सारी व्यवस्था संभाल ली थी। मिट्ठू सिंह के आशीर्वाद से गोपीलाल को छावनी के मेस में सब्जी पहुँचाने का ठेका मिल गया। कुछ ही दिनों में उसकी जान-पहचान बड़े-बड़े अंग्रेज अधिकारियों तक हो गयी। वह उसके सबसे बड़े गुप्तचर बनकर शहर की सारी गुप्त खबरें अंग्रेज अधिकारियों तक पहुँचाने लगे। फलतः अंग्रेज आसानी से भारतीयों पर अत्याचार का शिकंजा कसने में कामयाब होने लगा। गोपीलाल ज्योतिष विद्या के भी अच्छे जानकार थे। अंग्रेज अधिकारी उसके इस ज्ञान से भी काफी प्रभावित थे। धीरे-धीरे समृद्धि गोपीलाल के कदम चूमने लगी।

हमारे समाज में सामान्यत: यह धारणा है कि गलत पैसे व्यक्ति को चारित्रिक पतन के गर्त में धकेल देता है। पंडित गोपीलाल इससे कैसे बच सकता था? पैसे और व्यावसायिक सफलता के कारण उसके आचरण एवं व्यवहार में काफी परिवर्तन आ गया था। एक दिन वह लोक-लाज को छोड़कर बंगाली सिंह के साथ बूंदाजान से मिलने उसके नौटंकी शिविर में गया। बूंदाजान के निश्चल व्यवहार, मधुर स्वभाव एवं सौन्दर्य को देख गोपीलाल अभिभूत हो गये। उसके हृदय में प्रेम का अंकुरण प्रस्फुटित हो गया था। वह मन ही मन बूंदाजान को अपना बनाने के लिए सोचने लगा।

सुहासनी ने एक बेटे को जन्म दी जिसका नाम मोहनलाल रखा गया। कुछ बड़े होने पर गोपीलाल ने उसे अंग्रेजों के छावनी स्कूल में दाखिला करवा दिया। मोहनलाल पढ़ने में काफी तेज था। गोपीलाल मोहनलाल की परवरिश पाश्चात्य परिवेश में किया। पाश्चात्य शिक्षा एवं संस्कृति के कारण मोहन को गरीबी एवं लाचारी से घृणा थी।

गोपीलाल ने अपने प्रभाव का इस्तेमाल कर बूँदाजान के नृत्य का आयोजन छावनी क्लब में करवाया। बूँदाजान के नृत्य और उसके सौन्दर्य को देख कर सारे अंग्रेज सम्मोहित हो गये। उनलोगों ने उसे ढ़ेर सारे मूल्यवान उपहार दिये। इसके बाद गोपीलाल अंग्रेज अधिकारियों के और प्रियपात्र बन गये। किन्तु गोपीलाल का मन इस बात से सशंकित हो उठा कि कहीं बूँदाजान इतना वैभब और धन-संपत्ति देखकर अंग्रेज अधिकारियों की चहेती बनकर उसे न भूल जाये? अत: गोपीलाल ने उसे अपने प्रेम-व्यूह में फाँसकर एक सुन्दर सा बंगला उपहार में देकर उसके मनोमस्तिष्क पर अपना आधिपत्य जमा लिया। दोनों के बीच का प्यार परवान चढ़ने लगा। अब गोपीलाल का अधिकांश समय बूँदाजान के साथ व्यतीत होने लगा। दोनों पति-पत्नी के जैसे रहने लगे। कुछ समय बाद बूँदाजान एक बेटे की माँ बन गई।

गोपीलाल ने बंगाली सिंह की सहायता से ठाकुर ज्वाला सिंह की जमींदारी जो सेठ तोतामल हलवाई के पास रेहन पर रखे थे, खरीद लिया। तोतामल हलवाई के पास मिठाई की एक प्रसिद्ध दूकान थी। उसकी उम्र करीब पचास साल का था एवं नि:संतान था। किन्तु उसकी पत्नी की उम्र करीब बीस-तीस साल के करीब था। सेठानी का लटारया नामक अपने एक जवान नौकर के साथ प्रेम-संबंध था और अब वह गर्भवती थी। लटारया सेठ तोताराम के दूर का रिश्तेदार था। सेठ का उस पर अटूट विश्वास था। लटारया ने अपना पाप छुपाने के लिए सेठ तोताराम को संतान-प्राप्ति हेतु जड़ी-बूटी से बनी दवाओं के लिए बंगाली सिंह से मिलवाया। अनुभवी बंगाली सिंह सारी बातें जान गया था। अपने इस कुकृत्य के लिए बंगाली सिंह को कभी-कभी पश्चाताप भी होता था। उसके मन में हमेशा यह विचार आता था कि "एक भोले-भाले व्यक्ति को मैंने ठगा है, धोखा दिया है।"[6] किन्तु फिर यह सोचकर कि संसार ही धोखा है, मन शांत हो जाता था। "जीवन का दूसरा नाम ही छल-कपट है। सारी उम्र वह दूसरों के लिए कपट का जाल बुनता है या दूसरे के द्वारा कपट के बिछाये जाल से निकलने के लिए सोचता रहता है।"[7] सब कुछ जानते हुए भी सेठ अपनी इज्जत बचाने के लिए बंगाली सिंह से दवा खरीदता था। किन्तु उसका सेवन उसने कभी नही किया। कुछ दिनों के बाद सेठानी ने एक सुन्दर बेटे को जन्म दी। सेठ तोतामल के यहाँ उत्सव का माहौल था। उसके प्रसन्नता की सीमा नही थी। किन्तु यह खुशी का माहौल ज्यादा दिनों तक नही रहा। किन्तु यह खुशी का माहौल ज्यादा दिनों तक नही रहा। लटारया द्वारा विश्वासघात किये जाने के गम में सेठानी ने बेटे को जहर खिलाकर आत्महत्या कर ली। मरने से पहले उसने सेठ से क्षमा माँग कर सारा अपराध स्वीकार कर लिया। सेठ तोतामल का परिवार बर्बाद हो गया। बंगाली सिंह को जब इसकी जानकारी मिली, वह पश्चाताप के आँसूओं में डूब गया। इस पाप में वह भी बराबर का हिस्सेदार था।

गोपीलाल ने जब जमींदारी खरीदने की खबर मिट्ठू सिंह को दिया तो वह फूले न समाये। मिट्ठू सिंह को अपने चाचा के लड़कों से संपत्ति का विवाद था। अत: कोर्ट-कचहरी की झंझटों से मुक्ति के लिए उसने अपनी हवेली और सारी संपत्ति की वसीयत गोपीलाल के नाम कर दिया। पुन: उसने गोपीलाल से कहा, "बाद में जब दिवानी मुकदमा समाप्त हो जाएगा तो तुम वापस कोठी मेरे या मेरी पत्नी के नाम कर देना।"[8] उसे गोपीलाल पर अगाध विश्वाश था। गोपीलाल से उन्हें पुत्रवत् स्नेह था। गोपीलाल अपने भाग्य के चमत्कार को देख हतप्रभ थे। अंग्रेज सरकार ने उसे 'रायबहादुर' की उपाधि से विभूषित कर दिया।

बूँदाजान और गोपीलाल के बीच का प्रेम-संबंध पूरे शहर में चर्चा का विषय था। मिट्ठू सिंह को जब यह मालूम हुआ तो वह हतप्रभ रह गये। उन्हें गोपीलाल से ऐसी उम्मीद नहीं थी। सुहासनी जैसी पतिब्रता पत्नी के साथ ऐसा बड़ा विश्वासघात को देख वह काफी दु:खी थे। अब उन्हें आभास हो गया कि गोपीलाल के जीवन में नैतिकता का कोई महत्व नहीं है। वह अवसरवादी और सुविधाभोगी है। वह आशंकित हो गये, "गोपीलाल के जीवन में शुरू से ही अच्छी फसल में खरपतवार उगने लगे हैं, तो निश्चित हीं एक दिन पूरी फसल को खाकर जमीन नष्ट कर देगी।"[9] लता को भी यह खबर जानकर गहरा आघात लगा। सुहासनी ने जब अपने दुर्भाग्य की कथा सुनी तो उसे दुनियाँ का सब कुछ अंधेरा में डूबता नजर आने लगा। उसे ऐसा लगा जैसे नर्मदा के तट पर उसका सर्वस्व डूब गया। लता ने उसे ढ़ाढ़स बँधाते हुए कहा, "पुरूष प्रधान समाज ने पुरूष को स्वामी बनने के अधिकार दे रखे हैं और यह उन्हीं अधिकारों का गलत उपयोग है। तुम जैसी सुन्दरी के साथ भी पति ऐसा धोखा दे सकती है तो बताओ कौन स्त्री सुरक्षित है? यह पुरूष की दुष्टता है। चरित्रहीन व्यक्ति हीं ऐसा करता है।"[10] सुहासनी को जीवन से अब कोई मोह नही रह गया था। वह बीमार रहने लगी। बूँदाजान ने एक बेटे को जन्म दी। अब गोपीलाल अपना अधिकांश समय बूँदाजान के साथ बिताने लगा था।

मोहनलाल को बैरिस्टरी पढ़ाई के लिए गोपीलाल ने उसे विलायत भेज दिया। किन्तु सुहासनी के अनुरोध पर उसने उसका विवाह एक परम्परावादी परिवार की लड़की पृथा देवी से करवा दिया। बेटे के विवाह से सुहासनी के जीवन में एक नई आशाओं का संचार हुआ। किन्तु मोहनलाल को पृथा बिल्कुल ही पसंद नही था। शराब के नशे में चूर मोहनलाल को देखकर पृथा भी दु:खी रहने लगी। कुछ दिनों बाद मोहन पुन: विलायत चला गया। पृथा देवी एक विदुषी महिला थी। उसे इतिहास, ज्योतिष और वेद का पर्याप्त ज्ञान था। उसके माता-पिता, भाई-बहन सारे लोग चरित्रवान एवं देशप्रेमी थे। मर्यादित जीवन जीना उन सबों का आदर्श था। किन्तु आधुनिक परिवेश में "मर्यादा हमारे जीवित शरीर की बलि माँगता है।"[11] पृथा दो जुड़वा बच्चियों की माँ बन गयी। वह अब रिश्तों के भँवर में फँस गई थी।

संदर्भ ग्रंथ -

1. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 283.
2. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 23.
3. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 22.
4. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 23.
5. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 33.
6. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 134.
7. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 162.
8. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 125.
9. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 141.
10. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 146.
11. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 205.
12. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 23.
13. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 23.
14. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 23.
15. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 23.
16. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 23.
17. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 23.
18. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 23.
19. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 23.
20. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 23.
21. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 23.
22. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 23.
23. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 23.
24. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 23.
25. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 23.
26. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 23.

हिंदी सिनेमा में दलित चित्रण का वर्तमान और भविष्य

मनोज प्रसाद रजक

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, गोरुबथान गवर्नमेंट कॉलेज, कलिम्पोंग पश्चिम बंगाल, भारत

शोध-सार:

सिनेमा के सौ साल के संसार में दलितों से संबंधित ज़्यादा फिल्में नहीं हैं। दलित चित्रण एवं चेतना का आभाव सिनेमा के आरम्भिक चरण से ही परिलक्षित किया जा सकता है। शुरू में ऐसा प्रतीत हुआ कि महात्मा गाँधी और अन्य सुधारकों के प्रभाव से यह विषय लोकप्रिय होगा, लेकिन जल्दी ही दलित चेतना से लैस फिल्में मुख्यधारा के विषय से बाहर चली गयी। जब हम दलित चेतना की दृष्टि से बॉलीवुड फिल्मों की संख्या पर नजर डालेंगे तो हमे निराशा ही हाथ लगेगी। 130 करोड़ से उपर की जनसंख्या वाले इस देश के सबसे बड़े सिनेमा उद्योग बॉलीवुड में बहुजन-जीवन के स्वाभाविक-चित्रण का अभाव चिंताजनक है और इसका एक बड़ा कारण यह है कि बहुजनों का पक्ष सिनेमा में हमेशा एक समस्या के रूप में चित्रित हुआ है। अगर हम सिर्फ दलित-समस्या पर ही केन्द्रित रहेंगे और सुधार के बदौलत समस्या का निदान चाहेंगे तो जाहिर सी बात है कि समानता, संघर्ष और क्रांति की चेतना से परिपूर्ण दलित-चित्रण नहीं हो पायेगा। दलित चिंतन, दलित समस्या तक सीमित नहीं है, बल्कि समस्या के अलावा उसके सामाजिक परिप्रेक्ष्य, ऐतिहासिक संदर्भ आदि भी इसमें समाहित है।

बीज-शब्द: दलित, चेतना, इतिहास, अनुभूति, संघर्ष, मुख्यधारा, व्यवसायिकता

भूमिका:

आज का आधुनिक दौर विमर्शों का दौर है। आज जब इतिहास के पुनर्लेखन की बात कही जा रही है वैसे में सशक्त संचार माध्यम माने-जाने वाले सिनेमा में देश की आधी आबादी की उपस्थिति का ब्यौरा रखना भी बेहद जरुरी हो जाता है। हिंदी सिनेमा आज जितना लोकप्रिय है, उतना ही दलितों से दूर है। हिंदी सिनेमा के लम्बे इतिहास में दलित विषय वाली फिल्में दलित विमर्श के अधूरे एजेंडे को लेकर चली है। फिल्में दलितों की सामाजिक यथास्थिति को बनाये रखने में कामयाब साबित हुई है। दलित विचारक कांचा इल्लैया ने कहा है- "मुख्यधारा के इतिहास लेखन ने डाली बहुजन सन्दर्भ को भारतीय इतिहास में शामिल करने के लिए कुछ नहीं किया।"[1] मुख्यधारा सिनेमा के लिए भी यह सही है। गांधीवाद की गिरफ्त में छटपटाते दलित विमर्श को मुक्ति की पहली किरण तब दिखाई पड़ी थी जब वह फुले, अम्बेडकर तथा नायकर के विचारों से रुबरू हुआ। लेकिन हिंदी सिनेमा ने दलित चेतना को अस्पृश्यता उन्मूलन का प्रतिरूप समझा। यह हिंदी सिनेमा के दृष्टिकोण की सबसे बड़ी कमजोरी है। यही कारण है की वर्तमान में हालात यह है कि हिंदी सिनेमा बुरी तरह संकीर्ण राष्ट्रवाद से ग्रसित है। हिन्दू अलगाव और दर्शकों की उपेक्षा का भय ने सिनेमा उद्योग को ऐसी फिल्म बनाने पर विवश किया है कि जिसमें छद्म राष्ट्रवाद और फौरी करवाई के मसाले से लबालब हो। वरना फिल्में वहिष्कार गैंग के हत्थे चढ़ जाने का डर है।

शोध-विस्तार:

आज भी ज्यादातर फिल्मों में दलितों को फिल्म का अंगी न मानकर बतौर अंग भर मान लिया जाता है, उनका उपयोग केवल मुख्य कथा को आगे बढ़ाने वाले पात्र, साइड केरेक्टर, कोरस गाने वाले या भीड़ के रूप में चित्रित किया गया है। वर्तमान हिंदी सिनेमा कुछ हद तक कोशिश कर रहा है कि ऐसी फिल्में बनाई जाये जिससे तत्कालीन समाज में परिवर्तन की चेतना आये। यह कोशिश बहुत ही कमतर है। वर्तमान और भविष्य में हिंदी सिनेमा को अपेक्षित बदलाव का माध्यम बनना होगा।

व्यावसायिक फिल्मों के ज्यादातर नायक ऊँची जाति का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह परिस्थिति आज इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में भी मौजूद है। फिल्मों में मध्यम और उच्च मध्यम वर्ग छाया रहता है और ज्यादातर फिल्में इन्हीं को केंद्र में रखकर बनाई जाती हैं। हर साल सैकड़ों फिल्में बनती है लेकिन पिछड़े और दलित तबकों के नायकों की कहानी इक्का-दुक्का फिल्मों में होती है। बाकि सारी फिल्मों के किरदार सवर्ण कपूर, शर्मा, चतुर्वेदी आदि रहते हैं। फिल्मों के नाम से ही पता चलता है कि सवर्ण मानसिकता की गुलामी से हिंदी सिनेमा बाहर नहीं निकल पाया है; 'मंगल पांडे', 'भाई ठाकुर', 'अर्जुन पंडित', 'क्षत्रिय', 'राजपूत', 'जस्टिस चौधरी', 'पंडित और पठान', 'सूर्यवंशम' आदि। फिल्म 'बजरंगी भाईजान' में सलमान के किरदार का नाम पवन कुमार चतुर्वेदी है जो एक दृश्य में बाल कलाकार के गोरी होने के चलते उसे उच्च जाति का कहता है कि गोरी है, ब्राह्मण होगी। यह संवाद हिंदी सिनेमा में जातिगत भेदभाव, संभ्रांत वर्गों की दलित और पिछड़ों के प्रति नस्लीय विचारधारा को उजागर करने के लिए काफी है। सलमान खान अभिनीत फिल्म 'दबंग' (2010) में खुलकर जातिवाद को बढ़ावा दिया गया है। फिल्म का नायक चुलबुल पांडे है और नायिका के रूप में कुम्भकार समाज की महिला। फिल्म में यह दिखाया गया है कि कैसे एक ऊँची जाति का नायक गरीब व निम्न जाति की सुंदर महिला की किस्मत बदल देता है। एक फिल्म है 'सूर्यवंशम' (1999) नायक है अमिताभ बच्चन। इस फिल्म में पितृसत्ता को बनाए रखने के तमाम हथकंडे दिखाए गए थे। इसके अलावा पूरी फिल्म जातिगत श्रेष्ठता के बोध से ओत-प्रोत थी। फिर

प्रकाश झा की फिल्म 'गंगाजल' (2003) को कैसे भुलाया जा सकता है, जिसमें उन्होंने साधू यादव नामक पात्र को प्रस्तुत कर एक पूरी जाति को भागलपुर के आंखफोड़वा कांड के लिए जिम्मेदार साबित किया था। अक्सर फिल्मों के नायकों की जाति उच्च-वर्ण की होती है। कभी सचिन गुप्ता, कभी संजय सिंघानिया तो कभी चुलबुल पाण्डेय। समकालीन हिंदी सिनेमा में किसी बड़े दलित अभिनेता या किरदार का नाम याद नहीं आता।

21वीं सदी का हिंदी सिनेमा जाति-व्यवस्था से जुड़े सवालों को उठाना एक जोखिम के रूप में लेता है और उससे भागने की कोशिश करता है। वह सत्य एवं तथ्य को दिखाने के बजाय परंपरा और फैंटेसी को ज्यादा तरजीह देता है। यह जाति, जेंडर और सामाजिक अंतर्विरोध के सवालों पर नहीं है, जिसकी समस्या भारत में बहुत है। लेकिन चूँकि ये विषय वैश्विक विमर्श का हिस्सा हैं, इसलिए हिंदी सिनेमा में इन मुद्दों पर विदेशी फिल्मों का प्रभाव देखने को मिलता है। लेकिन जाति का सवाल पर कुछ अपवादों को छोड़कर ज्यादातर हिंदी फिल्मकार परंपरागत रवैया ही अपनाते हैं।

आज सिनेमा का प्रतिरूप बदल रहा है। इस उद्योग के तकनीकी में बदलाव तेजी से आ रही है। फिल्मों के डिजीटल प्रिंट तेजी से रिलीज हो रहे हैं। नए मल्टीप्लेक्स भी तेजी से खुल रहे हैं। सिनेमा में बदलाव जारी है लेकिन एक चीज जो नहीं बदल रही है वह है फिल्मकारों की सोच इसलिए सिनेमा का जातिगत स्वरुप में कोई वैचारिक परिवर्तन नहीं हो रहे हैं। तथाकथित प्रगतिशील हिंदी फिल्म उद्योग हमेशा सवर्णों की पूँजी पर मेहरबान रहा है। वर्तमान में पिक्चर हाल बंद होने और मल्टीप्लेक्स संस्कृति के विकास से अब निर्माताओं का मुख्य ध्यान शहरी मध्यवर्ग पर रहता है। 1990-2000 के दशक में बनी फिल्में भारत के बाहर भी काफी लोकप्रिय रहीं। प्रवासी भारतीयों की बढती संख्या भी इसका प्रमुख कारण थी। हिंदी फिल्मों में प्रवासी भारतीयों के विषय लोकप्रिय रहें। कोरोनाकाल के बाद ओ.टी.टी. पर फिल्म और वेब सीरिज का चलन बढ़ा है। अब ओ.टी.टी. के फिल्मों में तेजी से एक अलग प्रकार की दलित चेतना देखने को मिल रही है। सिनेमा में हालिया दलित प्रतिनिधित्व सूक्ष्म विशेषताओं के साथ आया है, जो पहले के सिनेमाई चित्रण से अलग है, जिसमें ज्यादातर उन्हें जातिगत अत्याचार और हिंसा के शिकार के रूप में दर्शाया गया है। इसके कारण एक नयी संभावना का विकास हुआ है कि सिनेमा के भीतर मौजूद वर्ग, जाति, जेंडर, यौनिकता और विभिन्न तरह की असमानताओं की परतें एक के बाद एक खुलती जाती हैं। जहां एक ओर 'ओवर द टॉप' (ओटीटी) प्लेटफार्म ने दुनियाभर की फिल्मों, वेब सीरीज आदि के माध्यम से भारतीयों को वैश्विक दृष्टिकोण दिया, वहीं दूसरी और भारतीय सवर्ण निर्माताओं ने इसे भी अपनी दकियानूसी और संकुचित दृष्टिकोण के जाल में बांध लिया। जबकि ओ.टी.टी. प्लेटफार्म पर जाति-विरोधी पृष्ठभूमि से आनेवाले प्रगतिशील निर्माताओं, निर्देशकों और कलाकारों ने ऐसी फिल्में पेश कीं, जो पहले जितनी भी जाति-व्यवस्था और इससे जुड़े पहलुओं पर बनी फिल्में हैं, उन सबको आईना दिखाया है। पहले के इस तरह के सामाजिक मुद्दों पर फिल्म बनाने के कसौटी को ही बदल दिया है। उन्होंने दिखाया है कि एक दलित गरीब है, अपमानित है लेकिन मगर लाचार नहीं, वह अपनी आवाज खुद उठाना जानता है। उसे किसी सवर्ण मसीहा की जरूरत नहीं है। इसका सबसे बढ़िया उदाहरण दक्षिण भारत की फिल्में हैं- 'सरपट्टा परम्बाई', 'कर्नन', 'असुरन', 'काला', 'कबाली', 'जय भीम' आदि। इस तरह की फिल्मों की सूची अब लंबी हो चुकी है और इसमें वृद्धि अनवरत जारी है। ओटीटी माध्यम प्रगतिशील, बहुलवादी और सत्ता-विरोधी है और मुख्यधारा सिनेमा की व्यावसायिक चमक-दमक से दूर है। इसमें परिवार के साथ देखने का कोई दबाव नहीं है जो कई विचारों और सामग्री के साथ प्रयोग करने की अनुमति देता है। निर्देशक आधुनिक और क्रांतिकारी कहानियां बनाने के लिए ओटीटी माध्यम का उपयोग कर रहे हैं जो पारंपरिक कथाओं को चुनौती देती हैं। जबकि जातिगत अत्याचार वास्तविकता में जारी हैं, ये ऑनस्क्रीन प्रस्तुतियाँ रूढ़िवादिता को तोड़ रही हैं और दलित महिलाओं को सशक्त बना रही हैं। दलित केंद्रित फिल्मों ने अब एक नया मोड़ ले लिया है। ओ.टी.टी. उसका धरातल तैयार कर रहे हैं। हाल ही में प्राइम वीडियो पर रिलीज 'दहाड़' और नेटफिल्क्स पर रिलीज 'कटहल' से यह साफ होता है। इन दोनों फिल्मों में मुख्य पात्र दलित महिला है। दोनों अपनी ही बिरादरी की लापता लड़कियों की तलाश कर रही हैं। आरोपी तथाकथित बड़ी जाति का है। इस कहानी के बीच जातिगत गैर-बराबरी की परतें उधड़ती जाती हैं। काम की जगहों पर रोजमर्रा होने वाला भेदभाव दिखाई देता है। दहाड़ की अंजली भाटी (सोनाक्षी), और कटहल की महिमा बसोर (सान्या) पढ़ी-लिखी हैं, और पुलिस की आला अफसर, लेकिन फिर भी जातीय श्रेष्ठता और उसके अधिकार के अहंकार की शिकार हैं। ओ.टी.टी. भारतीय सिनेमा में दलित महिलाओं की उपस्थिति बढ़ रही है, हाल के चित्रणों में उन्हें पीड़ितों के बजाय मजबूत, सशक्त पात्रों के रूप में दिखाया गया है। अब फिल्मों में दीन-हीन नहीं। न ही किसी रक्षक या मसीहा की तलाश में है। जैसा कि दहाड़ की अंजली कहती है कि 'किसी मर्द की आस में रहना, हमारी जाति की लड़कियों के लिए सबसे बड़ी भूल है। उनके परिवारों की भी। उन्हें मेरी तरह अपनी रक्षा खुद ही करनी होगी।' ओटीटी सीरीज 'मेड इन हेवन[2]' में एक दलित शिक्षाविद् पल्लवी मेनके और उनके मंगेतर विक्रम के बीच उनके अंतरजातीय विवाह और भारत में जाति की अदृश्य उपस्थिति को दर्शाता है। पहले फिल्मों की अंतर्वस्तु में इतनी स्पष्टा नहीं थी कि दलित चेतना को मुख्यधारा में लाती।

दूसरी तरफ ओ.टी.टी. पर कुछ सवर्ण निर्माताओं एवं निर्देशकों के द्वारा ऐसी फिल्में भी बनायीं गयी हैं जिसमें दलित तबकों पर सवर्ण रक्षक थोपने पर जोर दिया गया है। ऐसी फिल्में दलित चेतना, समानता, क्रांति के निर्माण में हानिकारक साबित होती है। हालांकि निर्माताओं के संकीर्ण मानसिकता से दलितों का चित्रण भारतीय सिनेमा की शुरूआत होने के साथ ही शुरू हो गया था। मसलन, दादा साहेब फाल्के, जिन्हें भारतीय सिनेमा का जनक कहा जाता है, ने वर्ष 1913 में पहली फिल्म बनायी 'राजा हरिश्चंद्र', जिसमें चांडाल (दलित) समुदाय से आने वाले परिवार का चित्रण और राजा की महानता को दर्शाया गया है। फिर पौराणिक कथाओं से एक दौर शुरू हुआ। बाद में कुछ विषय भी बदले जैसे 'अछूत कन्या'(1936), 'नीचा नगर'(1946), 'सुजाता'(1959), 'सद्गति'(1981), 'निशांत'(1975), 'मंथन'(1976) आदि फिल्में। वर्तमान दौर में फिल्में 'लगान'(2001), 'आरक्षण'(2011), 'राजनीति'(2010), 'सीरियस मेन'(2020), 'आर्टिकल 15'(2019) और 'शमशेरा'(2022) आदि फिल्मों ने जाति के सवालों को नये रूप में प्रस्तुत किया है। इन फिल्मों की खासियत यह है कि ये सभी फिल्में उन विशिष्ट पृष्ठभूमि से आनेवाले लोगों ने बनायी, जिन्होंने दलितों को एक दबे-कुचले, भोले-भाले, अज्ञानी, अनैतिक, भ्रष्ट एवं उसके उद्धार के लिए एक उच्च जाति के मसीहे की बाट जोहता हुआ दिखाया गया है। ऐसे निर्माता-निर्देशकों द्वारा बनायी गयी फिल्में दलित समस्या से शुरू होते हुए फिर मुद्दे से भटकर कभी अमीरी-गरीबी के भेद में ढ़ाला तो कभी निजीकरण की समस्या को केंद्र में रख दिया जो कि क्रमशः 'धड़क' और 'आरक्षण' में देखने को मिलता है। आज जब सवर्ण निर्माता भी ओ.टी.टी. पर फिल्म बना रहे हैं तो दलित के लिए उच्च तबके के नायक को रक्षक या मसीहा के रूप में पेश करते हैं। उदहारण के तौर पर हाल ही में आयी अनेक वेब सीरीज में शामिल है दीपक कुमार मिश्रा द्वारा निर्देशित 'पंचायत' जो

कि ब्राह्मण निर्माताओं द्वारा बनायी गयी है और इसकी केन्द्रीय कहानी उनके अपने बिरादरी की कहानी है, जिसमें खुद को श्रेष्ठ एवं उपकारी जातने के लिए दलित किरदारों को जबरदस्ती शामिल करके रूढ़िवादी धारणा में पेश किया गया है। दूसरी सीरीज है प्रकाश झा द्वारा निर्देशित एवं निर्मित 'आश्रम', जो एक ढोंगी बाबा की कहानी है, जो स्वयं को भगवान के रूप में स्थापित कर चुका है। इस वेब सीरीज में दिखाया गया है कि लोग इस बाबा के अंधभक्त हैं। काफी दलित भी इनसे प्रभावित एवं प्रेरित हैं। एक दलित स्त्री जो बाबा का सम्मान करती है और आश्रम में सेवा भी करती है उसका बाबा द्वारा दुष्कर्म किया जाता है। वो संघर्ष करती है और उसके मोहजाल से बाहर निकलती है। फिर वह उच्च जाति के लोगों के साथ मिलकर और उसके साहयता से बाबा के खिलाफ मोर्चा खोल देती है। इस सन्दर्भ में नेटफ्लिक्स की फिल्म 'थार'(2022) के चरित्र भूरे का जिक्र करना जरूरी है। सतीश कौशिक ने भूरे का किरदार निभाया है। एक सीन में भूरे अपने सीनियर अफसर से कहता है कि यूनिफॉर्म कम से कम मेरी जाति को तो ढंक लेती है। 'आर्टिकल 15' में आईपीएस अयान मुखर्जी रक्षक की भांति नजर आते हैं। इससे अलग हैं, 'मसान' और 'झुंड' जैसी फिल्में जिसमे उच्च जाति वाले रक्षक के क्षत्रछाया से नहीं, दलित चेतना का निर्माण दलित फिल्मकारों की नुमाइंदगी से होता है। यहाँ कोई उच्च जाति किरदार मसीहा नहीं बनता।

राहुल पांडेय और सतीश नायर द्वारा निर्देशित एक वेब सीरीज रिलीज हुई हैख्र 'निर्मल पाठक की घर वापसी'(2022)। 'पंचायत' की भांति यह भी ब्राह्मण निर्माता-निर्देशकों द्वारा बनायी गयी सीरीज है, जिसमें ज्यादातर ब्राह्मण कलाकारों को लिया गया है। यह कहानी की पृष्ठभूमि भी एक ब्राह्मण परिवार के इर्द-गिर्द है, जिसमें इस परिवार के एक सदस्य के मन में दलितों के प्रति दया-भाव जाग जाता है। एक परिश्रमी दलित व्यक्ति दुखु जो नाली साफ करते समय थकान से अचेत हो जाता है तो वो ब्राह्मण व्यक्ति निर्मल पाठक उसे अपने कुएं से पानी पिला देता है। यह बात उस परिवार के अन्य सदस्यों को अखर जाती है क्योंकि उनके अनुसार वह कुआं अशुद्ध हो गया। निर्मल पाठक को घर से निकाल दिया जाता है। यहां तक अपना जनेऊ भी उतार कर फेंक देता है। अब पृष्ठभूमि 24 साल बाद का है कि दुखु, जो 24 साल बाद भी नाली साफ कर रहा है। वह आज भी मजदूर है। वह पहले की तरह फटे हुए मैले कपड़े पहनता है। एक झोपड़ी है में वह और उसका परिवार रहता है। उसकी बस्ती में कई झोपड़ियां भी हैं, जिसमें उसकी ही जाति-बिरादरी के लोग रहते है। निर्मल पाठक दुखु के घर जाता है और खाना भी खाता है क्योंकि उसे लगता है कि 24 साल पहले जो उसके पिताजी ने खाना खाकर इस समस्या का निराकरण करने का प्रयास किया, शायद इस बार काम बन जाए। और दुखु दूसरी तरफ निर्मल पाठक को देखकर भावविभोर हो रहा है। निर्मल पाठक दुखु को बतलाता है कि सामाजिक बदलाव कितना जरूरी है, वरना यह सिस्टम ऐसे ही चलता रहेगा। इसके जवाब में दुखु कहता है कि 'हमारे को इस व्यवस्था से कोई भी समस्या नहीं है। यह दलितों के घर खाना खाकर, किस प्रकार की समानता ईजाद की जा रही है, मालूम नहीं। वर्तमान की भारतीय राजनीति में भी ये खाना खाकर बड़प्पन दिखाने की परंपरा है। निर्देशक ने इसी परम्परा को जारी रखा है।

निर्मल पाठक जैसे लोग, जो शहरी परिवेश में पले-बढ़े, जिसे जाति के बारे में कुछ मालूम नहीं जैसे कि 'आर्टिकल 15' फिल्म के मुख्य पात्र आईपीएस अयान मुखर्जी को कुछ मालूम नहीं होता है। मगर उसे यह सब देखकर अच्छा नहीं लगता है। शुरुआत के दिनों में वह गौर करता है और बाद में बोलता भी है। धीरे-धीरे वह गांव की सारी समस्याओं, जिसमें शिक्षा का सवाल हो, बाल-मजदूरी, छूआछूत, किसानी, बेमेल विवाह, दहेज प्रथा, गुंडागर्दी आदि पर प्रश्न चिन्ह लगाना शुरू कर देता है। कथानक का उद्देश्य क्या है, स्पष्ट नहीं है कि दलितों के ऊपर बनाई है या इनके खुद के ब्राह्मण परिवार के पारिवारिक ढांचे को उजागर करने के लिए।

निष्कर्षः

इस तरह हम हिंदी सिनेमा के वर्तमान स्वरूप में दलित चित्रण की दो सामानांतर धाराओं को परिलक्षित कर सकते हैं। बहरहाल, भविष्य में निर्माताओं-निर्देशकों को दलित चेतना से लैस ऐसी युगांतकारी फिल्में बनानी चाहिए जो महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दों पर ठोस बयान देती हो, जिसमें दलित चरित्र को मनुष्य के रूप में एक निष्पक्ष और आत्मविश्वास से भरपूर नायक बनने के लिए अग्रसर हो। वर्तमान के समाज और साहित्य में दलित चरित्र समय के साथ बदल गया है, क्योंकि समाज में उसका उत्थान एक गरीब कमजोर व्यक्ति से एक शिक्षित स्वाभिमानी व्यक्ति के रूप में, एक उत्पीड़ित से एक वास्तविक विजेता के रूप में चुका है। भविष्य के सिनेमा में भी इसी का प्रतिरूप दिखना चाहिए।

संदर्भः

1. इल्लैया, कांचा, प्रोडक्टिव लेबर, कांशसनेस एंड हिस्ट्रीः द दलित बहियन अल्टरनेटिव्ज, शाहिद अमिन और दीपेश चक्रवर्ती (सं.), सबाल्टर्न स्टडीज IX संस्करण, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1996, पृष्ठ- 165

नयी कविता और जड़ीभूत-सौन्दर्याभिरुचि

डॉ० अरुण प्रसाद रजक

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, गोरुबथान गवर्नमेंट कॉलेज, कलिम्पोंग पश्चिम बंगाल, भारत

शोध-सार-

'जड़ीभूत-सौन्दर्याभिरुचि' शब्दावली एवं अवधारणा को साहित्य के बहस के केंद्र में लाने का श्रेय प्रख्यात कवि-आलोचक गजानन माधव मुक्तिबोध को जाता है। उन्होंने नयी कविता के संदर्भ में इसका प्रयोग किया। मुक्तिबोध नयी कविता के प्रगतिशील धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। वे मानते हैं 'तारसप्तक' से शुरू होने वाली नयी कविता जहां प्रगतिशील थी, वहीँ 'दूसरा सप्तक' से शुरू होने वाली नयी कविता 'व्यक्ति- स्वातंत्र्यवादी' थी। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद साहित्य में आधुनिक भावबोध के नाम पर लघुमानववाद, कुंठावाद, क्षणवाद, दु:खवाद, व्यक्ति स्वातंत्र्य आदि अनेक प्रवृत्तियां प्रचलित हैं। इन प्रवृतियों से नयी कविता में परम्परागत मूल्यों से हटकर एक वैकल्पिक, जड़ एवं स्थिर सौंदर्यशास्त्र का निर्माण किया जा रहा था, जोकि परिवर्तनकामी नहीं, प्रतिक्रियाशील था। जड़ीभूत सौन्दर्यानुभूति के इस फ्रेम में 'व्यक्ति सत्य' की बहुत दुहाई दी जाती है। व्यक्ति-सत्य के तर्ज सामाजिक सत्य से परहेज किया गया। 'व्यक्ति सत्य' के कारण ही क्षण की अनुभूति संभव है। नए कवि के लिए क्षण की विशेष अनुभूति में ही कविता संभव है।

बीज शब्द- सौंदर्य, सामाजिक, अनुभूति, ईमानदारी, प्रतिमान, प्रयोग, परम्परा, मध्यवर्गीय भावबोध, परिवर्तनशीलता

विवेचन एवं विश्लेषण

नयी कविता का आरम्भ सन् 1951 ई. से माना जाता है। 1951 में 'दूसरा सप्तक' के प्रकाशन से पता चलता है कि प्रयोगवादी साहित्यिक मूल्यों और अभिरुचियों का रूपांतरण नयी कविता के रूप में हुआ। 'तारसप्तक' (1943) के कवियों ने जिन भावभूमियों का आविष्कार किया था, उनसे कुछ अधिक भावभूमियों का विस्तार करते हुए 'दूसरा सप्तक' में घोषणा की गयी ''प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं है न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है।''1 यह प्रयोगवाद और नयी कविता का विभाजक मोड़ है। सन् 1954 में जगदीश गुप्त के सम्पादन में निकलनेवाली पत्रिका 'नयी कविता' से नयी कविता आन्दोलन को बल मिला।

मुक्तिबोध स्वयं को नयी कविता आन्दोलन के अंग मानते थे। लेकिन वे जिस 'नयी कविता' से अपने को सम्बद्ध मानते थे, निश्चय ही वह 1951 में 'दूसरा सप्तक' या 1954 में 'नयी कविता' नामक पत्रिका के प्रकाशन से शुरू होने वाली नयी कविता नहीं है। 'तारसप्तक' (1943) से शुरू होनेवाली नयी कविता से मुक्तिबोध अपने को जुड़ा मानते थे, जिसे 'प्रयोगवादी' कविता कहा गया है। हालांकि मुक्तिबोध 'तारसप्तक' की कविता को प्रयोगवादी कविता मानने से निषेध नहीं करते, लेकिन 'तारसप्तक' के प्रयोगवाद और परवर्ती प्रयोगवाद में फर्क करते हैं या यूँ कहें स्वाधीनता पूर्व की नयी कविता और 'दूसरा सप्तक' से शुरू होनेवाली स्वाधीनता के बाद की नयी कविता में अन्तर करते हैं।

मुक्तिबोध 'तारसप्तक' और 'दूसरा सप्तक' में फर्क करते हुए कहते हैं ''तारसप्तक वालों ने जितने मनोभावों को और मनुष्य दशाओं को मथा है, उतना दूसरा सप्तक वालों ने नहीं।''[2] जिन प्रश्नों को 'तारसप्तक' में उठाया गया था, उनका विकास 'दूसरा सप्तक' में नहीं हो पाया। ''जिन व्यक्तिगत और सामाजिक- राजनैतिक स्थिति-परिस्थितियों से तारसप्तक वालों को जूझना पड़ा वे परिस्थितियां 'दूसरा सप्तक' वालों के पास नहीं है।''[3] 'दूसरा सप्तक' में पहले सप्तक की तरह 'सामाजिक क्रांति के प्रति निष्ठा, मनुष्य की उन्नयनशीलता के प्रति विश्वास और आस्था दृष्टिगोचर' नहीं होता है।[4] यही कारण है कि 'तारसप्तक' से शुरू होनेवाली नयी कविता जहां प्रगतिशील थी, वहीँ 'दूसरा सप्तक' से शुरू होने वाली नयी कविता 'व्यक्ति- स्वातंत्र्यवादी' थीं। स्वभावत: इस दूसरी नयी कविता ने प्रगतिवाद को अपना निशाना बनाया।

नयी कविता की इन दो प्रमुख धाराओं में से प्रगतिशील धारा के प्रतिनिधि कवि मुक्तिबोध हैं। वे मानते हैं स्वाधीनता प्राप्ति के बाद साहित्य में आधुनिक भावबोध के नाम पर लघुमानववाद, कुंठावाद, क्षणवाद, दु:खवाद, व्यक्ति स्वातंत्र्य आदि अनेक प्रवृत्तियां प्रचलित हैं। यह दूसरी भवधारा की विशेषता है। मुक्तिबोध ने बलपूर्वक समझाया है कि इस कला सिद्धांत के पीछे लगी हुई जो जीवनदृष्टि और राजनीतिक दृष्टि थी इसके पीछे 'शीतयुद्ध के उद्देश्य छपे हुए थे।'[5] ये साम्यवाद के खिलाफ विचाराधारात्मक संघर्ष की तैयारी कर रहे थे। शीतयुद्धीय उद्देश्यों को लेकर एक सम्मेलन सन् 1950 में बर्लिन में हुआ थाख़ 'कांग्रेस फॉर कल्चरल फ्रीडम'। इस सम्मेलन में अमेरिका के पूंजीवाद को 'शांति का रक्षक' एवं रूस के समाजवाद को 'खतरनाक' कहा गया। डॉ. रामविलास शर्मा मानते हैं कि मुंबई में 'अज्ञेय' के नेतृत्व में जो 'कांग्रेस फॉर कल्चरल फ्रीडम' बैठक हुई थी वह इसी अन्तरर्राष्ट्रीय अभियान का अंग थी।6 कहना न होगा कि नयी कविता के बुर्ज से शीतयुद्ध की गोलंदाजी करने का बीड़ा अज्ञेय ने उठाया था। लक्ष्मीकांत वर्मा इस भावधारा के प्रमुख प्रवक्ता रहें। उनके गिरोह में विजय देवनारायण शाही, धर्मवीर भारती और जगदीश गुप्त आदि शामिल थे। कला और सौन्दर्य के नाम पर प्रगतिशील विरोधी साहित्य सिद्धांत के निर्माण और प्रचार का काम ये कर रहे थे। अज्ञेय इस गिरोह के आध्यात्मिक गुरु थे, जो कभी- कभी सूत्र और मंत्र दिया करते थे। डॉ. मैनेजर पाण्डेय

ने अपनी पुस्तक 'शब्द और कर्म' में यह बतलाया है कि लक्ष्मीकांत वर्मा ने 'कल्पना' के चार अंकों में 'हिन्दी साहित्य के पिछले बीस वर्ष' शीर्षक लेखमाला की पहली किश्त में अपने गिरोह के लिए निम्न पांच मांगों का उल्लेख किया हैख़ व्यक्ति स्वातंत्र्य, लघु मानव का सिद्धांत, कम्युनिस्ट विचारधारा का विरोध सौन्दर्यवादी कला दृष्टि का आग्रह, इतिहास तथा परम्परा से मुक्ति और अद्वितीय क्षणों की अनुभूति से मुक्त आधुनिकता। इन शब्दावलियों एवं अवधारणाओं का प्रयोग नये आधुनिक भावबोध के आग्रह के लिए किया गया।[7]

मुक्तिबोध नये आधुनिक भावबोध की कविता को 'जड़ीभूत सौन्दर्याभिरुचि' की कविता कहते हैं। यह भावबोध मध्यवर्गीय चिन्तन तक सीमित था, जो कविता को एक खास किस्म के ढांचे में ही बंधा हुआ देखना चाहता था। इस सौन्दर्याभिरुचि के अपने अंतर्निषेध थे, जो उक्त सीमा से बाहर जाने की छूट नहीं देते। यह सौन्दर्याभिरुचि रचना को बंधे- बंधायें ढर्रे से बाहर नहीं निकलने देती। इसके प्रवक्ता अपने सौन्दर्य के ढांचे से बाहर के क्षेत्र में प्रचलित नयी काव्य- समृद्धियों में विद्रूपता के अतिरिक्त कुछ नहीं देखते थे। परिणामतः नयी कविता 'एक खास काट की और खास शैली' की कविता हो गयी थी।

लक्ष्मीकांत वर्मा की दृष्टि में नयी कविता का यह वह समय था जब सौन्दर्य के प्रतिमान बदल रहे थे आदमी का संदर्भ बदल रहा था। अनुभूति में बदलाव से कविता की परिभाषा बदल गयी। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार ''नये कवि अनुभूति से अधिक अनुभूति के परिवर्तित संदर्भ पर विशेष बल देते हैं। स्पष्टतया उनका बल रागात्मक संबंधों पर है।''[8] यही बात अज्ञेय ने 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में कही थी ''हमारे मूल राग- विराग नहीं बदले, प्रेम अब भी प्रेम है और घृणा अब भी घृणा, यह साधारणतः स्वीकार किया जा सकता है। पर यह भी ध्यान रखना होगा कि राग वही रहने पर भी रागात्मक संबंधों की प्रणालियां बदल गयीं हैं और कवि का क्षेत्र रागात्मक संबंधों का क्षेत्र होने के कारण इस परिवर्तन का कवि कर्म पर गहरा असर पड़ा है।''[9] सौन्दर्य के इस बदले हुए प्रतिमान ने कविता में से वैचारिक सौन्दर्य को मेनुपुलेट किया और एक विशेष प्रकार के विषय- संकलन को थोड़े दूसरे तरीके से पेश किया। उन्होंने सम्प्रेषण की समस्या के आगे काव्य की विषयवस्तु को गौण स्थान दिया। अज्ञेय के लिए आधुनिक कवि की सबसे बड़ी समस्या सम्प्रेषण थी। उन्होंने इस समस्या का काव्य की विषयवस्तु से कोई संबंध नहीं माना और माना भी तो 'विषय की स्थिति' से, जिससे 'व्यक्ति सत्य' या 'व्यक्ति की अनुभूत' को सम्प्रेषित किया जा सके। अज्ञेय ने सन् 1935 में प्रसारित रेडियो परिसंवाद में प्रयोगवाद और नयी कविता में अन्तर बतलाते हुए कहा था, ''पहली (प्रयोग) धारा का आग्रह विषय पर है, सजीव विषय पर। विषय पर आग्रह के साथ वह सौन्दर्य के प्रतिमानों के रूप विधान को स्वीकार करती हुई चलती है। दूसरी (नयी कविता) का आग्रह विषय पर नहीं, विषय की स्थिति पर है, वह सौन्दर्यशास्त्र की परवाह नहीं करती है।''[10] विषय की स्थिति पर जोर देने के कारण ही नये कवियों ने कविता में विषयों और अभिव्यक्ति के रूपों की सीमा निर्धारित कर रखी थी। इस निर्धारित ढांचे में उस गत्यात्मक सौन्दर्यानुभूति की चिन्ता नहीं थी, जो व्यापक जीवनानुभव पर आधारित हो। मुक्तिबोध मानते हैं कि जड़ीभूत सौन्दर्याभिरुचि में ''मुख्य बात यह बतायी गयी कि जीवनानुभवों का स्तर और सौन्दर्यानुभवों का स्तर परस्पर भिन्न है।''[11] जीवनानुभूति और सौन्दर्यानुभूति में समानान्तरता होती है, एकता नहीं। यहां सौन्दर्यानुभव का विशेष क्षण है। इसलिए कलाकार से यह अनुरोध नहीं किया जा सकता कि तू ऐसा लिख, वैसा लिख, जैसाकि प्रगतिवाद के लोग कलाकारों से जीवनानुभव या जनता से प्रतिबद्ध होकर लिखने का अनुरोध कर रहे थे। आधुनिकतावादी कलाकार का मन सौन्दर्यानुभव के क्षणों में द्रवित होकर जिस तरह आत्मप्रकटीकरण करना चाहेगा, वह करेगा। मुक्तिबोध आधुनिकतावादी कलाकार के सौन्दर्यानुभव की सीमा बतलाते हुए कहते हैं- ''उस पर किसी भी प्रकार के वाह्यनुरोध नहीं लादे जा सकते। कलाकार का काम, कलाकार की हैसियत से सिर्फ सौन्दर्यानुभवों के क्षण की परिसीमा के भीतर रहकर उसका चित्रण करना है, अर्थात् कलाकार की हैसियत कलात्मक क्षण के अनुभव और चित्रण तक ही मर्यादित है।''[12] इस धारा की सौन्दर्य दृष्टि अनुभूति के क्षण को महत्व देती है। इस दृष्टि के अनुसार रचना का संबंध सौन्दर्यानुभूति से होता है और सौन्दर्यानुभूति का केवल क्षण ही हो सकता है। वे मानते थे कि कलाकार या कला को वास्तविक जीवन प्रसंगों से कटकर क्षण की अनुभूति या अनुभूत क्षण तक ही केन्द्रित होना चाहिए ताकि कलाकार विशुद्ध कला का आग्रह कर सके। मुक्तिबोध ने इन कलावादियों के सौन्दर्यवाद के अंतरंग सखा क्षणवाद की आलोचना करते हुए लिखा है- ''यह सौन्दर्यवाद कलाकार को क्षणजीवी सौन्दर्यानुभूति के छोटे से मानसिक बिन्दुओं में समेटकर बांधकर रखना चाहता है ताकि वह अपने समस्त व्यक्तित्व और समस्त अन्तर्जीवन की प्राणधाराओं को भूमिगत करके केवल ऊपरी सतह पर उछाले गये बिन्दुओं में अपने आपको तृप्त मान ले और शेष को भूल जाए।''[13] नयी कविता के क्षणवाद का कला सृजन के संदर्भ में सामाजिक, राजनीतिक और नैतिक दायित्वों से घोर विरोध है। मुक्तिबोध ने इस क्षणवाद के राजनीतिक और विचारधारात्मक प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए लिखा हैख़ ''इनकी बड़ी चिन्ता यह थी कि समाज में प्रचलित समाजवादी भावों और प्रगतिशील झुकावों को लेखक कहीं मूलबद्ध रूप से स्वीकार न कर ले। अतएव उनका प्रधान आग्रह यह था कि लेखक सौन्दर्यानुभूति का जो विशेष क्षण होता है, उस क्षण की सत्ता की परिधि के बाहर न जावे।''[14] इस सौन्दर्यवाद और क्षणवाद का मुख्य प्रयोजन साम्यवाद और प्रगतिवाद का विरोध करना था।

जड़ीभूत सौन्दर्यानुभूति के इस फ्रेम में 'व्यक्ति सत्य' की बहुत दुहाई दी जाती है। 'व्यक्ति सत्य' के कारण ही क्षण की अनुभूति संभव है। क्षण की विशेष अनुभूति में ही कविता संभव है। कवि समीक्षक लक्ष्मीकांत वर्मा तो साफ कहते हैं- ''कविता मूलतः कवि की व्यक्तिगत वस्तु है।''[15] इसलिए आत्मगत सौन्दर्य ही वास्तविक काव्य सौन्दर्य है, नये कवियों द्वारा यह कहा जाने लगा कि ताकि उसका संबंध वस्तुगत सौन्दर्य और सामाजिक जीवन के संघर्षों से टूट जाय और वह निजी अनुभूति का रूप भर रह जाय। नयी कविता में इस निजी अनुभूति को 'भोगा हुआ यथार्थ' और 'अनुभूति की प्रामाणिकता' कहा गया है। लक्ष्मीकांत वर्मा 'नयी कविता के प्रतिमान' शीर्षक पुस्तक में लिखते हैं- ''नयी कविता की सफलता और श्रेष्ठता का निर्धारण अनुभूतियों के प्रति ईमानदारी, अभिव्यक्ति की यथार्थता, विचारों में विवेक, भावनाओं में मानवीय वेदना, दृष्टि में व्यापकता आदि मानदंडों द्वारा किया जाना चाहिए।''[16] नयी कविता के सौन्दर्य को समझने के लिए भी 'अनुभूति के प्रति ईमानदारी' और 'अनुभव के व्यापकता' को समझना जरूरी है।

जगदीश गुप्त ने अपने लेखों में यह बात अच्छी तरह बताया है कि नयी कविता में 'अनुभूति' और 'अनुभव' व्यक्तिगत अनुभूति ही है। सामाजिक नहीं व्यक्तिगत अनुभूति ही सत्य हो सकती है। इस बात को अच्छी तरह समझाने के लिए जगदीश गुप्त ने 'साधारण' की जगह 'विशेष' और 'साधारणीकरण' की जगह 'विशेषीकरण' शब्द को रखा है। वे कहते हैंख़ ''नयी कविता के क्षेत्रों में जिस सत्य पर बल दिया जाता है वह संवेदनशील व्यक्ति द्वारा प्रत्यक्षीकृत 'विशेष सत्य' होता है और उसी को विशेष प्रकार का यथार्थ भी कहा जा सकता है... विशेषीकरण के इस युग में अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों ही उत्तरोत्तर

विशेषीकृत होती जा रही है और आज के कवि का ध्येय उनका साधारणीकरण करना न होकर उन्हें कलात्मक रीति से इस प्रकार से संप्रेषित कर देना होता है कि कवि द्वारा गृहीत सत्य की विशेषता अपने यथार्थ रूप में न केवल बनी रहे, वरन् काव्य की उपकारक भी हो जाए।''[17] गुप्तजी के अनुसार आज काव्य की आत्मा रस हो सकती है- इस बात पर प्रश्न चिह्न लग चुका है। मनुष्य की अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों ही उत्तरोत्तर विकसित होने के कारण साधारणीकरण अब निरर्थक हो चुका है, इसलिए अब 'विशेषीकरण' ही सार्थक है। क्योंकि आज के युग में साधारणीकरण का हाल यह है कि ''जहाँ एक ओर वह अलौकिक आनन्दानुभूति का पोषक है वहां अनिवार्य रूप से उसकी स्थिति भावावेग के समक्ष बौद्धिक चेतना को उपेक्षित अथवा पराजित माने बिना संभव नहीं होती।''[18] तात्पर्य यह है कि नयी कविता के आस्वादक साधारण नहीं 'विशेष' है, 'बौद्धिक चेतना' से प्रखर है। ऐसे प्रखर 'बौद्धिक चेतना' वाले 'विशेष' मनुष्य साधारणीकरण में पराजयबोध का अनुभव करते हैं। बकौल जगदीश गुप्त ''आज के सजग बौद्धिक चेतनाशील मनुष्य को बिना विचारों का परितोष प्राप्त किये इस प्रकार के आदिम संवेग से विगलित हो जाने में आनन्द की नहीं, पराजय की भी अनुभूति हो सकती है और शायद कभी- कभी होती भी है।''[19] स्पष्ट है कि नयी कविता जिस अनुभूति का प्रचार करती है उसके मूल रूप में बौद्धिकता ही है।

नयी कविता को अपने 'विशेष सत्य' वाले आस्वादक की चिन्ता है जो 'सजग बौद्धिक चेतनाशील' है। ऐसे पाठक साधारणीकरण में सौन्दर्य का अनुभव नहीं करते, पराजय का अनुभव करते हैं। एक प्रबुद्ध पाठक के लिए संभव नहीं कि वह 'संवेग से पराजित सौन्दर्य- बोध' से पूरी तरह अपना समझौता कर ले।''[20] उनके लिए नये सौन्दर्यबोध की जरूरत महसूस करते हुए जगदीश गुप्त लिखते हैं- ''उसे अब ऐसे सौन्दर्यबोध की अपेक्षा होने लगी है, जिसमें उसकी भावात्मक सत्ता के साथ-साथ उसके बौद्धिक व्यक्तित्व का भी संतुलन समावेश हो बिना किसी प्रकार की पराजय एवं क्षोभ के वह अपनी सम्पूर्ण चेतना को आस्वादन से पूरा कर सके।''[21] इन आस्वादकों के परितोष के लिए नये कवियों ने सौन्दर्य का ऐसा साँचा बनाया जिसमें कला अपने नैसर्गिक रूप में कला के प्रतिमानों की खोज की ओर ही प्रवृत्त हो। जगदीश गुप्त का कहना हैख्र ''नयी कविता इसी नये सौन्दर्यबोध के आविर्भाव और आग्रह की सृष्टि है। उसमें कला को मात्र मनोरंजन का साधन न मानकर मानवीय धरातल पर ग्रहण करते हुए उसे मानव व्यक्तित्व के निहित एवं अकृत्रिम रूप की खोज में प्रवृत्त किया जा रहा है।''[22] यही नयी कविता का 'विशेषीकरण' है, जिसके तहत वो कला को मानव- व्यक्तित्व के लिए सक्रिय करना चाहती है। यहाँ मानवीय धरातल का अर्थ बौद्धिक मनुष्यों की चेतना से है, न कि समस्त मानवता से। बौद्धिक आस्वादक ही वह 'विशेष' मनुष्य है जिसकी अनुभूति, जिसके भोगे हुए यथार्थ कला में समाहित होकर मनुष्य के व्यक्तित्व को उज्ज्वल करते हैं। नयी कविता के 'बौद्धिक मनुष्य की चेतना' और 'प्रमाणिक अनुभूति' दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू है। लक्ष्मीकांत वर्मा के शब्दों में कोई भी अनुभूति बिना इन बौद्धिकता के पनप नहीं सकती। नयी कविता के ''मन:स्थिति के एक छोर पर व्यापक जीवन के तिक्त अनुभवों के प्रतिमान है और दूसरे छोर पर बौद्धिक जागरुकता है जो जीवन के खुरदरेपन, नीरस, बेतरतीब, अस्त-व्यस्त प्रतिमानों को भी एक सौन्दर्यानुभूति प्रदान करना चाहती है।''[23]

नयी कविता के विचारक बौद्धिकता से लैस अनुभूति को ही 'अनुभूति की ईमानदारी' और 'अनुभव की व्यापकता' का पर्याय मानते हैं। मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों के अनुभवों के दम पर वे कला की स्वायत्तता की डींग हांकते हैं और इसी के आधार पर सौन्दर्य की अवधारणा देते हैं। अज्ञेय के सौन्दर्यबोध के संदर्भ में आलोचक नंदकिशोर नवल ने लिखा है- ''सौन्दर्य की कलावादी व्याख्या क्या है? अज्ञेय कहते हैं कि सौन्दर्यबोध बुद्धि का व्यापार है और बुद्धि का आधार होता है- अनुभव।''[24] नयी कविता वालों का तर्क था कि रचनाकार के पास केवल अनुभूति के क्षण होते हैं। इसलिए सहज, क्षणिक अनुभूति ही प्रामाणिक हो सकती है और उसकी अभिव्यक्ति में ही रचनाकार की ईमानदारी प्रकट होती है। अनुभूति के क्षण का गहरा संबंध 'अनुभूति की ईमानदारी' से है। मुक्तिबोध ने 'अनुभूति की ईमानदारी' के नारे का खण्डन किया और कहा इसका इरादा साहित्यकार और साहित्य को समाज और जनता से दूर हटाना है। अनुभूति के ईमानदारी में आत्मगत चित्रण का महत्व होता है जबकि ''भाव या विचार का एक ऑब्जेक्टिव पहलू अर्थात् वस्तुपरक पक्ष भी होता है।''[25] मुक्तिबोध 'अनुभूति की ईमानदार' में निहित भाववाद को पहचानते हुए कहते हैं अनुभूति के ईमानदारी के नाम पर 'अनुभूति का फ्रॉड' भी हो सकता और यह नयी कविता में बहुत है।

नयी कविता के कलावादी विचारक समाज के कुछ विशेष वर्ग के लिए कसरत करते- करते विराट जनसमुदाय से कट जाते हैं। 'व्यक्ति सत्य' और 'प्रामाणिक अनुभूति' के नाम पर कविता में अस्तित्ववाद, दु:खवादी दर्शन, आत्मकेन्द्रीयता, अहं, क्षणवाद का नियोजन किया गया। मुक्तिबोध ठीक कहते हैं कि जड़ीभूत सौन्दर्यशास्त्र मध्यवर्ग की सौन्दर्याभिरुचि से सीमित है। उनके शब्दों में ''विशाल व्यापक मानव जीवन में पाये जानेवाले भयानक संघर्ष के रौद्र रूप तो उनकी सौन्दर्याभिरुचि के फ्रेम के बाहर थे।''[26] यही नहीं ''व्यक्ति मन की बात करके आत्मा की महान, दुर्दम, विप्लवकारिणी ज्ञानमूलक शक्ति को भूला दिया गया।''[27] यहां 'आत्मा' मुक्तिबोध के लिए 'हमारा सामाजिक व्यक्तित्व' है। हमारी आत्मा में जो कुछ है, वह समाज प्रदत्त है। व्यक्तिवादी कवि भी 'आत्मा' की बहुत दुहाई देते हैं। उनके यहां 'आत्मा' मनुष्य की 'आत्मिक चेतना' है, व्यक्तिवाद है। नयी कविता का यह व्यक्ति प्रेम आकस्मिक नहीं है। उन्होंने रचना को सामाजिक संदर्भों से अलग करने के लिए, रचना की स्वायत्तता के लिए जो जीवन- पर्यन्त संघर्ष किया, उसका आवश्यक परिणाम व्यक्ति प्रेम ही है। समष्टि या सामाजिकता पर दृष्टि जाते ही रचना की सोद्देश्यता का सवाल उठ खड़ा होता है, जिसमें वे अपनी सर्जना को बांधना नहीं चाहते थे। उनका स्पष्ट मत है कि कला की कोई दिशा नहीं होती- हवा की तरह। पुरवा यह नहीं सोचती कि इधर बढ़ू या उधर। इसलिए नयी कविता के कलाकार अमीर, गरीब, पीडिघ्त, पीडक दोनों के बारे में लिखने का समान अधिकार मानते हैं। दु:खी और सुखी की कोई आत्यन्तिक श्रेणियाँ तो जीवन में होती नहीं। दु:ख, अपूर्णता, पीड़ा सर्वव्यापी है। गरीबों ने इनका ठेका नहीं लिया है। अज्ञेय की काव्य पंक्तियां है- ''लारेंस कहता है कि हां : मुझे दिन का टूटना ही पसंद है/ कि उसकी फांक में भोर के विविध रंग फांक सके;/ मैं यह नहीं जानता/ रंग फांकेंगे/ तो क्या?/ किसके लिए/ कि जब तक गिरकर/ फूटकर/ बिखरेगा नहीं/ तब तक भौर रंगों का खरा सौन्दर्य/ निखरेगा नहीं।''[28] अज्ञेय का कवि दर्द में टूटकर बिखर जाना चाहता है क्योंकि वह टूटने में सौन्दर्य की अभिवृद्धि करना चाहता है। अज्ञेय दु:ख को व्यक्तित्व का परिष्कारक तथा मुक्तिदाता मानते थे। लेकिन इस दु:ख के मूल में वस्तुगत सत्य के साथ व्याभिचार करनेवाला व्यक्तिवाद है। यह व्यक्ति को व्यक्तिबद्ध करता है। वैयक्तिता बुरी चीज नहीं है, बुरी है अस्तित्ववादी व्यक्तित्ववादी की चाह। बुर्जुआ समाज व्यवस्था

ने मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों को व्यक्तिवादी और अहंकारी बनाया और उसे जनसाधारण की सजीवता से सामाजिक क्रियाशीलता से काटकर अलग- थलग कर दिया, उसी मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों की सौन्दर्यचेतना की परिणति 'नयी कविता' है। मुक्तिबोध के 'अंधेरे में' कविता में भी विशाल जनसमुदाय से कटे पागल की आत्म-भर्तस्ना नयी कविता के मध्यवर्गीय दुखवाद और आत्मकेन्द्रिता के सौन्दर्य के विरोध का यह स्वर हैख़ ''दु:खों के दागों को तमगो सा पहना/ अपने ही ख्यालों में दिन- रात रहना/ असंग बुद्धि व अकेले में सहना/ जिन्दगी निष्क्रिय बन गयी तलघर/ अब तक क्या किया/ जीवन क्या जिया''[29] नयी कविता के 'व्यक्ति सत्य' वाले 'आदर्शवादी मन', 'सिद्धांतवादी मन' के सौन्दर्यबोध का ही प्रतिफल है 'मर गया देश, अरे, जीवित रह गये तुम।'[30]

निष्कर्ष-

यदि हम मानव जीवन के विकासक्रम को देखें तो पायेंगे कि कोई भी युग अपने पूर्वजों द्वारा निर्धारित और निर्मित सुन्दर-सम्बन्धी धारणा या सुन्दर वस्तुओं से संतुष्ट नहीं होता और ऐसी वस्तुओं का निर्माण करता है, जो उसकी अपनी सौन्दर्य-चेतना के अनुकूल हो। पुरानी वस्तुएं नये युग में असुन्दर नहीं हो जातीं, उन पर समय का कुहासा अवश्य चढ़ जाता है। इसलिए यह हमारी ऐन्द्रिय संवेदना को पूरी तरह संतुष्ट नहीं कर पाती। इन्द्रियबोध मनुष्य के भाव- जगत के साथ संलग्न होता है, जिसे मनुष्य अपने विकास के साथ- साथ नवीन तथा परिमार्जित करता रहता है। अत: व्यक्ति और समाज में परस्पर द्वंद्वात्मक सम्बन्ध है। कविता में अनुभूति में परिवर्तनशीलता का संबंध व्यक्ति के मन से ही होता है; किन्तु उसका परिष्कृत और समृद्ध रूप सामाजिक विकास और सामाजिक जीवन से ही संभव हुआ है। इसलिए नयी कविता के जड़ीभूत-सौन्दर्याभिरुचि के बारे में यह कहना सर्वथा उचित है कि काव्य या कला की स्वायत्तता किसी कीमत पर नहीं मानी जा सकती। कविता को समाज- निरपेक्ष तथा सौन्दर्य को वैयक्तिक सत्ता के रूप में माननेवाले नए कवियों एवं विचारकों को महान चिंतक आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इस धारणा के मर्म को पहचान लेना चाहिए कि सच्चा कवि वही है जिसे लोकहृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सके।

संदर्भ- सूची:

1. अज्ञेय, 'दूसरा सप्तक', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1951, पृ. 6
2. मुक्तिबोध, गजानन माधव, 'छायावाद और नयी कविता', नेमीचन्द जैन (सं.), 'मुक्तिबोध रचनावली-5', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 1985, पृ. 313
3. मुक्तिबोध, गजानन माधव, 'छायावाद और नयी कविता', नेमीचन्द जैन (सं.), 'मुक्तिबोध रचनावली-5', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 1985, पृ. 312
4. मुक्तिबोध, गजानन माधव, 'छायावाद और नयी कविता', नेमीचन्द जैन (सं.), 'मुक्तिबोध रचनावली-5', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 1985, पृ. 312
5. मुक्तिबोध, गजानन माधव, 'नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र', राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1971, पृ. 57
6. शर्मा, डॉ. रामविलास, 'स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य', हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस, प्रथम संस्करण 1956, पृ. 4
7. पाण्डेय, डॉ. मैनेजर, 'शब्द और कर्म', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1997, पृ. 237
8. सिंह, डॉ. नामवर, 'कविता के नये प्रतिमान', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1968, पृ. 25
9. अज्ञेय, 'दूसरा सप्तक', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1951, पृ. 9
10. अज्ञेय, 'ध्वनिवार्ता', नये पते, फरवरी, 1953
11. मुक्तिबोध, गजानन माधव, 'नयी कविता की प्रकृति', नेमीचन्द जैन (सं.), 'मुक्तिबोध रचनावली-5', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण 1985, पृ. 325
12. मुक्तिबोध, गजानन माधव, 'नयी कविता की प्रकृति', नेमीचन्द जैन (सं.), 'मुक्तिबोध रचनावली-5', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण 1985, पृ. 325
13. मुक्तिबोध, गजानन माधव, 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध', विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, 1964, पृ. 169
14. मुक्तिबोध, गजानन माधव, 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध', विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, 1964, पृ. 171
15. वर्मा, लक्ष्मीकांत, 'कवि- सत्य: एक दृष्टिकोण', जगदीश गुप्त (सं.), 'नयी कविता : सैद्धांतिक पक्ष', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण: 2010, पृ. 233
16. वर्मा, लक्ष्मीकांत, 'नयी कविता के प्रतिमान', भारती प्रेस प्रकाशन, इलाहाबाद, संवत् 2014 वि., पृ. 39
17. गुप्त, जगदीश, 'नयी कविता: स्वरूप और समस्याएं', भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1971, पृ. 292-294
18. गुप्त, जगदीश, 'नयी कविता: अर्थ का लय', जगदीश गुप्त (सं.), 'नयी कविता : सैद्धांतिक पक्ष', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण: 2010, पृ. 24
19. गुप्त, जगदीश, 'नयी कविता: अर्थ का लय', जगदीश गुप्त (सं.), 'नयी कविता : सैद्धांतिक पक्ष', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण: 2010, पृ. 25
20. गुप्त, जगदीश, 'नयी कविता: अर्थ का लय', जगदीश गुप्त (सं.), 'नयी कविता : सैद्धांतिक पक्ष', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण: 2010, पृ. 25

21. गुप्त, जगदीश, 'नयी कविता: अर्थ का लय', जगदीश गुप्त (सं.), 'नयी कविता : सैद्धांतिक पक्ष', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण: 2010, पृ. 25
22. गुप्त, जगदीश, 'नयी कविता: अर्थ का लय', जगदीश गुप्त (सं.), 'नयी कविता : सैद्धांतिक पक्ष', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण: 2010, पृ. 25
23. वर्मा, लक्ष्मीकांत, 'नयी कविता: मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि', जगदीश गुप्त (सं.), 'नयी कविता : सैद्धांतिक पक्ष', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 2010, पृ. 147
24. नवल, नंदकिशोर, 'मुक्तिबोध: ज्ञान और संवेदना', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2000, पृ. 60
25. मुक्तिबोध, गजानन माधव, 'एक साहित्यिक की डायरी', भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी 1964, पृ. 133
26. मुक्तिबोध, गजानन माधव, 'काव्य: एक सांस्कृतिक प्रक्रिया', नेमीचंद जैन (सं.), मुक्तिबोध रचनावली 5, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1985, पृ. 197
27. मुक्तिबोध, गजानन माधव, 'काव्य: एक सांस्कृतिक प्रक्रिया', नेमीचंद जैन (सं.), 'मुक्तिबोध रचनावली 5', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1985, पृ. 197
28. अज्ञेय, 'सदानीरा भाग 2', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण,1986, पृ. 188
29. मुक्तिबोध, गजानन माधव, 'अंधेरे में', नेमीचंद जैन (सं.), 'मुक्तिबोध रचनावली 2', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1985, पृ. 332
30. मुक्तिबोध, गजानन माधव, 'अंधेरे में', नेमीचंद जैन (सं.), 'मुक्तिबोध रचनावली 2', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1985, पृ. 333

भारतीय संस्कृति ज्ञान परंपरा और साहित्य

डॉ० भवानी प्रधान

अतिथि सहा. प्राध्यापक हिन्दी (शा. दिग्विजय महा राजनांदगाँव छ.ग.)

शोध सार -

भारतीय संस्कृति और साहित्य, एक सिक्के के दो पहलू है जिसमें सहस्त्रों ऋषि -मुनियों ने दर्षन, ज्ञान, संस्कृति, सभ्यता, आदर्ष, मूल्य संस्कार और भक्ति भावनाएँ जीवंत रूप में समाहित है। संस्कृति मानव व्यवहार का वह समग्र रूप है जिसमें व्यक्ति का व्यक्तित्व ढलता है। जिसके अंतस में भारत के कण-कण में समाहित ज्ञान को स्थान प्रदान किया है। यह ज्ञान परंपरा सहस्त्रों सूर्य की रश्मियों के समान प्रकाश देने वाली है। भारतीय संस्कृति लगभग 5500 वर्ष पुरानी है। भारतीय संस्कृति पहले भी थी और आज भी जीवित और प्रकाशमान है इसका गौरवमयी रूप निरंतर निखरता जा रहा है इस ज्ञान परंपरा की निर्झरणी में यदि साहित्य के प्रतिबिंब का दिग्दर्शन किया जाए तो वह भी हीरकमणी के समान प्रकाशमान दिखाई देता है। साहित्य संस्कृति का संचित कोश है, जिससे हमें संस्कार मिलता है और हम संस्कृत या सभ्य कहलाते है। साहित्य को संस्कृति का दर्पण माना जाता है। साहित्य के द्वारा ही मनुष्य का विकास निरंतर होता रहा है। साहित्य को भारतीय और पाश्चात्य विद्यानों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है साहित्य का स्वरूप बहुत व्यापक है। साहित्य, संस्कृति को संजोकर समाज में समादृत होता है। जहाँ तक इतिहास की रोशनी नहीं पहुंच सकती, वहाँ संस्कृति को संजोने वाला साहित्य इतिहास पर प्रकाश डालता है वेद में वेदकालीन संस्कृति है जबकि उसके पूर्व भी समाज संरचना व संस्कृति मौखिक रूप से लोकसाहित्य में उपलब्ध है। साहित्यकार युग की मांग और संस्कृति के प्रभाव को ध्यान में रखकर ही साहित्य सृजन को सार्थक करता है, अतः साहित्य और संस्कृति का अंतर्संबंध उल्लेखनीय है।

मूल आलेख -

संस्कृति- भारतीय संस्कृति दुनिया की सबसे पुरानी और समृद्ध संस्कृतियों में से एक है। विश्व के प्रत्येक देष की अपनी-अपनी संस्कृति होती है। हमारी भारतीय संस्कृति को पल्लवित करने का श्रेय हमारे ऋषि-मुनियों को जाता है. जिन्होने तन को तप से तपस्या और मन को ध्यान से एकाग्र किया। चिंतन की उर्ध्वगामी विचारधारा से अपने मनन के द्वारा समाज और देश को विचार दर्शन दिया। संस्कृति को संस्कार देने का काम हमारे ऋषि- मुनियों ने ही किया ''हिन्दू संस्कृति का आविर्भाव आर्य और आर्येतर संस्कृतियों के मिश्रण से हुआ तथा जिसे हम वैदिक संस्कृति कहते है। वह वैदिक और प्राग्वेदिक संस्कृतियों के मिलन से उत्पन्न हुई थी।"[1]

भारतीय संस्कृति प्राचीन सिंधु घाटी सभ्यता जो सबसे पुरानी सभ्यता में से एक है। पुरातत्वविदों को यहाँ हड़प्पा सभ्यता से भी पहले भारत में संस्कृति होने के प्रमाण मिले हैं। हड़प्पा कालीन उत्तम या सुधरी हुई संस्कृति की कुछ प्रथायें आज भी प्रचलित है जैसे मातृ देवी और पषुपति की उपासना। भारतीय संस्कृति में प्राचीन सम्यताओं से लेकर वर्तमान समय तक कई रोचक तत्थ हैं। भारतीय संस्कृति और इसकी परंपरा लोगों को अपनी तरफ आकर्षित करती है। भारतीय संस्कृति ने हमेशा शांति और सद्भाव को बढ़ावा दिया है। भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषताएँ सभ्य, शिष्टाचार, विश्वास, मूल्य और अनुष्ठान है।

संस्कृति वह है जो मन के संस्कार को मानस पटल में नींव डालने का काम करती है। संस्कृति शब्द में 'कृ' धातु है जो क्रिया के अर्थ में है। क्रिया गतिशील है। 'सम' धातु और 'ति' प्रत्यय से संस्कृति शब्द बना है। जिसका अर्थ है अच्छी स्थिति, शुद्ध करना, परिमार्जित करना और समय व स्थिति के अनुकूल सापेक्ष लाभ हेतु बदलना। संस्कृति का अर्थ होता है कि मन और हृदय की वृत्तियों को संस्कार के द्वारा सुधारना और उसे उदात्त बनाना। वास्तव में संपूर्ण, सम्यक कृति ही संस्कृति है। संस्कृति शब्द एक गुढ़ गंभीर शब्द है। ''संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान भावी जीवन महत्वपूर्ण प्रकार रही है। हमारे जीवन का महत्वपूर्ण ढंग हमारी संस्कृति है। संस्कृति हवा में नहीं रहती उसका मूर्तिमान रूप भी होता है। जीवन के नाना विध रूपों का समुदाय संस्कृति है। साहित्य कला, दर्शन और धर्म से जो मूल्यवान सामग्री हमें मिल सकती है, उसे नए जीवन के लिए ग्रहण करना यही सांस्कृतिक कार्य की उचित दिशा और सच्ची उपयोगिता है।"[2]

भारतीय संस्कृति अत्यंत उदात्त, समन्वयवादी, सशक्त एवं जीवंत रही है। जिसमें जीवन के प्रति आध्यात्मिक प्रवृति तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। संस्कृति देश तथा समाज का प्रतिबिम्व होती है। किसी भी समाज की संस्कृति उसके भूतकालीन तथा वर्तमान कालीन विकास को दर्शाती है। भारतीय संस्कृति के लक्षण भारत को संपुर्ण विष्व से पृथक एक विशिष्ट स्थान देती है। ''हिन्दू संस्कृति ने अपने को कूप मंडूक नही बनाया और इसे जहां से भी कोई अच्छी चीज मिलने वाली थी उसे इसने आगे बढ़कर स्वीकार कर लिया। यही कारण है कि हिन्दू धर्म में हम विश्व के तमाम धर्मो के असली तत्वों का निचोड़ पाते हैं"[3]

किसी भी देश अथवा समाज की मूल संरचना आत्मा या प्राण तत्व होती है संस्कृति को परख कर हम उस समाज के अतीत और वर्तमान की स्थितियों

को मूल्यांकित कर सकते है, साथ ही उस समाज की गतिशीलता और सामूहिक जीवन की अंत: क्रियाओ का जायजा भी ले सकते हैं और यही क्रियाएँ सामाजिक जीवन का आधार बनती है, जिसपर किसी भी समाज का विशाल भवन निर्मित होता है। संस्कृतिमान जीवन के गुणों का सूचक होती है, संस्कृति के अंतर्गत मानव के आविष्कार, संस्थाएँ, कला साहित्य, धर्म, विचार और सामाजिक संगठन आदि विषय आते हैं। ''प्राचीन संस्कृति को केवल ऐतिहासिक बताकर आजकल के लिए अनुपादेय मानना उचित नहीं है। इसने प्राचीन कालीन संस्कृतियों को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया था। प्राचीन चीन, काबुल, मिश्र, यूनान, रोम आदि की संस्कृतियों पर प्राचीन भारत के दर्शन, धर्म, साहित्य भाषा आदि का प्रभाव स्पष्टतया दिखाई देता है। यूरोप की जिस संस्कृति ने आज भविष्य को प्रभावित किया है उनकी जड़ों में भी भारतीय संस्कृति की छाप दिखाई देती है"[4]

इस प्रकार यूरोप की वर्तमान सस्कृति की जड़ो में प्राचीन भारतीय प्रभाव, स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। भारतीय संस्कृति का महत्व तो ईक्कीसवीं शताब्दी में और भी बढ़ जाता है। जबकि संसार में एक व्यक्ति दूसरे का गला घोंटने में पीछे नहीं हटता। एक समाज दूसरे समाज का खून चूसने को तैयार है। चारों ओर राग द्वैष वैमनस्य के वातावरण में हिंसा का साम्राज्य छाया हो ऐसे समय में मानव जाति की रक्षा सनातन सिद्धांतो पर स्थित भारतीय संस्कृति ही कर सकती है। भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धांत सत्य अहिंसा व तप को अपनाना होगा। संस्कृति में शामिल विभिन्न ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित किया जा सकता है। यह पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता रहता है। ज्ञान, विचार और परंपराएँ नयी संस्कृति के साथ अद्यतन होकर जुड़ते जाते है कोई भी संस्कृति स्थिर दषा में स्थायी नहीं होती है। समय के साथ-साथ निरंतर बदलती रहती है उसमें नये विचार और नये कौषल जुड़ते चले जाते है यह हमारी भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता है जो संस्कृति की संचयी प्रकृति से उत्पन्न होती है। संस्कृति जीवन के निकट से जुड़ी हुई है। संस्कृति के बिना मनुष्य की कल्पना नहीं कर सकते। संस्कृति परंपराओं से, विश्वासों से, जीवन की शैली से, भौतिक पक्ष से, आध्यात्मिक पक्ष से निरंतर जुड़ी है। संस्कृति से ही हम जीवन जीने का तरीका सिखते हैं। मानव ही संस्कृति का निर्माता है और संस्कृति ही मानव जीवन को मानव बनाती है सत्य, शिव और सुंदर ये तीन-तीन शाश्वत मूल्य है जो संस्कृति से निकट से जुड़े हैं।

साहित्य और संस्कृति में अंत: संबंध -

'साहित्य' का तात्पर्य मूलत: सामंजस्य है- साहित्य संस्कृति को संजोकर समाज में समाहित होता है। साहित्य की अपनी अभिव्यक्ति है। उसका अपना स्वरूप है, साहित्य को मानव के आंतरिक मन का सौदर्य दिखता है तो राष्ट्र दर्शन, उसका चिंतन पक्ष है और उसकी पहचान कला है। साहित्य हमारे अंदर छुपे भावो को व्यक्त कर हमकों प्रभावित करता है ''ऐतिहासिक दृष्टि से सातवी शताब्दी में साहित्य शब्द का प्रयोग भर्तृहरि ने सर्वप्रथम काव्य के पर्याय के रूप में किया था। राजशेखर ने भी काव्य मीमांसा में शब्द और अर्थ के समुचित सहभाव को ही साहित्य की महत्वपूर्ण विशेषता माना है। वे इसे विद्या के लिए प्रयोग करते हैं और पुराण, न्यायदर्शन, मीमांसा तथा धर्मशास्त्र इन चार विधाओं का सारभूत साहित्य मानते है जिसे पांचवीं विद्या कहा जा सकता है।"[5]

साहित्य शब्द की व्युत्पत्ति साहित्य में 'यत' प्रत्यय जोड़ने से हुई है। साहित्य के दो अर्थ दिये जाते है- पहला ''हितेन सह: साहितम साहित्यम" अर्थात जिसमें हित की भावना निहित हो वह साहित्य है। दूसरा ''साहित्य भाव: साहित्यम" जिसमें समन्वय का भाव है वह साहित्य है। साहित्य का एक अर्थ सहभाव भी होता है। साहित्य के रूप में हमारे ही विचार मूर्तिमान होकर हमारा नेतृत्व करते हैं। समाज में जो परिवर्तन साहित्य के द्वारा होता है वह तलवार द्वारा किये गये परिवर्तन से कही अधिक होता है ''साहित्य ही हमारे जीवन को सुधार कर आदर्शों पर चलना सिखाता है। साहित्य हमारा मनोरंजन करके जीवन को आनंदमय बनाता है जहाँ साहित्य का अभाव होता है वहां जीवन सौंदर्यमय नहीं रहता है। साहित्यकार समाज में रहकर ही अपनी रचनाओं का सृजन करता है। अपने जीवन में जो कुछ वह देखता है सुनता है और अनुभव करता है उन्हीं सबकी सम्मिलित भनिव्यिक्त ही उसकी रचनाओं में प्रकट होती है। साहित्यकार के हृदय को दर्पण कहा जाता जिसमें कई तरह के चित्र उपरते हैं। ''साहित्य गतिशील सांस्कृतिक प्रवाह का अंग है सामाजिक विकास से सांस्कृतिक विकास जुड़ा हुआ है और सांस्कृतिक विकास से साहित्य का विकास इसका कारण है कि साहित्यकार भी उसी समाज का अंग है जिस समाज का संचालन संस्कृति करती है। अत: स्वभावत: समाज में रहते हुए साहित्यकार पर अपनी संस्कृति का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है जिसकी अभिव्यक्ति अनायास उसके साहित्य में हो जाती है"[6]

संस्कृति और साहित्य का अटूट संबंध है। जिस साहित्य में संस्कृति की अभिव्यक्ति होगी, संस्कृति के माध्यम से मनुष्य की चिंता होगी, वही साहित्य काल के आधातों का सामना करने की क्षमता रखता है। समाज में रहते हुए साहित्यकार पर अपनी संस्कृति का प्रभाव न पड़े असंभव है।

साहित्य संस्कृति को संजोकर समाज में समाहित होता है, जहाँ इतिहास की रोशनी नहीं पहुंचती वहाँ संस्कृति को संजोने वाला साहित्य इतिहास पर प्रकाश डालता है भारतीय संस्कृति को विदेशी आक्रांताओं ने कमजोर करने का पुरजोर प्रयास किया लेकिन माहित्य ने उसे संभाल लिया, भारत के विशाल और समृद्ध साहित्य में हमारी जाति की सभ्यता और संस्कृति के सच्चे रूप की झांकी मिलती है। भारत के साहित्यिक एवं सांस्कृति विकास के विभिन्न युगों, आदर्शो तथा जीवन मूल्यों को समझा जा सकता है। भारतीय संस्कृति का मूल आधार धार्मिक प्रवृत्ति है जिससे मनुष्य का संपूर्ण जीवन प्रभावित होता रहता है। भारतीय संस्कृति हमेशा गंगा की धारा के समान प्रवाहमयी एवं गतिशील रही है यहाँ विविध जाति-धर्म, संप्रदाय आदि के रंग-बिरंगे पुष्प भारतीय संस्कृति रुपी माला मे अत्यंत मनोहारी रुप से गुंथे हुए सुशोभित दिखाई दे रहे है।

संपूर्ण हिन्दी साहित्य कल्पवृक्ष के समान है जिसका एक-एक पल नवीन कलाओं और भावनाओं से मंडित है भारत वर्ष की सबसे सुंदर सुदृढ़ और शक्तिशाली परंपरा साहित्य परंपरा है जो प्राचीन काल से ही ज्ञान का मूल स्रोत रही है। हिन्दी साहित्य ने अपने अंतर में 64 कलाओं और 14 विधाओं को समेटा हुआ है, जिससे निसृत परंपराएँ संपूर्ण विश्व को ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, कला, कौशल और अनुसंधान में जोड़ रही है। मनुष्य के सार्थक एवं सर्वोत्तम ज्ञान को लिपिबद्ध करना ही साहित्य है। मानव के विचारों अनुभूतियों की निधि साहित्य के माध्यम से ही संचित रह पाती है। हिन्दी साहित्य पूर्णत: नवीन संस्कारों से युक्त होकर अपनी आंतरिक बहुमुखी प्रतिमा का परिचय देता है।

निष्कर्ष-

भारतीय ज्ञान परंपराओं का विश्व पर अमिट प्रभाव है। यदि संस्कृति को समझना है तो संस्कृत साहित्य से सुपरिचित होना पड़ेगा। यही वह भारतीय भाषा है जिसका साहित्य संस्कृति को संरक्षित किए हुए है, संस्कृति हो या सभ्यता, खोज हो या अनुसंधान ज्ञान हो अथवा कौशल, योग हो अथना व्यवहार भाषा हो या विज्ञान सभी क्षेत्रों में चहूँ ओर भारतीय ज्ञान परंपरायें अपना प्रभाव स्थापित कर रही हैं। इन्ही परंपरायों से महर्षि पतंजलि योग-शिक्षा से अपने आप को स्वास्थ्य की ओर लेकर जाती है। चरक संहिता अनुसंधान क्षेत्र को सफल बनाती है, कौटिल्य की राजनीति शिक्षा देती है भारतीय ज्ञान परंपरा में हिन्दी साहित्य मणी के समान है जिसमें समस्त भावनायें समाहित है। जिसमे शिक्षा है ज्ञान है, भक्ति भी है, दर्शन भी है, मनोरंजन भी और समाज सुधार भी है। हिन्दी साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा का एक मुख्य स्रोत है। साहित्यकार युग की मांग और संस्कृति के प्रभाव को ध्यान में रखकर ही साहित्य-सृजन को सार्थक करता है अतः साहित्य और संस्कृति का अंतर्संबंध उल्लेखनीय है। हिन्दी साहित्य की ये ज्ञान परंपरा समाज को सदैव नयी दिशा देने में सक्षम रही है और आज भी दे रही है।

संदर्भ ग्रंथ

1. रामधारी सिंह दिनकर ''संस्कृति के चार अध्याय'' लोकभारती प्रकाशन प्रयागराज 2009, पृष्ठ-58
2. वासुदेव शरण अग्रवाल, ''कला और संस्कृति'' प्रथम संस्करण पृ. 1
3. रामधारी सिंह दिनकर ''संस्कृति के चार अध्याय'' पृ. 100
4. शिवदत्त ज्ञानी, ''भारतीय संस्कृति'' राजकमल प्रकाः दिल्ली प्रथम 1944 पृ.20
5. डॉ. हरिमोहन ''साहित्यिक विधाएँः पुनर्विचार'' वाणी प्रका. नयी दिल्ली. प्रथम संस्करण 1997 पृ. 16
6. हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना रवि कुमार 'अनु' पंचशील प्रकाशन जयपुर, प्रथम संस्करण 1990 पृ.12

जीएसटी तथा आईटीसी का विलोकनः भारत में विदेशी व्यापार के परिप्रेक्ष्य में

डॉ० शिवेन्द्र सिंह

सहायक प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग, महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी (बिहार)

सार

संविधान के अनुच्छेद 366 (12,) जैसा कि 101 संशोधन अधिनियम 2016 द्वारा संशोधित हैं, वस्तुओं और सेवाओं या दोनों की आपूर्ति, मानव के उपभोग के लिए एल्कोहल की आपूर्ति को छोड़कर, पर वस्तु एवं सेवाकर (जीएसटी) कर के रूप में परिभाषित किया गया है। इसलिए संविधान में जीएसटी की परिभाषा के माध्यम से मानव उपयोग के लिए एल्कोहल को जीएसटी से बाहर रखा है। अस्थाई रूप से, पाँच पेट्रोलियम उत्पाद अर्थात पेट्रोलियम क्रूड, मोटर स्प्रिट (पेट्रोल) हाई स्पीड डीजल, प्राकृतिक गैस और विमानन टर्बाइन ईधन को जीएसटी से बाहर रखा गया है। जीएसटी परिषद् द्वारा यह निर्णय लिया जाएगा कि यह किस दिनांक से जीएसटी में शामिल किए जायेंगे। इसके अलावा विद्युत को जीएसटी से बाहर रखा गया है। सेंट्रल बोर्ड ऑफ एक्साइज एण्ड कस्टम्स (सी.बी.ई.सी) के अंतगर्त सर्वोच्च प्रशिक्षण संस्थान नेशनल एकेडमी ऑफ कस्टम्स, एक्साइज एण्ड नारकोटिक्स-नासेन द्वारा जी.एस.टी. पर प्रायः पूछे जाने वाले प्रश्नों का संकलन बहुत ही अच्छी तरह से प्राप्त हुआ है। जी.एस.टी. परिषद द्वारा कई नियमों के साथ सी.जी. एस.टी, एस.जी.एस.टी, आई.जी.एस.टी, यूटी.जी.एस.टी. और प्रतिपूर्ति उपकर के मसौदो को कानूनी मंजूरी दे दी गई है। संसद में केन्द्रीय विधेयक पेश किए गए है, राज्यों से संबंधित कानून वहां से संबंधित राज्य विधानसभाओं द्वारा पारित किए जाएंगे। जैसा कि प्रथम संस्करण लाने के समय वादा किया गया था, संसद में पेश किए गए पूर्व विधेयकों के आधार पर नासेन द्वारा एफएक्यू का दूसरा संस्करण तैयार किया गया है। ये अधिकारियों, व्यापार और जनता के बीच जी.एस.टी. के बारे में ज्ञान और जागरूकता फैलाने में एक अहम भूमिका प्रदान करेगा।

भारत के संविधान को हाल ही में जी.एस.टी. के संदर्भ में क्यों संशोधित किया

वर्तमान में, केंद्र और राज्यों के बीच वित्तीय अधिकार स्पष्ट रूप से संविधान में सीमांकित किये गये हैं जिनमें संबंधित क्षेत्रों के बीच लगभग किसी तरह का ओवरलैप नही है। केंद्र के अधिकार में वस्तुओं के विनिर्माण (सिवाय मानव उपभोग के लिये एल्कोहल, अफीम, नशीले पदार्थों आदि को छोड़कर) पर कर लगाने की शक्तियां हैं, जबकि राज्यों के अधिकार में वस्तुओं की बिक्री पर कर लगाने की शक्तियां प्रदान की गई हैं। अंतर-राज्य बिक्री के मामले में केंद्र सरकार को वस्तुओं की बिक्री पर कर (केंद्रीय बिक्री कर) लगाने की शक्ति है लेकिन, कर पूरी तरह से राज्यों द्वारा एकत्र किया जाता है। जहां तक सेवाओं का प्रश्न है, केवल केंद्र को सेवा कर लगाने के लिये सशक्त किया गया है।

जी.एस.टी. प्रस्तुत करने के लिए संविधान में आवश्यक संशोधन करने की आवश्यकता थी ताकि केंद्र और राज्यों को एक साथ कर लगाने और एकत्र करने के लिये सशक्त किया जा सके। भारत के संविधान को संविधान के (एक सी एकवां संशोधन) अधिनियम, 2016 द्वारा हाल ही में इस प्रयोजन के लिये संशोधित किया गया था। संविधान का अनुच्छेद 246ए केंद्र और राज्यों को कर लगाने और जी.एस.टी. एकत्र करने के लिए सशक्त करती है।

जी.एस.टी. परिषद की क्या भूमिका होगी?

जी.एस.टी. परिषद के गठन में केंद्रीय वित्त मंत्री (जो परिषद के अध्यक्ष होंगे), राज्यमंत्री (राजस्व) और राज्य वित/कराधान मंत्री सम्मिलित होंगे जो केंद्र और राज्यों को निम्न पर अपनी सिफारिशें करेंगे-

1. केंद्र, राज्यों और स्थानीय निकायों द्वारा लगाये करों, उपकरों और अधिभारों पर जिन्हें जी.एस.टी. के अंतर्गत सम्मिलित किया जा सकता है;
2. वस्तुओं और सेवाओं पर जो जी.एस.टी. के अधीन की जा सकती हैं या जिन्हें छूट दी जा सकती है;
3. जिस तारीख को पेट्रोलियम कच्चे तेल, हाई स्पीड जल, मोटर स्प्रिट (आमतौर पर पेट्रोल के रूप में जाना जाता है), प्राकृतिक गैस और एविएशन टर्बाइन फ्यूल पर जी.एस.टी. लगाया जाएगा;
4. मॉडल जी.एस.टी. कानून, करारोपण के सिद्धांत, आई. जी.एस.टी. का संविभाजन और वे सिद्धांत जो आपूर्ति स्थल को निर्धारित करते हैं;

5. कुल बिक्री की वह सीमारेखा जिसके नीचे वस्तुओं और सेवाओं को जी.एस.टी. से छूट दी जा सकती है;
6. वह दरें जिनमें जी.एस.टी.बैंड सहित न्यूनतम तय दरें शामिल हैं;
7. प्राकृतिक आपदा या आपदा के दौरान अतिरिक्त संसाधन जुटाने के लिए कोई विशेष दर या निर्धारित अवधि के लिए तय की गई दरें;
8. उत्तर-पूर्वी राज्यों, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड के संबंध में विशेष प्रावधान, तथा
9. जी.एस.टी. से संबंधित कोई अन्य मामला, जिसपर परिषद निर्णय ले सकती है

जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत छोटे कर दाताओं के लिये क्या लाभ उपलब्ध

एक वित्तीय वर्ष में समग्र रूप से कुल कारोबार (20 लाख और पूर्वोत्तर तथा विशेष श्रेणी राज्य के लिए 10 लाख तक) करने वाले कर दाताओं को कर से छूट प्राप्त होगी। आगे ऐसे व्यक्ति जिनका पूर्ववर्ती वित्तीय वर्ष में समग्र कारोबार 50 लाख रु. से कम है, वे सरलीकृत योजना का विकल्प चुन सकते हैं, जहाँ एक राज्य में कुल कारोबार पर रियायती दर पर कर देय होगा।

कुल कारोबार में सभी कर योग्य वस्तुओं की आपूर्ति, छूट प्राप्त वस्तुओं की आपूर्ति और निर्यात की वस्तुएँ और/या सेवाएँ का समग्र मूल्य शामिल किया जाएगा। कुल कारोबार में कर अर्थात एसटी का मूल्य शामिल नही किया जायेगा। समग्र कारोबार की गणना सम्पूर्ण भारत के आधार पर की जाएगी। पूर्वोतर राज्यों और विशेष श्रेणी के राज्यों के लिए छूट सीमा (10 लाख रु) होगी। छूट सीमा को योग्यता वाले सभी कर दाताओं के पास इनपुट टैक्स क्रेडिट (आईटीसी) लाभों के साथ कर भुगतान का विकल्प होगा। अंर्तराज्यीय आपूर्ति करने वाले कर दाता या रिवर्स जार्च के आधार पर कर का भुगतान करने वाले कर दाता छुट सीमा के लाभ के पात्र नहीं होंगे।

जी.एस.टी.एन. क्या है और जी.एस.टी. व्यवस्था में इसकी क्या भूमिका

जी.एस.टी.एन. वस्तुओं एवं सेवाओं का कर एक नेटवर्क (जी.एस.टी.एन.) है। यह एक विशेष प्रयोजन के लिये माध्यम है जिसे जी.एस.टी.एन. कहा जाता है और इसे जी.एस.टी. की जरूरतों को पूरा करने के लिये स्थापित किया गया है। जी.एस.टी.एन. केंद्रीय और राज्य सरकारों, कर दाताओं और अन्य हितध ारकों को जी.एस. टी. के कार्यान्वयन के लिये आईटी बुनियादी सुविधाएं साझा करेगा।

जी.एस.टी.एन. के काम में, अन्य बातों के साथ, शामिल होंगे-

(i) पंजीकरण की सुविधा;
(ii) केन्द्रीय और राज्य के अधिकारियों को रिटर्न अग्रेषित करना;
(iii) आई.जी.एस.टी. की संगणना और निपटान;
(iv) बैंकिग नेटवर्क के साथ कर भुगतान विवरणों का मिलान करना;
(v) केन्द्र और राज्य सरकारों को करदाताओं के रिटर्न/वापसी की जानकारी के आधार पर विभिन्न एमआईएस सूचना प्रदान करना;
(vi) करदाताओं के प्रोफाइल का विश्लेषण प्रदान करना; और
(vii) इनपुट टैक्स क्रेडिट के मिलान, उलटने और पुर्नदावा करने के लिये उसी के अनुकूल इंजन का संचालन करना।

जी.एस.टी.एन. पंजीकरण, भुगतान, रिटर्न और एम.आई.एस./रिपोर्ट को लिए एक आम जी.एस.टी. पोर्टल और एप्लीकोशंस विकसित कर रहा है। जी.एस. टी.एन. में मौजूदा कर प्रशासन में उपयोग की जा रही आईटी प्रणालियों के साथ एक आम जी.एस. टी. पोर्टल को एकीकृत किया जाएगा और करदाताओं के लिए इंटरफेस का निर्माण किया जाएगा। इसके अतिरिक्त, जी.एस.टी. एन. 19 राज्यों और केंद्रीय शासित प्रदेशों (मॉडल II राज्यों) के लिये मूल्यांकन, लेखा परीक्षण, रिटर्न, अपील इत्यादि के लिये एक बैक-एंड मॉडयूल भी विकसित कर रहा है। सीबीईसी और मॉडल प राज्य (15 राज्य) स्वयं अपने जी. एस.टी. बैक-एंड सिस्टम् विकसित कर रहे हैं। जी.एस.टी. के फ्रट-एंड सिस्टम को बैक-एंड सिस्टम से एकीकृत कर प्रक्रिया सुगम करने के लिये पहले से ही परीक्षण पूरा कर लिया जायेगा।

जीएसटी पंजीकरण प्रक्रिया

व्यापार और उद्योग के लिए–

- आसान अनुपालन, पारदर्शिता: एक मजबूत और व्यापक सूचना प्रौद्योगिकी प्रणाली भारत में जीएसटी व्यवस्था की नींव होगी इसलिए पंजीकरण, रिटर्न, भुगतान आदि जैसी सभी कर भुगतान सेवाएं करदाताओं को ऑनलाइन उपलब्ध होंगी, जिससे इसका अनुपालन बहुत सरल और पारदर्शी हो जायेगा।
- कर दरों और संरचनाओं की एकरूपता: जीएसटी यह सुनिश्चित करेगा कि अप्रत्यक्ष कर दरें और ढांचे पूरे देश में एकसमान हैं। इससे निश्चिंतता में तो बढ़ोतरी होगी ही व्यापार करना भी आसान हो जाएगा। दूसरे शब्दों में जीएसटी देश में व्यापार के कामकाज को कर तटस्थ बना देगा फिर चाहे व्यापार करने की जगह का चुनाव कहीं भी जाये।

- करों पर कराधान (कैसकेडिंग) की समाप्ति: मूल्य श्रृंखला और समस्त राज्यों की सीमाओं से बाहर टैक्स क्रेडिट की सुचारू प्रणाली से यह सुनिश्चित होगा कि करों पर कम से कम कराधान हों। इससे व्यापार करने में आने वाली छुपी हुई लागत कम होगी।
- प्रतिस्पर्धा में सुधार–व्यापार करने में लेन–देन लागत घटने से व्यापार और उद्योग के लिए प्रतिस्पर्धा में सुधार को बढ़ावा मिलेगा।
- विनिर्माताओं और निर्यातकों को लाभ–जीएसटी में केन्द्र और राज्यों के करों के शामिल होने और इनपुट वस्तुएं और सेवाएं पूर्ण और व्यापक रूप से समाहित होने और केन्द्रीय बिक्री कर चरणबद्ध रूप से बाहर हो जाने से स्थानीय रूप से निर्मित वस्तुओं और सेवाओं की लागत कम हो जाएगी। इससे भारतीय वस्तुओं और सेवाओं की अंतर्राष्ट्रीय बाजार में होने वाली प्रतिस्पर्धा में बढ़ोतरी होगी और भारतीय निर्यात को भी बढ़ावा मिलेगा। पूरे देश में कर दरों और प्रक्रियाओं की एकरूपता से अनुपालन लागत घटाने में लंबा रास्ता तय करना होगा।

केन्द्र और राज्य सरकारों के लिए–

- सरल और आसान प्रशासन – केन्द्र और राज्य स्तर पर बहुआयामी अप्रत्यक्ष करों को जीएसटी लागू करके हटाया जा रहा है। मजबूत सूचना प्रौद्योगिकी प्रणाली पर आधारित जीएसटी केन्द्र और राज्यों द्वारा अभी तक लगाए गए सभी अन्य प्रत्यक्ष करों की तुलना में प्रशासनिक नजरिए से बहुत सरल और आसान होगा।
- कदाचार पर बेहतर नियंत्रण–मजबूत सूचना प्रौद्योगिकी बुनियादी ढांचे के कारण जीएसटी से बेहतर कर अनुपालन परिणाम प्राप्त होंगे। मूल्य संवध र्न की श्रृंखला में एक चरण से दूसरे चरण में इनपुट कर क्रेडिट कर सुगम हस्तांतरण जीएसटी के स्वरूप में एक अंत:निर्मित तंत्र है, जिससे व्यापारियों को कर अनुपालन में प्रोत्साहन दिया जाएगा।
- अधिक राजस्व निपुणता–जीएसटी से सरकार के कर राजस्व की वसूली लागत में कमी आने की उम्मीद है। इसलिए इससे उच्च राजस्व निपुणता को बढ़ावा मिलेगा।

उपभोक्ताओं के लिए–

- वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य के अनुपाती एकल एवं पारदर्शी कर–केन्द्र और राज्यों द्वारा लगाए गए बहुल अप्रत्यक्ष करों या मूल्य संवर्धन के प्रगामी चरणों में उपलब्ध गैर–इनपुट कर क्रेडिट के कारण आज देश में अनेक छिपे करों से अधिकांश वस्तुओं और सेवाओं की लागत पर प्रभाव पड़ता है। जीएसटी के अधीन विनिर्माता से लेकर उपभोक्ताओं तक केवल एक ही कर लगेगा, जिससे अंतिम उपभोक्ता पर लगने वाले करों में पारदर्शिता को बढ़ावा मिलेगा।
- समग्र कर भार में राहत–निपुणता बढ़ने और कदाचार पर रोक लगने के कारण अधिकांश उपभोक्ता वस्तुओं पर समग्र कर भार कम होगा, जिससे उपभोक्ताओं को लाभ मिलेगा।

भारतीय अर्थव्यवस्था पर जीएसटी का प्रभाव

1. बिजनेस बूस्टर : जीएसटी पूरे देश के लिए लाभदायक होगा.यह उद्योग, उपभोक्ता और सरकार के सभी हितधारकों को लाभ पहुंचाएगा। इससे माल और सेवाओं की लागत कम हो जाएगी जिससे अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिलेगा और वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी उत्पादों और सेवाओं का लाभ पूरी तरह से उठाया जा सकेगा।

जीएसटी का उद्देश्य आम कर दरों और प्रक्रियाओं के साथ भारत को एक सामान्य बाजार बनाना है और इसकी आर्थिक बाधाओं को दूर करना है। यह राष्ट्रीय स्तर पर एक एकीकृत अर्थव्यवस्था का मार्ग प्रशस्त करेगा।

अधिकांश केन्द्रीय और राज्य करों को एक ही कर में लाकर और संपूर्ण मूल्य श्रृंखला में लेनदेन के लिए पूर्व–स्तरीय करों का सेट–ऑफ करके, यह कैस्केडिंग के खराब प्रभावों को कम करेगा, प्रतिस्पर्धा में सुधार करने के साथ साथ कारोबार की तरलता अनुपात में सुधार करेगा।

जीएसटी प्रणाली काफी हद तक प्रौद्योगिकी पर आधारित है। इससे मानवीय हस्तक्षेप को काफी हद तक कम किया जा सकता है तथा इससे शीघ्र निर्णय लिया जा सकता है।

2. भारत में मेक इन इण्डिया पहल को और सशक्त बनाएगा : जीएसटी से भारत में निर्मित वस्तुओं और सेवाओं के प्रति राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतियोगिता बढ़ेगी जिस कारण भारत सरकार के "मेक इन इंडिया" पहल को और बढ़ावा मिलने की उम्मीद है।

इसके अलावा सभी आयातित सामानों को एकीकृत कर (आईजीएसटी) के दायरे में लाया जायेगा जो कि सेंट्रल जीएसटी + स्टेट जीएसटी के बराबर है।यह स्थानीय उत्पादों पर लगने वाले कराधानों के बीच समानता लाएगा।

3. पारदर्शिता : जीएसटी के कार्यान्वयन के बाद अप्रत्यक्ष कर कानून और अधिक पारदर्शी होंगे।

जीएसटी के जरिये आपूर्ति श्रृंखला के प्रत्येक चरण पर कर लगाया जाएगा, क्योंकि पिछले चरण के करों के भुगतान के बाद आपूर्ति को अगले चरण पर सेट किया जाता है। इससे आपूर्ति के कर मूल्य और अर्थशास्त्र को पृथक करने में आसानी होगी.

इससे उपभोक्ता को भुगतान करने वाले करों की सटीक राशि को जानने में मदद मिलेगी।

4. आसान कर भुगतान : जीएसटी से केंद्र सरकार के अप्रत्यक्ष कर कानूनों और सर्विस टैक्स जैसे सेंट्रल एक्साइज, वैट, एंटरटेनमेंट टैक्स, सेंट्रल सेल्स टैक्स, एंट्री टैक्स, लक्जरी टैक्स इत्यादि जैसे राज्य सरकारों के असंख्य कर रिकॉर्डों को बनाए रखने की अनिवार्य आवश्यक्ता स्वत: ही समाप्त हो जायेगी.

अब सिर्फ आंतरिक राज्य आपूर्ति (जो लगभग समान कानून हैं) के लिए केंद्रीय सामान और सेवा कर अधिनियम और राज्य (या संघ शासित प्रदेश) के सामान और सेवा कर अधिनियम के संबंध में रिकॉर्ड बनाए रखने की आवश्यक्ता होगी.

5. आंतरिक व्यापार में सुधार : जीएसटी से कर छूट को कम करने की उम्मीद है, जिससे सीमा शुल्क की आपूर्ति श्रृंखलाओं के प्रबंधन के लिए माल की कीमतों और पूंजी की आवश्यकता पर असर पड़ सकता है।

इससे आयात और कम निर्यात प्रोत्साहन और निर्यात की कमी पर लगने वाले डयूटी बेनिफिट में ह्रास होगा।

6. अनुसंधान और विकास : सरकार ने एक महत्वपूर्ण घोषणा की है कि 1 अप्रैल 2017 से आर एंड डी सेस वापस ले लिया जायेगा।

परिणामत: अब तक करदाताओं द्वारा प्राप्त आरएंडडी सैस की सर्विस टैक्स पर भी छूट प्राप्त होगी।

सरकार के इस कदम का उद्योग द्वारा स्वागत किया जायेगा क्योंकि आरएंडडी उपकर करदाताओं के लिए एक बोझ के सामान था।

आरएंडटी उपकर की समाप्ति से निश्चित रूप से प्रौद्योगिकी आयात को प्रोत्साहन मिलेगा तथा घरेलू मूल्य में वृद्धि भी प्रोत्साहित होगी।

7. विनिर्माण : माल के विनिर्माण / उत्पादन की प्रक्रिया से सम्बंधित सेवाओं को नकारात्मक सूची से निकालकर छूट वाले सेवाओं की सूची में स्थानांतरित कर दिया गया है।अतीत में इसी तरह के संशोधन किए गए हैं जहां नकारात्मक सूची से सामान्य छूट सूची में प्रवेश किया गया है।हालांकि इस संशोधन से कोई तात्कालिक लाभ नहीं होगा.इससे सरकार को वित्त अधिनियम प्रावधानों में संशोधन एवं सुधार की दिशा में कदम उठाने की बजाय भविष्य में इस श्रेणी में आने वाली सभी सेवाओं पर टैक्स लागू करने के लिए केवल एक अधिसूचना लागू करने की शक्ति प्राप्त होगी। मेक इन इंडिया पहल को ध्यान में रखते हुए बजट प्रस्ताव में भारत के कुछ विनिर्माण क्षेत्रों मंन व्याप्त ड्यूटी करों को ठीक करने की कोशिश की गयी है।

ऑटोमोबाइल, नवीकरणीय ऊर्जा क्षेत्र और पेट्रोकेमिकल क्षेत्रों में अंतिम उत्पादों के निर्माण हेतु उपयोग किए जाने वाले कुछ निविष्टियों और कच्चे माल पर सीमा शुल्क और उत्पाद शुल्क को कम किया गया है,जो नकदी प्रवाह को प्रभावित करने के साथ साथ क्रेडिट संचय के मुद्दे को ठीक करने में मदद करेंगे।

विभिन्न करदाताओं के डयूटी रेट्स पर विचार करना निश्चित रूप से घरेलू विनिर्माण को बढ़ावा देने में सहयोगी साबित होगा।

8. प्रौद्योगिकी : ऐसा माना जाता है कि प्रौद्योगिकी उद्योग के लिए जीएसटी बहुत लाभदायक सिद्ध होगा क्योंकि यह कई लेवी को खत्म कर देगा. इससे डिजिटल सेवाओं का विस्तार होगा।

जीएसटी लागू होने से आईटी कंपनियों के पास कई डिलीवरी केंद्र और कार्यालय हो सकते हैं जो एक एकल अनुबंध के आधार पर मिलकर काम करते हैं। जीएसटी के अंतर्गत कंपनियों को प्रत्येक कॉन्ट्रैक्टिंग पार्टी के लिए अलग-अलग इनवॉइस बनाने की आवश्यकता होती है।

9. सीमेंट की कीमतों में कमी : सीमेंट कंपनियों के लिए कर की मौजूदा प्रभावी दर 25% है। यदि जीएसटी दरें 18-20% पर तय की जाती हैं तो सीमेंट पर समग्र कर में कमी होगी. जीएसटी से परिवहन लागत में बचत की उम्मीद है, जो वर्तमान में कुल राजस्व का 20-25% तक है। देश में डिपो की संख्या कम हो जाएगी. यह परिवहन लागत को कम करेगा तथा कीमतों को नीचे लाएगा।

10. कृषि : जीएसटी कृषि उत्पादों के लिए एक राष्ट्रीय कृषि बाजार स्थापित करने में उपयोगी सिद्ध होगा।

इसमें कृषि-वस्तुओं के पारदर्शी, निष्पक्ष व्यापार के लिए सामान्य ई-कॉमर्स मंच के साथ विनियमित बाजारों में सभी किसानों और व्यापारियों को शामिल किया जाएगा।

जीएसटी आपूर्ति श्रृंखला तंत्र में सुधार करेगी जो किसानों / खुदरा विक्रेताओं के लिए अपव्यय और लागत में कमी को सुनिश्चित करेगा।

निष्कर्ष

जीएसटी का प्रारूप तैयार किया गया है इस तरह से, ताकि यह व्यवसायों और उपभोक्ताओं दोनों को लाभान्वित करे। गुड्स एंड सर्विसेज टैक्स अन्य केंद्रीय और राज्य अप्रत्यक्ष करों की जगह लेता है जैसे-वैट (मूल्य वर्धित कर), सेनवैट (केंद्रीय मूल्य वर्धित कर), उत्पाद कर, सीमा शुल्क कर, राज्य उत्पाद शुल्क आदि। एक तरह से जीएसटी ने केंद्रीय और राज्य कर प्रणाली एक समान कर व्यवस्था में एकीकृत कर दिया है। जीएसटी का प्रारूप तैयार किया गया है इस तरह से, ताकि यह व्यवसायों और उपभोक्ताओं दोनों को लाभान्वित करे। गुड्स एंड सर्विसेज टैक्स अन्य केंद्रीय और राज्य अप्रत्यक्ष करों की जगह लेता है जैसे-वैट (मूल्य वर्धित कर), सेनवैट (केंद्रीय मूल्य वर्धित कर), उत्पाद कर, सीमा शुल्क कर, राज्य उत्पाद शुल्क आदि। एक तरह से जीएसटी ने केंद्रीय और राज्य कर प्रणाली एक समान कर व्यवस्था में एकीकृत कर दिया है। जीएसटी काउंसिल उपकर तथा अधिभार का विभाजन केंद्र और राज्यों में कैसे होगा का निर्धारण भी करेगी तथा यदि किसी राज्य में प्राकृतिक आपदा आ जाती है तो उस राज्य को कितना रात पैकेज मिलेगा इसका निर्धारण भी जीएसटी काउंसिल करेगी इसके साथ ही साथ भारत सरकार द्वारा विशेष दर्जा प्राप्त राज्यों को कितना अनुदान मिलेगा इसका निर्धारण भी जीएसटी काउंसिल के द्वारा किया जाएगा।

सन्दर्भ सूची

1. https://www.thehindu.com/news/national/gst-is-gabbar-singh-tax-says-rahul-gandhi/article19907042.ece
2. जीएसटी का भारत का परिचय दर्दनाक साबित होता है। एसीसीए ग्लोबल"। बबंहसवइंस.बवउ।
3. जीएसटी धुरी का सामना राष्ट्रीयकरण कॉल"। जमसमहतंचीपदकपं.बवउ।
4. जीएसटी: कर सुधार के बाद लेन-देन कैसे होगा, इसके बारे में निराशाजनक गाइड"। मनी कंट्रोल।
5. In a first, GST collection for April tops Rs 1 lakh crore", Financial Express,
6. "नवीनतम जीएसटी कट्स: पूरी सूची क्या सस्ता हो गया", एनडीटीवी
7. जीएसटी प्रभाव: अंतरराज्यीय आंदोलन में ट्रकों की यात्रा का समय 20% गिर गया, सरकार का कहना है"। बिजनेस स्टैंडर्ड। प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया।
8. In a first, GST collection for April tops Rs 1 lakh crore", Financial Express,
9. "Upswing in GST revenue trends: Rs 892.64 bn collected in March, says Adhia", Business Standard, 2 April 2018
10. "GST collection falls to Rs 85,174 crore in February; only 69% file returns", The Times of India,
11. "GST collection for January comes in at Rs 86,318 crore", The Economic Times, 27 February 2018,
12. "GST revenue for December rises to Rs 86,703 crore; halts 2-month reverse trend", Business Today, 11 February 2018,
13. "GST collections dip for second month in Nov to Rs 80,808 crore", The Economic Times, 27 December 2017
14. "Why many registered taxpayers are not filing GST returns", Business Today, 27 February 2018,

भारत में महिला सशक्तिकरण के विभिन्न आयाम

डॉ० पंकज कुमार सिंह

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक वातावरण तथा धन मानव के व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण कारक है। भारत में नारी की विविध प्रकार की समस्याएं हैं। इन समस्याओं के मूल कारणों को समझने के लिए विभिन्न आयामों जैसे- आर्थिक आयाम, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयाम, राजनैतिक आयाम तथा शिक्षा में विभाजित कर भली-भांति समझा जा सकता है।

आर्थिक आयामः-

किसी भी व्यक्ति की सबसे महत्वपूर्ण समस्या आर्थिक होती है क्योंकि धन के अभाव में मानव का सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता है। भारतीय समाज में महिलाएं आर्थिक रूप से कमजोर हैं महिलाओं के आर्थिक पिछड़ेपन का कारण भारतीय सामाजिक संरचना में निहित है। एक सर्वे के अनुसार महिलाएं कुल श्रम में 70 प्रतिशत योगदान करती हैं। जबकि संपत्ति में इनकी हिस्सेदारी मात्र 1-2 प्रतिशत ही है।

किसी को आर्थिक समस्या का सामना न करना पड़े इसके लिए दो तरीके हैं या तो उसके पास पर्याप्त पैतृक संपत्ति हो या फिर उसका व्यक्तित्व उत्पादक हो यानी उसके पास एक विशिष्ट योग्यता हो जिससे वह धन का अर्जन कर सके जैसे- डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर। लेकिन वास्तविकता यह है कि महिलाओं के पास पैतृक संपत्ति नहीं है क्योंकि 1955 से पहले संपत्ति का स्थानांतरण के केवल 2 नियम थे एक मिताक्षरा तथा दूसरा दायभाग इन नियमों में संपत्ति का हस्थानान्तरण केवल पुत्र को ही होता था। 1955 के बाद हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 बनने के बाद भी उसका सही ढंग से क्रियान्वयन नहीं हो पाया ऐसी स्थिति में समाज में लैंगिक असमानता का होना स्वभाविक ही है। आर्थिक रूप से सशक्त बनने के लिए महिलाओं के पास बचता है दूसरा रास्ता यानी व्यक्तित्व उत्पादक का। व्यक्तित्व उत्पादक के दो आधार हैं एक बिना शिक्षा के और दूसरा शिक्षा के साथ

जो महिलाएं बिना शिक्षा के धन कमाना चाहें, तो उनके पास विकल्प बहुत कम होते हैं और अर्थव्यवस्था में इनकी पूर्ति अपेक्षाकृत ज्यादा है परिणाम स्वरूपजो इनको पारिश्रमिक मिलता है वह जीवन निर्वाह स्तर के बराबर होता है ऐसे में इनकी पूरी आय, जीवन की मूलभूत जरूरतों को पुरी करने में व्यय हो जाती है इसके अलावा महिलाओं के पास सिर्फ एक विकल्प बचता है और वह है, उसका शरीर। उग्रवादी नारीवादी विचारधारा ने भी कहा कि महिलाओं के पास केवल एक ही पूंजी है और वह है उसका शरीर, लेकिन पुरुष (समाज) ऐसे नैतिक नियम बनाता है कि महिलाओं का शरीर भी पुरुषों के कब्जे में चला जाता है जैसे- एक विवाह का नियम, जिसके अंतर्गत औरत का शरीर केवल एक पुरुष की अमानत है और इतना होते ही उसके शरीर की संपत्ति भी उसके हाथ से निकल जाती है। इसीलिए उग्रवादी नारीवाद का कहना है कि महिलाएं अपने शरीर की कीमत समझे और यदि वे सफल होना चाहे तो उसका फायदा उठाएं लेकिन नारीवाद की एक धारा समाजवादी नारीवाद नेइसे खारिज कर दिया।

अब महिलाओं के पास आगे बढ़ने का एक विकल्प बचता है और वह है शिक्षा। महिलाओं के पास अगर शिक्षा है तो वे उन्नति कर सकती हैं। लेकिन शिक्षा में महिलाओं की स्थिति उतनी अच्छी नहीं है वैदिक काल में महिलाओं को बड़ा सम्मान मिलता था, जिसकी पुष्टि इस कथन से हो जाती है- यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमन्ते तत्र देवता उस समय सभा तथा समिति में महिलाएं बैठती थी इसीलिए कहा जाता है कि उस समय समतामूलक समाज था। किन्तु उसी वैदिक काल की ही देन है कि महिलाओं का उपनयन संस्कार नहीं होता था। उपनयन संस्कार का सीधा सा अर्थ शिक्षा प्राप्त करने की योग्यता से है उपनयन संस्कार शूद्र और महिलाओं का नहीं होता था। इस प्रकार भारतीय सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं को शिक्षा के योग्य नहीं माना गया। हजारों वर्षों से चली आ रही इस सामाजिक परंपरा में आज क्या महिलाएं का पुरुषों से बराबरी की उम्मीद की जा सकती है? ऐसा नहीं है कि वर्तमान में महिलाएं शिक्षाके क्षेत्र में नहीं है,बल्कि सवाल महिलाओं की शिक्षा में भागीदारी का है सीबीएसई और यूपी बोर्ड की परीक्षाओं में लड़कियां लड़कों पर भारी पड़ रही हैं। इसका कारण यह नहीं है कि लड़कियां लड़कों की अपेक्षा तेज बुद्धि की हैं बल्कि इसका कारण यह है कि लड़कियां अपने आप को शिक्षा के प्रति समर्पित कर देती हैं। इससे साबित होता है कि महिलाएं शिक्षा में ही नहीं, बल्कि प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने को तैयार हैं। अगर किसी चीज की कमी, है तो वह है अवसर की। लेकिन यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि 10वीं 12वीं के बाद शिक्षा में लड़कियों की भागीदारी कम हो जाती है इसका प्रमुख कारण भारतीय सामाजिक संरचना व अवसर की कमी हैभारत जैसे विकासशील देश में छात्रों को उच्च शिक्षा के लिए घर से दूर जाना पड़ता है क्योंकि देश के कुछ गिने-चुने स्थानों पर ही अच्छे उच्च शिक्षण संस्थान हैं। ऐसे में लड़कियों को घर से दूर भेजना मां-बाप के लिए बहुत ही मुश्किल कार्य होता है। क्यूंकि समाज में नैतिकता की कमी के कारण महिलाएं अपने आप को हर जगह असुरक्षित महसूस करती हैं। इसकी जिम्मेदारी समाज की है और इसे समाज को ही दूर करना होगा।

सामाजिक और सांस्कृतिक आयामः-

महिलाओं की बहुत सारी सामाजिक समस्याएं हैं और इन सभी सामाजिक समस्याओं की मूल जड़ धर्म में है। दुनिया के सारे के सारे धर्म महिला विरोधी हैं। यह बात सत्य है कि मानव पर सबसे अधिक प्रभाव धर्म का ही पड़ता है चूँकि धर्म का प्रभाव मनुष्य पर ज्यादा है और धर्म समतामूलक नहीं है इसीलिए

क्या एक समतामूलक समाज की कल्पना की जा सकती है? डॉ भीमराव अंबेडकर जाति व्यवस्था के विरोधी थे। उन्होंने कहा कि जब तक हिंदू धर्म का पुनर्संगठन नहीं होगा, तब तक जाति व्यवस्था समाप्त नहीं होगी, यही बात महिलाओं पर भी लागू होती है।

हिंदू धर्मः-

हिंदू धर्म दुनिया का पहला धर्म है, जहां पर सती प्रथा का प्रचलन था। औरतों को जिंदा जलाया जाता था। सती प्रथा के पीछे जो तर्क दिया जाता है, कि ऐसा महिलाओं की सुरक्षा के लिए किया जाता है। इसमें महिलाओं के शरीर को नैतिकता के साथ जोड़ दिया जाता है। अगर किसी महिला का बलात्कार हो जाता है, तो इसे दुर्घटना नहीं माना जाता है। इसे एक तरह का पाप माना जाता है। सबसे बड़ी विडंबना यह है कि जिसके साथ दुर्घटना हुई है, उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। उसकी, विवाह जैसी व्यवस्थाओं से वंचित कर दिया जाता है और जो पुरुष यह कुकर्म करता है,उस पर कोई आपत्ति नहीं होती और वह समाज में शान से रहता है। मुखाग्नि एंव पिंडदान जैसी परम्परा हिंदू धर्म के लोग मानते हैं। जिसमें व्यवस्था है कि पिता की मृत्यु के बाद मुखाग्नि एंव पिंडदान पुत्र करेगा, पुत्री नहीं। इस व्यवस्था में महिलाओं की उपेक्षा की जाती है। यही कारण है कि भारतीय हिंदू समाज में पुत्र को पुत्रियों की अपेक्षा अधिक सम्मान दिया जाता है। क्या यह लैंगिक असमानता नहीं है? ये सारी चीजें हिन्दू धर्म देखने को मिलती हैं,जो लैंगिक असमानता को प्रोत्साहित करती हैं।

बौद्ध धर्मः-

बौद्ध धर्म में भी संघ में महिलाओं के प्रवेश पर प्रतिबंध था, हालांकि बाद में प्रवेश दे दिया गया इस पर भी कहा गया कि संघ में अगर महिलाएं ना आती, तो बौद्ध धर्म हजार वर्ष तक चलता किंतु अब यह केवल 500 वर्ष तक ही चल पायेगा।

जैन धर्मः-

जैन धर्म में महिलाओं के मोक्ष के प्रश्न पर मतभेद है।एक ओर जहां श्वेतांबर संप्रदाय स्त्रियों द्वारा मोक्ष प्राप्ति की संभावना को स्वीकार करता है, तो वहीं दूसरी ओर दिगंबर संप्रदाय अस्वीकार करता है दिगंबर संप्रदाय के लोगों का मानना है कि यदि महिलाएं मोक्ष चाहती है, तो उन्हें पुनर्जन्म में पुरुष होना पड़ेगा।

ईसाई धर्मः-

इसाई धर्म की मान्यता है कि ईश्वर ने पहले इंसान (आदम) को बनाया। यह दुनिया का पहला इंसान है आदम का अकेलापन दूर करने के लिए, ईव को बनाया। इसका निर्माण आदम के पैर की हड्डी से हुआ। ईश्वर ने उन्हें वर्जित फल चखने को मना किया था। वर्जित फल की व्याख्या अलग-अलग है एक व्याख्या कहती है किज्ञानमत प्राप्त करना तो दूसरी व्याख्या कहती है कि शारीरिक संबंध मत बनाना। ईव के उकसाने पर आदम ने वर्जित फल चखा जिसके परिणाम स्वरूप ईश्वर ने उन्हें सजा भुगतने के लिए पृथ्वी पर भेज दिया, तब से लेकर आज तक हम उस दंड की सजा भुगत रहे हैं।

इस्लाम धर्मः-

इस्लाम धर्म भी महिलाओं की स्वतंत्रता का विरोध करता है। पर्दा प्रथा, बालिका शिक्षा पर प्रतिबंध, हलाला, तीन तलाक आदि से महिलाओं की स्थिति दयनीय हो गई है। इस्लाम की धार्मिक पुस्तक हदीस के अनुसार- सारी औरतें हौवा की बेटी हैं। हौवा यानी ईव इसलिए इन पर विश्वास नहीं किया जा सकता है।

आज भी दुनिया की सबसे बड़ी ताकत धर्म है। जो मनुष्य को सर्वाधिक प्रभावित करता है और धर्म ही नारी विरोधी है तो महिलाओं की समस्या का समाधान करना कितना कठिन होगा। इसका अंदाजा लगाया जा सकता है।

संस्कृतिः-

लैंगिक असमानता का कारण धर्म ही नहीं संस्कृति भी है। जिसकी शुरुआत परिवार से होती है। बेटे के जन्मदिन के अवसर पर गाना बजाना होता है, वहीँ बेटी के जन्म पर ऐसा नहीं होता है। बेटे बेटियों में खान-पान, कपड़ा पहनने, घूमने-टहलने एवं शिक्षा आदि में भेदभाव की झलक पारिवारिक स्तर पर देखने को मिलती है। जो बेटियों में एक नकारात्मक विचार को जन्म देती है।

भाषाः-

भाषा के तौर पर भी लैंगिक असमानता देखी जा सकती है। भाषा में जितने भी सत्तासूचक शब्द हैं, वे अपनी संरचना में पुलिंग है जैसे राष्ट्रपति, सेनापति आदि। राष्ट्रपति पद को राष्ट्र प्रमुख शब्द से भी संबोधित किया जा सकता था, किन्तु ऐसा नहीं किया गया यह पुरुषवादी सोच का परिणाम ही कहा जा सकता है। लड़कों को शादी के पहले 'श्री' और शादी के बाद भी 'श्री' जबकि लड़कियों को शादी के पहले कुमारी और शादी के बाद 'श्रीमती'। शादी के बाद स्त्रियों के गले में मंगलसूत्र डाल दिया जाता है, पुरुषों को क्यों नहीं? इस प्रकार महिलाओं से ना केवल समाज में भेदभाव किया जाता है बल्कि उनके साथ ऐसा करके शारीरिक एवं मानसिक रूप से कमजोर बनाया जाता है।

राजनीतिक आयामः-

महिलाओं की व्यथा पर राम मनोहर लोहिया ने कहा था कि- "शक्ति प्रदर्शन करने से बढ़ती है और दबाने से दबती है महिलाओं को सदियों से इतना दबाया गया है कि आज वें खुद को असहाय समझने लगी हैं।"राजनीतिक रूप से महिलाओं की स्थिति प्राचीन काल से ही खराब रही है। प्राचीन काल में सत्ता के दो प्रारूप मिलते हैं- राजतन्त्र एवं धर्म तंत्र।

राजतंत्रः-

राजतंत्र का अर्थ है, लठैती का शासन। जिसकी लाठी उसकी भैंस। जो शक्तिशाली है वह राजा है। वास्तविकता यही है कि इस मामले में महिलाएं पुरुषों से पीछे हैं क्योंकि प्रकृति ने महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा कम मसल पावर दिया है। यह स्वीकार करने वाली बात है कि राजतंत्र में पुरुष महिलाओं पर हावी होगा फिर कूटनीतिक मामले में सामान्यतः माना जाता है कि महिलाओं में कूटनीतिक क्षमता, पुरुषों की तुलना में कम है, जो राजतंत्र के लिए जरूरी है।

धर्म तंत्रः-धर्म प्रारंभ से ही पुरुषों के कब्जे में रहा है। धर्म के सारे पद पुरुषों के लिए आरक्षित रहे हैं। भारत के बहुत सारे मंदिरों में तो महिलाओं के प्रवेश पर भी प्रतिबंध है।

लोकतंत्रः-

वर्तमान में तो हम शासन की ऐसी व्यवस्था में जी रहे हैं, जो दुनिया के सभी तंत्रों में श्रेष्ठ माना जाता है, जिसे लोकतंत्र कहते हैं। इस लोकतंत्र में जीते हुए 7 दशक बीत गए, फिर भी आधी-आबादी को अधिकार अभी तक नहीं मिल पाया, जो वास्तव में उनका अधिकार है। अच्छा लोकतंत्र वही है, जो जिस अनुपात में है, उसी अनुपात में सत्ता में उसकी भागीदारी भी हो। यानी महिलाओं का सत्ता में 50% की भागीदारी होनी चाहिए। किंतु दुर्भाग्य से इनकी संख्या लोकसभा एवं राज्यसभा में 12% से ज्यादा नहीं हो सकी। आज 16वीं लोकसभा में महिलाओं की संख्या 65 है। संसद में इनकी संख्या कम होने की वजह से ही महिला आरक्षण बिल आज तक संसद में पारित नहीं हो सका। जिसमें महिलाओं के लिए 33% आरक्षण की व्यवस्था है,हालांकि महिलाओं के लिए आरक्षण स्थानीय निकायों पर लागू हो गया है।

शिक्षाः-

शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख हथियार माना जाता है यह बात भी सही है कि सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं ने शिक्षा के द्वारा एक नए मुकाम को हासिल किया है वर्तमान में महिलाओं की प्रस्थिति के निर्धारण में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है लेकिन लैंगिक भेदभाव के संदर्भ में शिक्षा की भूमिका भी संदिग्ध नजर आती है, क्योंकि पाठ्य पुस्तकों एवं पाठ्यक्रम का निर्माण अधिकांशतः पुरुष वर्ग द्वारा ही किया जाता है साथ ही साथ उनकी विषय वस्तु पितृसत्तात्मक व्यवस्था, संस्कृति, परंपरा एवं धर्म का समर्थन करती नजर आती है।नारी शिक्षा का मूल उद्देश्य केवल उन्हें विकास के अवसर देना या उन्हें रचनात्मक अभिव्यक्ति की सुविधा देने तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो लिंग के आधार पर सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में होने वाले भेदभाव का दृढ़ता पूर्वक सामना करते हुए, इसे दूर करने का प्रयास कर सके और साथ ही साथ अन्य महिलाओं को भी इसके प्रति जागरूक कर सके।

समस्या समाधानः-

- महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाना।
- समाज में ऐसा वातावरण तैयार करना जहां महिलाएं अपने आप को स्वतंत्र एवं सुरक्षित महसूस कर सकें।
- राजनैतिक रूप से सशक्त बनाना।
- संपत्ति में बेटे के साथ-साथ बेटी की भी हिस्सेदारी हो।
- महिलाओं के घरेलू कार्यों को उत्पादक कार्यों में शामिल किया जाए।
- सरकारी नीतियों में महिलाओं को प्राथमिकता दी जाए।

संदर्भः-

1. जैन, तृप्तिः नारीवाद के देशज आधार, संस्कृति, आत्मपरकता तथा शक्ति, रावत पब्लिकेशंस, जवाहर नगर, जयपुर 2014 पृष्ठ संख्या 1-14, 68-69
2. आर्य, साधना तथा मेनन, निवेदिता एंव लोकनीता, जिनीः नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दे, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय 2010 पृष्ठ संख्या 1-09
3. कुशवाहा, मधुः जेंडर और शिक्षा, गंगा सरन एंड ग्रैंडसंस, रथयात्रा, वाराणसी 2014 पृष्ठ संख्या 29
4. जोशी, गोपाः भारत में स्त्री असमानता, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय 2011 पृष्ठ संख्या 1-09, 23-24, 61
5. पाण्डेय, डॉ अनुराधाः महिला सशक्तिकरण, इशिका पब्लिशिंग हाउस जयपुर 2010 पृष्ठ संख्या 30-32
6. सिंह, बीएन, सिंह, जन्मेजय (2013) नारीवाद, रावत पब्लिकेशन जयपुर पृष्ठ संख्या 261-263
7. परमार, शुभ्रा 2015ः नारीवादी सिद्धांत और व्यवहार, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड हैदराबाद पृष्ठ संख्या 49
8. सुचिन्मयी, रचना 2016ः समसामयिक राजनितिक मुद्दे, रावत पब्लिकेशन जयपुर पृष्ठ संख्या 162

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में धर्मशास्त्रीय तत्त्वों की विवेचना

डॉ० भैरवी

अतिथि सहायक प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, बी०आर०ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार

महाकवि कालिदास को विद्वत्समुदाय साक्षात् भगवती सरस्वती का अवतार मानता है। परिणामस्वरूप ज्ञान क्षेत्र का ऐसा कोई विषय नहीं है, जो कालिदासीय साहित्य में उपलब्ध न हो। आद्य महाकवि कालिदास को परम्परागत विद्वान् ईसा की प्रथम शताब्दी का प्रमाणित करते हैं और उन्हें राजा विक्रमादित्य का सभासद एवं नवरत्नों में एक स्वीकार करते हैं।

यद्यपि 'कालिदासत्रयी किमु' उक्ति के अनुसार तीन कालिदासों की चर्चा की जाती है, परंतु लोकविश्रुत कालिदास ही प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने दो महाकाव्य- कुमारसम्भव तथा रघुवंश, तीन नाटक 'मालविकाग्निमित्रम्', 'विक्रमोर्वशीयाम्' तथा 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' एवं दो खण्डकाव्यों 'ऋतुसंहार' एवं 'मेघदूत' की रचना कर संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में अमरता प्राप्त की।

सनातन वैदिक धर्म का पूर्णतः पालक राजा दुष्यंत शकुन्तला के प्रति अपने आकर्षण को धर्मशास्त्र सम्मत प्रमाणित किये बिना पूर्ण संतुष्टि प्राप्त नहीं कर पा रहा है। इसीलिए वह शकुन्तला संबंधी अन्वेषण जारी रखता है, यद्यपि उसका मन आश्वस्त है तथापि वह शकुन्तला की सखियों की वास्तविकता का पता लगाने तक निश्चय नहीं कर पाता अर्थात् सम्यक् संकल्पजः कामः की स्थिति के निर्णय तक किसी से भी चर्चा नहीं करता और आत्मसंगत कह उठता है -

भव हृदय साभिलाषं सम्प्रति सन्देहनिर्णयो जातः।।
आशागंसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम्।। (अभि. शाकु. 1/27)

जहाँ तक परिभाषा का प्रश्न है, ऐसे अनेक शब्द हैं, जिनकी परिभाषाएं विभिन्न पुराणों में प्राप्त है, जैसे 'कुलपति' शब्द है। महर्षि कण्व को कालिदास ने 'कुलपति' विशेषण के साथ ससम्मान किया है। जैसे-

वैखानसः-एष खलु कण्वस्य कुलपतेरनुमालिनीतीरमाश्रमो दृश्यते। न चेदन्यकार्यातिपातः, प्रविश्य प्रतिगृह्यतामातिथेयः सत्कारः। अपि च -

रम्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्नाः क्रियाः समवलोक्य।
ज्ञारस्यसि कियद् भुजो मे रक्षति मौर्वीकिणांक इति।। (अभि.शा. 1/13)

इस प्रसंग में तीन शब्द धर्मशास्त्र सम्मत है - (1) कुलपति (2) अतिथि सत्कार तथा (3) क्रिया। इनका विवेच्य है -

(1) कुलपति -

आचार्यो बहुशिष्याणां मुनीनामग्रणीस्तु यः।
व्रतयज्ञादिकर्माढ्य स वै कुलपतिः स्मृतः।

(2) अतिथि- जब राजा आश्रम में जाता है तो प्रियंवदा व अनुसूया शकुन्तला को कहती है-

'अनुसूया - इदानीमतिथिविशेषलाभेन हला शकुन्तले। गच्छोटजम्। फलमिश्रमर्धमुपहर। इदं पादोदकं भविष्यति।'

राजा - भवतीनां सूनृतयैव गिरा कृतमातिथ्यम्।

प्रियवंदा - तेन ह्यस्यां प्रच्छायशीतलायां सप्तपर्णवेदिकायां मुहूर्तमुपविश्य परिश्रमविनोदं करोत्वार्यः।

(अभिज्ञान शाकुन्तलम् का प्रथम अंक)

इससे पूर्व भी वैखानस ने राजा से आतिथेय सत्कार ग्रहण करने का आग्रह किया है और कहा है- 'इदानीमेव दुहितरं शकुन्तलामतिथिसत्काराय नियुज्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थ गतः।'

(3) क्रिया - यज्ञानुष्ठानादि क्रियायें। ये क्रियायें नौ प्रकार की कही गई हैं-

आरम्भो निष्कृतिः शिक्षा पूजनं सम्प्रधारणाम्।
उपायः कर्मचेष्टा व चिकित्सा नव क्रियाः। इत्यादि (भाव प्रकाश)

अतिथि पूजन न करने पर ही शकुन्तला को महर्षि दुर्वासा के शाप का शिकार बनना पड़ा था। उन्होंने स्वयं शाप देते समय जो संबोधन किया है- 'आः अतिथिपरिभाविनि' वह इसी का सूचक है।

'राजधर्म' भी धर्मशास्त्रीय विषय है। राजा दुष्यंत राजधर्म के विशिष्ट ज्ञाता के रूप में चित्रित किये गये हैं। राजा के रथ को पहचान कर वैखानस आदि ऋषिकुमार उसे आश्रममृग की हत्या से विरत होने की पुकार करते हैं। भो भो राजन्, आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः और वह भी इस वचन को सुनकर राजा होते हुए भी नियमों का पालन करता है –

तत साधुकृतसन्धानं प्रतिसंहार सायकम्।
आर्त्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि।। (अभिज्ञान शाकुन्तलम् 1/11)

चक्रवर्ती सम्राट होते हुए भी दुष्यंत राजा योग्य व्यवहार से सुपरिचित है। आश्रम प्रवेश के समय वह राजकीय वेश से आश्रम में प्रविष्ट नहीं होता। वह सूत को कहता है –

'सूत! विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनांनिनाम्। इदं तावत् गृह्यताम्। इति सूतस्य आभरणानि धनुश्च चोपनीयार्पयति।'

वह शकुन्तला की सखियों को अपना परिचय देते समय भी विनम्रता का परिचय देता है। स्वयं राजा घोषित न कर राजपुरुष बतलाता है – 'भवति यः पौरवेण राजा धर्माधिकारे नियुक्तः सोऽहमविघ्नक्रियोपलम्भाय धर्मारण्यमिदमायातः।'

'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का पञ्चम अंक तो राजधर्म के विशेषताओं से परिपूर्ण हैं। शिष्टाचार की व्याख्या धर्मशास्त्र का विषय है। धार्मिक कार्यों व अनुष्ठानों के प्रति वह सदा सजग है तथा उनका पालन भी प्राथमिकता से सम्पन्न करता है। इस बात को उसका कञ्चुकी भी जानता है। साथ ही वह लोकतंत्र का परिपालक है, क्योंकि षष्ठांश वृत्ति का उपभोक्ता है। कञ्चुकी कहता है – 'कामं धर्मकार्यमनिपात्यं देवस्य। तथापीदानीमेव धर्मासनाद्रुत्थिताय पुनरूपरोधकारि कण्वशिष्यागमनमस्मै नोत्सहे निवेदितुम्। अथवाऽविश्रमोऽयं लोकतंत्राधिकारः। कुतः –

भानुः सकृद्युक्ततुरड. एव रात्रिन्दिवं गंधवहः प्रयाति।
शेष सदैवाहितभूमिभारः षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः।। (अभि.शा. 5/4)

कञ्चुकी से कण्व शिष्यों के शुभागमन को सुनकर वह शिष्टाचार वश जो आज्ञा देता है, वह राजधर्म के सर्वथा अनुकूल है–

राजा – तेन हि मद्वचनाद् विज्ञाप्यतामुपाध्यायः सोमरातः। अमूनाश्रमवासिनः श्रौतेन विधिना सत्कृत्य स्वयमेव प्रवेशयितुमर्हतीति। अहमप्यत्र तपस्विदर्शनोचिते प्रदेशे स्थितः प्रतिपालयामि।

वह अग्निशरण शला (यज्ञशाला) में उनसे भेंट करता है।

राज्याभिषेकादिगुणयुक्तस्य गृहस्थस्य धर्मान् आह-महर्षिः याज्ञवल्क्यः –

महोत्साहः स्थूललक्षः कृतज्ञो, वृद्धसेवकः।
विनीतः सत्वसंपन्नः कुलीकः सत्यावाक शुचिः।।
अदीर्घसूत्रः स्मृतिमानक्षुद्रोऽपरूषस्तथा।
धार्मिकोऽव्यसनश्चैव प्राज्ञः शूरो रहस्यवित्।
स्वरन्ध्रगोप्ताऽऽन्वीक्षिक्यां दण्डनीत्यां तथैव च।
विनीतस्त्वथ वार्तायां त्रय्यां चैव नराधिपः।। (309-311)

एक राजा में जो गुण अपेक्षित हैं, वे सभी गुण राजा दुष्यंत में विद्यमान हैं।

'राजधर्म' की चर्चा करते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं –

ब्राह्मणेषु क्षमी स्निग्धेष्वजिह्मः क्रोधनोऽरिषु।
स्याद् राजा भृत्यवर्गेषु प्रजासु च यथा पिता।। (334)
पुण्यात् षड्भागमादत्ते न्यायेन परियालयन्।
सर्वदानाधिकं यस्मात् प्रजानां परिपालनम्।। (135)
प्रजापीडनसंतापत् समुद्भूतों हुताशनः।
राज्ञः कुलं श्रियं प्राणांश्चादग्ध्वा न निवर्तते।। (342)

राजा दुष्यंत महर्षि कण्व के सन्देशहारी शिष्यों के आगमन को सुनकर चिंतित हो उठता है तथा अपने प्रजापालन धर्म में वाली आशांकाओं से कह उठता है –

वेत्रवति! किमुद्दिश्य भगवता काश्यपेन मत्सकाशमृषयः प्रेषिताः स्युः?
किं तावद् व्रतिनामुपोढतपसां विघ्नैस्तपो दूषितं
धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम्।
आहोस्वित् प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरूधा-
मित्यारूढबहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः।। (अभि.शा. 5/9)

राजा दुष्यंत तपस्वियों के आगमन पर शिष्टाचारवश सिंहासन पर नहीं है। पुरोहित सोमरात कहता है – 'भो भो! तपस्विनः, असावश्रभवान् वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनो प्रतिपालयति। पश्चतैनम्।'

राजा स्वाभाविक मानव स्वभाव के अनुकूल उन तपस्विजनों के साथ आई हुई शकुन्तला को देखकर कह तो उठता है –

कास्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या।
मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्।। (अभिज्ञान शाकुन्लतम् 5/13)

परंतु फिर यह भी कहता है –

'अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम्।'

यद्यपि राजा दुष्यंत तथा शकुन्तला का संबंध 'गान्धर्व विविध' से सम्पन्न हुआ था, जो धर्म शास्त्रानुकूल था, तथापि गौतमी का यह कथन विचारणीय है –

नापेक्षितो गुरुजनोऽनया न खलु पृष्टश्क्ष बन्धुजनः।
एकैकमेव च चरिते भणामि किमेकमेक्सय।। (अभिज्ञान शाकुल्नतम् 5/16)

शकुन्तला चाहते हुए भी जब राजा दुष्यंत को विनयपूर्ण व्यवहार के लिए कहती है–

शकु – 'पौरव, रक्षाविनयम्। मदनसंतप्तापि न खल्वात्मनः प्रभावामि।'

राजा – भीरू अलं गुरूजनभयेन। व दृष्टा ते विदितधर्मा तत्रभवानत्र तत्र दोषं ग्रहीष्यति कुलपतिः। अपि च –

गान्धर्वेण विवाहेन बह्वयो राजर्षिकन्यकाः।
श्रूयन्ते परिणीतास्ता पितभिश्चाभिनन्दिताः।। (अभिज्ञान शाकुन्तलम् 3/20)

शापवश विस्मृत राजा को शिष्य शाङ्गरव जब धर्मशास्त्रीय व्यवस्था सुनाता है, तो वह किंकर्तव्यविमूढावस्था में उपन्यस्त प्रकरण को ही नहीं समझ पाता –

शाङ्गरवः – कथमिदं नाम! भवन्त एव सुतरां लोकवृत्तान्तनिष्णाताः।'

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां,
जनोऽन्यथा भर्तुमतीं विशंड़्क्ते।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते
प्रियाप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः।। (अभिज्ञान शाकुन्तलम् 5/17)

लोक में धर्माचरण में तीन वस्तुओं की ही परम आवश्यकता प्रतिपादित की गई है। वे तीन हैं – श्रद्धा, वित्त तथा विधि। वस्तुतः यही शकुन्तला की रचना का कवि-अभीष्ट संदेश है, जिसमें शकुन्तला को श्रद्धा, सर्वदमन भरत को वित्त तथा राजा दुष्यंत को विधि रूप में प्रस्तुत किया गया है। नाटक के अवसान में महर्षि मारीच यही सूचित करते हैं –

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी सदपत्यमिद भवान्।
श्रद्ध वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत् समागतम्।। (अभिज्ञान शाकुन्तलम् 7/29)

संस्कृतसाहित्य में समुपलब्ध प्रकृति-तत्त्वों का विवरणः एक समीक्षा

निधि कुमारी

शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

विश्व वाङ्मय में संस्कृत साहित्य अति प्राचीन एवं समृद्ध साहित्य है, इस विषय में विद्वानों में किसी प्रकार का मतभेद नहीं। ब्रह्माण्ड के अतिरिक्त सृष्टि में सहायक प्रकृति की सत्ता साहित्य में भी व्याप्त है, शक्ति और प्रकृति सृष्टि में सर्वोपरि है, पृथ्वी जब शक्ति युक्त रहती है, तभी वह स्थिर रहकर सबको धारण कर सकती है। आदि शक्ति-प्रकृति से तात्पर्य है 'प्र' अर्थात् 'प्रकृष्ट' और 'कृति' अर्थात् 'सृष्टि' या 'सरितः' जो सृष्टि की रचना में सहायक हो, वह प्रकृति है। प्राचीनतम साहित्य संस्कृत में प्रकृति-चित्रण की पद्धति परंपरागत है। प्रकृति का मनोहारी चित्रण वैदिक संस्कृत साहित्य से लेकर लौकिक संस्कृत-साहित्य एवं अन्य साहित्यों में पर्याप्त मिलता है। प्रकृति का सहवास अत्यंत आनंददायी माना गया है और सच तो यह है कि प्रकृति में ही प्राणि के सुकुमार मनोभावों तथा कृतियों के परितोष के लिए समुचित सामग्री भरी है। सचमुच मानव को कला की प्रथम प्रेरणा प्रकृति से मिली है तथा मानव ने उसमें अपनी संवेदना जागृत की और अंततः आनंद का अनुभव किया। तत्पश्चात् उसकी कल्पना को शक्ति मिली और आदि कवि की वाणी से निःसृत होकर काव्य का अंतिम स्वरूप हमारे सामने आया, फिर तो शनैः-शनैः काव्य। जीवन का अंग बन गया और प्रकृति सहचरी। प्रकृति-भावना का सरस चित्रण भारतीय लेखनी से सबसे पहले सप्तसिन्धु प्रदेश के सरस्वती तट पर स्थित उन यज्ञ-धूम सुरभित ऋषि-कुंजों, आश्रमों और अरण्यों में फूटा था, जहां प्रकृति किसी अनादि सत्ता का मधुर संकेत करती हुई शांत भाव से फल-फूल रही थी। उस रहस्य सुमधुर वातावरण ने ऋषि-हृदय में एक पावन प्रकृति-प्रेम की मधु-धारा का अखंड स्रोत! तुमसे सौन्दर्य की धाराएं निकल कर वैसे ही फैलती है, जैसे वृक्ष से उसकी शाखाएं तुम्हारा भक्त, धन, शक्ति, दैवी वृष्टि और स्तुल्य ज्योति को शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है।[1]

जहां तक संस्कृत साहित्य में प्रकृति-चित्रण का सवाल है, तो निस्संदेह प्रकृति-चित्रण संस्कृत साहित्य का प्रधान अंग है। सर्वप्रथम भारतीय धर्म के सर्वस्व सभ्यता एवं संस्कृति का सागर तथा ब्रह्मा के मुख से निकली (निःसृत) प्रथम वाणी वैदिक संहिताओं में प्रकृति की मनोरम झांकी मिलती है। प्राकृतिक शक्तियां ही वैदिक आर्यों के अराध्य देवों और देवियों के रूप में प्रस्तुत हुई हैं। वेदों में न केवल आध्यात्मिक, धार्मिकता एवं सांस्कृतिक निधि ही सुरक्षित है, बल्कि प्राकृतिक परंपरा और काव्य-सौंदर्य अद्भुत तथा मनोहारी है। ऋग्वेद के अनेक स्थलों में, जैसे अग्नि सूक्त, सूर्य सूक्त, सवितृ सूक्त, वरूण सूक्त, हिरण्यगर्भ सूक्त, यम-यमी संवाद इत्यादि में प्रकृति की अद्भुत छटा बिखेरी गई है। उषस् सूक्त तो मानों प्रकृति से साक्षात् दर्शन कराता हो। प्रातःकाल की देवी, कान्तमती, तेजोदीप्त एवं अनुपम आभा से मण्डित उषा की प्राकृतिक विशेषताओं का वर्णन यथार्थ के धरातल पर ऋषियों ने आह्लाद भरे स्वरों में किया है।[2]

उषा सूक्त के अनुशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रभातकालीन उषा की लाली को देखकर ऋषियों के अनुराग भरे भावों और मानवीय संवेदना के स्वर कल्पना के पंख पसारकर परवर्ती साहित्य की गीतिकाव्यों की पृष्ठभूमि का निर्माण करने लगे थे। वस्तुतः प्रभातकालीन उषा के प्रति आर्यों के अनुराम प्रकृति-प्रेम का प्रतीक, काव्यात्मक एवं कलात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है। ऐसा लगता है कि ऋषिगण नवोदिता उषा को देखकर प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य पर मंत्र-मुग्ध हो जाते थे तथा अपने में नई चेतना और नई स्फुर्ति का अनुभव करने लगते थे।[3] वस्तुतः उषा सूर्य के मार्ग अनावरण करती हुई क्षितिज पर उदित होती है। वह रात्रि की बड़ी बहिन है, फलतः उषा को आते ही उसकी छोटी बहिन उसके लिए स्थान रिक्त कर देती है; ताकि वह अपने प्रेमी सूर्य के साथ अनंत आकाश में स्वच्छन्दता से विचरण कर सके।[4] नर्तकी के समान सजी हुई उषा अपने रूप को प्रकट करती है। जिस प्रकार गायें दुहने के समय अपने स्तन प्रकट करती है, उसी प्रकार उषा भी अपना वक्ष प्रकट करती है। जिस प्रकार गायें शीघ्र ही व्रज में चली जाती है, उसी प्रकार उषा पूर्व दिशा में जाकर सारे विश्व को ज्योति से आलोकित करती है।[5]

ऐसा लगता है इन्द्र के भय से पर्वत स्थिर हो गए हैं। द्युलोक और पृथ्वीलोक इसके भय से कांपते हैं।[6] वरूण सूक्त देवता आकाश मार्ग से उड़ने वाले पक्षियों के स्थान को या मार्ग को जानते हैं और समुद्र में अधिष्ठित जो वरूण देवता समुद्र मार्ग से जाने वाली नाव के मार्ग को जानता है। वह हमें बंधन मुक्त करें।[7] सविता सूक्त भी प्रकृति-चित्रण का पर्याय है। सुंदर गतिवाली सूर्य की रश्मियां अर्थात् सविता सुंदर गति वाली सूर्य की रश्मियों ने अंतरिक्ष आदि

तीनों लोकों को विशेष रूप से प्रकाशित किया है। वे रश्मियां गंभीर कंपन वाली अर्थात् शीघ्रगामिनी, प्राणों को देने वाली और अच्छी प्रकार से मार्ग पर ले जाने लगी है।[8] हिरण्यगर्भ सूक्त में भी प्रकृति पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है–ये बर्फीले पर्वत जिस हिरण्यगर्भ प्रजापति की महिमा को कहते हैं, नदियां सहित समुद्र जिसकी महिमा को कहते हैं। ये प्रधान दिशाएं और बाहू के समान कोण दिशाएं और बाहू के समान कोण दिशाएं, जिसकी महिमा कहती हैं।[9] ये भी प्रकृति का मनोरम दृश्य है।

भारतीय संस्कृति के प्राण तत्त्व संगीत का उद्‌गम स्थल सामवेद प्रकृति-चित्रण का अच्छा उदाहरण है। सामवेद की कुछ ऋचाओं यथा पवमान (सोम विषयक मंत्र), अरण्यक पर्व तथा साम के गायनों में सात सुरों का प्रयोग संगीत का मूल यहीं उपलब्ध होता है। इस उद्‌दाम संगीत एवं प्रकृति-चित्रण की इतनी उन्नति, भारतीय सभ्यता के उदात्त विकास की सूचना देती है। यजुर्वेद के यज्ञानुष्ठान तो प्रकृति के आंचल पर ही संपन्न होता है। अथर्ववेद में विवाह विषयक चौदहवें कांड, श्राद्ध विषयक आठारहवें कांड तथा सोमयाग में बीसवें कांड भी प्रकृति से संबद्ध है। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि वैदिक संहिता के इन्हीं प्राकृतिक दृश्यों को देखकर आर्यों के हृदय में जो कल्पना जगी, वही देवता के रूप में वर्णित की गई है। इस प्रकार देवता प्राकृतिक दृश्यों के ही प्रतिनिधि हैं, परंतु इतना ही नहीं, वैदिक ऋषियों के भिन्न आकार धारण करने वाले इस जगत् में सर्वत्र व्याप्त एक प्रकृति सत्ता का पता बहुत पहले लगाया था। ब्राह्मण ग्रंथों के अलावा उपनिषदों में, जिसे महर्षियों ने अपना प्रतिभा चक्षु से आध्यात्मिक तत्वों का साक्षात्कार किया था, में भी प्राकृतिक दृश्य दिखलाए पड़ते हैं। उपनिषद् वास्तव में वह आध्यात्मिक मानसरोवर है, जिससे भिन्न-भिन्न ज्ञान सरिताएं निकलकर इस पुण्यभूमि आर्यावर्त में मनुष्यमात्र के सांसारिक अभ्युदय तथा पारलौकिक कल्याण के लिए प्रवाहित होती रही है।[10] संस्कृत साहित्य का गौरव ग्रंथ पुराण को भारतीय मनीषियों ने पंचम वेद की संज्ञा दी, जिसमें पंडित बलदेव उपाध्याय पं॰ गिरिधर शर्मा शामिल हैं। विश्व कोष पुराण में प्राचीन भारत का ज्ञान और विज्ञान, पशु तथा पक्षी–विज्ञान, वनस्पति तथा आयुर्वेद सब एकत्र कर भर दिया गया है। मत्स्यपुराण, भागवत पुराण, वायु पुराण तथा अग्निपुराण में अत्यधिक स्थानों पर प्रकृति–चित्रण हुआ है। जिस प्रकार न सूखने वाले तालाब से हजारों क्षुद्र नदियां निकलती है, उसी प्रकार सत्य के भंडार भगवान् से असंख्य अवतार निकलते हैं।[11] सच ही कहा गया है, जिस प्रकार सुंदरी भार्या अन्धे पति को अपने रूप-लावण्य से कोई आनंद नहीं दे सकती। माया से युक्त मायावी ब्राह्मण को वेद भी पाप से उद्धार नहीं कर सकते, ठीक उसी प्रकार संस्कृत साहित्य के अध्ययन के अभाव में मनोरम प्रकृति से साक्षात् नहीं हो सकता और इसी प्रकृति–नीति और स्मृतियों के अनुशीलन से प्राकृतिक सौंदर्य का दर्शन संभव है। वैदिक संविधान मनुस्मृति में महर्षि मनु ने कुश, अश्मन्तक, बल्वज (बंबई नाम की घास), मेखला, कपास, पलाश, सूत, वट, खैरका, पीलू या गूलर का दंड, वनादि का वर्णन कर प्राकृतिक दृश्य को दर्शाया है।[12]

सर्वव्यापक विभु ब्रह्म के रूप में उपस्थित, अक्षय और अनंत ज्ञान राशियों से परिपूर्ण, धार्मिक धाराओं से युक्त, मानव हृदय तथा मस्तिष्क को सदा आप्यायित करने वाली समस्त काव्यों की जननी आदि महाकाव्य 'रामायण' आज भारतीयों के लिए नहीं, बल्कि समग्र संसार के लिए साहित्य-सुधा की वर्षा करने वाली है। आदि महाकवि बाल्मीकि का यह महाकाव्य पृथ्वी-तल को विदीर्ण कर उगने वाले विराट वट-वृक्ष के समान है, जो अपनी प्राकृतिक शीतल छाया से संसार के समस्त मानव को आश्रय देता हुआ प्रकृति की विशिष्ट विभूति के समान अपना मस्तक ऊपर उठाये हुए खड़ा है। प्रकृति की हृदय-स्थली रामायण की शुरूआत प्रकृति से और अंत भी प्रकृति से ही होता है। तमस-हारिणी तमसा कलकल करती हुई बह रही थी, उसका पावन तट वृक्षों की स्निग्ध छाया से शीतल था। तीर्थ में न तो पङ्क की तरह चिपका था और न शैवाल दुष्टजनों की तरह चित्तवृत्ति के समान उसे कलंकित कर रहा था।

पक्षियां कलख कर रहे थे; स्वच्छ जल-थल पर पड़ी चंचल किरणें चमक रही थीं। महर्षि बाल्मीकि के हृदय को इस दृश्य ने लुभा लिया। उन्होंने स्नान कर, वल्कल पहन इस प्रकार शांत वन में भ्रमण करना शुरू किया कि कामातुर क्रौंची के करूण स्वर ने उनकी दयादृष्टि को अपनी ओर खींचा। उनके सामने कौंच का मृत कलेवर खून से लथपथ हो रहा था।

इस दृश्य को देखकर ऋषि के कोमल चित्र में नैसर्गिकी करूणा का स्रोत प्रवाहित होने लगा-सुप्त करूणा इस दृश्य से बलात् जाग उठी। अकस्मात् उनके मुख से शोकात्मक श्लोक निकल पड़ा।[13] यहां तक की सीता राम और लक्ष्मण ने जीवन का चौदह वर्ष प्रकृति के आंगण में ही व्यतीत किया। रामायण में अलंकृत भाषा में प्रकृतिवर्णन अत्यंत मनोहारि है। श्यामा, कमलनयनी, मदुभाषिणी सीता निश्चय ही वसंत आने पर प्राण त्याग देगी। पद्मकेसर से मिश्रित और वृक्षों से निकला मनोहर वायु सीता के निःश्वास के समान बहता है। हेमंत में वृक्षों से पुष्प निकल रहे हैं जैसे वसंत संघर्ष से ये खिले है।

मरूत का वर्णन भी द्रष्टव्य है-यह वायु पतित, पतमान और पाइप पर लटके हुए पुष्पों से मानो नाचता या खेलता हुआ, वृक्षों की शाखाओं को कम्पायमान करता हुआ उदीयमान भ्रमरों से अपना गायन करा रहा है। मत्त कोकिलध्वनि से मानों वृक्षों को नचाता हुआ वायु पर्वत कन्दरा से निकल कर गाना गा रहा है।[14]

प्राचीन संस्कृति के धरोहर, भारतीय मनीषा की देन, विश्व साहित्य की सबसे पृथुल रचना, उपजीव्य महाकाव्य तथा जातीय इतिहास ''महाभारत'' के कुछ पर्वों में प्रकृति-चित्रण देखे जा सकते हैं। ठीक ही कहा गया है, जैसे दही में मक्खन, मनुष्यों में ब्राह्मण, वेदों में आरण्यक, औषधि में अमृत, जलाशयों में समुद्र और चतुष्पदों में गौ श्रेष्ठ है; उसी प्रकार समस्त इतिहासों में 'महाभारत' श्रेष्ठ है। महाभारत का रचयिता अपने-अपने युग की समग्र साहित्यिक और सांस्कृतिक निधि को अपनी कला के माध्यम से एक सूत्र में उपनिबद्ध करने में सफल हुआ है।

संदर्भः

1. त्वद्विश्वा भुभग सौभगान्यग्ने वियन्ति वियन्ति वनिनों न वयाः।
   श्रुष्टी रयिर्वाजो वृततूयो दिवो वृष्टिरीरीड्यो रीतिरपाम।। ऋग्वेद-6/13/1
2. ''एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसना समाना पुरस्तात्।''
3. ''ताः प्रत्नवन्ना व्यसीर्ननमस्ते खदुच्छन्तु सुदिना उषासः।''
4. ''व्युच्छन्ती रश्मिमिः सूर्यस्याञ्जयङ्क्ते सम् नागाइव व्राः''
5. अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्षं उ स्रेव वर्जहम्। ज्योतिविश्वस्यै भुवनाय कृष्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः।।
6. ''अस्यदु भिंया गिरयश्च हल्हा; द्यावां च भूमा जनुषस्तुजेते।।'' (ऋग्वेद 1.164.14)
7. ''वेदा जो वीना पदंमन्तरिक्षेण पतंताम् वेदनाव समुद्रियः।।'' (ऋग्वेद 1.24.7)
8. The bird has surveyed the atmospheric regions, the devine, sprit of deep inspiralion, of good guidance. (Mac donell History of Sanskrit Literature)
9. 'यस्येमे हिप्रवंन्तो महित्वा यस्यं समुद्र रसया सहाहु।' (ऋग्वेद 1.35.7)
10. The work is nex to righteda the most important in the whole range of vedic literature. (Mac Donell)
11. अवतारा ह्यसंख्येया गुणसत्त्वनिधेर्द्विजाः। यथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युःसहस्रशः।
12. कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्थोर्ध्ववृतं त्रिवत्। शणसुत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम्।। (मनुस्मृति द्वितीय अध्याय 2/44 श्लोक)
13. ''मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।'' यत् कौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।
14. पतितैः पतमानैश्च पादपस्थैश्च मारूतः। कुसुमैः पश्च सौमित्रे क्रीडन्निव समन्ततः। मत्तकोकिलसनादैर्नर्तयन्निव पादपान।
    शैलकन्दरनिष्क्रान्तः प्रगति इव चानिलः।। रामायण (4/1/13/14)
15. सुपर्णसहिताः सर्पाः काननं च मनोरमम्। सागराम्बुपरिक्षिपतं पक्षिसङ्घनिनादितम्।। महाभारत (आदिपर्व/26/3)

पराशर स्मृति के सन्दर्भ में कृषि, पशुपालन, वाणिज्य और कर संबंधी नियमों की समीक्षा

अनुज कुमार

शोधार्थी, संस्कृत विभाग, महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

गृहस्थाश्रम में धर्म, अर्थ और काम की साधना की जाती है। यह सभी आश्रमों में श्रेष्ठ है क्योंकि अन्य सभी आश्रम किसी न किसी रूप में इस पर आश्रित है। गृहस्थाश्रम द्वारा सम्पादित पंच महायज्ञों- भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ और नृयज्ञ से ही व्यक्ति ऋणों से उऋण होता है। अतः यह प्रत्येक गृहस्थ का महत्वपूर्ण कर्तव्य माना गया है। इन पंच महायज्ञों की समीक्षा से विदित हो जाता है कि इनमें अन्न आदि की आवश्यकता होती थी। भूतयज्ञ में तो कुत्तों, चाण्डालों और पक्षियों की तृप्ति के लिए पृथ्वी पर अन्न फेंकना गृहस्थ का कर्तव्य था। देवयज्ञ के अनुसार मनुष्य का सर्वस्व देवताओं के द्वारा ही प्रदत्त है। इसलिए देवताओं को भी प्राप्त अंश बलि (कर) रूप में देना कर्तव्य था। अग्नि में आहुति देने से सूर्य पुष्ट होते हैं। सूर्य से वृष्टि होती है और उससे औषधियाँ उत्पन्न होती हैं। उनका अन्न रस बनकर अन्त में वीर्य बन जाता है। इससे सृष्टि होती है। अन्न से पुनः यह होगा, पुनः अन्न होता है और तब फिर यज्ञ होता है। इससे सृष्टि का नैरन्तर्य बना रहता है।

उपर्युक्त विवरण से कृषि व्यवस्था का एक क्षीण संकेत प्राप्त होता है। अन्न की उपलब्धता कृषि की सुव्यवस्था पर ही निर्भर है। महर्षि पराशर ने कृषि व्यवस्था पर प्रकाश डाला है। कृषि की प्रधानता संभवतः भूमि की उत्कृष्टता एवं जलवायु की अनुकूलता के कारण रहा होगा। वैदिक साहित्य में भी इस प्रकार के संकेत प्रायशः मिलते हैं। पराशर के अनुसार कृषि मुख्यतः वैश्य की वृत्ति है-

लाभ कर्म तथा रत्नं गवां च प्रतिपालनम्।
कृषि कर्म च वाणिज्यं वैश्यवृत्तिरूदाहृता।।[1]

कृषि के विकास में भी वे सतत् प्रयत्नशील रहते थे। खेत में भृत्य से श्रमिक कार्य कराया जाता था और उन्हीं के द्वारा खेतों की सुरक्षा एवं देखभाल भी होता था।[2] पराशर ने कृषि योग्य भूमि को क्षेत्र कहा है तथा खेत जोतने के लिए कृष्ट शब्द का प्रयोग किया है। कृषि द्वारा उत्पादित अन्न से बलिवैश्व देवादि पंच महायज्ञ और बड़े यज्ञ कराने की बात कही है।[3] शतपथ ब्राह्मण में खेत को जोतने के लिए 'कर्षण', बोने के लिए 'वपन', काटने के लिए 'कर्त्तन' और माड़ने के लिए 'मर्दन' शब्द का प्रयोग हुआ है।[4] किसान प्रतिदिन खेतों पर जाकर उनकी तैयारी करने में लगे रहते थे। क्षेत्र को भलीभाँति तैयार करने के बाद बीज बोने से अधिक उपज की संभावना रहती थी। पराशर ने एक उपमा के द्वारा 'सा कृषिः सर्वकालिका' कहकर इसका समर्थन किया है।[5] कृषि के अयोग्यभूमि को ऊसर माना जाता था और जहाँ पशु चरते थे उसे 'गोचर' भूमि कहते थे। जुती हुई भूमि को 'हल्य' या - सीत्य के नाम से अभिहित किया गया था।

पराशर ने कृषकों की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए उनके लिए कुछ विधिपरक और निषेधपरक नियमों की व्यवस्था भी की है। जो कृषक दान नहीं करता वह पाप का भागी होता है। ओखली, चक्की, चूल्हा, पानी का घड़ा और झाड़ू- ये पांच हत्या के स्थान गृहस्थ को प्रतिदिन होते है। वैश्वदेव, बलि, भिक्षा, गोग्रास आदि के द्वारा ही उसे पाप से मुक्ति मिलती है। जो कृषक खलयज्ञ (अन्न की राशि) पर समागत द्विजों को दान देता है वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। वृक्ष को काटने पर, पृथ्वी को फाड़ने पर तथा भूमिस्थ कीटों को मारने पर कृषक को हत्या का दोष नहीं लगता।[6]

पराशर ने बीज-वपन या बीजोपचार के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे अपने पूर्ववर्ती ऋषियों के मत को स्वीकार कर कृषक के आचरण पर बल दिया है। याज्ञवल्क्य के काल में क्रीत ब्रीहि आदि का बीज दस दिन में परीक्षण करके बोया जाता था। एतदर्थ उपयुक्त समय और तिथियाँ निर्धारित थीं। बीज अच्छा नहीं होता था तो उपज भी अच्छी नहीं होती थी।

याज्ञवल्क्य स्मृति में फसल के लिए 'सस्य' शब्द का प्रयोग किया गया है। बिना जोती हुई भूमि पर स्वतः उत्पन्न विभिन्न अन्य नीवार, वेणु तथा श्यामक कहे जाते थे। इनका प्रयोग वानप्रस्थी और योगी लोग करते थे। एवं प्रकारेण फसल दो प्रकार की होती थी- कृष्टपच्च और अकृष्टपच्च। कृषि द्वारा उत्पादित फसल को कृष्टपच्च और विभिन्न स्थानों पर स्वतः उत्पन्न होने वाली फसल को अकृष्टपच्च कहा जाता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में तीन प्रकार के फसलों का उल्लेख है। यह फसल क्रमशः वर्षा के प्रारम्भ, मध्य और अन्त में बोयी जाती थी। शालि (अगहनी धान), ब्रीहि (धान), कोदो, तिल, ककुनी- ये वर्षा के आरम्भ में बोये जाते थे। मूंग, उड़द और शिम्ब वर्षा के मध्य में तथा कुसुम्भ, मसूर, कुल्थी, जौ, गेहुँ, टमाटर, अलसी और सरसों वर्षा के अन्त में बोये जाते थे।[7] कृषक को क्षेत्र के अनुरूप उचित काल में फसल बोना चाहिए।

पराशर ने कुसुम्भ, गुड़, कपास, लवण, तैल, घी, यावक तथा अन्य अन्नादि के कृषि उत्पादन के रूप में प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त धान्य का भी उल्लेख किया है। कृषि की सम्पन्नता पर ही समाज का उत्कर्ष और समुन्नति निर्भर थी। स्मृतिकाल में आर्थिक जीवन का मूलाधार कृषि तथा व्यापार रहा

है। समाज को सुव्यवस्थित और समुन्नत बनाने में कृषक की महती भूमिका है।

सिंचाई की समस्या भी कृषक के लिए एक महत्वपूर्ण समस्या थी। इसके अभाव में फसलें नष्ट हो जाती थीं तथा दुर्भिक्ष्य की स्थिति उत्पन्न हो जाती थीं। अतिवृष्टि और अनावृष्टि दोनों फसल के लिए हानिकारक थे। समयानुसार वृष्टि हो जाने पर सिंचाई की समस्या नहीं होती थी। याज्ञवल्क्य के अनुसार सिंचाई के साधनों के कूप, वापी तथा सेतु प्रमुख थे। संभवत: तद्युगीन समाज में सिंचाई के मुख्य साधन यही रहे होगें।[8] नहरों से खेत की सिंचाई का अनुमान सिंन्धु सभ्यता से भी होता है। महाभारत में वर्षा अधीन कृषि को न छोड़कर यथास्थान बड़े-बड़े जलपूर्ण जलाशय के निर्माण सिंचाई के लिए करने का उल्लेख मिलता है।[9]

मनु ने कूप, तालाब, बाबली आदि के निर्माण को अक्षय धन, सुख तथा यश प्राप्ति का कारण बताया है। इन कृत्रिम जल-साधनों का उपयोग स्वामी के आदेश के उपरान्त ही किया जाता था। ऐसा न करने वाले पाप के अधिकारी होते थे। मनुस्मृति में सेतुभंग करने वाले को मृत्यूदंड का विधान था। सेतु का अभिप्राय संभवत: तालाब, नहर, नदी आदि के बाँधों से है, जिनका उद्देश्य समुचित उपयोग के लिए जल को संग्रहीत रखना एवं बाढ़ आदि से क्षेत्रों की सुरक्षा करना था।[10] पराशर ने वापी, कूप, तड़ाग आदि का नामोल्लेख किया है तथा इसको अशुद्ध करने वाले को प्रायश्चित का विधान बतलाया है। एक स्थल पर उन्होंने अतिवृष्टि से गायों के मरने की बात कही है। इससे अनुमान होता है कि अतिवृष्टि अमंगल और कृषकों के लिए हानिकारक थी। सुवृष्टि की बात बताकर उन्होंने इसकी प्रशंसा की है और ऊसर भूमि को अन्न उत्पादन के लिए व्यर्थ माना है।

खेतों की सीमा के विवाद का निर्धारण वृद्ध पुरूष, गोप (चरवाहे) सीमा के खेत जोतने वाले लोगों से खेत की सीमा के चिह्न पूछकर सामन्त करता था। कोई चिह्न स्पष्ट न होने पर सामन्त, आस-पास के चार, आठ अथवा दस ग्रामवासी के सिर पर मिट्टी का ढेला रखकर लाल रंग के वस्त्र धारण करके सीमा का निर्धारण करते थे। सामन्त के झूठ बोलने पर राजा उसे मध्यम साहस का दण्ड देता था और स्वयं सीमा का निर्धारण करता था। मनु ने भी इस प्रकार की व्यवस्था का समर्थन किया है।[11] वाटिका, आयवन, गाँव, वापी, कूप, उद्यान तथा घर की सीमा के निर्धारण में भी इस व्यवस्था का पालन होता था। खेतों की मेड़ को तोड़कर सीमा का अतिक्रमण कर जोतने तथा डरा–धमका कर खेत छीन लेने पर क्रमश: अधम, उत्तम और मध्यम साहस का दण्ड दिया जाता था। खेत के सेतु पर होने वाली फसल पर खेत के स्वामी का अधिकार था। क्षेत्रपति के न होने पर राजा को उसका अधिकार प्राप्त था।

फसल की सुरक्षा का प्रबंध भी कृषकों को करना पड़ता था। इस कार्य के लिए खेत में बाड़ लगाया जाता था। खेत चारागाहों एवं अरण्य के आस–पास भी होते थे। परिणामस्वरूप पालतू एवं जंगली जानवरों द्वारा फसल को खा जाने का भय कृषकों को सदा बना रहता था।[12] अरण्य पशुओं और पालतु पशुओं के फसल को सुरक्षित रखने के लिए कृषक खेतों के चारों तरफ ऊँची–ऊँची बाड़ लगाते थे। इसका दूसरा उद्देश्य खेतों को एक-दूसरे से पृथक् रखना तथा उनकी सीमा को बनाये रखना था। इससे बीज जलप्रवाह द्वारा या वायु द्वारा उड़कर दूसरे खेतों में जाने से बचता भी था। अत: पालतू पशुओं से फसल की सुरक्षा में मेड़ अत्यंत सहायक था।

यदि किसी व्यक्ति का पालतू पशु भैंस, गदहा तथा ऊँट बाड़ में प्रवेश करके फसल को नष्ट करता है तो उस व्यक्ति से आठ 'माष' दण्ड स्वरूप वसूल किया जाता था। इसके विपरीत गाय द्वारा क्षतिग्रस्त फसल पर चार 'माष' तथा बकरे एवं भेड़ द्वारा नष्ट की गई फसल पर दो 'माष' दण्ड स्वरूप वसूल किया जाता था। भूलवश खेत में पशुओं के प्रवेश से स्वामी को दोष नहीं लगता था। लेकिन जानबूझकर पशुओं को छोड़ने वाला चोर के समान दण्ड का भागी होता था। रुग्न, पीड़ित तथा स्वामीहीन पशु को क्षति पहुँचाने पर भी छोड़ दिया जाता था। यह प्रथा आज भी प्रचलित है। श्राद्ध में छोड़े गये सांढ़ आज भी स्वतंत्रतापूर्वक कृषकों के खत में विचरण करके फसलों को क्षतिग्रस्त करते हैं। उन्हें देखने पर कृषक अपने खेत से भगा देते हैं। इस प्रकार के पशु को दण्ड देने वाले व्यक्ति को राजा दण्डित करता था। पशुपालक अधर्म तथा राजदण्ड के भय से अपने पशुओं को प्राय: खेतों से दूर रखते थे। वन्य पशुओं से खेतों की सुरक्षा हेतु खेत के चतुर्दिक खाई खुदवाने का उल्लेख भी प्राप्त होता है। पराशर ने इतनी विस्तृत चर्चा नहीं की है।

उपर्युक्त विवरण से प्रतीत होता है कि फसल की सुरक्षा महत्वपूर्ण कृषि-प्रक्रिया थी। आज भी इन सब विधि–विधानों का परिपालन समाज में व्यवहृत होता है।

पराशर ने कृषि को वैश्यवृति कह कर उसी के अधीन माना है। अगर ब्राह्मण खेती करता है तो उसे महत् दोष लगता है।[13] इसके अतिरिक्त उन्होंने वैश्य तथा शूद्र के लिए भी खेती का विधान दिया है। लेकिन शूद्र अगर द्विज–शुश्रूषा छोड़ देता है तो उसका अन्यथा कर्म निष्फल होता है। परिणामस्वरूप 'शूद्रस्य नरकं ध्रुवम्' से वह नरक को प्राप्त होता है।[14]

इस प्रकार कृषि की ग्राह्यता भी वर्ण धर्म के अनुकूल थी। क्षत्रिय यदि कृषि कर्म करता है तो उसे देवता और ब्राह्मणों की पूजा करनी पड़ती है। इसके उपरान्त ही वह सब पापों से मुक्त होता है। पराशर ने चारों वर्णों के धर्म को सनातन से चला आ रहा धर्म कहा है। इसका व्यतिक्रम वर्ण धर्म का व्यतिक्रम है जिससे प्रत्ययवाय होता है। फलत: इसका सम्यक् पालन सभी वर्णों के लिए आवश्यक है। अपनी पूर्व धारणा को शिथिल करते हुए एक स्थल पर उन्होंने षट्कर्म–निरत ब्राह्मण को खेती करने का विधान भी दिया है– षट्कर्मनिरतो विप्र: कृषिकर्म च कारयेत्।

महर्षि पराशर ने ग्रंथ के द्वितीय अध्याय में कृषि में प्रयुक्त पशु और कृषि उपकरण की चर्चा की है। किस प्रकार के बैल को जोतना चाहिए, किस प्रकार के बैल को नहीं जोतना चाहिए तथा कितने समय तक जोतना चाहिए, हल किस प्रकार का हो इत्यादि विषयों का विस्तृत विवेचन किया है। वह इस प्रकार है– जो बैल भूखे, प्यासे और थके हुए हों तो कृषक उसे जूए में न जोते। अंगहीन, रोगी तथा क्लीन (बधिया किया) बैल को हल में नहीं जोतना चाहिए। जिस बैल के अंग दृढ़ हों, रोग रहित हो, दर्प से भरा हो, डकारे मारता हो, बधिया न हो इस भाँति के बैल को आधा दिन जोते बाद में स्नान करें। आठ बैलों का हल धर्महल होता है और छ: बैलों से वृत्ति के लिए हल जोतना चाहिए।[15]

चार बैलों से हल जोतने वाला नृशंस (निर्दयी) जैसा और दो बैलों से जोतने वाला गो की हत्या करने वालों जैसा होता है। दो बैलों का हल प्रहर भर जोतना चाहिए और चार बैलों का दो प्रहर तक। छ: बैलों को तीन प्रहर तक जोतना चाहिए तथा आठ बैलों को पूरे दिन जोतने का विधान है। लोहे जड़े हुए

काठ के हल को जोतने से प्रायश्चित होता है। अगर ऐसा कृषक करता है तो वह फांसी देने वाला, मछली मारने वाला, व्याघ्र तथा चिड़ीमार के सदृश पाप का भागी बनता है। अतः हल और बैल कृषि–कर्म के आधारस्तम्भ थे। इसके अतिरिक्त कृषि के अन्य उपकरण (कुदाल, खुरपी आदि) का उल्लेख पराशर स्मृति में नहीं है। धर्महल सम्पन्नता के सूचक थे। जोतने का विधान जीवों के प्रति दयाभाव का द्योतक है।

उपर्युक्त विश्लेषण से पशुओं के प्रति उचित देशभाल और उसकी सुरक्षा का भी संकेत मिलता है। कदाचित् उस युग में कृषि के दूसरे साधन नहीं रहे होगें। एतदर्थ कृषि कार्य में सर्वाधिक पशु का ही प्रयोग होता था। स्थिरांग दीप्त, सुनर्द आदि पशुओं के लिए प्रयुक्त विशेषणों से उसके स्वामी की सामाजिक स्थिति का पता चल जाता है।

वैदिक काल से ही भारत में पशुपालन एक प्रमुख व्यवसाय था। उर्वरा भूमि और जलवायू की उत्कृष्टता के कारण चारागाह अधिक रहे होंगें। जनसंख्या अल्प होने के कारण आज की अपेक्षा उस काल में चारागाह अधिक रहे होगें। इन चारागाह में पशुओं को चरने के लिए पर्याप्त घास और पेड़–पौधों की पत्तियाँ थीं, जिसे पशु निर्भीक होकर चरते थे। पीने के लिए जल भी सर्वत्र प्राप्त था।[16]

पराशर के अनुसार पशुपालन वैश्य वर्ण का धर्म था। किन्तु संभव है कि अन्य वर्णों के लोग भी पशु पालते रहे हैं। पशु को धन का स्वरूप माना गया है। श्रीचन्द जैन के अनुसार तत्कालीन समाज में पशु के आर्थिक महत्व को दृष्टि में रखकर ही उसे यज्ञ और प्रजापति कहा गया है।[17]

पराशर ने मुद्रा के सम्बन्ध में इतना विस्तृत विवेचन नहीं किया हैं। लेकिन विनियम और क्रय–विक्रय हेतु माप-तौल का संकेत दिया है। उन्होंने माष, प्रस्थ, द्रोण और आढ़क का उल्लेख किया है। तत्कालीन समाज में ये मुद्रायें प्रचलित थीं तथा विनिमय, क्रय–विक्रय और दक्षिणा इसी के द्वारा दी जाती थीं। क्षत्रियों की शुद्धि हेतु पाँच माष सोना दान करने का विधान है। परिमाण में 32 प्रस्थों का एक द्रोण और 2 प्रस्थों का एक आढ़क होता था। काक और कुत्ते द्वारा जूठा करने पर अथवा गाय या गधे के द्वारा सूंघने पर अन्न को इसी प्रमाण के आधार पर त्याज्य और अत्याज्य कहा जाता था।[18]

प्राचीन काल में करों आदि के माध्यम से संचित धन राजकोष कहा जाता था। इसका व्यय राज्य संचालन के लिए किया जाता था। राजत्व कोष पर आश्रित है। कोष तथा सेना एक दूसरे पर आधारित माने गए हैं। कोष, बल तथा अर्थ ही ऐसे तीन मूल तत्व हैं जो राष्ट्र की वृद्धि के लिए आवश्यक है। गौतम ने भी कोष के महत्व का समर्थन किया है। कौटिल्य राजा के समस्त कार्यों का आधार कोष माना है तथा इसकी रक्षा और वृद्धि करना राजा का सर्वप्रथम उद्देश्य स्वीकार किया है।

कोष–वृद्धि का मुख्य स्रोत कर व्यवस्था है। राजा का प्रमुख कर्तव्य था कि वह नियमित रूप से प्रजा पर कर लगाये। इस प्रकार कर से कोष की वृद्धि होती है और कोष की वृद्धि से राज्य की वृद्धि होती है। स्मृतियों में कोष संग्रह के साधन के रूप में कर–व्यवस्था का उल्लेख किया गया है। इनमें विभिन्न प्रकार के करों की व्यवस्था है। यथा– भूमिकर, वाणिज्य एवं व्यापार पर कर, शिल्पियों पर कर, पशुकर, आकर कर, द्यूत कर और संतरण कर। भूमिकर में राजा उत्पादन का 1/6, 1/8 या 1/12 भाग कर के रूप में लेता था। वाणिज्य और व्यापार कर में राजा मूल्य निर्धारित करके मूल्य का बीसवां भाग कर-स्वरूप लेता था। शिल्पियों से कर के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। मनु ने राजा को लोहार, बढ़ई तथा शूद्रादि से प्रत्येक महीने कर के स्थान पर एक दिन काम करा लेने की सलाह दी है। महाभारत में शिल्पियों के शिल्प की उत्तम, मध्यम आदि श्रेणियों का निरीक्षण कर लेने पर बल दिया गया है। पशु को सम्पत्ति के रूप में स्वीकार कर उस पर भी कर का विधान है। सुवर्ण आदि धातुओं पर उनके मूल्य के अनुपात से कर लिया जाता था। द्यूत राजा द्वारा संरक्षित होता था। राज्य कर से यह मुक्त नहीं था। नदी पार करने के लिए भी संतरण कर लिया जाता था।

पराशर अन्य कर–व्यवस्था के सम्बन्ध में मौन हैं। संभव है कि उन्होंने अपने पूर्वाचार्यों का समर्थन किये हों। भूमिकर की उन्होंने व्यवस्था दी है। उनके अनुसार, वह पापी, चोर और ब्रह्मघाती कहलाता है जो राजा का छठा भाग और देवता को इक्कीसवाँ भाग नहीं देता। ब्राह्मणों के लिए तीसवाँ भाग की व्यवस्था दी है–

सचौरः स च पापिष्ठो
ब्रह्मार्चनं तं विनिर्दिशेत्।
न दत्वा तु षड्भागं
देवानां चैकविंशतिम्।।
विप्राणां त्रिशतं भागं
सर्वपापैः प्रमुच्यते।[19]

इस प्रकार पराशर ने सिर्फ भूमि कर का ही उल्लेख किया तथा उनमें राजा के अतिरिक्त देवता और ब्राह्मण को भी करग्रहण के योग्य बतलाया है। स्मृतिकाल में वेद विद्या पारंगत ब्राह्मणों को कर से मुक्त रखा गया था। लेकिन अन्य कार्य करने वाले ब्राह्मण से कर लिया जाता था।

सन्दर्थ–सूचीः

1. पराशरस्मृति, 1/69
2. मिताक्षरा, याज्ञवल्क्यस्मृति, 2/192 कात्यायन श्रौतसूत्र, 22/10
3. पराशरस्मृति, 2/6
4. शतपथब्राह्मण, 1/6/2/3
5. पराशरस्मृति, 1/64
6. द्रष्टव्य, पराशरस्मृति, 2/13–16

7. कौटिल्य अर्थशास्त्र, 2/24
8. याज्ञवल्क्यस्मृति, 1/154,156
9. महाभारत सभापर्व, 5/67, अनुशासन पर्व, 64/6
10. आर०एस० शर्मा, लाइट ऑन अर्ली इण्डियन सोसायटी एण्ड इकोनॉमी, पृ० 90–91
11. याज्ञवल्क्यस्मृति, 2/150, 151, 152, 153, मनुस्मृति, 8/263–258
12. विशेष द्रष्टव्य, प्रभुदयाल अग्निहोत्री, पंतजलिकालीन भारत, पृ० 258
13. पराशरस्मृति, 2/8
14. पराशरस्मृति, 2/19–20
15. पराशरस्मृति, 2/3,4,8,9,10
16. द्रष्टव्य रामजी उपाध्याय, प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ० 708
17. श्रीचन्द जैन, हमारे पशुपक्षी, पृ० 41
18. पराशरस्मृति, 6/50,68,70 और 71
19. पराशरस्मृति, 2/17,18

कृषि विज्ञान का स्वरूप विमर्श: संस्कृत-ग्रन्थों के संदर्भ में

रोहित

शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

पृथ्वी को विस्फोरित कर उत्पन्न होने वाली सृष्टि को हम उद्भिज्ज के रूप में स्वीकार करते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में इसके चार भेदों का उल्लेख मिलता है - फलिनी, अफला, अपुष्पा तथा पुष्पिणी।[1] महर्षि मनु ने इसके आठ भेदों को स्पष्ट किया है - 'औषधय, वनस्पतय:, वृक्षा:, गुच्छ:, गुल्मम्, तृणजातय:, प्रताना:, वल्लय:'।[2]

औषधि शब्द का बहुत व्यापक अर्थ में प्रयोग हुआ इसमें सभी प्रकार के वृक्ष, वनस्पति आ जाते हैं। परन्तु प्रासंगिक विषय के अनुसार यदि हम मनु को लें तो औषधि वह है जिसका फल पक जाने पर पौधा नष्ट हो जाता है[3] और जिनमें बहुत फल-फूल लगते हैं जैसे गेहूँ, जौ, चना आदि।

यह अन्न दो प्रकार का बताया गया है (1) कृष्टपच्य जो कृषि से उत्पन्न होता है जैसे गेहूँ, जौ आदि। (2) अकृष्टपच्य जो बिना कृषि के उत्पन्न होता है जैसे जंगली धन्य आदि।[4] कृष्टपच्य अन्न खेत जोत कर प्राप्त किया जाता है। इस कर्म को कृषि कर्म की संज्ञा दी गई है। कृषि का दूसरा पर्यायवाची नाम अनृतम् भी है। इस कृषि कर्म में हिंसा (जोतने में जीव हिंसा) होने से यह नाम पड़ा है।

हिंसादोषप्रधानत्वादनृतं कृषिरूच्यते।

(इत्यमरे रामाश्रमीटीकायाम् 2/9/2)

प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में कृषि विज्ञान से सम्बद्ध अनेक तात्विक तथ्य मिलते हैं जिनके आधार पर आज भी कृषि के क्षेत्र में नये आयामों को जोड़ा जा सकता है। कृषि शब्द कृष् विलेखन धातु से बना है जिसका अर्थ है खेत जोतना। वेदों के अनुसार कृषि करना भी एक विद्या के रूप में जाना गया है।

कृषि विद्या जानने वाले को ऋग्वेद में क्षेत्र विद् अथवा क्षेत्रवित्तर[5] तथा अथर्ववेद में अन्नविद्[6] कहा गया है। सर्वप्रथम इन्होंने ही कृषि नियम बनाये थे। आचार्य कौटिल्य ने कृषि विभाग के अध्यक्ष को सीताध्यक्ष कहा है वह स्वयं कृषि शास्त्र के साथ-साथ शुल्बशास्त्र (नापने की कला) और वृक्ष-विज्ञान का ज्ञाता होता था -

"सीताध्यक्ष: कृषितन्त्रशुल्बवृक्षायुर्वेदज्ञ: तज्ज्ञसखो वा सर्वधन्यपुष्पफशाककन्दमूलवाल्लिक्य क्षौमकार्पासबीजानि यथाकालं गृह्णीयात्।"

(कौटिलीय अर्थशास्त्र 1/40/24)

वर्तमान युग में खेती से सम्बन्धित को कृषि-विज्ञान (Agriculture Science) तथा वृक्षायुर्वेद से सम्बन्धित को वनस्पति-विज्ञान (Botany) के साथ जोड़ते हुए इसके दो विभाग कर दिये गये हैं।

तैतिरीय संहिता में अन्नो के कटने के अनुसार फसलों के चार भेद दिये हैं[7] - (1) ग्रीष्म में कटने वाली फसल जौ, गेहूँ आदि (2) वर्षा में कटने वाली (3) शरद् में कटने वाली (4) हेमन्त और शिशिर में कटने वाली माष (उड़द) तिल (तिलहन) आदि।

शतपथ ब्राह्मण के आधर पर पूरे कृषि कर्म को चार भागों में बाँटा जा सकता है, ये हैं -

1. कर्षण (खेत की जुताई करना)
2. वपन (बीज बोना)
3. लवन (पके सस्य अर्थात् धन की कटाई करना)
4. मर्दन (मड़ाई करके स्वच्छ अन्न प्राप्त करना)।

'कृषन्त:, वपन्त:, लुनन्त:, मृणन्त:।'

(शतपथ ब्राह्मण 1/61/3)

कर्षण की पृष्ठभूमि

(क) भूमि चयन: कृषि के लिए उत्तम भूमि के साथ ही उत्तम बीज, हल और बैल किसान की आवश्यकता होती है। भूमि मिट्टी के वर्ण एवं मधुरादि रसों के आधार पर छ: प्रकार की मानी गई है। इन सभी प्रकारों में शुक आदि पक्षी के पंखों सी कोमल, शंख कुन्द के फूल आदि के समान स्वच्छ तथा तपे हुए सोने अथवा विकसित चम्पा के फूल के वर्ण वाली भूमि सर्वश्रेष्ठ मानी गई है।[8] इस प्रकार की भूमि का चयन बोये जाने वाले खेत को उर्वर या क्षेत्र

कहा गया है। ऋग्वेद के अनुसार उपजाऊ भूमि अप्नस्वती, उर्वरा तथा पड़ती जमीन को आर्तना कहा गया है।[9] अथर्ववेद में इसे ऊषर तथा इरिण कहा है।[10]

(ख) भूमि परिष्कार: सर्वप्रथम उत्तम अर्थात् उपजाऊ भूमि का चयन कर उससे पत्थर, कंकर आदि निकाल कर समतल किया जाना अत्यावश्यक है।[11] तत्पश्चात् हल से भूमि को जोतना। जोती गई उपजाऊ भूमि में बोया गया बीज ठीक ढंग से उगता है।

यथा बीजमुर्वरायां कृष्ट फालेन रोहति।

(अथर्व. 10/6/33)

कृते योनौ वपेतेह बीजम्।

(यजुर्वेद 12.68)

(ग) भूमि आर्द्रता: वर्षा-जल मापने के लिए एक हाथ मुँह वाले कुण्ड में सोलह द्रोण की मात्रा में पानी भर जाए तो जांगल अर्थात् रेतीली भूमि में फसल बोने के लिए उपयुक्त समय माना गया है। प्राय: जल बरसने वाले प्रदेशों में चौबीस द्रोण, दक्षिण प्रान्तों में तेरह द्रोण, मालव प्रदेश के लिए तेईस द्रोण, पश्चिमी प्रदेशों में अधिक-से-अधिक और नहरी प्रदेशों के लिए समय-समय का पानी फसल को बोने के लिए उपयुक्त समय होता है।[12]

(घ) पोषण: खेत की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के लिए काम में लिए जाने वाले पदार्थों को क्षेत्रसाधस् कहा जाता है अर्थात् खेत की उत्पादन शक्ति को बढ़ने वाला।[13]

क्षेत्रसाधस् के रूप में अत्युत्तम खेती के लिए घी, दूध, शहद और औषधियों के मिश्रण से बनी खाद डालने से उत्तम कृषि होती है। इसके अनेक उदाहरण अथर्ववेद के भाष्यकार श्रीपाद दामोदर समतवलेकर ने अपने भाष्य में प्रस्तुत किये है। (अथर्ववेद काण्ड 3, पृ. 128)

घृतेन सीता मधुना समज्यताम्।
पयसा पिन्वमाना।। (यजु. 12.70)

कर्षण (खेत की जुताई करना)

जौ आदि धन्य के लिए भूमि जोती जाती है।[14] पोषण प्राप्त उपजाऊ भूमि को हल तैयार कर जोतने का काम करें।[15] इसके लिए किसान बैलों के पीछे चले[16] भूमि जोतने के लिए सामान्यत: एक हल में दो बैल काम में लिये जाते हैं परन्तु अथर्ववेद (6.9.1.1) एवं काठक संहिता (15/2) के अनुसार प्राचीन काल में बारह युग अर्थात् जुए तक का हल भी काम में लिया जाता था। 24 बैल एक साथ काम में लिये जाते थे, जो आज आश्चर्यजनक प्रतीत होता है।

बीज बोने से पहले दो या तीन बार भूमि जोती जाती थी इस आधार पर खेत को द्विहल्यम्, द्विसीत्यम् तथा त्रिहल्यम्, त्रिसीत्यूम् कहा जाता है।[17]

इसीलिए आचार्य कौटिल्य ने स्पष्ट लिखा है -

बहुहलपरिकृष्टायां स्वभूमौ वापयेत्
(कौटिलीय अर्थशास्त्र 40/24/2)

हल को सीर तथा लांगल आदि नामों से जाना जाता है। जुए को मजबूती के लिए रस्सी से बांध जाता है।[18] कृषक बैलों से आसानी से खेत जोतें -

शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहै:।

(ऋग्. 4/57/8)

भाषा विज्ञान की दृष्टि से वेदों में प्रयुक्त की नाश शब्द कालान्तर में वर्ण विपर्यय के सिद्धान्तानुसार किसान के रूप में परिवर्तित हो गया प्रतीत होता है। आज खेती करने वाले के लिए यह शब्द अत्यन्त प्रसिद्ध है।

वपन (बीज बोना)

जोती हुई भूमि सीता कहलाती है। इसका अभिवन्दन कर उत्तम फल की कामना की गई है -

सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव।
यथा न: सुमना असो यथा न: सुफला भुव:।

(अथर्व. 3/17/8; ऋ. 4/57/6)

भूमि जोतने के बाद ही बीज बोया जाता है।[19] किसान अन्न प्राप्ति के लिए बीज बोते हैं।[20]

जल एवं वायु की अनुकूलता होने पर ही बीज बोया जाना सार्थक है। आचार्य कौटिल्य के अनुसार बोने से पहले धन्य बीजों का उपचार करना चाहिए जिससे उत्तम फसल प्राप्त हो सके। बीजों को सात दिनों तक रात को ओस में तथा दिन में धूप में रखा जाना चाहिए तथा कोशीधन्य अर्थात् मूंग उड़द आदि के बीजों को तीन या पांच रात तथा दिन ओस एवं धूप में रखना चाहिए। सभी प्रकार के बीजों को बोने से पहले सुवर्ण से स्पष्ट जल में भिगोना चाहिए।[21] इस प्रकार अनुकूल ऋतु, खेत, जल एवं बीजों के सायुज्य से धन्य में अंकुरोत्पति होती है।

ऋतुक्षेत्राम्बुबीजानां सामग्र्याद् अंकुरो जायते।

(सुश्रुतसंहिता, शारीर 2.33)

विष्णु पुराण (7.37-39) में धन के पौंधे के अंगों का उल्लेख मिलता है - अंकुर, मूल, नाल, पत्र, पुष्प क्षीर, तुष, कोश, बीजकोश, तण्डुल, कणी।

पोषण

उत्तम उपज के लिए खाद अत्यावश्यक पदार्थ है। अथर्ववेद में खाद को फलवती कहा गया है, करीषिणीं फलवर्ती स्वधम् (अथर्व 19.31.3)। खाद के लिए करीष शकन् और शकृत् शब्दों का प्रयोग मिलता है। प्रायः फसल के लिए घी, दूध, शहद एवं औषधियों के मिश्रण से खाद तैयार कर दी जाती थी।

आचार्य कौटिल्य ने इस सन्दर्भ में स्पष्ट किया है कि बीज बोने के बाद जब अंकुर निकल जाये तब छोटी मछलियों की खाद और स्नुही के दूध से सींचने को प्रयोग में लाने की बात कही है- 'आशुष्ककटुमत्स्यान् च स्नुहिक्षीरेण पाययेत्' (कौटि. अर्थ. 40/24)। कन्दफल, कपास, कटहल आदि के बीजों को गोबर, घी तथा हड्डी के चूर्ण के साथ मिलाकर बोना उपयोगी बताया है।

रक्षण

उत्तम भूमि, बीज एवं फसल उत्पन्न होने पर भी यदि उसका रक्षण न हो तो फल-प्राप्ति दुष्कर होती है। कृषि को हानि पहुँचाने वाले तत्त्वों को 'इति' कहा जाता है। इनको हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं - प्रकृति रूप- जिसमें अतिवृष्टि, अनावृष्टि तथा पाला पड़ना है और जीव-जन्तु रूप- जिसमें आखु (चुहा), तर्द (कफोडवा), मटची अथवा पतंग (टिड्डी), जम्भ (घुन), उपक्वस (बीज खाने वाला विषैला कीड़ा), तर्दापति, वघापति, सांप एवं जलचर आदि। इन सभी से सावधन रहते हुए फसल की रक्षा करना परम आवश्यक है।

ऋग्वेद, अथर्ववेद में इनको मारने अथवा नष्ट करने को कहा गया है। साथ ही आचार्य कौटिल्य ने सांपों को दूर भगाने का उपाय स्पष्ट किया है -

कार्पाससारं निर्मोकं सर्पस्य च समाहरेत्।
न सर्पास्तत्र तिष्ठन्ति धूमो यत्रैव तिष्ठति।।

(कौटिलीय अर्थशास्त्र 40/24)

अर्थात् कपास के बीजों (बिनौलों) और सांप की केंचुली को एक साथ मिलाकर जला दिया जाये तो जहाँ तक उसका धुंआ फैलेगा वहाँ तक कोई सांप नहीं ठहर सकेगा।

लवन (पके धन की कटाई)

फसल पक जाने पर उसकी कटाई समय पर कर लेना ही उपयुक्त होता है। इसके लिए यजुर्वेद में स्पष्ट कहा है -

सुपिप्पला ओषधिः कर्तनास्मै। (यजु. 12.26)

ऋग्वेद में भी कहा गया है कि पके धन्य को दरांती से काटा जाता था।

नेदीयं इत् सृण्यः पक्वमेयात्। (ऋग्वेद 10/101/3)

मर्दन (मडाई करके स्वच्छ अन्न प्राप्त करना)

समय पर तैयार फसल को कटवाने के बाद सुरक्षित स्थान पर रख देना चाहिए। खेत में पुआल और भूसा आदि भी नहीं छोड़ना चाहिए।

यथाकालं च सस्यादि जातां जातं प्रवेशयेत्।
न क्षेत्रे स्थापयेत् किंचित् पलालमपि पण्डितः।

(कौटिलीय अर्थशास्त्र 40/24)

कटे हुए अनाज को खलिहान में रखा जाता है- 'खले न वर्षान्' (ऋग्वेद 10.48.7) जिस भूमि में अन्न नहीं बोया जाता उसे अर्थात् बिना जुती हुई भूमि को खल कहते हैं। खलिहान में मड़ाई होने पर तितउ अर्थात् चालनी से उसे फटकाया जाता था। फटकाने वाला व्यक्ति धन्यकृत कहा जाता था। अन्न को ऊदर (मिट्टी के बड़े बर्तन) में रखे जाने का प्रावधन मिलता है -

तमूर्दरं न पृणता यवेन। (ऋग्. 2.14.11)

इनके लिए बड़े कोठे=कक्षों को स्थिवि संज्ञा दी गई है। अनाज रखने का स्थान ऊँचा तथा मजबूत होता था। खलिहान में काम करने वालों को निर्देश थे कि वे अपने पास किसी भी प्रकार की आग न रखे तथा उनके पास आवश्यकतानुसार जल का प्रबन्ध रहे-

खलस्य प्रकरान् कुर्यान्मण्डलान्ते समाश्रितान्।
अनग्निकाः सोदकाश्च खले स्युः परिकर्मिणः।।

(कौटिलीय अर्थशास्त्र 40/24)

इस प्रकार प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में उपलब्ध कृषि सम्बन्धी सिद्धान्तों को वर्तमान युगानुरूप तथा भूमि परिष्कार, बीजोपचार, खाद आदि के प्रयोगों के रूप में स्वीकार किया जाना उपयुक्त प्रतीत होता है।

सन्दर्भ सूची

1. क. याः, फलिनीर्या अफला 10.97.15/ यजु. 12.89।
   ख. पुष्पवती: प्रसूमती: फलिनीरफलाः। अर्थ 8.7.27
2. मनुस्मृति 1.46-48

3. औषधिः फलपाकान्ता। ओषः प्लोषो दीप्तिर्वा धीयतेऽत्र इति ओषधिः इत्यमरः 2/4/6
4. कृटपच्याश्च में अकृष्टपच्याश्च में। यजु. 18.14
5. क्षेत्रवित्तरो मनुष्यो वि वो मदे। ऋग्. 10/25/8
6. यद्यामं चक्रुः अन्नविदः। अथर्व. 6/116/1
7. यवं ग्रीष्माय, व्रीहीन् शरदे। तैति. 7/2/10/2
8. शार्ङ्गधर पद्धति वृक्षायुर्वेद (उपवन विनोद) 34, 35, 37
9. ऋग्वेद 1/127/6
10. अथर्ववेद 4/15/12
11. समता वसुधयाश्च स सम्यगुदपादयत्। महाभारत, याान्ति. 59/113-115
12. कौटीलीय अर्थशास्त्र प्रकरण 40/अ० 24/5
13. ते नो व्यन्तु वार्य देवत्रा क्षेत्रसाधसः। ऋग्. 3/8/7
14. गोभिर्यवं नं चकशषत्। ऋग्. 1.23.15
15. युनक्त सीरा वि युगा तनुधवम्। ऋग्. 10/101/3
16. शुनं सुफला वि तदन्तु भूमिम्, शुनं कीनाशा अनुयन्तु वाहान्। अथर्व. 3/17/5
17. त्रिहल्यं त्रिसीत्यमपि तस्मिन्। अमरकोष 2/9/9
18. युग वरत्रया, नह्यन्ति धरुणाय कम्। ऋग्. 10/60/8
19. कृते योनौ वपेतेह बीजम्। यजु. 12.68
20. वपन्तो बीजमिव धन्याकृतः। 10/94/13
21. कौटिलीय अर्थशास्त्र, प्र. 40/24

भारवि की सूक्तियों में नीति लालित्य

ताराकान्त मित्र

शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

सूक्तियां साहित्य का नवनीत हैं। वैदिक ऋषियों के मौलिक चिंतन को सूक्तों के रूप में वेदों में संकलित किया गया। परवर्ती काल में विकसित सूक्तियों का बीज उन्हीं सूक्तों में है। आगम, त्रिपिटक, और वैदिक वाङ्मय से और प्रतिभामूर्ति कवियों के साहित्य से सूक्तियों के अनेक संकलन तैयार किये गये, जो अत्यधिक लोकप्रिय हुए। सूक्तियां भले ही दिखने में छोटी होती हैं पर प्रभाव गंभीर करती है। इनमें सत्यम्, शिवम, सुंदरम् का मधुर समन्वय होता है। इस प्रकार चमत्कार पूर्ण हृदयवेधी उक्तियों का प्रणयन संस्कृत साहित्य में बहुत वर्षों से होता आ रहा है। कीथ ने स्पष्टतया स्वीकार किया है कि जीवन और सदाचार अथवा नीति से संबंध रखने वाले सारवत् निरीक्षणों को पद्य में प्रकट करने में भारत ने सदा प्रसन्नता का अनुभव किया है।

सूक्तिः व्युत्पत्तिपरक अर्थ-एवं स्वरूप विवेचन

सूक्ति शब्द दो शब्दों के मेल से बना है–सु और उक्ति। सु शब्द अव्यय है। और विभिन्न कोशकारों ने इसका निम्नलिखित अर्थ किया है–निरूक्तकार यास्क ने इसे उपसर्ग के अंतर्गत मानते हुए इसका अर्थ स्वीकृति (पूजार्ह) माना है–सु इतयभिपूजितार्थे।[1]

मेदिनी कोशकार ने पूजा अनुमति आधिक्य समृद्धि काठिन्य आदि अर्थों को सु का द्योतक माना है–सु पूजायां भृशार्थेनुमतिकृच्छसमृद्धिषु।[2]

अमरकोश ने.....पूजने सु[3] अर्थात् पूजार्थक स्वीकार किया है।

अमरकोश टीकाकार (रामाश्रमी) ने सु शब्द को इस प्रकार व्युत्पन्न किया है–यहां 'सु गतौ' एवं सु प्रसवैश्वर्ययोः धातु से विप्रसंभ्यो ड्वसंज्ञायाम् 'सूत्र में गठित वार्तिक मितद्रादिभ्य उपसंख्यानाम् से डु प्रत्यय होकर सु शब्द बनता है जिसका अर्थ–सुन्दर गति प्रसव, ज्ञान एवं ऐश्वर्य होता है।

वामन शिवराम आप्टे[4] के अनुसार सु निपात का कर्मधारय और बहुब्रीहि समास बनाने के लिये संज्ञा शब्दों से पूर्व जोड़ा जाता है। विशेषण और क्रिया विशेषणों में भी जुड़ता है। इसका अर्थ है–सुन्दर, मनोहर, सर्वथा, अत्यधिक ठीक प्रकार से आदि।

सु का मोनीयर विलियम्स[5] ने संस्कृत अंग्रेजी कोश में इस प्रकार अर्थ किया है–Good, beautiful, well, easy, any, excellent, much, quickly.

उक्ति–उक्ति शब्द अदादिगणीय वच परिभाषणे[6] धातु से 'स्त्रियां क्तिन्'' सूत्र से क्तिन् प्रत्यय एवं 'वाचिस्वपियजादीनां किति' से संप्रसारण करने पर उक्ति शब्द बनता है।

अमरकोशकार ने बचन के छः नामों से उक्ति को बतलाया है.....व्याहार उक्तिर्लपितं भाषितं वचनं वचः[17]

विविध कोश ग्रंथों[8] में उक्ति के निम्नलिखित अर्थ बताए गए हैं–वाणी, अभिव्यक्ति शब्द, एक मूल्यवान् वाणी, भाषण, कथन, वाक्य, वचन, घोषणा आदि।

इस प्रकार सू के साथ उक्ति के मिलने से सूक्ति शब्द बनता है जिसका अर्थ होता है–सुंदर उक्ति, ज्ञानयुक्त कथन, समृद्धवाणी, सम्मानित वचन, रमणीय अभिव्यक्ति आदि। आप्टेकृत संस्कृत हिन्दीकोश[9] में सूक्ति का अर्थ है–चातुर्यपूर्ण कथन, अच्छा या सौहार्दपूर्ण भाषण आदि।

वाचस्पत्यम् में 'सूक्तिः सुष्ठुतौ[10] अर्थात् सुष्ठु उक्ति को सूक्ति कहा गया है।

मोनीयर विलियम्स[11] ने सूक्ति का अर्थ–Beautiful-verse or stanga, wish saying, A good or friendly speech. किया है।

अलंकारशास्त्र के आचार्यों ने सूक्ति शब्द का प्रयोग कर उसकी अर्थवत्ता एवं महनीयता का निर्देश किया है। महाकवि दण्डी ने काव्यादर्श में सेतुबंध की उत्कृष्टता का वर्णन करते हुए लिखा है कि महाराष्ट्री प्राकृत में सूक्ति रत्नों के सागर सेतुबंध आदि काव्यों की रचना हुई–

सागरः सूक्तिरत्नानां सेतुबन्धाति यन्मयम्।[12]

वक्रोक्तिजीवितकार आचार्य कुन्तक ने सूक्ति को कवि की अभिव्यक्ति में उत्कृष्ट सहायिका माना है।

औचित्य मार्ग के प्रवर्तक आचार्य क्षेमेन्द्र सूक्तियों में विचार का अधिक महत्व बतलाते हैं–उचित विचार से सूक्तियां चारूता प्राप्त करती हैं, वैसे ही जैसे ज्ञातव्य तत्त्वों के ज्ञान से मनीषियों की विद्या–

उचितेन विचारेण चारूतां यान्ति सूक्तय :

वेद्यतत्त्वावबोधेन विद्या इव मनीषिणाम् ।।[13]

भोजदेव ने श्रृंगार प्रकाश में लिखा है–तेषु उक्ति प्रधान काव्यम् ।[14]

आचार्य राजशेखर ने सूक्तियों को कवियों के लिये समुद्र में पोत के समान माना है।[15]

कर्पूरमंजरी में राजशेखर ने विशिष्ट उक्ति अर्थात् सूक्ति को काव्य माना है–उक्ति विशेषो कव्यम्।[16]

इस प्रकार सूक्ति का अर्थ वह वचन या उक्ति के पास स्वाभिमान कहां से होगा–तेजोविहीन विजहाति दर्पः ।[24]

भारवि की सामान्य जीवन से संबंद्ध सूक्तियां–व्यक्ति की वाणी उसके भावों और प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करने का सार और प्रमुख माध्यम है। वह जो कुछ प्रकाशनीय मानता है उसी को कहना चाहता है गोपनीय को नहीं। लेकिन भारवि ने जीवन के अनुभव से अच्छी तरह जान लिया है कि हितकारक वाणी कभी मनोहर और मीठी नहीं हो सकती है। उसमें कटु सत्य होगा जो कि सुनने वाले को तीखी छुरी की तरह लगेगा। अत: उनका कथन है कि ऐसी वाणी दुर्लभ है जो हितकर होने के साथ मन के अनुकूल भी हो–हितं मनोहारि च दुर्लभ वच: ।[25]

भारवि कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को हमारी वाणी प्रियलगे, यह आवश्यक नहीं है सब व्यक्तियों की सुंदर लगने वाली वाणी दुर्लभ है–सुदुर्लभा: सर्व मनोरमा गिर: ।[26]

भारवि का कहना है कि सज्जनों का संसर्ग विश्वास की भूमि है, सज्जनों के साथ शीघ्र ही विश्वास उत्पन्न हो जाता है–विश्वासयत्याशु सतां हि योग: ।[27]

भारवि का मानना है कि सज्जनों की वाणी सदैव प्रिय भाषण ही करती है–सतां हि वाणी गुणमेव भाषते ।[28]

भारवि ने एक और भी महत्वपूर्ण तथ्य स्पष्ट किया है कि वह यह है कि सज्जन व्यक्ति से यदि विरोध भी होता है तो वह अच्छा ही है, उसके अपने दोष तो पता चलते ही हैं, अहित की संभावना कम रहती है। तात्पर्य है कि नीचों की संगति की अपेक्षा बड़े लोगों से विरोध कहीं अच्छा है, क्योंकि उससे ऐश्वर्य की सिद्धि होती है–समुन्नयन भूतिमनार्य संगमाद् वरं विरोधोऽपि समं महात्मभि: ।[29]

भारवि का मानना है कि बलवान् व्यक्तियों से विरोध करने पर अंत तो कष्टकर होगा ही–अहो दुरन्ता बवद् विरोधिता।[30]

भारवि का कहना है कि बिना विचारे अर्थात् अकस्मात् कोई काम नहीं करना चाहिए क्योंकि अविवेक विपत्ति का कारण है। विचारवान व्यक्तियों को संपत्तियां वरण करती हैं–

सहसा विदधीत न क्रियामविवेक: परमापदां पदम् ।[31]

कई बार परिस्थिति या मनोदशा के अवस्थ होने पर या किसी अन्य कारण से मानव मन की स्वाभाविक अवस्था में कुछ परिवर्तन आ जाता है। उस समय वह किसी भाव या विकार से युक्त हो जाता है। हर कोई विकारग्रस्त हो सकता है और इसमें कोई अस्वाभाविकता नहीं भारवि का भी कहना है कि ईर्ष्याग्रस्त व्यक्तियों के चित्त सज्जनों के प्रति भी द्वेष युक्त ही रहते हैं–मात्सर्य रागो महतात्मनां हिन्त साधुष्वपि मानसानि।[32]

चित्त की गतियां विविध हैं जिसमें बहुत कुछ गोपनीय है और व्याकुताएं हैं। चित्त की वृत्तियां विचित्र रूपों वाली हैं। भारवि का कहना है कि इन्द्रियों के विषय तो अपनी प्राप्ति के समय ही अच्छे लगते हैं, अंतिम अवस्था में वे सन्ताप ही देते हैं–आपातरम्या विषया: पर्यन्तपरितापिन:[33]

भारवि यह भी जानते हैं कि शत्रु का विनाश उसे भोग विलास में आकृष्ट कर सहज ही किया जा सकता है–कामा कष्टा हि शत्रव:[34]

भारवि का कहना है कि कामी जन सर्वदा गुणों की क्रमश: अधिकता की खोज करते रहते हैं उपस्थिति गुणों से संतुष्ट नहीं होते–यथोत्तरेच्छा हि गुणेषु कामिन: ।[35]

मानव अपने गुणों से श्रद्धा, मान-सम्मान पाता है विशालाकृति से नहीं विशाल आकृति भय उत्पन्न कर सकती है सम्मान नहीं। सम्मान गुणों से ही प्राप्य है–

गुरूतां नयन्ति हि गुण: न संहति: ।[36]

पुन: भारवि कहते हैं कि मानव अपने परिचय से प्रिय नहीं बनता है अपितु उसके गुण ही उसे आदर सम्मान और स्नेह दिलाते हैं–गुणा: प्रियत्वेऽधिकृता: न संस्तव: ।[37]

भारवि का मानना है कि प्रेम में गुण बसते हैं किसी भौतिक पदार्थ में नहीं–

बसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि ।[38]

भारवि का कहना है कि संसार में सौंदर्य की प्राप्ति कठिन नहीं है, किन्तु गुणों की प्राप्ति बहुत कठिन है–सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम् ।[39]

भारवि के इस सूक्ति से परस्पर संबंध एवं आत्मीयता का बोध इस प्रकार होता है: अपने बान्धव को कोई न भी पहचान पाये तथापि उसे देखकर मन में प्रबल हर्षोद्रक होता ही है–अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात्प्रह्लादते मन:[40]

भारवि का मानना है कि किसी उद्देश्य का अंतिम परिणाम क्या होगा, यह जानना कठिन है दुरधिगमा हि गति: प्रयोजनानाम्।[41] भारवि का यह कटु अनुभव है कि सभी लोग अपने वर्ग का हित चाहते हैं–आत्मवर्गहितमिच्छति सर्व: ।[42] और सभी लोग निरापद स्थान पर रहना चाहते हैं–वस्तुमिच्छति निरापदि सर्व:।[43]

भारवि की एक अन्य महत्व सूक्ति जिसमें वे संपूर्ण समस्याओं का हल सहिष्णुता और क्षमा से देखते हैं। उनका कहना है क्षमा के समान अन्य कोई साधन नहीं है–न तितिक्षा सममस्ति साधनम् ।[44]

इस प्रकार भारवि की समस्त सूक्तियां उनके शास्त्रीय पाण्डित्य से मण्डित तथा व्यापक अनुभूतियों से समन्वित हैं। उनकी नीतियां जीवन के सभी पक्षों पर पथ-प्रदर्शन करती मिलती हैं। यथावसर लोकनीति, राजनीति, कूटनीति इनके काव्य में भास्वर मणि की भांति अवस्थित है। कहीं उपमा अलंकार के द्वारा, कहीं अर्थान्तरन्यास, कहीं काव्यलिंग आदि अलंकारों के द्वारा साहित्यिक आभा से ओत-प्रोत होकर 'किरातार्जुनीयम्' में उल्लिखित है। अपनी उपादेयता के कारण इसे सूक्ति शब्द की संज्ञा दी गई है। इन सूक्तिभूत नीतियों का संकलन, स्पष्टीकरण एवं आलेखन इस शोध पत्र का एकान्त उद्देश्य है। निस्संदेह जीवन के प्रत्येक मोड़ पर इनकी सूक्तियां उपादेय, अनुकरणीय और प्रशंसनीय हैं।

संदर्भ

1. यास्कविरचित निरूक्त 1.3
2. मैदिनीकोश–185.79
3. अमरकोश 3.4.5
4. संस्कृत हिन्दी कोश (आप्टे/पृष्ठ 1109)
5. संस्कृत अंग्रेजी कोश (मोनीयार विलयम्स) 1219
6. संकृत धातु कोश पृष्ठ-109
7. अमरकोश 1.6.1
8. संस्कृत हिन्दी कोश (आप्टे) पृष्ठ 181
   संस्कृत अंग्रेजी कोश (मो.वि) पृष्ठ 172
9. संस्कृत हिन्दी कोश (आप्टे) पृष्ठ 1109
10. वाचस्पत्यम् खण्ड 6, पृष्ठ 532
11. संस्कृत अंग्रेजी कोश (मो.वि) पृष्ठ 1240
12. काव्यादर्श (दण्डी)1.34
13. औचित्य विचार चर्चा पृष्ठ 37
14. शृंगार प्रकाश, पृष्ठ 109
15. काव्यमीमांशा दशम् अध्याय
16. राजशेखर विरचित कर्पूरमंजरी 1.7
17. संस्कृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ 250
18. किरातार्जुनीयम्–2/3
19. किरात–2/5
20. किरात–1/30
21. किरात–3/17
22. किरात–1/33
23. किरात–2/21
24. किरात–17/16
25. किरात–1/4
26. किरात–14/5
27. किरात–3/31
28. किरात–14/11
29. किरात–1/8
30. किरात–1/23
31. किरात–2/30
32. किरात–3/53
33. किरात–11/12
34. किरात–11/35
35. किरात–8/4
36. किरात–12/10
37. किरात–4/25
38. किरात–8/27
39. किरात–11/11
40. किरात–11/8
41. किरात–10/40
42. किरात–9/64
43. किरात–9/16
44. किरात–2/43

संस्कृतवाङ्मय में समुपलब्ध राजनैतिक तथा ऐतिहासिक नाटकों का वैशिष्ट प्रतिपादन

पुरूषोत्तम पाण्डेय

सहायक शिक्षक, श्री परशुरामगिरि उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, जीवधारा, पूर्वी चम्पारण

संस्कृत नाट्य साहित्य अत्यन्त विकसित एवं प्रौढ़ है। इसकी अविच्छिन्न परम्परा भास से लेकर आधुनिक युग तक चलती रही है। भरत के अनुसार ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प विद्या, योग एवं कर्म नहीं हैं जो नाटक में दिखाई न पड़े।

"नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्"।।[1]
न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।[2]

नाटक भिन्न रूचि के व्यक्तियों के लिए समान रूप से मनोरंजन का साधन होता है। नाट्यं भिन्नरूचेर्जनस्य वहुधात्येकं समाराधनम्।।[3]

संस्कृत साहित्य में नाटकों का प्रणयन बहुत प्राचीन काल से होता रहा है और इसके सूत्र वेदों में भी प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद के अनेक संवाद सूक्तों में नाटक के तत्व मिलते हैं। पुरूरवा-उर्वशी-संवाद[4], यम-यमी[5], इन्द्र-इन्द्राणि, वृषा-कपि[6], सरमा-पणि[7] आदि संवादों में नाट्यकला का यथेष्ट रूप देखा जा सकता है। रामायण एवं महाभारत में भी नाटक के कई उपकरणों का उल्लेख है। इस प्रकार वैदिक काल से लेकर ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी तक नाटकों के प्रचलन एवं नाटकों की शिक्षा के लिए रचे गए ग्रन्थों के उल्लेख प्राप्त होते हैं, जिससे भारतीय नाट्य साहित्य की प्राचीनता ज्ञात होता है। ई० पू० प्रथम शताब्दी में कालिदास ने नाटकों की रचना की थी।[8]

संस्कृत नाटकों की अखण्ड परम्परा विक्रम की प्रथम शताब्दी से प्राप्त होती है। कालिदास ने मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में कविपुत्र, भास एवं सौमिल्ल नामक नाटककारों का उल्लेख किया है[9] किन्तु इनमें केवल भास की ही रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। भास का समय ई० पू० चतुर्थ शताब्दी के आस-पास है। इनकी तेरह नाट्य कृतियाँ उपलब्ध हैं, जिसका श्रेय म०म० गणपति शास्त्री को है।[10]

भास के पश्चात् संस्कृत नाटककार के रूप में कालिदास को ख्याति प्राप्त है। इन्होंने संस्कृत नाटक की समृद्ध हो रही परम्परा को अपनी प्रतिभा के संस्पर्श से आलोकित कर उसे प्रौढ़ता प्रदान की है। उनके तीन प्रसिद्ध नाटक हैं-

1. मालविकाग्निमित्रम् 2. विक्रमोर्वशीयम्
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्।

संस्कृत के तृतीय प्रसिद्ध नाटककार हैं 'शूद्रक', जिन्होंने 'मृच्छकटिक' नामक यथार्थवादी नाटक की रचना की है। इन्होंने भासकृत 'चारूदत्त' के आधार पर अपने 'प्रकरण' का निर्माण किया है। मृच्छकटिक में दस अंक हैं और ब्राह्मण चारूदत्त तथा वेश्या वसन्तसेना की प्रेम कहानी वर्णित हैं। इसका प्रतिनायक राजा का साला शकार है। इस प्रकरण में साथ-साथ दो प्रधान घटनाएँ चलती हैं जिनमें एक का सम्बन्ध वसन्तसेना तथा 'चारूदत्त' से है तथा दूसरी आर्यक की राज्य प्राप्ति से सम्बद्ध है। नाटककार प्रेम की कथा को राजनैतिक घटनाओं के साथ सम्बद्ध कर अनूठी चातुरी का परिचय दिया है और दो घटनाओं को इस प्रकार अनुस्यूत किया है कि वे पृथक् नहीं होती।

महाकवि अश्वघोष कृत तीन नाटक उपलब्ध हुए हैं जिन्हें डॉ० लूडर्स ने 1910 ई० में मध्य एशिया के तुफान नामक स्थान में प्राप्त किया था।

संस्कृत के प्रमुख नाटककारों में हर्षवर्धन का नाम आता है। महाराज हर्षवर्द्धन की तीन रचनाएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें दो नाटिकाएँ प्रियदर्शिका एवं रत्नावली है तथा एक रूपक है-नागानन्द।

भट्टनारायण के नाटक

भट्टनारायण कृत 'वेणीसंहार' संस्कृत का वीररस प्रधान नाटक है। इसकी रचना छः अंकों में हुई है और नाटक के शास्त्रीय नियमों का कठोरतापूर्वक नियोजन किया गया है। इसीलिए इसे नाट्यशास्त्रीय एवं काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। इसकी कथा पौराणिक है और महाभारत की एक प्रसिद्ध घटना को कथा का आधार बनाया गया है, और वह है दुर्योधन के रक्त से रंजित हाथों से भीमसेन का द्रौपदी के केशों को बाँधना। इसकी शैली ओजगुण से युक्त है तथा कई ओजपूर्ण संवादों का नियोजन किया गया है।

विशाखदत्तकृत मुद्राराक्षस

विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस नामक महान् नाट्यकृति की रचना की है जिसमें राजनैतिक दाँव-पेंच एवं कूटनीति की प्रधानता है। इसमें चाणक्य और राक्षस की कूटनीतिक चालों का रसात्मक वर्णन है, जिसे आचार्यों ने नाटकीय प्रविधि की सफलता के कारण शाकुन्तल के समकक्ष माना है। इसमें शृंगार रस एवं स्त्री पात्रों सहित तथा हास्य का अभाव है जो कवि की अनूठी कल्पना के रूप में प्रतिष्ठित है। कवि ने विषय के अनुरूप शैली का गठन किया है।[11]

संस्कृत नाटककारों में कालिदास के बाद महाकवि भवभूति का स्थान सर्वथा गौरवास्पद है। इनके तीन नाटक हैं - (1) मालतीमाधव (2) महावीरचरितम् एवं (3) उत्तररामचरितम्।

संस्कृत के अन्य नाटककारों में अनेक व्यक्ति आते हैं। परवर्ती नाटककारों की प्रवृत्ति अनावश्यक वर्णनों एवं काव्यशैली के चाकचिक्य की ओर गयी, फलतः संस्कृत में नाटकों की बाढ़ सी आ गई है। ऐसे नाटकों को ऐतिहासिकों ने ह्रासोन्मुखी काव्यशैली का नाटक कहा है। ऐसे नाटककारों में मुरारि आते हैं जिन्होंने 'अनर्धराघव' नामक नाटक की रचना की है। इसमें रामचरित को नाटकीय विषय बनाया गया है तथा कवि का ध्यान विविध शास्त्रों के पाण्डित्य-प्रदर्शन तथा पदलालित्य की ओर अधिक है। इसमें नाटकीय वर्णनों एवं ललित पदों के भार से बोझिल हो उठा है। इसी शताब्दी के अन्य नाटककारों में 'हनुमन्नाटक' के रचयिता दामोदर मिश्र एवं राजशेखर हुए। राजशेखर ने तीन नाटक एवं एक सट्टक-'कर्पूरमंजरी' लिखा हैं। तीन नाटक हैं - 'विद्धशालभंजिका', 'बालरामायण' एवं 'बालमहाभारत'। विद्धशालभंजिका चार अंकों की नाटिका है तथा 'बालरामायण' दस अंकों का 'महानाटक' है, जिसमें रामायण की कथा वर्णित है। 'बालमहाभारत' के दो ही अंक उपलब्ध हुए हैं। राजशेखर ने अपने नाटकों में लम्बे-लम्बे वर्णनों का समावेश किया है जो नाट्यकला की दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। 'हनुमन्नाटक' 14 अंकों का महानाटक है, जिसमें प्रकृति प्राकृत का प्रयोग नहीं है और गद्य से अधिक पद्यों की संख्या है। बौद्ध आचार्य दिङ्नाग (1000 ई०) ने 'कुन्दमाला' नामक नाटक में 'उत्तररामचरित' की कथा का वर्णन किया है जो 6 अंकों में समाप्त हुआ है। इन पर भवभूति की शैली का अधिक प्रभाव देखा जा सकता है।

संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक

ऐतिहासिक इतिवृत्त को आधार बनाकर लिखित नाटक ऐतिहासिक नाटक की श्रेणी में आते हैं। संस्कृत साहित्य में पुराणों, रामायण और महाभारत से कथानक लेकर अनेक नाटक प्रणीत हुए हैं। पुराणों में भी इतिहास का स्वरूप मुखरित है। अतः रामायण और महाभारत को उपजीव्य बनाकर जिन नाटकों की रचना हुई है, वे सभी संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक मान्य है। संस्कृत में रामायण को उपजीव्य बनाकर रचित नाटक निम्नलिखित हैं -

(1) प्रतिमानाटक - भास - लगभग 400 ई०पू०
(2) अभिषेक - भास - लगभग 400 ई०पू०
(3) यज्ञफल - भास - लगभग 400 ई०पू०
(4) महावीरचरित - भवभूति - 700 ई० के लगभग
(5) उत्तरामचरित - भवभूति - 700 ई० के लगभग
(6) अनर्घराघव - मुरारि - 800 ई० के आप-पास
(7) आश्चर्यचूडामणि - शक्तिभद्र - 800 ई०
(8) हनुमन्नाटक - दामोदर मिश्र - 850 ई० के पूर्व
(9) बालरामायण - राजशेखर - 900 ई० के लगभग
(10) कुन्दमाला - 1000 ई० के लगभग -
(11) प्रसन्नराघव - जयदेव - 11वीं शताब्दी
(12) उन्मत्त राघव - 'भास्कर' - 1350 ई०
(13) उन्मत्त राघव - विरूपाक्ष - 1350 ई०
(14) आनन्दराघव - 1620 ई०
(15) अद्भूत दर्पण - महादेव - 1650 ई०
(16) जानकी परिणय - रामचन्द्र - 1700 ई०

उपर्युक्त विवेचन से संस्कृत के ऐतिहासिक नाटकों की अपेक्षित जानकारी प्राप्त होती है।

संस्कृत के राजनीतिक नाटक

नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नाटक के कथानक के सम्बन्ध में उल्लेख है कि उसे ख्यात अर्थात् इतिहास प्रसिद्ध होना चाहिए। उसका नायक राजा प्रतापी और गुणवान होना चाहिए। इस दृष्टि से विचार करने पर ऐतिहासिक नाटकों में राजनीतिक तत्त्व का समावेश होने पर वह राजनीतिक नाटक का रूप धारण कर लेता है। आचार्य विश्वनाथ ने नाटक के लक्षण का उल्लेख करते हुए साहित्यदर्पण में लिखा है -

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसंधिसमन्वितम्। विलासहृदयादिगुणवर्द्धकं नानाविभूतिभिः सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम्।

पञ्चादिकादशपरास्तत्ताङ्काः परिकीर्तिताः।। प्रख्यातवंशो राजर्षिः धीरोदात्तः प्रतापवान्। दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः।[12]

राजनीति प्रधान काव्यों या नाटकों में छः गुणों, चार उपायों और त्रिवर्ग वाली राजनीति का निरूपण और उनका उपयोग होता है। राजनीति के छः गुण निम्नलिखित है- (1) सन्धि (2) विग्रह (3) यान (4) आसन (5) संश्रय (6) द्वैधीभाव।

राजनीति में वर्णित चार उपाय-साम, दाम, दण्ड और भेद।

राजनीति में निरूपित त्रिवर्गवाली राजनीति निम्नलिखित है- धर्म, अर्थ और काम। कौटिल्य के अर्थशास्त्र और शुक्रनीति आदि में इनका स्पष्ट उल्लेख है-

''सन्धिविग्रहासयानसंश्रयद्वैधीभावाः वाडगुणयामित्याचार्यः सन्धिं च विग्रहं यानव्यासं न च समाश्रयम्।

द्वैधीभावं च संविधान्मन्त्रस्यैतांस्तु षड्गुणान्।।[14]

'रामायण' और 'महाभारत' में राजनीति का सम्यक् निरूपण हुआ है। अतः उपर्युक्त दोनों ऐतिहासिक काव्यों को उपजीव्य बनाकर रचित नाटक ऐतिहासिक और राजनीतिक दृष्टि से विचार करने पर भास प्रणीत प्रतिज्ञायौगन्धरायण, दूतवाक्य एवं भवभूति प्रणीत महावीरचरित, भट्टनारायण कृत 'वेणीसंहार' और विशाखदत्त प्रणीत 'मुद्राराक्षस' विशेष उल्लेखनीय है। राजनीतिक सिद्धान्तों का तो यह नाटक आकर है।

उपर्युक्त विवेचन से संस्कृत नाट्य-परम्परा में ऐतिहासिक और राजनीतिक नाटकों की कथावस्तु, घटनाओं एवं विशेषताओं, रसाभिव्यक्ति आदि का पता चलता है।

संदर्भ संकेतः

(1) भरत - नाट्यशास्त्र - 1/109
(2) भरत - नाट्यशास्त्र - 1/114
(3) कालिदास - मालविकाग्निमित्रम्
(4) ऋग्वेद - 10/95
(5) ऋग्वेद - 10/10
(6) ऋग्वेद - 10/86
(7) ऋग्वेद - 10/108
(8)डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'
(9)कालिदास - मालविकाग्निमित्रम् (प्रस्तावना)
(10) डॉ० कपिलदेव द्विवेदी - संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास पृ0 275-76
(11) डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा' - संस्कृत साहित्य कोश पृ० 621
(12) विश्वनाथ - साहित्यदर्पण - 6/7, 8, 9
(13) चाणक्य - कौटिल्य अर्थशास्त्र - 7:1 पृ० 460
(14)शुक्राचार्य - शुक्रनीति - 4-7-23

स्त्री विषयक प्रवासी साहित्य का स्वरूपः एक विमर्शात्मक अध्ययन

नीलिमा पाण्डेय

शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, गोरखपुर विश्वविद्याल, गोरखपुर

साहित्य के विशाल वृक्ष की कई समृद्ध और शक्तिशाली शाखाओं में एक शाखा प्रवासी साहित्य की भी है। जो दिन-प्रतिदिन अपनी रचना धर्मिता से हिंदी के साहित्य को सघन बनाने के साथ - साथ पाठक वर्ग को प्रवास की संस्कृति, संस्कार एवं उस भूगोल से जुड़े लोगों की स्थिति से परिचित कराने का काम कर रही है। भारतीय साहित्य का वैश्वीकरण करने हिंदी भाषा के साहित्यकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारतीय साहित्य भी प्रवासी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ अंग माना जाता है। वैसे तो हिंदी साहित्य पश्यातप का साहित्य न बनकर जड़ों का या देशप्रेम का साहित्य है। पिछले कुछ वर्षों से प्रवासी साहित्य को केन्द्र में रखकर विचार-विमर्श किया जा रहा है। ऐसा कहा जाता आई कि साहित्य समाज का दर्पण है फिर चाहे वो भारतीय समाज हो या दूसरे देशों का समाज हो। प्रवासी साहित्य का संबंध प्रवासी लोगों द्वारा लिखे जाने वाले साहित्य से हैं। प्रवास प्रकृति का नियम है। प्रवासी साहित्य में लेखकों ने भारतीय संवेदना, संस्कृति, संस्कार, विदेशों में रहनेवाले के प्रति होनेवाले शोषण, भेदभाव आदि को चित्रित करने का प्रयास किया गया है।

'प्रवास' शब्द उन लोगों के उपयोग किया गया है कि जो शौक या मजबूरी वश दूर देशों में बसा दिए गए थे या वे स्वयं रोजगार की तलाश में दूसरे देशों की यात्रा में चल पड़े द्य इन लोगों ने अपनी मेहनत से वहाँ की जनसंख्या में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई , और अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए खुद को शक्तिशाली बनाया द्य प्रवासी भारतीयों ने अपना स्नेह, वेदना, परिस्थिति इत्यादि के लिए, अपनी प्रस्तुती के लिए, उसे सुरक्षित रखने के लिए रचनाकर्म का आधार लिया। सारे विश्व में भारत ही एक देश है जहाँ से लोग भारी संख्या में दूसरे देशों में पलायन करने के लिए चल पड़ते हैं। आज भूमंडल के अलग-अलग देशों में भारतवासी बसें हैं। विदेश जाना और वहाँ बसना अब कोई कठिन समस्या नहीं है, किन्तु वहाँ रहकर लेखन कार्य करना प्रवासियों का अलग ही पृष्ठभूमि निर्मत करता है। साहित्य उसी भाषा में लिखा जाता है जिस भाषा के संस्कार व्यक्ति को बचपन से मिलते हैं। प्रवासी लेखक प्रवास के दु:ख दर्द की संवेदनाओं के साथ अपने देश के संस्कारों को जोड़कर उनमें फैली हुई विषमताओं को शब्दों के द्वारा कागज पर उतार देता है और यही संवेदनाएँ सबसे जुड़ी संवेदनाएँ बन जाती है।

आज के प्रवासी रचनाकारों से ये अपेक्षाएं की जाती हैं कि वह समन्वय की पद्धति से काम करें और देश, विश्व की सभी कठिनाइयों से सुरक्षित रहने का वर्णन करके प्रवासी साहित्य की पृष्ठभूमि तैयार करने का प्रयास करें।

रूस, अमरीकी और यूरोप के हिंदी साहित्य की यह सुंदरता है किवह अपनी जड़ों की, अपनी अस्मिता की तथा अपनी भारतीय पहचान को चित्रित करके प्रवासी साहित्य की पृष्ठभूमि को तैयार करते हैं। - ''हालाँकि इन देशों में भारतवंशी लेखक अंग्रेजी में लिख रहें हैं तथा कुछ को तो विश्व में ख्याति और धन भी मिला है परन्तु ये भारतवंशी अंग्रेजी लेखक स्वयं को भारत का कालिमा पूर्ण चित्र ही प्रस्तुत करते है। अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि देशों के भारत वंशी हिंदी लेखक स्वयं को भारतीय लेखक मानते हैं और रचनाओं में देशी पहचान और भारतीय संस्कृति को मजबूत आधार देते हैं। विश्व के कई देशों में विश्व हिंदी संमेलन हुए, भारत के हिंदी लेखकों एवं प्रवासी के हिंदी लेखकों का भारत में सम्मान होने लगा, देश की साहित्य अकादमियों ने प्रवासी हिंदी साहित्य पर गोष्ठियां की, 'प्रवासी भारतीय दिवस' तथा 'डायस्पोरा' आरम्भ किया गया, प्रवासी लेखकों की कृतियाँ भारत में छपती रही और उन पर चर्चाएँ हुई और हिंदी विश्व में प्रवासी हिंदी साहित्य की प्रतिष्ठा तथा उसे हिंदी की मुख्य धारा में उचित स्थान देने की मांगे उठने लगी और हिंदी साहित्य ने इस प्रयत्न शुरु किये।

10 जनवरी 2003 को भारतीय प्रवासी दिवस मनाये जाने के साथ ही दिल्ली में प्रवासी हिंदी उत्सव का श्री गणेश हुआ। प्रवासी हिंदी उत्सव में लोगों को चित्रित करने और प्रोत्साहित करने के कार्य की तरफ प्रोत्साहित करने हेतु भारत की केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारों तथा व्यक्तिगत संस्थाओं ने रुचि ली, जो विदेश में रहते हुए भी हिंदी लेखन कार्य करते रहें थे।

प्रवासी हिंदी साहित्यकार अलका शर्मा चॉइस ऑफ अमेरिका में कुछ समय तक कार्यरत थी। बाद में लंदन में बी.बी.सी की हिंदी सेवा की अध्यक्ष है। इनके लेखन में भारतीय सम्मान की संवेदना की अभिव्यंजना दृष्टिगोचर होता है। अर्चना पैन्यूली डेनमार्क में रहती है। इनकी रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई है। अनिल कुमार प्रभा अमेरिका में रहती है। वॉइस ऑफ अमेरिका में कार्यरत रही है। न्यू जर्सी में अध्यापिका है हिंदी और साहित्य की। इला प्रसाद

प्रौद्योगिकी से जुड़ी हुई है। उमेश अग्निहोत्री अमेरिका में रहती है। उषाराजे सक्सेना प्रसिद्ध साहित्यकार है। इंग्लैण्ड को कर्मभूमि बनाकर प्रवासी हिंदी साहित्यकारों में अधिक सक्रिय भूमिका निभाई है। इनके साहित्य में भारत, भारतीय संस्कृति, सभ्यता और भाषा के प्रति के हर प्रकार के अनुभव रथ विचार प्रकट होता दृष्टिगोचर होता है। उषा वर्मा यार्क विश्वविद्यालय में कई वर्षों से हिंदी पढ़ाती है। भारतीय तथा विदेशी पत्र पत्रिकाओं में ये बहुत लिखती रहती है। हिंदी शब्दकोशों में 'प्रवासी' का अर्थ प्राप्त होता है -विदेशों में रहनेवाले भारतीय। आठवें हिंदी संमेलन पर उस समय के विदेश मंत्री प्रणव मुखर्जी के महत्वपूर्ण संदेश का अंश है - 'हिंदी का महत्व केवल इसलिए नहीं कि इस देश के एक बड़े भू- भाग में बोली जाती है, बल्कि इस लिए भी है कि इसमें अन्य भाषाओं की अपने अंदर समाहित करने की उदारता है। हिंदी प्रवासी साहित्यकारों में दूसरी लेखिकाएँ भी हैं जैसे -सुधा ओम ढींगरा, सुषम वेदी, जकिया जुबैरी, नीला पॉल इत्यादि। इस प्रकार यहाँ पर प्रवासी साहित्य की पृष्ठभूमि स्थापित की गई है।

प्रवासी साहित्य का संबंध प्रवासी लोगों द्वारा लिखे साहित्य से है। प्रश्न यह उठता है ये प्रवासी लोग कौन हैं और इनके साहित्य की विशेषता अथवा सुंदरता क्या है, इसी से जुड़ा है इस साहित्य का स्वरूप और सौंदर्यशास्त्र।

आजकल साहित्य में कई विमर्श प्रचलित हैं। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श की तरह इधर प्रवासी विमर्श ने भी जगह बनाई है। प्रवासी विमर्श की सुन्दरता यह है कि इसके अंतर्गत रचनात्मक साहित्य अधिक लिखा गया है। इसके आलोचनात्मक पक्ष पर उतना बल नहीं दिया गया है।

कमलेश्वर ने प्रवासी साहित्य पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि - 'रचना अपने मानदंड खुद तय करती है इसलिए उसके मानदंड बनाए नहीं जाएंगे। उन रचनाओं के मानदंड तय होंगे।

प्रवासी लोगों की 3 श्रेणियां बनाई जा सकती हैं। एक श्रेणी में वे लोग हैं, जो गिरमिटिया मजदूरों के रूप में फिजी, मॉरीशस, त्रिनिडाड, गुआना, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में भेजे गए थे। दूसरी श्रेणी में 80 के दशक में खाड़ी देशों में गए अशिक्षित-अर्द्धशिक्षित, कुशल अथवा अर्द्धकुशल मजदूर आते हैं। तीसरी श्रेणी में 80 - 90 के दशक में गए सुशिक्षित मध्यवर्गीय लोग हैं जिन्होंने बेहतर भौतिक जीवन के लिए प्रवास किया।

इन तीन तरह की श्रेणियों में से, साहित्य के वर्तमान समय में, अंतिम श्रेणी का ही प्रभुत्व जैसा दिखाई देता है। गिरमिटिया मजदूरों की बाद की पीढ़ियों में से अधिकांश ने रोजगार तथा अन्य कारणों से हिन्दी या भोजपुरी के अलावा दूसरी अंतरराष्ट्रीय भाषाओं को अपना लिया। मॉरीशस के अभिमन्यु अनत ही एक ऐसे लेखक हैं जिनको उल्लेखनीय माना जाता है। उनके उपन्यास 'लाल पसीना ने काफी प्रशंसा पाई है। फिजी, त्रिनिडाड, अफ्रीका अथवा गुआना से कोई ऐसा लेखक चर्चित नहीं हुआ जिसको प्रवासी लेखन में ख्याति प्राप्त हुई हो।

इन दो वर्गों के लेखन को ही प्रवासी साहित्य की संज्ञा दी गई है। वस्तुतः, पराए देशों में पराए होने की अनुभूति और उस अपरिचित परिवेश में समायोजन के प्रयास, नॉस्टेल्जिया, सफलताएं और असफलताओं को ही प्रवासी साहित्य का आधार माना जा सकता है। राजेन्द्र यादव ने प्रवासी साहित्य को इसीलिए - 'संस्कृतियों के संगम की खूबसूरत कथाएं कहा है। हालांकि यह केवल संगम नहीं है बल्कि कई अर्थों में तो मुठभेड़ है।

साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि प्रवासी साहित्य, नॉस्टेल्जिया के रचनात्मक रूपों के समुच्चय है। नॉस्टेल्जिया को प्रथम दृष्टया नकारात्मक मूल्य माना जाता है, परंतु यह उचित नहीं होगा। नॉस्टेल्जिया का अर्थ है- घर की याद या फिर अतीत के परिवेश में विचरना।

प्रवासी साहित्य में नॉस्टेल्जिया या पराएपन की अनुभूति, रचनात्मक यात्रा का केवल पहला चरण है। दूसरे चरण में, इस मनःस्थिति से संघर्ष शुरू होता है और तीसरे चरण में अपनी नई पहचान को स्थापित करने की जद्दोजहद दिखाई पड़ती है।

इन तीनों ही चरणों में, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण होता है। खान-पान, पहनावा, बोली-भाषा, पर्व-त्योहार का भी उल्लेख आता है। प्रवासी साहित्य में कविता, कहानी, उपन्यास, गजल आदि विधाओं में मुख्यतः लिखा गया है। परंतु कहानी इस विमर्श की प्रधान विधा बन गई है।

सुषम बेदी, सुधा ओम ढींगरा, जकिया जुबैरी, नीना पॉल, दिव्या माथुर, उषा वर्मा, जय वर्मा और उषा राजे सक्सेना ने प्रवासी लेखिकाओं के रूप में अपनी महत्वपूर्ण जगह बनाई है।

सुषम बेदी का हवन और मैंने नाता तोड़ा उपन्यास काफी चर्चा में रहा। इसमें अमेरिका के परिवेश में एक विधवा स्त्री के जीवन को दिखाया गया है। इसके अलावा उनके कहानी संग्रह चिड़िया और चील ने भी पर्याप्त ख्याति पाई है।

जकिया जुबैरी के कहानी संग्रह सांकल में स्त्री मन की कशमकश को चित्रित किया गया है। जकियाजी की कहानियों में नॉस्टेल्जिया और वहां परिवार के बीच की स्थितियों का मार्मिक चित्रण मिलता है। मां और बेटी के अलावा, मां और पुत्र के बीच स्वाभिमान को बहुत ही संवेदनशील ढंग से उकेरा गया है। सांकल के अलावा मारिया और लौट आओ तुम ऐसी ही कहानियां हैं।

नीना पॉल ने दो उपन्यास 'तलाश' और 'कुछ गांव-गांव कुछ शहर-शहर' लिखे हैं। इसके अलावा उनके दो कहानी संग्रह भी हैं। कुछ गांव-गांव कुछ शहर-शहर उपन्यास में इंग्लैंड के लेस्टर शहर के बनने की कहानी के साथ-साथ गुजरातियों के वहां जमने और संघर्ष करने को गूंथा गया है। उपन्यास में निशा के माध्यम से एक गुजराती परिवार की तीन पीढ़ियों का संघर्ष दिखाया गया है। निशा, उसकी मां सरोज बेन और निशा की नानी सरला बेन। गुजरात से युगांडा और युगांडा से लेस्टर पहुंचे हैं। इन भारतीयों की कठोर मेहनत करने की क्षमता और कुशल व्यापार बुद्धि ने एक नए देश में भी धीरे-धीरे उन्हें इज्जत दिला दी। इस उपन्यास की सुंदरता यह है कि इसमें उपन्यासकार ने संतुलित और निष्पक्ष दृष्टिकोण अपनाया है। भारतीयों के साथ हुए भेदभाव तो

दिखाए ही गए हैं, लेकिन अंग्रेज के कानून के पाबंद होने को भी ईमानदारी से दिखाया है। साथ ही, लेस्टर के इतिहास और भूगोल के सुंदर चित्र खींचे गए हैं। उपन्यास को पढ़कर लेस्टर का पूरा नक्शा स्पष्ट हो जाता है। दिव्या माथुर की शुरुआती कहानियों में कहानी का शिल्प कम और संवेदना अधिक है अर्थात कहानी में चरित्र-चित्रण, संवाद, वातावरण की अपेक्षा, वे कथ्य पर फोकस करती हैं। जो उन्हें कहना है, वही उनके लिए मुख्य रहता है। तमन्ना कहानी में एक ऐसी भारतीय बहू की कथा है, जो लगातार तनाव में है। झांसी में उसका एक सड़कछाप प्रेमी था, जो शादी के बाद भी उसे धमकीभरे खत लिखता है। सास उसे समझाती है। पंगा और अन्य कहानियां तथा 2050 जैसी कहानियों तक पहुंचते-पहुंचते उनकी कहानियों में शिल्प का प्रबल आग्रह दिखाई देने लगता है। शिल्प का ऐसा ही प्रयोग उन्होंने अपने पहले उपन्यास में किया है। शाम भर बातें नाम के इस उपन्यास में शुरू से आखिर तक केवल संवाद ही संवाद हैं अर्थात बातें ही बातें हैं। इन बातों के बीच ही इंसान की इंसानियत और हैवानियत, व्यवस्था के विद्रूप तथा परिस्थितियों के पेंच सामने आते हैं। उपन्यास एक पार्टी में खुलता है और उसका अंत भी पार्टी के साथ ही होता है। यह पार्टी मकरंद मलिक और मीता मलिक के घर में हो रही है। हैरानी की बात यह है कि लंदन शहर में चलने वाली इस पार्टी में लगभग सभी मेहमान भारतीय हैं। इसकी समाजशास्त्रीय पड़ताल की जरूरत है कि आखिर क्या वजह है कि वहां भारतीय समुदाय और दूसरे समुदायों के बीच समाजीकरण की प्रक्रिया एकदम मंद है। युवा पीढ़ी में जरूर यह बदलाव दिखता है, परंतु भारतीय पीढ़ी पूरी तरह से बंद जीवन जीती है। उनके रहन-सहन और सोचने के तरीके भी भारतीय मध्यवर्गीय चरित्रों की तरह हैं। उच्चायोग से आए अधिकारी अपने को बहुत उच्च स्थान पर मानते हुए अन्य भारतीयों के साथ तुच्छ व्यवहार करते हैं। शामभर बातें उपन्यास में लंदन में बसने वाले अधिकांश भारतीयों की मनोवृत्ति और सामाजिक व्यवहारों का सूक्ष्म चित्रण किया गया है।

सुधा ओम ढींगरा ने कौन सी जमीन अपनी कहानी संग्रह से अपनी जगह बनाई। सुधाजी का लेखन एक सांस्कृतिक सेतु की तरह है। अमेरिका में मस्त और व्यस्त भारतीय पीढ़ी के बीच त्रस्त पीढ़ी के भी चित्र उनकी कहानियों में दिखाई देते हैं। उनकी कहानियों में भारत की स्मृति के क्षण भी हैं तो अमेरिका में अपनी पहचान जमाने के चित्र भी हैं। टारनेडो कहानी भारत की याद और उसकी खुशबू की कहानी है, वहीं क्षितिज से परे कहानी में एक प्रताड़ित स्त्री के विद्रोह को दर्शाया गया है। कौन सी जमीन अपनी कहानी की शुरुआत ही अपने वतन की याद से होती है।- श्श्ओये मैंने अपना बुढ़ापा यहां नहीं काटना, यह जवानों का देश है, मैं तो पंजाब के खेतों में, अपनी आखिरी सांसें लेना चाहता हूं। जब वह अपने बच्चों को कहता, तो बेटा झगड़ पड़ता, 'अपने लिए आप कुछ नहीं सहेज रहे और गांव में जमीनों पर जमीन खरीदते जा रहे हैं।'

यह कहानी एक तरफ नॉस्टेल्जिया की भावुकता को प्रकट करती है तो दूसरी ओर यथार्थ की वीभत्स जमीन को भी उजागर करती है। मनजीत सिंह अपनी पत्नी मनविंदर के साथ अमेरिका में रहता है। दो होनहार बच्चे हैं, जो डॉक्टरी और वकालत पढ़कर वहीं विवाह कर लेते हैं। बेटा और मां दोनों ही मनजीतसिंह को समझाते रहते हैं कि पंजाब में अपने भाई को जमीन खरीदने के लिए बार-बार पैसा न भेजा करे, परंतु वह मानता ही नहीं। बच्चों की शादी के बाद जब वह और उसकी पत्नी मनविंदर नवांशहर, पंजाब अपने पैतृक गांव पहुंचते हैं तो उनके साथ मेहमानों की तरह व्यवहार किया जाता है। मनजीत को यह अटपटा लगता है। छोटा भाई ही नहीं, मां और बाप भी बदल जाते हैं।

मनजीत जब अपने पैसों से खरीदी हुई जमीनों के हक की बात करता है तो भाई बुरी तरह क्रोध में आ जाता है। रात में मनजीत को भाई की फुसफुसाहटभरी आवाज से पता चलता है कि उसकी योजना दोनों की हत्या कर ठिकाने लगाने की बन चुकी है। इसमें वह पुलिस को भी शामिल होने की बात कहता है। उसका मन छलनी हो जाता है। इसी द्वंद्व में, वह एक रात पानी पीने उठा, तो नीचे के कमरे में कुछ हलचल महसूस की, पता नहीं क्यों शक-सा हो गया। दबे पांव वह नीचे आया, तो दारजी के कमरे से फुसफुसाहट और घुटी-घुटी आवाजें आ रही थीं। दोनों भाई दारजी को कह रहे थे- 'मनजीत को समझाकर वापस भेज दो, नहीं तो हम किसी से बात कर चुके हैं, पुलिस से भी साठगांठ हो चुकी है। केस इस तरह बनाएंगे कि पुरानी रंजिश के चलते, वापस लौटकर आए एनआरआई का कत्ल। मनजीत और मनविंदर रात को ही चुपचाप घर छोड़कर निकल जाते हैं। मनजीत चलते वक्त मनविंदर से पूछता है- 'जान नहीं पा रहा हूं कि कौन सी जमीन अपनी है।

सुधा ओम ढींगरा की कहानियों की यही सुन्दरता है कि उसमें आदर्श का संसार भी है, परंतु वह मूल रूप से यथार्थ की जमीन पर खड़ा है। आदर्श जल्द ही यथार्थ से खंडित हो जाता है। उनके यहां कुछ कहानियां ऐसी भी हैं, जो विदेश के ही चरित्रों और स्थितियों पर केंद्रित हैं। ये कहानियां वास्तव में एक भारतीय की नजर से विदेशी भूमियों को देखना है।

उनकी एक कहानी सूरज क्यों निकलता है, को पढ़ते हुए पाठक को सहसा ही प्रेमचंद के घीसू और माधव याद आने लगें, तो कोई आश्चर्य नहीं। घीसू और माधव के बरअक्स जेम्स और पीटर ज्यादा निर्लज्ज और अराजक हैं। घीसू और माधव कम से कम काम इसलिए नहीं करना चाहते कि वहां काम का कोई उचित मूल्य नहीं बचा है। इसलिए प्रेमचंद उन्हें ज्यदा विचारवान भी कहते हैं। परंतु सुधा ओम ढींगरा के ये दोनों पात्र काम करना ही नहीं चाहते और अय्याशी पूरी करना चाहते हैं। उनकी मां टैरो भी ऐसी ही थी और लगभग सभी भाई-बहन भी। वे होमलेस होने का बहाना कर भीख मांगते हैं, सूप किचन में मुफ्त में खाना खाते हैं, शैल्टर होम में सो जाते हैं। ये सब सुविधाएं अमेरिका की सरकार गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों के लिए प्रदान करती है। एक भारतीय की नजर से इस यथार्थ को देखते हुए कहानीकार ने बहुत भी सूक्ष्म घटनाओं और गतिविधियों का ब्योरा दिया है। इसमें वेश्यावृत्ति, शराबखोरी की लत, ड्रग्स पैडलर्स आदि सब शामिल हैं। जय वर्मा ने इधर कहानी के क्षेत्र में कदम बढ़ाया है, परंतु उनकी कहानियों ने एक संवेदनशील कथाकार की उम्मीद जगाई है। सात कदम उनकी ऐसी ही कहानी है, जो अपनी संरचनात्मक बुनावट और संवेदनात्मक कारीगरी के लिए याद रखने योग्य है। उषाराजे सक्सेना

की कहानी वो रात बेहद चर्चित कहानी रही। एक मां और उसके छोटे बच्चों के साथ कल्याणकारी राज्य की भूमिका पर केंद्रित इस कहानी की मर्मस्पर्शी संवेदना झकझोर देती है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि एक परिघटना के रूप में यह साफ दिखाई देता है कि पूरे प्रवासी साहित्य की बागडोर स्त्री रचनाकारों के हाथ में है। एक नई दुनिया का पता और उसकी आंतरिक गतिविधियों की सूचना इन कथाकारों की कहानियों और उपन्यासों से पाठकों को मिलाती है। इन कथाकारों की रचनाशीलता ने हिन्दी साहित्य का परिदृश्य और विस्तृत किया है।

संदर्भ- संकेत

1. डॉ. कमल किशोर गोयनका, हिंदी का प्रवासी साहित्य, प्रथम संस्करण 2011, अमित प्रकाशन पृ.47
2. वही पृ. 50
3. प्रणव मुखर्जी विदेश मंत्री - आठवें विश्व संमेलन में भाषण
4. कुछ गांव-शहर कुछ शहर-शहर. नीना पॉल. पृ.43
5. कौन सी-जमीन अपनी. डॉ. सुधा ओम ढींगरा पृ.60
6. शाम भर बातें. दिव्या माथुर पृ.34
7. चिड़िया और चील. सुषम बेदी. पृ 55
8. हवन. सुषम बेदी. पृ. 18

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में कामायनी की प्रासंगिकता

डॉ० यशवन्त यादव

सहायक आचार्य (हिन्दी), राजकीय महाविद्यालय, सैदाबाद, प्रयागराज

कोई भी कालजयी रचना अपने युग की समस्याओं को अनिवार्य रूप से पहचान कर चलती है। कोई भी संवेदनशील रचनाकार युगीन समस्याओं से आँख मूँदकर सृजन कर ही नहीं सकता। महाकवि जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'कामायनी' निश्चित रूप से ऐसी ही एक कालजयी अमूल्य कृति है, जिसके माध्यम से रचनाकार ने आधुनिक मानवीय सभ्यता के यथार्थ को शब्द देने का स्तुत्य प्रयास किया है। 1936 के इर्द गिर्द स्वरूप प्राप्त करने वाली यह रचना अपनी 'चिंता' से 'आनन्द' तक की यात्रा में यदि एक ओर मानवीय सभ्यता के विकास की कहानी कहती है तो वहीं दूसरी ओर आधुनिक मानव की मूल समस्याओं पर भी दृष्टिपात किये बिना नहीं रह पाती। प्रसाद जी 1936 के इर्द-गिर्द के सच को बहुत गहराई से महसूस करते हुए निश्चित रूप से बुद्धिवाद, भौतिकतावाद एवं यन्त्रवाद के परिणाम को सूक्ष्म दृष्टा की तरह देख रहे थे, तभी तो बुद्धि एवं भावना के बीच पनपने वाले द्वैतभाव एवं आन्तरिक स्तर पर इच्छा, क्रिया एवं ज्ञान के आपसी अलगाव की आन्तरिक पीड़ा महाकवि के सृजन की मूल प्रेरणा रही है-

ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिले सके, यह विडम्बना है जीवन की।।[1]

अमुक पक्तियाँ मात्र रचना एवं रचनाकार की वास्तविक पीड़ा का ही प्रतिनिधित्व नहीं करती बल्कि इसमें समष्टि का अभिशाप अभिव्यक्त होता है। कामायनी के प्रारम्भ में ही रचनाकार ने यदि एक ओर अतुल वैभव सम्पन्न एवं चरम भोगवाद की प्रतीक देव सभ्यता के विनाश की सूचना देकर आधुनिक सभ्यता में निरन्तर बढ़ती हुई भोगवादी एवं भौतिकतावादी प्रवृत्तियों की ओर संकेत कर दिया है तो दूसरी ओर प्रलय का दृश्य प्रस्तुत करते हुए तत्कालीन विभीषिका को गहराई से पहचानने का उपक्रम किया है-

हिम गिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाँह।
एक पुरूष भीगे नयनों से, देख रहा था प्रलय प्रवाह।।[2]

यह एक पुरूष कथा के परिप्रेक्ष्य में कथानायक मनु हैं जो वर्तमान की भयावहता एवं अतीत की सुखद स्मृतियों के संगम में खोया हुआ है। प्रसाद जी ने स्पष्ट करना चाहा है कि यहाँ यह मनु उस आधुनिक मानव का भी प्रतिनिधि हो जाता है जो निरन्तर अपने विकास में सुखद दुखद अनुभूतियों से युक्त अतीत एवं वर्तमान पाने एवं खोने या यों काहें कि विध्वंस एवं निर्माण की सतत् वेदना से अभिशप्त है। देव सभ्यता के विनाश के कारणों पर भी टिप्पणी करते हुए प्रसाद जी ने पूर्व दीप्ति शैली में नायक मनु की तरफ से आधुनिक मानव की समस्याओं की ओर संकेत करना चाहा है-

स्वयं देव थे हम सब तो, फिर क्यों न विश्रृंखल होती सृष्टि।
अरे अचानक हुई इसी से, कड़ी आपदाओं की वृष्टि।।
गया, सभी कुछ गया मधुरतम, सुर बालाओं का श्रृंगार।
उषा ज्योत्स्ना-सा यौवन स्मित, मधुप-सदृश निश्चिंत विहार।।[3]

महाकवि देव सभ्यता के सुखोपभोग एवं उसकी वासना विजड़ित स्थितियों की ओर पाठकों के ध्यान को आकर्षित करने के लिए 'भरी वासना सरिता' पद विन्यास के द्वारा मर्म को पकड़ने का प्रयास करते हैं और साथ ही साथ यह भी स्पष्ट करना नहीं भूलते कि आधुनिक मानवीय सभ्यता निरन्तर पीड़ा, द्वन्द्व, अनिर्णय एवं अविश्वास के बढ़ते हुए कसैले संवेदनों से युक्त होती जा रही है। वैसे भी वर्तमान की पीड़ा में जब अतीत का सुख कौंध जाता है तो पीड़ा और भी पीड़ान्तक हो जाती है। परिणामत: व्यक्ति अपने को निराशा एवं हताशा के भयावह अंधकार से घिरा हुआ पाता है, मनु की वैयक्तिक अनुभूतियों के क्षणों में मानव मन के इस अंधकार की थाह महाकवि ने लेनी चाही है-

विस्मृति आ, अवसाद घेर ले, नीरवते! बस चुप कर दे।
चेतनता चल जा, जड़ता से, आज शून्य मेरा भर दे।।[4]

यह माना जाता है कि कामायनीकार ने अपने मनु के माध्यम से सहज मानव की सहज मन:स्थिति को भी शब्द देने का प्रयास किया है, तभी तो यह मनु तरह-तरह से पीड़ा को, चिंता को कोसता हुआ सामने आता है। यहाँ तक कि चिंता को प्रसाद जी ने ''अरी पाप है तू जा, चल जा, यहाँ नही कुछ तेरा काम'' ऐसे कुछ शब्दों का प्रयोग किया है, स्पष्ट लगता है कि अपने वर्तमान की विसंगतियों से रचनाकार बेहद क्षुब्ध है, इसीलिए तो कामायनीकार ने अपने मनु की स्केच तैयार करने के क्षणों में इसे सहज दुर्बलताओं से युक्त बताया है। ध्यातव्य है कि यहाँ प्रसाद ने अपने को आदर्शवादी नायकों की परम्परा से अलग रखने का प्रयास किया है, और सहज इन्द्रियजन्य मनोविकारो को रूपायित किया है।

रचनाकार वही रचनाकार है जो अपने रचनागत वैशिष्ट्य में समय के ज्वलंत प्रश्नों से जुड़ा हो। महाकवि को यह पूरी तरह से स्पष्ट था कि मनु नामधेयी इस आधुनिक मानव की यह भी एक समस्या है कि सांख्य के पुरूष की तरह सारी सामर्थ्य एवं सारी महत्वाकाक्षाओं के होते हुए भी यह कर्मशील नहीं होता है। प्रसाद इस मानवीय सत्य को बहुत ईमानदारी से स्वीकार करते हैं कि किसी भी प्रतिभा एवं सामर्थ्य की क्रियागत विवेक सम्मत सार्थक परिणति यदि नही होती तो निश्चय ही मानवता निष्क्रिय आत्महनन के दौर से गुजर रही होती है। दुख है, दुख का कारण है, दुख का निदान है..... इस बुद्धि विवेक सम्मत जीवनत्रयी से प्रसाद प्रभावित लगते है, इसीलिए तो महाकवि की कामायनी मनु के द्वारा वर्णित दु:ख संताप के क्षणों में बांग्ला उपन्यास की नायिकाओं की तरह गलदश्रु भावुकता की शिकार नही होती हैं, बल्कि पीड़ा के बहुत पार देखती हुई संयत बनी रहती है एवं तरह-तरह से मन रूपी मनु को ढ़ाढ़स बधाती है एंव भविष्य के सृजनशील सपनों की ओर संकेत करती है। ऐसा लगता है जैसे महाकवि स्वंय अप्रतिम धैर्य का परिचय देते हुए आँसुओ में डुबी हुई सृष्टि से पार जाने के लिए मानव को उद्‌बुद्ध करते हैं-

और यह क्या तुम सुनते नहीं, विधाता का मंगल वरदान।
शक्तिशाली हो, विजयी बनो, विश्व में गूँज रहा है जय-गान।।
डरो मत अरे अमृत संतान! अग्रसर है मंगलमय वृद्धि।
पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र, खिची आवेगी सकल समृद्धि।।[5]

''विधाता का मंगल बरदान'', ''शक्तिशाली हो विजयी बनो'' खिची आवेगी सकल समृद्धि' ..... महाकवि द्वारा निरूपित इन शब्दा बन्धों पर क्रमश: ध्यान दें तो ऐसा लगता है जैसे यह मात्र किसी कवि के द्वारा लिखी गयी कविता के शब्द नही है, बल्कि अभिशप्त मानवता को शापमुक्त कराने के बीज मंत्र है। आधुनिक मानव की सारी चिंताओ, सारी समस्याओं को दूर करने वाला एक मात्र आयुध है, विकल्प है। महाकवि अपने ययार्थ दर्शन में कर्मवाद एवं भोगवाद के बीच पनपने वाले अलगाववाद को भी उसकी विभिन्न स्थितियों में देखने का प्रयास कर रहे थे। यही कारण है कि श्रद्धा कर्म एवं भोग के बीच असमंजसग्रस्त मनु को संतुलन में सौन्दर्य देखने का सुझाव देती है और कहती है-

एक तुम, यह विस्तृत भूखण्ड, प्रकृति वैभव से भरा अमन्द।
कर्म का भोग, भोग का कर्म, यही जड़ का चेतन आनन्द।।[6]

निष्कर्षत: कामायनी आधुनिक काल की ऐसी कालजयी अद्वितीय रचना है, जिसके माध्यम से प्रसाद जी ने आधुनिक युग की समस्याओं को शब्दबद्ध करने का प्रयास किया है। ऐसा माना जाता है कि कामायनी की समस्याओं को प्रसाद जी ने मनु के माध्यम से चित्रित करना चाहा है, कह तो हम यह भी सकते है कि चिंता से आनंद तक कि यात्रा करते हुए यहाँ प्रसाद जी ने यदि एक ओर मानव के आन्तरिक यथार्थ को पहचानना चाहा है तो दूसरी ओर इसी क्रम में आधुनिक मानव के संघर्ष को भी शब्द मिल गया है, इसीलिए कामायनी को मानव मन का महाकाव्य माना गया है।

मुक्तिबोध बड़ी सूक्ष्मता से यह अध्ययन करना चाहते है कि कामायनी के तीनों पात्र केवल प्रतीक है अथवा मानव चरित्र भी- ''श्रद्धा अपने चरित्र द्वारा, इड़ा अपने चरित्र द्वारा तथा मनु चरित्र द्वारा, प्रसाद प्रदत प्रतीकत्व का निर्वाह करते हैं, अथवा किन्हीं अन्य ऐसी वास्तविकताओं के प्रतीक-रूप है जिन पर लेखक का कोई वश नही था, ऐसी वास्तविकताओं के असंस्कृत प्रतिबिंब हैं जिनकी पूरी वैज्ञानिक विचारानुभति प्रसाद जी के पास न थी, ऐसी वास्तविकताओं की साहित्यिक रेखाएं हैं जिनकी ऐतिहासिक-सामाजिक अंत: प्रकृति प्रसाद जी की साहित्यिक चेतना के बाहर थी।[7]

संदर्भ-सूची

1. कामायनी-जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2000, रहस्य सर्ग, पृष्ठ संख्या 107
2. कामायनी-जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2000, चिन्ता सर्ग, पृष्ठ संख्या 01
3. कामायनी-जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2000, चिन्ता सर्ग, पृष्ठ संख्या 03
4. कामायनी-जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2000, चिन्ता सर्ग, पृष्ठ संख्या 02
5. कामायनी-जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2000, श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ संख्या 17
6. कामायनी-जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2000, श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ संख्या 16
7. कामायनी: एक पुनर्विचार, गजानन माधव मुक्तिबोध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या 22

'भू-मण्डलीकरण का जनजातीय समाज पर सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव' मनेन्द्रगढ़ चिरमिरी भरतपुर जिला कोरिया के विशेष संदर्भ में

डॉ० नीरज कुमार खरे

भू-मण्डलीकरण (वैश्वीकरण) की अवधारणा सर्वप्रथम सन् 1980 से प्रचलन में आई और इसने विश्व समुदाय का ध्यान अपनी ओर केंद्रित किया। भू-मण्डलीकरण एक बहुलवादी प्रक्रिया है। यह आर्थिक संवृद्धि के उद्देश्य से दुनिया के देशो और व्यक्तियों के मध्य एकीकरण और अंत:क्रिया की प्रक्रिया है। भू-मण्डलीकरण की प्रक्रिया को उच्च क्षमता वाली संचार प्रौद्योगिकी जैसे- टेलीफोन, कम्प्यूटर तथा इंटरनेट ने सुगम बनाया है। एक तरह से देखा जाय तो यह सामाजिक संबंधों की प्रक्रिया है। जिसमें औपचारिकता का कोई स्थान नही है।

भू-मण्डलीकरण को बढाने में बाजारों की खोज, बहुराष्ट्रीय विनिवेश, प्रौद्योगिकी, इलेक्ट्रानिक के नए उपकरण और कम्प्यूटर से जुडे विश्व सूचना सेकुल इत्यादि महत्वपूर्ण प्रेरक तत्व है।

भू-मण्डलीकरण की उत्पत्ति में तकनीकी, परिवहन, लागत और परिवाहन के समय में कमी, वैश्विक व्यापार, सम्स्यायें तथा उदारीकरण महत्वपूर्ण कारक है। भू-मण्डलीकरण की अनेकों विशेषतायें है जैसे- वैश्विक व्यापार, अन्तराष्ट्रीय श्रम विभाजन, बहुराष्ट्रीय उद्यम, प्रवासी श्रमिक, विश्व दृष्टिकोण इत्यादि।

विश्व के रंगमंच पर भू-मण्डलीकरण की प्रक्रिया ने विश्व के सामाजिक, सांस्कृतिक विकास की कायापलट कर दी है। भारत में भू-मण्डलीकरण का प्रारंभ सन् 1991 में हुआ था। इसे नये सामाजिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक युग का सूत्रपात कहा जा सकता है। भू-मण्डलीकरण का कोरिया जिले की जनजातीय समाज पर अनेकों सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव पडा है।

अध्ययन क्षेत्र एवं शोध प्रवधि-

प्रस्तुत शोध जनजाति बाहुल्य मनेन्द्रगढ-चिरमिरी-भरतपुर जिला कोयिा के अंतर्गत आने वाले 15 ग्राम पंचायतों- पाराडोल, बंजी, बुंदेली, चौगडा, लालपुर, चौनपुर, लेदरी, झगराखांड, खोंगापानी, बौरीडांड, चनवारीडांड, परसगडी, बरकेला कोडा ग्रामों का चयन दैवयोग पद्धति से किया गया है एवं अवलोकन, अनुसूची तथा साक्षात्कार के माध्यम से समस्त प्राथमिक आंकडों का संकलन प्रति गांव दस- दस परिवारों के मुखिया, दाई, स्त्री, पुरुष एवं युवा उत्तरदाताओं से विषय संबंधीत प्रश्नों को पूछकर सावधानीपूर्वक विश्लेषित किया गया है। अध्ययन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री का उपयोग सावधानीपूर्वक किया गया है।

उद्देश्य-

मुख्यत: मनेन्द्रगढ-चिरमिरी-भरतपुर जिला कोरिया के अंतर्गत गोंड, कोल, उंराव, बैगा, पहाडी कोरवा जनजाति के लोग निवास करते है। निवासरत जनजाति समाज में भू-मण्डलीकरण का सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों का अध्ययन प्रमुख उद्देश्य शोधकर्ता का था।

जनजातीय समाज पर सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव-

सकारात्मक प्रभाव-

भू-मण्डलीकरण की प्रक्रिया ने न सिर्फ जनजातीय समाज की आर्थिक बल्कि इसने जनजातियों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था को भी प्रभावित किया है।

भू-मण्डलीकरण और उदारीकरण ने प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की है। अध्ययन के विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ है कि भू-मण्डलीकरण के प्रभाव द्वारा जनजातीय आय में वृद्धि हुई है। इसी तरह भू-मण्डलीकरण का लाभ जनजातीय कृषि क्षेत्रों में पहुच रहा है। कृषि क्षेत्र में नवीन तकनीक के द्वारा खाद्यान्नो का रिकार्ड उत्पादन हो रहा है। अत: यह कहा जा सकता है कि जनजातीय समाज में खाद्यान्न आत्मनिर्भरता बढ रही है। प्रतिकूल मौसम की स्थिति में भी कृषि उत्पादन बढ रहा है जिसके परिणाम स्वरुप कृषि में हरित क्रांति आ रही है।

आर्थिक क्षेत्र में भू-मण्डलीकरण के प्रभावों के फलस्वरुप तीव्र विकास हुआ है। जिससे बेरोजगारी में कमी आयी है प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई है, आर्थिक क्रिया कलापों में तेजी आयी है।

भू-मण्डलीकरण का सबसे प्रमुख प्रभाव निजीकरण के रुप में देखने को मिला है। निजीकरण के कारण जनजातीय एवं पिछडे क्षेत्रों में निजी उद्योग धंधे लग रहे है जिसका लाभ जनजातीय समाज उठा रहे है।

संचार के साधनों ने भू-मण्डलीकरण को अधिक बढावा दिया है जनजातीय समाज में इंटरनेट, मोबाईल, कम्प्यूटर, टेलीविजन, समाचार पत्रों के जरिए अपने ज्ञान में वृद्धि कर रहे है।

भू-मण्डलीकरण का परिणाम है कि आज जनजातीय क्षेत्रों में परिवहन एवं संचार के साधनो में प्रगति हूई है। आज देश में रेल्वे स्टेशनों की संख्या 6853 है, रेल मार्ग की कुल लंबाई 63028 कि.मी. है तथा राष्ट्रीय राजमार्ग 66754 कि.मी. है। संचार के साधनो में भारतीय डाक नेटवर्क विश्व का सबसे बडा नेटवर्क है।

जनजातीय समाज में विदेशी वस्तुओं में रूचि बढ रही है। साथ ही स्थानीय स्तर पर तैयार जनजातीय कलात्मक वस्तुओं को विदेशों में विक्रय के लिए भेजा जाता है।इस आयात एवं निर्यात की प्रक्रिया से जनजातीय संस्कृति का प्रचसर प्रसार होता है।

भू-मण्डलीकरण के फलस्वरुप मनेन्द्रगढ-चिरमिरी-भरतपुर जिले की आदिवासी समाज की स्त्रियॉ साडी या सलवार सूट के स्थान पर जींस, टाप, शर्ट, स्कर्ट आदि पहनने लगी है। पुरुष सैलून जाने लगे है, कास्मेटीक सामग्री का उपयोग करने लगे है।

भू-मण्डलीकरण का एक सकारात्मक प्रभाव यह हुआ है कि मनेन्द्रगढ-चिरमिरी-भरतपुर जिले मे पर्यटन को बढावा मिला है। मनेन्द्रगढ तहसील के अंतर्गत आने वाला अमृतधारा को देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते है जिसके कारण संस्कृतिक आदान प्रदान आदिवासी समाज में देखने को मिल रहा है। संस्कृतिक हस्तांतरण के फलस्वरुप प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास होते दिख रहा हैं

भू-मण्डलीकरण का एक प्रभाव यह हुआ है कि शिक्षा का गुणात्मक सुधार एवं तकनीकी सुधार हुआ है। आज आदिवासी समाज के छात्र छात्राएॅ इंटरनेट, मोबाईल, कम्प्यूटर का प्रयोग आसानी से कर रहे हैं।

भू-मण्डलीकरण के द्वारा जनजातियॉ अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गयी है। परिवहन एवं संचार माध्यमों के तीव्र विकास से जनजातीयों में जागरुकता आई है। अपने मताधिकार का सही उपयोग अब जनजातीयॉ करते हुए दिख रही है। जनजातीय समुदाय में भी गैर-जनजातीय समाज की तरह प्रतिस्पर्धा की भावना पैदा हुई है। जनजातीयो ने अपने विकास के लिए विभिन्न समितियॉ भी बना ली है। छत्तीसगढ शासन में अनेक जनजातीय समितियॉ है जो अपनी अलग पहचान बनाई हैं।

भू-मण्डलीकरण का प्रभाव जनजातियों के विवाह एवं धार्मिक रीति रिवाजों पर भी पडा है। अब जनजातीय समाज रुढिवादी विचारों को छोडकर आधुनिक शिक्षित समाज की तरह विवाह एवं धार्मिक रीति रिवाजों का निर्वाह कर रही हैं।

भू-मण्डलीकरण का एक प्रभाव यह भी हुआ है कि जनजातीय समाज में चिकित्सा के परम्परागत साधन झाड-फूक इत्यादि का प्रचलन कमजोर होता दिख रहा हैं अब जनजातियॉ आधुनिक चिकित्सा के साधनों पर विश्वास करते हुए दिख रही है।

नकारात्मक प्रभाव-

भू-मण्डलीकरण के प्रभावों के कारण सामाजिक सांस्कृतिक प्रतिमान कमजोर पडते जा रहे है। जनजातीय समाजों में सर्वाधिक एकता पायी जाती थी, समूह प्रतिनिधित्व का प्रचलन था परंतु भू-मण्डलीकरण के प्रभावों के कारण जनजातीय समाज में व्यक्तिवादिता की भावना का विकास हुआ है। जिसके फलस्वरुप सामाजिक एकता की भावना को ठेस पहुंच रही है

भू-मण्डलीकरण ने वर्गो के स्वरुप में भी परिवर्तन कर दिया है। 20वी सदी तक जहॉ प्रमुख तीन वर्ग- उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग, और निम्न वर्ग थे लेकिन आज वर्गो की संख्या बहुत अधिक बढ गयी है। हर वर्ग के अनेक उप वर्ग हो गए है जैसे कृषक वर्ग, मजदूर वर्ग, शिक्षक वर्ग इत्यादि इसके प्रभावों से आज जनजातीय समाज भी अछुता नही है।

भू-मण्डलीकरण के प्रभावों के परिणामस्वरुप वैवाहिक प्रतिमान भी कमजोर पडते जा रहे हैं। जनजातियों में तलाक की संख्या में वृद्धि हो रही है। पारंपरिक वेश-भूषा मे परिवर्तन आने लगा है। उपभोक्तावाद प्रवृत्ति बढ रही है, लोग अपनी संस्कृति को छोडकर दूसरी संस्कृति की ओर ज्यादा प्रभावित होते हुए दिख रहे है। संस्कृति स्थिर न रहकर परिवर्तनशील हो रही है। भू-मण्डलीय सांस्कृति स्थानीय सांस्कृति को प्रभावित कर रही है। पश्चिमी विचारों को गलत तरीके से सार्वभौमिक बनाया जा रहा है। जो आदिवासी परंपराओं को नष्ट कर रही है। भू-मण्डलीकरण सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का निर्माण कर रही है। कुछ लोगो का यह भी मानना है कि भू-मण्डलीकरण के कारण भ्रस्टाचार बढा है अर्थात भ्रष्टाचार की संस्कृति को बढावा मिल रहा है।

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि भू-मण्डलीकरण अपनी बुनियाद मे बहुलवादी है, और इसी कारण भू-मण्डलीकरण भी बहुलवादी है। भू-मण्डलीकरण लचीली अर्थव्यवस्था का स्वरुप है। इसका परिणाम हमें स्थानीय अर्थव्यवस्था में देखने को मिलता है। अत: यह कहा जा सकता है कि 'भू-मण्डलीकरण का जनजातीय समाज पर सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव' पड रहा है।

संदर्भ सूची-

1. सिंह, जे. पी. 'समाजशास्त्र अवधारणाएॅ एवं सिद्धांत' प्रेटिस हाल आफ इंडिया, नई दिल्ली (2003)
2. नागला, बी. के. 'ग्लाबलाइजेशन एण्ड इटस आन कल्चर' (अप्रकाशित लेख)
3. फीदर स्टोन, एम (एडिटेड) 'ग्लोबल कल्चर लंदन' सेज पब्लिकेशन (1990)
4. योगेन्द्र सिंह 'कल्चर चेन्ज इन इंडिया' जयपुर रावत पब्लिकेशन (2000)
5. राबर्टशन, आर. 'ग्लाबलाइजेशन लन्दन' सेज पब्लिकेशन (1992)
6. पावेल- जालेस्की 'ग्लोबल नान गर्वमेंटल एडमीनीसट्रेटीव सिस्टम' आई एफ आर्ठ एस पब्लिकेशन (2006)
7. परेलास, निकोलस 'शेपिंग ग्लाबलाइजेशन- सिविल सोसायटी, कल्चरल पावर एण्ड श्री फोल्डींग'

कुटीर एवं लघु उद्योग में महिलाओं की भूमिका

श्रीमती मेघा डडसेना

सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) रामचंडी महाविद्यालय, सरायपाली, जिला-महासमुंद (छ.ग.)

सारांश-

लघु उद्योग अर्थव्यवस्था को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है, क्योंकि वे छोटी मशीनरी का उपयोग करते है और सीमित जनशक्ति को रोजगार देते हैं। क्योकि भारत एक श्रम-प्रधान देश है, इसलिए इन उद्योगों की स्थापना से रोजगार के अवसर पैदा होते है, खासकर वंचितो के लिए लघु एवं कुटीर उद्योग, महिलाओं के लिए राजगार के एक उपयुक्त क्षेत्र के रूप में उभरे है। इनसे महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में सुधार होता है। कुटीर उद्योगों में कहिलाओं की सहभागिता से देश के आर्थिक विकास में भी अहम योगदान होता हैं। ऐसी महिलाएँ जो कम पढ़ी लिखी है या जिन्हें अक्षर ज्ञान नहीं है वे भी घर बैठे कई काम शुरूकर सकती है और खुद को स्वावलंबी बना सकती है। महिलाएँ इन उद्योगों में अपने परिवार और समुदाय के लिए भी रोजगार पैदा कर सकती हैं।

प्रमुख शब्द- कुटीर एवं लघु उद्योग, स्ववलंबी, सहभागीता, जनशक्ति, स्वसहायता समूह आत्मनिर्भर।

प्रस्तावना-

कुटीर उघोग स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए माल का उत्पादन कर रहें, जबकि लघु उद्योग व्यापक क्षेत्र में रहने वाले लोगों की माँग को पूरा करने के लिए माल का उत्पादन कर रहे हैं। कुटीर उद्योग बहुत कम मात्रा में पूँजी का निवेश कर रहे है और सरल उपकरणों के साथ काम कर रहे है। आज महिलाएँ उद्यम के क्षेत्र में अपना वर्चस्व स्थापित कर रही है जैसे रितु कुमार भारतीय टेक्सटाइल की रानी के रूप से प्रसिद्ध है। रीतु बेरी ने फ्रेंच फैशन फैशन इंडस्ट्री में विशेष स्थान बनाया है भारतीय महिलाओं ने विभिन्न ब्रांड स्थामित कर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है जैसे बुटिक के क्षेत्र में विनिता जैन, शहनाज हर्बल की शहनाज हुसैन ने आज विश्व भर में पहचान बनाई है। इसी तरह महिलायें ग्रामीण क्षेत्र के उद्यम में भागीदारी कर रही है। यह सर्वविदित है की हमारे देश की आधी जनसंख्या महिलाओं की है, जीवन के हर क्षेत्र में महिलाओं के योगदान को स्वीकार किया गया है। राष्ट्र के विकास में महिलाएँ पुरूषों जितना ही महत्व रखती है उन्होने अपने आर्थिक स्तर पर महत्वपूर्ण योगदान दिया है। तथा यह सिद्ध कर दिया है कि देश के विकास में पुरूष एवं महिलाएँ विकास रूपी गाड़ी के दो पहिये है।

अध्ययन के उद्देश्य-

अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है-

1. कुटीर तथा लघु उद्योग में महिलाओं के भूमिका को जानना।
2. कुटीर तथा लघु उद्योगों में महिलाओं के लिए कितना महत्वपूर्ण है उसका अध्ययन करना।
3. कुटीर तथा लघु उद्योगों में महिलाओं के द्वारा देश के विकास में किये गये योगदान का अध्ययन करना।

शोध पद्धति-

प्रस्तुत अध्ययन मुख्य रूप से द्वितीयक आँकड़ो पर आधारित है आँकड़ो का संग्रहण समाचार पत्र तथा पत्रिकाओं तथा शोध पत्रों के माध्यम से संग्रह किया गया है।

कुटीर तथा लघु उद्योगो में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका का एक अध्ययन

1. कुटीर उद्योगो में महिलाओं की सहभागिता से आर्थिक और समाजिक विकास होता है।
2. महिलाओं के लिए कुटीर उद्योगो में कई तरह के काम किए जा सकते है, जैसे- कढ़ाई, बुनाई, सिलाई, अचार, पापड़, खाना बनाना, साबुन, निरमा, खाद्य पदार्थ, बांस की टोकरी वगैरह।

3. इसमें स्थानीय रूप से उपलब्ध कच्चे माल का इस्तेमाल होता है।
4. कुटीर उद्योगो में छोटे पैमाने पर विनिर्माण की घर-आधारित प्रणालियाँ शामिल है।
5. कुटीर उद्योग से जुड़ी महिलाओं के लिए कुछ खास बाते।
    - महिलाओं के पास जिस भी काम का हुनर है, उसे आजमाएँ
    - महिलाएँ अपनी रूचि को पहचान कर कुछ महिलाओं का समूह बनाकर कुटीर उद्योग शुरू कर सकती है।
    - तैयार माल को आस-पास के बजारों में या अपनी जान-पहचान की जगह पर बेच सकती है।
6. ऐसी महिलाएँ जो कम पढ़ी लिखी है या जिन्हें अक्षर ज्ञान नहीं है वे भी घर बैठे कई काम शुरू कर सकती है। और खुद को स्वावलंबी बना सकती है।
7. महिलाए इन उद्योगो में अपने परिवार और समुदाय के लिए भी रोजगार पैदा कर सकती है।
8. महिलाएँ इन उद्योगो में अपना वर्चस्व स्थापित कर सकती है।
9. महिलाएँ इन उद्योगो के माध्यम से देश के विकास में सकारात्मक योगदान दे सकती है।
10. महिलाएँ इन उद्योगो में अपने हुनर के आधार पर अपना कुटीर उद्योग शुरू कर सकती हैं।
11. महिलाएँ इन उद्योगो में अपने परिवार या स्वयं सहायता समूह के जरिए शामिल हो सकती हैं।
12. महिलाएँ इन उद्योगो की सहायतासे अपनी पारिवारिक स्थिति सुधार रही हैं।
13. महिलाएँ इन उद्योगो में अपना वर्चस्व स्थापित कर रही हैं।
14. महिलाएँ इन उद्योगो में रोजगार पाकर आर्थिक रूप से मजबूत होती है।

सरकार के द्वारा कुटीर तथा लघु उद्योगो के लिए निगमों एवं बोर्डो की स्थापना

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में राष्ट्रीय सरकार बनने के पश्चात् भारत सरकार के द्वारा लघु उद्योगों के विकास के लिए निम्न बोर्डो की स्थापना की गई-

1. लघु उद्योग विकास संगठन 1954
2. राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम 1955
3. लघु उद्योग बोर्ड 1954
4. अखिल भारतीय खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड 1953
5. अखिल भारतीय हस्तकला बोर्ड 1952
6. भारतीय लघु उद्योग परिसद 1979
7. जिला उद्योग केन्द्र 1977
8. भारतीय साख गारण्टी निगम 1971
9. भारतीय दस्तकारी विकास 1958
10. नाारियल जढ़ा बोर्ड 1955
11. अखिल भारतीय हथकरघा बोर्ड 1952
12. भारतीय दस्तकारी विकास 1958

निष्कर्ष-

महिलाओं के द्वारा लघु एवं कुटीर उद्योग के क्षेत्र में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए देश के विकास में निश्चित रूप से सराहनीय योगदान प्रदान किया है। प्रत्येक महिला एक संभाव्य शक्ति हैं। उनमें नेतृत्व व प्रबंधन क्षमता का अपार भण्डार है। एक आकलन के अनुसार भारत में महिला उद्यमों में प्रतिवर्ष बढ़ोत्तरी हो रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में नाबार्ड समर्थित स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से स्वयं का उद्यम स्थापित करने वाली महिलाओं से लेकर बड़े-बड़े उद्यम चलाने वाली महिला उद्यमियों की सफलताएँ उल्लेखनीय है। महिलाओं के बेहतर उद्यमी सिद्ध होने के पीछे उनके गुण जैसे सीखने की त्वरित प्रवृत्ति स्थायित्व, परिवर्तनों को आंगीकृत करने की प्रवृत्ति सकरात्मक दृष्टिकोण जैसे कारण है। एक अध्ययन से यह पाया गया की वे अत्यधिक विश्वासोत्पादक होती है जिनमें निर्णय तथा अत्यधिक जोखिम उठाने की क्षमता होती है। भारत में महिला उद्यमियों की ओर रूझान व राष्ट्रीय आय में उनका योगदान लगातार

बढ़ता जा रहा है। अधुनिक तकनीक के प्रयोग निर्यात, निवेश में अपनी उपस्थिति दर्ज करने, संगठित क्षेत्र, बड़ी मात्रा में रोजगार सृजन करना व संगठित क्षेत्र महिला उद्यमियों के लिए मार्ग प्रशस्त करने में महिला उद्यमियों की भूमिका अग्रणी रही हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. ग्यारहवी पंचवर्षीय योजना (2007-12) योजना अयोग खण्ड दो पृष्ठ 229
2. Ministry of Micro, Small & Medium Enterprises (MSME)
3. Times of India (Mumbai)
4. उद्यमीकरण के मूल सिद्धान्त-रेणु अरोरा (2010-11)
5. डॉ.बी.सी. सिन्हा- भारतीय आर्थिक समस्याएं पृ. 220ए 221
6. कुरूक्षेत्र- वर्ष 56 अंक-7 जून 2010
7. कुरूक्षेत्र- वर्ष 64 अंक-3 जनवरी 2018
8. प्रो. एस. एन. लाल- भारतीय अर्थव्यवस्था (सर्वेक्षण तथा विश्लेषण)- जून 2021 पृ. 18:14
9. https/k/kpmmodiyojanaye.in>up.ma
10. सामान्य ज्ञान- किरण पृ. 439, 445

विद्यापति की भक्ति-भावना

अखिलेश कुमार

सहायक प्राध्यापक, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

'विद्यापति' आदिकाल और भक्तिकाल को जोड़ने वाले रससिद्ध कवि हैं। 'आचार्य शुक्ल' कृष्ण भक्ति परंपरा के साथ ही शृंगार भक्ति परंपरा को लोक कल्याणकारी नहीं मानते इसलिए 'विद्यापति' की रचनाओं में भक्ति एवं शृंगार का समन्वय दिखाई पड़ता है। 'विद्यापति 'मैथिल कोकिल', 'कवि शेखर' तथा 'अभिनय जयदेव' आदि नामों से प्रसिद्ध है। विद्यापति को हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'शृंगार रस' का सिद्धवाक् कवि कहा है।' जनश्रुति के अनुसार चौतन्य महाप्रभु 'विद्यापति' के गीतों को सुनकर भावविभोर होकर मूर्छित हो जाते थे। 'विद्यापति' शैव थे और इनकी रचनाओं में राधा-कृष्ण का शृंगारिक वर्णन है। वैष्णव कवि 'विद्यापति' की कविताओं में शैव वैष्णव तादात्म्य प्रेम-सौंदर्य भी देखने को मिलता है जो इन पंक्तियों से स्पष्ट है- "विद्यापति में वैष्णव की मर्यादा और शैव का तादात्म्य-भाव दोनों एक साथ मिलते हैं। काम-भाव और शरीर का सौंदर्य उनके यहाँ उत्सव-रूप में हैं। इसलिए चिर-परिचित होते हुए भी वे चिर-नवीन हैं। यही कारण है जिससे मिलते-जुलते शारीरिक अनुभवों की अलग-अलग पदों की आवृति होने पर भी अपने तन्मयता भाव से वे सभी विशिष्ट हो उठते हैं।"[1]

विद्यापति की कविताओं में भक्ति एवं शृंगार का समन्वय है जो कहीं लौकिक है तो कहीं अलौकिक। इनकी कविताओं में भक्ति-भाव के साथ-साथ प्रेम-तत्त्व का समिश्रण है। 'विद्यापति' उदार वृति के धार्मिक कवि है। इनकी कविताओं में राधा-कृष्ण, शिव-दुर्गा, गंगा और सीता जी के प्रति उन्होंने अपनी आस्था प्रकट की है इसके अलावे इनकी कविताओं में गंगा स्तुति प्रार्थना, राधा-कृष्णा क्रीड़ा का वर्णन है। संभव है कि जो निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है।

"प्रारंभ में कृष्ण, राधा एवं देवी की वन्दना है और अन्त में पार्थना और नचारियाँ है जिनमें दुर्गा, सीता और गंगा जी की स्तुति के अतिरिक्त शिव के विवाह संबंधी पद हैं। उन पदों ने बहुत थोड़ा स्थान घेरा है, जो तीन चौथाई से अधिक थे पद (श्री रामवृक्ष बेनीपूरी संकलन) हैं जिनमें राधाकृष्ण की क्रीड़ाओं का वर्णन है। संभव है विनय के और भी बहुत से पद विद्यापति ने लिखे हो, जो किसी कारण से नष्ट हो गए हों या किसी कोने में छिपे पड़े रहने के कारण उपलब्ध न हो सके।"[2]

'विद्यापति' राधा-कृष्ण प्रेम-सौन्दर्य को पदावली में दर्शाएँ हैं। यहाँ कृष्ण देवता के रूप में तो कहीं प्रेमी के रूप में हैं। 'विद्यापति' पदावली में शिव जी की पत्नी भैरवी का वर्णन मिलता है जो राक्षसों को भयभीत करती है, संहार करती है। भैरवी का सौन्दर्य-चंद्रमणी से सुशोभित है। श्यामल रंग और लाल नेत्र बादलो के बीच कमल के समान है। होठों पर लाल रंग के फूल विकसित हो पैरो में घन-घन नूपूर बजते हैं और हाथों में कटार शुसोभित हैं। 'विद्यापति' भैरवी का सेवक बनकर माता की सेवा करना चाहते हैं। जिससे माता सदैव उनपर दया-दृष्टि बनाये रखें। जो इन पंक्तियों में देखा जा सकता है-

"जय जय भैरवि असुर-भयाउनि, पशुपति भामिनि माया।
सहज सुमति वर दिअ हे गोसाउनि, अनुगति गति तुअ पाया।।2।।
बासर-रैनि सबासन सोभित चरन, चंद्रमणि चूड़ा।
कतओक दैत्य मारि मुँह मेलल, कतेक उगिलि कैलि कूड़ा।।4।।
सामर बरन, नयन अनुरंजित, जलद-जोगफूल कोका।
कट कट विकट ओठ-पुट पाँड़रि, लिधुर-फेन उठ कोका।।6।।
घन-घन घनन घुँघुर कत बाजए, हन हन कर तुअ काता।
विद्यापति कवि तुअ पद सेवक, पुत्र बिसरू जनि माता।।8।।"[3]

'विद्यापित' शैव भक्ति परंपरा के कवि हैं महादेव भक्ति में विद्यापति इतना रम गए की इनकी भक्ति पद्धति पर मुग्ध होकर 'उगना' नाम के व्यक्ति के रूप में साक्षात् शिव इनके साथ रहने लगे। उसी समय विद्यापति को शिव ने गंगाजल पिलाया। विद्यापति की भक्ति पद्धति स्वर्गीय परिवेश से आवृत है। विद्यापति कहते हैं भगवान् भोलेनाथ कब मेरा दु:ख हरेंगे। दु:ख में मेरा जन्म हुआ, स्वप्न में मैंने सुख की कल्पना नहीं की! इस भवसागर से हे भोलेनाथ आप ही मुझे निकलने का वरदान दो! जो निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य हैं-

"कखन हरब दु:ख मोर,
हे भोलानाथ।
दु:खहि जनम भेल दु:खहि गमाओल,

सुख सपनहु नहि भेल हे भोलानाथ
एहि भव-सागर थाह कतहु नहि,
भैरव धरू करूआर, हे भोलानाथ
भन विद्यापति मोर भोलानाथ गति,
देहु अभय वर मोहि, हे भौलानाथ।"[4]

'विद्यापति' शक्ति के उपासक थे वे ब्रह्म, विष्णु, महेश से भी शक्ति की उपासना करवाते थे। विद्यापति विशिष्टता द्वैतवाद मत से भी प्रभावित हुए और विष्णु-लक्ष्मी, राधा-कृष्ण, गौरी-शिव की युगल उपासना पर जोड़ दिया। वे शिव जी को अपना ईष्टदेव मानते हैं। गौरी-शंकर युगल मूर्ति की पूजा फूलों से करने की बात किए हैं। विद्यापति शिव से कहते हैं कि मेरे हर दु:ख को आप हर लीजिए जो इन पंक्तियों से स्पष्ट है-

"शिव हो, उतरब पार कओन विधि।
लोढ़ब कुसुम तोरब बेलपात। पुजब सदाशिव गौरिक साथ।
बसहा चढ़ल शिव फिरए मसान। भंगिआ जरठ दरतो नहीं जान।।
जप तप नहि कएलहुँ किछु दान बिति गेल तिन पन करइत आन।।
भन विद्यापति सुनह महेस। निरधन जानि मोर हरह कलेस।।"[5]

'विद्यापति' काम पंक के फँसे हुए प्रतीत होते हैं ये पूजा समाप्त करने के बाद ही पदावली के पदो की रचना करते थे। चौतन्य महाप्रभू इनके पदों को गाते-गाते आँसू बहाने लगते थे, मुर्छित हो जाते थे। समझ में नहीं आता हैं कि लोग उस महात्मा के हृदय की अमलता तथा विद्यापति के पदों में शृंगार की दो विरोधी बातें एक साथ कैसे देखते हैं। हे कृष्ण मैं तुम्हारे भरोसे ही हूँ मेरी दीनता निर्धनता को दूर कीजिए आधा जन्म सो के बिता दिया। ऐसा लगता है की जीवन का कोई परिणाम नहीं है। जो इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है-

"माधव हम परिनाम निरासा
तुहुँ जगतारन दीन दयामय
अतए तोहर विश्वासा।।
आध जनम हम नींद गमायन
जरा सिसु कत दिन गेला।।
निधुबन रमनि रभस रंग मातुन
तोहे भजब कौन बेला।।"[6]

विद्यापति के यश का आधार चौतन्य महाप्रभु हुए। बंगाल में वैष्णव संप्रदाय के सबसे बड़े नेता चौतन्य महाप्रभु विद्यापति के पदावली को गाते-गाते मूर्छित हो जाते थे। ऐसा होने के कारण विद्यापति का आदर बढ़ गया। इसलिए बंगाल में विद्यापति को लोग भक्त कवि मानते हैं। ब्रजनन्दन सहाय और श्यामसुंदर दास विद्यापति को वैष्णव भक्त कवि मानते हैं। बंगाल में विद्यापति को जिस 'ब्रजबूलि' का कवि माना जाता है, वह भक्ति काव्य का ही एक रूप है। जिसमें लौकिक राग और परलौकिक प्रेम का समन्वय है। जयदेव ने हरि स्मरण और काम कला के मेल की बात की जो ब्रजबूलि साहित्य में पाया जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि विद्यापति की रचनाओं में भक्ति भी विद्यमान है।

संदर्भ-

1. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास- राम स्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पच्चीसवाँ संस्करण- 2018, पृष्ठ- 29
2. प्राचीन कवि- विश्वम्भर 'मानव' लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पुनर्मुद्रित संस्करण 2018, पृष्ठ- 33
3. विद्यापति पदावली- रामवृक्ष बेनीपुरी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद नवाँ संस्करण- 2019, पृष्ठ- 36
4. विद्यापति पदावली- रामवृक्ष बेनीपुरी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद पंचम संस्करण- 2011, पृष्ठ- 153
5. विद्यापति पदावली- रामवृक्ष बेनीपुरी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद नवाँ संस्करण- 2019, पृष्ठ- 152
6. प्राचीन कवि- विश्वम्भर 'मानव' लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद पुनर्मुद्रित संस्करण- 2018, पृष्ठ- 47

छत्तीसगढ़ के कांकेर जिले में तेंदू पत्तों का विपणन

शीतल शर्मा

घनश्याम सिंघ आर्या कन्या महाविद्याल, दुर्ग

डॉ० संजू सिंह

सहायक प्रोफेसर, साई कॉलेज, भिलाई, छत्तीसगढ़

परिचय

भारत सरकार आदिवासियों के सामाजिक-आर्थिक उत्थान के लिए भोजन, स्वास्थ्य, साक्षरता, आजीविका से संबंधित विभिन्न संकेतकों में सुधार के लिए विभिन्न कार्यक्रम चला रही है। हालाँकि, सामान्य और आदिवासी आबादी के बीच मानव विकास सूचकांकों में एक बड़ा अंतर है। "छत्तीसगढ़ में कांकेर जिले में तेंदू पत्तों का विपणन" शीर्षक से वर्तमान जांच छत्तीसगढ़ में अनुसंधान कांकेर जिले में आयोजित की गई थी। यह शोध छत्तीसगढ़ के कांकेर जिले में तेंदू पत्तों के विपणन पर आधारित था।

की वर्ड- तेंदू पत्ते, जनजातीय समुदाय, वन उत्पाद, विपणन, एनटीएफपी।

कृषि व्यवसाय एक प्रणाली में कृषि और सिल्विकल्चर का संयोजन है जहां प्रजातियां बारहमासी, वार्षिक और उपयोग के बीच बदलती हैं, उदाहरण के लिए कटाई, हरी खाद, अलग-अलग फसल चक्र, मल्चिंग, समोच्च हेडगेरो या गली फसल। कृषि वानिकी प्रणालियों में घटकों के बीच पूरकता इसकी सफलता के लिए महत्वपूर्ण है, और विभिन्न फसलों और पेड़ों के बीच प्रतिस्पर्धा से बचना प्रजातियों को चुनते समय ध्यान में रखने वाले महत्वपूर्ण कारकों में से एक है। इसका मतलब यह है कि प्रत्येक कृषि वानिकी प्रणाली को विशिष्ट पर्यावरण और सामाजिक-आर्थिक संदर्भ के अनुसार अनुकूलित किया जाना चाहिए। डायोस्पायरोस मेलानॉक्सिलॉन, कोरोमंडल आबनूस या पूर्वी भारतीय आबनूस, भारत और श्रीलंका के मूल निवासी एबेनेसी परिवार में फूलों के पेड़ की एक प्रजाति है; इसकी कठोर, सूखी छाल होती है। इसका सामान्य नाम दक्षिणपूर्वी भारत के तट कोरोमंडल से लिया गया है। स्थानीय तौर पर इसे टेम्बुरिनी या इसके हिंदी नाम तेंदू के नाम से जाना जाता है। तेंदू के पत्तों का उपयोग बीड़ी के आवरण के रूप में किया जाता है। चूँकि तेंदू की पत्तियाँ बड़ी आबादी के लिए धन का मुख्य स्रोत हैं जो वन भोजन एकत्र करने पर निर्भर करती हैं, इसे हरा सोना भी कहा जाता है। गर्मियों के दौरान मिट्टी से निकलने वाले तेंदु पत्तों से ताजी पत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। तेंदू के पेड़ के नीचे आग लगाने से भी इसे बढ़ाया जाता है। ताजी पत्तियों को आदिवासियों द्वारा हाथ से चुना जाता है और 10 दिनों तक धूप में सुखाया जाता है। यह प्रथा भारत के मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र ओडिशा और छत्तीसगढ़ राज्यों में देखी जाती है। राज्य सरकार प्रत्येक वर्ष तेंदूपत्ता संग्रहण एवं प्रसंस्करण का लाइसेंस निविदा के माध्यम से देती है।

तेंदू (भारतीय आबनूस) की पत्तियाँ मध्य भारत में सबसे महत्वपूर्ण एनटीएफपी प्रजातियों में से एक हैं। तेंदू की पत्तियों का उपयोग बीड़ी (भारतीय धूम्रपान तम्बाकू) लपेटने के लिए किया जाता है। एक अनुमान के अनुसार भारत के पूरे जंगल में प्रतिवर्ष 2000 मिलियन अमेरिकी डॉलर मूल्य की 350000 टन पत्तियाँ एकत्र की जाती हैं। मध्य प्रदेश राज्य प्रमुख तेंदूपत्ता उत्पादक राज्य है (देश के कुल उत्पादन का 25%), इसके बाद छत्तीसगढ़ (20%), उड़ीसा (15-20%) और महाराष्ट्र (10%) हैं। व्यापारियों द्वारा संग्राहकों के शोषण के कारण, राज्य ने उत्पाद को राष्ट्रीयकृत वस्तु घोषित करके तेंदू पत्तों के संग्रह और व्यापार के अधिकार सुरक्षित कर लिए, 1964 में तेंदू पत्ते संग्रहण का राष्ट्रीयकरण करने वाला पहला राज्य मध्य प्रदेश था, उसके बाद आंध्र प्रदेश (1971) था। और उड़ीसा (1973)। मध्य प्रदेश सरकार तेंदू पत्तों की बिक्री से संग्राहकों को 100% लाभ सीधे भुगतान के साथ-साथ बोनस के रूप में वितरित करती है। वहीं, उड़ीसा सरकार। हाल ही में तेंदू पत्ता अनुदान का 50% हिस्सा तोड़ने वालों और बांधने वालों के कल्याण कोष के लिए और शेष अनुदान तेंदू पत्ता संग्रहण वाले जिलों के बुनियादी ढांचे के विकास के लिए साझा करने की घोषणा की गई है। दूसरी ओर, आंध्र प्रदेश में कोई लाभ साझा करने की व्यवस्था नहीं है और यह संग्राहकों को केवल मजदूरी दरें प्रदान करता है। तेंदू पत्ता संग्रहण और बीड़ी बनाने से क्रमशः 106 मिलियन व्यक्ति दिवस और 675 मिलियन व्यक्ति दिवस उपलब्ध होने का अनुमान है, जो है रुपये के लायक 4515 मिलियन. अपने आकर्षक व्यवसाय के बावजूद स्वास्थ्य संबंधी चिंता, कच्चे माल की बढ़ती कीमतें और भारी कराधान नीति के कारण मांग में गिरावट के कारण व्यापार में गिरावट आ रही है। छत्तीसगढ़ सर्वोत्तम गुणवत्ता वाले तेंदू पत्ते का उत्पादन करने वाला भारत का अग्रणी राज्य है। तेंदू के पत्तों का उपयोग बीड़ी (सस्ते सिगरेट) के रैपर के रूप में किया जाता है। छत्तीसगढ़ में तेंदूपत्ता का उत्पादन लगभग 16.44 लाख मानक बोरा वार्षिक है, जो देश के कुल तेंदूपत्ता उत्पादन का लगभग 20% है। छत्तीसगढ़ में तेंदू पत्ते के एक मानक बैग में 50 पत्तों के 1000 बंडल होते हैं। संग्रहण का मौसम अप्रैल के तीसरे सप्ताह से मई के अंतिम सप्ताह तक होता है।

गैर-लकड़ी वन उत्पादों (एनटीएफपी) का संग्रह और बिक्री भारत में वन सीमांत समुदायों की आजीविका का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जिसमें अनुमानित 10- 27 करोड़ लोग शामिल हैं। तेंदू का पत्ता (डायस्पायरोस मेलानोक्सिलीन), जिसका उपयोग बीड़ी (भारतीय सिगरेट) बनाने के लिए किया जाता है, सबसे सामाजिक और आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण एनटीएफपी में से एक है। इसका संग्रह कम से कम 74 लाख पत्ते तोड़ने वालों को रोजगार प्रदान करता है, मुख्यत: मध्य भारत में।

अध्ययन का उद्देश्य

कांकेर जिले में तेंदू अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करना।

अनुसंधान क्रियाविधि

वर्तमान जांच जिसका शीर्षक है "छत्तीसगढ़ में कांकेर जिले में तेंदू पत्तों का विपणन" मार्च से जून 2018-2019 की अवधि के दौरान छत्तीसगढ़ में अनुसंधान कांकेर जिले में आयोजित किया जाएगा। अनुसंधान से पता चला कि तेंदू पत्तों का उत्पादन कांकेर जिले के अंटागार्ग ब्लॉक में होता है। जिले में सात ब्लॉक शामिल हैं और उनमें से अंतागढ़ ब्लॉक को जानबूझकर शोध कार्य के लिए चुना गया था। अंतागढ़ में, ब्लॉक 32 संगठनों की सामग्री थे। अंतागढ़ ब्लॉक में 194 गाँव शामिल थे। तेंदू पत्तों के विपणन (खरीद, बिक्री और प्रसंस्करण) की प्रक्रिया में, बाजार पदाधिकारी या तो सरकारी एजेंसी होते हैं, जिनमें स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) के माध्यम से लघु वनोपज समिति भी शामिल है। प्राथमिक डेटा चयनित एनटीएफपी संग्राहकों से अच्छी तरह से तैयार और परीक्षण किए गए कार्यक्रम के माध्यम से एकत्र किया गया था। डेटा में विभिन्न संचालन और जनशक्ति की लागत और कृषि स्तर पर विभिन्न एनटीएफपी के संग्रह, विपणन और प्राथमिक प्रसंस्करण में शामिल समय और राज्य सरकार और वन विभाग द्वारा सहायता शामिल है। सरकारी एजेंसियों छत्तीसगढ़ लघु वनोपज सहकारी संघ लिमिटेड से एनटीएफपी के विपणन और निर्यात से संबंधित डेटा भी एकत्र किया गया था।

नमूने का आकार

नमूना आकार निर्धारण के लिए एक उद्देश्यपूर्ण नमूनाकरण तकनीक का उपयोग किया गया था। अंत में, दस गांवों से प्राथमिक डेटा संग्रह के लिए 200 उत्तरदाताओं (प्रति गांव 20 उत्तरदाताओं) का चयन किया गया

लघु वन उपज (MFP)

लघु वन उत्पाद (एमएफपी) का अर्थ है फल, बीज, पत्तियां, छाल, जड़ें, फूल और घास आदि के रूप में विभिन्न वन प्रजातियों से प्राप्त उत्पाद, जिसमें औषधीय जड़ी-बूटियों/झाड़ियों के पूरे पौधे शामिल हैं। छत्तीसगढ़ के जंगल इन एमएफपी से बहुत समृद्ध हैं। राज्य में व्यावसायिक महत्व की कई एमएफपी प्रजातियाँ हैं। छत्तीसगढ़ राज्य लघु वनोपज (व्यापार एवं विकास) सहकारी संघ लिमिटेड, रायपुर एक त्रिस्तरीय सहकारी संगठन है, जिसका उद्देश्य एमएफपी संग्रहकर्ताओं के हित में लघु वनोपज के व्यापार और विकास को बढ़ावा देना है। ऑपरेटिव पैटर्न. फेडरेशन के मुख्य कार्य हैं-

1. यह सुनिश्चित करने के लिए कि एमएफपी संग्रहकर्ताओं को उनकी उपज का उचित मूल्य मिले, सरकार। भारत सरकार ने "न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) के माध्यम से लघु वन उपज (एमएफपी) के विपणन के लिए तंत्र और एमएफपी के लिए मूल्य श्रृंखला के विकास" योजना की शुरुआत की है। इस योजना के तहत महत्वपूर्ण एमएफपी के लिए एमएसपी तय किया गया है। छत्तीसगढ़ में साल बीज (शोरिया रोबस्टा), हर्रा (टर्मिनलिया बेलिरिका), कुल्लू के गोंद (स्टरकेलिया यूरेन्स), इमली (टैमारिंडस इंडिका), चिरौंजी गुथली (बुचानिया लानजान), लाख (कुसुमी, रंगिनी) (करिया लक्का), और महुआ बीज (मधुका लैटिफोलिया) की खरीद इस योजना के तहत की जाती है।

. निम्नलिखित निर्दिष्ट एमएफपी का संग्रहण और व्यापार।

3. तेंदू पत्ता संग्राहक परिवारों के लिए कई सामाजिक-आर्थिक कल्याण योजनाओं का कार्यान्वयन, जैसे मुफ्त जूते वितरण, उनके बच्चों की शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति योजनाएं, तेंदू पत्ता संग्राहक के सदस्यों के लिए बीमा योजनाएं, तेंदू पत्ते के व्यापार से लाभ का वितरण। भिन्न-भिन्न वेतन आदि का स्वरूप।
4. सुनिश्चित बाजार अनुबंध के साथ औषधीय और सुगंधित पौधों सहित अन्य गैर निर्दिष्ट लघु वन उपज का संग्रह और व्यापार।
5. लघु वनोपज आधारित प्रसंस्करण इकाइयों को बढ़ावा देना।
6. लघु वन उपज का संरक्षण, विकास एवं सतत उपयोग।
7. औषधीय, सुगंधित और रंगे पौधों सहित लघु वन उपज प्रजातियों की खेती को बढ़ावा देना।

छत्तीसगढ़ में इस सीजन (2019) में तेंदूपत्ता संग्रहण 22% बढ़ा

राज्य में संग्रहण सत्र अप्रैल के तीसरे सप्ताह से प्रारंभ होकर जून के दूसरे सप्ताह तक चलता है। देश में तेंदू पत्ते के अग्रणी उत्पादक राज्य छत्तीसगढ़ में पिछले सीजन की तुलना में संग्रहण में 22.05 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है। राज्य में संग्रहण सीजन अप्रैल के तीसरे सप्ताह से शुरू होता है और दूसरे सप्ताह तक जारी रहता है। जून। राज्य में बीड़ी रैपर और तम्बाकू के रूप में उपयोग किए जाने वाले तेंदू पत्तों की सर्वोत्तम गुणवत्ता का उत्पादन होता है। राज्य के दक्षिणी भाग में संग्रहण का मौसम उत्तर की तुलना में पहले शुरू होता है। छत्तीसगढ़ में तेंदू पत्ते का उत्पादन लगभग 1.93 मिलियन मानक बोरा वार्षिक है, जो देश के कुल उत्पादन का लगभग 22 प्रतिशत है। एक मानक बैग में 1,000 बंडल होते हैं, प्रत्येक बंडल में 50 पत्ते होते हैं। छत्तीसगढ़ राज्य

लघु वनोपज सहकारी संघ के एक वरिष्ठ अधिकारी ने कहा, "राज्य ने चालू सीजन में 1.53 मिलियन मानक बोरा तेंदूपत्ता एकत्र किया है, जो 2018 की तुलना में लगभग 20 प्रतिशत अधिक है।" महासंघ राज्य में तेंदूपत्ता संग्रहण के लिए नोडल एजेंसी है।

पिछले सीजन में 13.06 लाख मानक बोरा तेंदूपत्ता संग्रहण किया गया था। राज्य ने तेंदूपत्ता बेचकर अर्जित राजस्व में भी लगभग 19.7 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की है। राज्य में तेंदूपत्ता बेचने के लिए एक अलग नीति लागू की गई है। 2004. गोदाम से पत्तियां बेचने के बजाय खेत से ही क्रेता को पहले ही बेच दिया जाता है। हालाँकि, पत्तियों का संग्रहण और तोड़ने वालों को मजदूरी का भुगतान प्राथमिक सहकारी समिति द्वारा ही किया जाता है। नीति के तहत हरी पत्तियां संग्रहण केंद्र पर पहले से तय खरीदार को सौंप दी जाएंगी। चालू सीजन के दौरान, छत्तीसगढ़ में 7040 प्रति मानक बोरा का तेंदूपत्ता बेचा गया है, जबकि पिछले संग्रहण सीजन में 5959 प्रति मानक बोरा बेचा गया था। यह राजस्व में 18.14 फीसदी की बढ़ोतरी है.

तेंदूपत्ता का मौसमवार संग्रहण

तेंदू पत्तों के स्थानीय संग्रह के मौसम के अनुसार विश्लेषण से संबंधित डेटा तालिका में दिया गया है, एनटीएफपी में मौसम के अनुसार भिन्नता होती है और इन एनटीएफपी का संग्रह स्थानीय लोगों के मौसम के अनुसार भिन्न होता है। वर्तमान स्थिति यह दर्शाती है कि सभी प्रमुख एनटीएफपी तेंदू पत्तों के लिए लगभग 1 महीने के लिए उपलब्ध हैं। बरसात के मौसम में एनटीएफपी की उपलब्धता सबसे कम होती है; अनुसंधान क्षेत्र में प्रमुख तेंदू पत्तों के लिए सामूहिक विपणन रणनीति को सफलतापूर्वक पेश किया जा सकता है।

Year	Collected Quantity (Lakh Standard Bags)	Collection Wages (Rs. Crores)	Sale Value (Rs. Crores)	Average Sale Rate (Rs. per Std. Bag)
2015	13.01	156.13	345.50	2656
2016	13.61	204.21	638.89	4693
2017	17.10	307.80	1358.65	7945
2018	14.85	371.15	744.97	5033
2019	15.05	602.14	783.34	5218

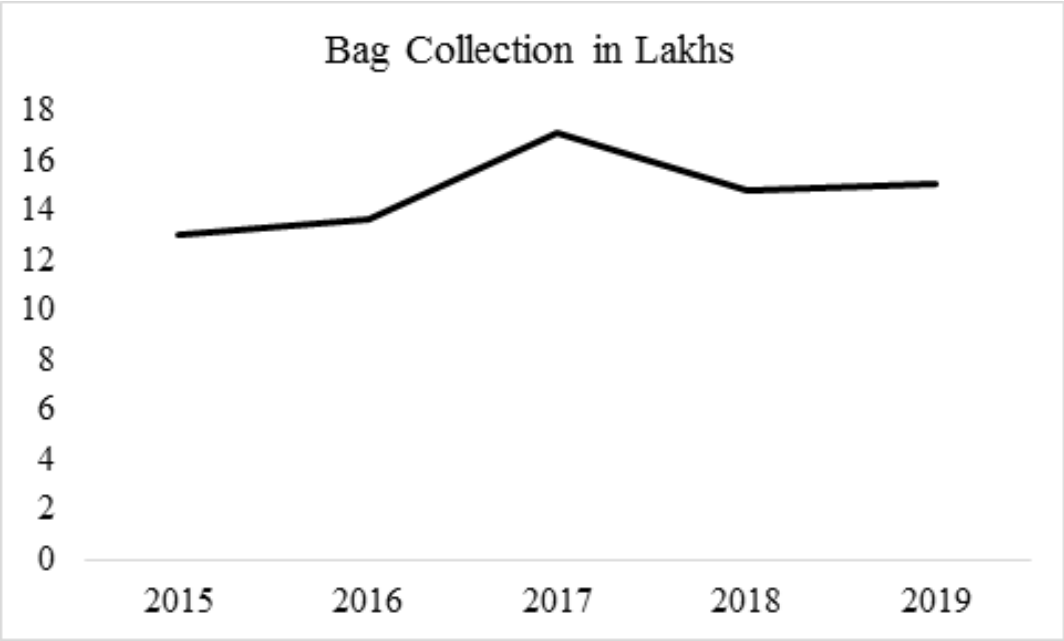

निष्कर्ष

कांकेर जिले में तेंदूपत्ता का विपणन अध्ययन का मुख्य उद्देश्य तेंदू पत्तों के उत्पादन की जांच करना, रुपये में उपभोक्ता हिस्सेदारी की गणना करना और तेंदू पत्तों के उत्पादन की लागत की गणना करना है। अध्ययन से संकेत मिलता है कि तेंदू पत्ते के विपणन को बढ़ाने की गुंजाइश है। कांकेर जिले के अंतागढ़ ब्लॉक के 194 गांवों में कुल मुनाफा 51420000 रुपये है.

सुझाव

1) राज्य में प्रदूषण फैलाने वाले हानिकारक तत्व के रूप में "प्लास्टिक" के उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया है और "दोना" और "पत्तल" (पत्तों से बने बर्तन) के अधिक से अधिक उपयोग को प्रोत्साहित किया जाता है। इसलिए इसके स्थान पर "पॉलिथिन" या जैसे हानिकारक उत्पादों का उपयोग किया जाता है। "प्लास्टिक" जो कि बड़ी मात्रा में व्यावसायिक रूप से उपभोग किया जाता है, को "डोना" और "पत्तल" जैसे सबसे किफायती और आसानी से उपलब्ध उत्पाद द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए।
2) तेंदू फल का उपयोग स्वस्थ पेय और कम कैलोरी वाले भोजन के रूप में भी किया जा सकता है क्योंकि यह विटामिन ए और सी, कैल्शियम और फास्फोरस से भरपूर होता है। यह फल त्वचा और बालों के लिए भी फायदेमंद होता है इसलिए त्वचा विशेषज्ञ इसका उपयोग सौंदर्य उत्पादों के रूप में कर सकते हैं।
3) तेंदू पत्ता संग्राहकों/संग्राहकों के बीच तेंदू पत्ता व्यापार को बढ़ावा देने के लिए नए विकासात्मक कार्यक्रमों/योजनाओं के बारे में जागरूकता का उचित प्रसार।
4) विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार महिलाओं को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए और उन्हें समय पर और वास्तविक वित्तीय लाभ प्रदान करना सुनिश्चित करना चाहिए। राज्य की वन उपज आय काफी हद तक तेंदू पत्ते पर निर्भर करती है। तेंदू पत्तों के व्यापार से राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष रूप से कृषि आधारित रोजगार कम होने पर काम उपलब्ध कराकर रोजगार के अवसरों की संभावना बढ़ जाती है। छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा अपनाई गई नीतियां और कल्याणकारी योजनाएं। तेंदू पत्ता संग्रहण और व्यापार ने विशेषकर राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी कम करने में प्रमुख भूमिका निभाई है।

संदर्भ

1. छत्तीसगढ़ के कांकेर जिले में तेंदू पत्तों का विपणन हरिश्चंद्र दर्रो, रामचंद्र और राजेश कुमार देवांगन कृषि वानिकी विभाग, वानिकी और पर्यावरण स्कूल, सैम हिगिनबॉटम इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नोलॉजी एंड साइंसेज, (मानित विश्वविद्यालय), इलाहाबाद (यूपी).
2. भारत के छत्तीसगढ़ राज्य में 'तेंदू पत्तों' के संग्रहण और बिक्री में वृद्धि के रुझान, लीलेश कुमार साहू, मोहम्मद अरशद अय्यूबबंद, ओम कुमार नेताम, कृषि अर्थशास्त्र विभाग, कृषि महाविद्यालय, आईजीकेवी, रायपुर (छत्तीसगढ़), भारत।
3. वार्षिक रिपोर्ट भारतीय वन स्थिति रिपोर्ट, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार
4. वे नीतियाँ जो गैर-लकड़ी वन उत्पादों के लिए काम करती हैं। लंदन: Earthscan.I.J.S.N., VOL.10 (3) 2019: गैली प्रूफ, ISSN 2229- 6441

'मानस-महाकाव्यम्' में काव्य-सौन्दर्य

किरण चौधरी

शोधार्थी, संस्कृत विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर, राजस्थान

शोधपत्र-सारांशः- मानस-महाकाव्य आधुनिक संस्कृत विद्वान् व रचनाकार आचार्य डॉ. नारायण शास्त्री काङ्कर विद्यालङ्कार द्वारा रचित है। महाकाव्य में कुल पन्द्रह सर्ग हैं। अतिसरल, सरस एवं बोधगम्य संस्कृत भाषा में रचित इस महाकाव्य में कवि ने विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक, राष्ट्रीय व नैतिक विषयों और समसामयिक अनेक मुद्दों एवं समस्याओं को अपनी लेखनी से उकेरा है; यथा- आरोग्य, युगधर्म, सैनिक, राष्ट्र, देववाणी संस्कृत, नारी, कलिकाल, भारत-दर्शन इत्यादि विभिन्न विषय अलग-अलग सर्गों में निरूपित किए हैं और तदनुसार सर्गों के नाम रखे हैं। सभी विषयों के द्वारा कवि ने मानवता, नैतिकता, अपनी संस्कृति, संस्कार व संस्कृत भाषा को बचाए व बनाए रखने और वर्ग-वर्ण, जाति-सम्प्रदाय आदि के भेदभाव से परे सद्भाव व एकता के साथ रहने का संदेश दिया है। इसी समस्त उपक्रम लेखन में कवि का यह प्रणयन भावपक्ष की दृष्टि से तो अतिसरस, संवेदनापूर्ण और भावप्रवण बना ही है, कलापक्ष की दृष्टि से भी यह अतिसशक्त और अलंकृत बन गया है। प्रस्तुत महाकाव्य काव्य-सौन्दर्य से सराबोर है; इसमें विभिन्न अलंकार-छन्द, गुण-रीति-शैली आदि सभी काव्यतत्व अपनी मनोहारी छटा बिखरते हुए काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि करते देखे जा सकते हैं। कवि की काव्य-कुशलता के चलते ही महाकाव्य में विभिन्न काव्यशास्त्रीय तत्वों का समावेश काव्य-सौन्दर्य की सृष्टि करने वाला बन गया है। प्रस्तुतालेख में मानस-महाकाव्य में निहित काव्य-सौन्दर्य पर प्रकाश डाला गया है।

प्रमुख शब्दावलीः- मानस-महाकाव्य, काव्य-सौन्दर्य, देववाणी संस्कृत, छन्द, अलंकार, गुण, रीति, काव्य तत्त्व, भावप्रवण, भावपक्ष, कलापक्ष।

शोधालेख- आधुनिक संस्कृत काव्य-जगत् के मर्मज्ञ व प्रख्यात विद्वान् एवं महामहिम राष्ट्रपति सम्मानित आचार्य डॉ. नारायण शास्त्री काङ्कर विद्यालङ्कार महोदय का प्रस्तुत प्रणयन 'मानस-महाकाव्य' संस्कृत वाङ्मय की अनुपम कृति है। पञ्चदश सर्गात्मक एवं 1610 पद्यों से गुम्फित यह महाकाव्य वर्तमान परिदृश्य की अव्यवस्थाओं, विसंगतियों, समस्याओं और अनैतिकता को प्रस्तुत करता है; साथ ही इनके परिहार व मूलोच्छेदन का मार्ग भी प्रशस्त करता है। विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय, राजनीतिक व नैतिक और समसामयिक अनेक विषय-बिन्दुओं तथा समस्याओं को प्रस्तुत महाकाव्य में बड़े ही सूक्ष्म व प्रभावी ढंग से चित्रित किया गया है।

महाकाव्य के भिन्न-भिन्न सर्ग अलग-अलग विषयों को लेकर गूंथे गए हैं; अतैव महाकाव्य में विषय-विविधता है तथा वर्तमान युग की अनेक समस्याओं व चिंताओं, जिनका मूलकारण मानवता व नैतिकता का ह्रास अथवा उच्च जीवन मूल्यों का ह्रास व पतन है, का निरूपण महाकाव्य में बड़ी कुशलता और सरसता के साथ हुआ है। यथा- आरोग्य, युगधर्म, क्षमायाचना, नारी, कलिकाल, सैनिक, सूक्ति, देववाणी आदि सर्गों में वर्तमान परिदृश्य को पूरी सच्चाई के साथ चित्रित किया है तथा व्याप्त विसंगतियाँ व उनके कारण व निवारण भी पद्यबद्ध किए हैं। निःसन्देह लोककल्याण की मंगलकामना कवि की रही है; जैसा कि कवि के प्रणयन का उद्देश्य होता भी है। इसी समस्त विषयोपक्रम में यह महाकाव्य भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अतिसशक्त, सरस व अलंकृत बन गया है। काव्य के प्रायः सभी आवश्यक तत्व अनायास ही इस प्रणयन में समाविष्ट हो गए हैं और काव्य-सौन्दर्य की सृष्टि व वृद्धि करते देखे गए हैं।

महाकाव्य के महाकाव्यत्व तथा इसमें समाविष्ट साहित्यिक सामग्री अथवा काव्यशास्त्रीय तत्व विषयक यथार्थ का प्रकटीकरण महाकाव्य के प्रारम्भिक सम्पादकीय वक्तव्य में संपादक महोदय 'रामशर्मा काङ्कर' ने इस प्रकार किया है; जहाँ वे लिखते हैं- "यद्यपि यह काव्य प्रचलित प्राचीन परम्परा से हटकर प्रस्तुत किया गया है; क्योंकि इसमें आदि से अंत तक विशिष्ट नायक-नायिका और प्रतिनायक-प्रतिनायिका का चित्रण नहीं किया गया है, तथापि साहित्य-शास्त्रियों द्वारा काव्य के लिए निर्दिष्ट सभी आवश्यक तत्वों का इसमें समावेश हो जाने से, प्रस्तुत कृति 'महाकाव्य' की संज्ञा से वञ्चित नहीं की जा सकती। इसका प्रत्येक सर्ग अपने नामानुसार अपने प्रतिपाद्य विषय को प्रस्फुटित करने में पूर्ण समर्थ है।"[1]

प्रस्तुत महाकाव्य "मनोहारिणौ शब्दार्थौ काव्यम्" एवं "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"[2] जैसे काव्य के लक्षणों के अनुसार अपना काव्यत्व भी सिद्ध करता है, तो वहीं रस-भाव, भाषा-शैली, गुण-रीति, छन्द-अलंकार आदि का भी समुचित व मनमोहक सन्निवेश पाठकों को प्रभावित व आकर्षित करता है। प्रसाद गुणयुक्त वैदर्भी रीति में सरलतम संस्कृत में छन्दोबद्ध होने से इस महाकाव्य में कहीं भी क्लिष्टता, दुरूहता तथा नीरसता नहीं है, जो कि इसके सफल काव्यकृति होने का सूचक है। सरल, सुबोध, बोधगम्य संस्कृत भाषा में काव्यशास्त्रीय तत्वों का सन्निवेश तथा गंगा-यमुना के संगम की भाँति प्राचीनता और अर्वाचीनता का मनमोहक संगम[3] कवि के रचना-कौशल एवं अथाह ज्ञान का प्रमाण है।

महाकाव्य में वीररस भी है, तो करुण, वीभत्स व भयानकादि रस भी हैं; शान्त रस भी है, तो भक्ति रस के स्थल भी यथावसर खूब देखे गए हैं।[4] यथा-सैनिक सर्ग नामक नवम् सर्ग में विभिन्न रसों का परिपाक हुआ है। सैनिकों के राष्ट्ररक्षण कार्य एवं युद्धकर्म के संदर्भ में विभिन्न पद्यों में वीर रस की सृष्टि हुई है, तो वहीं विभिन्न रणयोद्धाओं के वीरगति को प्राप्त होने तथा युद्ध में नरसंहार एवं सैनिकों के बलिदान, तत्पश्चात् उनके माता-पिता, भाई-बहिन, पत्नी-पुत्र-पुत्रियों आदि परिजनों के दुःख, शोक, वेदना की अभिव्यक्ति में करुण व शान्त रसों की सृष्टि हुई है- "रणे वीरगतिमाप्तं ..... दिवं गताय।।[5] एवं

"यद् दुःख ते पित्रोः, स्वसृ-बन्धु-पत्नी-पुत्र-पुत्रीणाम्। न तद् दुखं.....।।"[6] इत्यादि स्थल इसी प्रकार के हैं। प्रस्तुत पद्य में कितने सुन्दर एवं विरोधाभासी भावों का सुन्दर समन्वय कवि ने प्रस्तुत किया है, जहाँ वे सैनिकों को एक ओर क्रूर हिंसक व दूसरी ओर दयालु व रक्षक कह रहे हैं- हृदि तव हिंसा-दययोर्, विचित्रोऽस्ति मेलः सैनिक बन्धो! एकतस्त्वं सुरक्षसि, संहरसि चान्यतः क्रौर्येण।।[7]

अर्थात् सैनिकों के हृदय में हिंसा व दया का अद्भुत मेल है। एक ओर वे सुरक्षा करते हैं तो दूसरी ओर क्रूरता के साथ संहार। यहाँ इस पद्य में कवि ने बहुत सुन्दर काव्य-कौशल का प्रमाण प्रस्तुत किया है; जहाँ वे दो विरोधी बातों का एवं यथार्थ का बड़ी चतुरता से समन्वय प्रस्तुत करता है।

सङ्कटे यत्र..... तद्-रक्तं तत्र पीत्वा तु, मनुष्यो राक्षसायते।।'[8]

यहाँ मनुष्य के द्वारा मनुष्य का रक्त पीकर राक्षसवत् आचरण करने की कलियुग के मानव की प्रवृत्ति का बखान करने में वीभत्स रस की सृष्टि हुई है। "हा! कीदृगेष समयो, विकराल आगतो दुर्दमनीयः?"[9] इस पद्य में भयानक रस तथा क्लिष्ट शब्दावली युक्त वाक्य रचना में गौड़ी रीति है। "असारः खलु संसार"[10] पंक्ति में स्पष्टतः शान्तरस अभिव्यक्त हुआ है। इसी प्रकार काव्य में भक्ति रस का संचार- "कृष्णं भक्त्या सदा भजेत"[11] एवं "जय श्रीराम! उद्घोषः. .... सर्वाभीष्ट प्रदायकः।।"[12] इत्यादि पद्य पंक्तियों द्वारा हुआ है।

महाकाव्य में भाव-विचारों का सौन्दर्य निहित है तथा सर्वमंगल-कल्याण की कामना अनेक पद्यों में व्यक्त हुई है।

पुत्र्योऽस्मदीयाः सकलाः सुशीलाः, स्वीयेन पत्या च कुटुम्बकेन।
पुत्रैर्युताः स्वीय-सुताभिरन्विता, जीवन्तु दीर्घं च सुखं लभन्ताम्।।[13]

अर्थात् "सभी सुशील पुत्रियाँ अपने पति, कुटुम्ब, पुत्र और पुत्रियों के साथ दीर्घजीवी हों और सुख-लाभ करें।" तथा "श्रीराम एकस्तनयोऽस्मदीयः..... स्वस्थः समृद्धोऽस्त्वगदो यशस्वी।।"[14] और "स्वस्त्यस्तु सौभाग्यवति..... नैरोग्यमाप्ता सुखिनी भव त्वम्।।"[15] इत्यादि विभिन्न पद्यों में सभी के सुख-समृद्धि, उत्तम स्वास्थ्य, आरोग्य व चिरायु की कामना में भावप्रवणता तथा विचारों की उत्कृष्टता वैचारिक एवं भाव सौन्दर्य को ही तो पुष्ट कर रही है। इसी प्रकार महाकाव्य में विभिन्न काव्य-शास्त्रीय तत्वों का सन्निवेश उत्कृष्टता व कुशलता के साथ हुआ है, जो काव्य-सौन्दर्य की सृष्टि व वृद्धि करने वाला है।

विभिन्न अलंकारों का सहज-सुन्दर प्रयोग महाकाव्य में स्थान-स्थान पर हुआ है; जो काव्यशोभाधायक है। महाकाव्य के प्रथम सर्ग में "क्षणे क्षणे क्षीयत"[16] यहाँ पदावृत्ति होने से अनुप्रास अलंकार की सुन्दर छटा है। "स्वास्थ्यं सुरक्ष्यं सततं स्वकीयं" यहाँ स् वर्ण की आवृत्ति होने से वर्णानुप्रास बन पड़ा है। इसी प्रकार "रक्षको-भक्षको"[17], "यावच्च यदा, तावच्च तदा"[18] इत्यादि स्थलों तथा "सदा सदाहार-विहार"[19] स्थलों पर पद एवं पदांशावृत्ति होने के कारण भी अनुप्रास की सृष्टि हुई है। इसी प्रकार वर्ण, पद, पदांश की आवृत्ति वाले अनेक स्थलों पर अनुप्रास अलंकार देखा जा सकता है।[20] "सुलक्षणां सौम्यगुणां सदाशयां, साध्वीं सुशीलां सरसां सुहासिनीम्। सुसन्ततिं....।।"[21] इस पद्य में देखें किस प्रकार स् वर्ण की झड़ी कवि ने लगा दी है तथा प्रसाद-माधुर्य गुणयुक्त मनोहर शैली वाले सरल, सरस संस्कृत भाषायुक्त पद्य में काव्य सुषमा चरम पर है। इसी प्रकार रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा इत्यादि विभिन्न अलंकारों का भी काव्य में अतिस्वाभाविक प्रयोग काव्य-सौन्दर्य की अत्यधिक वृद्धि करने वाला बन गया है। "औदार्याम्बुधि-मग्नस्य"[22] अर्थात् "उदारतारूपी सागर" एवं अन्यत्र "तृष्णा-पिशाची-ग्रस्त" अर्थात् "तृष्णारूपी पिशाची से ग्रस्त" में रूपक; "जलमिव",[23] "खर्जूरिव"[24], में उपमा; "सोदर्याविव"[25] अर्थात् मानो सहोदरवत् यानि सगा भाई हो तथा "स्वसेव पुत्रीव परस्त्री"[26] अर्थात् पराई स्त्री को अपनी बहिन, बेटी के समान मानने की बात कही गई है; मानो वह अपनी बहिन, बेटी ही हो यहाँ उत्प्रेक्षा एवं "यथा मृत्युभयं लोके.....।।"[27] पद्य में दृष्टान्त और "असीम-ज्ञान-कोषे.....।"[28] पद्य में विशेषोक्ति है; क्योंकि यहाँ हेतु-कारण के होने पर भी फलोत्पत्ति का अभाव है। "संस्कृते व्ययितं द्रव्यं.... बीजवत।।"[29] में उदाहरणालंकार है। इसी प्रकार महाकाव्य में आद्योपांत अलंकार विविधता विद्यमान है। छन्दों में आर्या, अनुष्टुप आदि मात्रिक व विभिन्न वर्णिक छन्दों में पद्यरचना हुई है। 'सूक्ति-सर्गः' नामक दशम सर्ग तो पूरा ही अनुष्टुप छन्द में निबद्ध है। इसी प्रकार देववाणी-सर्ग नामक त्रयोदश सर्ग में भी अनेक पद्य अनुष्टुप छन्द में रचित हैं। बसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता आदि वर्णिक छन्द तथा अन्यान्य छन्द भी विभिन्न पद्यों में देखे जा सकते हैं।

संस्कृतं सरल-सरलं, मधुर-मधुरं श्रवणे भाषणेऽपि च....।।"[30] यहाँ वैदर्भी रीति तथा पदानुप्रास अलंकार होने से काव्य-सौन्दर्य स्पष्टतः व्यक्त हो रहा है। "प्रेमैव जगतः सारं, प्रेम्णा.....।।"[31] पद्य में भी वैदर्भी रीति है। यहाँ माधुर्य व्यंजक शब्दों का संयोजन हुआ है। तो वहीं त्रोटनं स्फोटनं दाहो..... स्वराष्ट्रं क्षीयन्ते. .....।।"[32] एवं "सङ्कटे पतिते राष्ट्रे, वैमत्यं..... राष्ट्रं विध्वंसयेद् ध्रुवम्।।"[33] पद्यों में क्लिष्ट शब्दावली का सन्निवेश हुआ है, अतः गौड़ी रीति है। इस प्रकार महाकाव्य में गुण, रीति, शैली, अलंकार, छन्द आदि सभी का वैविध्य व सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है।

निष्कर्षः- 'मानस-महाकाव्यम्' का काव्यशास्त्रीय तत्वों और काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से पर्यालोचन करने पर यह तथ्य सामने आता है कि प्रस्तुत महाकाव्य में आवश्यक सभी काव्यशास्त्रीय तत्वों का सन्निवेश हुआ है तथा भावपक्ष व कलापक्ष की दृष्टि से यह महाकाव्य अतिसमृद्ध व उत्कृष्ट है। रस, भाव, भाषा, शैली, गुण, रीति, अलंकार, छन्द आदि सभी के यथोचित सन्निवेश व प्रयोग वैविध्य ने काव्य के सौन्दर्य में अतिशय वृद्धि की है। अतः काव्य-सौन्दर्य, संदेश, शिक्षा और प्रासंगिकता आदि की दृष्टि से यह महाकाव्य सफल, अतिप्रशस्त व महत्वपूर्ण रचना है।

संदर्भ स्थलः-

1. मानस-महाकाव्यम्, सम्पादकीय, पृष्ठ xviii से उद्धृत।
2. साहित्य दर्पण, पृष्ठ 17
3. मानस-महाकाव्यम्, सम्पादकीय, पृष्ठ xviii से उद्धृत
4. वही, 6/72 वीररस; 6/78 वीर एवं भयानक रस; 6/2 भयानक रस; 6/41-42 शांत रस; 6/33, 43 भक्ति रस; 11/21, 23, 35, 9/8, 8/43, 3/3, 24 करुण रस

5. वही, 9/3 (सैनिक-सर्गः)
6. वही, 9/4 (सैनिक-सर्गः) एवं 9/42
7. वही, 9/35 (सैनिक-सर्गः)
8. वही, 6/2 (मुक्तक-सर्गः)
9. वही, 7/1 (कलिकाल-सर्गः) एवं अन्य स्थल 6/78
10. वही, 10/25 (सूक्ति-सर्गः)
11. वही, 10/25 (सूक्ति-सर्गः)
12. वही, 6/33 (मुक्तक-सर्गः)
13. वही, 4/72 (क्षमायाचना-सर्गः)
14. वही, 4/71 (क्षमायाचना-सर्गः)
15. वही, 4/70 (क्षमायाचना-सर्गः)
16. वही, 1/8 (वाङ्मय-पूजन-सर्गः) एवं अन्य स्थल 9/38 'नूतन-नूतनं'
17. वही, 10/14 (सूक्ति-सर्गः)
18. वही, 2/59 (आरोग्य-सर्गः)
19. वही, 2/22 (आरोग्य-सर्गः)
20. वही, 2/67- "'करणीय', 'रक्षणीयो', 'धारणीया'" एवं 3/25 "स्वामी स्वयं स्वस्य सदा"; 7/80 'यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र' एवं 'तन्त्र-मन्त्र-यन्त्रैस्ते", 7/83, 90, 98 एवं अन्य विभिन्न स्थल।
21. वही, 4/64 (क्षमायाचना-सर्गः)
22. वही, 6/96 (मुक्तक-सर्गः)
23. वही, 9/36 (सैनिक-सर्गः) एवं 9/37 'यथा चन्द्रो ज्योत्स्नया, ...।" में उपमा-अलंकार
24. वही, 9/50 (सैनिक-सर्गः)
25. वही, 8/66 (भारत-दर्शन-सर्गः)
26. वही, 2/66 (आरोग्य-सर्गः)
27. वही, 10/16 (सूक्ति-सर्गः)
28. वही, 8/37 (भारत-दर्शन-सर्गः)
29. वही, 13/105 (देववाणी-सर्गः)
30. वही, 5/28 (नारी-सर्गः)
31. वही, 6/1 (मुक्तक-सर्गः)
32. वही, 6/25 (मुक्तक-सर्गः) एवं अन्य स्थल 10/62
33. वही, 6/12 (मुक्तक-सर्गः)

ग्रन्थ सूचीः-

1. मानस-महाकाव्यम्: आचार्य डॉ. नारायण शास्त्री काङ्कर विद्यालङ्कार द्वारा विरचित, प्रकाशिका- श्रीमती सौ. इन्दु शर्मा, विद्या-वैभव-भवन, 29, केसर-विहार, जगतपुरा, जयपुर, द्वितीय संस्करण- 2021
2. साहित्य दर्पण, श्रीमद्विश्वनाथ कविराज प्रणीत, सम्पादक- डॉ. निरूपण विद्यालंकार, साहित्य भण्डार, मेरठ, संस्करण, 1994

ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण में साक्षर भारत मिशन की भूमिका कांकेर जिले के विशेष संदर्भ में

डॉ० प्रीति वैष्णव

अतिथि व्याख्याता, अर्थशास्त्र, भानुप्रतापदेव शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उत्तर बस्तर कांकेर, छत्तीसगढ़

प्रस्तावना-

''पृथ्वी के जैसी क्षमता, सूर्य के जैसा तेज, समुद्र जैसी गंभीरता, चंद्रमा जैसी शीतलता, पर्वतों जैसी हिम्मत एवं डटे रहने की भावना से परिपूर्ण हर महिला हैं।'' नारी के और भी कई गुण हैं, जो उसे दूसरों से विशिष्ट बनाते है। नारी में दया करूणा, ममत्व भावना, प्रेम, सहनशीलता जैसे कई गुण विद्यमान होते हैं, जिसके कारण यह भी कहा जाता हैं कि नारी ही समाज की जननी है।

''नारी को निर्णय लेने व उस पर क्रियान्वयन करने की स्वतंत्रता व उस क्षमता का विकास जिससे वह अपने विकास की धारा स्वयं तैयार कर सकें, महिला सशक्तिकरण कहलाता हैं।

''नारी को निर्णय लेने व उस पर क्रियान्वयन करने की स्वतंत्रता व उस क्षमता का विकास जिससे वह अपने विकास की धारा स्वयं तैयार कर सकें, महिला सशक्तिकरण कहलाता हैं।

प्रत्येक क्षेत्र में सूचनाओं के भारी प्रवाह के कारण विकास हेतु साक्षरता एक आवश्यक हथियार हैं। साक्षरता द्वारा महिला के हाथ में शब्दों में लिखी सूचना रूपी ताले को खोलने की चाबी आ जाती हैं। आज के आधुनिक संसार में विकास हेतु साक्षरता एक प्राथमिक योग्यता अथवा शर्त हैं।

महिलाएं, साक्षरता अभियान की सक्रिय एवं समर्पित भागीदार रही हैं। कार्यक्रम की सफलता के लिए सराहनीय योगदान दिया हैं एवं कई प्रकार की भूमिकाएं निभाई हैं। उन्होंने उत्प्रेरक जत्था, कलाकार, स्वयंसेवक एवं प्रशिक्ष्इस अभियान में समाज की विभिन्न वर्गो की स्त्रियां एक साथ आई हैं।

इस अभियान में समाज की विभिन्न वर्गो की स्त्रियां एक साथ आई हैं। इस प्रकार के बलों के समायोजन का एक प्रेरणादायक प्रभाव रहा एवं बड़ी मात्रा में महिलाओं को खुली भागीदारी हेतु सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हुई है।

साक्षर भारत मिशन में वैसे तो सभी वर्ग एवं लिंग के व्यक्तियों को शिक्षा प्रदान की जा रहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों के लोंगों बहुत से तकनीकी विषयों में पिछड़े हुए है, अत: धीरे-धीरे इन अभियानों के माध्यम से उन्हें विभिन्न विषयों की जानकारी हो पर रही हैं। हिन्दी, गणित, अंग्रेजी जैसे विषयों के प्रारंभिक ज्ञान तो प्राप्त कर ही रहें है साथ ही साथ विभिन्न संचार माध्यमों द्वारा स्वयं को वर्तमान पीढ़ी के साथ तालमेल बैठाना भी सीख पा रहे हैं।

रात्रिकालीन यह शिक्षा प्रेरकों द्वारा दी जाती हैं। नारी शिक्षा ग्रामीण क्षेत्रों के लिए आवश्यक है क्योंकि शिक्षित नारी ही पूरे समाज को उन्नति की ओर ले जा सकती हैं। साक्षर भारत मिशन के योगदान से इसमें वृद्धी देखा जा सकता हैं।

अध्ययन पद्धति-

इस अध्ययन हेतु कांकेर विकास खंड के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में संचालित साक्षर भारत मिशन में प्रौढ़ महिलाओं को साक्षरता प्रदान करने हेतु संचालित पांच केन्द्रों का चयन किया गया प्रत्येक केन्द्रों से पंद्रह ग्रामीण महिलाओं का दैव निर्दशन के आधार पर चयन किया गया, इस प्रकार कुल 75 ग्रामीण महिलाओं का चयन किया गया। अध्ययन का उद्देश्य साक्षर भारत मिशन में महिलाओं की साक्षरता स्थिति का पता लगाना तथा ग्रामीण महिलाओं को उनके अधिकारों की जानकारी है या नहीं इसका पता लगाना है।

परिणाम एवं विश्लेषण- प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से निम्न परिणाम प्राप्त हुये

तालिका1- साक्षर भारत मिशन में महिलाओं की शिक्षा संबंधी अवधारणा

क्र.	तथ्य	हां %	नहीं %	कुल %
1.	पढ़ने में इच्छुक न्यादर्ष	75 (100%)	0 (0%)	75 (100%)
2.	शिक्षा के लिए प्रेरित न्यादर्ष	74 (98.67%)	1 (1.33%)	75 (100%)
3.	महिलाओं की ष्शिक्षा की उचित व्यवस्था	72 (96%)	3 (4%)	75 (100%)
4.	महिला ष्शिक्षा को आवष्यक मानती हैं	75 (100%)	0 (0%)	75 (100%)
5.	बुनियादी ष्शिक्षा के पश्चात् पढ़ना चाहती हैं	74 (98.61%)	1 (1.33%)	75 (100%)

प्राथमिक संमक पर आधारित आंकडे

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि सभी नवसाक्षर महिलाएं पढ़ना चाहती हैं, 4 प्रतिशत मिशन में महिलाओं के लिए किए गए व्यवस्था से संतुष्ट नहीं है। 99 प्रतिशत महिलाएं आगे और पढ़ने के लिए उत्सुक हैं, जो कि इस मिशन की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

तालिका 2- साक्षर भारत मिशन से महिलाओं के अधिकारों की जानकारी

Ø-	rF;k dh tkudkjh	gk %	ugh %	dy %
1.	शासन द्वारा प्रदत्त अधिकारों व नियमों	71 (94.67%)	4 (3.33%)	75 (100%)
2.	शासन द्वारा दिये जाने वाले भत्तों	67 (89.33%)	8 (10.67%)	75 (100%)
3.	आप अपने क्षेत्र के पंच, सरपंच का ज्ञान	75 (100%)	0 (0%)	75 (100%)
4.	स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण के नियमों	68 (90.67%)	7 (9.33%)	75 (100%)
5.	महिला एवं बाल विकास द्वारा संचालित योजनाओं	66 (88%)	9 (12%)	75 (100%)

प्राथमिक संमक पर आधारित आंकडे

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 94.67 प्रतिशत नवसाक्षर ग्रामीण महिलाओं को महिलाओं के लिए बनने वाले कानून की जानकारी है, 89.33 प्रतिशत नवसाक्षर को भत्तों की जानकारी हैं। सभी न्यादर्श अपने गांव के सरपंच तथा पंच को जानती है। 90.67 प्रतिशत महिलाएं परिवार कल्याण के नियमों की जानकारी रखती है तथा 88 प्रतिशत महिलाएं महिला एवं बालविकास द्वारा संचालित योजनाओं की जानकारी हैं।

निष्कर्ष-

प्रस्तुत अध्ययन से ज्ञात होता है कि महिला सशक्तिकरण के लिए सबसे ज्यादा आवश्यकता है, साक्षरता की जब महिलाएं साक्षर होगी तभी उनका विकास होगा। साक्षर भारत मिशन से जुड़ी शत् प्रतिशत महिलाएं साक्षर हुई है। जो मिशन की सफलता का द्योतक है जिससे महिलाएं शिक्षत हो अपने दैनिक कार्यो सहित कई पारिवारिक जिम्मेदारियों तथा दायित्यों का निर्वाह करने में अग्रणी भूमिका निभा रही है। मिशन की यह बहुत बड़ी उपलब्धि कहीं जा सकती हैं क्योंकि यह महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है

सुझाव-

प्रस्तुत लघुशोध का अध्ययन करने के पश्चात् निम्नलिखित सुझाव दिये गयें-

1. ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं को अधिक से अधिक साक्षर बनाया जायें।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में पुस्तकालय की व्यवस्था होनी चाहिये।
3. इन क्षेत्रों की महिलाओं के लिए प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र के अंतर्गत समाचार पत्र महिलाओं से संबंधित पत्र आदि की सुविधा प्रदान की जायें।
4. इन महिलाओं की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिये इनके लिये कुटीर उद्योंगों की व्यवस्था की जानी चाहिए। जिससे वह समाज की शिक्षा दिशा पर पर्याप्त रूप से राशि व्यय करना चाहिए।
5. महिलाओं को साफ-सफाई एवं स्वास्थ्य की जानकारी देकर उन्हें जागरूक बनाया जायें।
6. महिलाओं को तकनीकी एवं कम्प्यूटर का ज्ञान दिया जायें।
7. साक्षर करने के साथ व्यवसायिक प्रशिक्षिण/जानकारी देना चाहिए ताकि महिलायें/कुटीर उद्योग से जुड़ सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. राय पारसनाथ, अनुसंधान परिचय, पृष्ठ - 63-73 लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, संजय प्लेस आगरा
2. स्टेट रिसोर्स सेंटर साक्षर भारत मिशन, मुद्रक महावीर ऑफसेट, रायपुर
3. देब तुहिन निदेशक, राज्य संसाधन केन्द्र (प्रौढ़ एवं सतत् शिक्षा) साक्षरता/शिक्षा से महिला सशक्तिकरण
4. पाठक एन. पी, भारत में महिला सशक्तीकरण - एक आर्थिक दृष्टि, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा।

भारतीय अर्थव्यवस्था का बदलता स्वरूप और विभिन्न समुदायों की सहभागिता

डॉ० वसीमुद्दीन

दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

परिचय

भारत, जो कभी एक आत्मनिर्भर कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था था, अब विश्व के सबसे तेजी से विकसित हो रहे देशों में से एक है। इसका आर्थिक परिदृश्य समय के साथ बदलता रहा है, जिसमें कृषि, उद्योग और सेवा क्षेत्र ने अपनी-अपनी भूमिकाएँ निभाई हैं। यह परिवर्तन विभिन्न समुदायों की सक्रिय सहभागिता और योगदान के बिना संभव नहीं होता।

भारतीय अर्थव्यवस्था का ऐतिहासिक परिदृश्य

1. प्राचीन काल

भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि और व्यापार पर आधारित थी। सिंधु घाटी सभ्यता और वैदिक काल में कृषि और पशुपालन प्रमुख थे। सोने, मसालों, और कपास के व्यापार ने भारत को वैश्विक आर्थिक शक्ति बनाया। विभिन्न समुदायों ने कारीगरी, हथकरघा और व्यापार में योगदान दिया।

2. मध्यकालीन भारत

मुगल शासन के दौरान शहरीकरण बढ़ा और व्यापारिक समुदाय जैसे बनिया, मारवाड़ी और पारसी सक्रिय हो गए। हस्तशिल्प उद्योग, विशेषकर कपड़ा उद्योग, ने वैश्विक पहचान बनाई।

3. औपनिवेशिक काल (1757-1947)

ब्रिटिश शासन के दौरान आर्थिक संरचना को नुकसान पहुंचा। सामुदायिक भागीदारी कम हो गई और कृषि पर निर्भरता बढ़ी। भारतीय उद्योग और शिल्पकला को व्यवस्थित रूप से नष्ट किया गया। बंगाल, बिहार और महाराष्ट्र के समुदाय ब्रिटिश चाय बागानों और रेलवे में मजदूरी करने लगे।

4. स्वतंत्रता के बाद (1947 से)

पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ने का प्रयास किया गया। सार्वजनिक क्षेत्र पर जोर दिया गया, जिससे सरकारी नौकरियों में विभिन्न समुदायों की भागीदारी बढ़ी। ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारी समितियाँ और हरित क्रांति जैसी पहल हुई।

5. उदारीकरण के बाद (1991 से)

आर्थिक उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण के दौर में भारतीय अर्थव्यवस्था का तेजी से विकास हुआ। आईटी और सेवा क्षेत्र का उदय हुआ, जिसने शहरीकरण को बढ़ावा दिया। कृषि का योगदान कम हुआ, लेकिन सेवा और उद्योग क्षेत्र ने अर्थव्यवस्था को नई ऊँचाइयों पर पहुँचाया।

भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख क्षेत्र और समुदायों की भूमिका

1. कृषि क्षेत्र

भारत की 60% आबादी आज भी कृषि पर निर्भर है। छोटे और मझोले किसान, दलित समुदाय और महिलाएँ इस क्षेत्र में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। हरित क्रांति में पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के किसानों का प्रमुख योगदान रहा। सहकारी समितियों और महिला स्वयं सहायता समूहों (SHGs) ने ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि उत्पादकता और स्वरोजगार को बढ़ावा दिया।

2. औद्योगिक क्षेत्र

प्रारंभिक उद्योग जैसे कपड़ा, इस्पात और कोयला ने मजदूर वर्ग को रोजगार दिया। महाराष्ट्र, गुजरात और तमिलनाडु के व्यापारिक समुदायों ने उद्योगों को आगे बढ़ाने में योगदान दिया। दलित और आदिवासी समुदायों को सरकारी नीतियों और आरक्षण के माध्यम से औद्योगिक क्षेत्र में स्थान मिला। छोटे और मझोले उद्योगों (MSMEs) में पारंपरिक हस्तशिल्प और कारीगरों का योगदान अहम है।

3. सेवा क्षेत्र

भारत का आईटी क्षेत्र, विशेषकर बेंगलुरु और हैदराबाद, वैश्विक पहचान बना चुका है।

मुस्लिम समुदाय से जुड़े लोग पर्यटन और हस्तशिल्प उद्योग में योगदान देते हैं। बैंकिंग, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं में महिलाओं और अल्पसंख्यक समुदायों की भूमिका बढ़ी है। विभिन्न समुदायों की सहभागिता

1. महिलाओं की भूमिका

महिलाओं की भागीदारी कृषि, हस्तशिल्प, सेवा और औद्योगिक क्षेत्रों में लगातार बढ़ रही है। महिला स्वयं सहायता समूह (SHGs) ने ग्रामीण महिलाओं को वित्तीय स्वतंत्रता दी है। आईटी और स्टार्टअप में महिला उद्यमियों की संख्या बढ़ी है।

2. दलित समुदाय

आरक्षण नीतियों ने दलितों को शिक्षा और नौकरियों में अवसर प्रदान किए। सरकारी योजनाओं के माध्यम से इस समुदाय को स्वरोजगार के लिए प्रोत्साहित किया गया। ईंट भट्ठों और निर्माण क्षेत्र में दलित श्रमिकों की प्रमुख भागीदारी है।

3. आदिवासी समुदाय

आदिवासी समुदाय अपनी पारंपरिक कौशल, जैसे हस्तशिल्प और वनोत्पाद, के माध्यम से भारतीय अर्थव्यवस्था में योगदान देते हैं। मनरेगा जैसी योजनाओं ने इस समुदाय को रोजगार का अवसर दिया।

4. अल्पसंख्यक समुदाय

मुस्लिम समुदाय ने कपड़ा उद्योग, पर्यटन, और हस्तशिल्प में बड़ा योगदान दिया। सिख समुदाय कृषि और ट्रांसपोर्ट उद्योग में अग्रणी है। पारसी और यहूदी समुदायों ने व्यापार, उद्योग और बैंकिंग में अपनी छाप छोड़ी है।

आधुनिक अर्थव्यवस्था में चुनौतियाँ और अवसर चुनौतियाँ

1. आर्थिक असमानता:

समुदायों के बीच आय और अवसरों में अंतर।

2. ग्रामीण-शहरी विभाजन:

ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों की कमी।

3. शिक्षा और कौशल का अभाव:

कई समुदायों में तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा की कमी।

अवसर

1. डिजिटल इंडिया और स्टार्टअप संस्कृति:

युवा उद्यमियों और स्टार्टअप्स को बढ़ावा।

2. समावेशी विकास:

सभी समुदायों को समान आर्थिक अवसर प्रदान करने की दिशा में प्रयास।

3. वैश्विक व्यापार में विस्तार:

भारतीय उत्पादों और सेवाओं की अंतरराष्ट्रीय मांग।

निष्कर्ष

भारतीय अर्थव्यवस्था का बदलता स्वरूप यह दर्शाता है कि कैसे विभिन्न समुदायों ने एक समावेशी और विविधतापूर्ण आर्थिक संरचना के निर्माण में योगदान दिया है। सभी समुदायों के योगदान को पहचानकर और उन्हें समान अवसर प्रदान करके, भारत वैश्विक आर्थिक परिदृश्य में अग्रणी भूमिका निभा सकता है।

बिबलियोग्राफी

1. गोपाल, के. (2020). भारतीय अर्थव्यवस्था का इतिहास. नई दिल्ली: प्रकाशन भवन।
2. चौधरी, एस. (2018). आधुनिक भारत की आर्थिक संरचना. मुंबई: नेशनल पब्लिशिंग।
3. सरकार, डी. (2021). भारत में समुदाय और विकास. कोलकाता: बुक वर्ल्ड।
4. इंडिया ब्रांड इक्विटी फाउंडेशन (IBEF). (2023). www-ibef-org
5. योजना पत्रिका (2022). समावेशी विकास पर विशेष अंक, नई दिल्ली।
6. विश्व बैंक (2023). भारत की आर्थिक रिपोर्ट।
7. देव, एस.एम. (2020). भारतीय कृषि और ग्रामीण विकास. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
8. पांडेय, वी. (2021). आर्थिक सुधार और भारतीय समाज. जयपुर: यूनिक पब्लिशर्स।

भारत में राजनीतिक विज्ञापनों का मतदाता व्यवहार पर प्रभाव

डॉ० प्रतिभा कुमारी

उच्च माध्यमिक शिक्षा (राजनीति विज्ञान), प्लस 2 हाई स्कूल, आती, नवादा बिहार।

सारांश (Abstract):

इस शोध पत्र का उद्देश्य भारत में राजनीतिक विज्ञापनों के मतदाता व्यवहार पर प्रभाव का विश्लेषण करना है। भारतीय राजनीति में विज्ञापनों का उपयोग राजनीतिक दलों द्वारा अपनी छवि को प्रस्तुत करने, मतदाताओं को प्रभावित करने और चुनावों में सफलता प्राप्त करने के लिए किया जाता है। यह अध्ययन राजनीतिक विज्ञापनों के माध्यम से मतदाता की मानसिकता, निर्णय लेने की प्रक्रिया और चुनावी परिणामों पर इसके प्रभाव का विश्लेषण करता है।

प्रस्तावना (Introduction):

राजनीतिक विज्ञापन वह प्रमुख माध्यम हैं जिनके जरिए राजनीतिक दल अपने विचारों, नीतियों और प्रचार सामग्री को मतदाताओं तक पहुंचाते हैं। मीडिया के विभिन्न रूपोंख्रटीवी, रेडियो, सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्मख्रके माध्यम से राजनीतिक संदेशों का प्रसार किया जाता है। चुनावी मौसम में राजनीतिक विज्ञापन का प्रभाव बढ़ जाता है, और यह मतदाता के निर्णय को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

भारत में, जहां चुनावी प्रचार एक जटिल और विविधतापूर्ण प्रक्रिया है, राजनीतिक विज्ञापनों का प्रभाव मतदाता की मानसिकता पर गहरा होता है। इस शोध में हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि ये विज्ञापन किस प्रकार मतदाता के विचार, उनके राजनीतिक निर्णय और चुनावी परिणामों को प्रभावित करते हैं।

शोध उद्देश्य (Objectives):

राजनीतिक विज्ञापनों के विभिन्न प्रकारों का अध्ययन करना।

भारत में राजनीतिक विज्ञापनों के प्रभाव का विश्लेषण करना।

राजनीतिक विज्ञापनों के माध्यम से मतदाता की मानसिकता में बदलाव को समझना।

चुनावी परिणामों पर राजनीतिक विज्ञापनों के प्रभाव का मूल्यांकन करना।

राजनीतिक विज्ञापनों के सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं का विश्लेषण करना।

साहित्य समीक्षा (Literature Review):

विभिन्न शोधों में यह पाया गया है कि राजनीतिक विज्ञापनों का प्रभाव मतदाता की प्राथमिकताओं और चुनावी निर्णयों पर अत्यधिक होता है। कुछ अध्ययन बताते हैं कि इलेक्ट्रॉनिक और सोशल मीडिया में दिखाए गए विज्ञापन मतदाताओं को अपने विचार बदलने के लिए प्रेरित कर सकते हैं, जबकि अन्य शोध यह बताते हैं कि राजनीतिक विज्ञापन केवल उन लोगों को प्रभावित करते हैं, जो पहले से ही किसी दल या विचारधारा से जुड़े होते हैं।

मुख्य बिंदु:

मतदाता की जानकारी और संवेदनशीलता: राजनीतिक विज्ञापन मतदाता की जानकारी को प्रभावित कर सकते हैं। जो मतदाता कम सूचित होते हैं, वे विज्ञापनों से अधिक प्रभावित होते हैं।

मीडिया का प्रभाव: सोशल मीडिया, टीवी और प्रिंट मीडिया में राजनीतिक विज्ञापन की भूमिका पर विभिन्न शोधों में बहस हुई है।

विज्ञापन की शैली: सकारात्मक, नकारात्मक और मध्यस्थ विज्ञापनों का मतदाता पर विभिन्न प्रकार से प्रभाव पड़ता है।

अनुसंधान विधि (Research Methodology):

इस अध्ययन के लिए डेटा संग्रहण की प्रक्रिया में मुख्य रूप से द्वितीयक डेटा का उपयोग किया जाएगा। विभिन्न राजनीतिक विज्ञापनों का विश्लेषण किया जाएगा जो पिछले कुछ वर्षों में भारतीय चुनावों के दौरान प्रसारित हुए हैं। इसके अलावा, प्राथमिक डेटा के लिए मतदाता सर्वेक्षणों और विशेषज्ञों के इंटरव्यू का उपयोग किया जाएगा।

डेटा संग्रहण के तरीके:

सर्वेक्षण: मतदाताओं से उनके चुनावी फैसलों पर राजनीतिक विज्ञापनों के प्रभाव के बारे में जानकारी प्राप्त की जाएगी।

मीडिया विश्लेषण: विभिन्न राजनीतिक विज्ञापनों का विश्लेषण किया जाएगा जो विभिन्न मीडिया प्लेटफॉर्म्स पर प्रसारित किए गए थे।

साक्षात्कार: राजनीतिक विज्ञापन पर विशेषज्ञों और राजनीतिक नेताओं के साक्षात्कार लिए जाएंगे।

विज्ञापनों का प्रभाव (Impact of Political Advertisements):

मतदाता की प्राथमिकताओं पर प्रभाव:

राजनीतिक विज्ञापनों का उद्देश्य मतदाता की प्राथमिकताओं को प्रभावित करना होता है। एक सकारात्मक विज्ञापन, जिसमें उम्मीदवार के अच्छे कार्यों और नीतियों को प्रस्तुत किया जाता है, मतदाताओं को उम्मीदवार के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न कर सकता है।

इसके विपरीत, नकारात्मक विज्ञापन, जिसमें विपक्षी दलों के खिलाफ आलोचना की जाती है, मतदाता की मानसिकता को बदलने में सक्षम हो सकते हैं, लेकिन यह हमेशा प्रभावी नहीं होता है।

विज्ञापन की शैली:

सकारात्मक विज्ञापन: ये विज्ञापन उम्मीदवार या पार्टी के अच्छे कार्यों को उजागर करते हैं। शोधों से पता चला है कि सकारात्मक प्रचार मतदाता को उत्साहित करता है और चुनावी परिणामों में वृद्धि कर सकता है।

नकारात्मक विज्ञापन: विपक्षी दलों या उनके नेताओं के खिलाफ प्रचार किया जाता है। हालांकि, यह एक प्रभावी रणनीति हो सकती है, लेकिन इससे मतदाता की प्राथमिकताओं में उलटफेर नहीं हो सकता।

सोशल मीडिया का प्रभाव: सोशल मीडिया पर राजनीतिक विज्ञापन अब चुनावी अभियानों का एक अहम हिस्सा बन गए हैं। इसके माध्यम से उम्मीदवार सीधे मतदाताओं तक अपनी बात पहुंचाते हैं और उनकी भावनाओं को प्रभावित करते हैं।

डेटा और ग्राफ (Data and Graphs):

ग्राफ 1: विभिन्न प्रकार के विज्ञापनों का मतदाता पर प्रभाव (सोशल मीडिया, टीवी, प्रिंट मीडिया)

एक ग्राफ तैयार किया जाएगा जो दिखाएगा कि विभिन्न प्रकार के मीडिया में प्रसारित राजनीतिक विज्ञापनों का मतदाता के निर्णय पर क्या प्रभाव पड़ा।

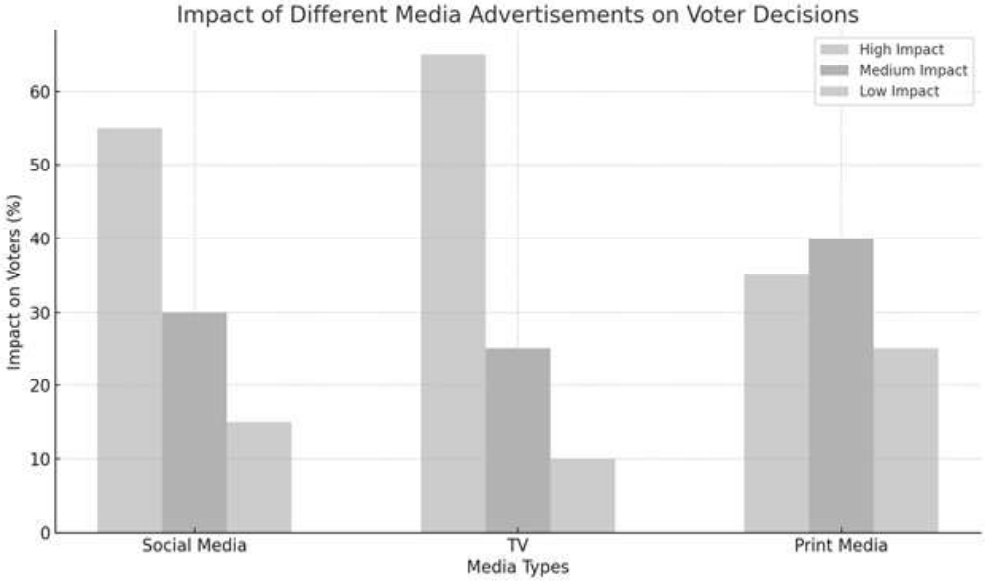

यह ग्राफ दिखाता है कि विभिन्न प्रकार के मीडिया में प्रसारित राजनीतिक विज्ञापनों का मतदाताओं पर क्या प्रभाव पड़ता है:

सोशल मीडिया: सबसे अधिक उच्च प्रभाव (55%) और मध्यम प्रभाव (30%)।

टीवी: उच्च प्रभाव (65%) के साथ सबसे प्रभावशाली।

प्रिंट मीडिया: मध्यम प्रभाव (40%) के साथ संतुलित लेकिन कम प्रभाव अधिक (25%)।

ग्राफ 2: चुनावी परिणामों पर राजनीतिक विज्ञापनों का प्रभाव

यह ग्राफ दिखाएगा कि किस चुनाव में विज्ञापनों की अधिकता के बावजूद परिणामों पर क्या असर पड़ा।

तालिका 1: सर्वेक्षण परिणाम

एक तालिका तैयार की जाएगी जिसमें विभिन्न राज्य और जिलों से मतदाताओं के विचारों का विश्लेषण किया जाएगा।

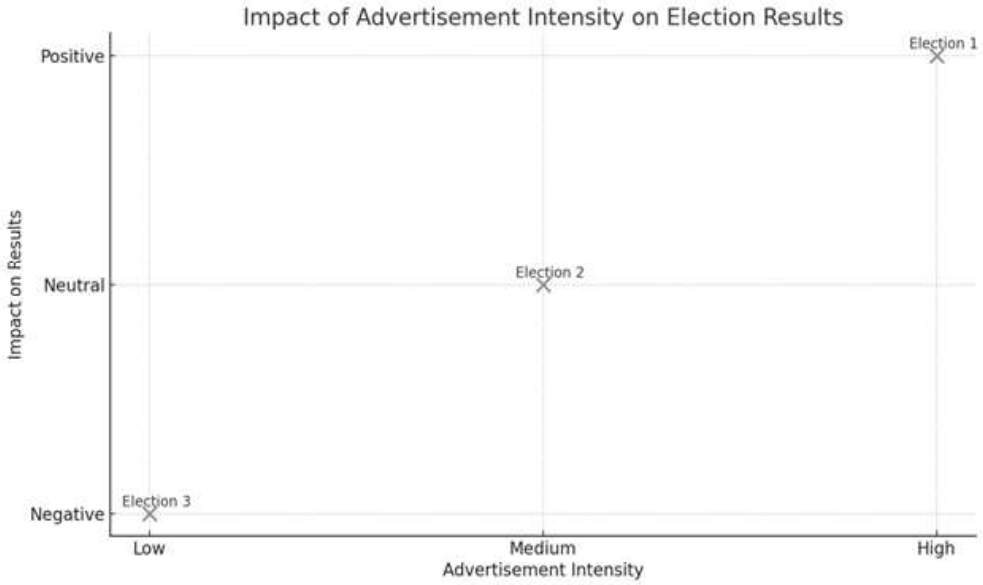

ग्राफ 2:

यह ग्राफ दर्शाता है कि विज्ञापनों की अधिकता का चुनावी परिणामों पर क्या प्रभाव पड़ा:

Election 1: उच्च विज्ञापन स्तर के साथ सकारात्मक प्रभाव।

Election 2: मध्यम विज्ञापन स्तर का तटस्थ प्रभाव।

Election 3: कम विज्ञापन स्तर का नकारात्मक प्रभाव।

ग्राफ 2: चुनावी परिणामों पर विज्ञापनों का प्रभाव (वर्णनात्मक विश्लेषण)

डेटा (उदाहरण):

चुनाव का नाम	विज्ञापन की अधिकता	परिणामों पर प्रभाव
चुनाव 1	अधिक	सकारात्मक
चुनाव 2	मध्यम	तटस्थ
चुनाव 3	कम	नकारात्मक

विश्लेषण:

- चुनाव 1: जहां विज्ञापनों की अधिकता थी, वहां परिणाम सकारात्मक रहे।
- चुनाव 2: मध्यम स्तर के विज्ञापन का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।
- चुनाव 3: कम विज्ञापनों वाले क्षेत्रों में परिणाम नकारात्मक रहे।

तालिका 1: मतदाताओं के विचारों का सर्वेक्षण (उदाहरण):

राज्य/जिला	मतदाताओं की राय	मुख्य मुद्दे
राज्य A	सकारात्मक	विज्ञापन
जिला B	मिश्रित	रोजगार
राज्य C	नकारात्मक	अन्य मुद्दे

विश्लेषण:

- राज्य A: जहां विज्ञापन पर जोर दिया गया, वहां मतदाताओं की राय सकारात्मक रही।
- nistrict B: रोजगार को प्राथमिकता दी गई, जिससे मिश्रित प्रतिक्रियाएं मिलीं।
- राज्य C: अन्य मुद्दों के कारण नकारात्मक प्रतिक्रिया आई।

विचार विमर्श (Discussion):

राजनीतिक विज्ञापनों का प्रभाव हमेशा समान नहीं होता, यह विभिन्न कारकों पर निर्भर करता है जैसे कि विज्ञापन का प्रकार, उसे प्रसारित करने वाले माध्यम का चयन, और विज्ञापन का संदेश।

सकारात्मक परिणाम: कई मामलों में, अच्छे और सकारात्मक प्रचार ने चुनावी परिणामों को प्रभावित किया है। उदाहरण के तौर पर, 2014 और 2019 के लोकसभा चुनावों में भाजपा के द्वारा चलाए गए "हमारे काम, हमारा प्रचार" अभियान ने प्रभावी तरीके से मतदाता को आकर्षित किया।

नकारात्मक परिणाम: कुछ अध्ययन यह भी बताते हैं कि नकारात्मक विज्ञापन से मतदाता में उलझन और अनिश्चितता उत्पन्न हो सकती है, जो अंतत: मतदाता को चुनाव से बाहर कर सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion):

इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि राजनीतिक विज्ञापनों का प्रभाव भारतीय चुनावों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हालांकि विज्ञापनों के विभिन्न प्रकार और उनके संदेश की शैली का प्रभाव अलग-अलग होता है, यह एक अप्रत्यक्ष तरीके से मतदाता की प्राथमिकताओं को प्रभावित करता है। इसलिए, राजनीतिक दलों को विज्ञापनों के प्रभावी उपयोग के लिए अपनी रणनीतियों को बेहतर तरीके से परखना चाहिए।

सिफारिशें (Recommendations):

विज्ञापनों में सकारात्मक संदेशों को बढ़ावा देना चाहिए।

नकारात्मक विज्ञापनों का इस्तेमाल सीमित और संयमित रूप में किया जाना चाहिए।

सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स पर विज्ञापन का और अधिक उपयोग किया जाना चाहिए।

चुनाव आयोग को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि विज्ञापनों में किसी प्रकार की गलत सूचना या भ्रामक प्रचार न हो।

संदर्भ

1. शैक्षणिक शोध और रिपोर्ट्स:

- Google Scholar: https:èkèkscholar.google.com
  यहां "Impact of Political Advertisements on Voter Behavior" जैसे कीवर्ड्स से शोधपत्र देख सकते हैं।
- JSTOR: https:èkèkwww.jstor.org
  राजनीति और मीडिया के प्रभाव पर शोध पत्र उपलब्ध हैं।

2. समाचार पोर्टल्स और रिपोर्ट्स:

- The Hindu, Times of India, और BBC जैसे प्रतिष्ठित समाचार स्रोत चुनावों में विज्ञापनों के प्रभाव पर लेख प्रकाशित करते हैं।
- LiveMint और Economic Times: भारतीय चुनावों और राजनीतिक विज्ञापनों पर विश्लेषण।

3. सर्वेक्षण रिपोर्ट्स:

- CSDS (Centre for the Study of Developing Societies) की चुनावी सर्वे रिपोर्ट्स।
- Lokniti&CSDS: मतदाता व्यवहार और राजनीतिक विज्ञापनों पर अध्ययन।

4. अन्य संगठन और संस्थान:

- Election Commission of India की रिपोर्ट्स और दस्तावेज।
- PRS Legislative Research: चुनावी प्रक्रिया और प्रचार से जुड़े आंकड़े।

विवाह का आदि स्वरूप

डॉ० ईरा कुमारी

शोध सारांश

समाज में प्रत्येक विवाह को चाहे वह अनैतिक दृष्टि से हो अथवा नैतिक दृष्टि से, मान्यता दी गयी है। इसीलिए स्मृतियों ने आठ प्रकार के विवाहों का वर्णन किया है। इसे पुनः दो भागों में विभाजित किये जा सकते है। एक वह श्रेणी है जिसमें समाज में प्रचलित विवाह परिगणित किये जाते है! दूसरी श्रेणी अन्य प्रकार के विवाह की है, जिनका प्रमुख केन्द्र अनैतिकता होता है! इस प्रकार एक कोटि मान्य विवाह की है तथा दूसरी मान्यता प्राप्त विवाह की है।

शब्द कुंजी- विवाह के प्रकार, ब्रह्म, दैव, आर्ष, प्रजापत्य, असुर, गांधर्व, पैशाच विवाह

ब्रह्म विवाह- इस विवाह में वधू के पिता सच्चरित्र तथा शील सम्पन्न वर को अपने घर आमंत्रित कर विधि-विधान के साथ यथाशक्ति वस्त्र एवं आभूषण से अलंकृत कर कन्या को उपहार रूप में देता था। यह विवाह पूर्ण विधानतः होता था। विवाह के आठ प्रकारों में इसे सर्वोत्तम स्थान मिला है। इसमें वर को यह प्रतिज्ञा करनी होती थी कि वह लड़की के पूर्ण समता का व्यवहार करेगा। आधुनिककाल में ब्रह्म-विवाह की सर्वप्रचलित है। जबकि शेष विवाहों का कोई अस्तित्व नहीं है। उत्तर बिहार में भी हिन्दुओं में इस विवाह का प्रचलन है।

दैव विवाह- यज्ञ में भली प्रकार से कर्मकाण्ड को विभाजित और पूजित कर कन्या देना विवाह कहा जाता है। प्राचीनकाल में यज्ञों की परंपरा थी। ये महीनों और कभी-कभी वर्षो तक चलते रहते थे। पुरातन काल में अधिकतर पुरोहित यजमान के घर पर ही यज्ञ करता था। जब यजमान की कन्या से उसे इस बीच में प्रेम हो जाता था तो यजमान पुरोहित को अपनी कन्या देना उपयुक्त समझकर उसके साथ कन्या का विवाह कर देता तो उसे दैव विवाह की संज्ञा दी जाती थी। इसके साथ गुरूकुल में शिष्य तथा शिष्या दोनों ही होते थे। पढ़ते हुए गुरू को जब अपनी शिष्या के साथ प्रेम हो जाता था तो वह शिष्या से विवाह कर लेता था। यह विवाह भी इसी कोटि में रखा जाता है। स्मृतिकार इस प्रकार के विवाह की निन्दा करते है क्योंकि अध्यात्मिक जीवन के प्रति किये कार्यो के समय भौतिक जीवन के प्रति नहीं सोचना चाहिये। बौद्ध धर्म और जैन धर्म के अभ्युत्थान और प्रचार से यज्ञों में आस्था कम होने के साथ-साथ धीरे-धीरे दैव विवाह का लोप होने लगा।

आर्ष विवाह- जब कन्या के पिता धर्म कार्य की सिद्धि के लिए वर से एक बैल और गाय लेकर सविधि कन्यादान करता था, तो इस प्रकार का विवाह आर्ष विवाह कहलाता था। यह संभवतः इसलिए था कि जीवन यापन में गाय-बैल की आवश्यकता पड़ती थी और लड़की के पिता को इसमें थोड़ी सुविधा भी हो जाये इसलिए यह विधान बनाया गया। साधारणतया यह अर्थ लगाया जाता है कि लड़की के पिता को लड़की की मूल्य के बदले यह दिया जाता था, परंतु ऐसी बात प्रतीत नहीं होती क्योंकि प्रत्येक के लिए मूल्य अलग-अलग निर्धारित किया जा सकता है। यह विवाह दैव-विवाह से भी हीन समझा जाता था क्योंकि इससे उत्पन्न पुत्र मात्र तीन पीढ़ियों का उद्धार करता था जबकि दैव ब्राम्ह एवं प्रजापत्य विवाह से उत्पन्न पुत्र दस पीढ़ियो का उद्धार करता था।

प्रजापत्य विवाह- जब कन्या का पिता उसके पति को कन्या देकर यह कहे कि तुम दोनों साथ-साथ आजीवन रहो तो वह प्रजापत्य विवाह कहलाता है। इस विवाह में संपूर्ण विधि-विधान का पालन किया जाता है। परंतु ब्रम्ह और प्रजापत्य विवाह में कोई मूलभूत अंतर दिखाई नहीं पड़ता। ये दोनों ही समान विवाह ज्ञात होते है। प्रजापत्य ही केवल यह विवाह नहीं है जिसमें धर्म का सह आचरण अपेक्षित है परंतु ब्रम्ह में भी यही बात है अंतर केवल इतना ही है कि दूसरे प्रकार में यह कथन स्पष्ट रूप से नहीं कहा जाता, जबकि प्रजापत्य में यह कहा जाता है। इस विवाह को कुछ लोग निम्न समझते है, क्योंकि इसमें वर स्वयं कन्या से विवाह करने की याचना करता है, तब उससे इस शर्त परन विवाह किया जाता है कि जब तक उसकी पत्नी जीवित रहेगी, तब तक वह दूसरी स्त्री को ग्रहण नहीं करेगा तथा गृहस्थ धर्म का समुचित रूप से पालन करेगा। दान में शर्त का होना ही नहीं होता है, वैसे इस विवाह में भी अभिभावक की इच्छा सर्वोपरि थी किन्तु अन्य की अपेक्षाकृत दो सकारात्मक बातें वधू के लिए इसमें थी- धार्मिक कार्यो में साथ रहने का गारंटी तथा एक विवाह का वचन।

गान्धर्व विवाह- मनुष्य समाज का एक अंग तो होता है किन्तु अंततः उसकी भावना व्यक्तिवादी होती है। जब बिना किसी भेद भाव के सिर्फ प्रेम के आधार पर विवाह होता है तो उसे गांधर्व विवाह कहा जाता है। बोद्धायन तथा वात्स्यायन ने इस विवाह को अन्य विवाहों की अपेक्षा श्रेष्ठ माना है, क्योंकि किसी बाहरी दबाव से यह विवाह नहीं होता था। इस प्रकार का विवाह सदा प्रचलित था, जैसे शकुन्तला एवं दुष्यंत का आजकल इसे प्रेम विवाह की संज्ञा से संबोधित करते है। इसलिए कुछ विद्वान इसे मान्य कोटि के विवाह में परिगणित करते है परंतु इस प्रकार का विवाह धीरे-धीरे पैतृक सत्ता को हेय दृष्टि से देखने की ओर बल देता है। तथा इसमें समाज पूर्ण स्वेच्छाचारी हो जाता है। इसलिए इसको साधातया धर्मशास्त्रकारों ने विशेष मान्यता नहीं दी। संभवतः

इस विवाह को किसी प्रकार के धार्मिक विध-विधान के अभाव के कारण कोई मान्यता नहीं मिली। इसका नाम गांधर्व इसलिए है कि गांधर्व कामातुर कहे गये है। किन्तु राजबलि पाण्डेय का कथन है कि इस प्रकार के गांधर्व इसलिए कहा जाता है कि यह हिमालय की तराई में रहने वाले गांधर्वो के जन में विशेष रूप से प्रचलित था। अत: यह उन्ही लोगों के लिए उपयुक्त होता है जो कुल या वित्त का विचार नहीं करते है। उपयुक्त बतलाये गये कतिपय विवाह प्रकारों में कुल वित्त एवं वर्ण के प्रति बल अधिक दिया गया अत: वे लोग प्रेम विवाह को अपना नहीं सकते। आज भी इस तरह के विवाहों को सामाजिक संकटों का सामना करना पड़ता है।

असुर विवाह- जब लड़की को या उसके संबंधियों को यथाशक्ति धन देकर स्वछन्दता पूर्वक कन्या से विवाह किया जाय, तो इसे असुर-विवाह कहते है। यदि विश्व-सभ्यता का अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होगा कि चिर पुरातन काल में सीरिया में एक तरह का विवाह प्रचलित था, जिसमें लड़की को खरीदकर उसके साथ विवाह किया जाता था। इसी प्रकार की एक प्रणाली भारत में भी प्रचलित थी। चूँकि इसका उदभव-स्थान के नाम पर असुर-विवाह रखा गया। सुप्रसिद्ध इतिहास वेत्त रामशरण शर्मा ने इस प्रकार के विवाह का प्रचलन शुद्रो में होने की बात कही है। परंतु शुद्रो के पास संपत्ति का अभाव था जबकि यह विवाह शुद्ध पैसे के आधार पर होता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य भी इस प्रकार के विवाह का उपयोग करते थे।

राक्षस विवाह- बाघ के मार कर आहूत कर दुर्गद्वार आदि को तोड़ कर रोती-बिलखती कन्या का अपहरण कर विवाह करना राक्षस विवाह है। प्राय: पुरातन काल एवं मध्य काल में नारियों के लिए युद्ध होता था। बलपूर्वक अपहरित नारी को रखना भी उन्होंने एक प्रकार का विवाह मान लिया, जिससे उसको समाज में कुत्सित स्थान न मिले उन्ही नारियों का अपहरण होता था, जिनकी ख्याति बहुविक्षत हो अथवा किसी के प्रेम-प्रसंग में फंस गयी हो अथवा योद्ध विजस के उपहारस्वरूप उन्ही को अपनाने में अपना गौरव समझते हो। पृथ्वीराज ने संयुक्ता से, कृष्ण ने रूक्मिणी से, अर्जुन ने सुभद्रा से, इसी प्रकार का विवाह किया था। अर्जुन के इस कार्य को स्वयं कृष्ण ने समर्थन दिया है। परन्तु बाद में इस प्रकार के विवाह को निकृष्ट माना जाने लगा। फिर भी आज बहुत सी जनजातियों में विवाह का यह प्रकार पूर्ण प्रचलित है। उत्तर प्रदेश एवं बिहार के लोक गीतों में आज भी विवाह के अवसर पर इस प्रकार के गीत गाए जाते है चूंकि इस प्रकार छीनना आसुरी बृत्तपूर्ण कार्य है, इसलिए इसे राक्षस की संज्ञा दी गई। राक्षस विवाह में पत्नी को तुच्छ समझा जाता था। एक वस्तु की तरह जो बलशाली व्यक्ति जब चाहे उस पर अधिकार कर उसका उपयोग कर सकता था। पहले यह सभी लोगों में चलता था बाद में अभिजात्य वर्ग के लोगों में राजनीतिक लाभ तथा भेदभाव के तहत बहुविवाह के तौर पर इसका इस्तेमाल किया जाने लगा।

पैशाच विवाह- नींद में सोती, मदमाती या बेहोश कन्या का एकान्त में उपभोग अत्यंक निकृष्ट एवं पापयुक्त यह पैशाच विवाह होता है। आठो प्रकार के विवाह में यह अधम विवाह माना जाता है। यह वास्तव में एक बड़ी विचित्र बात है कि जानते हुए कि यह कोई विवाह नहीं है, एक मात्र केवल अनाचार है फिर भी उस स्त्री के साथ सतीत्व की रक्षा के लिए तथा उसके सम्मान का समाजिक औचित्य बनाए रखने के लिए यह महत्वपूर्ण मान्यता दी गई कि ऐसा करने वाले अनाचारी को उस स्त्री को अपने साथ विवाहित की तरह रखना पड़ेगा। परन्तु ऐसा लगता है कि समाज में शील भंग कन्या के साथ लोग उस समय विवाह न करना चाहते हों, इसलिए शास्त्रकारों ने दंड के रूप में संबद्ध पुरूष के लिए उस लड़की को पत्नी बनाने का विधान किया हो।

पश्चिमोत्तर भारत की पिशाच जाति में इसका प्रचलन था जिससे इसका नाम पैशाच पड़ा।

उपर्युक्त आठो प्रकार के विवाह के अतिरिक्त कुछ और प्रकार के विवाहों का भी उल्लेख हमें प्राचीन ग्रन्थो में मिलता है, यथा- अनुलोम विवाह, प्रतिलोम विवाह, स्वयंवर विवाह।

अनुलोम विवाह- अपने से नीच वर्ग की स्त्री से जब पुरूष विवाह करता था तो उसे अनुलोम विवाह कहा जाता था! ज्ञातव्य है कि अनुलोम विवाह वैदिक काल से ही ज्यादा बाहम्ण ही करते थे। ऋग्वेद कालीन पुरोहित वर्ग के पुरूषों के विषय में प्राय: यह कहा गया है कि उन्होंने राजवंशों से ये विवाह किया, जैसे ध्यावन, "यावश्च या विमद ने किया। ऐसे विवाह उस समय विधिक दृष्टि से वैध तथा समाज में प्रचलित रहे होंगे क्योंकि औशिज, कवश वत्स आदि महान व्यक्ति दासी या शूद्र स्त्रियों से उत्पन्न हुए थे। लेकिन सूत्रकाल में अनुलोम विवाह से उत्पन्न पुत्र को अलग निम्न नाम दिया गया। फिर भी प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न पुत्र से इसे ज्यादा अधिकार थे।

प्रतिलोम विवाह- जब नीचे वर्ग के पुरूष ऊँचे वर्ण की स्त्री से विवाह करते थे तो उसे प्रतिलोम विवाह कहा जाता था। प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न पुत्र को नीची दृष्टि से देखा जाता था और उन्हीं से चाण्डाल आदि अछूत जातियों का उद्भव हुआ। गौतम धर्म के अनुसार प्रतिलोम विवाहों से उत्पन्न संतानों के उपनयन आदि धर्म नहीं होते।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आलोच्य काल में भी अंर्तजातीय विवाह भी होते थे, भले ही इसका स्परूप भी वर्गमूलक ही था।

स्वयंवर विवाह- वधू के लिए विवाह तय के क्रम में गौतम वशिष्ट और बौधायन धर्मसूत्रों ने लड़की को ऋतुकाल के बाद भी विवाह न होने पर स्वयंवर चुन लेने का निर्देष दिया है जिससे सूत्रकाल में स्वयंवर का अप्रत्यक्ष संकेत मिलता है। ऋग्वेद में भी अप्रत्यक्ष संकेत मिलता है। रामायण तथा महाभारत में क्रमष: सीता और द्रोपदी का स्वयंवर जगत-विख्यात है। इस विवाह में लड़की के पिता के घर बहुत से लोग आमंत्रित किये जाते थे और उसमें से लड़की अपना वर चुन लेती थी। इस आधार पर कहा जाता है कि स्वयंवर में स्त्रियों को पति चुनने की स्वतंत्रता थी। परंतु सूक्ष्म विवेचन से पता चलता है कि स्वयंवर एक तो सिर्फ राजपरिवार में प्रचलित था दूसरी उसमें सिर्फ उच्च वर्ग के लोग भाग लेते थे। इसमें भी क्षत्रियों में यह विशेष रूप से प्रचलित था। इसीलिए

कर्ण को अपमाणित किया गया था। दूसरे लोगों की इच्छा से नहीं वरन् राजा स्वयं अपने मन से लोगों को आमंत्रित करते थे। भीष्म को अम्बे के स्वयंवर में जाने का निमंत्रण नहीं था। कभी-कभी राजनीति की दृष्टि से भी ऐसा किया जाता था। द्रोपदी के पिता ने अपने मित्र द्रोणाचार्य से बदला लेने के लिए अर्जुन को प्राप्त करने की नियत से स्वयंवर का आयोजन किया था। स्वयंवर के विकास का कारण राक्षस विवाह का भय लगता था। इससे एक तरफ पराक्रमी पति मिलता था और दूसरी तरफ प्रतिष्ठा भी बच जाती थी। सीता के स्वयंवर में धनुष तोड़ना और द्रोपदी के स्वयंवर में मछली की आँख में तीर मारना ज्वलंत उदाहरण है। पराक्रमी न होने पर स्वयंवर से भी भीष्म जैसे लोगों के द्वारा कन्या का हरण हो जाता था। इस प्रकार से स्पष्ट है कि स्वयंवर विवाह में राजा प्रतियोगिता करवाते थे।

संदर्भ

1. हिन्दू संस्कार, पाण्डेय राजबली पृष्ठ 195
2. धर्मशास्त्र का इतिहास भाग-1 काणे पी0 वी0, पृष्ठ 264
3. हिन्दू मैरेज- पाष्ट एण्ड प्रजेण्ट, चटर्जी कृष्णानाथ, तारा पब्लिकेशनस, वाराणसी, 1972 पृष्ठ-52
4. परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति, एंगेल्स पृष्ठ- 79 -82
5. पूर्वकालीन भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था पर प्रकाश शर्मा रामषरण पृष्ठ 31
6. मोदलता विवाह पदावली, लक्ष्मण शरण 'मोदलता जी' लाडिली सखी (ललिता देवी) श्री मोदकृपा निकुंज- पहसौल कटरा मुजफ्फरपुर (बिहार) पृष्ठ-15
7. श्री मैथिली विवाह पदावली, प्रकाशन मैथिलीशरणाचार्य लक्ष्मण किला आयोध्या, तृतीय संस्कार शरद पूर्णिमा 2033, पृ0:55

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986: एक अध्ययन

डॉ० दिव्या शुक्ला

दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

शोध-संक्षेपिका:-

उपभोक्ता संरक्षण से तात्पर्य है कि उपभोक्ताओं के अधिकारों और हितों की रक्षा करना। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि उपभोक्ताओं को व्यवसाय द्वारा किए जाने वाले सिद्धांतहीन हैं और अनैतिक कदाचार से बचाने के लिए उठाए जाने वाले कदम और उनकी शिकायतों का त्वरित निवारण करना। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 उपभोक्ताओं के हितों की बेहतर सुरक्षा के लिए बनाया गया था। अधिनियम के प्रावधान 15/4/1987 से लागू हुए। उपभोक्ताओं के हितों और अधिकारों की रक्षा के लिए जिला, राज्य एवं केंद्र स्तर पर अर्ध-न्यायिक तंत्र स्थापित करने की मांग की गई है। यह अधिनियम जम्मू-कश्मीर राज्य को छोड़कर पूरे भारत में लागू होता है। वर्तमान में इस अधिनियम को ''उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 2019'' द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है जो की 24 जुलाई 2020 को लागू हुआ।

मूल-शब्द (की-वर्ड):- उपभोक्ता, संरक्षण, अधिनियम, अधिकार, हित, व्यक्ति, जिला, राज्य, राष्ट्रीय, फोरम, वस्तु, सेवा, कब्जा, ई-शिकायत, ई-उपभोक्ता, नियामक, केंद्रीय, विज्ञापन।

प्रस्तावना:-

उपभोक्ता का तात्पर्य ऐसे व्यक्तियों या परिवारों से है जो की अर्थव्यवस्था के भीतर उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का उपयोग करते हैं। उपभोक्ता को ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो वस्तुओं और सेवाओं को सीधे उपयोग या कब्जे के लिए प्राप्त करता है, न कि विनिमय, पूनर्विक्रय या उत्पादन और विनिर्माण में उपयोग के लिए। उदाहरण के लिए जब हम अपने परिवार के लिए सेब खरीदते हैं और उन्हें हम और परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा खाया जाता है तो प्रत्येक सदस्य ही उपभोक्ता माना जाता है। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के तहत दोषपूर्ण माल की आपूर्ति के मामले में निर्माता पर सख्त दायित्व और अपनी सेवाओं में कमी के मामले में सेवा प्रदाता पर सख्त कार्यवाही किया जाएगा।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 की विशेषताएँ:-

- यहां सभी वस्तुओं सेवाओं और असमान व्यापार प्रथाओं पर लागू होता है, जब तक की केंद्र सरकार द्वारा निर्दिष्ट और छूट न दी गई हो।
- निजी सार्वजनिक, सहकारी सभी क्षेत्र इसमें सम्मिलित है।
- उपभोक्ताओं के अधिकारों को प्रोत्साहित करने और उनकी रक्षा करने के लिए जिला, राज्य एवं केंद्रीय स्तर पर उपभोक्ता संरक्षण परिषदों की स्थापना और उपभोक्ता शिकायतों और विवादों से निपटने के लिए त्रि-स्तरीय अर्ध-न्यायिक तंत्र प्रदान करता है।

उद्देश्य:-

- उपभोक्ताओं का दुर्व्यवहार से बचाव।
- शिकायत/मुआवजे के लिए स्थान उपलब्ध कराना।
- उपभोक्ता उत्पादों और सेवाओं को उन्नत करके बेहतर जीवन-स्तर सुनिश्चित करना।
- व्यापारियों की अनैतिक और अनुचित गतिविधियों से उपभोक्ताओं की सुरक्षा करना।

आवश्यकता:-

- उपभोक्ताओं के हितों की सेवा करना व्यवसाय की नैतिक जिम्मेदारी है जो की सामाजिक उत्तरदायित्व के अंतर्गत आता है।
- उपभोक्ताओं में व्यवसाय की गलत प्रथाओं एवं अपने अधिकारों के प्रति वे अधिक परिपक्व एवं जागरूक हो रहे हैं।
- उपभोक्ता संतुष्टि ही व्यवसाय की सफलता की एकमात्र कुंजी है। उचित मूल्य, सुरक्षा, गुणवत्ता, स्तर इन सभी चीजों को वस्तुओं एवं सेवाओं की उपलब्धता में सम्मिलित करना है।
- व्यवसायों को अपने अस्तित्व और विकास के लिए उपभोक्ता हितों की सेवा करनी होगी।
- संसाधन/परिसंपत्तियाँ समाज द्वारा प्रदान की जाती है वे केवल धन के ट्रस्टी है इसलिए ट्रस्टी शिप के सिद्धांत का परिपालन करना चाहिए।

उपभोक्ता के अधिकार:-

- सुरक्षा का अधिकार- स्वास्थ्य और जीवन के लिए खतरनाक सेवाएं प्रदान करने वाली वस्तुओं के विपणन के विरुद्ध सुरक्षा प्राप्त करना।
- सूचना का अधिकार- बेईमानी भ्रामक विज्ञापन या लेबलिंग से सुरक्षा और सूचित विकल्प बनाने के लिए आवश्यक तथ्य और आंकड़े उपलब्ध कराए जाने का अधिकार।
- चयन का अधिकार- संतोषजनक गुणवत्ता के आश्वासन के साथ प्रतिस्पर्धी कीमतों पर उत्पादों को चयन करने का अधिकार।
- निवारण पाने का अधिकार- घटिया सामान, गलत बयानी या असंतोषजनक सेवाओं के लिए मुआवजा पाने का अधिकार।
- उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार- एक सूचित ग्राहक बनने के लिए आवश्यक ज्ञान और कौशल प्राप्त करना।
- बुनियादी आवश्यकताओं का अधिकार- यह पर्याप्त भोजन, आश्रय, स्वास्थ्य, देखभाल, कपड़े, शिक्षा और स्वच्छता की गारंटी देता है।

शिकायत दर्ज करना:-

- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के अंतर्गत तीन स्तरीय उपभोक्ता शिकायत तंत्र और उनके क्षेत्राधिकार है।
- जिला फोरम - माल या क्षतिपूर्ति दावे का मूल्य 20 लाख रुपए से अधिक नहीं है।
- राज्य फोरम- माल या मुआवजे का मूल्य 20 लाख रुपए से अधिक परंतु एक करोड़ से अधिक नहीं है।
- राष्ट्रीय फोरम- एक करोड़ से अधिक मूल्य के सभी मामलों की सुनवाई करता है।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 2019:-

1986 के पुराने उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम को 2019 में नए संस्करण द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था, जिस पर 6 अगस्त 2019 को भारत के राष्ट्रपति द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे। यह उपभोक्ता संरक्षण ग्राहकों को कंपनी की अनैतिक प्रथाओं से बचाने की प्रक्रिया है। उपभोक्ता अधिकारों के हनन, अनुचित व्यावसायिक प्रथाओं, भ्रामक विज्ञापन और उपभोक्ताओं के अधिकारों के लिए हानिकारक अन्य परिस्थितियों से संबंधित मुद्दों के समाधान के लिए भारत सरकार ने उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 2019 (सीपीए) (Consumer Protection Act. 2019) पारित किया। प्रौद्योगिकी की प्रगति और पिछले कई वर्षों में ऑनलाइन उत्पादों और सेवाओं की खरीद और बिक्री में उल्लेखनीय वृद्धि के कारण संसद ने अधिनियम में ई-उपभोक्ताओं के लिए प्रावधान शामिल करने का विचार किया। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 2019 का उद्देश्य उपभोक्ताओं की शिकायतों के त्वरित और किफायती समाधान के माध्यम से उनके हितों की रक्षा करना और उन्हें आगे बढ़ाना है। इसमें संपूर्ण भारत शामिल है। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 2019 ई-कॉमर्स कंपनियों सहित सभी प्रकार के व्यवसाय पर लागू होता है, चाहे वह निर्माता हो, व्यापारी हो, या सामान या सेवाएं बेचने वाले व्यवसाय हो। 30 जुलाई और 6 अगस्त को क्रमशः लोकसभा और राज्यसभा ने उपभोक्ता संरक्षण विधेयक 2019 को मंजूरी दे दी। उपभोक्ता मामले खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्री श्री राम विलास पासवान ने संसद में इस कानून का प्रस्ताव रखा। यह अधिनियम उपभोक्ताओं को उनके हितों को मजबूत करने और उनकी रक्षा करने के प्रयास में विशिष्ट अधिकार प्रदान करता है।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 और 2019 में अंतर:-

- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 में केवल मिथ्याकथन, कथन गलत बयानी तत्व थे जबकि 2019 में इन दोनों तत्व के अतिरिक्त झूठी गारंटी, भ्रामक विज्ञापन एवं महत्वपूर्ण जानकारी को जानबूझकर छुपाना भी शामिल है।
- 1986 में धारा 14 के अंतर्गत भ्रामक विज्ञापन को बंद करने का अधिकार है, जबकि 2019 में धारा 21 के अंतर्गत विज्ञापनों को बंद करने के साथ-साथ 10 लाख से 50 लाख रुपए तक का जुर्माना लगाया जा सकता है। साथ ही साथ निर्माता पर 2 वर्ष से 5 वर्ष तक के सजा का भी प्रावधान शामिल है।
- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के लिए कोई दूसरा या अलग नियामक नहीं है, अधिनियम 2019 का नियामक केंद्रीय उपभोक्ता संरक्षण प्राधिकरण है।
- अधिनियम 1986 के आर्थिक क्षेत्राधिकार है जिला-20 लाख तक, राज्य 20 लाख से एक करोड़, राष्ट्रीय एक करोड़ और उससे अधिक राशि जबकि अधिनियम 2019 में जिला एक करोड़ तक, राज्य एक करोड़ से 10 करोड़, राष्ट्रीय स्तर 10 करोड़ और उससे अधिक इसके क्षेत्राधिकार में सम्मिलित है।

निष्कर्ष:-

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के लागू होने के बाद से ''खरीदार जागरूक रहे'' वाक्यांश ''विक्रेता निष्पक्ष रहे'' में परिवर्तित हो गया है। इस परिवर्तन ने उपभोक्ताओं को अधिक शक्ति और आश्वासन दिया है कि जब वह खरीदारी करते हैं और विक्रेताओं के साथ लेनदेन करते हैं तो उनके अधिकार पूरी तरह से सुरक्षित है। 1986 में अधिनियमित उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम भारत में उपभोक्ताओं के अधिकारों की रक्षा एवं संरक्षण के लिए केंद्र सरकार द्वारा लाया गया और क्रियान्वित किया गया सबसे महत्वपूर्ण कानून था। इसमें तीन बार संशोधन किया गया है पहली बार 1991 में, दूसरी बार 2002 में, तीसरी बार 2019 में। वर्तमान में उपभोक्ता आंदोलन के संस्थापक के रूप में राल्क नादर को श्रेय दिया जाता है। इस प्रकार दोनों ही अधिनियम 1986 एवं 2019 में केंद्र बिंदु पर उपभोक्ता ही है, जिसके साथ अन्याय न हो इस बात का पूर्ण ध्यान रखा गया है। अधिनियम में ''ई शिकायतों'' और ''ई-उपभोक्ताओं'' के साथ ही साथ ''उत्पाद-जिम्मेदारी'' और अनुचित अनुबंध जैसी नई-नई अवधारणाओं को जोड़ा गया है, जिससे उपभोक्ताओं के

अधिकारों की सुरक्षा का दायरा बढ़ाया जा सके और उन अधिकारों का उल्लंघन होने पर उन्हें शिकायत करने में सक्षम बनाया जा सके। इस प्रकार से नए अधिकारों को जोड़ने से 1986 अधिनियम की कमियां दूर हो जाती है अत: हम कह सकते हैं कि वर्तमान समय में उपभोक्ताओं के साथ न्याय पूर्ण एवं निष्पक्ष व्यवहार के साथ ही साथ उचित लागत पर वस्तुओं और सेवाओं की विस्तृत श्रृंखला का अधिकार है

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. पुस्तक:-

- शुक्ल एस.एम. डॉक्टर एवं सहाय, एसपी डॉक्टर, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, व्यापारिक सन्नियम,।
- अग्रवाल डॉक्टर एस.के., व्यापारिक सन्नियम।
- अग्रवाल आर.सी., अग्रवाल संजय व्यापारिक सन्नियम, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्स।

2. इंटरनेट वेबसाइटस:-

- www.ncdrc.nic.in
- https://pib.gov.in
- www.india.gov.in
- https:/consumeraffairs.nic.in
- www.indiacode.nic.in

3. समाचार पत्र पत्रिकाएं:-

- नवभारत
- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम और उपभोक्ता अधिकार संतोष खन्ना।
- दैनिक भास्कर।
- नई दुनिया।
- हरिभूमि

21वीं सदी के प्रथम दशक के नाटक और हमारा समाज

शौर्य भारद्वाज

शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिंदी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा

प्रो. राजेंद्र साह

विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा

परिचय

"काव्येषु नाटकं रम्यं" कहकर काव्यशास्त्र में नाटक की महिमा का गान किया गया है। जो रचना श्रवण द्वारा ही नहीं अपितु दृष्टि द्वारा भी दर्शकों के हृदय में रसानुभूति कराती है, उसे नाटक या दृश्य काव्य कहते हैं। दृश्य एवं श्रव्य काव्य होने से यह लोक चेतना में अपेक्षाकृत अधिक रूप से सम्बद्ध है। आज जो भी नाटक लिखे जा चुके हैं, वे हमारे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं।

21वीं सदी के प्रथम दशक के नाटकों में इन सभी का सम्पूर्णता से वर्णन दिखलाई पड़ता है। आज हमारे देश के सामाजिक एवं राजनीतिक स्तर पर कृषक-जीवन, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, अंतरजातीय प्रेम- विवाह, दंगा, विपन्नता आदि पर विचार प्रस्तुत किया जा रहा है। 21वीं सदी के प्रथम दशक के नाटकों में इन विचारों के साथ-साथ अन्य समस्याओं को भी व्यक्त किया गया है। इस आलेख में हम ऐसे ही कुछ नाटकों की सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में साहित्यिक विवेचना प्रस्तुत कर रहे हैं। यह कार्य करने हेतु निम्नलिखित नाटकों को आधार बनाया गया है-

ये आदमी ये चूहे, जी, जैसी आपकी मर्जी, अधमुंडा सिर चौथी टांग, जनवासा, एक औरत हिपेशिया भी थी।

साहित्य समीक्षा

हिंदी साहित्य में नाटकों का अध्ययन एक महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है। इस क्षेत्र में कई आलोचकों द्वारा समकालीन आधुनिक नाटकों का अध्ययन किया गया। इसमें डॉ. दशरथ ओझा एवं रामचंद्र गुणचंद्र का नाम उल्लेखनीय है। यह कहना आवश्यक होगा कि इन आलोचकों ने आधुनिक हिंदी नाटकों के सामाजिक समस्याओं के क्षेत्र में महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं।

विश्लेषण

प्राचीन काल से ही भारत की पहचान एक कृषि प्रधान देश के रूप में की गई है। यहाँ आज भी 60% से ऊपर लोग कृषि पर ही निर्भर हैं। हास्यास्पद बात यह है कि कृषि की समस्या केवल किसानों की ही समस्या बनी हुई है। जिस कारण किसानों का मजदूर वर्ग में पलायन देखा जा सकता है। "देवेंद्र राज अंकुर" प्रणीत "ये आदमी ये चूहे" किसान के जीवन से संबंधित नाटक है। इसमें किसान के उस संघर्ष को दिखाने का प्रयास किया गया है, जो वह सामाजिक न्याय, स्वतंत्रता और गरिमा के लिए कर रहा है। वीरेंद्र सक्सेना के निर्देशन में "ये आदमी ये चूहे" की प्रस्तुति का केंद्र दो खानाबदोश खेतिहर किसान हैं। आज के इस दौर में जब हर आदमी चूहा-दौड़ में किसी भी तरह से आगे निकल जाना चाहता है, ऐसे में ये दोनों मेहनती लेकिन बेरोजगार किसान जग्गू और लोरी एक दूसरे के प्रति वफादार दिखते हैं। पेट पालने हेतु दोनों दर-दर भटक कर कार्य करते हैं। कार्य के दौरान ही खेमू इन्हें मिलता है, जो अपनी जमीन पर फिर से कार्य करने की इच्छा रखता है। "मुझे अपनी जमीन पर काम करने का मौका मिलेगा (दया से)।"[1] इस प्रकार हम देख सकते हैं कि मजबूरी में किसान मजदूर बन कर अपनी जगह से पलायन कर जाता है, लेकिन अपनी जमीन पर कार्य करने की इच्छा उसे कचोटती रहती है। आज देश में किसानों के पलायन तथा उनकी समस्याओं पर ध्यान नहीं दिया जा रहा।

हिंदी साहित्य में आदिकाल से ही स्त्री उपेक्षा का विषय रही है। द्विवेदी युग में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने "मुक्त करो नारी को युग-युग की कारा से" कहकर सामाजिक रूप में नारी मुक्ति का आह्वान किया। इसके पश्चात जयशंकर प्रसाद ने "नारी! तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पग तल में, पीयूष स्रोत सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में।"[2] कहकर नारी को पीयूष स्रोत सी जीवन के समतल में बहने वाली बताया। परंतु आज नारी की दशा ठीक वैसी ही है जैसा कहा गया? नादिरा जहीर बब्बर प्रणीत "जी, जैसी आपकी मर्जी" ने समाज में यह प्रश्न उठाया है कि नारी बाल्यावस्था से प्रौढ़ावस्था तक भी स्वच्छन्द नहीं हो पाती। इस नाटक में बच्ची, युवती एवं प्रौढ़ा उम्र की स्त्रियों के माध्यम से प्रत्येक के द्वारा नारी मन की कोमल भावनाओं को बड़े रोमांचक ढंग से व्यक्त किया गया है। इस नाटक के सभी पात्र नारी हैं। दीपा (9-13 वर्ष) वर्षा (22 वर्ष) सुल्ताना (38 वर्ष), बबली (26 वर्ष) चार स्त्री पात्रों के माध्यम से नारी के सम्पूर्ण जीवन को दिखाने का प्रयास किया गया है। प्राचीन काल से ही नारी को रौंदा जा रहा है। उसके व्यवहार पर प्रश्न चिह्न लगाए

जा रहे हैं। समाज में बहुत से रूढ़िवादी मुद्दे हैं जो नारी की भूमिका को नकारते हैं। इस नाटक में उन सभी रूढ़िवादी विचारों के विरुद्ध आवाज उठाई गई है। नाटककार ने नाटक की भूमिका में लिखा है कि "मेरा अटूट विश्वास है कि यह नाटक हमारे समाज की मानसिकता को यथार्थ के धरातल से प्रतिबिम्बित करता है चाहे वो धार्मिक मान्यताएँ हों जो स्त्री दम घोंट देती हैं या फिर हमारी रूढ़िवादी परंपराएँ।"[3] आज समाज में लड़का-लड़की को समान बताया जाता है, परंतु धरातल पर प्रायः ऐसा देखा नहीं जाता। दीपा की दादी कहती है- "अरे तीसरी भी करमजली पैदा हुई है, हमारी तो किस्मत ही फूट गयी।"[4] ऐसे वाक्य समाज में कमोबेश आज भी सुनने को मिल जाते हैं। हम महसूस कर सकते हैं कि समाज में लड़की की अपेक्षा लालसा लड़के के जन्म की होती है, तथा लोग उत्साहित भी लड़के के जन्म से होते हैं। लड़के को ज्यादा मान-सम्मान तथा प्यार मिलता है, वहीं लड़की का तिरस्कार होता है। "चुप रहो निर्मला लड़की जात है.. लड़की की तरह पालो, उसे लड़को की तरह मिजाज मत दो।"[5] स्त्रियों के प्रति यह मानसिकता उसके बाल्यावस्था से ही लोगों के मन में बनी रहती है। बाल्यावस्था से ही वह उपेक्षित मान ली जाती है। स्त्री अगर कला क्षेत्र में नाम भी बना रही हो तो वहाँ भी परिवार द्वारा भले ही समर्थन मिले, परंतु बढ़ावा नहीं मिल पाता। वर्षा कहती है- "मेरी आई पार्वती, वो नाट्य संगीत की बहुत अच्छी सिंगर है। बाबा उनको कभी गाने से रोकते नहीं, लेकिन एप्रिसिएट भी नहीं करते।"[6] यहाँ हम देखते हैं कि भले ही किसी कार्य के लिए मध्यम वर्ग की स्त्रियों को रोका ना जाये, परंतु उन्हें सम्मान और शाबाशी भी नहीं दी जाती। स्त्री पुरुष के लिए समर्पण भाव में निहित दिखलाई पड़ती है, पुरुष ठीक विपरीत तो कहीं समर्पित भी। "हमें अपनी सारी जिंदगी ऐसे बितानी पड़ती है कि इनकी इज्जत बनी रहे।"[7] स्त्री समर्पण भाव से पुरुष का हर संभव ध्यान रखने को बाध्य होती है, तो वहीं पुरुष अपनी मनमर्जी के लिये स्वतंत्र। इस नाटक में नारी जीवन की विडंबना को मंच पर एक रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। नारी जीवन में ऐसे बहुत से रूढ़िवादी मुद्दे हैं, जिन्हें हमें देखना और बदलना होगा। हमारे समाज में ऐसे कई सामाजिक और राजनीतिक मुद्दे इस स्तिथि से जुड़े हैं उस ओर नाटककार हमारा ध्यान आकृष्ट करना चाहता है।

लाल मदान प्रणीत "अधमुंडा सिर और चौथी टांग" शीर्षक नाटक अक्टूबर 2002 दुलीना (झज्जर) में हुए दलित हत्याकांड से उपजे दुःख व क्षोभ से प्रेरित है। एक प्रेम की कथा के माध्यम से यह नाटक अंतरजातीय विवाह, दलित विमर्श, धर्मांतरण जैसे सामाजिक मुद्दों को दर्शाता है। सामाजिक सरोकारों व तनावों से उलझता जूझता हुआ समता व मानवीय गरिमा के लक्ष्य की ओर अग्रसर हो अंत में विद्रोह के स्वर पर जाकर समाप्त होता है। रेखा ब्राह्मण समाज में जन्मी गौ भक्त सिर्फ कहने को मात्र गोपाल शर्मा की पुत्री है। रेखा अपने दलित सहपाठी रूप से प्रेम करती है। गोपाल शर्मा अपनी बूढ़ी और बीमार गायों को अपने नौकर रामशरण के हाथों मरवा उनकी खाल बेचता है। एक दिन दलितों द्वारा सब क्रियाकलाप देख लिया जाता है, तब रामशरण शोर मचाता है "अरे दलितों ने गायों को मार डाला, सब जल्दी आओ.. जल्दी।"[8] गौ हत्या देख हिन्दू वर्ग आवेश में दलितों की हत्या कर देते हैं। "लेकिन इस तरह की अमानवीय मौत मरने वाले केवल दलित ही क्यों?"।[9] आज भी दलितों पर इसी प्रकार अन्याय किया जाता है। दूसरी ओर रेखा रूप से विवाह करना चाहती है, "मुझमें इतनी हिम्मत नहीं कि अपने प्यार से सबको अवगत करा सकूँ।"[10] अंतरजातीय प्रेम विवाह हमारे समाज की सबसे बड़ी परेशानी है। अच्छे से अच्छा परिवार भी अंतरजातीय विवाह पर अपनी सहमति प्रदान नहीं करता, जिस कारण प्रेमी युगल को भाग कर शादी करनी पड़ती है। शादी के पश्चात भी प्रेमी युगल को सहमति नहीं मिल पाती। इस नाटक में भी यही दिखलाया गया है। रूप सोचता है "एक दलित होकर वह कभी ऊपर नहीं उठ सकता, अगर उसके पास राजनीतिक शक्ति आ जाएं तभी सभी वर्ग, धर्म उसका अभिनंदन कर उसके सामने नतमस्तक होंगे।"[11] और वह यह निर्णय कर अपना सिर जो बौद्ध भिक्षु मुंड कर रहे थे रुकवा कर अधमुंडा सिर ले समाज में बगावत का बिगुल बजा लेता है। इस नाटक में दलित विमर्श के साथ-साथ अंतरजातीय प्रेम विवाह पर भी प्रकाश डाला गया है।

रविन्द्र भारती प्रणीत जनवासा नाटक नक्सलवादी विचार धाराओं के टकराव, भूदान आंदोलन, वर्णव्यवस्था की बढ़ती खाई, अंधविश्वास से मुक्ति के द्वार की खोज करता है। यहाँ हम बात करेंगे अंधविश्वास की, किस प्रकार हम अंधविश्वास के चक्कर में अपना ही नुकसान कर बैठते है जिसका पता हमें समय बीतने के बाद चलता है। आज आस्था के नाम पर पूजा-पाठ में कितनी धन राशि लोग खर्च कर बैठते हैं, वहीं किसी भूखे को निवाला दे पाने में असमर्थ हो जाते हैं। "सतजुगी पुरुष हैं ऐसे ही लोगों से धरती टिकी हुई है। आँख में जोत है आरतीवाला।"[12] भूदान आंदोलन में कई लोगों के द्वारा बढ़-चढ़ के हिस्सा लिया गया तो कई ने इसे सीधे से नकार दिया। इस नाटक में भूदानी भाई ने स्वेच्छा से अपना दान दिया जिससे गाँव के लोगों में हर्ष छा गया। "भूदान आंदोलन में भूदानी भाई जैसे लोग कितने थे?"[13] यह पंक्ति उन लोगों पर सीधे-सीधे कटाक्ष है जो संपन्न होने के बावजूद भी विपन्न पर दया दृष्टि नहीं दिखाते। आज समाज को जरूरत है एक-दूसरे का हाथ थाम कर कदम से कदम मिला कर चले, लेकिन स्वार्थ से भरे इस समाज को अपने सिवा कोई ओर दिखता ही नहीं। यही कारण है कि समाज में एकता, प्रेम और समन्वय आदि केवल शब्द मात्र रह गए हैं। "एक तीखा एवं विचारोत्तेजक नाटक है 'जनवासा'। भाषा, शिल्प, संगीत एवं कथन, उपकथन हृदयग्राही है, बेहद रोचक यह नाटक।"[14]

हबीब तनवीर प्रणीत नाटक "एक औरत हिपेशिया भी थी" में राजनेता साम्प्रदायिकता को फैला कर धर्म के नाम पर लोगों को एक-दूसरे से लड़ाना चाहते हैं। लेकिन लोग वास्तविकता को जानकर उनका विरोध करते हैं। अत्याचार सरकार की शह पर होते हैं। व्यवस्था से जुड़े सिपाही आंदोलनकारियों का साथ देते हैं और आम आदमी को लूटते हैं, उसका शोषण करते हैं। साम्प्रदायिकता की आग जब दो धर्मों के बीच लगती है तो इसका सीधा असर आम जन-जीवन पर पड़ता है। "ऐसी आग कि जिसका बुझना मुश्किल हो गया। वैसे ही जैसे जंगल की आग।"[15] आज भी हमारे समाज में धर्म के जुनून में इंसानियत की बलि चढ़ा दी जाती है। आपसी मोहब्बत-मोरिबत खत्म हो जाती है और इसका स्थान घृणा और द्वेष ले लेता है। इस नाटक में सिरियल एक ऐसा पात्र है, जो नाटक का खलनायक है। वह सदैव साम्प्रदायिकता में आस्था रखता हुआ हिंसा के माध्यम से अपने धर्म को दूसरों पर लादता है। समाज को ऐसे लोगों से बच कर अपने विवेक का प्रयोग करते हुए दूर ही रहना चाहिए ताकि आपसी सौहार्द बना रहे।

निष्कर्ष

इस आलेख में कृषक का मजदूर में पलायन, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, अंतरजातीय प्रेम-विवाह, धार्मिक अंधविश्वास, दंगा, खून-खराबा आदि सामाजिक मुद्दों पर प्रकाश डाला गया है। सरकार का तथा समाज का यह कर्तव्य बनता है कि किसानों पर ध्यान दें ताकि वे पलायन ना करके अपने ही खेतों में कार्य

कर सकें। स्त्री विमर्श में आज बड़े-बड़े जुमले सुनने को मिलते हैं, परंतु धरातल पर उनके हित मे समाज के द्वारा कोई ठोस कदम नहीं उठाया जा रहा। जिस कारण उनकी स्थिति में बेहतर सुधार नहीं दिखलाई पड़ रहा। वर्ण-व्यवस्था के कारण दलितों का प्राचीन काल से शोषण हो रहा है। आज कई वर्ग इनका साथ देने का झूठा वादा कर समय पर मुँह फेर लेते हैं, जिस कारण इनका शोषण होता ही आ रहा है। अंतरजातीय प्रेम विवाह जैसे हमारे समाज के लिए एक अभिशाप हो, सर्वहारा वर्ग तक इसमें अपनी सहमति नहीं बना पाते। जिससे अंतरजातीय प्रेम विवाह सुखमय नहीं हो पाता। धार्मिक अंधविश्वास की जड़े तो समाज के नींव तक पैठी हुई है, जिस कारण नए-नए बाबाओं का उदय होता रहता है और वो हमारे समाज की जड़ों को खोखला करते जा रहे हैं। दंगा, खून-खराबा मानवीय संवेदनाओं को झकझोरने का कार्य करती है, जिससे व्यक्ति के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। दंगे की चपेट में आम आदमी का सब-कुछ नष्ट हो जाता है, और वह सड़क पर दीन-हीन की तरह ठोकरें खाने को मजबूर हो जाता है। उपरोक्त बातें समाज को जोड़ने का नहीं अपितु तोड़ने का कार्य जोर-शोर से करती हैं। समाज व्यक्तियों के समूह से बनता है, परतुं जिस समाज में ऐसी कुरीतियों का जब तक दमन ना हो, ना ही व्यक्ति आगे बढ़ सकता है और ना ही समाज। सामाजिक होने के नाते हम सबका यह परम कर्तव्य बनता है कि हम ऐसी कुरीतियों का विरोध करके समाज को आगे बढ़ाने का प्रयास करें। हमारा प्रयास ही हमें आगे बढ़ाने में सफल भूमिका निभायेगा। वैसे भी सफल समाज का निर्माण तभी संभव है जब सभी वर्ग एकजूट होकर एक-दूसरे का हाथ बटाएँ।

संदर्भ सूची:

(1) ये आदमी ये चूहे, पृष्ठ सं.46, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- 110003
(2) कामायनी, लज्जा सर्ग, पृष्ठ सं. 106, भारती भंडार प्रकाशन, इलाहाबाद।
(3) जी, जैसी आपकी मर्जी, भूमिका, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-110003
(4) जी, जैसी आपकी मर्जी, पृष्ठ सं. 12, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-110003
(5) जी, जैसी आपकी मर्जी, पृष्ठ सं. 15, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-110003
(6) जी, जैसी आपकी मर्जी, पृष्ठ सं. 20, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-110003
(7) जी, जैसी आपकी मर्जी, पृष्ठ सं. 32-33, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-110003
(8) अधमुंडा सिर और चौथी टांग, पृष्ठ सं. 23, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली- 110051
(9) अधमुंडा सिर और चौथी टांग, पृष्ठ सं. 25, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली- 110051
(10) अधमुंडा सिर और चौथी टांग, पृष्ठ सं. 18, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली- 110051
(11) अधमुंडा सिर और चौथी टांग, पृष्ठ सं. 68, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली- 11051
(12) जनवासा, पृष्ठ सं. 91, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली- 110051
(13) जनवासा पृष्ठ सं. 69, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली- 110051
(14) जनवासा, भूमिका, राधाकृष्णा प्रकाशन, दिल्ली- 110051
(15) एक औरत हिपेशिया भी थी, पृष्ठ सं. 69, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- 110051

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के राजनीति चिंतन का समीक्षात्मक विश्लेषण

डॉ० प्रेम सिंह

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, विजय सिंह पथिक स्नातकोत्तर महाविद्याल; श्री महावीर जी, जिला करौली, राजस्थान

शोध सार संक्षेपण

पंडित दीनदयाल उपाध्याय एक नेता से ज्यादा एक समाजसेवी थे। एक लक्ष्यनिष्ठ समाजसेवी होने के कारण पंडित जी ने कभी राजनीति में आने के बारे में नहीं सोचा था। पूर्व आरएसएस संघचालक श्री गुरु गोलवरकर जी के आग्रह पर ही पंडित जी ने राजनीति में प्रवेश किया था। राजनीति में रहते हुए भी पंडित जी ने अपने सिद्धांतों से कभी समझौता नहीं किया। और भारतीय राजनीति में एक मिसाल कायम की। हालांकि पंडित जी के राजनीति में आने से पहले ही भारतीय राजनीति का समकालीन स्वरूप ऐसा हो चुका था कि एक ऐसे राजनीतिक संगठन की जरूरत महसूस की जा रही थी जो सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के जरिए भारत के मूल सिद्धांतों को एक बार फिर प्रासंगिक बना सके। भारत के स्वतंत्र होते ही उसे विभाजन का दंश झेलना पड़ा। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में जितने शहीदों ने अपने प्राणों की आहुति दी, उससे कहीं ज्यादा लोगों ने देश के विभाजन में अपनी जान गंवाई। हिंदू मुस्लिम तुष्टिकरण अपने चरम पर था। इसी बीच बंगाल के प्रसिद्ध नेता डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी द्वारा जनसंघ की नींव रखी गई। जिसमें सबसे पहले दीनदयाल जी को उत्तर प्रदेश के संगठन मंत्री का दायित्व दिया गया। पंडित जी ने भारत का विभाजन स्वीकार नहीं किया और अखण्ड भारत का नारा बुलंद करते रहे। पंडित जी के अनुसार अखण्ड भारत न केवल देश की भौगोलिक एकता का प्रतीक है, बल्कि यह भारतीय जीवन-दृष्टि का भी प्रतीक है- जो अनेकता में एकता को दर्शाता है। इसलिए हमारे लिए अखण्ड भारत एक राजनीतिक नारा नहीं है, बल्कि यह हमारे सम्पूर्ण जीवन-दर्शन का आधार है अतः प्रस्तुत शोध पत्र में पं. दीनदयाल उपाध्याय के राजनीति चिंतन का अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्दः- पं. दीनदयाल उपाध्याय का राजनैतिक विचार, पं. दीनदयाल उपाध्याय के प्रमुख राजनीतिक मुद्दे, राज्य का उदय काल, राजनीति राष्ट्रीयता के पोषण, शुद्ध राजनीतिक चेतना का संरक्षण, राष्ट्रीयता का आधार-भारत माता, अखण्ड भारत, अनेकता में एकता, भाषा की राजनीति व निष्कर्ष।

जीवन परिचयः-

पंडित दीनदयाल उपाध्याय मुख्य रूप से एक राजनीतिक कार्यकर्ता थे। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक क्षेत्र में योगदान मुख्य रूप से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ता के रूप में रहा है। वह संगठनों को साधन के रूप में मानतें थे, व्यावहारिक नहीं थे लेकिन साधनों की शुद्धता के बारे में वह बहुत सावधान थे। उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जनसंघ को अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के साधन के रूप में चुना, फिर वे अखण्ड भारत के समर्थक थे। कश्मीर आंदोलन, गोवा मुक्ति आंदोलन, बेरुबाड़ी हस्तांतरण के खिलाफ जन अभियान, विशाल कच्छ आंदोलन, भारत-पाक युद्ध 1965 और ताशकंद समझौता, राष्ट्रवादी विदेश नीति, पाकिस्तान और चीन के प्रति रवैया, बुनियादी सुरक्षा नीति, सैन्यीकरण और परमाणु बम, में स्वराज नीति और अर्थव्यवस्था, राज्य पुनर्गठन, भाषा नीति, स्थानीय स्वशासन, आदि के संदर्भ में उनकी देश के प्रति महत्वपूर्ण राजनीतिक योगदान रहा है। वहीं, अगर हम व्यक्ति के आर्थिक दृष्टिकोण के बारे में बात करते हैं, तो पंडित दीनदयाल उपाध्याय आर्थिक दृष्टिकोण से मानव जीवन के दृष्टिकोण के खिलाफ थे। मानवीय सांस्कृतिक मूल्यों के दृष्टिकोण से, उनकी धारणा आदर्शवादी है, लेकिन यह सोच अव्यावहारिक नहीं है, इसलिए उन्होंने एक साथ व्यवहार्य व्यवस्था पर चर्चा करने का भी प्रयास किया है। वे जीवन के शाश्वत मूल्यों के प्रकाश में आवश्यक परिवर्तनों और मानव विवेक पर विश्वास करते हैं, बजाय किसी विशेष तर्क के। पंडित दीनदयाल उपाध्याय राजनीतिक विचारों के साथ-साथ मानवतावाद को अधिक बढ़ावा देते थे।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का जन्म 25 सितंबर 1916 को ब्रज के मथुरा जिले के "नगला चंद्रभान" नामक एक छोटे से गाँव में हुआ था। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का बचपन, मुसीबतों के संघर्ष से घिरा हुआ था। दीनदयाल के पिता का नाम भगवती प्रसाद उपाध्याय था। जिनकी माता का नाम "रामप्यारी" था, जो धार्मिक प्रवृत्ति की थी, दीनदयाल के पिता रेलवे में नौकरी करते थे, लेकिन जब दीनदयाल महज तीन वर्ष की आयु के थे तब उनके पिता की मृत्यु हो गई और फिर बाद में 7 साल की आयु में दीनदयाल अपनी माँ एवं बाप के प्यार से वंचित हो गए। दीनदयाल उपाध्याय ने अपनी माँ की मृत्यु के बाद भी अपने जीवन से मुंह नहीं मोड़ा और अपने जीवन में हंसते-हंसते संघर्ष करते रहे, दीनदयाल उपाध्याय बचपन से ही पढ़ाई के शौकीन थे, इसलिए उन्होंने बिना किसी चिंता के अपनी पढ़ाई पूरी की। 8वीं की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उपाध्याय जी ने कल्याण हाईस्कूल, सीकर, राजस्थान से दसवीं की परीक्षा में बोर्ड में प्रथम स्थान प्राप्त किया। 1937 में पिलानी से इंटरमीडिएट की परीक्षा में पुनः बोर्ड में प्रथम स्थान प्राप्त किया। 1939 में कानपुर के सनातन धर्म कालेज से बी०ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। एम०ए० करने के लिए सेंट जॉन्स कालेज, आगरा में प्रवेश लिया और पूर्वार्द्ध में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुये। बीमार बहन रामादेवी की शुश्रूषा में लगे रहने के कारण उत्तरार्द्ध न कर सके। बहन की मृत्यु ने उन्हें झकझोर कर रख दिया। मामाजी के बहुत आग्रह पर उन्होंने प्रशासनिक परीक्षा दी, उत्तीर्ण भी हुये किन्तु अंगरेज सरकार की नौकरी नहीं की। 1941 में प्रयाग से बी०टी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। बी०ए० और बी०टी० करने के बाद भी उन्होंने नौकरी नहीं की।

1937 में जब वह कानपुर से बी०ए० कर थे, अपने सहपाठी बालूजी महाशब्दे की प्रेरणा से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सम्पर्क में आये। संघ के संस्थापक डॉ० हेडगेवार का सान्निध्य कानपुर में ही मिला। उपाध्याय जी ने पढ़ाई पूरी होने के बाद संघ का दो वर्षों का प्रशिक्षण पूर्ण किया और संघ के जीवनव्रती प्रचारक हो गये। आजीवन संघ के प्रचारक रहे।

संघ के माध्यम से ही उपाध्याय जी राजनीति में आये। 21 अक्टूबर 1951 को डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी की अध्यक्षता में 'भारतीय जनसंघ' की स्थापना हुई। गुरुजी (गोलवलकर जी) की प्रेरणा इसमें निहित थी। 1952 में इसका प्रथम अधिवेशन कानपुर में हुआ। उपाध्याय जी इस दल के महामंत्री बने। इस अधिवेशन में पारित 15 प्रस्तावों में से 7 उपाध्याय जी ने प्रस्तुत किये। डॉ० मुखर्जी ने उनकी कार्यकुशलता और क्षमता से प्रभावित होकर कहा- "यदि मुझे दो दीनदयाल मिल जाएं, तो मैं भारतीय राजनीति का नक्शा बदल दूँ।"

पंडित दीनदयाल उपाध्याय एक महान विचारक और संगठनकर्ता थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक महत्वपूर्ण नेता और भारतीय समाज के एक महान सामाजिक कार्यकर्ता होने के साथ-साथ, वह एक साहित्यकार भी थे एवं इन्हें 1953 में अखिल भारतीय जनसंघ की स्थापना होने पर पंडित दीनदयाल उपाध्याय को उ०प्र० का सचिव बनाया गया था। अधिकांश लोग पंडित दीनदयाल को उनकी समाज सेवा के लिए याद करते हैं। दीनदयाल ने अपना पूरा जीवन संघ को समर्पित कर दिया। अपनी कुशल संगठन क्षमता के लिए डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने कहा था कि "अगर भारत में दो दीनदयाल होते, तो भारत का राजनीतिक परिदृश्य अलग होता।" पंडित दीनदयाल, एक और बात जो उन्हें अलग करती है, वह है उनकी सादगीपूर्ण जीवन शैली, इतने बड़े नेता होने के बाद भी, उनमें थोड़ा सा भी अहंकार न था। वह सबको एक ही नजर से देखते थे।

1967 तक उपाध्याय जी भारतीय जनसंघ के महामंत्री रहे। 1967 में कालीकट अधिवेशन में उपाध्याय जी भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। वह मात्र 43 दिन जनसंघ के अध्यक्ष रहे। 10/11 फरवरी 1968 की रात्रि में मुगलसराय स्टेशन पर उनकी हत्या कर दी गई। 11 फरवरी को प्रातः पौने चार बजे सहायक स्टेशन मास्टर को खंभा नं० 1276 के पास कंकड़ पर पड़ी हुई लाश की सूचना मिली। शव प्लेटफार्म पर रखा गया तो लोगों की भीड़ में से चिल्लाया- "अरे, यह तो जनसंघ के अध्यक्ष दीन दयाल उपाध्याय हैं।" पूरे देश में शोक की लहर दौड़ गयी?

उद्देश्यः-

1 पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के राजनीतिक विचारों का विश्लेषण करना।

2 पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के राजनीतिक मुद्दों के महत्व को स्पष्ट करना।

परिकल्पनाः-

1 पण्डित दीनदयाल उपाध्याय की राजनीतिक विचारधारा का समाज पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा।

आंकड़ो के स्त्रोतः-

किसी भी शोध के लिए, सामग्री या फिर तथ्यों का संकलन की बहुत महत्वपूर्ण है। जब तक शोध विषय से संबंधित तथ्यों की निश्चित विधियां एकत्र नहीं की जाएंगी, तब तक शोध के आधार पर कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है। न ही किसी प्रकार के नियमों का प्रतिपादन किया जा सकता है। तथ्य दो तरह से संकलित किया जाता हैं। अतः प्रस्तुत शोध पत्र में द्वितीयक सूचनाओं का उपयोग किया गया है जिसका संकलन पत्र पत्रिकाओं, सेमिनार, शोध ग्रंथों व पुस्तकों के किया गया है। शोध पत्र में ऐतिहासिक विश्लेषणात्मक विधि तंत्र को अपनाया गया है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः-

भारत विभाजन की पीड़ा और पंडित नेहरू की दलीय राजनीति की पृष्ठभूमि में जनसंघ राष्ट्रीय राजनीति में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की मुखर आवाज बन गया, यद्यपि उन दिनों राजनीतिक दलों में वामपंथियों की व्यापक उपस्थिति थी, किन्तु उनसे राष्ट्रीय राजनीति की कोई अपेक्षा नहीं थी। संक्षेप में, उन दिनों राजनीतिक दल दो गुटों में बंटे हुए थे, एक थी कांग्रेस जिसने स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, कांग्रेस के माध्यम से देश को आजादी दिलाने के लिए अनेक महान नेताओं ने सहर्ष अपना बलिदान दिया। दूसरा समूह वामपंथी और शेतकरी कामगार जैसी समान विचारधारा वाली पार्टियाँ थीं, जो सरकार में आमूलचूल परिवर्तन चाहती थीं और इस परिवर्तन के लिए वे किसी भी साधन का उपयोग करने से पीछे नहीं हटती थीं। इसलिए उस समय एक राष्ट्रीय

पार्टी की आवश्यकता थी जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय नीति हो। इस दृष्टि से जनसंघ ने डॉ. मुखर्जी के नेतृत्व में व्यापक कार्य किया। पंडित जी ने अपने लेखों में एक और पार्टी की चर्चा की है, वह है 'भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी'। पंडित जी साम्यवाद के कटु आलोचक थे, जिसके लिए उनके अपने तर्क थे। पंडित जी को साम्यवाद से कुछ गंभीर शिकायतें थीं।

1 यह अपने सिद्धांतों और नीतियों के प्रति बाह्य निष्ठा रखती है।
2 अंतर्राष्ट्रीयता के नाम पर यह सोवियत रूस और लोकतांत्रिक चीन की कठपुतली है।
3 यह भारत के 'एक-राष्ट्रवाद' में विश्वास नहीं रखती है और बहु-राष्ट्रवाद की समर्थक और अलगाववाद की समर्थक है।
4 यह वर्ग संघर्ष के सिद्धांत में विश्वास रखने के कारण भेदभावपूर्ण और हिंसक हो गई है।
5 पूर्णतया भौतिकवादी होने के कारण यह एकांगी है।
6 राजनीतिक दृष्टि से यह तानाशाही विचारधारा तथा लोकतंत्र विरोधी है।

ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय साम्यवादी पार्टी के प्रति पंडित जी के ये विचार अक्षरशः सत्य हैं। साम्यवाद ने भारत की संस्कृति तथा नैतिक मूल्यों को जितना नुकसान पहुंचाया है, उतना किसी अन्य पार्टी ने नहीं पहुंचाया। भारतीय साम्यवाद तथा जनसंघ पृथ्वी के दो ध्रुवों के समान थे। साम्यवाद जनसंघ के सिद्धांतों का कटु आलोचक रहा है तथा जनसंघ ने भी साम्यवाद को भारतीय संस्कृति तथा मूल्यों के लिए हानिकारक माना है। पंडित जी कहा करते थे कि "प्रत्येक देशभक्त को इस बात पर नजर रखनी चाहिए कि साम्यवादियों को ऐसी स्थिति न मिल जाए कि वे भारत के लिए खतरा बन सकें।"

वास्तव में पंडित जी की भारतीय साम्यवाद में कभी आस्था नहीं रही। स्वतंत्रता संग्राम में उनकी भूमिका तथा चीन के प्रति विशेष स्नेह ने उन्हें भारतीय परंपराओं से दूर रखा। पंडित जी को दुनिया के वामपंथियों से यह शिकायत थी कि- जब साम्यवादी शासन आया तो उन्होंने समाज और राजनीतिक दलों के लोकतांत्रिक अधिकार छीन लिए, लेकिन जब वे सत्ता में नहीं रहे तो अपने षडयंत्रकारी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लोकतांत्रिक अधिकारों का इस्तेमाल जनता में असंतोष भड़काने में करते हैं। उदाहरण के लिए, 1962 और 1965 के महंगे युद्धों के कारण देश की अर्थव्यवस्था पर बहुत दबाव पड़ा था, देश को कई अभावों का सामना करना पड़ा था। खाद्य संकट एक बड़ी चुनौती थी। इसका सामना करने के लिए पंडित जी ने समाज से सप्ताह में एक दिन सोमवार को उपवास रखने या कम से कम भोजन करने का आह्वान किया। जबकि कम्युनिस्टों ने खाद्य संकट के लिए सरकार के खिलाफ आंदोलन शुरू किया था। पंडित जी ने इसे लोकतंत्र पर हमला माना और उन्होंने इन कार्यों के विरुद्ध जनता को सचेत करने का काम किया।

युद्ध में बिगड़ती अर्थव्यवस्था के कारण, विपरीत परिस्थितियों में हमारे देश के राजनीतिक दलों द्वारा किया गया ऐसा आंदोलन शायद ही कहीं और देखने को मिले। दरअसल, भारत-चीन युद्ध के दौरान भी कम्युनिस्टों ने चीन के प्रति नरम रुख बनाए रखा था। पंडित जी इस प्रकार के देशद्रोह से व्यथित रहते थे। जनसंघ और साम्यवाद के बीच वैचारिक मतभेद के कारण पंडित जी और जनसंघ की नीति थी कि वे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के साथ कभी समझौता नहीं करेंगे, लेकिन परिस्थितियाँ ऐसी बनीं कि जनसंघ को कम्युनिस्टों के साथ आना पड़ा। पहली बार 1956 में जनसंघ ने संयुक्त महाराष्ट्र समिति आंदोलन में भाग लिया और दूसरी बार 1956 में ही दिल्ली नगर निगम के मेयर चुनाव के दौरान।

हालाँकि, जनसंघ के इस व्यवहार की आलोचना भी हुई। पंडित जी ने इसका स्पष्टीकरण निम्नलिखित शब्दों में दिया। "राजनीति में जहां सत्ता को ही जनता की सेवा और अपने आदर्शों को साकार करने का एकमात्र साधन माना जाता है, वहां सत्ता की भूख और सत्ता की ईमानदार आकांक्षा में बहुत कम अंतर रह जाता है। जनसंघ के सदस्यों का भावी आचरण यह दर्शाएगा कि वे उक्त व्यवस्था के अनुसार प्राप्त पद के दायित्वों का निर्वहन किस प्रकार और किस सीमा तक करते हैं।"

जनसंघ की स्थापना राजनीति में एक विकल्प प्रदान करने के लिए की गई थी, जो भारतीय परंपराओं की रक्षा कर सके। न चाहते हुए भी भारत की कठिन परिस्थितियों ने पंडित जी को राजनीति में आने के लिए विवश कर दिया। पंडित जी ने जीवन भर जनसंघ के माध्यम से राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और जनसंघ के माध्यम से पंडित जी ने वैचारिक राजनीति की जो परंपरा कायम रखी, जनसंघ का संशोधित रूप भाजपा ने उस परंपरा को कालांतर में जीवित रखा है और वैचारिक राजनीति की अग्रिम पंक्ति में खड़ी है।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में पं. दीनदयाल उपाध्याय का राजनैतिक विचारः-

जिस प्रकार समाज के विभिन्न पक्षों का अध्ययन जैसे-समाज व्यवस्था, अर्थव्यवस्था का अध्ययन हम करते हैं उसी प्रकार से राजव्यवस्था का अध्ययन भी सर्वप्रमुख अध्ययन है। हम अगर भारत की राजव्यवस्था का अध्ययन नहीं करेंगे तो समाज की सुरक्षा पर अंकुश महसूस होगा। चूँकि भारतवर्ष एक ऐसा लोकतांत्रिक देश है जिसकी भूमि राजनैतिक वैचारिणी से भरी पड़ी है। भारत की प्रारम्भिक अवस्थायें राजनैतिक व्यवस्था प्रजातांत्रिक थी जिसमें प्रजा पर एक राजा शासन करता था। राजा अपनी प्रजा के सुख-दुःख में शामिल होता था। सन् 1947 के पहले की राजव्यवस्था तथा 1947 के राजव्यवस्था में काफी अन्तर देखने को मिला।

जब भारत में अनेक शासक आये और इस पर राज किये तत्पश्चात् मुगल शासक, अंग्रेजी हुकूमत की जब शासन सत्ता गयी तो भारत की राजव्यवस्था पर ग्रहण आना प्रारम्भ हो गया। करीब दो सौ सालों तक अंग्रेजी हुकूमत ने भारत के विनियोजित समाज व्यवस्था, राजव्यवस्था, अर्थव्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया। अंग्रेजी हुकूमतों ने भारत की आत्मा कही जाने वाली विभिन्न विरासतों को जैसे-संस्कृति, समाज, मूल्य, आचार-विचार, वेशभूषा आदि विभिन्न ईकाईयों को प्रभावित किया। अतः आचार्च चाणक्य ने अपनी सुप्रसिद्ध कालजयी कृति 'अर्थशास्त्र' की रचना की। तत्पश्चात् उसी राजनीतिक व्यवस्था ने आचार्य चाणक्य ने सम्राट चन्द्रगुप्त जैसे महान शासक को स्थापित किया। पं. चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र जैसे कृति में राजव्यवस्था का एक सारगर्भित वर्णन किया है। उक्त समय भारत की राजव्यवस्था विभिन्न प्रकार के विघ्न बाधाओं का सामना, संघर्ष आंदोलन किया गया। भारत की राजनीति में सन् 1947 के उपरांत भारत का दो वर्गों में विभाजित हो जाना, एक वर्ग भारत दूसरा वर्ग पाकिस्तान के रुप में विभाजित हुआ। सन् 1905 बंगाल विभाजन राजनैतिक व्यवस्था का उथल-पुथल की स्थिति झलकती है। भारत में लोकतांत्रिक राजव्यवस्था के अन्तर्गत विविधतापूर्ण समाज का एक आधुनिक भवन का निर्माण हुआ।

पं. दीनदयाल उपाध्यायः प्रमुख राजनीतिक मुद्देः-

राज्य का उदय कालः-

"न राज्यं न च राजासीत् न दण्डयों न च दाण्डिकः धर्मेणैव प्रजाः सर्वाः रक्षत्ति स्म परम्परम्।।

अर्थात् राज्य, राजा, दण्ड तथा दाण्डिक ये सब नहीं थे। धर्म के आधार पर ही सारी प्रजा परस्पर एक-दूसरे का संरक्षण करती थी। पं. दीनदयाल जी ने राज्य के उदय का कारण 'समाज की आवश्यकता' की पूर्ति को मानते हैं और राज्य और समाज के उदयकाल के बारे में अपना मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि यह सर्वविदित है कि सर्वप्रथम समाज का निर्माण हुआ, तत्पश्चात् राज्य का। वे समाज को एक 'स्वयंभू इकाई' मानते हैं।

पं. दीनदयाल जी समाज से बड़ा 'धर्म' को मानते हैं और धर्मानुसार ही समाज गतिमान होता है और समाज को संचालित करने के लिए धर्म की भूमिका प्रमुख है। वे कहते हैं कि जब समाज में एक-दूसरे के प्रति विकृति भावना में कमी होना महसूस किया गया तो वहीं 'राज्य' नायक इकाई का जन्म हुआ। दीनदयाल जी कहते हैं कि 'राज्य का निर्माण हमारे यहाँ सामाजिक समझौते के अनुसार हुआ।'

अतः मानव जीवन के प्रारम्भिक कालखण्ड में न राज्य था, न राजा, न दण्ड, न दण्ड देने वाला था केवल प्रजातंत्र था और यही प्रजातंत्र के लोग एक-दूसरे की सुरक्षा करते थे। तदुपरान्त कालान्तर में समय बदला, लोगों के बीच लोक, माया, क्रोध, धर्म की ग्लानि अनुभव किया और न्याय संगत दण्डनीति का जन्म हुआ होगा। इस प्रकार पं. दीनदयाल जी ने अपने राज्य की उत्पत्ति में तीन बातों को मानते हैं-

1. राज्य के जन्म के पहले समाज की स्थिति किस प्रकार की थी।
2. राज्यों का उदय कब हुआ।
3. राज्य की उत्पत्ति में पश्चिमी विचारधारा की क्या दार्शनिक दृष्टि थी।

चूँकि पश्चिमी समाजवादी विद्वानों में राज्य के उदय का कारण सामाजिक समझौता सिद्धान्त को मानते हैं परन्तु इस पश्चिमी विचारधारा से (सामाजिक समझौते का सिद्धान्त) पूर्णतः सहमत नहीं थे।

राजनीति राष्ट्रीयता के पोषण के लिए होनी चाहिएः-

राष्ट्रीयता के पोषण के लिए राजनीति होनी चाहिए। वह राजनीति जो राष्ट्र को क्षीण करे अवांछनीय रहेगी। स्वराज्य में यदि कष्ट हो तो भी वह उचित है बजाय उस सुराज्य के जो पराया है। स्वराज्य की व्याख्या में तीन बातें प्रमुख रुप से आती हैं। पहली बात तो यह है कि राज्य उन लोगों के द्वारा संचालित हो जो राज्य के अंग हों। दूसरी विशेषता यह है कि ऐसा राज्य राष्ट्र के हित में चलना चाहिए यानी राष्ट्रीय हित में नीतियों का संचालन होना चाहिए। और तीसरी बात यह है कि ऐसे राज्य में राष्ट्र का हित साधने का सदृश्य व्यक्ति मिल गये तो वे वन को प्रस्थान कर गये। ऐसा मैं तब तक करता रहूँगा, जब तक मुझे योग्य व्यक्ति नहीं मिल जाते।

जातिवाद और राजनीतिः-

राजनीतिक दल के जीवन में एक उपचुनाव कोई विशेष महत्व नहीं रखता, किन्तु एक चुनाव में जीतने के लिए हमने जातिवाद का सहारा लिया, तो वह भूमि सदा के लिए हम पर सवार हो जायेगा और फिर कांग्रेस एवं जनसंघ में कोई अन्तर नहीं होगा।

शुद्ध राजनीतिक चेतना का संरक्षण जरुरीः-

राजनीतिक चेतना का जागरण इस युग की सबसे बड़ी देन है। यदि इस चेतना को तात्कालिक राजनीति की भूल भूलैयों से बचाकर एक भावात्मक राष्ट्रीय अधिष्ठान पर सृजन का साधन बनाया जाता तो हम और आगे बढ़ गये होते तथा आज की अनेक समस्याओं से मुक्त रहते।

राष्ट्रमानस से अनभिज्ञ उसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण एवं अश्रद्धालु होने के कारण विदेशीपन से प्रभावित एवं व्यामूढ़ हैं। फलतः युग परिवर्तन सहज न होकर संघर्षपूर्ण हो गया है। हमें सभी विद्यमान समस्याओं का विश्लेषण इन पार्श्वभूमि में करते हुए देश और काल के अनुसार अपनी नीति निर्धारित करनी होगी।

सैद्धान्तिक राजनीति ही सर्वश्रेष्ठः-

"सैद्धान्तिक दृष्टि से विरोधी तत्वों के साथ हाथ मिलकर कोई भी दल अधिक काल तक न तो शासन कर सकता है न अपनी नीतियों का क्रियान्वयन ही कर सकता है। जहाँ यह बात सच है, वहीं यह भी उतना ही सच है कि कभी-कभी आपद्-धर्म के रुप में, विशिष्ट काल व परिस्थिति में, अपने विरोधियों को भी साथ लेना अनिवाचर्य हो जाता है। द्वितीय महायुद्ध में इंग्लैण्ड व अमेरिका का सोवियत रूस से हाथ मिलाना क्या सैद्धान्तिक दृष्टि से उचित कहा जाएगा? पर उन परिस्थितियों में मोरचा बनाकर नाजीवाद का सफल सामना किया, इसे भी तो कोई अनुचित नहीं कह सकता।

राष्ट्रीयता का आधार-भारत माताः-

हमारी राष्ट्रीयता का आधार 'भारतमाता' है, केवल भारत नहीं। माता शब्द हटा दीजिए तो भारत केवल जमीन का एक टुकड़ा मात्र रह जायेगा। इस भूमि का और हमारा ममत्व तब आता है, जब माता वाला सम्बन्ध जुड़ता है। कोई भी भूमि तब तक देश नहीं कहला सकती, जब तक कि उसमें किसी जाति का मातृक ममत्व, जैसा पुत्र का माता के प्रति होता है, न हो। यही देशभक्ति है,

अखण्ड भारत-अनेकता में एकताः-

अखण्ड भारत देश की भौगोलिक एकता का ही परिचायक नहीं अपितु जीवन के भारतीय दृष्टिकोण का द्योतक है, जो अनेकता में एकता का दर्शन करता है। अतः हमारे लिए अखण्ड भारत कोई राजनीतिक नारा नहीं जो परिस्थिति विशेष में जनप्रिय होने के कारण हमने स्वीकार किया हो बल्कि यह तो हमारे संपूर्ण दर्शन का मूलाधार है। राष्ट्रीय और एकात्मक संस्कृति की जो आधारभूत मान्यताएँ जन-संघ ने स्वीकार की हैं, उन सबका समावेश 'अखण्ड भारत' शब्द के अन्तर्गत आता है। अटक से कटक, कच्छ से कामरुप तथा कश्मीर से कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण भूमि के कण-कण को पुण्य और पवित्र ही नहीं अपितु आत्मीय मानने की भावना अखण्ड भारत के अन्दर अभिप्रेत है।

जनसंघ ही कांग्रेस का विकल्पः-

बाराबंकी में उत्तर प्रदेश जनसंघ के प्रतिनिधि सम्मेलन में दीनदयाल जी का भाषण। इस सम्मेलन में पुननिर्वाचित अध्यक्ष श्री पीतांबर दास व मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के भी भाषण हुए। किसानों का लगान आधा किये जाने तथा ग्राम-समाज के पुनर्गठन तथा प्रदेश की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए 12 सूत्रीय माँगों का प्रस्ताव पारित किया गया यदि अपने-अपने क्षेत्रों की स्थानीय समस्याओं को हल करने में हम अपना समय और शक्ति लगाएं, तो अवश्य ही जनसंघ कांग्रेस का विकास सिद्ध हो सकता है। सिद्धान्ततः जनसंघ ही कांग्रेस का विकल्प है। समाज की समस्याओं को देखने के दृष्टिकोण और उनको हल करने के प्रयासों के द्वारा हमें यह बात सिद्ध करनी है। हमें आगे बढ़ना है और लक्ष्य प्राप्ति तक सतत् बढ़ते रहना है।

भाषा की राजनीतिः-

भाषा भारत में नेताओं की चिन्ता का मुख्य विषय बन गई प्रतीत होती है। प्रधानमंत्री द्वारा प्रस्तावित व जोर-शोर से प्रसारित किये गये 'पंचशील' के सकारात्मक सिद्धान्त और पंचवर्षीय योजनाओं से प्रत्याशित खुशहाली भाषाई उन्मादियों के परस्पर झगड़ों को रोक नहीं पाई। उन्होंने प्रेस और मंच के माध्यमों से, जुलूसों और मोर्चों से, अपने-अपने दृष्टिकोणों के पक्ष और विपक्ष में प्रदर्शन तथा प्रतिरोध किये। इतने से ही संतुष्ट न होकर पिछले तीन सालों के दौरान हजारों भारतीय किशोर युवकों से लेकर अस्सी साल के वृद्धों तक ने अपने भाषाई हितों के संरक्षण और प्रसार के लिए सत्याग्रह भी प्रारम्भ कर दिये, कानूनों

को तोड़ा और गिरफ्तारियाँ दी हैं। देश के राजनीतिक मानचित्र का पुनर्निर्माण किया जाना था और योजनाओं का भी पुनः नियोजन किया जाना था। जनता का राजनीतिक झुकाव भी एक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। इससे राजनीतिक नेताओं की अपनी संभावनाओं को क्षति पहुँची या फिर उन्हें अपने दल अथवा विपक्षी दलों के अनुसार खुद को ढालना पड़ा। पिछले सामान्य चुनाव में किसी भी अन्य मुद्दे से अधिक भाषा ने अपना जबरदस्त और निर्णायक प्रभाव छोड़ा। यह संभवतः राज्य पुनर्गठन विधेयक के प्रस्ताव तथा स्वीकृति के साथ-साथ विभाजन प्रक्रिया से असहमति थी, जिसने देश के कुछ हिस्सों में इस विवादास्पद मुद्दे को बनाये रखा था। उत्तर प्रदेश को समान रुप से प्रभावित करता है। बिहार और बंगाल, गुजरात और राजस्थान, पंजाब और कश्मीर, आंध्र प्रदेश और मध्य प्रदेश इस मौजूद व्यवस्था के समान रुप से प्रभावित हुए हैं, और यदि इसमें बदलाव होता है तो सभी को समान रूप से लाभ मिलना चाहिए।

देश की अधिकाधिक भाषा क्या होनी चाहिए, यह निर्णय करने से पहले हमें यह तय कर लेना होगा कि क्या हम संगठित रहना चाहते हैं। राष्ट्र की एकता एक ऐसा तथ्य है, जिस पर कोई भी प्रश्न नहीं उठना चाहिए तथा न ही इसे प्रमाणित करने या इसका खण्डन करने के लिए कोई बहस होनी चाहिए। राष्ट्रीय एकता प्रतिबंधात्मक, संवैधानिक, संस्थागत अथवा संविदात्मक नहीं होती है। यह वास्तविक, यथार्थपरक और स्वतः सिद्ध होती है। यह इस आधार पर होती है कि हम एक साथ रहने का संकल्प लें, एक साथ चलने का निश्चय करें-कि आओ, हम अलग नहीं होंगे, कोई हमें अलग नहीं कर सकता।

निष्कर्षः-

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि जब हम भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर विचार-विमर्श करते हैं तो हमें स्मरण होता है कि हमारा शासन सत्ता का स्वरुप अथवा ढांचा किस प्रकार होगा। शासन का ध्येय क्या होगा, नीति निर्माण किस तरह का होना चाहिए? इसके तत्व जो की नीति निर्धारण को प्रभावित करने वाले कारक तथा राजनैतिक कार्यप्रणाली में किस स्तर तक जनता के लिए, मूल्य दृष्टिकोण तथा चरित्र का मानक स्वरूप क्या होता है। आज के वैश्विक परिवेश में भारतीय राजनैतिक व्यवस्था का आयाम बदल चुका है। जिसमें प्रत्येक नये नियम, परिनियम का स्वरुप निर्मित हो रहा है। पंडित जी ने इसका स्पष्टीकरण निम्नलिखित शब्दों में दिया। "राजनीति में जहां सत्ता को ही जनता की सेवा और अपने आदर्शों को साकार करने का एकमात्र साधन माना जाता है, वहां सत्ता की भूख और सत्ता की ईमानदार आकांक्षा में बहुत कम अंतर रह जाता है। जनसंघ के सदस्यों का भावी आचरण यह दर्शाएगा कि वे उक्त व्यवस्था के अनुसार प्राप्त पद के दायित्वों का निर्वहन किस प्रकार और किस सीमा तक करते हैं।" जनसंघ की स्थापना राजनीति में एक विकल्प प्रदान करने के लिए की गई थी, जो भारतीय परंपराओं की रक्षा कर सके। न चाहते हुए भी भारत की कठिन परिस्थितियों ने पंडित जी को राजनीति में आने के लिए विवश कर दिया। पंडित जी ने जीवन भर जनसंघ के माध्यम से राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई

संदर्भ सूचीः-

1 उपाध्याय, दीनदयाल, विकेन्द्रीकरण की विडम्बना, पांञ्जन्य, उद्योग अंक, दीपावली सं. 2024.
2 शर्मा, डॉ. महेश चन्द्र, दीनदयाल उपाध्याय कर्तृत्व एवं विचार, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 187.
3 दीनदयाल उपाध्याय, भाषण, पांञ्जन्य, 21 जून 1951.
4 शर्मा, डॉ. महेश चन्द्र, दीनदयाल उपाध्याय कर्तृत्व एवं विचार, वसुधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 43
5 उपाध्याय, दीनदयाल, पांञ्जन्य त्रिभाषा सूत्र बनाम अंग्रेजी, 15 मई, 1967.
6 उपाध्याय, दीनदयाल, पांञ्जन्य, 30 नवम्बर, 1933, पृ. 8.
7 उपाध्याय, दीनदयाल, राष्ट्र जीवन की दिशा, राष्ट्र धर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ, अध्याय-15, गुरुपूजा, स्वदेशी-विदेशी, पृ. 160.
8 उपाध्याय, पं. दीनदयाल, विचार-दर्शन, खण्ड-7, व्यक्ति दर्शन विश्वनाथ नारायण देवधर, सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 109.
9 उपाध्याय, पं. दीनदयाल, विचार-दर्शन, खण्ड-3, राजनीतिक चिन्तन, भालचन्द्र कृष्णा जी केलकर, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 113.

वायुमण्डल की संरचना एवं विश्व जलवायु का वर्गीकरण

धर्मेन्द्र कुमार शर्मा

शोधार्थी, भूगोल, महाराजा सूरजमल बृज विश्वविद्यालय

सार

पृथ्वी अनेक रहस्यों से भरी धरोहर है। इसकी रचना की श्रेष्ठ कृति मानव है। मानव की संरचना पंच तत्वों से हुई पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश एवं आयु। जब भी मानव सबसे आवश्यक बस्तुओं की आवयश्कता पडी उसमें वह वायुमण्डल या भूमण्डल से अपनी जरूरत पूरी करता है। पृथ्वी के वायुमण्डल की संरचना में कई गैसें और परतें होती हैं। वायुमण्डल में मौजूद गैसों में नाइट्रोजन और ऑक्सीजन सबसे ज्यादा होती है। वायुमण्डल की परतों में क्षोभ मण्डल, समताप मण्डल, मध्य मण्डल, ताप मण्डल और बाह्य मण्डल शामिल हैं और इन सबसे प्रभावित जलवायु करती है। मौसम के परिवर्तन में जलवायु का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। वायुमण्डल वस्तुतः गैसों का एक मिश्रण है जो गुरूत्वाकर्षण शक्ति के कारण पृथ्वी के चारों ओर लटका रहता है। वायुमण्डलीय संघटन में 99 प्रतिशत आयतन क्रमशः नाइट्रोजन (78.1%) और ऑक्सीजन (20.9%) गैसों का है तथा 1: आयतन में ऑर्गन (0.93%), CO_2 (0.03%), निऑन (0.0018%), हीलीयम (0.0005%), ओजोन (0.00006%), हाइड्रोजन (0.00005%) तथा सूक्ष्म मात्रा मे क्रिप्टॉन, मिथेन तथा जेनन गैसों का है।

सर्वप्रथम जलवायु वर्गीकरण की योजना फ्रांसीसी वैज्ञानिक डी. कण्डोल द्वारा तैयार किए गए भू वनस्पति मानचित्रों की सहायता से सन् 1900 में जलवायु और वनस्पति के संबंधों के आधार पर जलवायु वर्गीकरण की अपनी योजना प्रस्तुत की 1918 में कोपेन ने इसमें संशोधन किया। संशोधित जलवायु वर्गीकरण योजना में तापमान और वर्षा के महत्व पर अधिक बल दिया।

सी. डब्ल्यू थार्नथ्वेट नामक अमेरिकन जलवायु विज्ञानी ने अपने जलवायु वर्गीकरण की रूपरेखा को 1931 में प्रस्तुत किया। वायुमण्डल का संघटन निम्न तत्वों से मिलकर बनता है।

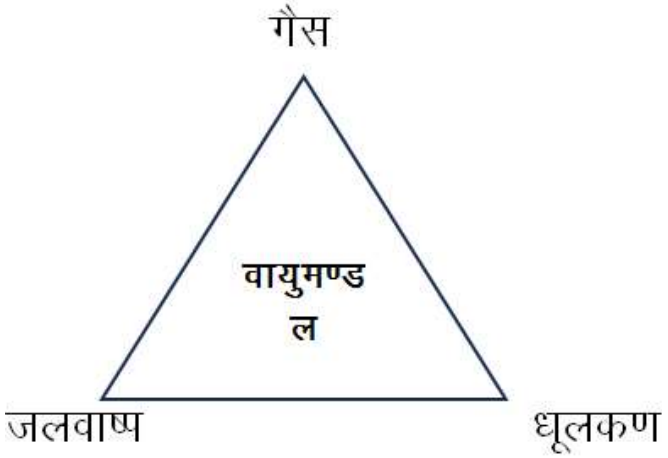

लेख शोध के प्रश्नः-

1. वायुमण्डल की संरचना क्या और किस प्रकार हुई है?
2. वायुमण्डलीय संघटना में गैसों का सम्मिश्रण एवं तत्वों की भूमिका को स्पष्ट करना।
3. विश्व जलवायु वर्गीकरण की पृष्ठभूमि को समझाना।
4. विश्व जलवायु का विद्वानों द्वारा वर्गीकरण को सरलीकरण करना एवं विस्तृत व्याख्या को समझाना।

शब्दकोषः धरोहर, वायुमण्डल, जलवायु, श्रेष्ठ, संघटन, गुरूत्वाकर्षण, आयतन, वर्गीकरण, संशोधन

प्रस्तावना:-

वायुमण्डल की संरचना में गैसें, जलवायु एवं धूलकण सम्मलित है। वायुमण्डल में कार्बनडाईऑक्साइड एक ग्रीन हाउस गैस है जो पृथ्वी पर होने वाले पार्थिव विकिरण को अवशोषित कर वायुमण्डल को गर्म बनाए रखती है। ऐसा माना जाता है कि भूतकाल में वायुमण्डल में कार्बनडाईऑक्साइड की मात्रा मे घट-बढ के कारण ही जलवायु परिवर्तन होते रहे हैं। वायुमण्डल में अधिक ऊँचाई पर वायुमण्डल के ठण्डा होने के कारण तथा मिश्रण एवं विक्षुब्धता के अभाव में जलवाष्प् नहीं पाई जाती है।

वायुमण्डलीय संघटन में धूलकण भी विद्यमान होते हैं जो प्राकृतिक साधनों और मानव जनित प्रदूषण के कारण वायुमण्डल में पहुँचते हैं जिन पर वायुमण्डलीय जलवाष्प् के संघनन से मेघ, कुहरा आदि का निर्माण होता है।

जलवायु के वर्गीकरण को अलग-अलग विद्वानों ने परदर्शिता के साथ समझाने की कोशिश की। कोपेन जी द्वारा जलवायु वर्गीकरण किया गया। तत्पश्चात थार्नथ्वेट जी द्वारा भी वर्गीकरण किया व अन्य विद्वान लोगों ने भी वर्गीकृत किया गया।

वायुमण्डल की संरचना:-

वायुमण्डल की संरचना में वायुमण्डल पृथ्वी की सतह से हजारों किलोमीटर की ऊँचाई तक फैला है जिसकी ऊपरी सीमा सुस्पष्ट नहीं है जहाँ तक इसकी सीमा ज्ञात हो गई है, उस सीमा तक वायुमण्डल को पाँच प्रमुख परतों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक परत की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। साथ ही तापमान की विशेषताओं के आधार पर भी हम इन परतों को एक-दूसरे से अलग कर सकते हैं तथा इनको भली-भाँति समझ सकते हैं।

1. क्षोभमण्डल:-

यह वायुमण्डल की सबसे निचली परत है जिसमें मानव सहित अन्य जीव रहते हैं। क्षोभमण्डल की ऊँचाई शीत ऋतु की अपेक्षा ग्रीष्मऋतु में अधिक ऊँचाई ध्रुवों पर 8 किलोमीटर तथा भूमध्य रेखा पर 18 किलोमीटर है। मौसम में प्रतिदिन होने वाले परिवर्तन संबंधी प्रक्रियाएँ इसी परत में होती हैं। इस परम में प्रति 165 मीटर की ऊँचाई र 10 सेल्सियस तापमान कम होता जाता है और 10 से 15 किमी की ऊँचाई पर तापमान -500 सेन्टीग्रेड होता है। वायुमण्डल का लगभग 85% भाग इसी परत में ऑक्सीजन व नाइट्रोजन के अतिरिक्त ऑर्गन, अमोनिया, नाइट्रोजन डाइ-ऑक्साइड आदि गैसें भी पाई जाती हैं।

संक्षेप में वायुमण्डल की इस परत में मौसम संबंधी अधिकांश घटनाएँ घटित होती हैं। ये जैवमण्डल के विभिन्न परिस्थितिकी तन्त्रों को प्रभावित करती है। क्षोभमण्डल की बाहरी सीमा को क्षोभ सीमा कहते हैं।

2. समतापमण्डल:-

क्षोभमण्डल के ऊपर 32 किलोमीटर तक अर्थात पृथ्वी सतह से 50 किमी ऊपर तक समतापमण्डल स्थित है। क्षोभ सीमा इन दोनों ही मण्डलों को अलग करती है। क्षोभ सीमा से ठीक ऊपर वाले भाग में तापमान समान रहता है लेकिन 30 किमी से अधिक ऊँचाई पर तापमान में तेजी से वृद्धि होती है। यह वृद्धि -550 सेल्सियस तक होती है जिसका कारण इस मण्डल में ओजोन द्वारा सौर विकिरण का अवशोषण होना है।

वायुमण्डल की परतें आरेख

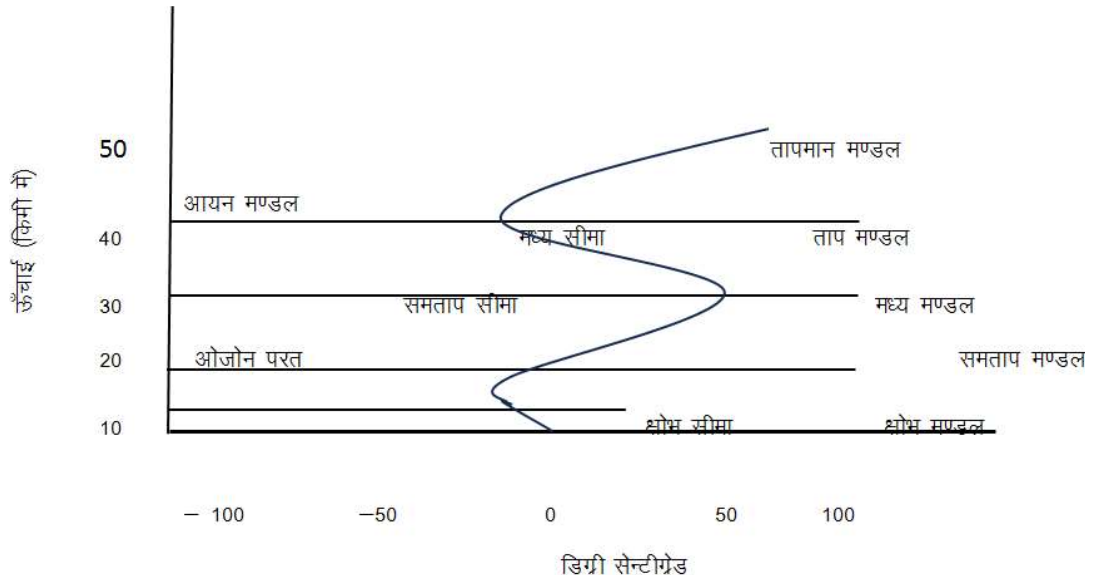

3. मध्यमण्डल:-

समातापमण्डल के ऊपर मध्यमण्डल है जिसका विस्तार 80 किलोमीटर तक है। समतापमण्डल और मध्यमण्डल के मध्य समताप सीमा है। इस परत में ऊँचाई के साथ तापमान पुन: घटने लगती है और 80-90 किलोमीटर की ऊँचाई पर तापमान -500 सेल्सियस रहता है। तापमान में यह गिरावर ओजोन के

द्वारा पराबैंगनी विकिरण के कम मात्रा में अवशोषण के कारण होती है। इस परत की प्रमुख गैसों में नाइट्रोजन, ऑक्सीजन धनायन और नाइट्रोजन ऑक्साइड धनायन प्रमुख हैं।

4. तापमण्डलः-

मध्यममण्डल के ऊपर तापमण्डल है जिसकी पृथ्वी सतह से ऊँचाई 500 किमी तक है। इस परत में ऊँचाई के अनुसार ताप बढता है। 500 किमी को ऊँचाई पर तापमान +55 से +1000C के मध्य है। इसे मण्डल को आयन मण्डल भी कहते हैं। इसमें इलैक्टॉन तथा आयन कण अधिक संख्या में पाए जाते हैं। इस मण्डल में विद्युत एवं चुम्बकीय घटनाएँ घटित होती हैं और यहाँ से रेडियो तरंगें परावर्तित होती है। आयन मण्डल की 90 से 130 किमी की ऊँचाई के बीच विस्तृत परत को हैवी साइड परत भी कहते हैं। वायुमण्डल के विद्युत चार्ज अणुओं तथा चुम्बकीय क्षेत्रों के ध्रुवीकरण से उत्पन्न घर्षण के परिणामस्वरूप इस मण्डल में उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुवीय प्रकाश पाया जाता है।

5. बर्हिमण्डलः-

यह वायुमण्डल की सबसे ऊपरी परत है जिसका विस्तार 500 से 2000 किमी की ऊँचाई तक है। इस परत की हवा अत्यन्त विरल होती है और धीरे-धीरे बाह्य अन्तरिक्ष में विलीन हो जाती है। इस परत में गुरूतवाकर्षण के क्षीण होने से हाइड्रोजन तथा हीलियम के सूक्ष्म कण शून्य में विकिरित हो जाते हैं। 2000 किमी से अधिक ऊँचाई पर केवल इलैक्ट्रान तथा प्रोटॉन पाये जाते हैं जो क्रमशः ऋणात्मक एवं धनात्मक विद्युत आवेश से पूर्ण होते हैं। यहाँ पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण की अपेक्षा चुम्बकीय क्षेत्र का अधिक प्रभव रहता है। इसे वॉन एलेन विकिरण पेटी के नाम` भी जाना जाता है।

विश्व जलवायु का वर्गीकरणः-

विश्व जलवायु का वर्गीकरण विद्वानों ने अपने अनुसार अलग-अलग विवेचन किया है जिसमें हम कोपेन जी द्वारा जलवायु वर्गीकरण के बारे में अध्ययन करेंगें।

कोपेन जी द्वारा जलवायु वर्गीकरणः-

जर्मन जीव वैज्ञानिक ब्लादीमीर कोपेन (1846-1940) ने अपना अधिकांश जीवन जलवायु के अध्ययन में व्यतीत किया।

कोपेन ने अपने जलवायु वर्गीकरण में संपूर्ण विश्व को 5 जलवायु समूहों में विभाजित किया है और इनका नामकरण क्रमशः A,B,C,D,E अक्षरों से किया है। प्रतिनिधित्व करने वाली जलवायु का विवरण निम्नानुसार है-

(1) A - उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र जलवायु
(2) B - शुष्क जलवायु
(3) C - आर्द्र मध्य तापीय जलवायु
(4) D - अल्पतापीय आर्द्र जलवायु
(5) E - ध्रवीय जलवायु

(1) A- उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र जलवायुः-

इस जलवायु समूह के लिए तापमान की सीमा यह है कि सबसे टण्डे (सर्द) महीने का औसत तापमान 180 सेन्टीग्रेड या इससे अधिक होता है।

(2) B - शुष्क जलवायुः-

वनस्पति के लिए प्रभावकारी नमी की मात्रा केवल वर्षा की मात्रा पर ही निर्भर नहीं करती अपितु उस स्थान के वाष्पीकरण और वाष्पोत्सर्जन पर भी निर्भर करती है। कोपेन पे अपने संशोधित वर्गीकरण में तापमान के आधार पर शुष्क जलवायु को दो भागों में बाँटा है।

1. शीत शुष्क जलवायु
2. उष्ण शुष्क जलवायु

(3) C - आर्द्र मध्य तापीय जलवायुः-

इस जलवायु समूह का निर्धारण करने के लिए कोपेन ने सबसे ग्रीष्म माह का औसत तापमान 100 सेन्टीग्रेड के मध्य माना है। उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र (A), उष्णार्द्र समशीतोष्ण C और मध्य अक्षांशीय शीतार्द्र जलवायु D में उष्णार्द्र समशीतोष्ण जलवायु (C) सबसे शीत माह के औसत तापमान द्वारा पहचानी जाती है।

(4) D - अल्पतापीय आर्द्र जलवायुः-

A और C आर्द्र जलवायु से D आर्द्र जलवायु इस बात में भिन्न है कि D जलवायु में सर्दियों के महीने हिम से ढके हुए रहते हैं। इन महीनों में वनस्पतियों सुप्तावस्था में होती है लेकिन ग्रीष्मऋतु के दौरान वर्षा और तुषारपात द्वारा जितनी मात्रा में जल की प्राप्ति होती है। वह वर्षभर वनस्पतियों के लिए पर्याप्त रहती हैं। D जलवायु में उष्णतम महीने का तापमान 100 सेन्टीग्रेड से अधिक तथा सबसे शीत माह का तापमान 30 सेन्टीग्रेड या इससे कम होना चाहिए।

(5) E - ध्रवीय जलवायुः-

ध्रुवीय प्रदेशों के वे भाग जहाँ उष्णतम महीने का तापमान 100 सेन्टीग्रेड से कम पाया जाता है। E जलवायु के अन्तर्गत सम्मिलित किये जाते हैं। ध्रवीय क्षेत्रों के बाहर ऊँचाईयों पर स्थित कुछ स्थान भी तापमान की इस सीमा के अन्तर्गत आते हैं। ऐसे क्षेत्रों को H जलवायु से संबोधित किया जाता है।

निष्कर्षः-

निष्कर्षत कहा जा सकता है हमने इस अध्याय सर्वप्रथम वायुमण्डल की संरचना का व्यापक अध्ययनरत किया। उसमें हमने वायुमण्डल की सभी परतों के बारे में सूक्ष्म से सूक्ष्म जानकारी के बारे में अवगत करवाया। वायुमण्डल की परतों को आरेख द्वारा प्रतिदर्श किया और रेखांकन किया उससे पूर्व सार को स्पष्ट किया एवं प्रस्तावना को भली-भाँति स्पष्ट करने का प्रयास किया गया।

विश्व जलवायु वर्गीकरण हमने प्रमुखतः ब्लादीमीर कोपेन के जलवायु वर्गीकरण के सिद्धांत का व्यापक अध्ययन किया। उसके 5 समूह जलवायु वर्गीकरण से संबंधित भागों को विस्तार से हमने अध्याय में चर्चा की है। उनमें भी उनके अन्तर्गत भाग है, उनके बारे में जानने की कोशिश की है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः-

1. चेंबर्स वर्ल्ड गजेटियर
2. जयपुर जिले का गजेटियरः गजेटियर निर्देशालय, राजस्थान जयपुर
3. गुर्जर, आर के के संपादितः जलवायु परिवर्तन सिद्धांत
4. जाट, गुर्जरः मानव भूगोल पंचशील प्रकाशन जयपुर
5. गुर्जर, आर के संपादितः वायुमण्डल संरचना
6. V.P SHARMA & HIMA THAKER FERTLLISER SUBSIDY IN INDIA. WHO ARE THE BENEFICIARIES? SPECIAL ARTICLE

वाल्मीकि रामायण में तांत्रिक चिकित्सा

डॉ० प्रेरणा माथुर

सहायक आचार्या, प्राच्य संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

भूत-विद्या आयुर्वेद का प्राचीनतम अंग है जिसका वर्णन 'छान्दोग्योपनिषद्' (7/1/2) में भी प्राप्त होता है। चरक ने इसे उन्माद रोग के अन्तर्गत समाविष्ट किया है। इसमें देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच, नाग ग्रह आदि से दूषित मन वालों के लिये शांति कर्म बलि आदि किये जाते हैं। आज भी भूत-विद्या, झाड़ना-फूँकना आदि अपने देश में हैं। अशिक्षित लोगों में इसका प्रचार है। आज भी वैज्ञानिक चिकित्सा में जो महत्व जीवाणुओं का है वही महत्व प्राचीन काल में भूतों का था। भूत-प्रेत, राक्षस, पिशाच, निशाचर इन सबकी प्रवृत्ति, इनका व्यवहार आधुनिक जीवाणु-विज्ञान के ज्ञान के साथ ठीक-ठीक मिलता है। दोनों की रक्त, मांस एवं वसा से प्रीति रहती है, दोनों ही अंधकार या रात्रि को पसन्द करते हैं। ये धूप, सूर्य, अग्नि एवं धूम से भागते हैं।[1]

चरक[2] एवं सुश्रुत[3] ने इसे 'भूत-विद्या' एवं अष्टांग-संग्रह[4] और अष्टांग हृदय[5] ने इसे 'गृह-चिकित्सा' नाम दिया है। सुश्रुतानुसार जिस अंग में देव, दैत्य (असुर), गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितृ, पिशाच, नागधारि ग्रहों से पीड़ित चित्त वाले रोगियों की शांति के लिये शांति कर्म, बलि-प्रदान एवं ग्रहोपशमनार्थ वर्णन होता है वह भूत-विद्या है। 'भूतविद्यानामदेवासुरगन्धर्वयक्षरक्षः पितृपिशाचनागग्रहाद्युपसृष्ट चेतसां शान्ति कर्म बलिहरषादि ग्रहोपशमनार्थम्।'[6]

इसी प्रकरण में रोगों की मन्त्र, हवन-चिकित्सा आदि भी प्रतिपादित है। चरक ने देवव्यपाश्रय,[7] युक्तिव्यपाश्रय एवं सत्वावजय भेद से तीन प्रकार की औषधि का निर्देश किया है। इनमें से दैवव्यपाश्रय के अन्तर्गत मन्त्र, औषधि, मणि-धारण, मंगल-कर्म, बलि-उपहार, होम, नियम, प्रायश्चित, उपवास, स्वस्त्ययन, प्रणिपात, तीर्थ-गमन आदि का सन्निवेश होता है। युक्तिव्यपाश्रय में औषध-चिकित्सा आती है। मन को तत्तद विषयों से हटाकर स्थिर करना सत्वावजय है।

इसके अतिरिक्त सुश्रुत ने अमानुषोपसर्ग प्रतिषेध, अपस्मार प्रतिषेध एवं उन्माद प्रतिषेध को भी भूत-विद्या के अन्तर्गत माना है।[8]

मणि बन्धन (डोरा, गण्डा, ताबीज आदि)- रामायण एक सागर है जिसमें विविध प्रकार के तत्व दृष्टि-गोचर होते हैं। चिकित्सा की दृष्टि से मणि, डोरा, गण्डा, ताबीज आदि का भी प्रयोग किया जा सकता है। ऐसा रामायण-कार का मत है। रामायण में बहुत से ऐसे पात्र हैं जो सामान्य पात्र के साथ-साथ युद्ध-चिकित्सक तथा अन्य चिकित्सा कार्य में कुशल भी थे जैसे-क्षत्राणी होने के नाते माता कौशल्या को भी यह ज्ञान था कि युद्ध में या आकस्मिक आघात के पश्चात् कौन-सी दिव्य-औषधि उपादेय होती है। संभव है यह ज्ञान उन्हें राजा दशरथ के द्वारा या राजकीय अन्य सफल चिकित्सकों के द्वारा ही प्राप्त हुआ हो। अपने पुत्र श्री राम के वनगमन के समय उन्होंने उनके लिये हृदय से मंगल कामना व्यक्त की। उस विशाल-लोचना माता ने पुत्र के मस्तक पर अक्षत, चंदन और रोली लगायी तथा सिद्ध (सफलता) करने वाली विशल्यकरणी नामक शुभ-औषधि लेकर अपने पुत्र की रक्षा के उद्देश्य से मन्त्र पढ़ते हुए उसको (दिव्य औषधि को) श्री राम के हाथ में बाँध दिया और उसके गुणों में उत्कर्ष लाने के लिए मन्त्र का जप भी किया।[9]

रामायण में विविध मणियों का भी वर्णन किया गया है यथा-वैदूर्य-नीलम,[10] वज्र-हीरा,[11] स्फटिक,[12] मुक्ता-मोती,[13] शंख,[14] प्रवाल-मूंगा,[15] इन्द्र-नील,[16] महानील,[17] विद्रुम-प्रवाल,[18] कांचन-मणि-दिव्य-मणि,[19] शुक्ति,[20] कौस्तुभ,[21] स्निग्धा,[22] इन्द्रनील,[23] मणिवर-पुखराज[24]।

रामायण में उल्लिखित सभी प्रकार के रत्न विविध धातुओं तथा अन्य स्वतंत्र रूप से शरीर पर धारण करने से विभिन्न प्रकार के रोगों में लाभकारी सिद्ध होते हैं जैसे अंगूठी में रत्न जड़कर पहनना या हार इत्यादि के रूप में रत्न धारण करना। इनकी रोग दूर करने की प्रक्रिया इस प्रकार है कि रत्न से निकलने वाली किरणें जब व्यक्ति के शरीर का स्पर्श करती हैं तो अवश्य ही अपना सकारात्मक प्रभाव डालती हैं और रोग को दूर करती हैं।

अभिमार्जन (झाड़ा, फूंका आदि)- श्री राम ने प्रजाजनों के आक्षेपों से तंग आकर उनका समाधान करने की दृष्टि से सीता को वन में भेज दिया। इस अवसर के कुछ दिन पूर्व जब श्री राम ने गर्भिणी सीता से पूछा कि तुम्हारा क्या दोहद (गर्भकाल की इच्छा) है तब उन्होंने बताया कि मैं ऋषियों के पावन आश्रम में जाकर उनके दर्शन करना चाहती हूँ। इसका उत्तर देते हुए श्री राम ने कहा ऐसा ही होगा। फलतः एक दिन सीता को वाल्मीकि के आश्रम के पास छोड़ आये। मधु (राक्षस) पर विजय प्राप्त करने के लिये शत्रुघ्न मुनि वाल्मीकि के आश्रम में पधारे। वाल्मीकि से सत्संग तथा कथा वार्ता करते हुए उन्हें पर्याप्त रात्रि बीत गयी। इसके बाद ज्यों ही शत्रुघ्न ने उस रात शयन के लिये वहीं की एक पर्ण-शाला में प्रवेश किया, सीता ने दो पुत्रों को जन्म दिया। यह संदेश कुछ मुनि कुमारों ने ऋषि वाल्मीकि जी को उनके पास आकर दिया और कहा, -भगवन! श्री रामचन्द्र जी की धर्म-पत्नी सीता ने दो पुत्रों को जन्म दिया है। अतः महातेजस्वी महर्षे ! आप उनकी बाल-ग्रह जनित बाधा की निवृत्ति करें।[25]

उन कुमारों की इस बात को सुनकर महर्षि उस स्थान पर गये। सीता के वे दोनों ही पुत्र बाल-चन्द्रमा के समान सुंदर तथा देव कुमारों के समान तेजस्वी थे। वाल्मीकि मुनि ने सूतिकागार में प्रवेश किया और प्रसन्न-चित्त होकर उन दोनों कुमारों को देखा तथा उनके लिये भूतों और राक्षसों का विनाश करने वाली रक्षा व्यवस्था की।[26] महर्षि वाल्मीकि ने कुशाओं का मुठ्ठा और उनके लव लेकर उनके द्वारा उन बालकों की भूत-बाधा का निवारण करने के लिये रक्षा-विधि का उपदेश किया।

यस्तयोः पूर्वजो जातः स कुशैमंत्र सत्कृतैः।
निमर्जिनीयस्तु तदा कुश इत्यस्य नाम तत्।।
याश्चातरो भवेत् ताभ्यां लवेन सुसमाहितः।
निर्मार्जनीयो वृद्धाभिः लवेति च स नामतः।।[27]

मुनि ने कहा-''वृद्धा स्त्रियों को चाहिये कि इन दोनों ही कुमारों में जो पहले जन्मा है उसका मंत्रों द्वारा संस्कार किये हुए इन कुशों से मार्जन करें। ऐसा करने पर उस बालक का नाम कुश होगा और जो छोटा है उसका लव से मार्जन करें, उससे उसका नाम लव होगा। इस प्रकार वे यमज सन्तान क्रमशः कुश तथा लव के नाम धारण करेंगे और मेरे द्वारा निश्चित किये गये इन्हीं नामों से भूमण्डल में विख्यात होंगे।''

यह सुनकर निष्पाप वृद्ध स्त्रियों ने एकाग्रचित्त होकर मुनि के हाथ से रक्षा साधनभूत उन कुशों को ले लिया और उनके द्वारा उन दोनों ही बालकों का मार्जन (शुद्धिकरण) एवं संरक्षण किया। जब वृद्धा स्त्रियाँ इस प्रकार रक्षा करने लगीं उस समय आधी रात को श्री राम तथा सीता के नाम गोत्रोच्चारण की ध्वनि शत्रुघ्न के कानों में पड़ी। साथ ही उन्हें सीता के दो सुंदर पुत्र होने की सूचना भी प्राप्त हुई, तब वे सीता की पर्ण-शाला में गये और बोले- माता जी सौभाग्य की बात है।[28]

रामायण के उपरोक्त प्रसंग से निम्न बातें स्पष्ट हो जाती हैं-

1. नवजात बालकों में बाल-ग्रह-जनित बाधाएँ सहज ही उत्पन्न हो जाती हैं।
2. इन बाल-ग्रह जनित बाधाओं का निवारण तत्काल ही आवश्यक है।
3. उपरोक्त बाल-ग्रह रोगों के अलावा भूत-बाधा तथा राक्षसी बाधा भी बालकों को शीघ्र ही आक्रान्त कर सकती है।
4. महर्षि वाल्मीकि ने उपरोक्त तीनों प्रकार की बाधाओं के रोकथाम का प्रबन्ध उन मंत्र-पूत कुशों तथा लवों के मार्जन द्वारा कर दिया।
5. इस कार्य में उन्होंने इस कार्य में अनुभव रखने वाली वृद्ध स्त्रियों का सहयोग लिया।
6. उपरोक्त रक्षा व्यवस्था के बाद रोग उत्पन्न होने का बालकों में भय नहीं रहता।

उपरोक्त प्रसंग में उल्लिखित बाल-ग्रह वाधा तो आज भी अस्पष्ट है। हाँ भूत-बाधा राक्षस बाधा का अर्थ रोगोत्पादक कीटाणुजनित रोगों में किया जा सकता है।

आयुर्वेद में भूत-विद्या का स्पष्टीकरण करते हुए सुश्रुत ने कहा है-

'अमानुषः निषेधश्च तथापस्मारिकोऽधरः।
उन्मादः प्रतिषेधश्च भूत-विद्या निरुच्यते।।[29]

अमानुषोपसर्ग प्रतिषेध, अपस्मार प्रतिषेध, उन्माद प्रतिषेध ये भूत-विद्या हैं। इसी ग्रन्थ के उत्तर तन्त्र में-

ग्रहसंज्ञानि भूतानि यस्माद्वत्यनया भिषक्। यस्माद्वत्यानया विषया भूत-विद्या त्वमतएव निरुच्यते।[30] इन भूतों की संख्या अनन्त मानी गयी है-असंख्येया ग्रहगणा ग्रहाधिपतयेस्तुये।[31] परन्तु इनकी जाति निम्न मानी गयी हैं-देव, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच, नाग, इत्यादि। इनमें ग्रहादि (बाल-ग्रह) रोग, बालकों पर अपना मारक अधिकार तुरन्त कर लेता है। देव से नाग तक के आठ ग्रह लिखे हैं, वे देव मनुष्यों के स्थूल त्रिदोषादि प्रतिष्ठित शरीर को न पकड़कर 'सूक्ष्म त्रिगुणात्मक' मन को पकड़ते हैं और अनेक प्रकार के मानसिक विकारों को उत्पन्न करते हैं। परन्तु बालकों पर इनका प्रभाव पृथक् विधि से होता है।

भूत विद्या नाम देवासुर गन्धर्व यक्ष रक्ष पितर पिशाच, नाग ग्रहग्रहोपसृष्ट चेतसां शान्ति कर्म बलिहरणादि ग्रहोपशमनार्थम्।[32]

इनका आक्रमण-अशुचिर्भिन्नं मर्यादं क्षतं वा यदि वाऽक्षतम्।

हिंस्यु हिंसा विहारार्थ संस्कारार्थ मथापिवा। तेतु संतापिता आत्मवन्तं न हिंस्युः। विशन्ति च न दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणाम।

व्रणों के द्वारा तथा बिना व्रणों के भी इनका आक्रमण हो सकता है। इनका प्रधान कारण अशुचि है। इनका विसर्पण दिखता नहीं हैं। इस प्रकार आयुर्वेद में इन भूतों के तथा राक्षसों के (जो रक्त पीने वाले तथा प्राण हरने वाले होते हैं) दो प्रकार माने गये हैं। प्रथम बड़े आदमियों के मन पर प्रभाव डालने तथा दूसरे बालकों पर आक्रमण करने वाले। बालकों पर आक्रमण करने वाले इन भूतों तथा बाल-ग्रहों का प्रतिकार भी है। इनकी चिकित्सा भी है। उपरोक्त प्रसंग में मुनि वाल्मीकि ने जो लिखा है यह सब उसी को समर्थन देता है। आयुर्वेद में उनके प्रतिकार के लिये मंत्र-पूत जल से स्नान, धूप आदि की व्यवस्था की है-जैसा कि मुनि ने वृद्धा स्त्रियों को बुलाकर आदेश दिया था। उन्होंने मंत्रों द्वारा संस्कार किये हुए कुशों द्वारा नव-जात-शिशु का मार्जन कराया। सुश्रुत में भी एक स्थान पर संक्रमण निषेध की औषधियों का उल्लेख करते हुए सिर पर धारण करने के लिये सहश्रवीर्या (श्वेत दूर्वा, दूर्वा) द्रव्य का प्रयोग है।[33]

आयुर्वेद में ऐसा निर्देश है कि अमुक मंत्र पढ़कर बालक के सिर पर हाथ रखते हुए उसे स्नान करावें।

अनेक मंत्र-तंत्र धूप-जल आदि के उल्लेख आयुर्वेद में प्राप्त हो सकते हैं जिनके द्वारा बालकों को भूत-व्यवस्था, भूत-बाधा ग्रह-बाधा से मुक्त कराया जा सकता है। रामायण में भी इसी के आधार पर मुनि वाल्मीकि ने वर्णन किया है जिसके द्वारा सीता के नवजात शिशु लव तथा कुश की रोग-निरोधक चिकित्सा की गयी है।

निष्कर्षतः हम यह पाते हैं कि वाल्मीकि रामायण में तांत्रिक-चिकित्सा विधान का एक प्रमुख चिकित्सा पद्धति के रूप में उल्लेख प्राप्त होता है।

संदर्भ सूची-

1. अष्टाग्वसा मांसभुजः सुभीमा, निशाविहाराश्च तमाविशन्ति.... । सु. चि. 60/22
2. चरक सूत्र, 30/26
3. सुश्रुत सूत्र, 1/12
4. सुश्रुत सूत्र, 1/10
5. सुश्रुत सूत्र, 1/5
6. सुश्रुत सूत्र, 1/12
7. चरक सूत्र, 11/63
8. सुश्रुत सूत्र, 3/41
9. इतिपुत्रस्याशिषश्च कृत्वा शिरसि भामिनी।
   गंधैश्चापि समालेप्य राम-मायत लोचना।।
   औषधिं च सुसिद्धार्था विशल्य करणी शुभाम्।
   चकार रक्षां कौशल्या मंत्रमभिजजाप च।। अयो. 25/37, 38
10. वाल्मीकि रामायण-सुंदर काण्ड, 3/8
11. वाल्मीकि रामायण-सुंदर काण्ड, 3/9
12. वाल्मीकि रामायण-सुंदर काण्ड, 3/10
13. वाल्मीकि रामायण-सुंदर काण्ड, 7/12
14. वाल्मीकि रामायण-सुंदर काण्ड, 7/12
15. वाल्मीकि रामायण-सुंदर काण्ड, 9/17
16. वाल्मीकि रामायण-सुंदर काण्ड, 9/17
17. वाल्मीकि रामायण-सुंदर काण्ड, 33/10
18. वाल्मीकि रामायण-सुंदर काण्ड, 65/8
19. वाल्मीकि रामायण-युद्ध काण्ड, 21/29
20. वाल्मीकि रामायण-युद्ध काण्ड, 22/21
21. वाल्मीकि रामायण-युद्ध काण्ड, 75/8
22. वाल्मीकि रामायण-युद्ध काण्ड, 111/42
23. वाल्मीकि रामायण-अरण्यकाण्ड, 42/16
24. वाल्मीकि रामायण-अरण्यकाण्ड, 29/5
25. भगवन् रामपत्नीसा प्रसूता द्वारकद्वयम्।
   ततो रक्षां महातेजः कुरु भूतविनाशिनीम्।। उ. 66/3
26. वाल्मीकि रामायण-उत्तरकाण्ड, 66/4, 5, 6
27. वाल्मीकि रामायण-उत्तरकाण्ड, 66/5, 6
28. वाल्मीकि रामायण-उत्तरकाण्ड, 66/7, 8
29. वाल्मीकि रामायण-उत्तरकाण्ड, 66/10, 11, 12
30. सुश्रुत उत्तरार्ध, 3/40
31. सुश्रुत उत्तरार्ध, 60/29
32. सुश्रुत उत्तरार्ध, 60/6
33. सुश्रुत उत्तरार्ध, अध्याय-1

क्विक कॉमर्स का उद्भवः एक अध्ययन

हिना कुमारी

शोधार्थी, अर्थशास्त्र विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सारांश

जबकि वाणिज्य के वैश्विक परिदृश्य में अभूतपूर्व परिवर्तन हो रहे हैं, क्विक कॉमर्स (क्यूकॉमर्स) एक विघटनकारी शक्ति के रूप में उभरा है, जो पारंपरिक खुदरा प्रतिमान को फिर से परिभाषित कर रहा है। यह शोध पत्र उभरते भारतीय बाजार के संदर्भ में क्विक कॉमर्स के जटिल पहलुओं पर प्रकाश डालता है। अध्ययन का उद्देश्य क्विक कॉमर्स पारिस्थितिकी तंत्र, इसके विकास, वृद्धि, प्रमुख खिलाड़ियों, खुदरा विक्रेताओं, किराना विक्रेताओं और ई-कॉमर्स कंपनियों के सामने आने वाली चुनौतियों का व्यापक विश्लेषण प्रदान करना है। चूंकि भारत क्यू-कॉमर्स के अज्ञात क्षेत्र में आगे बढ़ रहा है, इसलिए यह शोध रणनीतिक निर्णय लेने और नीति निर्माण के लिए एक रोडमैप के रूप में कार्य करता है, जो डिजिटल युग में अधिक लचीले और समावेशी खुदरा पारिस्थितिकी तंत्र का मार्ग प्रशस्त करता है।

मूल शब्दः क्विक कॉमर्स, पारिस्थितिकी तंत्र, खुदरा विक्रेता, किराना विक्रेता और ई-कॉमर्स, ऐप-आधारित प्लेटफॉर्म

परिचय

हाल के दिनों में, तकनीकी प्रगति का अभिसरण, COVID-19 महामारी का वैश्विक प्रभाव और उपभोक्ता व्यवहार में परिणामी प्रतिमान बदलाव ने खुदरा विक्रेताओं और स्टोर द्वारा पेश किए गए ऐप-आधारित प्लेटफॉर्म के माध्यम से किराने का सामान खरीदने की दिशा में व्यक्तियों को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ऑनलाइन किराने की खरीदारी में उछाल का श्रेय बढ़ी हुई तकनीकी जागरूकता, हाई-स्पीड इंटरनेट तक बढ़ती पहुँच और COVID-19 महामारी के गहन प्रभाव को दिया जा सकता है। परिणामस्वरूप, ग्राहक अपनी रोजमर्रा की जरूरतों, विशेष रूप से किराने के सामान के लिए पारंपरिक ऑफलाइन या खुदरा स्टोर खरीदारी से ऑनलाइन ऐप-आधारित खरीद की सुविधा में बदल गए हैं। इस बदलाव में योगदान देने वाले कारकों में स्मार्टफोन और पर्सनल कंप्यूटर की व्यापक उपलब्धता, बाजार में हिस्सेदारी बढ़ाने के लिए डिजिटल चौनलों पर किराना खुदरा विक्रेताओं द्वारा रणनीतिक जोर और सुविधा और समय बचाने वाले समाधानों के लिए उपभोक्ताओं की बढ़ती प्राथमिकता शामिल है। ईकॉमर्स उद्योग के त्वरण को न केवल COVID-19 वायरस के तेजी से फैलने के लिए बल्कि मोबाइल इंटरनेट तकनीक के विकास और उपभोक्ताओं द्वारा ऑनलाइन शॉपिंग तकनीकों की त्वरित स्वीकृति के लिए भी जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

पहले, ऑनलाइन शॉपिंग विशिष्ट बाजार खंडों, सीमित उत्पाद श्रेणियों और चुनिंदा ग्राहकों तक ही सीमित थी। हालाँकि, समकालीन ऑनलाइन शॉपिंग प्लेटफॉर्म अब ग्राहकों के दरवाजे तक डिलीवर किए जाने वाले उत्पादों की एक विस्तृत श्रृंखला प्रदान करते हैं। भारत में विमुद्रीकरण पहल द्वारा सुगम किए गए डेबिट कार्ड, क्रेडिट कार्ड और UPI भुगतान जैसे ऑनलाइन भुगतान विधियों को अपनाने में तेजी आई। ऐप-आधारित कंपनियों ने ऑनलाइन लेनदेन के लिए कैशबैक और विशेष ऑफर जैसे प्रोत्साहन देकर उपभोक्ता विश्वास को और मजबूत किया, और कई कैश ऑन डिलीवरी (COD) का विकल्प प्रदान करना जारी रखते हैं।

ऑनलाइन किराना खरीदारी की गतिशीलता COVID-19 महामारी और उसके बाद के लॉकडाउन के दौरान एक महत्वपूर्ण परिवर्तन से गुजरी। सुरक्षा चिंताओं और कड़े सरकारी नियमों के कारण उपभोक्ताओं द्वारा भौतिक दुकानों से परहेज करने के कारण, ऑनलाइन किराना खरीदारी की माँग में काफी वृद्धि हुई। लॉकडाउन हटने के बाद भी, उपभोक्ताओं ने ऑनलाइन या ऐप-आधारित किराना खरीदारी द्वारा दी जाने वाली सुविधा, समय की बचत और सुरक्षा को प्राथमिकता दी। यह बदलाव विशेष रूप से उन स्थानों पर उल्लेखनीय था जहाँ ऑनलाइन किराना सेवाएँ उपलब्ध थीं। इंटरनेट प्रौद्योगिकी में प्रगति ने ऑनलाइन खाद्य और किराना सेवाओं के विकास को और बढ़ावा दिया है। उपभोक्ताओं के पास अब इन सेवाओं को आसानी से ऑनलाइन खोजने, तुलना करने और उन तक पहुँचने की क्षमता है। विशेष रूप से खाद्य उद्योग ने ऑनलाइन ऑर्डरिंग के माध्यम से क्रांति देखी है, जिसने पारंपरिक रेस्तरां व्यवसाय को बदल दिया है और वैश्विक स्तर पर बेजोड़ सुविधा प्रदान की है।

तकनीकी रूप से उन्नत ऑनलाइन भोजन ऑर्डरिंग सिस्टम के आगमन ने रेस्तरां की संस्कृति को बदल दिया है, जिससे आराम और दक्षता का एक नया स्तर मिल रहा है। स्मार्टफोन एप्लिकेशन के माध्यम से भोजन और किराने का सामान ऑर्डर करने की आसानी ने पारंपरिक "किराना" या माँ-और-पॉप दुकानों से स्विगी, ब्लिंक इट, जेप्टो और बिग बास्केट जैसे संगठित ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर बाजार हिस्सेदारी में उल्लेखनीय बदलाव किया है।

ऑनलाइन खाद्य और किराना क्षेत्र में देखी गई महत्वपूर्ण वृद्धि के बावजूद, यह वर्तमान में खाद्य और किराना उद्योग में समग्र बाजार हिस्सेदारी का केवल एक मामूली प्रतिशत (5-8 प्रतिशत) दर्शाता है।

Graph showing the total Income estimated to be earned by the Delivering Industry

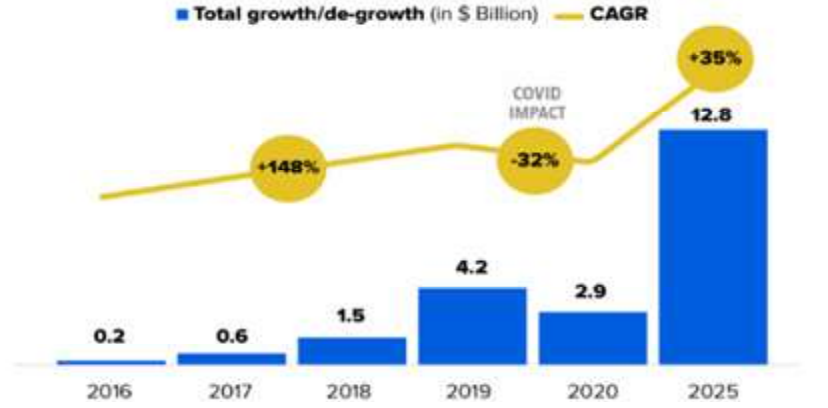

Source: www.Redseer.com

स्टेटिस्टा के डेटा के अनुसार, अमेरिका में ऑनलाइन किराना और खाद्य ऑर्डरिंग का वित्तीय प्रभाव काफी बड़ा है, जिसका अनुमानित मूल्य लगभग 4. 8 बिलियन अमेरिकी डॉलर है। यह आँकड़ा वित्त वर्ष 2025 तक बढ़कर 9.7 बिलियन डॉलर होने का अनुमान है, जो कि मुख्य रूप से COVID-19 महामारी के स्थायी प्रभावों से प्रेरित है। संक्षेप में, तकनीकी प्रगति, ब्व्टप्क-19 महामारी और बदलती उपभोक्ता प्राथमिकताओं के संगम ने ऑनलाइन किराना और खाद्य उद्योग को अभूतपूर्व ऊंचाइयों पर पहुँचाया है। ऐप-आधारित प्लेटफॉर्म द्वारा दी जाने वाली सुविधा, सुरक्षा और दक्षता ने पारंपरिक खरीदारी के परिदृश्य को नया रूप दिया है, जिसका उपभोक्ता व्यवहार और समग्र बाजार की गतिशीलता दोनों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है।

भारत में त्वरित वाणिज्य

भारत के फास्ट-मूविंग कंज्यूमर गुड्स (FMCG) बाजार में विभिन्न कारकों द्वारा महत्वपूर्ण वृद्धि देखी जा रही है:

1. स्टार्ट-अप का उदय: नए व्यवसाय पर्याप्त निवेश द्वारा समर्थित बाजार में प्रवेश कर रहे हैं, जिससे उद्योग में प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है।
2. शहरीकरण और व्यस्त जीवनशैली: समाज का तेजी से शहरीकरण और तेजी से बढ़ती व्यस्त जीवनशैली त्वरित वाणिज्य समाधानों की मांग में वृद्धि में योगदान करती है।
3. डिजिटल परिवर्तन: इंटरनेट की पहुंच में वृद्धि, किफायती डेटा प्लान और स्मार्टफोन तकनीक में प्रगति डिजिटल विकास को बढ़ावा दे रही है, जिससे त्वरित वाणिज्य का विस्तार हो रहा है।
4. विवेकाधीन खर्च में वृद्धि: मध्यम और उच्च आय वर्ग के लोग विवेकाधीन खर्च में वृद्धि देख रहे हैं, जिससे सुविधाजनक और समय बचाने वाले खरीदारी विकल्पों की मांग में और वृद्धि हुई है।
5. उपभोक्ता सुविधा: घर बैठे किराने का सामान मंगवाने की सुविधा के लिए उपभोक्ता की प्राथमिकता बढ़ रही है, जिसमें डोरस्टेप डिलीवरी एक प्रमुख अपेक्षा बन गई है।

2022 की मेक किन्से रिपोर्ट भारत की उल्लेखनीय डिजिटल प्रगति पर प्रकाश डालती है, जिसमें आधे बिलियन इंटरनेट ग्राहक सूचना तक पहुँच बढ़ा रहे हैं। ऑनलाइन किराना सेवाएँ अनुकूलित उत्पाद वर्गीकरण, प्लेटफॉर्म पर मूल्य तुलना और डोरस्टेप डिलीवरी की सुविधा जैसे लाभ प्रदान करती हैं। ऑनलाइन किराना सेवाओं द्वारा प्रदान किए जाने वाले विकल्प उपभोक्ता व्यवहार और ब्रांडों के साथ बातचीत को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। वैश्विक स्तर पर, ऑनलाइन किराना बाजार में 2022 में 37% की वृद्धि देखी गई।

भारत में, किराना बाजार, जिसका मूल्य +620 बिलियन है, शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच विभाजन को दर्शाता है, जिसमें टियर 2 और 3 शहरों, कस्बों और गांवों में विस्तार की संभावना है। रेड सीर कंसल्टेंसी का अनुमान है कि भारत में किराना स्टोर किराना बाजार का 95% हिस्सा बनाते हैं, जबकि सुपरमार्केट में केवल 4% हिस्सा है। क्विक कॉमर्स व्यवसायों में पर्याप्त वृद्धि देखी गई है, जिसका पारंपरिक किराना स्टोर पर असर पड़ा है, जिससे सामाजिक दृष्टिकोण से चिंताएँ बढ़ गई हैं। क्विक कॉमर्स के लिए अनुमानित पता योग्य बाजार का आकार वैश्विक स्तर पर लगभग +49 बिलियन है, जिसमें भारतीय बाजार का अनुमान 2025 तक +5 बिलियन तक पहुँचने का है, जो 2021 में +0.3 बिलियन से अधिक है (2022 रेड सीर कंसल्टिंग रिपोर्ट के अनुसार)।

भारतीय किराना क्षेत्र ने विलय और अधिग्रहण को छोड़कर, 2020 में वैश्विक निवेश का लगभग 70% आकर्षित किया। उल्लेखनीय विकासों में फ्लिपकार्ट द्वारा वॉलमार्ट इंडिया होलसेल का अधिग्रहण और रिलायंस द्वारा सब्सक्रिप्शन-आधारित माइक्रो-डिलीवरी प्लेटफॉर्म मिल्क बास्केट का अधिग्रहण शामिल है। रिलायंस रिटेल ने जियो मार्ट और किराना इकोसिस्टम के साथ मिलकर अपने डायरेक्ट टू कस्टमर ऑफरिंग को मजबूत किया है, जबकि डी मार्ट रेडी बाय डी मार्ट ऑनलाइन शॉपिंग और होम डिलीवरी की अनुमति देता है, जिसे विशिष्ट पिक-अप पॉइंट द्वारा पूरक बनाया गया है।

भारत में क्यू-कॉमर्स के प्रति उपभोक्ता व्यवहार

आईआईएम-बैंगलोर ने क्विक कॉमर्स (क्यूकॉमर्स) के बारे में ग्राहकों की भावनाओं का आकलन करने और उनकी अपेक्षाओं को समझने के लिए एक सर्वेक्षण शुरू किया। जबकि ग्राहकों ने त्वरित डिलीवरी के लिए उत्साह व्यक्त किया, डिलीवरी शुल्क के प्रभाव ने उनके खरीद निर्णयों को प्रभावित किया। क्यू-कॉमर्स के प्रति उपभोक्ताओं की प्रतिक्रियाओं पर केंद्रित बैंगलोर सर्वेक्षण में, परिणामों ने संकेत दिया कि 58% ने स्विगी इंस्टामार्ट को प्राथमिकता दी उपयोगकर्ताओं ने सहज, त्वरित, तार्किक और सुरक्षित क्यू-कॉमर्स प्रक्रिया के महत्व पर जोर दिया, साथ ही वास्तविक समय की प्रगति अपडेट और सटीक ट्रैकिंग जानकारी की इच्छा भी जताई। लोकल सर्किल्स ने भारत में एक सर्वेक्षण किया, जिसमें निम्नलिखित जानकारी सामने आई:

1. ऑनलाइन किराने का सामान खरीदने वाले अधिकांश भारतीय उपभोक्ता गति से ज्यादा सुविधा को प्राथमिकता देते हैं। वे डिलीवरी के लिए कुछ घंटे या एक दिन तक भी इंतजार करने को तैयार हैं, लेकिन अतिरिक्त डिलीवरी शुल्क का भुगतान करने में अनिच्छुक हैं।
2. केवल 3% घरेलू उपभोक्ता आधे घंटे के भीतर डिलीवर किए जाने वाले किराने के सामान के लिए डिलीवरी शुल्क का भुगतान करने को तैयार हैं, जो इस तरह के शुल्कों के प्रति एक मजबूत विरोध को दर्शाता है।
3. पिछले दो वर्षों में, भारत ने स्विगी इंस्टामार्ट, ब्लिंकिट, डंजो, बिग बास्केट नाउ और जेप्टो जैसे विभिन्न क्यू-कॉमर्स प्लेटफॉर्म का उदय देखा है। इन प्लेटफॉर्म ने औसतन 30 मिनट की समय-सीमा के भीतर किराने की डिलीवरी का वादा करके प्रमुखता हासिल की है। हालाँकि, उनकी सफलता के बावजूद, क्यूकॉमर्स डिलीवरी मॉडल को एक कार्य प्रगति के रूप में स्वीकार किया जाता है, जो उद्योग में चल रहे परिशोधन और सुधार का सुझाव देता है।

भारत में क्यू-कॉमर्स अनुप्रयोग

क्विक कॉमर्स (क्यू-कॉमर्स) अनुप्रयोगों ने ई-कॉमर्स परिदृश्य को बदल दिया है, जैसा कि फोर्ब्स की रिपोर्ट "क्विक कॉमर्स: एन एवर-चेंजिंग ई-कॉमर्स प्रॉस्पेक्ट" में उल्लिखित है, जिसे एमिजेनटेक के निदेशक और सीटीओ अमित समसुखा ने लिखा है, जो आईटी इंफ्रास्ट्रक्चर संवर्द्धन में विशेषज्ञता रखने वाला एक कुशल ई-कॉमर्स सलाहकार है। क्यू-कॉमर्स क्षेत्र में अग्रणी खिलाड़ी शामिल हैं:

a. ब्लिंकिट (पूर्व में ग्रोफर्स): ब्लिंकिट, जिसे पहले ग्रोफर्स के नाम से जाना जाता था, आवश्यक वस्तुओं तक तुरंत पहुँच प्रदान करके ऑनलाइन शॉपिंग को फिर से परिभाषित करता है, यह सुनिश्चित करता है कि ग्राहकों को उनके जूते पहनने से पहले ही उनकी जरूरत की चीजें मिल जाएँ। ब्लिंक कॉमर्स प्राइवेट लिमिटेड, ब्लिंकिट का संचालन करता है, जो GROFFR-COM से अलग है, जो एक रियल एस्टेट सेवा कंपनी है। इसका ध्यान उपभोक्ताओं को दैनिक आवश्यकताओं से मुक्त करने पर है, जिससे वे अधिक महत्वपूर्ण लक्ष्यों पर ध्यान केंद्रित कर सकें।

b. जेप्टो: भौतिकी में अवलोकनीय समय की सबसे छोटी इकाई के नाम पर रखा गया जेप्टो, गति को प्राथमिकता देता है। चाहे 10 मिनट की डिलीवरी के साथ ग्राहकों को आश्चर्यचकित करना हो या देश भर में विस्तार करना हो, जेप्टो पूर्वकल्पित धारणाओं को चुनौती देता है और दक्षता की खोज में नई अवधारणाएँ पेश करता है।

c. स्विगी इंस्टामार्ट: स्विगी इंस्टामार्ट, जिसे "इंस्टामार्ट- इंस्टेंट ग्रॉसरी डिलीवरी" के रूप में ब्रांडेड किया गया है, एक स्विगी-संचालित सेवा है जो 15 से 30 मिनट के भीतर घरों तक किराने का सामान पहुँचाती है। सप्ताह के मध्य में होने वाली भागदौड़, आखिरी मिनट की जरूरतों और आधी रात की इच्छाओं को पूरा करने के लिए, स्विगी इंस्टामार्ट स्नैक्स और पेय पदार्थों से लेकर फलों, सब्जियों और घरेलू आवश्यक वस्तुओं तक के उत्पादों की एक विस्तृत श्रृंखला को कवर करता है।

d. बिग बास्केट: बिगबास्केट.कॉम किराने की खरीदारी को सरल बनाता है, ब्राउजिंग और भोजन खरीदने के लिए एक आरामदायक दृष्टिकोण प्रदान करता है। यह उपयोगकर्ताओं को ट्रैफिक, पार्किंग और लाइनों में प्रतीक्षा करने की परेशानियों को दूर करते हुए घर या कार्यालय से अपने सभी खाद्य और किराने की जरूरतों को आसानी से खरीदने की अनुमति देता है। ऑनलाइन उपलब्ध वस्तुओं की विविध रेंज के साथ, बिग बास्केट एक सहज खरीदारी अनुभव सुनिश्चित करता है।

e. डंजो: डंजो शहरी जीवनशैली को खरीदने, वस्तुओं को ले जाने और शहर में कुशलता से पहुँचने के लिए एक प्लेटफॉर्म प्रदान करके बदल देता है। ऐप उपयोगकर्ताओं को निकटतम डिलीवरी पार्टनर से जोड़ता है जो खरीदारी को संभाल सकता है, रेस्तरां या स्टोर से सामान उठा सकता है और उन्हें तुरंत डिलीवर कर सकता है। ऐसे शहर में जहाँ समय सीमित है, डंजो खरीदारी और डिलीवरी जैसे कार्यों को सरल बनाता है, जिससे व्यस्त शेड्यूल के बीच भी उन्हें अधिक सुलभ बनाया जा सकता है।

भारत में क्यू-कॉमर्स स्टार्टअप का भविष्य

चूंकि सुरक्षित और अल्ट्रा-फास्ट ग्रॉसरी डिलीवरी के लिए उत्साह काफी कम हो गया है, इसलिए 2024 में क्विक कॉमर्स (क्यू-कॉमर्स) बुलबुले के भाग्य के बारे में अटकलें लगाई जा रही हैं। हालांकि, खुदरा विशेषज्ञों का तर्क है कि तत्काल होम डिलीवरी की मांग, जो कि इसके द्वारा प्रदान की जाने वाली सुविधा से पैदा हुई है, बनी रहेगी, जिससे क्यू-कॉमर्स बाजार पूरी तरह से गायब नहीं होगा। भारत की बदलती जनसांख्यिकी और उसके बाद आय के स्तर में वृद्धि जैसे कारक लागत बाधाओं को कम कर सकते हैं, जिसने इस क्षेत्र के विकास में बाधा डाली है।

2030 तक भारत की अधिकांश आबादी 15-59 आयु वर्ग के भीतर आती है, इसलिए आय में वृद्धि से लाखों परिवारों के मध्यम वर्ग की खपत में आने की उम्मीद है, जो कि क्यूकॉमर्स प्लेटफॉर्म का लक्ष्य है। इस संदर्भ में, उद्योग के खिलाड़ियों को लागत और आय के बीच संतुलन बनाने के लिए पैकेजिंग और डिलीवरी शुल्क शुरू करना, छूट और मुफ्त में देना संभव लग सकता है। व्यवहार्यता और आकर्षण को बढ़ाने के लिए, क्यू-कॉमर्स प्लेटफॉर्म विभिन्न रणनीतियों की खोज कर रहे हैं। विज्ञापन मुद्रीकरण एक फोकस बन गया है, जिसमें प्लेटफॉर्म इष्टतम परिणामों के लिए दर्शकों को आकर्षित करने के लिए कई ब्रांडों को बढ़ावा दे रहे हैं। ब्लिंकिट के सीईओ, अलबिंदर ढींडसा, सेवा विविधीकरण के माध्यम से व्यवसाय विकास को आगे बढ़ा रहे हैं, अर्बन कंपनी की तरह घर पर काम करने वाले लोगों की सेवाओं में प्रवेश कर रहे हैं, जिसमें इलेक्ट्रीशियन, प्लंबर और एसी मरम्मत विशेषज्ञ शामिल हैं।

भीड़भाड़ वाले महानगरों और क्यू-कॉमर्स के अंतर्निहित कम सकल मार्जिन और उच्च वितरण लागतों द्वारा उत्पन्न चुनौतियों के बावजूद, ऑनलाइन शॉपिंग और डिजिटल भुगतान में तेजी से वृद्धि ने इस क्षेत्र को आगे बढ़ाया है। अनुसंधान फर्मों ने मजबूत विकास की भविष्यवाणी की है, डेलोइट की रिपोर्ट ने 2030 तक +40 बिलियन के बाजार का अनुमान लगाया है, जो 2022 में +2 बिलियन से अधिक है, और मार्कएनटेल ने 2023-28 के दौरान भारतीय क्यू-कॉमर्स के लिए लगभग 67% की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (CAGR) का अनुमान लगाया है।

निरंतर सफलता के लिए, उद्योग के खिलाड़ियों को अधिक ऑर्डर संसाधित करने, उत्पाद वर्गीकरण को अनुकूलित करने, कुशल डिलीवरी सुनिश्चित करने और ग्राहकों को खरीदारी जारी रखने के लिए प्रोत्साहित करने वाले अद्वितीय मूल्य प्रस्ताव पेश करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। डंजो और इंस्टामार्ट द्वारा सामना की गई चुनौतियों से सबक मूल्यवान अंतर्दृष्टि के रूप में काम करते हैं, जो स्केलेबिलिटी मुद्दों को नेविगेट करने और नुकसान से बचने के महत्व पर जोर देते हैं। इसके अतिरिक्त, किराना डिलीवरी स्पेस में क्विक कॉमर्स प्लेयर्स को ONDC (डिजिटल कॉमर्स के लिए ओपन नेटवर्क) से कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ेगा, जो एक शानदार विकल्प प्रदान करता है क्योंकि किराना स्टोर और सभी आकार के खुदरा विक्रेता अपने ग्राहकों को सीधी डिलीवरी सेवाएँ प्रदान करने के लिए नेटवर्क में शामिल हो सकते हैं।

स्थानीय किराना विक्रेताओं के सामने आने वाली चुनौतियाँ और उनके समाधान

1. क्विक कॉमर्स में तीव्र प्रतिस्पर्धा

क्विक कॉमर्स के परिदृश्य में पारंपरिक किराना विक्रेताओं और उभरती हुई रैपिड डिलीवरी कंपनियों दोनों से प्रतिस्पर्धा में उछाल देखा जा रहा है। उल्लेखनीय रूप से, संस्थाओं की एक नई लहर शहरी केंद्रों में कॉम्पैक्ट स्पेस में काम करते हुए डार्क स्टोर मॉडल को अपना रही है, जो उल्लेखनीय 10 मिनट की समय सीमा के भीतर डिलीवरी सुनिश्चित करती है। यह प्रवृत्ति पारंपरिक किराना विक्रेताओं के लिए एक संभावित खतरा बन गई है, जो 10-15 मिनट के भीतर डिलीवरी का वादा करते हैं। खुदरा विक्रेता अब तेज सेवाएं, बेहतर चयन और प्रतिस्पर्धी मूल्य निर्धारण की पेशकश करने के लिए एक भयंकर प्रतिस्पर्धा में लगे हुए हैं। किराना विक्रेताओं के लिए चुनौती बदलती उपभोक्ता जरूरतों के अनुकूल अपनी तकनीक और प्रक्रियाओं को विकसित करने, माइक्रो-पूर्ति केंद्रों (MFC) का उपयोग करने और दक्षता बढ़ाने, औसत ऑर्डर मूल्य बढ़ाने और राजस्व बढ़ाने के लिए रणनीतियों को लागू करने में है।

2. सस्ते और तेज क्यू-कॉमर्स की दौड़ में लाभप्रदता की चुनौतियाँ

जैसे-जैसे किराना विक्रेता अल्ट्रा-फास्ट किराना डिलीवरी स्पेस पर हावी होने का प्रयास करते हैं, उन्हें एक रेस-टू-द-बॉटम प्राइसिंग मॉडल का सामना करना पड़ता है जो छोटे खुदरा विक्रेताओं को दिवालियापन की ओर ले जा सकता है। दैनिक चुनौतियों से चिह्नित प्रतिस्पर्धी परिदृश्य लाभप्रदता पर दबाव डालता है। विशेष रूप से, किराना सीईओ का एक महत्वपूर्ण हिस्सा ई-कॉमर्स में लाभप्रदता प्राप्त करने को प्राथमिकता देता है। पारंपरिक स्टोर विजिट की तुलना में इसकी उच्च लागत को देखते हुए, लाभप्रदता सुनिश्चित करते हुए ग्राहकों की अपेक्षाओं को पूरा करना डिजिटल किराना में एक बड़ी चुनौती है। इस पर काबू पाने के लिए, रणनीतियों में डिलीवरी शुल्क कम रखना, चुनिंदा उत्पादों को मार्क अप करना और लाभप्रदता के लिए वैकल्पिक तरीकों की खोज करना शामिल है। यह दृष्टिकोण ग्राहकों की "मूल्य-संवेदनशील" होने की पारंपरिक धारणा को चुनौती देता है और ग्रॉसर्स को चौनलों में मूल्य समानता पर पुनर्विचार करने के लिए प्रोत्साहित करता है। ग्रॉसर्स को पूर्ति प्रक्रियाओं को अनुकूलित करने, बास्केट वैल्यू बढ़ाने, ग्राहक संतुष्टि बढ़ाने और समग्र लाभप्रदता में सुधार करने के लिए आगामी और स्थापित कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा प्रदान किए गए ई-कॉमर्स और पूर्ति समाधान जैसी तकनीक का लाभ उठाने की आवश्यकता है।

3. त्वरित वाणिज्य में एक स्थायी व्यवसाय मॉडल का निर्माण

जबकि त्वरित वाणिज्य प्रवृत्ति आकर्षक है, ग्रॉसर्स के लिए नुकसान से बचने के लिए दीर्घकालिक रणनीति तैयार करना महत्वपूर्ण है। बाजार वर्तमान में खिलाड़ियों से भरा हुआ है, हजारों शहरों में विस्तार कर रहा है और अतिरिक्त डिलीवरी कंपनियों का अधिग्रहण कर रहा है। बाजार में अतिसंतृप्ति, लाभ चुनौतियों के साथ, एक अपरिहार्य उद्योग समेकन का सुझाव देती है। त्वरित-वाणिज्य फर्म लाभप्रदता सुनिश्चित करने के लिए बिना या कम डिलीवरी शुल्क से अधिक ष्उचितष शुल्क में बदलाव कर सकती हैं। ग्रॉसर्स को कम मार्जिन वाले माहौल में आउटसोर्सिंग पर सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए और पिकिंग, अंतिम-मील पूर्ति साझेदारी और कुशल मार्ग-आधारित डिलीवरी के लिए स्वचालन में निवेश करना चाहिए। इन्वेंट्री और वितरण रणनीतियों पर पुनर्विचार करना, जैसे कि हब स्टोर का उपयोग करना, स्टोर में इन्वेंट्री को संतुलित करना और डिजिटल ऑर्डर के साथ मांग की योजना को संरेखित करना आवश्यक है। खुदरा विक्रेताओं को सलाह दी जाती है कि वे अपने स्वयं के त्वरित समाधान बनाएं, स्वतंत्रता पर जोर दें और मौजूदा डिजिटल चौनलों पर विचार करें। अंततः, ग्रॉसर्स के लिए त्वरित वाणिज्य के गतिशील परिदृश्य को नेविगेट करने, लाभ हानि और संभावित समेकन को रोकने के लिए एक रणनीतिक और स्वतंत्र दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है।

त्वरित वाणिज्य द्वारा सामना की जाने वाली चुनौतियाँ

1. पूर्ति चुनौतियाँ: सैकड़ों ऑन-डिमांड ऑर्डर की मांग को पूरा करना त्वरित वाणिज्य परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण चुनौती है, जिसके लिए ग्राहक संतुष्टि सुनिश्चित करने के लिए कुशल प्रक्रियाओं, स्केलेबल बुनियादी ढांचे और रणनीतिक पूर्ति समाधानों की आवश्यकता होती है।
2. डिलीवरी पार्टनर का चयन: सही डिलीवरी पार्टनर का चयन करना त्वरित वाणिज्य सफलता का एक महत्वपूर्ण पहलू है। इस प्रक्रिया में विश्वसनीयता, गति और समय पर और कुशल डिलीवरी के लिए ब्रांड की प्रतिबद्धता के साथ संरेखण सुनिश्चित करने के लिए सावधानीपूर्वक मूल्यांकन शामिल है।
3. 60 मिनट के भीतर समय पर डिलीवरी: 60 मिनट की समय-सीमा के भीतर समय पर डिलीवरी सुनिश्चित करना त्वरित वाणिज्य में एक प्रमुख चुनौती है। इस कठोर समय-सीमा को पूरा करने के लिए रसद, मार्ग अनुकूलन और समन्वय में सटीकता की आवश्यकता होती है, जो सुव्यवस्थित और चुस्त परिचालन प्रक्रियाओं की आवश्यकता पर जोर देता है।
4. ऑन-ग्राउंड डायनेमिक्स का प्रबंधन: यातायात, मौसम और अप्रत्याशित बाधाओं सहित ऑन-ग्राउंड डायनेमिक्स से निपटना त्वरित वाणिज्य में एक अंतर्निहित चुनौती है। इन चरों के सफल नेविगेशन के लिए वादा किए गए डिलीवरी समय-सीमा को बनाए रखने के लिए रणनीतिक योजना, वास्तविक समय की निगरानी और अनुकूली समाधानों की आवश्यकता होती है।

क्यू-कॉमर्स द्वारा सामना की जाने वाली चुनौतियों पर कैसे काबू पाया जाए

1. स्वचालित ऑर्डर योजना और निष्पादन: आपूर्ति श्रृंखला को सुव्यवस्थित करते हुए ऑर्डर योजना और निष्पादन को स्वचालित करने के लिए लॉजिस्टिक्स तकनीक का उपयोग करें। यह दक्षता बढ़ाता है, त्रुटियों को कम करता है, और त्वरित वाणिज्य संचालन में ऑर्डर प्लेसमेंट से लेकर पूर्ति तक एक निर्बाध प्रवाह सुनिश्चित करता है।
2. सुविधाजनक समय स्लॉट प्रबंधन: सुविधाजनक समय स्लॉट प्रबंधन के लिए लॉजिस्टिक्स तकनीक लागू करें, जिससे ग्राहक इष्टतम डिलीवरी विंडो चुन सकें। यह ग्राहक संतुष्टि को बढ़ाता है, संसाधन आवंटन को अनुकूलित करता है, और त्वरित वाणिज्य आपूर्ति श्रृंखला में समग्र परिचालन दक्षता में सुधार करता है।
3. स्मार्ट और लागत प्रभावी डिलीवरी रूट प्लानिंग: बुद्धिमान और लागत प्रभावी डिलीवरी रूट प्लानिंग के लिए लॉजिस्टिक्स तकनीक का उपयोग करें। यह पारगमन समय को कम करता है, ईंधन लागत को कम करता है, और त्वरित वाणिज्य आपूर्ति श्रृंखला में समग्र लॉजिस्टिक्स दक्षता को बढ़ाता है, जिससे समय पर और किफायती डिलीवरी सुनिश्चित होती है।
4. स्मार्ट और लागत प्रभावी डिलीवरी रूट प्लानिंग: बुद्धिमान और लागत प्रभावी डिलीवरी रूट प्लानिंग के लिए लॉजिस्टिक्स तकनीक का उपयोग करें। यह पारगमन समय को कम करता है, ईंधन लागत को कम करता है, और त्वरित वाणिज्य आपूर्ति श्रृंखला में समग्र लॉजिस्टिक्स दक्षता को बढ़ाता है, जिससे समय पर और किफायती डिलीवरी सुनिश्चित होती है।
5. सवारों को ड्यूटी का ऑन-डिमांड आवंटन: राइडर्स को मांग के आधार पर ड्यूटी को गतिशील रूप से आवंटित करने के लिए लॉजिस्टिक्स तकनीक का उपयोग करें, वास्तविक समय में कार्यबल उपयोग को अनुकूलित करें। यह लचीला दृष्टिकोण प्रतिक्रिया समय में सुधार करता है, अधिकतम मांग को कुशलतापूर्वक प्रबंधित करता है, और त्वरित वाणिज्य आपूर्ति श्रृंखला में बदलती परिस्थितियों के अनुकूल होता है। ट्रैफिक, मौसम और अप्रत्याशित बाधाओं सहित ऑन-ग्राउंड डायनेमिक्स से निपटना, त्वरित वाणिज्य में एक अंतर्निहित चुनौती है। इन चरों के सफल नेविगेशन के लिए रणनीतिक योजना, रीयलटाइम निगरानी और वादा किए गए डिलीवरी टाइमलाइन को बनाए रखने के लिए अनुकूली समाधानों की आवश्यकता होती है।

निष्कर्ष

क्यू-कॉमर्स बाजार इस समय फल-फूल रहा है। हालाँकि, यह अपनी चुनौतियों के बिना नहीं है। अपनी यूएसपी पर ध्यान केंद्रित करके, विशेष अवसर ढूँढ़कर, और आपूर्ति श्रृंखला और इन्वेंट्री प्रबंधन के दृष्टिकोण से एक सख्त जहाज चलाकर, आप वास्तव में इस क्षेत्र में फल-फूल सकते हैं। क्विक कॉमर्स के कई लाभ हैं लेकिन इसकी चुनौतियाँ भी हैं। प्रमुख चुनौती लाभप्रदता है। किसी को तेज डिलीवरी की लागत और हाइपर-लोकल इन्वेंट्री वेयरहाउसिंग की अतिरिक्त लागत को कवर करना होगा। लेकिन कई ग्राहकों के लिए, मुफ्त डिलीवरी रूपांतरण को गति देने वाली रही है। जबकि आपके मौजूदा ग्राहक तेज डिलीवरी विंडो के लिए तैयार हो सकते हैं, क्या आप "मुफ्त डिलीवरी" का लालच दिए बिना नए ग्राहक प्राप्त कर पाएँगे? और दूसरी तरफ, यदि आप एक व्यवसाय के रूप में सभी डिलीवरी लागतों को कवर कर रहे हैं, तो इसे भी ध्यान में रखना होगा। अच्छी तरह से स्थापित FMCG कंपनियों में, मूल्य निर्धारण में समझदारी होती है; मूल्य निर्धारण की एक सीमा होती है, और इसे एक निश्चित सीमा से कम नहीं किया जा सकता है। लेकिन कमोडिटी में, ऐसे कोई प्रतिबंध नहीं हैं और कई नए-पुराने खिलाड़ी सिर्फ टॉप लाइन चला रहे हैं, खरीद लागत से बहुत कम पर बेच रहे हैं और 1-2 प्रतिशत सकल मार्जिन पर काम कर रहे हैं। जिस तरह की लागत संरचना शामिल है, उनके लिए लाभप्रदता की कोई दृष्टि नहीं है। पिछले कुछ वर्षों में भारत और वैश्विक स्तर पर बहुत सारे स्टार्टअप और यूनिकॉर्न पागल मूल्यांकन के साथ सूचीबद्ध हुए।

सटीक मूल्य निर्धारण, स्थान-निर्भर संचालन और विवेकपूर्ण निवेश क्विक कॉमर्स किराना रिटेल में सफलता के लिए महत्वपूर्ण हैं।

संदर्भ

1. https://www.emerald.com/insight/content/doi/10.1108/EEMCS-10-2022-0372/full/html
2. https://admin369.seyboldreport.org/file/V18I08A37-62cPvL35xTnNgz0.pdf
3. https://safer.uct.cl/index.php/SAFER/article/view/691/656
4. https://www.researchgate.net/profile/Mohammad-AffanAkhtar/publication/365451640_ ONLINE_ CONSUMER'S_ PURCHASING_ BEHAVIOR_ TOWAR DS_E-GROCERY_SHOPPING- _A_CRITICAL_REVIEW/links/637604c62f4bca7fd06a284b/ONLINE-CONSUMERSPURCHASING-BEHAVIOR-TOWARDS-E-GROCERY-SHOPPING-A-CRITICAL-REVIEW.pdf
5. https://www.iima.ac.in/sites/default/files/2023-06/Q-com%20-%20Ranjekar%20%26%20Roy.pdf
6. http://journal.hmjournals.com/index.php/IJRISE/article/view/1662/1984
7. https://stor.ai/3-challenges-grocers-face-with-q-commerce-and-how-to-overcome-them/
8. https://locus.sh/resources/quick-commerce-challengesamerica/?utm_source=resources&utm_medium=Vistors&utm_campaign=infographic
9. https://www.thehindubusinessline.com/catalyst/how-quick-commerce-is-rising-to-everyoccasion/article67575795.ece
10. https://www.mordorintelligence.com/industry-reports/q-commerce-industry-in-india
11. https://www.storehippo.com/blog/top-5-quick-commerce-brands-in-india
12. https://www.forbesindia.com/article/iim-bangalore/quick-commerce-last-mile-deliveryindispensable-or-superfluous/82065/1

कामकाजी महिलाओं और तनाव प्रबंधनः एक नया दृष्टिकोण

डॉ० दीपक कुमार भगत

मनोविज्ञान विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश

आज के युग में तनाव एक अनिवार्य तत्व बन चुका है, और यह मानव जीवन की जटिलताओं के साथ बढ़ने की संभावना है। विभिन्न देशों के आर्थिक और सामाजिक विकास में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। अनुसंधान के अनुसार, महिलाओं के पास विश्राम का समय बहुत कम होता है, और वे अधिकतर समय चिंता और कार्यभार में व्यस्त रहती हैं। कार्यरत महिलाओं को अनेक प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। व्यक्तिगत और पेशेवर जीवन में चुनौतियाँ महिलाओं की पारंपरिक सामाजिक अपेक्षाओं और घरेलू जिम्मेदारियों से परे बढ़ गई हैं। महिलाएं अपने पुरुष समकक्षों की तुलना में अपने करियर में उल्लेखनीय प्रगति कर रही हैं। एक महिला के लिए यह संभव है कि वह एक सक्षम कर्मचारी, बच्चों की देखभाल करने वाली और घर की प्रबंधक की भूमिकाओं को प्रभावी ढंग से निभा सके। निस्संदेह, यह एक प्रेरणादायक कार्य है।

सांकेतिक शब्दः- विशेषज्ञता, कार्यकर्ता, उन्नति, सामुदायिक विकास और अनुभव।

परिचय

कामकाजी महिलाएँ उन महिलाओं को संदर्भित करती हैं जिनका कार्यक्षेत्र केवल उनके पारिवारिक जीवन तक सीमित नहीं है। बल्कि उनका कार्यक्षेत्र सामाजिक जीवन में भी फैला हुआ है, जैसे कि नौकरी करना, व्यवसाय में सक्रिय रहना आदि। आज जब भारतीय नारी के लिए "कामकाजी" शब्द का उपयोग किया जाता है, तो यह केवल स्कूलों, कॉलेजों या कार्यालयों में सहजता से कार्य करने वाली महिलाओं तक सीमित नहीं रह गया है। बल्कि, उद्योगों, कारखानों और व्यवसायों में भी उनका कार्यक्षेत्र व्यापक हो गया है।

कामकाजी महिलाओं पर किए गए विभिन्न अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि उनकी नौकरी के कारण उत्पन्न होने वाली दोहरी भूमिका उन्हें कई समस्याओं का सामना करने के लिए मजबूर करती है, जिसका प्रभाव उनके स्वास्थ्य, पारिवारिक और सामाजिक जीवन पर पड़ता है। यह संघर्ष उनके अनचाहे तनाव का मुख्य कारण बनता है। कामकाजी महिलाओं में उत्पन्न तनाव, चाहे वह कार्यस्थल से हो या पारिवारिक परिस्थितियों से, उनके कार्यों में बाधा डालता है। यह तनाव उनके समग्र व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। जब हम बाहरी मांगों, अपेक्षाओं, आंतरिक आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को पूरा करने में असमर्थ होते हैं, तो तनाव उत्पन्न होता है। तनाव के कई प्रकार होते हैं, जैसे शारीरिक तनाव, मानसिक तनाव, सामाजिक तनाव, संवेदनात्मक तनाव और आर्थिक तनाव। तनाव एक प्रतिक्रिया है जो अत्यधिक दबाव के कारण महिलाओं में उत्पन्न होती है।

कामकाजी महिलाएँ वे महिलाएँ हैं जिनका कार्यक्षेत्र केवल उनके पारिवारिक जीवन तक सीमित नहीं है। बल्कि उनका कार्यक्षेत्र सामाजिक जीवन में भी फैला हुआ है, जैसे कि नौकरी करने वाली या व्यवसाय में सक्रिय महिलाएँ। आज जब भारतीय नारी के लिए "कामकाजी" शब्द का उपयोग किया जाता है, तो यह केवल स्कूलों, कॉलेजों या कार्यालयों में कार्य करने वाली महिलाओं तक ही सीमित नहीं रह गया है। बल्कि उद्योगों, कारखानों और व्यवसायों में भी उनका कार्यक्षेत्र विस्तारित हो चुका है।

कामकाजी महिलाओं पर किए गए विभिन्न अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि उनकी नौकरी के कारण उत्पन्न होने वाली दोहरी भूमिका के चलते उन्हें कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जिसका प्रभाव उनके स्वास्थ्य, पारिवारिक और सामाजिक जीवन पर पड़ता है। यह संघर्ष उनके अनचाहे तनाव का मुख्य कारण बनता है। कामकाजी महिलाओं में उत्पन्न तनाव, चाहे वह कार्यस्थल से हो या पारिवारिक परिस्थितियों से, उनके कार्यों में बाधा डालता है। यह तनाव उनके संपूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। जब हम बाहरी मांगों, अपेक्षाओं, आंतरिक आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को पूरा करने में असमर्थ होते हैं, तो तनाव उत्पन्न होता है। तनाव के कई प्रकार होते हैं, जैसे शारीरिक तनाव, मानसिक तनाव, सामाजिक तनाव, संवेदनात्मक तनाव और आर्थिक तनाव आदि। तनाव एक प्रतिक्रिया है, जो अत्यधिक दबाव के कारण उत्पन्न होती है।

महिलाएं हमारे समाज का एक अभिन्न अंग हैं। समाज की आधारभूत इकाई नारी है। एक महिला के माध्यम से परिवार का निर्माण होता है, परिवार से घर की स्थापना होती है और घर से समाज का विकास होता है। परोपकार, अखंडता, समायोजन और सहनशीलता की विशेषताओं के साथ महिलाएं एक बहुआयामी व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करती हैं। वर्तमान समय की महिलाएं अपने पारंपरिक कर्तव्यों को निभाते हुए अपने करियर को भी शामिल करने के लिए अपने जीवन को विस्तारित कर रही हैं। कार्य दिवस समाप्त होने के बाद, महिलाएं घर लौटती हैं और अपने बच्चों, पति और घर की देखभाल करती

हैं। कार्यालय की जिम्मेदारियों के साथ-साथ घरेलू कार्यों का समन्वय करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य बन जाता है। जिस प्रकार एक समाज अपनी महिलाओं के प्रति व्यवहार करता है, वह समाज के विकास की माप का संकेत देता है। यह स्पष्ट है कि ज्यादातर महिलाएं शिक्षा, बैंकिंग और वित्तीय क्षेत्र जैसे विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय रूप से भाग ले रही हैं।

तनाव

तनाव शब्द को मनोविज्ञान के ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में शारीरिक, भावनात्मक, सामाजिक, आर्थिक, या व्यावसायिक परिस्थितियों, घटनाओं या अनुभवों से उत्पन्न होने वाले मनोवैज्ञानिक और शारीरिक दबाव के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसे प्रबंधित करना या सहन करना कठिन होता है। एक युवा महिला, जो वयस्कता में प्रवेश कर चुकी है, उसे एक महिला के रूप में जाना जाता है। यद्यपि एक आधुनिक महिला का जीवन उसके पूर्वजों से काफी भिन्न हो सकता है, फिर भी वह इश्वर की एक प्रिय रचना है। उनके पास दयालुता, ईमानदारी, लचीलापन और सहिष्णुता जैसे गुणों से युक्त एक बहुआयामी व्यक्तित्व है। हम जिन दैनिक गतिविधियों और घटनाओं का सामना करते हैं, वे हमारी मानसिक, शारीरिक और भावनात्मक स्थितियों में विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न कर सकती हैं, जिन्हें सामान्यत: तनाव कहा जाता है। तनाव एक सामान्य अनुभव है, जिसका सामना हर व्यक्ति को अपने जीवन के किसी न किसी चरण में करना पड़ता है।

हाल के वर्षों में, मनोवैज्ञानिक तनाव की घटनाओं में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई है। इसके मूल कारणों को नियमों में बदलाव के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। समकालीन समाजों का अध्ययन करते समय व्यक्तियों के व्यवहार के पैटर्न और उनके भौतिक तथा सामाजिक पर्यावरण के संदर्भों की जांच की जाती है, जिसमें ये समाज कार्य करते हैं। कार्य की विधि, प्रबंधन के लक्ष्य, कार्यस्थल का वातावरण और कार्य की समय-सारणी भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। सिंह (2023) के अनुसार, तनाव को वर्गीकृत करने के तीन तरीके हैं- तनाव के प्रकार (शारीरिक, मनोवैज्ञानिक), व्यक्ति पर प्रभाव (सकारात्मक उत्साह, नकारात्मक संकट), और समय की अवधि के अनुसार (तीव्र, जीर्ण)।

तनाव के कारण

तनावपूर्ण मनोवैज्ञानिक वातावरण, जैसे कि कुछ कार्यस्थलों पर देखे जाने वाले अपमानजनक संबंध और धमकाने वाले बाहरी कारक। आंतरिक कारकों में संक्रमण या सूजन जैसे चिकित्सा समस्याएं और चिंता जैसे मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित मुद्दे शामिल हैं।

महिलाओं की कार्यक्षमता

भारत की स्वतंत्रता के बाद से, महिलाओं ने कई महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की हैं। वे अब पारंपरिक घरेलू भूमिकाओं से आगे बढ़कर समाज के विभिन्न क्षेत्रों में पुरुषों के साथ समानता की दिशा में कदम बढ़ा रही हैं। वर्तमान समय की महिलाएँ उन अदृश्य बाधाओं को पार करने के लिए प्रेरित हैं, जो उनके करियर की प्रगति में रुकावट डालती हैं और उनकी पेशेवर आकांक्षाओं को पूरा करने में बाधा बनती हैं। हालांकि, सभी व्यक्तियों को एक सहज जीवन जीने का अनुभव नहीं होता। महिलाओं में दया, ईमानदारी, लचीलापन और सहनशीलता जैसी कई शक्तियाँ होती हैं, जो उन्हें ईश्वर की अद्‌भुत कृतियों में से एक बनाती हैं। समकालीन महिलाओं के अनुभवों में प्राचीन काल से लेकर अब तक महत्वपूर्ण परिवर्तन आए हैं। व्यक्ति अपनी नियमित जिम्मेदारियों को प्रभावी ढंग से निभाने में सक्षम होते हैं।

महिलाओं द्वारा कार्यस्थल पर अनुभव किए जाने वाले तनाव का अध्ययन किया गया। इसके परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष निकाला गया कि विवाहित महिलाएं कार्यबल में हैं और पारिवारिक संघर्ष विभिन्न कारकों के परिणामस्वरूप उत्पन्न हो सकता है, जैसे कि घर से दूर बिताए गए समय की मात्रा, कार्य शेड्यूल की लचीलापन, परिवार का आकार, और उन लोगों की संख्या जो किसी की आय पर निर्भर हैं। इन पहलुओं का विवाहित कामकाजी महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य और संतोष पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। 60 प्रतिशत से अधिक कामकाजी महिलाएं अपनी कुंठाओं को अपने परिवार, विशेषकर अपने बच्चों पर निकालती हैं। सभी कामकाजी माताओं में से आधे से कम अपने बच्चों की देखभाल के लिए घर पर रहना चाहेंगी, और लगभग एक-पांचवीं कामकाजी महिलाओं को घर से काम करने का विकल्प पसंद आएगा। यदि उन्हें विकल्प दिया जाए, तो केवल 4 कामकाजी माताएँ पूर्णकालिक काम करने का अवसर मिलने पर इसे स्वीकार करेंगी।

महिलाएं और तनाव

आजादी के बाद से भारत में महिलाओं की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। वे अब केवल एक सक्षम गृहिणी के रूप में नहीं, बल्कि अपने साथी के साथ बौद्धिक और भावनात्मक स्तर पर भी जुड़ती हैं। हाल के वर्षों में, पुरुषों द्वारा संचालित करियर में महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि हुई है। हालांकि, कई महिलाओं में तनाव से संबंधित बीमारियों के लक्षण भी देखने को मिल रहे हैं। कामकाजी महिलाओं के लिए स्थिति और भी चुनौतीपूर्ण है, क्योंकि उन्हें कार्यस्थल और घर पर एक साथ कई विरोधाभासी मांगों का सामना करना पड़ता है। विभिन्न अध्ययनों ने यह दर्शाया है कि कार्य-परिवार संघर्ष का व्यक्ति के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अनुसंधान से यह भी स्पष्ट हुआ है कि महिलाएं पुरुषों की तुलना में कार्य-परिवार समस्याओं, लैंगिक बाधाओं और अपने करियर में प्रगति के कारण अधिक तनाव का अनुभव करती हैं।

निष्कर्ष

व्यक्ति के जीवन में दो प्रमुख आयाम काम और परिवार हैं। यद्यपि यह सामान्य धारणा है कि ये क्षेत्र अलग-अलग हैं, परंतु वे आपस में जटिल रूप से जुड़े हुए हैं। श्रम शक्ति में दोनों लिंगों की समान भागीदारी सभी देशों में आर्थिक विकास के लिए एक आवश्यक शर्त है। आधुनिक युग में, उच्च शिक्षा

ने महिलाओं के लिए लाभकारी रोजगार प्राप्त करना सरल बना दिया है, लेकिन तनाव की समस्या पर चर्चा बढ़ रही है, जो न केवल उच्च दबाव वाले अधिकारियों बल्कि श्रमिकों, झुग्गी निवासियों, कामकाजी महिलाओं, व्यापारियों, पेशेवरों और यहां तक कि बच्चों को भी प्रभावित करती है। महिलाओं के लिए स्वस्थ कार्य-जीवन संतुलन प्राप्त करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है। दोहरी आय वाले परिवारों के उदय के साथ, देखभाल करने वालों, गृहस्थों और रसोइयों के रूप में महिलाओं की पारंपरिक भूमिकाओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है।

आजकल महिलाओं से अपेक्षा की जाती है कि वे घर और कार्यस्थल दोनों पर एक साथ कार्य करें। उचित तैयारी और समय प्रबंधन के माध्यम से कार्य और पारिवारिक जीवन के बीच तनाव को कम करना संभव है। कर्मचारियों को काम और परिवार की आवश्यकताओं को समान महत्व देना चाहिए। यदि कार्यकर्ता दूसरों की राय को नजरअंदाज करते हैं, तो इसका प्रभाव सभी पर पड़ेगा। कर्मचारियों को अपने कर्तव्यों और अधिकारों के प्रति जागरूक रहना आवश्यक है। सॉफ्ट स्किल्स विकास, न्यूरो-भाषाई, व्यक्तित्व विकास और करियर सफलता के लिए ड्राफ्टिंग जैसे कार्यक्रम कामकाजी महिलाओं को नए कौशल सिखाने और उन कौशलों का अभ्यास करने तथा साझा करने के अवसर प्रदान करके उनके मुकाबला तंत्र को सशक्त बना सकते हैं।

कामकाजी और घरेलू महिलाओं के तनाव का उनके स्वास्थ्य और पारिवारिक संबंधों पर प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन किया गया, जिसके परिणामस्वरूप निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए-

1.शहरी कामकाजी महिलाओं और शहरी घरेलू महिलाओं के बीच तनाव उत्पन्न करने वाले कारणों में महत्वपूर्ण भिन्नता पाई गई।

2.ग्रामीण कामकाजी महिलाओं और ग्रामीण घरेलू महिलाओं के बीच तनाव के कारणों में भी महत्वपूर्ण भिन्नता देखी गई।

3.शहरी कामकाजी और शहरी घरेलू महिलाओं के स्वास्थ्य और पारिवारिक संबंधों को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में 0.05 स्तर पर अंतर पाया गया, जबकि 0.01 स्तर पर कोई महत्वपूर्ण भिन्नता नहीं मिली।

4.ग्रामीण कामकाजी और ग्रामीण घरेलू महिलाओं के स्वास्थ्य और पारिवारिक संबंधों को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में महत्वपूर्ण भिन्नता पाई गई।

5.शहरी कामकाजी महिलाओं में समय की व्यस्तता के कारण तनाव की स्थिति अधिक देखी गई।

6.कामकाजी महिलाएं अपने परिवार और बच्चों को पर्याप्त समय नहीं दे पाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप उनके बीच भावनात्मक संबंध उतने मजबूत नहीं बन पाते, जितने कि घरेलू महिलाओं और उनके बच्चों के बीच देखे जाते हैं।

7.ग्रामीण कामकाजी महिलाएं भी समय की कमी के कारण अपने परिवार को समय नहीं दे पाती हैं, जिससे परिवार के सदस्यों के बीच मनमुटाव और झगड़ों की स्थिति बढ़ जाती है, और बच्चों में संस्कारों की कमी भी देखी जाती है।

8.शहरी और ग्रामीण घरेलू महिलाएं अपने बच्चों और परिवार की सभी जिम्मेदारियों को सही तरीके से निभाती हैं, जिससे उनके बीच आपसी लगाव और प्रेम बना रहता है। कामकाजी महिलाओं की तुलना में घरेलू महिलाओं में स्वस्थ पारिवारिक संबंध अधिक देखे गए हैं।

संदर्भ

कपूर प्रमिला- कामकाजी भारतीय नारी बदलते जीवन मूल्य और सामाजिक स्थिति, दिल्ली राजपाल सिंह एण्ड संन्स।

तिवारी स्वाति- कार्यरत अकार्यरत महिलाओं के बच्चों में समायोजन एवं शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन। रिसर्च लिंक जनरल वाल्यूम 37, 2007।

सिंह अजीत- कार्यरत अकार्यरत महिलाओं के विद्यालय जाने वाले बच्चों के मध्य समायोजन और सुरक्षा पर एक अध्ययन, इंडियन एजूकेशनल रिव्यु, अप्रैल 1986

देषपाण्डे एस. आर.- इकानॉमिक एण्ड सोशल स्टेस ऑफ वूमेन वर्कर्स इन इंडिया, नई दिल्ली 1983

देसाई नीरा- भारतीय समाज में नारी, नई दिल्ली।

बहरिया विकासखंड, जनपद प्रयागराज की जनांकिकी का भौगोलिक विश्लेषण

धर्मेन्द्र कुमार यादव

शोध अध्येता भूगोल विभाग, मडियाहूँ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मडियाहूँ, जौनपुर (उ0प्र0)

डॉ० मनोज कुमार शुक्ला

असिस्टेंट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, मडियाहूँ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मडियाहूँ, जौनपुर (उ0प्र0)

संक्षेप-

जनांकिकी (Demography) का अर्थ है जनसंख्या का वैज्ञानिक अध्ययन। इसमें जनसंख्या की संरचना, आकार, वितरण, घनत्व, वृद्धि और विभिन्न जनसांख्यिकीय घटकों जैसे जन्म, मृत्यु, विवाह और प्रवास का विश्लेषण किया जाता है। यह मानव समाज और पर्यावरण के बीच अंतर्संबंधों को समझने में सहायक है। भौगोलिक अध्ययन में जनांकिकी विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह यह जानने में मदद करता है कि जनसंख्या स्थान और पर्यावरण के साथ किस प्रकार जुड़ी हुई है।

यह शोध पत्र बहरिया विकासखंड, जनपद प्रयागराज की जनांकिकीय विशेषताओं का भौगोलिक दृष्टिकोण से विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें जनसंख्या वितरण, घनत्व, लिंगानुपात, साक्षरता दर, आयु संरचना, सामाजिक-आर्थिक स्थितियों और जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्तियों का अध्ययन किया गया है। शोध का उद्देश्य है क्षेत्र में जनांकिकीय विविधताओं को समझना, जनसंख्या संरचना का प्रभावी विश्लेषण करना और इससे संबंधित भौगोलिक कारकों को पहचानना। इस शोध में द्वितीयक डेटा का उपयोग करते हुए क्षेत्रीय असमानताओं और जनांकिकीय पैटर्न को उजागर किया गया है। डेटा का संग्रह जनगणना रिपोर्ट और क्षेत्रीय प्रशासनिक रिपोर्टों से किया गया है। परिणामस्वरूप, शोध यह दर्शाता है कि जनसंख्या वितरण और संरचना प्राकृतिक संसाधनों, भूमि उपयोग, शिक्षा और आर्थिक गतिविधियों से गहराई से प्रभावित है।

यह शोध पत्र न केवल जनांकिकी के क्षेत्र में ज्ञान को समृद्ध करेगा, बल्कि क्षेत्रीय विकास योजनाओं और नीतिगत सुझावों के लिए भी एक आधार प्रदान करेगा।

कुंजी शब्द:- जनांकिकी, जनसंख्या, पर्यावरण, प्राकृतिक संसाधना, भूमि उपयोग, शिक्षा, जनगणना, जनसंख्या वितरण, लिंगानुपात, साक्षरता, आयु संरचना

प्रस्तावना-

भारत की जनसंख्या संरचना, घनत्व, वितरण एवं वृद्धि दर में निरंतर परिवर्तन हो रहे हैं, जिससे क्षेत्रीय विकास, संसाधन उपयोग, शहरीकरण एवं प्रवासन की जटिल प्रक्रियाएँ प्रभावित होती हैं। जनसंख्या की यह गतिशीलता किसी भी क्षेत्र की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विशेष रूप से ग्रामीण एवं अर्ध-शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या परिवर्तन के कारण रोजगार संरचना, बुनियादी सेवाओं की उपलब्धता, शिक्षा, स्वास्थ्य, तथा पर्यावरणीय दबावों पर सीधा प्रभाव पड़ता है। बहरिया विकासखंड, जनपद प्रयागराज, उत्तर प्रदेश का एक महत्त्वपूर्ण अर्ध-ग्रामीण क्षेत्र है, जहाँ कृषि आधारित अर्थव्यवस्था प्रमुख है, लेकिन औद्योगिकीकरण, बुनियादी ढांचे के विस्तार एवं प्रवासन के कारण जनसंख्या संरचना में निरंतर परिवर्तन देखा जा रहा है। क्षेत्र की जनसंख्या वृद्धि, लिंगानुपात, साक्षरता दर, श्रमशक्ति भागीदारी, प्रवासन प्रवृत्तियों एवं अन्य जनसांख्यिकीय कारकों का अध्ययन करना आवश्यक है ताकि इसके आर्थिक एवं सामाजिक विकास की संभावनाओं को समझा जा सके।

जनांकिकी शहरीकरण और प्रवासन के प्रभावों का विश्लेषण भी करती है। यह दिखाती है कि कैसे ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में प्रवास होता है और इसके परिणामस्वरूप शहरों पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता है। यह विकास योजनाओं और संसाधनों के प्रबंधन में भी सहायक होती है, ताकि स्वास्थ्य, शिक्षा, और आवास जैसी आवश्यक सेवाओं को प्रभावी ढंग से प्रदान किया जा सके।

इसके अतिरिक्त, जनांकिकी आर्थिक विकास और पर्यावरणीय प्रभावों को समझने में मदद करती है। यह यह आकलन करती है कि जनसंख्या वृद्धि दर और श्रम शक्ति का क्षेत्रीय और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है। साथ ही, यह यह दिखाती है कि बढ़ती जनसंख्या के कारण पर्यावरणीय समस्याएँ जैसे वनों की कटाई, भूमि-अपक्षय और जलवायु परिवर्तन कैसे उत्पन्न होते हैं।

जनसंख्या वितरण और घनत्व का विश्लेषण जनांकिकी का एक प्रमुख पहलू है, जो यह समझने में मदद करता है कि किन कारणों से कुछ क्षेत्रों में जनसंख्या अधिक है और अन्य क्षेत्रों में कम। प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता, जलवायु, और आर्थिक अवसर जैसे कारक इसमें मुख्य भूमिका निभाते हैं। इसके साथ ही, जनसांख्यिकीय संरचना जैसे उम्र, लिंग, जाति, और धर्म का अध्ययन यह समझने में सहायता करता है कि किसी क्षेत्र में मानव संसाधन कैसे विभाजित हैं और इसका समाज और अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है।

भौगोलिक जनांकिकी सरकारों और संगठनों को नीतियों और योजनाओं को तैयार करने में उपयोगी जानकारी प्रदान करती है। यह सुनिश्चित करती है कि क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर संसाधनों का प्रभावी उपयोग हो और विकास की योजनाएँ जनसंख्या की आवश्यकताओं के अनुरूप हों। इस प्रकार, जनांकिकी न केवल जनसंख्या की विशेषताओं का विश्लेषण करती है, बल्कि मानव और पर्यावरण के बीच जटिल संबंधों को समझने का भी एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है।

इस शोध का उद्देश्य बहरिया विकासखंड की जनांकिकी का भौगोलिक विश्लेषण करना है, ताकि क्षेत्र की सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता एवं भौगोलिक प्रभावों को स्पष्ट किया जा सके। शोध के अंतर्गत मुख्यत: जनसंख्या वितरण एवं घनत्व के भू-स्थानिक स्वरूप, जन्म एवं मृत्यु दर, लिंगानुपात, तथा प्रवासन की वर्तमान प्रवृत्तियों, शिक्षा, स्वास्थ्य, एवं रोजगार संरचना का अध्ययन किया जाएगा। इसके अलावा, क्षेत्र की जनसंख्या वृद्धि में जलवायु, स्थलाकृति एवं परिवहन नेटवर्क की भूमिका तथा सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) के संदर्भ में जनसंख्या नीतियों एवं योजनाओं का विश्लेषण भी किया जाएगा।

हाल के वर्षों में कई राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय अध्ययनों ने ग्रामीण एवं अर्ध-शहरी क्षेत्रों की जनसांख्यिकीय संरचना के महत्त्व को उजागर किया है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) की मानव विकास रिपोर्ट (2018) ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि और सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) की पूर्ति में उनके योगदान की चर्चा करती है। नीति आयोग की भारत में जनसंख्या नीति 2019 रिपोर्ट, जिसमें जनसंख्या स्थिरीकरण और विकास के नए आयामों पर चर्चा की गई है। भारतीय जनगणना 2011 जिसमें लिंगानुपात, साक्षरता दर एवं जनसंख्या घनत्व के नवीनतम आँकड़े उपलब्ध होंगे। राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (NSO) की श्रमशक्ति भागीदारी रिपोर्ट (2019), जो ग्रामीण क्षेत्रों में श्रमशक्ति के लिंगानुपात, बेरोजगारी दर एवं प्रवासन कारकों का विश्लेषण करती है। IPCC की जलवायु परिवर्तन रिपोर्ट (2019) जिसमें ग्रामीण जनसंख्या वितरण एवं पर्यावरणीय प्रभावों के बीच संबंधों पर प्रकाश डाला गया है।

शोध के अंतर्गत द्वितीयक आँकड़ों का उपयोग किया जाएगा। द्वितीयक डेटा हेतु जनगणना रिपोर्ट (2011), जिला सांख्यिकी पुस्तिका, एवं अन्य शैक्षणिक स्रोतों को आधार बनाया जाएगा। भौगोलिक सूचना प्रणाली (GIS) की सहायता से क्षेत्र की जनसंख्या वितरण, घनत्व, प्रवासन प्रवृत्तियों एवं अन्य जनसांख्यिकीय विशेषताओं का स्थानिक विश्लेषण किया जाएगा। इसके अतिरिक्त, तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से क्षेत्र की जनांकिकी को राज्य एवं राष्ट्रीय औसत से तुलना कर निष्कर्ष निकाले जाएंगे।

इस शोध से प्राप्त निष्कर्ष क्षेत्रीय योजना, नीति निर्माण, एवं सामाजिक विकास रणनीतियों को दिशा प्रदान करेंगे। अध्ययन से बहरिया विकासखंड में जनसंख्या संरचना की प्रमुख विशेषताओं को समझने में सहायता मिलेगी और इस क्षेत्र की रोजगार नीति, शिक्षा सुधार, बुनियादी सेवाओं की उपलब्धता, एवं पर्यावरणीय प्रबंधन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया जा सकेगा। अत: यह शोध पत्र बहरिया विकासखंड की जनसांख्यिकीय विशेषताओं एवं स्थानिक विश्लेषण पर एक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करेगा, जो स्थानीय प्रशासन, शोधकर्ताओं एवं नीति निर्माताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

शोध क्षेत्र का भौगोलिक परिचय:-

बहरिया विकासखंड, उत्तर प्रदेश के प्रयागराज जनपद का एक महत्त्वपूर्ण अर्ध-ग्रामीण क्षेत्र है, जिसकी भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक संसाधन, जनसंख्या संरचना, एवं सामाजिक-आर्थिक विशेषताएँ इसे विशेष अध्ययन हेतु उपयुक्त बनाती हैं। यह क्षेत्र कृषि प्रधान है, लेकिन शहरीकरण एवं प्रवासन के प्रभावों के कारण इसकी जनसांख्यिकीय एवं भौगोलिक विशेषताओं में निरंतर परिवर्तन हो रहा है।

1. स्थान एवं भौगोलिक स्थिति-

बहरिया विकासखंड प्रयागराज जनपद के उत्तरी भाग में स्थित है। यह 25°32' से 25°45' उत्तरी अक्षांश तथा 81°50' से 82°10' पूर्वी देशांतर के बीच स्थित है। इस क्षेत्र की सीमाएँ निम्नलिखित क्षेत्रों से मिलती हैं-

उत्तर में: प्रतापगढ़ जनपद के सीमावर्ती क्षेत्र

दक्षिण में: विकासखंड बहादुरपुर

पूर्व में: प्रतापगढ़ एवं जौनपुर जनपद (फूलपुर विकासखंड)

पश्चिम में: सोरांव विकासखंड एवं मऊआइमा विकासखंड

बहरिया का भौगोलिक विस्तार इसे सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बनाता है, क्योंकि यह ग्रामीण एवं शहरी प्रभावों के मध्य स्थित है।

2. स्थलाकृति एवं भूगर्भीय संरचना

बहरिया विकासखंड मध्य गंगा के समतल मैदान में स्थित है, जो गंगा और उसकी सहायक नदियों द्वारा निर्मित जलोढ़ मैदान का हिस्सा है। यहाँ की स्थलाकृति मुख्यत: निम्नलिखित विशेषताओं से प्रभावित होती है-

मैदानी भूभाग: क्षेत्र की भूमि उर्वर एवं समतल है, जो कृषि के लिए अनुकूल है।

नदी तट एवं बाढ़ संभावित क्षेत्र: क्षेत्र में कई छोटी नदियाँ बहती हैं, जिनमें से कुछ वर्षा ऋतु में बाढ़ प्रभावित होती हैं। इनमें मनसाइता नदी प्रमुख है।

मिट्टी का प्रकार: यहाँ मुख्य रूप से गंगा द्वारा लाई गई जलोढ़ मिट्टी पाई जाती है, जो कृषि के लिए अत्यंत उपयुक्त मानी जाती है (सिंह, 2019)।

3. जलवायु एवं वर्षा

बहरिया विकासखंड में उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु पाई जाती है, जो चार मुख्य ऋतुओं में विभाजित की जा सकती है-

गर्मी (मार्च-जून)- इस दौरान तापमान 25°C से 45°C तक पहुँच सकता है।

वर्षा ऋतु (जुलाई-सितंबर)- दक्षिण-पश्चिमी मानसून के प्रभाव से वर्षा होती है, जिसकी औसत वार्षिक मात्रा लगभग 900-1100 मिमी होती है।

शरद ऋतु (अक्टूबर-नवंबर)- यह एक संक्रमणकालीन मौसम है, जब तापमान एवं आर्द्रता कम होने लगती है।

सर्दी (दिसंबर-फरवरी)- इस दौरान न्यूनतम तापमान 5°C से 10°C तक गिर सकता है

(IMD, 2019)।

4. जल संसाधन

बहरिया विकासखंड में जल संसाधनों की स्थिति कृषि एवं पेयजल आपूर्ति के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है-

क्षेत्र में एक छोटी नदी, तालाब एवं झीलें स्थित हैं।

जलस्तर मानसून के दौरान बढ़ता है, लेकिन गर्मी के महीनों में भूजल स्तर गिरने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

भूजल का अत्यधिक दोहन सिंचाई के लिए किया जाता है, जिससे कुछ क्षेत्रों में जल संकट उत्पन्न होने लगा है (CGWB, 2018)।

5. कृषि एवं भूमि उपयोग

बहरिया विकासखंड की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर आधारित है। यहाँ उगाई जाने वाली प्रमुख फसलें हैं-

खरीफ फसलें: धान, मक्का, बाजरा

रबी फसलें: गेहूँ, चना, सरसों

अन्य फसलें: गन्ना, दलहन, तिलहन

भूमि उपयोग संरचना निम्नलिखित प्रकार की है-

70 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र कृषि भूमि के अंतर्गत आता है।

10 प्रतिशत भूमि वनस्पति एवं चारागाह क्षेत्र में प्रयुक्त होती है।

15% भूमि बस्तियों, सड़कों एवं औद्योगिक गतिविधियों के लिए प्रयुक्त होती है।

5% भूमि जल निकायों एवं अन्य गैर-कृषि उपयोगों के अंतर्गत आती है (Anonymous, 2019)।

6. जनसंख्या संरचना

बहरिया विकासखंड की जनसंख्या वृद्धि दर, लिंगानुपात, साक्षरता एवं रोजगार संरचना निम्नलिखित विशेषताओं को दर्शाती है-

जनसंख्या (2021 अनुमान): लगभग 3.5 लाख

जनसंख्या घनत्व: 750-850 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर

लिंगानुपात: लगभग 920 महिलाएँ प्रति 1000 पुरुष

साक्षरता दर: 72 प्रतिशत (पुरुष 80 प्रतिशत, महिला 63 प्रतिशत)

आजीविका के प्रमुख स्रोत: कृषि, छोटे उद्योग, व्यापार एवं सेवा क्षेत्र

(District Statistical Handbook, Prayagraj, 2019)

7. परिवहन एवं बुनियादी ढांचा

सड़क मार्ग: राज्य राजमार्ग एवं जिला सड़कें क्षेत्र को प्रयागराज शहर एवं अन्य जिलों से जोड़ती हैं।

रेल मार्ग: नजदीकी रेलवे स्टेशन प्रयागराज जंक्शन है, जो क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर संपर्क प्रदान करता है।

बिजली एवं जल आपूर्ति: क्षेत्र में घरेलू एवं कृषि आवश्यकताओं हेतु बिजली एवं जल आपूर्ति की व्यवस्था संतोषजनक है (UPPWD, 2019)।

8. सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषताएँ

क्षेत्र की संस्कृति प्रयागराज जनपद की समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं से प्रभावित है। धार्मिक एवं सामाजिक आयोजनों में कुंभ मेला, माघ मेला, तथा स्थानीय त्योहार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यहाँ हिंदी एवं अवधी भाषा प्रमुख रूप से बोली जाती है (श्रीवास्तव, 2019)।

बहरिया विकासखंड का भौगोलिक परिप्रेक्ष्य इसे सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय दृष्टि से अध्ययन के लिए उपयुक्त बनाता है। क्षेत्र में जनसंख्या संरचना, आर्थिक विकास, प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता एवं पर्यावरणीय चुनौतियाँ इसे एक अनुसंधान हेतु प्रासंगिक क्षेत्र बनाती हैं। इस अध्ययन के माध्यम

से इस क्षेत्र की जनांकिकी एवं विकास प्रक्रिया को भौगोलिक दृष्टि से समझने का प्रयास किया जाएगा, जिससे क्षेत्रीय योजना, नीति निर्माण, एवं सतत विकास हेतु दिशा-निर्देश तैयार किए जा सकें।

उद्देश्यः-

बहरिया विकासखंड, जनपद प्रयागराज की जनांकिकी का भौगोलिक विश्लेषण करने हेतु इस शोध के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं-

1. बहरिया विकासखंड में जनसंख्या के स्थानिक वितरण, घनत्व एवं इसके भूगोलिक निर्धारकों (जैसे स्थलाकृति, जलवायु, प्राकृतिक संसाधन, एवं परिवहन नेटवर्क) का अध्ययन करना।
2. विभिन्न आयु वर्गों में लिंगानुपात की प्रवृत्तियों की पहचान करना तथा क्षेत्रीय विकास पर इसके प्रभावों का अध्ययन करना।
3. बहरिया विकासखंड में शिक्षा के स्तर, लिंगानुपात के अनुसार साक्षरता दर, विद्यालय नामांकन एवं शिक्षा संबंधी सुविधाओं की स्थिति का अध्ययन करना।
4. 8. जनसंख्या वृद्धि के कारण प्राकृतिक संसाधनों (जल, भूमि, वनों) पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन एवं सतत संसाधन प्रबंधन के संभावित समाधानों की पहचान करना।
5. 10. बहरिया विकासखंड में जनांकिकी एवं सतत विकास लक्ष्यों (SDG-3% स्वास्थ्य, SDG-4% शिक्षा, SDG-8% रोजगार, SDG-11% सतत नगरीकरण) के बीच संबंधों का विश्लेषण करना तथा नीति निर्माण हेतु सुझाव प्रदान करना।

इस शोध के माध्यम से बहरिया विकासखंड की जनसांख्यिकीय संरचना, उसके भूगोलिक एवं सामाजिक निर्धारकों तथा क्षेत्रीय विकास में इसकी भूमिका को व्यापक रूप से समझने का प्रयास किया जाएगा। इसके निष्कर्ष स्थानीय प्रशासन, नीति निर्माताओं एवं अनुसंधानकर्ताओं को इस क्षेत्र के सतत विकास हेतु रणनीतियाँ तैयार करने में सहायक होंगे।

बहरिया विकासखण्ड की जनांकिकीः-

बहरिया विकासखंड, उत्तर प्रदेश के प्रयागराज जनपद का एक महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक खंड है, जो अपनी विविध जनांकिकी विशेषताओं के कारण अध्ययन का एक प्रमुख क्षेत्र है। 2011 की जनगणना के अनुसार, यह क्षेत्र "12 न्याय पंचायतों, 87 ग्राम पंचायतों और 165 राजस्व ग्रामों'' में विभाजित है। इनमें से "156 ग्राम आबाद हैं, जबकि 9 ग्राम गैर-आबाद हैं'', जो क्षेत्र की जनसंख्या घनत्व और बसावट के स्वरूप को दर्शाता है।

जनसंख्या वृद्धि के संदर्भ में, "बहरिया विकासखंड का जनसंख्या घनत्व 2001 में 914 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर था, जो 2011 में बढ़कर 927.39 हो गया''। यह दर्शाता है कि इस क्षेत्र में जनसंख्या घनत्व राष्ट्रीय औसत (382 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी) की तुलना में काफी अधिक है। बढ़ती जनसंख्या घनत्व संसाधनों पर दबाव और शहरीकरण की प्रवृत्ति को दर्शाता है।

जनसंख्या संरचना और प्रवृत्तियों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि "बहरिया विकासखंड में जनसंख्या दबाव लगातार बढ़ रहा है, जो कृषि, जल संसाधनों और बुनियादी सुविधाओं पर प्रभाव डाल रहा है''। इस क्षेत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के अवसरों को बढ़ाकर सतत विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है। सरकार द्वारा "महिला सशक्तिकरण, शिक्षा योजनाएँ और ग्रामीण विकास कार्यक्रमों'' को प्रभावी ढंग से लागू करने से बहरिया विकासखंड की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को और मजबूत किया जा सकता है।

तालिका 1: बहरिया विकासखण्ड का प्रशासनिक परिचय, 2011

tkufdh o"k	fodkl [k.M	dy U;k; iapk;r	dy xke iapk;r	dy jktLo xke	dy vkckn xke	dy xj vkckn xke
2011	बहरिया	12	87	165	156	9

श्रोतः जिला सांख्यिकी पत्रिका प्रयागराज, 2011, 2001

तालिका 1 से स्पष्ट है, कि बहरिया विकासखंड, जनपद प्रयागराज का एक महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक क्षेत्र है, जिसकी संरचना 2011 की जनगणना के अनुसार विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित है। इस विकासखंड में कुल "12 न्याय पंचायतें'' स्थापित हैं, जो स्थानीय प्रशासन को सुचारू रूप से संचालित करने में सहायक होती हैं। इसके अंतर्गत "87 ग्राम पंचायतें'' आती हैं, जो ग्रामीण स्तर पर शासन और विकास योजनाओं के कार्यान्वयन की मुख्य इकाइयाँ हैं।

इसके अतिरिक्त, बहरिया विकासखंड में कुल "165 राजस्व ग्राम'' हैं, जिनमें से "156 ग्राम आबाद'' हैं, अर्थात् इनमें लोग निवास करते हैं और कृषि, व्यापार एवं अन्य गतिविधियाँ संचालित होती हैं। वहीं, "9 ग्राम गैर-आबाद'' हैं, जिनका उपयोग कृषि भूमि, वन क्षेत्र, या अन्य कारणों से मानवीय बस्तियों के रूप में नहीं किया जाता है। इस प्रशासनिक संरचना से यह स्पष्ट होता है कि बहरिया विकासखंड में ग्रामीण विकास, भूमि उपयोग और जनसंख्या वितरण की स्थिति संतुलित रूप से स्थापित है। यह संरचना क्षेत्रीय विकास योजनाओं, जनसंख्या अध्ययन, एवं ग्रामीण प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अध्ययन हेतु महत्त्वपूर्ण संदर्भ प्रदान करती है।

तालिका 2: बहरिया विकासखण्ड, प्रयागराज जनपद तथा भारत में साक्षरता, 2011

tux.kuk o"k	Lrj	i:"k lk{kjrk nj ¼ifr'kr e½	efgyk lk{kjrk nj ¼ifr'kr e½	dy lk{kjrk nj ¼ifr'kr e½
2011	cgfj;k	82.31	55.68	69.31
2011	iz;kxjkt	82.55	60.97	72.32
2011	Hkkjr	82-14	65-46	74-04

श्रोत: भारत की जनगणना, 2001, 2011, जिला सांख्यिकी पत्रिका प्रयागराज, 2011, 2001

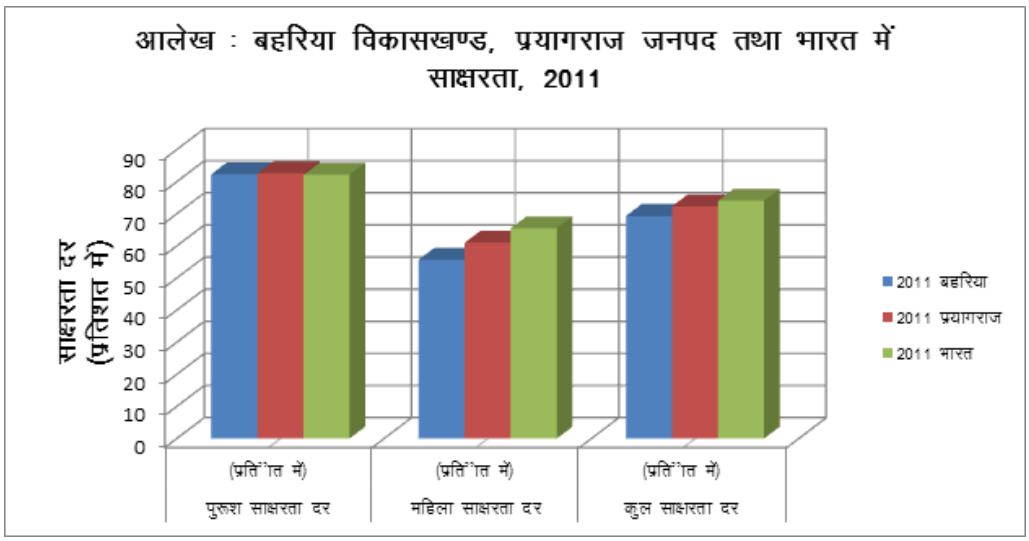

तालिका 2 तथा आरेख से स्पष्ट है, कि वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, बहरिया विकासखंड, प्रयागराज जनपद और संपूर्ण भारत की साक्षरता दर में उल्लेखनीय अंतर देखा गया। बहरिया विकासखंड में कुल साक्षरता दर "69.31 प्रतिशत'' दर्ज की गई, जो प्रयागराज जनपद की कुल साक्षरता दर "72. 32 प्रतिशत'' और भारत की "74.04 प्रतिशत'' साक्षरता दर से कम है। यह इंगित करता है कि बहरिया विकासखंड में शैक्षिक विकास अभी भी अपेक्षाकृत धीमी गति से हो रहा है।

यदि लिंग आधारित साक्षरता की तुलना की जाए, तो पुरुषों की साक्षरता दर "82.31 प्रतिशत'' है, जो प्रयागराज जनपद (82.55 प्रतिशत) और भारत (82. 14 प्रतिशत) के लगभग समान स्तर पर है। हालांकि, महिला साक्षरता दर में गंभीर असमानता दिखाई देती है। बहरिया में महिला साक्षरता दर "55.68 प्रतिशत'' है, जो प्रयागराज (60.97 प्रतिशत) और भारत (65.46 प्रतिशत) की तुलना में काफी कम है। यह लैंगिक असमानता को दर्शाता है, जिससे स्पष्ट होता है कि महिलाओं की शिक्षा के लिए विशेष प्रयासों की आवश्यकता है।

बहरिया विकासखंड में महिलाओं की शिक्षा में पिछड़ापन सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारकों से जुड़ा हो सकता है, जैसे कि पारंपरिक मान्यताएँ, संसाधनों की कमी, और बालिका शिक्षा के प्रति जागरूकता की न्यूनता। इस असमानता को कम करने के लिए "सरकार द्वारा विशेष साक्षरता अभियान, वयस्क शिक्षा कार्यक्रम, नि:शुल्क शिक्षा योजनाएँ एवं लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा देने वाली नीतियाँ लागू करने की आवश्यकता है''।

यह विश्लेषण दर्शाता है कि बहरिया विकासखंड में शैक्षिक विकास को गति देने के लिए विशेष रूप से महिला शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है, जिससे संपूर्ण क्षेत्र की सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति को सुनिश्चित किया जा सके।

तालिका 3: बहरिया विकासखण्ड, प्रयागराज जनपद तथा भारत में लिंगानुपात, 2001 तथा 2011

tux.kuk o"k	Lrj	fyxkuqikr	foopu
2001	बहरिया	918	39 अधिक
2001	प्रयागराज	879	
2001	Hkkjr	933	
2011	बहरिया	946	35 अधिक
2011	प्रयागराज	901	
2011	Hkkjr	940	

श्रोत: भारत की जनगणना, 2001, 2011, जिला सांख्यिकी पत्रिका प्रयागराज, 2011, 2001

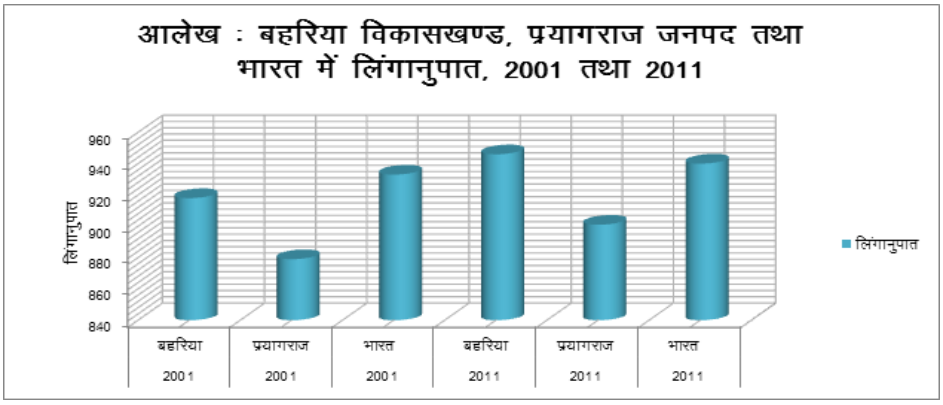

लिंगानुपात किसी भी क्षेत्र की सामाजिक संरचना और लैंगिक समानता का महत्त्वपूर्ण संकेतक होता है। तालिका 3 तथा आरेख से स्पष्ट है, कि वर्ष 2001 और 2011 की जनगणना के अनुसार, बहरिया विकासखंड, प्रयागराज जनपद और संपूर्ण भारत में लिंगानुपात में उल्लेखनीय परिवर्तन देखे गए।

"2001 की जनगणना'' के अनुसार, बहरिया विकासखंड में प्रति 1000 पुरुषों पर "918 महिलाएँ'' थीं, जो प्रयागराज जनपद के लिंगानुपात "879'' से "39 अधिक'' था। हालाँकि, राष्ट्रीय स्तर पर यह आंकड़ा "933'' था, जो बहरिया से अधिक था। यह दर्शाता है कि बहरिया में लिंगानुपात क्षेत्रीय स्तर पर अपेक्षाकृत बेहतर था, लेकिन राष्ट्रीय औसत से कम था।

"2011 की जनगणना'' में बहरिया विकासखंड के लिंगानुपात में सुधार हुआ और यह "946'' तक पहुँच गया। यह प्रयागराज जनपद के "901'' लिंगानुपात से "35 अधिक'' था और भारत के "940'' के लिंगानुपात से भी थोड़ा अधिक था। इस सकारात्मक वृद्धि के पीछे "सरकारी योजनाओं, महिला सशक्तिकरण कार्यक्रमों, स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार, तथा जन्म के पूर्व लिंग परीक्षण पर प्रतिबंध'' जैसे कारक हो सकते हैं।

हालाँकि, यह भी स्पष्ट है कि लिंगानुपात में अभी और सुधार की आवश्यकता है। महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और सामाजिक सुरक्षा को और मजबूत किया जाना चाहिए ताकि "लैंगिक भेदभाव को कम किया जा सके और लिंगानुपात को संतुलित स्तर तक पहुँचाया जा सके।'' इसके लिए "बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना, कन्या सुमंगला योजना, और महिला सशक्तिकरण से जुड़ी अन्य नीतियों'' को प्रभावी रूप से लागू करने की आवश्यकता है।

तालिका 4: बहरिया विकासखण्ड, प्रयागराज जनपद तथा भारत में जनसंख्या घनत्व, 2001 तथा 2011

tux.kuk o"k	Lrj	tul[;k ?kuRo ¼0;fDr izfr oxZ fd0eh0 e½	fooj.k
2001	बहरिया	914	14 अधिक
2001	प्रयागराज	900	
2001	Hkkjr	324	
2011	बहरिया	927.39	11 अधिक
2011	प्रयागराज	1086	
2011	Hkkjr	382	

श्रोत: भारत की जनगणना, 2001, 2011, जिला सांख्यिकी पत्रिका प्रयागराज, 2011, 2001

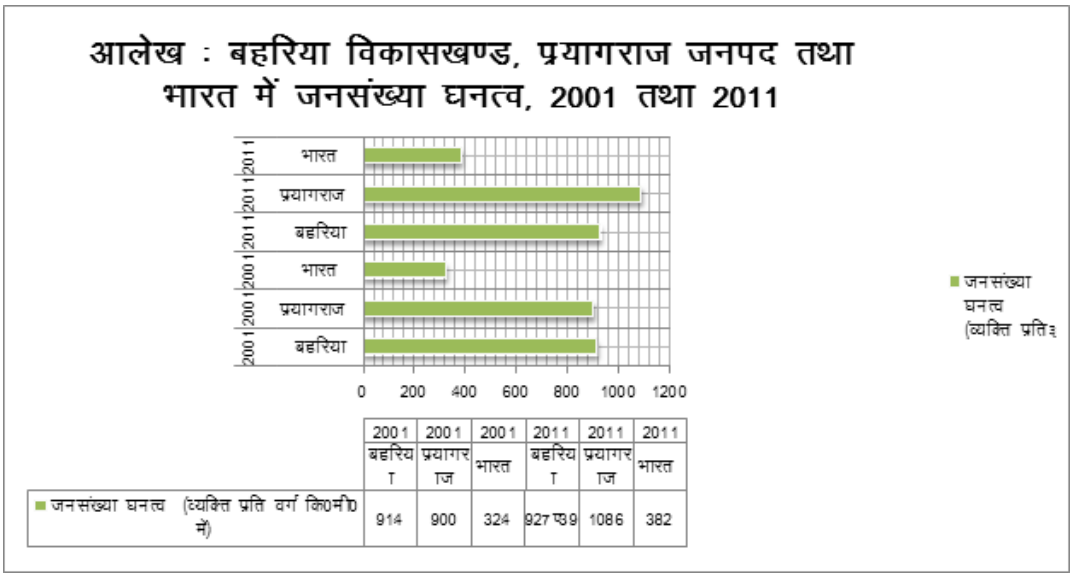

जनसंख्या घनत्व किसी क्षेत्र की जनसंख्या दबाव और संसाधनों के उपयोग की तीव्रता को दर्शाने वाला महत्त्वपूर्ण संकेतक है। तालिका 4 तथा आरेख से स्पष्ट है, कि 2001 और 2011 की जनगणना के अनुसार, बहरिया विकासखंड, प्रयागराज जनपद और संपूर्ण भारत में जनसंख्या घनत्व में बढ़ोतरी दर्ज की गई।

"2001 की जनगणना'' के अनुसार, बहरिया विकासखंड का जनसंख्या घनत्व "914 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर'' था, जो प्रयागराज जनपद के "900 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर'' से "14 अधिक'' था। राष्ट्रीय स्तर पर यह आंकड़ा मात्र "324 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर'' था, जो यह दर्शाता है कि बहरिया और प्रयागराज, दोनों क्षेत्रों में राष्ट्रीय औसत की तुलना में अधिक जनसंख्या घनत्व था।

"2011 की जनगणना'' में बहरिया विकासखंड का जनसंख्या घनत्व "927.39 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर'' हो गया, जिसमें हल्की वृद्धि देखी गई। हालांकि, प्रयागराज जनपद में यह "1086 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर'' तक पहुँच गया, जो दर्शाता है कि जिले में जनसंख्या वृद्धि बहरिया की तुलना में अधिक तेजी से हुई। वहीं, भारत का औसत जनसंख्या घनत्व "382 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर'' था, जो बहरिया और प्रयागराज दोनों से काफी कम था।

इस आँकड़े से स्पष्ट होता है कि "बहरिया विकासखंड में जनसंख्या घनत्व धीरे-धीरे बढ़ रहा है, जबकि प्रयागराज जनपद में यह वृद्धि अपेक्षाकृत अधिक तेज है''। यह प्रवृत्ति "शहरीकरण, सीमित भूमि संसाधनों पर बढ़ते दबाव, बुनियादी सुविधाओं की बढ़ती मांग और रोजगार के लिए जनसंख्या के केंद्रीकरण'' को दर्शाती है।

इस बढ़ते जनसंख्या घनत्व को संतुलित करने के लिए "सुनियोजित शहरीकरण, रोजगार के अवसरों का विकेंद्रीकरण, बेहतर बुनियादी ढाँचे का विकास और ग्रामीण क्षेत्रों में सुविधाओं का विस्तार'' आवश्यक है। इससे प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ते दबाव को कम किया जा सकता है और सतत विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है।

निष्कर्षः-

बहरिया विकासखंड, प्रयागराज जनपद की जनांकिकी के भौगोलिक विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि यह क्षेत्र जनसंख्या वृद्धि, लिंगानुपात, साक्षरता दर और जनसंख्या घनत्व जैसे विभिन्न सामाजिक और आर्थिक मापदंडों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का साक्षी रहा है। "जनसंख्या घनत्व'' में निरंतर वृद्धि देखी गई, जो संसाधनों पर बढ़ते दबाव और शहरीकरण की ओर बढ़ते रुझान को दर्शाता है। "लिंगानुपात'' में सुधार हुआ है, लेकिन यह अभी भी संपूर्ण लैंगिक समानता प्राप्त करने से दूर है। "साक्षरता दर'' में वृद्धि दर्ज की गई, विशेष रूप से महिलाओं की साक्षरता दर में, हालाँकि यह अभी भी राष्ट्रीय औसत से कम बनी हुई है।

जनसंख्या संबंधी आँकड़ों का विश्लेषण यह इंगित करता है कि बहरिया विकासखंड में सामाजिक-आर्थिक असमानताएँ अब भी मौजूद हैं। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच सुविधाओं और संसाधनों का असमान वितरण जनसंख्या घनत्व में वृद्धि और अधोसंरचना पर दबाव को बढ़ा रहा है। इन चुनौतियों से निपटने के लिए "स्थानीय प्रशासन द्वारा नियोजित विकास रणनीतियों, सतत शहरीकरण, शिक्षा के प्रसार और महिला सशक्तिकरण'' पर ध्यान देना आवश्यक होगा।

इस अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों से यह स्पष्ट होता है कि यदि "शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, रोजगार के अवसरों और बुनियादी सुविधाओं'' का समुचित विकास किया जाए, तो जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न चुनौतियों को नियंत्रित किया जा सकता है। बहरिया विकासखंड में सतत और संतुलित विकास सुनिश्चित करने के लिए "नीतिगत सुधार, संसाधनों का न्यायसंगत वितरण और प्रशासनिक योजनाओं के प्रभावी कार्यान्वयन'' की आवश्यकता है।

संदर्भः-

- Census of India. (2011). District Statistical Handbook, Prayagraj. Ministry of Home Affairs, Government of India.
- Central Ground Water Board (CGWB). (2018). Groundwater Assessment Report, Uttar Pradesh. Ministry of Jal Shakti, Government of India.
- India Meteorological Department (IMD). (2019). Annual Climate Report, Uttar Pradesh. Ministry of Earth Sciences, Government of India.
- Intergovernmental Panel on Climate Change (IPCC). (2019). Climate Change and Human Settlements. IPCC Sixth Assessment Report.
- Anonymous (2019) Ministry of Agriculture and Farmers Welfare. (2019). Agricultural Statistics at a Glance. Government of India.
- National Statistical Office (NSO). (2019). Periodic Labour Force Survey 2023. Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India.
- NITI Aayog. (2019). Population Policy in India: Challenges and Strategies. Government of India.
- Office of the Registrar General & Census Commissioner, India. (2011). Census of India 2011: Population and Housing Data. Government of India.
- Singh, R. B. (2019). Landforms and Soil Characteristics of the Ganga Plains. Springer, pp. 145-168.
- Srivastava, R. (2019). Cultural Heritage and Social Practices of Prayagraj. Oxford University Press.
- United Nations Development Programme. (2018). Human Development Report 2022: Uncertain Times, Unsettled Lives. UNDP.
- Uttar Pradesh Public Works Department (UPPWD). (2019). Infrastructure and Transport Report, Prayagraj Division. Government of Uttar Pradesh.

"कर्मभूमि" उपन्यास में अभिव्यक्त प्रेमचंद की राजनीतिक चेतना

डॉ० अनीता मिंज

सहायक आचार्य, दौलत राम महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शोध सारांश:- 'कर्मभूमि' उपन्यास प्रेमचंद जी की न केवल एक साहित्यिक कृति है अपितु उस समय की भारतीय राजनीति एवं समाज का प्रतिबिंब भी है। इस उपन्यास में स्वतंत्रता संग्राम, गांधीवादी विचारधारा, किसान आंदोलन ,सामाजिक सुधार, धर्म एवं राजनीतिक द्वंद आदि सभी पहलुओं का समावेश है। कर्मभूमि उपन्यास भारतीय राजनीति एवं समाज को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। प्रेमचंद का यह उपन्यास साहित्यकार की संवेदना एवं समाज के प्रतिबिंब को बखूबी दर्शाता है। जिसमें राजनैतिक पहलू को प्रखर रूप में उकेरा गया है।

बीज शब्द:- सामाजिक सुधार, किसान एवं मजदूरों का आंदोलन, युवाओं की भूमिका, गांधीवादी विचारधारा, चरखा आंदोलन, स्वदेशी आंदोलन स्त्री शिक्षा, जेल यात्रा, सत्याग्रह, अहिंसा।

प्रस्तावना:- हिंदी उपन्यास जगत में प्रेमचंद 'उपन्यास सम्राट' के नाम से जाने जाते हैं, क्योंकि हिंदी उपन्यास साहित्य के विकास में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने अपने उपन्यास में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी विषयों को जगह दी। उन्होंने कुल बारह उपन्यास लिखे। कर्मभूमि उपन्यास 1932 में लिखी गई थी। जब भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन चरम पर था। अत: कर्मभूमि में लेखक ने तत्कालीन समाज में होने वाली सभी राजनीतिक गतिविधियों, आंदोलनों आदि का प्रमुखता एवं गहराई से वर्णन किया है। अत: इस उपन्यास में उस समय की राजनीतिक स्थिति का जीवंत दस्तावेज देखने को मिलता है। कर्मभूमि की रचना 30 के दशक में हुई, जब भारत में गांधी जी एवं अन्य नेताओं के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन, नमक के लिए सत्याग्रह जैसे आंदोलन चल रहे थे, साथ ही किसानों, मजदूरों, दलितों महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए अनेक समाज सुधारक भी अपने-अपने स्तर पर प्रयत्न कर रहे थे। ऐसे समय में प्रेमचंद जैसे जागरुक लेखक ने अपनी लेखनी द्वारा समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक दशा को सुधारने का बीड़ा उठाया। प्रेमचंद के कर्मभूमि उपन्यास में राजनीतिक चेतना के विविध रूप मिलते हैं, जिनमें प्रमुख हैं-

सामाजिक सुधार और राजनीतिक चेतना

सामाजिक सुधार की चेतना राजनैतिक जागरूकता का ही एक आयाम है। समाज में जब तक आंतरिक सुधार नहीं हो जाता तब तक राजनीतिक स्तर पर एक जुटता नहीं हो सकती। अत: 'कर्मभूमि' उपन्यास में प्रेमचंद ने दलितों, महिलाओं और मजदूरों की समस्याओं को दूर करने का काम किया है। गांधी जी ने भी 1930 में स्वाधीनता आंदोलन के समय अछूतोंध्दार का काम करना शुरू किया। प्रेमचंद चाहते थे कि समाज में समानता रहे। उस समय दलितों को मंदिर में प्रवेश करने की मनाही थी। प्रेमचंद ने गांधीजी की तरह ही आपसी भेदभाव को मिटाने के लिए दलितों के मंदिर प्रवेश का संघर्ष दिखाया है। कर्मभूमि उपन्यास की सुखदा नगर में आपसी भाईचारे एवं समाज में बराबरी के लिए 'मंदिर प्रवेश' का आंदोलन करती है। वह डटकर पुलिस के सामने खड़ी होकर सभी को ललकारते हुए कहती है- "भाइयों क्यों भाग रहे हो? यह भागने का समय नहीं है।छाती खोलकर खड़े होने का समय है। दिखा दो तुम धर्म के नाम पर किस तरह प्राणों को होम कर सकते हो।"[1] सुखदा का साहस देखकर पुलिस भी बन्दुकें वापस रख लेती है। सुखदा अपने संघर्ष एवं आंदोलन के कारण सत्याग्रहियों की तरह बार-बार जेल भी जाती है। यहां सुखदा का चरित्रांकन कमला नेहरू की तरह स्वतंत्रता आंदोलन में स्त्रियों के नेतृत्व की याद दिलाता है। जब अंग्रेज सिपाहियों द्वारा मुन्नी बलात्कार की शिकार होती है, उसके उपरांत वह अपनी अस्मिता का बदला गोरे सिपाहियों की हत्या द्वारा लेती है। हत्या के जुर्म में मुन्नी पर मुकदमा चलाया जाता है। तब सुखदा मुन्नी के प्रति सहानुभूति रखते हुए अन्याय के विरोध में उसके साथ खड़ी होती है। वह कहती है -"अगर इसको फांसी हो गई तो मैं समझूंगी संसार से न्याय उठ गया। उसने कोई अपराध नहीं किया। जिन दुष्टों ने उस पर ऐसा अत्याचार किया उन्हें यही दंड मिलना चाहिए। मैं अगर न्याय के पद पर होती तो उसे बेदाग छोड़ देती। उसने सारी बहनों का मुख उज्जवल कर दिया है।"[2] यहां सुखदा अन्याय के खिलाफ अपना विरोध प्रकट करती हुई कहती है- "एक दिन शोषण का, अन्याय का, दमन का अंत होगा ही और शोषितों की विजय होगी।"[3] अंत में अछूतों को मंदिर प्रवेश का अधिकार मिल जाता है। इस तरह सुखदा का कथन भी सच हो जाता है।

'कर्मभूमि' की मुन्नी, सलोनी, पठानिन अनपढ़ होकर भी अपने-अपने कर्म क्षेत्र में जागरूक होकर बड़ी निडरता के साथ काम करती हैं। ग्रामीण क्षेत्र की मुन्नी गोरों के द्वारा बलात्कार का शिकार होने के बावजूद आत्महत्या जैसे कदम नहीं उठाती वह उन्हें स्वयं मारकर अपनी अस्मिता का बदला लेती है। मुकदमें से बरी होने के बाद वह अपने घर नहीं जाती। वह सुदूर गाँव में जाकर हरिजनों की बस्ती में उनके सामाजिक सुधार के लिए काम करती है। गांव में मुन्नी, सलोनी, एवं अमरकांत दलितों की उन्नति के लिए उन्हें स्वच्छ रहने, मदिरापान छोड़ने, मुर्दा मांस न खाने की सलाह देते हैं। अमरकांत गांव के दलित बच्चों को शिक्षित करने के लिए गाँव में स्कूल खोलते हैं। जो उस समय की विशेष आवश्यकता थी। गांधीजी भी स्वच्छता, शिक्षा आदि का प्रचार करते थे क्योंकि स्वास्थ्य और सुशिक्षित समाज ही अपने अधिकार के प्रति जागरूक और सचेत हो सकता है।

किसान, मजदूर आंदोलन और राजनीतिक चेतना

भारतीय समाज में किसानों एवं मजदूरों की दशा अत्यंत दयनीय थी। उस समय किसानों को कभी अकाल, तो कभी महामारी आदि के कारण मंदी का सामना करना पड़ रहा था। ऊपर से उन पर ब्रिटिश सरकार द्वारा करो की वसूली में सख्ती की जा रही थी। जमींदारों के अत्याचार और ब्रिटिश शासको की दमनकारी नीति का बोझ बढ़ता जा रहा था। इसके विरोध में 1920 के दशक में भारत के विभिन्न भागों में किसानों द्वारा आंदोलन किया जा रहा था। सन् 1929 से 31 के विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के कारण किसानों की हालत खस्ता हो चली थी। प्रेमचंद कर्मभूमि उपन्यास के नायक अमरकांत द्वारा किसानों की पीड़ा को महसूस करते हैं और उन्हें संगठित होकर आंदोलन करने की ओर प्रेरित करते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में किसान संगठित होकर कर बंदी के लिए आंदोलन करते हैं। जिसमें अमरकांत, मुन्नी, बूढ़ी काकी सलोनी, सलीम आदि भाग लेते हैं। कर्मभूमि की काकी सलोनी किसानों में जोश भरने और आंदोलन के लिए प्रेरित करने के लिए कहतीं हैं; "फरियाद करने से कुछ नहीं होगा, अपना अधिकार तो खुद लड़कर पाना होगा।"[4] सलोनी काकी अपने हक के लिए सभी को लड़ना सीखाती है। 'गोदान' उपन्यास में प्रेमचंद ने किसानों की दुर्दशा एवं त्रासद स्थिति का बहुत ही मार्मिक वर्णन किया है।

वहीं 'कर्मभूमि' उपन्यास में नगर में मजदूरों की समस्याओं को दूर करने एवं उनके रहने के लिए आवास की मांग की जाती है। जिसके लिए सुखदा और नैना आंदोलन की अगुवाई करती हैं। इस आंदोलन को सफल बनाने के लिए सकीना और उसकी बूढ़ी माँ पठानिन भी भाग लेती हैं। अंत में नैना का बलिदान आंदोलन को सफल बनाने में सहायक बनता है। कर्मभूमि की सभी नारियाँ आदोंलनों का नेतृत्व करतीं हैं। शिक्षा के प्रचार- प्रसार, पर्दा प्रथा की अवहेलना, 'अखिल भारतीय महिला परिषद्' (1927) की स्थापना आदि से महिलाओं में नवजागरण का प्रसार बड़े पैमाने में होने लगा था। गांधी जी के स्वाधीनता आंदोलन में भी स्त्रियों की भागीदारी से उसमें आत्मविश्वास आने लगा था। कर्मभूमि उपन्यास में प्रेमचंद ने सभी वर्गों के हितों को राजनीतिक हित से जोड़ा है इसलिए कर्मभूमि में किसान, मजदूर आदि सभी के लिए आंदोलन करते और सत्याग्रह की राह पर चलते हुए सभी लोग दिखाई पड़ते हैं। जहां सभी अपने-अपने कर्म क्षेत्र में सफल भी होते हैं।

युवाओं की भूमिका और राजनीतिक जागरूकता

'कर्मभूमि' उपन्यास में प्रेमचंद युवा वर्ग के हाथों नेतृत्व की बागडोर सौंपते हैं। अमरकांत, सुखदा, नैना, सोफिया, सलीम, यास्मीन, सकीना जैसे युवा पात्र राजनीति और समाज में सुधार लाने के लिए विभिन्न कार्यक्षेत्रों में भाग लेते हैं। अमरकांत अपने पिता के व्यापार पर ध्यान न देकर युवाओं में राजनीतिक जागरूकता फैलाने, दलितों के उध्दार, और किसानों के लिए काम करते हैं। सलीम भी सरकारी नौकरी छोड़कर ग्रामीण क्षेत्र में जाकर किसानों एवं धार्मिक सहिष्णुता के प्रचार- प्रचार के लिए काम करते हैं। वहीं सुखदा और नैना के नेतृत्व में नगर में मजदूरों के हक के लिए आंदोलन होता है। सुखदा के नेतृत्व में छुआछूत के भेदभाव को कम करने के लिए 'मंदिर प्रवेश' का आंदोलन होता है। मुन्नी अन्याय के खिलाफ अडिगता से खड़ी होती है। सोफिया महिलाओं को अधिकार दिलाने के लिए 'स्त्री शिक्षा' पर जोर देती है। वह 'स्त्री शिक्षा' के लिए संघर्ष करती हुई मोर्चा संभालती है।

गांधीवादी विचारधारा (चरखा आंदोलन, स्वदेशी आंदोलन, जेल यात्रा, सत्याग्रह अहिंसा, स्त्री शिक्षा आदि)

प्रेमचंद जी का काल (सन् 1905-1936) सामाजिक एवं राजैनतिक उथल-पुथल का काल था। एक ओर समाज में व्याप्त कुरीतियों के खिलाफ समाजसुधारक सुधार कार्य में जुटे हुए थे, वहीं ब्रिटिश सरकार से मुक्ति की उत्कंठा एवं आकांक्षा अपने चरम पर था। गांधी जी चाहते थे कि भारतीय समाज में सामाजिक जागरूकता सहित भाईचारा हो। इसके लिए तत्कालीन समाज की कुरीतियों को समाप्त करने का भी प्रयत्न कर रहे थे। अस्पृश्यता को जड़ से खत्म करने के लिए गांधी जी ने भी 'मंदिर प्रवेश' को आंदोलन का रूप दिया ताकि सभी वर्गों के लोग मिलकर राजनीतिक आंदोलनों में समानता के साथ भाग ले सकें। गांधी जी के सत्याग्रह, असहयोग आंदोलन एवं विभिन्न अवसरों पर किए जाने वाले अनशन का व्यापक प्रभाव राजनीति के क्षेत्र पर पड़ा। वे स्त्रियों की शिक्षा के पक्षपाती थे। गांधी जी ने 'नमक आंदोलन' में स्त्रियों को पर्दे की दीवार तोड़कर आगे आने का निमंत्रण दिया।वे चाहते थे कि स्त्रियां पुरुष की सहधर्मिणी, अर्धांगिनी एवं प्रेरणा स्रोत बने। 'कर्मभूमि 'उपन्यास में भी सोफिया चाहती है कि स्त्रियां शिक्षित हों। गांधी जी स्त्री-पुरुष के बीच आपसी समानता के पक्षपाती थे। वे लिखते हैं-" पत्नी पति की दासी नहीं बल्कि सहधर्मिणी है। दोनों एक दूसरे के सुख-दुख के समान भागीदार हैं और जितनी स्वतंत्रता पति को भला बुरा करने की है उतनी ही पत्नी को भी।"[5] प्रेमचंद जी भी गांधी जी की तरह स्त्री -पुरुष के बीच समानता चाहते थे, जिसका उदाहरण हमें शिवरानी देवी द्वारा लिखे गए' प्रेमचंद घर में' नामक जीवनी में देखने को मिलता है। एक बार प्रेमचंद किसी जलसे से आकर वहां मिले फूलों का हार पत्नी शिवरानी देवी के गले पर डालते हुए कहते हैं -"मैं किसी बोझ को बिना तुम्हारे नहीं उठा सकता। मैं तो यहां तक समझता हूं कि कोई पुरुष बिना स्त्री के कुछ भी नहीं कर सकता। जब तक स्त्रियों का हाथ किसी काम में न लगेगा तब तक कोई भी काम पूरा नहीं पड़ सकता। जब घर-घर की स्त्रियां और पुरुष हिंदुस्तान की तरक्की में लगेंगे तभी कल्याण होगा।"[6] कर्मभूमि उपन्यास में अमरकांत एवं सुखदा बाद में परस्पर कंधा से कंधा मिलाकर एक दूसरे के काम में सहयोग करते हैं।

प्रेमचंद जी ने कर्मभूमि उपन्यास के हर आंदोलनों में स्त्रियों की भागीदारी दिखाई है। सुखदा, नैना, मुन्नी हरिजनों के उध्दार के लिए जी जान लगा देती हैं। किसानों की कर बंदी के लिए ग्रामीण क्षेत्र में आंदोलन होता है, वहीं नगर में मजदूरों के अधिकार के लिए मजदूरों का आंदोलन किया जाता है जिसमें सुखदा, नैना, सकीना पठानिन का संघर्ष सराहनीय है। अमरकांत गांधी जी के असहयोग आंदोलन का भी समर्थन करते हैं। भारत में स्वदेशी आंदोलन के समय चरखा का प्रचार प्रसार तेजी से बढ़ा। उपन्यास के नायक अमरकांत भी खादी पहनते हैं। वे शहर में गली- गली घूमकर खादी के प्रचार -प्रसार के लिए खादी बेचते हैं। खाली समय में वे चरखा चलाते हैं।

ग्रामीण क्षेत्र की बूढ़ी काकी सलोनी भी चरखा का प्रचार करतीं हैं। सुखदा की गिरफ्तारी एवं नैना का बलिदान आंदोलनों को सफलता प्रदान करता है। सुखदा नगर के मजदूरों के रहने के लिए आवास बनाना चाहती है, उसी भूमि पर चंद अमीर अपना फ्लैट बनवाना चाहते हैं। इस विषय पर सुखदा डॉ. शांति

कुमार के साथ म्यूनिसिपल बोर्ड जाकर अधिकारियों के सामने अपनी मांगे रखतीं हैं, किन्तु उसे अस्वीकार कर दिया जाता है। फलतः वह अपने नेतृत्व में सभी दलितों (धोबी, चमार, मेहत्तर, नाई, कुम्हार आदि) के साथ मिलकर हड़ताल करती हैं। इसके लिए उसे जेल भी जाना पड़ता है। वह मजदूरों को हड़ताल के लिए उत्साहित करते हुए कहतीं हैं कि –"जिस समाज का आधार ही अन्याय पर हो उसकी सरकार के पास दमन के सिवा और क्या दवा हो सकती है, लेकिन इससे कोई यह न समझे कि यह आंदोलन दब जाएगा। उसी तरह जैसे कोई गेंद टक्कर खाकर और जोर से उछलती है, जितने ही जोरों की टक्कर होगी, उतने ही जोरों की प्रतिक्रिया होगी। मुझे गिरफ्तार कर लें। उन लाखों गरीबों को कहां ले जायेंगे। जिनकी आहें आसमान तक पहुंच रही हैं। यही आहें एक दिन किसी ज्वालामुखी की भांति फटकर सारे समाज और सारे समाज के साथ सरकार को भी विध्वंस्त कर देगी।"[7] सुखदा की गिरफ्तारी के बाद इस आंदोलन की बागडोर बूढ़ी पठानिन एवं रेणुका देवी संभालती हैं। बूढ़ी पठानिन अपनी अगुवाई में जगह-जगह सभाएं, जुलूस, भाषण, हड़ताल आदि करवाती है। रेणुका देवी अपनी सारी जायदाद बेचकर आंदोलन को सुचारू रूप से आगे बढ़ाने के लिए आर्थिक मदद करतीं हैं। बाद में वे दोनों भी जेल चली जाती हैं। अंत में नैना अपने पति के खिलाफ जाकर आंदोलन का नेतृत्व करती है और आंदोलन को सफल बनाने में अपना बलिदान देती है। जो स्वतंत्रता आंदोलन के लिए दिए गए बलिदानों की याद दिलाता है। मुन्नी विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के समय किसानों की कर बंदी के लिए सरकार के खिलाफ आंदोलन का नेतृत्व करती है और जेल जाती है। अमरकांत, मुन्नी आदि गांधी जी की तरह गांव के हरिजनों को साफ-सफाई एवं मुर्दा मांस न खाने की सलाह देते हैं। सकीना भी गांव जाकर अमरकांत, मुन्नी, सलीम आदि द्वारा चलाए गए 'कर बंदी' आंदोलन में जेल जाती हैं। गांव की बूढ़ी काकी सलोनी भी इस आंदोलन को सफल बनाने के लिए संघर्ष करती हुई जेल जाती है। गाँव में किसानों का आंदोलन जब उग्र होकर सरकार के खिलाफ जाकर उन्हें सबक सिखाने की बात करता है तब अमरकांत उन्हें समझाते हैं कि हमें अहिंसा के द्वारा अपने आंदोलन को सफल बनाना है। हिंसा करना अपराध है। इस उपन्यास में प्रेमचंद का आंदोलन उतना ही सक्रिय दिखाई पड़ता है जितना सक्रिय गांधी जी का राजनीतिक आंदोलन था। रामविलास शर्मा जी कहते हैं –"कर्मभूमि वास्तव में स्वाधीनता आंदोलन की गहराई और प्रसार का उपन्यास है"[8]

गांधी जी एवं प्रेमचंद की राजनीतिक चेतना में सामानता के बावजूद दोनों के विचार में नैतिकता एवं आध्यात्मिकता का फर्क दिखाई पड़ता है। इस विषय पर दयानंद पांडे लिखते हैं –"प्रेमचंद का प्रगतिवादी चेतना मार्क्सवाद या किसी भी राजनीतिक मताग्रह का परिणाम न होकर समकालीन संवेदना का प्रतिफलन है।"[9] वहीं डॉ. नत्थन सिंह भी प्रेमचंद में गांधीवादी दर्शन के बारे में कहते हैं कि "कुछ लोग प्रेमचंद को गांधीवादी चेतना के प्रतिपादन में खोजते हैं और कुछ लोग मार्क्सवादी दर्शन की अभिव्यक्ति में। यथार्थ में दोनों दृष्टियां संकुचित मस्तिष्क का परिणाम है। प्रेमचंद भारतेंदु के समान राष्ट्रीय चेतना तथा मानवीय संबंधों से जुड़े थे। प्रारंभ में उन्हें गांधीवाद ने आकर्षित किया था और बाद में मार्क्सवादी दर्शन ने। उनके लिए दर्शन प्रधान नहीं था, प्रधान था देश का समतामूलक स्वतंत्रता वातावरण।"[10] प्रेमचंद की अपनी स्वतंत्र राजनीतिक विचारधारा थी। वे तत्कालीन परिस्थितियों से खुद को जोड़कर साहित्यिक रचनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं।

निष्कर्ष :- 'कर्मभूमि' उपन्यास प्रेमचंद की कर्मभूमि के रूप में उजागर होती है। जिसमें प्रेमचंद ने सामाजिक, आर्थिक परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में कहानी को आगे बढ़ाया है। इस उपन्यास का राजनीतिक पक्ष सबसे ज्यादा प्रखर रूप में दिखाई पड़ता है। कर्मभूमि में स्त्री-पुरुष, युवा सभी सामाजिक, आर्थिक क्षेत्र के साथ-साथ राजनीतिक क्षेत्र में भी प्रखरता के साथ कार्य करते हैं। एक सच्चे साहित्यकार होने के नाते प्रेमचंद तत्कालीन समाज के राजनीतिक एवं सामाजिक गतिविधियों से अपने आप को अलग नहीं रख पाते। कर्मभूमि उपन्यास में उस समय की राजनीतिक गतिविधियों से जुड़ी सभी पहलुओं पर चर्चा की गई है। चाहे वह किसान, गरीबों, मजदूरों, दलितों, स्त्रियों, राजनीतिक आंदोलन, असहयोग आंदोलन, चरखा आंदोलन, स्वदेशी आंदोलन, सत्याग्रह, अहिंसा आदि हो। सभी पक्षो पर प्रेमचंद की लेखनी समान रूप से चलती है। प्रेमचंद के नायक, नायिकाओं की भूमिका सभी क्षेत्रों में स्पष्ट दिखाई पड़ती है। प्रेमचंद गांधीवादी राजनीतिक विचारधारा से जुड़ते हुए भी स्वयं को गांधीवादी नहीं मानते। वे 'चेंज ऑफ हार्ट' के सिद्धांत पर विश्वास करते थे। यही कारण है कि 'कर्मभूमि' उपन्यास की रचना में प्रेमचंद अपने-अपने क्षेत्र में सभी नायक नायिकाओं को प्रवृत दिखाते हैं। उपन्यास का अंत कर्म क्षेत्रों के संघर्ष एवं सफलता के साथ ही होता है। इस दृष्टिकोण से प्रेमचंद की कर्मभूमि एक सफल रचना मानी जा सकती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. प्रेमचंद, कर्मभूमि, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्रथम संस्करण 1932, पृष्ठ संख्या- 209.
2. वही-पृष्ठ संख्या-215
3. वही-पृष्ठ संख्या-267.
4. वही-पृष्ठ संख्या-325.
5. भवानी दत्त पंड्या (अनु.), संकलन- आर.के.प्रभु तथा यू.आर.राव- महात्मा गांधी के विचार, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, दिल्ली, प्रथम संस्करण- 1994, पृष्ठ संख्या- 195.
6. शिवरानी देवी- प्रेमचंद घर में, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, संस्करण -1956, पृष्ठ संख्या 205.
7. प्रेमचंद -कर्मभूमि, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्रथम संस्करण -1932, पृष्ठ संख्या -257 .
8. रामविलास शर्मा -प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय संस्करण- 1967 पृष्ठ संख्या-85.
9. संपा.-दयानंद पांडेय- प्रेमचंद -व्यक्तित्व और रचना दृष्टि, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण- 1982, पृष्ठ संख्या-113.
10. डॉ.नत्थन सिंह -प्रेमचंद : मूल्यांकन और मूल्यांकन, विभूति प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण- 1982, पृष्ठ संख्या-32

हिन्दी दलित कहानियाँ : भोगा हुआ यथार्थ

डॉ. पूनम चालिया

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, माता सुन्दरी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध संक्षेपः - दलित विमर्श या फिर दलित चेतना हिन्दी कहानी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय रहा है। दलित कहानी कहा, सुना या फिर देखा हुआ नहीं बल्कि भोगा हुआ यथार्थ है। दलित कहानियाँ कहानी मात्र नहीं बल्कि यह वो दर्द है जिसको सदियों तक दलितों ने झेला है, जिसकी कराह आज भी दलित कहानियों में सुनाई देती है। प्रत्येक दलित कहानीकार को कभी न कभी किसी न किसी स्थिति में, किसी न किसी रूप में इस दर्द से होकर गुजरना पड़ा है। उसे जातिगत भेदभाव, अन्याय, अपमान, उपेक्षा, तिरस्कार आदि का शिकार होना पड़ा है। उसकी वही पीड़ा उसे एक बेचैन मानव बनाती है जिसके प्रतिक्रियास्वरूप वो अपनी कलम को धार देता है और अपनी रचनाओं में अपने उस दर्द, पीड़ा, तड़प को उकेर देता है। दलितों की स्थिति पर बहुत से गैर दलित साहित्यकारों ने भी कलम चलाई है किन्तु उनकी लेखनी में सहानुभूति के स्वर मिलते हैं जो दलितों का दर्द बयां करने में काफी नहीं हैं। गैर दलित साहित्यकारों द्वारा लिखी रचनाएं दलितों की संवेदना को सही ढंग से अभिव्यक्त करने में सफल न हो पाई। उन पर आरोप लगाया गया कि वो दलितों के प्रति झूठी संवेदना व्यक्त कर रहे हैं। यदि बात की जाए हिन्दी कहानियों में दलित चिंतन की तो यह विषय बहुत चिंतनीय है। दलितों तथा अछूतों को लेकर जो भी कहानियाँ लिखी जा चुकी हैं या फिर लिखी जा रही हैं उनमें एक बात सामान्य है और वो है दलित कहानीकारों की स्वानुभूति।

बीज शब्दः - उपेक्षित, उत्पीड़न, हतोत्साहित, वंचित, दरिद्रता, विडंबना, निपुण, व्याख्यायित, मवेशी, अवरुद्ध, आह्वान, स्मारिका, विनष्ट, दलन, दमित, हाशिए, स्वानुभूति, हरवाही, चरवाही, पराकाष्ठा, विषमता, साजिश, सुदृढ़, इस्तिहार आदि।

भूमिकाः - दलित शब्द को लोग अनेक नामों से सम्बोधित करते हैं जैसे - दलित, दमित, वंचित, शोषित, छलित, उपेक्षित, बहिष्कृत, दबाया हुआ, हाशिए पे किया हुआ आदि। दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित शब्द को इस तरह से व्याख्यायित किया है - "जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनष्ट, मर्दित, पस्त - हिम्मत, हतोत्साहित, वंचित आदि।"[1]

दलित समाज के यथार्थ को सही मायने में सातवें - आठवें दशक में दलित लेखकों द्वारा ही वास्तविक स्तर पर उभारा गया। दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से दलित समाज के उन महत्वपूर्ण बिंदुओं को तथा उन घटनाओं को उजागर किया है जिससे अन्य समाज अभी तक अनभिज्ञ था। दलित कहानीकार अपने समाज, उसकी अस्मिता और अधिकारों के प्रति सचेत है। वह अपने समाज को सुदृढ़ करने के लिए संघर्षरत है। तभी तो दलित कहानियां स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व, दया, करुणा, सहयोग आदि मानवीय गुणों से युक्त है। हिन्दी दलित कहानी का आरंभ कब से हुआ? इसको लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। इस विषय में डॉ. रजत रानी मीनू अपने विचार रखती हुई कहती हैं कि - "सन 1970 के दशक में छुट - पुट पत्र - पत्रिकाओं व स्मारिकाओं में कहानी विधा के मापदंडो को पूरा करती हुई हिन्दी की दलित कहानियां भी प्रकाशित होना प्रारम्भ हो गई थी। 1975 में सतीश की 'वचनबद्ध' कहानी को हम अब तक की अपनी शोधपूर्ण जानकारी के अनुसार पहली दलित कहानी मान सकते हैं।"[2]

दलित कहानियां मिथ्या या मनगढंत नहीं हैं बल्कि लेखक की स्वानुभूति है जिसको उसने जिया और भोगा है और इन परेशानियों से जूझते हुए यहां तक की यात्रा तय की है। वे सिर्फ अपने साथ हुए उत्पीड़न का चित्रण नहीं करते बल्कि सम्पूर्ण दलित समाज की समस्या को समाज के सामने खोलकर रख देते हैं ताकि लोग इसे पढ़ें, जागरूक हों और भविष्य में इस प्रकार की स्थिति पुन : उत्तपन्न न होने दे। दलित कहानीकारों का मकसद समाज में विषमता फैलाना नहीं बल्कि इसके माध्यम से समाज में फैली विषमता को समाप्त करना है। समाज में दलितों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं रही है आर्थिक तंगी ने उनकी कमर जैसे तोड़ दी है। उन्हें दो जून की रोटी के लिए भी मोहताज रहना पड़ता है। भूख मिटाने के लिए तथा अपने परिवार का पालन - पोषण करने के लिए उन्हें सवर्णो की गुलामी करनी पड़ती थी। उनके घरों, खेतों में मजदूरी, हरवाही, चरवाही आदि करनी पड़ती थी। यहां तक कि चंद पैसों के लिए उन्हें मरे हुए मावेशी तथा जानवरों को अपने कांधे पर ढोना पड़ता था। उनकी लाचारी तो देखिए उन्हें मेरे जानवरों की खाल निकाल कर बेंचना पड़ता था ताकि अपने परिवार के लिए अन्न ला सकें। जिन दलितों को सवर्ण घृणित मानते हैं, उनकी परछाई से भी नफरत करते हैं, उनको अपनों से कोसो दूर रखते हैं लेकिन जब उन्हें इन्हीं दलितों से काम पड़ता है तो उन्हें ढूढते फिरते हैं क्योंकि उनका मानना है कि सवर्ण की सेवा करना दलितों का धर्म हैं। अत : दलित सवर्ण की कहा को टाल नहीं सकते हैं। बेचारे मजबूर, लाचार, असहाय तथा दरिद्रता में जीवन जीते दलित के पास उनका विरोध करने की हिम्मत नहीं थी। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'बैल की खाल' में दलितों की यह स्थिति स्पष्ट नजर आती है। कहानी में पंडित जी का बैल मर जाता है यदि उसे जल्दी से नहीं हटाया गया तो पूरे वातावरण में दुर्गंध फैल जाएगी लेकिन समस्या ये थी कि मरे बैल को हटाएगा कौन? इस काम को कोई सवर्ण तो करेगा नहीं? वैसे भी समाज में निश्चित है कि यह कार्य सिर्फ दलित ही करेगा जिसके लिए काले और भूरे की तलाश होने लगी जोकि दलित हैं और इस कार्य में निपुण हैं। कहानी में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी पंडित बिरिज मोहन के किरदार से सवर्ण के दृष्टिकोण को दिखाते हैं जब वो काले - भूरे पर गुस्से में बरस रहा था - "कहाँ मर गए थे भोसड़ी के०तड़के से ढूंढ़ - ढूंढ़ के गोड्डे टूट गए हैं। और इब आ रहे हो महाराज की तरियां इस बैल को कौन उठावेगा. ..तुम्हारा बाप..पंडित बिरिज मोहन उन पर बिफर पड़ा था।"[3]

दलित बहुत अभावों तथा दरिद्रता में जीवन जीते आए हैं। उनकी स्थिति इतनी दयनीय थी कि वो अपना और अपने परिवार की भूंख मिटाने के लिए किसी भी तरह का कार्य करने को तत्पर रहते थे। आज 21वी सदी में भी दलित अपना परिवार चलाने के लिए कूड़ा - कचरा आदि अपने सिर पर ढ़ोते हैं और गंदे नाले - नालियों को अपने हांथों से साफ करते हैं, सड़को पर झाड़ू लगाते हैं, शौचालय तथा पखाना आदि साफ करते हैं, समाज का मैला ढोते हैं। इसे समाज की विडंबना नहीं कहेंगे तो और क्या कहेंगे जहाँ एक वर्ग को समाज के अन्य वर्ग का कचरा साफ करना पड़ रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कहानी 'बैल की खाल' में काले और भूरे के माध्यम से उनकी स्थिति को दिखाया है - "वे जल्दी - जल्दी शहर पहुंचना चाहते थे। जिससे खाल बेचकर घर के लिए सौदा - सुलफ ला सकें। कई दिन हो गए थे ठीक से चूल्हा भी नहीं जला था। जैसे तैसे जिनगी घसिट रही थी। दो महीने बाद आज यह बूढ़ा बैल मरा था जिसने उनकी डूबती आशाओं को पल भर के लिए बचा लिया था।"[4]

जातिगत भेदभाव दलित पीढ़ियों से झेलता आ रहा है। वर्ण व्यवस्था ने जाति आधारित नींव पुख्ता कर उसके साथ न्याय नहीं किया है। नतीजा यह है कि इसके कारण दलित लगातार सामाजिक द्वेष के शिकार हो रहे हैं। सवर्णो ने दलितों को पशुओं की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया है। उनके काम की कोई सीमा नहीं, मजदूरी भी निश्चित नहीं बस कोल्हू के बैल की तरह सारे दिन सवर्णो के इशारे पर नाचते रहते हैं। सदियों से अन्याय, अत्याचार सहता ये वर्ग अपनी जीविका के लिए दर - दर भटकता रहा है। उसकी इस स्थिति का जिम्मेदार कोई अन्य नहीं बल्कि सवर्णो की ब्राह्मणवादी मानसिकता है जो उन्हें आगे बढ़ते देख नहीं सकती वो दलितों को उसी पुरानी स्थिति में घिसते मरते अपने आगे दाने दाने को हांथ फैलाते ही देखना चाहते हैं। तभी तो वो दलितों को भ्रमित कर अपने नीचे ही रखना चाहते हैं। सूरजपाल चौहान की कहानी 'साजिश' समाज में विद्यमान इस विषमता की पोल खोलता है। कहानी में देखा जा सकता है कि दलित युवक नत्थू जब बैंक से लोन लेने जाता है यह सोंचकर कि कोई व्यापार करके कुछ पैसा कमा सके ताकि जीवन सुकून से बीते। किन्तु बैंक मैनेजर मिश्रा जोकि सवर्ण है उसे यह बात बर्दास्त नहीं होती कि कोई दलित अपना पारम्परिक धंधा छोड़कर व्यापार करे और उनकी बराबरी पर आए। इसके लिए वो गहरी चाल चलता है नत्थू को अपनी बातों की जाल में फुसलाता है। बैंक मैनेजर शर्मा सीनियर क्लर्क भारद्वाज से बात करते हुए कहता है - "साले आए चूहड़े - चमार पढ़ - लिखकर व्यापार करने। बैंक से उधार लेकर ट्रांसपोर्ट का धंधा करेंगे, व्यापारी बनेंगे, ट्रेंड चेंज करेंगे। शर्मा और भरद्वाज आपस में बातें करते - करते ठहाका लगा रहे थे।"[5]

दलितों के प्रति भेदभाव सदियों से चला आ रहा है। समाज में उच्च स्थान और सम्मान सिर्फ सवर्णो को ही मिला है जिसका फायदा उठाकर उन्होंने दलितों का शोषण किया है। इन्होने दलितों का सिर्फ शारीरिक शोषण ही नहीं किया है बल्कि मानसिक शोषण भी किया है। जन्म के आधार पर किसी व्यक्ति की जाति निश्चित कर उसके विकास का मार्ग अवरुद्ध करना कहां की समझदारी है। यदि कोई दलित युवक अपने पारम्परिक कार्य को न कर जीवन में कुछ हटकर करना चाहता है अपने जीवन को सुधारने का प्रयास करता है तो उसमें क्या बुराई है जीवन में प्रगति और विकास कौन नहीं करना चाहता आखिर परिवर्तन ही तो प्रकृति का नियम है फिर दलित के जीवन में आए परिवर्तन से सवर्ण क्यूं परेशान होने लगते हैं। सूरजपाल चौहान की कहानी ' साजिश' में नत्थू भी अपने जीवन में परिवर्तन लाना चाहता है लीक से हटकर कुछ करना चाहता है जिसके लिए उसे पैसों की जरूरत होती है इसीलिए वो बैंक से लोन लेने जाता है किन्तु जैसे ही बैंक मैनेजर को पता चलता है कि वो व्यापार के लिए लोन ले रहा है उसे बर्दास्त नहीं होता है और वो कूटनीतिक चाल चलता है कि किस तरह उसे व्यापार करने से रोका जाए। कहानी में बैंक मैनेजर शर्मा क्लर्क भारद्वाज को दलितों के प्रति अपनी घटिया मानसिकता के बारे में बताते हुए कहता है - " देख सतीश, अगर ये अछूत अपना खानदानी धंधा बंद कर कोई नया धंधा करने लगेंगे तो आनेवाली पीढ़ियां हमारे घरों की गंदगी कैसे साफ करेंगी। उस स्थिति में घर की गंदगी क्या तुम खुद साफ करोगे।"[6] क्या विडंबना है समाज की जहाँ एक मानव अपने ही समान दूसरे मानव से इस प्रकार तक घृणा तथा द्वेष करता है कि उसके तरक्की के मार्ग को अवरुद्ध करने का हर सम्भव प्रयास करता है।

डॉ चमन लाल दलित साहित्य पर अपना विचार रखते हुए कहते हैं कि - "दलित साहित्य जातिभेद के खिलाफ साहित्यिक उत्पीड़न, मानवता की सशक्त आवाज बन कर उभरा है। दलित साहित्य हमारे समाज का दर्पण है जो हमने देखा है, अनुभव किया, भोगा, जाना क्रांति का आह्वान है। दलित साहित्य मानव के द्वारा वर्ण - व्यवस्था का आधार लेकर, लिंग अथवा धर्म का आधार लेकर अथवा जाति का आधार लेकर किए गए शोषण के विरुद्ध आवाज उठाता है। दलित साहित्य का उद्देश्य यही है कि भयमुक्त, शोषणमुक्त, जातिविहीन और वर्ग - विहीन समाज की स्थापना करना है।"[7]

अशिक्षा दलित जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है। अशिक्षित होने के कारण ही समाज में दलितों को बहुत कुछ झेलना पड़ा। शिक्षा के अभाव में उनका जीवन नारकीय हो गया था। पढ़े लिखें न होने के कारण उन्हें हर बात में सवर्णो का मुख देखना पड़ता था। अपना सब कुछ कागज - पत्र इत्यादि भी उन्हें सवर्ण को ही दिखाना पड़ता था जिसको सवर्णो ने खूब उठाया वे चालाकी से या फिर धोखे से उनकी जमीन, खेत - खलिहान आदि अपने नाम करवा लेते थे या फिर हड़प लेते थे। जिसका परिणाम यह होता था कि दलितों को अपने ही जमीन से वंचित होना पड़ता था और बद से बदतर जीवन जीना पड़ता था। उनकी इसी स्थिति का फायदा उठाकर सवर्ण दलितों का बहुत शोषण करते थे। अनपढ़ होने के कारण दलितों को हिसाब किताब लगाना नहीं आता था ऐसी स्थिति में सवर्ण उन्हें जो कुछ भी बताते थे दलित उस पर विश्वास कर लेते थे। सीधे साधे दलित इस बात से अनजान थे कि मीठा - मीठा बोलकर उन्हें ठगा जा रहा है। सवर्णो के इस छलनीति को ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'पच्चीस चौके डेढ़ सौ' में देखा जा सकता है। इस कहानी में चौधरी किस तरह अपनी कूटनीतिक चाल द्वारा सरल स्वभाव के दलित व्यक्ति को छलता है स्पष्ट दिखाई देता है। चौधरी के महानतम व्यक्तित्व का बखान करते हुए सुदीप के पिताजी जी सुदीप को बताते हैं कि - "चौधरी जी ने कहा मैंने तेरे बुरे बखत में मदद करी तो ईब तू ईमानदारी ते सारा पैसा चुका देना। सौ रूपये पर हर महीने पच्चीस रूपये ब्याज के बनते हैं। चार महीने हो गए हैं। ब्याज ब्याज हो गए हैं पच्चीस चौका डेढ़ सौ। तू अपड़ा आदमी है तेरे से ज्यादा क्या लेणा। डेढ़ सौ में से बीस रूपये कम कर दे। बीस रूपये तुझे छोड़ दिए। बचे एक सो तीस। चार महीने का ब्याज एक सौ तीस अभी दे दे। बाकी रहा मूल जिब होगा दे देणा, महीने के महीने ब्याज देते रहणा...ईब बता बेट्टे पच्चीस चौका डेढ़ सौ होते हैं या नहीं। चौधरी भले और इज्जतदार आदमी हैं, जो उन्होंने बीस रूपये छोड़ दिए नहीं तो भला इस जमाने में कौन छोड़े है।"[8]

सुदीप ने बचपन से ही अपने पिताजी को पच्चीस चौका डेढ़ सौ में ऐसे उलझे देखा था कि इस गुत्थी में वो स्वयं उलझकर रह गया था। इसने उसके बालमन पर इतना प्रभाव डाला था कि वो समझ नहीं पा रहा था कि कौन सही कह रहा है किताब या फिर पिता जी। पिताजी कहते हैं पच्चीस चौके डेढ़ सौ जबकि किताब और मास्टर जी कहते हैं पच्चीस चौके सौ। सौ और डेढ़ सौ के बीच उलझा सुदीप जब स्कूल में मास्टर जी को पहाड़े सुनाता है उस समय उसे किस मन : स्थिति से गुजरना पड़ता है इसका वर्णन करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि जी कहते हैं – "सुदीप ने डरते – डरते कहा – पिताजी कहते हैं पच्चीस चौका डेढ़ सौ होवे है स...मास्टर शिवनारायण हत्थे से उखड़ गया। खींचकर एक थप्पड़ उसके नाम पर रसीद किया। आँखें तरेरकर चीखा, अबे तेरा बाप इतना बड़ा विद्वान है तो यहां क्या अपनी माँ...एक क्रिया जिसे सुसंस्कृत लोग साहित्य में त्याज्य मानते हैं।.. साले तुम लोंगो को चाहे कितना भी लिखाओ, पढ़ाओ, रहोगे वही के वही...दिमाग में कूड़ा करकट जो भरा है। पढ़ाई – लिखाई के संस्कार तो तुम लोगों में आ ही नहीं सकते।"[9]

शिक्षा ही मनुष्य को सभ्य, सुसंस्कृत तथा जागरूक बनाती है। दलित इस बात को पूरी तरह से समझ चुके थे। तभी तो वे अन्याय, अत्याचार, अपमान, तिरस्कार सहते हुए भी किसी तरह शिक्षा ग्रहण करते रहें हैं। किन्तु सवर्णो को इनका पढना अखरता था जिसके लिए वो उन्हें परेशान करने के नए – नए तरीके ढूंढ़ते रहते थे कि किस तरह इनको पढ़ने तथा आगे बढ़ने से रोका जाए। अमानवीयता की सबसे बड़ी पराकाष्ठा विद्या का मंदिर कहा जाने वाले जगह विद्यालय तथा विश्वविद्यालय में भी देखा जा सकता है जहाँ दलित बच्चो के लिए कोई जगह नहीं। विद्यालय तथा महाविद्याल में मौजूद कुछ सवर्ण मानसिकता से ग्रसित अमानवीय तत्व दलित विद्यार्थियों को तमाम तरह की शारीरिक और मानसिक चोट देते थे ताकि वो परेशान होकर, डर कर विद्यालय तथा महाविद्याल आना छोड़ दे, पढ़ने – लिखने आगे बढ़ने की बात अपने मस्तिष्क से निकाल दे और अशिक्षित रह जाएं। सवर्णो को भय था कि दलित यदि पढ़ जाएंगे तो उनकी गुलामी कौन करेगा। दलितों के प्रति सवर्णो की नफरत तथा उनकी क्रूरता को ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'घुसपैठिए' में देखा जा सकता है। इस कहानी में मेडिकल कॉलेज में दलित विद्यार्थियों के साथ कितना और किस – किस हद तक अमानवीय व्यवहार किया जाता है दिखाया गया है। मेडिकल कॉलेज में दलित छात्र एडमिशन लेकर डॉक्टर बनने के सपने से जाते हैं किन्तु सवर्ण छात्रों द्वारा सिर्फ उनके सपने ही नहीं रौदे कुचले जाते बल्कि स्वयं वो भी मारे पीटे जाते हैं। मारपीट, अपमानित तथा लोंगो के सामने लज्जित किए जाने पर बहुत से छात्र आत्महत्या तक कर लेते थे इसका जिम्मेदार सवर्ण छात्र होते थे। कहानी में दलित छात्र अमरदीप अपना दर्द बयां करता हुआ कहता है – "दलित छात्रों को अलग खड़ा करके अपमानित करना तो रोज का किस्सा है। प्रवेश परीक्षा के प्रतिशत अंक पूछकर थप्पड़ या घूसों का प्रहार होता है। जरा भी विरोध किया तो लात पड़ती है। यह दो – चार दिन नहीं साल के साल चलता है। और यह पिटाई कॉलेज या छात्रावास तक ही सीमित नहीं है। शहर से कॉलेज तक जाने वाली बस में भी पिटाई होती है। कोई एक सीनियर चलती बस में चिल्लाकर कहता है – इस बस में जो भी चमार स्टूडेंट है...वह खड़ा हो जाएङ्खफिर उसे धकियाकर पिछली सीटों पर ले जाया जाता है, जहाँ पहले से बैठे सीनियर लात घुसों से उसका स्वागत करते हैं।"[10] यहाँ एक बात ध्यान देने लायक यह है कि कोई इन सवर्ण छात्रों के विरोध में नही खड़ा होता है। दलितों के साथ हो रहें इस अन्याय तथा अमानुषिक व्यवहार के खिलाफ आवाज उठाने के लिए उसका साथ देने के लिए। दलित छात्रों को पता है कि उनकी आवाज सुनने वाला कोई नहीं उनकी इस लड़ाई में उनका साथ देने वाला कोई नहीं।

जैसे – जैसे समाज शैक्षिक तथा वैज्ञानिक उन्नति कर रहा है, तकनीकि के क्षेत्र में आगे बढ़ रहा है वैसे – वैसे समाज का कमजोर दलित वर्ग और पीछे होता जा रहा है क्यूंकि ये वर्ग शिक्षा तथा सुविधाओ से अब भी वंचित है। वैज्ञानिक तथा तकनीकि प्रगति का प्रभाव जब दुनियां में दिखाई दे रहा है तो फिर दलितों के जीवन में ये प्रगति और विकास क्यूं नहीं? अगर ऐसा नहीं है दलित आज इतनी उन्नति होने पर भी दमित, दबित, सताए हुए, रोते-गिड़गिड़ाते दिखाई देते हैं इसका क्या अर्थ है? वास्तविकता के धरातल पर सामाजिक परिवर्तन के नाम पर ठोस कदम नहीं उठाया गया है या फिर सब महज दिखावा भर है। आरक्षण जोकि दलित तथा पिछड़ा वर्ग को दिया गया था ताकि आरक्षण के सहयोग से इस समाज के बच्चे पढ़ लिखकर अपनी स्थिति सुधार ले। किन्तु सवर्ण समाज को संविधान द्वारा दलितों को दिया गया ये आरक्षण मंजूर नहीं। वे आरक्षण को खत्म करने की मांग करते रहते हैं। 'घुसपैठिए' कहानी में इसी आरक्षण के विरोध में खड़े सवर्ण छात्र दलित छात्रों के साथ मार पीट करते हैं तथा सरे आम उन्हें अपमानित करते हैं ताकि परेशान होकर दलित छात्र महाविद्याल छोड़कर चले जाए। अपने साथ हो रहें अन्याय की शिकायत लेकर जब दलित छात्र डीन के पास जाते हैं ये सोंचकर की शायद वहां से उन्हें कोई मदद मिले लेकिन डीन भी ब्राह्मणवादी मानसिकता से ग्रसित होता है और छात्रों को खरी- खोटी सुना देता है। डीन दलित छात्रों से कहता है – "आरक्षण से आए हो तो थोड़ा बहुत तो सहना ही होगा।"[11]

आज भूमंडलीकरण के युग में जहां सम्पूर्ण विश्व एक छोटी सी बस्ती बनकर रह गई है। गांव से शहर, शहर से महानगर और महानगर विदेश की यात्रा तय कर ली गई है। इस तरह दूरियां कम हो गई है। बाजार ने सर्वत्र अपना परचम लहराया है। लोग जमाने के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रहें हैं। शैक्षिक तथा वैज्ञानिक उन्नति का भरपूर फायदा उठा रहें हैं। पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण कर रहें हैं। स्वयं को अंग्रेजी दा कहवाकर गर्व महसूस कर रहें हैं। ऐसे में समाज में जातिगत भेद जैसी बात बहुत बेमानी सी लगती है। समझने वाली बात यह है कि इतना सब कुछ बदलाव होने के बाद भी जो एक चीज नहीं बदला है वो है समाज में जातिगत भेदभाव। बस अंतर इतना ही है कि जो आज से वर्षो पहले खुले तौर पर होता था आज वही अंदरूनी तौर पर होता है। बाबा साहब ने अंतरजातीय विवाह इसलिए किया था ताकि समाज में जातिबंधन को खत्म किया जा सके और रोटी-बेटी का मेल हो सके। बाबा साहब के इन्हीं विचारों को मानते हुए आज के बहुत से युवा अंतरजातीय विवाह की ओर अग्रसर हो रहें हैं। जयप्रकाश कर्दम की कहानी 'नो बार' इसी बात का संकेत करती हैं। जहाँ एक ओर कुछ असामाजिक तत्व समाज में जाति भेद को बनाए रखना चाहते हैं वहीं दूसरी ओर राजेश जैसे नौजवन युवक भी हैं जो जातिबंधन से मुक्त युक्त समाज बनाना चाहते हैं। जयप्रकाश कर्दम राजेश के विषय में बताते हुए कहते हैं कि – "अंतरजातीय विवाह की बात वह तभी से सोंचने लगा था, जब वह यूनिवर्सिटी में पढ़ता था। बाद में नौकरी में आने के बाद उसने अपना पक्का मन बना लिया था कि वह शादी किसी योग्य लड़की से ही करेगा चाहे वह अपनी जाति को ही या किसी अन्य जाति की।"[12]

राजेश एक अखबार में इस्तिहार देखता है कि एक सुन्दर सुशिक्षित कन्या के लिए सुन्दर संस्कारी पढ़ा लिखा अच्छा कमाने वाला वर चाहिए जिसमें कास्ट नो बार लिखा था मतलब कि कोई भी कास्ट चलेगा। उसे लगता है कि उसे जैसा रिश्ता चाहिए था ये एकदम वैसा ही है उसने तुरंत ही लड़की वालों से

सम्पर्क किया। मेल - मिलाप के बाद बातचीत आगे बढ़ी और जब शादी की तारीख रखने का समय आया तो लड़की के पिता को राजेश की बातों से शक होता है कि कहीं ये शेड्यूलकास्ट तो नहीं। मन ही मन वो बेचैन हो उठता है उसे लगता है कि जातिबंधन से मुक्त होने का मतलब यह तो नहीं कि हम दलितों के परिवार में अपनी बेटी ब्याह दे। अखबार में जिस पिता ने विज्ञापन के समय कास्ट नो बार लिखा था राजेश की कास्ट जानने के बाद एकदम से उस पिता के तेवर ही बदल गए थे। वो खिसियानी बिल्ली की तरह व्यवहार करने लगा था। वह बड़बड़ाते हुए अपनी बेटी से कहता है - "वह सब तो ठीक है हम जाति पति को नहीं मानते और हमने मैट्रिमोनियल में 'नो बार' छपवाया था, लेकिन फिर भी कुछ चीजें तो देखनी ही होती हैं। आखिर 'नो बार' का यह मतलब तो नहीं कि किसी चमार - चूड़े के साथ।"[13]

बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर द्वारा लिखित संविधान के अनुच्छेद 14 में इसी समानता की बात कही गई है। जिसमें यह वर्णित है कि - "राज्य अपने किसी भी नागरिक के साथ केवल धर्म, जाति, लिंग, नस्ल और जन्म - स्थान या इसमें से किसी भी आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा.... धर्म, जाति, मूलवंश, जन्म - लिंग के आधार पर दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों, सार्वजनिक मनोरंजन स्थलों, कूंओं, तालाबों, स्नान घाटों, सड़कों, में घुसने से नहीं रोका जा सकता है।"[14] इस तरह इसमें समानता की बात कही गई है। सोचने की बात यह है कि डॉ. अम्बेडकर ने जिस समुदाय के लिए पूरा जीवन संघर्ष किया यहाँ तक कि अपनी पूरी जिन्दगी दांव पर लगा दी उस समुदाय को अब भी उन्हीं समस्याओं से जूझना पड़ रहा है जिसका विरोध बाबा साहब ने सदियों पहले किया था।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से दलित जीवन की स्थिति को दिखाने का भरसक प्रयास किया है। गैर दलित कहानीकारों द्वारा भी दलितों तथा अछूतों को लेकर बहुत सी कहानियां लिखी गई किन्तु उनके केंद्र में कभी दलित - विमर्श नहीं रहा, आदर्श में रची कहानियां दलितों की स्थिति तथा समस्याओ का वर्णन तो करती थी किन्तु सिर्फ शिक्षा देने के उद्देश्य से या फिर सुधार के लिए किन्तु इस बीमारी को समूल खत्म करने की बात नहीं करती थी। दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से न सिर्फ दलितों की समस्याओं को दिखाया बल्कि उन समस्याओं से मुक्त होने का रास्ता भी बताया। यथार्थ के वैविध्य के साथ - साथ दलित समाज का मनोविज्ञान भी इन्होने बारीकी से चित्रित किया है। आजादी के इतने वर्षो बाद भी, इतनी शैक्षिक और वैज्ञानिक उन्नति के बाद भी आज दलित तमाम तरह की चुनौतियों से जूझ रहा है। आज भी दलितों को सामाजिक भेदभाव का शिकार होना पड़ रहा है, आज भी दलितों को आरक्षण का दंश झेलना पड़ रहा है, आज भी दलितों को अशिक्षा - बेरोजगारी की मार झेलनी पड़ रही है, आज भी दलित अंतरजातीय विवाह के भेदभाव से गुजर रहें हैं, आज भी उनका आर्थिक और धार्मिक शोषण हो रहा है। अत : यह कहना अपवाद न होगा कि दलित कहानीकार अपनी कहानियों के द्वारा दलितों की इन तमाम समस्याओं को बड़ी बेबाकी के साथ समाज के समक्ष रखते हैं ताकि दलितों को लेकर समाज की मानसिकता में बदलाव आए और एक स्वस्थ तथा सुदृढ़ समाज का निर्माण हो सके।

सन्दर्भ :-

1. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र : ओमप्रकाश वाल्मीकि : राधाकृष्ण प्रकाशन : नई दिल्ली : पृष्ठ - 13
2. हिन्दी दलित कथा - साहित्य : रजत रानी मीनू : पृष्ठ - 57
3. बैल की खाल : सलाम : ओमप्रकाश वाल्मीकि : राधाकृष्णन प्रकाशन : दिल्ली : पृष्ठ - 33
4. वही : पृष्ठ - 35
5. साजिश : दलित कहानी संचयन : सम्पादक - रमणिका गुप्ता : प्रथम संस्करण 2003 : साहित्य अकादमी : पृष्ठ - 67
6. वही : पृष्ठ - 68
7. दलित साहित्य का समाजशास्त्र : हरिनारायण ठाकुर : भारतीय ज्ञानपीठ 2009 : पृष्ठ - 58
8. पच्चीस चौका डेढ़ सौ : दलित कहानी संचयन : सम्पादक : रमणिका गुप्ता : प्रथम संस्करण : 2003 : साहित्य अकादमी : पृष्ठ - 24
9. वही : पृष्ठ - 25
10. घुसपैठिए : हिन्दी कहानी : सम्पादक : आलोक रंजन : एस. जी. एस. एच. पब्लिकेशन : पृष्ठ - 99
11. वही : पृष्ठ - 101
12. नो बार : दलित कहानी संचय : सम्पादक - रामणिका गुप्ता : प्रथम संस्करण 2003 : साहित्य अकादमी : पृष्ठ - 52
13. वही : पृष्ठ - 60
14. भारत का संविधान : भारतीय संविधान सभा, भाग तीन : प्रकाशन - 194

आचार्यमिथिलाप्रसादत्रिपाठीमहोदयानां महाकाव्ये सामाजिकं समरसता

सुनीलदीप

शोधच्छात्रः पं.रविशंकरशुक्ल विश्वविद्यालयः, रायपुरम्

आचार्यमिथिलाप्रसादत्रिपाठीना रचिते सतनाभिगौरवमहाकाव्ये सामाजिक सौहार्दस्य भावाः अतीवगंभीर रूपेण प्रकटिताः वर्तन्ते। वसुधैव कुटुम्बकस्य भावः भारतीय सांस्कृतिक दर्शनस्य धारा वहन्तं भारतीय साहित्ये सर्वदा समावेशितं विद्यते। उदारता भावेन प्रेरितं भारतीय साहित्यं विश्वसमुदायस्य अहिंसा सामाजिक –सौहार्दस्य च व्यावहारिकं सन्देशं निश्चित रूपेण ददाति।

यस्याः सम्प्रति समग्रस्य जगतः तात्कालिक आवश्यकता विद्यते। वस्तुतः कविः लेखको वा स्वराष्ट्रस्य समाजस्य वा मस्तिष्कं मुखञ्च भवति। कविः दिव्य द्रष्टा समाजस्य शक्तिशालिनः सृष्टिकर्ता च अस्ति। समाजस्य राष्ट्रस्य च प्रतिबिम्बं शोभयितुं तस्य मुख्य कर्तव्यं वर्तते। समता विषये अस्माकं प्राचीन शास्त्रे वेदे अपि उक्तम् अस्ति।

सङ्गच्छ ध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जनानां उपासते।" [1]

सामाजिक समरसताः–

सतनामिगौरवमहाकाव्य सामाजिक एकता स्थापनार्थं अस्माकं सर्वेषां समीचीनमार्ग दर्शयितुं शक्नोति। दलित समुदायः वञ्चितसमुदायस्य श्रेण्यां समाविष्टोऽस्ति तान् आलिङ्ग्य घासिदासेन समाजिक सौहार्दस्य अद्भूतं उदाहरणं प्रस्तुतम्। उद्यत्वे यः दुष्टः दृश्यते सः सामाजिक सौहार्दस्य भावस्य नाशं करोति सः प्राचीनकाले नासीत्। समाजे विभाजन रेखा आकर्षयन्तः स्वार्थिनः जनाः विवेकं जनयन्ति। सम्प्रति वयं स्पष्टतया पश्यामः यत् समाजस्य दुर्बलीकरणाय सुनियोजितः प्रयासः क्रियते येन एकतः समाजस्य शक्तिः दुर्बलतां गच्छति अपरतः देशोऽपि दुर्बली भवति।

इत्तीसगढ़स्य सर्वासु विपदानां मूलं सामान्यजनानाम् दारिद्रम आसीत्। सामन्तशक्तिः तान् मर्दयति स्म, यस्य परिणामेण छत्तीसगढ़स्य निर्धनाः जनाः ते अपि मानवाः इति विस्मृतवन्तः आसन्।

घासीदासः स्वबन्धुभिः सह क्रियमाणस्य भेदभाव अन्यायस्य च अत्यन्तं दुखितः आसीत्। सः शनैः शनैः सर्वं अवगच्छन् आसीत्। अन्ततः 1620 ई. तमे वर्षे पूर्णसामाजिकसमता "इति उद्घोषं दत्त्वा अन्यायस्य, उत्पीडनस्य च विरुद्धं युद्धं कर्तुं दृढनिश्चयः अभवत्।

मिथिलाप्रसादत्रिपाठी इत्यस्य सतनामिगौरवमहाकाव्यस्य नायकस्य घासीदासस्य छत्तीसगढ़ सामाजिकन्यायः केवलं नारा (उद्घोषणा) एव नासीत् ; अपितु समाजस्य दुर्बलतामन्यक्तिभिः अपि समानतायाः सह सामाजिकन्यायं प्राप्तम्। जनानां मध्ये किमपि प्रकारस्य वैरभावः विरोधः वा नासीत् न च उच्चनीच भावः आसीत्। गुरूघासीदास मनखे मनखे एक समानष इति उद्घोषं दत्तवान। सर्वे मनुष्याः समानाः सन्ति। सर्वे मनुष्याः जन्मतः समानास्सन्तिः, सर्वे मनुष्याः समानवयुक्ताः समानप्राकृतिक – सिद्धान्ताधारिताः भवन्ति। कर्मणानुसारं तस्य लक्षणं भिन्नं भवति। न कश्चित् व्यक्तिः कुटुम्बविशेषे, धर्मे जातिविशेषे वा जन्म प्राप्य महान् वा नीचर्वा भवितुमर्हति। गुरुघासीदासः समाजे प्रचलित असमानता, अस्पृश्यता, उच्चनीचभावना च उन्मूलनं कृतवान्।[2]

घासीदासकाले छत्तीसगढ़े शूद्रपशुमहिलानां घोर अत्याचारस्य सम्मुखी भवति स्म। शुद्राः जातिभेदेन पीडिताः आसन। स्त्रियः 'टोनहीं' इति वदन् उपद्रवं कुर्वन्ति स्म। गावः च हलेषु युग्मिताः भवन्ति स्म। अत्र दलितवर्गाय अस्मात् पूर्वं कदापि स्वस्य आन्तरिकबुद्धे उत्तेजनायाः अवसर न दत्तः। सामन्तव्यवस्थायाः पादाभ्यां पदायमानाः पदाभ्यमानाः एते जनाः तस्य पादयोः पदाभ्यां जातः इति चिन्तयितुं आगताः। एतेषां दलितानां निन्दा अभवत्। एते लघुवर्णेषु विभक्ताः आसन्। सा मौनेन कार्यं कुर्वन्ति आसीत्। सा स्वस्य परिश्रमस्य कृते किमपि न प्राप्नोति स्म। तथापि येषां शारीरिकश्रमेण ब्राह्मणानाम् आधिपत्यं क्षत्रियाणां समृद्धिः वैश्यानां धनं च आश्रितं कुतः आसन्? हिन्दू समाजस्य महत्वपूर्ण भागः अभवत् अपि च सा "जघन्य प्रभावो हि सः" इति उच्चते स्म।[3]

गुरूघासीदासः दलित समुदायस्य प्रत्येक व्यक्तिं आलिङ्गतवान्निति अपि प्रसिद्धं विद्यते गुरूघासीदासः कथ्यते यत् –

समतयैव सुखं परमात्मनो विषमताऽस्ति च दुःखताऽधुना।
समतया भुवनस्य मता स्थितिर्विषमता प्रथिताऽस्ति विनाशने।।[4]

यदुपकारकला समतामतिर्विषमताऽप्यपकाररता सदा।
सुजनताऽस्ति समे विषमे तथा जगति दुर्जनता च विलोकयते।।[5]
अधिगतं छलतो बलतः सुखं निजकृतं परतश्च विकर्षणम्।
बहति रागमतिर्विकृतिं सदा, विषमता परिपालनतोऽखिलम्।।[6]

आचार्यमिथिलाप्रसादत्रिपाठीना जनकल्याणस्य उदात्तभावेन सतनामिगौरवमहाकाव्यस्य रचना कृता। महाकाव्यस्य नायकः गुरूघासीदासः जनानां कृते सर्वं त्यागं कृतम। सतनामिगौरव महाकाव्यं सामाजिकन्यायस्य समानतायाश्च यथार्थं चित्रणं विद्यते।

महाकाव्यनायक गुरूघासीदासः शोकग्रस्त-दलितसमुदायस्य शोकनिवारणं कृतवान्। गुरूघासीदासः दलित समुदायस्य प्राणाः रक्षिताः। दलितसमुदायस्य निराश जनानां अपि प्राणत्यागात् उद्धारितम्।

सतनाभिगौरवमहाकाव्यस्य नायकः घासीदासः मानवतायाः महान स्तरोऽस्ति। तस्य दृष्ट्या समग्रः मानवसमाजः समानोऽस्ति। समभावेन सर्वान् पश्यति, मिलति च।

गुरुमति समुदेति हितेच्छ्या परनिपीड नबोधविरोधिता।
परजनोपकृतिश्च मनुष्यता, समतयैव सदा परिलभते।।" [7]
समतया निजता परता च नो. परहिताचरणं पर चिन्तनम्।
भवति चात्मनिरीक्षणपद्धतिः, प्रकटिता जनलोकहितैषिणी।।[8]
मनसि यस्य समत्वमतिः सदा, वचसि चापि भवेज्जनसम्मता।
न कुरुतेऽखिललोकहितं यदा, विषमतामतिको न जनैर्मतः।।[9]

अस्माकं देशे जाति आधारेण समाजस्य विभाजनं कदापि न आसीत्। समग्रः समाजः एक शरीरवत् आसीत् यदा कस्मिन्नपि भागे वेदना भवति तदा सर्वं शरीरं अस्वस्थं भवति। तथैव समाजस्य अवधारणा अपि तादृशी अस्ति यद्यपि समाजस्य कोऽपि भागः वञ्चितो भवति तर्हि अस्मांक देशे जाति-आधारित राजनीत्याः कारणात्समाजे विभाजनस्य बीजानि रोपितानि।

सामाजिकसौहार्दस्य अर्थः जातिभेदं अस्पृश्यतां च निवारयित्वा जनानां मध्ये परस्परं प्रेम्णः सौहार्दं च वर्धयितुं समाजे एकता स्थापयितुं प्रयत्नः अस्ति। सामाजिक समरसता सामाजिक समतायाः एकः रूपः अस्ति। वेदेषु सामाजिक समरसताः-

वेदाः न कस्यचित् एकस्य व्यक्तेः, वर्गस्य, समुदायस्य, सम्प्रदायस्य इत्यादीनां कृते अपितु समग्रस्य जगतः कल्याणस्य मार्गं प्रशस्तं कुर्वन्ति। वेद उद्घ्योषयति- यत्र विश्वं भवत्यनीडम्। अर्थात् वेदाः तादृशं नीडं यस्मिन् समग्र जगत् एकेन वसति। अस्मात् दृष्ट्या ऋग्वेदे उक्तं यत्' विश्वामित्रः रक्षति ब्रह्मेदं भारत-जनम् इति उक्तम्।

वेदेषु समतायाःचर्चा कृता अस्ति। प्रत्येकजीवेन वेदस्य अध्ययनं अवश्यमेव कर्तव्यम्। येन सर्वे भद्राः भवेयुः, सर्वे उत्तमं गन्तव्यं प्राप्नुयुः, सर्वे च समन्वयेन वसन्ति, एतत् एव वेदः उपदिशति, यथा-

अभयं मित्राद्भयमित्राद्भयं ज्ञाताद्भयं पुरो यः।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ।।[10]
संगच्छ्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानानां उपासते।। [11]
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकृतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।[12]

वाल्मीकि रामायणे सामाजिक सौहार्द :-

महर्षिवाल्मीकिरामायणे समाजस्य समतावादी व्यापकबुद्धिप्रकृतेः आदर्शरूपं प्रस्तुतं भवति। रामायणस्य नायकः श्रीरामः मानवतायाः महत् मानकं ददाति तस्य दृष्ट्या समग्रः मानव समाजः एकः अस्ति। ते सर्वान् समानादरेण पश्यन्ति, मिलन्ति च।[13]

यथा उक्तम् -

औरसानिव रामोपि जुगोप पितृवत्प्रजाः।
सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वधर्मपरायणः।।
"दशवर्षसहस्त्राणि रामो राज्यमुपास्त सः।[14]

संदर्भ

1. ऋग्वेद 10/19/13
2. शुक्ल, हीरालाल, गुरूघासीदास संघर्ष समन्वय और सिद्धान्त, सिद्धार्थ बुक्स दिल्ली
3. त्रिपाठी, आचार्य मिथिला प्रसाद सतनामि गौरवम महाकाव्याक न्यू भारीय वूक कार्पोरेशन न्यू दिल्ली
4. सतनामिगौरवम् 03/17/85
5. सतनामिगौरवम् 04/17/85
6. सतनामिगौरवम् 05/17/85
7. सतनामिगौरवम्12/17 पृ.सं.86
8. सतनामिगौरवम्11/17 पृ. सं.86
9. सतनामिगौरवम्113/17 पृ.सं.87
10. अथर्ववेद १९/९५/६
11. शु०य सं. ३६
12. ऋवेद स. १०/९९९/२-४१
13. वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड
14. वाल्मीकीय रामायण में हनुमत तत्त्व विवेचन

बहरिया विकासखंड, जनपद प्रयागराज की जनांकिकी का भौगोलिक विश्लेषण

धर्मेन्द्र कुमार यादव

शोध अध्येता भूगोल विभाग, मडियाहूँ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मडियाहूँ, जौनपुर (उ0प्र0)

डॉ० मनोज कुमार शुक्ला

असिस्टेंट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, मडियाहूँ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मडियाहूँ, जौनपुर (उ0प्र0)

संक्षेप–

जनांकिकी (Demography) का अर्थ है जनसंख्या का वैज्ञानिक अध्ययन। इसमें जनसंख्या की संरचना, आकार, वितरण, घनत्व, वृद्धि और विभिन्न जनसांख्यिकीय घटकों जैसे जन्म, मृत्यु, विवाह और प्रवास का विश्लेषण किया जाता है। यह मानव समाज और पर्यावरण के बीच अंतर्संबंधों को समझने में सहायक है। भौगोलिक अध्ययन में जनांकिकी विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह यह जानने में मदद करता है कि जनसंख्या स्थान और पर्यावरण के साथ किस प्रकार जुड़ी हुई है।

यह शोध पत्र बहरिया विकासखंड, जनपद प्रयागराज की जनांकिकीय विशेषताओं का भौगोलिक दृष्टिकोण से विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें जनसंख्या वितरण, घनत्व, लिंगानुपात, साक्षरता दर, आयु संरचना, सामाजिक-आर्थिक स्थितियों और जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्तियों का अध्ययन किया गया है। शोध का उद्देश्य है क्षेत्र में जनांकिकीय विविधताओं को समझना, जनसंख्या संरचना का प्रभावी विश्लेषण करना और इससे संबंधित भौगोलिक कारकों को पहचानना। इस शोध में द्वितीयक डेटा का उपयोग करते हुए क्षेत्रीय असमानताओं और जनांकिकीय पैटर्न को उजागर किया गया है। डेटा का संग्रह जनगणना रिपोर्ट और क्षेत्रीय प्रशासनिक रिपोर्टों से किया गया है। परिणामस्वरूप, शोध यह दर्शाता है कि जनसंख्या वितरण और संरचना प्राकृतिक संसाधनों, भूमि उपयोग, शिक्षा और आर्थिक गतिविधियों से गहराई से प्रभावित है।

यह शोध पत्र न केवल जनांकिकी के क्षेत्र में ज्ञान को समृद्ध करेगा, बल्कि क्षेत्रीय विकास योजनाओं और नीतिगत सुझावों के लिए भी एक आधार प्रदान करेगा।

कुंजी शब्द:– जनांकिकी, जनसंख्या, पर्यावरण, प्राकृतिक संसाधना, भूमि उपयोग, शिक्षा, जनगणना, जनसंख्या वितरण, लिंगानुपात, साक्षरता, आयु संरचना

प्रस्तावना–

भारत की जनसंख्या संरचना, घनत्व, वितरण एवं वृद्धि दर में निरंतर परिवर्तन हो रहे हैं, जिससे क्षेत्रीय विकास, संसाधन उपयोग, शहरीकरण एवं प्रवासन की जटिल प्रक्रियाएँ प्रभावित होती हैं। जनसंख्या की यह गतिशीलता किसी भी क्षेत्र की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विशेष रूप से ग्रामीण एवं अर्ध-शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या परिवर्तन के कारण रोजगार संरचना, बुनियादी सेवाओं की उपलब्धता, शिक्षा, स्वास्थ्य, तथा पर्यावरणीय दबावों पर सीधा प्रभाव पड़ता है। बहरिया विकासखंड, जनपद प्रयागराज, उत्तर प्रदेश का एक महत्त्वपूर्ण अर्ध-ग्रामीण क्षेत्र है, जहाँ कृषि आधारित अर्थव्यवस्था प्रमुख है, लेकिन औद्योगिकीकरण, बुनियादी ढांचे के विस्तार एवं प्रवासन के कारण जनसंख्या संरचना में निरंतर परिवर्तन देखा जा रहा है। क्षेत्र की जनसंख्या वृद्धि, लिंगानुपात, साक्षरता दर, श्रमशक्ति भागीदारी, प्रवासन प्रवृत्तियों एवं अन्य जनसांख्यिकीय कारकों का अध्ययन करना आवश्यक है ताकि इसके आर्थिक एवं सामाजिक विकास की संभावनाओं को समझा जा सके।

जनांकिकी शहरीकरण और प्रवासन के प्रभावों का विश्लेषण भी करती है। यह दिखाती है कि कैसे ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में प्रवास होता है और इसके परिणामस्वरूप शहरों पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता है। यह विकास योजनाओं और संसाधनों के प्रबंधन में भी सहायक होती है, ताकि स्वास्थ्य, शिक्षा, और आवास जैसी आवश्यक सेवाओं को प्रभावी ढंग से प्रदान किया जा सके।

इसके अतिरिक्त, जनांकिकी आर्थिक विकास और पर्यावरणीय प्रभावों को समझने में मदद करती है। यह यह आकलन करती है कि जनसंख्या वृद्धि दर और श्रम शक्ति का क्षेत्रीय और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है। साथ ही, यह यह दिखाती है कि बढ़ती जनसंख्या के कारण पर्यावरणीय समस्याएँ जैसे वनों की कटाई, भूमि-अपक्षय और जलवायु परिवर्तन कैसे उत्पन्न होते हैं।

जनसंख्या वितरण और घनत्व का विश्लेषण जनांकिकी का एक प्रमुख पहलू है, जो यह समझने में मदद करता है कि किन कारणों से कुछ क्षेत्रों में जनसंख्या अधिक है और अन्य क्षेत्रों में कम। प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता, जलवायु, और आर्थिक अवसर जैसे कारक इसमें मुख्य भूमिका निभाते हैं। इसके साथ ही, जनसांख्यिकीय संरचना जैसे उम्र, लिंग, जाति, और धर्म का अध्ययन यह समझने में सहायता करता है कि किसी क्षेत्र में मानव संसाधन कैसे विभाजित हैं और इसका समाज और अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है।

भौगोलिक जनांकिकी सरकारों और संगठनों को नीतियों और योजनाओं को तैयार करने में उपयोगी जानकारी प्रदान करती है। यह सुनिश्चित करती है कि क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर संसाधनों का प्रभावी उपयोग हो और विकास की योजनाएँ जनसंख्या की आवश्यकताओं के अनुरूप हों। इस प्रकार, जनांकिकी न केवल जनसंख्या की विशेषताओं का विश्लेषण करती है, बल्कि मानव और पर्यावरण के बीच जटिल संबंधों को समझने का भी एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है।

इस शोध का उद्देश्य बहरिया विकासखंड की जनांकिकी का भौगोलिक विश्लेषण करना है, ताकि क्षेत्र की सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता एवं भौगोलिक प्रभावों को स्पष्ट किया जा सके। शोध के अंतर्गत मुख्यत: जनसंख्या वितरण एवं घनत्व के भू-स्थानिक स्वरूप, जन्म एवं मृत्यु दर, लिंगानुपात, तथा प्रवासन की वर्तमान प्रवृत्तियों, शिक्षा, स्वास्थ्य, एवं रोजगार संरचना का अध्ययन किया जाएगा। इसके अलावा, क्षेत्र की जनसंख्या वृद्धि में जलवायु, स्थलाकृति एवं परिवहन नेटवर्क की भूमिका तथा सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) के संदर्भ में जनसंख्या नीतियों एवं योजनाओं का विश्लेषण भी किया जाएगा।

हाल के वर्षों में कई राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय अध्ययनों ने ग्रामीण एवं अर्ध-शहरी क्षेत्रों की जनसांख्यिकीय संरचना के महत्त्व को उजागर किया है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) की मानव विकास रिपोर्ट (2018) ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि और सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) की पूर्ति में उनके योगदान की चर्चा करती है। नीति आयोग की भारत में जनसंख्या नीति 2019 रिपोर्ट, जिसमें जनसंख्या स्थिरीकरण और विकास के नए आयामों पर चर्चा की गई है। भारतीय जनगणना 2011 जिसमें लिंगानुपात, साक्षरता दर एवं जनसंख्या घनत्व के नवीनतम आँकड़े उपलब्ध होंगे। राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (NSO) की श्रमशक्ति भागीदारी रिपोर्ट (2019), जो ग्रामीण क्षेत्रों में श्रमशक्ति के लिंगानुपात, बेरोजगारी दर एवं प्रवासन कारकों का विश्लेषण करती है। IPCC की जलवायु परिवर्तन रिपोर्ट (2019) जिसमें ग्रामीण जनसंख्या वितरण एवं पर्यावरणीय प्रभावों के बीच संबंधों पर प्रकाश डाला गया है।

शोध के अंतर्गत द्वितीयक आँकड़ों का उपयोग किया जाएगा। द्वितीयक डेटा हेतु जनगणना रिपोर्ट (2011), जिला सांख्यिकी पुस्तिका, एवं अन्य शैक्षणिक स्रोतों को आधार बनाया जाएगा। भौगोलिक सूचना प्रणाली (GIS) की सहायता से क्षेत्र की जनसंख्या वितरण, घनत्व, प्रवासन प्रवृत्तियों एवं अन्य जनसांख्यिकीय विशेषताओं का स्थानिक विश्लेषण किया जाएगा। इसके अतिरिक्त, तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से क्षेत्र की जनांकिकी को राज्य एवं राष्ट्रीय औसत से तुलना कर निष्कर्ष निकाले जाएंगे।

इस शोध से प्राप्त निष्कर्ष क्षेत्रीय योजना, नीति निर्माण, एवं सामाजिक विकास रणनीतियों को दिशा प्रदान करेंगे। अध्ययन से बहरिया विकासखंड में जनसंख्या संरचना की प्रमुख विशेषताओं को समझने में सहायता मिलेगी और इस क्षेत्र की रोजगार नीति, शिक्षा सुधार, बुनियादी सेवाओं की उपलब्धता, एवं पर्यावरणीय प्रबंधन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया जा सकेगा। अत: यह शोध पत्र बहरिया विकासखंड की जनसांख्यिकीय विशेषताओं एवं स्थानिक विश्लेषण पर एक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करेगा, जो स्थानीय प्रशासन, शोधकर्ताओं एवं नीति निर्माताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

शोध क्षेत्र का भौगोलिक परिचय:-

बहरिया विकासखंड, उत्तर प्रदेश के प्रयागराज जनपद का एक महत्त्वपूर्ण अर्ध-ग्रामीण क्षेत्र है, जिसकी भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक संसाधन, जनसंख्या संरचना, एवं सामाजिक-आर्थिक विशेषताएँ इसे विशेष अध्ययन हेतु उपयुक्त बनाती हैं। यह क्षेत्र कृषि प्रधान है, लेकिन शहरीकरण एवं प्रवासन के प्रभावों के कारण इसकी जनसांख्यिकीय एवं भौगोलिक विशेषताओं में निरंतर परिवर्तन हो रहा है।

1. स्थान एवं भौगोलिक स्थिति-

बहरिया विकासखंड प्रयागराज जनपद के उत्तरी भाग में स्थित है। यह 25°32′ से 25°45′ उत्तरी अक्षांश तथा 81°50′ से 82°10′ पूर्वी देशांतर के बीच स्थित है। इस क्षेत्र की सीमाएँ निम्नलिखित क्षेत्रों से मिलती हैं-

उत्तर में: प्रतापगढ़ जनपद के सीमावर्ती क्षेत्र

दक्षिण में: विकासखंड बहादुरपुर

पूर्व में: प्रतापगढ़ एवं जौनपुर जनपद (फूलपुर विकासखंड)

पश्चिम में: सोरांव विकासखंड एवं मऊआइमा विकासखंड

बहरिया का भौगोलिक विस्तार इसे सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बनाता है, क्योंकि यह ग्रामीण एवं शहरी प्रभावों के मध्य स्थित है।

2. स्थलाकृति एवं भूगर्भीय संरचना

बहरिया विकासखंड मध्य गंगा के समतल मैदान में स्थित है, जो गंगा और उसकी सहायक नदियों द्वारा निर्मित जलोढ़ मैदान का हिस्सा है। यहाँ की स्थलाकृति मुख्यत: निम्नलिखित विशेषताओं से प्रभावित होती है-

मैदानी भूभाग: क्षेत्र की भूमि उर्वर एवं समतल है, जो कृषि के लिए अनुकूल है।

नदी तट एवं बाढ़ संभावित क्षेत्र: क्षेत्र में कई छोटी नदियाँ बहती हैं, जिनमें से कुछ वर्षा ऋतु में बाढ़ प्रभावित होती हैं। इनमें मनसाइता नदी प्रमुख है।

मिट्टी का प्रकार: यहाँ मुख्य रूप से गंगा द्वारा लाई गई जलोढ़ मिट्टी पाई जाती है, जो कृषि के लिए अत्यंत उपयुक्त मानी जाती है (सिंह, 2019)।

3. जलवायु एवं वर्षा

बहरिया विकासखंड में उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु पाई जाती है, जो चार मुख्य ऋतुओं में विभाजित की जा सकती है-

गर्मी (मार्च-जून)- इस दौरान तापमान 25°C से 45°C तक पहुँच सकता है।

वर्षा ऋतु (जुलाई-सितंबर)- दक्षिण-पश्चिमी मानसून के प्रभाव से वर्षा होती है, जिसकी औसत वार्षिक मात्रा लगभग 900-1100 मिमी होती है।

शरद ऋतु (अक्टूबर-नवंबर)- यह एक संक्रमणकालीन मौसम है, जब तापमान एवं आर्द्रता कम होने लगती है।

सर्दी (दिसंबर-फरवरी)- इस दौरान न्यूनतम तापमान 5°C से 10°C तक गिर सकता है

(IMD, 2019)।

4. जल संसाधन

बहरिया विकासखंड में जल संसाधनों की स्थिति कृषि एवं पेयजल आपूर्ति के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है-

क्षेत्र में एक छोटी नदी, तालाब एवं झीलें स्थित हैं।

जलस्तर मानसून के दौरान बढ़ता है, लेकिन गर्मी के महीनों में भूजल स्तर गिरने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

भूजल का अत्यधिक दोहन सिंचाई के लिए किया जाता है, जिससे कुछ क्षेत्रों में जल संकट उत्पन्न होने लगा है (CGWB, 2018)।

5. कृषि एवं भूमि उपयोग

बहरिया विकासखंड की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर आधारित है। यहाँ उगाई जाने वाली प्रमुख फसलें हैं-

खरीफ फसलें: धान, मक्का, बाजरा

रबी फसलें: गेहूँ, चना, सरसों

अन्य फसलें: गन्ना, दलहन, तिलहन

भूमि उपयोग संरचना निम्नलिखित प्रकार की है-

70 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र कृषि भूमि के अंतर्गत आता है।

10 प्रतिशत भूमि वनस्पति एवं चारागाह क्षेत्र में प्रयुक्त होती है।

15% भूमि बस्तियों, सड़कों एवं औद्योगिक गतिविधियों के लिए प्रयुक्त होती है।

5% भूमि जल निकायों एवं अन्य गैर-कृषि उपयोगों के अंतर्गत आती है (Anonymous, 2019)।

6. जनसंख्या संरचना

बहरिया विकासखंड की जनसंख्या वृद्धि दर, लिंगानुपात, साक्षरता एवं रोजगार संरचना निम्नलिखित विशेषताओं को दर्शाती है-

जनसंख्या (2021 अनुमान): लगभग 3.5 लाख

जनसंख्या घनत्व: 750-850 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर

लिंगानुपात: लगभग 920 महिलाएँ प्रति 1000 पुरुष

साक्षरता दर: 72 प्रतिशत (पुरुष 80 प्रतिशत, महिला 63 प्रतिशत)

आजीविका के प्रमुख स्रोत: कृषि, छोटे उद्योग, व्यापार एवं सेवा क्षेत्र

(District Statistical Handbook, Prayagraj, 2019)

7. परिवहन एवं बुनियादी ढांचा

सड़क मार्ग: राज्य राजमार्ग एवं जिला सड़कें क्षेत्र को प्रयागराज शहर एवं अन्य जिलों से जोड़ती हैं।

रेल मार्ग: नजदीकी रेलवे स्टेशन प्रयागराज जंक्शन है, जो क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर संपर्क प्रदान करता है।

बिजली एवं जल आपूर्ति: क्षेत्र में घरेलू एवं कृषि आवश्यकताओं हेतु बिजली एवं जल आपूर्ति की व्यवस्था संतोषजनक है (UPPWD, 2019)।

8. सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषताएँ

क्षेत्र की संस्कृति प्रयागराज जनपद की समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं से प्रभावित है। धार्मिक एवं सामाजिक आयोजनों में कुंभ मेला, माघ मेला, तथा स्थानीय त्योहार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यहाँ हिंदी एवं अवधी भाषा प्रमुख रूप से बोली जाती है (श्रीवास्तव, 2019)।

बहरिया विकासखंड का भौगोलिक परिप्रेक्ष्य इसे सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय दृष्टि से अध्ययन के लिए उपयुक्त बनाता है। क्षेत्र में जनसंख्या संरचना, आर्थिक विकास, प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता एवं पर्यावरणीय चुनौतियाँ इसे एक अनुसंधान हेतु प्रासंगिक क्षेत्र बनाती हैं। इस अध्ययन के माध्यम

से इस क्षेत्र की जनांकिकी एवं विकास प्रक्रिया को भौगोलिक दृष्टि से समझने का प्रयास किया जाएगा, जिससे क्षेत्रीय योजना, नीति निर्माण, एवं सतत विकास हेतु दिशा-निर्देश तैयार किए जा सकें।

उद्देश्यः-

बहरिया विकासखंड, जनपद प्रयागराज की जनांकिकी का भौगोलिक विश्लेषण करने हेतु इस शोध के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं-

1. बहरिया विकासखंड में जनसंख्या के स्थानिक वितरण, घनत्व एवं इसके भूगोलिक निर्धारकों (जैसे स्थलाकृति, जलवायु, प्राकृतिक संसाधन, एवं परिवहन नेटवर्क) का अध्ययन करना।
2. विभिन्न आयु वर्गों में लिंगानुपात की प्रवृत्तियों की पहचान करना तथा क्षेत्रीय विकास पर इसके प्रभावों का अध्ययन करना।
3. बहरिया विकासखंड में शिक्षा के स्तर, लिंगानुपात के अनुसार साक्षरता दर, विद्यालय नामांकन एवं शिक्षा संबंधी सुविधाओं की स्थिति का अध्ययन करना।
4. 8. जनसंख्या वृद्धि के कारण प्राकृतिक संसाधनों (जल, भूमि, वनों) पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन एवं सतत संसाधन प्रबंधन के संभावित समाधानों की पहचान करना।
5. 10. बहरिया विकासखंड में जनांकिकी एवं सतत विकास लक्ष्यों (SDG-3% स्वास्थ्य, SDG-4% शिक्षा, SDG-8% रोजगार, SDG-11% सतत नगरीकरण) के बीच संबंधों का विश्लेषण करना तथा नीति निर्माण हेतु सुझाव प्रदान करना।

इस शोध के माध्यम से बहरिया विकासखंड की जनसांख्यिकीय संरचना, उसके भूगोलिक एवं सामाजिक निर्धारकों तथा क्षेत्रीय विकास में इसकी भूमिका को व्यापक रूप से समझने का प्रयास किया जाएगा। इसके निष्कर्ष स्थानीय प्रशासन, नीति निर्माताओं एवं अनुसंधानकर्ताओं को इस क्षेत्र के सतत विकास हेतु रणनीतियाँ तैयार करने में सहायक होंगे।

बहरिया विकासखण्ड की जनांकिकी:-

बहरिया विकासखंड, उत्तर प्रदेश के प्रयागराज जनपद का एक महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक खंड है, जो अपनी विविध जनांकिकी विशेषताओं के कारण अध्ययन का एक प्रमुख क्षेत्र है। 2011 की जनगणना के अनुसार, यह क्षेत्र "12 न्याय पंचायतों, 87 ग्राम पंचायतों और 165 राजस्व ग्रामों'' में विभाजित है। इनमें से "156 ग्राम आबाद हैं, जबकि 9 ग्राम गैर-आबाद हैं'', जो क्षेत्र की जनसंख्या घनत्व और बसावट के स्वरूप को दर्शाता है।

जनसंख्या वृद्धि के संदर्भ में, "बहरिया विकासखंड का जनसंख्या घनत्व 2001 में 914 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर था, जो 2011 में बढ़कर 927.39 हो गया''। यह दर्शाता है कि इस क्षेत्र में जनसंख्या घनत्व राष्ट्रीय औसत (382 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी) की तुलना में काफी अधिक है। बढ़ती जनसंख्या घनत्व संसाधनों पर दबाव और शहरीकरण की प्रवृत्ति को दर्शाता है।

जनसंख्या संरचना और प्रवृत्तियों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि "बहरिया विकासखंड में जनसंख्या दबाव लगातार बढ़ रहा है, जो कृषि, जल संसाधनों और बुनियादी सुविधाओं पर प्रभाव डाल रहा है''। इस क्षेत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के अवसरों को बढ़ाकर सतत विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है। सरकार द्वारा "महिला सशक्तिकरण, शिक्षा योजनाएँ और ग्रामीण विकास कार्यक्रमों'' को प्रभावी ढंग से लागू करने से बहरिया विकासखंड की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को और मजबूत किया जा सकता है।

तालिका 1: बहरिया विकासखण्ड का प्रशासनिक परिचय, 2011

जांनकिकी वर्ष	विकास खण्ड	कुल न्याय पंचायत	कुल ग्राम पंचायत	कुल राजस्व ग्राम	कुल आबाद ग्राम	कुल गैर आबाद ग्राम
2011	बहरिया	12	87	165	156	9

श्रोतः जिला सांख्यिकी पत्रिका प्रयागराज, 2011, 2001

तालिका 1 से स्पष्ट है, कि बहरिया विकासखंड, जनपद प्रयागराज का एक महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक क्षेत्र है, जिसकी संरचना 2011 की जनगणना के अनुसार विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित है। इस विकासखंड में कुल "12 न्याय पंचायतें'' स्थापित हैं, जो स्थानीय प्रशासन को सुचारू रूप से संचालित करने में सहायक होती हैं। इसके अंतर्गत "87 ग्राम पंचायतें'' आती हैं, जो ग्रामीण स्तर पर शासन और विकास योजनाओं के कार्यान्वयन की मुख्य इकाइयाँ हैं।

इसके अतिरिक्त, बहरिया विकासखंड में कुल "165 राजस्व ग्राम'' हैं, जिनमें से "156 ग्राम आबाद'' हैं, अर्थात् इनमें लोग निवास करते हैं और कृषि, व्यापार एवं अन्य गतिविधियाँ संचालित होती हैं। वहीं, "9 ग्राम गैर-आबाद'' हैं, जिनका उपयोग कृषि भूमि, वन क्षेत्र, या अन्य कारणों से मानवीय बस्तियों के रूप में नहीं किया जाता है। इस प्रशासनिक संरचना से यह स्पष्ट होता है कि बहरिया विकासखंड में ग्रामीण विकास, भूमि उपयोग और जनसंख्या वितरण की स्थिति संतुलित रूप से स्थापित है। यह संरचना क्षेत्रीय विकास योजनाओं, जनसंख्या अध्ययन, एवं ग्रामीण प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अध्ययन हेतु महत्त्वपूर्ण संदर्भ प्रदान करती है।

तालिका 2: बहरिया विकासखण्ड, प्रयागराज जनपद तथा भारत में साक्षरता, 2011

जनगणना वर्ष	स्तर	पुरूष साक्षरता दर (प्रतिशत में)	महिला साक्षरता दर (प्रतिशत में)	कुल साक्षरता दर (प्रतिशत में)
2011	**बहरिया**	82.31	55.68	69.31
2011	**प्रयागराज**	82.55	60.97	72.32
2011	**भारत**	**82.14**	**65.46**	**74.04**

श्रोतः भारत की जनगणना, 2001, 2011, जिला सांख्यिकी पत्रिका प्रयागराज, 2011, 2001

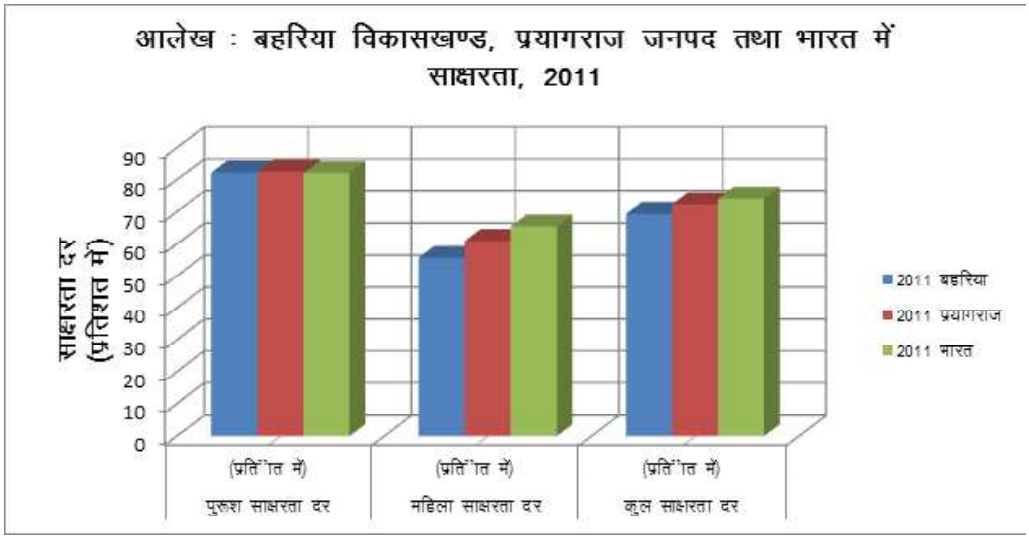

तालिका 2 तथा आरेख से स्पष्ट है, कि वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, बहरिया विकासखंड, प्रयागराज जनपद और संपूर्ण भारत की साक्षरता दर में उल्लेखनीय अंतर देखा गया। बहरिया विकासखंड में कुल साक्षरता दर "69.31 प्रतिशत'' दर्ज की गई, जो प्रयागराज जनपद की कुल साक्षरता दर "72.32 प्रतिशत'' और भारत की "74.04 प्रतिशत'' साक्षरता दर से कम है। यह इंगित करता है कि बहरिया विकासखंड में शैक्षिक विकास अभी भी अपेक्षाकृत धीमी गति से हो रहा है।

यदि लिंग आधारित साक्षरता की तुलना की जाए, तो पुरुषों की साक्षरता दर "82.31 प्रतिशत'' है, जो प्रयागराज जनपद (82.55 प्रतिशत) और भारत (82.14 प्रतिशत) के लगभग समान स्तर पर है। हालांकि, महिला साक्षरता दर में गंभीर असमानता दिखाई देती है। बहरिया में महिला साक्षरता दर "55.68 प्रतिशत'' है, जो प्रयागराज (60.97 प्रतिशत) और भारत (65.46 प्रतिशत) की तुलना में काफी कम है। यह लैंगिक असमानता को दर्शाता है, जिससे स्पष्ट होता है कि महिलाओं की शिक्षा के लिए विशेष प्रयासों की आवश्यकता है।

बहरिया विकासखंड में महिलाओं की शिक्षा में पिछड़ापन सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारकों से जुड़ा हो सकता है, जैसे कि पारंपरिक मान्यताएँ, संसाधनों की कमी, और बालिका शिक्षा के प्रति जागरूकता की न्यूनता। इस असमानता को कम करने के लिए "सरकार द्वारा विशेष साक्षरता अभियान, वयस्क शिक्षा कार्यक्रम, निःशुल्क शिक्षा योजनाएँ एवं लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा देने वाली नीतियाँ लागू करने की आवश्यकता है''।

यह विश्लेषण दर्शाता है कि बहरिया विकासखंड में शैक्षिक विकास को गति देने के लिए विशेष रूप से महिला शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है, जिससे संपूर्ण क्षेत्र की सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति को सुनिश्चित किया जा सके।

तालिका 3: बहरिया विकासखण्ड, प्रयागराज जनपद तथा भारत में लिंगानुपात, 2001 तथा 2011

जनगणना वर्ष	स्तर	लिंगानुपात	विवेचन
2001	बहरिया	918	39 अधिक
2001	प्रयागराज	879	
2001	**भारत**	**933**	
2011	बहरिया	946	35 अधिक
2011	प्रयागराज	901	
2011	**भारत**	**940**	

श्रोतः भारत की जनगणना, 2001, 2011, जिला सांख्यिकी पत्रिका प्रयागराज, 2011, 2001

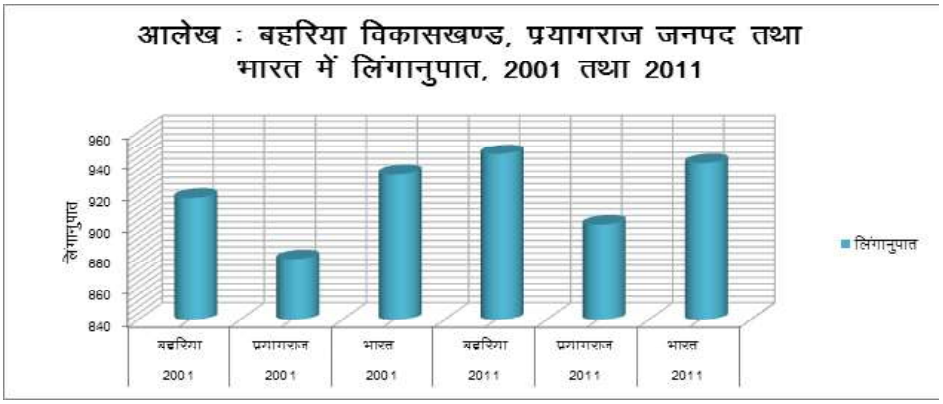

लिंगानुपात किसी भी क्षेत्र की सामाजिक संरचना और लैंगिक समानता का महत्त्वपूर्ण संकेतक होता है। तालिका 3 तथा आरेख से स्पष्ट है, कि वर्ष 2001 और 2011 की जनगणना के अनुसार, बहरिया विकासखंड, प्रयागराज जनपद और संपूर्ण भारत में लिंगानुपात में उल्लेखनीय परिवर्तन देखे गए।

"2001 की जनगणना'' के अनुसार, बहरिया विकासखंड में प्रति 1000 पुरुषों पर "918 महिलाएँ'' थीं, जो प्रयागराज जनपद के लिंगानुपात "879'' से "39 अधिक'' था। हालाँकि, राष्ट्रीय स्तर पर यह आंकड़ा "933'' था, जो बहरिया से अधिक था। यह दर्शाता है कि बहरिया में लिंगानुपात क्षेत्रीय स्तर पर अपेक्षाकृत बेहतर था, लेकिन राष्ट्रीय औसत से कम था।

"2011 की जनगणना'' में बहरिया विकासखंड के लिंगानुपात में सुधार हुआ और यह "946'' तक पहुँच गया। यह प्रयागराज जनपद के "901'' लिंगानुपात से "35 अधिक'' था और भारत के "940'' के लिंगानुपात से भी थोड़ा अधिक था। इस सकारात्मक वृद्धि के पीछे "सरकारी योजनाओं, महिला सशक्तिकरण कार्यक्रमों, स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार, तथा जन्म के पूर्व लिंग परीक्षण पर प्रतिबंध'' जैसे कारक हो सकते हैं।

हालाँकि, यह भी स्पष्ट है कि लिंगानुपात में अभी और सुधार की आवश्यकता है। महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और सामाजिक सुरक्षा को और मजबूत किया जाना चाहिए ताकि "लैंगिक भेदभाव को कम किया जा सके और लिंगानुपात को संतुलित स्तर तक पहुँचाया जा सके।'' इसके लिए "बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना, कन्या सुमंगला योजना, और महिला सशक्तिकरण से जुड़ी अन्य नीतियों'' को प्रभावी रूप से लागू करने की आवश्यकता है।

तालिका 4: बहरिया विकासखण्ड, प्रयागराज जनपद तथा भारत में जनसंख्या घनत्व, 2001 तथा 2011

जनगणना वर्ष	स्तर	जनसंख्या घनत्व (व्यक्ति प्रति वर्ग कि0मी0 में)	विवेचन
2001	बहरिया	914	14 अधिक
2001	प्रयागराज	900	
2001	**भारत**	**324**	
2011	बहरिया	927.39	11 अधिक
2011	प्रयागराज	1086	
2011	**भारत**	**382**	

श्रोत: भारत की जनगणना, 2001, 2011, जिला सांख्यिकी पत्रिका प्रयागराज, 2011, 2001

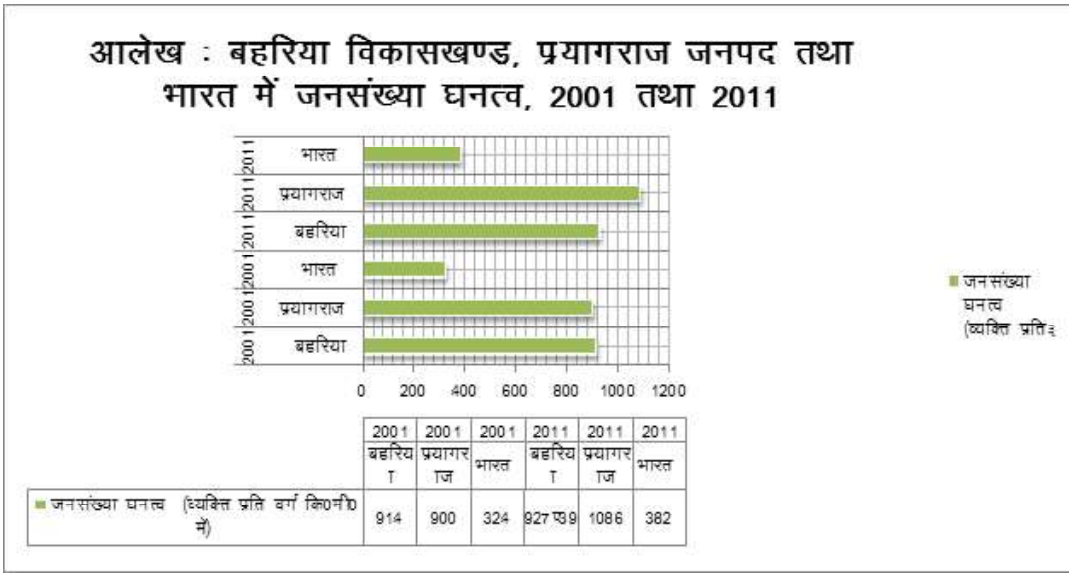

जनसंख्या घनत्व किसी क्षेत्र की जनसंख्या दबाव और संसाधनों के उपयोग की तीव्रता को दर्शाने वाला महत्त्वपूर्ण संकेतक है। तालिका 4 तथा आरेख से स्पष्ट है, कि 2001 और 2011 की जनगणना के अनुसार, बहरिया विकासखंड, प्रयागराज जनपद और संपूर्ण भारत में जनसंख्या घनत्व में बढ़ोतरी दर्ज की गई।

"2001 की जनगणना'' के अनुसार, बहरिया विकासखंड का जनसंख्या घनत्व "914 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर'' था, जो प्रयागराज जनपद के "900 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर'' से "14 अधिक'' था। राष्ट्रीय स्तर पर यह आंकड़ा मात्र "324 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर'' था, जो यह दर्शाता है कि बहरिया और प्रयागराज, दोनों क्षेत्रों में राष्ट्रीय औसत की तुलना में अधिक जनसंख्या घनत्व था।

"2011 की जनगणना'' में बहरिया विकासखंड का जनसंख्या घनत्व "927.39 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर'' हो गया, जिसमें हल्की वृद्धि देखी गई। हालांकि, प्रयागराज जनपद में यह "1086 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर'' तक पहुँच गया, जो दर्शाता है कि जिले में जनसंख्या वृद्धि बहरिया की तुलना में अधिक तेजी से हुई। वहीं, भारत का औसत जनसंख्या घनत्व "382 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर'' था, जो बहरिया और प्रयागराज दोनों से काफी कम था।

इस आँकड़े से स्पष्ट होता है कि "बहरिया विकासखंड में जनसंख्या घनत्व धीरे-धीरे बढ़ रहा है, जबकि प्रयागराज जनपद में यह वृद्धि अपेक्षाकृत अधिक तेज है''। यह प्रवृत्ति "शहरीकरण, सीमित भूमि संसाधनों पर बढ़ते दबाव, बुनियादी सुविधाओं की बढ़ती मांग और रोजगार के लिए जनसंख्या के केंद्रीकरण'' को दर्शाती है।

इस बढ़ते जनसंख्या घनत्व को संतुलित करने के लिए "सुनियोजित शहरीकरण, रोजगार के अवसरों का विकेंद्रीकरण, बेहतर बुनियादी ढाँचे का विकास और ग्रामीण क्षेत्रों में सुविधाओं का विस्तार'' आवश्यक है। इससे प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ते दबाव को कम किया जा सकता है और सतत विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है।

निष्कर्ष:-

बहरिया विकासखंड, प्रयागराज जनपद की जनांकिकी के भौगोलिक विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि यह क्षेत्र जनसंख्या वृद्धि, लिंगानुपात, साक्षरता दर और जनसंख्या घनत्व जैसे विभिन्न सामाजिक और आर्थिक मापदंडों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का साक्षी रहा है। "जनसंख्या घनत्व'' में निरंतर वृद्धि देखी गई, जो संसाधनों पर बढ़ते दबाव और शहरीकरण की ओर बढ़ते रुझान को दर्शाता है। "लिंगानुपात'' में सुधार हुआ है, लेकिन यह अभी भी संपूर्ण लैंगिक समानता प्राप्त करने से दूर है। "साक्षरता दर'' में वृद्धि दर्ज की गई, विशेष रूप से महिलाओं की साक्षरता दर में, हालाँकि यह अभी भी राष्ट्रीय औसत से कम बनी हुई है।

जनसंख्या संबंधी आँकड़ों का विश्लेषण यह इंगित करता है कि बहरिया विकासखंड में सामाजिक-आर्थिक असमानताएँ अब भी मौजूद हैं। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच सुविधाओं और संसाधनों का असमान वितरण जनसंख्या घनत्व में वृद्धि और अधोसंरचना पर दबाव को बढ़ा रहा है। इन चुनौतियों से निपटने के लिए "स्थानीय प्रशासन द्वारा नियोजित विकास रणनीतियों, सतत शहरीकरण, शिक्षा के प्रसार और महिला सशक्तिकरण'' पर ध्यान देना आवश्यक होगा।

इस अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों से यह स्पष्ट होता है कि यदि "शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, रोजगार के अवसरों और बुनियादी सुविधाओं'' का समुचित विकास किया जाए, तो जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न चुनौतियों को नियंत्रित किया जा सकता है। बहरिया विकासखंड में सतत और संतुलित विकास सुनिश्चित करने के लिए "नीतिगत सुधार, संसाधनों का न्यायसंगत वितरण और प्रशासनिक योजनाओं के प्रभावी कार्यान्वयन'' की आवश्यकता है।

संदर्भ:-

- Census of India. (2011). District Statistical Handbook, Prayagraj. Ministry of Home Affairs, Government of India.
- Central Ground Water Board (CGWB). (2018). Groundwater Assessment Report, Uttar Pradesh. Ministry of Jal Shakti, Government of India.
- India Meteorological Department (IMD). (2019). Annual Climate Report, Uttar Pradesh. Ministry of Earth Sciences, Government of India.
- Intergovernmental Panel on Climate Change (IPCC). (2019). Climate Change and Human Settlements. IPCC Sixth Assessment Report.
- Anonymous (2019) Ministry of Agriculture and Farmers Welfare. (2019). Agricultural Statistics at a Glance. Government of India.
- National Statistical Office (NSO). (2019). Periodic Labour Force Survey 2023. Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India.
- NITI Aayog. (2019). Population Policy in India: Challenges and Strategies. Government of India.
- Office of the Registrar General & Census Commissioner, India. (2011). Census of India 2011: Population and Housing Data. Government of India.
- Singh, R. B. (2019). Landforms and Soil Characteristics of the Ganga Plains. Springer, pp. 145-168.
- Srivastava, R. (2019). Cultural Heritage and Social Practices of Prayagraj. Oxford University Press.
- United Nations Development Programme. (2018). Human Development Report 2022: Uncertain Times, Unsettled Lives. UNDP.
- Uttar Pradesh Public Works Department (UPPWD). (2019). Infrastructure and Transport Report, Prayagraj Division. Government of Uttar Pradesh.

"कर्मभूमि" उपन्यास में अभिव्यक्त प्रेमचंद की राजनीतिक चेतना

डॉ० अनीता मिंज

सहायक आचार्य, दौलत राम महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शोध सारांश:- 'कर्मभूमि' उपन्यास प्रेमचंद जी की न केवल एक साहित्यिक कृति है अपितु उस समय की भारतीय राजनीति एवं समाज का प्रतिबिंब भी है।इस उपन्यास में स्वतंत्रता संग्राम, गांधीवादी विचारधारा ,किसान आंदोलन ,सामाजिक सुधार, धर्म एवं राजनीतिक द्वंद आदि सभी पहलुओं का समावेश है। कर्मभूमि उपन्यास भारतीय राजनीति एवं समाज को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। प्रेमचंद का यह उपन्यास साहित्यकार की संवेदना एवं समाज के प्रतिबिंब को बखूबी दर्शाता है। जिसमें राजनैतिक पहलू को प्रखर रूप में उकेरा गया है।

बीज शब्द:- सामाजिक सुधार, किसान एवं मजदूरों का आंदोलन, युवाओं की भूमिका, गांधीवादी विचारधारा, चरखा आंदोलन, स्वदेशी आंदोलन स्त्री शिक्षा, जेल यात्रा, सत्याग्रह, अहिंसा।

प्रस्तावना:- हिंदी उपन्यास जगत में प्रेमचंद 'उपन्यास सम्राट 'के नाम से जाने जाते हैं, क्योंकि हिंदी उपन्यास साहित्य के विकास में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने अपने उपन्यास में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी विषयों को जगह दी। उन्होंने कुल बारह उपन्यास लिखे। कर्मभूमि उपन्यास 1932 में लिखी गई थी। जब भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन चरम पर था। अत: कर्मभूमि में लेखक ने तत्कालीन समाज में होने वाली सभी राजनीतिक गतिविधियों ,आंदोलनों आदि का प्रमुखता एवं गहराई से वर्णन किया है। अत: इस उपन्यास में उस समय की राजनीतिक स्थिति का जीवंत दस्तावेज देखने को मिलता है। कर्मभूमि की रचना 30 के दशक में हुई, जब भारत में गांधी जी एवं अन्य नेताओं के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन, नमक के लिए सत्याग्रह जैसे आंदोलन चल रहे थे, साथ ही किसानों, मजदूरों, दलितों महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए अनेक समाज सुधारक भी अपने-अपने स्तर पर प्रयत्न कर रहे थे। ऐसे समय में प्रेमचंद जैसे जागरुक लेखक ने अपनी लेखनी द्वारा समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक दशा को सुधारने का बीड़ा उठाया। प्रेमचंद के कर्मभूमि उपन्यास में राजनीतिक चेतना के विविध रूप मिलते हैं, जिनमें प्रमुख हैं-

सामाजिक सुधार और राजनीतिक चेतना

सामाजिक सुधार की चेतना राजनैतिक जागरूकता का ही एक आयाम है। समाज में जब तक आंतरिक सुधार नहीं हो जाता तब तक राजनीतिक स्तर पर एक जुटता नहीं हो सकती। अत: 'कर्मभूमि' उपन्यास में प्रेमचंद ने दलितों, महिलाओं और मजदूरों की समस्याओं को दूर करने का काम किया है। गांधी जी ने भी 1930 में स्वाधीनता आंदोलन के समय अछूतोंध्दार का काम करना शुरू किया। प्रेमचंद चाहते थे कि समाज में समानता रहे। उस समय दलितों को मंदिर में प्रवेश करने की मनाही थी। प्रेमचंद ने गांधीजी की तरह ही आपसी भेदभाव को मिटाने के लिए दलितों के मंदिर प्रवेश का संघर्ष दिखाया है। कर्मभूमि उपन्यास की सुखदा नगर में आपसी भाईचारे एवं समाज में बराबरी के लिए 'मंदिर प्रवेश' का आंदोलन करती है। वह डटकर पुलिस के सामने खड़ी होकर सभी को ललकारते हुए कहती है-" भाइयों क्यों भाग रहे हो? यह भागने का समय नहीं है।छाती खोलकर खड़े होने का समय है। दिखा दो तुम धर्म के नाम पर किस तरह प्राणों को होम कर सकते हो। "[1] सुखदा का साहस देखकर पुलिस भी बन्दुकें वापस रख लेती है। सुखदा अपने संघर्ष एवं आंदोलन के कारण सत्याग्रहियों की तरह बार-बार जेल भी जाती है। यहां सुखद का चरित्रांकन कमला नेहरू की तरह स्वतंत्रता आंदोलन में स्त्रियों के नेतृत्व की याद दिलाता है। जब अंग्रेज सिपाहियों द्वारा मुन्नी बलात्कार की शिकार होती है, उसके उपरांत वह अपनी अस्मिता का बदला गोरे सिपाहियों की हत्या द्वारा लेती है। हत्या के जुर्म में मुन्नी पर मुकदमा चलाया जाता है। तब सुखदा मुन्नी के प्रति सहानुभूति रखते हुए अन्याय के विरोध में उसके साथ खड़ी होती है। वह कहती है -" अगर इसको फांसी हो गई तो मैं समझूंगी संसार से न्याय उठ गया। उसने कोई अपराध नहीं किया। जिन दुष्टों ने उस पर ऐसा अत्याचार किया उन्हें यही दंड मिलना चाहिए। मैं अगर न्याय के पद पर होती तो उसे बेदाग छोड़ देती। - - -उसने सारी बहनों का मुख उज्जवल कर दिया है। "[2] यहां सुखदा अन्याय के खिलाफ अपना विरोध प्रकट करती हुई कहती है-" एक दिन शोषण का, अन्याय का, दमन का अंत होगा ही और शोषितों की विजय होगी। "[3] अंत में अछूतों को मंदिर प्रवेश का अधिकार मिल जाता है। इस तरह सुखदा का कथन भी सच हो जाता है।

'कर्मभूमि' की मुन्नी, सलोनी, पठानिन अनपढ़ होकर भी अपने-अपने कर्म क्षेत्र में जागरूक होकर बड़ी निडरता के साथ काम करती हैं। ग्रामीण क्षेत्र की मुन्नी गोरों के द्वारा बलात्कार का शिकार होने के बावजूद आत्महत्या जैसे कदम नहीं उठाती वह उन्हें स्वयं मारकर अपनी अस्मिता का बदला लेती है। मुकदमें से बरी होने के बाद वह अपने घर नहीं जाती। वह सुदूर गाँव में जाकर हरिजनों की बस्ती में उनके सामाजिक सुधार के लिए काम करती है। गांव में मुन्नी, सलोनी, एवं अमरकांत दलितों की उन्नति के लिए उन्हें स्वच्छ रहने, मदिरापान छोड़ने, मुर्दा मांस न खाने की सलाह देते हैं। अमरकांत गांव के दलित बच्चों को शिक्षित करने के लिए गाँव में स्कूल खोलते हैं। जो उस समय की विशेष आवश्यकता थी। गांधीजी भी स्वच्छता, शिक्षा आदि का प्रचार करते थे क्योंकि स्वास्थ्य और सुशिक्षित समाज ही अपने अधिकार के प्रति जागरूक और सचेत हो सकता है।

किसान, मजदूर आंदोलन और राजनीतिक चेतना

भारतीय समाज में किसानों एवं मजदूरों की दशा अत्यंत दयनीय थी। उस समय किसानों को कभी अकाल, तो कभी महामारी आदि के कारण मंदी का सामना करना पड़ रहा था। ऊपर से उन पर ब्रिटिश सरकार द्वारा करो की वसूली में शक्ति की जा रही थी।जमींदारों के अत्याचार और ब्रिटिश शासको की दमनकारी नीति का बोझ बढ़ता जा रहा था। इसके विरोध में 1920 के दशक में भारत के विभिन्न भागों में किसानों द्वारा आंदोलन किया जा रहा था। सन् 1929 से 31 के विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के कारण किसानों की हालत खस्ता हो चली थी। प्रेमचंद कर्मभूमि उपन्यास के नायक अमरकांत द्वारा किसानों की पीड़ा को महसूस करते हैं और उन्हें संगठित होकर आंदोलन करने की ओर प्रेरित करते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में किसान संगठित होकर कर बंदी के लिए आंदोलन करते हैं। जिसमें अमरकांत, मुन्नी, बूढ़ी काकी सलोनी, सलीम आदि भाग लेते हैं। कर्मभूमि की काकी सलोनी किसानों में जोश भरने और आंदोलन के लिए प्रेरित करने के लिए कहतीं हैं; "फरियाद करने से कुछ नहीं होगा, अपना अधिकार तो खुद लड़कर पाना होगा।[4] सलोनी काकी अपने हक के लिए सभी को लड़ना सीखाती है। 'गोदान' उपन्यास में प्रेमचंद ने किसानों की दुर्दशा एवं त्रासद स्थिति का बहुत ही मार्मिक वर्णन किया है।

वहीं ' कर्मभूमि' उपन्यास में नगर में मजदूर की समस्याओं को दूर करने एवं उनके रहने के लिए आवास की मांग की जाती है। जिसके लिए सुखदा और नैना आंदोलन की अगुवाई करती हैं। इस आंदोलन को सफल बनाने के लिए सकीना और उसकी बूढ़ी माँ पठानिन भी भाग लेती हैं। अंत में नैना का बलिदान आंदोलन को सफल बनाने में सहायक बनता है। कर्मभूमि की सभी नारियाँ आदोंलनों का नेतृत्व करतीं हैं। शिक्षा के प्रचार- प्रसार, पर्दा प्रथा की अवहेलना, 'अखिल भारतीय महिला परिषद्' (1927) की स्थापना आदि से महिलाओं में नवजागरण का प्रसार बड़े पैमाने में होने लगा था। गांधी जी के स्वाधीनता आंदोलन में भी स्त्रियों की भागीदारी से उसमें आत्मविश्वास आने लगा था। कर्मभूमि उपन्यास में प्रेमचंद ने सभी वर्गों के हितों को राजनीतिक हित से जोड़ा है इसलिए कर्मभूमि में किसान ,मजदूर आदि सभी के लिए आंदोलन करते और सत्याग्रह की राह पर चलते हुए सभी लोग दिखाई पड़ते हैं। जहां सभी अपने-अपने कर्म क्षेत्र में सफल भी होते हैं।

युवाओं की भूमिका और राजनीतिक जागरूकता

'कर्मभूमि' उपन्यास में प्रेमचंद युवा वर्ग के हाथों नेतृत्व की बागडोर सौंपते हैं। अमरकांत, सुखदा, नैना, सोफिया, सलीम, यास्मीन सकीना जैसे युवा पात्र राजनीति और समाज में सुधार लाने के लिए विभिन्न कार्यक्षेत्रों में भाग लेते हैं। अमरकांत अपने पिता के व्यापार पर ध्यान न देकर युवाओं में राजनीतिक जागरूकता फैलाने, दलितों के उध्दार, और किसानों के लिए काम करते हैं। सलीम भी सरकारी नौकरी छोड़कर ग्रामीण क्षेत्र में जाकर किसानों एवं धार्मिक सहिष्णुता के प्रचार- प्रचार के लिए काम करते हैं। वहीं सुखदा और नैना के नेतृत्व में नगर में मजदूरों के हक के लिए आंदोलन होता है। सुखदा के नेतृत्व में छुआछूत के भेदभाव को कम करने के लिए 'मंदिर प्रवेश' का आंदोलन होता है। मुन्नी अन्याय के खिलाफ अडिगता से खड़ी होती है। सोफिया महिलाओं को अधिकार दिलाने के लिए 'स्त्री शिक्षा' पर जोर देती है। वह 'स्त्री शिक्षा' के लिए संघर्ष करती हुई मोर्चा संभालती है।

गांधीवादी विचारधारा (चरखा आंदोलन, स्वदेशी आंदोलन, जेल यात्रा, सत्याग्रह अहिंसा, स्त्री शिक्षा आदि)

प्रेमचंद जी का काल (सन् 1905;1936) सामाजिक एवं राजैनतिक उथल- पुथल का काल था। एक ओर समाज में व्याप्त कुरीतियों के खिलाफ समाजसुधारक सुधार कार्य में जुटे हुए थे, वहीं ब्रिटिश सरकार से मुक्ति की उत्कंठा एवं आकांक्षा अपने चरम पर था। गांधी जी चाहते थे कि भारतीय समाज में सामाजिक जागरूकता सहित भाई चारा हो। इसके लिए तत्कालीन समाज की कुरीतियों को समाप्त करने का भी प्रयत्न कर रहे थे। अस्पृश्यता को जड़ से खत्म करने के लिए गांधी जी ने भी 'मंदिर प्रवेश' को आंदोलन का रूप दिया ताकि सभी वर्गों के लोग मिलकर राजनीतिक आंदोलनों में समानता के साथ भाग ले सकें। गांधी जी के सत्याग्रह, असहयोग आंदोलन एवं विभिन्न अवसरों पर किए जाने वाले अनशन का व्यापक प्रभाव राजनीति के क्षेत्र पर पड़ा। वे स्त्रियों की शिक्षा के पक्षपाती थे। गांधी जी ने 'नमक आंदोलन' में स्त्रियों को पर्दे की दीवार तोड़कर आगे आने का निमंत्रण दिया।वे चाहते थे कि स्त्रियां पुरुष की सहधर्मिणी, अर्धांगिनी एवं प्रेरणा स्रोत बने। 'कर्मभूमि 'उपन्यास में भी सोफिया चाहती है कि स्त्रियां शिक्षित हों। गांधी जी स्त्री- पुरुष के बीच आपसी समानता के पक्षपाती थे। वे लिखते हैं-" पत्नी पति की दासी नहीं बल्कि सहधर्मिणी है। दोनों एक दूसरे के सुख-दुख के समान भागीदार हैं और जितनी स्वतंत्रता पति को भला बुरा करने की है उतनी ही पत्नी को भी।"[5] प्रेमचंद जी भी गांधी जी की तरह स्त्री -पुरुष के बीच समानता के चाहते थे, जिसका उदाहरण हमें शिवरानी देवी द्वारा लिखे गए' प्रेमचंद घर में' नामक जीवनी में देखने को मिलता है। एक बार प्रेमचंद किसी जलसे से आकर वहां मिले फूलों का हार पत्नी शिवरानी देवी के गले पर डालते हुए कहते हैं -" मैं किसी बोझ को बिना तुम्हारे नहीं उठा सकता। मैं तो यहां तक समझता हूं कि कोई पुरुष बिना स्त्री के कुछ भी नहीं कर सकता। जब तक स्त्रियों का हाथ किसी काम में न लगेगा तब तक कोई भी काम पूरा नहीं पड़ सकता। जब घर-घर की स्त्रियां और पुरुष हिंदुस्तान की तरक्की में लगेंगे तभी कल्याण होगा।"[6] कर्मभूमि उपन्यास में अमरकांत एवं सुखदा बाद में परस्पर कंधा से कंधा मिलाकर एक दूसरे के काम में सहयोग करते हैं।

प्रेमचंद जी ने कर्मभूमि उपन्यास के हर आंदोलनों में स्त्रियों की भागीदारी दिखाई है। सुखदा, नैना, मुन्नी हरिजनों के उध्दार के लिए जी जान लगा देती हैं। किसानों की कर बंदी के लिए ग्रामीण क्षेत्र में आंदोलन होता है, वहीं नगर में मजदूरों के अधिकार के लिए मजदूरों का आंदोलन किया जाता है जिसमें सुखदा, नैना, सकीना पठानिन का संघर्ष सराहनीय है। अमरकांत गांधी जी के असहयोग आंदोलन का भी समर्थन करते हैं। भारत में स्वदेशी आंदोलन के समय चरखा का प्रचार प्रसार तेजी से बढ़ा। उपन्यास के नायक अमरकांत भी खादी पहनते हैं। वे शहर में गली- गली घूमकर खादी के प्रचार -प्रसार के लिए खादी बेचते हैं। खाली समय में वे चरखा चलाते हैं।

ग्रामीण क्षेत्र की बूढ़ी काकी सलोनी भी चरखा का प्रचार करतीं हैं। सुखदा की गिरफ्तारी एवं नैना का बलिदान आंदोलनों को सफलता प्रदान करता है। सुखदा नगर के मजदूरों के रहने के लिए आवास बनाना चाहती है, उसी भूमि पर चंद अमीर अपना फ्लैट बनवाना चाहते हैं। इस विषय पर सुखदा डा. शांति

कुमार के साथ म्यूनिसिपल बोर्ड जाकर अधिकारियों के सामने अपनी मांगे रखतीं हैं, किन्तु उसे अस्वीकार कर दिया जाता है। फलतः वह अपने नेतृत्व में सभी दलितों (धोबी, चमार मेहत्तर नाई कुम्हार आदि) के साथ मिलकर हड़ताल करती हैं। इसके लिए उसे जेल भी जाना पड़ता है। वह मजदूरों को हड़ताल के लिए उत्साहित करते हुए कहतीं हैं कि -"जिस समाज का आधार ही अन्याय पर हो उसकी सरकार के पास दमन के सिवा और क्या दवा हो सकती है, लेकिन इससे कोई यह न समझे कि यह आंदोलन दब जाएगा।उसी तरह जैसे कोई गेंद टक्कर खाकर और जोर से उछलती है, जितने ही जोरों की टक्कर होगी, उतने ही जोरों की प्रतिक्रिया होगी। मुझे गिरफ्तार कर लें। उन लाखों गरीबों को कहां ले जायेंगे। जिनकी आहें आसमान तक पहुंच रही हैं। यही आहें एक दिन किसी ज्वालामुखी की भांति फटकर सारे समाज और सारे समाज के साथ सरकार को भी विध्वंस्त कर देगी।"7 सुखदा की गिरफ्तारी के बाद इस आंदोलन की बागडोर बूढ़ी पठानिन एवं रेणुका देवी संभालती हैं। बूढ़ी पठानिन अपनी अगुवाई में जगह-जगह सभाएं ,जुलूस ,भाषण ,हड़ताल आदि करवाती है। रेणुका देवी अपनी सारी जायदाद बेचकर आंदोलन को सुचारू रूप से आगे बढ़ाने के लिए आर्थिक मदद करतीं हैं। बाद में वे दोनों भी जेल चली जाती हैं। अंत में नैना अपने पति के खिलाफ जाकर आंदोलन का नेतृत्व करती है और आंदोलन को सफल बनाने में अपना बलिदान देती है। जो स्वतंत्रता आंदोलन के लिए दिए गए बलिदानों की याद दिलाता है। मुन्नी विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के समय किसानों की कर बंदी के लिए सरकार के खिलाफ आंदोलन का नेतृत्व करती है और जेल जाती है। अमरकांत, मुन्नी आदि गांधी जी की तरह गांव के हरिजनों को साफ -सफाई एवं मुर्दा मांस न खाने की सलाह देते हैं। सकीना भी गांव जाकर अमरकांत, मुन्नी, सलीम आदि द्वारा चलाए गए 'कर बंदी' आंदोलन में जेल जाती हैं। गांव की बूढ़ी काकी सलोनी भी इस आंदोलन को सफल बनाने के लिए संघर्ष करती हुई जेल जाती है। गाँव में किसानों का आंदोलन जब उग्र होकर सरकार के खिलाफ जाकर उन्हें सबक सिखाने की बात करता है तब अमरकांत उन्हें समझाते हैं कि हमें अहिंसा के द्वारा अपने आंदोलन को सफल बनाना है।हिंसा करना अपराध है।इस उपन्यास में प्रेमचंद का आंदोलन उतना ही सक्रिय दिखाई पड़ता है जितना सक्रिय गांधी जी का राजनीतिक आंदोलन था। रामविलास शर्मा जी कहते हैं -"कर्मभूमि वास्तव में स्वाधीनता आंदोलन की गहराई और प्रसार का उपन्यास है"[8]

गांधी जी एवं प्रेमचंद की राजनीतिक चेतना में सामानता के बावजूद दोनों के विचार में नैतिकता एवं आध्यात्मिकता का फर्क दिखाई पड़ता है। इस विषय पर दयानंद पांडे लिखते हैं -"प्रेमचंद का प्रगतिवादी चेतना मार्क्सवाद या किसी भी राजनीतिक मताग्रह का परिणाम न होकर समकालीन संवेदना का प्रतिफलन है।"[9] वहीं डॉ.नत्थन सिंह भी प्रेमचंद में गांधीवादी दर्शन के बारे में कहते हैं कि "कुछ लोग प्रेमचंद को गांधीवादी चेतना के प्रतिपादन में खोजते हैं और कुछ लोग मार्क्सवादी दर्शन की अभिव्यक्ति में। यथार्थ में दोनों दृष्टियां संकुचित मस्तिष्क का परिणाम है। प्रेमचंद भारतेंदु के समान राष्ट्रीय चेतना तथा मानवीय संबंधों से जुड़े थे। प्रारंभ में उन्हें गांधीवाद ने आकर्षित किया था और बाद में मार्क्सवादी दर्शन ने। उनके लिए दर्शन प्रधान नहीं था, प्रधान था देश का समतामूलक स्वतंत्रता वातावरण।"[10] प्रेमचंद की अपनी स्वतंत्र राजनीतिक विचारधारा थी। वे तत्कालीन परिस्थितियों से खुद को जोड़कर साहित्यिक रचनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं।

निष्कर्ष :- 'कर्मभूमि' उपन्यास प्रेमचंद की कर्मभूमि के रूप में उजागर होती है। जिसमें प्रेमचंद ने सामाजिक, आर्थिक परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में कहानी को आगे बढ़ाया है। इस उपन्यास का राजनीतिक पक्ष सबसे ज्यादा प्रखर रूप में दिखाई पड़ता है। कर्मभूमि में स्त्री-पुरुष ,युवा सभी सामाजिक, आर्थिक क्षेत्र के साथ-साथ राजनीतिक क्षेत्र में भी प्रखरता के साथ कार्य करते हैं। एक सच्चे साहित्यकार होने के नाते प्रेमचंद तत्कालीन समाज के राजनीतिक एवं सामाजिक गतिविधियों से अपने आप को अलग नहीं रख पाते। कर्मभूमि उपन्यास में उस समय की राजनीतिक गतिविधियों से जुड़ी सभी पहलुओं पर चर्चा की गई है। चाहे वह किसान, गरीबों, मजदूरों, दलितों, स्त्रियों, राजनीतिक आंदोलन, असहयोग आंदोलन, चरखा आंदोलन, स्वदेशी आंदोलन, सत्याग्रह, अहिंसा आदि सभी पक्षो पर प्रेमचंद की लेखनी समान रूप से चलती है। प्रेमचंद के नायक, नायिकाओं की भूमिका सभी क्षेत्रों में स्पष्ट दिखाई पड़ती है। प्रेमचंद गांधीवादी राजनीतिक विचारधारा से जुड़ते हुए भी स्वयं को गांधीवादी नहीं मानते। वे 'चेंज ऑफ हार्ट' के सिद्धांत पर विश्वास करते थे। यही कारण है कि 'कर्मभूमि' उपन्यास की रचना में प्रेमचंद अपने-अपने क्षेत्र में सभी नायक नायिकाओं को प्रवृत दिखाते हैं। उपन्यास का अंत कर्म क्षेत्रों के संघर्ष एवं सफलता के साथ ही होता है। इस दृष्टिकोण से प्रेमचंद की कर्मभूमि एक सफल रचना मानी जा सकती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. प्रेमचंद, कर्मभूमि, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्रथम संस्करण 1932, पृष्ठ संख्या- 209.
2. वही-पृष्ठ संख्या-215
3. वही-पृष्ठ संख्या-267.
4. वही-पृष्ठ संख्या-325.
5. भवानी दत्त पंड्या (अनु.), संकलन- आर.के.प्रभु तथा यू.आर.राव- महात्मा गांधी के विचार, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, दिल्ली, प्रथम संस्करण- 1994, पृष्ठ संख्या- 195.
6. शिवरानी देवी- प्रेमचंद घर में, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, संस्करण -1956, पृष्ठ संख्या 205.
7. प्रेमचंद -कर्मभूमि, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्रथम संस्करण -1932, पृष्ठ संख्या -257 .
8. रामविलास शर्मा -प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय संस्करण- 1967 पृष्ठ संख्या-85.
9. संपा.-दयानंद पांडेय- प्रेमचंद -व्यक्तित्व और रचना दृष्टि, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण- 1982, पृष्ठ संख्या-113.
10. डॉ.नत्थन सिंह -प्रेमचंद : मूल्यांकन और मूल्यांकन, विभूति प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण- 1982, पृष्ठ संख्या-32

हिन्दी दलित कहानियाँ : भोगा हुआ यथार्थ

डॉ. पूनम चालिया

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, माता सुन्दरी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध संक्षेप: – दलित विमर्श या फिर दलित चेतना हिन्दी कहानी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय रहा है। दलित कहानी कहा, सुना या फिर देखा हुआ नहीं बल्कि भोगा हुआ यथार्थ है। दलित कहानियाँ कहानी मात्र नहीं बल्कि यह वो दर्द है जिसको सदियों तक दलितों ने झेला है, जिसकी कराह आज भी दलित कहानियों में सुनाई देती है। प्रत्येक दलित कहानीकार को कभी न कभी किसी न किसी स्थिति में, किसी न किसी रूप में इस दर्द से होकर गुजरना पड़ा है। उसे जातिगत भेदभाव, अन्याय, अपमान, उपेक्षा, तिरस्कार आदि का शिकार होना पड़ा है। उसकी वही पीड़ा उसे एक बेचौन मानव बनाती है जिसके प्रतिक्रियास्वरूप वो अपनी कलम को धार देता है और अपनी रचनाओं में अपने उस दर्द, पीड़ा, तड़प को उकेर देता है। दलितों की स्थिति पर बहुत से गैर दलित साहित्यकारों ने भी कलम चलाई है किन्तु उनकी लेखनी में सहानुभूति के स्वर मिलते हैं जो दलितों का दर्द बयां करने में काफी नहीं हैं। गैर दलित साहित्यकारों द्वारा लिखी रचनाएं दलितों की संवेदना को सही ढंग से अभिव्यक्त करने में सफल न हो पाई। उन पर आरोप लगाया गया कि वो दलितों के प्रति झूठी संवेदना व्यक्त कर रहें हैं। यदि बात की जाए हिन्दी कहानियों में दलित चिंतन की तो यह विषय बहुत चिंतनीय है। दलितों तथा अछूतों को लेकर जो भी कहानियाँ लिखी जा चुकी हैं या फिर लिखी जा रही हैं उनमें एक बात सामान्य है और वो है दलित कहानीकारों की स्वानुभूति।

बीज शब्द: – उपेक्षित, उत्पीड़न, हतोत्साहित, वंचित, दरिद्रता, विडंबना, निपुण, व्याख्यायित, मवेशी, अवरुद्ध, आह्वान, स्मारिका, विनष्ट, दलन, दमित, हाशिए, स्वानुभूति, हरवाही, चरवाही, पराकाष्ठा, विषमता, साजिश, सुदृढ़, इस्तिहार आदि।

भूमिका: – दलित शब्द को लोग अनेक नामों से सम्बोधित करते हैं जैसे – दलित, दमित, वंचित, शोषित, छलित, उपेक्षित, बहिष्कृत, दबाया हुआ, हाशिए पे किया हुआ आदि। दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित शब्द को इस तरह से व्याख्यायित किया है – "जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनष्ट, मर्दित, पस्त – हिम्मत, हतोत्साहित, वंचित आदि।"[1]

दलित समाज के यथार्थ को सही मायने में सातवे – आठवे दशक में दलित लेखकों द्वारा ही वास्तविक स्तर पर उभारा गया। दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से दलित समाज के उन महत्वपूर्ण बिंदुओं को तथा उन घटनाओं को उजागर किया है जिससे अन्य समाज अभी तक अनभिज्ञ था। दलित कहानीकार अपने समाज, उसकी अस्मिता और अधिकारों के प्रति सचेत है। वह अपने समाज को सुदृढ़ करने के लिए संघर्षरत है। तभी तो दलित कहानियां स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व, दया, करुणा, सहयोग आदि मानवीय गुणों से युक्त है। हिन्दी दलित कहानी का आरंभ कब से हुआ? इसको लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। इस विषय में डॉ. रजत रानी मीनू अपने विचार रखती हुई कहती हैं कि – "सन 1970 के दशक में छुट – पुट पत्र – पत्रिकाओं व स्मारिकाओं में कहानी विधा के मापदंडो को पूरा करती हुई हिन्दी की दलित कहानियां भी प्रकाशित होना प्रारम्भ हो गई थी। 1975 में सतीश की 'वचनबद्ध' कहानी को हम अब तक की अपनी शोधपूर्ण जानकारी के अनुसार पहली दलित कहानी मान सकते हैं।"[2]

दलित कहानियां मिथ्या या मनगढंत नहीं हैं बल्कि लेखक की स्वानुभूति है जिसको उसने जिया और भोगा है और इन परेशानियों से जूझते हुए यहां तक की यात्रा तय की है। वे सिर्फ अपने साथ हुए उत्पीड़न का चित्रण नहीं करते बल्कि सम्पूर्ण दलित समाज की समस्या को समाज के सामने खोलकर रख देते हैं ताकि लोग इसे पढ़ें, जागरूक हों और भविष्य में इस प्रकार की स्थिति पुन : उत्तपन्न न होने दे। दलित कहानीकारों का मकसद समाज में विषमता फैलाना नहीं बल्कि इसके माध्यम से समाज में फैली विषमता को समाप्त करना है। समाज में दलितों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं रही है आर्थिक तंगी ने उनकी कमर जैसे तोड़ दी है। उन्हें दो जून की रोटी के लिए भी मोहताज रहना पड़ता है। भूख मिटाने के लिए तथा अपने परिवार का पालन – पोषण करने के लिए उन्हें सवर्णो की गुलामी करनी पड़ती थी। उनके घरों, खेतों में मजदूरी, हरवाही, चरवाही आदि करनी पड़ती थी। यहां तक कि चंद पैसों के लिए उन्हें मरे हुए मावेशी तथा जानवरों को अपने कांधे पर ढोना पड़ता था। उनकी लाचारी तो देखिए उन्हें मेरे जानवरों की खाल निकाल कर बेंचना पड़ता था ताकि अपने परिवार के लिए अन्न ला सकें। जिन दलितों को सवर्ण घृणित मानते हैं, उनकी परछाई से भी नफरत करते हैं, उनको अपनों से कोसो दूर रखते हैं लेकिन जब उन्हें इन्हीं दलितों से काम पड़ता है तो उन्हें ढूढते फिरते हैं क्योंकि उनका मानना है कि सवर्ण की सेवा करना दलितों का धर्म हैं। अत : दलित सवर्ण की कहा को टाल नहीं सकते हैं। बेचारे मजबूर, लाचार, असहाय तथा दरिद्रता में जीवन जीते दलित के पास उनका विरोध करने की हिम्मत नहीं थी। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'बैल की खाल' में दलितों की यह स्थिति स्पष्ट नजर आती है। कहानी में पंड़ित जी का बैल मर जाता है यदि उसे जल्दी से नहीं हटाया गया तो पूरे वातावरण में दुर्गंध फैल जाएगी लेकिन समस्या ये थी कि मरे बैल को हटाएगा कौन इस काम को कोई सवर्ण तो करेगा नहीं वैसे भी समाज में निश्चित है कि यह कार्य सिर्फ दलित ही करेगा जिसके लिए काले और भूरे की तलाश होने लगी जोकि दलित हैं और इस कार्य में निपुण हैं। कहानी में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी पंडित बिरिज मोहन के किरदार से सवर्ण के दृष्टिकोण को दिखाते हैं जब वो काले – भूरे पर गुस्से में बरस रहा था – "कहाँ मर गए थे भोसड़ी के०तड़के से ढूंढ़ – ढूंढ़ के गोड्डे टूट गए हैं। और इब आ रहे हो महाराज की तरियां इस बैल को कौन उठावेगा. ..तुम्हारा बाप..पंडित बिरिज मोहन उन पर बिफर पड़ा था।"[3]

दलित बहुत अभावों तथा दरिद्रता में जीवन जीते आए हैं। उनकी स्थिति इतनी दयनीय थी कि वो अपना और अपने परिवार की भूंख मिटाने के लिए किसी भी तरह का कार्य करने को तत्पर रहते थे। आज 21वी सदी में भी दलित अपना परिवार चलाने के लिए कूड़ा - कचरा आदि अपने सिर पर ढ़ोते हैं और गंदे नाले - नालियों को अपने हांथों से साफ करते हैं, सड़को पर झाड़ू लगाते हैं, शौचालय तथा पखाना आदि साफ करते हैं, समाज का मैला ढ़ोते हैं। इसे समाज की विडंबना नहीं कहेंगे तो और क्या कहेंगे जहाँ एक वर्ग को समाज के अन्य वर्ग का कचरा साफ करना पड़ रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कहानी 'बैल की खाल' में काले और भूरे के माध्यम से उनकी स्थिति को दिखाया है - "वे जल्दी - जल्दी शहर पहुंचना चाहते थे। जिससे खाल बेचकर घर के लिए सौदा - सुलफ ला सकें। कई दिन हो गए थे ठीक से चूल्हा भी नहीं जला था। जैसे तैसे जिनगी घसिट रही थी। दो महीने बाद आज यह बूढ़ा बैल मरा था जिसने उनकी डूबती आशाओं को पल भर के लिए बचा लिया था।"[4]

जातिगत भेदभाव दलित पीढ़ियों से झेलता आ रहा है। वर्ण व्यवस्था ने जाति आधारित नींव पुख्ता कर उसके साथ न्याय नहीं किया है। नतीजा यह है कि इसके कारण दलित लगातार सामाजिक द्वेष के शिकार हो रहे हैं। सवर्णो ने दलितों को पशुओं की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया है। उनके काम की कोई सीमा नहीं, मजदूरी भी निश्चित नहीं बस कोल्हू के बैल की तरह सारे दिन सवर्णो के इशारे पर नाचते रहते हैं। सदियों से अन्याय, अत्याचार सहता ये वर्ग अपनी जीविका के लिए दर - दर भटकता रहा है। उसकी इस स्थिति का जिम्मेदार कोई अन्य नहीं बल्कि सवर्णो की ब्राह्मणवादी मानसिकता है जो उन्हें आगे बढ़ते देख नहीं सकती वो दलितों को उसी पुरानी स्थिति में घिसते मरते अपने आगे दाने दाने को हांथ फैलाते ही देखना चाहते हैं। तभी तो वो दलितों को भ्रमित कर अपने नीचे ही रखना चाहते हैं। सूरजपाल चौहान की कहानी 'साजिश' समाज में विद्यमान इस विषमता की पोल खोलता है। कहानी में देखा जा सकता है कि दलित युवक नत्थू जब बैंक से लोन लेने जाता है यह सोंचकर कि कोई व्यापार करके कुछ पैसा कमा सके ताकि जीवन सुकून से बीते। किन्तु बैंक मैनेजर मिश्रा जोकि सवर्ण है उसे यह बात बर्दास्त नहीं होती कि कोई दलित अपना पारम्परिक धंधा छोड़कर व्यापार करे और उनकी बराबरी पर आए। इसके लिए वो गहरी चाल चलता है नत्थू को अपनी बातों की जाल में फुसलाता है। बैंक मैनेजर शर्मा सीनियर क्लर्क भारद्वाज से बात करते हुए कहता है - "साले आए चूहड़े - चमार पढ़ - लिखकर व्यापार करने। बैंक से उधार लेकर ट्रांसपोर्ट का धंधा करेंगे, व्यापारी बनेंगे, ट्रेंड चेंज करेंगे। शर्मा और भरद्वाज आपस में बातें करते - करते ठहाका लगा रहे थे।"[5]

दलितों के प्रति भेदभाव सदियों से चला आ रहा है। समाज में उच्च स्थान और सम्मान सिर्फ सवर्णो को ही मिला है जिसका फायदा उठाकर उन्होंने दलितों का शोषण किया है। इन्होने दलितों का सिर्फ शारीरिक शोषण ही नहीं किया है बल्कि मानसिक शोषण भी किया है। जन्म के आधार पर किसी व्यक्ति की जाति निश्चित कर उसके विकास का मार्ग अवरुद्ध करना कहां की समझदारी है। यदि कोई दलित युवक अपने पारम्परिक कार्य को न कर जीवन में कुछ हटकर करना चाहता है अपने जीवन को सुधारने का प्रयास करता है तो उसमें क्या बुराई है जीवन में प्रगति और विकास कौन नहीं करना चाहता आखिर परिवर्तन ही तो प्रकृति का नियम है फिर दलित के जीवन में आए परिवर्तन से सवर्ण क्यूं परेशान होने लगते हैं। सूरजपाल चौहान की कहानी ' साजिश' में नत्थू भी अपने जीवन में परिवर्तन लाना चाहता है लीक से हटकर कुछ करना चाहता है जिसके लिए उसे पैसों की जरूरत होती है इसीलिए वो बैंक से लोन लेने जाता है किन्तु जैसे ही बैंक मैनेजर को पता चलता है कि वो व्यापार के लिए लोन ले रहा है उसे बर्दास्त नहीं होता है और वो कूटनीतिक चाल चलता है कि किस तरह उसे व्यापार करने से रोका जाए। कहानी में बैंक मैनेजर शर्मा क्लर्क भारद्वाज को दलितों के प्रति अपनी घटिया मानसिकता के बारे में बताते हुए कहता है - " देख सतीश, अगर ये अछूत अपना खानदानी धंधा बंद कर कोई नया धंधा करने लगेंगे तो आनेवाली पीढ़ियां हमारे घरों की गंदगी कैसे साफ करेंगी। उस स्थिति में घर की गंदगी क्या तुम खुद साफ करोगे।"[6] क्या विडंबना है समाज की जहाँ एक मानव अपने ही समान दूसरे मानव से इस प्रकार तक घृणा तथा द्वेष करता है कि उसके तरक्की के मार्ग को अवरुद्ध करने का हर सम्भव प्रयास करता है।

डॉ चमन लाल दलित साहित्य पर अपना विचार रखते हुए कहते हैं कि - "दलित साहित्य जातिभेद के खिलाफ साहित्यिक उत्पीड़न, मानवता की सशक्त आवाज बन कर उभरा है। दलित साहित्य हमारे समाज का दर्पण है जो हमने देखा है, अनुभव किया, भोगा, जाना क्रांति का आह्वान है। दलित साहित्य मानव के द्वारा वर्ण - व्यवस्था का आधार लेकर, लिंग अथवा धर्म का आधार लेकर अथवा जाति का आधार लेकर किए गए शोषण के विरुद्ध आवाज उठाता है। दलित साहित्य का उद्देश्य यही है कि भयमुक्त, शोषणमुक्त, जातिविहीन और वर्ग - विहीन समाज की स्थापना करना है।"[7]

अशिक्षा दलित जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है। अशिक्षित होने के कारण ही समाज में दलितों को बहुत कुछ झेलना पड़ा। शिक्षा के अभाव में उनका जीवन नारकीय हो गया था। पढ़े लिखें न होने के कारण उन्हें हर बात में सवर्णो का मुख देखना पड़ता था। अपना सब कुछ कागज - पत्र इत्यादि भी उन्हें सवर्ण को ही दिखाना पड़ता था जिसको सवर्णो ने खूब उठाया वे चालाकी से या फिर धोखे से उनकी जमीन, खेत - खलिहान आदि अपने नाम करवा लेते थे या फिर हड़प लेते थे। जिसका परिणाम यह होता था कि दलितों को अपने ही जमीन से वंचित होना पड़ता था और बद से बदतर जीवन जीना पड़ता था। उनकी इसी स्थिति का फायदा उठाकर सवर्ण दलितों का बहुत शोषण करते थे। अनपढ़ होने के कारण दलितों को हिसाब किताब लगाना नहीं आता था ऐसी स्थिति में सवर्ण उन्हें जो कुछ भी बताते थे दलित उस पर विश्वास कर लेते थे। सीधे साधे दलित इस बात से अनजान थे कि मीठा - मीठा बोलकर उन्हें ठगा जा रहा है। सवर्णो के इस छलनीति को ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'पच्चीस चौके डेढ़ सौ' में देखा जा सकता है। इस कहानी में चौधरी किस तरह अपनी कूटनीतिक चाल द्वारा सरल स्वभाव के दलित व्यक्ति को छलता है स्पष्ट दिखाई देता है। चौधरी के महानतम व्यक्तित्व का बखान करते हुए सुदीप के पिताजी जी सुदीप को बताते हैं कि - "चौधरी जी ने कहा मैंने तेरे बुरे बखत में मदद करी तो ईब तू ईमानदारी ते सारा पैसा चुका देना। सौ रूपये पर हर महीने पच्चीस रूपये ब्याज के बनते हैं। चार महीने हो गए हैं। ब्याज ब्याज हो गए हैं पच्चीस चौका डेढ़ सौ। तू अपड़ा आदमी है तेरे से ज्यादा क्या लेणा। डेढ़ सौ में से बीस रूपये कम कर दे। बीस रूपये तुझे छोड़ दिए। बचे एक सो तीस। चार महीने का ब्याज एक सौ तीस अभी दे दे। बाकी रहा मूल जिब होगा दे देणा, महीने के महीने ब्याज देते रहणा...ईब बता बेट्टे पच्चीस चौका डेढ़ सौ होते हैं या नहीं। चौधरी भले और इज्जतदार आदमी हैं, जो उन्होंने बीस रूपये छोड़ दिए नहीं तो भला इस जमाने में कौन छोड़े है।"[8]

सुदीप ने बचपन से ही अपने पिताजी को पच्चीस चौका डेढ़ सौ में ऐसे उलझे देखा था कि इस गुत्थी में वो स्वयं उलझकर रह गया था। इसने उसके बालमन पर इतना प्रभाव डाला था कि वो समझ नहीं पा रहा था कि कौन सही कह रहा है किताब या फिर पिता जी। पिताजी कहते हैं पच्चीस चौके डेढ़ सौ जबकि किताब और मास्टर जी कहते हैं पच्चीस चौके सौ। सौ और डेढ़ सौ के बीच उलझा सुदीप जब स्कूल में मास्टर जी को पहाड़े सुनाता है उस समय उसे किस मन : स्थिति से गुजरना पड़ता है इसका वर्णन करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि जी कहते हैं – "सुदीप ने डरते – डरते कहा – पिताजी कहते हैं पच्चीस चौका डेढ़ सौ होवे है स...मास्टर शिवनारायण हत्थे से उखड़ गया। खींचकर एक थप्पड़ उसके नाम पर रसीद किया। आँखें तरेरकर चीखा, अबे तेरा बाप इतना बड़ा विद्वान है तो यहां क्या अपनी माँ...एक क्रिया जिसे सुसंस्कृत लोग साहित्य में त्याज्य मानते हैं।.. साले तुम लोंगो को चाहे कितना भी लिखाओ, पढ़ाओ, रहोगे वही के वही...दिमाग में कूड़ा करकट जो भरा है। पढ़ाई – लिखाई के संस्कार तो तुम लोगों में आ ही नहीं सकते।"[9]

शिक्षा ही मनुष्य को सभ्य, सुसंस्कृत तथा जागरूक बनाती है। दलित इस बात को पूरी तरह से समझ चुके थे। तभी तो वे अन्याय, अत्याचार, अपमान, तिरस्कार सहते हुए भी किसी तरह शिक्षा ग्रहण करते रहें हैं। किन्तु सवर्णो को इनका पढना अखरता था जिसके लिए वो उन्हें परेशान करने के नए – नए तरीके ढूंढ़ते रहते थे कि किस तरह इनको पढ़ने तथा आगे बढ़ने से रोका जाए। अमानवीयता की सबसे बड़ी पराकाष्ठा विद्या का मंदिर कहा जाने वाले जगह विद्यालय तथा विश्वविद्यालय में भी देखा जा सकता है जहाँ दलित बच्चो के लिए कोई जगह नहीं। विद्यालय तथा महाविद्याल में मौजूद कुछ सवर्ण मानसिकता से ग्रसित अमानवीय तत्व दलित विद्यार्थियों को तमाम तरह की शारीरिक और मानसिक चोट देते थे ताकि वो परेशान होकर, डर कर विद्यालय तथा महाविद्याल आना छोड़ दे, पढ़ने – लिखने आगे बढ़ने की बात अपने मस्तिष्क से निकाल दे और अशिक्षित रह जाएं। सवर्णो को भय था कि दलित यदि पढ़ जाएंगे तो उनकी गुलामी कौन करेगा। दलितों के प्रति सवर्णो की नफरत तथा उनकी क्रूरता को ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'घुसपैठिए' में देखा जा सकता है। इस कहानी में मेडिकल कॉलेज में दलित विद्यार्थियों के साथ कितना और किस – किस हद तक अमानवीय व्यवहार किया जाता है दिखाया गया है। मेडिकल कॉलेज में दलित छात्र एडमिशन लेकर डॉक्टर बनने के सपने से जाते हैं किन्तु सवर्ण छात्रों द्वारा सिर्फ उनके सपने ही नहीं रौदे कुचले जाते बल्कि स्वयं वो भी मारे पीटे जाते हैं। मारपीट, अपमानित तथा लोंगो के सामने लज्जित किए जाने पर बहुत से छात्र आत्महत्या तक कर लेते थे इसका जिम्मेदार सवर्ण छात्र होते थे। कहानी में दलित छात्र अमरदीप अपना दर्द बयां करता हुआ कहता है – "दलित छात्रों को अलग खड़ा करके अपमानित करना तो रोज का किस्सा है। प्रवेश परीक्षा के प्रतिशत अंक पूछकर थप्पड़ या घूसों का प्रहार होता है। जरा भी विरोध किया तो लात पड़ती है। यह दो – चार दिन नहीं साल के साल चलता है। और यह पिटाई कॉलेज या छात्रावास तक ही सीमित नहीं है। शहर से कॉलेज तक जाने वाली बस में भी पिटाई होती है। कोई एक सीनियर चलती बस में चिल्लाकर कहता है – इस बस में जो भी चमार स्टूडेंट है...वह खड़ा हो जाए॥फिर उसे धकियाकर पिछली सीटों पर ले जाया जाता है, जहाँ पहले से बैठे सीनियर लात घुसों से उसका स्वागत करते हैं।"[10] यहाँ एक बात ध्यान देने लायक यह है कि कोई इन सवर्ण छात्रों के विरोध में नही खड़ा होता है। दलितों के साथ हो रहें इस अन्याय तथा अमानुषिक व्यवहार के खिलाफ आवाज उठाने के लिए उसका साथ देने के लिए। दलित छात्रों को पता है कि उनकी आवाज सुनने वाला कोई नहीं उनकी इस लड़ाई में उनका साथ देने वाला कोई नहीं।

जैसे – जैसे समाज शैक्षिक तथा वैज्ञानिक उन्नति कर रहा है, तकनीकि के क्षेत्र में आगे बढ़ रहा है वैसे – वैसे समाज का कमजोर दलित वर्ग और पीछे होता जा रहा है क्यूंकि ये वर्ग शिक्षा तथा सुविधाओ से अब भी वंचित है। वैज्ञानिक तथा तकनीकि प्रगति का प्रभाव जब दुनियां में दिखाई दे रहा है तो फिर दलितों के जीवन में ये प्रगति और विकास क्यूं नहीं? अगर ऐसा नहीं है दलित आज इतनी उन्नति होने पर भी दमित, दबित, सताए हुए, रोते ख़गिडगिडाते दिखाई देते हैं इसका क्या अर्थ है? वास्तविकता के धरातल पर सामाजिक परिवर्तन के नाम पर ठोस कदम नही उठाया गया है या फिर सब महज दिखावा भर है। आरक्षण जोकि दलित तथा पिछड़ा वर्ग को दिया गया था ताकि आरक्षण के सहयोग से इस समाज के बच्चे पढ़ लिखकर अपनी स्थिति सुधार ले। किन्तु सवर्ण समाज को संविधान द्वारा दलितों को दिया गया ये आरक्षण मंजूर नहीं। वे आरक्षण को खत्म करने की मांग करते रहते हैं। 'घुसपैठिए' कहानी में इसी आरक्षण के विरोध में खड़े सवर्ण छात्र दलित छात्रों के साथ मार पीट करते हैं तथा सरे आम उन्हें अपमानित करते हैं ताकि परेशान होकर दलित छात्र महाविद्याल छोड़कर चले जाए। अपने साथ हो रहें अन्याय की शिकायत लेकर जब दलित छात्र डीन के पास जाते हैं ये सोंचकर की शायद वहां से उन्हें कोई मदद मिले लेकिन डीन भी ब्राह्मणवादी मानसिकता से ग्रसित होता है और छात्रों को खरी – खोटी सुना देता है। डीन दलित छात्रों से कहता है – "आरक्षण से आए हो तो थोड़ा बहुत तो सहना ही होगा।"[11]

आज भूमंडलीकरण के युग में जहां सम्पूर्ण विश्व एक छोटी सी बस्ती बनकर रह गई है। गांव से शहर, शहर से महानगर और महानगर विदेश की यात्रा तय कर ली गई है। इस तरह दूरियां कम हो गई है। बाजार ने सर्वत्र अपना परचम लहराया है। लोग जमाने के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रहें हैं। शैक्षिक तथा वैज्ञानिक उन्नति का भरपूर फायदा उठा रहें हैं। पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण कर रहें हैं। स्वयं को अंग्रेजी दा कहवाकर गर्व महसूस कर रहें हैं। ऐसे में समाज में जातिगत भेद जैसी बात बहुत बेमानी सी लगती है। समझने वाली बात यह है कि इतना सब कुछ बदलाव होने के बाद भी जो एक चीज नहीं बदला है वो है समाज में जातिगत भेदभाव। बस अंतर इतना ही है कि जो आज से वर्षो पहले खुले तौर पर होता था आज वही अंदरूनी तौर पर होता है। बाबा साहब ने अंतरजातीय विवाह इसलिए किया था ताकि समाज में जातिबंधन को खत्म किया जा सके और रोटी – बेटी का मेल हो सके। बाबा साहब के इन्हीं विचारों को मानते हुए आज के बहुत से युवा अंतरजातीय विवाह की ओर अग्रसर हो रहें हैं। जयप्रकाश कर्दम की कहानी 'नो बार' इसी बात का संकेत करती हैं। जहाँ एक ओर कुछ असामाजिक तत्व समाज में जाति भेद को बनाए रखना चाहते हैं वहीं दूसरी ओर राजेश जैसे नौजवन युवक भी हैं जो जातिबंधन से मुक्त युक्त समाज बनाना चाहते हैं। जयप्रकाश कर्दम राजेश के विषय में बताते हुए कहते हैं कि – "अंतरजातीय विवाह की बात वह तभी से सोंचने लगा था, जब वह यूनिवर्सिटी में पढ़ता था। बाद में नौकरी में आने के बाद उसने अपना पक्का मन बना लिया था कि वह शादी किसी योग्य लड़की से ही करेगा चाहे वह अपनी जाति को ही या किसी अन्य जाति की।"[12]

राजेश एक अखबार में इस्तिहार देखता है कि एक सुन्दर सुशिक्षित कन्या के लिए सुन्दर संस्कारी पढ़ा लिखा अच्छा कमाने वाला वर चाहिए जिसमें कास्ट नो बार लिखा था मतलब कि कोई भी कास्ट चलेगा। उसे लगता है कि उसे जैसा रिश्ता चाहिए था ये एकदम वैसा ही है उसने तुरंत ही लड़की वालों से

सम्पर्क किया। मेल - मिलाप के बाद बातचीत आगे बढ़ी और जब शादी की तारीख रखने का समय आया तो लड़की के पिता को राजेश की बातों से शक होता है कि कही ये शेड्यूलकास्ट तो नहीं। मन ही मन वो बेचौन हो उठता है उसे लगता है कि जातिबंधन से मुक्त होने का मतलब यह तो नहीं कि हम दलितों के परिवार में अपनी बेटी ब्याह दे। अखबार में जिस पिता ने विज्ञापन के समय कास्ट नो बार लिखा था राजेश की कास्ट जानने के बाद एकदम से उस पिता के तेवर ही बदल गए थे। वो खिसियानी बिल्ली की तरह व्यवहार करने लगा था। वह बड़बड़ाते हुए अपनी बेटी से कहता है - "वह सब तो ठीक है हम जाति पति को नहीं मानते और हमने मैट्रिमोनियल में 'नो बार' छपवाया था, लेकिन फिर भी कुछ चीजें तो देखनी ही होती हैं। आखिर 'नो बार' का यह मतलब तो नहीं कि किसी चमार - चूड़े के साथ।"[13]

बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर द्वारा लिखित संविधान के अनुच्छेद 15 में इसी समानता की बात कही गई है। जिसमे यह वर्णित है कि - "राज्य अपने किसी भी नागरिक के साथ केवल धर्म, जाति, लिंग, नस्ल और जन्म - स्थान या इसमे से किसी भी आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा.... धर्म, जाति, मूलवंश, जन्म - लिंग के आधार पर दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों, सार्वजनिक मनोरंजन स्थलों, कूंओं, तालाबों, स्नान घाटों, सड़कों, में घुसने से नहीं रोका जा सकता है।"[14] इस तरह इसमें समानता की बात कही गई है। सोचने की बात यह है कि डॉ. अम्बेडकर ने जिस समुदाय के लिए पूरा जीवन संघर्ष किया यहाँ तक कि अपनी पूरी जिन्दगी दांव पर लगा दी उस समुदाय को अब भी उन्हीं समस्याओं से जूझना पड़ रहा है जिसका विरोध बाबा साहब ने सदियों पहले किया था।

निष्कर्ष: निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से दलित जीवन की स्थिति को दिखाने का भरसक प्रयास किया है। गैर दलित कहानीकारों द्वारा भी दलितों तथा अछूतों को लेकर बहुत सी कहानियां लिखी गई किन्तु उनके केंद्र में कभी दलित - विमर्श नहीं रहा, आदर्श में रची कहानियां दलितों की स्थिति तथा समस्याओ का वर्णन तो करती थी किन्तु सिर्फ शिक्षा देने के उद्देश्य से या फिर सुधार के लिए किन्तु इस बीमारी को समूल खत्म करने की बात नहीं करती थी। दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से न सिर्फ दलितों की समस्याओं को दिखाया बल्कि उन समस्याओं से मुक्त होने का रास्ता भी बताया। यथार्थ के वैविध्य के साथ - साथ दलित समाज का मनोविज्ञान भी इन्होने बारीकी से चित्रित किया है। आजादी के इतने वर्षो बाद भी, इतनी शैक्षिक और वैज्ञानिक उन्नति के बाद भी आज दलित तमाम तरह की चुनौतियों से जूझ रहा है। आज भी दलितों को सामाजिक भेदभाव का शिकार होना पड़ रहा है, आज भी दलितों को आरक्षण का दंश झेलना पड़ रहा है, आज भी दलितों को अशिक्षा - बेरोजगारी की मार झेलनी पड़ रही है, आज भी दलित अंतरजातीय विवाह के भेदभाव से गुजर रहें हैं, आज भी उनका आर्थिक और धार्मिक शोषण हो रहा है। अत : यह कहना अपवाद न होगा कि दलित कहानीकार अपनी कहानियों के द्वारा दलितों की इन तमाम समस्याओं को बड़ी बेबाकी के साथ समाज के समक्ष रखते हैं ताकि दलितों को लेकर समाज की मानसिकता में बदलाव आए और एक स्वस्थ तथा सुदृढ़ समाज का निर्माण हो सके।

सन्दर्भ :-

1. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र : ओमप्रकाश वाल्मीकि : राधाकृष्ण प्रकाशन : नई दिल्ली : पृष्ठ - 13
2. हिन्दी दलित कथा - साहित्य : रजत रानी मीनू : पृष्ठ - 57
3. बैल की खाल : सलाम : ओमप्रकाश वाल्मीकि : राधाकृष्णन प्रकाशन : दिल्ली : पृष्ठ - 33
4. वही : वही : वही : पृष्ठ - 35
5. साजिश : दलित कहानी संचयन : सम्पादक - रमणिका गुप्ता : प्रथम संस्करण 2003 : साहित्य अकादमी : पृष्ठ - 67
6. वही : वही : वही : पृष्ठ - 68
7. दलित साहित्य का समाजशास्त्र : हरिनारायण ठाकुर : भारतीय ज्ञानपीठ 2009 : पृष्ठ - 58
8. पच्चीस चौका डेढ़ सौ : दलित कहानी संचयन : सम्पादक : रमणिका गुप्ता : प्रथम संस्करण : 2003 : साहित्य अकादमी : पृष्ठ - 24
9. वही : वही :वही : पृष्ठ - 25
10. घुसपैठिए : हिन्दी कहानी : सम्पादक : आलोक रंजन : एस. जी. एस. एच. पब्लिकेशन : पृष्ठ - 99
11. वही : वही : वही : पृष्ठ - 101
12. नो बार : दलित कहानी संचय : सम्पादक - रामणिका गुप्ता : प्रथम संस्करण 2003 : साहित्य अकादमी : पृष्ठ - 52
13. वही : वही : वही : पृष्ठ - 60
14. भारत का संविधान : भारतीय संविधान सभा, भाग तीन : प्रकाशन - 194

आचार्यमिथिलाप्रसादत्रिपाठीमहोदयानां महाकाव्ये सामाजिकं समरसता

सुनीलदीप

शोधच्छात्रः पं.रविशंकरशुक्ल विश्वविद्यालयः, रायपुरम्

आचार्यमिथिलाप्रसादत्रिपाठीना रचिते सतनाभिगौरवमहाकाव्ये सामाजिक सौहार्दस्य भावाः अतीवगंभीर रूपेण प्रकटिताः वर्तन्ते। वसुधैव कुटुम्बकस्य भावः भारतीय सांस्कृतिक दर्शनस्य धारा वहन्तं भारतीय साहित्ये सर्वदा समावेशितं विद्यते। उदारता भावेन प्रेरितं भारतीय साहित्यं विश्वसमुदायस्य अहिंसा सामाजिक -सौहार्दस्य च व्यावहारिकं सन्देशं निश्चित रूपेण ददाति।

यस्याः सम्प्रति समग्रस्य जगतः तात्कालिक आवश्यकता विद्यते। वस्तुतः कविः लेखको वा स्वराष्ट्रस्य समाजस्य वा मस्तिष्कं मुखञ्च भवति। कविः दिव्य द्रष्टा समाजस्य शक्तिशालिनः सृष्टिकर्ता च अस्ति। समाजस्य राष्ट्रस्य च प्रतिबिम्बं शोभयितुं तस्य मुख्य कर्तव्यं वर्तते। समता विषये अस्माकं प्राचीन शास्त्रे वेदे अपि उक्तम् अस्ति।

सङ्गच्छ ध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जनानां उपासते।" [1]

सामाजिक समरसताः-

सतनामिगौरवमहाकाव्य सामाजिक एकता स्थापनार्थं अस्माकं सर्वेषां समीचीनमार्गं दर्शयितुं शक्नोति। दलित समुदायः वञ्चितसमुदायस्य श्रेण्यां समाविष्टोऽस्ति तान् आलिङ्ग्य घासिदासेन समाजिक सौहार्दस्य अद्भूतं उदाहरणं प्रस्तुतम्। उद्यत्वे यः दुष्टः दृश्यते सः सामाजिक सौहार्दस्य भावस्य नाशं करोति सः प्राचीनकाले नासीत्। समाजे विभाजन रेखा आकर्षयन्तः स्वार्थिनः जनाः विवेकं जनयन्ति। सम्प्रति वयं स्पष्टतया पश्यामः यत् समाजस्य दुर्बलीकरणाय सुनियोजितः प्रयासः क्रियते येन एकतः समाजस्य शक्तिः दुर्बलतां गच्छति अपरतः देशोऽपि दुर्बली भवति।

इत्तीसगढ़स्य सर्वासु विपदानां मूलं सामान्यजनानाम् दारिद्रम आसीत्। सामन्तशक्तिः तान् मर्दयति स्म, यस्य परिणामेण छत्तीसगढ़स्य निर्धनाः जनाः ते अपि मानवाः इति विस्मृतवन्तः आसन्।

घासीदासः स्वबन्धुभिः सह क्रियमाणस्य भेदभाव अन्यायस्य च अत्यन्तं दुखितः आसीत्। सः शनैः शनैः सर्वं अवगच्छन् आसीत्। अन्ततः 1620 ई. तमे वर्षे पूर्णसामाजिकसमता "इति उद्घोषं दत्त्वा अन्यायस्य, उत्पीडनस्य च विरुद्धं युद्धं कर्तुं दृढनिश्चयः अभवत्।

मिथिलाप्रसादत्रिपाठी इत्यस्य सतनामिगौरवमहाकाव्यस्य नायकस्य घासीदासस्य छत्तीसगढ़ सामाजिकन्यायः केवलं नारा (उद्घोषणा) एव नासीत् ; अपितु समाजस्य दुर्बलतामन्यक्तिभिः अपि समानतायाः सह सामाजिकन्यायं प्राप्तम्। जनानां मध्ये किमपि प्रकारस्य वैरभावः विरोधः वा नासीत् न च उच्चनीच भावः आसीत्। गुरूघासीदास मनखे मनखे एक समानष इति उद्घोषं दत्तवान। सर्वे मनुष्याः समानाः सन्ति। सर्वे मनुष्याः जन्मतः समानास्सन्तिः, सर्वे मनुष्याः समानवयुक्ताः समानप्राकृतिक - सिद्धान्ताधारिताः भवन्ति। कर्मणानुसारं तस्य लक्षणं भिन्नं भवति। न कश्चित् व्यक्तिः कुटुम्बविशेषे, धर्मे जातिविशेषे वा जन्म प्राप्य महान् वा नीचर्वा भवितुमर्हति। गुरुघासीदासः समाजे प्रचलित असमानता, अस्पृश्यता, उच्चनीचभावना च उन्मूलनं कृतवान्।[2]

घासीदासकाले छत्तीसगढ़े शूद्रपशुमहिलानां घोर अत्याचारस्य सम्मुखी भवति स्म। शुद्राः जातिभेदेन पीडिताः आसन। स्त्रियः 'टोनहीं' इति वदन् उपद्रवं कुर्वन्ति स्म। गावः च हलेषु युग्मिताः भवन्ति स्म। अत्र दलितवर्गाय अस्मात् पूर्वं कदापि स्वस्य आन्तरिकबुद्धे उत्तेजनायाः अवसर न दत्तः। सामन्तव्यवस्थायाः पादाभ्यां पदायमानाः पदाभ्यमानाः एते जनाः तस्य पादयोः पदाभ्यां जातः इति चिन्तयितुं आगताः। एतेषां दलितानां निन्दा अभवत्। एते लघुवर्णेषु विभक्ताः आसन्। सा मौनेन कार्यं कुर्वन्ति आसीत्। सा स्वस्य परिश्रमस्य कृते किमपि न प्राप्नोति स्म। तथापि येषां शारीरिकश्रमेण ब्राह्मणानाम् आधिपत्यं क्षत्रियाणां समृद्धिः वैश्यानां धनं च आश्रितं कुतः आसन्? हिन्दू समाजस्य महत्वपूर्ण भागः अभवत् अपि च सा "जघन्य प्रभावो हि सः" इति उच्चते स्म।[3]

गुरूघासीदासः दलित समुदायस्य प्रत्येक व्यक्तिं आलिङ्गितवान्निति अपि प्रसिद्धं विद्यते गुरूघासीदासः कथ्यते यत् -

समतयैव सुखं परमात्मनो विषमताऽस्ति च दुःखरताऽधुना।
समतया भुवनस्य मता स्थितिर्विषमता प्रथिताऽस्ति विनाशने।।[4]

यदुपकारकला समतामतिर्विषमताऽप्यपकाररता सदा।
सुजनताऽस्ति समे विषमे तथा जगति दुर्जनता च विलोकयते।।[5]
अधिगतं छलतो बलतः सुखं निजकृतं परतश्च विकर्षणम्।
बहति रागमतिर्विकृतिं सदा, विषमता परिपालनतोऽखिलम्।।[6]

आचार्यमिथिलाप्रसादत्रिपाठीना जनकल्याणस्य उदात्तभावेन सतनामिगौरवमहाकाव्यस्य रचना कृता। महाकाव्यस्य नायकः गुरूघासीदासः जनानां कृते सर्वं त्यागं कृतम। सतनामिगौरव महाकाव्यं सामाजिकन्यायस्य समानतायाश्च यथार्थं चित्रणं विद्यते।

महाकाव्यनायक गुरूघासीदासः शोकग्रस्त-दलितसमुदायस्य शोकनिवारणं कृतवान्। गुरूघासीदासः दलित समुदायस्य प्राणाः रक्षिताः। दलितसमुदायस्य निराश जनानां अपि प्राणत्यागात् उद्धारितम्।

सतनाभिगौरवमहाकाव्यस्य नायकः घासीदासः मानवतायाः महान स्तरोऽस्ति। तस्य दृष्ट्या समग्रः मानवसमाजः समानोऽस्ति। समभावेन सर्वान् पश्यति, मिलति च।

गुरुमति समुदेति हितेच्छ्या परनिपीड नबोधविरोधिता।
परजनोपकृतिश्च मनुष्यता, समतयैव सदा परिलभते।।" [7]
समतया निजता परता च नो. परहिताचरणं पर चिन्तनम्।
भवति चात्मनिरीक्षणपद्धतिः, प्रकटिता जनलोकहितैषिणी।।[8]
मनसि यस्य समत्वमतिः सदा, वचसि चापि भवेज्जनसम्मता।
न कुरुतेऽखिललोकहितं यदा, विषमतामतिको न जनैर्मतः।।[9]

अस्माकं देशे जाति आधारेण समाजस्य विभाजनं कदापि न आसीत्। समग्रः समाजः एक शरीरवत् आसीत् यदा कस्मिन्नपि भागे वेदना भवति तदा सर्वं शरीरं अस्वस्थं भवति। तथैव समाजस्य अवधारणा अपि तादृशी अस्ति यद्यपि समाजस्य कोऽपि भागः वञ्चितो भवति तर्हि अस्मांक देशे जाति-आधारित राजनीत्याः कारणात्समाजे विभाजनस्य बीजानि रोपितानि।

सामाजिकसौहार्दस्य अर्थः जातिभेदं अस्पृश्यतां च निवारयित्वा जनानां मध्ये परस्परं प्रेम्णः सौहार्दं च वर्धयितुं समाजे एकता स्थापयितुं प्रयत्नः अस्ति। सामाजिक समरसता सामाजिक समतायाः एकः रूपः अस्ति। वेदेषु सामाजिक समरसताः-

वेदाः न कस्यचित् एकस्य व्यक्तेः, वर्गस्य, समुदायस्य, सम्प्रदायस्य इत्यादीनां कृते अपितु समग्रस्य जगतः कल्याणस्य मार्गं प्रशस्तं कुर्वन्ति। वेद उद्घ्घोषयति- यत्र विश्वं भवत्यनीडम्। अर्थात् वेदाः तादृशं नीडं यस्मिन् समग्र जगत् एकेन वसति। अस्मात् दृष्ट्या ऋग्वेदे उक्तं यत्' विश्वामित्रः रक्षति ब्रह्मेदं भारत-जनम् इति उक्तम्।

वेदेषु समतायःचर्चा कृता अस्ति। प्रत्येकजीवेन वेदस्य अध्ययनं अवश्यमेव कर्तव्यम्। येन सर्वे भद्राः भवेयुः, सर्वे उत्तमं गन्तव्यं प्राप्नुयुः, सर्वे च समन्वयेन वसन्ति, एतत् एव वेदः उपदिशति, यथा-

अभयं मित्राद्भयमित्राद्भयं ज्ञाताद्भयं पुरो यः।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ।।[10]
संगच्छ्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानानां उपासते।। [11]
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकृतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।[12]

वाल्मीकि रामायणे सामाजिक सौहार्द :-

महर्षिवाल्मीकिरामायणे समाजस्य समतावादी व्यापकबुद्धिप्रकृतेः आदर्शरूपं प्रस्तुतं भवति। रामायणस्य नायकः श्रीरामः मानवतायाः महत् मानकं ददाति तस्य दृष्ट्या समग्रः मानव समाजः एकः अस्ति। ते सर्वान् समानादरेण पश्यन्ति, मिलन्ति च।[13]

यथा उक्तम् -

औरसानिव रामोपि जुगोप पितृवत्प्रजाः।
सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वधर्मपरायणः।।
"दशवर्षसहस्त्राणि रामो राज्यमुपास्त सः।[14]

संदर्भ

1. ऋग्वेद 10/19/13
2. शुक्ल, हीरालाल, गुरूघासीदास संघर्ष समन्वय और सिद्धान्त, सिद्धार्थ बुक्स दिल्ली
3. त्रिपाठी, आचार्य मिथिला प्रसाद सतनामि गौरवम महाकाव्याक न्यू भारीय वूक कार्पोरेशन न्यू दिल्ली
4. सतनामिगौरवम् 03/17/85
5. सतनामिगौरवम् 04/17/85
6. सतनामिगौरवम् 05/17/85
7. सतनामिगौरवम्12/17 पृ.सं.86
8. सतनामिगौरवम्11/17 पृ. सं.86
9. सतनामिगौरवम्113/17 पृ.सं.87
10. अथर्ववेद १९/९५/६
11. शु०य सं. ३६
12. ऋवेद स. १०/९९९/२-४१
13. वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड
14. वाल्मीकीय रामायण में हनुमत तत्त्व विवेचन

संस्कृत वाङ्मय में नारी : एक अनुचिंतन

डॉ० सोनिया चौहान

असिस्टेंट प्रोफेसर, बाबा हरदेव डिग्री कॉलेज, मंडी, धनौरा, जिला अमरोहा, उत्तर प्रदेश,
संबद्ध महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

शोध-सारांश

भारतीय ज्ञान परंपरा और साहित्यिक चेतना के मूल स्रोत संस्कृत वाङ्मय में नारी का स्थान सदैव से सम्माननीय, केंद्रीय और सृजनशील रहा है। वैदिक ऋषियों ने नारी को केवल गृहस्थ जीवन की सहयोगिनी नहीं, अपितु धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की संपूर्ण यात्रा में पुरुष के समकक्ष सहयात्री माना है। संस्कृत वाङ्मय में नारी को 'सहधर्मिणी', 'गृहस्वामिनी', 'साम्राज्ञी', 'विदूषी', 'देवत्व की प्रतिमूर्ति' और 'अर्जव, करुणा, सौंदर्य तथा चेतना' के रूप में चित्रित किया गया है। यह शोध "संस्कृत वाङ्मय में नारी की स्थिति, भूमिका और महत्व" का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

वेदों में नारी के प्रति दृष्टिकोण पूर्णत: समतामूलक है। ऋग्वेद और अथर्ववेद के अनेक मंत्रों में कन्या को शिक्षायोग्य, पूज्य और सौभाग्यवती बताया गया है। कन्या को वेदाध्ययन, यज्ञ, नृत्य, गायन और आत्मचिंतन की शिक्षा देने की परंपरा स्पष्ट दिखाई देती है, उदाहरणस्वरूप-

"संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसाराजामी पित्रोरूपस्थे" - ऋग्वेद 1.85.5,

"मा भ्राता भ्रातरद्विक्षन्मास्वसार मुत स्वसा" -अथर्ववेद 3.30.3

यह मंत्र दर्शाते हैं कि नारी को केवल सम्मान ही नहीं, बल्कि आत्म-संवर्धन का अधिकार भी प्राप्त था।

उषा, सरस्वती, गायत्री, अदिति, इन्द्राणी जैसी देवियाँ नारी के विभिन्न रूपों - सौंदर्य, विद्या, स्वतंत्रता और शक्ति - की प्रतिमूर्ति हैं। नारी न केवल गृहस्थ की धुरी है, बल्कि वह राष्ट्र की सांस्कृतिक धरोहर की संवाहक भी है।

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" - यह भाव नारी को मातृभूमि के समकक्ष प्रतिष्ठित करता है।

गृहस्थ धर्म में, संस्कृत वाङ्मय नारी को 'गृहपत्नी', 'सहधर्मिणी', 'साम्राज्ञी' की संज्ञा देता है।

"गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथास:" - ऋग्वेद 10.59.2

"साम्राज्ञेयधि श्वशुरे सुसाम्राज्ञी युतु देवृषु" - अथर्ववेद 14.2.15

यह केवल काव्यात्मक विश्लेषण नहीं है, बल्कि वैदिक समाज में नारी की अधिकारिक, नैतिक और दार्शनिक प्रतिष्ठा का प्रमाण है।

प्रस्तुत आलेख में महाकाव्य युग - विशेषकर रामायण और महाभारत - में नारी को केवल घटनाओं की प्रेरक शक्ति नहीं, बल्कि विचारशील, आत्मनिर्भर और नीति-प्रवर्तक रूप में चित्रित किया गया है। सीता, कौसल्या, द्रौपदी, कुंती, गांधारी जैसी पात्रियाँ संस्कृत साहित्य में स्त्री चेतना की गूढ़, व्याकुल और प्रेरणादायक अभिव्यक्ति हैं।

नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र, और अलंकारशास्त्र में भी नारी को रसों की सृष्टि और साहित्यिक सौंदर्य की अनिवार्य इकाई माना गया है। भरतमुनि के अनुसार 'शृंगार रस' की उत्पत्ति नायिका और नायक के भावात्मक सामंजस्य से होती है, और नायिका को 'रस की जननी' कहा गया है।

इस प्रकार संस्कृत वाङ्मय की विविध विधाओं - वेद, उपनिषद, महाकाव्य, नाटक, काव्य और शास्त्र ख्न में नारी का स्वरूप केवल सामाजिक नहीं, बल्कि दार्शनिक, आध्यात्मिक और सौंदर्यमूलक है।

अत: प्रस्तुत आलेख सिद्ध करता है कि संस्कृत वाङ्मय में नारी केवल सामाजिक संस्था नहीं, बल्कि सृष्टि, संस्कृति और चेतना की आधारशिला है। उसके प्रति दृष्टिकोण में गरिमा, शक्ति और साधना का संगम है। वर्तमान समय में जब नारी की भूमिका को पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता है, तब संस्कृत वाङ्मय की यह परंपरा हमें गौरव, मर्यादा और समता का आदर्श प्रस्तुत करती है।

मुख्य शब्द (Key Words & Paragraph Format)% संस्कृत वाङ्मय, नारी, वेद, ऋग्वेद, अथर्ववेद, उषा, अदिति, गृहस्वामिनी, साम्राज्ञी, गुरुकुल, शिक्षा, ललित कलाएँ, महाकाव्य, सीता, द्रौपदी, शृंगार रस, नारी चेतना, दार्शनिक दृष्टिकोण, सांस्कृतिक समता, आध्यात्मिक प्रतिष्ठा, एवं साहित्यिक सौंदर्यबोध।

परिचय

भारतीय संस्कृति में नारी को सदैव सम्मान, प्रतिष्ठा और केंद्रीयता का स्थान प्राप्त रहा है। संस्कृत वाङ्मय - जो भारत के चिंतन, अनुभूति और साहित्यिक विरासत का मूल स्रोत है - नारी को न केवल गृहस्थ जीवन की रीढ़ के रूप में प्रस्तुत करता है, बल्कि उसे ज्ञान, दर्शन, शक्ति, सौंदर्य, और चेतना की संवाहक के रूप में भी प्रतिष्ठित करता है। इस साहित्य में नारी केवल विषय नहीं, बल्कि दृष्टि है - वह दृष्टि जो जीवन को सृजन, सहयोग और साधना

के रूप में देखती है।

वैदिक काल से ही नारी को पुरुष के समकक्ष माना गया। ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में नारी की महत्ता, उसके अधिकार और उसकी शिक्षा की विस्तृत चर्चा मिलती है। स्त्री को 'अर्धांगिनी', 'सहधर्मिणी', 'गृहस्वामिनी', 'साम्राज्ञी' जैसे पदों से विभूषित किया गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि नारी को केवल सामाजिक दायरे में नहीं, बल्कि संस्कृति की आत्मा के रूप में देखा गया। जैसे -

"गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथास:" - ऋग्वेद 10.59.2

और "साम्राज्ञेयधि श्वशुरे सुसाम्राज्ञी युतु देवृषु" - अथर्ववेद 14.2.15

वेदों में वर्णित उषा, अदिति, इन्द्राणी, सरस्वती, गायत्री आदि देवियाँ नारी की विविध आयामों में भूमिका को दर्शाती हैं। उषा जहाँ सौंदर्य और कला की प्रतीक हैं, वहीं अदिति स्वतंत्रता की मूर्ति हैं। इस प्रकार नारी का स्वरूप केवल पौराणिक नहीं, बल्कि सामाजिक और दार्शनिक भी है।

महाकाव्य वाङ्मय में नारी का रूप और अधिक व्याख्यायित होता है। रामायण में सीता केवल पत्नी नहीं, बल्कि मर्यादा, धैर्य और धर्म की जीती-जागती प्रतिमूर्ति हैं। महाभारत में द्रौपदी का व्यक्तित्व निर्णायक, चिंतनशील और सामूहिक चेतना को झकझोरने वाला है। कुंती, गांधारी, सुभद्रा आदि स्त्रियाँ केवल पारिवारिक पात्र नहीं, बल्कि काव्य की नैतिक और सांस्कृतिक धुरी हैं।

नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र और अलंकारशास्त्र में नारी को रसोत्पत्ति की जननी और काव्य सौंदर्य की प्रेरणा माना गया है। जहां वह वाक् के रूप में प्रतिष्ठित है। इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष रूप में भरतमुनि ने 'नायिका' को नाट्य का प्राणतत्त्व स्वीकार किया है। नारी के बिना शृंगार, करुण, वीर और शांत रसों की पूर्णता असंभव मानी गई है।

अत: यहां यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि, संस्कृत वाङ्मय में नारी केवल श्रृंगार या गृहस्थ की वस्तु नहीं, बल्कि वह ज्ञान, शक्ति और सृजन की ऊर्जा है। वर्तमान युग में, जब नारी की भूमिका को लेकर पुनर्संवाद आवश्यक हो गया है, ऐसे समय में संस्कृत साहित्य नारी की गरिमा, गरव और गरिमा का पुनर्स्थापन करता है।

पत्नी, पुत्री, बहन, माता के रूप में नारी का स्थान

संस्कृत वाङ्मय में नारी को केवल पत्नी के रूप में नहीं, बल्कि पुत्री, बहन और माता के रूप में भी विशेष महत्व दिया गया है। प्रत्येक रूप में नारी सम्मान, दायित्व और संवेदनशीलता का प्रतीक है:

पत्नी: वैदिक काल में पत्नी को जीवन की सहभागी, यज्ञ की सहधर्मिणी, और गृहस्वामिनी के रूप में प्रस्तुत किया गया है-

"सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवीत्वम् ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै"

– अथर्ववेद 14.1.20

वह केवल सहचरी नहीं, बल्कि धार्मिक और सामाजिक उत्तरदायित्व में पति की सहभागी है।

पुत्री: ऋग्वेद में पुत्री को स्नेह, सम्मान और शिक्षा का अधिकारी बताया गया है-

ष्संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसाराजामी पित्रोरूपस्थेष ख्र ऋग्वेद 1.85.5

कन्या को पूषा देवता से मांगने की परंपरा रही है, जिससे यह स्पष्ट है कि पुत्रियों को आराध्य और प्रिय माना गया।

बहन: अथर्ववेद में भाई-बहन के संबंधों की मधुरता पर बल दिया गया है:

"मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारं उत स्वसा" - अथर्ववेद 3.30.3

यह मंत्र सामाजिक समरसता और पारिवारिक स्नेह का सशक्त प्रतीक है।

माता: श्जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसीश ख्र इस भाव के अनुसार, माता का स्थान सर्वोच्च है। नारी को माता के रूप में पालक, शिक्षिका और धर्मरक्षिका माना गया है। मातृत्व केवल शारीरिक नहीं, वह सांस्कृतिक और आध्यात्मिक उत्तरदायित्व है।

इन सभी रूपों में नारी केवल संवेदना की मूर्ति नहीं, बल्कि परिवार, समाज और राष्ट्र की मूल चेतना का प्रतिनिधित्व करती है।

नारी का धार्मिक एवं यज्ञीय जीवन में योगदान

वैदिक साहित्य में नारी को यज्ञ की सहधर्मिणी तथा धार्मिक अनुष्ठानों की सहभागी माना गया है। उसका स्थान केवल पूज्या का नहीं, अपितु कर्मकांडी, विदुषी और ब्रह्मवादिनी का भी रहा है। वैदिक युग में स्त्रियों को यज्ञोपवीत धारण करने, मन्त्रों का उच्चारण करने और यज्ञ संचालन का भी अधिकार प्राप्त था।

"सुमंगल्यमुपसीदेममग्निं, संपत्नी प्रतिभूषेह देवान्"- अथर्ववेद 1.14.2

"उपयमेति युवति: सुदक्षंदोषावस्तोर्ह विष्मती घृताची" - ऋग्वेद 10.85

ऋग्वेद में घोषा, लोपामुद्रा, अपाला, आत्रेयी आदि ऋषिकाओं का उल्लेख होता है, जिन्होंने न केवल यज्ञों में भाग लिया, अपितु अनेक सूक्तों की रचना भी की। ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ जैसे मैत्रेयी और गार्गी, दार्शनिक संवादों और तात्त्विक विचारों में संलग्न होकर वैदिक ज्ञान परंपरा को समृद्ध करती थीं।

"कात्यायनी च मैत्रेयी गार्गी वाचननवी तथा। एवं माद्य विदुर्ब्रह्म तस्मात स्त्री ब्रह्मविद्भवेत्"

इस प्रकार संस्कृत वाङ्मय नारी को केवल पूज्य नहीं, बल्कि आध्यात्मिक शक्ति और ज्ञान की वाहिका के रूप में देखता है।

नारी का राजनीतिक और सामाजिक अधिकार

संस्कृत वाङ्मय में नारी को न केवल वैदिक अध्ययन और दर्शन का अधिकार प्राप्त था, बल्कि उसे सामाजिक और राजनीतिक निर्णयों में भी भागीदारी प्राप्त थी। अथर्ववेद में स्पष्ट किया गया है कि स्त्रियाँ सभाओं में सम्मिलित होती थीं, वक्तृत्व करती थीं और नीति-निर्धारण में भाग लेती थीं।

"अभी वर्धतां पयसाऽभिराष्ट्रेण वर्धताम्। रक्षासहस्रवर्चसा इमौ स्तामनुपक्षितौ"- अथर्ववेद 14.2.71

"शोचन्ति जाया यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम। न शोचन्ति तु यत्र तद्वर्धते तद्धि सर्वदा" - मनुस्मृति 3.56

ऋग्वेद के वागम्भृणीय सूक्त में नारी को उच्चतम सामाजिक चेतना का प्रतिनिधि माना गया है। यह मंत्रदर्शी स्त्रियाँ केवल पारिवारिक संस्थाओं की आधार नहीं थीं, बल्कि वे शासन, संवाद, नीति और समाज की धारा में सक्रिय योगदान देती थीं।

इस प्रकार, संस्कृत साहित्य यह प्रमाणित करता है कि नारी राजनीतिक संवाद, राष्ट्र-निर्माण और सांस्कृतिक स्थायित्व की अनिवार्य धुरी रही है।

संस्कृत वाङ्मय में नारी का सांस्कृतिक एवं शैक्षिक रूप

संस्कृत साहित्य में नारी को सांस्कृतिक संवाहिका और शैक्षिक साधिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह न केवल काव्य, नाट्य और संगीत की संरचना में सहभागी रही है, अपितु शिक्षा, अध्ययन, कला और अभिनय की दृष्टि से भी समृद्ध रही है। वैदिक युग की स्त्रियाँ केवल घरेलू दायरे में सीमित नहीं थीं, बल्कि वे गुरुकुलों में अध्ययन, शास्त्रों का पारायण, और कला की साधना में अग्रणी थीं।

ऋग्वेद में उषा को सौंदर्य, कला और नृत्य की प्रतीक कहा गया है:

"जायेयपत्य उशती सुवास:, उषा हस्ते वनिरिणीते अप्स:" - ऋग्वेद 10.159.1

अनेक ऋषिकाएँ जैसे घोषा, अपाला, विश्ववारा आदि स्त्रियाँ न केवल विदूषी थीं, बल्कि उन्होंने वैदिक सूक्तों की रचना कर अपनी बौद्धिक सृजनात्मकता का परिचय भी दिया। वे अध्यापन, शास्त्रार्थ और कवित्व की दृष्टि से उच्चस्तरीय उपलब्धियाँ रखती थीं।

शास्त्रों में यह कहा गया है:

"कात्यायनी च मैत्रेयी गार्गी वाचननवी तथा। एवं माद्य विदुर्ब्रह्म तस्मात स्त्री ब्रह्मविद्भवेत्"

संस्कृत नाट्यशास्त्र में नायिकाओं को नाट्य की आत्मा माना गया है। वे रसोत्पत्ति, संवाद, अभिनय और सहभाव के माध्यम से कला की अभिव्यक्ति को सजीव बनाती हैं। स्त्रियों को गायन, वादन, नर्तन एवं ललित कलाओं में शिक्षा दी जाती थी, जो उन्हें संस्कृति की संवाहक बनाती थी।

इस प्रकार, संस्कृत वाङ्मय में नारी का शैक्षिक और सांस्कृतिक स्वरूप केवल पारंपरिक नहीं, बल्कि सृजनशील, प्रगतिशील और समाज-निर्माण में योगदानकारी है।

संस्कृत वाङ्मय में नारी का दिव्य रूप और महत्व

संस्कृत वाङ्मय में नारी को केवल सामाजिक या पारिवारिक भूमिका तक सीमित नहीं किया गया, बल्कि उसे दैवीय स्वरूप के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। नारी को देवी, शक्ति, माया, श्रद्धा और प्रकृति के प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है। सरस्वती - विद्या, वाणी और बुद्धि की देवी, जिन्हें ज्ञान की स्रोतस्वरूपा माना गया है। उनके प्रति अनेक स्तुतियाँ उपलब्ध हैं:

"या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता।
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवै: सदा पूजिता।
सा मां पातु सरस्वती भगवती नि:शेषजाड्यापहा।"

यह स्तुति सरस्वती को अज्ञान निवारिणी और ज्ञानदायिनी के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

- उषा - सौंदर्य और चेतना की देवी, जो नए युग और नवीन प्रभा की उद्घोषणा करती हैं।

"अवधं ज्योतिरुदिते ऋतावधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे" - ऋग्वेद

रामायण में माता सीता का चरित्र नारीत्व की सर्वोच्च मर्यादा, त्याग और धैर्य का आदर्श है। वे वनवास, अग्निपरीक्षा और एकाकी जीवन जैसी कठिन परिस्थितियों में भी धर्म और आत्मबल की मिसाल बनी रहीं। उनका चरित्र यह सिखाता है कि नारी केवल सहनशील नहीं, बल्कि धर्मस्थापन की आधारशिला है।

कालिदास के कुमारसंभव महाकाव्य में माता पार्वती का चित्रण अत्यंत मार्मिक और दिव्य रूप में हुआ है। वे तपस्या के माध्यम से भगवान शिव को प्राप्त करती हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि नारी में साधना, शक्ति और संकल्प का अद्भुत सामर्थ्य है।

"सा पार्वती तपसा दुर्निरीक्ष्या, स्वधर्मेणा प्रियं लब्धुकामा।"

वह केवल उपास्या नहीं, संरक्षिका, प्रेरिका और चरित्र की आदर्श मूर्ति है।दैवीय चेतना की जीवंत प्रतिमा है।

संस्कृत वाङ्मय में नारी को केवल सामाजिक या पारिवारिक भूमिका तक सीमित नहीं किया गया, बल्कि उसे दैवीय स्वरूप के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। नारी को देवी, शक्ति, माया, श्रद्धा और प्रकृति के प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है।

"या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धा रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।"

महाभारत में द्रौपदी को शक्ति, विवेक और नीति की प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है। वह केवल एक पत्नी नहीं, बल्कि धर्म, सत्य और आत्मसम्मान की उद्घोषक हैं। रामायण में सीता त्याग, धैर्य और धर्म की प्रतिमूर्ति हैं, जिनका चरित्र आदर्श नारीत्व का प्रतीक है।

इस प्रकार, संस्कृत वाङ्मय में नारी दैवीय चेतना की जीवंत प्रतिमा है। वह केवल उपास्या नहीं, संरक्षिका, प्रेरिका और चरित्र की आदर्श मूर्ति है।

संस्कृत वाङ्मय में नारी विषयक सांस्कृतिक चेतना

संस्कृत वाङ्मय में नारी को केवल लौकिक दृष्टि से नहीं देखा गया, बल्कि उसे एक संवेदनशील, सृजनशील और संस्कृतिकरण की वाहिका के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। नारी के प्रत्येक रूप – माता, पत्नी, कन्या, ऋषिका, साध्वी, नायिका – में सांस्कृतिक आदर्शों का समावेश मिलता है। वेदों, उपनिषदों, महाकाव्यों और शास्त्रों में नारी को समाज की आत्मा और संस्कृति की संवाहिका माना गया है।

नारी की शिक्षा, कला, भाषा, धर्म और आचारशास्त्र में भागीदारी ने समाज को संस्कारित करने का कार्य किया। ऋग्वैदिक समाज में गायत्री, सरस्वती, श्रद्धा, सावित्री, घोषा, लोपामुद्रा, गार्गी और मैत्रेयी जैसी ऋषिकाएँ वैदिक मंत्रों की दृष्टा बनकर नारी की बौद्धिक चेतना की पराकाष्ठा को दर्शाती हैं।

"श्रद्धां यज्ञे, श्रद्धां दक्षे, श्रद्धां सत्ये, श्रध्दां तपसि" – ऋग्वेद

संस्कृत साहित्य में नारी की छवि केवल भावनात्मक या सौंदर्यबोध से युक्त नहीं, बल्कि उसमें संघर्षशीलता, आध्यात्मिक उन्नयन और संस्कृति रक्षण का भाव प्रबल है। वह भाषा की शक्ति भी है और जीवन का सौंदर्य भी। नारी का व्यक्तित्व ही संस्कृति की धुरी रहा है। संस्कृत वाङ्मय की रचनाएँ इसी चेतना को पुष्ट करती हैं।

इस प्रकार, संस्कृत वाङ्मय में नारी विषयक सांस्कृतिक चेतना समग्र जीवन दर्शन को प्रकट करती है ख़ जहाँ नारी संस्कार, संस्कृति और सृष्टि की आधारभूत प्रेरणा मानी गई है।

निष्कर्ष

संस्कृत वाङ्मय में नारी का स्थान केवल सामाजिक भूमिकाओं तक सीमित नहीं रहा, अपितु वह ज्ञान, धर्म, शक्ति और सृजन की मूर्त प्रतिमा रही है। ऋग्वेद से लेकर महाभारत और कालिदास तक के साहित्य में नारी एक संवेदनशील, संघर्षशील और चिंतनशील चेतना के रूप में प्रकट होती है। वह जहाँ एक ओर यज्ञ की सहभागी है, वहीं दूसरी ओर दार्शनिक विमर्श की प्रणेता भी है। नारी का रूप सरस्वती की विद्या, सीता की मर्यादा, पार्वती की तपस्या और गार्गी की तर्कशक्ति के रूप में निखरता है।

नारी केवल काव्य की प्रेरणा नहीं, वह स्वयं काव्य, संस्कृति और ज्ञान का केंद्र है। संस्कृत साहित्य ने नारी को न केवल देवी के रूप में पूजा, बल्कि उसे शिक्षित, स्वतंत्र, आत्मनिर्भर और राष्ट्रधर्म की सहभागी के रूप में चित्रित किया।

अतः यह स्पष्ट होता है कि नारी केवल परिवार की नहीं, बल्कि समाज और संस्कृति की आधारशिला है। वर्तमान युग में जब नारी को पुनः उसकी गरिमा प्रदान करने की आवश्यकता है, तब संस्कृत वाङ्मय का यह स्वरूप मार्गदर्शक बनकर आदर्श, प्रेरणा और चेतना प्रदान करता है।

संदर्भ

- झा, जी. एस. (2003). प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी. चौखम्बा संस्कृत सीरीज।
- पटवर्धन, एस. (2015). प्राचीन भारतीय ग्रंथों में नारी का स्थान. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- भट्टाचार्य, के. (2008). प्रारंभिक भारतीय ग्रंथों में नारी और लिंग. राउटलेज।
- देशाई, ए. (2001). संस्कृत साहित्य में नारीत्व का अभिप्राय. भारतीय विद्या प्रकाशन।
- कृष्ण, डी. (2011). संस्कृत ग्रंथों में प्राचीन भारतीय समाज में नारी का स्थान. मोतीलाल बनारसीदास।
- शर्मा, उ. (2006). भारतीय पुराणों और साहित्य में नारी. पेंगुइन इंडिया।
- सुब्रमण्यम, एस. (2010). संस्कृत साहित्य में नारी का अस्तित्व. साउथ एशियन रिव्यू।
- राय, एस. (2009). संस्कृत साहित्य में प्राचीन भारतीय समाज में नारी का चित्रण. यूनिवर्सिटी प्रेस।
- घोष, एस. (2004). नारी-विमर्शः भारतीय शास्त्रीय ग्रंथों में नारी. कावेरी बुक्स।
- सिंह, ए. (2002). प्राचीन भारतीय साहित्य में लिंग और प्रतिनिधित्व. डी.के. प्रिंटवर्ल्ड।

गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस पर संस्कृत नाटकों का प्रभाव

डॉ० शशिकांत राय

असिसटेन्ट प्रोफेसर (हिंदी), पंजाब विश्वविद्यालय कॉलेज, निहाल सिंहवाला (मोगा)

गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी, संस्कृत वाङ्मय के सेतु हैं जिन्होंने 'भाषा' में रचनाकार लोकजन तक साहित्य के अभाव को पूर्ण किया। यही कारण है कि बाल्मीकि के रामायण की अपेक्षा तुलसी का रामचरितमानस सर्वत्र लोकप्रिय एवं सर्वजन पठनीय है। तुलसीदास का रामचरितमानस भले ही हिन्दी भाषा में लिखा गया परन्तु उसका आधार संस्कृत साहित्य का विपुल भण्डार ही था। आचार्य सीताराम चतुर्वेदी द्वारा संपादित - तुलसी ग्रंथावली (प्रथम खण्ड) के ग्रंथ सूची में 265 रचनाओं की सूची दी गयी है जिनसे सहायता लेकर गोस्वामी जी ने रामचरितमानस की रचना की।[1] इन सब ग्रन्थों में संस्कृत नाट्य ग्रन्थों की भूमिका भी प्रधान है। इस हिन्दी साहित्य के अद्वितीय ग्रन्थ में तुलसी की सार्वभौम चिंतन ने श्रीरामचरितमानस को सार्वभौमिक महाकाव्य सिद्ध कर दिया है जिसमें तुलसी के मूलभाव की अभिव्यक्ति कथावस्तु के गुम्फन में चरित्र के दर्शन और प्रबंध स्थापना में परिलक्षित होता है। इसमें बाल्मीकि, कालिदास और भवभूति का जीवनदर्शन एवं भारतीय संस्कृति का सार समाहित है। गूढ़ दर्शन, रमणीय साहित्य और जीवन्त संवाद का एकत्र दिग्दर्शन श्रीरामचरितमानस में होता है। तुलसी के ऊपर काव्य, नाटक आदि अन्यान्य ग्रन्थों का प्रभाव था, जिसे तुलसी ने स्वयं मंगलाचरण में कह दिया है- ''नानापुराण निगमागम सम्मतं यद् रामायणे क्वचिदन्यतोऽपि।।''[2] पुनः इसे 'रामायण जी की आरती' में भी कह दिया है- ''गावत वेद पुरान अष्टदस, छवो सास्त्र सब ग्रंथन को रस।''[3]

गोस्वामी तुलसीदास पर संस्कृत के उन्हीं नाटकों का प्रभाव रहा है जिनका विषय मूलतः रामकथा ही था। अतः गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस पर प्रमुख रूप से तेरह नाटकों का प्रभाव दिखाई देता है। सामान्य सी बात है कि ये नाटक तुलसीदास के पूर्व रचित हैं। नाटक संस्कृत साहित्य की उत्कृष्ट काव्यविधा है जिसे आचार्य भरतमुनि ने पंचम वेद भी घोषित किया था।[4] तुलसीदास पर लगभग एक दर्जन नाटककारों की कृतियों का प्रभाव है जिनमें हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव और उत्तररामचरित अधिक अभिप्रेरित है। इसके अतिरिक्त भासकृत प्रतिमानाटक, अभिषेक नाटक, कालिदासकृत अभिज्ञानशाकुन्तल, भवभूतिकृत महावीरचरित, मुरारिकृत अनर्घराघव, शक्तिभद्रकृत आश्चर्य चूड़ामणि, सुबन्धुकृत वासवदत्ता, शूद्रककृत मृच्छकटिक, दिङ्नागकृत कुंदमाला, सुभटकृत, दूतांगद, जयदेवपीयशूवर्षकृत प्रसन्नराघव तथा भास्करकृत उन्मत्तराघव प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

'प्रतिमानाटक' के रचयिता भास संस्कृत के प्रथम नाटककार माने जाते हैं जिनका समय ई.पू. चौथी शताब्दी मानी जाती है। इसमें कुल 7 अंक हैं। इनकी दूसरी कृति अभिषेक नाटक है। इसमें प्रतिमानानटक की अपेक्षा एक अंक कम है किन्तु रामचरितमानस पर इन दोनों कृतियों का प्रभाव दिखाई देता है। इन दोनों कृतियों का उपस्कारक कृति आदि कवि प्रणीत 'रामायण' है। प्रतिमा नाटक का प्रभाव रामचरितमानस के सभी काण्डों में दिखाई देता है।

प्रमिानाटक में राम के राज्याभिषेक को छोड़कर वन जाने को आदेश का पालन बताया गया तो रामचरितमानस में इसे मंगलकारी माना गया है-

स्व0: पुत्रः कुरूते पितुर्यदि वचः कस्तत्रः भो विस्मयः।।[5]

मंगल समय सनेह वस सोच परिहरिअ तात।

आयसु देइअ हरषि हिय कहि पुलके प्रभु गात।।[6]

इसी प्रसंग को वाल्मीकीय रामायण में इस रूप से वर्णित किया गया है-

यत्तत्रभवतः किंचिच्छक्यं कर्तुं प्रियं मया।

प्राणानपि परित्यज्य सर्वथा कृतमेव तत्।।

इस प्रकार प्रतिमा नाटक के सातो अंकों का प्रभाव मानस के सभी 7 काण्डों में दिखाई देता है। इसके साथ इस नाटक का प्रभाव 'गीतावली' पर भी है, यथा-

पित्रा च बांधव जनेन च विप्रयुक्तो

दुःखं महत् समनुभूय वन प्रदेशे।।[7]

वनिता वंधु समेत वसत वन पितु हित कठिन कलेस सहे, री।।[8]

अभिषेक नाटक का प्रभाव मानस के किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड और लंकाकाण्ड पर विशेष ही है क्योंकि इसी कथाप्रसंग का वर्णन अभिषेक नाटक में है। यथा-

बालिना ताड़ितः पतितः सुग्रीवः।।[9] इस प्रसंग को तुलसी ने इसी भाव को लिखा है- ''तब सुग्रीव विकल होई भागा। मुष्टि प्रहार वज्र सम लागा।।''[10]

यह प्रसंग 'अध्यात्म रामायण' में इस भाँति उल्लिखित है-

ततो दुद्राव सुग्रीवो वमन् रक्तं भायकुलः।

लंकाकाण्ड के युद्ध वर्णन का प्रभाव भी द्रष्टव्य है-

बलाहकानामिव खेऽभिगर्जताम्।।

रामचरितमानस में इसको मानो अक्षरशः रूपान्तर किया गया है- ''गर्जहिं मनहुँ बलाहक घोरा।।''[11]

कालिदास की सर्वश्रेष्ठ नाट्य कृति एवं संस्कृत का अद्वितीय नाटक 'अभिज्ञानशांकुन्तल' का अत्यल्प प्रभाव मानस पर दिखता है। उत्तरकाण्ड के अन्त में मात्र एक स्थान पर अभिज्ञानशाकुन्तल के एक श्लोक का भावार्थ दिखाई देता है-

अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम।[12]

मानस में इसकी छाया इस रूप में है-

भूर्ज तरु सम संत कृपाला। पर हित नित सह विपति विसाला।।[13]

कालिदास के बाद संस्कृत में सर्वश्रेष्ठ नाटककार भवभूति हैं जिनका समय 700 ई. माना गया है। इनकी प्रथम कृति 'महावीरचरित' और अंतिम सर्वश्रेष्ठ कृति उत्तररामचरित का प्रभाव मानस पर दिखाई पड़ता है। महावीरचरित 7 अंकों का नाटक है तथा रामायण के उत्तरकाण्ड से प्रभावित उत्तररामचरित में भी 7 काण्ड हैं। इसकी उद्भावना रामसीता का मिलन है। महावीरचरित में रामविवाह से राज्याभिषेक तक की कथा का ही वर्णन है। कई प्रसंग में तो शब्दों को यथावत ग्रहण कर लिया है, यथा-

दैवात् कृतो विनयापचारः[14], छमहु चूक अनजानत केरी।।[15]

'उत्तररामचरित' में 'रामायण' का उत्तरकाण्ड प्रसंग है।

अंधतामिस्रा हयसूर्या नाम ते लोकाः प्रेत्य तेभ्यः
पतिविधीयन्ते, य अत्मद्यातिनः इत्येवमृषयेमन्यन्ते।।[16]

इसी कथन को मानस में रामचन्द्र जी गुरु वशिष्ठ समेत ब्राह्मण और नगरवासियों को समझाते हैं-

जो न तरइ भव सागरहिं नर समाज अस पाइ।
सो कृत निन्दक मंदमति, आत्माहन गति जाइ।।[17]

इसे ही 'भागवत' में दूसरी भाँति कहा गया है-

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्प गुरुकर्णधारम्।
मायानुकूलेन नभस्वतरितं पुमान भवाब्धिं न तरेत स आत्महा।।[18]

'अनर्घराघव' के रचयिता मुरारि 8वीं शताब्दी के नाटककार पर उत्तरामचरित का प्रभाव है तथा मानस पर 14 प्रसंगों का भी प्रभाव मिलता है। इसमें 7 अंक हैं। अनर्घराघव में 14 वर्ष का रामवनवास सीता लक्ष्मण के साथ लिखा गया है-

वर्षाणि तिष्ठतु चतुर्दश दण्डकायां
सौमित्रमैथिलसुतासहितश्च रामः।।[19]

इसे मानस में केवल राम को ही वनवास माँगने का प्रसंग दिखाया गया है-

तापस वेष विसेषि उदासी। चौदह वरिस राम वनवासी।[20]

8वीं शताब्दी के नाटककार शक्तिभद्र की अद्भुत रसप्रधान नाटक 'आश्चर्य चूड़ामणि' में 7 अंक हैं। प्रसंगतः नाटक और मानस में पर्याप्त प्रसंग समान है, यथा-रावण जटायु युद्ध प्रसंग में जटायु की चोंच से रावण के घायल होने का प्रसंग एक समान मिलता है-

उत्कृत्योत्कृत चेचवा झझझटिति गलत् सान्द्ररक्तारूणानि।[21]

मानस में- चोचन्ह मारि विदारेस देही।[22]

नृसिंह पुराण में इस भाँति लिखा है- विददार नखैरस्य तुण्डं पृष्ठे समर्पयन्।[23]

राजशेखर संस्कृत के प्रसिद्ध काव्यशास्त्री आचार्य हैं। इनके चार रूपक मिलते हैं- बाल रामायण, बाल भारत, विद्धशालभंजिका और कर्पूरमंजरी। बाल रामायण और बाल भारत दोनो आर्षकाव्य-रामायण और महाभारत के कथानक से सम्बद्ध हैं। महानाटक के रूप में विख्यात बालरामायण में कुल 10 अंकों में रामकथा का वर्णन प्रथमांक जनकपुर में विवाहोत्सव से प्रारम्भ है तथा दसवें अंक में सीता की अग्निपरीक्षा पर्यन्त नाटक पूर्ण हो जाता है। सीता केन्द्रित इस नाटक में सीता के चरित्र को गोस्वामी तुलसीदास ने भी छायाभाव ले रखा है। राम-परशुराम के संवाद का अंतिम कथन अक्षरशः अनुवाद ही जान पड़ता है।

चापं वृषाकपिनिरस्तसमस्त सारं
द्वेधाविधाय रघुनंदन मा स्म दृप्यः।

वैकुण्ठकार्मुकमकुण्ठ कठोर भाव-

मारोपयैतदिह चेत् तव शक्तिरस्ति।।[24]

अर्थात्-शिव के धनुष को तोड़कर हे रघुनंदन! दर्प मत करो। यदि शक्ति हो तो इस वैष्णव चाप को चढ़ाओं, जिसकी कठोरता कुण्ठित नहीं हुई है।

भंजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहुँ जगु गाढ़ा।।[25]

यह साक्ष्य 'प्रसन्नराघव' में भी मिलता है- अहो दर्पान्धता यदात्मनाकृतमसयभिरूक्तिमपि नावधारपति निजदुर्विनयम्।।[26]

मानस में इस भाँति यही भावार्थ व्यंजित है-

राम! रमापति! कर धनु लेहू। खैंचहु, मिटै मोर संदेहू।।[27]

लंका से लौटते समय राम सीता को मार्ग में प्रयाग दिखाते हैं-

न्यग्रोधोऽयं वन्द्यतां श्यामनामा, शम्भोर्भ्रष्टा शेखराज्जाह्नवीयम्।

कालिन्दी चप्लाविता तत्तयोभिस्तीर्थ ह्येतत् स्वर्गमार्गः प्रयागः।।[28]

इस श्लोक का मानस के लंकाकाण्ड में यथावत् वर्णन है-

पुनि देखउ सुरसरी पुनीता। राम कहा प्रनाम करू सीता।

तीरथपति पुनि देखु प्रयागा। निरसत जन्म कोटि अघ भागा।।[29]

11वीं शती में दामोदर मिश्र का 'हनुमान्नाटक' सर्वाधिक वृहद नाटक है, जिसमें 14 अंक 5792 श्लोक हैं। इसके आरंभ में लिखा जा चुका है कि 'हनुमन्नाटक' ऐसी नाट्यकृति है, जिससे तुलसीदास ने अत्यधिक सहायता ली है। इस 14 अंकों के विशाल नाटक में रामजन्म से सीता निर्वासन की कथा वर्णित है। अपनी अनुपमेयता के कारण यह विद्वान जनों का कण्ठाहार भी बना हुआ है। यह नाटक पद्यात्मक शैली की अपेक्षा चित्रोपम गद्यात्मक शैली में लिखा गया है। इस पर प्रसन्नराघव और महानाटक का भी प्रभाव दिखता है। मंगलाचरण- कल्याणानां निधनं कलिमलमथनं पावनं पावनानाम।।30 से तुलसीदास ने प्रभावित होकर लिखा है-

नाम राम को कल्पत्रू कलि कल्याण निवास।।[31]

अरूणदलनलिन्या स्निग्धपादारविन्दा।

कठिनतनुधरण्यां यात्यकस्मात्स्खलन्ती।।[32]

यह रामचरितमानस से तुलनीय है-

चरण कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारक अगम भूमिधर भारे।।[33]

पं0 दामोदर मिश्र के ही समकालीन मधुसूदन मिश्र भी माने जाते है। इनके 'महानाटक' नामक नाटक के 9 अंकों में 791 श्लोक विरचित हैं। महानाटक से साम्य रखने वाले 'हनुमन्नाटक' को विद्वान एक ही मानते हैं। परन्तु मानस पर इस प्रभाव हनुमन्नाटक की अपेक्षा कम दिखाई पड़ता है।

अथकृतरथभंगं पक्षिराजं निहत्य,

क्षितिगतमवलोक्य श्वासमात्रावशेषम्।।[34]

मानस के अरण्यकाण्ड में वर्णित है-

काटेसि पंख परा खग धरनी।

सुमिर राम करि अद्भूत करनी।।[35]

'कुन्दमाला' की रचना 1000 ई0 में दिङ्नाग ने की है। इस 6 अंकों के नाटक पर उत्तररामचरित का भी प्रभाव मिलता है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी इससे कुछ पद एवं भाव ग्रहण किये थे। 12वीं शताब्दी में 'सुभट' द्वारा लिखित 'दूतांगद' प्रथम छाया नाटक माना जाता है। इसमें राम के दूत अंगद का प्रसंग वर्णित है तथा राम-रावण युद्ध से समाप्ति की गई है। गीतगोविन्द से भिन्न जयदेव पीयूषवर्ष की प्रसिद्ध रचना 'प्रसन्नराघव' 13वीं शती में लिखा गया 6 अंकों का नाटक है। इसकी कथा जनकपुरी से प्रारम्भ होकर रावण की मृत्यु तक वर्णित है। तुलसीदास ने 'हनुमन्नाटक' की भाँति प्रसन्नराघव का भी अधिक भाव ग्रहण करके मानस में चारूता लाई है। इसके कुछ पदों की तुलना की जाती है। रावण के द्वारा कैलाश पर्वत के उठाने के भाव एक हैं किन्तु उसके प्रसंगानुकुल दो स्थल एक समान हैं- अत्राभवद्विफलाबाहुबलालेयो वीरः शशांक मकुटाचलचालनोऽपि।।[36] मानस में इसी कैलाश पर्वत को उठाने वाले रावण के द्वारा शिव धनुष नहीं उठाया जा सका।

जिहि कौतुक सिव सैल उठावा। सो तिहि सभा पराभव पावा।।[37]

जटायु रावण युद्ध प्रसंग में 'प्रसन्नराघव' में जटायु कहता है-

आतिष्ठतिष्ठ निहितोऽसि खलेति जल्पन् दूरात्।।[38] को मानसकार अपनी भाषा में शब्दबद्ध करते हुये लिखा है- रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही। निर्भय चलेसि न जानेहि मोहीं।।[39]

रावण विभीषण के प्रसंग को जो ज्योतिष एवं लोक विश्वास से सम्बन्धित है वह दोनों समतुलनात्मक रूप में प्रस्तुत है।- उदर्कभूतिमिच्छदिः सर्दि्भः खलु न दृश्यते। चतुर्थी चन्द्रलेखेव परस्त्री भाल पट्टिका।।[40]

रामचरितमानस के सुन्दरकाण्ड में यथावत विषय-भाषा एवं शब्द इस प्रकार से है-

जो आपन चाहै कल्याना। सुजस सुभ गति सुख नाना।

तो परनारि लिलार गोसाई। तजिअ चौथ के चंद की नाई।।[41]

उन्मत्तराघव 14वीं शती में भास्कर कवि के द्वारा लिखा गया एकांकी रूपक है। इसे बी0 वरदाचार्य ने अपने संस्कृत साहित्य का इतिहास में प्रेक्षाणक नाटक बताया है।[42] इसमें सीता के आकस्मिक रूप से खो जाने तथा राम का विलाप वर्णित है। उन्मत्त राघव में सीता इस प्रकार है, जिसे राम कहते हैं-

त्रैलोक्यलावण्य ललामभूतां हा जानकी कुत्र विलोकयामि।।[43]

उन्हीं रूपों वाली तुलसी की सीता इस प्रकार हैं-

हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील व्रत नेम पुनीताह।।[44]

उन्मत्तराघव में राम ने जिन गुणों के लिए अगस्त्य मुनि की प्रशंसा की है उसे मानस में गरूड़ से कागभुशुण्डि के संत के द्वारा स्वभाव बतलाया है-

परोपकारशीलत्वं परदु:खासहिष्णुता। दयापरत्वं दाक्षिण्यं सतां स्वाभाविका गुणा:।।[45]

पर उपकार वचन मनकाया। संत सहज सुभाव खगराया।

संत सदहिं दुख परहित लागी। परदुख हेतु असन्त अभागी।[46]

उपर्युक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि गोस्वामी तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस के उद्देश्य में कथित- '' नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद् रामायणे क्वचिदन्यतोऽपि।।[47] के द्वारा अनेक पूर्ववर्ती संस्कृत रामायणों, नाटकों के अध्ययनोपरान्त उसके विविध भाव, भाषा एवं प्रसंगों को मानसानुकूल ग्रहण किया है। इन सभी नाटकों के सार से अपनी रचना को अनुपमेय बनाया ही नहीं उसमें साहित्यिक सरसता और चारूता ने रामचरितमानस को सार्वकालिक, सार्वभौमिक कृति घोषित कर दिया।

सन्दर्भ -

1. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी-तुलसी ग्रंथावली (प्रथमखण्ड-संपादित), ग्रन्थ-सूची, पृ.265.
2. गोस्वामी तुलसीदास-श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड, मंगलाचरण, श्लोक 7.
3. बही, रामायन जी की आरती'
4. आचार्य भारतमुनि, नाट्यशास्त्र
5. भासकृत प्रतिमानाटक, 1.5
6. गोस्वामी तुलसीदास-श्रीरामचरितमानस, 5.45
7. भासकृत प्रतिमानाटक, 6.12
8. गोस्वामी तुलसीदास-गीतावली, 2.42.2
9. भासकृत-अभिषेक नाटक, 14वें श्लोक के बाद गद्यांश
10. गोस्वामी तुलसीदास-रामचरितमानस, 4.8.2
11. वही, 6.87.4
12. कालिदास-अभिज्ञान शाकुन्तल, 5.7
13. गोस्वामी तुलसीदास-रामचरितमानस, 7.121.8
14. भवभूति-महावीरचरित, 4.21
15. गोस्वामी तुलसीदास-रामचरितमानस, 1.2882.4
16. भवभूति-उत्तररामचरित
17. गोस्वामी तुलसीदास-रामचरितमानस, 6.44
18. आ. सीताराम चतुर्वेदी (सं.) तुलसी ग्रन्थावली, पृ. 952
19. मुरारि-अनर्घराघव, 6.6.6.
20. गोस्वामी तुलसीदास-रामचरितमानस, 2.29.3
21. शक्तिभद्र-आश्चर्य चूड़ामणि, 4.11.3
22. गोस्वामी तुलसीदास-रामचरितमानस, 3.29.20
23. आ. सीताराम चतुर्वेदी-तुलसीग्रन्थावली, पृ0 678.
24. राजशेखर-बालरामायण, 4.73
25. गोस्वामी तुलसीदास-रामचरितमानस, 1.283.6
26. आ. सीताराम चतुर्वेदी (संपा.)-तुलसीदास ग्रन्थावली, पृ. 279.
27. गोस्वामी तुलसीदास-रामचरितमानस, 1६.284.4

28. राजशेखर-बालरामायण, 10.91
29. गोस्वामी तुलसीदास-रामचरितमानस, 4.10.6-7
30. दामोदार मिश्र-हनुमन्नाटक, अंक 1, मंगलाचरण,
31. गोस्वामी तुलसीदास-रामचरितमानस, 1.11
32. दामोदर मिश्र-हनुमन्नाटक, 3.14.
33. गोस्वामी तुलसीदास-रामचरितमानस, 2.62.6
34. मधुसूदन मिश्र-महानाटक, 3.66.
35. गोस्वामी तुलसीदास-रामचरितमानस, 3.29.23.
36. जयदेव पीयूषवर्ष-प्रसन्नराघव, 3.34.
37. गोस्वामी तुलसीदास-रामचरितमानस, 1.292.8
38. जयदेव पीयूषवर्ष-प्रसन्नराघव, 5.48.
39. गोस्वामी तुलसीदास-रामचरितमानस, 3.29.11.
40. जयदेव पीयूषवर्ष-प्रसन्नराघव, 7.1.
41. गोस्वामी तुलसीदास-रामचरितमानस, 5.38.5-6.
42. वी. वरदाचार्य-संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 238
43. भास्करकवि-उन्मत्तराघव, 12.
44. गोस्वामी तुलसीदास-रामचरितमानस, 3.30.7.
45. भास्करकवि-उन्मत्तराघव, 41.
46. गोस्वामी तुलसीदास-रामचरितमानस, 7.121.14-15
47. बही, 17 श्लोक (मंगलाचरण)

छोटे भूमि धारकों के लिए किसान उत्पादक संगठन (FPO): आर्थिक सशक्तिकरण और कृषि स्थिरता की दिशा में एक पहल

अर्चना[1]

शोधकर्ता, लोक प्रशासन विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक।

मोहित रांगी2

शोधकर्ता, लोक प्रशासन विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक।

सारांश

भारत की कृषि प्रणाली उच्च विखंडन से प्रभावित है, जहाँ 86% किसान दो हेक्टेयर से कम भूमि के मालिक हैं (कृषि गणना 2015-16)। यह संरचनात्मक सीमा किसानों की आर्थिक स्थिरता, ऋण और बाजार तक पहुँच, और तकनीकी उन्नति में बाधा डालती है, जिससे उनकी आय और उत्पादकता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए, किसान सामूहिकरण के विभिन्न मॉडल, जैसे सहकारी समितियाँ और किसान उत्पादक संगठन (FPOs) विकसित किए गए हैं। FPOs ने छोटे किसानों को वित्तीय सहायता, तकनीकी निवेश, इनपुट उपलब्धता, बाजार पहुंच, और आर्थिक स्थिरता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह शोध पत्र भारत में FPOs के ऐतिहासिक विकास, उनके संरचनात्मक ढांचे, संचालन प्रक्रिया, आर्थिक प्रदर्शन, और सामाजिक-आर्थिक प्रभाव का अध्ययन करता है।

हालांकि, राजनीतिक हस्तक्षेप, वित्तीय सीमाएँ, और कमजोर बाजार संबंधों ने पारंपरिक सहकारी समितियों की प्रभावशीलता को प्रभावित किया है। इस समस्या के समाधान हेतु, व्यवसाय-उन्मुख संगठन, जैसे स्वयं सहायता समूह (SHGs), किसान क्लब, और उत्पादन कंपनियाँ (PCs) उभरे हैं। YK अलघ समिति (2000) की सिफारिश और कंपनी अधिनियम 2002 में संशोधन ने FPO पंजीकरण के लिए संरचित ढांचा प्रदान किया। इसके अतिरिक्त, SFAC द्वारा चलाए जा रहे कृषि-व्यवसाय कार्यक्रम और छ।ठ।त्क की इक्विटी अनुदान योजना (2011) ने FPOs के गठन को बढ़ावा दिया।

यह शोध पत्र थ्च्ब् के विकास, संरचना, और उनके सामने आने वाली चुनौतियों का विश्लेषण करता है, और उनके सतत संचालन और छोटे किसानों पर सामाजिक-आर्थिक प्रभाव को सुधारने के लिए नीतिगत सिफारिशें प्रस्तुत करता है।

प्रमुख शब्द: किसान उत्पादक संगठन (FPO), छोटे भूमि धारक, कृषि सहकारी आंदोलन, आर्थिक उदारीकरण और कृषि, संरचित वित्तपोषण एवं सरकारी योजनाएँ, Small Farmer Agribusiness Consortium (SFAC) और National Bank for Agriculture and Rural Development (NABARD) पहल, कृषि बाजार संपर्क, तकनीकी और संसाधन उपलब्धता, उत्पादन कंपनियाँ (Producer Companies & PCs), किसान सामूहिकरण

प्रस्तावना

भारत का कृषि क्षेत्र अत्यधिक विखंडित है, जहाँ औसत कृषि भूमि का आकार दो हेक्टेयर से कम है (भारत की जनगणना, 2011)। 86% किसान छोटे और सीमांत भूमि धारक हैं (कृषि गणना 2015-16)। छोटी जोत और भूमि विखंडन किसानों के लिए कई चुनौतियाँ उत्पन्न करते हैं, जिनमें आर्थिक पैमाने की कमी, प्रौद्योगिकी अपनाने में बाधा, ऋण और बाजार तक सीमित पहुंच शामिल हैं। ये कारक कृषि उत्पादकता और किसान आय पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं (जोशी एट अल., 2010)।

इन समस्याओं को दूर करने और छोटे किसानों की सामूहिक सौदेबाजी शक्ति बढ़ाने के लिए, कई किसान सामूहिकरण पहल दशकों से लागू की गई हैं, जिनमें सहकारी समितियाँ और हाल के वर्षों में किसान उत्पादक संगठन (थ्च्ब्) प्रमुख हैं। थ्च्ब् ने निवेश, तकनीकी उन्नति, इनपुट की उपलब्धता, बाजार संपर्क और सेवाओं तक किसानों की पहुँच को बेहतर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भारत में FPO का विकास

किसान सामूहिकरण भारत में छोटे किसानों के कल्याण में सुधार करने की एक रणनीति रही है, जो स्वतंत्रता से पहले के समय से अपनाई गई थी। किसान उत्पादक संगठनों की उत्पत्ति सहकारी आंदोलन से हुई, जिसमें पहली सहकारी ऋण समितियों की स्थापना 1904 में की गई थी। 1950 के दशक तक, भारत में 50,000 से अधिक कृषि सहकारी समितियाँ थीं, जो कृषि ऋण, विपणन, प्रसंस्करण और अन्य गतिविधियों को बढ़ावा देती थीं (गुलाटी और कुमार, 2019)। 1963 में राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (NCDC) की स्थापना, जिसने सहकारी समितियों को मजबूत करने के लिए एक संस्थागत ढांचा प्रदान किया। 1970 में "ऑपरेशन फ्लड" कार्यक्रम के तहत डेयरी सहकारी समितियाँ तेजी से बढ़ीं, जिसे "श्वेत क्रांति" (White Revolution) के रूप में जाना जाता है।

हालाँकि, 1980 के दशक से पारंपरिक सहकारी मॉडल की सीमाएँ स्पष्ट होने लगीं: राजनीतिक हस्तक्षेप ख्र कई सहकारी समितियाँ राजनीतिक हितों का केंद्र बन गईं। प्रबंधन की कमी ख्र कई समितियाँ कुशलता से कार्य नहीं कर सकीं। निधियों की कमी ख्र आर्थिक उदारीकरण के बाद, सहकारी समितियाँ नए व्यापार वातावरण के अनुकूल नहीं हो सकीं।

1991 के आर्थिक उदारीकरण के बाद, सहकारी समितियों का प्रदर्शन अपेक्षाओं से कम रहा (सिंह और मिश्रा, 2019)। इन चुनौतियों के कारण, किसान-स्वामित्व और नियंत्रित संगठन को बढ़ावा देने की आवश्यकता महसूस की गई, जिससे व्यावसायिक दृष्टिकोण वाले संस्थानों का विकास हुआ।

FPOs की स्थापना और विस्तार

2000 में YK अलघ समिति की सिफारिश - किसान उत्पादक संगठनों को कंपनियों अधिनियम के तहत पंजीकृत करने का सुझाव। 1994 में Small Farmers Agribusiness Consortium (SFAC) की स्थापना - कृषि व्यवसाय को बढ़ावा देने के लिए। SFAC ने उत्पादन कंपनियों (PCs) के लिए पायलट परियोजनाएँ शुरू कीं (सिंह और मिश्रा, 2019)। 2002 में Companies Act में संशोधन - उत्पादन कंपनियों को कानूनी मान्यता दी गई। 2011 में NABARD dh Equity Grant Scheme – FPOs को वित्तीय समर्थन प्रदान किया गया (राजू और पटेल, 2014)।

इन नीतिगत हस्तक्षेपों ने भारत में थ्च्ब्े के विकास को गति प्रदान की, जिससे छोटे किसानों को अधिक लाभकारी व्यापार अवसरों तक पहुँच प्राप्त हुई।

भारत में किसान उत्पादक संगठन (FPOs) का विकास छोटे और सीमांत किसानों को आर्थिक रूप से सक्षम बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। सहकारी आंदोलन की सीमाओं को देखते हुए, व्यवसाय-उन्मुख FPOs को बढ़ावा दिया गया, जिससे किसानों को बेहतर बाजार पहुंच, वित्तीय स्थिरता, और प्रौद्योगिकी का उपयोग करने का अवसर मिला।

हालांकि, अभी भी प्रशासनिक सुधार, वित्तीय सहायता, और बाजार संबंध को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। राजनीतिक हस्तक्षेप, वित्तीय सीमाएँ, और सीमित संस्थागत सहायता FPOs की स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं। नीति सुधार और सशक्त संस्थागत ढांचे से FPOs की दीर्घकालिक सफलता को सुनिश्चित किया जा सकता है।

किसान उत्पादक संगठन (FPOs) की वर्तमान स्थिति

उपलब्ध माध्यमिक आंकड़ों के अनुसार, FPOs की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। 2010 में केवल 100 FPOs थे, लेकिन 2018 तक इनकी संख्या 5,000 तक पहुँच गई (नारायणसामी एट अल., 2018)। वर्तमान में, 10,000+ FPOs निर्माता कंपनी अधिनियम, 2002 के तहत पंजीकृत हैं।

यह SFAC और NABARD जैसी सरकारी योजनाओं की सफलता को दर्शाता है, जिन्होंने FPOs के निर्माण को उत्प्रेरित किया।

भौगोलिक विस्तार - FPOs भारत के 28 राज्यों में मौजूद हैं। सबसे अधिक FPOs महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, मध्य प्रदेश और तमिलनाडु में केंद्रित हैं। इन पाँच राज्यों में देश के लगभग 60% FPOs स्थापित हैं (गुलाटी और कुमार, 2019)। हालांकि, उत्तर-पूर्वी राज्यों में FPOs की पहुँच अभी भी सीमित है।

सदस्यता का आकार

FPOs की सदस्यता 10 से 1,000+ किसानों के बीच होती है। प्रति थ्च्ब् औसत सदस्यता 240 किसान (नारायणसामी एट अल., 2018)। लगभग 50% FPOs में 100-500 सदस्य, लेकिन 15% FPOs में 1,000+ सदस्य होते हैं। बड़ी सदस्यता से पैमाने की अर्थव्यवस्था के लाभ मिलते हैं, लेकिन यह प्रबंध न चुनौतियों को भी बढ़ा सकता है।

व्यापार प्रदर्शन - 2017-18 में FPOs की कुल व्यापारिक आय 6.5 अरब रुपये थी। मात्र 30% FPOs लाभदायक थे (2018 तक)। हालाँकि, कुछ सफल FPOs ने कम समय में तेजी से व्यापार वृद्धि दर्ज की (नाबार्ड, 2018)।

FPOs की संगठनात्मक संरचना

FPOs आमतौर पर निर्माता कंपनियों (Producer Companies) के रूप में पंजीकृत होती हैं। कंपनी अधिनियम, 2002 के तहत FPOs के मॉडल उपविधि याँ संरचना और प्रबंधन के लिए दिशानिर्देश प्रदान करती हैं। कुछ FPOs सहकारी समितियों या सोसाइटी के रूप में भी पंजीकृत हो सकती हैं, लेकिन कंपनी संरचना अधिक लचीलापन और स्वायत्तता प्रदान करती है।

तालिका: 1: थ्च्व् की प्रबंधन संरचना

संरचनात्मक तत्व	भूमिका
बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स (BoD)	सदस्य किसानों से चुने जाते हैं, रणनीतिक निर्णय लेते हैं।
मुख्य कार्यकारी अधिकारी (CEO)	BoD द्वारा नियुक्त, FPO के दैनिक संचालन को देखता है।
वित्तीय अधिकारी एवं प्रबंधक	वित्त, विपणन, और अन्य गतिविधियों का पर्यवेक्षण करते हैं।
सामान्य निकाय बैठक (GBM)	सभी शेयरधारकों (सदस्यों) द्वारा की जाती है, प्रमुख निर्णय लेने का मंच।

शेयरधारकों को मतदान, जानकारी प्राप्त करने और निर्णय लेने में भाग लेने का अधिकार होता है। यह संरचना ष्उपयोगकर्ता अधिकारष् (न्मत त्पहीजे) और आंतरिक लोकतंत्र को सक्षम बनाती है।

FPOs की प्रमुख गतिविधियाँ और कार्यप्रणाली

FPOs का लक्ष्य अपने सदस्य किसानों की आय बढ़ाना और उन्हें बाजार, इनपुट, सेवाएँ, और तकनीकों तक पहुँच प्रदान करना है। इनकी प्रमुख गतिविधियाँ निम्नलिखित हैं:

- विपणन एवं मूल्य संवर्धन-सदस्य किसानों की उपज का थोक विपणन। सीधे खरीदारों, प्रोसेसर्स, खुदरा चौनलों से व्यापार, जिससे मध्यस्थों से बचा जा सके। ग्रेडिंग, छंटाई, पैकेजिंग, और ब्रांडिंग से उत्पाद की बाजार क्षमता बढ़ती है।
- इनपुट खरीद - बीज, उर्वरक, कीटनाशक का सामूहिक खरीद, जिससे सदस्यों को कम कीमत पर उपलब्धता सुनिश्चित होती है। खेती उपकरण और मशीनरी की सुविधा।
- वित्तीय सेवाएँ- बैंक और वित्तीय संस्थानों के माध्यम से ऋण तक पहुँच। क्रेडिट गारंटी कार्यक्रम में भागीदारी। कुछ थ्च्व् अपने पूँजी को आधार बनाकर ऋण प्रदान करते हैं।
- तकनीकी विस्तार और क्षमता निर्माण - फसल उत्पादन, सिंचाई, और पौध संरक्षण पर प्रशिक्षण। व्यवसाय और तकनीकी कौशल विकसित करना।
- बीमा सेवाएँ - फसल और पशुधन बीमा का प्रावधान। जोखिम प्रबंधन पर जागरूकता बढ़ाना।

विकास प्रदर्शन

2011 में FPOs की संख्या केवल 500 थी; 2018 तक यह संख्या 5,000 तक पहुँच गई (राजू और पटेल, 2014)। 2018 के नाबार्ड अध्ययन में शामिल थ्च्व् की औसत व्यापार आय 1.11 करोड़ रुपये थी। 15% FPOs की व्यापार आय 2 करोड़ रुपये से अधिक थी, जो उनके संचालन के पैमाने को दर्शाता है।

सांगली जिले के अंगूर उत्पादक संघ (2006 में स्थापित) ने अपनी व्यापार आय को 60 गुना बढ़ाया - 28 लाख रुपये से 17 करोड़ रुपये (2015 तक) । सोलापुर अंगूर उत्पादक संघ ने भी समान वृद्धि दर्ज की। हालाँकि, FPOs में विकास के पैटर्न भिन्न रहे हैं (गुलाटी और कुमार, 2019)।

किसानों पर प्रभाव (प्उचंबज वद थ्ंतउमत ॅमसतिम) छोटे किसानों की आय बढ़ाने के उद्देश्य से थ्च्व् कार्यरत हैं। कृषि उत्पादकता में सुधार, लागत में कमी, बेहतर मूल्य उपलब्धता और उच्च मूल्य बाजार तक पहुँच प्रदान करती हैं।

2019 से पहले किए गए प्रभाव अध्ययन निम्नलिखित परिणाम दर्शाते हैं:

- गुणवत्तापूर्ण इनपुट और प्रशिक्षण से उपज वृद्धि।
- सामूहिक खरीद से इनपुट लागत में कमी।
- थोक बिक्री से बेहतर मूल्य निर्धारण।
- प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन से फसल हानि में कमी।

ACCESS Development Services (2018) के अध्ययन के अनुसार, FPOs की सदस्यता ने छोटे किसानों की कुल आय में 18-38% की वृद्धि की (महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और तमिलनाडु में)। महा-ग्रेप्स (MAHAGRAPES) जैसी FPOs ने अंगूर उत्पादकों को निर्यात बाजार तक पहुँच प्रदान की, जिससे उनकी आय चार गुना बढ़ी (सिंह और मिश्रा, 2019)।

FPOs की प्रमुख चुनौतियाँ

वित्तीय सीमाएँ: कई FPOs के पास पर्याप्त पूँजी और ऋण तक सीमित पहुँच होती है। सदस्यों की कम भागीदारी निजी निवेश और स्वामित्व की भावना का अभाव। प्रारंभिक वर्षों में व्यापारिक कौशल की कमी, लेखा और प्रबंधन में कमजोरियाँ। अपर्याप्त बाजार संबंध, मजबूत बिक्री नेटवर्क की अनुपस्थिति। प्रबंधन और शासन की समस्याएँ, नेतृत्व और पारदर्शिता की कमी।

निष्कर्ष

FPOs भारत में छोटे किसानों के लिए महत्वपूर्ण संस्थागत तंत्र बन गए हैं, लेकिन उनकी संरचना, प्रबंधन और वित्तीय स्थिरता को मजबूत करने के लिए अधिक दीर्घकालिक नीति सुधारों की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची:

1. ACCESS Development ServicesA (2018)। किसान उत्पादक संगठनों का व्यापार प्रदर्शन मूल्यांकन। राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक।
2. भारत की जनगणना। (2011)। भारत में कृषि। https://censusindia-gov-in/2011&prov&results/prov_results_paper1_india-html
3. गुलाटी, ए., और कुमार, पी. (2019)। भारत में किसान उत्पादक संगठन: किसानों की भलाई के लिए एक नया प्रतिमान। भारतीय कृषि अर्थशास्त्र पत्रिका, 74(1), 1–21।
4. जोशी, पी. के., बिर्थाल, पी. एस., और मिनोट, एन. (2010)। दक्षिण एशिया में कृषि विविधीकरण: पैटर्न, निर्धारक, और नीतिगत प्रभाव। हैंडबुक ऑफ एग्रीकल्चरल इकोनॉमिक्स, 4(ठ), 2847–2906। एल्सेवियर।
5. नारायणसामी, के., थिलाकरथने, एम. वी., और मधुमिता, एम. (2018)। भारत में किसान उत्पादक संगठन (FPOs): प्रदर्शन और संभावनाएँ। कृषि अर्थशास्त्र अनुसंधान समीक्षा, 31(2), 301–308।
6. पाटिल, एस. के. (2017)। किसान उत्पादक संगठन: भारत में कृषि विकास की एक नई आशा। भारतीय कृषि अर्थशास्त्र पत्रिका, 72(1), 91–103।
7. राजू, एस. एस., और पटेल, आर. के. (2014)। भारत में किसान उत्पादक संगठन: एक समीक्षा। कृषि अर्थशास्त्र अनुसंधान समीक्षा, 27(1), 67–77।
8. सिंह, आर., और सिंह, आर. (2018)। भारत में किसान उत्पादक संगठन: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन। ग्रामीण विकास पत्रिका, 37(2), 215–236।
9. सिंह, एस. पी., और मिश्रा, एस. के. (2019)। किसान उत्पादक संगठन (FPOs) की भूमिका का मूल्यांकन: उत्तर प्रदेश का अध्ययन। कृषि अर्थशास्त्र अनुसंधान समीक्षा, 32(2), 297–307

धबके धरानां उरः करुणामूर्ति नायक डॉक्टर ओम

हरचंदभाई एस. चौहाण

पीएच.डी. शोधार्थी, गुजराती विभाग, हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय, पाटन

उत्तर गुजरात के सरहदी इलाके के कथाकार कनु आचार्यने गुजराती साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनका अधिकतर साहित्य शोषित, वंचित और पीड़ितों की अभिव्यक्ति है। कनु आचार्य प्रतिभाशाली रचनाकार हैं। यह मूलतः उपन्यासकार, कहानीकार और रेखाचित्रकार हैं। इनके अब तक कुल सात उपन्यास, सात कहानी संग्रह, पाँच रेखाचित्र संग्रह और एक बाल नाटक प्रकाशित हो चुके है।

शोषित, पीड़ित और दलितों के संघर्ष को चित्रित करने वाला उपन्यास 'धबके धरानां उर' सन् १९८० में प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत कथा का नायक डॉक्टर ओम (डॉक्टर बापू) है। यह एक संवेदनशील और लोगों के दुःख-दर्द समझने वाले व्यक्ति हैं। इनके जीवन का मूल उद्देश्य लोक कल्याण हैं। कथाकार ने उपन्यास में डॉक्टर ओम के चरित्र को इस तरह प्रस्तुत किया है कि पाठकों की संवेदना इनके साथ सहज ही जुड़ जाती है। डॉ. ओम की सहानुभूति अन्य डॉक्टरों की तरह सत्ता या प्रशासन के प्रति नहीं परंतु गरीब, मजलूम और पीड़ितों के प्रति हैं। उनके लिए वह सब कुछ त्याग देते हैं। उनकी सेवा ही डॉ. ओम का जीवन है।

इलाज के दौरान डॉक्टर की लापरवाही से उनके पिता की मृत्यु हो जाती है। ऊपर से अस्पताल में गरीब लोगों के साथ डॉक्टरों के दुर्व्यवहार से उन्हें और धक्का पहुँचता हैं। ओम स्वयं एक मेडिकल छात्र है जो कुछ साल बाद डॉक्टर बनने वाले हैं। उनके पिता की अंत्येष्टि को साक्षी मानकर वह प्रतिज्ञा लेते हैं कि चिकित्सा पेशे में व्याप्त भ्रष्टाचार, लालच और संवेदनहीनता को मिटाकर रहेंगे। इस लक्ष्य के लिए वह अपना बचपन का प्रेम तक त्याग देते हैं। इस प्रकार, उपन्यास में डॉ. ओम सचमुच गरीब, पीड़ित और मजलूमों के लिए अपना जीवन समर्पित कर देते हैं। देखते-देखते लोगों के बीच उनका व्यक्तित्व इतना प्रबल हो जाता है कि उनके प्रभाव में आकार डाकू भी अहिंसा का मार्ग अपना लेते हैं। कहानी के अंत में डॉ. ओम की पत्नी ल्युसा (लीना) भी तेजपुर गाँव के लोगों का दिल जीत लेती है। उपन्यास के शुरू से लेकर अंत तक केवल एक ही नाम दूर-दूर तक गूँजता है, डॉक्टर बापू... डॉक्टर बापू...।

ओम अपने पिता को अस्पताल में भर्ती कराता है और उनकी मदद के लिए दिन-रात मेहनत करता है। एक दिन जब उसके पिता बेहोश हो जाते हैं और वह डॉक्टर को बुलाने जाते हैं तो डॉक्टर उसे धमकाता है- "बाहर निकल जाओ, पूरे दिन परेशान कर रहा है। भले तुम्हारा बाप मरता हो।"[१] ओम उनके शब्दों को सहन नहीं कर पाता और पिताजी को किस्मत के भरोसे छोड़कर वापस लौट जाता है। एक अनाड़ी नर्स अपने मन मुताबिक अपनी सूझ के अनुसार उनका इलाज करती रही। अंततः उनके पिता की मृत्यु के बाद डॉक्टर आते हैं और ओम को शव ले जाने के लिए कहते हैं। ओम को डॉक्टर पशु समान लगते है, जिनमें कोई संवेदना नहीं। वह सोचता है कि मरीजों का सहारा बनने की जगह डॉक्टर पैसे के पुजारी बन गए है। यह सोचते-सोचते ओम के युवा हृदय में जलती हुई आग दौड़ने लगती है। उसका मन करता है कि उस डॉक्टर का गला काट दे। पिताजी की अंत्येष्टि पर वह एक आँसू भी नहीं बहाता। पिताजी के शव पर लगी आग से अधिक ज्वाला उसके भीतर जो आग लगी थी उसकी थी। ओम स्वयं एक मेडिकल छात्र है। वह लोगों के प्रति डॉक्टरों का खोया हुआ सम्मान पुनः प्राप्त करने का निर्णय लेता है।

कथा की शुरुआत में डाकू का नाम हेमतसी है। उसकी बेटी सूरजबा को प्रसव पीड़ा असहनीय हो रही है, क्योंकि वह बच्चे को जन्म देने वाली है। अपने इलाज के लिए डॉक्टर की तत्काल आवश्यकता के बावजूद हेमतसी ठाकोर अपनी बेटी का इलाज कराने में असमर्थ हैं, क्योंकि उसकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। हेमतसी ठाकोर चोर है। उसने कई जगहों पर लूटपाट और चोरी की है। ऐसी अंधेरी और ठंडी रात में डॉक्टर बापू के अलावा कौन मुफ्त में इलाज करने आएगा? डॉक्टर ओम गाँव में कई लोगों को मुफ्त दवाइयाँ मुहैया करा रहे हैं, इसलिए हेमतसी श्डॉक्टर बापूश् से बात करने के लिए आधी रात को उनके दरवाजे पर पहुँचता है- "डॉक्टर बापू, मुझ पर दया करो। मेरी बेटी बिन मौत मर जाएगी। बापू, आप दुःखिया के देवता हैं। मेरी बच्ची को दुख से छुटकारा दीला दो।"[२] असहाय हेमतसी स्वयं को दरवाजे की दया पर छोड़ कर चिल्लाने को विवश हो जाता है। उस रात गंभीर रूप से बीमार होने के बावजूद डॉक्टर बापू अपनी नींद से उठते हैं। दवा का डिब्बा तैयार करते हैं और हेमतसी की बेटी सूरज का इलाज करने के लिए घर से निकल जाते हैं। जिसे वह अपना सबसे करीबी दुश्मन मानते हैं। जब ओम हेमतसी के वहाँ पहुँचे तो सूरजबा पारावर दर्द से तड़प रही थी। उसकी आंतड़ियाँ ऐसे हिल रही थीं जैसे कि वे फट रही हों... उसका चेहरा पाउडर की तरह सफेद हो गया था। उसकी आँखों पर दर्द की एक गहरी परत छा गयी थी। जब डॉक्टर सूरजबा के सिर पर हाथ रखता है तो ममता एक अदृश्य किरण बन जाती है और सूरजबा के दिल को छू लेती है। सूरज ओम की ओर देखते हुए कहती है- "डॉक्टर बापू, मैं... मैं.. मैं मर तो नहीं जाऊंगी...?"[३] फिर ओम भावुक स्वर में कहता है- "अरे पगली, कोई प्रसव पीड़ा से मरता होगा भला...? यह प्रकृति है... जाओ, तुम्हें जल्द ही बेहतर महसूस होगा।"[४]

जाँच के अंत में ओम सूरजबा से विक्रमसिंह सरपंच की कार लाने के लिए कहते हैं, ताकि उसे इलाज के लिए बिसनपुर अस्पताल ले जाया जा सके। इतना सुनते ही हेमतसी बोला, "लेकिन डॉक्टर बापू, सरपंच तो हर तरह से मेरा दुश्मन है।"[५] करुणामूर्ति डॉक्टर बापू हेमतसी को समझाते हैं- "हेमतसी, सरपंच का कोई दुश्मन नहीं होता। दुश्मन हो वह सरपंच नहीं हो सकता। जो हर इंसान के दिल को छूता है वो सरपंच। ठाकोर तुम नहीं जानते; उसके दिल में हर

इंसान के लिए दया है, वह शराब का दुश्मन है। वह तुम्हारे जुनून का दुश्मन है और मैं पद का दुश्मन हूँ। ऐसे तो मैं तुम्हारा दुश्मन नहीं था? अब भी मैं तुम्हारे दिमाग में हूँ, है ना! लेकिन जब मुसीबत आती है तब सभी भाई।"[६] इस संवाद में भाईचारे की भावना व्यक्त की गई है।

इस बीच, मानसी और जगशी अपने दोस्त की बेटी का इलाज कराने के लिए पैसे की तलाश में डॉक्टर के घर जाते हैं और वहा से १००० रुपये चुराकर भाग जाते हैं। इस तरफ हेमतसी की बेटी के इलाज के लिए घर से पैसे लेने गये वसुकाका बिना पैसों के लौटकर बापू के घर में हुई चोरी की पूरी सच्चाई डॉ. ओम को बता देते है। तब डॉक्टर ओम विक्रमसिंह सरपंच से एक हजार रुपए और कार लेकर हर पल मौत की ओर चली जा रही सूरजबा को जल्द ही अस्पताल ले जाने के लिए निकल पड़ते हैं। डॉक्टर को पता चल गया कि बच्चा अंदर ही मर गया है। यदि बच्चे को जल्द ही सर्जरी के जरिए नहीं निकाला गया तो सूरजबा की भी मौत हो जाएगी। ओम पौष माह की कड़ाके की ठंड में जीप में बैठकर अपने मित्र डॉ. सुधर्मन के अस्पताल पहुँचता है। चूंकि वहाँ कोई डॉक्टर मौजूद नहीं था, ओम तुरंत एक अन्य अमेरिकी स्त्री रोग विशेषज्ञ मिस ल्युसा के पास पहुँचते ही- "मिस ल्युसा, घिस इज वेरी सिरियस केईस। घिस इज एक्लैम्सिया... आई, बिलीव धेट यू कैन डू सिजेरियन।"[७] डॉ. ओम बीमार होने के बावजूद मरीज पर पूरा ध्यान देते हैं और उसकी चिंता करते हैं। ल्युसा अपनी नर्स के साथ ऑपरेशन करती है और मृत शिशु को बाहर निकालती है। फिर मरीज की खबर पूछने पर डॉ. ओम कहते हैं- "डॉक्टर ल्युसा, बधाई हो, मेरा मरीज कुशल तो है न?"[८] इस संवाद में मरीज के प्रति डॉ. ओम की संवेदना व्यक्त की गयी है।

डॉक्टर ओम के घर चोरी हो गई है, लेकिन इन्होंने कोई शिकायत दर्ज नहीं करवाई है, इसलिए पुलिस डॉ. ओम को बुलाने आती है इस तरफ डॉक्टर बापू अस्पताल में लोगों की सेवा कर रहे होते हैं। अंतिम मरीज की जांच करने के बाद वह पुलिस के साथ पुलिस स्टेशन जाते हैं। वहाँ पी.एस.आई को घर में हुई चोरी के बारे में ओम कहते हैं की- "तो वह बेचारे क्या करेगें..? जमींदारों की जागीरें चली जाने के बाद उन्हें काम मिलना चाहिए, उनका विकास होना चाहिए, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। जो लोग भूखे मर रहे हैं और जिनके पास कोई काम-धंधा नहीं है, वे क्या करेंगे? सर?"[९] यहाँ डॉ. बापू भूख से तड़प रहे लोगों की पीड़ा को व्यक्त करते हैं। डॉ. बापू पुलिस को चोरी के पैसे जगसी को ही देने के लिए कहते है। इस तरफ जगशी का हृदय परिवर्तन होता है, वह अपना अपराध स्वीकार करता है और पैसे लेने से इनकार करते हुए कहता है कि उसने अपने दोस्त की बेटी को अस्पताल ले जाने के लिए पैसे चुराएँ थे। बापू सब कुछ जानते हुए भी, पुलिस द्वारा पीट-पीटकर मारे गए जगशी को जेल से रिहा कराते हैं, उसे इलाज के लिए अपने अस्पताल लाते हैं और उसे खाना देते हैं।

काफी सोच-विचार के बाद ल्युसी तेजपुर डॉक्टर ओम के अस्पताल पहुँचती है। मरीजो की भीड़ को देखकर ल्युसा भी ओम की मरीजों की जांच करने में मदद करती है। अस्पताल से घर आने के बाद उनकी पिछली मुलाकात के बारे में खूब चर्चा हो रही है। ल्युसा ओम की गर्दन पर अपना हाथ रखती है ओर बताती है कि उसे कैंसर है। तभी सोनलपुर से एक मरीज की दरवाजे पर दस्तक होती है। चूंकि बहुत ठंड है, लीना ओम को रोकते हुए कहती है- "अगर हमारी थोड़ी तकलीफ सहने से किसी माँ का बेटा बच जाता है तो एक रात में कैंसर बढ़ नहीं जाएगा, और अब तो हमारे पास अमेरिकन डॉक्टर ल्युशा तो है ही।"[१०] कहकर डॉ. ओम कार में बैठकर इलाज के लिए निकलते है। रात के एक बजे अंधेरे में गाड़ी रुक जाती है। जालमसी कार्य को अंजाम देने के लिए, मानसी की योजना के अनुसार अन्य डाकू भी आगे आते हैं और कहते हैं- "डॉक्टर बापू, अगर आपने कोई हरकत की तो आपको मौत के घाट उतार दिया जाएगा। अब आप डाकू अभिसिंह के कब्जे में हैं।"११ जीप डॉक्टर को लेकर चली जाती है और योजनानुसार सरदार वहाँ आ पहुँचता है। डॉक्टर बापू से पूछताछ के बाद उन्हें धमकी भरा पत्र लिखकर एक लाख रुपए की माँग की जाती है तब बापू कहते हैं, मेरे नाम से तुम्हें एक रुपया तो क्या एक पाई भी नहीं मिलने वाली है, सरदार चलाओ गोली।

गाँव के डॉक्टर बापू को डाकुओं द्वारा अपहरण कर लिए जाने की खबर सुनकर पूरा गाँव ओम के घर के सामने इकट्ठा हो जाता है। यहाँ हम देख सकते हैं कि लोगों में डॉक्टर बापू के प्रति कितना प्रेम है। तेजपुर में अचानक दुकानें बंद होने से लोग अनौपचारिक हड़ताल पर चले गए और अधिकारियों तथा राज्य सरकार से शिकायत करने डाकघर पहुँच गए। गाँव के कई घरों में उस दिन खाना भी नहीं पका था। सभी लोग डॉ. ओम के लिए चिंतित हैं। ओम ने कई लोगों की जिंदगी नरक बनने से बचाई थी। देखते-देखते पूरा गाँव एकजुट होकर डॉक्टर बापू के लिए दो लाख रुपए इकट्ठा कर लेते हैं। यहाँ तक कि ल्युसी भी लोगों की प्रतिक्रियाओं से क्षण भर के लिए आश्चर्यचकित रह गई। इसके महत्वपूर्ण संवाद देखते हैं;

"बहन, डॉक्टर बापू ने मेरी जान बचाई। मेरे छोटे बच्चे का क्या होता? उसे टी.बी. था। उन्होनें दिन-रात एक करके मेरा सुहाग बचाया। दवा के लिए पैसे नहीं थे! सब कुछ डॉक्टर बापू के घर का है, बहन, जब से खबर मिली है, खाना-पीना छोड़ दिया है। हमारी हालत ठीक नहीं है फिर भी मैं ये सौ रुपये लायी हूँ।"[१२]

"बहन, वे मनुष्य के रूप में भी भगवान है। मेरे बच्चे की नौकरी लगवाई, उसे तो जुए की लत लग गयी थी। अगर हम दो दाने भी बचा पाते हैं तो बापू के कारण। ये लो बीस रुपये, बहन।"[१३]

"डागटर बापू के लिए चमड़े के जूते सिलवाए तो भी कम है। मेरे कलमुहें भाई से मुझे घर दिलाया और बैंक से लोन भी दिलवाया। मैं उनकी कृपा से सिलाई मशीन लेकर अपना गुजारा कर रही हूँ।"[१४]

"बहन, यह इंसान नहीं है, स्वर्ग का कोई देवता रास्ता भूल गया हैं। ये पीठ को देखो कितने घाव हैं...! डॉक्टर बापू का भला हो जीसने शराब की लत से छुटकारा दिलाया। अब किसी दीन नहीं मारते। डॉक्टर बापू से बहुत डरतें हैं! यह लो सौ रुपये और मेरे भी लिख दो।"[१५]

"डागटर बापू ने मुझे खेत दिलाया और उनकी बदौलत मेरा घर अनाज से भर गया। इस साल अकाल पड़ा है, फिर भी मैं अपनी पत्नी की नथ बेचकर ये पंद्रह रुपये लाया हूँ, पत्नी तो बोल रही थी की पेरों के कड़े भी ले जाओ।"[१६]

"डागटर बापू ने हम अस्पृश्यो के लिए घर बनाने के लिए सरपंच से अनुरोध किया। हमारी झोपड़ी डागटर बापू की वजह से ही है। हम सभी ने सौ रुपए इकट्ठे किए हैं।"[१७]

"बहन, मेरा निर्दोष भेमला (बेटा) जेल में सड़ जाता...! डॉक्टर बापू ने उसे छुडवाया। अब वह सुधर गया है। मेरे लडके की तनख्वाह में से एक महीने की तनख्वाह पहले से मैने ले ली है। ये ले लो पचहत्तर रुपए।"[१८]

"मेरे बेटे ने एस.एस.सी. में प्रथम श्रेणी प्राप्त की है। लेकिन ऐसी स्थिति नहीं है कि वह कॉलेज जा सके। डॉक्टर बापू ने व्यवस्था कर दी है। अब लड़का डॉक्टरी की पढ़ाई कर रहा है। दो साल में वह एम.बी.बी.एस. हो जाएगा...! यहाँ तो ये पाँच सौ रुपये हैं, लेकिन जब लड़का डॉक्टर बन जाता है, तो उसे डॉक्टर बापू की सेवा में सौंपना है। अगर बापू न होते, तो मेरा बेटा किसी की दुकान पर काम कर रहा होता...।"[१९]

"बहन, यह मेरे गहनों का ढेर है। यह पूरे तीस तोले सोने का है। मैंने इसे इसलिए रखा क्योंकि मैं अपनी शादी का हार किसी को नहीं दे सकती हूं। मैं गहनों को डॉक्टर बापू से ज्यादा महत्व नहीं देती।"[२०]

"बहन, यह मेरी अंगूठी है... जो मुझे बहुत प्यारी है। मैंने दो दिन से कुछ भी नहीं खाया है।"[२१]

"बहन, क्या हम पूरे गांव की महिलाएं डॉक्टर बापू को बचाने नहीं जा सकतीं? आप अगुवाई करो, ये मेरे सारे गहने ले लो और किसी भी कीमत पर बापू को छुड़वाओ।"[२२]

"बहन, ये लो, डॉक्टर बापू के भार की सारी चांदी। मैंने वचन दिया था...।"[२३]

"बहन, अगर डॉक्टर बापू ने मेरे पति को यह बात न समझाई होती तो न जाने मेरी क्या हालत होती। डॉक्टर बापु दुखिया के सहारा है।"[२४]

"इस प्रकार सैकड़ों लोग, अमीर, गरीब, मध्यम वर्ग के पुरुष, महिलाएं, युवक और युवतियाँ ल्युसी से मिलने आए... उनमें से कुछ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से डॉक्टर बापू के हितैषी थे। हर दिल में ओम था..., हर आंख में ओम के लिए सहानुभूति थी। ओम के नाम पर कितने रुपये इकट्ठे हुए थे। एक ही दिन में डॉक्टर के फर्श पर कई गैलन आंसू बह गए थे...। हर आंख में आंसू थे...। हर मुंह में आह थी, हर चेहरे पर ओम की रिहाई की चाहत थी। ओम. .. ओम... ओम, हवा का हर कण दर्द से भीगा हुआ था। ल्यूसा रोई... वह इतना रोई कि तकिया भीग गया।"[२५] पूरे गाँव के लोग एक के बाद एक डॉक्टर के काम की प्रशंसा कर रहे थे और उनकी रिहाई का उपाय सोच रहे थे।

इधर, ओम सरदार का ऑपरेशन करता है, जिसके पैर में गोली लगी है, और उसकी जान बचाता है। जब सरदार ने पूछा- "अगर मरीज आपका दुश्मन हो तो क्या होगा? तब जवाब में डॉ. कहता है, "मैं एक डॉक्टर हूँ। मरीज को बचाना मेरा कर्तव्य है: मैं हत्यारा नहीं हूं। मरीज पर मित्र या शत्रु का कोई लेबल नहीं होता। एक डॉक्टर का कर्तव्य जीवन और मौत के बीच संघर्ष कर रहे इंसान को बचाना है। जैसा भी हो...! यहां तक कि मौत से संघर्ष कर रहा एक राक्षस भी डॉक्टर के लिए दयनीय और प्यारा है..! हाँ, डॉक्टर को उस राक्षस को बचाना है और उसे मानव बनाना है...! मैं एक निर्दयी डॉक्टर नहीं हो सकता जो पेशे के कलंक के साथ व्यक्तिगत दुश्मनी को संतुष्ट करता हो। सरदार।"[२६] यहाँ एक आदर्श डॉक्टर के लक्षण स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। सरदार बापू जो भी माँगे, देने को तैयार हैं, क्योंकि उन्होंने ही उनकी जान बचाई है। सरदार ने बोला - "आप माँगोगे तो अपना मस्तक काट कर दे दूंगा। हम ठाकोर कभी भी अपने वचन को ठुकराया नहीं करते। बिना किसी संकोच के माँग लो...।"[२७] तब डॉक्टर केवल इतना ही कहता है- "सरदार, अगर तुम सच्चे ठाकोर हो, तो लूँटपाट की दुनिया छोड़ दो।"[२८] ओम एक उग्र व्यक्ति को लूँटपाट छुड़वाकर सत्य के मार्ग पर लाने का प्रयास करता है। डॉक्टर बापू, आप धन्य हैं। मैंने सोचा था कि तुम अपनी आजादी माँगोगे, लेकिन अपनी आजादी के बजाय तुमने मेरी आजादी मांगी। ओम के अनुरोध पर सरदार अपना पद छोड़ देता है और बंदूक कुमार को सौंपकर अपना पद उसे सौंप देता है।

कई दिनों तक बापू की कोई खबर न मिलने पर हेमतसी, जगशी और मानसी तेजपुर से अभिसिंह के छिपे हुए ठिकाने से बापू को बचाने के लिए आते हैं। दुर्भाग्य से उसी दिन डॉक्टर बापू अकेले टहलने निकले थे, इसलिए उन्होंने मास्क पहने हुए मानसी ने बापू को उठाया और कहा- "हम तुम्हें ले जाने आए हैं। चिल्लाओ मत।"[२९] लेकिन बापू निर्देश सुनने से पहले ही चिल्लाना शुरू कर देते हैं। उसी समय कुमार अचानक वहाँ आ जाता है और तीन लोगों को बापू को ले जाते देख चिल्लाता है और उन्हें रुकने के लिए कहता है। कुमार आवेश मे आकर गोली चलाता है। निशाना सही जगह पर लगने के कारण मानसी की मौत हो जाती है। कई निर्देश देने के बावजूद, कुमार एक और गोली चलाता है, जब जगशी और हेमतसी बापू को लेकर भाग रहे थे तब निशाना चूककर बापू के पैरों में बंदूक गोली जा लगती है।

अंतत: रात में हेमतसी, जगशी और कुमार बापू को बेहोशी की हालत में अपने घर ले आते हैं। कुमार तेजपुर के पच्चीस गाँवों के ठाकोर भाइयों के लिए 'डॉक्टर ओमकारनाथ अस्पताल' बनाने के लिए अभिसिंह द्वारा दिए गए तीन लाख रुपये की छोटी सी भेंट ल्युसी के चरणों में समर्पित करते हैं। साथ में एक पत्र छोड़ते हैं जिसमें लिखा होता है कि डॉक्टर बापू जब होश में आएं तो इसे पढ़ें। मानसी के शव को उसके घर छोड़कर इनके परिवार के लिए जगशी को दस हजार रुपए देता है। ल्युसी सूटकेस को तिजोरी में रखती है और डॉक्टर का इलाज करती है। चूंकि डॉक्टर बापू की सांसें सामान्य हो गई हैं, इसलिए ल्युसी डॉक्टर के बिस्तर पर बैठ जाती है और जिज्ञासावश पत्र पढ़ती है। जिसमें लिखा है "डॉक्टर बापू, गलती से आपको गोली मारने के प्रायश्चित के रूप में कुमार भी अब डाकू का जीवन छोड़ रहा है। हमारा पूरा अड्डा नष्ट हो जाएगा... मुझे उम्मीद है कि आप मुझे माफ कर देंगे...।"[३०] कुमार का हृदय परिवर्तन होता है और वह भी डाकू का जीवन छोड़ देता है।

उपन्यास के अंत में, ऑपरेशन के बाद ओम को होश आता है। घायल अवस्था में वह कहता है- "ल्युसी, मैं जीना नहीं चाहता। मैं जीवित रहते हुए क्या कर सकता हूँ...? मैं किसके लिए जीऊं...?"[३१] डॉक्टर की आँखों में आँसू आ जाते हैं- "ल्युसा, वह गोली हटा दो जो हमारे मिलन में बाधा डाल रही है। मुझे अब दर्द महसूस नहीं होता। वर्षों से यह बस एक खटकती गोली है...।"[३२] इस प्रकार तेजपुर जैसे छोटे से गांव और वहां के रहने वाले लोगों की दयनीय स्थिति का वर्णन हमें हर पल सोचने पर मजबूर करता है। डॉक्टर ओम गांव में एकमात्र ऐसे दयालु व्यक्ति हैं। वह एक ईमानदार आदमी है जिसकी

बातों पर सभी विश्वास करते हैं। पिछले कुछ वर्षों में यह एक खटकती गोली ओम के जीवन से हमेशा के लिए हट गई है। करुण रस से परिपूर्ण इस उपन्यास का अंत सुखद है, जिसमें ल्युसा और ओम का पुनर्मिलन होता हैं।

संदर्भ सूची ::

1. आचार्य, कनु। धबके धरानां उर। पारुल-कांता, डीसा। प्रथम संस्करण, १९८०, पृ. ६७
2. वही पृ. ६७
3. वही पृ. ०५
4. वही पृ. ०९
5. वही पृ. ०९
6. वही पृ. ११
7. वही पृ. ११
8. वही पृ. ३२
9. वही पृ. ३३
10. वही पृ. ५२
11. वही पृ. ७३
12. वही पृ. ७३
13. वही पृ. ८४
14. वही पृ. ८४
15. वही पृ. ८४
16. वही पृ. ४५
17. वही पृ. ८६
18. वही पृ. ८७
19. वही पृ. ८६
20. वही पृ. ८६
21. वही पृ. ८६
22. वही पृ. ८७
23. वही पृ. ८७
24. वही पृ. ८७
25. वही पृ. ८७
26. वही पृ. ८८
27. वही पृ. ८९
28. वही पृ. ९०
29. वही पृ. ९४
30. वही पृ. १०८
31. वही पृ. १०८
32. वही पृ. १११
33. वही पृ. १११

संस्कृत साहित्य में पर्यावरण निरूपण

संजीत मार्डी

शोधार्थी, संस्कृत विभाग, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

"सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुशश्च।"[1] अर्थात् मनीशियों ने, प्रारम्भ में न केवल प्रकृति को अपितु संपूर्ण प्राकृतिक शक्तियों को देवस्वरूप माना। शक्ति के अपरिमिति स्रोत सूर्य को स्थावर जंगम संपूर्ण सृष्टि की आत्मा माना। जैसा कि– सूर्य को देव माना सूर्यदेवो भव और कामना की कि सूर्य से उसका कभी वियोग न हो। जैसा कि–

"नः सूर्यस्य संदृशे मा युयोथा"। [2]

क्योंकि वे जानते थे कि सूर्य ही पृथ्वी ग्रह का जीवनदाता एवं प्रेरक है। उसके बिना मानव का ही नहीं अपितु अन्य जीवों का भी अस्तित्व संभव नहीं है।

"सहस्त्रशीर्शा सुमनाः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।
सहस्त्रबाहुः प्रथमप्रजापतिस्त्रयोपथेयः पुरूषो निगद्यते।
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता अपूर्व एकः पुरूषः पुराण"। [3]

वृक्षों के विकास के लिए सूर्य और चन्द्रमा की किरणें अनिवार्य हैं। जैसा कि-

"ओशधय रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभां।"[4]

प्रश्नोपनिशद् में इसी आदित्य को मनुष्य के शरीर में व्याप्त प्राण की संज्ञा से अभिहित किया गया–

"आदित्यो ह वै प्राणः"। [5]

ऋषियों ने पेड़ पौधों में भी जीवन-चेतना को स्वीकार किया। संभवतः इसलिए उन्होनें मनुष्य के शारीरिक संस्थापन को वृक्षों के सदृश परिकल्पित किया। शरीर की रोमावली पत्तों के, त्वचा छाल के, रक्त वृक्ष की त्वचा से निकले उत्पट-गोंद के, मांस तथा मांसपेशियां वृक्ष के गूदे के, पुरूष का नाड़ी जाल वृक्ष की कीनाट-लकड़ी से लगे हुए कोमल भाग के, अस्थियां लकड़ी के और मज्जा-मज्जा के सदृश है। जैसा कि–

"यथा वृक्षो वनस्पतिस्तथैव पुरूषो मृशा।
तस्य लोभानि पर्णानि त्वगस्योत्पाटिता बहिः।।
त्वच एवास्य रूधिरं प्रस्यन्दि त्वच उत्पटः।
तस्माद् तदा तृणात् प्रैति रसो वृक्षादिवाहतात्।।
मांसान्यस्य शकराणि कीनाटं स्नाव तत् स्थिरम्।
अस्थीन्यन्तरतो दारूणि मज्जा मज्जोपमाकृता।।"[6]

वृक्ष की सर्वांग उपमा के माध्यम से वनस्पति में संचारित प्राण-तत्व को स्वीकार कर अपनी संवेदना सहानुभूति ही नहीं अपितु आत्मीयता की भी व्यंजना की है। वाल्मीकीय रामायण मे रावण, राम को ऐसे वृक्ष के रूप में देखता है- सीता जिसमें पुष्प एवं फल हैं, सुग्रीव, जाम्बवान् कुमुद नल, द्विविद मैन्द, अंगद, गंधमादन्, हनुमान, सुशेण और सारे वानर सेनापति राम रूपी वृक्ष के शाखा प्रशाखा रूप है–

"रामवृक्षं रणे हन्मि सीता पुश्पफलं प्रदम्
प्रशाखा यस्य सुग्रीवो जाम्बवान् कुमुदो नलः।।
द्विविदश्चैव मैन्दश्च अंगदो गंधमादनः।
हनुमांश्च सुशेणश्च सर्वे च हरियूथपाः।।"[7]

महाभारत में भी इसी प्रकार का संदर्भ उपलब्ध होता है जहॉ दुर्योधन क्रोध का महावृक्ष है और जड़ है, अमनीशी राजा धृतराष्ट्र उस वृक्ष का तना है, कर्ण शाखाएँ, शकुनि और फल-फूल दुशासन। दूसरी ओर युधिष्ठिर धर्म का महावृक्ष है कि जिसकी जड़े भगवान् कृष्ण के रूप में है। इस वृक्ष का तना है अर्जुन, शाखाएँ भीमसेन और पुश्फल–नकुल, सहदेव।

"दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुमः स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखाः।
*दुःशासन फुलपुश्पे समृद्धे मूलं राजा धृतराश्ट्रो*मनीशी।।*
*युधिश्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः स्कन्धो*र्जुनो भीमसेनो*स्य शाखाः।*
माद्रीसुतौ पुश्पफले समृद्धे मूलं कृश्णो ब्रह्न च ब्राहम्णश्च।''[8]

पुराणों में वृक्ष के महत्व को सर्वोपरि मानकर बताया गया है कि दस कुओं के बराबर एक बावड़ी है, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब है, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र और पुत्रों के बराबर एक वृक्ष।

"दश कूप-समवापी, दशवापी-समो हलदः।
दशहृद-सम पुत्रो, दशपुत्रसमो-द्रुमः।।[9]

जिस संस्कृति में वृक्षों को पुत्र से भी उच्च स्थान दिया गया हो वहॉ पर्यावरण के प्रति अनुराग भी अद्वितीय ही रहा हैं। इतना ही नहीं वृक्षो की पूजा भी इसीलिए की जाती है कि वृक्ष फूल-पत्तों और फलों का बोझ वहन कर धूप के ताप और सर्दी की ठिठुरन की पीड़ा स्वयं सहकर भी परोपकारार्थ अपना जीवन भी अर्पित कर देता हैं।

"धत्ते भरं कुसुमपत्रफलावलीनां धर्मव्यथां वहति शीतभवारूजश्च।
यो देहमर्पयति चान्यसुखस्य हेतोस्तस्मै वदान्यगुरवे तरवे नमो*स्तु।। ''[10]

वृक्षावली-वनराजि शस्य-श्यामला पृथ्वी का परिधान है, उसके जीवन का रक्षा कवच है। प्राचीन ऋषियों का वैज्ञानिक पद्धति पर वृक्षो के उपयोग का विवेचन उस युग में संभव नहीं था, किन्तु वृक्ष-पंक्तियां, भूक्षरण, भूस्खलन और बाढ़ो को रोकती है, इसका उन्हे पर्याप्त ज्ञान था। संभवतः इसीलिए वृक्षारोपन जलाशयों के समीप ही अपेक्षित था।

अश्वत्थरोपणं कृत्वा जलाशयः समीपतः जलानां निकटे
रम्ये रसानां क्रय-विक्रय मार्ग्रे जलाशये वृक्षान् रोपयेत्।''[11]

अत्यन्त प्रचीनकाल से प्रकृति तथा मानव का घनिष्ठ संबंध है। प्रकृति तथा मानव की आराध्य भी रही है। वृक्षों और वनस्पतियों में स्थित चेतना को देवत्व के धरातल पर स्थापित करने के कारण संभवतः मानव जीवन में उनकी उपादेयता ही रही हो। तुलसी भी अश्वत्थ की भाँति आराध्य, श्रद्धेया वन्दनीयता रही है। कारण, तुलसी वृक्ष में मूल से लेकर उसकी छाया तक में सभी देवता और तीर्थ निवास करते है। जैसा कि–

"तुलसी तरूमूले च पुश्यदेशे सुपुण्यादे।
अधिश्ठानं तु तीर्थानां सर्वेशां च भविश्यति।।[12]
तत्रैव सर्वदेवानां समधिश्ठानमेव च।
तुलसीपत्रपतनप्राप्तो यश्च वरानने।।''[13]

तुलसी की गंध से सुवासित वायु दिशाओं को पवित्र कर देती है, जैसा कि कहा गया है–

"तुलसी गंधमाघ्राय यत्र गच्छतिमारूतः
दिशोदशचतः पूताभूतग्रामश्चतुविधः।।''[14]

वृक्षारोपण करने वाला नरक को प्राप्त नहीं करता–

"वृक्षारोपी नरकं न याति।''[15]

वृक्षारोपण के अन्य गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है–

"अथैतेशां तु वृक्षाणां रोपणे च गुणाश्ंछृणु।
अतीतानागतौ चोमौवंशौमहाऋशे।
तस्येदवृक्षेरपीच तस्माद्वृक्षांस्तु रोपयेत्।''[16]

अपनी शीतलता पावनता एवं दीर्घायु के कारण अश्वत्थ वृक्ष संसार में पूजनीय है। अपने दिव्यांश से युक्त सर्वोत्तम वस्तुओं की गणना के प्रसंग में मैं वृक्षों में अश्वत्थ हूँ, यह कहकर सर्वेश्वर कृष्ण ने अश्वत्थ वृक्ष की महिमा उद्धाटित की है। जैसा कि कहा गया है–

"अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्शीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः।।[17]

भगवान् बुद्ध ने भी पीपलवृक्ष के नीचे निर्वाण प्राप्त किया। वैशाख पूर्णिमा बुद्ध का निर्माण दिवस है। यह तिथि लोक में बुद्ध पूर्णिमा अथवा पीपल पूर्णिमा के नाम से बड़े सम्मान से मनाई जाती है। पीपल का वृक्ष लोक संस्कृति का सशक्त संवाहक है। लोक साहित्य में पिपल वृक्ष के सम्बन्ध में अनेक कथाएँ

प्रचलित हैं। गांवों में पीपल की छाया बालकों के लिए क्रीड़ा स्थली, प्रेमी युगलो के लिए मिलन स्थल तथा वृद्धों की विश्राम स्थली है। जहां बैठकर वृद्ध अपने अतीत की यादों को ताजा करते हैं। उत्सव एवं पर्वो पर नारियाँ पीपल वृक्ष के परिसर में गाती है, नाचती हैं, पीपल की पूजा करती हैं, तथा अपना मनोरथ सिद्ध करती हैं।

निसर्ग कन्या शकुन्तला प्रकृति पेलवा होने के कारण लता वृक्षों तथा पशुपक्षियों के साथ सादर-स्नेह रखती थी। वृक्षों को जल पिलाकर, जल पीना, अलंकार प्रिया होने पर भी स्नेहवश उनके पत्तों को न तोड़ना, उनके प्रथम पुश्पोद्भव को पुत्रोत्सव मानना उसके प्रकृति प्रेम को अभिव्यक्त करता है। जैसा कि–

"आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्याः भवत्युत्सवः।''[18]

पार्वती ने भी छोटे-छोटे पौधों को स्तनों के जैसे घड़ों के जल से सींच-सींच कर पाला था। उन्हें वे पुत्रों के समान प्यार करती थी, कि बाद में जब कार्तिकेय का जन्म हो गया तब भी उनका वात्सल्य प्रेम इन पौधों पर कम नहीं हुआ। जैसा कि कहा गया है–

''अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान्घटस्तनप्रस्त्रवणैर्व्यवर्धयत्।
गृहो*पि येशां प्रथमाप्तजन्मनां न पुत्रवात्सल्यमपाकरिश्यति''।। [19]
*"अमुं पुरः पश्यति देवदारूं पुत्रीकृतो*सौवृशभध्वजेन।*
यो हेम कुम्भस्तननिः सृतानांस्कन्दस्यमातुः पयसां रसज्ञः''।। [20]

प्रकृति की गोद में पली शकुन्तला जब राजमहिशी बनने जा रही है तब वल्कल वस्त्र पुश्पाभरण उसके लिए उपर्युक्त नहीं। इसीलिए वृक्षों ने मांगलिक रेशमी वस्त्र, लाक्षारस तथा वनदेवियों ने श्रृंगार के लिए आभूशण प्रदान किए। विदाई के समय आश्रम के लता, वृक्ष, पशु-पक्षी दुःखाभिभूत हो जाते हैं। मृगियाँ दर्भकवल उगल देती हैं, मयूर नर्तन करना छोड़ देते हैं, वृक्ष लताएँ पीले पत्तों के रूप में अश्रु-विसर्जित करते हैं। जैसा कि–

"उद्गलितदर्भकवला मृगाः परित्यक्तर्नतना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुंचन्त्यश्रूणीव लताः''।। [21]

अश्वत्थ वृक्ष लोक में पिप्पलवृक्ष के नाम से प्रसिद्ध है। शब्दकोशों में तथा शास्त्रों में अश्वत्थवृक्ष के पर्यायवाची शब्दों के रूप में बोधिवृक्ष, बोधिद्रुभ, चलद्दल आदि नामों का प्रयोग प्राप्त होता हैं। दिव्यगुणों से समन्वित अश्वत्वृक्ष का रोपण करना मानवों के लिए पुण्यकर तथा पापों को हरने वाला है। साथ ही सुख-सौभाग्य प्रदान करने वाला है। अश्वत्थ वृक्ष के लगाने से मनुष्य को जो फल प्राप्त होता है वह सौ यज्ञों एवं सौ पुत्रों से भी प्राप्त नहीं होता है। जैसा कि कहा गया है–

"अश्वत्थैनैव वृक्षेण रोपणेनैव यत्फलम्।
तद्वै वस्तुशतैर्नैव पुत्रैरेव शतैरपि''।। [22]

विश्णु द्रुम अथवा अश्वत्थ वृक्ष की सेवा से तथा पूजा से मानव के हजारों पाप नष्ट होते हैं और मनोरथ सिद्ध होते है। ''स्कन्द पुराण'' से ज्ञात होता है कि कदाचिद् दैत्यों से पराजित देवता ब्रह्मा की शरण में पहुँचे तथा दैत्यों का भय नष्ट करने का उपाय पूछने लगे। ब्रह्माजी ने पराजित हुए दैत्यों को आए संकट का निवारण करने के लिए स्पर्शमात्र से विघ्न नष्ट करने वाले अश्वत्थ वृक्ष की सेवा के लिए कहा। धर्मप्राण भारतीय जन अश्वत्थ वृक्ष की पूजा करके अपने को धन्य समझते हैं।

वैज्ञानिक दृश्टि से भी अश्वत्थ वृक्ष की महती उपयोगिता है। रोगों की चिकित्सा के लिए अश्वत्थ वृक्ष कल्पवृक्ष के समान सिद्धि प्रदान करने वाला है।

प्रायः देखा जाता है कि कुछ वृक्षों की जड़ कुछ वृक्षों के पत्ते एवं बहुतों के फल उपयोगी होते है। किन्तु अश्वत्थ वृक्ष के तो समस्त अंग अमृततुल्य लाभकारी होते हैं। शरीर में उत्पन्न होने वाले अनेक रोगों की चिकित्सा के लिए अश्वत्थ वृक्ष परम उपयोगी है। घावों को भरने में जोड़ो का दर्द दूर करने में दन्तपीड़ा को रोकने में कर्णशूल को दूर करने में अश्वत्थवृक्ष के विभिन्न अंग दवा के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। ग्रीष्म से संतप्त पथिकों, पशु-पक्षियों के लिए वृक्ष की छाया-तापहारिणी तथा शान्तिदायिनी है। पीपल का वृक्ष तपस्वियों की तपस्थली मुमुक्षुओं की मोक्षस्थली है। बलराम जी के प्रयाण करने के पश्चात् यदुकुल के संहार से उदास श्री कृष्णजी ने पीपल वृक्ष के नीचे स्थित होकर स्वेच्छा से अपने धाम में गमन किया। जैसा कि भागवत में कहा गया है–

"रामनिर्याणमालोक्य भगवान् देवकीसुतः।
निशसाद धरोपस्थे तूश्णीमासाद्य पिप्पलम्''।। [23]
"लोकाभिरामं स्वतनुं धारणाध्यानमड्गलम्।
*योगधारणया**ग्नेयया दग्ध्वा धामाविशत् स्वकम्''।।* [24]

चित्रकला में भी पीपल के पत्ते बहुतायत से प्रयुक्त होते हैं। साफ किए गए पीपल के पत्तों पर सोने से बने हुए रंगों तथा विभिन्न रंगों से चित्रकारों द्वारा चित्र बनाए जाते हैं। इन बहुमूल्य चित्रों को बेचकर चित्रव्यवसायी प्रभूत धनार्जन करते हैं। इस प्रकार के उत्कृष्ट गुणों के निधान पीपल के वृक्ष का सि्चन रक्षण तथा पोषण परम आवश्यक है। महानगरों में सुख-सुविधा के लिए वृक्षों के छेदन तूफानी गति से बढ़ता हुआ दिखाई दे रहा है। अबाध शक्ति से वृक्षों को काटना सर्वथा अमंगलकारी है।

शास्त्रों में पीपल वृक्ष को काटने वाला पाप का भागी तथा उसे सींचने वाला सुख सौभाग्य से परिपूर्ण होता है। नि:सन्देह पीपल का वृक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का दायक है।

जो व्यक्ति एक पीपल का वृक्ष, एक नीम, एक बड़ दस पुश्प देने वाले पौधे, लताएं, दो अनार के वृक्ष, दो संतरे अथवा पांच आम के पेड़ लगाता है, उसे कभी नर्क की प्राप्ति नहीं होती। पेड़ का प्रत्येक भाग मानवोपयोगी है।[25]

अत: वृक्षारोपण के महत्व को धर्म एवं नरक-स्वर्ग से जोड़ दिया गया।

वृक्षों से ऋशि मुनि पुत्रवत् स्नेहभाव रखते थे। पुत्रवत् वाले गये वृक्ष और वन के पत्रांकुर का विनाशकर जो फलमूल का अभाव करते थे, वे शाप के भागी होते थे। जैसा कि–

*''वने*स्मिन् मामके नित्यं पुत्रवत् परिरक्षते।*
पत्रांकुरविनाशाय फलमूलभवाय च।''[26]

निम्ब वृक्ष महाभिशक् होने के कारण पूजनीय माना गया। आम्र और रसाल वसन्त के मदनोत्सव का मुख्य आकर्शण होता है। धतूरे को शिव से संयुक्त किया जाता है, तो बबूल को भूत प्रेत से। कदंब को कृष्ण से, पलाश को ब्रह्मा से, सोम को चन्द्रमा से, अशोक को इन्द्र से और पीपल को विष्णु से संबंधित किया गया है।[27] इस प्रकार पेड़-पौधें के साथ प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से दिव्यता के दर्शन करना अत्यन्त प्राचीन काल से भारत में रहा है। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत साहित्य में "पर्यावरण'' की विशाल परंपरा है, जो वैदिक काल से प्रारम्भ होकर अद्यतन, गतिशील है तथा इन परंपराओं से भी स्पश्ट होता है कि, वृक्षों की विलक्षण चेतना एवं पशु-पक्षियों की मार्मिक अनुभूतियां होती रही हैं।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद - 1/115/1
2. वही - 2/3/1
3. भविष्य पुराण - 177/19/20
4. अथर्ववेद - 10/08/31
5. प्रश्नोपनिशद् - 1/5
6. बृहदारण्यकोपनिशद् - 3/9/28, 1/2/3
7. बाल्मीकी रामायण - 6/99/ - 4/5
8. महाभारत आदि पर्व - 110/111
9. पद्मपुराण - 1/44 - 455
10. भामिनी विलास -
11. पद्मपुराण - 58/172
12. ब्र.वै.पु. प्रकृति - 21/37
13. वही - 21/38
14. पद्मपुराण - 6/23/33
15. वही - 6/23/13
16. वही - 6/2/14
17. भगवद्गीता - 10/26
18. कालिदास - अभिज्ञानशाकुन्तलम् - 4/9
19. वही - कुमार संभवम् - 5/14
20. वही - रघुवंशम् - 2/36
21. अभिज्ञान शाकुन्तलम् - 4/12
22. पद्मपुराण सृष्टिखण्डे - 60/8
23. श्रीमद् भागवत - 11/30
24. वही - 11/26
25. वराह पुराण - 172/39-44
26. वाल्मीकि रामायण - 4/11/57
27. वही - 3/49/32

भारतीय समाज की जनसांख्यकीय संरचना: समस्या एवं समाधान

डॉ० श्वेता

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाज शास्त्र विभाग, महात्मा गान्धी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

सारांश

यदि हम मानव इतिहास का प्रारम्भ में अध्ययन करें तो पता चलता है कि सर्वाधिक रूचि जनसंख्यात्मक अध्ययन में राज्य की रही हैं। इसके प्रमुख कारण थे- कर के रूप में राज्य की आय का साधन ढुँढ़ना तथा राज्य की सुरक्षा। इन्हीं दो कारणों से राज्य की रूचि प्रारम्भ से ही जनसंख्यात्मक आँकड़ों में रही है। आधुनिक युग में अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अनेक समस्याएँ हैं परन्तु सबसे बढ़कर आज अन्तरराष्ट्रीय समस्या है 'जनसंख्या विस्फोट' जिससे निपटने के लिए 1962 से संयुक्त राष्ट्र ने अपने-आपको संलग्न कर लिया है। विकसित एवं कम विकसित सभी देशों के नियोजक आज जनसंख्या नियंत्रण को नियोजन का आवश्यक अंग मानते हैं। विकसित देश अब कम विकसित देशों के भूखे लोगों को अनाज देते रहने की असमर्थता व्यक्त करते हैं और वे परिवार नियोजन के लिए सहायता देना अधिक पसंद करते हैं। भारतीय समाज की जनसंख्या वृद्धि के कारण कई प्रकार के समस्याएँ उत्पन्न हो रहें।

परिचय

भारत जनसंख्या वृद्धि की इस प्रतियोगिता में काफी आगे है, भारत का भौगोलिक क्षेत्र विश्व का लगभग 2.4 प्रतिशत है। किन्तु यहाँ विश्व की 16 प्रतिशत जनसंख्या पायी जाती है, जनसंख्या की दृष्टि से भारत का स्थान विश्व में चीन के बाद दूसरा है, भारत में सन -1872 में प्रथम बार जनगणना किया गया था, किन्तु जनसंख्या का क्रमवार आकलन सन-1881 से किया जा रहा है, सन-1881 में भारत की कुल जनसख्या 23.7 करोड़ थी, जो 1 मार्च सन-1991 को 84.63 करोड़ हो गयी। ऐसा अनुमान लगाया जाता था कि 1997 में भारत की जनसंख्या 95 करोड़ से अधिक हो गया था। वर्त्तमान समय में ऐसा माना जाता है कि 2051 तक भारत की जनसंख्या लगभग दो गुणा हो जाएगा।

अध्ययन का उद्धेश्य

प्रस्तुत शोध-पत्र का मुख्य उद्धेश्य निम्नलिखित है।

1. भारतीय समाज में जनसंख्या वृद्धि का बढ़ते प्रभाव का अध्ययन करना।
2. इसके अन्तर्गत जनसंख्या वृद्धि के कारणों को जानना।
3. जनसंख्या वृद्धि को रोकने के उपायों को खोजना।
4. जनसंख्या वृद्धि का समाजिक परिवर्तन में भूमिका को जानना।
5. इस शोध-कार्य के द्वारा यह पता लगाना कि जनसंख्या वृद्धि ने भारतीय समाज को कहाँ तक प्रभावित किया है।
6. इस शोध-पत्र द्वारा यह जानना है कि इसे किस प्रकार सीमित किया जाए।
7. भारतीय समाज के बदलते परिवेश में जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव शोध को दूर करना आदि।

उपकल्पनाएं:-

1. जनसंख्या वृद्धि के कारण भारतीय समाज में खाधानों की कमी हो रही है।
2. इसके कारण भारतीय समाज का प्रत्येक क्षेत्र प्रभावित हुआ है।
3. जनसंख्या वृद्धि ने भारतीय समाज में विभिन्न प्रकार की कई समस्याओं को जन्म दिया है।
4. जनसंख्या वृद्धि के कारण बेरोजगारी, भूखमरी तथा शुद्ध वातावरण को बढ़ावा मिला है।
5. आज भारतीय समाज में जनसंखया वृद्धि ने विकास के मार्ग को रोकने का काम किया है।
6. जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिए समाज के लोगों मे जागरूकता लाने की आवश्यकता है।
7. इसे रोकने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर विचार करने की आवश्यकता है।

अध्ययन पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत मुख्यत: द्वितीयक ऑकड़ों का प्रयोग किया गया है। क्योंकि जिन विषय पर मेरा शोध है। उसकें लिए क्षेत्र अध्ययन महत्वपूर्ण नही प्रतीत होता है। अध्ययन का क्षेत्र सम्पूर्ण भारत होन के कारण केवल सांख्यकीय ऑकड़ों के विश्लेषणों द्वारा निष्कर्ष प्राप्त किया जा सकता है। श्रोतों के रूप में विभिन्न पुस्तकालयों, पत्र-पत्रिकाओं, शोध-पत्र, उचित पुस्तकों का अध्ययन किया गया है।

विश्लेषण

जनसंख्या किसी भी राष्ट्र के लिए अमूल्य पूँजी होती है, जो वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन करती है, वितरण करती है और उपभोग भी करती है और इस तरह देश के आर्थिक विकास का संवर्धन करती है। इसलिए तो जनसंख्या को देश के लिए साधन भी और साध्य भी माना गया है। लेकिन हर किसी चीज की एक सीमा होती है और उसका उल्लंघन सर्वथा घातक है, भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या के सम्बन्ध में यह कहना निहायत ही गलत नहीं होगा। जिस देश के साधन संसाधन वहाँ की आबादी के सापेक्ष होते है उसे एक अनुकूल या आदर्श जनसंख्या कह सकते है। पर विपरित स्थिति में जन उपलब्ध संसाधन देश की जनसंख्या को संतुष्ट करने के लिए पर्याप्त नहीं होते, तो इसे जनाधिक्य की संज्ञा दी जाती है । जनाधिक्य की समस्या से कई राष्ट्र संक्रमित है, पर अगर भारत की बात की जाए तो जनांकिकीविद् के लहजों में इसे जनाधिक्य की श्रेणी से दो कदम आगे कहा जा सकता है ।

ऑकड़े गवाह हैकि भारत की आबादी बेलगाम, बेतहासा बढ़ती जा रही है । आजादी के समय भारत की जनसंख्या 33 करोड़ थी । 21 वीं शदी की शुरूआत क्या हुइ भारत ने जनसंख्या के मामले में अरबपति होने का दर्जा हासिल कर लिया । यह बात अलग है कि यह दृष्टि भारत के लिए संकट का कारण बन सकती है । भारत में जनसंख्या 2001 का कार्य अपने आप में एक दुगुणाकारी एवं ऐतिहासिक घटना है । क्योंकि यह 21वीं शताब्दी तथा तीसरी सहस्त्राब्दी में होने वाली पहली जनगणना है । 28 फरवरी से 9 मार्च 2001 के दौरान जनगणना किया गया । 01 मार्च 2001 को भारत की जनसंख्या 01 अरब 2 करोड़ 80 लाख थी । भारत के पास विश्व के कुल भू-भाग का 2.4 प्रतिशत भू-भाग मात्रा है। फिर भी विश्व की 16.7 प्रतिशत आबादी का भार उसे वहन करना पड़ रहा है। अगर वैश्विक स्तर पर नजर डाली जाए तो भारत और चीन ही अभी तक जनसंख्या में अरबपति हो पाए है और किसी भी देश को यह गौरव नहीं प्राप्त हुआ है। भारत का स्थान चीन के बाद में दूसरा आता है। आने वाले समय में उम्मीद यही है कि भारत चीन को रौंदते हुए आगे बढ़ जाएगा। क्योंकि वर्त्तमान में देश की वृद्धि दर 1.93 वार्षिक है। जो विश्व के अन्य देशों के मुकाबले कई कोस आगे है। यहाँ तक कि विश्व के सर्वाधिक आबादी वाले देश चीन की वार्षिक जनसंख्या वृद्धि दर 1 प्रतिशत है। यदि भारत की वृद्धि दर कम होकर अपने अधिस्तर पर भी आ जाए तब भी आने वाले कुछ वर्षों में देश का पहला स्थान होगा।

भारत की 1891 से 2001 तक जनसंख्या की प्रकृति–

- 1891–1921–अवरूद्ध जनसंख्या
- 1921–1951–मर्यादित वृद्धि
- 1951–1981–तीव्र उच्च वृद्धि दर (जनसंख्या विस्फोट)
- 1981–2001–उच्च वृद्धि के साथ मन्द होने के स्पष्ट संकेत।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा इस सदी के शुरू में जारी की गई एक रिपोर्ट के मुताबिक विश्व में प्रति मिनट 150 बच्चे जन्म लेते है जिनमें 45 का योगदान अकेले भारत ही करता है। भारत के इसी योगदान को देखते हुए रूस की मशहूर महिलावादी लेखिका मारिया आवारोबा ने सरकार को अपने देश रूस की आबादी में बढ़ोत्तरी के लिए भारतीय पुरूषों की सेवाएं लेने तक का सुझाव दे डाला। अपने देश रूस में आबादी की कमी से निपटने के लिए उन्होंने अपनी पुस्तक ''कास्टिंग इण्डिया'' में लिखा है कि सरकार को जन्म दर में वृद्धि के मकसद से रूसी लड़कियों के लिए दूल्हे के रूप में भारतीय पुरूषों की व्यवस्था करनी चाहिए ।

जनसंख्या वृद्धि के कारण

भारत में रूढिवादिता आदि सामाजिक दायरों में फँसे लोग जनसंख्या वृद्धि के लिए उत्तरदायी ठहाए जा सकते हैं। हमारा ध्यान सिर्फ जन्म दर की निरन्तर होती वृद्धि की तरफ ही जाता है। लेकिन इसके पर्याप्त कारणों में मृत्यु दर की कमी को भी शुमार किया जा सकता है। देश में किसी भी कार्यक्रम का पूर्णरूपेण क्रियान्वन न हो पाना, अशिक्षा और गरीबी भी इसके कारण है। भारत के साथ एक त्रासदी यह भी है कि यहाँ अवांछित तरीके से भी जनसंख्या वृद्धि हो रही है। इसके तहत घुसपैठ जनित आबादी को गिना जा सकता है। एक अनुमान के मुताबिक 1 करोड़ बांग्लादेशी घुपैठिए भारत में रह रहे हैं। वाकायदा इन्होंने राशन कार्ड भी बनवा लिया है और मतदाता सूची में भी संसूचित है माना जाता है कि इन घुसपैठियों को राजनीतिक संरक्षण भी मिला हुआ है। असुरक्षा भाव भी जनसंख्या वृद्धि का कारण बनता है। अपनी जमात के विलुप्त न विरल हो जाने के बेतुके अंदेशो के बीच लोग सोंचते हैं कि हमारी संख्या जितनी अधिक होगी, हम उतने ही मजबूत होंगे। समाज में फैली बेश्यावृत्ति के कारण भी अवांछित बच्चे बढ़ रहे है। कुछ महत्वपूर्ण कारण निम्नलिखित है:-

- सरकार द्वारा निरन्तर प्रयास के बावजूद कम उम्र में विवाह करना।
- धार्मिक विचार कि बच्चे भगवान की देन है। इसलिए स्वयं प्रयास नहीं करते है।
- सामाजिक मान्यता को मानकर कि भारतीय समाज में पुत्र का विशेष महत्व है। इसलिए पुत्र प्राप्ति के लिए निरन्त बच्चों को जन्म देना।
- जनसंख्या वृद्धि में अज्ञानता और अशिक्षा को भी जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

- ग्रामीण क्षेत्रों में प्रजनन, स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव होना।
- उच्च जन्म दर का प्रमुख कारण देश की गर्म जलवायु का होना।
- वैज्ञानिक प्रगति के कारण मृत्यु दर में कमी आई है।
- अप्रवास की समस्या निरन्तर बढ़ती जा रही है।
- रूढिवादिता और अंधविश्वास के घेरे में आकार शिक्षित नवदम्पति भी संदेह के कारण दो संतानों मेंअन्तर नहीं रख पाते है।
- गरीबी जनसंख्या वृद्धि का महत्वपूर्ण कारण है। इसके साथ अंधविश्वास जुड़े रहते हैं कि अधिक बच्चे होंगे तो कमाने वाले अधिक होंगे।
- प्रजनन आयु वर्ग का कुल जनसंख्या के साथ अनुपात अधिक होना।
- देश में गर्भ-निरोधक साधनों का अभाव होना।
- शिशु मृत्युदर अधिक होने के कारण अधिक बच्चे पैदा करना।
- समाज में विवाह की अनिवार्यता जन वृद्धि में सहायक।
- जीवन प्रत्याशा का लगातार बढ़ना आदि।

जनसंख्या वृद्धि और समस्याएँ

आज भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौती जनसंख्या स्थिरिकरण की है। जनसंख्या की समस्या ने आज देश की सरकार तथा प्रशासन के समक्ष गम्भीर चुनौती प्रस्तुत कर दी है। यह चुनौती इस विशाल जनसंख्या के लिए भोजन, पानी, मकान, रोजगार, चिकित्सा, शिक्षा आदि उपलब्ध कराने की है। जनसंख्या वृद्धि ने सरकार की अनेक विकास योजनाओं को अप्रासंगिक बना दिया है। यदि कोई योजना वर्त्तमान में प्रस्तुत की जाती है, तो उसे पूरे होने तक जनसंख्या इतनी बढ़ चुकी होती है कि सम्बन्धित योजना की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिन्ह लग जाता है। वर्त्तमान में सड़क, अस्पताल, विद्यालय, शुद्ध पेयजल, विधुत आपूर्ति आदि जैसी बुनियादी सुविधाएँ जनसंख्या के दबाव के सामने स्वयं को असहाय महसूस कर रही है। जनसंख्या विस्फोट से रोजगार की स्थिति पर बेहद गम्भीर दबाव डाला है। इस जनसंख्या विस्फोट ने देश के आर्थिक विकास पर भी नकारात्मक प्रभाव डाला है तथा वर्त्तमान में करोड़ों व्यक्ति रोजगार की तलाश में हैं। किसी छोटे से छोटे पद के लिए बड़े से बड़े डिग्री धारक लाईन में लग रहे हैं। इस जनसंख्या विस्फोट में देश के आर्थिक विकास पर भी नकारात्मक प्रभाव डाला है। भारत में प्राकृतिक संसाधनों तथा जनसंख्या के बीच असंतुलन ने अनेक सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं को जन्म दिया है।

बढ़ती जनसंख्या आर्थिक विकास सरकारी योजना, सामाजिक संवर्द्धन व पर्यावरण संतुलन में अरंगा डालती है। विपुल जनसंख्या के आगे कोई भी सरकारी विकास योजना "ऊँट के मुँह में जीरा" साबित हो रही है। इतनी बड़ी आबादी के समक्ष कई विकास की योजनाएँ अव्यवहारिक व अप्रासंगिक हो जाती है। यही कारण है कि अब तक हर गाँव में बिजली नहीं पहुँचायी जा सकती है। पीने का पानी तक सर्वसुलभ नहीं हो पाया है। सड़क, अस्पताल, स्कूल से कई गाँव अछूते हैं। अपने देश में स्थिति यह है कि हजारों की आबादी पर बेमुश्किल एक चिकित्सक व सशस्त्र सिपाही तक नहीं हैं। यह विस्फोटक आबादी का सूचक ही है कि प्रति वर्ष रेल बजट में जितनी भी नई ट्रेनों की घोषणा की जाये, बोगियों तो ठूँसी ही रहती है। कहीं-कहीं तो ट्रेनों के ऊपर भी लोग यात्रा करते दिखते हैं। इतना ही नहीं आवास की ऐसी भीषण समस्या आन खड़ी हो गयी है कि नाली के किनारे, रेल पटरियों के किनारों, सड़क आदि के किनारे झोपड़ी बनाकर निवास करते हैं।

अनेक मलिन बस्तियों में नगर पालिका के डोगरों के भय तलों रह जाते है। फुटपाथों, प्लेटफार्मों पर भी भारत का एक हिस्सा आज भी जीवन-यापन करता आ रहा है।

यह स्वीकार करना होगा कि जनसंख्या वृद्धि से उपजी बेरोजगारी की त्रासदी ने अपराधों को बढ़ावा दिया है। देखने वाली बात यह है कि जहाँ ज्यादा आबादी है और बेरोजगारी दर उच्च है वहाँ अपराध का ग्राफ भी उफान पर रहता है। इस क्रम में बिहार, उ.प्र. को हम विशेष रूप से संदर्भित कर सकते है। रोजगार के अभाव में युवा वर्ग गलत मार्ग पर चल रहे हैं और आतंकवाद, उग्रवाद जैसे राष्ट्रद्रोही व विखंडात्मक प्रवृति में ही लीन होते जा रहे हैं। आज हालत यह है कि अपराध भी रोजगार का रूप लेता जा रहा है और अपहरण तो उधोग ही बन गया है। यों कहें कि बढ़ती आबादी से उपजी बेरोजगारी की विभीषता अपराध का दामन थामकर सामाजिक समरसत्ता को क्षीण-क्षीण कर रही है, तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

जनसंख्या की अतिशय वृद्धि ने पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। प्राकृतिक संसाधनो, जल, वायु, भूमि वन की स्थिति बिगड़ी है। जलावन के लिए हरियाली चौपट की जा रही है। स्थिति यह है कि 33 प्रतिशत के आदर्श वनाच्छादित भेद की बजाय देश में बमुश्किल 11 प्रतिशत भू-भाग में ही जंगल बचा है। यह तो भारत की एक छोटी सी तस्वीर भर है। आज भारत अनेकानेक समस्याओं से जकड़ा है।

जनसंख्या वृद्धि और समाधान

यूँ तो बढ़ती जनसंख्या पर खूब बात होती है; इसके दुष्परिणामों पर भी बात बेवात चिंता जताई जाती है और बात जनसंख्या नियंत्रण की भी गाहे-बगाहे की जाती है। बावजूद इसके ''बातें हैं बातों का क्या'' वाली बात हो जाती है। जनसंख्या वृद्धि को न तो अचानक ब्रेक लगाकर रोका जा सकता है और न ही इसे बैक गियर में डाला जा सकता है, पर न्यूट्रल किया ही जाना चाहिए। आज भारत को सख्त जरूरत है कि जनसंख्या में वृद्धि दर को कम किया जाए और साथ ही आर्थिक विकास की गति में रफ्तार बढ़ाई जाए। इसमें सकारात्मक परिणाम निकलेंगे। जनसंख्या वृद्धि पर निमंत्रण के लिए कुछ निम्नलिखित उपाय है–

- शिक्षा प्रणाली में राष्ट्रीय समस्या को शामिल किया जाना चाहिए तथा प्राथमिक शिक्षा सभी के लिए अनिवार्य होनी चाहिए।
- विवाह निर्धारण अधिनियम को कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए।
- बड़े स्तर पर परिवार नियोजन कार्यक्रमों को प्रभावी बनाया जाना चाहिए।
- देश में क्षेत्रीय जनसंख्या नीति लागू की जानी चाहिए।
- जनता में सामाजिक सुरक्षा की भावना आनी चाहिए, ताकि वे ये न सोंचे कि अधिक बच्चापैदा करना सामाजिक सुरक्षा है।
- आर्थिक रूप से पिछड़े, किन्तु जनसंख्यच की दृष्टि से अगड़े राज्यों के लिए विशेष व्यवस्था की जानी चाहिए।
- आर्थिक विकास के माध्यम से लोगों के जीवन स्तर में वृद्धि होनी चाहिए।
- जनसंख्या के नियंत्रण के लिए गैर सकरारी संगठनों व स्वयं सेवी संगठनों का सहयोग लिया जाना चाहिए।
- दो बच्चे पैदा करने वाले दम्पति दम्पति को पुरस्कार दिया जाए।
- जनसंख्या वृद्धि के दुष्प्रभावों को सार्वजनिक किया जाना चाहिए।
- सम्बन्धित कार्यक्रमों को राजनैतिक और धार्मिक प्रभावों से बचाना चाहिए।
- साक्षरता अभियान में परिवार नियोजन की शिक्षा को शामिल किया जाना चाहिए।
- महिलाओं को व्यापक स्तर पर शिक्षित किया जाना चाहिए।
- जनसंख्या नियंत्रण के लिए प्रचार-प्रसार माध्यमों का प्रयोग अधिक से अधिक किया जाना चाहिए, आदि।

जनसंख्या वृद्धि को रोकने के सरकारी प्रयास

जनसंख्या वृद्धि जिस गति से अपनी रफ्तार पकड़े हुए है यह किसी एक व्यक्ति की समस्या नहीं है बल्कि सरकार के साथ-साथ जन साधारण की भी समस्या है। भारत 1952 से परिवार नियोजन कार्यक्रम लागू करने वाला पहला देश है। सरकार के प्रयास दिशा में सराहनीय है। अगर कमी है तो मात्र क्रियान्वयन की। जनसंख्या नियंत्रण हेतु राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सरकार ने स्वामीनाथन समिति के रिपोर्ट पर 15 फरवरी 2000 को राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की घोषणा की। जिसका मुख्य उद्देश्य दो बच्चों के मानक को प्रोत्साहित करना था। नीति के तीन और उद्देश्य निर्धारित किये गये। इसका तात्कालिक उद्देश्य आपूर्त्ति क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में गर्भ निरोधक स्वास्थ्य सुरक्षा की आपूर्त्ति करना है, जबकि मध्यकालीन उद्देश्य 2010 तक सकल प्रजनन दर को 2.1 के स्तर पर लाना तथा दीर्घकालीन उद्देश्य 2045 तक स्थिर जनसंख्या के लक्ष्य को प्राप्त करना है। नई जनसंख्या नीति के महत्वपूर्ण लक्ष्य निम्नलिखित हैं।

- सकल प्रजनन दर को 2.1 पर लाना।
- दो बच्चों के मापदंड को अपनाना।
- जन्म, मृत्यु, विवाह और गर्भ धारण का पंजीकरण कराना।
- शिशु मृत्यु दर 30 प्रति हजार जन्म तक ले आना।
- टीकाकरण द्वारा रोगों का निवारण।
- मातृत्व मृत्यु दर को 100 प्रति 1 लाख जीवित जन्म से नीचे लाना।
- 80 प्रतिशत प्रसव प्रशिक्षित कर्मचारी की उपस्थिति में हो।
- जन्म पूर्व लिंग निर्धारण तकनीकि पर रोक लगाना।
- लड़कियों को देर से विवाह के लिए प्रोत्साहित करना।
- जनसंख्या नीति के कार्यान्वयन के लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग नियुक्त करना।
- राज्य स्तर पर भी एक आयोग का गठन करना आदि।

इस नीति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह नीति सरकार की जनसंख्या सम्बन्धी चिन्ताओं की स्पष्ट प्रमाण है। सरकार यह आशा कर रही है कि 2045 तक जनसंख्या के स्थिरीकरण के लिए यह नीति उपयुक्त है। लेकिन कुछ आलोचकों ने आरोप लगाया है कि इस नीति में परिवार नियोजन का सारा भार महिलाओं पर थोप दिया गया है।

जनसंख्या नियंत्रण में एक बात विशेष तौर पर उल्लेखीय है कि जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम की सफलता बहुत हद तक महिलाओं की भूमिका पर निर्भर करती है। इसके लिए आवश्यक है कि महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक दृष्टि से सशक्त बनाया जाए। जब महिलाएं शिक्षित होंगी तो उनकी सोंच का स्तर व्यापक होगा और महिलाएँ इस दिशा में कुछ करने में सक्षम हो सकेंगी। जहाँ शिक्षित महिलाओं का स्तर ज्यादा है वहाँ जनसंख्या में कमी देखने को मिलती है। महिलाओं में आर्थिक सशक्तिकरण से भी इस दिशा में महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल हो सकती है। वर्त्तमान परिप्रेक्ष्य में आवश्यकता इस बात की है कि जल्द से जल्द इस दिशा में जारी सरकारी सामाजिक स्तर से प्रयासों को तीव्र किया जाये। वरना जनसंख्या वृद्धि देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास में बाधा बन सकती है। मानव अस्तित्व बचाने के लिए जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम को लागू किया जाना जरूरी है। मानव अस्तित्व बचाने के लिए जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम को जोर-शोर से लागू किया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ

1. जनांकिकी-आर.सी. चान्दना
2. भारत लोक और अर्थव्यवस्था -N.C.E.R.T.
3. जनांकिकी – डॉ. जीवन चन्द्रपंत
4. नेशनल पोपुलेशन पॉलिसी-2000 (प्लानिंग कमिशन ऑफ इंडिया, नई दिल्ली)
5. जनगणना रिपोर्ट-2001 (भारत सरकार)
6. योजना- अप्रैल 2002 व जुलाई-2003
7. कुरूक्षेत्र-जुलाई-2007
8. दैनिक हिन्दुस्तान, जनसत्ता, राष्ट्रीय सहारा, दृष्टिकोण मंथन।

मौर्यकालीन कला

पूनम देवी

शोधार्थी, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर (रोहतक)

मौर्यवंश के समान ही मौर्यकालीन कला का भी इतिहास में विशेष स्थान है। इस काल की कलाकृतियाँ इस अद्‌भुत कला की गौरव गाथा सुनाती प्रतित होती है। हैवेल का विचार था कि मौर्यकालीन मूर्तिकला के विकास की दो अवस्थाएँ थी। पहली अवस्था में उत्तम नमूनों को प्रस्तुत करने की योग्यता और भावों को व्यक्त करने की सुसंस्कृत दक्षता थी। अशोक के स्तम्भ लेखों में भी यह कला देखने को मिलती है। हैवेल इस बात को स्वीकार नहीं करते कि मौर्य राजा कारीगरों को ईरान से मंगवाते थे। उनका मानना था कि इस प्रकार की धारणा केवल इस बात को सिद्ध करती है कि हम भारतीय विचारों से पूरी तरह से अवगत नहीं है। सत्य तो यह है कि शाही कारीगरों पर इण्डो-आर्य विचारों का प्रभाव था।[1] अशोक ने जो स्तम्भ बनवाए थे उन पर घण्टी के आकार का ईरानी शीर्ष दिखाई देता है। यह शीर्ष भारतीय कला की वस्तुओं पर साधारण: पाया जाता है। भारतीय कला में सांकेतिक लक्षण का प्रयोग होता है। अत: इस आकार को ईरानी कला की घण्टी का आकार समझना भूल है। स्तम्भ पर यह आकार फूल का संकेत है न कि घण्टी का। इसकी आकृति एक छत्र की सी है जो विश्वराज्य की भारतीय भावना का द्योतक है।

मौर्य कला के विकास की दूसरी अवस्था भरहुत तथा सांची के स्तूपों में देखने को मिलती है। इनमें जातक-कथाओं में वर्णित बुद्ध के जीवन की विभिन्न घटनाएँ चित्रित की गई है। इसको प्रारम्भिक कला कहा जा सकता है। कभी-कभी यह कला तकनीकी दृष्टि से उच्च शिखर को भी प्राप्त हुई।

डॉ० जॉन मार्शल का भी विचार था कि मौर्यकाल में मूर्ति कला की दो श्रेणियाँ थी। मथुरा में अजायबघर में रखी हुई परखम से पाई गई मूर्ति पहली श्रेणी की मानी जा सकती है। दूसरी श्रेणी सारनाथ शीर्ष की है। जो मूर्ति-श्रृंगार के विचार से विशेष भिन्नता प्रस्तुत करती है। परखम से प्राप्त मूर्तियाँ आदिकालीन कला का उदाहरण है। उस प्रतिमा में मौर्य कला की उस स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। जब उसे मुख-भाग के सर्वमान्य नियम या कलाकार की पूर्व-धारणाओं से मुक्ति प्राप्त नहीं हुई थी। सिर और धड़ को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि यदि उन्हें लम्बाई में दो भागों में बांट दिया जाए तो दो भाग पूर्णत: सन्तुलित प्रतीत होंगे और प्रतिमा पक्ष और पिछला भाग चपटे कर दिए हैं और केवल किनारों से जोड़ दिया गया है, जिससे प्रतीत होता है कि कलाकार एक समय पर अपनी मूर्ति के एक पक्ष की ही कल्पना कर सका और उसके विभिन्न अंगों को एक संतुलित इकाई में जोड़ न सका। ये लक्षण केवल सजावट की शैली तक ही सीमित नहीं है, जिसका कारण कलाकार की कल्पना है। ये सभी देशों की आरम्भिक कला के लक्षण है और कला की जिस आदिकालीनता की ओर वे संकेत करते हैं, इस प्रतिमा के अन्य लक्षणों से स्पष्ट है। वे लक्षण है मुख-भाग के सम्मुख पक्षों और पृष्ठ भाग को गौण समझना, कान का अव्यवस्थित चित्रण, गर्दन का बेड़ौल आकार, पेट को जानबूझ कर गोलाकार बनाना और पैरों को परिष्कृत न करना। इसके विपरीत सारनाथ वाला शीर्ष, यद्यपि वह अत्युत्कृष्ट नहीं है, फिर भी अत्यन्त विकसित कला की कृति है। वह कला तृतीय शताब्दी ई०पू० में विद्यमान थी। सारनाथ शीर्ष उस कला का प्रतिनिधि है, जिसके पीछे कई पीढ़ियों का परिश्रम और अनुभव था। सबसे ऊपर बनाए हुए शेरों का उभरता हुआ बल, उनकी फूली हुई नसें और उनके तने हुए पुट्ठे और नीचे नक्काशी का स्पष्ट यथार्थवाट, इन सबमें पुरानी आदिकालीन कला की नकल दिखाई नहीं देती।

सर जॉन मार्शल का विचार था कि दो श्रेणियों के कलाकारों के अन्तर का कारण अशोक के राज्य-काल में ईरान से बुलाए गए कलाकारों द्वारा भारतीय कलाकारों का प्रशिक्षण था। डॉ० स्मिथ अशोककालीन कला को मूलत: विदेशी मानने को तैयार न था। सारनाथ शीर्षफलक के बैल और हाथी को विषय और प्रेरणा की दृष्टि से वे पूर्णत: भारतीय मानते थे और अर्ध-जाति कला का परिणाम नहीं समझते थे। कॉर्ड्रिगन ने बताया है कि ईरानी स्तम्भशीर्ष आरम्भिक भारतीय घण्टी आकार के स्तम्भशीर्षों से अधिक सम्बन्धित नहीं है। अशोक द्वारा बनवाए गए स्तम्भ पूर्णत: स्मारकीय है और यह विचार भी भारतीय ही है। भारत में हिन्दु मंदिरों में छोटे-छोटे स्तम्भ बनाये ही जाते हैं। जिन्हें देवताओं के प्रतिक चिन्ह चक्र या मूर्तियों आदि से सुसज्जित किया जाता है। अशोक द्वारा लगाए गए स्तम्भ भी उसी का प्रतिक है तथा उनका उद्देश्य उनके स्थान से स्पष्ट हो जाता है जैसे रुम्मिनदेई और सारनाथ के स्तम्भ क्रमश: बुद्ध के जन्म और प्रथम उपदेश के प्रतिक है। डॉ० मुकर्जी का मत है कि अशोकीय कला में विदेशी प्रभावों को अनुपस्थित बताना सम्भव नहीं है। पश्चिमी देशों और यूनानी सभ्यता तथा संस्कृति के प्रदेशों के साथ भारत के सम्बन्ध रहे हैं। डॉ० बागची और प्रो० शास्त्री लिखते है कि अशोकीय स्मारकों की शैली और आकृति कुछ- कुछ विदेशी आदर्शों पर भी स्थापित थी। जो विदेशी प्रभाव सिद्ध किए भी जा सकते हैं वे केवल विवरण के जैसे मधु-बेल और खजूर के पते जैसा आभूषण मोती और वेलन घूमती हुई रस्सी और अन्य आंलकारिक चीजें, जिनमें से कुछ तो कई वर्षों तक प्रचलित रही। अशोक द्वारा बनवाए गए स्तम्भ आमतौर पर एक ही पत्थर के गोल स्तम्भ है जिनकी मोटाई ऊपर जाते हुए कम होती जाती है। इनके आधार की चौड़ाई 351/2 और 491/2 इंच के बीच है और ऊँचाई 40 से 50 फुट तक है। शीर्ष में चौड़ाई 22 से 35 इंच तक है। स्तम्भशीर्ष घण्टी के आकार के हैं। उसके ऊपर एक फलक है और उस वृत के ऊपर सबसे ऊँची प्रतिमा है।[2] लैरीय-नन्दन-गढ़ का स्तम्भ सबसे अच्छी हालत में है। सबसे ऊपर शेर की प्रतिमा और फलक को बतखों से सजाया गया है जो

दाने चुग रही है। इस प्रकार वे उस झुण्ड को प्रस्तुत करती है जिनका पोषक स्वयं बुद्ध थे।[3] बाखड़ा और चार-चार शेर है जिनकी पीठ जुड़ी हुई है। संकिसा के स्तम्भ पर हाथी की मूर्ति को डॉ० स्मिथ गरुढ़ मानता है और डॉ० मुखर्जी शेर, लेकिन डॉ० मुकर्जी के अनुसार वह अकेला शेर है।

सारनाथ स्तम्भ की आंलकारिक योजना एक पद्धति पर आधारित है। इसके स्तम्भशीर्ष पर शेर हैं जिनकी पीठ जुड़ी हुई है। उनके बीच में एक बड़ा पत्थर का चक्र है जो धर्म-चक्र का चिन्ह है। इसका केवल एक अंश ही शेष रह गया है। चारों शेर एक ढाल पर खड़े है जिस पर चार जानवर - शेर, हाथी, बैल और घोड़ा अंकित है। स्तम्भों पर शानदार चमक प्रत्येक युग में आश्चर्य का विषय बनी रही। डॉ० वी०ए० स्मिथ का विचार है - पत्थर तराश की प्रवीणता को उच्चतम समझा जा सकता है। उसने वह काम कर दिखाया जो शायद बीसवीं शताब्दी में सम्भव न हो। तीस-चालीस फुट ऊँचे रेतीले पत्थर के इतनी बड़ी स्तम्भ पूर्णत: विधि अनुसार काटे गए और छीले गए और उन्हें ऐसी चमक दी गई जो शायद आज के कलाकार उस पत्थर को न दे सकें।

दिल्ली में टोपरा से लाई गई फिरोजशाह की लाट इतनी परिमार्जित है कि बहुत से दर्शक उसे धातु समझते हैं। सत्रहवीं शताब्दी के क्वेण्ट टाम कोर्याट ने इस स्मारक को पीतल की परत चढ़ा स्तम्भ बताया और उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में विशप हैबर ने समझा कि यह 'ढली हुई धातु का एक काला ऊँचा स्तम्भ' था। ऐसी चमक स्तम्भ के सभी भागों पर नहीं है। धरातल से नीचे का भाग चमकदार नहीं है। दिल्ली-टोपरा स्तम्भ 42 फुट 7 इंच ऊँचा है, लेकिन चमक 35 फुट तक दिखाई देती है। रामपुरवा का स्तम्भ 44 फुट 91/2 इंच ऊँचा है लेकिन 8 फुट 9 इंट भाग बिना काटे और बिना चमकाए ही छोड़ दिया गया है।

मौर्यकाल की कला केवल अशोक के स्तम्भों से ही नहीं पहचानी जाती बल्कि उसकी कई अन्य कृतियाँ भी है। चट्टानों में काटे गए सात मन्दिर अशोक और उसके उत्तराधिकारियों के समय के हैं। उनमें से चार बाराबर की पहाड़ी पर हैं और शेष नागार्जुन पहाड़ी पर हैं। ये स्थान गया के निकट है। गया के निकट सीतागढ़ी के स्थान पर गुफा भी शायद मौर्यकाल की है। दशरथ के समय में खोदी गई गोपी गुफा एक सुंरग जैसी गुफा है। यह 44 फुट लम्बी, 10 फुट चौड़ी और उसकी गुम्बददार छत शीर्ष पर 10 फुट ऊँची है।

यूनानी लेखकों ने पाटलिपुत्र में मौर्य राजप्रसाद की बहुत प्रशंसा की है और उसे वे सूसा और एकवटना के महलों से भी अधिक उत्तम समझते थे। महल के मुलच्छेदार स्तम्भों को सुनहरी लताओं और चाँदी के पक्षियों से सजाया हुआ था। महल एक बहुत बड़े उद्यान में स्थित था। जहाँ कई मछली पकड़ने के तालाब थे। इसमें सजावट के कई पेड़ और झाड़ियाँ लगाई गई थी। इसी महल के विषय में चीनी यात्री फाह्यान ने इस प्रकार लिखा है। शहर के सब भूतों ने बनाए थे जिन्हें उसने सम्राट अशोक ने कार्य करने पर लगाया। उन भूतों ने पत्थरों पर पत्थर रख कर दीवारें बनाई और द्वार खड़े किए। उन्होंने ही शानदार खुदाई की और मूर्तियाँ बनाई। ये सब देखकर ऐसा प्रतित होता है जैसे यह किसी मनुष्य का काम ना होकर दैविय कार्य है।

मौर्यो द्वारा बनवाया गया यह राजप्रसाद सम्भवत: आग में जलकर भस्म हो गया था। बुलन्दी बाग के निकट कुमारहर के स्थान पर पाई गई राख से यही संकेत मिलते है। इस महल की विशेषता बताते हुए डॉ० स्पूनर लिखते है कि महल के अन्दर 250 वर्ग फुट का एक हाल था जिसके अवशेष धरातल से 17 फुट नीचे से खोदकर निकाले गए है। पत्थर के स्तम्भ का 14 फुट 3 इंच ऊँचा भाग लगभग सुरक्षित अवस्था में प्राप्त हुआ। चमकदार रेतीले पत्थरों और राख के ढेरों से अन्य स्तम्भों के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है। ये ढेर अपने केन्द्र पर 15-15 फूट की दूरी पर है एक-दूसरे से यह दूरी भी नियमित है। हाल का फर्श लकड़ी का था जिस पर ये स्तम्भ खड़े थे, जिनके ऊपर भी लकड़ी का ढ़ांचा आधारित था। ऐसा प्रतीत होता है कि आग लगने से पहले महल में बाढ़ भी आई थी। पर्सी ब्राउन की कल्पना है कि यह महल तीन मंजिला था और स्तम्भों की नींव पर बनाया गया था। मौर्यकाल के सभी नगर ऊँची मोर्चेदार दीवारों से घीरे हुए थे। उनके चारों ओर उन्होंने खाई खोदी हुई थी जिनमें कमल के और पानी के पौधे होते थे। पटना के पास बुलन्दी बाग के निकट पाटलिपुत्र के लकड़ी के दुर्ग के अवशेष प्राप्त हुए हैं।[4]

डॉ० बागची और प्रो० शास्त्री के विचार में सारनाथ का एक छोटा सा जंगला और बौद्ध गया के मंदिर के भीतर का सिंहासन अशोक के समय के अंश, दीदारगंज से एक यक्षी की मूर्ति, पराम की एक प्रतिमा, लोहानीपुर में तीर्थकरों की दो मूर्तियाँ और मथुरा के निकट बड़ौदा से एक 'यक्ष' या राजा की मूर्ति का धड़ सभी मौर्यकालीन समझे जाते हैं। यह इसलिए कहा गया है कि उन सब में चुनार के रेतीले पत्थर का प्रयोग किया गया है। उनकी चमक से भी यही संकेत मिलता है। कहा गया है कि दीदारगंज से यक्षी की प्रतिमा कला की दृष्टि से सर्वोत्कृत है किन्तु एन०आर० राय इस मत को स्वीकार नहीं करते उनका विचार है - ये जीवन आकार की गोल प्रतिमाएँ भारतीय कला के विभिन्न युगों और श्रेणियों की है। आकृति और आकार की दृष्टि से वे सब भारतीय हैं। शैली और प्रतिपादन की दृष्टि से मौर्य दरबार की कला से उनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। आभूषण बनाने और रत्नों के काम में भी मौर्य कलाकारों ने प्रवीणता प्राप्त की।

लोककला के अन्तर्गत हम सर्वप्रथम विभिन्न स्थानों से मिली हुई पाषाण निर्मित विशालकाय यक्ष-दक्षिणी प्रतिमाओं का उल्लेख कर सकते है। इनका विवरण इस प्रकार है - (1) मथुरा जिले के परखम ग्राम से मिली यक्ष मूर्ति जिसे मणिभद्र कहा गया है। (2) मथुरा जिले के बड़ोदा ग्राम से मिली यक्ष प्रतिमा। (3) मथुरा के झींग का नगरा ग्राम से मिली यक्ष प्रतिमा। (4) मथुरा से प्राप्त यक्ष प्रतिमा। (5) पद्माावती से प्राप्त यक्ष प्रतिमा। (6) पटना से प्राप्त दो यक्ष प्रतिमायें। (7) राजघाट से प्राप्त यक्षी की प्रतिमा। (8) विदिशा से प्राप्त यक्ष एवं दक्षिणि की प्रतिमा।[5]

उपरोक्त सभी प्रतिमायें विशाल आकार-प्रकार की है जिन्हें सभी ओर से तराशकर तैयार किया गया है। उनके शरीर पर वस्त्र तथा आभूषण अत्यन्त मनोहर हैं। यक्ष और यक्षी प्रतिमाओं को आधार बनाकर कालान्तर में बुद्ध, बोधिसत्वों तथा जैन तीर्थकरों की विशाल मूर्तियों का निर्माण किया गया है। मार्शल, आर०पी० चन्द्रा, कुमार स्वामी आदि विद्वानों ने पटना के निकट लोहानीपुर से दो जैन दिगम्बरों की प्रतिमाओं के धड़ तथा सारनाथ से दो पुरुष मूर्तियों के मसाक को मौर्यकालीन बताया है।

अनेक स्थानों से विभिन्न पशु-पक्षियों जैसे हाथी, घोड़ा, बैल, भेड़, कुत्ता, पक्षियों तथा नर-नारियों की बहुसंख्यक मिट्टी की मूर्तियाँ मिली हैं जिन्हें हाथ से सांचे में ढालकर बनाया गया है। इन मृण मूर्तियों को भी विद्वानों ने मौर्यकालीन माना है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कौर, ए०वी०, मगध साम्राज्य का इतिहास, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण 2013, पृ० 155
2. विद्यालंकार, सत्यकेतु, मौर्य साम्राज्य का इतिहास, सरस्वती सदन, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ० 636
3. मुखर्जी, राधामुकुद, अशोक, जवाहर नगर, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1974, पृ० 72
4. मजूमदार, डॉ० रमेशचन्द्र, प्राचीन भारत, जवाहर नगर, दिल्ली, संस्करण 2019, पृ० 93
5. गोयल, श्रीराम, प्राचीन भारतीय इतिहास, पृ० 547

मुगल साम्राज्य का पतनः कारण एवं प्रभाव (1707 - 1857)

रघु यादव

शोध छात्र (इतिहास), हिन्दू पी.जी.कॉलेज, गाजीपुर, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर (उत्तर प्रदेश)

सारांशिका (Abstract)

यह शोधपत्र 1707 से 1857 तक मुगल शासन के पतन पर केंद्रित है। इसका मुख्य लक्ष्य शासन गिरने के कारक, घटनाओं और उनके प्रभाव का विश्लेषण करना है। शासकों की अयोग्यता, बाहरी आक्रमण, सूबों की असंतुष्टि, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का हस्तक्षेप, आंतरिक असंतुलन इत्यादि कारको ने एक साथ मुगल शासन की नींव हिला दी। नादिर शाह का आक्रमण, प्लासी का युद्ध, बक्सर का युद्ध, 1857 का विद्रोह इत्यादि घटनाओं ने मुगल साम्राज्य को और अधिक असंतुलित किया, जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश शासन ने धीरे-धीरे दिल्ली सहित अधिकतर क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। इसका प्रभाव राजनैतिक असंतुलन, सामाजिक असंतोष, आर्थिक शिथिलता, सांस्कृतिक गिरावट, और राष्ट्रीय अस्मिता पर पड़ा, साथ ही इसने राष्ट्रीय आन्दोलन की नींव रखने का मार्ग भी प्रशस्त किया।

संक्षिप्त रूप से, यह शोध दर्शाता है कि मुगल शासन का पतन एक बहुआयामी परिघटना था, जिसने भारतीय इतिहास कल लंबे समय तक प्रभावित किया।

कीवॉर्ड्स (Keywords): मुगल शासन, पतन, कारक, घटनाएँ, प्रभाव, नादिर शाह, पलासी युद्ध, बक्सर युद्ध, 1857 विद्रोह, ब्रिटिश शासन, राष्ट्रीय आन्दोलन

प्रस्तावना

मुगल शासन भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण काल है, जिसने लगभग तीन शताब्दियों तक भारतीय राजनीतिक परिदृश्य पर शासन किया। इसका प्रभाव मात्र राजनीतिक घटनाओं तक ही सीमित नहीं था, अपितु इसका असर जीवन के हर क्षेत्र जैसे सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक जीवन पर पड़ा। बाबर ने 1526 ईस्वी में पानीपत की पहली लड़ाई जीती और दिल्ली पर अधिकार किया, जिसके बाद धीरे-धीरे एक शक्तिशाली साम्राज्य ने आकार लिया, जो अधिकतर भारतीय उपमहाद्वीप तक फैल गया।

अकबर, जहांगीर, शाहजहां, और औरंगजेब जैसे शासक इस शासन की नींव रखने और इसका विस्तार सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके शासन ने न केवल राजनैतिक एकजुटता प्रदान की, अपितु एक स्थिर शासन प्रणाली, राजस्व व्यवस्था, सांस्कृतिक एकता और वास्तुकला, साहित्य इत्यादि क्षेत्रों में अभूतपूर्व उत्कर्ष किया। परन्तु औरंगजेब की मृत्यु (1707) ने एक नए असंतुलन की नींव डाल दी। उनके शासन ने अधिकतर क्षेत्रों पर विजय अवश्य प्राप्त की, किंतु उनके आदेश अधिकतर असंतोष, असंतुलन और विद्रोह का कारण भी रहे। उनके निधन ने एक शासक-विहीन वातावरण निर्मित किया, जिसके फलस्वरूप एक शक्तिशाली केंद्र शासन धीरे-धीरे शिथिल होने लगा।

मुगल शासन ने एक आदर्श राज्य व्यवस्था निर्मित की थी, पर वही धीरे-धीरे असंतुलन, असंतोष, बाहरी आक्रमण, आंतरिक कलह, राजकोष पर भार इत्यादि कारको की चपेट में आया, जिसके फलस्वरूप इसका पतन हुआ। इस असंतुलन ने बाहरी शक्तियों, विशेष रूप से ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी, फ्रांसीसी, अफगान शासक अहमद शाह अब्दाली इत्यादि, के लिए हस्तक्षेप का मार्ग खोल दिया।

यह शोधपत्र मुख्य रूप से 1707 से 1857 तक के काल पर केंद्रित होगा - वही काल जिसने एक शक्तिशाली शासन व्यवस्था का क्रमिक पतन देखा, बाहरी आक्रमण अधिक हुए, आंतरिक असंतोष ने जड़ें फैलाकर शासन की नींव तक हिला दी, और अंततः 1857 की क्रांति ने इसका पूर्ण अवसान किया। यह गिरावट मात्र राजनीतिक असंतुलन तक ही नहीं थी, इसका प्रभाव शासन प्रणाली, अर्थव्यवस्था, सामाजिक जीवन, सांस्कृतिक संस्थाओं पर भी पड़ा था। राजकोष पर भार, सूबेदारी व्यवस्था का असंतुलन, शासक वर्ग का भोग-विलास, असंतुष्ट राजाओं व उमरा द्वारा किया गया विद्रोह - ये कारक एक साथ गिरावट का कारण बने।

अंततः 1857 के विद्रोह ने दिल्ली पर ब्रिटिश शासन की नींव सुनिश्चित कर दी कर दी, बहादुर शाह जफर द्वितिय ने अंग्रेजों के समक्ष आत्मसमर्पण किया, और इसके साथ ही एक महान शासन प्रणाली का अंत हुआ, जिसने लगभग तीन शताब्दियों तक भारतीय जीवन पर प्रभाव डाला था।

मुगल साम्राज्य की पतन का कारण

मुगल शासन का पतन कोई एक कारक या घटना नहीं था, अपितु अनेक कारक एक साथ क्रियाशील रहे, जिसने धीरे-धीरा एक शक्तिशाली राज्य व्यवस्था की नींव हिला दी। यहाँ मुख्य कारक निम्नलिखित हैं:

उत्तराधिकार के नियम का न होना

मुगल काल में उत्तराधिकार का कोई नियम नहीं था। गद्दी को तलवार के बल पर ही जीता जाता था। बाबर ने उत्तराधिकार के नियम को लागू करने की कोशिश की और उसने हुमांयु को अपना उत्तराधिकार नियुक्त किया और शेष भाइयों में थोड़ा-थोड़ा राज्य बांट दिया लेकिन उससे वे संतुष्ट नहीं हुए और हुमांयु को अपने भाइयों के विद्रोह का सामना करना पड़ा। ऐसे ही अकबर को जीवन के अंतिम समय में अपने पुत्र सलीम के विद्रोह का सामना करना पड़ा। अकबर का अपने पोते खुसरो से अधिक लगाव था लेकिन सलीम को यह बात बिल्कुल भी पसंद नहीं थी इस वजह से सलीम ने विद्रोह कर दिया लेकिन अकबर के अंतिम समय में सलीम की क्षमा याचना से उसको गद्दी प्रदान कर दी गई।

'जैसी करणी वैसी भरनी' के साथ जहांगीर का शासनकाल शुरू हुआ। खुसरो के विद्रोह व शाहजहां के विद्रोह ने जहांगीर का जीवन कष्टों से भर दिया। शाहजहां को भी अपने जीवन में अपने पुत्रों का युद्ध देखना पड़ा। इसी प्रकार औरंगजेब ने भी विद्रोह का सामना किया गद्दी पर बैठने के लिए सगे संबंधियों का खून बहाना मुगल काल में आम बात हो गई थी। शाही दरबार में जो विद्रोह होता उसका सर राजनीति तथा जनता पर भी पड़ता था। सत्ता के लिए संघर्ष कर खुद मुगलों ने अपने लिए कब्र खोद ली थी शासकों को गद्दी से उतारने में ही मुगलों का ध्यान अधिक रहता था इन सबका लाभ उठाकर विरोधियों ने अपनी सत्ता को कायम करने में सफलता प्राप्त की।

औरंगजेब की नीतियां

पतन की प्रक्रिया औरंगजेब के समय में शुरू हो गई थी औरंगजेब की नीतियों ने मुगलकालीन व्यवस्था को कमजोर कर दिया। वह बड़ा महत्वकांक्षी था तथा उसने भौगोलिक सीमाओं को पार करना चाहा। मराठा, जाट तथा राजपूतों के प्रति कठोर बर्ताव व उनको प्रांतीय स्वायत्तता देने से इन्कार से उनके अंदर की वफादारी को समाप्त कर दिया जो पहले शासकों के प्रति थी। औरंगजेब अपने साम्राज्य के लिए एक अच्छा गठबंधन तैयार करने में असफल रहा। इस प्रकार उसने सभी को अपना शत्रु बना लिया। उसकी अंधविश्वासी धार्मिक नीतियों ने हिंदू तथा मुसलमानों में अलगाव पैदा कर दिया। इन नीतियों के कारण मुगल पतन की ओर बढ़ने लगा।

उत्तराधिकारियों का कमजोर होना

1707 से 14 तक हुए युद्धों ने साम्राज्य को कमजोर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कमजोर उत्तराधिकारियों की वजह से साम्राज्य ओर भी अधिक कमजोर हो गया। उत्तर मुगल शासकों में कोई भी विरोधी शक्तियों में एकता स्थापित नहीं कर सका। उनमें से अधिकतर कुलीन वर्गों की कठपुतली बने रहे। मुगलों के विघटन का एक ओर कारण स्वयं कुलीनों के आपसी संघर्ष चलने लगे और इससे आंतरिक विभाजन की प्रक्रिया शुरू हो गई।

कमजोर शासकों की गद्दी पर बैठने से वे भी गद्दी के बारे में सोचने लगे जो कभी जागीरें तथा सरकारी पदों पर सीमित थे। वे अधिक से अधिक जागीरें व उच्चे पद पाने के लिए लड़ने लगे। धन की कमी के कारण उन्होंने सेना की संख्या भी कम कर दी। जो उनकी सबसे बड़ी भूल थी।

नादिरशाह का आक्रमण

जब मुगल सम्राटों की अयोग्यता से एक-एक करके प्रांत मुगल साम्राज्य से अलग हो रहे थे तो सम्राट मूकदर्शक बना हुआ था ऐसी स्थिति का फायदा उठाकर ईरानी योद्धा नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण कर दिया। 1738 ई० में गजनी को जीतकर वहां से मुगलों को भगा दिया। इस प्रकार काबुल पर भी विजय प्राप्त कर ली। पंजाब के सूबेदार जकारियां खां ने जनवरी 1739 ई० में आत्मसमर्पण कर दिया। श्तजकिशत-उल-वाकियात नामक ग्रंथ से पता चलता है कि जब नादिरशाह द्वारा मुलक पर कब्जा करने से मुहम्मदशाह को नादिरशाह की शक्ति का आभास हुआ तब मुहम्मदशाह ने 75000 सैनिकों की सेना तैयार की तथा निजाम-उल-मुल्क व सआदत खा, नादिरशाह को रोकने के लिए आगे बढ़े। करनाल के पास दोनों पक्षों में युद्ध हुआ जिसमें मुगलों की पराजय हुई। निजाम ने एक संधि के द्वारा नादिरशाह को 50 लाख का हर्जाना देकर वापिस जाने के लिए राजी किया। आपसी विद्रोह के चलते कुछ सरदारों ने नादिरशाह को बताया कि वह दिल्ली जाकर कहीं अधिक धन प्राप्त कर सकता है। नादिरशाह ने जब दिल्ली में प्रवेश किया तो मुहम्मदशाह ने उसका स्वागत किया। 22 मार्च 1739 ई० को दिल्ली में किसी ने नादिरशाह के मारे जाने की अफवाह फैला दी। इस प्रकार नादिरशाह के कई सैनिक मारे गए। इस घटना से क्रोधित होकर नादिरशाह ने 20000 लोगों का कत्ल व भारी मात्रा में लूटपाट की। गद्दी पर बैठने पर अपने नाम का रुतबा पढ़वाया व सिक्के ढलवाये। नादिरशाह भारी मात्रा में हीरे, जवाहरात, तख्ते ताऊस व प्रसिद्ध कोहिनूर हीरा लूटकर ईरान ले गया। इन सबकी कीमत 70 करोड़ थी। मुहम्मदशाह ने एक संधि के द्वारा पश्चिम का सारा प्रदेश नादिरशाह को देना स्वीकार किया।

इस प्रकार नादिरशाह के हमले ने मुहम्मदशाह की शक्ति को ओर अधिक कमजोर कर दिया। मराठों के आक्रमण मुगलों को कब्र में धकेलने का कार्य किया मुगलों की स्थिति का लाभ उठाकर मालवा, अवध, हैदराबाद, रुहेलखंड सभी राज्य स्वतंत्र हो गए। इस प्रकार 1748 इसमें में मुहम्मदशाह की मृत्यु हो गई तथा इसके शासनकाल में लगभग मुगल साम्राज्य का पतन हो गया था।

जनसंपर्क का अभाव

अकबर को छोड़कर और किसी मुगल शासक ने भारतीय जनता के साथ सीधा संपर्क स्थापित नहीं किया। उन्होंने जन सामान्य की दशा समझने, उनके हितों की रक्षा करने तथा उनकी सुख-सुविधाओं के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाये। मुगल अमीर उनका शोषण करते रहे। मुगल शासकों को भारतीय जनता का प्रेम, सहयोग व समर्थन प्राप्त नहीं हुआ। मुगल शक्ति का आधार उसकी सेना थी। सेना के कमजोर होते ही जनसमर्थन के अभाव में मुगलों का पतन होना निश्चित हो गया। इतिहासकार इरफान हबीब ने भी मुगल साम्राज्य के पतन के लिए कृषि संकट का सिद्धांत दिया है। हबीब के अनुसार इन समस्याओं का मूल कारण मनसब व्यवस्था की कार्यप्रणाली में ही समाहित था। इस व्यवस्था में किसानों का शोषण दिन प्रतिदिन बढ़ता गया। जिससे काश्त में कमी आई और भू-राजस्व भी घट गया।

मुगल साम्राज्य के पतन का प्रभाव

मुगल साम्राज्य का पतन मात्र एक राजवंश या शासन व्यवस्था का अंत नहीं था, इसका प्रभाव भारतीय जीवन, शासन, अर्थव्यवस्था, समाज, संस्कृति - लगभग हर क्षेत्र पर पड़ा। यहाँ मुख्य प्रभाव दिए गए हैं:

राजनैतिक प्रभाव

मुगल शासन के शिथिल होने और सूबों के असंतुलित होने के कारण बाहरी कारकों ने हस्तक्षेप किया, इसका सर्वाधिक लाभ अंग्रेजों ने लिया। धीरे-धीरे उनके शासन ने अधिकतर क्षेत्रों पर अधिकार किया, यहाँ तक कि दिल्ली तक उनके नियंत्रण में आ गई, इसका प्रभाव के कारण नए शासक वर्ग, ब्रिटिश राज्य का अभ्युदय हुआ।

मुगल शासन ने तीन शताब्दियों तक एक केंद्रीकृत राज्य दिया था, इसका पतन मतलब एक एकजुट शासन व्यवस्था का असंतुलन था, जो अनेक राज्यों, सूबों, कारिंदो, राजा-महाराजाओं या नवाबों में बंटा इसी के परिणाम स्वरुप राजनीतिक संतुलन और भी प्रभावी हुआ।

सामाजिक प्रभाव

केंद्रीय आदेश शिथिल होने पर अधिकतर सूबे, कारिंदे, राजा अधिक निरंकुश होने लगे, इसका असर साधारण जन पर हुआ, शोषण अधिक हुआ, असंतोष अधिक फैलने लगा।

जमींदारी अधिक फैलने लगी, शासक वर्ग अधिकतर सुख-सुविधाओं तक ही सिमटने लगा, शोषण अधिक हुआ, किसानों, शिल्पियों, कारिंदों पर भार अधिक आया, इसका फल हुआ असंतोष, विद्रोह और असंतुलन।

आर्थिक प्रभाव

लगातार युद्ध, बाहरी आक्रमण, आंतरिक असंतुलन ने राजकोष खाली किया, अधिकतर कारिंदों ने राजस्व चुराकर रखा, इसका असर हुआ कि राज्य अधिकतर असमर्थ होने लगे।

दिल्ली, आगरा, लाहौर, सूरत, ढाका जैसे शहरी केंद्र असंतुलन, युद्ध, असंतोष, असुरक्षा का शिकार होने लगे, इसका असर कारोबार, शिल्प, हस्तकला पर पड़ा, कारिगरों ने पलायन किया, शिल्प प्रभावित हुआ, निर्यात घटने लगे, अर्थव्यवस्था शिथिल होती चली गई।

दीर्घकालिक प्रभाव

मुगल शासन ने जो शून्य छोड़ा, उसको ब्रिटिश ने भर दिया, अंग्रेजों ने नए आदेश, नए संस्थान, नए शासन ढांचे निर्मित किए, इसका असर हुआ कि भारतीय जीवन अधिकतर ब्रिटिश शासन पर निर्भर होने लगा।

मुगल शासन का पतन एक तरह से राजवंशी शासन का पतन था जिसके कारण से भारत में राष्ट्रीयता एकता लोकतांत्रिक मूल्य और सामाजिक न्याय जैसे मूल्य का अभ्युदय हुआ। 1857 के विद्रोह ने भारतीय जनमानस ने पहली बार एक साथ अंग्रेजों का मुकाबला किया, इसका असर हुआ कि एक राष्ट्रीय आन्दोलन ने धीरे-धीरे जन्म लिया, जो बाद में 20वीं शताब्दी की मध्य तक चलता रहा, और जिसने ब्रिटिश शासन का अंत के साथ ही समाप्त हुआ।

निष्कर्ष

मुगल शासन का पतन मात्र एक राजवंश या शासन प्रणाली का पतन नहीं था, अपितु यह एक बहुआयामी घटना थी जिसने भारतीय इतिहास की दिशा ही बदल दी। शासको की आंतरिक कलह, असंतुलित राजस्व प्रणाली, सूबों की असंतुष्टि, बाहरी आक्रमण, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की चतुर नीतियों, साथ ही निरंतर युद्ध ने शासन की नींव खोखली कर दी थी। इसका परिणाम हुआ कि एक केंद्रीकृत राज्य धीरे-धीरे असंतुलित होकर गिरने लगा, जिसके फलस्वरूप भारत में एक नई शासन प्रणाली एवं राज्य व्यवस्था उभरने लगी।

यह पतन न केवल राजनैतिक असंतुलन या शासकीय असफलता तक ही सीमित नहीं था, इसका असर हर वर्ग तक पहुंचा - शासक वर्ग असमर्थ हुआ, कारिंदे अधिक निरंकुश होने लगे, शिल्प, वाणिज्य, उद्योग प्रभावित हुए, किसानों पर भार अधिक आया, सामान्य जन असंतोष से भरने लगे, सांस्कृतिक जीवन शिथिल हुआ, राष्ट्रीय अस्मिता प्रभावित हुई, और एक दीर्घकालिक संतुलन ने भारतीय जनमानस को लगभग सभी स्तरों पर प्रभावित किया।

दूसरी तरफ, इसका एक महत्वपूर्ण प्रभाव राष्ट्रीय आन्दोलन पर भी पड़ा। लोगों ने एकजुट होकर बाहरी शासन, शोषण और असंतुलन का मुकाबला किया, जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय एकजुटता अधिक मजबूत होने लगी, नए नेता, नए आन्दोलन, नए विचार जनचेतना पर असर डालने लगे, जो बाद में भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का आधार बने।

संक्षिप्त रूप से, मुगल शासन का पतन एक जटिल परिघटना था – इसका प्रभाव राजनैतिक असंतुलन तक ही नहीं था, इसका असर सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जीवन पर भी हुआ, साथ ही इसका राष्ट्रीय अस्मिता पर दीर्घकालीन प्रभाव पड़ा, जिसने बाद में अंग्रेज शासन से मुक्ति की नींव रखने का मार्ग प्रशस्त किया।

संदर्भ सूची

1. इरफान हबीब, द मुगल्स एंड दी जागीर प्रणाली (The Mughal Empire and the Jagir System), अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, 1963.
2. सतीयन्द्र नाथ सेन, ईटाईज ऑफ दी मुगल्स (Eighteenth Century in Mughal India), कलकत्ता यूनिवर्सिटी, कलकत्ता, 1972.
3. जे. एफ. रिचाड्र्स, द मुगल एम्पायर (The Mughal Empire), कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1993.
4. हरबंस मुखिया, द मुगल्स ऑफ इंडिया (The Mughals of India), वाइली इंडिया, दिल्ली, 2004.
5. शिरीन मोइजुद्दीन, मुगल शासन व्यवस्था (Mughal Administration), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1985.

परकथा में प्रतिरोध (1920-50 की जीवनियों मे उपनिवेश विरोधी चेतना)

महेंद्र सिंह

शोधार्थी, हिन्दी साहित्य, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

शोध सार:- जीवनी वस्तुत: परकाया प्रवेश है। किसी व्यक्ति द्वारा अन्य विशेष के जीवन या जीवन खंड को इतिहास, साहित्य और नायक के परिप्रेक्ष्य मे देखना जीवनी लिखना है। जीवनी अतीत से लिखी जा रही है किन्तु उपनिवेशवादी दौर मे लिखी गई जीवनियों का एक अलग महत्व है। जो कुछ भी लेखक ने उपनिवेशवाद के दबाव के चलते नहीं लिखा या छिपाया है जीवनीकारों ने उसे सामने रखा है। उपनिवेशवादी दौर मे साम्राज्यवादी शक्तियों के खिलाफ लिखना एक महत्वपूर्ण और खतरनाक काम था। साहित्य जब्ती से लेकर, जुर्माना और जेल जैसे दमनकारी उपकरणों के माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने रोक लगाई। इसलिए कविता और कथा साहित्य में प्रतीकात्मक ढंग से आने वाला उपनिवेशवाद विरोध कथेतर साहित्य विधाओं मे कम ही मिलता है।

बीज शब्द:- जीवनी, उपनिवेश, उपनिवेशवाद, ब्रिटिश, साम्राज्यवाद, कथेतर, चंपारन, स्वाधीनता, क्रांतिकारी, प्रतिरोध, चेतना।

मूल आलेख:- किसी व्यक्ति विशेष का जीवन वृतांत है जीवनी। व्यक्ति का चरित्र चित्रण करना जीवनी लेखन का मूल उदेश्य होता है। इतिहास, साहित्य और नायक के त्रिगुणीय तंतुओं से बनी रचना जिसमें चरित नायक अर्थात जिसके बारे मे लिख रहा है उसके जीवन या जीवन के किसी भाग की पूरी जानकारी वर्णनात्मक शैली मे दर्ज की गई हो जीवनी कहलाती है। जीवनी विधा को कई विद्वानों ने अपने अपने ढंग से परिभाषित किया है। जॉनसन कहते हैं- "जीवनीकार का लक्ष्य जीवन की घटनाओं और क्रिया कलापों का रंजक वर्णन करना होता है जो व्यक्तिविशेष की बड़ी से बड़ी महानता से लेकर छोटी से छोटी घरेलू बातों तक से संबंधित होती है"[1]। वहीं पाश्चात्य विद्वानजे.टी.शिप्ले जीवनी को ऐसे परिभाषित करते हैं- "जीवनी किसी व्यक्ती विशेष की जीवन घटनाओं का वर्णन है। अपने आदर्श रूप में वह प्रयत्न पूर्वक घटनाओं का विवरण है जिसमें व्यक्ति विशेष के संपूर्ण जीवन या उसके किसी अंश से संबंधित बातों का विवरण मिलता है। यह आवश्यकताएँ उसे एक साहित्यिक रूप प्रदान करती है"[2]। हिन्दी साहित्यकारों और आलोचकों की नजर से जीवनी को समझें तो अमरनाथ कहते हैं -"जीवनी व्यक्तीविशेष के जीवन का ऐसा चित्र है जहाँ उसके जीवनगत तथ्यों और चरित्र की विशेषताओं को ऐसी कलात्मकता के साथ अभिव्यक्त किया जाता है कि वह चित्र सजीव हो उठता है"[3]। किसी व्यक्ति के तथ्यगत जीवंत चित्रों की बात करते हैं अमरनाथ वहीं बाबू गुलाबराय का विचार उसमें दोषों को भी स्थान देते हैं। बाबू गुलाबराय के अनुसार जीवनी की परिभाषा है- "जीवनी लेखक अपने चरित्र नायक के अंतरबाह्य स्वरूप ला चित्रण कलात्मक ढंग से करता है। इस चित्रण में वह अनुपात और शालीनता का पूर्ण ध्यान रखता हुआ सहृदयता, स्वतंत्रता और निष्पक्षता के साथ अपने चरित्र नायक के गुण दोष में सजीव नायक का एक आकर्षक शैली में उद्घाटन करता है"[4]। किसी महान व्यक्ति के जीवन की तथ्यात्मक, रोचक तथा स्वाभाविक प्रस्तुती जिसके केंद्र मे व्यक्ति और उसका बाह्यजीवन दोनों हो, जीवनी है।

जीवनियों के तमाम भेदोपभेद किए जा सकते हैं जैसे - ऐतिहासिक, लोकप्रिय, आत्मीय, व्यक्तिगत, कलात्मक और मनोवैज्ञानिक जीवनी। जीवनी लेखन का काम भारत में प्राचीन काल से ही चलता आ रहा है। संस्कृत मे बाणभट्ट हर्ष जीवनी लिखकर इसका प्रमाण प्रस्तुत किया है। रामचन्द्र वर्मा ने ऐतिहासिक चरित्रों की जीवनियां लिखकर भारतीय मानस के उस गौरवबोध को पुनर्जाग्रत करने का प्रयास किया है जिससे उपनिवेशवादी शासन ने हमे काट कर रख दिया था। श्री वर्मा ने मेवाड़ महाराणा प्रताप, स्त्री रत्न, छत्रसाल आदि को अपने लेखन का विषय बनाया तो उनकी लेखनी से अकबर का दरबार भी नहीं छूटा। हर दौर में अपने समकालीन राजनेता पर लिखना एक जोखिम भरा कार्य रहा है किन्तु उस दौर में जब नेता स्वयं अंग्रेजी साम्राज्यवाद से टकरा रहा है, उस पर कुछ भी लिखना सीधे देशद्रोह माना जाता था। ऐसे समय रामचन्द्र वर्मा गांधी जी की जावनी लिखते हैं। इस जीवनी में हमे गांधी और साम्राज्यवाद विरोध का प्रारम्भिक स्वर दिखाई देता है। कालांतर में आजाद भारत के पहले राष्ट्रपति होने का गौरव प्राप्त करने वाले डॉ राजेन्द्र प्रसाद अपनी आत्मकथा 'चम्पारण में महात्मा गांधी' में गांधी और चंपारन आंदोलन का वर्णन सविस्तार करते हैं। चंपारन में असहयोग आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार हो रही थी, राजेन्द्र जी गांधी जी से वहीं मिलते हैं तो उनसे अप्रभावित नहीं रह सके। 'आत्माराम एण्ड संस' से प्रकाशित इस जीवनी के दूसरे संस्करण में प्रकाशक ने वक्तव्य जारी करते हुए लिखा-"महात्मा गांधी ने सन् 1920 से 1922 तक जो कुछ किया उसका आभास चंपारन में 1917 में मिल चुका था और यह आशा प्रकट की गई थी कि जिस प्रकार चंपारन में सफलता मिली थी उसी प्रकार यदि असहयोग आंदोलन उनके सिद्धांतों पर चलता रहा तो अंत में वैसे ही सफल होगा"[5]। राजेन्द्र प्रसाद ने बताया यदि चंपारन और खेड़ा के इतिहास इकट्ठे कर लिए जाएँ तो जो कुछ सत्याग्रह या असहयोग आंदोलन ने किया है अथवा करने की इच्छा रखकर भी अभी तक नहीं कर पाया है वे सब बाते उनमें वर्तमान पाई जाएंगी। चंपारन आंदोलन (नील सत्याग्रह) को केंद्र में रखकर लिखी गई यह जीवनी सम्पूर्ण आत्मचरित नहीं है बल्कि गांधी के उस आंदोलन और उसमें उनकी भूमिका का आँखों देखा इतिहास है। इस पुस्तक में आगे के सभी आंदोलनों के टूल्स हमें देखने को मिल जाते हैं जो बाद मे स्वाधीनता आंदोलन में बहुतायत मे प्रयोग में लाए गए थे। चंपारन उपजाऊ क्षेत्र था जहां एक कहावत के प्रचलन का जिक्र राजेन्द्र जी करते हैं- 'अजब देश मझउआ, जहां भात न पूछे कौआ'। ये मँझाउआ वही भू-भाग था, जहां बाद में अकाल की स्थिति देखी

गई, जहां लो भूखों मरने लगे थे। न तो तन ढकने के लिए दो सूत कपड़ा ही था न भूख से बिलखते बच्चों के लिए एक मुट्ठी जौं। इसी भुखमरी और तंगहाली से परेशान होकर राजकुमार शुक्ल ने गांधी जी जो चंपारन आने का न्योता दिया था। चंपारन केंद्रित गांधी जी की यह जीवनी आंदोलन को विस्तार से समझने में मदद करते हुए एक ऐतिहासिक दास्तावेज के रूप में खुद को दर्ज करती है। पंडित गोपीनाथ दीक्षित ने सन् 1937 में जवाहरलाल नेहरू की जीवनी 'जवाहरलाल नेहरू की जीवनी और व्याख्यान' नाम से लिखी थी जिसे द नेशनल पब्लिशिंग हाउस प्रयागराज से प्रकाशित किया गया। इस पुस्तक के समर्पण में गोपीनाथ जी लिखते हैं -"माता के नौनिहालों को जिनको लगी है लगन स्वतंत्रता प्राप्ति की और जिनके आदर्श हैं आज पं जवाहरलाल नेहरू"[6]। यह जीवनी शोध के लिए व्यापक सामग्री उपलब्ध कराती है। इस महत्वपूर्ण जीवनी को लिखने में पं मोतीलाल नेहरू, श्रीमती उमा नेहरू, श्री सुंदरलाल जी, पं मोहनलाल जी, मिस्टर मंजर आली सोखता, डॉ ख्वाजा सय्यद हैदर मेहंदी, पं गौरीशंकर मिश्र, बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन और बाबू गुरुनारायण खन्ना आदि ने अमूल्य सुझाव, सामग्री तथा सहायता प्रदान की थी। इसे प्रमाणिक और तथ्यात्मक बनाने के लिए गोपीनाथ जे ने लगभग 250 पृष्ठों में उन महत्वपूर्ण भाषणों को संकलित कर लिपिबद्ध किया है जो समय- समय पर जनता के सामने दिए गए और जिनमें साम्राज्यवाद विरोधी चेतन का स्वर बहुतायत में पाया जाता है। जीवनी के प्रथम 100 पृष्ठों में उन्होंने उपनिवेशवाद और तज्जनित परिणामों की चर्चा की है। जरूरी तस्वीरों के साथ सज्जित यह जीवनी स्वाधीनता आंदोलन के दौरान ब्रितानी हुकूमत को कई परतों में खोलती है। वे भारत एवं रूस की महान विभूतियों की एक श्रंखला का इतिहास निर्मित करते हुए बुद्ध से लेकर रूस के राजकुमार तक के ऐतिहासिक पक्ष की पड़ताल करते हैं। रुस के क्रोपाटकिन (राजकुमार) का वर्णन भी इसी क्रम मे विस्तार से किया है। वह जवाहरलाल के संदर्भ में लिखते हैं- "इसी अनोखे बावले की जीवनी देश भाइयों के सम्मुख उपस्थित है। परमात्मा करे वे भी इस बावले की सनक में सन जाएँ और उसी से देश के सुख-दुख मे रोना और हँसना सीखे। भारत का भविष्य युवकों के हाथ है"[7]। इस जीवनी में गोपीनाथ जी नेहरू के सम्बंध में लिखते हुए जीवन, परिवार, वंश, राजनीति में पदार्पण, बढ़ते वर्चस्व तथा त्याग का वर्णन करते हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है- "असहयोग आंदोलन में आपने 25000 मासिक की जमी हुई प्रेक्टिस पर लात मारकर वकालत छोड़ी और सत्य मार्ग पर लड़ते हुए जेल गए, देश के लिए आपकी सेवाएं महान हैं"[8]।1937 तक के इतिहास को समेटे यह जीवनी उस समय की राजनीति तथा दमन की गहराई से पड़ताल करती है। मन्मथनाथ गुप्त द्वारा लिखित जीवनी 'चंद्रशेखर आजाद' इसी क्रम मे एक अन्य जीवनी है। इसमें चंद्रशेखर आजाद के जीवन के माध्यम से लेखक द्वारा भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के उन पक्षों को उजागर किया है जो क्रांतिकारी गतिविधियों में हिस्सा लेकर ब्रिटिश साम्राज्य से टकरा रहे थे। इस जीवनी में मन्मथनाथ गुप्त जी ने आजाद के जीवन के कई रहस्यों से भी पर्दा उठाया है। आचार्य सीताराम चतुर्वेदी की महामना मालवीय (1938) जगदीश नारायण तिवारी द्वारा लिखित सुभाष चंद्र बोस छविनाथ पांडे द्वारा लिखित नेताजी सुभाष आदि इस समय की प्रमुख पुस्तक हैं जिनमें स्वाधीनता आंदोलन के समय इन नायकों द्वारा किया गया प्रतिरोध दर्ज किया गया है लेकिन इन दुर्लभ एवं महत्वपूर्ण पुस्तकों का केवल जिक्र ही उपलब्ध है। पुस्तकालय में यह पुस्तक उपलब्ध नहीं होने के कारण इनका उपयोग शोध कार्य में नहीं किया जा सका है। इसी प्रकार जगदीश झा विमल द्वारा मौलाना आजाद की जीवनी भी अप्राप्य है। इन जीवनियों से उपनिवेशवाद विरोधी स्वरों की विविधता से पड़ताल की जा सकती थी। श्री देवव्रत द्वारा लिखी गणेश शंकर विद्यार्थी की जीवनी 'गणेश शंकर विद्यार्थी' 1931 में नवयुग प्रकाशन मंदिर, विद्यापीठ, बनारस से प्रकाशित की गई है। गणेश शंकर विद्यार्थी उत्तर भारत में खासकर संयुक्त प्रांत में क्रांतिकारी आंदोलन की धुरी थे। आजाद आदि क्रांतिकारी के साथ-साथ 'प्रताप पत्र' में वह क्रांतिकारी आंदोलन का पक्ष जनता के मध्य ले जाने का काम करते थे। उत्तर प्रदेश (संयुक्त प्रांत) के वह कांग्रेस के सभापति पद पर भी कार्यरत थे तथा एक महान पत्रकार के रूप में आम जन के बीच विख्यात थे। भूमिका में वह अपने सभापति की शहीद होने का जिक्र करते हैं। कानपुर में हो रहे सांप्रदायिक दंगों में गणेश जी की जीवन लीला समाप्त हो गई थी। भूमिका में नेहरू बर्नार्ड शा के इस कथन से श्री विद्यार्थी की तुलना करते हुए कहा था कि उनका त्याग जीवन का सच्चा सुख है। नेहरू जी इस भूमिका के माध्यम से यह उद्धृत करने का प्रयास कर रहे हैं कि विद्यार्थी जी का जीवन जिन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कार्यरत था उसी में पूर्णतया तिरोहित हो गया, जीवन की इससे ज्यादा सार्थकता या सफलता क्या हो सकती है। प्रस्तावना में लेखक ने नायक को कई विशेषणों से नवाजा है विद्यार्थी जी का सारा जीवन युद्धमय था। वह समस्त जीवन शैतानियत से लड़ते रहे। विद्यार्थी जी के जीवन का संघर्ष जिस शैतानियत से लड़ने में बीता उसमें अंग्रेजी राज्य और सांप्रदायिकता प्रमुख रूप से थी। मानवता का पुजारी अन्याय का विरोधी ढाई पसलियों का वह मानव जहां भी अत्याचार देखता था, इस जीवनी में वहां जूझते हुए दिखाया गया है उसे। इस जीवनी को पूर्ण करने में पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिली शरण गुप्त, बनारसी दास चतुर्वेदी, पंडित विष्णु दत्त शुक्ला, शिव व्रत नारायण, भाई हरिशंकर विद्यार्थी आदि से लेखक को बहुत मदद मिली है। दो भागों और 13 खंडों में विभक्त यह जीवनी 10 महत्वपूर्ण चित्रों को भी अपने में संजोए हुए हैं जो कि स्वाधीनता आंदोलन के विभिन्न चरणों की जीवंत गवाही के रूप में उपस्थित है। जूझते हुए जीवन का प्रमाण विद्यार्थी जी का जीवन है, उसमें राज-सत्ता (अंग्रेजी) का मुखर विरोध का स्वर मिलता है। इस क्रम में शिवरानी देवी द्वारा लिखित कथा-सम्राट प्रेमचंद की जीवनी 'प्रेमचंद घर में' महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस जीवनी में कई ऐसे प्रसंग आते हैं जो प्रेमचंद द्वारा उपनिवेशवादी सरकार के बहुआयामी विरोध को सामने लाते हैं। हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाउस ने इस जीवनी का प्रकाशन 1944 में किया था। इसका दूसरा संस्करण 1952 में इसी प्रकाशन ने प्रकाशित किया था। 2005 में कुछ संशोधनों के साथ रोशनाई प्रकाशन ने नुक्ते आदि हटाकर इसे प्रकाशित करवाया। इस संस्करण की एक खास बात यह है कि इसमें जीवनीकार शिवरानी देवी के पोते प्रबोध कुमार ने अपनी नानी शिवरानी के बारे में एक लघु संस्मरण भी जोड़ा है और इसी क्रम मे वह मूल जीवनी से संशोधित संस्करण की जानकारी भी देते हैं। यह जीवनी उस समय के साहित्यिक तथा राजनैतिक दोनों परिवेशों को समझने में मददगार है। सरस्वती प्रेस बनारस से प्रकाशित मूर्धन्य कथाकार प्रेमचंद जी की जीवनी है। इस जीवनी में कथाकार के जीवन के विभिन्न पक्षों के साथ-साथ घरेलू संस्मरण भी बहुतायत में हैं। प्रेमचंद का कहानी संग्रह सोजे - वतन अंग्रेजी सरकार द्वारा जप्त कर लिया गया था प्रेमचंद घर में पुस्तक में भी हमें स्वाधीनता आंदोलन के प्रसंग प्राप्त होते हैं। गणेश शंकर विद्यार्थी, प्रताप, जागरण, माधुरी, हंस आदि के साथ ही तमाम लेखकीय प्रक्रियाओं का बहुत ही प्रमाणिक वर्णन इसमें मिलता है। स्वाधीनता आंदोलन में प्रेमचंद महोबा, बस्ती, बनारस आदि में अपने प्रत्यक्ष तथा लेखन के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े रहे हैं। कई स्थानों पर आंदोलन में शिवरानी जी सक्रिय रूप से शामिल रही और जेल गई थी। स्वदेशी, खादी, चरखा संघ, चंदा इकट्ठा करना आदि कई प्रकरण इस जीवनी में हमें प्राप्त होते हैं। इसमें उनके सरकारी सेवा से इस्तीफा देने का भी वर्णन आता है। यह वर्णन इस प्रकार है -"सन 20 की बात है सहयोग का जमाना था। गांधी जी गोरखपुर आए थे। आप बीमार थे, मैं दोनों लड़कों और बाबूजी के साथ मीटिंग में गई थी। महात्मा

जी का भाषण सुनकर हम दोनों प्रभावित हुए। हां! बीमारी की हालत थी, अव्यवस्था थी मगर तभी से सरकारी नौकरी के प्रति एक तरह की उदासीनता पैदा हुई"[9]। रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा लिखी गई जीवनी जयप्रकाश नारायण 1951 में लिखी गई एक प्रमुख जीवनी है जो राजनीतिक जीवनियों की श्रेणी में आती है। इन जीवनियों के कथ्य विश्लेषण में स्वाधीनता आंदोलन को समर्पित वह नायक चित्रित है जो प्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी सत्ता से लड़ रहा है। इस कारण इस जीवनी में उपनिवेशवाद का विरोधी स्वर बहुतायत में प्राप्त होता है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं की चयनित समय की जीवनियों का विश्लेषण करने के पश्चात यह स्पष्ट हो जाता है कि राजनैतिक गतिविधियों से जुड़े साहित्यकारों की जीवनी मे उपनिवेशवाद का विरोध झलकता है किन्तु राजनीति से दूर रहने वाले साहित्यकारों के पास उपनिवेशविरोध का कोई स्वर प्राप्त नहीं होता। प्रेमचंद आदि लेखक राष्ट्रीय आंदोलनों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए थे इसलिए उनकी जीवनी मे उपनिवेशवादी चेतना और प्रतिरोध के स्वर खुलकर सामने आते हैं।

संदर्भ-

1. बुरसे गोविंद, जीवनी और आत्मकथा, मानक प्रकाशन, औरंगाबाद, 2019, पृष्ठ सं.10
2. वही, पृष्ठ सं.10
3. डॉ अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, 2012, पृष्ठ सं. 56
4. बुरसे गोविंद, जीवनी और आत्मकथा, मानक प्रकाशन, औरंगाबाद, 2019, पृष्ठ सं.11
5. प्रसाद राजेन्द्र, चंपारन में महात्मा गांधी, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1955
6. दीक्षित पं गोपीनाथ, जवाहरलाल नेहरू की जीवनी और व्याख्यान, दी नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रयाग, पृष्ठ सं 1
7. वही, पृष्ठ सं 11
8. वही, पृष्ठ सं 16
9. देवी शिवरानी, प्रेमचंद घर में, सरस्वती प्रेस, बनारस, 1944, पृष्ठ सं. 6

गुप्त प्रशासन की एक महत्वपूर्ण समीक्षा और एकीकृत साम्राज्य को बनाए रखने में इसकी प्रमुख भूमिका

कुमारी सुप्रिया

पीएच०डी० लोक प्रषासन विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (भोजपुर)

सारांश

गुप्त वंश की प्रशासनिक प्रणाली एक जटिल व्यवस्था थी जो अधिक विकेंद्रीकृत और अर्ध-फ्यूडल स्वभाव को दर्शाती थी, जो केंद्रीकृत मौर्य साम्राज्य से काफी भिन्न थी। साम्राज्य की राज्यबतंजि कामंदकिया के नीतिसार पर आधारित थी। सप्तांग सिद्धांत प्रशासनिक कार्यप्रणाली के केंद्र में था। राजा सर्वोच्च प्राधिकरण था, उसके बाद राजकुमार, मंत्री और अन्य उच्च रैंक के अधिकारी (कभी-कभी गुप्त एजेंट के रूप में कार्यरत) थे। राज्य को विभिन्न प्रांतों और वासल राज्यों में विभाजित किया गया था, जो सीधे राजा के नियंत्रण में थे और कभी-कभी वासल सवतक के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से नियंत्रित होते थे। जासूसों का नेटवर्क और गांव पंच-मंडली प्रणाली प्रशासनिक कार्यप्रणाली को कुशल बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। इस प्रकार, गुप्त साम्राज्य कई वर्षों तक फलता-फूलता रहा क्योंकि कुशल प्रशासनिक प्रणाली ने समय की आवश्यकता के अनुसार नियमों में परिवर्तन और निरंतरता की अनुमति दी।

कीवर्ड: गुप्त प्रशासन, राजस्व, मंत्री, नौकरशाह, सामंत, प्रांत, विकेंद्रीकरण

परिचय

गुप्त साम्राज्य का विशाल साम्राज्य गुप्त राजाओं द्वारा शासित था जब तक कि इसका पतन और विघटन स्कंदगुप्त के बाद नहीं हुआ (जिसे साम्राज्य को बरकरार रखने वाला अंतिम शक्तिशाली राजा माना जाता है)। गुप्त साम्राज्य का निर्माण केवल विजय और युद्ध द्वारा नहीं किया गया, बल्कि वैवाहिक गठबंधनों और छोटे राज्यों की स्वैच्छिक अधीनता जैसे अहिंसक कूटनीतिक तरीकों से भी किया गया, ताकि वे साम्राज्य का हिस्सा बन सकें और इसके बदले में कुछ स्तर की स्वायत्तता प्राप्त कर सकें। अधीन राज्य के शासक को उनके महत्व और भूमिका के अनुसार उपाधियाँ और नाम दिए गए। साम्राज्य के प्रशासन में राजनीतिक पदानुक्रम सामान्य थे। उपिंदर सिंह ने सही रूप से सुझाव दिया कि ''लगभग 300 ईस्वी के बाद, राजनीतिक पदानुक्रम को शासकों के शीर्षकों द्वारा पहचाना जा सकता है जो प्रमुखता और अधीनता के संबंधों को दर्शाते हैं''।[1] राजा को गुप्त साम्राज्य के शासन में सर्वोच्च प्राधिकरण माना जाता है। राजा की दिव्य उत्पत्ति का सिद्धांत स्पष्ट रूप से पसंद किया गया है। इसलिए गुप्त राजाओं ने परमेश्वर, महाराजाधिराज और परमभट्टारक जैसे भव्य शीर्षक अपनाए। कमंडक नीतिसार इस अवधि के लिए जानकारी के स्रोतों में से एक है। राज्य सात अंगों (सप्तांग सिद्धांत) में बंटा हुआ था, जो कि राजा, मंत्री, राज्य, किला (किला), खजाना, सेना और सहयोगी हैं। यह पत्र गुप्त प्रशासनिक इकाइयों का निर्माण करने का प्रयास कर रहा है, जो आधुनिक राज्य प्रबंधन के सिद्धांतों और अवधारणाओं पर आधारित है, अर्थात् विधायी, कार्यकारी, न्यायिक और सेना या पुलिसिंग। हालांकि यह वर्तमान भारतीय प्रशासनिक संरचना के रूप में स्पष्ट नहीं था। गुप्त प्रशासनिक संरचना में कुछ समानताएँ हैं, जिससे इसे आधुनिक राजनीतिक प्रशासनिक विभाजनों का उपयोग करके समझना आसान हो जाता है। गुप्त प्रशासन की विधायी इकाई में व्यापक रूप से राजा और मंत्री शामिल थे, जो कानून बनाते थे और राजा को सलाह देते थे, और कार्यकारी वे अधिकारी होते थे जो उन्हें लागू करते थे। राजा न्यायिक अधिकारी की मदद से कानून और व्यवस्था बनाए रखने की भूमिका निभाता है। वे भूमि के कानून को कार्यशील रखने के लिए जिम्मेदार होते हैं। सेना पुलिसिंग और राज्य को बाहरी और आंतरिक आक्रमणों से बचाने का कार्य करती है।[3]

गुप्त साम्राज्य, जो विशाल आकार का था और विभिन्न जातीय समूहों से मिलकर बना था, जो विभिन्न भाषाएँ बोलते थे और विभिन्न संस्कृतियों और धर्मों का पालन करते थे, उपिंदर सिंह ने सही रूप से अवलोकन किया है कि ''गुप्त साम्राज्य एक जटिल राजनीतिक संबंधों के जाल का केंद्र था''। इसलिए, साम्राज्य को नियंत्रण में रखने के लिए, गुप्तें ने एक प्रभावी प्रशासनिक संरचना का निर्माण किया, जो निस्संदेह मौर्य प्रशासनिक संरचना पर आधारित थी, लेकिन इस जटिल साम्राज्य के कार्यान्वयन के लिए कई अन्य नए प्रशासनिक प्रणालियाँ जोड़ी गई। मौर्य राज्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र पर आधारित था और गुप्त राज्य कमंदक के नीति सार पर आधारित है, जो निस्संदेह निरंतरता बनाए रखता है, परिवर्तन को समाहित करता है और कौटिल्य के अर्थशास्त्र को पूरक करता है।

गुप्त और मौर्य प्रशासनिक संरचना के बीच मुख्य अंतर यह था कि गुप्त साम्राज्य की संरचना मौर्य साम्राज्य की तुलना में अधिक विकेंद्रीकृत थी। उपिंदर सिंह ने सही ढंग से सुझाव दिया है कि ''जबकि अर्थशास्त्र एक घमंडी, निरंकुश राज्य का मॉडल दर्शाता है, वहीं नीति-सार राजनीतिक शक्ति पर एक बाद का, कम उत्साही दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जिसमें अहिंसा ने विशेष रूप से दंड, शाही शिकार और युद्ध के संदर्भ में हिंसा की चर्चा को महत्वपूर्ण रूप

से प्रभावित किया है''। इस प्रकार, गुप्त साम्राज्य में कुछ पहलुओं को सामंतवाद या अर्ध-सामंतवादी के रूप में सुरक्षित रूप से परिकल्पित किया जा सकता है, लेकिन यह यूरोपीय सामंतवादी प्रणाली के समान नहीं है।[4] इसलिए, गुप्तें का प्रशासन बेहतर ढंग से समझा जा सकता है यदि साम्राज्य को दो प्रकारों में विभाजित किया जाए, एक जो सीधे राजा के नियंत्रण में था (केंद्रीय प्रशासन) और दूसरा प्रकार छोटे राज्यों का था जो राजा की अधीनता में थे लेकिन स्वायत्तता दी गई थी और सीधे वासल लाड्र्स या अधीनता में आए राजाओं द्वारा शासित थे (प्रांतीय या सामंत प्रशासन)। आर.एस. शर्मा ने यह राय व्यक्त की थी कि ''साम्राज्य का केंद्रीय क्षेत्र, अर्थात् उत्तर बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश और कुछ आस-पास के क्षेत्र, सीधे राजा द्वारा नियुक्त अधिकारियों द्वारा शासित थे। प्रांतों और सामंत राज्यों ने राजा के दरबार में व्यक्तिगत उपस्थिति देकर, उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की, और उन्हें अपनी बेटियाँ भेंट कीं, और इसके बदले में उन्हें इसे प्रशासन करने के लिए कुछ स्वायत्तता प्रदान की गई।

केंद्रीय प्रशासन

गुप्तें का केंद्रीय प्रशासन प्रांत, जिला, शहर और कस्बों पर सीधे नियंत्रण रखता था, जो राजा के द्वारा नियुक्त अधिकारी के माध्यम से होता था। राजा राज्य का प्रमुख होता था। उन्हें अपने मंत्रियों की परिषद और मंत्रिमंडल या मंत्रबिजाम द्वारा सहायता प्राप्त होती थी। प्रांत को देशास या भूक्तियों के रूप में जाना जाता था। प्रांत का प्रशासन आमतौर पर उपरिकों के रूप में नामित गवर्नरों द्वारा किया जाता था। प्रांतों को जिलों में विभाजित किया गया था, जिन्हें विश्यों के रूप में जाना जाता था। इसका प्रशासन विशयपति नामक अधिकारियों द्वारा किया जाता था। उपरिक और विशयपति को प्रशासनिक कार्यों में शहर के गिल्ड के कुछ प्रमुख सदस्यों द्वारा सहायता प्राप्त होती थी। उपिंदर सिंह ने ''जिला स्तर से नीचे के प्रशासनिक इकाइयों'' का सारांश प्रस्तुत किया है, जिसमें विभिन्न रूपों में बसी बस्तियों के समूह शामिल हैं, जिन्हें विभिन्न नामों से जाना जाता है जैसे विथी, पट्टा, भूमि, पाठक और पेठा। अधिकारियों का उल्लेख किया गया है जिन्हें आयुक्त और विथी-महत्तारा के रूप में जाना जाता है। गांव स्तर पर, ग्रामीणों ने ग्रामिका और ग्रामाध्यक्ष जैसे कार्यकर्ताओं का चयन किया, और गांव के बुजुर्गों का भी विभिन्न मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। बुद्घगुप्त के शासनकाल का दामोदरपुर ताम्रपत्र (गुप्त वर्ष 163) ने महत्तारा द्वारा नेतृत्व किए गए अष्टकुल-आधिकारणा (आठ सदस्यों का बोर्ड) का उल्लेख किया। महत्तारा का अर्थ कई प्रकार से है, जिसमें गाँव का बुजुर्ग, गाँव का मुखिया, और परिवार या समुदाय का प्रमुख शामिल हैं। चंद्रगुप्त द्वितीय के समय का संची लेखन पंचमंडली का उल्लेख करता है, जो संभवत: एक कॉर्पोरेट गाँव निकाय रहा होगा। पंचमंडली को विभिन्न इतिहासकारों द्वारा एक प्राचीन पंचायत प्रणाली के रूप में व्याख्यायित किया गया है, जो स्थानीय-स्वशासी प्रशासनिक विभागों और कार्यकर्ताओं की भूमिका को दर्शाता है।

प्रांतीय प्रशासन

यह दोहराव के मूल्य पर यह बताना महत्वपूर्ण है कि गुप्त के तहत प्रांतीय संगठन दो प्रकार के थे, एक जो सीधे नियंत्रण में था और दूसरा जो गुप्त राजाओं द्वारा नियुक्त अधिकारियों द्वारा सीधे प्रशासित नहीं थे। यह न केवल अप्रत्यक्ष बल्कि अंतिम प्रकार के प्रांतों पर नाममात्र के नियंत्रण का संकेत देता है। इसलिए, यह संभावना है कि प्रशासनिक अधिकारी न केवल राजा द्वारा बल्कि सामंतों द्वारा भी स्थिति और समय की आवश्यकताओं के अनुसार नियुक्त किए गए थे। इस प्रकार, इन स्वायत्त राज्यों के प्रशासनिक अधिकारी या नौकरशाह हमेशा सीधे राजा को जवाब नहीं देते बल्कि सामंतों को जवाब देते हैं। डिक्षितार के शब्दों में, ऐसे स्वायत्त प्रांत मुख्यालय पर शासन प्रणाली का एक बड़ा प्रतिकृति थे। इस प्रकार, प्रांतीय प्रशासनिक इकाई केंद्रीय प्रशासनिक प्रणाली के अनुरूप समान सेटअप रखती है। ये प्रांत ज्यादातर साम्राज्य की सीमा पर या साम्राज्य के किनारे स्थित थे। बेहतर समझ के लिए, इनमें से कुछ नाम हैं- परिव्रजक, उच्चकल्प और मंदसौर। इसके अलावा, उसने निष्कर्ष निकाला कि ''एक सामंत राज्य द्वारा प्राप्त स्वायत्तता इसके आकार, भौगोलिक स्थिति और वित्तीय संसाधनों के साथ भिन्न प्रतीत होती है''। गुप्त सम्राटों द्वारा सामंती वासियों को दिए गए नामों में नृप नृपति, पार्थिव, महाराजा और महासामंत शामिल थे।[5]

मंत्री और उच्च रैंक के नौकरशाह और उनकी भूमिका

साम्राज्य का प्रशासन विभिन्न विभागों द्वारा किया जाता था, जिनका नेतृत्व उच्च रैंक के कार्यकारी अधिकारियों जैसे अमात्य, सचिव और कुमारामात्य करते थे। कुछ महत्वपूर्ण रैंक के अधिकारियों के नाम इस प्रकार हैं; मंत्री मुख्या (प्रधान मंत्री, जो राजा की अनुपस्थिति में मंत्रिमंडल की चर्चा की अध्यक्षता करते थे), महासंधिविग्रहिका या संधिविग्रहिका (युद्ध और शांति के मंत्री), महादंडनायकों या दंडनायकों (न्यायिक या सैन्य अधिकारी), महाबालाधिकृत या बलाधिकृत (कमांडर-इन-चीफ), भटाष्वपति (इन्फैंट्री और कैवेलरी के कमांडर), रणभंडागाराधिकारणा (सैन्य भंडार का कार्यालय), महाप्रतिहार (महल के रक्षकों का प्रमुख), खाद्यतपाकिता (शाही रसोई का अधीक्षक), आयुक्तों को भी विश्यपति या भंडक के रूप में जाना जाता है (उच्च रैंक के अधिकारियों का एक अन्य वर्ग जो अशोक के शिलालेख और अर्थशास्त्र के युक्तों के समान है, जो जिला प्रशासन के प्रमुख थे), विनयशितिस्थापक (जो नैतिक और सामाजिक अनुशासन बनाए रखता है), दूतक (जासूस)। उपिंदर सिंह की पुस्तक में उपरोक्त अधिकारियों का सारांश दिया गया है।

गुप्त शासन के तहत विभिन्न महत्वपूर्ण विभागों के कार्य करने की पुष्टि विभिन्न नामों और रैंक से होती है। निश्चित रूप से एक केंद्रीय सभा थी, जिसे सभा कहा जाता था और शाही परिषद या मंत्रिमंडल; जिसे मंत्रि मंडल भी कहा जाता था। यह राजनीतिक इकाई है जो सीधे कानून बनाने और पूरे साम्राज्य में इसके कार्यान्वयन में शामिल है। राजस्व विभाग था जो लगभग सभी प्रांतीय और केंद्रीय प्रशासनिक इकाइयों से जुड़ा हुआ था और विभिन्न करों को नकद और वस्तुओं में एकत्र करने के लिए जिम्मेदार था। इसके पास राज्य के राजस्व विभाग के कुशल कार्य के लिए कई कार्यकारी अधिकारी भी थे। कानून

विभाग राज्य के कानून और व्यवस्था का ध्यान रखता है। वे आपराधिक और दीवानी मामलों के लिए जिम्मेदार होते हैं। वे विवादों को सुलझाते हैं और भूमि के कानून के अनुसार कानून तोड़ने वालों को दंडित करते हैं।

इस प्रकार, कानून विभाग प्रशासन का एक महत्वपूर्ण इकाई है जो साम्राज्य को अराजकता से सुरक्षित रखता है और साथ ही यह सुनिश्चित करता है कि नौकरशाह अपनी सामान्य जिम्मेदारियों से भटकें नहीं और उन्हें उस नैतिक आचार संहिता का पालन करने के लिए भी प्रेरित करता है जो जिम्मेदारी के साथ आती है। वहाँ सैन्य और पुलिस विभाग थे जो कानून और व्यवस्था का ध्यान रखते थे और साम्राज्य की रक्षा में भी उपयोग किए जाते थे और साम्राज्य के विजिगिसु के विस्तार के प्रयासों में भी शामिल थे। इसके अलावा खनन, सिक्का निर्माण, शिक्षा, लेखा और ऑडिट आदि जैसे विभिन्न अन्य विभाग थे। सिक्कों का निर्माण राज्य का एकाधिकार था।[6] गुप्त के अधीन फ्यूडेटरी या सीमावर्ती राज्य को बिना केंद्र की सहमति के सिक्के बनाने या अपनी अलग मुद्रा रखने का अधिकार नहीं था।

जिला प्रशासन

जिला प्रशासन का नेतृत्व विशयपति या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा किया जाता था। दिक्षितार का निष्कर्ष है कि ''गुप्त काल में तीन या चार जिलों का एक प्रांत बनता है''। इसके आगे वह ''अधिष्ठान'' को जिला मुख्यालय और श्विशय अधिकारीश् को जिला अधिकारी का कार्यालय बताते हैं। जिला मेयर को गैर-आधिकारिक (नगरश्रेष्ठी, सार्थवाह, प्रथमकुलिका, और प्रथमकायस्थ) और आधिकारिक विभाग के प्रभारी (सौल्किक, अग्रहरिक, गौल्मिक, ध्रुवाधिकारनिक, भंडा कराधीक्रित, उत्केतयित, तालवतक) द्वारा सहायता प्राप्त होती थी, जो जिला मजिस्ट्रेट के नियंत्रण में थे। गैर-आधिकारिक सलाहकार बोर्ड के रूप में कार्य करते थे, लेकिन संभवत: वे कार्यकारी बोर्ड के निर्णय लेने की प्रक्रिया में बहुत प्रभावशाली थे।

शहरी प्रशासन

कई शहरी इकाइयाँ थीं जिन्हें शहर या नगरपालिका के उच्चतम कार्यालय के रूप में जाना जाता था जिसे अधिष्ठानाधिकारी कहा जाता है। गुप्त साम्राज्य के महत्वपूर्ण शहरों में, दिक्षित ने पटलिपुत्र, अयोध्या, उज्जैन, दासपुर, गिरिनगर आदि जैसे शहरों का उल्लेख किया है। चूंकि प्रांतीय प्रशासन दो प्रकार का था; एक जो सीधे केंद्र के नियंत्रण में था और दूसरा जो सहायक राजा या उप-फ्यूडेटरी के नियंत्रण में था। इस प्रकार, हमने यह निष्कर्ष निकाला कि शहर का प्रशासन भी दो प्रकार का था, जो प्रांतीय प्रशासन की नकल करता है। हालाँकि, शहर का प्रशासनिक ढांचा हमेशा केंद्र के समान होता है। दिक्षित ने आगे यह भी बताया कि ''इन शहरी इकाइयों को एक अच्छा स्थानीय स्वायत्तता का स्तर प्राप्त था, उनका प्रशासन केंद्रीय सरकार द्वारा एक अधिकारी के माध्यम से नियंत्रित किया जाता था जिसे पुर-पाला उपरीका कहा जाता था। शहरों का नेतृत्व पुरोगा द्वारा किया जाता था जिसे पुरारा-पाला या नगर-रक्षक (शहर के मेयर) भी कहा जाता है, जिन्हें अन्य नौकरशाहों द्वारा सहायता प्राप्त होती थी। मेयर के नेतृत्व में शहर परिषद और गिल्डों ने शहर को शांत, समृद्ध और जीवंत बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।''[7]

ग्राम प्रशासन

गाँव प्रशासन का नेतृत्व ग्रामिका द्वारा किया जाता था, जिसमें स्थानीय अधिकारियों का एक समूह और ग्रामीणों की एक सभा शामिल थी। कुछ अन्य अधिकारियों का उल्लेख गुप्त काल के विभिन्न शिलालेखों में किया गया है, जैसे कि अस्तकुलाधिकारण, महत्तार, तालवताला, वलात कौसान, अस्तपातालिका, सिमकर्मकार आदि। गाँव प्रशासन, जो प्रशासन की सबसे निचली इकाई है, को काफी हद तक स्वायत्तता प्राप्त होती है। पंच-मंडली को एक प्राचीन पंचायत प्रणाली के रूप में समझा जा सकता है।[8]

निष्कर्ष

गुप्त प्रशासन का नेतृत्व राजा द्वारा किया जाता था। उन्हें अपने मंत्रियों की परिषद द्वारा सहायता प्राप्त होती थी, जिसमें जागीरदारों के प्रतिनिधि और अत्यधिक शिक्षित और विचारशील व्यक्ति शामिल होते थे, जिन्हें अमात्य (मंत्री) के नाम से जाना जाता था। केंद्रीय प्रशासन को प्रांतों में विभाजित किया गया था और प्रांतों को उप-विभाग, जिला और गांव की इकाइयों में विभाजित किया गया था। शहरों और कस्बों का प्रशासन भी केंद्र या जागीरदारों द्वारा किया जाता था। जागीरदारों का प्रशासनिक तंत्र केंद्रीय प्रशासनिक तंत्र का एक प्रतिकृति था। यह प्रशासनिक ढांचा एक श्रृंखला के माध्यम से कार्य करता था, जिसमें प्रशिक्षित नौकरशाह, राजकुमार और मंत्री शामिल थे, जिन्हें सीधे राजा या जागीरदारों द्वारा नियुक्त किया गया था। नौकरशाह अत्यधिक शिक्षित व्यक्ति होते थे, जिनके पास उस क्षेत्र में असाधारण कौशल और ज्ञान होता था जिसमें उन्हें नियुक्त किया गया था। जासूसों का नेटवर्क महत्वपूर्ण है क्योंकि वे एक बुद्धिमान इकाई रहे होंगे (जैसे आज के आई.बी, सी.आई.डी या रॉ विभाग) जो देश को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा मुद्दों से निपटने के लिए खुफिया सेवा प्रदान करते हैं और जो राजा को राज्य या साम्राज्य से संबंधित किसी भी मामले की जानकारी देते थे। गुप्त राजाओं ने इस नौकरशाह या कार्यकारी अधिकारी पर साम्राज्य की भलाई, सुरक्षा और समृद्धि के लिए बहुत निर्भर किया। राज्य ने यह मान्यता दी कि केंद्र, प्रांत, जिला और गांव स्तर पर सभी प्रशासनिक इकाइयों का नेतृत्व करने वाले मजबूत नौकरशाहों का होना कितना महत्वपूर्ण है। इस प्रकार, गुप्त प्रशासन कुशल बन गया, जो अंतत: भारतीय उपमहाद्वीप में उस समय की एक मजबूत साम्राज्य शक्ति में परिणत हुआ, जो साकों और हुणों के विदेशी आक्रमण के बावजूद 200 वर्षों से अधिक समय तक टिक सका और फल-फूल सका।

संदर्भ

1. बाशम, ए. एल. 1954. वह आश्चर्य जो भारत था- भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास और संस्कृति का एक सर्वेक्षण, मुसलमानों के आगमन से पहले, लंदन, सिडग्विक और जैक्सन, पुनर्मुद्रण 2004, पिकाडोर इंडिया।
2. दिक्षितर, वी. आर. 1952. गुप्त राजनीति. दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास
3. दत्त, एम. एन. 1896. कमंदकिय नीति सार या राजनीति का तत्व, कोलकाता: एलीसियम प्रेस
4. फ्लीट, जे. एफ. 1960. कॉर्पस इंसक्रिप्शियम इंडिकरम, खंड प्प्, प्रारंभिक गुप्त राजाओं और उनके उत्तराधिकारियों की शिलालेख. वाराणसी, इंडोलॉजिकल बुक हाउस
5. गौतम, पी. के. 2019. कमंडक द्वारा नीतिसार, कौटिल्य के अर्थशास्त्र से निरंतरता और परिवर्तन, नई दिल्ली रक्षा अध्ययन और विश्लेषण संस्थान।
6. शर्मा, आर. 2005. भारत का प्राचीन अतीत. नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. सिंह, यू. 2009. प्राचीन और प्रारंभिक मध्यकालीन भारत का इतिहास. दिल्ली, पियर्सन लॉन्गमैन।
8. सिंह, यू. 2017. प्राचीन भारत में राजनीतिक हिंसा. लंदन, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

शासनिक नीतियाँ और सामाजिक जिम्मेदारी: महिला सुरक्षा का समन्वित दृष्टिकोण

डॉ० मोहम्मद अली

सहायक प्राध्यापक, दर्शन शास्त्र विभाग, राम लखन सिंह यादव महाविद्यालय, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय

महिला-सुरक्षा जैसे विषयों पर लिखना, बोलना या इस पर चर्चा करना ही हमारे समाज, राष्ट्र एवं हमारी शासन व्यवस्था को न केवल कटघरे में खड़ा करता है बल्कि हमारी नैतिकता, कर्तव्यबोध, एकता, आधुनिकता और विकास पर प्रश्न चिन्ह खड़ा करता है। महिलाओं की सुरक्षा और संरक्षा को प्राथमिकता देना किसी एक देश या राज्य का केवल एक कानूनी दायित्व नहीं है, बल्कि एक न्यायपूर्ण, समान और प्रगतिशील समाज बनाने की तरफ उठाया गया पहला कदम समझा जा सकता है।

"महिला" शब्द पुकारते ही सामान्यत: हमारे दिमाग में क्या आता है? "एक औरत", जो- माँ, बहन, बेटी, पत्नी या प्रेमिका है। इन तमाम भूमिकाओं में महिलाएं पारिवारिक, सामाजिक, संस्थागत, निजी और व्यावसायिक भूमिकाओं को जिम्मेदारी से निभाती नजर आती है। इन तमाम भूमिकाओं को निभाते हुए एक महिलाएं कदम - कदम पर अपने शशक्त (ताकतवर) होने का परिचय देती रहती हैं।

भारतीय समाज मे कार्य विभाजन (कार्य करने) को लेकर किया गया भेद-भाव पूर्ण विभाजन ने 'जातिगत-भेदभाव' के साथ साथ 'लैंगिक-भेदभाव' (महिला-पुरुष भेद-भाव) को भी उत्पन्न किया है। काम के आधार पर इंसानियत को बांटने वाले भारतीय समाज ने कुछ को महान और कुछ को निकृष्ट (पिछड़ा) बनाने का ऐसा भ्रम फैलाया है कि - आज महिलाएँ तमाम बंधनो को तोड़ने के बावजूद भी खुद को पिछड़ा, असुरक्षित और हाशिए पर महसूस कर रही है।

प्रकृति के नजरो में महिलाएं उतनी ही नयाब, अनमोल और श्रेष्ठ है जितना पुरूष। सांख्य दर्शन में "प्रकृति" और "पुरुष" के संयोग से संसार की उत्पत्ति मानी गयी है। 'प्रकृति' (महिला) के बिना 'पुरुष' जड़ (बेजान) है, उसमें चेतना (consciousness) का विकास 'प्रकृति' के संयोग से ही संभव है। 'प्रकृति' को महिला के रूप में स्वीकार करते हुए महिला होने की खूबसूरती और मजबूती को दार्शनिक अन्दाज में भी समझा जा सकता ह।

भारत के संविधान की प्रस्तावना से लेकर मूल-भावना तक और मौलिक अधिकार से लेकर "राज्य के नीति निर्देशक तत्व" तक महिलाओं की सुरक्षा और संरक्षा पर ध्यान केंद्रित करते हुए इनकी स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

संविधान के अनुच्छेद 14 के कानूनी समानता से लेकर अनुच्छेद 21 के व्यक्तिगत स्वतंत्रता तक महिलाओं की कानूनी सुरक्षा और निजी स्वतंत्रता को शामिल किया गया है। मौलिक अधिकार के अनुच्छेद 15 के अंतर्गत लेंगिक-भेदभाव को जड़ से मिटाने का संकेत महिलाओं के सुरक्षा और सम्मान दोनों पहलुओं पर जोर देता है। सभी प्रकार की हिंसा और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 23 और 24 में शामिल करने के पीछे महिलाओं को घरेलू हिंसा से लेकर तस्करी और जबरन श्रम से रोकता है। महिला सुरक्षा से ऊपर उठकर उन्हें खुद को अभिव्यक्त करने की आजादी की चर्चा अनुच्छेद - 19 का भाग है।

भारतीय संविधान के भाग चार में वर्णित "राज्य के नीति निर्देशक तत्व" के अनुच्छेद 39 (क) के अंतर्गत राज्य को यह निर्देश दिया गया है कि बिना किसी लैंगिग भेद-भाव के जीवन-यापन के सभी बुनियादी साधनों पर सबका समान अधिकार होगा। इसका सीधा सा अर्थ है कि - राज्य अपने नागरिकों को मुख्य धारा से जुड़ने के लिए प्रदान अवसर में पुरूष और महिलाओं के बीच किसी भी प्रकार का भेद-भाव नहीं कर सकता है।

भारत के संविधान के भाग - 03, और भाग - 04 में जिस तरह से महिला सुरक्षा, संरक्षा और महिलाओं को उचित अवसर की चर्चा किया गया है वो देश के विकास में महिलाओं की महत्ता को दर्शाने के लिए पर्याप्त है।

किसी भी समाज अथवा राष्ट्र में महिला के रूप में "आधी-आबादी" को हाशिए पर रख कर सर्वांगीण विकास की लकीर नही खींची जा सकती है। डॉ० बी०आर० अम्बेडकर का संघर्ष महिला को सामाजिक स्तर पर बराबर लाना था, तो महात्मा गांधी के शब्दों में एक पुरुष की अपेक्षा महिला को शिक्षित करने का प्रभावप पूरे परिवार और समाज पर पड़ता है।

महिलाओं को हाशिए पर रखते हुए लोकतांत्रिक समाज की कल्पना करना समानता और न्याय की भावनाओं को ठेस पहुँचाने के बराबर है। महिलाओं का परिपक्व और समान होना न केवल एक लोकतांत्रिक समाज की मजबूती के लिए आवश्यक है, बल्कि यह समाज के समग्र विकास और समृद्धि में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है। महिलाओं को समान अधिकार और अवसर के माध्यम से ही हम लोकतांत्रिक समाज से वैश्विक व्यवस्था की ओर बढ़ सकते हैं।

महिला सुरक्षा के संदर्भ में सामाजिक चुनौतियाँ

महिला सुरक्षा केवल कानूनी या प्रशासनिक मुद्दा नहीं है, बल्कि यह समाज के प्रत्येक सदस्य की जिम्मेदारी है। अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करने से पूर्व सामाजिक रूप से महिला सुरक्षा को लेकर आने वाले चुनौतियों को विभिन्न आयामों से समझना आवश्यक है।

लैंगिक भेदभाव

लैंगिक भेदभाव की पीड़ा का दंश एक स्त्री को जन्म के पूर्व से ही झेलना पड़ता है जब "कन्या-भ्रूण हत्या" जैसी समस्या लैंगिक आधार पर तय किया जाता है। भारत में संसद द्वारा पारित "कन्या-भ्रण हत्या" से संबंधित PNDT Act 1994 ,

"गर्भधारण पूर्व और प्रसव पूर्ण निदान तकनीक (लिंग चयन प्रतिषेध) अधिनियम , 1994, के पीछे यह उद्देश्य था कि माँ के गर्भ में होने वाले लैंगिक भेदभाव को खत्म करते हुए महिला-पुरुष के अनुपात को ठीक किया जा सके। 1994 के नियमावली के आधार पर कठोर दंड एवं जुर्माना के प्रावधान के बावजूद भी आज हमारे देश को "कन्या-भ्रूण हत्या" के प्रति जागरूकता की आवश्यकता है। हमारे समाज में महिलाओं को लेकर जन्म से लेकर मृत्यु तक विभिन्न प्रकार के पूर्वाग्रह और भेदभाव का सामना करना पड़ता है जो उनके विकास में बाधा बनते हैं।

घरेलू हिंसा

महिला को उसके वैवाहिक घर में सम्मान के साथ रहने के अधिकार को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005 का निर्माण किया गया जिसका उलंघन करने पर एक वर्ष से अधिक कारावास या बीस हजार रुपय तक जुर्माना या दोनो सजा दिया जा सकता है। इसके बावजूद भी आज हमारे देश में घरेलू हिंसा की खबर को हम बिलकुल सामान्य तरीके से देखते हैं। अधिनियम को जमीनी स्तर पर सुचारु रूप से लागू करने के उद्देश्य से इसकी धारा -08 के अनुसार प्रत्येक जिले में संरक्षण अधिकारियों की नियुक्ति करना तथा उन्हें कार्य शुरू करने के लिए आवश्यक बुनियादी ढांचा उपलब्ध कराना है। इसके अतिरिक्त गृह मंत्रालय की तरफ से देश में महिलाओं की सुरक्षा के नियमों को शक्तिशाली करने के लिए 28 मई, 2018 को एक नया "महिला सुरक्षा प्रभाग" स्थापित किया गया। घरेलू हिंसा से प्रताड़ित महिलाएँ, शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक रूप से इतनी दुर्बल हो जाती है की उनमें आगे बढ़ने की इच्छाशक्ति ही नहीं बचती है।

सार्वजनिक स्थानों पर असुरक्षा

सार्वजनिक स्थानों पर या कई अवसरों पर महिलाओं को अक्सर छेड़छाड़, यौन उत्पीड़न और अन्य अपराधों का सामना भी करना पड़ता है, ऐसे असुरक्षित वातावरण में महिलाओं को बल देने के उद्देश्य से भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत 354 के तहत छेड़छाड़ मामले में दोषी पाये जाने पर अपराधी को एक साल से लाकर पाँच सला तक के सजा का प्रावधान है।

महिला सुरक्षा के संदर्भ में सामाजिक चुनौतियों के समाधान

महिलाओं के समक्ष सामाजिक स्तर पर आने वाली चुनौतियों के समाधान के लिए तमाम नीतियाँ, नियम, कानून एवं कठोर से कठोर सजा का भी प्रावधान किया गया है अपितु कानूनी और न्यायिक प्रक्रिया की जटिलता के कारण, न्याय मिलने में देरी और न्याय के प्रति उदासीनता का भाव सामने आने लगता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा एवं जागरूकता में कमी के कारण यौन हिंसा या उत्पीड़ित महिलाओं को सामाजिक स्वीकृति नहीं मिलने को भी महिलाओं के संदर्भ में एक बड़ी सामाजिक चुनौती के रूप में देखा जा सकता है।

महिला सुरक्षा के संदर्भ में सामाजिक चुनौतियाँ गंभीर हैं, लेकिन समाज के सभी वर्गों के बीच लैंगिक समानता और महिला अधिकारों के प्रति शिक्षा और जागरूकता अभियान के माध्यम से इस चुनौती पर सबसे मजबूती से प्रहार किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त महिलाओं के खिलाफ अपराधों के लिए न केवल सख्त कानून बनाना बल्कि उसका कठोरता से पालन करना सुनिश्चित करना आवश्यक है। महिलाओंके सुरक्षा उपाय हेतु तकनीक का प्रयोग करते हुए सार्वजनिक स्थानों पर सीसीटीवी कैमरे, हेल्पलाइन नंबर, मोबाइल ऐप्स और आपातकालीन प्रतिक्रिया टीमों की स्थापना करना बेहद कारगर हो सकता है।

सुरक्षा के उपायों के अतिरिक्त महिलाओं के प्रति संवेदनशीलता का भाव अपनाने के संस्कार को प्रश्रय देना होगा, नैतिक शिक्षा को स्कूली पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग के रूप में शामिल किया जाना चाहिए। शासन एवं प्रशासनिक उपायों एवं निजी प्रयासों के अतिरिक्त सामुदायिक प्रयास के रूप में सामुदायिक भागीदारी को सुनिश्चित करते हुए सामुदायिक समूह, स्वयंसेवी संगठनों और स्थानीय प्रशासन को मिलकर काम करना होगा।

महिलाओं के सुरक्षा और उन्हें मुख्य धारा में जोड़ने हेतु महिलोओं के आर्थिक शशक्तिकरण पर समुचित जोर देते हुए उन्हें व्यवसायिक प्रशिक्षण और स्वरोजगार से जोड़ना अति आवश्यक है, तभी सतत रूप से उनका सर्वांगीण विकास सम्भव है। इसके अतिरिक्त मीडिया को भी महिलाओं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण और जागरूकता फैलाने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए।

महिलाओं को मनोवैज्ञानिक रूप से जकड़ता तुलनात्मक व्यवहार

आज लगभग सभी क्षेत्रों में अपनी योग्यता, मेहनत, संघर्ष और ईमानदारी के दम पर महिलाएँ सफलता के हर मकाम को हासिल कर रही हैं, परंतु सफलता का प्रयास करने वाली बहुत सारी महिलाएँ अपनी काबिलियत को साबित करने के क्रम में पुरुषों से प्रतियोगिता करने लगती है. वास्तव में, समाज में एक

भ्रम सा बन चुका है कि – "जो महिलाएँ 'पुरुष' जैसा कार्य करने लगेंगी या पुरुष के समतुल्य हो जाएँगी या पुरुष से आगे बढ़ जाएगी तो वो महिला सफलता के निशान तक पहुँच जाएँगी. अत: महिलाएँ, खुद को पुरुष के समतुल्य होने का संघर्ष करने लगती है।

इस सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं द्वारा किया गया सफलता का तुलनात्मक प्रयास उन्हें मुख्य-धारा से जोड़ तो रहा है परंतु साथ ही साथ उनमें तनाव और नकारात्मकता को भी जन्म दे रहा है। इस तरीके से महिलाएँ कितनी भी सफल हो जाए वो भीतर से असफल और हारी हुई ही रहेंगी क्यूँकि किसी अन्य से प्रतियोगिता करना और उसे हराने में अपनी जीत समझना एक भ्रम है।

आज महिला, परिवार, समाज, दर्शन, विज्ञान, कला, साहित्य, युद्ध-कौशल और खेल-कूद जैसे तमाम क्षेत्रों में कामयाबी का झंडा फहरा चुकी है, क्योंकि उनमें हर वो कार्य को करने की क्षमता है जिसके लिए उसका निर्माण हुआ है। दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि – महिलाओं की हर कामयाबी को हमारा समाज पुरूष के पैमाने से मापने के बाद उनकी प्रशंसा करता है। पुरूष को एक मापक के रूप में स्थापित करना ही महिलाओं का सामाजिक तृसकार (नीचता) है।

कोई भी पुरुष या पुरुषवादी समाज को महिलाओं के सफलता की लकीर खींचने का हक नही है। पुरुष द्वारा बनाए गए तथाकथित मापदंडो को पूरा कर सफलता की लकीर को पा लेना किसी भी मायने में महिला की सफलता नही कही जा सकती है. महिलाओं में समान अधिकार और अवसर की उपलब्धता का उद्देश्य पुरुषों से तुलना न हो कर उनमें आर्थिक विकास, राजनीतिक सहभागिता, शिक्षा एवं स्वास्थ जैसे मुद्दों से जुड़ाव होना समझा जा सकता है। इन क्षेत्रों में महिलाओं के प्रयास, रुझान और भागीदारी से सामाजिक स्थिरता में भी सहयोग होता है।

महिला सुरक्षा के संदर्भ में शासन एवं प्रशासन की भूमिका

सतत विकास, सामाजिक एकता, सुरक्षा, न्याय, शांति और समानता के लिए समाज में सामाजिक स्थिरता का होना आवश्यक है। इस हेतु महिलाओं में शिक्षा, जागरूकता, समान आर्थिक अवसर, न्यायिक व्यवस्था, स्वास्थ सेवाएँ, सुरक्षा की प्राथमिकताएँ, मूलभूत सामाजिक नीतियाँ और बेहतर संवाद की व्यवस्था का होना आवश्यक है। इस हेतु शासन को संवैधानिक ढाँचे के भीतर ध्यान केंद्रित करते हुए अपने प्रयास को प्राथमिकता देने की आवश्यकता है। शासन द्वारा महिला सुरक्षा हेतु उठाए जाने वाले कदम –

सशक्तिकरण और भागीदारी

शासन अपनी नीतियों और शक्तियों के प्रयोग से, महिलाओं को न केवल सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए प्रतिबद्ध है बल्कि उन्हें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में पूरी तरह शामिल करने के लिए भी प्रयासरत होना होगा ताकि हमारा समाज लोकतांत्रिक रूप से मजबूत हो सके।

हिंसा से संरक्षण

महिलाओं की रक्षा, उन्हें शोषण से बचाना, घरेलू हिंसा, तस्करी इत्यादियों से उनके संरक्षण के लिए शासन को इससे संबंधित नीतियों एवं कानून को जमीनी स्तर पर लागू करना होगा। हिंसा से संरक्षण का सीधा असर सार्वजनिक स्वास्थ्य और समाज की भलाई पर पड़ता है। महिलाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करने से हिंसा से संबंधित स्वास्थ्य खर्च कम होते हैं और एक स्वस्थ, अधिक स्थिर समाज का निर्माण होता है।

कानूनी और संस्थागत ढांचा

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के खिलाफ कानून (POSHK ACT) और महिलाओं के पुलिस थानों की स्थापना करना शासन की जिम्मेदारी है जिससे महिलाओं की सुरक्षा हेतु उचित प्रयास किए जा सके।

अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धताएं

महिलाओं के अधिकारों की रक्षा एवं उनकी सुरक्षा सुनिश्चितता हेतु शासन द्वारा अंतरराष्ट्रीय संधियों और समझौतों को भी प्राथमिकताओं में रखना आवश्यक है जिससे सभी प्रकार के महिला भेदभाव के उन्मूलन पर वैश्विक विचार किया जा सके।

सुरक्षित वातावरण का निर्माण

महिलाओं की सुरक्षा और संरक्षा पर ध्यान केंद्रित करते हुए उनके व्यक्तिगत स्वतंत्रता, लैंगिग भेदभाव से रक्षा, एवं सामाजिक न्याय के आधार पर समानता सुनिश्चित करना शासन की पहल होनी चाहिए ताकि महिलाओं के लिए एक सुरक्षित और सहायक वातावरण का निर्माण हो सके जहां महिलाएं बिना डर के अपने सपनों का पीछा कर सकें और समाज की प्रगति और समृद्धि में योगदान दे सकें।

निष्कर्ष

महिला सुरक्षा को लेकर सामाजिक चुनौतियों के अतिरिक्त राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं प्रोधोगिक चुनौतियाँ भी परिलक्षित होती रहती है, जिनका समाधान समग्र दृष्टिकोण और सामूहिक प्रयास से ही सम्भव है। इस हेतु समाज, सरकार, विभिन्न गैर-सरकारी एवं धार्मिक संगठनों का सक्रिय सहयोग आवश्यक है। हमें यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि महिला सुरक्षा केवल नीतिगत मुद्दा नहीं, बल्कि इसे सामाजिक और राजनीतिक प्राथमिकता भी मिले। राजनीतिक इच्छाशक्ति, प्रभावी नीति निर्माण और कार्यान्वयन, पारदर्शिता, और महिला प्रतिनिधित्व को बढ़ावा देना, परम्परागत मान्यताओं, सांस्कृतिक दबाव एवं रूढ़िवादी विचारधारा से ऊपर उठा कर महिलाओं को लिए रोजगार के अवसर उत्पन्न करने होंगें। आर्थिक रूप से आत्म निर्भर महिलाएँ ही अपने अधिकार के लिए आवाज उठा कर अपने लिए खुद से रास्ते तय कर सकती है।

संदर्भ सूची

1. शर्मा, डॉ. रश्मि : महिला सुरक्षा: कानून और समाज
2. अग्रवाल, प्रो. वी.के. : भारत में महिला सशक्तिकरण और कानून
3. भारद्वाज, डॉ. सुनीता: महिला अपराध और पुलिस
4. सिंह, डॉ. प्रीति: महिला हिंसा और न्याय प्रणाली
5. त्रिपाठी, डॉ. राधा: स्त्री अस्मिता और न्याय
6. अनुच्छेद 14, 15, 19, 21, 23, 24, : भारत का संविधान
7. भाग - 03, 04: भारत का संविधान
8. Ministry of Home Affairs : https://www.mha.gov.in/en
9. Ali, Dr. Mohammad: https://janghat.blogspot.com/2021/03/international- womens-day-get-ready.html
10. NCRB, Govt. of India : https://www.india.gov.in/official-website-national-crime-records-bureau
11. The pre-conception and pre-natal diagnostic techniques Act 1994 : http://www.pcpndtharyana.gov.in/PNDTFAQ/PCPNDT%20Act%201994.pdf
12. National Commission for Women: http://www.ncw.nic.in/helplines
13. THE PROTECTION OF WOMEN FROM DOMESTIC VIOLENCE ACT, 2005 : https://www.indiacode.nic.in/bitstream/123456789/15436/1/protection_of_women_from_domestic_violence_act%2C_2005.pdf

अज्ञेय की रचनाओं में प्रकृति चित्र

डॉ० शुभा तिवारी

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, शासकीय आर०एन०एम० महाविद्यालय, भटगाँव, जिला-सारंगढ़, बिलाईगढ़ (छ०ग०)

प्रकृति और मानव का शाश्वत सम्बन्ध सदा से कवियों को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है। ऋग्वेद के पृथ्वी सूक्त, उषा सूक्त आदि में प्रकृति का सुन्दर चित्रण मिलता है। रामायण और महाभारत में इसके विविध रूपों का उल्लेख है। "अज्ञेय की प्रकृति-चेतना का सम्बन्ध जहाँ एक ओर उनकी सौन्दर्य-चेतना से जुड़ता है, वहीं उसका सम्बन्ध उनकी रहस्य-चेतना से भी है। उनके प्रकृति-बोध का आयाम बहुत विस्तृत है। प्रकृति के विभिन्न रूपों के साथ मानसिक व्यापारों का संश्लेषण, दृश्य के साथ अन्तर्दर्शन का संयोग, विराट के साथ लघु का मेल, उनके प्रकृति-बोध की अनन्य विशेषताएँ हैं। अज्ञेय ने प्रकृति के माध्यम से सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् तीनों का एक साथही संधान कर लिया है। अज्ञेय की आरंभिक रचनाओं में प्रकृति-विषयक रचनाएँ अपेक्षाकृत कम मिलती हैं, किन्तु 'हरी घास पर क्षण भर' एवं परवर्ती रचनाओं में प्रकृति सम्बन्धी कविताएँ प्रचुर मात्रा में मिलती है।"[1] अज्ञेय के काव्य-संग्रह 'बाबरा अहेरी' की अधिकांश कविताएँ प्रकृति से सम्बन्धित हैं। इस संग्रह की घास-फूल धैर्य का, प्रथम किरण, वसन्त गीत, वसन्त की बदली, हवाएँ चैत की, ये मेघ साहसिक सैलानी, शरद की साँझ के पंछी, वर्षान्त आदि कविताएँ प्रकृति-विषयक हैं। 'बावरा अहेरी' शीर्षक कविता में कवि सूर्य को एक अहेरी के रूप में देखता है-

भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
लाल-लाल कनियाँ
पर जब खींचता है जाल को
बाँध लेता है सभी को साथ
छोटी-छोटी चिड़ियाँ
मँझोले परेवे.....।[2]

'इन्द्रधनुष रौंदे हुए' कविता-संग्रह का शीर्षक ही प्रकृति से संबंधित है। टेसू, सूर्यास्त, बैसाख की आंधी आदि कविताओं में प्रकृति की सुन्दर छटा है। 'आंगन के पार-द्वार' कविता-संग्रह अज्ञेय की लोकप्रिय लम्बी कविता 'असाध्य वीणा' में एक विशाल पेड़, उसकी फैली शाखाएँ, उस पर कलरव करते पक्षी, गुंजार करते भौंरे का दृश्य देखते ही बनता है-

औ विशाल तरु!
शत-सहस्र पल्लवन-पतझरों ने जिसका नित रूप सँवारा,
कितनी बरसातों कितने खद्योतों ने आरती उतारी,
दिन भौंरे कर गये गुंजरित,
रातों में झिल्ली ने
अनथक मंगल-गान सुनाये,
साँझ-सवेरे अनगिन
अनचीन्हे खग कुल की मोद-भरी क्रीड़ा-काकलि।[3]

इसके अतिरिक्त 'झील का किनारा', 'एक उदास साँझ', 'अन्तःसलिला', 'भीतर जागा दाता' आदि इस संग्रह की महत्वपूर्ण प्रकृतिपरक कविताएँ हैं। अज्ञेय के सभी काव्य-संग्रहों में प्रकृति से सम्बन्धित रचनायें मिलती हैं। प्रकृति-परक ये रचनाएँ मानव के सुख-दुःख, आशा-निराशा, हर्ष-विषाद सबों से जुड़ी हुई हैं।

हिन्दी-साहित्य में अज्ञेय 'नवीन राहों के अन्वेषी कवि' के रूप में जाने जाते हैं। कवि की यह विचारधारा प्रकृति के माध्यम से अत्यन्त मर्मस्पर्शी हो उठी है। उदाहरणस्वरूप 'कलगी बाजरे की' कविता को देखा जा सकता है। इसमें कवि कहता है कि प्रेयसी के सौन्दर्य-चित्रण के लिए पुराने उपमान अब मैले और महत्वहीन हो गये हैं। अतः वह प्रेयसी के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए 'हरी बिछली घास' और 'दोलती कलगी छरहरी बाजरे की' जैसे नवीन उपमानों का प्रयोग करता है-

हरी बिछली घास
दोलती कलगी छरहरी बाजरे की।
अगर मैं तुमको
ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता

× × × ×

ये उपमान मैले हो गये हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच।[4]

वस्तुत: अज्ञेय के सौन्दर्य-बोध, सत्यान्वेषण, आत्मबोध, ऐन्द्रिय बोध, कल्पना आदि सभी का स्रोत प्रकृति ही है। "कल्पना कलाकार की वह सृजन-शक्ति है, जिसके द्वारा कलाकृतियों में अभिनव रूप व्यापारों और नूतन सम्बन्ध-सूत्रों का मानसिक विधान किया जाता है।"[5] डॉ० शांतिस्वरूप गुप्त के अनुसार "कल्पना कवि की वह मानसिक शक्ति है, जिसके द्वारा वह किसी वस्तु, भाव, विचार को एक विशिष्ट दृष्टि से देखता है और पिर उसे इस प्रकार कलात्मक एवं सुन्दर रूप में प्रस्तुत करता है कि वह अभिव्यक्ति हमारी चेतना के शाश्वत और नित्य अंश को अनुप्रेरित करती है।"[6] अज्ञेय के काव्य में कल्पना की सुन्दर छटा विद्यमान है। इनके काव्य में प्रयोगशीलता, नवीन भाव-बोध एवं कल्पना की प्रधानता है। प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रण में इनकी कल्पना-शक्ति देखते ही बनती है। उदाहरणस्वरूप 'भीतर जागा दाता' कविता को देखा जा सकता है। इसमें सागर की लहरों का चित्रण है। सागर की फेनयुक्त लहरें अपने उफान पर है। उस पर सूर्य की किरणों के पड़ने से लाली छाने लगती है। इस सामान्य दृश्य को कवि अपनी कल्पना-शक्ति से किरण को अप्सरा से जोड़कर देखता है और कहता है कि सागर की लहरों पर किरण रूपी अप्सराओं के नाचने से जो आलते की छाप पड़ी है, वही लाली के रूप में दिखलाई पड़ रही है-

मतियाया
सागर लहराया।
तरंग की पंखयुक्त वीणा पर
पवन ने भर उमंग से गाया।
फेन झालरदार मखमली चादर पर मचलती
किरण-अप्सराएँ भारहीन पैरों से थिरकीं-
जल पर आलते की छाप छोड़ पल-पल बदलती।[7]

कल्पना में 'पूर्व-स्मृति' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अज्ञेय के काव्य में प्रकृति के माध्यम से इसके भी दृश्य मिलते हैं-

मुझे स्मरण है;
हरी तलहटी में, छोटे पेड़ों की ओट, ताल पर
बँधे समय वन-पशुओं की नानाविध आतुर-तृप्त पुकारें
गर्जन, घुर्घर, चीख, भूँक, हुक्का, चिचियाहट।
कमल-कुमुद-पत्रों पर घोर पैर द्रुत धावित
जल-पंछी की चाप।[8]

'पूर्वा' की 'पूर्व-स्मृति' शीर्षक कविता में प्राकृतिक वातावरण के बीच पूर्व-स्मृति को प्रस्तुत किया गया है-

पहले भी मैं इसी राह से
जाकर फिर हूँ आया

× × × ×

हरित छटामय-विटप राजि पर विलुपित थे पलाश के फूल।
मादकता-सी भरी हुई थी मलयानिल में परिमल धूल।।

अज्ञेय की प्रकृति-परक कविताओं में उनका ऐन्द्रिय बोध भी प्रकट हुआ है। व्यावहारिक जीवन में प्रकृति के साहचर्य का उपभोग हम ऐन्द्रिय बोध के आधार पर ही करते हैं, अत: यह स्वाभाविक है कि काव्य में भी ऐन्द्रिय-बोध से समन्वित प्रकृति के चित्र आ जाएँ। ऐन्द्रिय संवेदना की दृष्टि से अज्ञेय का प्रकृति काव्य काफी समृद्ध है। प्रकृति के चित्रांकन में रूप-रंग, ध्वनि, गंध, स्पर्श से सम्बन्धित ऐन्द्रिय बोध का बड़ी ही सूक्ष्मता से अंकन किया है।[9] प्रकृति से संबंधित रूप ऐन्द्रिय-बोध का एक उदाहरण देखिये-

तुम्हारी पलकों का कँपना,
तनिक सा चमक खुलना, फिर झँपना।

तुम्हारी पलकों का कँपना
मानो दीखा तुम्हें लजीली किसी कली के
खिलने का सपना।[10]

इसी प्रकार कवि गुड़हल के लाल रंग के फूल का वर्णन करते हुए कहता है–

लाल
अंगारे से डह-डह इस
पंचमुख गुड़हल के फूल को
बाँधते रहो नीरव।[11]

ध्वन्यात्मक बोध से युक्त प्रकृति के अनेक दृश्य अज्ञेय के काव्य में आये हैं। इन्होंने वर्षा की बुन्दों के लिए पट-पट, ओस के टपकने के लिए तिप्-तिप् का सुन्दर प्रयोग किया है। बांसुरी की मधुर स्वर-लहरी, ढोलक की थाप, नदी की कल-कल ध्वनि सभी इनके काव्य में प्रमुखता से उभरे हैं–

बदली-कौंध-पत्तियों पर वर्षा-बूँदों की पट-पट।
घनी रात में महुए का चुपचाप टपकना।

× × × ×

द्रुत लहरीले जल का कल-निनाद
कुहरे में छन कर आती
पर्वती गाँव के उत्सव ढोलक की थाप।[12]

ऐन्द्रिय बोध में गत्यात्मक दृश्यों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। अज्ञेय ने इसे प्रकृति से जोड़कर अत्यन्त आकर्षक बना दिया है–

जो कहा नहीं गया,
उठी एक किरण, धायी, क्षितिज को नाप गयी।[13]

'बावरा अहेरी' की 'वसन्त-गीत' शीर्षक कविता में आस्वाद्य ऐन्द्रिय बिम्ब है–

नीम के भी बौरे में मिठास देख,
हँस उठी कचनार की कली।[14]

अज्ञेय के काव्य में प्रकृति के आलम्बन रूप का भी चित्रण मिलता है। यद्यपि इनकी संख्या कम है, पर ये अत्यन्त आकर्षक रूप में हैं। प्राचीन काव्य में प्रकृति के आलम्बन रूप का चित्रण विविध रूपों में मिलता है। इसके महत्व को रेखांकित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुकल कहते हैं- 'प्राकृतिक वर्णन केवल अंग रूप से ही हमारे भावों के आलम्बन नहीं हैं, स्वतंत्र रूप से भी हैं।'[15] 'इत्यलम्' काव्य-संग्रह की गोप-गीत शीर्षक कविता में प्रकृति के आलम्बन रूप का सुन्दर चित्रण है–

नीला नभ छितराये बादल,
दूर कहीं निर्झर का मर्मर,
चीड़ों की उर्ध्वंग भुजाएँ
भटका-सा पड़कुलिया का स्वर।

"अज्ञेय ने प्रकृति के आलम्बनगत सौन्दर्य का प्रचुर मात्रा में अंकन नहीं किया। इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि उनका प्रकृति के प्रति प्रेम कम है। बल्कि यह बात बिल्कुल ही उल्टी है। अज्ञेय प्रकृति के बाह्य रूप से नहीं, आन्तरिक रूप से प्रभावित हैं। प्रकृति के स्थूल रूप के भीतर जो गहन एवं रहस्यमय रूप हैं, कवि का उससे गहरा सम्बन्ध है। सागर-मुद्रा, नंदा देवी, चक्रांत शिला आदि से संबंधित अनेक कविताएँ इस तथ्य को पुष्ट करती है। प्रकृति उनके लिए रहस्य को जानने तथा जीवनानुभवों को परखने का माध्यम बन गई है।"[16] प्रकृति के माध्यम से रहस्य-चिन्तन की परम्परा साहित्य में सदा से रही है। जड़-चेतन, प्रकृति के सभी उपादान उस परम सत्ता के रूप माने गये हैं। अत: इस दृश्य जगत् में व्याप्त उस अज्ञात एवं अगोचर चेतन सत्ता से अपना रागात्मक संबंध स्थापित करने का प्रयास कविगण करते रहे हैं। अज्ञेय की काव्यकृति 'इन्द्रधनुष रौंदे हुए' के मंगलाचरण में इसकी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है–

भावों का अनन्त क्षीरोदधि,
शब्द-शेष फैले सहस्र-फण;
एक अर्थ से तुम हो अच्युत,
मुझको भी दे दो करुणा-कण!

अज्ञेय के प्रकृति-चित्रण में यौन कुंठाओं के दृश्य भी मिलते हैं। तारसप्तक में अज्ञेय लिखते हैं - "आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन-वर्जनाओं का पुंज है। उसके जीवन का एक पक्ष है उसकी सामाजिक जीवन की लम्बी परम्परा, जो परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ विकसित नहीं हुई और दूसरा पक्ष है स्थिति परिवर्तन की असाधारण तीव्र गति जिसके साथ रूढि का विकास असंभव है। इस विपर्यास का परिणाम है कि आज के मानव का मन यौन-परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और वे कल्पनाएँ सब दमित और कुण्ठित हैं। उसकी सौन्दर्य-चेतना भी इससे आक्रान्त है। उसके उपमान सब यौन प्रतीकार्थ रखते हैं।"[17] मानव-मन की ये कुंठाएँ प्रकृति-चित्रण के माध्यम से भी अभिव्यक्त हुई है-

बादलों के चुम्बनों से खिल अयानी हरियाली,
शरद की धूप में नहा-निखर कर हो गयी मतवाली।
झुंड वीरों के अनेकों फबतियाँ कसते मंडराते,
झर रही प्रांत में चुपचाप लजीली शेफाली।।[18]

यहाँ बादलों के चुम्बन से अयानी हरियाली का खिल उठाना, शरद की धूप में नहा-निखर कर मतवाली हो जाना, वीरों का फब्तियाँ कसना, लजीली शेफाली का चुपचाप झरना, इन सबों में यौन-कुंठा को देखा जा सकता है। इसी प्रकार सावन के मेघ के चित्रण में यौन-कुंठा को देखिये-

घिर गया नभ, उमड़ आये मेघ काले,
भूमि के कम्पित उरोजों पर झुका-सा
विशद, श्वासाहत, चिरातुर।[19]

प्रकृति-चित्रण के अन्तर्गत कदम्ब के पेड़ और यमुना नदी का विशेष स्थान है। विद्यापति, सूरदास आदि कृष्ण भक्त कवियों ने इसकी विशद रूप से चर्चा की है। अज्ञेय की 'कदम्ब-कालिन्दी' कविता में कदम्ब का पेड़, यमुना नदी और राधा-रानी तीनों हैं-

टेर-वंशी की
यमुन के पार
अपने आप झुक आयी
कदम की डार।
द्वार पर भर, गहर
ठिठकी राधिका के नैन।[20]

अज्ञेय के काव्य में वन, प्रकृति और सन्नाटा का प्रमुख स्थान है। इस संदर्भ में रमेश ऋषिकल्प 'साहित्य-अमृत' में लिखते हैं- "अज्ञेय के लिए 'वन' प्रकृति है और प्रकृति के सम्पर्क में आकर अज्ञेय अपने स्व से परिचित हो जाते हैं, क्योंकि वह स्व उसी प्रकृति का अंश है, जिसके सम्पर्क में आकर वह अपनी पहचान को पाते हैं। वन का सन्नाटा ही अज्ञेय के मौन को रचनात्मकता प्रदान करता है। इसलिए कवि सबसे अधिक वन के सन्नाटे के साथ मौन है। वन के सन्नाटे का मौन कवि को व्यक्तित्व अनुसंधान में सहायता देता है। यहाँ अज्ञेय मौन का उपयोग करते हैं, प्रकृति की उस विराट सत्ता को जानने के लिए जहाँ से मौन जन्म लेता है।"[21] कवि के ही शब्दों में-

फिर सबसे अधिक मैं,
वन के सन्नाटे के साथ मौन हूँ-
क्योंकि यह बतलाता है कि मैं कौन हूँ,
जोड़ता है मुझको विराट से।[22]

"अज्ञेय प्रकृति के रागात्मक सम्बन्धों के कवि हैं। विभिन्न ऋतुएँ, ऋतुपरक दृश्यावलियाँ, छवियाँ, प्राकृतिक पदार्थों की उन्मुक्तता उनके प्रकृति का राग-रंग है। समुद्र और ज्योत्स्ना, माघ, फाल्गुन, चैत, सावन, क्वार, भादो, फूल, कचनार जैसी कविताएँ उनके प्रकृति-प्रेम का उदाहरण है।"[23] इनके काव्य में विविध ऋतुओं का चित्रण मिलता है। ऋतुओं में वसन्त का विशेष महत्व है। यह ऋतुओं का राजा है। इसमें मौसम सुहाना होता है, धूप आनंददायक होती है और धरती रंग-बिरंगी पुष्पों से भरी होती है। महाकवि निराला इसका वर्णन इस प्रकार करते हैं- "सखि वसंत आया / भरा हर्ष बन के मन / नवोत्कर्ष छाया" (राग-विराग, पृ० 44)। "अज्ञेय शिशिर की स्मृति और वसंत के आगमन दोनों को एक साथ लेकर चलते हैं। शिशिर और वसंत का यह क्रम उनकी कविता को व्यापक आयाम देता है।"[24] अज्ञेय वसंत का वर्णन करते हुए लिखते हैं-

जागो सखि वसन्त आ गया! जागो!
पीपल की सूखी खाल स्निग्ध हो चली,
सिरिस ने रेशम से वेणी बाँध ली,
नीम के भी बौर में मिठास देख,
हँस उठी कचनार की कली,
टेसुओं की आरती सजा के,
बन गयी वधू वनस्थली।[25]

यहाँ वसन्त का परम्परागत वर्णन है, किन्तु मानवीकरण की शैली आधुनिक है। सिरिस का रेशम से वेणी बाँधना, कचनार की कली का हँसना आदि में मानवीकरण की सुन्दर छटा है। अज्ञेय वसंत को मनमोहक ऋतु मानते हैं, पर उसी ऋतु-चक्र में शीत, शरद और वर्षा को भी महत्व देते हैं-

जिस दिन आया था वसन्त,
उपवन में जागी हँसी अतर्कित,
हम सोच रहे थे,
ऋतुओं के अनुक्रम में पहली मधु है, शीत, शरद या वर्षा?

संदर्भ सूची:

1. अज्ञेय, कवि और काव्य, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, पृ० 119
2. बावरा अहेरी, पृ० 16
3. आंगन के पार-द्वार, पृ० 72
4. चुनी हुई कविताएँ, अज्ञेय, पृ० 21
5. छायावाद का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन, डॉ० कुमार विमल, पृ० 117
6. साहित्य मे कल्पना तत्त्व, डॉ० शांतिस्वरूप गुप्त, पृ० 128
7. चुनी हुई कविताएँ, अज्ञेय, पृ० 90
8. आंगन के पार-द्वार, पृ० 20
9. अज्ञेय, कवि और काव्य, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, पृ० 121
10. आंगन के पार-द्वार, पृ० 73
11. कितनी नावों में कितनी बार, पृ० 36
12. आंगन के पार-द्वार, पृ० 73
13. बावरा अहेरी, पृ० 63
14. बावरा अहेरी, पृ० 18
15. रस मीमांसा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 111
16. अज्ञेय, कवि और काव्य, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, पृ० 130
17. तारसप्तक, पृ० 223
18. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि अज्ञेय, पृ० 42
19. तारसप्तक, पृ० 226
20. चुनी हुई कविताएँ, अज्ञेय, पृ० 181
21. साहित्य अमृत (नई दिल्ली), अज्ञेय जन्मशती अंक, अक्टू. 2010, पृ० 103
22. आंगन के पार-द्वार, पृ. 34
23. आजकल (नई दिल्ली), अज्ञेय विशेषांक, अप्रैल 2011, पृ. 26
24. अज्ञेय और इलियट, डॉ० अरुण भारद्वाज, पृ० 103
25. बावरा अहेरी (वसन्त गीत), पृ० 18
26. बावरा अहेरी (वर्षान्त), पृ० 26

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में नारी समस्या

ठाकोर मुकेशकुमार विहाजी

पीएच.डी. शोधछात्र, हेम.उ.गु.युनि. पाटण

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में नारी समस्याओं का चित्रण बहुत ही मार्मिक और गहराई से किया गया है। उनकी रचनाओं में नारी को केवल पारंपरिक भूमिकाओं में ही नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र सशक्त और आत्मनिर्भर व्यक्ति के रुप में प्रस्तुत किया गया है। उनके उपन्यास 'मित्रो मरजानी' में एक ऐसी महिला का चित्रण है जो समाज के बंधनो से मुक्त होकर अपनी पसंद और इच्छाओं के अनुसार जीवन जीने का प्रयास करती है, कृष्णा सोबती के उपन्यासों में नारी की समस्याएँ एक महत्त्वपूर्ण विषय के रुप में प्रस्तुत की गई है। उनकी रचनाओं में नारी को केवल एक पीड़ित के रुप में नही बल्कि एक सशक्त स्वतंत्र और आत्मनिर्भर व्यक्ति के रुप में दिखाया गया है। उनके उपन्यास नारी के संघर्ष, स्वतंत्रता और आत्म पहचान की खोज को दर्शाते हैं।

'पाश्चात्य नारी मुक्ति आदोलन' खासकर अमेरिकन आदोलन का इतिहास कोई बीस-पच्चीस वर्ष पुराना संघर्ष नहीं बल्कि कई सौं सालों के संघर्ष का प्रतिफल है। यही कारण है कि अमेरिका के इतिहास में नारी-आंदोलन का विशेष स्थान है क्योंकि संघर्ष में इतना लम्बा समय शायद ही अन्य किसी आदोलन में लगा हो।

अमेरिका के नारीमुक्ति आंदोलन को अमेरिकन इतिहास में मताधिकार आंदोलन के रुप में जाना जाता है, क्योंकि मताधिकार के लिए किए गये संघर्ष को उस लंबे समय को ही इतिहास में अंकित किया गया है। पर वास्तव में अमेरिका की 'नारीवादी' आंदोलन किसी एक उद्देश्य या एक अधिकार के लिए किया गया आंदोलन नही था बल्कि संबंधित क्षेत्र जिसमें नारी शोषित होती आयी उसमें बदलाव व मानवीय अधिकार प्राप्ति के लिए हर क्षेत्र में एक साथ शुरु हुआ आंदोलन था। इस आंदोलन में उठाई माँगों की पूर्ति वह अंश तक हुई थी पर जिस नारी मताधिकार के लिए स्त्रियों ने आंदोलन के शुरु में माँग भी की वह ८६ वर्षो के बाद ही प्राप्त हुआ। इस कारण नारीवादी आंदोलन के रुप में इतिहास में स्वीकारा गया है। पर इससे संबंधित अन्य अनेक आंदोलनों का 'नारीवादी-आंदोलन के साथ समान रुप से 'गठबंधन था जिस कारण मताधिकार आंदोलन पराजित होने से बच गया।

वास्तव में 'अश्वेत आंदोलन' ही नारीवादी आंदोलन की शुरुआत थी जिसके कारण नारी पूर्ण रुप से अपने अधिकारों की माँग के लिए आवाज उठा सकी।

इस उपन्यास में सामाजिक एवं कौटुम्बिक समस्याओं के साथ-साथ किसी न किसी प्रकार के सामयिक और मध्यमवर्तीय समाज का चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसमें उपन्यासकार ने समाज चित्रण की अपेक्षा कहानी पर विशेष ध्यान दिया है। नगर के मध्यवर्तीय समाज की अपेक्षा 'वरदान' में ग्रमीण जीवन और समाज का चित्रण अधिक सजीव है।

कर्मभूमि उपन्यास में 'प्रेमाश्रम' की भाँति दलित किसानो एवं मजदूरों की मूकावणी का स्वर है। इस में शिक्षा संस्थाओं की अर्थ व्यवसायीक नीति, म्यूनिसिपल कर्मचारियों की स्वार्थपरता, सेठ साहूकारी के धनार्जत के धृणित उपाय, जमीदारी की विलासिता एवं क्रूरता, मठाधीश, महल एवं स्वेच्छाचार आदि की कलात्मक दृष्टि से सुन्दर व्याख्या की गयी हैं।

मित्रो मरजानी इस उपन्यास में कथा संयुक्त परिवार की है जिसके मुखिया गुरुदासजी हैं। गुरुदास अपनी पत्नी छनवती, तीन बेंटो व उनकी बहुओं के साथ इकट्ठे रहते हैं।

मित्रो ने एक विवादास्पद नारी-चरित्र की तरह हिन्दी साहित्य क्षेत्र में प्रवेश किया कि पूरे निश्चित समाज में इसके प्रति एक जिज्ञासा जीवंत हो गयी थी।

मित्रो ने एक विवास्पद नारी-चरित्र की तरह हिन्दी-साहित्य क्षेत्र में प्रवेश किया कृष्णाजी के उपन्यास प्राणः नारी-जीवन, स्त्री-पुरुष, संबंधों आधुनिक नारी की समस्याओं से जुड़े हुए है। इनका लेखन नारी जगत को बेहतर बनाने की दिशा में किया गया प्रशसनीय प्रयास है। भारतीय समाज की स्थिति एवं परिवेश में एक नारी की स्थिति व उसके संघर्षमय जीवन की दयनीय स्थिति एवं परिवेश एक नारी की स्थिति व उनके जीवन की दयनीय स्थिति का चित्रण कर उन्होंने अपने मूल्यों का वर्णन कृष्णाजी के साहित्य में जिंदगी का व्यापक कोलाहल सुनाई देता हैं।

'हार से बिहुडी' की कथा में नायक सीधी-सादी अल्हुड युवती के इर्द-गिर्द घुमती है। पाशो एक ऐसे रुढिबद्ध परिवार का हिस्सा है जहाँ जन्म से पहले ही लड़की की स्थिति निर्धारित कर दी जाती है। पालन पोषण के समय उसे बार-बार एहसास दिलाया जाता है कि वह लड़की है।

पुराने संस्कारों में जकड़ी ऐसे परिवार में जो एक लड़की को अपनी उमंगी को दबारकर जीना पड़ता है। और उस पर भी पाशो को जो अपनी माँ के संदिग्ध चरित्र की दोहरी मार झेलानी पड़ती हैं। पाशो की माँ होने के बावजूद शेखजी के घर जा बैठी थी अतः जहर वालों को फूटी आँख न मानी। माँ के लांछन का डाँट फटकार तानों का सामना करना पड़ता है।

'मित्रो मरजानी' इस उपन्यास में कथा संयुक्त परिवार की है जिसके मुखिया गुरुदासजी हैं। गुरुदास अपनी पत्नी धनवंती, तीन बेटो व उनकी बहुओं के साथ एक साथ रहते थे।

सूरजमुखी अंधेरे से इस उपन्यास में एक ऐसी लड़की की कहती है जिसके फटे बचपन ने उसके सहज भोलेपन को असमय चाक कर दिया और उसके तन:मन के गिर्द दुश्मनी की कटीली बाड़ जीच दी अंदर और बाहर की दोहरी दुश्मनी में जकड़ी संघर्ष का दस्तावेज है आदर्शो की भव्यता से अलग हटकर सूरजमुखी अंधरे के यथार्थ और सत्य के निरुपण की वह असाधारण सत्यकथा जिसका सत्य कभी मरता नहीं।

उपन्यास की कथा शुद्ध रुप से देह के धरातल पर आधारित है और केन्द्र में हैं। नायिक रतिका उसकी आतरिक इच्छा संपूर्ण स्त्री बनने की है। उसे प्रतीक्षा है उसक पुरुष की जो उसके भीतर जड़ बनी बैठी स्त्री को जगाकर पूर्णत्व प्रदान करे।

प्रेमचन्द की कहानियों का आधार फलक बहुत व्यापक है जो जीवन और जगत के समस्त पक्षों को समेटता है। उनमें आम आदमी के प्रति एक ललक है। वे क्रमश: यथार्थ की ओर बढ़ते हैं और कफन तक आते-आते उनके पात्र नग्न यथार्थ के कठोर धरातल पर प्रतिष्ठित हो जाते हैं। कल्पना-प्रसूत आदर्श की दुनिया बिखर जाती है, उनका स्वप्न लोक नष्ट हो जाता है। वे उस समाज को देखते हैं, जिसमें रात-दिन मेहनत करने वालों की स्थिति भी घीसू-माधव से अच्छी नहीं, उस समाज का दर्शन करते है, जिसमें जीवित प्राणियों के प्रति नहीं, शवों के प्रति सम्मान है। प्रेमचन्द की कहानियों उनके समकालीन भारतीय जन-जीवन एवं उसकी मनोवृत्ति का दर्पण है, जिनमें समाज के वास्तविक चेहरे का प्रतिबिम्ब लक्षित किया जा सकता है।

दहेज-प्रधा, विधवा-विवाह, नारी-शिक्षा, पाश्चात्य शिक्षा, स्त्री के सम्पत्ति विषयक अधिकार, पतिता की समस्या, वैवाहिक कुप्रथा, दुखी और सुखी दाम्पत्य, स्त्री का देश-प्रेम, राष्ट्रीय जागरण में नारी की भूमिका इत्यादि के साथ ही बन्धक मजदूरी, शराब-बन्दी, जातिवाद, हरिजनों का शोषण, परिवार नियोजन, मृतक भोजनादि में फिजूलखर्ची कारखानों में मालिक-मजदूर सम्बन्ध, स्वदेशी वस्तुओं और भारतीय भाषाओं को प्रोत्साहन आदि विषयों पर उन्होंने सूक्ष्मता एवं गम्भीरता के साथ दृष्टिपात किया है।

"सवा सेर गेहूँ" में शंकर कुर्मी की दशा का दयनीय वर्णन है। साधु सत्कार हेतु लिये गये सवा सेर गेहूँ का ऋण वह उम्र भर नहीं उतार पाया। वह न केवल खुद बन्धक मजदूर रहा, बल्कि बेटा भी नहीं बच सका। नशाबन्दी के सम्बन्ध में श्मैकूश नामक कहानी प्रसिद्ध है। इस कहानी में उन्होंने इस समस्या के समाधान का प्रभावकारी उपाय भी सुझाया है। ष्शराब की दूकानष् कहानी के माध्यम से भी इस पैशाचिक मनोवृत्ति के खिलाफ जेहाद का शंखनाद उन्होंने किया है। जातिवाद की विषैली बेल को उखाड़ने के लिए "दूध का दाम" तथा ष्सौभाग्य के कोड़ेष् विशेष उल्लेखनीय हैं। बाबू महेशनाथ के घर तीन कन्याओं के बाद बेटे का जन्म होता है और वह भूँगी दाई के दूध पर पलता है जो एक भंगिन है और लगभग उसी उम्र का उसका भी बच्चा है। भूँगी का पति प्लेग की भेंट चढ़ जाता है और एक दिन वह भी बाबू साहब का परनाला साफ करने सर्पदंश के कारण दुनिया से सिधार जाती है। उदारता के देवता महेशनाथ भूँगी के बेटे मंगल को मिट्टी के सकोरे में जूठन देने के साथ-साथ उस पर अपने मकान के सामने नीम के पेड़ के तले पड़े रहने की कृपा भी करते हैं पर उसमें आत्म सम्मान की एक क्षीण सी सिहरन प्रकट हो जाने के कारण ही कड़वे सत्य का कोड़ा उसकी नंगी पीठ पर किस प्रकार पड़ता है यह भारतीय समाज का एक दुखद प्रसंग है। दुक्खी चमार 'सद्गति' कहानी का नायक है। वह पण्डित घासीराम के प्रति अगाध श्रद्धा रखता है। अपमान और बेगार के भार से दबकर वह उनके द्वार पर प्राण त्याग देता है। उस समय उसे सद्गति प्राप्त होती है जब पण्डित घासीराम उसकी लाश कुत्ते की तरह घसीट कर जंगल में डाल देते हैं और उसे गिद्ध और गीदड़ नोंच-नोंच कर खा जाते हैं।

संदर्भ सुची :

१. नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास, डॉ. नीता सोभकी, पृ. १३
२. नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास, पृ. १७
३. नारी संवेदना, डॉ. रमा पद्मजा वेदुला, पृ. ३३
४. नारी संवेदना, डॉ. रमा पद्मजा वेदुला, पृ. ४१
५. नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास, पृ. २३
६. नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास, पृ. २७

द्वैतवाद की मान्यताएँ और उनकी प्रासंङ्गिकता

कंचन कुमारी

संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

वेदान्त के विभिन्न सम्प्रदायों में द्वैतवाद की भी मान्यता है दर्शन और धर्म के मिश्रित रूप को 'द्वैतवाद' कहते हैं। इस सिद्धान्त के प्रवर्त्तक मध्वाचार्य को माना जाता है। मध्वाचार्य का समय 1199-1278 माना जाता है। इनको पूर्णप्रज्ञ और आनन्दतीर्थ की उपाधि भी प्राप्त है। 'दैतवाद' को द्वित्ववाद के नाम से भी जाना जाता है। स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र दो अन्तिम सत्तायें इन्होने मानी है इसलिए इसे द्वैतवाद कहते हैं। भगवान विष्णु जिन्हें पुरुषोत्तम, परमात्मा या ब्रह्म भी कहते है। यह स्वतन्त्र सत्ता है।[1] उनके अतिरिक्त और सब कुछ उनके अधीन है। अतः यह सब कुछ स्वतन्त्र नहीं है। मध्वाचार्य वस्तुतः बहुतत्त्ववादी वस्तुवाद, के प्रतिपादक हैं क्योंकि उनकी परतंत्र सत्ता में अनेक अनादि और अनन्त यथार्थ सत्ता में विद्यमान हैं। स्वयं ब्रह्म की भाँति श्री (लक्ष्मी), वेद. ध्वनियाँ, अव्याकृताकाश, जीव, पुद्गल आदि सभी सत्य है। स्वतंत्र और अस्वतंत्र सभी सत्य तत्त्व समान रूप से यथार्थ है। मध्वाचार्य के दर्शन में भेद पर बड़ा बल दिया गया है और हर वस्तु का स्वरूप अलग है।[2] अतः स्पष्ट है कि द्वैतवाद को हम भेदवाद भी कह सकते हैं।

मध्वाचार्य ने संसार में पाँच प्रकार के मूलभूत और शाश्वत भेद स्वीकार किये है।[3] ये भेद जीव और ईश्वर, जीव और भौतिक द्रव्य, भौतिक द्रव्य और ईश्वर, जीव और जीव तथा भौतिक द्रव्य और भौतिक द्रव्य के बीच है।[4] ये भेद सभी धर्मी स्वरूप है और इसके द्वारा ही सभी वस्तुयें एक दूसरे से पृथक जानी जाती हैं। मध्वाचार्य के अनुयायी कहते हैं कि यही कारण है कि 'गाय' को खोजने वाले 'गवय' को देखकर उसे पकड़ते नहीं हैं।[5] भेद को भगवान जानता है क्योंकि वह यथार्थ है भ्रामक नहीं और वह अर्थात् भगवान उनकी रक्षा भी करता है और सर्वज्ञाता होने के कारण कभी भी भ्रम में नहीं पड़ता। निश्चित ज्ञान की कमी के कारण ही तो भ्रम होता है।[6]

भारतीय दर्शन के सभी अनुयायी मतों द्वारा प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द प्रमाण माने गए हैं। उन्हें मध्वाचार्य और उनके अनुयायी भी स्वीकार करते हैं भेद की यथार्थता सिद्ध करने का प्रयत्न वे ज्ञान के सभी साधनों द्वारा करते हैं वे कहते हैं कि भेद अवश्य ही यथार्थ होना चाहिए क्योंकि ज्ञान के तीनों साधनों से वह जाना जाता है। शायद इसी कारण से वह हमें प्रत्यक्ष में दिखाई देता है क्योंकि हम एक वस्तु को दूसरी वस्तु से पृथक देखते हैं उदाहरणार्थ-नीला और पीला रंग आदि।[7] भेद को अनुमान से भी जाना जाता है। उदाहरणार्थ, ईश्वर और जीव के बीच भेद हम अनुमान से ही समझ सकते हैं। क्योंकि वह जीवों का पूज्य है। पूज्य और पूजा करने वाले में भेद होना ही चाहिए जैसे-राजा और उसके दास अर्थात् सेवक में।[8] शास्त्रों में भी भेद का प्रतिपादन मध्वाचार्य के अनुसार ही किया गया है। उन्होने कहा है कि 'आत्मा सत है, जीव सत् है और भेद भी सत् है।[9] जीवों के किसी भी अनुभव में और उनकी किसी भी दशा में मध्वाचार्य के विचार में ब्रह्म से उनका तादात्मय नहीं है। मोक्ष प्राप्त या मोक्ष की प्राप्ति होने पर भी ब्रह्म से उनका भेद बना रहता है।[10]

मध्वाचार्य के मतानुसार शास्त्रों में जीव और ब्रह्म का जहाँ कहीं भी एकत्व प्रतिपादित किया गया है उसका अलंकारिक अर्थ यही है कि दोनों में स्थानैक्य मतैक्य और सादृश्य है। कहीं-कहीं जीव की उपेक्षा भी कि गई है क्योंकि वह हीन और परतंत्र है ईश्वर का इस प्रकार से वर्णन किया गया है कि मानो वही एकमात्र सत्ता हो। ईश्वर जीव में विद्यमान होने के कारण कहीं-कहीं जीव को ईश्वर ही कह दिया गया है। इस प्रकार मध्वाचार्य और उनके अनुयायियों ने शास्त्रों के उन वचनों का जिनमें जीव और ब्रह्म का अभेद प्रतिपादित किया गया है ऐसे व्याख्या की है जिसमें दोनों के बीच भेद, प्रमाणित हो सके। 'अद्वैत परमार्थतः' जैसे श्रुतिवाक्य का स्पष्ट अर्थ है कि पारमार्थिक सत्ता अद्वैत ही है किन्तु वे इसका अर्थ भी यही बताते है कि विष्णु ही परम, पूर्ण और श्रेष्ठ सत्ता है, उसके समतुल्य या उससे बढ़कर कोई सत्ता नहीं है।[11] छान्दोग्य उपनिषद के महावाक्य 'तत्त्वमसि' का अर्थ भी उनके मतानुसार यही है कि जीव और ब्रह्म में सादृश्य है। स्वतंत्र और पूर्ण ब्रह्म कभी समीप और आश्रित जीव हो ही नहीं सकते हैं।[12] इतना ही नहीं, जीव और ब्रह्म के भेद को शास्त्र द्वारा प्रमाणित करने के लिए वे इस सीमा तक आगे बढ़ गए कि 'तत्त्वमसि' का पाठ बदल कर 'अतत्त्वत्मसि'[13] कर दिया जिसमें सम्पूर्ण अर्थ ही बदल गया।

उपनिषद 'एक के जानने से सबके जानने' की बात कहते हैं मध्वाचार्य और उनके अनुयायियों ने स्वीकार भी किया है किन्तु वे इस बात से सहमत नहीं हैं कि उपनिषद एक ही परम तत्त्व का प्रतिपादन करते हैं। कुछ भी कहो, किन्तु उन्हें यह कदापि नहीं मानना है कि इतने स्पष्ट दिखाई देने वाले भेद असत् है। उनका तर्क है कि यदि भेद और उनके कारण पृथक वस्तुयें असत् हैं तो शास्त्रों में यह कभी न कहा गया होता कि एक का ज्ञान होने से मनुष्य सर्वज्ञाता अर्थात् सब को जानने वाला हो जाता है या उसे सब का ज्ञान हो जाता है कहने का तात्पर्य यह है कि केवल मात्र सत् का ज्ञान होने पर उसके द्वारा असत् का ज्ञान नहीं हो सकता है।[14]

एक के ज्ञान से सबका ज्ञान अर्थात् सर्वज्ञाता होना तभी सम्भव है जब उनके तत्त्व या कारण आदि का ज्ञान हो जाए।[15] यदि हम किसी भी एक गाँव के प्रमुख पुरुष (प्रमुख पुरुष का अर्थ हम प्रधान पुरुष के रूप में भी जान सकते हैं) को जान लें तो कह सकते हैं कि हमने उस गाँव के सभी लोगों को जान लिया। इसी प्रकार से ऐसा कोई जो मिट्टी के बने सभी पात्रों को जानता हो। परन्तु सर्वप्रथम वह मिट्टी को पूर्ण रूप से जानने वाला होना चाहिए। ऐसे

ही हम ईश्वर या ब्रह्म को जान कर हम यह कह सकते हैं कि हम संसार की सभी व्यक्तियों और वस्तुओं को जानते हैं क्योंकि ब्रह्म परम पुरुष है और समग्र संसार की सब वस्तुओं का सृष्टा है।[16] यहाँ यह बात ध्यान रखने की है कि मध्वाचार्य ईश्वर को केवल निमित्त कारण मानते हैं क्योंकि वह संसार का उपादान कारण ईश्वर को नहीं मानते।[17] उपादान कारण तो प्रकृति है।[18]

रामानुज के विशिष्टाद्वैत की भांति मध्वाचार्य के द्वैत दर्शन में भी विष्णु या ब्रह्म को स्वातंत्र्य, शक्ति, ज्ञान, आनन्द आदि अनन्त शुभ गुण सम्पन्न माना गया है।[19] क्योंकि वह सभी दुर्गुणों और अशुभों से मुक्त है। और सभी प्रकार से महान है।[20]

सम्भवत: ब्रह्म को पूर्णत: दोषरहित सिद्ध करने के लिए मध्वाचार्य उसे जीव और संसार से भिन्न बताने का प्रयत्न करते हैं इसी प्रकार से इसके लिए अनेको तर्क दिए गये अन्तत: यह निष्कर्ष निकला कि ब्रह्म संसार और उसके सभी दोषों से बिल्कुल भिन्न होने के कारण दोषरहित है।[21] मध्वाचार्य के मतानुसार भेद सभी वस्तुओं का आवश्यक अंग है। अत: ''जब हम कहते हैं कि संसार और ब्रह्म मित्र हैं तो हमारा तात्पर्य केवल यह होता है कि संसार में ब्रह्म से मित्रता का एक प्राकृतिक विध्यात्मक गुण है और ईश्वर में संसार से भिन्नता का प्राकृतिक विध्यात्मक गुण है। अत: यदि संसार नष्ट भी हो जाये तो भी दो में से एक की भिन्नता बनी रहने के कारण संसार का ईश्वर से तादात्मय न होगा।[22] संसार या जीवों का तादात्मय ईश्वर के साथ कभी सम्भव नहीं है। ब्रह्म उनसे अपना भेद सदा बनाए रखेगा। मध्वाचार्य के विचार से एकतत्त्ववाद किसी भी रूप में हो अनुचित दिखाई देता है सर्वेश्वरवाद दोषपूर्ण संसार के साथ ईश्वर का एकत्व स्थापित करके ईश्वर को भी अपूर्ण बना देता है। भेदाभेद का तर्कसंगत नहीं है और ईश्वर को वह अपूर्णता से एकत्व स्वीकार करने के कारण नही बचा सकता है।[23]

श्री मध्वाचार्य और उनके अनुयायी ब्रह्म और जीव के बीच ही भेद नही मानते हैं बल्कि जीवों के बीच आपस में वैयक्तिक और वर्गगत भेद भी मानते हैं। उनके मनुसार जीव तीन प्रकार के हैं- नित्य, मुक्त और बद्ध।[24]

जीवों का आकार अणु रूप है। फिर भी ज्ञान और आनन्द उनकी स्वभाविक प्रकृति है। परन्तु इसका ज्ञान उन्हें सामान्य रूप से नहीं हो पाता और जब तक वे बंधन में रहते हैं उनका वास्तविक स्वरूप प्रच्छन्न अर्थात् छिपा (छिपा) हुआ रहता है और जब वह मुक्त होते हैं तो उनकी अन्तर चेतना और ज्ञान प्रकट हो जाते हैं। इसी संदर्भ में मध्वाचार्य कहते हैं कि शंकर के अनुसार तो ब्रह्म से अपने एकत्व भाव का ज्ञान अर्थात् उसे जानने से ही मुक्ति मिलती है या प्राप्त होती है। किन्तु मध्वाचार्य के अनुसार जीव भगवान से अपना भेद जानकर ही मुक्त होता है।[25]

भगवान से अपने तादात्म्य ज्ञान अर्थात् अन्त: ज्ञान से नहीं, बल्कि उनके अनन्त गुणों के ज्ञान से मुक्ति मिलती है।[26] मध्वाचार्य के अनुसार मुक्ति पाने का सबसे सरल मार्ग भक्ति ही है। इसके बिना मुक्ति अर्थात् मोक्ष पाना असंभव है।[27]

भगवान उन्हीं लोगों को मुक्तिदायी ज्ञान देता है जिन्हें वह अपनी कृपा के अनुकूल समझता है अगर भगवान को पाना चाहते हो तो पूर्ण समर्पण और भक्ति से ही पा सकते हो। अत: जीव पर भगवान की कृपा और भगवान के प्रति जीव की भक्ति मुक्ति के लिए उतनी ही आवश्यक है जितना स्वयं ज्ञान। प्रो० राधाकृष्णन कहते हैं कि "न्यायामृत के लेखक तर्क उपस्थित करते हुए कहते हैं कि जो व्यक्ति सत्य की साक्षातकार कर लेता है परन्तु भगवान में आस्था नहीं रखता है वह माया रूपी शरीर और कामनाओं के बन्धन में पड़ा रहता है वह कभी मोक्ष प्राप्त नही कर सकता क्योंकि मोक्ष प्राप्ति का साधन केवल भग्वत-भक्ति है।[28]

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि मध्वाचार्य का मानना है कि, जीव और ईश्वर के बीच भेद जानने के बाद ही मोक्ष की प्राप्ति होती है क्योंकि वह मानते हैं कि, ईश्वर और जीव में भेद, है जिसे उन्होंने विभिन्न प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया है।

सन्दर्भ - सूचि

1. सर्वदर्शनसंग्रह, 5.1 (द्विविधतत्त्वं स्वतंत्रास्वतंत्रभेदात.. स्वतंत्रो भगवान विष्णु:)
2. विष्णुतत्त्व निर्णय, (प्राय: सर्वतो विलक्षणं पदार्थस्वरूपं दृश्यते)
3. वही (प्रकृष्ट: पंचविधो भेद: प्रपंच) न्याय-सुधा 1.230 व (प्रकृष्ट: पंच: प्रपंच:)
4. सर्वदर्शनसंग्रह
5. वही, 5.6
6. वहीं, 5.2
7. वहीं, 5.10
8. वही, 5.17
9. वही, 5.21
10. दि फिलासफीकल क्वार्टरली, जुलाई 1944, पृ० 106 और सर्वदर्शन संग्रह, 5.21
11. सर्वदर्शन संग्रह, 5.21,28
12. वही, 5.29
13. वही, 5.30
14. वहीं, 5.34
15. वहीं।

16. सर्वदर्शन संग्रह, 5.23.40
17. अणुव्याख्यान 2.2.2 (ब्राह्मणो निर्विकारत्वावगमात् न जगदुपादान कारणत्वं किन्तु निमितत्वमेव)
18. ए हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी, खंड 2, पृ० 693
19. सर्वदर्शनसंग्रह, 5.34
20. वहीं, 5.1, 5.43
21. फिलासफीकल क्वार्टरली, जुलाई 1944 पृ० 104
22. फिलासफीकल क्वार्टरली, 1944 ० 106
23. अणुव्याख्यान, 3.1.1 (भेदाभेदप्यभेदेन दोषानामपि संभवः)
24. ए हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी, खण्ड 2, पृ० 698 और इण्डियन फिलासफी खण्ड 2, पृ० 744
25. न्याय-सुधा, 1.230 ब (प्रकृष्टः पंचः प्रपंचः। प्रकृष्टता च मोक्षांग ज्ञानतया भवति)
26. सर्वदर्शनसंग्रह, 5.32, 28,34
27. वहीं, 5.27
28. इण्डियन फिलासफी, खण्ड 2 पृ० 748

उरुभंग के माध्यम से भास की नाट्य चेतना

मिथिलेश कुमार पाण्डेय

शोध छात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संस्कृत नाट्य परंपरा में भास का नाम विशेष सम्मान के साथ लिया जाता है। उनके नाटकों की विशेषता उनकी मौलिकता, नवोन्मेषी तकनीकों और अप्रचलित नायकों के मनोवैज्ञानिक चित्रण में निहित है। उरुभंग भास द्वारा रचित एकल-अंकीय त्रासदी है जो महाभारत के कुख्यात पात्र दुर्योधन को नायकत्व की गरिमा प्रदान करती है। यह लेख भास के इस नाटक के माध्यम से भारतीय त्रासदी की अवधारणा, नायक के चरित्र विकास, काव्यात्मकता और मंचीय तकनीकों का विश्लेषण करता है। इसमें अरस्तू और हेगेल की त्रासदी की परिभाषाओं को संदर्भ रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उरुभंग पारंपरिक पश्चिमी त्रासदी के मानदंडों पर भी खरा उतरता है। यह लेख दर्शाता है कि कैसे भास ने युद्ध, पश्चाताप, कर्तव्यबोध और पारिवारिक संबंधों जैसे भावों को मंच पर जीवंत रूप में प्रस्तुत किया। नाटक में प्रयुक्त संस्कृत छंद भावनात्मक गहनता को और सशक्त बनाते हैं। साथ ही, यह लेख भास के नाटकों की मंचन-योग्यता, रस-सिद्धांत के अनुप्रयोग और उनके नाट्यदर्शन की समकालीन प्रासंगिकता को भी उजागर करता है।

कूट शब्द :

1. त्रासदी
2. काव्यात्मक चित्रण
3. करुण रस
4. नाट्य कला
5. कर्णभार
6. मनोवैज्ञानिक चित्रण
7. त्रासदी की चरचा
8. कलात्मक शास्त्र
9. संस्कृत नाटक
10. नायकत्व
11. संवेदना
12. मंचन

मुख्य विषयवस्तु

भास संस्कृत नाट्य साहित्य में मौलिकता और प्रयोगशीलता के लिए जाने जाते हैं। उनका लेखन केवल शास्त्रीय अनुशासन तक सीमित नहीं है, बल्कि मानवीय संवेदनाओं की गहराइयों तक पहुँचता है। उन्होंने अपने नाटकों में नायकों के स्थान पर खलनायकों को केंद्र में रखकर एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। कर्णभार और उरुभंग इसके जीवंत उदाहरण हैं। विशेषकर उरुभंग में दुर्योधन का जो रूप प्रस्तुत किया गया है, वह एक खलनायक से एक करुण, पश्चातापी और गौरवशाली नायक के रूप में उसका पुनःनिर्माण करता है।

पाश्चात्य त्रासदी के सिद्धांतों के अनुसार, जैसे अरस्तू कहते हैं कि त्रासदी का नायक ऐसा होना चाहिए जो पूर्णतया सद्गुणी न हो, किंतु उसकी कोई त्रुटि उसे विनाश की ओर ले जाए - दुर्योधन उस कसौटी पर खरा उतरता है। हेगेल के अनुसार जब दो नैतिक शक्तियाँ आपस में टकराती हैं, तब त्रासदी जन्म लेती है। उरुभंग में भी पांडवों और कौरवों का संघर्ष, विशेषतः दुर्योधन और भीम के बीच का युद्ध, इस द्वंद्व को दर्शाता है।

युद्ध में घायल दुर्योधन अपने अंत समय में अपने जीवन का पुनर्मूल्यांकन करता है। वह अपने पुत्र दुर्जय को पांडवों के प्रति निष्ठावान बनने की सलाह देता है और उसे अपने दादा धृतराष्ट्र की शरण में भेजता है - "सः प्रेषयितव्यः गुरोः शरणम्। दुःप्रमोच्यं हि भाग्यम्।"। इस वाक्य के माध्यम से वह एक जिम्मेदार पिता, कर्तव्यपरायण योद्धा और आत्मस्वीकृत नायक के रूप में सामने आता है। उसका आत्मबोध, पश्चाताप, और परिवार के प्रति ममता, उसकी छवि को एक गहराई प्रदान करते हैं।

नाटक में करुण रस की प्रधानता है जो दुर्योधन की विवशता और उसके परिवार के साथ संवादों में व्यक्त होती है। जब वह अपने पिता के चरणों में नहीं झुक पाता और अपने पुत्र को गोद में नहीं ले पाता, तब उसकी पीड़ा दर्शकों को भीतर तक छू जाती है। यह केवल शाब्दिक नहीं, बल्कि दृश्यात्मक करुणा है, जो मंच पर एक सजीव अनुभूति बन जाती है।

भास का यह नाटक छंदबद्ध होते हुए भी अत्यंत संवादात्मक और यथार्थपरक है। छंदों में प्रयुक्त भाषा भावपूर्ण है और उनमें नाटकीयता का पूर्ण प्रवाह है। युद्ध दृश्य, अश्वत्थामा से संवाद, और दुर्जय के भविष्य की चिंता ख्र सभी प्रसंग अत्यंत प्रभावी बन पड़ते हैं। उदाहरणार्थः "न हि धर्मविपरीतं मया किञ्चिदाचरितम्।" – यह दुर्योधन की आत्मग्लानि और अंतर्द्वंद्व को उद्घाटित करता है।

उरुभंग एक एकांकी नाटक है जिसमें समय, स्थान और क्रिया की एकता का पूर्ण पालन किया गया है। यह विशेषता इसे मंच पर प्रस्तुत करने योग्य बनाती है। केरल की पारंपरिक रंगमंचीय परंपरा में इसका निरंतर मंचन इस तथ्य का प्रमाण है कि भास का यह नाटक रंगमंच की अपेक्षाओं पर खरा उतरता है।

आधुनिक मूल्यबोध के परिप्रेक्ष्य में भी यह नाटक अत्यंत प्रासंगिक है। आज जब समाज खलनायकों के भीतर भी मानवता खोजने का प्रयास कर रहा है, उरुभंग एक उदाहरण प्रस्तुत करता है कि साहित्य समय से पहले ही सामाजिक विचारों को रूप देने की क्षमता रखता है।

भास की भाषा में गहराई और सरलता का अद्भुत संगम मिलता है। संस्कृत होते हुए भी यह भाषा बोझिल नहीं लगती। उनके छंद केवल शृंगारिक नहीं, बल्कि भाव-प्रेरक हैं। इसीलिए संवाद प्रभावशाली बनते हैं और मंच पर दर्शकों के हृदय को स्पर्श करते हैं।

नाट्यशास्त्र की पारंपरिक सीमाओं से परे जाकर भी भास अपनी रचनात्मकता में सफल होते हैं। उन्होंने नायक और खलनायक की स्थिर परिभाषाओं को चुनौती दी और दिखाया कि त्रासदी केवल बुराई के पराजय की कथा नहीं, बल्कि आत्मबोध और करुणा की प्रक्रिया भी है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि उरुभंग न केवल एक त्रासदी है, बल्कि एक गहन मनोवैज्ञानिक अध्ययन, भाव-संवेदी कला और सामाजिक मूल्यबोध का सम्मिलन भी है। यह नाटक भास की नाट्यकला, उनकी कल्पनाशक्ति, और उनकी मानवीय संवेदनाओं को समझने की शक्ति का सजीव उदाहरण है।

उपसंहार (Conclusion)

भास कृत उरुभंग नाटक केवल एक साहित्यिक कृति नहीं, अपितु भारतीय नाट्य परंपरा में त्रासदी के विशिष्ट स्वरूप का सशक्त उदाहरण है। इस नाटक में जिस प्रकार दुर्योधन के चरित्र को पुनर्परिभाषित किया गया है, वह न केवल एक नवीन नाट्य प्रयोग है, बल्कि यह दर्शाता है कि साहित्य के माध्यम से सामाजिक व सांस्कृतिक विमर्शों को नई दिशा दी जा सकती है। दुर्योधन की आत्मस्वीकृति, कर्तव्यबोध, पश्चाताप और पुत्र के प्रति दायित्व उसकी मानवीय छवि को सशक्त बनाते हैं।

भास ने पारंपरिक नाट्यशास्त्र की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए करुण रस को नाटक की मूल संवेदना बनाया है। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि नायकत्व केवल गुणों की पूंजी नहीं, बल्कि आत्मबोध, उत्तरदायित्व और अंतर्मन की यात्रा से निर्मित होता है। उरुभंग इसी नायकत्व की त्रासद व्याख्या है, जिसमें एक खलनायक न केवल मानवीय गुणों से ओतप्रोत दिखाई देता है, बल्कि दर्शकों की सहानुभूति का पात्र भी बनता है।

इस नाटक की मंचीय संरचना, संवाद शैली, छंद योजना और भावप्रवणता इसे अत्यंत प्रभावशाली बनाते हैं। इसकी एकांकी प्रकृति इसे रंगमंचीय दृष्टि से आदर्श नाटक सिद्ध करती है। साथ ही, आधुनिक संदर्भों में यह नाटक पुनर्विचार और पुनर्पाठ के अनेक द्वार खोलता है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उरुभंग भारतीय नाट्य साहित्य की एक बहुमूल्य धरोहर है, जिसमें न केवल त्रासदी की भारतीय अवधारणा मुखर होती है, बल्कि यह भास की रचनात्मकता, संवेदनशीलता और गहन मानवदृष्टि का प्रमाण भी प्रस्तुत करता है। यह नाटक न केवल मंच पर, बल्कि विमर्शों में भी सतत जीवित रहने योग्य है।

संदर्भ-सूची (Footnotes in Hindi)

1. भारतीय अनुसंधान जर्नल, खंड 2, पृष्ठ 184; बी.आर.आर.आई., खंड 5, पृष्ठ 5।
2. "सः प्रेषयितव्यः गुरोः शरणम् दुःप्रमोच्यं हि भाग्यम्।" – उरुभंग, श्लोक 6।
3. "यत् तु धर्मसंकोचयुक्तं कार्यं तत् न कुर्यात्।" – उरुभंग।
4. "वक्रचेष्टितरक्तं रूपं यौवनसंपदा समन्वितम्। नवोदयमिव स्त्रीणां हृदयेषु हितं भवति।" – उरुभंग, श्लोक 63।
5. "संस्मृत्य नवपरिचर्यालग्नं भीमम्।" – उरुभंग, श्लोक 19।
6. "विगतप्रकोपः सुशोभमानः रजःसन्निपातकलेवरः। दैवयन्त्रप्रेरितं देहमुत्सृज्य निःश्वस्य जननीं प्रणम्य साश्रुनयनः।" – उरुभंग, पृष्ठ 504।
7. "येन वै मुष्णा समं श्रोतृणां वै मुष्णा पृथ्वीं प्रार्थयेत्।" – उरुभंग, श्लोक 47।
8. "हृदयेन न वार्यं मुख्यं यथासंभवम् किं तु निवार्यं स्फुरति।" – उरुभंग, श्लोक 5।
9. "गुरोः कृपया मम आनयनं समर्प्य।" – उरुभंग, पृष्ठ 508।
10. "आर्य मे श्रमपरिपन्थिनः प्रत्यक्षं दृश्यं गुणैः।" – उरुभंग, पृष्ठ 41।
11. "अपि च प्रारब्धं न पूर्वदृष्टं लोकसंग्रहम्।" – उरुभंग, पृष्ठ 44।
12. मीरवार्थ, जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, 1971, पृष्ठ 278।

"उमाशंकर जोशी की कविताओं में प्रकृति निरूपण"

चेतनभाई गेलाभाई रबारी

पीएच.डी. शोधछात्र, हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय, पाटण

पिता जेतालाल और माता नवलबेन के नवसंतान पैदलिया जीजा के रूप में हमारे उमाशंकर जोशी। उत्तर गुजरात के एक नन्हे से गांव बामणमोल में जन्मे श्री उमाशंकर जोशी को कश्मीर प्रदेश की प्रकृति, सामाजिक जीवन, गीतों और त्यौहारों की शब्दमालाओं से प्रेरणा मिली थी। भाषा शब्दसाधना की यात्रा में उन्होंने उच्च स्तर की अच्छी कविताएं, एकांकीनाटक, निबंध, शोध, अनुभूति, विचार, पत्रकार जैसे संपादक रूप में बहुत विशेष सेवा प्रदान की है। कक्षा में चलती पाठ्य पुस्तकों के साथ-साथ विद्यालयों में रहकर प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात १९२४ में अहमदाबाद के गुजरात कॉलेज में मैट्रिक की परीक्षा पास करके उच्च अध्ययन और गुजरात कॉलेज अहमदाबाद में रहे। वहां से स्नातक की डिग्री प्राप्त कर उन्होंने ज्ञानसाधना जारी रखी।

स्वतंत्रता आंदोलन में जुड़कर उन्होंने शिक्षा और साहित्य के प्रश्न पर अपना ध्यान केंद्रित किया। इतिहासकार विष्णु खदिलकर संपर्क में आए। स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेते हुए आपको जेल भी जाना पड़ा, देश-विदेश में हुई कई वार्ताओं में हिस्सा बनाया, सामाजिक असमानताओं का वर्णन ही भावों में उनकी सर्जन में आकार पाया।

एक साहित्यकार के रूप में गुजरात और देश की जानी-मानी हस्तियों के साथ उन्होंने वर्षों तक अपना समय जोड़ा रखा। गुजरात की अक्षरयात्रा में उन्होंने काव्य की दृष्टि से गुजरात यूनिवर्सिटी और विश्वभारती यूनिवर्सिटी के कुलपति के रूप में भी कार्य किया। इस साथ साहित्य अकादमी के प्रमुख, राज्यसभा के सदस्य जैसे साथ देश की साहित्य, संस्कृति और शिक्षण की विभिन्न संस्थाओं के सदस्य रूप में उन्होंने अपनी सेवाएं बहुत महत्वपूर्ण रूप से दी हैं।

बहुप्रतीभा धारावाहिक उमाशंकर मात्र साहित्यकार ही नहीं बल्कि एक जीवंत संस्था हैं जिन्हें केवल अतिसंवेदनशील नहीं, साहित्य संपर्क, विचारधारा, तत्त्व, बहुप्रभुत्व और यह बाल्यावस्था विशेष उन्हें एक उच्च व्यक्तित्व बनाते हैं। उन्होंने अनेक कविताएं, एकांकी-नाटक, वार्तालाप, निबंध लेख, शोध, विचार, अनुभूति, बाल साहित्य क्षेत्र में अपनी कलम चलाई है। गुजराती साहित्य में योगदान दिया है।

श्री उमाशंकर जोशी का यह अमूल्य योगदान गुजरात और देश के लिए बहुत आदरणीय दर्जा रखता है। उन्हें १९६७ में राष्ट्रभाषा सुवर्णचक्र, १९७० में मूरारजी पारितोषिक, १९७६ में नाम्दे सुवर्णचक्र, १९७६ में उमा-स्नेहश्री पारितोषिक, १९७८ में कन्हैयालाल के.एम. मुनशी के स्मृति में "निशीथ" काव्यसंग्रह हेतु भारतीय ज्ञानपीठ पारितोषिक, १९८३ में साहित्य अकादमी पारितोषिक, १९८४ में सोवियत लैंड पुरस्कार जैसे पारितोषिकों से सम्मानित किया गया है।

गांधीयुग के अग्रणी कवि उमाशंकर जोशी का सबसे प्रिय साहित्य स्वरूप "कविता" रहा है। उन्होंने लगभग जीवन के ६ दशक तक काव्यरचना की है। जीवन के सभी भावों को उन्होंने अपनी कविताओं में उतारा है। उनकी कविताओं में यथार्थशीलता, स्वतंत्रता, प्रकृति, प्रेम, शोषण, तथा चिंतनशीलता जैसे विविध विषय हैं। उमाशंकर जोशी की "विश्वशांति" से लेकर "सांजसमय" तक की संग्रहित कविताओं में प्रकृतिनिर्मित विविध दृश्य जुड़े हुए हैं।

"विश्वशांति" खंडकाव्य में कवि उमाशंकर जोशी ने प्रकृति का बहुत सुंदर वर्णन किया है।

"विविधे जगविस्तारे नहीं एक मानवती
पुष्प छे, पंछी छे, पुरुषो, वनोंनी छे वनस्पती !"

("विश्वशांति", पृ. १८)

कवि इस पंक्तियों द्वारा समझाते हैं कि, संपूर्ण जगत में अकेला मनुष्य ही नहीं, बल्कि इस सृष्टि में पुष्प, पंछी, पुरुष, वनों की वनस्पति भी है। यहाँ प्रकृति के सभी तत्वों को शांति प्राप्ति के संभावित साधन बताया गया है।

"रहे छे प्रकृतिमाता, रहे छे हृदय:खुण्ड:
आवी ने धरणी, ते करूणा रस रंगावे।
छे पत्र ने पुष्पो पांजरिये
प्रेम तथा प्रेरणापोषण
कवितालता पांपनी संभारिये।"
"गीतों और रंगों से भरकर प्रभु तारण!
प्रकृति में रंगे इस देश को दिखा दो,
शांति के स्वप्नछायाच्छन्न किसी मानव को मिले?"

("विश्वशांति", पृ. १८)

यहाँ, प्रकृति के तत्वों और मनुष्यों में, चारों ओर शांति फैलाने की कवि की सूझ है। श्मानव ही प्रकृति, सोने वर्षाएं करुणामयी' यह कवि द्वारा प्रकट की गई परंपरागत विचारधारा में प्रेम बहने की एक कृपालु धारा के साथ शांति का हरीभरी अनुभूति वाला भाव कवि ने सुंदर रूप में प्रस्तुत किया है।

"गीतों" काव्यसंग्रह में शुद्ध प्रकृति कविता को बहुत अच्छी मात्रा में स्थान मिला है। इस संग्रह की महत्वपूर्ण प्रकृति कविताएं हैं - 'गुलाल', 'उत्तमश्री', 'कालबेलिया', 'मारी समरण', 'अंबर', 'भूमिया विना', 'कालावेल', 'बीकम सांझवणा', 'कुंभ कलश', 'बननी पाणी', 'निष्ठावान', 'माझणी भव्य आराधनाएं' वगैरह हैं।

'भूमिया विना' कविता को कवि उमाशंकर जोशी की अत्यंत रचनात्मक रचना माना जाता है। प्रकृति की गोद में उभरी यह कविता "भूमिया विना" एक सुंदर गीतिकाव्य बन गई है। इसमें कवि ने प्रकृति के साथ जीवनचिंतन को भी आत्मीय रूप से प्रकट किया है। छोटी उम्र में सहज रूप से इस गीत को सुंदर रूप में प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं:

भूमिया विना मारे भ्रमवाना फेरा,
जंगलनी झुंझुंझुं जाति हती।
जोतवीं कितलो ने जोतवीं फेरा,
रातें अंधारणी आंगळे लेती हती।
सुनस सरवरियानी सोनेरी पाले
हंसनी हार मारे गशती हती।
डाळे झूलंत कोक कोकिलाने माळे
अंतरनी वेला वांधती हती।

("भूमिया विना", "गीतों", पृ. ३६)

यहाँ फुंकार, जंगल, कुण्ड कुंड, कोंपले, कोंटर, अरण्य, सरवरिया, आकाश, पाल-वगरै का वर्णन करके अपने अंतर्मन की व्यथा प्रकृति के स्वर में व्यक्त की गई है। प्रकृति के वर्णनों के साथ मानव जीवन की पीड़ाओं को भी जोड़ा गया है। इस संग्रह की अंतिम कविता ष्समयनी भव्य आराधनाएंष में प्रकृति का निरूपण दिखाया गया है। जैसे:

"शाखाओं की छांव में क्षितिजफलक पर भारतीय सूर्योदय,
हवा के झोंकों में स्फूर्ति और चेतना की बातें?
तब आंखें धरती की सी सींचित की ओर,
भाव और क्षितिजफलक पे पसरा मेघपुंज।"

("समयनी भव्य आराधनाएं", 'गीतों', पृ. ४४)

काव्य संग्रह की उपर्युक्त पंक्तियों द्वारा कवि की कल्पना स्पष्ट होती है। 'क्षितिजफलक', 'सूर्योदय', 'मेघपुंज', 'संध्या', 'नभलीला' आदि शब्द प्रयोगों द्वारा प्रकृति का निरूपण किया गया है। इन वर्णनों में भी महत्वपूर्ण चिंतन व्यक्त हुआ है।

'निशीथ' काव्य संग्रह की कविताओं में प्रथम कविता 'निशीथ' है। इसमें कवि ने प्रकृति वर्णन द्वारा अपने भावों को व्यक्त किया है। सामान्यत: शनिशीथश शब्द मध्यरात्रि के लिए प्रयुक्त होता है, परंतु यहाँ रात्री के देव जैसे अर्थों में है। यह एक उत्कृष्ट उपमान कविता है, जिसमें निशीथ से संवाद है। अंत में कवि निशीथ से प्रार्थना करते हैं:

"शांति तू रोशनी दे,
फूलों की तरह तू प्रकृति में खिल जाए,
तू मानवीय मनोवृत्तियों में
सपनों जैसा वात्सल्य भर दे।
तू सुख की निनाद वाली आशा।
न जाने तू भी क्यों? कहे, कहे,
निशीथ, विनती है, ठहर जा!"
('निशीथ', 'निशीथ' पृ.५)

'गुजरात मोरी मोरी रे' कविता में कवि ने गुजरात के वर्णन में प्रकृति का निरूपण बहुत सुंदर रूप में किया है। 'सावर्णा गोधियों', 'रेवानां अमरतनी मंजर', 'संपरणनी मोतीनी छांय', 'निनादनी दूंध', गेर के इड़करिया, 'पालवां टोक मां काली मेघा', 'चरातर', 'चोरवाड' - जैसे प्राकृतिक चित्रों, रंगों, संगीत, फुंकार, प्रदूषणयुक्त मनोदशा का निरूपण किया है।

"कायल ने मोरने मेघाली भोवंड,
नभनी पंखीहरी नीली भोवंडावे,

नीरतीर सारस शां सुप्कसवां जोड़ावे,
गुजरात मोरी मोरी रे।"

(गुजरात मोरी मोरी रे, 'निशीथ', पृ. ७)

यहाँ, प्रकृतिवर्णन, गुजरातीयत की पारंपरिक विशेषताओं द्वारा कविता की मानसिकता, अनुभूतियों को व्यक्त किया गया है। 'सावर्णा गोधियों' में कवि ने प्रकृति निरूपण द्वारा बाल्यकाल को साकार किया है। इस प्रकृति चित्रण द्वारा कवि अपने भावों को अभिव्यक्त करते हैं, जैसे:

"मारी सावर्णे कांईक रमतो राग बनार त वनोंनो वणजारी
कांई हीरजी भेमणनो मोरलो राग बनार त वनोंनो वणजारी
ऐमे फुंकार रमतो जातो राग बनार त वनोंनो वणजारी
कांई काली कुकडीयो जबलतो राग बनार त वनोंनो वणजारी
बवे पाला बलबोलनो डोल राग बनार त वनोंनो वणजारी
छोरी सावर्णा छोरीरो गोधीयो राग बनार त वनोंनो वणजारी।"

('सावर्णा गोधियों', 'निशीथ', पृ. ६२)

इन पंक्तियों द्वारा प्रकृति का मोहक अहमदाबाद में जाते वणजारी और उसकी परिस्थिति का वर्णन लोकगीतों की तरह सुंदर रूप में किया गया है। यह रचना कविता की उत्तम रचनाओं में से एक है। इसमें प्रकृतिप्रेम, तन्मयता, मानवीयता की अभिव्यक्ति लोकगीतों से हुई है।

'आरातित्य' संग्रह में 'आसमां में मेहता राग', 'सप्ती! वालस आया रे!', 'वालवी अंबरू', 'वीरणी', 'वातां', 'रजथाली रात', 'नभने नेपथ्य', 'पट्टाणी', 'बाल सुंदरों' तथा 'अस्मानी मेघतों' जैसे प्रकृति निरूपण वाले काव्य मिलते हैं।

वे, अपनी आत्मानुभूतिप्राप्त योजना द्वारा यथार्थता से सर्जना में संलग्न हो रहे हैं। कवि प्रकृतिवाद अपनाते हुए कहते हैं:

"पर्वत साथे चढूं,
वर्षा साथे पड़ूं
सरिता साथे संड़ूं,
वातास साथे तड़ूं
उच्छळूं सागर साथ,
भयं क्षितिज सह भास
रचूं पानी साथे अंधकुंवारी
धरणी सह फूटूं फूटूं,
प्रभु साथे संतुकुं संतुकुं।"

-('पर्वत साथे चढूं', 'अक्षित', 'समग्र कविता' पृ. १०३)

कवि चांदनी की सुंदरता और शीतलता को स्वीकारते हुए चांदनी रात का वर्णन करते हैं, वे कहते हैं:

"चांदनी रोम रोम पसरे
सुगंध पारिजातनी
एवी एवी हेरानी गमरे
प्रीतमनी वातनी।"

('चांदनी रोम रोम पसरे', 'अक्षित', 'समग्र कविता' पृ. १०७)

कवि यहाँ चांदनी की शीतलता और पारिजातनी की सुगंध के साथ रमणीय चांदनी की सुंदरता रूपी छवि को प्रकृतिवाद में व्यक्त करते हैं। इस तरह उमाशंकर जोशी की कविताओं में प्रकृतिवाद सहज और स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त होता है।

'धारावाह' काव्यसंग्रह में 'एक झाड़', 'मूर्तियां', 'समयसंधि', 'फुंकारना पड़छाया', 'धारावाह', 'रंगीला सेत' और 'आकाश-आकाश' जैसी कविताओं में प्रकृति निरूपण हुआ है। कवि ने बाल्यावस्था को स्मरण करते हुए जो कल्पनाएं की हैं, वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी समाज को प्रेरित करती हैं और उन वेदनाओं को संवेदनात्मक अनुभवों के रूप में भावनाओं द्वारा कविता में व्यक्त करते हैं।

"मारा बालपन साथे एक झाड़ सुहाई रह्यूं छे
हूं चित्रकार नथी तेनो अक्ससो मने यादतो करी न हती
नवी रेखाओंनी मान्यतां छे ऐ।"

('एक झाड़', 'समग्र कविता', पृ. १३७)

कवि बताते हैं कि एक चित्रकार सुंदर रेखाओं को रंगों से जीवंत करता है। यह सुंदरता शायद जोश में कोई चित्रकार न हो पाने की असमर्थता प्रकट करती है। एक मानवतावादी दृष्टि से आंतरिक भावनाएं जोड़ने वाली बहुत ही गहरी बात है। इस कविता में प्रकृति प्रेम प्रकट होता है।

'सप्तपदी' काव्यसंग्रह की अंतिम कविता 'पंखीलोक' है। १५१ पंक्तियों की इस दीर्घ कविता में कवि ने पानी, पंछी तथा जीवसृष्टि और प्राकृतिक तत्वों का सुंदर वर्णन प्रस्तुत किया है।

"कण जो आंख होए तो शब्द एने प्रकाश लागे"

('पंखीलोक', 'समग्र कविता', पृ. १९५)

"आंख जो कण होए तो रेखा-रेखा ए सांभळी शके।
उजालो रंग ए करे सूर ?"

('पंखीलोक', 'समग्र कविता', पृ. २००)

यहाँ, जहां-जहां फूलों का वर्णन है, वहाँ कवि ने पंखीलोक और प्रकृति का सुंदर रूप में वर्णन किया है। इस प्रकार कवि उमाशंकर जोशी ने विभिन्न काव्यसंग्रहों में प्रकृति निरूपण की विविध विधाओं को स्पर्श किया है। निसर्ग को गहराई से समझने वाले कवि उमाशंकर जोशी के काव्यसंग्रहों में प्रकृति निरूपण ने उनके साहित्यिक सृजन में अनेक रंगों को पूरी तरह प्रस्तुत किया है। यह विषय विविध दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

''वैदेहीचरितम्'' (महाकाव्य) के मार्मिक अंश

भरत सिंह भारती

संस्कृत विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध-गया

सारांश

वैदेहीचरितम्' विद्यावाचस्पतिरामचन्द्र मिश्र द्वारा रचित आधुनिककालीन संस्कृत-महाकाव्य है। इसमें जनकात्मजा सीता के चरित्र के उन-उन अंशों का प्रमुखता से उद्घाटन महाकवि का अभीष्ट रहा है, जिन अंशों पर आदिकवि वाल्मीकि एवं रामकथा के अन्य संस्कृत-प्रणेताओं ने अपेक्षाकृत कम अवधान दिया है। वैदेही को प्रकट करनेवाली मिथिलाभूमि की प्राकृतिक छटा एवं उसके अकूत वैभव का वर्णन, जनकपुर, अयोध्या और वन में रहती हुई सीता की जीवन-चर्या का वर्णन, विपत्तियों के आने पर सीता के मन में उत्पन्न विविध भावों का वर्णन, कोसलपति राम द्वारा गर्भवती सीता का त्याग कर उन्हें वन में भेज देने पर राम के प्रति सीता के मन में उत्पन्न भावों का वर्णन एवं सीता के भू-प्रवेश का वर्णन आदि रामकथा के ऐसे ही प्रमुख स्थल हैं। 'वैदेहीचरितम्' के मार्मिक स्थलों में सीता-स्वयंवर के समय कोमल कलेवरयुक्त राम के द्वारा धनुष चढ़ाने के अवसर पर जनक और जानकी के मन में उत्पन्न भावों का वर्णन, ब्राह्मण वेशधारी रावण के द्वारा अपहृत सीता के विलाप का वर्णन एवं इन सबसे अधिक राजा राम के द्वारा ससत्त्वा सीता का त्याग कर उन्हें वन में भेज दिये जाने एवं राजा राम के अश्वमेध के अश्व को कुश और लव के द्वारा पकड़ लिये जाने के उपरान्त पुत्रों को सान्त्वना और सत्कर्त्तव्यों का उपदेष देकर धरती में प्रवेश करती हुई सीता के मनोभावों का वर्णन प्रमुख हैं।

प्रस्तावना

संस्कृत भाषा में आदिकवि वाल्मीकि की 'रामायण' और हिन्दी (अवधी) में गोस्वामी तुलसीदास-रचित 'रामचरितमानस'के पश्चात् इन दोनों भाषाओं में रामचरित या रामकथा से संबंधित महाकाव्य की सर्जना का साहस उक्त दोनों भाषाओं के बहुत कम कवियों/महाकवियों ने किया है। विद्यावाचस्पति रामचन्द्र मिश्र मिथिलांचल-निवासी संस्कृत के एक ऐसे ही महाकवि हैं, जिन्होंने बीसवीं सदी में संस्कृत भाषा में रामकथा की एक सर्वाधिक प्रमुख पात्र सीता के चरित्र को आधार बनाकर 'वैदेहीचरितम्' संज्ञक महाकाव्य की सर्जना की है और इसमें सीता के चरित्र से सम्बन्धित उन प्रसंगों को अपेक्षाकृत अधिक विस्तार प्रदान किया है, जिनकी ओर संस्कृत, हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में सीता-चरित पर लेखनी उठानेवाले कवियों ने या तो कम ध्यान दिया है अथवा ध्यान ही नहीं दिया है। 'वैदेहीचरितम्' के ऐसे स्थलों में मैथिली को उत्पन्न करनेवाली मिथिला के प्राकृतिक सौन्दर्य-वर्णन के स्थल, मिथिला, अयोध्या और वनवास में रहती हुई सीता की दिनचर्या के वर्णन-स्थल, वन में विपत्तियों के उपस्थित होने पर सीता के विविध भावों और चेष्टाओं के वर्णन-स्थल, राजा राम के द्वारा गर्भवती सीता को परित्यक्त कर वन में भेजने का वर्णन-स्थल एवं राजा राम के द्वारा लव-कुश को पहचान लिये जाने के उपरान्त सीता के भू-प्रवेश का वर्णन-स्थल प्रमुख हैं। यों तो कवि की सरल-सहज अभिव्यक्ति शैली के कारण पूरा महाकाव्य ही मनोरम और उत्कृष्ट है, किन्तु उनमें भी कतिपय स्थल ऐसे हैं, जो अत्यन्त भाव-विभोर कर देनेवाले और मार्मिक हैं। 'वैदेहीचरितम्' के मार्मिक स्थल का सर्वप्रथम दर्शन मिथिला के अकाल (दुर्भिक्ष)-वर्णन के प्रसंग में प्रथम अध्याय में होता है। दुर्भिक्ष की स्थिति इतनी भयावह और त्रासद है कि आकाश बादल-विहीन हो गया है, नदी और तालाब सूख गये हैं, पशुओं को घास/चारा प्राप्त नहीं हो रहा है, वृक्षों के पत्ते तक गर्मी से झुलस गये हैं, भूखे-प्यासे पथिकों को अन्न-पानी तो क्या, वृक्षों की छाया तक नसीब नहीं हो रही है, विश्वभ्भरा धरती अपने निवासियों के भरण-पोषण में अपने को असमर्थ पाकर मानो हवा के झोंके से उड़ती हुई धूलों से अपने मुख को ढ़ँक चुकी है। अनावृष्टि-जन्य दुर्भिक्ष के कारण भूखी-प्यासी जनता को देखकर राजा जनक भी झंझावात से क्षुब्ध सागर की तरह चंचल हो गये हैं। मिथिलांचल की जनता की इस मार्मिक स्थिति का वर्णन महाकवि ने इन शब्दों में किया है-

अम्भांस्यशुष्यन्सरसां नदाना-
ञ्चापेदिरे कृच्छ्रदशां वनान्ताः।
गोभिश्चरन्तीभिरपि प्रयासा-
दापेदिरे नैव तृणान्यवन्याम्।।
चण्डातपेऽन्नस्य कृते भ्रमद्भिः क्षुत्क्षामकण्ठैरधिमार्गदेशम्।
छाया तरूणामपि सन्निधाने पान्थैः प्रयत्यापि सुदुर्लभासीत।।"[1]

वैदेहीचरितम्' का अपर मार्मिक प्रसंग धनुषयज्ञ के समय उपस्थित होता है, जब बड़े-बड़े शूर-वीर भी शिवधनु को उठाने और चढ़ाने में अक्षम हो जाते हैं और महाराजा जनक के सेनापति द्वारा धरती को वीरविहीन घोषित करने पर गुरु विश्वामित्र की आज्ञा से श्री राम धनुष उठाने के लिए उद्यत होते हैं। उस समय मञ्चस्थ राजाओं की मुखकान्ति म्लान हो जाती है, अनेक राजा लज्जित होकर यज्ञ-मण्डप से बहिर्मूत हो जाते हैं, किन्तु सर्वाधिक उथल-पुथल हो

रही है वैदेही सीता के मन में, कि सम्पूर्ण कोमल अंगोंवाला यह किशोर क्या धनुष को उठा और झुका सकेगा? क्या इसके हाथों को विजय श्री मिल सकेगी? क्या कोई बालहंस मंदराचल को धारण करने में सक्षम हो सकेगा? क्या शुक का छोटा-सा नवजात आकाश में विचरण करने में सक्षम हो सकेगा? सीता के मन में उठनेवाले इन प्रश्नों के आक्षिप्त उत्तर निषेधात्मक ही हैं, किन्तु दूसरे ही क्षण, उसके मन में आशा की एक किरण भी कौंध जाती है कि क्या ठिकाना, जब विधाता अनुकूल होता है, तब असम्भव भी सम्भव हो जाता है। समवयस्का सखियाँ भी उसे किशोर श्री राम के कृतकार्य होने की बात कहकर धीरज बँधाती है। महाकवि के शब्द सीता के इन भावों को कितनी मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त करते हैं-

बालः कोऽपि मरालः किं मन्दरगिरिधारी।
अजातपक्षः शुकशिशुरथवा व्योमविहारी।।
X X X
घटयत्यभिमतमिदं मनसिकृत्यासौ कन्या।
गिरियुगलान्तरगतेव जाता रुद्धा वन्या।।
एवंविधे व्यतिकरे काले स्वल्पे व्यतियति।
काचिद्वयसासमा 'किशोरश्चपि नमयति'।।
इत्यूचे श्रुत्वैव तदाकुलदृष्टिसरोजा।
उत्कलिकावात्याभिघातसञ्चलितोरोजा।।[2]

घृत से भरे हुए कलष की रक्षा के समान जिस सीता का स्नेह और सतर्कतापूर्वक जनक-सुनयना ने लालन-पालन किया था, विवाहोपरान्त उन्हें विदा करते समय उनका ही नहीं, सीता के सम्पर्क में रहनेवाली जनकपुर के सभी नर-नारियों के हृदय स्नेहाकुल हो जाते हैं। माता सुनयना का हृदय आसन्न वियोग से विह्वल हो जाता है, तथापि ने प्रयासपूर्वक अपने आँसुओं को पोछकर एवं रुद्ध कण्ठ को खोलने का प्रयास करती हुई पुत्री सीता का समयानुकूल मार्गदर्शन करती हुई कहती हैं कि अभी तक तुम मेरे प्रति जैसी भावना रखती थी, वैसी ही भावना अब अपनी सासुओं के प्रति रखना; पैतृक सम्पत्ति स्त्रियों के लिए उसी प्रकार अल्प समय के लिए ही उपभोग्य होती है, जिस प्रकार मार्ग में पड़नेवाले वृक्षों का उपयोग; गुरुजनों और पति के सहोदर भाइयों के प्रति आदर का भाव रखना और अपने प्रियतम राम का अनुराग पाकर भी कभी घमण्ड का भाव मन में नहीं आने देना। माता की सीख जानकी चुपचाप सुनती रही, किन्तु आँसुओं से भरी हुई उसकी आँखें उसके हृदयगत भावों का स्पष्ट बयान कर रही थीं। महाकवि लिखते हैं-

''इयदवधि मयित्वं भावनां यामधार्षी
र्दशरथरमणीनां तां धनं भावयेथाः।
भवति हि रमणीना पैतृकं मार्गवर्त्ति-
द्रुमकुलमिव किञ्चित्कालमेवोपभोग्यम्।।
गुरुजनवरिवस्यामादरेणाचरन्ती
पतिभवनसमृद्धौ बध्यमानानुरागा।
अनुपधि च समस्तां बन्धुतां सोदराणां
मनसि विमृशती त्वं स्वादरं कामयेथाः।।.....''[3]

ब्राह्मण का छद्मवेश धारण करनेवाले रावण के द्वारा अपहृत सीता का विलाप-प्रसंग भी अत्यन्त कारुणिक और हृदयस्पर्शी है। रावण के रथ पर वायु-वेग से ले जायी जा रही सीता विलाप करती हुई कहती है, 'हे नाथ! कहाँ देर कर रहे हो? मैं पराधीन होकर विपत्ति में पड़ी हूँ। हे दयालु पुरुषवर! इस विपत्ति से मेरी रक्षा करो! जिन आँखों ने मृग का पीछा करते हुए आपके दर्शन किये थे, वे आँखें राक्षस-दर्शन से दूषित होकर भी नष्ट नहीं हुई, इसलिए मैं लज्जित हूँ। हे नाथ! आपके एक बार के दर्शन से मेरे सारे पाप धुल जाएँगे। जल्द आइए! विलम्ब मत कीजिए। इस विपत्ति को सहने में मैं समर्थ नहीं हूँ। इस प्रकार विलाप करती हुई रथ पर स्थित सीता चेतना-शून्य हो जाती है। महाकवि मिश्र के प्रसंगाधीन वाक्य कितने मार्मिक हैं-

क्वनु चिरयसि नाथ स्वावशाहं विपद्ये
पुरुषवर दयालो रक्ष मामापदोऽस्याः।''[4]
''सकृदपि यदि नाथ त्वां विलोके जघन्या
निखिलमपि निजाहः क्षालयामि क्षणेन।
झटिति चल, विलम्ब्यालं क्षमा नास्मि सोढू
व्यसनमिति लपन्ती सा रथस्था मुमोह।।''[5]

रामकथा का कदाचित् सबसे अधिक मार्मिक प्रसंग है गर्भवती सीता के परित्यागपूर्वक वनवास का एवं उनके भू-प्रवेश का। भद्र नाम के गुप्तचर के द्वारा सीता के सम्बंध में एक धोबी की अभद्र टिप्पणी से आहत होकर कर्त्तव्यबोध के वशीभूत राजा राम ने सीता का परित्याग किया और सच्चाई से अवगत रहने के बावजूद न्याय-रक्षा की अपेक्षा से लोकापवाद से डरकर वाल्मीकि मुनि के आश्रम के समीप वन में छोड़ देने का आदेश लक्ष्मण को दिया। वन में लक्ष्मण के मुख से राजा राम के संदेश और आदेश से अवगत होकर सीता शोक-समुद्र में डूब गयी, किन्तु धैर्य धारण कर प्रस्थानोद्यत प्रणत लक्ष्मण को आशीष देकर

राम के प्रति संदेश-स्वरूप बोली कि 'है राजन! आपकी आज्ञा से पूर्व में ही मैं अग्नि में प्रवेश कर सुपरीक्षित हो चुकी हूँ, फिर आपकी नगरी में निवास करती हुई मैं लोकापवाद का पात्र कैसे बन गयी? क्या प्रवादमात्र से राजा के द्वारा अपनी प्रजा को दु:खी करना न्यायोचित है? क्या आपके उज्ज्वल वंश का यह निर्णय स्वीकारयोग्य है? में जानती हूँ कि आप मुझे शुद्ध समझते हैं और इस लोकापवाद को मिथ्या मानते हैं, किन्तु साहस के अभाव के कारण मुझ साध्वी को त्याग कर आपने कर्त्तव्य भाव को ही प्रकट किया है। आपकी संतान का रक्षा-विषयक भार यदि बाधक न होता, तो क्या में आपसे विहीन होकर जीने की इच्छा कर सकती हूँ? प्रजाजनों के प्रिय होकर आप अपनी कीर्तिलता को दिग्दिगन्त तक प्रसृत करें, किन्तु मैं तो कलंकनित्व-दोष के साथ वन में त्यक्ता होकर प्रजा होने के अधिकार से भी वंचित कर दी गयी।[6] अनन्तर सीता ने बाल्मीकि-आश्रम में समयानुसार दिव्यस्वरूप कुश और लव को जन्म दिया। महर्षि वाल्मीकि की देखरेख में दोनों अस्त्र-शस्त्र-सहित सम्पूर्ण विद्याओं में निष्णात हो गये। उनकी वीरता की गाथा अश्वमेध यज्ञ के अश्व की रक्षा में सन्नद्ध सैनिकों के अयोध्या लौटने पर, महाराज श्री राम ने भी सुनी और उन्हें विश्वास हो गया कि जानकी की सन्तान के अतिरिक्त किसी दूसरे में मेरी सेना को रोकने की शक्ति ही नहीं है। अश्वमेध यज्ञ की पूर्णाहुति पर अगस्त्य ऋषि के संकेत पर महर्षि वाल्मीकि ने अपने दोनों शिष्यों-कुश और लव -को रामायणगायन का आदेश दिया। बालक-युगल के मधुर कण्ठों से रामकथा सुनकर सारी सभा भाव-विभोर हो गयी। महाराजा राम तो सीता-वनवास-सम्बन्धी अपने कृत्य को याद कर पश्चाताप; लज्जा और दु:ख से भर गये, इसलिए कथागायन बन्द कर दिया गया। वहाँ से लौटे हुए तपस्वियों के मुख से अपने पति के दु:खी हो जाने का समाचार सुनकर सीता अतिशय कष्ट का अनुभव करने लगी। वह सोचने लगी कि मेरे अपवाद को वृथा जानते हुए भी प्रियतम लोकनाथ मुझे त्यागकर भी सुखी नहीं हुए। पतिदु:खदायिनी होकर मैं जीवित हूँ, मेरे जीवन को धिक्कार है। जबतक मैं जिन्दा रहूँगी, अपने को कलंक से मुक्त नहीं कर सकूँगी-

"जीवामि यावन्न ततो व्यलीका
न्नाथं निजं मोचयितुं क्षमिष्ये।"[7]

इधर राजा राम अपनी भूलों पर विषन्न होते हुए जब दोनों पुत्रों सहित सीता को वापस लाने के उद्देश्य से वाल्मीकि-आश्रम में पहुँचे, तो सीता को लगा कि अब तो मुझे इस रूप में देखकर श्री राम पुन: दु:खी होंगे। इसलिए उसने दोनो पुत्रों को बुलाकर, दुलारकर, आश्वस्त कर और समझा कर आदेश दिया कि आज राजा राम वन में आ रहे हैं। वे तुम दोनों के पिता और सम्पूर्ण पृथ्वी पर वन्दनीय हैं। तुम दोनों पुत्र उनके चरणों में प्रणाम करना और मुझे मरने के उपरान्त भी याद करते रहना-

"आयाति राजा वनमद्य तात:
स वाम शेषावनिवन्दनीय:।
वत्सौ युवां तत्पदयोर्नमेतं
किञ्च प्रमीतामपि मां स्मरेतम्"[8]

सीता दोनों पुत्रों को आदेश देकर महाप्रयाण के उद्देश्य से एकान्त में जाकर समाधिस्थ बुद्धि से बोली कि 'है माँ! इस संसार में अनन्य प्रतिमा क्षमा की मूर्ति तुम ही हो। 'क्षमा'नाम से प्रसिद्ध तुम, अपनी इस बेटी को दयार्द्र होकर क्षमा करना। जन्मान्तरीय संचित अपने पाप से मैंने बहुत कष्ट का अनुभव किया। लोकापवाद रूप अग्निशिखा के स्वरूप में स्थित मेरे पाप से राघव भी जलते रहे। सम्पूर्ण सौजन्य गुणराशि एवं संसार के कल्याणार्थ अवतार धारण करनेवाले अपने दामाद श्री राम को भी, जो मेरे ही कारण दु:खी हैं, क्षमा करना। शरीर से, वचन से और मन से भी या दूसरे जन्म में भी यदि मेरा अनुराग परपुरुष में रहा है, तो है माँ! मुझ पापिनी को तुम दण्डित करो। हे अम्ब! यदि तू मुझे एक पतिनिष्ठ, शुद्ध और अपनी गोद में ग्रहण करने योग्य समझती है तो अविलम्ब अपनी इस पुत्री को धारण करो-

"तात: क्षमामूर्त्तिरसि त्वमेव
जगत्यनन्यप्रतिमा क्षमेति।
नाम्नाप्रसिद्धा त्वमिमां स्वकीयां
सुतामुदञ्चत्करुणा क्षमेथा :।।
\- - - - - - - - -
अनन्यभाजं यदि मामवैषि
शुद्धां निजांकग्रहणापयुक्ताम्।
सद्यस्तदुद्भूय धरान्तरालाद्
गृहाण मामम्ब निजां तनूजाम्।।"[9]

इतना कहकर सीता अधोमुख होकर ज्यों ही धरती का स्पर्ष करती है, पृथ्वी से जलती हुई अग्न के समान एक ज्योति निकलती है और सीता को भुजा से उठाकर सबको विस्मित करती हुई लुप्त हो जाती है। दु:खों से भरी कथाओं की मूर्त्ति, पति को प्राण माननेवाली पवित्र व्रतवाली सीता जिस पृथ्वी से उत्पन्न हुई थी, उसी में विलीन हो गयी।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महाकवि पं. रामचन्द्र मिश्र-प्रणीत 'वैदेहीचरितम्' अनेक मार्मिक स्थलों से युक्त हैं और प्रसिद्ध आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, यह उनकी महत्ता, भावुकता और लोकप्रियता का प्रमाण भी है।

निष्कर्ष

'वैदेहीचरितम्' आधुनिककालीन रामकथा का एक उल्लेखनीय संस्कृत-महाकाव्य है। इसके रचयिता विद्यावाचस्पति रामचन्द्र मिश्र ने इसमें राम-कथा के मार्मिक प्रसंगों को मौलिकता और उत्तमता के साथ प्रस्तुत किया है। यह कृति इस अर्थ में भी उल्लेखनीय है कि इसमें राम-कथा की सीता-जैसी सुसंस्कृत और अनन्य पतिव्रता के चरित्र के द्वारा उन प्रसंगों और प्रश्नों को भी सामने लाने का काम किया गया है, जो नारी के प्रति होनेवाले अन्यायों के विरुद्ध आवाज उठाने की प्रेरणा देते हैं। विशेष रूप से लंका-विजय के उपरान्त श्री राम द्वारा ली गयी अग्नि-परीक्षा में शुद्ध साबित हो चुकी सीता को, महज लोकापवाद के भय से निर्वासित कर वन-वन भटकने के लिए छोड़ देने के प्रसंग में महाकवि ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक सीता के द्वारा, महर्षि वाल्मीकि के द्वारा और स्वयं राजा राम के द्वारा सीता के प्रति हुए अन्याय को स्वीकार कराया है। रामकथा के निष्पक्ष पाठकों को, विशेष रूप से सीता की जन्मधरती मिथिला के निष्पक्ष पाठकों और राम-कथा-विशेषज्ञों को ससत्त्वा सीता का निर्वासन सर्वथा अनुचित प्रतीत होता रहा है और यह प्रसंग श्रीराम के मर्यादा पुरुषोत्तमत्व को भी मर्यादित करनेवाला प्रतीत होता है। 'वैदेहीचरितम्' के राम स्वयं अपनी उस भूल का सुधार पश्चाताप एवं दोनों पुत्रों-सहित सीता को अयोध्या वापस लाकर करना चाहते हैं, किन्तु तब तक बहुत देर हो चुकी होती है और श्रीराम अपने उत्तम चरित्र के इस कृष्ण-पक्ष को शुक्ल करने में सक्षम नहीं हो पाते हैं। आधुनिक स्त्री-विमर्श की दृष्टि से भी यह कृति उल्लेखनीय है।

सन्दर्भ

1. विद्यावाचस्पति रामचन्द्र मिश्रः 'वैदेहीचरितम्', प्रकाशक- का0 सिं0 द0 संस्कृत-विश्वविद्यालय, दरभंगा प्रकाशन वर्ष-1985 ई0, प्रथम सर्ग, श्लोक सं0-48-49
2. उपरिवत्, तृतीय सर्ग, श्लोक सं0-34
3. उपरिवत्, चतुर्थ सर्ग, श्लोक सं0-40-41
4. उपरिवत्, षष्ठ सर्ग, श्लोक सं0-7
5. उपरिवत्, षष्ठ सर्ग, श्लोक सं0-9
6. द्रष्टव्यः उपरिवत्, अष्टम सर्ग, श्लोक सं0-24-32
7. उपरिवत्, दशम सर्ग, श्लोक सं0-6
8. उपरिवत्, दशम सर्ग, श्लोक सं0-33
9. उपरिवत्, दशम सर्ग, श्लोक सं0-36 एवं 41

''सूरदास के काव्य में राधा का स्वरूप''

डॉ० सुनीता यादव

सहायक प्राध्यापक एवं प्रभारी प्राचार्य, शासकीय स्नातक महाविद्यालय, गोपालपुर, जिला सीहोर, म.प्र.

सूर द्वारा चित्रित राधा के स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि श्रीमद्भागवत में कृष्ण की सर्वाधिक प्रिय सखी के रूप में राधा का उल्लेख नहीं मिलता। राधा का उल्लेख गाथा सप्तशती और पंचतंत्र में अवश्य मिलता है। किन्तु इन कृतियों में उसके जीवन की घटनाओं का चित्रण नहीं मिलता। जहाँ तक भागवत का सम्बन्ध है उसके सम्बंध में मात्र यह वाक्य मिलता है- 'अनयाराधितो नूनम्' किन्तु इस उल्लेख से राधा के संबंध में कोई ज्ञान नहीं होता। ब्रह्मवैवर्तपुराण के उळारखण्ड में राधा का जो श्रृंगारी वर्णन मिलता हैं, उसे कतिपय विद्वान प्रक्षिप्त स्वीकार करते है। हाँ बारहवी शताब्दी में वैष्णव-धर्म के अंतर्गत राधा का भावात्मक स्वरूप पूर्णत: विकसित हो चुका था। सूरदास से पूर्व विद्यापति और चण्डीदास भी राधा-कृष्ण की श्रृंगार लीलाओं का गान कर चुके थे। अत: सूर के राधा वर्णन पर ब्रह्मवैवर्तपुराण का विशेष प्रभाव होते हुए भी, उन पर जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास के भी राधा विषयक भावों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

सूर की राधा:- राधा सूरसागर अथवा कृष्ण-चरित्र की प्रधान नायिका है। राधा से कृष्ण का परिचय उस समय होता है, जब वे मौस-चक डोरी खेलने के लिए घर से बाहर निकले। अचानक ही समवयस्क बालिकाओं के साथ वहॉ कृष्ण की निगह पड़ जाती है। विशाल-नेत्र, मस्तक पर रौली का टीका, पीठ की सज्जा। श्याम को दृष्टि पड़ी, आँखों से औखे मिली और ठंगोरी पड़ गई। कृष्ण मुग्ध को गए, जैसे किसी ने जादू कर दिया हो।

''औचक ही देखी तहँ राधा नैन बिसाल भाल दिए रोरी।''

कृष्ण की बाल सखी:-

नीलवस्त्रों में वेष्टित गोरांगाना राधा की मनोहर छवि पर कृष्ण एकदम ही रीझकर उससे पूछ उठते हैं-

''बूझत श्याम कौन नू गोरी।
कहॉ रहति काकी है छोरी, देखि नहीं कबहुं ब्रज खोरी।''

राधा अपना जो परिचय देती है उसमें कृष्ण के प्रति यह उपालंभ भी विद्यमान है कि-

'सुनति रहति स्रवनन नंन ढोटा करत रहत मखन दधि चोरी'

किन्तु चतुर कृष्ण भोली राधा को इस प्रकार की बातों में लगाकर अपने साथ खेलने को सहमत कर लेते हैं कि-

तुम्यौ कहा चोरि हम लैहे खेलन चलो संग मिलि गोरी।

इस आरम्भिक परिचय के पश्चात् कृष्ण और राधा का प्रेम भाव निरूतर प्रगाढ़ होता जाता है और राधा तरह-तरह के बहानों द्वारा कृष्ण से मिलने जाती रहती है, और उस नागर के साथ नागरी बन गई।

''सूर श्याम नागर नागरि सों करत प्रेम की बातें।''

नन्दबाबा की साथ-साथ खेलने की अनुमति मिलने पर तो उसका दिल और भी खुल गया और कृष्ण पर अधिकार भी जमाने लगी। इसके पश्चात् सूर ने श्याम-श्याम की गुप्त-लीला का वर्णन किया है। कृष्ण के साथ रति-विलास के पश्चात् जब राधा घर पर लौटी तो माता ने समझा कि शायद उसे 'दीठि' लग गई है। राधा ने कृष्ण-नाम कथा गढ़कर अपनी माँ को सान्त्वना दे दी और यह भी बता दिया कि नन्द का बेटा श्याम झाड़-फूँक में बड़ा चतुर है। यशोदा के यहॉ आने-जाने का भी राधा ने बहाना बना लिया, सुन्दरी तो भी ही यशोदा को बड़ी अच्छी लगी और यशोदा सूर्य भगवान को मनाने लगी कि श्याम और राधा की अच्छी जोट मिलेगी अब राधा और कृष्ण एक-दूसरे के प्रेम में फॅसे हुए है, दोनों का हृदय एक-दूसरे से लगा हुआ है, उल्टे-सीधे काम करते हैं। यशोदा भी उनके हाल को देखकर राधा को उलाहने देती है, परन्तु राधा स्पष्ट कह देती है कि तू अपने पुत्र को क्यों नहीं रोकती, वे ही तो कहते हैं कि तुझे देखे बिना मेरे प्राण नहीं रहते, मुझे तो उन पर दया आती है, इसलिए आती हूँ। कभी वह अपने मोती-माला टूटने जाने का बहाना करती है तो कभी नाग द्वारा डस लिए जाने का।

राधा का दूसरा रूप परकीया भाव से चित्रित हुआ है, परकीया रूप में नहीं। अब राधा की प्रेम की गम्भीरता में अवगाहन करने लगी है और जैसे-जैस प्रेम गम्भीर होता जाता हैं, वैसे-वैसे ही उसकी निपुणता भी गम्भीर होती जाती थी। गोपियॉ उसकी चतुराई को भाँप लेती है और श्याम को दोष लगाती हैं इधर 'कूल की कानि' और उधर प्रियतम का प्रेम और तिस का मर्यादा का पालन करने के लिए प्रियतम का आदेश ''लोक-लाज कुल कानि न तजिये, जातै भलौ कहै सब कोई।''

बेचारी राधा बड़े असमस्जय में पड़ी।

वे कुंजों के एकांत में भी मिलने लगते है। जब उनके प्रेम का उपहार होने लगता है और राधा इस संबंध में कृष्ण का ध्यान आकृष्ट करती है, तो कृष्ण राधा को प्रकृति और स्वयं को पुरूष बताते हैं, तो उसके पश्चात् राधा की सभी प्रकार की चिन्ताएँ मिट जाती हे। राधा जब कृष्ण से यह कहती हैं कि:-

''तुम सौ कहा कहौं सुन्दर घन

या ब्रज में उपहास चलत हैं, सुनि-सुनि स्रवन रहित मन ही मन''

इस पर कृष्ण उन्हें अपने सम्बन्ध का यह रहस्य उद्घाटित करते हैं कि ब्रज में बसकर तुम हमारे सनातन सम्बन्ध को भूल गई हो:-

''ब्रजहि बसै आपुहिं बिसरायौं।

प्रकृति पुरूष एकहिं करि जानहु बातिन भेद करायौ।

जल-थल जहॉ रहौ तुम बिनु नाहि, वेद उपनिष्सद गायौ।

है-तन जीव एक हम दोऊ, सुख कारन उपजायौ।

सूर श्याम मुख देखि अलज हैसि, आनंद पुंज बड़ायौ।।''

जब राधा की कृष्ण के साथ अपने इस अटूट सम्बन्ध का परिचय हो जाता है तो उनका लोक लज्जादि का भय सर्वथा मिट जाता है।

''तब नागरि मन हरण भई।

नेह पुरातन जानि श्याम को, अति आनंद भई।

सूरदास प्रभु की यह महिमा, मातै बिवस भई।''

इसके पश्चात् राधा और कृष्ण तनमन से एक हो जाते है, तो राधा अपनी कृष्ण-विषयक प्रीति को छिपाती रहती है और अपनी सखियों के पूछती है-

''श्याम कौन कारे की गोरे।

कहॉ रहत काके, मैं ढ़ोटा, वृद्ध तरून की कौं है भोरे।

रहैई रहत कि और गाउँ कहुँ, मैं देखें नाहिमं कहु उनको।''

सूर की राधा का बीसर स्वरूप स्वकीया भाव का है। जब राधा मानवती और गौरवशालिनी के रूप में चित्रित की गई है, परन्तु कृष्ण बहुनायक के रूप में दिखाये गये हैं। राधा के विषय में कृष्ण को प्रियतम का रूप दिया है और दम्पत्ति बिहार का वर्णन कर के कवि ने राधा के मान का विशद वर्णन किया है।

पहली बार का मान तो साधारण सा ही हैं, क्योंकि राधा सखियों द्वारा श्याम को वश में करने की प्रशंसा से प्रभावित होकर मान करती है, परन्तु जब कृष्ण आकर लौट जाते हैं, तो उसका मान कपूर की भाँति उड़ जाता है। और वह अपने अंहकार जन्य अपराध का अनुभव कर परम विहवल हो जाती है। जब ललिता दूती बनकर कृष्ण को मनाने जाती है और राधा की विहर दशा के साथ उनके रूप की प्रशंसा करती है तो कृष्ण आकर उसे हृदय से लगा कर उसका विहरताप शान्त करते हैं।

राधा की बड़ी मान लीला बहुत विकट है, अब की बार उसे कृष्ण के पर टह गमन का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया। वह सखियों के साथ यमुना-स्नान के लिए निकली और जब अकस्मात् उसी सखी को बुलाने के लिए जा पहुँची, जिसके हृदय में मोहन अपनी रसमई कलियों से आनन्द की हिलोरे उठा रहे थे। जैसे ही वे उसके घर से निकले, राधा से भेंट हो गई। इससे अधिक और क्या प्रमाण चाहियें ? राधा को मनाने के सभी उपाय व्यर्थ गए, न वह अपनी प्रशंसा सुनकर रोझती है और न कृष्ण की दीन दशा से पसीजती है, वर्षा-ऋतु, मन्दना तथा प्रकृति सौन्दर्य कोई उसकी खीझ को दूर नहीं कर पाता। कृष्ण स्वयं दूती का वैष बना कर जाते है, परन्तु राधा फिर भी क्यों मानने लगी मानिनी राधिका का मान बड़ा दृढ़ हैं, चाहे स्वर्ग डोल जाए, सुर और सुरपति समेत सुमेरू डिग जाय, रात्रि में रवि उदित हो जाये, दिन में निशाकर उदित हो जाये, नक्षत्र हिल उठें, सिन्धु मर्यादा त्याग दे, धरा अधीर हो उलट जाय, बन्ध्या पुत्रवती हो जाय, शुष्क काष्ठ लहलह उठे, विफल तरू फलने-फूलने लगे, बादलों के बिना ही वर्षा होने लगे और अचल चलायमान हो जाये, पर राधा का मान-भंग नहीं होने वाला है।

अन्त में कृष्ण को एक उपाय सूझा उन्होंने एक मणि-दर्पण राधा के सामने लाकर रख दिया और स्वयं पीछे खड़े हो गये, प्रतिबिन्ब में दोनों के नेत्र मिल गये, राधा का चेहरा खिल गया और उसे निश्चय हो गया कि कृष्ण का बहुनायकत्व तो दिखाने भर का है।

महारास के अवसर पर राधा को भी जब यह अहंकार हो जाता है कि कृष्ण मेरे सर्वथा वशीभूत हैं, और वे उनसे कंधे पर चढ़ने का आग्रह करने लगती है-

तब नागरि जिय वर्ग बढ़ायौ।

मौ समान तिय और नहि कोऊ गिरिधर मैं ही वस करिपायौ।

.....X.....X.....

सूर श्याम गाहि कंठ रही तिय, कंथ चढ़ौ यह वचन सुनायौ।

राधा के हृदय में गर्व या अहंकार की यह भावना उत्पन्न होते देखकर कृष्ण मुस्करा उठते हैं, और राधा के गर्व का दलन करने के लिए अंतर्ध्यान हो जाते हैं-

''तिया-वचन सुनि गर्व के पिय मन मुसुकाने।
मैं अवगति, आज, अकल हौ, यह मरम न पायौ।
.....X.....X.....
सूरज प्रभू अंतर भए, संग तैं तजि प्यारी।
जहाँ की तहै ठाढ़ी रही, वह घोष कुमारी।

हाँ, जब राधा यह कहकर पश्चाताप करने लगती हैं कि

''कृपा सिधु हरिकृपा करौ हो।
अनजाने मान गर्व बढ़ायौ, सोजिनि हृदय धरौ हो।
.....X.....X.....
सूरदास अब दरशन दीजै, चूक लई इनि मानि।''

तो कृष्ण प्रकट होकर उनके मनस्ताप को दूर कर देते है। सूर ने राधा और कृष्ण की मध्यम तथा बड़ी मानलीलाओं का भी चित्रण किया है। बड़ी मानलीला के अंतर्गत सूर ने राधा के वियोग में कृष्ण की बड़ी बुरी दशा हो जाने का चित्रण किया है-

''श्याम नारि के विरह करे।
कबहुक बैठत ब्रज द्रुमनि तर, कब हुकै रहत खरे।
.....X.....X.....
सूर स्याम ऐसी गति भीतर, आई इति का दौरी।''

हाँ, अंततः राधा मान-भाव का परित्याग कर देती है और

''संग राजित ब्रषभान कुमारी
कुंज सदन कुसुमनि सेज्या पर दम्पति सोभा भारी।''

सूर ने राधा और कृष्ण की बसन्त ऋतु के प्रसंग में झूला-झूलाते भी चित्रित किया है-

''निरखि दम्पति अंग सोभा लजत कोटि अनंग।''

राधा का अन्तिम चित्र 'वियोगनी राधा' का हैं, इस रूप में राधा का दर्शन सूर ने बहुत ही कम कराया है। परमोच्च अवस्था पर पहुँची हुई राधा का कृष्ण-प्रेम अन्तर्मुख हो गया है। इस वियोग-काल में सूर ने जब भी राधा को देखा तभी वह गम्भीर प्रेम की एक दयनीय मूर्ति के रूप में दीख पड़ी। कृष्ण को मथुरा पहुँचाकर नन्द जब लौटकर आये, उस समय के यशोदा और गोपियों के वियोग-विलाप का सूर ने बड़ा ही मर्म-स्पर्शी विस्तृत-मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है। बहुत देर के पश्चात् कवि को राधा की भी याद आई और विरहिणी राधा सर्व प्रथम गम्भीर सोच में मग्न, नीचासिर किये हुए, नख से हरि का चित्र बनाती हुई दिखाई गई हैं, पर क्या वियोगिनी राधा अपने प्रियतम का चित्र बना सकती हैं? बिना माधव के राधा की स्थिति विचित्र है। अब तक अंग प्रत्यंग सौन्दर्य के उपमान थें, अब उपमेय भी न रहे। सूर ने राधा की बड़ ही दयनीय दशा का चित्रण किया हैं, जैसे-

अति मलीन-व्रष भानु कुमारी।
हरि सम जब अंतर ननु भी जौ तो लालच न धुवावतिं सारी।''

इसके पश्चात् तो कृष्ण मथुरा को भी छोड़कर द्वारिका चले जाते हैं, तो राधा और कृष्ण के मिलन की सभी संभावनाएँ समाप्त हो जाती है। हाँ, जब कृष्ण कुरूक्षेत्र में स्नान करने आते हैं, तो वहाँ वे ब्रजवासियों को भी बुलाते है। इस अवसर पर हुई उनकी भेंट का चित्रण करते हुए सूर ने लिखा है-

''राधा माधव भेंट भई।
राधा माधव, माधव राधा, कीट भृंग गति है जु गई।
.....X.....X.....
सूरदास प्रभू राधा माधव ब्रज-बिहार नित नई-नई।''

इस मिलन के अवसर पर राधा की ठगी-सी मनोदशा का मार्मिक चित्रण करते हुए सूर ने उनसे यह उद्‌गार व्यक्त कराए है।

''करत कछु नाहीं आजु बनी।
हरि आर्य हो रही ठनी,-सी जैसे चित्र बनी।''

कुरूक्षेत्र में रूकमणी ने कृष्ण से पूछा, हे हरि, तुम्हारी ब्रजभानु किशोरी कौन सी है ? कृष्ण को पुरानी प्रीति की स्मृति आ गई और कण्ठ अवरूद्ध हो गया। राधा भी सामने ही थी, उसकी चितमन को देखते ही रूकमणी को अपने प्रश्न का उळार मिल गया और वे राधा से इस प्रकार मिल जैसे-

''बहुत दिनन ते बिछुरी एक बाप की बेटी।''

अंत में कवि ने राधा-माधव का अन्तिम महा-मिलन कराया है-इस प्रकार सूर के चित्रण में हमें सच्ची प्रेमिका का चित्रण मिल जाता है जो विरह की असह ज्वाला में जलती है, पर उफ तक नहीं करती, जिसका त्याग हिमाद्रि से भी उच्च हैं, परन्तु नम्रता के कारण झुका हुआ, जिसकी कर्ळाव्य-भावना प्रस्तर से भी अधिक कठोर है और हृदय नवनीतम् कोमल, जिसे माखन प्रिय नवनीत-चोर कृष्ण ने हँसते-खेलते ही चुरा लिया।

सूर की राधा में विद्यापति, जयदेव, चण्डीदास और ब्रह्मवैवर्त्य पुराण की राधा की विशेषताएँ संहित हो गई है और उन सब के ऊपर स्वाभाविकता और मनोवैज्ञानिकता के स्वांणिम् वर्ण से सूर ने अपनी राधा को ऐसा रूप दिया, कि उनसे पहले के राधा के सभी चित्र फीके पड़ गये।

पराशक्ति

सूरदास ने राधा के पराशक्ति रूप की ओर भी बार-बार संकेत दिया है। राधा कृष्ण की शाश्वत प्रिया है, उनका प्रेम पुरातन और सनातन है। राधा जगत-जननी और जगदीशप्रिया है। वे 'सेस, महेश, गनेश, शुक नारद' आदि की स्वामिनी है, 'रमा, उमा, राची और अरूंधति' आदि से श्रेष्ठ है। कृष्ण की भक्ति की उपलब्धि के लिए राधा के चरणों में अनुरक्ति आवश्यक है, राधा का अनुग्रह अनिवार्य है। राधा भक्तों की स्वामिनी और मंगलदायिनी है:

सेस, महेश, गनेस, सुकादिक, नारदाहि की स्वामिनि।

.....X.....X.....

सहज माधुरी अंग अंग प्रति, सुबस किये ब्रज धनी।
अखिल लोक लोकेस विलोकत, सब लोकनि के गनी।

.....X.....X.....

रमा, उमा, अच सखी, अइंखति, दिन प्रति देखन आवै।
निरखि, कुसुमगन बरखत सुरगन, प्रेम मुदित जस गावै।
अयतिनि की गति, भक्तनि की पति राधा मंगलरानी।
असरज सरनी, भय भय हरनी, वेद, पुरान बखानी।
रसना एक नहीं सत कोटिक, सोभा अमित बपार।
कृष्ण भक्ति दीजै श्रीराधे सूरदास बलिहार। (1673)

लोकजीवन में प्रादुर्भूत, लोकगीतों के नैसंगिक परिवेश में पत्नी ओर संस्कृत तक लोकभाषाओं के गीतकाव्य में विकसित राधा पहले से ही लोकप्रिय थी, लेकिन सूरदास की सघन प्रेमानुभूति की स्वच्छंद अभिव्यक्ति से विनिर्मित और शास्त्रीय संगीत की कलात्मकता तथा लोकगीत की सहजता से सुसज्जित राधा का विस्तृत गीतिकाव्यात्मक चरित्र विशेष रूप से जनजीवन और कला-जगत में लोकप्रिय हो गया। सूरदास की राधा में तंत्रों की शक्ति और सांख्य की प्रकृति के तत्व है। पुराणों की पराशक्ति, गीतगोविंद की विलासवती प्रगल्भा, मायालक्ष्मी की विशालाक्षी आभीर कन्या, नरसी मेहता की रतिसज्ञा राही, चंदीदास की प्रेम उन्मादिनी कानुराई, आलवारों की कृष्णलीला सहचरी नाण्पिन्नाई, तुकाराम की आत्मरूपिणी रखुमाई और विद्यापति की कृष्णकामना मूर्ति 'राधा के संयोग से ही सूर की राधा का स्वरूप निर्मित है, किन्तु राधा का अनुरागमयी बालिका, प्रेममयी किशोरी, रसमयी कामिनी और परमवियोगिनी स्वकीया का मनोहर रूप सूरदास की काव्यसाधना और सर्वनात्मक प्रतिभा का मौलिक उपलब्धि है।

निष्कर्ष:-

राधा के विषय में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने दो प्रकार के अनुमान किये हैं-

(1) राधा आभीर जाति की प्रेम देवी रही होगी, जिसका संबंध बालकृष्ण से रहा होगा। आरम्भ में केवल बालकृष्ण का वसुदेव व कृष्ण से एकीकरण हुआ होगा, इसलिए आर्य ग्रन्थों में राधा का नामोल्लेख नहीं है। पीछे से जब बालकृष्ण की ही प्रधानता रही होगी तो इस बालक देवता की सारी बातें अहीरों से ले ली गई होगी, और इस प्रकार राधा की प्रधानता हो गई होगी।

(2) दूसरा अनुमान यह किया जा सकता है कि राधा इसी देश की किसी आर्य-पूर्व जाति की प्रेम-देवी रही होगी। बाद में आर्यो में इसकी प्रधानता हो गई होगी और कृष्ण के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ दिया गया होगा।

इस प्रकार हमने देखा है कि-

(1) चरित्र-चित्रण और भावाभिण्यञजन में सूरदास जी ने भागवत का आधार न लेकर पूर्ण रूप से मौलिकता दिखाई है और कृष्ण चरित्र की मनोवैज्ञानिक रूप से विविध् अवस्थाओं और परिस्थितियों में चित्रित करके एक नूतन मौलिक प्रबन्ध के रूप में उपस्थित किया है।

(2) प्रेम-भक्ति के अनुभूति क्रम में विकास जितनी सुन्दरता से सूर ने अपने 'सूरसागर' में दिखाया है, वैसा श्रीमद्भागवत् में नहीं। राधा का चरित्र इस प्रेम भक्ति के भाव से ओत-प्रोत है।

(3) सूरदास की गोपियॉ भी अपनी पृथक सृष्टि है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरदास ने राधा को भक्ति के क्षेत्र में अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक उत्कृष्टता पूर्वक प्रतिष्टित किया है।

संदर्भ ग्रंथ:-

(1) सूरसागर सम्पादक - श्याम सुन्दर दास।
(2) भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य - मैनेजर पाण्डेय-वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
(3) प्रज्ञाचक्षु सूरदास - प्रो. कल्याणम लोढ़ा, डॉ. शिवनारायण खन्ना, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
(4) सूर साहित्य - हजारी प्रसाद द्विवेदी।
(5) सूर की सौंदर्य चेतना - एस.टी. नरसिंहाचारी - राधा कृष्ण प्रकाशन।

सामाजिक विज्ञान अनुसंधान में ज्ञानमीमांसासंबंधी बहसः मात्रात्मक और गुणात्मक विश्लेषण

Epistemology in Social Science Research Debate Concerning: Quantitative and Qualitative Analysis

अपराजिता द्विवेदी

ज्ञानमीमांसा, दर्शनशास्त्र की वह शाखा है जो मानव ज्ञान की प्रकृति, उत्पत्ति और सीमाओं से संबंधित है। यह विधिपरकता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।[1] यह उन बुनियादी प्रश्नों को संबोधित करती है कि हम जो जानते हैं उसे कैसे जानते हैं और विभिन्न ज्ञान प्राप्ति विधियों की वैधता और विश्वसनीयता की जांच करती है। इस संदर्भ में, दो प्रमुख दृष्टिकोणों के बीच एक महत्वपूर्ण बहस होती है: मात्रात्मक और गुणात्मक विश्लेषण। ये दृष्टिकोण दुनिया को समझने के अलग-अलग रास्ते पेश करते हैं, जिनके अपने सिद्धांत, ताकत और सीमाएँ हैं।

मात्रात्मक विश्लेषण का आधार वस्तुनिष्ठता है, जो मानता है कि एक वस्तुनिष्ठ वास्तविकता है जिसे अनुभवजन्य अवलोकन और तार्किक विश्लेषण के माध्यम से मापा और समझा जा सकता है।[2] यह दृष्टिकोण भारी मात्रा में संख्यात्मक डेटा और सांख्यिकीय विधियों पर निर्भर करता है, जिसका उद्देश्य पैटर्न की पहचान करना, परिकल्पनाओं का परीक्षण करना और सामान्यीकृत तथ्यों की स्थापना करना है। मात्रात्मक अनुसंधान अक्सर सर्वेक्षण, प्रयोग, और संख्यात्मक मॉडलिंग जैसी संरचित कार्यप्रणालियों द्वारा विशेषता होता है, जो विश्वसनीय और पुनरावृत्त परिणाम उत्पन्न करने की सुविधा प्रदान करते हैं।

इसके विपरीत, गुणात्मक विश्लेषण व्याख्यात्मकता के साथ संरेखित होता है, जो वास्तविकता की व्यक्तिपरक प्रकृति और उन लोगों के दृष्टिकोण से मानव अनुभवों को समझने के महत्व पर जोर देता है। यह दृष्टिकोण सामाजिक घटनाओं की गहराई और जटिलता को खोजने पर ध्यान केंद्रित करता है, अक्सर समृद्ध, कथात्मक डेटा के माध्यम से। साक्षात्कार, नृवंशविज्ञान अध्ययन और सामग्री विश्लेषण जैसी विधियाँ गुणात्मक अनुसंधान में सामान्य हैं, जो संदर्भ, अर्थ और प्रक्रिया की सूक्ष्म खोज की अनुमति देती हैं।[3]

इन दोनों दृष्टिकोणों के बीच ज्ञानमीमांसा संबंधी बहस यह तय करने में आधारभूत होती है कि शोधकर्ता अपने अध्ययन कैसे डिजाइन करते हैं और उनके निष्कर्षों की व्याख्या कैसे करते हैं। उदाहरण के लिए, सामाजिक विज्ञान में, मात्रात्मक और गुणात्मक विधियों के बीच चयन यह प्रभावित कर सकता है कि सामाजिक व्यवहार, सांस्कृतिक प्रथाएँ, और संगठनात्मक गतिकी कैसे समझे जाते हैं। इसी तरह, प्राकृतिक विज्ञानों में, ये दृष्टिकोण यह प्रभावित कर सकते हैं कि प्रयोग कैसे संरचित होते हैं और डेटा की व्याख्या कैसे की जाती है।

मात्रात्मक विश्लेषण के समर्थक तर्क देते हैं कि इसकी संरचित कार्यप्रणाली और सांख्यिकीय उपकरणों का उपयोग वैज्ञानिक जांच के लिए आवश्यक परिशुद्धता और वस्तुनिष्ठता प्रदान करता है। उनका मानना है कि यह दृष्टिकोण सिद्धांतों और परिकल्पनाओं का परीक्षण करने की अनुमति देता है, जिसे दोहराया और सत्यापित किया जा सकता है, और वैज्ञानिक ज्ञान के निर्माण के लिए एक मजबूत ढांचा प्रदान करता है। दूसरी ओर, गुणात्मक विश्लेषण के पक्षधर इसके माध्यम से मानव अनुभव की समृद्धि और जटिलता को पकड़ने की क्षमता को उजागर करते हैं, जो केवल संख्यात्मक दृष्टिकोणों से अनदेखी हो सकती है। वे तर्क देते हैं कि गुणात्मक विधियाँ शोधकर्ताओं को उन अर्थों और व्याख्याओं में गहराई से जाने की अनुमति देती हैं जिन्हें व्यक्ति अपने अनुभवों को प्रदान करते हैं, इस प्रकार सामाजिक घटनाओं की अधिक समग्र समझ प्रदान करते हैं।

इन मतभेदों के बावजूद, दोनों दृष्टिकोणों के एकीकरण के मूल्य की बढ़ती मान्यता है। मिश्रित-विधि अनुसंधान, जो मात्रात्मक और गुणात्मक तकनीकों को जोड़ता है, प्रत्येक की ताकत का लाभ उठाकर शोध प्रश्नों की अधिक व्यापक समझ प्रदान करने का प्रयास करता है। यह एकीकृत दृष्टिकोण स्वीकार करता है कि जबकि संख्याएँ पैटर्न और सहसंबंध प्रदान कर सकती हैं, कथाएँ संदर्भ और गहराई प्रदान करती हैं, जिसके परिणामस्वरूप अधिक समृद्ध और सूक्ष्म अंतर्दृष्टि मिलती है।

मात्रात्मक और गुणात्मक अंतर

मात्रात्मक और गुणात्मक विश्लेषण के बीच बहस अनुसंधान कार्यप्रणाली का एक मूलभूत हिस्सा है, क्योंकि दोनों दुनिया को समझने और व्याख्या करने के अलग-अलग तरीके प्रस्तुत करते हैं। इन दोनों दृष्टिकोणों की अपनी अनूठी ताकत और सीमाएँ हैं, जो यह निर्धारित करती हैं कि शोधकर्ता डेटा कैसे एकत्रित, विश्लेषण और व्याख्या करते हैं।

डेटा का स्वभाव: मात्रात्मक विश्लेषण संख्यात्मक डेटा पर निर्भर करता है। यह दृष्टिकोण चर को मापता है और पैटर्न की पहचान करने, परिकल्पनाओं का परीक्षण करने और भविष्यवाणियाँ करने के लिए सांख्यिकीय विधियों का उपयोग करता है। इसका उद्देश्य सामान्यीकृत तथ्यों की स्थापना करना है और यह प्राय: बड़ी नमूनाकारी में शामिल होता है ताकि निष्कर्षों की विश्वसनीयता और वैधता को बढ़ाया जा सके। उदाहरण के लिए, उपभोक्ता संतोष का आकलन करने के लिए किया गया सर्वेक्षण, जिसमें बंद प्रश्न होते हैं और प्रतिक्रियाएँ लिकर्ट स्केल पर रेट की जाती हैं, शोधकर्ताओं को संतोष स्तरों को मापने और रुझानों की पहचान करने की अनुमति देता है।

इसके विपरीत, गुणात्मक विश्लेषण वर्णनात्मक डेटा पर केंद्रित होता है, जो मानव अनुभवों की समृद्धि और जटिलता को पकड़ता है। यह दृष्टिकोण अर्थों, अवधारणाओं और विशेषताओं को समझने के लिए अधिक चिंतित है और अक्सर छोटे, अधिक केंद्रित नमूनों में शामिल होता है ताकि घटनाओं की गहराई से जांच की जा सके। उदाहरण के लिए, प्रतिभागियों के साथ गहन साक्षात्कार जो किसी उत्पाद के साथ उनके व्यक्तिगत अनुभवों की जांच करते हैं, उपभोक्ता संतोष पर विस्तृत अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं।

कार्यप्रणाली दृष्टिकोण: मात्रात्मक विधियाँ आमतौर पर संरचित और रेखीय होती हैं, जैसे कि प्रयोग, सर्वेक्षण और सांख्यिकीय परीक्षण।[4] ये विधियाँ परिकल्पनाओं की पुष्टि करने का लक्ष्य रखती हैं और अक्सर तब उपयोग की जाती हैं जब अनुसंधान लक्ष्य संबंधों को मापने या सिद्धांतों का परीक्षण करने का होता है। उदाहरण के लिए, चिकित्सा अनुसंधान में एक नए दवा की प्रभावशीलता का परीक्षण करने के लिए यादृच्छिक नियंत्रित परीक्षण (RCTs) होते हैं, जो स्पष्ट, मापने योग्य परिणाम प्रदान करते हैं।

दूसरी ओर, गुणात्मक विधियाँ अक्सर असंरचित या अर्ध-संरचित होती हैं, जैसे कि साक्षात्कार, फोकस समूह, और अवलोकन। यह दृष्टिकोण अधिक पुनरावृत्त और खोजपरक होता है, जिससे शोधकर्ता नई अंतर्दृष्टियों के उभरने पर अपनी विधियों को अनुकूलित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, नृवंशविज्ञान अध्ययन में, शोधकर्ता सांस्कृतिक प्रथाओं का गहराई से, संदर्भात्मक समझ प्राप्त करने के लिए किसी समुदाय में घुलमिल जाते हैं।

वस्तुनिष्ठता बनाम व्यक्तिनिष्ठता: मात्रात्मक विश्लेषण को आम तौर पर अधिक वस्तुनिष्ठ माना जाता है, क्योंकि यह संख्यात्मक डेटा और सांख्यिकीय विश्लेषण पर निर्भर करता है। यह वस्तुनिष्ठता सामान्यीकरण और पुनरावृत्ति की अनुमति देती है, जिससे निष्कर्षों को बड़ी जनसंख्या पर लागू करना संभव होता है।[5] उदाहरण के लिए, एक राष्ट्रीय जनगणना जनसांख्यिकीय डेटा प्रदान करती है जिसका उपयोग नीतिगत निर्णयों को सूचित करने के लिए किया जाता है, क्योंकि यह समय के एक विशिष्ट बिंदु पर जनसंख्या की एक विश्वसनीय तस्वीर प्रस्तुत करती है। हालांकि, गुणात्मक विश्लेषण अधिक व्यक्तिनिष्ठ होता है, जिसमें डेटा की शोधकर्ता की व्याख्या शामिल होती है। यह गहराई और संदर्भ पर ध्यान केंद्रित करता है, न कि विस्तार पर, और मानव व्यवहार और सामाजिक घटनाओं की जटिलताओं की अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, किसी विशेष स्थिति वाले व्यक्तियों के जीवन अनुभवों की जांच करने वाले केस स्टडीज समृद्ध, विस्तृत कथाएँ प्रदान करते हैं जो व्यक्तिगत और सामाजिक संदर्भों को उजागर करते हैं।

परिणाम और अंतर्दृष्टि: मात्रात्मक विश्लेषण के परिणाम अक्सर ग्राफ, चार्ट और सांख्यिकीय सारांश के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं, जो सटीक और संक्षिप्त अंतर्दृष्टियाँ प्रदान करते हैं। यह दृष्टिकोण विशेष रूप से पैटर्न, सहसंबंधों, और कारण संबंधों की पहचान के लिए उपयोगी होता है। उदाहरण के लिए, व्यायाम की आवृत्ति और स्वास्थ्य परिणामों के बीच सहसंबंध की जांच करने वाला एक अध्ययन सार्वजनिक स्वास्थ्य सिफारिशों को सूचित करने वाले सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण रुझानों को उजागर कर सकता है। इसके विपरीत, गुणात्मक विश्लेषण विशेष मामलों या संदर्भों में विस्तृत अंतर्दृष्टियाँ प्रदान करता है, अक्सर विषयगत विश्लेषण या कथात्मक विवरणों के माध्यम से। यह डेटा से उभरने वाले विषयों, अर्थों और पैटर्नों की जांच करके घटनाओं की गहरी समझ प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, स्वास्थ्य सेवा सेटिंग्स में रोगी अनुभवों को समझना गुणात्मक साक्षात्कारों के माध्यम से सेवा वितरण के अंतर्निहित मुद्दों को प्रकट कर सकता है और सुधार के क्षेत्रों का सुझाव दे सकता है।

दोनों दृष्टिकोणों का एकीकरण

मात्रात्मक और गुणात्मक विश्लेषण के बीच स्पष्ट अंतर के बावजूद, दोनों दृष्टिकोणों को एकीकृत करने के मूल्य की बढ़ती मान्यता है। मिश्रित-विधियों का अनुसंधान मात्रात्मक और गुणात्मक तकनीकों को जोड़ता है ताकि प्रत्येक की ताकत का लाभ उठाया जा सके, जिससे अनुसंधान प्रश्नों की अधिक व्यापक समझ प्राप्त होती है। दोनों दृष्टिकोणों का उपयोग करके, शोधकर्ता मात्रात्मक डेटा की सटीकता और सामान्यीकरण और गुणात्मक अंतर्दृष्टियों की गहराई और संदर्भ से लाभ उठा सकते हैं। यह एकीकरण अधिक समृद्ध, अधिक सूक्ष्म निष्कर्षों की ओर ले सकता है जो जटिल अनुसंधान प्रश्नों को अधिक प्रभावी ढंग से संबोधित करते हैं। उदाहरण के लिए, शैक्षिक परिणामों पर एक अध्ययन में परीक्षण स्कोर और जनसांख्यिकीय डेटा का विश्लेषण करने के लिए मात्रात्मक विधियों का उपयोग किया जा सकता है, जबकि छात्रों के व्यक्तिगत अनुभवों और उनके सीखने के वातावरण की धारणाओं की जांच के लिए गुणात्मक साक्षात्कारों का भी उपयोग किया जा सकता है।

मात्रात्मक और गुणात्मक विश्लेषण के बीच का अंतर उनके डेटा दृष्टिकोण, कार्यप्रणाली, वस्तुनिष्ठता, और प्रदान की गई अंतर्दृष्टियों में निहित है। दोनों अपने आप में मूल्यवान हैं और अक्सर अनुसंधान प्रश्नों की व्यापक समझ प्रदान करने के लिए पूरक रूप से उपयोग किए जाते हैं। इन अंतरों को समझकर, शोधकर्ता अपने अनुसंधान लक्ष्यों और जिन घटनाओं की वे जांच कर रहे हैं, उनके स्वभाव के आधार पर उपयुक्त विधियों का चयन कर सकते हैं।

सही दृष्टिकोण चुनना

मात्रात्मक या गुणात्मक विधियों का उपयोग करने का निर्णयख्रया दोनों का संयोजनख्रकई कारकों पर निर्भर करता है

1. अनुसंधान लक्ष्य: यदि उद्देश्य बड़ी आबादी में चर को मापना और पैटर्न स्थापित करना है, तो मात्रात्मक दृष्टिकोण उपयुक्त है। जटिल मुद्दों की जांच और गहन समझ प्राप्त करने के लिए गुणात्मक विधियाँ बेहतर होती हैं।

2. घटनाओं का स्वभाव: मात्रात्मक विधियाँ उन घटनाओं के लिए प्रभावी हैं जिन्हें संख्यात्मक रूप से मापा जा सकता है। गुणात्मक विधियाँ मानव व्यवहार और सामाजिक संदर्भों की जटिलताओं को पकड़ने के लिए आदर्श हैं।
3. संसाधन और बाधाएँ: मात्रात्मक अनुसंधान में अक्सर बड़े नमूनों और सांख्यिकीय उपकरणों की आवश्यकता होती है, जबकि गुणात्मक अनुसंधान में विस्तृत विवरणों के संग्रह और विश्लेषण के लिए समय की आवश्यकता होती है।
4. विशेषज्ञता: शोधकर्ताओं को अपनी विशेषज्ञता और मात्रात्मक एवं गुणात्मक तकनीकों से परिचय पर विचार करना चाहिए ताकि अनुसंधान कठोर और वैध हो।

मिश्रित-विधियों का मूल्य

मात्रात्मक और गुणात्मक विधियों का एकीकरण, जिसे मिश्रित-विधि अनुसंधान कहा जाता है, अपनी व्यापक अंतर्दृष्टि प्रदान करने की क्षमता के लिए तेजी से लोकप्रिय हो रहा है। यह दृष्टिकोण शोधकर्ताओं को विभिन्न स्रोतों से डेटा का क्रॉस-सत्यापन करके निष्कर्षों को मान्य और समृद्ध करने की अनुमति देता है।[6] उदाहरण के लिए, स्वास्थ्य सेवा अनुसंधान में, एक मिश्रित-विधि अध्ययन अस्पताल में रोगी संतोष को मापने के लिए मात्रात्मक सर्वेक्षणों का उपयोग कर सकता है, जिसे व्यक्तिगत रोगी अनुभवों की गहन जांच के लिए गुणात्मक साक्षात्कारों द्वारा पूरक किया जाता है।

मात्रात्मक और गुणात्मक विश्लेषण के बीच के अंतरों को समझना शोधकर्ताओं को उनके अध्ययन के लिए सबसे उपयुक्त विधियों का चयन करने में सक्षम बनाता है। जबकि मात्रात्मक अनुसंधान वस्तुनिष्ठता और सामान्यीकरण प्रदान करता है, गुणात्मक अनुसंधान गहराई और संदर्भ प्रदान करता है। प्रत्येक दृष्टिकोण की ताकत और सीमाओं की सराहना करके, शोधकर्ता ऐसे अध्ययन तैयार कर सकते हैं जो न केवल विशिष्ट प्रश्नों का उत्तर देते हैं बल्कि उनके क्षेत्रों में सार्थक अंतर्दृष्टि भी प्रदान करते हैं। अंततः, मात्रात्मक और गुणात्मक विधियों के बीच चयन अनुसंधान प्रश्न की प्रकृति, अध्ययन के संदर्भ और वांछित परिणामों द्वारा निर्देशित होना चाहिए। जब प्रभावी रूप से उपयोग किया जाता है, तो दोनों दृष्टिकोण हमारी जटिल मुद्दों की समझ को काफी हद तक बढ़ा सकते हैं, जिससे विभिन्न क्षेत्रों में अधिक सूचित निर्णय और बेहतर समाधान मिल सकते हैं।

संदर्भ (References)

1. Robson, C., & McCartan, K. (2016). Real World Research. Wiley. Link: https://www.wiley.com/en-us/Real+World+Research%2C+4th+Edition-p-9781118745236
2. Silverman, D. (2019). Interpreting Qualitative Data. SAGE Publications. Link: https://au.sagepub.com/en-gb/oce/interpreting-qualitative-data/book259108
3. Bryman, A. (2012). Social Research Methods (4th ed.). Oxford University Press.
4. Creswell, J. W. (2014). Research Design: Qualitative, Quantitative, and Mixed Methods Approaches (4th ed.). SAGE Publications.
5. Denzin, N. K., & Lincoln, Y. S. (Eds.). (2018). The SAGE Handbook of Qualitative Research (5th ed.). SAGE Publications.
6. Guba, E. G., & Lincoln, Y. S. (1994). Competing Paradigms in Qualitative Research. In N. K. Denzin & Y. S. Lincoln (Eds.), Handbook of Qualitative Research (pp. 105-117). SAGE Publications.
7. Hammersley, M. (1992). What's Wrong with Ethnography? Routledge.
8. Maxwell, J. A. (2013). Qualitative Research Design: An Interactive Approach (3rd ed.). SAGE Publications.
9. Patton, M. Q. (2015). Qualitative Research and Evaluation Methods (4th ed.). SAGE Publications.
10. Silverman, D. (2016). Qualitative research (4th ed.). SAGE Publications.
11. Tashakkori, A., & Teddlie, C. (Eds.). (2010). SAGE Handbook of Mixed Methods in Social & Behavioural Research (2nd ed.). SAGE Publications.
12. Yin, R. K. (2018). Case Study Research and Applications: Design and Methods (6th ed.). SAGE Publications.

फुटनोट

1 Epistemology originates from the Greek words "episteme," meaning knowledge, and "logos," meaning study or theory. In research, it refers to the investigation of how knowledge is acquired, validated, and understood. It helps researchers clarify their assumptions about what constitutes valid knowledge and guides the choice of research methods.

2 Creswell, J. W., *Research Design: Qualitative, Quantitative, and Mixed Methods Approaches*, SAGE Publications, 2014. Link: https://us.sagepub.com/en-us/nam/research-design/book237357

3 *Ibid.*

4 *Ibid.*

5 Bryman, A., *Social Research Methods*, Oxford University Press, 2016. Link: https://global.oup.com/academic/ product/social-research-methods-9780199689453

6 Tashakkori, A., & Teddlie, C. (Eds.), *SAGE Handbook of Mixed Methods in Social & Behavioural Research* (2nd ed.), 2010. SAGE Publications.

लोक जीवन में नृत्य की भूमिका: अरुणाचल प्रदेश की आदी जनजाति के विशेष संदर्भ में

डॉ० बनश्री पर्तिन

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जवाहरलाल नेहरू कॉलेज पासीघाट, ईस्ट सियांग, अरुणाचल प्रदेश

लोकसमाज में लोक नृत्य का बहुत महत्व होता हैं। लोक नृत्य के माध्यम से लोकसमाज अपने हर्षोल्लास को प्रकट करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में लोग खेती करके ही अपना जीवन यापन करते हैं। आदी समाज में जितने भी पर्व-त्योहार हैं, सब कृषि कार्य से संबंधित हैं। कभी अच्छी फसल की कामना से तो कभी फसल कटाई के सम्पन्न होने की खुशी में यह त्योहार मनाया जाते हैं। लोग नाचते-गाते अपनी खुशी को प्रकट करते हैं। लोक समाज में लोग खुशियाँ मनाने के छोटे-छोटे अवसरों को कभी नहीं छोड़ते हैं। यह उनके लिए ऊर्जा का काम करती हैं। फिर अगले साल उसी लगन से उसी ऊर्जा के साथ कृषि कार्य में जुट जाते हैं। यूँ तो लोक नृत्य देखने में सहज-सरल लगता हैं परंतु इन नृत्यों को सम्पन्न करना सबके बस की बात नहीं हैं। विभिन्न प्रकार के भाव-भंगिमाओं के साथ इन नृत्यों को सम्पन्न किया जाता हैं। मीरी (पुरोहित) या लोक गायक अपने हाथों में खनखनाती हुई तलवार पकड़ते हैं, गले में किरिंग (घुंघुरुओं का गुच्छा) लटकाते हैं और फुर्ती के साथ इधर-उधर चलते हुए या छलांग लगाते हुए गीतों को विशेष धुनों पर गाते जाते हैं और स्त्रियों का समूह या पुरुषों का समूह उनके पीछे-पीछे समूह गायक बनते हुए अलग-अलग भाव-भंगिमाओं के साथ नृत्य करता हैं। इन लोक-नृत्यों को सीखने हेतु किसी प्रकार की कोई औपचारिक प्रशिक्षण नहीं दिया जाता है, न ही कोई वाद्य-यंत्र की आवश्यकता पड़ती है। निरंजन सरकार ने अपनी पुस्तक 'डान्सेस ऑफ अरुणाचल प्रदेश' में लिखा है, "They play no musical instrument to the accompaniment of dance- There is no formal training, but the novices pick up the dance movements by imitating the movements of the dancer-" आजकल इन लोक नृत्यों को देख पाना बहुत ही सौभाग्य की बात हो गई हैं, क्योंकि आधुनिकीकरण या पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण नई पीढ़ी में इसकी महत्ता को कम प्राथमिकता दी जा रही हैं। इसके जानकार लोग आजकल बहुत कम हो गई है।

आदी जनजातीय समाज में नृत्य एकल रूप में नहीं किए जाते हैं। यह लोक-नृत्य समूह में ही सम्पन्न किए जाते हैं। पर्व-त्योहारों के अवसरों पर ही इन लोक-नृत्यों को सम्पन्न किया जाता हैं। आदी जनजाति के पर्व-त्योहारों में प्रमुख रूप से एतोर, सोलुङ, आरान, पिमे आदि आते हैं। इन पर्व-त्योहारों में विभिन्न प्रकार के लोक-नृत्यों का आयोजन किया जाता है जो इस प्रकार है :-

देलोंग नृत्य :

देलोंग नृत्य पुरुषों द्वारा 'एतोर' पर्व के समय सम्पन्न किया जाता हैं। एतोर पर्व मई के महीने में मनाई जाती हैं। एतोर पर्व को ही 'लुतोर' भी कहते हैं। इस समय झूम खेती में अनाज बोया जा चुका होता हैं और सामूहिक रूप से खेतों में बाड़ लगाने का कार्य भी सम्पन्न हो चुका होता हैं। पारंपरिक रूप से एतोर पर्व सात दिनों तक मनाए जाते हैं। सात दिनों के दौरान दो रात यथा पहले और सातवें दिन के रात को देलोंग नृत्य किया जाता हैं। गाँव के सभी पुरुष 'मुसुप' अर्थात् सामूहिक गृह में जमा हो जाते हैं। पुरुषगण अपने पारंपरिक वेशभूषाओं में सुसज्जित होते हैं, जिसमें कमर से ऊपर पारंपरिक कोट पहना जाता है और कमर के नीचे स्वेत रंग का लंगोट धारण करते हैं। गले में काले और नीले रंग के मूँगों की माला पहनते है। रात होते-होते देलोंग नृत्य आरंभ हो जाते हैं। सभी मीरी आबू (लोकगायक) को गोलाई में घेरकर खड़े हो जाते हैं। इसके पश्चात् मीरी आबू इधर-उधर फुर्ती के साथ चलते हुए या दौड़ लगाते हुए लोकगाथाओं का जिसे आदी में 'आबाङ' कहते हैं का गायन करते हैं और पुरुषों का समूह उसके पीछे-पीछे समूह गायक बनते हुए बड़ी ही फुर्ती के साथ कदम से कदम मिलकर विभिन्न भाव-भंगिमाओं के साथ नृत्य करते हैं। मीरी आबू आबाङ गाते हुए सृष्टि की उत्पत्ति, पशु-पक्षियों की उत्पत्ति, मिथुन पर मनुष्यों का आधिपत्य और एतोर त्योहार से संबंधित लोक विश्वासों आदि विषयों पर गाते जाते हैं। इन लोकगाथाओं में वीर रस की प्रतीति अधिक होती हैं। जिसे सुनकर सुनने वाले भी अनायास ही अपने भीतर उत्साह का अनुभव करते हैं। कुछ मीरी आबू जो कि पुजारी भी होते है, केवल लोकगाथाओं का ही गायन नहीं करते बल्कि इस समय गाँव में आनेवाली संकटों, किसी विशेष घर में आनेवाली विपत्ति, किसी की मृत्यु आदि की भी भविष्यवाणी करते हैं। इस समय मीरी आबू अपने भूमिका के चरम सीमा पर होती हैं। ऐसा माना जाता है कि मीरी आबू जितनी उत्साह से देलोंग नृत्य का नेतृत्व करेंगे उतनी ही नृत्य करने वाले एवं नृत्य को देखने वाले दर्शकगण भी आनंदित एवं उत्साहित होंगे। मीरी की भूमिका को स्पष्ट करते हुए निरंजन सरकार अपनी पुस्तक 'डान्सेस ऑफ अरुणाचल प्रदेश' में लिखते है, "This dance is led by a man called the Miri or Specifically the Delong Miri- One can act as the Miri only when he is versed in mythical songs called Abang about the origin of mithun] paddy, fowl etc." यह नृत्य लगभग रातभर चलती हैं। इस नृत्य को देखने एवं प्रोत्साहित करने हेतु गाँव के बच्चों से लेकर बड़े-बुजुर्ग एवं महिलाओं तक बड़े उत्साह के साथ मुसुप आते हैं।

देलोंग नृत्य मात्र नृत्य का एक रूप नहीं हैं। यह आदी समाज की सामूहिकता का भी प्रतीक हैं। इन पर्व-त्योहारों के जरिए लोगों में भाईचारे की भावना और भी प्रगाढ़ होती हैं।

पोनुङ नृत्य :

पोनुङ नृत्य स्त्री समुदायों द्वारा सोलुङ त्योहार के अवसर पर सम्पन्न किए जाते हैं। सोलुङ त्योहार विशेष रूप से स्त्रियों के पर्व माने जाते हैं। आदी स्त्रियाँ बहुत ही मेहनती होती हैं। वे सालभर घर एवं खेती के कार्यों में पुरुषों की सहयोगी बनकर अपना योगदान देती हैं। इतना ही नहीं वे पर्व-त्याहारों में भी पुरुषों के साथ बढ़-चढ़कर भाग लेती हैं। इसलिए सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी स्त्रियों की सहभागिता पुरुषों के बराबर ही रहती हैं। सोलुङ पर्व एक हफ्ते तक मनाई जाती है। सोलुङ के पहले एवं सातवें दिन पोनुङ नृत्य किए जाते हैं। गाँव की नृत्य कर सकने योग्य महिलायें जिसे पोनुङ मिमुम कहा जाता हैं पोनुङ यिङकोङ (खुला मैदान जहाँ पोनुङ नृत्य किया जाता है) या मुसुप (सामूहिक गृह) में इकट्टा हो जाती हैं और रातभर मीरी आबू के नेतृत्व में नृत्य करती हैं। स्त्रियाँ विभिन्न प्रकार की भाव-भंगिमाएँ करती हुई ताल से ताल मिलाकर गोलाकार में खड़ी होकर नृत्य करती हैं। इस नृत्य में हाथ एवं पैर का सामंजस्य होना अति आवश्यक है। अन्य नृत्यों की इसमें विभिन्न प्रकार की मुख मुद्राओं की आवश्यकता नहीं होती है। परंतु नृत्य इस प्रकार से किये जाते है कि लोग भाव को समझ ही जाते है। पुरुषों के देलोंग नृत्य के मुकाबले स्त्रियों का पोनुङ नृत्य अधिक शांत और गंभीर होती हैं। देखने में जितना सहज-सरल यह नृत्य लगता हैं, इसे नाचना उतनी ही मुश्किल होती हैं। पोनुङ नृत्य आदी स्त्रियों के शांत स्वभाव, घर-परिवार के प्रति जिम्मेदारी की भावना, जीवन में अनुशासन आदि को भी दर्शाती हैं। इस नृत्य को करने के लिए बड़े धैर्य की आवश्यकता होती हैं। रात के 8-9 बजे से आरंभ होने वाली यह नृत्य प्रातः काल के 4-5 बजे तक चलती है। बच्चों से लेकर गाँव के बड़े-बुजुर्गों तक पोनुङ देखने आते हैं और नर्तकियों का उत्साहवर्धन करते हैं।

याकजोङ नृत्य :

याकजोङ नृत्य आरान त्योहार के अवसर पर नाचे जाते हैं। आरान त्योहार मार्च के महीने में मनाई जाती हैं। यह त्योहार मुख्य रूप से बच्चों पर केंद्रित त्योहार मानी जाती हैं। इस त्योहार का मुख्य आकर्षण ही छोटे-छोटे बच्चें होते हैं। इसलिए इस त्योहार से संबंधित जो याकजोङ नृत्य है, वो भी विशेष रूप से बच्चों द्वारा ही सम्पन्न किए जाते हैं। बच्चों की टोली घर-घर में घूमकर नाचते-गाते हैं। वे अपनी हाथों में एक विशेष प्रकार के पेड़ की टहनियों से बनी लाठी पकड़ते हैं, जिसे आदी भाषा में 'याकजोङ' कहते हैं। याकजोङ में विविध प्रकार के डिजाइन गुदे हुए होते हैं। इसी याकजोङ के आधार पर नृत्य का नामकरण भी किया गया हैं। याकजोङ नृत्य करते हुए बच्चें गाँव भर में घूमते हैं। वे सबके घरों में जाते हैं और चूल्हे के चारों तरफ घेरकर एक विशेष लय और ताल के साथ नृत्य करते हैं। उनमें से उम्र में जो सबसे बड़े होते हैं या अधिक मेधावी होते हैं वह समूह का नेतृत्व करते हैं। वह आगे-आगे गीत गाते हुए नृत्य करते हैं और उनके पीछे-पीछे समूह के अन्य बच्चें सुर में सुर मिलाते हुए उनका अनुसरण करते हैं और याकजोङ को सीधे पकड़ कर फर्श पर विशेष धुन में पटकते हुए नृत्य करते हैं। लोग खुशी एवं प्रेम से उन्हें खाने-पीने की वस्तुएँ देते हैं। जिसमे विशेष रूप से चावल, सूखे हुए माँस, अंडे, नमक आदि होते हैं। अगले दिन सभी भोज मनाते हैं और उन खाद्य पदार्थों का सेवन करते हैं।

इस प्रकार आदी जनजातीय समाज में नृत्य का बहुत बड़ा महत्व है। नृत्य इनके जीवन का अभिन्न अंग है, जो इनके समाज को नई ऊर्जा एवं स्फूर्ति देती है। जीवन में इन पर्व-त्योहारों एवं मनोरंजन का कितना महत्व है यह आदी जनजाति के लोग भली-भांति समझते है। वर्तमान में इन नई पीढ़ी के लोग भले ही पाश्चात्य सभ्यता की और रुख कर रहे हो परंतु इन लोक नृत्यों का महत्व आज भी काम नहीं हुआ है। इनको संरक्षित करने के कई प्रयास किए जा रहे है। गाँव के लोग आज भी पर्व-त्योहार या विभिन्न अवसरों पर नाचने-गाने की परंपरा को सहेज कर रखते है। प्रतिवर्ष नियत समय पर लोकनृत्य सम्पन्न किए जाते है। जो लोकनृत्य में विशेष रुचि न दिखते हुए अनुपस्थित होते है, उनके ऊपर गाँव के प्रथागत कानून के हिसाब से उपयुक्त जुर्माना लगाया जाता है। जो शहर में रहते हैं, वे भी पर्व-त्योहारों के दौरान लोकनृत्य के लिए कुछ दिन निर्धारित करते है। अंततः आदी समाज एक जीवंत समाज है, जो अनुशासन प्रिय भी हैं परंतु जीवन को जीने की कला भी जानते है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डान्सेस ऑफ अरुणाचल प्रदेश : निरंजन सरकार, रिसर्च डिपार्ट्मन्ट, अरुणाचल प्रदेश, 1993
2. इन पेरसित ऑफ मिथलाजिकल बैकग्राउंड ऑफ 'सोलुङ फेस्टिवल ऑफ दी आदीस' अरुणाचल प्रदेशः बानी दाङगेन, प्रिटी पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, ईटानगर, 2007
3. भोजपुरी लोकसाहित्यः कृष्णदेव उपाध्याय, विश्वविध्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2008

दूरस्थ-पर्यटन और हिमाचली उच्चभूमि: आभासी वास्तविकता तथा मग्नकारी अंकीय अनुभवों के माध्यम से नए बाजार-खण्डों को खोलना

Tele-Tourism and the Himachali Highlands: Unlocking New Market Segments through Virtual Reality and Immersive E-Experiences

ईरा भारद्वाज

हाल के सामाजिक परिवर्तनों और प्रौद्योगिकीगत प्रगति ने वैश्विक पर्यटन परिदृश्य को गहराई से रूपान्तरित किया है। अब तक प्रत्यक्ष उपस्थिति पर टिका रहा यह क्षेत्र, संबंध बनाए रखने, आर्थिक लचीलापन साधने और नए प्रकार के दर्शकीय अनुभव रचने के लिए तीव्रता से डिजिटल क्षितिजों की ओर उन्मुख हो रहा है। इसी परिवर्तनशील प्रवाह से "दूरस्थ-पर्यटन" की संकल्पना उभरी है-एक उदीयमान विचार जो उन्नत अंकीय तकनीकों, विशेषकर आभासी वास्तविकता (virtual reality) और संवर्धित वास्तविकता (augmented reality), की सहायता से गहन, दूरस्थ और प्रायः परस्परक्रियात्मक रूप में स्थलों का अनुभव कराने में सक्षम है।[1] दूरस्थ-पर्यटन (Tele-tourism) केवल शारीरिक यात्रा का विकल्प नहीं, बल्कि उसका अभिनव विस्तार है-जो पहुँच का लोकतंत्रीकरण कर सकता है, पर्यावरणीय प्रभाव घटा सकता है और उन स्थलों के लिए भी नई आय-धाराएँ खोल सकता है जो भौगोलिक अथवा संरचनात्मक कारणों से व्यापक समुदाय के लिए कठिन-सुलभ रहे हैं। भारत के महिमामय हिमालय में अवस्थित हिमाचल प्रदेश प्राकृतिक सुन्दरता, सांस्कृतिक विरासत और अपार पर्यटन-संभावना का उत्कृष्ट उदाहरण है। हिमाच्छादित शिखरों से लेकर हरित वादियों तक फैला इसका विविध भू-आकृति-विधान और जीवंत स्थानीय परम्पराएँ, देश-विदेश के यात्रियों को बरसों से आकर्षित करती रही हैं। फिर भी, यहाँ कुछ विशिष्ट चुनौतियाँ विद्यमान हैं-अतिसंवेदी पारिस्थितिक तंत्र जो अतिपर्यटन से प्रभावित होते हैं, दूरस्थ क्षेत्रों में आधारभूत संरचना की सीमाएँ, तथा पारम्परिक पर्यटन प्रवाह की मौसमी अनिश्चितताएँ। ऐसी स्थिति में दूरस्थ-पर्यटन हिमाचल के लिए एक सशक्त अवसर प्रस्तुत करता है-जो इन बाधाओं से ऊपर उठकर नए बाजार-खण्डों को जोड़े और सतत विकास को बढ़ावा दे।

इस लेख का उदेश्य है कि आभासी वास्तविकता और मग्नकारी अंकीय अनुभवों का सुविचारित क्रियान्वयन कर हिमाचल प्रदेश उन बाजार-खण्डों को भी साध सकता है जो पारम्परिक पर्यटन के दायरे से बाहर रहे या जिन तक पहुँच सीमित रही है। इन खण्डों में-गतिशीलता-सम्बन्धी बाधाओं से ग्रस्त व्यक्ति, पूर्व-यात्रा प्रेरणा और विस्तृत योजना बनाने वाले लोग, आभासी शैक्षिक भ्रमण चाहने वाले शिक्षण संस्थान, विशिष्ट दल-निर्माण अनुभवों की खोज में लगी निगमी संस्थाएँ, तथा वे घरबैठे यात्रा-रसिक भी शामिल हैं जो शारीरिक यात्रा की माँगों से परे सांस्कृतिक डूबान का आनंद लेना चाहते हैं। साथ ही, दूरस्थ-पर्यटन पूर्व-भ्रमण विपणन का प्रबल साधन बन सकता है-जो क्षेत्र की मोहकता को अभूतपूर्व जीवन्तता के साथ सामने रखकर आभासी सहभागिता को वास्तविक आगमन में रूपान्तरित करे।

आभासी वास्तविकता और मग्नकारी अंकीय अनुभव केवल निष्क्रिय दृश्यावलोकन से आगे बढ़ते हैं; वे पदयात्रा-पथों का अनुकरणीय अन्वेषण, प्राचीन मंदिरों के आभासी भ्रमण, स्थानीय कारीगरों से परस्परक्रियात्मक साक्षात्कार, यहाँ तक कि सांस्कृतिक उत्सवों में यथार्थ-समय सहभागिता जैसी संभावनाएँ प्रदान करते हैं। इस स्तर की संलग्नता संभावित यात्री के निर्णय-प्रक्रिया को अधिक दृढ़ बनाती है, उत्सुकता बढ़ाती है, और आगमन से पहले ही गन्तव्य से भावनात्मक रिश्ता प्रगाढ़ करती है। यह उन यात्रियों के लिए भी पूरक अनुभव का कार्य करती है जो पहले आ चुके हैं-उन्हें अपनी स्मृतियों को फिर से जीने या छूट गए स्थलों को नए सिरे से देखने का अवसर देती है।

यद्यपि दूरस्थ-पर्यटन का संकल्पनात्मक ढाँचा विश्वस्तर पर गति पकड़ रहा है, हिमाचली उच्चभूमि जैसे विशिष्ट सामाजिक-आर्थिक व भौगोलिक संदर्भ में इसकी ठोस उपयोगिता और सम्भावित प्रभाव अब भी अपेक्षाकृत अल्प-अध्ययत हैं। यह अध्ययन इसी शून्य को भरने का प्रयत्न करता है-यह जाँचते हुए कि आभासी वास्तविकता और मग्नकारी अंकीय अनुभवों को किस प्रकार रणनीतिक रूप से लागू कर नए बाजार-खण्डों की पहचान, आकर्षण और सेवा-सुव्यवस्था सुनिश्चित की जा सकती है, ताकि हिमाचल प्रदेश का पर्यटन अधिक लचीला, समावेशी और विविधित अर्थव्यवस्था का आधार बन सके। आगे के खण्डों में दूरस्थ-पर्यटन की सैद्धान्तिक नींव, उपलब्ध प्रौद्योगिकीगत क्षमताएँ, सम्भावित बाजार-खण्डों का विश्लेषण, तथा क्षेत्र-विशेष के लिए मग्नकारी अंकीय पर्यटन पहल का सफल क्रियान्वयन-ढाँचा प्रस्तुत किया जाएगा।

दूरस्थ-पर्यटन का महत्त्व और प्रासंगिकता: हिमाचली उच्चभूमि के संदर्भ में

हिमाचली उच्चभूमि-अद्वितीय प्राकृतिक छटा और सांस्कृतिक समृद्धि वाला क्षेत्र-अपनी पर्यटन-विकास यात्रा के एक निर्णायक मोड़ पर है। आकर्षण निर्विवाद होने पर भी पारम्परिक पर्यटन-पद्धति में कुछ अंतर्निहित सीमाएँ हैं, जिनके कारण दूरस्थ-पर्यटन का रणनीतिक अपनाव आज केवल लाभप्रद नहीं, बल्कि अनिवार्य प्रतीत होता है। इसके महत्त्व को निम्न आयामों में समझा जा सकता है:

प्रथम, भौगोलिक उपलब्धता और आधारभूत संरचना की बाधाएँ हिमाचल के अनेक हिस्सों में पारम्परिक पर्यटन के लिए बड़ी चुनौतियाँ हैं। दूरस्थ घाटियाँ, उच्च हिमालयी पदयात्राएँ और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण किन्तु एकान्त ग्राम-विशेषकर अंतरराष्ट्रीय आगन्तुकों तथा सीमित गतिशीलता वाले लोगों के लिए-समयसाध्य और कठिन-सुलभ हैं। आभासी वास्तविकता और मग्नकारी अंकीय अनुभव इन भौतिक बाधाओं को प्रभावी रूप से लाँघ देते हैं। अब विश्वभर का दर्शक स्पीति की प्राचीन गुम्फाओं का आभासी अवलोकन कर सकता है, किन्नौर के दुर्गम पथों पर अनुकरणीय पदयात्रा कर सकता है, या धौलाधार शृंखला की विराटता घर बैठे देख सकता है। इससे हिमाचली पर्यटन की पहुँच अपने भौतिक परिक्षेत्र से कहीं आगे बढ़कर उन समुदायों तक फैलती है जो अब तक इससे वंचित थे।

द्वितीय, पर्यावरणीय सततता और धारण-क्षमता का प्रश्न हिमालय के नाजुक परितंत्र के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मनाली और शिमला जैसे लोकप्रिय स्थलों में अतिपर्यटन ने पारिस्थितिक अवनयन, अपशिष्ट प्रबंधन की दिक्कतों और स्थानीय संसाधनों पर दबाव को बढ़ाया है।[2] दूरस्थ-पर्यटन आगन्तुक प्रवाह के विकेन्द्रीकरण और विविधीकरण का प्रभावी साधन बन सकता है। कम-ज्ञात या पारिस्थितिकी-सम्वेदनशील क्षेत्रों के मग्नकारी आभासी अनुभव उपलब्ध कराकर यह तात्कालिक शारीरिक भीड़ बढ़ाए बिना रुचि जगाता है। इससे नियंत्रित गति से विकास सम्भव होता है-स्थानीय समुदायों और प्रशासन को सतत आधारभूत संरचना गढ़ने का समय मिलता है-और साथ ही क्षेत्र की व्यापक आकर्षण-क्षमता भी प्रदर्शित होती रहती है। यह संभावित आगन्तुकों के लिए "पहले परखें, फिर निर्णय लें" जैसी छनाई भी उपलब्ध कराता है, जिससे अधिक सूचित और उत्तरदायी यात्राएँ प्रोत्साहित होती हैं।

तृतीय, आर्थिक विविधीकरण और स्थानीय सशक्तीकरण में भी दूरस्थ-पर्यटन अपार सम्भावनाएँ रखता है। पारम्परिक पर्यटन-आय के अतिरिक्त, मग्नकारी अंकीय मंच विषयवस्तु-निर्माण, आभासी वास्तविकता विकास, अंकीय विपणन और आभासी मार्गदर्शन जैसी नई रोजगार-संभावनाएँ हिमाचलियों के लिए खोलते हैं।[3] शिल्पी अपने उत्पादों को आभासी बाजार में प्रदर्शित कर सकते हैं; सांस्कृतिक कलाकार मग्नकारी, सीधे-प्रसारित आयोजनों के माध्यम से वैश्विक दर्शकों तक पहुँच सकते हैं; और गृह-आवास संचालक अपने आवासों के आभासी भ्रमण प्रस्तुत कर सकते हैं। इससे पर्यटन के लाभ पारम्परिक आतिथ्य-क्षेत्र से आगे बढ़कर दूरस्थ क्षेत्रों तक समावेशी रूप से फैलते हैं, और एक अधिक लचीली स्थानीय अर्थव्यवस्था का निर्माण होता है।

यद्यपि हिमाचली उच्चभूमि में दूरस्थ-पर्यटन अभी आरम्भिक अवस्था में है, अन्य क्षेत्रों के उदाहरण इसकी उपयोगिता को पुष्ट करते हैं। महामारी के दौर में आइसलैण्ड के "आपको आइसलैण्ड की आवश्यकता प्रतीत होती है" अभियान ने आभासी अनुभवों और सीधे प्रसारण द्वारा दर्शकों की संलग्नता बनाए रखी और अपने प्राकृतिक परिदृश्यों का स्वाद कराया-जिससे भावी यात्राओं के लिए स्मरणीयता बनी रही। इसी प्रकार न्यूजीलैण्ड के पर्यटन संगठन ने उत्कृष्ट गुणवत्ता के आभासी अनुभवों में निवेश कर राष्ट्रीय उद्यानों और साहसिक गतिविधियों को आभासी रूप से दिखाया, जिसका प्रभाव रुझान और बुकिंग में वृद्धि के रूप में दिखा। प्रत्यक्ष पर्यटन न होते हुए भी, गूगल "कला एवं संस्कृति" मंच ने विश्वभर के ऐतिहासिक स्थलों और संग्रहालयों के मग्नकारी आभासी दर्शन कराकर उच्च-स्तरीय अंकीय अनुभवों के प्रति जन-रुचि सिद्ध की है। ये उदाहरण दर्शाते हैं कि मग्नकारी अंकीय विषयवस्तु गन्तव्य की दृश्यता बनाए रखने, यात्रा-प्रेरणा जगाने और संभावित आगन्तुकों से गहन सम्बन्ध बनाने में अत्यन्त प्रभावी है-और ये लाभ हिमाचली उच्चभूमि पर पूर्णत: लागू होते हैं। सारत:, दूरस्थ-पर्यटन हिमाचल प्रदेश के लिए विलासिता नहीं, बल्कि रणनीतिक आवश्यकता है-जो भौगोलिक बाधाओं से उबरने, पर्यावरणीय सततता का पक्षधर बनने और आर्थिक समावेशन को गति देने का मार्ग प्रशस्त करती है; तथा हिमाचली उच्चभूमि को परिवर्तनशील वैश्विक पर्यटन परिदृश्य में दूरदर्शी, लचीला और सहज-प्राप्य गन्तव्य के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

सैद्धान्तिक रूपरेखा: दूरस्थ-पर्यटन में संलग्नता की समझ

आभासी और संवर्धित वास्तविकता पर आधारित दूरस्थ-पर्यटन में लोग किस प्रकार संलग्न होते हैं और उससे मूल्य ग्रहण करते हैं, इसे समझने के लिए विपणन, प्रौद्योगिकी-अपनाव तथा मनोविज्ञान के स्थापित सैद्धान्तिक प्रतिमानों का सहारा आवश्यक है। इस खण्ड में उन मूल सैद्धान्तिक दृष्टियों का विवेचन है जिनसे हिमाचली उच्चभूमि में दूरस्थ-पर्यटन की सम्भावनाओं का विश्लेषण और अनुकूलन किया जा सकता है। अनुभवपरक विपणन तथा उपभोक्ता-संलग्नता इस बात की आधारशिला हैं कि मग्नकारी तकनीकें संभावित यात्री और गन्तव्य के बीच गहरा सम्बन्ध कैसे रचती हैं। पारम्परिक विपणन जहाँ उत्पाद-विशेषताओं पर केन्द्रित रहता है, वहीं अनुभवपरक विपणन का उद्देश्य उपभोक्ता के लिए समग्र और स्मरणीय अनुभव गढ़ना होता है।[4]

दूरस्थ-पर्यटन में आभासी वास्तविकता और संवर्धित वास्तविकता केवल सूचना-प्रसारण के साधन नहीं हैं; ये अनुकरणीय अनुभवों के मंच हैं। उपयोगकर्ताओं को किसी हिमाचली ग्राम में आभासी रूप से "टहलने", स्थानीय पर्व-उत्सव में "भाग लेने", अथवा हिमाच्छादित शिखरों के ऊपर "उड़ान भरने" का अवसर देकर, ये तकनीकें भावनाएँ जगाती हैं, इन्द्रियों को उद्दीप्त करती हैं और यात्रा से पहले ही स्मृतियों-सी सजीव छवियाँ रच देती हैं। यह भावनात्मक और इन्द्रियात्मक संलग्नता गन्तव्य-आकांक्षा निर्मित करने, निष्ठा को पोषित करने और अन्ततः आभासी रुचि को वास्तविक आगमन में रूपान्तरित करने के लिए अनिवार्य है।[5] जितना अधिक मग्नकारी और प्रामाणिक आभासी अनुभव होगा, उतना ही गहरा भावनात्मक सम्बन्ध बनेगा और दीर्घकालिक उपभोक्ता-संलग्नता की सम्भावना उतनी ही अधिक होगी।

प्रौद्योगिकी स्वीकृति प्रतिरूप (Technology Acceptance Model% TAP) तथा प्रौद्योगिकी के स्वीकार एवं उपयोग का समेकित सिद्धान्त (Unified Theory of Acceptance and Use of Technology), नई तकनीकों-विशेषकर पर्यटन में आभासी/संवर्धित वास्तविकता-के अपनाव का पूर्वानुमान और व्याख्या करने के लिए अत्यावश्यक रूपरेखाएँ प्रस्तुत करते हैं। प्रौद्योगिकी स्वीकृति प्रतिरूप का मत है कि धारित उपयोगिता (अर्थात यह विश्वास कि किसी तंत्र का

प्रयोग कार्य-संपादन में लाभकारी होगा) और धारित उपयोग-सहजता (अर्थात यह विश्वास कि तंत्र का प्रयोग बिना अधिक प्रयास के सम्भव है) स्वीकृति के प्रमुख निर्धारक हैं। समेकित सिद्धान्त इसे आगे बढ़ाकर प्रदर्शन-अपेक्षा, प्रयास-अपेक्षा, सामाजिक प्रभाव और सहायक परिस्थितियों जैसे अतिरिक्त कारकों को सम्मिलित करता है।[6] दूरस्थ-पर्यटन पर इन प्रतिमानों का अनुप्रयोग हिमाचल प्रदेश में आभासी/संवर्धित वास्तविकता के व्यापक अपनाव को प्रोत्साहित या बाधित करने वाले कारणों की पहचान में सहायक है। उदाहरणार्थ, यदि आभासी अनुभव यात्रा-योजना या मनोरंजन के लिए उपयोगी समझे जाएँ और उन तक पहुँचना व उनका संचालन सुगम हो, तो विविध बाजार-खण्डों में अपनाव-दर कहीं अधिक होने की सम्भावना है।

दूरस्थ-पर्यटन में आभासी वास्तविकता की प्रभावशीलता के केन्द्र में उपस्थिति-बोध और मग्नता की धारणा है। मग्नता उस वस्तुगत प्रौद्योगिकी-क्षमता का बोध है जिसके द्वारा कोई आभासी तंत्र विश्वसनीय परिवेश रचता है-जैसे दृश्य-क्षेत्र, विभेदन, तथा गति-अनुसरण की सटीकता।[7] इसके विपरीत, उपस्थिति-बोध वह व्यक्तिनिष्ठ मनोवैज्ञानिक अवस्था है जहाँ उपयोगकर्ता शारीरिक रूप से अन्यत्र होते हुए भी स्वयं को आभासी परिवेश में "वहीं" उपस्थित अनुभव करता है।[8] दूरस्थ-पर्यटन के प्रभावकारी बनने हेतु उच्च उपस्थिति-बोध अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि यही उपयोगकर्ता को अविश्वास का निलम्बन कर वास्तव में हिमाचली उच्चभूमि का अनुभव करने जैसा भाव देता है। इसके लिए उन्नत हार्डवेयर के साथ-साथ ऐसे प्रभावशील विषयवस्तु-निर्माण की भी आवश्यकता है जो व्यत्ययों को न्यूनतम करे और इन्द्रिय-निष्ठा को अधिकतम।

अन्ततः, प्रवाह सिद्धान्त ऐसे मग्नकारी परिवेशों में आदर्श उपयोगकर्ता-संलग्नता साधने के सूत्र प्रदान करता है। प्रवाह वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति क्रिया में पूर्णतः तल्लीन हो जाता है-तीव्र एकाग्रता, आनन्द और आत्म-चेतना के लोप के साथ। दूरस्थ-पर्यटन के परिप्रेक्ष्य में, सुविकसित आभासी अनुभव हिमाचल प्रदेश का अन्वेषण इतना रमणीय और स्मरणीय बना सकता है कि उपयोगकर्ता प्रवाह-अवस्था में पहुँच जाए। इसके लिए आभासी कार्य-चुनौतियों (जैसे किसी आभासी पदमार्ग पर संचरण) और उपयोगकर्ता की धारित दक्षताओं के बीच सूक्ष्म संतुलन आवश्यक है-अनुभव न अत्यन्त सरल हो (जिससे उबन उत्पन्न हो) और न अत्यन्त कठिन (जिससे झुँझलाहट बढ़े)। ऐसे दूरस्थ-पर्यटन अनुभव रचकर जो प्रवाह को प्रोत्साहित करें, हिमाचल यह सुनिश्चित कर सकता है कि उसके आभासी प्रस्तुतीकरण मात्र सूचनात्मक न रहकर गहरे स्तर पर आकर्षक और तृप्तिदायक हों-और इस प्रकार वास्तविक यात्रा की इच्छा को सुदृढ़ करें।

क्रियान्वयन हेतु रणनीतिक ढाँचा

दूरस्थ-पर्यटन को हिमाचल प्रदेश की पर्यटन-व्यवस्था में सफलतापूर्वक समेकित करने के लिए ऐसा व्यापक, समन्वित ढाँचा चाहिए जो केवल प्रौद्योगिकी-अपनाव तक सीमित न होकर विषयवस्तु, सुगम्यता, विपणन, सहायक नीतियाँ और सबसे महत्त्वपूर्ण-सुदृढ़ सामुदायिक सहभागिता-इन सभी को समेटे।

इस रणनीति के केन्द्रीय तत्व के रूप में विषयवस्तु-निर्माण और सूझ-बूझ भरा संकलन आता है। प्रस्तुत किए जाने वाले मग्नकारी अनुभव अत्युत्तम गुणवत्ता के हों-३६० अंशीय चल-चित्र, परस्परक्रियात्मक आभासी भ्रमण, तथा सम्भव हो तो कृत्रिम बुद्धिमत्ता-संचालित आभासी पथप्रदर्शक जैसी अत्याधुनिक तकनीकों का सहारा लिया जाए। विषयवस्तु में हिमाचल के विशिष्ट आकर्षणों पर सूक्ष्म ध्यान रहे-जीवंत स्थानीय संस्कृति (जैसे पारम्परिक पर्व, लोकसंगीत, पाक-परम्परा), विविध साहसिक गतिविधियाँ (जैसे आकाशीय साहसिक उड़ान, पर्वत-पदयात्रा, तीव्र-धारा नौकायन), शांत आध्यात्मिक स्थल (जैसे प्राचीन देवालय, गुम्फाएँ) और असली स्थानीय शिल्प। अनिवार्यतः, विषयवस्तु में प्रामाणिकता और प्रभावी कथात्मकता को प्राथमिकता दी जाए। केवल दृश्य-प्रदर्शन के स्थान पर ये अनुभव ऐसे आख्यान रचें जो भावनात्मक स्तर पर स्पन्दित हों-चाहे वह किसी स्थानीय शिल्पी का दिनचर्यात्मक जीवन हो, किसी पवित्र स्थल का इतिहास हो, या हिमालयी पदयात्रा की रोमांचक चुनौती। पाइन और गिलमोर (1999) की "अनुभव-अर्थव्यवस्था" अवधारणा के अनुरूप यह कथानक-प्रधान दृष्टि आभासी आगन्तुक के साथ गहन सम्बन्ध बनाती है, निष्क्रिय अवलोकन को संलग्न अन्वेषण में बदलती है और वास्तविक यात्रा के लिए आकांक्षा जगाती है।

विषयवस्तु के साथ-साथ सुदृढ़ प्रौद्योगिकी-अवसंरचना और सुगम्यता का प्रबन्ध अनिवार्य है। दूरस्थ-पर्यटन की प्रभावशीलता, प्रमुख पर्यटन क्षेत्रों और यहाँ तक कि दूरस्थ ग्रामों में भी विश्वसनीय अंतरजाल-संयोजन पर निर्भर है-जिसके लिए व्यापक निवेश, उच्च-गति प्रसारण तथा पाँचवीं पीढ़ी की दूरसंचार सेवाओं की चरणबद्ध स्थापना अपेक्षित है। यन्त्र-सुलभता भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। जहाँ शीर्ष-स्तरीय आभासी उपकरण अत्यधिक मग्नता देते हैं, वहीं प्रवेश-बाधा कम रखने हेतु अधिक किफायती विकल्प-जैसे हस्तधारित दूरभाष-आधारित सरल आभासी दर्शक-भी अपनाए जाएँ। स्वदेशी तथा अन्तरराष्ट्रीय प्रौद्योगिकी-संस्थाओं के साथ रणनीतिक सहभागी सम्बन्ध आवश्यक होंगे, ताकि अनुरूपित मंच विकसित हों, प्राविधिक सहयोग सुनिश्चित हो और उदीयमान मग्नकारी प्रौद्योगिकियों के साथ निरन्तर कदम मिलाया जा सके।

पहचाने गए नए बाजार-खण्डों तक पहुँचने के लिए प्रभावी विपणन और वितरण-माध्यम अनिवार्य हैं। दूरस्थ-पर्यटन विषयवस्तु को हिमाचल प्रदेश पर्यटन विकास निगम के आधिकारिक अंकीय मंचों पर प्रमुखता से प्रस्तुत किया जाए, सामाजिक माध्यम अभियानों से जोड़ा जाए, तथा अंकीय यात्रा-अभिकरणों और विशिष्ट आभासी भ्रमण-प्रदाताओं के साथ सह-प्रचार किया जाए। प्रत्यक्ष उपभोक्ता-विपणन के अतिरिक्त, शिक्षण संस्थानों के साथ आभासी शैक्षिक भ्रमण हेतु और निगमी संस्थाओं के साथ विशिष्ट दल-निर्माण अथवा कार्य-मनोरंजन सम्मिश्र ('bleisure'= busines + leisure) अनुभवों के लिए सहभागी अवसर व्यापक हैं। इन अंकीय प्रस्तुतियों को मौजूदा पर्यटन-प्रचार के साथ समरस कर देने से हिमाचल प्रदेश के लिए एकीकृत, प्रभावी ब्राण्ड-छवि बनेगी-समेकित विपणन संचार के सिद्धान्तों के अनुरूप।[10]

दीर्घकालीन सफलता हेतु समग्र नीति और विनियामक समर्थन भी आवश्यक है। राज्य सरकार स्थानीय उद्यमों को दूरस्थ-पर्यटन विषयवस्तु और अवसंरचना में निवेश हेतु प्रोत्साहन दे सकती है। पर्यटन-हितधारकों और स्थानीय समुदायों के लिए अंकीय साक्षरता कार्यक्रम उन्हें सक्रिय भागीदारी के लिए सशक्त करेंगे। साथ ही, विषयवस्तु-सृजनकर्ताओं के लिए बौद्धिक संपदा संरक्षण सम्बन्धी स्पष्ट दिशा-निर्देश नवोन्मेष को प्रेरित करेंगे और न्यायसंगत पारिश्रमिक सुनिश्चित

करेंगे। नीतिगत ढाँचे में सतत पर्यटन के दिशा-निर्देश भी निहित हों-ताकि अंकीय प्रचार राज्य के पर्यावरण संरक्षण उद्देश्यों के अनुरूप रहे और अनजाने में भौतिक क्षेत्र में असतत आचरण को बढ़ावा न दे।[11]

अन्ततः, सामुदायिक सहभागिता और क्षमता-विकास इस ढाँचे की नैतिक तथा व्यवहारिक आधारशिला हैं। दूरस्थ-पर्यटन स्थानीय समुदायों को दरकिनार नहीं करे; बल्कि उन्हें सशक्त बनाने के लिए रचा जाए। इसके तहत स्थानीय निवासियों को विषयवस्तु-निर्माण (जैसे 360 अंशीय चित्रांकन, आभासी मार्गदर्शन, कथन-शैली) का प्रशिक्षण दिया जाए, ताकि वे अपनी संस्कृति और परिदृश्य का प्रामाणिक प्रतिनिधित्व स्वयं कर सकें। यह सुनिश्चित करना भी महत्त्वपूर्ण है कि दूरस्थ-पर्यटन से होने वाली आय का अर्थपूर्ण भाग सीधे इन समुदायों तक पहुँचे-संभवतः एक समर्पित कोष या विषयवस्तु-योगदान पर प्रत्यक्ष पारिश्रमिक के माध्यम से। इससे स्थानीय स्वामित्व की भावना बढ़ती है, प्रामाणिक प्रस्तुति सुनिश्चित होती है और दूरस्थ-पर्यटन हिमाचली उच्चभूमि के लिए वास्तव में समावेशी आर्थिक प्रेरक बनता है।

चर्चा और निहितार्थ

यह अध्ययन हिमाचली उच्चभूमि में नए बाजार-खण्डों के द्वार खोलने हेतु दूरस्थ-पर्यटन-विशेषतः आभासी वास्तविकता और मग्नकारी अंकीय अनुभवों-की रूपान्तरकारी सम्भावनाओं का अन्वेषण करता है। हमारे प्रमुख निष्कर्ष संकेत करते हैं कि दूरस्थ-पर्यटन केवल पूरक विपणन-साधन नहीं, बल्कि एक रणनीतिक आवश्यकता है-जो हिमाचल प्रदेश की पर्यटन-पहुँच को पारम्परिक भौगोलिक और सुगम्यता-सीमाओं से परे विस्तृत कर सकती है। यह गतिशीलता-सीमाओं वाले व्यक्तियों, आभासी शैक्षिक भ्रमण चाहने वाले समूहों, और पूर्व-यात्रा डूबान की चाह रखने वाले लोगों सहित विविध खण्डों को प्रभावी ढंग से जोड़े रख सकती है। सजीव, परस्परक्रियात्मक अनुभव निष्क्रिय रुचि को सक्रिय अभिलाषा में बदल सकते हैं-जिससे आभासी सहभागिता बढ़ती है और अनेक मामलों में वास्तविक आगमन भी सुनिश्चित होता है। "पहले परखें, फिर निर्णय लें" की सुविधा संभावित यात्रियों की निर्णय-प्रक्रिया को सुदृढ़ करती है-फलस्वरूप अधिक सूचित और सम्भवतः अधिक दीर्घावधि प्रवास सम्भव होते हैं।

वर्तमान साहित्य में यह अध्ययन एक ठोस योगदान देता है, क्योंकि यह दूरस्थ-पर्यटन की धारणा को एक विशिष्ट, पारिस्थितिक रूप से संवेदनशील और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध पर्वतीय परिदृश्य पर लागू करता है। पर्यटन में आभासी वास्तविकता पर सामान्य शोध उपलब्ध है, किन्तु हिमाचली उच्चभूमि जैसे क्षेत्रों-जहाँ अवसंरचना, सततता और सामुदायिक समावेशन जैसी चुनौतियाँ विशिष्ट रूप लेती हैं-में इसके रणनीतिक क्रियान्वयन पर गहन विमर्श सीमित रहा है। हमारी रूपरेखा अनुभवपरक विपणन, प्रौद्योगिकी स्वीकृति और प्रवाह सिद्धान्त जैसे सैद्धान्तिक प्रतिमानों का समेकन करती है, जिससे इस भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में उपयोगकर्ता-संलग्नता और अपनाव के विश्लेषण हेतु एक सशक्त दृष्टि उपलब्ध होती है।

हिमाचली पर्यटन के हितधारकों और नीति-निर्माताओं के लिए व्यावहारिक निहितार्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। स्थानीय संचालकों के लिए दूरस्थ-पर्यटन आय के स्रोतों में विविधता लाने, अपने बाजार-पहुँच को वैश्विक स्तर तक विस्तृत करने, तथा मौसमी प्रत्यक्ष आगमन पर अत्यधिक निर्भरता घटाने का अवसर प्रस्तुत करता है। नीति-निर्माताओं को विशेषकर दूरस्थ क्षेत्रों में अंकीय अवसंरचना में लक्षित निवेश पर विचार करना चाहिए, और ऐसी सहायक नीतियाँ विकसित करनी चाहिए जो स्थानीय विषयवस्तु-निर्माण तथा अंकीय साक्षरता को प्रोत्साहन दें। राज्य के पर्यटन विभाग में एक समर्पित दूरस्थ-पर्यटन प्रकोष्ठ की स्थापना-जिसका दायित्व गुणवत्ता-नियंत्रण, विषयवस्तु-संकलन और मंच-प्रबंधन हो-एक निर्णायक कदम सिद्ध हो सकता है। इस रूपरेखा में सामुदायिक सहभागिता पर भी विशेष बल दिया गया है, यह संकेत करते हुए कि दूरस्थ-पर्यटन स्थानीय शिल्पियों और सांस्कृतिक साधकों के आर्थिक सशक्तीकरण का उपकरण बन सकता है, जिससे अंकीय प्रगति के लाभ न्यायसंगत रूप से वितरित हों।

किन्तु, कुछ चुनौतियाँ और सीमाएँ स्वीकार करना भी आवश्यक है। दुर्गम भू-आकृति में सर्वत्र उच्च-गति अंतरजाल की निरन्तर उपलब्धता सुनिश्चित करना, उच्च-गुणवत्ता वाले मग्नकारी अनुभवों के निर्माण की लागत, और सामान्य जन के लिए आभासी उपकरणों की अभी विकसित होती सुलभता-ये सभी तकनीकी अवरोध बने हुए हैं। हिमाचल प्रदेश के भीतर अंकीय खाई भी एक बड़ी बाधा है, जहाँ कुछ समुदायों के पास उन्नत तकनीक तक पहुँच या उससे परिचय का अभाव है। समय के साथ उपयोगकर्ताओं की रुचि बनाए रखने के लिए सतत विषयवस्तु-अद्यतन और अभिनव परस्परक्रियात्मक विशेषताएँ आवश्यक होंगी। इसके अतिरिक्त, यदि अनुभव पर्याप्त रूप से आकर्षक न हों तो "आभासी क्लान्ति" का जोखिम भी है, जो आभासी संलग्नता को वास्तविक यात्रा में रूपान्तरित होने से रोक सकता है।

इन सीमाओं से भविष्य के अनुसंधान के कई मार्ग संकेतित होते हैं। दीर्घावधि में दूरस्थ-पर्यटन का स्थानीय समुदायों तथा राज्य की पर्यटन-अर्थव्यवस्था पर आर्थिक प्रभाव परखने के लिए अनुक्रमिक दीर्घकालिक अध्ययन आवश्यक हैं। आगे का शोध हिमाचली दूरस्थ-पर्यटन मंचों पर उपयोगकर्ता-अनुभव के अनुकूलन पर केन्द्रित हो सकता है-उदाहरणतः विभिन्न विषयवस्तु-प्रारूपों या परस्परक्रियात्मक तत्वों के युग्म-विकल्प परीक्षण के माध्यम से। अंकीय खाई को पाटने, तथा दूरस्थ-पर्यटन परिसंस्था के सभी हितधारकों के लिए समतामूलक पहुँच और भागीदारी सुनिश्चित करने की सर्वाधिक प्रभावी रणनीतियों की पड़ताल भी अमूल्य सिद्ध होगी।

यह लेख रेखांकित करता है कि आभासी वास्तविकता और मग्नकारी अंकीय अनुभवों पर आश्रित दूरस्थ-पर्यटन, हिमाचल प्रदेश के लिए कितनी गम्भीर और रूपान्तरकारी सम्भावना रखता है। भौगोलिक बाधाओं का अतिक्रमण करते हुए और प्रामाणिक अंकीय साक्षात्कार उपलब्ध कराते हुए, दूरस्थ-पर्यटन अब तक अनखुले रहे बाजार-खण्डों के द्वार खोलने के लिए तत्पर है, जिससे क्षेत्र की आकर्षण-क्षमता व्यापक हो सके। यह नाजुक पारिस्थितिक तंत्रों पर दबाव घटाने हेतु आगन्तुक-संलग्नता में विविधता लाने का रणनीतिक मार्ग प्रस्तुत करता है, और साथ ही स्थानीय समुदायों के लिए नई अंकीय दक्षताओं तथा आय-धाराओं के माध्यम से आर्थिक अवसरों का सृजन करता है। अन्ततः, दूरदर्शी और सुविचारित क्रियान्वयन हिमाचली उच्चभूमि को अधिक लचीले, समावेशी और सतत पर्यटन-भविष्य की ओर अग्रसर करता है-जहाँ इसकी विलक्षण मोहकता पर्यावरण-सचेत और आर्थिक रूप से सशक्तिप्रद तरीके से वैश्विक दर्शकों के साथ साझा की जा सके।

अंत-टिप्पणियाँ (End Notes)

1 Tussyadiah, I. P., & Fesenmaier, D. R., Mediating Tourist Experiences: Access to Places via Shared Videos, *Annals of Tourism Research*, 36(3), 2009, pp. 447-460.

2 Negi, R. S., & Anand, S., Tourism and Environmental Degradation: A Case study of Shimla City, Himachal Pradesh. *International Journal of Scientific and Research Publications*, 5(9), 2015, pp. 1-6.

3 Dwivedi, Y. K., Ismagilova, L., Hughes, D. L., Carlson, J., Filieri, R., Rana, N. P., & Raman, R., Setting The Future of Digital and Social Media Marketing Research: Perspectives and Research Propositions, *International Journal of Information Management*, 2020, pp. 102-168.

4 Schmitt, B. H., Experiential Marketing: How to Get Customers to Sense, Feel, Think, Act, and Relate to Your Company and Brands, *The Free Press*, 1999.

5 Pine, B. J., II, & Gilmore, J. H., The Experience Economy: Work is Theatre & Every Business A Stage, *Harvard Business School Press*, 1999.

6 Venkatesh, V., Morris, M. G., Davis, G. B., & Davis, F. D., User Acceptance of Information Technology: Toward A Unified View, *MIS Quarterly*, 27(3), 2003, pp. 425-478.

7 Slater, M., & Wilbur, J., *A Review of Immersive Virtual Environment Systems*, Presence: Teleoperators and Virtual Environments, 6(6), 1997, pp. 675-685.

8 Witmer, B. G., & Singer, M. J., *Measuring Presence in Virtual Environments: A Presence Questionnaire*, Presence: Teleoperators and Virtual Environments, 7(3), 1998, pp. 225-240.

9 कार्य-अवकाश सम्मिश्र यात्रा (ब्लेजर) वह प्रवास है जिसमें व्यक्ति आधिकारिक कार्य-जैसे बैठक, सम्मेलन या प्रशिक्षण-के लिए गए दौरे को कुछ अतिरिक्त दिनों तक बढ़ाकर अवकाश, स्थल-दर्शन, सांस्कृतिक अनुभव और विश्राम से जोड़ देता है। इसका उद्देश्य कार्यखजीवन संतुलन सुदृढ़ करना, गन्तव्य का गहन अनुभव प्राप्त करना, तथा ठहराव-अवधि और स्थानीय व्यय में वृद्धि करना होता है। प्रायः यह कार्यक्रम से पहले या बाद में एक-दो दिन जोड़कर, कभी-कभी परिवार सहित, अपनाई जाती है; परन्तु संस्थागत नियम, व्यय-प्रतिपूर्ति, वीजा और कर-निर्देशों का पालन आवश्यक रहता है। संक्षेप में, यह व्यापारिक यात्रा और अवकाश-पर्यटन का सुविचारित संयोजन है

10 UNWTO., Tourism and The Sustainable Development Goals: Journey to 2030, *World Tourism Organization*, 2017.

11 Gössling, S., Scott, D., & Hall, C. M., Pandemics, Tourism and Global Change: A Rapid Assessment of The COVID-19 Crisis, *Journal of Sustainable Tourism*, 29(1), 2020, pp. 1-20.

उत्तर प्रदेश की राजनीति पर मण्डलवाद का प्रभाव

डॉ० अभिषेक कुमार

शोधछात्र, राजनीति शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

दीपिका मिश्रा

शोधछात्रा, राजनीति शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

मण्डलवादी आन्दोलन 1990 के दशक में उत्तर प्रदेश की राजनीति का प्रमुख आन्दोलन था। यह पिछड़ी जातियों के द्वारा चलाया गया एक आन्दोलन जोकि मण्डल आयोग की सिफारिश को लागू करने के लिए था यह आन्दोलन बाद में पिछड़ी जातियों के राजनीतिकरण का आन्दोलन बन गया। मण्डल आयोग का गठन सन् 1979 में जनता पार्टी सरकार द्वारा किया गया था। इस आयोग का कार्य क्षेत्रीय, सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों की पहचान करना था। इस आयोग के अध्यक्ष बिन्देश्वरी प्रसाद मण्डल थे। इस आयोग ने सामाजिक, शैक्षिक एवं आर्थिक मानकों के आधार पर देश में 3743 पिछड़ी जातियों की पहचान की थी। आयोग ने इन पिछड़ी जातियों को 27 प्रतिशत आरक्षण प्रदान करने की सिफारिश की थी।

मुख्य शब्द- समाजिक वर्ग, सामाजिक न्याय, अन्य पिछड़ा वर्ग, आन्दोलन, गठबन्धन।

मण्डल आयोग की रिपोर्ट सन् 1980 में प्रस्तुत हुयी थी। 1980 में तत्कालीन कांग्रेस सरकार ने इस आयोग की रिपोर्ट को लागू नहीं किया। 15 अगस्त, 1990 को तत्कालीन राष्ट्रीय मोर्चा सरकार द्वारा इस आयोग की रिपोर्ट को लागू करने की घोषणा की गयी।[1]

1989 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव में विश्वनाथ प्रताप सिंह द्वारा गठित जनता दल ने भी प्रतिभाग किया। विश्वनाथ प्रताप सिंह ने पिछड़ी जातियों का समर्थन प्राप्त करने के लिए केन्द्र एवं राज्य दोनों चुनावों में मण्डल आयोग की सिफारिशें लागू करने को प्रमुख चुनावी मुद्दा बनाया था। इसके कारण विश्वनाथ प्रताप सिंह को उत्तर प्रदेश की पिछड़ी जातियों का व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ। 1989 के विधानसभा चुनाव में उत्तर प्रदेश में जनता दल का नेतृत्व मुलायम सिंह यादव एवं अजीत सिंह ने किया।[2] इस चुनाव में जनता दल उत्तर पदेश में सबसे बड़ा दल बना था।

उत्तर प्रदेश में विजय प्राप्त करने के बाद जनता दल में मुख्यमंत्री पद के लिए मुलायम सिंह यादव एवं अजीत सिंह ने दावेदारी प्रस्तुत की थी।[3] किन्तु केन्द्रीय नेतृत्व ने मुलायम सिंह यादव को मुख्यमंत्री पद के लिए सबसे योग्य माना। 5 दिसम्बर, 1989 को मुलायम सिंह यादव ने भारतीय जनता पार्टी के समर्थन से प्रथम बार उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री पद की शपथ ग्रहण की।[4] मुख्यमंत्री बनने के साथ ही मुलायम सिंह यादव ने उत्तर प्रदेश में पिछड़े वर्गों के सर्वमान्य नेता के रूप में अपनी पहचान स्थापित की। 1989 के बाद से उत्तर प्रदेश में मण्डल आन्दोलन का नेतृत्व मुलायम सिंह यादव ने ही किया। मुलायम सिंह यादव ने उत्तर प्रदेश की पिछड़ी जातियों के राजनीतिकरण में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निवर्हन किया।

अक्टूबर 1990 में भाजपा नेता लालकृष्ण आडवाणी की यात्रा को बिहार की लालू प्रसाद यादव सरकार द्वारा रोक दिया गया था,[5] जिसके कारण भारतीय जनता पार्टी ने केन्द्र एवं राज्य दोनों में जनता दल सरकार से समर्थन वापस ले लिया।

केन्द्र में प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने त्यागपत्र दे दिया। जनता दल के दूसरे गुट के नेता चन्द्रशेखर ने काग्रेस के सहयोग से पुनः केन्द्र में सरकार स्थापित की।[6] उत्तर प्रदेश में भी मुलायम सिंह यादव ने कांग्रेस के बाह्य समर्थन से सरकार बनाये रखी। किन्तु अप्रैल 1991 में कांग्रेस द्वारा समर्थन वापस लेने के कारण मुलायम सिंह यादव को मुख्यमंत्री पद से त्याग पत्र देना पड़ा।

मुलायम सिंह भले ही अपने प्रथम कार्यकाल में अधिक समय तक मुख्यमंत्री न रह सके हों किन्तु अपने प्रथम कार्यकाल में उन्होंने उत्तर प्रदेश की पिछड़ी जातियों का जो समर्थन प्राप्त किया उसके कारण उत्तर प्रदेश की भावी राजनीति में उनका भविष्य उज्ज्वल था।

मण्डल रिपोर्ट लागू होने के बाद उत्तर प्रदेश की राजनीति-

केन्द्र की राष्ट्रीय मोर्चा सरकार लगातार आलोचनाओं का शिकार बन रही थी। पार्टी में आपसी फूट के कारण प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह को आभास हो चुका था कि राष्ट्रीय मोर्चा सरकार अधिक समय तक नहीं चल पायेगी। प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने अपनी लोकप्रियता बढ़ाने एवं जनाधार को वापस पाने के उद्देश्य से स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर लालकिले से मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू करने की घोषणा कर दी। विश्वनाथ प्रताप सिंह इस निर्ण्य का श्रेय स्वयं लेना चाहते थे अतः उन्होंने गठबन्धन दलों से इसके विषय में कोई सलाह-मशविरा नहीं किया।[7]

गठबन्धन दल इस निर्णय से न तो सहमत हो पा रहे थे न ही खुलकर आलोचना कर पा रहे थे, किन्तु वे इस निर्णय का सम्पूर्ण राजनीतिक श्रेय एक व्यक्ति को देने के इच्छुक भी नहीं थे। परिणामस्वरूप कई दलों ने इस निर्णय का अप्रत्यक्ष विरोध प्रारम्भ कर दिया। देश में रातों-रात आरक्षण विरोधी संगठन

सक्रिय हो गये। विशेष तौर पर उत्तर भारत में आन्दोलन ने हिंसक रूप ले लिया। सवर्ण वर्ग के निराश युवाओं ने आत्मदाह प्रारम्भ कर दिया। प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने अपने मंत्रिमण्डल के दो सदस्यों रामविलास पासवान तथा षरद यादव को पिछड़े वर्गों के नेता के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। इन नेताओं के उत्तेजक बयानों ने आन्दोलन को और अधिक उग्र कर दिया। राजधानी दिल्ली समेत पूरे देश में कानून व्यवस्था पंगु होती चली गयी थी।[8]

प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने स्थिति में सुधार लाने के लिए आन्दोलनकारियों से वार्ता करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं समझी क्योंकि उन्हें पिछड़े वर्गों की सहानुभूति प्राप्त करने का लालच था। उनका मानना था कि आन्दोलन जितना भड़केगा पिछड़ी जातियाँ उसी अनुपात में उनके साथ जुड़ेंगी।

एक तरफ राम मन्दिर निर्माण के लिए भारतीय जनता पार्टी के नेता लालकृष्ण आडवाणी द्वारा निकाली जा रही रथ यात्रा, दूसरी तरफ मण्डल विरोधी हिंसक आन्दोलन ने विश्वनाथ प्रताप सिंह सरकार को अत्यधिक आलोचना का शिकार बना दिया था। अक्टूबर 1990 में बिहार के मुख्यमंत्री लालू प्रसाद यादव द्वारा लालकृष्ण आडवाणी की रथ यात्रा को रोकने तथा उनकी गिरफ्तारी के कारण भारतीय जनता पार्टी ने सरकार से समर्थन वापस ले लिया तथा प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह को त्याग पत्र देना पड़ा।[9]

जनता दल के ही दूसरे गुट के नेता चन्द्रशेखर को कांग्रेस ने सहयोग प्रदान किया और वे भारत के प्रधानमंत्री बने। उत्तर प्रदेश में भी मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव राजनीतिक चतुराई का प्रदर्शन करते हुए चन्द्रशेखर के गुट में सम्मिलित हो गए तथा कांग्रेस के बाह्य समर्थन से उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री बने रहे। 5 मार्च, 1991 को कांग्रेस पार्टी ने केन्द्र में चन्द्रशेखर सरकार से मतभेदों के फलस्वरूप समर्थन वापस ले लिया तथा प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर को त्याग पत्र देना पड़ा।[10] इसी के साथ ही उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव ने भी अपने पद से त्याग पत्र दे दिया तथा उनके पहले कार्यकाल का अन्त हुआ।

1991 का चुनाव एवं मण्डल बनाम मन्दिर का मुद्दा-

1991 के विधानसभा चुनाव में दो मुद्दे केन्द्र में रहे, अयोध्या में राम मन्दिर का निर्माण एवं मण्डलवाद। राजनीतिक विश्लेषकों ने इस चुनाव को मण्डल बनाम कमण्डल के चुनाव की संज्ञा दी। यहाँ पर कमण्डल का तात्पर्य था हिन्दुत्ववादी राजनीति से एवं मण्डल का तात्पर्य पिछड़े वर्गों की राजनीति से था। मुलायम सिंह यादव ने इस चुनाव में पिछड़ी जातियों को एकजुट करने का प्रयत्न किया तथा खुलकर मण्डल रिपोर्ट के पक्ष में खड़े रहे। दूसरी तरफ राम मन्दिर आन्दोलन को भारतीय जनता पार्टी, विश्व हिन्दू परिषद् एवं राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का समर्थन प्राप्त था। मुलायम सिंह यादव की पिछड़ी जातियों में बढ़ती हुयी लोकप्रियता के कारण भारतीय जनता पार्टी मण्डलवाद के मुद्दे को भी खुलकर नकार नहीं पा रही थी। इस चुनाव में राम लहर अपने चरम पर थी किन्तु फिर भी मण्डलवादी जातियों को संतुलित करने के लिए भारतीय जनता पार्टी ने लोधी जाति (जो कि उत्तर प्रदेश की एक पिछड़ी जाति है) के नेता कल्याण सिंह को उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री पद का उम्मीदवार बनाया। यह भी मण्डल आन्दोलन की एक जीत ही थी कि गैर मण्डलवादी दल भी पिछड़ी जाति के नेताओं को मुख्यधारा की राजनीति में लाने का प्रयास कर रहे थे। इस चुनाव में भारतीय जनता पार्टी ने 221 सीटों पर विजय प्राप्त कर सरकार गठित की थी।[11]

इस चुनाव में राम मन्दिर आन्दोलन को राजनीतिक सफलता तो प्राप्त हुयी किन्तु मुख्यमंत्री उम्मीदवार कल्याण सिंह की पिछड़ी जाति की भूमिका को भी नकारा नहीं जा सकता था। मुलायम सिंह के नेतृत्व में जनता दल कोई खास प्रदर्शन नहीं कर सकी। इसका कारण दल के राष्ट्रीय नेतृत्व में आपसी गुटबाजी थी किन्तु इस चुनाव ने पिछड़ी जातियों को राजनीति की मुख्यधारा में लाने का काम किया। अब यह सिद्ध हो चुका था कि उत्तर प्रदेश में आने वाले समय में सत्ता की चाभी पिछड़ी जातियों के पास ही रहेगी।

22 जून, 1991 को कल्याण सिंह भाजपा विधायक दल के नेता चुने गए तथा 24 जून को उन्होंने मुख्यमंत्री पद की शपथ ग्रहण की। इस प्रकार उत्तर प्रदेश को एक बार फिर से पिछड़ी जाति का मुख्यमंत्री प्राप्त हुआ।

समाजवादी पार्टी का गठन-1992

1991 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव में मुलायम सिंह यादव एव जनतादल की पराजय के पश्चात् भारतीय जनता पार्टी की सरकार का गठन हो चुका था तथा कल्याण सिंह उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री बन चुके थे।

जनतादल आपसी फूट के कारण अपना जनाधार समाप्त करता जा रहा था। मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू करने का राजनीतिक लाभ भी राजनीतिक गुटबाजी के कारण किसी को प्राप्त नहीं हो सका था। विश्वनाथ प्रताप सिंह एवं चन्द्रशेखर दोनों ही नेता प्रधानमंत्री के रूप में अपना कार्यकाल पूर्ण नहीं कर सके थे। केन्द्र में कांग्रेस ने नरसिंह राव के नेतृत्व में पुनः सरकार का गठन कर लिया था। उत्तर प्रदेश में भी राम मन्दिर आन्दोलन का नेतृत्व करने वाली भारतीय जनता पार्टी ने सरकार गठित कर ली थी।

केन्द्र एवं उत्तर प्रदेश दोनों में गैर मण्डलवादी सरकारों के गठन से यह निर्धारित हो चुका था कि मण्डलवादी आन्दोलन राजनीतिक रूप से असफल हो रहा है। राष्ट्रीय नेतृत्व बिखर चुका था तथा मुलायम सिंह यादव एक क्षेत्रीय नेता के रूप में ही विद्यमान थे। मुलायम सिंह यादव ने मण्डल आन्दोलन को पुनः स्फूर्ति प्रदान करने के लिए तथा एक क्षेत्रीय नेता के रूप में अपनी छवि को परिवर्तित करने के लिए समाजवादी पार्टी के रूप में एक नये दल के गठन की घोषणा कर दी।[12]

4 अक्टूबर, 1992 को मुलायम सिंह यादव ने नये दल के गठन से पूर्व समस्त देश के विभिन्न समाजवादी विचारधारा के नेताओं को आमंत्रित किया। पश्चिम बंगाल की वाम मोर्चा सरकार में मंत्री किरणमय नन्दा एवं प्रमोद सिन्हा, बिहार के समाजवादी नेता कपिलदेव सिंह एवं लक्ष्मी साहू, मध्य प्रदेश के कल्याण जैन, हरियाणा के पूर्व मुख्यमंत्री हुकुम सिंह, आन्ध्र प्रदेश के विपिन पाल, तमिलनाडु के गोपाल कृष्ण, हिमाचल प्रदेश से केवल राम, दिल्ली से सांवल दास गुप्ता, उड़ीसा से लोकतांत्रिक समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष विजय जैन ने मुलायम सिंह यादव के समाजवादी दल में सम्मिलित होने का आमंत्रण

स्वीकार कर लिया।[13] पश्चिम बंगाल की वाम मोर्चा सरकार के समाजवादी घटक ने भी स्वयं को इस दल में विलय कर दिया। 4 नवम्बर, 1992 को लखनऊ के बेगम हजरत महल पार्क में समाजवादी पार्टी की स्थापना के लिए सम्मेलन प्रारम्भ हुआ।[14] इस सम्मेलन में समाजवादी आन्दोलन को पुर्नजागृत करने का आह्वान किया गया तथा देशभर से आये समाजवादी विचारधारा के नेताओं ने मुलायम सिंह यादव को पार्टी का राष्ट्रीय अध्यक्ष चुना।[15]

पार्टी के गठन के पश्चात् 16 राज्यों से आये हुए प्रतिनिधियों ने पार्टी का ध्वज, निशान, संविधान आदि मंजूर किया। इस नये दल का संविधान बाबरी मस्जिद एक्सन कमेटी के संयोजक मोहम्मद आजम खाँ ने प्रस्तुत किया तथा पश्चिम बंगाल के संसदीय कार्यमंत्री प्रमोद सिन्हा ने उसका समर्थन किया। रामशरण दास ने पार्टी का ध्वज एवं चिह्न प्रस्तावित किया।किरणमय नन्दा ने अध्यक्ष पद के लिए मुलायम सिंह यादव का नाम प्रस्तावित किया था जिसका समर्थन बिहार के कपिलदेव सिंह द्वारा किया गया।[16]

समाजवादी पार्टी के गठन के उपरान्त मुलायम सिंह यादव उत्तर प्रदेश की राजनीति का केन्द्रीय बिन्दु बन गये। समाजवादी पार्टी उत्तर प्रदेश सहित महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश जैसे कुछ अन्य प्रदेशों में भी अपनी उपस्थिति दर्ज की। एक समय एच0 डी0 देवगौड़ा के प्रधानमंत्री पद से त्याग पत्र देने के बाद मुलायम सिंह यादव को प्रधानमंत्री पद का सशक्त दावेदार माना जाने लगा था।[17] राजनीतिक गतिरोध के चलते उनकी यह महत्त्वाकांक्षा अधूरी रह गयी, किन्तु मुलायम सिंह यादव ने केन्द्र में रक्षामंत्री के पद तक पहुँच कर राष्ट्रीय राजनीति में भी अपनी उपस्थिति दर्ज की।

1993 का विधानसभा चुनाव एवं सपा-बसपा गठबंधन-

अयोध्या में विवादित ढाँचा गिराये जाने के बाद केन्द्र द्वारा उत्तर प्रदेश की भाजपा सरकार बर्खास्त कर दी गयी थी। परिणामस्वरूप 1993 में उत्तर प्रदेश में मध्यावधि चुनाव हुए। कांग्रेस पार्टी उत्तर प्रदेश में अपना जनाधार खो रही थी। दूसरी तरफ उत्तर प्रदेश में गैर कांग्रेसी दल बिखरे हुए थे। राम मन्दिर आन्दोलन के कारण भारतीय जनता पार्टी 1991 के चुनाव में विशाल बहुमत से सरकार गठित कर चुकी थी। अत: भारतीय जनता पार्टी को पूर्ण विश्वास था 1993 के चुनाव में भी राम लहर के सहारे पार्टी पुन: बहुमत से सरकार स्थापित करेगी।

मुलायम सिंह यादव ने पुन: राजनीतिक चतुराई का परिचय दिया तथा भारतीय जनता पार्टी को सत्ता से दूर रखने के लिए काशीराम के नेतृत्व वाली बहुजन समाज पार्टी के साथ गठबंधन स्थापित कर लिया। इस गठबंधन का सहारा लेकर उन्होंने उत्तर प्रदेश में मण्डल आन्दोलन एवं दलित आन्दोलन को एक मंच पर लाने का प्रयास किया। दलित-पिछड़ों को एक साथ लाने के लिए तथा राम मन्दिर आन्दोलन का प्रत्युत्तर देने के उद्देश्य से इस गठबंधन ने नारा दिया- मिले मुलायम काशीराम, हवा में उड़ गये जय श्री राम।[18]

दोनों दलों ने प्रदेश में जातीय समीकरण बनाने के लिए अत्यन्त उग्र चुनाव प्रचार किया। दलित-पिछड़ों का वोट प्राप्त करने के लिए सवर्ण जातियों के विरुद्ध भी नारे गढ़े गये। पूरे चुनाव प्रचार के दौरान एक नारा बार-बार सुनाई दिया-तिलक, तराजू और तलवार, इनको मारो जूते चार।

दोनों दलों ने इस तरह के उग्र चुनाव प्रचार से साफ कर दिया था कि वे दलित-पिछड़ों के गठबंधन के सहारे सिर्फ उत्तर प्रदेश में सत्ता प्राप्त करना ही नहीं चाहते हैं बल्कि उनका उद्देश्य उत्तर प्रदेश में सवर्ण जातियों के सामाजिक वर्चस्व को भी समाप्त करना है।

मुलायम सिंह यादव एवं काशीराम के मध्य हुए एक समझौते में इस गठबंधन को अन्तिम रूप दिया गया। सपा एवं बसपा क्रमश: 256 एवं 164 सीटों पर चुनाव लड़ने के लिए सहमत हुयीं।[19] दोनों दलों ने संयुक्त रूप से 425 सीटों में से 176 सीटों पर विजय प्राप्त की। समाजवादी पार्टी ने 109 तथा बसपा ने 67 सीटों पर विजय प्राप्त की।[20]

इस गठबंधन ने उत्तर प्रदेश में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। दो वर्ष पूर्व ही विशाल बहुमत से सरकार गठित करने वाली भाजपा इस चुनाव में बहुमत के आस-पास भी नहीं पहुँच सकी थी। दूसरी तरफ 1989 तक उत्तर प्रदेश में एकछत्र शासन करने वाली कांग्रेस पार्टी उत्तर प्रदेश में शक्ति शून्यता की स्थिति में पहुँच चुकी थी। कांग्रेस की शिथिलता का लाभ भी इन दलों को प्राप्त हुआ तथा दलित-पिछड़ों के साथ अल्पसंख्यक समुदाय से भी इन दलों को अच्छा समर्थन प्राप्त हुआ।

चुनाव में विजय के पश्चात् दोनों दलों ने मुलायम सिंह यादव को मुख्यमंत्री नियुक्त करने पर स्वीकृति दी।[21] मुलायम सिंह यादव को बहुमत दल का नेता चुना गया तथा मुलायम सिंह यादव ने दूसरी बार उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री पद की शपथ ग्रहण की। सपा-बसपा गठबंधन सरकार गठित होने के बाद उत्तर प्रदेश में सवर्ण जातियों का उग्र विरोध अपने चरम पर पहुँच गया। विधानसभा में भी सवर्ण विरोधी नारे लगाये गये। विधानसभा की बैठक के पहले दिन ही विधानसभा में प्रवेश करने से पूर्व सत्ताधारी दलों के ही कई विधायकों के मस्तक से तिलक मिटाया गया। पूर्व विधानसभा अध्यक्ष केशरीनाथ त्रिपाठी को भी जातिगत कारणों से अपमानित किया गया। सत्ता पक्ष की इस तरह की कार्यशैली के कारण विधानसभा में अराजकता की स्थिति बनी रहती थी। समाजवादी पार्टी एवं बसपा का यह गठबन्धन अधिक समय तक नहीं चल सका दोनो दलों में कुछ वैचारिक मतभेद थे, लखनऊ के गेस्ट हाउस काण्ड के बाद दोनों के मतभेद खुलकर सामने आये।[22]

गेस्ट हाउस काण्ड एवं दलित-पिछड़ा गठजोड़ की विफलता-

मुलायम सिंह यादव एवं काशीराम की दलित-पिछड़ा गठबंधन की योजना सफल नहीं हो सकी थी। सपा एवं बसपा में आपसी हितों को लेकर टकराव प्रारम्भ हो गया था। दोनों दलों के नेताओं की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा गठबंधन की राजनीति पर हावी देने लगी थी। दोनों दल एक दूसरे दल को आशंका की दृष्टि से देख रहे थे। इसी बीच 2 जून, 1995 को बसपा की नेता मायावती ने लखनऊ के एक गेस्ट हाउस में बसपा के सभी विधायकों की मीटिंग बुलाई।[23] सपा नेताओं को यह आभास था कि मायावती ने सपा से समर्थन वापस लेकर भाजपा को समर्थन देने के उद्देश्य से यह मीटिंग बुलाई है।

समाजवादी पार्टी के अनेक कार्यकर्ताओं ने गेस्ट हाउस को घेर कर हमला कर दिया। इस हमले में बसपा के कई विधायकों को चोटें आयीं, रक्तपात हुआ। मायावती ने स्वयं को एक कमरे में बन्द कर अपने आपको बचाया। मायावती ने आरोप लगाया कि उस दिन उनकी जान को खतरा था।[24] घटना के

अगले दिन भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व ने राज्यपाल मोतीलाल वोरा से मुलाकात की तथा बसपा को समर्थन देने का ऐलान कर दिया।[25] बसपा अध्यक्ष काशीराम ने मायावती को मुख्यमंत्री पद के उम्मीदवार के रूप में घोषित किया।

इस प्रकार गेस्ट हाउस प्रकरण के चलते मण्डलवाद एवं दलित आन्दोलन के राजनीतिक गठबंधन की संभावनायें समाप्त हो गयीं। दलित-पिछड़ा गठबंधन की विफलता के बाद मुलायम सिंह यादव ने उत्तर पदेश में पिछड़ी जातियों के साथ अल्पसंख्यकों को जोड़ने की जो योजना तैयार की उसका लाभ समाजवादी पार्टी को लम्बे समय तक प्राप्त होता रहा है।

1996 का विधानसभा चुनाव-

1996 का विधानसभा चुनाव पुनः एक बार मण्डल बनाम कमण्डल के मुद्दे पर लड़ा गया। कमण्डल से तात्पर्य था हिन्दुत्व का मुद्दा। इस चुनाव में एक तरफ समाजवादी पार्टी थी जो कि पिछड़ी जातियों तथा अल्पसंख्यकों को अपनी तरफ जोड़ने का प्रयत्न कर रही थी। दूसरी तरफ भारतीय जनता पार्टी थी जो कि जातीय समीकरणों के स्थान पर हिन्दुत्व के एजेण्डे के साथ चुनाव में सम्मिलित हुयी थीं। भाजपा ने पुनः एक बार मुलायम सिंह यादव के जातीय समीकरणों को संतुलित करने के लिए लोधी जाति के कल्याण सिंह को उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री पद का दावेदार बनाया था।[26]

इस चुनाव में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हो सकता था किन्तु भारतीय जनता पार्टी सबसे बड़ा दल बनी थी। भारतीय जनता पार्टी ने इस चुनाव में 174 सीटें प्राप्त की थीं।[27] इस चुनाव में समाजवादी पार्टी विजय तो प्राप्त नहीं कर सकी किन्तु पार्टी ने पिछड़ी जातियों एवं अल्पसंख्यक समुदाय के मध्य मजबूत आधार प्राप्त कर लिया था। पिछड़ी जातियाँ तो मण्डल आन्दोलन के कारण प्रारम्भ से मुलायम सिंह यादव से प्रभावित थीं, किन्तु मुलायम सिंह यादव को ज्ञात था कि सिर्फ पिछड़ी जातियों के मतों से उनका दल उत्तर प्रदेश में विजय प्राप्त नहीं कर सकता है। इसी कारण उन्होंने दलित जातियों को अपने साथ जोड़ने के लिए काशीराम से समझौता किया था और बसपा के साथ गठबंधन स्थापित किया था। किन्तु गेस्ट हाउस के उस प्रकरण ने निकट भविष्य में मुलायम सिंह यादव के दलित-पिछड़ा गठबंधन की महत्वाकांक्षा को धूमिल कर दिया था। सवर्ण जातियाँ प्रारम्भ से मुलायम सिंह यादव के विरुद्ध थीं, क्योंकि मुलायम सिंह यादव की राजनीति का आधार ही सवर्ण विरोधी था।[28]

ऐसी स्थिति में मुलायम सिंह यादव ने अल्पसंख्यक समुदाय को अपनी तरफ आकर्षित करने का प्रयत्न किया। मुलायम सिंह यादव विवादित ढाँचे को गिराये जाने पर सबसे प्रबल विरोध करने वाले नेताओं में से एक थे। सत्ता में रहने के दौरान भी उन्होंने राम मन्दिर आन्दोलन को समाप्त करने के लिए बार-बार प्रयत्न किए थे। अल्पसंख्यकों के प्रति उनके इस झुकाव का लाभ उन्हें 1996 के विधानसभा चुनाव में प्राप्त हुआ। इस चुनाव में समाजवादी पार्टी सत्ता तो प्राप्त नहीं कर सकी किन्तु उसे 22.7 प्रतिशत वोट के साथ 110 सीटें प्राप्त हुयीं।

13वीं विधानसभा 1996 में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हो सका तथा विधानसभा लम्बित रही। उत्तर प्रदेश में एक बार पुनः राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया जोकि 17 अक्टूबर, 1996 से 21 मार्च, 1997 तक चला। मार्च 1997 में बसपा एवं भाजपा में गठबंधन स्थापित हुआ। दोनों दलों में आपस में समझौता किया कि दोनों दल छः-छः माह के लिए सत्ता का प्रयोग करेंगे। इसी सूत्र के आधार पर मार्च 1997 में मायावती दूसरी बार उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री बनीं तथा उत्तर प्रदेश में राष्ट्रपति शासन समाप्त हुआ। मायावती ने अपना छः माह का कार्यकाल पूर्ण किया तथा सितम्बर 1997 में कल्याण सिंह ने भाजपा की तरफ से मुख्यमंत्री पद की शपथ ग्रहण की। कल्याण सिंह एक माह का कार्यकाल भी पूर्ण नहीं कर सके थे कि मायावती ने दलितों के हितों की अनदेखी का आरोप लगाकर समर्थन वापस ले लिया।[29] किन्तु कल्याण सिंह ने फिर भी विधानसभा में बहुमत साबित किया तथा सरकार में बने रहे।

चौधरी नरेन्द्र सिंह के नेतृत्व में बसपा के एक बागी गुट ने जनतांत्रिक बसपा का गठन किया तथा कल्याण सिंह को समर्थन प्रदान किया।[31] दूसरी तरफ कांग्रेस पार्टी के एक गुट ने नरेश अग्रवाल के नेतृत्व में लोकतांत्रिक कांग्रेस का गठन करके कल्याण सिंह को समर्थन प्रदान किया था।[31]

21 फरवरी, 1998 को राज्यपाल रोमेश भण्डारी ने कल्याण सिंह की सरकार को बर्खास्त कर कांग्रेस पाटी के जगदम्बिका पाल को उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री पद की शपथ दिला दी किन्तु कल्याण सिंह ने राज्यपाल के इस निर्णय को इलाहाबाद उच्च न्यायालय में चुनौती दी तथा न्यायालय ने अपना निर्णय कल्याण सिंह के पक्ष में सुनाया।[32] कल्याण सिंह पुनः उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री बने। जगदम्बिका पाल सिर्फ 48 घण्टे मुख्यमंत्री रह सके।[33]

2002 का विधानसभा चुनाव एवं मण्डल आन्दोलन की सफलता-

2002 के पहले उत्तर प्रदेश में भाजपा की सरकार थी। इस 5 वर्ष के कार्यकाल में भाजपा ने तीन बार मुख्यमंत्री बदले। भले ही प्रदेश में बार-बार चुनाव नहीं कराने पड़े किन्तु बार-बार मुख्यमंत्री बदले जाने से एक तरह की अस्थिरता बनी हुयी थी। इस आपसी गुटबाजी ने भारतीय जनता पार्टी के प्रति जनता का मोहभंग कर दिया था। 2002 के चुनाव में भारतीय जनता पार्टी पिछड़े वर्ग के नेता कल्याण सिंह के स्थान पर क्षत्रिय जाति के नेता मुख्यमंत्री राजनाथ सिंह के नेतृत्व में चुनाव में उतरी थी। दूसरी तरफ मुलायम सिंह यादव के नेतृत्व वाली समाजवादी पार्टी थी। उत्तर प्रदेश में भाजपा को स्थापित करने वाले कल्याण सिंह को पार्टी से जिस तरह दरकिनार किया गया था, समाजवादी पार्टी को इसका लाभ मिला। कल्याण सिंह के पिछड़ी जाति के होने के कारण पिछड़ी जातियों का मत समाजवादी पार्टी एवं भाजपा में बंट जाते थे। मुलायम की मण्डलवादी जातियों को लामबंद करने की महत्वाकांक्षा में सबसे बड़ी रूकावट कल्याण सिंह ही थे। वे उत्तर प्रदेश में पिछड़ी जातियों के दूसरे सबसे बड़े नेता माने जाते थे। किन्तु 2002 के चुनाव में भाजपा के साथ कल्याण सिंह के न होने का लाभ मुलायम सिंह यादव को प्राप्त हुआ। समाजवादी पार्टी ने चुनाव प्रचार के दौरान पिछड़ी जातियों को कल्याण सिंह का उदाहरण देकर कहा, कि भाजपा पिछड़ी जातियों का प्रयोग करके ऐसे ही छोड़ देगी जैसे कल्याण सिंह को छोड़ दिया है। कल्याण सिंह की अनुपस्थिति के मुलायम सिंह यादव उत्तर प्रदेश में पिछड़ी जातियों के सर्वमान्य नेता बन चुके थे।

राजनाथ सिंह ने जातीय समीकरण अपने पक्ष में लाने के उद्देश्य से कैराना सांसद हुकुम सिंह की अध्यक्षता में एक समिति गठित की।[34] समिति के परामर्श पर जाट जाति को अन्य पिछड़ा वर्ग में सम्मिलित किया गया। राजनाथ सिंह ने भाजपा की मण्डल विरोधी छवि को सुधारने एवं कल्याण सिंह की अनुपस्थिति

से होने वाले चुनावी नुकसान की भरपाई के लिए अनेक प्रयत्न किए किन्तु सफल नहीं हुए।

2002 के विधानसभा चुनाव के समाजवादी पार्टी सबसे बड़ा दल बनी। इस चुनाव में समाजवादी पार्टी को 143 सीटें प्राप्त हुयीं। भाजपा इस चुनाव में तीसरे स्थान पर पहुँच गयी।

इस चुनाव में समाजवादी पार्टी सबसे बड़ा दल बनी। हालांकि इस चुनाव में किसी भी दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं हो सका किन्तु इस चुनाव में मण्डलवादी आन्दोलन पूर्ण रूप से सफल हो चुका था। पिछड़ी जातियों ने इस चुनाव में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया, पूरा चुनाव पिछड़ी जातियों के मुद्दे पर लड़ा गया। सत्ताधारी दल तथा विपक्ष दोनों ही पिछड़ी जातियों को अपनी तरफ लुभाने का प्रयत्न करते रहे। इस चुनाव में पहली बार उत्तर प्रदेश में मण्डलवादी जातियाँ राजनीति के केन्द्र में आ गयीं। सभी राजनीतिक दलों को यह ज्ञात हुआ कि उत्तर प्रदेश में सत्ता की चाभी पिछड़ी जातियों के पास ही है।

फिलहाल इस चुनाव में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न होने की स्थिति में प्रदेश में पुनः राष्ट्रपति शासन लागू हुआ। मई 2002 में भाजपा के समर्थन से बसपा की सरकार गठित हुयी तथा मायावती उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री बनीं। किन्तु भाजपा के ही कई नेता मायावती को समर्थन देने से नाराज थे। भाजपा प्रदेश अध्यक्ष कलराज मिश्र ने अपने पद से त्याग पत्र दे दिया। विनय कटियार भाजपा के प्रदेश अध्यक्ष बनाये गये। उन्होंने मायावती की सवर्ण विरोधी छवि सुधारने के लिए अनेक प्रयत्न किए। उन्होंने नारा भी दिया-हाथी नहीं गणेश है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश है।

किन्तु ये समस्त प्रयास इस गठबंधन को अधिक समय तक बचा नहीं सके। अगस्त 2003 में मायावती ने अपने पद से त्याग पत्र दे दिया। 29 अगस्त, 2003 को बसपा के कुछ असंतुष्ट विधायकों के समर्थन से मुलायम सिंह यादव ने मुख्यमंत्री पद की शपथ ली तथा 2007 तक प्रदेश के मुख्यमंत्री बने रहे।

2004 के लोकसभा चुनाव में सपा ने उत्तर प्रदेश की 39 सीटों पर विजय प्राप्त की जो सपा का सबसे श्रेष्ठ प्रदर्शन था।[35] मण्डल जातियों के समर्थन से समाजवादी पार्टी उत्तर प्रदेश के केन्द्र में पहुँच गयी उस समय से वर्तमान तक सपा उत्तर प्रदेश का सबसे प्रभावशाली राजनीतिक दल बनी हुई है। यह दल या तो सत्ता में रहा है या विपक्ष में किन्तु पहले एवं दूसरे स्थान के अतिरिक्त यह दल प्रदेश में कभी तीसरे स्थान पर नहीं पहुँचा है। उसके पीछे कारण इस दल का मजबूत वोट बैंक है। पिछड़ी जातियों का एक बड़ा एवं प्रभावशाली हिस्सा भी इस दल के साथ प्रत्येक परिस्थिति में जुड़ा हुआ है, जो इस दल को प्रदेश के केन्द्र में सदैव स्थापित रखता है। 2012 के विधान सभा चुनाव में समाजवादी पार्टी ने पूर्ण बहुमत से सरकार स्थापित की जो कि उत्तर प्रदेश में मण्डल आन्दोलन की पूर्णता का सूचक है।

इस प्रकार समाजवादी पार्टी के नेतृत्व में उत्तर प्रदेश का मण्डलवादी आन्दोलन सफल हुआ। इस आन्दोलन की सफलता के साथ ही उत्तर प्रदेश में पिछड़ी जातियाँ सत्ता के केन्द्र में आ चुकी हैं। वर्तमान के सभी राजनीतिक दल पिछड़ी जातियों को आकर्षित करना चाहते हैं क्योंकि उत्तर प्रदेश में पिछड़ी जातियाँ ही सत्ता की दिशा एवं दशा का निर्धारण कर रही हैं।

सन्दर्भ-

1. उत्तर प्रदेशः एक राजनीतिक इतिहास, इण्डियन एक्सप्रेस, 10 मार्च, 2017
2. उत्तर प्रदेशः एक राजनीतिक इतिहास, इण्डियन एक्सप्रेस, 10 मार्च, 2017
3. उत्तर प्रदेशः एक राजनीतिक इतिहास, इण्डियन एक्सप्रेस, 10 मार्च, 2017
4. उपरोक्त।
5. उपरोक्त।
6. उपरोक्त।
7. दुआ, वी0डी0, प्रेसिडेंसियल रूल इन इण्डिया, एस0 चन्द्र एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 1979।
8. त्रिपाठी, आर0पी0, मुलायम सिंह यादवः रचना एवं संघर्ष, 1996.
9. उत्तर प्रदेशः एक राजनीतिक इतिहास, इण्डियन एक्सप्रेस, 10 मार्च, 2017
10. उपरोक्त।
11. उपरोक्त।
12. त्रिपाठी, आर0पी0, मुलायम सिंह यादवः रचना एवं संघर्ष, 1996.
13. दुबे, अभय कुमार, मुलायम सिंहः एक आलोचनात्मक अध्ययन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997।
14. इण्डियन एक्सप्रेस, मार्च 29, 1995.
15. हिन्दुस्तान टाइम्स, मई 19, 1994.
16. दुबे, अभय कुमार, मुलायम सिंहः एक आलोचनात्मक अध्ययन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997।
17. उपरोक्त।
18. त्रिपाठी, आर0पी0, मुलायम सिंह यादवः रचना एवं संघर्ष, 1996.
19. उत्तर प्रदेशः एक राजनीतिक इतिहास, इण्डियन एक्सप्रेस, 10 मार्च, 2017
20. उपरोक्त
21. दुबे, अभय कुमार, मुलायम सिंहः एक आलोचनात्मक अध्ययन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997।
22. उत्तर प्रदेशः एक राजनीतिक इतिहास, इण्डियन एक्सप्रेस, 10 मार्च, 2017

23. बी0बी0सी0 न्यूज 12 जनवरी, 2019।
24. उपरोक्त।
25. उपरोक्त।
26. उत्तर प्रदेश: एक राजनीतिक इतिहास, इण्डियन एक्सप्रेस, 10 मार्च, 2017
27. उपरोक्त।
28. दूबे, देवी दयाल।
29. इण्डियन एक्सप्रेस।
30. इण्डियन एक्सप्रेस।
31. उपरोक्त।
32. उपरोक्त।
33. उपरोक्त।
34. उत्तर प्रदेश: एक राजनीतिक इतिहास, इण्डियन एक्सप्रेस, 10 मार्च, 2017।
35. उपरोक्त।

"संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता के लिए भारत की महत्वाकांक्षा: सम्भावनाएं तथा बाधाएं"

प्रो० (डॉ०) कमल कुमार

राजनीतिशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

जोया

शोधार्थी, राजनीतिशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

सारांश

भारत 1 जनवरी 2021 को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद (यूएनएससी) का अस्थायी सदस्य बना, 2021-22 दो वर्षों के लिए यूएनएससी में एक अस्थायी सीट जीतने के साथ अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भारत की उपस्थिति को बढ़ावा मिला है। यह सुरक्षा परिषद में भारत का आठवां कार्यकाल था।, इस कार्यकाल के दौरान भारत का समग्र उद्देश्य N.O.R.M.S (सुधारित बहुपक्षीय प्रणाली के लिए एक नई दिशा।) को प्राप्त करना था। यूएनएससी अपनी स्थापना के 75वें वर्ष को प्राप्त कर चुकी है, इसलिए बहुपक्षवाद के अस्तित्व के लिए इसका सुधार अपरिहार्य माना जाता है। भारत अन्य देशों के साथ मिलकर यूएनएससी में सुधारों के लिए प्रयास कर रहा है।[1] भारत की नजर में, "संयुक्त राष्ट्र का कोई भी सुधार इक्कीसवीं सदी की समकालीन वास्तविकताओं को प्रतिबिंबित करने के लिए सुरक्षा परिषद की संरचना में बदलाव के बिना पूरा नहीं होता है। इसके लिए सुरक्षा परिषद की स्थायी और गैर-स्थायी दोनों श्रेणियों में विस्तार की आवश्यकता है,"

भारत एक वैश्विक शक्ति के रूप में अपनी स्थिति में सुधार करने और अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिए यूएनएससी में स्थायी सदस्यता के लिए दावा करता है। भारत का मानना है कि बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था के उदय के कारण वैश्विक परिस्थितियाँ बहुत बदल गई हैं और सुरक्षा परिषद में सुधारों की आवश्यकता है।

भारत दुनिया की सबसे बड़ी जनसंख्या वाला देश है और शुरुआत से ही संयुक्त राष्ट्र और इसकी गतिविधियों से जुड़ा रहा है। इसके अलावा, भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र, सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था और दक्षिण एशिया में एक प्रमुख नेता है। इस लेख का उद्देश्य संयुक्त राष्ट्र के प्रतिष्ठित व प्रमुख अंग, सुरक्षा परिषद के विस्तार के बड़े अभियान के एक हिस्से के रूप में स्थायी सीट सुरक्षित करने के भारत के राजनीतिक और कूटनीतिक प्रयासों का विस्तार से विश्लेषण करना है।[2]

कीवर्ड: संयुक्त राष्ट, सुरक्षा परिषद, वीटो शक्ति, स्थाई सदस्यता, बहुपक्षीयतावाद

परिचय

संयुक्त राष्ट्र एक अंतर-सरकारी संगठन है जिसका उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखना है जिसका वे इतिहास में 75 वर्षों से दावा कर रहा हैं जबकि यह राज्यों के बीच शंका का विषय बन गया है कि वे ऐसा वास्तव में कर रहा हैं या केवल दिखावा कर रहा हैं![3] आलोचकों के अनुसार-तीसरी दुनिया और विकासशील देशों में संयुक्त राष्ट्र केवल सहायता करने का अभिनय कर रहा है, लेकिन दूसरी ओर वास्तविकता में वे सिर्फ अमीर और विकसित देशों के लिए काम कर रहे हैं और उनके पक्ष में हैं और इस तरह अपनी शक्ति और आर्थिक क्षमता को बढ़ाने के लिए और विभिन्न तरीकों से लाभ उठाने के इच्छुक हैं तथा वे अन्य अल्प विकसित देशों का नए और आधुनिक उपनिवेशवाद की तरह नए तरीके से शोषण कर रहे हैं।[4] संयुक्त राष्ट्र के भीतर महत्वपूर्ण निकाय संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद है और संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 23 में पांच देशों (संयुक्त राज्य अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम, रूस, चीन और फ्रांस) को परिषद के स्थायी सदस्यों के रूप में नामित किया गया है। किस आधार पर केवल उन पाँचों को, अन्य को नहीं, स्थायी सदस्यता का दर्जा प्रदान किया गया, साझा नहीं किया गया। बस यह एक स्व-प्रदत्त स्थिति थी जिसने द्वितीय विश्व युद्ध में अपनी जीत के आधार पर इन पांच देशों में से कुछ को औपचारिक रूप से दुर्जेय कद प्रदान किया था। उनमें से कम से कम दो (चीन और फ्रांस) ने यह दर्जा अर्जित नहीं किया; वे केवल अन्य तीन-संयुक्त राज्य अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम और भूतपूर्व सोवियत संघ की भू-राजनीतिक आवश्यकताओं में निहित होने से लाभार्थी थे।[5] अधिक विचार विमर्श और योगदान के लिए उनकी संरचना में 10 गैर-स्थायी सदस्यों को शामिल किया गया हैं जिनका कार्यकाल दो वर्षों के लिए होता हैं।[6] संयुक्त राष्ट्र के लगभग सभी सदस्य सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्य बनने की इच्छा रखते हैं और इस महत्वपूर्ण सदस्यता के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था को बनाए रखने और अपने राष्ट्रीय लाभ और राष्ट्रीय हित प्राप्त करना चाहते हैं।

सुरक्षा परिषद में सुधार की समस्या एक ऐसी बीमारी के समान है जिसमें एक मरीज के आसपास कई डॉक्टर इकट्ठा हो जाते हैं; वे सभी निदान पर सहमत हैं, लेकिन वे नुस्खे पर सहमत नहीं हो सकते। निदान स्पष्ट है-सुरक्षा परिषद आज की नहीं, बल्कि 1945 की भू-राजनीतिक वास्तविकताओं को प्रतिबिंबित करती है। इस स्थिति का विश्लेषण गणितीय, भौगोलिक और राजनीतिक रूप से, साथ ही समानता के संदर्भ में भी किया जा सकता है।[7]

- गणितीय रूप से: जब 1945 में संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हुई थी, तो संयुक्त राष्ट्र के कुल इक्यावन देशों में से परिषद में ग्यारह सदस्य शामिल थे; दूसरे शब्दों में, लगभग 22 प्रतिशत सदस्य देश सुरक्षा परिषद में थे। आज, संयुक्त राष्ट्र के 193 सदस्य हैं, और परिषद में केवल पंद्रह सदस्य हैं, जो 8 प्रतिशत से भी कम हैं। इतने सारे देश, पूर्ण संख्या में और सदस्यता के अनुपात में, निकाय में पर्याप्त प्रतिनिधित्व महसूस नहीं करते हैं।[8]
- भौगोलिक दृष्टि से: परिषद की संरचना उन दिनों के शक्ति संतुलन को भी अनुचित महत्व देती है, उदाहरण के लिए, यूरोप, जो दुनिया की आबादी का बमुश्किल 5 प्रतिशत है, फिर भी 33 प्रतिशत सीटों पर नियंत्रण रखता है (और इसमें रूस, एक अन्य यूरोपीय शक्ति, की गिनती नहीं है)।
- राजनीतिक रूप से: पांच स्थायी सदस्य (संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, रूस और चीन) दशकों पहले युद्ध जीतने के कारण अपनी स्थिति और किसी भी परिषद के प्रस्ताव या निर्णय पर वीटो के विशेषाधिकार का आनंद लेते हैं।
- समानता के सरल विचारों के संदर्भ में: यह स्थिति उन देशों के लिए अन्यायपूर्ण है जिनका संयुक्त राष्ट्र में वित्तीय योगदान पांच स्थायी सदस्यों में से चार से अधिक है ख़ जापान और जर्मनी दशकों से संयुक्त राष्ट्र बजट में क्रमशः 19 प्रतिशत और 12 प्रतिशत पर, दूसरे और तीसरे सबसे बड़े योगदानकर्ता रहे हैं। जबकि उन्हें अभी भी 'शत्रु राज्य' के रूप में संदर्भित किया जा रहा है![9]

भारत की दावेदारी (स्थायी सदस्यता के लिए)

भारत 1945 में संयुक्त राष्ट्र के गठन के बाद से ही इसके साथ जुड़ा हुआ है। इसने राष्ट्रों की सामान्य संपदा के एक हिस्से के रूप में अपना योगदान देना शुरू किया और स्वतंत्रता के बाद से अब तक योगदान दे रहा है।

भारत एक उभरती हुई वैश्विक शक्ति है और यूएनएससी में स्थायी सदस्यता के लिए संभावित उम्मीदवार है। सुरक्षा परिषद में भारत के शामिल होने से यूएनएससी में शक्ति संतुलन और दक्षिण एशिया का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित होगा।[10]

भारत की उम्मीदवारी वैध और उचित है क्योंकि यह स्थायी सदस्यता के लिए सभी वस्तुनिष्ठ मानदंडों को पूरा करता हैं।

महासभा के 49वें सत्र में पहली बार आधिकारिक और खुले तौर पर भारत के विदेश मंत्री ने जोर देकर स्थाई सदस्यता के लिए अपना पक्ष रखा -

> *" किसी भी मानदंड ख़ जनसंख्या, अर्थव्यवस्था का आकार, अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के रखरखाव में योगदान और शांति स्थापना या भविष्य की संभावनाओं के आधार पर ख़ भारत सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य बनने का हकदार है। भारत की धारणा में, जब परिषद के विस्तार के लिए कोई वस्तुनिष्ठ मानदंड लागू किया जाता है तो भारत एक स्पष्ट विकल्प बन जाता है।"*[11]

भारत का स्थायी सदस्यता के लिए अभियान

आरम्भ में, भारत यूएनएससी में अपनी स्थायी सदस्यता को लेकर असमंजस में था। 1945 में सैन फ्रांसिस्को सम्मेलन के बाद के विभिन्न समय में, भारत ने यूएनएससी में अपने प्रतिनिधित्व के दावे को उचित ठहराया। भारत ने 1994 महासभा के सत्र में स्थायी सदस्यता के लिए आधिकारिक तौर पर अपनी मांग रखीं। भारत द्वारा सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता के लिए समय-समय पर विभिन्न अभियान चलाये गए हैं।

सर्वप्रथम निर्विवाद रूप में भारत ने विश्व राजनीतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान हासिल किया है और प्रभावशाली ढंग से स्वयं को प्रदर्शित किया है। 1998 के भूमिगत परमाणु हथियार परीक्षणों और सफल मध्यवर्ती और लंबी दूरी की मिसाइल परीक्षणों की श्रृंखला ने इसकी शक्ति क्षमताओं को बढ़ाया। उन्नत अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के उपयोग में भारत की प्रगति जारी है![12]

संयुक्त राज्य अमेरिका ने 2007 में एक प्रमुख नागरिक परमाणु सहयोग समझौता करके भारत के प्रति सकारात्मक सोच प्रदर्शित किया है, और परमाणु प्रमुख (चीन को छोड़कर) चाहते हैं कि भारत परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह का हिस्सा बने। इसके अलावा, आर्थिक वैश्वीकरण द्वारा प्रदान किए गए अवसरों और उदारीकरण की अपनी नीतियों के कारण भारत का अत्यधिक प्रभावशाली आर्थिक उत्थान हुआ है। नई सदी के शुरुआती वर्षों में, विशाल भारतीय बाजार ने अभूतपूर्व स्तर पर विदेशी निवेश को आकर्षित किया, इसने विदेशी मुद्रा के आरामदायक स्तर का निर्माण किया, और इसने निम्न और मध्यम वर्ग के लोगों की आय में वृद्धि की, और सबसे बढ़कर, देश हाल ही में तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में उभरा है और दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक है, जो पिछले लगभग एक दशक से औसतन 7-8 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढ़ रही है। विश्व आर्थिक मंच की दावोस बैठक में वैश्विक कॉरपोरेट्स के लिए एक विशेष आकर्षण बनने के अलावा, भारत 20 प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं के समूह G20 जैसे विश्व आर्थिक शक्तियों की नियमित सभा का हिस्सा बन गया है। संयुक्त राष्ट्र के अधिकांश प्रमुख शांति अभियानों के लिए पूरी तरह से गठित सेना और पुलिस टुकड़ियों का योगदान करने की भारत की तत्परता ने अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा प्रयासों में भारत को एक जिम्मेदार और विश्वसनीय भागीदार के रूप में फिर से पुष्टि की है। भारत की पहल पर, संयुक्त राष्ट्र ने 2014 में भारतीय प्राचीन योग परंपरा के लाभों को मान्यता दी और अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के वार्षिक पालन के लिए मार्ग प्रशस्त किया। इस तथ्य के अलावा कि भारत अब सहायता प्राप्त करने वाला देश नहीं है, वास्तव में, यह पड़ोस और उससे परे विकासशील देशों के लिए एक महत्वपूर्ण विकास भागीदार के रूप में उभरा है।"

भारत के अभियान का दूसरा पहलू द्विपक्षीय संपर्कों के माध्यम से अपनी उम्मीदवारी के लिए समर्थन प्राप्त करना है। भारत के राजनेताओं का विदेशी राजधानियों का दौरा करने और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि बड़ी, मध्यम और छोटी शक्तियों से आने वाले लगभग हर विदेशी गणमान्य व्यक्ति के साथ बातचीत को महत्व देना भारत की आकांक्षा के लिए समर्थन प्राप्त करना था।[13]

संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस, रूस और यूनाइटेड किंगडम जैसे स्थायी सदस्यों के अलावा अधिकांश पड़ोसी देशों, अफ्रीका के देशों, छोटे द्वीप तथा विकासशील देशों ने भारत की आकांक्षा के प्रति अपना समर्थन दिया है। अधिकारियों ने 2012 में दावा किया था कि लंबे वर्षों से शुरू की गई लॉबिंग की बदौलत भारत को लगभग 130 देशों का समर्थन प्राप्त है।

50वीं वर्षगांठ की स्मारक बैठक में बोलते हुए, भारतीय प्रधान मंत्री ने इस बात पर जोर देते हुए कहा कि संयुक्त राष्ट्र 'न तो विशिष्टतावादी या अधूरा देखा जा सकता है, न तो उपस्थिति में और न ही दृष्टिकोण में। स्थायी सदस्यता की सभी जिम्मेदारियाँ संभालने के लिए भारत की तत्परता की घोषणा करते हुए, एक अन्य प्रधान मंत्री ने 1997 के महासभा सत्र में भारत की स्थाई सदस्यता की आकांक्षा को विस्तार से बताया हैं-

"हम दुनिया में सबसे बड़े लोकतंत्र हैं, हमारी सभ्यता प्राचीन मूल्यों और उपलब्धियों से परिपूर्ण है, साथ ही सार्वभौमिक प्रेरणा, सहभागी शासन पर आधारित विश्व दृष्टिकोण भी है। विविधता और बहुलवाद के प्रति सम्मान, साथ ही विश्व मामलों में रचनात्मक भागीदारी के लिए तत्परता भारत की विलक्षण शक्ति को दर्शाता है। हमारा मानना है कि ये ताकतें विस्तारित सुरक्षा परिषद के लिए संपत्ति होंगी। दुनिया की अग्रणी अर्थव्यवस्थाओं में से एक के रूप में भारत की स्थिति उत्तरोत्तर मजबूत होगी और हम स्थायी सदस्यता की जिम्मेदारी पूरी तरह से उठाने के लिए तैयार हैं। संयुक्त राष्ट्र के शांति अभियानों में भारत की दीर्घकालिक भागीदारी न केवल भारतीय सैनिकों के समर्पण और व्यावसायिकता की गवाही देती है, बल्कि इन अभियानों में सक्रिय रूप से योगदान देने की सरकार की राजनीतिक इच्छा शक्ति की भी गवाही देती है।"

प्रत्येक प्रधान मंत्री, चाहे वह अटल बिहारी वाजपेयी हों, मनमोहन सिंह हों या नरेंद्र मोदी हों, उन्होंने सुरक्षा परिषद की सदस्यता में समय पर बदलाव का आह्वान किया और कहा कि भारत विस्तारित परिषद में 'अपनी भूमिका निभाने के लिए तैयार है।

भारत में सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य बनने की योग्यता

जनसंख्या

1.38 अरब जनसंख्या के साथ भारत दुनिया में सबसे बड़ी आबादी वाला देश है, और भारत पूरी दुनिया की 18% आबादी का प्रतिनिधित्व करता है जो कि एक बड़ा हिस्सा है।

तीव्र आर्थिक विकास

नवीनतम रिपोर्टों के अनुसार भारत दुनिया की पांचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है और देश 1990 से और विशेष रूप से 2006 के बाद से दुनिया में बड़े आर्थिक सौदों और विकास में शामिल रहा है और दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक रहा है।[14] पिछले दो दशकों में और दुनिया में सबसे युवा मानव संसाधन रखने वाले और अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक स्थिरता और अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था के लिए सभी महत्वपूर्ण मुद्दों में दुनिया की महान आर्थिक शक्तियों के साथ अत्यधिक योगदान देने वाले और ग्लोबल वार्मिंग काउंटर देशों में सक्रिय सदस्य भी रहा हैं।

भारतः एक जिम्मेदार और सबसे बड़ा लोकतंत्र

जब लोकतंत्र की बात आती है तो भारत दुनिया का सबसे बड़ा प्रतिनिधि लोकतंत्र धारक है। वर्तमान में भारत की जनसंख्या विश्व की कुल जनसंख्या का लगभग 18% है। अमेरिकी जनसंख्या संदर्भ ब्यूरो का दावा है कि भारत की जनसंख्या 2025 तक 1.4 बिलियन और 2050 तक 1.7 बिलियन तक पहुंच जाएगी। दो तिहाई आबादी स्थायी श्रेणी में प्रतिनिधित्व के बिना रह गई। ये दोनों तथ्य यूएनएससी में स्थायी सीट के लिए भारत के दावे के लिए पर्याप्त कारण बताते हैं।

उदारीकरण और वैश्वीकरण के बाद भारत का आर्थिक उदय

महामारी के बाद भी भारत दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बना हुआ है,

और जी20 तथा विश्व आर्थिक मंच जैसी वैश्विक आर्थिक शक्तियों की सभाओं में सहभागी हैं। भारत इस बात पर उचित रूप से जोर देता है कि अर्थव्यवस्था में आकार, लचीलापन और आत्मनिर्भरता प्रमुख कारक हैं जो किसी राष्ट्र को निर्णय की स्वतंत्रता का प्रयोग करने और कार्रवाई को प्रभावित करने के लिए सशक्त बनाता है

संयुक्त राष्ट्र शांति सेना और शांति स्थापना संचालन में भूमिका

भारत शांति स्थापना अभियानों में प्रमुख योगदान देता है और एक जिम्मेदार देश के रूप में उभरा है शांति और सुरक्षा बनाए रखने के अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में विश्वसनीय भागीदारी निभाई हैं। भारत के पास 1.4 मिलियन से अधिक शांति सेना है, हाल के आंकड़ों के अनुसार संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की शांति सेना में भारत का योगदान बहुत अधिक है और भारत के पास चीन के बाद दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी शांति सेना है, जिसका अर्थ है कि शेष चार महान शक्तियों से भी अधिक शांति सेना के द्वारा भारत ने संयुक्त राष्ट्र के शांति अभियान में योगदान दिया हैं। निष्कर्ष रूप में, यह कह सकते हैं कि भारत सार्वभौमिक शांति सेना के योगदान के तहत यूएनएससी में स्थायी सदस्य बनने के लिए पर्याप्त रूप से सक्षम हैं।

अंतर्राष्ट्रीय योग दिवसः

भारत अपनी प्राचीन संस्कृति के महत्व को घर-घर पहुंचाने में सक्षम है योग की परम्परा. भारत की सॉफ्ट पावर का परिचायक है।

विकासशील देशों का नेता

भारत दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद से विकासशील देशों का नेता है और विशेष रूप से 1947 में उपनिवेशवाद की लंबी अवधि और औपनिवेशिक शासन के अधीन रहने के बाद ब्रिटिशों से अपनी आजादी हासिल करने के बाद से भारत विकासशील देशों का नेतृत्व कर रहा है, विकासशील देशों में पहली सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था और दुनिया में सबसे तेज आर्थिक और जीडीपी वृद्धि के साथ दुनिया की पांचवीं सबसे बड़ी आर्थिक शक्ति और 505 बिलियन डॉलर के निर्यात के साथ दुनिया का चौथा सबसे बड़ा निर्यातक देश है। दुनिया के चार बड़े आर्थिक क्षेत्रों यूरोपीय संघ, चीन, अमेरिका और रूस के साथ उसके मजबूत आर्थिक संबंध हैं।

एक विकासशील देश के रूप में भारत के संबंध में इन सभी मजबूत बिंदुओं के साथ, यह स्पष्ट है कि भारत बड़ी संख्या में विकासशील देशों का प्रतिनिधित्व करने के लिए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य हो सकता है। विश्व के महत्वपूर्ण निर्णय लेने में शामिल होने के लिए भारत एक आदर्श विकल्प और नेता है जो इन देशों के अधिकारों और अवसरों का प्रतिनिधित्व और दावा कर सकता है।[15]

सदस्यता के विस्तार से संबंधित भारत का व्यावहारिक एवं लचीला प्रारूप

भारत ने स्थायी सीट के मामले में काफी समझदारी और परिपक्वता का परिचय दिया है। हालांकि इस संबंध में भारत का दृष्टिकोण रूढ़िवादी रहा है, यह किसी भी क्रांतिकारी सुधार का विरोध करता है, लेकिन यह दिखावटी सुधारों से कहीं अधिक की आवश्यकता पर भी जोर देता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसने रूढ़िवादी तरीके से सुधारों का सुझाव दिया है

गैर-स्थायी सदस्यों के मामले में लागू समान भौगोलिक प्रतिनिधित्व के आधार पर चुने गए वर्तमान और भविष्य के सदस्यों के बीच भेदभाव किए बिना स्थायी और गैर-स्थायी दोनों सदस्यों को बढ़ाकर एक ही ढांचे के भीतर समावेश किया। इसने यह भी सुझाव दिया है कि नई स्थायी सीटें देशों के समूह का प्रतिनिधित्व करने के बजाय एकल देशों की होनी चाहिए। इसने नए स्थायी सदस्यों को वीटो शक्ति देने पर भी अपना रुख नरम कर लिया है और 15 साल के अंतराल के बाद इसकी समीक्षा करने के लिए तैयार है।

स्थायी सीट के लिए प्रयास करने के लिए भारत ने जो सबसे महत्वपूर्ण रणनीति अपनाई है वह है विभिन्न राष्ट्रों के समान विचारधारा वाले समूहों के साथ संघ और गठबंधन बनाएं और सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यह जापान, जर्मनी और ब्राजील वाले G-4 में शामिल हो गया हैं!

इन देशों और भारत को, कम से कम दो-तिहाई देशों का अनिवार्य समर्थन प्राप्त हो रहा है। वीटो के सवाल पर G-4 देशों ने स्पष्ट कर दिया है कि जब तक समीक्षा में मामले पर निर्णय नहीं हो जाता तब तक वे वीटो की शक्ति का प्रयोग नहीं करेंगे जो इसके लागू होने के 15 साल बाद आयोजित किया जाना है। भारत ने छोटे और विकासशील देशों का एक बड़ा समूह तैयार करने में भी पहल की, जिसमें कैरेबियाई और प्रशांत द्वीप देश शामिल हैं जिन्हें L69 समूह कहा जाता है जो छह नए स्थायी सदस्यों को सुरक्षा परिषद में शामिल करने की अनुशंसा करता है लेकिन वीटों शक्ति के सम्बन्ध में उनका रुख कट्टरपंथी हैं कि या तो सभी स्थायी सदस्यों को वीटो शक्ति का आनंद लेना चाहिए या किसी को भी नहीं। भारत ने अपने आप को इन दोनों समूहों के साथ जोड़ लिया ताकि स्थायी सदस्यता के समर्थन के लिए अधिकतम लाभ प्राप्त कर सके।

भारत के लक्ष्य में बाधाएँ

चार्टर

1945 में स्थापित संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुसार- 5 परमाणु शक्ति संपन्न देश स्थायी सदस्य होंगे और केवल 6 सदस्य देश ही गैर-स्थायी सदस्य हो सकते हैं जिसकी संख्या 1963 में बढ़कर 10 हो गई। ये कुल 15 स्थायी और गैर-स्थायी सदस्य अंतर्राष्ट्रीय मामलों के लिए निर्णय लेने वाले बोर्ड में हैं और प्रत्येक निर्णय के लिए 15 में से 9 वोटों की आवश्यकता होती है, जिसमें सभी 5 स्थायी सदस्यों के वोट शामिल हैं, इसका मतलब है कि ये गैर-स्थायी सदस्य अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं। भारत एक अस्थायी सदस्य है लेकिन वह इस सदस्यता से संतुष्ट नहीं है क्योंकि जब संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के भीतर भारत के पक्ष की बात आएगी तो चीन को विरोधी पक्ष मिल जाएगा और वह अपनी वीटो शक्ति का उपयोग करेगा और संभवतः मामले को खारिज कर देगा। जिससे हमें यह समझ आता है कि इस अस्थायी सदस्यता का भारत के लिए कोई मतलब नहीं है। उदाहरण के लिए, एक अंतर्राष्ट्रीय आतंकवादी मसूद अजहर के मामले में भारत संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के माध्यम से दुनिया के सभी देशों से उस पर प्रतिबंध लगाने का अनुरोध करता है, लगभग सभी सदस्य सहमत हो जाते हैं, लेकिन एकमात्र देश जो इसे अस्वीकार करता है, वह चीन है, जो इस संबंध में अपनी वीटो शक्ति का उपयोग करके भारत के प्रस्ताव को पारित होने से रोक देता है।

चार्टर संशोधन

भारत के लिए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य बनने का एकमात्र रास्ता यह है कि संयुक्त राष्ट्र चार्टर में संशोधन करके संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की संरचना में कुछ बदलाव किए जाएं, जिसके तहत उल्लिखित स्थायी सदस्यों की संख्या 5 से बढ़ाकर 6 या अधिक कर दी जाए। तो सवाल ये है कि ये संशोधन कैसे हो सकता है?

संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुसार यदि महासभा संयुक्त राष्ट्र चार्टर में बदलाव करना चाहती है तो उसे सभी सदस्यों के साथ एक आम सभा की बैठक की आवश्यकता होती है और फिर चार्टर में बदलाव को पूरा करने के लिए इस निर्णय के लिए आवश्यक वोट का 2/3 वोट प्राप्त करना होता है। सदस्य बनने

वाले देशों को 129 देशों का समर्थन प्राप्त करना होगा, जिससे भारत के लिए संशोधन के लिए इतने वोट को प्राप्त करना बहुत आसान हो सकता है, पिछले चुनाव के अनुसार गैर-स्थायी सदस्य बनने के लिए भारत 184 वोट को हासिल करने में कामयाब रहा। इसलिए यह काफी स्पष्ट है कि भारत संयुक्त राष्ट्र चार्टर में संशोधन के लिए अपने पक्ष में 129 देशों के वोट तक आसानी से पहुंच सकता है, लेकिन बाधा यह है कि ये 129 देश संयुक्त राष्ट्र के स्थायी सदस्यों के 5 वोटों की शर्त के साथ संशोधन के लिए मतदान करने के लिए सहमत हो। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में वीटो शक्ति होने के कारण वर्तमान स्थिति के अनुसार चीन की उपस्थिति के कारण इन 5 मतों तक पहुंचना कठिन है।

चीन द्वारा उत्पन्न अवरोध

G-4 समूह (भारत, जर्मनी, ब्राजील और जापान) यूएनएससी में वीटो शक्तियों के साथ स्थायी सदस्यों के रूप में शामिल होने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ रहे है,लेकिन सभी G-4 सदस्यों को अपने पड़ोसी देशों जैसे ब्राजील से अर्जेंटीना, जर्मनी से इटली, जापान से चीन और दक्षिण कोरिया और भारत को पाकिस्तान और चीन से कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ रहा है। हालाँकि भारत को सभी P-5 सदस्यों (चीन सहित) द्वारा स्थायी सीट का आश्वासन दिया गया है, लेकिन फ्रांस को छोड़कर सभी न्छैब में भारत के प्रवेश के किसी न किसी चरण में पीछे हट गए हैं। सबसे बड़े कारणों और कारकों में से एक जो भारत की यूएनएससी में स्थाई सदस्यता की प्राप्ति को कठिन बनाएगा वह चीन की उपस्थिति है। चीन द्वारा भारत की स्थाई सदस्यता को लेकर बार-बार अवरोध पैदा किए गए हैं, चीन के पास भारत के यूएनएससी में स्थाई सीट के सपने को तोड़ने के अपने कारण हैं-

चीन भारत को अपना स्वाभाविक शत्रु मानता है, और वह एशिया में अपना क्षेत्रीय वर्चस्व चाहता है और उसका मानना है कि भारत को स्थायी दर्जा देने से उसका अधिकार कमजोर हो जाएगा, इसके अलावा भारत लंबे समय से अपनी धरती पर दलाई लामा की मेजबानी करता आ रहा है। अब समस्या यह है कि तिब्बत पर चीन का दावा है, जो भारत में तिब्बत के आध्यात्मिक नेता की मौजूदगी में थोड़ा कमजोर हो जाता है। जिसके कारण चीन भारत के साथ खराब रिश्ते रखता है और उसे न्छैब में प्रवेश नहीं करने देता है कुछ सूत्रों का दावा है कि चीन पाकिस्तान का रणनीतिक साझेदार होने के कारण भारत के यूएनएससी प्रयासों का विरोध कर रहा है।[16]

सदस्य देशों के बीच आपसी मतभेद

"नए स्थायी सदस्यों को वीटो के विस्तार पर एल-69 की स्थिति G-4 की तुलना में अधिक मजबूत है। एल69 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वीटो शक्ति को समाप्त किया जाना चाहिए, या फिर इसे श्रेणी के सभी नए सदस्यों तक बढ़ाया जाना चाहिए।" कोई भी सुरक्षा परिषद में सुधारों की प्रकृति और दायरे पर ग्लोबल साउथ के भीतर क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर दोनों तरह के गंभीर मतभेदों के बारे में कठोर वास्तविकता से बच नहीं सकता है।[17] इस धारणा के विपरीत कि विस्तारित सुरक्षा परिषद पर आम सहमति की कमी के लिए स्थायी सदस्य जिम्मेदार हैं, यह एक कड़वी सच्चाई है कि एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका के क्षेत्रों के विकासशील देश विस्तार के मुद्दे पर गहराई से विभाजित हैं। ये मतभेद मुख्य रूप से स्थायी सीटों के जुड़ने की स्थिति में पहले से ही असहज अंतर्राज्यीय संबंधों पर गंभीर उप-क्षेत्रीय भू-राजनीतिक परिणामों के कारण हैं। उदाहरण के लिए, लैटिन अमेरिकी देश ब्राजील की उम्मीदवारी पर सहमत नहीं हैं; विशेष रूप से, अर्जेंटीना और मैक्सिको उनके विरोध में खुले हैं। इसी तरह, पाकिस्तान स्वाभाविक रूप से इस बात को लेकर चिंतित है कि अगर भारत को प्रतिष्ठित स्थान दिया गया तो इसके अपरिवर्तनीय भू-राजनीतिक प्रभाव होंगे। इसके अलावा, दोनों कोरिया जापान के स्थायी सदस्य बनने की उम्मीदों के सख्त विरोधी हैं। इसी तरह, इटली और स्पेन को अपने खर्च पर जर्मनी की उम्मीदवारी पर आपत्ति है. अफ्रीकी देशों के अपने आंतरिक मतभेद हैं और वे दक्षिण अफ्रीका, नाइजीरिया या किसी अन्य देश के दावों का समर्थन करने में असमर्थ हैं, अरब देश इस बात से नाखुश हैं कि वे मौजूदा भौगोलिक समूह में फिट नहीं बैठते हैं, और अपने लिए एक स्थायी सीट की मांग करते हैं। इसके अलावा, कई छोटे देशों को लगता है कि वर्तमान दावेदारों के बजाय वे ही स्थायी सीट के हकदार हैं, जो अपने बल पर अपनी सुरक्षा का ख्याल रख सकते हैं। सैद्धांतिक रूप से, सभी वर्गों के सदस्यों के बीच दृढ़ विश्वास है कि वीटो शक्ति संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के समय की गई एक गलती थी; इसलिए वीटो शक्ति वाले नए स्थायी सदस्यों को जोड़कर इसे सुदृढ़ करने के लिए कुछ नहीं किया जाना चाहिए। वहीं कुछ प्रभावशाली छोटे देशों ने विस्तार के बजाय कामकाज के तरीकों में सुधार पर ध्यान देने की वकालत की है। दरअसल, विकासशील देश इस विषय पर लम्बे समय से विभाजित हैं, यह इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि न तो गुटनिरपेक्ष समूह और न ही जी-77 देशों के बीच आम सहमति वाली स्थिति है। अब से बिल्कुल विपरीत, 1960 के दशक के मध्य में गैर-स्थायी श्रेणी के सदस्यों के विस्तार की सफलता मुख्य रूप से उस समय गुटनिरपेक्ष और विकासशील देशों के संयुक्त प्रयास के कारण देखने को मिली थी।

अन्य बाधाएं

परिषद की स्थायी सदस्यता के विस्तार के प्रयासों में सबसे बड़ा व्यवधान होने का श्रेय लगभग 30 देशों के हाई-प्रोफाइल गठबंधन को जाता है, जो खुद को यूनाइटिंग फॉर कंसेंसस (यूएफसी) समूह के रूप में पहचाने जाते हैं। समूह में अर्जेंटीना, कनाडा, कोलंबिया, इटली, मैक्सिको, स्पेन और पाकिस्तान सक्रिय हैं। वे स्थायी श्रेणी को अक्षुण्ण और अपरिवर्तित बनाए रखने के लिए एकजुट हैं, और स्थायी श्रेणी के विस्तार के G-4 के कदम को अलोकतांत्रिक बताते हुए दृढ़तापूर्वक अस्वीकार करते हैं।[18] अन्यायपूर्ण यथास्थिति के बनाएं रखने के समर्थन के साथ यूएफसी केवल गैर-स्थायी सीटों को जोड़ने की वकालत करता है, जिसमें से कुछ के तत्काल पुनः चुनाव का प्रावधान हैं। इस डर से कि भारत और ळ-4 देश मतदान प्रक्रियाओं के लिए कोई संक्षिप्त मार्ग ढूंढ सकते हैं, यूएफसी देशों ने किसी भी प्रकार के बहुमत द्वारा रेलरोडिंग का विरोध किया है और व्यापक संभव समझौते, यानी सर्वसम्मति को प्राथमिकता दी है। इसके बाद, 'लंबी अवधि की गैर-स्थायी सीटों के आधार पर, सदस्यता की एक नई श्रेणी की अनुमति देने के लिए' प्रस्ताव को दोबारा दोहराया गया।

निष्कर्ष

संयुक्त राष्ट्र का गठन 1945 में अंतर्राष्ट्रीय शांति, सुरक्षा बनाए रखने और देशों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 51 देशों द्वारा किया गया था और 78 वर्षों के बाद यह संख्या बढ़कर 193 देशों तक पहुँच गई है। हालाँकि, बदलती विश्व गतिशीलता से संकेत मिलता है कि यूएनएससी में

सुधारों की तत्काल आवश्यकता है क्योंकि संगठन विकासशील दुनिया और उनकी जरूरतों का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की संरचना मौजूदा वीटो शक्ति के कारण पक्षपाती और गैर-प्रतिनिधित्वपूर्ण है जो पांच स्थायी सदस्यों-, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम, रूस, चीन और फ्रांस के बीच साझा की गई है, ये सभी स्थाई सदस्य वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय समुदाय का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं।[19] भारत, जापान, जर्मनी और ब्राजील (G4) जैसे कई अन्य देश सुरक्षा परिषद को अधिक लोकतांत्रिक और प्रतिनिधि बनाने के लिए स्थायी सदस्यता का दावा करते है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि सुरक्षा परिषद की संरचना के विस्तार का प्रश्न वह भी एक उच्च प्राथमिकता वाले मामले के रूप में भारत द्वारा अब तक उठाए गए सबसे जटिल कार्यों में से एक है, सकारात्मक पक्ष पर, भारत के प्रयासों से स्थायी और गैर-स्थायी दोनों श्रेणियों में विस्तार के लिए शुरुआती दिनों की तुलना में कहीं अधिक समर्थन प्राप्त हुआ है। साथ ही, विभिन्न वर्गों द्वारा यह व्यापक रूप से स्वीकार किया गया कि विस्तार के बाद परिषद का आकार बीसवें दशक के अनुरूप होना चाहिए। हालाँकि, दूसरी ओर, पाठ-आधारित वार्ता के लिए आधार के रूप में काम करने के लिए पिछले 10 वर्षों से अंतर-सरकारी वार्ता के कई दौर बिना किसी रुकावट के चल रहे हैं। लेकिन कोई अंत नजर नहीं आने के कारण, ऑस्ट्रेलिया जैसे कुछ देशों ने अनौपचारिक परामर्श में भाग लेना बंद कर दिया है, और भारत इस प्रक्रिया से निराश है जैसा कि देश के एक पूर्व विदेश मंत्री ने सही कहा है, सुरक्षा परिषद सुधार 'किसी देश की प्रतिष्ठा या शक्ति के बारे में नहीं है, बल्कि दुनिया में शक्ति संतुलन को बदलने के बारे में है'![20]

संदर्भ ग्रंथ

1. Murthy C S.R."limitations of Consistency,1945-1989",India in the United Nations, ,SAGE, Delhi
2. Murthy C.S.R. "India's Experiences in the UNSC, India In United Nations, SAGE, Delhi
3. https://www.mea.gov.in/press-
4. India's claim in Open Ended Working Group in 1996,Statement cited in Fassbender,op,cit.
   https://pminewyork.gov.in/pdf/uploadpdf/75231pmi124.pdf
5. Murthy CSR, India's expectations and Experiences in the UN Peacekeeping Operations", India in United Nations, SAGE, Delhi
6. Tharoor Shashi, Pax Indica: India and the world of 21 Century, (India: Penguin, 2012).
7. Mohammad, Khalid. 2011. "United Nations and Indian Ocean Region: a case for India's permanent seat in the Security Council." Research Journal Social Sciences 19:44-68 https://www.researchgate.net
8. Asthana, S B. 2021. "India at UNSC: How long it has to wait for the permanent seat?" WION, January 3, 2021. https://www.wionews.com/opinionsblogs/india-at-unsc-how-long-it-has-to-wait-for-the-permanent-seat-354198
9. Mukherjee, Rohan, and David M Malone. "India and the UN Security Council: An Ambiguous Tale." Economic and Political Weekly 48, no. 29 (2013): 110
10. Yadav, Manish K. 2016. "India's Quest for United Nations Security Council Permanent Seat with Special Reference to its Peace Keeping Credentials." Journal Of Humanities and Social Sciences 4 (January). https://doi.org/10.6084/M9.FIGSHARE.3798903.
11. Gupta, Shishir. 2020. "China is biggest stumbling block in India's UNSC permanent membership." Hindustan Times, November 19, 2020.
12. Mathur, Pawan. "The Non-Aligned Movement and the United Nations: Reform of the United Nations Security Council." World Affairs: The Journal of International Issues 20, no. 2 (2016): 10-23. Accessed April 25, 2021. https://www.jstor.org/stable/48505274.
13. Tharoor Shashi, UN Security Council reform is a song in a loop, Editorial,The Hindu

फुटनोटन

1 INDIA AND UNITED NATIONS SECURITY COUNCIL (UNSC) REFORMS , WEEKLY FOCUS VISION IAS
2 MURTHY CSR, INDIA IN THE UNITED NATIONS, INTERPLAY OF INTEREST AND PRINCIPLES ,SAGE PUBLICATIONS
3 MURTHY,CSR 1995, "Making the UN Security Council More Representative India' s Prospect "In CSR MURTHY,(Ed.)1995,India in Tomorrow 's United Nation, India International Centre New Delhi.
4 MURTHY,CSR 1995, "Making the UN Security Council More Representative India' s Prospect "In CSR MURTHY,(Ed.)1995,India in Tomorrow 's United Nation, India International Centre New Delhi.
5 MURTHY CSR, INDIA IN THE UNITED NATIONS, Interplay Of Interest And Principles
6 Shashi tharoor,Pax indica:India and the world of 21 century (India: penguin,2012)
7 Shashi Tharoor, Pax Indica: India and the world of 21 Century, (India: Penguin, 2012).
8 Gould,M &Rablen, MD(2017), Reform of the united nations security council: equity and efficiency.
9 Shashi Tharoor, Pax Indica: India and the world of 21 Century, (India: Penguin, 2012).
India's Foreign Policy 1947-2003,New Delhi Picus Books ,2003
10 Mathur, Pawan. "The Non-Aligned Movement and the United Nations: Reform of the United Nations Security Council." World Affairs: The Journal of International Issues 20, no. 2 (2016): 10-23. Accessed April 25, 2021. https://www.jstor.org/stable/48505274.
11 MURTHY CSR, INDIA IN THE UNITED NATIONS, Interplay Of Interest And Principles , India' s Aspirations for Permanent Seat in the Security Council
12 MURTHY CSR, INDIA IN THE UNITED NATIONS, Interplay Of Interest And Principles , India' s Aspirations for Permanent Seat in the Security Council.
13 Rajan,M.S.,1973.'India and the Making of the UN Charter'. International Studies,12(3):430-459
-MURTHY CSR, INDIA IN THE UNITED NATIONS, Interplay Of Interest And Principles , India' s Aspirations for Permanent Seat in the Security Council.

14 Mukherjee, Rohan and Malone, David M. 2013, India And the UN Security Council: An Ambiguous Tale, Economic and Political Weekly, July 20, Vol. XLVIII, No. 29, pp.110-117.

15 Harsh V. Pant, and Yogesh Joshi, The US Pivot and Indian Foreign Policy: Asia's Evolving Balance of Power, (India: Palgrave Macmillan, 2016).

MEA, India and United Nations: UN reforms, Retrieved 1 June 2017, http://www.mea.gov.in/indiaand-the-united-nations.html

16 Gupta, Shishir. 2020. "China is biggest stumbling block in India's UNSC permanent membership." Hindustan Times, November 19, 2020. https://www.hindustantimes.com/india-news/china-is-biggest-stumbling-block-in-india-s-unsc-permanent-membership/story-yTpTstOwjEY7vYz5t2NiNN.html

17 Murthy, C.S.R. 2011, India as a Non-permanent Member of the UN Security Council in 2011-12, Perspective, Berlin: Friedrich Ebert Stiftung, May

18 MURTHY CSR, INDIA IN THE UNITED NATIONS, Interplay Of Interest And Principles , India' s Aspirations for Permanent Seat in the Security Council.

19 Mathur, Pawan. "The Non-Aligned Movement and the United Nations: Reform of the United Nations Security Council." World Affairs: The Journal of International Issues 20, no. 2 (2016): 10-23. Accessed April 25, 2021. https://www.jstor.org/stable/48505274.

20 CSR MURTHY, INDIA IN THE UNITED NATIONS, Interplay Of Interest And Principles

वैश्वीकरण की ओरः बिहार में जनजातीय परिवर्तन और सशक्तिकरण का विश्लेषण

डॉ० ममता कुमारी

इतिहास, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

सारांशः

वैश्वीकरण का तात्पर्य विभिन्न लोगों, क्षेत्रों और देशों के बीच बढ़ती आपसी निर्भरता से है, क्योंकि सामाजिक और आर्थिक संबंध विश्व स्तर पर फैलते हैं। हालांकि आर्थिक बल वैश्वीकरण का एक अभिन्न हिस्सा हैं, यह कहना गलत होगा कि केवल वे ही इसे उत्पन्न करते हैं। वैश्वीकरण एक बहुआयामी अवधारणा है जिसने समाज के हर क्षेत्र पर अपनी छाप छोड़ी है। इसने जनजातीय क्षेत्रों में राज्य और बाजार के अधिक हस्तक्षेप को जन्म दिया है। जनजातियों पर वैश्वीकरण का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव यह है कि इसने जनजातियों के प्राकृतिक पर्यावरण के साथ संबंध को भूमि, वन और खनिजों के संदर्भ में बदल दिया है। यह मुख्य रूप से राष्ट्रीय और क्षेत्रीय विकास की आवश्यकताओं के कारण हुआ। इस संदर्भ में, यह अध्ययन बिहार की जनजातियों के बीच सशक्तिकरण के विरोधाभास की जांच करने का प्रयास करता है, जहां वही राज्य जो जनजातियों के असशक्तिकरण की जड़ में है, ने उनके सशक्तिकरण के लिए कुछ प्रावधान भी किए हैं। यह अध्ययन पुस्तकों, पत्रिकाओं, सरकारी रिपोर्टों आदि जैसे द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष दर्शाते हैं कि वैश्वीकरण ने जनजातीय समुदायों के जीवन में विभिन्न रूपों में हस्तक्षेप किया है और जनजातीय जीवन का परिवर्तन अभी भी क्षेत्रीय और राष्ट्रीय विकास के प्रमुख एजेंडे के तहत जारी है।

मुख्य शब्दः वैश्वीकरण, परिवर्तन, सशक्तिकरण, विकास, असशक्तिकरण

परिचय :-

पिछले तीन दशकों से, राष्ट्रों में एक परिवर्तन की लहर चल रही है जो पूरे हसवइम में फैली हुई है। यह परिवर्तन मुख्य रूप से उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (LPG) द्वारा संचालित है। राष्ट्रों ने आयात और निर्यात के लिए अपनी सीमाएँ खोली हैं। अर्थशास्त्रियों ने इन परिवर्तनों का विश्लेषण आर्थिक दृष्टिकोण से किया है, जो सबसे स्पष्ट है, लेकिन सामाजिक वैज्ञानिकों ने समाज के हर वर्ग पर इसके प्रभावों को समझा है। वैश्वीकरण एक बहुआयामी अवधारणा है। कुछ के लिए, यह प्रकृति और जनजातियों के प्राकृतिक आवास के लिए एक खतरा बन गया है, लेकिन दूसरों के लिए यह सभी के लिए, जनजातियों सहित, विभिन्न अवसर लेकर आया है। दूसरे शब्दों में, वैश्वीकरण स्वदेशी संस्कृतियों की स्वायत्तता के लिए एक अभूतपूर्व खतरा और स्वदेशी सशक्तिकरण के लिए एक अभूतपूर्व अवसर है। हालाँकि, जनजातियों का जीवन प्राकृतिक कानून द्वारा निर्धारित होता है। इस संदर्भ में, वैश्वीकरण का जनजातीय समुदायों पर प्रभाव बहुआयामी है क्योंकि वे स्पष्ट रूप से नकारात्मक रूप से प्रभावित हुए हैं, न केवल भारत में बल्कि पूरे विश्व में। विकास के नाम पर, स्वदेशी लोगों के जीवन, आजीविका, संस्कृति और आवास को वैश्वीकरण की गर्म लोहे की छड़ी के नीचे लाया गया है। यह देखा गया है कि निजी संपत्ति की अवधारणा और जनजातीय क्षेत्रों में बाजार का प्रवेश जनजातियों को उनके अपने श्स्वदेशीश घर से अलग कर दिया है।[1] मुख्यधारा के लोगों के साथ बातचीत ने जनजातीय स्थान, संस्कृति और प्रथाओं में सांस्कृतिक समायोजन और अतिक्रमण को जन्म दिया।

हालांकि यह सच है कि दुनिया ज्ञान आधारित क्षेत्र में बदल रही है, लेकिन 75 वर्षों की स्वतंत्रता के बाद स्वदेशी समुदायों की निराशाजनक स्थिति, जिसमें मानव संसाधन, सामग्री, प्रौद्योगिकी और वित्तीय संसाधनों के संदर्भ में बड़े निवेश शामिल हैं, विभिन्न कारणों से हो सकती है। इनमें आंतरिक, वनाच्छादित और कठिन भूभाग, संचार और परिवहन सुविधाओं की कमी शामिल हैं, जिसने इन समुदायों के परिवर्तन और विकास के कार्य को कठिन बना दिया है। जनजातीय समुदायों में निरक्षरता और भाषा जैसी अन्य सांस्कृतिक बाधाएं भी आधुनिक विचारों और प्रौद्योगिकी को स्वीकार करने में बाधा बनी हैं। इसके अलावा, भारत के संविधान ने जनजातीय समुदायों को विभिन्न सुरक्षा उपाय प्रदान किए हैं, फिर भी वे भारत में सबसे पिछड़े और भेदभावित समूह बने हुए हैं। भारत में जनजातीय लोगों के विस्थापन के मामले कई गुना बढ़ गए हैं। आर्थिक विकास और आर्थिक वृद्धि के नाम पर वाणिज्यिक गतिविधियों ने पारंपरिक जीवन और जनजातीय समुदायों की संस्कृति में विदेशी ताकतों, संस्कृतियों और प्रभावों को लाया है।[2] इस संदर्भ में, यह अध्ययन बिहार की जनजातियों के बीच सशक्तिकरण के विरोधाभास की जांच करने का प्रयास करता है, जहां वही राज्य जो जनजातियों के असमर्थन का मूल कारण रहा है, उनके सशक्तिकरण के लिए कुछ प्रावधान भी किए हैं। उदाहरण के लिएः संविधान में उनके अधिकारों और लाभों की सुरक्षा के लिए कई प्रावधान शामिल हैं जो पांचवे और छठे अनुसूची के तहत आते हैं। ये अधिकार और लाभ मुख्यधारा के लोगों के साथ सांस्कृतिक समन्वय और बातचीत के रूप में इन स्वदेशी लोगों के लिए आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विकास के राष्ट्रीय एजेंडे के साथ संबंधित थे।

साहित्य की समीक्षा

एक मानवशास्त्रीय सर्वेक्षण के अनुसार, भारत में कुल 4,635 समुदाय पाए जाते हैं, जिनमें से कुल जनजातीय समुदायों की संख्या 732 है (बाबर, 2016)। स्वदेशी लोगों का एक लंबा इतिहास है, लेकिन जनजातियों का ठोसकरण और वर्गीकरण केवल उपनिवेशी शासन के दौरान ही शुरू हुआ। जैक्सा (2008) के अनुसार, जातियों के विपरीत, जिनका एक सामान्य अर्थ है, जनजाति की परिभाषा बहुत सामान्य नहीं है। हालांकि, एक विशिष्ट समुदाय के रूप में भिन्नता थी, जिसमें प्रमुख समुदाय से अलग संस्कृति और भाषा थी, लेकिन जनजातियों का वर्णन करने के लिए कोई शब्द नहीं था। जनजाति का अवधारणा एक सार्वभौमिक श्रेणी है, जबकि जाति, जो मूल रूप से ब्रिटिश उपनिवेशवाद से पहले विभिन्न भागों में प्रचलित थी। उन्हें उनके विशिष्ट लक्षणों जैसे 'पिछड़ेश, 'जंगली', 'प्राचीन' और 'बर्बर' के रूप में परिभाषित किया गया था। सभी वे समाज जिनकी संस्कृतियाँ यूरोपीय संस्कृतियों से भिन्न थीं, उन्हें 'अन्य समाजों' के रूप में देखा गया था जिनकी 'अन्य संस्कृतियाँ' थीं। बाद में, मानवशास्त्रियों ने तर्क किया कि ये 'अन्य समाज' रिश्तेदारी आधारित सामाजिक संगठन, श्रम का कमजोर विभाजन, primitive जीवनशैली आदि से चिह्नित हैं।[3] भारत के संविधान के 73 संशोधनों ने स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण निर्धारित किया है और इसे 2010 में बढ़ाकर 50% कर दिया गया, जो 2012 में लागू हुआ। SC@ST महिलाओं के लिए आरक्षण क्षेत्र में जनसंख्या के अनुपात में होगा। यह आदिवासी महिलाओं के लिए निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने का एक अवसर लाता है। वे गांव के परिधि से बाहर आईं और प्रशासन का हिस्सा बनीं। वे समुदाय के अन्य सदस्यों को सशक्तिकरण के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित कर रही हैं।

हालांकि, वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने कुल मिलाकर जनजातीय जीवन पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों दृष्टिकोण से गहरा प्रभाव डाला है। जनजातियों पर वैश्वीकरण के विभिन्न प्रभावों पर चर्चा करने से पहले, हमें वैश्वीकरण के वास्तविक सिद्धांत का एक विचार प्राप्त करना चाहिए। शोल्टे (2008) के अनुसार, वैश्वीकरण को लोगों के बीच अंतर-ग्रहणीय और हाल के समय में बढ़ते हुए सुपरटेरिटोरियल संबंधों के फैलाव के रूप में समझा जाता है। उनके लिए, वैश्वीकरण की एक स्पष्ट और सटीक परिभाषा समकालीन ज्ञान और नीति को आगे बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण है। हालांकि, चौधरी (2008) के लिए, वैश्वीकरण एक ऐसा शब्द है जिसका व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है लेकिन वर्तमान आर्थिक और राजनीतिक विमर्श में कम परिभाषित किया गया है। कुछ विचारक तर्क करते हैं कि वैश्वीकरण की परिभाषा देने के बजाय इसके प्रभावों पर जोर देना बेहतर है। इस विश्लेषण के दौरान, आर्थिक प्रभाव अन्य तत्वों जैसे सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और पर्यावरणीय की तुलना में केंद्रीय धुरी रहा है। इसके अलावा, सामाजिक वैज्ञानिक, विशेष रूप से मानवविज्ञानी, वैश्वीकरण को समाज के लिए सामान्य रूप से और जनजातीय समुदाय के लिए विशेष रूप से 'जोखिम और खतरे की लहर' मानते हैं। प्रारंभ में, भारत में भी, वैश्वीकरण का सिद्धांत, उदारीकरण और निजीकरण के साथ, एक-आयामी देखा गया था अर्थात् केवल इसके आर्थिक पहलुओं पर जोर दिया गया था। हालाँकि, वर्तमान में, वैश्वीकरण की बहु-स्तरीय प्रक्रिया को उजागर करने के लिए बहसें चल रही हैं।

इस प्रकार, वैश्वीकरण की परिभाषा कई रणनीतियों के संग्रह का परिणाम है जो दुनिया को अधिक परस्पर निर्भरता और एकीकरण की ओर बदलने के लिए निर्देशित हैं। इसमें नेटवर्क और प्रयासों का निर्माण शामिल है जो सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक बाधाओं को बदलते हैं। वैश्वीकरण इस तरह से संबंध बनाने की कोशिश करता है कि भारत में होने वाली घटनाएँ दूर-दूर की घटनाओं द्वारा निर्धारित की जा सकें। दूसरे शब्दों में, वैश्वीकरण लोगों, कंपनियों और सरकारों के बीच वैश्विक स्तर पर बातचीत और संघ का एक तरीका है। एंथनी गिडेंस, डेविड हेल्ड और सहयोगियों तथा रॉबर्टसन जैसे महत्वपूर्ण सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा वैश्वीकरण की परिभाषाओं को देखने पर पता चलता है कि वे काफी समान पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करते हैं। गिडेंस (1990) ने वैश्वीकरण को तीव्र वैश्विक सामाजिक संबंधों के रूप में चित्रित किया जहाँ स्थानीय घटनाएँ दूर की घटनाओं द्वारा आकारित होती हैं। हेल्ड (1999) और उनके सहयोगियों ने लिखा कि वैश्वीकरण निकट और दूर के क्षेत्रों के आपसी संबंधों का उदाहरण प्रस्तुत करता है, जो सामाजिक गतिविधि और शक्ति नेटवर्किंग को बढ़ावा देता है। रॉबर्टसन (2000) ने उल्लेख किया कि वैश्वीकरण की परिभाषा दुनिया के संकुचन और इसे एक इकाई के रूप में अधिक जागरूकता को दर्शाती है। ये परिभाषाएँ यह दर्शाती हैं कि वैश्वीकरण के केंद्रीय पहलू आपसी संबंध, तीव्रता, समय-स्थान की दूरी, क्षेत्रीयता का ह्रास, उच्च क्षेत्रीयता, समय-स्थान का संकुचन, दूर से क्रियान्वयन, और बढ़ती आपसी निर्भरता हैं। इस प्रकार, वैश्वीकरण के कई सिद्धांतकारों जैसे कि गिडेंस, मैनुअल कैस्टेल्स (2010), और डेविड हार्वे (1995) द्वारा उठाया गया सामान्य विषय यह था कि आधुनिक तकनीकें जैसे कि कंप्यूटर सामाजिक संबंधों को तेज करती हैं और उन्हें अधिक लचीला बनाती हैं।[4]

इन परिभाषाओं के माध्यम से यह माना जा सकता है कि समाजशास्त्री और मानवविज्ञानी जनजातियों के बीच सामाजिक परिवर्तन के अंतिम परिणाम को वैश्वीकरण के संदर्भ में देखते हैं। जैक्सा ने जनजातीय पहचान के हानि के अनुमान पर सवाल उठाया, यह देखते हुए कि जनजातियाँ अपने आप में समुदाय नहीं हैं, बल्कि मुख्यधारा के समुदायों के साथ संबंध या असंबंध के संदर्भ में हैं।[5]

विधि :-

इस शोध का महत्व विभिन्न दृष्टिकोणों के साथ जुड़ाव में निहित है जैसे कि उपाल्टर्न दृष्टिकोण, नियो-मार्क्सवाद जो अल्पसंख्यकों, जिसमें जनजातियाँ शामिल हैं, के हाशिए पर जाने के बारे में तर्क करता है और इस हाशिए पर जाने की प्रक्रिया में अंतर्निहित संघर्ष। यह शोध मुख्य रूप से द्वितीयक स्रोतों जैसे कि पुस्तकें, पत्रिकाएँ, जनजातीय शास्त्र, सरकारी और विभिन्न एजेंसियों की रिपोर्ट, जनगणना डेटा, सर्वेक्षण आदि पर आधारित है। अध्ययन के प्रमुख उद्देश्यों में बिहार में जनजातीय समुदायों पर वैश्वीकरण के प्रभाव का अन्वेषण करना और बिहार की जनजातियों के बीच सशक्तिकरण और असशक्तिकरण के विरोधाभास की जांच करना शामिल है। यह अध्ययन यह भी प्रयास करता है कि राज्य की भूमिका को जनजातीय कल्याण के लिए चल रही सरकारी योजनाओं के संदर्भ में विश्लेषित किया जाए। एक तरह से, यह अध्ययन जनजातीय समुदायों और मुख्यधारा के समाजों के बीच बातचीत की जांच करने का प्रयास है और इसके जनजातीय संस्कृति, आजीविका, शिक्षा और स्वास्थ्य पर प्रभाव। निम्नलिखित शोध प्रश्न उपरोक्त उद्देश्यों से निकाले गए हैं: निम्नलिखित शोध प्रश्न उपरोक्त उद्देश्यों से निकाले गए थे: (क) स्वदेशी समुदाय वैश्वीकरण के विचार को कैसे समझते हैं और इसके साथ खुद को कैसे समायोजित

करते हैं? (ख) मुख्यधारा के समाज, विशेष रूप से सरकार के लिए सशक्तिकरण का विचार जनजातियों के विचार से कैसे भिन्न है? (ग) भूमि और निजी संपत्ति के अतिक्रमण की प्रक्रिया ने जनजातियों को अपनी भूमि से कैसे अलग कर दिया है? (घ) मुख्यधारा के समाज के साथ बातचीत के कारण स्वदेशी समुदायों को कौन-कौन सी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है? (ङ) औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के बढ़ने के कारण जनजातीय समुदायों की आजीविका पर क्या प्रभाव पड़ता है? (च) प्रमुख समुदाय के साथ जनजातियों की इस बातचीत ने स्वास्थ्य, शिक्षा और जागरूकता के मामले में जनजातियों को कैसे लाभान्वित किया है?

विश्लेषण और निष्कर्ष

वैश्वीकरण, शहरीकरण और आधुनिकीकरण ने समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक ताने-बाने में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाए हैं। बिहार राज्य में जनजातीय संस्कृति के अतिक्रमण की घटना एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय है। बिहार की जनसंख्या विविध है, जिसमें कई स्वदेशी जनजातियाँ शामिल हैं, जैसे कि संथाल, उरांव, मुंडा और गोंड। इन जनजातियों की एक विशिष्ट संस्कृति, भाषा और जीवनशैली है, जो उनके अद्वितीय इतिहास, भूगोल और पर्यावरण द्वारा आकारित हुई है। ये प्रथाएँ पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रही हैं और उनकी संस्कृति का एक अनिवार्य हिस्सा हैं। हालाँकि, आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने इन प्रथाओं के पतन का कारण बना है। इन समुदायों के कई युवा अपने पारंपरिक प्रथाओं को छोड़कर आधुनिक प्रथाओं को अपनाने लगे हैं। उदाहरण के लिए, भागलपुर जिले के पीरपैती ब्लॉक में यह पाया गया कि जनजातीय समाज में 'चिकित्सीय हीलर्स' या 'औषधि पुरुषों' का विचार लगभग समाप्त होने वाला है। यह क्षेत्र विशेष रूप से संवेदनशील जनजातीय समूहों (PVTGs) जैसे माल पहाड़िया और सौरिया पहाड़िया द्वारा निवासित है, जो अपने चिकित्सा सेवाओं के लिए सरकारी अस्पतालों या निजी क्लीनिकों का सहारा लेते हैं, बजाय इसके कि वे अपने जनजातीय चिकित्सा हीलर्स के पास जाएँ। इस प्रकार, आधुनिकीकरण और शहरीकरण की प्रक्रिया ने उनके जीवन के तरीके, उनके संसाधनों और उनकी प्रथाओं को खतरे में डाल दिया है।[6]

एक और चिंता का क्षेत्र यह है कि शहरीकरण में वृद्धि के कारण वन आवरण में कमी आई है। वन इन समुदायों के लिए एक आवश्यक संसाधन है, क्योंकि यह उन्हें भोजन, ईंधन और औषधीय पौधे प्रदान करता है। वन आवरण की हानि ने इन समुदायों के लिए अपनी आजीविका बनाए रखना कठिन बना दिया है। हालाँकि, स्थिति का विरोधाभास इस तथ्य में निहित है कि अनुसूचित जनजातियों और अन्य पारंपरिक वन निवासियों (वन अधिकार अधिनियम, 2006) जैसी योजनाएँ, जो वन निवासियों की अधिकारों को मान्यता देती हैं, जिन पर ये समुदाय अपनी विभिन्न आवश्यकताओं, जैसे आजीविका, आवास और अन्य सामाजिक-सांस्कृतिक आवश्यकताओं के लिए निर्भर थे। यह अनुसूचित जनजातियों और वनों के बीच सहजीवी संबंध को भी मान्यता देती है, जो उनके वन पर निर्भरता और वनों के संरक्षण के संबंध में उनकी पारंपरिक ज्ञान में परिलक्षित होता है। लेकिन, कई सरकारी रिपोर्टें हैं जो दर्शाती हैं कि विभिन्न विकास परियोजनाओं के लिए जनजातीय भूमि और संसाधनों पर अतिक्रमण हुआ है, बिना प्रभावित समुदायों की सहमति या भागीदारी के।[7] एक ऐसा उदाहरण है सरकार की योजना कोसी नदी पर एक बांध बनाने की, जो राज्य के कई बाढ़ प्रभावित जनजातीय क्षेत्रों जैसे मधुबनी, सुपौल, अररिया, पूर्णिया, कटिहार, मधेपुरा और भागलपुर से होकर बहती है। इस परियोजना की आलोचना की गई है इसके संभावित पर्यावरणीय और सामाजिक प्रभावों के लिए जैसे जैव विविधता की हानि, वन संसाधनों की कमी, भूमि का हनन, आजीविका का नुकसान आदि। इसके अतिरिक्त, बिहार सरकार द्वारा जनजातीय क्षेत्रों में गैर-जनजातीय व्यक्तियों और कंपनियों को भूमि अधिग्रहण की अनुमति देने की रिपोर्टें हैं, अक्सर धोखाधड़ी के माध्यम से या स्थानीय समुदायों की कीमत पर। इससे भागलपुर क्षेत्र में संथाल जनजातियों का व्यापक विस्थापन हुआ है। इसके अलावा, यह जनजातीय और गैर-जनजातीय समुदायों के बीच संघर्षों का कारण भी बना है। इसके अलावा, सरकार पर जनजातीय समूहों के प्रति भेदभाव और हाशिए पर डालने का आरोप भी लगाया गया है, क्योंकि वह जनजातीय समुदायों की बुनियादी आवश्यकताओं और कल्याण जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और बुनियादी बुनियादी ढांचे की अनदेखी कर रही है।[8]

वैश्वीकरण और आधुनिकता की प्रक्रिया के बावजूद जो चारों ओर हो रही है, जनजातियाँ अलग-थलग बनी हुई हैं और इस प्रक्रिया में भाग लेने के लिए पर्याप्त रूप से सशक्त महसूस नहीं कर रही हैं।[9] इस संदर्भ में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न प्रकार की चर्चाएँ और प्रवृत्तियाँ चल रही हैं। कुछ लोग वैश्वीकरण के सार को समझने की आवश्यकता पर जोर देते हैं, जबकि कुछ लोग जनजातीय समुदायों की अर्थव्यवस्था, समाज और संस्कृति पर वैश्वीकरण की प्रक्रिया और इसके प्रभाव का विरोध करते हैं। वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभावों की अनदेखी करते हुए, यह तर्क किया गया है कि वैश्वीकरण ने आजीविका, सामुदायिक मानदंडों और वर्जनाओं, सांस्कृतिक विशेषताओं में हस्तक्षेप किया है, जो पूरी तरह से प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों जैसे भूमि, जंगल, पानी और खनिजों पर निर्भर हैं।

वैश्वीकरण का जनजातियों पर सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव यह है कि इसने जनजातियों के प्राकृतिक पर्यावरण के साथ संबंध को भूमि, वन और खनिजों के संदर्भ में बदल दिया है। यह मुख्य रूप से राष्ट्रीय और क्षेत्रीय विकास की आवश्यकताओं के कारण हुआ।[10]

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष के रूप में, यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण के प्रभावों ने सीधे या अप्रत्यक्ष रूप से जनजातीय संस्कृति, भाषा, विश्वास प्रणाली, आजीविका संरचना आदि को आधुनिकता और विकास के नाम पर प्रभावित किया है। उनका असशक्तिकरण प्रक्रिया उनके सशक्तिकरण के लिए एक एजेंडा बन गई। वास्तव में, राष्ट्रीय विकास लाने के उपाय, जो वैश्वीकरण प्रक्रिया के बाद तेजी से बढ़े, जैसे कि बुनियादी ढांचे का निर्माण, उद्योगों की स्थापना, बांधों और पावर प्रोजेक्ट्स का निर्माण, जनजातीय समाज के एकीकरण को प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण कदम माने गए। हालाँकि, वैश्वीकरण के तहत प्रचारित विकास के लाभ सबसे गरीब, सामाजिक रूप से पिछड़े और वंचित वर्गों तक नहीं पहुँचे, बल्कि उन लोगों तक पहुँचे जो पहले से ही शिक्षित, अच्छी तरह से बसे, अच्छी तरह से खाए और पोषित थे। कुल मिलाकर, बिहार सरकार की जनजातीय समुदायों और उनके संसाधनों के प्रति कार्रवाई चिंता का विषय रही है और इन हाशिए के समूहों के लिए अधिक ध्यान और समर्थन की आवश्यकता को उजागर करती है। सरकार के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वह जनजातीय समुदायों

के इन अधिकारों को पहचानें और सम्मान करें, और उन्हें किसी भी निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में शामिल करें जो उनकी भूमि, संसाधनों और आजीविका को प्रभावित कर सकती हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य राज्य में जनजातियों के विकास के लिए एक व्यापक गुणात्मक और नीति-उन्मुख अनुसंधान लाना है।

संदर्भ :-

1. सिंह बी., "आर्थिक उदारीकरण और वैश्वीकरण के संदर्भ में जनजातीय परिदृश्य", भारतीय प्रशासनिक पत्रिका, 2007, 53(4), 759-766।
2. बाबर ए., "भारत में जनजातीय समुदायों पर वैश्वीकरण के प्रभाव का विश्लेषणात्मक अध्ययन, आर्थिक न्याय, समावेशी विकास और सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में", गरीबी, निवेश और विकास की पत्रिका, 2016, खंड 21, 2016।
3. चौधरी के., "भारत में वैश्वीकरण, शासन सुधार और विकास", साज पब्लिकेशंस इंडिया, 2007।
4. शोल्टे जे.ए., "वैश्वीकरण: एक महत्वपूर्ण परिचय" मैकमिलन प्रेस लिमिटेड, 2008, खंड.31 अंक11।
5. कैस्टेल्स एम., "वैश्वीकरण, नेटवर्किंग, शहरीकरण: सूचना युग की स्थानिक गतिशीलता पर विचार", शहरी अध्ययन, 2010, 47(13), 2737-2745
6. हार्वे डी., "वैश्वीकरण पर प्रश्न", मार्क्सवाद पर पुनर्विचार, 1995, 8:4, 1-17।
7. गिडेंस ए., "आधुनिकता और आत्म पहचान: आधुनिक युग में आत्म और समाज", कैम्ब्रिज: पॉलिटी प्रेस, 1990।
8. रॉबर्टसन आर.,"वैश्वीकरण: सामाजिक सिद्धांत और वैश्विक संस्कृति", साज पब्लिकेशंस लिमिटेड, 2000।
9. जैक्सा वी., "राज्य, समाज और जनजाति: उपनिवेश के बाद के भारत में मुद्दे", नई दिल्ली: पियर्सन एजुकेशन प्रेस, 2008
10. जैक्सा वी., "भारत के स्वदेशी लोगों के रूप में जनजातियाँ", आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 1999, 34 (57): 3589-3595, विशेष अंक।

हरियाणवीं लोक संगीत के अनमोल रत्न पं० सुल्तान रोहदिया: व्यक्तित्व एवं कृतित्व

डॉ० दिनकर शर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत गायन, डी०बी०जी० गवर्नमेंट कॉलेज, पानीपत (हरियाणा)

शोध प्रपत्र सारांश:

यह तो सर्वविदित हैं कि हरियाणा की सांग परंपरा अत्यंत प्राचीन एवं अनूठी है। यहां पर अनेक संगीतकारों ने जन्म लेकर यहां के लोक संगीत को समृद्ध किया है।

पंडित मानसिंह की सांग परंपरा के ध्वजवाहक तथा कवि पंडित मांगेराम के गुरु भाई और सांग सम्राट पंडित लख्मीचंद के योग्य शिष्य पंडित सुल्तान सिंह का नाम आज भला कौन नहीं जानता। सारी उम्र अपने गुरु पंडित लख्मीचंद के चरणों में रहने वाले तथा उनके स्वर्गवास के पश्चात उनके सांग बेड़े को संभालने वाले पंडित थे - पंडित सुल्तान। पंडित सुल्तान सिंह अपने समय के सिद्ध हस्त सांग कलाकार तथा सांग के प्रचार-प्रसार कर्ता थे। उन्होंने अपनी विलक्षण बुद्धि तथा कला वैभव के कारण हरियाणवी सांग परंपरा को नई ऊँचाइयां प्रदान की।

मुख्य शब्द:- हरियाणवी लोक संस्कृति, लोक संगीत, लोक नाट्य, सांग-रागनी, लोक साहित्य, लोक कला।

गंधर्व कवि पं० लख्मीचंद की आँखों का तारा व उनके संगीत बेड़े में उम्रभर आहूति देने वाले सांग-सम्राट पं० सुल्तान का जन्म सन् 1918 ई० को गांव रोहद, जिला झज्जर (हरियाणा) के एक मध्यम वर्गीय ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम पं० जोखिराम शर्मा व माता का नाम हंसकौर था ओर वे कस्तूरी देवी के साथ गाँव सरूरपुर, कलां, बागपत उ० प० में वैवाहिक बंधन में बंधे थे। पंडित सुल्तान शैक्षिक तौर पर बिल्कुल ही अनपढ़ थे, परन्तु गीत-संगीत की लालसा तो उनमें बचपन से ही थी क्योंकि वे अन्यलोगों की तरह मित्र-दोस्तों के साथ चलते-फिरते भजनों-गीतों की पंक्तियों को गुन-गुनाते रहते थे। उसके बाद बाल्यकाल पूर्ण होते-होते, उन्हें कर्णरस एवं गीत श्रवण कीऐसी ललक लगी कि अपने गाँव से भी वे कोसों-मीलों दूर जाकर सांगी-भजनियों के काव्य सार को अपने अन्दर समाहित करते रहें। फिर किशोरावस्था के दिनों में पंडित सुल्तान जी के जीवन में एक नए संगीत अध्याय के अंकुर फूटने लगे। फिर सौभाग्य से उन दिनों किशोरायु सुल्तान के गांव रोहद में पं० लख्मीचंद के सांगों का कार्यक्रम शुरू था और एक दिन बालक सुल्तान शाम को पं० लख्मीचंद का सांग सुनकर अगले दिन जब सुबह खेतों की ओर उसी सांग की रचनाओं को ऊँची आवाज में गा रहे थे तो संयोगवश पं० लख्मीचंद भी उसी तरफ सुबह-सुबह घुमने निकले हुए थे। इसलिए जब पं० लख्मीचंद ने बालक सुल्तान की मनमोहक आवाज सुनी तो आकर्षण के कारण बालक सुल्तान के पास ही पहुँच गए और पं० लख्मीचंद जी ने दोबारा से बालक सुल्तान से वही भजन सुनाने को कहा, जो सुल्तान उस समय गा रहे थे। फिर सुल्तान ने जब वही भजन दोबारा पं० लख्मीचंद वाली लयदारी में गाया तो उनकी लय और स्मरण शक्ति को देखकर पं० लख्मीचंद अचंभित रह गए। फिर पं० लख्मीचंद जी ने उस बालक से परिचय पूछने लगे। फिर बालक सुल्तान द्वारा अपना परिचय देने पर पं० लख्मीचंद उसी समय सुल्तान के साथ उसके घर जाकर उनके पिता जोखिराम से मिले और कहा कि आज से आपका ये लड़का मेरे संगीत बेड़े में शामिल करने हेतु मुझको सौंप दो। फिर सुल्तान के पिता जोखिराम जी ने कहा कि ये लड़का मेरा क्या, आपका ही है, जब चाहे इसे अपने साथ ले जाओ। उसके बाद पं० लख्मीचंद जी ने बालक सुल्तान को उसी दिन से अपने बेड़े में शामिल कर लिया, क्योंकि उस समय पं० लख्मीचंद जी बालक सुल्तान के गांव में ही सांग कर रहे थे। फिर उसी दिन से पं० लख्मीचंद जी ने बालक सुल्तान को अपना शिष्य बना लिया और अपने बेड़े में शामिल कर उसको पारंगत कर दिया। फिर पं० लख्मीचंद जी ने गुरु मंत्र के रूप में सुल्तान से कहा कि बेटा आज से अपने गांव की बहन-बेटी को सम्मान देना और साधू-संतों व गौओं एवं गुरुओं के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित रहना। उसके बाद पं० सुल्तान ने गुरु मंत्र द्वारा पूरी निष्ठा एवं श्रद्धा से गुरु की सेवा करके गायन-कला में प्रवीण होकर ही अपनी इस सतत् साधना और संगीत की आत्मीय पिपासा को पूरा किया। इस प्रकार फिर गुरु लख्मीचंद के सत्संग से शिष्य सुल्तान अपनी संगीत, गायन, वादन और अभिनय कला में बहुत जल्द ही पारंगत हो गए। इस प्रकार पं० सुल्तान शुरू से आखिर तक हमेशा गुरु लख्मीचंद के संगीत बेड़े में रहें और अपनी गायन-ऊर्जा से गुरु के संगीत बेड़े को जीवनभर प्रकाशमय करते रहें ।

वैसे तो पंडित सुल्तान भी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनके घनिष्ठ प्रेमियों एवं कला के कायल जन साधारण ने पंडित सुल्तान के संबंध में कितना ही उचित कहा है कि जो पंडित सुल्तान को एक साधारण सांगी समझते हैं, वे अल्पबुद्धि जीव ही है। वे केवल एक सशक्त सांगी ही नहीं, अपितु वे सर्वश्रेष्ठ गुरुभक्त के साथ-साथ प्रभावी कवि भी थे। वे एक बहुत ही साधारण व्यक्तित्व केसाथ-साथ एक अद्भुत साहित्य एवं संगीत कला के इस हरियाणवी लोक-साहित्य में बहुत बड़े सहयोगी भी हैं, जो इस आधुनिक युग के सांगियों व कवियों के लिए एक बहुत बड़ी मिसाल है। पंडित सुल्तान गोरे रंग के साथ-साथ एक मध्यम कद-काठी के धनी थे और दूसरी तरफ इनकी वेशभूषा धोती-कुर्ता व साफा सुहावनी होने के साथ इनकी प्रतिभा को और भी

प्रभावशाली बनाती थी। इनका सादा जीवन व रहन-सहन ही बेशकीमती आभूषण था, जो इतने प्रतिभावान होते हुए भी साधुवाद की तरह जरा-सा भी अहम भाव नहीं था। उनका यह साधुवाद चरित्र उनके सांग मंचन में हमेश ही झलकता था। उन्होंने कभी सांगों का लेखन तो नहीं किया परन्तु गुरु प्रभाव के कारण बहुत सी फुटकड़ रचनाएँ जरूर की, जिनकी संख्या 100 से 200 के आसपास है। अब साक्ष्य के तौर पर उन्हीं रचनाओं में से पं० सुल्तान की कुछ सांगीतिक झलक निम्न है -

- कहै सुल्तान मौज कर घर मैं, मन-तन की ले काढ सेठानी
- भाईयाँ की सू समझ रही सै, तेरी पर्वत जितनी आड़ सेठाणी,
- तेरे हंस-हंस करल्यु लाड सेठाणी, मेरा सोया निमत फेर तै जाग्या,
- पिया जी की शान देखके, जणू सूखे धाना म्य पाणी आग्या,
- (सांग-सेठ ताराचंद)
- बात कहूँगी वाहे शुरू आली, भक्ति पार होई ध्रुव आली,
- कहै सुल्तान म्हारे गुरु आली तूं वाहे चाल राखिये रे बेटा,
- मतन्या काल राखिये रे बेटा, सासू क ख्याल रखिये रे बेटा,
- बेटा सुणता जा। (सांग-सेठ ताराचंद)
- लख्मीचंद का दास मनै, सुल्तान ज्यान तै प्यारा सै,
- झूली-गाई नहीं मनै दुःख, तेरी ओड़ का भारया सै,
- जिसकी मारी फिरै भटकती, वो चाल बाग म्य आरया सै, (सांग-पद्मावत)

उसके बाद फिर उन्होंने पं० लख्मीचंद के बेड़े में रहकर बहुत से सामाजिक कार्य किये, जैसे - जोहड़ खुदवाने, धर्मशाला बनवाने, गौशाला बनवाने, स्कूल बनवाने आदि हेतु अनगिनित चंदा इकट्ठा करके उनको सम्पूर्ण करवाके उम्र भर अपने संरक्षण में रखना और पं० लख्मीचंद जी ने अपने सांगों द्वारा उम्रभर जितना चंदा इक्ट्ठा किया, उसमें सबसे बड़ा हाथ किसी का था, तो वो था शिष्य सुल्तानका। इसके अलावा साधू-संतों की सेवा में उम्र भर जुटे रहें, जैसे अपने हाथों से उनके कपड़े धोना, उनकी जटाओं को निर्मल करना और आश्रमों में गौ माताओं के लिए परिश्रम करना।

फिर सन् 1945 के बाद गुरु लख्मीचंद के पंचतत्त्व में विलीन होने के समय से स्वयं के स्वर्ग सिधारने तक, उन्होंने उसी गुरु बेड़े के साथ सन् 1945 ई० से 12 जुलाई, 1969तक ताउम्र पंडित लख्मीचंद के सांगों का ही मंचन किया। पं० सुल्तान ने अपने गुरु लख्मीचंद जी के जिन-जिन सांगों का उम्रभर ज्यादातर मंचन किया, वे निम्न में इस प्रकार है - पूर्णमल, पद्मावत, राजा नल, शाही लकड़हारा, मीरा बाई, सेठ ताराचंद, राजा हरिश्चंद्र, चापसिंह सोमवती, फूलसिंह-नौटंकी आदि।

निष्कर्षः

प्रस्तुत शोध प्रपत्र के सूक्ष्म अध्ययन एवं विभिन्न स्रोतों के माध्यम से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि पंडित सुल्तान सिंह एक विलक्षण प्रतिभावान लोक संगीतज्ञ थे। उन्होंने अपने गुरु पंडित लख्मीचंद द्वारा रचित सांगों का तो मंचन किया ही तथा स्वयं के भी कई लोकनाट्य एवं फुटकर रचनाओं का सृजन किया। उन्होंने हरियाणवी लोक संगीत को समृद्ध करने के लिए अनेक धुनों का निर्माण किया। आज भी पंडित सुल्तान सिंह के कई शिष्य हरियाणा, उत्तर प्रदेश और राजस्थान में विधिवत रूप से लोकनाट्य का मंचन कर रहे हैं। यहां पर यह बात भी ध्यान देने योग्य हैं कि संरक्षण के अभाव में आज पंडित सुल्तान सिंह की रचनाएं लुप्त तुल्य हो गई है। फिर भी उनकी अनेक रचनाओं को लोकतंत्र के माध्यम से अक्सर सुना जाता रहता है। आज पंडित सुल्तान सिंह जी द्वारा रचित विस्तृत संगीत परंपरा को केवल एक अच्छे शोध के द्वारा ही संरक्षित और संवर्धित किया जा सकता है जो कि नितांत आवश्यक है। मैं आशा करता हूं कि आने वाले समय में ऐसी महान विभूति पर साहित्य और संगीत दोनों की दृष्टि से अवश्य ही एक अच्छा शोध सामने आएगा। पंडित सुल्तान सिंह के सांगों में सामाजिक जीवन और व्यवहारिक जीवन से संबंधित सभी तत्त्वों का समावेश है साथ ही काव्य साहित्य और व्याकरण के सभी गुण तथा विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं संगीत की दृष्टि से भी पंडित सुल्तान सिंह की रचनाएं अत्यंत प्रभावित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. संदीप कौशिक, पंडित रघुनाथ रचनावली, हरियाणवी साहित्य संग्रह, प्रकाशन पृ० 10
2. डॉ० राजेंद्र बड़गूजर, कौरवी लोक साहित्य का इतिहास, उच्च अध्ययन केंद्र शिमला, पृ० 20
3. वही
4. पंडित सुल्तान सिंह रोडिया के सुपुत्र पंडित सुरेश शर्मा से फोन पर हुई वार्ता के आधार पर मुद्रित।
5. वही
6. डॉ० अमित कुमार शर्मा, सहायक आचार्य, संगीत विभाग चौधरी देवीलाल विश्वविद्यालय, सिरसा से फोन पर हुई वार्ता के आधार पर मुद्रित
7. वही

भारत के ग्रामीण जीवन के संदर्भ में पंचायती राज संस्थाओं का विकास

शिव प्रकाश यादव

राजनीति विज्ञान विभाग में पूर्व संकाय सदस्य।
सत्यवती कॉलेज (सांध्यकालीन), दिल्ली विश्वविद्यालय।

अमूर्त

भारत में ग्रामीण जीवन पंचायत प्रणाली के माध्यम से पूरा होता है। पंचायत ग्रामीण समाज का प्रतिनिधित्व करती है। लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण स्थानीय स्वायत्तता का संस्थागत रूप है। स्थानीय स्वशासन एक बहुत पुराना विचार है। कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' और स्वतंत्रता के दौरान गांधीजी का 'ग्राम पंचायत' का विचार इसी स्थानीय मुद्दे के रूप में सामने आए। पंचायती संस्थाओं (पीआरआई) का गठन लोकतंत्र और विकेंद्रीकृत शासन की ओर जाने में एक महत्वपूर्ण कदम है। पंचायती राज आधुनिक रूप है, जो भारत की स्वशासन की प्राचीन परंपराओं से जुड़ा हुआ है, ऐतिहासिक, राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तनों से प्रभावित होकर कई चरणों से गुजरा है। जैसे-जैसे स्थानीय प्रशासन में लोगों की भागीदारी बढ़ती है, वैसे-वैसे सरकार की सार्वजनिक सेवा के प्रति प्रतिबद्धता भी बढ़ती है। यह लेख भारत में पंचायती राज संस्थाओं (पीआरआई) के ग्रामीण जीवन को समझाता है, जो विभिन्न समितियों और संवैधानिक संशोधनों पर चर्चा करते हुए, जो इसके वर्तमान स्वरूप को बनाए हुए है, और चर्चा इस बात पर केंद्रित होगी कि भारत में पंचायत प्रणाली सामाजिक जीवन को कैसे प्रभावित करती है।

मुख्य शब्दः ग्रामीण स्थानीय स्वशासन, विकेंद्रीकरण, पंचायती राज संस्थाएँ, ग्रामोदय, नीति निर्देशक तत्व।

परिचय

पंचायत एक संस्कृत शब्द है। यह 'पंच' और 'आयत' शब्दों का संयोजन है। 'पंच' का अर्थ है ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र और पांचवां परमेश्वर। 'आयत' का अर्थ है उसका संपूर्ण विस्तार। यह प्राचीन व्यवस्था किसी न किसी रूप में निरंतर विद्यमान है। [परमोद कुमार अग्रवाल, भारत में पंचायती राज, 2008, पृ. 17]

भारत में पंचायत संस्था प्राचीन काल से ही अस्तित्व में रही है। पंचायती राज संस्थाएं (पीआरआई) भारत में 'ग्रामीण स्थानीय स्वशासन' की प्रणाली को संदर्भित करती हैं। यह प्रणाली स्थानीय आबादी को निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष रूप से शामिल करती है, जिससे ग्रामीण विकास कार्यक्रम अधिक प्रभावी और उत्तरदायी होते हैं। यह सुनिश्चित करता है कि सरकार स्थानीय आवश्यकताओं के प्रति उत्तरदायी हो और समुदाय के सदस्य अपनी समस्याओं और चिंताओं को सीधे उठा सकें, इसका उद्देश्य जमीनी स्तर पर लोकतंत्र ((ग्रासरूट डेमोक्रेसी) का निर्माण करना है। गांधीजी ने कहा था, "यदि भारत को नष्ट नहीं करना है तो हमें सबसे निचले स्तर से काम शुरू करना होगा, अन्यथा ऊपरी और मध्यम स्तर की व्यवस्था लड़खड़ा कर गिर जाएगी। स्वराज का अर्थ कुछ लोगों के हाथ में सत्ता नहीं है, बल्कि बहुमत के हाथ में सत्ता है, जो सरकार को नियंत्रित कर सके, अर्थात विकेंद्रीकरण ही भारत की व्यवस्था का समाधान है"। संविधान में गांधीजी की स्पष्ट विचारधारा समाहित होने के बावजूद, संविधान निर्माताओं ने पंचायत प्रणाली को संविधान के भाग 4 में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के अनुच्छेद-40 के अंतर्गत शामिल किया था।

स्वतंत्रता के बाद, स्वशासन, स्वायत्त शासन और स्थानीय शासन की मूल अवधारणा को आत्मसात करने के लिए विभिन्न समितियों का गठन किया गया। समितियों ने ग्रामीण विकास योजनाओं में लोगों की सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित करने का सुझाव दिया। परिणामस्वरूप लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को मजबूत बनाने के लिए, 1993 में संविधान के 73वें संशोधन के अनुसार, पंचायत व्यवस्था को संवैधानिक बनाया गया।

प्राचीन भारत में पंचायती व्यवस्था का स्वरूप

प्राचीन भारत के विभिन्न धर्मग्रंथ, जैसे वेद और उपनिषद, उस प्रकार के ग्राम जीवन का चित्रण करते हैं जिसमें पारंपरिक भारत के राजा का मुख्य उत्तरदायित्व और कर्तव्य न्याय स्थापित करना और उसे बनाए रखना था। मगध काल और मौर्य काल में, 'राज धर्म' राजा के लिए जनता की सेवा करना था। ग्रामीण समाज के प्रमुखों का चुनाव समाज के सभी सदस्यों द्वारा किया जाता था, जिनके पदों को राज्य अधिकारियों ने मंजूरी दी थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार, राजा राज्य का एक कर्मचारी है, जिसका मुख्य उद्देश्य जनता की सेवा करना है।[आर.सी. प्रधान और एस. के. जोसेफ, खंड 15, पृष्ठ 2, पृष्ठ 53] गांव राज्य की केंद्रीय सरकार के अधीन था। ग्राम पंचायत प्रणाली लोगों की संप्रभुता का प्रतीक है। कौटिल्य ने स्वतंत्र गाँवों का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र [अध्याय-11, पृष्ठ 83] में गाँव प्रशासन की चर्चा की है, जहाँ गाँव का प्रशासनिक ढांचा अधिक समन्वित था।

वैदिक युग' में गाँव राजनीतिक इकाई का महत्वपूर्ण हिस्सा था। यहाँ लोग प्रशासन चलाने के पहलुओं में से एक पर सहमत थे।[आर.सी. प्रधान और एस. के. जोसेफ, अ-15, द-2, च-53]। वैदिक काल में महासभाएँ होती थीं और गाँव के सभी लोगों की सभा को 'महासभा' कहा जाता था। पूरे गाँव का एक नेता या मुखिया होता था, जिसे 'ग्रामणी' कहा जाता था। वेदों में समिति या महासभा को 'विष:' कहा गया है। राजा का चुनाव भी समिति का एक महत्वपूर्ण काम था। यह समिति एक राजा को बदलकर दूसरा राजा चुन सकती थी। इस प्रकार, संवैधानिक दृष्टिकोण से, इस समिति को पूर्ण अधिकार प्राप्त थे। इस समिति की बैठक में उपस्थित रहना राजा का कर्तव्य था, और यदि राजा समिति की बैठक में उपस्थित नहीं होता था, तो उसे 'लोकरंजक' नहीं माना जाता था। उस क्षेत्र में रहने वाले सभी लोग इस समिति के सदस्य थे और ये सदस्य एक सदस्य को 'ग्रामणी' के रूप में चुनते थे। बाद में इस संस्था को 'परिषद' या 'महासभा' कहा गया। इस महासभा या परिषद का मुख्य कार्य यह सुनिश्चित करना था कि लोग कृषि और अनाज से अपनी आजीविका सुचारू रूप से चला सकें। (अथर्ववेद, काण्ड 112)।

ब्रिटिश भारत में पंचायत प्रणाली का स्वरूप

मुस्लिम शासकों ने भारतीयों की स्वदेशी परंपराओं के साथ ज्यादा छेड़छाड़ नहीं की, बल्कि, वे भारतीय जीवनशैली में समाहित हो गए।। ग्रामीण जीवन की ये मजबूत नींव अप्रभावित रहीं। मुस्लिम सुल्तानों ने भारत की पारंपरिक ग्राम संस्थाओं का उपयोग करना उचित समझा, जैसा कि इतिहासकार बेवेल ने बताया है "सल्तनत काल के दौरान, दिल्ली के सुल्तानों ने अपने राज्य को 'विलायत' नामक प्रांतों में विभाजित किया था। एक गांव के शासन के लिए तीन महत्वपूर्ण अधिकारी जिम्मेदार थे: प्रशासन के लिए 'मुक्कदम', राजस्व एकत्र करने के लिए 'पटवारी', और पंच की मदद से विवादों को सुलझाने के लिए 'चौधरी"। गांवों को अपने क्षेत्र में स्वशासन के संबंध में पर्याप्त शक्तियां प्राप्त थीं। मुगल शासन के अंतर्गत जातिवाद और सामंतवादी शासन व्यवस्था के परिणामस्वरूप गांवों की स्वशासन व्यवस्था धीरे-धीरे क्षीण होती गई। हालाँकि, ब्रिटिश राज ने इन भारतीय संस्थानों को नष्ट करने पर विचार किया ताकि उनका शासन लंबे समय तक निर्बाध रूप से चल सके। उन्होंने पंचायतों जैसी लोकतांत्रिक संस्थाओं पर भी हमला किया, जो उनके देश में भी कहीं न कहीं उपस्थित थीं। रमेश चंद्र दत्ता लिखते हैं, "भारत में ब्रिटिश शासन की सबसे दुखद स्थिति यह थी कि इसने ग्राम राज्य की प्रथा को नष्ट कर दिया, जो दुनिया के अन्य सभी देशों की तुलना में भारत में सबसे पहले विकसित हुई और सबसे लंबे समय तक फलती-फूलती रही।"

ग्राम पंचायतें ब्रिटिश शासन के अधीन कमजोर हो गईं और अपनी स्वतंत्रता खो बैठीं। पंचायत की स्वायत्तता पर पहला हमला 1773 में वारेन हेस्टिंग्स के शासनकाल में शुरू हुआ। विनियामक अधिनियमों (रेगुलेटिंग एक्ट) के जरिए पंचायतों के लोकतांत्रिक अधिकार एक के बाद एक छीन लिए गए। रेग्युलेटिंग अधिनियम के तहत, गांवों से भू-राजस्व वसूलने के लिए जमींदारों को नियुक्त किया गया, जिन्होंने व्यक्तिगत रूप से लगान वसूलना शुरू कर दिया। अदालती कार्यवाही के लिए न्यायाधीश नियुक्त किए गए। न्याय के नाम पर वे अनुचित व्यवहार करने लगे। ब्रिटिश सरकार केंद्रीकृत प्रशासन में विश्वास करती थी। परिणामस्वरूप, ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण स्वशासन व्यवस्था अब व्यवहार्य नहीं रही, ग्राम समाज और शासन का धीरे-धीरे पतन हुआ।

जनता के दबाव में ब्रिटिश सरकार ने समय-समय पर पंचायती व्यवस्था को फिर से पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। 1870 के प्रसिद्ध मेयो प्रस्ताव ने स्थानीय संस्थाओं की शक्तियों और जिम्मेदारियों को बढ़ाकर उनके विकास को गति दी। इस वर्ष शहरी नगरपालिकाओं में निर्वाचित प्रतिनिधियों की अवधारणा शुरू की गई। मेयो के पदचिन्हों पर चलते हुए, लॉर्ड रिप्पन ने 1882 में इन संस्थाओं को अत्यंत आवश्यक लोकतांत्रिक ढांचा प्रदान किया। 1883-85 के दौरान पंचायतों से संबंधित 'ग्रामीण बोर्ड' गठित किए गए। उस समय 'ग्रामीण बोर्डों' के कार्य नगरपालिकाओं के समान थे। स्थानीय संस्थाओं की आय के मुख्य स्रोत कर, शुल्क, गृह शुल्क आदि थे। सभी बोर्डों में गैर-अधिकारियों का दो-तिहाई बहुमत होना अनिवार्य था, जिनका चुनाव किया जाना था तथा इन निकायों का अध्यक्ष निर्वाचित गैर-अधिकारियों में से होना था। इसे भारत में स्थानीय लोकतंत्र का 'मैग्ना कार्टा' माना जाता है। लॉर्ड रिपन के इस योगदान के लिए उन्हें भारत में 'स्थानीय सरकार का जनक' कहा जाता है।

लेकिन नौकरशाही, वास्तव में, लॉर्ड रिपन के उदार दृष्टिकोण से सहमत नहीं थी और सोचती थी कि भारतीय स्वशासन के लिए अयोग्य थे। प्रभावी स्थानीय स्वशासन निकायों का युग अभी भी एक अधूरा सपना था क्योंकि मौजूदा स्थानीय निकायों में कई कमियां थीं। हालाँकि, इस संबंध में धीमी प्रगति के कारण भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने ब्रिटिश सरकार से सभी स्थानीय निकायों को अधिक प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक कदम उठाने का आग्रह किया।

1909 में 'शाही विकेंद्रीकरण आयोग' का गठन किया गया। उक्त आयोग ने 1910 में अपनी रिपोर्ट दी। वास्तव में, यह रिपोर्ट स्थानीय स्वशासन की पुनर्स्थापना की शुरुआत का प्रतीक है। अपनी रिपोर्ट में शाही आयोग ने सुझाव दिया कि सत्ता को केंद्र से हटाकर विभिन्न उप-केंद्रों में वितरित किया जाना चाहिए, गांव के लोगों को अपने प्रतिनिधि स्वयं चुनने चाहिए; तालाबों, कुओं, सड़कों और प्राथमिक शिक्षा आदि का निर्माण पंचायतों के कर्तव्यों में शामिल किया जाना चाहिए।। आयोग ने स्थानीय निकायों के प्रभावी कामकाज में वित्तीय संसाधनों की कमी को बड़ी बाधा बताया और ग्राम पंचायत की कर-निर्धारण शक्ति पर मौजूदा प्रतिबंधों को हटाने का आग्रह किया। इन सिफारिशों के बावजूद कोई महत्वपूर्ण प्रगति नहीं हुई।

भारत सरकार अधिनियम, 1919, जिसे 'मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड अधिनियम' के नाम से भी जाना जाता है, के पारित होने के बाद पंचायतों को और अधिक महत्व दिया गया। 1919 के अधिनियम के परिणामस्वरूप, केंद्र सरकार के बजाय प्रांतीय सरकारों ने पंचायतों का कार्यभार अपने हाथ में ले लिया।

1920 के दशक में, महात्मा गांधी और एम.एन.रॉय ने ग्रामीण लोगों की हालत सुधारने के लिए दो बड़े प्रयास किए। सर्वोदय में गांधीजी ने सामाजिक-राजनीतिक मुक्ति की बात की थी जिसके बिना नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति का विकास संभव नहीं है [शिवाजी प्रतिम बसु, 2001, पृष्ठ 198]। महात्मा गांधी की 'ग्रामोदय' या 'ग्रामोत्थान' की अवधारणा, एक विकेन्द्रीकृत, आत्मनिर्भर भारत की कल्पना करती थी, जो सशक्त और स्वायत्त गांवों पर केंद्रित हो। उनका मानना था कि सच्ची स्वतंत्रता (स्वराज) केवल गांवों को सशक्त बनाकर और उन्हें राजनीतिक और आर्थिक जीवन की आधारभूत इकाइयाँ बनाकर ही प्राप्त की जा सकती है। गांधीजी ने कहा कि "पंचायतों के पास जितनी अधिक शक्ति होगी, आम आदमी के लिए उतना ही बेहतर होगा"[पद्म राम चंद्रन, संतोष कुमार अधिकारी द्वारा अनुवादित, 2001]। एम.एन. रॉय की 'पीपुल्स प्लान' ने नियोजन के लिए विकेन्द्रीकृत, सहभागी दृष्टिकोण की

वकालत की, जिसमें जनसंख्या की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने पर ध्यान केंद्रित किया गया। हालाँकि, 1925 तक आठ प्रांतों ने पंचायत अधिनियम पारित कर दिए थे और 1926 तक छह देशी राज्यों ने भी पंचायत कानून पारित कर दिए थे। स्थानीय निकायों को अधिक शक्तियाँ दी गई और कर लगाने के कार्य कम कर दिए गए। लेकिन, स्थानीय स्वशासन संस्थाओं की स्थिति अप्रभावित रही।

भारत शासन अधिनियम 1935, में जनता के शासन की कई मांगें स्वीकार की गईं, लेकिन पंचायतों की हालत बदतर नहीं हुई। ब्रिटिश राज की सिफारिशों में से बहुत कम पर अमल हुआ, इसलिए वे सिर्फ कागजों में रह गए।

स्वतंत्र भारत में पंचायत प्रणाली का स्वरूप

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान पंचायतों को सशक्त बनाने के संबंध में गांधी और अंबेडकर के दृष्टिकोण अलग-अलग थे। गांधीजी ने भारत के भविष्य के शासन के लिए पंचायत राज और ग्राम स्वराज के सिद्धांतों को महत्वपूर्ण रूप से देखा। इसके विपरीत, आंबेडकर ने ग्रामीण भारत के अपने अवलोकनों में पंचायत राज के बारे में गहराई से संशय व्यक्त किया, जो उनके व्यक्तिगत अनुभवों से और भी पुष्ट हुआ। वे गांधी के पंचायत राज के प्रति उत्साह को बहुत आदर्शवादी समझते थे। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने पंचायत के खिलाफ तर्क दिया, क्योंकि-क्योंकि वह पंचायत को 'हिंदू जाति आधिपत्य की निरंतरता' समझते थे। डॉ. अंबेडकर के लिए ग्राम पंचायतें कुछ और नहीं बल्कि "स्थानीयता का अड्डा, अज्ञानता और सांप्रदायिकता का अड्डा थीं।"[केरल सरकार, 1988, पृष्ठ 259]। इसलिए, उनकी अध्यक्षता में जो संविधान तैयार किया गया, उसमें पंचायती राज का उल्लेख नहीं किया गया। पंचायती राज संस्था को संविधान के गैर-न्यायोचित भाग में रखा गया।

1947 में स्वतंत्रता के बाद नेता, महात्मा गांधी के विचारों के अनुसार भारत का निर्माण करना चाहते थे। इसलिए, राज्यों में पंचायत अधिनियम लागू करने की होड़ मच गई; जैसे की उत्तर प्रदेश में एक नए प्रकार का पंचायत राज अधिनियम, 1947 पारित किया गया। उड़ीसा ग्राम पंचायत अधिनियम 1948 में पारित किया गया और कई अन्य राज्यों ने पंचायती अधिनियम पारित किए।

अमेरिकी विशेषज्ञ अल्बर्ट मेयर के नेतृत्व में 'इटावा परियोजना' के प्रभाव में, भारत ने विकास पहल के रूप में, 1952 की पूर्व संध्या पर 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम (सी.डी.पी)' शुरू किया। इसमें लगभग सभी ग्रामीण विकास पहल शामिल थीं जिन्हें ग्राम पंचायतों की मदद और लोगों की भागीदारी से किया जाना था। लेकिन सामुदायिक विकास कार्यक्रम सफल नहीं हो सका क्योंकि नौकरशाही और अत्यधिक राजनीति, लोगों की भागीदारी की कमी, प्रशिक्षित और योग्य कर्मचारियों की कमी और स्थानीय निकायों, खासकर ग्राम पंचायतों की सी.डी.पी. को लागू करने में रुचि की कमी थी।

1957, में राष्ट्रीय विकास परिषद ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम के कामकाज की जांच के लिए बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इस समिति ने पाया कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम की विफलता का मुख्य कारण जनभागीदारी का अभाव था। समिति ने त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाओं का प्रस्ताव रखा: गाँव के स्तर पर ग्राम पंचायतें, ब्लॉक स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद। समिति ने सुझाव दिया कि ग्रामीण विकास योजनाओं में लोगों की सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए नियोजन और प्रशासनिक शक्ति दोनों का उपयोग किया जाना चाहिए तथा इसमें विकेंद्रीकरण होना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान में तथा आंध्र प्रदेश में यह योजना 1 नवंबर, 1959 को शुरू की गई। असम, गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा और पंजाब आदि में भी आवश्यक कानून पारित और लागू किए गए थे।

1977 में जनता पार्टी सरकार द्वारा अशोक मेहता समिति का गठन किया गया था। इस समिति की रिपोर्ट में पंचायती व्यवस्था को व्यवस्थित करने के लिए मंडल पंचायत और जिला परिषद के गठन का सुझाव दिया गया था, लेकिन मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में इस समिति की सिफारिश को स्वीकार नहीं किया गया।

भारत सरकार ने बाद के वर्षों में, पंचायतों को पुनर्जीवित करने और उन्हें नया जीवन देने के लिए विभिन्न समितियों की नियुक्ति की थी। उनमें से सबसे महत्वपूर्ण हैं हनुमंत राव समिति (1983), जी.वी.के. राव समिति (1985), एल.एम. सिंघवी समिति (1986) और केंद्र-राज्य संबंधों पर सरकारिया आयोग (1988), पी.के. थुंगन समिति (1989)। 1985 में योजना आयोग द्वारा जी.वी.के. राव समिति नियुक्त की गई; इस समिति का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह था कि इसने पंचायतों के नियमित चुनाव का सुझाव दिया था, जो जमीनी स्तर पर लोकतंत्र के लिए अत्यंत आवश्यक है। डॉ. एल.एम. सिंघवी की अध्यक्षता में 1986 में एक समिति गठित की गई। इस समिति ने पंचायतों को संवैधानिक दर्जा देने और सभी राज्यों में पंचायतों की आर्थिक व्यवस्था में समानता पर जोर दिया।

इसलिए, 1993 में संविधान के 73वें संशोधन के अनुसार, पंचायत व्यवस्था को संवैधानिक बनाया गया। संविधान के नौवें भाग ने पंचायत व्यवस्था को समाहित करके, जमीनी स्तर पर आम आदमी के लोकतांत्रिक अधिकारों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। 73वें संशोधन अधिनियम ने स्थानीय स्तर पर कुछ शक्तियों और जिम्मेदारियों का हस्तांतरण करके सत्ता और अधिकार के प्रभावी विकेंद्रीकरण को बढ़ावा दिया है। भारत में जमीनी स्तर के लोकतंत्र के विकास में पंचायती राज संस्थाएँ एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर हैं, क्योंकि ये प्रतिनिधि लोकतंत्र को अधिक सहभागी लोकतंत्र में बदल देती हैं। पंचायती राज संस्थाओं ने स्थानीय समुदायों को विकास और शासन की निर्णय लेने की प्रक्रिया में सीधे तौर पर शामिल करके उन्हें सशक्त बनाया है। पंचायती राज संस्थाओं में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं जैसे हाशिए पर पड़े वर्गों के लिए आरक्षण [अनुच्छेद 243 (डी)] के प्रावधान ने उनके राजनीतिक सशक्तिकरण और प्रतिनिधित्व को और बढ़ाया है। पंचायती राज संस्थाओं ने शासन की प्रक्रिया को लोगों के करीब लाकर इसे स्थानीय आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के प्रति अधिक संवेदनशील बना दिया है।

निष्कर्ष

भारत के विकेंद्रीकृत शासन प्रणाली का आधार पंचायती राज संस्थाएँ (पीआरआई) हैं, जो स्थानीय समुदायों को सशक्त बनाने और जमीनी स्तर पर लोकतंत्र को मजबूत करने की देश की प्रतिबद्धता को व्यक्त करती हैं। पंचायती राज संस्थाओं ने ग्रामीण विकास और राजनीतिक भागीदारी के परिदृश्य को बदल दिया है, जिससे शासन व्यवस्था अधिक समान, जिम्मेदार और लोगों की आवश्यकताओं के अनुरूप बन गई है।

भारतीय संदर्भ में, पंचायत प्रणाली एक ऐसा चरण है जहाँ लोगों की सक्रिय भागीदारी के माध्यम से स्थानीय स्तर पर विकासात्मक शक्ति का उपयोग किया जा सकता है। क्योंकि केवल विकास कार्यक्रम लेना आवश्यक नहीं है। पंचायत के विकास कार्यों में गाँव के लोगों की सहज भागीदारी की आवश्यकता है। इसलिए गाँव के लोगों को गाँव के लिए योजना को लागू करने के लिए पहल करनी होगी।

स्थानीय प्रशासन का प्रमुख लाभ यह है कि यह क्षेत्रीय समस्याओं के समाधान का प्रयास करता है। जैसे-जैसे सरकार और जनता के बीच संवाद स्थापित होता है, दोनों के बीच घनिष्ठ संबंध विकसित होते हैं, जिससे सरकार की जिम्मेदारी बढ़ती है। पंचायतों के माध्यम से नागरिक सरकारी निर्णयों में भाग लेते हैं, जिससे एक ओर राजनीतिक चेतना में वृद्धि होती है, वहीं दूसरी ओर यह स्थानीय शासन व्यवस्था राजनीतिक समाजीकरण में भी सहायक होती है। विकेंद्रीकरण की अवधारणा विकास और लोकतंत्र से संबंधित है, और यह गरीबी, पर्यावरणीय चिंताओं तथा स्थानीय असंतुलन को कम कर सकता है।

संदर्भः-

1) श्री कर्ण मारवाह, पंचायती राज संस्थानः सुशासन की ओर एक कदम, विधि मंत्रः दूसरों से आगे सोचें (अंतर्राष्ट्रीय मासिक पत्रिका, आई.एस.एस.एन 2321 6417), खंड 2 अंक
2) राम चंद्र प्रधान, सिबी के. जोसेफ, पंचायत राज और गांधी का ग्राम शासन का दृष्टिकोण, संवाद, खंड-15 अंक 2
3) एस. रजनीश एस.एल. गोयल [2009], भारत में पंचायती राजः सिद्धांत और व्यवहार (द्वितीय संशोधन एवं अंग्रेजी संस्करण), डीप एंड डीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-xv
4) केरल सरकार [1988] लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के लिए किए जाने वाले विभाजन पर रिपोर्ट, जिला और निचले स्तर पर, खंड 1
5) एस.आर. माहेश्वरी, भारत में स्थानीय सरकार, ओरिएंट, लॉन्गमैन, नई दिल्ली [1971]।
6) बुद्धदेव भट्टाचार्य, गांधी के राजनीतिक दर्शन का विकास, कलकत्ता बुक हाउस, कलकत्ता, पृ.; 480-462 [1969]।
7) शक्ति मुखर्जी और इंद्राणी मुखर्जी, भारत की राजनीति और प्रशासन, द वर्ल्ड प्रेस प्राइवेट लिमिटेड [2006]।
8) भारत में पंचायती राजः सिद्धांत और व्यवहार (द्वितीय संशोधन एवं सूचीबद्ध संस्करण) एस. रजनीश एस.एल. गोयल द्वारा [2019]
9) भारत में पंचायती राज का विकासः पारंपरिक से संवैधानिक पंचायतों तक, शारदा, मृदुला। नई दिल्लीः कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2010xxii
10) भारत में स्थानीय स्वशासनः क्रियाशील विकेंद्रीकृत लोकतंत्र, डॉ. सुधीर सिंह गौर। ऑरेंजबुक्स प्रकाशन; प्रथम संस्करण (23 अक्टूबर 2024); ऑरेंजबुक्स प्रकाशन
11) पद्म राम लोचन, अनुवादकः संतोष कुमार अधिकारी, भारत में सरकारी प्रशासन, नेशनल बुक ट्रस्ट, [2001]।
12) भारत में विकेंद्रीकृत लोकतंत्रः गांधी का दृष्टिकोण और वास्तविकता एम. वी. नाडकर्णी, एन. सिवाना, लावण्या सुरेश। प्रकाशित 28 मार्च, 2019 रूटलेज इंडिया।
13) 'भारत में शासन का स्थानीयकरण', विद्युत चक्रवर्ती, ISBN 9780815350606 312 पृष्ठ राउटलेज द्वारा 2017।
14) 'समकालीन भारत में लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण और पंचायती राज', एम. शफी भट. ऑनलाइन गाथा, 2019
15) पंचायती राज एवं ग्रामीण विकासः नीति, व्यवहार एवं निहितार्थ, पी. सी. सिकलीगर। ब्लूरोज पब्लिशर्स, 2020।
16) पंचायती राज संस्थाएँः मुद्दे और चुनौतियाँ (पुनर्मुद्रण)। आर. एल. पाणिग्रही। डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 2014। आईएसबीएन 10: 8183561977

संस्कृत साहित्य में प्रकृति चित्रण

रेखा मीना

वरिष्ठ अध्यापक, UGC NET 2018

सारांश

संस्कृत साहित्य में प्रकृति का व्यापक और सुंदर चित्रण मिलता है। इसमें प्रकृति को एक सजीव इकाई के रूप में देखा गया है, जो न केवल मनुष्यों के जीवन को प्रभावित करती है, बल्कि उनका अभिन्न अंग भी है। प्राचीन संस्कृतकाव्यों में प्रकृति के प्रति मानव के सहज प्रेम का. सुन्दरता से उद्घाटन किया गया है। प्रकृति वहाँ कवि के भावों का आलम्बन बनी है। गीता आदि में प्रसस्त प्रकृति के कोमल स्वरूप चित्रित है। संकृत साहित्य में प्रकृति के कोमल स्वरूप का विशेष रूप से सौन्दर्य एवं सन्तुलन का प्रतीकात्मक। चित्रण प्रस्तुत करने के लिए किया है। संस्कृत साहित्य में प्रकृति को विभिन्न रूपों में चित्रित किया गया है, जैसे कि आलंबन रूप, उद्दीपन रूप, और मानवीकरण। आलंबन रूप रूप में, प्रकृति को एक स्वतंत्र इकाई के रूप में चित्रित किया जाता है, जो मनुष्य के भावों और क्रियाकलापों को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए, कालिदास के मेघदूत में, मेघ को एक दूत के रूप में चित्रित किया गया है, जो यक्ष की पत्नी तक संदेश ले जाता है। उद्दीपन रूप रूप में, प्रकृति को मनुष्य के भावों को उद्दीप्त करने वाले कारक के रूप में चित्रित किया जाता है। उदाहरण के लिए, शिशिर ऋतु में, पहाड़ और जंगल का वर्णन, मनुष्य के मन में उदासी और वैराग्य की भावना को जगाता है।

मानवीकरण रूप में, प्रकृति को मानवीय गुणों और भावनाओं से संपन्न चित्रित किया जाता है। उदाहरण के लिए, भवभूति के उत्तर रामचरित में, गंगा नदी को एक देवी के रूप में चित्रित किया गया है, जो सीता की रक्षा करती है। संस्कृत साहित्य में प्रकृति का चित्रण, पाठकों को सौंदर्य की अनुभूति कराता है। प्रकृति के माध्यम से, संस्कृत साहित्य नैतिक शिक्षा भी प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, रामायण और महाभारत में, प्रकृति के साथ मानव का संबं, हमें पर्यावरण के प्रति जागरूक करता है। संस्कृत साहित्य में, प्रकृति का चित्रण मानवीय भावनाओं को व्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम है। उदाहरण के लिए, शकुंतला और दुष्यंत के प्रेम प्रसंग में, प्रकृति का चित्रण, उनके प्रेम की गहराई को दर्शाता है। संक्षेप में, संस्कृत साहित्य में प्रकृति का चित्रण, न केवल एक साहित्यिक तत्व है, बल्कि यह जीवन के विभिन्न पहलुओं, जैसे कि सौंदर्य, नैतिकता, और मानवीय भावनाओं को व्यक्त करने का एक महत्वपूर्ण साधन भी है।

मूल शब्दः संस्कृत साहित्य, प्रकृति का चित्रण, साहित्यिक तत्व, आलंबन रूप, उद्दीपन रूप, सौन्दर्य, नैतिकता, मानवीय भावना

प्राचीन संस्कृति के धरोहर, भारतीय मनीषा की देन, विश्व साहित्य की सबसे पृथुल रचना, उपजीव्य महाकाव्य तथा जातीय इतिहास ''महाभारत'' के कुछ पर्वों में प्रकृति-चित्रण देखे जा सकते हैं। ठीक ही कहा गया है, जैसे दही में मक्खन, मनुष्यों में ब्राह्मण, वेदों में आरण्यक, औषधि में अमृत, जलाशयों में समुद्र और चतुष्पदों में गौ श्रेष्ठ है; उसी प्रकार समस्त इतिहासों में 'महाभारत' श्रेष्ठ है। महाभारत का रचयिता अपने-अपने युग की समग्र साहित्यिक और सांस्कृतिक निधि को अपनी कला के माध्यम से एक सूत्र में उपनिबद्ध करने में सफल हुआ है।[1]

सचमुच यह विशाल विश्वकोष है, जिसमें प्राचीन भारत की ऐतिहासिक, धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक, प्राकृतिक, दार्शनिक आदर्शों की अमूल्य संचित निधि है। इसमें बहुत ऐसी घटना है, जो प्राकृतिक दृष्टि से हमारा ध्यान आकर्षित करता है। सर्प गरूड़ के साथ उस द्वीप के मनोरम वन में आते हैं, जो चारों ओर समुद्र द्वारा घिरकर उसके जल से अभिषिक्त हो रहा था। वहां झुंड-के-झुंड पक्षी कलरव कर रहे थे। वहां ऊंचे-ऊंचे मलयज वृक्ष ऐसे प्रतीत होते थे, मानो आकाश में उड़े जा रहे हों। वे वायु के वेग से विकम्पित हो फूलों की वर्षा करते हुए उस प्रदेश की शोभा बढ़ा रहे थे। इसके अतिरिक्त वन पर्व, विराट् पर्व, महाप्रस्थानिक पर्व तथा स्वर्गारोहण पर्व में भी प्रकृति-चित्रण हुआ है। रामायण और महाभारत के पश्चात् नीति कथा का अभ्युदय हुआ और नीतिकथाओं का मूल, स्रोत 'पंचतंत्रम्' में प्रकृति को केंद्रित कर ही कथाएं लिखी गईं, जिनमें पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, वन-गुफा, नदी-पर्वत आदि शामिल हैं। संस्कृत साहित्य के सुदीर्घ परंपरा के ऐतिहासिक केंद्रबिंदु भगवान् पाणिनि![2] विश्व वांङ्मय के सर्वश्रेष्ठ वैयाकरण ही नहीं प्रसिद्धि कवि भी थे, जिनके काव्यों में प्रकृति- चित्रण हमें हमेशा आकर्षित करता है। पाणिनि की कविता से हृदय-सागर में बलात आनंद-लहरी उठने लगता है। प्राकृतिक दृश्यों का अतिशय अलंकृत भाषा में वर्णन बड़ा ही सजीव तथा मनोहारी है।

सावन की घटा छाई हुई है। प्रत्येक दिशा में बादल घिर आये हैं। बिजली भी इन मेघों से कौंध जाती है। वर्षाकाल में मेघों की प्रचंड गर्जना हो रही है। वर्षा में आधी रात के समय चन्द्रमा का बिंब मेघों की पटल में बिल्कुल अंतर्हित हो गया है। बादलों की कड़ाके की आवाज चारों ओर से आ रही है।

इस पर हमारे सहृदय कवि कह रहे हैं कि यह तो निशा रूपी गाय का हुंकार है। जिस प्रकार प्यारे बछड़े को आंखों के सामने न देखकर गाय हुंकार भरती है, उसी प्रकार यह रात्रि भी अपने प्यारे चन्द्र को न देखकर मेघ में गर्जना के ब्याज से हुंकार कर रहे हैं।[3]

प्रकृति प्रकाश के प्रणेता वररुचि की रचनाओं में प्रकृति का स्थान महत्वपूर्ण है। वर्षा की बहार देखिए। लाल-लाल वीर बहूटियों से पृथ्वी चारों ओर आच्छादित हो गई है। मालूम पड़ता है कि ये लड्डू की बूंदे हैं, जो कामदेव के बाणों से घायल होने वाले प्रवासी विरहियों के हृदय से चू-चू कर जमीन पर गिर पड़ी है। जब खेत का उपकारी जल धीरे-धीरे घटने लगा तब तक धान भी सहानुभूति से पीला पड़ गया और उदास हो, उसने अपना मुंह नीचे कर लिया। खेतों में धान के पौधे लहरा रहे हैं। पकी हुई बालियों के बोझ से उसका मस्तक झुका हुआ है। जान पड़ता है कि समीप में उगे हुए कमलों को सूंघने के लिए धान के पौधों ने अपना सिर झुका दिया है। धान का यह काम सर्वथा उचित है। यदि सजीव प्रकृति के पौधे सूंघने का प्रयत्न करते हैं तो क्या बेजा करते हैं।[4]

संस्कृत साहित्य में प्रकृति परंपरा के जाज्वल्य रत्न, प्रकृति देवी के प्रवीण पुरोहित कालिदास की सर्वव्यापिनी दृष्टि ने प्रकृति के सूक्ष्म रहस्यों को सावधान पूर्वक हृदयंगम किया था। उनके प्रकृति-वर्णन इतने सजीव हैं कि वर्णित वस्तु हमारे नेत्रों के सामने आकर नाचने लगती है। ब्राह्म जगत् के सौंदर्भमय वर्णन से कालिदास की विलक्षण परीक्षणशक्ति का परिचय प्रत्येक कवितापारखी को मिलता है। जगत्पावन तीर्थराज प्रयाग में गंगा-यमुना से कल्लोलें कर रही हैं–भागीरथी का विमल जल सूर्यसुता के नील नीर से मिलकर कितना रमणीय मालूम हो रहा है। पर्वत के झरनों पर जब दिन के समय सूर्य की किरणें पड़ती हैं तब उनमें इन्द्रधनुष चमकने लगते हैं, परंतु संध्या के समय सूर्य के पश्चिम ओर लटक जाने पर उसमें इन्द्रधनुष नहीं दिखलाई पड़ते हैं। परंतु झरनों में इन्द्र धनुष के न दिखलाई पड़ने पर भी तालाबों के जल में लटकते हुए सूर्य की समतल कांति पड़ने पर ऐसा जान पड़ता है। मानों उनके ऊपर सोने का पुल बना हो। रघुवंश के नवम् सर्ग में कविवर ने वसन्त का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है। पवन से हिलाई गयी लता उपवन में नाच रही हैं, सुनने में रमणीय भ्रमर की गुंजार गान की भांति मालूम होती है; विकसित फूल कोमल कांति वाले चमकते दांत जैसे गाते समय नर्तकी के दांत स्फुट दिखाई देते हैं। उसी तरह लता के विकसित कुसुम रमणीय जान पड़ते हैं। उनके कोमल पत्ते वायु से हिल रहे हैं; मानो वे लय से युक्त हाथों से भाव बतला रही हों। लता तथा नर्तकी का साम्य कितना सुंदर है।[5]

ऋतुसंहार में छः ऋतुओं का वर्णन बड़ा ही मनोहारी है। प्रकृति का सच्चा स्वरूप तो हमें वर्षा ऋतु, शरद् ऋतु और वसंत ऋतु में देखने को मिलता है। आम के बाग में बैठे हुई मतवाली कोकिला की कूक सुन कर अपना तन-मन न्यौछावर कर दिया जाता है, वन्य प्राणियों द्वारा। कालिदास का मेघदूत तो प्रकृति-स्थल ही है। आषाढ़ के प्रारंभ में रामगिरि पर्वत के उन्नत शिखर से सटा काले-काले बादल के टुकड़े आसमान में उड़ते हुए दर्शनीय सौंदर्य की आभा बिखेर रहे हैं।

प्रकृति रमणी के लालित्यपूर्ण मनोरम विलास-चेष्टाओं का आगार ही है। पूर्व मेघ में आरंभ से अंत तक कैसा अनुपम प्रकृति का वर्णन है। वर्षा के प्रारंभ में जब जल की बूंदों के गिरने पर भूमि से सोंधी-सोंधी गंध उठती है, उस समय संपूर्ण प्रकृति में हरियाली छा जाती है। अनुकूल वायु धीरे-धीरे बह रही है, जातक मधुर शब्द कर रहा है। विन्ध्यपर्वत के पैर पर गिरी हुई रेवा नदी, हाथी की देह पर टूटी-फूटी रेखाओं द्वारा निर्मित भस्म-शृंगार सी मालूम पड़ती है। पीड़ा के कशाघात से दलित यक्ष के अंतः प्रदेश में, समासोक्ति और उपमा द्वारा मूर्त रेवा आह्लाद की अजस्र धारा प्रवाहित करती है। मेघदूत में मेघ, पानी, पर्वत, नदी, वृक्ष, धुआं, आग तथा अलकापुरी का बड़ा ही विशद वर्णन हुआ है। जिसके प्रकृति-प्रेम का अनुपम मेघदूत के इस एक ही श्लोक से लगाया जा सकता है-धनपति कुबेर की उस अलकापुरी की यक्षिणियों का वर्णन है, जहां महापद्य आदि नवो सिद्धियां-रिद्धियां सदा निवास करती हैं।[6]

जहां की भूमि मणि की बनी है, जहां गगनचुंबी प्रासाद खड़े हैं, जहां सितमणि के हर्म्यस्थल है, कनकमय सिकता है, अमर-प्रार्थित यक्षकन्याएं जहां दिन रात मणियों से खेल खेला करती हैं, रात्रि में जहां रत्न प्रदीप जला करते हैं, चन्द्रकांता शिलाओं का बहुमूल्य है, जहां तालाबों की सीढ़ियां मरकत आदि मणियों की बनी हैं, हेम कमलों में वैदूर्य मणि के नाल हैं, वाद्ययंत्र शृंगार की सामग्रियां प्रकृति की विभूतियां हैं। अलका में बसने वाली वालाएं (वधूएं) एक ही समय छः ऋतुओं के फूलों से अपना शृंगार करती है। शरद् के कमल उनके हाथों में खेल के लिए होते हैं। हेमंद के टटके कुंदपुष्प उनके घुंघराले बालों में गूंथे जाते हैं। शिशिर के लोघ्र पुष्पों का पीला पराग वे मुख की उज्जवलता के लिए लगाती है।[7]

वसंत के कुरबक के नये फूलों से अपना जूड़ा सजाती है। गरमी में खिलने वाले सिरस के सुंदर फूलों को कानों में पहनती और वर्षा में जो कदम्ब-पुष्प खिलते हैं, उन्हें वे अपनी मांगों में सजाती है। प्रकृति-चित्रण की परंपरा में यतकिंचित ही सही, महाकवि अश्वषोष का भी योगदान रहा है। सौन्दररानंद के सप्तम् सर्ग की प्रकृति प्रियाविरह का अनुभव करते, नंद के लिए उद्दीपन का काम करती है। वह कमल के समान लाल वस्त्र पहने हुए थी, उसका मुख कमल के समान था, उसकी आंखें कमल के पत्तों के समान विशाल थीं। वह वैसे ही गिर पड़ी जैसे कि पद्म धारण कुम्हलाने लगी जैसे कि धूप में पद्मों की माला।

संदर्भ

1. उत्पतद्विरिवाकाशं वृक्षैर्मलयजैरपि। शोभितं पुष्पवर्षाणि मुंचद्भिर्मारूतोद्धतैः। महाभारत (आदिपर्व/27/6)
2. The Panchatantra so called becoause it is divided into five books. It become be literary paint of view the most important and interasting work in the branch of Indian literature (Mac Donell.)
3. गतेडऽर्धरात्रे परिमन्दमंदं, गर्जन्ति यत्प्रावृषि कालमेघाः। पश्यती वत्समिवेन्दुबिम्बं, तच्छर्वरी गौरिव हुं करोति।।
4. कलमं फलभारातिगुरुमूर्धतया शनैः। विननामान्तिकोद्भूतं समाघ्रातुभिवोत्पलम।। सूक्ति संग्रह, (शरद वर्णन)
5. पश्च पश्चिम-दिगन्तलम्बिना नर्मितं मितकथे विवस्थ्वता। लब्धया प्रतिमया सरोऽम्भसां तापनीयमिव सेतु-बंधनम्।। (कुमार सं॰ 8/34)
6. श्रुतिमुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरूचो बभुः। उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः।। (रघुवंशम् 9/35)
7. आकम्पयनु कुसुमिताः सहकारशाखाः विस्तारयनू परभृतस्य वचांसि दिक्षु। वायुर्विवाति हृदयानि हरन्नराणां नीहारपातविगमात् सुभगो वसंते।। (ऋतुसंहार, 6/24)

संगीत की सृजनात्मक गाथाः नादयोग

डॉ० कुमारी मेनिका

एम०ए०, पी०-एच०डी०, नेट (Music) स्नातकोत्तर संगीत विभाग, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

संगीत की सृष्टि नाद से होती है। जिस तरह मिट्टी या पत्थर से मूर्ति, रंग से चित्रा और ईट, पत्थरों से महल तैयार होता है उसी तरह नाद से संगीत प्रस्फुटित होता है। मिट्टी आदि की तरह ही नाद संगीत का उपादान मात्रा है। कोई नाद चाहे जितना भी श्रुति मधुर हो अकेला संगीत का रूप नही ले सकता, क्योंकि ऐसे नाद में संगीत का रूप देखना वैसा ही है जैसा किसी पत्थर के ढ़ोकें में बुद्ध की मुर्ति या रंग के ढ़ेर में रम्भा मदलसा का चित्रा देखना। किसी भी कलाकृति के लिए अच्छे उपादान को ग्रहण करना उचित है और इस दृष्टि से संगीत के लिए कर्णप्रिय नाद भी आवश्यक है। संगीत के आचार्यो के अनुसार आकाशस्य अग्नि और मरूत के संयोग से नाद की उत्पत्ति हुई है। जहाँ प्राण (वायु) की स्थिति रहती है उसे ब्रह्मग्रंथि कहते है। संगीत दर्पण में लिखा है कि आत्मा के द्वारा प्रेरित होकर चित्त देहज अग्नि पर आघात है और अग्नि ब्रह्मग्रंध्कित प्राण को प्रेरित करती है। अग्नि द्वारा प्रेरित प्राण फिर उपर चढ़ने लगता हैं। नाभि में पहुँचकर वह अति सूक्ष्म हृदय में सूक्ष्म, गलेदेश में पुष्ट, शीर्ष में अपुष्ट और मुख में कृत्रिम नाद उत्पन्न करता है। संगीत दामोदर में नाद तीन प्रकार का माना गया है-प्राणिभव, अप्राणिभव और उभयसंभव। जो सुख आदि रंगो से उत्पन्न किया जाता है, वह प्राणिभव, जो वीणा आदि से उत्पन्न होता है या निकलता है वह अप्राणिभव और जो बाँसुरी से निकाला जाता है वह उभय-संभव है। नाद के बिना गीत, स्वर, राग, ताल आदि कुछ भी संभव नहीं है। ज्ञान भी इसके बिना नही हो सकता। अतः नाद परज्योति व ब्रह्मरूप है। और सारा जगत नादात्मक है।

'नाद' शब्द की व्युत्पत्ति एवं निरूक्तिः-

'नद्' धातु से 'नाद' शब्द निष्पन्न हुआ है। हमारे आचार्यो ने नाद को ब्रह्म के साथ स्वीकृत करके 'नादब्रह्म' के रूप में प्रस्तुत किया है। नाद अद्वितीय और आन्नदस्वरूप है। शारंगदेव के अनुसार नाद शब्द के दो अक्षर 'नकार' प्राणवायु और 'दकार' अग्नि वाचक है। इन दोनों अर्थात प्राणवायु एवं अग्नि के संयोग से 'नाद' उत्पन्न हुआ है।

नकारं प्राणनामानं दकामनलं विदुः ।
जातः प्राणग्निसंयोगत्तेन नादोऽभिधीयते।।[1]

पाणिनी के अनुसार नादोत्पति इस प्रकार है- ''आत्मा बुद्धि से योग करती है, मन विवक्षाधीन अर्थो के साथ युक्त होता है। वह व्यापारित मन शरीर स्थित अग्नि पर आधत करता है, अग्नि वायु को प्रेरणा देती है, इस प्रकार प्राण, शरीर के विभिन्न भागों में संचरण कर मन्द्र, तथा तार इन स्थानों से विभिन्न स्वर उत्पन्न होते है।

''आत्मा बुद्धया समेत्यार्थान् मनी युड्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयित मारूतम्।।
मारूतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम्।'' [2]

नाद की उत्पति का वर्णन करते हुए 'शारदातिलक' में कहा गया है कि सत्, चित, आनन्द विभूतित्रायी से सम्पन्न प्रजापति से सर्वप्रथम शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। वह शक्ति नाद को उत्पन्न करती है और नाद से बिन्दु की उत्पत्ति होती है।

''सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्
आसीच्छाक्तिस्ततो नादो नादाद् बिन्दुसमुद्भवः ।'' [3]

संगीतशास्त्र के अनुसार स्वर, गीत, वाद्य और ताल चारों नाद के बिना सिद्ध नही होते। अतः जगत् नादात्मक है। संगीताचार्यो का कथन है कि नाद की उत्पत्ति ब्रह्मग्रन्थि से होती है। भगवान शंकर को नादतनु माना गया है क्योंकि वे नाद के प्रवक्ता है।

''ब्रह्मग्रन्थिज्मारूतानुगतिना चित्तेन हृत्पंकजे
सूरीणामनुरञ्जकः श्रुतिपदं योऽयं स्वयं राजते।
यस्माद ग्रामविभागवर्णननरचनालंकारजातिक्रमो
वन्दे नादतनुं तमुद्दुरजगद्गीतं मुदे शंकरम्।। [4]

मतंगमुनि कहते है कि नाद के बिना न गीत है, न स्वर है, और न नृत्य है। नादतत्व गीत, वाद्य,नृत्य सभी में व्याप्त है। अत: सम्पूर्ण जगत ही नादात्मक है। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के समान पराशक्ति भी नाद स्वरूप ही है।

''न नादेन बिना गीतं न नादेन बिना स्वरा:।
न नादेन बिना नृत्य तस्मान्नदात्मकं जगत।।
नाद रूपों स्मृतोब्रह्मा नाद रूपों जनार्दन:।
नाद रूपा पराशक्ति नार्दरूपो महेश्वर:।। [5]

पं. लोचन के अनुसार-प्राणसंज्ञक वायु नाभि स्थान के उपर की ओर हृदयादि स्थान से होते हुए ब्रह्मारन्ध्र में ध्वनित (नादितद्ध होता है। अत: अग्नि और वायु के संयोग से उत्पन्न नाभि से उर्ध्व रूप में उच्चारित एवं मुख द्वारा व्यक्त ध्वनि को नाद कहा जाता है।

नाद के भेद:

संगीत शास्त्रों में नाद के दो भेद आहत एवं अनाहत बताये गए हैं। अनाहत नाद बिना आघात या घर्षण से उत्पन्न होता है, जबकि आहत नाद आघात या घर्षण से उत्पन्न होता है। आहत नाद की साध्ना संगीतज्ञ तथा अनाहत नाद की साध्ना योगीजन करते हैं।

संगीत ईश्वर प्राप्ति का सर्वोतम माध्यम है, क्योंकि रसात्कमता मानव हृदय या साध्क के चित्त को बाँधे रहती है, जिससे इनकी चित्तवृत्तियाँ स्वत: ही शांत एवं लुप्त हो जाती है। अत: संगीत में लीन भक्त अपने परिवेश से मुक्त होकर ईश्वर से एकाकार हो उससे नादात्म्य स्थापित करता है और मोक्ष को प्राप्त करता हैं।

अनाहत नाद की साध्ना से योगीजन ब्रह्मानंद को प्राप्त करते हैं। यह दिव्य नाद हर पल, हर क्षण, हर दिशा में अर्थात सृष्टि के कण-कण में सदैव रहता है। इसके अनुभव योगीजन अपने कानों को बंद करके करते है तथा ब्रह्मानंद के साथ-साथ भक्ति-मार्ग की ओर अग्रसर होते हैं। अत: अनाहत एवं आहत नाद मुक्तिदायक एवं ब्रह्मानंद का अनुभव कराते है। दोनो प्रकार के नाद के उपासना से साध्क को एकाग्रता, निराकुलता, और शांति का अनुभव होता है। इससे पाप का क्षय होता है, क्योंकि पाप की सम्प्राप्ति (आस्त्रावद्ध चंचल मन के योग से होती है। वह मन नादासक्त होने पर स्वत: स्थिर हो जाता है। हठ योगियो का तो अनुभव है कि उस अवस्था में चित निरंजन में लीन हो जाता है।

'नाद' शब्द योग एवं तंत्रा में विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जो ध्वनि स्वत: अंदर से प्रकट होती है, उसे विद्वतजन नाद 'अंत: ध्वनि' 'अंत: संगीत', 'अंतमाधुर्य' आदि के नाम से उल्लेखित करते है, स्वत: अंत: करण से प्रकट ध्वनि जो अनुभव के स्तर पर सुनाई देती है यही 'नादयोग' कहलाती है।

नाद की विभिन्न व्याख्या के अंतर्गत हठयोग प्रदीपिका में ही कहा गया है कि जो साध्क नादानुसंधान का अभ्यास करते हैं उन्हे प्रारम्भ में तो अनेक प्रकार के शब्दों के श्रवण का अनुभव होता है, फिर सूक्ष्मतातिसूक्ष्म शब्द सुनने की क्षमता आ जाती है। पहले समुद्र गर्जन, मेघास्तनि और भेरीरव आदि जैसे शब्द सुनाई पड़ते है। मध्य में मर्दल, शंख, घण्टा और काहल से उत्पन्न ध्वनि के नाद सुनाई देते है। लेकिन अंत में वंशी, वीणा, इत्यादि के नाद सुनाई पड़ते है।

''आदौ जलध्जीभूत भेरी झर्झरसम्भवा:।
मध्ये मर्दलशंखोत्था घण्टाकाहलजास्तथा।।
अन्ते तु किंकिणीवंशवीणाभ्रमरनि: स्वना:।
इति नानविद्या: शब्दा: श्रूयन्ते देहमध्यगा:।।'' [6]

यहाँ स्पष्ट है कि साध्क स्थूल नाद से आगे बढ़ते हुए सुक्ष्म नाद की ओर अग्रसर होकर चित्त का परमानंद प्राप्त करता है। योग साध्ना में नाद की इस परममहत्ता का संगीतशास्त्र से प्रगाढ़ संबंध है। व्यापक दृष्टि से दृष्टिगत होता है कि यह नाद अनाहत की उपासना है, परन्तु संगीत में आहत नाद की ही उपासना होती है। योगशास्त्र का कथन है कि -

''तत्रानादे यदाचित्तं योगितो रमते भश्शम्।
विस्मृत्य सकलं वाद्य नादेन सह शाम्यति।।'' [7]

अर्थात जब साध्क का चित नाद में स्थित हो क्रिड़ा करने लगता है, तब सब बाहरी विषयों की विस्मृति होकर नाद के साथ वे शांत हो जाते है, यही लय योग है, यही समाधि है, यही नाद योग है।

नाद-साध्ना में नाद की महत्ता का संगीत और योग से प्रगाढ़ संबंध है। व्यापक दृष्टि से देखने पर यह अनाहत नाद की उपासना है, परन्तु संगीत में आहत नाद का उपयोग होता है। यही साध्य नाद 'प्रणव' या 'ओंकार' कहलाता है। संत महात्माओं ने इसे 'सोऽह' भी कहा है। इसी 'प्रणव' या 'सोऽह' की साध्ना से कुण्डलिनी जाग्रत किया जाता है।

अत: स्पष्ट है कि संगीत और योग दोनो ही नादात्मक विद्या है। दोनों की साध्ना लौकिक, आनंददायक तथा अनंत फलदायक है। इसीलिए नाद की उपासना से ब्रह्मलाभ होता है। मणि और उसकी प्रभा में जिस प्रकार का पारस्परिक संबंध है, प्रभा की खोज करने पर जिस प्रकार मणि की प्राप्ति होती है, ब्रह्म और नाद का भी वैसा ही संबंध है।

संदर्भ सूची

1. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, श्लोक-6,पृष्ठ-113
2. महतो दामोदर, पाणिनीय शिक्षा, पृ0-6-8
3. मालवीय डॉ0 सुधकर, शारदातिलक, पृ-117
4. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, पृ0-11
5. मुनी मतंग, वृहद्देशी-श्लोक-6,पृ0-17
6. हठयोगी प्रदीपिका, 4/104
7. मिश्रा डॉ0 नीता, संगीता में नादरूप व ध्वनिपक्ष के विभिन्न आयाम, पृ0-29

शिक्षा में बाल मनोविज्ञान और चित्रकला का समन्वय

डॉ० रश्मि शर्मा

(असिस्टेंट प्रोफेसर), प्रभारी-चित्रकला विभाग, किशोरी रमण महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मथुरा

सारांश

प्रारंभिक बाल विकास में कला और शिल्प सिखाना कई कारणों से आवश्यक है। वे बच्चों में रचनात्मकता को बढ़ावा देने और उनके समग्र विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हैं। रचनात्मक गतिविधियों के माध्यम से, बच्चे अपनी संज्ञानात्मक क्षमताओं का विकास करते हुए शारीरिक गतिविधियों पर बेहतर नियंत्रण और अपनी कल्पनाशक्ति का विस्तार करते हैं। कला और शिल्प बच्चों को खुद को अभिव्यक्त करने का एक माध्यम देने के अलावा भावनाओं को मौखिक रूप से व्यक्त करने से अधिक सक्षम बनाते हैं। इससे उनकी भावनात्मक बुद्धिमत्ता और आत्म-मूल्य की भावना बढ़ सकती है, जो स्वस्थ सामाजिक विकास के लिए आवश्यक है।

शैक्षिक मनोविज्ञान की समीक्षा के अनुसार, जो छात्र अपने बचपन के दौरान कला और शिल्प में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं, उनका शैक्षणिक रिकॉर्ड बेहतर होता है और उनमें पढ़ने और सीखने की समझ भी अधिक होती है।

दिलचस्प बात यह है कि तकनीक की दुनिया में भी बच्चे इससे अलग नहीं हैं। माता-पिता अक्सर अपने बच्चों को व्यस्त रखने और उन्हें ध्यान भटकाने से रोकने के लिए उन्हें तरह-तरह के तकनीकी उपकरण और उपकरण उपलब्ध कराते हैं। बच्चों को तकनीक से परिचित कराना जरूरी है, लेकिन इसका अत्यधिक उपयोग और असीमित पहुँच उनके समग्र विकास को गंभीर रूप से नुकसान पहुँचा सकती है।

दूसरा, कला और शिल्प सहित परियोजनाएँ बच्चों में रचनात्मकता और व्यावहारिक शिक्षण का अवसर प्रदान करती हैं। बच्चे अपनी समस्या-समाधान, विश्लेषणात्मक क्षमता और निर्णय लेने के कौशल का विकास करते हैं क्योंकि उन्हें सामग्री, रंग और पैटर्न चुनने होते हैं। इसके अलावा, गणित और विज्ञान की अवधारणाएँ जैसे बीजगणित, मापन और कारण-और-प्रभाव संबंध आमतौर पर इन कार्यों में शामिल होते हैं। परिणामस्वरूप, छोटे बच्चों को कला और शिल्प सिखाने से उनकी आविष्कारशीलता को बढ़ावा मिलता है। यह उनके विश्लेषणात्मक और बौद्धिक कौशल को विकसित करने में मदद करता है, जो उनकी संपूर्ण शैक्षिक यात्रा को प्रभावित करता है। कला और शिल्प की रचनात्मकता को बढ़ावा देने, समग्र विकास को प्रोत्साहित करने और सीखने के प्रति आजीवन प्रेम विकसित करने की क्षमता उन्हें प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा में मूल्यवान बनाती है।

इसलिए, अपने बच्चों के स्वस्थ विकास को सुनिश्चित करने के लिए एक अलग दृष्टिकोण की तलाश कर रहे माता-पिता को उन्हें अपने खाली समय को रचनात्मक गतिविधियों में लगाने देना चाहिए। जो बच्चे विभिन्न रचनात्मक रूपों, जैसे पेंटिंग और ड्राइंग में भाग लेते हैं, वे आलोचनात्मक सोच, समस्या-समाधान और निर्णय लेने की क्षमता विकसित करते हैं। वे विभिन्न रंगों, आकृतियों और सामग्रियों के साथ प्रयोग कर सकते हैं, जो उन्हें रचनात्मक और अपरंपरागत रूप से सोचने के लिए प्रेरित करता है। यह उन्हें रचनात्मक रूप से सोचने के लिए प्रोत्साहित करता है और उनकी कल्पनाशीलता को विकसित करता है।

शिक्षा में बाल मनोविज्ञान और चित्रकला के समन्वय आधारित यह शोध लेख बच्चों के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और संज्ञानात्मक विकास में चित्रकला की भूमिका पर प्रकाश डालता है। चित्रकारी से बच्चों की समझ, स्मृति और एकाग्रता में वृद्धि होती है, साथ ही यह उनकी भावनाओं को व्यक्त करने और समस्या-समाधान कौशल विकसित करने का एक प्रभावी माध्यम है। शिक्षक इस समन्वय का उपयोग एक बेहतर शिक्षण वातावरण बनाने और बच्चों की व्यक्तिगत भिन्नताओं को समझने के लिए कर सकते हैं।

मूल शब्दः मनोवैज्ञानिक विकास, कला, शिल्प, शिक्षा, बाल मनोविज्ञान, चित्रकला, संज्ञानात्मक विकास

प्रस्तावना

मनोवैज्ञानिक विकास, बाल मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण पहलू है, जो विद्यार्थियों के व्यक्तिगत और सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बचपन से ही मनोवैज्ञानिक विकास का आधार रखा जाता है जो उन्हें उनके आने वाले वर्षों में सफलता और खुशहाली की ओर ले जाता है। इस महत्वपूर्ण विषय के प्रति शिक्षकों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। शिक्षकों का मनोवैज्ञानिक ज्ञान, उनकी दक्षता और उनके प्रभाव विद्यार्थियों के मनोवैज्ञानिक विकास पर सीधा प्रभाव डालते हैं। मनोवैज्ञानिक विकास विद्यार्थियों के मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक और प्राकृतिक पहलुओं का एक समग्र अध्ययन है।

बच्चों को कला पसंद होती है, क्योंकि यह मजेदार है और उन्हें यह एक तरह की प्रामाणिक आत्म-अभिव्यक्ति प्रदान करती है। एक अभिभावक के लिए कला एक बच्चे की कल्पना का प्रदर्शन है। एक शिक्षक के लिए यह एक शिक्षण उपकरण है। एक मनोवैज्ञानिक के लिए कला एक बच्चे के दिमाग को समझने का एक तरीका है। घर के बुजुर्गों के लिए कला उनसे जुड़ा रहने का एक तरीका है। लाइब्रेरियन के लिए यह पुस्तक ज्ञान को बढ़ाने का एक

तरीका है। एक बालक के लिए कला मस्ती करने, निर्णय लेने और विकल्पों को व्यक्त करने का एक तरीका है। बच्चे कभी अपने काम की आलोचना नहीं करते हैं। वह स्वतंत्र होकर अपनी खुशी से चित्रण करते हैं। कला, बच्चों को उनकी पसंद, विचार और भावनाओं की स्वतंत्रता प्रदान करती है। एक चित्र हजार शब्दों को व्यक्त करता है। चित्र, भावनाओं और जटिलताओं को इस तरह से अभिव्यक्त करते हैं, जो शब्द नहीं कह सकते। गैर-मौखिक रूप से संवाद करने की क्षमता बच्चों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। कला, एक शक्तिशाली उपकरण है, जो बच्चों को अपने विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने की क्षमता देती है।

शिक्षा में बाल मनोविज्ञान और चित्रकला के समन्वय से बच्चों के संज्ञानात्मक, भावनात्मक और शारीरिक विकास को बढ़ावा मिलता है, क्योंकि चित्रकला एक ऐसा माध्यम है जो बच्चों को विचारों को व्यक्त करने, समस्याओं को सुलझाने और अपनी दुनिया को समझने में मदद करता है। चित्रकला के माध्यम से बच्चे अपनी याददाश्त में सुधार करते हैं, एकाग्रता विकसित करते हैं और बढ़िया मोटर कौशल को बढ़ाते हैं। बाल मनोविज्ञान इन कलात्मक गतिविधियों को समझने और उनका मार्गदर्शन करने के लिए एक वैज्ञानिक आधार प्रदान करता है, जिससे शिक्षकों और माता-पिता को बच्चों के विकास में सहायता मिलती है।

बाल कला का उद्‌गम

जन्म लेते ही बालक स्वतंत्र अभिव्यक्ति करना प्रारंभ कर देता है। नन्हीं उम्र में बालक अपनी विभिन्न क्रीडाएं शुरू कर देता है। जैसे-मिट्टी में खेलना, शरारत करना, विभिन्न प्रकार की अठखेलियां करना उसकी सहज व स्वाभाविक प्रवृत्तियां बन जाती हैं। ठीक उसी प्रकार उल्टी-सीधी पेंसिल पकड़ना, खडिया या अपनी उंगलियों से मिट्टी में कुछ भी उकेरना उसके लिए खेल बन जाता है, यही उसकी स्वतंत्र अभिव्यक्ति है जिसे बालकला का प्रारंभिक रूप कहा जा सकता है। वास्तव में बाल कला का अर्थ है -अपनी इच्छा पूर्ति और खुशी के लिए स्वतंत्र रूप से रखी गई कला। इसी संदर्भ में बालक चित्रकला को सबसे प्रिय व सरल अभिव्यक्ति का साधन समझता है।

बाल मनोविज्ञान में चित्रकला का महत्व

भावनात्मक अभिव्यक्ति

बच्चे चित्रकला के माध्यम से अपनी भावनाओं और आंतरिक दुनिया को अभिव्यक्त कर सकते हैं, जिससे उनके भावनात्मक स्वास्थ्य को बढ़ावा मिलता है।

संज्ञानात्मक विकास

चित्रकला बच्चों की वैज्ञानिक अवधारणाओं को समझने, जानकारी को याद रखने और एकाग्रता बढ़ाने में मदद करती है।

संचार और कल्पना

बच्चे चित्रकला के जरिए अपने अनुभवों को नए तरीकों से प्रस्तुत करते हैं, जिससे उनकी कल्पना शक्ति और रचनात्मकता बढ़ती है।

समस्या-समाधान

एक द्वि-आयामी सतह पर त्रि-आयामी दुनिया को प्रस्तुत करने का प्रयास बच्चों को समस्या-समाधान कौशल विकसित करने में मदद करता है।

चित्रकला का शैक्षिक अनुप्रयोग

अवधारणाओं को स्पष्ट करना

शिक्षक वैज्ञानिक या गणितीय अवधारणाओं को समझाने के लिए रेखाचित्रों का उपयोग कर सकते हैं।

मेमोरी को बढ़ाना

बच्चों को किसी घटना के बारे में बताते हुए चित्र बनाने के लिए प्रोत्साहित करने से वे अधिक जानकारी याद रख सकते हैं।

मोटर कौशल का विकास

रंग भरने, ड्राइंग और पेंटिंग जैसी गतिविधियाँ बच्चों के हाथ-आँख समन्वय और निपुणता को बढ़ाती हैं।

अमूर्त सोच को बढ़ावा देना

चित्रकला बच्चों को अमूर्त विचारों और अनुभवों को ठोस रूपों में व्यक्त करने का एक तरीका प्रदान करती है।

बाल मनोविज्ञान और चित्रकला का समन्वय

शिक्षकों और अभिभावकों के लिए

बाल मनोविज्ञान की समझ शिक्षकों और माता-पिता को बच्चों के चित्रकला के माध्यम से उनके विकास और भावनाओं को समझने में मदद करती है।

व्यवस्थित विश्लेषण

बच्चों के चित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करके, मानसिक स्वास्थ्य पेशेवर उनकी भावनात्मक और संज्ञानात्मक स्थिति का मूल्यांकन कर सकते हैं।

शैक्षिक हस्तक्षेप

चित्रों का उपयोग बच्चों की सीखने की कठिनाइयों या व्यवहार संबंधी समस्याओं की पहचान करने और हस्तक्षेप के लिए एक उपकरण के रूप में किया जा सकता है।

बच्चों के विकास में चित्रकला का महत्व

संज्ञानात्मक विकास

चित्रकला बच्चों की विज्ञान जैसी अन्य अवधारणाओं को समझने में सहायता करती है। यह एक प्रकार की समस्या-समाधान गतिविधि है, जहाँ बच्चे 3-आयामी दुनिया को 2-आयामी चित्र के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं।

भावनात्मक विकास

चित्रकला बच्चों को अपने अनुभवों को व्यक्त करने का एक मंच देती है। यह भावनाओं और आंतरिक विचारों को व्यक्त करने में मदद करती है, खासकर उन बच्चों के लिए जो बोल नहीं पाते हैं।

संचार और स्मृति

चित्र बनाने से बच्चों की याददाश्त बेहतर होती है। वे अपनी यादों और विचारों को चित्रित करके व्यक्त करते हैं, जिससे उन्हें घटनाओं को याद रखने और दूसरों के साथ साझा करने में आसानी होती है।

रचनात्मकता और कल्पना

चित्रकला बच्चों को रचनात्मक और कल्पनाशील बनने के लिए प्रोत्साहित करती है। यह उन्हें अपनी कल्पना को पोषित करने और नए विचार विकसित करने का अवसर देती है।

मनोचिकित्सा में चित्रकला का अनुप्रयोग

अभिभावक-बाल कला मनोचिकित्सा

इस सत्र में, माता-पिता और बच्चे साथ मिलकर कला बनाते हैं, जिससे उनके बीच संचार और आत्म-अभिव्यक्ति को बढ़ावा मिलता है। यह मौखिक रूप से व्यक्त करना मुश्किल होने वाली भावनाओं को व्यक्त करने का एक तरीका है।

थेरेप्यूटिक टूल

मनोवैज्ञानिक बच्चों के चित्रों का उपयोग उनकी भावनाओं, विचारों और अचेतन इच्छाओं को समझने के लिए करते हैं। यह परामर्श के दौरान एक ठोस आधार प्रदान करता है।

चित्रकला के माध्यम से संवाद संचार

- बच्चे अपने आस-पास की दुनिया को अपनी कला के माध्यम से दर्शाते हैं। वे चित्र बनाकर अपने ज्ञान, यादों और कल्पना को व्यक्त करते हैं।
- यह बच्चों को अपनी दुनिया और अनुभवों से जुड़ने और उनसे संबंध बनाने का मौका देता है।

बाल कला में बाल विकास के महत्व से सम्बन्धित साहित्यों की समीक्षा के पश्चात यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हमारे जीवन में कला का महत्व एक बड़े स्तर पर काफी मान्यता प्राप्त है। कला हर जगह है, जो हमें दैनिक आधार पर प्रभावित करती है, चाहे हम इसे महसूस करें या नहीं। जिस कला से हम घिरे हुए हैं, उसके साथ यह चित्रकला, संगीत या यहां तक कि वीडियो भी हमारी मनोदशा और भावनाओं पर एक बड़ा प्रभाव डालती है। अनुसंधान और सांख्यिकी पुष्टि करते है कि यह शिक्षा कई समस्याओं को हल करने में मदद करती है और महत्वपूर्ण सोच कौशल को बढ़ाती है। सभी बच्चे अकादमिक रूप से बेहतर नहीं होते इसलिए कला उनके भीतर के कलाकार को खोजकर उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों में आगे बढ़ने के लिए कला उत्कृष्टता प्रदान करती है और साथ ही करियर बनाने का अवसर भी प्रदान करती है।

निष्कर्ष

कला और शिल्प का महत्व विद्यार्थियों के लिए कक्षा से कहीं आगे तक जाता है। रचनात्मकता को प्रोत्साहित करके, ये कलात्मक प्रयास एक सर्वांगीण शिक्षा का समर्थन करते हैं। ये व्यक्तिगत विकास को बढ़ावा देते हैं और संज्ञानात्मक विकास में सुधार करते हैं। ये बच्चों के आत्म-सम्मान और मौलिकता को बढ़ावा देते हैं और साथ ही उन्हें सहनशीलता, धैर्य और समय प्रबंधन जैसे महत्वपूर्ण जीवन कौशल भी सिखाते हैं। इसके अतिरिक्त, बदलती दुनिया में, बच्चों के लिए कला और शिल्प, विद्यार्थियों को उनके भविष्य के करियर के लिए तैयार होने में मदद करते हैं। हमें शिक्षा में कला और शिल्प के महत्व को स्वीकार करना और प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि छात्र एक पूर्ण, कल्पनाशील और आत्मविश्वासी वयस्क बन सकें।

शिक्षा में बाल मनोविज्ञान, चित्रकला और शिल्पकला का संयोजन बच्चों के समग्र विकास के लिए बहुत फायदेमंद है। शिक्षकों और माता-पिता को बच्चों के विकास में कला और शिल्प गतिविधियों के महत्व को पहचानना चाहिए और उन्हें इन गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। भविष्य में बाल चित्रों के विश्लेषण के लिए नए उपकरणों और तकनीकों का विकास इस क्षेत्र में और शोध को प्रोत्साहित करेगा।

सन्दर्भ

1. इमी, आर. एस. (2018). बाल मनोविज्ञान: विद्यार्थियों के मनोवैज्ञानिक विकास का मानवचित्र. प्राथमिक शिक्षा मंडल, दिल्ली।
2. गुप्ता, स. (2016). विद्यार्थियों के मनोवैज्ञानिक विकास पर शिक्षकों का प्रभाव: एक अध्ययन. शिक्षा अनुसंधान पत्रिका, 12(2), 67-82।
3. पाठक, पी. एस. (2017). शिक्षकों का मार्गदर्शन और विद्यार्थियों के मनोवैज्ञानिक विकास का संबंध: एक अध्ययन. शिक्षा अनुसंधान और विकास, 24(3), 265-280।
4. मिश्रा, एस. के., और यादव, पी. एस. (2019). विद्यार्थियों के मनोवैज्ञानिक विकास में शिक्षकों के मार्गदर्शन का प्रभाव: एक अध्ययन। मानसिक स्वास्थ्य, 6(1), 45-59।
5. वर्मा, अविनाश बहादुर-भारतीय चित्रकला का इतिहास (2002) प्रकाश बुक डिपो, बरेली।
6. शर्मा, लोकेश चंद्र- भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास (2008), कृष्णा प्रकाशन मीडिया, गोयल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।
7. योगेंद्रजीत, बाल-मनोविज्ञान (1964), विनोद पुस्तक मंदिर, हॉस्पिटल रोड, आगरा।
8. शुक्ल, लाल जी राम-बाल-मनोविज्ञान (1957) नंद किशोर एंड ब्रदर्स, वाराणसी।
9. National Endowment for The Arts. (2014). Imagine! Introducing Your Child to the Arts. Washington, DC: National Endowment for The Arts. Retrieved From Https://Www.Arts.Gov/ Publications/Imagine-Introducing-YourChildarts
10. Vlismas, W., Malloch, S., & Burnham, D. (2015). The Effects Of Music And Movement On Mother-Infant Interactions. Early Child Development and Care, 183, 1669-1688. DOI: 1080/03004430.2012.746968
11. Ritblatt, S., Longstreth, S., Hokoda, A., Cannon, B. N., & Weston, J. (2016). Can Music Enhance School-Readiness Socioemotional Skills? Journal of Research in Childhood Education, 27, 257-266. DOI: 10.1080/02568543.2013.796333

औरैया जनपद (उत्तर प्रदेश) में सिंचाई की सुविधा एंव कृषि विकास का भौगोलिक अध्ययन

रमाकान्त

शोध छात्र, महात्मा ज्योतिबा फुले रोहिलखंड विश्वविद्यालय, बरेली

प्रस्तावना

कृषि कार्य के लिए भूमि के साथ साथ जल भी आवश्यक है। यह जल कृषि को दो साधनों से प्राप्त होता है-प्राकृतिक और कृत्रिम। जल सिंजन का प्राकृतिक साधन वर्षा है और जल सिंचन का कृत्रिम साधन सिचाई है। भारत जैसे मानसून वर्षा वाले देश में कृषि, वर्ष पर निर्भर नही कर सकती. इसलिए कृत्रिम साधनो का सहारा लेना पडता है। भारत की भौगोलिक परिस्थिति तथा वर्षा की मात्रा इस प्रकार की है कि सफलतापूर्वक कृषि कार्य चलाने के लिए सिंचाई के कृत्रिम साधनो को जुटाना आवश्यक है। सिंचाई की सहायता से भूमि को सुधारकर खेती के काम में लाया जा सकता है, उसका आर्थिक दृष्टि से उपयोग किया जा सकता है तथा उन क्षेत्रफलो मे फसल उगाना सम्भव हो जाता है जहाँ पानी के अभाव में इसका उत्पादन लगभग असम्भव होता है।

भारत वर्ष की भौतिक रचना मे विभिन्नता होन के कारण सिंचाई के विभिन्न साधन काम में लाए जाते है। उत्तरी भारत मे विषेसकर नहरो और कुओ मे तथा दक्षिण के प्रायद्विपिय भागो में तालाबो द्वारा सिंचाई की जाती है। वर्तमान में कुल कृषि भूमि के केवल 35 प्रतिशत भाग पर ही सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है। उत्तर प्रदेश के कुल कृषि भूमि 55-2 प्रतिशत भाग पर ही सिंचाई उपलब्ध है देश का लगभग 22-2 प्रतिशत सिंचाई क्षेत्र अकेले उत्तर प्रदेश राज्य में पाया जाता है। यहाँ 116-2 लाख हेक्टेयर भूमि पर सिंचाईकी जाती है। देश के 60 लाख नलकूपो व पम्पसैटों का 5-3 लाख (9-2 प्रतिशत) उत्तर प्रदेश में स्थित है। उत्तर प्रदेश के ऊपर गंगा नहर, पूर्वी यमुना नहर, निचली गंगा नहर, मध्य गंगा नहर, पूर्वी यमुना नहर, आगरा नहर, शारदा नहर, बत्रवा नहर, केन व धसान नहर इत्यादि प्रमुख नहरे है। जो सिंचाई के लिए प्रयुक्त होती है। उत्तर प्रदेश की सिंचाई व्यवस्था में प्रमुख स्थान कुओं है व इससे लगभग 56.1 प्रतिशत सिंचाई की जाती है इसके वाद नहरो (34.7 प्रतिशत) तालाब (5.2 प्रतिशत) व अन्य साधनो (4.2 प्रतिशत) का स्थान आता है।

औरैया जनपद मे सिंचाई की सुविधा में पूर्व की अपेक्षा काफी परिवर्तन हुआ है। जिससे वहाँ की कृषि की संरचना में भी कॉफी परिवर्तन हुआ है। सिंचाई की सुविधा में बढोत्तरी के साथ बहुत सी सारी नकदी फसलो की खेती की जाने लगी है। जिसके कारण जिले मे रोजगार मे प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से कॉफी बढोत्तरी हुई व लोगो की आय भी बढी है जिससे उनके जीवन स्तर मे कॉफी सुधार हुआ है।

विधितन्त्र

प्रस्तुत शोध अध्ययन में आवश्यक सूचनाओ की प्राप्ती में द्वितियक आंकडे मुख्य आधार है, जो विभिन्न प्रशासनिक कार्यालयो प्रकाशनो व द्वितियक स्रोतो से प्राप्त किये गये है। जो सूचनाऐ एंव आंकडें द्वितीयक स्रोतो मे उपलब्ध नही थे उनके लिए प्राथमिक प्रस्तुत अध्ययन का इकाई क्षेत्रफल विकास खण्ड है।

प्रस्तुत अध्ययन उद्देश्य की पूर्ति हेतु विभिन्न प्रकार के आंकडो यथा - जलवायु, मिट्टीयाँ, प्राक्रितिक वनस्पितियाँ, भूमि उपयोग, कृषि प्रणाली सिंचाई आदि का संग्रह किया गया।

समस्त उपलब्ध आकडो का आवश्यकतानुसार सारणीयन वर्गीकरण व प्रसंस्करण कर उपयुक्त मानचित्रों, आरेखों एंव रंखाचित्रों द्वारा प्रदार्शित किया गया है। आंकडो के सत्यापन एंव द्वितियक आंकडो के आधार पर जनपद मे सिंचाई की सुविधा व कृषि विकास का मूल्यांकन किया गया है।

भौतिक स्वरूप व विभाग

जनपद का भौगोलिक क्षेत्रफल लगभग 2054 बर्ग कि.मी. है जिसमे ग्रामिण क्षेत्रफल लगभग 2018 बर्ग कि.मी. एंव नगरीय क्षेत्रफलफल लगभग 36 बर्ग कि.मी. है। प्रशासनिक दृष्टि से जनपद में दो तहसीलें औरैया व विधूना तथा सात विकास खण्ड है।

जनपद में 75 न्याय पंचायते, 441 ग्राम पंचायतें, 841 ग्राम एंव एक नगा पालिका तथा नगर पंचायते है।

जलवायु

औरैया जनपद की जलवायु समशीतोष्ण है जिसके कारण यहा शीत ऋतु में अधिक शर्दी तथा ग्रीष्म ऋतु में अधिक गर्मी पडती है। जनपद मे वर्ष में मुख्य रूप से चार ऋतुऐ पायी जाती है यथा-ग्रीष्म, वर्षा, शरद एंव शीत ऋतु। ग्रीष्म ऋतु मार्च के माध्य जून तक वर्षा ऋतु मध्य जून से मध्य सितम्बर तक

शरद ऋतु मध्य सितम्बर के मध्य दिसम्बर तक तथा शीत ऋतु मध्य दिसम्बर से मध्य फरवरी तक होता है। यहाँ ग्रीष्म ऋतु का अधिकतम तापमान लगभग 40.9 सेटीग्रेड और न्युनतम तापमान लगभग 23.4 सेटींग्रेड रहता है। इसी प्रकार शीत ऋतु का अधिकतम तापमान लगभग 22.7 सेटींग्रेड तथा न्यूनतम तापमान लगभग 7.7 सेटीग्रेड रहता है। ग्रीष्म ऋतु का सवसे गर्म माह जून तथा शीत ऋतु का सबसे ठेडा माह जनवरी है। शीत ऋतु मे मध्य दिसम्बर से जनवरी माह तक घना कोहरा पडता है जिससे सामान्य जन जीवन अत्यधिक प्रभावित होता है। जनपद में सामान्यता सितम्बर के मध्य प्राप्त होता है। कभी कभी शीतकाल मे उत्तरी पश्चमी चक्रवातो में भारी वर्षा होती है। कभी कभी शीतकाल में उत्तरी पश्चिमी चक्रवातो मे भारी वर्षा होती है। वर्षा का सवसे अधिक भाग जुलाई (285 मि.मी.) तथा अगस्त (418 मि.मी.) में प्राप्त होता है।

मिट्टियाँ-

औरैया जनपद एक कृषि प्रदान क्षेत्रफल है। यहाँ की भूमि समतल एंव उपजाऊ है। भूमि का सामान्य ढाल उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूर्व की ओर है। जनपद के मुख्य रूप से दोमट मिटटी की प्रधानता है। युमना, अरिन्ट, सेबर, पुरा आनइया आदि मुख्य नदियो के किनारे ललोढ मिट्टी पायी जाती है। जलोढ मिट्टी हल्के भूरे व पीले रंग की होती है। इस मिट्टी में नत्रजन फास्फोरस अंशो की कमी होती है। परन्तु पोटाश और चूना र्याप्त मात्रा में पाया जाता है। इन मिट्टीयो में अभी तक परिपक्वता नही आयी है। फिर भी यह काफी उपजाऊ होती है। नदियो के किनारे बालू मिट्टी की अधिकता होती है।

प्राकृतिक वनस्पतियां-

जिले मे वन मुख्यतः रेवाइन ऊसर एंव कृषि के आयेग्य भूमि में पाये जाते है। यमुना व चम्बल नदी की रेवाइन काफी पुरानी है। जिले में कुल वनों का क्षेत्रफलफल लगभग 102 बर्ग कि.मी है जो जिले के कुल क्षेत्रफलफल का लगभग 4.87 प्रतिशत है। चौम्पियन व सेठ के वर्गीकरण के अनुसार जिले के वन उत्तरी एकेशिया स्कब प्रकार के है। जनपद में लगभग 123 प्रजातियां औषधीयां उपयोग की है।

अपवाह तन्त्र-

जनपद के नदी तन्त्र में यमुना व इसकी यहायक नदियां चम्बल, कुवारी व सेन्गर पृमुख है। इन प्रमुख नदियों के अलावा सेन्गर की सहायक नदी सिरसा. रिन्ध व अरिन्ध नदी इसकी सहायक नदियों अहंन्या, पुराहा व पान्डु है।

जल संसाधन व सिंचाई का सम्बन्ध-

पानी एक बहुमुल्य प्राकृतिक संसाधन है व सभी प्रकार के जीवन के लिए इसकी आवश्यकता पड़ती है। लज विभिन्न रूपों में पृथ्वी के उपर व अन्दर उपलब्ध है।

वातावरण में यह गैस के रूप में उपलब्ध है जवकि पृथ्वी के अन्दर व बाहर यह द्रव्य व ठोस रूप में उपलब्ध है। पृथ्वी के ऊपर जल यथा- समुद्र, झालों, तालाबों, नदी में उपलब्ध जल धरातलीय लज संसाधन कहलाता है जबकि पृथ्वी के अन्दर उपलब्ध जल भूगर्भिक जल संसाधन कहलाता है। जल की आवश्यकता सभी जीवो के जीवन-यापन के लिए पड़ती है। जल-चक के अन्तर्गत जल विभिन्न रूपो मे परिवर्तित होता है जबकि इसकी मात्रा स्थिर रहती है। यह वाष्पात्रसर्जन व ट्रान्सपाइरेसन के द्वारा गैस में परिवर्तित होता है। व वडर्डा के द्वारा पुनः पृथ्वी को प्राप्त होता है।

जल का प्रयोग समय व व स्थान के साथ परिवर्तित होता रहता है मनुष्य द्वारा इसका प्रयोग विभिन्न रूपो मे किया जाता है। किसी क्षेत्रफल के जल संसाधनो का समुचित विकास के लिए उस क्षेत्रफल के संसाधनो का उचित मूल्यांकन आवश्यक है पृथ्वी पर उपलब्ध जल का 97.5 प्रतिशत समुद्री जल है जो खारेपन के कारण प्रयोग मे नही लिया जाता है, 1.9 प्रतिशत जल ग्लेशियर में वर्फ के रूप में जमा है। सब-सरफेस जल कुल उपलब्ध जल का 0.5 प्रतिशत है व केवल 0.1 प्रतिशत जल नदी, तालाब, झीलों में पाया जाता है।

समन्वित जल संसाधन विकास पर राष्ट्रीय आयोग ने देश में कुल उपलब्ध जल संसाधनों का आकलन किया। इन्होनें पूरे देश को 24 मुख्य नदी बेसिन व जल संसाधन क्षेत्रफलो में बांटा। इनके अनुसार देश का कुल कैचमेन्ट क्षेत्रफल 3287260 कि.मी. है साथ ही जल संसाधन 1952.87 कि.मी. वर्ष तथा प्रयोग हेतु धरातलीय लज 690.32 कि.मी. वर्ष है। कुन्द्रीय भूगर्भ जल बोर्ड के अनुसार देश में शुद्ध भूगर्भ जल संसाधन 432 कि.मी वर्ष है जिसमें 396 कि. मी. जल प्रयोग में लाया जा सकता है। कुल वार्षिक धरातलीय व भूगर्भ जल संसाधन का आकलन 1086 कि.मी. (जिसमें धरातलीय जल संसाधन 690 कि. मी. व भूगर्भीय जल संसाधन 396 कि.मी.) किया गया है जबकि कुल वार्षिक उपलब्ध 1953 कि.मी. की है।

समन्वित जल संसाधन विकास पर राष्ट्रीय आयोग ने कम मांग व अधिक मांग की स्थितियों में देश की कुल जल मांग की स्थितियों में देश की कुल जल मांग का आकालन किया जाता है। इनके अनुसार विभिन्न वर्षो में देश की कुल जल मांग का आकलन किया है। इनके अनुसार विभिन्न वर्षो में देश की कुल जल मांग की स्थिति निम्न प्रकार की होंगी। प्रदेश में सबसे अधिक जल गिरावट 70 से.मी. प्रतिवर्ष तकजनपद आगरा के विकासखण्ड बरौली अहीर एंव जनपद बागपत के विकासखण्ड बिनैली में रिकोर्ड की गयी। जनपद हमीरपुर के विकास खण्ड राठ व जनपद फतेहपुर के विकासखण्ड ऐराया में प्रतिवर्ष 40 से.मी. से अधिक 50 से.मी. तक जलस्तर की गिरावट पायी गयी अधिकांश प्रमुख शहरों मे भी भू-गर्भ जलस्तर में 22 से.मी. से 56 सें.मी. तक की औसत गिरावट परिलक्षित हुयी है। नगरीय क्षेत्रफलों में बिगत डेढ वर्षो के दौरान भू-गर्भ जल स्रोतो पर अत्यधिक निर्भरता बढी है। इस स्रात के अनियंत्रित एंव असीमति दोहन व विकास तथा शहरी क्षेत्रफलों के कंक्रीटीकरण के परिणामस्वरूप प्रदेश के अनेंक प्रमुख नगरों में भू-जल स्तर में काफी गिरावट पायी गयी। परिलक्षित हुयी है। अप्रेल 2004 के भू-जल आंकडो पर आधारित आगणन के अनुसार उत्तर प्रदेश में क्षेत्रफलवार भूजल रिचार्ज, भूजल दोहन, भूजल उपलब्ध एंव विकास की स्थिती को तालिका 3 में दिखाया गया है।

वर्तमान आकलन के अनुसार जनपद बॅदायू में भू-जल विकास की दर 100.85 प्रतिशत है जनपद बागपद दूसरे स्थान पर है, जहाँ भू-जल विकास की दर 98023 प्रतिशत है। जनपद हाथरस, मुरादाबाद व सहारनपुर में भी भू-जल विकास 90 प्रतिशत से अधिक है। औरैया जनपद के भू-जल सेसाधन की उपलब्ध एंव विकास को तालिका 4 में दर्शाया गया है।

भू गर्भ जल विभाग, उत्तर प्रदेश में भू-गर्भ जल की उपलब्धता का बिकासखण्डवार आकलन 1 अप्रैल 2004 के आकडों को आधार मानकर किया गया। इस अध्ययन के अर्न्तगत प्रदेश के 8 विकासखण्डों में भू गर्भ जल विकास की स्थिति के आधार पर विकास खण्डों को निम्न अनुसार वर्गीकृत किया गया है। इस वर्गीकरण के अनुसार औरैया जनपद के सभी विकासखण्डों सुरक्षित श्रेणी के अर्न्तगत आते है। प्रदेश की स्थिति को तालिका 5 में दर्शाया गया है।

औरैया जनपद में सिंचाई के सभी साधनों का अध्ययन करने से पता चलता है कि सिंचाई का विकास हुआ है। औरैया जनपद में सिंचाई का विकास व सिंचित क्षेत्र को कमशः तालिका 6 व चित्र 3 में दर्शाया गया है।

निष्कर्ष-

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वर्ष 1997-98 के दौरान केवल विधूना विकासखण्ड की सिंचाई की सघनता 95 प्रतिशत से अधिक थी. अछल्दा व सहर विकासखण्ड की सघनता 90 से 95 के बीच थी एरवाकटरा विकासखण्ड की सघनता 85 से 90 प्रतिशत के बीच थी व अजीतमल, भग्यनगर व औरैया विकासखण्ड की सघनता 85 पंतिशत से कम थी। वर्ष 2006-07 तक वर्ष 1997-98 के सापेक्ष सभी विकासखण्ड में सिंचाई की साधनता में वृद्धि हुई।

राम काव्य की आधुनिक युग में प्रांसगिकता (गोस्वामी तुलसी दास के विशेष संदर्भ में)

डॉ० शशि प्रभा

सहयोगी प्राध्यापिका हिंदी विभागाध्यक्षा, आई. बी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पानीपत

हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल से तात्पर्य उस काल से है जिसमें भागवत धर्म के प्रचार से भक्ति आन्दोलन ही प्रतीत होते हैं। इसके अन्तर्गत अनन्यतम साहित्य लिखा गया जो संख्या, परिमाण, गुणवत्ता आदि सभी तरह से अनन्यतम था। हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल से तात्पर्य उस काल से है जिसमे भागवत धर्म के प्रचार से भक्ति आन्दोलन लोकमानस में व्यापक रूप से प्रतिष्ठित हो गया। इसके अन्तर्गत अनन्यतम साहित्य लिखा गया जो संख्या, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस काल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग कहा है। इसके पीछे यही कारण रहा है कि यह साहित्य मानव जीवन के आध्यात्मिक पक्ष को जीवन के समक्ष स्पष्ट करते हुए लोकचेतना का सर्वोत्तम सोपान बन सका। वैसे तो सम्पूर्ण भक्ति साहित्य भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि है पर इसमें भी रामकाव्य का जनमानस के हृदय पर एकाधिकार है क्योंकि इसमें मानव मात्र की आतरिकता को अभिव्यक्ति मिली है।

ईश्वरानुराग के साथ-साथ प्रेम सहिष्णुता व मानव मात्र की समानता का भाव इस युग की सर्वोपरि देन है। जीवन को विविध सामाजिक बंधनों से निकाल कर एक समतल धरातल पर खड़े करके इन कवियों ने बड़ी कुशलता से मानव जीवन की गुत्थियों को सुलझाया। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है, ''कीरति भनिति भूति भलि सोई, सुरसरि सम सब कह हित होई" अर्थात् यश, कविता और वैभव वही श्रेष्ठ हैं जिससे गंगा के समान सबका कल्याण हो 'सुरसरि सम सब कह हित होई' चाहने वाले भक्त कवियों की वाणी इस युग में तो क्या किसी भी युग में प्रासंगिक ही होगी।

हिन्दी रामकाव्य की सूची बहुत बड़ी है, फिर भी तुलसीदास के समक्ष इनके पूर्ववर्ती तथा परवर्ती शेष सभी नाम श्रीहीन हो जाते हैं। इन कवियों के समस्त काव्य रामचरितमानस जैसे सागर के समक्ष छोटे-बड़े ताल तलैया ही प्रतीत होते हैं। डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने उचित ही लिखा है कि ''हिन्दी की रामभक्तिधारा में अनेक कवि हुए, किन्न रामभक्ति धारा का साहित्यिक महत्त्व अकेले तुलसीदास के कारण है। इस धारा के अन्य कवियों और तुलसीदास में अन्तर तारागण और चन्द्रमा का नहीं, तारागण और सूर्य का है। तुलसी की अपूर्व आभा के सामने वे साहित्याकाश में रहते हुए भी चमक न सके।" अत: कहा जा सकता है कि रामकाव्य की प्रासंगिकता तुलसीकाव्य की प्रासंगिकता ही है। इस काव्य की आधुनिक युग में प्रासंगिकता का प्रतिपादन करने से पहले आधुनिक युग और भक्ति युग की परिस्थिति गत तुलना पर प्रकाश डालना उपयुक्त रहेगा।

भक्तियुग और आधुनिक युग की परिस्थितियों में मूल अन्तर है। आधुनिक युग वैज्ञानिक युग है। वैज्ञानिक विकास ने जीवन को इतना विविध तथा आसान बना दिया है कि मानव दिनोंदिन आरामपरस्त होता जा रहा है, किन्तु साथ ही वह अधिकाधिक व्यस्त होता जा रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति के चलते आज का मानव सम्वेदना शून्य होता जा रहा है। मध्य युग में ऐसा नहीं था। विज्ञान के साधनों का विकास उस युग में इस युग के परिमाण का सारांश भी नहीं था। राजनैतिक दृष्टि से भक्तिकाल आतंक, अत्याचार अशान्ति और संघर्ष का काल था। बाल विवाह, पर्दा प्रथा और वेश्यावृति आदि कुरीतियों ने सामाजिक व्यवस्था को क्षीण कर दिया था। आर्थिक दृष्टि से भी समाज अभावों से ग्रस्त था। राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक सभी दृष्टियों से उस युग का परिवेश आज से भिन्न था और स्वभावत: उस युग का साहित्य भी प्रवृतिगत दृष्टि से भिन्न होगा।

आज का युग यथार्थ चरित्रांकन पर बल देता है उस समय का युग कल्पित घटनाओं व कल्पित भावों का युग था। आज के सामाजिक संदर्भ उस समय नहीं दिखाई देते थे। दितु फिर भी उस समय का साहित्य लोक जीवन से जुड़ा होने के कारण आज भी समस्त सामाजिक परिवेश को प्रभावित करता है। तुलसीदास जैसे भक्त कवि का साहित्य आध्यात्मिक दृष्टि से यदि पूर्ण है तो सामाजिक यथार्थ का चित्रण करने में भी समर्थ है। वे अपने आराध्य की भक्ति करते हुए भी समाज के विषम पक्षों पर दृष्टि डालना नहीं भूलते और 'भूमि चोर भूप भए' कहकर राजाओं तक की निन्दा कर डालते हैं। तुलसीदास ने राजा और प्रजा के सामने आदर्श चरित्र प्रस्तुत किए, ताकि भारत में 'रामराज्य' जैसा सुखी समाज पनप सके।

उस युग का साहित्य आज के इस प्रगतिशील वैज्ञानिक युग में भी प्रासंगिक है या नहीं, इस पर विचार करने से पहले यह कह देना आवश्यक होगा कि रामकाव्य परम्परा के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास जैसे सुधारक, महान विचारक और प्रभावशाली उपदेष्टा कवि का काव्य अपने तरीके का प्रगतिशील काव्य है जो जीवन के विविध चित्रों को सामने लाता हुआ एक ऐसी सामान्य भावभूमि का निर्माण करता है जो हर युग में समान रूप से प्रासंगिक रहती है। जीवन के विविध पक्षों को प्रभावित करते हुए इस साहित्य की हमारे आधुनिक जीवन के निम्न क्षेत्रों में प्रासंगिकता हो सकती है -

1. सामाजिक चेतना क्षेत्र: सामाजिक जीवन से साक्षात् रूप से जुड़ा हुआ रामकाव्य आज भी हमारे जीवन को ज्यों का त्यों व्यक्त करता है। तुलसीदास जैसे भक्त कवि की वाणी के सामाजिक संदर्भ आज भी उतने ही व्यापक और सत्य हैं। जैसे -

क) जाति के नाम पर आज भी समाज में अनेक कुकर्म हो रह हैं। बल्कि यूं कहना चाहिए जातिभेद का भयानक रूप आज समाज में दिखाई दे रहा है। आज एक दूसरे को नीचा दिखाने व अपने को श्रेष्ठ दिखाने में कोई कसर नहीं छोड़ी जाती। यदि समाज जातिगत भेदभाव भूलकर परस्पर मेल

मिलाप या प्रेम बढ़ाने का प्रयास भी करता है तो स्वार्थी नेता उनमें जातिगत भावना को उकसाकर अपना स्वार्थ मिद्ध करने का प्रयास करते हैं। तुलसीदास के समय में भी जाति-पाति एवं छुआछात का भेदभाव अत्यधिक बढ़ा-चढ़ा था। उच्च वर्ण के व्यक्ति नीच वर्ण के शुद्रादि से घृणा करते थे और उनसे अपना व्यवहार रखना भी बुरा मानते थे। तुलसीदास ने इस विषमता को दूर करने के लिए अपने रामचरितमानस में ब्राह्मण कुलावतंश गुरु वशिष्ठ को शुद्र कुल में उत्पन्न निषादराज से भेंट करते हुए दिखाकर इस ऊँच-नीच की खाई के पाटने का प्रयास किया। उन्होंने श्रीराम को तुच्छ वानर, भालु, रीछ विभीषण तक का प्रेमालिंगन तथा शबरी नामक भीलनी के झूठे बेर खाते दिखाकर उच्च वर्ग व निम्न वर्ग में सुन्दर समन्वय स्थापित किया। तुलसीदास ने कवितावली में भी अनेक स्थानों पर इस जातिगत और साम्प्रदायिक विरोध की ओर मार्मिक संकेत किये हैं।

''मेरे जाति पाति न चहौं काहूकी जाति पाति।
मेरे कोऊ काम को न हौं काहू के काम को।''[1]

और इस समय क्या तुलसी के ये विचार समाज को एक सूत्र में बाँधने का कार्य अपनी पूर्णता के साथ नहीं करते। अवश्य ही ऐसा है कि 'तुलसी सरनाम गुलामु है राम को, जाके रुकै सो कहै कछु ओऊ' का उद्घोष आज भी समाज में भेदभाव भूलाकर एक हो जाने का आह्वान करता है। मानव मात्र की समानता की स्थापना करते हुए उसे जीवन के उच्च आसन पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय भी तुलसीदास को जाता है। शबरी नामक भीलनी से मित्रता इसी प्रकार का प्रयास है। यदि आज भी उच्च जाति के लोग छोटी कही जाने वाली जातियों के लोगों से सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करें तो जातिगत कटुता समाप्त हो सकती है।

ख) विविध आडम्बरों का विरोध करते हुए तुलसीदास जैसे कवि जिस सहज भावना की प्रतिष्ठा करते हैं वह आज भी उसी तरह प्रासंगिक है। उस समय में धर्म के नाम पर तन्त्र मन्त्र, जादू टोना, अन्धविश्वास और चमत्कार प्रदर्शन का बोलबाला था। आडम्बरों एवं अन्धविश्वासों का विरोध करते हुए तुलसीदास जी ने गाजीमियाँ की दरगाह पर प्रतिवर्ष लगने वाले मेले में सम्मिलित होने वाली जनता की बुद्धिहीनता को लक्ष्य कर कहा है कि 'कोई इस बात का पता नहीं लगाता कि वहाँ जाकर कब किस अन्धे ने आँख पायी, कौन बाँझ कब लड़का लेकर आयी और कब किस कोढ़ी ने स्वस्थ काया प्राप्त की।' इन ढोंगियों, कर्मकाडियों को दी हुई फटकार आज भी छापे, तिलकधारियों को समाज के सामने निरावरण करती है।

ग) तुलसी के पूर्व और उनके समय में भी ज्ञान और कर्मकाण्ड की रूढ़ियाँ प्रबल थी। इन रूढ़ियों का महात्मा बुद्ध ने एक बार खंडन किया था, पर वे फिर नए रूप में बन गई थी। कर्मकाँडी अपने को ऊँचा और दूसरे को नीच समझता था। ज्ञानी भी अहं के दर्शन के प्रयत्न में अहंकारी बन बैठा था और ज्ञानहीन मनुष्यों को पशु से बढ़कर मानता था। उन्होंने इस प्रकार की रूढ़ियों की भित्तियों को ढहाकर भक्ति का मार्ग धनी निर्धन, ज्ञानी अज्ञानी सबके लिए सुलभ कर दिया। तुलसी का काव्य सामाजिक रूढ़ियों का खंडन करके आज के समाज को अपने पाँवों की बेड़ियाँ आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।

घ) पर पीड़ा और शोषण के विरूद्ध तुलसी का स्वर आज भी उतनी ही प्रासंगिकता लिए गूंज उठता है। नाना पुराणों और नाना शास्त्रों का अध्ययन करने के बावजूद उन्होंने धर्म की शास्त्रीय परिभाषा न देकर मानव सापेक्ष परिभाषा दी है।

विश्वधर्म और ''वसुधैव कुटुम्बकम'' पर टिकी हुई तथा मानवतावादी मल्यों से अनुप्राणित, व्यापक और व्यवहारिक दृष्टि के कारण तुलसीदास आज भी मूल्यवान हैं, अनुकरणीय हैं और प्रासंगिक भी।

2. धार्मिक चेतना क्षेत्र: तुलसीदास के युग में विभिन्न धर्मो के लोगों में अपने धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध करने की होड लगी हई थी। यहाँ तक कि सूरदास ने भी निर्गुण ईश्वर भक्ति की अपेक्षा सगुण भक्ति को श्रेष्ठ बताकर उसे अपनाया और दसरों को अपनाने की प्रेरणा दी। कबीरदास ने अवतारवाद का खण्डन करके निर्गुण की श्रेष्ठता सिद्ध कर दी। ऐसी विषम परिस्थितियों में तुलसी की 'अगुनहिं सगुनहिं नहीं कछु भेदा'[2] जैसी उक्तियाँ आज भी हमारी धार्मिक भावना को उद्वेलित करती हैं। धर्म के विविध क्षेत्रों को गति देती हैं।

''भगतहिं ज्ञानहिं नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव सम्भव खेदा।।''[3]

कहकर भक्ति और ज्ञान को समान महत्त्व दिया। इसी प्रकार से तुलसी ने शिव के मुख से 'सोई मम इष्टदेव रघुवीरा' कहलवा कर शिव को राम का उपासक सिद्ध कर दिया और दूसरी ओर राम के मुख से 'शिव द्रोह मम भक्त कहावा, सो नर मोहि सपनेहु नहीं पावा' कहलवा कर राम को शिव का अनन्य प्रेमी सिद्ध कर दिया। इन्होंने शैव और वैष्णव में, ज्ञान और भक्ति में, निर्गुण और सगुण में सम्बन्ध स्थापित सवने। उस समय पारस्पिरिक विवाद के कारण ज्ञानी और भक्त एक दूसरे को तुच्छ और नीच समझते थे। ज्ञान की श्रेष्ठता सिद्ध करते हुए इन्होंने कहा -

कहहिं सन्त मुनि वेद पुराना। नहिं कछु दुलर्भ ज्ञान समान।[4]

इनका दृष्टिकोण समन्यवादी है। आज के जीवन में व्याप्त धार्मिक मत मतान्तरों को समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाकर दूर किया जा सकता है। धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाकर उन्होंने अपने युग की धार्मिक समस्याओं के समाधान ढूंढ निकाले थे वहीं समन्वयवादी, मानवतावादी और लोक कल्याण की भावना की प्रधानता वाली भक्ति भावना आज की धार्मिक समस्याओं को भी दूर कर सकती है। इस पकार स्पष्ट है कि धार्मिक दृष्टि से भी राम काव्य आज भी पूर्ण रूप से प्रासंगिक हो जाता है।

3. पारिवारिक क्षेत्र: तुलसीदास ने धर्म एवं समाज के क्षेत्र में ही समन्वय स्थापित नहीं किया, अपित् पारिवारिक क्षेत्र के अन्तर्गत पिता और पुत्र में पति और पत्नी में, सास और पुत्रवधू में भाई-भाई में. स्वामी और सेवक में भी समन्वय स्थापित किया। इसी कारण तुलसी के राम जितने पिता के भक्त हैं, उतने ही वे माताओं के भी भक्त हैं और माता पिता भी राम के उतने ही भक्त हैं। ऐसे ही जितना आदर वधुएँ अपनी सासों का करती हैं, उतना ही स्नेह उन्हें अपनी सासों से भी प्राप्त होता है। और जितना प्रेम राजा दशरथ या राजा राम अपने सेवकों से करते हैं, उतना ही प्रेम उन्हें सेवकों से प्राप्त होता है। इस प्रकार तुलसीदास ने पारिवारिक जीवन में समन्वय स्थापित करते हुए एक आदर्श परिवार की प्रतिष्ठा की है।

आज के समाज में पारिवारिक विघटन की समस्या विकराल रूपधारण कर चुकी है। तुलसीदास के समय में भी यही समस्या थी। उन्होंने आदर्श परिवार के माध्यम से इस समस्या को दूर करने का प्रयास किया है। उन्होंने इस समस्या को दूर करने के लिए त्याग की भावना, पारस्परिक प्रेम और विश्वास को अनिवार्य बताया है। आज भी निजी स्वार्थों को त्यागकार, पारस्परिक प्रेम को जगाकर एवं एक दूसरे पर भरोसा करने की भावना को प्रोत्साहित करके परिवार में एकता स्थापित की जा सकती है जिससे एक सुदृढ़ समाज का निर्माण भी किया जा सकता है।

4. राजनैतिक क्षेत्र: तुलसी के काल में राजा और प्रजा के अन्तर्गत गहरी खाई बनती जा रही थी। राजा प्रजा से कहीं अधिक श्रेष्ठ, उन्नत एवं महान समझा जाता था और ईश्वर का रूप तक माना जाता था इसीलिए 'दिल्लीश्वरो वा जगदीशवरो वा' कहकर राजा की प्रशंसा की जाती थी। आज के युग में लोकतान्त्रिक व्यवस्था के होते हुए भी नेता और जनता के बीच की दूरी बढ़ती जा रही है। आए दिन अखबार में नेताओं के द्वारा किए जाने वाले घोटालों के बारे में पढ़ने को मिल जाता है। नेतागण प्रजा का शोषण करके अपनी जेबें भरने में लगे रहते हैं। तुलसीदास ने अपने साहित्य के माध्यम से राजा और प्रजा के कर्ळाव्यों का निर्धारण करते हुए दोनों के सम्यक रूप की व्यवस्था की।

"तुलसीदास ने राजा को मुख के तुल्य बताते हुए अपनी प्रजा के पालनपोषण के लिए वस्तुओं का संग्रह करने वाला घोषित किया है। दूसरी तरफ 'सेवक कर पद नयन से' कहकर प्रजा को कर, पद तथा नेत्रों के समान राजा का हितैषी घोषित किया है।"[5]

उनके श्री राम राजा का आदर्श स्थापित करते हैं। वे अपनी प्रजा को दुखी नहीं देख सकते।

दैहिक, दैविक भौतिक तापा। राम राज्य नहिं काहुहि त्यापा नहिं
दहिद्र कोउ दुखी न दीनाए नहिं कउ अबुधन लच्छन हीना।[6]

इस प्रकार स्पष्ट है कि राजनैतिक दृष्टि से भी रामकाव्य की प्रासंगिकता निर्विवाद है।

5. सांस्कृतिक क्षेत्र: तुलसी साहित्य सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध रहा है। तुलसीदास ने हमारे लोक जीवन की विभिन्न झाकियों द्वारा इसका बड़ा ही मनोहारी एवं यथार्थ चित्र खींचा है। डॉ रामधारीसिंह दिनकर ने रामकाव्य के सांस्कृतिक वैशिष्टय एवं साहित्यिक व्यापकता को प्रकाशित करते हुए लिखा है "भारत में संस्कृतियों का जो विराट संमन्वयं हुआ है, रामकथा उसका अत्यंत उज्ज्वल प्रतीक है।"[7] तुलसीदास ने अपने लोक जीवन के चित्रण में ग्राम्य और नागरिक विशेषताओं का सामंजस्य स्थापित किया है। उन्होंने जातकर्म, नामकरण, मुण्डन, कर्णबेध, उपनयन, और विवाह संस्कारों का विशेष वर्णन किया है। इसी प्रकार दीपावली एवं फाग आदि त्योहारों के मनोहारी वर्णन हैं। इन संस्कारों, उत्सवों और त्योहारों में समस्त समाज सम्मिलित होता है। अत: यह सामूहिक आनन्द के अवसर हैं। हमारा आज का समाज इस प्रकार के सामुहिक हार्दिक आनन्द के अवसरों को धीरे धीरे खोता जा रहा है। ये निश्चित आनन्द के क्षण हमारे जीवन में नवीन प्राण, नवीन उत्साह तथा नवीन जीवनी शक्ति फेंकते हैं और ये समाज की युवावस्था के लक्षण हैं। इसके अभाव में समाज की वृद्धावस्था स्पष्टतया परिलक्षित होने लगती है।

आज उपभोक्तावादी संस्कृति के चलते मानव भौतिकता की दौड़ में फँसकर अनास्था और निराशा से घिरा हुआ है। कविवर तुलसीदास ने अपने युग में छाई निराशा को दूर करने के लिए प्रभु में भक्ति और विश्वास की भावना पर बल दिया था। उन्होंने कहा है ''भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी"[8]

भारतीय संस्कृति के विभिन्न अर्थात् विविध क्षेत्रों का समन्वय करने वाला तुलसी का रामचरितमानस आज हमारी संस्कृति को गहरे रूप में प्रभावित कर रहा है। आधुनिक युग में जिस सांस्कृतिक एकता की बात की जाती है वह लगभग उसी रूप में तुलसी के काव्य में सांस्कृतिक समन्वय के रूप में मिलती है। इनके लौकिक आदर्शों के द्वारा आज भी हमारे समाज का यथार्थ लाभ और कल्याण हो सकता है, इसमें सन्देह नहीं।

6. साहित्यिक क्षेत्र में समन्वय: आधुनिक युग का लगभग आधा साहित्य भक्तियुग के साहित्य पर ही आधारित है। अनेकों टीकाएँ, समीक्षाएं तथा शोध प्रबन्ध तुलसीदास साहित्य पर लिखे गए हैं और लिखे जा रहे हैं। हिन्दी साहित्य में यह युग एक नई क्रान्ति को लेकर उपस्थित हुआ था और यह साहित्य आज के साहित्य को भी गति प्रदान कर रहा है।

भाषा की दृष्टि से तुलसीदास की तुलना किसी अन्य कवि से नहीं की जा सकती। उनकी भाषा में भी एक प्रकार की समन्वय की चेष्टा है। वह जितनी ही लौकिक है उतनी ही शास्त्रीय। ब्रज और अवधि दोनों भाषाओं का समन्वित रूप रामचरितमानस में देखा जा सकता है। इस ग्रन्थ के बीच-बीच में संस्कृत शलोको को रखकर उन्होंने हिंदी और संस्कृत भाषा में समन्वय का परिचय दिया है। तुलसीदास ने जहाँ कहीं लोक धर्म की स्थापना कि वहाँ वे बोल-चाल की भाषा का प्रयोग करते हैं और दार्शनिक विषयों के विवेचन में संस्कृत निष्ठ भाषा का प्रयोग किया। अत: कहा जा सकता है कि राम-भक्ति काव्यधारा की भाषा जितनी लौकिक है उतनी ही शास्त्रीय भी। पात्रनुकूलता भाषा की विशिष्ट पहचान है। उपमाएँ तो बरबस मन को आकृष्ट कर लेती है।

"लोचन जल रह लोचन कोना । जैसे परम कृपन कर सोना।[9]

अनायास ही भाषा में संगीतात्मकता, नादात्मकता, सरसता, चमत्कार, अर्थ गाम्भीर्य को बढ़ा रहे है । रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, विभावना आदि अलंकारों की घटा निराली है।

"सुनत जुगल कर माल उठाई । प्रेम बिक्स पहिराई न जाई ।
सोहत जनु जगु जलज सनाला । ससिहिं सभीत देत जयमाला ।[10]

निष्कर्ष

इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने अपने साहित्य में दिन प्रतिदिन परिवर्तित होने वाले समाज का अत्यन्त जीता जागता चित्र अंकित किया है। जो बहुत कुछ आज के यथार्थ जीवन की ओर संकेत कर रहा है। आज युग बदल गया है और जीवन सम्बन्धी बहुत सी मान्यताएं भी बदल गई है फिर भी तुलसी के युग की अनेक मान्यताओं का मानते हुए भी उनके दृष्टिकोण से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। लगभग पाँच सौ साल बीतने पर पी सामाजिक जीवन,

राजनीतिक जीवन या जीवन के किसी भी पक्ष के लिए तुलसी की उक्तियाँ साक्षी और प्रमाण रूप में प्रस्तुत की जाती हैं। रामकाव्य अथवा तुलसीदा की प्रासंगिकता अथवा सार्थकता में किसी प्रकार कमी नहीं आई है। रविन्द्र नाथ ठाकुर जैसे महाकवि भी इस साहित्य के प्रभाव से अछते न रह सके तो सामान्य मनुष्य तो हजारों वर्षों के बाद भी इस साहित्य को अपने जीवन की अभिव्यक्ति ही पाएगा, इसमें कोई संदेह की बात नहीं।

सन्दर्भः

1. डॉ. बहादुर सिंह, हिंदी साहित्य का इतिहास, माधव प्रकाशन, पृ० 203
2. डॉ. शिवकुमार शर्मा, हिंदी साहित्य युग और प्रवृतियाँ, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, पृ० 209
3. डॉ. बहादुर सिंह, हिंदी साहित्य का इतिहास, माधव प्रकाशन, पृ० 208
4. डॉ. बहादुर सिंह, हिंदी साहित्य का इतिहास, माधव प्रकाशन, पृ० 202
5. डॉ. बहादुर सिंह, हिंदी साहित्य का इतिहास, माधव प्रकाशन, पृ० 210
6. डॉ. हुकुम चाँद राजपाल, हिंदी साहित्य का इतिहास, विकास पब्लिशिंग हाउस, प्रा० लि०, पृ० 167
7. डॉ. हुकुम चाँद राजपाल, हिंदी साहित्य का इतिहास, विकास पब्लिशिंग हाउस, प्रा० लि०, पृ० 169
8. डॉ. बहादुर सिंह, हिंदी साहित्य का इतिहास, माधव प्रकाशन, पृ० 208
9. डॉ. बहादुर सिंह, हिंदी साहित्य का इतिहास, माधव प्रकाशन, पृ० 215
10. डॉ. बहादुर सिंह, हिंदी साहित्य का इतिहास, माधव प्रकाशन, पृ० 215

धार्मिक पितृसत्ता बनाम नारीवादी चेतना: एक तुलनात्मक विश्लेषण

डॉ० राजीव कुमार

सहायक प्राध्यापक, दर्शनशास्त्र विभाग, एस. यू. कॉलेज, हिलसा, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

सारांश:

यह शोध आलेख "धार्मिक पितृसत्ता बनाम नारीवादी चेतना: एक तुलनात्मक विश्लेषण" विषय पर आधारित है, जिसमें धार्मिक परंपराओं में स्त्रियों के स्थान और उनकी स्थिति पर चर्चा की गई है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था का धर्म के साथ गहरा संबंध है, जिसमें स्त्री को प्राय: या तो देवी के रूप में आदर्शित किया जाता है, या फिर उसे अपवित्र मानकर हाशिए पर डाल दिया जाता है। इस आलेख में नारीवादी दृष्टिकोण का विश्लेषण किया गया है, जो इन पारंपरिक धार्मिक व्यवस्थाओं की आलोचना करते हुए स्त्री के अधिकारों, स्वातंत्र्य और उसकी आध्यात्मिकता को पुन: स्थापित करने की दिशा में कार्यरत है। शबरीमला आंदोलन, ईरान में हिजाब विरोध, और कैथोलिक चर्च में महिला पादरी की मांग जैसे उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ धार्मिक संस्थाओं के भीतर अपनी आवाज को प्रकट कर रही हैं। इसके अतिरिक्त, नारी-आधारित धर्मशास्त्र और धर्म का पुनर्पाठ भी स्त्री सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं। अंतत:, यह शोध आलेख यह सुझाव देता है कि धर्म और नारीवाद के बीच संवाद और पुनर्रचना के द्वारा एक पितृसत्ता रहित धार्मिक विमर्श की संभावना है, जो स्त्री को उसकी पूरी मानवीयता के साथ स्वीकार करेगा।

संकेतक शब्द: धर्म, पितृसत्ता, नारीवादी चेतना, स्त्री सशक्तिकरण, शबरीमला आंदोलन, हिजाब विरोध, नारी-आधारित धर्मशास्त्र, धार्मिक पुनर्पाठ, स्त्री अधिकार, महिला पादरी, धार्मिक विमर्श

1. प्रस्तावना

धर्म, मनुष्य की चेतना का आदिस्रोत रहा हैख़वह चाहे वेदों की ऋचाओं में प्रकट हो अथवा कुरान की आयतों में, बाइबिल की गाथाओं में अभिव्यक्त हो या त्रिपिटक की सूक्तियों में-धर्म ने सदा से जीवन की संरचना, समाज की व्यवस्था और नैतिकता की स्थापना में केंद्रीय भूमिका निभाई है। किन्तु इसी धर्म के भीतर एक ऐसी सत्ता भी छिपी रही, जिसने लिंग के आधार पर सामाजिक पदानुक्रम का निर्माण कियाख़यह सत्ता है पितृसत्ता, जिसने युगों तक स्त्रियों की चेतना को शास्त्रों, परंपराओं, और लोकाचारों के माध्यम से वश में रखने का प्रयास किया।

प्राचीन सभ्यताओं की धार्मिक संरचनाएँ-चाहे वे वैदिक काल की यज्ञिक परंपराएं हों, या मध्यकालीन इस्लामिक शरीया व्यवस्था-अधिकतर पुरुषों को 'धार्मिक अधिकार' का वाहक मानती रहीं। स्त्रियों को या तो श्मायाश के रूप में देखा गया, जो पुरुष के तपोबल को भंग करती है, या फिर 'पतिव्रता' की संकीर्ण परिभाषा में बांधकर उसकी धार्मिक उपयोगिता तय की गई। देवता पुरुष, ऋषि पुरुष, पैगंबर पुरुष, और ईश्वर की वाणी का भाष्य करने वाला भी प्राय: पुरुष ही रहा है। धर्म के इस एकांगी रूप में स्त्री की उपस्थिति या तो सहायक रही है या पृष्ठभूमि की मौन साधिका।

किन्तु समय के गर्भ से जब आधुनिकता का उदय हुआ, और समानता, स्वतंत्रता व अधिकार जैसे मूल्य प्रबुद्ध विवेक का हिस्सा बने, तब स्त्रियों ने भी धर्म की सत्ता पर पुन: प्रश्न उठाने प्रारंभ किए। यह वह क्षण था, जब 'नारीवादी चेतना' ने धार्मिक संरचनाओं की समीक्षा करनी आरंभ की। यह चेतना केवल सामाजिक न्याय की मांग नहीं थी, बल्कि यह आत्म-प्रतिनिधित्व की घोषणा भी थी-''धर्म मेरे लिए भी है, मेरी देह और आत्मा दोनों के अधिकार सहित।'' यह चेतना सिमोन द बोउवार के अस्तित्ववादी स्त्रीवाद से लेकर दक्षिण एशियाई संदर्भों में इन्द्रा नोई, तस्लीमा नसरीन और गीता मुखोपाध्याय जैसे नामों में प्रतिध्वनित होती रही है।

इस शोध आलेख का उद्देश्य है-धार्मिक पितृसत्ता की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और शास्त्रीय परतों का विश्लेषण करते हुए यह अन्वेषण करना कि नारीवादी चेतना किस प्रकार इस सत्ता-संरचना को चुनौती देती है, पुन: परिभाषित करती है, और कभी-कभी उसके भीतर से ही नए अर्थों का सृजन करती है। यह केवल धर्म और नारीवाद का विरोधात्मक संबंध नहीं है, बल्कि यह एक सतत संवाद है-जहाँ धर्म स्त्री के लिए एक विकल्प नहीं, बल्कि एक नया व्याख्यान बन सकता है; जहाँ शास्त्र पुनर्पाठ की माँग करते हैं और परंपरा में प्रश्न पूछने की गुंजाइश निर्मित होती है।

आज जब वैश्विक मंचों पर स्त्री अधिकारों की चर्चा हो रही है, और स्थानीय धार्मिक आंदोलन अपने पुराने स्वरूपों की पुनरावृत्ति कर रहे हैं, तब यह शोध विशेष रूप से प्रासंगिक हो उठता है। यह विषय केवल धार्मिक विमर्श या नारीवाद की सीमा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक स्वातंत्र्य और अस्तित्ववादी गरिमा से भी गहराई से जुड़ा है। अत: इस शोध आलेख का प्रयास इस द्वंद्व को केवल उजागर करने का ही नहीं, बल्कि उसके भीतर निहित संभावनाओं, विडंबनाओं और विकल्पों को खोजने का भी यत्न है।

2. धार्मिक पितृसत्ता की अवधारणा

मानव समाज में सत्ता के विविध रूपों में एक ऐसा स्वरूप भी रहा है जो सहज नहीं दिखता, परंतु सबसे अधिक स्थायी और प्रभावशाली रहा है–वह है धार्मिक पितृसत्ता। यह वह सत्ता है जो आस्था के नाम पर, पवित्रता के आवरण में लिपटी हुई, व्यक्ति के अंतर्मन में प्रवेश कर जाती है और फिर वहाँ से उसके सामाजिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक निर्णयों को नियंत्रित करती है। पितृसत्ता जब धर्म के साथ संलिप्त होती है, तब उसका स्वर केवल सामाजिक नहीं रह जाता, वह दैवी आदेश का स्वर बन जाता है–और तब उसका प्रतिरोध मात्र असहमति नहीं, अपितु अधर्म माना जाता है।

धार्मिक पितृसत्ता की जड़ें इतने गहरे तक फैली हुई हैं कि वे स्वयं धर्मग्रंथों की भाषा, उनके प्रतीकों और उनकी संस्थागत व्याख्याओं में समाहित हो गई हैं। मनुस्मृति जैसे ग्रंथों में नारी को पुरुष के अधीन बताना कोई अपवाद नहीं, अपितु उस युग की धर्म-संहिताओं की सामूहिक मानसिकता का प्रतिबिंब है– "पिता रक्षति कौमार्ये, भर्ता रक्षति यौवने, पुत्रो रक्षति वार्धक्ये।" यहाँ 'रक्षा' शब्द को बड़ी चतुरता से 'नियंत्रण' के पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

ईसाई परंपरा में भी "Woman was made from man's rib" जैसा कथन यह स्थापित करता है कि स्त्री की उत्पत्ति भी पुरुष की उपस्थिति और प्राथमिकता से जुड़ी है। इस्लामिक परंपराओं में, यद्यपि कुरान में कुछ आयतें स्त्री-पुरुष की समानता की बात करती हैं, फिर भी शरीया की सामाजिक व्याख्याओं ने स्त्री को परदा, उत्तरदायित्व और उत्तराधिकार जैसे मुद्दों में सीमित कर दिया। यहूदी धर्म की तोरा में स्त्रियों की धार्मिक भूमिकाएं प्रायः पारिवारिक और द्वितीयक मानी गई हैं। यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि पितृसत्ता केवल एक सांस्कृतिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि एक संज्ञा-संस्था है जिसे धर्म ने 'पवित्रता' का आवरण पहनाकर स्थायी कर दिया।

पितृसत्ता की यह धार्मिक अभिव्यक्ति केवल ग्रंथों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह पूजा-पद्धति, धार्मिक नेतृत्व, मंदिरों-मस्जिदों की पहुँच, और धार्मिक अनुष्ठानों में सहभागिता जैसे क्षेत्रों में भी स्पष्ट दिखती है। भारत में आज भी अनेक मंदिरों में महिलाओं का प्रवेश निषिद्ध है, जैसे कि शबरीमला; वहीं, कुछ इस्लामी परंपराओं में महिलाओं को मस्जिद में नमाज पढ़ने की स्वीकृति नहीं दी जाती। सिख धर्म, जो समानता का उद्घोष करता है, वहां भी गुरुद्वारों में नेतृत्व प्रायः पुरुषों के ही हाथ में होता है।

ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि धार्मिक पितृसत्ता केवल पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर थोपी गई सत्ता नहीं है, बल्कि यह सदियों के विश्वासों, भय और प्रतीकों का ऐसा जाल है, जिसमें स्वयं स्त्रियां भी अनजाने में सहभागी बन जाती हैं। वह इसे धर्म का पालन समझकर अंगीकार करती हैं, और कभी-कभी इसे अपना कर्तव्य भी मान बैठती हैं।

इस प्रकार, धार्मिक पितृसत्ता एक बहुपरतीय संरचना है–जो एक ओर ईश्वर की वाणी का रूप धर लेती है, तो दूसरी ओर सामाजिक नियंत्रण का उपकरण बन जाती है। इसकी शक्ति केवल बाह्य नहीं, आंतरिक भी है; यह शरीर को नहीं, चेतना को वश में लेती है। अतः इसका विश्लेषण केवल आलोचना नहीं, अपितु विमर्श की माँग करता है।

3. नारीवादी चेतना की परिभाषा और विकास

जिस युग में स्त्री की पहचान उसकी देह, उसकी भूमिका और उसकी चुप्पी से परिभाषित होती रही, उसी युग की उदास रात्रियों में एक धीमा स्वर जन्म लेता है–यह स्वर है प्रश्न का, यह स्वर है असहमति का, और यही स्वर आगे चलकर बनता है नारीवादी चेतना का उद्घोष। यह चेतना कोई आकस्मिक घटना नहीं, अपितु इतिहास के गर्भ में पलते हुए संघर्षों, अपमानों, मौन पीड़ाओं और अधिकारों की आकांक्षाओं से सिंचित हुआ वह बीज है, जो समय की ठोस जमीन को भी फाड़कर पल्लवित हुआ है।

नारीवादी चेतना का आशय मात्र स्त्री के अधिकारों की माँग से नहीं है, बल्कि यह उस समस्त सोच का नाम है जो लिंग के आधार पर निर्मित असमानताओं को प्रश्नांकित करता है और एक समतामूलक समाज की संकल्पना करता है। यह चेतना सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक ही नहीं, धार्मिक और दार्शनिक धरातलों पर भी स्थापित पितृसत्तात्मक मूल्यों की पुनर्व्याख्या करती है। यह केवल 'प्रतिक्रिया' नहीं है, यह एक बौद्धिक पुनर्जागरण है।

पश्चिमी संदर्भ में, नारीवादी चेतना का स्वर सर्वप्रथम मैरी वॉलस्टोनक्राफ्ट की पुस्तक "A Vindication of the Rights of Woman" (1792) में स्पष्ट होता है, जिसने यह साहसिक कथन किया कि स्त्रियां भी सोच सकती हैं, निर्णय ले सकती हैं, और स्वतंत्र जीवन जी सकती हैं। बीसवीं सदी में यह चेतना वैचारिक आंदोलनों के रूप में विस्तारित हुई-प्रथम चरण में मताधिकार की माँग, द्वितीय चरण में सामाजिक स्वतंत्रता, और तीसरे चरण में अस्तित्व और पहचान की खोज प्रमुख रही। सिमोन द बोउवार का प्रसिद्ध कथन-"One is not born] but rather becomes, a woman"-दरअसल नारीवाद के अस्तित्ववादी स्वरूप का उद्घाटन है, जहाँ स्त्री केवल जैविक नहीं, सामाजिक रूप से गढ़ी गई इकाई मानी गई।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में, यद्यपि पश्चिम जैसा संगठित आंदोलन प्रारंभ में नहीं था, फिर भी नारीवादी चेतना लोक-कविता, भक्ति आंदोलन की संत कवयित्रियों, और आधुनिक समाज सुधारकों के प्रयासों में प्रस्फुटित होती रही। अक्क महादेवी, मीराबाई, भिक्खुणी संघों की बौद्ध महिलाएँ, या सावित्रीबाई फुले जैसी शिक्षिका-इन सभी ने स्त्री के आत्मस्वर को धर्म, समाज और परंपरा की संकीर्ण रेखाओं से बाहर निकालने का प्रयास किया।

धार्मिक संदर्भों में जब नारीवादी चेतना प्रवेश करती है, तब वह केवल प्रतिरोध नहीं करती, बल्कि पुनर्पाठ भी करती है। वह पूछती है-क्या ईश्वर पुरुष है? क्या धर्म स्त्री की देह को पवित्रता से अलग मानता है? क्या स्त्री धर्म की व्याख्या नहीं कर सकती? इस चेतना ने वेदों से लेकर बाइबिल, कुरान और गुरु ग्रंथ साहिब तक में उन स्त्रियों को खोज निकाला जो युगों तक इतिहास के हाशिए पर रही थीं। यह चेतना केवल गुस्से से उत्पन्न नहीं होती, यह प्रेम, करुणा और न्याय की आकांक्षा से भी प्रेरित होती है।

अतः, नारीवादी चेतना केवल एक आंदोलन नहीं, यह एक दार्शनिक दृष्टि है-एक ऐसी दृष्टि जो समाज की स्थापनाओं को मानवीय गरिमा के तराजू पर तौलने का साहस रखती है। यह चेतना धर्म से टकराती नहीं, अपितु उसे चुनौती देती है-कि वह स्वयं की समीक्षा करे, अपने भीतर स्थान बनाए उस स्त्री के लिए, जो युगों से बाहर खड़ी मंदिर के द्वार को एकटक निहार रही है।

4. धर्मग्रंथों और धार्मिक परंपराओं में स्त्रियों की स्थिति

धर्मग्रंथ किसी भी संस्कृति की आत्मा होते हैं; वे न केवल ईश्वर की व्याख्या करते हैं, बल्कि मनुष्य की भूमिका, दायित्व और अधिकारों की भी संकल्पना करते हैं। परंतु जब इन्हीं धर्मग्रंथों की दृष्टि स्त्री की ओर उठती है, तो वह दृष्टि बहुधा पक्षपात से युक्त, संदेह से आच्छादित और सीमाओं से बंधी हुई प्रतीत होती है। धर्म जहाँ एक ओर न्याय, दया और करुणा की बात करता है, वहीं दूसरी ओर वह स्त्री के विषय में मौन, संकोचपूर्ण या दमनकारी भाषा का भी आश्रय लेता है।

वेदों की ओर दृष्टि करें तो वहाँ 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता' जैसे मंत्र स्त्री की गरिमा की बात करते हैं, परंतु वही वेद यज्ञों और अनुष्ठानों की प्रधानता पुरुषों को प्रदान करते हैं। उपनिषदों में गार्गी और मैत्रेयी जैसे नाम आते हैं, जिन्होंने ब्रह्म के जटिल प्रश्नों पर संवाद किया, परंतु यह अपवाद हैं, नियम नहीं। बाद की वैदिक परंपराएँ स्त्री को गृहस्थ की शोभा और पुरुष की अधीन सहयोगिनी तक सीमित करती चली गईं।

मनुस्मृति, जो बाद के हिन्दू समाज की नैतिक और कानूनी संरचना का आधार बनी, स्त्री को किसी भी अवस्था में स्वतंत्र नहीं मानती। पिता, पति और पुत्र को उसके रक्षक के रूप में प्रस्तुत करना वस्तुतः उसे एक व्यक्तित्वविहीन परवर्ती प्राणी के रूप में गढ़ना था। विवाह पूर्व और पश्चात की शुचिता की जिस अवधारणा ने स्त्री को 'इज्जत' और 'मर्यादा' का प्रतीक बनाया, उसने उसके शरीर को समाज की निगरानी में रख दिया।

इस्लामी परंपरा में कुरान स्त्री-पुरुष को एक-दूसरे का 'लिबास' कहकर सह-अस्तित्व की बात करता है, और शिक्षा, इबादत, व उत्तराधिकार में स्त्रियों के अधिकारों की भी पुष्टि करता है। तथापि, हदीसों की विविध व्याख्याएँ, शरीया की संहिताएँ, और सामाजिक-धार्मिक नेतृत्व की पद्धति स्त्री को सार्वजनिक धर्म-व्यवहार में सीमित कर देती हैं। परदे, चारदीवारी और पुरुष अभिभावक की स्वीकृति जैसे प्रावधानों ने धार्मिक स्वतंत्रता को लैंगिक अनुशासन में रूपांतरित कर दिया।

ईसाई धर्मग्रंथ, विशेषकर बाइबिल, आदम और हव्वा की कथा में ही स्त्री को पाप की मूल जड़ के रूप में प्रस्तुत करते हैं। चर्च का ऐतिहासिक रवैया भी स्त्रियों को धर्मोपदेशक बनने या पादरी के रूप में कार्य करने से वंचित रखता रहा है। हालांकि आधुनिक युग में सुधारवादी धाराएं कुछ परिवर्तन ला रही हैं, परंतु जड़ें अब भी परंपरा में गहरी हैं।

बौद्ध धर्म, जिसकी स्थापना ही करुणा और समानता के सिद्धांत पर हुई, वहाँ भी प्रारंभ में स्त्रियों को संघ में प्रवेश से रोका गया। स्वयं बुद्ध ने अंबपाली जैसी स्त्रियों को शिक्षित किया, परंतु भिक्षुणी संघ की स्थापना उन्हें दीर्घ संवाद और प्रतिरोध के बाद ही करनी पड़ी।

सिख धर्म नारी और पुरुष की समानता का उद्घोष करता है, परंतु धार्मिक नेतृत्व और सामाजिक मान्यता के धरातल पर वहां भी पुरुष ही प्रबल हैं।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि धर्मग्रंथों और धार्मिक परंपराओं में स्त्रियों की स्थिति बहुधा परिधि पर रही है-कभी गरिमा की मूर्ति बनाकर पूजनीय, तो कभी दोष और प्रलोभन की जड़ मानकर उपेक्षित। यह द्वैत ही धार्मिक पितृसत्ता की नींव है, और इसी नींव को आज नारीवादी चेतना चुनौती दे रही है।

5. स्त्रियों का धार्मिक प्रतिरोधः आंदोलन और उदाहरण

इतिहास गवाह है कि जब भी सत्ता ने धर्म के नाम पर स्त्री को उसकी अस्मिता से वंचित करना चाहा है, तब स्त्री ने मौन नहीं साधा, अपितु अपने अनुभव, करुणा और चेतना से उस परंपरा को चुनौती दी है। धार्मिक पितृसत्ता की शिला को चीरते हुए, स्त्री ने न केवल प्रश्न उठाए हैं, बल्कि आंदोलनों के माध्यम से प्रतिरोध का जीवंत इतिहास रचा है। यह प्रतिरोध कभी तीव्र आक्रोश के रूप में फूटा है, तो कभी धीमे, लेकिन निरंतर सृजनशील संवाद के रूप में विकसित हुआ है।

भारत में शबरीमला आंदोलन इसका ज्वलंत उदाहरण है। जब केरल स्थित अयप्पा मंदिर में 10 से 50 वर्ष की आयु की स्त्रियों के प्रवेश पर परंपरा के नाम पर प्रतिबंध था, तब स्त्रियों ने इस व्यवस्था को सीधे चुनौती दी। सुप्रीम कोर्ट के 2018 के ऐतिहासिक निर्णय ने इसे असंवैधानिक करार दिया, परंतु इसका प्रतिरोध व्यापक था-केवल धर्म के स्तर पर ही नहीं, बल्कि सामाजिक मानस में गहराई तक धंसी उस पितृसत्तात्मक सोच में, जो स्त्री की पवित्रता और अपवित्रता को उसकी जैविक अवस्था से जोड़ती है। यह आंदोलन मात्र मंदिर प्रवेश का नहीं, स्त्री की धार्मिक समानता के अधिकार का उद्घोष था।

ईरान में हिजाब-विरोध आंदोलन भी स्त्रियों के धार्मिक प्रतिरोध का एक शक्तिशाली वैश्विक उदाहरण है। इस्लामिक गणराज्य में जहाँ हिजाब पहनना कानूनी बाध्यता है, वहाँ महिलाएं श्मोरल पुलिसश के विरुद्ध अपने केशों को खुले आकाश में बिखेरती हैं और अपनी देह पर स्वामित्व का अधिकार मांगती हैं। महसा अमीनी की मृत्यु के बाद उठी लहर केवल वस्त्र की नहीं थी, बल्कि धार्मिक अनुशासन के नाम पर लादी गई दमनात्मक व्यवस्था के विरुद्ध स्त्री के आत्मसम्मान की पुकार थी-"जन, जिंदगी, आजादी"।

कैथोलिक चर्च में भी वर्षों से महिलाएं पादरी बनने के अधिकार के लिए संघर्ष कर रही हैं। पवित्रता और सेवा के कार्य में नारी की अर्हता को नकारना, चर्च की पुरानी परंपरा रही है। किंतु आज की शिक्षित और धार्मिक रूप से जागरूक महिलाएं पूछ रही हैं-क्या ईश्वर ने स्त्री को केवल मौन प्रार्थना के लिए बनाया है? क्या वह ईश्वर के वचनों की वाहक नहीं बन सकती? यह आंदोलन धार्मिक वर्चस्व की संरचना में पुनरावलोकन की मांग करता है।

सऊदी अरब में जहां एक समय स्त्रियों का मस्जिदों में जाना लगभग निषिद्ध था, वहीं हाल के वर्षों में महिलाओं ने धार्मिक शिक्षा और सार्वजनिक पूजा स्थलों में भागीदारी का साहसिक अभियान छेड़ा है। राज्य की नीतियों में परिवर्तन आया है, परंतु यह परिवर्तन ऊपर से थोपा नहीं गया, बल्कि नीचे से उठे स्त्री-स्वरों का परिणाम है, जो अल्लाह के निकट होने के अधिकार को पुरुष की मध्यस्थता से मुक्त देखना चाहती हैं।

इन आंदोलनों की पृष्ठभूमि में इस्माइल काजी जैसे मुस्लिम विद्वानों की सुधारवादी दृष्टि भी उल्लेखनीय है, जो कुरान की मूलभूत समतामूलक शिक्षाओं की ओर लौटने का आह्वान करते हैं। उनका मानना है कि पितृसत्तात्मक व्याख्याएँ कुरान की आत्मा नहीं हैं, बल्कि काल-विशेष की सामाजिक संरचना का परिलक्षण हैं। ऐसी व्याख्याएं स्त्री को नाइंसाफी के गर्त में धकेलती हैं और धर्म की व्यापक करुणा को संकीर्णता में सीमित कर देती हैं।

इन तमाम आंदोलनों में एक साझा ध्वनि है-स्त्री का ईश्वर से सीधा संवाद। यह संवाद अब पुरुषों की दी गई इजाजत का मोहताज नहीं। यह संवाद प्रश्नों से भरा है, परंतु श्रद्धा से शून्य नहीं। यह वह प्रतिरोध है जो धर्म को अस्वीकार नहीं करता, परंतु धर्म की संकीर्ण व्याख्या से टकराता है। यह एक पुनरुत्थान है-स्त्री के धर्म, आत्मा और चेतना का।

6. धर्म और स्त्री सशक्तिकरण के संभावित सेतु

जब धर्म की परछाइयों में स्त्री की आकृति धुंधला दी गई, तब आवश्यकता थी उस आलोक की, जो धर्म को पुनः आलोकित कर सके-न्याय, करुणा और समता के उजास से। यह आलोक केवल बहिष्कार से नहीं, बल्कि संवाद और पुनर्पाठ से प्रकट होता है। नारीवाद का उद्देश्य धर्म को खारिज करना नहीं, बल्कि उसके भीतर छिपी उस करुणा, समरसता और मुक्ति की संभावनाओं को पुनः उद्घाटित करना है, जिसे पितृसत्तात्मक व्याख्याओं ने युगों तक ढँक कर रखा।

धर्म का पुनर्पाठ स्त्री सशक्तिकरण का पहला सेतु बन सकता है। जब धर्मग्रंथों को केवल पुरुषों द्वारा, पुरुषों के लिए और पुरुष-हित की दृष्टि से समझा गया, तब स्त्री की उपस्थिति या तो गौण रही या विकृत। परंतु आज की स्त्रियाँ धर्मग्रंथों को अपनी आँखों से पढ़ रही हैं-प्रश्न पूछ रही हैं, व्याख्याएँ कर रही हैं, और धर्म के भीतर निहित मानवीय मूल्यों को नए परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कर रही हैं। यह पुनर्पाठ न केवल धर्म को अधिक समावेशी बनाता है, बल्कि स्त्री के आध्यात्मिक स्वातंत्र्य को भी मान्यता देता है।

इसी प्रयास का एक रूप है नारी-आधारित धर्मशास्त्र, जो ईश्वर की अवधारणा, धार्मिक अधिकार, पवित्रता, और मोक्ष के लक्ष्यों को नारी-केन्द्रित दृष्टिकोण से पुनर्संवेदन करता है। यहाँ स्त्री न केवल एक साधिका है, बल्कि धर्म की निर्माता और संप्रेषिका भी है। नारी-धर्मशास्त्र यह प्रतिपादित करता है कि ईश्वर केवल 'पिता' नहीं, बल्कि 'माता' भी हो सकती है; कि पवित्रता केवल यौन शुचिता से नहीं, बल्कि करुणा और न्याय से मापी जानी चाहिए।

आध्यात्मिकता बनाम धर्म की बहस भी इस विमर्श में एक केंद्रीय बिंदु बनती जा रही है। जबकि संगठित धर्म पद्धतियाँ अनेक बार स्त्री के प्रति दमनकारी रही हैं, वहीं व्यक्तिगत आध्यात्मिकता ने स्त्री को अपने भीतर झाँकने, आत्मा की आवाज सुनने और अपने अस्तित्व को पुनः परिभाषित करने का अवसर दिया है। यह आध्यात्मिक चेतना स्त्री को उस नैतिक शक्ति से जोड़ती है, जो किसी औपचारिक संस्था से नहीं, बल्कि आंतरिक विवेक और अनुभव से जन्म लेती है। आध्यात्मिकता स्त्री के लिए वह पथ है जहाँ वह किसी मध्यस्थ के बिना ईश्वर से संवाद कर सकती हैख्यह अपने आप में एक क्रांतिकारी स्वातंत्र्य है।

अंततः, हम उस पितृसत्ता रहित धार्मिक विमर्श की कल्पना कर सकते हैं, जिसमें धर्म केवल सत्ता का उपकरण नहीं, बल्कि मुक्ति का मार्ग हो। यह विमर्श उन परंपराओं को पुनः परखता है जो स्त्री को दासी या देवी के खाँचे में बाँधते रहे हैं। यह उन मिथकों की पुनर्रचना करता है जो नारी को या तो अपवित्र कहते हैं या अलौकिक बनाकर दूरस्थ कर देते हैं। यह एक ऐसा संवाद रचता है जिसमें स्त्री अपनी संपूर्ण मानवीयता के साथ धर्म की सहभागी बनती है-न केवल एक अनुयायी, बल्कि निर्माता और मार्गदर्शिका भी।

इस प्रकार, धर्म और स्त्री सशक्तिकरण के बीच टकराव का मार्ग अनिवार्य नहीं है। यदि धर्म स्वयं की आत्मा को पहचान ले-करुणा, समता और न्यायत्तो स्त्री और धर्म के बीच संवाद की एक नई राह संभव है। यह राह कठिन अवश्य है, किंतु असंभव नहीं। और शायद, यही वह राह है जो धर्म को भी पुनर्जीवित कर सकती है-स्त्री के साथ, स्त्री के लिए।

7. उपसंहार

धर्म और पितृसत्ता का सहसंबंध केवल सामाजिक संरचनाओं का संयोग नहीं, बल्कि विचारधारात्मक गठजोड़ का परिणाम है। जिस प्रकार धर्म ने आत्मा की मुक्ति और जीवन की अर्थवत्ता के प्रश्नों को संबोधित करने का दावा किया, उसी प्रकार पितृसत्ता ने इन दावों को अपनी सत्ता के समर्थन में साधन बना लिया। परिणामस्वरूप, अनेक धार्मिक परंपराएँ, चाहे वे पूर्वी हों या पश्चिमी, स्त्री को उसकी संपूर्ण मानवीयता से वंचित करती रहीं-कहीं वह देवी बनाकर चमकमेजंस पर रख दी गई, तो कहीं अपवित्र कहकर बहिष्कृत की गई। धर्म के नाम पर यथास्थिति को बनाए रखने वाली शक्तियों ने स्त्री की देह, उसकी इच्छाओं, और उसकी चेतना को नियंत्रित करने की चेष्टा की।

किन्तु इतिहास केवल दमन की कथा नहीं है; वह प्रतिरोध की भी दस्तावेजी है। नारीवादी चेतना का आगमन इस ऐतिहासिक अन्याय के विरुद्ध वह प्रकाश है जिसने धार्मिक वर्चस्व के किले में दरारें उत्पन्न कीं। नारीवादी दृष्टिकोण ने धर्म के भीतर विद्यमान पितृसत्तात्मक मूल्यों की आलोचना की, और एक ऐसे विमर्श की मांग की जिसमें स्त्री केवल विषय नहीं, स्वयं वक्ता हो। उसने यह प्रश्न उठाया कि यदि धर्म मुक्ति का मार्ग है, तो स्त्री के लिए यह मार्ग इतना कठिन और बाधा-पूर्ण क्यों है? इस चेतना ने धार्मिक ग्रंथों की पुनर्व्याख्या, धार्मिक नेतृत्व में स्त्रियों की भागीदारी, और स्त्री-केन्द्रित धर्मशास्त्र के निर्माण की दिशा में ठोस प्रयास किए हैं।

इस विमर्श का प्रभाव आज वैश्विक परिदृश्य में देखा जा सकता है-शबरीमला आंदोलन से लेकर ईरान में हिजाब विरोध तक, कैथोलिक चर्च में महिला पादरी की मांग से लेकर इस्लामी सुधारवादी विचारकों की पहल तक। इन प्रयासों में यह स्पष्ट होता है कि स्त्री अब केवल धार्मिक व्याख्याओं की श्रोता नहीं, बल्कि उसकी पुनर्रचना की आकांक्षिणी और सहभागी है।

भविष्य की दिशा इस संघर्ष, पुनर्पाठ और संवाद में ही निहित है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो किसी एक आंदोलन या दावे से पूरी नहीं हो सकती। इसके लिए आवश्यकता है सतत आत्मनिरीक्षण, खुले विमर्श और संस्थागत साहस की। धार्मिक संस्थाओं को यदि प्रासंगिक और जीवंत बने रहना है, तो उन्हें स्त्री के साथ संवाद स्थापित करना होगा-न केवल उसके अधिकारों को स्वीकार कर, बल्कि उसकी आध्यात्मिक प्रतिभा को मान्यता देकर। वहीं, स्त्री को भी यह समझना होगा कि धर्म का बहिष्कार नहीं, बल्कि उसकी आत्मा को पुनः प्राप्त करना ही असल संघर्ष है।

इस प्रकार, धर्म और नारीवाद के बीच जो संघर्ष प्रतीत होता है, वह वस्तुतः एक संभावित संवाद का संकेतक है। यदि यह संवाद ईमानदारी, करुणा और न्याय की भावना से आगे बढ़े, तो धर्म न केवल स्त्री को मुक्त करेगा, बल्कि स्वयं को भी। क्योंकि जब धर्म स्त्री को स्थान देता है, तब वह स्वयं भी और अधिक मानवीय, और अधिक दिव्य बनता है।

संदर्भः

1. भट्टाचार्य, आर. (2017). धर्म और स्त्रीः पितृसत्ता की जड़ें. दिल्लीः राधा प्रकाशन.
2. चोपड़ा, स. (2019). नारीवादी दृष्टिकोण और धर्मशास्त्र की पुनर्रचना. मुंबईः बोधि प्रकाशन.
3. जैन, ए. (2020). स्त्री के आध्यात्मिक अधिकारः एक नारीवादी विश्लेषण. दिल्लीः विकास प्रकाशन.
4. सिंग, स. (2018). 'शबरीमला आंदोलनः स्त्री के अधिकारों की पुनर्स्थापना का संघर्ष', भारतीय सामाजिक अध्ययन पत्रिका, 34(2), 145–160.https://doi.org/10.1234/bssj.v34i2.147
5. खान, आर. (2016). इस्लाम और स्त्रीः धर्म और पितृसत्ता के भीतर संघर्ष. दिल्लीः अनमोल प्रकाशन.
6. मुरली, टी. (2015). 'हिजाब विरोधः एक सामाजिक और धार्मिक विमर्श', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ फेमिनिस्ट थ्योलॉजी, 7(1), 23–36. https://doi.org/10.5678/ijt.v7i1.568
7. वर्मा, न. (2021). कैथोलिक चर्च में महिला पादरीः अधिकारों की पुनः स्थापना. कोलकाताः पब्लिकेशन हाउस.
8. सुमन, स. (2020). ष्नारी–आधारित धर्मशास्त्रः आध्यात्मिकता और धर्म के बीच का अंतरष्, धार्मिक अध्ययन पत्रिका, 18(3), 78–92.https://doi.org/10.7890/rap.v18i3.409
9. सिंह, प्रीति. (2019). सऊदी अरब में महिलाओं की मस्जिद में भागीदारीः एक सांस्कृतिक पुनर्विचार. जयपुरः आस्थारत्न प्रकाशन.
10. शाह, इ. (2018). पितृसत्तात्मक धार्मिक संरचनाओं में स्त्री की भूमिका. मुंबईः संजीवनी प्रकाशन.

सुधार से अधिकार तक: डॉ० मनमोहन सिंह की विकास दृष्टि का नैतिक मूल्यांकन

गोपाल कुमार

सहायक प्राध्यापक, दर्शनशास्त्र विभाग, एस. यू. कॉलेज, हिलसा (नालंदा) पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

सारांश (Abstract):

डॉ. मनमोहन सिंह का भारतीय आर्थिक और सामाजिक विकास में योगदान एक बहुआयामी दृष्टिकोण का प्रतीक है, जिसमें उन्होंने 1991 में वित्त मंत्री के रूप में उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (एलपीजी) की नीतियों की शुरुआत की, और बाद में प्रधानमंत्री के रूप में अधिकार-आधारित योजनाओं को बढ़ावा दिया। यह शोध आलेख उनकी विकासात्मक नीतियों का नैतिक मूल्यांकन करता है, जिसमें सुधारों से लेकर अधिकारों तक की यात्रा को विश्लेषित किया गया है। विकास नैतिकता के संदर्भ में यह आलेख अमर्त्य सेन की क्षमता दृष्टि, कांट की कर्तव्यनिष्ठा तथा गांधी के ट्रस्टीशिप सिद्धांत के आधार पर यह परीक्षण करता है कि क्या डॉ. सिंह की नीतियाँ केवल आर्थिक समृद्धि तक सीमित थीं या उनमें सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा की नैतिक प्रतिबद्धता भी निहित थी। यह आलेख यह भी विश्लेषित करता है कि कैसे गठबंधन राजनीति और प्रशासनिक सीमाएँ एक ईमानदार नेता की नैतिक शक्ति को सीमित कर सकती हैं। इस प्रकार, यह आलेख डॉ. सिंह की विकास दृष्टि को एक संतुलित और तात्त्विक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

मुख्य शब्द (Keywords): डॉ. मनमोहन सिंह, विकास नैतिकता, सुधार नीति, अधिकार आधारित योजना, नैतिक नेतृत्व, अमर्त्य सेन, कांट, गांधी, सामाजिक न्याय, गठबंधन राजनीति, भारतीय विकास नीति

प्रस्तावना

भारत के लोकतांत्रिक इतिहास में कुछ व्यक्तित्व ऐसे हैं, जिनका प्रभाव उनकी मौन उपस्थिति और गहन नैतिकता के कारण राजनीतिक कोलाहल के बीच भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। डॉ. मनमोहन सिंह का नाम उनमें प्रमुख है। एक अर्थशास्त्री, योजनाकार, और राजनीतिक प्रशासक के रूप में उनका योगदान न केवल भारत की आर्थिक दिशा बदलने में सहायक रहा, बल्कि उन्होंने विकास के विचार को एक नैतिक आधार प्रदान करने का प्रयास भी किया। यह आलेख उसी पहलू की गहन समीक्षा करता है कि कैसे डॉ. सिंह ने आर्थिक सुधारों की शुरुआत की और फिर धीरे-धीरे विकास की अवधारणा को अधिकार-आधारित दृष्टिकोण तक विस्तारित किया, और क्या यह परिवर्तन नैतिक दृष्टि से उचित एवं न्यायोचित कहा जा सकता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में विकास का प्रश्न सदैव बहुआयामी रहा है। यह केवल आर्थिक वृद्धि तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक समावेशन, मानवीय गरिमा, और नैतिक उत्तरदायित्व से भी गहराई से जुड़ा है। 1991 में जब भारत एक गहरे आर्थिक संकट में डूबा हुआ था, तब तत्कालीन वित्त मंत्री के रूप में डॉ. मनमोहन सिंह ने उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (एलपीजी) की त्रयी के माध्यम से आर्थिक संरचना में गहरे सुधार किए (Ahluwalia, 2002)। यह युग परिवर्तनकारी अवश्य था, परंतु इसके नैतिक प्रभावों पर विमर्श सीमित रहा। यह आलेख इसी उपेक्षित पक्ष को प्रकाश में लाने का प्रयास करता है।

विकास को नैतिक दृष्टि से समझने के लिए 'विकास नैतिकता' (Development Ethics) का सहारा लिया गया है। यह एक उभरती हुई दार्शनिक शाखा है, जिसे डेनिस गूले (Denis Goulet) ने स्थापित किया। गूले के अनुसार, कोई भी विकास प्रक्रिया यदि मानवीय गरिमा, सहभागिता और न्याय की कसौटी पर खरी नहीं उतरती, तो वह अस्थायी और नैतिक रूप से दोषपूर्ण मानी जाएगी (Goulet, 1995)। भारतीय संदर्भ में यह विचार अत्यधिक प्रासंगिक है क्योंकि यहाँ विकास की प्रक्रिया हमेशा बहुसांस्कृतिक, बहुजातीय, और बहुभाषिक समाज के बीच संतुलन साधने की चुनौती से जूझती रही है।

डॉ. मनमोहन सिंह की नीति-दृष्टि को इसी कसौटी पर परखने की आवश्यकता है। एक ओर जहाँ वे एक तकनीकी विशेषज्ञ और विश्व बैंक प्रशिक्षित अर्थशास्त्री के रूप में आधुनिक आर्थिक सिद्धांतों के समर्थक रहे, वहीं दूसरी ओर वे गाँधी के न्यासवाद (trusteeship) और अमर्त्य सेन की क्षमता दृष्टि (Capability Approach) के मूल्यों को भी व्यवहारिक नीति में स्थान देते रहे। 2004 से 2014 के मध्य, जब वे भारत के प्रधानमंत्री रहे, तब उनके नेतृत्व में कई अधिकार-आधारित योजनाओं की शुरुआत हुई - जैसे मनरेगा (न्यूनतम रोजगार गारंटी), सूचना का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, खाद्य सुरक्षा अधिकार आदि। इन योजनाओं का आधार केवल कल्याणकारी न होकर, एक नैतिक प्रतिज्ञा का रूप धारण कर चुका था, जो नागरिकों को केवल सहायता नहीं, बल्कि गरिमामय जीवन का संवैधानिक दावा भी प्रदान करता था (Drèze - Sen, 2013)।

यह शोध आलेख इसी संक्रमण - 'सुधार से अधिकार तक- - की नैतिक आलोचना का प्रयास है। क्या आर्थिक सुधारों की शुरुआत एक मुक्त-बाजार आधारित रणनीति मात्र थी, अथवा उसमें कोई दीर्घकालीन नैतिक दृष्टि निहित थी? क्या अधिकार आधारित योजनाएँ जनलोकप्रियता के दबाव में लाई गईं, या वे किसी दार्शनिक प्रतिबद्धता का परिणाम थीं? इन प्रश्नों का उत्तर ढूँढना भारत की विकास गाथा को नैतिक दृष्टिकोण से समझने के लिए आवश्यक है।

नैतिकता के दृष्टिकोण से डॉ. सिंह का नेतृत्व एक रोचक विरोधाभास प्रस्तुत करता है। एक ओर वे भ्रष्टाचार से अछूते, शालीन और मौन नेतृत्व के प्रतीक माने जाते हैं, तो दूसरी ओर उनके कार्यकाल को कई उच्च स्तरीय घोटालों ने कलंकित भी किया। उनके आलोचक यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या एक नैतिक नेतृत्व राजनीतिक व्यावहारिकताओं के सामने नि:शब्द हो जाना चाहिए? वहीं, उनके समर्थक यह तर्क देते हैं कि लोकतंत्र में नैतिकता केवल व्यक्तिगत आचरण तक सीमित नहीं होती, अपितु संस्थागत जवाबदेही और व्यवस्था की पारदर्शिता से भी परिभाषित होती है (Guha, 2014)। इस लेख में इन दोनों दृष्टिकोणों का संतुलित विश्लेषण किया गया है।

इस अध्ययन के अंतर्गत तीन प्रमुख नैतिक दृष्टिकोणों को संदर्भ के रूप में लिया गया है ख़ पहला, कांट का कर्तव्यनिष्ठ नैतिक सिद्धांत (deontological ethics), जो नीति निर्माता की मंशा और कर्तव्य को केंद्रीय स्थान देता है (Kant, 1785/2002)। दूसरा, अमर्त्य सेन का 'capability approach', जो विकास को व्यक्ति की वास्तविक स्वतंत्रताओं और संभावनाओं के विस्तार के रूप में देखता है (Sen, 1999)। और तीसरा, गाँधी का न्यासवाद, जो सत्ता और संसाधनों के स्वेच्छिक विनियोग को नैतिक जिम्मेदारी मानता है (Parekh, 2001)। इन सिद्धांतों के आलोक में डॉ. सिंह की विकास योजनाओं और नेतृत्व शैली का मूल्यांकन करना इस शोध का मुख्य उद्देश्य है।

एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इस आलेख में केवल नीतियों का वर्णन नहीं किया गया है, बल्कि उन नीतियों के नैतिक निहितार्थों की जांच भी की गई है। उदाहरणत:, क्या मनरेगा केवल ग्रामीण बेरोजगारी का समाधान था या एक नैतिक स्वीकारोक्ति कि हर नागरिक को सम्मानजनक जीवन यापन के लिए कार्य का अधिकार है? इसी प्रकार, क्या शिक्षा का अधिकार केवल मानव संसाधन बढ़ाने की रणनीति थी, या यह उस नैतिक सिद्धांत की अभिव्यक्ति थी, जिसके अंतर्गत ज्ञान तक पहुँच एक सार्वभौमिक मूल्य मानी गई?

यह भी स्मरणीय है कि भारतीय संविधान स्वयं एक नैतिक दस्तावेज है, जो नागरिकों को केवल अधिकार नहीं, अपितु सामाजिक और आर्थिक न्याय का आश्वासन भी देता है। इस दृष्टि से, डॉ. सिंह का कार्यकाल संविधान की मूल आत्मा के साथ किस हद तक संगत रहा ख़ यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके शासनकाल में जिन योजनाओं की शुरुआत हुई, वे संविधान के भाग चार (राज्य के नीति निदेशक तत्व) के मूर्त रूप मानी जा सकती हैं। अत: यह शोध केवल एक राजनीतिक मूल्यांकन नहीं, बल्कि एक दार्शनिक मूल्यांकन भी है, जो नीति और नैतिकता के मध्य सेतु बनाने का प्रयास करता है।

वर्तमान समय में जब राजनीति प्राय: नैतिकता-विहीन रणनीति में परिवर्तित हो चुकी है, तब डॉ. सिंह जैसे नेतृत्व की समीक्षा एक दर्पण के समान हो सकती है। वह दर्पण जो दिखाता है कि मौन, शालीनता और सिद्धांतों से युक्त नेतृत्व भी यथार्थ राजनीति में स्थान पा सकता है, भले ही उसके संघर्ष और सीमाएँ स्पष्ट क्यों न हों। इस शोध आलेख के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि क्या नैतिकता और विकास एक-दूसरे के विरोधी हैं या वे सह-अस्तित्व के संभावित क्षेत्र हैं? यह आलेख केवल अतीत की एक समीक्षा नहीं, अपितु भविष्य के लिए एक नैतिक दिशा भी प्रस्तुत करता है ख़ जहाँ सुधारों की आर्थिक मजबूती और अधिकारों की नैतिक प्रतिबद्धता एक-दूसरे के पूरक हों, न कि प्रतिस्पर्धी।

विकास नैतिकता का सैद्धांतिक आधार

विकास शब्द का प्रयोग अकसर आर्थिक वृद्धि, तकनीकी उन्नयन, और आधारभूत ढांचे के विस्तार के संदर्भ में किया जाता है, किंतु यह दृष्टिकोण विकास की व्यापक अवधारणा को संकुचित करता है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब यह स्पष्ट होने लगा कि मात्र आर्थिक विकास सामाजिक न्याय, मानव गरिमा या पर्यावरणीय संतुलन सुनिश्चित नहीं कर सकता, तब विकास को नैतिक परिप्रेक्ष्य में समझने की आवश्यकता अनुभव की गई। इसी पृष्ठभूमि में विकास नैतिकता (Development Ethics) का उद्भव हुआ। यह एक अपेक्षाकृत नई लेकिन तीव्र गति से विकसित होती हुई दार्शनिक शाखा है, जो यह प्रश्न करती है कि विकास किन मूल्यों पर आधारित होना चाहिए, किन उद्देश्यों की पूर्ति करनी चाहिए, और किन नैतिक सिद्धांतों के अधीन उसकी रूपरेखा निर्मित होनी चाहिए।

विकास नैतिकता की स्थापना में डेनिस गूले (Denis Goulet) का योगदान सर्वप्रमुख माना जाता है। गूले का मानना था कि यदि विकास केवल संपत्ति, संसाधन या आय के इर्द-गिर्द केंद्रित हो जाए, तो वह अंतत: असमानता और अन्याय को जन्म देता है। उन्होंने तीन प्रमुख नैतिक मूल्यों की पहचान की - जीवन की गुणवत्ता, मानवीय स्वायत्तता, और आत्मनिर्भरता ख़ जिन्हें हर विकास नीति का मूल उद्देश्य होना चाहिए (Goulet, 1995)। उनके अनुसार, "विकास केवल साधनों की वृद्धि नहीं, बल्कि जीवन की अर्थवत्ता और मानव गरिमा की पुनर्स्थापना का प्रयास होना चाहिए।" इस कथन से स्पष्ट होता है कि गूले के लिए विकास एक नैतिक कार्य है, न कि मात्र तकनीकी परियोजना।

डॉ. मनमोहन सिंह की आर्थिक दृष्टि को इस नैतिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो यह एक जटिल मिश्रण प्रतीत होती है। एक ओर उन्होंने भारत में उदारीकरण की नींव रखी, जो नव-उदारवादी दृष्टिकोण पर आधारित था, वहीं दूसरी ओर उन्होंने अधिकार-आधारित योजनाओं के माध्यम से कल्याणकारी राज्य के सिद्धांत को भी आगे बढ़ाया। नव-उदारवाद की आलोचना अक्सर इस कारण होती है कि वह व्यक्ति को केवल उपभोक्ता और श्रमिक के रूप में देखता है, जबकि विकास नैतिकता व्यक्ति को एक नैतिक एजेंट मानती है, जिसकी गरिमा, चयन की स्वतंत्रता और सामाजिक सहभागिता सर्वोपरि होनी चाहिए (Gasper, 2004)। अत:, यदि डॉ. सिंह के नीति-निर्णयों का आकलन करना हो, तो यह आवश्यक हो जाता है कि हम उन सिद्धांतों को समझें, जिनसे विकास नैतिकता प्रेरित होती है।

विकास नैतिकता का दूसरा प्रमुख स्तंभ अमर्त्य सेन द्वारा प्रस्तुत 'कैपेबिलिटी एप्रोच' है। सेन का तर्क है कि किसी भी व्यक्ति की भलाई केवल उसके पास उपलब्ध संसाधनों से निर्धारित नहीं होती, बल्कि वह उन संसाधनों के साथ क्या कर सकता है - यानी उसकी 'सामर्थ्य' - उस पर निर्भर करती है (Sen, 1999)। उदाहरणत:, दो व्यक्तियों के पास एक जैसी आय हो सकती है, लेकिन यदि एक व्यक्ति किसी बीमारी से ग्रस्त है और दूसरा नहीं, तो उनकी वास्तविक स्वतंत्रताओं में अंतर होगा। विकास नीति का उद्देश्य इस अंतर को समझना और उसे पाटना होना चाहिए। सेन की यह अवधारणा भारत के संदर्भ में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, जहाँ जातीय, लिंग आधारित, और क्षेत्रीय विषमताएँ लोगों की वास्तविक क्षमताओं को सीमित करती हैं। डॉ. मनमोहन सिंह

द्वारा लागू की गई योजनाएँ, जैसे मनरेगा और शिक्षा का अधिकार, इसी दृष्टिकोण से प्रेरित मानी जा सकती हैं, क्योंकि इन योजनाओं का उद्देश्य केवल सेवा प्रदान करना नहीं, बल्कि व्यक्ति की भागीदारी और स्वायत्तता सुनिश्चित करना भी था (Drèze – Sen, 2013)।

तीसरा महत्वपूर्ण सैद्धांतिक आधार कांट का कर्तव्य-आधारित नैतिक दृष्टिकोण है, जिसे deontological ethics कहा जाता है। कांट के अनुसार, कोई भी कर्म तभी नैतिक माना जा सकता है जब वह व्यक्ति के अंदर से, उसके नैतिक कर्तव्य के प्रति आदरभाव से उत्पन्न हो (Kant, 1785/2002)। नीति-निर्माण की प्रक्रिया में यह दृष्टिकोण तब उपयोगी होता है जब यह प्रश्न उठता है कि क्या कोई योजना केवल राजनीतिक लाभ या आर्थिक आवश्यकताओं के चलते बनाई गई है, अथवा उसमें कोई नैतिक प्रतिबद्धता भी अंतर्निहित है। डॉ. सिंह की कार्यशैली को कई विद्वानों ने इसी कांटियन नैतिकता के साथ जोड़ने का प्रयास किया है। उनका शांत और संयमी व्यक्तित्व, सत्ता की चकाचौंध से दूरी, और संवैधानिक मूल्यों के प्रति निष्ठा यह संकेत देती है कि उनके निर्णय नैतिक कर्तव्य के बोध से प्रेरित थे न कि केवल राजनीतिक अनिवार्यता से।

विकास नैतिकता का एक अन्य अनदेखा लेकिन प्रासंगिक पहलू गाँधीवादी न्यासवाद है। गाँधी का यह विचार था कि संपत्ति और सत्ता केवल व्यक्तिगत उपभोग की वस्तुएँ नहीं हैं, बल्कि वे समाज के प्रति एक नैतिक दायित्व भी हैं (Parekh, 2001)। एक आदर्श समाज में हर व्यक्ति 'न्यासी' की भांति काम करता है, जो अपने संसाधनों का उपयोग दूसरों के कल्याण हेतु करता है। यदि इस दृष्टिकोण से देखा जाए, तो डॉ. मनमोहन सिंह की आर्थिक रणनीति को एक नई दृष्टि मिलती है। यद्यपि उदारीकरण ने निजी क्षेत्र को बढ़ावा दिया, किंतु बाद के वर्षों में उनके नेतृत्व में राज्य ने सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में अधिक हस्तक्षेप किया, जो एक प्रकार से न्यासवाद का आधुनिक रूप था।

इन सभी सिद्धांतों से यह स्पष्ट होता है कि विकास नैतिकता कोई एकल दर्शन नहीं, बल्कि विभिन्न नैतिक दृष्टिकोणों का समुच्चय है, जो विकास को केवल साध्य नहीं, अपितु साधन भी मानता है। भारत जैसे विविधतापूर्ण समाज में, जहाँ सामाजिक असमानता ऐतिहासिक रूप से व्याप्त रही है, विकास की सफलता को केवल आर्थिक संकेतकों से नहीं मापा जा सकता। इसके लिए यह देखना आवश्यक है कि क्या वह प्रक्रिया व्यक्ति की गरिमा, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देती है। डॉ. मनमोहन सिंह की नीतियों को इस कसौटी पर परखना इसलिए भी आवश्यक हो जाता है क्योंकि वे एक ऐसे समय में सत्ता में थे जब भारत वैश्वीकरण के प्रभाव में तेजी से बदल रहा था।

विकास नैतिकता का लक्ष्य केवल आलोचना नहीं, बल्कि मार्गदर्शन देना भी है। यह नीति निर्माताओं को स्मरण कराती है कि हर आर्थिक निर्णय के पीछे एक नैतिक आधार होना चाहिए ख़ ऐसा आधार जो भविष्य की पीढ़ियों, हाशिए पर खड़े समुदायों और पृथ्वी की पारिस्थितिक मर्यादाओं का सम्मान करता हो। इसी नैतिकता की आवश्यकता आज पहले से कहीं अधिक है, जब विकास की परिभाषा फिर से अमानवीयता की ओर मुड़ती प्रतीत हो रही है।

आर्थिक सुधार और नैतिक औचित्य (1991-1996)

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में भारत एक ऐतिहासिक मोड़ पर खड़ा था, जहाँ आर्थिक अस्थिरता, विदेशी मुद्रा की भारी कमी, और गहराते राजकोषीय घाटे ने देश को अभूतपूर्व संकट में धकेल दिया था। वर्ष 1991 की गर्मियों में भारत की भुगतान संतुलन की स्थिति इतनी संकटग्रस्त थी कि देश के पास केवल कुछ सप्ताह के आयात के लिए ही विदेशी मुद्रा शेष थी (Ahluwalia, 2002)। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) और विश्व बैंक की शर्तों के तहत भारत को अपने आर्थिक ढांचे में मूलभूत बदलाव लाने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस संकट की पृष्ठभूमि में डॉ. मनमोहन सिंह ने वित्त मंत्री के रूप में जो भूमिका निभाई, वह भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए निर्णायक सिद्ध हुई।

डॉ. सिंह की नीतियाँ केवल तकनीकी या आर्थिक उपाय नहीं थीं, बल्कि वे भारतीय राज्य की भूमिका, समाज के प्रति उसकी नैतिक जिम्मेदारी और नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता से गहरे रूप में जुड़ी हुई थीं। उनके द्वारा प्रारंभ किए गए सुधार तीन मुख्य स्तंभों पर आधारित थे – उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण। इन सुधारों का उद्देश्य सरकारी नियंत्रण को कम करना, विदेशी निवेश को आकर्षित करना, प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करना और अर्थव्यवस्था को वैश्विक बाजार के लिए खोलना था (Joshi – Little, 1996)। किंतु इन आर्थिक उपायों के पीछे जो नैतिक प्रश्न उठते हैं, वे केवल यह नहीं पूछते कि इन नीतियों से GDP कितना बढ़ा, बल्कि यह भी पूछते हैं कि क्या ये नीतियाँ सामाजिक न्याय, समानता और गरिमा की रक्षा कर सकीं?

इस संदर्भ में यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि क्या आर्थिक उदारीकरण नैतिक दृष्टिकोण से औचित्यपूर्ण था? इस प्रश्न का उत्तर केवल अर्थशास्त्र के आँकड़ों से नहीं दिया जा सकता, बल्कि इसके लिए हमें नैतिक दर्शन और सार्वजनिक नीति के व्यापक परिप्रेक्ष्य में विचार करना होगा। इमैनुएल कांट के अनुसार किसी नीति का नैतिक मूल्य इस बात में निहित होता है कि वह व्यक्ति को साधन के रूप में नहीं, बल्कि स्वयं एक लक्ष्य के रूप में देखती है (Kant, 2002)। यदि आर्थिक सुधारों का उद्देश्य केवल आर्थिक वृद्धि रहा, और उसमें समाज के सबसे वंचित वर्गों को केवल 'लाभार्थी' मानकर देखा गया, तो यह दृष्टिकोण नैतिक दृष्टि से संदेहास्पद बन जाता है।

डॉ. मनमोहन सिंह स्वयं एक गहरी नैतिक चेतना से प्रेरित व्यक्ति रहे हैं। उन्होंने संसद में अपने पहले ऐतिहासिक बजट भाषण में कहा था – "भारत को ऐसे उदारीकरण की आवश्यकता है जो समानता और सामाजिक न्याय के लक्ष्यों को विस्मृत न करे" (Singh, 1991)। उनके लिए आर्थिक सुधारों का उद्देश्य केवल राजस्व बढ़ाना नहीं, बल्कि समाज को एक ऐसी संरचना देना था जिसमें राज्य की भूमिका सीमित होने के बावजूद, उसकी सामाजिक जिम्मेदारियाँ अक्षुण्ण रहें। उन्होंने यह मान्यता दी कि राज्य को केवल बाजार का पर्यवेक्षक नहीं, बल्कि एक नियामक और संरक्षक की भूमिका निभानी चाहिए।

सुधारों के प्रभावों की जब समीक्षा की जाती है, तो यह स्पष्ट होता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था ने तीव्र गति से विकास करना प्रारंभ किया। सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि हुई, विदेशी मुद्रा भंडार स्थिर हुआ, और भारतीय उद्योगों ने वैश्विक प्रतिस्पर्धा में कदम रखा (Panagariya, 2008)। किंतु इस वृद्धि की नैतिक समीक्षा करते समय कुछ गम्भीर चिंताएँ उभरती हैं। क्या यह वृद्धि समावेशी थी? क्या यह गाँवों, आदिवासी क्षेत्रों, महिलाओं और हाशिए पर खड़े तबकों तक पहुँची? इन प्रश्नों के उत्तर में समाजशास्त्री और विकासशास्त्री विभाजित हैं।

एक ओर यह तर्क दिया गया कि सुधारों से उत्पन्न संपत्ति का 'ट्रिकल-डाउन इफेक्ट' धीरे-धीरे निम्नवर्गों तक पहुँचेगा, परंतु कई अध्ययनों ने यह दर्शाया कि असमानताएँ और अधिक तीव्र हो गईं। ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी बढ़ी, असंगठित श्रमिकों को कोई सुरक्षा नहीं मिली, और शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों में निजीकरण के कारण गरीबों की पहुँच और भी सीमित हो गई (Hirway, 2006)। अमर्त्य सेन ने बार-बार यह चेताया कि यदि विकास में शिक्षा, स्वास्थ्य और मानव क्षमताओं का समुचित विस्तार न हो, तो वह केवल एक सीमित वर्ग के लिए ही लाभकारी सिद्ध होगा (Sen, 1999)। इस प्रकार सुधारों के नैतिक औचित्य पर प्रश्न उठता है – क्या वे केवल अर्थव्यवस्था के औपचारिक आँकड़ों को बेहतर करने तक सीमित थे या उन्होंने व्यक्ति की गरिमा और समान अवसरों की नैतिक अवधारणा को भी समाहित किया?

इस संदर्भ में यह भी देखा जाना चाहिए कि आर्थिक सुधारों के दौरान राज्य की भूमिका में जो परिवर्तन आया, वह कहीं न कहीं उत्तरदायित्व और जवाबदेही के संकट को भी जन्म देता है। सार्वजनिक क्षेत्रों की निजीकरण प्रक्रिया में पारदर्शिता की कमी, नियामक संस्थाओं की दुर्बलता, और सामाजिक व्यय में कटौती ने जन-विश्वास को प्रभावित किया। जब राज्य कल्याणकारी की जगह श्संविदा आधारित सेवा प्रदाताश बन जाता है, तो नागरिक केवल उपभोक्ता रह जाते हैं, और नागरिकता की नैतिकता क्षीण हो जाती है (Jayal, 2013)।

इस द्वंद्व के बीच यह कहना अनुचित न होगा कि सुधारों ने जहाँ एक ओर भारत को वैश्विक आर्थिक नक्शे पर स्थापित किया, वहीं दूसरी ओर उन्होंने सामाजिक न्याय के नैतिक सरोकारों को एक चुनौतीपूर्ण स्थिति में ला खड़ा किया। डॉ. मनमोहन सिंह की नीतियाँ किसी भी प्रकार से अमानवीय नहीं थीं, किंतु उनके कार्यान्वयन की सामाजिक जटिलताओं ने उन नीतियों के नैतिक मूल्यों को व्यावहारिक धरातल पर अपेक्षित रूप में स्थापित नहीं होने दिया।

अत: यह स्पष्ट होता है कि आर्थिक सुधारों का नैतिक औचित्य केवल उनके इरादों और लक्ष्यों में नहीं, बल्कि इस बात में निहित है कि वे कितने लोगों को वास्तविक अवसर और सम्मानजनक जीवन देने में सक्षम हुए। डॉ. मनमोहन सिंह का कार्यकाल इस मायने में विशिष्ट रहा कि उन्होंने राज्य और बाजार, विकास और न्याय, और दक्षता और नैतिकता के बीच संतुलन स्थापित करने की एक ईमानदार कोशिश की। किंतु भारत जैसे विविधतापूर्ण और असमानता से ग्रसित समाज में केवल नीति की मंशा नैतिकता की गारंटी नहीं देती, बल्कि उसके क्रियान्वयन में भी सामाजिक उत्तरदायित्व और नैतिक दृष्टि की सघन आवश्यकता बनी रहती है।

4. अधिकार-आधारित विकास और समावेशी संवृद्धि (2004-2014)

विकास के क्षेत्र में एक बड़ा नैतिक बदलाव तब स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हुआ जब भारत ने मात्र आर्थिक संवृद्धि के आंकड़ों से आगे बढ़ते हुए 'समावेशी विकास' की अवधारणा को अपनाया। यह परिवर्तन केवल नीतिगत नहीं था, बल्कि यह उस गहरे नैतिक दृष्टिकोण का द्योतक था जिसमें विकास को मानव गरिमा, सामाजिक न्याय और अधिकारों के विस्तार के रूप में देखा गया। डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) की सरकार ने इस दिशा में कई ऐतिहासिक कदम उठाए, जिन्होंने विकास को एक मानवीय और नैतिक विमर्श में परिवर्तित कर दिया।

इस कालखंड की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) था, जिसे 2005 में पारित किया गया। यह अधिनियम प्रत्येक ग्रामीण परिवार को वर्ष में 100 दिन का न्यूनतम मजदूरी पर कार्य प्रदान करने का अधिकार देता है। यह महज एक कल्याणकारी योजना नहीं थी, बल्कि यह एक मूलभूत अधिकार के रूप में कार्य के अधिकार को मान्यता देने का प्रयास था। विकास को अधिकारों से जोड़ना एक ऐसा नैतिक कदम था, जिसमें राज्य अपनी भूमिका को मात्र योजनाकार के रूप में नहीं, बल्कि कर्तव्यशील उत्तरदायी संस्था के रूप में पुनर्परिभाषित कर रहा था (Dreze - Khera, 2009)।

इसी कड़ी में 2009 में लागू हुआ शिक्षा का अधिकार अधिनियम (RTE), जिसने 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा को संविधानिक अधिकार का दर्जा दिया। यह अधिनियम यह स्वीकार करता है कि शिक्षा केवल सुविधा नहीं, बल्कि नागरिकता की बुनियाद है। कांट के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति को उसकी स्वायत्तता और तार्किक क्षमताओं के कारण सम्मान मिलना चाहिए (Kant, 2002)। इस तर्क के आधार पर शिक्षा की सार्वभौमिक पहुँच को नैतिक आवश्यकता के रूप में स्वीकार करना विकास को मानवीय गरिमा से जोड़ता है।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (NRHM) की शुरुआत ने सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं को मजबूत करने की दिशा में ठोस कदम उठाए। इससे न केवल मातृ और शिशु मृत्यु दर में सुधार हुआ, बल्कि ग्रामीण इलाकों में स्वास्थ्यकर्मियों की नियुक्ति और संसाधनों की आपूर्ति बढ़ी। एक राष्ट्र, जो अपने नागरिकों को प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध नहीं करा सकता, उनके साथ नैतिक अन्याय करता है। इस कार्यक्रम ने स्वास्थ्य को भी एक मौलिक अधिकार के रूप में प्रस्तुत किया।

वर्ष 2013 में पारित खाद्य सुरक्षा अधिनियम (NFSA) ने लगभग दो-तिहाई आबादी को सब्सिडी पर खाद्यान्न उपलब्ध कराने की गारंटी दी। यह अधिनियम भी उस अधिकार-आधारित दृष्टिकोण का विस्तार था जिसमें भोजन केवल जीवित रहने का साधन नहीं बल्कि एक गरिमामय जीवन की अनिवार्यता माना गया। यह नीति इस विचार को पुष्ट करती है कि जब तक समाज के सबसे वंचित वर्ग को आवश्यक संसाधन सुनिश्चित नहीं किए जाते, तब तक कोई भी विकास नैतिक नहीं हो सकता (Sen, 1999)।

इन नीतियों के मूल में जो नैतिक सूत्र दिखाई देता है, वह हैश्सामाजिक न्याय, गरिमा और सशक्तिकरण का सम्मिलन। इन योजनाओं ने वंचित समुदायों जैसेश्दलित, आदिवासी, महिलाएँ और ग्रामीण मजदूरोंश्को सामाजिक भागीदारी और आत्मसम्मान का अवसर प्रदान किया। यह समावेशी दृष्टिकोण कांट की उस धारणा से सुसंगत है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को साधन नहीं बल्कि अपने आप में एक उद्देश्य माना गया है।

इन्हीं नीतिगत पहलों के समानांतर, एक अन्य महत्त्वपूर्ण क्षेत्र था-सरकारी कर्मचारियों की गरिमा और सेवा की सुरक्षा। डॉ. मनमोहन सिंह के प्रधानमंत्री कार्यकाल के दौरान छठे वेतन आयोग (2006) की सिफारिशों को लागू किया गया, जिससे लाखों केंद्र और राज्य कर्मचारियों को लाभ मिला। इस वेतन आयोग

ने केवल वेतन बढ़ाने का कार्य नहीं किया, बल्कि इसने राजकीय सेवा में कार्यरत लोगों के प्रति राज्य की नैतिक जिम्मेदारी को स्पष्ट किया। राज्य के कर्मचारियों को सम्मानजनक वेतन और कार्य-परिस्थितियाँ उपलब्ध कराना एक नैतिक कर्तव्य है, ताकि वे अपनी सेवा निष्ठा और उत्तरदायित्व का निर्वहन गरिमा के साथ कर सकें (GoI, 2006)।

इससे आगे, पेंशन प्रणाली को सुरक्षित बनाना, चिकित्सा सुविधाओं को विस्तार देना, और सेवा में पारदर्शिता बढ़ाना जैसे कई सुधार भी इस काल में हुए। जब राज्य अपने कर्मचारियों को न केवल 'वेतनभोगी' बल्कि 'राजनीतिक और प्रशासनिक उत्तरदायित्वों के संवाहक' के रूप में सम्मानित करता है, तो यह एक गहरी नैतिक चेतना का प्रमाण होता है। यह दृष्टिकोण भी कांटीय नैतिकता की पुष्टि करता है जिसमें मानव श्रम को मात्र आर्थिक उपादान नहीं, बल्कि एक अंततः नैतिक क्रिया के रूप में देखा जाता है।

वस्तुतः, 2004 से 2014 का यह कालखंड विकास की उस नैतिक पुनर्रचना का परिचायक है जिसमें राज्य ने स्वयं को एक सशक्तिकरणकारी संस्था के रूप में पुनः परिभाषित किया। डॉ. सिंह का नेतृत्व इस दृष्टि से उल्लेखनीय है कि उन्होंने आर्थिक विवेक और सामाजिक न्याय के संतुलन को बनाकर विकास को केवल लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं, बल्कि मानवीय अधिकारों और नैतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया।

5. नैतिक सुशासन और नेतृत्वः शक्तियाँ और मौन

डॉ. मनमोहन सिंह भारतीय राजनीति की उस दुर्लभ परंपरा के प्रतिनिधि रहे हैं जहाँ व्यक्तित्व की शालीनता, निष्ठा और बौद्धिक ईमानदारी को राजनीतिक मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया। भारतीय लोकतंत्र में जहाँ नेतृत्व अक्सर करिश्मा, भाषण-कला और जन-आकर्षण से परिभाषित होता है, वहीं डॉ. सिंह की छवि एक ऐसे नेतृत्वकर्ता की रही जिसने नैतिकता को अपने आचरण से सिद्ध किया, न कि केवल शब्दों से। उनके व्यक्तित्व की यही विशेषता उन्हें एक विशिष्ट स्थान प्रदान करती है। आर्थिक नीतियों की जटिलता हो या अंतरराष्ट्रीय मंच पर देश की प्रतिष्ठा का प्रश्न, डॉ. सिंह सदैव एक स्थिर, संयमी और विचारशील नेता के रूप में सामने आए।

यूपीए-1 (2004-2009) के दौरान डॉ. सिंह का नेतृत्व अपेक्षाकृत स्थिर, निर्णयात्मक और नैतिक दृष्टि से सुसंगत रहा। यह वह काल था जब शासन में सुधार, योजनाओं का क्रियान्वयन और सामाजिक अधिकारों को नीतिगत रूप में परिवर्तित करने की दिशा में स्पष्ट प्रगति देखी गई। मनरेगा, शिक्षा का अधिकार, और राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन जैसे कार्यक्रमों ने न केवल प्रशासनिक क्षमता का प्रदर्शन किया, बल्कि यह भी दर्शाया कि डॉ. सिंह के नेतृत्व में नीति निर्माण का नैतिक आधार किस प्रकार सामाजिक न्याय पर आधारित था (Chakrabarty - Bhattacharya, 2008)।

किन्तु यूपीए-2 (2009-2014) के दौरान यही नैतिक संतुलन विघटित होता हुआ प्रतीत हुआ। इस कालखंड में 2ळ स्पेक्ट्रम आवंटन, राष्ट्रमंडल खेल घोटाला (CWG) और कोलगेट स्कैंडल जैसे बहुचर्चित भ्रष्टाचार प्रकरण सामने आए, जिसने सरकार की साख को गंभीर क्षति पहुँचाई। इस दौरान डॉ. सिंह की भूमिका एक नैतिक दुविधा से ग्रस्त नेता की रही-जो स्वयं बेदाग रहा, किंतु अपनी सरकार में व्याप्त भ्रष्टाचार पर निर्णायक हस्तक्षेप नहीं कर पाया।

यह यहीं पर एक गहन नैतिक विमर्श जन्म लेता है। कांट के अनुसार, नैतिक नेतृत्व वह होता है जो सिद्धांतों के प्रति निष्ठा रखता है, भले ही परिस्थितियाँ कितनी ही प्रतिकूल क्यों न हों (Kant, 2002)। डॉ. सिंह की व्यक्तिगत ईमानदारी निर्विवाद रही, किंतु उनका सार्वजनिक मौन इन सिद्धांतों से विचलन का आभास देता है। लोकतंत्र में नेतृत्व की नैतिकता केवल आत्म-संयम से नहीं, बल्कि सार्वजनिक जवाबदेही और नैतिक साहस से भी आँकी जाती है।

नीतिगत निर्णयों की स्थगनावस्था जिसे मीडिया और आलोचकों ने 'Policy Paralysis' की संज्ञा दी, दरअसल उस नैतिक संकट का परिणाम थी जिसमें गठबंधन राजनीति, घटक दलों की अनुशासनहीनता, और निर्णय में स्पष्टता का अभाव सम्मिलित था। नैतिक नेतृत्व तब अपनी सर्वोच्च कसौटी पर होता है जब वह निर्णयों की कठिन घड़ी में भी सत्यनिष्ठा और पारदर्शिता को प्राथमिकता देता है। डॉ. सिंह स्वयं स्वीकार करते रहे हैं कि वह गठबंधन की सीमाओं में बँधे हुए थे, किंतु इस विवशता ने एक नैतिक प्रश्न खड़ा कर दियाख्क्या सत्ता में बने रहने की राजनीतिक विवशता, नैतिक दायित्व से अधिक महत्वपूर्ण हो सकती है?

वास्तविकता यह है कि डॉ. सिंह की 'नैतिक चुप्पी' (moral silence) एक ऐसी त्रासदी बन गई जो उनके नेतृत्व के मूल्यांकन को दो भागों में विभाजित करती हैख्एक ओर एक सिद्धांतप्रिय और ईमानदार व्यक्ति का उज्जवल चरित्र, और दूसरी ओर उस व्यक्ति का मौन, जब सार्वजनिक धन के दुरुपयोग और शासन व्यवस्था की पारदर्शिता पर प्रश्नचिह्न लगने लगे। आलोचक इस चुप्पी को नैतिक पलायन की संज्ञा देते हैं (Mehta, 2014), जबकि उनके समर्थक इसे गठबंधन राजनीति की मजबूरी और संसदीय शालीनता के रूप में देखते हैं।

हालाँकि, इस विमर्श में यह भूलना नहीं चाहिए कि नैतिक नेतृत्व केवल कदाचार से लड़ने तक सीमित नहीं है; यह विचारधारात्मक स्थिरता, प्रशासनिक मर्यादा और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा भी करता है। इस दृष्टिकोण से देखें तो डॉ. सिंह की भूमिका को श्वेत और श्याम में बाँटना कठिन है। वे न तो भ्रष्टाचार के सहभागी थे और न ही उसके निर्णायक प्रतिरोधकर्ता। यह स्थिति एक ऐसे नैतिक शून्य को दर्शाती है जहाँ नेतृत्व नीतिगत विवेक तो रखता है, किंतु राजनीतिक हस्तक्षेप से वंचित हो जाता है।

सारांशतः, डॉ. मनमोहन सिंह का नेतृत्व भारतीय राजनीति में एक नैतिक प्रतिमान और द्वंद्वात्मकता दोनों का प्रतीक है। वे उस युग के प्रतिनिधि रहे जिसमें नैतिक व्यक्तित्व का वर्चस्व था, किंतु उसी युग में राजनीतिक नैतिकता की चुनौतियाँ भी स्पष्ट थीं। कांट के दृष्टिकोण से देखें तो नैतिक निर्णय केवल 'हितकारी परिणाम' नहीं बल्कि 'कर्तव्यबोध' से प्रेरित होते हैं। डॉ. सिंह के मौन को यदि नैतिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह उस दार्शनिक प्रश्न की ओर संकेत करता है कि क्या नैतिकता मात्र निजी आचरण का विषय है, या फिर वह सार्वजनिक उत्तरदायित्व और सत्य के पक्ष में खड़े होने की शक्ति भी है।

6. नैतिक विरासत का मूल्यांकन

डॉ. मनमोहन सिंह की विकास नीतियों को जब नैतिक दृष्टिकोण से देखा जाता है, तो उनका व्यक्तित्व और कृतित्व एक द्वैध विरासत का प्रतिनिधित्व करता हैख़एक ओर वह दूरदृष्टा अर्थशास्त्री जिसने भारतीय अर्थव्यवस्था को उदारीकरण की राह दिखाई, वहीं दूसरी ओर एक ऐसे राजनेता की छवि, जो यद्यपि नैतिकता का प्रतीक रहे, परंतु राजनीतिक यथार्थ और गठबंधन की मजबूरियों के कारण अनेक बार समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाने को बाध्य हुए। यह द्वैधता उनकी नैतिक विरासत को एक जटिल विमर्श में परिवर्तित कर देती है, जिसमें उनके सिद्धांतों, कार्यों और परिणामों का विश्लेषण विभिन्न नैतिक दार्शनिकों के दृष्टिकोण से करना आवश्यक हो जाता है।

सबसे पहले, यदि हम अमर्त्य सेन के 'Capabilities Approach' की कसौटी पर डॉ. सिंह की विकास नीतियों को जांचें, तो स्पष्ट होता है कि उनका दृष्टिकोण मात्र आर्थिक विकास दर को बढ़ाने तक सीमित नहीं था, बल्कि उसमें मानव कल्याण और क्षमताओं के विस्तार की गूंज भी विद्यमान थी। विशेषकर यूपीए-1 और यूपीए-2 के दौरान कार्यान्वित योजनाओं-जैसे मनरेगा, शिक्षा का अधिकार, स्वास्थ्य मिशन और खाद्य सुरक्षा कानूनख़का उद्देश्य लोगों को न केवल संसाधनों तक पहुँच देना था, बल्कि उन्हें अपने जीवन के निर्णयों में सक्रिय और सशक्त भागीदार बनाना भी था (Sen, 2009)। यह दृष्टिकोण अमर्त्य सेन की धारणा के अनुरूप था, जिसमें विकास का मापदंड केवल जीडीपी नहीं, बल्कि मानव स्वतंत्रता, सामाजिक अवसरों की समानता और संस्थागत पारदर्शिता होता है। अतः डॉ. सिंह की नीतियाँ इस दृष्टिकोण में एक नैतिक विकास का प्रयास प्रतीत होती हैं।

किन्तु नैतिकता के इस आदर्शवाद के बीच एक यथार्थवादी तनाव भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। डॉ. सिंह ने अनेक बार यह स्वीकार किया कि गठबंधन की राजनीति में निर्णायक नेतृत्व आसान नहीं होता, विशेषकर तब जब सहयोगी दल नैतिकता की कसौटी पर खरे न उतरते हों। यह नैतिक और राजनीतिक यथार्थ के मध्य द्वंद्व का प्रतिनिधित्व करता हैख़क्या नैतिक इरादा पर्याप्त है, यदि वह व्यावहारिक क्रियान्वयन में विफल रहे? इमैनुएल कांट के दृष्टिकोण से, किसी भी कार्य की नैतिकता उस इरादे में निहित होती है जिससे वह किया गया हो, न कि उसके परिणामों में (Kant, 2002)। इस आधार पर डॉ. सिंह का व्यक्तिगत आचरण, उनकी सादगी, पारदर्शिता और कार्य के प्रति समर्पण उन्हें एक नैतिक नेता सिद्ध करते हैं। किंतु कांट का नैतिक दर्शन यह भी अपेक्षा करता है कि नेतृत्व सार्विक नियमों पर खड़ा हो-यानी किसी भी परिस्थिति में सत्य और कर्तव्य से विचलन न हो। डॉ. सिंह के ष्नैतिक मौनष् को, विशेषकर घोटालों के संदर्भ में, इसी कसौटी पर देखा जाना चाहिए। क्या उन्होंने सत्ता के समीकरण को नैतिकता पर प्राथमिकता दी? यदि हाँ, तो यह नैतिक नेतृत्व की उस अवधारणा के विपरीत जाता है जो कांट के दर्शन में प्रतिपादित है।

इस सन्दर्भ में गांधी का दृष्टिकोण अत्यंत प्रासंगिक बन जाता है। गांधी का 'स्वराज' केवल राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं था, बल्कि आत्म-निर्भरता, नैतिक आत्मसंयम और सामाजिक न्याय पर आधारित था। डॉ. सिंह की नीतियों में आर्थिक स्वतंत्रता को प्राथमिकता मिली, किंतु क्या यह आत्मनिर्भरता के गांधीवादी आदर्श के अनुरूप थी? आर्थिक उदारीकरण से विदेशी निवेश को बल मिला, वैश्विक व्यापार में भारत की भागीदारी बढ़ी, लेकिन इसी के साथ ग्रामीण और कुटीर उद्योगों पर प्रभाव पड़ा, असमानता की खाई गहरी हुई, और उपभोक्तावाद को बढ़ावा मिला (Chatterjee, 2011)। गांधी की दृष्टि में, यदि विकास आम जन की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता, तो वह नैतिक नहीं हो सकता। गांधी के 'अंत्योदय' की संकल्पना, जिसमें समाज के सबसे अंतिम व्यक्ति के उत्थान को प्राथमिकता दी जाती है, डॉ. सिंह की विकास यात्रा के मूल्यांकन में एक कसौटी का कार्य कर सकती है।

यद्यपि मनरेगा और खाद्य सुरक्षा जैसे कार्यक्रम गांधीवादी दृष्टिकोण से सामंजस्य रखते प्रतीत होते हैं, लेकिन उदारीकरण के नाम पर सार्वजनिक क्षेत्रों की निजीकरण की ओर प्रवृत्ति और श्रम कानूनों में ढील जैसे निर्णय गांधी के आत्मनिर्भर भारत के आदर्श से विचलन दिखाते हैं। गांधी ने आर्थिक सुधारों को केवल संख्यात्मक लाभ के रूप में नहीं, बल्कि नैतिक और सांस्कृतिक पुनर्निर्माण के रूप में देखा था। इस दृष्टि से देखा जाए तो डॉ. सिंह की नीतियाँ आधी सफल और आधी अधूरी प्रतीत होती हैंख़उन्होंने जनसरोकार की दिशा में आवश्यक प्रयास तो किए, परंतु गांधीवादी दृष्टिकोण में निहित स्वराज और सादगी की भावना उनके आर्थिक दृष्टिकोण में पर्याप्त रूप से परिलक्षित नहीं होती।

नैतिक विरासत का मूल्यांकन करते समय यह भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि व्यक्ति के आचरण और उसकी संस्थागत भूमिका में संतुलन कैसे बना रहा। डॉ. सिंह ने व्यक्तिगत ईमानदारी का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया, परंतु संस्थागत स्तर पर भ्रष्टाचार, निर्णयहीनता और जवाबदेही की कमी उनके नैतिक विरासत की पूर्णता में एक छाया बन कर उपस्थित रही। यहाँ नैतिकता केवल निजी गुण नहीं, बल्कि सार्वजनिक उत्तरदायित्व और पारदर्शिता की भावना बन जाती है।

अंततः, डॉ. मनमोहन सिंह की नैतिक विरासत को एक पूर्णतः सकारात्मक या पूर्णतः नकारात्मक फ्रेम में नहीं रखा जा सकता। यह विरासत एक जटिल संरचना हैख़जहाँ सिद्धांत और यथार्थ के बीच संघर्ष है, जहाँ नैतिक इरादा स्पष्ट है किंतु राजनीतिक क्रियान्वयन सीमित, और जहाँ मानव विकास की दिशा में महत्त्वपूर्ण पहलें की गई, परंतु नैतिक नेतृत्व की अपेक्षित दृढ़ता कभी-कभी दुर्बल पड़ती दिखाई दी। यह विरासत भारतीय लोकतंत्र को एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न के समक्ष लाकर खड़ा करती हैख़क्या हम ऐसे नेतृत्व के लिए तैयार हैं जो न केवल निजी स्तर पर नैतिक हो, बल्कि सार्वजनिक स्तर पर भी नैतिक साहस दिखा सके?

7. उपसंहार

डॉ. मनमोहन सिंह की सार्वजनिक भूमिकाख़चाहे वह भारत के वित्त मंत्री के रूप में रही हो या प्रधान मंत्री के रूप में-भारतीय लोकतंत्र के इतिहास में एक ऐसे युग का प्रतीक बन गई है, जिसमें विकास की अवधारणा मात्र संख्यात्मक वृद्धि से आगे बढ़कर नैतिक और मानव केंद्रित विमर्श का हिस्सा बन गई। उनके कार्यकाल में अपनाई गई नीतियों, जिनमें उदारीकरण से लेकर अधिकार आधारित विकास कार्यक्रम शामिल थे, ने विकास के नैतिक विमर्श को पुनर्परिभाषित करने का प्रयास किया। यह निष्कर्ष खंड इस जटिल और बहुस्तरीय यात्रा का विश्लेषण करता है, जिसमें उनकी नीतियों की उपलब्धियाँ और नैतिक सीमाएँ एक-दूसरे के समांतर चलती रही हैं।

डॉ. सिंह का नैतिक दृष्टिकोण विकास को मानव गरिमा, सामाजिक न्याय और सशक्तिकरण से जोड़ने का था। यह उनकी उस सैद्धांतिक प्रतिबद्धता का प्रमाण था जिसमें आर्थिक वृद्धि को साधन माना गया, न कि साध्य। विशेष रूप से यूपीए शासनकाल के दौरान जो योजनाएँ कार्यान्वित की गई, जैसे कि मनरेगा, शिक्षा का अधिकार, खाद्य सुरक्षा कानून, और ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, वे इस नैतिक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति थीं (Jenkins, 2011)। इन योजनाओं ने भारतीय राज्य को एक कल्याणकारी संरचना में बदलने का मार्ग प्रशस्त किया, जिसमें नागरिकों को केवल उपभोक्ता या लाभार्थी के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि अधिकार-धारक और नीति-निर्माण के सहभागी के रूप में प्रतिष्ठित किया गया।

इस नैतिक पुनर्परिभाषा का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह भी रहा कि डॉ. सिंह ने राजनीति में एक नए प्रकार की भाषा और शैली का संचार किया-विनम्रता, मौन, और बौद्धिकता से भरी हुई भाषा जो शोर-शराबे और लोकलुभावन वादों के विपरीत थी। उन्होंने सत्ता को प्रदर्शन की वस्तु न मानकर उत्तरदायित्व का माध्यम समझा, और अपने व्यक्तिगत आचरण से नैतिकता की एक मूक प्रतिध्वनि समाज को दी (Mehta, 2013)। हालाँकि, इसी मौन में कभी-कभी वह नैतिक साहस छुप जाता था जो शासन में आवश्यक होता है, विशेषत: तब जब भ्रष्टाचार या नीति-निर्णय की जटिलताएँ सामने आती हैं।

डॉ. सिंह की विरासत इस कारण विशिष्ट बन जाती है कि उन्होंने 'विकास नैतिकता' को एक सैद्धांतिक और व्यावहारिक ढाँचे में समाहित करने का प्रयास किया। 'Development Ethics' की धारणा, जो सामान्यत: पश्चिमी बौद्धिक परिप्रेक्ष्य से जुड़ी रही है, भारत में उनके कार्यकाल के माध्यम से एक जीवंत और स्थानीय अर्थ ग्रहण करती है। यह धारणा इस विचार पर आधारित है कि कोई भी विकास नीति तब तक नैतिक नहीं हो सकती जब तक वह समाज के सबसे कमजोर और वंचित तबकों को केंद्र में न रखे (Gasper, 2004)। डॉ. सिंह की नीतियाँ इस दृष्टिकोण के कई पहलुओं से मेल खाती हैं, विशेषकर तब जब हम अमर्त्य सेन के क्षमतावाद (Capabilities Approach) या गांधी के 'अंत्योदय' सिद्धांत को आधार बनाकर देखें।

फिर भी, इस नैतिक यात्रा में कुछ सीमाएँ और विरोधाभास भी उभरते हैं। उदारीकरण की प्रक्रिया ने जहाँ एक ओर आर्थिक वृद्धि और वैश्विक प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया, वहीं दूसरी ओर क्षेत्रीय और वर्गीय विषमताओं को भी तीव्र किया। नवउदारवाद के प्रभाव में श्रमिकों के अधिकार, पर्यावरणीय संतुलन, और सार्वजनिक संस्थाओं की विश्वसनीयता कई बार खतरे में पड़ी। यह नैतिक प्रश्न उठाता है कि क्या आर्थिक समृद्धि की प्राप्ति के लिए सामाजिक और नैतिक संतुलन को बलिदान किया जा सकता है? डॉ. सिंह की नीतियाँ इस दुविधा का समाधान तो करती हैं, परन्तु पूर्णत: नहीं।

गठबंधन राजनीति में नेतृत्व की नैतिकता का प्रश्न भी उनकी विरासत को जटिल बनाता है। यह स्वीकार करने में संकोच नहीं कि उन्होंने बार-बार राजनीतिक दबावों के आगे नैतिक निर्णयों को टालने का मार्ग अपनाया, जिसे आलोचकों ने 'नीतिगत पक्षाघात' कहा। यह स्थिति हमें यह सोचने को विवश करती है कि क्या नैतिकता केवल व्यक्तिगत गुण है या वह शासन-व्यवस्था में निर्णायक हस्तक्षेप की अपेक्षा भी रखती है?

वर्तमान और भावी नेतृत्व के लिए डॉ. सिंह की यात्रा कई महत्त्वपूर्ण सबक प्रदान करती है। सबसे पहला सबक यह है कि विकास केवल आँकड़ों का खेल नहीं है, बल्कि उसमें नैतिक विमर्श और लोकहित की उपस्थिति अनिवार्य है। दूसरा सबक यह है कि नेतृत्व का मूल्य उसकी नैतिक प्रतिबद्धता में है, न कि उसके राजनीतिक प्रदर्शन में। और अंतत:, यह भी समझना आवश्यक है कि नैतिकता केवल भाषणों में नहीं, बल्कि निर्णयों और नीतियों में परिलक्षित होनी चाहिए।

आज के समय में, जब नीति-निर्माण प्राय: आर्थिक लाभ और राजनीतिक लाभ के समीकरणों पर आधारित होता जा रहा है, 'विकास नैतिकता' एक वैकल्पिक विमर्श प्रस्तुत करती है। यह विमर्श बताता है कि सार्वजनिक नीति को केवल आर्थिक कुशलता की दृष्टि से नहीं, बल्कि नैतिक उद्देश्य की कसौटी पर भी परखा जाना चाहिए। डॉ. मनमोहन सिंह की भूमिका इस विमर्श को भारतीय संदर्भ में सशक्त बनाने का प्रयास रही है। उनकी नीतियाँ हमें यह स्मरण कराती हैं कि विकास तब तक संपूर्ण नहीं होता जब तक उसमें मानवीय गरिमा, सामाजिक समानता और आत्मनिर्भरता की भावना न हो।

अत: निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि डॉ. मनमोहन सिंह की नैतिक विरासत एक संतुलित मिश्रण हैख्एक ओर वह आदर्शवाद है जो हर भारतीय नागरिक को विकास की प्रक्रिया में भागीदार बनाना चाहता है, और दूसरी ओर वह यथार्थ है जो राजनीतिक संरचनाओं की सीमाओं से बँधा हुआ है। यह विरासत आज भी सार्वजनिक जीवन के नैतिक आचरण के लिए प्रेरणा और विमर्श दोनों प्रदान करती है।

संदर्भ सूची:

1. Ahluwalia, M. S. (2002). Economic Reforms in India Since 1991: Has Gradualism Worked? Journal of Economic Perspectives, 16(3), 67-88. https://doi.org/10.1257/089533002760278763
2. Chakrabarty, B., & Bhattacharya, M. (2008). The Governance Discourse: A Reader. Oxford University Press.
3. Chatterjee, P. (2011). Lineages of Political Society: Studies in Postcolonial Democracy. Permanent Black.
4. Drèze, J., & Khera, R. (2009). The battle for employment guarantee. Frontline.
5. Drèze, J., & Sen, A. (2013). An Uncertain Glory: India and its Contradictions. Penguin Books.
6. Gasper, D. (2004). The Ethics of Development: From Economism to Human Development. Edinburgh University Press.
7. Goulet, D. (1995). Development Ethics: A Guide to Theory and Practice. Apex Press.
8. Government of India. (2006). Report of the Sixth Central Pay Commission. Ministry of Finance.
9. Guha, R. (2014). Democrats and Dissenters. Allen Lane.
10. Hirway, I. (2006). Employment and Poverty in Post-Reform India: Need for a Comprehensive Re-measurement. Economic and Political Weekly, 41(46), 4911-4920.
11. Jayal, N. G. (2013). Citizenship and Its Discontents: An Indian History. Harvard University Press.
12. Jenkins, R. (2011). Democratic Politics and Economic Reform in India. Cambridge University Press.
13. Joshi, V., & Little, I. M. D. (1996). India's Economic Reforms 1991-2001. Oxford University Press.

14. Kant, I. (2002). Groundwork for the Metaphysics of Morals (A. W. Wood, Trans.). Yale University Press. (Original work published 1785)
15. Mehta, P. B. (2013). The Burden of Democracy. Penguin Books India.
16. Mehta, P. B. (2014). The Burden of Democracy. Penguin Books India. (duplicate year retained for distinction; same title with possible edition/reprint)
17. Panagariya, A. (2008). India: The Emerging Giant. Oxford University Press.
18. Parekh, B. (2001). Gandhi: A Very Short Introduction. Oxford University Press.
19. Sen, A. (1999). Development as Freedom. Oxford University Press.
20. Sen, A. (2009). The Idea of Justice. Harvard University Press.
21. Singh, M. (1991). Budget Speech of Finance Minister, Government of India, July 24, 1991.

महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक सशक्तिकरण में ग्रामीण विकास योजनाओं की भूमिका: एक अध्ययन

डॉ० बिपुल विकास

पी. जी. टी. अर्थशास्त्र, के. भी. खगोल, पटना, हाउस नं० 04, रोड नं० 14, इन्द्रपुरी, पटना

परिचय

महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने का अर्थ है उन्हें वित्तीय स्वतंत्रता प्राप्त करने का अवसर देना। इससे उन्हें अपने आर्थिक जीवन को नियंत्रित करने में भी मदद मिलती है। महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण अवधारणा महिलाओं को इस लक्ष्य को प्राप्त करने का अवसर देती है। महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण का लक्ष्य लैंगिक असमानता को कम करना है। महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने से महिलाओं और उनके परिवारों, समुदायों और समाज को लाभ होता है। सरकार ने आर्थिक सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न पहल लागू की हैं। ऋण और प्रशिक्षण कार्यक्रम सरकार की कुछ पहल हैं। आर्थिक सशक्तिकरण से आय, जीवन स्तर और स्वतंत्रता बढ़ती है।

सामाजिक सशक्तिकरण से तात्पर्य महिलाओं और लड़कियों की व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से कार्य करने की क्षमता से है ताकि वे सामाजिक संबंधों, उन संस्थाओं और विमर्शों को बदल सकें जो उन्हें वंचित रखते हैं और उन्हें गरीबी में रखते हैं। उदाहरण के लिए, घर पर, इसमें महिलाओं की अपने साथी के साथ यह निर्णय लेने और चर्चा करने की क्षमता शामिल है कि उन्हें गर्भनिरोधकों का उपयोग करना है या नहीं। घर के बाहर, इसका अर्थ है कि महिलाएँ और लड़कियाँ लैंगिक मानदंडों से बंधे बिना, सकारात्मक संबंध बना सकती हैं, सामाजिक गतिविधियों और निर्णय लेने में भाग ले सकती हैं।

आर्थिक सशक्तिकरण का अर्थ है कि महिलाओं के पास अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने और गरीबी से बाहर निकलने के लिए कौशल और संसाधन हैं। इसके अतिरिक्त, इसका अर्थ है कि महिलाएँ और लड़कियाँ अपनी आय और अन्य संसाधनों का उपयोग कैसे करें, यह तय कर सकती हैं या संयुक्त रूप से ये निर्णय ले सकती हैं।

सामाजिक सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण पहलू प्रचलित लैंगिक मानदंडों और भूमिकाओं को संबोधित करना है, ताकि नागरिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में महिलाओं और लड़कियों की भागीदारी और स्थिति में सुधार हो सके। समुदायों को संवाद में शामिल करके, हम सीमित सामाजिक और सांस्कृतिक मानदंडों पर चर्चा करने और उनसे निपटने के लिए जगह बनाते हैं।

महिलाएँ आर्थिक रूप से सशक्त तभी होती हैं जब उनके पास संसाधनों तक पहुँच हो और उनके पास अपने संसाधनों के बारे में आर्थिक निर्णय लेने की शक्ति और क्षमता हो। संसाधनों तक पहुँच में शामिल हैं: रोजगार और अच्छे काम तक पहुँच, भूमि, आवास और अन्य उत्पादक संसाधनों, जैसे पानी और ऊर्जा तक पहुँच, बैंकिंग संस्थानों, (सूक्ष्म वित्त) ऋणों और बचत खातों जैसे वित्तीय संसाधनों तक पहुँच, सामाजिक सुरक्षा सेवाओं तक पहुँच, डिजिटल स्थानों और प्रौद्योगिकी तक पहुँच।

प्रकृति ने सृष्टि को दो भागों में विभक्त किया है- पुरूष, स्त्री इससे यह सिद्ध होता है कि सफल सामाजिक उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिये स्त्री का भी बड़ा महत्व है। समय-समय पर समाज में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। इससे महिला का अछूता रह पाना असंभव हो गया है। सिन्धु घाटी सभ्यता से लेकर इस तीव्रगामी हवाई युग तक महिलाओं ने एक लंबा सफर तय किया है। मानव समाज में अक्सर पुराने संस्कार और सिद्धांत अव्यवहारिक जान पड़ते हैं। नई पीढ़ी पुराने सिद्धांतों और आदर्शों की केचुली उतारकर नये आदर्श और प्रतिमान गढ़कर समाज को दिशा प्रदान करती है। महिलाओं के संबंध में भी यही बात लागू होती है। महात्मा गांधी का कथन है कि ''पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं को शिक्षित और सशक्त बनाना अधिक आवश्यक है, क्योंकि पुरूष के शिक्षित होने से केवल एक पुरूष ही शिक्षित होता है, परंतु एक महिला के शिक्षित होने से सारा परिवार शिक्षित होता है।''

जैविक दृष्टि से प्रकृति ने स्त्री एवं पुरूष को भिन्न संरचनायें प्रदान की हैं, इसका उद्देश्य है, एक दूसरे की पूर्णता ना कि भेदभाव, आधिपत्य शोषण। आदिम समाज की जीवन शैली इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन काल में स्त्री-पुरूष समानता विद्यमान थी। संगठित समाज की रचना, उत्पादन के साधनों में बदलाव, परिवार नामक संस्था का अभ्युदय एवं स्वामित्व अथवा संपत्ति के उदय के साथ अपरिवर्तनों में स्त्री को पुरूष के अधीन करना शुरू किया। यह प्रक्रिया आश्चर्यजनक रूप से विश्व की सभी सभ्यताओं में कमोबेस पनपती ही रही। इस प्रक्रिया में सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्य मानकों, समाज में व्यवस्थाओं अर्थात् राजतंत्र का योगदान रहा है।

इसके समानान्तर अनेक स्त्री सुधारक एवं महिला सशक्तिकरण आंदोलन चलते रहे। इसमें पुरूषों का योगदान भी उल्लेखनीय है। १९वीं और २०वीं शताब्दी के महिला आंदोलनों की विचारधाराएं और जागरण चेतना इसी विचारधारा का फलश्रुति है। इसी संदर्भ में नारी सशक्तिकरण की प्रक्रिया अनेक प्रसंगों के अनेक समानान्तर रूप में जारी है। वहीं २१वीं शताब्दी में इंदिरा गांधी, सोनिया गांधी एवं नूयी जो विश्वमंच पर धाक रखने वाली महिला है। विश्व की १००

प्रभावशाली महिलाओं की फोर्ब्स की सूची में भारत की पांच महिलाएं भी शामिल हैं। हालाँकि एंजिला मर्डर जो कि जर्मनी की चांसलर है, कोंडालेजा राइस अमेरिकी विदेश मंत्री, नूयी चीन की स्वास्थ्य मंत्री, इंदिरा नूयी पेप्सीको की सी.ई.ओ. ने अपना सर्वोच्च स्थान बनाया है। वहीं अंतरिक्ष के क्षेत्र में हमारे भारतीय मूल की दो महिलायें कल्पना चॉवला एवं सुनीता विलियम्स ने अंतरिक्ष की यात्रा कर एक महान उपलब्धि प्राप्त की है।

२१वीं सदी की शुरूआत में महिलाओं के प्रति यदि सामाजिक चेतना को पूरी तरह से बदल पाने में पूर्ण सफल ना हो पाते तो कम से कम इतना प्रयास तो कर ही सकते हैं कि समाज आज उसे उपभोक्ता वस्तु के रूप में देखना और मानना बंद कर दे। उसकी स्वतंत्र अस्मिता और अस्तित्व को स्वीकार करके बराबर का नागरिक माने। इस दिशा में नई पहल के लिए दुनिया भर के सक्रिय एवं सचेत महिलाएं बीजिंग विश्व सम्मेलन पर दृष्टि लगाये हैं। इसलिए यह सम्मेलन महिलाओं की स्थिति को बेहतर बनाने की संकल्प शक्ति को गतिशील बनाने में सफल हुआ तो नि:संदेह आने वाली सदी की औरत निराश नहीं होंगी। उसमें आशा और विश्वास की उर्जा का समावेश होगा।

वस्तुत: महिला सशक्तिकरण का प्रश्न बहुआयामी हैं, परंतु मूल रूप में यह महिलाओं के बुनियादी मानव अधिकारों का प्रश्न है। लोकतंत्र के मानकों के अनुरूप यह महिलाओं के मूल लोकतांत्रिक अधिकारों का भी प्रश्न है। साथ ही यह मात्र कानूनी सुरक्षा नहीं बल्कि प्रदत्त अधिकारों की प्राप्ति के लिए अवसरों की उपलब्धता का भी प्रश्न है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, सामूहिक एवं वैश्विक सभी क्षेत्रों में सभी स्तरों पर महिलाओं की समानता का अधिकार देना इनका मूल उद्देश्य है।

सरकार और आर्थिक सहायता देने वाली एजेंसियां इस बात को अब और अधिक समझने लगी है कि समाज में महिलाओं के निम्न स्तर के कारण विकास में बाधा उत्पन्न होती है और स्त्री पुरूष समानता को कम करने वाले कार्यक्रमों तथा नीतियों पर बुरा असर पड़ता है। जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणामों से चिंतित लोग परिवार और समाज में महिलाओं का दर्जा ऊंचा करने तथा गर्भधारण करने के बारे में फैसला करने में उनका नियंत्रण बढ़ाने के बीच भी एक संबंध देखते हैं। काहिरा में जनसंख्या और विकास के बारे में अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन (१९९४) और बीजिंग में हुए महिला सम्मेलन में सार्वजनिक और निजी जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में महिलाओं और पुरूषों के बीच बराबरी की भागीदारी और सहयोग की बात की गई।

भारत में महिलाओं की प्रगति में केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों की भूमिका तेजी से बढ़ रही है। भारत के संविधान और अन्य कानूनों में तो महिलाओं को बराबरी का दर्जा प्राप्त हो चुका है, किन्तु इस कानूनी बराबरी को वास्तविकता के धरातल से जोड़ना भी अति महत्वपूर्ण है। इस दिशा में महिलाओं का स्वावलंबन और आर्थिक सक्षमता बढ़ाने के लिए कुछ योजनाएं प्रारंभ की गई हैं। भारत में लगभग २७.१% जनता गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन कर रही है। जिनकी ओर ध्यान देना आवश्यक है। इस दिशा में भारत सरकार की आई.आर.डी.पी., ट्रायसेम एवं ड्वाकरा योजनाएं महत्वपूर्ण हैं। महिलाओं को स्वरोजगार चलाने के लिये प्रोत्साहित करने हेतु इन योजनाओं में काफी बल दिया गया है। इसके अलावा गत हाल के वर्षों में कुछ नई योजनाएं भी प्रारंभ की गई जैसे राष्ट्रीय महिला कोष, इंदिरा महिला योजना, महिला समृद्धि योजना, स्टेप, नाबार्ड योजना तथा महिला आर्थिक विकास निगमों की योजना। अब तक भारत में कुल १७ महिला आर्थिक विकास निगम स्थापित किये जा चुके हैं, जिनका उद्देश्य महिलाओं को आर्थिक रूप से सक्षम बनाना है। इस योजना के अधीन केन्द्र तथा राज्य सरकार को क्रमश: ४९% एवं ५१% हिस्सों के अनुसार कुल एक करोड़ रूपये आबंटित कर ये निगम निर्मित किये गये थे। बैंकों के माध्यम से भी कई योजनायें चलाई जा रही है।

वर्तमान भारत में विगत कुछ वर्षों से अनेक मंचों से यह प्रश्न इसलिए उठा है कि विगत ५ दशकों में लोकतंत्र की अनेक उपलब्धियों के बावजूद देश की आधी जन आबादी को जो दर्जा मिलना चाहिए उससे यह वंचित है इसके क्या कारण रहें हैं? महिला समस्या का स्वरूप क्या है? इन समस्याओं का समाधान क्या है? अभी तक अपनाई गई रणनीतियां कितनी कारगार रही हैं? एवं उनके परिणाम कितने संतोषप्रद रहे हैं, बदलती स्थिति में सशक्तिकरण का क्या निहितार्थ है? इन सब प्रश्नों का उत्तर इस प्रस्तुत शोध प्रबंध में पंचायती राज के संदर्भ में खोजने का प्रयास किया गया है।

महिला की स्थिति के संबंध में दुर्गा सप्तशती में एक आदर्श लिखा है कि - ''या देवी सर्वभूतेषु मातृ रूपेण संस्थिता तथा या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धा रूपेण संस्थिता।''

उक्त उक्तियों द्वारा स्त्री को पुरूष के ऊपर रखा गया है। यानि नारी के सहायता के बिना हम उच्च शिखर पर नहीं पहुंच सकते। एक ओर जहां शहरी महिलायें, स्कूलों, कॉलेजों, दफ्तरों एवं कारखानों आदि में पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर देश के विकास में संलग्न हैं। वहीं दूसरी ओर ग्रामीण महिलाएं खेतों, खलिहानों तथा अन्य विभिन्न क्षेत्रों में रात-दिन काम करके देश के आर्थिक विकास में अपना अमूल्य योगदान दे रही हैं।

इन सबके बावजूद समाज में नारी को पुरूष से हेय समझी जाती है। खासकर ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएं और अधिक उपेक्षित है। देश की कुल महिला जनसंख्या की लगभग ७० प्रतिशत महिलाएं ग्रामीण क्षेत्र में निवास करती है। अत: देश के विकास में ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी आवश्यक और अनिवार्य मानी जानी चाहिए।

हालाँकि भारत में महिलाओं की स्थिति में पहले की अपेक्षा काफी सुधार हुआ है, परंतु अभी भी उनके लिये काफी कुछ किया जाना शेष है। ग्रामीण महिलाएं जिनके संदर्भ में घरेलू हिंसा, सामाजिक शोषण और आर्थिक शोषण का स्तर कुछ अधिक है, उनके संदर्भ में ये स्थिति विशेष रूप से चिन्ताजनक है। इसीलिए ''महात्मा गांधी ने कहा था कि - ''राष्ट्र के समन्वित एवं समग्र विकास के लिए ग्रामीण महिलाओं का शिक्षण और सशक्तिकरण अत्यंत आवश्यक है।'' संयुक्त राष्ट्र महासभा ने १८ दिसंबर १९७९ को महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेद-भाव समाप्त करने के बारे में प्रस्ताव पारित किया जो ३ सितंबर १९८१ को प्रभावित हुआ। इसके अलावा ग्रामीण महिलाओं के विकास एवं उनके सशक्तिकरण के लिये अनेक प्रयास किये गये जिनका मूल उद्देश्य यह था कि ग्रामीण महिलायें शिक्षित तो हों ही, साथ ही उन्हें अपने अधिकारों का ज्ञान भी हो। सन् १९७० में भारतीय ग्रामीण श्रमिक शिक्षण संस्थान की स्थापना की गई है। संस्थान असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत महिला श्रमिकों को शिक्षित करने का कार्य करता है एवं उनके लिये प्रौढ़ शिक्षा कक्षायें भी चलाता है।

संविधान के ७३वें एवं ७४वें संशोधन में महिलाओं के लिये पंचायत और शहरी निकायों में एक तिहाई आरक्षण की व्यवस्था है। ६वीं और ७वीं पंचवर्षीय योजना में महिला कल्याण विभाग का गठन किया गया एवं राष्ट्रीय महिला विकास पंचवर्षीय योजना शुरू की गई। जिसमें ग्रामीण महिलाओं के विकास के

लिए अनेक कार्यक्रम बनाये गये हैं। ८वीं पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण महिलाओं को रोजगार आधारित प्रशिक्षण देने संबंधी कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। ग्रामीण महिलाओं के लिए उत्पादक संघ एवं सहकारी संघ बनाये गये, जो ग्रामीण महिलाओं को प्रशिक्षण, तकनीकी सहायता, ऋण संबंधी सुविधा एवं माल बेचने की सुविधा उपलब्ध करायेंगे। शिक्षित करने की दृष्टि से प्रौढ़ शिक्षा एवं साक्षरता मिशन के साथ-साथ उन्हें अधिकारों के बारे में भी बताया जाता है। महिलाओं के लिए तकनीकी एवं व्यवसायिक प्रशिक्षण केन्द्र खोले गये। गाँव के गरीब एवं श्रमिक महिलाओं हेतु केन्द्रीय स्तर पर एक राष्ट्रीय महिला कोष स्थापित किया गया है।

केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा ग्रामीण महिला कल्याण संबंधी गतिविधियों को संस्थागत ढांचा उपलब्ध कराने और संवैधानिक सुरक्षा उपलब्ध कराने हेतु अनेकानेक कदम उठाये गये हैं। देश की आजादी के बाद से ही ग्रामीण महिलाओं का कल्याण और विकास आयोजन प्रणाली का केन्द्रीय विषय रहा है। १९९७ के दशक में जहां कल्याण की अवधारणा अपनाई गई, वहीं १९९० में विकास एवं महिला अधिकारिता पर बल दिया गया जिससे महिलायें निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल हो और नीति-निर्माण स्तर पर भी उनकी सहभागिता बनें।

जीविका:

जीविका एक बिहार सरकार की परियोजना है जिसका मुख्य कार्य ग्रामीण महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों में संगठित करके उन्हें आर्थिक और सामाजिक रूप से सशक्त बनाना है। यह परियोजना महिलाओं को स्वरोजगार के लिए वित्तीय सहायता और कौशल विकास प्रशिक्षण प्रदान करती है। साथ ही, यह बाल विवाह, दहेज प्रथा और घरेलू हिंसा जैसी सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध जागरूकता अभियान चलाकर सामुदायिक सशक्तिकरण को भी बढ़ावा देती है।

सुझाव:

इस प्रकार निश्चय ही कहना युक्तिसंगत होगा कि संसाधनों तक पहुँच प्राप्त करने से महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण बढ़ता है। हालाँकि, यदि महिलाओं के पास इन संसाधनों का उपयोग करके आर्थिक निर्णय लेने की शक्ति और क्षमता नहीं है, तो वे आर्थिक रूप से सशक्त नहीं हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई महिला कार्यरत है, लेकिन वित्तीय रूप से साक्षर नहीं है या अपनी कमाई से निर्णय लेने में सक्षम नहीं है, तो वह अपने आर्थिक निर्णय स्वयं नहीं ले सकती। इसी तरह, यदि कोई महिला आय और जीविका के लिए भूमि के एक टुकड़े पर निर्भर है, लेकिन वह उस जमीन की मालिक नहीं है, तो इसका मतलब है कि उसके पास इस बात का पूरा अधिकार नहीं है कि वह जमीन के साथ क्या करे, और जमीन का मालिक किसी भी समय जमीन को बेचने या वापस लेने का निर्णय ले सकता है, जिसका अर्थ है कि लंबी अवधि में उस जमीन तक उसकी पहुंच सुरक्षित नहीं है।

निष्कर्ष:

वस्तुत: ग्रामीण भारत में महिलाओं की श्रम शक्ति में भागीदारी में वृद्धि प्रगति और लगातार चुनौतियों दोनों को उजागर करती है। विशेष रूप से किशोर लड़कियों और वृद्ध महिलाओं की आर्थिक आवश्यकताएँ वास्तविक सशक्तीकरण के लिये गहन संरचनात्मक बाधाओं को उजागर करती हैं। वास्तविक लैंगिक समानता प्राप्त करने के लिये, शिक्षा, कौशल और कार्य स्थितियों में सुधार महत्त्वपूर्ण हैं। लैंगिक समानता और उत्कृष्ट श्रम के साथ तालमेल बिठाते हुए, नीतियों को प्रणालीगत बाधाओं को तोड़ने पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिये। महिलाओं को पूरी तरह से सशक्त बनाने से भारत की आर्थिक क्षमता का दोहन होगा तथा अधिक समावेशी और संधारणीय भविष्य को बढ़ावा मिलेगा।

संदर्भ सूची:

१. प्रभा आप्टे: भारतीय समाज में नारी, क्लासिक पब्लिशिंग हाउस जयपुर १९९६
२. पी.सी. जैन एवं शशि भटनागर सुधा - शेड्यूल कास्ट वुमन, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, १९९७
३. जी.डी. भट्ट - इमरजिंग लीडरशिप पैटर्न इन रूरल इंडिया, एम.डी. पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, १९९४
४. बी.एस. भार्गव - पंचायती राज सिस्टम एंड पॉलिटिकल पार्टीज, आशीष पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९७९
५. इजलाल अनीस जैदी - पॉलिटिक्स, पॉवर एंड लीडरशिप इन रूरल इंडिया कामनपेत्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, १९८८
६. आर.के. वर्मा - पॉलिटिकल लीडरशिप, अमर प्रकाशन दिल्ली, १९९१

વર્તમાન શિક્ષણમાં સ્વામી વિવેકાનંદ અને મહાત્મા ગાંધી

પટેલ શશીકાંત.આર

પ્રસ્તાવના ::

પ્રાચીન સમયથી ભારતીય સમાજમાં શિક્ષણનું મહત્વ રહ્યું છે. આશ્રમ વ્યવસ્થામાં ગુરૂ અને શિષ્યની પરંપરા ચાલતી જેમાં રાજા-મહારાજાઓના રાજકુમારો આશ્રમમાં રહીને અભ્યાસ કરતા, વેદો, ઉપનિષદોનું શિક્ષણ અપાતું સાથે સાથે જીવન વ્યવહારનું જ્ઞાન પણ અપાતું હતું. જેમાં વિજ્ઞાન, ગણિત, દર્શન શાસ્ત્ર અને ભાષાનો સમાવેશ થતો હતો. ભારતમાં જે શિક્ષણની વ્યવસ્થા હતી તેનો પ્રભાવ દેવ-વિદેશોમાં હતો. નાલંદા, તક્ષશિલા જેવી પ્રાચીન વિદ્યાપીઠોમાં વિદેશથી વિદ્યાર્થીઓ અભ્યાસ કરવા માટે આવતા હતા. સમગ્ર વિશ્વમાં સૌ પ્રથમ શિક્ષણ વ્યવસ્થા ભારતમાં જોવા મળતી હતી જેની અસર અન્ય દેશોમાં થઈ હતી.

ભારતમાં પ્રાચીન સમયમાં મહાન વિદ્વાનો થઈ ગયા જેમાં આર્યભટ્ટ, કણાદ નાગાર્જુન, ચરક, મિહિર, બ્રહ્મ ગુપ્ત, સુશ્રુત અને પાણિનિ આ બધાજ વિદ્વાનોનું યોગદાન આજે પણ એટલું જ ઉપયોગી છે, જેટલું પ્રાચીન સમયમાં હતું.

સમયની સાથે સમાજમાં પરિવર્તનનો પવન ફુંકાયો, સમાજ બદલાયા, માણસો બદલાયા, તેના વિચારો અને વ્યવહારો બદલાયા અને સાથે સમાજ એક બીજા સમાજોના વ્યક્તિઓ સાથે સંપર્કમાં આવ્યો જેથી શિક્ષણમાં પરિવર્તન આવ્યું. શિક્ષણના અનેક વિચારો નવા-નવા આયામો લઈને આવ્યું. જેમાં અનેક વિદ્વાનો પોતાની શિક્ષણ ફિલોસોફી સમાજ સમક્ષ મુકતા ગયા જેમાં સમયે-સમયે શિક્ષણમાં પરિવર્તનો આવ્યા છે. જેમાં આજના વર્તમાન શિક્ષણમાં પૂર્વ થયેલા શૈક્ષણિક ફિલોસોફીયોના વિચારો એટલા જ ઉપયોગી છે.

વર્તમાન શિક્ષણમાં નવી શિક્ષણ નીતિ ૨૦૨૦ થી અમલમાં મુકાઈ છે. જેમાં સ્વામી વિવેકાનંદ અને ગાંધીજીના શૈક્ષણિક વિચારો પરિપ્રેક્ષમાં છે. સ્વામી વિવેકાનંદના શૈક્ષણિક વિચારો સમસ્ત ભારતવાસીઓ માટે પ્રેરણારૂપ છે. સ્વામી વિવેકાનંદે ક્રમબદ્ધ પાઠ્યક્રમના રૂપને મહત્વ આપે છે. શિક્ષણમાં ધર્મ તેની ફિલોસોફીનો અભ્યાસ કરાવવો જોઈએ. આજના યુવાનને ઈશ્વરમાં આસ્થા હોવી જોઈએ, યુવાનોએ યોગ, વિદ્યા, ધ્યાન કેન્દ્રીત કરી સમગ્ર વિશ્વનું જ્ઞાન મેળવવું જોઈએ. એકાગ્રતા એ વિદ્યાર્થીનું પ્રથમ સોપાન છે, જે એકાગ્રતા ધ્યાન, યોગ દ્વારા જ આવી શકે છે. અભ્યાસમાં કઠિનમાં કઠિન વિષયને સરળમાં સરળ ફેરવવાનું કાર્ય એકાગ્ર મન કરે છે, અનેક દુ:ખોને નોતરે છે. મારા ભારતવાસી યુવાનો સિંહના જેવું કાળજું રાખવાનું છે, સિંહ જેવી તાકાત કેળવવાની છે.

વિદ્યાર્થીનું જીવન ચારિત્ર્યશીલ હોવું જોઈએ, ચારિત્ર્યવાન જીવન કેળવવાથી જ સમાજના દરેક કાર્યમાં સફળ થઈ શકીએ છીએ.

સ્વામી વિવેકાનંદનો આ વિચાર વર્તમાન સમયના વિદ્યાર્થીઓ માટે અગત્યનો છે તેના શિક્ષણની વ્યવસ્થાને ઉપયોગી છે. શિક્ષણ એવું હોવું જોઈએ, જેનાથી ચારિત્ર્ય ખીલે, શારીરિક અને માનસિક વિકાસ થાય, મનુષ્યને પોતાના પગ પર ઉભો રાખીને ખરા અર્થમાં આત્મનિર્ભર બનાવે તે ખરૂ શિક્ષણ છે. વર્તમાન સમયમાં બેકારી અનેક ગણી વધી ગઈ છે. માત્ર ડીગ્રી ધારક વિદ્યાર્થીઓ જોવા મળે છે. તો સાથે શિક્ષણ વ્યવસ્થા ભ્રષ્ટ બની ગઈ છે. જેથી વર્તમાન વિદ્યાર્થી યોગ્ય શિક્ષણ મેળવી શકતા નથી. માત્ર ડીગ્રીની અપેક્ષાએ શિક્ષણ વ્યવસ્થામાં જોડાય છે. જ્યારે અહીં આપણને સ્વામી વિવેકાનંદના ઉપરોક્ત વિચારો વર્તમાન શિક્ષણ અને વિદ્યાર્થી માટે જીવંત થતા લાગે છે.

ગાંધીજીએ આપેલ શિક્ષણના વિચારો વર્તમાન શિક્ષણ પ્રથા સાથે ચોક્કસ રીતે જોડાયેલ છે. વર્તમાન શિક્ષણને પ્રગતિના પંથે લઈ જવાનું કાર્ય કરે છે. વર્તમાન શિક્ષણ સાથે જોડાયેલ શિક્ષક અને વિદ્યાર્થીને ગાંધીજીના વિચારો એક બીજા સાથે જોડે છે. નવો માર્ગ બક્ષે છે.

ગાંધીજી કહે છે કે, બાળકના શરીર, મન અને આત્માના જે ઉત્તમ અંશો હોય તેમનો સર્વાંગી વિકાસ સાધીને તેમને બહાર લાવવા, વર્તમાન શિક્ષણમાં બાળકના સર્વાંગી વિકાસ થાય તે પ્રકારે શિક્ષણની વ્યવસ્થા કરવી હિતાવહ છે.

વર્તમાન સમયમાં વિદ્યાર્થીઓને શિક્ષણ લીધા બાદ તેમને યોગ્ય રોજગારી પ્રાપ્ત થાય તે માટે સ્વાલંબી શિક્ષણની આજે જરૂરી છે. શારીરિક રીતે સક્ષમ હોવા માટે વ્યાયામ શિક્ષણની આવશ્યકતા છે. જે ગાંધીજીના બુનિયાદી શિક્ષણના વિચારો આજની શિક્ષણ પરંપરામાં સમાવેશ કરીને શિક્ષણમાં નવો શ્વાસ પુરવો રહ્યો.

૨૦૨૦ ની રાષ્ટ્રીય શિક્ષણ નીતિમાં માતૃભાષા ઉપર ભાર મુકવામાં આવ્યો છે. ગાંધીજીએ કેળવણી તો માતૃભાષામાં જ લેવી જોઈએ. એવું વારંવાર લોકો સમક્ષ કહેતા.

ગાંધીએ આધ્યાત્મિક શિક્ષણને મહત્વ આપ્યું હતું તે આજના શિક્ષણમાં તેના પર ભાર મુકવામાં આવ્યો છે. શિક્ષણ સાથે જોડાયેલ દરેક વ્યક્તિનું ચારિત્ર પવિત્ર હોવું જોઈએ. જીવનનો પ્રથમ પાયો ચારિત્ર છે. ચારિત્ર નિર્માણ કરનાર ચારિત્રવાન હોવો જોઈએ.

સર્વોદય શિક્ષણ, વ્યાવસાયિક શિક્ષણ એ વર્તમાન શિક્ષણની પ્રથમ આવશ્યકતા છે. રાષ્ટ્રનો વિકાસ દરેક નાગરિકની ફરજ છે. વિદ્યાર્થીઓમાં રાષ્ટ્રવાદના ગુણો વિક્સે તેવા પ્રયત્નો કરવા જોઈએ.

ઉપસંહાર ::

વર્તમાન શિક્ષણમાં સ્વામી વિવેકાનંદ અને ગાંધીજીના શૈક્ષણિક વિચારો આધારે શિક્ષણની વ્યવસ્થાનું આયોજન કરેલ આપણને જોવા મળે છે. મહાન શૈક્ષણિક ફિલોસોફીના વિચારોથી ઘડાયેલ શિક્ષણ વ્યવસ્થા ક્યારેય તૂટશે નહીં કે, નહીં અટકશે, અવિરત વહેતી રહેશે. સ્વામી વિવેકાનંદ અને ગાંધીજીના શૈક્ષણિક વિચારો આજ અને આવતીકાલનું ભવિષ્ય છે.

बाल अपराधः उद्‌भव और विकास

डॉ० राजेश्वर प्रसाद

सहायक प्राध्यापक - अर्थशास्त्र विभाग, सच्चिदानन्द महाविद्यालय शाहमल खैरादेव, रोहतास, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय आरा, (बिहार)।

प्रस्तावना-

वर्तमान समय में बाल अपराध की समस्या उन प्रमुख समस्याओं में से एक है जिसे आपराधिक व्यवहार के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्व दिया जा रहा है। यह एक ऐसी समस्या है जो मूल रूप से परिवार और समुदाय के विघटन का परिणाम है। दुनिया के लगभग सभी देशों में बाल अपराधियों की संख्या में लगातार हो रही वृद्धि चिंता का विषय है क्योंकि जिन बच्चों पर देश या राष्ट्र का भविष्य निर्भर करता है अगर वे असामान्य बच्चे बन जाते हैं तो देश का भविष्य बिगड़ सकता। भारत में, बाल अपराध को किशोर अपराध के रूप में वर्गीकृत किया गया है।[1] बाल अपराध एक सामाजिक समस्या है। इसलिए बाल अपराध के कारण भी समाज में मौजूद हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार कोई भी जन्म से अपराधी नहीं होता वरन् जन्म के पश्चात् ही अपराधी प्रवृत्ति का हो जाता है। जो व्यक्ति प्रौढ़ावस्था में प्रवेश कर चुके होते हैं और वह सामाजिक नियमों या कानूनों के विरुद्ध कार्य करते हैं। उसे अपराध माना जाता है और यदि इस कार्य को अपरिपक्व बालक के द्वारा किया जाता है तो उसे बाल-अपराध (Juvenile Delinquency) की संज्ञा दी जाती है।[2]

बाल अपराधः उद्‌भव और विकास

जब हम बाल अपराध की समस्या के उद्‌भव और विकास पर एक सूक्ष्म दृष्टि डालते हैं, तो स्पष्ट होता है कि बालकों द्वारा अपराध हर काल तथा हर समाज में हमेशा होता आया है। बाल अपराध एक वस्तुनिष्ठ वास्तविकता है। यह उसी प्रकार एक वाह्य सत्य है, जिस प्रकार समाज। समाज अमूर्त है, फिर भी यह एक शाश्वत सत्य है। इसी प्रकार अपराध भी एक अमूर्त धारणा है, लेकिन कोई भी ऐसा समाज नहीं है जिसमें किसी न किसी रूप में, प्रत्येक काल में, अपराध विद्यमान न रहा हो, चाहे वह आदिम समाज हो या आधुनिक, चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित। आदिम समाजों में इसे दुष्कृति के नाम से जाना जाता था। उस समय यह माना जाता था कि बालक अपराध किसी दुनिया में निवास करने वाली विभिन्न शक्तियों (भूत-प्रेत आदि) के वशीभूत होकर करता है। ये शक्तियां बालक के सिर पर बैठ जाती हैं और उसे अपराध करने के लिये विवश कर देती हैं। धीरे-धीरे यह मान्यता समाप्त हो गयी क्योंकि इसमें वैज्ञानिकता का अभाव था।[3]

इस सिद्धान्त के पतन के उपरान्त बाल-अपराधी व्यवहार की प्राकृतिक व्याख्या लोकप्रिय हुई। यह सिद्धान्त उन सभी अपराधी व्यवहार की व्याख्याओं का संकलन है, जिसमें अपराध की उत्पत्ति दूसरी दुनिया में निवास करने वाली शक्तियों के आधार पर न करके, इसी दुनिया तथा बालक एवं समाज में निहित जन्मजात तथा अर्जित प्रवृत्तियों के आधार पर शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आर्थिक कारकों के माध्यम से किया जाता है।

18वीं शताब्दी में शास्त्रीय सम्प्रदाय का जन्म हुआ जिसके प्रवर्तक बेकारिया तथा बेन्थम थे। शास्त्रीय सम्प्रदाय तार्किकता पर आधारित था, जिसके अनुसार बालक अपनी स्वतन्त्र इच्छा (फ्री विल) के आधार पर अपने व्यवहार-प्रतिमानों का चयन करता है और उसके जीवन के सही या गलत मार्ग को चुनने का अन्तर्निहित शक्ति विद्यमान रहती है।

शास्त्रीय सम्प्रदाय सुखवाद (हेडोनिज्म) की अवधारणा पर आधारित है, जिसका अर्थ है कि मानव-व्यवहार सुख-दुख की अनुभूति पर ही आंका जा सकता है। इस सम्प्रदाय के अनुसार बालक कोई भी कार्य करने से पहले यह सोचता है कि उस कार्य से होने वाला सुख उस कार्य से होने वाले दुख से कम है या अधिक है। यदि सुख-प्राप्ति की सम्भावना अधिक है तो वह बालक इस कार्य को करेगा ही, चाहे वह असामाजिक तथा अवैधानिक ही क्यों न हो।

जैसे जैसे मानव व्यवहार सम्बन्धी ज्ञान में वृद्धि हुई वैसे-वैसे अपराधशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, और सांख्यिकी आदि विषयों में वैज्ञानिकता बढ़ी। मानव-व्यवहार (विशेष-रूप से अपराधी व्यवहार) की व्याख्या तार्किकता एवं बौद्धिकता के एक मात्र आधार से हटकर बालक की पैतृकता, शारीरिक गठन, मानसिक संरचना तथा भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण के आधार पर की जाने लगी। यह व्याख्या अपराध कारणों की खोज अपराधी में निहित अच्छाई-बुराई चुनने की बौद्धिक क्षमता से हटकर उन शक्तियों की ओर अपना ध्यानाकर्षण किए हुए थी, जो मनुष्य के नियंत्रण से परे है और जिसकी व्याख्या एक वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा की जा सकती है। अपराधी व्यवहार की इस व्याख्या को सकारात्मक सिद्धान्त के रूप में माना गया। इस प्रकार वर्तमान समय में बालकों के अपराधी-व्यवहार की व्याख्या विभिन्न कारकों के सन्दर्भ में की जाने लगी।[4]

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि बाल अपराध की समस्या हर युग और हर काल में अवश्य ही रही। प्रत्येक समाज में कुछ बालक अवश्य ही ऐसे पाये जाते है जो अपेक्षित आचार व्यवहार के दोषी होते है, इसलिए हमें इस सत्य को स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि एक काल्पनिक एवं मिथ्या समाज को छोड़कर अपराध को बिलकुल मिटाया नहीं जा सकता। अपराध उसी प्रकार सदैव व्याप्त रहने वाली दशा है, जिस प्रकार

बीमारी, रोग तथा मृत्यु। यह एक निरन्तर प्रवाहित रहने वाले झरने के समान है और पुनरावृत्त शीत के समकक्ष है। समाज में जटिलता जितनी बढ़ती जाती है, उतना ही व्यक्तियों, विशेषकर बालकों के लिये इससे बचना कठिन हो जाता है और वह इतना ही इसके शिकार होते चले जाते हैं।

वास्तविकता तो यह है कि बाल-अपराध की स्पष्ट परिभाषा नहीं की जा सकती। विभिन्न विशेषज्ञों ने विभिन्न मत व्यक्त किये हैं। कुछ विशेषज्ञ उसके कानूनी पहलू पर जोर देते हैं जबकि कुछ अन्य विशेषज्ञ व्यवहारिक समस्याओं पर जोर देते हैं, सच तो यह है कि इस समस्या पर उसे सामाजिक संरचना तथा उसके कार्य से पृथक करके स्वतंत्र रूप से विचार नहीं किया जा सकता। इस प्रकार कानूनी दृष्टिकोण से कुछ लेखकों जैसे: रेकलेस, एच.एच. लाऊ, शेल्डन तथा ग्लूक, शेफर तथा न्यूडेन ने समस्या के कानूनी पक्ष अर्थात् किसी बालक द्वारा अपराधी कानून का उल्लंघन पुलिस द्वारा उसकी गिरफ्तारी तथा बाल न्यायालयों द्वारा उस बालक की दोषसिद्धि की प्रमाणिकता को इस शब्द की उचित वैधानिक परिभाषा करने में महत्वपूर्ण समझते हैं। इस प्रकार कानूनी दृष्टिकोण से बाल-अपराध 8 वर्ष से अधिक तथा 16 वर्ष के कम आयु के बालक द्वारा किया गया कानून विरोधी कार्य है, जिसे कानूनी कार्यवाही के लिये बाल न्यायालय के समक्ष उपस्थित किया जाता है। सोल रूविन ने बाल-अपराध के कानूनी अर्थ को एक पंक्ति में व्यक्त करते हुए लिखा है कि "कानून जिस कार्य को बाल-अपराध मानता है वही बाल-अपराध है।"[5]

बाल अपराध की परिभाषा

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से कुछ विद्वानों, जैसे सिरिल बर्ट (1955), गिलिन और गिलिन (1945), क्लिनार्ट (1957), हेकरवाल (1939) ने बाल-अपराध की समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में परिभाषा दी है। उनके अनुसार एक बालक को अपराधी तभी माना जायेगा जब उसकी समाज विरोधी प्रवृत्तियां इतनी गम्भीर रूप धारण कर लेती हैं कि उसके विरूद्ध सरकारी कार्यवाही करना आवश्यक हो जाता है। व्यापक शब्दों में, प्रत्येक समाज अपने सदस्यों के व्यवहार को संचालित एवं निर्देशित करने के लिये कुछ नैतिक, सामाजिक तथा वैधानिक नियमों की रचना करता है, और उनसे ये आशा करता है कि वह कोई ऐसा व्यवहार न करे जिससे समाज को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक क्षति पहुंचे और बनी हुई व्यवस्था के नियामक मापदण्डों, नियमों और निर्देशों का उल्लघंन हो। परन्तु किसी भी समाज में आदर्शात्मक आकांक्षा की पूर्ण प्राप्ति संभव नहीं हो पाती है, क्योंकि सभी व्यक्ति अपने व्यवहार को कानून तक नैतिकता के दायरे में नहीं रख पाते। कुछ बालक अपने शारीरिक विषमताओं,मानसिक असमानताओं तथा सामाजिक- आर्थिक दबावों एवं परिस्थितियों में फंसकर कुछ ऐसे कार्य करते हैं, जिन्हें समाज अनैतिक, असामाजिक तथा अवैधानिक मानता है, और जिनके करने वाले बालक को दण्ड देता है।[6]

संक्षेप में समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से बाल-अपराध बालक द्वारा किया गया ऐसा कार्य है जिससे समाज के व्यवहार नियामक आदेशों एवं आदर्शों का उल्लघंन होता है और जिससे सामाजिक संगठन को क्षति पहुंचती है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से डॉ. सुशील चन्द्रा द्वारा दी गयी परिभाषा सर्वाधिक उपयुक्त जान पड़ती है। उनके अनुसार "बाल-अपराध बचपनेपन की नटखटता, दुर्व्यवहार एवं दुराचरण का एक विशिष्ट रूप है। बालकों में इस तरह का व्यवहार सभी संस्कृतियों में समान रूप से पाया जाता है, परन्तु जब बालकों का यही व्यवहार इस प्रकार की आदतें बन जाती हैं कि उससे समाज की स्वीकृत मान्यतायें खण्डित होने लगती हैं तब यह व्यवहार बाल-अपराध कहलाता है।"[7]

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से बाल अपराध को सामाजिक मूल्यों पर लचकहीन प्रहार के रूप में परिभाषित किया जाता है।[8] इस परिभाषा का आशय यह है कि समस्त बाल-अपराधी व्यवहार लचकहीन होते हैं। इसका अर्थ है कि जिन व्यवहारों को बाल-अपराध की श्रेणी में रखा जाता है वे वह व्यवहार होते हैं जो अपराध की ओर लक्षित न होकर स्वयं समाज की ओर लक्षित होते हैं। यहां यह विचारणीय है कि मानसिक विकार की दशाओं में व्यक्ति का व्यवहार स्वयं अपने प्रति लक्षित होता है। मार्टिन एच. न्यूमेयर[9] ने भी बाल-अपराध की व्याख्या मूल्य-व्यवस्था के संदर्भ में की है। इनके अनुसार "विस्तृत सांस्कृतिक तथा सामाजिक दृष्टिकोण से बाल-अपराध का अर्थ बालक के व्यवहार उस प्रमुख संस्कृति (डामिनेन्ट कल्चर) की मूल्य अपेक्षाओं के विपरीत है, जिस संस्कृति में वह बालक अपना जीवन व्यतीत करता है। दूसरे शब्दों में बालक का व्यवहार उस प्रमुख मूल्य व्यवस्था के विपरीत होता है, जिससे उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इस रूप में "बाल-अपराध का अर्थ समाजविरोधी व्यवहार के एक ऐसे स्वरूप से है जिसमें वैयक्तिक एवं सामाजिक विघटन दोनों ही सन्निहित होते हैं, जिसमें समाज के आदर्शों एवं नियमों के अनुरूप मूल्य निर्धारण की व्यवस्था होती है, और जो समाज के लिये हानिकारक हैं।

बाल-अपराध का अर्थ अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग होता है। कोई एक ही परिभाषा सभी देशों पर लागू नहीं हो सकती। समाजशास्त्री, मनोवैज्ञानिक व कानूनविद बाल-अपराध की परिभाषा अपने अलग तरीकों से करते हैं। यह हर देश में भिन्न होती है, क्योंकि एक जगह जो काम करने का निषेध होता है, दूसरी जगह वही करने की छूट होती है। बाल-अपराध एक ऐसा अस्पष्ट शब्द है, जो मानवीय व्यवहार को समझना सरल बनाने की बजाय और मुश्किल बना देता है। यह अपराध कर रहे या उस ओर प्रवृत्त कई तरह के युवकों को शामिल करता है। बाल अपराधी एक सामान्य शरारती बच्चे से लेकर कानून तोड़ बैठे युवा तक कोई भी हो सकता है। वह एक खतरनाक हमलावर भी हो सकता है जो आदतन अपराधी हो और जो अपने कृत्य के बदले में कुछ हासिल भी करता हो। एक व्यापक शब्द के रूप में बाल अपराध बीमारी की अवधारणा की तरह है। एक व्यक्ति बीमार हो सकता है और उसे पोलियो या खसरा हो सकता है। यहां बीमारी अलग है, उसका कारण भी अलग है और इलाज भी अलग। यही बात बाल अपराध के लिए सत्य है। बीमारी की तरह ही, बाल अपराध कई समस्याओं की ओर इंगित करता है, कई कारणों से होता है और इसका इलाज भी अलग अलग तरीके से होगा।[10]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि किशोर अपराध कहीं भी सुपरिभाषित नहीं हैं और इस शब्द का कोई सुनिश्चित अर्थ नहीं है। समाजशास्त्री, मनोवैज्ञानिक और कानूनविदों ने इस शब्द को अपना अलग अर्थ दिया है। ऐसे विवाद को टालने के लिए बेहतर है कि किशोर अपराध की विस्तृत अर्थ में परिभाषा तय कर ली जाए। विस्तृत दृष्टिकोण से बाल अपराध को परिभाषित करने में हमें स्वतंत्र समाज के सभी तरह के बाल अपराधों का अध्ययन करना होगा, किन्तु यहां प्रश्न उठता है कि इसके लिये कौन सा दृष्टिकोण अपनाया जाये, क्योंकि इस तरह का अध्ययन तो उन्हीं क्षेत्रों में हो सकता है जहां अपराधी बालकों की संख्या अधिक हो। प्राय: लोग बस्ती-क्षेत्र को लेते हैं। वहां के बालकों के पूर्व-अपराधी क्रियाओं का वे पहले अध्ययन करते हैं, उनकी पारिवारिक एवं आर्थिक स्थिति, माता-पिता के व्यवहार का अध्ययन, पड़ोस का अध्ययन किया जाता है।

इस तरह का अध्ययन करने से नीचे से ऊपर की ओर बढ़ते हुए बाल अपराध को भली प्रकार समझा जा सकता है अर्थात् विस्तृत अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि किन कारणों से बालक अपराधी प्रवृत्ति की ओर आकृष्ट होता है और समाज-विरोधी कार्य कर अपराध करता है। किन्तु वर्तमान समय में बाल अपराध की वही परिभाषायें मान्य हैं जिनमें बाल अपराध को ऐसा कार्य माना गया है जिससे किसी समाज अथवा समुदाय के हितों की रक्षा करने वाले कानून या उस देश, राज्य की आपराधिक संहिता की किसी एक या कई धाराओं का उल्लंघन होता है।

संदर्भ

1. चक्रवती तरूण, अपने बच्चे को श्रेष्ठ कैसे बनाएं, डायमण्ड पोकेट बुक्स प्रा. लि., 2016।
2. मंजू, भारत में बाल अपराध, प्रिन्टवेल प्रकाशन, जयपुर, 2000, पृ. 20।
3. स्रोतः समाज कल्याण, 2003, मई, पृ. 11।
4. श्रीवास्तव, एस.पी., भारत में अपराध दण्ड एवं सुधार, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, 1977, पृ. 1।
5. भटनागर बी0ए0, अधिगमकर्ता का विकास एवं शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया, राधिका कम्प्यूटर्स, मेरठ, 2013।
6. मिश्र कुमार ब्रज, मानस रोग असमान्य मनोविज्ञान, PHL Learning प्रा. लि., दिल्ली, 2015।
7. चन्द्र, सुशील, सोशोलिजी ऑफ डिविएशन इन इण्डिया, एलाइड पब्लिशर्स, दिल्ली, 1967, पृ. 147।
8. गोखले, एस.डी., इम्पैक्ट ऑफ इस्टीट्यूशन आन जुवेनिल डिलिक्वेन्ट यूनाइटैड एशिया पब्लीकेशन लि, बम्बई, 1969, पृ. 6।
9. न्यू मेयर, मार्टिन, एच., जुवेनिल डिलिक्वेंसी, न्यूयार्क, 1961, पृ. 26।
10. स्रोतः समाज कल्याण, महिला एवं बाल विकास विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, मई, 2003-04 पृ. 11।

धर्मवीर भारती कृत 'अंधा युग' नाटक की तात्विक समीक्षा

मीना कुमारी

आधुनिक गीती - नाट्यों में सबसे सुन्दर मिथक का प्रयोग 'अंधा युग' में देखने को मिलता है। 1954 ई. में प्रकाशित इस गीति नाट्य में भारती जी ने महाभारत में मिथ द्वारा विश्व युद्ध की बाढ़ से उपजे विनाशक चिन्हों का साक्षात्कार करवाते हुए श्तमसोमा ज्योतिरगमय की तलाश की है। विगत दो दो विश्वयुद्धों ने मानव की आस्था को हिला दिया, चारों तरफ भय, निराशा, अनारस्था, अमर्यादा, हिंसा, आत्मघात जैसी विघटनकारी प्रवृत्तियां जन्म लेने लगी। विघटन की यह प्रक्रिया बाह्य और आंतरिक दोनों स्तरों पर घटित हुई। युद्ध एक ऐसी जटिल एवं प्रमुख समस्या है जिसकी कालिमा कदाचित् सभी कालों में छायी रही। युद्ध की काली छाया सामाजिक इकाई को तोड़कर समस्त मानवीय मूल्यों को जर्जरित कर देती है। युद्ध शुभ और कोमलतुम तत्वों को निगल जाता है। युधिष्ठिर जैसे सत्यनिष्ठ को भी अर्द्धसत्य का और कृष्ण को कूटनीति का सहारा लेना पड़ता है। इसके बावजूद युद्ध चाहे जितने बड़े मूल्यों के लिए लड़ा गया हो, विजय अविवेकी और स्वार्थी तथा अंध प्रवृत्तियों की ही होती है, अंतिम परिणति में मानवता को ही घायल होना पड़ता है। युद्ध के कारण ही आज का मानव मन दिशाहीन-सा, आतंकित, संत्रस्त, कुंठित होकर पशुत्व की ओर झुक गया है उसके हृदय पटल पर अवसाद-विषाद का घना कोहरा छाया हुआ है।

विश्वयुद्धों की विभीषिका के पश्चात् सांस्कृतिक विघटन की जो भयंकर समस्या विश्व मानव के सामने आयी, वह बहुत कुछ महाभारत युद्ध के उपरांत आयी विकृति, अमर्यादा एवं अनैतिकता जैसी ही है। महाभारत की तरह ही द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् भी धर्म, ईश्वर, नैतिकता, सत्य, मर्यादा, आचरण, मानवीय मूल्य और जीवन दर्शन की मीनारें तेजी से ढहने लगीं। दोनों विश्वयुद्धों से पीड़ित मानवीय संवेदनाएँ, मानव का घोरं अवमूल्यन, मूल्यों के विघटन की विभीषिका, जिजीविषा के लिए भटकते युवा वर्ग का नैतिक पतन, सामाजिक अधोगति, नेताओं का चारित्रिक ह्रास इत्यादि अनेक विसंगतियों का साम्य महाभारत युद्ध से बिठाकर, मिथकीय कलेवर में आज के व्यक्ति की मनोग्रंथियों को सुलझाने की कोशिश 'अन्धा युग' में भारती जी की रही है-

"युद्धोपरांत
यह अन्धा युग अवतरित हुआ
जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ आत्माएं सब विकृत हैं
है एक बहुत पतली डोरी
मर्यादा की पर वह भी उलझी है दोनों ही पक्षों में
सिर्फ कृष्ण में साहस है सुलझाने का
वह है भविष्य का रक्षक, वह है अनासक्त
पर शेष अधिकतर अंधे
पथभ्रष्ट आत्महारा विगलित
यह कथा उन्हीं अंधों की है
या कथा ज्योति की है, अंधों के माध्यम से।"[1]

युद्धोपरांत 'अन्धा युग' का साम्राज्य स्थापित हो जाता है, समाज की दशा दयनीय हो जाती है और मानव चारित्रिक दृष्टि से हीन एवं पशु बन जाता है। तत्वों के आधार उनकी समीक्षा इस तरह है -

1. कथानक-

'अन्धा युग' का कथ्य महाभारत कालीन प्रासंगिकता लिए हुए युद्धोत्तर मानवीय संवेदनाओं से जुड़ा हुआ है। महाभारत के अठारहवें दिन की संध्या से लेकर प्रभासतीर्थ में कृष्ण की मृत्यु के क्षण तक की केवल उन्हीं घटनाओं को भारती ने अपना प्रतिपाद्य बनाया है जो कथ्य को मुखरित करने में सहायक हुई हैं। नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए पौराणिक संदर्भों के साथ-साथ भारती ने कल्पना का भी सहारा लिया है। इस प्रख्यात कथावस्तु में युद्धोत्तर मूल्यहीनता, अमानवीयता, विकृत, वैयक्तिक, सामाजिक विघटन, युद्ध की अणु संस्कृति, टूटती हुई मार्यादा एवं जीवन की कुरूपता के बीच से गुजरते हुए मर्यादा एवं आस्था की शुभ्र ज्योति प्रज्ज्वलित की गयी है। कथ्य की स्पष्टता करते हुए भारती ने निर्देश भी दिया है कि -"इस दृश्य-काव्य में जिन समस्याओं को उठाया गया है उसके सफल निर्वाह के लिए महाभारत के उत्तरार्द्ध की घटनाओं का आश्रय ग्रहण किया गया है। अधिकतर कथावस्तु श्प्रख्यातश है, केवल

कुछ ही तत्व 'उत्पाद्य' हैं- कुछ स्वकल्पित पात्र और कुछ स्वकल्पित घटनाएँ।"[2] 'अन्धा युग' का संपूर्ण कथानक पाँच अंको में विभक्त है, कौरव-नगरी, पशु का उदय, अश्वत्थामा का अर्द्धसत्य, गांधारी का शाप, विजय एक क्रमिक आत्महत्या। कथा में - 'स्थापना एवं समापन' की व्यवस्था है, बीच में 'अंतराल' भी रखा गया है। दृश्य परिवर्तन के समय लोक-नाट्य परंपरा की कथा गायन पद्धति की योजना की गयी है।

'स्थापना' से कृति का आरंभ होता है जिसमें नमस्कार की मुद्रा में नर्तक मंगलाचरण के बाद आने वाले भविष्य की उद्घोषणा करता है कि धर्म, अर्थ का ह्रास और धरती का क्षय होने वाला है। उस भविष्य में पूँजीपतियों की सत्ता होगी जिनसे पीड़ित होकर जनता गहन गुफाओं में छिपकर दिन काटेगी। एक प्रकार से संपूर्ण घटना चक्र का आभास नर्तक के माध्यम से शुरू में ही मिल जाता है।

स्थापना के पश्चात प्रथम अंक कौरव - नगरी का प्रारम्भ कथागायन से होता है जिसमें महाभारत युद्ध में कौरवों और पाण्डवों द्वारा किये गये अमर्यादित आचरण, मूल्यात्मक विघटन दोनों पक्षों की पतनोन्मुखता तथा अंधेपन की विजय के साथ-साथ द्वापर युग के श्रीहीन होने का संकेत मिलता है।

"यह रक्तपात अब कब समाप्त होना है
यह अजव युद्ध है नहीं
किसी की भी जय
दोनों पक्षों को खोना ही खोना है
अंधों से शोभित था युग का सिंहासन
दोनों ही पक्षों मे विवेक ही हारा
दोनों पक्षों में जीता अंधापन
भय का अंधापन, ममता का अंधापन
अधिकारों का अंधापन जीत गया"[3]

महायुद्ध के अंतिम दिन की संध्या के समय गहरी उदासी से भरे कौरव-नगर के सूने गलियारे में दो बूढ़े प्रहरी घूम रहे हैं। सत्रह दिनों के लोमहर्षक संग्राम में सब-कुछ समाप्त हो गया। अंत:पुर में मरघट-सी खामोशी छायी हुई है। गलियारे के जिस रत्न जड़ित फर्शों पर कभी कौरव-वधुएं मंथर गति से चला करती थीं आज वे विधवा हो गयी हैं। दोनों प्रहरी अरक्षणीय अंधी संस्कृति की रक्षा करते, अर्थहीन जीवन जीते-जीते थक चुके हैं। यह उनका अभिशाप है कि उन्हें अंधा राजा मिला। इसी बीच प्रहरी नरभक्षी गिद्धों को कुरुक्षेत्र की ओर जाते देखते हैं।

अंत:पुर में विदुर धृतराष्ट्र एवं गांधारी सभी शोकमग्र कुरुक्षेत्र में हो रहे युद्ध का परिणाम जानने के लिए चिंतातुर हो, संजय की प्रतीक्षा कर रहे हैं। धृतराष्ट्र को पहली बार अहसास होता है कि उनके जन्मांध और आत्मनिष्ठ व्यक्तित्व के कारण ही मर्यादा नष्ट हुई। सामाजिक मर्यादाओं का निर्वाह करने में वैयक्तिक मानदंडों की वजह से वे असफल रहे जिससे पूरा राज्य युद्ध की विभीषिका से श्अंधायुगश में परिवर्तित हो गया। विदुर उन्हें समझाते हैं कि कृष्ण ने कहा था-

"मर्यादा मत तोड़ो
तोड़ी हुई मर्यादा
कुचले हुए अजगर-सी
गुंजालिका में कौरव वंश को लपेट कर
सूखी लकड़ी-सा तोड़ डालेगी"[4]

कृष्ण का नाम सुनते ही गांधारी विक्षुब्ध हो उठती हैं। वे मानती हैं कि कृष्ण ही इस युद्ध के सूत्रधार हैं। कृष्ण की मर्यादा नीति में अब उन्हें विश्वास नहीं रहा इसीलिए वे कृष्ण को वंचक और मर्यादाहीन कहती हैं-

"जिसको तुम कहते हो प्रभु
उसने जब चाहा
मर्यादा को अपने ही हित में बदल लिया।
वंचक है"[5]

आस्थावान विदुर इस कटुता को गांधारी की पीड़ा मानते हैं और युद्ध-शोक में जर्जरित माता गांधारी के लिए कृष्ण से क्षमा माँगते हैं-

"यह कटु अनास्था भी अपने
चरणों में स्वीकार करो!
आस्था तुम लेते हो
लेगा अनास्था कौन?
क्षमा करो प्रभु
पुत्र-शोक से जर्जर माता है गांधारी"[6]

तभी गीता के अनासक्त कर्म की उद्घोषणा करता हुआ वृद्ध याचक प्रवेश करता है। मुद्रायें देकर याचक को विदा कर दिया जाता है। गांधारी को याचक की बातों पर विश्वास नहीं होता, वे उसका उल्टा अर्थ निकालती है-

"अवश्य होगी जय
मेरी यह आशा
यदि अंधी है तो हो। पर जीतेगा
दुर्योधन जीतेगा"[7]

यहाँ पर गांधारी का चरित्र परिवर्तित लगता है, वे महाभारत की गांधारी न होकर वात्सल्य से परिपूर्ण पतिपरायणा नारी हैं। पुत्र के ममत्व ने उन्हें भी अँधा कर दिया है, स्वाभाविक भी है क्योंकि युद्ध का अभिशाप उन्होंने झेला है, वधुओं की कलाइयों से चूड़ियाँ भी उतारी हैं इसीलिए वे युद्ध की पराजय और पुत्र-शोक से जर्जर एवं सशंकित हैं। इसके पश्चात् पुनः प्रहरियों के वार्तालाप द्वारा दासवृत्ति एवं निरर्थक-जीवन जीने वाली जनता की मनोवृत्तियों को व्यक्त किया गया है। अंत में कथागायन है, जिसमें कौरव-नगरी के सूनेपन को रेखांकित किया गया है।

दूसरे अंक में 'पशु का उदय' का प्रारम्भ पशु गायन से होता है। जिसमें संजय का परिचय दिया गया है। तीसरे अंक की शुरुआत भी कथागायन से की गई है। जिसमें युद्ध क्षेत्र से लौटती हुई हारी, थकी घायल कौरव सेना का वर्णन किया गया है। चौथे अंक का नाम है 'गांधारी का शाप' यह अंक बहुत भयावह है जिसमें अश्वत्थामा के भीषण नरसंहार और गांधारी के शाप का उल्लेख किया है। पांचवें अंक के बाद 'समापन' में प्रभु की मृत्यु की करुणा तथा रूपांतरण है।

2. चरित्र - चित्रणः-

पात्र परिकल्पना नाटक का सशक्त एवं सबल अंग चरित्र है। काव्य-नाटक में तो पात्रों के चयन एवम् विकास पर विशेष ध्यान दिया जाता है। गीति-नाट्य के पात्र सामान्य नाटक के पात्रों की अपेक्षा अत्यंत भावुक और संवेदनशील होते हैं। उनमें दैनिक जीवनगत वार्तालापों और क्रियाकलापों की अपेक्षा रागात्मक प्रवृत्तियाँ अधिक तीव्र होती हैं। 'अन्धा युग' की पात्र-परिकल्पना वैचारिक पृष्ठभूमि पर आधारित होने के कारण इसके अधिकांश पात्र ऐतिहासिक होते हुए भी मानसिक प्रवृत्तियों, विभिन्न दृष्टिकोणों एवं अन्तर्ग्रंथियों के प्रतीक बन गये हैं। प्रतीकत्व उनकी मौलिकता को नष्ट नहीं करता बल्कि उन्हें एक विराट मानवीय प्रासंगिकता प्रदान करता है जिसके कारण 'अन्धा युग' महाभारत का पुनरावर्तन न हो कर आधुनिक मानव के मन में अन्तर्जगत का काव्य नाटक बन गया है। महाभारत कालीन उस ह्रासोन्मुख भारतीय संस्कृति को आज की मूल्यहीन संस्कृति के साथ संदर्भित करना भारती की निपुणता का परिचायक 'अन्धा युग' के सोलह पात्रों में अश्वत्थामा, कृष्ण, धृतराष्ट्र, विदुर, संजय, व्यास, युयुत्सु, कृपाचार्य, कृतवर्मा, युधिष्ठिर, बलराम, वृद्ध याचक, गूँगा सैनिक, दो प्रहरी पुरुष पात्र हैं और नारी पात्रों में गांधारी का उल्लेख है। डॉ० हरि चरण वर्मा के अनुसार- "चरित्र-चित्रण के आधार पर तीन प्रकार के पात्रों की संघटना 'अन्धा युग' में स्वीकार की है- दैवीय, अर्द्धदैवीय तथा मानवीय पात्र।"[8]

अश्वत्थामा- 'अन्धा युग' का सबसे जीवंत और महत्वपूर्ण चरित्र अश्वत्थामा का रहा है। अश्वत्थामा का सर्वप्रथम परिचय द्वितीय अंक में होता है। शूरवीर, स्पष्टवादी, स्वाभिमानी अश्वत्थामा छल द्वारा की गयी अपने पिता की हत्या, दुर्योधन की पराजय एवं दुर्योधन के साथ हुए द्वन्द्व युद्ध में भीम के छल से कुंठित और विक्षिप्त हो जाता है। युधिष्ठिर का अर्द्धसत्य से समझौता अश्वत्थामा के अंदर की समस्त मानवीय संवेदनाओं और मूल्यों को निर्मूल कर उसे विध्वंस, घृणा और बर्बरता का प्रतिरूप बना देता है।

"धर्मराज होकर वे बोले
नर या कुंजर'
मानव को पशु से
उन्होंने पृथक नहीं किया
पशु मात्र, अंध बर्बर पशु"[9]

यही घटना अश्वत्थामा के कोमलतम् और शुभ की भ्रूण हत्या का कारण बनती है जिसके परिणाम स्वरूप अश्वत्थामा संत्रास, कुण्ठा, अपमान बोध, विद्रोह, हिंसा एवं वर्तमान भयावहता को भोगने के लिए विवश हो जाता है। पराजय की अंधगुफा में भटका, भग्न हृदय अश्वत्थामा जीवन से ऊब जाता है, उसे अपना जीवन व्यर्थ लगने लगता है। निरर्थक एवं नपुंसक अस्तित्व की यातना से पीड़ित होकर ही वह आत्महत्या करने की सोचता है-

"आत्मघात कर लूँ
इस नपुंसक अस्तित्व से
छुटकारा पाकर
यदि मुझे
पिछली नरकाग्नि में उबलना पड़े
तो भी शायद।
इतनी यातना नहीं होगी!
अनास्था का मूर्तिमान रूप है।"[10]

कृष्ण : -

महाभारत के युग पुरुष को भारती ने 'अन्धा युग' में मानवतावादी धरातल पर प्रस्तुत करके अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। यद्यपि पूरे गीति-नाट्य में कृष्ण मंच पर उपस्थित नहीं हुए हैं फिर भी वे सर्वत्र विद्यमान हैं। मर्यादायुक्त आचरण करने वाले कर्मयोगी कृष्ण अनासक्त नियति के नियामक हैं। उनकी शक्ति और क्षमता इतनी प्रबल है कि जब वे इतिहास को अनासक्त होकर चुनौती देते है तो नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है। 'अन्धा युग' के कृष्ण भी गीता के कृष्ण की तरह निष्काम कर्म में आस्था रखने वाले हैं। वृद्ध याचक के कथन से उनकी कर्मवादी दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है। नाटक के प्रारंभ में ही कृष्ण को मर्यादा की रक्षा करने बाला, अनासक्त, निर्लेप और भविष्य का रक्षक कहा गया है। इस मर्यादा के कारण ही वृद्ध याचक उनका रथ रोक नहीं पाता। क्योंकि -"उनमें सारे समय के प्रवाह की नर्यादा बँध जाती है"[11]

कृष्ण के चरित्र में निष्क्रियता का स्थान नहीं है। उनके जीवन का मूल्य है- आचरण की सभ्यता। इसीलिए वे सत्य और असत्य का निर्णय परिस्थितियों के अनुसार करते हैं। उनका मानना है कि कोई भी आदर्श उद्धार नहीं कर सकता, व्यक्ति का उद्धार उसके अपने ही हाथों से होगा, उसे अकेले ही संघर्षमय परिस्थितियों से जूझते हुए प्रकाश की ओर बढ़ना होगा। अर्जुन को इसी मानव मूल्य का संदेश देते हुए वे कहते हैं-

"अर्जुन उठाओ शस्त्र
विगत ज्वर युद्ध करो
निष्क्रियता नहीं,
आचरण में ही मानव अस्तित्व की सार्थकता है।"[12]

गांधारी :- महाभारत की त्याग और बलिदान एवं पातिव्रत्य की सजीव मूर्ति गांधारी को भारती जी ने 'अन्धा युग' में साधारण मानवीय संवेदनाओं के कलेवर से सजाया है। धर्म में आस्था रखने वाली गांधारी परिस्थितिवश कठोर हो जाती हैं। महाभारत के युद्ध को वे धर्मयुद्ध नहीं मानती बल्कि दोनों ही पक्षों में अधर्म की स्थिति स्वीकार करती हैं। बहिर्जगत के मिथ्याडम्बर से वे भली-भाँति परिचित हैं-

"लेकिन अंधी नहीं थी मैं
मैंने यह बाहर का वस्तु जगत अच्छी तरह जाना था
धर्म, नीति मर्यादा यह सब है केवल आडम्बर मात्र
निर्णय के क्षण में विवेक और मर्यादा
व्यर्थ सिद्ध होते आये हैं सदा..मुझको इस झूठे आडम्बर से नफरत थी"[13]

उनका मानना है कि दोनों पक्षों की निर्णायक स्थिति के समय निर्णायक पक्षपाती हो जाता है उसका विवेक पीछे रह जाता है। धर्म, नीति, मर्यादा, अनासक्ति और कृष्णार्पण अंधी मनोवृत्तियों की पोशाकें हैं, आडम्बर हैं, इसीलिए वे अपनी आँखों पर पट्टी बाँध लेती हैं, फिर अंधी मनोवृत्तियाँ उनका पीछा नहीं छोड़ती। परिस्थितियों के 'अंधा युग' की गांधारी कटु, सत्यवादिनी, आक्रामक व्यक्तित्व तथा पाषाण हृदय तथा घोर यथार्थ की प्रति पूर्ति बन जाती है।

युयुत्सु :-

अश्वत्थामा के पश्चात् 'अन्धा युग' का सबसे दयनीय पात्र 'युयुत्सु' है। धृतराष्ट्र का पुत्र होने पर भी वह पाण्डवों की ओर से युद्ध करता है। उसका मानना था कि कृष्ण जिघर होंगे न्याय और धर्म उधर रहेगा जिसके कारण उसे नियति की दारुण परिस्थितियों से जूझना पड़ता है। अपनी पीड़ा को व्यक्त करता हुआ वह कहता है-

"मेरा अपराध सिर्फ इतना है। सत्य पर रहा मैं दृढ़"[14]

सत्य के मार्ग में चलने पर भी उसे अपमानित और उपेक्षित होना पड़ा। जीवन पर्यन्त सत्य और असत्य के अन्तर्द्वन्द्व में पिसता हुआ युयुत्सु उपेक्षामय जीवन जीने के लिए बाध्य रहता है। उसे युद्ध के अस्त्र-शस्त्र उतना आहत नहीं करते, जितना अपमान और उपेक्षा। तिरस्कार की चरम परिणति तब होती है जब उसे देखकर लोग दरवाजे बंद कर लेते हैं। कौरवों और पाण्डवों के अपमान का घूँट तो युयुत्सु पी जाता है लेकिन उता गांधारी की उपेक्षा और व्यंग्य उसे अर्द्ध विक्षिप्त-सा कर देते हैं। उसकी घायल बत्मा इस पीड़ा को सहन करने में असमर्थता का अनुभव महसूस करती है-

"मेरी यह परिणति है । ..... व्यास ने कहा
मुझसे
कृष्ण जिधर होंगे
जय भी उधर होगी
जय है यह कृष्ण की
जिससे मैं बधिक हैं,
मातृ वंचित हैं। सबकी घणा का पात्र हूं"[15]

विदुर :-

'अन्धा युग' के विदुर महाभारत के विदुर की तरह ही धर्मनिष्ठ आचरण करने वाले कृष्ण के अनुगामी भक्त और नीतिज्ञ हैं। प्रथम अंक में ही वे कौरव पक्ष की अनैतिकता और धृतराष्ट्र के विवेक शून्य अंध निर्णयों पर व्यंग्य प्रहार करते दिखाई देते हैं-

"मर्यादा मत तोड़ो
तोड़ो हुई मर्यादा
कुचले हुए अजगर-सी
गुंजालिका में कौरव वंश को लपेट कर
सूखी डाली-सा तोड़ डालेगी"[16]

विदुर नीति के कुशल जुरूर हैं किन्तु उनकी नीति साधारण स्तर की है जबकि आज के युग की सभी स्थितियाँ असाधारण हो गयी हैं इसलिए विदुर को भी जीवन मूल्यों की जटिलता में जूझना पड़ता है। शीलवान और आस्थावान गुणों से संपन्न विदुर जीवन में घटते हुए मूल्यों को लेकर शंकित हैं, अनास्था के भय की वजह से ही वे समय-समय पर सत्य का बयान करते रहते हैं। उनका व्यक्तित्व तटस्थ दृष्टा की तरह उदासीन और निरपेक्ष रहता है। 'अन्धा युग' के विदुर गाँधी के आदर्शों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसके सिक्के आज खोटे हो गये हैं और जिनके आदर्श की धुरी बिना पहियों के निष्क्रिय पड़ी है। कहते हैं जिसके सिक्के आज खोटे हो गये हैं और जिनके आदर्श की धुरी बिना पहियों के निष्क्रिय पड़ी है।

धृतराष्ट्र :-

धृतराष्ट्र जन्मांध होने के साथ-साथ एकाधिपत्य की संकीर्ण और स्वार्थ भावना से युक्त अंधशासक के प्रतीक हैं। अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के अलावा उन्हें और कुछ भी नहीं दिखाई देता। उनकी आँखों पर ममता की पर्त छायी हुई है। स्वार्थांधता के वशीभूत अंधे धृतराष्ट्र को इसका भान नहीं हुआ कि वैयक्तिक सीमाओं के बाहर भी कुछ है। परिणाम स्वरूप वह बाह्य यथार्थ और सामाजिक मर्यादा को ग्रहण करने में असमर्थ रहा किन्तु पराजय की विभीषिका ने सहसा उनके विवेक को प्रबुद्ध कर मोह भंग कर दिया। महाभारत के अष्ठारहवें दिन उन्हें ज्ञात हुआ कि अंधेपन के कारण वस्तु जगत का उन्हें सीमित ज्ञान था जिसे वे सत्य समझते थे, उसके अतिरिक्त भी सत्य है। इस यथार्थ वस्तु स्थिति का बोध होते ही उनके अंदर की संकुचित भावनाएँ समाप्त होने लगीं-

"मेरी वैयक्तिक सीमाओं के बाहर भी
सत्य हुआ करता है। आज मुझे भान हुआ"[17]

सच भी है कि पहाड़ के नीचे आने पर ही ऊँट को अपनी सीमा का अहसास होता है। धृतराष्ट्र के साथ भी यही हुआ जब उसके अविवेक, मोहांध एवं स्वार्थ की परिणति विनाश में हुई तब यही विनाश उसके बाह्य यथार्थ जगत के बोध का माध्यम बना। परन्तु अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गयी खेत क्योंकि- "धृतराष्ट्र के मस्तिष्क में जगत के यथार्थ की धुँधली चेतना की रेखाएँ तब अंगड़ाई लेती हैं जब उसके अनुशासन का सूर्य अंतिम प्रहर की घड़ियों में निशा के अंध गर्भ में जाकर छुप गया था।"[18]

'अंधा युग' के युधिष्ठिर का चरित्र दुर्बल गुणों से युक्त, असफल राजनेता या शासक का प्रतिनिधित्व करता है। वृद्ध याचक 'अंधा युग' में वृद्ध याचक कल्पित पात्र है। प्रहरी 'अंधा युग' में जन साधारण का प्रतिनिधित्व करता है।

3. संवाद - योजना : -

संवाद - योजना काव्य-नाटक का मेरुदंड उसके संवाद होते हैं। इस दृष्टि से 'अन्धा युग' की संवाद योजना अत्यंत सशक्त है। इसके संवाद चाहे मुक्त छन्द में हो या तुकांत, प्रवाह का ध्यान कवि ने निरंतर रखा है। पात्रों के मनोवेगों और मन:स्थितियों को व्यंजित करने के लिए विस्मयादि बोधक, प्रश्न वाचक, उक्तियाँ, व्यंग्य संक्षिप्त, वाक्य विन्यास इत्यादि का प्रयोग किया है जिससे संवाद गत्वर, गर्मित तथा प्राणवान बन गये हैं। कथोपकथन को सशक्त बनाने के लिए सूक्तियों एवं अर्द्धसूक्तियों का भी प्रयोग किया गया है। तीव्र आक्रोश एवं व्यंग्य से भरे हुए ओजपूर्ण संवाद 'अन्धा युग' की रंगधर्मिता को मर्मस्पर्शी बना देते हैं-

"बेटा भुजाएं ये तुम्हारी थकी तो नहीं .....
अपने बन्धुजनों का
वध करते-करते"[19]

कहीं पात्रों का उत्तर-प्रत्युत्तर है तो कहीं आत्माभिव्यक्ति प्रधान स्वगत कथन। कुल मिलाकर भारती जी का यह नाट्य प्रयोग रंग पद्धतियों को ध्यान में रखकर किया गया है। इसकी संघटना लोक-नाट्य के आधार पर की गयी है- "भावबोध रंग परिकल्पना दोनों ही स्तरों पर यह पारंपरिक काव्य-नाट्य ही नहीं, नाटक मात्र के प्रचलित विधानों को तोड़कर नयी दिशाएं खोजता है। अब तक के काव्य-नाटक जिस यथार्थवादी रंगमंच को पृष्ठभूमि में रखकर लिखे गये थे, 'अन्धा युग' ने उनकी सीमाओं से बाहर जाकर एक नितांत नवीन रंगमंच की तलाश की। और इस तलाश के लिए उन्होंने प्रचलित सभी रंग विधाओं, लोक-नाट्य, ग्रीक नाट्य, पारसी रंगमंच, यथार्थवादी रंगमंच की रंग शैलियों को परखा और अपने काव्य-नाटक की अपेक्षाओं के अनुरूप उनका उपयोग किया।"[20]

4. वातावरण :-

'अंधा युग' का वातावरण ऐतिहासिक - पौराणिक है और उसकी संवेदना अत्याधुनिक। इस संवेदना ने एक तरफ कथानक की रेखाओं को संदर्भों के कठिन बिंदुओं में मिला दिया है तो दूसरी तरफ पात्रों को प्रतीक अथवा मानवीय संदर्भ में बदल दिया है। इसी वजह से कथानक और नाटक की रूप रचना के लिए नए उपकरणों और शैलियों का अनुसन्धान करती है। अतीत वर्तमान और भविष्य की सीधी रेखा में बहने वाले समय को इस रचना के वर्तमान बिंदु में ही संक्रमित कर और घटना स्थल की धारणा को स्थूल न मानकर उसे मानसिकता के सांचे में परिवर्तित किया गया है। देशकाल और वातावरण की इस नई धारणा के कारण ही 'अंधा युग' की रचनाशीलता अधिक जटिल हो गई।

5. भाषा :-

'अंधा युग' की भाषा शैली काव्यात्मक, बिंब - प्रधान और प्रतीकात्मक है, जिसमें बोलचाल की सहजता और गति भी है, और जो मुक्त छंद तथा तुकबंदी का मिश्रण है। यह शैली संस्कृत, तत्सम, तद्भव शब्दों के साथ ही अरबी - फारसी शब्दावली का प्रयोग भी करती है। भाषा में लयात्मकता, द्वंयात्मकता और बिंबों का अधिक सामंजस्य हैं, जो पात्रों के चरित्र और युग के सत्य को सजीव रूप से दिखाया गया है। भारती जी के शब्द - विन्यास में साहित्यिक हिंदी का सुन्दर उत्कर्ष मिलता है, भाषा सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए संस्कृत के तत्सम शब्दों का तो लाभ लिया ही है, कहीं कहीं तो संस्कृतियाँ (संस्कृत युक्तियां) बिल्कुल उसी ही रूप में रख दी हैं। भाषा की विशेषताएँ इस तरह हैं -

- काव्यात्मकता - वैसे तो यह गीती नाट्य है, इसकी भाषा स्वाभाविक रूप से काव्यात्मक है और संवाद पद्यात्मक शैली में हैं।
- बिंब और प्रतीक - नाटक में बिंबों और प्रतीकों का खूब प्रयोग हुआ है, जो कथ्य को गहनता प्रदान करता है।
- बोलचाल की सहजता - कवित्व पूर्ण भाषा के बावजूद, इसमें बोलचाल की भाषा की सहजता और प्रवाह है, जो सामान्य जन मानस के लिए भी समझने योग्य है।
- लय और गति - इसकी भाषा में लय और गति की विविधता है, जो मंच पर दर्शकों को लुभाने और पात्रों के चरित्र - चित्रण में सहायक हैं।
- शब्दावली - भाषा में संस्कृत, तत्सम, तद्भव शब्दों के साथ - साथ युगीन सत्य की अभिव्यक्ति के लिए अरबी, फारसी शब्दावली का भी मिश्रण प्राप्त होता है।
- मुक्तछंद - भाषा में मुक्त छंद का प्रयोग हुआ है, जिसमें तुकांत और अतुकान्त दोनों तरह की पंक्तियाँ उपलब्ध होती है।

6. उद्देश्यः-

'अंधा युग' नाटक ई. 1954 में लिखा गया, जब विश्व शक्तियाँ दो गुटों में विभाजित हो गई थी। दूसरे युद्ध की विनाशकारी स्थिति अभी खत्म नहीं हुई थी और विश्व तीसरे महायुद्ध की पीड़ा से त्रस्त था। ऐसे बूरे समय में विश्व की भोली - भाली निरीह एवं निर्दोष जनता तटस्थ भारत की तरफ ही आशाभरी दृष्टि से देख रही थी कि शायद यही देश विश्वशांति का कोई स्थाई उपाय ढूंढ निकाले, किन्तु कवि और जनता की यह धारणा आज गलत साबित हो चुकी है। एक तरफ महाभारत के अंधे स्वार्थी पात्र हैं, तो दूसरी तरफ रूस, अमरीका की अंधी सरकारें हैं। इसी बात को उभारना कवि का उद्देश्य रहा है। इस रचना के संदर्भ में अन्त में कवि कहते हैं -

"उस दिन जो अंधा युग अवतरित हुआ जग पर,
बीतता नहीं रह - रह कर दोहराता है
हर क्षण होती हैं प्रभु की मृत्यु कहीं - न - कहीं
हर क्षण अंधियारा गहरा होता जाता है
हम सबके मन में गहरा उतर गया है युग
अंधियारा है, अश्वत्थामा है, संजय है,
है दासवृत्ति उन दोनों वृद्ध प्रहरियों की
अंधा संशय है, लज्जाजनक पराजय है।"[21]

इसी तरह 'अंधा युग' में महाभारत कथा के उस उद्देश्य का चुनाव किया गया है, जो दूसरे महायुद्ध के बाद मानवीय - नियति, मानवीय संस्कृति और भाग्य से मिलता - जुलता है, जिस तरह महाभारत के युद्ध के बाद भय, कुंठा, निराशा, पराजय तथा निरर्थकता का माहौल फैल गया था; बिल्कुल वही स्थिति दूसरे युद्ध के बाद लोमहर्षक विनाश के बाद आधुनिक युग की थी। वर्तमान समय का मनुष्य भी कुंठा, संशय, भय, निराशा, सामूहिक मृत्यु भय तथा निरर्थकता से पीड़ित है। इन्हीं मुद्दों का अन्वेषण करना इसका उद्देश्य रहा है। आज सभी सिद्धान्त, सभी आदर्श खोखले सिद्ध हो चुके है और बुद्धिजीवी मनुष्य को जब इस कटु यथार्थ का ज्ञान हो गया है कि कोई भी सिद्धान्त अथवा आदर्श परम सत्य तक नहीं पहुँच सकता तब स्वभाव के अनुसार, वह एक गहरी प्रश्नोत्तरी में डूब जाता है। उसे जीवन की इस निरर्थकता तथा व्यर्थता का कटु और तिक्त अनुभव होता है, उस वक्त उसे कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व सब अर्थहीन दिखाई पड़ते हैं और वह अनुभवजन्य ज्ञान के आधार पर पाता है कि सत्य दूसरा कुछ नहीं, अनुभव के द्वारा जो भी व्यक्ति को मिलता है, सिर्फ वही सत्य है। इस तरह यहाँ पर सत्य का उदघाट्न किया गया है। इसके अलावा नाटक के अन्य दो तत्व निम्नप्रकार है-

7. अभिनय :-

'अंधा युग' अभिनेता विषयक विचार - विश्लेषण में संवादों की सार्थकता और रंगमंचीयता को विश्लेषित करना भी आवश्यक एवं प्रतीत होता है। भारती जी ने मनोवेगों और मन की स्थितियों की तीव्र व्यंजना की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए अल्प - विस्तार, वाक्य विन्यास की संक्षिप्तता, प्रश्नवाचक उक्तियों, विस्मयादि बोधक वक्तव्यों आदि को माध्यम रूप में ग्रहण किया। पात्रों की मन की स्थिति के अनुकूल उठते - गिरते संवादों ने 'अंधा युग' के अभिनय को सरल बनाया जिससे एकरसता का दोष भी नहीं दिखाई देता। ध्वनि या टोन का प्रसंग के अनुकूल उठना - गिरना 'अंधा युग' की अभिनयात्मक सफलता का मुख्य आधार है।

8. रंगमंच : -

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य में 'अंधा युग' गीती - नाट्य मिल का पत्थर साबित हुआ है। इसकी मंचीय सफलताओं का इतिहास महानगरों से लेकर छोटे - बड़े, शहरों, कस्बों तथा विदेशों तक फैला हुआ है। लगभग सभी भाषाओं, शैलियों, रूपों और मंचों पर 'अंधा युग' के अब तक जितने प्रयोग किये गये उतने शायद किसी भी भारतीय भाषा की कृति के नहीं हुए। भारती जी की मंच के प्रति सतर्कता तथा देश - विदेश के सफल मंचन के पश्चात इसकी अभिनेयता संदिग्ध नहीं है। नि:संदेह 'अंधा युग' ने मंचीय दृष्टि से कई आयामों को स्पर्श किया है। यह हिंदी का ही नहीं किन्तु सभी भारतीय भाषाओं का आधुनिक गीती - नाट्य और रंगमंच की एक श्रेष्ठ और बहुत बड़ी महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है।

'अंधा युग' के मंच-विधान को भारती ने बहुत सरल बनाने का प्रयास किया है। लेखक स्वयं ही 'अंधा युग' के मंचन के लिए पर्याप्त विस्तार से अपने मत की दृष्टि करते हुए निर्देश देता है-

"समस्त कथावस्तु पांच अंकों में विभाजित है। बीच में अन्तराल के पहले दर्शकों को लम्बा मध्यान्तर दिया जा सकता है। मंच-विधान जटिल नहीं है। एक पर्दा पीछे स्थायी रहेगा। उसके आगे दो पद रहेंगे। सामने का पर्दा अंक के प्रारम्भ में उठेगा और अंक के अन्त तक उठा रहेगा। उस अवधि में एक ही अंक में जो दृश्य बदलते हैं, उनमें बीच का पर्दा उठता-गिरता रहता है। बीच का और पीछे का पर्दा चित्रित नहीं होना चाहिए। मंच की सजावट कम से कम होनी चाहिए। प्रकाश व्यवस्था में अत्यधिक सतर्क रहना चाहिए।"[22]

निष्कर्ष के रूप में 'अंधा युग' का संपूर्ण विवेचन करने के उपरांत भारती जी के अनुसार 'अंधा युग' अंधों के माध्यम से ज्योति की कथा है। नैतिक मूल्यों से कुण्ठित, स्वार्थान्ध, मर्यादाहीन उस युग को युद्ध की दारुण विभीषिका में मस्मित करने के पश्चात् आस्था, विश्वास और सृजन की कसौटी पर कुन्दन बनी जो चेतना कृष्ण के व्यक्तित्व से उदभासित होकर विकीर्ण होती है वही इस नाटक का केन्द्रीय भाव, उद्देश्य है। उद्देश्य की प्रतीकात्मकता ने तृतीय विश्वयुद्ध की त्रासदायक स्थितियों और द्वन्द्वों के मध्य चल रहे वर्तमान युग को ज्योति और विश्वास देने का यहाँ पर प्रयास किया है।

संदर्भ - सूची :-

1. सूरज का सातवां घोड़ा, धर्मवीर भारती. पृ. 40
2. पृथ्वी और स्वर्ग, धर्मवीर भारती. पृ. 136
3. वही. पृ. 135
4. वही. पृ. 134
5. वही.
6. आश्रम, धर्मवीर भारती, ग्रंथावली 2. पृ. 247
7. वही. पृ. 248
8. गुनाहों का देवता, वही. पृ. 266
9. चांद और टूटे हुए लोग, वही, पृ. 206
10. नदी प्यासी थी, वही ग्रंथावली, 2. पृ. 274
11. सात गीत वर्ष, धर्म वीर भारती, पृ.34
12. वही
13. ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, पृ.1
14. कहनी अनकहनी, धर्मवीर भारती, पृ. 32
15. वही, पृ. 32-33
16. पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, पृ. 40
17. वही, ग्रंथावली 2. पृ. 40 - 41
18. चांद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ. 194
19. शब्दिता, धर्मवीर भारती, ग्रंथावली 6. पृ. 111- 112
20. वही, पृ. 115
21. अंधा युग, धर्मवीर भारती, पृ. 130
22. वही, निर्देश, पृ. 4

गांधीवादी दृष्टिकोण में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: नई तालीम के संदर्भ में (एक शोधपरक अध्ययन)

गुलशन कुमार

शोधार्थी, राजनीतिविज्ञान विभाग, गलगोटिया विश्वविद्यालय

भूमिका

भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक पुनर्निर्माण में महात्मा गांधी का योगदान अत्यंत गहरा और बहुआयामी रहा है। गांधी का मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य केवल नौकरी प्राप्त करना नहीं, बल्कि मनुष्य को उसके जीवन, समाज और राष्ट्र के प्रति जागरूक बनाना है। उन्होंने 'नई तालीम' (Basic Education) के माध्यम से शिक्षा को जीवन से जोड़ने का प्रयास किया, जिसमें श्रम, नैतिकता, आत्मनिर्भरता और स्वदेशी मूल्य केंद्र में थे। स्वतंत्र भारत की शिक्षा नीतियों में समय-समय पर इन सिद्धांतों की झलक मिलती रही है। विशेष रूप से, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (National Education Policy 2020) ने जिस प्रकार से मूल्यपरक शिक्षा, मातृभाषा, व्यावसायिक प्रशिक्षण और आत्मनिर्भरता को महत्व दिया है, वह गांधीवादी शिक्षा दृष्टिकोण की पुनर्प्रस्तुति के समान प्रतीत होता है।

इस शोधपत्र का उद्देश्य गांधी की 'नई तालीम' और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बीच के अंतर्संबंधों, साम्यताओं और भिन्नताओं का विश्लेषण करना है। यह अध्ययन इस बात की पड़ताल करता है कि किस प्रकार गांधीवादी विचार आधुनिक शिक्षा नीति के मूल में पुनः प्रकट हो रहे हैं, और कैसे नई तालीम के सिद्धांत आज के वैश्वीकृत शिक्षा ढाँचे में भी प्रासंगिक बने हुए हैं।

गांधीवादी शिक्षा-दर्शन की पृष्ठभूमि

गांधी का शिक्षा दर्शन उनके जीवन दर्शन से अविभाज्य था। उनके अनुसार, "शिक्षा का अर्थ है शरीर, मन और आत्मा का समुचित विकास।" (गांधी, 1937)। गांधी मानते थे कि शिक्षा का केंद्र व्यक्ति नहीं, बल्कि समुदाय होना चाहिए, ताकि व्यक्ति अपने कर्तव्यों के माध्यम से समाज की सेवा कर सके।

उनकी दृष्टि में शिक्षा का उद्देश्य केवल साक्षरता प्राप्त करना नहीं था, बल्कि मनुष्य में 'सत्य, अहिंसा, श्रम और आत्मनिर्भरता' जैसे नैतिक गुणों का विकास करना था। गांधी का यह विश्वास था कि केवल वही शिक्षा सार्थक है जो जीवन के लिए उपयोगी हो। इसी विचार के आधार पर उन्होंने 'नई तालीम' या बेसिक एजुकेशन (Basic Education) की अवधारणा प्रस्तुत की।

नई तालीम की अवधारणा

'नई तालीम' की परिकल्पना गांधी ने 1937 में वर्धा सम्मेलन में की थी। इसे बाद में 'बुनियादी शिक्षा' कहा गया। नई तालीम के मुख्य उद्देश्य थे:

1. श्रम आधारित शिक्षा: शिक्षा का केंद्र श्रम होना चाहिए। विद्यालय में छात्र किसी न किसी उत्पादक कार्य (जैसे चरखा कातना, बागवानी, हस्तकला आदि) से जुड़ें ताकि आत्मनिर्भरता विकसित हो।
2. मूल्यपरक शिक्षा: शिक्षा के माध्यम से नैतिक और मानवीय मूल्यों का निर्माण।
3. समाज से जुड़ाव: शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय एकता को मजबूत करना है।
4. मातृभाषा में शिक्षा: गांधी का मत था कि प्राथमिक स्तर की शिक्षा मातृभाषा में ही होनी चाहिए, क्योंकि भाषा ही संस्कृति और संवेदना का वाहक होती है।
5. स्वावलंबन: शिक्षा मनुष्य को आत्मनिर्भर और रचनात्मक बनाए।

गांधी की यह शिक्षा प्रणाली व्यक्ति को 'साधन' नहीं बल्कि 'उद्देश्य' मानती थी। उनका मानना था कि यदि शिक्षा का आधार श्रम और नैतिकता पर होगा तो समाज में आर्थिक और नैतिक समानता दोनों स्थापित होंगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का सार

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) भारत सरकार द्वारा जुलाई 2020 में घोषित की गई, जो देश की तीसरी प्रमुख शिक्षा नीति है। इसका उद्देश्य 21वीं सदी की आवश्यकताओं के अनुरूप भारतीय शिक्षा प्रणाली को पुनर्गठित करना है।

एनईपी 2020 के मुख्य बिंदु इस प्रकार हैं-

समग्र और बहुविषयक शिक्षा: शिक्षा को केवल अकादमिक दायरे से बाहर निकालकर व्यावहारिक और जीवन-उन्मुख बनाना।

मातृभाषा पर बल: प्राथमिक स्तर पर शिक्षा मातृभाषा या स्थानीय भाषा में देने की अनुशंसा।

कौशल आधारित शिक्षा: व्यावसायिक शिक्षा और कौशल विकास पर ध्यान।

मूल्य आधारित शिक्षा: नैतिकता, संस्कृति और मानवता आधारित शिक्षण को प्रोत्साहन।

समानता और समावेशिता: समाज के वंचित वर्गों को शिक्षा के मुख्यधारा में लाना।

राष्ट्रीय अनुसंधान प्रतिष्ठान की स्थापना: शोध और नवाचार को प्रोत्साहित करने हेतु।

इन बिंदुओं से स्पष्ट है कि एनईपी 2020 केवल ज्ञान-केन्द्रित नीति नहीं है, बल्कि यह मानवीय मूल्यों और व्यावहारिकता पर आधारित शिक्षा दृष्टिकोण को पुनर्स्थापित करती है।

एनईपी 2020 में गांधीवादी मूल्यों का प्रतिफलन

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में गांधीवादी दृष्टिकोण की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

1. श्रम और कौशल पर बल: गांधी ने शिक्षा में श्रम को केंद्र में रखा था। एनईपी 2020 भी 'vocational education' और 'hands-on learning' पर बल देती है, जो नई तालीम की आत्मा है।
2. मातृभाषा का महत्व: गांधी का मानना था कि मातृभाषा में शिक्षा से बालक की समझ और संवेदना का विकास होता है। एनईपी 2020 में भी कक्षा 5 तक मातृभाषा में शिक्षा की सिफारिश की गई है।
3. स्वावलंबन और आत्मनिर्भरता: नई तालीम में आत्मनिर्भरता प्रमुख थी। एनईपी 2020 का उद्देश्य भी 'आत्मनिर्भर भारत' के निर्माण में शिक्षा को केंद्रीय भूमिका देना है।
4. नैतिक और मूल्यपरक शिक्षा: गांधी के लिए शिक्षा का मूल उद्देश्य चरित्र निर्माण था। एनईपी 2020 में 'value-based education' को विशेष रूप से स्थान दिया गया है।
5. स्थानीयता और भारतीयता: गांधी का जोर 'स्वदेशी' पर था। एनईपी 2020 शिक्षा के भारतीयकरण, स्थानीय ज्ञान और परंपरागत विद्या को पुनर्जीवित करने का प्रयास करती है।

नई तालीम और एनईपी 2020: तुलनात्मक विश्लेषण

नई तालीम (Nai Talim) - महात्मा गांधी का शैक्षिक विचार - और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, दोनों ही भारत के शैक्षिक चिंतन में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। दोनों का उद्देश्य समग्र मानव विकास है, पर उनकी रूपरेखा, शिक्षण-पद्धति, मूल-धाराएँ और व्यावहारिक सुझाव अलग हैं। नीचे व्यवस्थित और तुलना-मुख्य विश्लेषण दिया जा रहा है जो सिद्धांत, पाठ्यक्रम, शिक्षण-शैली, मूल्यांकन, और क्रियान्वयन चुनौतियों पर केन्द्रित है।

सिद्धान्त और लक्ष्य

नई तालीम (Nai Talim)

केन्द्र: "काम के माध्यम से शिक्षा" - शैक्षिक और शारीरिक परिश्रम, हस्तकला/उद्योग (craft) को पढ़ाई का आधार।

उद्देश्य: आत्म-निर्भरता, चरित्र-विकास, नैतिकता, श्रम-गौरव, समाज सेवा और ग्रामीण पुनरुत्थान।

शिक्षा को जीवन से अलग नहीं माना जाता; शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को समाज में उपयोगी बनाना है।

एनईपी 2020

केन्द्र: बहुआयामी, समग्र शिक्षा (holistic, multidisciplinary education), 21वीं सदी के कौशलों के साथ आधारभूत सांस्कृतिक मूल्यों का संतुलन।

उद्देश्य: सशक्त सोच, उच्च शिक्षा का परिवर्तन, कौशल व व्यावसायिक शिक्षा का समावेशन, बहुभाषावाद, समावेशिता (inclusion) और वैश्विक प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार करना।

विज्ञान, कला, वाणिज्य, तकनीक, व्यावसायिक कौशलों का अंतर्निहित एकीकरण तथा शिक्षा में लचीलापन (flexibility) पर जोर।

तुलना: दोनों की प्राथमिक लक्ष्यरेखा समग्र विकास है, पर नई तालीम अधिक नैतिक-सामाजिक और आत्मनिर्भरता पर जोर देती है जबकि NEP 2020 आधुनिक अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं, कौशल और बहु-विषयकता पर केन्द्रित है।

शिक्षा-पद्धति और शिक्षणिक मूलभूतता

नई तालीम

हस्तकला / कार्य आधारित परियोजना-शिक्षण (work-centred project learning)-

शिक्षा को स्थानीय आर्थिक/सामाजिक जरूरतों से जोड़कर सैद्धान्तिक ज्ञान और व्यावहारिक कुशलता दोनों सिखाई जाती हैं।

गुरु का स्थान मार्गदर्शक और सहयोगी के रूप में; सीखना सामूहिक और उत्पादनमुखी।

एनईपी 2020

गतिविधि-आधारित, परियोजना-आधारित और प्रतिस्पर्धात्मक कौशल-आधारित शिक्षण को प्रोमोट करती है।

डिजिटलीकरण, प्रयोगात्मक/अनुभवात्मक शिक्षा, और नवाचार-आधार पर पाठ्यक्रम का निर्माण।

शिक्षण विधियों में शिक्षक-केंद्रित से छात्र-केंद्रित (learner-centric) संक्रमण का प्रावधान।

तुलना: दोनों पद्धतियाँ अनुभव और क्रिया-आधारित शिक्षण का समर्थन करती हैं; नई तालीम जहाँ सीधे उत्पादन और हस्तकलाओं को केन्द्र में रखती है, NEP 2020 अधिक व्यापक परियोजना-आधारित, डिजिटल व कौशल-समर्थित विधियों को प्राथमिकता देती है।

पाठ्यक्रम और विषयवस्तु

नई तालीम

पाठ्यक्रम स्थानीय हस्तकला, कृषि, कुटीर उद्योग आदि से जुड़ा; जीवनोपयोगी ज्ञान प्राथमिक।

औपचारिक विषयों में सिर्फ वही जो जीवन में प्रत्यक्ष उपयोगी हों; सहज, सिंथेटिक पढ़ाई।

एनईपी 2020

5+3+3+4 संरचना; बहु-विषयकता; पाठ्यक्रम कम सिलेबस-केंद्रित और अधिक कौशल व समझ-केंद्रित।

मेडिकल, इंजीनियरिंग, कला-सभी में interdisciplinary विकल्प; vocational education को प्राथमिकता दी जाती है तथा पुनः शिक्षा और lifelong learning को बढ़ावा।

मातृभाषा/स्थानीय भाषा में प्रारम्भिक शिक्षा पर जोर; स्किल्स, डिजिटल साक्षरता, समावेशी पाठ्यक्रम और सह-पाठ्यक्रम गतिविधियाँ शामिल।

तुलना: नई तालीम स्थानीय-उपयोगी और कारीगरी-केंद्रित सामग्री पर जोर देती है; NEP 2020 में वही विचार आधुनिक शर्तों में विस्तारित हैंड्स-ऑन लोकल से लेकर वैश्विक कौशल तक बहु-विकल्पिता उपलब्ध कराना।

मूल्यांकन और प्रमाणीकरण

नई तालीम

पारंपरिक परीक्षा-केन्द्रित मूल्यांकन का विरोध; सतत् मूल्यांकन, कार्य-निरूपण (work-demonstration) और जीवन-आधारित परिणाम पर जोर।

एनईपी 2020

परीक्षा-दबाव घटाने के लिए व्यक्तिगत, संस्थागत और एसेसमेंट-रिफॉर्म का प्रस्ताव; क्षमताभियों के अनुसार फॉर्मेटिव व समेकित मूल्यांकन।

बोर्ड परीक्षा की प्रकृति में बदलाव और बहु-माध्यमिक मूल्यांकन के विकल्प सुझाए गए हैं।

तुलना: दोनों ही परंपरागत कठोर परीक्षा प्रणाली से दूरी बनाते हैं; नई तालीम यह दृष्टिकोण नैतिक/व्यवहारिक मानदंडों से लागू करती है, जबकि NEP 2020 सिस्टम-लैवल पर नीतिगत बदलाव तलाशती है।

शिक्षक-भूमिका और प्रशिक्षण

नई तालीम

शिक्षक मार्गदर्शक/कुशल कारीगर के रूप में; प्रशिक्षण में कार्य-कौशल की दक्षता आवश्यक।

शिक्षक सामाजिक बदलाव का प्रेरक भी माना जाता है।

एनईपी 2020

शिक्षकों का पेशेवर विकास, निरंतर प्रशिक्षण, और मूल्यांकन-विनिर्देश; तकनीकी साक्षरता पर जोर।

अध्यापक शिक्षा को 4-वर्षीय बहुविषयक-डिग्री के रूप में सुदृढ़ करने का प्रस्ताव।

तुलना: नई तालीम में शिक्षक-चरित्र और स्थानीय कौशल का महत्व अधिक है; NEP 2020 में शिक्षक की प्रोफेशनलाइजेशन तथा नियमित CPD (continuous professional development) पर बल है।

सामाजिक-नैतिक आयाम और समानता

नई तालीम

संवेदनशीलता, आत्मनिर्भरता, समाज-सेवा, गैर-हिंसा, सामुदायिक जुड़ाव - प्राथमिक नैतिक लक्ष्य।

विशेषकर ग्रामीण व वंचित समुदायों के सशक्तिकरण पर केन्द्र।

एनईपी 2020

समावेशी शिक्षा (gender, socio-economic inclusion), विशेष आवश्यकताओं वाले छात्रों के लिए सपोर्ट, और सामाजिक न्याय को नीति में जगह। परंतु NEP का दृष्टिकोण व्यापक संरचनात्मक एवं आर्थिक संदर्भ में है – कौशल व अर्थव्यवस्था के अनुकूलता पर भी ध्यान।

तुलना: दोनों ही समानता और समावेशन को मानते हैं; नई तालीम अधिक स्थानीय और चरित्र-केंद्रित सामाजिक न्याय का पक्ष लेती है, NEP संरचनात्मक नीतिगत सुधार तथा आर्थिक डिजाइन में समावेशन की बात करती है।

चुनौतियाँ और सीमाएँ

हालाँकि एनईपी 2020 गांधीवादी दृष्टिकोण से प्रेरित है, फिर भी इसके कार्यान्वयन में कई चुनौतियाँ हैं-

1. तकनीकी शिक्षा का प्रभाव: आधुनिक शिक्षा प्रणाली डिजिटल और तकनीकी होती जा रही है, जो गांधी की श्रम-आधारित शिक्षा से कहीं अलग है।
2. शहरीकरण और प्रतियोगिता: वैश्वीकरण और रोजगार-उन्मुखता ने शिक्षा को बाजार का उपकरण बना दिया है, जिससे नैतिकता का आयाम कम होता जा रहा है।
3. शिक्षक प्रशिक्षण: नई नीति की सफलता के लिए शिक्षकों में गांधीवादी दृष्टिकोण और मानवीय संवेदना का विकास आवश्यक है।
4. ग्रामीण-शहरी असमानता: ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों की कमी के कारण नई नीति के आदर्श उद्देश्यों को लागू करना कठिन है।

निष्कर्ष

गांधी की 'नई तालीम' केवल एक शिक्षण पद्धति नहीं थी, बल्कि यह एक राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की योजना थी। उन्होंने शिक्षा को आत्मनिर्भरता, नैतिकता और समाजसेवा से जोड़ा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी इसी दिशा में एक आधुनिक प्रयास है, जो भारतीय परंपरा और वैश्विक आवश्यकताओं के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती है।

एनईपी 2020 में गांधीवादी शिक्षा दर्शन के तत्व – जैसे मातृभाषा, श्रम, नैतिकता, आत्मनिर्भरता और स्थानीयता – पुन: प्रकट होते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 गांधी के 'नई तालीम' के विचारों का पुनरुत्थान है, जो भारतीय शिक्षा को पुन: 'मानवीय' बनाने की दिशा में एक सार्थक कदम है।

संदर्भ सूची (References in MLA Style)

1. Gandhi, M. K. Basic Education. Ahmedabad: Navajivan Publishing House, 1951.
2. Government of India. National Education Policy 2020. Ministry of Education, New Delhi, 2020.
3. Kumar, Krishna. Gandhian Perspectives on Education. New Delhi: Sage Publications, 2010.
4. Nanda, B. R. Mahatma Gandhi: A Biography. Oxford University Press, 2002.
5. Chandra, Bipan. India After Independence. New Delhi: Penguin, 2000.
6. Ministry of Human Resource Development (MHRD). Report of the Committee for Evolution of the New Education Policy. New Delhi, 2016.
7. Pathak, Avijit. Reclaiming the Public University: Gandhian Values and Indian Education. Economic and Political Weekly, Vol. 55, No. 33, 2020.
8. Tilak, Jandhyala B. G. "Education and Development: National Policy Perspectives." Economic and Political Weekly, 2021.

राष्ट्रीय शिक्षा नीति और गृह विज्ञानः अवसर एवं चुनौतियाँ

डॉ० नीलम कुमारी

अतिथि शिक्षिका, गृह विज्ञान विभाग, सिंहभूम कॉलेज, चाण्डिल, कोल्हान विश्वविद्यालय, चाईबासा

सारांश

तीन दशकों से अधिक अंतराल के पश्चात् 21वीं सदी की पहली और भारत की तीसरी नई शिक्षा नीति 2020 में आई है। नई शिक्षा नीति में व्यवसायिक शिक्षा पर खासा जोर दिया गया है। नई शिक्षा नीति रोजगारपरक है। इसमें पाठ्यक्रम में शिक्षा के साथ कौशल को जोड़ा गया है। इसमें स्कुली स्तर पर ही छात्रों को किसी न किसी कार्य कौशल से जोड़ दिया जाएगा। इसका अर्थ है, जब बच्चा स्कूल से पढ़कर निकलेगा, तो उसके पास एक ऐसा हुनर होगा, जिसका वह आगे की जिंदगी में इस्तेमाल कर सकेगा। कौशल हमें रोजगार योग्य बनाता है, साथ ही स्वरोजगार के लिए प्रेरित करता है। नई शिक्षा नीति का सबसे बड़ा पहलू यह है कि इसमें शिक्षा की गुणवत्ता और उपयोगिता दोनो पर बल दिया गया है। गृह विज्ञान, विद्यार्थियों के ज्ञान, क्षमताओं व कौशल को बढाने के लिए बहुआयामी, वैज्ञानिक व बहुउद्देशी दृष्टिकोण को बढ़ावा देता है। गृह विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में वेतन अर्जित रोजगार के साथ-साथ स्वरोजगार की भी भरपूर संभावनायें हैं। गृह विज्ञान शिक्षा विद्यार्थियों को शैक्षणिक ज्ञान के साथ ही उद्योगों के अनुकूल बनाने का भी काम करता है। यह व्यक्तियों की उनके ज्ञान, क्षमताओं व कौशल के संपूर्ण विकास में मदद करता है। गृह विज्ञान शिक्षा द्वारा व्यक्ति के आर्थिक व व्यवसायिक विकास की भरपूर संभावनायें हैं। गृह विज्ञान विषय युवाओं को कुशल बनाकर राष्ट्रहित में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हुए आत्मनिर्भर भारत बनाने में निश्चय ही अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। समय के साथ चलने और चौथी औधोगिक क्रांति की जरुरतों के मद्देनजर गृह विज्ञान विषय युवाओं को रोजगार के नए अवसर उपलब्ध करा सकता है। गृह विज्ञान शिक्षा कई व्यवसायिक गतिविधियों के लिए लड़के व लड़कियों दोनो को तैयार करता है। नई शिक्षा नीति की प्रकृति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि नई शिक्षा नीति में गृह विज्ञान विषय का भविष्य काफी उज्ज्वल है।

मुख्य शब्द : नई शिक्षा नीति, कौशल, रोजगार, गृह विज्ञान शिक्षा

प्रस्तावना

तीन दशकों से अधिक अंतराल के पश्चात् हमारे देश में एक नई शिक्षा नीति 2020 में आई है। 21वीं सदी की प्रथम शिक्षा नीति के रुप में यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति अनेक कारणों से विशिष्ट है। नई शिक्षा नीति आने के बाद पूरे शिक्षा क्षेत्र में हलचल है। नई शिक्षा नीति में व्यवसायिक शिक्षा पर खासा जोर दिया गया है। नई शिक्षा नीति रोजगारपरक है। इसमें पाठ्यक्रम में शिक्षा के साथ कौशल को जोड़ा गया है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भी स्किल, रीस्किल व अपस्किल का मंत्र दिया है। उनका कहना है कि कौशल द्वारा युवा अपने सपनों को साकार कर सकते हैं। वाकई, कौशल हमें रोजगार योग्य बनाता है, साथ ही स्वरोजगार के लिए प्रेरित करता है। देश में समावेशी विकास के लिए कौशल सबसे अधिक आवश्यक संसाधन है। वैश्वीकरण, उदारीकरण व निजीकरण के इस युग में कौशल भारत, कुशल भारत एक बड़ी जरुरत बन गई है। हम स्किल इंडिया मिशन द्वारा भारत को विश्व की कौशल राजधानी बनाने के लिए तत्पर हैं। 21वीं सदी के इस बदलते युग में युवा कौशल को राष्ट्र - कल्याण की धुरी बनाने को हम संकल्पित हैं। युवा कौशल राष्ट्रहित में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हुए निश्चय ही एक नया भारत बना सकता है, जिसे आत्मनिर्भर भारत के रुप में पहचान मिलेगी।

नई शिक्षा नीति अति सराहनीय है। बच्चों को सिर्फ बैग ढ़ोने व किताबी कीड़ा बनने से अब मुक्ति मिलेगी। इसमें पाठ्यक्रम में शिक्षा के साथ कौशल का जुराव होना बिल्कुल उचित है। कोई संगीत में, कोई कला में, कोई खेल-कूद में तो कोई किसी अन्य विद्या में अपना कौशल निखार सकेगा। ये सब हुनर बच्चों का भविष्य सुखद बनाएंगे। नई शिक्षा नीति में इनोवेशन यानी नवाचार व रचनात्मकता को प्रोत्साहित किया जाएगा। शिक्षा आर्थिक विकास के बुनियादी कारकों में से एक मानी जाती है। कोई भी देश मानवपूंजी और ज्ञान की नींव मजबूत किए बिना टिकाउ आर्थिक विकास के रास्ते पर नहीं बढ़ सकता है। नई शिक्षा नीति का सबसे बड़ा पहलू यह है कि इसमें शिक्षा की गुणवत्ता और उपयोगिता दोनों पर बल दिया गया है। इसमें स्कुली स्तर पर ही छात्रों को किसी न किसी कार्य कौशल से जोड़ दिया जाएगा। इसका अर्थ है, जब बच्चा स्कूल से पढ़कर निकलेगा, तो उसके पास एक ऐसा हुनर होगा, जिसका वह आगे की जिंदगी में इस्तेमाल कर सकेगा। इससे शिक्षा को एक व्यवसायिक बल मिलेगा। अगर विद्यालय के स्तर पर ही छात्रों को रोजगारपरक शिक्षा मिले तो अध्यापन के बाद रोजगार ढूढ़ने में छात्रों को आसानी होगी। बेरोजगारी आज भारत की सबसे बड़ी समस्या है। जनसंख्या इतनी अधिक है कि सबको सरकारी नौकरी देना संभव नहीं है। ऐसे में, अगर स्वरोजगार को बढ़ावा दिया जाएगा तो बेरोजगारी की समस्या को काफी हद तक कम किया जा सकता है। ऐसे करोड़ों मां-बाप होंगें, जो खुश होंगें कि उनका बच्चा स्कूल में न केवल पढ़ेगा, बल्कि कोई काम भी सीखेगा। नई शिक्षा नीति को अंतिम रुप देने के लिए बनाई गई समिति का नेतृत्व कर रहे डॉ कस्तूरीरंगन ने सही कहा कि नई शिक्षा नीति बेरोजगार तैयार नहीं करेगी।

कोरोना काल के इस संकटपूर्ण समय में नई कार्य संस्कृति और नौकरी की नई प्रकृति को देखते हुए हम अपने युवाओं को तेजी से नए कौशल सीखने के लिए प्रेरित कर सकतें हैं। महामारी से उबरने के बाद विश्व की बड़ी अर्थव्यवस्थाओं की मांग बढ़ेगी, अवसर बढ़ेंगें। नई शिक्षा नीति श्रम आधारित अर्थव्यवस्था को कौशल आधारित बनाकर अपनी युवा जनशक्ति को उचित सम्मान दिला सकता है। नई शिक्षा नीति द्वारा कुशल लोगों को स्थाई आजीविका के अवसर खोजने में मदद मिल सकेगा ।

नई शिक्षा नीति की प्रकृति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि नई शिक्षा नीति में गृह विज्ञान विषय का भविष्य कफी उज्ज्वल है। गृह विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में वेतन अर्जित रोजगार के साथ-साथ स्वरोजगार की भी भरपूर संभावनायें हैं। गृह विज्ञान, विद्यार्थियों के ज्ञान, क्षमताओं व कौशल को बढ़ाने के लिए बहुआयामी, वैज्ञानिक व बहुउद्देशी दृष्टिकोण को बढ़ावा देता है। गृह विज्ञान शिक्षा के लक्ष्य किसी अन्य शिक्षा की अपेक्षा ज्यादा व्यापक और महत्वपूर्ण है। गृह विज्ञान शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्र-छात्राओं को ज्ञान, कौशल, आय सृजन के स्त्रोत और संपूर्ण परिवार के विकास आदि के संबंध में जागरुक करना है। गृह विज्ञान अपने विद्यार्थियों को लाभदायक रोजगार व स्वरोजगार के लिए तैयार करता है। गृह विज्ञान शिक्षा कई व्यवसायिक गतिविधियों के लिए लड़के व लड़कियों दोनो को तैयार करता है।

गृह विज्ञान शिक्षा कलात्मक अनुप्रयोगों के साथ एक बहुआयामी विज्ञान है। यह व्यक्तियों की उनके ज्ञान, क्षमताओं व कौशल के संपूर्ण विकास में मदद करता है। गृह विज्ञान यह सिखाने की व्यवस्थित पद्यति है कि लोग अपने जीवन स्तर में, स्वास्थ्य में, आय व रिश्तों में कैसे सुधार कर सकतें हैं। यह लोगों को अपने अधिकतम विकास व संतुष्टि के प्रति मार्गदर्शन देता है। गृह विज्ञान लोगों को लाभदायक रोजगार दिलाने व स्वरोजगार के अवसर बनाने में सहायता प्रदान करता है। गृह विज्ञान पाठ्यक्रम, कला व विज्ञान दोनों से खुद को सामर्थ्यवान बनाता है। एक ओर यह जीवन के सभी प्रयासों के वैज्ञानिक कारणों पर जोर देता है, वही दूसरी ओर यह पारिवारिक जीवन में ज्ञान व कौशल का प्रयोग करने की कला के महत्व की पहचान कराता है।

गृह विज्ञान शिक्षा व गृह विज्ञान वैज्ञानिकों द्वारा समर्थित विभिन्न सामुदायिक विकास कार्यक्रम आय सृजन की गतिविधियों पर प्रकाश डालतें हैं। गृह विज्ञान शिक्षा द्वारा लोग अपने सभी संसाधनों को अच्छे से प्रबंधित करना सीखतें हैं। व्यक्तिगत व पारिवारिक आय का प्रबंधन तथा बजट, बचत व निवेश के कौशल व्यक्ति के आर्थिक कल्याण तथा विकास में मदद करतें हैं, जो अंततः उच्च राष्ट्रीय आय में योगदान देता है। गृह विज्ञान वैज्ञानिकों के प्रयास के कारण बड़ी संख्या में महिलाओं ने स्वयं सहायता समूहों का गठन किया है। यह महिलायें अब आर्थिक रुप से आत्मनिर्भर है। गृह विज्ञान क्षेत्रों से संबंधित ज्ञान व कौशल को बढ़ाने से ग्रामीण क्षेत्रों या बस्तियों में रहने वाले लोगों का व्यक्तिगत, पारिवारिक व सामुदायिक विकास हो सकता है। राष्ट्र पिता महात्मा गॉधी ने कुटीर उद्योगों, गॉव की आत्मनिर्भरता, शिक्षा व स्वच्छता के विकास पर बहुत जोर दिया। गृह विज्ञान शिक्षा कुटीर उद्योगों, गॉव की आत्मनिर्भरता, शिक्षा व स्वच्छता के विकास में अहम योगदान दे सकता है।

गृह विज्ञान के क्षेत्र

गृह विज्ञान पॉच प्रमुख क्षेत्रों में विभाजित है। प्रत्येक क्षेत्र एक दूसरे से संबंधित है।

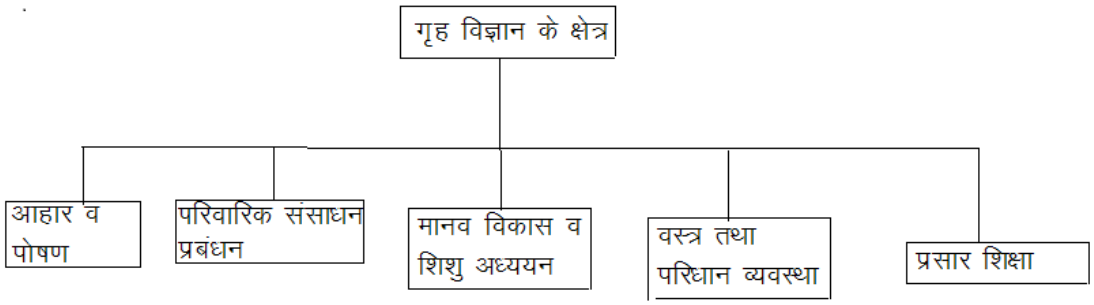

गृह विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्ध व्यवसायिक विकल्प

गृह विज्ञान शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्र व छात्राओं के ज्ञान, क्षमताओं व कौशल का विकास करना है। गृह विज्ञान शिक्षा एक व्यक्ति को विभिन्न रोजगारों या व्यवसाय हेतु तैयार करता है। गृह विज्ञान शिक्षा से प्राप्त रोजगार को हम दो श्रेणीयों में विभाजित कर सकतें हैं। ये दो श्रेणीयां हैं- वेतन अर्जित रोजगार तथा स्वरोजगार। वेतन अर्जित करने का मतलब है कि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति या संगठन के लिए काम करता है जिसमें निर्दिष्ट कार्य के लिए सहमत राशि का भुगतान किया जाता है। स्वरोजगार का मतलब है कि एक व्यक्ति किसी संगठन का मालिक है और स्वयं खुद के लिए काम करता है। गृह विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में उपलब्ध अलग-अलग रोजगारों, जिसमे व्यक्ति अपना रोजगार शुरु कर सकता है, नीचे दी गई तालिका में वर्णित है।

तालिकाः गृह विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्ध व्यवसायिक विकल्प

गृह विज्ञान के क्षेत्र	*वेतन अर्जित रोजगार*	*स्वरोजगार*
आहार व पोषण	खाद्य कैटरिंग में प्रबंधक, केटरर, रसोइया, शैफ, वेटर, अस्पतालों में डायटीशियन, पोषण सलाहकार, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में उत्पादन प्रबंधक/पर्यवेक्षक, फूड	कैंटीन, केफीटेरिया, घर से भोजन सेवा, खानपान केन्द्र, जलपान गृह, फास्ट फूड आउटलेट, समारोह, पार्टी व शादी आदि के लिए भोजन

	एनालिस्ट, क्वालिटी एनालिस्ट, क्वालिटी कंट्रोलर, क्वालिटी मैनेजर, फूड इंस्पेक्टर, बेकरी में बेकर, बेकरी पर्यवेक्षक, शिक्षण में अध्यापक, व्याख्यातासंबंधित क्षेत्र में शोध	व्यवस्थाछात्रावास, विद्यालय, रेलवे आदि जैसे संगठनों के लिए भोजन व्यवस्थामसाला उद्योग, पापड़, अचार, चटनी, मुरब्बा निर्माण उद्योग, जैम, जेली, सॉस निर्माण उद्योग
पारिवारिक संसाधन प्रबंधन	अतिथि गृह प्रबंधक, सम्मेलन समन्वयक, घरेलू देखभाल प्रबंधक, होटल प्रबंधक, परिचारिका/परिचारक, डायनिंग कक्ष सहायक, आंतरिक डिजाइनर, फर्नीचर डिजाइनर, समारोह डिजाइनर, रिटेल आउटलेट में कर्मचारी, उपभोक्ता अधिकार सलाहकार, उपभोक्ता सभा का कर्मचारी, बचत व निवेश योजना का कर्मचारी, वित्तीय सलाहकार, शिक्षण में अध्यापक, व्याख्याता, संबंधित क्षेत्र में शोध	स्वयं का गेस्ट हाउस, आंतरिक डिजाइनर, फर्नीचर डिजाइनर, कला व शिल्प वस्तुओं के लिए डिजाइन, गृह आधारित क्राफ्ट सेंटर, हस्तकला केंद्र, घरेलू चीजों के उत्पादन इकाई
मानव विकास व शिशु अध्ययन	नर्सरी स्कूल, डे केयर सेंटर, क्रेच व बालवाड़ी का कर्मचारी, आंगनवाड़ी कार्यकर्ताबच्चों व बुजूर्गों के देखभालकर्ता, शिक्षण में अध्यापक, व्याख्याता, संबंधित क्षेत्र में शोध	नर्सरी स्कूल, डे केयर सेंटर, क्रेच व बालवाड़ी के मालिक के रुप में, बच्चों व महिलाओं की पत्रिका के लेखक के रुप में, ट्यूशन क्लास
वस्त्र तथा परिधान व्यवस्था	बुनकर, स्पिनर, रंगनेवाला, निटर, टेलर, फैशन डिजाइनर, फैशन बायरशिक्षण में अध्यापक, व्याख्याता, संबंधित क्षेत्र में शोध	वस्त्र/परिधान बनाने वाली इकाई (कपड़े निर्माण, बुनाई, छपाई आदि), कपड़ों की सिलाई सेंटर, बुटिक, लॉड्री केन्द्र, टेलर, रफू, फॉल, पिको, प्रेस(इस्त्रीवाला)
प्रसार शिक्षा	जनसंपर्क अधिकारी, विषय वस्तु विशेषज्ञ, प्रशिक्षक व सुविधाकर्ता, सरकारी विकास कार्यक्रमों में नौकरी, पत्रकार, लेखक, प्रसार कार्यकर्ता, प्रसार विशेषज्ञ, मीडिया सलाहकार, शिक्षण में अध्यापक, व्याख्याता, संबंधित क्षेत्र में शोध	स्वतंत्र पत्रकार, परामर्श केन्द्र, एन.जी.ओ, प्रशिक्षण संस्थान

उपर्युक्त तालिका से यह सिद्व होता है कि गृह विज्ञान विषय का व्यक्गित व व्यवसायिक दोनो क्षेत्रों में योगदान है।

निष्कर्ष

नई शिक्षा नीति में व्यवसायिक शिक्षा पर बल दिया गया है। इसमें पाठ्यक्रम में शिक्षा के साथ कौशल को जोड़ा गया है। इससे शिक्षा को एक व्यवसायिक बल मिलेगा। नई शिक्षा नीति की प्रकृति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि गृह विज्ञान विषय युवाओं को तेजी से नए कौशल सीखने के लिए प्रेरित कर सकता है। गृह विज्ञान विद्यार्थियों के ज्ञान, क्षमताओं व कौशल को बढ़ाने के लिए बहुआयामी, वैज्ञानिक व बहुउद्देशी दृष्टिकोण को बढ़ावा देता है। गृह विज्ञान शिक्षा कलात्मक अनुप्रयोंगों के साथ एक बहुआयामी विज्ञान है। यह व्यक्तियों की उनके ज्ञान, क्षमताओं व कौशल के संपूर्ण विकास में मदद करता है। गृह विज्ञान शिक्षा द्वारा व्यक्ति के आर्थिक व व्यवसायिक विकास की भरपूर संभावनायें है। गृह विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में वेतन अर्जित रोजगार के साथ-साथ स्वरोजगार की भी भरपूर संभावनायें हैं। अतः हम यह निष्कर्ष निकाल सकतें हैं कि नई शिक्षा नीति में गृह विज्ञान शिक्षा का भविष्य काफी उज्ज्वल है।

संदर्भ सूचीः

1. हिंदुस्तान हिंदी दैनिक अखबार
2. धामा, ओ0 पी0 (1997), प्रसार व ग्रामीण कल्याण।राम प्रसाद व सन्स।
3. प्रसार शिक्षा (2017), HSC-202, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

સરપંચના અભરખા

શ્રીમાળી ચંદ્રકાન્તભાઈ ભરતભાઈ

(એમ.એ., એમ.એડ, નેટ-ગુજરાતી) શોધછાત્ર પીએચ.ડી., હેમ.ઉ.ગુ.યુનિ.પાટણ.

વાર્તા/નવલકથા/લોકકથા/નિબંધ/ફિલ્મ કથા પટકથા જેવા વૈવિધ્યસભર વિસ્તારોમાં યથેચ્છ વિહરતા જોમવંતા કલમનવેશ રાઘવજી માધડનો જન્મ ૧ જુન, ૧૯૬૧ ના રોજ સૌરાષ્ટ્રના અમરેલી જિલ્લાના ઢેવળીયા ગામમાં થયો હતો. રાઘવજી માધડે ઉચ્ચ શિક્ષણ મેળવીને તેઓ તળના માણસોનાં દોહ્યલાં જીવતરને અને એમની વેદના/સંવેદનાને નજીકથી જાણી/નાણીને સાહિત્ય તરફ વળ્યા.

સૌરાષ્ટ્રની ધરતીની સોડમને સાહિત્યમાં પ્રસરાવનાર બહુઆયામી સર્જક રાઘવજી માધડે સૌરાષ્ટ્રની ધરતી અને એનાં ભાતીગળ લોકજીવનના આંતરિક પ્રવાહોને ઝીલતા ત્રીસેક જેટલા સત્વશીલ સાહિત્યિક ગ્રંથો ગુજરાતી સાહિત્યને ભેટ ધરેલ છે. વાર્તાસંગ્રહો ક્ષેત્રે પણ તેમનું પ્રદાન નોંધપાત્ર રહ્યું છે. જેમાંથી અત્રેના લેખમાં તેઓના વાર્તાસંગ્રહો વિશે વર્ણન કરવાનો ઉપક્રમ રહેલ છે.

સૌરાષ્ટ્રની ધરતીનો ધબકાર ઝીલતી વૈવિધ્યસભર પાત્રસૃષ્ટિ અને પરિવેશાનુરૂપ તળપદી બોલીનો વિશિષ્ટ વિનિયોગ એ રાઘવજી માધડની વાર્તાસંગ્રહોનો આગવો આયામ છે. એમના મુખ્ય વાર્તાસંગ્રહો છેઃ ઝાલર/ અષાઢ/ સંબધ / જાતરા/ અમરફળ/ વાઈબ્રન્ટ/ મુકામ તરફ. સૌરાષ્ટ્રની લોકબોલીનો લાવણ્ય સભર લહેકો અને તળપદા સંસ્કારોનું હૃદયસ્પર્શી આલેખન એ આ વાર્તાઓની આગવી વિશેષતા છે.

સર્જક શ્રીરાઘવજી માધડે પોતાના જીવનમાં જે વેઠયું કે સહન કર્યું તે સઘળું તેમની વાર્તાઓમાં ઉભરી આવ્યું છે. પોતે વંચિત સમુદાયના હોવાના લીધે જે સહન કરવું પડ્યું તે તેમની વાર્તાનું વિષયવસ્તુ બની રહે છે. પ્રસ્તુત લેખમાં આપણે લેખકની 'જાતરા' વાર્તાસંગ્રહમાં આવતી 'સરપંચ' વાર્તાની છણાવટ કરીશું.

સર્જક શ્રીરાઘવજી માધડના વાર્તાસંગ્રહ 'જાતરા'ની 'સરપંચ' વાર્તા એ દલિત પાત્રની વેદનાને વાચા આપતી કથા છે.

ભણેલ ગણેલ દલિત યુવાનને નોકરી-ધંધો મેળવવામાં કેટલી મુશ્કેલીઓ પડે છે તેનું બયાન સર્જકની આ સરપંચ વાર્તામાં જોવા મળે છે. વાર્તાનો નાયક કાનો જે દલિત છે તે ચૂંટણી હારી જતાં ગાંડો થઈ જાય છે. અહીં આ વાર્તામાં ગ્રામીણ જીવનનું રાજકારણ નિરૂપાયું છે. સાથે દલિત સંવેદનાને સર્જકે વાચા આપી છે.

વાર્તા નાયક કાનો આખા ગામમાં બી.એ., બી.એડ્. થયેલો છે. દલિત હોવાના કારણે નોકરીમાં મેળ પડ્યો નથી. ટ્રસ્ટનું જ્ઞાતિવાદી અને રૂપિયાવાદી વલણ હોવાથી કાનાની શિક્ષક તરીકે પસંદગી થતી નથી. પણ તે હાર માનતો નથી. કાનાને સરપંચ બનવાના કોડ અનામત સીટ આવ્યા પછી વધે છે. તેમાં કલુડોશી પોતે સભ્ય હોવાથી વધુ વેગ પકડે છે. કાનાના આ કોડ સતાધારીઓ પુરા થવા દેતા નથી.

વાર્તા વેગ પકડે છે સરપંચની ચૂંટણીમાં અનામતની સીટ આવતા. વર્ષોથી સત્તા જેમના હાથમાં રહેલી છે તેવા બાપુની મતી મારી જાય છે તે વિચારે છે કે ''હાળું ઈ તણ્ય ફદ્દિયાનું મેતરિયું અમારા જીવતા જીવ

સરપંચ થાહે!!?''[૧] તો મુખી કહે: ''પેલા અરિજન સભ્ય રે'તોય પણ અંગૂઠો લેવાનો થોડો હોય! બતાવવાનો હોય. હા,જમણવારમાં એને ન ભૂલતા. એના થાળી-વાટકામાં બાર્ય બેહીન્ ગળચી ન્ હાલતો થાય.

ઈ વરણ સરપંચ થાહે: કાંટો કાંટા ને કાઢે!''[૨]

ઘણીવાર આપણી જાગૃતિ-જાણકારી, જ્ઞાન બીજાને ખટકતું હોય છે ને એજ આપણી સમસ્યાનું કારણ બને છે. લેખકે નોંધ્યું છે કે કેવળ પરિણામ જ બાકી હતું. ગામલોકોએ તેમજ કલુડોશીએ કાનાને સરપંચ માની લીધો. પરંતુ બાપુ અને ગલા ગોરની યોજના મુજબ ભસ્માસુર વાળી કરવાનું વિચાર્યું. ગામમાં બીજું ફોર્મ ભરાવ્યું જે સોમલા(સોમાભાઈ)નું હતું.

સોમલા(સોમાભાઈ) વિશે લેખક પરિચય આપતા કહે છે કે સોમલો પહેલા કૂવા ખોદવાનું કામ કરતો હતો. તે અભણ અને અણઘડ છે. અનામતની સીટ આવવાથી સોમલાનું ભાગ્ય ખુલ્યું, પણ ગામ લોકોનું બંધ થઈ ગયું. સોમલાની સમજણ વિશે કલુડોશી કહે છે કે, ''એલા ઈન્ કયા હાથે ધોવી ઈની ખબર્ય નથી પડતી ન...ફોરમ ભર્યો!!?''[૩] સૌને એમ કે સોમલો હારશે પણ કપટ બુદ્ધિથી લોકોને ફેરવી નાખે છે. ચૂંટણીની આગલી રાતે કાનો નિરાંતે ઊંઘતો હતો. પરિણામ આવ્યું કાનો હાર્યો. આ આઘાત કાનો સહન કરી શક્યો નહી. જાતને સરપંચ સ્વીકારી બેઠેલો કાનો માનસિક સમતુલા ખોઈ બેસે છે. તે વીજળીના થાંભલા પર ચઢી જાય છે. કોઈનો વાળ્યો વળ્યો નહી. કલુડોશી પણ બુમરાડ કરતાં પાછળ દોડતાં રહ્યાં ત્યારે ગોલણબાપુ આવીને જીણી આંખે જોયું. પછી કહ્યું: ''કાના, વાયરને અડતો નહિ મારા ભાઈ! બાપુનો ઘા ઠેકાણે જ લાગ્યો અને કાનો...''[૪] આટલા શબ્દોમાં સર્જકે ઘણું સુચવી દીધું છે કે હવે કાનાનું શું થયું! બાપુતો કાનાનો કાંટો કાઢવા જ માંગતા હતા. કાનાને 'વાયર ન અડકવાનું કહેવું' એટલે એવું સમજાય છે કે કાનો વાયરને અડે અને કાનાના રામ રમી જાય.

ડૉ.મનોજ માહ્યાવંશી 'સરપંચ' વાર્તા વિશે લખે છે કે, ''લોકમતનો ઉપયોગ આજે શાના માટે થાય છે? જ્વાબ માટે આ વાર્તા વાંચવી પડે, માર્ક ટ્વેઇનની વાતને સ્મરીને કહેવાનું મન થાય કે 'રાજકારણમાં સવર્ણોને કોઈ પહોંચી ન શકે' એ રાઘવજી માધડે આ વાર્તા દ્વારા સાબિત કરી બતાવ્યું છે. લેખકને અભિનંદન.''[૫]

અહીં સોમાલાએ જો સરપંચનું ફોર્મ ન ભર્યું હોત તો પોતાના સમાજનો ભણેલ વ્યક્તિ કાનો સરપંચ બની કંઈક સારું કરી શક્યો હોત. પણ સોમલો અહીં સામાજિક ભલું ન ઈચ્છીને બીજાની ખોટી ચુંગાલમાં ફસાઈ જાય છે.

છેવટે કાનાના સરપંચ બનવાના અભરખા અધૂરા રહી જતા..સોમાલાના સરપંચ બનવાના અભરખા પુરા થાય છે. ત્યાં પ્રસ્તુત વાર્તા વિરામ લે છે.

પ્રવર્તમાન સમયમાં સમાજમાં જોવા મળતા જાતિવાદી મનોવલણો અને અસ્પૃશ્યતાની વરવી વાસ્તવિકતા પ્રસ્તુત વાર્તા સરપંચ માં સર્જકે આગવી શૈલીમાં રજૂ કરી છે. જે આજે ૨૧મી સદીના સમાજની વરવી વાસ્તવિકતાને ઉજાગર કરે છે. સર્જકના સાહિત્યિક પ્રદાનને સમયાંતરે વિવિધ સ્તરે ઉચિત રીતે પોંખવામાં આવેલ છે. એમનાં ઝાલર વાર્તા સંગ્રહને ગુજરાતી સાહિત્ય અકાદમી દ્વારા પુરસ્કૃત કરાયેલ છે. ગુજરાતી સાહિત્યમાં નોંધપાત્ર પ્રદાન બદલ સર્જકશ્રી રાઘવજી માધડને 'સંતશ્રી કબીર દલિત સાહિત્ય એવોર્ડ' એનાયત થયેલ છે.

સંદર્ભ સૂચી

૧. 'જાતરા' લેખક રાઘવજી માધડ, આર.આર.શેઠની કંપની અમદાવાદ, પ્ર.આ., ૨૦૦૫,પૃ-૭૦.

૨. એજન, પૃ-૭૦-૭૧.

૩. એજન, પૃ-૭૨.

૪. એજન, પૃ-૭૩.

૫. (દલિત વાર્તાઓ આસ્વાદ મૂલક સમીક્ષાઓ), ડૉ.મનોજ માહ્યાવંશી, નવભારત સાહિત્ય મંદિર અમદાવાદ, દ્વિતીય આવૃત્તિ, ૨૦૧૧,પૃ-૪૪.

'हाय! हैंडसम': हाशिएकृत वृद्धों की समस्याओं का खुलासा

डॉ० ज्योतीश्री बालकृष्णन

असोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, एस. डी कॉलेज, अलप्पुष़ा, केरल

सारांश

जो भी इंसान इस दुनिया में जन्म लेता है, उन्हें जिंदगी के कई अवस्थाओं व प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है। इससे होकर ही वह कालयवनिका में विलीन हो पाती है। जिंदगी के विभिन्न पड़ावों की ओर देखा जाए तो वह बाल्यावस्था से शुरू होकर युवावस्था से होते हुए वृद्धावस्था तक पहुंच जाता है, जो मानव जीवन का आखिरी पड़ाव है। यहां आकर इंसान फिर से बच्चे जैसा बन जाता है, जिसे परिवारिक व सामाजिक देखभाल की सख्त जरूरत होती है। उपभोक्तावादी एवं बाजारवादी संस्कृति के प्रभावोत्पादक विचारधाराओं के चलते अब बुजुर्गों की हालत हाशिए में पड़े झूल रही है। उन्हें ना ही इज्जत मिलता है, ना ही उनके साथ सही सलामत देखभाल व इलाज होती है। इसका एक प्रमुख कारण है उपभोक्तावादी एवं बाजारवादी संस्कृति पर आधारित सोच, जो इंसान को हैवान में तब्दील कर देता है।

वृद्धावस्था तक आते-आते वृद्धों की हालत बदतर हो जाती है। उन्हें अकेलापन क समस्या, सामाजिक सुरक्षा का अभाव, आर्थिक समस्याएँ जैसे कई परेशानियों का सामना करना पड़ता है। इसी का परिणाम है वृद्ध आश्रमों की बढ़ती जा रही संख्या। परिवार व समाज में मौजूद वृद्धों की अवस्थाओं का यथार्थ चित्रण व खुलासा करके उन्हें न्याय दिलाने की कोशिश में कार्यरत काफी सारी रचनाएँ हमारे साहित्य जगत में मौजूद है। उन्हीं में प्रमुख है जयवर्धन उर्फ जयप्रकाश सिंह, द्वारा लिखित नाटक 'हाय! हैंडसम', जिसमें वृद्धावस्था के एक अलग नजरिया को दर्शाया जा रहा है, जो समाज को सोचने व पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित करता है।

बीज शब्द: हाय! हैंडसम, वृद्ध विमर्श, वृद्ध समस्या, रिश्ते की संभावना और तर्क, अकेलापन, आर्थिक समस्या, युवाओं के बदलते विचार, व्यक्तिगत सुख की तलाश।

मूल आलेख

प्रत्येक व्यक्ति को अपने जिंदगी के दौरान अनेक पड़ावों से होकर गुजरना पड़ता है। जैसे की बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था आदि। जिससे होकर ही वह अपने जिंदगी के विभिन्न पड़ावों की मजा ले पाती है। कभी-कभार कुछ लोगों के लिए यही मजा, सजा के रूप में परिवर्तित भी हो जाती है। इसके कई सारे कारण भी होते हैं, जिनका सारा प्रभाव व प्रकरण हर किसी की वृद्धावस्था में देखने को मिलता है।

वृद्धावस्था एक ऐसी अवस्था है, जो हर इंसान के जिंदगी का आखिरी पड़ाव होता है। इससे होकर ही वह कालयवनिका में विलीन हो पाती है। वृद्धावस्था में आकर इंसान फिर से बच्चों जैसा बन जाती है। उनके देखभाल ऐसा होना चाहिए जैसे कि एक बच्चे की किया जाता हो, उन्हें मानसिक और शारीरिक रूप से मदद की जरूरत पड़ती है। इसी के चलते वह अपनी वृद्धावस्था खुशी-खुशी बिता पाएंगे।

वृद्धावस्था की परिभाषा की ओर कई विद्वानों ने इशारा किया हुआ है, उनमें प्रमुख है 'यूनियन पीडिया' की परिभाषा। जैसे, "वृद्धावस्था या बुढ़ापा जीवन की उस अवस्था को कहते हैं जिसमें उम्र मानव जीवन की औसत काल के समीप या उससे अधिक होती है। वृद्धावस्था एक धीरे-धीरे आने वाली अवस्था है जो की स्वाभाविक या प्राकृतिक घटना है। वृद्ध का शाब्दिक अर्थ है बढ़ा हुआ, पका हुआ, परिपक्व।"[1]

आधुनिक हिंदी साहित्य जगत को विभिन्न विमर्शों का साहित्य भी कहा जाता है। जहां कई सारे विमर्श उभरकर सामने आती है। उनमें एक प्रमुख विमर्श है वृद्ध विमर्श। जिसके केंद्र में वृद्धों द्वारा झेले-समझे-भोगे जा रहे कठिनाइयों का चित्रण व अंकन किया जाता है तथा उस पर चिंतन-मनन करके उसका समाधान खोजने की कोशिश भी किया जाता है।

उपभोक्तावादी एवं बाजारवादी संस्कृति के चलते संयुक्त परिवार की जगह आज अणु परिवार ने ले लिया है, जिसके चलते परिवारों में मूल्यों की कमी दृष्टव्य हो रही है। किसी के पास भी दूसरों को देने के लिए पर्याप्त वक्त नहीं है, सब लोग समय के अंधाधुंध में भागे जा रहा है, इसके साथ ही उन्हें प्रभावित कर मोह-पाश में बाँधकर विचलित करने के लिए स्मार्टफोन जैसी चीजें भी मौजूद है, जो उन्हें एक अलग दुनिया की ओर ले जाती हैं। 'रील्स' वगैरह देखने के लिए वक्त तो कैसे भी ढूंढ निकालते है, लेकिन अपने मम्मी-पापा के हालात देखने या पूछने के लिए उनके पास वक्त नहीं है। इस प्रकार हमारी दुनिया संवेदनशून्यता की ओर अग्रसर हो रही है। इसी संवेदनशून्यता के चलते आज के नव पीढ़ी स्वार्थता के हाथों विवश होकर, यहां तक की अपने मम्मी-पापा तक को वृद्धाश्रमों के हाथों सौंप देता है। बाद में, उस तरफ अनजाने में भी पलटकर नहीं देखते।

सब लोगों को अपने माता-पिता के संपत्ति का हिस्सा तो चाहिए, लेकिन उसके ज्ञान एवं अनुभवों का जो खजाना है, वह किसी को नहीं चाहिए। आजकल, इस आधुनिकता की आड़ में जीने वाले जमाने में यहां तक की गुरुओं तक का आदर करने के लिए किसी के पास न तो वक्त है न ही मन। ऐसे में वृद्धों की हालत वार्द्धक्य में आकर क्या रही होगी।

यहां देखा जाए तो सारे परेशानियों के जड़ के रूप में आर्थिक अभाव विद्यमान है। इसी के चलते लोगों को ये वृद्ध जन उपयोगशून्य व मुसीबत लगने लगते हैं। वृद्धावस्था तक आते-आते वृद्धों के अंदर डर, चिंता, अकेलापन, आमतौर पर आर्थिक अभाव, असुरक्षा की भावनाएं जैसी बातें पनपने-सताने लगती हैं। इसके चलते उन लोगों की जिंदगियां नरक बन जाती हैं, कुछेक तो इन सारे सोचों के चलते दुनिया ही छोड़ जाते हैं।

इन सारी समस्याओं को अपने रचनाओं द्वारा व्यक्त करके, उसका हल ढूंढकर नव पल्लवित पीढ़ी को दर्शाते हुए इस विमर्श के हल निर्माण करने की कोशिश हिंदी साहित्य जगत में कई सारे लेखक गण कर रहे हैं। उन्हीं में से एक प्रमुख रचना है 'जयवर्धन' उर्फ 'जयप्रकाश सिंह' द्वारा लिखित 'हाय! हैंडसम'। जिसमें वृद्ध जीवन की एक अलग छवि व समस्याओं को हल करने की एक अलग नजरिए का चित्रण किया गया है, जो हर एक पाठक को सोचने के लिए मजबूर कर देता है।

इस नाटक के केंद्र में मौजूद है फौजी से रिटायर हुए रोमांटिक फ्लर्ट विधुर 'कर्नल कपूर' तथा उनके पुत्र 'स्वामी' और उनके पत्नी 'मंदा' तथा मंदा की मां 'सीता देवी'। साथ में इन लोगों से जुड़े एक अन्य पात्र भी है, वह है नौकर 'कमाल', जो सूत्रधार की भूमिका निभाते हुए हर एक पात्र की समस्या व परिस्थितियों को चटपटा और मजेदार बना देता है। यहां कर्नल कपूर व सीता देवी के द्वारा वृद्धावस्था में उत्पन्न अकेलापन व अन्य समस्याओं की ओर इशारा किया गया है। इस नाटक के केंद्र में न्यूक्लियर परिवार का इस्तेमाल करते हुए उससे उत्पन्न अन्य समस्याओं की ओर भी इशारा किया गया है।

यहां स्वामी एक ऐसा भोला-भाला पात्र है, जो अपने पत्नी के हर बात पर हामी भरता है, जिसके चलते वह बेरोजगार ही रह जाता है। स्वामी की पत्नी मंदा एक मॉडल व फिल्मी अभिनेत्री बनने की निराधार सपने देखने वाली एक स्वार्थी व अल्ट्रा मॉडर्न बीवी है, जो अपने हित के लिए स्वामी का इस्तेमाल करता है। मंदा की मां का नाम है सीता देवी, जो अपने बेटी की परिवार विरोधी रवैए से दुखी व असहाय है।

इस नाटक के द्वारा समाज में चल रहे कई सारे विषयों-विद्रूपताओं की ओर इशारा किया गया है, जैसे कि अपने स्वार्थ के लिए दूसरों का इस्तेमाल करना। यहां अपने खुद की भलाई के लिए एक वैवाहिक जीवन तक का इस्तेमाल करने वाले पात्र मंदा द्वारा इस स्वार्थपरता की ओर इशारा किया गया है,"प्यार-व्यार कुछ नहीं था। साथ पढ़ता था। सीधा-सादा साधू-संत जैसा दिखायी देता था। बस, मैंने उसे चुन लिया। मुझे इसी तरह का आज्ञाकारी और दब्बू पति चाहिए था, जो मोह-माया, रोमांस, दुनियादारी वगैरह से दूर हो।"[2]

यहां हमें अपने स्वार्थ के लिए दूसरों का इस्तेमाल करने वाले स्वार्थपरक विचारधारा के व्यक्तित्व को देखने के लिए मिलता है, जिसका बस एक ही विचार होता है कि जो चाहा वह मिलना चाहिए, चाहे घर और संबंध सब तबाह हो जाए। इसी ओर इशारा करती है मंदा का यह कथन, "मम्मी, कोई कड़क मिल जाता तो सड़क पर कर देता। हो सकता है कि मुझे मॉडलिंग न करने देता। अब तक तो दो-चार बच्चे पैदा हो गये होते। दिन-रात मैं किचन में घुसी रहती। कुछ भी हो, स्वामी मुझे इस मामले में काफी कोऑपरेट कर रहा है। मेरा कॅरिअर बनाने में उसका बहुत बड़ा हाथ है।"[3]

यहां इसी स्वार्थपरकता के चलते चौपट हो रही जिंदगियों का चित्रण भी किया गया है। यहां स्वामी के चरित्र द्वारा इसी ओर इशारा किया गया है कि, "और उसका कॅरिअर चौपट करने में तुम्हारा बहुत बड़ा हाथ है। बेचारा गृहस्थ आश्रम में ही संन्यासी बन गया है। सिर्फ तुम्हारी वजह से।"[4]

इस दौरान अकेली विधवा सीता देवी, जो मंदा की मां है, वह मंदा से मिलने कभी-कभार आ जाया करती थी, इसके बीच इसी समान अकेलापन से जूझ रहे रोमांटिक फ्लर्ट विधुर कर्नल कपूर सीता देवी से बीच-बीच में मिलते-जुलते, बातचीत करते रहते हैं। उनके बीच के संबंध की ओर देखा जाए तो वह एक समधि-समधिन की रिश्ता है, फिर भी उन दोनों के बीच उस रिश्ते की रेखा मिटते हुए उसमें प्रेम और सहचर्य का विकास होता है, जो बाद में चलकर विवाहोत्तर संबंध में बदल जाता है। संक्षेप में उनका संबंध एक पारंपरिक समधी-समधिन के रिश्ते से होकर अकेलापन के दो शिकार लोगों के बीच के गहरे सहचर्य में बदल जाता है और अंततः एक अद्वितीय पति पत्नी के रिश्ते में परिणत हो जाता है। जिसने पूरे परिवार की गतिशीलता को ही बदल देता है।

कहने को तो यह मानवीय मार्मिकता के संघर्ष को हास्य के द्वारा दर्शाते हुए अकेलेपन की समस्या की ओर इशारा कर रहा है। जैसे की, "कहने को पूरा परिवार है मेरे साथ, बहू-बेटा सब, लेकिन हर कदम, हर मोड़ पर मैं अपने आप को अकेला पाता हूँ। दूर-दूर तक कोई नजर नहीं आता। खैर, तुम लोगों के अपने काम हैं, अपनी जरूरत है। मैं तुम लोगों को छेड़ना भी नहीं चाहता। बस, चाहता हूँ कि तुम लोग अपनी जिंदगी हँसी-खुशी जियो । मुझे भी सीता का साथ मिल गया है, कुछ दिन और जी लूँगा।"[5]

यहां यह शादी सिर्फ हो ही नहीं सकती, बल्कि यह आज के भारतीय समाज में अकेलेपन से जूझ रहे वृद्धों के लिए एक समझदार समाधान के तौर पर भी यहां शामिल किया गया है। यहां अकेलेपन के दर्द को दर्शाते हुए कर्नल कपूर कहते हैं कि, "स्वामी, बुढ़ापे में आदमी फिर से बच्चा वन जाता है, फिर से बच्चे की तरह उसकी देखरेख की जरूरत पड़ती है। सरकार बूढ़ा, बेकार समझकर रिटायर कर देती है। अगर घर वाले भी बेकार का बोझ समझकर नेगलेक्ट करेंगे, फिर वो कहाँ जायेगा? जबकि उसमें बुद्धि अब भी है। बल जरूर कम हो गया है। उसके अनुभव का पूरा लाभ उठाया जा सकता है। बेटे, इंसान की बनाई चीजें आउटडेटेड हो सकती हैं, खुद इंसान कभी आउटडेटेड नहीं हो सकता।"[6]

यहां वृद्धजनों के अंदर की पीड़ा को, दर्द को कर्नल कपूर की वाणी द्वारा सुनने के लिए मिलता है, जो उनकी वाणी द्वारा प्रस्तुत हो रहा है। यहां वृद्ध जनों के वर्तमान में झूलते समस्याओं की ओर भी इशारा किया गया है। वह सिर्फ स्वामी के प्रश्न का जवाब ही न होकर समाज व सरकार की ओर एक सवाल भी है व तीखा व्यंग्य भी है।

उन्होंने तो यहां शादी को अकेलेपन से बचने का एक उपाय के रूप में चुनता है। कर्नल कपूर का अकेलापन केवल शारीरिक दूरी का नहीं, बल्कि भावनात्मक और सामाजिक अलगाव का परिणाम है। बच्चों का व्यस्त जीवन ही यहां प्रमुख कारण है, साथ ही कर्नल कपूर और सीता देवी जो है, वह अब

तक दादा-दादी और नाना नानी नहीं बन पाई है। जिंदगी के इस उम्र में पोते-पोतियों का होना बुजुर्गों के जीवन में बहुत बड़ा आनंद और व्यस्तता लाती है, जो उनके लिए आगे की जिंदगी बिताने के लिए काफी होता है। लेकिन यहां करियर के पीछे भाग रहे नई पीढ़ी के व्यस्थता के कारण उससे भी वृद्ध लोग वंचित रह जाते हैं।

यही नहीं वृद्धावस्था में आकर आवश्यकताएं भी बढ़ जाती है। जैसे की दवाइयां लेना, स्वास्थ्य की देखभाल करना, यहां तक कि दो बातें करना आदि सब कुछ। जब इस अकेलापन की समस्या इंसान को भावनात्मक तौर पर खारिज करने लगेंगे, तब तो उनके जिंदगी बदतर होने लगती है। यहां कर्नन कपूर की बात सबको सोचने के लिए मजबूर व विवश कर देती है कि, "मुझे भी किसी का साथ चाहिए था, जो अपनी कहे और मेरी सुने। इसके लिए मैंने वैधानिक रूप से सीता को अपना साथी बनाया। अब इन्हें तुम साथी, पत्नी, बीवी कुछ भी कह सकते हो। मेरा अनुभव कहता है कि जवानी से ज़्यादा बुढ़ापे में बीवी की जरूरत पड़ती है। जवानी के प्यार में रोमांस-सेक्स सब होता है, मगर सामयिक होता है। बुढ़ापे का प्यार वास्तविक और टिकाऊ होता है।"[7]

यहां पूरे समाज को वैवाहिक जीवन के अर्थ विपर्ययों की व्यापकता को व्यक्त करते हुए वृद्धावस्था में साथी की जरूरत को कर्नल कपूर यहां दर्शाती है। यहां इन सारी बातें समाज की उस अनसुनी व अनछुए विषयों की ओर इशारा करता है, जो वृद्धावस्था तक आते-आते परिपक्व होने वाले वृद्ध व्यक्तियों के ज्ञान चक्षुओं व अनुभव कुशलता के व्यापक दायरे को दर्शाता है।

यहां एक अन्य बात यह भी है कि, कर्नल कपूर फौज से रिटायर होने की वजह से उनके पास एक स्थायी पेंशन मौजूद है, जिसके चलते वह अपने परिवार में सम्मान और गरिमा प्राप्त करते हैं। उन्हीं के चलते वह परिवार खुद चल व आगे बढ़ पाती है। उसके पास अगर आर्थिक स्थिरता ना होता तो उन्हें इज्जत क्या खाने पीने तक को मिलने की संभावना ना की बराबर रहता। जब कर्नल कपूर, सीता देवी से शादी करके घर वापस आते हैं तो बच्चे उस शादी को, उस रिश्ते को स्वीकार ही नहीं करते। तब कर्नल कपूर एक साहसिक निर्णयात्मक प्रस्ताव सामने रखता है कि, "भाई, तुम्हें यह रिश्ता मान्य नहीं। जाहिर सी बात है कि तुम दोनों मेरे साथ नहीं रहना चाहोगे, क्योंकि लोग क्या कहेंगे? लोगों को क्या जवाब दोगे? मुँह कैसे दिखाओगे? ठीक। बिलकुल ठीक। तुम दोनों की सेहत के लिए अच्छा होगा कि यह घर छोड़कर कहीं और चले जाओ, क्योंकि यह घर मेरा और श्रीमती सीता कपूर का है। अब यहाँ सिर्फ हम दोनों रहेंगे।"[8]

यहां इस निर्णायक प्रस्ताव रखने की हिम्मत कर्नल कपुर सिर्फ इसलिए कर पाती है, क्योंकि घर उसके नाम पर है और उसे एक स्थाई पेंशन भी मिल रहा है। अगर उसके पास ना ही कुछ है, उसके पास पेंशन क्या फूटी-कौड़ी भी उसके पास नहीं होता तो क्या वह शादी कर पाता? यहां तक कि अपने खुद के बच्चों के सामने खड़े होकर बात भी नहीं कर पाते। यहां आत्मसम्मान की बात को रेखांकित किया जा रहा है। यहां इन सारे बातों की ओर एक अलग नजरिए से खुद को परंपरावादी सोच से अलग करके एक अलग व व्यापक दृष्टिकोण द्वारा विभिन्न विषयों व उससे संबंधित समस्याओं की और यह नाटक इशारा किया हुआ है।

वृद्धावस्था में सबसे बड़ी समस्या है अकेलापन की समस्या। जिसके चलते लोग परेशानियों व समस्याओं के चक्रव्यूह में पड़कर मर-मिट जाती है। वार्द्धक्य सहज सभी परेशानियों का मूल कारण है आर्थिक स्थिरता का अभाव। यही जिंदगी के मजबूत नींव होता है। उसके बिना कुछ नहीं हो पाता। माता-पिता अपने सब कुछ बेच-गिरवी रखकर अपने बच्चों को पढ़ा-लिखाकर बड़े-बड़े ओहदों तक पहुंचाता है। बाद में वही बच्चे अपने माता-पिता को छोड़कर या तो विदेश चली जाती है या फिर उन्हें वृद्धाश्रमों में छोड़कर अपने जिंदगी की सुनहरे पहलुओं व पलों की ओर बढ़ जाती है। इस सबके बीच मर मिट जाती है कई जिंदगियां। इन सारे परेशानियों व समस्याओं का कारण एक हद तक उपभोक्तावादी एवं बाजारवादी सोच हैं। इसी ओर 'ममता कालिया' के द्वारा लिखित 'दौड़' नामक उपन्यास भी इशारा करता है, जिसमें पवन नामक पात्र अपने पिता से कहता है कि, "पापा मेरे लिए शहर महत्वपूर्ण नहीं है करियर है मुझे संस्कृति नहीं उपभोक्ता संस्कृति चाहिए तभी मैं कामयाब रहूंगा"[9]

ऐसे-ऐसे समाज में हो रहे विभिन्न बदलाव व प्रभाव-वैशिष्टयों के चलते अनाथ व हाशिएकृत हो रहे कई सारे वर्ग हमारे चारों ओर मौजूद है। उनमें प्रमुख है वृद्ध जन। उन्हें ना ही अपने साथ हो रहे गूढ़ नीतियों व षड़यंत्रों के खिलाफ लड़ने की काबिलियत होती है ना ही शारीरिक तौर पर ताकत। उन बेचारों के लिए उठाये गए, लड़नेवाले अस्त्र-शस्त्र है इस जैसे रचनाऐं, जो उन बेचारों के लिए आवाज उठाती है तथा पाठक वर्गों को सोचने-समझने तथा इन बेचारों के लिए खड़े होने के लिए प्रेरित करता है, बाध्य बनाता है। जो नव पीढ़ी का धर्म होता है, कर्तव्य होता है।

संदर्भ

1. डॉ.दिलीप मेहरा, हिंदी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श, उत्कर्ष पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स, कानपुर, 2021, पृ. सं. 16
2. जयवर्धन, हाय! हैंडसम, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010 पृ. सं. 26
3. वही पृ. सं. 26
4. वही पृ. सं. 26
5. वही पृ. सं. 73
6. वही पृ. सं. 74
7. वही पृ. सं. 74
8. वही पृ. सं. 75
9. डॉ.दिलीप मेहरा, हिंदी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श, उत्कर्ष पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स, कानपुर, 2021, पृ. सं. 54

1857 का स्वतंत्रता संग्राम हरियाणा के विशेष संदर्भ में

सुमित हुड्डा

शोधार्थी, इतिहास विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

हमारे इतिहास में 1857 की घटना कोई उत्सवधर्मी अवसर नहीं है बल्कि अपनी विरासत, लोक स्मृति और ऐतिहासिक प्रक्रिया से सबक व सीख लेने का प्रामाणिक आधार है। यह उस दौर की घटना है जब 19वीं सदी का साम्राज्यवाद अपने चरम पर था। भारत लगभग पूरी तरह अंग्रेजी चंगुल में उलझ चुका था, अंग्रेजों का चीन में दूसरा अफीम युद्ध चल रहा था, एशिया के अन्य क्षेत्रों में साम्राज्यवादी शक्तियाँ पाँव जमा रही थी तथा वे अफ्रीका में भी दस्तक दे चुकी थी तो विश्व की सबसे शक्तिशाली मानी जाने वाली साम्राज्यवादी शक्ति को भारत में जबरदस्त चुनौती मिली। इस चुनौती को उन्होंने असफल अवश्य कर दिया परन्तु उनके वंशजो तक को यह आज भी याद है। यही कारण है कि ब्रिटेन में आज भी कुछ संगठनों में इसे याद करने के कार्यक्रम आयोजित होते हैं तथा वहीं से प्रतिनिधि मण्डल आकर इस घटना से सम्बन्धित स्थलों का दौरा भी करते रहे है। यहाँ से कुछ प्रश्न उठते हैं जो हमारे मानस पटल को झकझोर देते हैं कि ब्रिटेन के लोग आज भी ऐसा क्यों कर रहे हैं? इस असफल चुनौती का उनके लिए एवं हमारे लिए क्या मायना है? अंग्रेज जब इसमें विजेता हो गए थे तो उन्होंने इस पर भारतीयों को लिखने क्यों नहीं दिया? इस घटना में शामिल लोगों का उद्देश्य क्या था? इस बारे में उनकी सीमाएं व महत्त्वशाली पक्ष क्या था? हमने इस घटना को किस तरह समझने का प्रयास कियाहै? हमारी नई पीढ़ी व भविष्य का इस बारे में दृष्टिकोण क्या है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर न तो एक है तथा न ही इन्हें अलग-अलग करके देखा व समझा जा सकता है। इसके लिए जरूरी है कि साम्राज्यवादी मानसिकता, तत्कालीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य, मूल्यों व जरूरतों, स्त्रोतों की प्रकृति, राष्ट्रीय आन्दोलन के आदशाँ तथा वर्तमान संक्रमण के दोर में समाज की दशा व दिशा के साथ-साथ सामाजिक मनोविज्ञान को भी समझा जाए। तभी इस या इन जैसे अनेक प्रश्नों के उत्तर समझे जा सकते हैं अन्यथा सार्थक परिणामों की आशा नहीं की जा सकेगी। 1857 की घटना के बारे में राष्ट्रीय संदर्भ में दृष्टिकोण कभी एक जैसा नही रहा परन्तु उनमें कुछ अन्तर होते हुए भी मौलिक समानताएं पाई जाती है। इस घटना का विस्तार क्षेत्र काफी था. इसी तरह क्षेत्र व वर्ग के लोगों के हित व मायने भी एक नही थे। परन्तु इस बात पर सभी सहमत थे कि उन सब का शत्रु अंग्रेज है तथा उसी के कारण उनकी यह दुर्दशा हुई है। इतिहास के फैलते क्षितिज ने भी इस घटना के दायरे व आयामों को बढ़ाया है।

1857 के स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि

1857 की क्रांति का बीजारोपण 1854 में होता है। रंगों बापूजी गुप्ते महाराष्ट्र में सतारा के राजा प्रताप सिंह के कार्य से और अजीमुल्ला खां नाना साहब पेशवा के वकील उनके राज्य के कार्य से लंदन गए हुए थे। वहां पर रंगों बापूजी गुप्ते और अजीमुल्ला खां इन दोनों की भेंट होती है और इस क्रांति का बीजारोपण दोनों की वार्ता में होता है। वापिस भारत आकर दोनों अपने राजाओं से चर्चा करते हैं और यह चर्चा उस समय के उन अनेक राजाओं के साथ भी होती है जो चाहते थे कि भारत स्वतंत्र होना चाहिए। कानपुर के निकट गंगा नदी के किनारे बिठूर के राजमहल (ब्रह्मावर्त घाट) में नाना साहब पेशवा, तात्या टोपे, रानी लक्ष्मी बाई, रंगोंजी बापू, अजीमुल्ला खां आदि अनेक क्रांतिकारी एक मास तक बैठकर क्रांति की योजना बनाते हैं। 1856 के प्रारम्भ में एक गुप्त रूप से युद्ध संगठन की योजना रचना होती है और देशभर में इस गुप्त संगठन की अनेक शाखाएं खोली जाती हैं। नाना साहब पेशवा के बिठूर (ब्रह्मावर्त) का राजमहल और बहादुरशाह जफर के दिल्ली का दीवाने-ए-आम में क्रांति युद्ध की चर्चाएं अग्नि की ज्वालाओं की तरह धधकने लगती हैं।

एक साथ पूरे देश में क्रांति का दिवस 31 मई 1857 निश्चित हुआ। यही दिन क्यों चयन हुआ? मई मास में ग्रीष्म ऋतु रहती है। अधिकांश अंग्रेज अधिकारी उस समय पर्वतीय क्षेत्र में चले जाते हैं। इस समय युद्ध होगा तो अंग्रेज अधिकारी युद्ध में लम्बे समय तक टिक नहीं पाएँगे। 31 मई 1857 को रविवार था। रविवार को सैनिक छावनियों में अवकाश रहता है। रविवार के दिनएक साथ क्रांति होगी तो सेना को सम्भलने में समय लगेगा। हमें ज्ञात है कि मार्च 1857 बैरकपुर छावनी (बंगाल) में दो अंग्रेज अधिकारियों को गोली मारकर मृत्युदंड देने के कारण मंगल पाण्डेय को अप्रैल 1857 में फांसी दी गई थी और 10 मई 1857 को मेरठ छावनी के भारतीय सैनिकों ने क्रांति प्रारम्भ कर दी थी। परन्तु पूर्व निश्चित दिवस 31 मई 1857 ही था।

पूरे देश में एक साथ क्रांति होनी है तो सब स्थानों पर सूचना कैसे होगी? इसके लिए चार माध्यमों का विचार किया गया। पहला रक्त कमल। रक्त कमल प्रत्येक छावनी में गुप्त रूप से जाता था और वहां के भारतीय सैनिक जो क्रांति में भाग लेना चाहते थे, उस रक्त कमल को छू लेते थे और क्रांति में भाग लेने का संकल्प लेते थे। दूसरा माध्यम था रोटी ख़ पूरे गांव के सामने गांव का मुखिया एक रोटी जो दूसरे गांव से बन कर आई हुई होती थी, खा लेता था और पूरा गांव संकल्प लेता था कि क्रांति में हमने भाग लेना है। फिर उस गांव के प्रत्येक घर से आटा लेकर एक रोटी बनती थी, वह रोटी अगले गांव तक जाती थी। यह इस बात का संकेत होता था कि पिछले गांव ने भी क्रांति में भाग लेने का संकल्प लिया है। तीसरा माध्यम,1854-57 के मध्य जितने भी कुम्भ-अर्धकुंभ-मेले आदि भरे गए, नाना साहब पेशवा के नेतृत्व व मार्गदर्शन में वहां आए हुए लोगों से संकल्प दिलाया जाता था कि 31 मई 1857 को देश की स्वतंत्रता के लिए क्रांति में भाग लेना है। और चौथा, देशभर के विभिन्न राजाओं से मंत्रणा कर उन्हें क्रांति में भाग लेने की सहमति का कार्य

भी नानासाहब पेशवा के द्वारा होता था। उस समय कोई तार व्यवस्था नहीं थी, कोई टेलीफोन नहीं था, कोई रेडियो स्टेशन नहीं था, कोई देश व्यापी समाचार पत्र-पत्रिका नहीं थी, कोई इंटरनेट/सोशल मीडिया नहीं था। उपर्युक्त चार माध्यमों से ही पूरे देश भर में सूचना हुई और सूचना तंत्र इतना सशक्त और गोपनीय था कि अंग्रेजों को इसकी भनक तक नहीं लगी।

1857 की क्रांति के प्रमुख केंद्र ख्र मेरठ, दिल्ली, कानपूर, लखनऊ, झाँसी, सतारा, अम्बाला,वर्तमान हरियाणा(पंजाब), बिठुर, बैरकपुर, अलीगढ, नसीराबाद, बरेली, बनारस, इलाहाबाद, ग्वालियर, इंदौर, कलकत्ता, गया, पटना, जगदीशपुर, कालपी, कोल्हापुर, नागपुर, जबलपुर, हैदराबाद, जोहरापुर, कोमलदुर्ग, सावंतवाडी, शंकरपुर, रायबरेली, फैजाबाद, फरुखाबाद, संभलपुर, मथुरा, गढ़मंडला, रायपुर, मंदसौर, सागर,मालाबार आदि। ये कुछ प्रमुख स्थान है।इन्हें देखकर यह स्पष्ट होता है कि 1857 की क्रांति देशव्यापी थी और सुनियोजित थी।

दिल्ली का सम्राट बहादुरशाह जफर एक महान कवि भी था। उनकी लिखी काव्य पंक्तियों में क्रांति की बातें स्पष्ट झलकती हैं। उन्होंने एक गजल की रचना की थी जिसमें स्वत: यह प्रश्न किया था -

"दमदमे में दम नहीं अब खैर मांगो जान की।
ऐ जफर! ठंडी हुई शमशीर हिंदुस्तान की।"

उन्होंने इस प्रश्न का उत्तर भी इन शब्दों में दिया -

"गजियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की।
तखूत ऐ लंदन तक चलेगी तेग हिंदुस्तान की।"

लंदन में 10 मई 1908 को 1857 की क्रांति की वर्षगांठ का आयोजन किया गया। इस अवसर के लिए सावरकर ने 'ठ डंतजलते' (ऐ शहीदों) शीर्षक से अंग्रेजी में चार पृष्ठ लम्बे पैम्पलेट की रचना की, जिसका इंडिया हॉउस कार्यक्रम में तथा यूरोप व भारत में बड़े पैमाने पर वितरण किया गया। इस पैम्पलेट की काव्यमयी ओजमयी भाषा 1857 के शहीदों के माध्यम से भावी क्रांति का आह्वान थी।

सावरकर ने लिखा - "10 मई 1857 को शुरू हुआ युद्ध 10 मई 1908 को समाप्त नहीं हुआ है, वह तब तक नहीं रुकेगा जब तक उस लक्ष्य को पूरा करने वाली कोई अगली 10 मई आएगी। ओ महान शहीदों! अपने पुत्रों के इस पवित्र संघर्ष में अपनी प्रेरणादायी उपस्थिति से हमारी मदद करो। हमारे प्राणों में भी जादू का वह मन्त्र फूंक दो जिसने तुमको एकता के सूत्र में गूँथ दिया था।" इस पैम्पलेट के द्वारा सावरकर ने 1857 की क्रांति को एक मामूली सिपाही विद्रोह से बाहर निकालकर एक सुनियोजित स्वातंत्र्य संग्राम के आसन पर प्रतिष्ठित कर दिया।

स्वतंत्रता संग्राम में हरियाणा

हरियाणा में 1857 के बारे में विभिन्न इतिहासकारों व लेखकों ने कार्य किया है तथा अपने-अपने दृष्टिकोण से सामग्री की प्रस्तुति की है। इसमें डॉ0 के0 सी0 यादव, राम सिंह जाखड़, डा0 सुरजभान, सिद्धीक अहमद मेव इत्यादि के नाम मुख्य रूप से लिए जा सकते है। डॉ0 के0 सी0 यादव की इन बारे में तीन रचनाएँ आ चुकी है। जिनमें पहली 1977 में प्रकाशित द रिवोल्ट ऑफ 1857 इन हरियाणा है। जिसमें लेखक ने शुरूआती तौर पर काफी अच्छा कार्य किया है। इसमें मुख्तया प्रारम्भिक प्रकाशित सामग्री प्रयोग की गई है जिसके कारण घटनाओं की जानकारी प्राय: सीमित है। दूसरी रचना 'रोल आफ आनर हरियाणा फैडरेशन ऑफ 1857 है। यह 2008 में प्रकाशित है इस रचना में हरियाणा के सेनानियों की सूची है। यह सूची प्राय: उनकी पहली पुस्तक पर आधारित है तथा इस सूची में दर्ज नाम सूचना व प्रसारण मुख्यालय भारत सरकार द्वारा प्रकाशित हुए है। इनकी तीसरी रचना (2008 में ही प्रकाशित) में पंजाब, हरियाणा व हिमाचल प्रदेश में 1857 का वर्णन है। जो पूर्व रचनाओं में दी गई हरियाणा के घटनाओं के साथ पंजाब व हिमाचल की सामान्य जानकारी देती है। राम सिंह जाखड़ द्वारा लिखित पुस्तक '1857 की जनक्रान्ति में हरियाणा का योगदान' 1999 में प्रकाशित है। इसमें हरियाणा से सम्बन्धित काफी सामग्री संकलित की गई है। परन्तु इसकी प्रस्तुति ऐतिहासिक दृष्टिकोण के अनुरूप नहीं है। सिद्धिक अहमद मेव द्वारा 'मेवात एक खोज' श्रृंखला में भाग तीन 'संग्राम 1857 मेवातियों का योगदान' 2006 में प्रकाशित है। इसमें मेवात से सम्बन्धित सूचनाएँ व जानकारी दी गई है। डॉ. सूरज भान द्वारा 'हरियाणा में 1857 का राष्ट्रीय विद्रोह' 2007 में प्रकाशित संक्षिप्त रचना है। इस पुस्तिका में इस घटना को अति संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया गया है। इनके अतिरिक्त सामान्य जानकारी देने वाले वाली उपयोगी छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ सर्च संसाधन केन्द्र हरियाणा द्वारा रोहतक से प्रकाशित की गई है। हरियाणा क्षेत्र के विभिन्न व्यक्तियों पर प्रकाश डालने वाली कुछ रचनाओं ने भी लाला हुक्म चन्द जैन, राव तुलाराम, उदमी राम, राजा नाहर सिंह इत्यादि पर प्रकाश डाला है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि हरियाणा के सन्दर्भ में 1857 की घटना पर अभी तक बहुत सीमित शोध हो पाया है तथा इस बारे अभी और बहुत अधिक सम्भावना है। परन्तु इसके लिए आवश्यक है कि इस सन्दर्भ में शोध कार्य बड़े स्तर पर किया जाए जिसमें विभिन्न तरह की पूर्व वर्णित वार्षिक सामग्री का विश्लेषण किया जाए। इसके बाद ही तस्वीर साफ स्पष्ट रूप में सामने आ सकेगी।

कहते हैं कि 1857 मात्र एक सैनिक विद्रोह था। अर्थात इसमें केवल सैनिकों ने ही भाग लिया था। वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। इस स्वातंत्र्य समर में सैनिकों के अलावा सामान्य नागरिकों ने भी भाग लिया था। वे नागरिक केवल नगरीय आँचल के ही थे, ऐसा भी नहीं है। ग्रामीण अंचलों के लोगों ने भी देश की स्वतंत्रता में अपनी भूमिका निभाई थी। हरियाणा, यह ग्रामीण बहुल प्रान्त है। 1857 के समय यह पंजाब का भाग होता था। 10 मई को प्रारम्भ हुए इस युद्ध को हरियाणावासी दिसम्बर 1857 तक खींच कर ले गए। 1857 के समर में हरियाणा के 3467 लोग बलिदान हुए थे। हरियाणा के 115 ग्रामों को अंग्रेजों द्वारा पूर्ण रूप से जला दिया था।

देश की स्वतंत्रता के लिए 1857 से पूर्व भी हरियाणा के विभिन्न स्थानों पर प्रयास हुआ था। 1814 में प्रताप सिंह के नेतृत्व में जींद में, 1818 में जोधा सिंह के नेतृत्व में छछरौली व जाबीत खाँ के नेतृत्व में रानियां में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह हुआ था। 1835 में बनावली (नेतृत्व - गुलाब सिंह), 1847 में कैथल (नेतृत्व - गुलाब सिंह व साहिब कौर), 1845 में लाडवा (नेतृत्व - अजित सिंह) में प्रयास हुआ था। 1824 में सूरजमल के नेतृत्व में रोहतक, हिसार व गुरुग्राम जिले में किसानों का विद्रोह हुआ था। स्वतंत्रता के लिए किए गए इन प्रयासों में सामान्य नागरिकों की भी भूमिका रही। 1854 में 'लजवाना की लड़ाई' नाम की गाथा लोकगीतों में प्रचलित है। जींद रियासत की सेना के विरुद्ध इस युद्ध में एक युवा लड़की 'भोली' ने अद्‌भुत वीरता दिखाई थी। एक ही दिन में 16 रियासती सैनिकों को मारकर भोली ने कीर्तिमान स्थापित कर दिया था। लोकगीतों में आज भी प्रचलित है- "सेर बाजरा झोली में, सोलह काटये भोली नै"।

10 मई 1857 को स्वातंत्र्य समर का ज्वालामुखी मेरठ में फूटा। उससे पूर्व बैरकपुर (बंगाल), अम्बाला (हरियाणा) एवं लखनऊ (उत्तर प्रदेश) में युद्ध की चिंगारियां जलती रही। बैरकपुर छावनी में हुए घटनाक्रम के कारण मंगल पांडेय शहीद होता है। लखनऊ में नाना साहब पेशवा के प्रवास के बाद क्रांतिकारी टोली के नोजवान सदस्य कुछ हलचल करते हैं। और अम्बाला की क्रांतिकारी टोली एक-एक करके ब्रिटिश अधिकारियों और उनके सहयोगी भारतीयों के घरों, कार्यालयों व उनकी संपत्तियों को आग लगाने का कार्य करते हैं। 26 मार्च से लेकर 1 मई 1857 तक ऐसी तेरह घटनाओं का वर्णन है जिसमें आग लगाई गई। क्रांतिकारी कुछ प्रयासों में पूर्णत: सफल हुए और कुछ में आधे सफल हुए। अम्बाला छावनी में 60वीं व 5वीं स्वदेशी पैदल सेना थी। अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह की चर्चा 10 मई से पूर्व ही दोनों बटालियन में हो रही थी। 60वीं बटालियन के सैनिकों ने 10 मई 1857 को प्रात: 9 बजे खुला विद्रोह कर दिया था।

अंबाला से क्रांति का प्रारंभ

10 मई 1857 को प्रात: अंबाला में विद्रोह का ज्वालामुखी फूट पड़ा। अंबाला उन दिनों एक महत्वपूर्ण सैनिक छावनी थी। यहां पंजाब व उत्तर पश्चिम प्रांत के सनिकों को एनफिल्ड राइफलों के प्रयोग का प्रशिक्षण दिया जाता था। पहले अंबाला के सैनिकों ने शांतिपूर्ण ढंग से कारतूसों का विरोध किया परंतु जब उन्होंने देखा कि अंग्रेज अधिकारियों पर उनकी बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो उन्होंने 10 मई को विद्रोह की योजना बनाई 10 मई 1857 को जब अंग्रेज लोग सुबह गिरजाघर में प्रार्थना के लिए जाएंगे तो दोनों देसी पलटने (60वीं और 5वीं) अपने-अपने शस्त्रागारों पर अधिकार कर लेंगी, घुड़सवार सेना का चौथा दस्ता तोपों पर कब्जा करेगा। इसके बाद ब्रिटिश राज्य के सभी अवशेषों को समाप्त करके सब लोग भारत की राजधानी दिल्ली में प्रवेश करेंगे। 10 मई को मेरठ में क्रांति होने से 9 घण्टे पहले अंबाला की 60वीं देसी पलटन ने बगावत कर दी। किंतु दुर्भाग्य से अंग्रेज अधिकारियों को अब तक इस योजना का पता लग चुका था और वे इस घटना से निबटने के लिए पूरी तरह तैयार थे। अत: देखते-देखते 60वीं पलटन अंग्रेजों ने पूरी तरह घेरे में ले ली। अब उनके सामने समझौता करने के सिवाए कोई चारा न था । अभी 60वीं भारतीय सेना अच्छी तरह शांत भी न हो पाई थी कि 5वीं भारतीय स्थल सेना ने दोपहर 12 बजे विद्रोह कर दिया। अंग्रेज पलटने को तो तैयार थे ही उन्होंने जल्दी से तोपखाने और टेंकों से विद्रोही पलटन के सैनिकों को घेर लिया। फलस्वरूप घिरी हुई पलटन को भी 60वीं पलटन की तरह समझौता करना पड़ा। चूंकि अंग्रेज अधिकारी चौकस एवं सर्तक थे। अत: वे अंबाला में तो विद्रोह को दबाने में सफल हो गए किंतु उसी दिन लगभग 9 घण्टे बाद जो मेरठ में सिपाहियों ने विद्रोह किया उसे वे दबा नहीं सके। दूसरे दिन 11 मई को इस विद्रोह की आग की लपटें दिल्ली में पहुंच गई। मुगल बादशाह बहादुर शाह को क्रांतिकारियों ने अपना नेता मानकर भारत से अंग्रेजी राज्य की समाप्ति की घोषणा कर दी। देखते-देखते सारे उत्तरी भारत का वातावरण बिगड़ गया और बहुत समय से इकट्ठी हो रही असंतोष रूपी बारूद को सिपाहियों की विद्रोह की चिंगारी ने इतने भयंकर रूप से विस्फोटित किया कि ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डगमगा गई।

पटियाला, नामा व जींद रियासतों से विशेष सहायता प्राप्त होने के कारण अंबाला के अंग्रेज प्रशासकों ने इस जिले में कोई विशेष गड़बड़ नहीं होने दी। किंतु इसका मतलब नहीं कि जनता में क्रांति करने या इसमें भाग लेने की कोई इच्छा नहीं थी। अंबाला के डिप्टी कमिश्नर फारसिथ ने स्वयं यह माना है कि उसके जिले में समस्त जनता विद्रोहियों के प्रति सहानुभूति रखती हैष और तो और वह विस्मित होकर कहता है कि ष्जगाधरी के व्यापारी जो हमारी सरकार से हमेशा लाभ उठाते रहे है, इस कड़े समय में हमारे प्रति स्वामी भक्ति का प्रदर्शन न कर पाए। लेकिन ऐसी भावना के बावजूद भी अंबाला की जनता सख्त सैनिक निगरानी के कारण खुला विद्रोह न कर पाई। उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि अंबाला को छोड़कर शेष सारा हरियाणा मई के अंत तक अंग्रेजों से मुक्त हो गया था। यहां के स्थानीय नेताओं तथा के मुगल सम्राट बहादुरशाह की अधीनता स्वीकार करके उसके आदेशों के अनुसार प्रशासन चलाया। यद्यपि हरियाणा की जनता ने हिंदू तथा मुसलमानों ने क्रांति में बढ़ चढ़कर भाग लिया तथा मिलकर कार्य किया लेकिन अच्छे नेताओं के अभाव, सैनिक रूप से निर्बलता तथा संगठन के न होने के कारण यह क्रांति विफल हो गई। 20 सितंबर सन् 1857 को अंग्रेजों ने दिल्ली पर पुन: अधिकार कर लिया। दिल्ली के पतन के बाद अंग्रेजी सेनाओं ने एक-एक करके हरियाणा के उत्तरी जिलों पर अपना अधिकार कर लिया। सर्वप्रथम उन्होंने अंबाला थानेसर और करनाल को अपने अधिकार में किया फिर हिसार, सिरसा और रोहतक की तरफ बढ़े और थोड़े प्रयत्नों के बाद वे वहां भी सफल हुए। दक्षिण हरियाणा पर अधिकार करने के लिए ब्रिगेडियर जनरल शायंस 2 अक्टूबर 1857 को 1500 सैनिकों तथा तोपखाने के साथ दिल्ली से चला। उसने सर्वप्रथम रेवाड़ी पर आक्रमण किया किंतु उसके वहां पहुंचने से पूर्व ही राव तुलाराम रेवाड़ी छोड़कर राजस्थान चला गया और जब अंग्रेज सेनाएं रेवाड़ी पहुंची तो तुलाराम को न पाकर बहुत मायूस हुई। शार्वस एक सप्ताह तक रेवाड़ी में ठहरा तत्पश्चात 12 अक्टूबर को उसने झज्जर के नवाब अदूरहमान खां पर आक्रमण कर दिया। नवाब बहुत अर्से से दोहरी चाल चलके दोनों पक्षों अर्थात अंग्रेज और बहादुरशाह को प्रसन्न करने में लगा हुआ था। जब नवाब शार्बस के आक्रमण की सूचना मिली तो वह अपनी राजधानी छोड़कर 6 मील दूर हुछकवास आ गया और यहां वह सहर्ष शार्वस की शरण में चला गया। शार्वस ने नवाब को तुरंत बंदी बनाकर दिल्ली भेज दिया। इसी प्रकार शार्बस ने दिल्ली जाते समय फरुखनगर के नवाब अहमद अली और बल्लभगढ़ के राजा नाहर सिंह को भी बंदी बनाकर दिल्ली भेज

दिया। शार्वस के वापस दिल्ली चले जाने के पश्चात हरियाणा के बचे खुचे क्रांतिकारियों, हिसार के शहजादा आजीम, नवाब झज्जर के दामाद जनरल समद खां तथा रेवाड़ी के राव तुलाराम ने इकट्ठा होकर लड़ने की योजना बनाई सौभाग्य से इसी समय जोधपुर का एक बागी दस्ता राजस्थान से आकर इनसे मिल गया। सबने नारनौल के स्थान को इस शुभ कार्य के लिए उत्तम समझा।

गुड़गावां में क्रांति

दिल्ली के 300 सैनिक 13 मई को गुड़गावां पर आक्रमण करने के लिए गए। विलियम फोर्ड क्लॅकटर मजिस्टेट ने विद्रोहियों को गुड़गावां से 12 किलोमीटर दूर दिल्ली की तरफ बिजवासन के स्थान पर रोकना चाहा परंतु वह असफल रहा। दूसरे दिन सुबह गुड़गावां पर विद्रोहियों ने आक्रमण कर दिया। फोर्ड गुड़गावां छोड़कर भाग गया। विद्रोहियों को इस अभियान में 7,84,000 रुपये गुड़गावां के खजाने से हाथ लगे । इन बातों की खबर मिलते ही गुड़गावां की जनता भी भड़क उठी। जिले के दक्षिण पश्चिम भाग में रहने वाले मेव लोग भारी संख्या में क्रांति में शामिल हो गए और उन्होंने समस्त मेवात इलाके से अंग्रेजों का राज्य समाप्त कर दिया। इसी प्रकार जिले के दक्षिण पश्चिम भाग में भी जो कि अहीरवाल के नाम से जाना जाता है। क्रांति की लपटे फूट पड़ी। इस क्षेत्र में क्रांतिकारियों का नेतृत्व रेवाड़ी के राव तुलाराम और उसके भाई गोपाल देव ने किया। बल्लभगढ़ में क्रांतिकारियों का नेतृत्व राजा नाहर सिंह ने किया। गुड़गावां के क्रांतिकारियों को दबाने के लिए जयपुर राज्य के पॉलिटिकल एजेण्ट मेजर डब्ल्यू0 एफ0 एडेन के नेतृत्व में एक विशाल सेना गुड़गावां भेजी गई इस सेना की संख्या लगभग सात-आठ हजार थी इसके साथ तोपखाने की भी एक टुकड़ी थी। मेजर एडेन ने मेवातियों को कुचलने के लिए भरकस प्रयत्न किए किंतु उसे संतोषजनक सफलता प्राप्त न हुई। सोहना और तावडू के बीच गांव-गांव में उसे वीर मेवातियों से भयंकर संघर्ष करना पड़ा। इस संघर्ष का परिणाम यह निकला कि बहुत से राजपूत सैनिक देशभक्त बन गए और एक उच्च अधिकारी ठाकुर शिवनाथ सिंह के नेतत्व में वे खुले विद्रोह के लिए तैयार हो गए। इस रात उन्होंने मेजर एडेन पर आक्रमण भी किया लेकिन वे असफल रहे। इससे डरकर मेजर एडेम मेवात को अपने हाल पर छोड़कर जयपुर वापस चला गया।

रोहतक में क्रांति

रोहतक जिले में भी मई के तीसरे सप्ताह में क्रांति की आग भड़क उठी। यहां क्रांति का श्रीगणेश साहसी राधड़ो ने किया। इसके बाद जाट राजपूत व अन्य लोग इस संघर्ष में कूद पड़े और देखते ही देखते समस्त रोहतक जिला अंग्रेजी नियंत्रण से मुक्त हो गया। यहां की जनता ने बिना किसी झिझक के दिल्ली सम्राट बहादुर शाह को अपना नेता मान लिया और उसके झण्डे के नीचे संघर्ष जारी रखा। इतिहासकार कर्नल मालेसन को यह देखकर हैरानी हुई कि रोहतक जिलेमें छोटे-बड़े सभी की सहानुभूति मुगल सम्राट के साथ थी, यहां तक की जो लोग अंग्रेजो से लाभ उठा रहे थे वे भी उनके विरुद्ध खड़े हो गए थे। दिल्ली और पंजाब के अंग्रेज अधिकारियों को इससे बहुत चिंता हुई। अत: स्थिति पर काबू पाने के लिए उन्होंने अंबाला की 60वीं भारतीय स्थल सेना को रोहतक भेजा लेकिन इस सेना ने बजाए विद्रोह को दबाने के 10 जून को स्वयं खुला विद्रोह कर दिया। रोहतक के अंग्रेज अधिकारी जान बचाकर भाग निकले और सब सैनिक दिल्ली चले गए जुलाई और अगस्त में स्थिति और भी खराब हो गई। इससे निपटने के लिए अंग्रेजो ने लेफ्टिनेंट हडसन के नेतत्व में एक विशाल सेना भेजी। सर्वप्रथम खरखौदा के स्थान पर सूबेदार विरासत अली के नेतत्व में क्रांतिकारियों ने अंग्रेजी सेना का डटकर मुकाबला किया। स्वयं हडसन ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि 'रोहतक के ग्रामीण दानवों के समकक्ष लड़े' किंतु अंत में वे हार गए। इस विजय से साहस पाकर हडसन ने रोहतक पर आक्रमण किया। यहां भी क्रांतिकारियों ने ब्रिटिश सेना का डटकर मुकाबला किया किंतु जींद आदि देसी राजाओं की सहायता आ जाने से हडसन का पलड़ा भारी रहा और यह क्रांतिकारियों को परास्त करने में सफल रहा। किंतु उसकी यह विजय किसी भी तरह निर्णायक नहीं कही जा सकती क्योंकि दिल्ली में स्थिति बिगड़ जाने के कारण वह क्रांतिकारियों को पूरी तरह दबाने से पूर्व ही वापस लौट गय हडसन के लौट जाने के पश्चात क्रांतिकारी फिर सक्रिय हो उठे और उन्होंने जींद के राजा के इन अधिकारियों को जिन्हें हडसन लौटते समय इस क्षेत्र की व्यवस्था साँप गया था भगा दिया।

हिसार में क्रांति

हिसार जिले में क्रांति का श्रीगणेश मई के तीसरे सप्ताह में हिसार हाँसी और सिरसा में स्थित हरियाणा लाइट इंफेंटरी के सैनिक दस्तों ने किया। यहां की जनता ने भी ह्रदय से सैनिका का अनुशरण किया और शीघ्र ही सारे जिले में क्रांति भड़क उठी। हिसार जिले में क्रांतिकारियों का नेत त्व भट्ठु के सहायक पेट्रोल अधिकारी शहजादा मुहमद आजिम ने किया। यह शहजादा दिल्ली के राजघराने से संबंधित था। हिसार में क्रांतिकारियों की गतिविधियों से अंग्रेज अधिकारी चिर्तित हो उठे। उन्होंने क्रांतिकारियों पर काबू पाने के लिए एक सेना फिरोजपुर के डिप्टी कमिश्नर, जनरल वान कोर्टलण्ड के नेतत्व में भेजी। रानिया के नवाब नूर मोहमद खां ने अंग्रेजी सेना का डटकर मुकाबला किया। 17 जून को उसने ओढ़ा नामक गांव में अंग्रेज सेना से भयंकर युद्ध किया। नवाब के सैनिक बड़े साहस से लड़े किंतु अंग्रेजी सेना की अधिक संख्या और अच्छे शस्त्र उसके साहस और शोर्य में कही भारी बैठे 530 क्रांतिकारी युद्ध भूमि में शहीद हुए। अंतत: युद्ध का परिणाम अंग्रेजो के हक में रहा। नवाब जान बचाकर भाग निकला किंतु लुधियाना के आसपास वह पकड़ा गया। अंग्रेजों ने उसे फांसी पर लटका दिया। 18 जून को अंग्रेज सेना ने चतरावन नामक गांव पर आक्रमण किया। इस गांव के निवासियों ने एक अंग्रेज अधिकारी हिलार्ड और उसके साले का कत्ल किया था यह हमला अचानक हुआ था इसलिए ग्रामीण न तो शत्रु का विरोध कर सके और ना ही भाग सके। अंग्रेज गांव के सैकड़ों बूढ़े, बच्चे और जवानो को मौत के घाट उतार दिया और लूट खसोट के बाद घरों को आग लगा दी। कार्टलेण्ड ने अगला आक्रमण सिरका गांव पर किया। इस आक्रमण की खबर गांववालों को पहले ही लग गई थी इसलिए वे शत्रु से दो-दो हाथ करने के लिए तैयार थे। गांव के बाहर ग्रामीणों और अंग्रेज सेना के जमकर युद्ध हुआ जिसमें 300 ग्रामीण मारे गए। इस प्रकार विजय अंग्रेजों को ही हुई गांव को जलाकर राख कर दिया गया और अनेको लोगों को

मौत के घाट उतार दिया। 8 अप्रैल को कोर्टलेण्ड हिसार की तरफ चला लेकिन रास्ते में उसे गांव में विरोध झेलना पड़ा। 17 जुलाई को कोर्टलेण्ड सेना सहित हिसार पहुंचा। उसने हिसार के बहुत से नागरिकों को केवल शक के आधार पर ही करल करवा दिया, उसकी संपत्ति जब्त कर ली और घरों को जलाकर राख कर दिया गया। उसने शहजादा मुहमद आजिम का घर भी लूटकर नष्ट कर दिया और उसकी बेगम को बंदी बना लिया। किंतु इन कार्यवाहियों का क्रांतिकारियों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। हासी के स्थान पर उन्होंने अपने को फिर से संगठित करके लड़ने की योजना बनाई वान कोर्टलेण्ड के कप्तान हाइल्डये के नेतत्व में एक सेना उनको परास्त करने के लिए भेजी किंतु यह सेना क्रांतिकारियों को परास्त करने में असफल रही। जब पराजय की सूचना कोर्टलेण्ड को मिली तो वह स्वयं हासी की तरफ बढ़ा हासी के स्थान पर युद्ध हुआ जिसमें क्रांतिकारियों की हार हुई किंतु इन घटनाओं के बावजूद भी क्रांतिकारियों ने साहस नहीं छोड़ा और वे निरंतर संघर्ष करते रहे।

पानीपत तथा थानेसर में क्रांति

हरियाणा के अन्य भागों की तरह पानीपत और थानेसर के जिलों में क्रांति की ज्वाला भड़क उठी यमुना के किनारे बसे गुजरों ने केथल, असन्ध, जलमाणा के जाटों ने कोल पीपली और अमीन के रोड़ो ने कुरुक्षेत्र के सैनिको ने और लाडवा के सिख और अन्य जातियों ने अंग्रेजों द्वारा स्थापित व्यवस्था को अपने क्षेत्रों में नष्ट कर दिया। क्योंकि इन जिलों से होकर दिल्ली व पंजाब को जोड़ने वाली मुख्य सड़क गुजरती थी इसलिए अंग्रेज इसे किसी भी कीमत पर शत्रुओं के कब्जे में नहीं रहने देना चाहते थे। इसके लिए अंग्रेजों ने अपने स्वामी भक्त राजाओं से सहायता मांगी। पटियाला के राजा ने अंग्रेजो की सहायता के लिए 1,500 सैनिक और चार तोपें भेजी। इसी प्रकार जींद के राजा ने 400 सैनिक भेजे। कुजपुरा तथा करनाल के शासकों ने भी क्रमशः 350 और 150 सैनिकों से अंग्रेजों की सहायता की। लेकिन ये सनिक सड़क को क्रांतिकारियों के कब्जे से छुड़वाने में असफल रहे। इसलिए मई के अंतिम दिनों में सड़क को नियंत्रण में करने के लिए दिल्ली से एक और सेना भेजनी पड़ी। पानीपत के पास इस सेना की क्रांतिकारियों के साथ मुठभेड़ हुई। इस समकालीन लेखक ताजुदीन के अनुसार क्रांतिकारियों ने अंग्रेजी सेना के छक्के छुड़ा दिये। उनके सैकड़ों आदमी मारे गए और शेष ने भागकर अपनी जान बचाई। ताजुदीन का कथन है कि ब्रिटिश सेना का प्रधान सेनापति जनरल एनसेन भी इस युद्ध में मारा गया था। इस युद्ध में अंग्रेज सैनिक सम्मान के साथ दफन भी नहीं कर पाए। रात के अंधेरे में उन्होंने चुपके से सेनापति को पथ्वी की गोद में सुला दिया और पीछे भाग गए। थोड़े समय पश्चात अंग्रेजी सेना की स्थिति पंजाब से नई टुकड़ी आ जाने से अच्छी हो गई। वे क्रांतिकारियों को पीछे धकेल कर सड़क को मुक्त कराने में सफल हो गए। किंतु अंदर गांवों में क्रांतिकारियों का अधिकार ज्यों का त्यों बना रहा।

नारनौल का युद्ध

जब दिल्ली के अंग्रेजों को विद्रोहियों की इन गतिविधियों का पता चलता तो वे बड़े बौखलाए उन्होंने इन विद्रोहियों को पाठ पढ़ाने के लिए अपने एक योग्य सैन्य अधिकारी कर्नल जेरांड के नेतत्व में नवंबर के दूसरे सप्ताह में एक सेना भेजी। जेरार्ड ने 16 नवंबर 1857 को नारनील पर आक्रमण किया। भारतीय फौजें नारनौल में एक सराय में मोर्चा संभाले हुए थी। उनकी संख्या लगभग 5,000 के करीब थी तथा उनके पास एक दर्जन के करीब तोपे थी जब उन्हें अंग्रेजी फौज के आगमन की सूचना मिली तो उन्होंने सराय छोड़कर उनपर आक्रमण कर दिया। नारनौल से दो मील की दूरी पर स्थित नसीबपुर गांव के पास दोनों सेनाओं में जबर्दस्त टकराव हुआ। यह युद्ध लगभग 12 बजे शुरू हुआ। पहला भारतीय प्रहार ब्रिटिश सेनाओं के लिए असहनीय था किंतु थोड़ी देर बाद अंग्रेज कारवायनियंस तथा 'गाईड्स' ने कुछ हिम्मत से काम लेकर बढ़ते हुए भारतीय रिसाले को रोक कर अंग्रेज सेना में कुछ उत्साह फूंका। किंतु वे इससे आगे कुछ न सके क्योंकि भारतीय रिसाला चट्टान की तरह अडिग खड़ा था। भारतीय कितनी धीरता से लड़े इसका अनुमान होम्स के इन शब्दों से होता है 'शत्रुने गाईडस तथा कार्बानियस के आक्रमण को बहादुरी से झेला।' मालेसन के शब्दों में "यह एक वीरतापूर्ण युद्ध था शत्रु इतने वीरता और साहस के साथ पहले कभी नहीं लड़े थे वह न कतराए, न डरे हम पर इनता विकट प्रहार पहले कभी नहीं हुआ। ब्रिटिश रिसालों ने आज तक इतनी भयंकर टक्कर किसी भी शत्रु से न ली होगी।" इस युद्ध में सबसे पहले भारतीय रिसाले के कमाण्डर राव किशन सिंह वीरगति को प्राप्त हुए। उनकी मृत्यु से सेना के हौसले डूब गए। उनके बढ़ते कदम रुक गए, किंतु ये पीछे नहीं हटे। मालेशन के शब्दों में "उन्होंने बहादुरी से अपनी जान न्यौछावर कर दी, समर्पण करने का तो ख्याल भी नहीं आया।" जब भारतीय पक्ष कुछ कमजोर दिखाई दे रहा था तो एक गोली अंग्रेज कमाण्ड जेरार्ड को लगी तथा वह वहीं ढेर हो गया जेरार्ड के मरते ही अंग्रेज सेना के हौसले पस्त हो गए और भारतीय सेना के हौसले बढ़ गए ये ब्रज बनकर शत्रु पर टूट पड़े। अंग्रेज सेना इस प्रहार को सह न सकी। किंतु ऐसी दशा बहुत देर तक नहीं रही। नए अंग्रेज कमाण्डर कोलफिल्ड ने बिगड़ती हुई स्थिति को संभाल लिया। उसने अंग्रेजी तोपखाने को फायर का आदेश दिया। तुरंत की ब्रिटिश तोपखाने के गोले भारतीय सेना के मध्य में गिरने लगे। सैनिक तोप की मार से बचने के लिए पीछे चले गए और आगे वाले तोप की मार से बचने के लिए आगे बढ़ गए। जब भारतीय सैनिक तोपों के निकट आ गए तो कोलफिल्ड ने उन पर एक साथ जोरदार आक्रमण किया। भारतीय सैनिक वीरता से लड़े लेकिन भाग्य अंग्रेजों के साथ था उनके सुयोग्य नेता राव रामलाल, शहजादा मुहमद आजिम तथा जरनल समद खां का पुत्र वीरगति को प्राप्त हो गए। इससे भारतीय सेना में भगदड़ मच गई। इस प्रकार अंग्रेजों की विजय हुई। नारनौल का युद्ध अंतिम युद्ध था। इसके बाद हरियाणा में क्रांति की अग्नि बुझ गई।

उपरोक्त वर्णित घटनाओं, स्थानों, बलिदानियों, रियासतों से स्पष्ट हो जाता है कि एक प्रकार से पूरा हरियाणा सामान्य नागरिकों सहित 1857 के प्रथम स्वातंत्र्य समर में अपनी पूरी शक्ति के साथ जुटा रहा। उपर्युक्त ग्रामों व बलिदानियों की संख्या के आंकड़े रिकार्ड के अनुसार जो मिल पाएं, उन्हीं का वर्णन यहाँ हुआ हैं। ऐसे अनेक नाम व बलिदानियों की संख्या अभी तक अज्ञात हैं जिन्होंने अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया।

देश की स्वतंत्रता के लिए हरियाणा वासियों द्वारा किए गए शौर्य से भरपूर इस गौरवपूर्ण कर्तृत्व के लिए शत शत नमन! वास्तव में 1857 की क्रांति न कोई सामान्य सिपाही विद्रोह था, न ही कोई तात्कालिक प्रतिक्रिया स्वरूप घटनाक्रम। भारत माता को स्वतंत्र करवाने के लिए हमारे पूर्वजों द्वारा एक सुनियोजित स्वातन्त्र्य संग्राम जिसके प्रतिसाद स्वरूप 90 वर्ष बाद 1947 में हम स्वतंत्र हुए। बाद के 90 वर्षों में वीर सावरकर, भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, सुभाष चन्द्र बोस सरीखे अनेकानेक भारतीय क्रांतिकारियों व स्वतंत्रता सेनानियों का प्रेरणा स्त्रोत बना1857 का स्वातंत्र्य समर। नमन है 1857 के स्वातन्त्र्य समर के योजनाकारों और बलिदानियों को।

संदर्भ सूचीः

1. गुप्ता जे. के; हिस्ट्री ऑफ सिरसा टाउन, दिल्ली,1991
2. गुलिया यशपाल; हरियाणा का रियासती इतिहास, हरियाणा साहित्यक अकादमी, पंचकुला, 2005
3. चाहर आजाद सिंह; झज्जर इतिहास के आईने में,हरियाणा साहित्यक अकादमी, पंचकुला, 1989
4. जाखड़ राम सिंह; 1857 की जनक्रांति में हरियाणा का योगदान अभिलेखागार विभाग हरियाणा, 1999
5. यादव के. सी; रिवॉल्ट ऑफ 1857 इन हरियाणा, दिल्ली, 1977
6. सूरजभान;अमर शहीद राव तुलाराम, सर्च रोहतक, 2004
7. सावरकर वी. डी; भारत का मुक्ति संग्राम 1857, बम्बई, 1947
8. सूरजभान; हरियाणा 1857 का राष्ट्रीय विद्रोह, शहीद यादगार समिति हरियाणा दिल्ली, 2007
9. शर्मा एस. के; हरियाणा पास्ट एंड प्रेजेंट, दिल्ली, 2005
10. सिंह महेंद्र; हरियाणा में 1857 जन विद्रोह, दमन व लोक चेतना, नई दिल्ली, 2021

नारी सशक्तिकरण में शिक्षा का प्रभावः एक विश्लेषण

प्रिया यादव

UGC NET

सार

दुनिया की पौरुषप्रधानविचारधारा ने दुनिया की 50% आबादी को पीड़ित किया और उन्हें उनके विकास और सशक्तिकरण के सभी अवसरों से वंचित किया है। लेकिन हाल के युग में नारीवादी विचारों के उदय के कारण महिलाओं की स्थिति में भारी बदलाव आया है। महिलाओं को सशक्त बनाने और देश के समग्र विकास में, शिक्षा, विशेष रूप से उच्च शिक्षा, एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह अक्सर साबित होता है कि शिक्षित महिलाएं अपने परिवारों में शिक्षा को बढ़ावा देती हैं। यही नहीं, वैश्विक स्तर पर भी महिलाओं की स्थिति, उच्च शिक्षा, और विकास के लिए मामूली शैक्षणिक और साथ ही नीति-संबंधी मुद्दों के कुछ संभावित कारणों का सुझाव देने के लिए विभिन्न अध्ययन किए गए हैं; और विकासशील संदर्भों में महिलाओं की उच्च शिक्षा उपलब्धियों के विश्लेषण के लिए स्थिति के कुछ निहितार्थों पर भी विचार करता है।

यह पत्र एक समाज में महिलाओं के बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और समग्र विकास में उच्च शिक्षा के महत्व का गठन करता है। महिलाओं की उच्च शिक्षा भारत सरकार के लिए हमेशा एक मुद्दा रहा है क्योंकि शिक्षित और सशक्त महिलाएँ समाज के साथ-साथ देश के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उच्च शिक्षित और सशक्त महिलाएं दो किनारों वाली तलवार की तरह होती हैं जहां एक किनारे से यह समाज में सामाजिक बुराइयों की समस्या को हल करती है और दूसरे किनारे की मदद से यह राष्ट्र के आर्थिक और राजनीतिक विकास में समान रूप से योगदान देती है।

प्रमुख शब्द : उच्च शिक्षा, महिला सशक्तिकरण, लिंग असमानता, देशों की वृद्धि पर प्रभाव।

परिचय

आश्रित महिलाएं को, सशक्त महिलाओं नहीं कह सकते हैं। अगर महिलाओं को लगता है कि सिर्फ नौकरी करने से वह सशक्त होती हैं तो वे गलत हैं। महिलाओं को अशिक्षा, संस्कृति और परंपरा के कुएं में डाला जाता है और उन्हें बसाने का एकमात्र तरीका ज्ञान प्रदान करना है। पर्याप्त मात्रा में ज्ञान के बिना और सिर्फ नौकरी करने या जीविका के साधन अर्जित करने के बिना, वे अपने आसपास के अवसरों जैसे कि उनके जीवन को नियंत्रित करने और उनके अधिकारों का दावा करने में असमर्थ हैं। महिलाओं हमेशा पुरुषों की तुलना में कई मायनों में कम-समान माना जाता है। हमारे देश के कई क्षेत्रों में आज तक महिलाओं को वोट देने, खुद की संपत्ति या कई नौकरियों में काम करने की अनुमति नहीं है।

महिलाएं दुनिया की लगभग आधी आबादी के लिए काम करती हैं, दो-तिहाई घंटे काम करती हैं, दुनिया की आय का दसवां हिस्सा प्राप्त करती हैं, और दुनिया की संपत्ति का सौवां हिस्सा उनके नाम पर पंजीकृत है। विकासशील देशों में गरीबी के उच्च स्तर के साथ महिला अभाव विशेष रूप से तीव्र है, हालांकि संपन्न देशों में भी रूढ़िवादी दृष्टिकोण के कारण महिलाओं को निम्न स्थिति का सामना करना पड़ता है। भारत में शिक्षा देश के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह अक्सर साबित होता है कि शिक्षित महिलाएं अपने परिवारों में शिक्षा को बढ़ावा देती हैं। इसके अलावा, राष्ट्र में बाल मृत्यु दर को कम करने और गुणवत्तापूर्ण जनसंख्या के विस्तार में भी शिक्षित महिलाएं मदद कर सकती हैं।

आधुनिक युग में, महिला शिक्षा शिक्षाप्रद प्रेरणा के लिए एक वैदिक मॉडल की प्रतिकृति है। उच्च शिक्षा प्रणाली के इस विविध इतिहास के साथ, वर्तमान प्रणाली मुख्य रूप से ब्रिटिश प्रणाली के बाद तैयार की गई है। हालांकि, इंजीनियरिंग और प्रबंधन में कुछ तकनीकी संस्थानों को अमेरिकी प्रणाली के बाद मॉडल किया गया है। उच्च शिक्षा प्रणाली मुख्य रूप से राज्य सरकारों की जिम्मेदारी है, हालांकि केंद्र सरकार ने कुछ केंद्रीय विश्वविद्यालयों और राष्ट्रीय ख्याति के अन्य संस्थानों की स्थापना और वित्त पोषण में पहल की है।

सशक्तिकरण क्या है?

सशक्तिकरण को ष्(किसी को) अपने जीवन को नियंत्रित करने और अपने अधिकारों का दावा करने के लिए मजबूत और अधिक आत्मविश्वास के रूप में परिभाषित किया गया है।ष लेकिन जब हम महिलाओं के बारे में बात हम चाहते हैं महिलाओं, परिवार चर्चाओं में सक्रिय रूप से भाग लेने के अधिक लेने के पारिवारिक मामलों में अपने विचार दे रही है और इस तभी संभव है जब वे है कर रहे हैं नहीं केवल अनुमति के लिए करते हैं तो लेकिन भी जब उनके विचारों महत्व दिया जाता है उनकी राय सुना रहे हैं दूसरों के द्वारा और ध्यान दिया। विचार दूसरों के द्वारा महत्व दिया जाता है केवल डब्ल्यू एच एन सुझाव व्यवहार्य और कार्यान्वयन कर रहे हैं। व्यवहार्यता और कार्यान्वित करनाशिक्षाके माध्यम से विचारों में आता है।

लोगों को तब सशक्त बनाया जाता है जब वे शिक्षा, पेशे और जीवन शैली जैसी सीमाओं और प्रतिबंधों के बिना उनके लिए उपलब्ध अवसरों का उपयोग करने में सक्षम होते हैं। अपने निर्णय लेने के हकदार महसूस करने से सशक्तिकरण की भावना पैदा होती है। सशक्तिकरण में शिक्षा के माध्यम से महिलाओं की स्थिति बढ़ाने, जागरूकता बढ़ाने, साक्षरता और प्रशिक्षण शामिल है। महिला सशक्तिकरण सभी के बारे में है जो महिलाओं को समाज में विभिन्न समस्याओं के माध्यम से जीवन-निर्धारक निर्णय लेने की अनुमति देता है।

महिला सशक्तीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें महिलाएं विस्तृत और पुनः निर्माण करती हैं कि ऐसी परिस्थिति में क्या होना चाहिए जिससे उन्हें पहले इनकार किया गया था। सशक्तीकरण को कई तरीकों से परिभाषित किया जा सकता है, हालांकि, जब महिला सशक्तिकरण के बारे में बात की जाती है, सशक्तिकरण का मतलब उन लोगों (महिलाओं) को स्वीकार करना और उन्हें अनुमति देना है जो निर्णय लेने की प्रक्रिया से बाहर हैं। ष्यह आर्थिक संरचनाओं और औपचारिक निर्णय लेने में भागीदारी पर और आर्थिक क्षेत्र में, एक आय प्राप्त करने की क्षमता पर एक मजबूत जोर देता है जो आर्थिक निर्णय लेने में भागीदारी को सक्षम बनाता है।ष सशक्तिकरण वह प्रक्रिया है जो व्यक्तियों को अपने जीवन, समाज और अपने समुदायों में शक्ति का निर्माण करती है।

वैकल्पिक रूप से, यह महिलाओं के लिए लैंगिक भूमिकाओं को फिर से परिभाषित करने की प्रक्रिया है जो उन्हें ज्ञात विकल्पों के बीच चयन करने की क्षमता हासिल करने की अनुमति देती है, जो अन्यथा ऐसी क्षमता से प्रतिबंधित हो गई हैं। महिला सशक्तीकरण को परिभाषित करने वाले कई सिद्धांत हैं जैसे कि सशक्त होने के लिए, उन्हें बेरोजगारी की स्थिति से आना चाहिए। इसके अलावा, किसी को खुद को सशक्त बनाना होगा बजाय इसके कि उन्हें किसी बाहरी पार्टी द्वारा दिया जाए।

अन्य अध्ययनों में पाया गया है कि सशक्तिकरण परिभाषाएँ लोगों को अपने जीवन में महत्वपूर्ण निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती हैं, जबकि उन पर कार्य करने में भी सक्षम होती हैं। अंत में, सशक्तिकरण और बेरोजगारी पिछले समय में अन्य केसापेक्षहै; इसलिए, सशक्तिकरण एक प्रक्रिया है, उत्पाद नहीं। महिला सशक्तिकरण विकास और अर्थशास्त्र में चर्चा का एक महत्वपूर्ण विषय बन गया है। यह एक विशेष राजनीतिक या सामाजिक संदर्भ में अन्य तुच्छ लिंगों के बारे में दृष्टिकोण को भी इंगित कर सकता है।

महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण से तात्पर्य महिलाओं के लिए संसाधनों, परिसंपत्तियों, आय और अपने स्वयं के नियंत्रण के साथ-साथ अपने जोखिम को नियंत्रित करने और लाभ उठाने के अधिकार का आनंद लेने की क्षमता के साथ-साथ जोखिम को प्रबंधित करने और उनकी आर्थिक स्थिति और बेहतर होने में है। भारत में महिला सशक्तीकरण कई अलग-अलग चरों पर निर्भर है जिसमें भौगोलिक स्थिति (शहरी / ग्रामीण), शैक्षिक स्थिति, सामाजिक स्थिति (जाति और वर्ग) और उम्र शामिल हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा, आर्थिक अवसर, लिंग आधारित हिंसा और राजनीतिक भागीदारी सहित कई क्षेत्रों में राष्ट्रीय, राज्य और स्थानीय (पंचायत) स्तरों पर महिला सशक्तीकरण की नीतियां मौजूद हैं। हालांकि, सामुदायिक स्तर पर नीतिगत प्रगति और वास्तविक अभ्यास के बीच महत्वपूर्ण अंतर है।

आप महिलाओं के साथ शहरी भारत की महिलाओं की तुलना की आर यूराल भारत, तो शहरी भारत की महिलाओं को पुरुषों के साथ हाथ में हाथ जाने के लिए और इस तरह के कार्यों जो एक बार चाय के अपने कप नहीं समझा जाता था प्रदर्शन करते हैं। जबकि ग्रामीण भारत में समानता का अभाव महिला सशक्तिकरण में धीमी प्रगति में योगदान दे रहा है। हम इस तरह के क्षेत्रों में महिला सशक्तिकरण की प्रगति ऊंचे होने में जाति, धर्म, रंग, धर्म या समाज के बाधाओं को तोड़ने चाहिए की भारत और करने के लिए समान अवसर उपलब्ध कराने के सभी महिलाओं। भारत सरकार द्वारा शुरू किए गए एकीकृत विकास के दृष्टिकोण ने विकास और सामाजिक समस्या समाधान में महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित किया है और महिलाओं की भीड़ जुटाने के साध न के रूप में विशेष गतिविधि समूहों का गठन किया है। महिलाओं थे प्रोत्साहित करने के लिए लगता है एक अलग समय और अंतरिक्ष के लिए खुद को। इसलिए, महिलाओं की शक्तिहीनता के लिए कारणों कमी है की शिक्षा या में साक्षरता दर की कमी भारत।

हायर एजुकेशन क्या है?

शिक्षा अपने जीवन की बेहतरी के लिए दूसरों को ज्ञान प्रदान करने और एक पेशे के रूप में अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उन्हें तैयार करने की एक कला है। जबकि ष्उच्च शिक्षाष शब्द का अर्थ विभिन्न प्रकार के उच्च विद्यालयों में अर्थशास्त्र, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, और संस्कृति के क्षेत्र में उच्च कुशल विशेषज्ञों का प्रशिक्षण है, जो ऐसे लोगों को स्वीकार करते हैं जिन्होंने माध्यमिक सामान्य-शिक्षा स्कूल या माध्यमिक विशेष शिक्षा संस्थानों को सफलतापूर्वक पूरा किया है।

महिला सशक्तिकरण और उच्च शिक्षा के बीच संबंध

इसमें कोई संदेह नहीं है कि हमारे देश में बहुसंख्यक महिलाएं अशिक्षित हैं जो कि उनकी पतनशील शिक्षा का कारण है, जिससे परिदृश्य बदल सकता है। शिक्षा महिलाओं में निम्नलिखित बदलाव लाने में मदद कर सकती है : -

- शिक्षा व्यक्ति की मानसिकता को बदलने में मदद करती है।
- शिक्षा उनके आत्मविश्वास को बढ़ा सकती है
- परिवार और समाज में स्थिति बढ़ाना
- निर्भरता कम करना

ये सभी उपर्युक्त पैरामीटर सशक्तिकरण प्रक्रिया के एक संकेतक हैं। यह कहा जाता है कि शिक्षा ष्लोगों के आत्मविश्वास में वृद्धि करती है और उन्हें बेहतर रोजगार खोजने में सक्षम बनाती है और वे पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर सकते हैंष। वे सार्वजनिक बहस में संलग्न होते हैं और

स्वास्थ्य देखभाल, सामाजिक सुरक्षा और अन्य अधिकारों के लिए सरकार से मांग करते हैं। ७ विशेष रूप से, शिक्षा महिलाओं को ऐसे विकल्प बनाने का अधिकार देती है जो उनके बच्चों के स्वास्थ्य, उनकी भलाई और जीवन रक्षा की संभावनाओं को बेहतर बनाते हैं। शिक्षा दूसरों को सूचित करती है। बीमारी को रोकना और युक्त करना, और यह कुपोषण को कम करने के प्रयासों का एक अनिवार्य तत्व है। इसके अलावा, यह महिलाओं को ऐसे विकल्प बनाने का अधिकार देता है जो उनके कल्याण में सुधार कर सकते हैं, जिनमें बचपन से परे शादी करना और कम बच्चे पैदा करना भी शामिल है। शिक्षा, महिलाओं की जागरूकता को बढ़ा सकती है। अधिकार, उनके आत्मसम्मान को बढ़ावा देते हैं, और उन्हें उनके अधिकारों का दावा करने का अवसर प्रदान करते हैं। हाल के दशकों में महत्वपूर्ण सुधार के बावजूद, शिक्षा सार्वभौमिक रूप से उपलब्ध नहीं है और लैंगिक असमानताएं बनी हुई हैं। कई देशों में एक बड़ी चिंता केवल लड़कियों की सीमित संख्या नहीं है। स्कूल के लिए, लेकिन कक्षा में कदम रखने वालों के लिए सीमित शैक्षणिक रास्ते भी पुनः विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग और गणित (एसटीईएम) शिक्षा में लड़कियों की कम भागीदारी और सीखने की उपलब्धि को संबोधित करने के लिए और अधिक प्रयास होने चाहिए।

साहित्य की समीक्षा

एच. सुब्रह्मण्यम (2011) वर्तमान और अतीत में भारत में महिला शिक्षा की तुलना करता है। लेखक ने बताया कि स्कूलों में छात्राओं के समग्र नामांकन में अच्छी प्रगति हुई है। सशक्तिकरण शब्द का अर्थ है कानून को शक्ति या कार्य करने का अधिकार देना। यह महिलाओं की कुछ गतिविधियों को प्राप्त करने की प्रक्रिया है।

एम. भवानी शंकर राव (2011) ने इस बात पर प्रकाश डाला कि एसएचजी की महिला सदस्यों के स्वास्थ्य ने निश्चित रूप से बेहतर होने की बारी ली है। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि महिला सदस्यों की हीथ अन्य सदस्यों और उनके बच्चों की स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के बारे में आपस में चर्चा करती है और उन्हें विशेष रूप से उनके लिए विभिन्न सरकारी प्रावधानों से अवगत कराती है।

Doepke M- Tertilt M- (2011) क्या महिला सशक्तीकरण आर्थिक विकास को बढ़ावा देती है? यह अध्ययन एक अनुभवजन्य विश्लेषण है जो यह सुझाव देता है कि माताओं के हाथों में पैसा बच्चों को लाभ देता है। इस अध्ययन ने गैर सहकारी परिवार सौदेबाजी के मॉडल की एक श्रृंखला विकसित की, यह समझने के लिए कि किस प्रकार के घर्षण मनाया अनुभवजन्य संबंध को जन्म दे सकते हैं।

डफ्लो ई. (2011) महिला सशक्तीकरण और आर्थिक विकास, नेशनल ब्यूरो ऑफ इकोनॉमिक रिसर्च कैम्ब्रिज अध्ययन का तर्क है कि सशक्तीकरण और विकास के अंतर संबंध संभवतः आत्मनिर्भर होने के लिए बहुत कमजोर हैं और अपने स्वयं के लिए समान रूप से निरंतर नीतिगत प्रतिबद्धता हो सकती है पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता लाने की जरूरत है।

सेथुरमन के. (2008) दक्षिण भारत में एक आदिवासी और ग्रामीण समुदाय में बाल विकास में महिला सशक्तिकरण और घरेलू हिंसा की भूमिका। यह शोध पत्र ग्रामीण कर्नाटक में किए गए अध्ययन के दौरान ग्रामीण और आदिवासी समुदाय के 6 से 24 महीने के बच्चों में महिला सशक्तीकरण और घरेलू हिंसा, मातृ पोषण की स्थिति और पोषण स्थिति और वृद्धि के बीच संबंधों की खोज करता है।

वेंकट रवि और वेंकटरमण (2005) ने महिलाओं की भागीदारी पर एसएचजी के प्रभावों पर ध्यान केंद्रित किया और पारिवारिक मामलों और समूह की गतिविधियों में निर्णय लेने पर नियंत्रण का प्रयोग किया।

महिलाउच्च शिक्षाकीऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत उन कुछ देशों में से एक है जहां महिलाएं दुनिया के अन्य हिस्सों की कई महिलाओं की तुलना में तुलनात्मक रूप से बेहतर स्थिति का आनंद लेती हैं। सच्ची भारतीय महिलाओं को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है और वे उसी सामाजिक दबाव के अधीन होती हैं जिसका अनुभव महिलाएं दुनिया के अन्य हिस्सों में करती हैं। लेकिन अपेक्षाकृत रूप से, उनकी स्थिति स्वतंत्रता-पूर्व युग में जो हुआ करती थी, उससे कहीं बेहतर है। उम्र के माध्यम से जीवन के विभिन्न पहलुओं में महिलाओं के विकास को निम्नलिखित तरीकों से वर्गीकृत किया जा सकता है: -

1. प्राचीन भारत में महिलाओं की शिक्षा : - प्राचीन समय से ही महिलाओं को थोड़ा कम स्थान मिला था और समाज में कठोर सामाजिक मानदंडों के कारण पुरुषों की संख्या कम थी। लेकिन वैदिक काल के दौरान उनकी स्थिति काफी बेहतर थी और वे उच्च शिक्षा प्राप्त करते थे लेकिन समय के साथ उन्होंने अपना महत्व खो दिया। प्राचीन भारत में महिला शिक्षा प्रारंभिक वैदिक काल के दौरान प्रचलित थी। भारतीय शास्त्रों में से अधिकांश ऋग्वेद और उपनिषदों में कई महिला संतों और द्रष्टाओं का उल्लेख है। हालांकि 500 ईसा पूर्व के बाद, महिलाओं की स्थिति में गिरावट शुरू हुई। लेकिन इस्लामी आक्रमण ने महिलाओं की स्वतंत्रता और अधिकारों को प्रतिबंधित कर दिया था।

2. मध्यकालीन भारत में महिलाओं की शिक्षा : - पर्दा प्रणाली की शुरुआत के बाद मध्यकालीन भारत में महिला शिक्षा की स्थिति और बिगड़ गई। विभिन्न धार्मिक (हिंदू धर्म, इस्लामी, ईसाई) सम्मेलनों और रीति-रिवाजों ने उसकी स्थिति को और खराब कर दिया था। मध्यकालीन भारत में शिक्षा 1546-1848 से मुगल शासन के दौरान फली-फूली, जहाँ शिक्षा व्यवस्था उलमा के अधीन थी जहाँ शिक्षा का अर्थ चिकित्सा, अरबी साहित्य, दर्शन, व्याकरण, इतिहास, कानून, प्रशासन और नैतिकता जैसे विभिन्न विषयों का धार्मिक प्रशिक्षण था। सामाजिक-धार्मिक आंदोलनों के एक क्रम ने देश में महिलाओं की शिक्षा के विकास में योगदान दिया। कई शासकों जैसे इल्तुतमिश, अकबर आदि ने भारत की महिलाओं को शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए कई पहल की। भारत में महिला शिक्षा के क्रमबद्ध रूप को ईसाई युग के शुरुआती शताब्दियों में शामिल किया गया था।

3. औपनिवेशिक भारत में महिला शिक्षा: - भारत में औपनिवेशिक युग के दौरान फिर से महिलाओं की शिक्षा में रुचि का पुनरुत्थान हुआ। राजा राम मोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर जैसे कई प्रतिष्ठित नेताओं ने महिलाओं की शिक्षा पर विशेष जोर दिया था। हालाँकि दूसरी तरफ महात्मा ज्योतिबा फुले, पेरियार और बाबा साहेब अम्बेडकर ऐसे प्रतिष्ठित नेता थे जिन्होंने निचली जातियों की महिलाओं के उत्थान और शिक्षा की प्राप्ति के लिए काम किया। औपनिवेशिक काल के दौरान शिक्षा प्रदान करने का संस्थागत रूप पेश किया गया था, जिसमें महिलाओं की शिक्षा में एक आवश्यक विस्तार देखा गया था। फिर से विभिन्न आंदोलनों के बाद देश की महिलाओं को शिक्षित करने शुरू किया गया। इसके अलावा, इस यात्रा ने वर्षों में प्रगति की और आधुनिक भारतीय शिक्षा प्रणाली को संरचित किया।

4. आधुनिक भारत में महिलाओं की शिक्षा: - 1947 में भारत की स्वतंत्रता के बाद महिला शिक्षा को एक परिपूर्णता मिली। स्वतंत्रता के बाद सरकार ने भारतीय महिलाओं को शिक्षा प्रदान करने के लिए कई उपाय किए हैं। आधुनिक दिनों में महिला साक्षरता दर काफी बढ़ी है। भारत में महिला शिक्षा एक अनिवार्य चिंता बन गई है और महिला साक्षरता पुरुष साक्षरता से अधिक हो गई है। पिछले दशकों के दौरान किए गए विभिन्न सरकारी उपायों के परिणामस्वरूप महिला साक्षरता दर की वृद्धि पुरुष की तुलना में अधिक थी जो कि 11..72% पुरुष की तुलना में लगभग 14.87% थी। जबकि 1971 में महिला साक्षरता दर 22% थी जो 2001 में घटकर 54.16% हो गई।

महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए इंटरनेट का उपयोग

20 वीं शताब्दी के अंत में वेब की बढ़ती पहुंच ने महिलाओं को इंटरनेट पर विभिन्न उपकरणों का उपयोग करके खुद को सशक्त बनाने की अनुमति दी है। वर्ल्ड वाइड वेब की शुरुआत के साथ, महिलाओं ने ऑनलाइन सक्रियता के लिए फेसबुक और ट्विटर जैसी सोशल नेटवर्किंग साइटों का उपयोग करना शुरू कर दिया है। ऑनलाइन सक्रियता के माध्यम से, महिलाएं अभियान का आयोजन करके और समाज के सदस्यों द्वारा उत्पीड़ित महसूस किए बिना समानता के अधिकारों के लिए अपनी राय देने में सक्षम हैं। उदाहरण के लिए, 29 मई, 2013 को 100 महिला अधिवक्ताओं द्वारा शुरू किए गए एक ऑनलाइन अभियान ने अग्रणी सोशल नेटवर्किंग वेबसाइट, फेसबुक को महिलाओं के बारे में नफरत फैलाने वाले विभिन्न पृष्ठों को हटाने के लिए मजबूर किया।

हाल के वर्षों में, ब्लॉगिंग भी महिलाओं के शैक्षिक सशक्तिकरण के लिए एक शक्तिशाली उपकरण बन गया है। दूसरों के अनुभवों को पढ़कर, महिलाएं खुद को बेहतर ढंग से शिक्षित कर सकती हैं और उन रणनीतियों को लागू कर सकती हैं जो उनके साथी ब्लॉगर सुझाते हैं। ई-लर्निंग (इलेक्ट्रॉनिक सीखने) की आसान पहुंच और सामर्थ्य के साथ, महिलाएं अब अपने घरों के आराम से अध्ययन कर सकती हैं। ई-लर्निंग जैसी नई तकनीकों के माध्यम से शैक्षिक रूप से खुद को सशक्त बनाने के साथ, महिलाएं नए कौशल भी सीख रही हैं जो आज की अग्रिम वैश्विक दुनिया में काम आएंगी।

अक्सर, सोशल मीडिया के माध्यम से हैशटैग के निर्माण, फैलाव और उपयोग के माध्यम से महिलाओं के लिए सशक्तिकरण के स्रोत के रूप में इंटरनेट बहुत उपयोगी है। महिला सशक्तिकरण का समर्थन करने वाले हैशटैग का एक प्रमुख उदाहरण 2017 में था जब #AintNoCinderella हैशटैग अस्तित्व में आया। यह हैशटैग सोशल मीडिया पर जंगल की आग की तरह फैल गया जब वर्णिका कुंडू (भारत में एक 29 वर्षीय महिला) 4 अगस्त की आधी रात को घर लौट रही थी, जब उसका पीछा किया गया और एक एसयूवी में दो लोगों ने उसे परेशान किया। कुंडू को देर रात बाहर होने के लिए दोषी ठहराया गया था, जिसके कारण भारत और दुनिया भर की महिलाओं ने देर रात खुद की तस्वीरें पोस्ट करते हुए हैशटैग "#AintNoCinderella" के साथ यह दिखाने के लिए कहा कि महिलाओं के लिए एक विशेष कर्फ्यू नहीं है, जिसके लिए उन्हें पालन करना (जैसे सिंड्रेला ने किया)।

भारत में महिला सशक्तिकरण के लिए संवैधानिक प्रावधान

- सभी व्यक्तियों (अनुच्छेद -14) के लिए कानून के सामने समानता।
- धर्म, जाति, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध (अनुच्छेद 15 (I))।
- महिलाओं और बच्चों के पक्ष में राज्य द्वारा विशेष प्रावधान किए जा सकते हैं अनुच्छेद 15 (3)।
- राज्य के अधीन किसी भीकार्यालय में रोजगार या नियुक्ति से संबंधित सभी नागरिकों के लिए अवसर की समानता (अनुच्छेद 16)।
- दोनों पुरुषों और महिलाओं (अनुच्छेद 39 (घ)) के लिए समान कार्य के लिए; (अ) समान वेतन, राज्य नीति पुरुषों और महिलाओं के लिए समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन (अनुच्छेद 39 (क)) के अधिकार को हासिल करने के लिए निर्देशित किया है।
- कार्य और मातृत्व राहत की न्यायोचित और मानवीय स्थितियों को सुरक्षित रखने के लिए राज्य द्वारा किए जाने वाले प्रावधान (अनुच्छेद 42)।
- भारत के प्रत्येक नागरिक द्वारा सद्भाव को बढ़ावा देना और ऐसी प्रथाओं का त्याग जो महिलाओं की गरिमा के लिए अपमानजनक हैं अनुच्छेद 51। (म)।
- स्थानीय निकायों के लिए प्रत्यक्ष चुनाव में महिलाओं के लिए कुल सीटों के एक तिहाई से कम नहीं का आरक्षण; पंचायत और नगर पालिकाएं (अनुच्छेद 343 (डी) और 343 (टी))

निष्कर्ष

ऊपर विस्तृत विश्लेषण और माध्यमिक डेटा विभिन्न स्रोतों से इकट्ठा के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि है कोई संदेह नहीं है के बारे में आवश्यक जरूरत की महिलाओं को सशक्त बनाने के माध्यम से उच्च शिक्षा। अब यह स्पष्ट हो गया है कि महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए केवल साक्षरता ही अंतिम समाधान है और यही नहीं बल्कि महिलाओं को उच्च शिक्षा प्रदान करनी चाहिए ताकि वे अपने निर्णय लेने में सक्षम हो सकें, वे अच्छे और बुरे में अंतर कर सकें। लेकिन यह भी आवश्यक है कि भारत सरकार महिला सशक्तीकरण के संबंध में योजनाएं और नीतियां बनाए। भारत

एक आध्यात्मिक भूमि है। एक ऐसी भूमि जहां अवधारणाओं और दर्शन ने अपनी परिणति हासिल की है और ऐसे देश के विकास के लिए महिला सशक्तीकरण होना चाहिए जो महिलाओं की साक्षरता दर को बढ़ाकर और महिलाओं को उच्च शिक्षा प्रदान कर सके ताकि वे आत्म निर्भर बन सकें।

समय की आवश्यकता उन खामियों या सीमाओं की पहचान करना है जो महिलाओं के सशक्तीकरण की प्राप्ति को देख रहे हैं और यह पहल महिला लोक से ही शुरू होनी चाहिए और साथ ही साथ राज्य और समाज द्वारा की जाने वाली नीतिगत पहल भी। आइए हम यह शपथ लें कि हम एक समतावादी समाज चाहते हैं, जहाँ हर कोई चाहे वह पुरुष हो या महिला सभी को अपने समाज की भलाई और भलाई को व्यक्त करने और उत्थान करने का समान अवसर मिलता है।

महिला सशक्तीकरण एक उत्तरी अवधारणा नहीं है, दुनिया भर की महिलाएं, जिनमें दक्षिण के देश भी शामिल हैं, इतिहास की शुरुआत से ही लैंगिक असमानताओं को चुनौती और बदलती रही हैं। इन संघर्षों को कई पुरुषों ने भी समर्थन दिया है जो महिलाओं के खिलाफ अन्याय पर नाराज हुए हैं। महिलाएं दुनिया की आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करती हैं और ग्रह पर हर देश में लैंगिक असमानता मौजूद है। जब तक महिलाओं को वही अवसर नहीं दिए जाएंगे जो पुरुष हैं, संपूर्ण समाज को उनकी वास्तविक क्षमता से नीचे प्रदर्शन करने के लिए नियत किया जाएगा। समय की सबसे बड़ी जरूरत महिलाओं के लिए सामाजिक दृष्टिकोण का परिवर्तन है। ष्जब महिलाएं परिवार को आगे बढ़ाती हैं, तो गांव चलता है और देश आगे बढ़ता है।ष यह आवश्यक है क्योंकि उनके विचार और उनकी मूल्य प्रणालियां एक अच्छे परिवार, अच्छे समाज और अंततः एक अच्छे राष्ट्र के विकास का नेतृत्व करती हैं। सशक्तिकरण का सबसे अच्छा तरीका शायद महिलाओं को विकास की मुख्यधारा में शामिल करना है। महिला सशक्तीकरण तभी वास्तविक और प्रभावी होगा, जब वे आय और संपत्ति संपन्न होंगे ताकि वे अपने पैरों पर खड़े हो सकें और समाज में अपनी पहचान बना सकें। न केवल राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी महिलाओं का सशक्तीकरण 21 वीं सदी की सबसे महत्वपूर्ण चिंताओं में से एक बन गया है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अकेले सरकारी पहल पर्याप्त नहीं होगी। समाज को एक ऐसी जलवायु बनाने की पहल करनी चाहिए जिसमें कोई लैंगिक भेदभाव न हो और महिलाओं को स्व-निर्णय लेने और देश के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन में भाग लेने के पूर्ण अवसर उपलब्ध हों।

संदर्भ

1. डॉ नवीन चंद्र, शाह ने, भारत में साक्षरता दर, बहु भाषाओं में सभी विषयों में अनुसंधान की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका वॉल्यूम। 1, अंकः 7, अक्टूबर 2013 (IJRSML) ISSN 2321-2853 (http//: www-Raijmr-com)A
2. डफ्लो ई. (2011) महिला सशक्तिकरण और आर्थिक विकास, राष्ट्रीय आर्थिक अनुसंधान ब्यूरो, कैम्ब्रिज।
3. भारतः महिला सशक्तीकरण - आईएफएडी / ओई, 2000. भारतीय गणराज्यः तमिलनाडु महिला विकास परियोजनाः समापन मूल्यांकन, रिपोर्ट 340 - रोम, अप्रैल में।
4. बरुआ बी (2013) ग्रामीण सशक्तिकरण में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भूमिका।
5. गोस्वामी, एल (2013)। महिला सशक्तिकरण के लिए शिक्षा। ABHIBYAKTI: वार्षिक पत्रिका, १, १ :-१:।
6. बरुआ, बी (2013)। एनई इंडिया की ग्रामीण महिला शिक्षा को सशक्त बनाने में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भूमिका। ABHIBYAKTIः वार्षिक पत्रिका, १, २३-२६
7. कदम, आरएन (2012)। भारत में महिलाओं का सशक्तिकरण- जेंडर गैप भरने का प्रयास। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइंटिफिक एंड रिसर्च पब्लिकेशन, 2 (6), 11-13।
8. नागराजा, बी। (2013)। भारत में महिलाओं का सशक्तिकरणः एक महत्वपूर्ण विश्लेषण। जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस (IOSR-JHSS), 9 (2), 45-52 [पेज]। URL http: www-Iosrjournals-Org/empowerment-html
9. देशपांडे, एस., और सेठी, एस., (2010)। भारतीय समाज में महिला सशक्तिकरण की भूमिका और स्थान। इंटरनेशनल रेफर्ड रिसर्च जर्नल, 1 (17), 10-12।
10. किशोर, एस। और गुप्ता, के. (2009), जेंडर इक्वेलिटी एंड वीमेन एम्पावरमेंट इन इंडिया, नेशनल फेमिली हेल्थ सर्वे (NFHS-3) प्छक्प्, 2005-06, इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर पॉपुलेशन साइंसेज, देवनार, मुंबई।
11. सुगुना, एम., (2011)। भारत में शिक्षा और महिला सशक्तिकरण। जेनटः इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च, 1 (8), 19-21।
12. डॉ. दशरती भुयान "भारतीय महिलाओं का सशक्तीकरणः 21 वीं सदी की एक चुनौती" उड़ीसा समीक्षा, 2006।
13. विनज, मेधा दुबाशी (1987) "महिला सशक्तीकरण भारतीयः दिल्ली का सामाजिक आर्थिक अध्ययन" मित्तल प्रकाशन, दिल्ली।
14. धुबा हजारिका "भारत में महिला सशक्तिकरणः एक संक्षिप्त चर्चा" शैक्षिक योजना और प्रशासन के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल। खंड 1, संख्या 3 (2011)।
15. पंकज कुमार बारो 1 और राहुल सरानिया "रोजगार और शैक्षिक स्थितिः भारत में महिला सशक्तीकरण की चुनौतियां", ए पीयर-रिव्यूड इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस।
16. वेबपेजः http"//www-slideshare-net/puneetsharma5688/women-empowermentpuneet-sharma
17. रजिस्ट्रार जनरल और सी एनसस कमिश्नर, भारत-2017।
18. विकीपीडिया.कॉम।
19. जयराम -v (द हिंदूवीकंटेक्ट): हिंदू समाज में महिलाओं की समस्याएं और स्थिति।
20. श्रच्छंपा (www-vidyaonline-org/dl/JPNaik_01-pdf): भारत में महिला शिक्षा।
21. डॉ. प्रतिमा करक (2013): महिला सशक्तीकरण उच्च शिक्षा के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय अनुक्रमित और रेफरी शोध जर्नल।

22. मेरिट तजोम्सलैंड (gtd-sagepub-co/search): उच्च शिक्षा में महिलाएं विकास की चिंता करती हैं?
23. सटन, जे. एंड पोलक, एस. (2000)। "महिला अधिकारों के लिए ऑनलाइन सक्रियता"। साइबर मनोविज्ञान और व्यवहार। 3 (5): 699-706। कवप : 10.1089 / 109493100501917700।
24. मोरान-मार्टिन, जे (2000)। "महिला और इंटरनेट: वादा और जोखिम"। साइबर मनोविज्ञान और व्यवहार। 3 (5): 683-691। क्वप : 10.1089 / 109493100501916830।
25. यूएनडीपी। 2013. मानव विकास रिपोर्ट। दक्षिण का उदय। एक विविध दुनिया में मानव प्रगति; न्यूयॉर्क, यूएनडीपी।
26. कोड क्रैक करना: विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग और गणित (STEM) में लड़कियों और महिलाओं की शिक्षा। पेरिस: यूनेस्को। 2017. पी। 11. आईएसबीएन 97892310023350।
27. चर्चयार्ड, एन. (2009)। "सशक्तिकरण का प्रश्न: उनके इंटरनेट उपयोग पर महिलाओं का परिप्रेक्ष्य"। लिंग, प्रौद्योगिकी और विकास। 13 (3): 341-363। Doi: 10.1177 / 097185241001300302।
28. मैकविघ, टी. (6 जून 2013)। "डिजिटल युग के ऑनलाइन नारीवादी कार्यकर्ता"। ताइपे टाइम्स। 24 सितंबर 2015 को मूल से संग्रहीत। 17 सितंबर, 2015 को लिया गया।
29. पांडे, गीता (2017-08-09)। "भारतीय महिलाएं सिंड्रेला क्यों नहीं हैं"। 2019-01-16 को मूल से संग्रहीत। 2019-02-15 को पुनःप्राप्त।

आरक्षण और राजनीतिः जाति व वर्ग का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

मनराज गुर्जर

सहायक प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान विभाग) श्री औरोबिन्दो कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ० विनीता भट्ट

सहायक प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान विभाग) गार्गी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

सार संक्षेप

आजादी के बाद भारत में आरक्षण की नीति को लागू करना इसलिए जरुरी हो गया था कि प्राचीन समय से वंचना का शिकार रहे लोगो को मुख्य धारा में शामिल किया जा सके। हालाँकि इस नीति की समीक्षा कर इसमें सुधार करने के लिए 10 साल की समय सीमा तय की गयी थी जिसका किर्यान्वन कभी नहीं हो सका व् साथ ही आगे आरक्षण की नीति का वर्ग व् जाति के साथ गठबंधन होने के कारण यह नीति भारतीय राजनितिक व्यवस्था की पर्याय बन गयी। 1970 के बाद आरक्षण नीति का राजनीतिकरण होने के कारण यह भारतीय समाज के उत्थान से ज्यादा राजनितिक हथियार के रूप में कार्य करने लगी थी। आज विभिन्न जातियाँ व वर्ग आपसी तालमेल से आरक्षण के दायरे में शामिल होने के लिए जद्दोजहद कर रही है। यह लेख यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि किस प्रकार से विभिन्न जातियों के मध्य आरक्षण को लेकर प्रतिस्पर्धा है और इससे यह जातियाँ अपने आप को वर्गीय स्वरूप में खड़ा करके राजनितिक दलों को अपनी और आकर्षित कर रही है। वर्तमान में आरक्षण नीति के समक्ष जाति व वर्ग की राजनीती ने अपनी मजबूत उपस्थति दर्ज करायी है जिसके कारण आरक्षण नीति राजनितिक प्रतिस्पर्धा का शिकार बन गयी है। विभिन्न राज्यों में उठने वाली आरक्षण की मांगे नीति निर्माण में राजनितिक लामबंदी को बढ़ा रही है इससे वर्ग विभाजन का परिदृश्य उभर कर सामने आ रहा है। यह लेख विभिन्न आरक्षण आंदोलनों का विश्लेषण करते हुए आरक्षण की वर्तमान स्तिथि का मूल्यांकन करता है।

मुख्य शब्द- सामाजिक न्याय, नीति विश्लेषण, समानता, जाति व वर्ग, आरक्षण, सविंधान संशोधन

प्रस्तावना

भारत संविधान की उद्देशिका भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना पर बल देती है, इस सामाजिक न्याय की संकल्पना में समाज की उस कमजोर कड़ी की मजबूती पर जोर देने का प्रयास किया गया जो ऐतिहासिक दौर से सामाजिक व आर्थिक रूप से वंचना से गृसित रही थी। सामाजिक न्याय से तात्पर्य सामाजिक जीवन में मनुष्यों की गरिमा को स्वीकार करने धर्म, जाति, क्षेत्र, वंश, लिंग या त्वचा के रंग के आधार पर किसी भी व्यक्ति के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव न करने व् शिक्षा और विकास के अवसर सभी को समान रूप से प्रदान करने से हैं। भारत में लोकतंत्र के आगमन के साथ ही इस कमजोर कड़ी को मजबूत करने के लिये सकारात्मक कार्रवाई के मजबूत संस्करण "आरक्षण की नीति" को व्यावहारिकता प्रदान की गई। आरक्षण की यह नीति सामान्यतः कानूनी रूप से वंचित समूहों को मुख्यधारा में शामिल करने के लिये सरकारी सेवाओं व शिक्षण संस्थानों में वरियता प्रदान करती है। जब आरक्षण की निति को आधार प्रदान किया जा रहा था तब प्रश्न यह था की आखिरकार पिछड़ेपन का आधार क्या होगा इसी क्रम में जाति को पिछड़ेपन का आधार माना गया। आज आजादी के इतने सालो बाद भी भारत में जाति आधारित आरक्षण को खत्म नहीं किया जा सका है। इंदिरा साहनी बनाम भारत संघ वाद में भी सर्वोच्च न्यायलय ने भारत में आरक्षण के लिए जाति को आधार माना है न्यायलय का मानना था की भारत में सामाजिक पिछड़ापन ही मुख्य पिछड़ापन है। हाल ही में भारत सरकार के द्वारा आर्थिक आधार पर दिए गए आरक्षण के कारण भारत में जाति व् वर्ग के समावेशन का स्वरूप देखने को मिला है। भारत में आरक्षण निति को अब जातियों की जगह वर्ग प्रभावित कर रहे है। अतः आज भारत की आरक्षण निति में जाति व् वर्ग का नया सममिश्रण देखा जा सकता है।

आरक्षण में जाति व वर्ग

जाति शब्द स्पेनिश और पुर्तगाली शब्द "कास्टा" से निकला है जिसका अर्थ है जाति, वंश, या नस्ल, पुर्तगालियों ने आधुनिक अर्थों में जाति को नियोजित किया तथा उन्होंने भारत में जाति को वंशानुगत भारतीय सामाजिक समूहों पर लागू किया। जाति का उदभव शब्द जना से हुआ है जिसको जन्म के साथ जोड़ा

जाता है अत: जाति जन्म से सम्बंधित है। एक सामाजिक वर्ग लोगो का एक ऐसा समूह होता है जिसको सामाजिक दर्जा प्राप्त होता है। लोगो का यह वर्ग धन , शक्ति ,शिक्षा व उपलब्धियों आदि के आधार पर सामाजिक दर्जा प्राप्त करता है। सामान्य तौर पर वर्ग के विभाजन शिक्षा ,सम्पति,व् व्यापार के आधार पर होता है। कार्ल मार्क्स ने व्यक्ति को वर्गीय जानवर कहा था क्योकि समाज में उसका दर्जा आयु, शिक्षा ,आदि के आधार पर समान नहीं होता है।

भारत की आजादी के समय सामाजिक न्याय की परिकल्पना को आरक्षण नीति के माध्यम से पूरा करने का प्रयास किया गया था। अंबेडकर शुरुआत से ही दलितों के लिए आरक्षण की पैरवी करते रहे थे यही कारण था की वे गोलमेल सम्मेलनों में दलितों के प्रतिनिधि के रूप में शामिल हुए थे। स्वतंत्रता के बाद जब इस बात पर बहस हुई की भारत में आरक्षण का आधार क्या होगा यानी पिछड़ा कौन है, अत: सरकार ने काका कालेलकर की अध्यक्षता में प्रथम पिछड़ा वर्ग आयोग की स्थापना की जिसका मुख्य उदेश्य सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग की स्थति का मूल्यांकन करना था। इस रिपोर्ट को स्वीकार किया गया लेकिन अन्य पिछड़ी जाति वर्ग के लिए की गयी सिफारिशों को अस्वीकार कर दिया गया। हालांकि बाद में द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग (1979) का गठन वीपी मंडल की अध्यक्षता में किया गया। मंडल आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कहाँ कि भारतीय समाज में व्यक्ति की हैसियत का आधार जाति ही है अत: सविंधान के अनुच्छेद 16 (4) में पिछड़ेपन का आधार जाति होना चाहिए। इस प्रकार भारत में जाति को आधार बनाकर आरक्षण प्रदान किया गया ताकि सामाजिक स्तर पर सामाजिक न्याय को प्राप्त किया जा सके।

1980 के दशक में भारतीय राजनीति के बदलते स्वरूप में क्षेत्रवाद का महत्त्व बढ़ने लगा था जिस कारण से राजनितिक पार्टियां अब वोट बैंक के लिए अब जाति व् जातियों के आधार पर बने वर्गों को अपनी और आकर्षित करने का प्रयास करने लगी। इसके लिए आरक्षण नीति एक ऐसा हथियार बन गयी थी जिसका प्रयोग हर पार्टी अपने अनुसार कर रही थी। पिछले सात दशको से भारतीय राजनेता व नीति निर्माताओं ने आरक्षण की नीति को व्यवहार्य उपकरण के रूप में देखा है। जिसके कारण भारत में आरक्षण की नीति उस बेशकीमती ट्रॉफी की तरह बन गई है, जिसको प्राप्त करने के लिये सभी जातिय व वर्गीय समूहों में प्रतिस्पर्धा का माहौल है। पिछले सालों से अन्याय व असमानता निवारण की हमारी सारी ऊर्जा व कल्पना केवल- सकारात्मक कार्यवाही की रणनीति के रूप में आरक्षण पर टिकी हुई है। लेकिन यहा यह देखना जरूरी है कि पिछले सात दशकों में आरक्षण की यह नीति अपने तात्विक स्वरूप को प्राप्त करने में विफल क्यों रही है। आज भारत में शक्तिशाली जातीय व् वर्गीय समूह भी अपने आप को आरक्षण की नीति का हिस्सा बनाना चाहते है जिसमे गुजरात से पाटीदार, हरियाणा में जाट आंदोलन और राजस्थान के गुर्जर व जाट आंदोलन प्रमुख है।

गुजरात में जुलाई 2015 में पाटीदार समुदाय के लोगों ने स्वयं को अन्य पिछड़ा वर्ग का हिस्सा बनाने की मांग को लेकर राज्य भर में सार्वजनिक प्रदर्शनों को गति दी। पाटीदार समुदाय के लोग जिन्हें पटेल उपनाम से भी जाना जाता है ने सरकारी नौकरियों और शिक्षा के माध्यम के लिए अपने समुदाय को अन्य पिछड़ी जातियों में शामिल करने की मांग को प्रबलता से शासन के समक्ष रखा। इस मांग को उठाने में युवा वर्ग की भारी तादात थी। युवाओं ने हार्दिक पटेल के अध्यक्षता में पाटीदार अनामत आंदोलन समिति का गठन किया। समिति ने स्वयं को एक गैर राजनीतिक संगठन करार दिया। 22 जुलाई को मेहसाणा में एक सार्वजनिक प्रदर्शन का आयोजन किया गया, लेकिन यह प्रदर्शन धीरे-धीरे हिंसक हो गया। आंदोलनकारियों ने वाहनों में आग लगा दी और भारतीय जनता पार्टी के विधायक के कार्यालय को भी आग के हवाले कर दिया। इस प्रकार पूरे प्रदेश में आंदोलन ने हिंसक रूप धारण कर लिया। इस प्रकार सार्वजनिक प्रदर्शन से प्रारंभ इस मांग ने संपूर्ण गुजरात को हिंसक आंदोलन की राह में धकेल दिया। इसके परिणाम स्वरूप सरकार ने समुदाय से बात करने व सरकार को रिपोर्ट सौंपने के लिए एक सात सदस्यीय समिति का गठन किया जिसका मुख्य कार्य आरक्षण के लिए संविधानिक प्रावधानों को समुदाय की सामाजिक स्थिति की जांच करना था। गुजरात में इस पाटीदार आंदोलन के बाद में एक प्रकार की नई सामाजिक प्रतिक्रिया देखने को मिली जिसके तहत कई अन्य समुदायों के नेताओं ने भी सामान लाइनों में आरक्षण की मांग कर आंदोलन शुरू कर दिया। वही पहले से ही अन्य पिछड़ा वर्ग का दर्जा प्राप्त समुदाय के नेताओं ने आंदोलन का विरोध किया। इस प्रकार वहां जातीय समुदाय के मध्य एक नई प्रकार की प्रतिक्रिया देखने को मिली। गुजरात के इस आंदोलन क्षत्रिय-पटेल प्रतिद्वंदता के रूप में भी देखा गया। इस प्रकार देखा जा सकता है कि कैसे गुजरात के एक मजबूत समुदाय ने स्वयं को ओबीसी का हिस्सा बनाने के लिए एक आंदोलन किया और उस आंदोलन से पूरी राज्य की कानून व्यवस्था को प्रभावित किया। इस प्रकार हम पूरे भारत में इस स्वरूप को देखा जा सकता है कि कैसे एक मजबूत समुदाय आरक्षण की चाहत में अपने आप को एक आंदोलन की तरफ आकर्षित कर लेता है और इससे राज्य और समाज का बहुत बड़ा नुकसान उठाना पड़ता है। हम देखते हैं कि किस प्रकार से वर्गीय चेतना और वर्गीय प्रतिस्पर्धा में किस प्रकार से वर्गों के मध्य आरक्षण को लेकर एक नई जिज्ञासा को पैदा किया है। यह बात काफी चिंतनीय है और इस पर सोच-विचार करना समय की आवश्यकता है।

गुजरात के पाटीदार आंदोलन की तर्ज पर ही हरियाणा में भी आरक्षण की मांग को लेकर जाट आंदोलन हुआ। यहां जाट समुदाय के द्वारा ने पिछड़ा वर्ग का दर्जा प्राप्त करने की मांग को लेकर आंदोलन खड़ा किया गया। जाट हरियाणा के किसानों की एक जाति है तथा हरियाणा की राजनीति में उनका प्रभाव हमेशा दिखाई देता है। जाट समुदाय सरकारी नौकरियों और शिक्षण संस्थानों में ओबीसी केटेगरी के तहत आरक्षण की मांग करता रहा है। हरियाणा का 27% जाट समुदाय, आर्थिक व सामाजिक स्थिति से मजबूत माना जाता है, लेकिन आरक्षण की मांग को लेकर 2016 में हरियाणा में हिंसक आंदोलन हुआ। जिसके तहत वह सरकारी खजाने में में करोड़ों रुपए का नुकसान हुआ, जाट आंदोलन के कारण हुई हिंसा के कारण हरियाणा में 9 लोगो की मौत हो गयी तथा साथ ही उपद्रवियो ने दिल्ली आने वाली पानी की सप्लाई पर भी कब्जा कर लिया था जिसके कारण दिल्ली में पानी का संकट पैदा गया था। कई राजनीतिक विश्लेषकों ने जाट आंदोलन को प्रतिस्पर्धी राजनीति का एक प्रतिरूप करार दिया। उनका कहना था कि अन्य समुदायों की तरह ही जाट भी आरक्षण की बेला के माध्यम से अपना उत्थान करना चाहता है। इस प्रकार कहाँ जा सकता है कि जाति आरक्षण पाने के लिए वर्ग को आधार बना रही है ताकि वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सके , इसको जाति व वर्ग के आपसी रुपांतरणीय रूप में भी समझा जा सकता है।

आंदोलन के बाद सरकार ने जाट समुदाय की मांग को मानते हुए बजट सत्र में दो विधेयक - हरियाणा पिछड़ा वर्ग (सेवाओं में आरक्षण और शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश) विधेयक, 2016 और हरियाणा पिछड़ा वर्ग आयोग विधेयक, 2016 पेश किए हैं, जिन्हें सदन ने सर्वसम्मति से पारित किया। हरियाणा सरकार केंद्र सरकार से इस अधिनियम को संविधान के अनुच्छेद 31बी के साथ पठित 9वीं अनुसूची में शामिल करने का भी अनुरोध किया है। इस विधेयक में जाटों और पांच अन्य जातियों - जाट सिखों, रोड़, बिश्नोई, त्यागी और मुल्ला जाट ध् मुस्लिम जाट - को पिछड़ा वर्ग श्रेणी में एक नया वर्गीकरण ब्लॉक 'सी' बनाकर आरक्षण देने का प्रस्ताव है। विधेयक में जाटों और पांच अन्य जातियों को सरकारी और सरकारी सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थानों और तृतीय और चतुर्थ श्रेणी की सरकारी नौकरियों में 10% आरक्षण देने का प्रस्ताव किया गया था

राजस्थान में भी एक अलग वर्ग में आरक्षण की मॉग को लेकर गुर्जर समुदाय द्वारा 2008 से लगातार आंदोलन किया जा रहा है। यहाँ पर गुर्जर समुदाय अन्य पिछड़ा वर्ग से इतर स्पेशल बैकवर्ड क्लास के तहत 5 प्रतिशत आरक्षण की मांग कर रहा है। इस आंदोलन के कारण बार बार रेलवे ट्रैक व सड़को को रोक कर गुर्जर समुदाय मांग करता है जिससे राज्य को भारी नुकसान उठाना पड़ता है। राजस्थान सरकार ने कही बार गुर्जर समुदाय के लिए आरक्षण विधयेक प्रस्तुत किया है लेकिन 50 प्रतिशत की सीमा के उलंघन होने के कारण न्यायलय इसको कही बार रद्द कर चुका है। राजस्थान में गुर्जर आंदोलन की तर्ज पर ही जाट समुदाय भी आरक्षण की मांग कर रहा है। इससे वहाँ पर जातीय संघर्ष की परिस्थति बन रही है जो कही न कही आरक्षण नीति पर प्रश्न चिन्ह लगा रही है।

गुर्जर, पाटीदारों व जाट आंदोलन का विश्लेषण को यदि प्रतिस्पर्धी राजनीति के प्रति रूप के रूप में देखा जाए तो यह स्पष्ट होता है कि विभिन्न समुदायों के मध्य आरक्षण एक प्रतिस्पर्धा बन चुका है। इन सभी समुदायों ने इस बात को स्वीकार कर लिया है कि आरक्षण के बिना वे स्वयं का उत्थान नहीं कर सकते। इस कारण आरक्षण जातिय प्रतिस्पर्धा के साथ ही राजनीतिक प्रतिष्ठान का भी हिस्सा बन चुका है। इससे समुदायो के मध्य आपसी टकराव की स्थिति उत्पन्न हुई है। यह स्थिति भारतीय प्रस्तावना में उल्लेखित विविधता में एकता की भावना के विपरीत प्रतीत होती है

9 अगस्त, 2016 को मराठा क्रांति मोर्चा के बैनर तले मराठा औरंगाबाद में महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले के कोपर्डी गांव में एक 15 वर्षीय लड़की के बलात्कार और हत्या के विरोध में एक साथ आए। मराठा समुदाय के इस एकीकरण ने अपनी राजनीतिक मजबूती को सरकार के सामने रख दिया। जिसके कारण 2016-17 के बीच राज्य भर में 58 मौन, लेकिन बड़े पैमाने पर रैलियां हुई, यह रैलिया सरकारी नौकरियों और शैक्षणिक संस्थानों में समुदाय के लिए आरक्षण पर केंद्रित थीं। नेतृत्वविहीन और गैर-राजनीतिक रैलियों में विशाल जन उपस्थिति ने पूरे महाराष्ट्र में शहरों से लेकर गांवों तक तालुका स्तरों तक अपनी पैठ बना ली। महाराष्ट्र में मराठा समुदाय कुल जनसंख्या का 32 प्रतिशत है।प्रत्येक रैली के अंत में दस सूत्री मांगों का चार्टर जिला कलेक्टर को प्रस्तुत किया गया। एजेंडे में सबसे ऊपर मराठा आरक्षण था। इसके अलावा संगठन ने कोपर्डी बालिका के लिए न्याय और अपराध करने वालों को कड़ी से कड़ी सजा और किसानों की कर्जमाफी सहित अन्य बातों की मांग की. 2017-18 के बीच आंदोलन के दूसरे चरण में, सड़क पर विरोध प्रदर्शन ने हिंसक रूप ले लिया और यहां तक कि कुछ आत्महत्याएं भी कीं। मराठा आरक्षण की मांग को लेकर आत्महत्या का पहला मामला औरंगाबाद जिले के कन्नड़ तालुका में हुआ। मराठों ने घोषणा की कि वे आरक्षण से कम किसी चीज के लिए समझौता नहीं करेंगे। एक मराठा, लाख मराठा - अपनी ताकत दिखाने के लिए गढ़ा गया नारा था।मराठों के बीच बढ़ती आक्रामकता को देखते हुए, तत्कालीन मुख्यमंत्री देवेंद्र फडणवीस के नेतृत्व वाली सत्तारूढ़ भाजपा सरकार ने जून 2017 को सेवानिवृत्त न्यायमूर्ति एनजी गायकवाड़ की अध्यक्षता में एक 11 सदस्यीय आयोग का गठन किया। विभिन्न समूहों और व्यक्तियों के विस्तृत अध्ययन और बयानों के बाद, आयोग ने प्रस्तुत किया। एक रिपोर्ट में कहा गया है कि मराठों को सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग (एसईबीसी) के तहत आरक्षण दिया जाना चाहिए। हालांकि आयोग ने आरक्षण की सिफारिश की, लेकिन उसने कोटा प्रतिशत निर्दिष्ट नहीं किया और इसे राज्य सरकार पर छोड़ दिया।

इसी के तहत मराठा समुदाय को आरक्षण प्रदान किया किया , उनको प्रदान किया गया यह आरक्षण सविधान द्वारा निर्धारित आरक्षण की ऊपरी सीमा को पार कर रहा था इसी कारण सर्वोच्च न्यायालय ने मराठा आरक्षण को रद्द कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने उनको दिए 16 प्रतिशत आरक्षण पर टिप्पणी करते हुए कहाँ कि आरक्षण के पीछे समुदाय के सामाजिक व् आर्थिक पिछड़ेपन को मुख्य आधार माना जाना चाहिए। ऐसा माना जाता है कि मराठा समुदाय कभी भी गरीब नहीं रहा है और न ही पिछड़ा है। विभिन्न आलोचकों ने उनको प्रदान किये गये आरक्षण को वोटबैंक राजनीति का हिस्सा करार दिया।

तमिलनाडु में हाल ही में मेडिकल में आरक्षण को लेकर मोर्चाबंदी देखी गयी, ध्यातव्य हो की तमिलनाडु में पहले से ही आरक्षण 50 प्रतिशत की सीमा को पार कर चूका है, यह भारत का पहला राज्य है जहाँ 69 प्रतिशत आरक्षण लागू है। हाल ही में न्यायालय ने तमिलनाडु की आरक्षण निति पर टिपण्णी करते हुए कहाँ कि आरक्षण मौलिक अधिकार नहीं है बल्कि सामाजिक व् आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए अपनाया गया एक हथियार मात्र है ताकि समानता के सिद्दांत को लागु किया जा सके।

127 वां संविधान संशोधन विधेयक

हाल ही में भारतीय संसद ने 127 वा सविंधान संशोधन बिल को बहुमत से पारित कर दिया। संसद द्वारा पारित 127 वें संविधान संशोधन विधेयक का उद्देश्य राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों की अपनी ओबीसी सूची बनाने की शक्ति को बहाल करना है। मराठा आरक्षण को रद्द किये जाने के बाद राज्यों में एक लामबंदी देखी गयी क्योकि राज्य ओबीसी सूची को संशोधित करने की शक्ति अपने पास रखना चाहते है व् न्यायालय के दखल को रोकना चाहते थे। इस नवीनतम संशोधन के माध्यम से सुप्रीम कोर्ट ने अपने मराठा आरक्षण के फैसले में 102 वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम को बरकरार रखा, लेकिन कहा कि राष्ट्रपति, राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग (एनसीबीसी) की सिफारिशों के आधार पर यह निर्धारित करेंगे कि कौन से समुदायों को इस सूची में शामिल किया जाएगा। ओबीसी की राज्य सूची को बनाए रखने के लिए राज्य सरकारों की शक्तियों को बहाल करने के लिए 127 वें संशोधन की आवश्यकता है, जिसे सुप्रीम कोर्ट की व्याख्या से हटा दिया गया था। यह विधेयक सामाजिक सशक्तिकरण को आगे बढ़ाता है। यह हाशिए के वर्गों के लिए गरिमा, अवसर और न्याय सुनिश्चित करने के लिए हमारी सरकार की प्रतिबद्धता को भी दर्शाता है।

निष्कर्ष

भारत में आरक्षण की नीति को लागू करने के पीछे कमजोर और वंचित समूह का उत्थान प्रमुख था। आजादी के बाद भारत के आरक्षण नीति ने इस दिशा में काम करना भी प्रारंभ कर दिया था तथा सफलता की तरफ भी यह धीरे-धीरे बढ़ रही थी, लेकिन धीरे-धीरे विभिन्न दल आरक्षण नीति को वोट बैंक का आधार मानने लगे थे। तथा वे जातियों को आरक्षण के माध्यम से लामबन्द कर रहे थे ताकि उनका वोट बैंक बढ़ सके। इस तरह अब छोटे-छोटे

समूह भी आरक्षण की मांग करने लगे थे। क्योकी उनको ऐसा महसूस हो रहा था कि आरक्षण प्राप्त किए बिना उनका विकास संभव नहीं है। इस प्रकार आरक्षण को लेकर 70-80 के दशक में एक नए प्रकार की पर्तिस्पर्धी राजनीति दलों के मध्य देखने को मिली। इस प्रकार प्रतिस्पर्धि राजनीति के तहत राजनीतिक दलों में जातियों को लामबंद करने की एक होड़ सी लगी हुई थी। भारत में आरक्षण नीति ने सामाजिक न्याय को लक्ष्य माना जो बाबा साहब भीमराव अंबेडकर का सपना था, हाँलाकि अंबेडकर आरक्षण नीति की एक समय काल के बाद समीक्षा करने के पक्ष में थे। लेकिन भारत का राजनीतिक लोकतंत्र आरक्षण नीति को व्यापक कर इसको चुनावी लामंबदी का एक जरिया मानने लगा, यही कारण है कि व्यापक सामाजिक समूहों को लक्षित करने वाली यह आरक्षण नीति सामाजिक न्याय का प्रभावी उपकरण साबित नहीं हो सकी तथा यह बाद में जातिय टकराव व प्रशासनिक असमानता को बढ़ाती प्रतित होने लगी।

वर्तमान समय में जब आरक्षण की नीति का मूल्यांकन करते है तो पाते है कि वर्ग व् जाति के रूपांतरण ने इसको और गहरा बना दिया है। आज जातिय व् वर्गीय समूहो के लिए आरक्षण एक ऐसा पर्याय बन गया है जिसको वास्तविकता में समाप्त करना असंभव है। गुजरात, हरियाणा, महाराष्ट्र व् तमिलनाडू में जातीय व् वर्गीय समूहों की आरक्षण की लड़ाई का आंकलन इस आधार पर लगाया जा सकता है कि सामाजिक स्तिथि से मजबूत होने के बावजूद भी आज वहाँ आरक्षण को लेकर जिस तरह से समूहों में प्रतिस्पर्धा कीि स्थति है वह वाकेय ही विचारणीय है। इंदिरा साहनी बनाम भारत संघ केस में सर्वोच्च न्यायालय ने कहां था कि आरक्षण 50 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होना चाहिए। लेकिन आज भारत के राजनितिक दलों में वोट बैंक की राजनीती के कारण आरक्षण की सीमा को लगातार बढ़ाते जा रहे है उदाहरण स्वरूप वर्तमान तमिलनाडू में आरक्षण का कोटा 69 प्रतिशत व है अन्य राज्यों ने भी इस सिमा को किनारे पर रख कर आरक्षण की सीमा का (50 प्रतिशत से ज्यादा) ध्यान नहीं रखा जिसके कारण न्यायलय ने बार-बार इसमें दखल दिया है। न्यायलय ने अपने निर्णय में कहाँ कि की सभी राज्यों को आरक्षण की 50 की सीमा की पालना करना पड़ेगा और जहाँ भी इस सीमा का उल्लंघन होगा वहाँ 50 प्रतिशत की सीमा से ऊपर वाला आरक्षण रद्द माना जायेगा। यही कारण है कि सरकार ने हाल ही में 127 वा सविंधान संशोधन विधेयक संसद से पारित करवाया ताकि राज्यों को ओबीसी आरक्षण के मामले में स्वतंत्रता प्रदान की जा सके।

ग्रन्थसूची

1. Indra Sawhney Etc. vs Union Of India And Others, Etc. on 16 November, 1992". IndianKanoon.org.
2. Andre Beteille(1969): Caste old and New (Bombay,Asia Publishing House)
3. Manoranjan Mohnaty(ed) (2004): Class, Caste, Gender,(Delhi:Sage)
4. Mandal Commission Report, Vol. 1, Recommendations. pp. 57-60.
5. Shah, Ghanshyam (Jan 19,1985)," Caste, Class and Reservation", Vol. 20, Issue No. 3, Economic and Political Weekly
6. Patidar agitation: Uneasy calm in violence-hit Gujarat, death toll rises to 10". The Times of India. PTI. 27 August 2015. Archived from the original on 30 August 2015. Retrieved 31 August 2015.
7. Jat agitation: How the violence started.", Indian Express, 25 February 2016.
8. Haryana Jats get reservation" The Economics Times, March 30,2016.
9. गुर्जर आंदोलन से जयपुर रूट ठपए रेल प्रशासन ने निरस्त कीं 22 गाड़िया". Amar Ujala.Archived from the original on 17 February 2019. Retrieved 10 November 2019
10. Gaikwad report on Maratha quota most reliable' The Hindu, March 14, 2019
11. Top Court Rejects Tamil Nadu's Plea On 50% OBC Quota In Medical Colleges"Ndtv, October 26,2020.
12. Sharma K.L. "Caste and Class in India: Some Conceptual Problems" Vol. 33, No. 1/2 (March, September 1984), pp. 1-28, Sociological Bulletin

छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए उच्च शिक्षा का विकास- एक अध्ययन

डॉ० श्याम लाल निराला

शासकीय बिलासा गर्ल्स पोस्ट ग्रेजुएट ऑटोनॉमस कॉलेज, बिलासपुर, छत्तीसगढ़, भारत

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन "छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए उच्च शिक्षा का विकास" राज्य में सामाजिक न्याय और शैक्षिक समानता की दिशा में हुए प्रयासों का विश्लेषण करता है। छत्तीसगढ़ एक आदिवासी बहुल राज्य है, जहाँ अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों की जनसंख्या का अनुपात उल्लेखनीय है। ऐतिहासिक, सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से ये वर्ग लंबे समय तक उच्च शिक्षा से वंचित रहे हैं। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह समझना है कि राज्य में उच्च शिक्षा के विस्तार हेतु इन वर्गों के लिए कौन-कौन सी नीतियाँ, योजनाएँ और संस्थागत व्यवस्थाएँ अपनाई गई हैं तथा उनका वास्तविक प्रभाव क्या रहा है। अध्ययन में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आँकड़ों का उपयोग किया गया है, जिनमें सरकारी रिपोर्टें, जनगणना आँकड़े, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं राज्य शिक्षा विभाग के प्रकाशन शामिल हैं। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि छात्रवृत्ति योजनाएँ, आरक्षण नीति, आवासीय विद्यालय, एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय, नवीन विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों की स्थापना जैसे प्रयासों से उच्च शिक्षा में नामांकन दर में वृद्धि हुई है। इसके बावजूद, ड्रॉपआउट दर, आर्थिक अभाव, भाषा की समस्या, डिजिटल विभाजन तथा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सीमित पहुँच जैसी चुनौतियाँ अब भी बनी हुई हैं। यह सुझाव देता है कि केवल संरचनात्मक विस्तार पर्याप्त नहीं है, बल्कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, परामर्श, कौशल विकास, तथा रोजगारोन्मुखी पाठ्यक्रमों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। इससे छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए उच्च शिक्षा का सतत एवं समावेशी विकास संभव हो सकेगा।

(***मुख्य शब्दः*** छत्तीसगढ़, उच्च शिक्षा, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, शैक्षिक विकास, सामाजिक न्याय)

भूमिका

उच्च शिक्षा किसी भी समाज के बौद्धिक, सामाजिक एवं आर्थिक विकास की आधारशिला मानी जाती है। यह न केवल व्यक्ति को ज्ञान, कौशल और आत्मनिर्भरता प्रदान करती है, बल्कि समाज में समानता, सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक मूल्यों को भी सुदृढ़ करती है। भारत जैसे बहुजातीय एवं सामाजिक रूप से विविध देश में उच्च शिक्षा की भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है, विशेष रूप से उन वर्गों के लिए जो ऐतिहासिक रूप से सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक वंचना का शिकार रहे हैं। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्ग ऐसे ही समुदाय हैं, जिनकी उच्च शिक्षा में भागीदारी लंबे समय तक सीमित रही है (कुमार, 2016)।

छत्तीसगढ़ राज्य का गठन वर्ष 2000 में हुआ और यह राज्य अपनी विशिष्ट सामाजिक संरचना के लिए जाना जाता है। यहाँ अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या लगभग एक-तिहाई है, जबकि अनुसूचित जाति एवं अन्य पिछड़े वर्ग भी बड़ी संख्या में निवास करते हैं (जनगणना, 2011)। राज्य का एक बड़ा भाग ग्रामीण एवं वनवासी क्षेत्रों में फैला हुआ है, जहाँ आधारभूत शैक्षिक सुविधाओं की कमी, गरीबी, अशिक्षा और सामाजिक पिछड़ापन उच्च शिक्षा के मार्ग में प्रमुख बाधाएँ रहे हैं। इस पृष्ठभूमि में छत्तीसगढ़ में वंचित वर्गों के लिए उच्च शिक्षा का विकास एक महत्वपूर्ण अध्ययन विषय बन जाता है।

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय संविधान ने समानता के अधिकार और सामाजिक न्याय को मूलभूत सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया। इसके अंतर्गत अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण नीति, छात्रवृत्ति योजनाएँ तथा विशेष शैक्षिक प्रावधान किए गए (भारत का संविधान, अनुच्छेद 15 एवं 46)। छत्तीसगढ़ में भी राज्य गठन के बाद विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों, तकनीकी एवं व्यावसायिक संस्थानों की स्थापना के माध्यम से उच्च शिक्षा के विस्तार के प्रयास किए गए हैं। साथ ही, एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय, पोस्ट-मैट्रिक छात्रवृत्ति एवं निःशुल्क शिक्षा जैसी योजनाओं के माध्यम से इन वर्गों को उच्च शिक्षा से जोड़ने का प्रयास हुआ है (शिक्षा विभाग, छत्तीसगढ़ शासन, 2020)।

इसके बावजूद, केवल संस्थानों की संख्या में वृद्धि ही उच्च शिक्षा के वास्तविक विकास का संकेत नहीं देती। नामांकन, निरंतरता, गुणवत्ता, रोजगारोन्मुखता और सामाजिक समावेशन जैसे पहलुओं का विश्लेषण भी आवश्यक है। इसी संदर्भ में यह अध्ययन छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए उच्च शिक्षा के विकास की समग्र स्थिति को समझने का प्रयास करता है। भूमिका के रूप में यह अध्याय अध्ययन की पृष्ठभूमि, सामाजिक संदर्भ और समस्या की प्रकृति को स्पष्ट करता है, जो आगे के विश्लेषण के लिए आधार प्रदान करता है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं औचित्य

छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए उच्च शिक्षा के विकास का अध्ययन अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक कारणों से अत्यंत आवश्यक है। उच्च शिक्षा केवल व्यक्तिगत उन्नति का साधन नहीं है, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन, समान अवसर और समावेशी विकास का भी प्रभावी माध्यम है। जिन समाजों में वंचित वर्गों की उच्च शिक्षा तक पहुँच सीमित रहती है, वहाँ असमानता और गरीबी का चक्र लंबे समय तक बना रहता है (सेन, 2010)। इसी कारण छत्तीसगढ़ जैसे राज्य में इस विषय का अध्ययन विशेष महत्व रखता है।

छत्तीसगढ़ की सामाजिक संरचना विशिष्ट है, जहाँ अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या राष्ट्रीय औसत से अधिक है। ऐतिहासिक रूप से ये वर्ग भौगोलिक अलगाव, आर्थिक अभाव, सामाजिक भेदभाव और शैक्षिक संसाधनों की कमी के कारण मुख्यधारा की शिक्षा व्यवस्था से दूर रहे हैं (शर्मा, 2014)। प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक सुविधाओं की सीमित उपलब्धता का सीधा प्रभाव उच्च शिक्षा में सहभागिता पर पड़ा है। इस संदर्भ में यह जानना आवश्यक हो जाता है कि राज्य में उच्च शिक्षा का विस्तार इन वर्गों की वास्तविक आवश्यकताओं को कितना पूरा कर पा रहा है।

अध्ययन की आवश्यकता का एक महत्वपूर्ण आधार यह भी है कि राज्य गठन के बाद छत्तीसगढ़ में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कई नीतिगत एवं संस्थागत परिवर्तन हुए हैं। नए विश्वविद्यालयों, शासकीय एवं अशासकीय महाविद्यालयों, तकनीकी संस्थानों तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की स्थापना की गई है। साथ ही, अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण, छात्रवृत्ति, छात्रावास एवं नि:शुल्क शिक्षा जैसी योजनाएँ लागू की गई हैं (योजना आयोग, 2013)। इन प्रयासों के बावजूद यह प्रश्न बना हुआ है कि क्या इन नीतियों से उच्च शिक्षा में समान अवसर वास्तव में सुनिश्चित हो पाए हैं।

इस अध्ययन का औचित्य इस तथ्य में भी निहित है कि मात्र नामांकन आँकड़ों से उच्च शिक्षा के विकास का सही मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। ड्रॉपआउट दर, पाठ्यक्रम की गुणवत्ता, भाषा की समस्या, डिजिटल विभाजन, तथा रोजगार के अवसरों से जुड़ाव जैसे मुद्दे आज भी इन वर्गों के छात्रों को प्रभावित कर रहे हैं (यूजीसी, 2019)। यदि इन समस्याओं की पहचान और विश्लेषण नहीं किया गया, तो उच्च शिक्षा का उद्देश्य अधूरा रह जाएगा।

अत: यह अध्ययन न केवल वर्तमान शैक्षिक स्थिति का विश्लेषण करता है, बल्कि नीति-निर्माताओं, शिक्षाविदों एवं प्रशासकों के लिए उपयोगी सुझाव भी प्रस्तुत करता है। इससे छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए उच्च शिक्षा के अधिक प्रभावी, समावेशी और सतत विकास की दिशा में ठोस कदम उठाए जा सकते हैं।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य छत्तीसगढ़ राज्य में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए उच्च शिक्षा के विकास की स्थिति का समग्र एवं तथ्यपरक अध्ययन करना है। यह अध्ययन उच्च शिक्षा को सामाजिक न्याय और समान अवसर के संदर्भ में देखते हुए यह समझने का प्रयास करता है कि राज्य में अपनाई गई नीतियाँ और योजनाएँ इन वर्गों की शैक्षिक प्रगति में किस सीमा तक सहायक सिद्ध हुई हैं। अध्ययन के उद्देश्य केवल आँकड़ों के संकलन तक सीमित नहीं हैं, बल्कि इनके विश्लेषण के माध्यम से वास्तविक स्थिति को स्पष्ट करना भी है।

प्रथम उद्देश्य के रूप में, अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों की उच्च शिक्षा में भागीदारी की स्थिति का विश्लेषण करना है। इसके अंतर्गत नामांकन दर, लिंगानुपात, ग्रामीण-शहरी विभाजन तथा विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक सहभागिता का अध्ययन किया जाएगा (जनगणना, 2011; यूजीसी, 2019)। इससे यह स्पष्ट होगा कि उच्च शिक्षा में इन वर्गों की पहुँच समय के साथ किस प्रकार बदली है।

द्वितीय उद्देश्य राज्य एवं केंद्र सरकार द्वारा संचालित उच्च शिक्षा संबंधी योजनाओं और नीतियों का अध्ययन करना है। इसमें आरक्षण नीति, छात्रवृत्ति योजनाएँ, छात्रावास सुविधा, नि:शुल्क शिक्षा, एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय तथा अन्य विशेष कार्यक्रम शामिल हैं। इन योजनाओं की प्रभावशीलता का मूल्यांकन यह समझने में सहायक होगा कि नीतिगत प्रयास जमीनी स्तर पर कितना असर डाल रहे हैं (शिक्षा विभाग, छत्तीसगढ़ शासन, 2020)।

तृतीय उद्देश्य उच्च शिक्षा के मार्ग में आने वाली प्रमुख समस्याओं और चुनौतियों की पहचान करना है। आर्थिक अभाव, सामाजिक भेदभाव, भाषा संबंधी कठिनाइयाँ, डिजिटल संसाधनों की कमी, उच्च ड्रॉपआउट दर तथा रोजगारोन्मुख शिक्षा का अभाव जैसे कारक आज भी इन वर्गों के छात्रों को प्रभावित कर रहे हैं (शर्मा, 2014)। इन बाधाओं का विश्लेषण उच्च शिक्षा की गुणवत्ता और निरंतरता को समझने में सहायक होगा।

चतुर्थ उद्देश्य यह जानना है कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के छात्रों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में किस प्रकार का परिवर्तन आया है। शिक्षा और रोजगार के बीच संबंध का विश्लेषण इस अध्ययन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है (सेन, 2010)।

अंतत:, इस अध्ययन का उद्देश्य निष्कर्षों के आधार पर व्यावहारिक एवं नीति-उन्मुख सुझाव प्रस्तुत करना है, जिससे छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए उच्च शिक्षा को अधिक समावेशी, गुणवत्तापूर्ण और प्रभावी बनाया जा सके।

शोध प्रश्न / परिकल्पनाएँ

किसी भी सामाजिक विज्ञान संबंधी शोध में शोध प्रश्न या परिकल्पनाएँ अध्ययन की दिशा और सीमा को स्पष्ट करती हैं। ये प्रश्न न केवल समस्या की प्रकृति को समझने में सहायता करते हैं, बल्कि आँकड़ों के संकलन एवं विश्लेषण के लिए एक ठोस आधार भी प्रदान करते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए उच्च शिक्षा के विकास से संबंधित कुछ प्रमुख शोध प्रश्नों एवं परिकल्पनाओं का निर्धारण किया गया है।

इस अध्ययन का प्रथम शोध प्रश्न यह है कि क्या छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों की उच्च शिक्षा तक पहुँच में विगत वर्षों में वृद्धि हुई है? राज्य गठन के बाद विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों की संख्या में वृद्धि हुई है, परंतु यह आवश्यक नहीं कि इसका लाभ सभी सामाजिक

वर्गों को समान रूप से मिला हो। इस प्रश्न के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि नामांकन दर, पाठ्यक्रम चयन एवं शैक्षिक निरंतरता के स्तर पर इन वर्गों की स्थिति में कितना सुधार हुआ है (यूजीसी, 2019)।

द्वितीय शोध प्रश्न राज्य एवं केंद्र सरकार की नीतियों और योजनाओं की प्रभावशीलता से संबंधित है। क्या आरक्षण नीति, छात्रवृत्ति योजनाएँ, छात्रावास सुविधाएँ तथा अन्य सहायक कार्यक्रम वास्तव में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों को उच्च शिक्षा से जोड़ने में सफल रहे हैं? कई अध्ययनों में यह पाया गया है कि योजनाओं के बावजूद क्रियान्वयन की कमजोरियाँ अपेक्षित परिणामों में बाधा बनती हैं (शर्मा, 2014)। इस संदर्भ में योजनाओं के व्यावहारिक प्रभाव का मूल्यांकन आवश्यक है।

तृतीय शोध प्रश्न उच्च शिक्षा के मार्ग में आने वाली चुनौतियों से जुड़ा है। क्या आर्थिक अभाव, सामाजिक भेदभाव, भाषा की समस्या, डिजिटल संसाधनों की कमी तथा पारिवारिक पृष्ठभूमि जैसे कारक आज भी इन वर्गों के छात्रों की उच्च शिक्षा में निरंतरता को प्रभावित कर रहे हैं? यह प्रश्न उच्च ड्रॉपआउट दर और शैक्षिक असमानता के कारणों को समझने में सहायक होगा (सेन, 2010)।

इन शोध प्रश्नों के आधार पर कुछ परिकल्पनाएँ भी निर्धारित की गई हैं। प्रथम परिकल्पना यह है कि छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों की उच्च शिक्षा में भागीदारी में वृद्धि हुई है, किंतु यह वृद्धि अपेक्षाकृत असमान रही है। द्वितीय परिकल्पना यह मानती है कि सरकारी योजनाएँ उच्च शिक्षा के विकास में सहायक तो हैं, परंतु उनकी प्रभावशीलता सीमित है। तृतीय परिकल्पना के अनुसार सामाजिक-आर्थिक बाधाएँ आज भी उच्च शिक्षा के विकास में प्रमुख अवरोध बनी हुई हैं।

ये शोध प्रश्न और परिकल्पनाएँ संपूर्ण अध्ययन को एक स्पष्ट संरचना प्रदान करती हैं और आगे के विश्लेषण के लिए मार्गदर्शक की भूमिका निभाती हैं।

शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन में छत्तीसगढ़ राज्य में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए उच्च शिक्षा के विकास की स्थिति को समझने हेतु उपयुक्त एवं वैज्ञानिक शोध पद्धति का चयन किया गया है। शोध पद्धति किसी भी अध्ययन की विश्वसनीयता और प्रामाणिकता का आधार होती है, इसलिए इस अध्ययन में समस्या की प्रकृति के अनुरूप वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। इस पद्धति के माध्यम से उपलब्ध तथ्यों का विवरण प्रस्तुत करने के साथ-साथ उनके कारणों और प्रभावों का भी विश्लेषण किया गया है (कुमार, 2016)।

अध्ययन की प्रकृति मुख्यतः वर्णनात्मक है, क्योंकि इसमें छत्तीसगढ़ में उच्च शिक्षा की वर्तमान स्थिति, संस्थागत ढाँचे, नामांकन प्रवृत्तियों तथा शैक्षिक योजनाओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है। साथ ही, विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए यह समझने का प्रयास किया गया है कि इन प्रयासों का अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों पर वास्तविक प्रभाव क्या रहा है। इस प्रकार दोनों पद्धतियों का समन्वय अध्ययन को अधिक व्यापक बनाता है।

इस शोध में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आँकड़ों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक आँकड़े सीमित स्तर पर साक्षात्कार एवं अवलोकन विधि के माध्यम से एकत्र किए गए हैं, जिससे छात्रों एवं शिक्षकों के अनुभवों को समझा जा सके। द्वितीयक आँकड़ों के अंतर्गत जनगणना रिपोर्ट, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की वार्षिक रिपोर्टें, छत्तीसगढ़ शासन के शिक्षा विभाग के प्रकाशन, योजना आयोग तथा विभिन्न शोध पत्रों और पुस्तकों का सहारा लिया गया है (जनगणना, 2011; यूजीसी, 2019)।

अध्ययन क्षेत्र के रूप में छत्तीसगढ़ राज्य का चयन किया गया है। नमूना चयन में उद्देश्यपूर्ण एवं सुविधा आधारित नमूना पद्धति का प्रयोग किया गया है, ताकि विभिन्न सामाजिक वर्गों, लिंग और भौगोलिक क्षेत्रों का यथासंभव प्रतिनिधित्व हो सके। अध्ययन में विश्वविद्यालयों, शासकीय एवं अशासकीय महाविद्यालयों को शामिल किया गया है, जिससे उच्च शिक्षा की व्यापक तस्वीर सामने आ सके।

एकत्रित आँकड़ों के विश्लेषण के लिए सारणीकरण, प्रतिशत विश्लेषण तथा तुलनात्मक विधि का प्रयोग किया गया है। गुणात्मक आँकड़ों की व्याख्या वर्णनात्मक रूप में की गई है। इस शोध पद्धति के माध्यम से प्राप्त निष्कर्ष छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए उच्च शिक्षा के विकास को समझने में सहायक सिद्ध होंगे और आगे की नीतिगत चर्चाओं के लिए एक ठोस आधार प्रदान करेंगे।

छत्तीसगढ़ में उच्च शिक्षा की वर्तमान स्थिति

छत्तीसगढ़ में उच्च शिक्षा की वर्तमान स्थिति राज्य की सामाजिक संरचना, भौगोलिक विशेषताओं और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से गहराई से जुड़ी हुई है। राज्य गठन के पश्चात उच्च शिक्षा के विस्तार की दिशा में उल्लेखनीय प्रयास किए गए हैं, जिनका उद्देश्य अधिक से अधिक छात्रों को उच्च शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ना रहा है। वर्तमान में छत्तीसगढ़ में अनेक राज्य विश्वविद्यालय, केंद्रीय विश्वविद्यालय, तकनीकी संस्थान, शासकीय एवं अशासकीय महाविद्यालय कार्यरत हैं, जो विभिन्न विषयों में शिक्षा प्रदान कर रहे हैं (शिक्षा विभाग, छत्तीसगढ़ शासन, 2020)।

राज्य में विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों का वितरण क्षेत्रीय दृष्टि से असमान है। शहरी क्षेत्रों में उच्च शिक्षा संस्थानों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है, जबकि ग्रामीण एवं आदिवासी बहुल क्षेत्रों में उच्च शिक्षा की पहुँच सीमित बनी हुई है। इसका सीधा प्रभाव अनुसूचित जनजाति एवं अन्य वंचित वर्गों की उच्च शिक्षा में सहभागिता पर पड़ता है, क्योंकि इन वर्गों की अधिकांश जनसंख्या दूरस्थ एवं ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है (जनगणना, 2011)। हालाँकि, हाल के वर्षों में नए महाविद्यालयों की स्थापना से इस असंतुलन को कम करने का प्रयास किया गया है।

नामांकन की दृष्टि से देखें तो अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के छात्रों की संख्या में धीरे-धीरे वृद्धि हुई है। स्नातक स्तर पर इन वर्गों की भागीदारी अपेक्षाकृत अधिक दिखाई देती है, जबकि स्नातकोत्तर एवं शोध स्तर पर उनकी संख्या में कमी देखी जाती है। यह स्थिति उच्च शिक्षा में निरंतरता और गुणवत्ता से जुड़े प्रश्नों को उजागर करती है (यूजीसी, 2019)। विशेष रूप से अनुसूचित जनजाति के छात्रों में उच्च ड्रॉपआउट दर एक गंभीर समस्या बनी हुई है।

लैंगिक दृष्टिकोण से भी उच्च शिक्षा की स्थिति मिश्रित है। अनुसूचित जाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों में छात्राओं की भागीदारी में वृद्धि हुई है, परंतु आदिवासी छात्राओं की उच्च शिक्षा में सहभागिता अब भी सीमित है। सामाजिक परंपराएँ, आर्थिक कठिनाइयाँ और सुरक्षा संबंधी चिंताएँ इसके प्रमुख कारण माने जाते हैं (शर्मा, 2014)।

कुल मिलाकर छत्तीसगढ़ में उच्च शिक्षा का ढाँचा विस्तार की अवस्था में है, परंतु समानता और गुणवत्ता के स्तर पर अभी भी कई चुनौतियाँ मौजूद हैं। वर्तमान स्थिति का यह विश्लेषण आगे के अध्यायों में योजनाओं, समस्याओं और नीतिगत हस्तक्षेपों की चर्चा के लिए आधार प्रदान करता है।

अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए शैक्षिक योजनाएँ

छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए उच्च शिक्षा के विकास हेतु केंद्र एवं राज्य सरकार द्वारा अनेक शैक्षिक योजनाएँ एवं विशेष प्रावधान लागू किए गए हैं। इन योजनाओं का मुख्य उद्देश्य ऐतिहासिक रूप से वंचित वर्गों को उच्च शिक्षा तक समान पहुँच प्रदान करना और सामाजिक-आर्थिक असमानताओं को कम करना है। भारतीय संविधान में निहित सामाजिक न्याय की भावना के अनुरूप इन योजनाओं को लागू किया गया है (भारत का संविधान, अनुच्छेद 15 एवं 46)।

इन वर्गों के लिए सबसे महत्वपूर्ण व्यवस्था आरक्षण नीति है। उच्च शिक्षा संस्थानों में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए निर्धारित आरक्षण ने इन समुदायों की भागीदारी बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आरक्षण के माध्यम से न केवल प्रवेश में अवसर मिले हैं, बल्कि शिक्षण एवं प्रशासनिक सेवाओं में भी प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हुआ है (कुमार, 2016)। हालांकि, आरक्षण का लाभ प्राप्त करने में जागरूकता की कमी और प्रक्रियात्मक जटिलताएँ कई बार बाधा बनती हैं।

छात्रवृत्ति योजनाएँ इन वर्गों के छात्रों के लिए एक और प्रमुख सहारा हैं। पोस्ट-मैट्रिक छात्रवृत्ति, प्री-मैट्रिक छात्रवृत्ति, तथा उच्च शिक्षा के लिए विशेष वित्तीय सहायता योजनाओं के माध्यम से आर्थिक बाधाओं को कम करने का प्रयास किया गया है। अनुसूचित जनजाति एवं अनुसूचित जाति के छात्रों के लिए निःशुल्क शिक्षा एवं छात्रावास सुविधा जैसी योजनाएँ भी लागू की गई हैं, जिससे दूरस्थ क्षेत्रों के छात्र उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकें (शिक्षा विभाग, छत्तीसगढ़ शासन, 2020)।

अनुसूचित जनजाति के छात्रों के लिए एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय (EMRS) योजना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यद्यपि यह योजना मुख्यतः माध्यमिक स्तर तक केंद्रित है, फिर भी इसका अप्रत्यक्ष प्रभाव उच्च शिक्षा में आदिवासी छात्रों की भागीदारी बढ़ाने में देखा गया है। इसके अतिरिक्त, तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु कौशल विकास कार्यक्रम भी संचालित किए जा रहे हैं (योजना आयोग, 2013)।

इन सभी योजनाओं के बावजूद कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं। योजनाओं का लाभ सभी पात्र छात्रों तक नहीं पहुँच पाता, समय पर छात्रवृत्ति वितरण में देरी होती है, तथा सूचना एवं मार्गदर्शन की कमी देखी जाती है (यूजीसी, 2019)। इसलिए यह आवश्यक है कि शैक्षिक योजनाओं के क्रियान्वयन को अधिक प्रभावी और पारदर्शी बनाया जाए।

समग्र रूप से, छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए लागू शैक्षिक योजनाएँ उच्च शिक्षा के विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं, परंतु इनके पूर्ण लाभ के लिए निरंतर मूल्यांकन और सुधार की आवश्यकता बनी हुई है।

प्रमुख समस्याएँ एवं चुनौतियाँ

छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए उच्च शिक्षा के विकास के बावजूद अनेक समस्याएँ और चुनौतियाँ अब भी बनी हुई हैं। ये चुनौतियाँ केवल शैक्षिक व्यवस्था तक सीमित नहीं हैं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारकों से भी गहराई से जुड़ी हुई हैं। इन्हीं कारणों से उच्च शिक्षा में इन वर्गों की सहभागिता और निरंतरता अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुँच पाई है।

सबसे प्रमुख समस्या आर्थिक अभाव की है। इन वर्गों के अधिकांश परिवार निम्न आय वर्ग से संबंधित हैं, जहाँ शिक्षा पर होने वाला व्यय एक बड़ा बोझ बन जाता है। छात्रवृत्ति योजनाएँ उपलब्ध होने के बावजूद उनकी अपर्याप्त राशि, वितरण में देरी तथा जटिल प्रक्रियाएँ छात्रों की पढ़ाई को प्रभावित करती हैं (कुमार, 2016)। कई बार छात्रों को जीविकोपार्जन हेतु पढ़ाई के साथ काम करना पड़ता है, जिससे उनकी शैक्षणिक प्रगति बाधित होती है।

दूसरी महत्वपूर्ण चुनौती उच्च ड्रॉपआउट दर है, विशेष रूप से अनुसूचित जनजाति के छात्रों में। विद्यालय स्तर पर शैक्षिक आधार कमजोर होने के कारण उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों के साथ तालमेल बिठाना कठिन हो जाता है। भाषा की समस्या भी एक गंभीर मुद्दा है, क्योंकि अनेक आदिवासी छात्र मातृभाषा के अलावा अन्य भाषाओं में शिक्षा ग्रहण करने में कठिनाई महसूस करते हैं (शर्मा, 2014)। यह समस्या उनकी समझ, आत्मविश्वास और परीक्षा प्रदर्शन पर नकारात्मक प्रभाव डालती है।

सामाजिक भेदभाव और हीनभावना भी उच्च शिक्षा के वातावरण में इन वर्गों के छात्रों को प्रभावित करती है। कुछ मामलों में भेदभावपूर्ण व्यवहार, सामाजिक दूरी और सहयोग की कमी छात्रों को मानसिक रूप से कमजोर बनाती है, जिससे उनकी निरंतरता प्रभावित होती है (सेन, 2010)। इसके अतिरिक्त, मार्गदर्शन एवं परामर्श सुविधाओं का अभाव भी एक बड़ी चुनौती है, जिसके कारण छात्र विषय चयन, करियर योजना और रोजगार के अवसरों से अनभिज्ञ रह जाते हैं।

डिजिटल विभाजन वर्तमान समय की एक नई लेकिन गंभीर समस्या के रूप में उभरा है। ऑनलाइन शिक्षा और डिजिटल संसाधनों की बढ़ती भूमिका के बीच ग्रामीण एवं दूरस्थ क्षेत्रों के छात्रों के पास इंटरनेट, उपकरण और तकनीकी दक्षता की कमी देखी जाती है (यूजीसी, 2019)। इससे उच्च शिक्षा में समान अवसर की अवधारणा प्रभावित होती है।

इन सभी समस्याओं के समाधान के लिए केवल नीतिगत प्रावधान पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि जमीनी स्तर पर प्रभावी क्रियान्वयन, संवेदनशील शैक्षिक वातावरण और सतत समर्थन प्रणाली की आवश्यकता है। इन चुनौतियों की पहचान और समझ ही उच्च शिक्षा के समावेशी विकास की दिशा में पहला कदम है।

विश्लेषण एवं चर्चा

छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए उच्च शिक्षा के विकास से संबंधित तथ्यों और आँकड़ों का विश्लेषण यह दर्शाता है कि राज्य में इस दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हुई है, किंतु यह प्रगति समान और संतोषजनक नहीं कही जा सकती। विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों की संख्या में वृद्धि, आरक्षण व्यवस्था और छात्रवृत्ति योजनाओं के परिणामस्वरूप उच्च शिक्षा में नामांकन दर में बढ़ोतरी अवश्य हुई है, परंतु यह वृद्धि सामाजिक वर्गों और भौगोलिक क्षेत्रों के अनुसार असमान रही है (यूजीसी, 2019)।

विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति और अन्य पिछड़े वर्गों की तुलना में अनुसूचित जनजाति के छात्रों की भागीदारी अपेक्षाकृत कम है, विशेष रूप से स्नातकोत्तर एवं शोध स्तर पर। इसका प्रमुख कारण प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा में कमजोर शैक्षिक आधार, आर्थिक कठिनाइयाँ तथा भौगोलिक अलगाव माना जा सकता है (शर्मा, 2014)। यह स्थिति दर्शाती है कि उच्च शिक्षा का विकास तभी प्रभावी होगा जब शिक्षा की पूरी श्रृंखला पर समान रूप से ध्यान दिया जाए।

राज्य एवं केंद्र सरकार की योजनाओं की प्रभावशीलता पर विचार करने पर मिश्रित परिणाम सामने आते हैं। आरक्षण नीति और छात्रवृत्ति योजनाओं ने प्रवेश के अवसर बढ़ाए हैं, परंतु योजनाओं के क्रियान्वयन में प्रशासनिक जटिलताएँ और जागरूकता की कमी इनके प्रभाव को सीमित कर देती हैं (कुमार, 2016)। कई मामलों में पात्र छात्रों तक समय पर सहायता नहीं पहुँच पाती, जिससे ड्रॉपआउट की समस्या बनी रहती है।

लैंगिक विश्लेषण से यह पता चलता है कि अनुसूचित जाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों की छात्राओं की भागीदारी में सुधार हुआ है, परंतु अनुसूचित जनजाति की छात्राएँ अब भी पीछे हैं। सामाजिक परंपराएँ, पारिवारिक जिम्मेदारियाँ और सुरक्षा संबंधी चिंताएँ इसके प्रमुख कारण हैं (सेन, 2010)। यह स्थिति उच्च शिक्षा में लैंगिक और सामाजिक असमानता के अंतर्संबंध को उजागर करती है।

समग्र चर्चा से यह निष्कर्ष निकलता है कि छत्तीसगढ़ में उच्च शिक्षा का ढाँचागत विस्तार तो हुआ है, परंतु गुणवत्ता, निरंतरता और सामाजिक समावेशन पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया गया है। यदि उच्च शिक्षा को वास्तव में सशक्तिकरण का माध्यम बनाना है, तो नीतियों के साथ-साथ शिक्षण वातावरण, परामर्श व्यवस्था और रोजगार से जुड़ाव पर भी समान रूप से कार्य करना होगा। यही विश्लेषण इस अध्ययन को निष्कर्ष और सुझाव की ओर ले जाता है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए उच्च शिक्षा के विकास की दिशा में राज्य एवं केंद्र सरकार द्वारा निरंतर प्रयास किए गए हैं। राज्य गठन के पश्चात विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों एवं तकनीकी संस्थानों की स्थापना, आरक्षण नीति का क्रियान्वयन तथा छात्रवृत्ति और छात्रावास जैसी सुविधाओं के विस्तार से उच्च शिक्षा में इन वर्गों की सहभागिता में वृद्धि हुई है। यह स्थिति सामाजिक न्याय और समान अवसर की दिशा में एक सकारात्मक संकेत है।

अध्ययन के निष्कर्ष यह भी दर्शाते हैं कि यद्यपि नामांकन दर में सुधार हुआ है, फिर भी उच्च शिक्षा की निरंतरता और गुणवत्ता से जुड़े कई प्रश्न अब भी बने हुए हैं। विशेष रूप से अनुसूचित जनजाति के छात्रों में उच्च ड्रॉपआउट दर, भाषा संबंधी कठिनाइयाँ, कमजोर शैक्षिक आधार और आर्थिक अभाव प्रमुख समस्याएँ हैं। इसके अतिरिक्त, स्नातकोत्तर और शोध स्तर पर इन वर्गों की भागीदारी सीमित रहना उच्च शिक्षा के अधूरे विकास को दर्शाता है (यूजीसी, 2019)।

निष्कर्षों के आधार पर कुछ महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं। सर्वप्रथम, छात्रवृत्ति योजनाओं को समयबद्ध, पारदर्शी और पर्याप्त बनाया जाना आवश्यक है, ताकि आर्थिक कारणों से कोई भी छात्र उच्च शिक्षा से वंचित न रहे। द्वितीय, आदिवासी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा संस्थानों की स्थापना के साथ-साथ उनकी गुणवत्ता पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। स्थानीय भाषा आधारित सहायक शिक्षण सामग्री और ब्रिज कोर्स जैसे कार्यक्रम भाषा संबंधी बाधाओं को कम करने में सहायक हो सकते हैं (शर्मा, 2014)।

तृतीय, उच्च शिक्षा संस्थानों में परामर्श एवं मार्गदर्शन केंद्रों की स्थापना की जानी चाहिए, जिससे छात्रों को शैक्षिक, मानसिक और करियर संबंधी सहायता मिल सके। चतुर्थ, डिजिटल विभाजन को कम करने हेतु ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्रों में इंटरनेट सुविधा, डिजिटल उपकरण और तकनीकी प्रशिक्षण उपलब्ध कराना आवश्यक है। इसके साथ ही रोजगारोन्मुख और कौशल आधारित पाठ्यक्रमों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, ताकि उच्च शिक्षा का सीधा लाभ आजीविका से जुड़ सके (सेन, 2010)।

अंततः यह कहा जा सकता है कि छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए उच्च शिक्षा का वास्तविक विकास तभी संभव है, जब नीतिगत प्रयासों के साथ-साथ जमीनी स्तर पर संवेदनशील, समावेशी और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा व्यवस्था विकसित की जाए। यही सामाजिक सशक्तिकरण और सतत विकास का मार्ग प्रशस्त करेगा।

संदर्भ सूची

1. भारत का संविधान (संशोधित संस्करण)। भारत सरकार, विधि एवं न्याय मंत्रालय, नई दिल्ली। (अनुच्छेद 15, 16, 46), पृष्ठ 32–35।
2. जनगणना भारत 2011। भारत सरकार, गृह मंत्रालय, नई दिल्ली।
   छत्तीसगढ़ राज्य से संबंधित आँकड़े, पृष्ठ 78–85।
3. कुमार, अरविंद (2016)। भारत में उच्च शिक्षा और सामाजिक न्याय। राज प्रकाशन, नई दिल्ली। पृष्ठ 112–130।
4. शर्मा, रमेश चंद्र (2014)। अनुसूचित जाति एवं जनजाति की शैक्षिक समस्याएँ। अटल पब्लिकेशन, भोपाल। पृष्ठ 56–72।
5. सेन, अमर्त्य (2010)। विकास और स्वतंत्रता (हिंदी अनुवाद)।
   ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली। पृष्ठ 145–160।
6. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) (2019)। उच्च शिक्षा में नामांकन एवं सामाजिक वर्ग। यूजीसी वार्षिक रिपोर्ट, नई दिल्ली। पृष्ठ 39–52।
7. शिक्षा विभाग, छत्तीसगढ़ शासन (2020)। छत्तीसगढ़ में उच्च शिक्षा की स्थितिः एक प्रतिवेदन। रायपुर। पृष्ठ 21–40।
8. योजना आयोग, भारत सरकार (2013)। समावेशी विकास और शिक्षा। नई दिल्ली। पृष्ठ 88–102।

तुलसीदास की समन्वय चेतना

लवलेश कुमार

शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

विश्व का इतिहास इस बात का साक्षी है कि महात्माओं या महापुरुषों का आविर्भात बहुधा संक्रमण काल में होता है, जब मानवता को सनिर्दिष्ट पथ नहीं मिलता, उसके, सम्मुख कोई आदर्श नहीं रह जाता। महाकवि तुलसीदास का उदय भारतीय साहित्येतिहास के ऐसे ही काल-खंड में हुआ। जब देश अपने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, आध्यामिक और नैतिक, प्राय: सभी दृष्टियों से अद्य: पतन की ओर उन्मुख था। तुलसी युगद्रष्टा कवि के रूप में उभरे। वे अपने युग जीवन को दिशा देना चाहते थे। संपूर्ण लोक चेतना का समन्वय ही तुलसीदास का ध्येय था। जीवन की परिस्थितियों पर स्थापित विसंगतियों को समताभव से आलोकित कर तुलसी जन मानस में भारतीय परंपरा की उस जीनंत कथा को आख्यायित करना चाहते थे जिसका बीज वैश्कि, और उपनिषकाल में ही बोया जा चुका था। तुलसी की इस विराट दृष्टि को ध्यान में रखते हुए आलोचक आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लोक नायक की सजा देते हुए लिखा कि "तुलसीदास को जो अभूतपूर्व सफलता मिली उसका कारण यह था कि वे समन्वय की विशाल बुद्धि लेकर उत्पन्न हुए थे। भारतवर्ष का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय करने का अपार धैर्य लेकर सामने आया हो।"[1]

समन्वय की उसी भावना से प्रेरित होवर ही तुलसी लोक-परलोक, विविध उपासना पद्धतियों, राजनैतिक सामाजिक स्थितियों, ज्ञान- भक्ति की दृष्टियों और जीवन की मर्यादित आदर्शावस्था के प्रति सचेत है। गोस्वामी ने उनके बीच के परस्पर विवादों को मिटाते हुए उसका समन्वय करके संपूर्ण लोक जीनत को गतिशीलता प्रदान की। एकेश्वरवाद का कट्टर स्वरूप, उपासना का आशिकी रंग-ढंग, ज्ञानविज्ञान की निंदा विद्वानों का उपहास, वेदात के दो चार प्रसिद्ध शब्दो या अनाधिकार आदि सब कुछ था, पर लोक को व्यवस्थित करने वाली यह मर्याद भी थी, जो भारतीय आर्य धर्म का प्रधान लक्षण थी। आचार्य शुक्ल जी के शब्दों में "भक्ति का यह विकृत रूप जिस समय उत्तर भारत में अपना स्थान जमा रहा था, उसी समय भक्तवर गोस्वामी जी का अवतार हुआ, जिन्होंने वर्णाधर्म, कुलाचार, वेदाविहित कर्म, शास्त्रप्रतिपादन ज्ञान इत्यादि सबके साथ भक्ति का पुन: सामंजस्य स्थापित कर आर्य धर्म को छिन्न-भिन्न होने से बचा लिया।"[2]

महाकवि तुलसीदास ने अपने काव्य द्वारा यही कार्य किया। उनमें कवि की कारयित्री प्रतिभा, भक्त के निष्काम हृदय द्वारा और समाज सुधारक की लोकमंगल- भावता का अपूर्व समन्वय था, इसीलिए उन्होंने कवित्त्व धर्म और भक्ति का निर्माण किया। उनकी समन्वय साधना बहुमुखी थी, उनमें केवल लोक और शास्त्र का ही समन्वय नहीं है वरन द्वैत और अद्वैत, निर्माण- समुण, विद्या अविद्या, माया- प्रकृति, सत्यता- असत्यता, ईश्वर से जीत का भेद-अभेद जीव का भाग्य और पुरुषार्थ, कर्म-ज्ञान-भक्ति शैव- शाक्त- वैष्णव, वर्षाश्रमधर्म और मानवतावाद, बाह्मण और शुद्र व्यक्ति और समाज व्यक्ति और परिवार, साधुमत और लोकमत, वेदशास्त्र और व्यवहार भोग और त्याग, निर्गुण एवं सगुण आसक्त और अनासक्त इत्यादि का समन्वय तुलसी काव्य में मिलता है। जिसका सबसे सुंदर रूप रामचरितमानस में है जहाँ देने विपरित रेखाओं को मिलाने का अद्‌ध्भुत प्रयास है।

मध्यकालीन समाज जिस नैतिक और आध्यात्मिक बल का ह्रास देख रहा था। उसमें जीवनदायी प्रेरणायें अपनी अंतिम सांसे गिन रही थी। ज्ञानी अपने ज्ञान योग की चर्चा में रत भक्तों की खिल्ली उड़ाते थे और भक्त ज्ञानियों की सीमितता पर व्यंग करते थे। सगुण ईश्वर को रूपाकार देखकर अपनी श्रेष्ठता का बखान करते थे तो निर्गुण ब्रह्मा को अगोचर, अनाभिव्यक्त मानवर अपना राग अलापा करते थे। निकृष्टता की भेदक बातों में उलझकर समाज अधोगामी होता जा रहा था। तुलसी के भक्त हदय ने इस पद्धति में सेध मारकर समाज की समन्वय का पाठ सिखाया और इसे विकास की यात्रा पर चलायमान किया। भक्ति पद्धति में तुलसी की समन्वय भावना इतनी वैज्ञानिक सिद्ध हुई कि अपनी-अपनी आस्थाओं के प्रति सचेत ज्ञानी समुदान आपसी वैमनस्य को भुलाकर आगे बढ़े। एक और सगुण और निर्गुण में समन्वय की भावना स्थापित करके तुलसी ने ब्रहा को निर्गुण, निराकार, अनित्य अनाभिव्यक भादि स्वीकार किया तो वहीं भक्त हदय की कातर- पुकार पर परमप्रिय, दयालु परमेश्वर का स्नाक रूप को भी सत्य ही माना। उनकी घोषणा है कि मूलत: सगुण और निर्गुण में कोई तात्विक भेद नहीं है-

"सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।"[3]

निर्गुण और सगुण का विवाद को क्षेत्रों में था। दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में और भक्ति के क्षेत्र में। शंकराचार्य के निर्गुण ब्रह्मवाद के विरुद्ध रामानुज और बल्लभ ने बहुत बल देकर ब्रह्म को सगुण बताया था। दोनों का समन्वय करते हुए तुलसी ने राम को बारम्बार निर्गुण- सगुण कहा है। तुलसी के सगुण साकार राम के रूप और गुण का अनुपम समन्वय है। इसी प्रकार तुलसी ने ज्ञानियों के ज्ञान और भक्तों की भक्ति में विभेद न मानकर समन्वय स्थापित किया है -

"भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा ।
नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर। सावधान सोउ सुनु बिहंगबर।।"[4]

तुलसी से पूर्व अन्य कवियों ने रामकाव्य में प्रवृत्त होकर जहाँ राम को दशरथ पुत्र के रूप में चित्रित किया है, वहीं राम भक्त हृदय तुलसीदास ने राम को पुरुषोत्तम कहकर देवत्व की उपाधि से अलंकृत किया है-

"बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना ।।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी ।।"[5]

तुलसी के राम अवतारी भी है, अरूप भी है, साकार भी है निराकार भी है, सगुण भी है निर्गुण भी है और नर भी है और नारायण भी। इसप्रकार तुलसी के राम एक ओर जीव और ब्रह्म का समन्वय करते है तो दूसरी और रामानंद शिष्य परंपरा में दीक्षित होकर भी न केवल राम भक्ति उपासना, अर्चना आदि का उल्लेख भी दिया है- "लोक के लिए रामकथा का गान करने वाले कवि के लिए ऐसा करना स्वाभाविक ही था। रामकथा के विषय का संबंध वेद से तथा उसके प्रणयत का उद्घ्देश्य लोक से जुड़ा है। इसीलिए यह समन्वय आवश्यक था।"[6]

जीवन को संपूर्णता में देखने वाले कवि तुलसीदास के अंदर ये समन्वय-भावना आखिर कहाँ से आयी, अगर इस बात की गहरी छानबीन की जाए तो हमें पता लगेगा दरअसल तुलसीदास स्वयं भिन्न- भिन्न प्रकार के सामाजिक स्तरों में रह चुके थे। उनका जन्म भले ही उच्च- कुल में हुआ परंतु दरिद्र होने के कारण उन्हें दर- दर भटकता पड़ा। गृहस्थ जीवन भी आसक्तियों से भर हुआ था। वे अशिक्षित और संस्कृत-विहिन जनता में रहते के साथ-साथ काशी के दिग्गज विद्वानों और तपोधन संयासियों के संसर्ग में भी रह चुके थे, उन्होंने नाना पुराणों और निगमागम का अध्ययन किया था और साथ ही लोकप्रिय साहित्य और साधना मार्ग की नब्ज पकड़ने की कोशिश की थी। समन्वय की विकास-यात्रा का मार्ग यहीं चीजें थी जिसके कारण विरोधी तत्त्वों के बीच सामंजस्य का सूत्र खोज निकालने की अपार क्षमता उन्हें प्राप्त थी। तुलसी मतवादी नहीं थे और मतवादों से अपरिचित भी नहीं थे। तुलसी ने समस्त मतों का विश्लेषना अपनी सुविधानुसार कर दो वर्गों में विभक्त किया है- "लोकमत और वेदमत और सर्वत्र उन्होंने अपनी मान्यताओं के निर्धारण में प्रामाणिकता का सबसे सबल तर्क दिया है कि उनके निर्णय लोकमत और वेदमत के निचोड़ है। वेदों के प्रति भारतीय जनता की इस घनिष्ठ आस्था को तुलसी ने भली-भाँति परखा था। इस दिशा में गौतम बुद्ध जैसे विदित अवतार को भी निंदित होते हुए उन्होंने देखा था। वेदज्ञ ब्राह्मण जनता को भटकाने में उतने ही जिम्मेदार थे जितने 'श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ छोड़कर अनेक पंथ' के कल्पक।"[7]

तुलसी ने मध्यम मार्ग अपनाया। वेदों की महिमा के प्रति अपार श्रद्धा की अभिव्यक्ति करते हुए भी वेदवादी पंडित परंपरा की कुछ मान्यताओं का जो सहज धर्म साधना के मार्ग में बाधक हो रही थी खुलकर विरोध भी किया। तुलसी ने देखा कि जनता वेदों के अक्षर ज्ञान से अपरिचित है, साथ ही वेदवादियों से असंतुष्ट होते हुए भी वेदों के प्रति उनकी आस्था अटूट बनी हुई है। ऐसी परिस्थिति में तुलसी ने वेदों के सारभूत परम तत्त्व को ग्रहण करके, वेद वादियों के प्रति गहरे व्यंग्य करते हुए भी जनकल्याण का मार्ग प्रशस्त किया और पग-पग पर वैद और प्रमाण की इतनी दुहाई देते रहे कि जनता को उनकी सारी विचार पद्धघति वेदसम्मत ही प्रतीत हो। तुलसी का वेदमत भी विशिष्ट अर्थ रखता है। अनेक शास्त्रों में व्याप्त ज्ञान का जितना भी सूत्र है, वह सन तुलसी के वेदमत की परिधि में आ जाता है, और इसी रूप में वह लोकगत का पूरक बनसा है- "तुलसी ने अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के द्वारा समाज के सारे संबंधों को जोड़ा उत्तर-दक्षिण की धूरी को एकता के सूत्र में बाँधा है और बहुजन हिताय की अपेक्षा सर्वजन हिताय की कामना की है।"[8] इस प्रकार हम पाते हैं कि तुलसी काव्य में लोक और वेद का समन्वय जीवन को आदर्शमय बनाकर मानव को सुखी करने के उद्घ्देश्य से हुआ है।

तुलसीदास ने समाज में व्याप्त जीवन और ईश्वर के चिंतन को रामचरितमानस में अपने ढंग से प्रतिबिंबित किया है। अधिकांश भारतीय विचारकों के मत में भौतिक शरीर को चेतना प्रदान करने वाला अंश जीव है। साधारण भाषा में जीव का अर्थ जीवित प्राणियों से समझा जाता है। तुलसीदास के यहाँ भी इन्हीं दो अर्थों में इसका प्रयोग हुआ है। तुलसी का जीव-विषयक सिद्धांत वैष्णव- वेदांतियों के मतों का समन्वय है। रामानुजाचार्य और बल्लभाचार्य के अनुसार जीव ईश्वर का अंश, नित्य, ज्ञाता, कर्ता, भोक्ता आदि है। डॉ. उदघ्यघ्भानु सिंह के अनुसार- "तुलसी ने भेदघ्भाव और अभेदघ्घ्भाव दोनों का समन्वय किया है, स्वरूप की दृष्टि से जीव और ईश्वर में अभेद है। वह ईश्वर का अंश है अत: ईश्वर की भांति ही सत्य, चेतन एवं आनंदमय है। ऐश्वर्य आदि की दृष्टि से दोनों में भेद है। जीव ईश्वर का अंश मात्र है। वह माया का स्वामी नहीं है, मुक्त होने पर वह ईश्वर का स्वस्य तो प्राप्त कर लेता है, किंतु ऐश्वर्य नहीं।"[9]

तुलसी ने माया को कोई अकल्पनीय वस्तु नहीं बताया, बलि, जो कुछ संसार में दिखाई देता है, इंद्रियों द्वारा अनुभूत है, वही माया है। इनके दो भेद किए विद्या और अविद्या। एक वह जो जीव को बुरे पथ पर ले जाती है, दूसरी वह जो अच्छे पथ की और अग्रसर करती है, मानव समाज का उत्थान करती है। माया और ईश्वर स्वयं नहीं है। इसीलिए तुलसीदास जीव को सचराचर कहते है। जीव और ईश्वर में तुलसीदास एक अंतर मानते है कि- "जीव परवस है, ईश्वर स्ववश है। जीव अनेक है, ईश्वर एक है। ये अंतर भी तुलसीदास जी ने जीवन और जीवन में प्रचलित दर्शन से लिया है। जीव और ईश्वर एक है, इस दार्शनिक भावना की श्रुतियों की और उनका स्पष्ट संकेत है। जीव और ईश्वर को समान बताने वाले दार्शनिक कहते हैं कि जीव और ईश्वर में अंतर माया के कारण है, जो मिथ्या है।"[10]

तुलसी का दर्शन संबंधी समन्वयवाद बहुत ही विवाद का विषय रहा है। तुलसी के काल में वेदों का प्रभुत्व था, उसमें भी द्वैत व अद्वैत में पर्याप्त मतभेद था। तुलसी शंकर के ब्रह्मवाद एवं रामानुज के विशिष्टा घ्द्वैतवास से मुख्यतया प्रभावित होने के साथ-साथ अन्य मतों से भी निचारों को ग्रहण करते है। द्वैत एवं अद्वैत के टकराहट में हमेशा तुलसीदास ने समन्वय का मार्ग अपनाया है।

द्वैतवाद के अनुसार ग्रह्म का स्वरूप निर्गुण निर्विशेष और निर्लक्षण है वहीं वैष्णव आचार्यों के अनुसार ब्रह्म स्वरूपगत सगुण है इन दोनो विरोधी धाराओं के बीच समन्वय की धारा को लाना तुलसी के ही बस की बात थी।

भक्ति-ज्ञान-कर्म का समन्नय: जीवन की संपूर्णता इन तीनों धाराओं के समन्वय में है। इसीलिए साधना पद्धतियों में अक्सर इन तीनों के महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। तुलसी ने भी इन तीनों के समन्वय पर बल दिया है।

सांख्य योग और शांकर वेदांत में ज्ञान की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है तो वैष्णव आचार्यों ने भक्ति को श्रेष्ठ माना है। तुलसी की भक्ति चूंकि मूलत: भावनाओं पर आधारित सगुण भक्ति है किंतु वे केवल भावना पर आधारित भक्ति को काम्य नहीं मानते इसलिए वे भक्ति में ज्ञान का आग्रह करते है और दोनों में गहरा आंतरिक संबंध खोजते है, एक तरफ ज्ञान को विशेष प्रिय बताते है तो दूसरी और भक्ति और ज्ञान में कोई भेद नहीं मानते।

शैव व वैष्णव का समन्वय: तुलसी मुलत: राम के भक्त थे किंतु अपनी समन्वय साधना के अंतर्गत अन्य दवों की प्रार्थना करना भी नहीं भूलते थे। अगर हम गौर से देखें तो उन्होने अपने ग्रंथों की शुरुआत प्राय: गणेश वंदना से की साथ ही अपने समय के एक बड़े विवाद शैव और वैष्णव के बीच के मतभेद को सुलझाने के लिए दोनों को एक दूसरे का भक्त बताया है। उदाहरण के लिए तुलसी के राम कहते हैं-

"सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा ।।"[1]

इन पंक्तियों के माध्यम से तुलसी ने शैवों और वैष्णवों के बीच हरित प्रेम की सरिता बहा दी। शैवों और वैष्णवों के बीच कटुघ्ता जब पराकाष्ठा पर थी तब शक्ति मतावलंबियों और वैष्णव मतों के बीच भी कलह व्याप्त था। वैष्णव जहाँ राम की श्रेष्ठता स्वीकारते थे वहीं शाक्तों को प्रशक्ति की उपासना आकृष्ठ करती थी। तुलसी ने शैव और वैष्णव संप्रदायों की भांति ही इन दोनों में ही समन्वय का सफल प्रवास किया। शक्ति की उपासना और मानस में ब्रहा राम की शक्ति रूप सीता के चित्रण में शक्ति को वंदनीय बनाकर इस संकीर्णता को दूर किया। फलत: वैष्णव और शैव अपने को एक ही धर्म का अंग समझने लगे और इसप्रकार धार्मिक मत-मतांतरों की बढ़ती हुई लपेट अपनी जिह्वा समेटने लगी।

भाग्य एवं पुरुषार्थ में समन्वय: तुलसी के समय में समाज मुख्य रूप से जन्म आधारित वर्ण व्यवस्था पर टिका था। जिसके कारण भाग्यवादी मानसिक अत्यधिक हावी थी। फिर भी इसके अलावा दो और मत प्रचलित थे। पुरुषार्थवाद और संयोगवाद या समन्वयवाद। तुलसी साहित्य में सभी प्रकार की उक्तियाँ मिलती हैं। इसका मुख्य कारण है तुलसीदास का समन्वयवादी होना-

"जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू ।
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा ।"[2]

भोग और त्याग का समन्वय: मध्यकाल में जहाँ ज्यादातर धार्मिक निचारकों में गृहस्थ तथा सन्यास को परस्पर विरोधी बताया वहीं तुघ्लसी ने दोनों के मध्य समन्वयकारी मानासिकता का सूत्र प्रस्तुत किया उनके अनुसार घर में रहते हुए भी अनासक्त भाव से व्यवहार करने पर भगवद्भक्ति की उपलब्धि हो सकती है-

"घर दीन्हे घर जात है, घर छोड़े घर जाय।
'तुलसी' घर बन बीच रहू, राम प्रेम-पुर छाय।"[3]

संस्कृति समन्वय: तुलसीदास के साहित्य में भिन्न-भिन्न जातियों के पात्रों का चित्रण हुआ है- देव, दानव, नर, और वानर। अक्सर मानतेत्तर संस्कृति की चर्चा नहीं की जाती पर ये आपको तुलसी के यहाँ ही मिलेगा कि वहाँ सुग्रीव और हनुघ्मान अथवा काकभुशुंडि और गरुड साधारण वानर या पक्षी नहीं है, वरन उनमें विवेकशीलता एवं भक्तिमत्ता है। तुलसी ने देवताओं, राक्षसों और मनुष्यों की संस्कृतियों का समन्वित रूप दिखाकर अंत में रामराज्य की स्थापना द्वारा मानव संस्कृति की श्रेष्ठमा दिखाकर मानवता की प्रतिष्ठा की है।

राजा एवं प्रजा के मध्य समन्वय: किसी भी समाज में सुख- समृघ्द्धि के लिए राजा एवं प्रजा का साझा प्रवास आवश्यक है परंतु तुलसीदास के समय में राजा एवं प्रजा के मध्य गहरी खाई बनती आ रही थी। एक ओर राजा भोग-विलास में डुबकर आनंद लेते थे तो दूसरी ओर प्रजा दयनीय हालत में जीवन गुजारती थी। तुलसीदास ने रामचरितमानस में राजा न प्रजा के कर्तव्यों का निर्धारण करते हुए दोनों के सम्यक संबंध की व्यवस्था कर राजा एवं प्रजा के मध्य समन्वय स्थापित किया। जैसे-

"सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई ।
जौं अनीति कछु भाषा भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।"[4]

काव्य-तत्त्वों का समन्वय: तुलसी की काव्य साधना भाषा और शैली की दृष्टि से भी अप्रियतम है। तुलसी ने अपने काव्य में जहाँ भाषा प्रयोग के स्तर पर लोक भाषा में होने वाली साहित्यिक अभिव्यक्ति को महत्त्व न देवर केवल अवधी भाषा को साधन बनाया अपितु उवत काव्य में प्रचलित लोकभाषा ब्रज को भी अंगीकृत किया। काव्य पद्धतियों में दोहा, चौपाई पछति, कवित्त, सवैया, छप्पय, बरवै और लोकगीत इत्यादि पद्धतियों का समन्वय ही तुलघ्सी साहित्य को समकालीन साहित्यों में श्रेष्ठ बनाता है।

इस प्रकार तुलसी का मानस शील, स्नेह और सौंदर्य की अभिव्यक्ति में उन व्यापक भावभूमि का निर्माण करता है। तुलसी के समन्वय पर विचार करते हुए। प्रबुद्ध आलोचक हघ्जारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि - "उनका सारा काम समन्वय की विराट चेष्टा है। उसमें केवल लोक और शास्त्र का ही समन्वय नहीं है भाषा और ज्ञान का, भाषा और संस्कृति का समन्वय भावना में मानवता के कल्याण की अज्ञेय भावना निहित है।"[15]

तुलसी ने अपने साहित्य में लोकधर्म और मर्यादा पर विशेष बल दिय है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लोकधर्म की व्याख्या करते हुए लिखा है कि तुलसी के साहित्य में लोकधर्म और मर्यादा दोनों तत्त्वों का समावेश पूर्ण रूप से दिखाई देता है। जीवन को उच्चतम बनाने के लिए जीवन में जिन मर्यादाओं की अपेक्षा होती है, उन सबको अपने काव्य में समन्वित करके तुलसी ने एक महान परंपरा की स्थापना की। हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते है कि- तुलसीदास के काव्य में उनका निरीह भक्त रूप बहुत स्पष्ट हुआ है, पर वे समाज सुधारक, लोकनायक, कवि, पण्डित और भविष्य सृष्ठ भी थे। यह निर्णय करना कठिन हैं कि इनमें से उनका कौन सा रूप अधि आकर्षक था और अधिक प्रभावशाली था। इन सब गुणों ने तुघ्लसीदास में एक अपूर्व समता ला दी थी। इसी संतुलित प्रतिभा ने उत्तर भारत को वह महान साहित्य दिया जो दुनिया के इतिहास में अपना प्रतिद्वंदी नहीं जानता।

तुलसीदास की समन्वय चेतना उनके काव्य और चिंतन का मूल तत्त्व है। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से भारतीय दर्शन, भक्ति परंपरा और सामाजिक जीवन में विद्यमान विविधता को विरोध नहीं, बल्कि सामंजस्य के रूप में रूपायित किया है। उनकी दृष्टि में सत्य एक है, किंतु उसकी अभिव्यक्तियाँ अनेक हैं इसी भावभूमि पर उनका संपूर्ण साहित्य प्रतिष्ठित है।

दार्शनिक स्तर पर तुलसीदास निर्गुण और सगुण ब्रह्म के बीच अद्‌भुत समन्वय स्थापित करते हैं। वे राम को सगुण, साकार, सुलभ और लोकमंगलकारी रूप में प्रस्तुत करते हैं, पर साथ ही उन्हें निर्गुण, निराकार और परब्रह्म स्वरूप भी स्वीकार करते हैं। उनके यहाँ ज्ञान, भक्ति और कर्म परस्पर विरोधी न होकर एक-दूसरे के पूरक हैं; भक्ति को वे साध्य भी मानते हैं और साधन भी।

धार्मिक समन्वय के साथ-साथ तुलसीदास का सामाजिक समन्वय भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था को स्वीकार करते हुए भी मानव-मात्र की समान आध्यात्मिक क्षमता पर बल दिया। स्त्री, शूद्र, वनवासी और समाज के उपेक्षित वर्गों को रामभक्ति का अधिकारी ठहराकर उन्होंने सामाजिक समरसता और मानवीय करुणा का संदेश दिया। उनके राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, जो आदर्श राजा, पुत्र, पति और मानव के रूप में लोकजीवन को दिशा प्रदान करते हैं।

भाषिक और सांस्कृतिक स्तर पर तुलसीदास की समन्वय चेतना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। संस्कृत की शास्त्रीय परंपरा और लोकभाषा अवधी के बीच सेतु बनाकर उन्होंने जनसाधारण को आध्यात्मिक चिंतन से जोड़ा। लोकविश्वास, पुराण, वेद, उपनिषद और भक्ति परंपरा सबका समावेश उनके काव्य को व्यापक और सार्वकालिक बनाता है।

अत: कहा जा सकता है कि तुलसीदास की समन्वय चेतना भारतीय सांस्कृतिक चेतना की पराकाष्ठा है। उनका साहित्य वैचारिक द्वंद्वों को समरसता में परिवर्तित करता है और मानव को नैतिकता, भक्ति तथा सामाजिक संतुलन की ओर प्रेरित करता है। यही कारण है कि तुलसीदास का काव्य आज भी समाज को जोड़ने वाली शक्ति के रूप में जीवंत और प्रासंगिक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिंदी साहित्य उद्‌भव और विकास, हजारीप्रसाद द्विवेदी राजकघ्मल प्रकाशन, सत्रहवाँ संस्करण-2015, पृष्ठ संख्या-130
2. गोस्वामी तुलसीदास, रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, पृष्ठ संख्या-22
3. श्रीरामचरितमानस (बालकाण्ड), गोस्वामी तुलसीदास, गीताप्रेस गोरखपुर, छंद संख्या- 115, पृष्ठ संख्या-127
4. श्रीरामचरितमानस (उत्तरकाण्ड), गोस्वामी तुलसीदास, छंद संख्या-114, पृष्ठ संख्या-1024
5. श्रीरामचरितमानस (बालकाण्ड), गोस्वामी तुलसीदास, छंद संख्या-117, पृष्ठ संख्या- 130
6. तुलसी- काव्य: नए-पुराने संदर्भ, डॉ बाबूराम शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली , पृष्ठ संख्या- 62
7. तुलसी साहित्य विमर्श, डॉ. देवकीनंदन श्रीवास्तव सुलभ प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या - 55
8. तुलसी- साहित्य में लोकतत्त्व, डॉ0 मदनमोहन सिंह, आयुष्मान पब्लिकेशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या - 44
9. तुलसी काव्य मीमांसा, उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दूसरी आवृत्ति- 2011, पृष्ठ संख्या - 328
10. तुलसी और मानवता, सूर्यनारायण भट्‌ट, ऊर्जा प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या -134
11. श्रीरामचरितमानस (लंकाकाण्ड), गोस्वामी तुलसीदास, छंद संख्या-1, पृष्ठ संख्या-774
12. श्रीरामचरितमानस (अयोध्याकाण्ड), गोस्वामी तुलसीदास, छंद संख्या-218, पृष्ठ संख्या-525
13. पुष्प-पराग (तुलसीदास), संपादक: टेकचंद शास्त्री, प्रकाशन भारती सदन, दिल्ली, संस्करण- 1955, पृष्ठ संख्या- 84
14. श्रीरामचरितमानस (उत्तरकाण्ड) गोस्वामी तुलसीदास, छंद संख्या-42, पृष्ठ संख्या-150
15. हिंदी साहित्य उद्‌भव और विकास, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, 17वाँ. संस्करण-2015 पृष्ठ संख्या -133

"वित्तीय साक्षरता और वित्तीय समावेशन को बढ़ाने में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की भूमिका: भारत का एक अनुभवजन्य अध्ययन"

उपेन्द्र कुमार

सहायक प्रोफेसर (एडहॉक) डॉ. भीम राव अंबेडकर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

आलोक कुमार

प्रो० राजेश

वयस्क, सतत शिक्षा और विस्तार विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

1 परिचय

1.1 अध्ययन की पृष्ठभूमि

पिछले दस सालों में, दुनिया भर के फाइनेंशियल सिस्टम में तेजी से बदलाव हुए हैं, जिसकी मुख्य वजह टेक्नोलॉजी में तरक्की, डिजिटलाइजेशन और फाइनेंशियल सर्विस में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) का बढ़ता इस्तेमाल है। हालांकि इन डेवलपमेंट ने फाइनेंशियल सिस्टम की पहुंच और एफिशिएंसी को बढ़ाया है, लेकिन आबादी का एक बड़ा हिस्सा – खासकर भारत जैसे विकासशील देशों में – अभी भी फाइनेंशियली बाहर है या उसे ठीक से सर्विस नहीं मिल पा रही है। इस वजह से, फाइनेंशियल लिटरेसी और फाइनेंशियल इनक्लूजन, इनक्लूसिव इकोनॉमिक ग्रोथ और सस्टेनेबल डेवलपमेंट के मुख्य आधार बनकर उभरे हैं।

फाइनेंशियल लिटरेसी का मतलब है कि किसी व्यक्ति की सेविंग, उधार, इन्वेस्टिंग, इंश्योरेंस और रिस्क मैनेजमेंट जैसे बेसिक फाइनेंशियल कॉन्सेप्ट को समझने और रोजाना के फैसले लेने में इस्तेमाल करने की क्षमता। दूसरी ओर, फाइनेंशियल इनक्लूजन का मतलब है बैंकिंग, क्रेडिट, इंश्योरेंस और डिजिटल पेमेंट सिस्टम सहित सस्ते और सही फाइनेंशियल प्रोडक्ट और सर्विस तक पहुंच। हालांकि कई इलाकों में फाइनेंशियल सर्विस तक पहुंच बढ़ी है, लेकिन फाइनेंशियल लिटरेसी की कमी अक्सर लोगों को इन सर्विस का अच्छे से इस्तेमाल करने से रोकती है। इस मायने में, फाइनेंशियल लिटरेसी सही फाइनेंशियल इनक्लूजन के लिए एक नींव का काम करती है।

भारत में, सरकार ने वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देने के लिए कई बड़े पैमाने पर पहल की हैं, जैसे कि प्रधान मंत्री जन धन योजना (PMJDY), डिजिटल इंडिया, यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI), और डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर (DBT) जैसे प्रोग्राम्स ने बैंकिंग और डिजिटल फाइनेंशियल सर्विसेज तक पहुंच को काफी बेहतर बनाया है। हालांकि, सिर्फ पहुंच ही असरदार भागीदारी की गारंटी नहीं देती है। जागरूकता की कमी, सीमित फाइनेंशियल क्षमता, और फाइनेंशियल प्रोडक्ट्स की कम समझ, उपलब्ध सर्विसेज के सही इस्तेमाल को रोकती रहती है।

हाल के सालों में, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस एक पावरफुल टूल के तौर पर उभरा है जिसमें इन चुनौतियों का सामना करने की क्षमता है। AI-इनेबल्ड टेक्नोलॉजी फाइनेंशियल अवेयरनेस बढ़ा सकती हैं, फाइनेंशियल एजुकेशन को पर्सनलाइज कर सकती हैं, रिस्क असेसमेंट को बेहतर बना सकती हैं, और डिजिटल प्लेटफॉर्म के जरिए आउटरीच बढ़ा सकती हैं। चौटबॉट , रोबो -एडवाइजर, मोबाइल एप्लिकेशन और डेटा-ड्रिवन एनालिटिक्स जैसे टूल फाइनेंशियल लिटरेसी को बढ़ावा देने और फाइनेंशियल इनक्लूजन को मजबूत करने में अहम भूमिका निभा सकते हैं, खासकर ग्रामीण, कम इनकम वाले और पिछड़े लोगों के बीच।

1.2 भारतीय संदर्भ में वित्तीय साक्षरता

भारत की पहचान है कि यहाँ काफी सोशियो-इकोनॉमिक डायवर्सिटी है, पढ़ाई-लिखाई में बहुत फर्क है, और फाइनेंशियल रिसोर्स तक पहुँच में बराबर फर्क नहीं है। फॉर्मल बैंकिंग नेटवर्क के बढ़ने के बावजूद, आबादी के बड़े हिस्से में फाइनेंशियल लिटरेसी का लेवल काफी कम है। कई लोगों को इंटरेस्ट

रेट, इन्फ्लेशन, इन्वेस्टमेंट डाइवर्सिफिकेशन, और डिजिटल फाइनेंशियल सर्विस जैसे जरूरी फाइनेंशियल कॉन्सेप्ट की बेसिक समझ नहीं है। इस नॉलेज गैप की वजह से अक्सर खराब फाइनेंशियल फैसले, ज़्यादा कर्ज, और फाइनेंशियल फ्रॉड का खतरा बढ़ जाता है।

फाइनेंशियल लिटरेसी सिर्फ एक इंडिविजुअल एसेट ही नहीं है, बल्कि ओवरऑल इकोनॉमिक स्टेबिलिटी का एक जरूरी हिस्सा भी है। फाइनेंशियली जानकारी रखने वाली आबादी ज़्यादा सेविंग्स, ज़्यादा प्रोडक्टिव इन्वेस्टमेंट, बेहतर फाइनेंशियल रेजिलिएंस और ज़्यादा इकोनॉमिक स्टेबिलिटी में योगदान देती है। इस महत्व को समझते हुए, रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया (RBI), सिक्योरिटीज एंड एक्सचेंज बोर्ड ऑफ इंडिया (SEBI), और नेशनल सेंटर फॉर फाइनेंशियल एजुकेशन (NCFE) जैसे इंस्टीट्यूशन्स ने कई फाइनेंशियल एजुकेशन इनिशिएटिव्स शुरू किए हैं। हालाँकि, फाइनेंशियल लिटरेसी के ट्रेडिशनल तरीके-जैसे क्लासरूम-बेस्ड प्रोग्राम और प्रिंटेड मटीरियल-पहुँच, स्केलेबिलिटी और लॉन्ग-टर्म इफेक्टिवनेस के मामले में लिमिटेशन्स का सामना करते हैं।

1.3 वित्तीय समावेशन और आर्थिक विकास

फाइनेंशियल इन्क्लूजन को आम तौर पर इनक्लूसिव इकोनॉमिक ग्रोथ, गरीबी कम करने और सोशल एम्पावरमेंट का एक मुख्य ड्राइवर माना जाता है। फॉर्मल फाइनेंशियल सर्विस तक पहुंच लोगों को सुरक्षित रूप से बचत करने, बिजनेस और प्रोडक्टिव कामों के लिए क्रेडिट लेने, इंश्योरेंस के जरिए फाइनेंशियल रिस्क को मैनेज करने और फॉर्मल इकॉनमी में ज़्यादा एक्टिव रूप से हिस्सा लेने में मदद करती है। कई एंपिरिकल स्टडीज से पता चलता है कि फाइनेंशियल इन्क्लूजन का ज़्यादा लेवल इकोनॉमिक डेवलपमेंट, इनकम इक्वालिटी और सोशल वेलफेयर से पॉजिटिव रूप से जुड़ा हुआ है।

अच्छी-खासी तरक्की के बावजूद, भारत में सबको साथ लेकर चलने वाले विकास में कई चुनौतियाँ रुकावट डाल रही हैं। इनमें डिजिटल डिवाइड, फॉर्मल फाइनेंशियल इंस्टीट्यूशन पर भरोसे की कमी, फाइनेंशियल लिटरेसी की कमी और इंफ्रास्ट्रक्चर की दिक्कतें शामिल हैं। इन चुनौतियों से निपटने के लिए नए तरीकों की जरूरत है जो पारंपरिक बैंकिंग मॉडल से आगे बढ़ें। इस मामले में, टेक्नोलॉजी पर आधारित समाधान - खासकर आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस पर आधारित ख़ फाइनेंशियल सेवाओं तक पहुँच और उनके असरदार इस्तेमाल के बीच के अंतर को कम करने के अच्छे मौके देते हैं।

1.4 फाइनेंशियल लिटरेसी और इन्क्लूजन में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की भूमिका

फाइनेंशियल सेक्टर में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस एक बदलाव लाने वाली ताकत के तौर पर सामने आया है। ऑटोमेशन, प्रेडिक्टिव एनालिटिक्स और डेटा-ड्रिवन फैसले लेने की सुविधा देकर, AI ने फाइनेंशियल सर्विस देने और इस्तेमाल करने के तरीके को बदल दिया है। फाइनेंशियल लिटरेसी और इनक्लूजन के मामले में, AI कई फायदे देता है, जिसमें पर्सनलाइज्ड फाइनेंशियल एजुकेशन, रियल-टाइम मदद, पिछड़े लोगों के लिए बेहतर क्रेडिट असेसमेंट और बेहतर फ्रॉड डिटेक्शन शामिल हैं।

AI से चलने वाले टूल भाषा, भूगोल और जानकारी की कमी से जुड़ी रुकावटों को दूर कर सकते हैं। यूजर के व्यवहार और फाइनेंशियल डेटा का एनालिसिस करके, AI सिस्टम लोगों की जरूरतों, पसंद और रिस्क प्रोफाइल के हिसाब से फाइनेंशियल गाइडेंस दे सकते हैं। इसलिए, AI में फाइनेंशियल लिटरेसी की कोशिशों की पहुंच और असर, दोनों को बेहतर बनाने और फाइनेंशियल इनक्लूजन स्ट्रेटेजी को ज्यादा समावेशी और टिकाऊ तरीके से मजबूत करने की क्षमता है।

1.5 समस्या का विवरण

बड़े पैमाने पर पॉलिसी में दखल और टेक्नोलॉजी में तरक्की के बावजूद, भारत में फाइनेंशियल सर्विस तक पहुंच और उनके असरदार इस्तेमाल के बीच एक बड़ा अंतर बना हुआ है। फाइनेंशियल लिटरेसी का कम लेवल फाइनेंशियल इनक्लूजन की कोशिशों की सफलता में एक बड़ी रुकावट बना हुआ है। हालांकि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस फाइनेंशियल एजुकेशन और सर्विस डिलीवरी को बेहतर बनाने के लिए नए सॉल्यूशन देता है, लेकिन फाइनेंशियल लिटरेसी को बेहतर बनाने और फाइनेंशियल इनक्लूजन को बढ़ावा देने में इसके रोल की भारतीय संदर्भ में एंपिरिकल रिसर्च के जरिए ठीक से जांच नहीं की गई है। यह अंतर फाइनेंशियल लिटरेसी, फाइनेंशियल इनक्लूजन, AI-बेस्ड फाइनेंशियल टूल्स के इस्तेमाल के बीच के रिश्ते की सिस्टमैटिक जांच की जरूरत को दिखाता है।

1.6 अनुसंधान अंतराल

मौजूदा लिटरेचर के रिव्यू से पता चलता है कि फाइनेंशियल लिटरेसी और फाइनेंशियल इनक्लूजन पर ज़्यादातर स्टडीज मुख्य रूप से पॉलिसी इनिशिएटिव, डेमोग्राफिक फैक्टर्स, या इंस्टीट्यूशनल फ्रेमवर्क पर फोकस करती हैं। फाइनेंशियल लिटरेसी और फाइनेंशियल इनक्लूजन को मजबूत करने में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की भूमिका को एक इनेबलिंग या मीडिएटिंग फैक्टर के तौर पर देखने वाली कुछ ही एंपिरिकल स्टडीज हैं। इसके अलावा, रीजन-स्पेसिफिक और बिहेवियरल डाइमेंशन्स ख़ खासकर भारत जैसी उभरती इकॉनमी में - अभी भी कम एक्सप्लोर किए गए हैं। इंटीग्रेटेड और कॉन्टेक्स्ट-स्पेसिफिक रिसर्च की यह कमी इस स्टडी की जरूरत को दिखाती है।

1.7 अध्ययन के उद्देश्य

स्टडी के खास मकसद इस तरह हैं:

1. भारत में लोगों में फाइनेंशियल लिटरेसी के लेवल की जांच करना।
2. अलग-अलग सोशियो-इकोनॉमिक ग्रुप्स में फाइनेंशियल इन्क्लूजन की सीमा का एनालिसिस करना।
3. फाइनेंशियल लिटरेसी और फाइनेंशियल इनक्लूजन के बीच संबंध का अध्ययन करना।
4. फाइनेंशियल लिटरेसी बढ़ाने में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की भूमिका का आकलन करना।
5. फाइनेंशियल इनक्लूजन और AI-इनेबल्ड फाइनेंशियल टूल्स के असर का मूल्यांकन करना।

1.8 अनुसंधान परिकल्पनाएँ

स्टडी में इन हाइपोथीसिस को टेस्ट किया गया है:

- H01: फाइनेंशियल लिटरेसी और फाइनेंशियल इन्क्लूजन के बीच कोई खास संबंध नहीं है।
- H11: फाइनेंशियल लिटरेसी और फाइनेंशियल इन्क्लूजन के बीच एक महत्वपूर्ण संबंध है।
- H02: आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का फाइनेंशियल लिटरेसी पर कोई खास असर नहीं होता।
- H12: आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का फाइनेंशियल लिटरेसी पर काफी असर पड़ता है।
- H03: AI-इनेबल्ड फाइनेंशियल टूल्स फाइनेंशियल इनक्लूजन पर खास असर नहीं डालते हैं।
- H13: AI-इनेबल्ड फाइनेंशियल टूल्स फाइनेंशियल इनक्लूजन पर काफी असर डालते हैं।

1.9 अध्ययन का महत्व

यह स्टडी पॉलिसी बनाने वालों, फाइनेंशियल संस्थानों, शिक्षकों और रिसर्च करने वालों के लिए बहुत जरूरी है। यह इस बारे में अनुभव से मिली जानकारी देती है कि फाइनेंशियल लिटरेसी बढ़ाने और फाइनेंशियल इनक्लूजन को मजबूत करने के लिए आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का इस्तेमाल कैसे किया जा सकता है। इसके नतीजे सरकारी एजेंसियों, रेगुलेटर्स और फाइनेंशियल सर्विस प्रोवाइडर्स को टेक्नोलॉजी से चलने वाले फाइनेंशियल एजुकेशन प्रोग्राम और इनक्लूसिव फाइनेंशियल पॉलिसी डिजाइन करने में मदद कर सकते हैं जो सस्टेनेबल इकोनॉमिक डेवलपमेंट को बढ़ावा दें।

साहित्य की समीक्षा

2.1 परिचय

लिटरेचर का रिव्यू किसी भी एकेडमिक रिसर्च का एक जरूरी हिस्सा है, क्योंकि इससे रिसर्च प्रॉब्लम से जुड़ी मौजूदा नॉलेज की पूरी समझ मिलती है। यह थ्योरेटिकल फाउंडेशन पहचानने, खास कॉन्सेप्ट समझने, पहले के नतीजों को एनालाइज करने और रिसर्च में कमियों को पहचानने में मदद करता है। फाइनेंशियल लिटरेसी और फाइनेंशियल इनक्लूजन के एरिया में, ग्लोबल और नेशनल, दोनों लेवल पर कई स्टडी की गई हैं। हालांकि, ऐसी रिसर्च जो सिस्टमैटिक तरीके से आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) को फाइनेंशियल लिटरेसी और फाइनेंशियल इनक्लूजन के साथ जोड़ती है, अभी भी लिमिटेड है, खासकर भारतीय संदर्भ में। यह चौप्टर फाइनेंशियल लिटरेसी, फाइनेंशियल इनक्लूजन और फाइनेंशियल सर्विसेज में टेक्नोलॉजी और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की भूमिका से जुड़ी जरूरी स्टडी का रिव्यू करता है।

2.2 वित्तीय साक्षरता की अवधारणा

फाइनेंशियल लिटरेसी को आम तौर पर लोगों के फाइनेंशियल बिहेवियर और फैसले लेने पर असर डालने वाला एक अहम फैक्टर माना जाता है। ऑर्गनाइजेशन फॉर इकोनॉमिक को-ऑपरेशन एंड डेवलपमेंट (OECD, 2013) फाइनेंशियल लिटरेसी को जागरूकता, ज्ञान, स्किल्स, नजरिए और बिहेवियर का कॉम्बिनेशन बताता है, जो सही फाइनेंशियल फैसले लेने और फाइनेंशियल वेल-बीइंग पाने के लिए जरूरी है। लुसार्डी और मिशेल (2014) ने इस बात पर जोर दिया कि फाइनेंशियली लिटरेट लोग सेविंग्स, इन्वेस्टमेंट, क्रेडिट और रिटायरमेंट प्लानिंग को मैनेज करने के लिए बेहतर तरीके से तैयार होते हैं।

अनुभव से मिली स्टडीज लगातार दिखाती हैं कि कम फाइनेंशियल लिटरेसी का संबंध खराब फाइनेंशियल फैसलों, बहुत ज्यादा उधार लेने, कम बचत करने और फॉर्मल फाइनेंशियल मार्केट में कम हिस्सेदारी से है। डेवलपिंग इकॉनमी में, फाइनेंशियल एजुकेशन की कमी अक्सर इकोनॉमिक एम्पावरमेंट में एक बड़ी रुकावट बनती है, खासकर ग्रामीण आबादी, महिलाओं और कम इनकम वाले ग्रुप के बीच। ये नतीजे फाइनेंशियल स्टेबिलिटी और इनक्लूजन के लिए फाइनेंशियल लिटरेसी को बेहतर बनाने की अहमियत को दिखाते हैं।

2.3 वित्तीय साक्षरता पर वैश्विक अध्ययन

ग्लोबल लेवल पर, कई स्टडीज ने फाइनेंशियल लिटरेसी के डिटरमिनेंट्स और नतीजों की जांच की है। लुसार्डी (2008) ने पाया कि फाइनेंशियल लिटरेसी घरेलू बचत के व्यवहार और लंबे समय तक पैसा जमा करने पर काफी असर डालती है। एटकिंसन और मेसी (2012) ने बताया कि जिन देशों में फाइनेंशियल लिटरेसी का लेवल ज्यादा होता है, वहां बेहतर फाइनेंशियल स्टेबिलिटी और मजबूत कंज्यूमर प्रोटेक्शन मैकेनिज्म होते हैं।

क्लैपर, लुसार्डी, और वैन ओडहेसडेन (2015) ने 140 से ज्यादा देशों में बड़े पैमाने पर ग्लोबल फाइनेंशियल लिटरेसी सर्वे किया। उनके नतीजों से पता चला कि अलग-अलग इलाकों में फाइनेंशियल जानकारी में काफी अंतर है, जिसमें डेवलपिंग और उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं में साक्षरता का लेवल तुलना में कम है। स्टडी में बताया गया कि फॉर्मल एजुकेशन और फाइनेंशियल अवेयरनेस प्रोग्राम तक कम पहुंच इन अंतरों में योगदान देती है।

हालांकि ग्लोबल स्टडीज से फाइनेंशियल लिटरेसी के महत्व के बारे में कीमती जानकारी मिलती है, लेकिन उनमें से ज्यादातर फाइनेंशियल एजुकेशन के पारंपरिक तरीकों पर ही फोकस करती हैं। फाइनेंशियल लिटरेसी को बेहतर बनाने में डिजिटल प्लेटफॉर्म और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की संभावित भूमिका पर बहुत कम ध्यान दिया गया है।

2.4 भारतीय संदर्भ में वित्तीय साक्षरता

भारत में, फाइनेंशियल सर्विसेज और डिजिटल पेमेंट सिस्टम के तेजी से बढ़ने की वजह से फाइनेंशियल लिटरेसी पर ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है। अग्रवाल एट अल. (2010) ने देखा कि फाइनेंशियल इलिटरेसी की वजह से उधार लेने और इन्वेस्टमेंट के फैसले ठीक से नहीं लिए जाते, जिससे फाइनेंशियल

वल्नरेबिलिटी होती है। कोल, सैम्पसन, और जिया (2011) ने पाया कि अकेले फाइनेंशियल एजुकेशन प्रोग्राम का असर तब तक कम होता है जब तक उन्हें बिहेवियरल और टेक्नोलॉजिकल इंटरवेंशन से सपोर्ट न मिले।

रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया (RBI) और नेशनल सेंटर फॉर फाइनेंशियल एजुकेशन (NCFE) की रिपोर्ट बताती हैं कि भारत में फाइनेंशियल लिटरेसी का लेवल अलग-अलग इलाकों, इनकम ग्रुप और एजुकेशनल बैकग्राउंड के हिसाब से काफी अलग-अलग है। शहरी आबादी में आम तौर पर ग्रामीण इलाकों की तुलना में फाइनेंशियल अवेयरनेस ज्यादा होती है, जबकि फाइनेंशियल नॉलेज में जेंडर के हिसाब से फर्क भी साफ दिखता है।

फाइनेंशियल लिटरेसी के नतीजों को बेहतर बनाने में एडवांस्ड टेक्नोलॉजी, खासकर आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के इस्तेमाल की जांच करने वाली रिसर्च बहुत कम है।

2.5 वित्तीय समावेशन की अवधारणा

फाइनेंशियल इन्क्लूजन का मतलब है यह पक्का करना कि लोगों और बिजनेस को सस्ते, सही और समय पर फाइनेंशियल प्रोडक्ट और सर्विस मिलें। वर्ल्ड बैंक (2014) के अनुसार, गरीबी कम करने और सबको साथ लेकर चलने वाली आर्थिक ग्रोथ को बढ़ावा देने के लिए फाइनेंशियल इन्क्लूजन जरूरी है। इसमें बैंकिंग सर्विस, क्रेडिट, इंश्योरेंस, पेंशन स्कीम और डिजिटल पेमेंट सिस्टम तक पहुँच शामिल है।

फाइनेंशियल इनक्लूजन की कमी की वजह से अक्सर लोगों को इनफॉर्मल फाइनेंशियल सोर्स पर निर्भर रहना पड़ता है, जो आम तौर पर महंगे और रिस्की होते हैं। इसलिए, फाइनेंशियल इनक्लूजन को इकोनॉमिक पार्टिसिपेशन और सोशल वेलफेयर को बेहतर बनाने के लिए एक जरूरी पॉलिसी का मकसद माना जाता है।

2.6 वित्तीय समावेशन पर वैश्विक अध्ययन

ग्लोबल रिसर्च से पता चलता है कि फाइनेंशियल इन्क्लूजन और इकोनॉमिक डेवलपमेंट के बीच अच्छा रिश्ता है। बेक, डेमिरगुक-कुंट , और लेविन (2007) ने पाया कि फाइनेंशियल सर्विसेज तक ज्यादा पहुँच इकोनॉमिक ग्रोथ और इनकम में बराबरी लाने में मदद करती है। सरमा (2008) ने फाइनेंशियल इन्क्लूजन का एक इंडेक्स बनाया और फाइनेंशियल सर्विसेज तक पहुँच में अलग-अलग देशों में बड़े अंतर दिखाए।

ग्लोबल फाइंडेक्स डेटाबेस का इस्तेमाल करके, डेमिरगुक-कुंट एट अल. (2018) ने पाया कि डिजिटल फाइनेंशियल सर्विसेज, खासकर विकासशील देशों में, फाइनेंशियल इन्क्लूजन को बढ़ाने में अहम भूमिका निभाती हैं। हालांकि, स्टडी में यह भी बताया गया कि पूरी फाइनेंशियल लिटरेसी के बिना सिर्फ एक्सेस काफी नहीं है, क्योंकि कई यूजर मौजूद सर्विसेज का सही तरीके से इस्तेमाल नहीं कर पाते हैं।

2.7 भारत में वित्तीय समावेशन

प्रधान मंत्री किसान योजना जैसी पहलों के माध्यम से वित्तीय समावेशन का विस्तार करने में पर्याप्त प्रगति की है। मंत्री जन धन योजना (PMJDY), आधार -बेस्ड पहचान, यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI), और डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर (DBT) शामिल हैं। रंगराजन कमेटी (2008) और RBI (2019) की स्टडीज ने बैंक अकाउंट ओनरशिप बढ़ाने में इन कोशिशों की सफलता को माना है।

इन कामयाबियों के बावजूद, कई चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं। रिसर्चर्स ने इनएक्टिव या डॉर्मेंट अकाउंट्स और बेसिक बैंकिंग सर्विस के अलावा फाइनेंशियल प्रोडक्ट्स के लिमिटेड इस्तेमाल की समस्या पर जोर दिया है। घोष और विनोद (2017) ने पाया कि फाइनेंशियल लिटरेसी की कमी, भरोसे की कमी और डिजिटल रुकावटें फॉर्मल फाइनेंशियल सिस्टम में एक्टिव पार्टिसिपेशन को रोकती हैं। इंफ्रास्ट्रक्चर की दिक्कतें और साइबर सिक्योरिटी से जुड़ी चिंताएँ फाइनेंशियल इनक्लूजन की कोशिशों के असर को और कम करती हैं।

2.8 फाइनेंशियल लिटरेसी और फाइनेंशियल इन्क्लूजन के बीच संबंध

मौजूदा लिटरेचर में फाइनेंशियल लिटरेसी और फाइनेंशियल इनक्लूजन के बीच एक मजबूत रिश्ता दिखाया गया है। शू और जिया (2012) ने कहा कि फाइनेंशियल लिटरेसी, फाइनेंशियल प्रोडक्ट्स के बारे में जागरूकता, कॉन्फिडेंस और असरदार इस्तेमाल को बढ़ाकर फाइनेंशियल इनक्लूजन के लिए एक कैटलिस्ट का काम करती है। ग्रोहमैन , क्लुह्स और मेनखॉफ (2018) ने अपने अनुभव से दिखाया है कि ज्यादा फाइनेंशियल लिटरेसी वाले लोग फॉर्मल फाइनेंशियल सर्विसेज का इस्तेमाल करने की ज्यादा संभावना रखते हैं।

भारतीय स्टडीज भी इस रिश्ते को सपोर्ट करती हैं, और बताती हैं कि फाइनेंशियल लिटरेसी सिर्फ एक्सेस के बजाय मतलब का पार्टिसिपेशन बढ़ाती है। हालांकि, इस रिश्ते को मजबूत करने में एडवांस्ड टेक्नोलॉजी की भूमिका को ठीक से एक्सप्लोर नहीं किया गया है।

2.9 फाइनेंस में टेक्नोलॉजी और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की भूमिका

फिनटेक सॉल्यूशंस के जरिए फाइनेंशियल सेक्टर को काफी बदल दिया है । हाल की स्टडीज से पता चलता है कि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस कस्टमर एंगेजमेंट, क्रेडिट असेसमेंट, फ्रॉड डिटेक्शन और फाइनेंशियल एजुकेशन को बेहतर बना सकता है।

AI से चलने वाले टूल जैसे चौटबॉट , रोबो -एडवाइजर और पर्सनलाइज्ड लर्निंग प्लेटफॉर्म कम लागत और स्केलेबल फाइनेंशियल गाइडेंस देते हैं। बाजारबाश (2019) ने इस बात पर जोर दिया कि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस में जरूरतमंद लोगों की क्रेडिट योग्यता का पता लगाने के लिए दूसरे डेटा का इस्तेमाल करके फाइनेंशियल इनक्लूजन को बढ़ाने की बहुत ज्यादा क्षमता है।

AI एप्लीकेशन में बढ़ती दिलचस्पी के बावजूद, ऐसी एंपिरिकल स्टडीज जो आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, फाइनेंशियल लिटरेसी और फाइनेंशियल इन्क्लूजन को एक ही रिसर्च फ्रेमवर्क में जोड़ती हैं, सीमित हैं, खासकर भारत जैसी उभरती अर्थव्यवस्थाओं में।

अध्ययन के मुख्य निष्कर्ष

डेटा के एनालिसिस और इंटरप्रिटेशन के आधार पर, ये मुख्य नतीजे सामने आए हैं:

1. जवाब देने वालों में फाइनेंशियल लिटरेसी का ओवरऑल लेवल ठीक-ठाक पाया गया। जवाब देने वालों को बेसिक बैंकिंग सर्विस और डिजिटल पेमेंट सिस्टम के बारे में ठीक-ठाक जानकारी थी, लेकिन इन्वेस्टमेंट डाइवर्सिफिकेशन, इन्फ्लेशन और रिस्क मैनेजमेंट जैसे एडवांस्ड फाइनेंशियल कॉन्सेप्ट के बारे में उनकी समझ कम थी।
2. बेसिक बैंकिंग सुविधाओं, खासकर बैंक अकाउंट ओनरशिप तक पहुंच के मामले में फाइनेंशियल इनक्लूजन में काफी सुधार हुआ है। हालांकि, क्रेडिट, इंश्योरेंस और इन्वेस्टमेंट इंस्ट्रूमेंट्स जैसे फाइनेंशियल प्रोडक्ट्स का असरदार इस्तेमाल अभी भी काफी कम है।
3. स्टैटिस्टिकली एक महत्वपूर्ण पॉजिटिव रिश्ता है।

संदर्भ

1. अग्रवाल, ए., और कुमार, एस. (2020). फाइनेंशियल लिटरेसी: ए सिस्टमैटिक रिव्यू एंड बिब्लियोमेट्रिक एनालिसिस, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कंज्यूमर स्टडीज, (रिसर्चगेट)
2. एटकिंसन, ए., और मेसी, एफ.-ए. (2012). फाइनेंशियल लिटरेसी को मापना : OECD/इंटरनेशनल नेटवर्क ऑन फाइनेंशियल एजुकेशन (INFE) पायलट स्टडी के नतीजे। OECD वर्किंग पेपर्स।
3. बाजारबाश, एम. (2019). फाइनेंशियल सर्विसेज में समावेशी विकास के लिए आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का इस्तेमालए IMF वर्किंग पेपर।
4. कोहेन, एम., और नेल्सन, सी. (2011). फाइनेंशियल लिटरेसी: फाइनेंशियल इन्क्लूजन की ओर एक कदम। ग्लोबल माइक्रोक्रेडिट समिट। (EnPress Journals)
5. घोष, एस., और दत्ता, जे. (2015). भारतीय संदर्भ में फाइनेंशियल इन्क्लूजन की प्रगति, ECFT जर्नल्स. (रिसर्चगेट)
6. घोष, एस. (2015). सेल्फ हेल्प ग्रुप-बैंक लिंकेज प्रोग्राम (SBLP) के जरिए फाइनेंशियल इन्क्लूजन, ECFT जर्नल्स. (रिसर्चगेट)
7. क्लैपर, एल., लुसार्डी, ए., और वैन ओडहेसडेन, पी. (2015). दुनिया भर में फाइनेंशियल लिटरेसी: स्टैंडर्ड एंड पुअर्स रेटिंग्स सर्विसेज ग्लोबल फाइनेंशियल लिटरेसी सर्वे से मिली जानकारी। ग्लोबल फाइंडेक्स डेटाबेस। (विकिपीडिया)
8. शू, एल., और जिया, बी. (2012). दुनिया भर में फाइनेंशियल लिटरेसी: आगे के लिए प्रैक्टिकल सुझावों के साथ सबूतों का ओवरव्यू। वर्ल्ड बैंक पॉलिसी रिसर्च पेपर।
9. लुसार्डी, ए., और मिशेल, OS (2014). फाइनेंशियल लिटरेसी का आर्थिक महत्व: थ्योरी और सबूत, जर्नल ऑफ इकोनॉमिक लिटरेचर।
10. रेमंड, DL (2010). फाइनेंशियल लिटरेसी एक्सप्लिकेटेड: द केस फॉर ए क्लियर डेफिनिशन इन एन एक्सीलेंटली कॉम्प्लेक्स इकॉनमी, जर्नल ऑफ कंज्यूमर अफेयर्स, (रिसर्चगेट)
11. विवेस, एक्स. (2020). बैंकिंग में डिजिटल रुकावट और कॉम्पिटिशन पर इसका असर, OECD रिपोर्ट. (फॉर्मोसा पब्लिशर)
12. हसन , एम., ले, टी., और होक , ए. (2021). फाइनेंशियल लिटरेसी इनक्लूसिव फाइनेंस को कैसे प्रभावित करती है? फाइनेंशियल इनोवेशन, 7 (1). (एनप्रेस जर्नल्स)
13. भुवना, एम., और वसंता, एस. (2019). फाइनेंशियल इनक्लूजन के लिए मोबाइल बैंकिंग एक्सेस पर फाइनेंशियल लिटरेसी के मीडिएटिंग असर का पता लगाना। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसेंट टेक्नोलॉजी एंड इंजीनियरिंग। (EnPress Journals)

रामायण और महाभारत काल में स्त्रियों की स्थिति

मयूरी झा

विभाग- संस्कृत, पद-शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भारतीय समाज में नारी एक विशिष्ट गौरवपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित है। आर्य-पुरुष ने सदा ही उसे अर्द्धांगिनी माना है। यही नही व्यवहार में पुरूष मर्यादा से नारी सदा ही उत्कृष्ट मानी गई है। आर्य पुरुषों का यह कथन आज भी भारतीय नारी को गौरवान्वित कर रहा है।

यत्र नार्यस्तु पुज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रफला क्रिया:।[1]

शास्त्र के इस कथन के अनुसार स्त्री-धर्म की रक्षा से ही भारत देवताओं का स्थान बना था। देवताओं को अमर-लोक से मृत्यु लोक में उतरने के लिए एक नारी धर्म ही समर्थ है।

सृष्टि के प्रारम्भ में परमात्मा ने अपने को दो रूपों में विभक्त किया, आधे-से वे पुरुष एवं आधे से नारी हो गए।[2] धर्मप्राण भारत वेद पुराण, स्मृति आदि ग्रन्थों ने सद्धेतुसंवलित तर्को के द्वारा तथा प्राकृतिक विज्ञान के द्वारा भी स्त्रियों को पुरूषों की अर्द्धांगिनी माना है। धर्म कार्यो में पत्नी सहित पति का निषेध किया गया है। पाणिनि ने पत्नी शब्द की व्युत्पत्ति ही यज्ञसंयोग में की है।

पाणिनि यत्युर्नो यज्ञ संयोगो

भारतीय पद्धति के अनुसार किसी भी धार्मिक सामाजिक एवं लौकिक कृत्य में स्त्री व पुरुष के उत्तरीय वस्त्रों के छोरों से ग्रन्थिबन्धन किया जाता है। बिना ग्रन्थिबन्धन किए कोई भी धार्मिक यज्ञ-यज्ञादि कर्म तथा सामाजिक मंगल-कृत्य नहीं किए जाते है। सभी गृहस्थों के घर में स्त्रियां लक्ष्मी समझी जाती हैं। ईट-पत्थर से बना घर ही घर नहीं है। वस्तुत: पत्नी ही घर है।

न गृहं गृहभित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।[3]

नारी को सदा अवधया बतलाया गया है। कैसी भी नारी क्यों न हो उसे मारना घोर पाप है। नारी के अंगों में देवताओं का वास है। विभिन्न वैदिक दर्शनों में जीव सृष्टि की दो धाराएं बतायी गयी हैं। एक स्त्री धारा एवं दूसरी पुरुष धारा। मीमांसा दर्शन ने सिद्ध कर दिया है कि मूल प्रकृति से स्त्री धारा का विशेष सम्बन्ध है। इस कारण यदि यह कहा जाय कि स्त्री मात्र ही प्रकृति रूपिणी है तो विज्ञान-विरूद्ध नहीं होगा।

सप्तशती-चण्डी एवं देवी भागवत में कहा गया है।

विद्या: समस्तास्तव देवि भेदा:

स्त्रिया: समस्ता: सकला जगत्सु

या याञ्च ग्राम्यदेव: स्युस्ता सर्वा: प्रकृते: कला:।

कलांशांशसमुद्भूजता: प्रतिविश्वेशु योशित:।

शैवागमों में नारी सुख का मूल, त्रिभुवन का आधार एवं त्रैलोक्यरूपा के रूप में प्रशंसित रही है।[4] संस्कृत साहित्य में महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण आदिकाव्य समझा जाता है एवं वाल्मीकि आदि कवि माने हुए हैं। वाल्मीकि की रामायण "महनीय कला" का सर्वश्रेष्ठ निदर्शन है। "मानव सौख्य की अभिवृद्धि, दीन-आर्तजनों का उद्धार परस्पर में सहानुभूति का प्रसार हमारे और संचार के बीच सम्बन्ध के विषय में नवीन या प्राचीन सत्यों का अनुसंधान जिससे इस भूतल पर हमारा जीवन उदात्त तथा ओजस्वी बन जाय या ईश्वर की महिमा झलके। "फलाडवेर के द्वारा किया गया "ग्रेट आर्ट" का यह लक्षण रामायण पर अक्षरश: घटित होता है। जीवन को ओजस्वी तथा उदात्त बनाने के लिए रामायण में जिन आदर्शों को चित्रित किया वे केवल भारतवर्ष के लिए ही मान्य एवं आदरणीय नही है। अपितु वे मानव मात्र के सामने उच्च-नैतिक स्तर व सामाजिक उदात्तता की भावना को प्रस्तुत करते है।

वाल्मीकि ने गृहस्थ धर्म की जिस श्रेष्ठता को प्रतिष्ठित किया व ही अन्य काव्यों एवं सामाजिक जीवन में आदर्श बन गई। राम-कथा में स्त्री का अनेक रूपों में वर्णन हुआ है। माता कौशल्या, विमाता कैकयी, विद्वशी अनुसूया, विरहिणी उर्मिला, पतिव्रता मन्दोदरी, सती सुलोचना आदि रूप में नारी के अनेक चरित्रों को प्रस्तुत किया गया है। परन्तु सर्वाधिक उदात्त एवं मनोहर चित्रण है कथा की नायिका सीता का चित्रण मुग्धा एवं स्वकीया के रूप में किया गया है। सीता अपने समस्त शील एवं सौन्दर्य के साथ कवि की लेखनी से चित्रित की जाती हुई भारतीय जनमानस पर छा जाती है। एवं पतिव्रत्य धर्म का पवित्र आदर्श प्रस्तुत करती है। बारम्बार प्रार्थना करने वाले रावण का पूर्णतया तिरस्कार करने वाली सीता भारतीय नारी का गौरव है। जानकी का चरित्र भारतीय पत्नियों के महान् आर्दश का प्रतीक है। रावण के विषय में उसके अवहेलना सूचक वचन भारतीय नारी का गौरव सदा उद्घोषित करते रहेंगे। सीता कहती है–

"इन निशाचर रावण से प्रेम करने की बात दूर रही मैं तो इसे अपने पैर से नहीं-नहीं, बाये पैर से-भी नहीं छू सकती।[5] रामायण काल में नारी के शील पर अधिक ध्यान दिया जाता था। सीता की अग्नि-परीक्षा इसी बात को पुष्ट करती है। पर-पुरुष के स्पर्श मात्र से ही नारी को दूषित मानकर कठोर परीक्षा लेने का विधान था। रावण की मृत्यु के अनन्तर राम ने सीता की विशुद्धि को सामान्य जनता के सामने प्रकट करने के लिए अनेक कटु वचन कहे उसके प्रत्युत्तर में कहे गए सीता के वचन अत्यन्त मर्मस्पर्शी है।

"हे नर-शदि्ल क्रोध का ही आचरण करते हुए तुम्हारे द्वारा लघु मनुष्य के समान स्त्रीत्व ही आगे रखा गया। बाल्यकाल में किए गए पाणिग्रहण मेरी भक्ति एवं मेरा शील आपके द्वारा पीछे ढकेल दिया गया।[6]

अनादृता भारतीय ललना के ये उद्गार सुनते ही सहृदय व्यक्तियों की आँखो में सहानुभूति के आँसू छलक पड़ते है।

परन्तु गृहस्थ जीवन में नारी को विशेष महत्व दिया गया था। भारतीय गृहस्थ जीवन का वर्णन ही रामायण का मुख्य उद्देश्य है। राम-जानकी का भयानक युद्ध भी इस काव्य का उद्देश्य नही है। वह तो राम-जानकी पति-पत्नी की परस्पर विशुद्ध प्रीति को पुष्ट करने का उपकरण मात्र है। पितृ ऋण से उऋण होने के लिए मनुष्य को गृहस्थाश्रमी होकर सन्तति प्राप्त करनी होती है। पितृ ऋण से उऋण करने के कारण ही पुत्र पिता को नरक से बचाने वाला बताया गया है।[7] रामायण में स्त्री को प्रेयसी सहधर्मचारिणी मित्र एवं सहयोगी के रुप में प्रस्तुत किया गया है। रामायण अन्य काव्यों के लिए नि:स्सन्देह प्रेरक काव्य है। राम-सीता के कथानक को लेकर अनेक काव्यों की रचना हुई। भवभूति ने तो उत्तराचरितम् में सीता को त्याग की पूर्ति तपस्विनी एवं मुग्धा के रुप में वर्णित किया है। रामायण में उर्मिला विरहिणी प्रोशित-पतिका के रूप में ही चित्रित की गई है। जबकि सीता परित्याग से पूर्व सदा ही स्वाधीन पतिका है। सीता उर्मिला दोनों की उत्तमा कोटि की नायिकाएं है। इसी प्रकार रावण की पत्नी मन्दोदरी का चरित्र-चित्रण भी अत्यन्त सुन्दर रुप में प्राप्त होता है। रावण पर स्त्री हरण के कारण अधम कोटि के गुणों से युक्त एवं प्रतिनायक के रुप में वर्णित है। परन्तु उसकी पत्नी मन्दोदरी पति की परम हितौशिणी एवं सखा तथा सहधर्मचारिणी के रुप में उत्तमा नायिका के गुणों से युक्त है। वह सदा ही पति को हितोपकारक उपदेश देने वाली पत्नी है। स्वकीया नायिका है। परन्तु स्वाधीनपतिका नहीं है। क्योंकि उसका पति निरन्तर अन्यासक्ति में रत है।

पत्यन्तर को प्राप्त हुई बालि की पत्नी तारा है। जिसे हम "पुनर्भू" कह सकते है। इसका तात्पर्य यह है कि रामायण काल में अनार्य जातियों में शत्रु सम्पत्ति पर अधिकार के साथ उसकी पत्नी पर भी अधिकार हो जाता था।

इसी प्रकार पवित्र आचरण वाली अहिल्या विद्वता की प्रतिमूर्ति अनसूया आदि अनेक नारी पात्र तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति को सूचित करते है।

रामायण के पश्चात् महाभारत के रचयिता व्यास ही श्रेष्ठ कवि हुए। उनका काव्य आर्ष काव्य कहलाता है। रामायण का जिन आदर्शों के कारण जनमानस में प्रतिष्ठित स्थान है। उन आदर्शो की अवहेलना महाभारत में बहुलतया पाई जाती है। रामायण में वर्णित भ्रातृ-प्रेम, मातृ-प्रेम, पति-पत्नी के कर्त्तव्यादि पारिवारिक एवं सामाजिक आदर्श महाभारत में किंचिद् स्थान भी प्राप्त नहीं करते वस्तुत: महाभारत इतिहास ग्रन्थ होने के कारण जीवन के यथार्थ एवं व्यावहारिकता के अधिक निकट है। राजनीतिक षडयन्त्र, छल-कपट, भ्रातृवंचना आदि विशम स्थितियां महाभारत में यत्र-तत्र बहुलतया मिलती है। हिन्दू ध र्म का विस्तृत एवं पूर्ण चित्रण महाभारत में उपलब्ध है। केवल इसी ग्रन्थ के अध्ययन से हम अपनी संस्कृति के विशुद्व का परिचय पा सकते है। महर्षि व्यास ने अनेक आख्यानों एवं उपाख्यानों के माध्यम से जीवन के सत्य को सिखलाया है। लौकिक व्यवहार का उपदेश दिया है। महाभारत में कौरवों पाण्डवों के युद्व का वर्णन है। विश्व प्रसिद्ध धार्मिक ग्रन्थ गीता भी महाभारत का ही अंश है। इन राजनीतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक परिवेश में गुथी घटनाओं में नारी का महत्वपूर्ण स्थान है। महाभारत में गृहस्थ धर्म को महत्व दिया गया है। पत्नी को पुरुष का आधा अंग माना गया है। वही पुरुष की परम मित्र है। त्रिवर्ग का मूल है

अर्ध भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतम: सखा।
भार्या मूल त्रिवर्गस्य भार्या मित्रं मरिष्यत:।।[8]

नारी का सदैव सम्मान करने का एवं वस्त्राभूषणों एवं अन्नादि से पूजा करने का निर्देष भी महाभारत में प्राप्त होता है।[9] महाभारत में दाम्पत्य का सार इस प्रकार बतलाया गया है।

स भार्या या गष्टहे दक्षा या भार्या या प्रजावती ।
स भार्या या पतिप्राण सा भार्या प्रतिव्रता।।[10]

महाभारत काल में यद्यपि गृहस्थ धर्म का रामायण के सदृश उच्च आदर्श नहीं था, परन्तु फिर भी गृहस्थ धर्म को श्रेष्ठ एवं गृहस्थाश्रम को ही श्रेष्ठ आश्रम माना गया है एवं सन्यासाश्रम को पापिष्ठा वृत्ति तक कह डाला है।[11] महाभारतकाल ने अन्य सब आश्रमों का पालन करने वाले एवं सामाजिक कल्याण की ओर उन्मुख रहने वाले गृहस्थाश्रम को ही अन्य सब आश्रमों का मूल माना है। महाभारत में गृहस्थाश्रम के महत्व को प्रतिपादित करने वाले अनेक आख्यान मिलते है। ऋर्षि कुणि गर्ग की अविवाहित तपस्यारत कन्या अन्त में अपनी तपस्या का अर्ध-भाग गालव-पुत्र श्रृंगवान को देकर एवं उससे विवाह करने के पश्चात् ही पुण्यलोकों की अधिकारिणी बन सकी[12] इसके अतिरिक्त पुत्रप्राप्ति के उद्देश्य ने भर गृहस्थाश्रम के महत्व को बढ़ाया है। जरूत्कारू नामक मुनि एवं अगस्त्य मुनि ने पित ऋण से उऋण होने के लिए ही विवाह किया था। पुत्र को वंश की प्रतिष्ठा बताया गया है।[13] कौटुम्बिक जीवन में दाम्पत्य का उच्च आर्दश पार्वती-शिव, सावित्री-सत्यवान्, दमयन्ती-नल, सीता राम आदि की चरित गाथाओं में मिलता हैं। महाभारत में संस्कृति रक्षा का श्रेय स्त्री वर्ण को देते हुए कहा गया है–

वैशम्यमपि सम्प्राप्ता गोपयन्ति कुलस्त्रिय:।
आत्मानमात्मना सत्यो जित: स्वर्गो न संशय:।।

महाभारत काल में भी कन्या को अपना वर चुनने की अनुमति प्राप्त थी । इसके लिए स्वयंवर प्रथा प्रचलित थी। परन्तु कहीं-कहीं इसके लिए वीर्य शुल्क भी प्रदान करना पड़ता था। अर्जुन द्रौपदी का विवाह इसी प्रकार का विवाह था। गान्धर्व विवाह का भी प्रचलन था। दुष्यन्त-शकुन्तला, पुरूरवा-उर्वशी आदि के विवाह इसी प्रकार के थे। राक्षस-विवाह के भी अनेक उदाहरण महाभारत में प्राप्त होते है। मरणोपरान्त पति के साथ सह-गमन की महाभारत में प्रशंसा की गई है।[14]

महाभारत में द्रोपदी कथा नायिका के रूप में वर्णित हैं। उसका पतिव्रता ओजस्विनी एवं स्वाभिमान नारी के रूप में चित्रण किया गया है। वह उत्तमा कोटी की नायिका है। पहले परकीया के रूप में एवं बाद में सर्वत्र स्वकीया के रूप में उसका परिचय प्राप्त होता है। उसका स्वाधीनपतिका रूप ही प्राप्तः देखने को मिलता है। इसी प्रकार शकुन्तला, दमयन्ती आदि नायिकाएं भी पहले परकीया एवं तत्पश्चात् स्वकीया के रूप में प्राप्त होती है। इन नायिकाओं का प्रोशितपतिका स्वरूप भी हमें प्राप्त होता है। उर्वशी साधारण नायिका के रूप में हमारे समक्ष आती है। परन्तु पुरूरवा से विवाह करके वह स्वकीया नायिका बन जाती है। सावित्री एवं गान्धारी का पातिव्रत्य भारतीय नारी का गौरव है। एवं उनके उत्तमा स्वरूप को प्रतिपादित करता है। महाभारत काल में भी विवाह के लिए उच्चकुलोत्पन्न शारीरिक सौन्दर्य से सम्पन्न कन्या को ही मान्यता दी गई है। यद्यपि विधवा विवाह एवं नियोग का भी प्रचलन था।

महाभारत काल में ही स्त्रियों की दशा निरन्तर गिरती चली गई उनकी इस हीन दशा के लिए उस समय का समाज उत्तरदायी था महाभारत काल में कुछ ऐसी प्रथाओं को बल मिल गया था जिससे स्त्री की दशा अत्यधिक निम्न होती गई इन प्रथाओं में नियोग प्रथा एवं सती प्रथा विशेष है। सन्तानहीन विधवा एवं पति के नपुंसक होने पर सन्तान प्राप्ति के लिए स्त्रियों में नियोग प्रथा का प्रारम्भ हुआ। यह प्रथा नैतिकता से परे थी इस प्रकार रामायण एवं महाभारतकालीन नारी की स्थिति का ज्ञान प्राप्त होता है। सीता, दमयन्ती, शकुन्तला, उर्वशी आदि का सौन्दर्य बाद में महाकवियों की लेखनी से अत्यन्त मधुर बन पड़ा है।

निष्कर्ष

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है। कि महाभारत और रामायण काल में नारी की स्थिति महत्वपूर्ण थी। उस समय स्त्री को समाज में उचित सम्मान प्राप्त था। उस समय नारी को प्रेयसी, सहर्धचारिणी मित्र एवं सहयोगी के रूप में स्वीकार किया गया है। और सबसे सर्वश्रेष्ठ स्थान पत्नी को प्राप्त था। महाभारत में पत्नी को पुरूष का आधा अंग स्वीकार किया गया है। उस समय नारी को सदा सुखी तथा वस्त्र और आभूषणों सें सजा कर रखने की प्रथा थी। तथा नारी को समाज में पूज्यनीय स्थान प्राप्त था। आज के इस वर्तमान समय में भी नारी की स्थिति सम्मानीय है। आज के समाज में नारी का स्थान सर्वोपरि है।

सन्दर्भ सूचीः

1. मनु-स्मृति 3/56
2. वृहदारण्यक उपनिषद 14/1/3
3. निरूक्त, 3/21/2
4. नारी त्रैलोक्यजननी नारी त्रैलोक्यरूपिणी।
   नारी त्रिभुवना धारा नारी देहस्वरूपिणी।।
   (शक्तिसयंत्र तन्त्र, नारायण खण्ड 13,44)
5. चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
   रावणं कि पुनरहं कामयेयं विगर्हितमत्।।
   (वाल्मिकी रामायण 5-26-10)
6. त्वया तु नरशार्दूल।
   (वाल्मिकी रामायण)
7. वाल्मिकी रामायण 2/107/12
8. महाभारत आदि पर्व 68/41
9. महाभारत आदि पर्व 69/43
10. महाभारत आदि पर्व 68/39
11. महाभारत 12-10-22
12. महाभारत 9-52,3-33
13. महाभारत 9,94,14,1,74,98
14. याऽपि चैवंविधा नारी भर्तारमनुवर्तते।
    विराजते हि सा क्षिप्र कपोतोव दिवि स्थिता ।।
    (महाभारत शान्त पर्व 145/15)

भारतीय ज्ञान परम्परा में निहित मोक्ष की अवधारणा (उपनिषदों के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ० गौरव वत्स

सहायकाचार्य, योगविभाग, महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढवाल विश्वविद्यालय, पौडी गढवाल

मोक्ष की समस्या का सम्बन्ध बन्धन से है। एक का ज्ञान दूसरे के बिना अधूरा हैं। 'बन्धन' और 'मोक्ष' सापेक्ष है, अर्थात् एक के अभाव में दूसरा निरर्थक हैं। इनकी सार्थकता इनकी सापेक्षता में है। परन्तु इनकी विशेषता है कि ये सापेक्ष होते हुए भी पूर्णत: स्वतंत्र है तथा एक दूसरे के नितांत विरोधी भी। अन्धकार और प्रकाश के समान वे दोनों एक दूसरे के विरोधी है। जहाँ अन्धकार रहेगा वहाँ प्रकाश नहीं रह सकता और जहाँ प्रकाश रहेगा वहाँ अन्धकार नहीं। उसी प्रकार जहाँ बन्धन हैं, वहाँ मोक्ष नहीं तथा जहाँ मोक्ष हैं वहाँ बन्धन नहीं। इससे स्पष्ट है कि ये दोनों अवधारणायें सापेक्ष है, परन्तु स्वतंत्र नहीं। ज्ञान की दृष्टि से ये निरपेक्ष नहीं हो सकते। अर्थात बन्धन को जाने बिना हमें मोक्ष की जानकारी नहीं हो सकती। परन्तु सत्ता की दृष्टि से ये स्वतंत्र हैं एक की सत्ता दूसरे से नितांत भिन्न हैं। जहाँ एक की सत्ता सीमा समाप्त हो जाती है, वहाँ दूसरे की सत्ता प्रारम्भ होती है। दानों में ऐकान्तिक विरोध है। बन्धन और मोक्ष का नितांत विरोध इनके कारण और कार्य पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है। बन्धन का कारण अज्ञान है। तथा फल दु:ख हैं। मोक्ष का कारण ज्ञान हैं तथा फल सुख हैं। ज्ञान के अभाव में हमें विषम भोग के प्रति आसक्ति बढ़ती है, कभी तृप्ति नहीं होती, मृगतृष्णा के समान वासनाये कभी शान्त नहीं होती, फलत: हम भोगते रहते है। परन्तु ज्ञान के प्रकाश में विषयों की क्षणभंगुरता स्पष्ट हो जाती है। भोग योग में परिणित हो जाता है, आसक्ति विरक्ति का रुप ले लेती है, तो दु:ख भी सुख हो जाता है। इतना ही नहीं, दोनों का समरुप भी भिन्न हैं, बन्धन अनित्य तो मोक्ष नित्य है। भारतीय दार्शनिक संसार को दु:ख रुप तथा निर्वाण को सुखरुप मानते है। दोनों में नितान्त विरोध को स्पष्ट करने के लिए ही वैदिक ऋषि प्रार्थना करते है - तमसो मा ज्योतिर्गमय। असतो मा सद्गमय। मृत्यो: मां अमृतं गमय। अर्थात् अन्धकार से प्रकाश की ओर असत् से सत् की ओर और मृत्यु से अमरत्व की ओर हमें ले चले। अन्धकार, असत् और मरण बन्धन के सूचक है; प्रकाश सत् और अमरता मोक्ष के सूचक है। यही दोनों में एकान्तिक या नितान्त विरोध है। एक का भाव ही दूसरे का अभाव है तथा दूसरे का भाव ही पहले का अभाव है।

मोक्ष क्या? मोक्ष का शाब्दिक अर्थ त्राण या छुटकारा प्राप्त करना है। व्युत्पत्ति के अनुसार 'मुच्यते अनेन इति मोक्ष: अर्थात जिसके कारण त्राण की प्राविप्ट हो या छुटकारा मिल जाय वही मोक्ष है। त्राण या छुटकारा तो बन्धन से प्राप्त होता है, अत: बन्धन ही विनाश, मोक्ष है। पुन: प्रश्न है बन्धन क्या है? उत्तर यह होता है, अत: बन्धन विनाश ही मोक्ष है। पुन: प्रश्न है बन्धन क्या है? व्यक्ति जन्म लेता है, यह है कि जन्म और मरण अनुवरत चक्र को बन्धन कहते है। व्यक्ति जन्म लेता और मरता है। पुन: मर कर जन्म लेता है, इससे क्षणभर का विश्राम नहीं है। जिस प्रकार दिन के उपरांत रात और रात के उपरांत दिन का होना चलता रहता हैं। उसी प्रकार जन्म और मरण का चक्र भी अनवरत चलता रहता है। इस अनावरत चक्र को ही बन्धन कहते हैं क्योंकि प्राणी इससे बँधा है। जीव के लिए यह एक पाश है। इस पाश का अच्छेद या बन्धन का उन्मूलन ही मोक्ष है। हम जन्म लेते है, यह सत्य है परन्तु इतना ही सत्य यह भी है कि हम मरते भी है। दूसरे शब्दों में, हम जन्म लेते है मरने के लिए और मरते है जन्म लेने के लिये जन्म और मरण दोनों को सुनिश्चित सत्य माना गया है। इसलिए भगवान कृष्ण गीता में कहते है- जातस्य हि ध्रुवों मृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च। अर्थात जो ज्ञात है वह मृत होगी ही जिसने जन्म लिया हैं, उसकी मृत्यु अवश्य होनी है और जो मृत है वह जात भी अवश्य होगा (जिसकी मृत्यु हो गयी है उसका जन्म लेना अवश्यम्भावी है) जन्म और मरण का यह अनवरत चक सदा चलता रहता है। इसी का नाम बन्धन है। जीव इसी पाश में बँधा हैं यह बन्धन अनादि है परन्तु सांत है। कब से हम जन्म और मरण के भंवर में घूम रहे है, अनादि पता नहीं। परन्तु निराश होने की आवश्यकता नहीं। यह शान्त है इसका-इसका ही मोक्ष हैं, इसे प्राप्त करने पर जीवन की सरित सदा के लिए पार कर जाता है। इसलिए मोक्ष को जन्म मरण का आमूल उच्छेद माना जाता हैं।

मोक्ष को पुनर्जन्म का पूर्ण विनाश भी कहा गया है। हम जन्म लेकर मरते हैं और मरकर जन्म लेते है। इस प्रकार बार-बार जन्म ग्रहण करना हो पुर्नभव या पुनर्जन्म है। जन्म और मरण के बीच कई अवस्थायें हैं- शैषव, योवन, वार्धक्य। जन्म लेकर हम प्रथम शिशु अवस्था को प्राप्त करते हैं, इसके अन्त होते ही यौवन मध्यावस्था को प्राप्त करते है और यौवन का अन्न होते ही बार्धक्य की अवस्था को प्राप्त करते है। इस अवस्था के अन्त का नाम मरण हैं जो जीवन पुन: जीवन में परिवर्तित हो जाता है तथा जीवन पुन: मृत्यु में। पुनर्जन्म की व्याख्या करते हुए भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं

वासांसि जीर्णान यथा विहाय, नवानि ग्रहणाति नरोपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि, अन्यानि संयाति नवानि देही।।[1]

अर्थात् पुराने जीर्ण वस्त्रों को त्यागकर जिस प्रकार व्यक्ति को वस्त्रों को धारण करता है। उसी प्रकार पुराने जीर्ण शरीर को त्याग कर व्यक्ति नये शरीर को धारण करता है। यही बारम्बार मृत्यु के उपरान्त जन्म ग्रहण करना पुनर्जन्म है और पुनर्जन्म का अन्त ही मोक्ष है यह आत्मा और शरीर को पूर्णवियोग है। इन दोनों के संयोग से पुर्नजन्म और इनके पूर्ण वियोग का नाम मोक्ष है। इस प्रकार यदि पुनर्जन्म आत्मा का सशरीर होना है तो मोक्ष आत्मा का नि:शरीर

होना है। संक्षेप में आत्मा का शरीर सहित होना जन्म है तो आत्मा का शरीर से सम्बन्ध समाप्त हो जाना मोक्ष हैं क्या मरण और मोक्ष समान हैं? नास्तिक शिरोमणि चार्वाक का कहना है कि मृत्यु ही मोक्ष है- मरणमेवापवर्ग:। परन्तु यह उचित नहीं है। मृत्यु के समय आत्मा का शरीर से वियोग तो अवश्य हो जाता है; परन्तु कुछ समय के लिए। पुराने शरीर के द्वारा किये गये कर्मों के अनुसार आत्मा को पुन: शरीरधारी होना पड़ता है। हम कर्म करते हैं, कर्म से संस्कार उतपन्न होते हैं संस्कारों के अनुसार हम मरकर भी पुन: शरीर धारण कर लेते है। अत: मृत्यु के समय शरीर और आत्मा का वियोग किंचीत कालिक है। आत्मा का शरीर से सदा के लिये वियोग तो मोक्ष से ही संभव है। इसलिए कहा गया है कि मोक्ष में आत्मा का शरीर से आत्यन्तिक वियोग हो जाता है। इस नितांत वियोग को ही मोक्ष कहते हैं।

मोक्ष को ही मुक्ति, निर्वाण, अपवर्ग, कैवल्य आदि भी कहते हैं, अर्थात ये सभी शब्द पर्यायवाची या समानार्थक है। सबका तात्पर्य एक ही है। जन्म पुनर्जन्म का सर्वदा तथा सर्वथा विनाश है। मोक्ष को भारतीय दर्शन में परम् पुरुषार्थ की संज्ञा दी गयी है। अर्थ, कर्म, धर्म, और मोक्ष सभी पुरुषार्थ है। इनमे सब किसी एक की प्राप्ति के लिए विवेकी मानव कोई कार्य करता हैं अत: इन्हें सभी कार्यो का प्रयोजन माना गया है, क्योंकि विवेक सम्पन्न व्यक्ति निष्प्रयोजन कोई कार्य नहीं करता। इनमें अर्थ और काम तो लौकिक प्रयोजन है। इन्हें पुरुषार्थ तो भौतिकवादी चार्वाक ही स्वीकार करते है। धर्म अलौकिक तथा अध्यात्मिक पुरुषार्थ अवश्य है जिसे (मीमांसा, पूर्वमीमांसा) में पुरुषार्थ माना गया हैं धर्म में स्वर्ग की प्राप्ति होती है। स्वर्ग का आनन्द धरती के सुख से अधिक। परन्तु यह आनन्द भी ससीम है, सावधि है। स्वर्ग का आनन्द कुछ समय समाप्त होने पर पुन: धरती पर जन्म मरण का दु:ख सहना होगा। जन्म मरण का पूर्ण विनाश तो मोक्ष से ही सम्भव है। अत: यह परम पुरुषार्थ है, प्राप्तव्य की प्राप्ति है, अशेष लाभ है जिसकों प्राप्त करने पर कुछ पाना शेष नहीं रह जाता। यह तो अजर, अमृत ओर आप्त काम की अवस्था है।

उपनिषदों में मोक्ष का स्वरुप अभावात्मक और भावात्मक दोनों माना गया है। अभावात्मक रुप से मोक्ष जन्म-मरण का नितांत अभाव है। जन्म लेकर हम नाना प्रकार के दु:खों को भोगते रहते है। अत: जन्म पुनर्जन्म के पूर्ण विनाश से दु:खों का भी सर्वथा विनाश हो जाता है। इस दु:ख की विशद विवेचना करते हुए सांख्य दर्शन में कहाँ गया है कि हमारा सम्पूर्ण सांसारिक जीवन दु:ख से भरा है। हम सर्वथा दु:ख भोगते रहते है। दु:ख के तीन प्रकार बतलाये गये हैं।

(क) आध्यात्मिक दु:ख :- शारीरिक और मानसिक दु:ख को आध्यात्मिक दु:ख कहते हैं। उदाहरणार्थ बात, कफ, पित्त आदि शारीरिक दु:ख और काम, क्रोध आदि मानसिक दु:ख।

(ख) अधिभौतिक दु:ख :- यह ब्रह्म कारणों से उत्पन्न दु:ख हैं जैसे साँप का काटना, युद्ध होना, कृषि नष्ट होना।

(ग) अधिदैविक दु:ख :- यह यक्ष, राक्षस, क्रूर ग्रह आदि से उत्पन्न दु:ख। उदाहरणार्थ अतिवृद्धि, अनावृष्टि, आँधी, भूचाल, भूत-प्रेत आदि से उत्पन्न दु:ख।

इन सभी प्रकार के दु:खों का सर्वथा बिनाश या सर्वकालिक निवृति ही मोक्ष का कैवल्य है। जीवन में दु:ख तत्व को सर्वाधिक महत्वपूर्ण बतलाते हुए प्रथम आर्य सत्य में भगवान बुद्ध का कहना है कि जन्म, जरा, मृत्यु, शोक, विलाप, पीड़ा, चिन्ता करना, व्यग्र होना, इच्छा की पूर्ति न होना, प्रिय वियोग अप्रिय से संयोग आदि सभी दु:ख है। सच तो यह है कि पच्च उपादान से ही दु:ख उत्पन्न होते है। जब शरीर धारण करने की क्रिया समाप्त हो जाती है अर्थात् पुनर्जन्म का निरोध है। इसे भवनिरोध, तृष्णा का क्षय आदि माना गया हैं यह निर्वाण अजर-अमर और अमृत की अवस्था हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि मोक्ष कैवल्य या निर्वाण अभावात्मक है। परन्तु भारतीय दर्शन में इसे भावात्मक भी स्वीकार किया गया है। इसका भावात्मक रूप वैदिक और अवैदिक दोनों दर्शनों में प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ वेदों में बारम्बार मोक्ष को अमृत तत्व की प्राप्ति कहा गया है। अमृत का रस सभी सांसारिक रसों से बढ़कर आध्यात्मिक आनन्द है। जिसका स्वरुप इस प्रकार बतलाया गया है। जिस प्रकार नदियाँ बहती हुयी अपने नाम और रुप को छोड़कर सागर में लीन हो जाती है। उसी प्रकार विद्वान नाम और रुप से मुक्त होकर भी दिव्य स्वरुप को प्राप्त होता है।[2] इसके भावात्मक स्वरुप का प्रतिपादन करते हुए वेदान्त में मोक्ष को सच्चिदानन्द अर्थात सत् चित् और आनन्द रुप माना गया। इसी प्रकार बौद्ध दर्शन (महायान) में निर्वाण को प्राप्तव्य की प्राप्ति, अशेष, लाभ, परम् लाभ कहा गया है। इसे परमपद, परमानन्द की प्राप्ति कहा गया है। इसे शान्त शिव और क्षेम माना गया है। परन त्राण और परम क्षेम से बढ़कर अन्य लाभ नहीं। अत: यह भावात्मक भी है।

आचार्य शंकर के अनुसार आत्मा का अपने यथार्थ स्वरुप में अवस्थित होना ही मोक्ष है।[3] यह स्थिति नित्य शुद्ध, चौतन्य रुप हैं, अत: यही मोक्ष हैं इसके अतिरिक्त आचार्य शंकर मोक्ष को भावात्मक मानते है। उदाहरणार्थ उनके अनुसार अज्ञान की निवृति ही मोक्ष है। आचार्य शंकर के समान रामानुजचार्य भी मोक्ष को अभावातमक और भावात्मक दोनों मानते है। अभावात्मक रूप से यह जन्म मरग के बन्धन का नितांत अभाव है परन्तु भावात्मक रुप में आनन्द रुप है।

रामानुजाचार्य के अनुसार मुक्त जीव शुद्ध तत्व से निर्मित होते हैं यह आनन्दमय शरीर हैं जिससे मुक्त जीव गोलोक या विष्णुलोक में निवास करते है। यहाँ उन्हें ईश्वर का साक्षात्कार होता हैं संक्षेप में रामानुजाचार्य के अनुसार मोक्ष परमानन्द तथा ईश्वर का साक्षात्कार है। यह पूर्णत: भावात्मक रुप है।

प्राय: भारतीय विद्वद्-परम्परा मोक्ष के दो प्रकार मानते हैं सदेह मोक्ष और विदेह मोक्ष। ये दोनों मोक्ष की अवस्थायें है। पहली अवस्था में शरीर विद्यमान रहता हैं, दूसरी अवस्था में शरीर का सर्वथा अभाव हो जाता है। मोक्ष के इस द्विविध प्रकार का वर्णन उपनिषद में प्राप्त होता है। दोनों में भेद इस प्रकार बतलाया गया है। ज्ञान होते ही मोक्ष प्राप्त हो जात है, अर्थात जन्म मरण का चक्र समाप्त हो जाता है। परन्तु पूर्व संस्कारों के समाप्त होने तक ज्ञानी की शारीरिक अवस्था में रहना पड़ता है। संस्कारों के क्षय होते ही शरीर छूट जाता है तथा जीवागमन समाप्त हो जाता है। दोनों का विवरण उपनिषद् में प्राप्त है। आचार्य शंकर के अनुसार अज्ञान के निवृत होते ही मोक्ष यहीं और अभी हो जाता है। मोक्ष प्राप्त व्यक्ति का शरीर प्रारब्ध कर्मानुसार विद्यमान रहता है। मोह उसे सताता नहीं, शोक उसे अभिभूत नहीं करता। सांसारिक विषय के लिये उसे तृष्णा नहीं होती। यह जीवितावस्था में ही मुक्ति है। वह व्यक्ति जीवन मुक्ति कहलाता है। प्रारब्ध कर्मो के समाप्त होते ही उसका शरीर छूट जाता है। यह विदेह मुक्ति की अवस्था हैं। श्री शंकर जीवनमुक्ति का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि ज्ञानी जीवितावस्था में मुक्ति प्राप्त कर लेता है। सर्प के उतरे हुए केचुल के समान जीवन मुक्त का शरीर पड़ा रहता हैं। जीवन मुक्त शरीर में स्थित अशरीर है, अमृत प्राण और ब्रह्म है, स्वयं प्रकाश है। वस्तुत: वह नेत्रविहीन की सनेत्र के समान, श्रोतहीन भी सश्रोत के समान, वाणी रहित भी वाणी सहित सा, मन

रहित भी मन सहित सा है[4] परन्तु रामानुजाचार्य जीवन मुक्ति नहीं स्वीकार करते। उनके अनुसार जब तक शरीर रहेगा, कर्म भी होगा और कर्म के पूर्ण विनाश के बिना मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता।

दार्शनिक अन्वेषण तथा मानव का अन्तिम लक्ष्य एक ही है। आत्मा और परमात्मा का स्वरूप जानना। जगत् के स्वरूप से परिचित होना। कर्म, ज्ञान, तथा उपासना को अपनाना। अन्ततः यह सब है किसलिए? मानव ने इस सब की खोज क्यों की? इन सबका अन्त मानव की पूर्ण सुख प्राप्ति से सम्बन्धित होना चाहिए। पूर्ण सुख ही दर्शनिक अन्वेषण का अन्त है। तथा इस पूर्ण सुख की प्राप्ति अपूर्ण सुख से मुक्त होने पर ही मिल सकती है - त्रिविध तापों की अत्यन्त निवृत्ति ही अत्यन्त पुरुषार्थ है।[5] जब हृदय में रहने वाली समग्र कामनाओं का नाश हो जाता है, तब मनुष्य अमरत्व को प्राप्त कर लेता है और यहाँ उसे ब्रह्म की उपलब्धि हो जाती है।[6] छान्दोग्य ने 'भूमा'-'आत्मा' की उपलब्धि में परमसुख माना है। जो सर्वत्र विद्यमान है। ऊपर है, नीचे है, आगे है, तथा पीछे है। दक्षिण की ओर है तथा उत्तर की ओर है। परमतत्त्व की ही संज्ञा भूमा है। जहाँ पर न दूसरे को देखता है न दूसरे को सुनता है, न दूसरे को जानता है। वह है भूमा। भूमा ही अमृत है। जो अल्प है वह मर्त्य है।[7] ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करके साधक अमर हो जाते हैं।[8] उस परमदेव को जानकर समस्त पाशों को काट डालता है।[9] उस सर्वव्यापक परमात्मा को जानकर आत्मा मृत्यु का अतिक्रमण कर जाता है। इससे भिन्न बचने का अन्य कोई मार्ग नहीं है।[10] अतः मनुष्य की मुक्तावस्था ही उसकी सत्य अवस्था है तथा इस सुख को मोक्ष नाम दिया गया है। यही मोक्ष- प्राप्ति ही उपनिषदों का चरम लक्ष्य है। मोक्ष प्राप्ति के साधनों को बतलाना ही उपनिषदों का परमकर्तव्य है।

सूक्ष्मेक्षिका से यही निष्कर्ष निकलता है कि मोक्ष न तो कोई आने जाने वाला पदार्थ ही है तथा इसकी प्राप्ति शरीर को नहीं होती है। आत्मा इसक अनुभव करता है। आत्मा ही विद्या द्वारा अपने सम्पूर्ण अज्ञान को हटाकर मुक्ति सुख का अनुभव करता है। जैसे किसी वस्तु को अनावृत्त कर दिया जाता है; उसी प्रकार से अज्ञान से आवृत्त ज्ञान को जब अनावृत्त कर दिया जाता है अथवा अज्ञान रूपी पर्दे को हटा दिया जाता है तब आत्मा अपने आपको ब्रह्मस्थ हुआ अनुभव करता है। यही मोक्ष है। अतएव ज्ञान से संसार रूपी बन्धन के नाश से ही मोक्ष का अनुभव होता है।

वेदों में यद्यपि मोक्ष सिद्धान्त का विकसित दार्शनिक रूप दिखाई नहीं देता तथापि ऋषियों द्वारा देवताओं से की गई दुःख एवं बन्धनों से मुक्ति की प्रार्थनाओं में तथा पुरुष, प्रजापति विश्वकर्मा एवं हिरण्यगर्भ के रूप में की गई परमतत्त्व की कल्पनाओं में हम इस सिद्धान्त की मूल प्रवृत्ति के दर्शन कर सकते हैं।[11] विष्णु की परमपद प्राप्ति की कामना में भी परमपुरुषार्थ मोक्ष के सिद्धान्त का बीज देखा जा सकता है।[12] वरुण देवता से प्रायः प्रार्थना की गई है कि वह हमें अपने पाशों से मुक्त करे।[13] एक मन्त्र में तो उत्तम, मध्यम, एवं अधम, तीन प्रकार के अंगों से पाशों अथवा बन्धनों को हटाने की प्रार्थना की गई हैं।[14] अग्नि देवता से भी पाशमोचन के लिए कहा गया है।[15]

ऋग्वेद में मृत्युबन्धन से छुटकारा पाने की भावना के भी दर्शन होते हैं। एक स्थान पर वैदिक कवि ने प्रार्थना की हैं- मैं पके खरबूजे की भाँति मृत्यु बन्धन से छूट जाऊँ, अमृत से नहीं।[16] एक मन्त्र में स्वयं इन्द्र कहता है - मैं कभी मृत्यु के लिए प्रस्तुत नहीं हुआ।[17] अथर्ववेद में भी मृत्यु को दूर करने या अमृत को प्राप्त करने की प्रार्थना की गई है।[18]

बृहदारण्यकोपनिषद् में आत्मा अथवा ब्रह्म का साक्षात्कार ही जीवन का चरम लक्ष्य है। महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी धर्मपत्नी मैत्रेयी को आत्मज्ञान की अनिवार्यता के सम्बन्ध में कहते हैं-

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेदं सर्वं विदितम्।[19]

अर्थात् हे मैत्रेयि! निस्सन्देह आत्मा ही देखने, सुनने और मनन करने योग्य है तथा अन्त में अनुभव करने योग्य है। आत्मा के देखने, सुनने, मनन करने और विशेष ज्ञान प्राप्त कर लेने से यह सब ज्ञान हो जाता है। मैत्रेयी की यह उक्ति मोक्ष प्राप्ति में सहायक सिद्ध होगी कि - "येनाहं नामृतास्यां किमहं तेन कुर्याम्"[20] अर्थात् जिस धन से मैं अमर नहीं हो सकती, उस धन का मैं क्या करूंगी? अतः हे भगवन! आप जो अमर होने के साधन जानते हैं, उन्हीं को मुझे बतलावें।

बृहदारण्यकोपनिषद् का प्रस्तोता मृत्यु और अमृत के रहस्य को उद्घाटित करते हुए कहता है कि मुझे असत् से सत् की ओर ले चलो, मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो और मुझे मृत्यु के पाश से छुड़ाकर अमृत की ओर ले चलो। आगे कहते हैं कि मृत्यु की असत् है और सत् अमृत है। मृत्यु ही तम है और ज्योति ही अमृत है। उपर्युक्त सभी वाक्यों में एक ही भाव परिलक्षित होता है कि मुझे "मृत्योर्माऽमृतं गमयामृतं मा कुरु" अर्थात् मुझे अमर कर दो।[21]

निष्कर्षतः जब पुरुष की समस्त वासनात्मक कामनायें छूट जाती हैं तब मनुष्य मृत्यु और से छूट जाता है और ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।[22] ब्रह्म विद्या का मार्ग सूक्ष्म नित्य है। ब्रह्म को प्राप्त कर लेने पर यह विस्तृत प्रतीत होता है। इस मार्ग को त्याग, तपस्या और आत्मा की दर्शन अभिलाषा से उपासक प्राप्त किया करता हैं। इसी मार्ग से स्वर्ग और उससे भी बढ़ कर मुक्ति प्राप्त हुआ करती है। उस मार्ग को श्वेत, नीला, पीला, हरा और लाल कहते हैं। यह मार्ग ब्रह्मज्ञानी ने ढूँढ निकाला है। इस मार्ग से ब्रह्मज्ञानी पुण्यकर्मकर्ता और तेजस्वी बन जाते हैं।[23] उपर्युक्त सन्दर्भ का भाव यह है कि सफेद, नीला, पीला आदि नाड़ियों के रंग हैं। उन्हीं नाड़ियों में से जीव निकलता है। ब्रह्मरन्ध्र से जीव उसी समय निकलता है जब उसे आवागमन के चक्र से छूट कर मोक्ष प्राप्त करना होता है।

सन्दर्भ सूचीः

1 गीता - 02/22

2 मुण्डकोपनिषद् - 03/02/08

3 तैत्तिरीयोपनिषद् - 09/11

4 ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य - 01/01/04

5 साङ्ख्यदर्शन - 01/01
6 कठोपनिषद् - 02/03/14
7 छान्दोग्योपनिषद् - 08/22
8 श्वेताश्वतरोपनिषद् - 03/07
9 श्वेताश्वतरोपनिषद् - 01/10 तथा 04/15
10 श्वेताश्वतरोपनिषद् - 03/08
11 ऋग्वेद में दार्शनिक तत्त्व, पृ० - 149
12 ऋग्वेद - 01/54/05 तथा 01/22/20-21
13 ऋग्वेद - 01/24/13
14 ऋग्वेद - 01/25/21
15 ऋग्वेद - 05/02/07
16 ऋग्वेद - 07/59/12
17 ऋग्वेद - 10/48/05
18 अथर्ववेद - 18/03/32
19 बृहदारण्यकोपनिषद् - 02/04/05
20 बृहदारण्यकोपनिषद् - 02/04/03
21 बृहदारण्यकोपनिषद् - 01/03/28
22 बृहदारण्यकोपनिषद् - 04/04/07
23 बृहदारण्यकोपनिषद् - 04/04/08

उच्च शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में शिक्षण संस्थानों की भूमिका: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

सोनी कुमारी

शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग ललित नारायण मिथिला विश्विद्यालय, दरभंगा

डॉ० राफिया काजीम

पर्यवेक्षिका, अस्सिटेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग ललित नारायण मिथिला विश्विद्यालय, दरभंगा

शोध सार

उच्च शिक्षा का मानव जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका है। यह व्यक्ति को श्रेष्ठ एवं आदर्श बनाती है साथ ही ज्ञान एवं प्रशिक्षण के माध्यम से अपना व अपने परिवार जनों के भरण-पोषण करने योग्य बनाती है। हमारे देश में केवल गणनात्मक विकास हो रही है। देश को समृद्धशाली बनाने के लिए उच्च शिक्षा में गुणात्मक विकास की जरूरत है।

मूलशब्द : उच्च शिक्षा, शिक्षण संस्थान, गुणात्मक विकास, कौशल, औद्योगिकीकरण

प्रस्तावना

शिक्षा मानव जीवन के लिए आवश्यक है, लेकिन उच्च शिक्षा मानव और समाज के लिए अति आवश्यक है। इसका मानव जीवन में अहम भूमिका है। यह मनुष्य को अधिक परिपक्व, समझदार व प्रबुद्ध बनाती है। इसका औपचारिक तथा अनौपचारिक रूप से मानव व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान है। यह चेतना का संचार कर हमें अँधेरे से उजाले की ओर ले जाती है जो हमारे जीवन को प्रकाशमान एवं खुशहाल करती है। यह समाज में समानता की भावना को दर्शाती है। शिक्षा व्यवस्था व्यक्तियों को उसके प्रतिभाओं एवं योग्यताओं के आधार पर भिन्न-भिन्न श्रेणियों में बांटती है। जैसे ख़ जैसे समाज में औद्योगिकीकरण का विकास होता है वैसे-वैसे औपचारिक जन शिक्षा का विकास होता है। औद्योगिकीकरण की आवश्यकता एवं माँग के अनुसार शिक्षा में विकास होते रहते हैं।

उच्च शिक्षा मनुष्य के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है, जो समान्य रूप से दी जानेवाली शिक्षा से ऊपर होती है। यह व्यक्ति को अपने पसंद के किसी खास विषय में निपुण बनाती है। यह मानवीयता, सहिष्णुता, विवेकशीलता, विचारगत साहस, सत्य की खोज एवं रचनात्मक इत्यादि को समाहित किए हुए व्यक्ति को जीवन में कुछ बनने योग्य बनाकर जीना सिखाती है। यह नयी-नयी प्रशिक्षण के माध्यम से हमारे अंदर कौशलों का विकास कर हमें अपना एवं अपने परिवार के भरण पोषण करने योग्य बनाती है। यह शिक्षा हम सभी के लिए आवश्यक है।

हमारे देश में उच्च शिक्षा का तात्पर्य है 10+2 के बाद दी जानेवाली शिक्षा स्नातक, परास्नातक, चिकित्सक, अभियन्ता, इत्यादि शिक्षा से है जो महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय के द्वारा प्रदान की जाती है। विश्वविद्यालय ही उच्च शिक्षा का केंद्र होता है क्योंकि महाविद्यालय किसी ना किसी विश्वविद्यालय से जुड़ा होता है। भारत में विश्वविद्यालय का तात्पर्य किसी प्रान्तीय अधिनियम अथवा किसी राज्य अधिनियम से है जिसमें इस अधिनियम के तहत बनाए गए विनिमय के अनुसार उस संबद्ध विश्विद्यालय के परामर्श से विश्विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थाएँ शामिल है। विश्वविद्यालयों का प्रमुख कार्य शिक्षण कार्य कराना, महाविद्यालयों को मान्यता देना, परीक्षा लेना तथा शोध कराना है।

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य उच्च शिक्षा एवं शिक्षण संस्थानों की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालना है तथा उच्च शिक्षा एवं शिक्षण संस्थानों से संबंधित प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्य तथ्यों का विश्लेषण करना है। इसके मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है:

- उच्च शिक्षा की मुख्य विशेषताओं का विश्लेषण करना।
- उच्च शिक्षा की गुणवत्ता का अध्ययन करना।
- उच्चतर शिक्षण संस्थानों के प्रमुख कार्यों का विश्लेषण करना।

तथ्य संग्रह

शोध अध्ययन के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों से आंकड़ों का संकलन किया गया है जिसके आधार पर सम्पूर्ण प्रपत्रों का विश्लेषण किया गया है।

प्राथमिक स्रोत : प्राथमिक स्रोत महाविद्यालय एवं विश्विद्यालय से एकत्र किया गया है, जिसके आधार पर सम्पूर्ण प्रपत्रों का विश्लेषण किया गया है।

द्वितीयक स्रोत : द्वितीय स्रोत लेखक के कार्यों का महत्त्वपूर्ण अध्ययन, शोध पत्र, शोध प्रबंध शोध पुस्तकों और विकिपीडिया एवं अन्य वेबसाइट शामिल है।

अध्ययन का महत्व

वास्तविक तथ्यों पर आधारित इस अध्ययन का निष्कर्ष समाज के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। शोधकर्ता इस वर्तमान अध्ययन के सभी पहलुओं को समझाने प्रयास करेगा। यह शोध उच्च शिक्षा एवं उच्चतर शिक्षण संस्थानों के बारे में पाठकों के बीच जागरूकता पैदा करने का प्रयास करेगा। यह सन्दर्भ सामग्री तैयार करके आगे के अध्ययन के लिए व्यवस्था प्रदान करेगा।

साहित्यों की समीक्षा

संक्षेप में इसके पिछले अध्ययनों की समीक्षा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जो इस अध्ययन से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रासंगिक है। इसमें उच्च शिक्षा एवं उच्च शिक्षण संस्थानों से संबंधित अध्ययनों पर किए गए कार्यों को एक झलक देखने को मिलती है।

डॉ० ममता रानी शर्मा ने शिक्षा और समाज पुस्तक में कहा है "उच्च शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की गुणवत्ता को बढ़ाना है, जिससे समाज के हर क्षेत्र में समृद्धि आए तथा प्रगति और उन्नति हो किन्तु विश्विद्यालय की बेशुमार समस्याओं के कारण शासकीय महाविद्यालयों पर ध्यान नहीं दे पा रही है जिसके कारण उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में कमी है।" उच्च शिक्षा में गुणात्मक विकास की ज्यादा जरूरत है, लेकिन महाविद्यालयों की संख्या और गुणवत्ता में तालमेल ना होने के कारण केवल मात्रात्मक विकास हो रही है, जिससे निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति नहीं होती है।

साहिल शर्मा और पूरेन्दू शर्मा ने कहा है महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों जैसे भारतीय उच्च शिक्षण संस्थानों की भूमिका शिक्षा अनुसंधान आदि के क्षेत्र में गुणवत्तायुक्त शिक्षा प्रदान कर युवाओं को आत्मनिर्भर एवं सशक्त बनाता है। देश के सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक आदि के विकास में उच्च शिक्षा प्रणाली महत्पूर्ण भूमिका निभाती है, लेकिन वर्तमान में उच्च शिक्षा प्रणाली में आधारित संरचना और बुनियादी सुविधाओं की समस्या, शिक्षकों में कमी, गुणवत्ता अनुसंधान का अभाव इत्यादि समस्यायें है। शिक्षा प्रणाली को बेहतर बनाने के लिए शिक्षा प्रणाली में सुधार तथा अनुसंधान और शिक्षण के बीच तालमेल अनुसंधान केंद्र तथा उद्योग इत्यादि का निर्माण करने की आवश्यकता है।

वर्तमान में हमारे देश में उच्च शिक्षा की स्थिति

उच्च शिक्षा किसी देश की विकास ही नहीं बल्कि आर्थिक व्यवस्था की रीढ़ होती है जो सांस्कृतिक बनावट की समझ और राजनीतिक प्रतिष्ठा सामाजिक चेतना इत्यादि को भी दर्शाता है। वर्तमान समय औद्योगिकीकरण का समय है। औद्योगिकीकरण सामाजिक आर्थिक प्रक्रिया है जो मानव समुह की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को परिवर्तित करती है तथा उद्योग धंधों में वृद्धि करती है। जैसे-जैसे समाज में औद्योगिकीकरण का विकास होता है वैसे-वैसे औपचारिक जन शिक्षा का विकास होता है। औद्योगिकीकरण की आवश्यकता एवं माँग के अनुसार शिक्षा में विकास होते रहते हैं। किन्तु औद्योगिकीकरण की इस दौर में उच्च शिक्षा की दुकानें खुल गयी है। उच्च शिक्षा में आज गणनात्मक विकास हो रही है। हमारे देश के अधिकांश लोग अच्छी नौकरी पाने के लिए उच्च शिक्षा ग्रहण करते हैं। उच्च शिक्षा की उपाधि अब केवल कमाई का जरिया बनकर ही रह गया है।

उच्चतर शिक्षण संस्थानों की भूमिका

उच्चतर शिक्षण संस्थान का आशय महाविद्यालय एवं विश्विद्यालय से है जहां स्नात, स्नातकोत्तर, मेडिकल, इंजीनियरिंग इत्यादि की शिक्षा प्रदान की जाती है। इसका प्रमुख कार्य शिक्षा, अनुसंधान आदि की क्षेत्र में गुणवत्तायुक्त शिक्षा प्रदान कर युवाओं को आत्मनिर्भर एवं सशक्त बनाना। वर्तमान में शिक्षकों की कमी के कारण गुणवत्तायुक्त शिक्षा एवं अनुसंधान का अभाव जैसे आदि समस्याओं के कारण हमारे देश में महाविद्यालय एवं विश्विद्यालय की स्थिति अब बदतर होती जा रही है। उच्च शिक्षा विश्वविद्यालय की कार्यप्रणाली पर निर्भर करती है किन्तु दुर्भाग्य की बात तो यह है कि विश्वविद्यालय निर्धारित नियमों का अनुपालन सही ढंग से नहीं कर पा रही है। जिसका परिणाम यह है कि शिक्षण संस्थानों में ना तो सही ढंग से शिक्षण कार्य हो रही है और और ना ही उचित समय पर परीक्षा और परीक्षा के परिणाम प्रकाशित होती है, जिससे छात्रों को कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

उपसंहार

अंत में सम्पूर्ण प्रपत्र के आधार पर यह कहा जा सकता है कि देश की विकास में उच्च शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है जो विश्वविद्यालय की कार्यप्रणाली पर निर्भर करती है। यदि विश्वविद्यालय उचित रूप से अपने कर्तव्यों का पालन करे तो राष्ट्र एवं जनता दोनों का कल्याण होगा। उच्च शिक्षा में गुणवत्तायुक्त सुधार लाने के लिए विश्विद्यालय की कार्यप्रणाली को सबल तथा स्पष्ट बनाने की आवश्यकता है।

संदर्भग्रंथ सूची

- पांडेय, डॉ रामशकल. "शिक्षा के मूल सिद्धांत",अग्रवाल पब्लिकेशन, 2009.
- सिंह, डॉ. मनोज. "शिक्षा और समाज," आदित्य पब्लिकेशन, 2011.
- प्रताप, राणा. "शिक्षा शास्त्र के चिंतक", साहित्य संसद प्रकाशन, कैलाशपूरी नई दिल्ली, 2007.
- सेवानी, अशोक. एवं सिंह, उमा. "शिक्षा सिद्धांत एवं आधुनिक भारत में शिक्षा", अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, 2010.
- सिंह, प्रो. सरदार अरविंद. "भारतीय शिक्षा में समकालीन मुद्दे", डी.डी.ई. ललित नारायण मिथिला विश्विद्यालय, दरभंगा, 2009.
- Sen, Rabindra. " Higher Education in 21st century", crescent publishing, New Delhi, 2009.
- Sharma, Sahil. And Sharma, Purendu. "Indian Higher Education System : Challenges and Suggestions", Eletronic Journal of Inclusive Education, vol. 4 no. 3, 2015.
- Jaglan, R. S. and Narwal, K. P. " University Administration and System in India", I. K. International Publishing, 2012.
- Yugdhara.com
- https://www.jagran.com/editorial/apnibaat-purpose-of-heighereducation-14002579.html?utm_source=referral&utm_medium=amp_social_share

महर्षि अरविंद और पूर्ण योगः जीवन, दर्शन एवं साधना पद्धति

कल्पना वर्मा

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांशः

श्री अरविंद कृष्णधन घोष का जीवन युवा काल से ही उतार-चढ़ाव से भरा रहा। उनका जन्म १५ अगस्त १८७२ को कलकत्ता, पश्चिम बंगाल में हुआ। सात साल की आयु से ही विदेश में शिक्षा प्राप्त करने वाले श्री अरविंदो ने गीता का वर्णन, वेदों का रहस्य व उपनिषद का सम्पूर्ण व्याख्यान किया। श्री अरविंदो ने अपने जीवन में कई महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाई। वह एक महान योगी, महान दार्शनिक और राष्ट्रवादी नेता थे। उनके अनुसार, जीवन एक अखंड प्रक्रिया है जो मानव जाति को सत्य और चेतना का अभ्यास कर दिव्य शक्ति प्राप्त करने का माध्यम है। उन्होंने समग्र योग से आध्यात्मिक सिद्धि और अनुभव प्राप्त करने के साथ ही साथ सामाजिक समस्याओं से छुटकारा पाने की सम्भावना जताई।

श्री अरविंद जी ने शारीरिक, मानसिक और अत्यधिक दृष्टि से योग पर अभ्यास किया और दिव्य शक्ति को प्राप्त किया। मंत्र-विज्ञान भारत की महान संस्कृति और बहुमूल्य धरोहर है। मंत्रों में भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियां विकसित करने का अलौकिक सामर्थ्य है। अरविंद का दर्शन लक्ष्य की दृष्टि से आदर्शवादी, उपागम की दृष्टि से यथार्थवादी, क्रिया की दृष्टि से प्रयोजनवादी तथा महत्वाकांक्षा की दृष्टि से मानववादी है। हमें इस दृष्टिकोण को शिक्षा में अपनाना चाहिए।

महर्षि अरविंद घोष के दार्शनिक विचार वर्तमान मानव को अंधकार के गर्त से बाहर निकालकर दिव्य प्रकाश के मार्ग पर अग्रसर करने हेतु प्रेरणा स्रोत के रूप में निहित हैं। मानव दिव्य शक्तियों का ज्योति पुंज है जो अपने भीतर अनन्त शक्ति धारण किए हुए है। श्री अरविंद जी के दर्शन की चरम परिणति उनके शैक्षिक दर्शन से होती है। यह गागर में सागर भरने जैसा है। शिक्षा विकासशील आत्मा के सर्वांगीण विकास में सहायक होती है तथा मानव को उच्च आदर्शों के प्रयोग हेतु सक्षम बनाती है। शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों में स्मृति, निर्णय लेने की क्षमता और रचनात्मकता को बढ़ाना होना चाहिए, और इसे उनकी मातृभाषा के माध्यम से किया जाना चाहिए। वे शिक्षा प्रणाली को भारतीय परंपराओं के अनुरूप बनाना चाहते थे। "यू. सी. दुबे ने अपने शोधपत्र 'इंटीग्रलिज्मः श्री अरविंदो के दर्शन की विशिष्ट विशेषता' में बताया है कि अरविंदो की प्रणाली वास्तविकता का एक अभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है, जहां निरपेक्ष और उसकी रचनात्मक शक्ति के बीच कोई विरोध नहीं है क्योंकि वे वास्तव में एक हैं। इसके अलावा, वह श्री अरविंदो की अतिमानस की अवधारणा को निरपेक्ष और परिमित दुनिया के बीच मध्यस्थ सिद्धांत के रूप में संदर्भित करते हैं।"(1)

कुंजी शब्दः महर्षि अरविंद, आध्यात्मिक, दर्शन, दार्शनिक विचारधारा, सर्वांगीण योग, ज्योति पुंज, योगी

प्रस्तावना

भारतीय दर्शन और धर्म में, विशेषकर हिंदू धर्म में, किसी देवता (विशेषकर छवि रूप में) पूजनीय व्यक्ति या पवित्र वस्तु को देखना एक सच्चा अनुभव माना जाता है। भारतीय दर्शन में यह शब्द प्रत्येक दार्शनिक प्रणाली द्वारा देखने के विशिष्ट तरीके को दर्शाता है। महान क्रांतिकारी के रूप में जाने जाने वाले महर्षि अरविंद महान योगी और दार्शनिक भी थे, वे कवि एवं गुरु भी थे, और अंत में आध्यात्मिक सुधारक बन गए। उन्होंने मानव प्रगति और आध्यात्मिक विकास में महानतम योगदान दिया। क्रांतिकारी समय में उन्हें रहस्यमयी और आध्यात्मिक ज्ञान की अनुभूति हुई, जिस कारण वे राजनीति को त्यागकर आध्यात्मिक ज्ञान और मन में उठ रहे सभी प्रश्नों को ढूंढने के लिए पांडिचेरी चले आए। श्री अरविंद ने एक आध्यात्मिक अभ्यास विकसित किया जिसे उन्होंने इंटीग्रल योग कहा। उनकी दृष्टि का केंद्रीय विषय मानव का दिव्य शरीर और दिव्य जीवन में विकास था। वे आध्यात्मिक अनुभूति में विश्वास करते थे। उनका मानना था कि यह अनुभूति न केवल मुक्ति दिलाती है बल्कि मानव स्वभाव को रूपांतरित भी करती है। यह मानने की बजाय कि हम जिस दुनिया का अनुभव करते हैं वह एक भ्रम (माया) है, उनका मानना था कि दिव्य ब्रह्म लीला के माध्यम से अनुभवजन्य वास्तविकता के रूप में प्रकट होते हैं।

उन्होंने तर्क दिया कि आध्यात्मिक अभ्यास का अंतिम लक्ष्य केवल दुनिया से समाधि में मुक्ति नहीं हो सकती बल्कि इसे दिव्य अस्तित्व में बदलने के लिए दुनिया में दिव्य अवतरण भी हो सकता है। श्री अरविंद की आध्यात्मिक प्रणाली के केंद्र में अतिमानस है, जो अव्यक्त ब्रह्म और व्यक्त जगत के बीच एक मध्यस्थ शक्ति है। श्री अरविंद घोष का मानना था कि अतिमानस हमारे लिए पूरी तरह से पराया नहीं है, इसे अपने भीतर महसूस किया जा सकता है क्योंकि यह हमेशा मन के भीतर मौजूद रहता है।

अतिमानस को श्री अरविंद ने स्वयं के मूल आविष्कार के रूप में चित्रित नहीं किया, इसे हम वेदों में भी देख सकते हैं। वैदिक देवता अतिमानस की शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अतिमानस से तात्पर्य दिव्य प्रकृति की पूर्ण सत्य चेतना से है, जिसमें विभाजन और अज्ञान के सिद्धांत के लिए कोई स्थान

नहीं हो सकता। यह एक सम्पूर्ण प्रकाश और ज्ञान है, जो सभी मानसिक पदार्थों और मानसिक गतिविधियों से उच्चतर है। "आर. पुलिगडला ने अपनी पुस्तक ष्फंडामेंटल्स ऑफ इंडियन फिलॉसफी'' में इस दृष्टिकोण का समर्थन किया है। उन्होंने श्री अरविंद के दर्शन को भारतीय और पश्चिमी परंपरा का एक मूल सश्लेषण बताया है। उन्होंने आधुनिक पश्चिम की सामाजिक, राजनीतिक और वैज्ञानिक उपलब्धियों को हिंदू धर्म की प्राचीन और गहन आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के साथ एक अनोखे अंदाज में एकीकृत किया है। अरविंद के जीवन को शक्ति देने वाली दृष्टि और कोई नहीं बल्कि सभी अस्तित्व की एकता की उपनिषदिक दृष्टि है।"(2)

"श्री अरविंद जी ने माना कि पदार्थ, जीवन और मन के मूल सिद्धांतों को स्थलीय विकास के माध्यम से सुपरमाइंड के सिद्धांत द्वारा अनंत और परिमित दो क्षेत्रों के बीच एक मध्यवर्ती शक्ति के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है। इंद्र सेन श्री अरविंद के एक शिष्य थे जो पश्चिम में कम जाने जाते थे। लेकिन 1940, 1950 के दशक में इंटीग्रल साइकोलॉजी और इमीग्रेशन फिलॉसफी को स्पष्ट करने वाले पहले व्यक्ति थे। उनके शोध पत्रों का संकलन 1986 में इमीग्रेशन साइकोलॉजी शीर्षक से प्रकाशित हुआ।"(3)

उदात्त सत्य का ज्ञान

अरविंद जी के दर्शन का लक्ष्य उदात्त सत्य का ज्ञान है जो समग्र जीवन-दृष्टि द्वारा प्राप्त होता है। समग्र जीवन-दृष्टि मानव के ब्रह्म में लीन या एकाकार होने पर विकसित होती है। ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण द्वारा मानव विशेष बन जाता है। वह सत्, रज, तम की प्रवृत्ति से ऊपर उठकर ज्ञानी बन जाता है। अति मानस की स्थिति में व्यक्ति सभी प्राणियों को अपना ही रूप समझता है। जब व्यक्ति शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक दृष्टि से एकाकार हो जाता है तो उसमें दैवीय शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। मानव मस्तिष्क के विचार-स्तर, चित्त, मानस बुद्धि तथा अंतर्ज्ञान होता है जिनका निरंतर विकास होता है। श्री अरविंद जी ने अंतर्ज्ञान को विशेष महत्व दिया। अंतर्ज्ञान के द्वारा ही मानवता ने प्रगति की वर्तमान दशा को प्राप्त किया है। अंतर्ज्ञान में व्यक्ति को अज्ञान से संदेश प्राप्त होते हैं जो ब्रह्म ज्ञान के आरंभ का परिचय है।

भारतीय आध्यात्मिक ज्ञान, जो सर्वोच्च उपलब्धि है, उच्च स्तरीय अनुशासन के बिना संभव नहीं है। इसमें आत्मा और मस्तिष्क की पूर्ण शिक्षा शामिल है। महर्षि अरविंद की धारणा के अनुसार, शिक्षा का लक्ष्य अति मानस की स्थिति तक धीरे-धीरे पहुँचाना होना चाहिए। आत्मज्ञान, सृजनात्मकता तथा बुद्धिमत्ता सम्पूर्ण श्री अरविंद दर्शन का सार मानी जाती है। अरविंद जी के दर्शन की चरम परिणति उनके शैक्षिक दर्शन में होती है। यह गागर में सागर भरने जैसा है। शिक्षा विकासशील आत्मा के सर्वांगीण विकास में सहायक तथा मानव को उच्च आदर्शों के प्रयोग हेतु सक्षम बनाती है। श्री अरविंद दर्शन की एक खासियत कल्पना शक्ति से आध्यात्मिक जीवन को सम्पूर्ण मनुष्य जाति के लिए संभव बनाना है। आध्यात्म की शक्ति हर व्यक्ति के अंदर विद्यमान है और प्रयत्नपूर्ण उसे सभी मनुष्य प्रकट कर सकते हैं। उनके दर्शन में केवल यही संभावना प्रकट नहीं हुई बल्कि सम्पूर्ण सृष्टि को अतिमानवी अतिमानस से अभिपूरित किया है। मानव आध्यात्म जीवी बन जाए तो देवस्तर तक पहुँच सकता है। परम चेतना के भीतर जो अद्‌भुत शक्तियाँ छिपी हैं, एक दिन वह सभी शक्तियाँ मानव में अवश्य ही प्रकट हो जाएंगी। यह कोई कोरी कल्पना न होकर अपितु एक ऐसा सर्वांगीण जीवन दर्शन है जो हमें यही सिखाता है कि आध्यात्म संकल्पहीन व्यक्तियों का कार्य नहीं बल्कि दृढ़ संकल्पित व्यक्ति ही प्राप्त कर सकता है। आध्यात्म का आवरण व्यक्ति को पराश्रित नहीं बनाता बल्कि देव पुरुष बनाता है।

श्री अरविंद जी मानते थे कि मानवजाति के सामने जो अंधकार छाया हुआ है वह केवल उसकी बुद्धि और अज्ञान वश है किन्तु इस अज्ञानता की धुंध छटते ही मानव केवल चिंतक व विचारक न रहकर आत्म द्रष्टा बन जाएगा। ज्ञान का अरूणोदय बुद्धि के अवसान के बाद ही होता है। जब मानव सामान्य बुद्धि के धरातल से ऊपर उठेगा, तो उसकी बुद्धि तीन प्रकार से परिवर्तित होगी: चौत्तिक (साइकिक), आध्यात्मिक, और अति मानसिक। चौत्तिक रूपांतरण का अर्थ है अहम् का विसर्जन। ज्ञान के आवरण का हटना आध्यात्मिक परिवर्तन कहलाता है। आरोह-अवरोह के माध्यम से अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति को अति मानसिक उत्थान कहा जाता है। यद्यपि इस रूपांतरण प्रक्रिया की पूर्णता की कोई निश्चित अवधि नहीं है, लेकिन उन्होंने यह स्पष्ट रूप से कहा कि आरंभ में यह रूपांतरण स्वल्प लोगों को प्राप्त होगा। बाद में यही लोग समाज की धुरी साबित होंगे, जिसके चारों तरफ पूरा समाज और विश्व परिभ्रमण करेगा। श्री अरविंद का मानना था कि पूर्ण योग उस शक्ति, प्रकाश, और चेतना को हम सबके अंदर अवतरित करेगा जिससे पार्थिव चेतना ऊपर उठ सके, जो सृष्टि में ऐसा देवोपम वातावरण बनाने में समर्थ हो और धरती पर ही स्वर्ग की अनुभूति करा सके। श्री अरविंद जी का मानना था कि षकिसी लोक की झलकी, ज्योति दर्शन या कोई आध्यात्मिक दर्शन की अनुभूति होना श्स्वश की स्थिति से ऊपर उठ जाना, सर्वभौम आत्मा का अनुभव होना आत्मिक प्रगति के आर्रभिक सोपान का एक गुण भर है। प्राचीन योगी इसे इतिश्री मान स्वर्ग मुक्ति की कल्पना करते हैं।

निष्कर्ष

श्री अरविंदो आध्यात्मिकता, राष्ट्रीय भावना और परमज्ञान के अद्‌भुत संगम थे। महर्षि अरविंद का चिंतन विश्व-मानवता की सर्वोच्च आदर्श भावना से संचालित था। अज्ञानता के कारण सत्य, अस्तित्व का सत्य, दिव्य चेतना का सत्य, शक्ति और कार्य का सत्य, और आनंद का सत्य खो जाता है। इससे व्यक्ति का आत्मविश्वास प्रभावित होता है। आत्मविश्वास पर महर्षि ने कहा कि आत्मविश्वास व्यक्ति के अंदर उत्पन्न होने वाला भाव है यह ज्ञान और अनुभव पर निर्भर नहीं करता। यदि कोई व्यक्ति अतिमानस बनना चाहता है तो उसकी यह इच्छा महज अहंकार को दर्शाती है। अतिमानसता का अर्थ ऐसा मनुष्य होना नहीं है जो अपनी प्रकृति की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका हो, यह मानवीय महत्ता, ज्ञान, बुद्धि, इच्छा, चरित्र, प्रतिभा, सक्रिय शक्ति, साधुवाद, प्रेम, पवित्रता या पूर्णता की सर्वोच्च कोटि को प्राप्त करना भी नहीं है। अतिमानस तो मानवीय प्रकृति की उच्चतम चेतना से भी आगे और महत्वपूर्ण चेतना है। श्री अरविंदो जी के विचारों में स्पष्ट है कि जब हम अहं से भिन्न अन्य चेतना में निवास करना या उसके अधीन होना प्रारंभ करते हैं तो यह आध्यात्मिकता होती है। विशाल, अनंत, स्वंभू, अहंकार से रहित चेतना ही परमात्मा कहलाती है। यहाँ परमात्मा कहने से अर्थ पुरुष, ब्रह्म, भगवान है। सर्वोच्च आध्यात्मिकता जिज्ञासा की ऐसी अवस्था ही तो धार्मिक सिद्धांत से परिचालित होती है।

सन्दर्भ सूची:

1. दुबे, यु. सी. (2007). एकात्मवाद श्री अरविंदो के दर्शन की विशिष्ट विशेषता, डी. के प्रिंटवर्ल्ड, नई दिल्ली
2. पुलिगंडला, र. (1997). भारतीय दर्शन के मूल सिद्धांत, डी. के प्रिंटवर्ल्ड, नई दिल्ली
3. सच्चिदानंद, के. (1993). हू इज हू ऑफ इंडियन राइटर्स सप्लीमेंट्री वाल्मीकि, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

सहायक ग्रन्थ :

1. प्रेम, स. (1968). श्री अरविंदो, या चेतना का रोमांच, श्री अरविंदो आश्रम प्रेस, पांडिचेरी, भारत
2. मुखर्जी, प. (2000). श्री अरविंदो पेरिस, डेस्क्ले डे ब्रोशर
3. मिश्रा, म. क. (2018). यंग अरविंदो विजन: द वजीर्स ऑफ बसोरा, बुक डिपो प्रकाशन, बरेली
4. वैन ब्रेखेम, ज. (1999). बियॉन्ड मैन: द लाइफ एंड वर्क ऑफ श्री अरविंदो एंड द मदर, हार्पर कॉलिन्स, नई दिल्ली
5. कुल्लूरी, श. (1989). श्री अरविंदो की कविता में प्रतिवाद, अभिनव प्रकाशन.
6. सेठना, के. डी. (1992). श्री अरविंद का दर्शन और कार्य, श्री अरविंदो आश्रम प्रेस, पांडिचेरी, भारत
7. सिंह, र. (2008). श्री अरविंद: मेरी दृष्टि में, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली
8. अयंगर, के. आर., और श्रीनिवास, (1985). श्री अरविंदो: एक जीवनी और एक इतिहास. (खंड 2). पवित्र- जीवनी शैली, श्री अरविंदो शिक्षा केन्द्र.

भारतीय दर्शन में महर्षि गौतम का अवदान

डॉ० रत्नेश अमन

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, नालन्दा कॉलेज बिहारशरीफ, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

मिथिला भारतीय दर्शन का केन्द्र बिन्दु उद्‌गम स्थल रहा है। उसमें भी खासकर दरभंगा जिला न्यायशास्त्र का उद्‌गम स्थल है। भारतीय दर्शन के विविध शाखाओं के जन्मस्थल का दुलर्भ पृथक्करण का प्रस्ताव कठिन है। न्याय एवं मीमांसा के विकास में मिथिला की भूमि विशेष रूप से उर्वरा सिद्ध हुई। प्राचीन न्याय शास्त्र के प्रवर्त्तक अक्षपाद गौतम दरभंगा जिला के ही थे, तो नव्यन्याय के जनक महामहोपाध्याय गंगेश उपाध्याय अविभक्त दरभंगा जिला के। वैशेषिक दर्शन के संस्थापक कणाद तो संख्य दर्शन के अगुआ कपिल एवं पूर्व मीमांसा के जन्मदाता जैमिनी सबों का सम्बन्ध किसी न किसी रूप से दरभंगा जिला से रहा है।

सम्भवत: विश्व के किसी भी जिला को उतने नैयायिकों को उत्पन्न करने तथा उतने न्यायशास्त्र पर ग्रन्थ सृजन करने का कभी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ जितना अकेले दरभंगा जिला को प्राप्त हुआ। उसी प्रकार मीमांसा दर्शन की तीनों पद्धतियों का आविर्भाव एवं विकास में भी दरभंगा जिला का अप्रितिम योगदान है। मीमांसा शास्त्र की तीनों प्रचलित पद्धतियों के जन्मदाता- कुमारिल भट्ट-भाट्ट मत, प्रभाकर मिश्र, गुरूमत एवं मुरारी मिश्र-मुरारी मत ये तीनों ही यहाँ के महान विभूति थे। मिथिला ब्राह्मण धर्म का अभेद्य किला माना जाता था। ऐतिहासिक युग के आरम्भ से अनीश्वरवादी बौद्ध एवं जैनधर्म का प्रभाव मिथिला के पड़ोसी प्रदेशों पर शीघ्रता से पड़ चुका था। उनका कभी आरोह होता था तो कभी अवरोह। उन धर्मों के प्रभाव से मिथिला को बचाने के बौद्धिक अभियान में मीमांसा की तीनों पद्धतियों का उद्‌भव एवं विकास यहाँ हुआ।

यदि प्राचीन मिथिला को जनक, याज्ञवल्क्य एवं गौतम की जननी होने का गौरव है तो उद्योतकर, मण्डन, वाचस्पति उदपन, गंगेश, पक्षधर भयस्वी, शंकर जैसे सपूत भी उनके गौरव गाथा में चार चाँद लगाया था।

मिथिला में न्यायदर्शन का उद्‌भव एवं विकास अति प्राचीन काल में हुआ। न्यायदर्शन का मूल ग्रन्थ 'न्यायसूत्र' के रचनाकार अक्षपाद गौतम दरभंगा जिला के ही थे। महर्षि गौतम का आश्रम दरभंगा जिला के जाले प्रखण्ड में मौजे ब्रह्मपुर प्रगन्ना भरौडा में था, जिसका उल्लेख स्कन्दपुराण करता है-

आसीद् ब्रह्मपुरी नाम्ना मिथिलायां विराजित।
तस्यां वसति धर्मात्मा गौतमो नाम तापस:।
अहल्यां नाम तत्पत्नी पतिभकता प्रियंवद।
सर्व-लक्षण सम्पन्ना सासी त्सर्वांग सुन्दरी।।

महर्षि गौतम का जन्मस्थल गौतम कुण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ से 3 कि.मी. के लगभग दक्षिण में अहियारी ग्राम है। इस ग्राम में गौतम की पत्नी अहिल्या का एक मंदिर है जिसमें अहिल्या की पीड़ी शिलाखण्ड के रूप में मौजूद है। इसी तरह गौतम के श्राप से पत्थर हुई अहल्या का उद्धार विश्वमित्र मुनि के साथ जनकपुर जाते समय राजकुमार श्री राम ने किया था। मंदिर के समीप में अभी भी अहल्याह्रद वर्त्तमान है जिसका उल्लेख बृहद विष्णु पुराण करता है-

गौतमस्याश्रमे याम्ये पातालोस्थित-पाथसि
स्नात्वा कुण्डे नमेद्‌भक्तया ययु: पाठ-फलं लभेत्।
ततो गच्छेद ब्रह्मऋषे गौतमस्य वनं नृ।
अहल्यायाह्रदे स्नात्वा लभते परमां गतिम्।।
अहल्या महाराजा वृहदश्व की पुत्री थी।

अक्षपाद गौतम जो न्यायशास्त्र के जनक थे जिनका जन्म मिथिला में हुआ था।[1] ये मिथिला के थे और इनका आश्रम यहाँ था, इसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण, महाभारत, स्कन्दपुराण का हिमवतखण्ड, पद्मपुराण, बृहदविष्णुपुराण, मिथिला-महात्म्य आदि साहित्यिक श्रोत करता है। संस्कृत साहित्य के विविध ग्रन्थों में न्यायशास्त्र के रचयिता का उल्लेख विविध नामों से हुआ है। पद्मपुराण[2] स्कंदपुराण[3] गांधर्वतंत्र[4] नैषध चरित और विश्वनाथ वृति[6] आदि ग्रन्थों में न्यायशास्त्र के रचनाकार के रूप में महर्षि गौतम का उल्लेख मिलता है तो इसके विपरित न्यायभाष्य[7] न्यायवार्तिक[8] न्यायवार्तिक तात्पर्य टीका[9] और न्यायमश्जरी[10] आदि न्यायशास्त्र के अनेक ग्रन्थ न्यायशास्त्र के प्रणेताके रूप में 'अक्षपाद' का उल्लेख मिलता है। इस सम्बन्ध में एक तिसरा मत, महाकवि भाष रचित 'प्रतिमा नाटक' में उद्धत है जो न्यायशास्त्र के रचनाकार के रूप में श्री मेधातिथि के नाम का उल्लेख करते हैं।[11]

उपरोक्त विवेचन के आधार पर न्यायशास्त्र के रचनाकार के रूप में हमें तीन नामों का उल्लेख मिलता है। इन तीन नामों में यह निर्णय करना कठिन है कि वस्तुत: न्याय सूत्र के प्रणेता कौन थे? प्राचीन पण्डित परम्परा अक्षपाद और गौतम को एक ही व्यक्ति मानता है। तब प्रश्न उत्पन्न होता है कि महर्षि

गौतम का दूसरा नाम अक्षपाद क्यों पड़ा? इस संदर्भ में जो भी जनश्रुतियाँ का उल्लेख मिलता वह कपोल कल्पना मात्र है। महामहोपाध्याय फणिभूषण तर्क वागीश ने 'न्यायदर्शन' कि भूमिका में स्पष्ट लिखा है कि अहल्यापति महषि गौतम ही न्याय सूत्रकार अक्षपाद है।[12] क्योकि स्कन्द पुराण में इनको अक्षपाद कहा गया है।[13] महाभारत का शान्ति पर्व मेधालिखि को अहिल्पापति गौतम के रूप में उल्लेख करता है। अर्थात् मेधातिथि गौतम का दूसरा नाम है[14]–

मेधातिथिर्महाप्राज्ञो गौतमस्तपसि स्थितः।

विमृश्य लेन कालोन पत्ना संसिाव्यतिक्रम।।

पुराण आदि प्राचीन संस्कृत साहित्य के विविध श्रोत गौतम ओर अक्षपाद को अलग-अलग व्यक्ति मानते हैं। पुराण के अनुसार महर्षि गौतम मिथिला के थे तो अक्षपाद कठियावाड़ के प्रभास पाटपा के जहाँ भगवान कृष्ण का देहावसान हुआ था। ब्रह्माण्ड पुराग के अनुसार अक्षपाद शिवजी के अंशभूत सोमशर्मा नामक ब्राह्मण के पुत्र थे और प्रभास पाटा के रहनेवाले जातुकर्णी व्यास के समकालीन थे।[15]

स्कन्दपुराण के अनुसार महायोगी महर्षि गौतम योगवल से दीर्घायु थे और विभिन्न समय में विभिन्न स्थलों पर विभिन्न कार्यों को सम्पादित किया। कूर्मपुराण इनको शिवावतार मानता है तो शिवपुराण में इनके महात्भ्यका उल्लेख हैं लिङ्गपुराण अध्याय-24 में अक्षपाद और उल्लूक मुनिको शिवावतार सोम शर्मा के शिष्य के रूप में उल्लेख करता है। एक तरफ ब्रह्माण्ड पुराण इनको सोमशर्मा का पुत्र और कणाद और उल्मूक को भाई के रूप में उघृत करता है तो लिगपुराण शिष्य के रूप में, महाभारत का शान्ति पर्व अध्याय47 के अनुसार भीष्मपितामह के देहावसान के समय वदेव्यास, नारद, गौतम और उल्लूक मुनि उपस्थित थे।[16] ब्रह्माण्ड पुराण एवं लिंगपुराण अक्षपाद को उल्लूक मुनि का भाई वा गुरूभ्राता मानता है तो महाभारत से यह सिद्ध होता कि गौतम और अक्षपाद एक ही थे। एवं कणाद एवं उलूक मूनि भी एक थे।[17] महाभारत से बहुत पहले कपाद और गौतम ने क्रमशः वैशेषिक सूत्र और न्याय सूत्र का प्रणयन किया।[18]

सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त के History of Indian Philosophy में इस बात का उल्लेख किया है कि गौतम और मेधातिथि दोनों में से कोई भी न्यायसूत्र के प्रणतो नहीं थे।[19] परन्तु न्यायशास्त्र के साथ महर्षि गौतम का नाम इसातर हजुटा हुआ है कि उसे अलग करना किसी से भी संभव नहीं है। पुस्तदर पुस्त विद्वानों की श्रृंखला इनको न्यायशास्त्र के प्रणाते के रूप में मानता हुआ चला आ रहा है। उपरोक्त अनेको प्रमरण स्पष्ट रूप से महर्षि गौतम को न्यायशास्त्र के प्रणते रूप में प्रति पादित किया है।[20] महर्षि गौतम न्यायशास्त्री के रूप में केवल भारतवर्ष में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में ख्याति प्रापत कर चुके हैं। 2nd AD में गौतम के नाम का उल्लेख पार्शियन सासानि वंशीय राजा Ardashir (211.241 AD) Shapir (242-72 AD) के शासन काल में संगृहीत Khorda avest के एक Yasth में (13th Yasth, Para 16) और Early religions Poetry of Persia By I.H. Moulton Pg. 141 में महर्षि गौतम का उल्लेख मिलता है।[21]

वैसे अविभाजित दरभंगा जिला ही ऐसा जिला है जिसमें प्राचीन न्यायशास्त्र के जनक महर्षि गौतम और नव्यन्याय के जनक महामोपाध्याय गंगेश उपाध्यायक का अविर्भाव हुआ था। साथ ही जितने नैयायिक और न्यायशास्त्र पर कार्य यहाँ हुआ उतना अन्यत्र और कहीं नहीं हुआ।[22] न्याय दर्शन का मूल ग्रन्थ अक्षपाद गौतम का 'न्यायसूत्र' है जिसमें पाँच अध्याय है और प्रत्येक अध्याय दो आहिन्क में विभक्त है। न्याय सूत्र के पश्चात् न्यायभाष्य के अनेको ग्रन्थ कि रचना हुई यथा- वात्स्यायन का 'न्यायभाष्य', उद्योतकर का 'न्यायवार्तिक' वाचस्पति का न्यायवार्तिक तात्पर्य टीका' उदपन का न्यायवार्तिक तात्पर्य परिशुद्धि और कुसुमांजलि, जयनी का न्याय मंजरी आदि। इन सभी ग्रन्थों में न्यायसूत्र के विचारों की विशद व्याख्या कि गई हैं एवं न्यायसूत्र के विरूद्ध जो आक्षेप अवैदिक दार्शनिकों ने लगाया। उसका खंडन किया गया।

महर्षि गौतम न्यायशास्त्र के साि वाण विद्या में भी निपुर्ण थे और साथ ही छाता और जूता के पहले प्रयोगकर्त्ता।[24] महामहोपाध्याय डॉ. उमेश मिश्र न्याय सूत्र के प्रणतो के रूप में गौतम का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि इसका रचना काल 483 BC से 247 BC तक था।[25] अर्थात् इसका तात्पर्य यह हुआ जो न्यायसूत्र की रचना मात्र गौतम ने नहीं कि भपितु गौतम की एक श्रृखला की जिसके अन्तर्गत अअपाद और मेधातिथि भी आते हैं।

महर्षि गौतम न्यायशास्त्र के अतिरिक्त स्मृतिकार भी थे। साथ ही धनुर्वेद पर भी इनकी कोई रचना की यह विद्वानों का मानना है। इनके पुत्र का नाम शतान्नद था जो निमिकुल के आचर्य थे।[26]

विद्यमानधर्म सूत्र सब में गौतम का धर्म सूत्र सबसे पुराना है।[27] इसको विशेशतः सामवेदी पढते हैं। चरण व्यूहकाटीका से यह पता चलता है कि गौतम सामनदे के राणायनीय शाखा के नौ उपविभागों में से ये एक उपविभाग के आचार्य या शाखाकार थे।[28]

सामवेद का लाट्यायन श्रोतसूत्र (1.3.3 और 1.4.17) तथा द्राध्यायण श्रोत सूत्र (1.4.17 और 9.3.15) में गौतम नाम के आचार्य का वर्णन अधिकतर आया है। सामवदेका गोभिल सूत्र (3.10.6) गौतम को प्रमाण स्वरूप मानता है। अर्थात् श्रोत, गृह्य एवं धर्म के सिद्धान्त का समन्वित रूप एक सम्पूर्ण गौतम सूत्र है। गौतम के धर्मसूत्र का सामवेद से गहरा तालुकात है। पी.वी. काणे के अनुसार गौतम एक जातिगत नाम है। कठोपनिषद में नचिकेता (2.4.15 और 2.5.6) और उनके पिता (1.1.10) दोनों गौतम नाम से जाने गये। छान्दोग्योश निषद में हारिद्रुभत गौतम नाम के एक आचार्य का उल्लेख मिलता है।[29]

टीकाकार हरदत्त के अनुसार गौतम धर्म सूत्र में कुल 24 अध्याय है। कलकत्ता वाला संस्करण में 'कर्म निपाक' नाम का एक और अध्याय है। जो 19वें अध्याय के पश्चात् आया है। यह धर्म सूत्र केवल गद्य में है, उद्धारण के रूप में भी किसी पद्य का उल्लेख नहीं है। डॉ. काणे के अनुसार गौतम धर्म ईसापूर्व 400-600 से पहले प्रतीत हो चुका था।[30] इस तरह यह प्रमाणित होता है कि गौतम, गौतम बुद्ध से पहले हुए। पाणिनि का अष्टाध्यायी कि रचना इनके पश्चात् महामहोपाध्याय परमेश्वर झा का मत है कि 'गौतम मुनि नास्तिक मत के खण्डनार्थ पंचाध्यायात्मक न्यायसूत्र का प्रणयन किया।[31]

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः-

1. Dr. U.R. Jha - Contribution of Mithila to Sanskrit Proceeding of International Sanskrit conference Vol-1 pg. 111. New Delhi - 1976.
2. Padmapuran Uttar-Khand, Adhyay - 216.
3. Skand-Puran, Kalika-Khand Adhyay - 17.
4. Gandharvatantra - Pranatopini tantra.

5. Naushadh - Charit Sarg - 17.
6. Vishwanath….
7. Nyay Bhashya, Vijaynagaram Sanskrit series.
8. Nyaya vartic.
9. Nyaya varitic Tatyarya Tika.
10. Nyaya Manjari Prathan Parichhet.
11. भासकृत प्रतिमानाटक अंक–5 pg. 79.
12. म.म. फणिभूषण तर्क वागीशकृत न्यायपरिचय हिन्दू रूपाभरण –डॉ. किशोर नाथ झा की भूमिका में pg. 40.
13. Kand Puran Maheshwar Khand n` Kumari Khand Adhyay 55 Shlok - 5.
14. Mahabharat Shanti Parva Adhyay - 265 Shlok - 45 Bangavasi Adition.
15. A:S.B.K द्वारा वायुपुराण नाम से प्रकाशित ब्रह्माण्डपुराण अध्याय – 23.
16. Ibid pg. 42प
17. Ibid pg. 42प
18. Ibid pg. 42प
19. संस्कृत वाङ्मय का बृहद इलिदास Vol. IX pg. 12.
20. S.N. Das Gupta History Indian Philosophy Vol- II pg. 393-94.
21. Reg. Tark Bhasha pg. 25. चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी।
22. Ibid pg. 26.
23. R.R. Diwakar, Bihar Through the Ages RPJRI Patna.
24. कल्याण हिन्दू संस्कृति अंक pg. 818.
25. M.M. Dr. Umesh Mishra, History of Indian Philosophy Vol. II pg. 20.
26. Dori Lal Sharma 'Shrotriya-Mithila Ki Panditya Parampara pg. 35.
27. Dr. P.V. Kane - Dharma Shastra Ka Itihus pg. 10.
28. Ibid pg. 11.
29. Ibid pg. 11.
30. Ibid pg. 31.
31. Mm Parmeshwar Jha- Mithila Tatva vimarsh pg. 42.

गाँधी के सर्वोदय के परिप्रेक्ष्य में नये भारत की संकल्पना

डॉ० शम्भू नाथ दुबे

सहायक आचार्च, ए.आर.एस.डी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

Abstract

मानव सभ्यता प्रारंभ से ही विकास के स्वरूप और आदर्श शासन के नये-नये आयामों को परिकल्पित किया है। विकास के स्वरुप की पाश्चात्य अवधारणा पूजींवाद और समाजवाद दोनों ही समाज व् राष्ट्र के सम्पूर्ण विकास को सकारित करने में असफल रहा हैं। आदर्श शासन के रूप में लोकतंत्र भी सार्वभौमिक रूप से सभी की भागीदारी और हिस्सेदारी सुनिश्चित करने में पूर्णतया सफल नहीं है। स्वतंत्रता के उपरांत भारत ने भी विकास के पाश्चात्य स्वरुप के प्रति ही आकर्षित हुआ और पूंजीवाद व् समाजवाद का समन्वय कर मिश्रित अर्थव्यवस्था के स्वरुप को अंगीकार किया। विकास प्रक्रिया के इस प्रारूप में 1991 में परिवर्तन किया गया तत्पश्चात भी समावेशी विकास के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सका। विकास प्रक्रिया के पाश्चात्य प्रारूप के सीमित सफलता के कारण ही भारत सरकार विशेषरूप से प्रधानमंत्री ने 'नए भारत' की संकल्पना प्रस्तुत की और एक लक्ष्य निर्धारित किया जिसका उद्देश्य सभी का सामान रूप से विकास और सभी की भागीदारी अर्थात 'सबका साथ और सबका विकास'। जिसका प्रारूप भी भारतीय हो और उद्देश्य भी, इस परिप्रेक्ष्य में आत्मनिर्भर और विकसित भारत बनाने के लिए 'संकल्प से सिद्धि' का आवाहन कर नए भारत की रूपरेखा प्रस्तुत किया। नए भारत के सर्वांगीण विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भारत सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों का विश्लेषण किया जाएँ तो गाधी का सर्वोदय व् दीनदयाल उपाध्याय का अन्त्योदय का सिद्धांत परिलक्षित हो रहा हैं।

Key words – सर्वोदय, सबका साथ ख्र सबका विकास, संकल्प से सिद्धि, नव - भारत, अद्वैतवाद, अन्त्योदय,

'नव भारत' की संकल्पना विकास की भारतीय अवधारणा से प्रभावित है। जिसका आधार सर्वोदय है। विकास की भारतीय अवधारणा प्राचीन काल से ही " सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।'' और "वसुधैव कुटुम्बकम" पर आधारित रही है। सर्वोदय का सिद्धांत इसी आदर्श का प्रतिरूप है जिसका आधार प्राचीन भारतीय दर्शन का अद्वैतवाद है। इस प्रकार सर्वोदय का आदर्श है अद्वैतवाद और उसकी नीति है समन्वय। जिसका उद्देश्य मानवकृत विषमता का निराकरण करना और प्राकृतिक विषमता को कम करना है। सर्वोदय समाज-निरपेक्ष, शाश्वत और व्यापक मूल्यों की स्थापना करना चाहता हैं। सर्वोदय ऐसे वर्ग-विहीन, जाति-विहीन और शोषण विहीन समाज की स्थापना करना चाहता हैं, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और समूह को अपने सर्वोच्चतम विकास के साधन और अवसर उपलब्ध होंगे ,अहिंसा और सत्य के द्वारा ही यह क्रांति संभव हो सकती हैं।

सर्वोदय सामाजिक-राजनीतिक आदर्श से संबंधित एक अवधारणा है, जिसका प्रतिपादन गाँधी ने सत्य, अहिंसा और अद्वैत की मूल भावना को साकारित करने के लिए किया था। सर्वोदय वस्तुतः समाज के समस्त वर्गों एवं उनके जीवन के सभी पक्षों के उत्थान का एक अद्वितीय मानवीय प्रयास है। जिसका लक्ष्य एक ऐसे सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है जिसमें शोषण, संघर्ष एवं प्रतियोगिता के स्थान पर सहयोग एवं प्रेम, विषमता के स्थान पर समता, वर्गहित के स्थान पर सर्वहित की मंगलकामना निहित होती है। गाँधी सर्वोदय को जीवन-दर्शन के मूलभूत सिद्धांत के रूप में स्वीकार करते हैं। गाँधी की इस धारणा का पोषण एवं व्यावहारिक रूप देने का प्रयास आचार्य विनोबा भावे, जयप्रकाश नारायण आदि ने कालांतर में किया इसे आज भारत सरकार की नीतियों में व्यावहारिक रूप से देखा जा सकता है।

सर्वोदय राजनीति की जगह लोकनीति पर बल देती हैं। राजनीति में जहाँ शासन मुख्य हैं, वहाँ लोकनीति में अनुशासन। राजनीति में जहाँ सत्ता मुख्य हैं, वहाँ लोकनीति में स्वतन्त्रता। राजनीति में जहां नियन्त्रण मुख्य हैं, वहाँ लोकनीति में संयम। राजनीति में जहाँ सत्ता और अधिकारों की स्पर्धा मुख्य हैं, वहाँ लोकनीति में कर्तव्यों का आचरण प्रमुख है। सर्वोदय का दर्शन समग्र जीवन के लिए, निरपेक्ष, और सार्वभौमिक होना चाहिए।

सर्वोदय यह स्वीकार करता हैं कि मानव की आत्मा पवित्र हैं। वह स्वतन्त्रता, समानता, न्याय तथा भाईचारे के आदर्शों को अत्यधिक महत्व देता हैं। सर्वोदय शक्ति की राजनीति के स्थान पर सहयोग की राजनीति की स्थापना करना चाहता हैं। वह पारस्परिक सहायता के ऐसे कार्यो पर बल देता हैं जिन्हें जनता स्वयं कर सके।

सर्वोदय ने गाँधी के विकेन्द्रीकरण तथा ग्रामराज से सम्बन्धित विचारों को विकसित करने का प्रयास किया हैं। गाँधी के अनुसार सर्वोदय का अर्थ आदर्श समाज-व्यवस्था हैं। इसका आधार सर्वव्यापी प्रेम हैं। इसलिए इसमें निरपवाद रूप से हिन्दू और मुसलमान, छूत और अछूत, काले और गोरे सबके लिए समान स्थान हैं। किसी भी व्यक्ति या समूह का दमन, शोषण या विनाश नहीं किया जाएगा। गाँधी के लिए, एक साथ समान रूप से सबका उदय हो, यही सर्वोदय हैं। गाँधी की सर्वोदय की अवधारणा इस बुनियाद पर आधारित थी कि व्यक्ति की भलाई ऐसी हैं जिसमें सभी की भलाई हैं। उन्हीं के शब्दों में 'मैं प्रत्येक

इंसान को पूरा सामर्थ्य बनने और समाज का पूर्ण विकसित सदस्य देखना चाहता हूँ। यह मूलभूत सिद्धांत " सबका साथ ख्र सबका विकास" में निहित दिखाई देता है।

सर्वोदय का आधार -

सर्वोदय की अवधारणा पर गीता, शंकर के अद्वैतवाद, उपनिषद्, जैनों की अहिंसा, बौद्ध धर्म के बोधिसत्व आदि के शिक्षाप्रद मूल्यों का प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त गाँधी के सर्वोदयं पर थोरो, टालस्टॉय, रस्किन आदि के विचारों का भी प्रभाव था। गाँधी रस्किन की पुस्तक श्अंटु द लास्ट से विशेष रूप से प्रभावित थे। इसमें तीन मुख्य बातें थीं -

1. व्यक्ति का हित समष्टि के हित में समाहित है अर्थात व्यक्ति और समष्टि में विरोध नहीं है।
2. सभी लोगों के श्रम की कीमत एवं महत्ता बराबर है।
3. किसान अथवा कामगार का जीवन ही सच्चा जीवन है अर्थात् उत्पादन प्रक्रिया में श्रम महत्वपूर्ण है।

'हरिजन' में गाँधी लिखते हैं कि यदि हम चाहते हैं कि हमारा 'सर्वोदय' अथार्त सच्चे लोकतंत्र का सपना सच्चा साबित हो, तो हम छोटे से छोटे भारतवासी को भारत का उतना ही शासक समझेंगे, जितना देश के बड़े से बड़े व्यक्ति को। इसके लिए शर्त यह हैं कि सब शुद्ध हो। तब कोई भी अपने दिल में जाति-जाति के मध्य और सवर्ण- गैर सवर्ण के बीच भेदभाव नहीं रखेगा। हर एक सबको अपनी बराबरी का समझेगा और सबको प्रेम के रेशमी जाल में बाँध रखेगा। हम मेहनत करने वाले मजदूर और धनी पूंजीपति के समान समझेंगे और वे मानसिक और शारीरिक श्रम में कोई अंतर नहीं करेंगे। सर्वोदय की धारणा अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन दोनों से तुलनात्मक, मात्रात्मक, गुणात्मक, भावनात्मक रूप से श्रेष्ठ और व्यापक है।

मात्रात्मक रूप से श्रेष्ठता :

उपयोगितावाद के अनुसार अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख ही जीवन का चरम आदर्श है। यहाँ अधिकतम शब्द संख्या को संकेत करता है जबकि सर्वोदय के श्सर्वश में सबका समावेश हो जाता है। इसमें अखंडता, समानता तथा अद्वैत का बोध होता है। पुनः उपयोगितावाद में अधिकतम के हित के लिए कुछ लोगों को साधन बनाया जा सकता है। सर्वोदय में यह असंभव है। मार्क्सवाद में केवल सर्वहारा वर्ग के हित की बात निहित है जबकि सर्वोदय में सबके हित की मंगलकामना निहित है।

गुणात्मक रूप से श्रेष्ठता :

बेंथम के उपयोगितावाद में सुखों में गुणात्मक भेद नहीं माना गया है। यहाँ भौतिक सुखों को वरीयता दी गई है। मार्क्स जीवन के आर्थिक पक्ष के उत्थान पर विशेष बल देते हैं जबकि सर्वोदय की अवधारणा में जीवन के सभी पक्षों के समग्र उत्थान की बात कही गई है। यहाँ भौतिक उन्नति के साथ-साथ भौतिक एवं आन्तरिक उन्नति का भाव भी विद्यमान है।

भावनात्मक रूप से श्रेष्ठता :

डार्विन मनुष्य के बीच संघर्ष को स्वभाविक मानते हैं और योग्यतम के जीवन रक्षा की बात करते हैं जबकि सर्वोदय में परस्पर सहयोग का भाव निहित है। यहाँ प्रेम, त्याग एवं अहिंसा के माध्यम से सबके कल्याण की बात कही गई है। हक्सले श्जियो और जीने दोश का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं परन्तु इससे मनुष्य के बीच तटस्थता उदासीनता एवं सहअस्तित्व मात्र का भाव उभरता है। जबकि सर्वोदय में प्रेम, सहयोग एवं सहअस्तित्व के साथ-साथ सह-सम्पन्नता का भाव भी विद्यमान होता है।

सर्वोदय की अवधारणा के आयाम -

(1) आर्थिक आयाम
(2) सामाजिक आयाम
(3) राजनैतिक आयाम
(4) धार्मिक आयाम
(5) नैतिक आयाम

आर्थिक आयाम

गाँधी सर्वोदय के आर्थिक पक्ष में निम्नलिखित बातों को शामिल करते हैं, गाँधी सर्वोदयी समाज में सभी व्यक्तियों के श्रम करने पर बल देते हैं ताकि उनका आर्थिक विकास सुनिश्चित हो सके तथा परनिर्भरता का भाव समाप्त हो सके। गाँधी नाई एवं वकील दोनों के श्रम की कीमत एवं महत्ता को समान रूप से स्वीकार करते हैं। दोनों समान रूप से उपयोगी हैं, महत्वपूर्ण हैं। वस्तुतः गाँधी यह कहना चाहते हैं कि शारीरिक एवं बौद्धिक श्रम में सामाजिक एवं आर्थिक विभेद स्थापित नहीं होना चाहिए। ष गाँधी आर्थिक न्याय हेतु अर्थात् समाज में आर्थिक विषमता निवारण हेतु ट्रस्टीशिप की अवधारणा का समर्थन करते हैं अर्थात् धनी व्यक्ति अपनी संपत्ति के उतने ही भागों का उपयोग करेगा जितनी उसको आवश्यकता है तथा शेष संपत्ति को समाज की धरोहर मानकर उसका उपयोग समाज के हित में करेगा। आशय है कि वह अपनी अतिरिक्त संपत्ति का केवल संरक्षक के रूप में भूमिका का निर्वहन करेगा। ट्रस्टीशिप की इस अवधारणा के पीछे श्अपरिग्रहश (धन संग्रह न करना) की अवधारणा विद्यमान है। यहाँ यह भी मंतव्य निहित है कि श्सवैभूमि गोपाल की। कहने का

आशय है कि जिस प्रकार ईश्वर की वायु, जल, प्रकाश सबके लिए उपलब्ध हैं, उसी प्रकार भोजन, वस्त्रादि भी सबके लिए उपलब्ध होने चाहिए। भोजन एवं वस्त्रादि को अन्य व्यक्तियों के शोषण का साधन बनाना अनुचित है, अन्यायपूर्ण है। इससे हिंसा एवं रक्तपात की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। अत: धनी व्यक्ति को अपनी अर्जित अतिरिक्त संपत्ति के अनावश्यक उपयोग का नैतिक अधिकार नहीं है। उल्लेखनीय है कि साम्यवाद बल प्रयोग एवं हिंसात्मक कार्यवाही के माध्यम से पूँजीपतियों का विनाश कर उनकी संपत्ति का सामाजिक हित में उपयोग करने की बात करते हैं। पूँजीवाद उत्पादन एवं उपयोग पर पूँजीपति के स्वतंत्र स्वामित्व को स्वीकार करता है जबकि गाँधी आर्थिक समानता की स्थापना हेतु पूँजीवाद एवं मार्क्सवाद के भावात्मक पक्षों को स्वीकार करते हैं। गाँधी उत्पादन के दृष्टिकोण से पूजीवाद एवं वितरण के दृष्टिकोण से समाजवाद की बात करते हैं। उनका कहना है कि यदि पूँजीपतियों का विनाश किया गया या उनकी संपत्ति का बलपूर्वक हनन किया गया तो फिर इससे समाज में कटुता, वैमनस्य, घृणा एवं विद्वेष का भाव उत्पन्न होगा। बल प्रयोग द्वारा श्रमिक वर्ग सत्तारूढ़ होगा और बल प्रयोग से पूँजीपति के संपत्ति का हनन करेगा तो इसमें उसके अन्दर बल प्रयोग एवं हिंसा की प्रवृत्ति की उत्पत्ति होगी। यदि बल प्रयोग द्वारा पूँजीपति का विनाश किया गया तो समाज ऐसे लोगों को खो देगा जिनमें धनोपार्जन की क्षमता एवं उत्पादन की विधियों का ज्ञान है। - पूँजीपतियों के विनाश से सर्वोदय की अवधारणा पर आघात होगा। यहाँ उनके विनाश पर नहीं अपितु नैतिक विकास पर बल दिया जाता है।

इन्हीं कारणों के आधार पर गाँधी यह निष्कर्ष निकालते हैं कि सामाजिक हित में पूँजीपतियों का विनाश उचित नहीं है। यहाँ स्वभावत: यह प्रश्न उठता है कि यदि धनी व्यक्ति स्वेच्छा से अपने अतिरिक्त धन का उपयोग दूसरों के लिए (समाज के लिए) न करे तो फिर क्या किया जाए?

गाँधी यहाँ इस संदर्भ में पूँजीपति को सही मार्ग पर लाने के लिए असहयोग, सत्याग्रह की बात करते हैं तथा इस क्रम में पूँजीपति के हृदय परिवर्तन के माध्यम से इस समस्या का निदान बताते हैं। चूंकि उनमें भी ईश्वरीय गुण (अंश) विद्यमान है, अत: उनमें परिवर्तन की संभावना भी विद्यमान है। गाँधी के अनुसार यह कहते हैं कि ईश्वरीय अंश होने के कारण ईश्वर प्रदत्त भौतिक सामग्री का समान उपयोग करने का अधिकार है। अत: यदि कोई व्यक्ति अपनी अर्जित संपत्ति (अतिरिक्त संपत्ति) का उपयोग सामाजिक कार्यों में करता है तो यह उसके नैतिक कर्त्तव्य को दर्शाता है, दया भाव को नहीं। गाँधी, भारतीय संदर्भ में जहाँ श्रम की प्रचुरता है वहाँ लघु एवं कुटीर उद्योग का समर्थन करते हैं। इससे सभी व्यक्ति स्वावलंबी बनकर भौतिक एवं व्यक्तिगत उत्थान सुनिश्चित कर सकते हैं। गाँधी का कहना है कि व्यापक मशीनीकरण के कई नकारात्मक परिणाम हैं। इसलिए गाँधी ऐसी उत्पादन प्रक्रियाओं के पक्ष में थे जो विकेन्द्रीकरण पर आधारित हो। ऐसी औद्योगिक व्यवस्था हो जिसमें श्रमिक स्वयं स्वामित्व की भूमिका में हो।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि नेहरू मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु व्यापक मशीनीकरण एवं वृहत उत्पादन का समर्थन करते हैं, वहीं गाँधी का कहना है कि हमें अपनी आवश्यकता को कम करना चाहिए। हमारी अनेक आवश्यकताएँ लोभ प्रेरित हो सकती है। इससे उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार हो सकता है। भोगवाद को प्रशय मिल सकता है, साथ ही प्रकृति के अंधाधुंध शोषण की प्रवृत्ति बढ़ सकती है। उसमें व्यक्ति नैतिक एवं आध्यात्मिक रूप से कमजोर हो सकता है। अत: गाँधी इसी आवश्यकता (उचित आवश्यकताओं) की पूर्ति की बात तो करते हैं किन्तु अन्य लोग प्रेरित इच्छाओं के निवारण का प्रयास करते हैं। गाँधी का यह कथन प्रसिद्ध है कि -"प्रकृति प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति तो कर सकती है किन्तु किसी एक व्यक्ति के लोभ को पूरा नहीं कर सकती है।"

उपर्युक्त सिद्धांतों के आधार पर सर्वोदय का उद्देश्य ऐसे समाज का निर्माण हैं जिसकी प्रवृत्ति ग्रामीण सभ्यता की ओर होगी, जिसमें उद्योग विकेन्द्रीकृत होंगे और यथासम्भव ग्राम स्वावलम्बी होंगे। पदार्थो के बाहुल्य की सनक का स्थान ऊँचा किन्तु सादा जीवन लेगा, होड़ के स्थान पर सहयोग होगा और सम्पूर्ण समाज सामुदायिक भावना से ओतप्रोत होगा।

सर्वोदय-विचारकों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध भारत से होने के कारण, उन्होंने ग्रामीण भारत के पुनर्निर्माण की ओर अधिकतर ध्यान दिया हैं। उनका कहना हैं कि भूमि पर गाँव का स्वामित्व होना चाहिए। वर्तमान अर्थव्यवस्था के परिणामस्वरूप नगरों की संख्या तथा उनकी आबादी में वृद्धि हो रही हैं। इन नगरों का आर्थिक दोष यह हैं कि पड़ोसियों में न तो को परिचय रहता है और न किसी प्रकार की सामुदायिक भावना। इनका वातावरण सर्वोदयी मूल्यों की स्थापना के प्रतिकूल होता हैं।

सामाजिक आयाम

गाँधी के सामाजिक विचारों का आधार समानता है। इनके अनुसार सभी व्यक्ति समान है क्योंकि सबमें ईश्वर का अंश है। अत: जाति, धर्म, व्यवसाय आदि के आधार पर जो असमानता, ऊँच-नीच, उत्कृष्ट, निकृष्ट आदि का भाव निर्मित किया गया है वह कृत्रिम है। मनुष्य द्वारा अपनी इच्छापूर्ति हेतु निर्मित है। आदर्श समाज की स्थापना तभी हो सकती है जब ऊँच-नीच का यह अप्राकृतिक भाव समाप्त हो। सामाजिक संदर्भ में यद्यपि गाँधी जन्म आधारित वर्ण व्यवस्था के समर्थक हैं पर वे जाति व्यवस्था व अश्पृश्यता के विरोधी हैं। वे नवीन सामाजिक प्रगतिशील वर्ण व्यवस्था के समर्थक हैं जिसमें सामाजिक समानता का आदर्श निहित है। गाँधी वर्ण व्यवस्था को केवल व्यक्ति के आर्थिक जीवन एवं आजीविका प्राप्ति से संबंधित करते हैं जिसमें ऊँच-नीच का कोई स्थान नहीं है। गाँधी के इस वर्ण व्यवस्था में तीन बातें निहित हैं -

(i) सर्वोदय के अनुसार सब कार्यों, उद्योगों या व्यवसायों में समानता होनी चाहिए। इसमें श्रेष्ठता, निम्नता का भाव नहीं होना चाहिए। इस संबंध में धर्मतंत्रात्मक पदानुक्रम को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

(ii) वंशानुगत कार्य एवं परम्परागत व्यवसाय को व्यक्ति द्वारा अपनी आजीविका का साधन और समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन समझकर करना चाहिए। अर्थात व्यक्ति को अपने स्वधर्म का पालन निष्ठा के साथ करना चाहिए।

(iii) समाज में इस विचार का पालन करने के लिए विभिन्न कार्यों एवं व्यवसायों से प्राप्त होने वाले लोगों में अधिकाधिक समानता होनी चाहिए ताकि सामाजिक प्रतिष्ठा में अंतर नहीं आना चाहिए। यहाँ गाँधी वर्ण व्यवस्था को मानने के साथ-साथ यह भी मानते हैं कि सामाजिक महत्व एवं कीमत की दृष्टि से सभी कार्य समान हैं। अत: किसी कार्य को छोटा या बड़ा नहीं समझा जाना चाहिए।

सामाजिक दृष्टी से सर्वोदय एक ऐसा सिद्धांत हैं, जिसका विश्वास हैं कि हमें एक ऐसे समाज का निर्माण करना हैं जो शोषण रहित समाज हो। जिसमें शोषण और शोषित, धनी और गरीब, ऊंच-नीच का भेद-भाव नहीं हो, अर्थात सभी को समान रूप से विकसित होने का मौका मिले। सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन में सत्य और अहिंसा को उत्तरोत्तर चरितार्थ करने के लिए यह आवश्यक हैं कि राजनीतिक संरचना उनके अनुकूल हो।

राजनीतिक आयाम

जनार्दन पाण्डेय के अनुसार सर्वोदय कोई कल्पना नहीं हैं, बल्कि इसे जीवनदृष्टि मान लेने पर या इसे जीवन में आत्मसात कर लेने पर, इससे विश्व कल्याण संभव हो सकता हैं।आवश्यकता इस बात की हैं कि सर्वोदय व्यक्ति व्यक्ति और संगठन जितना ही व्यावहारिक धरातल पर ठोस और मजबूत बनेगा और तदनुरूप उसके लक्ष्य का सिद्धांत सामाजिक क्षेत्र में सर्वोपयोगी सिद्ध हो सकता हैं। सर्वोदय जीवन-दृष्टि या जीवन पद्धति आज के त्रस्त मानव को नई राह दिखाने में अपनी अहम भूमिका निभा सकता हैं तथा इससे सर्वोदय समाज की स्थापना संभव और साकार हो सकती हैं।

राजनीतिक विचारधारा के रूप में 'सर्वोदय' आधुनिक भारतीय चिंतनधारा हैं, जो मूल रूप से गाँधीवादी दर्शन पर आधारित हैं। भारतीय संस्कृति में सर्वोदय का विचार सदैव से ही निहित रहा हैं, लेकिन विधिवत् रूप से इसे एक आधुनिक विचारधारा का स्वरूप प्रदान करने का कार्य बीसवीं सदी के प्रमुख मनीषी गाँधी ने ही किया।

राजनीतिक सत्ता का विकेंद्रीकरण ही 'सर्वोदय' का लक्ष्य रहा हैं। राजनीतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण से 'सर्वोदय' का तात्पर्य स्थानीय संस्थाओं को अधिक से अधिक बलशाली बनाना एवं स्वायत्त शासन की स्थापना करना हैं। यह कार्य ग्राम एवं नगर पंचायतों द्वारा पूरा किया जाएगा। प्रांतीय एवं केन्द्रीय सरकारें पंचायती राज्य के कार्य में कम हस्तक्षेप करें तथा उन्हें केवल सलाह देने का कार्य करें। आज समाज में राज्य-संस्था सर्वोपरि संस्था बन गई हैं और उसका महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। अत: सर्वोदय-विचारकों ने उसके बारे में गम्भीरता से सोचा हैं और अपने विचार व्यक्त किए। विनोबा जी का कहना हैं कि प्रारम्भ में मानव घोर बर्बरता की दशा में था और समाज में हिंसा का बोलबाला था। उस समय राज्य-संस्था का जन्म हुआ और उससे समाज की दशा में सुधार हुआ। राज्य की दंड शक्ति ने समाज की शुद्ध हिंसा की स्थिति से ऊपर उठने में सहायता की। इस प्रकार वर्तमान सर्वोदय विचार इस बात को तो स्वीकार करता हैं कि 'राज्य' से समाज का कुछ हित हुआ हैं और राज्य की दंड-शक्ति को 'हिंसा'की श्रेणी में नहीं रख सकते, किन्तु वह उसको अहिंसा की दृष्टि से स्वीकार करने के लिए भी तैयार नहीं हैं, क्योंकि राज्य का अंतिम भरोसा तो बल-प्रयोग पर ही हैं।

सर्वोदय में राजनीति के स्थान पर लोकनीति पर बल दिया गया है स लोकनीति बहुत ही व्यापक शब्द हैं। यह एक साथ ही एक जीवन-पद्धति, एक प्रकार की सामाजिक व्यवस्था तथा कार्यप्रणाली से जुड़ा हुआ हैं। यह ऐसी जीवन-पद्धति का समर्थक हैं जिसमें स्वस्थ सामाजिक परम्पराएँ व्यक्ति के आचार का नियमन करती हैं और उसमें स्वयं के अभिक्रम से काम करने की आदत डालती हैं। इससे तात्पर्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था से हैं जिसमें पुलिस तथा सेना के लिए नाममात्र का काम होगा और नागरिक के जीवन में कानून के हस्तक्षेप की आवश्यकता बहुत कम होगी। कार्यप्रणाली के कारण इसका अर्थ यह हैं कि समाज परिवर्तन की प्रक्रिया ऐसी हो जिसमें मनुष्य का कर्म स्वातन्त्र्य बना रहे। दुसरे शब्दों में, यह परिवर्तन हृदय-परिवर्तन के द्वारा होना चाहिए, न कि बल-प्रयोग से।

आज समाज 'लोकनीति' पर आधारित न होकर ऐसी 'राज्यनीति' पर आधारित हैं जिसका विश्वास सत्ता में हैं। इन दोनों में भेद है। 'राज्यनीति' से राज्यवाद पुष्ट होता हाँ क्योंकि वह यह मानकर चलती हैं कि सामाजिक कल्याण का साधन राज्य ही हैं। इसके विपरीत लोकनीति से नागरिकों के पुरुषार्थ को प्रोत्साहन मिलता हैं क्योंकि वह इसके पक्ष में हैं कि नागरिक अपने अभिक्रम से स्वायत्त तथा ऐच्छिक संस्थाओं के द्वारा लोकहित का मार्ग प्रशस्त करें। ऐसी स्थिति में, जैसा कि स्वाभाविक हैं, नागरिक सत्ता-प्राप्ति की दौड़ में भाग लेते हैं किन्तु लोकनीति में सेवा तथा सहयोग द्वारा नागरिकों के चरित्र को विकसित करने का प्रयास होता हैं। राज्य-नीति में अधिकारों को महत्व प्रदान होता हैं, जबकि लोकनीति कर्तव्य-पालन पर बल देती हैं। लोकतंत्रिक राज्य की राज्यनीति का लक्ष्य ही यह होना चाहिए कि उसका विकास लोकनीति हो जाए।

प्रचलित लोकतंत्र से असंतुष्ट होने पर भी सर्वोदय-विचारकों की निष्ठा सर्वोदयी लोकतांत्रिक आदर्शो में हैं। वे समानता, व्यक्ति के गौरव और सकारात्मक स्वतन्त्रता के समर्थक हैं। किन्तु उनका कहना हैं कि ऐसी लोकशाही स्थापित होनी चाहिए जो अहिंसा पर आधारित हो, जिसको रक्षा के लिए पुलिस अथवा सेना का सहारा न लेना पड़े और जो केवल औपचारिक न हो। उसमें जनता प्रत्यक्ष रूप से अधिकाधिक भाग शासन में ले और केन्द्रीय नियंत्रण न्यूनतम हो। सर्वोदय विचारक आधुनिक लोकतंत्र की कई धारणाओं, व्यवस्थाओं तथा प्रणालियों के विरुद्ध हैं। उनको हितकारी राज्य का विचार, बहुमत प्रणाली, दलीय व्यवस्था और प्रचलित प्रत्यक्ष प्रणाली स्वीकार नहीं हैं। उनके स्थान पर वे हितकारी समाज, सर्वानुमति से निर्णय, दलहीन लोकतंत्र और प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय विधान सभाओं के लिए अप्रत्क्ष चुनाव-प्रणाली अथवा संशोधित प्रत्यक्ष प्रणाली के समर्थक हैं। आज लोकतंत्र का आदर्श हितकारी राज्य की स्थापना हैं, और इसके फलस्वरूप केन्द्रीकरण बढ़ रहा हैं। यह केन्द्रीकरण सच्चे लोकतंत्र का सबसे भयंकर शत्रु हैं। इसलिए सर्वोदय-विचारक हितकारी राज्य के बड़े विरोधी हैं। प्रचलित लोकतंत्र में निर्णय बहुमत द्वारा होते हैं। सर्वोदय-विचारक इस पद्धति के तीव्र आलोचक हैं। लोकतंत्र की यह मूल मान्यता हैं कि शासन नागरिकों की इच्छानुसार ही चलना चाहिए, और इसमें सर्वसम्मति उपलक्षित हैं। किन्तु व्यवहार में एक मत के दुर्लभ होने के कारण बहुमत को ही सबकी इच्छा मान लिया जाता हैं। सच्चे लोकतंत्र में तो शक्ति का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए। इस पर लोकतांत्रिक व्यवहार को आधारित करना लोकतंत्र के उद्देश्य का ही निषेध करना होगा। सरकार का वही रूप लोकतंत्र कहलाने का वास्तविक अधिकारी हो सकता हैं जो यथासम्भव प्रत्येक नागरिक का सहयोग प्राप्त करके उसकी योग्यता का लाभ उठा सके। अत: सच्चे लोकतंत्र में सरकार के निर्णय केवल बहुमत के निर्णय न होकर, ऐसे होने चाहिए जिनमें सभी विचारों का समन्वय हैं, जो सबको स्वीकृत हैं तथा जिन पर सबकी छाप हैं। व्यक्तिवाद के उदय से पहले विश्व के सभी समुदायों में सर्वानुमति से ही निर्णय होते थे।

धार्मिक आयाम

सर्वोदय अपनी मानव तथा ईश्वर-विषयक धारणाओं को देखा जाये तो सर्वोदय मानव-धर्म का समर्थक हैं। प्रचलित धर्मों में चार तरह की बातें मिलती हैं-उपासना-विधि, नीति-सिद्धांत, प्रथाएँ अथवा रस्म-रिवाज और पौराणिक गाथाएँ। सर्वोदय-विचार इनमें केवल नीति-सिद्धांतों को महत्व देता हैं, और उसका

कहना हैं कि ये सिद्धांत सभी धर्मो में मूलत: एक हैं। इन्हीं को धर्म का तत्व मानना चाहिए। सम्प्रदायवादी धर्मों ने विश्व को बड़ी हानि पहुचायी हैं। वे स्वतन्त्र विचार में बाधक रहे हैं और उन्होंने भय द्वारा ही जनता पर नियन्त्रण रखा हैं। इसके विपरीत सर्वोदय विचार-स्वातन्त्र्य तथा निर्भयता का समर्थक हैं।

नैतिक आयाम

नैतिक दृष्टि से सर्वोदय वह सिद्धांत है, जो विश्व में अभी तक विद्यमान नैतिक सिद्धांतों से एक उत्तम विचार प्रस्तुत करता है स इसमे एक नवीन पक्षपात रहित आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक संदर्भ भी निहित है, इसके नैतिक विचार को मानव ख्र सम्बन्धी विचारों से पृथक नहीं किया जा सकता स मानव कल्याण तथा विश्व शांन्ति के संबंध में सर्वोदयी विचारक अंतर्राष्ट्रीयतावादी तथा मानवतावादी हैं, परन्तु उनका मानवतावाद पाश्चात्य देशों के सार्वभौमवाद का रूप नहीं हैं। वे राष्ट्रवादी हैं, परन्तु उग्र, संकीर्ण तथा आक्रामण राष्ट्रवाद के विरोधी हैं, जो विश्व शांति तथा कल्याण के लिए हानिकारक हैं। सर्वोदय विचारधारा राष्ट्र प्रेम को अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास के लिए आवश्यक मानता हैं। आज के युग में सभी चिंतक विश्व-शांति के लिए प्रयत्नशील हैं। दूसरी ओर, आणविक अस्त्र-शस्त्र की होड़ मची हुई हैं। नि:शस्त्रीकरण की दिशा में व्यावहारिक प्रगति नहीं हो पायी हैं। इस दिशा में सर्वोदय ही एक ऐसी विचारधारा हैं, जो विश्व शांति के हेतु वास्तविक आधार प्रस्तुत करती हैं। जब तक जनमानस में सर्वोदयी विचारधारा का प्रचार नहीं हो जाता तथा जनता सर्वोदय के आदर्शो से अवगत नहीं हो जाती, तब तक सर्वोदय की क्रियान्विति व्यापक रूप से संभव नहीं हैं।

यह सच हैं कि 'सर्वोदय बहुत अधिक आदर्शवादी और आध्यात्मिक दर्शन हैं, तदोपरांत भी भारतीय राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था के संदर्भ में सर्वोदयी विचारधारा का महत्वपूर्ण स्थान हैं। चूँकि यह एक विशुद्ध भारतीय चिंतनधारा हैं और इसके विविध विचार भारतीय परिस्थितियों के संदर्भ में व्यक्त किए गए है; अत: उसका दार्शनिक, नैतिक तथा ऐतिहासिक आधार पूर्णतया भारतीय संस्कृति, परम्पराओं तथा परिस्थितियों के अनुकूल हैं, इसलिए भारतीय परिवेश में सर्वोदय के सिद्धांतों को कार्यान्वित करना कठिन नहीं हैं।

'नव भारत (न्यू इंडिया) की अवधारणा-

सर्वोदय व् अन्तोदय की मूल संकल्पना का परिलक्षण नव भारत की मूल अवधारणा में दिखाई देता है। गाँधी, विनोवाभावे, जय प्रकाश नारायण और दीनदयाल उपाध्याय के विकास की अवधारणा को आज नए भारत के रूप में परिभाषित और स्थापित किया जा रहा है। सबका साथ- सबका विकास और सबका विश्वास की संकल्पना तथा संकल्प से सिद्धि का जो उद्देश्य भारत सरकार द्वार व्याख्यायित किया गया वह -स्वच्छ भारत, साक्षर भारत, गरीबी मुक्त, भ्रष्टाचार मुक्त, साम्प्रदायिकता मुक्त, जाति मुक्त और आतंकवाद मुक्त भारत बनाना है। नए भारत के उपरोक्त उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिए 'न्यू इंडिया के लिए रणनीति/75' में प्रधानमंत्री ने तीन प्रमुख संदेश दिया। जो इस प्रकार है -

विकास एक जन आंदोलन -

प्रधानमंत्री ने कहा कि विकास को एक जन आंदोलन बनना चाहिए, जिसमें प्रत्येक भारतीय को अपनी भूमिका को पहचाने और जीवन की बेहतर सुगमता के रूप में उसे मिलने वाले प्रमुख लाभों का अनुभव भी करे। विकास प्रक्रिया में सभी की सक्रीय सहभागिता होनी चाहिए।

संतुलित विकास रणनीति -

विकास रणनीति को सभी क्षेत्रों और राज्यों और सभी क्षेत्रों में संतुलित विकास सुनिश्चित करने के लिए व्यापक-आधारित आर्थिक विकास हासिल करने में मदद करनी चाहिए। जब तक सभी क्षेत्रो और राज्यों का सामान विकास नहीं होगा तब तक विकसित भारत की आकांक्षा पूर्ण नहीं हो सकती।

सार्वजनिक और निजी क्षेत्र की भागीदारी -

विकास प्रक्रिया में सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के प्रदर्शन के बीच अंतर को समाप्त कर दिया जाएगा। यह रणनीति नीति निर्माण और कार्यान्वयन के मूल में नवाचार, प्रौद्योगिकी, उद्यम और कुशल प्रबंधन को एक साथ लाने का एक प्रयास है। नव भारत की संकल्पना इन विषयों के समन्वय से साकार होगी।

नीति की संकल्पना -

'नीति' शब्द का प्रयोग सामान्तया सरकारी बोलचाल में किया जाता है, लेकिन श्नीतिश क्या है? अपने सरलतम रूप में, एक नीति एक रूपरेखा या योजना है जिसके अंतर्गत किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सभी कार्यो की कल्पना, कार्यान्वयन और मूल्यांकन किया जाता है। सार्वजनिक नीति, विस्तार से उन उद्देश्यों पर लागू होती है जो जनता के कल्याण से संबंधित हैं। नीति निर्माण का विज्ञान विशाल और विविध है, लेकिन किसी भी विज्ञान की तरह, यह विश्लेषणात्मक सोच, व्यवस्थित कार्रवाई और वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन को महत्व देता है। किसी नीति के जीवन चक्र को पांच अलग-अलग चरणों में देखा जा सकता है- समस्या की पहचान, नीति निर्माण, नीति अपनाना, नीति कार्यान्वयन और निगरानी व् मूल्यांकन।

न्यू इंडिया की अवधारणा एक आधुनिक, विकसित और समृद्ध भारत की परिकल्पना है, जिसे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भारत सरकार ने बढ़ावा दिया है। नए भारत की अवधारणा नवाचार, समावेशिता और विकास के सिद्धांतों पर आधारित है और इसका उद्देश्य भारत को एक वैश्विक आर्थिक महाशक्ति और दुनिया के लिए एक मॉडल में बदलना है। नए भारत की अवधारणा एक आधुनिक और गतिशील अर्थव्यवस्था बनाने पर केंद्रित है जो दुनिया में सर्वश्रेष्ठ के साथ प्रतिस्पर्धा कर सके। इसका उद्देश्य उद्यमिता, नवाचार और तकनीकी उन्नति को बढ़ावा देना और एक व्यवसाय-अनुकूल वातावरण बनाना है जो घरेलू और विदेशी निवेश को आकर्षित कर सके। न्यू इंडिया की अवधारणा का उद्देश्य देश के विकास में भाग लेने के लिए समाज के सभी वर्गों के लिए अवसर पैदा करके सामाजिक और आर्थिक समावेशन को बढ़ावा देना भी है।

नए भारत की अवधारणा इस विचार पर आधारित है कि भारत सूचना प्रौद्योगिकी, जैव प्रौद्योगिकी, नवीकरणीय ऊर्जा और अंतरिक्ष अन्वेषण जैसे विभिन्न क्षेत्रों में वैश्विक नेता बन सकता है। सरकार ने इन क्षेत्रों को बढ़ावा देने और नवाचार और अनुसंधान के लिए अनुकूल माहौल बनाने के लिए कई पहल

शुरू की हैं। न्यू इंडिया की अवधारणा का उद्देश्य भारत की विविधता का जश्न मनाकर और विविधता में एकता को बढ़ावा देकर सामाजिक और सांस्कृतिक सद्भाव को बढ़ावा देना भी है ।

नए भारत की अवधारणा नागरिकों को बेहतर स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा और बुनियादी ढांचा प्रदान करके उनके जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने पर भी केंद्रित है। सरकार ने इन क्षेत्रों में कई पहल शुरू की हैं, जैसे स्वास्थ्य देखभाल के लिए आयुष्मान भारत योजना, स्वच्छता के लिए स्वच्छ भारत अभियान और ग्रामीण बुनियादी ढांचे के विकास के लिए प्रधान मंत्री ग्राम सड़क योजना। न्यू इंडिया का उद्देश्य इंटरनेट और डिजिटल सेवाओं तक पहुंच का विस्तार करके डिजिटल साक्षरता और कनेक्टिविटी को बढ़ावा देना भी है।

भारत सरकार की नीतियों और योजनाओ में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि सर्वोदय व् अन्तोदय को साकार करने के लिए उपरोक्त प्रमुख नीति लागू की जा रही है जैसे -

1. प्रधान मंत्री जन धन योजना का उद्देश्य वंचित वर्गों जैसे कमजोर वर्गो और कम आय वर्गो को विभिन्न वित्तीय सेवाएँ उपलब्ध कराना सुनिश्चित करना हैं। यह योजना राष्ट्रीय वित्तीय समावेशन मिशन हैं। जिसमे लगभग 45.16. करोड़ लाभार्थी है ।
2. प्रधानमन्त्री उज्ज्वला योजना: इसके द्वारा ऐसे ग्रामीण और वंचित परिवारों जोकि इंधन के रूप में लकड़ी, कोयला गोबर के उपले आदि जैसे पारंपरिक खाना पकाने के इंधन का उपयोग कर रहे थे, के लिए एलपीजी जैसे स्वच्छ खाना पकाने के इंधन को उपलध कराने के उद्देश्य से उज्ज्वला योजना की शुरुआत की गई। 09 करोड़ से अधिक लाभार्थी।
3. दीन दयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना पुरे ग्रामीण भारत को निरंतर बिजली की आपूर्ति करने के लिए बनाया गया हैं।
4. प्रधान मंत्री आवास योजना इसका उद्देश्य 'सभी के लिए आवास' की सुबिधा हो ।
5. आयुष्मान भारत यह देश भर में स्वास्थ्य सेवा के बुनियादी ढांचे को मजबूत करने के लिए सबसे बड़े अखिल भारतीय योजनाओं में से हैं। इसका उद्देश्य शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में एक मजबूत सार्वजनिक स्वास्थ्य बुनियादी ढांचा सुनिश्चित करना हैं।

इस प्रकार की 125 से अधिक लोककल्याणकारी योजनाओ को लागू किया गया है जो एक विकसित भारत का निर्माण करने में मील का पत्थर सिद्ध होगी।

निष्कर्ष-

नये भारत की संकल्पना एक आधुनिक, विकसित और समृद्ध भारत की परिकल्पना है, जो नवाचार, समावेशिता और विकास के सिद्धांतों पर आधारित है। न्यू इंडिया की अवधारणा का उद्देश्य भारत को एक वैश्विक आर्थिक महाशक्ति और दुनिया के लिए एक मॉडल में बदलना है। सरकार ने नए भारत की अवधारणा को बढ़ावा देने के लिए कई पहल शुरू की हैं, और इस दृष्टिकोण को प्राप्त करने के लिए सभी हितधारकों के लिए मिलकर काम करना महत्वपूर्ण है। नए भारत की अवधारणा भारत को बदलने और लाखों लोगों के जीवन को बेहतर बनाने की क्षमता रखती है। अर्थात सबका साथ- सबका विकास और सबका विश्वास की संकल्पना तथा संकल्प से सिद्धि का प्रयोजन इसका निहितार्थ है। इस प्रकार 2014 के पश्चात की नीतियों और कार्यक्रमों का अवलोकन किया जाये तो यह कहा जा सकता है कि नयें भारत के निर्माण की संकल्पना प्राचीन भारतीय दर्शन और सर्वोदय की संकल्पना का वास्तविक प्रकटीकरण है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि गाँधी के सर्वोदय की अवधारणा आज भी प्रासंगिक है .

सन्दर्भ ग्रन्थ -

1. गाँधी., म,क. (1949) हिन्द स्वराज , नव जीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद .
2. गाँधी., म,क.(1947) इंडिया ऑफ माय ड्रीम्स.नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद.
3. गाँधी., म,क. द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरीमेंट विथ ट्रुथ
4. गाँधी., म,क. मेरा समाजवाद .नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद.
5. डॉ., पाण्डेय, जनार्दन.(1986) सर्वोदय का राजनीतिक दर्शन. जानकी प्रकाशन नई दिल्ली.
6. धवन,गोपीनाथ.(1951) सर्वोदय तत्व दर्शन. सत्साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली.
7. डॉ. टंडन, विश्वनाथ.(1965) द सोशल एंड पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ सर्वोदय,आफ्टर गाँधी. सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी.
8. हार्डीमन, डेविड.(2016) गाँधी इन हिज टाइम एंड ऑवर्स,परमानेंट ब्लैक पब्लिकेशन रानीखेत.
9. पंथम, थॉमस. - डायाच, एल, केनेथ. (2017) आधुनिक भारत में राजनीतिक विचार (सम्पा) .सेज, नई दिल्ली
10. भावे, विनोवा. (1964). रेवोलुशनरी सर्वोदय, भारतीय विद्या भवन बॉम्बे.
11. नारायण, जयप्रकाश.(1959) समाजवाद से सर्वोदय की ओर, अखिल भारत सर्व सेवा संघ, काशी.
12. धर्माधिकारी,दादा(2013) . सर्वोदय दर्शन, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट वाराणसी.
13. कुमारप्पा, भारतन. (1955). सर्वोदय, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदावाद
14. NITI Aayog, 'STRATEGY FOR NEW INDIA /75' November 2018.
15. https://www.niti.gov.in
16. https://India.75.nic.in
17. https://static.mygov.in
18. pmjdy.gov.in
19. pmuy.gov.in

प्राचीन भारत में राजनीतिः एक ऐतिहासिक अध्ययन

दिलीप कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, श्री बजरंग स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दादर आश्रम, सिकन्दरपुर, बलिया

सारांश

प्राचीन भारत का राजनीतिक परिदृश्य एक जटिल और विकसित अवधारणा थी, जिसमें शासन प्रणाली, विधि निर्माण और राज्य की परिकल्पनाएं शामिल थीं। यह अध्ययन न केवल राजाओं और साम्राज्यों तक सीमित था, बल्कि समाज, धर्म, नैतिकता और अर्थशास्त्र के अंतर्संबंधों को भी दर्शाता था। वैदिक काल से मौर्य और गुप्त काल तक, भारतीय राजनीति विभिन्न चरणों में विकसित हुई। महाजनपदों के गणतंत्रात्मक प्रयोग, मौर्यों का केंद्रीकृत तंत्र, और गुप्तों का सामंतवाद जैसे उदाहरण इसकी विविधता को दर्शाते हैं। कौटिल्य जैसे विचारक राजनीति को व्यावहारिक दर्शन से जोड़ते हैं, जिसमें राज्य की शक्ति नैतिक सिद्धांतों पर आधारित होती है। इस युग की राजनीतिक संस्कृति में धर्म और राजनीति का गहरा संबंध दिखाई देता है, जो आज भी वर्तमान भारतीय शासन व्यवस्था में प्रासंगिक है।

प्रस्तावना

प्राचीन भारत का राजनीतिक परिदृश्य मानव सभ्यता के इतिहास में एक अनूठा और गहन अध्ययन का विषय है। यह वह कालखंड था जब राजनीतिक संगठन, शासन प्रणाली, विधि निर्माण और राज्य की अवधारणाएं अत्यंत विकसित अवस्था में थीं। राजनीति का अध्ययन केवल राजाओं और साम्राज्यों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें समाज, धर्म, नैतिकता और अर्थशास्त्र का भी गहरा अंतर्संबंध निहित है। वैदिक काल से लेकर मौर्य और गुप्त काल तक, भारतीय राजनीति ने विभिन्न चरणों से गुजरते हुए एक जटिल और सुव्यवस्थित स्वरूप प्राप्त किया। इस ऐतिहासिक अध्ययन का उद्देश्य प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार और व्यवहार की मुख्य धाराओं, उनकी विकास प्रक्रिया, प्रमुख सिद्धांतों और उनके ऐतिहासिक महत्व का विश्लेषण करना है।

वैदिक काल में राजनीतिक संगठन

प्राचीन भारतीय राजनीति की जड़ें वैदिक काल में खोजी जा सकती हैं, विशेषकर ऋग्वैदिक काल में। इस समय राजनीतिक संगठन मुख्य रूप से कबीलाई संरचना पर आधारित था। सबसे छोटी इकाई कुल या ग्राम होती थी, जिसका मुखिया कुलप या ग्रामणी कहलाता था। कई ग्राम मिलकर विष नामक बड़े समूह बनाते थे, जिसका प्रमुख विषपति होता था। राजनीतिक व्यवस्था का सर्वोच्च स्तर जन था, जिसका शासक 'श्राजन' कहलाता था। प्रारंभिक वैदिक काल में राजन की शक्ति सीमित थी और वह वंशानुगत होने के बजाय प्रायः निर्वाचित होता था, जिसे सभा और समिति नामक जनसभाओं का समर्थन प्राप्त होता था। सभा और समिति वे प्राचीन लोकतांत्रिक संस्थाएं थीं जो राजा की शक्तियों पर नियंत्रण रखती थीं और शासन संबंधी महत्वपूर्ण निर्णय लेती थीं। उत्तर वैदिक काल तक आते-आते, कृषि के विस्तार और भौतिक संपत्ति में वृद्धि के कारण क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ और राजन की शक्ति धीरे-धीरे वंशानुगत और निरंकुश होने लगी। इस काल की राजनीति में 'गो' (पशुधन) की रक्षा प्राथमिक उद्देश्य थी, जो शक्ति और समृद्धि का प्रतीक थी।

महाजनपदों का उदय और गणतंत्रात्मक संरचनाएं

ईसा पूर्व छठी शताब्दी के आसपास, गंगा-यमुना दोआब क्षेत्र में बड़े राज्यों का उदय हुआ जिन्हें महाजनपद कहा गया। सोलह महाजनपदों ने राजनीतिक मानचित्र पर प्रभुत्व स्थापित किया। इनमें से अधिकांश राज्य राजतंत्रात्मक थे, जैसे मगध, कोसल और वत्स। हालांकि, इस काल की राजनीति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि कुछ राज्यों ने गणतंत्रात्मक (लिच्छवि, वज्जि) या गणसंघीय शासन प्रणाली को अपनाया। ये गणराज्य कुलीन वर्ग या क्षत्रिय वंशों के संघ थे, जहां शासन का संचालन निर्वाचित प्रतिनिधि करते थे। यह प्राचीन भारत में राजनीतिक संगठन की विविधता को दर्शाता है, जहां राजतंत्र के साथ-साथ विशिष्ट लोकतांत्रिक प्रयोग भी चल रहे थे। इन गणराज्यों में शासन की प्रक्रिया वाद-विवाद और बहुमत के निर्णय पर आधारित होती थी, जो आधुनिक संसदीय प्रणाली की प्रारंभिक झलक प्रस्तुत करती है।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र और राज्य का सिद्धांत

प्राचीन भारतीय राजनीति का सबसे महत्वपूर्ण वैचारिक आधार हमें कौटिल्य (चाणक्य) के 'अर्थशास्त्र' में मिलता है। यह ग्रंथ केवल अर्थशास्त्र पर नहीं, बल्कि राज्य कला, विदेश नीति, जासूसी तंत्र और प्रशासनिक संरचना पर एक अत्यंत व्यावहारिक और विस्तृत मार्गदर्शिका है। कौटिल्य ने राज्य को एक अनिवार्य इकाई माना और राजा को उसका प्रमुख संरक्षक बताया। उनके अनुसार राज्य के सात प्रमुख अंग थे जिन्हें 'सप्तांग सिद्धांत' कहा जाता हैरू स्वामी (राजा), अमात्य (मंत्री), जनपद (क्षेत्र), दुर्ग (किला), कोष (खजाना), दंड (सेना), और मित्र (सहयोगी)।

कौटिल्य की राजनीति 'यथार्थवादी' (Realpolitik) प्रकृति की थी, जिसमें राज्य की सुरक्षा और समृद्धि सर्वोपरि थी। उन्होंने 'मंडल सिद्धांत' के माध्यम से विदेश नीति की जटिलताओं का वर्णन किया, जिसमें पड़ोसी राज्यों के साथ शत्रुता या मित्रता के संबंधों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया। 'मात्स्य न्याय' (मछलियों का कानून, अर्थात् बलवान द्वारा निर्बल का भक्षण) की स्थिति से बचने के लिए एक मजबूत केंद्रीय सत्ता की आवश्यकता पर उन्होंने बल दिया। उनका यह विचार कि राजा को धर्म और नीति के मार्ग पर चलना चाहिए, यह दर्शाता है कि भले ही उनकी नीति कठोर थी, लेकिन वह धर्म (नैतिकता) की सीमा से बंधी हुई थी।

मौर्य साम्राज्य और केंद्रीकृत प्रशासन

मौर्य साम्राज्य (लगभग 322 ईसा पूर्व से 185 ईसा पूर्व) प्राचीन भारत में राजनीतिक शक्ति के केंद्रीकरण का चरमोत्कर्ष था। चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा स्थापित इस विशाल साम्राज्य ने लगभग पूरे उपमहाद्वीप को एक प्रशासनिक छत्र के नीचे लाया। प्रशासन अत्यधिक नौकरशाही आधारित और केंद्रीकृत था। अशोक के शिलालेख इस केंद्रीकृत सत्ता की व्यापकता और प्रभावशीलता के प्रमाण हैं।

मौर्य प्रशासन में राजा सर्वोच्च था, लेकिन उसकी सहायता के लिए एक विशाल मंत्रिपरिषद (परिसद्) होती थी। अर्थशास्त्र में वर्णित अमात्यों की नियुक्ति और कार्यप्रणाली विस्तार से बताई गई है। राजस्व संग्रह, न्याय वितरण, सैन्य प्रबंधन और सार्वजनिक कार्यों (जैसे सड़कों और सिंचाई) का प्रबंधन अत्यंत संगठित था। अशोक के शासनकाल में राजनीति में एक महत्वपूर्ण वैचारिक परिवर्तन आया, जिसे 'धम्म' के रूप में जाना जाता है। धम्म राज्य की नीतियों का आधार बना, जिसका उद्देश्य नैतिक शासन और प्रजा का कल्याण था। हालांकि धम्म का स्वरूप बौद्ध धर्म से प्रभावित था, यह मुख्य रूप से एक नैतिक संहिता थी जिसे अशोक ने राज्य के आदेश के रूप में लागू किया, जिससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन भारत में राजनीतिक सत्ता का आधार केवल बल नहीं, बल्कि नैतिक दायित्व भी था।

गुप्त काल की राजनीतिक व्यवस्था

मौर्यों के पतन के बाद, राजनीतिक विखंडन का दौर आया, जिसके बाद गुप्त काल (लगभग चौथी शताब्दी ईस्वी से छठी शताब्दी ईस्वी) में राजनीतिक स्थिरता और समृद्धि की पुनः स्थापना हुई। गुप्त काल को भारतीय राजनीति के संदर्भ में 'सामंतवाद के उदय' के प्रारंभिक चरण के रूप में देखा जाता है। यद्यपि गुप्त सम्राटों ने सर्वोच्च सत्ता अपने पास रखी, उन्होंने बड़े क्षेत्रों को अपने रिश्तेदारों या अधीनस्थ शासकों को जागीर के रूप में आवंटित करना शुरू कर दिया, जो बदले में सैन्य और राजस्व सहायता प्रदान करते थे। यह विकेन्द्रीकरण की ओर एक क्रमिक कदम था।

गुप्त राजाओं ने 'महाराजाधिराज' जैसी उपाधियाँ धारण कीं, जो उनकी सर्वोच्चता दर्शाती थीं, लेकिन स्थानीय स्तर पर स्थानीय शासकों की स्वायत्तता बढ़ी। गुप्त काल में कला, विज्ञान और साहित्य का अभूतपूर्व विकास हुआ, जिसे प्रायः शांति और सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था का परिणाम माना जाता है। यद्यपि यह काल मौर्यों जितना केंद्रीकृत नहीं था, फिर भी 'दैवीय अधिकार' का सिद्धांत (राजा को देवता का अंश मानना) अधिक प्रबल हो गया, जैसा कि समुद्रगुप्त के सिक्कों और प्रयाग प्रशस्ति में परिलक्षित होता है। राजनीति और धर्म का यह सहजीवन गुप्त काल की एक विशिष्ट पहचान थी।

राजनीति में धर्म और नैतिकता का प्रभाव

प्राचीन भारतीय राजनीति का एक अनिवार्य तत्व धर्म (नैतिक और वैदिक व्यवस्था) और नैतिकता का समावेश है। राजा को केवल राजनीतिक शासक नहीं, बल्कि 'धर्मपालक' भी माना जाता था। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति जैसे धर्मशास्त्रों ने राजा के कर्तव्यों, अधिकारों और उत्तराधिकार के नियमों को परिभाषित किया। ये ग्रंथ राजनीतिक आचरण के लिए एक नैतिक ढांचा प्रदान करते थे। राजा से अपेक्षा की जाती थी कि वह प्रजा को भय और पक्षपात से मुक्त न्याय प्रदान करे। राजनीतिक निर्णयों को धर्म के मानदंडों पर परखा जाता था। यदि कोई शासक धर्म का त्याग करता था, तो सैद्धांतिक रूप से उसे अपदस्थ करने का अधिकार समाज को प्राप्त था, हालांकि व्यवहार में यह हमेशा संभव नहीं हो पाता था। इस प्रकार, नैतिकता और कानून के बीच का संबंध प्राचीन भारतीय राजनीति की आधारशिला बना रहा, जो पश्चिमी राजनीतिक विचारों से एक महत्वपूर्ण भिन्नता प्रस्तुत करता है जहां शक्ति अक्सर नैतिकता से पृथक मानी जाती है।

विदेशी आक्रमणों और क्षेत्रीय शक्तियों का प्रभाव

प्राचीन काल के उत्तरार्ध में, विदेशी आक्रमणों, विशेषकर शक, कुषाण और हूणों के आक्रमणों ने भारतीय राजनीतिक ढांचे को गंभीर रूप से प्रभावित किया। इन आक्रमणों के कारण केंद्रीय सत्ताएं कमजोर हुईं और क्षेत्रीय शक्तियों का उदय हुआ। इस दौरान, राजनीतिक शक्ति का हस्तांतरण भी हुआ। उदाहरण के लिए, कुषाणों के प्रभाव के बाद उत्तरी भारत में क्षेत्रीय राज्यों की स्वायत्तता बढ़ी, जिससे सामंती प्रवृत्तियों को बल मिला। इन चुनौतियों ने शासकों को अपनी सैन्य शक्ति और गठबंधन बनाने की कला पर अधिक ध्यान केंद्रित करने के लिए प्रेरित किया, जिससे कौटिल्य द्वारा वर्णित 'मंडल सिद्धांत' का व्यवहारिक अनुप्रयोग और भी महत्वपूर्ण हो गया।

निष्कर्ष

प्राचीन भारत में राजनीति का ऐतिहासिक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि यह कालखंड स्थिर नहीं रहा, बल्कि निरंतर विकास और परिवर्तनों से गुजरता रहा। वैदिक कबीलाई संरचना से लेकर महाजनपदों के गणतंत्रात्मक प्रयोगों, मौर्यों के केंद्रीकृत तंत्र और गुप्तों के सामंतवाद-उन्मुख शासन तक, भारतीय राजनीति ने शासन के विविध मॉडल प्रस्तुत किए। कौटिल्य जैसे विचारकों ने राजनीति को व्यावहारिक दर्शन के साथ जोड़ा, जहां राज्य की शक्ति नैतिक सिद्धांतों और प्रजा कल्याण पर आधारित होनी चाहिए। धर्म और राजनीति का अटूट संबंध इस युग की राजनीतिक संस्कृति की पहचान है। प्राचीन भारत की

राजनीतिक विरासत, जिसमें जटिल नौकरशाही, न्याय की अवधारणा और नैतिक शासनादेश शामिल हैं, आज भी भारतीय शासन व्यवस्था के अध्ययन के लिए प्रासंगिक बनी हुई है।

संदर्भ

1. Basham, A. L. (1954). The Wonder That Was India. Sidgwick & Jackson, p. 65.
2. Mookerji, R. K. (1957). Chandragupta Maurya and His Times. Motilal Banarsidass Publishers, p. 34.
3. Raychaudhuri, H. C. (1996). Political History of Ancient India: From the Accession of Parikshit to the Extinction of the Gupta Dynasty. University of Calcutta, p. 98.
4. Shamasastry, R. (1924). Kautilya's Arthashastra (English Translation). Wesleyan Mission Press, p. 71.

बौद्ध धर्म के प्रति मिथिला का दृष्टिकोणः एक वैचारिक संघर्ष

डॉ० सोनी शर्मा

(प्रा०भा०इ०, सं० एवं पुरातत्व विभाग) तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सार

यह शोध-पत्र प्राचीन भारतीय बौद्धिक इतिहास के उस अनूठे वैचारिक संघर्ष का विश्लेषण करता है, जो मिथिला की रूढ़िवादी वैदिक परंपरा और उभरते हुए बौद्ध दर्शन के मध्य घटित हुआ। मगध के निकट स्थित होने के बावजूद, जहाँ बौद्ध धर्म को राज्याश्रय और व्यापक जन-स्वीकार्यता मिली, मिथिला अपनी उपनिषदीय विरासत और वर्णाश्रम धर्म के प्रति अडिग रही। प्रस्तुत अध्ययन में पालि साहित्य (जैसे मखदेव सुत्त और जातक कथाएँ) और संस्कृत के दार्शनिक ग्रंथों के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि मिथिला ने बुद्ध के श्अनात्मवादश और श्क्षणिकवादश को किस प्रकार एक गंभीर बौद्धिक चुनौती के रूप में देखा।

शोध का मुख्य केंद्र बिंदु वह श्तार्किक प्रतिरोधश है, जिसे न्याय और मीमांसा दर्शन के विद्वानों ने विकसित किया। कुमारिल भट्ट और उदयनाचार्य जैसे मनीषियों के तर्कों ने न केवल बौद्ध सिद्धांतों का खंडन किया, बल्कि सनातन धर्म को एक सुदृढ़ तार्किक आधार भी प्रदान किया। यह शोध स्पष्ट करता है कि मिथिला का दृष्टिकोण केवल धार्मिक संकीर्णता नहीं, बल्कि एक उच्च स्तरीय दार्शनिक विमर्श था, जिसने अंततः बौद्ध धर्म को भारत की मुख्यधारा से विस्थापित कर उसे श्दशावतारश की संकल्पना में समाहित कर लिया। निष्कर्षतः, यह संघर्ष भारतीय दर्शन के स्वर्ण युग के निर्माण में सहायक सिद्ध हुआ।

मुख्य शब्दः मिथिला, विदेह, बौद्ध दर्शन, वैदिक परंपरा, अनात्मवाद, न्याय दर्शन, मीमांसा, शास्त्रीय संघर्ष, उपनिषद, अद्वैत, क्षणिकवाद, जातक कथाएँ, सांस्कृतिक प्रतिरोध।

प्रस्तावना

प्राचीन भारत के मानचित्र पर मिथिला (जिसे विदेह भी कहा जाता है) केवल एक भू-राजनीतिक इकाई मात्र नहीं थी, बल्कि यह ज्ञान, दर्शन और आध्यात्मिक मीमांसा का एक जीवंत केंद्र थी। हिमालय की तलहटी और गंगा के पावन प्रवाह के मध्य स्थित यह क्षेत्र, पूर्व में कोशी और पश्चिम में गण्डकी नदियों से घिरा हुआ था। इसकी यही प्राकृतिक सीमाओं ने इसे एक सुरक्षित 'बौद्धिक अंतरीप' का रूप प्रदान किया। जहाँ समकालीन मगध और अंग महाजनपद निरंतर साम्राज्यवादी विस्तार और राजनीतिक उथल-पुथल के साक्षी बन रहे थे, वहीं मिथिला ने अपनी ऊर्जा को आंतरिक वैचारिक विमर्श और उपनिषदीय सत्य की खोज में संचित रखा।

मिथिला की ऐतिहासिक छवि एक ऐसे 'बौद्धिक द्वीप' के रूप में उभरी, जिसने बाहरी परिवर्तनों के झंझावातों के बीच भी अपनी वैदिक जड़ों को दृढ़ता से थामे रखा। यहाँ की मिट्टी ने राजा जनक जैसे 'राजर्षि' और याज्ञवल्क्य जैसे 'ब्रह्मज्ञानी' को जन्म दिया, जिन्होंने कर्मकांडों के स्थूल स्वरूप से ऊपर उठकर 'आत्मा' और 'ब्रह्म' की सूक्ष्मता पर बल दिया। जब छठी शताब्दी ईसा पूर्व में मध्य गंगा घाटी में बुद्ध के 'अनात्मवाद' और 'निर्वाण' की लहरें उठीं, तब मिथिला अपनी दार्शनिक प्रखरता के कारण एक अभेद्य दुर्ग की भाँति खड़ी रही।

प्रस्तुत शोध-पत्र इसी परिप्रेक्ष्य में बौद्ध धर्म और मिथिला के अंतर्संबंधों की पड़ताल करता है। यह संघर्ष केवल दो धर्मों का नहीं, बल्कि दो भिन्न जीवन-दर्शनों का था-एक ओर बुद्ध का 'क्षणभंगुरता' का सिद्धांत था, तो दूसरी ओर मिथिला के नैयायिकों का 'नित्यता' और 'प्रमाण' पर आधारित यथार्थवाद। यह प्रस्तावना इस वैचारिक द्वंद्व की आधारशिला रखती है कि किस प्रकार मिथिला ने अपनी तार्किक श्रेष्ठता के माध्यम से बौद्ध धर्म के प्रसार को एक सार्थक चुनौती दी और अंततः भारतीय दर्शन को एक नवीन दिशा प्रदान की।

शोध का उद्देश्यः

- बौद्धिक श्रेष्ठता का संरक्षणः मिथिला का समाज केवल विश्वास पर नहीं, बल्कि 'शास्त्रार्थ' और तर्क पर आधारित था। शोध का उद्देश्य यह दिखाना है कि मिथिला के विद्वानों ने बौद्ध धर्म को एक 'चुनौती' के रूप में लिया और उसका उत्तर तलवार से नहीं, बल्कि न्याय और मीमांसा के अकाट्य तर्कों से दिया।
- शासकीय संरक्षण का स्वरूपः जहाँ मगध के हर्यक, शिशुनाग और मौर्य वंशों ने बौद्ध धर्म को राज्याश्रय दिया, वहीं मिथिला के विदेह राजवंश की जड़ें 'राजर्षि' परंपरा में थीं। यह शोध इस राजनीतिक भिन्नता के प्रभाव को रेखांकित करता है।

- सामाजिक स्थिरता बनाम क्रांति: बुद्ध का आंदोलन वर्ण व्यवस्था और यज्ञीय जटिलताओं के विरुद्ध एक सामाजिक क्रांति थी। शोध का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि मिथिला का सामाजिक ढांचा इतना सुदृढ़ और व्यवस्थित क्यों था कि उसे बौद्ध धर्म की 'समतावादी' अपील ने उस स्तर पर प्रभावित नहीं किया, जैसा कि अन्य क्षेत्रों में देखा गया।
- दार्शनिक समन्वय की क्षमता: यह शोध यह भी स्पष्ट करता है कि मिथिला ने बौद्ध धर्म का पूर्ण बहिष्कार करने के बजाय, उसके तार्किक पक्ष को अपने 'नव्य-न्याय' में समाहित कर लिया, जिससे वैदिक धर्म और भी अधिक परिष्कृत होकर उभरा।

अंतत:, इस शोध का लक्ष्य यह सिद्ध करना है कि मिथिला का 'वैदिक केंद्र' बने रहना कोई संयोग नहीं था, बल्कि यह एक सचेत सांस्कृतिक और बौद्धिक प्रतिरोध का परिणाम था, जिसने भारतीय दर्शन की निरंतरता को बनाए रखा।

मिथिला की वैचारिक जड़ें

मिथिला की दार्शनिक पृष्ठभूमि का आधार स्तंभ राजा जनक और महर्षि याज्ञवल्क्य की वह अटूट परंपरा है, जिसने इस क्षेत्र को संपूर्ण आर्यावर्त में ज्ञान का सर्वोच्च केंद्र बनाया। विदेहराज जनक केवल एक शासक नहीं, बल्कि 'राजर्षि' के रूप में प्रतिष्ठित थे, जिनके दरबार में होने वाले शास्त्रार्थों ने भारतीय दर्शन की दिशा निर्धारित की। इसी परिवेश में महर्षि याज्ञवल्क्य ने 'नेति-नेति' (यह नहीं, यह नहीं) के माध्यम से ब्रह्म की व्याख्या की, जो कालांतर में अद्वैत वेदांत का मूल बनी। मिथिला की यह परंपरा ज्ञान को केवल संचय करने तक सीमित नहीं रखती थी, बल्कि उसे तर्क की कसौटी पर कसने का साहस भी प्रदान करती थी। यही कारण था कि जब शेष भारत राजनीतिक विस्तार की होड़ में था, मिथिला अपनी आध्यात्मिक चेतना और दार्शनिक शुचिता के संरक्षण में संलग्न थी।[1]

इस क्षेत्र की वैचारिक दृढ़ता का मुख्य कारण 'आत्मा' और 'ब्रह्म' की वह प्रधानता थी, जो उपनिषदों की आत्मा है। जहाँ बुद्ध ने 'अनात्मवाद' का सिद्धांत प्रतिपादित करते हुए यह तर्क दिया कि 'स्व' या 'आत्मा' जैसी कोई स्थायी इकाई नहीं है, वहीं मिथिला के मनीषी इस बात पर अडिग थे कि आत्मा अजर, अमर और अविनाशी है। मिथिला की दृष्टि में, यदि आत्मा का अस्तित्व ही न हो, तो पुनर्जन्म और मोक्ष की अवधारणाएं निराधार हो जाती हैं। बुद्ध का 'क्षणिकवाद', जिसमें संसार को निरंतर परिवर्तनशील और क्षणभंगुर माना गया, मिथिला के 'नित्यतावाद' से सीधे टकराता था। इस दार्शनिक टकराव ने मिथिला को एक ऐसी बौद्धिक ढाल प्रदान की, जिसने बुद्ध के क्रांतिकारी विचारों को यहाँ की जड़ों में गहराई तक पैठने से रोक दिया।[2]

दार्शनिक सूक्ष्मताओं के साथ-साथ, मिथिला में वैदिक यज्ञों और वर्णाश्रम धर्म की जड़ें अत्यंत गहरी थीं। यहाँ का सामाजिक ढांचा वेदों द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था पर आधारित था, जिसमें यज्ञ केवल एक धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि ब्रह्मांडीय व्यवस्था (ऋत) को बनाए रखने का साधन माना जाता था। बुद्ध ने पशुबलि और यज्ञों की जटिलता पर कड़ा प्रहार किया था, किंतु मिथिला ने इन कर्मकांडों को 'ज्ञान' के साथ जोड़कर उन्हें एक तार्किक रक्षा कवच प्रदान किया। वर्णाश्रम धर्म की मजबूती ने यहाँ एक ऐसा अनुशासित समाज निर्मित किया था, जो बुद्ध के समतावादी और संघ-आधारित ढांचे के प्रति उदासीन बना रहा। मिथिला के लिए धर्म का अर्थ केवल व्यक्तिगत मोक्ष नहीं, बल्कि वेदोक्त सामाजिक मर्यादाओं का पालन करना था, जिसने इसे बौद्ध धर्म के प्रसार के विरुद्ध एक 'वैदिक दुर्ग' के रूप में स्थापित किया।[3]

बौद्ध ग्रंथों में मिथिला का संदर्भ

बौद्ध धर्म और मिथिला के संबंधों को समझने के लिए पालि साहित्य एक अत्यंत महत्वपूर्ण और विश्वसनीय प्राथमिक स्रोत है। यद्यपि मिथिला अपनी दार्शनिक जड़ों में कट्टर रूप से वैदिक थी, किंतु बौद्ध ग्रंथों में इस क्षेत्र का वर्णन बड़े ही सम्मान और विस्तार के साथ किया गया है। विशेष रूप से 'मखदेव सुत्त' में मिथिला के प्राचीन राजा मखदेव की कथा आती है, जिन्होंने सांसारिक सुखों का त्याग कर प्रव्रज्या (सन्यास) को अपनाया था। यह सुत्त दर्शाता है कि त्याग और वैराग्य की जो भावना बौद्ध धर्म का मूल थी, वह मिथिला की राजर्षि परंपरा में पहले से ही बीज रूप में विद्यमान थी। इसी प्रकार, शनिमि जातकश में मिथिला के राजा निमि के नैतिक शासन और उनकी स्वर्ग यात्रा का वर्णन मिलता है, जो यह सिद्ध करता है कि बौद्ध परंपरा ने मिथिला के पौराणिक राजाओं को अपने नैतिक उपदेशों के केंद्र में रखा था।[4]

'महाजनक जातक' बौद्ध साहित्य का एक अनमोल रत्न है, जो मिथिला की तत्कालीन वैभवशाली स्थिति का जीवंत चित्रण करता है। इस जातक में मिथिला को एक विशाल और समृद्ध नगरी के रूप में वर्णित किया गया है, जिसके द्वार, प्राचीर और बाजार व्यापारिक गतिविधियों से जीवंत थे। इसमें राजा महाजनक के संघर्ष और अंतत: उनके द्वारा सत्य की खोज के लिए राज्य त्यागने की कथा है। यह जातक न केवल मिथिला की भौगोलिक और आर्थिक संपन्नता को दर्शाता है, बल्कि यह भी संकेत देता है कि बौद्ध कथाकारों ने मिथिला के सांस्कृतिक परिवेश को अपने 'बोधिसत्व' सिद्धांतों के प्रचार के लिए एक आदर्श मंच माना था। विदेह की यह भूमि बौद्ध साहित्य में एक ऐसे स्थान के रूप में दर्ज है जहाँ भौतिक संपदा और आध्यात्मिक पिपासा का अद्‌भुत संगम था।[5]

ऐतिहासिक दृष्टि से, महात्मा बुद्ध की वैशाली और विदेह की यात्राएं अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। वैशाली, जो मिथिला (विदेह) की दक्षिणी सीमा पर स्थित लिच्छवियों की राजधानी थी, बुद्ध का प्रिय निवास स्थान थी। अंगुत्तर निकाय और मज्झिम निकाय के संदर्भों से ज्ञात होता है कि बुद्ध ने विदेह के विभिन्न क्षेत्रों का भ्रमण किया था। यद्यपि मगध या वैशाली की तुलना में मिथिला के मुख्य केंद्र में बुद्ध को वैसी व्यापक सफलता नहीं मिली, फिर भी उनकी उपस्थिति ने यहाँ के विद्वत समाज में एक वैचारिक हलचल पैदा कर दी थी। बुद्ध का मिथिला आना इस बात का प्रमाण है कि वे इस क्षेत्र की बौद्धिक महत्ता से परिचित थे और यहाँ के तार्किक आधार को अपने 'धम्म' से प्रभावित करना चाहते थे।[6]

अंतत:, यह धारणा कि मिथिला ने बौद्ध धर्म को पूरी तरह अस्वीकार कर दिया, पूर्णत: सत्य नहीं है। बौद्ध ग्रंथों में मिथिला के कुछ ऐसे प्रखर व्यक्तित्वों का उल्लेख मिलता है जिन्होंने बुद्ध के मार्ग को अपनाया। इनमें 'सुमेध' का नाम प्रमुखता से आता है, जिन्होंने विदेह की धरती से निकलकर बौद्ध संघ में

ऊंचा स्थान प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त, कुछ अन्य कुलीन विदेहियों और व्यापारियों ने भी बौद्ध धम्म की दीक्षा ली थी। हालाँकि, इन धर्मांतरणों की संख्या सीमित थी और वे मिथिला के व्यापक ब्राह्मणवादी ढांचे को हिलाने में असमर्थ रहे, फिर भी ये इस बात के साक्षी हैं कि बुद्ध के विचारों ने मिथिला के 'बौद्धिक द्वीप' में अपनी पैठ बनाने की निरंतर चेष्टा की थी। यह संघर्ष पूर्णत: मौन नहीं था, बल्कि इसमें संवाद और परिवर्तन के सूक्ष्म स्वर भी सम्मिलित थे।[7]

वैचारिक संघर्ष

मिथिला और बौद्ध धर्म के मध्य का संघर्ष केवल दो संप्रदायों का टकराव नहीं था, बल्कि यह दो नितांत भिन्न विश्व-दृष्टिकोणों का महासंग्राम था। यह संघर्ष दार्शनिक सूक्ष्मताओं से लेकर सामाजिक संरचनाओं और अभिव्यक्ति की भाषा तक व्याप्त था। इन विरोधाभासों ने ही मिथिला की बौद्धिक पहचान को और अधिक प्रखर बनाया।

दार्शनिक संघर्ष: क्षणिकवाद बनाम स्थिरतावाद

दार्शनिक धरातल पर सबसे बड़ा द्वंद्व 'सत्ता की प्रकृति' को लेकर था। बौद्ध दर्शन का मूल आधार 'क्षणिकवाद' है, जिसके अनुसार संसार की हर वस्तु प्रतिपल बदल रही है और कोई भी तत्व स्थायी नहीं है। बुद्ध ने 'अनात्मवाद' के माध्यम से यह प्रतिपादित किया कि 'आत्मा' जैसी कोई नित्य सत्ता नहीं है। इसके विपरीत, मिथिला के नैयायिकों और मीमांसकों ने 'स्थिरतावाद' या 'नित्यता' का प्रबल समर्थन किया।

मिथिला के विद्वानों का तर्क था कि यदि ज्ञाता (आत्मा) स्वयं क्षणिक है, तो स्मृति, पहचान और कर्मफल का सिद्धांत अर्थहीन हो जाएगा। न्याय दर्शन के अनुसार, एक स्थायी द्रष्टा के बिना अनुभव का समन्वय संभव नहीं है। 'अक्षपाद गौतम' से लेकर श्उद्योतकरश तक, मिथिला के मनीषियों ने यह सिद्ध करने में अपनी पूरी बौद्धिक शक्ति लगा दी कि जगत और आत्मा का अस्तित्व क्षणभंगुर नहीं बल्कि स्थिर और सप्रमाण है। यह वैचारिक युद्ध इतना गहरा था कि इसने भारतीय तर्कशास्त्र की पूरी पद्धति को ही बदल दिया।[8]

सामाजिक संघर्ष: वर्ण व्यवस्था और संस्थागत चुनौती

सामाजिक धरातल पर, मिथिला एक सुदृढ़ वर्णाश्रम धर्म और ब्राह्मणवादी व्यवस्था का केंद्र थी। यहाँ की सामाजिक प्रतिष्ठा वेदों के अध्ययन और यज्ञीय शुद्धता पर टिकी थी। महात्मा बुद्ध ने जाति-आधारित ऊंच-नीच और जन्मजात श्रेष्ठता के सिद्धांत पर कड़ा प्रहार किया। उन्होंने 'संघ' की स्थापना की, जहाँ वर्ण का कोई स्थान नहीं था। मिथिला के रूढ़िवादी समाज के लिए यह एक बड़ी चुनौती थी, क्योंकि यहाँ की पूरी अर्थव्यवस्था और सामाजिक ढांचा कर्मकांडीय पदानुक्रम पर आधारित था।

मिथिला के समाज ने बुद्ध की इस 'समतावादी' पुकार की प्रतिक्रिया स्वरूप अपने नियमों को और अधिक कड़ा कर लिया। जहाँ मगध और वैशाली में लिच्छवियों और शाक्यों ने बुद्ध के विचारों को हाथों-हाथ लिया, वहीं मिथिला के ब्राह्मणों ने 'मर्यादा' और 'संस्कार' के नाम पर अपनी रक्षात्मक दीवारें ऊँची कर लीं। उन्होंने बुद्ध के 'अहिंसा' के सिद्धांत को स्वीकार किया, किंतु यज्ञ और सामाजिक व्यवस्था में किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप को सिरे से नकार दिया। यह संघर्ष 'परंपरा बनाम क्रांति' का जीवंत उदाहरण था।[9]

भाषा का संघर्ष: संस्कृत बनाम पालि

वैचारिक मतभेद का एक अन्य महत्वपूर्ण आयाम श्भाषाश का चुनाव था। मिथिला संस्कृत की अनन्य उपासक थी। यहाँ के विद्वानों का मानना था कि वेदों की भाषा (संस्कृत) ही ज्ञान की एकमात्र शुद्ध और प्रामाणिक अभिव्यक्ति है। संस्कृत यहाँ के अभिजात्य वर्ग और बौद्धिक विमर्श की भाषा थी, जो इसे एक प्रकार की विशिष्टता प्रदान करती थी।

दूसरी ओर, बुद्ध ने जनसामान्य की भाषा 'पालि' को अपना माध्यम बनाया ताकि उनके विचार आम आदमी तक बिना किसी मध्यस्थ के पहुँच सकें। मिथिला के लिए पालि का प्रयोग केवल भाषाई अंतर नहीं, बल्कि 'प्रामाणिकता' का संकट था। मिथिला के नैयायिकों ने तर्क दिया कि सत्य की सूक्ष्म विवेचना लोकभाषा में संभव नहीं है, जबकि बौद्धों ने संस्कृत को 'जटिलता और पाखंड' का प्रतीक माना। यह भाषाई संघर्ष वास्तव में 'लोकतंत्रिक ज्ञान' और 'अभिजात्य ज्ञान' के बीच की खाई को दर्शाता था, जिसने मिथिला को बौद्ध धर्म के प्रसार के प्रति और अधिक प्रतिरोधी बना दिया।[10]

अंतत:, इन तीनों स्तरों पर हुए संघर्ष ने मिथिला को एक ऐसा 'बौद्धिक द्वीप' बना दिया जहाँ बुद्ध के विचार टकराकर वापस लौट जाते थे। यह संघर्ष ही वह कारण था जिसने मिथिला को अपनी प्राचीन वैदिक पहचान को सुरक्षित रखने में सफलता दिलाई।

मिथिला के विद्वानों की प्रतिक्रिया

जब बौद्ध दर्शन अपने तार्किक उत्कर्ष पर था और नालंदा व विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालय इसके केंद्र बन चुके थे, तब मिथिला के विद्वानों ने एक अत्यंत सशक्त 'प्रति-आंदोलन' का नेतृत्व किया। यह प्रतिक्रिया केवल धार्मिक विरोध नहीं थी, बल्कि एक उच्च स्तरीय दार्शनिक युद्ध था। इस संघर्ष के अग्रदूतों में कुमारिल भट्ट और उदयनाचार्य के नाम स्वर्ण अक्षरों में अंकित हैं। इन्होंने बौद्ध तर्कशास्त्र की नींव को हिलाने के लिए मीमांसा और न्याय दर्शन को एक अचूक अस्त्र के रूप में प्रयोग किया।

कुमारिल भट्ट (8वीं शताब्दी) ने 'श्लोकवार्तिक' के माध्यम से बौद्धों के 'अपोहवाद' और उनके द्वारा वेदों की अपौरुषेयता पर किए गए प्रहारों का खंडन किया। बौद्ध विद्वानों का तर्क था कि प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है, जबकि कुमारिल ने 'शब्द' (वेदों) को स्वत: प्रमाण सिद्ध किया। उन्होंने यह प्रतिपादित

किया कि यदि वेदों की प्रामाणिकता को नकारा जाता है, तो नैतिकता और धर्म का कोई स्थायी आधार नहीं रह जाएगा। कुमारिल ने बौद्धों के शून्य के विचार को 'नकारात्मकता' बताते हुए कर्मकांड और वैदिक विधि-विधानों को पुनः स्थापित किया। उनका कार्य मिथिला की उस रक्षात्मक मुद्रा का प्रतीक था, जिसने बौद्ध धर्म के बढ़ते प्रभाव को तार्किक रूप से रोकने का कार्य किया।[11]

इस वैचारिक संघर्ष के शिखर पुरुष उदयनाचार्य (10वीं शताब्दी) थे, जिन्हें 'नैयायिक-कुल-चूड़ामणि' कहा जाता है। उनकी कालजयी रचना 'आत्मतत्त्वविवेक' (जिसे 'बौद्ध-धिकार' भी कहा जाता है) शुद्ध रूप से बौद्ध मत के तार्किक खंडन के लिए समर्पित है। इसमें उदयनाचार्य ने बौद्धों के 'क्षणिकवाद' पर भीषण प्रहार किया। उन्होंने तर्क दिया कि यदि संसार की हर वस्तु क्षणिक है, तो 'कर्ता' और 'भोक्ता' के बीच का संबंध टूट जाएगा-अर्थात कर्म कोई और करेगा और फल किसी और को मिलेगा। उदयनाचार्य ने सूक्ष्म तर्कों से सिद्ध किया कि एक नित्य 'आत्मा' के बिना न तो ज्ञान संभव है और न ही मुक्ति। उनकी अन्य कृति 'कुसुमांजलि' ने ईश्वर के अस्तित्व को तार्किक रूप से सिद्ध कर बौद्धों के निरीश्वरवाद को कड़ी चुनौती दी।[12]

मिथिला की गलियों और शास्त्रार्थ-शालाओं में यह एक प्रकार का 'शाब्दिक युद्ध' था, जहाँ तर्कशास्त्र को एक बौद्धिक हथियार की तरह इस्तेमाल किया गया। यहाँ का विद्वत समाज 'वाद' (सत्य की खोज), 'जल्प' (विजय के लिए बहस) और 'वितंडा' (केवल खंडन) की कला में निपुण था। बौद्ध विद्वान जैसे दिन्नाग और धर्मकीर्ति ने जो तार्किक जाल बुना था, मिथिला के नैयायिकों ने उसे उन्हीं की पद्धतियों से काट दिया।

यह संघर्ष इतना प्रबल था कि मिथिला के विद्वानों ने केवल पुराने मतों की रक्षा नहीं की, बल्कि 'नव्य-न्याय' जैसी जटिल और अत्यंत सूक्ष्म तर्क-पद्धति को जन्म दिया। इस तार्किक श्रेष्ठता ने यह सुनिश्चित किया कि मिथिला का जनमानस और वहां का शासक वर्ग बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित न हो। उदयनाचार्य का यह योगदान ऐतिहासिक रूप से इतना महत्वपूर्ण माना जाता है कि कहा जाता है कि उनके तर्कों ने भारत से बौद्ध धर्म के वैचारिक पतन की पटकथा लिख दी थी। यह शाब्दिक युद्ध अंततः मिथिला की बौद्धिक विजय के रूप में समाप्त हुआ, जिसने भारत में सनातन धर्म के पुनर्जागरण का मार्ग प्रशस्त किया।

मिथिला में बौद्ध धर्म का पतन और समन्वय

मिथिला के इतिहास का एक रोचक पक्ष यह है कि मध्यकाल के दौरान जब पड़ोसी क्षेत्र मगध और अंग में पाल वंश के शासकों (जैसे धर्मपाल और देवपाल) ने बौद्ध धर्म को राजकीय संरक्षण प्रदान किया और विक्रमशिला जैसे महाविहारों की स्थापना की, तब भी मिथिला के 'हृदय स्थल' में बौद्ध धर्म अपनी जड़ें नहीं जमा सका। पाल राजाओं के प्रभाव में मिथिला के सीमावर्ती क्षेत्रों में कुछ बौद्ध मठों का निर्माण अवश्य हुआ, किंतु मिथिला के विद्वत समाज और सामान्य जनमानस पर वैदिक संस्कारों का प्रभाव इतना गहरा था कि बौद्ध धम्म यहाँ केवल एक बाहरी विचारधारा बनकर रह गया। मिथिला के नैयायिकों ने तार्किक मोर्चे पर बौद्धों को निरंतर घेरे रखा, जिससे जनसाधारण में यह धारणा प्रबल हो गई कि बौद्ध मत केवल 'शून्यवाद' है, जो जीवन के ठोस यथार्थ और सामाजिक मर्यादाओं से कटा हुआ है।

कालांतर में, जब वैचारिक संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर शिथिल होने लगा, तब मिथिला के समाज ने एक अत्यंत चतुर और प्रभावी 'समन्वयकारी रणनीति' अपनाई। यह रणनीति थी-बुद्ध का पूर्ण बहिष्कार करने के बजाय उन्हें अपनी ही व्यवस्था का हिस्सा बना लेना। जयदेव के 'गीतगोविंद' और मिथिला के परवर्ती पुराणों में बुद्ध को 'विष्णु का नौवां अवतार' (दशावतार) घोषित कर दिया गया।

इस धार्मिक 'आत्मसातीकरण' का परिणाम यह हुआ कि बुद्ध के प्रति जो विद्रोही भाव था, वह श्रद्धा में बदल गया, किंतु उनके 'धम्म' के मौलिक सिद्धांतों (जैसे वेदों का खंडन और जाति विहीन समाज) को गौण कर दिया गया। मिथिला के लोगों ने बुद्ध की पूजा तो शुरू की, लेकिन एक 'वैदिक देवता' के रूप में। इस प्रकार, मिथिला ने बुद्ध को एक व्यक्ति और अवतार के रूप में तो स्वीकार कर लिया, परंतु बौद्ध धर्म की स्वतंत्र पहचान को अपने विशाल सांस्कृतिक समुद्र में विलीन कर लिया। यह समन्वय भारतीय इतिहास की वह घटना थी जिसने अंततः उत्तर भारत, विशेषकर मिथिला से बौद्ध धर्म के संस्थागत अस्तित्व को समाप्त कर दिया।

निष्कर्ष

प्राचीन मिथिला और बौद्ध धर्म के मध्य का वैचारिक संघर्ष भारतीय इतिहास का वह स्वर्णिम अध्याय है, जिसने न केवल बिहार बल्कि संपूर्ण आर्यावर्त की दार्शनिक चेतना को परिष्कृत किया। इस शोध के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि मिथिला का दृष्टिकोण बौद्ध धर्म के प्रति केवल एक अंध-विरोध नहीं था, बल्कि यह एक गहन बौद्धिक और तार्किक रक्षात्मकता का परिणाम था। जहाँ मगध ने बुद्ध के क्रांतिकारी सामाजिक और दार्शनिक बदलावों को आत्मसात किया, वहीं मिथिला ने अपनी उपनिषदीय जड़ों, शनित्य आत्माश के सिद्धांत और वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए एक अभेद्य वैचारिक दुर्ग का निर्माण किया।

निष्कर्षतः, मिथिला ने बुद्ध को सिद्धांत के स्तर पर नकारा, तर्क के स्तर पर उनसे लोहा लिया और अंततः भक्ति के स्तर पर उन्हें 'दशावतार' के रूप में स्वीकार कर अपने विशाल सांस्कृतिक ढांचे में समाहित कर लिया। यह संघर्ष हार-जीत का नहीं, बल्कि विचारों के मंथन का था। इसी मंथन से 'नव्य-न्याय' और 'मीमांसा' जैसे दार्शनिक रत्नों का उदय हुआ, जिन्होंने भारतीय तर्कशास्त्र को विश्वपटल पर प्रतिष्ठित किया। मिथिला की यह गौरवशाली परंपरा आज भी इस बात की साक्षी है कि वैचारिक मतभेद विनाशकारी होने के बजाय, यदि तर्कसंगत हों, तो सभ्यता को और अधिक समृद्ध और सुदृढ़ बना सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. ठाकुर, उपेन्द्र (1956). History of Mithil, दरभंगा: मिथिला संस्थान।
2. राधाकृष्णन, एस. (1923). Indian Philosophy, वॉल्यूम 1, लंदन: जॉर्ज एलेन एंड अनविन।

3. झा, जे. एस. (1982). Aspects of the History of Mithila, पटना: के.पी. जायसवाल शोध संस्थान।
4. सांकृत्यायन, राहुल (1944). दर्शन-दिग्दर्शन, इलाहाबाद: कितघब महल।
5. कौशल्यायन, भदंत आनंद (अनुवाद). जातक कथाएं (6 खंड), प्रयाग: हिंदी साहित्य सम्मेलन।
6. मिश्र, उमेश (1966). History of Indian Philosophy, इलाहाबाद: तिरभुकित पब्लिकेशन।
7. पाण्डेय, जी. सी. (1957). Studies in the Origins of Buddhism, इलाहाबाद विश्वविद्यालय।
8. शर्मा, सी. डी. (1960). A Critical Survey of Indian Philosophy, दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।
9. सिंह, श्याम नारायण (1922). History of Tirhut, कलकत्ता: बैपटिस्ट मिशन प्रेस।
10. मिश्र, जयकांत (1949). A History of Maithili Literature, इलाहाबाद: तिरभुकित पब्लिकेशन।
11. भट्टाचार्य, बिधुशेखर (1943). The Basic Conception of Buddhism, कलकत्ता विश्वविद्यालय।
12. उदयनाचार्य (संपादित). आत्मतत्त्वविवेक, वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज।

"ग्रामीण उत्तराखंड में स्वयं सहायता समूहों (SHGs) की भूमिका: महिला सशक्तिकरण का एक अध्ययन"

अर्जुन कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय महाविद्यालय मासी, अल्मोड़ा, उत्तराखंड

सार (Abstract)

ग्रामीण उत्तराखंड में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होते हुए भी उन्हें आर्थिक एवं सामाजिक रूप से सीमित अवसर प्राप्त होते हैं। स्वयं सहायता समूह (Self Help Groups - SHGs) इस दिशा में एक प्रभावी माध्यम के रूप में उभरे हैं, जो महिलाओं को बचत, ऋण और स्वरोजगार के अवसर प्रदान करते हैं। इस अध्ययन में पाया गया कि SHGs महिलाओं की आय, आत्मनिर्भरता, निर्णय क्षमता एवं सामाजिक भागीदारी को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हालांकि, प्रशिक्षण की कमी, बाजार तक सीमित पहुँच एवं डिजिटल साक्षरता जैसी चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं। अत: SHGs को और अधिक सशक्त बनाकर महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया जा सकता है।

कुन्जी शब्द (Keywords): स्वयं सहायता समूह, महिला सशक्तिकरण, उत्तराखंड, ग्रामीण विकास, आजीविका

1-प्रस्तावना (Introduction)

भारत में महिला सशक्तिकरण एक महत्वपूर्ण सामाजिक, आर्थिक एवं विकासात्मक मुद्दा है, जो किसी भी समाज की प्रगति का मूल आधार माना जाता है। यदि महिलाओं को शिक्षा, संसाधनों और अवसरों तक समान पहुँच प्राप्त होती है, तो न केवल उनका व्यक्तिगत विकास होता है बल्कि समाज और राष्ट्र का समग्र विकास भी सुनिश्चित होता है। स्वतंत्रता के पश्चात भारत सरकार ने महिलाओं के उत्थान हेतु अनेक योजनाएँ और नीतियाँ लागू की हैं, किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में, विशेषकर पर्वतीय राज्यों में, महिलाओं की स्थिति अभी भी चुनौतीपूर्ण बनी हुई है। उत्तराखंड एक पर्वतीय राज्य है, जहाँ की भौगोलिक परिस्थितियाँ-जैसे ऊँचे-नीचे पहाड़, सीमित परिवहन सुविधाएँ, बिखरी हुई आबादी और प्राकृतिक आपदाओं की संभावना-ग्रामीण जीवन को जटिल बनाती हैं। इन परिस्थितियों में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। वे न केवल घरेलू कार्यों का निर्वहन करती हैं, बल्कि कृषि, पशुपालन, जल प्रबंधन, वनोपज संग्रह और परिवार के पालन-पोषण में भी महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। इसके बावजूद, उनके कार्यों को औपचारिक अर्थव्यवस्था में उचित मान्यता नहीं मिलती और वे आर्थिक रूप से निर्भर बनी रहती हैं।उत्तराखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुषों का पलायन एक गंभीर सामाजिक-आर्थिक समस्या है। बेहतर रोजगार की तलाश में पुरुष शहरों की ओर चले जाते हैं, जिसके कारण गाँवों में महिलाओं पर दोहरी जिम्मेदारी आ जाती है। उन्हें घर के साथ-साथ खेतों और पशुओं की देखभाल भी करनी पड़ती है। इस स्थिति को "नारी-प्रधान कृषि" के रूप में देखा जाता है, जहाँ अधिकांश कृषि कार्य महिलाओं द्वारा किए जाते हैं। फिर भी उन्हें भूमि स्वामित्व, वित्तीय संसाधनों और निर्णय लेने में सीमित अधिकार प्राप्त होते हैं। महिलाओं की इस स्थिति के पीछे कई कारण हैं, जैसे-शिक्षा का अभाव, सामाजिक रूढ़ियाँ, आर्थिक निर्भरता, जागरूकता की कमी और संसाधनों तक सीमित पहुँच। इन कारणों से महिलाएँ अपनी पूर्ण क्षमता का उपयोग नहीं कर पातीं। इसलिए महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाना अत्यंत आवश्यक है, ताकि वे आत्मनिर्भर बन सकें और अपने जीवन से जुड़े निर्णय स्वयं ले सकें। इसी संदर्भ में स्वयं सहायता समूह (Self Help Groups - SHGs) एक प्रभावी और नवाचारी माध्यम के रूप में सामने आए हैं। SHGs छोटे-छोटे स्वैच्छिक समूह होते हैं, जिनमें सामान्यत: 10-20 महिलाएँ शामिल होती हैं। ये समूह नियमित रूप से छोटी-छोटी बचत एकत्र करते हैं और इस धन का उपयोग समूह के सदस्यों को ऋण प्रदान करने के लिए करते हैं। इस प्रक्रिया से महिलाएँ न केवल बचत करना सीखती हैं, बल्कि उन्हें वित्तीय प्रबंधन का भी ज्ञान होता हैै।भ्ळे का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह महिलाओं को औपचारिक बैंकिंग प्रणाली से जोड़ते हैं। पहले जहाँ ग्रामीण महिलाएँ बैंकिंग सेवाओं से दूर रहती थीं, वहीं अब वे ैभ्ळे के माध्यम से बचत खाता खोलती हैं, ऋण प्राप्त करती हैं और वित्तीय लेन-देन में सक्रिय भागीदारी निभाती हैं। इससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होता है और वे आत्मनिर्भर बनने की दिशा में आगे बढ़ती हैं।इसके अतिरिक्त, SHGs महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। समूह बैठकों के माध्यम से महिलाएँ एक-दूसरे से संवाद करती हैं, अपने अनुभव साझा करती हैं और समस्याओं का सामूहिक समाधान खोजती हैं। इससे उनमें आत्मविश्वास, नेतृत्व क्षमता और निर्णय लेने की योग्यता का विकास होता है। वे अब केवल घरेलू कार्यों तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि ग्राम सभा, पंचायत और अन्य सामाजिक गतिविधियों में भी सक्रिय भागीदारी निभाने लगती हैं।आर्थिक दृष्टि से SHGs महिलाओं को स्वरोजगार के अवसर प्रदान करते हैं। महिलाएँ समूह से ऋण लेकर दुग्ध उत्पादन, हस्तशिल्प, बुनाई, सिलाई-कढ़ाई, खाद्य प्रसंस्करण आदि गतिविधियों में संलग्न होती हैं। इससे उनकी आय में वृद्धि होती है और वे अपने परिवार की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने में सक्षम होती हैं।हाल के वर्षों में सरकार द्वारा SHGs को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) जैसी योजनाएँ चलाई गई हैं, जिनका उद्देश्य महिलाओं को संगठित कर उन्हें आत्मनिर्भर बनाना है। उत्तराखंड में भी यह मिशन सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है और हजारों महिलाएँ इससे लाभान्वित हो रही हैं।हालांकि, SHGss के प्रभावी संचालन में कुछ चुनौतियाँ भी मौजूद हैं, जैसे-प्रशिक्षण की कमी, बाजार तक सीमित पहुँच, डिजिटल साक्षरता का अभाव और वित्तीय प्रबंधन में

कठिनाइयाँ। इन चुनौतियों को दूर करना आवश्यक है ताकि भ्ळे की प्रभावशीलता को और अधिक बढ़ाया जा सके। यह अध्ययन ग्रामीण उत्तराखंड में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका का विश्लेषण करता है और यह समझने का प्रयास करता है कि किस प्रकार ये समूह महिलाओं के आर्थिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण में योगदान दे रहे हैं। यह शोध न केवल SHG के सकारात्मक प्रभावों को उजागर करता है, बल्कि उनके सामने आने वाली चुनौतियों और संभावित समाधानों को भी प्रस्तुत करता है।

2. अध्ययन के उद्देश्य -

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण उत्तराखंड में स्वयं सहायता समूहों (SHGs) की भूमिका का व्यापक विश्लेषण करना है, विशेष रूप से महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में। अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. SHGs की संरचना एवं कार्यप्रणाली का अध्ययन करना।
2. महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण का विश्लेषण करना।
3. सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रभावों का अध्ययन करना।
4. SHGs की प्रमुख चुनौतियों की पहचान करना।
5. सुधार हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

3. अनुसंधान पद्धति -

इस अध्ययन में ग्रामीण उत्तराखंड में स्वयं सहायता समूहों (SHGs) की भूमिका का विश्लेषण करने हेतु मिश्रित अनुसंधान पद्धति (Miñed Method Research Design) अपनाई गई है, जिसमें गुणात्मक (Qualitative) एवं मात्रात्मक (ञनंदजपजंजपअम) दोनों प्रकार के डेटा का उपयोग किया गया है। यह पद्धति अध्ययन को अधिक व्यापक, सटीक एवं विश्वसनीय बनाती है।

3.1 अध्ययन क्षेत्र-इस अध्ययन के लिए उत्तराखंड राज्य के चार प्रमुख जिलों-नैनीताल, अल्मोड़ा, पौड़ी गढ़वाल तथा ऊधम सिंह नगर-का चयन किया गया है। इन जिलों का चयन इसलिए किया गया क्योंकि ये भौगोलिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से विविधता को प्रदर्शित करते हैं।

- नैनीताल एवं ऊधम सिंह नगर अपेक्षाकृत विकसित एवं मैदानी क्षेत्र हैं
- अल्मोड़ा एवं पौड़ी गढ़वाल पर्वतीय एवं अपेक्षाकृत दुर्गम क्षेत्र हैं

इस प्रकार, इन जिलों के चयन से SHGs की भूमिका का तुलनात्मक एवं व्यापक अध्ययन संभव हो पाया है।

3.2 नमूना चयन-अध्ययन के लिए कुल 500 ग्रामीण महिलाओं का चयन किया गया, जो स्वयं सहायता समूहों से जुड़ी हुई हैं। नमूना चयन के लिए बहु-स्तरीय नमूना पद्धति (Multistage Sampling Method) का उपयोग किया गया। बहु-स्तरीय नमूना पद्धति के अंतर्गत प्रथम चरण में जिलों का चयन किया गया, द्वितीय चरण में प्रत्येक जिले से ग्राम पंचायतों का चयन किया गया, तृतीय चरण में चयनित पंचायतों से स्वयं सहायता समूहों (SHGs) का चयन किया गया तथा अंतिम चरण में प्रत्येक SHG से महिलाओं का चयन करते हुए नैनीताल, अल्मोड़ा, पौड़ी गढ़वाल और ऊधम सिंह नगर से 125-125 महिलाओं सहित कुल 500 महिलाओं को शामिल किया गया।

3.3 प्राथमिक डेटा - प्राथमिक डेटा सीधे क्षेत्र से एकत्र किया गया, जिससे अध्ययन की वास्तविकता, सटीकता एवं विश्वसनीयता सुनिश्चित की जा सके; इसके अंतर्गत संरचित प्रश्नावली (Structured Questionnaire) तैयार कर चयनित महिलाओं से आमने-सामने संपर्क स्थापित किया गया और उनसे आय, बचत, ऋण, रोजगार, शिक्षा एवं सामाजिक स्थिति से संबंधित विस्तृत जानकारी प्राप्त की गई, साथ ही अर्द्ध-संरचित साक्षात्कार (Semi-structured Interviews) के माध्यम से SHG सदस्यों, समूह लीडर तथा संबंधित बैंक अधिकारियों से बातचीत की गई, जिससे उनके व्यक्तिगत अनुभव, कार्यप्रणाली, समस्याएँ, लाभ तथा समूह के संचालन से जुड़े व्यावहारिक पहलुओं की गहन समझ विकसित हुई, इसके अतिरिक्त समूह चर्चा (Focus Group Discussion) के माध्यम से महिलाओं के सामूहिक विचार, सामाजिक परिवर्तन, निर्णय क्षमता तथा समूह की प्रभावशीलता का भी विश्लेषण किया गया।

3.4 द्वितीयक डेटा -अध्ययन को अधिक प्रमाणिक, व्यापक एवं विश्लेषणात्मक बनाने के लिए द्वितीयक डेटा का भी उपयोग किया गया, जिसके अंतर्गत विभिन्न सरकारी रिपोर्टें (जैसे उत्तराखंड आर्थिक सर्वेक्षण), राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) के आधिकारिक दस्तावेज, प्रकाशित शोध पत्र, जर्नल, पुस्तकें तथा सरकारी वेबसाइटों से संबंधित आंकड़े एवं सूचनाएँ एकत्र की गईं, इन सभी स्रोतों के माध्यम से SHGs की वर्तमान स्थिति, विकास की प्रवृत्तियाँ, नीतिगत ढांचा एवं सरकारी योजनाओं का विस्तृत दृष्टिकोण प्राप्त हुआ, जिसे प्राथमिक डेटा के साथ समन्वित कर तुलनात्मक एवं व्याख्यात्मक विश्लेषण किया गया, जिससे अध्ययन के निष्कर्ष अधिक सटीक एवं विश्वसनीय बन सके।

नैनीताल जिला - तालिका-1

S.No.	Block Name	Total SHGs	S.No.	Block Name	Total SHGs
1	BETALGHAT	732	5	KOTABAG	780
2	BHIMTAL	674	6	OKHALKANDA	566
3	DHARI	576	7	RAMGARH	533
4	HALDWANI	703	8	RAMNAGAR	787

तालिका विश्लेषण -प्रस्तुत आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि नैनीताल जिले में स्वयं सहायता समूहों (SHGs) का वितरण विभिन्न ब्लॉकों में संतुलित नहीं है। रामनगर (787) और कोटाबाग (780) में SHGs की संख्या सर्वाधिक पाई जाती है, जबकि बेतालघाट (732) और हल्द्वानी (703) भी अपेक्षाकृत उच्च स्थिति में हैं। इसके विपरीत रामगढ़ (533) तथा ओखलकांडा (566) जैसे ब्लॉकों में SHGs की संख्या कम है। यह अंतर क्षेत्रीय विकास, जनसंख्या घनत्व, संसाधनों की उपलब्धता तथा SHGs के प्रति जागरूकता के स्तर में भिन्नता को दर्शाता है।

ऊधम सिंह नगर जिला ख़ तालिका -2

S.No.	Block Name	Total SHGs	S.No.	Block Name	Total SHGs
1	BAJPUR	911	5	KHATIMA	1423
2	GADARPUR	1282	6	RUDRAPUR	879
3	JASPUR	955	7	SITARGANJ	1612
4	KASHIPUR	971	8	Total	8033

ऊधम सिंह नगर जिले के आंकड़ों से ज्ञात होता है कि SHGs का वितरण यहाँ भी समान नहीं है। सितारगंज (1612) और खटीमा (1423) में SHGs की संख्या अत्यधिक है, जबकि गदरपुर (1282) भी प्रमुख स्थान रखता है। काशीपुर (971) और जसपुर (955) मध्यम श्रेणी में आते हैं, जबकि रुद्रपुर (879) और बाजपुर (911) में अपेक्षाकृत कम SHG पाए जाते हैं। यह स्थिति दर्शाती है कि जिले के भीतर भी विकास, आर्थिक गतिविधियों तथा संस्थागत सहयोग में अंतर मौजूद है।

पौड़ी गढ़वाल जिला ख़ तालिका -3

S.No.	Block Name	Total SHGs	S.No.	Block Name	Total SHGs	S.No.	Block Name	Total SHGs
1	BIRONKHAL	546	6	KHIRSU	358	11	POKHRA	347
2	DUGADDA	775	7	KOT	443	12	RIKHNIKHAL	447
3	DWARIKHAL	457	8	NAINIDANDA	523	13	THALISAIN	782
4	EKESHWAR	474	9	PABAU	485	14	YAMKESHWAR	497
5	KALJIKHAL	413	10	PAURI	502	15	ZAHRIKHAL	381

पौड़ी गढ़वाल जिले में SHGs का वितरण काफी विविधतापूर्ण है। थलीसैंण (782) और दुगड्डा (775) में SHGs की संख्या अधिक है, जबकि बिरोंखाल (546), नैनिडांडा (523) और पौड़ी (502) में मध्यम स्तर देखा जाता है। इसके विपरीत पोखरा (347), खिर्सू (358) और जहरीखाल (381) में SHGs की संख्या कम पाई जाती है। यह अंतर भौगोलिक परिस्थितियों, संसाधनों की उपलब्धता, परिवहन सुविधा तथा महिलाओं की भागीदारी के स्तर को दर्शाता है।

अल्मोड़ा जिला - तालिका -4

S.No.	Block Name	Total SHGs	S.No.	Block Name	Total SHGs	S.No.	Block Name	Total SHGs
1	BHAISIACHHANA	369	6	DWARAHAT	750	11	SYALDEY	726
2	BHIKIASAIN	439	7	HAWALBAG	733	12	TAKULA	811
3	CHAUKHUTIA	587	8	LAMGARA	579	13	TARIKHET	572
4	DHAULADEVI	719	9	SULT	470	14	Total	6755

प्रस्तुत आंकड़ों के अनुसार अल्मोड़ा जिले में स्वयं सहायता समूहों (SHGs) का वितरण विभिन्न ब्लॉकों में असमान रूप से पाया जाता है। ताकुला (811) में SHGs की संख्या सर्वाधिक है, जबकि द्वाराहाट (750), हवालबाग (733) और स्याल्दे (726) में भी उच्च स्तर देखा जाता है। इसके विपरीत भैसियाछाना (369) और भिकियासैंण (439) जैसे ब्लॉकों में SHGs की संख्या अपेक्षाकृत कम है, जबकि चौखुटिया (587), लमगरा (579) और तारीखेत (572) मध्यम श्रेणी में आते हैं। यह अंतर क्षेत्रीय विकास, संसाधनों की उपलब्धता, भौगोलिक स्थिति तथा महिलाओं की सहभागिता के स्तर में भिन्नता को दर्शाता है।

समग्र रूप से देखा जाए तो यह स्पष्ट होता है कि मैदानी क्षेत्रों (ऊधम सिंह नगर) में SHGs की संख्या अधिक और उनका विस्तार बेहतर है, जबकि पर्वतीय क्षेत्रों (पौड़ी, अल्मोड़ा, नैनीताल) में भौगोलिक कठिनाइयों, संसाधनों की कमी एवं जागरूकता के स्तर के कारण असमानता अधिक दिखाई देती है। यह स्थिति दर्शाती है कि भ्ळे के प्रभावी विस्तार के लिए क्षेत्र-विशिष्ट नीतियों, बेहतर प्रशिक्षण, वित्तीय पहुंच और जागरूकता कार्यक्रमों की आवश्यकता है, जिससे सभी क्षेत्रों में महिलाओं का समान रूप से सशक्तिकरण सुनिश्चित किया जा सके।

6.1 आर्थिक सशक्तिकरण (Economic Empowerment) ग्रामीण उत्तराखंड में स्वयं सहायता समूहों (SHGs) ने महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। SHGs से जुड़ने के बाद महिलाओं में नियमित बचत की आदत विकसित हुई है, जिससे वे छोटी-छोटी धनराशि को संचित कर आवश्यकता के समय उपयोग कर पाती हैं। इसके अतिरिक्त, समूह के माध्यम से महिलाओं को आसानी से ऋण उपलब्ध होने लगा है, जिससे वे साहूकारों पर निर्भर रहने के बजाय औपचारिक एवं सस्ती वित्तीय सेवाओं का लाभ उठा रही हैं। अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि SHGs से जुड़ी अधिकांश महिलाएँ स्वरोजगार गतिविधियों-जैसे दुग्ध उत्पादन, पशुपालन, बुनाई, सिलाई-कढ़ाई, हस्तशिल्प एवं खाद्य प्रसंस्करण-में सक्रिय रूप से भाग ले रही हैं। इन गतिविधियों के माध्यम से उनकी आय में वृद्धि हुई है, जिससे वे अपने परिवार की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने में योगदान दे रही हैं। कई मामलों में महिलाएँ परिवार की आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत बनकर उभरी हैं। इसके साथ ही, SHGs ने महिलाओं को बैंकिंग प्रणाली से जोड़ने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बैंक खाते खोलना, ऋण लेना, बचत करना और वित्तीय लेन-देन करना अब महिलाओं के लिए आसान हो गया है, जिससे उनकी आर्थिक आत्मनिर्भरता में वृद्धि हुई है। आर्थिक सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि महिलाओं की निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि हुई है। अब वे घरेलू खर्च, बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं तथा निवेश संबंधी निर्णयों में सक्रिय भूमिका निभाने लगी हैं। इससे परिवार एवं समाज में उनकी स्थिति मजबूत हुई है। हालाँकि, कुछ चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं, जैसे-बाजार तक सीमित पहुँच, उत्पादों का उचित मूल्य न मिलना, प्रशिक्षण की कमी तथा वित्तीय प्रबंधन में कठिनाइयाँ। इसके बावजूद, SHGs ने महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने की दिशा में एक मजबूत आधार प्रदान किया है। अतः यह कहा जा सकता है कि स्वयं सहायता समूह ग्रामीण उत्तराखंड में महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण का एक प्रभावी माध्यम हैं, जो उन्हें आत्मनिर्भर, सक्षम एवं आत्मविश्वासी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

6.2 सामाजिक सशक्तिकरण (Social Empowerment) स्वयं सहायता समूहों (SHGs) ने ग्रामीण उत्तराखंड में महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। SHGs से जुड़ने के बाद महिलाएँ घर की सीमाओं से बाहर निकलकर सामूहिक गतिविधियों में भाग लेने लगी हैं, जिससे उनकी सामाजिक पहचान में वृद्धि हुई है। समूह बैठकों के माध्यम से महिलाएँ अपने विचार व्यक्त करती हैं, समस्याओं पर चर्चा करती हैं और सामूहिक रूप से समाधान खोजती हैं, जिससे उनमें सामाजिक जागरूकता का विकास होता है। इसके अतिरिक्त, SHGs ने महिलाओं को ग्राम सभा, पंचायत एवं अन्य सामुदायिक कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए प्रेरित किया है। पहले जहाँ महिलाएँ सामाजिक निर्णयों में कम भागीदारी रखती थीं, वहीं अब वे सक्रिय रूप से अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं। इससे समाज में उनकी स्थिति सुदृढ़ हुई है और लैंगिक समानता को बढ़ावा मिला है। SHGs के माध्यम से महिलाओं में शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, बालिका शिक्षा तथा सामाजिक कुरीतियों (जैसे बाल विवाह, नशा, घरेलू हिंसा) के प्रति जागरूकता बढ़ी है। वे अब सामाजिक परिवर्तन की एजेंट (Agent of Change) के रूप में उभर रही हैं और अपने समुदाय के विकास में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। इस प्रकार, SHGs ने महिलाओं को सामाजिक रूप से सशक्त बनाते हुए उन्हें एक सक्रिय, जागरूक एवं जिम्मेदार नागरिक के रूप में स्थापित किया है।

6.3 मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण (Psychological Empowerment) स्वयं सहायता समूहों (SHGs) का महिलाओं के मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण पर भी अत्यंत सकारात्मक प्रभाव देखा गया है। भ्ठे से जुड़ने के बाद महिलाओं के आत्मविश्वास (Self-confidence) और आत्मसम्मान (Self-esteem) में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। वे अब अपने विचारों को खुलकर व्यक्त करने लगी हैं और सामाजिक मंचों पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराने में संकोच नहीं करतीं। समूह की सामूहिकता एवं सहयोग की भावना ने महिलाओं में सुरक्षा एवं आत्मबल की भावना को मजबूत किया है। पहले जहाँ महिलाएँ निर्णय लेने में हिचकिचाती थीं, वहीं अब वे परिवार एवं समाज से जुड़े महत्वपूर्ण निर्णयों में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। इससे उनके व्यक्तित्व का समग्र विकास हुआ है। SHGs के माध्यम से महिलाओं में नेतृत्व क्षमता (Leadership Skills) का भी विकास हुआ है। समूह के संचालन, बैठकों के प्रबंधन एवं वित्तीय गतिविधियों में भागीदारी के कारण वे जिम्मेदारी निभाना सीखती हैं, जिससे उनमें आत्मनिर्भरता की भावना विकसित होती है। इसके साथ ही, समूह से जुड़ाव ने महिलाओं में मानसिक तनाव को कम करने में भी सहायता की है, क्योंकि वे अपनी समस्याओं को साझा कर सामूहिक समाधान प्राप्त करती हैं। इससे उनके जीवन में सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि SHGs न केवल आर्थिक एवं सामाजिक, बल्कि मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी महिलाओं को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। चुनौतियाँ -ग्रामीण उत्तराखंड में स्वयं सहायता समूहों (SHGs) के प्रभावी संचालन के बावजूद कई चुनौतियाँ सामने आती हैं। सर्वप्रथम, शिक्षा का अभाव एक प्रमुख समस्या है, जिसके कारण महिलाएँ वित्तीय प्रबंधन, दस्तावेजीकरण एवं योजनाओं की जानकारी को पूर्ण रूप से समझ नहीं पाती हैं। इसके साथ ही, प्रशिक्षण की कमी के कारण वे अपने कौशल का विकास नहीं कर पातीं और आय सृजन गतिविधियों को बड़े स्तर पर नहीं बढ़ा पाती हैं। इसके अतिरिक्त, बाजार तक सीमित पहुँच एक महत्वपूर्ण बाधा है, जिससे महिलाओं द्वारा बनाए गए उत्पादों को उचित मूल्य नहीं मिल पाता और उनकी आय सीमित रह जाती है। बैंकिंग प्रक्रियाओं की जटिलता भी एक बड़ी समस्या है, क्योंकि कई बार कागजी कार्यवाही एवं तकनीकी प्रक्रियाएँ महिलाओं के लिए कठिन हो जाती हैं।इसके अलावा, कुछ क्षेत्रों में पुरुषों का हस्तक्षेप भी देखा जाता है, जो महिलाओं की स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता को प्रभावित करता है। इन सभी चुनौतियों के कारण SHGs की प्रभावशीलता पूर्ण रूप से सामने नहीं आ पाती।

9. विश्लेषण-

अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि स्वयं सहायता समूहों (SHGs) ने ग्रामीण महिलाओं के जीवन में व्यापक और सकारात्मक परिवर्तन लाया है। SHGs से जुड़ने के बाद महिलाओं की आय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुई है और वे परिवार की आय में सक्रिय योगदान देने लगी हैं। इसके साथ ही, महिलाओं में बचत की प्रवृत्ति विकसित हुई है, जिससे वे भविष्य की आवश्यकताओं के लिए आर्थिक रूप से तैयार रहने लगी हैं। SHGs के माध्यम से उन्हें ऋण की सुविधा भी प्राप्त हुई है, जिससे वे स्वरोजगार गतिविधियों में संलग्न होकर आत्मनिर्भर बन रही हैं। सामाजिक दृष्टि से भी महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि देखी गई है। वे अब ग्राम सभा, पंचायत एवं अन्य सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं, जिससे उनकी सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ है और आत्मविश्वास बढ़ा है। हालांकि, यह भी पाया गया कि यदि महिलाओं को उचित प्रशिक्षण, आधुनिक तकनीक,

डिजिटल साक्षरता तथा बाजार तक बेहतर पहुँच प्रदान की जाए, तो SHGs की प्रभावशीलता और अधिक बढ़ सकती है। अतः आवश्यक है कि सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाएँ मिलकर इन चुनौतियों को दूर करें, जिससे महिलाओं का समग्र सशक्तिकरण सुनिश्चित किया जा सके।

निष्कर्ष –

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ग्रामीण उत्तराखंड में स्वयं सहायता समूह (SHGs) महिलाओं के आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण का एक प्रभावी और व्यवहारिक माध्यम सिद्ध हुए हैं। इन समूहों के माध्यम से महिलाओं में बचत की आदत विकसित हुई है, उन्हें ऋण की सुविधा प्राप्त हुई है तथा वे स्वरोजगार गतिविधियों के माध्यम से अपनी आय में वृद्धि करने में सफल रही हैं।

इसके साथ ही, SHGs ने महिलाओं को सामाजिक रूप से भी सशक्त बनाया है। वे अब सामाजिक एवं सामुदायिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रही हैं, जिससे उनकी पहचान और सम्मान में वृद्धि हुई है। निर्णय लेने की क्षमता में सुधार तथा आत्मविश्वास में वृद्धि ने उन्हें समाज में एक सशक्त भूमिका निभाने के योग्य बनाया है।

हालांकि, अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि SHGs के प्रभावी संचालन में अभी भी कई चुनौतियाँ विद्यमान हैं, जैसे-प्रशिक्षण की कमी, बाजार तक सीमित पहुँच, डिजिटल साक्षरता का अभाव एवं बैंकिंग प्रक्रियाओं की जटिलता। इन समस्याओं के समाधान के लिए सरकार, गैर-सरकारी संगठनों एवं समाज को मिलकर कार्य करना आवश्यक है।

अतः यह कहा जा सकता है कि यदि SHGs को उचित प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता, तकनीकी समर्थन एवं बाजार से बेहतर जुड़ाव प्रदान किया जाए, तो वे न केवल महिलाओं के सशक्तिकरण को और अधिक मजबूत बना सकते हैं, बल्कि ग्रामीण उत्तराखंड के समग्र एवं सतत विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

सुझाव

1. महिलाओं के लिए कौशल विकास प्रशिक्षण को बढ़ावा दिया जाए।
2. डिजिटल साक्षरता को बढ़ाकर आधुनिक तकनीकों से जोड़ा जाए।
3. SHGs उत्पादों के लिए बाजार से सीधा जुड़ाव सुनिश्चित किया जाए।
4. सरकारी योजनाओं की जानकारी महिलाओं तक पहुँचाई जाए।
5. महिला नेतृत्व को प्रोत्साहित किया जाए।
6. बैंकिंग प्रक्रियाओं को सरल और सुलभ बनाया जाए।
7. उत्पादों की गुणवत्ता एवं ब्रांडिंग में सुधार किया जाए।

संदर्भ सूची (References)

1. राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM). (2023). Self Help Group Guidelines and Reports. भारत सरकार।
2. Ministry of Rural Development. (2022). Annual Report on Rural Development. नई दिल्ली।
3. NABARD. (2021). SHG-Bank Linkage Programme Report. मुंबई।
4. Government of Uttarakhand. (2023). उत्तराखंड आर्थिक सर्वेक्षण रिपोर्ट. देहरादून।
5. World Bank. (2020). Women Empowerment through Self Help Groups. वाशिंगटन डी.सी.

ग्रंथ सूची (Bibliography)

1. शर्मा, आर. (2020). ग्रामीण विकास और महिला सशक्तिकरण. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान।
2. सिंह, वी. (2019). स्वयं सहायता समूह और आर्थिक विकास. लखनऊ: यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. कुमारी, पी. (2021). महिला सशक्तिकरण के आयाम. जयपुर: रावत पब्लिकेशन।

बिहार में इन्द्रधनुषी क्रांति (2012-2017): कृषि विविधीकरण, संरचनात्मक परिवर्तन एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक अनुभवजन्य विश्लेषण

श्री ज्योति

शोधार्थी, मगध विश्वविद्यालय, (अर्थशास्त्र)

1. सार (Abstract)

इन्द्रधनुषी क्रांति कृषि क्षेत्र के सर्वांगीण विकास की एक बहुआयामी अवधारणा है, जिसका प्राथमिक लक्ष्य कृषि को पारंपरिक एकल फसल प्रणाली (Monoculture) से निकालकर बहु-आयामी गतिविधियों की ओर मोड़ना है। बिहार जैसे कृषि-प्रधान राज्य में, इस विजन को 2012-2017 के 'द्वितीय कृषि रोडमैप' के माध्यम से धरातल पर उतारा गया। प्रस्तुत शोध-पत्र 2012-13 से 2016-17 के उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर राज्य में हुए संरचनात्मक परिवर्तनों का गहन विश्लेषण करता है। अध्ययन के निष्कर्षों से ज्ञात होता है कि जहाँ खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि दर सीमित रही, वहीं बागवानी, मत्स्य पालन और डेयरी क्षेत्रों में अपेक्षाकृत अधिक प्रगति हुई है। यह विस्थापन कृषि विविधीकरण की प्रक्रिया को पुष्ट करता है। हालाँकि, विपणन संरचना की विसंगतियाँ, तकनीकी अंतराल और बुनियादी ढाँचे की कमी अभी भी इस क्रांति की पूर्ण सफलता में बाधक हैं।

कीवर्ड्स: इन्द्रधनुषी क्रांति, कृषि विविधीकरण, बिहार अर्थव्यवस्था, संरचनात्मक परिवर्तन, कृषि रोडमैप।

2. प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय अर्थव्यवस्था के इतिहास में कृषि का स्थान सदैव केंद्रीय रहा है, किंतु आधुनिक आर्थिक परिदृश्य में यह स्पष्ट हो चुका है कि केवल पारंपरिक फसल पद्धतियों से किसानों की आय में गुणात्मक वृद्धि संभव नहीं है। बिहार जैसे राज्य, जहाँ की 70% से अधिक आबादी प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है, इस चुनौती का अधिक गहराई से सामना करते हैं।

दशकों से बिहार की कृषि का स्वरूप मुख्यत: खाद्यान्न आधारित (धान और गेहूं) रहा है। इस पारंपरिक मॉडल के कारण किसानों को आय की अस्थिरता, मानसून पर अत्यधिक निर्भरता और न्यूनतम लाभ जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता था। इसी पृष्ठभूमि में 'इन्द्रधनुषी क्रांति' की अवधारणा का उदय हुआ, जो कृषि के सात रंगों (अनाज, फल, सब्जी, दूध, मछली, अंडा और मांस) के संतुलित विकास पर केंद्रित है। बिहार सरकार ने 2012-2017 के कृषि रोडमैप के माध्यम से इस दिशा में एक संगठित प्रयास किया, ताकि कृषि को केवल जीवन निर्वाह का साधन न मानकर एक लाभकारी व्यवसाय के रूप में विकसित किया जा सके।

3. साहित्य समीक्षा (Literature Review)

कृषि विविधीकरण पर किए गए पूर्व शोधों (जैसे Joshi et al., 2004 और ठपतजींस मज ंस., 2005) के अनुसार, दक्षिण एशिया में उच्च मूल्य वाली वस्तुओं (High-Value Commodities) जैसे फल, सब्जी और दूध की मांग तेजी से बढ़ रही है। Singh (2014) का तर्क है कि कृषि विविधीकरण न केवल जोखिम को कम करता है, बल्कि ग्रामीण रोजगार सृजन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बिहार के संदर्भ में, नाबार्ड (2016) की रिपोर्ट दर्शाती है कि राज्य में मत्स्य पालन और डेयरी क्षेत्र में अपार संभावनाएं मौजूद हैं, जिन्हें इन्द्रधनुषी क्रांति के माध्यम से गति दी जा सकती है।

4. शोध पद्धति (Methodology)

प्रस्तुत अध्ययन पूर्णत: द्वितीयक आंकड़ों (Secondary Data) पर आधारित है। आंकड़ों के मुख्य स्रोतों में निम्नलिखित शामिल हैं:

- बिहार आर्थिक सर्वेक्षण (2012-13 से 2016-17)।
- कृषि रोडमैप (2012-2017) की प्रगति रिपोर्ट।
- भारत सरकार के कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय के वार्षिक सांख्यिकीय प्रकाशन।
- नाबार्ड (NABARD) और भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) के शोध पत्र।

डेटा का विश्लेषण करने के लिए 'ट्रेंड एनालिसिस' और 'तुलनात्मक वृद्धि दर' (Comparative Growth Rate) का उपयोग किया गया है।

5. डेटा विश्लेषण एवं परिणाम (Data Analysis - Results)

5.1 बागवानी उत्पादन में रुझान (Trend in Horticulture)

इन्द्रधनुषी क्रांति का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव बागवानी क्षेत्र पर पड़ा है। आंकड़ों के अनुसार, बिहार में फल और सब्जियों के उत्पादन में निरंतर वृद्धि हुई है।

तालिका 1: बिहार में बागवानी उत्पादन की सांख्यिकी (2012-2017)

वित्तीय वर्ष	*कुल उत्पादन (मिलियन टन में)*	*वार्षिक वृद्धि दर (%)*
2012-13	13.3	--
2013-14	14.1	6.01%
2014-15	15.2	7.80%
2015-16	16.0	5.26%
2016-17	16.8	5.00%

तालिका 1 से स्पष्ट है कि अध्ययन की अवधि के दौरान बागवानी उत्पादन में लगभग 26.3% की कुल वृद्धि हुई है। यह दर्शाता है कि राज्य के किसान अब अनाज के बजाय अधिक लाभकारी नकदी फसलों की ओर रुख कर रहे हैं। विशेषकर मुजफ्फरपुर की लीची, भागलपुर के आम और वैशाली के केले के उत्पादन में संरचनात्मक सुधार देखे गए हैं।

क्षेत्रीय विश्लेषण और सांख्यिकीय डेटा (Regional Analysis - Data)

1 मुजफ्फरपुर और उत्तर बिहार: बागवानी का केंद्र

मुजफ्फरपुर की श्शाही लीचीश इन्द्रधनुषी क्रांति का प्रतीक बनी। 2012-17 के दौरान, लीची के तहत क्षेत्र में 12% की वृद्धि हुई और उत्पादन 1.5 लाख मीट्रिक टन के पार पहुंच गया।

- डेटा: मुजफ्फरपुर और वैशाली बेल्ट में फलों का कुल उत्पादन 2012 के 3.2 लाख टन से बढ़कर 2017 में 4.5 लाख टन हुआ।
- विश्लेषण: यहाँ विविधीकरण का मुख्य कारण श्क्लस्टर आधारित खेतीश रही।

2 हाजीपुर (वैशाली): केला और सब्जी विविधीकरण

हाजीपुर का चिनिया केला और सब्जी उत्पादन (खासकर फूलगोभी और टमाटर) ने पटना के निकटवर्ती बाजारों को नई ऊंचाई दी।

- डेटा: वैशाली जिले में सब्जी विविधीकरण सूचकांक (Diversification Index) 0.65 से बढ़कर 0.82 हो गया।
- प्रभाव: हाजीपुर-पटना कॉरिडोर में 'पेरि-अर्बन एग्रीकल्चर' (Peri-urban Agriculture) का उदय हुआ।

3. पूर्णिया और कटिहार: मक्का एवं जूट से विस्थापन

पूर्णिया मंडल भारत का 'मक्का हब' बनकर उभरा। यहाँ धान की जगह मक्का उगाने से किसानों की आय में 3 गुना वृद्धि दर्ज की गई।

- डेटा: पूर्णिया में मक्का की उत्पादकता 9000 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर तक पहुंची, जो अमेरिका की औसत उत्पादकता के बराबर है।

5.2 मत्स्य और डेयरी क्षेत्र का प्रदर्शन

इन्द्रधनुषी क्रांति के अन्य प्रमुख स्तंभ मत्स्य पालन और डेयरी हैं। बिहार सरकार के 'पशुपालन एवं मत्स्य संसाधन विभाग' के आंकड़ों के अनुसार, इन क्षेत्रों की वृद्धि दर खाद्यान्न की तुलना में दोगुनी रही है।

तालिका 2: विभिन्न कृषि क्षेत्रों की तुलनात्मक वृद्धि दर (औसत वार्षिक)

क्षेत्र (Sector)	औसत वृद्धि दर (%)	विविधीकरण की स्थिति
खाद्यान्न (अनाज)	2.5% - 3%	**धीमी/स्थिर**
मत्स्य पालन (Fisheries)	7.5% - 8%	**अत्यंत तीव्र**
डेयरी (Dairy)	6.5% - 7%	**निरंतर प्रगति**

तालिका 2 सिद्ध करती है कि मत्स्य पालन और डेयरी क्षेत्रों ने राज्य की कृषि जीडीपी (।ळक्च्) को सहारा दिया है। मत्स्य पालन में आत्मनिर्भरता की दिशा में बिहार की प्रगति श्नीली क्रांतिश (ठसनम त्मअवसनजपवद) के सफल क्रियान्वयन को दर्शाती है।

6. संरचनात्मक परिवर्तन और ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

इन्द्रधनुषी क्रांति ने बिहार की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में निम्नलिखित संरचनात्मक बदलाव किए हैं:

- आय विविधीकरण: किसान अब केवल खरीफ और रबी फसलों पर निर्भर नहीं हैं। डेयरी और पशुपालन के माध्यम से उन्हें दैनिक आधार पर नकद आय प्राप्त हो रही है।
- रोजगार सृजन: बागवानी और मत्स्य पालन क्षेत्रों में श्रम की गहनता (Labor Intensity) अधिक होने के कारण ग्रामीण युवाओं के लिए स्थानीय स्तर पर रोजगार के अवसर बढ़े हैं।
- पोषण सुरक्षा: फलों, सब्जियों और दूध के उत्पादन में वृद्धि से ग्रामीण परिवारों की पोषण स्थिति में सुधार हुआ है।

7. विकास के मार्ग में प्रमुख बाधाएं (Key Constraints)

सकारात्मक आंकड़ों के बावजूद, शोध में कुछ गंभीर चुनौतियाँ उभर कर आई हैं:

- कोल्ड स्टोरेज की कमी: बिहार में आवश्यकता की तुलना में भंडारण क्षमता लगभग 40% कम है, जिससे भारी मात्रा में फल और सब्जियां बर्बाद हो जाती हैं।
- विपणन व्यवस्था (Marketing Linkages): प्रभावी बाजार तंत्र की अनुपस्थिति के कारण किसान बिचौलियों के चंगुल में फंसे रहते हैं। 'ई-नाम' (e-NAM) जैसी योजनाओं का विस्तार अभी भी सीमित है।
- सिंचाई और बिजली: यद्यपि बिजली की स्थिति में सुधार हुआ है, लेकिन सिंचाई के लिए आधुनिक तकनीकों (जैसे ड्रिप सिंचाई) का उपयोग अभी भी बहुत कम है।

8. नीतिगत अनुशंसाएं (Policy Recommendations)

- मूल्य संवर्धन (Value Addition): सरकार को जिला स्तर पर 'फूड प्रोसेसिंग यूनिट्स' स्थापित करनी चाहिए ताकि कच्चे उत्पाद को मूल्यवान उत्पादों में बदला जा सके।
- समेकित कृषि प्रणाली (Integrated Farming): किसानों को एक ही खेत में मछली पालन, पशुपालन और फसल उत्पादन के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- वित्तीय समावेशन: छोटे और सीमांत किसानों के लिए क्रेडिट कार्ड (KCC) और सस्ती ऋण व्यवस्था को और सरल बनाया जाना चाहिए।

9. निष्कर्ष (Conclusion)

निष्कर्षत: 2012-2017 की इन्द्रधनुषी क्रांति ने बिहार में कृषि के विविधीकरण की ठोस नींव रखी है। आंकड़ों का विश्लेषण प्रमाणित करता है कि राज्य की कृषि 'जीवन निर्वाह' से 'व्यवसाय' की ओर बढ़ रही है। हालाँकि, इस क्रांति को पूर्ण रूप से सफल बनाने के लिए उत्पादन के साथ-साथ बाजार सुधारों और बुनियादी ढांचे (कोल्ड स्टोरेज, सड़क) पर भारी निवेश की आवश्यकता है। भविष्य में यदि इन कमियों को दूर किया जाता है, तो बिहार देश का एक प्रमुख 'कृषि हब' बन सकता है।

10. संदर्भ (References)

- Government of Bihar. (2017). Economic Survey 2016-17. Patna: Finance Department.
- Government of Bihar. (2012). Agricultural Roadmap of Bihar (2012-2017). Patna: Department of Agriculture.
- Birthal, P. S., Joshi, P. K., & Gulati, A. (2005). Vertical coordination in high-value food commodities. Indian Journal of Agricultural Economics, 60(2), 233-245.
- Joshi, P. K., Gulati, A., Birthal, P. S., & Tiwari, L. (2004). Agriculture diversification in South Asia. Economic and Political Weekly, 39(24), 2457-2467.
- NABARD. (2016). State Focus Paper: Bihar. Mumbai: National Bank for Agriculture and Rural Development.
- Ministry of Agriculture & Farmers Welfare. (2017). Agricultural Statistics at a Glance. New Delhi: Government of India.
- Singh, S. (2014). Agricultural diversification in India: Trends and issues. Agricultural Economics Research Review, 27(1), 1-10.

महिला सशक्तिकरण की वर्तमान स्थितिः राजनैतिक सशक्तिकरण के परिपेक्ष्य में

डॉ० लाल बाबू चौधरी

ग्राम- चहुटा, पोस्ट कमतौल, थाना- बिस्फी, जिला-मधुबनी

महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया से है जिसमें महिलाओं के लिए सर्वसम्पन्न और विकसित होने हेतु संभावनाओं के द्वारा खुले और नए विकल्प तैयार हों। महिलाएँ समाज के लगभग आधे भाग का प्रतिनिधित्व करती हैं। लेकिन उनकी राजनीतिक सहभागिता लगभग नगण्य रही है। वर्तमान पंचायती राज सामाजिक समता और न्याय, आर्थिक विकास और व्यक्ति की प्रतिष्ठा पर आधारित ग्रामीण जीवन को नया रूप देने का एक सामूहिक प्रयास है। इसी क्रम में पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी महिला सशक्तिकरण के लिये हो रहे प्रयासों का प्रमुख घटक है। महिलाओं को प्रदत्त आरक्षण की व्यवस्था से समाज के विभिन्न वर्गों की महिलाओं को पंचायती राज संस्थाओं में स्थान प्राप्त हुआ है। महिलाओं की सामाजिक एवं राजनीतिक भूमिका स्वतंत्रता के पश्चात से नगण्य रहने के कारण इन्हें पिछड़े वर्गों में रखकर आरक्षण के माध्यम से प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। संपूर्ण महिला वर्ग में भी वर्गों के आधार पर महिलाओं की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति में अंतर है। राजनीति का क्षेत्र भी महिलाओं के प्रभाव से अछूता नहीं है।

भारत एक प्रजातांत्रिक देश है जिसमें जनता के द्वारा देश की संचालन व्यवस्था हेतु अपने मत देकर जनप्रतिनिधियों को चुना जाता है और इन्हीं जनप्रतिनिधियों के द्वारा सत्ता में पहुँच कर देश की नीतियों एवं दिशा निर्देशों को बनाया एवम् क्रियान्वित किया जाता है। देश की राजनीति में महिलाओं की भूमिका शुरूआत के दिनों में अशिक्षा, पर्दाप्रथा के कारण कम थी लेकिन जैसे-जैसे सामाजिक कुरीतियाँ खत्म हो रही है महिलाओं की भूमिका राजनीति में मजबूत होती जा रही है। शिक्षा, स्वास्थ्य, खेलकूद, कानून, अभियांत्रिकी, प्रबंधन के साथ-साथ राजनीति के क्षेत्र में भी महिलाएँ आगे आ रही है और अपनी स्थिति को सुधारने के प्रयास में लगी हुई हैं।

यह सर्वविदित है कि हमारे देश की जनसंख्या का आधा हिस्सा महिलाओं की है। जीवन के हर क्षेत्र में महिलाओं के योगदान को स्वीकार किया गया है क्योंकि महिला एवं पुरूष विकास रूपी गाड़ी के दो पहिए हैं। महिलायें राष्ट्र के विकास में उतना ही महत्व रखती हैं जितना कि पुरूष। अतः देश का समग्र विकास महिलाओं की भागीदारी के बगैर संभव नहीं है। भारतीय महिलाओं ने देश दुनिया के विभिन्न क्षेत्र में अपना सम्मानित स्थान बनाया है। आज महिलाऐं बेहतर रोजगार के लिए दुनिया के किसी भी कोने में जाने के लिए तैयार हैं। आज ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जहाँ महिलाओं ने अपनी उपस्थिति दर्ज न कराई हो। राष्ट्र के विकास की अग्रदूत बनी महिलाओं द्वारा देश ही नहीं वरन् विदेशों में भी अपने राष्ट्र का परचम लहराया गया है। निश्चय ही यह सब अथक प्रयासों के द्वारा धीरे-धीरे संभव हो पाया है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व महिलाओं की स्थिति अत्यन्त सोचनीय थी। वह शोषण तथा कुप्रथा जैसी विसंगतियों का शिकार थी। समाज में कई प्रकार की रूढ़ियाँ, अंधविश्वास व्याप्त थे। महिलाओं के प्रति रूढ़िवादी एवं परम्परागत सोच स्त्री को पिता, पति या पुत्र का आश्रित मानते हुए उसे मुख्य रूप से घर की चारदीवारी तक सीमित रखा गया था। जिसका मुख्य कारण तात्कालिक सामाजिक विचार का पिछड़ापन तथा स्त्रियों का अज्ञानता के बंधन में जकड़ा होना था।

स्वतंत्रता के बाद से ही नारी के स्वरूप में तेजी से परिवर्तन आया है। जिस देश में नारी को घर की दहलीज से बाहर निकलने की आज्ञा नहीं थी, उसी देश में आज नारी पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही हैं। वह घर की चारदीवारी से निकलकर अंतरिक्ष तक जा पहुंची है। जिस देश की नारी जागृत, शिक्षित तथा गुणवत्ती होती है वही देश संसार में सबसे अधिक उन्नति करता है। इसी विचारधारा को ध्यान में रखकर हमारे यहां स्त्रियों को पुरूषों के बराबर अधिकार प्रदान किये गये और इनके लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था की गयी, तब किसी ने सोचा भी न था कि वह पिछड़ा हुआ नारी वर्ग पुरूषों से भी आगे निकल जायेगी। वस्तुतः शिक्षा ही वह साधन है जिसके द्वारा महिलाओं की रोजगार तथा स्वास्थ्य की स्थिति को सुधारा जा सकता है।

हालाँकि हमारा समाज मूल रूप से पुरूष प्रधान रहा है। पहले महिलाओं के पास किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता न होने के कारण उसकी सामाजिक एवं पारिवारिक स्थिति एक पराश्रित से अधिक नहीं थी। जिसे हर कदम पर एक पुरूष के सहारे की जरूरत होती थी। वैसे तो आजादी के बाद से ही महिला उत्थान के उद्देश्य से विभिन्न प्रयास किये जाते रहे हैं। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में महिला सशक्तिकरण की कार्य में तेजी आयी है। इन्हीं प्रयासों के परिणामस्वरूप महिलाओं के आत्म विश्वास में बढ़ोत्तरी हुयी है। वे किसी भी चुनौती को स्वीकार करने के लिए खुद को तैयार करने लगी है। एक ओर जहाँ केन्द्र एवं राज्यों की सरकारें महिला उत्थान की नई-नई योजनायें बनाने लगी हैं। वहीं कई गैर सरकारी संगठन भी उनके अधिकारों के लिये उनकी आवाज बुलन्द करने लगें है। महिला में ऐसी प्रबल भावना को उजागर करने का प्रयास भी किया जा रहा है जिससे कि वह अपने अन्दर छिपी हुई ताकत को सामने लाकर बिना किसी सहारे के आने वाली हर चुनौती का सामना कर सकें।

यहाँ तक कि सृष्टि की उत्पत्ति एवं सभ्यता के विकास में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। पुराणों के अनुसार चाहे धर्म की रक्षा हो या उसकी पुनर्स्थापना इन सभी कार्यों को आदि शक्ति मॉ जगदम्बा ने ही पूर्ण किया है। सीता, सावित्री के धर्मपालन को आज भी आदर्श के रूप में समाज में माना जाता है। रानी लक्ष्मीबाई, मदरटेरेसा के वीरता, बलिदान तथा सेवा की मिशालें आज भी हमारे जीवन को एक दिशा प्रदान करती है। महिलाएँ कई रूपों में जीवन व्यतीत करते हुए एक सभ्य एवम् सुसंस्कृत समाज की निर्माण प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वह कभी बेटी के रूप में, कभी बहन के रूप में, तो कभी पत्नी एवम् प्रेमिका के रूप में, कभी माँ के रूप में समाज को विकसित एवं परिमार्जित करने का अथक प्रयास करती रहती है। समाज की प्रत्येक आवश्यकताओं को पूरा करने में महिलाएँ पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर साथ चलती है। लकिन समाज के विकास में सहभागिता का जो सम्मान उन्हें प्राप्त होना चाहिए, वह नहीं मिल पाया है। क्योंकि इस सभ्य समाज में पुरूषवर्ग का वर्चस्व विद्यमान है। यद्यपि पुरूष वर्ग हर क्षेत्र में महिलाओं के सहयोग से अपने उद्देश्यों को प्राप्त करते हैं लेकिन जब सम्मान एवं अधिकार की बात आती है तो महिलाएँ पुरूषों से कहीं पीछे छूट जाती हैं। महिलाओं को अपने अस्तित्व की बार-बार लड़ाई लड़नी पड़ती हैं लेकिन प्रकृति गवाह है कि जब भी समाज में कोई परिवर्तन या क्रांति हुई है महिलाओं ने उस पर अपना सर्वस्व अर्पण किया है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, मौलिक कर्तव्य तथा दिशा-निर्देशक सिद्धांतों में लैंगिक समानता के सिद्धांत का उल्लेख किया गया है। संविधान न केवल महिलाओं की समानता को सुनिश्चित करता है, बल्कि राज्यों को महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव का निर्देश देता है।

लोकतांत्रिक राजनीति के ढ़ांचे में हमारे कानून, विकास नीतियां, योजनाएं तथा कार्यक्रम को विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के उत्थान की ओर उन्मुख रखा गया है। पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-78) से महिला कल्याण से लेकर विकास तक के मुद्दे को उठाया जा रहा है। हाल के वर्षों में महिला सशक्तीकरण को महिला की दशा का एक केंद्रीय मुद्दा माना गया है। राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना वर्ष 1990 में संसद के एक अधिनियम द्वारा की गई है, जिसके तहत महिला के अधिकारों तथा कानूनी अधिकारों को सुरक्षा प्रदान की जाती है। संविधान का 73वां तथा 74वां संशोधन (1993) में पंचायत तथा नगर निकाय के चुनावों में महिला को आरक्षण प्रदान करने का प्रावधान किया गया है, जिससे स्थानीय स्तरों पर उनकी भागीदारी का मार्ग प्रशस्त होता है।

सच यह है कि आजादी से पूर्व भारत में महिलाओं की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। ब्रिटिश शासकों के जाने के पश्चात् जब भारतवासियों को आजादी मिली तो हमारे नीति को आजादी मिली तो हमारे नीति निर्धारकों ने महिलाओं की सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए प्रयास करने प्रारम्भ कर दिए, क्योंकि आधी दुनिया के विकास की दौड़ में पीछे रह जाने पर कोई भी राष्ट्र अपने समग्र विकास का दावा नहीं कर सकता। यही कारण है कि आजादी के बाद शुरू हुआ महिला सशक्तिकरण का आन्दोलन आज भी जारी है। इस दौरान इसे कुछ असफलताएँ मिलीं तो इसके खाते में बहुत सी सफलताएँ भी दर्ज हैं। सरकार ने वर्ष 2001 में महिला सशक्तिकरण वर्ष घोषित किया है। जिसका उद्देश्य महिला अधिकारों और उससे संबंधित मुद्दों के बारे में व्यापक जागरूकता लाना है। आज भी नारी सशक्तिकरण का नारा चारों ओर ध्वनित हो रहा है इसके पीछे यह भावना निहित है कि नारी को शक्ति सम्पन्न बनाना और उसको अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करना। आज उसकी सोच का दायरा विस्तृत होता जा रहा है। जीवन के हर क्षेत्र में अब वह सफलता चाहती है। महिला सशक्तिकरण के इस दौर में महिला, पुरूष जाति की सोच में परिवर्तन को ढूंढ रही है। सशक्तिकरण एवं शिक्षा के बीच संबंध महिला का विकास शिक्षित होने में ही निहित है। तभी वह आर्थिक तौर पर सशक्त बन सकेगी।

आधुनिकता की ओर अग्रसर करने में भी शिक्षा सहयोगी है। शिक्षा के द्वारा ही महिलाएँ प्राचीन समय की अच्छाइयों बुराइयों से लेकर नये समाज से संबंधित कुरीतियों, अंधविश्वास से हट कर नये समाज के निर्माण में सहयोग दे रही है।, यही कारण है कि आज की नारी पुरानी परंपराओं से दूर होती जा रही है। आज गांवों में भी आधुनिकता दिखाई पड़ रही है। जिसके प्रभाव के कारण आज महिलाएँ स्कूल, कॉलेज, बैंक, अस्पताल, ऑफिस में स्वयं जाकर अपना कार्य कर रही है और आत्मनिर्भर होती जा रही है।

महिलाओं की राजनीतिक स्थिति को आज समाज की स्थिति के विकास के एक निर्धारक के रूप में स्वीकार किया जाता है। क्योंकि महिलाएं प्रत्यक्षत: तथा अप्रत्यक्षत: राजनीतिक क्रियाओं में योगदान देती है। वह समस्त पारिवारिक दायित्वों का बोझ उठाकर पुरूषों को केवल राजनीतिक क्रियाएं सम्पादित करने का पूरा समय एवं अवसर प्रदान करती हैं अथवा स्वयं भी पारिवारिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के साथ-साथ पुरूषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर राजनीतिक क्रियाओं में संलग्न होती है। आज भागीदारी की दृष्टि से कृषि, पशु व्यवसाय, हैण्डलूम आदि में महिलाओं के अनुपात में काफी सीमा तक वृद्धि हुई है। पिछले दशक में महिलाओं की क्रियाओं से सम्बन्धित नये आयाम उभरकर सामने आये है। अब महिलायें इलेक्ट्रानिक्स, टेली कम्यूनिकेशन, उपभोक्ता उत्पादन, संगठित क्षेत्र के उद्योग, विधि, चिकित्सा, प्रशासनिक तथा अन्य महत्वपूर्ण व्यवसायों में खुलकर भाग ले रही है। महिलाओं के लिए कार्य शब्द का कोई अर्थ, परिभाषा एवं सीमा निर्धारित नहीं हैं। यद्यपि महिलाएँ राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में 60-80 प्रतिशत तक योगदान देती हैं तथापि उनकी बहुत सारी क्रियाओं को सकल राष्ट्रीय उत्पादन में सम्मलित नहीं किया जाता है। अनुमानों के आधार पर महिलाओं की अभुगतानिक श्रम की नकद वार्षिक कीमत लगभग 4 ट्रिलियन डॉलर होती है जो विश्व के सकल राष्ट्रीय उत्पाद का एक तिहाई भाग है। अर्थव्यवस्था में महिलाओं की आर्थिक क्रियाओं में संलग्नता विकास की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

सुझाव:

भारत के संदर्भ में यदि देखें तो महिलाओं की स्थिति अत्यन्त सोचनीय है उनकी स्थिति को बेहतर बनाने के लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं:-

- सर्वप्रथम महिलाओं के राजनीतिक स्थिति में सुधार के लिए प्रयास करने होंगे। महिला संगठनों, स्वयं सेवी संस्थाओं को इस दिशा में प्रयास करने होंगे।
- महिलाओं को इनके कानूनी अधिकारों की जानकारी, महिलाओं का यौन उत्पीड़न रोकने के लिए सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिये गये निर्देशों का सख्ती से पालन, शोषण, उत्पीड़न सम्बन्धी मामलों का जल्दी निराकरण, महिला मामलों में पुलिस की पूरी सजगता एवं सक्रियता महिलाओं के लिए पृथक महिला थानों की स्थापना आदि महिलाओं का शोषण रोकने के लिए आवश्यक है।

- वर्तमान समय में लागू महिला सम्बन्धी कानूनों में व्याप्त विसंगतियों को दूर करना जिससे महिलाओं को राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में पुरूषों के समान कानूनी और व्यावहारिक रूप में सभी मानवाधिकार हासिल हों।
- महिलाओं को अपनी मानसिक प्रवृत्ति में परिवर्तन लाना होगा जिससे उनमें आत्म विश्वास में वृद्धि होगी।

निष्कर्ष

महिला समाज की धुरी है। अगर धुरी टूट गई तो समाज भी टूट जायेगा। इतिहास गवाह है कि जिन समाजों ने महिलाओ को गुलाम बनाया वे खुद गुलाम बन गये, जिन समाजों ने महिलाओं को प्रगति का मौका दिया उन्हें सभ्यता के शिखर पर पहुंचने से कोई नहीं रोक सका। यद्यपि महिलाएँ तेजी से राजनीति के क्षेत्र में आ रही हैं, तथापि उन्हें राजनीति में बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अशिक्षा, भ्रष्टाचार, शोषण, आर्थिकपराधीनता, राजनीतिक सोच का आभाव आदि ऐसी प्रमुख बाधाएं है जो राजनीतिक क्षेत्र में आगे बढ़ने में रूकावट लाती है।

महिलाओं को राजनीति में आगे लाने के लिये उन्हें आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाना होगा। महिलाओं में व्याप्त अशिक्षा और अंधविश्वास को दूर कर उनके आत्मविश्वास को बढ़ाने का दायित्व है। भ्रष्टाचार और शोषण से महिलाओं को मुक्त करके उन्हें राजनीति के क्षेत्र में आगे बढ़ाया जा सकता है। महिलाओं में राजनीतिक जागरण की आवश्यकता है। राजनीति जागरण से मेरा तात्पर्य उनका शिक्षित और संस्कारित होना आवश्यक है।

अत: भारतीय परिवार में नारी का सर्वप्रथम दायित्व पत्नीत्व और मातृत्व के साथ राजनैतिक कार्यकलाप का समन्वय होना अति आवश्यक है। एक सफल माँ और पत्नी निश्चय ही समाज और देश को सफल नेतृत्व दे सकती है। आज पश्चिमी अपसंस्कृति के बहाव में भारतीय नारी अपनी अस्मिता को खोती जा रही है, जो हमारे देश के राजनीति का एक घातक तत्व साबित हो रहा है। अत: भारतीय प्राचीन संस्कृति की अवधारणाओं में नारीत्व का परिवेश आज की नारियों को समझना होगा तभी उनका राजनीति में नेतृत्व का पैमाना सफल साबित होगा।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि महिलाएं समाज का अनिवार्य अंग है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक क्षेत्र के साथ-साथ राजनीति के क्षेत्र में उनकी अहम भूमिका है। जैसे-जैसे शहरों के साथ ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं में राजनीतिक जागरूकता आ रही है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार और बदलते सामाजिक परिवेश में राजनीति में महिलाएँ आगे आ रही हैं और केन्द्रीय, प्रान्तीय, स्थानीय शासन में अपनी भागीदारी निभा रही हैं। इसलिये महिलाओं को सशक्त और सुदृढ़ होना होगा। तभी महिलाएँ सुदृढ़ होकर समाज एवं राष्ट्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकेंगी।

संदर्भ सूची:

1. डॉ. रानी, आशु: महिला विकास कार्यक्रम, ईनाश्री पब्लिशर्स, जयपुर, 2011, पृष्ठ सं. 19
2. वार्षिक संदर्भ ग्रन्थ भारत-2005, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ.सं. 53
3. आर.सी. मजुमदार, द हिस्ट्र एण्ड कल्चर आफ द इण्डियन पीपुल, प्रकाशित Vol x 2nd edition 1981. P.31
4. सुशीला कौशिक: वीमन एंड पंचायती राज, हर-आनंद पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 182-2001
5. पी.सी. जैन एवं शशि भटनागर सुधा - शेड्यूल कास्ट वुमन, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2007, पृ0 118.
6. इजलाल अनीस जैदी - पॉलिटिक्स, पॉवर एंड लीडरशिप इन रूरल इंडिया कामनपेत्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2008, पृ0 17
7. भट्टाचार्य, सुकुमारी, प्राचीन भारत: समाज और नारी, कलकत्ता, 2012, पृ0 49
8. अंसारी, एम ए: "महिला और मानव अधिकार, ज्योति प्रकाशन, जयपुर, 2010, पृ0 119

भारतीय समाज में समानता लाने में डॉ. आंबेडकर का योगदानः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

सुरेंद्र कुमार

सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, बवानी खेड़ा, भिवानी, हरियाणा, भारत

शोधालेख सारः-

भारतीय समाज प्राचीन काल से ही जाति, वर्ण, ऊँच-नीच तथा सामाजिक असमानताओं से प्रभावित रहा है। विशेष रूप से दलित, शोषित और वंचित वर्गों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर अनेक प्रकार के भेदभाव का सामना करना पड़ा। ऐसे समय में डॉ. भीमराव रामजी आंबेडकर ने भारतीय समाज में समानता, न्याय और मानवाधिकारों की स्थापना हेतु ऐतिहासिक संघर्ष किया। उन्होंने सामाजिक विषमता, अस्पृश्यता और जातिगत भेदभाव के विरुद्ध संगठित आंदोलन चलाकर भारतीय लोकतंत्र को सामाजिक न्याय की दिशा प्रदान की।

प्रस्तुत शोध पत्र में डॉ. आंबेडकर के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा वैचारिक योगदान का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन में उनके जीवन संघर्ष, शिक्षा, सामाजिक आंदोलनों, संविधान निर्माण, दलित उत्थान, महिला अधिकारों तथा बौद्ध धर्म ग्रहण जैसे विषयों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त यह शोध पत्र भारतीय समाज में समानता स्थापित करने के लिए डॉ. आंबेडकर द्वारा प्रस्तुत विचारों और नीतियों की समकालीन प्रासंगिकता का भी अध्ययन करता है।

यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि डॉ. आंबेडकर केवल संविधान निर्माता ही नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति के महानायक थे। उन्होंने भारतीय समाज को समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के सिद्धांतों पर आधारित लोकतांत्रिक दिशा प्रदान की। आज भी सामाजिक न्याय, आरक्षण, मानवाधिकार और दलित चेतना के संदर्भ में उनके विचार अत्यंत प्रासंगिक हैं।

मुख्य शब्दः सामाजिक समानता, दलित उत्थान, सामाजिक न्याय, भारतीय संविधान, अस्पृश्यता, आरक्षण नीति, मानवाधिकार, जाति व्यवस्था, लोकतंत्र।

1. प्रस्तावनाः-

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था और सामाजिक असमानता सदियों से विद्यमान रही है। वर्ण व्यवस्था के कारण समाज अनेक वर्गों में विभाजित हो गया, जिसमें दलित और पिछड़े वर्गों को सामाजिक बहिष्कार, आर्थिक शोषण तथा राजनीतिक अधिकारों से वंचित रखा गया। अस्पृश्यता भारतीय समाज की सबसे बड़ी सामाजिक बुराइयों में से एक थी।

ऐसे समय में डॉ. भीमराव रामजी आंबेडकर ने सामाजिक क्रांति का नेतृत्व किया। उन्होंने शिक्षा, संगठन और संघर्ष को सामाजिक परिवर्तन का आधार बनाया। डॉ. आंबेडकर का मानना था कि जब तक समाज में समानता स्थापित नहीं होगी, तब तक वास्तविक लोकतंत्र संभव नहीं है।

डॉ. आंबेडकर ने दलितों के अधिकारों, महिलाओं की स्वतंत्रता, श्रमिक कल्याण और सामाजिक न्याय के लिए अनेक आंदोलन चलाए। भारतीय संविधान के माध्यम से उन्होंने समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के सिद्धांतों को कानूनी स्वरूप प्रदान किया।

21वीं शताब्दी में भी जातिगत असमानता, सामाजिक भेदभाव और आर्थिक विषमता की समस्याएँ विद्यमान हैं। इसलिए डॉ. आंबेडकर के विचारों और योगदान का अध्ययन आज भी अत्यंत प्रासंगिक है।

2. शोध के उद्देश्य

- डॉ. आंबेडकर के जीवन और विचारों का अध्ययन करना।
- भारतीय समाज में सामाजिक असमानता की प्रकृति का विश्लेषण करना।
- सामाजिक समानता स्थापित करने में डॉ. आंबेडकर के योगदान का अध्ययन करना।
- संविधान निर्माण में डॉ. आंबेडकर की भूमिका का मूल्यांकन करना।
- समकालीन भारतीय समाज में डॉ. आंबेडकर के विचारों की प्रासंगिकता का विश्लेषण करना।

3. शोध पद्धति

यह शोध पत्र वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। अध्ययन के लिए द्वितीयक स्रोतों जैसे पुस्तकें, शोध पत्र, सरकारी दस्तावेज, संविधान, पत्र-पत्रिकाएँ तथा विद्वानों के लेखों का उपयोग किया गया है।

4. डॉ. आंबेडकर का जीवन परिचय

डॉ. भीमराव रामजी आंबेडकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 को मध्यप्रदेश के महू में हुआ। वे एक दलित परिवार से संबंध रखते थे। बचपन से ही उन्हें जातिगत भेदभाव और सामाजिक अपमान का सामना करना पड़ा।

उन्होंने कोलंबिया विश्वविद्यालय तथा लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से उच्च शिक्षा प्राप्त की। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद उन्हें समाज में जातिगत भेदभाव झेलना पड़ा। इन अनुभवों ने उनके भीतर सामाजिक परिवर्तन की चेतना उत्पन्न की।

डॉ. आंबेडकर ने अपना सम्पूर्ण जीवन दलितों, वंचितों और शोषितों के अधिकारों के लिए समर्पित कर दिया।

5. भारतीय समाज में सामाजिक असमानता की स्थिति

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था ने सामाजिक असमानता को संस्थागत रूप प्रदान किया। उच्च जातियों को विशेषाधिकार प्राप्त थे, जबकि दलितों और निम्न वर्गों को शिक्षा, मंदिर प्रवेश, सार्वजनिक संसाधनों तथा राजनीतिक अधिकारों से वंचित रखा गया।

अस्पृश्यता के कारण दलितों को मानव से भी निम्न समझा जाता था। उन्हें सामाजिक बहिष्कार, आर्थिक शोषण और मानसिक उत्पीड़न का सामना करना पड़ता था।

डॉ. आंबेडकर ने इस व्यवस्था को अमानवीय और अन्यायपूर्ण बताया। उनका मानना था कि जाति व्यवस्था भारतीय समाज की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा है।

6. सामाजिक समानता के लिए डॉ. आंबेडकर का संघर्ष

महाड़ सत्याग्रह: 1927 में डॉ. आंबेडकर ने महाड़ सत्याग्रह का नेतृत्व किया। इसका उद्देश्य दलितों को सार्वजनिक जल स्रोतों के उपयोग का अधिकार दिलाना था। यह आंदोलन सामाजिक समानता की दिशा में ऐतिहासिक कदम था।

मंदिर प्रवेश आंदोलन: डॉ. आंबेडकर ने दलितों को मंदिर प्रवेश का अधिकार दिलाने के लिए अनेक आंदोलन चलाए। उनका मानना था कि धार्मिक समानता सामाजिक समानता के लिए आवश्यक है।

मनुस्मृति दहन: डॉ. आंबेडकर ने मनुस्मृति को सामाजिक असमानता और जातिगत भेदभाव का स्रोत माना। उन्होंने मनुस्मृति दहन कर सामाजिक क्रांति का संदेश दिया।

शिक्षा के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन: डॉ. आंबेडकर का मानना था कि शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का सबसे प्रभावी साधन है। उन्होंने दलितों और पिछड़े वर्गों को शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया। उनका प्रसिद्ध नारा थाख्र"शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो।"

उन्होंने कई शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना की तथा शिक्षा को सामाजिक समानता का आधार माना।

7. संविधान निर्माण में डॉ. आंबेडकर की भूमिका

डॉ. आंबेडकर भारतीय संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष थे। उन्होंने संविधान के माध्यम से समानता, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को कानूनी आधार प्रदान किया।

संविधान में निम्न प्रावधान उनके सामाजिक न्याय दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हैं:-

- समानता का अधिकार।
- अस्पृश्यता का उन्मूलन (अनुच्छेद 17)।
- आरक्षण व्यवस्था।
- मौलिक अधिकार।
- सामाजिक और आर्थिक न्याय।

डॉ. आंबेडकर ने संविधान को सामाजिक परिवर्तन का साधन माना।

8. आरक्षण नीति और सामाजिक न्याय

डॉ. आंबेडकर ने सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए आरक्षण नीति का समर्थन किया। उनका मानना था कि सदियों से शोषित वर्गों को समान अवसर प्रदान करने के लिए विशेष प्रावधान आवश्यक हैं।

आरक्षण नीति के प्रमुख उद्देश्य हैं:-

- शिक्षा में अवसर।
- सरकारी नौकरियों में प्रतिनिधित्व।
- राजनीतिक भागीदारी।
- सामाजिक सशक्तिकरण।

आरक्षण नीति ने दलितों और पिछड़े वर्गों के सामाजिक उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

9. महिला अधिकारों के लिए डॉ. आंबेडकर का योगदान

डॉ. आंबेडकर महिलाओं की समानता और स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने हिंदू कोड बिल के माध्यम से महिलाओं को संपत्ति, विवाह और उत्तराधिकार संबंधी अधिकार प्रदान करने का प्रयास किया।

उन्होंने महिलाओं की शिक्षा, रोजगार और सामाजिक सम्मान को अत्यंत महत्वपूर्ण माना।

10. आर्थिक विचार और श्रमिक कल्याण

डॉ. आंबेडकर केवल सामाजिक सुधारक ही नहीं, बल्कि महान अर्थशास्त्री भी थे। उन्होंने श्रमिकों के अधिकारों, न्यूनतम मजदूरी, काम के घंटे और सामाजिक सुरक्षा के लिए कार्य किया।

उन्होंने औद्योगीकरण और आर्थिक लोकतंत्र को सामाजिक समानता के लिए आवश्यक बताया।

11. बौद्ध धर्म ग्रहण और सामाजिक क्रांति

1956 में डॉ. आंबेडकर ने लाखों अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म ग्रहण किया। उनका मानना था कि बौद्ध धर्म समानता, करुणा और मानवता का संदेश देता है।

बौद्ध धर्म ग्रहण सामाजिक और मानसिक मुक्ति का प्रतीक था।

12. डॉ. आंबेडकर और लोकतंत्र

डॉ. आंबेडकर का मानना था कि राजनीतिक लोकतंत्र तभी सफल हो सकता है जब सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र स्थापित हो।

उन्होंने लोकतंत्र को केवल शासन प्रणाली नहीं, बल्कि जीवन पद्धति माना। उनके अनुसार लोकतंत्र का आधार-समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व हैं।

13. समकालीन भारत में डॉ. आंबेडकर की प्रासंगिकतास

आज भी भारतीय समाज में जातिगत भेदभाव, सामाजिक असमानता और आर्थिक विषमता की समस्याएँ मौजूद हैं। ऐसे समय में डॉ. आंबेडकर के विचार अत्यंत प्रासंगिक हैं। उनके विचार निम्न क्षेत्रों में विशेष महत्व रखते हैं:-

- सामाजिक न्याय।
- मानवाधिकार।
- दलित चेतना।
- महिला सशक्तिकरण।
- लोकतांत्रिक मूल्य।
- संवैधानिक अधिकार।

डिजिटल युग में भी सामाजिक समानता और संवैधानिक मूल्यों की रक्षा के लिए डॉ. आंबेडकर के विचार मार्गदर्शक हैं।

निष्कर्ष

डॉ. भीमराव आंबेडकर भारतीय समाज में सामाजिक समानता और न्याय के सबसे बड़े प्रवर्तकों में से एक थे। उन्होंने जातिगत भेदभाव, अस्पृश्यता और सामाजिक शोषण के विरुद्ध संघर्ष कर भारतीय समाज को नई दिशा प्रदान की।

डॉ. आंबेडकर का योगदान केवल दलित उत्थान तक सीमित नहीं था, बल्कि उन्होंने सम्पूर्ण भारतीय समाज को समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के सिद्धांतों पर आधारित लोकतांत्रिक दृष्टिकोण प्रदान किया।

भारतीय संविधान के माध्यम से उन्होंने सामाजिक न्याय को कानूनी स्वरूप दिया। आरक्षण नीति, मौलिक अधिकार, अस्पृश्यता उन्मूलन और महिला अधिकारों के क्षेत्र में उनका योगदान ऐतिहासिक है।

आज भी सामाजिक असमानता, जातिगत भेदभाव और आर्थिक विषमता जैसी चुनौतियाँ भारतीय समाज के सामने मौजूद हैं। ऐसे समय में डॉ. आंबेडकर के विचार केवल ऐतिहासिक नहीं, बल्कि समकालीन सामाजिक परिवर्तन के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक हैं।

अंतत: यह कहा जा सकता है कि डॉ. आंबेडकर केवल संविधान निर्माता नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति के महानायक थे, जिन्होंने भारतीय लोकतंत्र को सामाजिक न्याय और मानव गरिमा की मजबूत आधारशिला प्रदान की।

संदर्भ सूची :

1. Ambedkar, B. R. (1936). Annihilation of caste. Navayana Publishing.
2. Ambedkar, B. R. (1945). What Congress and Gandhi have done to the untouchables. Thacker & Co.
3. Ambedkar, B. R. (1946). Who were the Shudras? Bombay: Thacker & Co.

4. Ambedkar, B. R. (1948). The untouchables: Who were they and why did they become untouchables? Amrit Book Company.
5. Ambedkar, B. R. (1957). The Buddha and his dhamma. Siddharth College Publications.
6. Ahuja, R. (2019). Social problems in India. Rawat Publications.
7. Chandra, B. (2009). History of modern India. Orient BlackSwan.
8. Guru, G. (2009). Humiliation: Claims and context. Oxford University Press.
9. Jaffrelot, C. (2005). Dr. Ambedkar and untouchability: Analysing and fighting caste. Permanent Black.
10. Keer, D. (1990). Dr. Ambedkar: Life and mission. Popular Prakashan.
11. Kumar, R. (2018). Social justice and Ambedkar's ideology. Indian Journal of Political Science, 79(2), 210-225.
12. Omvedt, G. (2004). Ambedkar: Towards an enlightened India. Penguin Books.
13. Pai, S. (2002). Dalit assertion and the unfinished democratic revolution. Sage Publications.
14. Rodrigues, V. (2002). The essential writings of B.R. Ambedkar. Oxford University Press.
15. Sharma, K. L. (2017). Caste and class in India. Rawat Publications.
16. Singh, R. (2016). Ambedkar and social transformation in India. Social Change Journal, 46(3), 311-329.
17. Thorat, S., & Newman, K. (2010). Blocked by caste: Economic discrimination in modern India. Oxford University Press.
18. Zelliot, E. (2001). From untouchable to Dalit: Essays on the Ambedkar movement. Manohar Publishers.
19. Rao, A. (2015). Ambedkar's vision of equality and democracy. Journal of Social Sciences, 12(4), 145-160.

आजादी के पश्चात भारतीय अर्थव्यवस्था

डॉ० आशुतोष कुमार उपाध्याय

प्रवक्ता, अर्थशास्त्र, श्री जमुना राम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चितबड़ागॉव, बलिया

सारांश

भारत की स्वतंत्रता 15 अगस्त 1947 को मिली, जिससे राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन शुरू हुआ। ब्रिटिश शासन के तहत कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था में गरीबी और निरक्षरता थी। स्वतंत्र भारत को आत्मनिर्भरता और वैश्विक आर्थिक शक्ति बनने की चुनौतियां मिलीं। उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण जैसे नीतियों ने अर्थव्यवस्था को पुनर्निर्मित किया। पिछले सात दशकों में योजनाबद्ध विकास और औद्योगिकीकरण पर ध्यान दिया गया, जबकि 1991 के एलपीजी सुधारों ने वैश्वीकरण को बढ़ावा दिया। हालाँकि, गरीबी, असमानता और बेरोजगारी की समस्याएँ अभी भी हैं। भविष्य में समावेशी विकास और स्वास्थ्य पर ध्यान आवश्यक है।

मुख्य शब्दः भारत, स्वतंत्रता, अर्थव्यवस्था, औद्योगिकीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण, आत्मनिर्भरता, प्रतिस्पर्धा, आर्थिक विकास।

प्रस्तावना

भारत की स्वतंत्रता 15 अगस्त 1947 को मिली, जो केवल राजनीतिक सत्ता का हस्तांतरण नहीं था, बल्कि एक नए आर्थिक स्वरूप की स्थापना का आरंभ भी था। ब्रिटिश शासन ने एक कृषि-आधारित और अविकसित अर्थव्यवस्था पीछे छोड़ी, जिसमें गरीबी, असमानता और निरक्षरता का प्रकोप था। आजाद भारत को अपनी विशाल जनसंख्या को गरीबी से बाहर निकालने, आत्मनिर्भर बनने और वैश्विक मंच पर मजबूत आर्थिक शक्ति के रूप में उभरने की चुनौतियों का सामना करना पड़ा। स्वतंत्रता के बाद, अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया कई आर्थिक नीतियों को शामिल करती है, जिसमें उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण (एलपीजी) जैसे महत्वपूर्ण पड़ाव शामिल हैं। ये परिवर्तन अर्थव्यवस्था की दिशा में गहरे प्रभाव डालते हैं। राष्ट्र-निर्माताओं का लक्ष्य एक आत्मनिर्भर और न्यायसंगत अर्थव्यवस्था का निर्माण था, जो अपने नागरिकों की समृद्धि को सुनिश्चित करती। पिछले सात दशकों में भारतीय अर्थव्यवस्था ने सड़क के विभिन्न मोड़ों से गुजरते हुए योजनाबद्ध विकास और आर्थिक सुधारों का अनुभव किया है। यह यात्रा चुनौतियों को आत्मसात करते हुए भविष्य की संभावनाओं की ओर बढ़ती रही है।

स्वतंत्रता के उपरांत प्रारंभिक नीतियाँ और पंचवर्षीय योजनाएँ

आजादी के बाद, भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था अपनाई, जिसमें सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों की भूमिका थी। प्रारंभ में भारीपदकनेजतपमे, बुनियादी ढाँचे और कृषि उत्पादकता पर जोर था। पंडित नेहरू के नेतृत्व में, सोवियत मॉडल से प्रेरित पंचवर्षीय योजनाएँ शुरू की गईं। पहली योजना (1951-1956) ने कृषि, सिंचाई, और बिजली पर फोकस किया। इसका उद्देश्य खाद्य उत्पादन बढ़ाना और भूमि सुधार लागू करना था। दूसरी योजना (1956-1961) ने औद्योगिकीकरण पर जोर दिया, विशेषकर इस्पात, कोयला, और सीमेंट जैसे भारी उद्योगों में। इसी दौरान सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की स्थापना की गई, जो राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण थे।

इन योजनाओं का उद्देश्य आर्थिक विकास के साथ-साथ आत्मनिर्भरता और आयात प्रतिस्थापन को बढ़ावा देना था। सरकार ने विदेशी व्यापार पर नियंत्रण रखा और घरेलू उद्योगों की रक्षा के लिए आयात शुल्क लगाए। इन नीतियों ने औद्योगीकरण और क्षमता निर्माण में कुछ प्रगति की, लेकिन अक्सर धीमी वृद्धि, अक्षमता और लालफीताशाही से ग्रस्त रहीं। फिर भी, इन नीतियों ने राष्ट्र निर्माण के लिए एक मजबूत आधार तैयार किया।

नेताओं ने तेजी से औद्योगिकीकरण और आत्मनिर्भरता को प्राथमिकता दी, जहाँ सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों का सह-अस्तित्व था। प्रमुख उद्योगों पर सरकारी एकाधिकार था, जबकि निजी क्षेत्र को लाइसेंसिंग प्रणाली के जरिए नियंत्रित किया गया। कृषि में भूमि सुधार और सिंचाई परियोजनाओं पर ध्यान दिया गया। सामुदायिक विकास और सहकारी समितियों को बढ़ावा दिया गया। परिणामस्वरूप, एक विविध औद्योगिक आधार बना और बुनियादी ढाँचे का विकास हुआ। हालाँकि, लाइसेंस राज ने अक्षमता और भ्रष्टाचार को जन्म दिया, और समस्याएँ जैसे गरीबी, बेरोजगारी और आय असमानता बनी रहीं।

कृषि क्षेत्रः चुनौतियाँ और सुधार

भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ हमेशा से कृषि रही है। स्वतंत्रता के बाद, कृषि क्षेत्र को कई समस्याओं का सामना करना पड़ा, जिनमें मानसून पर अत्यधिक निर्भरता, छोटे और खंडित जोत, पुरानी खेती के तरीके, कम उत्पादकता और किसानों की गरीबी शामिल थी। स्वतंत्रता के बाद के प्रारंभिक वर्षों में, सरकार ने भूमि सुधारों, जैसे कि जमींदारी प्रथा का उन्मूलन, काश्तकारी अधिकारों का विनियमन और जोत की चकबंदी, पर ध्यान केंद्रित किया। हरित क्रांति, जो

1960 के दशक के मध्य में शुरू हुई, ने भारतीय कृषि में एक क्रांतिकारी परिवर्तन लाया। उच्च उपज देने वाली किस्मों (एचवाईवी) के बीजों, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और सिंचाई सुविधाओं के उपयोग से गेहूं और चावल जैसी फसलों के उत्पादन में भारी वृद्धि हुई।

हरित क्रांति ने भारत को खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और अनाज के आयात पर निर्भरता को कम किया। हालाँकि, इसके कुछ नकारात्मक परिणाम भी थे, जैसे कि भूमि और जल संसाधनों पर दबाव, रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी का क्षरण, और छोटे किसानों के लिए प्रौद्योगिकियों को अपनाने में चुनौतियाँ। हाल के वर्षों में, कृषि क्षेत्र को जलवायु परिवर्तन, बाजार की अस्थिरता और बढ़ती इनपुट लागत जैसी नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। किसानों की आय बढ़ाने और कृषि को अधिक टिकाऊ और लाभदायक बनाने के लिए विविधीकरण, जैविक खेती और आधुनिक तकनीकों को अपनाने जैसे सुधारों पर जोर दिया जा रहा है।

औद्योगीकरण और सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका

स्वतंत्रता के बाद, भारत ने एक मजबूत औद्योगिक आधार बनाने को प्राथमिकता दी, जिसे श्आर्थिक विकास का इंजनश् माना जाता था। सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका इस प्रक्रिया में केंद्रीय थी। सरकार ने भारी उद्योगों, जैसे कि इस्पात, इंजीनियरिंग, बिजली, परिवहन और खदानों में बड़े पैमाने पर निवेश किया। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (पीएसयू) ने रोजगार सृजन, क्षेत्रीय विकास को बढ़ावा देने और आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

हालांकि, समय के साथ, कई पीएसयू अक्षमता, भ्रष्टाचार, भारी सब्सिडी और प्रतिस्पर्धा की कमी से ग्रस्त हो गए। उन्होंने अपनी लाभप्रदता और दक्षता खो दी, जिससे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर बोझ बढ़ा। 1991 के उदारीकरण के बाद, सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका को पुनरू परिभाषित किया गया। सरकार ने गैर-रणनीतिक क्षेत्रों में कई पीएसयू का विनिवेश या निजीकरण किया। आज, सार्वजनिक क्षेत्र अभी भी कुछ प्रमुख क्षेत्रों, जैसे रक्षा, रेलवे और परमाणु ऊर्जा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, लेकिन अर्थव्यवस्था के अधिकांश हिस्से में निजी क्षेत्र का प्रभुत्व बढ़ गया है।

आर्थिक उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण (एलपीजी) सुधार

1991 में भारत की आर्थिक नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ, जिसके तहत गंभीर भुगतान संतुलन संकट के बीच व्यापक आर्थिक सुधारों की शुरुआत की गई, जिनको एलपीजी सुधार कहा जाता है। इनका लक्ष्य अर्थव्यवस्था को खोलना, प्रतिस्पर्धा बढ़ाना और विकास को गति देना था। औद्योगीकरण लाइसेंसिंग प्रणाली समाप्त की गई, जिससे निजी क्षेत्र के लिए नए उद्योग स्थापित करने में सुविधा हुई। व्यापार बाधाओं को कम किया गया, जिससे आयात और निर्यात को बढ़ावा मिला। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफडीआई) को प्रोत्साहित किया गया, जिसका परिणाम पूंजी, प्रौद्योगिकी, और विशेषज्ञता का देश में आना हुआ।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का विनिवेश शुरू किया गया और वित्तीय क्षेत्र में सुधार किया गया, जिसमें बैंकिंग और बीमा को खोलने पर ध्यान केंद्रित किया गया। एलपीजी सुधारों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को मौलिक रूप से बदल दिया। सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की वृद्धि दर में सुधार, सेवा क्षेत्र का विकास और विदेशों में प्रतिस्पर्धा में बढ़ोतरी हुई। हालाँकि, आय असमानता में वृद्धि और सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता जैसी चुनौतियाँ भी सामने आईं।

नरसिम्हा राव सरकार के तहत ये सुधार लाइसेंस राज को समाप्त करने, सरकारी नियंत्रण को कम करने और वैश्विक बाजार में प्रवेश के लिए अर्थव्यवस्था को खोलने पर केंद्रित थे। औद्योगिक लाइसेंसिंग का उन्मूलन, विदेशी निवेश का उदारीकरण, और व्यापार उदारीकरण जैसे प्रमुख सुधार लागू किए गए।

इन सुधारों का गहरा और परिवर्तनकारी प्रभाव पड़ा। आर्थिक विकास की दर 2000 के दशक में औसतन 7: से अधिक रही, और सेवा क्षेत्र ने तेजी से वृद्धि की, जिससे भारत श्विश्व की बैंक ऑफिसश् बना। हालांकि, कृषि क्षेत्र को लाभ नहीं मिला, और ग्रामीण आय में वृद्धि धीमी रही। असमानता बढ़ी, और बेरोजगारी, विशेष रूप से असंगठित क्षेत्र में, बनी रही।

सेवा क्षेत्र का उदय और विकास

एलपीजी सुधारों के बाद, भारतीय अर्थव्यवस्था में सेवा क्षेत्र का तेजी से विकास हुआ। सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) और सूचना प्रौद्योगिकी-सक्षम सेवाओं (आईटीईएस) ने विशेष रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बेंगलुरु, हैदराबाद और पुणे जैसे शहर भारत के आईटी हब के रूप में उभरे, जिन्होंने दुनिया भर में अपनी सेवाएं प्रदान कीं। आईटी क्षेत्र ने न केवल विदेशी मुद्रा अर्जित की, बल्कि उच्च-कुशल रोजगार के अवसर भी पैदा किए।

सेवा क्षेत्र का विस्तार केवल आईटी तक ही सीमित नहीं रहा। इसमें दूरसंचार, बैंकिंग, बीमा, खुदरा, पर्यटन, स्वास्थ्य सेवा और शिक्षा जैसे क्षेत्र भी शामिल हैं। सेवा क्षेत्र ने जीडीपी में महत्वपूर्ण योगदान दिया है और रोजगार सृजन में भी इसकी अहम भूमिका रही है। हालाँकि, सेवा क्षेत्र के विकास का अर्थ यह भी है कि विनिर्माण क्षेत्र का सापेक्षिक महत्व कम हुआ है, जिसे 'सेवाओं की ओर झुकाव' (servitçation) कहा जाता है। भारत को 'मेक इन इंडिया' जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से विनिर्माण क्षेत्र को बढ़ावा देने की आवश्यकता महसूस हुई है ताकि रोजगार सृजन और निर्यात में विविधता लाई जा सके।

आर्थिक चुनौतियाँ और भविष्य की दिशा

आजादी के बाद से भारतीय अर्थव्यवस्था ने उल्लेखनीय प्रगति की है, लेकिन अभी भी कई महत्वपूर्ण चुनौतियाँ बनी हुई हैं। इनमें गरीबी और असमानता, बेरोजगारी, कुपोषण, अपर्याप्त स्वास्थ्य और शिक्षा सुविधाएं, पर्यावरण क्षरण, और जलवायु परिवर्तन के प्रभाव शामिल हैं।

आय असमानता एक बड़ी चिंता का विषय है, जहाँ आर्थिक विकास का लाभ समान रूप से वितरित नहीं हो रहा है। कुछ वर्गों की आय तेजी से बढ़ी है, जबकि निम्न आय वर्ग अभी भी संघर्ष कर रहा है। बेरोजगारी, विशेष रूप से युवाओं के बीच, एक सतत चुनौती है। अर्थव्यवस्था को पर्याप्त रोजगार सृजित करने की आवश्यकता है जो युवा आबादी की आकांक्षाओं को पूरा कर सके।

कृषि क्षेत्र को अभी भी जलवायु परिवर्तन के अनुकूल बनाने, किसानों की आय बढ़ाने और बाजार की अस्थिरता से निपटने के लिए निरंतर सुधारों की आवश्यकता है। विनिर्माण क्षेत्र को वैश्विक प्रतिस्पर्धा का सामना करने और अधिक रोजगार सृजित करने के लिए बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

भविष्य में, भारत को सतत विकास, समावेशिता और नवाचार पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता होगी। डिजिटल इंडिया, स्किल इंडिया और स्वच्छ भारत जैसे कार्यक्रम समावेशी विकास को बढ़ावा देने के महत्वपूर्ण कदम हैं। हरित प्रौद्योगिकियों में निवेश, ऊर्जा दक्षता को बढ़ावा देना, और नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों को अपनाना जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के लिए आवश्यक है। शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार से मानव पूंजी का विकास होगा, जो दीर्घकालिक आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष

आजादी के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था की यात्रा जटिल और परिवर्तनशील रही है। प्रारंभिक वर्षों में आत्मनिर्भरता और औद्योगिकीकरण का प्रयास किया गया, इसके बाद 1991 के एलपीजी सुधारों से उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की दिशा में गति मिली। इस यात्रा में भारत ने कृषि प्रधान देश से एक तेजी से विकसित हो रही वैश्विक शक्ति का रूप धारण किया। हरित क्रांति ने खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित किया और टेक्ट्स में आईटी क्षेत्र ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत का स्थान मजबूत किया। हालांकि, चुनौतियाँ बनी हुई हैं, जैसे गरीबी, असमानता, बेरोजगारी और पर्यावरणीय समस्याएँ। भविष्य में समावेशी विकास, सतत नवाचार, शिक्षा, स्वास्थ्य, और बुनियादी ढांचे में सहयोग की आवश्यकता होगी।

भारत ने औपनिवेशिक विरासत से योजनाबद्ध विकास के माध्यम से एक औद्योगिक आधार बनाया है, जिससे यह एक विविध अर्थव्यवस्था के रूप में उभरा है। बावजूद इसके, गरीबी, असमानता और कृषि क्षेत्र की विकास में कमी जैसी चुनौतियाँ बनी हुई हैं। वैश्वीकरण ने अवसर दिए हैं परन्तु इसके साथ आर्थिक उतार-चढ़ावों के प्रति संवेदनशीलता भी बढ़ी है।

आगे बढ़ते हुए, भारत को रोजगार सृजन, कृषि उत्पादकता और मानव संसाधनों के समुचित उपयोग पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। निरंतर सुधार, नवाचार और सुशासन भारतीय अर्थव्यवस्था को स्थायी विकास और समृद्धि की ओर ले जाने में मदद करेंगे। भारत की आर्थिक यात्रा प्रगति के पथ पर अग्रसर है।

संदर्भ

1. Acharya, S. S. (2002). Agricultural price policy and its impact on macroeconomy. In Agricultural price policy in India, Academic Foundation, p. 207-232.
2. Dreze, J., & Sen, A. (1995). India: Economic development and social opportunity. Oxford University Press, p. 20.
3. Krishnamurthy, K. (2000). Growth theories and empirical evidence from India. Oxford University Press, p. 32.
4. Lal, K. (2007). Indian economy since independence. Pearson Education India, p. 72.
5. Panagariya, A. (2008). India: The Emerging Giant. Oxford University Press, p. 23.
6. Acharya, I. G. (2016). The Indian Economy: Revival and Growth Since 1991. Oxford University Press, p. 76.

"भारत के स्वतंत्रता आंदोलन तथा गांधी के नेतृत्व और प्रभाव का समालोचनात्मक अध्ययन"

कुणाल कुमार

(रिसर्च स्कॉलर), प्रोफेसर भीमा बरकडे (इतिहास विभाग), साबरमती विश्वविद्यालय, अहमदाबाद, गुजरात

सारांश

यह शोध लेख भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में महात्मा गांधी की भूमिका का समालोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें गांधी के नेतृत्व की रणनीतियों, विचारधारा, उपलब्धियों और सीमाओं का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन किया गया है। साथ ही, वैकल्पिक धाराओं के साथ उनके संबंध और स्वतंत्र भारत पर उनके प्रभाव की भी विवेचना की गई है।

कूट शब्दः सत्य और अहिंसा, स्वदेशी, ग्राम स्वराज, अस्पृश्यता, जन आंदोलन, सविनय अवज्ञा।

प्रस्तावना

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन आधुनिक विश्व इतिहास के सबसे व्यापक, बहुआयामी और जन-आधारित आंदोलनों में से एक था। यह केवल औपनिवेशिक शासन से राजनीतिक मुक्ति का संघर्ष नहीं था, बल्कि सामाजिक पुनर्निर्माण, आर्थिक आत्मनिर्भरता, सांस्कृतिक पुनर्जागरण तथा नैतिक चेतना का भी आंदोलन था। इस आंदोलन में अनेक विचारधाराएँ, संगठन, नेता तथा जनसमूह सम्मिलित थे, परंतु इनमें महात्मा गांधी का स्थान सर्वाधिक प्रभावशाली और विशिष्ट माना जाता है। गांधी ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को नई दिशा, नई पद्धति और नया नैतिक आधार प्रदान किया। उन्होंने सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, असहयोग तथा स्वदेशी जैसे सिद्धांतों के माध्यम से स्वतंत्रता आंदोलन को जन-आंदोलन का स्वरूप दिया। फिर भी गांधी और उनके नेतृत्व का मूल्यांकन केवल प्रशंसात्मक दृष्टि से नहीं किया जा सकता। इतिहासकारों, राजनीतिक चिंतकों तथा समाजशास्त्रियों ने गांधी की नीतियों और रणनीतियों की आलोचनात्मक समीक्षा भी की है। कुछ विद्वान उन्हें भारतीय स्वतंत्रता का महानायक मानते हैं, जबकि अन्य उनके नेतृत्व को सीमित, समझौतावादी या वर्गीय हितों से प्रभावित बताते हैं। अतः गांधी के नेतृत्व तथा भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के उनके प्रभाव का समालोचनात्मक अध्ययन आवश्यक हो जाता है।भारत का स्वतंत्रता आंदोलन विश्व इतिहास के सबसे बड़े जन-आंदोलनों में से एक था। 1915 में दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद मोहनदास करमचंद गांधी ने 1920 से 1947 तक इस आंदोलन का नैतिक और रणनीतिक नेतृत्व किया। उनका नेतृत्व अहिंसा, सत्याग्रह और सर्वोदय जैसे दार्शनिक सिद्धांतों पर आधारित था। यह लेख गांधीवादी नेतृत्व को न तो पूर्णतः महिमामंडित करता है, न ही खारिज करता है, बल्कि तथ्यों के आधार पर उसका समालोचनात्मक परीक्षण करता है। यह शोधपरक आलेख भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की पृष्ठभूमि, गांधी के नेतृत्व के उदय, उनके सिद्धांतों, विभिन्न आंदोलनों में उनकी भूमिका तथा उनके प्रभाव और सीमाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की पृष्ठभूमि

भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ ही औपनिवेशिक शोषण की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई थी। अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों ने भारतीय उद्योगों को नष्ट किया, कृषि व्यवस्था को संकटग्रस्त बनाया तथा भारतीय समाज को गरीबी और बेरोजगारी की ओर धकेल दिया। 1857 का विद्रोह इस असंतोष का पहला व्यापक विस्फोट था। यद्यपि यह विद्रोह सफल नहीं हुआ, फिर भी इसने राष्ट्रीय चेतना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना भारतीय राजनीतिक इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। प्रारंभिक चरण में कांग्रेस के उदारवादी नेता संवैधानिक सुधारों और प्रशासनिक भागीदारी की मांग कर रहे थे। बाद में बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय और बिपिन चंद्र पाल जैसे उग्रवादी नेताओं ने आंदोलन को अधिक आक्रामक स्वरूप प्रदान किया।

1905 के बंग-भंग आंदोलन तथा स्वदेशी आंदोलन ने भारतीय राष्ट्रवाद को नई ऊर्जा प्रदान की। इसी समय क्रांतिकारी गतिविधियाँ भी तेज हुईं। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारत की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति और अधिक जटिल हो गई। रॉलेट एक्ट, जलियांवाला बाग हत्याकांड तथा ब्रिटिश दमनकारी नीतियों ने भारतीय जनता को आंदोलित कर दिया। ऐसे समय में गांधी भारतीय राजनीति के केंद्र में उभरे।

गांधी का राजनीतिक उदय

मोहनदास करमचंद गांधी का राजनीतिक जीवन दक्षिण अफ्रीका में प्रारंभ हुआ, जहाँ उन्होंने नस्लीय भेदभाव के विरुद्ध सत्याग्रह का प्रयोग किया। दक्षिण अफ्रीका में उनके अनुभवों ने उनके राजनीतिक दर्शन को आकार दिया।

1915 में भारत लौटने के बाद गांधी ने भारतीय राजनीति को समझने के लिए देश का व्यापक भ्रमण किया। उन्होंने किसानों, मजदूरों तथा सामान्य जनता की समस्याओं को निकट से देखा। चंपारण सत्याग्रह (1917), खेड़ा आंदोलन (1918) तथा अहमदाबाद मिल मजदूर आंदोलन (1918) ने गांधी को राष्ट्रीय नेता के रूप में स्थापित किया।

गांधी की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को शिक्षित मध्यमवर्ग की सीमाओं से निकालकर गांवों और आम जनता तक पहुंचाया। उन्होंने राजनीति को नैतिकता तथा जनसहभागिता से जोड़ा।

गांधी का राजनीतिक दर्शन

सत्य और अहिंसा

गांधी के संपूर्ण राजनीतिक दर्शन का आधार सत्य और अहिंसा था। उनके अनुसार सत्य सर्वोच्च नैतिक मूल्य है तथा अहिंसा सत्य तक पहुंचने का माध्यम। गांधी मानते थे कि हिंसा केवल घृणा और विनाश को जन्म देती है, जबकि अहिंसा नैतिक शक्ति उत्पन्न करती है। उनकी अहिंसा निष्क्रियता नहीं थी, बल्कि अन्याय के विरुद्ध सक्रिय प्रतिरोध का माध्यम थी। सत्याग्रह इसी सिद्धांत का व्यावहारिक रूप था।

सत्याग्रह

सत्याग्रह गांधी की मौलिक राजनीतिक तकनीक थी। इसका अर्थ है-सत्य के लिए आग्रह। इसमें अन्यायपूर्ण कानूनों और नीतियों का शांतिपूर्ण प्रतिरोध किया जाता है। गांधी के अनुसार सत्याग्रह आत्मबल और नैतिक शक्ति पर आधारित संघर्ष है।

स्वदेशी और आत्मनिर्भरता

गांधी ने स्वदेशी को आर्थिक स्वतंत्रता का आधार माना। उन्होंने विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार तथा खादी के प्रयोग पर बल दिया। उनका मानना था कि भारत की वास्तविक शक्ति गांवों और कुटीर उद्योगों में निहित है।

ग्राम स्वराज

गांधी विकेंद्रीकृत शासन व्यवस्था के समर्थक थे। उनका आदर्श "ग्राम स्वराज" था, जिसमें प्रत्येक गांव आत्मनिर्भर इकाई के रूप में कार्य करे। वे अत्यधिक औद्योगिकीकरण और केंद्रीकरण के विरोधी थे।

गांधी के नेतृत्व में प्रमुख आंदोलन

असहयोग आंदोलन (1920-22)

जलियांवाला बाग हत्याकांड और खिलाफत प्रश्न के कारण गांधी ने असहयोग आंदोलन प्रारंभ किया। इसमें सरकारी संस्थाओं, विद्यालयों, अदालतों तथा विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया गया। यह पहला आंदोलन था जिसमें व्यापक जनसहभागिता देखने को मिली। किसानों, छात्रों, महिलाओं तथा व्यापारियों ने बड़ी संख्या में भाग लिया।

आलोचनात्मक दृष्टि

चौरी-चौरा घटना के बाद गांधी द्वारा आंदोलन वापस लेना विवादास्पद निर्णय माना गया। कई नेताओं, विशेषकर सुभाषचंद्र बोस और जवाहरलाल नेहरू, ने इसे जनभावनाओं के विपरीत बताया। आलोचकों का मत है कि इससे आंदोलन की गति रुक गई।

सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930-34)

नमक कानून के विरोध में गांधी ने दांडी यात्रा प्रारंभ की। यह आंदोलन औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध प्रत्यक्ष चुनौती था। नमक सत्याग्रह ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारतीय आंदोलन को व्यापक पहचान दिलाई। भारतीय आंदोलन विश्व स्तर पर चर्चित हुआ। महिलाओं की भागीदारी बढ़ी। ग्रामीण क्षेत्रों में राष्ट्रीय चेतना का विस्तार हुआ। ब्रिटिश सरकार ने आंदोलन को कठोरता से दबाया। गांधी-इरविन समझौते की भी आलोचना हुई क्योंकि इससे तत्काल कोई बड़ा राजनीतिक लाभ नहीं मिला।

भारत छोड़ो आंदोलन (1942)

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान गांधी ने "करो या मरो" का नारा दिया। यह आंदोलन ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सबसे व्यापक जनविद्रोह बन गया। आंदोलन स्वत:स्फूर्त था। युवाओं और छात्रों की सक्रिय भागीदारी रही। कई स्थानों पर समानांतर सरकारें स्थापित हुईं।

आलोचना

कुछ इतिहासकारों का मत है कि आंदोलन के समय गांधी की रणनीति स्पष्ट नहीं थी। दूसरी ओर मार्क्सवादी इतिहासकारों का कहना है कि यह आंदोलन युद्धकालीन परिस्थितियों से प्रभावित था और इसमें संगठित क्रांतिकारी दिशा का अभाव था।

गांधी और सामा0जक परिवर्तन

अस्पृश्यता उन्मूलन

गांधी ने हरिजनों के उत्थान के लिए अभियान चलाया। उन्होंने मंदिर प्रवेश आंदोलन तथा सामाजिक समानता पर बल दिया।

आलोचना

डॉ. भीमराव आंबेडकर ने गांधी की नीतियों की आलोचना करते हुए कहा कि गांधी जाति व्यवस्था के मूल ढांचे को समाप्त करने के पक्ष में नहीं थे। पूना पैक्ट (1932) को लेकर भी दोनों के बीच गंभीर मतभेद रहे।

महिला सहभागिता

गांधी ने महिलाओं को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ा। सरोजिनी नायडू, कस्तूरबा गांधी, अरुणा आसफ अली और उषा मेहता जैसी महिलाओं ने सक्रिय भूमिका निभाई।

आलोचनात्मक दृष्टि

यद्यपि गांधी ने महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में स्थान दिया, परंतु उनका दृष्टिकोण कई बार पारंपरिक नैतिकता से प्रभावित दिखाई देता है।

ग्रामीण पुनर्निर्माण

गांधी ने ग्रामोद्योग, स्वच्छता, शिक्षा तथा आत्मनिर्भरता पर बल दिया। उनका मानना था कि भारत की आत्मा गांवों में बसती है।

आलोचना

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने गांधी के ग्राम-केंद्रित मॉडल को अव्यावहारिक बताया। नेहरू जैसे नेताओं ने औद्योगिकीकरण को आधुनिक भारत के निर्माण के लिए आवश्यक माना।

गांधी के नेतृत्व का समालोचनात्मक मूल्यांकन

जन-आंदोलन का निर्माण

गांधी की सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन को जन-आंदोलन बना दिया। उनके नेतृत्व में किसान, मजदूर, महिलाएं तथा निम्न वर्ग राजनीति से जुड़े। इतिहासकार बिपिन चंद्र के अनुसार गांधी ने भारतीय राष्ट्रवाद को व्यापक सामाजिक आधार प्रदान किया।

नैतिक राजनीति की स्थापना

गांधी ने राजनीति को नैतिक मूल्यों से जोड़ा। सत्य और अहिंसा पर आधारित उनका संघर्ष विश्व इतिहास में अद्वितीय माना जाता है। मार्टिन लूथर किंग जूनियर तथा नेल्सन मंडेला जैसे नेताओं ने गांधी की विचारधारा से प्रेरणा प्राप्त की।

सीमित क्रांतिकारिता

मार्क्सवादी इतिहासकारों का मत है कि गांधी का आंदोलन मूलत: मध्यमवर्गीय और पूंजीपति वर्ग के हितों की रक्षा करता था। वे सामाजिक-आर्थिक क्रांति के बजाय राजनीतिक समझौतों पर अधिक बल देते थे। सुभाषचंद्र बोस ने भी गांधी की नीतियों को अत्यधिक समझौतावादी माना।

सांप्रदायिक प्रश्न

गांधी हिंदू-मुस्लिम एकता के समर्थक थे, परंतु वे भारत के विभाजन को रोकने में सफल नहीं हो सके। कुछ आलोचकों का मत है कि कांग्रेस और गांधी की नीतियां सांप्रदायिक राजनीति को प्रभावी ढंग से नियंत्रित नहीं कर सकीं। दूसरी ओर समर्थकों का कहना है कि विभाजन ब्रिटिश "फूट डालो और राज करो" नीति तथा सांप्रदायिक शक्तियों के कारण हुआ।

जाति प्रश्न पर गांधी

गांधी जातिगत भेदभाव के विरोधी थे, लेकिन वे वर्ण व्यवस्था को पूरी तरह समाप्त करने के पक्ष में स्पष्ट नहीं थे। डॉ. आंबेडकर ने इसे सामाजिक न्याय के मार्ग में बाधा माना। इस संदर्भ में गांधी और आंबेडकर का विवाद भारतीय सामाजिक चिंतन का महत्वपूर्ण अध्याय है।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की बहुआयामी प्रकृति

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन केवल गांधी के नेतृत्व तक सीमित नहीं था। इसमें अनेक विचारधाराओं और नेताओं का योगदान था।

क्रांतिकारी धारा

भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद और अन्य क्रांतिकारियों ने सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से औपनिवेशिक शासन को चुनौती दी।

समाजवादी धारा

जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया तथा कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने समाजवादी दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया।

आंबेडकरवादी दृष्टिकोण

डॉ. आंबेडकर ने सामाजिक समानता और दलित अधिकारों को राष्ट्रीय आंदोलन के केंद्र में रखा।

सुभाषवादी दृष्टिकोण

सुभाषचंद्र बोस ने आजाद हिंद फौज के माध्यम से सैन्य संघर्ष का मार्ग अपनाया। अत: स्वतंत्रता आंदोलन बहुआयामी था, जिसमें गांधी केंद्रीय व्यक्तित्व होने के बावजूद अकेले निर्णायक तत्व नहीं थे।

गांधी की वैश्विक प्रासंगिकता

गांधी का प्रभाव केवल भारत तक सीमित नहीं रहा। उनके अहिंसात्मक संघर्ष ने विश्व राजनीति को गहराई से प्रभावित किया। अमेरिका में नागरिक अधिकार आंदोलन, दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद विरोधी संघर्ष, म्यांमार, पोलैंड तथा अन्य देशों में लोकतांत्रिक आंदोलनों में गांधीवादी विचारों का प्रभाव देखा गया। आज भी पर्यावरण संरक्षण, मानवाधिकार तथा शांति आंदोलनों में गांधीवादी सिद्धांतों की प्रासंगिकता बनी हुई है।

निष्कर्ष

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन आधुनिक भारतीय इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। इस आंदोलन ने न केवल औपनिवेशिक शासन को समाप्त किया, बल्कि भारतीय समाज में राष्ट्रीय चेतना, राजनीतिक जागरूकता तथा लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास किया। महात्मा गांधी ने इस आंदोलन को नई दिशा और व्यापक जनाधार प्रदान किया। सत्य, अहिंसा तथा सत्याग्रह के माध्यम से उन्होंने संघर्ष की ऐसी पद्धति विकसित की, जिसने विश्व इतिहास में विशिष्ट स्थान प्राप्त किया। उन्होंने राजनीति को नैतिकता, जनसहभागिता और सामाजिक सुधार से जोड़ा। महात्मा गांधी का नेतृत्व भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का केंद्रीय स्तंभ था। उन्होंने आंदोलन को नैतिक आधार, जन-आधार और अंतरराष्ट्रीय पहचान दी। अहिंसा और सत्याग्रह उनके मौलिक योगदान हैं जो आज भी विश्व भर में नागरिक अधिकार आंदोलनों के लिए प्रेरणा हैं। हालांकि, समालोचनात्मक दृष्टि से देखें तो गांधी अचूक नहीं थे। आंदोलनों को बीच में रोकना, खिलाफत का आकलन, दलित प्रश्न पर अंबेडकर से मतभेद, और विभाजन को न रोक पाना उनकी सीमाएँ दर्शाते हैं। अंततः गांधी को समझने का सही तरीका उन्हें 'महात्मा' या 'खलनायक' के खांचों में बांटना नहीं, बल्कि एक ऐसे युग-पुरुष के रूप में देखना है जिसने अपनी शक्तियों और सीमाओं के साथ इतिहास की दिशा को निर्णायक रूप से मोड़ा। स्वतंत्र भारत की लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष और अहिंसक राजनीति की बुनियाद में गांधीवादी प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। फिर भी गांधी का नेतृत्व आलोचना से परे नहीं है। उनकी नीतियों की सीमाएँ, सांप्रदायिक प्रश्न पर असफलता, जाति व्यवस्था के प्रति अस्पष्ट दृष्टिकोण तथा औद्योगिकीकरण के विरोध जैसी बातों पर गंभीर बहस होती रही है। यही कारण है कि गांधी का समालोचनात्मक अध्ययन भारतीय इतिहास लेखन का महत्वपूर्ण विषय बना हुआ है। अंततः यह कहा जा सकता है कि गांधी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के केंद्रीय व्यक्तित्व थे, परंतु स्वतंत्रता की प्राप्ति अनेक शक्तियों, आंदोलनों और नेताओं के संयुक्त प्रयासों का परिणाम थी। गांधी की ऐतिहासिक भूमिका को समझने के लिए उनके योगदान और सीमाओं दोनों का संतुलित मूल्यांकन आवश्यक है।

संदर्भ सूची के लिए प्रमुख स्रोत

1. ब्राउन, जूडिथ. Gandhi: Prisoner of Hope. 1989
2. चंद्र, बिपन. India's Struggle for Independence. 1988
3. गुहा, रामचंद्र. Gandhi: The Years That Changed the World, 1914–1948. 2018
4. सरकार, सुमित. Modern India 1885–1947. 1983
5. अंबेडकर, बी.आर. What Congress and Gandhi Have Done to the Untouchables. 1945